१. योग

संतो के साधना-पक्ष में योग का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। योग की क्रियाएँ प्रारंभ से भारतीय संस्कृति और उसके अध्यात्म का एक विशिष्ट अंग रही हैं। उपनिषदो के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस काल में योग के द्वारा चित्तवृत्ति के निरोध का व्यापक रूप से अभ्यास किया जाता था और केवल हठ-योग से ध्यान-योग को उच्चतर तथा श्रेष्ठ माना जाता था। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में लिखा है कि ऋषियो ने ध्यान-योग के द्वारा आत्मशक्ति को प्रत्यक्ष किया।[१] एक दूसरे मन्त्र में 'ध्याननिर्मथनाभ्यास' जैसे संश्लिष्ट पद का प्रयोग किया गया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि ध्यान-योग की क्रियाओ का विधिपूर्वक अभ्यास किया जाता था। 'युक्त मन' अथवा 'मनोयोग' आदि पद पद-पद पर उपनिषदो में मिलेंगे। कठोपनिषद् में बहुत ही वैज्ञानिक ढङ्ग से और स्पष्ट शब्दो में 'योग' की परिभाषा दी गई है—जब पाँचो इन्द्रियाँ और तर्क-वितर्क, ज्ञान-विज्ञान, मन-बुद्धि सभी निश्चेष्ट हो जाते हैं, तब उसीको 'परमगति' कहते हैं, उसीको 'योग' भी कहते हैं।[२]

पतंजलि के 'योग-दर्शन' में वैदिक काल से आती हुई योग-साधना की परम्परा को एक स्वतन्त्र दर्शन का गौरवान्वित स्थान प्राप्त हुआ। पातंजल दर्शन चार पादो में विभक्त है। प्रथम पाद 'समाधि' पाद कहलाता है, इसमें योग के स्वरूप, उद्देश्य और लक्षण, चित्त-वृत्ति-निरोध के उपाय तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के योगो की विवेचना की गई है। दूसरा पाद 'साधना' पाद कहलाता है, जिनमें क्रिया-योग, क्लेश, कर्मफल, दुःख आदि विषयो का वर्णन है। तीसरा 'विभूति' पाद है, जिसमें योग की अन्तरंग अवस्थाओ तथा योगाभ्यास-जन्य सिद्धियो का वर्णन है। चोथा 'कैवल्य' पाद है, जिसमें मुख्यतः कैवल्य या मुक्ति के स्वरूप की विवेचना की गई है। पतंजलि ने योग की सामान्य परिभाषा दी है 'चित्त-वृत्ति-निरोध'। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—ये योग के आठ अङ्ग हैं। यम पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह; नियम भी पाँच हैं—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान। योग की अंतिम परिणति समाधि भी दो प्रकार की कही गई है—संप्रज्ञात तथा असंप्रज्ञात। सारांश यह कि सिद्ध-पंथ तथा निर्गुण संतमत में जिस योग की प्रक्रियाओ का विस्तृत वर्णन है और जिसको सातिशय महत्त्व दिया गया है वह मुख्यांश में उपनिषदो तथा योग-दर्शन से निःसृत है।

सामान्यतः निर्गुण संतमत, और विशेषतः सरभंग-मत में प्रचलित योग की प्रक्रियाओ का विवरण प्रस्तुत करने के पहले हम यह स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि आसन, प्राणायाम और मुद्रा की प्रधान भित्ति पर आधारित हठ-योग, जिसका अधिक सम्बन्ध शरीर से है और कम

सम्बन्ध मन तथा आत्मा से, उनकी दृष्टि में अधिक महत्त्व नहीं रखता। कबीर, दरिया आदि ने हठ-योग को कहीं-कहीं 'पिपीलक'-योग कहा है।[3] पिपीलक चींटी को कहते हैं; वह वृक्ष पर धीरे-धीरे चढ़ती है, चढ़कर मधुर फल खाती है, किन्तु कुछ देर बाद वह नीचे जमीन पर उतर जाती है और मधुर रस के आस्वादन का तन्तु विच्छिन्न हो जाता है। निरा हठयोगी भी क्षणिक एकाग्रता प्राप्त कर योग-विरहित पूर्वावस्था में बार-बार लौट आता है और निरन्तर परमानन्द के आस्वादन से वंचित रहता है। इसके विपरीत जो ध्यान-योग है, उसे सन्तों ने 'विहंगम-योग' कहा है। जिस प्रकार विहंगम अथवा पक्षी वृक्ष की डाल पर लगे हुए मीठे फलो का रसास्वादन बार-बार करता है, उड़ता भी है तो, इसके पहले कि रसानुभूति का तार टूटने पावे, पुनः डाल पर बैठकर उस रस का आस्वादन आरम्भ कर देता है; रसास्वादानुभूति की शृङ्खला पलमात्र के लिए भी छिन्न नहीं होती, उसी प्रकार ध्यानयोगी अपने आनन्द-लोक में निरन्तर विचरता रहता है। चीटी के समान उसे वृक्ष के नीचे अर्थात् दुःख-सुखमय मर्त्य-लोक में उतरना नहीं पड़ता है। 'वह शून्य गगन में विचरण करते हुए अमृत पान करता है और अमृत पान करते हुए शून्य गगन में विचरता रहता है';[4] उसे चित्त-वृत्ति-निरोध के लिए हठ-योग की अपेक्षा नहीं होती।

किनाराम ने ध्यान-योग को अध्यात्म-योग भी कहा है,[5] किन्हीं-किन्हीं पदों में इसे 'सहज योग' भी कहा है।[6] ध्यान का ही नाम 'सुरति' है, अतः इसे सुरति-योग या सुरति-शब्द-योग भी कहते हैं। सन्त मेंहींदास ने सुरति-योग या 'सुरत-शब्द-योग' को 'नादानु-संधान'-योग की संज्ञा दी है। गोपालचन्द्र आनन्द ने इसे 'आनन्द-योग' का भी नाम दिया है। चंपारण-परंपरा के कर्ताराम ने यह लिखा है कि योग दो प्रकार के होते हैं— 'हठ-योग' और 'राजयोग'। हठ-योग से राजयोग श्रेयस्कर है। हठ-योग के 'नेती', (नेति), 'धोती' (धौति), 'बस्ती' (बस्ति), 'त्राटक', 'नौली' और 'कपालभाँत्ति' ये छह प्रकार हैं। इसके अतिरिक्त अनेक आसन, और पूरक, कुंभक तथा रेचक प्राणायाम आदि विहित हैं। किन्तु जबतक राजयोग द्वारा चित्तवृत्ति अन्तर्मुख नहीं होती और हृदय में अमर-ज्योति नहीं चमकती, तबतक मोक्ष नहीं होता।[7]

योग-विज्ञान के विशेषज्ञ पाश्चात्य विद्वान् पॉल ब्रन्टन (Paul Brunton) ने योग के तीन क्रमिक तथा उत्तरोत्तर स्तरों का निर्देश किया है। प्रथम स्तर वह है, जिसमें साधक एकमात्र शारीरिक साधना, अर्थात् आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि के द्वारा हठात् चित्त-वृत्ति का नियन्त्रण करता है। इससे उच्चतर वह द्वितीय स्तर है, जिसमें उसकी साधना शरीर की सतह से ऊपर उठकर भावनाओं के क्षेत्र में पहुँचती है और वह बिना आसन, प्राणायाम आदि माध्यम के भी अपने अन्तर के आनन्द और मानसिक शांति की अनुभूति करता है। ब्रन्टन के विचार से इस अनुभूति-योग से भी ऊँचा जो तीसरा स्तर है, वह 'ज्ञान-योग' का है। इस स्तर पर आसीन होकर साधक, जो हठ-योग और ध्यान-योग अथवा अनुभूति-योग के सोपान से होकर उसे पार कर चुका है, अपनी विवेक-बुद्धि के साथ अनुभूति का समन्वय करता है और आत्मतत्त्व तथा बाह्य जगत् के रहस्य में बुद्धिपूर्वक अवगाहन करता है। यह 'ज्ञान-योग' 'कर्म-योग' का विरोधी नहीं होता,

क्योंकि ज्ञानयोगी विश्व की समस्या को अपनी समस्या समझने लगता है; उसके लिए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' हो जाता है।[८] जहाँ तक किनाराम आदि सन्तो की योग-साधना का प्रश्न है, उसे हम मुख्यतः ध्यान-योग ही कहेंगे, यद्यपि अनेकानेक संतो में लोक-कल्याण की उग्र भावना की कमी नही थी। ऐसा कहने का यह तात्पर्य नहीं कि इन संतो का हठ-योग से कोई भी संबंध नहीं था। उन्होने पद-पद पर 'इडा', 'पिंगला', 'सुषुम्णा', 'त्रिकुटि', 'षट्-चक्र', 'अष्ट-दल-कमल', 'बंकनाल', 'शून्य गगन', 'सुरति-निरति', 'पिंड-ब्रह्माण्ड', 'अनहद (अनाहत) नाद' आदि योग के पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग ही नहीं किया है, उनका विस्तृत विवरण भी दिया है। उन्होने आसन, मुद्रा और प्राणायाम का भी वर्णन किया है, जिससे यह अनिवार्य रूप से अनुमित होता है कि संत साधको के अनुभूति-योग अथवा ज्ञान-योग की पृष्ठभूमि हठ-योग के अभ्यासो से ही सजाई जाती है।

इसके पहले कि किनाराम, टेकमनराम, भिखमराम आदि संतो की 'बानियो' के आधार पर योग के विभिन्न अंगो और प्रक्रियाओ की संक्षिप्त चर्चा की जाय, संभवतः यह उचित होगा कि सक्षेप मे हठ-योग की प्रक्रियाओ की एक सरल रूप-रेखा प्रस्तुत की जाय।[९] यह रूप-रेखा वस्तुतः तंत्र-ग्रंथो के आधार पर है और वहीं से संतो को विस्तृत प्रेरणाएँ भी मिली हैं। कुण्डलिनी एक शक्ति है। जीव-रूपी शिव कुण्डलिनी के प्रभाव से ही अपने को जगत् और[१०] ब्रह्म से भिन्न समझता है। कुण्डलिनी सबसे निचले चक्र मूलाधार में सर्पिणी-सी सोई रहती है। उसका इस प्रकार सोना बंधन और अज्ञान का द्योतक है; अतः उसे जागरित करना आवश्यक है। जब वह जग उठती है, तो अन्य चक्रो का भेदन करती हुई ब्रह्माण्ड-लोक में पहुँचती है और वहाँ शिव से मिलकर अभिन्न हो जाती है। कुण्डलिनी का शिव के साथ यह मिलन दृश्य जगत् के मायामय विकारो से ऊपर उठने और जीवात्म-तत्त्व के परमात्म-तत्त्व में लीन होने का प्रतीक है। मूलाधार चक्र में एक केन्द्र है, उससे ७२००० हजार नाड़ियाँ निकलती हैं,—शाखा-उपशाखाओं को मिलाकर ये ३५०००० हैं। इनमें से सर्वप्रथम तीन हैं—'इडा (इंगला)', 'पिंगला' और 'सुषुम्णा' (सुखमना)। ये तीनो मूलाधार से निकलती हैं, 'इडा' मेरुदण्ड के वाम भाग से, पिंगला उसके दक्षिण भाग से और सुषुम्णा उसके बीच होकर। मूलाधार चक्र से निकल कर स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा—इन चक्रो का भेदन करती हुई ये ऊपर चढ़ती हैं और 'इडा' वामनासा-रन्ध्र में, पिंगला दक्षिणनासा-रन्ध्र में और सुषुम्णा नासिका के ऊपर ब्रह्म-रन्ध्र में पहुँचती है। ब्रह्म-रन्ध्र में इडा, पिंगला और सुषुम्णा—जिन्हें दूसरे शब्दो में गंगा, यमुना और सरस्वती भी कहते हैं—का संगम होता है, इसीलिए उस संगम-बिन्दु को 'त्रिवेणी' या 'त्रिकुटि' (त्रिकुटी) कहा जाता है। ब्रह्म-रन्ध्र में ही 'शून्य गगन' है जहाँ सहस्रदलोवाला कमल विकसित है। हठ-योग का प्रधान लक्ष्य है कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से जागरित करके शून्य गगन-स्थित सहस्रदल कमल में मिला देना। कुण्डलिनी प्रकृति का प्रतीक है और सहस्र-पद्म सत्पुरुष अथवा ब्रह्म का; और इस प्रकार कुण्डलिनी के क्रमशः सहस्रकमल में विलीन हो जाने का अर्थ यह है कि आत्मा,

जो प्रकृति अथवा माया के कारण द्वैत और बंधन में आ गया है, अपनी मूलभूत दिव्य पवित्रता तथा ब्रह्माद्वैत को प्राप्त हो। प्रस्तुत अनुशीलन के पात्रीभूत संतों ने उपरिनिर्दिष्ट हठ-योगभूमिक ध्यान-योग को जिस ढंग से अपने शब्दों में व्यक्त किया है, उसका सारांश यहाँ दिया जाता है।

यद्यपि आसन, मुद्रा और प्राणायाम का अधिक महत्त्व नहीं है, फिर भी इनका सामान्य अभ्यास साधना के लिए आवश्यक हो जाता है। आसनों में सिद्धासन अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित है। टेकमनराम कहते हैं कि सिद्धासन लगाकर मन को स्थिर करो, तब जाकर अमरपुरी के द्वार में हीरा झलकेगा।[11] सिद्धासन में दोनों एँड़ियों को अण्डकोष और गुदामार्ग के बीच के स्थान में इस प्रकार रखा जाता है कि बाईं एँड़ी दाहिनी ओर और दाईं एँड़ी बाईं ओर पड़े। हाथों को घुटनों पर रखकर अँगुलियों को फला दिया जाता है और मेरुदंड को सीधा तानकर चित्त स्थिर करके बैठा जाता है। सिद्धासन के अतिरिक्त स्वस्तिकासन, सिंहासन, शवासन, पद्मासन, मुक्तासन[2], उग्रासन भी संतमतों में अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित हैं।[13] आसन और प्राणायाम की मिली जुली यौगिक क्रिया को मुद्रा कहते हैं। निम्नलिखित सात मुद्राएँ अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित हैं—मूलबन्ध, जलन्धर-बन्ध, उड्डियान-बन्ध, शांभवी-मुद्रा, खेचरी मुद्रा, अश्विनी-मुद्रा और योनि-मुद्रा। दरिया आदि संतों के पदों में प्रायः पाँच मुद्राओं का ही निर्देश मिलता है—'खेचरी', 'भोचरी', 'अगोचरी', 'चंचरी' और उन्मुनी (महामुद्रा)। सम्भवतः प्रथम चार घेरण्ड-संहिता-वर्णित आकाशी, पार्थिवी, आग्नेयी और आंभसी के ही विकृत रूप हैं। 'उन्मुनी' मुद्रा का सम्बन्ध आँखों की दृष्टि को स्थिर करने और उसे अन्तर्मुख करने से है। अलखानन्द ने एक पद में आसन और खेचरी-मुद्रा की चर्चा की है।[14] यह मुद्रा एक कठिन मुद्रा है और बिना गुरु के निर्देश के इसका अभ्यास करना विपज्जनक है। इस क्रिया के आरम्भ में जिह्वा को सतत अभ्यास द्वारा खींचकर इतना बड़ा बनाना पड़ता है कि वह भ्रू-मध्य तक पहुँच जाय। प्रत्येक सप्ताह थोड़ा-थोड़ा करके गुरु जीभ की बिचली स्नायु को साफ छुरी से काटते हैं और उस पर थोड़ी हल्दी की बुकनी और नमक छींट देते हैं जिससे कटी हुई स्नायु जुट न जाय—अभ्यासी जीभ में ताजा माखन रगड़कर उसे बाहर तानता है और उसी प्रकार दुहता है, जिस प्रकार ग्वाला गाय के स्तन को। जीभ के नीचे की स्नायु काटने की क्रिया प्रत्येक सप्ताह छह मास तक करनी पड़ती है। जब जीभ यथेष्ट लम्बी हो जाती है, तब उसको मुँह के भीतर ही उलटा करके तालु में सटाते हुए ले जाकर नासा-छिद्रों को जिह्वाग्र से बन्द कर दिया जाता है। स्पष्ट है कि यह मुद्रा कष्टसाध्य है और इसकी साधना सभी संतों के लिए संभव नहीं है। 'आनन्द' ने भी इस क्रिया की चर्चा की है, यद्यपि मुद्राविशेष का नाम नहीं लिया है।[15] नारायणदास कहते हैं कि जब साधक बारह बरस तक अभ्यास करता है, तब योगी कहलाने का अधिकारी होता है।[16] वे यह भी कहते हैं कि योगी तो तब कहायगा कि जब उसमें उड़ जाने की और विराट् रूप धारण करने की आश्चर्यजनक शक्ति आ जायगी।[17] सरभंग-मत के संतों के ग्रन्थों में आसनों, मुद्राओं का विशेष वर्णन नहीं है और न प्राणायाम का ही; किन्तु यह स्पष्ट है कि

कम-से-कम आसन और प्राणायाम का अभ्यास प्रारंभ में प्रत्येक साधक को करना पड़ता है। प्राणायाम के मुख्य तीन प्रकार हैं—पूरक, अर्थात् साँस अन्दर लेना; कुम्भक, अर्थात् साँस को अन्दर रोककर रखना; रेचक, अर्थात् साँस को बाहर फेंकना। प्राणायाम से योग अर्थात् चित्त-वृत्ति-निरोध में सहायता मिलती है।

जिस ध्यान-योग, अथवा किन्हीं-किन्हीं संतो के मत में विहंगम-योग, का वर्णन निर्गुण सन्त-साहित्य में सामान्यतः पाया जाता है, उसका मुख्य संबंध कंठ के ऊपर के हिस्से से है। योग की इस क्रिया में साधक की 'सुरति' या ध्यान-दृष्टि नेत्र के 'अष्ट-दल-कमल' में अवस्थित 'सूची-द्वार' होकर 'ब्रह्माण्ड' में प्रवेश करती है और इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा की 'त्रिवेणी' में मज्जन करती हुई 'सहस्रदल' में विचरण करती है; फिर 'बंकनाल' होकर ऊपर चढ़ती है और 'भँवर गुफा' में प्रवेश करती है। इस गुफा में प्रवेश करते ही आत्मा ऐसी दिव्यदृष्टि प्राप्त करता है कि एक-से-एक अनोखी सुगन्धि और अद्भुत छवि का अनुभव तथा साक्षात्कार करता है। यहाँ अनाहत नाद गुंजायमान रहता है, जो 'शब्द-ब्रह्म' है; यहीं वह 'अमरपुरी' अथवा 'अकह लोक' है, जहाँ आत्मा परमात्मा में मिलकर अद्वैत हो जाता है, आत्मा का यही मोक्ष है।

किनाराम कहते हैं कि इडा, पिंगला और सुषुम्णा की शुद्धि करनी चाहिए तथा उन्मुनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। 'सुरति' और 'निरति' में मग्न होकर जीव परमानन्द को प्राप्त होता है।[१८] योगेश्वराचार्य कहते हैं कि इडा और पिंगला का शोधन करके सुषुम्णा की 'डगर' पकड़नी चाहिए तथा 'पाँच' को मारकर, 'पचीस' को वश कर, 'नौ' की नगरी को जीत लेना चाहिए। भिनकराम कहते हैं कि इडा, पिंगला नाम की दो नदियाँ बहती हैं[१९], जिनमें सुन्दर जल की धारा प्रवाहित है।[२०] टेकमनराम भी 'इंगला' और 'पिंगला' के शोधन तथा 'त्रिवेणी-संगम' के स्नान का निर्देश देते हैं।[२१] रामस्वरूप दास भी इन तीनो नाड़ियो की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि इनके अभ्यास से मन के 'बैठने' में देरी नहीं लगती।[२२] इडादि तीनो नाड़ियो के संगम-स्थल को "त्रिकुटी' या त्रिवेणी कहते हैं जिसकी चर्चा संतो ने बार-बार की है। दरसन राम कहते हैं कि बंकनाल की उल्टी धार बहती है, रसना 'अजपा' की माला जपती है, त्रिकुटी महल में सुग्गा बोलता है, और साधक का मन हर्षित होता है।[२३] रामटहल राम उपदेश देते हैं कि 'ऐसा ध्यान लगाना साधो, ऐसा ध्यान लगाना' कि मूल द्वार को साफ करके गगन महल में जा 'धमको' और 'त्रिकुटी-महल' में बैठकर 'अपार ज्योति' देखो।[२४]

अघोरमत के मुख्य प्रवर्त्तक किनाराम लिखते हैं कि इडा, चन्द्रमा में और पिंगला, सूर्य के ग्रह में निवास करते हैं और सुषुम्णा दोनो के मध्य में। जब चन्द्र और सूर्य का सहज और समान रूप से उदय हो जाता है तो शून्य में शब्द का प्रकाश होता है, मन में 'झजर' झरने लगता है और सुख-रूपी अमृत का आस्वादन होता है।[२५]

यहाँ एक तालिका दी जाती है जो संतो द्वारा रचित 'स्वरोदय' के आधार पर है—

१	२	३	४	५	६	७	८	९
स्वर	उपनाम	स्वरों से संबद्ध नाड़िया (स्वरों के तृतीय नाम)	नासिका	श्रन्तदवत	संबद्ध नक्षत्र-पुञ्ज	संबद्ध पक्ष	संबद्ध दिवस	स्वरों की अनुगामिनी क्रियाओं की विशेषता
चन्द्र	गंगा	इंगला (इड़ा)	वाम	चंद्रमा	वृश्चिक, सिंह, वृष, कुम्भ	शुक्ल	सोम, बुध, गुरु, शुक्र,	स्थिर
भानु	यमुना	पिंगला	दक्षिण	सूर्य	कर्क, मेष, मकर, तुला	कृष्ण	रवि, मंगल, शनि	चंचल
सुषुम्णा	सरस्वती	सुखमना (सुषुम्णा)	दोनों साथ-साथ	उभय	कन्या, मीन, मिथुन, धन	—	—	—

ध्यान-योग के क्षेत्र में 'सुरति' और 'निरति' ये दो महत्त्वपूर्ण शब्द हैं। सुरति योगी की उस असाधारण दृष्टि-क्षमता को कहते हैं, जिसके द्वारा वह अन्तर्मुख होकर अपार्थिव जगत् के आश्चर्यमय दृश्यों और शब्दों की साक्षात् अनुभूति प्राप्त करता है, और निरति उस निर्विकल्प ध्यान की अवस्था है, जिसमें दृश्यावली प्रकट नहीं होती। दोनों ही ध्यान की स्थिरता की सूचक हैं। सुरति के द्वारा ही अनाहत नाद का श्रवण संभव है।[२६] 'आनन्द' ने लिखा है कि जब सुरति ठीक से स्थिर हो जाती है तब अमृत चूने लगता है और जीवात्मा उसको पीकर परितृप्त हो जाता है; गगन में बिजली चमकने लगती है और उजियाला हो जाता है; यह उजियाला त्यों-त्यों बढ़ता जाता है ज्यों-ज्यों सुरति सत्-पुरुष के द्वार की ओर बढ़ती जाती है; वहाँ अनाहत ध्वनि भी सुनाई पड़ती है।[२७] 'पिंड खण्ड' में मूलाधार आदि चक्र हैं, किन्तु 'ब्रह्माण्ड खण्ड' में आँख ही अष्टदल-कमल है और जब सुरति आँख की पुतली—जिसे पारिभाषिक शब्दों में 'अग्रनख', 'तिल', 'खिड़की' आदि कहते हैं—से होकर भीतर जाती है, तब तेज और ज्योति का संसार दीख पड़ता है। जिस प्रकार मंदिर की किवाड़ की देहली से लटका हुआ दीप मंदिर के अन्दर उजाला करता है, उसी प्रकार सुरति के द्वारा भी अन्तरंग उद्भासित होता है।[२८] ध्यान रहे कि योग की सभी प्रक्रियाओं में अनुभवी निर्देशक अथवा सद्गुरु की आवश्यकता होती है।

भिनक राम कहते हैं कि मुझे त्रिकुटी घाट का बाट नहीं सूझता है और वहाँ पहुँचना मेरे बूते की बात नहीं है जबतक कि सद्गुरु की दया न हो।[२९] वे 'सुन्दरी सोहागिन' को आमन्त्रित करके उसे उस त्रिकुटी के घाट पर जाने को कहते हैं, जहाँ संत सौदागर बहुमूल्य सौदा लेकर उतरा है, जहाँ 'हंसो की कचहरी' लगी है, जहाँ सोहावन पोखरी है, जिसमें से वह अमृतरस की 'गगरी' भर सकती है; वहाँ अमरपुरी है, जहाँ वह ब्रह्म को नयन भर देख सकती है।[३०] वे एक पद में रूपक बाँधते हुए कहते हैं कि तुम पवन की उल्टी गति करके भवन में घुस जाओ, वहाँ एक ऐसा तराजू बनाओ, जिसमें प्रेम के 'पलरे' हो, 'धीरज' की डडी हो और सुरति की 'नाथ' पहनाई हुई हो। ऐसे तराजू से दिन-रात 'सुन्न सहर' में निर्गुण नाम का सौदा तौलो। इससे अमरपद की प्राप्ति होगी।[३१] सुरति और पवन की स्वाभाविक गति बहिर्मुखी है, किन्तु योग में उनको उलटकर अन्तर्मुख किया जाता है, इसलिए कई स्थानो पर इस उलटी गति का वर्णन है। आनन्द ने लिखा है—

आँख मूँदि के उल्टा ताके,
ताड़ी रहै जमाया रे।
शून्य देश में जहाँ कोय नही,
पच्ची तहाँ लुकाया रे।[३२]

गोविन्दराम ने कहा है कि साधक मूल द्वार से पवन को खींचकर 'उल्टा पंथ' चलाता है और मेरुदंड की सीढ़ी से चढ़कर शून्य शिखर पर चढ़ जाता है।[३३] भिनकराम कहते हैं—मूलचक्र की शुद्धि करो, त्रिकुटी में श्वास नियंत्रित करो और द्वादश 'गुड्डियाँ' उड़ाओ।[३४] सुहागिन वही है, जिसके लिए गगन की किवाड़ उलटी खुल जाय, जिसमें कि इडा, पिंगला के संतुलन द्वारा वह 'सुरधाम' चढ़ सके, जहाँ पर उसके सद्गुरु हैं और जहाँ त्रिकुटी-मदिर के भीतर अखंड ज्योति प्रज्वलित है।[३५]

अनेक संतो के पदो में षट्चक्र, अष्ट-दल-कमल, द्वादश दल-कमल, षोडश दल-कमल, सहस्र दल-कमल आदि के उल्लेख मिलेंगे। इन पदो में षट्चक्र-शोधन का तात्पर्य पिंडगत मूलाधार आदि चक्रो का भेदन कर सुप्त कुण्डलिनी के जगाने से है, और कमल-दल-प्रवेश से तात्पर्य सुरति का आँखो से होकर ब्रह्माण्डगत अन्तर्लोक में पहुँचकर दिव्यदृष्टि की प्राप्ति से है। कहीं-कहीं सभी चक्रो के, आँखो में ही निवास की कल्पना की गई है। रामस्वरूप राम लिखते हैं कि जीवात्मा का निवास मूलचक्र पर है, जहाँ चार दलोवाला कमल प्रकाशित हो रहा है। जहाँ षड्दल-कमल है, वहाँ ब्रह्मा का; जहाँ अष्टदल-कमल है वहाँ शिव-शक्ति का निवास है।[३६] गोविन्दराम बताते हैं कि साधक स्नान करके पद्मासन मारे और उन्मुनी मुद्रा में ध्यान करे, गढ़ के भीतर प्रवेश कर छह चक्रो को पार करे और षोडश रस का आस्वादन करे। गढ़ में दस दरवाजे हैं और हरएक पर एक-एक थानेदार है। उन्मुनी मुद्रा के बल से इन दसो द्वार की किवाड़ियाँ खुल जायँगी और एक विमल अग्निचक्र दीख पड़ेगा।[३७] योगेश्वरदास बाह्य संसार को 'नैहर' और आभ्यंतर जगत् को ससुराल कल्पित करते हुए सुहागिन से कहते हैं कि त्रिकुटी-मध्य में दोनो नयन लगाकर पवन को उल्टी गति

चलाकर मकड़ी के तार के समान अविच्छिन्न सुरति की डोर के सहारे चढ़कर वहाँ चलो जहाँ पिया मिलेंगे।[३८] एक अन्य सत कहते है कि अष्टदल-कमल अधोमुख रहता है। सुरति जब-जब जिस-जिस दल पर जाती है, तब-तब उस पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। जब पूर्व दल पर जाती है तब जीवदया, जब अग्निकोण के दल पर जाती है तब निद्रा और आलस्य, जब दक्षिण दल पर जाती है तब मात्सर्य और क्रोध, जब नैर्ऋत दल पर जाती है तब मोह, जब पश्चिम दल पर जाती है तब जड़ता, जब वायव्य कोण के दल पर जाती है तब त्रिदोष, जब उत्तर दल पर जाती है तब भोग और जब ईशान कोणवाले दल पर जाती है तो अभिमान की वृद्धि होती है। साधना से इन दोषो पर विजय पाई जा सकती है।[३९]

योग की प्रक्रिया की अवस्था में 'सोहं' का जप आवश्यक होता है। वस्तुतः सोहं की अन्तर्ध्वनि का एक निरन्तर तार बँध जाता है।[४०] अलखानन्द कहते हैं कि इस प्रकार की सोहं ध्वनि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में नही, किन्तु उससे भी परे तुरीयावस्था में ही सुन पड़ती है। जबतक सोहं जप का अभ्यास न होगा, तबतक दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं मिटेंगे; सागर के तीर पर रहते हुए भी साधक को नीर नहीं मिलेगा, कल्पतरु के तले निवास करते हुए भी दारिद्र्य नहीं नष्ट होगा।[४१] ध्वनि अथवा शब्द कालान्तर में स्वतः और सहज हो जाता है, साधक स्वय शब्दमय हो जाता है, और शब्द ही ब्रह्म है, अतः वह ब्रह्ममय हो जाता है। इसलिए शब्द का संतमत में बहुत बड़ा स्थान है।[४२] इसी शब्द अथवा अनाहत नाद की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए योग की क्रिया को 'अनाहत योग' (अनहद योग) भी कहा गया है।[४३] ब्रह्माण्ड के जिस अनुभूति-लोक में योगी अपनी दिव्यदृष्टि द्वारा चित्त-वृत्ति की स्थिरता प्राप्त करता है और आनन्द का रसास्वादन करता है, उसे अनेक संज्ञाएँ दी गई हैं—'सुन्न महल', 'सुन्न सहर', 'गगनगुफा', 'गगन मंडल', 'गगन अटारी', 'सुन्न सिखर', 'अमरपुरी', 'गगन महल', 'ध्रुव-मंदिर' आदि। टेकमनराम की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

> सुन्ने आया सुन्ने जायगा, सुन्ने का विस्तार।
> सुन्ने सुन्न सहज धुन उपजे, कर बन्दे निरवार॥[४४]

समाधि का यह शून्यलोक घट में ही है। भक्तिन भौजाई माई कहती हैं कि—'ऐ ननदी! मैंने घर में ही अपने 'पिया' को पा लिया है। मैंने बहुत तीर्थ और व्रत किया, जोगिन बनकर वन-वन ढूँढा, लेकिन मेरा समय व्यर्थ गया[४५]। स्पष्ट है कि यहाँ घर से तात्पर्य ब्रह्माण्डगत शून्यलोक से है। रामटहल राम कहते हैं कि—

> सुन्न सिखर से अम्रित टपके
> हंसा पिये अघाय।[४६]

किनाराम ने शून्यलोक की समाधि की अद्वैतता तथा स्थिरता का विश्लेषण करते हुए कहा है कि जिस तरह घट के भीतर का सीमित आकाश उसके फूटने से असीम आकाश में मिल जाता है, उसी प्रकार समाधि की अवस्था में श्वास प्राण में, शब्द शब्द में,

प्राण प्राण में, ब्रह्म ब्रह्म में, हंस हंस में, अविनाशी अविनाशी में, काल शून्य में, पवन पवन में, जीव शिव में, शिव निरंजन में, निरंजन निराकार में, निराकार अविगति में, अनहद अविनाशी में, और अविनाशी अपने आप में विलीन हो जाता है।[४७]

शून्य गगन में जिस दृश्यावली का अनुभव और जिस आनन्द का आस्वादन होता है, उसका संतो की 'बानियो' के आधार पर एक संक्षिप्त विवरण आगे प्रस्तुत किया जायगा। यहाँ इस योग-संबंधी चर्चा को समाप्त करने के पहले उस 'सुरत शब्द-योग' का विवरण दिया जाता है, जिसे गोपालचन्द्र 'आनन्द' ने अपने 'आनन्द-योग' में भक्तो के कल्याण और सुगमता के लिए सरल शब्दो में लिखा है। यहाँ उनके विवरण में से कुछ चुने हुए अंश उन्हीं के शब्दो में उद्धृत किये जा रहे हैं :—

"लीजिये बात ही बात में युक्ति भी बता दी गई, अर्थात् मन को वश में करने के लिये केवल सुरत-शब्द-योग का अभ्यास कीजिये।

"आँख, कान, ज़ुबान को बाहर की ओर से बन्द करके उन्हें अन्दर की ओर खोलिये। यहाँ आन्तरिक जगत् में अपूर्व सुख और आनन्द मिलेगा। इसी प्रकार आँख अन्तर में प्रकाश देखती है। जिह्वा अन्तर का नाम जपती है। तीनो इन्द्रियो के लिये तीन काम मिल गये। अब तो मानेगा कि अब भी नही। इधर से हटे उधर को लगे। आन्तरिक जगत् के सुहावने दृश्य को देखकर, मनोरंजन बाजे को सुनकर अजपा जाप की मधुर वाणी में लीन होकर हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। वहाँ के मधुर गान, मनोहर दृश्य तथा अजपा जप 'सोऽहं' 'सोऽहं' शब्द श्रवण करते ही सुरत सनसनाती हुई ऊपर की ओर उठी और आकाश में लीन हो गयी। वहाँ का अनुपम दृश्य अकथनीय है, केवल अभ्यासी लोग ही उस सत्+चित्+आनन्द का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माँह।
सुरत शब्द मेला भया, सुख की हाजित नाँह॥

जाग्रत में स्वप्न का और स्वप्न में जाग्रत का दृश्य देखकर इस श्रेष्ठ मार्ग में जो आया वह फिर वापस नहीं जाता, और न तो उसे जन्म-मरण का खटका रहता है। अब प्रश्न केवल यह है कि जब अन्तर में तीन इन्द्रियाँ काम करने लग गयीं तो फिर उन पर बन्द कहाँ लगा? हालत तो पहले जैसी थी वैसे ही अब भी रही, केवल स्थान बदल गया। संसार में तीन प्रकार के ज्ञान अर्थात् प्रमाण, अनुमान और शब्द होते हैं। प्रमाण तो इन्द्रियों का ज्ञान है। (देखना, सुनना, चखना यह प्रमाण ज्ञान है)। अन्दाजा लगाना, नतीजे को देखकर कारण सोचना या विचारना अनुमान कहलाता है। इसका संबंध दिल से है। शब्द गुरु का वचन और आप्त पुरुष का कथन है, बाहिरी जगत् में ज्ञान इसी तरह प्राप्त होता है। आन्तरिक जगत् में इनके संस्कार दिल में रहते हुए अपना काम करते हैं परन्तु भेद केवल इतना ही है कि कान जहाँ बाहिरी जगत् के शब्दो को सुनता था अब आन्तरिक जगत् में प्रवेश कर अनहद-शब्द को सुनता है, आँख जहाँ और दृश्यो को देखती थी अब आन्तरिक जगत् में उस प्रकाशमय ज्योति को देखती है।

जुबान केवल अजपा जाप के सिवा किसी से संबंध नही रखती है। ये तीनो इन्द्रियाँ धीरे-धीरे इधर से चुप हो जाती हैं, वहाँ पहुँचने पर आँखो को दूर से चिराग की रोशनी दिखाई देती है। कानों में घण्टे की आवाज दूर से सुनाई देती है और जुबान तो दिल के साथ मिली हुई मन में लय हो जाती है। आपने देखा होगा संध्या समय जब मंदिरो में आरती होती है तो मंदिर में चिराग ही दिखाई देता है और घण्टे का शब्द सुनाई देता है। वह हजारो रोशनी की धारो का केन्द्र (मरकज़) है क्योंकि हर स्थान पर धारो ही की रचना है। जिस प्रकार किसी कालेज में प्रवेश पाने के लिये इन्ट्रेन्स पास करना जरूरी है इसी प्रकार यहाँ भी है। इन्ट्रेन्स का अर्थ ही प्रवेश होने का फाटक है। अब आन्तरिक मंदिर में प्रवेश करें। मदिर क्या है? यह आपका सर ही तो मंदिर है। क्या आप नहीं देखते कि शिवजी के मंदिर में अथवा मसजिद में गुम्बद है (ऊपरी गोल हिस्सा) यह बाहिरी मंदिर असली मंदिर की नकल है। सच्चा और असली मंदिर तो तुम्हारा सर है। हर मंदिर के बीच में आप एक त्रिलोनी (त्रिशूल) वस्तु देखते हैं, इसे संत मत में 'त्रिकुटी' कहते हैं। आन्तरिक जगत् में प्रवेश कर गुरु की प्रकाशमय लाल रंग की प्रतिमा का दर्शन कर जहाँ दूर से घंटे और शंख की आवाज सुन रहे थे, अब मृदंग या पखावज तथा मेघनाद के शब्द को दिल दो। यह अन्तरी शब्द है। कोई इसको 'ऊँ, ऊँ' कहते हैं, कोई-कोई 'बम', 'बम' बोलते हैं। मुसलमान फकीर इसे 'हूँ', 'हूँ' कहते हैं। गुरु नानक साहब के भक्त लोग 'वाह गुरु' कहते हैं। यह गुरु ही का स्थान है। यही ब्रह्म है, यही अनलहक है जो यहाँ आया वही सच्चा गुरुमुख या पीरमुर्शिद हुआ, और जो बाहरी जगत् के आडम्बरो में फँसा रहा वह मनमुखी होता है। इस आन्तरिक जगत् में प्रवेश करने पर ध्यान एवं ज्ञान की समाधि की अवस्था प्राप्त होती है, इस समाधि में अत्यन्त अँधेरा है। इस अवस्था का नाम 'सुन्न' और 'महासुन्न' है, यह परब्रह्म पद है। इस आन्तरिक जगत् में प्रवेश करने पर रंग-रूप का भेद दूर होकर आत्मा (रूह) और परमात्मा (खुदा) में लीन होकर 'ऊँ' या 'हू', 'हू' की आवाज को सुनकर त्रिकुटी, भँवर गुफा, आनन्द लोक तथा ब्रह्मलोक की सैर करता हुआ सत्+चित्+आनन्द हो जाता है।

जो इतने पद ऊँचे चढ़ै ॥
रंग, रूप, रेखा से टरै ॥
ऊँ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!"[४८]

२. दिव्यलोक और दिव्यदृष्टि

पूर्व प्रसंग के अन्त में जो पंक्तियाँ उद्धत की गई हैं, उनमें अनाहत शब्द तथा उस सुहावने दृश्य की संक्षेप में चर्चा की गई है जिनका अनुभव तथा साक्षात्कार साधक संत को होता है। शब्द और दृश्य के इस अद्भुत लोक को अनेक नामो से सूचित किया

जाता है ।

बावरी-पंथ में हठयोग -

बावरी पंथ की रचनाओं से ज्ञात होता है कि आरम्भिक स्थिति में इस पंथ के संत कवियों ने भी सम्भवतः हठयोग को कुछ महत्व अवश्य दिया होगा। मध्यकालीन संतों ने धर्म साधना के क्षेत्र में विकृत एवं जटिल स्वरूप का संगठन प्रारम्भ किया था । उन तमाम जटिलताओं के बीच सरलता एवं अनेकता में एकता स्थापन का उद्देश्य बावरीपंथ का था।

'यम' और 'नियम' तो किसी भी साधना के लिये अनिवार्य माने जा सकते हैं। सम्भवतः इसीलिये बावरी पंथ के संत कवियों ने उनका अलग रूप में विवेचन करने की आवश्यकता न समझी हो । किन्तु साधन और प्राणायाम आदि की ओर उन्होंने अवश्य संकेत किया है। बावरी पंथ के अधिकांश संत आसन का नामोल्लेख करके ही रह गये है या कहीं कहीं पर किसी आसन विशेष के स्वरूप की किसी एक विशेषता का संकेत करके योग साधना के मार्ग पर अग्रसर होने का उपदेश दिया है। इस दृष्टि से यारी साहब ने योगी को सम्बोधित करते हुए बड़े ही सरल एवं भावपूर्ण शब्दों में आसन का उपदेश दिया है ।

जोगी जुगति जोग कमाव ।
सुखमना पर बैठी आसन सहज ध्यान लगाव ।।
दृष्टि सम करि सुन्न सेवो आपा मेटि उड़ाव ।।
प्रकट जोति अकार, अनुभव शब्द सोहं गाव ।।
छोड़ि मठ को चलहु जोगी, बिना पंख उड़ि जाव ।।
यारी कहै यह मत विहंगम, अगम चढ़ि फल खाव ।।[1]

डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत ने यहां पर 'दृष्टि' सम करी को 'शिव संहिता' के 'नासाग्रे विन्यसेत दृष्टि' की ओर संकेत करता हुआ मानते हैं जिसका प्रयोग शिव संहिता में पद्मासन के प्रसंग में किया गया है। गुलाल साहब ने तो सुरति-निरति की अवस्था में स्पष्ट रूप से आसन लगाने का उपदेश दिया है ।

सहज सरूप साहब घर पावल, अंते जाय बलाई ।
सुरति-निरति ले आसन मांड़यों, जोग जुगति बनि आई[2]।।

आगे उन्होंने शून्य में आसन मारने का निर्देश भी दिया है-

सुन्न नगर में आसन माड़ो, अद्भुत भेष बनाई ।।[3]

संत भीखा साहब ने इंगला -पिंगला को नियंत्रित करके सुषुम्ना में आसन लगाने की युक्ति बताई है-

सुषमन के घर आसन मारो, इगला पिगला सुदारी ।
सुन्य निरन्तर साहेब आये, सब घट बसते न्यारी ।।[4]

जगजीवन साहब आसन का नामोल्लेख करके ही रह गये हैं।

मारि आसन रहौ वैठि, नयनन टक लाय डोरी ।[5]

गोविन्द साहब ने योग साधना पद्धति में सबसे पहले योगी के लिये उचित भोजन करने का सलाह दिये हैं, उसके पश्चात् आसन लगाने का और अन्त में सद्गुरू की शरण में बैठकर

---

1. यारी साहब की 'रत्नावली' पृ0 4 ।
2. गुलाल साहब की बानी, पृ0 22 ।
3. वही, पृ0 74 ।
4. संत भीखा की मर्मभेदी पुकार ,पृ0 117 ।
5. जगजीवन साहब की बानी, भाग- 1, पृ0 70

निद्रा पर प्रतिबन्ध लगाने का उपदेश दिये है।[1] आगे उन्होंने पद्मासन का समर्थन करते हुए लिखा हैं-

गैब मन्दिर में रतन सिंगासन । बैठे गुरू तहं गहि पद्मासन ।।[2]

संत पलटू साहब ने आसन लगाने के साथ ही निद्रा, भोजन, काम, क्रोध एवं अहंकार इत्यादि का परित्याग बतलाया है -

आसन दृढ़ है रहै जगत से हारना ।निद्रा बसि में करै भूख को मारना ।।
काम क्रोध को मारि आपु को खोवना ।अरे हाँ पलटू पांव पसारे यार मौज से सोवना ।।[3]

एक स्थल पर पलटू साहब ने स्पष्ट रूप से आठों पहर पद्मासन में स्थित रहने का उपदेश दिया है

'पदम आसन नाहिं छूटै, आठ पहर लगावनम ।[4]

थान साहब ने योग युक्ति से अधिक संयम का महत्व बताते हुए, सहज समाधि की अवस्था में आसन लगाने की स्पष्ट घोषणा किया है ।

योग युक्ति नहीं संजम, आसन सहज समाधि लगाया है ।।[5]

संत देवकीनन्दन साहब आसनों को दृढ़ करने की बात सोच रहे है उन्होंने सिद्धासन लगाने का उपदेश दिया है ।[6] एक स्थान पर वे सुषुम्ना पर आसन लगाने की भी बात कहते है-

बैठि सुषमना आसन माड़ो सहजे तुरिया आई।[7]

हुलासदास ने पद्मासन लगाने का उपदेश दिया है-

आसन पदुम लगाय सुरति की डोरी लाई।[8]

बावरी पंथ के संत आसनों की विभिन्न संख्याओं के चक्कर में नहीं पड़े हैं। अधिकांश संत आसन का नामोल्लेख करके ही रह गये हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बावरी पंथ के संत कवि पद्मासन के पक्ष में कुछ अधिक थे।

प्राणायम साधना में संत यारी साहब ने पान- अपान साधना को विशेष महत्व दिया है।

घट में प्रान अपान दुबाई । अरध -उरध आवै अरू जाई ।।
लेके प्रान-अपान मिलावै । वाही पवन ते गगन गरजावै ।।[9]

केशव दास ने भी पान- अपान वायु का उल्लेख करके प्राणायाम का संकेत मात्र किया है ।

प्रान आपान असमान में थिर भया, सुन्न के सिखर में जिकिर लागी।[10]

संत बुल्ला साहब ने पवन को बांधकर गगन की साधना की बात कही है।[11] उन्होंने पवन को मथानी कहकर प्राणायाम की आवश्यकता की ओर भी संकेत किया है।

पवन मथानी हिरदे ढूढो, तब पावै मन ठाव ।।[12]

गुलाल साहब ने मन, पवन साधना की ओर सकेत करते हुए प्राणायाम पर बल दिया हैं।

---

1. पहिलै कसै अधर, बहुरि पुनि आसन बांधे ।
   सद्गुरू शरणो जाय, बैठि निद्रा को साधै ।।
   -- गोविन्द साहब की हिन्दी रचनाएं, पृ0 29 ।
2. गोविन्द विज्ञान भास्कर, पृ0 94 (हस्तलिखित)
3. पलटू साहब की बानी, भाग -2, पृ0 72 ।
4. वही, भाग - 3, पृ0 53 ।
5. थान साहब के शब्द, पृष्ठ 12 (हस्तलिखित)
6. इंगला-पिंगला सुषमना एकरस ऐसी ढ़रनि ढरै।
   सिधासन दै वेधि चक्र षट् त्रिकुटि धरनी धरै।।
   -देवकीनन्दन सा0 की हिन्दी रचनायें, पृष्ठ 1
7. वही पृष्ठ 36
8. हुलासदास कृत ब्रह्म विलास, पृष्ठ 21
9. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 7
10. केशवदास की अमींघूट, पृष्ठ 10
11. बांधि पवनहि साथ गगनहिं, गरजि-गरजि सुनावई।- बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 2
12. वही, पृष्ठ 2

मन पवना को संगम कोई नर पाइया ।
अनहद बजे अपार तो अलख लखाईया ।।[1]

उन्होंने एक स्थल पर त्रिवेणी के तीर पर चन्द्र एवं सूर्य के मिलने को बताया है।[2] एक अन्य स्थान पर वे चांद, सूर साधना का वर्णन अर्ध-उर्ध के खेल तथा इंगला -पिंगला को बांधकर बतलाया है।कुछ संतों में अर्ध-उर्ध के स्थान पर अरध और उरध भी मिलता है, ये प्राणायाम के बाचक है ।

अर्ध- उर्ध को खेल कोउ नर पावई । चांद सूर को बांधि गगन ले जावई ।।
ईंगल पिंगल दोउ बांधि सहज तब आवई । कहै गुलाल हर रोज आनन्द तब आवई[3]।।

बुल्ला साहब ने एक स्थान पर वायु साधना से सम्बन्धित प्राणायाम के पूरक, कुभक, रेचक आदि अंगों का उल्लेख किया है ।

लै कुंभक पूरक घर रखना रेचक संजम देई ।[4]

संत भीखा साहब ने प्राणायाम के सन्दर्भ में लिखा है कि - बाईं नासिका की चन्द्र नाड़ी पिंगला और दाहिनी नाड़ी इंगला के साथ बीच की सुषुम्णा नाड़ी का शोधन करके ज्ञान- अग्नि को जगावे, प्रज्ज्वलित करें । इन्हीं इंगला पिंगला तथा सुषुम्णा को एकाग्र करके उलटकर उर्ध्वमुखी कर दे। इस क्रिया द्वारा गगन - गुफा के गगन मण्डल में अनाहद नाद और प्राण का संयोग होता है[5]। एक दूसरे स्थान पर उन्होंने दृष्टि को उलाट करके प्राणायाम करने का उपदेश दिया है[6]।

भीखा साहब को हम कबीर की भांति हठयोगियों के कठोर साधना की तीखी आलोचना करते हुए पाते हैं -

पान अपान उदान व्यान करि विसरेउ सारंग पानी ।
अपरम्पार पार परमेश्वर अविगति अकथ कहानी ।।[7]

योगी लोग पान, अपान, व्यान, उद्वान तथा समान वायु को साधने में विश्वात्मा रूप परमतत्व को त्याग देते हैं ।

संत गोविन्द साहब ने 'पवन' साधना की सहायता से सुरति - निरति को पार करने का उपदेश दिया है ।[8] संत पलटू साहब ने लिखा है कि बांई नासिका की चन्द्र नाड़ी पिंगल और दाहिनी नासिका की सूर्य नाड़ी इंगला के बीच की सुषुम्णा से त्रिकुटि में मिला देने पर सोहं शब्द सुनाई पड़ने लगता है ।[9] एक स्थान पर उन्होंने पवन साधना का भी संकेत किया है -

इंगला माहिं सहज समानी, पिंगल पवन अहारी हो[10]

रामचरन साहब ने पान-अपान वायु को शोधने का उपदेशं दिया है -

'रामचरन गोविन्द भजु। शोधेउ पान अपान ।।[11]

---

1. गुलाल साहब की बानी, पृ0 51 ।
2. चंद सूर घर आयल तिरबेनी तीर ।
   निरखि - निरखि गति साजल दरसन रघुवीर - वही, पृ0 26 ।
3. वही, पृ0 46 ।
4. बुल्ला साहब का 'शब्दसार', पृ0 3 ।
5. चन्द्र सूर्य एकाग्रह करि, उलटि उर्ध्व अनुसरै। नाद विन्द का जूह गगन में, मन माया तब टेरे।।
   -संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृष्ठ 93
6. बैसाख मास फल पूरन, योग युक्ति प्रानायाम।
   दृष्टि उलटि कै लगि रहै, निसुदिन आठो याम ।। वही, पृष्ठ 165
7. वही, पृष्ठ 54
8. पवन पयाना करि गया। सुरति निरति के पार।। गोविन्द साहब की हिन्दी रचनायें, पृष्ठ 25
9. बायें चन्द सुर है दाहिने, सुखमन सुरति समानी हो।
   सोहं सोहं सुन में बोलै, वही शब्द की खानी हो- पलटू साहब की वानी, भाग 3, पृष्ठ 28
10. वही, पृष्ठ 28
11. श्री रामचनर साहब के शब्द, पृष्ठ 2 (हस्तलिखित)

संत थानदास ने पान, अपान, उद्धान को मिलाने का संकेत दिया है[1]। संत देवकीनन्दन साहब ने अष्टांग योग की महत्ता बतलाई है[2]। आगे उन्होंने पान, अपान, उद्धान, व्यान को उलाट कर भरने का उपदेश दिया है[3], तो कही पर मात्र पान, अपान को मिलाने की बात कही है[4]। हुलासदास ने इड़ा पिंगला को शोध करके सुषुम्णा में समाने को बतलाया है --

इड़ा पिंगला सोधि के सुख मन रहे समाय । त्रिकुटि दास हुलास गे, कौन सकै अलगाय ।।[5]

स्वामी गैबानन्द ने अष्टयाम के आठो नियमों का नामोल्लेख निम्न प्रकार से किया है

औरहु एक उपाय सुनु, नाश विक्षेपहिं हेत ।यम अरू नियमासन कही, प्राणायाम समेत ।।
प्रत्याहार पुनि धारणा, ध्यान समाधी जान ।यही योग अष्टांङ्ग है, करत विक्षेपहिं हान[6]।।

बावरी पंथ के संत कवियों ने कहीं भी योग का क्रमबद्ध रूप नहीं प्रस्तुत किये हैं। ये लोग प्राणायाम साधना का संकेत मन, पवन साधना के रूप में अधिकतर किये हैं। जो पलटू साहब तक आते-आते हठयोग का प्रभाव क्षीण-सा दिखाई पड़ने लगता है । कुछ संतों ने अष्टांग योग की साधना का भी उल्लेख किये हैं ।

विपरीतकरण मुद्रा से योगी लोग सूर्य को ऊपर कर देते हैं और चन्द्र को नीचे कर देते है ।यह क्रिया प्रत्याहार और प्राणायाम के द्वारा ही सिद्ध होती है।[7] विपरीतकरणी मुद्रा ही आगे चलकर संतों में विपरीतकरणी सूर्य चन्द्र साधना के नाम से प्रसिद्ध हुयी है । बावरी पंथ के संत यारी साहब ने विपरीतकरणी मुद्रा का संकेत करते हुए लिखा है - भगवान की कृपा से ही साधक चन्द्र को अधस्तात स्थिर करने में और सूर्य को उर्ध्वमुखी करने में समर्थ होता है ।

ऐन-इनायत हरि की बढ़े। चन्द उतारै सूरज चढ़ै।[8]

प्रत्याहार की साधना में सहायक प्रणव जप भी है, ये जप एक लाख बीस हजार संख्या में बताएं गये हैं, किन्तु बावरी पंथ के संतों ने जप को बहुत महत्व दिया है। फिर भी एक लाख बीस हजार जप, संख्या का उल्लेख किसी ने नही किया है ।

ये लोग प्रणव जप के स्थान पर सोहं के अजपाजाप को ही विशेष महत्व देते हैं । यारी साहब ने अजपा-जाप की ओर संकेत करते हुए लिखा है-

गगन गुफा में बैठि के रे, उलटि के अपना आप देखे।
अजपा जपै विन जीभि सो रे, बिन नैन निरंजन रूप लेखै ।।[9]

बावरी साहिबा ने भी अजपा - जाप के महत्व का प्रतिपादन किया है -

अजपा जाप सकल घट बरतै, जो जानै सोइ पेखा ।
गुरू गम जोति अगम घर बासा, जो पाया सोई देखा।।[10]

केशवदास ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना के लिये साधना में अजपाजाप करने का उपदेश दिया है ।

निर्गुन राज समाज है, चँवर सिंहासन छत्र ।
तेहि चढ़ि यारि गुरू दियो, केसोहिं अजपा मंत्र ।।[11]

बुल्ला साहब ने त्रिवेणी में स्नान करने का उपदेश दिया है -

तीनिउ जना त्रिवेणी आना, गंग जमुन कीन्हों अस्नाना ।।[12]

बुल्ला साहब ने सोऽहं जप की ओर भी संकेत किया है [13]। प्रत्याहार के साधक के लिये शब्द सुरति योग की साधना भी जरूरी है।

---

1. पान-अपान उदान मेलि एक अन्तर हो।। थान साहब के शब्द, पृष्ठ 9
2. अष्ट जाम विह्वल व्याकुल तन प्रेम अभये मदमाती।- देवकीनन्दन साहब की हिन्दी रचनायें। पृष्ठ 3
3. पान अपान उदान व्यानहि उरध भरनि भरै। वही, पृष्ठ 9
4. पान अपान मिलान करो तहां मेरूदण्ड को धार । वही, पृष्ठ 10
5. हुलासदास कृत 'ब्रह्म विलास' पृष्ठ 53
6. स्वामी गैबानन्द कृत अध्यात्मसुधा, पृष्ठ 9
7. हठयोग प्रदीपिका- तृतीय पटल, 3/79
8. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 11
9. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 21
10. महात्माओं की वानी, पृष्ठ 1
11. केशवदास की अमीघूट, पृष्ठ 2
12. बुल्ला साहब का 'शब्दसार', पृष्ठ 15
13. वही, पृष्ठ 27

सुरति निरति लै घंट बजावै, जगमग जोति परम पद पावै ।।[1]

संत गुलाल साहब ने भी अपने गुरू की भांति अजपाजाप के महत्व की ओर संकेत किया है[2] आगे उन्होंने चन्द्र सूर्य साधना के द्वारा त्रिकुटि द्वार को साधने का उपदेश दिये हैं

पैठि पताल सूर ससि बांधौ, साधौ त्रिकुटि द्वार ।
गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार ।।[3]

गुलाल साहब ने सुरति- निरति की ओर संकेत करते हुए लिखा है -

सुरति निरति लै सखि सब गावहिं, घरहि नव निधि पाई।[4]

भीखा साहब के साहित्य में सोऽहं जाप की झलक मिलती है।[5] उन्होंने त्रिवेणी के सम्मुख सिर झुकाने का उपदेश भी दिया है।[6] सुरति निरति का संकेत करके उन्होंने लिखा है-

सुरति सुभाव निरति लपटानो, दृष्टि रूप अरूझाऊ।।[7]

जगजीवन साहब ने त्रिकुटि के बीच् में ताड़ी लगाने का उपदेश दिया है[8]। गोविन्द साहब गंगा, यमुना एवं सरस्वती को पवन साधना के द्वारा सुषुम्णा पर चढ़ाने को बतलाया है[9]।

बावरी पंथ के संत सदा जटिलता को सरलता एवं अनेकता में एकता लाने के लिये प्रयासरत थे। इसीलिये इस पंथ के संत पलटू साहब हठयोग साधना की आवश्यकता पर बहुत अधिक बल नहीं दिया है। उन्होंने उसी प्रकार की साधना को अपनाया है, जिसे साधक सहज भाव से उसका आचरण कर सकता है। इसी ओर संकेत करते हुए पलटू साहब ने लिखा है कि योगी का कर्तव्य है कि सदाचार पूर्वक साधु-जीवन व्यतीत करते हुए, आठों पहर पद्मासन में बैठा रहे। उसे दसों द्वार बन्द कर लेना चाहिये और प्रयत्नपूर्वक त्रिकुटि में वायु आकृष्ट करके स्वासोच्छ्वास की गति रोक देनी चाहिए ।[10] संत पलटू ने मुद्रा एवं भेष की जगह अजपा-जाप के ही महत्व का प्रतिपादन किया है।[11] आगे उन्होंने चाँद एवं सूर्य दोनों को ऊपर उठाने की ओर संकेत किया है[12]।

श्री रामचरनदास जी ने इंगला, पिंगला और सुषुम्णा के ऊपर उस परमतत्व को बतलाया है।[13] थानदास ने अर्ध-उर्ध संगम के बीच अजपाजाप करने का उपदेश दिया है।[14] देवकी नन्दन साहब ने लिखा है कि सहज भाव से सिद्धासन लगाकर इंगला, पिंगला और सुषुम्णा को एक सिद्ध में करके त्रिकुटी में षट्चक्र भेदन को बताया है।1[15] देवकीनन्दन साहब ने अजपाजाप में ही ब्रह्म की स्थिति को माना है।[16] परसाद साहब ने इंगला, पिंगला एवं सुषुम्णा को साधना के द्वारा बंकनाल पर चढ़ाने का उपदेश दिया है।[17]

---

1. बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 18
2. गुलाल साहब की वानी, पृष्ठ 43
3. गुलाल साहब की वानी, पृष्ठ 34
4. वही, पृष्ठ 24
5. रमिता राम तू अन्तरजामी, सोहं अजपाजापै हौ- संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृष्ठ 55
6. मध्य सरस्वती गंगा यमुना, सन्मुख शीश नवावै। वही पृष्ठ 88
7. वही, पृष्ठ 201
8. त्रिकुटि मध्य दृष्टि करू नैनन ताड़ी तहां लगाव।- जगजीवन साहब की वानी, भाग 1 पृष्ठ 47
9. गंगा जमुना और सरस्वती, सुखमन चढ़ै निसैनी, पावन पवन अनल जल बरसत सरसत फेनी।- गोविन्द साहब की हिन्दी रचनायें। पृष्ठ 39
10. पलटू साहब की वानी, भाग 3, पृ0 53 ।
11. वही, पृ0 19 ।
12. वही, भाग- 3, पृ0 28 ।
13. श्री रामचरन साहब के शब्द, पृष्ठ 9
14. थानदास के शब्द, पृष्ठ 11
15. संत देवकीनन्दन साहब की हिन्दी रचनायें, पृष्ठ 11
16. वही, पृष्ठ 72
17. बावरी पंथ के हिन्दी कवि, पृष्ठ 354।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बावरी पंथ के संत कवियों ने प्रत्याहार साधना की अभिव्यक्ति विविध प्रकार से की है। कुछ संतों ने तो प्रत्याहार का संकेत मात्र किया है। इस पंथ के संतों का रूझान हठयोग के जटिल स्वरूप की ओर न होकर सरल साधना पर ही विशेष है। कहीं-कहीं संतों ने शास्त्रीय स्वरूप भी व्यक्त किया है। प्रत्याहार के सिद्ध होने पर इन्द्रियां स्वयं योगी के अधीन हो जाती है।इसका भी वर्णन संतों ने यत्र -तत्र किया है।

धारणा और उसकी सहायक मुद्राओं का यारी साहब ने स्पष्ट संकेत किया है -

आंखि कान नाक मुंह मूदि के निहार देखु,
सुन्न में जोति याही परगट गुरू ज्ञान है ।
त्रिकुटि में चित्त देई ध्यान धरि देखु तहां,
दामिनि दमकै चाचरी मुद्रा को अस्थान है ।।
भूचरी मुद्रा सोहाग जागै मस्तक,
भाग पायो सकंल निरन्तर की खान है ।
गगन गुफा में पैठि अधर आसन बैठी ।।
खेचरी मुद्रा अकास फुलै निर्वान है ।।[1]

बावरी पंथ के संतों ने हठयौगिक मुद्राओं का सिद्धान्त रूप में कथन नहीं किया है। हां, ध्यान और धारणा से सम्बन्धित मुद्राओं की चर्चा उन्होंने अवश्य की है ।यौगिक ग्रन्थों में अनेक मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। यहां पर हम बुल्ला साहब द्वारा दिये गये मुद्राओं का वर्णन दे रहे हैं -

उनमुनि मुद्रा लगी समाधी । रवि ससि पवनहिं राखो बांधी ।।
चाचरी मुद्रा सो प्रीति लगावो । भूचरि मुद्रा सो प्रेम बढ़ाओ ।।
अगोचरी मुद्रा सोआन भोगावों ।खेचरी मुद्रा सो दरस दिखाओ।[2]

खेचरी और चाचरी एक ही है। प्रमुख ध्यान सम्बन्धी मुद्राएं इस प्रकार है। अगोचरी, भूचरी, चाचरी, खेचरी, शाम्भवी तथा उन्मुनी । संत लोगों ने सिद्धान्त रूप में उसी के प्रति श्रद्धा प्रगट की है। इन सब मुद्राओं को हम उन्मनी की पृष्ठभूमि के विविध स्तर कह सकते है। सम्भवत: इसीलिये उन्मनी का सिद्धान्त रूप से प्रतिपादन किया है। कहीं अन्यों का सामान्य रूप से कथन कर दियां गया है।[3]

संत यारी साहब ने उपर्युक्त मुद्राओं में चाचरी, भूचरी ओर खेचरी का उल्लेख किया है और उनके स्वरूप की ओर भी संकेत किया है। उनके कथनानुसार त्रिकुटी में दामिनी जैसी ज्योति पर मन को केन्द्रित करना चाचरी मुद्रा है। मस्तक में ज्योति के दर्शन करने को भूचरी मुद्रा कहा गया है। गगन गुफा या ब्रह्मरन्ध्र में ज्योति के ध्यान को खेचरी मुद्रा कहा है । संत बुल्ला साहब ने संत यारी साहब द्वारा वर्णित मुद्राओं के अतिरिक्त उन्मनी और अगोचरी मुद्राओं का उल्लेख किया है।सामान्यरूप से शून्य में ध्यान केन्द्रित करना उन्मनि मुद्रा है।

बुल्ला साहब द्वारा दिये गये उन्मनि, चाचरी, भूचरी, खेचरी और अगोचरी मुद्राओं से साफ जाहिर होता है कि बुल्ला साहब पर उनके गुरू यारी साहब का प्रभाव पड़ा है। क्योंकि बुल्ला हलवाहे निरक्षर थे, इस प्रकार से यह सत्संग तथा अध्यात्म और कठोर साधना का परिणाम ही माना जा सकता है जो अनुभूति पर आधारित है ।

ज्योतिध्र्यान की ओर संकेत करते हुए यारी साहब ने लिखा है

1. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 15-16
2. बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 16
3. डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत- हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 515

त्रिकुटि संगम जोति है रे, तहं देखि लेवै गुरू ज्ञान सेती [1]।।

आगे यारी साहब ने सूक्ष्म ध्यान की ओर भी संकेत किया है[2]। उन्होंने दो प्रकार के ध्यानों का उल्लेख किया है। नाद ध्यान और शून्य ध्यान । ये दोनों ध्यान सूक्ष्म ध्यान के अन्तर्गत ही आएंगे। नाद ध्यान को स्पष्ट करते हुए यारी साहब ने लिखा है।

नाद वरन जो लावे ध्यान। सो जोगी जुग-जुग परमान।।[3]

इसी प्रकार शून्य ध्यान की ओर संकेत करते हुए यारी साहब ने लिखा है ।

दृष्टि सम करि सुन्न सोवो, आपा मेटि उड़ाव ।[4]

इसी शून्य ध्यान को संतों ने निर्गुण ध्यान भी कहा है, यारी साहब ने लिखा है कि शून्य में ध्यान करने से ही निर्गुण के दर्शन हो सकते हैं -

सुन्न तें नित तारी लावों, सूझि है निर्गुन।।[5]

अपने गुरू यारी साहब की भाँति बुल्ला साहब ने भी ज्योतिर्ध्यान का उल्लेख किया है -

झिलमिल झिलमिल त्रिकुटी ध्यान।[6]

गुलाल साहब ने शून्य ध्यान की ओर संकेत किया है -

सुरति सो निरति मिलि ध्यान अजपा जपै, ज्ञान का घोड़ा लै सुन्न धावै ।।[7]

बावरी पंथ के संतों में समाधि के रहस्यात्मक वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । संत बुल्ला साहब ने समाधि के सन्दर्भ में लिखा है --

ममता मान जान तन बारो। ब्रह्म विस्नु समाधी धारा ।।[8]

संत गुलाल साहब ने भी समाधि की ओर संकेत किया है-

सहज समाधि हृदय महँलावहु, ज्ञान ध्यान सुचि दृढ़ करना ।।[9]

संतों ने एक प्रकार की और समाधि का वर्णन किया है। उसको उन्होंने सहज समाधि का नाम दिया है । इसका सम्बन्ध उनकी सहज-योग साधना से है। उनकी चर्चा 'सहजयोग' प्रसंग में किया जायेगा। समाधि के रहस्यपूर्ण एवं भावमय वर्णन करते हुए भीखा साहब ने लिखा है

नैन सेज निज पिय पौढ़ाई, सो सुख मौजे दिलहि जनाई ।
बोलता ब्रह्म आत्मा एकै, भाव मिलन को सकै दुराई ।
अगम अगोचर अबर अकथ, प्रभु, ता से कहौ कौन मुँह लाई।।[10]

बावरी पंथ के संतों का रूझान अष्टदल कँवल की साधना की ओर था । यारी साहब ने लिखा है --

अष्टदल के कमल भीतर, बोलता इक सुआ।।[11]

इसी प्रकार से बुल्ला साहब ने भी अष्टकंवल दल का उल्लेख किया है[12]। अष्टदल कमल की व्याख्या गुलाल साहब ने भी किया है।[13]किस कमल की कहां स्थिति है, इस सम्बन्ध में बावरी पंथी संतों ने संकेत दिया है। भीखा साहब का मत है कि सतवें सहस्रार चक्र के बाद आठवां सुरति कमल है, जो अष्टदल वाला है, वहां पहुँचने पर ज्योति स्वरूप ब्रह्म का दर्शन होता है।[14] जगजीवन साहब का मत है कि अष्ट कमलदल के भीतर परमतत्व निवास करते है।[15] पलटू साहब ने लिखा है।

---

1. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 2
2. भंवर गुफा ब्रह्माण्ड मेखला, जोग जुगति बनि आई।
   बांबी उलटि सर्प को खाई, ससि में मीन नहाई। वही, पृष्ठ 4
3. वही, पृष्ठ 9
4. वही, पृष्ठ 4
5. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 6
6. बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 30
7. गुलाल साहब की बानी, पृष्ठ 79
8. बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 18
9. गुलाल साहब की बानी, पृष्ठ 8
10. संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृष्ठ 66
11. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 6
12. निरखि त्रिवेनी छोडि दे तनुंवा।अष्ट कंवलदल उलटि फुलनुवां।-बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 11
13. अष्ट कमल पर फूलिब हो, दसो दिस उगे भान।।
    गगन मण्डल गुन गाईब हो, निझर झरे असमान।।- गुलाल साहब की बानी, पृष्ठ 20
14. आंठवें अष्ट कमलदल फूला, जोति रूप देखि जियरा भूला।-संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृष्ठ 156
15. अष्ट कमलदल भीतर राजा, पांच तत्त को राव।।, जगजीवन साहब की बानी, भाग 1, पृष्ठ 47

अष्टदल कंवल फुलै ध्यान कमठ लगावनैं ।[1]

परसाद साहब ने भी अष्ट कवलदल का संकेत किया है --

अष्ट कमलदल अलटि कमल दल शून्य में सुरति चलावेगा।[2]

संत बुल्ला साहब ने षटचक्र-भेदन को भी महत्व दिया है। किन्तु चक्रों के सम्बन्ध मे प्रचलित परम्परागत धारणा को उन्होंने स्वीकार नहीं किया है। बावरी-पंथ के संतों ने विभिन्न चक्रों के अवधिदेवों के सम्बन्ध में भी स्वतंत्रता से काम लिया है। इसका कारण यह है कि वे लोग विभिन्न देवी देवताओं की कल्पना करना निरर्थक समझते थे। उन्होंने एक ही परमतत्व को माना है ओर उसे विविध नामों से अभिहित किया है। यारी साहब ने लिखा है-

तारी लागी दशवें द्वार तत्त निरंजन ओंकार।[3]

यौगिक ग्रन्थों में कुण्डलिनि के लिये बहुत से पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त मिलते हैं । संतों न इनका वर्णन सर्पिणी, नागिन आदि नामों से किया हैं। कबीर ने लिखा है-

'सोवत नागिन जागी [4]?

-इस नागिन का वर्णन करते हुये संत बुल्ला साहब ने लिखा है

''तिरवेनी तिरघाट सवारो, जगमगि-जगमगि मानि उजियारो।
भाग बड़ों जिन यह गति सारो, पवन थियाय नागिन मारो[5]।

-इतना होते हुए भी हम देखते हैं कि बावरी-पंथ के संत कवि हठयोग के प्रति उतने आसक्त नहीं थे, जितने आसक्त नाथ पंथी योगी थे। भीखा साहब के अनुसार हठयोग मन को एकाग्र करने का एक साधन मात्र है। हठयोग को साध्य के रूप में स्वीकार करने वाले योगियों की त्रुटियों से वे पूर्णत: परिचित थे। बावरी पंथ के संतों में हठयोग की बहुत सी बाते उनकी बानियों में अस्त-व्यस्त रूप से विखरी हुयी है।उनकी रचनाओं में शायद ही कहीं कोई हठयोग का व्यवस्थित वर्णन मिले। वास्तव में वे हठयोग को सिद्धान्त रूप में नहीं स्वीकार करते थे। कहीं-कहीं भीखा साहब एवं पलटू साहब ने तो उनकी स्पष्ट शब्दों में निन्दा भी की है।

बावरी पंथ की हठयोग साधन से ज्ञात होता है कि इनका क्रमिक ह्रास हुआ है। यारी साहब एवं बुल्ला साहब द्वारा योग का खुले हृदय से अभिनन्दन किया गया। परमतत्व से दर्शनार्थ के रूप में हठयोग में विश्वास रखकर उसका अभ्यास किया गया।। उसके बाद योग का प्रयोग परमतत्व से अनुराग लगाने के सन्दर्भ में किया गया।इसके संचालन का कार्य गुलाल साहब ने किया। भीखा साहब एवं पलटू साहब के कुशल नेतृत्व में हठयोग का महत्व क्षीण सा होने लगा और भक्ति के समक्ष उसे प्रपंच सिद्ध किया गया। इनके बाद के बावरी पंथ के संत कवियों ने भीखा एवं पलटू के पथ पर चलना स्वीकार किया।

(ग) मानसिक साधना

राजयोग-

राजयोग सर्वोत्तम योग माना जाता है। राजयोग में हठयोग के समान शारीरिक साधना अनिवार्य नहीं है। हठयोग के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम आवश्यक है। किन्तु राजयोग वस्तुत: प्रत्याहार से आरम्भ होता है। राजयोग के अभ्यास द्वार व्यक्ति आन्तरिकअवस्थाओं का पर्यवेक्षण कर सकता है। मन को बाह्य विषयासक्तियों से हटाकर उसे अन्तर्जगत की ओर उन्मुख करने पर ही आन्तरिक पर्यवेक्षण सम्भव है। राजयोगी प्रत्याहार की अवस्था में वाह्य इन्द्रियों की शक्ति समेटने का प्रयास करता है। उसके बाद धारणा की अवस्था में वह शरीर के किसी भाग (अन्दर या बाहर) मन को स्थिर करता है। ऐसा करने पर मन में एक विशेष प्रकार की वृत्ति पैदा होती है, जिसे ध्यान कहते हैं। ध्यान के बाद समाधि की अवस्था आती है। समाधि की अवस्था में मन एक रूप हो जाता है और इस स्थिति में केवल ध्येय वस्तु का भाव (अर्थ) मात्र अवशिष्ट रहता है।

---

1. पलटू साहब की बानी, भाग -3, पृष्ठ 44
2. बावरी पंथ के हिन्दी कवि, पृष्ठ 347
3. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 10
4. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 111
5. बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 13

(क) किंगरी संख मृदंग मधुर धुन। नाना उठत तरंगा।
निरतत तान व्यान सुन बाजै, लाजै सुर जगदम्बा री ॥[1]

(ख) उठत अवाज विमल अनहद की, धधकी धुन संख बजो री।[2]

(ग) सबद अवाज अधर घर बाजे, घरज गगन मुख जोड़ी ॥[3]

(घ) अनहद नाद गगनगढ़ गरजत उठत अधर में अपूरब ताने ॥[4]

(ङ) मुरली बीन बजत मधुर, मिरदंग की टकोर धमक।
त्रिकुट तान तुलसी हाल, सबद, घोर अंदर हूँ पैं ॥[5]

(च) इत गरजत उत धधक सुनावत, बिच बिच बेन बजावत भारी ॥
अनहद ताल मृदंग मुहचंग बाजे, किंगरी संख घट माहीं ॥[6]

उपर्युक्त उद्धरणों में संत तुलसी ने किंगरी, शंख, मृदंग, गर्जन (समुद्र या मेघ) मुरली, वीणा, वंशी, ताल, ध्वनि, धधक (दुंदुभी) इत्यादि अनहद नाद की विभिन्न ध्वनियों का उल्लेख किया है। इनमें से शंख, मृदंग, ताल ध्वनि, वीणा ध्वनि एवं समुद्र गर्जन का स्पष्ट उल्लेख सुन्दरदास ने 'ज्ञान समुद्र' में किया है।[7] 'हठयोग प्रदीपिका' के उपर्युक्त उद्धरण में भी नाद के इन भेदों का उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त तुलसी साहब उल्लिखित वंशी एवं किंकणी-ध्वनि का वर्णन भी [8] 'हठयोग प्रदीपिका' के उक्त उद्धरण में प्राप्त होता है। इस प्रकार तुलसी साहब ने नादानुसंधान के प्रसंग में योग शास्त्रप्रतिपादित नाद के लगभग समस्त मुख्य भेदों की चर्चा की है।

मुद्रा

'हठयोग प्रदीपिका' में मुद्राओं का बड़ा महत्व वर्णित हुआ है। इसी ग्रन्थ के अनुसार मुद्राओं का साधन, सुषुम्ना के अधोमुख को अवरुद्ध करने

१—शब्दावली, प्रथम भाग, पृ० १३७।

२—वही, द्वितीय भाग, पृ० १७७।

३—वही, वही, पृ० १९२।

४—वही, वही, पृ० २४६।

५—वही, वही, पृ० २६४।

६—शब्दावली द्वितीय भाग, पृ० २१४।

७—ज्ञानसमुद्र, तृतीयोल्लास, ६७।

८—हठयोग प्रदीपिका, ३।८।

वाली सुषुप्त कुंडलिनी को प्रवुद्ध करने के लिए विधेय है।[1] 'हठयोग प्रदीपिका' में दश मुद्राएँ विस्तार से वर्णित हैं:—

१. महामुद्रा	६. जालन्धर बंध
२. महाबंध	७. विपरीत करणी
३. खेचरी	८. वज्रोली
४. मूलबन्ध	९. शक्तिचालिनी
५. उड्डियान	१०. महावेध[2]

'घेरंड संहिता' में बीस सामान्य मुद्राओं एवं पाँच धारणा की मुद्राओं का वर्णन किया गया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में पच्चीस मुद्राओं का वर्णन किया गया है। इन मुद्राओं के नाम इस प्रकार हैं:

१. महामुद्रा	८. खेचरी
२. नभोमुद्रा	९. विपरीतकरणी
३. उड्डीयान	१०. योनि
४. जालंधर	११. वज्राणी
५. मूलवन्ध	१२. शक्तिधारिणी
६. महाबंध	१३. ताड़ागी
७. महावेध	१४. मांडवी[3]

१—हठयोग प्रदीपिका, ३।४-५।

२—महामुद्रा महाबंधो महावेधश्च खेचरी।
उड्यानं मूलबंधश्च बंधो जालंधराभिधः॥
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम्॥
इदं हि मुद्रादशकं जरामरणनाशनम्॥

—हठयोग प्रदीपिका, ३।६-७।

३—महामुद्रा, नभोमुद्रा उड्डीयान जलन्धरम्।
मूलबन्धो महाबन्धो महावेधश्च खेचरी॥
विपरीतकरी योनिर्वज्राणी शक्तिधारिणी।
ताडागी मांडवी मुद्रा शांभवी पंचधारिणी॥
अश्विनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजंगिनी।
पंचविंशतिमुद्राणि सिद्धिदानीह योगिनाम्॥

—घेरंड संहिता, ३।१-३।

१५.	शांभवी	२१.	पार्थिवी धारणा
१६.	अश्विनी	२२.	आम्भसीधारणा
१७.	पाशिनी	२३.	वैश्वनरीधारणा
१८.	काकी	२४.	वायवीधारणा
१९.	मातंगी	२५.	नभोधारणा[1]
२०.	भुजंगिनी[1]		

गोरखनाथ की रचनाओं में 'अष्टमुद्रा' नामक एक संक्षिप्त रचना है।[2] इसमें नाथयोगी-सम्प्रदाय की अष्ट मुद्राओं का उल्लेख प्राप्त होता है। ये मुद्राएँ इस प्रकार हैं:—

१.	मूलनी	५.	चाचरी
२.	जलश्री	६.	अगोचरी
३.	पीरनी	७.	भूचरी
४.	खेचरी	८.	उन्मनी[3]

१—घेरंड संहिता, पृ० ३१।

२—गोरखबानी, पृ० २४७।

३—स्वामी जी अष्ट मुद्रा बोलिए घट भीतरि, ते कौंण कौंण।
अवधू यंद्री मध्ये मूलनी मुद्रा, काम त्रिष्णा ले उतपनी।
कांम त्रिष्णा समोकृतवा, मुद्रा तो भई मूलनी॥
नामी मधे जलश्री मुद्रा, काल क्रोध ले उतपनी।
काल क्रोध समोकृतवा, मुद्रा तो भई जलश्री॥
हृदा मधे पीरनी मुद्रा, ग्यांन दीप ले उतपनी।
ग्यांन दीप समोकृतवा, मुद्रा तो भई पीरनी॥
मुष मध्ये षेचरी मुद्रा, स्वाद विस्वाद ले उतपनी।
स्वाद विस्वाद समोकृत्वा, मुद्रा तो भई खेचरी॥
नासिका मध्ये भूचरी मुद्रा, गंध विगंध ले उतपनी।
गंध विगन्ध समोकृतवा, मुद्रा तो भई भूचरी॥
चषि मध्ये चाचरी मुद्रा, दिष्टि विदिष्टि ले उतपनी।
दिष्टि विदिष्ट समोकृतवा, मुद्रा तो भई चाचरी॥
करण मध्ये अगोचरी मुद्रा, सबद कुसबद ले उतपनी।
सबद कुसबद समोकृतवा, मुद्रा तो भई अगोचरी॥
ब्रह्मंड असमांनि उनमनी मुद्रा, परम जोति लै उतपनी।
परम जोति समोकृतवा, मुद्रा तो भई उनमनी।
यती अष्ट मुद्रा का जाणै भेव। सो आपै करता आपै देव॥
—गोरखबानी, पृ० २४७।

रामानन्द की योग-प्रभावित हिन्दी रचना 'रामरक्षा' है।[1] इसमें पांच मुद्राओं का उल्लेख किया गया है, वे इस प्रकार हैं:—

१. चाचरी ३. खेचरी
२. भूचरी ४. अगोचरी
५. उन्मुनी[2]

तुलसी साहब ने योग वर्णन के अन्तर्गत जिन पंच मुद्राओं का उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं :—

(क) न्यारा न्यारा नाम बताऊं। पाँचौ मुद्रा पुनि दरसाऊं॥
खेचरि भूचरि चाचरि सोई। और अगोचर उनमुनि होई॥
उनमुनि बसै अकाश के माहां। जोगी बास करै तेहि ठाहीं॥[3]

(ख) चाचरि भूचरि अगोचर, खेचरि खेह लगाई।
उनमुनि उभै अकास के ठाईं, प्रान विधी बतलाई॥

(ग) स्वांसा साधि गगन मन धावा। उनमुनि साधि कै गगन लगावा॥
चाचरि भूचरि अगोचरि जानी। खेचरि मिलि यों पाँच बखानी॥[5]

उपर्युक्त उद्धरणों से संत तुलसी ने पंच मुद्राओं के निम्नलिखित नाम बताये हैं:—

१. चाचरी ३. खेचरी
२. भूचरी ४. अगोचरी
५. उन्मनी

१—रामानन्द की हिन्दी रचनायें पृ० ५।

२—चाचरी, भूचरी, अगोचरी, खेचरी,
उन्मुनी पांच मुद्रा साधते सिद्ध राजा॥
—रामानन्द की हिन्दी रचनायें, पृ० ५।

३—घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० १३७।

४—वही, वही, पृ० ७।

५—वही, वही, पृ० ४३।

१५.	शांभवी	२१.	पार्थिवी धारणा
१६.	अश्विनी	२२.	आम्भसीधारणा
१७.	पाशिनी	२३.	वैश्वनरीधारणा
१८.	काकी	२४.	वायवीधारणा
१९.	मातंगी	२५.	नभोधारणा[1]
२०.	भुजंगिनी[1]		

गोरखनाथ की रचनाओं में 'अष्टमुद्रा' नामक एक संक्षिप्त रचना है।[2] इसमें नाथयोगी-सम्प्रदाय की अष्ट मुद्राओं का उल्लेख प्राप्त होता है। ये मुद्राएँ इस प्रकार हैं :—

१.	मूलनी	५.	चाचरी
२.	जलश्री	६.	अगोचरी
३.	पीरनी	७.	भूचरी
४.	खेचरी	८.	उन्मनी[3]

१—घेरंड संहिता, पृ० ३१।

२—गोरखवानी, पृ० २४७।

३—स्वामी जी अष्ट मुद्रा बोलिए घट भीतरि, ते कौंण कौंण।
अवधू यंद्री मध्ये मूलनी मुद्रा, काम त्रिष्णा ले उतपनी।
कांम त्रिष्णा समोकृतवा, मुद्रा तो भई मूलनी॥
नाभी मधे जलश्री मुद्रा, काल क्रोध ले उतपनी।
काल क्रोध समोकृतवा, मुद्रा तौ भई जलश्री॥
हृदा मधे पीरनी मुद्रा, ग्यांन दीप ले उतपनी।
ग्यांन दीप समोकृतवा, मुद्रा तौ भई पीरनी॥
मुष मध्ये षेचरी मुद्रा, स्वाद विस्वाद ले उतपनी।
स्वाद विस्वाद समोकृतवा, मुद्रा तो भई खेचरी॥
नासिका मध्ये भूचरी मुद्रा, गंध विगंध ले उतपनी।
गंध्र विगन्ध समोकृतवा, मुद्रा तौ भई भूचरी॥
चषि मध्ये चाचरी मुद्रा, दिष्टि विदिष्टि ले उतपनी।
दिष्टि विदिष्ट समोकृतवा, मुद्रा तौ भई चाचरी॥
करण मध्ये अगोचरी मुद्रा, सवद कुसवद ले उतपनी।
सवद कुसवद समोकृतवा, मुद्रा तौ भई अगोचरी॥
ब्रह्मंड असमांनि उनमनी मुद्रा, परम जोति लै उतपनी।
परम जोंति समोकृतवा, मुद्रा तौ भई उनमनी।
यती अष्ट मुद्रा का जाणं भेव। सो आपै करता आपै देव॥
—गोरखवानी, पृ० २४७।

रामानन्द की योग-प्रभावित हिन्दी रचना 'रामरक्षा' है।[1] इसमें पांच मुद्राओं का उल्लेख किया गया है, वे इस प्रकार हैं:—

१. चाचरी　　　　३. खेचरी
२. भूचरी　　　　४. अगोचरी
५. उन्मुनी[2]

तुलसी साहब ने योग वर्णन के अन्तर्गत जिन पंच मुद्राओं का उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं:—

(क) न्यारा न्यारा नाम बताऊं। पाँचो मुद्रा पुनि दरसाऊं॥
खेचरि भूचरि चाचरि सोई। और अगोचर उनमुनि होई॥
उनमुनि बसै अकाश के माहां। जोगी बास करै तेहि ठाहीं॥[3]

(ख) चाचरि भूचरि अगोचार, खेचरि खेह लगाई।
उनमुनि उभै अकास के ठाई, प्रान विधी बतलाई॥

(ग) स्वाँसा साधि गगन मन धावा। उनमुनि साधि कै गगन लगावा॥
चाचरि भूचरि अगोचरि जानी। खेचरि मिलि यों पाँच बखानी॥[4]

उपर्युक्त उद्धरणों से संत तुलसी ने पंच मुद्राओं के निम्नलिखित नाम बताये हैं:—

१. चाचरी　　　　३. खेचरी
२. भूचरी　　　　४. अगोचरी
५. उन्मनी

१—रामानन्द की हिन्दी रचनायें पृ० ५।

२—चाचरी, भूचरी, अगोचरी, खेचरी,
उन्मुनी पांच मुद्रा साधते सिद्ध राजा॥
—रामानन्द की हिन्दी रचनायें, पृ० ५।

३—घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० १३७।

४—वही, वही, पृ० ७।

५—वही, वही, पृ० ४३।

यही संत तुलसी प्रतिपादित पंच मुद्राएं हैं, जिनका महत्व उन्होंने 'पंच-पुनीत मुद्रा'[1] कहकर प्रकट किया है। 'हठयोग प्रदीपिका' एवं 'घेरंड संहिता' में मुद्रित मुद्राओं से इन मुद्राओं का कोई साम्य नहीं है। इन ग्रन्थों की 'खेचरी' मुद्रा ही ऐसी है जिसका उल्लेख तुलसी साहब ने अपनी पंच मुद्राओं में किया है। पर इस सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि तुलसी साहब द्वारा प्रतिपादित 'खेचरी' 'हठयोग प्रदीपिका' एवं 'घेरंड संहिता' में वर्णित खेचरी मुद्रा ही है। तुलसी साहब ने खेचरी मुद्रा का कोई लक्षण नहीं निर्दिष्ट किया है। अतएव उसका कोई स्वरूप हमारे सम्मुख नहीं है, जिसके आधार पर निष्कर्ष निकाला जाय।

'घेरंड संहिता' में धारणा की पंच मुद्राएं भी वर्णित हैं।[2] योग में पंच-तत्वों की धारणा का विधान है।[3] यह पांच प्रकार की धारणा पार्थिवी, आंमसी, वायवी, आग्नेयी और आकाशी मानी गई हैं एवं इनके आधार पर पार्थिवी मुद्रा, आंमसी मुद्रा, वायवी मुद्रा, आग्नेयी मुद्रा एवं आकाशी मुद्रा का उल्लेख किया गया है।[4] इनकी संख्या भी तुलसी साहब उल्लिखित पंच मुद्राओं की संख्या के समान है, किन्तु इसी आधार पर तुलसी साहब वर्णित मुद्राओं को धारणा की पंचमुद्राएं नहीं कहा जा सकता, क्योंकि तुलसी साहब ने इन मुद्राओं का कोई ऐसा विवरण नहीं दिया है जिसके आधार पर 'घेरंड संहिता' में वर्णित पंच-मुद्राओं से उनकी तुलना की जा सके।

तुलसी साहब द्वारा प्रतिपादित खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी एवं उन्मनी मुद्राओं का स्पष्ट उल्लेख 'गोरखनाथ' की 'अष्टमुद्रा' रचना के अंतर्गत किया गया है।[5] इनकी चर्चा हम इसी प्रसंग में कुछ पूर्व कर चुके हैं। पूर्णतया नाम साम्य के कारण यह अनुमान करना असंगत न होगा कि तुलसी साहब ने जिन पंच मुद्राओं का वर्णन किया है, वे गोरक्षनाथ द्वारा प्रतिपादित खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी और उन्मनी मुद्राएं ही हैं। नाम साम्य के अतिरिक्त

१—उन अपनी इंद्री मन जीता। मुद्रा साधी पांच पुनीता॥
—घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० ४३।

२—घेरंड संहिता, ३।६३।

३—हृदये पंचभूतानां धारणा च पृथक् पृथक्।
मनसो निश्चलत्वेन धारणा साभिधीयते॥
—गोरक्षपद्धति, २।५३।

४—घेरंड संहिता, ३।६५-७६।

५—गोरखबानी, पृ० २४७।

इनके कुछ लक्षण भी परस्पर मिल जाते हैं। उन्मनी मुद्रा का वर्णन करते हुए गोरक्षनाथ ने कहा है कि 'ब्रह्मंड असथांनि उनमनी मुद्रा'[1] अर्थात् उन्मनी मुद्रा ब्रह्मरंध्र में निष्पन्न होती है। उन्मनी मुद्रा के सम्बन्ध में ठीक यही बात तुलसी साहब ने भी कही है—'उनमुनि बसै अकास के माहीं'[2] 'उनमुनि उभै अकास के ठाईं'[3] 'उनमुनि साध के गगन लगाना'[4] अर्थात् उन्मनी मुद्रा का आकाश, गगन या ब्रह्मरन्ध्र से सम्बन्ध प्रत्यक्ष है। इस साम्य से हमारे मत को और भी बल मिलता है कि तुलसी साहब द्वारा प्रतिपादित पंच मुद्राएं नाथ-सम्प्रदाय की खेचरी, चाचरी, अगोचरी, भूचरी एवं उन्मनी ही हैं। इन मुद्राओं का नाथसिद्धों की मुद्राओं के रूप में रामानन्द की हिन्दी रचनाओं में उल्लेख किया भी गया है—'पांच मुद्रा साधते सिद्ध राजा'[5]।

अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि तुलसी साहब ने जिन पंच मुद्राओं का वर्णन किया है, वे नाथयोगी-सम्प्रदाय की मुद्राएं ही हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि संत तुलसी के समय के पूर्व से ही इन मुद्राओं की चर्चा संत-काव्य में होने लगी थी। बिहार के दरिया साहब ने भी खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचारि एवं उन्मनी मुद्राओं का वर्णन किया है।[6]

नाड़ी संस्थान

योग में नाड़ियों का बड़ा महत्व है। 'शिव संहिता' के अनुसार शरीर में प्रधान नाड़ियां साढ़े तीन लाख हैं, इनमें से चौदह नाड़ियां मुख्य हैं:—

सार्धलक्षत्रयं नाड्यः सन्ति देहान्तरे नृणाम्।
प्रधानभूता नाड्यस्तुः तासु मुख्याश्चतुर्दश ॥[7]

इन चतुर्दश मुख्य नाड़ियों के नाम सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, कुहू, पूषा, सरस्वती शंखिनी, यशस्विनी, वरुणा, अलंबुषा, विश्वोदरी और पयस्विनी हैं:—

१—गोरखबानी, पृ० २४७।

२—घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० १३७।

३—वही, पृ० ७।

४—वही, पृ० ४३।

५—रामानंद की हिन्दी रचनाएं, पृ० ५।

६—संत कवि दरिया, पृ० १००।

७—शिवसंहिता, २।१३।

सुषुम्णेडा पिंगला च गान्धारी हस्तिजिह्वका ।
कुहू सरस्वती पूषा शंखिनी च पयस्विनी ।।
वारुणालम्बुषा चैव विश्वोदरी यशस्विनी ।[१]

इनमें भी तीन नाड़ियां ही मुख्य हैं, इडा, पिंगला और सुषुम्णा:—

एतासु तिस्रो मुख्याः स्युः पिंगलेडा सुषुम्णिका ।।[२]

'गोरक्षपद्धति' में नाड़ी वर्णन प्रकरण' के अन्तर्गत कहा गया है कि लिंगमूल के ऊपर नाभि के कुछ नीचे कन्द के सदृश समस्त नाड़ियों का मूल उत्पत्तिस्थान पक्षी के अंड के समान आकारवाला है । इससे निकलकर बहत्तर हजार नाड़ियाँ ऊपर, नीचे, तिर्छी होकर सर्वांग में व्याप्त है':—

ऊर्ध्वंमेढ्रादधोनाभेः कन्दो योनिः खगांडवत् ।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ।[३]

बहत्तर सहस्र नाड़ियों में से मुख्य नाड़ियाँ बहत्तर ही हैं । इनमें भी प्राणवाहिनी प्रधान दश ही नाड़ी हैं:—

तेषु नाड़ी सहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृताः ।
प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्त सु दश स्मृताः ।।[४]

ये दश नाड़ियां इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी अलंबुषा, कुहू और शंखिनी हैं:—

इडा च पिंगला चैव सुषुम्णा च तृतीयका ।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ।।
अलम्बुषा कुहूश्चैव शंखिनी दसमी स्मृता ।[५]

वस्तुतः इन दश नाड़ियों में मुख्य इड़ा, पिंगला और सुपुम्ना ही हैं और इनका वर्णन ही तुलसी साहब ने किया है । तुलसी साहब का नाडीःवर्णन संक्षिप्त एवं सांकेतिक है । वह पृथक नहीं है अपितु हठयोग के प्रसंग में उल्लेख मात्र है:—

(क) जोगी जन पवन चढ़ावैं, इडा पिंगला सुखमना आवैं ।।[६]
(ख) इंगल पिंगल सुखमनि के नाहीं । बंक नाल में पवन समाई ।।[७]

१—शिवसंहिता, २।१४-१५ ।
२—वहीं, २।१५ ।
३—गोरक्ष पद्धति, १।२५ ।
४—वही, १।२६ ।
५—गोरक्ष पद्धति, १।२७.२८ ।
६—शब्दावली, द्वितीय भाग, पृ० २३० ।
७—रत्नसागर, पृ० १५१ ।

(ग) जोगी पाँचों मुद्रा साधै। इड़ा पिंगला सुखमनि बाँधै ॥[1]
योग के ग्रन्थों में सुषुम्ना की स्थिति इड़ा और पिंगला के मध्य मानी गई है:—

इडा पिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना सुखरूपिणी ॥[2]

तुलसी साहब ने भी प्रायः इसी भाव को व्यक्त करते हुए इडा और पिंगला नाड़ियों के मध्य सुषुम्ना की स्थिति मानी है:—

सुखमनि सुनि धुनि कर आकास। इंगल पिंगल बिच विमल बास ॥[3]

'शिवसंहिता' में इड़ा नाड़ी को गंगा, पिंगला को यमुना और इन दोनों की मध्यवर्ती नाड़ी सुषुम्ना को सरस्वती कहा गया है:—

इड़ा गंगा पुरा प्रोक्ता पिंगला चार्कपुत्रिका।
मध्या सरस्वती प्रोक्ता तासां संगोऽतिदुर्लभः ॥[4]

तुलसी साहब ने भी इड़ा पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियों को गंगा, यमुना एवं सरस्वती बताया है:—

अगम द्वार खिरकी पहिचानी। गंगा जमुना सरसुती जानी ॥[5]

'शिवसंहिता' में सरस्वती या सुषुम्ना की स्थिति गंगा, जमुना अथवा इड़ा, पिंगला के मध्य मानी गई है।[6] तुलसी साहब ने भी सरस्वती का उल्लेख गंगा और यमुना के मध्य में किया है:

गंग जमुन बिच बहत सरसुती, सुरत समझ लख प्यारी ॥[7]

१—घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० १३६।
२—योग विषय, श्लोक ११।
३—शब्दावली, प्रथम भाग, पृ० ८४।
४—शिवसंहिता, ५।१६५।
५—घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० २५।
६—गंगायमुनयोर्मध्ये वहत्येषा सरस्वती।
तासान्तु संगमे स्नात्वा धन्यो याति परांगतिम् ॥
—शिवसंहिता, ५।१६४।
७—शब्दावली, द्वितीय भाग, पृ० २१२।

सुषुम्णेडा पिंगला च गान्धारी हस्तिजिह्वका।
कुहू सरस्वती पूषा शंखिनी च पयस्विनी॥
वारुणालम्बुषा चैव विश्वोदरी यशस्विनी।[1]

इनमें भी तीन नाड़ियां ही मुख्य हैं, इडा, पिंगला और सुषुम्णा:—

एतासु तिस्रो मुख्याः स्युः पिंगलेडा सुषुम्णिका॥[2]

'गोरक्षपद्धति' में नाड़ी वर्णन प्रकरण' के अन्तर्गत कहा गया है कि लिंगमूल के ऊपर नाभि के कुछ नीचे कन्द के सदृश समस्त नाड़ियों का मूल उत्पत्तिस्थान पक्षी के अंड के समान आकारवाला है। इससे निकलकर बहत्तर हजार नाड़ियाँ ऊपर, नीचे, तिर्छी होकर सर्वांग में व्याप्त हैं':—

ऊर्ध्वमेढ्रादधोनाभेः कन्दो योनिः खगांडवत्।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः।[3]

बहत्तर सहस्र नाड़ियों में से मुख्य नाड़ियाँ बहत्तर ही हैं। इनमें भी प्राणवाहिनी प्रधान दश ही नाड़ी हैं:—

तेषु नाड़ी सहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृताः।
प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्त सु दश स्मृताः॥[4]

ये दश नाड़ियाँ इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी अलंबुषा, कुहू और शंखिनी हैं:—

इडा च पिंगला चैव सुषुम्णा च तृतीयका।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी॥
अलम्बुषा कुहूश्चैव शंखिनी दसमी स्मृता।[5]

वस्तुतः इन दश नाड़ियों में मुख्य इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ही हैं और इनका वर्णन ही तुलसी साहब ने किया है। तुलसी साहब का नाड़ी:वर्णन संक्षिप्त एवं सांकेतिक है। वह पृथक नहीं है अपितु हठयोग के प्रसंग में उल्लेख मात्र है:—

(क) जोगी जन पवन चढ़ावै, इडा पिंगला सुखमना आवै॥[6]

(ख) इंगल पिंगल सुखमनि के नाहीं। वंक नाल में पवन समाई॥[7]

१—शिवसंहिता, २।१४-१५।

२—वहीं, २।१५।

३—गोरक्ष पद्धति, १।२५।

४—वही, १।२६।

५—गोरक्ष पद्धति, १।२७-२८।

६—शब्दावली, द्वितीय भाग, पृ० २३०।

७—रत्नसागर, पृ० १५१।

(ग) जोगी पाँचों मुद्रा साधै । इड़ा पिंगला सुखमनि बाँधै ॥[1]

योग के ग्रन्थों में सुषुम्ना की स्थिति इड़ा और पिंगला के मध्य मानी गई है:—

इडा पिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना सुखरूपिणी ॥[2]

तुलसी साहब ने भी प्राय: इसी भाव को व्यक्त करते हुए इडा और पिंगला नाड़ियों के मध्य सुषुम्ना की स्थिति मानी है:—

सुखमनि सुनि धुनि कर आकास । इंगल पिंगल बिच विमल बास ॥[3]

'शिवसंहिता' में इड़ा नाड़ी को गंगा, पिंगला को यमुना और इन दोनों की मध्यवर्ती नाड़ी सुषुम्ना को सरस्वती कहा गया है:—

इड़ा गंगा पुरा प्रोक्ता पिंगला चार्कपुत्रिका ।
मध्या सरस्वती प्रोक्ता तासां संगोऽतिदुर्लभ: ॥[4]

तुलसी साहब ने भी इडा पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियों को गंगा, यमुना एवं सरस्वती बताया है:—

अगम द्वार खिरकी पहिचानी । गंगा जमुना सरसुती जानी ॥[5]

'शिवसंहिता' में सरस्वती या सुषुम्ना की स्थिति गंगा, जमुना अथवा इड़ा, पिंगला के मध्य मानी गई है ।[6] तुलसी साहब ने भी सरस्वती का उल्लेख गंगा और यमुना के मध्य में किया है:

गंग जमुन बिच बहत सरसुती, सुरत समझ लख प्यारी ॥[7]

१—घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० १३६ ।
२—योग विषय, श्लोक ११ ।
३—शब्दावली, प्रथम भाग, पृ० ८४ ।
४—शिवसंहिता, ५।१६५ ।
५—घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० ३५ ।
६—गंगायमुनयोर्मध्ये वहत्येषा सरस्वती ।
तासान्तु संगमे स्नात्वा धन्यो याति परांगतिम् ॥
—शिवसंहिता,
७—शब्दावली, द्वितीय भाग, पृ० २१२ ।

योगशास्त्र में इड़ा और पिंगला नाड़ियों को चन्द्र और सूर्य नाड़ी भी कहा जाता है। 'शिवसंहिता' में इड़ा चन्द्ररूप एवं पिंगला सूर्यरूप कही गई है।[1] तुलसीसाहब ने भी इन नाड़ियों को चन्द्र और सूर्य नाड़ी कहा है। निम्नांकित पंक्तियों में उन्होंने रवि और शशि अर्थात् पिंगला और इड़ा के मध्यमार्ग (सुषुम्ना) के द्वारा गगन को प्राप्त करने का प्रस्ताव किया है :—

चढ़ै कोइ गगन की घाटी। रवी ससि मद्धि में वाटी ॥[2]

अन्यत्र भी उन्होंने चन्द्र (इड़ा) और सूर्य (पिंगला) पर नियंत्रण करके सुषुम्ना द्वारा पवन के ऊर्ध्व गमन का उल्लेख किया है :–

चंद सूर दम दम वस आवा, सुखमनि चटक चढ़ावा हो ॥[3]

'गोरक्षपद्धति' के 'अनुसार इड़ा वामे स्थिता भागे पिंगला दक्षिणे स्थिता'[4] अर्थात् नासिका के बाम भाग में इड़ा एवं दक्षिण भाग में पिंगला नाड़ी स्थित है। तुलसी साहब ने नाड़ियों की स्थिति के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है किन्तु एक स्थान पर उन्होंने इन नाड़ियों की गति को विपरीत बताया है:—

विधि बायें पिंगला गति केरी, इंगला दाहिने फेरी हो।[5]

वस्तुत: यह विपरीत नहीं है। योगशास्त्र में बताया गया है कि सुषुम्ना नाड़ी की अन्तिम सीमा ब्रह्मरन्ध्र है तथा यह मेरुदंड के आश्रय से ऊपर उठी हुई है। इसके वामभाग में रहने वाली इड़ा इस सुषुम्ना के ऊपर आवृत से आज्ञाचक्र के दाहिनी ओर से होकर वाम नासापुट में गमन करती है।[6] इडा नाड़ी के

१—शिव संहिता, २।१७ की टीका

२—शब्दावली, प्रथम भाग, पृ० ७६।

३—घटरामायण, प्रथम भाग, पृ० ३१।

४—गोरक्षपद्धति, १।२९।

५—घटरामायण, प्रथम भाग पृ० ३१।

६—सुषुम्णा मेरुणा याता ब्रह्मरन्ध्रं यतोऽस्ति वै।
ततश्चैषा परावृत्या तदाज्ञापद् मदक्षिणे।
वामनासापुटं याति गंगेति परिगीयते ॥

—शिवसंहिता, ५।१२८।

समान ही पिंगला भी आज्ञाचक्र के बाईं ओर से घूमकर दक्षिण नासापुट को गई है।[1] इस स्थिति में इन नाड़ियों को क्रमशः वरणा और असी कहा गया है और इन दोनों नदियों के मध्य में वाराणसी स्थान है जहाँ साक्षात शिव विराजमान हैं।[2] तुलसी साहब जब पिंगला को बाईं ओर एवं इड़ा को दाहिनी ओर फेरने की चर्चा करते हैं तब उनका अभिप्राय इन नाड़ियों का सुषुम्ना के ऊपर आवृत से आज्ञाचक्र के दाहिनी ओर एवं बाईं ओर से घूम कर नासापुटों में जाना ही है।

त्रिवेणी

'शिवसंहिता' में कहा गया है कि ब्रह्मरन्ध्र के मुख में इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियों का निश्चय संयोग है एवं इन नाड़ियों के संयोग स्थल या संगम में स्नान करने से ज्ञानी पुरुषों को मुक्ति मिलती है:---

ब्रह्मरन्ध्रमुखे तासां संगमः स्याद संशयः।
तस्मिन् स्नाने स्नातकानां मुक्तिः स्याद विरोधतः ॥[3]

गंगा यमुना एवं सरस्वती अथवा इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियों के संगम स्थल में स्नान परम गति का प्रदाता है :---

गंगा यमुनयोर्मध्ये वहत्येषा सरस्वती।
नासान्तुसंगमे स्नात्वा धन्यो याति परांगतिम् ॥[4]

मृत्युकाल में नाड़ी रूपी इन तीन नदियों की त्रिवेणी का ध्यान मात्र करके साधक मोक्ष प्रदान करता है :---

---

१—तदाकारा पिंगलापि तदाज्ञाकमलोत्तरे।
दक्षनासापुटे याति प्रोक्तास्माभिरसीति वै ॥
—शिवसंहिता, ५।१३३।

२—इड़ा हि पिंगला ख्याता वरणासीति होच्यते।
वाराणसी तयोर्मध्ये विश्वनाथोऽत्र भाषितः ॥
—शिवसंहिता, ५।११६।

३—शिवसंहिता, ५।१६३।

४—वही, ५।१६४।

मृत्युकाले प्लतुं देहं त्रिवेण्यां: सलिले यदा ।
विचिन्त्य यस्त्यजेत्प्राणान्स तदा मोक्षमाप्नुयात् ॥[१]

तुलसी साहब ने भी ब्रह्मरन्ध्र या शून्य में ही इड़ा पिंगला एवं सुषुम्ना अर्थात् गंगा यमुना और सरस्वती के त्रिवेणी संगम की अवस्थिति मानी है :---

झिलिमिलि झरे सुन्न के माही । गंगा जमुना सरसुति राही ॥
गंगा जमुना सरसुति होई । तिरवेनी संगम है सोई ॥[२]

अन्यत्र इसी विषय की पुनरावृत्ति करते हुए उन्होंने इस संगम स्थल को प्रयाग कहा है :

अगमद्वार खिरकी पहिचानी । गंगा जमुना सरसुती जानी ॥
सूरति चली अगम रस माती । जहां प्रयाग कंज रस राती ॥[३]

एक स्थल पर इन तीन नाड़ियों या नदियों के संगम स्थल को उन्होंने त्रिवेणी स्नान बताया भी है :—

गंग जमुन बिच सरसुती, वेनी असनाना हो ।[४]

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि तुलसी साहब की त्रिवेणी सम्बन्धी धारणा में और 'शिवसंहिता की धारणा में पूर्ण साम्य है । 'शिवसंहिता' की भाँति ही तुलसी साहब भी त्रिवेणी साधन से मोक्ष का प्रतिपादन करते हैं :—

त्रिकुटी संगम वेनी घाटा । बसै जीव सत पावै वाटा ॥[५]

अतएव संत तुलसी का त्रिवेणी वर्णन योगशास्त्र सम्मत है ।

१—शिवसंहिता ५।१७१ ।

२—घटरामायण, प्रथम भाग, पृ० २२ ।

३—वही, द्वितीय भाग, पृ० ९५ ।

४—वही, द्वितीय भाग, पृ० १७६ ।

५—वही, प्रथम भाग, पृ० २२ ।

(१) मंत्रयोगः—'योग बीज' में वर्णित मंत्र योग की चर्चा हम इस प्रसंग के प्रारम्भ में कर चुके है। उसमें प्रतिपादित किया गया है कि प्राणवायु हकार से बाहर जाता है एवं सकार से भीतर प्रवेश करता है। हंस रूपी इस अजपा गायत्री मंत्र का सब जीव सर्वदा जप करते हैं। गुरु वाक्य जान लेने से सुषुम्ना मार्ग में यही मंत्र उल्टी दिशा में उच्चरित हो सोऽहं हो जाता है।[1] इस प्रकार योगी 'वह' (सः) के साथ 'मैं' (अहम्) का अभेद अनुभव करने लगता है। यही मंत्र योग है। तुलसी साहब ने मंत्रयोग का वर्णन इस शास्त्रीय पद्धति पर नहीं किया है किन्तु 'योगबीज' में प्रतिपादित मंत्रयोग के तत्वों का उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है:—

बंकनाल पल पल नल खोली, गति अजपा नहिं बोली हो।
ओहंग तत सोहंग मत जानी, पवन शब्द संध आनी हो॥[2]

यहाँ ओहंग (हंस मंत्र) का सोहंग (सो हं) में उच्चरित होना मंत्रयोग की अवस्था का ही सूचक है। इस प्रसंग के अतिरिक्त मंत्रयोग सम्बन्धी अन्य कोई उल्लेख संत तुलसी के काव्य में उपलब्ध नहीं है।

(२) लययोगः—'गोरक्षनाथ' ने 'अमरौघप्रबोध' में चित्त के सतत लय को लययोग कहा है।[3] 'योगबीज' में भी चित्त के विलय को लययोग का लक्षण माना गया है।[4] इसी ग्रन्थ में यह कहा गया है कि चित्त लय के समय पवन ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर हो जाता है और योगी को आत्मानन्द परम पद प्राप्त होता है।[5] 'हठयोग प्रदीपिका' में चित्त के लय की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि चित्त की प्रवृत्ति के दो कारण हैं, एक वासना या मन और दूसरा पवन। वासना (मन) और पवन में से एक के नष्ट होने पर दोनों नष्ट

१—योग बीज, श्लोक १४६।१४७।

२—घटरामायण, प्रथम भाग, पृ० ३१।

३—अमरौघप्रबोध, श्लोक, ४।

४—योग बीज, श्लोक, १५०।

५—योग बीज, श्लोक १५१।

हो जाते हैं ।[१] जिसमें मन का लय होता है, वहीं पवन का लय होता है। और जहाँ पवन का लय होता है वहीं मन का लय होता है ।[२] अतएव सुषुम्ना नाड़ी के भेदन को भली भाँति जानकर और प्राण या पवन को उसमें गत करके ब्रह्मरन्ध्र में निरुद्ध करे ।[३] पवन का ब्रह्मरन्ध्र में निरोध ही लय है तथा इस प्रकार पवन के लय के साथ मन का लय भी हो जाता है ।[४] तुलसी साहब ने लययोग के निम्नलिखित वर्णन में उपर्युक्त योग शास्त्र में वर्णित लययोग की सब मुख्य विशेषताओं का उल्लेख किया है:—

गगन वृच्छ के बीच में पंछी पवन चुगाय।
पंछी पवन चुगाय जाय सोइ भेद लखावै।
वंकनाल के पार पवन के भवन सपावै।
इंगल पिंगल बिच राह करै जोगी सोई जानै।
तत अकाश के बीच मूल मन से पहिचानै।
मन सूरत और पवन को तुलसी दीन लखाय।
गगन वृच्छ के बीच में पंछी पवन चुगाय।[५]

अर्थात् गगन रूपी वृक्ष के मध्य (ब्रह्मरन्ध्र) में पवनरूपी प्राणवायुमन रूपी पक्षी को चुगा रही है। इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों की मध्यवर्ती सुषुम्ना नाड़ी

१—हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः।
तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यतः॥

—हठयोगप्रदीपिका, ४।२२।

२—मनो यत्र विलीयते पवनस्तत्र लीयते॥
पवनो लीयते यत्र मनस्तत्रविलीयते॥

—हठयोगप्रदीपिका, ४।२३।

३—ज्ञात्वा सुषुम्नासद्भेदं कृत्वा वायुं च मध्यगम्॥
स्थित्वा सदैव सुसंस्थाने ब्रह्मरंध्रे निरोधयेत्॥

—हठयोगप्रदीपिका, ४।१६।

४—हठयोग प्रदीपिका, ४।१६ की टीका।

—शब्दावली, प्रथम भाग, पृ० ३८।

के द्वारा योगी पवन को उसके भवन (ब्रह्मरन्ध्र) में पहुँचाता है। मूलतत्व ब्रह्म आकाश (ब्रह्मरन्ध्र) के मध्य में है। पवन के साथ मन भी वहाँ पहुँच कर उस तत्व को पहचानता है अर्थात् उसमें मिल जाता है।

लययोग के उपर्युक्त उद्धरण में योगशास्त्र वर्णित पद्धति का पूरा प्रयोग है। 'हठयोग प्रदीपिका' के अनुसार पवन द्वारा मन के गगन या ब्रह्मरन्ध्र में जाकर लय होने का उल्लेख 'पवन के भवन समाने' द्वारा किया गया है। 'हठयोग प्रदीपिका' के अनुसार ही सुषुम्ना मार्ग से पवन के ऊर्ध्वगमन का उल्लेख इस उद्धरण की तृतीय एवं चतुर्थ पंक्ति में किया गया है। पवन के साथ मन के ब्रह्मरन्ध्र में लय होने का प्रसंग 'गगन वृच्छ के बीच में पंछी पवन चुगाय' कह कर प्रकट किया गया है। इस लय से 'योगबीज' में योगी को जिस 'आत्मानन्द परमपद' प्राप्ति की चर्चा की गई है, वह 'आकाश' या 'गगन' के उल्लेख से स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार तुलसी साहब के लय योग वर्णन में योगशास्त्र के लय सम्बन्धी सब तत्व प्राप्त होते हैं।

अन्यत्र भी लययोग के प्रसंग का संक्षिप्त वर्णन करते हुए उन्होंने इड़ा पिंगला को छोड़कर सुषुम्ना मार्ग से पवन या प्राणवायु के भवन या ब्रह्मरन्ध्र में निरुद्ध होने का उल्लेख किया है :

इड़ा पिंगला सुखमनि माई। पवन भवन में जाइ समाई ॥[1]

इस उद्धरण में 'जाइ समाई' के द्वारा पवन के ब्रह्मरन्ध्र में लय होने का ही उल्लेख है। पवन के साथ मन का लय स्वयं सिद्ध है, इससे चित्तलय सम्पन्न होता है। यही लययोग है।

(३) हठयोगः—'अमरौघ प्रबोध' में हठयोग प्रभंजन विधानरत अर्थात् प्राणवायु या प्राणायाम योग कहा गया है।[2] योग बीज में कहा गया है कि इड़ा और पिंगला नाड़ियों के योग अर्थात् समीकरण द्वारा सुषुम्ना पथ में वायुगमन से हठयोग सम्पन्न होता है।[3] 'शिव संहिता' में भी कहा गया है कि जब वायु

१—घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० ८७।

२—अमरौघ प्रबोध, श्लोक ४।

३—योग बीज, श्लोक १४८-१४९।

इड़ा पिंगला को त्याग कर सुषुम्ना रन्ध्र में प्रविष्ट होगा, तब वह आकाश (ब्रह्मरन्ध्र) में गमन करेगा।[1] सुषुम्ना रन्ध्र में वायु के प्रवेश करने पर उसके मुख को अपनी पुच्छ से आच्छादन करने वाली प्रसुप्त कुंडलिनी[2] गुरुप्रसाद से जागृत होकर सब चक्रों या कमलों को भेदती हुई[3] सहस्रार में जाकर विलय हो जायगी। कुंडलिनी के लय के साथ यह चतुर्विध सृष्टि भी परमात्मा में लय हो जाती है।[4]

तुलसी साहब ने भी हठयोग का वर्णन प्रायः इसी पद्धति पर किया है। 'अमरौघ प्रबोध' के अनुसार ही उन्होंने हठयोग की नाड़ियों का प्रभंजन विधानरत प्राणायाम योग कहा है:—

(क) इड़ा पिंगला सुखमन माहीं। स्वाँसा पवन चढ़ै तेहि राही ॥[5]

(ख) जोगी जोग करत भरमाने। स्वांसा पवन चढ़ावा जाने ॥
इड़ा पिंगला सुखमनि माई। पवन गगन में जाइ समाई ॥[6]

(ग) प्रानायाम जोग कोइ कीन्हा। कोइ कोइ पवन उलट कर लीन्हा ॥[7]

प्राणायाम द्वारा नाड़ियों में पवन संचार का वर्णन करने के साथ ही

१—यदा वायुश्चन्द्रसूर्यं त्यक्त्वा तिष्ठति निश्चलम्।
वायुः परिचितो वायुः सुषुम्णा व्योम्नि संचरेत्।
—शिवसंहिता, ३।७१।

२—संवेष्ट्य सकला नाड़ीः सार्द्धत्रिकुटिलाकृतिः।
मुखे निवेश्य सा पुच्छं सुषुम्नाविवरे स्थिता ॥
सुप्ता नागोपमा ह्येषा स्फुरन्ती प्रभया स्वया।
—शिवसंहिता, ५।७६-७७।

३—सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुंडली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च ॥
—हठयोगप्रदीपिका, ३।२।

४—अत्र कुंडलिनीशक्तिर्लयं याति कुलाभिधा।
तदा चतुर्विधा सृष्टिर्लीयते परमात्मनि ॥
—शिवसंहिता, ५।१९३।

५—घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० १३६।
६—वही, वही, पृ० ८७।
७—वही, प्रथम भाग, पृ० ३०।

उन्होंने 'योग वीज' के अनुसार इड़ा और पिंगला नाड़ियों का उल्लंघन करके सुपुम्ना में पवन के प्रवेश का स्पष्ट उल्लेख किया है :—

जोगी जन पवन चढ़ावे । इड़ा पिंगला सुखमना आवे ।।[1]

इस उद्धरण में 'इड़ा पिंगला सुखमना आवे' के द्वारा तुलसी साहब ने इड़ा प्रवाहित प्राणवायु के सुषुम्ना में आने की चर्चा की है।[1] 'योग वीज' में ही कहा गया है कि प्राण संचार की यह विधि हठयोग सम्पन्न करती है।[2] उपर्युक्त पंक्तियों में हम कह चुके है कि शिव संहिता के अनुसार सुपुम्ना में प्रवेश करके प्राणवायु आकाश, गगन या ब्रह्मरन्ध्र में जाता है। तुलसी साहब ने भी निम्नलिखित पंक्तियों में रवि शशि अथवा पिंगला और इड़ा के मध्य मार्ग (सुपुम्ना) से प्राण के ऊर्ध्वगमन द्वारा गगन की घाटी या आकाश (ब्रह्मरन्ध्र) में प्रवेश का वर्णन किया है :—

रवि ससि मद्धि में वाटी । चढ़ै कोइ गगन की घाटी ।,[3]

हठयोग के साथ कुंडलिनी योग का सम्बन्ध समादृत है। हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि सम्पूर्ण पर्वत वनों सहित जितनी भूमि है उनका आश्रय (आधार) जिस प्रकार सर्पनामक शेष है, उसी प्रकार योग (हठयोग) के समस्त उपायों का आधार भी कुंडलिनी है।[4] 'शिवसंहिता' एवं हठयोग प्रदीपिका के आधार पर हम उपर्युक्त पंक्तियों में कह चुके हैं कि सुपुम्नारन्ध्र में वायु के प्रवेश करने पर उसके मुख को आच्छादित करने वाली सुषुप्त कुंडलिनी जाग्रत होकर सब चक्रों एवं कमलों को वेधती हुई सहस्रार में जाकर विलय हो जाती है। तुलसी साहब ने भी कुंडलिनी (वंकनाल) के जाग्रत होकर सुपुम्ना द्वार मे प्रवेश करने ऊर्ध्वगमन का वर्णन किया है —

चढ़ी चेत चाली खड़ी वंक नाली । घनी द्वार पाली प्रवोयं सो थोयं[5]

उन्होंने कुंडलिनी द्वारा षट्चक्र वेध का उल्लेख करते हुए कहा है —

१—शब्दावली, द्वितीय भाग, पृ० २३० ।

२—योगवीज, श्लोक १४९ ।

३—शब्दावल, प्रथागोम म,पृ० ७६ ।

४—सशैलवनधात्रीणां यथाधारो हिनामकः ।।
सर्वेषां योगतन्त्राणां यथाधारो हि कुंडली ।।

—हठयोग प्रदीपिका, ३।१ ।

५— घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० १९३ ।

वंकनाल पट मारग जाई । मन मयाभिन्न सुन्न के माई ॥[1]

अन्यत्र भी उन्होंने कुंडलिनी (वंकनाल) के सहस्रार गमन की चर्चा की है।

स्वांसा धाइ वंक खुल खोलै, सहस कंवल दल पाई ॥[2]

कुंडलिनी का सहस्रार में गमन ही हठयोग का परम प्रतिपाद्य है क्योंकि शिव-संहिता के अनुसार कुंडलिनी योग सिद्ध होने पर यह चतुर्विध सृष्टि भी परमात्मा में लय हो जाती है।

राजयोग (समाधियोग)—गोरक्षनाथ ने 'अमरौघप्रबोध' में राजयोग को चित्तवृत्ति रहित माना है—'यश्चित्तवृत्तिरहितः स तु राजयोगः ।[4] 'पातंजल योग दर्शन' ही इस कथन का आधार ज्ञात होता है जिसमें चित्तवृत्ति के निरोध को समाधि योग कहा गया है।[5] उस समय द्रष्टा की अपने स्वरूप (आत्मस्वरूप) में स्थिति होती है।[6] 'योगवीज' में समाधि योग के द्वारा अणिमादिपद प्राप्त होने का वर्णन है—'अणिमादिपदे प्राप्ते, राजते राजयोगतः ।[7] अणिमाआदि का अभिप्राय यहां अणिमा इत्यादि सुप्रसिद्ध सिद्धियां ज्ञात होती हैं। तुलसी साहब ने भी समाधि और सिद्धि का सम्बन्ध प्रकट किया है:—

सिध समाधि से सिद्धी आई। कुवा उमंगि जल अगिन बुझाई ॥[8]

किन्तु उनका समाधियोग अथवा राजयोग वर्णित सिद्धि योग न होकर आत्मयोग है। उन्होंने इसे 'सहज समाधि' भी कहा और इसकी साधना द्वारा आत्मतत्व के साक्षात्कार का उल्लेख किया है:—

१—घटरामायण, प्रथम भाग, पृ० ६१ ।

२—वही, द्वितीय भाग, पृ० ६ ।

३—शिवसंहिता, ५।१९२ ।

४—अमरौघप्रवोध, श्लोक ४ ।

५—योगदर्शन, १।२ ।

६—तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥
योग दर्शन, १।३ ।

७—योगवीज, श्लोक १५२ ।

८—रत्नसागर, पृ० १६५ ।

कुण्डलिनी योग

योगियों का कहना है कि मेरुदण्ड के भीतर इड़ा और पिंगला नाम की दो नाड़ियाँ हैं तथा उसके बीच में शुषुम्ना नाम की एक शून्य नाड़ी है (स्नायविक शक्ति प्रवाह) है। इस शुषुम्ना नाड़ी के मन के नीचे कुण्डलिनी का निवास है।

"शुषुम्ना की बाईं ओर स्थित नाड़ी को इड़ा और दायीं ओर स्थित नाड़ी को पिंगला कहा जाता है। दोनों की समानता होने पर दोनों के मध्य स्थित शुषुम्ना नाड़ी का द्वार अपने आप खुल जाता है।"

इसी द्वार के सहारे प्राण को ऊपर उठाना योगी का ध्येय होता है। जब पाँच चक्रों का भेदन कर साधक आज्ञा चक्र में पहुँचता है तब वहाँ से उसे गुरु की आज्ञा सुनाई देती है। वह अद्वैताचारी हो जाता है और इस चक्र का भी भेदन कर कुण्डलनी ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्रार में पहुँच कर परम शिव से समरसता स्थापित करती है। (राजयोग प्राण का आध्यात्मिक रूप, स्वामी विवेकानन्द)

इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति जैसे-जैसे एक चक्र का भेदन कर दूसरे चक्र में प्रवेश करती है त्यों-त्यों मन का एक एक पर्दा मानो खुलता जाता है। और अन्त में उसे जगत के कारण का ज्ञान हो जाता है। कारण के ज्ञान होने पर कार्य का भी ज्ञान हो जाता है। और उसे तत्त्व ज्ञान या आत्मानुभूति हो जाती है।

इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को जगाना ही तत्त्व-ज्ञान या ज्ञानातीत ज्ञान या आत्मज्ञान प्राप्त करने का उपाय है।

कुण्डली को जगाने में भगवान का, प्रेम भी सहायक होता है। कभी-कभी किसी साधक की कुण्डलिनी गुरु-कृपा से भी जागृत हो जाती है। किसी की प्राणायाम से जागृत होती है। सभी साधनाओं का उद्देश्य कुण्डलिनी को जगाना है।

चक्र छः हैं—(१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्ठान, (३) मणिपूरक, (४) अनाहत, (५) विशुद्ध चक्र तथा (६) आज्ञा चक्र।

योग-साधना से उद्बुद्ध कुण्डलिनी इन्हीं छः चक्रों को क्रमशः बेधती हुई ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्रार में पहुँच कर शिव से समरस्ता स्थापित करती हैं।

(सर्वात्म दर्शन, पृ० ९९, १००)

अन्य योगों की भाँति कुण्डलिनी योग का भी लक्ष्य शुद्ध चित् तत्त्व की प्राप्ति है जो चित्तवृत्ति और प्राण का नियमन किये बिना सम्भव नहीं। प्राण और मन के लय से ही सहजावस्था प्राप्त होती है।

मन और पवन के स्थिर हो जाने से वीर्य भी स्थिर हो जाता है।

मनः स्थैर्य स्थिरो वायुस्ततो बिन्दुः स्थिरो भवति।
बिन्दुस्थैर्यात् सदा रत्त्वं पिण्डस्थैर्य प्रजायते॥

(हठयोग प्रदीपिका ४/२१, २२, २३, २८)

तन्त्र कहते हैं कि आत्मा शरीर में धमनी के अक्षरों के रूप में है। माता दुर्गा (शक्ति) पचास वरणों के रूप में मूलाधार में अवस्थित है—

The Tantras say that the soul in the body is the very self of the letter of Dhvani (Sound). The mother, the embodiment of the fifty letters (Varna), is present in the various letters in the deferent Chakras. Like the melody which issues when chords of a letters are struck. The mother who moves in the six Chakras and who is the very self of letters awakens with a bust of harmony when the chords of the letters (Varnas) are struck in their order and Siddhi becomes as easy of attainment to the Sadhaka as the Amalka fruit in one's hand when she is roused.

इस साधना के अन्तर्गत तीन भाव (पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव) तथा सात आचार हैं।

पशुभाव—जिन जीवों में अविद्या के आवरण के कारण ज्ञान का लेश-मात्र भी उदय नहीं हुआ उनकी मानसिक प्रकृति पशुभाव वाला कहलाती है।

वीरभाव—अज्ञान रज्जु को काटने वाला वीरभाव वाला कहलाता है।

दिव्यभाव—द्वैतभाव को दूर कर उपास्य की सत्ता में अपनी सत्ता खोकर अद्वैतानन्द लेने वाले को दिव्यभाव वाला कहा जाता है।

दिव्यभाव में कौलाचार

कौल शब्द कुल से बना है। कुल का अर्थ कुण्डलिनी और अकुल का अर्थ शिव है।

इस प्रकार जो व्यक्ति योगविद्या के सहारे कुण्डलिनी का उत्थान कर सहस्रार में स्थित शिव के साथ संयोग करा देता है उसे कौल कहते हैं।

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तं कुलं शिव उच्यते।
कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलभित्यभिधीयते॥

कौल के गुण

कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं पुत्रे शत्रौ तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि! तथैव काञ्चने तृणे॥
न भेदोयस्य देवेशि! स कौलः परिकीर्तितः (भाव सिद्धि)

शिवशक्ति का उपासक होते हुए भी उसमें साम्प्रदायिक भेदभाव की भावना नहीं रहती है—

अन्तः शाक्तः वहिः शैवाः सभा मध्ये च वैष्णवः।
नाना रूप धरे कौला विचरन्ति महीतले॥

गुरु का महत्त्व—कुण्डलिनी साधना प्रयोगात्मक साधना है अतः इसमें गुरु का और वह भी ऐसे गुरु का जो स्वयं कुण्डलिनी साधना में सिद्ध हो, पथ-प्रदर्शन परम आवश्यक है अन्यथा हानि की सम्भावना रहती है।

गुप्त साधना

कुण्डलिनी साधना का अभ्यास सिद्धगुरु अपने योग्य शिष्य से कराता है। साधना के विभिन्न स्तरों का वर्णन भी सांकेतिक भाषा में किया जाता है ताकि सामान्य जन उसका अभ्यास न कर सकें।

इतनी सतर्कता के उपरान्त भी उसके पंचमकारों का बड़ा दुरुपयोग हुआ है और इस साधना को बड़ा अपमान और अपजस मिला है।

यथा कुण्डलिनी के साथ जो आचार किया जाता है उसे कुलाचार कहते हैं। यह आचार मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन पाँच मकारों के सहयोग से सम्पन्न होता है।

मद्य-कुलार्णव तन्त्र में मद्य की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है—

व्योम पङ्कज निस्यन्द सुधा पान रतो नरः।
मधुपायी समः प्रोक्तः इतरे मद्य पायिनः॥

अर्थात ब्रह्मरन्ध्र में स्थित जो सहस्रार दलकमल है उसमें से चूने वाले रस यानी अमृत को मद्य कहते हैं।

मांस

पुण्य और पाप दोनों को मांस कहा गया है और इनके मारने वाले को मांसाहारी।

जो साधक पुण्य और पापरूपी पशुओं को ज्ञानरूपी खड्ग से मारता है और अपने चित्त को ब्रह्म में लीन करता है वही मांसाहारी है। भावार्थ यह कि पुण्य और पाप दोनों मुक्ति प्राप्त करने की साधना में बाधक हैं और जन्म-मरण के चक्र में डालने वाले हैं अतः इनसे ऊपर उठने वाला ही साधक है।

मत्स्य

शरीर में इड़ा-पिंगला नाड़ियों को (तान्त्रिक भाषा में) गंगा-जमुना कहते हैं। इनके योग से प्रवाहित होने वाले श्वास और प्रश्वास ही दो मत्स्य हैं जो साधक प्राणायाम द्वारा श्वास प्रश्वास बन्द करके कुम्भक द्वारा शुषुम्ना मार्ग में प्राणवायु का संचालन करता है वही यथार्थ में मत्स्य साधक भक्षक है।

(आगम सार से उद्धृत बौद्ध द०मी०व०दे०)

मैथुन

जप की तुलना सोते हुए आदमी को हिला कर जगाने से दी जाती है दोनों होंठ शिव और शक्ति हैं। उच्चारण की गति (दोनों होंठ का मिलना) ही मैथुन है। (शक्ति और शास्त्र अ० शक्ति और मन्त्र, पृ० ५१५)

मुद्रा

शरीर की विभिन्न स्थितियों का नाम ही मुद्रा है। मुद्रायें दस हैं यथा—

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्चखेचरी।
उड्यानं मूल बन्धश्च बन्धो जालन्धराभिधः॥
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्ति चालनम्।
इदं हि मुद्रा दशकं जरामरण नाशकम्॥

(हठयोग प्रदीपिका)

अर्थात महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्यान, मूलबन्ध, जालन्धर, करणी, विपरीत और वज्रोली शक्ति का संचालन करने वाली दस मुद्रायें है।

इस प्रकार शरीर की विभिन्न स्थितियों का नाम ही मुद्रा है।

बौद्धधर्म में कुण्डलिनी साधना

बौद्धधर्म में सहजिया लोग वामशक्ति (नाड़ी) को ललना और दक्षिण नाड़ी को रसना कहते हैं। शुषुम्ना को अवधूती कहते हैं।

सनातनधर्म के तन्त्रों की भाँति बौद्धधर्म में भी शुषम्ना को क्लेश और पापों का नाश करने वाली कहा गया है—

अवहेलया अना भोगेन क्लेशादि पापान धुनेति।

अर्थात वह शक्ति जो अनायास ही क्लेशादि पापों को दूर कर देती है।

अवधूती मार्ग ही अद्वैय मार्ग, शून्य पथ, आनन्द स्थान, आदि शब्दों से अभिहित किया जाता है। (बौद्धधर्म मीमांसा-बुद्ध तन्त्र ब०३०)

उपाध्यायजी आगे लिखते हैं—

वाम नाड़ी और दक्षिण नाड़ी के मिलन से जो अग्नि या तेज उत्पन्न होता है, उसकी प्रथम अभिव्यक्ति नाभि चक्र में होती है। शुषुम्ना की इस अवस्था में उसे सहजिया लोग चण्डाली नाम से पुकारते हैं। जब चण्डाली विशुद्ध हो जाती है तब उसे डोम्बी कहते हैं और अधिक शुद्ध होने पर उसी को बंगाली कहते हैं। इस प्रकार अवधूती अवस्था (इस अवस्था) में इड़ा और पिङ्गला अपना कार्य पृथक-पृथक करती हैं चण्डाली (इस) अवस्था में द्वैता द्वैत का निवास रहता है।

बङ्गाली अवस्था अद्वैत की सूचक है। तन्त्रशास्त्र में भी ये तीनों विभाजन है वहाँ अवधूती, डोम्बी तथा बंगाली को क्रमशः अपरा, परापरा तथा परा नाम से पुकारा जाता है। इसी प्रकार दोनों साधनाओं का एक ही लक्ष्य भी है।

इड़ा और पिंगला की शक्ति को (ललना और रसना की शक्ति को) शुषुम्ना के मार्ग से प्रवाहित करना ही सहजिया लोगों की भाषा में मध्यम मार्ग या ऋजु मार्ग का अवलम्बन है।

इस संदर्भ में भुसुक (सिद्धाचार्य शान्ति पाद) की निम्न उक्ति दृष्टव्य है—

वाम दहिन दुइ घाटा छाँड़ी।
शान्ति बुगथेउ संके लिउ॥

अर्थात वाम और दक्षिण मार्ग को छोड़कर मध्यम मार्ग ग्रहण करना चाहिए अन्यथा बुद्धत्व प्राप्त करने या महासुख या तथागत भाव की प्राप्ति सम्भव नहीं।

सहस्त्रार की कल्पना

जिस प्रकार सनातनधर्म में हठयोगी और तान्त्रिक मस्तक में सहस्त्रार कमल मे शिव का स्थान बताते हैं उसी प्रकार वज्रयानी सिद्ध भी मस्तक में कमल की कल्पना करते हैं और उस कमल की कर्णिका के मध्य बुद्ध या वज्र गुरु का आसन नानते हैं।

जिस प्रकार तन्त्र में शिव–शक्ति के मिलन को अद्वैत सत्ता के अनुभव की बात करते हैं उसी प्रकार बौद्ध सिद्ध भी अद्वैत भावना की बात करते हैं।

ओ३म् या वज्र जाप

जिस प्रकार सनातनधर्म में ओ३म् मन्त्र या बीज मन्त्र द्वारा कुण्डलिनी को जगाया जाता है उसी प्रकार सिद्ध लोग वज्र जाप द्वारा कुण्डलिनी को जगाते हैं।

आचार्य बलदेव उपाध्याय लिखते हैं, "जो इस शून्यमय अद्वैत भाव में अधिष्ठान कर आत्मप्रकाश करता है वही सच्चा गुरु है।" (बौद्धधर्म मीमांसा)

सनातनधर्म के तन्त्रों की भाँति बौद्धधर्म में भी पंचमकारों की मान्यता है। श्री समाज तन्त्र का स्पष्ट कथन है कि कठिन नियमों के पालन से सिद्धि नहीं मिलती केवल पतन होता है—

दुष्करैर्नियमैस्तीव्रे, मूर्तिः शुष्यति दुःखिता।
दुःखाब्धौ क्षिप्यते चित्तं पिक्षेपात् सिद्धिरन्यथा॥

अर्थात दुःखकर नियमों के पालन से शरीर केवल दुःख पाकर सूखता है, चित्त दुःख के समुद्र में गिर पड़ता है। इस पर विक्षेप होने से सिद्धि नहीं मिलती।

(बौद्धधर्म मीमांसा)

तिब्बत के बौद्ध तन्त्र में इस के स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं। भगवान विष्णु बुद्ध के रूप में महर्षि वशिष्ठ को पंचमकारों की शिक्षा देते हैं। महर्षि वशिष्ठ ने इन शब्दों को सुनकर और देवी सरस्वती का ध्यान करते हुए मद्य साधना हेतु कुल मण्डप को गये और बार-बार मद्य, मांस, मत्स्य, सूखे दाने और शक्ति की साधना करके पूर्ण योगी हो गये। (Shakti & Shakta Chinachar W. Rofe)

ऐसा ही एक दृष्टान्त 'ब्रह्म यमल' का भी उडरफ महोदय ने उसी पुस्तक में दिया है।

जब वशिष्ठजी ने कामाख्या के देवी मन्दिर में जाकर अपनी असफलता की बात बताई तो देवी ने उन्हें बताया कि बुद्धरूप में विष्णु ही उन्हें पंचमकारो की शिक्षा दे सकते हैं।

वशिष्ठ ने जब विष्णु को मदिरा और स्त्रियों के भोग में डूबा देखा तो उन्हे आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा कि यह आचार तो वेदविरुद्ध है। मैं इसे नहीं कर सकता। तभी आकाशवाणी हुई—

अरे, तुम जो शुभ कर्म के प्रति समर्पित हो इस प्रकार मत सोचो। बुद्ध, जो कि विष्णु के अवतार और तत्त्वज्ञानी हैं, ने उन्हें म से प्रारम्भ होने वाले पच-मकारों (मदिरा आदि) की साधना को बताया है। (वही, पृ० १९८, पै० १)

गुरुतत्त्व

वज्रयान में तन्त्रों के समान गुरु की महिमा है। वज्रयानी गुरु काय, वाक तथा चित्त की दृढ़ता पर आग्रह करता है।

इस दृढ़ता की अभिव्यक्ति वज्र शब्द के द्वारा की जाती है।

वज्र कोई नई वस्तु नहीं है। यह शून्यता का ही मौलिक प्रतीक है। यह वज्र ज्ञान अवर्णीय हैं—

भावाभावौ न तौ तत्त्व, भवेत् ताभ्यां विवर्जितम्।
न देशत्वमतो युक्तं, सर्वज्ञो न भवेत्तदा॥

(ज्ञान सिद्धि १२-४)

अर्थात मूल तत्त्व साकार और निराकार दोनों से भिन्न है वह न भाव रूप है न अभाव रूप और न तदुभय वर्जित है। इस सम्बन्ध में उपाध्यायजी एक और उदाहरण देते हैं। वज्र ज्ञान शून्य ज्ञान से भिन्न नहीं है ?

अप्रतिष्ठं यथाकाशं व्यापि लक्षण वर्जितम्।
इदं तत् परम तत्त्वं वज्रज्ञान मनुत्तरम्॥

(ज्ञान सिद्धि १-४७)

अर्थात आकाश के समान अप्रतिष्ठित, व्यापक तथा लक्षण वर्जित जो तत्त्व है वही वज्रज्ञान है।

अर्थात जीव का वध कभी न करना, तीनों रत्नों अर्थात बुद्ध, धर्म औ संघ को कभी न छोड़ना, आचार्य का त्याग न करना।

इसी प्रकार गुरु शिष्य को प्राणीहिंसा, चोरी, कामाचार तथा मिथ्या भाषण न करने का भी उपदेश देता है—

प्राणिनश्च न ते घात्या, अदत्तं नैव चाहरेत्।
मा चरेत कामोध्या वा, मृषा नैव हि भाषयेत्॥

(ज्ञान सिद्धि ८-१९)

अर्थात प्राणीहिंसा, अदत्ताहरण, कामाचार तथा मिथ्या भाषण कभी न करना।

इसी प्रकार वह मद्यपान न करने का भी उपदेश देता है—

सर्वानर्थस्य मूलत्वाद मद्यपानं विवर्जयेत्।

अर्थात समग्र अनर्थों की मूल होने से मद्यपान कभी न करना चाहिये।

(वही)

इस प्रकार बौद्धधर्म में भी पंच मकारों का स्थूल रूप (भौतिक रूप) वास्तविक नहीं।

मुद्रायें

कुण्डलिनी योग में दस मुद्राओं का वर्णन है। महायान (बौद्धधर्म) के काल चक्र यान अथवा सहजयान में उन्मुनी मुद्रा का बड़ा गुणगान है। कबीर ने भी इस मुद्रा का वर्णन किया है—

अवधू मेरा मन मतिवारा
उन्मनि चढ़ा गगन रस पीवै त्रिभुवन भयउ उजियारा।
गुड़ करि ध्यान करि महुआ करि माठी मनधारा
सुखमनि नारी सहज सयानी पीवै पीवन हारा॥

सिद्ध सरहपा ने इस उन्मनी अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया है—

जहँ मन पवन न सञ्चरइ, रवि ससि नाह पवेश।
तहि घट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेश॥

जिस उन्मनी मुद्रा का इतना महत्त्व है उसका क्या स्वरूप है?

देवरहा बाबा बताते हैं, "आधी खुली और आधी बन्द आँखों से नासिका के अग्र भाग को लगातार देखते रहना उन्मनी मुद्रा है।"

टिप्पणी—उन्मनी मुद्रा के पूर्व शाम्भवी मुद्रा और शाम्भवी मुद्रा के पूर्व खेचरी मुद्रा का अभ्यास करना पड़ता है।

इस हेतु भगवान बुद्ध यद्यपि स्वयं उन्मनी मुद्रा की अवस्था में रहते थे जैसा कि तिकन्यात हन्ह ने अपनी पुस्तक (Old Path & White Clouds) में

लिखा है (स्वाति ने (बुद्ध को) "देखा उसकी पीठ सीधी थी और उसके पाँव जघाओं पर रखे हुए थे। वह एकदम संयत भाव से बैठा था उसकी आँखें अध खुली रह रही थीं)।" तथापि वह दूसरों को प्रारम्भिक चरण में खेचरी मुद्रा की ही शिक्षा देते थे।

असित ऋषि के भाँजे नालक को खेचरी मद्रा बताते हुए भगवान गौतम बुद्ध कहते हैं—"मैं तुम्हें ज्ञानयोग (मौनेय) को बताऊँगा। वह छुरे की धार के समान होता है। तालु से जीभ सटा कर पेट के प्रति संयमी बने।"

(सुत्तनिपात-नालक सुत्त ३८)

भगवान खेचरी मुद्रा में प्रवीण थे यह निम्न उद्धरण से भी प्रमाणित होता है फिर भगवान ने जीभ निकाल कर (उससे) दोनों कानों के श्रोतों को छुआ, दोनों नाकों के श्रोतों को छुआ, सारे ललाट मण्डल को जीभ से ढाँक लिया।

(वही, सेल सुत्त ३, ७)

हठ योग प्रदीप्का में खेचरी मुद्रा का जो स्वरूप बतलाया गया है उससे भी यही बात सिद्ध होती है। सर्वात्म दर्शन में देवरहा बाबा कहते हैं—जिह्वा को लौटा कर कपाल-कुहर में प्रवष्टि कराना होता है और दृष्टि आज्ञा चक्र मे (भृकुटियों के मध्य में) लगानी होती है। जिह्वा इतनी बढ़ जानी चाहिए कि वह भृकुटि के मध्य तक पहुँच जाए: इसके लिए उसका छेदन, चालन और दोहन करना पड़ता है। इसमें कई महीने लग जाते हैं। जिह्वा के बढ़ने पर उसे तीनो नाड़ियों के मार्ग से कपाल कुहर में पहुँचाना होता है।

उपरोक्त नालक और सेल के उदाहरणों से उक्त बात पूरी तरह सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार यह बात प्रमाण से सिद्ध होती है कि भगवान बुद्ध सदैव उन्मनी मुद्रा में (जिसे तुरीयाअवस्था भी कहा जाता है) रहते थे। और चूँकि उन्मनी मुद्रा के पूर्व शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास तथा शाम्भवी के पूर्व खेचरी मुद्रा का अभ्यास करना पड़ता है अत: भगवान उपरोक्त मुद्राओं में सिद्धहस्त थे तथा अपने शिष्यो को भी इसकी शिक्षा देते थे।

नहीं चंद्र नहि सूर है नहीं सुषुमणा बाल।
मुखसेती श्वासा चले घड़ी चार में काल ९४
चार दिना के आठ दिन बारह के दिन बीश।
ऐसे जब चन्द्रा चलै आयु जान वड़ ईश ९५
तीन रात औ तीन दिन चालै तत्त्व अकाश।
एक वर्ष काया रहै फेरि काल विश्वास ९६
दिन को तो चन्द्रा चलै चलै रात को सूर।
यह निश्चय करि जानिए प्राणगमन बहु दूर ९७
राति चलै स्वर चन्द्र में दिन को सूरज बाल।
एक महीना यों चलै छठे महीना काल ९८
जब साधू ऐसी लखै छठे महीना काल।
आगे ही साधन करै बैठि गुफा ततकाल ९९
ऊपर खैंचि अपान को प्राण अपान मिलाय।
उत्तम करै समाधि को ताको काल न खाय १००
पवन पिए ज्वाला पचै नाभि तले कर राह।
मेरुदंड को फारिकै बसै अमरपुर माह १०१
जहाँ काल पहुँचै नहीं यम का होय न त्रास।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

गगन मँडल को जायकर करै उनमनी वास १०२
जहाँ काल नहिं ज्वाल है छुटै सकल संताप।
होय उनमनी लीन मन बिसरै आपा आप १०३
तीनों बन्ध लगाय के या वायें को साध।
योग सुषुमणा ह्वै चलै देखै खेल अगाध १०४
शक्ति जाय शिव सों मिलै जहाँ होय मन लीन।
महाखेचरी जो लगै जानै जान प्रवीन १०५
आसनपद्म लगायकर मूलबंध को बाँध।
मेरुदण्ड सीधो करै सुरनगगन को साध १०६
चन्द्र सूर्य दोउ सम करै ठोढ़ी हिये लगाय।
षटचक्कर को बेधकर शून्य शिखर को जाय १०७
इड़ा पिंगला साधकर सुषुमण में कर वास।
परमज्योतिझिलमिलतहाँ पूजैमन विश्वास १०८
जिन साधन आगे करी तासों सब कछु होय।
जब चाहै तबहीं करै काल बचावै सोय १०९
तरुण अवस्था योग कर बैठ रहै मन जीत।
काल बचावै साध वह अन्त समय रणजीत ११०

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सदा आप में लीन रहु करि योगा अभ्यास।
आवत देखै काल जब गगनमँडल कर वास ११ १
शनई शनई साधकर राखै प्राण बढ़ाय।
पूरो योगी जानिए ताको काल न खाय ११ २
पहिले साधन ना कियो गगनमँडल को जान।
आवत जानै काल जब कहा करै अज्ञान ११ ३
योग ध्यान कीन्हों नहीं ज्वान अवस्था मीत।
आगम देखै काल को कहा सकै वह जीत ११ ४
काल जीति हरि सों मिलै शून्य महल अस्थान।
आगे जिन साधन करी तरुण अवस्था जान ११ ५
काल अवधि बीतै जबै तबै जानि वह जाय।
योगी प्राण उतारिए लेहि समाधि जगाय ११ ६
काल जीति जग में रहै मौत न व्यापै ताहि।
दशों द्वार को फोरकर जब चाहै तब जाहि ११ ७
सूरजमंडल चीरकै योगी त्यागै प्राण।
सायुज्यमुक्ति सोई लहै पावै पद निर्वाण ११ ८
कृष्णपक्ष के मध्य में दक्षिण होयँ जु भान।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

योगी वपु नहिं छाँड़ि हैं राजा होय कि आन ११६
राज्य पाय हरिभक्ति कर पूर बली पहिचान।
योगयुक्ति पावै बहुरि दूसरि मुक्ति निदान १२०
सूर्य उत्तरायन लखै शुक्लपक्ष के माहिं।
योगी काया त्यागिए यामें संशय नाहिं १२१
मुक्त होय बहुरै नहीं जीव खोज मिटि जाय।
बूँद समुंदर मिल रहे दुनियाँ ना ठहराय १२२
सूर्य दक्षिणायन बिषे रहैं मास षट जान।
फिर उतरायन जायकर रहैं मास षट भान १२३
दोनों स्वर को शुद्ध कर श्वासा में मन राख।
भेद स्वरोदय पाय कर तब काहू सों भाख १२४
जो रण ऊपर जाइए दहिने स्वर परकाश।
जीत होय हारै नहीं करै शत्रु को नाश १२५
दुर्जन को स्वर दाहिनो तेरो दहिनो होय।
जो कोई पहिले चढ़ै खेत जीति है सोय १२६
सुषुमण चलत न चालिए युद्ध करन सुन मीत।
शीश कटावै की फँसै दुर्जन होई जीत १२७

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

चौथे ताल है सोय पाँचवें घंटा बाजै।
छठे सुमुरली नाद सातवें भेरि जु गाजै।
अठवें बाजै दुंदुभी सिंह गर्जना नवलो।
दशवें बाजै घूँघुरू चरणदास सुन लो १६१

दोहा

दश प्रकार अनहद घुरै जित योगी ह्वै लीन।
इन्द्रिय थकै मनवाँ थकै चरणदास कहि दीन १६२
तीन पाँच नौ नाड़िका दश बाई को जान।
प्राण अपान समान है अरु कहियत उद्यान १६३
व्यानवायु अरु किरकरा कूरम बाई जीत।
नाग धनंजय देवदत दश बाई रणजीत १६४
नवो द्वार को बंदकर उत्तम नाड़ी तीन।
इड़ा पिंगला सुषुमणा केलि करै परबीन १६५
करते प्राणायाम के तरि गये पतित अनेक।
अनहदध्वनि के बीच में देखैं शब्द अलेख १६६
पूरक कर कुम्भक करै रेचक पवन उतार।
ऐसे प्राणायाम कर सूक्षम करै अहार १६७

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

धरती बंद लगाय कर दशों वायु को रोक।
मस्तक प्राण चढ़ाय कर करै अमरपुर भोक १९८
पाँचो मुद्रा साधकै पावे घट को भेद।
नाड़ी शक्ति चढ़ाय कै षट चक्कर को छेद १९९
योगयुक्ति कै कीजिए कै अजपा को ध्यान।
आपा आप विचारिए परम तत्त्व को ज्ञान २००
शूद्रै वैश्य शरीर है ब्राह्मण औ रजपूत।
बूढ़ा बाला तू नहीं चरणदास अवधूत २०१
काया माया जानिए जीव ब्रह्म है मित्त।
काया छूटि सूरत मिटै तू परमातम नित्त २०२
पाप पुण्य आशा तजो मान और तो थाप।
काया मोह विकार तजि जपै सु अजपा जाप २०३
आप भुलानो आपमें बँध्यो आप ही आप।
जाको ढूँढ़त फिरत है सो तू आपी आप २०४
इच्छा दुई बिसारि करि क्यों न होय निर्वास।
तू तो जीवनमुक्त है तजो मुक्ति की आस २०५
पवन भई आकाश सों अग्नि वायु सों होय।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

❀ अथ श्री गुरु शिष्य संवाद अष्टांग योग प्रारम्भ ❀

शिष्य वचन

दो० व्यास पुत्र धन धन तुम्हीं, धन धन यह अस्थान ।
मम आशा पूरी करी, धन धन वह भगवान ॥१॥
तुम दर्शन दुर्लभ महा, भये जु मोको आज ।
चरण लगो आपा दियो, हुए जु पूरण काज ॥२॥
चरणदास अपनो कियो, चरणन लियो लगाय ।
शिर कर धरि सब कछु दियो, भक्ति दई समझाय ॥३॥
बालपने दरशन दिये, तब ही सब कछु दीन ।
बीज जु बोया भक्ति का, अब भया वृक्ष नवीन ॥४॥
दिन दिन बढ़ता जायगा, तुम किरपा के नीर ।
जब लग माली ना मिला, तब लग हुता अधीर ॥५॥
अरु समुझाये योग ही, बहु भाँती बहु अंग ।
ऊरधरेता[1] ही कही, जीतन बिंद[2] अनंग[3] ॥६॥
अरु आसन सिखलाइया, तिनकी सारी विद्धि[4] ।
तुम्हरी कृपा सों होहिंगे, सब ही साधन सिद्धि ॥७॥
इक अभिलाषा और है, कहि न सकूँ सकुचाय ।
हिये उठै मुख आय करि, फिरि उलटी ही जाय ॥८॥

---

१ अखंड ब्रह्मचर्य २ वीर्य ३ कामदेव ४ प्रकार ।

गुरु वचन

दो० सतगुरु से नहिं सकुचिये, एहो चरणहिदास ।
जो अभिलाषा मन विषे, खोलि कहो अब तास ॥६॥

शिष्य वचन

सतगुरु तुम आज्ञा दई, कहूँ आपनी बात ।
अष्टांग योग समझाइये, जाते हियो सिरात ॥१०॥
मोहिं योग बतलाइये, जो है वह अष्टांग ।
रहनी गहनी विधि सहित, जाके आठों अांग ॥११॥
मत मारग देखे घने, ह्याँ सियरे भये प्रान ।
जो कुछ चाहो तुम करो, मैं हौं निपट अयान ॥१२॥

गुरु वचन

अष्टांग योग समझाय हूँ, भिन्न भिन्न सब अंग ।
पहिले संयम सीखिये, जाते होय न भंग ॥१३॥

शिष्य वचन

संयम काको कहत हैं, कहो गुरू शुकदेव ।
सो सब ही समुझाइये, ताको पाऊँ भेव ॥१४॥

गुरु वचन

॥ योगियों के आवश्यक कर्त्तव्य ॥

प्रथम सूक्ष्म भोजन खावै । क्षुधा मिटै आलस नहिं आवै ॥
थोड़ा सा जल पीवन लीजै । सूक्ष्म बोलै वाद न कीजै ॥
बहुत नींद भर सोवै नाहीं । दूजा मनुष न राखै पाहीं ॥
खट्टा चरपरा खार न खावै । वीरज क्षीण होन नहिं पावै ॥

करै न काहू वैरी मिता । जगत वस्तु की रखे न चिंता ॥
निश्चल ह्वै मन को ठहरावै । इन्द्रिन के रस सब बिसरावै ॥
त्रिया तेल नहिं देह छुवावै । अष्ट सुगन्ध[1] अङ्ग नहिं लावै ॥
मनुपन की राखै नहिं आसा । गुरु का रहै चरण ही दासा ॥
दो० काम क्रोध मद लोभ अरु, राखै ना अभिमान ।
रहै दीनता ही लिये, लगै न माया बान ॥१५॥
छल नहिं करै न छल में आवै । दम्भ[2] झूठ के निकट न जावै
टोना यंत्र भूत नहिं ध्यावै । झूठ जान के सब बिसरावै ॥
धातु रसायन मन नहिं लीजै । झूठ जानि याहू तजि दीजै ॥
स्वाँग तमाशे बाग न जैये । आसन ऊपर बैठा रहिये ॥
दृढ़ ह्वै लगै युक्ति के माहीं । ताते विघ्न होय कछु नाहीं ॥
रूठा रहै जगत लोगन सों । न्यारा रहै सभी भोगन सों ॥
इन्द्र आदि लौं सुख संसारी । नेक न चाहै चित्त मँझारी ॥
सिमिट रहै हिय माहिं समावै । ऐसे योग सधै सिधि पावै ॥
दो० ऋद्धि सिद्धि अरु कामना, तिनकी रखै न आस ।
मान बड़ाई चपलता, त्यागै चरणहिदास ॥१६॥
गहि संतोष क्षमा हिय धारै । संयम करि करि रोग निवारै ॥
अहङ्कार को छोटा करिये । कुटिल मनोरथ मन नहिं धरिये ॥
बसिये जितहि देश सुस्थान । निर उपाधि धरती अस्थान ॥
भली भूमि लखि गुफा बनावै । नीची ऊँची रहन न पावै ॥

१ तेल, फुलेल, चोवा, चन्दन, कपूर; इत्र, केसर, कस्तुरी ये अष्ट सुगन्ध कहलाते हैं २ पाखंड ।

जमीं बराबर चौरस होई । होय लदाव[१] कि मथरी सोई ॥
सकड़ा द्वार कपाट[२] लगावे । कहूँ छिद्र रहने नहिं पावे ॥
तामें बैठ योग तप कीजै । दूजो मनुष न भीतर लीजै ॥
कहि शुकदेव चरण ही दासा । जग सों रहिये सदा उदासा ॥
दो० यह सब निश्चय ही करै, योग युक्ति के आदि ।
पहिले ऐसा होय करि, पीछे साधन साधि ॥१७॥

॥ योग के आठ अंग ॥

आठ अंग कहुँ योग के, सुनो चरणही दास ।
मेरे वचनन के विषे, चित दै करो निवास ॥१८॥
यम के अंग प्रथम सुनि लीजै । दूजे नियम कहूँ चित दीजै ॥
तीजे आसन हित करि साधो । प्राणायाम चौथे आराधो ॥
प्रत्याहार पाँचवा जानो । छठे धारणा को पहिचानो ॥
सतवें ध्यान मिटै सब बाधा । कहूँ आठवाँ अंग समाधा ॥

शिष्य वचन

धन्य धन्य तुम श्री गुरुदेवा । मेरे प्राण पति श्री शुकदेवा ॥
व्यास पुत्र तुम दीन दयाल । मो अनाथ को कियो निहाल ॥
आठ अंग मोहि दिये सुनाई । अब कहो भिन्न भिन्न समझाई ॥
एक एक को जुदा बखानो । जासों जाय दास पै जान्यो ॥

गुरु वचन

दो० एक एक का कहत हौं, जुदा जुदा विस्तार ।
श्रवणन सुनो विचारि कै, लै लै हिय में धार ॥१९॥

---

१ एक प्रकार की छत्त की बिना पट्टियों की बनावट २ ऐसा किवाड़ जिसमें वायु न जा सके ।

॥ अथ पहला यम अंग वर्णन ॥

१ अहिंसा

पहले यम के दश कहुँ अंगा । समझे योग न होवे भंगा ॥
प्रथम अहिंसा ही सुन लीजे । मन करि काहू दोष न कीजे ॥
कड़ुवा वचन कठोर न कहिये । जीव घात तन सों नहिं दहिये[1]॥
तन मन वचन न कर्म लगावै । यही अहिंसा धर्म कहावै ॥

२ सत्य

दूजे सत्य सत्य ही बोलै । हिरदै तौलि वचन मुख खोलै ॥

३ अस्तेय

तीजे अस्तेय[2] त्याग सुनीजै । तन मन सों कछु नाहिं हरीजै ॥
तन चोरी के लक्षण नाखै । मन की चोरी को नहिं राखै ॥

४ ब्रह्मचर्य

चौथा ब्रह्मचर्य बतलाऊँ । भिन्न भिन्न करि ताहि सुनाऊँ ॥

अष्ट प्रकार के मैथुन

दो० ब्रह्मचर्य या सों कहैं, सुनहु चरणही दास ।
आठ अंग सों नारि की, नेक न राखै आस ॥२०॥

यती होय दृढ़ काछ[3] गहीजै । वीर्य क्षीण नहिं होने दीजै ॥
मैथुन कहूँ अष्ट परकारा । ब्रह्मचर्य रहै इनसे न्यारा ॥
सुमिरण तिरिया का नहिं करिये । श्रवणन सुरति रूप नहिं धरिये॥
रस शृङ्गार पढ़ै नहिं गावै । नारिन सों नहिं हँसै हसावै ॥
दृष्टि न देखै विष नहिं दौरै । मुख देखै मन हो जा औरै ॥

---

१ करिए २ चोरी ३ लंगोट ।

बात इकन्त करै नहिं कबही । मिलन उपाय जु त्यागै सबही ॥
अष्टम स्पर्श निकट नहिं जावै । काम जीत योगी सुख पावै ॥
अष्ट प्रकार के मैथुन जानों । इन्हैं तजे ब्रह्मचर्य पिछानों ॥
कहैं शुकदेव चरणहीदासा । ब्रह्म सत्य में करै निवासा ॥

५ क्षमा

दो० पँचवीं सुखदाई छमा, जलन बुझावै सोय ।
जो टुक आवै घट विषे, पातक डारै खोय ॥२१॥

कोई दुष्ट कड़वा कहि जावो । गाली देकर कोइ खिझावो ॥
कै कोइ शिर पर कूड़ा डारो । कै कोइ दुख देवो अरु मारो ॥
वाकी कछू न मन में लावै । उलटा उनको शीश नवावै ॥
ऐसी छमा हिये में लावो । बोलो शीतल अग्नि बुझावो ॥

६ धीरज

छठा अंग धीरज का जानो । धीरज ही हिरदय में आनो ॥
योग युक्ति धीरज सों कीजै । सब कारज धीरज सों लीजै ॥
धीरज सों बैठे अरु डोलै । धीरज राखि समुझि कर बोलै ॥
आनि परे दुख ना अकुलावै । धीरज सों दृढ़ता गहि लावै ॥

दो० धीरज रहा तो सब रहा, काहू से न डराय ।
सिंह प्रेत अरु कालका, धीरज सों डर जाय ॥२२॥

७ दया

दया सातवीं अब सुनि लीजै । सब जीवन की रछा कीजै ॥
लख चौरासी का सुखदाई । सब के हित की कहै बनाई ॥
रहिये तन मन वचन दयाला । सबही सों निर्वैर कृपाला ॥

८ आर्जव

अठवें कहूँ आर्जव खोलें। हिरदय कोमल कोमल बोलें ॥
सब को कोमल दृष्टि निहारै। कोमलता तन मन में धारैं ॥
कोमल धरती बीज बवावे। बढ़ै बेगि फूलै फल लावै ॥
ऐसे कोमल हिया बनावै। योग सिद्धि करि पद पहुँचावै ॥
यही आर्जव लक्षण जानो। शुकदेव कहैं रणजीत पिछानो ॥

९ मिताहार

दो० मिताहार जो नवम है, समझ लेहु मन माहिं।
सतगुन भोजन खाइये, ऐसा वैसा नाहिं ॥२३॥
खावै अन्न विचारि कै, खोटा खरा सँभार।
तैसा ही मन होत है, जैसा करै अहार ॥२४॥

सूक्ष्म चिकना हलका खावै। चौथा भाग छोड़ि करि पावै ॥
वानप्रस्थ के हो संन्यासी। भोजन सोलह ग्रास गिरासी ॥
अरु गृहस्थ बत्तीस गिरासा। आवे नींद बहुत न श्वासा ॥
ब्रह्मचारी भोजन करे इतना। पठन माहिं धीरज रहे जितना ॥

१० शौच

दशवाँ शौच पवित्तर रहिये। कर दातौन हमेश नहइये ॥
जो शरीर में होवै रोगा। रहै न तन जल छूवन योगा ॥
तो तन माटी से शुधि कीजे। अब अंतर की शुचि सुन लीजे ॥
राग द्वेष हिरदय सों टारे। मन सों खोटे कर्म निवारे ॥

दो० दश प्रकार का यम कहा, पहिल योग की नीव।
नेम कहूँ अब दूसरा, सो है साधन सीव ॥२५॥

॥ अथ दूसरा नियम अंग वर्णन ॥

१ इन्द्रिय वश

दूजा अंग नियम का गाऊँ । भिन्न भिन्न सब अंग सुनाऊँ ॥
पहला तप इन्द्री वश कीजे । इनके स्वाद सभी तजि दीजे ॥
खाते पीते सोवत जागत । योगी इन्द्रिन कूँ वश राखत ॥
तन कूँ वश कर मन कूँ मारे । ऐसी विधि तप का अंग धारे ॥

२ संतोष

दूजा अंग कहूँ संतोषा । हानि भये नहिं माने शोका ॥
लाभ भये नाहीं हरषावे । ऐसी समता हिये में लावे ॥
परारब्ध तन होय सु होई । सँकलप विकलप रखै न कोई ॥

३ आस्तिकता

दो० तीजा आस्तिक अंग है, जाका सुनो विचार ।
समझ समझ मन में धरो, ताको गहो संचार ॥२६॥
शास्त्र सुने परतीत जो कीजे । सत्त ब्रह्म निश्चय करि लीजे ॥
बुधि निश्चय आतम के माहीं । जगत साँच करि मानै नाहीं ॥

४ दान

चौथा दान अंग विधि दोई । पात्र कुपात्र विचारे सोई ॥
एक दान उपदेश जु दीजे । भवसागर सों पार करीजे ॥
दूजा दान अन्न अरु पानी । दीजे कीजे बहु सनमानी ॥
और पराये दुख की बूझै । सुखदानी परमारथ सूझै ॥

५ ईश्वराराधन

पंचम ईश्वर पूजा करिये । तन मन बुद्धि जहाँ ले धरिये ॥

ह्वै निष्काम तजे सब आसा। सेवा करे होय निज दासा॥

दो० पाती फूल जु भाव सों, सह सुगन्ध करि धूप।
शुकदेव कहैं यों कीजिये, पूजा अधिक अनूप॥२७॥

६ श्रवण

छठे सिद्धान्त श्रवण सुनि बानी। करि विचार गहिये मन मानी॥
सार असार विचार जु कीजे। पानी को तजि पय१ को पीजे॥
अरु सतगुरु सों निश्चय करिये। परखि सँभारि हिये में धरिये॥
करणी करे तिन्हौं से मिलना। वचन अयोगी के नहिं सुनना॥

७ लज्जा

सतवाँ वही जु कहिये लाजा। सो वह सकल सँवारन काजा॥
साधु गुरू से लाज करीजे। तन मन डोलन नाहीं दीजे॥
करम विवर्जित२ सब परिहरिये। हिय आँखिन में लज्जा भरिये॥
शुकदेव कहैं सुनि चरणहिदासा। लज्जा भवन माहिं करि वासा॥

दो० कुटुँव मित्र जग लोग ही, सब सूँ कीजे लाज।
बड़ी लाज हरि सूँ करो, नीके सुधरे काज॥२८॥

८ दृढ़ता

अष्टम हूँ मति दृढ़ जो कहिये। सो विशेष साधन कूँ चहिये॥
शुभ करमन की इच्छा करनी। हो न सकै तो भी हिय धरनी॥
बहँकै ना काहू बहँकाये। कैसे हू नहिं हलैं हलाये॥
जग सुख देखि न मन में आने। स्वर्ग आदि सुख तुच्छ हि जाने॥
कोइ अस्तुति आदर करि सेवे। कोइ कुभाव करि गाली देवे॥

---

१ दूध २ शास्त्र विरुद्ध।

दोनों में निश्चल रहै जोई । शुकदेव कहैं दृढ़ मति है सोई ॥

९ जाप

नौवें जाप करे गहि मौना । मनजिह्वा[1] सू कीजे जौना[2] ॥
होय सके मन पवन गहीजे । गुरु मन्तर जप तामें कीजे ॥

दो० हरि गुरु की अस्तुति पढ़ै, सो भी कहिये जाप ।
शुकदेव कहैं रणजीत सुनि, त्रैविधि नाशैं ताप ॥२९॥
दशवें समझो होम ही, कीजै दोय प्रकार ।
अगनि माहिं साकिल्ल[3] कूँ, वेद कहै ज्यों डार ॥३०॥
दूजे पावक ज्ञान की, तामें इन्द्री होम ।
वाकूँ परगट भूमि है, याकूँ हिरदा भौम ॥३१॥

यम का अंग सभी कह दीन्हा । नेम कहा सो भी तुम चीन्हा ॥
निरे[4] योग ही के मत जानो । सब के कारज को पहिचानो ॥
औपै[5] योग पहल ये चहिये । शुभ करमन के मारग कहिये ॥
जो ये होय तो होवै योग । नाहीं बहै जगत के भोग ॥
जिज्ञासू कूँ पहल सुनीजै । पाछे भेद योग का दीजै ॥
यम अरु नियम दोऊ बतलाये । अच्छी नीकी भाँति सुनाये ॥
अब तीजै आसन समझाऊँ । जुदे जुदे कहि सबै सुनाऊँ ॥
योग पहिल आसन ही साधै । आसन बिना योग बस्रादै ॥

॥ अथ तीसरा आसन वर्णन ॥

दो० चरणदास निश्चय करो, बिन आसन नहिं योग ।
जो आसन दृढ़ होय तो, योग सधै भजि रोग ॥३२॥

---

१ मानसिक जप २ जिनको ३ तिल जो आदि हवन सामग्री ४ केवल ५ परन्तु योग मार्ग में इनकी प्राथमिकता है ।

चौरासी लख[1] आसन जानो । योनिन की बैठक पहिचानो ॥
तिनमें चौरासी चुग[2] लीन्हें । दुरलभ भेद सुगम सो कीन्हें ॥
सो तुम कूँ पहिले बतलाये । जिनकूँ साधोगे चित लाये ॥
तिनमें दोय अधिक परधानैं[3] । तिनकूँ सब योगेश्वर जानैं ॥
आसन सिद्ध पदम कहलावै । इनकूँ करि निश्चल ठहरावै ॥
अरु आसन सब रोग भजावैं । ये दो आसन योग सधावैं ॥
इन कूँ साधै जो जन कोई । ध्यान समाधि लगावै सोई ॥
चरणदास शुकदेव कहैं यों । आसन दोनों बरणौं हैं ज्यों ॥

॥ अथ पद्मासन विधि

पहले आसन पदम बताऊँ । ज्यों की त्यों मूरति दिखलाऊँ ॥
पहिले बावाँ पाँव उठावै । दहिनी जंघा ऊपर लावै ॥
दहिना पाँव फेरि यों लाकै । बाँई साथल[4] ऊपर राखै ॥
बावाँ कर पीछे सों लावे । बाम अगूँठा गहि तन तावे ॥
ऐसे हाथ दाहिना लावै । दहिन अँगूठा पकड़ दढ़ावै ॥
ग्रीवा लटक चिबुक हिये आवै । नासा आगे दीठि लगावै ॥
दिव्य दृष्टि हो कौतुक दरशै । कहै शुकदेव अभै पद परशै ॥

दो० कै हिरदै राखै चिबुक, कै सम राखै देह ।
कै पीठों दोउ हाथ रखि, कै अगुँठा गहि लेह ॥२३॥

॥ अथ सिद्धासन विधि ॥

दूजा आसन सिद्ध जु कीजै । बावाँ पाँव गुदा ढिंग दीजै ॥

---

१ नवलक्ष जलचर दशलक्ष नभचर ग्यारहलक्ष कृमि बारहलक्ष वनचर चारिलक्ष मनुष्य तीसलक्ष पशुयोनि इत्यादि चौरासीलक्ष योनि हैं २ छांट लेना ३ मुख्य ४जंघा ।

दाहिन पाँव लिंग पर आवै। दृष्टि सु भृकुटी पै ठहरावै ॥
अचरज जहाँ अधिक दरशावै। खुले कपाट मोक्ष गति पावै ॥
आसन साधि व्याधि परिहरै। भूख नींद जोपै वश करै ॥

दो० एड़ी बावैं पाँव की, सीवन मध्ये राख ॥
लिंग गुदा के मध्य में, मूल बोलिये साख ॥३४॥
संयम सूँ इन्द्री गहै, राखै सरल शरीर।
दृष्टि उठा भृकुटी धरै, मिटै जु दोनों पीर ॥३५॥
दहिनी लावैं लिंग पर, भाग बराबर राख ॥
बारी बारी कीजिये, शुकदेवा कहै भाख ॥३६॥

॥ अथ चौथा प्राणायाम अंग वर्णन ॥

चौथे प्राणायाम ही, कहूँ सुनो चित लाय।
जा बल जीतै पवन कूँ, चढै गगन कूँ धाय ॥३७॥
षट चक्कर कूँ छेदि करि, सुखमन ही की राह।
दल सहस्र के कमल में, पहुँचे करे उछाह ॥३८॥
हिरदै में अस्थान है, प्रान वायु का जान।
याके रोके सब रुकै, वायुन में परधान ॥३९॥
जैसे गंगा एक ही, घाट घाट के नावँ।
ऐसे प्राणहि वायु के, नावँ कहे बहु ठावँ ॥४०॥
चौरासी अस्थान पर, चौरासी ही वायु।
तामें दश ये मुख्य हैं, बरणों सुनिये ताय ॥४१॥
प्राण अपान समान ही, और व्यान उदान।
नाग धनंजय देवदत्त, कूरम किरकल जान ॥४२॥

दश वायू जो एक ही, तिनमें दीरघ दोय।
सो वे प्राण अपान हैं, तिन्हें पिछाने कोय ॥४३॥
अपान जाय प्राणैं मिले, रहे प्राण की ग्रान।
शुकदेव कहैं वर्णन करूँ, अब इनके अस्थान ॥४४॥
प्राण वायु हिरदे के ठाहीं। बसे अपान गुदा के माहीं ॥
वायु समान नाभि अस्थाना। कंठ माहिं वायु उद्याना ॥
व्यान जु व्यापक है तन सारे। नाग वायु सों उठें डकारें ॥
पलक उघाड़े कूरम वाई[१]। देवदत्त सूँ होय जँभाई ॥
किरकल वायु जु भूख लगावे। मुए धनंजय देह फुलावे ॥
सब में प्राण वायु मुख[२] जानो। सो हिरदे के मध्य पिछानो ॥
हिरदा ही देही के माहीं। जो कुछ है सो ह्याँहीं ह्याँहीं ॥
योगेश्वर ह्याँई फल पावें। ह्याँ सूँ अनहद नाद जगावें ॥

॥ अथ चक्र वर्णन ॥

दो० अब चक्कर वरणन करूँ, पाछे प्राणायाम।
वरणूँ नाड़ी सुषुमना, सुधरैं सब ही काम ॥४५॥
हैं वे सूरत कमल की, छोटे और विशाल।
मूल से लेकर शीश लौं, एकहि जिनकी नाल ॥४६॥
कुं० लाल रंग पहिला कहूँ आधार[३] चक्र तिहि नावँ।
चार पँखुरी[४] तासु की है जु गुदा के ठावँ ॥
है जु गुदा के ठावँ देह ताही पर साजे।
चारों अक्षर तहाँ देव गन्नेश विराजे ॥

१ वायु २ प्रधान-मुख्य ३ मूलाधार ४ पंखड़ी।

पवन सुरत ह्वाँ लै धरे खोजि कहैं शुकदेव ।
दूजा लिंग स्थान ही जाको सुन अब भेव ॥
पीत वरण षट पैंखरी नाम जु स्वाधिष्ठान ।
षट अक्षर जापे इपैं[1] ब्रह्मा दैवत जान ॥
ब्रह्मा दैवत जान संग सावित्री दासा ।
इन्द्र सहित सब देव तहाँ सबही का वासा ॥
मणिपूरक चक्कर कहूँ तीजा नाभि स्थान ।
नील वरण दश पैंखरी दश अक्षर परमान ॥

दो० विष्णु जहाँ का देवता, महालक्ष्मी संग ।
चरणदास अब कहत हूँ, चौथे को परसंग ॥४७॥
अनाहद चक्र हिरदय विषे, द्वादश दल अरु श्वेत ।
शिव शक्ती जहाँ देवता, द्वादश अक्षर भेद ॥४८॥
पचवाँ चकर कंठ में, विशुद्धि नाम जिहि केर ।
षोड़श दल जीव देवता, षोड़श अक्षर हेर ॥४९॥
छटवाँ भौंहन बीच में, आज्ञा चक्कर सोय ।
ज्योति देवता जानिये, दो दल अक्षर होय ॥५०॥

शिष्य वचन

कमलों पर अक्षर कहे, समझ न आई मोहि ।
कौन कौन अक्षर तहाँ, सतगुरु कहिये सोहि ॥५१॥

गुरु वचन

पहिल कमल आधार सुनाऊँ । व श ष स अक्षर वरण बताऊँ ॥

१ प्रकाशित है ।

दूजा कमल जु स्वाधिष्ठाना । बा[1] भा मा या र ल जु बखाना ॥
तृतिये मणिपूरक जो कहिये । डा ढा णा ता था ही लहिये ॥
दा धा ना पा फा जो गाये । ये दश अक्षर बरण बताये ॥
चौथे चक्र अनाहद माहीं । द्वादश अक्षर बरण बताहीं ॥
का खा गा घा ङा जो जान । चा छा जा झा ञ ट ठ जु मान॥
पचवाँ षोड़श विशुद्ध जो आछे । आदि[2] अकार अकार सु पाछे
छठा जो आज्ञा चक्कर मानो । हं स बरण दो अक्षर जानो ॥

दो० भवँर गुफा मंडल अखंड, तिरवेणी जहँ न्हान ।
नित परबी जहाँ होत है, करै पाप की हान ॥५२॥
उलट पवन बेधै पटन, ऊपर पहुँचे जाय ।
शुकदेव कहैं चरणदास तू, सुषुमन सहज समाय ॥५३॥
कमल सहसदल सातवाँ, शीश मध्य ही बास ।
तहाँ देवता सतगुरु, पूरी करैं जो आस ॥५४॥
ह्याँ तक सुषुमन का सिरा, सो सातों की नाल ।
हैं वे उलटे पट कमल, तलै अपान बयाल[3] ॥५५॥
अपान बायु कूँ साधि करि, ऊपर लावे मोड़ ।
जब होवैं सुलटे कमल, मुख अकाश की ओड़[4] ॥५६॥
अपान बायु ज्यों ज्यों चढ़ै, चक्र चक्र के पास ।
त्यों त्यों सीधे होयँ सब, पूरा जान अभ्यास ॥५७॥

---

१ इस पृष्ठ में जो कमल के अक्षर का खा आदि हैं उनको क, ख पढ़ें मात्रा केवल चौपाई की मात्रा पूरी करने को लगाई गई है। २ विशुद्धि चक्र के ऊपर सोलह अक्षर अकारादि सोलह स्वर हैं ३ वायु ४ तरफ ।

अपान वायु आवै जबे, चक्र अनाहद माहिं।
दश प्रकार के नाद ही, शनैः शनैः खुलि जाहिं ॥५८॥
पहिले नाद सुने जो ऐसा। चिड़ी चीकला बोले जैसा ॥
एकहि बार कहै यों चिन्न। दूजी बार खुले चिन चिन्न ॥
क्षुद्रघंट[1] ज्यों तीजी जानो। चौथी नाद शङ्ख पहिचानो ॥
पचवीं नाद बीन ज्यों गाजे। छठवीं उपज ताल ज्यों बाजे ॥
सतवीं नाद मुरलिया ऐसी। अठवीं उठे पखावज जैसी ॥
नवैं नफीरी नाद सुनावे। दशवें सिंधु गरज उपजावे ॥
नौ तजि दशवें सूँ हित लावे। अनदह सुनि अनहद हो जावे ॥
होय जीव सों ब्रह्म अगाधा। जो कोइ सुने सु अनहद नादा ॥
दो० खुले जो अनहद नाद ज्यों, सो साधन सुन लेहु।
जासों पहुँचै सिद्धि को, या करणी चित देहु ॥५९॥
चक्राधार सों खैंचि करि, अपान वायु सज लेय।
स्वाधिष्ठान के पास ही, तीन लपेटे देय ॥६०॥
याकी विधि सब तोहि सुनाऊँ। जैसे है तैसे समुझाऊँ ॥
पहिले मूल द्वार को शोधे। बंध लगाय अपान निरोधे ॥
पहिले चक्कर में ठहरावै। खैंचि दूसरे के ढिंग लावै ॥
वाके आसौ पास फिरावे। दहिने तीनि लपेट लगावे ॥
फिरि मणिपूरक में पहुँचावे। फेरि अनाहद में ले जावे ॥
अनहद खुलै सुने सुख पावे। फिरि ह्वाँ प्राण अपान मिलावे ॥
हिरदय कंठ मध्य ठहरावे। संयम सों ताको परचावे[2] ॥

१ किंकिणी २ जगावे।

बंध दूसरो तहाँ लगावे। चरणदास शुकदेव बतावे ॥

॥ अष्टपदी ॥

पहिले अनहद नाद खुलैं हिय ऊपरे।
कंठ सुँ नीचे रोकि ध्यान ह्वाईं धरे ॥
जहाँ अपरबल होय जु अनहद शब्द ही।
फिरि यों जानो जाय कंठ के मध्य ही ॥
तहाँ किये अभ्यास ध्यान राखे घना।
होवे अधिकी नाद सुने साधू जना ॥
केतक घोसन माहिं ब्रह्म रन्धर कने[1]।
जाय खुले जहँ नाद सुरति दै ह्वाँ सुने ॥
शनै शनै यों होय जानें कोइ साध ही।
हिरदय अरु ब्रह्मलोक लौं एकै नाद ही ॥
मीठी और सवाद बहुत ही पाइये।
सतगुरु के परताप जहाँ मन लाइये ॥
ब्रह्मलोक की बात सुने होवे जु ह्वाँ।
सबही सूझै वस्तु जु कछु होवैं तहाँ ॥

दो० अनहद के सम और ना, फल बरणे नहिं जाहिं।
पटतर[2] कछू न देसकूँ, सब कछु है वा माहिं ॥६१॥
पाँच[3] थके आनँद बढ़ै, अरु मनुआ वश होय।
शुकदेव कहि चरणदास सुनि, आप अपन जा खोय ॥६२॥
नाड़िन में सुषुमन बड़ी, सो अनहद की मात।

---

१ पास में २ बराबरी ३ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

कुम्भक में केवल बड़ा, सो वाही का तात ॥६३॥
मुद्रौ बड़ी जु खेचरी, वाकी वहिनी जान ।
अनहद सा बाजा नहीं, और न या सम ध्यान ॥६४॥
सेवक से स्वामी भवे, सुने जु अनहद नाद ।
जीव ब्रह्म ह्वै जात हैं, पावे अपनी आद ॥६५॥
चरणदास अब कहत हूँ, वही जु प्राणायाम ।
शुकदेव कहै ताके किये, पावे मन विश्राम ॥६६॥

बहत्तर हजार आठ सौ चौंसठ नारी । सब की जड़ है नाभि मँझारी
तिन महँ दश नाड़ी शिरमौरी । पँच बायें पँच दहनी ओरी ॥
जिनमें तीनि अधिक परधान । इड़ा पिंगला सुषमन जान ॥
उनमें सुषमन अधिक अनूप । सो वह कहिये अग्नि स्वरूप ॥
दश नाड़ी अस्थान बताऊँ । ठौर ठौर तोहि कहि समुझाऊँ ।

दो० नाड़ि शङ्खिनी गुदा में, किरकल लिङ्ग स्थान ।
पोषा सरवन दाहिने, जस्वनी बायें कान ॥६७॥
गंधारी दृग वाम ही, हस्तिनी दहिने नैन ।
नारि लंबका जीभ में, सब सवाद सुख देन ॥६८॥
नासा दहिने अंग है, पिंगल सूरज वास ।
इड़ा सु बायें ओर है, जहँ ससियर परकास ॥६९॥
दोऊ मध्य में सुषुमना, अद्भुत वाको भेव ।
ब्रह्म नाड़ि हू कहत हैं, यों कह सो शुकदेव ॥७०॥
इड़ा ब्रह्मा जमुना जहाँ, सुषुमन विष्णु निवास ।
और सरस्वती जानिये, ये हो चरणहि दास ॥७१॥

शिव पिङ्गल गंगा सहित, सो वह दहिने अंग ।
तिरवेणी याते भई, मिली जु तीनो संग ॥७२॥
कबहु इड़ा स्वर चलत है, कबहू पिङ्गल माहिं ।
मध्य सुषुमंना वहत है, गुरु विन जाने नाहि ॥७३॥
सो वह अग्नि स्वरूप है, बड़ी योग सरदार ।
याही ते कारज सरे, ऐसी सुषुमन नार ॥७४॥

इन सों प्राणायाम करीजे । पूरक कुंभक रेच कहीजे ॥
इड़ा पिंगला मारग थाकै । उलटि सुषुमना चालन लागै ॥
वायु खैंचना पूरक जानो । ठहरावन को कुंभक मानो ॥
फेरि उतारै रेचक वोई । प्राणायाम कहावैं सोई ॥

दो० इड़ा पवन पूरक करै, कुंभक राखै रोक ।
रेचक पिंगल सों करै, मिटैं पाप के थोक ॥७५॥

पिंगल रोकै पवन न जावै । इड़ा ओर सों वायु चढ़ावै ॥
कुम्भक करि हिय चिबुक[१] लगावै । जितका तित मन को ठहरावै
सोलह मात्रा[२] पूरक लीजै । चौंसठ कुम्भक में जप कीजै ॥
रेचक फिरि बत्तीस उतारै । धीरे धीरे ताहि निवारै ॥
पहिल पहिल ही कीजै आधे । तीनि महीने ऐसे साधे ॥
यासे आगे फेरि बढ़ावै । दोय आठ अरु चारि चढ़ावै ॥
चढ़त बढ़त ऐसे ही बढ़ै । यों हीं चौंसठ ताईं चढ़ै ॥
इड़ा वायु सों पूरक कीजै । पिंगल सों रेचक तजि दीजै ॥
फिरि पिंगल सों पूरक धारै । बहुरि इड़ा ही सों निरवारै ॥

---

१ दाढ़ी २ प्रणव अर्थात् ॐकार बिन्दी सहित ।

ऐसे वारी वारी करिये । जीते प्राण वायु अघ हरिये ॥
होय सकै कुम्भक सरकावै । चौंसठ से भी परै बढ़ावै ॥

शिष्य वचन

दो० चरणदास कर जोरि कहि, सुनौ गुरू शुकदेव ।
कोन समै याको करै, राति दिना कहि देव ॥७६॥
मात्रा कासों कहत हैं, जो बतलायो जाय ।
केतो करे अहार ही, जाको कहिये नाप ॥७७॥

गुरु वचन

ॐ बिन्दी के सहित ही, ताहि मात्रा जान ।
बीज मन्त्र तासों कहत, प्रणव को पहिचान ॥७८॥
कोमल भोजन कीजिये, आधी रखिये भूख ।
पवन बसै सुख सों जहाँ, तन नहिं पावै दूख ॥७९॥
साठ घड़ी दिन रात की, आठ तासु के याम ।
लीजै चौथा भाग ही, कीजै प्राणायाम ॥८०॥
चार भाग ताके करे, चार समै ठहराय ।
चार चार घटिका[1] करे, दृढ़ ब्रत चित्त लगाय ॥८१॥

और दूसरी भाँति सुनीजे । हो न सके तो याको कीजे ॥
बारह ॐ पवन चढ़ावे । कुम्भक माहिं बीस ठहरावे ॥
बारह पिंगल पवन उतारे । राति दिना में चार हि बारे ॥
फेरि चढ़ावे कुम्भक दुगुनी । केते द्यौसन में फिर तिगुनी ॥
फिर पिंगल सों पूरक लीजे । इड़ा वायु रेचक ही कीजे ॥

[1] घड़ी ।

विरिया एक इड़ा सों खैंचे । पिंगल दूजी बार जु ऐंचे ॥
कबहूँ यासूँ कबहूँ वासों । रेचक करे जो पूरक जासों ॥
कुंभक तिगुनी सों अधिकावे । होय सके जितनी सरकावे ॥
दो० भांति दूसरी और सुनि, साधन अधिक अनूप ।
गुरु बिन भेद न पाइये, महा गुप्त सों गूप ॥८२॥

अष्टपदी

प्राण वायु की युक्ति कहौं जेहि बात हैं ।
द्वादश अंगुल नासिका आगे जात हैं ॥
संयम ही सों सहज जु उलट घटाइये ।
शनै शनै ही साधि जु ताहि समाइये ॥
अपान वायु को खैंचि प्राण घर लाइये ।
फिरि बाहर सों रोकि जु तिन्हैं मिलाइये ॥
तीनि कर्म पूरक के कुम्भक के कहे ।
रेचक ही के कर्म दोय निश्चय भये ॥
दो रेचक के कर्म पूरक के तीन ही ।
ये सब ही रहि जायँ होय जब छीन ही ॥
पूरक रेचक छुटे केवल कुम्भक वही ।
ठौर[1] समै का बंधन राखे ना सही ॥
या किरिया को अन्त जानो तुम ह्वाँ तईं ।
प्राणवायु को रोके काया के महीं ॥
दो० साठ हजार इकीस लक्ष[2] , सबके श्वास परमान ।

१ देश २ इक्कीस लाख ।

यह तो रोके देह में, जब लग एक हि प्रान ॥८३॥
याके हुए सौ दिना, साधन भवै जु सिद्ध ।
केवल कुम्भक जानिये, पूरी हवै[1] जु विद्ध ॥८४॥

अष्टपदी

इतनी होवै शक्ति रुकन जब श्वास की ।
रहै नहीं परमाण जु गिनती मास की ॥
द्वादश कै सौ बरप सहस कै लाख ही ।
चाहे जब लग रखे साँच यह साख ही ॥
गुप्त महा यह ज्ञान कठिन है साधना ।
कोटिन में कोइ एक करे आराधना ॥
देखा देखी बहुत मनुप याकूँ लगैं ।
कोई चढ़ै परमान घने मग में थकैं ॥
चरणदास यह समुझि कहैं शुकदेव ही ।
शनै शनै सों करै पाय या भेव ही ॥

दो० मूल बंध अरु खेचरी, मुद्रा ही को जान ।
दोनों के साधे बिना, अपान न होवे प्रान ॥८५॥

खेचरी मुद्रा

खेचरि मुद्रा कहूँ बखाने । जाको कोटिन में कोइ जाने ॥
सकल शिरोमणि योग मँझारी । ज्यों मनुषों में छत्तर धारी ॥
शीश फूल ज्यों गहनों माहीं । या बिन ताड़ी[2] लागै नाहीं ॥
साधन कर कर जीभ बढ़ावै । सो ब्रह्मरंध्र ताईं लावै ॥

---

१ होवे २ समाधि ।

उरै[1] तालवा ठौर कहावे । रसना सूँ ह्वाँ बंध लगावे ॥
जासूँ पवन न सरकन पावै । श्रवण नैन जू बाट रुकावै ॥
प्राणवायु बाहर नहिं आवे । मुख नासा हो निकस न जावै ॥
शुकदेव कहे चरणदास बताऊँ । आगे मूलबन्ध समझाऊँ ॥

मूल बन्ध

दो० मूल बन्ध जानो यही, एडी गुदा लगाय ।
थक दहनी बावीं कभी, सिध आसन ठहराय ॥८६॥

मूलबन्ध जा कारण दीजे । सो मैं कहूँ सबै सुनि लीजे ॥
आधार चक्र सूँ पवन उठावे । स्वाधिष्ठान हि के ढिंग लावे ॥
दहिनी ओर कूँ ताहि फिरावे । ऐसे तीन लपेट लगावे ॥
सीधी हो ऊपर कूँ धावे । मणिपूरक चक्कर में आवे ॥
शनई शनई ताहि चढ़ावे । चक्कर चक्कर में पहुँचावे ॥
भ्रू चक्कर के ऊपर ताईं । ब्रह्मरंध्र के लावै ठाईं ॥
ऐसे पट चक्कर कूँ शोधे । प्राण वायु को यों परबोधे ॥
अपान वायु जो ह्वाँ तक आवे । प्राण वायु ह्वै सहज समावे ॥
शुकदेव कहै सुन चरणहि दासा । सहज शून्य में करे निवासा ॥

॥ अथ अष्ट प्रकार के कुम्भक वर्णन ॥

शिष्य वचन

दो० प्राणायाम की विधि सबै, गुरु तुम दई सुनाय ।
सो ले करि हिरदै धरी, ताहि न देऊँ भुलाय ॥८७॥
चरणदास के शीश पर, तुम ही गुरु शुकदेव ।

[1] पहिले ।

कुम्भक अष्ट प्रकार के, तिनको कहिये भेव ॥८८॥
लच्छण नाम स्वभाव गुण, जुदे जुदे समुझाव ।
चरणदास के मन विषे, सुनबे को अति चाव ॥८९॥

गुरु वचन

अब आठों कुम्भक कहूँ, नावँ भेद गुण रूप ।
शुकदेव कहैं परसिद्ध हैं, योग हि माहिं अनूप ॥९०॥
प्रथमैं कुम्भक ही कहूँ, नावँ जु सूरज भेद ।
दूजे ऊज्जाई सुनो, साधे छूटैं खेद ॥९१॥
शीतकार अरु शीतली, पँचवीं भस्त्रिक जान ।
छठी जु भ्रमरी नाम है, नीके समझि पिछान ॥९२॥
नावँ मूर्च्छा सातवीं, अठवीं केवल होय ।
रणजीता सबसे बड़ी, आयु बढ़ावै सोय ॥९३॥

पवन पूर पूरक ही कीजे । पाछे बन्ध जलन्धर दीजे ॥
कुंभक रेचक के मधि जानो । हाई बन्ध उड्यान पिछानो ॥
पवन जोर[१] ही सूँ गहि[२] लीजे । अर्ध उर्ध्व संकोचन कीजे ॥
मध्ये कीजे पश्चिम ताने । ब्रह्म नाड़ी के माहिं समाने ॥
नाड़ी पवन खैंचिये ऐसे । भरिये सब संधान[३] जु जैसे ॥
अपान वायु कूँ ऊपर लावे । प्राण वायु नीचे ले जावे ॥
जो पै यह साधन बनि आवे । योगी बूढ़ा होन न पावे ॥
तरुण अवस्था दीखे ऐसी । नित ही रहै जानिये जैसी ॥

(१) अथ सूर्य भेदन

कु० कुम्भक सूरज भेद ही, पहिले देहुँ सुनाय ।

१ बलपूर्वक २ खींचना ३ जोड़

सुख आसन कै कीजिये, अथवा वज्र लगाय ॥
अथवा वज्र लगाय, पूरक दहिने स्वर कीजै ।
नख शिख सेती रोकि, वायु कूँ बन्ध करीजै ॥
बायें सेती रेचिये, हौरे[1] हौरे जान ।
कपाल सोधनी[2] जानिये, चरणदास पहिचान ॥
दो० वायु किरम पीड़ा हरै, कीजे बारंबार ।
कुम्भक सूरज भेदनी, शुकदेव कहै हिय धार ॥६४॥

(२) अथ ऊज्जाई

अब ऊज्जाई कुम्भक सुनिये । समझ सीख मन माहीं गुनिये ॥
दोउ सुर सम कर पवन चढ़ावै । पेट कण्ठ लौं ताहि भरावै ॥
ताको रोके दृढ़ करि राखै । सहज इड़ा सों रेचक नाखै ॥
ऐसे जो कोइ साधन करै । रोग सलेपम[3] के सब हरै ॥
हिरदय कण्ठ माहिं जो होई । कफ का रोग रहै नहीं कोई ॥
रोग जलन्धर ही का भागे । भजे वायुदुख पावक जागे ॥
बैठत चलत पवन को भरै । यही उज्जाई कुम्भक करै ॥
चरणदास शुकदेव बतावे । तीजी शीतकार समुझावे ॥

(३) अथ शीतकार

दो० ओड़ जँभाई नासिका, लीजै खिंचै जु पौन ।
ताहि कछू ठहराय के, छोड़े मुख सों जौन ॥६५॥
धीरे धीरे रेचिये, सीसी शब्द उचार ।
सुन्दर होवे तेजवंत, अधिक रूप को धार ॥६६॥

---

१ धीरे धीरे २ शुद्ध करने वाली ३ श्लेष्मा (कफ) ।

भूख प्यास व्यापै नहीं, आलस नींद न होय ।
तन चेतन ही होत है, रहे उपाधि न कोय ॥६७॥
यहि विधि साधत ही रहे, होय योगिन में भूप ।
चरणदास शुकदेव कहि, कुम्भक यही अनूप ॥६८॥

(४) अथ शीतली

कहूँ शीतली कुम्भक आगे । जो कोइ करै भाग तिहि जागे ॥
तालु मूल जिह्वा बल सेती । प्राण वायु पीवे कर हेती ॥
कुम्भक राखै सब तन माहीं । ढीला गात रमावे ह्वांहीं ॥
नासा सेती रेचक कीजे । एक मास सिध हो सुख लीजे ॥
पीवे पवन जीभ को मोड़ । सहजे छोड़े नासा ओड़[1] ॥
दोनों रंधर से तजि दीजे । यों अभ्यास पूरा करि लीजे ॥
ताप तिली गोला ज्वर होई । वाके तन में रहे न कोई ॥
देह पुरानी नूतन होय । तीनि वरप साधै जो कोय ॥
जैसे साँप कैंचुली मोई[2] । श्वेत बाल तजि काले होई ॥
काहू भाँति का दुख नहिं व्यापे । भूख प्यास पित भाजे आपे

(५) अथ भस्त्रिका

दो० अब कहुँ कुम्भक भस्त्रिका, पित कफ वायु नशाय ।
अग्नि बढ़े अभ्यास सों, तीन गाँठ खुल जाय ॥६९॥

आसन पद्म सु या विधि करे । वाम जंघ दहिनो पग धरे ॥
बावों पग दहनी पर लावे । जांघन सों दोउ हाथ मिलावे ॥
ग्रीवा पेट बराबर राखे । आगे सुन शुकदेवा भाखे ॥

१ द्वारा २ त्यागना ।

मुख मूँदे रेचे नासा सूँ । पूरक चपल करे श्वासा सूँ ॥
रेचक पूरक ऐसे कीजे । बारंबार तजे अरु लीजे ॥
जैसे खाल लोहारा भरे । रेचक पूरक आतुर करे ॥
करत करत जबही थकि जावे । नेक ठहर दूजी विधि लावे ॥
फिर पूरक सूरज सों करे । पवन उदर के माहीं भरे ॥
तर्जनि अँगुली सों दृढ़ रोके । नासा मध्य धार कर जोखे ॥

दो० कुम्भक पिछली भाँति करि, रेच इड़ा सों बाय ।
कफ पित बायु नशाय के, लेवे अग्नि बढ़ाय ॥१००॥
कुण्डलनी देवे जगा, यह कुम्भक सुखदाय ।
करे जु हित व्रत धारि के, चरणदास चित लाय ॥१०१॥
कुण्डलनी सरकाय के, बेधे तीनों गाँठ ।
ऐसी पँचवीं भस्त्रिका, रहे न कोई आँठ ॥१०२॥

ब्रह्मनाड़ी के छिद्र माहीं । रोकि रही मुख दे रहि ह्वाँहीं ॥
लाय लपेटे नाभी ठाहीं । दृढ़ ह्वै बैठी सरके नाहीं ॥
सवा बिलस्त की जाकी देही । तामें स्थित जीव सनेही ॥
शक्ति नागिनी यही जु कहिये । याका भेद गुरू सों लहिये ॥
महा अपरबल जागे नाहीं । ताते नर सब मरि मरि जाहीं ॥
कोइ इक योगी ताहि इलावै । सुषमन बाट गगन लै जावे ॥
ब्रह्मरंन्ध्र में जाय समावे । लगे समाधि बहुत सुख पावें ॥
जो कछु होय सो कहा न जावे । चरणदास शुकदेव सुनावे ॥

दो० शिव शक्ती मेला[1] भवे[2] , रहै न द्वितिया भाव ।

१-२ मिल जाते हैं ।

कुण्डलनी परवोध का, जो कोइ करे उपाव ॥१०३॥

शिष्य वचन

व्यास पुत्र शुकदेवजी, किरपा करी दयाल।
चरणदास आधीन ही, समझो भयो निहाल ॥१०४॥
एक वार फिर खोलि के, कुण्डलनी समुझाव।
याके सबही भेद को, सुनवे को अति चाव ॥१०५॥

गुरु वचन

फिर भी तोसों कहत हों, कुण्डलनी विस्तार।
ताके सगरे भेद ही, सुनि के हिय में धार ॥१०६॥
नाभि स्थान नागिनि रहे, कुण्डल[1] शशी[2] अकार[3]।
प्राण पियारा वही है, आगे सुनो विचार ॥१०७॥
कुंभक कर्म कोई करे, देवे शक्ति जगाय।
जैसे लागी लष्टिका[4], नागन शीश उठाय ॥१०८॥

सीखि गुरू सों कुंभक साधे। नीकी विधि ताको अवराधे[5] ॥
पवन ठवक[6] लग ताहि जगावे। तब ऊरध को शीश उठावे ॥
नाभि ठौर ताका है वासा। पद्मराग मणि ज्यों परकासा ॥
सात लपेटे वायें जानो। ताते शक्ति कुण्डली मानो ॥
नाड़ी सहस लगी हैं वासों। एपर छुटी जानिये ताको ॥
जिनमें तीन नाड़ी अधिकाई। इड़ा पिंगला सुषमन गाई ॥
तिनके माहिं शिरोमणि सुषमन। नाल कमल जानत योगी जन॥
जा पहुँची ब्रह्मरंधर ताईं। ऊरध कमल सातवें माहीं ॥

१ गोलाकार २ चन्द्रमा ३ आकार ४ लाठी ५ अभ्यास करे ६ धक्का।

आवन जान पवन की बाटा । शक्ति चढ़न ऊरध का घाटा[1] ॥
कहि शुकदेव चरणही दासा । आगे कहूँ जु हो परकासा ॥
दो० नागिनि सूक्षम जानिये, बाल सहसवाँ भाग ।
शुकदेव कहैं आकार ही, रक्त वरण ज्यों नाग ॥१०९॥
कुंभक हो अत्यन्त जब, तब ऊरध को जाय ।
ब्रह्मरंध्र में आय कर, घड़ी दोय ठहराय ॥११०॥
अमृत का करै पान ही, पूरण हो अभ्यास ।
उड़ते दीखैं सिद्ध तब, वाको माहिं अकास ॥१११॥
पै दीखत हैं नैन बिनाहीं । चहै करै लीला उन माहीं ॥
खेचर मिलि खेचर ह्वै जावै । यह भी शक्ति उड़न की पावै ॥
अधिकी ठहरै लगे समाधा । यह तो कहिये खेल अगाधा ॥
शिव शक्ती जहँ मेला होई । होय लीन मन उनमन[2] सोई ॥
योग युक्ति करि याको पावे । पराशक्ति अपने बस लावे ॥
चाहे अद्ध[3] ठौर ले आवे । जब चाहे ऊरध लै जावे ॥
कबहू हिरदय के मधि आनै । याही को आपनपौ[4] जाने ॥
इच्छा करै सिद्धि की जैसी । होय प्राप्त सो वेगिहि तैसी ॥
चहै स्थूल सूक्ष्म तन धारूँ । वैसा ही होय जाय सवारूँ[5] ॥
शुकदेव कहैं सुन चरणहिदासै । जो कुंडलनी हृदय प्रकासै ॥
दो० कुंडलनी परकाश ही, भौंरा एक अनूप ।
सोउ प्रकाशत हैं तहाँ, सुवरण को सो रूप ॥११२॥
हिरदय में उजियार ही, होत चपल यहि भाँति ।

---

१ मार्ग २ मन का लीन होना ३ नीचे को ४ अपना स्वरूप ५ तुरन्त ।

जैसे धूमर[1] मेघ में, बिजली ही दमकाति ॥११३॥
शुकदेव कहैं चरणदास बताऊँ। और अनूठी सिद्धि सुनाऊँ॥
चाहे पर देही में बरूँ। अपनी काया को परिहरूँ॥
रेचक प्राणायाम प्रतापे। कुण्डलनी जो अपनी आपै॥
रेचक क्रिये बाहरे आवे। परकाया में जाय समावे॥
स्थित होय जाय यों जानो। सदा विराजत ऐसे मानो॥
ऐसे पहिली देह गिरावे। ज्यों मणिको[2] डोरा तजि जावै॥
जब चाहै अपने घट माहीं। परासक्ति ही आवै ह्यांहीं॥
काया पलट कहत हैं याको। कोइक योगी जानत ताको॥

दो० चाहे तन को छोड़ करि, देह कलप[3] धरि और।
मनमानै जहँ गवन करि, फिर आवे अप ठौर ॥११४॥

(६) अथ भ्रामरी कुंभक

छठी जु कुम्भक भ्रामरी, सुनिये चरणहिदास।
शुकदेवा हो कहत हूँ, तामें करो विलास ॥११५॥
जैसे भृंगी[4] धुनि करै, यों उपजे हिय माहिं।
दोनों स्वर सों कीजिये, परगट सुनिये नाहिं ॥११६॥
बल सेती पूरक करै, यही शब्द ले साथ।
भृंगी की सी धुनि सहित, रेचे मन्द सुहात ॥११७॥
या अभ्यास के किये से, चित चंचल रहै नाहिं।
योगेश्वर लीला करे, चिदानन्द के माहिं ॥११८॥

---

१ धुएँ में २ मणियों को ३ ब्रह्माजी का एक दिन ४ भौंरा।

(७) अथ मूर्छा

सतवीं कुम्भक मूरछा, पूरक ऐसे होय ।
खैंचत होवे शोर[१] सा, मेघ धार[२] ज्यों जोय[३] ॥११९॥
बन्ध जलन्धर दीजिये, सहज कण्ठ तल जान ।
रेचत बाई[४] मूरछित, होय यही पहिचान ॥१२०॥
सुखदायी सुख की करन, कही सोइ शुकदेव ।
केवल कुम्भक आठवीं, गुरु सों पावे भेव ॥१२१॥
पूरक रेचक ही सहित, ये कुम्भक करि लेहि ।
केवल कुम्भक ना सधे, जब लग ह्याँ चित देहि ॥१२२॥
केवल कुम्भक आश धरि, येहू साधत लोग ।
बल पावै वश पौन हो, और भजैं तन रोग ॥१२३॥

(८) अथ केवल कुम्भक

आयु बढ़ावै सिद्धि दे, लागै और समाधि ।
केवल कुम्भक गुण भरी, बिन परमाण अगाधि ॥१२४॥
केवल कुम्भक जब सधै, तब ये सब रहि जाहिं ।
जैसे सूरज उदय ते, तारे सब लुकि जाहिं ॥१२५॥
केवल कुम्भक योग में, ज्यों नगरी में भूप ।
रेचक पूरक के बिना, जैसे बँधा जु कूप ॥१२६॥
सो तुम सों पहिले कही, विधि गति सब समझाय।
सो सुनि तुम हिरदय धरी, देहो ना बिसराय ॥१२७॥
प्राणायाम बड़ा तप सोई । प्राणायाम सा बल नहिं कोई ॥

१ शब्द २ वर्षा की धारा गिरने के समान ३ जानो ४ वायु ।

प्राण वायु को यह वश लावै । मन को निश्चल करि ठहरावै ॥
आयुर्दा[1] को यही बढ़ावै । तन में रोग रहन नहिं पावै ॥
पाप जलावै निर्मल करै । उपजै ज्ञान तिमिर सब हरै ॥
योग युक्ति की जड़ यह जानो । याहि टेक गहि करना ठानो ॥
अडिग[2] आसन सों याको कीजै । नवों द्वार पट नीके दीजै ॥
पाँचौं इन्द्री के रस पेलो । इड़ा पिंगला सुषुमन खेलो ॥
कहि शुकदेव चरण ही दासा । प्रत्याहार सुनि विषै निरासा ॥

॥ इति चौथा प्राणायाम अंग सम्पूर्णम् ॥

अथ पाँचवाँ प्रत्याहार अंग वर्णन

दो० प्रत्याहार जो पाँचवाँ, समझाऊँ चरणदास ।
शुकदेव कहै कहुँ खोल करि, नीके समझो तास ॥१२८॥

प्रत्याहार पाँचवाँ कहिये । सो योगी को निश्चय चहिये ॥
विषय ओर इन्द्री जो जावै । अपने स्वादन को ललचावै ॥
तिनकी ओर न जाने देई । प्रत्याहार कहावै एई ॥
रोकि रोकि इन्द्रिन को लावै । ध्यान आतमा माहिं लगावै ॥
जैसे कछुआ अंग समेटै । रंक जु शीतकाल में लेटै ॥
जैसे माता पूत खिलावै । बालक वस्तू को ललचावै ॥
सरप आग अरु शस्तर कोई । कछू और दुखदायी होई ॥

---

१ उम्र २ स्थिर ।

तिनको बालक नाहीं जाने । पकड़न को दौड़े मन आने ॥

दो० बालक जानत है नहीं, दुखदायी सब एह ।
जो पकरूँगा हाथ से, दुख पावैगी देह ॥१२९॥
माता जानत है सबै, खोटी खरी विकार ।
राखे सुत को खैंचि करि, बारंबार निहार ॥१३०॥
ऐसे ही बुधि ज्ञान सों, पाँचों इन्द्री रोक ।
विषय ओर सों फेरिये, लहै न अपना भोग ॥१३१॥
ज्यों ज्यों इनको भोग दे, परबल होती जाहिं ।
बिना भोग होहीं नहीं, वह बल रहे जु नाहिं ॥१३२॥
नैन जु भोगें रूप को, और गन्ध को घ्रान ।
षटरस भोगे जीभ ही, शब्दहि भोगे कान ॥१३३॥
सपरस भोगे त्वचा ही, बाढ़े अधिक विकार ।
पाँचौं इन्द्री जानि ले, इनका यही अहार ॥१३४॥
इनसे मिलि मिलि मन बिगड़ि, होय गया कछु और ।
इन्द्री रोके मन रुके, रहे जु अपनी ठौर ॥१३५॥
ज्यों ज्यों होवे प्राण वश, त्यों त्यों मन वश होय ।
ज्यों ज्यों इन्द्री थिर रहैं, विषय जाय सब खोय ॥१३६॥
ताते प्राणायाम करि, प्राणायामहि सार ।
पहिले प्राणायाम कर, पीछे प्रत्याहार ॥१३७॥

॥ इति प्रत्याहार अंग सम्पूर्णम् ॥

अथ छठवां धारणा अंग वर्णन

दो० तत्त्वनकी कहुँ धारणा, तिनमें करे प्रवेश ।
शनई शनई[१] साधि करि, पहुँचे निर्भय देश ॥१३८॥
पहिले भूमि धारणा कीजे । ठौर कालजे[२] में चित दीजे ॥
पीतवरण चौकोर अकारो । विधि[३] दैवत है तहाँ विचारो ॥
प्राण लीन करि पाँच घड़ी ही । चित्त स्थिर होवेगा जबही ॥
यासों पृथवी को वश करिये । यही धारणा जो चित धरिये ॥
हिरदै से ऊपर जल जानो । कण्ठ तई[४] ताको पहिचानो ॥
चन्द फाँक अरु श्वेत अकारो । हृषीकेश[५] तहँ देव निहारो ॥
ह्याँ हू पाँच घरी स्थापै । प्राण लीन करि चित दे आपै ॥
व्यापै ना विष काहू विधि को शुकदेव कहैं फल जलकी सिधि को
दो० कण्ठ से ऊपर तालुका[६], लौं[७] पावक स्थान ।
लाल रंग तिरकोन है, रुद्र देवता मान ॥१३९॥
तहाँ लीन करि प्राण को, पाँच घड़ी परमान ।
भय व्यापे नहिं ज्वाल को, अग्नि धारणा जान ॥१४०॥
जाके आगे वायु है, भृकुटी लौं मर्याद ।
मेघ वरण षटकोन है, ईश्वर देवत साध ॥१४१॥
प्राण लीन जहँ कीजिये, पाँच घड़ी रे तात ।
पैहै खेचर सिद्धि ही, ततपद[८] ही ह्वै जात ॥१४२॥
ब्रह्मरंध्र आकाश है, बड़ा जु तत्त्वन माहिं ।

---

१ धीरे धीरे २ हृदय ३ ब्रह्मा ४ तक ५ विष्णु ६ तालू ७ तक ८ ब्रह्मरूप ।

श्याम वरण ब्रह्म देवता, योगी जहाँ सिराहिं ॥१४३॥
प्राण लीन घड़ी पाँच करि, पावे मुक्ति अनूप ।
व्योम[1] तत्व की धारणा, जहाँ छाहँ नहिं धूप ॥१४४॥
पृथ्वी संग 'ल' कार ही, जल के संग 'व' कार ।
पावक संग 'र' कार है, मारुत संग 'म' कार ॥१४५॥
पंचम तत्त्व आकाश ही, सब के ऊपर जान ।
अक्षर जहाँ 'ह' कार ही, शुकदेव कहै बखान ॥१४६॥
पहिलि धारणा थंभनी, दूजी द्रावणि होय ।
तीजी दहनी जानिये, चौथी भ्रामनी सोय ॥१४७॥
पँचवीं नाम जु सोषनी, इनको लेवो जान ।
शुकदेवा अब कहत है आगे और विधान ॥१४८॥

गुरु की प्रथम धारणा लीजे, अपना रूप उन्हीं सा कीजे ॥
ऐसे ध्यान सभी सिद्ध पावे । जैसी धारै सो होय जावे ॥
वेगिहि सब साधन सधि आवे । आलस कायरता भजि जावे ॥
लोक प्रलोक सभी सुख लेवे । जो गुरु को ऐसा व्रत सेवे ॥
दूजे परमातम की धारण । मुक्ति देन अरु बंध निवारण ॥
धारन सों चित घना लगावे । सिमिट सभी ओरन सों आवे ॥
जो कछु होय सो आगेहि आगे । टेक पकरि मारग में लागे ॥
चरणदास शुकदेव बतावे । सती शूरिमा ज्यों मन लावे ॥

दो० प्राण वायु की धारणा, परमेश्वर पहिचान ।
परमातम ह्वै जात है, जोपै रोके प्रान ॥१४९॥

---

१ आकाश ।

बारह मात्रा सों चढ़े, ह्वाँ तक पहुँचे जाय।
बारह सै अरु छानवे, कुम्भक में ठहराय ॥१५०॥
यही धारणा अंग है, शनै शनै कर ध्याव।
याते दुगुनी ध्यान में, प्राणवायु परचाव ॥१५१॥
दूना जानि समाधि लौं, ध्यानहि सेती एहु।
पाँच सहस अरु एकसौ, चौरासी गिनि लेहु ॥१५२॥

॥ इति धारणा अंग सम्पूर्णम् ॥

अथ सातवां ध्यान अंग वर्णन

शिष्य वचन

दो० अंग धारणा का कहा, सो धारा चित माहिं।
ध्यान अंग वरणन करो, मैं रहुँ चरणन छाहिं ॥१५३॥

गुरु वचन

चरणदास अब ध्यान सुन, कहूँ तोहि समुझाय।
शुकदेव कहै सुनि सुनि समझि, करो ताहि चित लाय ॥१५४॥
ध्यान जु चार प्रकार के, कहूँ जु उनकी रीत।
पदस्थ, पिंड, रूपस्थ है, चौथा रूपातीत ॥१५५॥

अथ पदस्थ ध्यान

हिय पद पंकज ध्यान करि; फिर करि सारी देह।
नख शिख लौं छवि निरखि कै, चरणन में चित देह ॥१५६॥

ॐ कुंभक ही कीजिये, यहाँ प्रणव[1] का जाप।
मन निश्चल हो सहज में, भाजैं त्रैविधि[2] ताप ॥१५७॥
पदस्थ ध्यान याको कहैं, करै सो जानै भेव।
पिंडस्थ ध्यान वर्णन करैं, खोलि खोलि शुकदेव ॥१५८॥

अथ पिंडस्थ ध्यान

ब्रह्मण्ड सोई यह पिंड है, यामें करि करि वास।
कमलन के लखि देवता, लहो परापत तास ॥१५९॥
शोधे सगरे पिंड को, पटचक्कर को ध्यान।
शोधन शोधत आ चढ़ै, भवँर गुफा अस्थान ॥१६०॥
त्रिवेणी संगम वहै, ज्योति जहाँ दरशाय।
सात जन्म सुधि होय जब, ध्यान करै मन लाय ॥१६१॥
आगे कमल हजार दल, सतगुरु ध्यान प्रधान।
अमृत द्रवे बहि चलै, हंस करै जहँ न्हान ॥१६२॥
ऊपर तेजहिपुंज[3] है, कोटि भानु परकास।
शून्यशिखर ता ऊपरै, योगी करैं विलास ॥१६३॥

अथ रूपस्थ ध्यान

रूपस्थ ध्यान को भेद सुनि, कीजै मन ठहराय।
देखै त्रिकुटी मध्य है, निश्चल दृष्टि लगाय ॥ १६४॥
ध्यान किये पहिले जहाँ, अगनि फूल दरसाय।
फेर गोगन माहिं हो, दीप ज्योति प्रकटाय ॥१६५॥

१ ओंकार २ आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ३ अनन्त सूर्य का प्रकाश जिसके ऊपर अमरलोक धाम है।

शनै शनै आगे जहाँ, दीपमाल दरशाय ।
फिरि तारों की माल सी[1], दामिनि बहु दमकाय ॥१६६॥
बहुत चन्द सूरज घने, देखे कोटि अनन्त ।
अणु ज्यों करि सूमर[2] भरे, ध्यान माहिं दरशन्त॥१६७॥
झिलमिल झिलमिल तेजमय, भासै सब संसार ।
तन मन उपजै सुख घना, आनँद अधिक अपार॥ १६८॥
जल अथाह में डूब ज्यों, देखे दृष्टि उघार ।
जो दीखै तो नीर ही, दश दिशि अपरम्पार॥१६९॥
यही ध्यान प्रत्यक्ष है, गुरू कृपा सों होय ।
कहि शुकदेव चरणदास करि, तन मन आलस खोय ॥

अथ रूपातीत ध्यान

रूपातीत शून्य ध्यानहि जानो । शून्यहि को परब्रह्म पिछानो ॥
त्रिकुटी परै शून्य अस्थान । सो वह कहिये पद निर्वान ॥
चिदानन्द ताको हिय आनो । वाही में मन ही को सानो ॥
आठ पहर जहँ चित्त लगावो । याके कीन्हे सों लय पावो ॥
ज्यों आकाश में पक्षी धावै । धावत धावत दृष्टि न आवै ॥
बहुरि अचानक दीखै आई । वह ध्यानी ऐसा ह्वै जाई ॥
इस परम शून्य का अधिकी ध्याना । सब ध्यानन में है परधाना ॥
सो योगी यह लहै ठिकाना । सायुज्यमुक्ति होइ जाय निदाना ॥
दो० यासों लगै समाधि ही, निद्रा कहिये योग ।
ध्याता होवे लीन ही, रहै न त्रिपुटी रोग ॥ १७१॥

१ माला के समान २ लबालब (पूर्ण रूप से) ।

सतवाँ कहा जु ध्यान ही, अठवाँ कहूँ समाधि ।
ज्ञान ध्यान जहँ वीसरै, तहाँ न विवाद[1] ॥१७२॥

॥ इति ध्यान अङ्ग सम्पूर्णम् ॥

अथ आठवाँ समाधिअंग वर्णन

अष्टपदी छन्द

अठवाँ कहूँ समाधि लक्षण वर्णन करूँ ।
तोको सब समुझाय तेरी दुविधा हरूँ ॥
जब ही लगे समाधि योगी आनँद लहै ।
योग भया सिध जानि क्रिया कोइ ना रहै ॥
मिलि ध्याता अरु ध्यान एक होवै जहाँ ।
दूजा रहै न भाव मुक्ति वर्तै तहाँ ॥
निरउपाधि निर्खेद ऐसा वह देश है ।
करम भरम अरु धरम नहीं कोइ लेश है ॥
आपा[2] रहै न कोय सकल आशा गरै ।
चिन्ता का दुख नाहिं वासना सब जरै ॥
पंच विषय जहँ नाहिं नहीं गुण तीन ही ।
होवै ब्रह्मस्वरूप जीवता चीन ही ॥
जाग्रत स्वप्न सुषोप्ति जहाँ होवै नहीं ।

१ शास्त्रार्थ-वाद विवाद २ अहंकार ।

चौथे पद को पाय होय जहँ लीन ही ॥
ऐसे कहैं शुकदेव सुनो चरणदास ही।
यह निर्द्वन्द्व[1] समाधि करो जहाँ वास ही ॥

दो० जहाँ कछू गम[2] ना रहै, विद्या वेद न वाद।
ऋधि सिधि मिटि आनँद लहै, ऐसी शून्य समाधि॥१७३॥

अष्टपदी छन्द

तहाँ किये परवेश रहै न आकार ही।
रूप नाम गुण क्रिया यही साकार ही॥
पाप पुण्य सुख दुःख जहाँ नहिं पाइये।
मत मारग कुल धर्म न देत दिखाइये॥
भूख प्यास अरु उष्ण जहाँ नहिं शीत है।
हर्ष शोक नहिं नेक वैर नहिं प्रीत है॥
इन्द्री मन नहिं रहत गलित ह्वै जात है।
सिध साधक गुरु शिष्य न भाव रहात है॥
उडुगन चन्द्र न सूर न दिवस न रात है।
त्वंपद[3] ईश्वर ब्रह्म न जान्यो जात है॥
जैसे जल में नीर चीर में चीर ही।
असिपद[4] में यों जीव नीर में नीर ही॥
अहं मिटै मिटि जाय जु आपा थोक[5] ही।
ना परमातम आतम बंध न मोष[6] ही॥

१ शीत, उष्ण, सुख, दुख, आदि से रहित २ देह का स्मरण ३ जीव ४ ब्रह्म पद ५ समूह ६ मोक्ष।

ऐसे कह शुकदेव यों होय समाधि में।
वैसा ही ह्वै जाय सोई था आदि में॥

दो० हुता आदि परमातमा, बिच उठि लगा विकार।
मिलि समाधि निर्मल भवै, लहै रूप ततसार॥१७४॥

अष्टपदी छन्द

जहँ आतमदेव अभेव सेवक नहिं सेव है।
स्वामी भी ह्वाँ नाहिं पूजा नहिं देव है॥
नौधा[1] नेम न प्रेम ज्ञान नहिं ध्यान है।
जड़ चेतन कछु नाहिं सुरति नहिं ज्ञान है॥
विधि निषेध नहिं भेद अन्वय व्यतिरेक ना।
निश्चय अरु व्यवहार कछू तामें न ह्वाँ॥
उत्तम मध्यम भाव न शुभ ना अशुभ है।
सिंह सर्प डर नाहिं औ शस्तर को न भै॥
पावक दग्ध न करै बहावै जल नहीं।
ह्वाँ नहिं पहुँचै काल न ज्वाला है तहीं॥
ऐसा भवन समाधि भाग्य सों पाइये।
तजि कै जक्त उपाधि तहाँ मठ छाइये॥
यतन करै लख माहिं और सब भेप ही।
कोटिन में कोइ होय समाधी एक ही॥
ह्वाँ तक पहुँचै जाय सोई सिध साध है।
कहै शुकदेव पुकारि जु कठिन समाधि है॥

१ श्रवण कीर्त्तन स्मरण पादसेवन अर्चन वंदन दास्य सख्य आत्मनिवेदन।

दो० भक्ति योग अरु ज्ञान की, त्रै विधि कहूँ समाधि ।
गुरू मिलै तो सुगम है, नाहीं कठिन अगाधि ॥१७५॥

अथ भक्ति समाधि

सब इंद्रिन को रोकि कै, करि हरि चरणन ध्यान ।
बुद्धि रहै सुरतिहु रहै, तो समाधि मत मान ॥१७६॥
ध्याता बिसरै ध्यान में, ध्यान होय लय ध्येय ।
बुद्धि लीन सुरति न रहै, पद समाधि लखि लेय ॥१७७॥

अथ योग समाधि

आसन प्राणायाम करि, पवन पंथ गहि लेहि ।
षट चक्कर को छेद करि, ध्यान शून्य मन देहि ॥१७८॥
आपा बिसरै ध्यान में, रहे सुरति नहिं नाद[1] ।
लीन होय किरिया रहित, लागे योग समाध ॥१७९॥

अथज्ञान समाधि

जब लग तत्त्व विचारि करि, कहै एक अरु दोय ।
ब्रह्मवृत्ति[2] बाँधे रहै, ह्याँ लग ध्यानहि होय ॥१८०॥
मैं तू यह वह भूलि करि, रहे जु सहज स्वभाव ।
आपा देहि उठाय करि, ज्ञान समाधि लगाव ॥१८१॥
ज्ञान रहित ज्ञाता रहित, और रहित ज्ञेय जान ।
लगी कभी छूटे नहीं, यह समाधि विज्ञान ॥१८२॥
पूछे आठों अंग तैं, योग पंथ की बात ।
शुकदेव कहैं तामें चलो, गुरू कृपा ले साथ ॥१८३॥

॥ इति अष्टाँगयोग सम्पूर्णम् ॥

१ अनहद शब्द २ अहं ब्रह्मास्मि

अथ छहों कर्म हठयोग वर्णन

शिष्य वचन

दो० अष्टांग योग वर्णन कियो, मोको भइ पहिचान ।
छहौं कर्म हठयोग के, वरणो कृपा निधान ॥१८४॥

गुरु वचन

पहिले ये सब साधिये, काया होवे शुद्धि ।
रोग न लागे देह को, उज्ज्वल होवे बुद्धि ॥१८५॥
अरु साधै षटकर्म बताऊँ । तिनके तोको नाम सुनाऊँ ॥
नेती धोती, वसती, करिये । कुंजर करम, रोग सब हरिये ॥
न्योली किये भजैं तन बाधा । देखि देखि जिन गुरु सों साधा ॥
त्राटक कर्म, दृष्टि ठहरावे । पलक पलक सों लगन न पावे ॥

(१) अथ नेती कर्म

कुं० मिहीं जु सूत मँगाय के, मोटी बाँटे डोर ।
ऊपर मोम रमाय के, साधे उठ कर भोर ॥
साधे उठ कर भोर, डेढ़ बालिश्त की कीजे ।
ताको सीधी करे, हाथ अपने में लीजे ॥
नासारंध्र में मेल कर, खींचे अँगुली दोय ।
फेरि विलोवन कीजिये, नेती कहिये सोय ॥

दो० कान नाक अरु दाँत को, रोग न व्यापे कोय ।
उज्ज्वल होवे नैन ही, नित नेती करि सोय ॥१८६॥

(२) अथ धोती कर्म

धोती कर्म यासों कहैं, पट्टी सोलह हाथ।
कोढ़ अठारह ना भवैं, करै जु नित परभात ॥१८७॥

कुं० चौड़ी अंगुल चारि की, मिहीं वस्त्र की होय।
जल में भेय निचोय करि, निगल कंठ सों सोय॥
निगल कंठ सों सोय, सिरा बाहर रहि जावे।
फेरि निकासै ताहि, पित्त कफ दोऊ लावे॥
काया होवे शुद्ध ही, भजैं पित्त कफ रोग।
शुकदेव कहै धोती करम, साधें योगी लोग॥

(३) अथ बस्ती कर्म

तीजे बस्ती कर्म ही, कहूँ सुनो चितलाय।
क्रिया करै गन्नेस ही, कुंजी तहाँ लगाय॥
कुंजी तहाँ लगाय, मूल को धोवन कीजे।
पसारन[1] संकोच[2] सुरति दे, यह कर लीजे॥
नीर गुदा सों खैंच करि, थांभे उदर मँझार।
कछू डोल अस बैठ कर, फिरि दे ताहि उतार॥

दो० यही जु बस्ती कर्म है, गुरु बिन पावे नाहिं।
लिंग गुदा के रोग जो, गर्मी के नशि जाहिं ॥१८८॥

(४) अथ गज कर्म

गज कर्म याही जानिये, पिये पेट भरि नीर।
फेरि युक्ति सों काढ़िये, रोग न होय शरीर ॥१८९॥

---

१ छोड़ना २ खींचना

(५) अथ न्योली कर्म

न्योली पद्मासन सों करे। दोनों कर घुटनों पर धरे॥
पेटरु पीठ बराबर होय। दहने बायें नले बिलोय॥
मैल पेट में रहन न पावे। अपान वायु तासों वश आवे॥
ताप तिली अरु गोला शूल। होन न पावे नेक न मूल॥
जो गुरु करि के ताहि दिखावे। न्योली कर्म सुगम करि पावे॥
और उदर के रोग कहावैं। सो भी वे रहने नहिं पावैं॥

(६) अथ त्राटक कर्म

त्राटक कर्म टकटकी लागे। पलक पलक सों मिले न ताके॥
नैन उघारे ही नित रहै। होय दृष्टि थिर शुकदेव कहैं॥
आँख उलटि त्रिकुटी में आनो। यह भी त्राटक कर्म पिछानो॥
जेते ध्यान नैन के होई। चरणदास पूरण हों सोई॥
दो० कपालभाति अरु धौंकनी, बाघी शंखपखाल।
चारि कर्म ये और हैं, इनहिं छहौं के नाल[1] ॥१६०॥

॥ इति त्राटक कर्म ॥

अथ खेचरी आदि मुद्रा

शिष्य वचन

दो० एक बार फिर भी कहो, मुद्रा पाँच दयाल।
मो से रंक अधीन पर, होकर बहुत कृपाल ॥१६१॥

१ साथ

गुरु वचन

आगे मुद्रा तोहि कही समुझाइया।
फिर भी कहूँ अब खोलि सुनो चित लाइया॥

(१) अथ खेचरी मुद्रा

पहिले मुद्रा खेचरी को साधन भनूँ।
जैसे आगे करी सभी ऋषि मुनि जनूँ॥
ताते जल के कुरले करि जु वगाइये।
ता पाछे चौवस्तु[1] को चूर्ण लगाइये॥
जिह्वा हाथ में पकरि मर्दन छीलन करे।
दोहन तानन करै वहुरि दशनन धरे॥
फिरि करि चालन ताहि छेदन[2] ही कीजिये।
तातू[3] ज्यों कटि जाय यत्न सोइ लीजिये॥
ब्रह्मरंध्र को धोय के मैल निवारिये।
वायें अँगूठे ऊपर काग को धारिये॥
सहज सहज सरकाय के आगे लाइये।
यह सब साधन कठिन गुरू से पाइये॥
दो अँगुली की कूँची सूँ करि मेलना।
जिह्वा उलटी राख जु नित प्रति खेलना॥
यह उपाय षट मास करै तजि मान ही।
रसना यों बढ़ि जाय चढ़े अस्थान ही॥
दो० चार काज यासूँ सरैं, फलदायक बहु भाँति।

१ सूँठ, मिरच, पीपल, मधु २ काटना ३ जीभ के नीचे का तंतु।

(५) अथ न्योली कर्म

न्योली पद्मासन सों करे । दोनों कर घुटनों पर धरे ॥
पेटरु पीठ बराबर होय । दहने बायें नले बिलोय ॥
मैल पेट में रहन न पावे । अपान वायु तासों वश आवे ॥
ताप तिली अरु गोला शूल । होन न पावे नेक न मूल ॥
जो गुरु करि के ताहि दिखावे । न्योली कर्म सुगम करि पावे ॥
और उदर के रोग कहावैं । सो भी वे रहने नहिं पावैं ॥

(६) अथ त्राटक कर्म

त्राटक कर्म टकटकी लागे । पलक पलक सों मिले न ताके ॥
नैन उघारे ही नित रहै । होय दृष्टि थिर शुकदेव कहै ॥
आँख उलटि त्रिकुटी में आनो । यह भी त्राटक कर्म पिछानो ॥
जेते ध्यान नैन के होई । चरणदास पूरण हों सोई ॥
दो० कपालभाति अरु धौंकनी, बाघी शंखपखाल ।
चारि कर्म ये और हैं, इनहिं छहौं के नाल[१] ॥१६०॥

॥ इति त्राटक कर्म ॥

अथ खेचरी आदि मुद्रा

शिष्य वचन

दो० एक बार फिर भी कहो, मुद्रा पाँच दयाल ।
मो से रंक अधीन पर, होकर बहुत कृपाल ॥१६१॥

---

१ साथ

गुरु वचन

आगे मुद्रा तोहि कही समुझाइया।
फिर भी कहूँ अब खोलि सुनो चित लाइया॥

(१) अथ खेचरी मुद्रा

पहिले मुद्रा खेचरी को साधन भनूँ।
जैसे आगे करी सभी ऋषि मुनि जनूँ॥
ताते जल के कुरले करि जु वगाइये।
ता पाछे चौवस्तु[1] को चूर्ण लगाइये॥
जिह्वा हाथ में पकरि मर्दन छीलन करे।
दोहन तानन करै वहुरि दशनन धरे॥
फिरि करि चालन ताहि छेदन[2] ही कीजिये।
तातू[3] ज्यों कटि जाय यत्न सोइ लीजिये॥
ब्रह्मरंध्र को धोय के मैल निवारिये।
वायें अँगूठे ऊपर काग को धारिये॥
सहज सहज सरकाय के आगे लाइये।
यह सब साधन कठिन गुरू से पाइये॥
दो अँगुली की कूँची सूँ करि मेलना।
जिह्वा उलटी राख जु नित प्रति खेलना॥
यह उपाय षट मास करै तजि मान ही।
रसना यों बढ़ि जाय चढ़े अस्थान ही॥
दो० चार काज यासूँ सरैं, फलदायक बहु भाँति।

१ सूंठ, मिरच, पीपल, मधु २ काटना ३ जीभ के नीचे का तंतु।

योग माहिं बड़ भूप है, अधिकी जाकी कांति ॥१६२॥

अष्टपदी

एक जु प्राणायाम जीभ सूँ कीजिये ।
दूजे बन्ध उड्यान यही सूँ दीजिये ॥
तीजे करि करि ध्यान निरखि जहँ ज्योत ही ।
चौथे अमृत पिवे खुले तहँ स्रोत ही ॥
खैंचे त्रिकुटी पाट सहज अरु फेरिये ।
द्रवै सुधा[1] रस नीर जहाँ मन घेरिये ॥
अमृत ही के स्वाद को कौन बखानई ।
जो कोइ अँचवै हंस सोई पुनि जानई ॥
दिन दिन पलटे देह रक्त दूधा भवे ।
बीस बरस अरु चार माहिं ऐसा हवे ॥
इच्छाचारी होय बरस छत्तीस में ।
सब लोकन में जाय आपनी शक्ति तें ॥

दो० जेते विष व्यापैं नहीं, रोग न दहै शरीर ।
जो कोइ पीवै युक्ति सूँ, कामधेनु को चीर ॥१६३॥
भूख प्यास अरु नींद के, रहैं न तीनों लेव ।
नाद[2] बिन्दु[3] गुटका[4] बँधे, कहै यही शुकदेव ॥१६४॥
तीन महीने चार का, बालक गोदी माय ।
ना वह पीवे नीर ही, अन्न नहीं वह खाय ॥१६५॥
वह तो जीवे दूध सूँ, वाकूँ यही जु काम ।

१ अमृत २ अनहद ३ वीर्य ४ मिश्रित ।

लगो रहै माता कुचन, निसरे[1] एक न याम ॥१९६॥
अमृत पीवै योगिया, ऐसे चरणहि दास।
पहर हु वह छाँड़ै नहीं, कामधेनु[2] का पास ॥१९७॥
ऐसे धारे तो बने, सुधा रसीला संत।
दिव्यकाय हो जाय जब, धनि कहैं कमला कंत ॥१९८॥
आठ पहर लागा रहै, पीवै कै[3] करि ध्यान।
मैं कहा जैसा ही बने, परसे पद निरबान ॥१९९॥
भेद गुरू से ये लहै, और छिपावे वाहि।
जो जो फल याके अधिक, होय परापत ताहि ॥२००॥
योगेश्वर अरु देवता, मुनी ऋषीश्वर जान।
रखवारे याके बने, करन न देवैं ध्यान ॥२०१॥
टेक गहै तो जा पियै, और करे ह्वाँ ध्यान।
यती सती अरु गुरुमुखी, जाकी ऐसी आन ॥२०२॥
बड़ी जु मुद्रा खेचरी, मुख में याका वास।
जो कहि मैं शुकदेव ही, जान लेहु चरणदास ॥२०३॥

(२) अथ भूचरी मुद्रा

दूजी मुद्रा भूचरी, नासा जाको वास।
प्राण अपान जुदी जुदी, एक करै चरणदास ॥२०४॥
जितकी तित रख प्राण को, वा वर लाय अपान।
ताहि मिलावे युक्ति सूँ, करि करि संयम ध्यान ॥२०५॥
जब वह जीते पवन कूँ, मन चंचल ठहराय।

१ छोड़ना २ अमृत का स्थान ३ अथवा।

गगन चढ़न की आश हो, कहैं शुकदेव सुनाय ॥२०६॥
गुदा द्वार बंध दीजिये, एड़ी पाँव लगाय ।
आसन सिद्ध जु कीजिये, मन पवना वश लाय ॥२०७॥
अपान वायु जब वश भवै, ऊरध खैंच चलाय ।
सनई सनई जा चढ़ै, प्राण वायु ह्वै जाय ॥२०८॥

(३) अथ चाँचरी मुद्रा

तीजी मुद्रा चाँचरी, जाको नैनन वास ।
नासा आगे दृष्टि कूँ, राखै मन धर आस ॥२०९॥

अंगुल चार नासिका आगे । चित स्थिर कर देखन लागे ॥
खुले पाँच तत करे जु कोई । मन अरु पवन जहाँ थिर होई ॥
फिर ह्वाँसूँ नासा परि आवै । अचल टकटकी तहाँ लगावै ॥
जहँ बहुतक अचरज दरशावैं । त्रिभव स्वर्ग के आगे आवैं ॥
जिस सूँ पलट तिरकुटी माहीं । ध्यान करै कहुँ अन्त न जाई ॥
दीरघ तारा सा परकासे । उदय होय सूरज ज्यों भासे ॥
चित चेतन दोउ मेला करे । लै उपजै अरु दुविधा हरे ॥
यही चाँचरी मुद्रा जानो । चरणदास याकूँ पहिचानो ॥

(४) अथ अगोचरी मुद्रा

कहूँ अगोचरी चौथी मुद्रा । तामें सुख पावै योगिंद्रा ॥
यां मुद्रा का सरवन वासा । शुकदेव कहैं सुन चरणहिदासा ॥

दो० ज्ञान सुरति दोउ एक ह्वै, पलट अगोचर जाय ।
शब्द अनाहद में रतै, मन इन्द्री थिर पाय ॥२१०॥

(५) अथ उनमनी मुद्रा

पँचवीं मुद्रा उनमनी, दशवें द्वारे वास।
सिद्ध समाधि मिलै जहाँ, दग्ध होय सब आस ॥२११॥
आनन्द ही आनन्द जहाँ, तहाँ न काल कलेश।
तीनों गुन नहि पाइये, हाँ नहिं माया लेश ॥२१२॥
जीवातम परमात्मा, होय जाय वा ठौर।
ध्याता ध्यान न ध्येय जहाँ, तहाँ न किरिया और ॥२१३॥

अथ महाबन्ध आदि साधन विधि

महाबन्ध तोहि पहल बताऊँ। पाछे मूलबन्ध समझाऊँ॥
बायाँ पाँव सीवन[1] गहि दीजै। मूल द्वार[2] एडी बँध कीजै॥
दहिनी जंघ जंघ पर लावै। गउमुख आसन नाम कहावै॥
राखै चिबुक हृदय पर लाय। पवन राह पूरब को जाय॥
ध्यान त्रिकुटी संयम करे। प्राण वायु हिरदै में धरे॥
महाबन्ध ऐसे करि साधै। गुरू प्रताप याहि आराधै॥
बिना पुरुष तिरिया कूँ जानो। बन्ध बिना मुद्रा पहिचानो॥
निरफल जाय पुरुष बिन नारी। महाबन्ध बिन मुद्राधारी॥
माहिं कण्ठ के ध्यान लगावै। सुरत निरत ह्वाईं ठहरावै॥
दो० महाबंध जो स्थित करै, सो योगी ह्वै जाय।
पवन पंथ मुंदित करै, ध्यान कण्ठ में लाय ॥२१४॥
शशियर कूँ सूरज घर लावै। रेचक पूरक पवन फिरावै॥
महाबन्ध करै अभ्यास। अमृत अचवै बुझै पियास॥

१ गुदा और लिंग के बीच की जगह २ गुदा द्वार।

जरा मृत्यु देही नहिं आवै । महाबन्ध तीनों गुन पावै ॥
जठर अग्नि परचै बहु भारी । निशि दिन माहिं करै अठ[1]वारी ॥
पहर पहर में पवन भरीजै । प्रथम अल्प अभ्यास करीजै ॥
तिय सेवन तापन नहिं करै । काम अग्नि काया नहिं जरै ॥

दो० ऐसी विधि साधै पवन, योग पंथ धरि पाय ।
पहर पीछला बनत[2] जन, आयुरदा बढ़ि जाय ॥२१५॥

अथ मूल बंध

मूलबंध अब कहत हूँ, अपान वायु वश होय ।
ऊपर कूँ खैंचन करै, मिलै प्राण में सोय ॥२१६॥
कमल कमल सीधे भवैं, नाभि तले हो राह ।
आगे मारग सुगम हो, पहुँचै योगीनाह[3] ॥२१७॥

मूलबंध गुण ऐसा होई । वायु अधोगति जाय न कोई ॥
रेता ऊरध यासूँ सधे । दिन दिन आयु सवाई बधे ॥
यासूँ कारज सब बनि आवे । रोग रक्त को सभी नशावे ॥
योगी पहिले यह आराधे । अपान वायु कूँ नीके साधे ॥
अब मैं मूलबंध बतलाऊँ । ज्यों का त्यों साधन दिखलाऊँ ॥
गुदा वास याका तुम जानो । गुदा द्वार बँध देना ठानो ॥
बायें पाँव कि एड़ी सेती । मूल द्वार रोकै करि हेती ॥
ऊरध[4] ही कूँ खैंचन कीजे । शुकदेव कहै नीके सुन लीजे ॥
अरु कबहूँ मन ऐसी धरे । आसन पदम करन कूँ करे ॥

---

१ आठ २ उपरोक्त साधन ब्राह्ममुहूर्त में बन जाने से । ३ श्रेष्ठ योगी
४ ऊपर को ।

कपड़े की इक गैंद बनावे। गुदा मध्य कस बंध लगावे ॥
यों भी वायु सधे वा भाँती। जो पै लगा रहै दिन राती ॥
पवन तले की ऊपर जावे। प्राण अपान सहज मिल जावे ॥
नाद बिंद रल मिलजा दोई। एक बरस साधे जो कोई ॥
योग माहिं यह भी परधान। बूढ़ी देह पलट हो ज्वान ॥
जठर अगनि बाढ़ै अधिकाय। जो चाहे तो बहुतै खाय ॥
सुन चरणदास कहै शुकदेव। जो गुरु पूरा देवे भेव ॥

अथ जलंधर बंध

दो० मूलबंध तोसूँ कहा, गुण कहे सब समझाय।
बंध जलंधर कहत हूँ, सुन सरवन करि चाय ॥२१८॥

तीजा बंध जलंधर जानो। कंठ बास ताका पहिचानो ॥
ग्रीवा लटक चिवुक हिय लावे। कंठ पवन रोके परचावे ॥
हिरदे प्राण पूर करि रहिये। बंध जलंधर यासूँ कहिये ॥
ऊरध पवन नीचे को जाय। अरध पवन ऊरध कूँ लाय ॥
उदर मध्य ले ताहि बिलोय। ब्रह्मरंधर जा पहुँचे सोय ॥
इह विधि ब्रह्मपंथ कूँ धावे। सहजे सहजे मध्य समावे ॥
जरा मरण जहँ भय नहिं व्यापे। लहे अमरपद हो रहे आपे ॥
चरणदास शुकदेव बतावे। जो पै बंध उड्यान लगावे ॥

अथ उड्यान बंध

दो० बंध उड्यान आगे कहा, जिह्वा उलट लगाव।
कान आँखमुख नाक के, स्वर सब बंध कराव ॥२१९॥
इह सुबंध महिमा अधिक, लागे बजर किवाँर।

सात द्वार की बाट हो, निकसे नाहिं बयार ॥२२०॥
पाँचौं मुद्रा बंध सब, दिखलाया यह देश ।
शुकदेव कहै रणजीत सुन, और कहूँ उपदेश ॥२२१॥

अष्टपदी छन्द

चौरासी ही जानि जु आसन योग के ।
सिद्ध पद्म तिन माहिं बड़े ही थोक के ॥
बहु नारिन के माहिं जु नौ नारी भनी ।
तिन में सुषुमन जान बड़ी गुरु सूँ सुनी ॥
तीनि बंध के माहिं मूल कूँ जानिये ।
मुद्रों ही में बड़ी खेचरी मानिये ॥
वायुन में परधान प्राण कूँ देखिये ।
सब कुंभक हूँ माहिं केवल बड़ि लेखिये ॥
बानी चारौं मध्य परा ही गाइये ।
चार अवस्था माहिं तुर्या बड़ि पाइये ॥
परम शून्य को ध्यान परे सूँ है परे ।
याकी सम कोइ नाहिं ध्यान तिनको धरे ॥
अजपा ही के जाप बराबर और ना ।
शील दया से मीत न कोई देह मा ॥
पूजन में बड़ि जान जु आतम की करे ।
ज्ञान समान न दान सकल विपता हरे ॥
गुरु सा रक्षक और नहीं कोइ लोक में ।
योग युक्ति सा स्वाद नहीं कोइ भोग में ॥

कहै गुरू शुकदेवजी सुनो रणजीत ही ।
बड़ी बड़ी जो गांस खोल तुम कूँ जु दी ॥

छन्द

अमरी[१] करतैं वजरी[२] रोके वजरी करतैं वाई[३] ।
रोके छींक साधना करिके नासा लेहु जँभाई ॥
जल संयम सूँ नभ कूँ देखे संयम नाद सु ज्योती ।
संयम पवन होय थिर काया सो वश राखे मौती[४] ॥
जिया विछावै मृत्यक ओढ़ै बूढ़ी होय न काया ।
संयम नींद विंद नहिं जावे यह शुकदेव वताया ॥
दहिने स्वर में भोजन कीजे वायें स्वर में पानी ।
दहिने स्वर में अमरी रेचे देह न होय पुरानी ॥
दहिने स्वर में जल सूँ न्हावे वायें स्वर में लंवी[५] ।
शव आसन सूँ सोवन कीजे नारि न कीजे सङ्गी ॥
पावक सूँ तापन नहिं कीजे जो तापे तो नैना ।
भोजन गरम न खट्टा खावे फटे भिरे [६] नहिं मैना[७] ॥

दो० गरमी ही के रोग में, चन्द चला रवि वन्द ।
शीत रोग सूरज चला, शशियर राखे बन्द ॥२२३॥
तीन रोज कै पाँच दिन, कै दिन राखै सात ।
रोग देख जैसी करै, होय निरोगा गात ॥२२३॥
सूरज रात चलाइये, द्योस चलावे चन्द ।

१ टट्टी २ पेशाव ३ अपान वायु ४ मृत्यु ५ पेशाव करना ६ निकलना ७ वीर्य

पवन फिरै ऊपा[1] बधै, श्वास चलै जो मन्द ॥२२४॥
कान आँख अरु दाँत के, सब ही रोग भजाहिं ।
श्यामबाल, नहिं श्वेत हों, करै जु नीकी दाइ[2] ॥२२५॥
रुई पुरानी बहुत ही, दिन कूँ दहिने राखि ।
बायें राखै रैनि कूँ, खोली साधन भाखि ॥२२६॥
शीत उष्ण व्यापे नहीं, विप नहिं व्यापक होय ।
बीस बरस साधन किये, रहै विकार न कोय ॥२२७॥
बासी गरिष्ठ न खाइये, सूक्षम करै अहार ।
जल बहुतै पीवै नहीं, सपरस करे न नारि ॥२२८॥
तन मन साधै बचन ही, पाप न लगने देय ।
शुकदेव कहैं चरणदास सुनि, अविकी साधन येह ॥२२९॥
सब जीवन सुख दीजिये, सब सों मीठा बोल ।
आतम पूजा कीजिये, पूजा यही अतोल ॥२३०॥
दया पुष्प चन्दन नवन, धूप दीप दे मन्न ।
भाँति भाँति नैवेद्य सूँ, करै देव परसन्न ॥२३१॥
जो कोइ आवे राजसी, देहु बड़ाई ताहि ।
जाकूं देखो तामसी, करो नमन्ता वाहि ॥२३२॥
जो कोइ होवे सात्त्विकी, मिले ताहि तजि मान ।
गुढ़ी[3] खोल चर्चा करो, लीजे तत मत ज्ञान ॥२३३॥
सब ही कूँ परसन्न करि, आप रहो परसन्न ।
बास लहो हरि धाम ही, ह्याँ कहँ सब धन धन्न ॥२३४॥

१ आयु २ प्रकार ३ हृदय की गांठ (संकोच) ।

राजस तामस सात्त्विकी, क्षेत्तर तीनहिं भांति।
क्षेत्रज्ञ आतमदेव है, सबकी सहिये क्रांति ॥२३५॥
सब में देखै आप कूँ, सब कूँ अपने माहिं।
पावे जीवन मुक्ति को, यामें संशय नाहिं ॥२३६॥
सब में देखे आतमा, आपन में करि ध्यान।
यही ज्ञान ब्रह्मज्ञान है, यही जु है विज्ञान ॥२३७॥
अहंकार मिटि ब्रह्म हो, परमातम निरवान।
शुकदेवा हो कहत हूँ, चरणदास हिय आन ॥२३८॥
जो तैं पूँछा सो कहा, भेद कहा सब खोल।
अरु तेरे हिय में कछू, सकुच खोल कर बोल ॥२३९॥

शिष्य वचन

अपना लखि किरपा करी, समझाया बहु भाँति।
योग ओर तें गुरूजी, हिय में आई शांति ॥२४०॥
तुम्हरी कहा अस्तुति करूँ, मोपै कही न जाय।
इतनी शक्ति न जीभ की, महिमाँ कहै बनाय ॥२४१॥
किरपा करी अनाथ पर, तुम हो दीनानाथ।
हाथ जोड़ि माँगौं यही, मम शिर तुम्हरा हाथ ॥२४२॥
मोसे रंक गरीब की, तुम गहि पकरी बाहँ।
भव बूड़त राखा मुझे, चरण कमल की छाहँ ॥२४३॥
आपहि तुम किरपा करी, मैं कित लहता तोहि।
तुमको पाऊँ ढूँढ़ि करि, इतनी शक्ति न मोहिं ॥२४४॥
व्यास पुत्र शुकदेव तुम, जगत माहिं विख्यात।

तुम दर्शन दुर्लभ महा, मनुषन को न दिखात ॥२४५॥
बड़े भाग मेरे जगे, पूरबले परताप ।
किरपा श्री गोपाल की, आय मिले तुम आप ॥२४६॥
चरणदास अपनो कियो, दियो परम सन्तोष ।
बैठि करूँगो ध्यान ही, अब कुछ रह्यो न शोक ॥२४७॥
चलत फिरत ह्याँ आइया, तुम भरि दीन्हो मोहि ।
नैन प्राण तन मन सभी, देखत अरपे तोहि ॥२४८॥
चाह मिटी सब सुख भये, रहा न दुख का मूल ।
चाहूँ तो चाहूँ यही, तुम चरणन की धूल ॥२४९॥

॥ गुरु वचन ॥

योग तपस्या कीजियो, सकल कामना त्याग ।
ताका फल मत चाहियो, तजो द्वेष अरु राग ॥२५०॥
अष्टसिद्धि जो पै मिले, नेक न कीजे नेह ।
धरि हिरदय परमात्मा, त्यागे रहियो देह ॥२५१॥
जेती जग की वस्तु हैं, तामें चित न लाय ।
सावधान रहियो सदा, दियो तोहिं समुझाय ॥२५२॥
बार बार तोसे कहूँ, ह्याँ मत दीजो चित्त ।
सिद्धि स्वर्ग फल कामना, तजि कीजो हरि मित्त ॥२५३॥
जो कीजे हरि हेत ही, एहो चरणहि दास ।
भक्ति योग अरु शुभ करम, नीकी ठौर निवास ॥२५४॥

शिष्यवचन

ऐसे ही अब करूँगो, तुम चरणन परताप ।

अष्टसिद्धि समझो चहौं, वर्णन कीजे आप ॥२५५॥
समझौं तो त्यागूँ उन्हें, करवाओ पहिचान।
कहा नाम लक्षण कहा, कौन रहै अस्थान ॥२५६॥

गुरु वचन

शुकदेव कहैं वर्णन करूँ, अष्टसिद्धि के नांव।
लक्षण गुण सबही सहित, नीके तोहि समझांव ॥२५७॥

अथ अष्टसिद्धि के नाम

प्रथमै अणिमा सिद्धि कहावै। चाहे तो छोटा ह्वै जावे॥
अणु समान छिपि जावे सोई। ऐसी कला जु पावे कोई॥
दूजी महिमा लक्षण एता। चाहे बड़ा होय वह जेता॥
तीजी लघिमा वह कहलावे। पुष्प तुल्य हलका ह्वै जावे॥
चौथी गरिमा कहूँ विचारी। चाहे जितना होवे भारी॥
पँचवीं प्रापति सिद्धि कहावे। जित चाहे तित ही ह्वै आवे॥
छटवीं पराकाम्य गुण धरे। शक्ति पाय चाहे सो करे॥
सतवीं सिद्धि ईशिता रानी। सबको आज्ञा माहिं चलानी॥
दो० वशीकरण सिधि आठवीं, कहैं श्री शुकदेव।
चाहे जिसको वश करे, अपना ही करि लेव ॥२५८॥
चरणदास सिद्धैं कही, समझ लेहि मन माहिं।
जो हैं जन वे राम के, इनमें उरझैं नाहिं ॥२५९॥
योग किये आठों सिधि पावे। कै भोगे कै चित न लगावे॥
योग किये मन जीता जावे। पलटे जीव ब्रह्मगति पावे॥
योगेश्वर चाहे सो करे। भरी रितावे रीती भरे॥

योगेश्वर ईश्वर ह्वै जाई। दिन दिन बाढ़े कला सवाई ॥
तजिये भोग योग ही करिये। तिरगुण परै ध्यान ही धरिये ॥
चौथे पद में करे निवासा। काहू विधि का रहे न साँसा ॥
योग करे सोई परवीना। शुकदेव कहैं प्रकट कहि दीना ॥

दो० पोथी माहीं देखि करि, करे जु कोई योग।
तन छीजे सिधि ना भवे, देही आवे रोग ॥२६०॥
देखि देखि गुरु सों करे, ले आज्ञा रहु संग।
सिद्ध होय साधन सबै, कछू न आवे भंग ॥२६१॥
योग तपस्या में बड़ा, पहुँचावे हरि पास।
जन्म मरण विपता मिटे, रहै न कोई आस ॥२६२॥

शिष्य वचन

मैं समझी जानी सभी, सूझ भई हिय माहिं।
किरपा करि जो जो कहा, ताको विसरूँ नाहिं ॥२६३॥
व्यासदेव श्री जनक जै, जै जै श्री शुकदेव।
जै जै यह शुकतार है, समुझायो करि हेव ॥ २६४॥
हिय हुलसो आनँद भयो, रोम रोम भयो चैन।
भये पवित्तर कान ये, सुनि सुनि तुम्हरे बैन ॥२६५॥

छप्पै

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरू देवन के देवा।
सर्व सिद्धि फल देन गुरू तुम मुक्ति करेवा ॥
गुरु केवट तुम होय करो भवसागर पारी।
जीव ब्रह्म करि देत हरो तुम व्याधा सारी ॥

श्री शुकदेव दयाल गुरु चरणदास के शीश पर ।
किरपा करि अपनो कियो सबही विधि सों हाथ धर ॥

॥ इति श्री गुरु चेला संवाद अष्टाङ्ग योग सम्पूर्णम् ॥

अथ श्री चरणदासजीकृत योगसन्देहसागर प्रारंभ

दो० अर्थ बतावो पण्डिता, ज्ञानी गुणी महन्त ।
जो तुम पूरे साधु हो, भक्त हरि के सन्त ॥१॥
चरणदास पूछे अरथ, भेदी होय कहो ।
समझो तो चर्चा करो, नाहीं मौन गहो ॥२॥
ब्रह्मण्डे सो पिण्डे जानो । ठौर ठौर घट में पहिचानो ॥
सात समुंदर घट में कहाँ । कछुवा रहै बतावो जहाँ ॥
शेषनाग केहि ठौर बिराजै । रूप बराह कौन छवि छाजै ॥
कहाँ चार काया में खान । चौरासी लख योनि बखान ॥
षट चक्कर को जो तुम जानो । नाम सहित सब भेद बखानो ॥
नाभि कुण्डली का परमान । कैसे जागै कहो बखान ॥
सहज सहज वह कहां समावे । योगी होय सो भेद बतावे ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव । सो तो जाने सबही भेव ॥
दो० कहाँ जु वासा पवन का, मन कौनी अस्थान ।
कहाँ हिये की आँखि है, कैसे करे पिछान ॥३॥
प्राणपुरुष अन्तर्गत[1] कैसे । क्यों करि भेद बताओ जैसे ॥
इड़ा पिंगला सुषुमन नारी । कैसे पलटैं बारी बारी ॥
आठ प्रकार के कुम्भक जाने । सो युक्ता[2] मेरे मन माने ॥

---

१ भीतर प्राप्त २ योगी ।

चार अवस्था[1] चार शरीरा[2] । वाणी[3] चारि नाम कहा वीरा ॥
कै प्रकार अजपा का जाप । कै अंगुल श्वासा का नाप ॥
क्यों आवे अरु क्यों वह जाय । याको ज्ञानी करो लखाय ॥
परा पश्यन्ती मध्यमाँ कहा । कहा वैषरी देह बता ॥
रणजीता का गुरु शुकदेव । सो तो जाने सब ही भेव ॥

दो० पद तीनों कहु विष्णु के, स्वप्ना जाग्रत भेद ।
बावन अक्षर देह में, पुष्पद्वीप कहाँ स्वेत ॥४॥

कहाँ इकीस काया में लोक । इन्द्र करे कहाँ नित भोग ॥
ब्रह्मादिक शिव कहाँ त्रिदेवा । का विधि उनको पावै भेवा ॥
षोड़श चन्द कहाँ परकाशा । बारह सूर्य्यन का कित वासा ॥
तारामण्डल कैसे दरशैं । त्रिकुटी संयम कैसे परशैं ॥
त्रिवेणी को कैसे पावै । ररंकार कहाँ शब्द जगावै ॥
वर्णो अक्षर ॐकारा । तासे भयो सकल संसारा ॥
जाका कीजे कैसे ध्यान । कौन दिशा अरु को अस्थान ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव । सो तो जाने सवही भेव ॥

दो० निर्गम सुगम भेद कहु, श्वास उसास बताव ।
काया में विष कहाँ है, बिन्दु कुण्ड दर्शाव ॥५॥

जीव ब्रह्म में केता बीच । कौन कौन काया में नीच ॥
अमृतकुण्ड कौन अस्थान । बङ्क नाल की कहु पहिचान ॥
ब्रह्मरन्ध्र का भेद लखाव । कामधेनु का वरण बताव ॥

---

१ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुर्या २ स्थूल सूक्ष्म कारण तुरीय ३ परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी ।

मानसरोवर ताल बताय । तामें हंसा कैसे न्हाय ॥
बिना सीप कहाँ उपजै मोती । बिना बीच कहाँ जगमग ज्योती ॥
बिन सूरज कहाँ नितही धूप । भँवर गुफा का कैसा रूप ॥
शून्य शिखर का कौधर द्वारा । कै खिरकी अरु कहा अकारा ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव । सो तो जाने सबही भेव ॥

दो० कहाँ दशों दिगपाल हैं, कहाँ इन्द्रिन के देव ।
अहार बास पँचतत्त्व को, बरणि बतावो भेव ॥६॥

काशी अरु मथुरा है दोय । कहाँ देह में कहिये सोय ॥
अड़सठ तीरथ घट में ज्यों कर । सबका गुरु पुष्कर है क्यों कर
कहाँ बसे वाई उद्यान । कहाँ बन्ध लागे उड्यान ॥
कहँ कपाट का कुन्जी ताला । द्वादश कला कौन मतवाला ॥
कण्ठ कूप उलटा है कौन । नेजू कहा बतावो जौन ॥
पनिहारी कहा कैसे भरैं । घड़िया कहा कहाँ भरि धरैं ॥
कै प्रकार अमृत का स्वाद । कौन ठौर सों अनहद नाद ॥
अग्र डोर कैसे करि पावे । मकर तारका भेद बतावे ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव । सो तो जाने सब ही भेव ॥

दो० बएट ताल का लम्ब का, और अम्ब का बोल ।
चारि वस्तु ये कौन हैं, इन्हें बतावो खोल ॥७॥

कौन कमल पर गुरू बिराजें । कै प्रकार अनहद धुनि बाजें ॥
कै बाणी हैं अनहद तूरा । जानेगा कोइ साधू पूरा ॥
तेजपुंज कै योजन आगे । अमरलोक कब बूझन लागे ॥
तीन शून्य कहाँ चौथा शून्न । जितही भूले पढ़ि अरु गून्य ॥

कै कहिये काया के द्वारे। भिन्न भिन्न कहु मेरे प्यारे ॥
बहत्तर हजार आठ सै चौंसठनारी। इनका भेदबहुत है भारी ॥
बहत्तर कोठे कहाँ कहाँ। नाम बतावो जहाँ जहाँ ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव। सो तो जाने सब ही भेव ॥
दो० सात द्वीप नौ खण्ड को, भिन्न भिन्न कहु भेद।
काया में केहि ठौर हैं, कहा नाम किस हेत ॥८॥
चौरासी बाई का नावँ। कहाँ कहाँ है कैसी दावँ ॥
जल का कोठा कीधर होय। कहाँ अग्नि का कहिये सोय ॥
ब्रह्म ज्वाल कहु कैसे जागे। किस आसन से निद्रा भागे ॥
किस आसन से वीरज जीते। दश मुद्रा कैसे कर नीते ॥
नाम रूप मुद्रौं का जान। तीन बंध का नाम बखान ॥
चौरासी आसन का नावँ। और बतावो मन के पावँ॥
स्वर्ग मर्त्य अरु कहाँ पताल। कहा सत्य अरु कहा तिताल ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव। सो तो जाने सबही भेव ॥
दो० कै प्रकार का योग है, कै प्रकार की भक्ति।
पाँच भूमिका ज्ञान की, सात कला का अर्थ ॥९॥
को नगरी का राज करै। को जीवे अरु कौन मरे ॥
पेट बड़ा किसका है जान। पूजा बड़ी ताहि पहिचान ॥
सब में बड़ा कौन आहार। ताको सुरता लेहु निहार ॥
ता बिन एक घड़ी नहिं रहे। भेदी होय सो भेद कहे ॥
सबमें बड़ी कहा जो पूजा। जाकी सम दीखे नहिं दूजा ॥
कहा सो सब को लग्गम लग्गा। कौन पुरुष सो भग्गम भग्गा ॥

कहा घटे सो घटेई घटे। कहा बढ़े सो बढ़ेई बढ़े॥
घटे न बढ़े सो वस्तु कहा। घटे बढ़े भी ताहि बता॥
चरणदास का गुरु शुकदेव। सो तो जाने सबही भेव॥
दो० चर के कहा जु अर्थ हैं, अच्चर देहु दिखाय।
निश्चर के रूप को, भिन्न भिन्न समझाय॥१०॥
ॐ कार का अर्थ बतावो। महत्तत्त्व का रूप दिखावो॥
मणिचकर का कैसा रंग। मन मनसा दोउ कैसे संग॥
कौन घाट हो लगे समाध। कित जा देखे खेल अगाध॥
चौबीस शून्य हैं जहाँ जहाँ। बज्जर ताला लागे कहाँ॥
वज्र द्वार बिन पावे कहा। बिन पाये उरले घर रहा॥
आठ महल का करो बखान। कासों कहिये पद निर्वान॥
जो तुम जानो ऊरधरेता। तो तुम भेद कहो अब केता॥
दीप मुद्रा अरु मुद्रा राज। जासों सुधरे काया काज॥
काया महल के जो तुम भेदी। ठौर ठौर कहु घट में जेती॥
पांच तत्त्व[1] की इन्द्री दस। यही बतावो आगे बस॥
चरणदास का गुरु शुकदेव। सो तो जाने सबही भेव॥
दो० चार दूध चौदह चौवारें, भेदी होय सो जाने।
चरणदास शुकदेव का बालक, सो यह भेद बखाने॥११॥

छप्पय

चंद कला कित छिपै बढ़ै जब कितसों आवे।
बादर कित सों होय फटे जब कहाँ समावे॥

---

१ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

दीप लोय बुझि जाय जाय कित मोहिं बतावो।
रात दिना कित जाय धुवाँ केहि ठौर लखावो॥
चरणदास शुकदेव सों पूछत है शिर नाय के।
तन छूटै जी जाय कित आवत है किहि ठौर ते॥

कवित्त

देखो है तमाशा देह समुझि के विचारि लेहु,
मूरख नर होय जो या बात में हँसैगो॥
चीते को मारि मृग नख शिख सुखाय गयो,
वाघनी को मारि वोक[1] सिंह को ग्रसैगो॥
बिल्ली को मारि चूहे प्रेम को नगारा दियो,
दादुर हू पाँच सर्प मारि के बसैगो॥
कहै चरणदास ऐसे खेल सों लगाई आस,
चिरिया के शीस टोरो बाज को लसैगो॥

दो० पग लागूँ शुकदेव के, और वारने जावँ।
गुप्त भेद मोसों कह्यो, सबै नावँ अरु ठावँ॥१२॥
सो तुम सों पूँछन करौं, हौं परखन[2] के दाय[3]।
या सागर संदेह को, दीजै अर्थ बताय॥१३॥

इति श्री महाराज साहिब श्री चरणदास जी कृत संदेहसागर संपूर्णम्

---

१ बकरा २ परीक्षा ३ लिए

मन सों ब्रह्म होय गति सोई । लक्षण जीव रहै नहिं कोई ॥
अचल सिंहासन जब तू पावै । मुक्तिखवासी चँवर ढुरावै ॥
आठौसिद्धि जहां कर जोरैं । सोहीं ताके मुख नहिं मोरैं ॥
निश्चल राज अमल करै पूरा । बाजै नौबत अनहद तूरा ॥
तीन तीन अरु कोटि अठासी । वै सब तेरीं करैं खवासी ॥
गुरु शुकदेव भेद दियो नीको । चरणदास मस्तक कियो टीको ॥
रणजीता यह रहनी पावै । थोथी करनी कथनि वहावै ॥

अथ योग का अंग ॥

राग करखा ॥

साधौ गुरु दया योग इह विधि कमायो ।

मूलको शोधि संकोच करि शङ्खिनी खैंचि आपान उलटो चलायो ॥ बन्ध पर बन्ध जब बन्ध तीनों लगैं पवन भइ थकित नभ गर्ज्जि आयो । द्वादशा पलटि करि सुरति दो दल धरी दशौ परकार अनहद बजायो ॥ रोंक जब नवन को द्वार दशवें चढ़ो शून्य के तख़्त आनँद बढ़ायो । सहस दल कमल को रूप अद्भुत महा अमीरस उमँग आ झरि लगायो ॥ तेज अतिपुञ्ज परलोक जहँ जगमगे कोटि छवि भानु परकाश लायो । उनमनी और चित हेत करि बसिरहो देखि निज रूप मनुवां मिलायो ॥ काल अरु ज्वाल जग व्याधि सब मिटि गई जीवसों ब्रह्मगति वेगि पायो । चरणदास रणजीत शुकदेव की दयासों अभयपद परशि अविगत समायो ॥ साधो पिण्ड ब्रह्माण्ड की शैल गुरु गमकरी परसिया युक्तिसों अलखराई । सहजही सहज पग धरा जब अगम को दशौपरकार झागड़ बजाई ॥ खोलि कापाट अरु वज्रद्वारे चढ़ो कलाके

भेद कुंजी लगाई । पहल के महलपर जाय आसनकिया दूसरे महलकी खबरि पाई ॥ तीसरे महलपर सुरति जा बसिरही महल चौथे दुही अमीगाई । पांचवें महल को साधु कोइ पाइहै महल छठवां दिया गुरु बताई ॥ सातवें महलपर कोटि सूरज दिये आठवें महल अविगति गोसाईं । रूप अद्भुत तहां देखि अचरज जहां देखिया दरश सब बिपति जाई ॥ शुकदेवकी सहासों धारण गहासो आपने पीवके भवन आई । चरणदास आपा दिया प्रेम प्याला पिया शीश सदके किया पूजि पाई ॥

साधो परसिया देश जहँ भेश नाहीं ।

घाट तिसलखि जहां बाट सूझै नहीं सुरतिके चांदने सन्त जाई ॥ चन्द षोड़शदिपै गंग उलटीबहैं सुषमना सेज पर लम्ब दमकै । तासुके ऊपरै अमी का ताल है झिलमिली ज्योति परकाश झमकै ॥ चारि योजन परे शून्य अस्थान है तेज अति पुंज परलोक राजै । द्वार पश्चिम धँसे मेरही दण्डहो उलटिकर आय छाजै विराजै ॥ नूर जगमग करै खेल अगाध है वेदकत्तेब नहिं पार पावैं । गुरुमुखी जायहैं अमरपद पाय हैं शीश का लोभतजि पन्थधावैं ॥ तीनसुन्न छेदि रण-जीत चौथे बसे जन्म अरु मरण फिरि नाहिं होई । चरणदास करि बास शुकदेव बकसीस सों पूज बेगमपुरी अमरसोई ॥

राग सोरठ ॥

ऐसा देश दिवानारे लोगो जाय सो माताहोय ।
बिन मदिरा मतवारे झूमैं जन्म मरण दुख खोय ॥
कोटि चन्द सूरज उजियारो रविशशि पहुंचत नाहीं ।
विना सीप मोती अनमोलक बहुदामिनि दमकाहीं ॥

बिन ऋतु फूले फूल रहत हैं अमृत फल रस पागो।
पवन गवन बिन पवन बहतहै बिन बादर झरिलागो ॥
अनहद शब्द भँवर गुंजारैं शंख पखावज बाजैं।
ताल घंट मुरली घनघोरा भेरि दमामें गाजैं॥
सिद्धगर्जना अतिही भारी घुंघुरू गति झनकारैं।
रम्भा नृत्यकरैं बिन पगसों बिन पायल ठनकारैं॥
गुरु शुकदेवकरैं जब किरपा ऐसो नगर दिखावैं।
चरणदास वा पग के परसे आवागमन नशावैं॥

राग सारंग व विलावल व सोरठ ॥

साधो अजब नगर अधिकाई।
औघट घाट वाट जहाँ बांकी उस मारग हम जाई॥
श्रवण विना बहु वाणी सुनिये बिन जिह्वा स्वर गावैं।
बिना नैन जहां अचरज दीखै विना अंग लपटावैं॥
विना नासिका बास पुष्पकी विना पावँ गिरि चढ़िया।
विना हाथ जहँ मिलो धायके बिन पाधा जहँ पढ़िया॥
ऐसा घर बड़भागी पाया पहिरि गुरूका बाना।
निश्चल ह्वैके आशा मारी मिटिगा आवनजाना॥
गुरू शुकदेव करी जब किरपा अनभय बुद्धि प्रकासी।
चौथे पद में आनंद भारी चरणदास जहाँ बासी॥

राग सोरठ ॥

सो गुरु बिन वह घर कौन दिखावै।
जिहि घर अग्नि जलै जलमाहीं यह अचरज दरशावै॥
कामधेनु जहाँ ठाढ़ी सोहैं नैन हाथ बिन दुहना।
घाये दूधा थोड़ा देवै भूखे दे पै दूना॥

पीवैं जन जगदीश पियारे गुरुगम बहुत अघावैं ।
मूरख कायर और अयोगी सोवैं नेक न पावैं ॥
अमृत अँचवै वा पद पहुँचै महातेजको धारै ।
होय अमर निश्चल ह्वै बैठे आवागमन निवारै ॥
भेद छिपावै तौ फल पावै काहू से नहिं कहिये ।
वह अद्भुत है ठौर अनूठी बड़भागन सों लहिये ॥
या साधन के बहु रखवारे ऋषि मुनि देवत योगी ।
करन न देवैं बुधि हरि लेवैं होय न गोरस भोगी ॥
लोभी हलके को नहिं दीजै कहै शुकदेव गुसाईं ।
चरणदास त्यागी वैरागी ताहि देहु गहि बाहीं ॥

सो गुरु गम मगन भया मन मेरा ।
गगन मण्डल में निज घर कीन्हो पंच विषय नहिं घेरा ॥
प्यास क्षुधा निद्रा नहिं व्यापी अमृत अँचवन कीन्हा ।
छूटी आस बास नहिं कोई जग में चित नहिं दीन्हा ॥
दरशी ज्योति परम सुख पायो सबही कर्म जलावै ।
पाप पुण्य दोऊ भै नाहीं जन्म मरण बिसरावै ॥
अनहद आनँद अति उपजावै कहि न सकूं गतिसारी ।
अति ललचावै फिरि नहिं आवै लगी अलख सों यारी ॥
हंस कमलदल सतगुरु राजै रुचि रुचि दरशन पाऊं ।
कहि शुकदेव चरणहींदासा सब बिधि तोहिं बताऊं ॥

राग मलार ॥

चहूंदिशि झिलमिल झलक निहारी ।
आगे पीछे दहिने बायें तल ऊपर उजियारी ॥
दृष्टि पलक त्रिकुटी ह्वै देखै आसन पद्म लगावै ।
संयम साधै दृढ़ आराधै जब ऐसी सिधि पावै ॥

बिन दामन चमकार वहुतही सीप विना लर मोती ।
दीपमालिका वहु दरसावैं जगमग जगमग ज्योती ॥
ध्यान फलै तब नभके माहीं पूरण हो गति सारी ।
चन्द घने सूरज अणकी ज्यों सू भर भरिया भारी ॥
यहतो ध्यान प्रत्यक्ष बतायो श्रद्धा होय तौ कीजे ।
कहि शुकदेव चरणहींदासा सो हमसों सुनि लीजे ॥

राग केदारा ॥

अवधू सहस दल अब देख ।
श्वेत रँग जहां पंखरी छवि अग्र डोर विशेख ॥
अमृत वरषा होत अतिझरि तेज पुंज प्रकास ।
नाद अनहद बजत अद्भुत महाब्रह्म विलास ॥
घंट किंकिणि मुरलि वाजै शंखध्वनि मनसान ।
ताल भेरि मृदंग वाजत सिन्धुगर्जन जान ॥
कालको जहाँ पहुँच नाहीं अमर पदवी पाव ।
जीति आठो सिद्धि ठाढ़ी गगन मध्ये आव ॥
करै गुरु परताप करणी जाय पहुंचै सोय ।
चरणदास शुकदेव कृपा जीव ब्रह्म होय ॥

राग धनाश्री ॥

सो गुरुगम इहि विधि योग कमायो ।
आसन अचल मेर कियो सीधो कसि बँध मूल लगायो ॥
संयम साधि कला वश कीन्ही मन पवना घर आयो ।
नो दरवाजे पट दै राखे अर्द्ध ऊर्ध्व मिलायो ॥
नाभि तलै पैंड़ो करि पैठे शक्ति पताल गई है ।
कांप्यो शेष कमठ अकुलायो सायर थाह दई है ॥

---

१ आकाश २ कछुवा ॥

उलटि चले मठ फोरि इकीसौ गये अभय पद माहीं ।
अति उजियारो अद्भुत लीला कहन सुनन गम नाहीं ॥
जित भयेलीन सबै सुधि बिसरी छूटी जगत बियाधा ।
चरणदास शुकदेव दयासों लागी शून्य समाधा ॥

सो साधो ऐसी योग युक्ति गति भारी ।
मूलहि बंध लगाय युक्ति सों मूंदि लई नौनारी ॥
आसन पद्म महादृढ़ कीन्हो हिरदय चिबुके[1] लगाई ।
चंद सूर दोउ सम करि राखे निरति सुरति घर आई ॥
ऊपर खैंचि अपान सहज में सहजै प्राण मिलाई ।
पवन फिरी पश्चिम को दौरी मेरुहि[2] मेरु चलाई ॥
ऐसेहि लोक अमर पद पहुँचे सूरज कोटि उज्यारी ।
श्वेत सिंहासन सतगुरु परशे करि दरशन बलिहारी ॥
आपा बिसरि परम सुख पायो उनमनी लागी तारी ।
चरणदास शुकदेव दया सों जन्म मरण छुटि बारी ॥

राग मलार ॥

वा पद रामसों करि नेह ।
विषकी बूंद न पइये जित ह्वां बरषत अमृतमेह ॥
चमकत बिजुली गरजत गगना बाजत अनहद घोर ।
यहमन थकत गलतजित पाँचो मिटिहैं निशि अरुभोर ॥
जाग्रत मिटि है स्वप्नो मिटि है मिटिहु सुषोपत जाय ।
षट ऋतु पइये नाहिंन अवधू एकहि रस दर्शाय ॥
बिनहीं जोते बिनहीं बोये उपजत खेत है धीर ।
लागत अचरज फल महँ मुक्ता बिनहीं सींचे नीर ॥
राजा गुरु शुकदेव न बांटै सबहि करैं बकसीस ॥

---

१ दाढ़ी २ मेरुदंडनाड़ी वह है जो पृष्ठभाग से सीधी शिरतक चलीगई है ।

चरणदास रास सब पावैं मिलि है बिस्वेबीस ॥

राग सोरठ ॥

अवधू ऐसी मदिरा पीजै।
बैठि गुफामें यह जग बिसरै चंद सूर सम कीजै ॥
जहाँ कलाल चढ़ाई भाठी ब्रह्म ज्वाल परजारी।
भरि भरि प्याला देत कलाली बाढ़ै भक्ति खुमारी ॥
माता हो करि ज्ञान खड्ग लै काम क्रोध को मारै।
घूमत रहै गहै मन चंचल दुबिधा सकल बिड़ारै ॥
जो चाखै यह प्रेम सुधारस निज पुर पहुँचै सोई।
अमर होय अमरापद पावै आवागमन न होई ॥
गुरु शुकदेव किया मतवारा तीनि लोक तृण बूझा।
चरणदास नहीं रही वासना आनँद आनँद सूझा ॥

राग सारंग ॥

पीवै कोई यह प्याला मतवारा।
सुर नर मुनि जा मदको तरसैं गुरुबिन लहै न बारा ॥
शूदर के घर भाठी औटै ब्रह्मा अग्नि जलाई।
शिव शोधैं अरु विष्णु चुवावैं पीवैं साधु अघाई ॥
सीता प्याला भरि भरि देवैं हनूमान हंकारैं।
व्यास शेष नारद सनकादिक किरिया नाहिं विचारैं ॥
नवधा नेम औ संयम पूजा बिसरी सब कहा कहिये।
घूमत रहैं महारस चाखे स्वर्गमुक्ति ना चहिये ॥
श्रीशुकदेव सुधारस अमृत नितप्रति अँचवन कीन्हा।
चरणदास पर किरपा करिकै निजप्रसाद करि दीन्हा ॥

साधो यह प्याला मतवार है ।
अचवैगा कोइ योगयुगन्ता चित आस्थिरमन मारिहै ॥
चन्द सूर दोउ समकरि राखै ब्रह्मज्वाल अन्तर बरै ।
मुद्रा लगै खेचरी जबहीं वङ्क नाल अमृत झरै ॥
भँवर गुफा में भाठी औटै भभक भभक सुषमन चुवै ।
सुगुरा पी पी रहित भये हैं बिन पीये उपजैं मुये ॥
शिव सनकादिक नारद शारद औरपिया नौ नाथहै ।
सिधि चौरासी हरिपदवासी मगन भया सव साथहै ॥
रामानन्द कवीर नामदे अमर हुये जिन जिन पिया ।
गुरु शुकदेव करी जव किरपा चरणदासको सो दिया ॥

राग धनाश्री ॥

जो जन अनहद ध्यान धरै ।
पांचौ निर्बल चञ्चल थाके जीवतही जु मरै ॥
शोधे मूलबन्ध दै राखै आसन सिद्ध करै ।
त्रिकुटी सुरति लाय ठहरावै कुम्भक पवन भरै ॥
घन गरजे अरु विजुली चमकै कौतुक गगन धरै ।
वहुत भांति जहां वाजन बाजैं सुनि सुनि सन्ध अरै ॥
सहज सहज में हो परकाशा बाधा सकल हरै ।
जग की आस बास सब टूटैं ममता मोह जरै ॥
शून्य शिखर पर आपा विसरै काल सों नाहिं डरै ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं सव गुण ज्ञान गरै ॥

तवते अनहद घोर सुनी ।
इन्द्री थकित गलित मन हूवो आशा सकल भुनी ॥
घूमत नैन शिथिल भइ काया अमल जु सुरति सनी ।
रोम रोम आनन्द उपजि करि आलस सहज बनी ॥

मतवारे ज्यों शब्द समायो अन्तर भीज कनी।
भर्म्म कर्म्म के बन्धन छूटैं दुबिधा बिपति हनी॥
आपा बिसरि जक्त को बिसरो कितरहिं पांच जनी।
लोक भोग सुधि रही न कोई भूलो ज्ञान गुनी॥
हो तहाँ लीन चरणहिंदासा कहैं शुकदेव मुनी।
ऐसो ध्यान भाग्य सों पइये चढ़ि रहै शिखर अनी॥

राग बिलावल॥

घट में खेलि ले मन खेला।
सकल पदारथ घटही माहीं हरिसों होय जुमेला॥
घट में देवल घट में जाती घट में तीरथ सारे।
वेगहि आव उलटि घटमाहीं बीतैं परबीन्हारे॥
घट में मानसरोवर सू भर मोती और मराला।
घट में ऊंचा ध्यान शब्द का सोहं सोहं माला॥
घट में बिन सूरज उजियारा राति दिना नहिं सूझै।
अमृत भोजन भोग लगंत है बिरलाजन कोइ बूझै॥
घठ में पापी घट में धर्म्मी घट में तपसी योगी।
गुण अवगुण सब घटही माहीं घटमें वैद्य अरु रोगी॥
रामभक्ति घटही में उपजै घट में प्रेम प्रकासा।
शुकदेव कहैं चौथापद घट में पहुँचे चरणहिंदासा॥

राग बिलास॥

घट में तीरथ क्यों न नहावो।
इतउत डोलो पथिक बनेही भरमि भरमि क्यों जन्म गवांवो॥
गोमती कर्म सुकारथ कीजे अधरम मैल छुटावो।
शील सरोवर हितकरि न्हइये काम अग्निकी तपनि बुझावो॥
रेवा सोई क्षमा को जानौ तामें गोता लीजें।

तन में क्रोध रहन नहिं पावै ऐसी पूजा चित्तदै कीजै ॥
सत यमुना संतोष सरस्वति गंगा धीरज धारो ।
झूठ पटकि निर्लोभ होय करि सबही बोझा शिरसों डारो ॥
दया तीर्थ कर्मनाशा कहिये परसे बदला जावै ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं चौरासी में फिरि नहिं आवै ॥

राग विभास ॥

घट में तीरथ यों तुम न्हावो ।
तिनकेन्हान अमरपद पहुँचो आदि पुरुष निश्चय करिपावो ॥
काशी सो तत करणी कीजै कलिमल सकल नशावो ।
रहनि गहनि पुष्कर को जानो यामें मज्जन क्यों न करावो ॥
ध्यान द्वारका दृढ़ करि परसो हितकी छाप लगावो ।
इन्द्रीजित सोइ बदरीनाथा यह गति सतकरि चिन्हमें लावो ॥
भँवर गुफा में है तिर्बेणी सुरति निरति लै धावो ।
योग युक्ति सों डुबकी लेकरि काग पलटि हंसा है जावो ॥
तन मथुरा अरु मन वृन्दावन तामें रास रचावो ।
हिरदयकमल खिले परकाशादरशन देखि अधिकहुलसावो ॥
गुरु चरणन में सबही तीरथ सिमिटि सिमिटि तहाँ आवो ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं अपनो मस्तक भेंट चढ़ावो ॥

राग पर्ज ॥

सुधारस कैसे पइये हो ।
कूप[1] कहां केहि ठौर है कैसे करि लहिये हो ॥
नेजू कित कित गागरि कित भरने वारी हो ।
कैसे खुलै कपाट ही को ताला ताली हो ॥
कौन समै किस गृह बिषे अँचवै किन माहीं हो ।

---

१ कुवाँ

तुम से जानै भेद को अरु बहुतक नाहीं हो ॥
पीकरि किस कारज लगै अरु स्वाद बतावो हो ।
फल याका कहि दीजिये सब खोलि जतावो हो ॥
शुकदेव सो पूछन करैं यह चरणहिंदासा हो ।
किरपा करिकै कीजिये मेरि पूरी आशा हों ॥

गुरू हमारे प्रेम पिआयो हो ।
तादिन ते पलटो भयो कुल गोत नशायो हो ॥
अमल चढ़ो गगनै लगो अनहद मन छायो हो ।
तेज पुंजकी सेज पै प्रीतम गल लायो हो ॥
गये दिवाने देसड़े आनँद दरशायो हो ।
सब किरिया सहजै छुटीं तप नेम भुलायो हो ॥
त्रैगुणते ऊपर रहूं शुकदेव बसायो हों ।
चरणदास दिन रैन नहिं तुरियापद पायो हो ॥

राग जैजैवंती ॥

ऐसी जो युक्ति जानै सोई योगी न्यारा। आसन जो सिद्धि करै त्रिकुटी में ध्यान धरै बिना तेल दिया बरै ज्योति हूँ उज्यारा ॥ संयम सँभाल साधै मूल द्वार बन्ध बांधै शंखनी उलटि साधै कामदेव जारा । प्राण वायु हिये माहीं खेंचिकै अपान लाहीं दोऊ नीके मिलि जाहीं ऐसा खेल धारा ॥ कुँभक अथक राखै अनहद ओर ताकै सुषमन पैठि नाकै आगे जो विचारा । खोलि कै कपाट सिरा कोऊ चढ़ शूरवीरा कामधेनु जावै तीरा अमी को उतारा ॥ उनमनी जाय लागै निज गृह माहीं जागै जन्म मरण भागै छूटै जग भारा । गुरुशुकदेव कहै करणी यही विधि लहै चरणदास होय रहै आप को सँभारा ॥

राग सोरठ व सारंग ॥

पांचन मोहि लियो बलिमा ।
नासा त्वचा और श्रवणीया नैनन अरु रसना ॥
एक एक ने बारी बांधी गहि गहि लै लै जाहिं ।
निशिदिन उनहीं के रस पागो घरमें ठहरत नाहिं ॥
अलि पतंग गज मीन मृगा ज्यों होय रह्यो पराधीन ।
अपनो आप सँभारत नाहीं विषय वासना लीन ॥
हौं कुलवन्ती टोना सीखो अनहद सुरति धरूं ।
गगन मँडल में उलटा कूवां तासों नीर भरूं ॥
भँवर गुफा में दीपक बारौं मन्तर एक पढ़ूं ।
काम क्रोध मद लोभ मोहकर लालन चित्त हढ़ूँ ॥
यतन यतन करि पीव छुटाऊं फिर नहिं जाननदूं ।
चरणदास शुकदेव बतावैं निज मनहीं करलूं ॥

राग सोरठ ॥

तू सदा सोहागिनि नारी है ।
पियके संग मिली मद पीवै ताते लागत प्यारी है ॥
भँवरगुफा में भँवनबनावो बिन घृत ज्योती-जारी है ।
सुषमन सेज महा सुखदायी भोगत भोग दुलारी है ॥
वशकियो कंथा चलै न पंथा टोनाडारो भारी है ।
आठ पहर तुम्हरे रँग राचो हमको मिल न वारी है ॥
पति मनमानी सो पटरानी सोई रूप उजारी है ।
हम चारो जो सौति तुम्हारी तुम गुण आगे हारी है ॥
चरणहिंदास भई त्वहिं सेवैं लगीरहै नितलारी है ।
शुकदेवा शिर छत्र हमारो सो वशभयो तुम्हारी है ॥

राग बिलावल ॥

करणी की गति और है कथनी की औरै ।
बिन करणी कथनी कथैं बकवादी बौरै ॥
करणी बिन कथनाइसी ज्यों शशिबिन रजनी ।
बिन शस्तर ज्यों शूरिमा भूषण बिन सजनी ॥
ज्यों पण्डित कथि कथि भले वैराग सुनावैं ।
आप कुटुम्ब के फँद पड़े नाहीं सुरझावैं ॥
बांझ झुलावैं पालना बालक नहीं माहीं ।
वस्तु विहीना जानिये जहाँ करणी नाहीं ॥
बहुडिंभी करणी विना कथि कथि करि मूये ।
सन्तो कथि करणी करी हरिकी सम हूये ॥
कहैं गुरू शुकदेवजी चरणदास विचारो ।
करणी रहनी दृढ़ गहो थोथी कथनी डारो ॥

हेली ॥

पांचसखी ले लार हेली काया महल पगधारिये ।
योगयुक्तिडाला करौरी अरी हेली प्रान अपान कहार ॥
कुंज कुंज सब देखियेरी अरी हेली नानाबाग बहार ।
मानसरोवर न्हाइये सदा वसन्त निहार ॥
विनासीप मोतीबनेरी अरीहेली बिनागूंद फूलनहार ।
बिन दामिनि चमकारहे बिन सूरज उजियार ॥
अनहद उत बाजे बजैंरी अचरज बहुतक ख्याल ।
तेजपुंज की सेजपै कागा होहिं मराल ॥
श्रीशुकदेव कृपा करैं जब पावै यह भेद ।
चरणदास पियासों मिलै छुटैं जगत के खेद ॥

योग युक्ति करि लेहि हेली जो चाहै हरिसों मिलो ।
आसन संयम साधि कैरी गगनमंडल करि गेह ॥
उलटी दृष्टि चढ़ाइयेरी होय सूरज परकाश ।
करम भरम सबही जरैं सहजछुटै जग आश ॥ १ ॥
प्राण अपान मिलायकैरी मूलबन्धको बांधि ।
रसना उलटि लगाइये सुरति उर्ध्व को साधि ॥ २ ॥
बङ्क सुधारस पीजिये अनहदहो गलतान ।
भँवर गुफा दृढ़ बैठिके शून्य शिखर को ध्यान ॥ ३ ॥
सुषमन मारग ह्वै चलौरी जब पहुँचौ निजधाम ।
अचल सिंहासन श्वेत है जहां विराजैं राम ॥ ४ ॥
यह साधन शुकदेव कीरी जो कोई जानैं साध ।
चरणदास अविगति लहै देखै खेल अगाध ॥ ५ ॥

अथ वैराग का अंग ॥

राग मंगल ॥

चला चली जगठाट अचल हरिनाम है ।
माल मुल्क चलि जाय जाय रज धाम है ॥
तेल फुलेल लगाय बहुत सुन्दर गए ।
नानाकरते भोग सोभी नर ना रहे ॥
तेज तमक और रूप जाय योवन घना ।
सकल बराती जायँ जायँ दुलहिनि बना ॥
रोगी रोग अरु वैद्यजाय औषधि भले ।
ज्योतिषपुस्तक तूट बिनस रज हो मिले ॥
ज्ञानी पण्डित पीर अधिक बेवश गले ।

अथ खेचरी लीला

शिष्यो वाच

दोहा

एक वार फिर भी कहो , मुद्रा पांच दयाल ।
मोसे रंक अधीन पै , होकर बहुत कृपाल ॥

गुरू बचन

अष्ट पदी

आगे मुद्रा तोहि , कहैं समझाइयां .
फिर भी कहों अब खोल , सुनो चित लाइयां ;
पहिले मुद्रा खेचरी , की साधन भनूं .
जैसे आगे करी , सभी ऋषि मुनि जनूं ;
तातें जलके कुल्ले कर , जब गाइये .
ता पीछे चौ वस्त को, चूर लगाइये ;
जीभ हाथ सों पकड़ , मर्दन छीलन करे .
दोहन तानन करे , बहुरि दशनन धरे ;
फिर कर चाल ताहि , छेदनहिं कीजिये .
तन्तू ज्यों कट जाय , यतन सोइ कीजिये ;
ब्रम्ह रंध्र को धोयके , मल निरवारिये .
वाम अँगूठा ऊपर , काग को धारिये ;
सहस सहज सरकाय , जु आगे लाइये .
यह सब साधन कठिन , गुरू सों पाइये ;
दो अंगुली की कुची सों , कर मेलना .
जिभ्या उलटी राखि , जु नित प्रति खेलना ;

यह उपाय षट मास, करे तज मानही.
रसना यो बढ़ जाय, चढ़ै अस्थान ही;

दोहा

चार काज यासों सरैं, फल दायक बहु भांति।
योग माहि बड़ि भूप हैं, अधिकी ताकी क्रांति॥

अष्ठ पदी

एक जु प्राणायाम, जीभ सों कीजिये.
दुजे बंध उडियान, याही सो दीजिये;
तीजे करकर ध्यान, निरख जहां ज्योतिही.
चौथे अमृत पिय खुले, जहां सों तहीं;
खैंचे त्रिकुटी पाट, सहज अरु फेरिये.
द्रवै सुधारस नीर, जहां मन घेरिये;
अमृत ही के स्वाद, कौन बखानई.
जो कोई अँचवै हंस, सोई गुण जानई;
दिन दिन पलटै देह, रक्त दूधा भवै.
बीस वर्ष अरु, चार माहिं ऐसा हवै;
इच्छा चारी होय, बरष छत्तीस में.
सब लोकन में जाय, जु अपनी शक्ति तें.

दोहा

जेते बिष व्यापे नहीं, रोग न दहै शरीर।
जो कोइ पीवै युक्ति सों, काम धेनु का चीर॥
भूख प्यास अरु नींद के, रहै न तीनों लेव।
नाद बिंद गुटका बधै, कहैं यही शुकदेव॥
तीन महीने चार का, बालक गोदी माय।
ना वह पीवै नीरही, अन्न नहीं वह खाय॥

वह तौ जीवे दूध सों , बाकौ वही जु काम ।
लगा रहै माता कुचन , बिसरै एक न याम ॥
अमृत पीवे योगिया , ऐसा चरणहिदास ।
पहरहु वह छांड़े नहीं , काम धेनु का पास ॥
ऐसे धारे तो बने , सुधा रसीला संत ।
दिब काया हो जाय जब , धनि कह कमला कंत ॥
आठ पहर लागा रहे , पीवै कै कर ध्यान ।
मैं कहा जैसाही बनै , परसै पद निर्बान ॥
भेद गुरू से पै लहै , और छिपावे वाहि ।
जो जो फल याके अधिक , होय परापत ताहि ॥
योगेश्वर अरु देवता , मुनी ऋषीश्वर जान ।
रखवारे याके घने , करन न देवे ध्यान ॥
टेक गहो तो जा पिये , और करे वहां ध्यान ।
यती सती अरु गुरु मुखी, जाकी ऐसी आन ॥
बड़ी जु मुद्रा खेचरी , मुख में याको वास ।
कही जु मैं शुकदेव ने , जानहु चरणहिदास ॥

अथ भूचरी मुद्रा

दूजी मुद्रा भूचरी , नाशा जाको बास ।
प्राण अपान जुदी २ , इक कर चरणहिदास ॥
जित की तित रख प्राण को , वा घर लाय अपान ।
ताहि मिलावे युक्ति सों, करि २ संयम ध्यान ॥
जब वह जीते पवन को , मन चंचल ठहराय ।
गगन चढ़न की आश हो , कह शुकदेव सुनाय ॥
गुदा द्वार बंध दीजिये , एड़ी पांव लगाय ।
आसन सिद्ध जु कीजिये, मन पवना बश लाय ॥

अपान वायु तब बश भवै , ऊरध खैंच चलाय ।
शनैं शनैं जाकर चढ़े , प्राण वायु हो जाय ॥

अथ चाचरी मुद्रा

तीजी मुद्रा चाचरी , जाकी नैनन वास ।
नाशा आगे दृष्टि को , राखो मन धर आश ॥

चौपाई

अंगुल चार नाशिका आगे , चित अस्थिर कर देखन लागे .
खोले पांच तत्व कर कोई , मन अरु पवन जहां थिर होई .
फिर वां ते नाशा पर आवे , अचल टकटकी तहां लगावे .
जहँ बहुतक अचरज दरशावे , विभौ स्वर्ग की आगे आवे .
तित सों पलटे त्रिकुटी माही , ध्यान करे कहुं अंत न जाही .
दीरघ तारा सा परकाशै , उदय होय सूरज ज्यों भासै .
चित चेतन दोउ मेला करे , लै उपजे अरु दुविधा हरे .
यही चाचरी मुद्रा जानो , चरणदास याको पहिचानो .

अथ अगोचरी मुद्रा

कहौ अगोचरी चौथी मुद्रा , तामें सुख पावे योगिन्द्रा .
या मुद्रा का सर्व न वासा , शुकदेव कहैं सुन चरणहिदासा .

दोहा

ज्ञान सुरति दोऊ कहो , पलट अगोचरि जाय ।
शब्द अनाहद में रतें , मन इन्द्री थिर पाय ॥

अथ उनमुनी मुद्रा

मुद्रा पंचम उनमुनी , द्वार दशम में वास ।
सिद्ध समाधि मिलै जहां , दग्ध होय सब आश ॥
आनंदहि आनँद जहां , तहां न काल कलेश ।

तीनों गुण नहिं पाइये, वहां न माया लेश ॥
जीबातमा परमातमा, होय जाय वा ठौर ।
ध्याता ध्यान न ध्येय जहँ, तहां न किरिया और॥

अथ महाबंध साधन विधि

चौपाई

महा बंध तोहिं पहिल बताऊं, पाछे मूल बंध समझाऊं.
बायों पाव सियन गहि दीजे, मूल द्वार एड़ी बंध कीजे.
दहिनी जंघ जंघ पर लावे, गउ मुख आसन नाम कहावे.
राखै चिबुक हिये पर लाय, पवन राह पूरब को जाय.
ध्यान त्रिकुटी संयम करे, प्राण वायु हिरदे में धरे.
महा बंध ऐसे कर साधे, गुरू प्रताप याहि आराधे.
बिना पुरुष त्रिया को जानो, बंध बिना मुद्रा पहिचानो.
निष्फल जाय पुरुष बिन नारी, महा बंध बिन मुद्रा धारी.
माहिं कंठ के ध्यान लगावे, सुरति निरति कर वहि ठहरावे.

दोहा

महा बंध आस्थित करे, सो योगी हो जाय ।
पवन पंथ मुद्रित करे, ध्यान कंठ में लाय ॥

चौपाई

शसिघर को सूरज घर लावे, रेचक पूरक पवन फिरावे.
महां बंध करे अभ्यासा, अमृत अँचवै बुझै पियासा.
जरा मृतु देही नहिं आवे, महा बंध तीनों गुण पावे.
जठर अग्नि परचै बहु भारी, निसि दिन माहिं करे अठवारी.
पहर पहर में पवन भरीजे, प्रथम अल्प अभ्यास करीजे.
त्रिया सेवन तापन नहिं करे, काम अग्नि काया नहिं जरे.

दोहा

ऐसी बिधि साधे पवन , योग पंथ धर पाय ।
पहर पीछला उन यतन , आयुर्दा बढ़ जाय ॥

अथ मूल बंध

मूल बंध अब कहत हों , अपान वायु बश होय .
ऊपर को खेचन करे , मिले प्राण में सोय ;
कमल कमल सीधे भवै , नाभि तले है राह .
आगे मारग सुगम हो , पहुंचे योगी नाह ;

चौपाई

मूल बंध गुण ऐसा होई , वायु अधोगत जाय न कोई .
रेता ऊरध यासों सधै , दिन दिन आब सबाई बधै .
यासों कारज सब वनि आवे , रोग रक्त के सभी नशावें .
योगी पहिले यह आराधे , अपान वायु को नीके साधे .
अबमैं मूल बंध बतलाऊं , ज्यों का ज्यों साधन दिखलाऊं.
गुदा वास याको तुम जानों , गुदा द्वार बंध देना ठानो .
बामें पांव की एड़ी सेती , मूल द्वार रोके केहि हेती .
ऊरध ही को खैंचन कीजे , शुक देव कहै नीके सुन लीजे .
अरु कवहूं मन ऐसी धरे , आसन पद्मा कर को करे .
कपडे की इक गेंद वनावे , गुदा मध्य कस बंध लगावे .
यो भी वायु सधै यह भांती, जो पै लगा रहै दिन राती .
पवन तलें की ऊपर आवै , प्राण अपान सहज मिल जावे .
नाद विंद मिल जावें दोऊ , एक वरष साधै जो कोऊ .
योग माहिं ये भी पर धाना , बुड्ढा देह पलट हो ज्वाना .
जठर अग्नि बाढै अधिकाय , जो चाहै तो बहुतहि खाय .
सुन चरणदास कहै सुखदेव , जो गुरु पूरा देवै भेव .

अथ जलंधर बंध

दोहा

मूल बंध तोसों कहा, गुण हू सब समझाय।
बंध जलंधर कहत हों, सुनहु श्रवण कर चाय ॥

चौपाई

तीजा बंध जलंधर जानो, कंठ बास जाको पहिचानो.
ग्रीवा लटक चिबुक हियलावे, कंठ पवन रोके परिचावे.
हृदय प्राण पूर्ण करि रहिये, बंध जलंधर यासों कहिये.
ऊर्ध पवन नीचे को जाय, अरध पवन ऊरध को लाय.
उदर मध्य लै ताहि बिलोय, ब्रम्ह रंध्र जा पहुचे सोय.
यह बिधि ब्रह्म पंथ को धावे, सहज २ ही मध्य समावे.
जरा मरन जहँ भय नहिं व्यापै, लहै अमर पद ह्वै रह आपै.
चरणदास शुक देव वतावें, जो पै बंध उडान लगावें.

अथ उड़ान बंध

दोहा

उडान बंध आगे कहा, जिह्वा उलट लगाय।
कान आंख मुख नाक के, स्वर सब बन्ध कराय ॥
यह सुबंध महिमा अधिक, लागे वज्र किवाड़।
सात द्वार की बाट हो, निकसे नाहिं बयार ॥
पांचो मुद्रा बंध सब, दिखलाया यह देश।
शुक देव कहैं रनजीत सुन, और कहूं उपदेश ॥

इति उडान बंध

अष्ट पदी

चौरासी ही जान, जु आसन योग के.
सिद्ध पद्म तिन माहिं, बडे जो थोक के;
बहु नारिन के माहिं, जु नौ नारी भनी.
तिन में सुषमन जान, बड़ी गुरु सों सुनी;
तीन बंध के मांहिं, मूल को जानिये.
मुद्रा ही में बड़ी, खेचरी मानिये;
वायुन में परधान, प्राण को देखिये.
सब कुंभक हू मांहि, केवल बड़ लेखिये;
बाणी चारों मांहिं, पराही गाइये.
चार अवस्था माहिं, तुरिय बड़ पाइये;
परम शून्य को ध्यान, परे सों है परे.
याकी सम कोई नाहिं, ध्यान तिन को धरे;
अजपा ही के जाप, बराबर और ना.
शील दया सो मीत, न कोई देहमा;
पूजन में बड़ी जान, जु आतम की करे.
ज्ञान समान न पुन्य, सकल बिपदा हरे;
गुरु सा रक्षक और, नहीं कोई लोक में.
योग युक्ति सा स्वाद, नहीं कोई भोग में;
कहें गुरू शुक देव, सुनों रनजीत ही.
बड़ी बड़ी जो गांस, खोल तुम को जु दी;

छन्द

अमरी करतें वजरी रोके, वजरी कर तें वाई.
रोके छींक साधना करके, नाश लेय जुमुहाई;
जल संयम सों नभ को देखे, संयम नाद सोंजोती.
संयम पवन होय थिर काया, सो वस राखे मोती;

जिया बिछावे मृतक ओढ़े, बुद्धी होय न काया.
संयम नींद विंदु नहिं जावे, यह शुक देव बताया;
दहिन स्वर में भोजन कीजे, बायें स्वर में पानी.
दहिने सुर में अमरी रचे, देह न होय पुरानी;
दहिने स्वर में जल सों न्हावे, बाये स्वर में लंघी.
सब आसन सों सोवन कीजे, नारि न कीजे संगी
पावक सों तापन नहिं कीजे, जो तापे तो नैना.
भोजन गर्म न खट्टा खावे, फटे भिरे नहिं मैंना;

दोहा

गर्म्मी ही के रोग में, चंद चला रवि बन्द।
शीत रोग सूरज चला, शसिघर राखे वन्द॥
तीन रोज के पांच दिन, के दिन राखे सात।
रोग देख जैसी करे, होय निरोगी गात॥
सूरज रात चलाइये, दिवस चलावे चन्द।
पवन फिर ऊषा वधे, श्वासा चले जो मन्द॥
कान आंख अरु दांत के, सब ही रोग भजांहिं।
श्याम वार नहिं श्वेत हों. करे जो नीके भाहि॥
रूई पुरानी बहुत ही, दिन को दहिने राख।
बायें राखे रात कों, खोल साधना भाखि॥
शीत उष्ण व्यापे नहीं, विष नहिं व्यापिक होय।
बीस बर्ष साधन किये, रहे विकार न कोय॥
बासा ग्रिष्ट न खाइये, सुत्तम कर आहार।
जल बहुतक पीवे नहीं, सपरस करे न नार॥
तन मन साधे बचन ही, पाप न लागन देह।
शुक देव कहैं चरणदास सुन, अधिकी साधन येह॥
सव जीवन सुख दीजिये, सब में मीठा बोल।

आतम पूजा कीजिये, पूजा यही अमोल ॥
दया पहुप चंदन नवन, धूप दीप है मन्न ।
भांति भांति नैवेद सों, करो देव परसन्न ॥
जो कोइ आवे राजसी, देव बड़ाई ताहि ।
जाकों देखो तामसी, करो नमनता वाहि ॥
जो कोई होवे सात्विकी, मिलो ताहि तजि मान ।
ग्रन्थि खोल चरचा करो, लेहु तत्व मत छान ॥
सबही को परसन्न कर, आप रहो परसन्न ।
वास लहो हरि धाम ही, यहां कहैं सब धन्न ॥
राजस तामस सात्विकी, क्षेत्र तीन ही भांति ।
क्षेत्रज्ञ आतम देव है, सब की सहिये क्रांति ॥
सब में देखे आप कों, सब कों अपने मांहिं ।
पावे जीवन मुक्ति को, यामें संशय नाहिं ॥
सब में देखे आतमा, अपने में कर ध्यान ।
यही ज्ञान ब्रह्मज्ञान है, येही है विज्ञान ॥
अहंकार मिटे से ब्रम्ह हो, परमातम निर्वान ।
शुकदेवा हों कहत हों, चरणदास हिय आन ॥
जो तें पूछा सो कहा, भेद कहा सब खोल ।
और तेरे हिय में कछू, सकुच खोल कर बोल ॥

शिष्यो वाच

आपना लखि किरपा करी, समझाया बहु भांति ।
भाग ओर ते गुरू जी, हिय में आई शांति ॥
तुम्हरी क्या अस्तुति करों, मोपै कही न जाय ।
ऐसी शक्ति नहिं जीभ को, महिमा कहै बनाय ॥
किरपा करी अनाथ पै, तुम हो दीनानाथ ।
हाथ जोर मांगूं यही, मम सिर तुमरा हाथ ॥

05:28
Charanadasi Samprada...
423/883

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत कबीर की भाँति इनका भी एक गूढ़ार्थ पद उदाहरण के रूप में यहाँ उद्धृत है—

साधो अचरज एक लखाया, काहू बिरले जन ने पाया।
ऊपर कूप तले पनिहारी, नीर भरै निस प्राता॥
नजर नैन बिन सूझ अनूठा, तहाँ नहीं दिन राता॥
बागन ही वृक्ष लगै अमोलक, सींच बिना हरियाली।
फूल खिले बहु रंग बिरंगे, मूल पात बिनु डाली॥
गगन माँहि एक धेनु बिराजै, अमी देत नहि खावै।
गुरुमुख आवै और जुगत सों, जनम मरन छूट जावै।
जोग साध यह खेल निहारा, निपट अगोचर भेवा॥
नवनदास हित चित तें करिया, अलख पुरुष की सेवा॥[1]

श्री नवनदास के पदों में अनेक राग-रागिनियों का प्रयोग किया गया है। उनमें पर्याप्त विषय-वैविध्य भी है परन्तु कवि का ध्यान गुरुमहिमा और मुरली-महिमा के गान पर तथा आत्मनिवेदन एवं विरहनिवेदन पर अपेक्षाकृत अधिक केन्द्रित है। कुछ पदों की प्रथम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१. गुरु बिन बाधा कौन हरै।
२. सुमर मन राधा कृष्ण कृपाल।
३. बंसी तू है कामनगारी।
४. परमानन्द निधान हेली तासूं प्रीति लगाइए।
५. झूठ जगत की प्रीत सखी री मोहन मित्र हमारा।
६. प्रभु जी हूँ शरनागति तेरी।
७. हरि जी भक्ति दया करि दीजै।
८. प्यारे के दर्श बिन कल न परे।
९. प्यारे लै गयो चित को चोर।
१०. मुरली श्याम बजावै जी, सो छवि बरनी न जाय सखी री।
११. हे दिल जानी तूं मेरे डेरे आव। आदि।

इनके पदों में भाषा-प्रयोग की अनेकरूपता भी स्पष्ट दिखाई देती है, जैसे—

(क) ओ मन मोहा मेड़ा ओ मुस्कान।
(ख) मोहनवा लागत है अति प्यारा।
(ग) हो हो सकल करत ब्रजबनिता चहुँ दिसि से घिरि आई हो जू।

---

१. नवनप्रकाश : शब्द सं० ४२।

CC-0 Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

05:50
Charanadasi Samprada...
477/883
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होते हैं। इनकी बानियों में कवित्त, सवैया, रेखता, कड़खा और अनेक राग-रागिनियों में निबद्ध पदों का समावेश है। इनकी छन्द रचना प्रौढ़ और भाषा खड़ी बोली के बेलाग प्रयोग से युक्त है। इनकी कुछ पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य हैं—

'करता हूँ बिचार यार भूला संसार धार
छाँड़ा ही है सार प्यार माया यों कीआ है।
लोग भोग करत हैं अधाय धाय मन
पछतात हैं आन काल घेर लीआ है॥'[1]

इनकी एक संतबानी की शैली का पद इस प्रकार है—

मनुवां हरि सुमिरन यूं कीजै।
ज्यूं नट बांस चढ़ै अरु उतरै अरध उरध मन दीजै॥
नाम अखण्ड रटै बिनु रसना शब्द मूल गहि लीजै।
गह निज डोर सुरत करम करि बंकनाल रस पीजै॥
आसन अधर गगन में बैठे अमर जुगै जुग जीजै।
बाढ़ी नेह मिलौ अबिनासी रोम रोम तन भीजै॥
बिन पग निरत होय निसबासर गुरु छीना प्रभु रीझै।
जन हीरा आधीन तुम्हारो ज्ञान रतन मोंहि दीजै॥[2]

इनकी बानियों में १७ कवित्तों का भी समावेश है। ये कवित्त सन्त कवियों की भाँति मूर्त्तिपूजा, पाखण्ड, तीर्थ-व्रतोद्यापन, कर्मकांड, कथनी-करनी में असामंजस्य, लोभ, मोह, काम और क्रोध में आसक्ति आदि की कटु आलोचना से युक्त हैं। अपनी बानियों के माध्यम से कवि ने आचार-विचार की शुद्धता, साधना की दृढ़ता, एकांतनिष्ठा और श्रद्धा-विश्वास आदि गुणों के विकास की आवश्यकता पर बल दिया है। ये शिल्प की दृष्टि से सशक्त और उच्चकोटि की काव्यात्मकता से युक्त हैं। इनका इस प्रकार का एक शब्द द्रष्टव्य है—

जाने ब्रह्म सोई कुल ब्राह्मन जाति कहाँ से आई।
पहर जनेऊ जन दिखलावै चाहे मान बड़ाई॥
करम लगा कर सब जग लूटा दुनियां ठग-ठग खाई।
सेवें भूत करें तन किरिया डूबी सब चतुराई॥
ज्ञानी मिलै जवाब नहिं आवें बेद पुरान बताई।
हीरा कहै खोज तन अपना गुरु छीना समझाई॥[3]

१. अखैराम जी की वाणी : पत्र सं० १६७।
२. वही : पत्र सं० १२६, शब्द सं० २।
३. हीरादास की बानी : कवित्त सं० १७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

04:37
Vo)) LTE1
2015.379529.Sant-Cha...
235/508

निवास स्थान है। प्राणायाम के अभ्यास से जाग्रत होकर यह दिव्य शक्ति सुषुम्णा के सहारे आगे बढ़ती है और विभिन्न चक्रों (सुषुम्णा के अंगों) से होती हुई कुंडलिनी ब्रह्मरन्ध्र की ओर अग्रसर होती है। कुंडलिनी की गति के साथ-साथ मन को भिन्न-भिन्न शक्तियां प्राप्त होती चलती है और सहस्त्र दल कमल में प्रविष्ट हो जाने के अनन्तर साधक मन और शरीर से पूर्णतया अलग हो जाता है। कुंडलिनी के निवास स्थान एवं शक्तिमत्ता का वर्णन अब कवि के शब्दों में सुनिये :—

नाभि स्थान नागिनि रहै, कुंडल शशी अकार।
प्राण पियारा वही है, आगे सुनौ विचार॥
कुंभक कर्म्म कोई करै, देवै शक्ति जगाय।
जैसे लागी लष्टिका नागन शीश उठाय॥

सीखी गुरु सों कुम्भक साधै। नीकी विधि ताको अवराधै॥
पवन ठवकलग ताहि जगावै। तब ऊरध को शीश उठावै॥
नाभि ठौर ताका है बासा। पद्म पराग मणि ज्यों परकासा॥
सात लपेट वाई जानौ। ताते शुक्र कुंडली मानौं॥
नाड़ी सहस लगी हैं वाको। सो पर छुटी जानिको ताको॥
जिनमें तीन नारि अधिकाई। इडा पिंगला सुषमन गाई॥
तिनके माहिं शिरोमणि सुषमन। नाल कमल जानत योगी जन॥
जाय पहुँचि ब्रह्मरंधर ताही। ऊरध कमल सातवें माहीं॥
आवन जो न पवन की बाटा। सकत चढ़न ऊरध का घाटा॥

नागिनि सूक्ष्म जानिये, बाल सहस वा भाग।
शुकदेव कहैं अकारही, रक्त बरण ज्यों नाग॥
कुंभक हो अत्यन्त जब, तब ऊरध को जाय।
ब्रह्मरन्ध्र में आयकर, घड़ी दोय ठहराय॥
अमृत का करि पान ही, पूरण हो अभ्यास।
उड़ते देखे सिद्धि तब, वाको माहि अकास॥

कुंडलिनी प्रबुद्ध हो जाने के अनन्तर साधक को अनेक शक्तियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।[1]

कुंडलिनी के प्रबुद्ध होने की रीति को अधिक स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाने के हेतु विभिन्न प्राणों का ज्ञान परम आवश्यक है। इन प्राणों को वायु भी कहते हैं। इसी तत्व के आधार पर हमारे शरीर का जीवन निर्भर है। वायु दश प्रकार की मानी गई है—पंच शरीरस्थ एवं पंच वाह्य। घेरंड संहिता के अनुसार प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान—ये पंच वायु अन्तःस्थ हैं तथा नाग कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनंजय ये पंच वहिःस्थ हैं।[2] इनकी स्थिति निम्न लिखित है :—[3]

१. पर देखत है नैन बिना ही। चहै करै लीला उन माहीं॥
खेचर मिलि खेचर है जावै। यह भी शक्ति उड़न की पावै॥

04:37

← 2015.379529.Sant-Cha...

निवास स्थान है। प्राणायाम के अभ्यास से जाग्रत होकर यह दिव्य शक्ति सुषुम्णा के सहारे आगे बढ़ती है और विभिन्न चक्रों (सुषुम्णा के अंगों) से होती हुई कुंडलिनी ब्रह्मरन्ध्र की ओर अग्रसर होती है। कुंडलिनी की गति के साथ-साथ [illegible] भिन्न-भिन्न शक्तियां प्राप्त होती चलती है और सहस्र दल कमल में प्रविष्ट हो जाने के अनन्तर साधक मन और [illegible] से पर्याप्तया अलग हो जाता है। कुंडलिनी के निवास स्थान एवं शक्तिमत्ता का वर्णन [illegible] कवि के शब्दों में सुनिये :—

235/508

नाभि स्थान नागिनि रहै, कुंडल शशी अकार।
प्राण पियारा वही है, आगे सुनौ विचार॥
कुंभक कर्म्म कोई करै, देवै शक्ति जगाय।
जैसे लागी लष्टिका नागन शीश उठाय॥

सीखी गुरु सों कुम्भक साधै। नीकी विधि ताको अवराधै॥
पवन ठवकलग ताहि जगावै। तब ऊरध को शीश उठावै॥
नाभि ठौर ताका है बासा। पद्म पराग मणि ज्यों परकासा॥
सात लपेट वाई जानौ। ताते शुक्र कुंडली मानौं॥
नाड़ी सहस लगी हैं वाको। सो पर छुटी जानिको ताको॥
जिनमें तीन नारि अधिकाई। इडा पिंगला सुषमन गाई॥
तिनके माहिं शिरोमणि सुषमन। नाल कमल जानत योगी जन॥
जाय पहुँचि ब्रह्मरंधर ताही। ऊरध कमल सातवें माहीं॥
आवन जो न पवन की बाटा। सकत चढ़न ऊरध का घाटा॥

नागिनि सूक्ष्म जानिये, बाल सहस वा भाग।
शुकदेव कहैं अकारही, रक्त बरण ज्यों नाग॥
कुंभक हो अत्यन्त जब, तब ऊरध को जाय।
ब्रह्मरन्ध्र में आयकर, घड़ी दोय ठहराय॥
अमृत का करि पान ही, पूरण हो अभ्यास।
उड़ते देखै सिद्धि तब, वाको माहि अकास॥

कुंडलिनी प्रबुद्ध हो जाने के अनन्तर साधक को अनेक शक्तियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।[1]

कुंडलिनी के प्रबुद्ध होने की रीति को अधिक स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाने के हेतु विभिन्न प्राणों का ज्ञान परम आवश्यक है। इन प्राणों को वायु भी कहते हैं। इसी तत्त्व के आधार पर हमारे शरीर का जीवन निर्भर है। वायु दश प्रकार की मानी गई है—पंच शरीरस्थ एवं पंच बाह्य। घेरंड संहिता के अनुसार प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान—ये पंच वायु अन्तःस्थ हैं तथा नाग कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनंजय ये पंच बहिःस्थ हैं।[2] इनकी स्थिति निम्न लिखित है :—[3]

---

१. पर देखत है नैन बिना ही। चहै करै लीला उन माहीं॥
खेचर मिलि खेचर ह्वै जावै। यह भी शक्ति उड़न की पावै॥

17:15
2015.321331.Bhakti-Sa...
423/694

उलटि चले मठ फोरि इकीसो गये अभय पद याहीं ।
अति उजियारो अद्भुत लीला कहन सुनन गम नाहीं ॥
जित भयेलीन सबै सुधि बिसरी छूटी जगत बियाधा ।
चरणदास शुकदेव दयासों लागी शून्य समाधा ॥

सो साधो ऐसी योग युक्ति गति भारी ।
मूलहि बंध लगाय युक्ति सों मूंदि लई नौनारी ॥
आसन पद्म महाहढ़ कीन्हो हिरदय चिबुक[1] लगाई ।
चंद सूर दोउ सम करि राखे निरति सुरति घर आई ॥
ऊपर खैंचि अपान सहज में सहजे प्राण मिलाई ।
पवन फिरी पश्चिम को दौरी मेरुँहि[2] मेरु चलाई ॥
ऐसेहि लोक अमर पद पहुँचे सूरज कोटि उज्यारी ।
श्वेत सिंहासन सतगुरु परशे करि दरशन बलिहारी ॥
आपा बिसरि परम सुख पायो उनमनी लागी तारी ।
चरणदास शुकदेव दया सों जन्म मरण छुटि बारी ॥

राग मलार ॥

वा पद रामसों करि नेह ।
विषकी बूंद न पइये जित ह्वां बरषत अमृतमेह ॥
चमकत बिजुली गरजत गगना बाजत अनहद घोर ।
यहमन थकत गलतजित पाँचो मिटिहैं निशि अरुभोर ॥
जाग्रत मिटि है स्वप्नो मिटि है मिटिहु सुषोपत जाय ।
षट ऋतु पइये नाहिंन अवधू एकहि रस दर्शाय ॥
बिनहीं जोते बिनहीं बोये उपजत खेत है धीर ।
लागत अचरज फल महँ मुक्ता बिनहीं सींचे नीर ॥
राजा गुरु शुकदेव न बांटें सबहि करैं बकसीस ॥

१ दाढ़ी २ मेरुदंडनाड़ी वह है जो पृष्ठभाग से सीधी शिरतक चलीगई है ।

17:15

2015.321331.Bhakti-Sa...

423/694

उलटि चले मठ [illegible] अभय पद याहीं ।
[illegible] धारो अद्भुत लीला कहन सुनन [illegible] नाहीं ॥
जित भयेलीन सबै सुधि बिसरी छूटी जगत बिया[illegible] ।
चरणदास शुकदेव दयासों लागी शून्य समाधा ॥

सो साधो ऐसी योग युक्ति गति भारी ।
मूलहि बंध लगाय युक्ति सों मूंदि लई नौनारी ॥
आसन पद्म महादृढ़ कीन्हो हिरदय चिबुक[1] लगाई ।
चंद सूर दोउ सम करि राखे निरति सुरति घर आई ॥
ऊपर खैंचि अपान सहज में सहजे प्राण मिलाई ।
पवन फिरी पश्चिम को दौरी मेरुंहि[2] मेरु चलाई ॥
ऐसेहि लोक अमर पद पहुँचे सूरज कोटि उज्यारी ।
श्वेत सिंहासन सतगुरु परशे करि दरशन बलिहारी ॥
आपा बिसरि परम सुख पायो उनमनी लागी तारी ।
चरणदास शुकदेव दया सों जन्म मरण छुटि बारी ॥

राग मलार ॥

वा पद रामसों करि नेह ।
विषकी बूंद न पइये जित ह्वां बरषत अमृतमेह ॥
[illegible]कत बिजुली गरजत गगना बाजत अनहद घोर ।
यहमन थ[illegible] गलतजित पाँचौ मिटिहैं निशि[illegible]नार ॥
जाग्रत मिटि है स्वप्न [illegible] सुषोपत जाय ।
षट ऋतु पइये नाहिंन अवधू एकहि रस दर्शाय ॥
बिनहीं जोते बिनहीं बोये उपजत खेत है धीर ।
लागत अचरज फल महँ मुक्ता बिनहीं सींचे नीर ॥
राजा गुरु शुकदेव न बांटैं सबहि करैं बकसीस ॥

---

१ दाढ़ी २ मेरुदंडनाड़ी वह है जो पृष्ठभाग से सीधी शिरतक चलीगई है ।

आंख नाक जिह्वा कहूं, त्वचा जान अरु कान।
पांचौ इन्द्री ज्ञान हैं, जानैं संत सुजान॥
जो जो इनसों जानिये, निश्चय ना ठहराय।
कहै सुनै चाखै लखै, सो सोई मिटिजाय॥
इन्द्री जानि सकै नहीं, मन बुधि लहै न ताय।
ज्ञानदृष्टि पहिंचानिये, वासों वाको पाय॥
गुदा लिंग मुख तीसरो, हाथ पाँव लखि लेह।
पांचौ इन्द्री कर्म हैं, यह भी कहिये देह॥
देह मिटत है स्वप्न ज्यों, जीव रहत है नित्त।
देहकर्म विसराय करि, आतमसों करि हित्त॥
मन जीतै इन्द्री गहै, चित्त अस्थिर जब होय।
आतम सों परचो रहै, राखै सुरति समोय॥
पृथ्वी काल जे ठौर है, मुखै जानिये द्वार।
पीरो रंग पहिंचानिये, पीवन खान अहार॥
जलको वासा भाल है, लिङ्ग जानिये द्वार।
मैथुन कर्म अहार है, रंग सफेद निहार॥
पित्ते में पावक रहै, नैन जानिये द्वार।
लालरंग है अग्नि को, मोह लोभ आहार॥
पवन नाभि में रहत है, नासा जानिये द्वार।
हरो रंगहै वायु को, गन्ध सुगन्ध अहार॥
अकाश शीशमें वास है, सरवन दुवारे जान।
शव्द कुशव्द अहार है, ताको श्याम पिछान॥
कारण सूक्षम लिंग है, अरु कहियत अस्थूल।
शरीर तीनसों जानिये, मैं मेरी जड़मूल॥

---

१ माथ २ तोंदी॥

जाग्रत का अस्थूलहै, स्वपने लिंग शरीर।
कारण जान सुषोपती, तुरिया साक्षी वीर॥
जाग्रत स्वप्न सुषोपती, तुरी अवस्थ विचार।
परा पश्यन्ती मध्यमा, वैखरी वाणी चार॥
जाग्रत वासा नैन में, स्वप्न कण्ठ अस्थान।
जान सुषोपति हिये में, नाभि तुरिय मनतान॥

आंख नाक जिह्वा कहूं, त्वचा जान अरु कान।
पांचौ इन्द्री ज्ञान हैं, जानै संत सुजान॥
जो जो इनसों जानिये, निश्चय ना ठहराय।
कहै सुनै चाखै लखै, सो सोई मिटिजाय॥
इन्द्री जानि सकै नहीं, मन बुधि लहै न ताय।
ज्ञानदृष्टि पहिंचानिये, वासों वाको पाय॥
गुदा लिंग मुख तीसरो, हाथ पाँव लखि लेह।
पांचौ [illegible] है, यह भी [illegible] देह॥
[illegible] मिटत है स्वप्न ज्यौं, जीव रहत है नि[illegible]
देहकर्म विसराय करि, आतमसों करि हित्त॥
मन जीतै इन्द्री गहै, चित्त अस्थिर जब होय।
आतम सों परचो रहै, राखै सुरति समोय॥
पृथ्वी काल जे ठौर है, मुखै जानिये द्वार।
पीरो रंग पहिंचानिये, पीवन खान अहार॥
जलको वासा भाल है, लिङ्ग जानिये द्वार।
मैथुन कर्म अहार है, रंग सफेद निहार॥
पित्ते में पावक रहै, नैन जानिये द्वार।
लालरंग है अग्नि को, मोह लोभ आहार॥
पवन नाभि में रहत है, नासा जानिये द्वार।
हरो रंगहै वायु को, गन्ध सुगन्ध अहार॥
अकाश शीशमें वास है, सरवन दुवारे जान।
शब्द कुशब्द अहार है, ताको श्याम पिछान॥
कारण सूक्ष्म लिंग है, अरु कहियत अस्थूल।
शरीर तीनसों जानिये, मैं मेरी जड़मूल॥

---

१ माय २ तोंदी॥

जाग्रत का अस्थूलहै, स्वपने लिंग शरीर।
कारण जान सुषोपती, तुरिया साक्षी वीर॥
जाग्रत स्वप्न सुषोपती, तुरी अवस्थ विचार।
परा पश्यन्ती मध्यमा, वैखरी वाणी चार॥
जाग्रत वासा नैन में, स्वप्न कण्ठ अस्थान।
जान सुषोपति हिये में, नाभि तुरिय मनतान॥

झरि तेज पुंज प्रकास । नाद अनहद बजत अद्भुत महा ब्रह्म बिलास ॥ घंट किंकिणि मुरलि बाजे शंखध्वनि मनसान। जहां ताल भेरि मृदंग बाजत सिद्ध गर्जन जान॥ कालकी जहँ पहुँच नाहीं अमरपदवी पाव । जीति आठो सिद्धि ठाढ़ी गगन मध्ये आव ॥ करे गुरु परताप करणी जाय पहुँचे सोय। चरणदास शुकदेव कृपा जीव ब्रह्म होय ॥

राग धनाश्री ॥ सो गुरुगम इहिविधि योग कमायो । आसन अचल मेरु कियो सीधो कसि बँध मूल लगायो ॥ संयम साधि कलावश कीन्हीं मन पवना घर आयो । नव दरवाजे पटदे राखे अर्द्ध ऊर्ध्व मिलायो ॥ नाभितले पैंड़ो करि पैठे शक्ति पताल गई है । कांप्यो शेष कमठ अकुलायो सायर थाह दई है ॥ उलटि चले मठ फोरि इकीसों गये अभय पद माहीं । अति उजियारो अद्भुत लीला कहन सुनन गमनाहीं ॥ जित भये लीन सबे सुधि बिसरी छूटी जगत कि बाधा । चरणदास शुकदेव दयासों लागी शून्य समाधा ॥ १ ॥ सो साधो ऐसी योगयुक्ति गतिभारी । मूलहि बंध लगाय युक्तिसों मूंदि दई नवनारी ॥ आसन पद्म महादृढ़ कीन्हों हिरदय चिबुक लगाई । चंद सूर दोउ समकरि राखे निरति सुरति घर आई ॥ ऊपर खेंचि अपान सहजमें सहजे प्राण मिलाई । पवन फिरी पश्चिमको दौरी मेरुहि मेरु

चलाई ॥ ऐसेहि लोक अमरपद पहुँचे सूरज कोटि उज्यारी । श्वेत सिंहासन सतगुरु परसे करि दरशन बलिहारी ॥ आपा बिसरि प्रेम सुखपायो उनमन लागी तारी । चरणदास शुकदेव दयासों जन्ममरन छुटिबारी ॥ २॥

रागमलार ॥ वा पद रामसों करिनेह । विषकी बूंद न पइये जित हां बरषत अमृतमेह ॥ चमकत बिजुली गरजत गगना बाजत अनहदघोर । यह मन गलत थकतजित पांचों मिटि हैं निशि अरु भोर ॥ जाग्रत मिटिहै स्वप्नो मिटिहै मिटिहु सुषोपतजाय । षटऋतु पइये नाहिन अवधू एकहिरस दर्शाय ॥ बिनहीं जोते बिनहीं बोये उपजत खेतहै धीर । लागत अचरज फलमहाँ मुक्ता बिनहीं सींचे नीर ॥ राजागुरु शुकदेव न बाटें सबहि करैं बकसीस । चरणदास रास सब पावें मिलि है बिस्वेबीस ॥

झरि तेज पुंज प्रकास । नाद अनहद बजत अद्भुत महा ब्रह्म विलास ॥ घंट किंकिणि मुरलि बाजे शंखध्वनि मनसान। जहां ताल [illegible] कौ जहँ [illegible] नाहीं अमरपदवी पाव । जीति आठो सिद्धि ठा[illegible] [illegible]गन मध्ये आव ॥ करै गुरु परताप करणी जाय पहुँचे सोय। चरणदास शुकदेव कृपा जीव ब्रह्म होय ॥

राग धनाश्री ॥ सो गुरुगम इहिविधि योग कमायो । आसन अचल मेरु कियो सीधो कसि बँध मूल लगायो ॥ संयम साधि कलावश कीन्हीं मन पवना घर आयो । नव दरवाजे पटदे राखे अर्द्ध ऊर्ध्व मिलायो ॥ नाभितले पैंड़ो करि पैठे शक्ति पताल गई है । कांप्यो शेष कमठ अकुलायो सायर थाह दई है ॥ उलटि चले मठ फोरि इकीसों गये अभय पद माहीं । अति उजियारो अद्भुत लीला कहन सुनन गमनाहीं ॥ जित भये लीन सबै सुधि बिसरी छूटी जगत कि बाधा । चरणदास शुकदेव दयासों लागी शून्य समाधा ॥ १ ॥ सो साधो ऐसी योगयुक्ति गतिभारी । मूलहि बंध लगाय युक्तिसों मूंदि दई नवनारी ॥ आसन पद्म महादृढ़ कीन्हों हिरदय चिबुक लगाई । चंद सूर दोउ समकरि राखे निरति सुरति घर आई ॥ ऊपर खेंचि अपान सहजमें सहजे प्राण मिलाई । पवन फिरी पश्चिमको दौरी मेरुहि मेरु

चलाई ॥ ऐसेहि लोक अमरपद पहुँचे सूरज कोटि उज्यारी। श्वेत सिंहासन सतगुरु परशे करि दरशन बलिहारी ॥ आपा बिसरि प्रेम सुखपायो उनमन लागी तारी । चरणदास शुकदेव दयासों जन्ममरन छुटिवारी ॥ २॥

रागमलार ॥ वा पद रामसों करिनेह । विषकी बूंद न [illegible] जित ह्वां बरषत अमृतमेह ॥ चमकत बिजुली गरजत गगना बाज[illegible] अनहदघोर । यह मन गलत [illegible] मिटि हैं निशि अरु भोर ॥ जाग्रत मिटिहै स्वप्नौ मिटिहै मिटिहु सुषोपतजाय । षट्ऋतु पइये नाहिंन अवधू एकहिरस दर्शाय ॥ बिनहीं जोते बिनहीं बोये उपजत खेतहै धीर । लागत अचरज फलमहाँ मुक्ता बिनहीं सींचे नीर ॥ राजागुरु शुकदेव न बाटें सबहि करें बकसीस । चरणदास रास सब पावें मिलि है बिस्वेबीस ॥

04:53

चुवावैं पीवैं साधु अघाई ॥ सीता प्याला भरि भरि देवैं हनूमान हंकारैं । व्यास शेष नारद सनकादिक किरिया नाहिं विचारैं ॥ नवधा नेम और संयम पूजा विसरी सब कहा कहिये । घूमतरहैं महारसचाखे स्वर्गमुक्ति ना चहिये ॥ श्रीशुकदेव सुधारस अमृत नितप्रति अँचवनकीन्हा । चरण-दास पर किरपा करिकै निजप्रसाद करिदीन्हा ॥ १ ॥ साधो यह प्याला मतवारहै । अँचवैगा कोई योग युगन्ता चित स्थिर मन मारिहै ॥ चन्दसूर दोउ समकरि राखै ब्रह्मज्वाल अन्तर बरै । मुद्रा लगै खेचरी जबहीं वङ्कनाल अमृत झरै ॥ भवँर गुफा में भाठी औटै भभक भभक सुषुमन चुवै ॥ सगुरा पीपी रहित भये हैं बिन पीये उपजैं मुये ॥ शिव सनकादिक नारद शारद और पिया नौ नाथहै । सिधि चौरासी हरिपदवासी मगन भया सब साथहै ॥ रामानन्द कबीर नामदे अमरहुये जिन जिन पिया । गुरु शुकदेव करी जब किरपा चरणदासको सो दिया ॥ २ ॥

राग धनाश्री ॥ जो जन अनहद ध्यानधरै । पांचौ निर्बल चञ्चल थाके जीवतही जु मरै ॥ शोधे मूलबन्ध दै राखै आसन सिद्धकरै । त्रिकुटी सुरति लाय ठहरावै कुम्भक पवनभरै ॥ घन गरजै अरु बिजुली चमकै कौतुक गगनधरै । बहुतभांति जहँ बाजन बाजैं सुनि सुनि सन्धअरै ॥ सहज सहजमें होय-रकाशा बाधा सकलहरै । जगकी आश बास सब टूटैं ममता मोहजरै ॥ शून्य शिखरपर आपाबिसरै कालसों नाहिं डरै । चरणदास शुकदेव कहत हैं सब गुण ग्यानगरै ॥ १ ॥ बबते अनहदघोर सुनी । इन्द्रिय थकित गलित मन हूवो आशा सकल

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

04:53

चुवावैं पीवैं साधु अघाईं ॥ सीता प्याला भरि भरि देवैं
हनूमान हंकारैं । व्यास शेष नारद सनकादिक किरिया
नाहिं विचारैं ॥ [illegible] विसरी सब
क[illegible] । घूमतरहैं महारसचाखे स्वर्गमुक्ति ना[illegible] ॥
श्रीशुकदेव सुधारस अमृत नितप्रति अँचवनकीन्हा । चरण-
दास पर किरपा करिकै निजप्रसाद करिदीन्हा ॥ १ ॥
साधो यह प्याला मतवारहै । अँचवैगा कोई योग युगन्ता
चित स्थिर मन मारिहै ॥ चन्दसूर दोउ समकरि राखै
ब्रह्मज्वाल अन्तर बरै । मुद्रा लगै खेचरी जबहीं बङ्कनाल
अमृत झरै ॥ भवँर गुफा में भाठी ओटै भभक भभक सुषुमन
चुवै ॥ सगुरा पीपी रहित भये हैं बिन पीये उपजैं मुये ॥
शिव सनकादिक नारद शारद और पिया नौ नाथहै । सिधि
चौरासी हरिपदवासी मगन भया सब साथहै ॥ रामानन्द
कबीर नामदे अमरहुये जिन जिन पिया । गुरु शुकदेव
करी जब किरपा चरणदासको सो दिया ॥ २ ॥

राग धनाश्री ॥ जो जन अनहद ध्यानधरै । पांचों निर्बल
चञ्चल थाके जीवतही जु मरै ॥ शोधे मूलबन्ध दे राखै आसन
सिद्धकरै । त्रिकुटी सुरति लाय ठहरावे कुम्भक पवनभरै ॥
घन गरजै अरु बिजुली चमकै कौतुक गगनधरै । बहुतभांति
जहँ बाजन बाजै सुनि सुनि सन्धअरै ॥ सहज सहजमें होय-
रकाशा बाधा सकलहरै । जगकी आश बास सब टूटैं ममता
मोहजरै ॥ शून्य शिखरपर आपाबिसरै कालसों नाहिं डरै ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं सब गुण ग्यानगरै ॥ १ ॥ बबते
अनहदघोर सुनी । इन्द्रिय थकित गलित मन हूवो आशा सकल

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

आया हो । तादिन ते पलटा [illegible]

अमल चढो गगनै लगो अनहद मन छायो हो । तेजपुंजकी सेज पै प्रीतम गल लायो हो ॥ गये दिवाने देखडे आनँद

दरशायो हो । सब किरिया सहजे छुटी तप नेम भुलायो हो ॥ त्रैगुणते ऊपर रहूं शुकदेव बसायो हो । चरणदास दिन रैन नहिं तुरिया पद पायो हो ॥ २ ॥

राग जैजैवंती ॥ ऐसी जो युक्ति जाने सोई योगी न्यारा। आसन जो सिद्धि करै त्रिकुटीमें ध्यान धरै बिना तेल दिया बरै ज्योति हू उज्यारा ॥ संयम सँभाल साधै मूल द्वार बन्ध बांधै शंखनी उलटि साधै कामदेव जारा । प्राण वायु हिये माहीं खैंचिके अपान लाहीं दोऊ नीके मिलि जाहीं ऐसा खेल धारा ॥ कुम्भक अथक राखै अनहद की ओर ताकै सुखमन पैठि नाकै आगे जो विचारा । खोलिकै कपाट सिरा कोऊ चढे शुरवीरा कामधेनु जावै तीरा अमी को उतारा ॥ उनमनी जाय लागै निज गृह माहीं जागै जन्म मरण भागै छूटै यम भारा । गुरु शुकदेव कहै करणी यहि विधि लहै चरणदास होयरहै आपको सँभारा ॥

राग सोरठ सारंग ॥ पांचन मोहिलियो बलिमा । नासा त्वचा और श्रवणीया नैनन अरु रसना ॥ एक एक नेवारी बाँधी गहि गहि लैले जाहिं । निशि दिन उनहीं के रस पागो घरमें ठहरत नाहिं ॥ अलि पतंग गज मीन मृगा ज्यों होय रह्यो पराधीन । अपनो आप सँभारत नाहीं विषयवासना लीन ॥ हौं कुलवन्ती टोना सीखो अनहद सुरति धरूं । गगन मण्डलमें उलटा कूवां तासों नीर भरूं ॥ भँवर गुफामें दीपक बारों मन्तर एक पढूं । काम क्रोध मद लोभ होमकर वालम चित्त हरूं ॥ यतन यतन करि पीव छुटाऊं फिर नहिं जानदूं । चरणदास शुकदेव बतावैं निज मनहीं करलूं ॥

आया हो । तादिन ते पलटी [illegible] कुलगति [illegible] हो ॥ अमल चढो [illegible] लगो अनहद मन छायो हो । तेजपुञ्जकी सेज पै प्रीतम गल लायो हो ॥ गये दिवाने देखडे आनँद

दरशायो हो । सब किरिया [illegible] तप नेम भुलायो हो ॥ त्रैगुणते ऊपर रहूं शुकदेव बसायो हो । चरण[illegible] दिन रैन नहिं तुरिया पद पायो हो ॥ २ ॥

राग जैजैवंती ॥ ऐसी जो युक्ति जानै सोई योगी न्यारा। आसन जो सिद्धि करै त्रिकुटीमें ध्यान धरै बिना तेल दिया बरै ज्योति हू उज्यारा ॥ संयम सँभाल साधै मूल द्वार बन्ध बांधै शंखनी उलटि साधै कामदेव जारा । प्राण वायु हिये माहीं खैंचिकै अपान लाहीं दोऊ नीके मिलि जाहीं ऐसा खेल धारा ॥ कुम्भक अथक राखै अनहद की ओर ताकै सुखमन पैठि नाकै आगे जो विचारा । खोलिकै कपाट सिरा कोऊ चढै शूरवीरा कामधेनु जावै तीरा अमी को उतारा ॥ उनमनी जाय लागै निज गृह माहीं जागै जन्म मरण भागै छूटै यम भारा । गुरु शुकदेव कहै करणी यहि विधि लहै चरणदास होयरहै आपको सँभारा ॥

राग सोरठ सारंग ॥ पांचन मोहिलियो बलिमा । नासा त्वचा और श्रवणीया नैनन अरु रसना ॥ एक एक नेवारी बाँधी गहि गहि लैलै जाहिं । निशि दिन उनहीं के रस पागो [illegible] ठहर[illegible] ॥ [illegible] पतंग गज मीन [illegible] रह्यो पराधीन । अपनो आप सँभारत नाहीं विषयवासना लीन ॥ हौं कुलवन्ती टोना सीखो अनहद सुरति धरूं । गगन मण्डलमें उलटा कूवां तासों नीर भरूं ॥ भँवर गुफामें दीपक बारों मन्तर एक पढूं । काम क्रोध मद लोभ होमकर बालम चित्त हरूं ॥ यतन यतन करि पीव छुटाऊं फिर नहिं जानदूं । चरणदास शुकदेव बतावें निज मनहीं करलूं ॥

कथि करणीकरि हरिकी समझूये ॥ कहे गुरु शुकदेवजी चरणदास विचारो । करणी रहनी दृढ़गहो थोथी कथनी डारो ॥

हेली ॥ पांचसखी लेलार हेली काया महल पगधारिये । योग युक्ति डोला करोरी अरीहेली प्रान अपान कहार ॥ कुञ्ज कुंज सब देखियेरी अरीहेली नानाबाग पहार । मानसरोवर न्हाइये सदा वसन्त निहार ॥ विना सीप मोती बनेरी अरीहेली विनागुंद फूलनहार । विन दामिनि चमकारहे विन सूरज उजियार ॥ अनहद उतबाजे बजेरी अचरज बहुतक ख्याल । तेजपुंज की सेजपें कागा होहिं मराल ॥ श्रीशुकदेव कृपा

करें जब पावे यह भेद । चरणदास पियसों मिले छुटें जगतके खेद ॥ १ ॥ योगयुक्ति करिलेहि हेली । जो चाहे हरिसों मिलो आसन संयम साधिकेरी ॥ गगनमण्डल करि गेह उलटी दृष्टि चढाइयेरी होय सूरज परकाश । करम भरम सबही जरें सहजछुटे जग आश । प्राण अपान मिलायकेरी मूलबन्धको बांधि । रसना उलटि लगाइये सुरति ऊर्ध्व को साधि ॥ बङ्क सुधारस पीजिये अनहदहो गलतान । भवँर गुफा दृढ़ बैठिके शून्य शिखरको ध्यान ॥ सुषमन मारग ह्वै चलोरी जब पहुँचो निजधाम । अचल सिंहासन श्वेतहे जहां विराजें राम ॥ यह साधन शुकदेव कारी जो कोइ जाने साध । चरणदास अविगतिलहे देखे खेल अगाध ॥ २ ॥

अथ वैरागका अंग ।

राग मङ्गल ॥ चलाचली जगठाट अचल हरिनामहे । माल मुल्क चलिजाय जाय रजधामहे ॥ तेल फुलेल लगाय बहुत सुन्दर गहे । नानाकरते भोग सोभी नर ना रहे ॥ तेज तमक और रूप जाय योवनघना । सकल बराति जायँ जायँ दुलहिनि बना ॥ रोगी रोग अरु वैद्य जाय ओषधि भले । ज्योतिसपुस्तक तटविन सरजल लेमिले ॥ ज्ञानी पण्डित पीर अधिक वेवश गले । गौस कुतुब अब्दाल पैगम्बर सब चले ॥ एकके पीछे एक वहीर लगी चली । नरपति सुरपति जाहिं अन्तवाहीगली ॥ ऋषि मुनि देवन सिद्ध योगेश्वर जाहिंगे । जिन वश कीन्ही मौत सोभी न रहाहिंगे ॥ पांच तत्त्व गुणतीनि नहीं ठहराहिंगे । स्वर्ग मृत्यु पाताल सभी रलि जाहिंगे ॥ धरती अम्बर जाय जाय शशि भानहे । चरणदास शुकदेव दयालयो जान है ॥ १ ॥ रहै रामका नाम

कथि करणीकरि हरिकी समहूये ॥ कहें गुरू शुकदेवजी चरणदास विचारो । करणी रहनी दृढ़गहो थोथी कथनी डारो ॥

हेली ॥ पांचसखी लेलार हेली काया महल पगधारिये । योग युक्ति डोला करौरी अरीहेली प्रान अपान कहार ॥ कुञ्ज कुंज सब देखियेरी अरीहेली नानाबाग पहार । मानसरोवर न्हाइये सदा वसन्त निहार ॥ विना सीप मोती बनेरी अरीहेली विनागुंद फूलनहार । विन दामिनि चमकारहे विन सूरज उजियार ॥ अनहद उतबाजे बजेरी अचरज बहुतक ख्याल । तेजपुंज की सेजपै कागा होंहिं मराल ॥ श्रीशुकदेव कृपा

करें जब पावे यह भेद । चरणदास पियसों मिलें छुटें जगत॰ खेद ॥ १ ॥ योगयुक्ति करिलेहि हेली । जो चाहे हरिसों मिलो आसन संयम साधिकैरी ॥ गगनमण्डल करि गेह उलटी दृष्टि चढाइयेरी होय सूरज परकाश । करम भरम सबही जरें सहजछुटे जग आश । प्राण अपान मिलायकैरी मूलबन्धको बांधि । रसना उलटि लगाइये सुरति ऊर्ध्व को साधि ॥ बङ्क सुधारस पीजिये अनहदहो गलतान । भवँर गुफा दृढ़ बैठिकै शून्य शिखरको ध्यान ॥ सुषमन मारग ह्वै चलौरी जब पहुँचो निजधाम । अचल सिंहासन श्वेतहै जहां विराजें राम ॥ यह साधन शुकदेव कारी जो कोइ जानै साध । चरणदास अविगतिलहे देखें खेल अगाध ॥ २ ॥

अथ वैरागका अंग ।

राग मङ्गल ॥ चलाचली जगठाट अचल हरिनामहै । माल मुल्क चलिजाय जाय रजधामहै ॥ तेल फुलेल लगाय व[illegible]त सुन्दर गहे । नानाकरते भोग सोभी नर ना रहे ॥ तेज तम[illegible] रूप जाय यौवनघना । सकल बराति जायँ [illegible] दुलहिनि बना । [illegible] रोग अरु वैद्य जाय [illegible] भले । ज्योतिसपुस्तक तटविन सरजल लामल ॥ ज्ञानी पण्डित पीर अधिक बेवश गले । गौस कुतुब अब्दाल पैगम्बर सब चले ॥ एकके पीछे एक वहीर लगी चली । नरपति सुरपति जाहिं अन्तवाहीगली ॥ ऋषि मुनि देवन सिद्ध योगेश्वर जाहिंगे । जिन वश कीन्ही मौत सोभी न रहाहिंगे ॥ पांच तत्त्व गुणतीनि नहीं ठहराहिंगे । स्वर्ग मृत्यु पाताल सभी रलि जाहिंगे ॥ धरती अम्बर जाय जाय शशि भानहे । चरणदास शुकदेव दयालयो जान है ॥ १ ॥ रहै रामका नाम

लता रहन न पावै ॥ सुनि सुनि दुर्गुन सबही टारे । रहनि पहते सकल बिडारै ॥ मनसों ब्रह्म होय गति सोई । लक्षण जीव रहै नहिं कोई ॥ अचल सिंहासन जब तू पावै । मुक्ति-खवासी चँवर ढुलावै ॥ आठोंसिद्धि जहां करजोरैं । सौहीं ताके मुख नहिं मोरैं ॥ निश्चल राज अमल करै पूरा । बाजे नौवत अनहद तूरा ॥ तीन तीस अरु कोटि अठासी । वैभी सब तेरी करैं खवासी ॥ गुरु शुकदेव भेद दियो नीको । चरणदास मस्तक कियो टीको ॥ रणजीता यह रहनी पावै । थोथी करनी कथनि बहावै ॥

अथ योगका अंग ।

राग करखा ॥ साधो गुरु दया योग इह विधि कमायो । मूलको शोधि सङ्कोच करि शंखिनी खैंचि आपान उलटो चलायो ॥ बन्ध पर बन्ध जब बन्ध तीनो लगै पवन भइ थकित नभ गर्जि आयो । द्वादशा पलटि करि सुरति दो दल धरी दशौ परकार अनहद बजायो ॥ रोक जब नवनको द्वार दशवें चढ़ो शून्यके तख्त आनन्द बढ़ायो । सहसदलकमलको रूप अद्भुतमहा अमीरस उमँग आ झरि लगायो ॥ तेज अतिपुञ्ज परलोक जहाँ जगमगे कोटि छबि भानु परकाश

लाया । उनमनी आर चित हेत करि बसिरहो देखि निज रूप मनुवां मिलायो ॥ काल अरु ज्वाल जगव्याधि सब मिटिगई जीवसों ब्रह्मगति वेगिपायो । चरणदास रणजीत शुकदेवकी दयासों अभयपद परशि अविगत समायो ॥१॥ साधो पिण्ड ब्रह्मांड की सैल गुरु गमकरी परशि या युक्तिसों अलखराई । सहजहा सहज पग धरा जब आगमको दशौपरकार झाणझ बजाई । खोलि कपाट अरु वज्रद्वारे चढ़ो कुलाके भेद कुञ्जी लगाई । पहलके महलपर जाय आसनाकिया दूसरे महलकी खबरि पाई ॥ तीसरे महलपर सुरति जा बसिरही महल चौथे हुही अमीगाई । पांचवें महलको साधु कोई पाइहै महल छठवां दिया गुरु बताई ॥ सातवें महलपर कोटि सूरज दिपै आठवें महल अविगति गोसाईं । रूप अद्भुत तहां देखि अचरज जहां देखिया दरश दब विपति जाई ॥ शुकदेवकी सहासों धारण गहासों आपने पीवके भवन आई । चरणदास आपा दिया प्रेम प्याला पिया शीश सदके किया पूजि पाई ॥ ॥ २ ॥ साधो परसिया देश जहँ भेशनाहीं । घाट तिसलखि

लता। रहन न पावै ॥ ... ॥

पहते सकल बिडारै ॥ मनसों ब्रह्म होय गति सोई । लक्षण जीव रहै नहिं कोई ॥ अचल सिंहासन जब तू पावै । मुक्ति-खवासी चँवरढुलावै ॥ आठोंसिद्धि जहां करजोरैं । सोहीं ताके मुख नहिं मोरै ॥ निश्चल राज अमल करै पूरा । बाजे नौवत ... ॥ ... कोटि अठासी । वैभी सब तेरी करैं खवासी ॥ गुरु शुकदेव भेद दिया ना... । चरणदास मस्तक कियो टीको ॥ रणजीता यह रहनी पावै । ...सी करनी कथनि बहावै ॥

अथ योगका अंग।

राग करखा ॥ साधो गुरु दया योग इह विधि कमायो । मूलको शोधि सङ्कोच करि शंखिनी खैंचि आपान उलटो चलायो ॥ बन्ध पर बन्ध जब बन्ध तीनो लगैं पवन भइ थकित नभ गर्जि आयो । द्वादशा पलटि करि सुरति दो दल धरी दशौ परकार अनहद बजायो ॥ रोक जब नवनको द्वार दशवें चढ़ो शून्यके तख्त आनन्द बढ़ायो । सहसदलकमल को रूप अद्भुतमहा अमीरस उमँग आ झरि लगायो ॥ तेज अतिपुञ्ज परलोक जहाँ जगमगे कोटि छवि भानु परकाश

लाया। उनमनी आर चित हेत करि बसिरहो देखि निज रूप सतुवां मिलायो ॥ काल अरु ज्वाल जगव्याधि सब मिटिगई जीवसों ब्रह्मगति वेगिपायो । चरणदास रणजीत शुकदेवकी दयासों अभयपद परशि अविगत समायो ॥१॥ साधो पिण्ड ब्रह्मांड की सैल गुरु गमकरी परशि या युक्तिसों अलखराई । सहजहा सहज पग धरा जब आगमको दशौपरकार झागड़ बजाई । खोलि कपाट अरु वज्रद्वारे चढ़ो कलाके भेद कुञ्जी लगाई । पहलके महलपर जाय आसनाकिया दूसरे महलकी खबरि पाई ॥ तीसरे महलपर सुरति जा बसिरही महल चौथे दुही अमीगाई । पांचवें महलको साधु कोई पाइहै महल छठवां दिया गुरु बताई ॥ सातवें महलपर कोटि सूरजदिपै आठवें महल अविगति गोसाई । रूप अद्भुत तहां देखि अचरज जहां देखिया दरश तब विपति जाई ॥ शुकदेवकी सहासों धारण गहासों आपने पीवके भवन आई । चरणदास ... दिया प्रेम प्याला पिया शीश भटके ... पाई ॥ ॥ २ ॥ साधो ... जहं संशनाहीं । घाट तिसलखि

20:33

← 2015.493228.CharanDas

242/507

'घेरंड संहिता' में भी इन्हीं आठ प्रकार के कुम्भक को मान्यता दी गई है :—

संहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी, शीतली तथा ।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्ट कुम्भिकाः ॥
घे० सं०—पंचमोपदेशः श्लोक ४५

अर्थात् सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली भेद से कुम्भक आठ प्रकार के हैं ।

कवि ने सर्वप्रथम कुम्भक की परिभाषा एवं प्रक्रिया अथवा साधना का वर्णन किया है, तदनन्तर कुम्भक के विभिन्न अष्ट भेदों का परिचय दिया है । कुम्भक की प्रक्रिया और परिचय से सम्बन्धित निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करने योग्य हैं :—

पवन पूर पूरक ही कीजै । पाछे बन्ध जलन्धर दीजै ॥
कुंभक रेचक के मांध जानै । ह्वाई बन्ध उड्यान पिछानै ॥
पवन जोर ही सूं गहि लीजै । अर्ध ऊर्ध्व संकोच न कीजै ॥
मध्यम कीजै पश्चिम तानै । ब्रह्म नारिके माहि समानै ॥
नाड़ी पवन खैचिये ऐसे । भरिये सब संध्यान जु जैसे ॥
अपान वायु कूं ऊपर लावै । प्राण वायु नीचे लै जावै ॥
जोपै यह साधन बनि आवै । योगी बूढ़ा होन न पावै ॥
तरुण अवस्था देखे ऐसी । नितही रहै जानिये जैसी ॥

कुम्भक की प्रक्रिया, लक्षण, स्वभाव तथा गुण आदि का वर्णन करने के अनन्तर कवि ने कुम्भक के अष्ट भेद का प्रारम्भ किया है । इस वर्णन में सर्वप्रथम प्रक्रिया का वर्णन किया है, तदनन्तर उसके लक्षण और महत्त्व का उल्लेख किया है । प्रायः यही क्रम आद्योपांत कुम्भक के समस्त भेदों का वर्णन करने में रखा गया है । कवि के मत से सूर्यभेद कुम्भक का सर्वप्रथम भेद है । योगशास्त्र के कुशल आचार्य घेरंड के मत से कुम्भक करते समय प्राणादि समस्त वायुओं को पिंगला नाड़ी से विभिन्न कर नाभिमूल देश से समान वायु को उठावे, पुनः धैर्य के साथ वेग पूर्वक वाम नासिकापुट से रेचन करे । तदनन्तर दक्षिण नासापुट से वायु भर कर सुषुम्णा से कुम्भक कर बाम नासा से रेचन करे । इस क्रिया को बारम्बार करना सूर्यभेद कुम्भक कहा जाता है ।[1] दूसरे शब्दों में सावधानी पूर्वक सुगम आरामदेह आसन

१. सर्वे ते सूर्यसंभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत् ।
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाखंडवेगतः ॥
पुनः सूर्येण चाकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि ।
रेचयित्वा साधयेत् क्रमेण च पुनः पुनः ॥
घे० सं०—पंचमोपदेशः ६५-६६

20:34

← 2015.493228.CharanDas

शीतली कुम्भक के पश्चात् कवि ने भस्त्रिका कुंभक का वर्णन किया है। यथा लोहार की धौंकनी में वायु भरी जाती है उसी प्रकार उभय नासिका द्वारा वायु को पेट में भरके धीरे-धीरे पेट में परिचालित करे। इस प्रकार बीस बार कुम्भक करके वायु को धारण करे, फिर भस्त्रिका से जैसे वायु निकलती है उसी प्रकार नासिका से वायु निकाल दे। इसे भस्त्रिका कुम्भक कहते हैं। इस प्रकार यथा नियम तीन बार आचरण करे।[1] भस्त्रिका दो प्रकार से किया जाता है। प्रथम वाम नासारन्ध्र से कम से

---

१. भस्त्रैव लौहकाराणां यथा क्रमेण संभ्रमत्।
ततो वायुश्च नासाभ्यामुभाभ्यां चालयेच्छनैः॥
एवं विंशतिवारं च कृत्वा कुर्याच्च कुम्भकम्।
तदन्ते चालयेद्वायुं पूर्वोक्तं च यथाविधि॥
त्रिवारं साधयेदेनं भस्त्रिका कुंभकं सुधीः।
न च रोगं न च क्लेशमारोग्यं च दिने दिने॥

घे० सं०—पंचमोपदेशः श्लोक ७४-७

कम दश घर्षण करने के पश्चात् ग्यारहवीं बार उसी नासिका से पूरक करे। साधक यथाशक्ति कुम्भक करने के अनन्तर दक्षिण नासिका से शनैः-शनैः रेचक करे और फिर दक्षिण नासिका से दश घर्षण करके उसी से पूरक भर ले। यथाशक्ति साधक कुंभक करके धीरे-धीरे वाम नासिका से रेचक करे। द्वितीय दक्षिण नासिका से वाम नासिका की ओर कम से कम दश घर्षण करके वाम नासिका से पूरक भरे। योगी यथाशक्ति कुम्भक करके दक्षिण नासिका से धीरे-धीरे रेचक करे। चरनदास का भस्त्रिका वर्णन परम्परागत है। इसका वर्ण्य विषय योगदर्शन के आचार्यों के मत से साम्य रखता है परन्तु विशेषता यह है कि कवि ने भस्त्रिका की प्रक्रिया और साधना का सविस्तार वर्णन किया है। साथ ही इसमें अनहनादि का जो उल्लेख हुआ है उसका योग ग्रन्थों में उल्लेख नहीं हुआ :—

अब कहुँ कुम्भक भस्त्रिका, पित कफ वायु नशाय।
अगिनि बढ़ै अभ्यास सो, तीनि गांठि खुलि जाय॥
आसन पद्म सु या विधि करै। बाम जंघ दहिनो पग धरै॥
बावों पग दहिनी पर लावै। जांघन सो दोउ हाथ मिलावै॥
ग्रीवा पेट बराबर राखै। आगे सुनु शुक देवा भाखै॥
मुख मूंदै रेचै नासा सूं। पूरक चपल करै श्वासा सूं॥
रेचक पूरक ऐसे कीजै। बारम्बार तजै अरु लीजै॥
जैसे खाल लगे हार भरै। रेचक पूरक आतुर करै॥
करत करत जबहि थकि जावै। नेक ठहरि दूजी विधि लावै॥
फिरि पूरक सूरज सों करै। पवन उदर के माहीं भरै॥
तर्जनि अंगुली सों दृढ़ रोकै। नासामध्य धार करि जोखै॥

कुंभक पिछली भाँति करि, रेच इड़ा सों बाय।
कफ पित बायु नशाय के लेवै अग्नि बढ़ाय॥
कुंडलिनी देवै जगा, यह कुम्भक सुखदाय।
करै जु हित व्रत धारिकै, चरनदास चित लाय॥
कुंडलिनी सरकाय कै, वेधै तीनों गाँठ।
ऐसी पंचवी भस्त्रिका, रहै न कोई आँठ॥

20:37
2015.493228.CharanDas
251/507

अर्थात् "सिद्धासन के सदृश कोई आसन नहीं है, केवल कुम्भक के समान कोई बल नहीं है, खेचरी के तुल्य कोई मुद्रा नहीं है तथा मन लय करने वाले साधनों में अनहद नाद की तुलना करने वाला कोई भी अन्य साधन नहीं है।"

चरनदास जी के निम्नलिखित छन्दों में शिव संहिता की विचारधारा पूर्ण रूप से लहरें ले रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने 'शिव संहिता' का 'नाद-महत्व' निम्नलिखित पंक्तियों में अनूदित कर दिया है।—

अनहद के सम और ना फल बरणौं नहिं जाहिं।
पटतर कछू न दे सकूं सब कछु है वा माहिं॥
पाँच थकै आनन्द बढ़ै अरु मनुआ वश होय।
शुकदेव कहि चरनदास सुनि आप अपन जा खोय॥
नाडिन में सुषमन बड़ी सो अनहद की मात।
कुम्भक में केवल बड़ा सो वाही का भ्रात॥
मुद्रा बड़ी जु खेचरी वाकी बहिनी जान।
अनहद सा बाजा नहीं और न या सम ध्यान॥
सेवक से स्वामी भवै सुनै जु अनहद नाद।
जीव ब्रह्म ह्वै जात है पावै अपनी आद॥

मानव के शरीर में साढ़े तीन कोटि रोम हैं। जब साधक साढ़े तीन कोटि नाम जप कर लेता है तभी अनहद नाद प्रकट होता है। यह विधि वायुप्रकृति वालों के लिए है। जिनकी पित्त प्रकृति है उनकी नाड़ी शुद्ध रहती है, अतएव सवा कोटि नाम जप करने से ही उन्हें अनहद नाद प्रतिश्रुत हो जाता है। योग शास्त्र में नाद दश प्रकार का कहा गया है।[1] अंतिम प्रकार का नाद है, बादल का गर्जन। इस अंतिम अवस्था में साधक के प्राण वायु एवं मन दोनों ही लय हो जाते हैं। सुषुम्ना ब्रह्मनाडी के अन्तर्गत प्राणवायु का प्रवेश होने पर नाद का प्रकट होना प्रारम्भ हो जाता है। अनहद नाद को सुरत के आधार पर दक्षिण कान से सुनने का प्रयत्न करना चाहिए। नाद मानसिक लय का कारण है। 'त्रिपुरसार समुच्चय' में नाद के पांच भेद वर्णित हुए हैं।[2]

१. आदौ जलधि जीमूल भेरी झर्झर संभवाः।
मध्ये मर्दल शाखोत्था घंटा काहलजास्तथा॥८५॥
अन्ते तु किंकिणी वंश वीणा भ्रमर निःस्वनाः।
इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते देह मध्यगाः॥८६॥
हठ यो० प्र०—३ पृ० ४

२ भ्रमर, वंशी, घंटा, समुद्र गर्जन तथा मेघ गर्जन॥

20:37
2015.493228.CharanDas
252/507

चरनदास के मतानुसार साधक अपानवायु की साधना करता हुआ जब उसे मोड़कर ऊपर ले आता है, तब कमल उलटा होकर आकाश की ओर मुख कर लेता है। ज्यों-ज्यों अपान वायु विभिन्न चक्रों से होती हुई अग्रसर होती है, त्यों-त्यों समस्त साधना सिद्ध होती जाती है। जब अपानवायु अनहद चक्र में प्रवेश करती है उस समय दश प्रकार के नाद प्रकट होते हैं।[1], ये नाद निम्नलिखित हैं :—

१. पक्षी रव (चीं) २. पक्षी रव (चीं चीं) ३. क्षुद्र घंटा ४. शंख नाद ५. वीणा ध्वनि ६. ताल ध्वनि ७. मुरली ध्वनि ८. पखावज ध्वनि ९. नफीरि ध्वनि १०. सिंह गर्जन।[2]

सुन्दरदास ने भी नाद के दश ही भेद माने हैं।[3] चरनदास वर्णित नाद के प्रकारों का 'हठयोग प्रदीपिका' में वर्णित प्रकारों से भेद है। इसी प्रकार सुन्दरदास और 'हठयोग प्रदीपिका' द्वारा वर्णित प्रकारों में भी भेद है। तथ्य यह है कि जिस

---

१. अपान वायु कूं साधि करि ऊपर लावै मोड़ ।
जब होवै उलटे कमल मुख आकाश को ओड़ ॥
अपान वायु ज्यों ज्यों बढ़ै चक्र चक्र के पास ।
त्यों त्यों सीधे होय सब पूरा जान अभ्यास ॥
अपान वायु आवै जबै चक्र अनाहद मांहि ।
दश प्रकार के नाद ही शनैः शनैः खुलि जाहिं ॥

२. पहिले नाद सुने जो ऐसा। चिड़ी चीकला बोलै जैसा।
एकहि बार कहै यो चिन्न। दूजी बार कहे चिन चिन्न ॥
क्षुद्र घंट ज्यों तीजी जानौ। चौथी नाद शंख पहिचानौ ॥
पंचवी नाद बीन ज्यों गावै। छठवीं उपज ताल ज्यों बाजै ॥
सतवीं नाद मुरलिया ऐसी। अठवीं उठै पखावज जैसी ॥
नवै नफीरी नाद सुनावै। दशवैं सिंह गरज उपजावै ॥
नौ तजि दशवै सू हितलावै। अनहद हनि अनहद हो जावै ॥
सोय जीव सों ब्रह्म अगाधा। जो कोइ सुनै सो अनहद नादा ॥

३. प्रथम भ्रमर गुंजार शंष धुनि दुतिय कहिज्जै ।
त्रितिये वजहि मृदंग चतुर्थे ताल सुनिज्जै ॥
पंचम घंटा नाद षष्ट बीणा धुनि होई ।
सप्तम बज्जहिं भेरि अष्टम दुंदुभि दोई ॥
अब न वमै गर्ज्ज समुद्र की दशम मेघ घोषहि सुनै ।
कहि सुन्दर अनहद नाद कौ दश प्रकार योगी सुनै ॥
ज्ञान समुद्र—तृतीयोल्लास ६७

20:37

← 2015.493228.CharanDas

253/507

प्रकार के नाद का अनुभव साधक को होता है, उसी की वह अभिव्यक्ति कर देता है। नाद श्रवण के विषय में कोई विशेष नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

यह तो हुआ अपान वायु और नाद को जाग्रत करने का उपाय। अब कवि के मुख से अनहद नाद जाग्रत करने की विधि सुन लीजिये। कवि द्वारा वर्णित यह विधि सरल एवं स्पष्ट है अतएव उसे यहाँ अविकल उद्धृत किया जाता है:—

खुलै जो अनहद नाद ज्यों सो साधन सुनि लेहु।
जासों पहुँचे सिद्धि को या करणी चित देहु॥
चक्राधार सौं खैंचि करि अपान वायु सजलेहु।
स्वाधिष्ठान के पास ही तीन लपे है देह।

वाकी विधि सब तोहि सुनाऊँ। जैसे है तैसे समझाऊँ॥
पहले मूल द्वार को शोधै। बंध लगाय अपान निरोधै॥
पहिले चक्कर में ठहरावै। खैचि दूसरे के ठिक लावै॥
वाके आसों पास फिरावै। दहिने तीनि लपेट लगावै॥
फिरि मणिपूरक में पहुँचावै। फेरि अनाहद में ले जावै॥
अनहद खुलै सुनै सुख पावै। फिरि हां प्राण अपान मिलावै॥
हिरदय कंठ मध्य ठहरावै। संयम सों ताको पर चावै॥
बन्ध दूसरो तहाँ लगावै। चरणदास शुकदेव बतावै॥

पहिलें अनहद नाद खुलै हिय ऊपरै।
कंठ सु नीचे रोकि ध्यान ह्वाई धरै॥
जहां अपरबल होय जु अनहद शब्द ही।
फिरियों जानो जाय कंठ के मध्य ही॥
तहां किये अभ्यास ध्यान राखै घना।
होवै अधिकीनाद सुनै साधू जना॥
केतक द्योसन मांहिं ब्रह्मरन्धर कनै।
जाय खुलै जहं नाद सुरति दे ह्या सुनै॥
शनै शनै यों होय जानें कोइ साध ही।
हिरदय अरु ब्रह्म लोकलों एकै नाद ही॥
मीठी और सवाद बहुत ही पाइये।
सतगुरु के परताप जहां मन लाइये॥
ब्रह्म लोक की बात सुनै होवै जुहां।
सब ही सूझै वस्तु जु कछु होवैं तहां॥

20:39

2015.493228.CharanDas

277/507

महाबंध के पश्चात् कवि ने मूलबंध का वर्णन किया है। गुह्य प्रदेश को एंडी से दबाकर भली-भाँति बंधे हुए अपान वायु को बल के साथ शनैः-शनैः ऊपर को खींचे। इस क्रिया का नाम मूलबंध है। यह बुढ़ापे और मृत्यु को दूर करती है।[1] 'घेरंड संहिता' के अनुसार वाम एंडी से गुह्यप्रदेश को संकुचित करे तथा यत्न के साथ मेरुदंड में नाभिग्रंथि को लगाकर दबावे तथा दक्षिण एंडी से उपस्थ को दृढ़ता के साथ दाबकर रखे, इसको मूलबन्ध कहते हैं। इस मुद्रा से बुढ़ापा निकट नहीं आता है।[2] मूलबन्ध के इस शास्त्रीय विवेचन से चरनदास का पूर्ण मतैक्य है। कवि ने परम्परागत विचार धारा के अनुसार बांई एड़ी से गुदा-प्रदेश के संकुचन और यत्न के साथ मेरुदंड नाभिग्रन्थ को लगाकर दबाने तथा दाहिनी एड़ी से उपस्थ को दृढ़ता के साथ दाबकर रखने की क्रिया का वर्णन तो किया ही है परन्तु विशेषता यह है कि कवि ने कपड़े की एक गेंद को गुदा के मध्य कस कर वायु को अवरुद्ध करने के उपाय का भी उपदेश दिया है। इस उपाय से भी नीचे की पवन ऊपर जाती है और सहज ही प्राण तथा अपानवायु मिलकर एक हो जाती है। कवि द्वारा वर्णित मूलबन्ध प्रकरण से कतिपय महत्वपूर्ण पंक्तियों को यहाँ उद्धृत करना असंगत नहीं होगा :—

अब मैं मूलबन्ध बतलाऊँ। ज्यों का त्यों साधन दिखलाऊँ॥
गुदा बास याका तुम जानो। गुदा द्वार बन्धन दै ठानो॥
बायें पांव की एंडी सेती। मूल द्वार रोकै करि हेती॥
ऊरध ही कूं खैंचन कीजै। शुकदेव कहै नीके सुन लीजै॥
अरु कबहू मन ऐसी धरै। आसन पदम करन कूं करे॥
कपड़े की इक गेंद बनावै। गुदा मध्य कसबंध लगावै॥
यों भी वायु सधे वा भांती। जोपै लाग रहै दिन राती॥
पवन तले की ऊपर जावै। प्राण अपान सहज मिल जावै॥
नाद बिंद रल मिलजा दोई। एक वर्ण साधै जो कोई॥

---

१. पादमूलेन सम्पीड्य गुदामार्गं सुयंत्रितम्।
बलादपानमाकृष्य क्रमादूर्ध्वं समभ्यसेत्॥
कल्पितोऽयं मूलबन्धो जरामरणनाशनः।

२. पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुंचयेत्ततः।
नाभिग्रंथि मेरुदंडे संपीड्य यत्नतः सुधीः॥
मेढ्रं दक्षिणगुल्फे तु दृढबन्धं समाचरेत्।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धो निगद्यते॥
घे० सं०—तृतीयोपदेशः, श्लोक १४-१५

20:39

← 2015.493228.CharanDas

276/507

महाबंध का जो सविस्तार विवेचन ऊपर भिन्न-भिन्न योगदर्शन के ग्रन्थों में हुआ है, उसको सूत्र रूप में चरनदास के निम्नलिखित पद्यांश में पढ़िये। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कवि की महाबंध विषयक धारणा और शास्त्रीय-मत में कोई अन्तर नहीं है। अतः कवि की इस रचना में परम्परागत सैद्धांतिक विचार-धारा ही प्रमुख है। अब कवि के शब्दों में इस वर्णन को सुनिये :—

महाबन्ध तोहि पहल बताऊं। पाछे मूलबन्ध सम गाऊं॥
बायां पांव सिवन गहि दीजै। मूलद्वार एड़ी बंध कीजै॥
दहिनी जंघ जंघ पर लावै। गउमुख आसन नाम कहावै॥
राखै चिबुक हृदय पर लाय। पवनराह पूरब को जाय॥
ध्यान त्रिकुटी संयम करै। प्राणवायु हिरदे में धरै॥
महाबन्ध ऐसे करि साधै। गुरु प्रताप याही आराधै॥
बिना पुरुष तिरिया कूं जानो। बन्ध बिना मुद्रा पहिचानौ॥
निरफल जाय पुरुष बिन नारी। महाबन्ध बिनु मुद्रा धारी॥
मांहि कंठ के ध्यान लगावै। सुरत निरत हाईं ठहरावै॥
महाबन्ध अस्थत करै, सो योगी ह्वै जाय।
पवन पंथ मुंदित करै, ध्यान कंठ में लाय॥

शशियरकूं सूरज पर लावै। रेचक पूरक पवन फिरावै॥
पहर-पहर भर पवन भरीजै। प्रथम अल्प अभ्यास करीजै॥

महाबंध की साधना का बड़ा चमत्कारी प्रभाव होता है। कवि के मत से जो योगी इसकी साधना करता है वह जरा, मृत्यु, मन्दाग्नि आदि पर विजयी होकर अमरत्व प्राप्त करता है।[1]

---

१. महाबन्ध करै अभ्यासा। अमृत अच पियासा॥
जरा मृत्यु देही नहिं आवै। महाबन्ध तीनौ गुन पावै॥
जठर अग्नि परचै बहुभारी। निशिदिन मांहि करै अठवारी॥

'घेरंड संहिता' में इसे जरामरणविनाशिनी तथा सकलसिद्धिप्रदायिनी मुद्रा कहा गया है :—

महाबन्धः परो बन्धो जरामरणनाशनः।
प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्ववांछितम्॥
—तृतीयोपदेशः, श्लोक २०

20:40

← 2015.493228.CharanDas

की प्रथम बारह पंक्तियों में कवि ने खेचरी [illegible] योग साधना में जो सहायता प्राप्त होती है उसका उल्लेख किया है। शेष अंश में उसके महत्व या माहात्म्य की अभिव्यक्ति हुई है।

273/567

कवि द्वारा वर्णित द्वितीय मुद्रा भूचरी है। शास्त्रकारों का कथन है कि नासिका के अग्रभाग से चार अंगुल दूर रहे हुए अवकाश में मन को स्थिर करना भूचरी है। अष्टांग योग की साधना में धारणा के सिद्धि के हेतु प्रस्तुत मुद्रा का अभ्यास श्रेयस्कर हैं। इसकी साधना से योगी को अलौकिक सुख प्राप्त होता है। उसे दैहिक, दैविक तथा भौतिक संताप दग्ध नहीं करते। सांसारिक कष्ट उसे व्यथित और पीड़ित नहीं करते। 'घेरंड संहिता' में इस मुद्रा के विषय में कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है। चरनदास के शब्दों में अब भूचरी मुद्रा की प्रक्रिया पढ़िये :—

दूजी मुद्रा भूचरी, नासा जाको वास।
प्राण अपान जुदी जुदी, एक करै चरणदास॥
जितकी तित रख प्राण को, वा घर लाय अपान।
ताहि मिलावै युक्ति सूं, करि करि संयम ध्यान॥
जब वह जीतै पवन कूं, मन चंचल ठहराय।
गगन चढ़न की आश हो, कहै शुकदेव सुनाय॥
गुदा द्वार बंध दीजिए, एंडी पांव लगाय।
आसन सिद्ध जु कीजिए, मन पवनावश लाय॥

अपान वायु जब वशभवै, ऊरध खैंच लचाय।
सनई सनई जाचढै, प्राण वायु ह्वै जाय॥

चांचरी मुद्रा का वर्णन कवि ने भूचरी के अनन्तर किया है। आज्ञा चक्र में भव को अवरुद्ध करना चांचरी मुद्रा है। शास्त्रकारों के मत्यानुसार पक्षान्तर में इसको खेचरी मुद्रा भी कहते हैं, परन्तु चरनदास द्वारा वर्णित खेचरी और चांचरी की साधना, प्रक्रिया और महत्त्व एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं, अतः इससे स्पष्ट है कि कवि योगशास्त्रकारों की भाँति पक्षान्तर मे इसको खेचरी नहीं मानता है। कवि के शब्दों में चांचरी मुद्रा निम्नलिखित है :—

तीजी मुद्रा चांचरी जाको नैनन वास।
नासा आगे दृष्टि कूं राखै मन धर आस॥

अंगुल चार नासिका आगे। चित अस्थिर करि देखन लागे॥
खुले पाँच तत करै जु कोई। मन अरु पवन जहाँ थिर होई॥
फिरि हांसूं नासा परि आवै। अचल टकटकी तहाँ लगावै॥
जहं बहुतक अचरज दरसावै। विभव स्वर्ग के आगे आवै॥
जित सूं पलट तिरकुटी मांहीं। ध्यान करै कहुं अन्त न जाहीं॥
दीरघ तारा सा परकासै। उदय होय सूरज ज्यों भासै॥
चित चेतन दोउ मेला करै। लै उपजै अरु दुविधा हरै॥
यही चांचरी मुद्रा जानै। चरनदास याकूं पहिचानै॥

विगत पृष्ठों में भूचरी की विवेचना करते हुए लिखा गया है कि शास्त्रकारों का कथन है कि नासिका के अग्रभाग से चार अंगुल दूर रहे हुए अवकाश में मन

05:16
2015.493228.CharanDas
317/507

काया माया जानिए, जीव ब्रह्म है मित्त।
काया छुटि सूरत मिटे, तू परमातम नित्त ॥
पाप पुण्य आशा तजौ, तजो मान और थाप।
काया मोह विकार तजि, जपै सु अजपा जाप ॥
आप भुलानो आप में, बन्धो आप ही आप।
जाको ढूढत फिरत है, सो तू आपहि आप ॥
इच्छा छुई बिसरि कर, होय न क्यों निर्वास।
तू तौ जीवन मुक्त है, तजो मुक्ति की आस ॥

स्वरोदय के अनेक भेद-प्रभेद के वर्णन के बीच इस प्रकार के कथन उनके उस सिद्धांत की ओर संकेत करते हैं जिसका सम्बन्ध विशुद्ध आत्म-तत्व से है।

शैव-सम्प्रदाय के 'शिव स्वरोदय' में स्वरों और नाड़ियों का ज्ञान शिवचरण प्राप्ति के अनन्तर लौकिक सिद्धियों के हेतु विशेष कर लाभप्रद प्रमाणित किया गया है। इसीलिए अनुरूप-विपरीत लक्षण, वशीकरण, गर्भप्रकरण, संवत्सर प्रकरण, रोग प्रकरण, काल प्रकरण आदि का विधान किया गया है। यह योगियों का प्राचीन सम्प्रदाय है और उसमें शिव को सर्वोच्च स्थान दिया गया। श्री चरनदास शिव और हरि, दोनों को शून्य महल का अधिकारी मानते हैं :—

सुषमन मारग ह्वै चलै, देखै खेल अगाध।
शक्ति जाय शिव सो मिलै, जहां होय मन लीन ॥

× × ×

काल जीति हरि सों मिलै, शून्य महल अस्थान।
आये जिन साधन करी, तरुण अवस्था जान ॥

इस स्थान की प्राप्ति करने के लिए दशों द्वारों को पार करना पड़ता है। उनका यह भी कहना है कि इस प्रकार की समाधि लगाने पर काल तक वश में हो जाता है :—

जोगी प्राण उतारिए, लेहि समाधि जगाय।
काल जीति जग में रहै, मौत न व्यापै ताहि ॥
दशौ द्वार को फोरि कै, जब चाहै तब जाहि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चरनदास का मन्तव्य योगमार्ग का व्यावहारिक स्वरूप सामने रखना था, जो 'शिवस्वरोदय' की परम्परा का वह विकास है जहाँ कुछ समानताएं भी हैं और भिन्नता भी। उनका स्वरोदय गंगा और यमुना का वह संगम है जहाँ दोनों की लहरें प्रकाश पाती हुई एक नये मार्ग की ओर चल रही हैं और कहना असत्य न होगा कि यह नया मार्ग भक्ति के सजल घनों से भी

08:11
2015.493228.CharanDas
279/507

हिरदै प्राण पूरकरि रहिये। बंध जलंधर यासूं कहिये ॥
अरध पवन नीचे को जाय। अरध पवन ऊरध कूं लाय ॥
उदर मध्य लै ताहि विलोय। ब्रह्म रन्ध्र जा पहुंचै सोय ॥
इह विधि ब्रह्म पंथ कूं धावै। सहजै सहजै मध्य समावै ॥
जरामरण जहं भय नहि व्यापै। लहै अमर पद होरह आपै ॥
चरणदास शुकदेव बतावै। जोपै बंध उड्यान लगावै ॥

प्रस्तुत उद्धरण की पंक्तियों में वर्णित जालंधर बन्ध का विषय 'ग्रहयामल' एवं 'घेरंड संहिता' से पूर्णरूपेण साम्य रखता है। इसके अतिरिक्त कवि ने वायु संचार और नियंत्रण पर विचार व्यक्त करके विषय को और भी अधिक बोधगम्य बना दिया है। शैली की दृष्टि से दुरूह विषय को कवि ने सरल एवं स्पष्ट बनाने का प्रयत्न किया है।

जालंधर बन्ध के पश्चात् कवि ने उड्डीयानबन्ध का उल्लेख 'अष्टांगयोग' प्रकरण में किया है। शास्त्रकारों के मत से नाभि के ऊपर के भाग और पश्चिम द्वार को उदर के समभाव में सिकोड़े अर्थात् उदर के अधोभाग में स्थित गुह्यादिचक्र स्थित समस्त नाड़ियों को नाभि के ऊपर को उठावे। इसी का नाम उड्डीयानबन्ध है। यह बन्ध मृत्युरूपी हाथी के हेतु सिंह सदृश्य है।[1] योगयुक्त व्यक्ति प्रतिदिन चार बार इस उड्डीयान बन्ध का आचरण करे तो उसकी नाभि शुद्ध और मरुत् शुद्धि हो जाती है। षट्मास तक इस बन्ध का अभ्यास करने मात्र से योगी मृत्युंजय हो सकता है। इसका आचरण करने वाले व्यक्ति की जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है एवं शरीर में पुष्टि करने वाला रस संचालित होता है। इसके प्रसाद से योगियों के रोग नष्ट हो जाते हैं।[2] 'दत्तात्रेयसंहिता' में भी उल्लेख मिलता है कि उड्डीयानबन्ध का

---

१. उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वन्तु कारयेत्।
उड्डीयानं कुरुते यत्तदविश्रान्तं महाखगः ॥
उड्डीयानं त्वसौ मृत्युमातंगकेसरी इव ॥
घे० सं०—तृतीयोपदेशः, श्लोक १०

२. नित्यं यः कुरुते योगी चतुर्वारं दिने दिने।
तस्य नाभेस्तु शुद्धिः स्याद्येन शुद्धो भवेन्मरुत् ॥
षण्मासमभ्यसेद्योगी मृत्युं जयति निश्चितम्।
तस्योदराग्निर्ज्वलति रसवृद्धिश्च जायते ॥
रोगाणां संक्षेपश्चापि योगिनां भवति ध्रुवम्।
गुरोर्लब्ध्वा तु यत्नेन साधयेच्च विचक्षणः ॥
निर्जने सुस्थिते देशे बन्धं परमदुर्लभम्।

08:13

2015.493228.CharanDas

277/507

महाबंध के पश्चात् कवि ने मूलबंध का वर्णन किया है। गुह्य प्रदेश को एंड़ी से दबाकर भली-भाँति बंधे हुए अपान वायु को बल के साथ शनैः-शनैः ऊपर को खींचे। इस क्रिया का नाम मूलबंध है। यह बुढ़ापे और मृत्यु को दूर करती है।[१] 'घेरंड संहिता' के अनुसार वाम एंड़ी से गुह्यप्रदेश को संकुचित करे तथा यत्न के साथ मेरुदंड में नाभिग्रंथि को लगाकर दबावे तथा दक्षिण एंड़ी से उपस्थ को दृढ़ता के साथ दाबकर रखे, इसको मूलबन्ध कहते हैं। इस मुद्रा से बुढ़ापा निकट नहीं आता है।[२] मूलबन्ध के इस शास्त्रीय विवेचन से चरनदास का पूर्ण मतैक्य है। कवि ने परम्परागत विचार धारा के अनुसार बांई एड़ी से गुदा-प्रदेश के संकुचन और यत्न के साथ मेरुदंड नाभिग्रन्थ को लगाकर दबाने तथा दाहिनी एड़ी से उपस्थ को दृढ़ता के साथ दाबकर रखने की क्रिया का वर्णन तो किया ही है परन्तु विशेषता यह है कि कवि ने कपड़े की एक गेंद को गुदा के मध्य कस कर वायु को अवरुद्ध करने के उपाय का भी उपदेश दिया है। इस उपाय से भी नीचे की पवन ऊपर जाती है और सहज ही प्राण तथा अपानवायु मिलकर एक हो जाती है। कवि द्वारा वर्णित मूलबन्ध प्रकरण से कतिपय महत्वपूर्ण पंक्तियों को यहाँ उद्धृत करना असंगत नहीं होगा :—

अब मैं मूलबन्ध बतलाऊँ। ज्यों का त्यों साधन दिखलाऊँ॥
गुदा बास याका तुम जानो। गुदा द्वार बन्धन दै ठानो॥
बायें पांव की एंडी सेती। मूल द्वार रोकै करि हेती॥
ऊरध ही कूं खैंचन कीजै। शुकदेव कहै नीके सुन लीजै॥
अरु कबहू मन ऐसी धरै। आसन पदम करन कूं करै॥
कपड़े की इक गेंद बनावै। गुदा मध्य कसबंध लगावै॥
यों भी वायु सधै वा भांती। जोपै लाग रहै दिन राती॥
पवन तले की ऊपर जावै। प्राण अपान सहज मिल जावै॥
नाद बिंद रल मिलजा दोई। एक वर्ण साधै जो कोई॥

---

१. पादमूलेन सम्पीड्य गुदामार्गं सुयंत्रितम्।
बलादपानमाकृष्य क्रमादूर्ध्वं समभ्यसेत्॥
कल्पितोऽयं मूलबन्धो जरामरणनाशनः।

२. पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुंचयेत्ततः।
नाभिग्रंथि मेरुदंडे संपीड्य यत्नतः सुधीः॥
मेढ्रं दक्षिणगुल्फे तु दृढबन्धं समाचरेत्।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धो निगद्यते॥
घे० सं०—तृतीयोपदेशः, श्लोक १४-१५

08:13

← 2015.493228.CharanDas

महाबंध का जो सविस्तार विवेचन ऊपर भिन्न-भिन्न योगदर्शन के ग्रन्थों में हुआ है, उसको सूत्र रूप में चरनदास के निम्नलिखित पद्यांश में पढ़िये। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कवि की महाबंध विषयक धारणा और शास्त्रीय-मत में कोई अन्तर नहीं है। अतः कवि की इस रचना में परम्परागत सैद्धांतिक विचार-धारा ही प्रमुख है। अब कवि के शब्दों में इस वर्णन को सुनिये :—

महाबन्ध तोहि पहल बताऊं। पाछे मूलबन्ध सम भाऊं॥
बायां पांव सिवन गहि दीजै। मूलद्वार एड़ी बंध कीजै॥
दहिनी जंघ जंघ पर लावै। गउमुख आसन नाम कहावै॥
राखै चिबुक हृदय पर लाय। पवनराह पूरब को जाय॥
ध्यान त्रिकुटी संयम करै। प्राणवायु हिरदे में धरै॥
महाबन्ध ऐसे करि साधै। गुरु प्रताप याही आराधै॥
बिना पुरुष तिरिया कूं जानो। बन्ध बिना मुद्रा पहिचानो॥
निरफल जाय पुरुष बिन नारी। महाबन्ध बिनु मुद्रा धारी॥
मांहि कंठ के ध्यान लगावै। सुरत निरत ह्वाईं ठहरावै॥
महाबन्ध अस्थत करै, सो योगी ह्वै जाय।
पवन पंथ मुंदित करै, ध्यान कंठ में लाय॥

शशियरकूं सूरज पर लावै। रेचक पूरक पवन फिरावै॥
पहर-पहर भर पवन भरीजै। प्रथम अल्प अभ्यास करीजै॥

महाबंध की साधना का बड़ा चमत्कारी प्रभाव होता है। कवि के मत से जो योगी इसकी साधना करता है वह जरा, मृत्यु, मन्दाग्नि आदि पर विजयी होकर अमरत्व प्राप्त करता है।[1]

---

१. महाबन्ध करै अभ्यासा। अमृत अच पियासा॥
जरा मृत्यु देही नहिं आवै। महाबन्ध तीनौ गुन पावै॥
जठर अग्नि परचै बहुभारी। निशिदिन मांहि करै अठवारी॥

'घेरंड संहिता' में इसे जरामरणविनाशिनी तथा सकलसिद्धिप्रदायिनी मुद्रा कहा गया है :—

महाबन्धः परो बन्धो जरामरणनाशनः।
प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्ववांछितम्॥
—तृतीयोपदेशः, श्लोक २०

08:14

2015.493228.CharanDas

273/507

मुद्रा के माहात्म्य वर्णन से करने पर ज्ञात होता है कि चरनदास ने खेचरी साधना का माहात्म्य बड़े विस्तार के साथ वर्णित किया है। योग दर्शन के किसी भी ग्रन्थ में इस मुद्रा साधना का महत्व इतने विस्तार के साथ नहीं उपलब्ध होता है। इस उद्धरण की प्रथम बारह पंक्तियों में कवि ने खेचरी साधना से हठयोग साधना में जो सहायता प्राप्त होती है उसका उल्लेख किया है। शेष अंश में उसके महत्व या माहात्म्य की अभिव्यक्ति हुई है।

कवि द्वारा वर्णित द्वितीय मुद्रा भूचरी है। शास्त्रकारों का कथन है कि नासिका के अग्रभाग से चार अंगुल दूर रहे हुए अवकाश में मन को स्थिर करना भूचरी है। अष्टांग योग की साधना में धारणा के सिद्धि के हेतु प्रस्तुत मुद्रा का अभ्यास श्रेयस्कर है। इसकी साधना से योगी को अलौकिक सुख प्राप्त होता है। उसे दैहिक, दैविक तथा भौतिक संताप दग्ध नहीं करते। सांसारिक कष्ट उसे व्यथित और पीड़ित नहीं करते। 'घेरंड संहिता' में इस मुद्रा के विषय में कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है। चरनदास के शब्दों में अब भूचरी मुद्रा की प्रक्रिया पढ़िये :—

दूजी मुद्रा भूचरी, नासा जाको वास।
प्राण अपान जुदी जुदी, एक करै चरणदास॥
जितकी तित रख प्राण को, वा घर लाय अपान।
ताहि मिलावै युक्ति सूं, करि करि संयम ध्यान॥
जब वह जीतै पवन कूं, मन चंचल ठहराय।
गगन चढ़न की आश हो, कहै शुकदेव सुनाय॥
गुदा द्वार बंध दीजिए, एंडी पांव लगाय।
आसन सिद्ध जु कीजिए, मन पवनावश लाय॥

अपान वायु जब वशभवै, ऊरध खैंच लचाय।
सनई सनई जाचढै, प्राण वायु ह्वै जाय॥

चांचरी मुद्रा का वर्णन कवि ने भूचरी के अनन्तर किया है। आज्ञा चक्र में मव को अवरुद्ध करना चांचरी मुद्रा है। शास्त्रकारों के मत्यानुसार पक्षान्तर में इसको खेचरी मुद्रा भी कहते हैं, परन्तु चरनदास द्वारा वर्णित खेचरी और चांचरी की साधना, प्रक्रिया और महत्व एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं, अतः इससे स्पष्ट है कि कवि योगशास्त्रकारों की भाँति पक्षान्तर मे इसको खेचरी नहीं मानता है। कवि के शब्दों में चांचरी मुद्रा निम्नलिखित है :—

तीजी मुद्रा चांचरी जाको नैनन वास।
नासा आगे दृष्टि कूं राखै मन धर आस॥

अंगुल चार नासिका आगे। चित अस्थिर करि देखन लागे॥
खुले पाँच तत करै जु कोई। मन अरु पवन जहाँ थिर होई॥
फिरि ह्वांसूं नासा परि आवै। अचल टकटकी तहाँ लगावै॥
जहं बहुतक अचरज दरसावै। विभव स्वर्ग के आगे आवै॥
जित सूं पलट तिरकुटी मांहीं। ध्यान करै कहुं अन्त न जाहीं॥
दीरघ तारा सा परकासै। उदय होय सूरज ज्यों भासै॥
चित चेतन दोउ मेला करै। लै उपजै अरु दुविधा हरै॥
यही चांचरी मुद्रा जानै। चरनदास याकूं पहिचानै॥

विगत पृष्ठों में भूचरी की विवेचना करते हुए लिखा गया है कि शास्त्रकारों का कथन है कि नासिका के अग्रभाग से चार अंगुल दूर रहे हुए अवकाश में मन

08:16

← 2015.493228.CharanDas

253/507

अब न बमै गर्ज्जै समुद्र की दशम मेघ घोषहि सुनै।
कहि सुन्दर अनहद नाद कौ दश प्रकार योगी सुनै॥

ज्ञान समुद्र—तृतीयोल्लास ६७

प्रकार के नाद का अनुभव साधक को होता है, उसी की वह अभिव्यक्ति कर देता है। नाद श्रवण के विषय में कोई विशेष नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

यह तो हुआ अपान वायु और नाद को जाग्रत करने का उपाय। अब कवि के मुख से अनहद नाद जाग्रत करने की विधि सुन लीजिये। कवि द्वारा वर्णित यह विधि सरल एवं स्पष्ट है अतएव उसे यहाँ अविकल उद्धृत किया जाता है :—

खुलै जो अनहद नाद ज्यों सो साधन सुनि लेहु।
जासों पहुँचे सिद्धि को या करणी चित देहु॥
चक्राधार सौं खैंचि करि अपान वायु सजलेहु।
स्वाधिष्ठान के पास ही तीन लये है देह।

वाकी विधि सब तोहि सुनाऊँ। जैसे है तैसे समझाऊँ॥
पहले मूल द्वार को शोधै। बंध लगाय अपान निरोधै॥
पहिले चक्कर में ठहरावै। खैचि दूसरे के ढिक लावै॥
वाके आसौ पास फिरावै। दहिने तीनि लपेट लगावै॥
फिरि मणिपूरक में पहुँचावै। फेरि अनाहद में ले जावै॥
अनहद खुलै सुनै सुख पावै। फिरि हां प्राण अपान मिलावै॥
हिरदय कंठ मध्य ठहरावै। संयम सों ताको पर चावै॥
बन्ध दूसरो तहाँ लगावै। चरणदास शुकदेव बतावै॥

पहिलें अनहद नाद खुलै हिय ऊपरै।
कंठ सु नीचे रोकि ध्यान हाई धरै॥
जहां अपरबल होय जु अनहद शब्द ही।
फिरियों जानो जाय कंठ के मध्य ही॥
तहां किये अभ्यास ध्यान राखै घना।
होवै अधिकीनाद सुनै साधू जना॥
केतक द्योसन मांहिं ब्रह्मरन्ध्र कने।
जाय खुलै जहं नाद सुरति दे हा सुनै॥
शनै शनै यों होय जानें कोइ साध ही।
हिरदय अरु ब्रह्म लोकलों एकै नाद ही॥
मीठी और सवाद वहुत ही पाइये।
सतगुरु के परताप जहां मन लाइये॥
ब्रह्म लोक की बात सुनै होवै जुहां।
सब ही सूझै वस्तु जु कछु होवैं तहां॥

08:17

2015.493228.CharanDas

252/507

चरनदास के मतानुसार साधक अपानवायु की साधना करता हुआ जब उसे मोड़कर ऊपर ले आता है, तब कमल उलटा होकर आकाश की ओर मुख कर लेता है। ज्यों-ज्यों अपान वायु विभिन्न चक्रों से होती हुई अग्रसर होती है, त्यों-त्यों समस्त साधना सिद्ध होती जाती है। जब अपानवायु अनहद चक्र में प्रवेश करती है उस समय दश प्रकार के नाद प्रकट होते हैं।[1] ये नाद निम्नलिखित हैं :—

१. पक्षी रव (चीं) २. पक्षी रव (चीं चीं) ३. क्षुद्र घंटा ४. शंख नाद ५. वीणा ध्वनि ६. ताल ध्वनि ७. मुरली ध्वनि ८. पखावज ध्वनि ९. नफीरि ध्वनि १०. सिंह गर्जन।[2]

सुन्दरदास ने भी नाद के दश ही भेद माने हैं।[3] चरनदास वर्णित नाद के प्रकारों का 'हठयोग प्रदीपिका' में वर्णित प्रकारों से भेद है। इसी प्रकार सुन्दरदास और 'हठयोग प्रदीपिका' द्वारा वर्णित प्रकारों में भी भेद है। तथ्य यह है कि जिस

---

१. अपान वायु कूं साधि करि ऊपर लावै मोड़।
जब होवै उलटे कमल मुख आकाश को ओड़॥
अपान वायु ज्यों ज्यों बढ़ै चक्र चक्र के पास।
त्यों त्यों सीधे होय सब पूरा जान अभ्यास॥
अपान वायु आवै जबै चक्र अनाहद मांहि।
दश प्रकार के नाद ही शनैः शनैः खुलि जाहिं॥

२. पहिले नाद सुने जो ऐसा। चिड़ी चीकला बोलै जैसा।
एकहि बार कहै यो चिन्न। दूजी बार कहे चिन चिन्न॥
क्षुद्र घंट ज्यों तीजी जानौ। चौथी नाद शंख पहिचानौ॥
पंचवी नाद बीन ज्यों गावै। छठवीं उपज ताल ज्यों बाजै॥
सतवीं नाद मुरलिया ऐसी। अठवीं उठै पखावज जैसी॥
नवै नफीरी नाद सुनावै। दशवैं सिंह गरज उपजावै॥
नौ तजि दशवै सू हितलावै। अनहद हनि अनहद हो जावै॥
सोय जीव सों ब्रह्म अगाधा। जो कोइ सुनै सो अनहद नादा॥

३. प्रथम भ्रमर गुंजार शंष धुनि दुतिय कहिज्जै।
त्रितिये बजहि मृदंग चतुर्थें ताल सुनिज्जै॥
पंचम घंटा नाद षष्ट बीणा धुनि होई।
सप्तम बज्जहिं भेरि अष्टम दुंदुभि दोई॥
अब न वमै गर्ज्ज समुद्र की दशम मेघ घोषहि सुनै।
कहि सुन्दर अनहद नाद कौ दश प्रकार योगी सुनै॥
ज्ञान समुद्र—तृतीयोल्लास ६७

08:18

2015.493228.CharanDas

242/507

'घेरंड संहिता' में भी इन्हीं आठ प्रकार के कुम्भक को मान्यता दी गई है :—

संहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी, शीतली तथा ।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्ट कुम्भिकाः ॥
घे० सं०—पंचमोपदेशः श्लोक ४५

अर्थात् सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली भेद से कुम्भक आठ प्रकार के हैं ।

कवि ने सर्वप्रथम कुम्भक की परिभाषा एवं प्रक्रिया अथवा साधना का वर्णन किया है, तदनन्तर कुम्भक के विभिन्न अष्ट भेदों का परिचय दिया है । कुम्भक की प्रक्रिया और परिचय से सम्बन्धित निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करने योग्य हैं :—

पवन पूर पूरक ही कीजै । पाछे बन्ध जलन्धर दीजै ॥
कुंभक रेचक के मांध जानै । हाई बन्ध उड्यान पिछानै ॥
पवन जोर ही सूं गहि लीजै । अर्ध ऊर्ध्व संकोच न कीजै ॥
मध्यम कीजै पश्चिम तानै । ब्रह्म नारिके माहि समानै ॥
नाड़ी पवन खैंचिये ऐसे । भरिये सब संध्यान जु जैसे ॥
अपान वायु कूं ऊपर लावै । प्राण वायु नीचे लै जावै ॥
जोपै यह साधन बनि आवै । योगी बूढ़ा होन न पावै ॥
तरुण अवस्था देखे ऐसी । नितही रहै जानिये जैसी ॥

कुम्भक की प्रक्रिया, लक्षण, स्वभाव तथा गुण आदि का वर्णन करने के अनन्तर कवि ने कुम्भक के अष्ट भेद का प्रारम्भ किया है । इस वर्णन में सर्वप्रथम प्रक्रिया का वर्णन किया है, तदनन्तर उसके लक्षण और महत्त्व का उल्लेख किया है । प्रायः यही क्रम आद्योपांत कुम्भक के समस्त भेदों का वर्णन करने में रखा गया है । कवि के मत से सूर्यभेद कुम्भक का सर्वप्रथम भेद है । योगशास्त्र के कुशल आचार्य घेरंड के मत से कुम्भक करते समय प्राणादि समस्त वायुओं को पिंगला नाड़ी से विभिन्न कर नाभिमूल देश से समान वायु को उठावे, पुनः धैर्य के साथ वेग पूर्वक वाम नासिकापुट से रेचन करे । तदनन्तर दक्षिण नासापुट से वायु भर कर सुषुम्ना से कुम्भक कर वाम नासा से रेचन करे । इस क्रिया को बारम्बार करना सूर्यभेद कुम्भक कहा जाता है ।[1] दूसरे शब्दों में सावधानी पूर्वक सुगम आरामदेह आसन

१. सर्वे ते सूर्यसंभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत् ।
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाखंडवेगतः ॥
पुनः सूर्येण चाकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि ।
रेचयित्वा साधयेत् क्रमेण च पुनः पुनः ॥
घे० स०—पंचमोपदेशः ६५-६६

08:19

2015.493228.CharanDas

233/507

शिव शक्ति में लाभ वंय, रहै न द्वितीया भाव।
कुंडलिनी परबोध का, जो कोइ करै उपाव ॥

ऊपर उल्लेख हो चुका है कि सुषुम्णा नाड़ी के निम्न मुख में कुंडलिनी का निवास स्थान है। प्राणायाम के अभ्यास से जाग्रत होकर यह दिव्य शक्ति सुषुम्णा के सहारे आगे बढ़ती है और विभिन्न चक्रों (सुषुम्णा के अंगों) से होती हुई कुंडलिनी ब्रह्मरन्ध्र की ओर अग्रसर होती है। कुंडलिनी की गति के साथ-साथ मन को भिन्न-भिन्न शक्तियां प्राप्त होती चलती है और सहस्त्र दल कमल में प्रविष्ट हो जाने के अनन्तर साधक मन और शरीर से पूर्णतया अलग हो जाता है। कुंडलिनी के निवास स्थान एवं शक्तिमत्ता का वर्णन अब कवि के शब्दों में सुनिये :—

नाभि स्थान नागिनि रहै, कुंडल शशी अकार।
प्राण पियारा वही है, आगे सुनौ विचार ॥
कुंभक कर्म्म कोई करै, देवै शक्ति जगाय।
जैसे लागी लष्टिका नागन शीश उठाय ॥

सीखी गुरु सों कुम्भक साधै। नीकी विधि ताको अवराधै ॥
पवन ठवकलग ताहि जगावै। तब ऊरध को शीश उठावै ॥
नाभि ठौर ताका है बासा। पद्म पराग मणि ज्यों परकासा ॥
सात लपेट वाई आनौ। ताते शुक्र कुंडली मानौं ॥
नाड़ी सहस लगी हैं वाको। सो पर छुटी जानिको ताको ॥
जिनमें तीन नारि अधिकाई। इडा पिंगला सुषमन गाई ॥
तिनके माहिं शिरोमणि सुषमन। नाल कमल जानत योगी जन ॥
जाय पहुँचि ब्रह्मरंधर ताही। ऊरध कमल सातवें माहीं ॥
आवन जो न पवन की बाटा। सकत चढ़न ऊरध का घाटा ॥

नागिनि सूक्ष्म जानिये, बाल सहस वा भाग।
शुकदेव कहैं अकारही, रक्त बरण ज्यों नाग ॥
कुंभक हो अत्यन्त जब, तब ऊरध को जाय।
ब्रह्मरन्ध्र में आयकर, घड़ी दोय ठहराय ॥
अमृत का करि पान ही, पूरण हो अभ्यास।
उड़ते देखै सिद्धि तब, वाको माहि अकास ॥

21:05

Charandas Ji Ki Bani P...

॥ दोहा ॥

दूध मध्य ज्यों घीव है मेहंदी माहीं रंग ।
जतन बिना निकसै नहीं चरनदास सो ढंग ॥४॥
जो जानै या भेद कू और करै परवेस ।
सो अविनासी होत है छूटै सकल कलेस ॥५॥

॥ अष्टपदी ॥

तन मथने को जतन कहूं अब जानिये ।
ज्यों निकसै तत सार बिलोवन ठानिये ॥
पहिले चक्कर जानि मूल द्वारे बिषै ।
जित ही पावँ की एड़ो सूं बंध दे रेखै ॥
मूल[१] चक्र सों खौंचि अपान चलाइये ॥
दूजे चक्कर पास जु आन फिराइये ॥
दहिनी ओर सों तीन लपेटे दीजिये ।
तीजे चक्कर माहिं गमन फिर कीजिये ॥
चौथे चक्कर माहिं पवन जो लाइये ।
बहुरो पँचवें चक्र में जिव पहुँचाइये ॥
षष्टम चक्कर माहिं जु ताहि चढ़ाइये ।
सो त्रिकुटी के मध्य तहां ठहराइये ॥

---

(१) गुदा ।

रोके त्रिकुटी माहिं आनि कै वायु कूं ।
षट चक्कर कूं छेदि चढ़ै जब धाय कूं ॥
अपान बायु चढ़ि जाय वही अस्थान है ।
प्रान बायु ह्वै जाय साधु कोइ जान है ॥
रोकै प्रानहिं वायु तिरकुटी मध्यहीं ।
करै ओं का ध्यान सीस में गद्य[१] हीं ॥
यह तो ऊंचा ध्यान जु अधिक अनूपहीं ।
चरनहिं दासा होय जु ब्रह्म सरूपहीं ॥

शब्द २

॥ दोहा ॥

करते अनहद ध्यान के ब्रह्म रूप हो जाय।
चरनदास यों कहत हैं बाधा सब मिटि जाय ॥१॥
गगन मध्य जो कंवल है बाजत अनहद तूर।
दल हजार को कमल है पहुंचै गुरु मत सूर ॥२॥
गगन मंडल के कमल में सतगुरु ध्यान निहार।
चरनदास सुकदेव परस के मेटै सकल बिकार ॥३॥

शब्द ३

॥ छप्पै ॥

नौ नाड़ी को खैंचि पवन ले उर में दीजे।
बज्जर ताला लाय द्वार नौ बंद करीजे ॥१॥
तीनों बंद लगाय अस्थिर अनहद आराधे।
सुरति निरति का काम राह चल गगन अगाधे ॥२॥
सुन्न सिखर चढ़ि रहै दृढ़ जहां आसन करै।
भन[1] चरनदास ताड़ी लगै सो राम दरस कलिमल हरै ॥३॥

शब्द ४

॥ छप्पै ॥

मूल कमल में खेलि पिया को देखन चलिये।
उलटि वेधि खट चक्र जाइ सतवें से मिलिये ॥१॥
प्रान अपान मिलाइ राह पच्छिम की लीजे।
बंक नाल कूं सोध प्रान लै ता में दीजै ॥ २ ॥
मेरु दंड चढ़ि जाय जब लोक लोक की गम परै।
भन[1] चरनदास ब्रह्मंड में ब्रह्म दरसी दरसन करै ॥३॥

(१) कहै।

21:12
Charandas Ji Ki Bani P...

सातवें महल पर कोटि सूरज दिपैं।
आठवें महल अवगति गोसाईं॥
रूप अद्भुत तहां देखि अचरज जहां।
देखिया दरस तब बिपति जाई॥४॥
सुकदेव की सहा सों धारना गहा सो।
आपने पीव के भवन आई॥
चरनदास आपा दिया प्रेम प्याला पिया।
सीस सदके किया पूजि पाईं॥५॥

शब्द १४

॥ राग जैजैवन्ती ॥

ऐसी जो जुगत जानै सोई जोगी न्यारा॥ टेक॥
आसन जो सिद्ध करै त्रिकुटी में ध्यान धरै।
बिना तेल दिया बरै जोति हूँ उजारा॥१।
संजम संभाल साधै मूल द्वार बंद बांधै।
संखिनी उलटि साधै कामदेव जारा॥२।
प्रान बायु हिये माहीं खैंचि के अपान लाहीं।
दोऊ नीके मिलि जाहीं ऐसा खेल धारा॥३।
कुम्भक अथक राखै अनहद की ओर ताकै।
सुखमन पैठि नाकै आगे जो बिचारा॥४।
खोलि कै कपाट सिरा कोऊ चढ़ै सूर बीरा।
काम धेनु जावै तीरा अमी को उतारा॥५
उन्मुनी जाय लागै निज ग्रह माहिं जागै।
जनम मरन भागै छूटै जम भारा॥६।
गुरु सुकदेव कहैं करनी यहि बिधि लहैं।
चरनदास होय रहै आप को संभारा॥७।

21:26

Charandas Ji Ki Bani P...

शब्द ६

॥ राग करखा ॥

परसिया देस जहँ भेस नाहीं।
घाट तिस लखि जहाँ बाट सूझै नहीं
सुरति के चाँदने संत जाई ॥ १ ॥
चंद खोड़स दिपैं गंग उलटी बहै
सुखमना सेज पर लम्प[१] दमकै।
तासु के ऊपरे अमी को ताल है
झिलमिली जोत परकास चमकै ॥ २ ॥
चारि जोजन परे सून्य अस्थान है
तेज अति सून्य परलोक राजै।
द्वार पच्छिम धसे मेरु हीं दण्ड हो
उलट करि आय छाजे बिराजै ॥ ३ ॥
नूर जगमग करै खेल आगाध है
वेद हूँ कहे नहिं पार पावैं।
गुरुमुखी जाइ हैं अमर पद पाइ हैं
सीस का लोभ तजि पंथ धावैं ॥ ४ ॥
तीन सुन छेदि रनजीत चौथे बसे
जन्म औ मरन फिर नाहिं होई।
चरनदास करि वास सुकदेव बकसीस सूँ
पूज वेगम पुरी अमर सोई ॥ ५ ॥

शब्द ७

॥ राग सोरठ ॥

गुरु बिन वह घर कौन दिखावै।
जेहिं घर अग्नि जलै जल माहीं यह अचरज दरसावै ॥ १ ॥

(१) जोति।

21:29

Charandas Ji Ki Bani P...

9/70

शब्द ९

॥ राग रामकली ॥

वह अच्छर कोइ बिरला पावै ।
जा अच्छर के लाग न बिंदी सतगुरु सैनहिं सैन बतावै ॥ १ ॥
छर ही नाद बेद अरु पंडित छर ज्ञानी अज्ञानी ।
बाँचन अच्छर छर ही जानो छरही चारो बानी ॥ २ ॥
ब्रह्मा सेस महेसर छर ही छर ही त्रैगुन माया ।
छर ही सहित लिये औतारा छर हाँ तक जहँ माया ॥ ३ ॥
पाँचो मुद्रा जोग जुक्ति छर छर ही लगै समाधा ।
आठो सिद्धि मुक्ति फल छरही छर ही तन मन साधा ॥ ४ ॥
रवि ससि तारा मंडल छर ही छर ही धरनि अकासा ।
छर ही नीर पवन अरु पावक नर्क स्वर्ग छर बासा ॥ ५ ॥
छर ही उतपति परलय छर ही छर ही जानन हारा ।
चरनदास सुकदेव बतावैं निःअच्छर है सब सूँ न्यारा ॥ ६ ॥

शब्द १०

॥ राग धनाश्री ॥

जो जन अनहद ध्यान धरै ॥ टेक ॥
पाँचो निरबल चंचल थाकै जीवत ही जु मरै ॥ १ ॥
सोधै मूलबंध दै राखै आसन सिद्ध करै ॥ २ ॥
त्रिकुटी सुरति लाय ठहरावै कुंभक पवन भरै ॥ ३ ॥
घन गरजै अरु बिजुली चमकै कौतुक गगन धरै ॥ ४ ॥
बहुत भाँति जहँ बाजन बाजैं सुनि सुनि सिंधु अरै[1] ॥ ५ ॥
सहज सहज में हो परकासा बाधा सकल हरै[2] ॥ ६ ॥
जग की आस बास सब टूटै ममता मोह जरै ॥ ७ ॥
सून्य सिखर पर आपा बिसरै काल सूँ नाहिं डरै ॥ ८ ॥
चरनदास सुकदेव कहत हैं सब गुन ध्यान धरै ॥ ९ ॥

(१) ऐसे मधुर बाजे कि जिनकी धुनि से समुद्र की लहरें स्थिर हो जायँ । (२) दूर हो ।

21:32

Charandas Ji Ki Bani P...

5/70

बुधि बिवेक बिचारि गावैं सखी सहेली साथ ।
अगम लीला रटैं सजनी जहाँ ब्रह्म बिलास ॥ ३ ॥
परम गुरु श्री जनक झूलैं गुरु सुकदेव ।
चरनदास सखि सदा झूलैं कोइ न पावै भेव ॥ ४ ॥

शब्द २२
॥ राग करखा ॥

गुरु दया जोग यहि विधि कमायो ॥टेक॥
मूल कूँ सोधि संकोच करि संखिनी
खैंच आपान उलटो चलायो ॥ १ ॥
बंध पर बंध जब बंध तीनो लगैं
पवन भइ थकित नभ गर्जि आयो ॥ २ ॥
द्वादसा पलट करि सुरति दो दल धरी
दसो परकार अनहद बजायो ॥ ३ ॥
रोक जब नवन कूँ द्वार दसवें चढ़ी
सून्य के तख्त अनँद बढ़ायो ॥ ४ ॥
सहस्त्र दल कमल को रूप अद्भुत महा
अमी रस उमंग झा झरि लगायो ॥ ५ ॥
तेज थति पुंज पर लोक जहँ जगमगे
कोटि छवि भानु परकास लायो ॥ ६ ॥

उनमुनी ओर चित हेत करि बसि रहो
देखि निज रूप मनुवाँ मिलायो ॥ ७ ॥
काल अरु ज्वाल जग व्याधि सब मिटि गई
जीव सूँ ब्रह्म गति बेगि पायो ॥ ८ ॥
चरनदास रनजीत सुकदेव की दया सूँ
अभय पद परसि अवगति समायो ॥ ९ ॥

शब्द २३
॥ राग सारंग व बिलावल व सोरठ ॥

21:39

Charandas Ji Ki Bani P...

शब्द १२

॥ राग धनाश्री ॥

गुरु गम यहि बिधि जोग कमायो ।
आसन अचल मेर कियो सीधो कसि बंध मूल लगायो ॥ १
संजम साधि कला बस कीन्ही मन पवना घर आयो ।
नौ दरवाजे पट दै राखे अधैं उर्ध मिलायो ॥ २
नाभि तले पैड़ो करि पैठे सक्ति पाताल गई है ।
काँप्यो सेस कमठ अकुलायो सायर थाह दई है ॥ ३
उलटि चले मठ फोरि इकीसौ गये अभय पद माहीं ।
अति उँजियारो अद्भुत लीला कहन सुनन गम नाहीं ॥ ४
जित भये लीन सबै सुधि बिसरी छुटी जगत की व्याधा ।
चरनदास सुकदेव दया सूँ लागी सुन्न समाधा ॥ ५

शब्द १३

॥ राग धनाश्री ॥

ऐसी जोग जुक्ति गति भारी ।
मूलहिँ बंध लगाय जुक्ति सूँ मूँदि दई नव नारी ॥ १ ॥
आसन पद्म महा दृढ़ कीन्हो हिरदय चिबुक[1] लगाई ।
चन्द सूर दोउ सम करि राखे निरति सुरति घर आई ॥ २ ॥
ऊपर खैंचि अपान सहज में सहजै प्रान मिलाई ।
पवन फिरी पच्छिम कूँ दौरी मेरुहि मेरु चलाई ॥ ३ ॥
ऐसहिँ लोक अमर पद पहुँचे सूरज कोटि उजारी ।
सेत सिंहासन सतगुरु परसे करि दरसन बलिहारी ॥ ४ ॥
आपा बिसरि प्रेम सुख पायो उनमुन लागी तारी ।
चरनदास सुकदेव दया सूँ चरन दास छुटी बारी[2] ॥ ५ ॥

शब्द १४

॥ राग मलार ॥

21:40
Charandas Ji Ki Bani P...
42/70

मिश्रित

कहैं गुरू सुकदेव जी चरनदास विचारौ ।
करनी रहनी दृढ़ गहौ थोथी कथनी डारौ ॥ ६ ॥

शब्द १७

॥ राग बिलावल ॥

माला फेरे कहा भयो ॥ टेक ॥
अंतर के मन को नहिं फेरा पाप करत सब जन्म गयो ॥१॥
पर निन्दा पर नारि न भूलो खोट कपट की ओर नयो[1] ॥२॥
काम क्रोध मद लोभ न खोये ह्वै रह्यो मूरख मोह मयो ॥३॥
दुनिया साँच समझ घर कीन्हो धन जोरन को परन लयो ॥४॥
दया धर्म दोउ मारग छाँड़े मँगतन को नहिं दान दयो ॥५॥
गुरु सूँ झूँठ भगल साधन सूँ हरि सूँ नाहीं नेह जयो[2] ॥६॥
चरनदास सुखदेव कहत हैं कैसे कहियो मुक्ति हयो[3] ॥७॥

शब्द १८

॥ राग सोरठ ॥

अवधू ऐसी मदिरा पीजै ।
बैठि गुफा में यह जग बिसरै चंद सूर सम कीजै ॥ १ ॥
जहाँ कुलाल चढ़ाई भाठी ब्रह्म ज्वाल परजारी ।
भरि भरि प्याला देत कुलाली बाढ़ै भक्ति खुमारी ॥ २ ॥
माता[4] ह्वै करि ज्ञान खड़ग लै काम क्रोध कूँ मारै ।
घूमत रहै गहै मन चंचल दुविधा सकल बिडारै ॥ ३ ॥
जो चाखै यह प्रेम सुधारस निज पुर पहुँचै सोई ।
अमर होय अमरा पद पावै आवा गवन न होई ॥ ४ ॥
गुरु सुकदेव किया मतवारा तीन लोक तृन बूझा ।
चरनदास रनजीत भये जब आनंद आनंद सूझा ॥ ५ ॥

(१) ——

॥ अष्टपदी ॥

तन मथने को जतन कहूं अब जानिये।
ज्यों निकसै तत सार बिलोवन ठानिये॥
पहिले चक्कर जानि मूल द्वारे बिषै।
जित ही पावँ की एड़ो सूं बंध दे रेखै॥
मूल[1] चक्र सों खौंचि अपान चलाइये॥
दूजे चक्कर पास जु आन फिराइये॥
दहिनी ओर सों तीन लपेटे दीजिये।
तीजे चक्कर माहिं गमन फिर कीजिये॥
चौथे चक्कर माहिं पवन जो लाइये।
वहुरौ पँचवें चक्र में जिव पहुँचाइये॥
षष्टम चक्कर माहिं जु ताहि चढ़ाइये।
सो त्रिकुटी के मध्य तहां ठहराइये॥

(१) गुदा।

रोके त्रिकुटी माहिं आनि कै बायु कूं।
षट चक्कर कूं छेदि चढ़ै जब धाय कूं॥
अपान बायु चढ़ि जाय वही अस्थान है।
प्रान बायु ह्वै जाय साधु कोइ जान है॥
रोकै प्रानहिं बायु तिरकुटी मध्यहीं।
करै ओं का ध्यान सीस में गध्य[1] हीं॥
यह तो ऊंचा ध्यान जु अधिक अनूपहीं।
चरनहिं दासा होय जु ब्रह्म सरूपहीं॥

॥ दोहा ॥

जस दूध ...

सुमिरन विधि

॥ दोहा ॥

पांच बरस जप नाभि सूं रग रग बोलै राम।[1]
देह जीव निज भक्त ही पहुंचे हरि के धाम ॥२०॥
त्रिकुटी में जप राम कूं जहां उजाला होय।
स्वांसा माहीं जपे ते दुविधा रहै न कोय ॥२१॥

(१) पक्का है।

गगन मंडल में जाप करि जित है दसवां द्वार।
चरनदास यों कहत हैं सो पहुचे हरिद्वार ॥२२॥
नाग उठाकर नाभि सूं गगन माहिं ले जाय।
जहां होय परकास हीं सुकदेव दिया बताय ॥२३॥
मन हीं मन में जाप करि दरपन उज्जल होय।
दरसन होवै राम का तिमिर जायं सब खोय ॥२४॥
सुरत माहिं जो जप करै तन सूं न्यारा जौन।
मिलै सच्चिदानंद में गहे रहै जो मौन ॥२५॥
सकल सिरोमनि नाम है सब धरमन के माहिं।
अनन्य भक्त वह जानिये सुमिरन भूलै नाहिं ॥२६॥
आनि धरम मानै नहीं आनि देव नहिं ध्यान।
ऐसे भक्त अनन्य को कोई पावै जान ॥२७॥
राम नाम मुख सूं कहो राम नाम सुनि कान।
रोम रोम हरि को रटो ऐसी गहिये बान[1] ॥२८॥
विद्या माहीं बाद है तप के माहीं ऋद्धि।
राम नाम में मुक्ति है जोग माहिं यों सिद्धि ॥२९॥
राम नाम में ये सबै रिद्धि सिद्धि औ मोछ।
ऐसा इष्ट संभारिये चरनदास कहि सोछ[2] ॥३०॥
जाका कीया सब बना सात दीप नौ खंड।
चरनदास यों कहत हैं तीन लोक ब्रह्मंड ॥३१॥
तो[3] कारन सब कुछ किया नाना विधि सुख दीन्ह।
तैं वाकूं जाना नहीं नाम न कबहूं लीन्ह ॥३२॥
अबके औसर फिर बन्यो पाई मानुख देहि।
चरनदास यों कहत हैं राम नाम ही लेहि ॥३३॥

(१) आदत। (२) विचार के। (३) तेरे।

॥ राग सोरठ ॥

तू सदा सोहागिन नारी है।
पिय के संग मिली मद पीवै ताते लागत प्यारी है॥
भंवर गुफा में भंवर वनायो विन घृत जोती जारी है।
सुखमन सेज महा सुखदाई भोगत भोग दुलारी है॥
स किये कंता चलै न पंथा टोना डारो भारी है।
पहर तुम्हरे रंग राचो हमको मिलै न बारी है॥

(१) वड़ा। (२) पति।

पति मन मानी सो पटरानी सोई रूप उजारी है।
हम चारौ जो सौति तुम्हारी तुम गुन आगे हारी है॥
चरनहिं दास भई तोहिं सेवै लगी रहै नित लारी है।
सुकदेवा सिर छत्र हमारो सो बस भयो तुम्हारी है॥

—:०:—

अनहद शब्द की महिमा और उसकी प्राप्ती का बिलास।

शब्द १

॥ अष्टपदी ॥

अनहद शब्द अपार दूर सूं दूर है।
चेतन निर्मल शुद्ध देह भरपूर है॥ १॥
निःअच्छर है ताहि और निःकर्म है।
परमातम तेहि मानि वही परब्रह्म है॥ २॥
याके कीने ध्यान होत है ब्रह्म हीं।
धारै तेज अपार जाहि सब भर्म हीं॥ ३॥
वा पटतर[1] कोइ नाहिं जो यों हीं जानिये।
चांद सूर्य्य अरु सृष्टि के माहिं पिछानिये॥ ४॥
याको छोड़ै नाहिं सदा रहै लीन हीं।
यही जो अनहद सार जानि परबीन हीं॥ ५॥
यों जिव आतम जान जो अनहद लीन हो।
सो परमातम होय जीवता जाय खो॥ ६॥
ध्यानी को मन लीन होय अनहद सुनै।
आप अनाहद होय बासना सब भुनै॥ ७॥
पाप पुन्य छुटि जायं दोऊ फल ना रहैं।
होय परम कल्यान जो त्रिगुन[2] ना गहैं॥ ८॥

(१) बराबर। (२) सत रज तम अर्थात् ब्रह्मा विष्णु महेश।

20:25
2015.347312.Charan-Da...

करते अनहद ध्यान के ब्रह्म रूप हो जाय।
चरनदास यों कहत हैं बाधा सब मिटि जाय ॥१॥
गगन मध्य जो कंवल है बाजत अनहद तूर।
दल हजार को कमल है पहुंचे गुरु मत सूर ॥२॥
गगन मंडल के कमल में सतगुरु ध्यान निहार।
चरनदास सुकदेव परस के मेटै सकल बिकार ॥३॥

शब्द ३

॥ छप्पै ॥

नौ नाड़ी को खैंचि पवन लै उर में दीजै।
बज्जर ताला लाय द्वार नौ बंद करीजै ॥१॥
तीनों बंद लगाय अस्थिर अनहद आराधै।
सुरति निरति का काम राह चल गगन अगाधै ॥२॥
सुन्न सिखर चढ़ि रहै दृढ़ जहां आसन करै।
भन[1] चरनदास ताड़ी लगै सो राम दरस कलिमल हरै ॥३॥

शब्द ४

॥ छप्पै ॥

मूल कमल में खेलि पिया को देखन चलिये।
उलटि वेधि खट चक्र जाइ सतवें से मिलिये ॥१॥
प्रान अपान मिलाइ राह पच्छिम की लीजै।
वंक नाल कूं सोध प्रान लै ता में दीजै ॥ २ ॥
मेरु दंड चढ़ि जाय जब लोक लोक की गम परै।
भन[1] चरनदास ब्रह्मंड में ब्रह्म दरसी दरसन करै ॥३॥

(१) कहै।

शब्द १३

॥ राग करखा ॥

पिंड ब्रह्मंड की सैल गुरु गम करी।
सरसिया जुक्ति सूं अलख राई।
सहज ही सहज पग धरा जब अगम को।
दसौ परकार झागड़[२] बजाई ॥१॥
खोलि कपाट अरु बज्र द्वारे चढ़ो।
कला के भेद कुंजी लगाई।
पहिले महल पर जाय आसन किया।
दूसरे महल की खबर पाई ॥२॥
तीसरे महल पर सुरति जा बस रही।
महल चौथे दुही अमी गाई[३] ॥
पांचवें महल को साध कोइ पाई है।
महल छटवां दिया गुरु बताइ ॥३॥

(१) अगम। (२) बाजा। (३) गाय।

सातवें महल पर कोटि सूरज दिपें।
आठवें महल अवगति गोसाईं ॥
रूप अद्भुत तहां देखि अचरज जहां।
देखिया दरस तब बिपति जाई ॥४॥
सुकदेव की सहा सों धारना गहा सो।
आपने पीव के भवन आई ॥
चरनदास आपा दिया प्रेम प्याला पिया।
सीस सदके किया पूजि पाईं ॥५॥

शब्द १४

॥ राग जैजैवन्ती ॥

ऐसी जो जुगत जाने सोई जोगी न्यारा ॥ टेक ॥
आसन जो सिद्ध करै त्रिकुटी में ध्यान धरै।
बिना तेल दिया बरै जोति हूँ उजारा ॥१।
संजम संभाल साधै मूल द्वार बंद बांधै।
संखिनी उलटि साधै कामदेव जारा ॥२।
प्रान बायु हिये माहीं खैंचि के अपान लाहीं।
दोऊ नीके मिलि जाहीं ऐसा खेल धारा ॥३।
कुम्भक अथक राखै अनहद की ओर ताकै।
सुखमन पैठि नाकै आगे जो बिचारा ॥४।
खोलि कै कपाट सिरा कोऊ चढ़ै सूर बीरा।
काम धेनु जावै तीरा अमी को उतारा ॥५
उन्मुनी जाय लागै निज ग्रह माहिं जागै।
जनम मरन भागै छूटै जम मारा ॥६
गुरु सुकदेव कहैं करनी यहि बिधि लहै।
चरनदास होय रहै आप को संभारा ॥७।

काल की जहँ पहुँच नाहीं अमर पदवी पाव।
जीति आठौ सिद्धि ठाढ़ी गगन मद्धे आव ॥ ४ ॥
करै गुरु परताप करनी जाय पहुँचे सोय।
चरनदास सुकदेव किरपा जीव ब्रह्मै होय ॥ ५ ॥

शब्द ३

॥ राग बिहागरा ॥

सब जग पाँच तत्व को उपासी ॥ टेक ॥
तुरियातीत सबन सूँ न्यारा अबिनासी निर्बासी ॥ १ ॥
कोई पूजै देवल मूरत सो पृथ्वी तत जानो ॥ २ ॥
कोई न्हावै पूजै तीरथ सो जल को तत मानो ॥ ३ ॥
अग्निहोत्र अरु सूरज पूजा सो पावक तत देखा ॥ ४ ॥
पवन खैंच कुंभक को राखै वायु तत्त को लेखा ॥ ५ ॥
कोई तत्व अकास[1] को पूजै ता को ब्रह्म बतावै ॥ ६ ॥
जो सब के देखन में आवै सो क्यों अलख कहावै ॥ ७ ॥
परम तत्व[2] पाँचो से आगे गुरु सुकदेव बखानैं ॥ ८ ॥
चरनदास निस्चै मन आनो बिरला जन कोइ जानै ॥ ९ ॥

शब्द ४

॥ राग परज ॥

सुधा रस कैसे पैये हो।
कूप कहाँ केहि ठौर है कैसे करि लहिये हो ॥ १ ॥
नेजू[3] कित कित गागरी कित भरने वाली हो।
कैसे खुलै कपाट हीं को ताला ताली हो ॥ २ ॥
कौन समय किस ग्रह छिपै अँचवै किन माहीं हो।
तुमसे[4] जानें भेद कूँ अरु बहुतक नाहीं हो ॥ ३ ॥

(१) चिदाकाश (चैतन्य आकाश) जिसको कोई कोई विद्याज्ञानी ब्रह्म मानते हैं। (२) शब्द चैतन्य अर्थात् वह जौहर जिसको संतों ने शब्द करके पुकारा है। (३) लेजुर, रस्सी, रस्सी। (४) तुम्हारे समान।

शब्द ९

॥ राग रामकली ॥

यह अच्छर कोइ बिरला पावै ।

जा अच्छर के लाग न बिंदी सतगुरु सैनहिं सैन बतावै ॥ १ ॥

छर ही नाद बेद अरु पंडित छर ज्ञानी अज्ञानी ।

बाँचन अच्छर छर ही जानो छरही चारो बानी ॥ २ ॥

ब्रह्मा सेस महेसर छर ही छर ही त्रैगुन माया ।

छर ही सहित लिये औतारा छर हाँ तक जहँ माया ॥ ३ ॥

पाँचो मुद्रा जोग जुक्ति छर छर ही लगै समाधा ।

आठो सिद्धि मुक्ति फल छरही छर ही तन मन साधा ॥ ४ ॥

रवि ससि तारा मंडल छर ही छर ही धरनि अकासा ।

छर ही नीर पवन अरु पावक नर्क स्वर्ग छर बासा ॥ ५ ॥

छर ही उतपति परलय छर ही छर ही जानन हारा ।

चरनदास सुकदेव बतावैं निःअच्छर है सब सूँ न्यारा ॥ ६ ॥

शब्द १०

॥ राग धनाश्री ॥

जो जन अनहद ध्यान धरै ॥ टेक ॥

पाँचो निरबल चंचल थाकै जीवत ही जु मरै ॥ १ ॥

सोधै मूलबंध दै राखै आसन सिद्ध करै ॥ २ ॥

त्रिकुटी सुरति लाय ठहरावै कुंभक पवन भरै ॥ ३ ॥

घन गरजै अरु बिजुली चमकै कौतुक गगन धरै ॥ ४ ॥

बहुत भाँति जहँ बाजन बाजैं सुनि सुनि सिंधु अरै[1] ॥ ५ ॥

सहज सहज में हो परकासा बाधा सकल हरै[2] ॥ ६ ॥

जग की आस बास सब टूटै ममता मोह जरै ॥ ७ ॥

सून्य सिखर पर आपा बिसरै काल सूँ नाहिं डरै ॥ ८ ॥

चरनदास सुकदेव कहत हैं सब गुन ध्यान धरै ॥ ९ ॥

---

(१) ऐसे मधुर बाजे कि जिनकी धुनि से समुद्र की लहरें स्थिर हो जायँ । (२) दूर हो ।

॥ राग करखा ॥

गुरु दया जोग यहि विधि कमायो ॥टेक॥

मूल कूँ सोधि संकोच करि संखिनी
खैंच आपान उलटो चलायो ॥ १ ॥

बंध पर बंध जब बंध तीनो लगैं
पवन भइ थकित नभ गर्जि आयो ॥ २ ॥

द्वादसा पलट करि सुरति दो दल धरी
दसो परकार अनहद बजायो ॥ ३ ॥

रोक जब नवन कूँ द्वार दसवें चढ़ी
सून्य के तख्त अनँद बढ़ायो ॥ ४ ॥

सहस्र दल कमल को रूप अद्भुत महा
अमी रस उमंग आ झरि लगायो ॥ ५ ॥

तेज द्युति पुंज पर लोक जहँ जगमगे
कोटि छवि भानु परकास लायो ॥ ६ ॥

उनमुनी और चित हेत करि बसि रहो
देखि निज रूप मनुवाँ मिलायो ॥ ७ ॥

काल अरु ज्वाल जग व्याधि सब मिटि गई
जीव सूँ ब्रह्म गति बेगि पायो ॥ ८ ॥

चरनदास रनजीत सुकदेव की दया सूँ
अभय पद परसि अवगति समायो ॥ ९ ॥

शब्द २३

॥ राग सारंग व बिलावल व सोरठ ॥

साधो अजब नगर अधिकाई ।
घट घाट बाट जहँ बाँकी उस मारग हम जाई ॥ १
न बिना बह बानी सुनिये बिन जिभ्या स्वर गावैं ।

नाव चढ़ी केवट के ऊपर सुत की गोदी माय ।
जो तू भेदी अमर नगर को तौ तू अर्थ बताय ॥ ३ ॥
चरनदास सुकदेव सहाई अब कह करिहै काल ।
बाँबी उलटि सर्प में पैठी जब सूँ भये निहाल ॥ ४ ॥

शब्द ३२

॥ राग मलार॥

चहुँ दिस झिलमिल झलक निहारी ।
आगे पीछे पहिने बायें तल ऊपर उँजियारी ॥ १ ॥
दृष्टि पलक त्रिकुटी ह्वै देखै आसन पद्म लगावै ।
संजम साधै दृढ़ आराधै जब ऐसी सिधि पावै ॥ २ ॥
बिन दामिनि चमकार बहुत हीं सीप बिना लर मोती ।
दीप मालिका बहु दरसावैं जगमग जगमग जोती ॥ ३ ॥
ध्यान फलै तब नभ के माहीं पूरन हो गति सारी ।
चाँद घने सूरज अनकी[1] ज्यौं सूभर[2] भरिया भारी ॥ ४ ॥
यह तौ ध्यान प्रतच्छ बतायौ सरधा होय तो कीजै ।
कहि सुकदेव चरन हीं दासा सो हम सूँ सुनि लीजै ॥ ५ ॥

शब्द ३३

॥ राग सोरठ ॥

हमारे गुरु मारग बतलाया हो ।
आनि देव की सेवा त्यागी अज[3] अबिनासी ध्याया हो ॥ १ ॥
हरि पूरन परस्यौं निस्चै सूँ छाँड़यौं झूँठी माया हो ।
इक रस आतम नित ही जानौं छिन भंगी है काया हो ॥ २ ॥
चाहो मुक्ति करो तन किरिया[4] भर्म अधिक भरमाया हो ।
बो करि पेड़ बबूल सूल के आम कहो किन पाया हो ॥ ३ ॥

(१) अनेक । (२) बालू के कण जो धूप में चमकते हैं । (३) अजर, अजन्मा । (४ तप-
या से मुक्ति नहीं हो सकती ।

शब्द ६

॥ राग करखा ॥

परसिया देस जहँ भेस नाहीं ।
घाट तिस लखि जहाँ बाट सूझै नहीं
सुरति के चाँदने संत जाई ॥ १ ॥
चंद खोड़स दिपैं गंग उलटी बहै
सुखमना सेज पर लम्प[1] दमकै ।
तासु के ऊपरे अमी को ताल है
झिलमिली जोत परकास चमकै ॥ २ ॥
चारि जोजन परे सून्य अस्थान है
तेज अति सून्य परलोक राजै ।
द्वार पच्छिम धसे मेरु हीं दण्ड हो
उलट करि आय छाजे बिराजै ॥ ३ ॥
नूर जगमग करै खेल आगाध है
वेद हूँ कहे नहिं पार पावैं ।
गुरुमुखी जाइ हैं अमर पद पाइ हैं
सीस का लोभ तजि पंथ धावैं ॥ ४ ॥
तीन सुन छेदि रनजीत चौथे बसै
जन्म औ मरन फिर नाहिं होई ।
चरनदास करि वास सुकदेव बकसीस सूँ
पूज वेगम पुरी अमर सोई ॥ ५ ॥

शब्द ७

॥ राग सोरठ ॥

गुरु बिन वह घर कौन दिखावै ।
जेहिं घर अग्नि जलै जल माहीं यह अचरज दरसावै ॥ १ ॥

(१) जोति ।

॥ राग धनाश्री ॥

गुरु गम यहि बिधि जोग कमायो ।
आसन अचल मेर कियो सीधो कसि बंध मूल लगायो ॥ १
संजम साधि कला बस कीन्ही मन पवना घर आयो ।
नो दरवाजे पट दै राखे अर्धै उर्ध मिलायो ॥ २
नाभि तले पैड़ो करि पैठे सक्ति पाताल गई है ।
काँप्यो सेस कमठ अकुलायो सायर थाह दई है ॥ ३
उलटि चले मठ फोरि इकीसो गये अभय पद माहीं ।
अति उँजियारो अद्भुत लीला कहन सुनन गम नाहीं ॥ ४
जित भये लीन सबै सुधि बिसरी छुटी जगत की व्याधा ।
चरनदास सुकदेव दया सूँ लागी सुन्न समाधा ॥ ५ ।

शब्द १३

॥ राग धनाश्री ॥

ऐसी जोग जुक्ति गति भारी ।
मूलहिँ बंध लगाय जुक्ति सूँ मूँदि दई नव नारी ॥ १ ॥
आसन पद्म महा दृढ़ कीन्हो हिरदय चिबुक[1] लगाई ।
चन्द सूर दोउ सम करि राखे निरति सुरति घर आई ॥ २ ॥
ऊपर खैंचि अपान सहज में सहजै प्रान मिलाई ।
पवन फिरी पच्छिम कूँ दौरी मेरुहि मेरु चलाई ॥ ३ ॥
ऐसहिँ लोक अमर पद पहुँचे सूरज कोटि उजारी ।
सेत सिंहासन सतगुरु परसे करि दरसन बलिहारी ॥ ४ ॥
आपा बिसरि प्रेम सुख पायो उनमुन लागी तारी ।
चरनदास सुकदेव दया सूँ चरन दास छुटी बारी[2] ॥ ५ ॥

शब्द १४

॥ राग मलार ॥

बिथा मोरी जानत हो अकि[3] नाहीं ।
नख सिख पावक बिरह लगाई बिछुरन दुख मन माहीं ॥ १ ॥
दिन नहिं चैन नींद नहिं निसकूँ चित्त चल बुधि नहिं मेरो ।
कासूँ कहूँ कोउ हितु न हमारो लम्र लहरि हरि तेरी ॥ २ ॥
तन भयो छीन दीन भये नैना अजहूँ सुधि नहिँ पाई ।
छतियाँ दरकत करक हिये में प्रीत महा दुखदाई ॥ ३ ॥
जल बिन मीन पिया बिन बिरहिन इन धीरज कहु कैसी ।
पच्छी जरै दव[4] लागी बन में मेरी गति भई ऐसी ॥ ४ ॥
तलफत हूँ जिय निकसत नाहीं तन में अति अकुलाई ।
चरनदास सुकदेवहिँ बिनवैं[5] दरसन द्यो सुखदाई ॥ ५ ॥

(१) ठुड्डी । (२) चरन के दास का आवागवन छूटा । (३) याकि । (४) आग ।
(५) विनती करता है ।

20:51

कहैं गुरू सुकदेव जी चरनदास बिचारौ ।
करनी रहनी दृढ़ गहौ थोथी कथनी डारौ ॥ ६ ॥

शब्द १७

॥ राग बिलावल ॥

माला फेरे कहा भयो ॥ टेक ॥
अंतर के मन को नहिं फेरा पाप करत सब जन्म गयो ॥१॥
पर निन्दा पर नारि न भूलो खोट कपट की ओर नयो[1] ॥२॥
काम क्रोध मद लोभ न खोये ह्वै रह्यो मूरख मोह मयो ॥३॥
दुनिया साँच समझ घर कीन्हो धन जोरन को परन लयो ॥४॥
दया धर्म दोउ मारग छाँड़े मँगतन को नहिं दान दयो ॥५॥
गुरु सूँ झूँठ भगल साधन सूँ हरि सूँ नाहीं नेह जयो[2] ॥६॥
चरनदास सुखदेव कहत हैं कैसे कहियो मुक्ति हयो[3] ॥७॥

शब्द १८

॥ राग सोरठ ॥

अवधू ऐसी मदिरा पीजै ।
बैठि गुफा में यह जग बिसरै चंद सूर सम कीजै ॥ १ ॥
जहाँ कुलाल चढ़ाई भाठी ब्रह्म ज्वाल परजारी ।
भरि भरि प्याला देत कुलाली बाढ़ै भक्ति खुमारी ॥ २ ॥
माता[4] ह्वै करि ज्ञान खड़ग लै काम क्रोध कूँ मारै ।
घूमत रहै गहै मन चंचल दुबिधा सकल बिडारै ॥ ३ ॥
जो चाखै यह प्रेम सुधारस निज पुर पहुँचै सोई ।
अमर होय अमरा पद पावै आवा गवन न होई ॥ ४ ॥
ुरु सुकदेव किया मतवारा तीन लोक तृन बूझा ।
रनदास रनजीत भये जब आनंद आनंद सूझा ॥ ५ ॥

(१) —

20:53

॥ मोर की धुन राग भैरव ॥

गगन मंडल में आरति कीजै।
उत्तम साज सकल साजि लीजै ॥ १ ॥
सुखमन अमृत कुंभ[1] धरावै।
मनसा मालिनि फूल चढ़ावै ॥ २ ॥

(१) घड़ा।

घीव अखंडा सोहं बाती।
त्रिकुटी ज्योति जलै दिन राती ॥ ३ ॥
पवन साधना थाल करीजै।
ता में चौमुख मन धर लीजै ॥ ४ ॥
रबि ससि हाथ गहौ तिहि माहीं।
खिन दहिने खिन बाँये लाईं ॥ ५ ॥
सहस कँवल सिंहासन राजै।
अनहद झाँझरि नित हीं बाजै ॥ ६ ॥
यहि बिधि आरति साँची सेवा।
परम पुरुष देवन को देवा ॥ ७ ॥
चरनदास सुकदेव बतावै।
ऐसी आरति पार लगावै ॥ ८ ॥

शब्द ३९

॥ राग काफी ॥

कोइ दिन जीवै तो कर गुजरान।
कहर गरूरी छाँड़ि दिवाने, तजो अकस की बान ॥ १ ॥
चुगली चोरी अरु निन्दा लै, झूठ कपट अरु कान।
इनकूँ डारि[1] गहे जत सत कूँ, सोई अधिक सयान ॥ २ ॥
हरि हरि सुमिरौ छिन नहिँ बिसरौ, गुरु सेवा मन ठानि।
साधुन की संगति कर निस दिन, आवे ना कछु हानि ॥ ३ ॥
मुडौ कुमारग चलौ सुमारग, पावौ निज पुर बास।
गुरु सुकदेव चेतावैं तोकूँ, समुझ चरनहीं दास ॥ ४ ॥

शब्द ४०

॥ राग रामकली ॥

फिरि फिरि मूरख जन्म गँवायो।
हरि की भक्ति साधु की संगति, गुरु के चरनन में नहिं आयो ॥१॥

(१) फेक कर।

13:31
← 2015.317108.Muktimarg
54/424

दोहा।

कई वर्ष पहिले कह्यो, परमधाम निज जान॥
त्रिकालज्ञ ज्ञाता गुनी, श्रीस्वामी सुखदान १५२

चौपाई।

एक समय सँग ले बहु संत। सिद्धराम ले साथ महंत॥
श्रीस्वामी दिल्ली से आये। कुछ दिन बेरीग्राम रहाये॥
निशि दिन रहै ध्यान लौलाई। जुगल रूप में सुरति समाई॥
मगन मानसी सेवा माहीं। देह गेह की सुधि बुधि नाहीं॥
तन जग में मन हरिपद दीने। स्वामी रामरूप रँग भीने॥
तदाकार हरिछबि भये लीना। जल अगाधमें जिमिरहैं मीना॥
अठारह सौ अरु सैंतालीसा। सम्बत विक्रम बिस्वेबीसा॥
जेठ सुदी बारस तिथि जानी। बुद्धबार दिन लिया पिछानी॥
देह तजन स्वामी मन आई। सिद्धराम शिष्य निकट बुलाई॥
शीश हाथ धर दई अशीशा। कृपा रहै तुम पर जगदीशा॥
अब हम परमधाम निज जावें। कुछ दिन बीते तुम्हैं बुलावें॥
सबको जय महाराज हमारी। सेवक संत सकल नर नारी॥

दोहा।

पद्मासन सो बैठके, श्रीस्वामी महाराज॥
सुख मन मारग प्राण तब, चढें गगन मैं गाज १५३
दशम् द्वार टूटा तभी, तड़दे भई अवाज॥
बिजली सी चमकी तभी, बाजे अनहद बाज १५४

चौपाई।

स्वामी सिद्धराम तेहि बारी। गुरु बियोग दुख माना भारी॥
पुनि बिचार मन धीरज धारी। देहकृत्य मनमाहिं बिचारी॥
गुरुभाई अरु साधू संत। सेवक बेरी ग्राम अनंत॥
आये सिमट सकलतेहिबारी। संज बिमान सुन्दर अतिभारी॥

राग बिलावल।

गगन मण्डल में अलख जगाव रे॥

जब जोगी जानूं में तोकूं
सुन्न सिखर पर जा मठ छाव रे॥ १॥
पहिले संजम साध जुगत सूं
प्रान अपान की सन्ध मिलाव रे॥
भूचरी मुद्रा जासूं कहिये
कमल कमल पर पवन चढ़ाव रे॥ २॥
चाचरी मुद्रा नैन मँझारी
दिष्ट नासिका पै ठहराव रे॥
अचरज कौतुक बहु दरसावैं
रिद्धि सिद्धि लखि करले चाव रे॥ ३॥
खेचरी मुद्रा रसन बढ़ावै
भवँरगुफा में जाय फिराव रे॥
अमृत उतरै पीव मगन हो
जोति खुलै जहां दर्शन पाव रे॥ ४॥
अगोचरी मुद्रा श्रवण बासा
शब्द सुरति की गांठ लगाव रे॥
परमहंस अनहद कूं जानौ
अनहद मिल अनहद होजाव रे॥ ५॥
उनमुनी मुद्रा दशवें द्वारे
लगे समाधि सकल बिसराव रे॥

सिध साधक दोऊ करनी त्यागें
रहै न कोई दूजा भाव रे॥ ६॥
पाँचों मुद्रा ये तुम पहिरो
छूठी मुद्रा खोल बगाव रे॥
ज्ञान जटा शिर ऊपर राखो
मुक्ति पन्थ कूं मन ले धाव रे॥ ७॥
या साधन कूं कर हित सेती
जीव ब्रह्मकी दुई मिटाव रे॥
रामरूप चरणदास कहत हैं
जब जोगेश्वर साँच कहाव रे॥ ८॥

नीकी भांति ब्रह्म पहिचाने सो ब्राह्मण हो जावै॥ ४॥
रामरूप चरणदास कहत हैं ऐसा ब्राह्मण हूजे॥
होय पुरोहित अलख पुरुष का मांग अमीरस पीजे॥५॥

राग सोरठ।

साधो सो जोगीश कहावे॥
काया नगरी बस कर सगरी पूरा अमल कमावे॥ १॥
बाँधे मूल बाप कूं जीतै प्रान अपान मिलावै॥
दो दल जीत चढ़ै गढ़ ऊपर निर्भय बम्ब बजावै॥ २॥
जहां जाय दुर्जन सब हनि कै प्रथमैं संजम साधै॥
हृदय कमल में बासा लेकर पावै अनहद नादै॥ ३॥
पहिल कमल सैं पवन उठावै दूजे कमल फिरावै॥
तीजे कमल में सीधी करके चौथे माँहि चढ़ावै॥ ४॥
पँचवें में लेजाय जुगत सूं छठवें जोति जगावे॥
जाय समावै सतवें माँहीं भवजल बहुर न आवै॥ ५॥
जोग सिद्ध सोई जन जानों गगनमण्डल घर छावै॥
रामरूप चरणदास कहत हैं काम धनी के आवे॥ ६॥

राग सोरठ।

साधो यह रजपूती मेरी।
काम क्रोध सिंह दोनों मारूं शील क्षमा गऊ घेरी॥ १॥
मोह लोभ हैं अति बट मारे इन कूं हन सुख पाऊं॥
सत्य संतोप गढ़ी जहां बाँधूं निर्भय राह चलाऊं॥ २॥

राग सोरठ।

म्हारे सतगुरु जुगति बताई हो।
औघट घाट चले बिन पैरौं जहां काल नहीं खाई हो॥

प्रथम मूल बंध कसि दीनौ उलटी पवन चढ़ाई हो।
षट्कवल औंधे किये सूधे जब आगे गम पाई हो॥
इड़ा पिंगला मार्ग थाके सुखमन सहज समाई हो।
भँवर गुफा में अजब तमासा सोभा कही न जाई हो॥
कई कोट रबिसिस परकासे दीपमाल दरसाई हो।
झुक रही घटा दामिनी दमकैं अमृत झड़ी लगाई हो॥
सहस कंवल दल सेत सिंहासन तेज पुंज छबि छाई हो।
अनहद नाद झरै बहु भांती सुन्न धजा फहराई हो॥
जहां सतगुरु रामरूप बिराजैं सिद्धराम मिले जाई हो।
पाय अमरपद आनंद हूये आवागवन मिटाई हो॥ ४५॥

राग जैजैवंती।

गगन मंडल की सैल गुरु गम कीनी भाई॥
देखा अद्भुति खेला जीव सीव हुवा मेला॥
जहां नहीं राति द्यौस लखी छबि झीनीं॥
बाजै अनहद तूरा सुनैं कोई साधू पूरा॥
रागदोष नास भये ध्यान सुरति दीनी॥
इंद्री मन कैद किये बिषै भोग त्यागदिये॥
कर्म की काटी बेड़ी पैनी ज्ञान छैनी॥
जनम मरन नासो आपही में आप भासो॥
सोई रामरूप जानौं बोध बुधि भीनी॥
जीव भाव मिटा दूजा एक ब्रह्म सारे सूझा॥
सिद्धराम हूवा जब नित्य आतम चीन्हीं॥ ४६॥

कबित्त।

जोग की जुगति करि चाहों तो हजार बर्ष राखों शरीर निज काल सों बचाय के। चाहों तो सहित वपु जाऊं मैं परमपद चाहों तो ब्रह्म बीच जाऊं मैं समाय के॥ चाहोंतो सरूप निजरूप में मिलाय राखों रामरूप होय रहों वही रूप पायके। ऐपै सतगुरु भेद यही तो बतायो मोंहि दसम द्वार छेद मिलूं ब्रह्म बीच जायके॥ ५॥

कवित्त।

राखूं जो शरीर चिरकाल थिर आपनो विशेष करि अंत को सो अंत होय जात है। भाँवें सौ हजार वर्ष भाँवें राखो कोट लक्ष बिनस जाय धूल होय वही एक बात है॥ तातें मन यही धरी इछ्या गुरुदेव फुरी जोग की जुगति करों प्रगट बिख्यात है। आप प्रभु आज्ञा दई रामरूप मान लई दशम द्वार प्राण तजों यही मो सुहात है॥ ६॥

इति॥

इड़ा पिंगला सुषमना, केलि करै परवीन ॥
करते प्राणायाम के, पावै आतम भेख।
अनहद ध्वनि के बीचमें, देखै शब्द अलेख ॥
पूरक करि कुंभक करै, रेचक पवन उतार।
ऐसे प्राणायाम करि, सूक्षम करै अहार ॥
धरती बन्ध लगाय करि, दशौ वायु को रोक।
मस्तक प्राण चढ़ायकै, करै अमरपुर भोग ॥
पांचो मुद्रा साधिकै, पावै घट को भेद।
नाड़ी शक्ति चढ़ाइये, षटौ चक्रको छेद ॥
नासाध्यान दृष्टि भृकुटी में, सुरति श्वासके माहिं।
आतम देखो जातहै, यामें संशय नाहिं ॥
योगयुक्ति कै कीजिये, कै आतम को ध्यान।
आपा आप विचारिये, परम तत्त्व को ज्ञान ॥
शूद्र वैश्य शरीर है, ब्राह्मण और रजपूत।
बूढ़ा बाला तू नहीं, चरणदास अवधूत ॥
काया माया जानिये, जीव ब्रह्म है मित्त।
काया छुटि सूरति मिटै, तू परमातम नित्त ॥
पाप पुण्य आशातजो, तजो मान अरु थाप।
काया मोह विकारतजि, जपै सु अजपा जाप ॥
आप भुलानो आपमें, बँधो आपही आप।
जाको ढूंढ़त फिरतहो, सो तुम आपहि आप ॥
इच्छा दुई विसारिकै, क्यों न होय निर्वास।
तूतो जीवन्मुक्त है, तजो मुक्तिकी आस ॥
आपा खोजै आपलखि, आप अपनको देख।
चरणदास तुहि ब्रह्महै, तूही पुरुष अलेख ॥

मन सों ब्रह्म होय गति सोई । लक्षण जीव रहै नहिं कोई ॥
अचल सिंहासन जब तू पावै । मुक्तिखवासी चँवर डुरावै ॥
आठौसिद्धि जहां कर जोरैं । सोहीं ताके मुख नहिं मोरैं ॥
निश्चल राज अमल करै पूरा । बाजै नौबत अनहद तूरा ॥
तीन तीन अरु कोटि अठासी । वै सब तेरी करैं खवासी ॥
गुरु शुकदेव भेद दियो नीको । चरणदास मस्तक कियो टीको ॥
रणजीता यह रहनी पावै । थोथी करनी कथनि बहावै ॥

अथ योग का अंग ॥

राग करखा ॥

साधौ गुरु दया योग इह विधि कमायो ।

मूलको शोधि संकोच करि शङ्खिनी खैंचि आपान उलटो चलायो ॥ बन्ध पर बन्ध जब बन्ध तीनों लगैं पवन भइ थकित नभ गर्ज्जि आयो । द्वादशा पलटि करि सुरति दो दल धरी दशौ परकार अनहद बजायो ॥ रोंक जब नवन को द्वार दशवें चढ़ो शून्य के तख़्त आनँद बढ़ायो । सहस दल कमल को रूप अद्भुत महा अमीरस उमँग आ झरि लगायो ॥ तेज अतिपुञ्ज परलोक जहँ जगमगे कोटि छवि भानु परकाश लायो । उनमनी और चित हेत करि बसिरहो देखि निज रूप मनुवां मिलायो ॥ काल अरु ज्वाल जग व्याधि सब मिटि गई जीवसों ब्रह्मगति वेगि पायो । चरणदास रणजीत शुकदेव की दयासों अभयपद परशि अविगत समायो ॥ साधो पिण्ड ब्रह्माण्ड की शैल गुरु गमकरी परसिया मुक्तिसों अलखराई । सहजही सहज पग धरा जब अगम को दशौपरकार झागड़ा बजाई ॥ खोलि कापाट अरु वज्रद्वारे चढ़ो कलाके

भेद कुंजी लगाई । पहल के महलपर जाय आसनकिया दूसरे महलकी खबरि पाई ॥ तीसरे महलपर सुरति जा बसिरही महल चौथे दुही अमीगाई । पांचवें महल को साधु कोइ पाइहै महल छठवां दिया गुरु बताई ॥ सातवें महलपर कोटि सूरज दिये आठवें महल अविगति गोसाईं । रूप अद्भुत तहां देखि अचरज जहां देखिया दरश सब विपति जाई ॥ शुकदेवकी सहासों धारण गहासो आपने पीवके भवन आई । चरणदास आपा दिया प्रेम प्याला पिया शीश सदके किया पूजि पाई ॥

साधो परसिया देश जहँ भेश नाहीं ।

घाट तिसलखि जहां बाट सूझै नहीं सुरतिके चांदने सन्त जाई ॥ चन्द षोड़शदिपै गंग उलटीबहैं सुषमना सेज पर लम्ब दमकै । तासुके ऊपरे अमी का ताल है झिलमिली ज्योति परकाश झमकै ॥ चारि योजन परे शून्य अस्थान है तेज अति पुंज परलोक राजै । द्वार पश्चिम धँसै मेरही दण्डहो उलटिकर आय छाजे विराजै ॥ नूर जगमग करै खेल आगाध है वेदकत्तेब नहिंपार पावैं ।

तीन महीने चार का, बालक गोदी माय ।
ना वह पीवै नीरहीं, अन्न नही वह खाय ॥
वह तौ जीवै दूधसूं, वाकूं वही जुकाम ।
लगो रहै माताकुचन, निसरै एक न याम ॥
अमृत पीवै योगिया, ऐसे चरणहि दास ।
पहरहु यह छांड़े नहीं, कामधेनु[1] को पास ॥
ऐसे धारै तौ बनै, सुधा रसाला संत ।
दिविकायाहोजायजब, धनिकहै कमलाकंत ॥
आठ पहर लागारहै, पीवै कै कै ध्यान ।
मैं कहा जैसाही बनै, परसै पद निरवान ॥
भेद गुरूसे ये लहै, और छिपावै वाहि ।
जोजोफलयाकेअधिक, होय परापति तांहि ॥
योगेश्वर अरु देवता, मुनी ऋषीश्वर जान ।
रखवारे वाके घने, करन न देवैं ध्यान ॥
टेक गहै सो जापियै, और करै ह्यां ध्यान ।
यति सती अरु गुरुमुखी, जाकी ऐसीआन ॥
बड़ी जु मुद्रा खेचरी, मुख में याका वास ।
जो कहिमैं शुकदेवजी, जानलेहु चरणदास ॥

अथ भूचरी मुद्रा ॥

दूजी मुद्रा भूचरी, नासा जाको वास ।
प्राण अपान जुदी जुदी, एक करै चरणदास ॥
जितकीतितरखप्राणको, वा घरलाय अपान ।
ताहि मिलावै युक्तिसूं, करि करि संयम ध्यान ॥
जब वह जीतै पवनकूं, मन चंचल ठहराय ।

1 इन्द्रकी गौ ॥

गगन चढ़न की आश हो, कहैं शुकदेव सुनाय ॥
गुदाद्वार बंध दीजिये, एँड़ी पांव लगाय ।
आसन सिद्धजुकीजिये, मन पवनावश लाय ।
अपान वायु जब वशभवे, ऊरध खैंच चलाय ।
सनई सनई जाचढ़ै, प्राण वायु ह्वैजाय ॥

अथ चाँचरीमुद्रा ॥

साध मुक्ति नहिं चहत हैं, सिद्ध न चाहत साध।
स्वर्गलोक नहिं चहत हैं, जिनका मता अगाध॥

चौपाई॥

इड़ा पिंगला सुखमन धारो। आसन बज्र नागिनी टारो॥
द्वादश अंगुल होय वेध षट चक्कर लीजे।
जब बाजे अनहद तूर जहां मन निज कर दीजे॥
खेचरी मुद्रा त्रिकुटी आवे। अमृत पिये परम सुख पावे॥
मेरुदण्डको प्राण चलावे। शून्य शिखर जब नगरी पावे॥
जा नगरीमें चन्द न भान। पहुँचे साधू चतुर सुजान॥
जाति पांति जहँ नाम न नाता। श्वेत श्याम पीता नहिं राता॥
योग यज्ञ तप जहां न दाना। तीरथ बर्त्त जहां नहिं न्हाना॥
किरिया कर्म जहां नहिं पूजा। मैं तू है नहिं एक न दूजा॥
जहां न सांझ द्यौस नहिं राता। एकै ब्रह्म अखंड बिधाता॥
चरणदास रामकी घाटी पहुँचे गुरुमत शूरा।
ओछी बुद्धि बाद बहुठाने करणी करै सो पूरा॥

छप्पै॥

बैठ गुफाकेमध्य योगकी युक्ति बिचारै।
आप अकेलो रहै और ना मनुष निहारै॥
चारिबारि नितकरै जाप ॐकार अराधै।
सूक्ष्म करै आहार ओगरो पतलो साधै॥
आसन पद्म लगाय कै सीधी राखै मेर।
ठोढ़ी हिये लगाइये पलक झांपकरि हेर॥

दो० कुंभक आठ प्रकारके, तिनमें उत्तम एक।

केवल कुंभक जानिये, साधै ताहि विशेख ॥
त्रिकुटी में तीरथ अगम, तिरवेणी जेहि नाम ।
न्हाय योगकी युक्ति सूं, पूरण हो सब काम ॥
रणजीत कहैं जहाँ न्हाइये, त्रिकुटी तीरथ धाम ।
नित परबी जहाँ होत है, भजनकरो निष्काम ॥

चौपाई ॥

जा तीरथ को पवन न लागै । जा तीरथ में जन अनुरागै ॥
जा तीरथ में रतन अनेका । पूरे गुरुसों मिलमिल देखा ॥
वा तीरथमें जो कोइ न्हावै । भवसागर में बहुरि न आवै ॥
जहां न चन्द सूर नहिं तारे । गुरुगम पहुँचे अति मतवारे ॥
जा तीरथका बँधा जो नीर । उज्ज्वल निर्मल गहिर गँभीर ॥
ब्रह्मा विष्णु जहां त्रयदेवा । योग युक्ति में लावैं सेवा ॥
बारह मास दामिनी दमकै । सोन पटीला जुगुनू झमकै ॥
रणजित मीत बास जहाँ कीजे । नित अस्नान महासुख लीजे ॥

छप्पै ॥

अमरी वजरी साध बायु सरने नहिं पावै ।
द्वादश अंगुल प्राण सुरतदे ताहि घटावै ॥
मौन गहै नितरहै अल्प सूक्षम सो बोलै ।
एकबार आहार जँभाई कबहुँ न खोलै ॥
बांधैसो जाय हद छीकको अनहद धुनि अति गाजई ।
मन चरणदास शुकदेव बल सुयोग युक्ति इमि साजई ॥

दो० मन पवना वश कीजिये, ज्ञान युक्तिसों रोक ।
सुरति बांधि भीतर धसै, सूझै काया लोक ॥
मन हिरदे में रहत है, पवन नाभिके माहि ।
इन्द्री रोकै ये रुकैं, और कछू बिधि नाहिं ॥

छप्पै ॥

नौ नाड़ीकी खैंच पवन लै उरमें दीजै ।
बज्जर ताला लाय द्वार नौ बन्ध करीजै ॥
तीनो बन्ध लगाय अस्थिर अनहद आराधै ।
सुरति निरतिका काम राह चल गगन अगाधैं ॥
शून्य शिखर चढ़िरहै हद्द जहां जाय आसन करै ।
भन चरणदास ताड़ीलगै सो रामदरश कलिमल हरै ॥
चौथा पद निर्बाण धाम बेगमपुर कहिये ।
गुण अतीत जहाँ रामनिरखि नैनन सुख लहिये ॥
अद्वै रूप अखण्ड मण्ड मण्डल बहु बंका ।
जहां काल नहिं ज्वाल शब्द अति उठत निशंका ॥
निज पारब्रह्म चौरी रची शिव सहित शक्ति फेरी करैं ।

भन चरणदास चारों मुक्ति सो हाथ जोरि पायँनपरैं ।
मूल कमल में खेलि पिया कूं देखन चलिये ।
उलटि वेद षटचक्र जाइ सतवैंसे मिलिये ॥
प्राण अपान मिलाय राह पश्चिमकी लीजे ।
बंक नाल करि शुद्ध प्राण लै तामें दीजे ॥
मेरु दण्ड चढ़िजाय जब लोक लोक की गम परै ।
भन चरणदास ब्रह्मण्ड में ब्रह्मदर्शी दर्शन करै ॥

दोहा ॥

चरणदास यहि बिधिकही, चढ़िवे को आकास ।
शोधि साधि साधन अगम, पूरण ब्रह्म विलास ॥

छप्पै ॥

21:24

sant Charandas

ने ग्रन्थ के विषय का विभाजन प्रसगों अथवा विश्रामों में नहीं किया है। एक विषय की समाप्ति हो जाने पर वह द्वितीय विषय की विवेचना करने लगता है। इस क्रम से ग्रन्थ का विषय समाप्त हो जाता है।

155/505

ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय—ग्रन्थ का वर्ण्य विषय निम्नलिखित है :—

श्री व्यास पुत्र शुकदेव की वन्दना—ब्रह्म या ईश्वर का मार्ग बताने वाले श्री सतगुरु की प्रार्थना—संतो का सर्वकल्याणकारी व्यक्तित्व—संतों की निष्काम भक्ति—इडा, पिंगला और सुषुम्णा को धारण करके वज्रासन में कुंडलिनी को जाग्रत करने की प्रक्रिया—खेचरी मुद्रा और त्रिकुटी के माध्यम से अमृत पान और बेहद प्रदेश में प्रवेश—बेहद प्रवेश का सूक्ष्म आभास—बेहद प्रदेश का सुहावना वर्णन—गुफा मध्यस्थ होकर पद्मासन में प्रणव का जप–आठ प्रकार के कुंभक में केवल कुम्भक की श्रेष्ठता–त्रिकुटी में स्थित त्रिवेणी और तीर्थ के स्नान और दर्शन—तीर्थ की महत्ता और श्रेष्ठ वर्णन-तीर्थ का आकर्षक वर्णन—भ्रमरी वजरी साधना—साधक की रहनी—मन और पवन पर यथोचित नियंत्रण–मोह लोभादि का विसर्जन, तटस्थ भाव से जीवन यापन का प्रयत्न-सहस्र दल कमल में प्रवेश का प्रयत्न—"सोऽहं का जाप, नौ नाडी की खैंच पवन लै उरमें दीजै"—शून्य शिखर में प्रवेश, षटचक्र भेदन-प्राण, अपान, समान को मिलाकर

तथा ६क नालशुद्ध करके प्राणायाम साधना—इस विधि से आकाश में प्रवेश करके पूर्ण ब्रह्मत्व की प्राप्ति करना—अमरलोक का रोचक तथा संक्षिप्त वर्णन—ब्राह्मण की परिभाषा ब्रह्म की सर्वव्यापकता—भ्रामक द्वैत भावना की आलोचना—राम की सर्व-व्यापकता तथा महत्ता—आत्म ज्ञान की महत्ता और अंध विश्वासों की आलोचना—वाह्याचारों की निःसारता—ग्रन्थ की रचना लिपि—शुकदेव तथा ब्रह्म की वन्दना।

विषय-प्रतिपादन—ग्रन्थ में विषय का प्रतिपादन साधरण किन्तु स्पष्ट रीति से सम्पन्न हुआ है। विषय में कहीं-कहीं क्रमबद्धता नहीं है। ग्रन्थ में विषय-प्रतिपादन की शैली प्रभावशाली और परिष्कृत है। इन सबके होते हुए भी ग्रन्थ कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में से एक प्रतीत होता है।

रचनाकाल—अन्तस्साक्ष्य के आधार पर ग्रन्थ का रचना काल चैत्र सुदी १५ सोमवार संवत् १७८१ है। कवि के शब्दों में ही :—

संवत सत्रह से इक्यासी। चैत्र सुदी तिथि पूरणमासी॥
शुक्ल पक्ष दिन सोमहिवारा। रच्यौं ग्रन्थ यों कियो विचारा॥
तब ही सूं अस्थापन धरिया। कछु इक बानी वा दिन करिया॥

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना कवि ने इक्कीस वर्ष की अवस्था में की थी।

21:33

sant Charandas

242/505

'घेरंड संहिता' में भी इन्हीं आठ प्रकार के कुम्भक को मान्यता दी गई है :—

संहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी, शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्ट कुम्भिकाः ॥
घे० सं०—पंचमोपदेशः श्लोक ४५

अर्थात् सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली भेद से कुम्भक आठ प्रकार के हैं।

कवि ने सर्वप्रथम कुम्भक की परिभाषा एवं प्रक्रिया अथवा साधना का वर्णन किया है, तदनन्तर कुम्भक के विभिन्न अष्ट भेदों का परिचय दिया है। कुम्भक की प्रक्रिया और परिचय से सम्बन्धित निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करने योग्य हैं :—

पवन पूर पूरक ही कीजै। पाछे बन्ध जलन्धर दीजै ॥
कुंभक रेचक के मांध जानै। हाई बन्ध उड्यान पिछानै ॥
पवन जोर ही सूं गहि लीजै। अर्ध ऊर्ध्वं संकोच न कीजै ॥
मध्यम कीजै पश्चिम तानै। ब्रह्म नारिके माहि समानै ॥
नाड़ी पवन खैंचिये ऐसे। भरिये सब संध्यान जु जैसे ॥
अपान वायु कूं ऊपर लावै। प्राण वायु नीचे लै जावै ॥
जोपै यह साधन बनि आवै। योगी बूढ़ा होन न पावै ॥
तरुण अवस्था देखे ऐसी। नितही रहै जानिये जैसी ॥

कुम्भक की प्रक्रिया, लक्षण, स्वभाव तथा गुण आदि का वर्णन करने के अनन्तर कवि ने कुम्भक के अष्ट भेद का प्रारम्भ किया है। इस वर्णन में सर्वप्रथम प्रक्रिया का वर्णन किया है, तदनन्तर उसके लक्षण और महत्त्व का उल्लेख किया है। प्रायः यही क्रम आद्योपांत कुम्भक के समस्त भेदों का वर्णन करने में रखा गया है। कवि के मत से सूर्यभेद कुम्भक का सर्वप्रथम भेद है। योगशास्त्र के कुशल आचार्य घेरंड के मत से कुम्भक करते समय प्राणादि समस्त वायुओं को पिंगला नाड़ी से विभिन्न कर नाभिमूल देश से समान वायु को उठावे, पुनः धैर्य के साथ वेग पूर्वक बाम नासिकापुट से रेचन करे। तदनन्तर दक्षिण नासापुट से वायु भर कर सुषुम्णा से कुम्भक कर बाम नासा से रेचन करे। इस क्रिया को बारम्बार करना सूर्यभेद कुम्भक कहा जाता है।[1] दूसरे शब्दों में सावधानी पूर्वक सुगम आरामदेह आसन

१. सर्वे ते सूर्यसंभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत् ।
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाखंडवेगतः ॥
पुनः सूर्येण चाकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि ।
रेचयित्वा साधयेत् क्रमेण च पुनः पुनः ॥
घे० स०—पंचमोपदेशः ५५-५६

२४

इस ग्रन्थ के आरम्भ में पूज्यपाद पण्डित हरप्रसादशास्त्री जी ने लम्बी भूमिका लिखी है जिसमें बौद्धसम्प्रदायों के सिद्धान्तों का पर्याप्त विवेचन है। बहिःशक्ति की प्रधानता होने पर सृष्टि होती है और अन्तःशक्ति की प्रधानता होने पर

१. इन समग्र ग्रन्थों के संग्रह के लिए द्रष्टव्य 'अद्वयवज्रसंग्रह' (गा० ओ० सी० सं० ४०), बरोदा १९२७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

संहार होता है। स्थिति उभय शक्तियों की समानता का निदर्शक है। शिव-शक्ति, पुरुष–प्रकृति आदि शब्द इसी आदि द्वन्द्व के बोधक हैं। जीवदेह में ये शक्तियाँ प्राण और अपान रूप से रहती हैं। प्राण और अपान का परस्पर संघर्षण ही जीवन है। प्राण अपान को और अपान प्राण को अपनी ओर खींचता रहता है। इन दोनों को उद्बुद्ध कर दोनों में समता लाना योगी का परम कर्तव्य है। प्राण तथा अपान की समता, इड़ा और पिङ्गला की समता, पूरक और रेचक की समानता (अथवा कुम्भक), सुषुम्ना के द्वार का उन्मोचन—एक ही पदार्थ है। इड़ा वाम नाड़ी है और पिङ्गला दाहिनी नाड़ी है तथा दोनों की समानता होने पर, दोनों के मध्य में स्थित सुषुम्ना नाड़ी का द्वार आप से आप खुल जाता है। इसी द्वार के सहारे प्राण की ऊर्ध्व गति करना योगियों का परम ध्येय है। सुषुम्ना के मार्ग ही को कहते हैं मध्यम पथ मध्यम मार्ग, शून्यपदवी अथवा ब्रह्मनाड़ी। सूर्य और चन्द्र को यदि प्रकृति तथा पुरुष का प्रतीक मानें तो हम कह सकते हैं कि प्रकृति और पुरुष के आलिङ्गन के बिना मध्यम मार्ग कभी खुल नहीं सकता। वाम और दक्षिण के समान होने पर मध्यमावस्था का पूर्ण विकास ही निर्वाण है। इड़ा और पिङ्गला के समीकरण करने से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है। जब षट्चक्र का भेद कर आज्ञाचक्र से ऊपर साधक की स्थिति होती है तब कुण्डलिनी धीरे-धीरे ऊपर चढ़कर चैतन्य-समुद्ररूप सहस्रारचक्र में स्थित परम शिव के आलिङ्गन के लिए अग्रसर होती है। शिव-शक्ति का यह आलिङ्गन महान् आनन्द का अवसर है। इसी अवस्था का नाम युगल रूप है।

'वज्रयान' का ही दूसरा नाम 'सहजयान' है। सहजिया सम्प्रदाय के योगियों के मतानुसार 'सहजावस्था' को प्राप्त करना सिद्धि की पूर्णता है। इसी अवस्[illegible] का नामान्तर निर्वाण, महासुख, सुखराज,[1] महामुद्रा-[illegible]त्कार [illegible]नावस्था आदि हैं। इस अवस्था में ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान—[illegible]क, ग्राह्य तथा [illegible] इस लोकप्रसिद्ध त्रिपु[illegible] समय सर्वथा अभाव हो जाता है। इसी अवस्था का वर्णन सरहपा (८०० ई० के आसपास) ने इस प्रसिद्ध दोहे में किया है :—

> 'जह मन पवन न सञ्चरइ, रवि ससि नाह पवेश।
> तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेश॥'

अर्थात् सहजावस्था में मन और प्राण का सञ्चार नहीं होता। सूर्य और चन्द्र

१. जयति सुखराज एकः कारणरहितः सदोदितो जगताम्।
यस्य च निगदनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञः॥
(सरहपाद का वचन, सेकोद्देशटीका पृ० ६३)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

दया—

समस्त धर्मों का मूल दया है। इसका विकास सर्वप्रथम हृदय में होता है तदनन्तर कर्म और वाणी में प्रसार होता है—

दया सातवां अब सुनि लीजै। सब जीवन की रच्छा कीजै ॥
लख चौरासी का सुखदाई। सबके हित को कहूँ बनाई ॥
रहिये तन मन बचन दयाला। सबहीं सों निर्बैर कृपाला ॥

आर्ज्जव—

आर्ज्जव के अन्तर्गत कवि ने कोमलता एवं दयालुता पर विशेष जोर दिया है। साधक को मनसा, वाचा, हृदय से तथा दृष्टि से कोमलता धारण करना चाहिये—

अठवें करूँ आर्य्यवै खोलै। कोमल हृदय सों कोमल बोलै ॥
सबको कोमल दृष्टि निहारै। कोमलता तन मन में धारै ॥
कोंमल धरती बीज बोवावै। बढ़ै बेगि फूलै फल लावै ॥
ऐसे कोमल हिया बनावै। योग सिद्धि करि पद पहुँचावै ॥

मिताहार—

शुद्ध, अल्प तथा पोषक भोजन करना ही मिताहार है। कवि के शब्दों में ही—

मिताहार जो नवैं की, समझ लेहु मन मांहि।
सतगुन भोजन खाइये, ऐसा वैसा नाहि ॥
खावै अन्न विचारिकै, खोटा खरा संभार।
जैसा ही मन होत है, तैसा करै अहार ॥

सूछम चिकना हलका खावै। चौथा भाग छोड़ि करि पावै ॥
बानप्रस्थ कै हो सन्यासै। भोजन सोलह ग्रास गिरासै ॥
अरु गृहस्थ बत्तीस गिरासा। आवनीय न बहुत न श्वासा ॥
ब्रह्मचारी भोजन करै इतना। बदनमांह बीरज रहै जितना ॥

प्रस्तुत उद्धरण में कवि ने सन्यासी, वानप्रस्थी तथा गृहस्थ के लिये क्रमशः सोलह एवं बत्तीस ग्रास भोजन हितकर बताया है।

शौच—

शुद्धि दो प्रकार की होती है—आभ्यन्तरिक तथा बाह्य। सद्भावनाओं से आन्तरिक शुद्धि तथा मज्जन, स्नानादि से बाह्य शुद्धि होती है। इन्हीं दोनों प्रकार की शुद्धियों का उल्लेख कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में किया है :—

'घेरंड संहिता' में भी इन्हीं आठ प्रकार के कुम्भक को मान्यता दी गई है :—

> संहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी, शीतली तथा।
> भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्ट कुम्भिकाः ॥
>
> घे० सं०—पंचमोपदेशः श्लोक ४५

अर्थात् सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली भेद से कुम्भक आठ प्रकार के हैं।

कवि ने सर्वप्रथम कुम्भक की परिभाषा एवं प्रक्रिया अथवा साधना का वर्णन किया है, तदनन्तर कुम्भक के विभिन्न अष्ट भेदों का परिचय दिया है। कुम्भक की प्रक्रिया और परिचय से सम्बन्धित निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करने योग्य हैं :—

> पवन पूर पूरक ही कीजै। पाछे बन्ध जलन्धर दीजै ॥
> कुंभक रेचक के मांध जानै। ह्माई बन्ध उड्यान पिछानै ॥
> पवन जोर ही सूं गहि लीजै। अर्ध ऊर्ध्व संकोच न कीजै ॥
> मध्यम कीजै पश्चिम तानै। ब्रह्म नारिके माहि समानै ॥
> नाड़ी पवन खैंचिये ऐसे। भरिये सब संध्यान जु जैसे ॥
> अपान वायु कूं ऊपर लावै। प्राण वायु नीचे लै जावै ॥
> जोपै यह साधन बनि आवै। योगी बूढ़ा होन न पावै ॥
> तरुण अवस्था देखे ऐसी। नितही रहै जानिये जैसी ॥

कुम्भक की प्रक्रिया, लक्षण, स्वभाव तथा गुण आदि का वर्णन करने के अनन्तर कवि ने कुम्भक के अष्ट भेद का प्रारम्भ किया है। इस वर्णन में सर्वप्रथम प्रक्रिया का वर्णन किया है, तदनन्तर उसके लक्षण और महत्त्व का उल्लेख किया है। प्रायः यही क्रम आद्योपांत कुम्भक के समस्त भेदों का वर्णन करने में रखा गया है। कवि के मत से सूर्यभेद कुम्भक का सर्वप्रथम भेद है। योगशास्त्र के कुशल आचार्य घेरंड के मत से कुम्भक करते समय प्राणादि समस्त वायुओं को पिंगला नाड़ी से विभिन्न कर नाभिमूल देश से समान वायु को उठावे, पुनः धैर्य के साथ वेग पूर्वक वाम नासिकापुट से रेचन करे। तदनन्तर दक्षिण नासापुट से वायु भर कर सुषुम्ना से कुम्भक कर वाम नासा से रेचन करे। इस क्रिया को बारम्बार करना सूर्यभेद कुम्भक कहा जाता है।[1] दूसरे शब्दों में सावधानी पूर्वक सुगम आरामदेह आसन

---

१. सर्वे ते सूर्यसंभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत्।
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाखंडवेगतः ॥
पुनः सूर्येण चाकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि।
रेचयित्वा साधयेत् क्रमेण च पुनः पुनः ॥
घे० स०—पंचमोपदेशः ६५-६६

पांचों निर्बल चंचल थाके , जीव ही जीव मरे .
शोधे मूल बन्द दे राखे , आशान सिद्ध करे .
त्रिकुटी लाय सुरति ठहरावे, कुम्भक पवन भरे .
घन गर्जे अरु बिजली चमके , कौतुक गगन घरे .
बहुत भांति जहं बाजन बाजें , सुन सुन संध भरे .
सहज सहज सों होय प्रकाशा, व्याधा सकल हरे .
जग की आश वास सब छूटे , ममता मोह जरे
शून्य शिखर पर आपा बिसरे , काल सों नाहिं डरे.
चरणदास शुकदेव कहत हैं , सब गुण ज्ञान गरे .

तथा।

तब तें अनहद घोर सुनी .
इन्द्री थकित गलित हूयो , आशा सकल भुनी .
घूमत नयन शिथिल भई काया, अमल जु सुरति सनी.
रोम २ आनंद उपज कर , आलस सहज बनी .
मतवारे ज्यों शब्द समायो , अन्तर भीज कनी .
भर्म कर्म के बन्धन छूटे , दुविधा विपति हनी .
आपा बिसर जगत को बिसरो , कित रहीं पांच जनी .
लोक भोग सुध रही न कोई , भूले ज्ञान गुनी .
हो तहँ लीन चरणही दासा , कहें शुकदेव मुनी .
ऐसो ध्यान भाग सों पैये , चढ़ रह शिखर अनी.

राग बिलावल

घट में खेल ले मन खेला ;
सकल पदारथ घर ही माहीं, हरि सों होय जु मेला.
घट में देवल घट में जाती , घट में तीरथ सारे ;
बेगहि आव उलट घट माहीं , बीते पर भी न्हारे .
घट में मान सरोवर शुभ है , मोती और मराला ;

16:36

Bhakti Sagar

जयजयवन्ती

ऐसी जो युक्ति जानें, सोई योगी न्यारा भाई
आसन जो सिद्ध करे, त्रिकुटी में ध्यान धरे;
बिना तेल दिवा बारे, जोति हू उंजारा.
संयम संभार साध; मूल द्वारबन्ध बांध;
शंखिनी उलट साध, काम देव जारा.
प्राण वायु हिये माहिं, खेंच के अपान लाई;
दोउ नाके मिल जाई, ऐसा खेल धारा.
कुम्भक अथक राखे, अनहद की ओर ताके:
सुष्मन पैठ नाके, आगे जो बिचारा.
खाल के कपाट शिरा, कोऊ चढ़े शूर बीरा;
काम धेनु जावे तीरा, अमी को उबारा:
उन मुनी जाय लागे, निज घर माहिं जागे;
जनम मरण भागे, छूटे जग भारा.
गुरु शुकदेव कहें, करनी या विधि लहें;
चरणदास हो रहें, आप को संवारा

राग सारंग

पीवे कोई यह प्याला मतवाला
सुर नर मुनि वा मद को तरसें, गुरु बिन लहने वाला.
शूद्र के घर भाटी औटे, ब्रह्मा अग्नि जेलाई.
शिव शोधें अरु विष्णु चुवावें, पीवें साधु अघाई.
सीता प्याला भर भर देवे, हनूमान हंकारें.

व्यास शेष नारद सनकादिक, किरिया नाहिं विचारें.
नवधा नेमरु संयम पूजा, बिसरी सब का कहिये.
घूमत रहे महा मद छाके, स्वर्ग मुक्ति न चहिये.
शुकदेव सुधारस अमृत, नित प्रति अचवन कीन्हा.
चरणदास पै कृपा करके, निज प्रसाद कर दीन्हा.

सारंग

साधो यह प्याला मतवार है.
अचवेगा कोई योगी युक्ता, चित अस्थिर मन मार है.
चन्द्र सूर्य दोउ सम कर राखे, ब्रह्म ज्वाल अन्तर बरे.
मुद्रा लगे खेचरी जबहीं, बंकनाल अमृत झरे.
भँवर गुफा में भाटी औटे, भबक भबक सुष्मन चुवे.
सगुरा पीपी रहित भये हैं, बिन पिये उपजे सुवे.
शिव सनकादिक नारद शारद, और पिया नव नाथ हैं.
सिद्ध मुनि योगीश्वर आदिक, पीकर भये सनाथ हैं.
रामानन्द कबीर नामदेव, अमर हुआ जिन जिन पिया.
गुरु शुकदेव करी जब किरपा, चरणदास को सोई दिया.

बिलावल

चौपाई

इड़ा पिंगला सुख मन धारो, आसन वज्र नागिनी टारो.

अष्ट पदी

द्वादस अंगुल हो, बेध षट चक्कर लीजे;
जब बाजे अनहद तूर, जहां मन निजकर दीजे.

चौपाई

खेचरी मुद्रा त्रकुटी आवे, अमृत पिये परम सुख पावे.
मेरु डंड को प्राण चलायो, शून्यशिकर जब नगरी पावो.
जा नगरी में चंदन भान, पहुंचे साधू चतुर सुजान.

जहांजातिपांतिनामनहिंनाता, श्वेतअरुश्यामपीतनहींराता.
योग यज्ञ तप जहां न दाना, तीरथ ब्रत जहाँ नहींनन्हाना.
क्रिया कर्म जहां नहिं पूजा, मैं तू नहीं एक नहिं दूजा.
जहां दिवसअरुसांझन राता, एकहि ब्रम्ह अखंड विधाता.

दोहा

चरणदास राम की घाटी, पहुंचे गुरु मति शूरा।
ओछी बुद्धि बाद बहु ठाने, करनी करे सो पूरा॥

छप्पय

बैठ गुफा के मध्य, योग की युक्ति विचारे.
आय अकेलो रहे, और ना मनुष निहारे.
चार वार नित करे, जाय ओम् आराधे.
सूक्षम करे अहार, ओंम रोपत लो साधे.
आसन पदम लगाय के, सीधो राखे मेर.
ठोड़ी हिये लगाइये, पलक झांप करि हेर.

दोहा

कुंभक आठ प्रकार के, तिन में उत्तम येक।
केवल कुंभक जानिये, ताकों साध विशेष॥
त्रिकुटी में तीरथ अगम, तिर वेनी जिहिनाम।
न्हाय योग की युक्ति सों, पूरन हो सब काम॥
रनजीत कहे तहाँ न्हाइये, त्रिकुटी तीरथ धाम।
नित परवी जहाँ होत है, भजन करो निह काम॥

चौपाई

छप्पय

अमरी वजरी साध , बायु सरने नहिं पावे .
द्वादश अंगुल प्राण, सुरति दे ताहिं घटावे.
मौंन गहै नित रहै , अल्प सूक्ष्म सो बोले .
एक वार आहार जम्हाई , कबहु न खोले .
बांध सुजाय दृढ़ छींक को , अनहद धुन अति गाजई .
भन चरणदास शुक देव बल , सुयोग युक्ति इमि साजई .

दोहा

मन पवना बश कीजिये , ज्ञान युक्ति सौं रोक ।
सुरत बांध भीतर धसे , सूझै काया लोक ॥
मन हिरदे में रहत है , पवन नाभि के माहिं ।
इन्दर रोके ये रुके , और कछू विधि नाहिं ॥

छप्पय

सूक्ष्म करे अहार , जीत धरनी जब लेई .
नीर जीत जब लेय, बिंदु जाने नहिं देई .
मोह लोभ जब तजै, अग्नि को जीत मिलावे.
पवन जीत जब लेय, गगन को बांधि चलावे.
अरु हर्ष सोग सम कर गिने, पांच जीत ऐकै करे.
भन चरणदास साधन गहे, होय प्रकाश कारज सरे .

दोहा

गगन मध्य में कमल है, बाजत अनहद तूर ।
दल हजार को कमल है, पहुंचे गुरु मति शूर ॥
गगन मँडल के कमल में, सतगुरु ध्यान निहार ।
चरणदास शुकदेव कह , परसे मिटे विकार ॥
सहस्र दल के कमल में , रूप अगम अपार ।
सोऽहं सोऽहं जाप सो , सहजै होत हजार ॥

छप्पय

नौ नाड़ी की खेंच , पवन लै उर में दीजे ।
बज्जर ताला लाय , द्वार नौ बंध करीजे ॥
तीनों बंध लगाय , अस्थिर अनहद आराधे ।
सुरति निरति का काम, राह चल गगन अगाधे ॥
शून्य सिखर दृढ़ चढ़े , तहां जाय आसन करे ।
भन चरणदास तारी लगै , सो राम दरश कलिमल हरे ॥

छप्पय

16:46

दोहा

गगन मध्य में कमल है, बाजत अनहद तूर।
दल हजार को कमल है, पहुंचे गुरु मति शूर ॥
गगन मँडल के कमल में, सतगुरु ध्यान निहार।
चरणदास शुकदेव कह, परसे मिटे विकार ॥
सहस्र दल के कमल में, रूप अगम अपार।
सोऽहं सोऽहं जाप सो, सहजे होत हजार ॥

छप्पय

नौ नाड़ी की खेंच, पवन ले उर में दीजे।
बज्जर ताला लाय, द्वार नौ बंध करीजे ॥
तीनों बंध लगाय, अस्थिर अनहद आराधे।
सुरति निरति का काम, राह चल गगन अगाधे ॥
शून्य सिखर दृढ़ चढ़े, तहां जाय आसन करे।
भन चरणदास तारी लगै, सो राम दरश कलिमल हरे ॥

छप्पय

चौथा पद निर्वान, धाम बेगम पुर कहिये ;
गुण अतीत तहँ राम, नृपति नयनन सुख लहिये.
अद्वैत रूप अखंड, मंड मंडल बहु बंका ;
जहां काल नहिं जाय, शब्द अति उठे निशंका.
निज पारब्रम्ह चौंरी रची, शिव सहित शक्ति फेरी करें;
भन चरणदास चारों मुक्ति सों, हाथ जोर पाइन परें.
मूल कमल में खेल, पिया को देखन चलिये ;
उलट बेध षट चकर, जा सतवें सों मिलिये.
प्राण अपान मिलाय, राह पच्छी की लीजे ;
बंक नाल कर शुद्ध, प्राण ले तामें दीजे.
मेरु डंड चढ़ जाय जब, लोक २ की गम पड़े ;

भन चरणदास ब्रम्हंड में, ब्रम्ह दरशी दर्शन करे.

दोहा

चरणदास यह बिधि कही, चढ़ने को आकाश।
सोधि सोधि साधु अगम, पूरण ब्रह्म बिलास ॥

16:50

दोहा

जीव ब्रम्ह हो जात है, रहै न कछू लगाव।
चरणदास यों कहत हैं, ऐसा किये उपाव॥
चेतन ज्यों का ज्यों सदा, सदा अकर्ता जोय।
सब करमन सों रहित है, आतम ऐसा होय॥
काहू तें उपजो नहीं, वातें भयो न कोय।
वह न मरे मारे नहीं, राम कहावे सोय॥
योग युक्ति कर खोजले, सुरति निरति कर चीन्ह।
दश प्रकार अनहद बजे, तहां होय मन लीन्ह॥
तीन बंध नौ नाटिका, दश वाई को जान।
प्राण अपान समान हैं, अरु कहियत उद्यान॥
व्यान वाय अरु किरकिला, कूरम वायू जीत।
नाग धनंजय देवदत्त, दश वायू रन जीत॥
नवहु द्वार को बंद कर, उत्तम नाड़ी तीन।
इड़ा पिंगला सुषमना, केलि करे परवीन॥
करते प्राणायाम के, पावे आतम भेष।
अनहद धुनि के बीच में, देखे शब्द अलेख॥
पूरक कर कुंभक करे, रेचक पवन उतार।
ऐसे प्राणायाम कर, सूक्ष्म करे अहार॥
धरती बंध लगाय के, दसों वायु को रोक।

मस्तक प्राण चढ़ाय के, करे अमर पुर भोग॥
पांचो मुद्रा साध के, पावे घट का भेद।
नाड़ी शक्ति चढ़ाइये, षट चक्कर को छेद॥
नाशा ध्यान दृष्ट भृकुटी में, सुरति श्वास के माहिं।
आतम देखो जात है, या में सँशय नाहिं॥
योग युक्ति को कीजिये, कै आतम को ध्यान।
आपा आप विचारिये, परम तत्व को ज्ञान॥

वही तो अडिग राम, चरणदास चेरो जाको;
वही तो अडिग राम, काया खोज पायो है,

कवित्त

माया भ्रम फन्द देख, साधुन को संग पेख;
राम जी को पहिर भेष, कंचन तन तावरे.
मन को पहिचान ज्ञान, एका एकी सबै जान;
नाद के गहे ते तू, अनहद बजाव रे.
उलट पलट काया बीच, चारों कर दूर नीच;
ऐसी मेर पै समीर, गगन को चढ़ाव रे.
भनत यों चरणदास, गगन मध्य करो वास;
जहां नहिं शीत उष्ण, निर्भय पद ध्याव रे.

दोहा

दुर्योधन रावण गये, अरु यादव परिवार।
चरणदास थिर कौन है, होय मिटे सन्सार॥

कवित्त

भोर सो विहानो जात ढरेगी दुपहरी सी;
समझ के विचार देख चली आवे रात है.
भंवत है सचान काल तेरे पर तक रहो;
क्षण पल की खबर नाहिं करे आय घात है.
दारा सुत सम्पति सब स्वप्न कासा सुख भयो;
जानोगे तभी जब छूट जाय गात है.
कहत यों चरणदास अब तजो क्यों न विषय वास;
पानी में नाव तैसे, आब चली जात है.

कवित्त

कुमारग सों भाज, और लाज खोटे कर्मन सों;

दोहा

मन्दिर भंवर गुफा में , तहां त्रिवेणी न्हान ।
नित परवी तहँ होत है , करे पाप की हान ॥
उलटी पवन बेधे षटन , ऊपर पहुंचे जाय ।
शुकदेव कहे चरणदास जु , सुष्मन सहज समाय ॥
कमल सहसदल सातवां , शीस मध्य है बास ।
तहां देवता सतगुरू , पूरी करें जु आस ॥
जहँतक सुष्मन का सिरा, सो सातों की नाल ।
हैं वे उलटे षट कमल , तले अपान बयाल ॥
अपान वायु को साध के , ऊपर लावे मोर ।
जब होवे उलटे कमल , मुख अकाश की ओर ॥
अपान वायु ज्यों २ चढ़े , चकर २ पास ।
त्यों २ सीधे होंय सब , पूरा जान अभ्यास ॥
अपान वायु आवे जबे , चक्र अनाहद माहिं ।
दश प्रकार के नाद हू , शनैः शनैः खुलजाहिं ॥

चौपाई

पहिले नाद खुलै जो ऐसा , चिड़ी चिंकला बोले जैसा .
एकहि बार कहे यो चिन्न , दूजी बार खुलै चिन्न चिन्न .
छुद्र घंट ज्यों तीजे जानो , चौथी नाद शंख पहिचानो .
पंचम नाद बीन ज्यों गाजे , छठवीं नाद ताल ज्यों बाजे .
सप्तम उपजे मुरली ऐसी , अष्टम उठै पखावज जैसी .
नवें नफीरी नाद सुनावे , दशवें सिंह गरज उपजावे .
नौ तज दशवें सों हित लावे , अनहद सुनअनहदहोजावे .
होयजीव सो ब्रम्ह अगाधा , जो कोइ सुनेसुअनहदनादा .

दोहा

खुले सु अनहद नाद ज्यों , सो साधन सुन लेहु ।
जासों पहुंचे सिद्धि कों , सो करनी चित देहु ॥
अधार चक्र सों खेंच कें , अपान वायु सज लेहु ।
सुधिष्टान के पास ही , तीन लपेटा देहु ॥

चौपाई

या की विधि सब तोह सुनाऊं , जैसे हैं तैसे समझाऊं .
पहिले मूल द्वार को शोधे , बंध लगाय अपान निरोधे .
पहिले चकर में पहुंचावे , खेंच दूसरे के ढिग लावे .
वाके आसहि पास फिरावे , दहिने तीन लपेट लगावे .
फिर मन पूरक में पहुंचावे , फेर अनाहद में ले जावे .
अनहद खुले सुने सुख पावे , फिर वहां प्रानअपानमिलावे .
हिरदय कंठ मध्य ठहरावे , संयम सों ताको परचावे .
बंध दूसरो तहां लगावे , चरणदास शुकदेव बतावे .

दोहा

नारि संखिनी गुदा में , कुर कुल लिंग अस्थान ।
पोषा सरवन दाहिने , जस्वनी बाये कान ॥
गंधारी द्दग बाम है , हास्तिनी दहिने नैन ।
नारि लंबिका जीभ में , सकल स्वाद की देन ॥
नाशा दहिने अंग है , पिंगला सूरज बास ।
इड़ा सुबायें ओर है , जहँ शशि ओर प्रकाश ॥
दोनों के मध सुष्मना , अद्भुत या को भेव ।
ब्रम्ह नाडी हू कहित है , सो या कहि शुकदेव ॥
इड़ा ब्रम्हा जमुना जहां , सुषमन विश्नु निवास ।
ओर सरस्वति जानिये , ये हो चरनहि दास ॥
शिव पिंगल गंगा सहित , सो वह दहिने अंग ।
तिरबेणी याते भई , मिला जु तीनों संग ॥
कभी इड़ा सुर चलत है , कबहीं पिंगल माहिं ।
मध्य सुष्मना बहत है , गुरबिन जाने नाहिं ।
सो वह अग्नि स्वरूप है , बडो योग सरदार ।
याही तें कारज सरे , ऐसी , सुषमन नार ॥

चौपाई

इन सों प्राणायाम करीजे , पूरक कुंभ करे चक हीजे .
इड़ा पिंगला मारग थाके , उलट सुषमना चालन लागे .
वायु खेंचना पूरक जानों , ठहरा वन को कुंभक मानों .
फेर उतारे रेचक वोई , प्राणायाम कहावे सोई .

दोहा

इड़ा पवन पूरक करे , कुंभक राखे रोक ।
रेचक पिंगल सों करे , मिटे पाप के थोक ॥

चौपाई

पिंगल रोके पवन न जोवे , इड़ा ओर सों वायु चढावे .
कुंभक करि हिय चिबुक लगावे , जित का तित मन कू ठहरावे .
सोलह मात्रा पूरक लीजे , चौसठ कुंभक में जप कीजे .
रेचक फिर बत्तीस उतारो , धीरे धीरे ताहि निवारो .
पहिल ३ ही कीजे आधे , तीन महीने ऐसे साधे .
या सों आगे फेर बढावे , दोय आठ अरू चार चढावे .
बाढ़त २ ऐसहि बाढ़े , यों ही चौसठ तांई चाढ़े .
इड़ा वायु सों पूरक कीजे , पिंगल सों रेचक तज दीजे .
फिर पिंगल सों पूरक धारे , बहुर इड़ा ही सों निरवारे .
ऐसी बारी बारी करिये , जीते प्राण वायु अघ हरिये .
होय सके कुंभक सर कावे , चौसठ से भी परे बढावे .

शिष्यो वाच

17:10

ओं बिन्दी सहित ही, ताही मात्रा जान।
बीज मंत्र तासों कहत, प्रणवह को पहिचान॥
कोमल भोजन कीजिये, आधी रखिये भूख।
पवन बास सुख सों जहां, तन नहिं पावे दूख॥
साठ घड़ी दिन रात की, आठ तासु के याम।
लीजे चौथा भागही, कीजे प्राणायाम॥
चार भाग ताके करे, चार समै ठहराय।
चार चार छटिका करे, दृढ़ ब्रत चित्त लगाय॥

चौपाई

और दूसरी भांति सुनी जे, होय न सके तो या कों कीजे.
बारह ऊपर पवन चढ़ावे, कुंभक माहि बीस ठहरावे.
बारह पिंगल पवन उतारे, रात दिना में चारहि बारे.
फेर बढ़ावे कुंभक दुगुनी, केते दिवसन में फिर तिगुनी.
फिर पिंगल सों पूरक लीजे, इड़ा वायु रेचक ही कीजे.
बिरिया एक इड़ा सों खेंचे, पिंगल दूजी बार सु ऐंचे.
कबहूं याते कबहूं वासों, रेचक करे सो पूरक जासों.
कुंभक तिगुनी सों अधिकावे, होय सके जितनी सरकावे.

दोहा

भांति दूसरी और सुन, साधन अधिक अनूप।
गुर बिन भेद न पाइये, महां गूप सों गूप॥

अष्ट पदी

प्रान वाय की जुगति कहो जो बात है।
द्वादश अंगुल नाशिका आगे जात है॥

संयम ही सों सहज जु उलट घटाइये।
शनैः शनैः साध जु ताहि समाइये॥
अपान वायु कों खेंच प्रान घर लाइये।
फिर बाहर सों रोकि जु तिन्हें मिलाइये॥
तीन करम पूरक के कुंभक के कहे।
रेचक हीके कर्म दोय निश्चय भये॥
दो रेचक के कर्म पूरक के कहे तीन ही।
ये सब ही रह जांय होय जब छीन ही॥
पूरक रेचक छूटे केवल कुंभक वहीं।
ठौर समै का बंधन राखे ना सही॥
या किरिया को अंत जानो तुम वहां ताहीं।
प्रानहि वायु को रोके काया के माहीं॥

दोहा

17:11

चरनदास समुझाय कह्यो शुकदेव ही ।
शनैः शनैः कर पाय लाभ यह देहही॥

दोहा

मूल बंध अरु खेचरी , मुद्रा ही को जान ।
दोनों के साधे बिना , अपान न होवे प्रान ॥

चौपाई

मुद्रा खेचरि कहौं बखाने , जाको कोटि में कोई जाने .
सकलशिरोमणियोगमँझारी , ज्यों देहिन्ह में छत्तर धारी .
शीश फूल ज्यों गहने माहीं , या बिन तारी लागे नाहीं .
साधन कर २ जीभ बढ़ावे , ब्रह्म रंध्र ताईं सो लावे .
उरे ताल वा ठौर कहावे , रसना सों तहँ बंध लगावे .
जासों पवन न सरकन पावे , श्रवण नैन जो बाट रुकावे .
प्राण वायु बाहिर नहिं आवे , मुखनाशाहोनिकसनजावे .
शुकदेव कहे चरनदास बताऊं , आगे मूल बंध समझाऊं .

इति खेचरी

अथ मूलबंध लिख्यते

दोहा

मूलबंध जानो यही , एड़ी गुदा लगाव ।
थक दहिनी बामी कभी, सिद्धासन ठहराव ॥

चौपाई

मूलबंध जा कारण दीजे , सो मैं कहौं सबै सुन लीजे .
अधार चक्र सों पवन उठावे , स्वधिष्ठानहिं के ढिग लावे .

दाहिनी ओर जु ताहि फिरावे , ऐसे तीन लपेट लगावे .
सीधी हो ऊपर को धावे , मन पूरक चक्कर में आवे .
शनै शनै पुनि ताहि चढ़ावे , चक्कर २ में पहुंचावे .
छुवि चक्कर के ऊपर ताईं , ब्रम्ह रंध्र के लावे ठाईं .
ऐसे षट चक्कर कों शोधे , प्राण वायु को यों परमोधे .
वायु अपान जु यां तक आवे , प्राण वायु हो सहज समावे .
कह शुकदेव चरणहीदासा , सहज शून्य में करे निवासा .

अथ अष्ट प्रकार के कुंभक

गुरू वचन

अब आठों कुंभक कहों, नाम भेद गुण रूप ।
कहें शुकदेव प्रसिद्ध हैं, योगहि माहिं अनूप ॥
प्रथमहिं कुंभक ही कहों, नाम जु सूरज भेद ।
दूजे याहू को सुनो, साधे छूटे खेद ॥
शीतकार अरु शीतली, पंचमी भस्त्र का जान ।
छठी भ्रामरी नाम है, नीके कर पहिचान ॥
नाम मूर्छा सातवीं, अठवीं केवल होय ।

रन जीता सब से बड़ी, आयु बढ़ावे सोय ॥

चौपाई

पवन पूर पूरक ही कीजे, पाछें बंध जलंधर दीजे ।
कुंभक रेचक के मध जानो, बंध उड़ान वही पहिचानो ।
पवन जोर ही से गह लीजे, अर्ध ऊर्ध संकोच न कीजे ।
मध्यम कीजे पश्चिम ताने, ब्रम्ह नाड़िका माहिं समाने ।
नाड़ी पवन खेंचिये ऐसे, भरिये सब संधिन जू जैसे ।
अपान वायु ही ऊपर लावे, प्राण वायु नीचे ले जावे ।
जोपै यह साधन बनि आवे, योगी बूढ़ा होन न पावे ।
तरुण अवस्था दीसे ऐसी, नितही रहे जानिये जैसी ।

अथ सूर्य भेदन

कुंडलिया

कुंभक सूरज भेदही, पहिले देहु सुनाय ।
सुख आसन के कीजिये, अथवा वज्र लगाय ॥
अथवा वज्र लगाय, पूरक दहिने स्वर कीजे ।
नख शिख सेती रोक, वायु को बंध करीजे ॥
बायें सेती रेचिये, धीरे २ जान ।
कपाल शोधनी जानिये, चरणदास पहिचान ॥
वायु किरम पीड़ा हरे, कीजे बारंबार ।
कुंभक सूरज भेदनी, चरणदास हिय धार ॥

अथ उज्जाई

चौपाई

अब उजाई कुंभक सुनिये, समुझसीखमनमाहींगुनिये ।
दोइ स्वर सम कर पवन चढ़ावे, पेट कंठ लों ताहि भरावे ।
ताको रोके दृढ़ कर राखे, सहज इड़ा सों रेचक नाखे ।

अथ भस्त्रिका

दोहा

अब कहों कुंभक भस्त्रिका, पित्त कफ़ वाय नशाय।
अग्नि बढ़े अभ्यास सों, तीन गांठ खुल जाय॥

चौपाई

आसन पदम जु या बिधि करई, बाम जानु दहिनो पग धरई.
बांया पग दहिने पर लावे, जांघन सों दोउ हाथ मिलावे.
ग्रीवा पेट बराबर राखे. आगे सुन शुकदेवा भाखे.
मुख मूंदे रेचै नाशा सों, पूरक चपल करे श्वासा कों.
रेचक पूरक ऐसे कीजे, बारंबार तजे अरु लीजे.
जैसे खाल लुहारा भरे, रेचक पूरक आतुर करे.
करत २ जबही थक जावे, नेक ठहर दूजी बिधि लावे.
फिर पूरक सूरज सों करे, पवन उदर के माहीं भरे.
तबहि तर्जनी सों दृढ़ रोके, नाशा मध्ये धर कर जोखे.

दोहा

कुंभक पिछली भांति कर, रेचि इड़ा सों वाय।
कफ़ पित वाय नशाय के, लेवे अग्नि बढ़ाय॥
कुंडलनी देवे जगा, यह कुंभक सुख दाय।
करे जु हित चितलाय कें, चरणदास हित लाय॥
कुंडलनी सरकाय कें, बेधै तीनों गांठ।
पंचम ऐसी भस्त्रिका, रहै न कोई आंट॥

चौपाई

ब्रम्ह नाड़ी के छिद्रहि माहीं, रोक रही मुख दे रही झाहीं.

लाय लपेटे नाभीं ठाईं, दृढ़ ह्वै बैठी सरकै नाहीं.
सवा बिता की जाकी देही, ता में स्थित जीव सनेही.
शक्ति नागिनी यह जो कहिये, या का भेद गुरू सों लहिये.
महा अपर बल जागे नाहीं, तातें नर सब मर २ जाहीं.
कोइ इक योगी ताहि डुलावे, सुखमन बाट गगन ले जावे.
ब्रह्म रंध्र में जाय समावे, लगै समाधि बहुत सुख पावे.
जो कुछ होय सु कहि नहिं जावे, चरणदास शुकदेव सुनावे.

दोहा

शिव शक्ती इकठा भये, रहो न द्वितिया भाव।
कुंडलनी परमोदिका, जो कोई करे उपाव॥

एक बार फिर खोल के, कुंडलनी समझाय।
याके सबही भेद को, सुन वे को अति चाव ॥

गुरुरु वाच

फिर भी तोसों कहत हों, कुंडलनी विस्तार।
ताके सबरे भेद ही, सुनकर हिय में धार ॥
नाभि स्थान नागिनि रहे, कुंडल शशि आकार।
प्राण पियारा वही है, आगे सुनो विचार ॥
कुम्भक कोई कर्म कर, देवे शक्ति जगाय।
जैसे लागी लष्ठिका, नागिनि शीश उठाय ॥

चौपाई

सीख गुरू सों कुंभक साधे, नीकी विधि ताको आराधे.
पवन ठमक लग ताहि जगावे, तवै ऊर्ध कों शीश उठावे.

नाभि ठौर ताका है वासा, पद्म राग मन ज्यों परकाशा.
सात लपेटे बामी जानो, तातें शक्ति कुँडलनी मानो.
नाड़ी सहस लगी हैं वाको, एपर छुटी जानिये ताको.
नाड़ी त्रै तिन में अधिकाई, इड़ा पिंगला सुष मन गाई.
तिनकेमाहिं शिरोमणि सुषमन, नालकमलजानतयोगीजन.
जा पहुंची वृम्ह रंधरताई, ऊर्ध कमल सात वें माहीं.
आवन जान पवन की वाटा, सकत चलन ऊरध का घाटा.
कहि शुकदेव चरण के दासा, आगे कहूं जु होय प्रकासा.

दोहा

नागिनि सूक्ष्म जानिये, वाल सहसवां भाग।
शुकदेव कहे आकार ही, रक्त वर्ण ज्यों नाग ॥
कुंभक होय अत्यन्त जब, तवहि ऊर्ध कों जाय।
ब्रह्म रंध्र में आय के, घड़ी दोय ठहराय ॥
करे अमियका पान सो, पूरा होय अभ्यास।
उड़ते देखो सिद्ध तब, वाको माहिं अकास ॥

चौपाई

पै देखत है नैन बिनाही, चहै करे लीला उन माही.
खेचर मिल खेचर हो जावे, यह विधि शक्ति उड़न कीपावे.
अधकी ठहरे लगे समाधा, यह तो कहिये खेल अगाधा.
शिव शक्ती जहँ मेला होई, होयलीन मन उन मुनि सोई.
योग युक्ति कर याको पावे, परा शक्ति अपने वस लावे.
चाहे अर्ध ठौर ले आवे, जब चाहै ऊर्धहि ले जावे.
कबहूं हृदय मध्य ही आने, याही कों आपन पन जाने.
इच्छा करे सिद्धि की जैसी, होवे प्राप्ति बेग ही वैसी.
चहै स्थूल सूक्ष्म तन धारू, वैसा ही हो जाय सवारू.
भन शुकदेव चरणही दासा, जो कुंडलनी हृदय प्रकाशा.

17:23
Bhakti Sagar.pdf

अष्ट पदी

तन मथने का यत्न, कहूं अब जानिये;
ज्यों निकसे ततसार, विलोवन ठानिये.
पहिला चक्कर जान, मूल द्वारे विषे;
जितही पांव की एड़, सोई बंध दे रखे.
मूल चक्र सो खेंच, अपान चलाइये;
दूजे चक्कर पास, जु आन फिराइये.
दहिने ओर सो तीन, लपेटे दीजिये;
तीजे चक्कर माहिं, गमन फिर कीजिये.
चौथे चक्कर माहिं, पवन जो लाइये;
वहरि पांचवें, चक्कर में पहुंचाइये.
षष्टम चक्कर माहि, जु ताहिं चढ़ाइये;
सो त्रिकुटी के मध्य, तहां ठहराइये.

रोके त्रिकुटी माहिं, प्राणही वायु को;
षट चक्कर को छेद, चढ़े जब धावहू.
अपान वायु चढ़ जाय, वही अस्थान है;
प्राणवायु होय जाय, साधु कोइ जान है.
रोके प्राण वायु, त्रिकुटी मध्य ही;
ओंकार कर ध्यान, शीश मग ध्यावही.
यह तो ऊंचा ध्यान, जु अधिक अनूप है;
चरणहिदास होय जु, ब्रम्ह स्वरूप है.

17:50

Bhakti Sagar.pdf

निकट निकट सों निकट, दूर सों दूर है.
जो इस ही का ध्यान, हिये कियो जापना;
तो कर मस्तक माहिं, होय परायना.
शीश में जब सिध होय, रोक नो द्वार ही;
निकसन देवे वायु, न काहू बारही.

दोहा

दो पग एड़ी बांधिये, नीचे के दो द्वार।
दोउ अँगूठे हाथ के, रोके श्रवननवार॥

अष्ट पदी

तर्जनी अंगुली दोउ, दृगन पर दीजिये;
मध्यमा सों दोउ नाक, छेद बंध कीजिये.
अनामिका दोउ हाथ की, और कनिष्ठिका;
होंठन को बंध करे, जु नीके पुष्ठिका.
नाशा के दोउ छेद, एक ही जित भये;
दोउ भौहन के बीच, चरणदासहि कहे.
निश्चय ताहि व नार, सदेह की जानिये;
वाही की तो ओर, दृष्टि को तानिये.
महा कुंभक यह नाम, इसी विधि साधिये;
ध्यान किये होय मुक्ति, यही आराधिये.
इन्द्रियन ही के मारग को, जो बंध करे;
वायु बिना घट माहिं, जैसे दीपक बरे.
होय घना परगाश, इसी ही देह में;
इसी ध्यान परताप, मिले या गेह में.
पावे सुध चैतन्य, किये इस योगही;
कर्मन की हो नाश, मिटे मन रोगही.

दोहा

ऊपनिषद पूरी भई, नाम योग ही तत्व।
अंग अथर्वन वेद का, चरणदास ही सत्व॥

इति तत्व योग उपनिषद सम्पूर्णम्

17:52
Bhakti Sagar.pdf

ऐसे मन्दिर माहिं, हृदय में छेद हैं;
तामें सूरज मन्दिर, अचरज भेद हैं.
ताकी बड़ी है ज्योति, किरण उजियार है
पूरा योगी होय, सो ताहि निहार है.

दोहा

जोति मई मन्दिर लखै, हृदय कमल में होय।
तामें दीखे और इक, दीवे कैसी लोय॥

अष्ट पदी

दीपक कैसी ज्योति, मानो ऊपर चले;
रहे आपनहि ठौर, भांति ऐसी लहे.
वाही जोत को जानो, ब्रम्ह स्वरूप ही;
यही समझ के ध्यान करे, जु अनूपही.
योगी करे जु ध्यान, यही हिय माह ही;
अंत समय तन छूट, ऊपर को जाय ही.
सूरज ही का मंदिर, जावे बेध ही;
सुख मरग सों जाय, शसि को छेद ही.
सायुज्य मुक्ति को जाय, शाश्वते होय ही;
कोटिन माहिं लहै, जु विरला कोय ही.
सब जोतिन की जोति, बड़ी जो जोत है;
ताको पाये होय, एक ही गोत है.
आलस सों दुर भाग, ध्यान ना कर सके;
तो दिन में तिरकाल, पाठ करने लगे.

दोहा

प्रात काल अरु मध्य में, संध्या ही की बार।
उप निषदहि तीनों समय, पढ़े विचार विचार॥
कर्म कटें जम ही डटे, चौरासी हट जाय।
देही पावे मनुष की, पूरा गुरु मिल जाय॥
फिर पावे यह ध्यान ही, पीछे कहा जु खोल।
जावे परमहि धाम को, छूटे सब झक झोल॥
थोड़ा सा यह ध्यान ही, मैं समझाया तोहि।

तुहा थाल ... लखाया । ...
चरणदास शुकदेव लखाया । ...

९ ॥ आरती ॥

गगनमँडल में आरति कीजै । उत्तम साज[4] सकल सजि लीजै ॥
सुखमन[5] अमृत कुम्भ धरावै । मनसा मालिनि फूल चढ़ावै ॥
घीव अखण्डा सोहं वाती । त्रिकुटी ज्योति बलै दिन राती ॥
पवन साधना थाल करीजै । तामें चौमुख मन धरि दीजै ॥
रवि[6] शशि[7] हाथ गहोति हि माहीं । खिन दहिनो खिन बायें लाई ॥
सहस कमल सिंहासन राजै । अनहद झालर नित ही बाजै ॥
इहि विधि आरति साँची सेवा । परमपुरुष देवन को देवा ॥
चरणदास शुकदेव बतावैं । ऐसी आरति पार लगावैं ॥

१ समय २ इन्द्रियातीत ३ रहित ४ सामग्री ५ सुषुम्ना नाड़ी ६-७ दायें, बायें स्वरों से प्राणायाम ... ।

१० ॥ आरती ॥

ऐसी आरति करि हुलसावै । दे परिक्रमा शीस नवावै ॥
तन को थाल अरु मन को चौमुख[1], ज्ञान ध्यान की बाती लावै ॥
भक्ति भाव को घी भरि तामें, जगमग जगमग ज्योति जगावै ॥
अर्ध ऊर्ध हित सूँ करि फेरै, रचना रचै फूल बर्षावै ॥
सुरति मृदंग अरु निरत तँबूरा, झँगड़ झँगड़ झाँझ बजावै ॥
ताल वीण मुहचंग शंख ध्वनि, प्रेम मगन ह्वै हरि गुण गावै ॥
सुवरन कलशा जल को राखै, धूपरु अगर सुगन्ध धरावै ॥
या विधि सों शुकदेव श्याम की, गाय आरती को फल पावै ॥
युगलकिशोर निरखि नैनन सों, चरणदास सखि बलि बलि जावै

११ ॥ भोग का पद ॥

या विधि गोविन्द भोग लगावो । भक्त बछल हरि नाम कहावो ॥
बेर भीलनी के तुम पाये । देखि ऋषीश्वर सकल लजाये ॥
जैसे साग विदुर घर पायो । दुर्योधन को मान घटायो ॥
भक्त सुदामा के तंदुल लीन्हे । कंचन महल अधिक सुख दीन्हे ॥
ज्यों करमा की खिचरी खाई । नेह लियो सब शुचि बिसराई ॥
तुम्हरी विभौ प्रभु तुम्हरे हि आगे । हमसे दीनन को कहा लागे ॥
प्रेम प्रीति सूँ भोजन कीजै । बचै सीत[2] सन्तन कूँ दीजै ॥
चरणदास भरि राखी झारी । अचवो हरि शुकदेव मुरारी ॥

१२ ॥ भोग के आगे की ध्वनि राग काफी ॥

जै जै पारब्रह्म परधान[3] । जाकूँ पावै गुरु के ज्ञान ॥

१ चारबत्ती वाला दीपक २ भोग लगा हुआ प्रसाद ३ प्रकृति ।

॥ चौपाई ॥

इड़ा पिंगला सुखमन आरो। आसन वज्र नागिनी टारो॥

दो० द्वादश अंगुल गहो, वेध पट चक्कर लीजै।
जब बाजै अनहद तूर, जहाँ मन निज करि दीजै॥

॥ चौपाई ॥

खेचरी मुद्रा त्रिकुटी आवै। अमृत पिवे परम सुख पावै॥
मेरुदण्ड को प्राण चलावै। शून्य शिखर जब नगरी पावै॥
जा नगरी में चन्द न भान। पहुँचै साधू चतुर सुजान॥
जाति पाँति जहँ नाम न नाता। श्वेत श्याम पीत नहिं राता॥
योग यज्ञ तप जहाँ न दाना। तीरथ वर्त जहाँ नहिं न्हाना॥
किरिया कर्म जहाँ नहिं पूजा। मैं तू है नहिं एक न दूजा॥
जहाँ न साँझ द्यौस नहिं राता। एकै ब्रह्म अखण्ड विधाता॥

दो० चरणदास राम की घाटी, पहुँचै गुरुमत शूरा।
ओछी बुद्धि वाद बहु ठानै, करणी करै सो पूरा॥४॥

(४)

छप्पै—बैठ गुफा के मध्य योग की युक्ति विचारै।
आप अकेलो रहै और ना मनुप निहारै॥
चार बार नित करै जाप ॐकार अराधै।
सूक्ष्म करै आहार ओगरो[१] पतलो साधै॥
आसन पद्म लगाय कै सीधो राखै मेर।
ठोड़ी हिये लगाइये पलक झाँप करि हेर॥

दो० कुंभक आठ प्रकार के, तिनमें उत्तम एक।
केवल कुंभक जानिये, साधै ताहि विशेख॥५॥
त्रिकुटी में तीरथ अगम, तिरवेणी जेहि नाम।
न्हाय योग की युक्ति सूं, पूरण हों सब काम॥६॥
रणजीत कहै जहाँ न्हाइये, त्रिकुटी तीरथ धाम।
नित परवी जहाँ होत है, भजन करो निष्काम॥७॥

॥ चौपाई ॥

जा तीरथ को पवन न लागै। जा तीरथ में जन अनुरागै॥
जा तीरथ में रतन अनेका। पूरे गुरु सों मिल मिल देखा॥
वा तीरथ में जो कोइ न्हावै। भवसागर में बहुरि न आवै॥
जहाँ न चन्द सूर नहिं तारे। गुरुगम पहुँचैं अति मतवारे॥
जा तीरथ का बँधा जो नीर। उज्ज्वल निर्मल गहिर गँभीर॥
ब्रह्मा विष्णु जहाँ त्रयदेवा। योग युक्ति में लावैं सेवा॥
बारह मास दामिनी दमकै। सोनर२ पटीला२ जुगनू२ झमकै॥

१ जौ का पतला दलिया २ चमकने वाले पतंगे।

(५)

छप्पै—अमरी बजरी साध वायु सरनै[1] नहिं पावै ।
द्वादश अंगुल प्राण सुरत दे ताहि घटावै ॥
मौन गहै नित रहै अल्प सूक्षम सो बोलै ।
एक बार आहार जँभाई कबहुँ न खोलै ॥
बाँधै सो जाय दृढ़ छीक को अनहद धुनि अति गाजई ।
भन चरणदास शुकदेव बल सु योग युक्ति इमि साजई ॥

दो० मन पवना वश कीजिये, ज्ञान युक्ति सों रोक ।
सुरति बाँधि भीतर धसै, सूझै काया लोक ॥८॥
मन हिरदै में रहत है, पवन नाभि के माहिं ।
इन्द्री रोकै ये रुकैं, और कछू विधि नाहिं ॥९॥

(६)

सूक्षम करै अहार जीति धरणी जब लेई ।
नीर जीति जब लेय बिंद[2] जाने नहिं देई ॥
मोह लोभ जब तजै अग्नि को जीति मिलावै ।
पवन जीति जब लेय गगन को बाँधि[3] चलावै ॥
अरु हर्ष शोक सम करि गिनै पाँच जीत एकै करै ।
भन चरणदास साधन गहै होय प्रकाश कारज सरै ॥

दो० गगन मध्य जो कमल है, बाजत अनहद तूर ।
दल हजार को कमल है, पहुँचै गुरुमत शूर ॥१०॥

१ निकलने २ वीर्य ३ रोककर ।

गगन मँडल के कमल में, सतगुरु ध्यान निहार ।
चरणदास शुकदेव परसै, मिटै सकल विकार ॥९॥
सहसदल के कमल में, रूप अगम अपार ।
सोहं सोहं जाप सहजै, होत एक हजार ॥१०॥

(७)

नौ नाड़ी की खैंच पवन लै उर में दीजै ।
बज्जर[1] ताला लाय द्वार नौ बन्ध करीजै ॥
तीनौं बन्ध लगाय अस्थिर अनहद आराधै ।
सुरति निरति का काम राह चल गगन अगाधै ॥
शून्य शिखर चढ़ि रहै दृढ़ जहाँ जाय आसन करै ।
भन चरणदास ताड़ी[2] लगै सो राम दरश कलिमल हरै ॥

(८)

चौथा पद निर्वाण धाम बेगमपुर कहिये ।
गुण अतीत जहाँ राम निरखि नैनन सुख लहिये ॥
अद्वै रूप अखण्ड मण्ड मण्डल बहु बंका ।
जहाँ काल नहिं ज्वाल शब्द अति उठत निशंका ॥
निज पारब्रह्म चौंरी[3] रची शिव सहित शक्ति फेरी करैं ।
भन चरणदास चारौं मुक्ति सो हाथ जोरि पायँन परैं ॥

(९)

मूल कमल में खेलि पिया कूँ देखन चलिये ।
उलटि बेध षट चक्र जाइ सतवैं[4] सूँ मिलिये ॥

१ मजबूत २ समाधि ३ विवाह का मण्डप ४ सहस्रदल कमल ।

(९)

मूल कमल में खेलि पिया कूँ देखन चलिये।
उलटि वेध पट चक्र जाइ सतवैं[४] सूँ मिलिये ॥

१ मजबूत २ समाधि ३ विवाह का मण्डप ४ सहस्रदल कमल ।

प्राण अपान मिलाय राह पश्चिम की लीजै।
बंक नाल करि शुद्ध प्राण लै तामें दीजै ॥
मेरु दण्ड चढ़ि जाय जब लोक लोक की गम परै।
भन चरणदास ब्रह्मण्ड में ब्रह्मदर्शी दर्शन करै ॥

दो० चरणदास यहि विधि कही, चढ़िबे को आकास।
शोधि साधि साधन अगम, पूरण ब्रह्म विलास ॥१३॥

(१०)

दल असंख्य को कमल रूप जहाँ सत्त विराजै।
अनन्त भानु परकाश जहाँ अनहद धुनि गाजै ॥
सुन्दर छवि अति हंस[१] सन्त जन आगे ठाढ़े।
जहाँ पहुँचै कोइ शूरवीर नीशान जो गाड़े ॥
कमल मध्य जो तख्त है शोभा अपार बरणूँ कहा।
कहैं चरणदास उस तख्त पर आदि पुरुष अद्भुत महा ॥

(११)

छत्र फिरत नित रहत चँवर ढोरत जहँ हंसा।
जहाँ दरशन करि शिष्य मिटै युग युग का संसा[२] ॥
आवागमन ह्वै रहित मरण जीवन नहिं होई।
आनि मिले जब चार मुक्ति कहियत है सोई ॥
जहाँ अमरलोक लीला अमर फल अनेक तहाँ पावई।
भन चरणदास शुकदेव बल सु चौथा पद इमि गावई ॥

१ मुक्तात्मा २ संशय ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी की समाधि-साधना के क्रम और विधान का वर्णन करते हुए उनके शिष्य जोगजीत जी कहते हैं—

मन मारा तन वश किया, तजे जगत के भोग ।
सतगुरु राखा शीश पर, तब बनि आया योग ।।
यम अरु नियम पहिले आराधे । चौरासी आसन फिर साधे ।।
प्राणायाम किया विधि सेती । प्रत्याहार सँभाला हेती ।।
और धारना का अंग धारा । शून्य ध्यान में मन को मारा ।।
आठवीं अंग समाधि लगाई । पाप पुण्य की व्याधि मिटाई ।।
छहू कर्म शुद्ध करि साधा । तन में कोई रही न बाधा ।।
पाँचो मुद्रा भी सधि आई । तीनों बंध सधी सुखदाई ।।
महाबंध साधा बल जोधा । पाँचो वायु लई परमोधा ।।
प्राण जो और अपान मिलाई । सुखमन मारग माहिं चलाई ।।
षट चक्कर को छेद करि, चढ़े गगन को धाय ।
परमानंद समाधि में, दसवें रहे समाय ।।[1]

इस प्रकार की कठोर साधना शीघ्र ही परिपक्व हो गयी । परमानन्द की प्राप्ति के साथ अनेक सिद्धियाँ भी उनके करतलगत हुईं परन्तु साधना का क्रम सतत् चलता रहा और क्रमशः लययोग, सुरति=शब्दयोग, हठयोग, सांख्ययोग, भक्तियोग, विहंगमयोग तथा पिपीलिकायोग आदि आठ प्रकार के योगों को भी उन्होंने सिद्ध किया । गुरु ने श्रीकृष्ण भक्ति को सर्वांशतः अपनाने के पूर्व अष्टांग योग की साधना का उपदेश दिया था और सबकी विधि भी उन्होंने बता दी थी । अष्टांगयोग-साधना का गुरु के द्वारा उपदिष्ट क्रम इस प्रकार था—

पहिले भक्तियोग बतलाया । सो सुनि के मन में ठहराया ।।
राजयोग की सब विधि जानी । शुकदेव कृपा सों सब पहिचानी ।।
सांख्य योग दीनो करि हेता । समझायो सब ही था जेता ।।
सुरतियोग हठयोग बखाना । चरणदास शिष ने सब जाना ।।[2]

अष्टांग योग को सिद्ध करने के आदेश के साथ ही गुरु ने नव दीक्षित शिष्य को ज्ञान, वैराग्य, मुक्ति और भक्ति के रहस्यों से भी अवगत कराया तथा साधना के कुछ गोपनीय तत्त्वों का बोध कराकर उन्होंने उन्हें सिद्धियों के मोहजाल से मुक्त रहने का भी आदेश दिया । इस प्रकार गुरु-शिष्य की यह गोष्ठी ५।। पहर तक चली थी, जिसमें १।। पहर अपराह्न में अवशिष्ट दिन के थे और शेष ४ पहर

१. लीलासागर : पृ० १११–११२ ।
२. वही : पृ० ६७ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी अधिकांश निर्गुन बानियाँ 'कड़खा राग' में निबद्ध हैं। इन बानियों की सधुक्कड़ीशैली और पंचमेल भाषा जसराम जी की मनमौजी वृत्ति की परिचायिका है। इनका इस प्रकार का पद यहाँ उद्धृत है—

करै महल की सैल सोई सतभाग है।
जोग जुगति सूँ चढ़ै महल पर सुखमनि पंथ निहारा है ॥
कामधेनु जहाँ अमृत बरखै झिलमिल जोत अपारा है।
जो नर पीवै अमीरस प्याला देखै अति गुलजारा है ॥
सहस कँवल दल अजब सिंहासन तहाँ जु पीव हमारा है।

१. शब्द : प्रेम का अंग १–२।
२. वही : पृ० ५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोहं शब्द लहै सोई हंसा अनहद का झनकारा है ॥
जन जसराम लहै या छवि कूँ जहाँ रणजीत पियारा है।[1]

६. भगवानदास जी—ये चरणदास जी के वरिष्ठ शिष्यों में से थे। इनका बालूगंज (आगरा शहर) का थाँभा बड़े थाँभों की सूची में परिगणित होता है। श्री भगवानदास जाति के ब्राह्मण थे। गंगा-यमुना के बीच (म्यान डाब या द्वाब) स्थित सिलसिली ग्राम (जिला—मुजफ्फरनगर) इनका मूल स्थान था। यहीं रहकर इन्होंने अपने सम्प्रदाय के साधना-सिद्धान्तों का आजीवन प्रचार-प्रसार किया। इनके इस स्थान का महत्व इसी बात से सिद्ध होता है कि चरणदास जी रामत के क्रम में एकाधिक बार इनके यहाँ गये थे। इस तथ्य की ओर इनके गुरु-भाई श्री जोगजीत जी ने इस प्रकार संकेत किया है—

कियो जु तिन अस्थान, गांव सिलसिली के निकट।
चरणदास सुखदान, इक बर वा अस्थल गये।[2]

दीक्षा ग्रहण के पूर्व ये दिल्ली की शाही सेना में सिपाही थे। ये प्रायः चरणदास जी के अस्थल में कथा-प्रवचन आदि के श्रवण तथा सत्संग-लाभ के लिए आते थे। एक बार चरणदास जी ने इनसे इनका परिचय पूछा तो इन्होंने बड़ी अँकड़ के साथ उत्तर दिया। उन्होंने इनके अज्ञान पर तरस खाकर उन्हें ज्ञानोपदेश दिया। इससे ये इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने तत्काल शस्त्र और वर्दी खोलकर दूर रख दिया और वे चरणदास जी के शरणागत हो गये। उनकी भावना और गुरुनिष्ठा से प्रेरित होकर चरणदास जी ने उन्हें अपना लिया और दीक्षा देकर उनका नाम भगवानदास रखा। कुछ दिनों तक गुरुचरणों में रहने के उपरांत ये गुरु के आदेश से द्वाब क्षेत्र में रामत करने और उपदेश देने आदि में प्रवृत्त हो गये।

ये ज्ञान-ध्यान में पूर्ण थे। 'लीलासागर' के अनुसार इन पर गुरु की महती कृपा थी और ये बड़े नामी महात्मा हुए।[3] इनका व्यक्तिगत जीवनवृत्त अप्राप्त है। इन्होंने 'रामाश्वमेध' नामक प्रबन्धकाव्य की रचना सं० १८९२ वि० में पूर्ण की थी, अतः तब तक तो इनका जीवित रहना प्रायः निश्चित ही है। संभव है कि इसके आगे भी वे कई वर्षों तक जीवित रहे हों।

इनकी बालूगंज–आगरा वाली गद्दी पर्याप्त सक्रिय रही है। इनके प्रशिष्य मथुरादास सं० १९०० से १९२५ वि० तक इस गद्दी के महन्त रहे। उनके समय में

१. शब्द : पत्र सं० २२।
२. लीलासागर : पृ० २७६।
३. गुरुकृपा सेती बनि आये। नामी महापुरुष कहलाये ॥
—लीलासागर : पृ० २७६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा और योगविद्या के प्रगाढ़ ज्ञान का एकसाथ परिचय दिया है। इनका योग सम्बन्धी ज्ञान केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित न होकर स्वानुभव के ऊपर आधारित है। वर्ण्य और वर्णन की विश्वसनीयता असंदिग्ध है। वर्ण्य-विषय के शास्त्रीय पक्ष पर अधिक ध्यान होने के कारण छंद और भाषा-प्रयोग में कवि अपेक्षित सावधानी नहीं रख पाया है। फलतः मात्रा एवं शब्द-प्रयोग की कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं। इनकी योगपरक बानी का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

अथ गुरुवचन (चौपाई)—

इड़ा पिंगला सुषमन धारो। आसन ब्रज नागनी टारो॥
द्वादस अंगुल गहो बंध। षट चक्कर लीजै।
जब बाजे अनहद तूर। वहाँ मन निज करि दीजै।
खेचर मुद्रा त्रिकुटी आवै। अमृत पिये परम सुख पावै॥
मेरु दंड को प्राण चलावो। सुन्न सिखर तब नगरी पावो॥
जा नगरी में चंद न भान। पहुँचे साधू चतुर सुजान॥
जहाँ जातिपांति नांव नहिं नाता। सेत स्याम पीत नहि राता॥
जोग जग्य तप तहाँ न दाना। तीरथ बर्त जहाँ नहि न्हाना॥
किरिया कर्म नहीं जहाँ पूजा। मैं हूँ न तूं है एक न दूजा।
जहाँ सांझ द्यौस नहि राता। एकै ब्रह्म अखंड विधाता॥
नन्दराम राम की घाटी। पहुँचै गुरु मत सूरा।
औ भी बुद्धवाद बहु ठानें। करनी करै सो पूरा॥[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्दराम जी भी योग सम्बन्धी प्रायः उन्हीं उक्तियों का आश्रय ले रहे हैं, जो गोरखनाथ, जलंधरनाथ आदि नाथसिद्ध और कबीर-दादू आदि संत कवि पहले ही अपनी बानियों में प्रयुक्त कर चुके थे।

'ब्रह्मविद्यासागर' में नन्दराम जी का 'योगसार' भी सम्मिलित है। यह संग्रह सं १८१९ वि० में तैयार हुआ था। इसमें चरणदासी महात्माओं की बानियाँ संगृहीत हैं। इसकी पांडुलिपि दिल्ली स्थित सहजोबाई जी की गद्दी के दिवंगत महंत गंगादास जी के यहाँ देखने को मिली थी। 'ब्रह्मविद्यासागर' का प्रकाशन प्रथम बार लाहौर से सन् १८९० ई० (सं० १९४७ वि०) में थियोसोफिकल सोसाइटी द्वारा हुआ था। 'योगसार' के रचना काल के सम्बन्ध में उक्त आधार पर कहा जा सकता है कि सं० १८१९ वि० के पूर्व यह कृति रची जा चुकी थी। सम्भवतः इसी को 'हठयोग' नाम देकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के हस्तलेख

१. योगसार (हस्तलिखित) : पत्र सं० ३३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी की शिष्या हो गई थीं। दूसरी नूपीबाई श्री आतमराम इकंगी की पुत्री थीं। सम्भवतः अपने पिता-माता की एक मात्र सन्तान थीं और पिता के साथ ही अल्पायु में श्री चरणदास से दीक्षित हो गई थीं। गुरु की शिक्षा-दीक्षा के अन्तर्गत उन्होंने राजयोग और ध्यान में दक्षता प्राप्त की थी। वे अविवाहित रहकर दिल्ली, जयपुर और वृन्दावन के बीच घूम-फिर कर स्त्रियों में भक्तिप्रचार करने में रत रहीं। अपने दादा जीवनदास के बामनौली आश्रम में, पिता के जयपुर स्थित आतमकुंज में और वृन्दावन के सेवाकुंज में भी वे काफी समय तक रही थीं। उन्हें समाधि में निपुणता प्राप्त थी। उनकी साधना-पद्धति मुख्यतः सखीभाव की थी।[1] 'लीलासागर' के रचयिता और उनके गुरुभाई श्री जोगजीत ने इन्हें 'जोगजीत श्री गुरु की प्यारी ! नूपीबाई बहन हमारी'—कहकर इनकी बड़ी प्रशंसा की है।

इन्होंने किसी स्वतन्त्र स्थान का निर्माण नहीं किया था। यदि किया भी हो तो उसका पता नहीं चलता। इनके काव्य में निर्गुण पद्धति की बानी की झलक के साथ ही रसिक साधना के प्राधान्य की भी झलक मिलती है। इनका सखी नाम 'नूपीसखी' था। इनकी बानी का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

मेरे प्रेमनगर में बसत कंथ। जाकी औघट घाटी विकट पंथ॥
मैं परसन चाली प्यारो पीव। कर दीप लियो बिन बाती घीव॥
ह्वै सुषमन मारग चढ़ी धाय। निज कुंज पिया की पहुँची जाय॥
जहाँ सखी भाव भीतर को जाय। रसकेलि करे निज धाम माँहि॥
जिहि रंगमहल के आस-पास। बहु सन्त सखा राखें निवास॥
जहँ अद्भुत लीला अति अगाध। तहँ बाजे बाजें संख नाद॥
जहँ अमृत बरसे काम धेन। लखि कल्पवृक्ष मन भयो चैन॥
जहाँ कई रंग के फूले फूल। कोई निरखै जन जग व्याधि भूल॥
गुरु चरनदास दीन्हों बताय। सो "नूपी बाई" लीन्हो पाय॥[2]

सरस निकुंज-जयपुर के ग्रन्थागार में एक ऐसी पाण्डुलिपि सुरक्षित है जिसमें आतमराम जी, उनके शिष्य श्री लक्षिदास तथा नूपीबाई जी (आतमराम जी की सुपुत्री एवं चरणदास जी की शिष्या) की बानियाँ एक साथ संगृहीत हैं। इसी प्रकार अखैराम जी की शिष्या एवं जयपुर निवासिनी खुशालाबाई जी एवं आलोच्य सुश्री नूपीबाई की बानियाँ एक साथ संगृहीत मिली हैं। इसी संग्रह में

---

१. योग ध्यान महाराज सिखायो। राज योग हिय में प्रगटायो॥
--श्रीमत् दम्पति की मनमेली। सेवा निज कर भई सहेली॥
—लीलासागर : पृ० २२६।

२. शुक सम्प्रदाय-सिद्धान्त-चन्द्रिका : पृ० १२७–१२८ पर उद्धृत।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयाबाई जी की भी बानियाँ संकलित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि चरणदास जी की तीनों शिष्याओं—सुश्री सहजोबाई, दयाबाई तथा नूपीबाई में आपसी तालमेल बहुत अच्छा था और वे एक दूसरे से सम्बन्धित भी थीं। नूपीबाई जी की योग में निपुणता की प्रशंसा रामरूप जी, जोगजीत जी, अखैराम जी, जसराम उपकारी जी तथा अन्य समकालीन चरणदासी महात्माओं ने की है। वर्तमान-कालीन चरणदासी वृत्तकारों में श्री सरसमाधुरीशरण अग्रगण्य हैं। उन्होंने नूपीबाई जी के सम्बन्ध में निम्न प्रशंसात्मक उक्ति कही है—

चरणदास स्वामी सरनागति नूपीबाई जी गुन ग्राम।
गुरुमुख भई सरन गुरु आई तनया श्रीमत् आतमराम॥
सुखमन मारग चढ़ी गगन में पहुँची तुरत पिया के धाम।
रस केली कुंजन मिलि हेली करत रहत जहँ स्यामा स्याम॥
सदा बसन्त कलपतरु सोभित नित नाना सुमन खिले अभिराम।
सरस माधुरीसरन सलोनी दीजे चरन कमल विसराम॥

नूपीबाई जी के अधिकांश पद अष्टयाम शृंगार की शोभा के वर्णन से युक्त एवं तत्तद् अवसरों के लिए गेय हैं। शृंगार के समय युगल श्यामा-श्याम का स्वरूप वर्णन करते हुए वे कहती हैं—

हमारे द्वारे श्यामाश्याम बिराजे।
रतन जटित सिंहासन ऊपर अद्भुत सोभा छाजे॥
गौर स्याम सुन्दर मनभावन निरखि काम रति लाजे।
निज जन जीवन प्राण अधारे देख दूर दुख भाजे॥
हँसि हेरत चित चोर रसीले पट भूषण तन साजे।
नूपीबाई दासि चरन की गावत सहित समाजे॥

इस पद्धति पर रचित श्री श्यामा श्याम के हिंडोला झूलने की इनकी शब्दमयी झाँकी भी देखने योग्य है—

झूलत जुगलबिहारी आज।
नख सिख सजि सिंगार सुहावन पधराये सिरताज॥
नान्हीं बूंदन मेहा बरसे मधुर मधुर घन गाज।
गावत गीत मल्हार मनोहर सज्यो रंगीलो साज॥
झोंटा लेत देत बलिहारी झुलवत श्री महाराज।
नूपीबाई निरखि यह सोभा छाक्यो सकल समाज॥

इनकी साखियाँ भी बड़ी ही मनोहारी हैं। इनका भाषा पर बहुत अच्छा अधिकार है। अनावश्यक या भर्ती के शब्द इनकी कविता में कहीं भी नहीं है। ये परम गुरुभक्ता थीं और गुरु को साक्षात् अवतार मानती थीं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) शुक सम्प्रदाय में योग साधना का स्वरूप तथा महत्व—आलोच्य सम्प्रदाय के आद्याचार्य श्री चरणदास ने अपनी प्रेमाभक्तिसाधना की यात्रा योग से ही आरम्भ की थी। यह तथ्य उनके जीवनचरित्र से भलीभांति प्रकट होता है। उन्होंने छः वर्ष की अवस्था में ही योगसाधना का अभ्यास आरम्भ कर दिया था। गुरु-दीक्षा प्राप्ति के पूर्व तक उनका यह अभ्यास अव्यवस्थित तथा अपरिपक्वावस्था में था। शुकतार में गुरु से भेंट होने पर उनसे दीक्षा-प्राप्ति के समय उन्हें इस विषय का व्यापक ज्ञान प्राप्त हुआ। गुरु ने उन्हें अष्टांग योग सहित ज्ञान और भक्ति के भी सभी अंगों का ज्ञान प्रदान किया था।[2]

दीक्षित होकर दिल्ली में वापस आने के उपरान्त उन्होंने उन्नीस से इकतीस वर्ष की अवस्था तक दिल्ली की एक पहाड़ी गुफा में कठोर तपस्या और योग-साधना की। उनके इन बारह वर्षों की योगाराधना के क्रम का विस्तार के साथ वर्णन करते हुए श्री चरणदास के परम विश्वस्त शिष्य श्री जोगजीत इस प्रकार कह रहे हैं—

यम अरु नियम पहिले आराधें। चौरासी आसन फिर साधें॥
प्राणायाम किया विधि सेती। प्रत्याहार सँभाला हेती॥
और धारना का अंग धारा। शून्य ध्यान में मन को मारा॥
अठवीं अंग समाधि लगाई। पाप पुण्य की व्याधि मिटाई॥

---

१. प्रेम मंजरी[1] नाम है, गन्धर्वा[2] गुणग्राम।
प्रमोदिनी[3] मधुरा स्वरा[4], सहजानन्दिनि[5] बाम॥
गुणप्रकाशिका[6] जानिये, जुगतानन्दिनि[7] बाल।
प्रमुदमंगला[8] जू सखी, रूप राशि छबि जाल॥
—शुकसंप्रदाय सि० चं० : पृ० ५१।

२. पहिले भक्तियोग बतलाया। सो मुनि के मन में ठहराया॥
राजयोग की विधि सब जानी। शुकदेव कृपा सों सब पहिचानी॥
सांख्य योग दोनों हरि हेता। समझायो सबही था जेता॥
सुरति योग हठयोग बखाना। चरणदास शिष ने सब जाना॥
यम अरु नियम जु प्रत्याहारो। ध्यान धारणा पंच अंग धारो॥
आसन प्राणायाम सु जानो। अष्टम लै समाधि पहचानो॥
औरो अंग बहुरि समझाये। चौरासी आसन दिखलाये॥
—लीलासागर : पृ० ९७-९८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँचों मुद्रा भी सधि आई। तीनों बन्ध सधे सुखदाई॥
महाबन्ध साधा बल जोधा। पाँचों वायु लई परमोधा॥
प्राण जो और अपान मिलाई। सुषुमन मारग माँहि चलाई॥

षट् चक्कर को छेद करि, चढ़े गगन को धाय।
परमानंद समाधि में, दसवें रहे समाय॥[1]

अपने गुरु के इस योगसिद्धि रूप का वर्णन चरनदास जी के शिष्य गुरुछौना जी ने इस प्रकार किया है—

गंग जमुन के बीच, जहाँ निज डेरा दीना।
मन माता बहुरूप, खेंचि अपवस कर लीना॥
उठा सबद घनघोर, तूर अनहद धुनि बाजा।
जीते पाँच पचीस, भयो सब पूरन काजा॥
अष्ट जोग कूं साधि तुम, भये रूप अदभुत बरन।
जन छौना परनाम करि, सु चरनदास तारन तरन॥[2]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत कबीर की भांति इनका भी एक गूढ़ार्थ पद उदाहरण के रूप में यहां उद्धृत है—

साधो अचरज एक लखाया, काहू बिरले जन ने पाया।
ऊपर कूप तले पनिहारी, नीर भरें निस प्राता॥
नजर नैन बिन सूझ अनूठा, तहाँ नहीं दिन राता॥
बागन ही वृक्ष लगै अमोलक, सींच बिना हरियाली।
फूल खिले बहु रंग बिरंगे, मूल पात बिनु डाली॥
गगन मांहि एक धेनु विराजै, अमी देत नहिं खावै।
गुरुमुख आवै और जुगुत सों, जनम मरन छूट जावै।
जोग साध यह खेल निहारा, निपट अगोचर भेवा॥
नवनदास हित चित तें करिया, अलख पुरुष की सेवा॥[1]

श्री नवनदास के पदों में अनेक राग-रागिनियों का प्रयोग किया गया है। उनमें पर्याप्त विषय-वैविध्य भी है परन्तु कवि का ध्यान गुरुमहिमा और मुरली-महिमा के गान पर तथा आत्मनिवेदन एवं विरहनिवेदन पर अपेक्षाकृत अधिक केन्द्रित है। कुछ पदों की प्रथम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

१. गुरु बिन बाधा कौन हरै।
२. सुमर मन राधा कृष्ण कृपाल।
३. वंसी तू है कामनगारी।
४. परमानन्द निधान हेली तासूं प्रीति लगाइए।
५. झूठ जगत की प्रीत सखी री मोहन मित्र हमारा।
६. प्रभु जी हूँ शरनागति तेरी।
७. हरि जी भक्ति दया करि दीजै।
८. प्यारे के दर्श बिन कल न परे।
९. प्यारे लै गयो चित को चोर।
१०. मुरली श्याम बजावै जी, सो छवि बरनी न जाय सखी री।
११. हे दिल जानी तूं मेरे डेरे आव। आदि।

इनके पदों में भाषा-प्रयोग की अनेकरूपता भी स्पष्ट दिखाई देती है, जैसे—

(क) ओ मन मोहा मेड़ा ओ मुस्कान।
(ख) मोहनवा लागत है अति प्यारा।
(ग) हो हो सकल करत ब्रजबनिता चहुँ दिसि से घिरि आई हो जू।

---

१. नवनप्रकाश : शब्द सं० ४२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

20:46
yoga prakarana hindi .p...

नहीं चंद्र नहि सूर है नहीं सुषुमणा बाल।
मुखसेती श्वासा चलै घड़ी चार में काल ९४
चार दिना के आठ दिन बारह के दिन बीश।
ऐसे जब चन्द्रा चलै आयु जान बड़ ईश ९५
तीन रात औ तीन दिन चालै तत्त्व अकाश।
एक वर्ष काया रहै फेरि काल विश्वास ९६
दिन को तो चन्द्रा चलै चलै रात को सूर।
यह निश्चय करि जानिए प्राणगमन बहु दूर ९७
राति चलै स्वर चन्द्र में दिन को सूरज बाल।
एक महीना यों चलै छठे महीना काल ९८
जब साधू ऐसी लखै छठे महीना काल।
आगे ही साधन करै बैठि गुफा ततकाल ९९
ऊपर खैंचि अपान को प्राण अपान मिलाय।
उत्तम करै समाधि को ताको काल न खाय १००
पवन पिए ज्वाला पचै नाभि तले कर राह।
मेरुदंड को फारिकै बसै अमरपुर माह १०१
जहाँ काल पहुँचै नहीं यम का होय न त्रास।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

गगन मँडल को जायकर करै उनमनी वास १०२
जहाँ काल नहिं ज्वाल है छुटै सकल संताप।
होय उनमनी लीन मन बिसरै आपा आप १०३
तीनों बन्ध लगाय के या वायें को साध।
योग सुषुमणा ह्वै चलै देखै खेल अगाध १०४
शक्ति जाय शिव सों मिलै जहाँ होय मन लीन।
महाखेचरी जो लगै जानै जान प्रवीन १०५
आसनपद्म लगायकर मूलबंध को बाँध।
मेरुदण्ड सीधो करै सुरनगगन को साध १०६
चन्द्र सूर्य दोउ सम करै ठोढ़ी हिये लगाय।
षटचक्कर को बेधकर शून्य शिखर को जाय १०७
इड़ा पिंगला साधकर सुषुमण में कर वास।
परमज्योतिझिलमिलतहाँ पूजैमनविश्वास १०८
जिन साधन आगे करी तासों सब कछु होय।
जब चाहै तबहीं करै काल बचावै सोय १०९
तरुण अवस्था योग कर बैठ रहै मन जीत।
काल बचावै साध वह अन्त समय रणजीत ११०

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सदा आप में लीन रहु करि योगा अभ्यास।
आवत देखै काल जब गगनमँडल कर वास १११
शनई शनई साधकर राखै प्राण बढ़ाय।
पूरो योगी जानिए ताको काल न खाय ११२
पहिले साधन ना कियो गगनमँडल को जान।
आवत जानै काल जब कहा करै अज्ञान ११३
योग ध्यान कीन्हों नहीं ज्वान अवस्था मीत।
आगम देखै काल को कहा सकै वह जीत ११४
काल जीति हरि सों मिलै शून्य महल अस्थान।
आगे जिन साधन करी तरुण अवस्था जान ११५
काल अवधि बीतै जबै तबै जानि वह जाय।
योगी प्राण उतारिए लेहि समाधि जगाय ११६
काल जीति जग में रहै मौत न व्यापै ताहि।
दशों द्वार को फोरकर जब चाहै तब जाहि ११७
सूरजमंडल चीरकै योगी त्यागै प्राण।
सायुज्यमुक्ति सोई लहै पावै पद निर्वाण ११८
कृष्णपक्ष के मध्य में दक्षिण होयँ जु भान।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

20:47
CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

योगी वपु नहिं छाँड़ि हैं राजा होय कि ज्ञान ११६
राज्य पाय हरिभक्ति कर पूर वली पहिचान।
योगयुक्ति पावें बहुरि दूसरि मुक्ति निदान १२०
सूर्य उत्तरायन लखे शुक्लपक्ष के माहिं।
योगी काया त्यागिए यामें संशय नाहिं १२१
मुक्त होय बहुरें नहीं जीव खोज मिटि जाय।
बूँद समुंदर मिल रहे दुनियाँ ना ठहराय १२२
सूर्य दक्षिणायन बिषे रहें मास षट जान।
फिर उतरायन जायकर रहें मास षट भान १२३
दोनों स्वर को शुद्ध कर श्वासा में मन राख।
भेद स्वरोदय पाय कर तब काहू सों भाख १२४
जो रण ऊपर जाइए दहिने स्वर परकाश।
जीत होय हारे नहीं करे शत्रु को नाश १२५
दुर्जन को स्वर दाहिनो तेरो दहिनो होय।
जो कोई पहिले चढ़े खेत जीति है सोय १२६
सुषुमण चलत न चालिए युद्ध करन सुन मीत।
शीश कटावें की फँसे दुर्जन होई जीत १२७

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

चौथे ताल है सोय पाँचवें घंटा बाजै।
छठे सुमुरली नाद सातवें भेरि जु गाजै।
अठवें बाजै दुंदुभी सिंह गर्जना नवलो।
दशवें बाजै घूँघुरू चरणदास सुन लो १६१

दोहा

दश प्रकार अनहद घुरे जित योगी ह्वै लीन।
इन्द्रिय थके मनवाँ थके चरणदास कहि दीन १६२
तीन पाँच नौ नाड़िका दश बाई को जान।
प्राण अपान समान है अरु कहियत उद्यान१६३
व्यानवायु अरु किरकरा कूरम बाई जीत।
नाग धनंजय देवदत दश बाई रणजीत १६४
नवो द्वार को बंदकर उत्तम नाड़ी तीन।
इड़ा पिंगला सुषुमणा केलि करै परबीन १६५
करते प्राणायाम के तरि गये पतित अनेक।
अनहदध्वनि के बीच में देखैं शब्द अलेख १६६
पूरक कर कुम्भक करै रेचक पवन उतार।
ऐसे प्राणायाम कर सूक्षम करै अहार १६७

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भरती बंद लगाय कर दशों वायु को रोक।
मस्तक प्राण चढ़ाय कर कर अमरपुर भोक १९८
पाँचो मुद्रा साधके पावे घट को भेद।
नाड़ी शक्ति चढ़ाय के षट चक्कर को छेद १९९
योगयुक्ति के कीजिए के अजपा को ध्यान।
आपा आप विचारिए परम तत्त्व को ज्ञान २००
शूद्रै वैश्य शरीर है ब्राह्मण औ रजपूत।
बूढ़ा बाला तू नहीं चरणदास अवधूत २०१
काया माया जानिए जीव ब्रह्म है मित्त।
काया छूटि सूरत मिटै तू परमातम नित्त २०२
पाप पुण्य आशा तजो मान और तो थाप।
काया मोह विकार तजि जपै सु अजपा जाप २०३
आप भुलानो आपमें बँध्यो आप ही आप।
जाको ढूँढ़त फिरत है सो तू आपी आप २०४
इच्छा दुई बिसारि करि क्यों न होय निर्वास।
तू तो जीवनमुक्त है तजो मुक्ति की आस २०५
पवन भई आकाश सों अग्नि वायु सों होय।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कुम्भक अष्ट प्रकार के, तिनको कहिये भेव ॥८८॥
लक्षण नाम स्वभाव गुण, जुदे जुदे समुझाव ।
चरणदास के मन विषे, सुनबे को अति चाव ॥८९॥

गुरु वचन

अब आठों कुम्भक कहूँ, नावँ भेद गुण रूप ।
शुकदेव कहैं परसिद्ध हैं, योग हि माहिं अनूप ॥९०॥
प्रथमैं कुम्भक ही कहूँ, नावँ जु सूरज भेद ।
दूजे ऊज्जाई सुनो, साधे छूटैं खेद ॥९१॥
शीतकार अरु शीतली, पँचवीं भस्त्रिक जान ।
छठी जु भ्रमरी नाम है, नीके समझि पिछान ॥९२॥
नावँ मूर्च्छा सातवीं, अठवीं केवल होय ।
रणजीता सबसे बड़ी, आयु बढ़ावै सोय ॥९३॥

पवन पूर पूरक ही कीजे । पाछे बन्ध जलन्धर दीजे ॥
कुंभक रेचक के मधि जानो । ह्वाईं बन्ध उड्यान पिछानो ॥
पवन जोर[१] ही सूँ गहि[२] लीजे । अर्ध उर्ध्व संकोचन कीजे ॥
मध्ये कीजे पश्चिम ताने । ब्रह्म नाड़ी के माहिं समाने ॥
नाड़ी पवन खैंचिये ऐसे । भरिये सब संधान[३] जु जैसे ॥
अपान वायु कूँ ऊपर लावे । प्राण वायु नीचे ले जावे ॥
जो पै यह साधन बनि आवे । योगी बूढ़ा होन न पावे ॥
तरुण अवस्था दीखे ऐसी । नित ही रहै जानिये जैसी ॥

(१) अथ सूर्य भेदन

कु० कुम्भक सूरज भेद ही, पहिले देहुँ सुनाय ।

१ बलपूर्वक २ खींचना ३ जोड़

(५) अथ भस्त्रिका

दो० अब कहुँ कुम्भक भस्त्रिका, पित कफ वायु नशाय ।
अग्नि बढ़े अभ्यास सों, तीन गाँठ खुल जाय ॥९९॥

आसन पद्म सु या विधि करे । बाम जंघ दहिनो पग धरे ॥
बावों पग दहनी पर लावे । जांघन सों दोउ हाथ मिलावे ॥
ग्रीवा पेट बराबर राखे । आगे सुन शुकदेवा भाखे ॥

१ द्वारा २ त्यागना ।

मुख मूँदे रेचे नासा सूँ । पूरक चपल करे श्वासा सूँ ॥
रेचक पूरक ऐसे कीजे । बारंबार तजे अरु लीजे ॥
जैसे खाल लोहारा भरे । रेचक पूरक आतुर करे ॥
करत करत जबही थकि जावे । नेक ठहर दूजी विधि लावे ॥
फिर पूरक सूरज सों करे । पवन उदर के माहीं भरे ॥
तर्जनि अँगुली सों दृढ़ रोके । नासा मध्य धार कर जोखे ॥

दो० कुम्भक पिछली भाँति करि, रेच इड़ा सों वाय ।
कफ पित वायु नशाय के, लेवे अग्नि बढ़ाय ॥१००॥
कुण्डलनी देवे जगा, यह कुम्भक सुखदाय ।
करे जु हित व्रत धारि के, चरणदास चित लाय ॥१०१॥
कुण्डलनी सरकाय के, बेंधे तीनों गाँठ ।
ऐसी पँचवीं भस्त्रिका, रहे न कोई आँठ ॥१०२॥

ब्रह्मनाड़ी के छिद्र माहीं । रोकि रही मुख दे रहि ह्वाँहीं ॥
लाय लपेटे नाभी ठाहीं । दृढ़ ह्वै बैठी सरके नाहीं ॥
सवा बिलस्त की जाकी देही । तामें स्थित जीव सनेही ॥
शक्ति नागिनी यही जु कहिये । याका भेद गुरू सों लहिये ॥
महा अपरबल जागे नाहीं । ताते नर सब मरि मरि जाहीं ॥
कोइ इक योगी ताहि डुलावै । सुषमन बाट गगन लै जावे ॥
ब्रह्मरन्ध्र में जाय समावे । लगे समाधि बहुत सुख पावे ॥
जो कछु होय सो कहा न जावे । चरणदास शुकदेव सुनावे ॥

दो० शिव शक्ती मेला[1] भवे[2], रहै न द्वितिया भाव ।

१-२ मिल जाते हैं ।

कुण्डलनी परबोध का, जो कोइ करे उपाव ॥१०३॥

शिष्य वचन

व्यास पुत्र शुकदेवजी, किरपा करी दयाल।
चरणदास आधीन ही, समझो भयो निहाल ॥१०४॥
एक बार फिर खोलि कै, कुण्डलनी समुझाव।
याके सबही भेद को, सुनबे को अति चाव ॥१०५॥

गुरु वचन

फिर भी तोसों कहत हों, कुण्डलनी विस्तार।
ताके सगरे भेद ही, सुनि के हिय में धार ॥१०६॥
नाभि स्थान नागिनि रहे, कुण्डल[1] शशी[2] अकार[3]।
प्राण पियारा वही है, आगे सुनो विचार ॥१०७॥
कुंभक कर्म कोई करे, देवे शक्ति जगाय।
जैसे लागी लष्टिका[4], नागन शीश उठाय ॥१०८॥

सीखि गुरू सों कुंभक साधे। नीकी विधि ताको अवराधे[5] ॥
पवन ठबक[6] लग ताहि जगावे। तब ऊरध को शीश उठावे ॥
नाभि ठौर ताका है वासा। पद्मराग मणि ज्यों परकासा ॥
सात लपेटे वायें जानो। ताते शक्ति कुण्डली मानो ॥
नाड़ी सहस लगी हैं वासों। एपर छुटी जानिये ताको ॥
जिनमें तीन नाड़ी अधिकाई। इड़ा पिंगला सुषमन गाई ॥
तिनके माहिं शिरोमणि सुषमन। नाल कमल जानत योगी जन॥
जा पहुँची ब्रह्मरंधर ताईं। ऊरध कमल सातवें माहीं ॥

१ गोलाकार २ चन्द्रमा ३ आकार ४ लाठी ५ अभ्यास करे ६ धक्का।

05:03

रुक्षयवभक्षणेन बलप्राप्तिविषयकप्रकरणं मिलति। दुग्धमिश्रितजलपानेन, नैकवर्षपर्यन्तं गुह्

[illegible]न, मासपर्यन्त[illegible]ति[82]। वस्तुतः योगसाधनाप्रभ

अल[illegible]ग्रहणेनाऽपि शरीरस्थसारतत्त्वस्योर्ध्वगमनत्त्वात् खेचर्यादि[illegible] अमृतपाने य

बलवान् भवति।

आहारप्रकार:

ग्रन्थनाम	पथ्याहार:	अपथ्याहार:
हठयोगप्रदीपिका	सुस्निग्ध-मधुर-शिवसम्प्रीत्यै मिताहारा:।	कटु-अम्ल-तीक्ष्ण-लवण-उष्ण-हरितशाक-सौवीर-तैल-तिल-सर्षप-मद्य-मत्स्य-अजादिमांस-दधि-तक्र-कुलत्थ-कक्कोल-पिण्याक-हीङ्गुल-शुनादय:।
हठरत्नावली	गोधूम-तण्डुल-यव-दुग्ध-घृत-माण्ड-नवनीत-शक्कर-मधु-पटोल-पञ्चशाक-मुद्ग-वर्षाजलञ्च।	तक्र-दधि-कोद्र-लशुन-कुलत्थ-तीक्ष्ण-लवण-उष्ण-हरितशाक-सर्षप-मद्य-मांसादय:।
घेरण्डसंहिता	शाल्यन्न-यवपिण्ड-गोधूम-माश-चणक-पटोल-पनस-कक्कोल-शुकाशक-द्राढिक-कर्कट-रम्भा-डुम्बर-कण्टकण्टक-अमरम्भ-बालरम्भ-रम्भादण्ड-मूलक-वार्ताकी-बालशाक-कालशाक-पटोल-पत्र-शुद्धसुमधुस्निग्धसुरसउदरार्धविवर्जित-मिताहारा:।	कटु-अम्ल-लवण-तिक्त-भृष्ट-दधि-तक्र-शाकोत्ट-मद्य-ताल-कुलत्थ-मसूर-पाण्डु-कुष्माण्ड-शाकदण्ड-तुम्बि-कोल-कपित्थ-कण्टबिल्व-पलाश-कदम्ब-जम्बीर-निम्ब-लकुच-लशुन-कामरङ्ग-प्रियाल-हीङ्गु-शाल्मली-केमुक-नवनीत-घृत-क्षीर-गुड-रम्भा-नारिकेल-दाडिम-द्राक्ष-नवनी-धात्री-अम्लरसाश्च।
शिवसंहिता	घृत-क्षीर-मिष्ठान्न-चूर्णवर्जितताम्बूल-कर्पूराणि च।	आम्ल-रुक्ष-तीक्ष्ण-लवण-सार्षप-कटवश्च।

[82] [illegible]

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

ज्यों मनती साधन गर्मी बिनु धन का परमान ।'

वे 'मूलद्वार' को संभालने का संकेत करते हैं । यह संकेत 'कुण्डली योग' का है । ज्ञानार्णव तंत्र के अनुसार—

'मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटि समप्रभाम् ।
सूर्य कोटि प्रतीकाशां चन्द्रकोटि द्रवां प्रिये ।'' —ज्ञानार्णव तंत्र

घेरण्डसंहिता के अनुसार—''मूलाधार आत्मशक्तिः कुण्डली पर देवता ।
शयिता भुजगाकारा सार्धत्रिवलयान्विता ॥'' (तृ० उपदेश ४४)

'कुण्डलनी' शब्द की व्याख्या ''कुण्डले अस्या स्तः इति कुण्डलिनी' की जाती है । 'कुण्डले' शब्द 'कुण्डल' के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है ।

''मूल डोरि मनु लाइयाँ बन्द धरनि माँ दीन
त्रकुटी तर घर भेटिया मीता भा ली लीन ।''

मूल के शोधन से ही कमल विकसित होता है । चक्रों का भेदन होता है । संत मीता के अनुसार—

'कंवल बिगसै मूल सोधे जीत पाँचों मारि
राम या बिधि पाइहै जल करम कागद फारि ।'

मीता के अनुसार द्वादश कवल चक्र में जीव का निवास है । और अष्ट कंमल चक्र में ब्रह्म का विलास है । इन दोनों का एकाकार ही जीव ब्रह्म का एकाकार है—

''द्वादस कंवल जीव का बासा
अष्ट कंवल बस ब्रह्म बिलासा
जीव ब्रह्म का एकुइ करई
कहि मीता सो प्रानी तरई ।''

मूल बन्ध भी मुद्रा बन्ध के अन्तर्गत साधना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण रहा है । मीता भी मूल बन्ध को संभालने का संकेत करते हैं । किन्तु वे मुद्रा बन्ध को अपनी साधना का लक्ष्य नहीं मानते यदि मुद्रा बन्ध मात्र बाह्याचार की वस्तु हो जाय ।

मूल द्वार की साधना ही जोग जुगति का प्रथम सोपान है—'बैसाधे बसि मूल दुवारा जोग जुगति का पंथ संभारा ।' चन्ददासकृत शिव सारंगाध्यावली (पृ० ३२) में मूल बन्ध साधना का वर्णन इस प्रकार है—

''मूल द्वार संभार कर वाम चरण धरि धीर
दक्षिण चरन सो राखिये इन्द्रिय निकट शरीर ।''

साधना के अन्तर्गत ५ तत्त्वों और २५ लिप्साओं को जीतने का बार-बार संकेत किया है—

'पाँच पचीसों को जो बाँधै
ताको कहिये ज्ञानी ।'

पाँच से पंच ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, रसना, त्वक) और पचीस लिप्सायें (पाँच तत्त्वों से मिश्रित २५ मानसिक और शारीरिक विकार आकाश से काम, क्रोध, लोभ. मोह, भय, (५) अग्नि से क्षुधा, तृषा आलस्य निद्रा मैथुन (५) वायु से चलन, बलन, धावन, पसारन, संकोचन, (५) जल से लार, खून. पसीना, मूत्र और लिंग (५) पृथ्वी से हाड़, मांस, त्वचा, नाड़ी रोम (५)=२५ लिप्सायें । मीता ने २५ लिप्साओं के नाम भिन्न प्रकार से बताये हैं ।

संख्यात्मक शैली में मीता ने इन्हीं पंच तत्त्वों को वशवर्ती बनाने का संकेत किया है । तन का शोधन मीता की साधना का आवश्यक अंग है—

'अलख अगाध अपार बहुरिया
तन सोधे सब कारज सरिया ।'

मन ही साधना का अमूर्त साधन है—

'मनु कर जोगिया मनु सन्यासी
मनु कर भगत मनुइ बैरागी
मनु कर संतहि मनहिं फकीरा

अथ ब्रह्म वेदी

ज्ञान सागर अति उजागर, निर्विकार निरंजनं।
ब्रह्म ज्ञानी महा ध्यानी, सत्य सुकृत दुख भंजनं।। १।।
मूल चक्र गणेश वासा, रक्त वर्ण जहां जानिये।
किलियं जाप कुलीन तज सब, शब्द हमारा मानिये।। २।।
स्वाद चक्र ब्रह्मादि वासा, जहां सावित्री ब्रह्मा रहै।
ऊँ जाप जपंत हंसा, ज्ञान योग सतगुरु कहै।। ३।।
नाभ कँवल में विष्णु विश्वम्भर, जहां लक्ष्मी संग बास है।
हरियं जाप जपंत हंसा, जानत बिरला दास है।। ४।।
हिरदे कँवल महादेव देवं, सती पार्वती संग है।
सोहं जाप जपंत हंसा, ज्ञान योग भल रंग है।। ५।।
कंठ कँवल में बसे अविद्या, ज्ञान ध्यान बुद्धि नास हीं।
लील चक्र मध्य काल कर्मं, आवत दम कूँ फास हीं।। ६।।
त्रिकुटी कँवल परमहंस पूर्ण, सतगुरु समरथ आप हैं।
मन पवना सम सिंध मेलो, सुरति निरत का जाप हैं।। ७।।
सहंस कँवल दल आप साहिब, ज्यौं फूलन मध्य गंध है।
पूर रह्या जगदीश योगी, सत्य समरथ निरबंध है।। ८।।
मीनी खोज हनोज हरदम, उलटद पंथ की बाट है।
इला पिंगुला सुष्मण खोजो, चल हंसा औघट घाट है।। ९।।
ऐसा योग वियोग वरणौं, जो शंकर नैं चित्त धर्या।
कुंभक रेचक द्वादश पलटे, काल कर्म तिस तैं डर्या।। १०।।
शुन्य सिंहासन अमर आसन, अलख पुरुष निरबान है।
अति ल्यौलीन बेदीन मालिक, कादिर कूँ कुरबान है।। ११।।
है निरसिंध अबंध अविगत, कोटि वैकुण्ठ नख रूप है।
अपरम पार दीदार दर्शन, ऐसा अजब अनूप है।। १२।।
घुरै निशान अखंड धुनि सुनि, सोहं वेदी गाईये।
बाजे नाद अगाध अग हैं, जहां ले मन ठहराईये।। १३।।
सुरति निरति मन पवन पलटै, बंकनाल सम कीजिये।
श्रवै फूल असूल अस्थिर, अमीं महारस पीजिये।। १४।।
सप्तपुरी मेरडंड खोजो, मन मनसा गहि राखिये।
उड़ि है भँवर अकाश गवनं, पांच पचीसौं नाखिये।। १५।।
गगनि मंडल की सैल कर ले, बहुरि न ऐसा दाव है।
चल हंसा परलोक पठाऊँ, भवसागर नहीं आव है।। १६।।
कंद्रप जीत उदीत योगी, षट करमी यौह खेल है।
अनभय मालनि हार गूंदै, सुरति निरति का मेल है।। १७।।

प्रथम अन्न जल संयम राखै,योग लक्षण सब सतगुरु भाषै।। ६२।।
क्रिया नेम गनेश बखानौं, धोती नेती कर अस्थानौं।
अजरी बजरी बंधै बाई, द्वादश खैंचि पताल समाई।। ६३।।
बामा चरण गुदा में लावै, आसन इन्द्री मूल समावै।
दहना ऊपर अस्थिर राखै, दो स्वर खैंच पतालौं दाखै।। ६४।।
मेर डण्ड कूँ राखै सूधा, जाका कँवल न होवै मूंधा।
दम का दगड़ा मंजन मांजै, शुन्य का सुरमा अंजन आंजै।। ६५।।
राम रसायन फूल चुवावै, इला पिंगला फेर चलावै।
सुषमणि सुरति लगावै ध्यानं, चंद्र सूर मूंदे शशि भानं।। ६६।।
दो मुख की नागनि गहि ल्यावै, मेर डण्ड कूँ उलटि बहावै।
अमीधार बरषा रस मूलं, नागनि का नीचे सिर झूलं।। ६७।।
काली ऊन काल का बाना, जठाराग्नि जीति स्वर ज्ञाना।
काली ऊन धोय बिन पानी, पेचस खोल्है होय अमानी।। ६८।।
क्षुध्या तृषा ताहि न व्यापै, निद्रा नींद काल नहीं झांपै।
हिरदे अजपा जाप जगावै, जैसे शेष सहंस फुनि गावै।। ६९।।
किलियं ऊँ हरियं सोहं, गुझ गायत्री से दिल धोवं।
तुंही तुंही ररंकार रटि रसना, ऐसे त्रिकुटी महल में धसना।। ७०।।
पलक मूंद कर पल नहीं लावै, बामा खैंचे दहने धावै।
नाद बिंद कूँ उलटि चलावै, त्रिवैनी भाठी श्रवावै।। ७१।।
पीवै अमृत लगै खुमारी, दो दल अंदर खुलै किवारी।
खैंचे बान गगन कूँ धावै, पैठि पताल शेष गहि ल्यावै।। ७२।।
कच्छ मच्छ कूरंभ उडानी, शेष गगन धरती तिर जानी।
अकल अंचभा मोहि अंदेशा, कौन युक्ति गहि ल्याये शेषा।। ७३।।
सतगुरु एता खेल दिखाया, बिन कुर अंबर पारी काया।
सुरति बान कमान चढ़ाई, घुडला ज्ञान पीड़ कर ल्याई।। ७४।।
दशौं दिशा कूदे मैदाना, चंद सूर एकै घर आना।
अगर मूल में फूल फुहारा, जहां वहां गंग सहंस मुख धारा।। ७५।।
नक सरवर पर गिरवर भारी, भौंर गुफा में लागी तारी।
अखंड मंडले करो पियाना, ता पर है योजन अस्थाना।। ७६।।
सुरति कँवल कूँ बूझि विचारो, ता आगे नीके पग धारो।
सुरति कँवल सतगुरु है भाई, जिन अक्षय वृक्ष की राह बताई।। ७७।।
समाधान में सुरति समोई, दौना मरुवा फूले दोई।
दौना मरुवा बाग मंझारा, फूल चमेली न्यारा न्यारा।। ७८।।
राय चमेली अगमी रासा, गगन मंडल में बाग अकाशा।
सूरज मुखी हजारा फूले, सुरति कमंद के बांधे झूले।। ७९।।

(२) शुक्ल पक्ष की **१५ तिथियाँ नित्यास्वरूपा** हैं। इसीलिए भवगती का पूजन शुक्ल पक्ष में ही होता है।

(३) **भगवती कुण्डलिनी** का उद्बोधन (जागरण/उत्थापन) भी शुक्लपक्ष में निष्पन्न किया जाता है।

(४) प्र. **ऐसा क्यों किया जाता है?** यह इसलिए किया जाता है क्योंकि **'शुक्लपक्ष'** में ही अमृत का आधिक्य होता है।

शुक्लपक्ष में ही चन्द्रमा से अमृत का क्षरण होता है। अत: उसी समय अमृत की प्राप्ति होती है।

(५) चन्द्रमा सूर्य से ताप लेकर शुक्लपक्ष में चाँदनी बिखेरता है। चूँकि चन्द्रोदय दिन में नहीं रात्रि में होता है अत: चन्द्रकला की उपासना भी रात्रि में ही होती है।

(६) **'तैत्तिरीय ब्राह्मण'** (३/१०/१०) में कहा गया है कि योगी को रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही योग-साधना करनी चाहिए।

(७) **नामधुकृतः** की व्याख्या करते हुए आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—[1]

'ताः रात्रयः' मधु कुर्वन्तीति **'मधुकृतः'**। रात्रिष्वेव मधुनः संग्रह इति [illegible] प्र[illegible] रात्रावेव चन्द्रकला रूपायाः श्री विद्यायाः [illegible] इति उपदेशः॥

आचार्य श्री **गौड़पाद** ने जो ग्रंथिक्रम बताया है वह 'ललिता सहस्रनाम' आदि अनेक ग्रंथों से भिन्न है।

प्र. **'आज्ञा चक्र'** को **गौड़पादाचार्य** ने **'ब्रह्मग्रंथि'** क्यों कहा ?

उत्तर—(१) 'आज्ञा चक्र' चन्द्रमा का स्थान है।

(२) चन्द्रमा से ही नित्याओं (चान्द्र किरणों) की उत्पत्ति होती।

(३) आज्ञा चक्र आत्मा एवं मन दोनों का स्थान है।

(४) यही से समस्त तत्त्वों की उत्पत्ति होती है।

इन्हीं सब कारणों से गौड़पाद ने इसे **'ब्रह्मग्रंथि'** कहा।

योग के कई ग्रंथों में ग्रंथियों का क्रम इस प्रकार भी मिलता है।

(१) 'रुद्र ग्रंथि' (२) 'विष्णु ग्रंथि' (३) 'ब्रह्मग्रंथि'।

ग्रंथि और ग्रंथित्रय—'ग्रंथि' गाँठ को कहते हैं। दो पृथक्-पृथक् वस्तुओं को जोड़ने से या गट्ठर आदि बाँधने से रस्सी में गाँठ पड़ जाती है। इसे ही 'ग्रंथि' कहते हैं।

---

१. आचार्य लक्ष्मीधर

२. लक्ष्मीधरा

धारै।। ८७।। १६।।

अथ राग रमैंणी

जो चेला सतगुरु का होई। हमरी चाल चलैगा सोई।। १।। मूल कँवल कस बंध बियांना। जासे उलटें पांन अपाना।। २।। गुदा कँवल कंदर्प का दौंना। बजर कछौटी बांधे पौंना।। ३।। नाभि कँवल सम सूधा कीता। गगन मण्डल सुन अनहद गीता।। ४।। हिरदे कँवल करीला कीजे। सुरति निरति मिलि सोहं लीजे।। ५।। कण्ठ कँवल से पलटै बानी। तो चेला सतगुरु का जानी।। ६।। त्रिकुटी कँवल में चंपा चौंरा। भँवर गुफा में उजल भौंरा।। ७।। सहंस कँवल दल फूले जोती। मानसरोवर मुक्ता मोती।। ८।। पछिम दिशा का खोले तारा। फूल रहे चंपा गुलजारा।। ६।। सप्तुपुरी का भेद अभेदा। सतगुरु मिले मेरु दण्ड छेदा।। १०।। अनंत कोटि जहां शंकर शेषा। हरदम हाजर रहते पेशा।। ११।। ब्रह्मा विष्णु गिने नहीं जांही। सुख सागर की सिन्धु समांही।। १२।। नाद नाद नारद त्रिकाली। शब्द महल में लागी ताली।। १३।। कोटि कृष्ण जहां करै करीला। ऐसा अनहद रास रसीला।। १४।। दस प्रकार अजब धुन रासा। संख कान्ह जहां करैं विलासा।। १५।। अमरलोक सनकादिक सेवा। सुरनर मुनिजन जपते देवा।। १६।। यौह तो अक्षर खण्ड बताया। आगै निःअक्षर गुरु राया।। १७।। सप्त अण्ड का भेद बखाना। आगे सुंन शिखर सैलाना।। १८।। शब्द बिहंगम चाल हमारी। जहां शेष महेश नहीं अवतारी।। १६।। ब्रह्मा विष्णु न नारद नादू। जा घर पौंहचे सतगुरु साधू।। २०।। अगम दीप की कहूँ निशानी। संख कला रवि रूंम समानी।। २१।। हंस हिरंबर हेत लगाया। गैबी गुमट अरस में छाया।। २२।। चौंर सुहंगम ढुरैं अपारा। जा दर परस्या हंस हमारा।। २३।। सुंन मंडल सत्यलोक निधाना। अविगत नगर भये सैलाना।। २४।। जा पद परसि बहुरि नहीं आवैं। शब्द अतीत अरस मठ छावै।। २५।। नाद बिंद नहीं धरि हैं हंसा। शब्द अतीत मिलै कुल बंसा।। २६।। दास गरीब हिरंबर मेला। याह चाल चलै सतगुरु का चेला।। २७।।

अथ ब्रह्म रमैंणी

पीताम्बर मस्तक बन्या, त्रिकुटी अति सोहै।
सो घट छान्या ना रहै, पद परस्या लोहै।। १।।
शील संतोष विवेक रे, और ज्ञान विज्ञाना।
दया दुलीचे बैठ करि, होय ब्रह्म समाना।। २।।
क्षमा छत्र जाके ढुरत है, तामस नहीं तेज।
सो नर परसे जानिये, अविगत की सेजं।। ३।।
कँवल हिरंबर खिल रहे, अनभय अनरागी।
दास गरीब सत्यलोक के, सोई वैरागी।। ४।। ७।।

सजन सुराही हाथ है, अमृत का प्याला।
हम विरहनि विरहै रंगी, कोई पूछै हाला।। टेक।।
चोखा फूल चवाईयां विरहनि कै ताहीं।
मतवाला महबूब है, मेरा अलख गुसांई।। १।।
प्रेम पियाला पीय करि, मैं भई दिवानी।
कहां कहूँ उस देश की, कछु अकथ निसांनी।। २।।
बरवै राग सुनाय करि, गल डारी फांसी।
गांठ गही खूल्है नहीं, साजन अविनाशी।। ३।।
गुझ की बातां किस कहूँ, कोई महरम जानै।
अगली पिछली मति गई, बेधी इकतानै।। ४।।
शुन्य मंडल सत्तलोक से, बिरहा चलि आया।
मुझ बिरहनि के लैन कूँ, मेरे सजन पठाया।। ५।।
रूंम रूंम में राग है, बिरहा रंग रासी।
लोक वेद झूठे लगे, पिछली बुधि नाशी।। ६।।
अनहद नादू बाजहीं, अमरापुर मांहीं।
शुन्य मंडल सत्यलोक कूँ, दुलहनि उठि धाई।। ७।।
अर्श गुमट गुलजार है, गैबी गलताना।
श्वेत ध्वजा जहां फरहरैं, पचरंग निशाना।। ८।।

तन मन छाके प्रेम से, मन मंगल महली।
दुलहनि दास गरीब है, जहां सेज सलहली।। ६।। ८।।

शुन्य सरोवर हंस मन, मोती चुग आया।

पलक पहर में कूँच तुम्हारा, हो गये राज बिराजी।
शब्द हमारा मानि गंवारा, क्यों समझत नहीं पाजी।। २।
मन में मुलनां बंग देत है, तेरे दिल ही अंदरि काजी।
करि ले पूजा दूर कर दूजा, टुक देखि ले नेम निवाजी।।
धनि वै बंदे सतगुरु जिन्दे, जो परसे अरस अवाजी।
दास गरीब पलक कर पलना, चौंर ढुरें उपराजी।। ४।।
घट घेरै नींद निमानी घट घेरै।। टेक।।
सतगुरु मिलें तो बेगि छुटावें, छानें दूध रु पानी।
पांच पच्चीस शीश चढ़ि खेलें, ज्यों नाचें भूत भवानी।।
निंदरा काल जाल है भाई, हो गई तांनम तांनी।
जिंदे से मुरदा करि डारे, भटकत फिरै प्रानी।। २।।
जो जागै सो पद स्यौं लागै, पावै अकथ कहानी।
उलटि पवन षट चकरे बेधै, जा परि मैं कुरबानी।। ३।।
पवन डंड नागनि कूँ मारै, नाभ फिरै तुरफानी।
इला पिंगला सुषमन सेझा, चलि मानसरोवर न्हानी।। ४।
है बहुरंगी अचल अभंगी, वै तो हैं हंसों के दानी।
कहै दास गरीब अमर होय सुनि करि, तूं मानि हमारी
हंसा उतरेंगे पार नौका नावरी।। टेक।।
लंबे रे बरदवान गहरी जिहाज, नीके रे उतरियौ लागी स
डिगै न डोलै कोडी न होय, उस नौका चढ़ि सकै न को
उस नौका परि जगमग फूल, जा नौका कूँ पलक न भूल
हीरे मोती जड़िया लाल। वाह नौका है नजरि निहाल।।
त्रिलोकी तिल मांहि सुमेर, उस नौका का ऐसा ही फेर।
पृथ्वी प्रदछिनां दे आवै, एक पलक प्रलोके जावै।। ३।।
सुरग नरक की करैं न कांन, अरसी नौका अजब विमान
स्वर्ग नरक की करै न भिंन, जा के जरिया कोटि रतन।
ब्यौमी से सुरगापुरी जाव, सुर नर मुनिजन धरैं न पाव।
है हिरदे के मध्य त्रिकुटी के तीर,
दास गरीब भजि अविगत कबीर।। ५।।
गाहक फिर फिर जांहि सौदा जोरि है।। टेक।।
तन मन अरपि चढाईयो शीश, सौदा करियो बिसवे बीस
हाटि पटण जो चलता गाम, बहुरि कौन तेरा लेगा नाम।
हाटि पट्टन होयगा बारा बाट, बहुरि कौन तेरी करि है स
हिरसि हवा के हैं बजार, जम किंकर की खाहिगा मार।।

परम तत्व से लावै तारी। पकरै मूल में थाम्है डोरी।। ८।। गुण इन्द्री के बीज बीजोवै। तुरिया पद में हंस समोवै।। ६।। परसे ब्रह्म करम सब जारै। सतगुरु मिलै तो हंस उबारै।। १०।। अकल पाट पर सतगुरु लेखा। काहे षट दल भरमै भेषा।। ११।। मरि मरि गये गुकित नहीं पाई। लोक दीप कोई बिरला जाई।। १२।। संपट खोल समुंद्र पैरे। तेजपुंज लखि हंसा लहरें।। १३।। अदल बंध अनरागी सोई। दास गरीब मुक्ति यौं होई।। १४।।

अथ भगल रमैंणी

भगलीगर आये ब्रह्मज्ञानी। अरस अनाहद अग हैं बानी।। १।। बटक बीज का यौह बिस्तारा। जासे उपजे नौ अवतारा।। २।। चौसठ और सहंस अठासी। तेतीसौं और तीन्यों जासी।। ३।। जैसे सिंधु बुदबुदा होई। मिटे बुदबुदा सिन्धु है सोई।। ४।। ऐसे भिन्न भई है दूजी। आत्म कूँ गुरु आत्म पूजी।। ५।। सतगुरु शब्द अतीत कहावै। देह धरे धरि महल लखावै।। ६।। जैसे तरुवर मांहे छाया। ऐसे ब्रह्म शब्द में माया।। ७।। बंधे मूल पवन कूँ पीवै। जुगति करै तो जुग जुग जीवै।। ८।। अजरी बजरी पलटै बिन्दा। बिचरै जब जग सूरज चंदा।। ६।। मेरु दण्ड पर बोले सूवा। पट्टन घाटी अमृत कूवा।। १०।। पिंगुल नाड़ी बांधि चलावै। इला के घर उलटि समावै।। ११।। सुषमन सेझा पलटै जोती। भँवर गुफा में झलकै मोती।। १२।। बिन आकार पदम जहां दीसे। सतगुरु गाजत है सिर शीशे।। १३।। जोग जुगति करि जीतै काया। न्यौलह घाटी बंध लगाया।। १४।। पिण्ड ब्रह्मण्ड सं न्यारा बोलै। रूप न रेख तुले नहीं तोलै।। १५।। रक्त न पीत न जरद न काला। दास गरीब अमर एक लाला।। १६।।

अवतार स्थान श्री रामपुर धाम

अथ अमर कछ रमैंणी

प्रथम जोग सुनो नर लोई। बंधो मूल पवन थिर होई।। १।। द्वादश दरशे पलटे पौंना। बहुरि न होई आवा गौंना।। २।। बाहर जाता भीतर ल्यावो। भँवर गुफा में उलटि समावो।। ३।। सोहं शब्द कहां अस्थानी। कौन कँवल में बारा बानी।। ४।। अंबर भीजे धरती बरसे। सोलह कला संपूरन दरशे।। ५।। षट् चक्र में चंचल खेले। बिन कोल्हू कहां निकसे तेले।। ६।। जो तुझ दीपक जोया चहिये । तो शब्द अनाहद हंसा गहिये।। ७।। कंदर्प जीते सो ब्रह्मज्ञानी। बंक नाल बंधे रस पानी।। ८।। सप्त सुरों का एके द्वारा। ता घाटी से बंधे पारा।। ६।। ता घाटी पर बंध लगावै। सो तो कामधेनु दुहि ल्यावै।। १०।। सहंसमुखी सत न्हावै गंगा। मेटै मन की लहरि तरंगा।। ११।। चंचल को कोई निश्चल जीते। पलक एक चारों जुग बीते।। १२।। या घट में अनहद आनन्दां बिचरे जब लग सूरज

सेवन लहरी।। ३०।। संख कला सरवर सैंलाना। जा मध्य हंसा करो पियाना।। ३१।। अधर धार पर खेल हमारा। निर्गुण झड़ सुंन मण्डल धारा।। ३२।। मक्रतार से मारग झीना। कोई पौंहचेंगे साधू प्रवीना।। ३३।। कायर गिरें परें भौ मांहीं। सावंत सुभट सूर ठहरांहीं।। ३४।। निर्वासी निहकामी जांहीं। निहइच्छा निर्गन्ध समांहीं।। ३५।। शब्द महल में सिद्धि चौबीसा। हंस बिछोरें बिसवे

बीसा।। ३६।। एक सिद्धि सुरदेव मिलावै। एक सिद्धि मन विरति बतावै।। ३७।। एक सिद्धि है पौंन सरूपी। एक सिद्धि होवै अनरूपी।। ३८।। एक सिद्धि निस वासर जागै। एक सिद्धि सेवक होय आगै।। ३९।। एक सिद्धि सुरगापुर ध्यावै। एक सिद्धि जो सब घट छावै।। ४०।। एक सिद्धि सब सागर पीवै। एक सिद्धि जो बीह जुग जीवै।। ४१।। एक सिद्धि जो उड़े अकासा। एक सिद्धि परलोके बासा।। ४२।। एक सिद्धि कष्टी तन जारा। एक सिद्धि तन हंस नियारा।। ४३।। एक सिद्धि जल डूब न जाई। एक सिद्धि जल पैर न लाई।। ४४।। एक सिद्धि बहु चोले धारै। एक सिद्धि निहतत बिचारै।। ४५।। एक सिद्धि पांचों तत्व नीरं। एक सिद्धि जो बजर शरीरं।। ४६।। एक सिद्धि पीवै नहीं खांहीं। एक सिद्धि जो गुपत छिपाई।। ४७।। एक सिद्धि ब्रह्मण्ड चलावै। एक सिद्धि सब नाद मिलावै।। ४८।। येता खेल खिलारी खेले। सोहं हंसा प्रगट बेले।। ४९।। चौबीसां कूँ ना दिल चाहवै। सो हंसा शब्द अतीत कहावै।। ५०।। परासिद्धि पूरन पटरानी। सत्य लोक की कहूँ निशानी।। ५१।। सत्यलोक सुखसागर पाया। सतगुरु भेद कबीर लखाया।। ५२।। परमहंस पेखो प्रवाना। जन कहता दास गरीब दिवाना।। ५३।।

अथ आदि रमैंणी

आदि रमैंणी अदली सारा। जा दिन होते धूंधूंकारा।। १।। सत पुरुष कीन्हा प्रकाशा। होते तखत कबीर खवासा।। २।। मन मोहिनी सिरजी माया। सतगुरुष एक ख्याल बनाया।। ३।। धर्मराय सिरजे दरवानी। चौसठ जुग तप सेवा ठांनी।। ४।। पुरुष पृथिवी जा कूँ दीन्ही। राज करो देवा आधीनी।। ५।। ब्रह्मण्ड इक्कीस राज तुम्ह दीन्हा। मन की इच्छा सब जग लीन्हा।। ६।। माया मूल रूप एक छाजा। मोहि लीये जिनहूँ धर्मराजा।। ७।। धर्म का मन चंचल चित धार्‌या। मन माया का रूप विचारा।। ८।। चंचल चेरी चपल चिरागा। या के परसे सरबस जागा।। ९।। धर्मराय कीया मन का भागी। विषय वासना संग से जागी।। १०।। आदि पुरुष अदली

धार है हंसा। शब्द अतीत मिल कुल बंसा।। २६।। दास गरीब हिरंबर मेला। याह चाल चलै सतगुरु का चेला।। २७।।

अथ ब्रह्म रमैंणी

ऐसा ब्रह्म विचारो लोई। आदि अन्त मुक्ता पद सोई।। १।। आत्म जीव सकल एक जाती। ऊँच नीच कुछ भिन्न न भांती।। २।। पांच तत्व घट नाद जहूरा। जामें बाजे गैबी तूरा।। ३।। अष्ट कँवल दल कुदली काया। जामें हंसा खेलन आया।। ४।। मूल कँवल कसि बंध लगावो। उलटी पवन गगन कूं ध्यावो।। ५।। नाभि कँवल कूं निश दिन फेरो। हिरदे जाप अजपा हेरो।। ६।। हिरदे कँवल जुहारा हेतं। सोहल कला चंद्रमा सेतं।। ७।। कंठ कँवल कुंभी रस प्याला। शब्द सुषमनी कूंची ताला।। ८।। परमहंस पेखो प्रवाना। खुल्ले कपाट धरो सुंन ध्याना।। ६।। इला पिंगुला सुषमन द्वारा। गगन मंडल में महल हमारा।। १०।। मेरु दण्ड मैदान खिलारी। जहां पौंहचे नहीं तपी ब्रह्मचारी।। ११।। सहंस कँवल दल फूले जोती। मानसरोवर मुक्ता मोती।। १२।। अक्षर धाम अगमापुर आगे। सतगुरु मिले तो हंसा जागे।। १३।। मक्रतार मारग मैदाना। कोई पौंहचे साधु संत सुजाना।। १४।। मानसरोवर झिलमिल धारा। हंसा केलि करें हुशियारा।। १५।। सुखसागर रतनागर पाया। हंसा जाय अरस मठ छाया।। १६।। सप्त अन्ड का भेद लखाऊँ। सुंन मण्डल सत्यलोक सिधाऊँ।। १७।। अलल पंख अनुरागी हेला। शब्द महल धुंन हंसा मेला।। १८।। अलंकार अग है अनरागी। जहां गवन करें हंसा बड़भागी।। १६।। ऐसा शब्द समुंद्र दरिया। हीरे मानिक सूभर भरिया।। २०।। अरध उरध बैजार सराफं। जा मध्य हंसा अजपा जापं।। २१।। सुंन दरीबे ज्वाहर खाना। लाल अमोली अजब दुकाना।। २२।। जहां गुरुमुख साधू सौदे जावैं। बौहरि न भवसागर में आवैं।। २३।। सहंस इकीसों छै सौ धागा। निश वासर हौंहि खण्ड बिहागा।। २४।। कौंन नाद में नलकी जोई। आगा पीछा मध्य न कोई।। २५।। मन का कौन ठौर है बासा। जाका भेद सुनाऊँ दासा।। २६।। बिन पर पंखी करै पियाना। सुंन मण्डल सत्यलोक निधाना।। २७।। जा सायर से अक्षर पाटा। बौहर्यों फेर न पाया घाटा।। २८।। इच्छा रूपी खेलन आया। ताते सुखसागर नहीं पाया।। २६।। सुरति निरति दो मालिनि मिहरी। सेज सिंहासन सेवन लहरी।। ३०।। संख कला सरवर सैंलाना। जा मध्य हंसा करो पियाना।। ३१।। अधर धार पर खेल हमारा। निर्गुण झड़ सुंन मण्डल धारा।। ३२।। मक्रतार से मारग झीना। कोई पौंहचेंगे साधू प्रवीना।। ३३।। कायर गिरें परें भौ मांहीं। सावंत सुभट सूर ठहरांहीं।। ३४।। निर्वासी निहकामी जांहीं। निहइच्छा निर्गन्ध समांहीं।। ३५।। शब्द महल में सिद्धि चौबीसा। हंस बिछोरें बिसवे

लिये। जैसे सांप के मुंह में और पूंछ में प्रहार होता है वैसे ही [illegible] है जिससे [illegible] में एक बात प्रसिद्ध है। जिज्ञासु शिष्य गुरु से [illegible] योगी उसका पान नहीं करने दिया करे।"

[illegible] में शक्तिचालिनी प्रक्रिया का [illegible] विरोध करते तथा [illegible] के लिए [illegible] विधि है। [illegible] का [illegible] कर देती है [illegible] है।

शक्ति-चालिनी-मुद्रा

वसिष्ठ योग में शक्तिचालिनी मुद्रा

" मूलाधार से लेकर दोनों [illegible] से [illegible] करके अन्दर [illegible] के साथ मिला दें। [illegible] कि [illegible] वायु सुषुम्ना के अन्दर प्रवेश करती थी, उसी लिए शक्तिचालिनी मुद्रा [illegible] मुद्रा का [illegible] करे। मुद्रा को [illegible] किया करें इस क्रिया से प्राण[1] का प्रवेश सुषुम्ना में होने लगता है और कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है।"

शिव संहिता में शक्तिचालिनी मुद्रा

" मूलाधार स्थान में सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति को [illegible] वायु पर [illegible] कुण्डली [illegible] की [illegible]-

---

१- वसिष्ठ योग ३ पृ० १२०

[illegible] कर जाती। इस शक्तिचालिनीमुद्रा को जो प्रतिदिन करता है[1] उसकी आयु की वृद्धि होती है तथा उसके रोगों का इस मुद्रा से नाश होता है।"

गोरक्ष पद्धति में शक्ति चालिनी मुद्रा

"साधक [illegible] के [illegible] की [illegible] पर [illegible] को [illegible] से [illegible] ([illegible]) को [illegible] कर कुण्डली को [illegible] पूर्ण [illegible] होने पर मृत्यु का भय नहीं है। [illegible][2] [illegible] शक्ति [illegible] करे तो कुण्डलिनी सुषुम्ना में प्रवेश करने लगती है।"

उसकी खोज करनी चाहिए । दूध को बिना मथे जिस तरह घी नही मिला करता, उसी तरह योग-साधना में ही सारवस्तु है, योगानुभव से ही परमात्म साक्षात्कार होता है ।

मन मैं रहिणां भेद न कहिणां, बोलिबा अंमृत बांणी ।
आगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पांणी ।। 63 ।।

सच्चे योगी साधक को मन में ही स्थिर रहना चाहिए और अपनी साधना की बात किसी से प्रकाशित नही करनी चाहिए । सबसे मधुर वचन बोलना चाहिए, इस अमृतवाणी से किसी के मन में क्षोभ नही होता है और साधना बिना किसी विघ्न के सफलता की दिशा में बढ़ती रहती है । यदि सांसारिक अथवा लोक-व्यवहार में हमारे ऊपर कोई अज्ञानवश आलोचना करे, कड़ी बात कहे तो हमें सदा शान्त रहना चाहिए, हमारा विरोध करने वाला स्वतः शान्त हो जाता है । योग-मार्ग का रहस्य है, कोई आग बने, तो हम पानी बन जॉय, मन में उद्वेग आने ही न दें ।

उनमनि रहिबा भेद न कहिबा, पीयबा नीझर पांणी ।
लंका छाड़ि पलंका जाइबा, तब गुरमुष लेबा बांणी ।। 64 ।।

योगी को उन्मनावस्था में रहना चाहिए, सदा सहस्रार में स्थित चन्द्रामृत का पान करना चाहिए, उसे जगत् के प्रपंचों से ऊपर उठ जाना चाहिए और अपनी आत्ममुखी अन्तरंग साधना का रहस्य किसी भी व्यक्ति से नही कहना चाहिए । जो प्रपंची और सांसारिक माया-मोह में ग्रस्त होता है, वह योग-साधना का स्वारस्य नही समझ सकता है । गुरू के वचन में पूर्ण श्रद्धा रखकर योगी को जगत् के माया-मोह का बन्धन तोड़ देना चाहिये और इससे परे अमायिक, आध्यात्मिक विचार का गुरू की कृपा से परिशीलन करना चाहिए । ऐसा योगी ही सद्गुरूनिष्ठ होता है ।

नग्री सोभंत बहु जल मूल बिरषा, सभा सोभंत पंडिता पुरषा ।
राजा सोभंत दल प्रवांणी, यूं सिधा सोभंत सुधि-बुधिकी बांणी ।। 65 ।।

नगर की शोभा उसमें स्थित अनेक उद्यानों और तड़ागों से बढ़ती है, इसी तरह सभा की शोभा विद्वानों से सार्थक होती है, राजा तभी शक्तिमान् कहा जाता है, उसे जब अपनी सेना का विश्वास प्राप्त रहता है अन्यथा वह नाममात्र का राजा होता है और निर्बल तथा शक्तिहीन समझा जाता है । ठीक इसी तरह योगसिद्ध पुरूषों की शोभा आध्यात्मिक सत्ता की परिचायिका निर्मल शुद्ध बुद्धियुक्त विवेकमयी वाणी है, जिसके श्रवणमात्र से इस बात का परिज्ञान हो जाता है कि यह सिद्ध पुरूष की अनुभूति की ही प्रकाशिका है।

बिरला जांणंति भेदांनेभेद बिरला जांणंति दोइ पष छेद ।
बिरला जांणंति अकथ कहांणी,
बिरला जांणंति सुधि बुधि की बांणी ।। 66 ।।

कमी के अर्थात् किसी जन्म के आराध्य देव होगें। सभी संस्कारों के समाप्त होने के बाद ही आत्माराम का तथा परमात्मा का साक्षात्कार होगा।

यह कुण्डलिनी-जागरण की साधना दो या तीन माह ब्रह्मचर्य (वीर्य) सुरक्षित रहने के बाद प्रारम्भ करने पर तीव्र गति से आगे बढ़ने का सुअवसर मिलता है। एक माह से कम सुरक्षित रहने पर यह जागरण नहीं प्रारम्भ करना चाहिए, क्योंकि प्रकाश में तेजी नहीं आएगी तथा शरीर मे कम्पन नहीं मालूम होगा और उसमें जो लाभ लिखा है, उस पर अविश्वास उत्पन्न होगा; इसलिए इसके अनुकूल तैयारी के बाद ही प्रारम्भ करना चाहिए। जिस साधक के पास सतोगुण का संस्कार अधिक होता है, उसके लिए एक माह के ब्रह्म चर्यपालन से भी काम हो सकता है—इसकी जाँच पांच मिनट के अन्दर साधक को कर लेनी चाहिए। अगर बदन में कम्पन—अधिक हो तो समझना चाहिये कि—कुण्डलिनी के खजाने में प्रकाश पुंज अधिक मात्रा में है। अगर कम्पन में कमी हो तो समझें कि खजाने में मात्रा कम है। "इस साधना को प्रारम्भ करने के पहले तीन आवश्यक सामग्रियों में कम-से-कम दो अवश्य पूरी रहने पर ही पूर्ण सफलता मिलेगी। पहला—तीन माह ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य (तन्दुरुस्ती) साधारणतः कुछ अच्छी या खूब अच्छी तथा तीसरा—सतोगुण की अधिकता।" हर तरह से ठीक (योग्य) रहने के बाद भी अगर कुण्डलिनी के जागरण में कठिनाई महसूस हो या विलम्ब हो या नहीं जागृत हो, तो—एक या दो समय हल्का दूध तथा थोड़ा फल खाकर उपवास कर इसे प्रारम्भ करें, शीघ्र जागृत हो जाएगी। हजारों में किसी एक को विलम्ब होता है। पेट में मल भी अधिक इकठ्ठा रहने पर कुछ विलम्ब होता है। ऐसे व्यक्ति को—संख्य प्रक्षालन क्रिया के द्वारा पेट साफ करने के बाद या पंचसकार चूर्ण के द्वारा भी कुछ सफाई होती है; उसके बाद प्रारम्भ करें। यह कार्य सुबह खाली पेट में अति लाभप्रद है।

कुण्डलिनी का मुख नीचे होने के कारण पहले कम्पन पैर के तलवे में तथा हथेली में शुरू होता है और धीरे-धीरे ऊपर बढ़ता है। अन्त में गर्दन के पास तक कम्पन के आते ही आज्ञाचक्र में पूरा प्रकाश आ जाता है। जब तक कम्पन गर्दन तक नहीं पहुँचे तथा जब तक प्रकाश पूर्ण सफेद

ससा ता दिन का गया, सतगुर समझाया ॥१८८॥

शब्दार्थ—सूरा=शूरवीर। कनक=सोना, सासारिक आकर्षण। कामनी=स्त्री, सासारिक माया। फंदा=बंधन। निहचल=निश्चल।

कबीर मन को प्रबोध देते हुए कहते हैं हे मन ! तू इस ससार के माया-मोह मे मत पड़। इससे तो कोई शूरवीर ही मुक्त हो पाता है।

इस संसार मे दो ही बन्धन है। प्रथम धन, द्वितीय रूप-यौवन-सम्पन्न नारी। जो इन दोनो के बन्धन मे नही पड़ता है, मैं उसका दास हू। इस पच तत्वमय भौतिक शरीर के रहते हुए इनका वास कैसे छूट सकता है ? जो शिव के समान योगी और साधक हो जाय तब तो इस माया-जाल से मुक्त हो सकता है। जो उस एक पूर्ण ब्रह्म से मिल गया, शान्ति का लाभ तो उसने ही किया है। जिसका मन प्रभु-भक्ति मे तल्लीन हो गया वह मुक्त हो जाता है और पुन. इस ससार बन्धन मे नही फसता। कबीर कहते है कि इस प्रकार ही निश्चल हो निर्भय पद की प्राप्ति सम्भव है। ससार-सशय तो उसी दिन समाप्त हो गया, जब सद्गुरु ने ज्ञानोपदेश दे प्रभु-भक्ति मार्ग मे प्रवृत्त किया।

रांम मोहि सतगुर मिलै अनेक कलानिधि, परम तत सुखदाई।
काम अगनि तन जरत रही है, हरि रसि छिरकि बुझाई ॥टेक॥
दरस परस तै दुरमति नासी, दीन रटनि ल्यौ आई।
पाषंड भरंम कपाट खोलि कै, अनंभै कथा सुनाई॥
यहु संसार गंभीर अधिक जल, को गहि लावै तीरा।
नाव जिहाज खेवइया साधू, उतरे दास कबीरा ॥१८९॥

शब्दार्थ—कलानिधि=कलाओ मे पारगत। काम=काम-वासना।

कबीर कहते है कि हे प्रभु ! मुझे अनेक कलाओ मे पारगत, अमित संतोष देने वाले अनेक गुरु मिले किन्तु फिर भी मेरा शरीर कामाग्नि से दग्ध होता रहा।

उसकी शान्ति तो प्रभु-भक्ति का रस छिड़क कर ही हो सकी। प्रभु के दर्शन एवं स्पर्श से कुबुद्धि का नाश हो गया और मन प्रभु-भक्ति मे लवलीन रहा। जिससे पाखड और भ्रम के कपाट खुलकर प्रभु की रहस्यपूर्ण कथा ज्ञात हुई। यह जगत् गहरे जल से परिपूर्ण है, इसमे जीवात्मा को पकड़ कर कौन पार लगा सकता है ? इस शरीर रूपी नौका के केवट तो साधुजन है जिससे कबीर पार निकल सकता है।

विशेष—रूपक, छेकानुप्रास अलकार।

तिन यहूं बहू कै कारणै जैसैं सैवल फूले।
झूठी सूं प्रीति लगाइ करि, साचे सूं भूले ॥टेक॥
जो रस ना सो परहर्‌या, बिड़राता प्यारे।
आसति कहूं न देखिहूं, बिन नांव तुम्हारे॥
साची सगाई रांम की, सुनि आतम मेरे।
नरकि पड़ें नर बापुड़े, गाहक जम तेरे॥
हंस उड़्या चित चालिया, सगपन कछू नांहीं।
माटी सूं माटी मेलि करि, पीछैं अनखांहीं॥
कहै कबीर जग अंधला, कोई जग सारा।
जिनि हरि मरम न जांणियां, तिनि किया पसारा ॥१९०॥

शब्दार्थ—बिड़राता=नाश का कारण होना। आसति=आश्रय, रक्षा। बापुड़े=बेचारे। पसारा=ससार के आकर्षण के जल मे फँसना।

इस तृष्णा के कारण मैं सैवल-फूल के समान ऊपर से प्रसन्न रहता हुआ भी भीतर ही भीतर दग्ध होता रहता हू। इन मिथ्या सासारिक आकर्षणो से प्रेम कर उस सच्चे प्रभु को मैं विस्मृत कर बैठा हू। हे प्रभु ! जिस रस को स्वाद मे मैं अच्छा समझ बैठा हूं वही नाश का कारण सिद्ध होता है। प्रभु ! आपके नाम के बिना कही

शब्दार्थ—करणी=कार्य । निराल=निराला, सत्य ।

कबीर कहते है कि व्यर्थ का धार्मिक उपदेश, मिथ्याचरण, यह सब वृथा है, केवल प्रभु की भावपूर्ण भक्ति ही सत्य है । साधना का कथन, टीका-टिप्पणी और श्रवण तो सब करते ही है, किन्तु प्रयोजन-सिद्धि मौखिक लेन-देन से नही अपितु कर्म से होती है । बुरे आचरण से प्रभु-प्राप्ति सम्भव नही, केवल सत्याश्रित होने पर ही वह प्रभु अपना रूप दिखाते हैं । इस मन मे विषयाग्नि और मायाजल भरा है । कबीर कहते है कि सावधान होकर इसे समाप्त कर दे ।

राग आसावरी

ऐसी रे अवधू की वांणीं, ऊपरि कूवटा तलि भरि पांणी ॥टेक॥
जब लग गगन जोति नही पलटै, अविनासी सूं चित नहीं चिहुटै ।
जब लग भवर गुफा नहीं जानें, तौ मेरा मन कैसें मानें ॥
जब लग त्रिकुटी संधि न जानें, ससिहर दी घरि सूर न आनें ।
जब लग नाभि कवल नही सोधै, तौ हीरैं हीरा कैसे बेधैं ॥
सोलह कला संपूरण छाजा, अनहद कै घरि बाजें बाजा ।
सुषमन कै घरि भया अनदा, उलटि कवल भेटे गोब्यंदा ॥
मन पवन जब परचा भया, ज्यूं नाले रांपी रस मइया ।
कहै कबीर घटि लेहु विचारी, औघट घाट सींचि ले क्यारी ॥२०२॥

शब्दार्थ—गगन=शून्य । जोति=ज्योतिस्वरूप ब्रह्म । भवर गुफा=ब्रह्मरन्ध्र । त्रिकुटि=आँख नाक मस्तिष्क का सन्धि स्थल, भौहो के बीच का स्थान । नाभि कवल=नाभि पर स्थित मणिपूरक चक्र—"इसमे दस-दल होते है । यह नील वर्ण का होता है, इसका लोक स्वः है । इसका ध्यान करने से क्रमशः डँ, टँ,णँ, तँ,

थँ, दँ धँ, नँ, पँ, फँ की ध्वनि झंकृत होती है । इसके सिद्धि लाभ से मनुष्य ससार पालन मे समर्थ तथा वचन रचना में चतुर हो जाता है और उसकी जिह्वा पर सरस्वती निवास करती है ।

कबीर कहते है कि योगी का उपदेश इस भाँति है—ऊपर शून्य लोक मे कुँआ है, किन्तु उससे पानी प्राप्त करने का साधन कुण्डलिनी (जल) नीचे है, मूलाधार चक्र मे स्थित है । जबतक शून्य मे ज्योतिस्वरूप परमात्मा का दर्शन नही होता, तब तक उस अलख निरञ्जन से मन कैसे लगे ? जब तक मन को शून्यदल, ब्रह्मरन्ध्र, का भी ज्ञान नही फिर उसे कैसे परितोष प्राप्त हो । जब तक साधक को त्रिकुटी का ज्ञान नही है तब तक चन्द्र, सूर्य, इडा, पिंगला कैसे एकमेक हो । जब तक नाभि मे स्थित मणिपूरक चक्र का भेदन साधक नही कर लेता, तब तक मणि रूप प्रभु को कैसे प्राप्त कर लेगा ? वह सोलह कलाओ से पूर्ण ब्रह्म वहीं बसा हुआ है जहा घण्टे की चोट पड़कर अनहद नाद का निरन्तर घोष हो रहा है । जब सुषुम्णा के द्वारा शून्यकमल भेदन हो अमृत स्रवित होने लगता है तो अपरिमित आनन्द का सृजन होता है । जब मन और परमात्मा का सक्षात्कार हुआ तो दोनो उसी प्रकार एकमेक हो गये जिस भाति नाले का जल (गंगा की) पवित्र धारा मे मिलकर एक हो जाता है । कबीर कहते हैं कि इस भाति तुम मन मे विचार कर उस अलख निरजन को प्राप्त कर लो ।

विशेष—अर्थान्तरन्यास अलंकार ।

मन का भ्रंम मन हीं थैं भागा, सहज रूप हरि खेलण लागा ॥टेक॥
मै त तै मै ए द्वै नांहीं, आपैं अकल सकल घट मांहीं ।
जब थैं इन मन उनमन जांनां, तब रूप न रेष तहां ले बांनां ॥
तन मन मन तन एक समांनां, इन अनभै मांहैं मन मांनां ।
आतमलीन अषंडित रांमां, कहै कबीर हरि मांहि समांनां ॥२०३॥

शब्दार्थ—मै=अपनापन । तै=परायापन=उनमन=उन्मनी अवस्था ।

जाती है।

एतच्च सर्वं गदितं मया हि यत् श्रुतं कृतं बोधमयं च नीयते।

यदा जनानां हितकाम्यया तदा शुद्धिस्तु तत्त्वस्य सुनिश्चता भवेत् ।।

यह सब जो कुछ मैंने कहा है, उसे सुन करके, तथा बोधमय करलो। जब मानवों के कल्याण की इच्छा हो तो इन उपायों से अवश्य ही तत्त्व शुद्धि हो जायेगी।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। तत्त्वशोध प्रकरण में जो मणिपूर का शोधन बताया जा रहा है, विभिन्न प्रकार से बताया जा रहा है। वह इसलिये बताया जा रहा है कि जो कुछ भी असुविधा अग्नितत्त्व के शोधन में होती है, वह सावधानी की वस्तु है। वह इतनी सावधानी की वस्तु है कि कोई समझ नहीं सकता। इसलिये उसे टेढ़ा भी कहा गया है, जटिल भी कहा गया है किन्तु महायोग के मार्ग में एक सीधी सी बात बताई जाती है। उसी के आधार पर समझ लेना चाहिये कि मणिपूर जैसे चक्र का शोधन भी चुटकी का खेल हो जाता है। मणिपूर जैसे चक्र के मार्ग पर चलना और उसका भेदन जैसे सरल हो गया था, क्या उसका शोधन सरल नहीं है ? होगा, होगा, किन्तु सावधानी से पैर रखने की आवश्यकता है। सीधा मार्ग जा रहा है। किन्तु मार्ग के दोनों ओर खाइयाँ हैं। चलो। सीधे। पैर रपट जायेगा तो इधर भी खाई उधर भी खाई। बचना कठिन हो जायेगा। इसलिये तुम्हारा पैर विचलित न हो, तुम्हें महाशक्ति आगे बढ़ाती चली जा रही है। सीधी बात, जब किसी बात से, किसी भी क्रिया से, किसी मुद्रा से ऐसा प्रतीत हो कि पाँच दिन के पश्चात् भी महाबल हो, उस वज्र को भी कुछ नहीं हो रहा हो, या विशेष प्रकार के साधन में शंका, कुप्रवृत्ति वाले व्यक्तियों को. ऐसा भी कर लूँ, वैसा भी कर लूँ, सब छोड़ के उस बखत एक ध्यानावस्थित होकर अपामार्ग के मूल को लाकर के उसको

घिस करके, पिष्टपेषण करके मृदु मक्खन जैसा बनालो। चिकना नवनीत के समान बना लो और उसके पश्चात् जब साधना समाप्त कर लो, रात्रि में जब शयन करने जाओ तो पांच दिन पर्यन्त पूर्ण रूप से नाभि भाग में लेप कर दो। यह अपामार्ग का मूल पिष्टपेषण विलेपन मणिपूर के प्रकोष्ठतत्त्व को शोध देगा औ उसका लक्षण इस प्रकार से होगा। जब अपामार्ग के मूल का विलेपन किया जायेगा तो पहिले दिन कुछ ज्ञात नहीं होगा। ऐसा भी मालूम पड़ेगा कि क्यों लगाया होगा। दूसरे ही दिन ज्ञात होगा। शक्ति में विशेष संचार करेगा। एक प्रकार की विशेष अनुभूति नाभि देश से हृदय देश तक होगी। इसमें प्रतीत होगा कि शक्ति आ रही है। इसके पश्चात् तीसरे और चौथे दिन, अथवा व्यवधान होने पर ग्यारहवें दिन तक इन दोनों में स्वल्प मल कृष्ण (काले) रूप में निकल जायगा। तो समझ लेना कि मणिपूर शुद्ध हो गया है। यदि ऐसे में भी व्यवधान हो जाय तो तीन दिन और लगा लो, तो फिर ग्यारहवें दिन कृष्ण मल बाहर निकल जायेगा और साधक को उसकी मलशुद्धि का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायेगा। इस प्रकार भी न कर सको तो एक दो बात और बतानी है। वह बताकर भी इस प्रकरण को थोड़ा मन्द कर दूँगा या बन्द कर दूँगा। ॐ ।।

सुषुम्णायां समाश्लिष्य दक्ष नासापुटे गता...
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २५

[2] पिंगला नाम या नाडी दक्ष मार्गे व्यवस्थिता
मध्य नाडीं समाश्लिष्य वाम नासापुटे गता...
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २६

[3] इडा पिंगलयोर्मध्ये सुषुम्णा या भवेत्खलु
षट स्थानेषु च षट-शक्तिं षटपद्मं योगिनो विदु:...
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २७

[4] दि मिस्टीरियस कुंडलिनी (रेले) पृष्ठ १६

निवास करती है।[1] जब कुंडलिनी प्राणायाम से जाग्रत हो जाती है। तो वह सुषुम्णा के सहारे आगे बढ़ती है। सुषुम्णा के भिन्न-भिन्न अंगों (चक्रों) से होती हुई और उनमें शक्ति डालती हुई वह कुंडलिनी ब्रह्म-रंध्र की ओर बढ़ती है। जैसे जैसे कुंडलिनी आगे बढ़ती है वैसे वैसे मन भी शक्तियाँ प्राप्त करता जाता है। अंत में जब यह कुंडलिनी सहस्र-दल कमल में पहुँचती है तो सारी यौगिक क्रियाएँ सिद्ध हो जाती हैं और योगी मन और शरीर से अलग हो जाता है। आत्मा पूर्ण स्वतंत्र हो जाती है।

सुषुम्णा की भिन्न भिन्न स्थितियाँ जिनमें से होकर कुंडलिनी आगे बढ़ती है, चक्रों के नाम से पुकारी जाती हैं सुषुम्णा में छः चक्र हैं।

सब से नीचे का चक्र बेसिक प्लेक्सस् (Basic Plexus) कहलाता है। यह मेरु-दंड के नीचे तथा गुह्य और लिंग के मध्य में रहता है।[2] इसमें चार दल होते हैं। इसका रंग पीला माना गया है और इसमें गणेश का रूप ही आराधना का साधन है। इसके चार दल अक्षरों के संयुक्त हैं—व श ष स। इस चक्र में एक त्रिकोण आकार है जिसमें कुंडलिनी, वेगस नर्व (Vagus Nerve) निवास करती है। उसका शरीर सर्प के समान साढ़े तीन बार झुका हुआ है और वह अपने मुख में अपनी पूँछ दबाए हुए है। वह सुषुम्णा नाड़ी के छिद्र के समीप स्थित है।[3]

---

[1] तत्र विद्युल्लताकारा कुंडली पर देवता
सार्द्ध त्रिकरा कुटिला सुषुम्णा मार्ग संस्थिता—
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २३

[2] गुदा द्व्यंगुलतश्चोर्ध्वं मेढ्रैकांगुलतस्त्वधः
एवंचास्ति समं कंदं समत्वाच्च चतुरंगुलम्—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ९

[3] मुखे निवेश्य सा पुच्छं सुषुम्णा विवरे स्थिता—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ५७

अवधू जागत नींद न कीजै।
काल न खाइ कलप नहीं ब्यापै, देही जुरा न छीजै ॥टेक॥
उलटी गंग समुद्रहि सोखै, ससिहर सूर गरासै।
नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल मैं ब्यंब प्रकासै॥
डाल गह्यां थैं मूल न सूझै, मूल गह्यां फल पाया।
बंबई उलटि सरप कौं लागी, धरणि महा रस खाया॥
बैठि गुफा मैं सब जग देख्या, बाहरि कछू न सूझै।
उलटै धनकि पारधी मार्‌यो, यहु अचिरज कोई बूझै॥
औंधा घड़ा न जल मैं डूबै, सूधा सूभर भरिया।
जाकौं यहु जग घिण करि चालै, ता प्रसादि निस्तरिया॥
अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जांणै सब कोई।
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई॥
गांवणहारा कदे न गावै, अणबोल्या नित गावै।
नटवर पेखि पेखनां पेखै, अनहद बेन बजावै॥
कहणीं रहणीं निज तत जांणै, यहु सब अकथ कहांणीं।
धरती उलटि अकासहि ग्रासै, यहु पुरिसां की बांणीं॥
बाझ पियालै अमृत सोख्या, नदी नीर भरि राख्या।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या॥१६२॥

शब्दार्थ—काल=मृत्यु। कलप=कल्प। जुरा=जरावस्था। छीजै=क्षीण होना। ससिहर=चन्द्रमा। गरासै=ग्रस लेता है। बंबई=बांबी, सांप का बिल।

कबीर कहते है कि हे अवधूत! ज्ञान प्राप्त कर पुन. अज्ञान-निद्रा मे मत पड़ो। जागृत रहने से मृत्यु बन्धन कभी नही बाँधता तथा शरीर जरावस्था द्वारा जीर्ण नही होता। सुषुम्ना मे इड़ा और पिंगला का समन्वय हो जाने पर कुण्डलिनी ऊर्ध्वगति से शून्य कमल मे पहुच वहाँ से स्रवित अमृत का पान करती है। नौ चक्रों का भेदन कर साधक उस अमृत मे ज्योतिस्वरूप अलख निरंजन ब्रह्म के दर्शन करता है। किन्तु यदि साधक कुण्डलिनी को मूलाधार से ऊपर न चढ़ावे तो उस महारस की प्राप्ति नही हो सकती अपितु मूलाधार चक्र से ही साधना प्रारम्भ करने से ही उसकी

प्राप्ति होगी। कुण्डलिनी वहाँ से उलटी होकर ऊर्ध्वगति से चल दी और उसने शून्य मे पहुँच महारस का पान किया। मन को अंतर्मुखी करने से ही ब्रह्म दर्शन होता है, इस दर्शन मे ससार का प्रत्येक रहस्य प्रकट हो जाता है, किन्तु यदि मन बाहय विषय-वासनाओं मे ही भटकता रहा तो फिर कुछ प्राप्त नही हो सकता। साधक ने इस प्रकार समाधिस्थ हो कुण्डलिनी की ऊर्ध्वगति से इस ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त किया। इस आश्चर्य को जानने वाले थोड़े ही है।

जिस भाँति उल्टा घट जल मे डूबता नहीं है और सीधा ऊपर तक भर कर डूब जाता है उसी भाँति जिन्होंने अपने आत्म-घट को संसार से उल्टा कर लिया है भवसागर मे डूब नही सकते किन्तु जो संसार की ओर ही इसका मुख किये रहेंगे वे निश्चय ही वहाँ डूब जायेंगे। जो इस संसार से घृणा करके चलता है अर्थात् इसके आकर्षणो में लिप्त नही होता वह मुक्त हो जाता है। आकाश से बादलों के बरसने को तो सब कोई ही जानता है। किन्तु औंधे कुएं—ब्रह्मरन्ध्र—से अमृत वर्षा के रहस्य से कोई-कोई ही परिचित होता है। जो प्रभु के गुणों का गान सर्वदा अपने मन मे करता रहता है वह कभी चिल्ला कर प्रार्थना नही करता, जो उसका नाम मन मे प्रतिपल नही लेता वही बाँग दे देकर प्रभु का नाम पुकारता है। यदि उस नटवर ब्रह्म को देखता है तो देखो, वह अनहद नाद की वेणु की स्वर लहरी छेड़ता है। साधक का कथन, वास और प्रत्येक कर्म कलाप इस लक्ष्य से ही सम्बन्धित होना चाहिए। यह महापुरुषो का कथन कि कुण्डलिनी उलट कर आकाश-शून्य मे जाकर अमृत का पान करती है। यह अमृत कुण्ड कभी सूख नही सकता, सरिता के रूप मे सर्वदा प्रवाहित रहता है। कबीर कहते है कि कोई विरला योगी ही इस महारस—ब्रह्मरन्ध्र से स्रावित अमृत का पान करता है।

विशेष—१. योगसाधना का उसके पारिभाषिक शब्दों एवं परिभाषानुसार वर्णन हुआ है।

२. अतिशयोक्ति, अनुप्रास, विरोधाभास, उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग है।

से तो बुद्धि वाली होगी है, यह तो उदरपूर्ति के ही साधनों में भटका हुआ है। ये घटवासी प्रभु को भी नही पहचानते, इसीलिये सृष्टि के कण कण मे व्याप्त प्रभु के दर्शन इन्हें नही हो सकते। जिस प्रकार तृषित को ही खोजने पर जल की प्राप्ति होती है, बिना खोज (साधन) के नही उसी भाँति जो प्रभु को साधन द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करते है उन्हें ही उसकी प्राप्ति होती है। कबीरदास कहते है कि यह साधना मार्ग इतना ही कठिन है जितना तलवार की धार पर गमन करना। जो अपनी कुण्डलिनी शक्ति को ऊर्ध्वगामी कर साधना द्वारा प्रभु को प्राप्त करता है, वह योगी हमारे लिए गुरुवत् पूज्य है।

विशेष—१ उपमा, विरोधाभास अलंकार।

१ तुलना कीजिए—

अति तीछण प्रेम को पथ महा, तलवार की धार पै धावनो है।

रे मन बैठि कितै जिनि जासी, हिरदै सरोवर है अविनासी ॥टेक॥
काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी।
काया मधे कवलापति, काया मधे बैकुंठवासी ॥
उलटि पवन षटचक्र निवासी, तीरथराज गंग तट वासी ॥
गगन मंडल रवि ससि दोइ तारा, उलटी कूंची लागि किवारा।
कहै कबीर भई उजियारा, पंच मारि एक रह्यो निनारा ॥१७१॥

शब्दार्थ—कवलापति=कमलापति, विष्णु। पंचमारि=पाँचो इन्द्रियों को मारकर, वश मे करके।

कबीर कहते है कि हे मन! तू व्यर्थ इधर-उधर क्यो भटक रहा है? वह अविनाशी प्रभु तो हृदय सरोवर मे ही विद्यमान है अन्यत्र जाकर तीर्थ-पूजा की क्या आवश्यकता है, इस शरीर मे ही करोडो काशी आदि तीर्थ हैं। इस शरीर में ही लक्ष्मी-पति वैकुण्ठवासी भगवान् विष्णु विद्यमान है। इसलिए तू प्राणायाम साधना से कुण्ड-लिनी को ऊर्ध्वगामी कर षट्चक्रो का भेदन करता हुआ तीर्थराज प्रयाग (त्रिकुटी) एवं गगा (ब्रह्मरन्ध्र) तट का वासी हो। उन शून्यमंडल मे सूर्य, चन्द्र तारे का प्रकाश —अनन्त ज्योतिस्वरूप परमात्मा—का वास है। उसके किवाड़ लगे हैं जिसे कुण्डलिनी को उल्टी कर खोलना है। कबीर कहते है कि पाँचो इन्द्रियो को वहीं केन्द्रस्थित कर देने से ज्ञान-स्वरूप परमात्मा का दर्शन प्राप्त होता है।

राम बिन जन्म मरन भयौ भारी।
साधिक सिध सूर अरु सुरपति, भ्रमत गये हारी ॥टेक॥
ब्रंब भाव त्रिग तत मंत्रक, सकल सुख सुखकारी।
श्रवत सुनि रवि ससि सिव सिध, पलक पुरिह पल नारी ॥
अंतर गगन होत अतर धुनि, बिन सासनि है सोई।
घोरत सबद समंगल सब घटि, ब्यंदत ब्यंदै कोई ॥
पांणीं पवन अवनि नभ पावक, तिहि संगि सदा बसेरा।
कहै कबीर मन मन करि बेध्या, बहुरि न कीया फेरा ॥१७२॥

शब्दार्थ—साधिक=साधक। सिध=सिद्धि। सुरपति=इन्द्र। बिनसासनि=बिना सासो के। घटि=हृदय मे।

साधक, सिद्ध, शूरवीर एव देवराज इन्द्र सब इस ससार मे भटक-भटक कर हार गये किन्तु बिना प्रभु के तो वे जन्म-मरण के बन्धन मे ही बधे रहते है। प्रभु प्रेम एक ऐसा मन्त्र है जो समस्त प्राणियो के लिये सुखदायी है। शिव, सूर्य, चन्द्र आदि सब जानते है कि यह प्रभु कभी पल मे स्त्री तो कभी पल में पुरुष रूप मे परिवर्तित हो जाता है। शून्य मण्डल मे उसके रहते हुए एक मगल ध्वनि होती है एवं वह प्रभु बिना साँस प्राण वायु के भी जीवित है। यह अनहद शब्द प्रत्येक हृदय में हो रहा है किन्तु विरले ही इसको सुनकर प्रभुवन्दना करते है। उस ईश्वर के सम्पर्क मे क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर-सब सर्वदा साथ रहते है कबीर कहते है कि

जिव अनंत संसार न चीन्हत पीव को ।
कितना कह समझाय चौरासि क जीव को ॥ २ ॥
आगे धाम अखंड सो पद निर्बान है ।
मुख नींद वहँ नाहिं निअच्छर नाम है ॥३॥
कहैं कबीर पुकारि सुनो मन भावना ।
हंसा चलु सतलोक बहुरि नहिं आवना ॥ ४ ॥

॥ शब्द २२ ॥

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है ॥ टेक ॥
काम क्रोध मद लोभ बिसारो, शील सँतोष छिमा सत धारो ।
मद्द मांस मिथ्या तजि डारो,
हो ज्ञान घोड़े असवार भरम से न्यारा है ॥१॥

---

* मालिक ।

धोती नेती बस्ती पाओ, आसन पदम जुगत से लाओ ।
कुम्भक कर रेचक करवाओ,
पहिले मूल सुधार कारज हो सारा है ॥ २ ॥
मूल कँवल दल चतुर बखानो, कलिंग जाप लाल रंग मानो ।
देव गनेस तहँ रोपा थानो,
ऋध सिध चँवर ढुलारा है ॥ ३ ॥
स्वाद चक्र षटदल बिस्तारो, ब्रह्म* सावित्री रूप निहारो ।
उलटि नागिनी का सिर मारो,
तहाँ शब्द ओंकारा है ॥ ४ ॥
नाभी अष्ट कंवल दल साजा, सेत सिंघासन बिस्नु बिराजा ।
हिरिंग जाप तासु मुख गाजा,
लछमी सिव आधारा है ॥ ५ ॥
द्वादस कँवल हृदय के माहीं, जंग गौर सिव ध्यान लगाई ।
सोहं शब्द तहाँ धुन छाई,
गन करैं जैजैकारा है ॥ ६ ॥
दो दल कँवल कंठ के माहीं, तेहि मध बसे अविद्या बाई ।
हरि हर ब्रह्मा चँवर ढुराई,
जहँ श्रृंग नाम उचारा है ॥ ७ ॥
ता पर कंज कँवल है भाई, लग भौंरा दुइ रूप लखाई ।
निज मन करत तहाँ ठकुराई,
सो नैनन पिछवारा है ॥ ८ ॥

अच्छर मूल सदा मुख भाखो, चित दे गहहु सुहाग हो ॥ ४ ॥
सेत तँबूल समरथ मुख छाजे, बैठे लोक मँझार हो ।
हंसन के सिर मटुक बिराजे, मानिक तिलक लिलार हो ॥ ५ ॥
कामिनि है उतरे भवसागर, जिन तारे कुल बंस हो ।
सतगुरु भाव कछनी तन कपरा, मिलि लेहु पुरुष कबीर हो ॥ ६ ॥

॥ शब्द ६ ॥

अवधू हंस देस है न्यारा ॥ टेक ॥
तीरथ व्रत औ जोग जाप तप, सुरति निरति से न्यारा ।
तीन लोक से बाहर डोले, करम भरम पचि हारा ॥ १ ॥
कोटि कोटि मुनि ब्रह्मा होइगे, कोई न पाये पारा ।
मंतर जाप उहाँ ना पहुँचै, सुरति करो दरबारा ॥ २ ॥
सुख सागर में बासा कीजे, मुक्ता करो अहारा ।
बंकनाल चढ़ि गरजन गरजे, सतगुरु अधर अधारा ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो हो अवधू, आप करो निरवारा ।
हंसा हमरे मिले हंसन में, पुनि न लखे भवजारा ॥ ४ ॥

---

१ गाय।

॥ शब्द ७ ॥

सतगुरु सब्द गहो मोरे हंसा, का जड़ जन्म गँवावसु हो ॥ टेक ॥
त्रिकुटी धार बहे इक संगम, बिना मेघ झरि लावसु हो ।
लौका लौके बिजुली तड़पे, अजब रूप दरसावसु हो ॥ १ ॥
करहु प्रीति अभि अंतर उर में, कथने सुर लै गावसु हो ।
गगन मँदिर में जोति बरतु है, तहाँ सुरत ठहरावसु हो ॥ २ ॥
इँगला पिंगला सुखमनि सोधो, गगन पार ठहरावसु हो ।
मकर तार के द्वारे निरखो, ऊपर गढ़ो उठावसु हो ॥ ३ ॥
बंकनाल पट खिरकि[1] उलटिगे, मूल चक्र पहिरावसु हो ।
द्वादस कोस बसे मोर साहिब, सूना सहर बसावसु हो ॥ ४ ॥
दूनों सरहद अनहद बाजे, आगे सोहँग दरसावसु हो ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अमर लोक पहुँचावसु हो ॥ ५ ॥

॥ शब्द ८ ॥

हंसा कोइ सतगुरु गम पावे ॥ टेक ॥
उजल बास निस बासर देखे, सीस पदम झलकावे ।
राव रंक सब सम करि जाने, प्रगट संत गुन गावे ॥ १ ॥
अति सुख सागर नर्क स्वर्ग नहिं, दुरमति दूर बहावे ।
जहँ देखूँ तहँ परसत चंदा, फनि मनि जोति बरावे ॥ २ ॥
रमै जगत में ज्यों जल पुरइनि, यहि बिधि लेप न लावे ।

॥ भेद बानी ॥

॥ शब्द १ ॥

पियत मरहमी यार, अमीरस बुंद झरै ॥ टेक ॥
बिन सागर के अमृत भरिया, बिना सीप के मोती ।
संत जवाहिर पारख कीन्हा, अग्र ले वस्तु धरी ॥ १ ॥
डोरी डगर गगर सिर ऊपर, गेडुर मढ़ु धरी ।
चेतन चले सुरति नहिं चूके, उलटा नीर चढ़ी ॥ २ ॥
टोह लिया सतसंग पाइ के, बिन गुरु कौन कही ।
सोना थीर कसौटी नाहीं, कैसे के समुझि परी ॥ ३ ॥
भेदी होय सो भरि भरि पीवै, अनभेदी भरम फिरी ।
कहै कबीर मिलैं जो सतगुरु, जीवन मुक्त करी ॥ ४ ॥

॥ शब्द २ ॥

जो कोइ निरगुन दरसन पावै ॥ टेक ॥
प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै ।
गगन गराजे दामिनि दमके, अनहद नाद बजावै ॥ १ ॥

---

१ महीन=बारीक अर्थात् हीन । २ कुम्हार । ३ बैठावे ।

बिन जिभ्या नामहिं को सुमिरै, अमि रस अजर चुवावै ।
अजपा लागि रहै सूरति पर, नैन न पलक डुलावै ॥२॥
गगन मँदिल में फूल फुलाना, उहाँ भँवर रस पावै ।
इँगला पिंगला सुखमनि सोधै, प्रेम जोति लौ लावै ॥३॥
सुन्न महल में पुरुष बिराजे, जहाँ अमर घर छावै ।
कहै कबीर सतगुरु बिन चीन्हे, कैसे वह घर पावै ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

पिया के खोजि करै सो पावै ॥ टेक ॥
ई करता बसिया घट भीतर, कहत न कछु बनि आवै ।
स्वाँसा सार सुरति में राखे, त्रिकुटी ध्यान लगावै ॥१॥
नाभि कमल अस्थान जीव का, स्वाँसा लगि लगि जावै ।
ठहरत नाहिं पलक निस बासर, हाय कवन बिधि आवै ॥२॥
बंक नाल होइ पवन चढ़ावै, गगन गुफा ठहरावै ।
अजपा जाप जपै बिनु रसना, काल निकट नहिं आवै ॥३॥
ऐसी रहनि रहै निस बासर, करम भरम बिसरावै ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, बहुरि न भव जल आवै ॥४॥

॥ शब्द ४ ॥

बिन गुरु ज्ञान नाम ना पैहो, मिरथा जनम गँवाई हो ॥टेक॥
जल भरि कुंभ धरे जल भीतर, बाहर भीतर पानी हो ।
उलटि कुंभ जल जलहि समैहै, तब का करिहौ ज्ञानी हो ॥१॥
बिन करताल पखावज बाजे, बिनु रसना गुन गाया हो ।

या जग गुप्त कछु कै राखो, जाने सोई जन जान।
जोगेश्वर आपे आप में मिले, तब छूटे पसार ॥१५॥

—स्वरूपप्रकाश, प० सं० ६१

बड़ा यत्न से पिया के पाई रे ।।टेक।।
प्रथमें मूल बन्ध के बान्हो अण्ड गुदा मध्य सिमटाई।
मेरुदंड सीधा कै राखो, नागिन जाइ जगाई रे ।।१।।
तब उड़ियान बन्ध को किन्हा, नाभि पीठस्त लगाई।
पश्चिम दिशा के खिड़की खुला, बंक नाल चढ़ि धाई रे ॥२॥
बन्ध जालन्धर कस के सान्धा, कंठ लिये सिमटाई ।
उलटी नयन लगे त्रिकुटी में, अगम ज्योति दर्शाई रे ।।३।।
महाखेचरी मुद्रा साधा, जिह्वातल सूत कटाई ।
खैंची श्वास उलटि जिह्वा को, ब्रह्मरन्ध्र समाई रे ।।४।।
थर-थर काँप कलेजा उठे, तब पीछे सुख पाई ।
अमृत लखी मुखमें मीठा, अनहद नाद सुनाई रे ।।५।।
सोहं सोहं अजपा जहँ उठे, अजब रूप दर्शाई ।
योगेश्वर जीव मिले अभिगत में, आपे आप हो जाई रे ॥६॥

—स्वरूपप्रकाश, प० ११२

काया पुर खेती फैलो, बोअलों कुसुमिया। हे ननदिया मेरो।
गगन में फुलवा फुलाय, हे ननदिया मेरो ।।१।।
दस पाँच सखिया मिलि, फुलवा लोढ़े चलली, हे ननदिया मेरो।
नैना चंगेलिया बनाये, हे ननदिया मेरो ।।२।।
रंगलो में पिया के पोशाक, हे ननदिया मेरो ।
योगेश्वर पिया पहिरी, सोअलो पलंगिया, हे ननदिया मेरो ।
देखि देखि नैना जुड़ाए, हे ननदिया मेरो ।।३।।

—स्वरूपप्रकाश, प० १३८

सिद्धासन साधि निरन्तर बैठि के, योग क्रिया कतु लहिं ठानैं।
योगेश्वर चित्तवृति के निरोध ते, तत्त्व विवेक लहैं पहचानैं ।।

—स्वरूपगीता, पद-सं० ४१

लघु तात सिद्धासन आसन को, ऐंड़ी निज अण्ड ते नीच जनावे।
दच्छिन ऐंड़ी को इन्द्री के मूल को दाबि मेद दंड सीधी बनावे।
दोठ इस्तन ते हैं अनेक क्रिया, दोउ नैनहिं नासिका अग्र लगावे।
सिद्धासन पै करि कर्म अनेक, योगेश्वर मुद्रहिं योग लगावे।

यद्यपि इसमें पवन एवं दृष्टि दोनों की पद्धतियाँ कुछ धुँधले रूप में ही लक्षित होती हैं।

यहाँ पर एक अन्य विज्ञप्ति का भी उद्धृत कर देना उपयोगी होगा जिसमें चक्रों एवं नाड़ियों का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में किया गया है। गुरुओं की यह विज्ञप्ति इस प्रकार है, "आपके संकेतानुसार मैंने सुरति को त्रिकुटी में लगा दिया जिससे चक्रों का भेदन करती हुई वह चन्द्र (ईड़ा) व सूर्य (पिंगला) को भी पार कर गई और सुषुम्ना तक पहुँच

---

* घट रामायण, पृ० ३१२।

× वही पृ० ३२२।

गई जहाँ जाकर उसने मानसरोवर (अमृत के कुंड) में स्नान किया। वहाँ पर उसे गङ्गा (ईड़ा) यमुना (पिङ्गला) एवं सरस्वती (सुषुम्ना) का रहस्य जान पड़ा। प्रयाग के समक्ष अथवा उस संगम स्थान से जहाँ पर ये तीनों नाड़ियाँ मिलती हैं, सुरति, अगम के प्रेमरस में मत्त होकर सत्त के निवास-स्थान की ओर बढ़ी जहाँ सतगुरु का निवास है और फिर जहाँ अगम पुरुष भी रहते हैं। अगम पुरुष के द्वार पर पहुँच कर सुरति रुक गई क्योंकि रस के द्वारा वह पूर्णतः सराबोर हो रही थी। वहाँ पर वह इस पर ऊपर चढ़ने व नीचे उतरने लगी जिस प्रकार मकड़ी अपने धागे पर किया करती है (यह दशा जो सद्यःप्राप्त आध्यात्मिक चेतना के अरना या स्थायित्व के प्रथम आया करती है) सुरति की यही दशा रात-दिन रहा करती है और प्रभु से मिलने की चेष्टा के अतिरिक्त, उसे अन्य कुछ भी पसंद नहीं। इस प्रकार सुरति ने नाम के लोक में उस चौथे पद पर जहाँ सतनाम का स्थान है, अपना निवास कर लिया है। वह अपने मूल में समा गई है। इस प्रकार मुझे आदि व अंत का भेद मिल गया है और मेरे जन्म व मरण के दुःख छूट गये हैं तथा कर्म के सभी बन्धन भी छिन्न-भिन्न हो गये हैं।*

इस बात का प्रमाण कि शिवदयाल ने अपनी बतलायी हुई साधना में पवन का उपयोग किया है, उनके ऐसे उद्गारों में मिल जाता है। "अरे पागल, अपने प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के पथ को नाम स्मरण में लगाओ× और फिर जो कोई भी शब्द के रस का पान, प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में, करता है वह उस महल तक पहुँच कर वहाँ निवास कर लेता

---

* वही पृ० ३७४।

× स्वांसों स्वास होश कर बौरे, पल पल नाम सुमिरना।

'सारवचन' पृ० २७१।

मिलने लगता है और परमात्मा के प्रकाश का दृष्टि-गोचर होना भी संभव बन जाता है। यह वही दशा है जिसे वेदान्ती तुरीयावस्था कहते हैं और जो बहुधा दशवें द्वार का खुलना भी कहलाता है।

नीचे दिये गये प्रतिनिधि निर्गुण सन्त कवियों के उद्धरणों द्वारा इन योग संबंधी विश्वासों तथा अभ्यासों का स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

उलटि पवन कहँ राखिये कोई मरम बिचारे।
साँधे तीर पताल को फिर गगनहिं मारे ॥५४॥
क० ग्रं०, पृ० १३८।

अर्थात् लौटने पर प्राणवायु को कहाँ पर संचित किया जाय इसके रहस्य पर कुछ ही लोगों ने विचार किया होगा। तीर को, सर्वप्रथम पाताल की ओर लक्ष करो और तब उसे आकाश की ओर छोड़ो। तीर यहाँ प्रसंगानुसार प्राणवायु ही हो सकता है इसमें संदेह नहीं।

प्रकट प्रकास ग्यान गुर गमि थैं ब्रह्म अगिनि परजारी।
ससिहर सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी॥
उलटि पवन चक्र षटबेधा, मेर डंड रस पूरा।
गगन गरजि मन सुंनि समाना, बाजी अनहद तूरा॥ ६॥
क० ग्रं०: पृ० ६०।

अर्थात् गुरु के संकेतों का अनुसरण करने पर मुझे प्रकाश के दर्शन हुए और उसने ब्रह्माग्नि प्रज्वलित कर दी। चन्द्र व सूर्य आपस में दूर रहते हुए भी योग में मिल गये। श्वास के उलटने से षटचक्र का भेदन हो गया और मेरुदंड व सुषुम्ना अमृत रस से भर गई। मन समाधि में लीन हो गया, गगन गर्ज रहा है और अनाहत भी बज रहा है।

अवधू गगन मँडल घर कीजे।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंकनालि रस पीजे॥

318/524

मूल बाँधि सर गगन समाना, सुखमन पोतन लागी।
काम क्रोध भया पलीता, तहँ जोगण जागी॥
क० ग्रं० पृ० ११०।

अर्थात् अवधूत पुरुषो, अपना निवास गगन में कीजिये। अमृतरस चू रहा है और शाश्वत आनन्द उत्पन्न कर रहा है, बंकनाल या सुषुम्ना उस अमृतरस से भरी जा रही है। मूल (मूलाधार) के केन्द्र को संकुचित करके तीर सुषुम्ना से होकर गगन अथवा त्रिकुटी तक पहुँच गया। काम एवं क्रोध का प्रभाव जाता रहा जब योगिनी (कुंडलिनी) जागृत हो गई।

मनवा जाय दरीबे बैठा, मगन भया रसि लागा।
कहै कबीर जिय संसा नाहीं, सबद अनाहद बागा॥

11:29

वाणी में स्थानों की व्याख्या

इस रचना में जो स्थान पैदा हुये उनका वर्णन सार वचन राधास्वामी छन्द बन्द में इस प्रकार आया है :-

प्रथमे कंवल गनेश विलासा। कँवल दूसरे ब्रह्मा बासा॥
कँवल तीसरे विष्णु प्रकाशा। चतुर्थ कँवल शिव शक्ति निवासा॥
आतम कँवल पाँचवाँ होई। छटा कँवल परमातम सोई॥
कँवल सातवें काल बसेरा। जोत निरंजन का वहाँ डेरा॥
कँवल आठवाँ त्रिकुटी माँही। सूरज ब्रह्म बसे तेहि ठाहीं॥
नवाँ कँवल है दस द्वारे। पारब्रह्म जहँ बसे निरारे॥
महा सुन्न में कँवल अचिन्ता। कँवल दसम का वहाँ बरतंता॥
कँवल इकादश भँवर गुफा पर। द्वादश कँवल सत्त पद अंतर॥
षट चक्कर यह पिंड संवारा। तीन चक्र ब्रह्माण्ड अधारा॥
तीन कँवल जो ऊपर रहे। संत बिना कोई बरन न कहे॥
षष्ट कँवल तक जोगी आसन। नवें कँवल जोगेश्वर बासन॥
पिंड ब्रह्मांड का इतना लेखा। योगी ज्ञानी यहाँ तक देखा॥
आगे का कोई भेद न जाने। तीन कँवल सो संत बखाने॥
कोई छः तक कोई नौ तक भाखे। सर्व मते इन भीतर था के॥
बड़ा संत मत सब से आगे। संत कृपा से कोई कोई जागे॥
जो पहुँचे द्वादश अस्थाना। सोई कहये संत सुजाना॥

ये सब स्थान विभिन्न सम्प्रदायों के प्रारम्भ का पता देते हैं। गणेश
के ... चक्र है, जो पृथ्वी तत्व का स्थान और रचना

[illegible] जाने सोई जन जान ।
जोगेश्वर आपे आप में मिल, [illegible] पसार ॥१५॥

—[illegible]रूपप्रकाश, प० सं० ६१

बड़ा यत्न से पिया के पाई रे ॥टेक॥
प्रथमें मूल बन्ध के बान्हो अण्ड गुदा मध्य सिमटाई ।
मेरुदंड सीधा कै राखो, नागिन जाइ जगाई रे ॥१॥
तब उड़ियान बन्ध को किन्हा, नाभि पीठस्त लगाई ।
पश्चिम दिशा के खिड़की खुला, बंक नाल चढ़ि धाई रे ॥२॥
बन्ध जालन्धर कस के सान्धा, कंठ लिये सिमटाई ।
उलटी नयन लगे त्रिकुटी में, अगम ज्योति दर्शाई रे ॥३॥
महाखेचरी मुद्रा साधा, जिह्वातल सूत कटाई ।
खैंची श्वास उलटि जिह्वा को, ब्रह्मरन्ध्र समाई रे ॥४॥
थर-थर काँप कलेजा उठे, तब पीछे सुख पाई ।
अमृत लवी मुखमें मीठा, अनहद नाद सुनाई रे ॥५॥
सोहं सोहं अजपा जहँ उठे, अजब रूप दर्शाई ।
योगेश्वर जीव मिले अभिगत में, आपे आप हो जाई रे ॥६॥

—स्वरूपप्रकाश, प० ११२

का[illegible] खेती फैलो, सोअलो कुसुमिया । हे ननदिया मेरो ।
गगन [illegible] फुलाय, हे ननदिया मेरो ॥१॥
दस पाँच सखिया [illegible] फलवा लोढ़े चलली, हे ननदिया मेरो ।
नैना चंगेलिया [illegible] ननदिया मेरो ॥२॥
रंगलो में पिया के पोशाक, [illegible]
योगेश्वर पिया पहिरी, सोअलो पलंगिया, हे ननदिया मेरो ।
देखि देखि नैना जुड़ाए, हे ननदिया मेरो ॥३॥

—स्वरूपप्रकाश, प० १३८

सिद्धासन साधि निरन्तर बैठि के, योग क्रिया कछु त्यहिं ठानैं ।
योगेश्वर चित्तवृति के निरोध ते, तत्त्व विवेक लहैं पहचानैं ॥

—स्वरूपगीता, पद-सं० ४१

लघु तात सिद्धासन आसन को, ऐंड़ी निज अण्ड ते नीच जनावे ।
दच्छिन ऐंड़ी को इन्द्री के मूल को दाबि मेद दंड सीधी बनावे ।
दोउ हस्तन ते है अनेक क्रिया, दोउ नैनहिं नासिका अग्र लगावे ।
सिद्धासन दे करि कर्म अनेक, योगेश्वर मुद्रहिं योग लगावे ।

वह फिर से जी उठता है और समाधि पर रखे हुए पात्र उठकर स्वयं दीक्षार्थी शिष्यों के ओठों तक पहुँच जाते हैं। अन्तिम विधि यह होती है कि शिष्य के बाल जो पहले से ही मूत्र में भिंगोये रहते हैं, मूड़े जाते हैं और तब उपस्थित साधकों और भक्तों को 'भण्डारा' दिया जाता है। कहा जाता है कि पूर्ण दीक्षा तभी सम्पन्न होती है जब शिष्य १२ वर्ष तक की परीक्षणात्मक अवधि सफलतापूर्वक व्यतीत कर लेता है।

(६) वस्त्र और वेश—अघोरी की मुख्य विशेषता यह है कि वह अपने शरीर पर चिता का भस्म रमाये रहता है। वह त्रिशूल की छाप धारण करता है, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव के एकत्व का प्रतीक है। वह रुद्राक्ष की, सर्प की हड्डियों की और जंगली सूअर के दाँतों की माला धारण करता है और हाथ में खोपड़ी लिये रहता है।

परिशिष्ट (ख)

(१) योगेश्वराचार्य—श्रीयोगेश्वराचार्य एक ऐसे प्रमुख सरभंग-संत थे, जिनकी चर्चा मुख्य ग्रंथ में केवल नाम मात्र की हुई है। मुख्य ग्रंथ के प्रणयन के समय योगेश्वराचार्य के केवल एक ग्रंथ का थोड़ा सा अंश सुलभ हो सका था; क्योंकि अबतक केवल वही अंश 'श्रीस्वरूपप्रकाश' (प्रथम विश्राम) के नाम से मुद्रित हुआ है। संग्रहकर्त्ता हैं श्रीयोगेश्वराचार्य के एक शिष्य श्रीबैजूदासदेव। प्रकाशक हैं श्रीराधाशरणप्रसाद श्रीवास्तव, स्वरूप-कार्यकारिणी समिति, ग्राम—बरजी, पो० महवल (मुजफ्फरपुर)। पीछे चलकर श्रीराजेन्द्रदेव के सौजन्य से न केवल 'स्वरूपप्रकाश' के शेष अंश की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई, अपितु 'स्वरूपगीता' की भी। स्वरूपगीता के प्रारंभ में बाबा बैजूदास देव ने जो परिचयात्मक पद दिये हैं, उनमें योगेश्वराचार्य की विद्वत्ता और साधना का गौरवपूर्ण उल्लेख है। उन्हें 'आजन्म ब्रह्मचारी विविध गुणनिधि-ज्ञानविज्ञानकारी' कहा गया है और श्रौत, स्मार्त तथा वेदोपनिषदों के ज्ञान से सम्पन्न बताया गया है। वे बड़े 'नेम आचार' से रहते थे' 'षट् मुद्रा' साधन करते थे। उन्हें अष्टांग योग तथा 'नेती', 'बस्ती', 'धौती', 'नेउली', 'त्राटक', 'गजकरनी' आदि सभी क्रियाओं का अभ्यास था। योगेश्वराचार्य ने अपना संक्षिप्त जीवनवृत्त श्रीबैजूदास को सुनाया। उसका सारांश यह है—चम्पारन (थाना ढाका, परगना मेहसी, डाकखाना पताही) बरीशिवा नामक गाँव है जहाँ उनके पिता श्रीनरकेश्वर पाण्डेय रहते थे। वे पाराशर गोत्र के ब्राह्मण थे। एक पुत्र के बाद और सन्तान न होने के कारण वे दुःखी रहते थे। इसी बीच श्रीभिनकराम परमहंस ने उन्हें दर्शन दिया और आशीर्वाद दिया कि उन्हें दो पुत्र होंगे। कालक्रम से सन् १२८८ फसली में, पहले जो पुत्र हुआ, उसका नाम 'साधु' पड़ा। इसके चार वर्ष बाद सन् १२९२ फसली (लगभग १८८६ ई०) में जिस पुत्र का जन्म हुआ, उसीका

नाम पीछे चलकर योगेश्वराचार्य हुआ। उनका विवाह बाल्यावस्था में ही हो गया था और तेरह वर्ष की उम्र से ही वे गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने लग गये थे। किन्तु पत्नी छह वर्ष के बाद ही गतायु हो गई। फिर दूसरा विवाह हुआ और गृहस्थ-जीवन भी चला। किन्तु 'उमगेउ हृदय विचार, वृथा जन्म हरिभजन बिनु'। बहुत दिनों तक सगुण और निर्गुण के बीच अनिश्चय की भावना रही; किन्तु अन्ततः निर्गुण-भावना की ही विजय हुई। एक दिन आधी रात को विरक्त होकर उन्होंने घर छोड़ने का निश्चय किया। इधर विरक्ति की प्रबल भावना, उधर परित्यक्त माता-पिता और पत्नी आदि के प्रति ममता।

भइ छुछुन्दर की दशा, उगिलत बने न खात।

येनेति ॥ येन योगिना शक्तिः कुण्डली संचालिता स योगी सिद्धीनामणिमादीनां भाजनं पात्रं भवति । अत्रास्मिन्नर्थे बहूक्तेन बहुप्रशंसनेन किं, न किमपीत्यर्थः । कालं मृत्युं लीलया क्रीडयानायासेनैव जयत्यभिभवतीत्यर्थः ॥ १२० ॥

भाषार्थ–जिसयोगीने शक्ति चलायमान करली है वह योगी अणिमा आदि सिद्धियोंका पात्र होजाताहै और इसमें अधिक कहनेसे क्या है कालकोभी लीलासे अर्थात् अनायाससे जीत लेताहै ॥ १२० ॥

ब्रह्मचर्यरतस्यैव नित्यं हितमिताशिनः ॥
मंडलाद्दृश्यते सिद्धिः कुंडल्यभ्यासयोगिनः ॥ १२१ ॥

ब्रह्मचर्येति ॥ ब्रह्मचर्यं श्रोत्रादिभिः सहोपस्थसंयमस्तस्मिन् रतस्य तत्परस्य नित्यं सर्वदा हितं पथ्यं मितं चतुर्थांशवर्जितमश्नातीति तस्य कुण्डल्यभ्यासः शक्तिचालनाभ्यासः स एव योगः सोऽस्यास्तीति स तथा तस्य मंडलाच्चत्वारिंशद्दिनात्मकादनंतरं सिद्धिः प्राणायामसिद्धिर्दृश्यते ॥ "नासादक्षिणमार्गवाहिपवनात्प्राणोऽतिदीर्घीकृतश्चंद्राभः परिपूरितामृततनुः प्राग्घंटिकायास्ततः । छित्वा कालविशालवह्निवशगं भ्रूरंध्रनाडीगतं तत्कायं कुरुते पुनर्नवतरं छिन्नं द्रुमं स्कंधवत् ॥" ॥ १२१ ॥

भाषार्थ–श्रोत्र आदि इंद्रियोंसहित लिंगके संयममें तत्पर जो योगी है और नित्य हितकारी प्रमित अर्थात् चतुर्थांशसे न्यून भोजन करताहै शक्तिचालनके अभ्यासी उस योगीको मंडल (४० दिन) के अनन्तर प्राणायामकी सिद्धिको देखतेहैं सोई कहा है कि, नासिकाके दक्षिणमार्गमें वहनेवाले पवनसे अत्यंत बढाया और घंटिका (कंठ) से पूर्व चंद्रमाके समान अमृत है शरीर जिसका ऐसा प्राण जिसके अनंतर विशाल काल और अग्नि ये वशमें हुई उसकुंडलीके अभ्यासशील योगीकी कायाको भ्रूकुटीके छिद्रमें वर्तमान नाडीमें पहुँचकर और कायाका छेदन करके इस प्रकार पुनः अत्यंत नवीन करताहै जैसे छेदन करनेसे वृक्षका स्कंध (डाला) नवीन होजाता है ॥ १२१॥

कुंडलीं चालयित्वा तु भस्त्रां कुर्याद्विशेषतः ॥
एवमभ्यसतो नित्यं यमिनो यमभीः कुतः ॥ १२२ ॥

कुंडलीमिति ॥ कुंडलीं चालयित्वा शक्तिचालनं कृत्वा । अथानंतरमेव भस्त्रां भस्त्राख्यं कुंभकं कुर्यात् । नित्यं प्रतिदिनम् । एवमुक्तप्रकारेणाभ्यसतो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यमिनो योगिनो यमभीर्यमाद्भयं कुतः । न कुतोऽपीत्यर्थः । योगिनो वेह

इस प्रकार साधक को चाहिए कि वह वज्रासन (सिद्धासन[1]) में बैठकर पन्द्रह दिनों तक निरन्तर अभ्यास करें, इस अवधि (पन्द्रह दिन) में शक्तिचालन का अभ्यास हो जाता है। इसके फलस्वरूप वायु (प्राण) के सम्पर्क से प्रदीप्त जठराग्नि कुण्डलिनी को निरन्तर तप्त करती रहती है।

Thus Sadhak should sit in Vajrasan (Siddhasan) posture and practise it continuously for fifteen days. During this period the process of saktichalan is practised as a resutl where of enflamed fire of stomach, on its contact with prana breaths, keeps the kundalini illumined continuously.

91. सप्तमासाग्निना जीवशक्तिस्त्रैलोक्यमोहिनी।
प्रविशेद् वज्रदण्डे तु सुषुम्ना वदनान्तरे।।[2]

इस पूर्वोक्त प्रकार से निरन्तर अभ्यास करने से सात मास पर्यन्त अग्नि से तपाये जाने पर त्रैलोक्य को मोहित करने वाली जीवशक्ति अर्थात् कुण्डलिनी जागृत हो जाती है। अर्थात् तप्त कुण्डलिनी के मुख में बन्द पड़ा हुआ सुषुम्ना मुख उससे बाहर आ जाता है, और इस स्थिति में कुण्डलिनी का मुख सिकुड़कर सुषुम्ना मुख में आ जाता है। क्योंकि सुषुम्ना नाड़ी का ही दूसरा नाम ब्रह्मनाड़ी भी है। अतः सुसुम्ना मुख के इस भेदन (खुलने) को ब्रह्मग्रन्थिभेदन कहते हैं, इसे ही कुण्डलिनी का जागरण भी कहते हैं।

By constant practice of this process and having remained illumined continuously for seven months, the kundalini which fascinates the three worlds, is awakened. The mouth of Sushumna, lying coiled in the mouth of kundalini becomes-squeezed and enters into the Sushuma. Another name of sushumna is Brahman nadi, So the piercing the mouth of sushumna is called piercing of Brahman Granthi. This is called awakening of kundalini.

92. वायुना वह्निना सार्धं ब्रह्मग्रन्थिं भिनत्ति सा।
विष्णुग्रन्थिं ततो भित्त्वा रुद्रग्रन्थौ च तिष्ठति।।[3]

---

1. वज्रासन की जानकारी के लिए राजयोग साधना और सिद्धान्त ग्रन्थ में आसन प्रकरण देखें
2. तुलनीय यो.शि. 1.85-86
3. तुलनीय वही, 1-86-87

12:58
Amrapur Vani Hindi

दास टेऊँ भी ले इकतारा, गावत धूम मचावे ।।७।।

।। राग जोग भजन ।। ६९ ।। ८९९ ।।

शिष्य गुरू का शब्द कमाओ, तुम अन्तर ध्यान लगाओ।। टेक।।
मूल कमल में थिर कर आसन, मन को नाहिं डुलाओ।
अपजा जाप जपे निशवासर, बिन जिह्वा गुण गाओ ।।१।।
नाभि कमल से नाम चलाए, हृदय में ले आओ।
कण्ठ कमल में कर वीचारा, त्रिकुटी ज्योति जगाओ ।।२।।
इड़ा पिङ्गला से ले श्वासा, सुषुम्न में ठहराओ।
गगन मण्डल में अनहद सुनके, तन की सुधि बिसराओ ।।३।।
सुन्न सकड़ में लाय समाधी, दसमें दर्शन पाओ।
कहे टेऊँ यों सुमरण करके, सुख स्वरूप समाओ ।।४।।

।। राग जोग भजन ।। ७० ।। ९०० ।।

दीन दयालू भो भगवाना,बदला मुझसे नाहिं चुकाना ।। टेक।।
पतित पावन सद्बख्शन्दा, कहते तुझको वेद पुराना ।।१।।
केते पापी तुमने तारे, मैंने सुनिया अपने काना ।।२।।
कर्म धर्म को ना मैं कीया, राखो प्रभू अपना बाना ।।३।।
कहे टेऊँ हरि कृपा करके, दीजे मुझको निर्भय दाना ।।४।।

।। राग जोग भजन ।। ७१ ।। ९०१ ।।

यह घर तेरा प्रीतम नाहीं, भूल पड़ा तुम क्यों इस माहीं ।। टेक।।
इस घर से जाना ही होगा, भावें कितना रहना चाहीं ।।१।।
तेरा तो है घर अविनाशी, जन्म मरण का दूख न जाहीं ।।२।।
निज घर चलने की कर तैयारी, भव में भटकत हो तुम काहीं।।३।।

ओम् पारब्रहमणे नमः

॥ राग गउड़ी गुवारेरी ॥ राम भजन सद सूख समाइ,राम भजन सभ अनुभउ पाइ ॥ राम भजन सफलै करम,राम भजन सिउं उबरै धरम ॥१॥ राम भजन सभ ही ते ऊचा ॥ सिला गीध तरुवर कपि भालुक,राज निसाद पाप गण मूचा ॥१॥ रहाउ ॥ राम भजन मन परम पुनीत,राम भजन परलोकी मीत ॥ राम भजन जमदूत बिदारे,राम भजन अपदा सभ टारे ॥२॥ राम भजन दुख ठौर सहाई,राम भजन सिर छत्र दुराई ॥ राम भजन सभ स्रुति सिधांत,राम भजन हिअ नासत भ्रांत ॥३॥ राम भजन सिउं लखत भविख्यै,राम भजन अंधकारहि दिखै ॥ राम भजन सबरी निस्तारी,श्रीचंद्र भजि राम मुरारी ॥४॥२२॥

ओम् पारब्रहमणे नमः

॥ राग गउड़ी गुवारेरी ॥ सुनहु नाद रुणझुण छणकार,गगन मंडल रस अम्रित धार ॥ सुंन मंडल की धुनि प्रगटाई,निरमल जोति निरंतर पाई ॥१॥ कलपन बिसरी लाइ समाधि ॥ अनुभउ रूप अगोचर प्रगटिओ,सहिज अनंदु पराज अगाधि ॥१॥ रहाउ ॥ भेदे चक्र खट सिध स्वास,छैहों कंज ऊधै

पीठ कबि बार होहिं,सिकता महि तेला ।। भेड़ पूँछ भादों नदी,को पार परैला ।।३।। बहुबिधि कहिओ पुकार के,समझहु उर भाई ।। श्रीचंद्र इक राम बिन,नहिं कोऊ सहाई ।।४।।४४।।

ओम् पारब्रहमणे नमः

।। राग बिलावल ।। गंगा उतरी गगन ते,विंग तिड़ंगी ।। मीन चलै ऊरध दिसा,सुर सिद्ध भिड़ंगी ।।१।। नेम आधार विचारा ।। सरपिणी कुंडल परिहरै,टपके अम्रितधारा ।।१।। रहाउ ।। खिड़की खोले परसीए,आलै वथु पाई ।। प्राण गुरू परकासिआ,गति अगम लखाई ।।२।। त्रिकुटी छूटै परसिऐ,निरमल उजिआरा ।। लख बिजलीआं चमकई,झिलमिली नजारा ।।३।। अनहद धुनि आनंद रस,मन मगन समाना ।। श्रीचंद्र गुरु किरपा ते,दर दसम खुलाना ।।४।।४५।।

ओम् पारब्रहमणे नमः

।। राग बिलावल ।। सुरसरी मेली क्रिसना,त्रै संगम ठहराया ।। मन मानस जब न्हाया,सरस्वती समाया ।।१।। मन पावन खोडस कहलाया ।। कबहुँ चढ़त उतरत कबी,खोड़े बिगसाया ।।१।। रहाउ ।। आइ सिधि सनमुख थिरी,चित्त हेत जनाया ।। पाद पाद घन नाद संख,घंटा खड़काया ।।२।। पुरुख

परवाह ।। पाणी पाथर परिहर सिमरित,हरि नामन गुण अगम अथाह ।।२।। जबि दैहैं तब खैहैं पीहैं,प्रभु दर थित भे धूणा डाह ।। तजि बैकुंठ तिआग खगपति हरि,श्रीचंद्र परसन चित चाह ।।३।।१२७।।

ओम् पारब्रहमणे नमः

।। **राग गूजरी** ।। जोग जुगति सत्गुरु सिखलाई ।। ऊरध पवन प्रगास भई है,सहिज समाधि अगाध लगाई ।।१।। रहाउ ।। असुर नदी का मूल बंधाना,भूचर ते खेचर बिगसाई ।। ओंकार धुनि अनहद बाणी,स्रवणन दुंदभि घोख समाई ।।१।। भेदत खट चक्रन की धरनी,अरविंदन ते गंधी आई ।। कुंडली छाट भुजंगमि ठाढी,मेरुदंड खिड़की खुलवाई ।।२।। जोती आले भीतरि चमकति,गंगा उतरि अकासहुँ धाई ।। तन मन सुधि बुधि गई हिरानी,श्रीचंद्र सुंन ताड़ी लाई ।।३।।१२८।।

ओम् पारब्रहमणे नमः

।। **राग गूजरी** ।। सहिज जोग सत्गुरु परगासा ।। नेति धोति तन मन सुध कीना,उलटा कमल खोल मुख खासा ।।१।। रहाउ ।। तीरथ अठसठ संगम बेणी,त्रिकुटी छूटी जोति विगासा ।। गंग अकासी

सन्त पलटू साहब की साधना पद्धति पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इन्होंने सर्वप्रथम हठयोग की साधना को अपनाया था। इस अवस्था इन्होंने कुण्डलिनी

उत्थापन, शिव तथा शक्ति का मेल प्राणायाम आदि का वर्णन किया है। उनके हठयोग में जटिलता नहीं बल्कि व्यवहारिकता है। उन्होंने इस योग का वर्णन अत्यन्त स्पष्ट शब्दों से किया है। उन्होंने एक बात को कई उदाहरणों से समझाकर सर्व साधारण के लिये ग्राह्य बना दिया है।[illegible]

जोग को पाई के, जुगति को ध्याई के। ज्ञान अरु ध्यान एक घाट करना।
अर्धी संगम बहै कड़क बिजुली छुटै। उसी के सीस पर सुरति धरना।।
सहस कोटि कँप है बीच में भानु है। सागिन पकरि के बोरि मरना।
सहस गुंजार में परम अली झाल है। झिलमिल उलटि के पवन भरना।।
साखिनी डाकिनी सोर सब करैगी। सोर सुनि वहाँ से नाहि टरना।
बंक पहार में सांकरि गयल है। गली के खण्ड के बीच झरना।।
हद अनहद के बीच में जगना। सिंह को देखि के नाहि डरना।
कर्मनी नदी पर भर्मनी ताल है। ताल के बीच में रहत अरना।।
चौक से निकरी जाय बाहर हुआ। तत्व को पकर क्यों बैठ रहना।
सातवें महल पर तत्व का जाल है। तत्व के जाल में तपा फिरना।।
बालो महल का कहा दिवाल है। दीवाल को झाकि के कूदि परना।
दास पलटू कहै छोर मन कमनसी। पैठि दरियाव दीवार करना।। [illegible]

सन्त पलटू साहब ने अपनी बानियों में कुण्डलिनी उत्थापन के साथ–साथ उन्होंने खेचरी मुद्रा का भी वर्णन अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में किया है। आकाश मण्डल में स्थित महल के मध्य से अमृत का स्राव हो रहा है परन्तु उसे एक सर्पिणी पी रही है। योगी यदि इस अमृत को अपनी साधना के बल पर पी लेता है तो वह अमर हो जाता है।

गगन महल के बर्खी अमी झर लागिनी।
टोपन बूँद–बूँद पिवे एक साँपिनी।।
सापिनी डास मारि बूँद को पिया है।
अरे हाँ पलटू अमर लोक गये हंस जुगौ–जुगौ जिया है।। [illegible]

परन्तु यह साधना अत्यन्त कठिन है। इसलिए सन्त पलटू साहब ने

चली मैं खोज में पिय की। मिटी नहिं सोच यह जिय की।।

रहे नित पास ही मेरे। न पाऊँ यार को हेरे।।

विकल चहूँ ओर को धाऊँ। तबहुँ नहिं कंत को पाऊँ।।

धरों केहि भाँति सो धीरा। गयौ गिर हाथ से हीरा।।

कटी जब नैन की झाईं। लख्यौ तब गगन में साईं।।

कबीर शब्द कहि त्रासा। नयन में यार को बासा।।[१४]

मानव जीवन की आवागमन–मुक्ति के मार्ग को पाने की अभिलाषा कितनी कठिन है इसका स्पष्ट उल्लेख सन्त पलटू साहब के काव्य में मिलता है–

रन का चढ़ना सहज है; मुसकिल करना योग।।

मुसकिल करना योग चित्त को उलटि लगावै।

विषय वासन तजै प्रान ब्रह्माण्ड चढ़ावै

साधै वायू प्रान कुंडली करै उथपना।

अष्ट कंवल दल उलटि कंवल दल द्वादस लखना।।

इंगला पिंगला सोधि बंक के नाल चढ़ावै।

चार कला को तोड़ि चक्र षट जाय विधावै।।

पलटू जो संजम करै करै रूप से भोग।

रन का चढ़ना सहज है मुसिकल करना योग।[१५]

योग की स्थिति तभी सम्भव हो सकती है जब आत्मज्ञान की सच्ची साधना में प्रबुद्ध मन–मस्तिष्क से आत्म–साक्षात्कार की लगन से ईश्वरानुमुख भक्ति की जाय। इसे स्पष्ट करते हुए कबीर साहब ने कहा है–

दुलहिनि तोहि पिय के घर आना

काहे रोवो काहे गावो, काहे करत बहाना।

---

[१४] कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २५०
[१५] सन्त काव्य – परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ४६८

काहे पहिर्‍यौ हरि हरि चुनियाँ, पहिर्‍यो प्रेम के बाना।

कहै कबीर सुनो भाई साधे, बिन पिया नाहिं ठिकाना।।[१६]

सन्त बाबा किनाराम शब्द–सनेही सुरत–शब्द–योग के ही सच्चे फकीर हैं। उनका मानना था कि भवजल–मुक्ति हेतु एक नाव शब्द की है। उसके अलावा भवसागर से

॥१॥ रहाउ ॥ गुण निधान प्रगट भया,रिद ऊच उमंगै ॥ गुरुमुख मन परगासिआ,जपु अनत तरंगै ॥२॥ जोती जोति जगाईआ,रविआ अंग अंगै ॥ श्रीचंद्र विसमाद रस,संतन सतसंगै ॥३॥१६९॥

ओम् पारब्रहमणे नमः

॥ राग बिलावल ॥ उलट कमल सूधा भया,जपु नाम मुरारी ॥ ब्रहमाणी भी गंग न्हाइ,मल ढोति चंडारी ॥१॥ अगनि बुझी सीतल भए,हिमगिरि रस ठारी ॥ ग्रिह ग्रिह जोहत मांगते,त्रिपते त्रिपतारी ॥१॥ रहाउ ॥ आपहुँ बूडत सागरै,होए भव तारी ॥ थाक परे पग चलत चलत,ते जन असवारी ॥२॥ अजगर बिखिआ बिख भरे,रस सुधा संचारी ॥ श्रीचंद्र दिसि ऊजली,बीती निसि कारी ॥३॥१७०॥

ओम् पारब्रहमणे नमः

॥ राग बिलावल ॥ नाम पदारथ दुरलभ है,किनै विरलै पाइआ ॥ जनम जनम माया मुहिआ, हरि नाम धिआइआ ॥१॥ सत्गुरु पूरा भेटिआ,रवि प्रगटाइआ ॥ पावक जंगल वेड़िआ,सीतल होताइआ ॥१॥ रहाउ ॥ ऊणे ते ऊणा महा,भरपूर कराइआ ॥ जग कड़ुआ प्रभु नाम सिउं,अम्रित

डॉ० ब्रह्मजीत गौतम लिखते है –"शून्य चक्र में स्थित सहजदल कमल के मध्य में तिल के बराबर एक छिद्र है। योग शास्त्र में इसे ब्रह्मरन्ध्र कहा गया है।"[1]

शून्य मण्डल या शून्य चक्र में ब्रह्मरन्ध्र स्थित है। यही ब्रह्म का निवास स्थान है। इस में से सदा अमृत झरता रहता है और इस अमृत की प्राप्ति के लिए योगी को सुषुम्ना मार्ग से प्राणवायु को ऊर्ध्वस्थ करना पड़ता है। अधोमुखी होने के कारण ही इसे औंधा कुवाँ कहा गया है।

सन्त कबीर ने ब्रह्मरन्ध्र के लिए औंधा कुवाँ का प्रयोग किया है।

"आकासे मुखि **औंधा कुवाँ** पाताले पनिहारि।
ताका पाँणी को हंसा पीवै, बिरला आदि विचारि।"[2]

अर्थात् आकाश में औंधें मुख वाला कुवां है और उस में से जल रूपी अमृत को प्राप्त करने वाली कुण्डलिनी पाताल में हैं। इस कुण्डलिनी को जागृत करके मुक्तजन ही अमृत रस का पान कर सकते हैं, वे ही हंस है। लेकिन शायद ही इस तत्त्व पर बिरले व्यक्तियों ने विचार किया हो और इसे समझा हो।

ब्रह्मरन्ध्र 'कमल' में स्थित है, इसलिए इसे कँवल कुवाँ भी कहा जाता है। कँवल कुंवें का प्रयोग करते हुए सन्त कबीर दास जी कहते हैं –

"सुरति ढीकुली ले जल्यो, मन नित ढोलन हार।
कँवल कुवाँ मैं प्रेम रस, पीवै बारंबार।"[3]

अर्थात् कमल रूपी कुएँ में भगवान् के प्रेम का रस भरा हुआ है। सुरति की ढीकुली बनाकर लययोग रूपी रस्सी की सहायता से मन निरन्तर इस रस को अपनी ओर खीच रहा हैं।

---

1. डॉ० ब्रह्मजीत गौतम, कबीर काव्य में प्रतीक विधान, पृ० १०६
2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० १२
3. वही , पृ० १४

04:33
← 2015.545500.Kabir-Gr...

सुषमन नारी सहजि समानी, पीयै पीवनहारा ।।
दोइ पुड जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महा रस भारी ।
काम क्रोध दोइ किया पलीता, छूटि गई संसारी ।।
सुनि मंडल मैं मंदला बाजै, तहां मेरा मन नाचै ।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनां काछै ।।
पूरा मिल्या तबै सुष उपज्यौ, तन की तपनि बुझानी ।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी ।।७२।।

छाकि परचो आतम मतिवारा,
पीवत रांम रस करत विचारा ।। टेक ।।
बहुत मोलि महंगै गुड पावा, लै कसाव रस रांम चुवावा ।।
तन पाटन मैं कीन्ह पसारा, मांगि मांगि रस पीवै विचारा ।
कहै कबीर फावी मतिवारी, पीवत रांम रस लगी खुमारी ।।७३।।

बोलौ भाई राम की दुहाई ।
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूं न अघाई ।। टेक ।।
इला प्यंगुला भाठी कीन्ही ब्रह्म अगनि परजारी ।
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी ।।
मन मतिवाला पीवै रांम रस, दूजा कछू न सुहाई ।
उलटी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई ।।
पंच जने सो संग करि लीन्हे, चलत खुमारी लागी ।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ।।
सहज सुंनि मैं जिनि रस चाष्या; सतगुर थैं सुधि पाई ।
दास कबीर इही रसि माता, कबहूं उछकि न जाई ।।७४।।

---

(७१) ख—चंद सूर दोइ किया पयाना ।
उनमनि चढ्या महारस पीवै,
(७२) ख—पूरा मिल्या तबै सुष उपनां ।

रांम रस पाईया रे,
तातैं विसरि गये रस और ।। टेक ।।
रे मन तेरा को नहीं खैंचि लेइ जिनि भार ।
विरषि बसेरा पषि का, ऐसा माया जाल ।।
और मरत का रोइए जो आया थिर न रहाइ ।।
जो उपज्या सो विनसिहै तातैं दुख करि मरै बलाइ ।।
जहां उपज्या तहां फिरि रच्या रे, पीवत मरदन लाग ।।
कहै कबीर चित चेतिया, तातैं रांम सुमरि वैराग ।।७५।।

13:14

में हंस या हंसिनी की कल्पना उनके विशुद्ध स्वभाव तथा आचरण के कारण, निर्मल चित्त जीवात्मा तथा प्राणों के लिए हुई है।''[1]

कबीर वाणी में 'हंस' शब्द का प्रयोग शुद्ध और मुक्त जीवात्मा के लिए हुआ है। यथा--

मानसरोवर सुभग जल, हंसा केलि कराहिं।

मुक्ताहल मुकता चुगें, अब उड़ि अनत न जाहिं॥ --क०ग्र०, पृष्ठ 12, साखी 39

2 बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ़्या कलंक।

और पँखेरू पी गए, हंस न बोवै चंच॥ --क०ग्र०, पृष्ठ 27, साखी 30

3 कबीर लहरि समंद की, मोती बिखरे आइ।

बगुला मंझ न जाँणई, हंस चुणे चुणि खाइ॥ --क०ग्र०, पृष्ठ 61, साखी 2

कबीर ने निर्मल स्वभाव की हंस रूपी जीवात्माओं के झूलने के लिए 'दिव्य हिंडोले' की कल्पना की है। उन्होंने इस प्रकार की चर्चा करते हुए हठयौगिक शब्दावली का प्रयोग किया है। हिंडोला काव्य रूप के माध्यम से कबीर आदि संतों ने आध्यात्मिक उपदेश दिया है। वास्तव में हिंडोला लोकगीतों में आया हुआ वह काव्य रूप है जिसमें सावन के गीतों के समान ही मन के अनेक भावों को आबद्ध करने का उपदेश दिया गया है। ''इस काव्य रूप में संतों ने अधिकतर रूपमाला छंद का ही प्रयोग किया है जिसमें 24 मात्राएँ होती हैं और क्रमश: 14 एवं 10 पर विराम होता है। इस काव्य रूप में संतों ने संपूर्ण सृष्टि को झूले के रूपक के रूप में प्रस्तुत किया है।''[2]

कबीर एक हिंडोले का रूपक प्रस्तुत करते हुए कहते हैं--

हिंडोलनौं तहाँ झूलैं आतम राम।

प्रेम भगति हिंडोलना, सब संतन कौ विश्राम॥ टेक ॥

चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि।

झूले पंच पियारियाँ, तहाँ झूलै जीय मोर॥

द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अमृत कौ ग्रास।

जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास॥

सहज सुंनि कौ नेहरौ गगन मंडल सिरिमौर।

दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलै हिंडोल॥

....कहै कबीर गुण गाइ ले, गुर गँमि उतरौ पार॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 74, पद 18

---

1. हिन्दी संतों का उलटवाँसी-साहित्य, डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र, पृष्ठ 196
2. संत-साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ० शशिकला पांडेय, पृष्ठ 334

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

21:28

← 05_chapter_4.pdf

ा है, लेकिन शैली की दृष्टि से इनका स्वरूप उलट कर पृथक 80/4
प्रभाव उद्देश्य रहा है। अतः उलट साधना से अभिप्राय वह विपरीत
भिन्न सांसारिक प्रवृत्ति को उलट कर अन्तर्मुखी उतर अलौकिक
नुभूति तक ले जाने वाली उलट साधन कहा जा सकता है।

पौन उलटैं काया, अविद अनाहद शब्द बजाया।
अंतर मधु राखै सीस, नानक सोवै उलटि कबीर।।

—संत नानक साहब, सन्तवाणी-सारसंग्रह, पृ0-302

पवन घटे का भीतर। है सतगुरु का मारग झीना ।।

—संत रामानन्दी, सन्तवाणी सारसंग्रह, पृ0-303

न के घरि क्या अंधेरा,
ट ध्यान धरै गोरखंदा।। — प्र कबीरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ0-157

आदि कवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ।।

—रामचरित मानस, बालकाण्ड, दो. 18 के बाद- पूर्व चौपाई।

ि मुनी गावत, सुर मुरली सर लावत।

x x x ...

ि उलटा उलट पथ आया, उलटी के अमृत समाया।

—सूरदास सारावलीपावन, सही सही उलट उठाया।

क्षमोर्तकी:-

ु उलिटा सबत धर सभी समनी रही मीन के पास है।
शिवर पर सुन्दर दियावा देखिए वे होजना निहाल है।।

—क्रमसरोहदी 11/13०

मोतिन गूँदी है सेज तहाँ संग सूतौ हो ।।
झलकै झिलमिल ज्योति और नहिं सूझै हो साधो,
झालरि लागि अपार प्रगट होइ भेंटौ हो ।
मूनिदास तौ साँई नाम जपौ तुमारा हो साधो,
जुगन-जुगन वरदान भगति टकसारा हो ।। [1]

यहाँ सेज को उस अवस्था के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है जहाँ पहुँच कर साधक तथा परमात्मा में कोई भिन्नता नहीं रह जाती है, 'संग सूतौ' में आत्मा अपने आप को भूल कर परमात्मा में विलीन हो जाती है । प्रतीकों में साधक के हृदय की विनम्रता सहजता तथा सर्वस्व समर्पण की भावना व्यक्त होती है । सन्तों ने अपने काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों का चयन लोक जीवन के महत्त्वपूर्ण अंगों से किया है । आपा साहब ने कृषि आधारित रूपक के माध्यम से अपनी बात की है वे अपने मन को ऐसी खेती करने का निर्देश देते हैं जिसमें शरीर रूपी खेत, नाम रूपी हल से जोता गया है । इसमें मन किसान और ईश्वर प्रेम नाधा है । इसी प्रकार शब्द, पाटा सुरति-निरति रस्सी है, प्रेम की ढेंकी है जो औंधें कुएँ से पानी भर रही है :

मनुवा यहि विधि खेती करिए,
चारि बैल, नौ ग्यान की मांची नाम का हरू मचिइए ।
काया खेत सुरति करू नाधा, प्रेम मगन होई जोतिए ।।
सुरति निरति की रसरी कै के सबद का सिल्ला नाधिए ।
आदि पुरूस गुरु साँटि से हाँके निसुदिन गरद उड़ेइए ।
ग्यान करोर सुरति करू रसरी, प्रेम की ढेंकी गहिए ।
उरध मुखी एक कुइयाँ निरखौ तामें भरि-भरि सिंचिए ।
जो यहि विधि की खेती करिए, ऐसि जुगति जब पइए ।
कहि मुनिदास सुनो भाई साधो, सो किसान मन भइए ।। [2]

संतों ने अपने रूपकों में जिन उपमानों की योजना की है अथवा

---

[1] आपा साहब और उनकी कृतियाँ, डॉ० उदय प्रताप सिंह, पृ0 214-215

[2] वही, पृ0 216

इसे खेचरी मुद्रा भी कहा जाता है। खे का अर्थ है 'आकाश' और 'चरी' का अर्थ है– विचरण करना अर्थात् आकाश में विचरण करना। इसके समान कोई भी मुद्रा नहीं है–

" न खेचरी समा मुद्रा।"[1]

डॉ० गोबिन्द त्रिगुणायत लिखते हैं – "हठयोग में खेचरी मुद्रा बहुत प्रसिद्ध है। इस मुद्रा में साधक पदमासन से बैठकर दोनों भ्रुवों के मध्य में दृष्टि को स्थिर करता है, तथा जिभ को उलटकर सुधा कूप स्वरूप तालु विवर से संयोजित करता है और उसके अमृत का पान करता है। इस प्रक्रिया को गोमांस भक्षण कहते हैं।"[2]

यहाँ सन्त कबीर दास जी कहते हैं कि गोमांस की प्राप्ति के बिना साधक का घर आना व्यर्थ है। वह ह्रदय विहीन, नगर विहीन मुख विहीन एवं रूप आकार से परे है। वही साधक श्रेष्ठ है, जो इस रक्त मास विहीन आखेट को प्राप्त करता है –

"जीवत जिनि मारै मूवा मति ल्यावैं,
मांस बिहूँणाँ घरि मत आवै हो कंता।
उर बिन पुर बिन चंच बिन, बपु बिहूँना सोई।
सो स्यावज जिनि मारै कंता, जाकै रगत मांस न होई।"[3]

यहाँ सन्त कबीर दास ने गोमांस को ही मांस कहा है।

" 1. श्री आत्माराम योगीन्द्र, हठयोग प्रदीपिका, पृ० २८

2. डॉ० गोबिन्द त्रिगुणायत, हिन्दी की निगुर्ण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ५०१

3. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ११६

3.3.1.17. मूल कँवल –

मूल कँवल अर्थात् मूलाधार चक्र। ऐसा चक्र जो सबसे नीचे या मूल में स्थित हो तथा सबका आधार हो मूलाधार चक्र कहलाता है। "यह चक्र शरीर के अधोभाग में गुह्य स्थान के समीप माना जाता है। इस में चार पंखुड़िया हैं तथा यह ब्रह्मग्रन्थि खुलने और कुण्डलिनी जाग्रत होने के लिए यह षट् चक्रों में प्रथम चक्र है। इस चक्र पर साधना करने वाले साधक को दर्दुरी सिद्धि प्राप्त होती है। इसका लोक भू: है। इसे रक्त वर्ण का माना गया हैं इस चक्र के अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा

21:35

कब बास ना चदन वास लाग,

कब शूम से होय ना पुण्य दाना।

कहे टेऊँ दे त्यों विरंचि शिक्षा,

बुद्धिहीन को कब ना होय ज्ञाना।।3।।

मूल कमल माहीं गुरु गणेश पाहीं,

चरण कमल से शिष्य चित्त लाइये जी।

लिंग कमल डेरा घर ब्रह्मा केरा,

नाभ कमल से नाम चलाइये जी।

पाय विष्णु वासा करके अभ्यासा,

हृदय कमल शिव शंख बजाइये जी।

कंठ कमल के पास है हंस का वास,

सच ग्रहण करके झूठ जलाइये जी।

कमल त्रिभणा द्वार ज्योति ज्ञान उजियार,

निश निर्जन केरी मिटाइये जी।

उलट इड़ा पिंगला करो एक सुरला,

भँवर सुषुम्ना सेज बिछाइये जी।

कमल सुन सकड़े रहो ताँहि अकड़े,

निज निरंजन नाम को ध्याइये जी।

चल दशम द्वारे रह रिणुंकारे,

मिल मौज मस्ती की पाइये जी।

देख देह बिन देव पाओ पुरुष अभेव,

चौदह लोक सम ज्योति जगाइये जी।

कहे टेऊँ भेद तोड़ जीव ईश मति छोड़,

इक ब्रह्म आनंद समाइये जी।।4।।

चचा चेत माई सुन सीख सोल्हा,

इक चरण पति के चित्त लाइये जी।

दूजा चार घड़ियां जाग रैन पिछली,

तीजा चाह से चक्की चलाइये जी।

चौथा चाय चाडी दही को विलोड़ो,

पालन के लिए बिन्दु-रक्षा पर विशेष बल दिया गया है ।[1] नाथों में कहा गया है कि यह कुंडलिनी, सुषुम्ना सुन्दरी है, यही शक्ति नारी भी है, जो कामना की जाल में भी फंसाती है और यही सहस्रार चक्र में जीवात्मा का परमशिव से मिलन कराती है।[2]

बिन्दु की रक्षा करने के बारे में ही गोरखनाथ ने कहा कि यही बिन्दु-योग है, यही भोग, रोग एवं सब कुछ है । यही अमूल्य रत्न है। इसका आध्यात्मिक जीवन के लिए उतना ही महत्त्व है, जितना ब्रह्म का । भर्तृहरि ने तो वीर्य का नाश करना ही ब्रह्म-हत्या करना बताया है ।[3]

अब, हम कुंडलिनी की क्रिया-कलाप व स्वरूप पर विचार करेंगे । हमारा धार्मिक भारतदेश सदा से ही ब्रह्मचर्य का पालन सन्देश देता रहा है। इसका कारण यह है— मनुष्य के जननेन्द्रिय के पास जीवन की ऊर्जा, शक्ति, केन्द्रित रहती है। यह ऊर्जा ही मानव के विकास में सहायक है। इसका सांसारिक भोग-विलास में नाश करना पतन और अध्यात्म में उपयोग करना जीवन का उत्थान है। गोरखनाथ का कहना है कि इस शक्ति को नीचे उड़ेल देना संसार को प्राप्त करना है, बाल-बच्चों को उत्पन्न करना है, और इसी शक्ति को ऊर्ध्व कर देना परमात्मा को प्राप्त करके सदा-सर्वदा के लिए स्वयं का अमर होना है । यह शक्ति मनुष्य के ऊपर निर्भर है, चाहे ह्रास करे अथवा विकास करे । नाश करे, तो मिलेगा संसार ; विकास करे, तो पायेगा निर्वाण । यह जीवन की शक्ति मानव जननेन्द्रिय के पास, उसके काम-केन्द्र के पास, स्थित है। जिसे यौवन-केन्द्र भी कहते हैं। इसे अंग्रेजी में सेक्स-सेन्टर की संज्ञा दी जाती है। यहीं पर यह शक्ति सांप की तरह कुण्डल पर कुण्डल मारकर उस पर अपना फन सबसे ऊपर रखकर सोयी हुई है। जैसे सर्प अपने बिल के पास फनों को समेट कर कुण्डल मारकर सोता है। जब उसे छेड़ दिया जाता है, उत्तेजित कर

1- नाथ और संत साहित्य, पृ० 300.

2- वही, पृ० 344.

3- वही .

दिया जाता है, तो वह फनों को ऊपर उठाने लगता है और उसके फनों का मण्डलाकार कुण्डल टूटने लगता है। यह शक्ति जल के कुण्ड की भांति है। इसी लिए इसको कुण्ड कहा गया है। कुण्ड से तात्पर्य, पानी का हौज— जल को एकत्रित करने वाले छोटे से कुण्ड से है । जैसे कुण्ड जल से भरा रहता है, वैसे ही यौवन-केन्द्र के पास स्थित वह बिन्दु शक्तियों से परिपूर्ण रहती है। जितनी शक्ति, साधक जगा लेता है, उतना उपयोग में आ जाता है, बाकी निष्क्रिय, अचेतन, सोयी रहती है। पूरे

तथा आप कहमा कहा:-

लगिजी तकिया ते अमी औरतिनिरीर,

मैं ठंडई के ध्यान ना मोतानिर।।

- अमरविलास 3/4।

मध्यी तवी के सुन्दर पिवाया उसकी कसती सुहागिनी,

उलट कोल व मैंन केवारी पियासित के सामिनी।- अमरतोटी-

तनिसेक जोन्हु केवार व मौरे मारि पिवियार।

-अमर कहानी।/40

सैन कवि प्रद्युम्नारी सुमोनी वाता:-

कह सजर की ध्यान है, हुंकार सैन की माव।

देखि मात कुन्डलिनि की, तदा चढ़ावै = प्रान ।।

- गीता ज्ञान कोश, पृ०-34

विदर्भ निकलता है कि आलोच्य संत कवि प्रकाश के काव्य में कुण्डलिनी तात्पर्य मूलाधार चक्र में स्थित, पिंगला नाड़ियों के बीच तथा सुषुम्ना नाड़ी के नीचे स्थित साढ़े तीन फेरे में स्वयंभू लिंग को बीच में रख कर अपनी पूंछ मे लटकाए फिर सिद्ध मे स्थित सौंपिन सिमट कर है।

खेचरी:-

इस शब्द का विग्रह करने पर अर्थ नि

है" आकाश में विचरति खेचरी-अर्थात् जो आकाश में विचरण करे उसे "खेचर कहते हैं। "खेचर" शब्द का अर्थ पक्षी तथा पक्षी भी होता है किन्तु योगशास्त्र शब्द का अर्थ विशिष्ट रूप में एक मुद्रा के रूप में माना गया है जिस में जीभ पालन और दोहन क्रिया द्वारा जुबान का लम्बा बनाकर तालु के ऊपर छि कपाल में उलट कर प्रवेश करा कर दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच केन्द्रित

21:50

Sar Bachan Chand Ban...

कह चुका। अब बातना[10] हाल कि जो दरजे फ़क़ीरी का हासिल है, उस को ब्यान करता हूं – कि

213/464

जिस वक्त निगाह तुम्हारी दिमाग़ के भीतर उलट कर आसमान को देखेगी और रूह तुम्हारी जिस्म[11] को छोड़कर उपर को चढ़ेगी तो तुम को आकाश नज़र पड़ेगा कि जिस में थाना सहसदल कँवल का है और हज़ारों पंखड़ियाँ उस की जुदा जुदा काम तीनों लोक का दे रही हैं। उस की सैर को देख कर तुम बहुत ख़ुश होंगे और तीन लोक के मालिक का दर्शन पाओगे। और बहुत से मज़हब इसी मुक़ाम को पाकर और इसी को मालिक-कुल गरदान कर[12] धोखा खा गये, और नूर और तजल्ली[13] इस जगह की देख कर तृप्त हो गये, आगे चलने का रास्ता बंद हो गया, मुर्शिद आगे का उनको न मिला, जो मुर्शिद मिलता तो आगे का रास्ता खुलता, सो इस से आगे का हाल सुनो।

---

1. ऊपर बयान किये हुए। 2. नित्त नेम से। 3. भरम। 4. चिंता। 5. पुकार। 6. बेचैनी। 7. जल्दी शैतान का काम है। 8. दयालु। 9. सामान। 10. अंतरी। 11. देह। 12. मान कर। 13. प्रकाश।

इस आकाश के ऊपर एक दरवाज़ा ऐसा बारीक और झीना है कि जैसे रौज़न[1] सुई के नाके का होता। चाहिये कि उस रौज़न में अपनी रूह को प्रवेश करो[2] और आगे उस के बंकनाल, टेढ़ा रास्ता, कुछ दूर तक सीधा गया और फिर नीचा पड़ा और फिर ऊँचे को चढ़ा, उस नाल को पार करके दूसरे आसमान पर सुरत पहुँची।

उस आसमान पर एक मुक़ाम त्रिकुटी कि उस को मुसल्लसी[3] कहते हैं, लाख जोजन वसीअ[4] और लाख जोजन तवील[5] है। उस में लीला और तमाशे तरह-ब-तरह के हैं। शरह[6] उसकी कहाँ तक करूँ, मगर कुछ कहता हूँ कि हज़ार आफ़्ताब[7] और हज़ार माहताब[8] उसकी रोशनी से ख़जिल[9] हैं और आवाज़ "ओं ओं" और "हू हू" और बादल की सी गर्ज बहुत सुहावनी आठ पहर होती रहती है। उस मुक़ाम को पा करके रूह को बहुत सरूर[10] हासिल होता है और रूह भी बहुत पाक और लतीफ़[11] हो जाती है। आलमे रूहानी[12] की ख़बर उस जगह से पड़नी शुरू होती है। कोई दिन उस जगह की सैर करके फिर ऊपर को चढ़ती है।

चढ़ते चढ़ते करोड़ जोजन ऊपर चढ़ कर तीसरा पर्दा फोड़ कर सुन्न में पहुंची कि जिस को फ़क़रा ने आलमे-लाहूत कहा है। उसकी तारीफ़

देखि मानसर रूप सोहावा । हिय हुलास पुरइनि होई छावा ।।
गा अधियार रैनि मसि छूटी । भा भिनसार किरिन रवि फूटी ।।
कँवल बिगस तत बिहँसी देही। भँवर दसन होई कै रस लेही ।। [1]

अर्थात् उस अखण्ड ज्योति का आभास पाकर वह मानस (मानसरोवर और हृदय) जगमगा उठा । देखिए न खिले कमल के रूप में उल्लास मानसर में चारों ओर फैला है । उस ज्योति के साक्षात्कार से अज्ञान छूट मया, प्रभात हुआ, पृथ्वी पर से अंधकार हट गया । आनंद से चेहरा (देही-बदन-मुँह) खिल उठा, बत्तीसी निकल आई, कमल खिल उठे और उनपर भौंरे दिखाई दे रहे हैं । अंतर्जगत और बाह्यजगत का कैसा अपूर्व सामंजस्य है, कैसी बिंबप्रतिबिंब स्थिति है ? :

उस प्रियतम पुरूष के प्रेम से प्रकृति कैसी बिंधी हुई दिखाई देती है :

उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा ? बेधि रहा सगरौ संसारा ।।
गगन नखत जो जाहि न गने । वै सब बान ओहि के हने ।।
धरती बान बेधि सब राखा । साखी ठाढ़ देहिं सब साखी ।।
रोवँ रोवँ मानुष तन ठाढ़े । सूतहि सूत बेध अस गाढ़े ।।
बरुनि चाप अस ओपहँ, बेधे रन बन ढाँख ।
सौजहि तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पाँख ।। [2]

जायसी कहते हैं कि पृथ्वी और स्वर्ग, जीव ओर इश्वर, दोनों एक थे बीच में न जाने किसने इतना भेद डाल दिया है :

धरती सरग मिले हुत दोऊ । केइ निनार कै दीन्ह बिछोऊ ।। [3]

जो इस पृथ्वी और स्वर्ग के वियोगत्व को समझेगा और उस वियोग में पूर्ण रूप से सम्मिलित होगा । उसी का वियोग सारी सृष्टि में इस प्रकार फैला

---

1. जायसी ग्रन्थावली, आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, पृ0 123
2. वही, पृ0 123
3. वही, पृ0 123

गोविन्द साहब ने भी भक्ति को महत्त्वपूर्ण माना है :

राम जानकी गगन में, बिहरे अमित बिहार ।
देखन हारा छकि रहा, भूल रहा संसार ।। [1]

भक्ति में साधक का साध्य के प्रति पूर्ण समर्पण होता है । मध्यकालीन सन्तों ने निर्गुण के प्रति समर्पण में कठिनाई का अनुभव करते हुए, भगवान के सगुण रूप का भी वर्णन किया है । पलटू दास कहते हैं :

कृस्न कन्हैयालाल है वह गोकुल के घाट ।
वह गोकुल के घाट जाय के गोतामारै ।
कुंजगली के बिच जाय तब पिय को पावै ।
देखे पिय को रूप सुन्दर बहु स्याम सलोना ।। [2]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि संत कवियों ने भक्ति मार्ग पर चलते हुए निर्गुण ब्रह्म की उपासना में सरसता तथा प्रभावोत्पादकता लाने के लिए अपने इष्ट की साकार कल्पना की है और भक्ति मार्ग को ईश्वर प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण बताया है ।

अवध के सन्त कवियों के साधनात्मक रहस्यवाद की विवेचना तब तक अधूरी रहती है जब तक इसका विश्लेषण न किया जाय कि उन्होंने अपनी साधना के लिए किन तत्त्वों को अत्यन्त आवश्यक माना है । सन्तों के काव्य के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सन्त अपनी साधना में गुरु तत्त्व को अनिवार्य मानते हैं । गुरु के बिना तो एक पग भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता । इसी प्रकार नाम स्मरण हृदय में प्रेम को जगाता है । सन्तों की साधना का यह भी अनिवार्य तत्त्व है । सन्त ज्ञानमार्गी होते हुए भी भक्ति को अपनी साधना के अनिवार्य तत्त्व के रूप में लेते हैं और सभी सन्त हठयोग, क्लिष्ट साधना के स्थान पर सहजयोग को महत्त्व देते हैं। जिसमें साधक बिना प्रयास के स्वतः समाधि में लीन रहता है ।

---

1. गोविन्द साहब की बानी, पृ० 37
2. बावरी पन्थ के हिन्दी कवि, डॉ० भगवती प्रसाद शुक्ल, पृ० 184

कबीर कहते है कि---

प्यंड ब्रह्मांड छाडि जे कथिए, कहै कबीर हरि सोइ। --क०ग्र०, पृष्ठ 111, पद 180

और

पंषि उडाणी गगन कूं प्यंड रह्या परदेश।

पाँणी पीया चच बिन, भूलि गया यहु देस।। --क०ग्र०, पृष्ठ 11, साखी 20

6.6.(26) बंकनाल

बंकनाल अर्थात् टेढ़ी नाल। हठयोग के अनुसार--'बंकनाल अर्थात् सुषुम्ना की टेढ़ी नाल के भीतर एक मार्ग है, इसी से होकर ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचा जाता है। इसका आकार अर्धवृत्ताकार कमलनाल की भांति होता है। अतएव इसे बंकनाल भी कहते हैं।'[2] कबीर ने बंकनाल का प्रयोग सुषुम्ना नाड़ी के लिए किया है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मत से 'बंकनाल शब्द त्रिकुटी और सहस्रदल के मध्य के छोटे मार्ग का वाचक है।'[3]

---

1 हिन्दी सन्तों का उलटवाँसी-साहित्य, रमेशचन्द्र मिश्र, पृष्ठ 156-57

2. संत-साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ० शशिकला पांडेय, पृष्ठ 207

3. कबीर कोश, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ 263

बंकनाल को स्पष्ट करते हुए कबीर कहते हैं--

1 बंक नालि के अंतरै, पछिम दिसाँ की बाट रे।

नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे।। --क०ग्र०, पृष्ठ 69, पद 4

अन्यत्र अपनी उलटवाँसियों में कबीर ने बंकनाल के विषय में कहा है---

1 चंद सूर दुइ खंभवा, बंकनाल की डोर। --क०ग्र०, पृष्ठ 74, पद 18

2 बंक नालि रस पीजै। --क०ग्र०, पृष्ठ 85, पद 76

3 बंक नालि जो संमि करि राखै। --क०ग्र०, पृष्ठ 165, पद 157

4 बंक नालि रस खाया। --क०ग्र०, पृष्ठ 119, पद 209

6.6.(27) बेलि

कबीर-साहित्य में 'बेली' और 'बेलरी' शब्द से अभिप्राय माया एवं मायाच्छादित संसार से है। जिस प्रकार बेल अथवा लता लिपटने एवं उलझाने वाली होती है उसी प्रकार माया भी जीव से लिपटने, उसे संसार में उलझाने, विषय वस्तुओं के प्रति आकृष्ट करने वाली होती है।

चरन कँवल मन मानियाँ, और न भावै मोहि रे॥ टेक॥
षट दल कँवल निवासिया, चहु कौं फेरि मिलाइ रे।
दहुँ के बीचि समाधियाँ, तहाँ काल न पासै आइ रे॥
अष्ट कँवल दल भीतरा, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे।
सतगुर मिलै तौ पाइए, नहिं तौ जन्म अक्यारथ जाइ रे।
कदली कुसुम दल भीतराँ, तहाँ दस आँगुल का बीच रे।
तहाँ दुवादस खोजि ले जनम होत नहीं मीच रे॥
बंक नालि के अंतरै, पछिम दिसाँ की बाट रे।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे॥
त्रिवेणी मनाइ न्हवाइए सुरति मिलै जो हाथि रे।
तहाँ न फिरि मघ जोइए सनकादिक मिलिहैं साथि रे॥
गगन गरजि मघ जोइये, तहाँ दीसैं तार अनंत रे।
बिजुरी चमकि घन बरषिहै, तहाँ भीजत हैं सब संत रे॥
षोडस कँवल जब चेतिया, तब मिलि गये श्री बनवारि रे।
जुरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे॥

145

गुर गमि तैं पाइए झपि मरै जिनि कोइ रे।
तहाँ कबीरा रमि रह्या सहज समाधी सोइ रे॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 70, पद-4

हिंडोलनाँ तहाँ झूलैं आतम राम।
प्रेम भगति हिंडोलना, सब संतन कौ विश्राम॥ टेक॥
चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि।
झूलें पंच पियारियाँ, तहाँ झूलै जीय मोर॥
द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अमृत कौ ग्रास।
जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास॥
सहज सुँनि कौ नेहरौ गगन मंडल सिरिमौर।
दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलै हिंडोल॥
अरध उरध की गंगा जमुना, मूल कवल कौ घाट।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणीं संगम बाट॥
नाद ब्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुण गाइ ले, गुरगँमि उतरौ पार॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 74, पद-18

कबीर के अनुसार ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति हेतु सुरति-निरति संगम आवश्यक है--

टारी न टरै आवै न जाइ। सुन्न सहज महि रह्या समाइ॥
मन मद्धे जाने जे कोइ। जो बोलै सो आपै होइ॥
जोति मंत्रि मनि अस्थिर करै। कहि कबीर सो प्रानी तरै॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 204, पद-16, परिशिष्ट

कबीर की साधना में षट्चक्र-भेदन को भी मान्यता मिली है। इन्हीं षट्चक्रों को कुण्डलिनी भेदती है तथा प्रभु के दर्शन होते हैं---

मन के मोहन बिठुला, यह मन लागी तोहि रे।
चरन कँवल मन मानियाँ, और न भावै मोहि रे॥ टेक॥
षट दल कँवल निवासिया, चहु कौं फेरि मिलाइ रे।
दहुँ के बीचि समाधियाँ, तहाँ काल न पासै आइ रे॥
अष्ट कँवल दल भीतरा, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे।
सतगुर मिलै तौ पाइए, नहिं तौ जन्म अक्यारथ जाइ रे।
कदली कुसुम दल भीतराँ, तहाँ दस आँगुल का बीच रे।
तहाँ दुवादस खोजि ले जनम होत नहीं मीच रे॥
बंक नालि के अंतरै, पछिम दिसाँ की बाट रे।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे॥
त्रिवेणी मनाइ न्हवाइए सुरति मिलै जो हाथि रे।
तहाँ न फिरि मघ जोइए सनकादिक मिलिहैं साथि रे॥
गगन गरजि मघ जोइये, तहाँ दीसैं तार अनंत रे।
बिजुरी चमकि घन बरषिहै, तहाँ भीजत हैं सब संत रे॥
षोडस कँवल जब चेतिया, तब मिलि गये श्री बनवारि रे।
जुरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे॥

गुर गमि तैं पाइए झषि मरै जिनि कोइ रे।
तहीं कबीरा रमि रह्या सहज समाधी सोइ रे॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 70, पद-4

हिंडोलनाँ तहाँ झूलैं आतम राम।
प्रेम भगति हिंडोलना, सब संतन कौ विश्राम॥ टेक॥
चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि।
झूलैं पंच पियारियाँ, तहाँ झूलै जीय मोर॥
द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अमृत कौ ग्रास।
जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास॥
सहज सुँनि कौ नेहरौ गगन मंडल सिरिमौर।
दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलै हिंडोल॥

05:43

1902210805341st min...

करना पड़ा होगा यह कौन जानता है।"[4] परन्तु इस दुर्गमपथ को पार करने में दो वस्तुएं उनकी विशेष सहायक हुई जो उन्हें एक सच्चे साधक का रुप दे सकी ये विशेषताएं थीं आत्म–विचार और निजी अनुभव। कबीर ने इन दोनों को ही अपनाया।

जिस समय कबीर ने योग साधना में प्रवेश किया उस समय नाथपंथी हठयौगिक साधना का ही चारों ओर बोलबाला था । अतः कबीर का ध्यान भी सर्वप्रथम इसी साधना की ओर आकर्षित हुआ। उन्हीं के अनुकरण पर वे इस साधना स्तर में काया का महत्व, प्राणायाम, इडा–पिंगला, सुषुम्ना, घटसोधन, षट्कर्म, पवन साधना, कुण्डलिनी, उत्थापन, चक्रबेधन, ब्रहमारन्ध्र शून्य गुफा, दशम द्वार, अनाहत नाद, औघट घाट, त्रिकुटि सन्धि आदि के विस्तृत वर्णन करते हैं। उनका विश्वास है कि श्रम की प्राप्ति के लिए हठयोग साधना परम आवश्यक है –

"जब लग त्रिकुटी संधि न जानै,
ससिहर कै धरि सूर न आनें
जब लग नाभिकवल नहीं सोधे,
तो हीरै हीरा कैसे बँधे ।।"[5]

किन्तु आगे चलकर उनका यह विश्वास इस रुप मे स्थिर न रह सका। वे मंत्रयोग की ओर उन्मुख हुए जिसमें केशव ही उन्हे सच्चे योगी के रुप में ही दिखायी देने लगे। जब हम कबीर के योग चिंतन पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि पिंड और ब्रहमाण्ड की जिस एकता का वर्णन किया है उसकी सर्वप्रथम चर्चा अथर्ववेद में हुई है। अथर्ववेद के एक स्थान पर कहा गया है कि अष्टचक्रा नवद्वारा देवेन्द्र पुरयोध्या ।

तस्याय हिरण्यमयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।"[6]

कबीर का योग चिंतन इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि उसके माध्यम से वे मनुष्य के भीतर की अनंत सभावनाओं को टटोलकर जगाने और सक्रिय करने का भी उपक्रम है। कबीर के लिए कुंडलिनी का जागना प्रकारांतर से मनुष्य की सुषुप्त आंतरिक शक्ति का जागना है। बिना जागे न तो मनुष्य स्वयं को विकसित कर सकता है और न ही समाज अथवा राष्ट्र को । योग हमें जगाकर अपनी शक्तियों के सदुपयोग का मार्ग प्रशस्त करता है।

exness The best pricing on gold. Period.

20:47

← 5_6084497670787830...

ज्ञानी साइ जब सुत लगाव, अतर पलक डिगण नही पाव।

दिष्ट फैरके धीरये ध्यान, कहै पानप हर जन परम सुमान।।[2]

2. <u>योग साधना और पॉनप दास</u> :-

योग भारतीय दर्शन एव साधना का प्रमुख अग रहा है। आध्यात्मिक साधना की व्यवस्थित प्रक्रिया योग साधना मे ही दिखाई देती है। मध्य काल मे प्रचलित योग साधनाओ से सन्त कवि पॉनप दास भी अन्य सन्तो की तरह सन्तुष्ट नही थे। योग साधना की वैचारिक भूमि मन का निग्रह है। मन के निग्रह के द्वारा एक सम्यक् जीवन दृष्टि और जीवन बिम्ब का विकास ही योग साधना का चरम लक्ष्य है। सन्त कवि पॉनप दास योग की वैचारिक धारा को अपने साहित्य की वस्तु बनाते है। पॉनप योग साधना की क्रियात्मक साधना को नही स्वीकारते उनके अनुसार योग को किसी आडम्बर की आवश्यकता नही होती –

धोती कीनी नेती किनी , बौह बिध धोई काया।
कहै पानप ताकि सुध नाहि, इन मन ने जग छकणाया।।[3]
इडा पिगला सुखमना नाडी, येई भगत उपचार।
कहै पानप जो इन कौ साधै, ते जन भौजल पार।।[4]

---

1 पॉनप वाणी – ज्ञान के अग को निरणै साखी – 3
2 पॉनप वाणी – ज्ञान के अग को निरणै , साखी – 4
3 पॉनप वाणी – जोग के अग को निरणै, साखी – 24
4 पॉनप वाणी – जैन नारी पलक के अग को निरणै , साखी – 63

पॉनप के अनुसार योग साधना साधक मन पर अवलम्बित है, उसका आसन मन होता है–

मन मै आसन माड के , अकल कला सग लेह।
ऐसै सुमरै पानपा , साहिब दरसन देह।।[1]

उसकी समाधि मन ही होती है। मन की साधना के आधार पर वह शून्य सरोवर मे सुरति के बल पर रहता है।

सुन सरोवर अतर पानप, जीवतडा नही पावै।

04:44
← 2015.345871.Kabir-Ka....

ग

कबीर की कविता से संबंध रखनेवाले हठयोग और सूफ़ीमत में प्रयुक्त कुछ विशिष्ट शब्दों के अर्थ :—

(अ) हठयोग

१—अवधू

यह अवधूत का अपभ्रंश है। जिसका अर्थ है, जो संसार से वैराग्य लेकर संसार के बंधन से अपने को अलग कर लेता है।

यो विलंध्याश्रमान् वर्णान् आत्मंयेव स्थितः प्रमान ।
अति वर्णाश्रमी योगी अवधूतः स उच्यते ॥

ऐसा भी कहा जाता है कि यह नाम रामानंद ने अपने अनुयायियों और भक्तों को दे रक्खा था क्योंकि उन्होंने रामानुजाचार्य के कर्मकांडों की उपेक्षा कर दी थी।

२—अमृत

ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्र-दल-कमल के मध्य में एक योनि है। उसका मुख नीचे की ओर है। उसके मध्य में चंद्राकार स्थान है जिससे सदैव अमृत का प्रवाह होता है। यह इडा नाड़ी द्वारा बहता है और मनुष्य को दीर्घायु बनाने में सहायक होता है। जो प्राणायाम के साधनों से अनभिज्ञ हैं, उनका अमृत-प्रवाह मूलाधार-चक्र में स्थित सूर्य द्वारा शोषण कर लिया जाता है। इसी अमृत के नष्ट होने से शरीर वृद्ध बनता है। यदि अभ्यासी इस अमृत का प्रवाह कंठ को बंद कर रोक ले तो उसका उपयोग शरीर की वृद्धि ही में होगा। उसी अमृत-पान से वह अपने शरीर को जीवन की शक्तियों से पूर्ण कर लेगा और यदि तक्षक भी उसे काट ले तो उसके शरीर में विष का संचार न होगा।

३—अनाहद

योगी जब समाधिस्थ होता है तो उसके शून्य अथवा आकाश

उत्थापन, शिव तथा शक्ति का मेल प्राणायाम आदि का वर्णन किया है। उनके हठयोग में जटिलता नहीं बल्कि व्यवहारिकता है। उन्होंने इस योग का वर्णन अत्यन्त स्पष्ट शब्दों से किया है। उन्होंने एक बात को कई उदाहरणों से समझाकर सर्व साधारण के लिये ग्राह्य बना दिया है।

जोग को पाई के, जुगति को ध्याई के। ज्ञान अरु ध्यान एक घाट करना।
अर्धी तंगन बहै कड़क बिजुली छुटै। उसी के सीस पर सुरति धरना।।
सहस कोटि कँप है बीच में भानु है। सानिन पकरि के बोरि मरना।
सहस गुंजार में परम अली झाल है। झिलमिल उलटि के पवन भरना।।
सखिनी डंकिनी सोर सब करैगी। सोर सुनि वहाँ से नाहि टरना।
बंक पहार में सांकरि गयल है। गली के खण्ड के बीच झरना।।
हद अनहद के बीच में जगना। सिंह को देखि के नाहि डरना।
कर्मनी नदी पर मर्मनी ताल है। ताल के बीच में रहत अरना।।
चौक से निकरी जाय बाहर हुआ। तत्व को पकर क्यों बैठ रहना।
सातवें महल पर तत्व का जाल है। तत्व के जाल में तपत फिरना।।
बालो महल का कहा दिवाल है। दीवाल को झाकि के कूदि परना।
दास पलटू कहै छोर मन कमनसी। पैठि दरियाव दीदार करना।।

सन्त पलटू साहब ने अपनी बानियों में कुण्डलिनी उत्थापन के साथ–साथ उन्होंने खेचरी मुद्रा का भी वर्णन अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में किया है। आकाश मण्डल में स्थित महल के मध्य से अमृत का स्राव हो रहा है परन्तु उसे एक सर्पिणी पी रही है। योगी यदि इस अमृत को अपनी साधना के बल पर पी लेता है तो वह अमर हो जाता है।

गगन महल के बीच अमी झर लागिनी।
टोपन बूँद–बूँद पिवै एक साँपिनी।।
सापिनी डारा मारि बूँद को पिया है।
अरे हाँ पलटू अमर लोक गये हंस जुगो–जुगो जिया है।।

परन्तु यह साधना अत्यन्त कठिन है। इसलिए सन्त पलटू साहब ने चेतावनी दी है कि बिना युक्ति ज्ञान से योग साधन नहीं करना चाहिए। अगर कोई किसी की देखा–देखी साधना करता है तो शरीर का नाश हो सकता है। साधक पागल हो सकता है और उसका सम्भलना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है।

ज्ञानी सोइ जब सुत लगावे, अतर पलक डिगण नही पावे।

दिष्ट फैरके धीरये ध्यान, कहै पानप हर जन परम सुमान।।[2]

2. योग साधना और पॉनप दास :-

योग भारतीय दर्शन एव साधना का प्रमुख अग रहा है। आध्यात्मिक साधना की व्यवस्थित प्रक्रिया योग साधना मे ही दिखाई देती है। मध्य काल मे प्रचलित योग साधनाओ से सन्त कवि पॉनप दास भी अन्य सन्तो की तरह सन्तुष्ट नही थे। योग साधना की वैचारिक भूमि मन का निग्रह है। मन के निग्रह के द्वारा एक सम्यक् जीवन दृष्टि और जीवन बिम्ब का विकास ही योग साधना का चरम [illegible] पॉनप दास योग का [illegible] को अपने साहित्य की वस्तु बनाते है। पॉनप योग [illegible] की क्रियात्मक साधना को [illegible] स्वीकारते उनके अनुसार योग को किसी आडम्बर की आवश्यकता नही होती –

धोती कीनी नेती किनी , बौह बिध धोई काया।

कहै पानप ताकि सुध नाहि, इन मन ने जग छकणाया।।[3]

इडा पिगला सुखमना नाडी, येई भगत उपचार।

कहै पानप जो इन कौ साधै, ते जन भौजल पार।।[4]

पॉनप वाणी – ज्ञान के अग को निरणै साखी – 3

2 पॉनप वाणी – ज्ञान के अग को निरणै , साखी – 4

3 पॉनप [illegible] – जोग के अग को निरणै, साखी – 24

4 पॉनप वाणी – [illegible] के अग को निरणै [illegible]

पॉनप के अनुसार योग साधना साधक मन पर अवलम्बित है, उसका आसन मन होता है–

मन मै आसन माड के , अकल कला सग लेह।

ऐसै सुमरै पानपा , साहिब दरसन देह।।[1]

उसकी समाधि मन ही होती है। मन की साधना के आधार पर वह शून्य सरोवर मे सुरति के बल पर रहता है।

सुन सरोवर अतर पानप, जीवतडा नही पावै।

05:43

1902210805341st min...

करना पड़ा होगा यह कौन जानता है।"[4] परन्तु इस दुर्गमपथ को पार करने में दो वस्तुएं उनकी विशेष सहायक हुई जो उन्हें एक सच्चे साधक का रुप दे सकी ये विशेषताएं थीं आत्म–विचार और निजी अनुभव। कबीर ने इन दोनों को ही अपनाया।

जिस समय कबीर ने योग साधना में प्रवेश किया उस समय नाथपंथी हठयौगिक साधना का ही चारों ओर बोलबाला [illegible] । अतः कबीर का ध्यान भी सर्वप्रथम इसी [illegible] की ओर आक[illegible] था। उन्हीं के अनुकरण पर वे [illegible] का महत्व, प्राणायाम, [illegible]डा–पिंगला, सुषुम्ना, घटसोधन, [illegible] पवन साधना, कुण्डलिनी, उत्थापन, चक्रबेधन, ब्रहमारन्ध्र [illegible] गुफा, दशम द्वार, अनाहत नाद, औघट घाट, त्रिकुटि [illegible] आदि के विस्तृत वर्णन करते हैं। उनका विश्वास है कि श्रम [illegible] प्राप्ति के लिए हठयोग साधना परम आवश्यक है –

"जब लग त्रिकुटी संधि न जानै,
ससिहर कै धरि सूर न आनें
जब लग नाभिकवल नहीं सौधे,
तो हीरै हीरा कैसे बैंधे ।।"[5]

किन्तु आगे चलकर उनका यह विश्वास इस रुप मे स्थिर न रह सका। वे मंत्रयोग की और उन्मुख हुए जिसमें [illegible]शव ही उन्हे सच्चे योगी के रुप में ही दिखायी देने ल[illegible] जब हम कबीर के योग चिंतन पर विचार करते हैं तो [illegible] हैं कि पिंड और ब्रहमाण्ड की जिस एकता [illegible] वर्णन कि[illegible] है उसकी सर्वप्रथम चर्चा अथर्ववेद [illegible] है। अथर्ववेद के [illegible] अष्टचक्रा नवद्वारा देवेन्द्र पुरयोध्या ।
तस्याय हिरण्यमयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।"[6]

कबीर का योग चिंतन इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि उसके माध्यम से वे मनुष्य के भीतर की अनंत सभावनाओं को टटोलकर जगाने और सक्रिय करने का भी उपक्रम है। कबीर के लिए कुंडलिनी का जागना प्रकारांतर से मनुष्य की सुषुप्त आंतरिक शक्ति का जागना है। बिना जागे न तो मनुष्य स्वयं को विकसित कर सकता है और न ही समाज अथवा राष्ट्र को । योग हमें जगाकर अपनी शक्तियों के सदुपयोग का मार्ग प्रशस्त करता है।

exness The best pricing on gold. Period.

बंकनाल : वह टेढ़ा रास्ता, जिससे होते हुए सुषम्ना नाड़ी त्रिकुटी के कुछ और आगे बढ़ी हुई होती है ।

बहत्तर कोठे : योग परम्परानुसार शरीर कर रचना में काया के भीतर बहत्तर क्षेत्र वर्तमान है ।

शब्द : साधक को अनहद के रूप में घट के भीतर जो आवाज सुनायी देती है, वह शब्द है । यह परम् तत्व के प्रतीक के रूप में भी स्वीकृत है ।

षट्चक्र : मेरुदण्ड के मध्य में छः कमलों का स्थान है, इसे षट्चक्र कहते हैं, इसके प्रत्येक कमल के दलों की संख्या विभिन्न है, रंग भी एक सदृश्य नहीं है ।

सुरति : जीवात्मा एवं परमात्मा का प्रतीक जो घट में विद्यमान है ।

सूर्य : पिंगला को सूर्य के रूप में भी जाना जाता है यह अमृत को सोख लेती है ।

हंस : सन्तों ने प्रतीकात्मक भाषा में जीवात्मा को हंस कहा है ।

मानसरोवर : यह वह अमृत कुण्ड है, जिसमें स्नान कर सुरति सराबोर हो जाती है ।

निरंजन : सृष्टि के कर्ता, जिन्हें परम ब्रह्म भी कहा गया है । सन्तों ने निरंजन शब्द को मन का वाचक बतलाया है ।

सहज ज्ञान : इसके द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार किया जाता है, वास्तव में यह मन, बुद्धि, चित्त की कल्पना से इतर वस्तु है । महासुख इस अवस्था में पहुंच कर साधक भव बन्धन से मुक्त हो जाता है । इसी अवस्था को महासुख कहा गया है ।

******

12:10

← 13_backmatter

1/7

संत-साहित्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली

अनाहत : अन + आहत, बिना बजाये, बिना डंके की चोट खाये जो ध्वनि सुनायी दे, वह अनाहत है ।

अजपाजाप : साधना की स्थिति में अन्तःक्रिया के माध्यम से नाम का जपा जाना

अमृत : ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल का विकास नीचे की ओर है इसके मध्य स्थित चन्द्राकार विन्दु से एक मन्दस्राव होता है, जिसे अमृत कहते हैं ।

इड़ा : यह योग नाड़ी है, जो मेरुदण्ड में अवस्थित है, इसे चन्द्र नाड़ी या गंगा नदी भी कहते हैं ।

कुन्डलिनी : यह मेरुदण्ड के मूल में स्थित शक्ति है जो सर्पिणी की भाँति साढ़े तीन वलयों में सुप्त रहती है, इसे अन्तः साधना द्वारा प्रबुद्ध किया जाता है ।

कुँआ : सहस्रदल कमल में स्थित चन्द्राकार विन्दु इसे औंधा कुँआ तथा अमृत कूप भी कहते हैं ।

गगन : शरीर के मध्य आकाशवत् अंतराल, इसमें ब्रह्म का प्रकाश दृष्टिगोचरित होता है यहीं अनाहत की ध्वनि सुनाई पड़ती है, इसे शून्य भी कहते हैं ।

त्रिकुटी : भ्रूमध्य में स्थित विन्दु, जहाँ इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों पर सम्मिलन होता है । इसे त्रिवेणी भी कहते हैं ।

दसम दुआर : शरीर में विद्यमान आँख, कान, नाक के दो दो छिद्र, मुख, गुदा एवं लिंग के अतिरिक्त एक ब्रह्मरन्ध्र है, जो गणना में दसवें स्थान पर अवस्थित है, जो शीर्षस्थ है । यहीं से शक्ति की साधना उन्मुख होती है ।

निरति : आत्मा का प्रतिविम्ब निरति है । अत्मा को सुरत या सुरति भी कहते हैं ।

पवन : प्राणायाम के माध्यम से शोधित शरीर की वायु ।

इस प्रकार एक तथ्य यहाँ सामने आया है कि सतो की 'सुरति शब्द योग' की साधना कही--कही योग की क्रियाओ का सहारा भी लेती है। सत राम रूप जी ने निम्नलिखित पद मे इस साधना का खुलासा किया है–

---

19 हरिदास बाणी, पृ. 93, पद--5

20 ग्रथ साहिब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ. 36, दोहा–1

"गगन मण्डल मे अलख जगाव रे।
जब जोगी जानूँ मै तोकूँ, सुन सिखर पर जा मठ छाव रे।
पहले सजम साध जुगत सूँ, प्राण अपसन की सध मिलाव रे।
भूचरी, मुद्रा जासूँ कहिए, कमल कमध पर पव चढाव रे।
चाचरी मुद्रा नैन मझारी, दिष्ट नासिका पै ठहराव रे।
अचरज कौतुक बहु दरसावै, रिद्धि सिद्धि लखि कर ले चाव रे।
खेचरी मुद्रा रसन बढावै, भवर गुफा मै जाय फिराव रे।
अमृत उतरे पीव मगन हो, जोति खुले जहाँ दर्शन पाव रे।
अगोचरी मुद्रा श्रवण बासा, शब्द सुरति की गाँठ लगाव रे।
परम हस अनहद कूँ जानो, अनहद मिल अनहद हो जाव रे।
उन्मनी मुद्रा दशम द्वारे, लगे समाधि सकल बिसराव रे।
सिद्ध साधक दोऊ करनी त्यागे, रहे ना कोई दूँजा भाव रे।
पाँचो मुद्रा ये तुम पहिरो, झूठी मुद्रा खोल बगाव रे।
ज्ञान जटा सिर ऊपर राखो, मुक्ति पथ को मन से धाव रे।
या साधन कूँ कर हित सेती, जीव ब्रह्म की दुई मिटाव रे।
रामरूप चरणदास कहते है, तब जोगेश्वर साँच कहाव रे।[21]

यहाँ सयम धारण करने, प्राणवायु, अपान वायु की सन्धि मिलाने, भूचरी, चाचरी, खेचरी, अगोचरी, उनमनी मुद्राओ का साधन करके सुरति शब्द की गाँठ लगाकर दशम द्वार मे पहुँचने की चर्चा की गई है, साथ ही उपदेश दिया गया है कि झूठी मुद्राओ का त्याग करके ज्ञान की जटा बढाने से ही जीव–ब्रह्म का द्वैत भाव मिटता है। अत यहाँ कुछ हठ योगियो की तथा नाथ योगियो की यौगिक–क्रियाओ के माध्यम से सुरति शब्द योग की चर्चा की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सत सुरत शब्द साधना को योग से समन्वित कर रहे है, जबकि दोनो मे काफी अन्तर परिलक्षित होता है। हमारी दृष्टि मे यौगिक–क्रियाएँ या योग 'सुरत शब्द साधना' की प्रथम सीढी है।

Binance:
Buy Bitcoin & Crypto
JOIN BINANCE
Not investment advice. All trading carries risk. Only risk capital you can afford to lose.

04:38

← Santmat Paribhashika...

इन नाद शब्द के प्राप्त हो जाने पर व्यक्त शब्द और अक्षरमयी सृष्टि क्षीण हो जाती है । जीव परम पद का अधिकारी होता है ।नाद का यदि निरन्तर अभ्यास बना रहे तो सभी प्रकार की वासनाएं बुझ जाती हैं । सहस्र कोटि नाद और शत कोटि बिन्दु ब्रम्हा में विलय हो जाते हैं । साधक समस्त चिन्ताओं से मुक्त होकर प्रभु का हो जाता है।[1] हठयोग प्रदीपिका में स्पष्ट रूप से यह बताया गया है कि योगी को यह नाद विशेष अवस्था में सुनाई पड़ने वाला नाद है ।[2]गोरखनाथ का विश्वास सन्तो की साधना है कि नाद से हो उस ब्रम्ह की प्राप्ति होती है जहां जीव को पूर्ण मुक्ति मिल जाती है ।[3] मूलत. प्रेम की साधना है चाहे वह प्रेम ज्ञान का हो अथवा योग का । सैतों ने इसी काया मे अन्तर्यामी प्रभु

1- स्वाब्दश्चाक्षरे क्षीणे नि शब्द परमं पदम् ।

सदानादा नुसैधानात्संक्षीणा वासना तु या ।।

निरजने विलीयते मनोवायू न संशय:

नादकोटि सहस्राणि बिन्दु कोटि शतानि च ।

सर्वेतत्र लयं यान्ति ब्रम्ह प्रणवनाद के ।

सर्वावस्था विनिर्मुक्त सर्वचिन्ता विवर्जित ।।

—नाद बिन्दु परिषद 49-53आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि प्रकाशक,

सन् 1938 पृ0226——देखिये सैतो का भक्ति योग-डा0राजदेव सिंह,पृ040-41

2- हठयोग प्रदीपिका 4,70

नादहीतो आछै बाबे सबकुछ निधाना ।

नादही ते पाइये परम निधानां।।-गोरखबानी,पृ099

3-नाद लुभे जैसे मिरगाए प्रान तजे वाको धिआनु न जाए ।

ऐसे रामा हरेउ । राम छोड़ि चितु अनत न फेरउ ।।

-सैत काव्य-चतुर्वेदी पृ0 85.

का दर्शन किया था उन्होने परमात्मा को अनेक शब्दों मे भी परिभाषित

शिव संहिता – योग शास्त्र में बताय94/104 कि सुषुम्ना नाड़ी की अन्तिम सीमा ब्रह्म रन्ध्र है तथा यह मेरुदंड के आश्रय से ऊपर उठी हुई है । इसके वाम भाग में रहने वाली इड़ा उस सुषुम्ना के ऊपर आवृत्त से आज्ञा चक्र के दाहिनी ओर से होकर वाम नासापुर में गमन करती है । इड़ा नाड़ी के समान ही पिंगला भी आज्ञा चक्र के बाईं ओर से घूमकर दक्षिण नासापुर को गई है । इस स्थिति में इन नाड़ियों को क्रमशः वरुणा और असी कहा गया है और इन दोनों नदियों के मध्य वाराणसी स्थान है जहाँ साक्षात् शिव विराजमान है । तुलसी साहब जब पिंगला को बाईं ओर एवं इड़ा को दाहिनी ओर फेरने की चर्चा करते हैं तब उनका अभिप्राय इन नाड़ियों का सुषुम्ना ऊपर आवृत्त से आज्ञाचक्र के दाहिनी ओर एवं बाईं ओर से घूम कर नासापुर में जाना ही है ।

तुलसी साहब ने भी ब्रह्मरन्ध्र या शून्य में ही इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना अर्थात् गंगा, यमुना और सरस्वती की अवस्थिति मानी है –

झिलमिलि झरे सुन्न के माहीं । गंगा जमुना सरसुति राही ।।
गंगा यमुना सरसुति सोई । त्रिवेनी संगम है सोई ।।[42]

अन्यत्र इसी विषय की पुनरावृत्ति करते हुये उन्होंने इस संगम स्थान को प्रयाग कहा है –

अगर दार खिरकी पहिचानी । गंगा जमुना सरसुती जानी
सुरति चली अगम रस माती । जहाँ प्रयाग कंज रस राति[43]

एक स्थल पर इन तीन नाड़ियों या नदियों के संगम स्थल को उन्होंने त्रिवेणी स्थान बताया भी है –
गंग जमुन बिच सरसुती, बेनी असनान हो ।[43]

---

42. घट रामायण प्रथम भाग पृ. 22
43. वही. द्वितीय भाग पृ. 95
44. वही. ,, ,, पृ. 176

Lotto Oracle
Google Play
INSTALL

जहां बंदी छोड कबीर गोसांई, नूर झिलमिला तेजं।। ८।।
नो पट्टण पर नादू बाजे, दशमें पट्टन दरिया।
जन दास गरीब कहै रे साधौ, जहां आसन जोग न क्रिया।। ९।। २
औघू सो फल क्यों नहीं खाते।
अमर अगोचर ऐसा फल है, धरतें रसना माते।। टेक।।
नीझर झरै निराशा बासा, उरध मुखी एक कूवा।
बंकनालि रस भाठी सरवै, जिनि जान्या तिनि पीया।। १।।
मन पवन सुरति सहनानी सेझा, वार पार नहीं कोई।
गूंगे की गति गूंगा जांनै, परचे का घर सोई।। २।।
परचा पाया शुन्य समाया, यौह बिरही घर जोगं।
अति ना पैद रहौ रे संतौं, उपति खपति सब रोगं।। ३।।
उनमन रहना भेद न कहना, राते माते नैंना।
चलो अकल सुरगा पुरि डेरा, जहां महबूब सलौंना।। ४।।
ब्रह्म शहर बेगमपुर बासा, अविगत नगर निधाना।
जन दास गरीब कहै रे साधौ, करि सतलोक पियाना।। ५।। ३।।
औघू परम तत्व प्रकाशा।
कोली कष्ट करै खाडी में, ताना बुनैं पियासा।। टेक।।
ब्रह्मलोक में तांना बुनिये, देखो अरश तमाशा।
सूत कपास न पूनी रहसी, निश दिन का मोहि संसा।। १।।
धागा टूटैं पान बिहूँना, कोली दर्द बिसारं।
एक सुरति का सूत हडै, जो देखै तारं तारं।। २।।
नजरि निरंतर जंत्र जाली, कोली नजरि छिपावै।
कोली सूत हडै हरि मुसटा, क्यों कर पूरा पावै।। ३।।
ताना बाना झीना कैसा, गाढ़ा गहर गजीना।
तत्व तेल भरि दीपक जोया, जब कोली रस भीना।। ४।।
ताने बाने से मन लाया, कोली बुननें लागा।
टूटे तार तुरत ले जोरै, बिनशै एक न धागा।। ५।।
धागा टूटे पान बिहूना, अब तो पान समोई।
खाड न छूटै कोली ऊठै, ऐसे बुनता कोई।। ६।।
ज्ञान राछ गलतान भर्‌या, जब नलकी सूत घनेरा।
ताने ही में तन समाया, कोली बौहरि न फेरा।। ७।।
जैसे ताना बुन्या कबीरा, ऐसे बुनि ले भाई।
ताना बुनि तनि नगर पहूँचै, ताने तन समाई।। ८।।
आगै ताना पीछै ताना, ताने वार न पारं।
जन दास गरीब कहै रे साधो, यौह ताना निज सारं।। ९।। ४।।

"भया झरि रस पी मतवारा ।
आठ पहर कुम्भक ही कीते छार किया मन मारा ।
चढ़ा शिखा ऊपर पहुँचि सुखमन घाट उघारा ।
पीवन जो सुधारस का ही, त्रिकुटी मध्य विहारा ।
गंग जमुन बिच पावन मार्यो चमक दमक चमकारा ।
भंवर गुफा में दृढ़ ह्वै बैठे, देख्यो अधिक उजारा ।
चित्त अस्थिर कैसे मन थाका पाँचों का व्यवहारा ।
चरनदास किरपा सूं उनकी भरम करम सो टारा ॥"

उन्होंने त्रिकुटी पर विचरण कर यह अवस्था प्राप्त किया है । यहाँ पर तेजोमय प्रकाश से अपने इष्टदेव के दर्शन किए हैं ।

"त्रिवेणी तट करि विहार । पीवत बैठे अमी धार ॥
कोटि भान सूने सुपेद । काम क्रोधर पायो भेद ॥"

इसके पश्चात् सहजोबाई ऐसी स्थिति पर पहुँचना चाहती है जहाँ पर सुरति और निरति अथवा आत्मा और परमात्मा का भेद नहीं रहता :

"ज्ञान दृष्टि सूं घट में देखो सुरति निरति लौ लावो ।"

जहाँ तक बंध करने का प्रश्न है, यह भी सहजोबाई के साहित्य में उपलब्ध होता है । उनके अनुसार तीनों बंधों के लगाने पर अनाहद सुनाई पड़ने लगता है । मुद्रा सध जाने पर योगी को स्वतः अनाहद सुनाई पड़ने लगता है । यही योगी और योग का परम् लक्ष्य और परम् ध्येय है :

"तीनों बंध लगाय के अनहद सुने टकोर ।
सहजो सुन्न समाध में नाहिं सांझ नहिं भोर ॥"

, सहजावस्था दुर्लभ है ।[1] इससे स्पष्ट है कि निरंजन का साक्षात्कार ही
।[2] स्वामी रामानन्द की धारणा में भी पिण्ड प्राण की रक्षा का समा
न साधना ही है ।[3]

कबीर की दृष्टि में तो यह समस्त संसार निरंजन के अंजन का ही प्रसार है ।
क जगत् में जहाँ कहीं जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह सब निरंजन के अजंन
ा है । निरंजन के अंजन से ही ऊँकार की उत्पत्ति हुई है, अंजन का ही प्रसा
विश्व है । ब्रह्मा,शंकर,इंद्र,गोपी और गोविन्द,वाणी और वेद सभी निरंजन
े निष्पन्न हैं । जगत् का संपूर्ण नानात्व निरंजन का ही प्रसार है । कबीर

उवाच---ओंकार बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिन: ।
तस्मिन्मध्ये स्थितं तत्वं प्रदर्शयति सद् गुरु: ।।
तारकं च भवेद् ब्रह्मा दण्डकं विष्णु रुच्यते ।
कुण्डल्यां हि तथा रुद्रो(अ)र्द्ध चन्द्रे स ईश्वर: ।।
निरंजनस्तदतीत उत्पत्तिस्थिति कारणम् ।
दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्वदर्शनम् ।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरो: करुणां बिना ।।
---कपिल गीता(पद्म पुराणान्तर्गत)

--डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी-----पृ० ५३।५४।

प्राण की रक्षा श्रीनाथ निरंजन करै ।
----रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ----पृ० ३ ।

ता है कि व्यक्ति जबतक अंजन कृत नानात्व में आसक्त रहता है तबतक वह
ाक्षात्कार से वंचित ही रहता है ।[1] उनका तो यह दृढ़ विश्वास है कि व्य-
। नाम,रूप से परे निरंजन के प्रति अपने को सर्वात्म भाव से समर्पित करे तो

06:23
← 09_chapter_5 (4)
64/85

सद्गुरु कबीर ने 'राम' के प्राप्ति और वाद-विवाद की समाप्ति पर बल देते हुए कहा भी है कि -

"तरूवर रूपी राम है, फल रूपी वैराग।
छाया रूपी साधु है, तजिये वाद-विवाद।।"[115]

संत-मत परम्परा के सभी संतो ने आत्मदर्शन का उपाय योग माना है जिसमें इड़ा पिंगला और सुषम्ना की सहायता से चक्र-भेदन की बात कही गई है। नामदेव, कबीर, रैदास और संत बौआ साहब ने भी हठयोग की शब्दावली को आध्यात्मिक साधना के लिए प्रयुक्त माना है -

"ईड़ा, पिंगला, सुष्मना, नारी तीन विचार।
बायें दाहिने मध्य में, लखे जो तीनों धार।।"[116]

"आसन पदुम लगाय के, मूल बन्ध सम साध।
मेरू दण्ड फेरी करे, सुरति गगन में बाँध।।"[117]

"सदा आप में लीन रह, करि के योगाभ्यास।
आवत देखे काल को, गगन मंडल कर बास।।"[118]

योग के सम्बन्ध में संत रैदास ने भी कहा है -

"अैसा ध्यान धरूँ बनवारी, मन पवन दिढ़, सुषमन नारी।
उलटी गंगा जमुन मैं ज्योऊँ, बिन ही जल संयम कै आंऊ।।
व्यंड परे जीव जिस घटि जाता, सबद अतीत अनाहद राता।
सुंनि मंडल मैं तेरा बासा, ताथै जीव में रहु उदासा।।
कहै रैदास निरंजन ध्याऊँ, जिस घटि जाऊँ जब बहुरि न आऊँ।।"[119]

04:28

sant sahitya main yo...

संत चरन दास के शब्दों में कुंडलिनी का परिचय निम्न है -

29. सुषम नाड़िका के छिद्र माहीं । रोकि रही मुख दे रही ताहीं

नाग लपेटे मारी ठाहीं । कुछ इक कही नहिं जाहीं ।। सदा सिमत की आठौ देही । तामें अविद्या जीव सनेही शक्ति नागिनी यही जु कहिये । याके भेद गुरु सों लहिये ।। महाअजगर जागे नाहीं । याते मर तब मर मर जाहीं ।। कोई इक योगी ताहि जगावे । सुषमन माहिं गगन ले जावे ।। ब्रह्म रन्ध्र मे जाय समावे । लगे समाधि बहुत सुख पावे ।। जो कुछ होय सो कहा न जावे । चरन दास गुरुदेव सुनावे ।। शिव शक्ति मे साथ, बस, रहे न द्वितीया भाव ।
कुंडलिनी परबोध का, जो कोई करै उपाय ।।

अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी के निम्न मुख में कुंडलिनी का निवास स्थान है । प्राणायाम के अभ्यास से जागृत होकर यह दिव्य शक्ति सुषुम्ना के सहारे आगे बढ़ती है और विभिन्न चक्रों [सुषुम्ना के अंगों] से होती हुयी कुंडलिनी ब्रह्म रन्ध्र की ओर अग्रसर होती है । कुंडलिनी की गति के साथ साथ मन को भिन्न भिन्न शक्तियाँ प्राप्त होती चलती हैं और सहस्र दल में प्रविष्ट हो जाने के बाद साधक मन और शरीर से पूर्णतया अलग हो जाता है ।

संत चरन दास जी के शब्दों में कुंडलिनी के निवास स्थान एवं शक्तिमत्ता का वर्णन निम्न है -

नाभि स्थान नागिनी रहे, कुंडल मारी आकार ।।
प्राण पियारा वही है, आगे सुनों विचार ।।
कुंभक करि कोई को, देवे शक्ति बताय ।
ऐसे लागी नागफिका, नागन शीश उठाय ।।

त्रिगुणायत ने लिखा है कि "सुरति का 23/31 म और निरति का अर्थ प्रेम वैराग्य है ।"

भाई कान्ह सिंह नाभा ने साधनात्मक दृष्टि से "गुरु शब्द" में जुड़ी हुई वृत्ति को "शब्द-सुरति" कहा है ।[59]

दूसरी ओर संत मत में "शब्द" महत्वपूर्ण अर्थों का द्योतक है । निर्गुणवादी संतों ने इसे स्वीकार किया है । "शब्द" का मनन करना ही "सच्चे भक्त" की "योग-साधना" बतलाया गया है ।

सुरति-शब्द योग में वस्तुत: साधक को अपने ही भीतर निरंतर उठने वाले "अनहदनाद" के साथ "सुरति" को लीन करना होता है । संत गरीबदास जी की वाणी में भी "सुरति शब्द योग" अर्थात् मानसिक साधना से सम्बन्धित विवरण अनेकानेक स्थलों पर उपलब्ध होते हैं ।

साधक को "शब्द" की अनुभूति हेतु चार पदार्थों – सुरति, निरति, मन तथा पवन को एक करना पड़ता है —

"गरीब चार पदार्थ एक करि, सुरति निरति मन पौन ।
असल फकीरी योग यौह, गगन मंडल कुं गौन ।।" [60]

और फिर -

त्रिकुटी कमल परमहंसपूर्ण, सतगुरु समरथ आप है ।
मन पवना संग सिन्धु मेलो, सुरत निरत का जाप है ।।"[61]

57· डॉ० धीरेन्द्र ब्रह्मचारी, संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, पृ० 106·
58· डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० 710·
59· भाई कान्ह सिंह नाभा, (सं०), महान् कोश, पृ० 117·
60· ग्रंथ साहिब, विरह चेतावनी का अंग, पृ० 23·
61· – वही –, अर्थ ब्रह्मवेदी, पृ० 402·

21:36

5_6109176196388361...

वेदान्तों की सी स्थिति प्राप्त करता है ।[1]

मनोमारण के सम्बन्ध में गंगादास का कहना है कि इस पापी मन की गति वायु से भी सौ गुना है । इसको वश में करने का एकमात्र उपाय यह है कि इसे सब विषयों से हटाकर संयम म्यान में डाल देना चाहिए और फिर

----

1. जिसने मन लाया जोग में, समझो सोई नर जोगी है ।
चलती पवन रोक के घर में,
सुरत लगावै दसवें दर में,
मंजन करके त्रिकुटी सर में
इसी जनम महारोग से छुट गए ना फिर रोगी है ।
प्राण अपान कूं फेर कै लावै ।
सुखमना के घर घेर कै लावै ।
मन दुस्मन कूं जेर कै लावै ।
ऊपर हो चन्द्र अमी रस भोग से, जितेन्द्रिय रस भोगी है ।
पूरक में अन्दर लावै है ।
कुम्भक में सोहम पावै है ।
रेचक में गिन दस जावै है ।
पर्णव जप, छुट गए रोग से, फिर कदी नहीं सोगी है ।
षटचक्रों कूं शुद्ध करै है ।
कुण्डलिनी - प्रबुद्ध करै है ।
गंगादास विषय रस भोग से, बन विषया रस भोगी है ।

- निर्गुण पदावली, 837

21:27

जीवबुद्धिका हवन करते हैं। (१४१—१४४)

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥ २९॥

कुछ लोग अपानवायुरूपी अग्निकी ज्वालामें अभ्यासयोगसे प्राणवायुरूपी द्रव्योंका हवन करते हैं। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो प्राणवायुमें अपानवायुकी आहुति देते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो प्राण तथा अपान—इन दोनोंका ही निरोध कर लेते हैं। हे पाण्डुकुँवर! ऐसे योगियोंको प्राणायामी कहते हैं। (१४५-१४६)

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥ ३०॥

कुछ ऐसे लोग भी हैं जो वज्र-योग अर्थात् वज्रासनद्वारा मूलबन्धके पद्धतिसे विषयरूपी आहारोंका नियमन करके धैर्यपूर्वक प्राणवायुरूपी अग्निमें समस्त प्राणोंका ही हवन करते हैं अर्थात् प्राणोंसे ही प्राणका लय करते हैं। इस प्रकारका यज्ञ-साधन करके मनके समस्त मलको निकालकर दूर फेंकनेवाले ये सब यज्ञकर्ता मोक्षकी ही कामना करते हैं। जो लोग अज्ञानको जलाकर केवल सहज आत्मस्वरूप ही बचाये रहते हैं, उनमें फिर अग्नि और यज्ञकर्ताका कोई भेद ही नहीं रहता। फिर ऐसी दशामें यज्ञकर्ताका हेतु पूर्ण हो जाता है; यज्ञकी क्रिया भी समाप्त हो जाती है और कर्मोंके सारे बखेड़े ही समाप्त हो जाते हैं। उस समय विचार और हेतुके प्रवेशकी तनिक भी गुंजाइश नहीं रह जाती और द्वैत भावनाका दोष छू भी नहीं सकता यानी द्वैतभावसे लिम्पायमान नहीं होते। (१४७—१५१)

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥ ३१॥

इस प्रकार यज्ञ-विधानकी समाप्तिमें जो अविनाशी' अनादि तथा निर्दोष ज्ञान मिलता है उसीका ब्रह्मनिष्ठ लोग 'अहं ब्रह्मास्मि' मन्त्रका जप करते हुए सेवन करते हैं। इस प्रकार जो लोग इस यज्ञ-शेषके अमृतसे सन्तुष्ट होकर अमरता प्राप्त करते हैं, वे अनायास ही ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं; किन्तु जिन लोगोंसे कभी इस आत्मसंयमरूपी अग्निकी सेवा नहीं हो सकती और जो लोग जन्म ले करके भी योगरूपी यज्ञ नहीं करते, उन्हें

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

19:24

हैं, वैसे ही यह नासिका भी कफसे भरी रहेगी। ताम्बूलके सेवनसे जिस मुखके होंठोंको मैं रँगता हूँ, हँसते समय जिसमेंके दाँत दिखलाता हूँ और जिससे मैं सुन्दर-सुन्दर शब्दोंको बोलता हूँ, उसी मुखसे कलको लार प्रवाहित होने लगेगा और दाँतोंसमेत दाढ़ें भी गिर जायँगी। जैसे ऋणके

बोझसे दबे हुए किसान अथवा वर्षाके कारण पशु चुपचाप दबे हुए पड़े रहते हैं और हिलनेका नामतक नहीं लेते, वैसे ही लाख प्रयत्न करनेपर भी यह जिह्वा हिल-डुल न सकेगी। जैसे सूखी हुई घासके पूले वायुके झोंकोंसे जमीनपर इधर-उधर उड़ते रहते हैं, ठीक वैसी ही दुर्दशा मुँहके अन्दर स्थित दाढ़ोंकी होगी। जैसे आकाशकी वृष्टिके कारण पहाड़की चोटियोंपरसे जलके झरने बहते रहते हैं, वैसे ही मेरे मुँहकी खिड़कीमेंसे लारकी नदियाँ प्रवाहित होने लगेंगी। वाणी अवरुद्ध हो जायगी, श्रवणेन्द्रियाँ बन्द हो जायँगी और सारा शरीर बूढ़े बन्दरकी भाँति दिखायी देने लगेगा। जैसे घास-फूसका बनाया हुआ और खेतमें खड़ा किया हुआ पुतला हवाके झोंकोंसे अनवरत इधर-उधर हिलता-डुलता रहता है, वैसे ही मेरा यह शरीर भी थर-थर काँपने लगेगा। कदम लड़खड़ायेंगे, हाथ बेकाम हो जायँगे और तब मानो सौन्दर्यका स्वाँग खड़ा होकर नृत्य करने लगेगा। मल और मूत्रके द्वारोंमें निरोधकी शक्ति नहीं रह जायगी और समस्त लोग यही मनाने लगेंगे कि मैं किसी तरह मर जाऊँ जिससे उनका पीछा छूटे। सम्पूर्ण जगत् मेरी ओर देखकर थूकने लगेगा, मृत्युसे बारम्बार कहना पड़ेगा कि तू किसी तरह जल्दीसे आकर मुझे उठा ले जा और मेरे सारे हितैषी भी मुझसे ऊब जायँगे स्त्रियाँ मुझे भूत कहकर पुकारेंगी और बच्चे मुझे देखकर भयभीत होकर भाग खड़े होंगे। इस प्रकार मैं सबके लिये घृणाका पात्र बन जाऊँगा। कफका प्राबल्य होनेपर जब मैं खाँसूँगा, तब पड़ोसियोंकी नींद भंग हो जायगी और वह कहने लगेंगे कि यह बुड्ढा अभी न जाने और कितने लोगोंको सतावेगा। इस प्रकार जो व्यक्ति वृद्धावस्थाके इन लक्षणोंका ध्यान युवावस्थामें ही कर लेता है और तब उन सब लक्षणोंसे अपने मनमें घृणा करने लगता है, वही ज्ञानी है। वह यही सोचता है कि अन्ततः शरीरकी दुर्दशा इसी प्रकारकी होगी तथा शारीरिक भोगोंको भोग चुकनेके बाद इस शरीरका नाश हो जायगा, तब आत्मकल्याणके लिये मेरे पास बच ही क्या जायगा? इसीलिये जबतक

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

साधना करनेमें कोई उपाय नहीं चलता, जो न तो चलता ही है और न हिलता ही है, जो न तो कभी समाप्त होता है और न कभी दूषित ही होता है, उसे जो लोग अपने बलपर प्राप्त कर लेते हैं—(४०—४५)

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥ ४॥

जो वैराग्यरूपी प्रचण्ड अग्निमें विषयसमूहको भस्म कर देते हैं तथा इन्द्रियोंकी तपी हुई स्थितिमें धैर्यपूर्वक नियन्त्रित रखते हैं और फिर इन्द्रियनिग्रहके बलपर जो लोग अपनी इन्द्रियोंको मोड़कर अपने हृदयरूपी गुफामें बन्द कर रखते हैं, अपना द्वार भलीभाँति बन्द करके और ठीक तरह आसनमुद्राका साधन करके मूल बन्धका किला बाँध लेते हैं, जो आशासे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते हैं, भयका अन्त कर डालते हैं तथा अज्ञान-निद्राका अन्धकार हटा करके उसका नाश कर डालते हैं; जो मूल बन्धकी अग्निकी ज्वालाओंसे शरीरस्थ सप्त धातुओंको भस्म कर व्याधियोंके मस्तकपर षट्-चक्रकी तोपें चलाते और स्फुरित होनेवाली कुण्डलिनीकी तेजस्वी दीपक आधार चक्रपर रखकर उसकी प्रभासे मस्तकपर्यन्त अपना पूरा शरीर देदीप्यमान कर लेते हैं और तब इन्द्रियोंके नव द्वारोंपर निग्रहरूपी अर्गला लगाकर केवल सुषुम्ना नाड़ीकी खिड़की खुली रखते हैं। प्राणवायुकी शक्तिरूपी चामुण्डा देवीके लिये संकल्परूपी मेढ़े काटकर मनरूपी महिषासुरके मुण्डका बलिदान करते हैं, जो चन्द्र (इडा) और सूर्य (पिंगला) नाड़ियोंका मिलाप करके नाद-घोषकी सहायतासे सत्रहवीं पूर्णामृत कलाका जल शीघ्रतासे अपने अधीन कर लेते हैं और तब मध्यमा यानी सुषुम्ना नाड़ीके विवररूपी रास्तेसे चलकर अन्तिम

ब्रह्मरन्ध्रतक जा पहुँचते हैं, सिर्फ इतना ही नहीं अपितु जो मकार यानी सुषुम्नाके विवरकी सीढ़ियाँ चढ़कर तथा महदाकाशको बगलमें दबाकर ब्रह्ममें जा मिलते हैं और इस प्रकार समबुद्धि होकर जो लोग तत्क्षण ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्त करनेके लिये योगका दुर्गम मार्ग अपने अधीन कर लेते हैं और जो अपने मनोभावके बदलेमें निर्गुण, निराकार शून्यस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त कर लेते हैं, हे किरीटी! वही लोग आकर मुझमें मिलते हैं। ऐसा नहीं है कि इसके अलावा उन्हें योग-बलसे कुछ और अधिक प्राप्त होता हो। हाँ, यदि कुछ अधिक प्राप्त होता है, तो वह है सिर्फ कष्ट। (४६—५१)

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।

होता है, उसे जो लोग अपने बलपर प्राप्त कर लेते हैं—(४०—४५)

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥ ४॥

जो वैराग्यरूपी प्रचण्ड अग्निमें विषयसमूहको भस्म कर देते हैं तथा इन्द्रियोंकी तपी हुई स्थितिमें धैर्यपूर्वक नियन्त्रित रखते हैं और फिर इन्द्रियनिग्रहके बलपर जो लोग अपनी इन्द्रियोंको मोड़कर अपने हृदयरूपी गुफामें बन्द कर रखते हैं, अपना द्वार भलीभाँति बन्द करके और ठीक तरह आसनमुद्राका साधन करके मूल बन्धका किला बाँध लेते हैं, जो आशासे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते हैं, भयका अन्त कर डालते हैं तथा अज्ञान-निद्राका अन्धकार हटा करके उसका नाश कर डालते हैं; जो मूल बन्धकी अग्निकी ज्वालाओंसे शरीरस्थ सप्त धातुओंको भस्म कर व्याधियोंके मस्तकपर षट्-चक्रकी तोपें चलाते और स्फुरित होनेवाली कुण्डलिनीकी तेजस्वी दीपक आधार चक्रपर रखकर उसकी प्रभासे मस्तकपर्यन्त अपना पूरा शरीर देदीप्यमान कर लेते हैं और तब इन्द्रियोंके नव द्वारोंपर निग्रहरूपी अर्गला लगाकर केवल सुषुम्ना नाड़ीकी खिड़की खुली रखते हैं। प्राणवायुकी शक्तिरूपी चामुण्डा देवीके लिये संकल्परूपी मेढ़े काटकर मनरूपी महिषासुरके मुण्डका बलिदान करते हैं, जो चन्द्र (इडा) और सूर्य (पिंगला) नाड़ियोंका मिलाप करके नाद-घोषकी सहायतासे सत्रहवीं पूर्णामृत कलाका जल शीघ्रतासे अपने अधीन कर लेते हैं और तब मध्यमा यानी सुषुम्ना नाड़ीके विवररूपी रास्तेसे चलकर अन्तिम

ब्रह्मरन्ध्रतक जा पहुँचते हैं, सिर्फ इतना ही नहीं अपितु जो मकार यानी सुषुम्नाके विवरकी सीढ़ियाँ चढ़कर तथा महदाकाशको बगलमें दबाकर ब्रह्ममें जा मिलते हैं और इस प्रकार समबुद्धि होकर जो लोग तत्क्षण ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्त करनेके लिये योगका दुर्गम मार्ग अपने अधीन कर लेते हैं और जो अपने मनोभावके बदलेमें निर्गुण, निराकार शून्यस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त कर लेते हैं, हे किरीटी! वही लोग आकर मुझमें मिलते हैं। ऐसा नहीं है कि इसके अलावा उन्हें योग-बलसे कुछ और अधिक प्राप्त होता हो। हाँ, यदि कुछ अधिक प्राप्त होता है, तो वह है सिर्फ कष्ट। (४६—५९)

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ ५॥

जो उस निराधार तथा अव्यक्त तत्त्वकी बिना भक्तिके ही साधना करना

21:44

लीन हो जाते हैं। उन्हें देश-कालका भी स्मरण नहीं रह जाता और वे मेरे नाम-संकीर्तनमें आत्मसुख प्राप्त करते हैं। उनकी कृष्ण, विष्णु,

हरि और गोविन्दकी अखण्ड-माला निरन्तर चलती रहती है और वे मेरे विषयमें मुक्त अन्तःकरणसे अध्यात्मकी चर्चा करके जी भरकर मेरा गुणगान करते रहते हैं। पर अब इनका अधिक विस्तार क्यों किया जाय! हे पाण्डुकुँवर! वे भक्त इस प्रकार मेरा गुणानुवाद करते हुए चराचरमें विचरण करते रहते हैं। वे बड़े यत्नसे पंच-प्राणों और मनको अच्छी तरहसे दबाकर अपने वशमें रखते हैं। वे भक्त बाहरसे तो यम और नियमके बाड़ लगा देते हैं और भीतर वज्रासनरूपी किला बनाकर प्राणायामरूपी तोपोंसे मोर्चेबन्दी करते हैं। उस समय कुण्डलिनी शक्तिके जाग्रतिके कारण जो प्रकाश होता है, उसमें मन और प्राणवायुकी अनुकूलतासे चन्द्रामृत (सत्रहवीं कला) अर्थात् परिपूर्ण आत्मज्ञानरूपी अमृतके सरोवर खुल जाते हैं। उस समय इन्द्रियाँ एकाग्रताकी परम सीमापर पहुँच जाती हैं, विकारोंकी भाषाका अवसान हो जाता है और समस्त इन्द्रियाँ खिंचकर हृदय-प्रदेशमें बन्द हो जाती हैं। इतनेमें धारणारूपी घुड़सवार दौड़-धूप करके पंचमहाभूतोंको इकट्ठा करते हैं और वे पंचमहाभूत एक जगह इकट्ठा होकर आकाशमें लीन हो जाते हैं तथा संकल्प-विकल्पकी चतुरंगिणी सेना (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार)-का पूर्णरूपसे नाश करते हैं। फिर 'विजय हो गयी', 'विजय हो गयी', यह प्रचण्ड जयघोष होने लगता है और उस जयघोषमें ध्यान-धारणाका डंका बजने लगता है तथा ब्रह्मके साथ ऐक्यका एकछत्र साम्राज्य दृष्टिगोचर होने लगता है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण आत्मानुभवरूपी साम्राज्यमें समाधिरूपी लक्ष्मीका अभिषेक होता है। हे अर्जुन! इस प्रकार मेरा भजन अत्यन्त ही गंभीर और गूढ़ रहस्यसे भरा हुआ है।

जो भक्त मेरा इस प्रकारका भजन करते हैं, वे यह अच्छी तरहसे जान लेते हैं कि जैसे वस्त्रमें एक छोरसे दूसरे छोरतक सिर्फ सूत-ही-सूत रहता है, वैसे ही मैं भी समस्त चराचरमें ओत-प्रोत भरा रहता हूँ। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसमें मेरा निवास न हो। उन्हें इस बातका सम्यक् ज्ञान हो जाता है कि इस संसाररूपी वस्त्रका एक छोर ब्रह्मदेव

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

21:34

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥ २७॥

जो वैराग्यकी शक्तिसे सारे विषयोंको निकाल फेंकते हैं और अपने शरीरमें मनके वृत्तिको एकाग्र कर लेते हैं, वे अपनी दृष्टिको उलटकर उस सन्धि-स्थानपर लगा लेते हैं, जहाँ दोनों भौंहें मिलती हैं और तब दायें और बायें घ्राणेन्द्रियके दोनों छिद्र बन्द करके प्राणवायु और अपानवायुको एकमें मिला लेते हैं तथा उन्हें अपने चित्तके साथ चिदाकाशकी ओर ले जाते हैं। (१५१—१५३)

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥ २८॥

जिस प्रकार गंगा नदी रास्तेमें पड़नेवाले नदी-नालोंसमेत समुद्रमें मिलती है, ठीक उसी प्रकार वे लोग भी परब्रह्मके साथ इस तरह घुल-मिल जाते हैं कि फिर उन्हें पृथक् करनेका सवाल ही नहीं उठता। हे अर्जुन! जब समाधिकी अवस्थामें प्राण और अपानवायुसे चिदाकाशमें मनका लय हो जाता है, तब सारी वासनाओंके विचार स्वतः ही बन्द हो जाते हैं। जिस मनरूपी वस्त्रपर यह संसाररूपी चित्र चित्रित होता है वह इस अवस्थामें विदीर्ण हो जाता है। जैसे सरोवरके सूख जानेपर उसमें पड़नेवाली प्रतिच्छाया स्वतः नष्ट हो जाती है, वैसे ही इस समाधिकी अवस्थामें मनका भी बिलकुल सफाया हो जानेपर अहंभाव आदि वृत्तियोंका फिर भला कहाँ ठिकाना! इसीलिये जिन लोगोंको इस ब्रह्मसुखका अनुभव प्राप्त हो जाता है, वे लोग देहके होते हुए भी ब्रह्मरूप हो जाते हैं। (१५४-१५७)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥ २९॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

मैं अभी यह बतला चुका हूँ कि जो लोग शरीरके रहते हुए भी ब्रह्मत्व-

तक पहुँचे हुए हैं, वे इसी मार्गके अनुयायी हैं अर्थात् इसी मार्गसे यहाँतक आये हैं। वे लोग यम-नियम आदि योग-साधनके दुर्गम पहाड़ोंपर चढ़कर और योगाभ्यासरूपी सागर पार करके इस अवस्थाको प्राप्त होते हैं। वे आत्मसाक्षात्कारकी

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

06:55

अथवा लोभी अपने धनको अपने नेत्रोंसे ओझल नहीं होने देता अथवा जैसे माता अपने इकलौते पुत्रको सदा अपने कलेजेसे लगाये रहती है, अथवा जैसे मधुमक्खीको सदा मधुका लोभ बना रहता है, वैसे ही हे अर्जुन! जो अपने अन्तःकरणका अनवरत खूब जी लगाकर यत्न करता है और उसको इन्द्रियोंके द्वारपर पैर भी नहीं रखने देता, जो इस परिकल्पनासे

सदा भयभीत रहता है कि यदि मेरे इस बालकका नाम भी कामरूपी हउवेके श्रवणेन्द्रियमें प्रवेश कर जायगा अथवा आशारूपी डाकिनीकी नजर इसे लग जायगी तो इसकी जान ही निकल जायगी अथवा जैसे अपनी व्यभिचारिणी स्त्रीको जबरदस्त पति सदा अपने अंकुशमें रखता है, वैसे ही जो अपनी प्रवृत्तियोंको अपने अधीन रखता है, जो उस समय भी अपनी इन्द्रियोंको अच्छी तरह निग्रहमें रखता है, जिस समय सजीव देह अत्यन्त कृश हो जाता है और प्राण जानेकी नौबत आ जाती है, जो अपने मनके प्रमुख द्वारपर अथवा वृत्तिके पहरेपर अपने शरीररूपी दुर्गमें शम-दमको निरन्तर पहरेदारोंकी भाँति नियुक्त और जाग्रत् रखता है, जो मूलाधार, मणिपूर या नाभिस्थान और विशुद्ध या कण्ठस्थानके तीन चक्रोंमें वज्र, उड्डीयान और जालन्धर नामक तीनों बन्धोंकी गस्त बैठाकर अपने चित्तको इडा और पिंगला—इन दोनों नाड़ियोंकी सन्धिमें प्रविष्ट करता है, समाधिकी शय्यापर अपने ध्यानको अच्छी तरह सुलाये रखता है और जिसका चित्त चैतन्यके साथ एकाकार होकर सदा उसीमें रमण करता रहता है, उसके बारेमें तुम यह अच्छी तरह जान लो कि उसने अपने अन्तःकरणका पूर्णतया निग्रह कर लिया है। अन्तःकरणका इस प्रकारका निग्रह मानो ज्ञानकी विजय ही है। जिस व्यक्तिकी आज्ञा उसका अन्तःकरण सम्मानपूर्वक शिरोधार्य करता है, उस व्यक्तिको मूर्तिमान् ज्ञान ही जानना चाहिये। (१८४—५११)

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

जिस व्यक्तिके मनमें विषयोंके प्रति पूर्ण विरक्ति बनी रहती है, वही ज्ञानी होता है। जैसे वमन किये हुए अन्नको देखकर किसीकी जिह्वासे लार नहीं टपकती अथवा जैसे किसी मृतकको गले लगानेके लिये कोई उद्यत नहीं होता; विषको जैसे कोई नहीं खाता अथवा जलते हुए घरमें कोई प्रवेश नहीं करता, व्याघ्रकी गुफामें कोई अपना डेरा नहीं डालता, अथवा गले हुए लोहेके खौलते हुए रसमें कोई नहीं कूदता, तथा अजगरको तकिया बनाकर कोई उसपर नहीं सोता, वैसे ही विषयकी चर्चाएँ जिसे

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

छठे अध्याय में जालंधर बन्धका भी वर्णन आया है । फिर दबाकर नीचे बैठ जाता है और ठोडी नली के नीचेवाले गड्ढे में बैठ जाती है और फिर अच्छी तरह छाती के साथ सट जाता है ।[307] इससे कंठनाली भी उसी में मिलकर बंद जाती है । इसी प्रकार के बंध को " जालंधर बंध " कहते हैं ।[308] नाभि ऊपर उठ जाती है और पेट अन्दर खींच जाता है, परन्तु हृदयकोश प्रफुल्लित हो जाता है ।[309] इस प्रकार लिंगमूल के ऊपर और नाभिस्थान के नीचे जो बन्ध होता है उसे उड्डियान बंध " कहते हैं ।[310] दोनों बंधों का वर्णन भी हठयोगप्रदी-पिका में किये वर्णन से मिलता जुलता है ।[311]

तेरहवें अध्याय में इन बंधों के स्थान बताये हैं । आधार चक्र में मूलबंध, नाभि में मणिपूरचक्र के स्थानपर उड्डियान बंध और कंठ में विशुद्धचक्र के स्थानपर जालंधर बंध होता है ।[312] अन्यत्र ज्ञानेश्वरी अ. ४।१२७, १४७, अ. ८।४९-५० में तीन मुद्राओं का उल्लेख आया है ।

---

३०७ मग कंठनाळ आटे । हनुवटी हडौती दाटे ।
तै गाढी होवोनि नेहटे । वक्षःस्थळी ।। ज्ञा. अ. ६।२०७

३०८ नाभि वेटिका ढोपे । वरी अंगु वो आरोपे ।
तो जालंधरु म्हणिपे । पेंडुबंधु ।। ज्ञा. अ. ६।२०८

३०९ नाभी वरी पोटे । उदर हें पोटे ।
अंतरीं फाकों हृदयकोशु ।। ज्ञा. अ. ६।२०९

३१० स्वाधिष्ठानावरिचिले कांठी । नाभिस्थानातळवटीं ।
बंधु पडे किरीटी । ओढियाणा तो ।। ज्ञा. अ. ६।२१०

३११ जालंधर — हठयोग प्रदीपिका
३।७०,७१,७२ उड्डियान - ह. यो. प्र. ३।५५-६०

३१२ आधारीं नाभी कंठीं । बंधत्रयाची घरटीं ।
कंडूवीकुंडुटीं । दुये पिए ।। ज्ञा. अ. १३।७०८ ।

21:49

जाता है; पर उसके द्वारा ये समस्त बातें इसी कारण होती हैं कि वह योगाभ्यासको अपनी और सब बातोंसे आगे रखता और महत्त्व देता है।

हे धनंजय! मलद्वार तथा मूत्रद्वारके बीचवाली सीवनको एड़ीसे भलीभाँति दबाकर वह मूलबन्ध बाँधता है। वह अधोभागको संकुचित करके तथा मलस्थानके मूलबन्ध नाभिचक्रके उड्डियान-बन्ध तथा कण्ठस्थानके जालन्धर-बन्ध—इन तीनोंकी साधना करके भिन्न-भिन्न वायुओंको एक समान कर लेता है। फिर कुंडलिनीको जागृत कर तथा मध्यमा यानी सुषुम्नाका मार्ग खुला और विस्तृत करके तथा आधारचक्रसे अग्निचक्रपर्यन्त समस्त चक्रोंको भेदकर अन्तवाले सातवें चक्रका भेदन करता है जिससे ब्रह्मरन्ध्रके सहस्रदल कमलसे अमृत-वृष्टि होने लगती है और उसका प्रवाह मलस्थानके मूल-बन्धतक पहुँचा देता है। फिर ब्रह्मरन्ध्ररूपी कैलाशगिरिपर नृत्य करनेवाले चैतन्यरूपी भैरवके खप्परमें मन तथा प्राणवायुकी खिचड़ी भर देता है और इस प्रकार सिद्ध किये हुए योगकी बलिष्ठ सेना अपने आगेकी ओर खड़ा कर तथा पीछेकी ओर अपने ध्यानका दुर्ग खूब मजबूत करता है। ध्यान तथा योग—इन दोनोंको आत्मतत्त्वरूपी ज्ञानमें निर्विघ्नतापूर्वक स्थिर रखनेके लिये वह पहलेसे ही वैराग्य-सदृश मित्रके संग मित्रता स्थापित कर लेता है। ऊपर जितने स्थान बताये गये हैं, उन स्थानोंको पार करनेमें यह वैराग्य-सरीखा मित्र उसका बहुत सहयोग करता है तथा बराबर उसके साथ ही रहता है। जितनी जगहतक दृष्टिकी पहुँच है, उतनी जगहतक यदि दृष्टि तथा दीपकका वियोग न हो तो फिर इष्ट वस्तुके दिखायी देनेमें भला किस चीजका विलम्ब हो सकता है? ठीक इसी प्रकार जिस समय जीवको मुमुक्षता मिल जाती है, उस समय उसकी अन्तःकरण-वृत्ति ब्रह्मतत्त्वमें समा जाती है और यदि उस स्थितितक उसका वैराग्य कायम रहे, तो फिर ब्रह्मके संग होनेवाली उसकी एकता कहाँसे भंग हो सकती है? आशय यह है कि जिस सौभाग्यशाली व्यक्तिसे वैराग्ययुक्त योगाभ्यास सध जाता है, वही व्यक्ति आत्मप्राप्तिके योग्य हो जाता है। वैराग्यरूपी अभेद्य कवच धारण कर वह राजयोगरूपी अश्वपर सवारी करता है तथा मार्गमें जो छोटे-बड़े विघ्न उसे दृष्टिगत होते हैं, उनके टुकड़े करनेवाले ध्यानरूपी तीक्ष्ण धारवाली तलवार वह अपने विवेकरूपी

मुट्ठीमें कसकर पकड़ लेता है। इस प्रकार जैसे ...

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

07:01

है। वह तो केवल केशोंके गाँठके कारण ही विदीर्ण-सी प्रतीत होती है और इसीलिये उस गाँठके हटते ही वह फिर अखण्ड दृष्टिगत होती है। इसी प्रकार जब अधिभूत इत्यादिका अहंभाव समाप्त हो जाता है, तब परब्रह्मके साथ उसका वह मूलवाला ऐक्य पूर्वकी ही भाँति बना रहता है। जिसमें यह ऐक्य विद्यमान होता है, वही अधियज्ञ मैं हूँ।

हे पार्थ! अपने चित्तमें यही भाव रखकर मैंने पहले तुम्हें यह बतलाया है कि कर्मोंसे ही समस्त यज्ञ उत्पन्न होते हैं। सारे जीवोंके विश्रान्तिका यह निष्काम ब्रह्म-सुखका गुप्त भाण्डार मैंने आज तुम्हारे सामने खोलकर रख दिया है। सर्वप्रथम वैराग्यरूपी ईंधन लगाकर इन्द्रियरूपी अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिये और तब उसी प्रज्वलित अग्निमें शब्दादि विषयरूपी द्रव्योंका हवन करना चाहिये। फिर वज्रासनरूपी पृथ्वीका शोधन करके इस शरीररूपी मण्डपमें मूलबन्धकी मुद्रारूपी यज्ञवेदी बनानी चाहिये। इस प्रकारकी सिद्धि प्राप्त हो जानेपर इन्द्रिय-निग्रहरूपी अग्निकुण्डमें योगरूपी मन्त्रका घोष करते हुए यथोचित अनुपातमें इन्द्रियरूपी द्रव्योंको समर्पित करना चाहिये,

फिर मन और प्राणवायुके निग्रहको ही इस यज्ञ-विधानका शुभारम्भ मानकर निर्मल ज्ञानरूपी अग्निको सन्तुष्ट करना चाहिये। जिस समय इस प्रकार ज्ञानाग्निमें सर्वस्व समर्पित कर दिया जाता है, उस समय वह ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञेय वस्तुओंमें विलीन हो जाता है और तब केवल ज्ञेयवाले स्वरूपमें ही सर्वत्र अवशिष्ट रह जाता है। इस ज्ञेयको ही अधियज्ञ नामसे पुकारते हैं।" इस प्रकार सर्वज्ञ श्रीकृष्णने जो-जो बातें अर्जुनको बतलायीं, वे सब-की-सब बातें शीघ्र ही बुद्धिमान् अर्जुनके समझमें आ गयीं। यह जानकर देवने कहा—"हे पार्थ! तुम ठीक तरहसे मेरी बातें सुन रहे हो न?" श्रीकृष्णके इन शब्दोंको सुनकर अर्जुनने स्वयंको कृतकृत्य माना। बालककी सन्तुष्टि देखकर माता भी सन्तुष्ट होती है और शिष्यका समाधान देखकर गुरुका भी समाधान होता है; और इस चीजका ठीक-ठीक अनुभव उस माता अथवा उस गुरुको ही हो सकता है; किसी अन्यको नहीं। यही कारण है कि अर्जुनके शरीरमें सात्त्विक भावोंकी लहर उठनेसे पहले ही श्रीकृष्णके शरीरमें सात्त्विक भावोंकी इतनी प्रबल लहर उठी कि वह रोके नहीं रुकती थी। परन्तु फिर भी देवने जान-बूझकर उसका निग्रह किया और फिर उन्होंने पूर्णताको प्राप्त परिमलके सदृश अथवा अमृतकी शीतल तरंगोंकी तरह कोमल और सरस वचन कहना आरम्भ किया। भगवान्ने कहा—"हे श्रोता-शिरोमणि, तात धनंजय! सुनो। जिस समय एक बार माया इस प्रकार जलने लगती है, उस समय उसे जलानेवाला ज्ञान भी जलकर भस्म हो जाता है। (३०—५८)

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

06:58

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति॥ २५॥

जो अहर्निश योग-यज्ञ करते रहते हैं और गुरुके उपदेशोंकी मन्त्ररूपी अग्निमें मनसहित अविद्याकी आहुति देते रहते हैं, वे योगरूप अग्निको ग्रहण किये हुए अग्निहोत्री जो यज्ञ करते हैं, उसे दैवयज्ञ कहते हैं। हे अर्जुन! उसमें आत्मसुखकी इच्छा रहती है। जिसका पालन प्रारब्ध-कर्मके अनुसार होता है, उस शरीरके पोषणकी चिन्ता जो नहीं करता, उसे दैवयज्ञरूप योगसे महायोगी ही जानो। अब मैं तुम्हें यज्ञके कुछ और प्रकार भी बतलाता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो। जो ब्रह्माग्निसे अग्निहोत्र करते हैं, वे उस यज्ञसे ही यज्ञ-विधि करते हैं। (१२३—१२६)

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥ २६॥

धारणा, ध्यान, समाधिरूप संयम, यही कोई अग्निहोत्र करनेवाले कित्येक मूलबंधादिक तीन बंधरूप मंत्रद्वारा, इन्द्रियरूपी पवित्र द्रव्यसे यज्ञ करते हैं। दूसरे कित्येक वैराग्यरूप सूर्यके उदय होनेके साथ संयमरूप कुण्डकी अर्थात् यज्ञवेदीकी रचना करते हैं फिर उस कुण्डमें इन्द्रियरूप अग्नि प्रकट होता है। जिस समय वैराग्यरूपी ज्वाला प्रज्वलित हो जाती है, उस समय उसमें विकाररूपी ईंधन जलने लगते हैं और अन्तःकरण पंचकरूपी पंच-कुण्डोंको छोड़कर आशारूपी धूम्र बाहर निकल जाता है, जिससे वे कुण्ड स्वच्छ हो जाते हैं। तब इस प्रकारके लोग '**अहं ब्रह्मास्मि**' को उच्चारण करते हुए अन्तःकरणके कुण्डमें इन्द्रियरूपी अग्निके मुखमें विषयोंकी आहुति देते हैं। (१२७—१३०)

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥ २७॥

हे पार्थ! कुछ ऐसे लोग भी हैं जो इसी प्रकार संयमका अग्निहोत्र करके पापोंसे सर्वथा शुद्ध हो गये हैं अर्थात् इस प्रकार कई एक अपने सब दोषोंका प्रक्षालन करते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो हृदयरूपी अरणीका घर्षण कर अग्नि उत्पन्न करनेके लिये विवेकको मथानी बनाते हैं। वे मथानीको शांतिसे सुदृढ़ पकड़ लेते हैं और ऊपरसे सात्त्विक धैर्यके साथ मजबूतीसे पकड़कर गुरु-उपदेशरूपी डोरीसे जोरसे मंथन करते हैं। इस प्रकार अनवरत भलीभाँति मंथन करते रहनेपर तत्काल ही उसका फल भी प्राप्त हो जाता है; क्योंकि ज्ञानाग्नि प्रकट हो जाती है। पर इस ज्ञानरूपी अग्निके प्रज्वलित होनेसे पूर्व जो थोड़ा-सा धुआँ निकलता है, वही ऋद्धि-सिद्धियोंका मोह है। यह धुआँ जब अति शीघ्र ही निकल जाता है, तब पहले ज्ञानरूपी

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

06:57

कुछ लोग अपानवायुरूपी अग्निकी ज्वालामें अभ्यासयोगसे प्राणवायुरूपी द्रव्योंका हवन करते हैं। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो प्राणवायुमें अपानवायुकी आहुति देते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो प्राण तथा अपान—इन दोनोंका ही निरोध कर लेते हैं। हे पाण्डुकुँवर! ऐसे योगियोंको प्राणायामी कहते हैं। (१४५-१४६)

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥ ३०॥

कुछ ऐसे लोग भी हैं जो वज्र-योग अर्थात् वज्रासनद्वारा मूलबन्धके पद्धतिसे विषयरूपी आहारोंका नियमन करके धैर्यपूर्वक प्राणवायुरूपी अग्निमें समस्त प्राणोंका ही हवन करते हैं अर्थात् प्राणोंसे ही प्राणका लय करते हैं। इस प्रकारका यज्ञ-साधन करके मनके समस्त मलको निकालकर दूर फेंकनेवाले ये सब यज्ञकर्ता मोक्षकी ही कामना करते हैं। जो लोग अज्ञानको जलाकर केवल सहज आत्मस्वरूप ही बचाये रहते हैं, उनमें फिर अग्नि और यज्ञकर्ताका कोई भेद ही नहीं रहता। फिर ऐसी दशामें यज्ञकर्ताका हेतु पूर्ण हो जाता है; यज्ञकी क्रिया भी समाप्त हो जाती है और कर्मोंके सारे बखेड़े ही समाप्त हो जाते हैं। उस समय विचार और हेतुके प्रवेशकी तनिक भी गुंजाइश नहीं रह जाती और द्वैत भावनाका दोष छू भी नहीं सकता यानी द्वैतभावसे लिम्पायमान नहीं होते। (१४७—१५१)

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥ ३१॥

इस प्रकार यज्ञ-विधानकी समाप्तिमें जो अविनाशी' अनादि तथा निर्दोष ज्ञान मिलता है उसीका ब्रह्मनिष्ठ लोग 'अहं ब्रह्मास्मि' मन्त्रका जप करते हुए सेवन करते हैं। इस प्रकार जो लोग इस यज्ञ-शेषके अमृतसे सन्तुष्ट होकर अमरता प्राप्त करते हैं, वे अनायास ही ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं; किन्तु जिन लोगोंसे कभी इस आत्मसंयमरूपी अग्निकी सेवा नहीं हो सकती और जो लोग जन्म ले करके भी योगरूपी यज्ञ नहीं करते, उन्हें

विरक्ति कभी भी जयमाल नहीं डालती। जो लोग लौकिक क्रियाओंको ठीक तरहसे न कर सकते हों, अर्थात् जिनका इहलोकमें ही भाग्य ठीक नहीं है; उनके विषयमें पारलौकिक सुखकी तो बात ही क्या की जाय? हे पाण्डुकुँवर! ऐसे लोगोंकी तो बात ही छोड़ो। (१५२—१५५)

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

सकता, जो कल्पनातीत है, जो दिनमें चर्मचक्षुओं (स्थूल दृष्टि)-के लिये वैसे ही अन्धकारके सदृश अगोचर रहता है, जैसे दीपक अग्निके अन्दर

पहुँच नहीं सकता अथवा जैसे तेजमें अन्धकार प्रविष्ट नहीं हो सकता, जो पूर्णरूपसे निर्मल किये हुए सूर्य-रश्मियोंका पुंज है, जो ज्ञानिजनोंके लिये नित्य उदित होनेवाले सूर्यके सदृश है और जिसके लिये लक्षणसे भी अस्तमान शब्दका प्रयोग नहीं किया जा सकता, (८६—९०)

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥ १०॥

उस परिपूर्ण ब्रह्मको जो मृत्युके समय शान्तचित्तसे ज्ञानपूर्वक स्मरण करता है, जो इस बाह्यशरीरसे पद्मासन लगाकर उत्तराभिमुख बैठता है, जो कर्मयोगका शाश्वत सुख पूरी तरहसे स्वयंमें भरकर भीतर-ही-भीतर एकत्रित मनकी शक्तिसे और ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्तिके प्रेमसे अतिशीघ्र आत्मस्वरूप पानेके लिये सिद्ध किये हुए योगके सहयोगसे, सुषुम्नाके बीच-वाले मार्गसे, जब अग्निचक्रसे ब्रह्मरन्ध्रकी ओर जाने लगता है और जब प्राणवायु महदाकाशमें संचरण करने लगता है, तब शरीरादिका और चित्तका संयोग जिसे अत्यन्त तुच्छ और ऊपरी दृष्टिगत होता है,पर जो मनकी शान्तिसे सँभला रहता है, भक्तिकी भावनासे परिपूर्ण रहता है और योगबलसे भलीभाँति सिद्ध हुआ रहता है, वही जड़ (अचेतन) और अजड़का (चेतन) लय करता है और भौंहोंके बीचमें घूमता रहता है। जैसे घण्टा-नादका लय घण्टेमें ही हो जाता है अथवा जैसे घटके नीचे दबाकर रखे हुए दीपकके विषयमें किसीको यह मालूम ही नहीं पड़ता कि वह कब बुझ गया, वैसे ही हे पाण्डव! जो इस प्रकारकी शान्त अवस्थामें यह देह त्याग देता है, वही पूर्ण परब्रह्म होता है। परम पुरुष नामका जो मेरा स्वयंसिद्ध तेजस्वरूप है, ठीक वही स्वरूप होकर वह रहता है। (९१—९९)

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये॥ ११॥

जो सर्वोत्तम ज्ञान सब प्रकारके ज्ञानोंका अन्त और चरम सीमा है, उसी सर्वोत्तम ज्ञानकी खान ज्ञानिजनोंकी बुद्धिने जिसे 'अक्षर' नामसे पुकारा है और जो प्रचण्ड वायु-वेगसे भी कभी उड़ नहीं सकता, वही वास्तविक

07:20

बनी हुई इस देहकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती है और अगली-पिछली सारी यादें चली जाती हैं। इसीलिये जैसे खजाना दृष्टिगत होनेसे पूर्व ही हाथका दीपक बुझ जाय, वैसे ही पूर्वकृत योगाभ्यास मृत्यु आनेसे पूर्व ही नष्ट हो जाता है। कहनेका आशय यह है कि ज्ञानका मूलाधार शरीरके अन्दरकी अग्नि या उष्णता ही है और मृत्युके समय इस शरीरमें स्थित अग्निके भरपूर बलकी जरूरत होती है। (२०४—२१९)

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥ २४॥

उस समय शरीरके भीतर तो अग्निकी ज्योतिका प्रकाश रहना चाहिये तथा बाहर शुक्लपक्ष, दिन और उत्तरायणके छः महीनोंमेंसे कोई महीना होना चाहिये; और इस प्रकार समस्त सुयोग मिलने चाहिये। ऐसे सुयोगमें जो ब्रह्मविद् शरीरका परित्याग करते हैं, वे ब्रह्मस्वरूपमें मिल जाते हैं। हे धनुर्धर! याद रखो, इस योगकी इतनी अधिक महत्ता है और यही मोक्षतक पहुँचनेका सुगम मार्ग है। इस मार्गका प्रथम सोपान शरीरके अन्दर स्थित अग्नि, द्वितीय सोपान उस अग्निकी ज्योति, तृतीय सोपान दिनका समय, चतुर्थ सोपान शुक्लपक्ष और फिर पंचम सोपान उत्तरायणके छः मासोंमेंसे कोई एक मास है। इसी पंच सोपानवाले मार्गसे ही योगी लोग सायुज्य सिद्धिसदनमें पहुँचते हैं। इसीलिये इन्हें शरीरके विसर्जनका उत्तम काल जानो! इसीको अर्चिरादि अर्थात् सूर्यकी किरणोंवाला मार्ग भी कहते हैं। अब मैं तुम्हें शरीर छोड़नेके लिये अयोग्य समय कौन-सा है, इसके विषयमें भी बतला देता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। (२२०—२२५)

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासादक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते॥ २५॥

मृत्युके समय वात और कफकी अधिकतासे अन्तःकरणमें अन्धकार भर जाता है, समस्त इन्द्रियाँ काष्ठवत् जड़ हो जाती हैं, स्मृति भ्रममें डूब जाती है, मनमें पागलपन सवार हो जाता है और प्राण घुटने लगते हैं। शरीरके अन्दर विद्यमान अग्निका तेज नष्ट हो जाता है और चतुर्दिक्

धूम्र-ही-धूम्र फैल जाता है जिससे शरीरकी चेतना विलुप्त हो जाती है। जैसे चन्द्रमाके समक्ष सजल घनघोर बादल आ जानेपर न तो पूर्ण अँधेरा ही रहता है और न ही पूर्ण उजाला, अपितु कुछ-कुछ धुँधला-सा प्रकाश रहता है, वैसे ही उस समय जीवमें एक ऐसी स्तब्धता-सी आ जाती है जिसमें वह मरा हुआ भी नहीं होता और न होशमें ही रहता है; और उसका जीवन मृत्युके कगारपर पहुँचकर रुक-सा जाता है। इस प्रकार

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

07:13

है और उसे कोई सहन नहीं कर सकता अथवा पतिव्रताके लिये जैसे वैधव्यका आमन्त्रण अत्यन्त कष्टकारक और असह्य होता है अथवा जैसे किसी रूपवान् व्यक्तिके देहमें कुष्ठ होनेपर अथवा किसी सम्मानित व्यक्तिपर व्यर्थ ही कोई लांछन लगनेपर मारे लज्जाके उसके प्राण संकटमें आ जाते हैं, वैसे ही इस साढ़े तीन हाथके देहमें आबद्ध होकर प्रेत-जैसा जीना और पुनः-पुनः जन्म धारण करना और मृत्युका शिकार होना तथा गर्भाशयके विवरके साँचेमें रक्त, मूत्र और रसका पुतला बनकर रहना उसके लिये अत्यन्त लज्जास्पद होता है। आशय यह कि शरीरके बन्धनमें पड़कर नाम-रूपात्मक होनेसे बढ़कर लज्जाजनक और कोई बात उसके लिये हो ही नहीं सकती। ऐसे देहके प्रति जो घृणा उत्पन्न होती है,

उसीको लज्जा कहते हैं। परन्तु यह लज्जा सिर्फ साधुओंको ही जान पड़ती है, निर्लज्जोंको तो यह देह अत्यन्त प्रिय लगता है। अब मैं 'अचापल्य' गुणकी व्याख्या करता हूँ। जैसे कठपुतलियोंको नचानेवाली डोरीके टूट जानेसे उनका हिलना-डुलना इत्यादि बन्द हो जाता है, वैसे ही योगका साधन करनेसे कर्मेन्द्रियोंकी गति बन्द हो जाती है अथवा जैसे सूर्यास्त होनेपर उसकी रश्मियोंका जाल भी छिप जाता है, वैसे ही मनोनिग्रह करनेसे इन्द्रियाँ भी पूर्णतया दब जाती हैं। इस प्रकार मन और प्राणका नियमन तथा योगका साधन करनेसे दसों इन्द्रियाँ अक्षम हो जाती हैं; इसी अवस्थाको 'अचापल्य' नामसे पुकारते हैं। (१४४—१८५)

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥ ३॥

यदि ईश्वर-प्राप्तिके लिये ज्ञानके मार्गमें कदम रखते समय मनमें दृढ़ निश्चय हो गया हो तो फिर धैर्यकी कमी नहीं होती। एक तो मृत्यु वैसे ही भयंकर होती है, तिसपर अग्निमें जलकर मरना तो और भी अधिक भयंकर होता है। लेकिन इतना होनेपर भी पतिव्रता उसपर जलकर मरनेकी भी परवाह नहीं करती। ठीक इसी प्रकार आत्मप्राप्तिकी अग्निसे विषयरूपी विषको जीव भस्मकर निकाल डालता है और तब शून्यकी ओर जानेवाले योग-साधनके विकट मार्गपर जल्दी आगे बढ़ने लगता है। फिर किसी प्रकारका निषेध उसके मार्गमें बाधक नहीं होता। वह न तो विधिको ही मानता है और न तो महासिद्धियोंके मोहपाशमें ही पड़ता है। इस प्रकार अपनी आन्तरिक प्रेरणासे ईश्वरकी ओर बढ़नेको 'आध्यात्मिक तेज' कहते हैं। यदि व्यक्तिमें इस प्रकारका अहंकार न हो कि समस्त धैर्यशालियोंमें एकमात्र मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ, तो इसीको 'क्षमा' जानना चाहिये। देहपर सहस्रों रोम होते हैं, पर उनका भार सहन करनेपर भी देहको कभी उनका

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

प्रारम्भिकी

'सरभंग'-संतों के संबंध में मुझे जो सर्वप्रथम जिज्ञासा हुई, उसकी प्रेरणा चंपारन के बेंगरी ग्राम-निवासी श्रीगणेश चौबे से मिली। जब मैं बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित ग्रन्थ-अनुशीलन-विभाग का निर्देशन कर रहा था, तब चौबेजी के सहयोग से चंपारन के सरभंग संतों की 'बानियों' के अनेक हस्तलिखित संकलन प्राप्त हुए। कुछ मुद्रित पोथियाँ भी उपलब्ध हुईं। आश्चर्य है कि जिस संप्रदाय का बिहार-राज्य में व्यापक रूप से प्रचार है, और 'अघोर-सम्प्रदाय' के रूप में जो समस्त भारत में फैला हुआ है एवं जिसका प्रचुर साहित्य विद्यमान है, उसके संबंध में जानकारी का अभाव भी उतना ही व्यापक और विपुल है। पिछले सात वर्षों में मुझे तीन-चार बार चम्पारन के कुछ स्थानों के परिभ्रमण का अवसर प्राप्त हुआ और जब-जब ऐसा सुयोग मिला, मैंने अपने अनुसन्धेय विषय के संबंध में परिचय प्राप्त करने की चेष्टा की। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के तत्त्वावधान में हस्तलिखित ग्रन्थों के स्थायी अनुसंधायक श्रीरामनारायण शास्त्री ने जिस निष्ठा तथा तल्लीनता के साथ सहयोग दिया और मूल सामग्री एकत्र करने की चेष्टा की, वह प्रशंसनीय है। श्रीनारायण शास्त्री ने भी कुछ दिनों तक सरभंग-सम्प्रदाय-संबंधी साहित्य तथा सूचनाओं का संकलन किया। श्रीराजेन्द्रप्रसाद तिवारी ने अनेक अस्पष्ट तथा दुर्लिखित पोथियों की स्पष्ट पांडुलिपि की। श्रीशीतलप्रसाद, श्रीनागेश्वरप्रसादसिंह, प्रो० श्रीगोपीकृष्णप्रसाद, श्रीश्यामसुन्दरसहाय तथा श्रीसुशीलकुमार सिन्हा ने भाषणमाला को अंतिम रूप देने और स्वच्छ पांडुलिपि तैयार करने में सहायता दी। भौरी (सारन) मठ के बाबा सुखदेवदास, बारा-गोविन्द (चंपारन) मठ के बाबा बैजूदास 'देव', बरजी (मुजफ्फरपुर) के श्रीराजेन्द्रदेव, श्रीतारकेश्वरप्रसाद तथा श्रीविजयेन्द्रकिशोर शर्मा (मोतिहारी), श्रीठाकुर चूरनसिंह चौहान (खगड़िया) आदि ने सामग्री तथा सूचना-संकलन में सहयोग दिया।

असम (आसाम) की यात्रा में जिन विद्वानों और साधकों से सहानुभूति, सौहार्द एवं सत्परामर्श की प्राप्ति हुई, उनमें उल्लेखनीय हैं—श्रीजीवेश शर्मा, श्रीविपिनचन्द्र गोस्वामी, श्रीरमणीकान्त शर्मा, श्रीत्रिपुरानाथ स्मृतितीर्थ, श्रीजितेन चौधरी, श्रीनिर्मलकुमार महन्त आदि। पटना विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के प्राध्यापक तथा मेरे भूतपूर्व अन्तेवासी श्रीरामबुझावन-सिंह ने सामग्री-संकलन, विचार-विनिमय तथा श्रुतिलिपि-लेखन में बहुमूल्य सहयोग प्रदान किया। मैं इन सभी सज्जनों का तथा अन्य मित्रों का, जिनकी चर्चा नहीं कर सका, ऋणी हूँ। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने सरभंग-सम्प्रदाय के संबंध में भाषणमाला प्रस्तुत करने के लिए निमंत्रित कर मेरी साहित्य-साधना को उत्प्रेरित किया है, अतः मैं परिषद् का अत्यन्त

आभारी हूँ। परिषद् के सभी अधिकारियों तथा कर्मचारियों की आत्मीयता में अर्जित कर

15:03

Description

राम बाबा की समाधि स्थल है। कुछ पुस्तकों के अनुसार भिनक बाबा दुनिया राम बाबा के ही शिष्य थे।

भिनक राम बाबा द्वारा रचित भोजपुरी ग्रंथ "भिनक दर्शन माला" की तलाश मैं बहुत दिनों से कर रहा था। इस संदर्भ में मैंने डॉ धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री द्वारा लिखित पुस्तक "संतमत के सरभंग संप्रदाय"जो बिहार राष्ट्रभाषा परिषद से प्रकाशित है का अध्ययन किया है,परंतु उसमें बाबा के बारे मे बहुत संक्षिप्त रूप से वर्णन मिलता है । पंडित गणेश चौबे की पुस्तिका "भोजपुरी साहित्य का संकलन" में भी इनके बारे में कुछ वर्णन मिलता है। मलय कुमार ने अपने एक निबंध में संत कवि भिनक राम बाबा की चर्चा की है ,परंतु कल माघर गांव जाने के क्रम में बसंतपुर के निवासी प्रोफ़ेसर सूर्य देव प्रसाद जी से मुलाकात हुई । उनसे मुझे इस संदर्भ में बहुत कुछ प्राप्त हुआ । प्रोफेसर सूर्य देव प्रसाद आर बीजीआर कॉलेज महाराजगंज में हिंदी के विभागाध्यक्ष थे ।अभी वे सेवानिवृत्त हैं और बसंतपुर में रहते हैं । उन्होंने इस पर अपना शोध प्रबंध का काम शुरू किया था ।लगभग आधे से अधिक शोध प्रबंध पुरा हो चुका था, परंतु कुछ कारणों से उनका शोध प्रबंध पूरा नहीं हो पाया और वह अपूर्ण रह गया ।आज उनसे मेरी मुलाकात हुई और उन्होंने भिनक राम बाबा के बारे में बहुत से अनछुए प्रसंगों के बारे में बतलाया और सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनके पास से भिनक राम बाबा द्वारा रचित ग्रंथ "श्री भिनक दर्शन माला" जो भोजपुरी साहित्य का एक महान ग्रंथ है , वह दुर्लभ ग्रंथ प्राप्त हुआ। यह ग्रंथ भोजपुरी साहित्य का एक धरोहर है।

प्रोफेसर सूर्य देव प्रसाद ने मुझे बाबा के बारे में बतलाया कि "बाबा भिनक राम सरभंग संप्रदाय की निर्वाणी धारा के प्रमुख संत कवि थे जिनके नाम पर आगे चलकर एक परंपरा ही विकसित हो गई। बाबा भिनक राम को सरभंग

07:21

होती है। किन्तु यदि उसके नीचेसे केशोंकी वह गाँठ अथवा लट हटा ली जाय तो फिर कौन कह सकता है कि उस स्फटिक-शिलाका वह विदीर्ण हुआ रूप कहाँ चला जाता है? क्या उस समय कोई उसके विदीर्ण अंशोंको फिरसे जोड़ देता है? वास्तवमें यह बात तो होती ही नहीं। उस समय भी वह स्फटिक-शिला पहलेकी ही तरह अखण्ड ही रहती है। वह तो केवल केशोंके गाँठके कारण ही विदीर्ण-सी प्रतीत होती है और इसीलिये उस गाँठके हटते ही वह फिर अखण्ड दृष्टिगत होती है। इसी प्रकार जब अधिभूत इत्यादिका अहंभाव समाप्त हो जाता है, तब परब्रह्मके साथ उसका वह मूलवाला ऐक्य पूर्वकी ही भाँति बना रहता है। जिसमें यह ऐक्य विद्यमान होता है, वही अधियज्ञ मैं हूँ।

हे पार्थ! अपने चित्तमें यही भाव रखकर मैंने पहले तुम्हें यह बतलाया है कि कर्मोंसे ही समस्त यज्ञ उत्पन्न होते हैं। सारे जीवोंके विश्रान्तिका यह निष्काम ब्रह्म-सुखका गुप्त भाण्डार मैंने आज तुम्हारे सामने खोलकर रख दिया है। सर्वप्रथम वैराग्यरूपी ईंधन लगाकर इन्द्रियरूपी अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिये और तब उसी प्रज्वलित अग्निमें शब्दादि विषयरूपी द्रव्योंका हवन करना चाहिये। फिर वज्रासनरूपी पृथ्वीका शोधन करके इस शरीररूपी मण्डपमें मूलबन्धकी मुद्रारूपी यज्ञवेदी बनानी चाहिये। इस प्रकारकी सिद्धि प्राप्त हो जानेपर इन्द्रिय-निग्रहरूपी अग्निकुण्डमें योगरूपी मन्त्रका घोष करते हुए यथोचित अनुपातमें इन्द्रियरूपी द्रव्योंको समर्पित करना चाहिये,

फिर मन और प्राणवायुके निग्रहको ही इस यज्ञ-विधानका शुभारम्भ मानकर निर्मल ज्ञानरूपी अग्निको सन्तुष्ट करना चाहिये। जिस समय इस प्रकार ज्ञानाग्निमें सर्वस्व समर्पित कर दिया जाता है, उस समय वह ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञेय वस्तुओंमें विलीन हो जाता है और तब केवल ज्ञेयवाले स्वरूपमें ही सर्वत्र अवशिष्ट रह जाता है। इस ज्ञेयको ही अधियज्ञ नामसे पुकारते हैं।" इस प्रकार सर्वज्ञ श्रीकृष्णने जो-जो बातें अर्जुनको बतलायीं, वे सब-की-सब बातें शीघ्र ही बुद्धिमान् अर्जुनके समझमें आ गयीं। यह जानकर देवने कहा—"हे पार्थ! तुम ठीक तरहसे मेरी बातें सुन रहे हो न?" श्रीकृष्णके इन शब्दोंको सुनकर अर्जुनने स्वयंको कृतकृत्य माना। बालककी सन्तुष्टि देखकर माता भी सन्तुष्ट होती है और शिष्यका समाधान देखकर गुरुका भी समाधान होता है; और इस चीजका ठीक-ठीक अनुभव उस माता अथवा उस गुरुको ही हो सकता है; किसी अन्यको नहीं। यही कारण है कि अर्जुनके शरीरमें सात्त्विक भावोंकी लहर उठनेसे पहले ही श्रीकृष्णके शरीरमें सात्त्विक भावोंकी इतनी प्रबल लहर उठी कि वह रोके नहीं रुकती थी। परन्तु फिर भी देवने जान-बूझकर उसका निग्रह किया

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो दुहुं दिसि फिरै, सो तो सुमिरन नाहिं॥[1]

इस प्रकार पलटू के अनुसार नाम-स्मरण की प्रथम शर्त 'आसा' का मारना तथा द्वितीय शर्त 'हों' को खामोश करना है।

उक्त शर्तों के पूरा होने के तीन परिणाम हैं:—

(१) प्रेम प्याला का पान

गगन गुफा के बीच पियाला प्रेम का चाखै।[2]

(२) तन का होश न रहना तथा भूख प्यास आदि का बिसर जाना :—

होस न तन को राखै
बिसरै भूख पियास जायमन रंग में लागै।[3]

(३) अपूर्व शब्द का श्रवण

सुनते मन वह बने कहा में कहाँ बखानी।[4]

यह तीन परिणाम नाम-स्मरण साधना की तीन भूमिकाएँ हैं। प्रथम भूमिका में साधक अपने इष्ट के प्रेम में रँग जाता है। वह उसके नाम रटने में आनन्द का अनुभव करता है। इस भूमिका में साधक अपने मन को तो अपने इष्ट के स्मरण में लगाता है पर उसके बाह्य व्यापार भी चलते रहते हैं। मुख से शब्द होता रहता है जिह्वा भी डोलती रहती रहती है।

सन्त यारी साहब ने साधक की इस स्थिति का वर्णन शीश पर गगरी रखकर चलने-वाले नर तथा पनिहारी के दृष्टान्त द्वारा किया है। वह कहते हैं :—

या विधि भजन करौ मन लाई।
मन गगरी पर बात सखिन संग-कुंभ-कला नर लाई॥[5]

जप

सन्त इस भूमिका को जप की संज्ञा देते हैं।

बावरी-पन्थ में जप को बहुत महत्त्व प्राप्त है। सन्त भीखा साहब कहते हैं :—

एक नाम सुखदाई दूजो है मलिनताई,
जिव चाहो भलाई तौपे राम नाम जपना।[6]

महात्मा यारी साहब भी बाह्य जाप का निर्देश करते हैं :—

---

१. सन्त बानी संग्रह, पहला भाग, पृ० ६
२. पलटू बा०, पृ० ५
३. वही
४. वही
५. यारी साहब की रत्नावली, पृ० ४
६. भीखा साहब की शब्दावली, पृ० ३१

182/402

प्रथम अध्याय

प्राणनाथ : जन्म-जीवन-धामगमन

युगों से मनुष्य धर्म को प्राणस्वरूप मानता रहा है उसी धार्मिकता को लेकर वह ईश्वर के अस्तित्व एवम् स्वरूप के संदर्भ में अपने मन्तव्य व्यक्त करता रहा है। डा० राधाकृष्णन ने कहा है, [1] धार्मिक अनुभूतियाँ उतनी ही पुरातन हैं, जितना मुस्कराना और रोना, प्यार करना और क्षमा करना।……… … विचारों की कोई भी गम्भीर साधना, विश्वासों की कोई भी खोज, सद्‌गुणों के अभ्यास का कोई भी प्रयत्न, ये सब उन ही श्रोतों से उत्पन्न होते हैं, जिनका नाम धर्म है। अदृष्ट के प्रति पूज्यभाव और श्रद्धा के फलस्वरूप भक्ति ने जन्म लिया। विशेषतः भारतीय जन-मानस पर भक्ति और भक्तिगीतों ने गहरा प्रभाव डाला है। यह अत्युक्ति नहीं होगी कि धर्म ही भारतवर्ष का प्राण है। भारतीय सन्तों एवम् भक्तों ने समय के प्रवाह के अनुरूप ही धर्म के प्रवाह को भी विविध चिन्तनों से परिपुष्ट किया है।

भारत के मध्यकालीन इतिहास के हृदयस्थान पर धर्म-चिन्तन की धारा बहाने-वाले भक्त-सन्त ही विराजित हैं। सूरदास, तुलसीदास, मीरांबाई, कबीर, नानक, आदि मध्यकालीन सन्तों एवम् भक्तों की कोटि में प्रणामी सम्प्रदाय के प्रचारक एवम् प्रसारक स्वामी प्राणनाथ का भी महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन प्राचीन मध्यकालीन अन्य भक्त-सन्तों की भाँति उनके जीवन के सन्दर्भ में भी थोड़ी-बहुत गलतफहमियाँ कुछ भावनाशील भक्तों की महिमा कथाएँ और धार्मिक-ऐश्वर्यकामी संतों की लौकिक जगत् विशेषतः निज के सम्बन्ध में उपेक्षा रही हैं, अतः उनकी सर्वशुद्ध जीवनी पाना कठिन है। फिर भी स्वामी प्राणनाथ की जीवनी के लिए उनकी खुद की रचनाएँ, साम्प्रदायिक ग्रन्थ और मध्यकालीन इतिहास के पृष्ठ सहायक

---

१. डा० राधाकृष्णन, धर्म और समाज (हिन्दी संस्करण), पृ० ५१

17/352

16:16
2015.480974.Sat-mat-...
132/336

कम-से-कम आसन और प्राणायाम का अभ्यास प्रारंभ में प्रत्येक साधक को करना पड़ता है। प्राणायाम के मुख्य तीन प्रकार हैं—पूरक, अर्थात् साँस अन्दर लेना; कुम्भक, अर्थात् साँस को अन्दर रोककर रखना; रेचक, अर्थात् साँस को बाहर फेंकना। प्राणायाम से योग अर्थात् चित्त-वृत्ति-निरोध में सहायता मिलती है।

जिस ध्यान-योग, अथवा किन्हीं-किन्हीं संतो के मत में विहंगम-योग, का वर्णन निर्गुण सन्त-साहित्य में सामान्यतः पाया जाता है, उसका मुख्य संबंध कंठ के ऊपर के हिस्से से है। योग की इस क्रिया में साधक की 'सुरति' या ध्यान-दृष्टि नेत्र के 'अष्ट-दल-कमल' में अवस्थित 'सूची-द्वार' होकर 'ब्रह्माण्ड' में प्रवेश करती है और इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्णा की 'त्रिवेणी' में मज्जन करती हुई 'सहस्रदल' में विचरण करती है; फिर 'बंकनाल' होकर ऊपर चढ़ती है और 'भँवर गुफा' में प्रवेश करती है। इस गुफा में प्रवेश करते ही आत्मा ऐसी दिव्यदृष्टि प्राप्त करता है कि एक-से-एक अनोखी सुगन्धि और अद्भुत छवि का अनुभव तथा साक्षात्कार करता है। यहाँ अनाहत नाद गुंजायमान रहता है, जो 'शब्द-ब्रह्म' है; यहीं वह 'अमरपुरी' अथवा 'अकह लोक' है, जहाँ आत्मा परमात्मा में मिलकर अद्वैत हो जाता है, आत्मा का यही मोक्ष है।

किनाराम कहते हैं कि इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा की शुद्धि करनी चाहिए तथा उन्मुनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। 'सुरति' और 'निरति' में मग्न होकर जीव परमानन्द को प्राप्त होता है।[18] योगेश्वराचार्य कहते हैं कि इड़ा और पिंगला का शोधन करके सुषुम्णा की 'डगर' पकड़नी चाहिए तथा 'पाँच' को मारकर, 'पचीस' को वश कर, 'नौ' की नगरी को जीत लेना चाहिए। भिनकराम कहते हैं कि इड़ा, पिंगला नाम की दो नदियाँ बहती हैं[19], जिनमें सुन्दर जल की धारा प्रवाहित है।[20] टेकमनराम भी 'इंगला' और 'पिंगला' के शोधन तथा 'त्रिवेणी-संगम' के स्नान का निर्देश देते हैं।[21] रामस्वरूप दास भी इन तीनो नाड़ियों की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि इनके अभ्यास से मन के 'बैठने' में देरी नहीं लगती।[22] इड़ादि तीनो नाड़ियों के संगम-स्थल को 'त्रिकुटी' या त्रिवेणी कहते हैं जिसकी चर्चा संतो ने बार-बार की है। दरसन राम कहते हैं कि बंकनाल की उल्टी धार बहती है, रसना 'अजपा' की माला जपती है, त्रिकुटी महल में सुग्गा बोलता है, और साधक का मन हर्षित होता है।[23] रामटहल राम उपदेश देते हैं कि 'ऐसा ध्यान लगाना साधो, ऐसा ध्यान लगाना' कि मूल द्वार को साफ करके गगन महल में जा 'चमको' और 'त्रिकुटी-महल' में बैठकर 'अपार ज्योति' देखो।[24]

अघोरमत के मुख्य प्रवर्त्तक किनाराम लिखते हैं कि इड़ा, चन्द्रमा में और पिंगला, सूर्य के ग्रह में निवास करते हैं और सुषुम्णा दोनो के मध्य में। जब चन्द्र और सूर्य का सहज और समान रूप से उदय हो जाता है तो शून्य में शब्द का प्रकाश होता है, मन में 'अजर' झरने लगता है और सुख-रूपी अमृत का आस्वादन होता है।[25]

यहाँ एक तालिका दी जाती है जो संतो द्वारा रचित 'स्वरोदय' के आधार पर है—

१	२	३	४	५	६	७	८	९

20:52
2015.493941.Madhyak...
२०
325/596

गङ्गा है ।[1] प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने नाथों की योग-साधना को सब विद्याओं में श्रेष्ठ 'काल बंचणी' विद्या माना है जिसके द्वारा साधक नौ द्वारों को बन्द कर दशम द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) में समाधिस्थ हो अमृत का पान कर फिर बूढ़े से बालक हो जाता है ।[2] सचमुच विकारों के भीतर से निर्विकार तत्त्व को ग्रहण करना बड़ी कठिन साधना है । योगी अञ्जन अर्थात् विकारों के भीतर निरञ्जन अर्थात् विकारहीन शिव को प्राप्त करने की उसी प्रकार चेष्टा करता है जैसे तिल में से कोई तेल निकाल लेता है । मूर्त जगत् के भीतर अमूर्त परमतत्व का स्पर्श पाने के पश्चात् ही योगी की वह निरन्तर क्रीड़ा प्रारम्भ होती है जो चरम आनन्द है—

अंजन मांहि निरंजन भेट्या तिल मुख भेट्या तेलं ।
मूरति मांहि अमूरति परस्या, भैं निरंतरि षेलं ॥ गो० ज्ञान० ४१

इस प्रकार नाथों की योग-साधना का दृढ़ कण्ठ-स्वर उत्तर भारत के धार्मिक वातावरण को शुद्ध और उदार बनाने में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है । इस दृढ़ कण्ठ स्वर ने यहाँ की धार्मिक साधना में कभी भी गलदश्रु भावुकता और ढुलमुलपन नहीं आने दिया । उत्तर भारत के साहित्य में भी इनके कारण दृढ़ता और आचरण शुद्धि भुलाई नहीं जा सकी है ।[3]

---

[1] गोरखबानी—सबदी १३५, १६३ ।

[2] कल्याण योगांक—पृष्ठ ७०६ ।

[3] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ १८७ ।

20:35

प्रकार के अभ्यासों से इड़ा और पिंगला के मार्ग का अवरोध कर सुषुम्ना की मध्यवर्तिनी ब्रह्म नाड़ी से कुण्डलिनी को ऊर्ध्वमुख करता है और वह आगे बढ़ती हुई मेरुदण्ड के समानान्तर सुषुम्ना नाड़ी पर स्थित षटचक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार-चक्र के ब्रह्मरन्ध्र का स्पर्श करती है। सहस्रदलों के कमल के आकार का सहस्रार-चक्र ही इस शरीर रूपी तीर्थ का कैलाश है जहाँ पर शिव निवास करते हैं। इस महातीर्थ तक पहुँचाने की क्षमता केवल सुषुम्ना नाड़ी में ही है, इसीलिए इसे शाम्भवी-शक्ति कहा जाता है।[2] कहा जाता है कि शक्ति, कुण्डलिनी रूप में देह में स्थित है और शिव भी सहस्रार में विराजमान है। जन्म-जन्मान्तर के सञ्चित मलों के भार से कुण्डलिनी दबी हुई है। एक बार यदि मनुष्य ध्यान-धारणा के बल से वायु को संयमित करे और नाड़ियों को शोधकर पवित्र करे तो वह परमपवित्र सुषुम्ना का मार्ग खुल जाय जिसको ढककर परमेश्वरी कुण्डलिनी सोई हुई है।[3] गुरु गोरखनाथ सिद्ध संकेत करते हुए कहते हैं कि षोडश कला वाली नाड़ी (इला) में चन्द्रमा का प्रकाश है, द्वादश वाली (पिंगला) में भानु का, सहस्र नाड़ी सुषुम्ना अथवा सहस्रार में प्राण का मूल निवास है, यहाँ असंख्य कला वाले शिव (ब्रह्म-तत्व) का स्थान है। कुण्डलिनी शक्ति जब उलट कर ब्रह्माण्ड में पहुँच जाती है और नख से शिख तक सर्वाङ्ग में वायु व्याप्त हो जाती है अर्थात् वायु-भक्षण होने लगता है तब सहस्रार स्थित अमृत प्रस्रावक चन्द्रमा ही राहु (मूलाधार पद्म स्थित सूर्य) को ग्रस लेता है जिससे अमृत का पान सम्भव होता है।[4] नाथ गुरु का स्पष्ट आदेश है कि—

इली सोधि धरि व्यांगुली पूरी, सुषमनी चहु असमानं।
मछिन्द्र प्रसादै जती गोरख बोल्या, निरंजन सिधि नें थानं ॥ पद ५।१६

---

[1] उद्घाटयेत् कपाटं तु तथा कुंचिकया हठात्।
कुण्डिलन्या ततो योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत् ॥ —गोरक्षशतक १।५१

[2] नाथ-सम्प्रदाय—पृष्ठ १२७।

[3] वही—पृष्ठ १३०।

[4] गोरखबानी—सबदी ६१-२१७।

कुण्डलिनी-जागरण की प्रयत्न साधित साधना में साधक को रसायनादि की सहायता से शरीर की दुर्बलताओं को दूर कर खटे-खमाते काया-पलटने (काया-कल्प) का भी विधान है।

अजपाजाप—षट्चक्र भेदन स्थिति के पश्चात् बहिर्मुख मन को अन्तर्मुख बनाये रखने के लिए आत्मचिन्तन का सबसे शक्तिशाली माध्यम अजपाजाप है। श्वासोच्छ्वास की क्रिया पर मन को एकाग्र करने से मन वश में होता है। अनुभवी योगियों ने अजपाजाप को सहज जप कहा है। उनके अनुसार मनुष्य प्रतिदिन २१,६०० बार साँस लेता है। इनमें से प्रत्येक श्वास में अद्वैतभावना ही

20:08

2015.493941.Madhyak...

ऊभा षण्डो बैठा षण्डो 2/596 जागत सूता ।
तिहूं लोक तैं रहूं निरन्तरि तो गोरख अवधूता ।।[1]

शुक्र-रक्षा के साथ ब्रह्मानुभूति की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है, क्योंकि आध्यात्मिक अनुभूति के बिना जो बिन्दु मात्र के अर्थ बन्ध क्रिया का आश्रय ग्रहण करता है उसका शरीर स्थिर होता नहीं देखा गया है।[2] सिंहल की पद्मिनियों के बीच योगभ्रष्ट गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को लक्ष्य कर गोरखनाथ ने कहा था कि हे गुरुदेव, ऐसा कर्म न कीजिये, इससे महारस अमृत क्षीण होता है। स्त्री के साथ रहने वाले पुरुष की अवस्था नदी किनारे के पेड़ के जैसी होती है। उसके जीवन की कम आशा होती है। माया नारी मन को मोहिती है और रात्रि को शुक्र-स्खलन द्वारा अमृत सरोवर को सोखती है। मन में ज्योंही मनसिज पैदा हुआ त्योंही मेरु शिखर यानी सुषुम्ना के ऊर्ध्व मुख ब्रह्मरन्ध्र से अमृत नीचे गिर पड़ता है, इससे शरीर का नाश होता है। मन का घोर मन्थन कर देने वाली आँखों से युक्त बाघिन (माया) जब महारस अमृत को सोख लेती है तो पैर डगमग, पेट ढीला और सिर के बाल बगुले के पंखों की भाँति सफेद हो जाते हैं।[3] गोरखनाथ ने उसे अपना भाई स्वीकार किया है जो बज्रोली करते हुए अमरोली की रक्षा करे, और भोग करते हुए बिन्दु की रक्षा करे।

बजरी करता अमरी राषै अमरि करंतां बाई।
भोग करन्ता जे ब्यन्द राषै ते गोरष का गुरु भाई ।। सबदी १४१

नाथ-पन्थ में जो त्रिविध साधनाऐं प्रचलित थीं उनमें से प्रथम इन्द्रिय-निग्रह अर्थात् बिन्दु-रक्षा की साधना थी। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि बिन्दु-धारणा या ऊर्ध्व रेता बनने से आसन में दृढ़ रहने की क्षमता उत्पन्न होती है और साधक अपनी साधना में उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त करता चला आता है। यही कारण है कि नाथ-पन्थियों ने साधना के मूल स्वरूप बिन्दु-धारणा पर विशेष जोर दिया है।

इन्द्रिय-निग्रह से केवल बिन्दु-रक्षा से ही प्रयोजन नहीं है वरन् समस्त इन्द्रियों और उनके विषयों से है किन्तु समस्त इन्द्रियों में जननेन्द्रिय ही प्रबल

---

[1] गोरखबानी—सबदी ६६-१०० ।
[2] वही—२३७-८ ।
[3] वही—पद ४३ ।

← 2015.346849.Gorakha-...

नी नाटिका कोटड़ा बहत्तार । चार पचास पचास पंच घार ॥५॥

तुहूँ···सूझया=ज्ञान रूप मणि-दीप के प्राप्त होने से तीनों लोकों का ज्ञान होने लगता है ॥१॥

निर्वाण पद की खोज शरीर ही में करनी चाहिए। बाहर का रहना छोड़ो, बहिर्मुख वृत्ति को बाहरी वस्तुओं से समेट कर अंतर्मुख कर लो। (अपने भीतर निवास करो) वहाँ निरञ्जन ब्रह्म की ज्योति प्रकाशमान है। काल उसको छू नहीं सकता ॥३॥

वहाँ दिन, रात वर्ष मास आदि काल के परिणाम नहीं पहुँचते। अग्नि, पवन, स्नेह, और जल एक साथ मिलाकर विज्ञान ने इस अगम्य सुगम दुर्ग (शरीर) का निर्माण किया है। सामान्यतया यह दुर्ग दुरारोह है किन्तु योग की युक्तियों से सुगम है। यह कैलास के तुल्य ऊँचा है। इसके ऊपर आकाश में मेघ गरजते हैं ॥४॥

उसके (तीस=तस्य) तेरह प्रामाणिक फाटक हैं जिनमें दस प्रकट और तीन

प्राण संकली=प्राण श्रृंखला (क) और (ग्र) के आधार पर। (ग्र) में इसका शीर्षक 'आत्मबोध' है। परन्तु उसके मंगलाचरण के श्लोक से भी वह 'प्राण श्रृङ्खला' ही सिद्ध होती है। १. (क) रूद।

चीरा लगा तीनिसै साठी। नौसै पाई नाटिक गांठी।
नदी अठारह गंडिक बहई। मगर मच्छ जल पैरत रहई ॥६॥
अठूठ कोटि बनासपती माला। सहज कमल दल पदमनी नाला।
भेदि षट चक्र बसै नांगणीं। कोटणीं सत मोहि फणीं ॥७॥

गुप्त हैं (प्रकट दस द्वार तो ब्रह्मरंध्र-सहित नवरंध्र हैं। तीन गुप्त द्वारों का वर्णन गोपनीय समझ कर योगियों ने अपनी वाणियों में नहीं किया है।) उसमें नौ नाड़ियां और बहत्तर कोठे हैं। नाड़ियां बहत्तर हजार मानी जाती हैं उनमें से बहत्तर श्रेष्ठ मानी जाती हैं और उनमें से भी दस प्रधान। 'गोरक्ष शतक', 'गोरक्ष पद्धति' १,२६। ये बहत्तर कोठे बहत्तर नाड़ियां ही हैं। यहां दस नाड़ियों में से सुषुम्ना को छोड़कर शेष नौ कही हैं। सुषुम्ना ही में सब मिलती हैं। नौ नाड़ियों के नाम हैं—इड़ा, पिंगला, गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी। इस घर में अर्थात् किले में पचास (अर्थात् षट्चक्र जिनमें सब मिलाकर ५० दल माने जाते हैं), पचीस (२५

09:26
Santmat Paribhashika S...

*संत-सुधा-सार[1]

वाजिद जी[2]

कहियो जाय सलाम हमारी राम कूँ।
नैन रहे झड़ लाय तुम्हारे नाम कूँ॥

× × ×

१—सम्पादक-श्री वियोगी हरि, सस्ता साहित्य मंडल, १९५३.'
२—दादूदयाल के १५२ शिष्यों में से एक।

मोर करत अति सोर चमकि रही बीजरी।
जाको पीव बिदेस ताहि कहा तीज री॥
बदन मलिन मन सोच खान नहिं लाति है।
हरि हा, वाजिद, अति उनमन तन छीन रहति इह भाँति है॥५॥

× × ×

पीव बस्या परदेस कि जोगन मैं भई।
उनमनि मुद्रा धार फकीरी मैं लई॥
ढूँढ्या सब संसार क अलख जगाइया।
हरिहा, वाजिद, वह सूरत वह पीव कहूँ नहि पाइया॥८॥

खण्ड १, पृ० ५५५-५६, विरह को अंग।

दरिया साहब[1]

रतन अमोलक परख कर, रहा जौहरी थाक।
दरिया तहँ कीमत नहीं, उनमुन भया अबाक॥ १॥
धरती गगन पवन नहिं पानी पावक चंद न सूर।
रात दिवस की गम नहीं जहँ ब्रह्म रहा भरपूरं॥ २॥
पाप पुन्न सुख दुख नहीं, जहँ कोइ कर्म न काल।
जन दरिया जहँ पड़त है, हीरों की टकसाल॥ ३॥

खण्ड २, पृ० १०८, ब्रह्म परचे को अंग।

दरिया साहब[2]

नाक कान मुख आँख श्रुती पाँचो' मुद्रा साँच।
गोचरि खेचरि भोचरी चचरी उन्मुनि पाँच॥[3]

—•—

१—दरिया साहब (मारवाड़ वाले)।
२—दरिया साहब (बिहारवाले)।
३—प्रस्तुत वाणी, डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी लिखित 'संतकवि दरिया : एक अनुशीलन' के पंचम खंड, पृ० २५ से उद्धृत है।

3675

गोरख रामप्रकाश अलखिल, जो जाने मुक्त मझारा ।
रामप्रकाश को लखता गोरख, और न जाणन हारा ।३।
रामप्रकाश गोरख गति चीन्ही, भया गोरख अवतारा ।
गोरख मो में मैं गोरख में, आवागमन विडारा ।४।

राग आशावरी (२४)

साधो भाई ! या विध योग विचारा ।
शील शौच एकान्त धारणा, संयम नियम प्रचारा ।टेर।
गुरु श्रद्धा कर युक्ति लाधी, बांधी पांच पसारा ।
पूरक ओहं सो कुंभक धीरज, रेचक पवन उतारा ।१।
इड़ा पलट के पिंगला लाया, सुषुमणा भेद अट्ठारा ।
पिंगला उलट इडा सम बैठी, क्रिया स्वास गम धारा ।२।
पल विपल त्राटक धुन साध्या, रणंकार रट प्यारा ।
युक्त त्रिवेणी मुक्त त्रिवेणी, बंध त्रिवेणी सारा ।३।

युक्त बंक से उतरया सीधा, मुक्त बंक चढ़ भारा ।
मुद्रा अमृत अखंडित धारा, पो अमृत निरधारा ।४।
नाभी नागनि मुख पलटाया, दशवें में रणंकारा ।
भंवरा गरज्या गगन मंडल में, जीव शीव इकसारा ।५।
जनम मरण का संशय काटया, मन पवना गम हारा ।
अपना आप निजानन्द परस्या, रामप्रकाश निज प्यारा ।६।

राग आशावरी (२५)

साधो भाई ! योग युक्ति कर शोधा ।
साधन धारण दृढ़ कर धारी, उपज्या जीवन बोधा ।टेर।
मन पवना का संग कर सुरता, त्रिकुटी महल में रोधा ।
ज्ञान-साधना शस्त्र साध्या, काम मार मद योधा ।१।
महा प्रबल मन वश करने में, गज कठिन नहीं गोधा ।
शब्द अंकुश अभ्यास सींकवे, लाया घेर घर खोधा ।२।
भया निशंका निर्भय डंका, लागा गमनां पोधा ।
फब कर बंका राव न रंका, पी रस मस्ता श्रोधा ।३।
रामप्रकाश पहुंच्या घर आदू योग योग में सोधा ।
आदि आदि अनादि अपना, द्वंत भ्रम अवरोधा ।४।

04:43

[3] दरिया साहब की बानी, पृष्ठ 130 ।

[4] दादू दयाल की बानी भाग-1 परचा की अंग. 10, 12, 14 ।

[5] डॉ. बड़थ्वाल द्वारा सम्पादित, गोरख बानी, सबदी 55 से आगे ।

[6] भीखा साहब की बानी, गुरु और नाम महिमा, शब्द 4 ।

2844

इस प्रकार सन्त साहित्य में 'गगन मण्डल' शब्द का प्रयोग सन्तों द्वारा विस्तापूर्वक किया गया है।

4.8 त्रिवेणी

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों के संगम स्थल ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार चक्र को सन्तों ने त्रिवेणी शब्द से अभिहित किया है। तीन नदियों के संगम स्थल तथा तीन वेणियों के समाहार को भी त्रिवेणी कहा गया है।

त्रिवेणी, त्रिकुटी तथा त्रिकुटी शब्द त्रिवेणी के ही पर्यायवाची हैं। इन सभी शब्दों का वर्णन सन्तों ने अपने साहित्य में कई स्थलों पर किया है।

कबीर ने त्रिवेणी को आज्ञा चक्र या आकाश चक्र, गंगा-जमुना संधि तथा त्रिकुटी सन्धि कहा है। कबीर ग्रन्थावली में यह शब्द अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ मिलता है-

1. त्रिवेणी मना न्हवाइए, सुरति मिलै जो हाथि रे।
2. सुमति सरीर कबीर बिचारी, त्रिकुटी संगम स्वांमीं।
3. षट् चक्र की गागरी त्रिबेणी संगम बाट।
4. ब्रह्म अगनि मैं काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै।
5. जब लग त्रिकुटी संधि न जानै ससिहर कै घरि सूर न आनै।[1]

दरिया साहब (मारवाड़) ने इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के संगम स्थल को त्रिकुटी कहा है।[2]

---

[1] डॉ. भगवत् स्वरूप मिश्र (सं.), कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 207,212, 221, 255, 356 ।

[2] दरिया साहब (मारवाड़) की बानी, पृष्ठ 1 ।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

06:23

2015.400428.Santo-Ka

के आघात से जैसे गेंद चचल हो उठता है प्राणापान की गति से जीव उसी तरह चंचल रहता है पर यदि प्राण सुषुम्ना में प्रवेश कर जाएँ तो वे स्थिर हो जाते हैं।[1] उद्बुद्ध कुण्डलिनी इसी मार्ग से होकर षट्चक्रों को भेदती हुई सहस्रारस्थ परमशिव से सामरस्य स्थापित करती है।

१२१—सन्तों ने अपनी साखियों, सबदियों, पदों आदि में जिस सुखमनी या सुखमनि नारी का बहुश: उल्लेख और गुणगान किया है वह मूलतः योग की उक्त सुषुम्ना नाड़ी का ही अर्थ देती है। उनके अधिकांश प्रयोग और यदि आग्रहपूर्वक समझा जाय तो सारे प्रयोग इसी अर्थ में हुए हैं। उदाहरण के लिये हम दो एक पदों को ले सकते हैं।

(१) सतों धागा टूटा गगन बिनसि गया सबद जु कहा समाई।
एहि ससा मोहिं निस दिन व्यापे कोई न कहै समझाई॥
नहीं ब्रह्मण्ड पिंड पुनि नाहीं पचतत्त भी नाहीं।
इला पिंगला सुखमनि नाहीं एक गुण कहाँ समाहीं॥[2]—कबीर

(२) ऐसा ध्यान धरो बरो बनवारी, मन पवन दै सुखमन नारी।
सो जप जपो जो बहुर न जपना, सो तप तपो जो बहुरि न तपना॥[3]

(३) बक नाल जब सहजि समाय। नानक पेट दिया नाड़ी की जाय।
इड़ा पिंगला नाड़ी कीआ। सुषमन के घर जाय समीआ॥[4]

१—योगशिखोपनिषत् ३५-५२, वही, पृ० ३७२।
२—कबीर ग्रन्थावली पद ११३, पृ० ६१-९७।
३—रैदास जी की बानी, पृ० २६।
४—श्री प्राण संगली, पूर्वार्द्ध प्रथम भाग, पृ० ६८।

उक्त उद्धरणों में सुखनि और सुखमनि नारी के प्रयोग स्पष्टतः सुषुम्ना के अर्थ में ही हुए हैं।

१२२—योग में सुषुम्ना को शून्य पदवी कहा गया है और इड़ा पिंगला की अपेक्षा इसे सूक्ष्म माना गया है। सतों ने इस अर्थ के द्योतन के लिए इसके 'सूषिम' रूप का प्रयोग किया है और जैसा हम अभी देखेंगे ध्वनिसाम्य यदि किसी मिलते-जुलते शब्द के अर्थ की सभावना पैदा करता हो तो सन्त किसी शब्द में वह अर्थ भर देना आवश्यक-सा मानते हैं। अतः सूषिम से एक ओर जहाँ उन्होंने 'सूक्ष्म' का अर्थद्योतन कराना चाहा है वहीं 'सुखिम' में सुखपूर्ण जैसे अर्थ की छौंक भी देनी चाही है। हम अभी-अभी देख आए हैं कि योग सुषुम्ना को अक्षय सुख का भाण्डार मानता है अतः सुखिम से सतों द्वारा निकाला गया यह अर्थ उस दृष्टि से पर्याप्त सगत भी है और वक्तव्य की दृष्टि से पुराना भी। लेकिन एक बात सतों की एकदम नई है कि योग में सुषुम्ना को

19:04

इन तीनों विचारणीय उल्लेखों में प्रथम उल्लेख की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ, परंतु पिछले दोनों उल्लेखों का ध्यान रखकर ही कतिपय विद्वानों ने स्वामी रामानंद की जन्म तिथि में परिवर्तन किया। सबसे पहले फ़र्कुहर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'ऐन आउटलाइन ऑफ़ द रीलिजस लिट-रेचर ऑफ़ इंडिया' में स्वामी रामानंद का समय १४०० ई० से १४७० ई० (अर्थात् सं० १४५६ से सं० १५२६) तक माना। इस निष्कर्ष पर पहुँचने का कारण स्पष्ट करते हुए विद्वान् लेखक ने लिखा है :

उनके (स्वामी रामानंद के) राजा-शिष्य पीपा ई० सन् १४२५ में पैदा हुए थे, जब कि उनका एक दूसरा शिष्य कबीर, जान पड़ता है, १४४० ई० से १५१८ तक जीवित रहा। यह स्पष्ट है कि वह (कबीर) रामानंद का अंतिम शिष्य नहीं था। अस्तु, हम सत्य से बहुत दूर नहीं रहेंगे यदि हम अनुमान करें कि रामानंद लगभग १४०० ई० से १४७० तक जीवित रहे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हम इस अनुमान में आगे पीछे दस वर्ष की ग़लती कर रहे होंगे, परंतु इससे अधिक की नहीं।[1]

'भागवत संप्रदाय' ग्रंथ में विद्वद्वर प्रो० बलदेव उपाध्याय इन्हीं पिछले उल्लेखों को ध्यान में रखकर स्वामी जी का समय १४१० ई० से १५१० ई० तक मानते हैं। उनका मत है :

स्वामी जी की जीवनी से संबद्ध ऊपर तीन घटनाओं का हमने उल्लेख किया है जो इनके काल के विषय में निर्णायक मानी जा सकती हैं—(१) स्वामी जी की सिकंदर लोदी के समय (१४८९–१५१७ ई०) विद्यमानता; (२) कबीरदास का लोदी से प्रौढ़ावस्था में भेंट होना; (३) स्वामी जी के अन्यतम शिष्य सेन भक्त की बांधवगढ़-नरेश राजाराम (सन् १५५४-१५९१) के समय में विद्यमानता। स्वामी जी की उम्र सौ वर्ष के ऊपर मानी जाती है। इन समस्त घटनाओं के तारतम्य से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वामी रामानंद जी का आविर्भाव काल १५ वीं शती (१४१० ई०—१५१० ई०) है। इस प्रामाण्य पर अगस्त्य संहिता के भविष्योत्तर खंड में स्वामी जी का जो आविर्भाव काल सं० १३५६ वि० (= १३०० ई०) दिया गया है वह प्रामाणिक कथमपि नहीं हो सकता क्योंकि ऊपर निर्दिष्ट घटनाओं का मेल इस समय से ठीक नहीं बैठता।[2]

इस प्रकार इन विद्वानों ने सम्प्रदाय-सम्मत स्वामी जी की मृत्यु तिथि को ही प्रायः उनका जन्म काल स्थिर किया और उनकी मृत्यु तिथि लगभग ८० से १०० वर्ष आगे खींच लाए।

1. His royal disciple Pipa was born in A. D.

17:23

← 2015.380512.Sidh-sahi...

224/562

प्रमुख हैं ललना, रसना और अवधूती।[६१] चर्यापदों में इन तीन नाड़ियों को विभिन्न प्रतीकों से लक्षित किया गया है। विरूपा अवधूती की (शुंडिनी) मधुबाला से उपमा देते हैं जो दो स्थानों से मद को खींचती है, ललना और रसना।[६२] इसी को गुंडुरी तिअड्डा या त्रिनाड़ी कहते हैं।[६३] इनमें से ललना वाम नासापुट के समीप है, वह चन्द्र स्वभाव की है और प्रज्ञारूप है।[६४] रसना दक्षिण नासापुट के समीप है, सूर्य स्वभाव की है और उपायरूप है।[६५] इन्हीं दोनों को नैरात्म-दर्शन की परिभाषा में ज्ञेय और ज्ञान, ग्राह्य ग्राहक भी कहा जाता है और अवधूती इन दोनों के बीच ग्राह्य-ग्राहक-वर्जित रूप में स्थित है। उसी नैरात्म्यज्ञान रूपी मध्यम सहजपथ की भाँति वह क्लेशों को धुनने वाली है अतः उसका नाम अवधूती है।[६६] इसी अवधूती में से होकर शुक्र नामक और भी सूक्ष्म नाड़ी है जिसमें से बोधिचित्त उर्ध्वगामी होता है विन्दु रूप में।[६७] यह नाड़िका वैरोचन द्वार में लीन होती है जो नवद्वारों के अतिरिक्त दसवां द्वार है।[६८]

चर्यापदों का यह नाड़ीजाल हिन्दू योग परम्परा में भी मिलता है। योग साधना में भी मेरुदंड के वहिःपार्श्व में चन्द्र और सूर्य रूपी इड़ा और पिंगला नाड़ियों की स्थिति बताई गई है। बीच में सुषुम्णा है जो मेरुदंड के विवर में है और वह अग्नि रूपी है।[६९] इड़ा वामगा है, देवी है; पिंगला शिव है, सूर्य है। इड़ा यमुना है, पिंगला सरस्वती है, सुषुम्णा गंगा है। इस प्रकार त्रिवेणी बनती है।[७०] इनमें से सुषुम्णा भी त्रिगुण के अनुसार ३ नाड़ियों का गुम्फन है। सत्वगुणमयी चित्रिणी, रजोगुणमयी वज्रा, और तमोगुणमयी सुषुम्णा, इसीलिये उसे अग्निमयी बताया गया है।[७१] शंखिनी रूपी नाल को ग्रहण कर वह ब्रह्मसदन को जाती है।[७२]

हेरुक-तन्त्र में भी ललना रसना की यही स्थिति बताई गई है। ललना या आली धनुषाकार रूप में गर्दन से प्रारम्भ होती है और नाभि में वाम दिशा से प्रवेश करती है। रसना नाभि से प्रारम्भ होती है और कंठप्रदेश में होती हुई अवधूती वैरोचन द्वार तक जाती है। इसीलिये उसे मध्यम कहा गया है। चूंकि ललना और रसना को प्रज्ञोपाय कहा गया है अतः यह सहज है।[७३]

तन्त्रों तथा चर्यापदों में विभिन्न प्रतीकों में आली काली, गंगा यमुना, सूर्य चन्द्र, धमन चमन, ललना रसना का उल्लेख है। इन नामों में से कुछ युग्मों पर विचार कर लेना आवश्यक है। आली के अर्थ हैं अ से प्रारम्भ होने वाली स्वर माला, और काली के अर्थ हैं क से प्रारंभ होने वाली व्यंजन माला।

रविदास कहते हैं --

'उलटी गंग जमुन में लावौं
बिनही जल मंजन ह्वै पावौं ।'[46]

डॉ0 राजदेव सिंह उल्टी गंगा के विषय में कहते हैं कि 'सामान्य स्थिति में इड़ा पिंगला से श्वासधारा बाहर की ओर प्रवाहित होती रहती है । योग में प्राणयाम द्वारा बाहर की ओर प्रवहमान श्वासधारा को उलटकर ब्रह्माण्ड में चढ़ाया जाता है, जिससे समाधि उत्पन्न होती है। समाधि की अवस्था में इड़ा और पिंगला से न प्रवाहित हो कर प्राण इनके मध्य में स्थित सुषुम्ना से प्रवाहित होते हैं । इस अवस्था में इड़ा-पिंगला (गंगा-जमुना) एकाकार हो जाती है ।[47]

उन्मनि :

'उन्मन' उत्कंठित मन को कहते हैं । 'उन्मनस' शब्द संस्कृत में चित की ऊर्ध्वगति के लिए प्रयुक्त हुआ है । कालिदास, भारवि, माघ आदि संस्कृत कवियों के यहाँ भी 'उन्मनस्' शब्द का प्रयोग मिलता है । सिद्धों और नाथों के यहाँ आकर यह शब्दपारिभाषिक रूप में प्रयुक्त होने लगा। हठयोग प्रदीपिका में उन्मनि के लिए अमरत्व, लयत्व, शून्याशून्य, परमपद, राजयोग, अद्वैत, निरालम्ब, निरंजन जीवन्मुक्ति, सहजा, तुर्या आदि शब्द आये हैं । मनोन्नमनी अवस्था का वर्णन करते हुए 'हठयोग प्रदीपका' में लिखा है कि :

'मारुते मध्य संचारे मनः स्थैर्य प्रजायते ।
यो मनः सुस्थिरी भाव सैवावस्था मनोन्मनी ।'[48]

अर्थात् जो वायु इंगला और पिंगला नाड़ियों से प्रवाहित होती है वह सुषुम्ना से प्रवाहित होने लगे तो मन स्थिर हो जाता है । चित की इस स्थिर स्थिति को 'मनोन्मनी' कहते हैं। नाद बिन्दु उपनिषद्' के अनुसार--

उन्मनि अवस्था को प्राप्त संत सभी चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है । उसका शरीर काष्ठवत् हो जाता है । वह मृतक के समान शीत-उष्ण, सुख-दुख की चिन्ताओं से मुक्त हो

जाता है :

'सर्वावस्था विनिर्मुक्तः सर्वचिन्ता विवर्जितः ।
मृतवत्तिष्ठते योगी स मुक्तो नास्ति संशयः ।।
काष्ठवज्जायते देह उन्मन्यावस्थया ध्रुवम् ।
न जानाति शीतोष्ण न दुखं न सुखं तथा ।'

कबीर के यहाँ 'उन्मन' का प्रयोग कई रूपों में हुआ है । कहीं पर उन्मन 'ध्यान' के लिए आया है तो कहीं पर परमतत्व के लिये प्रयुक्त हुआ है । कहीं-कहीं पर उनमन विशेषण बनकर भी आया है । वे सन्यासी को उन्मन रहने वाला कहते हैं । डॉ0 जयदेव सिंह [illegible]

संतों ने गंगा को यमुना में मिलाने की बात बार-बार कही है । हठयोग में इड़ा गंगा है और पिंगला यमुना । सामान्यतया जगत व्यवहार में यमुना गंगा में मिलती है । संतों ने गंगा (इड़ा) को यमुना (पिंगला) में मिलाने की बात कही है । महाराज विश्वनाथ सिंह 'संसार-मुखी, राग रूपी गंगा को उलटकर ब्रह्ममुखी होने' की क्रिया को उल्टी गंगा कहते हैं । विचारदास शास्त्री के अनुसार 'ब्रह्माण्ड में चढ़ाई हुई साँस' उल्टी गंगा है । 'गंगा को उलटने की बात करने वाले सिद्ध और संत सामान्य सत्य से उल-टी बात भी करते हैं । जगत में जमुना गंगा से मिलती है पर सन्तों का कहना है कि जो गंगा को उलटकर जमुना में मिलाता है वह बिना जल के त्रिवेणी संगम पर मानस स्नान करता है ।'[44] कबीर कहते हैं कि जब उल्टी गंगा अर्थात् प्राण वायु की धारा ऊपर की ओर चलती है तब वह सांसारिक विषय रूपी समुद्र को सुखा देती है। उस समय चन्द्र-सूर्य नाड़ियों का ग्रास हो जाता है । नवग्रह को वश में करके योगी ध्यानस्थ हो जाता है और उसके हृदय में परमब्रह्म का प्रकाश भर जाता है :

'अवधू जागत नींद न कीजे ।
काल खाइ कलप नहिं व्यापै, देही जुरा नहिं छीजे ।। टेक ।।
उलटी गंग समुद्रहिं सोखै, ससिहर सूर गरासै ।
नवग्रह मारि योगिया बैठे, जलमहिं बिंब प्रकासै ।'[45]

रविदास कहते हैं --

'उलटी गंग जमुन में लावौ
बिनही जल मंजन ह्वै पावौ ।'[46]

डॉ० राजदेव सिंह उल्टी गंगा के विषय में कहते हैं कि 'सामान्य स्थिति में इड़ा पिंगला से श्वासधारा बाहर की ओर प्रवाहित होती रहती है । योग में प्राणयाम द्वारा बाहर की ओर प्रवहमान श्वासधारा को उलटकर ब्रह्माण्ड में चढ़ाया जाता है, जिससे समाधि उत्पन्न होती है। समाधि की अवस्था में इड़ा और पिंगला से न प्रवाहित हो कर प्राण इनके मध्य में स्थित सुषुम्ना से प्रवाहित होते हैं । इस अवस्था में इड़ा-पिंगला (गंगा-जमुना) एकाकार हो जाती है ।[47]

उन्मनि :

'उन्मन' उत्कंठित मन को कहते हैं । 'उन्मनस' शब्द संस्कृत में चित की ऊर्ध्वगति के लिए प्रयुक्त हुआ है । कालिदास, भारवि, माघ आदि संस्कृत कवियों के यहाँ भी 'उन्मनस्' शब्द का प्रयोग मिलता है । सिद्धों और नाथों के यहाँ आकर यह शब्दपारिभाषिक रूप में प्रयुक्त होने लगा। हठयोग प्रदीपिका में उन्मनि के लिए अमरत्व, लयत्व, शून्याशून्य, परमपद, राजयोग, अद्वैत, निरालम्ब, निरंजन जीवन्मुक्ति, सहजा, तुर्या आदि शब्द आये हैं । मनोन्मनी अवस्था का वर्णन करते हुए 'हठयोग प्रदीपिका' में लिखा है कि :

04:51

2015.493941.Madhyak...

यह धुंवा प्राण ही है। जैसे धूम, अग्नि को सिद्ध करता है वैसे ही प्राणों का ऊपर उठकर ब्रह्मरन्ध्र में स्थित होना सिद्धि प्राप्ति का लक्षण है। योगी की अन्तिम अवस्था 'निष्पत्ति' की है। इसको प्राप्त कर योगी भेद भाव विवर्जित सम-दृष्टि वाला हो जाता है। सिद्धियों के लोभ से असम्पृक्त, काल प्रभाव से मुक्त, ऐसा निष्पत्ति प्राप्त योगी सब के लिए वन्दनीय है।

शब्द-तत्व—अधोमुखी कुण्डलिनी जब ऊर्ध्वमुख होकर उद्बुद्ध होती है तब उससे जो स्फोट होता है, उसे 'नाद' कहते हैं। यह नाद वस्तुतः अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनाहत नाद का व्यष्टि में व्यक्त रूप है अर्थात् जो नाद अनाहत भाव से सारे संसार में समाया हुआ है उसी का प्रकाशन जब एक व्यक्ति में होता है तो उसे 'नाद' कहते हैं। बद्ध जीव उस नाद-श्रवण से वञ्चित रहता है। कुण्डलिनी-शक्ति के जागने से प्राण स्थिर होकर शून्य-पथ से उस अनाहत नाद को सुनने लगता है। यह नाद मूलतः एक होकर भी औपाधिक सम्बन्ध के कारण सात स्वरों में विभक्त है। शास्त्र में जिसे प्रणव या ओंकार कहते हैं, वही उपाधि-रहित शब्द-तत्व है।[1] नाथपन्थियों में इस शब्द-प्राप्ति पर विशेष जोर दिया गया है। गुरु गोरखनाथ का कथन है कि हे! अवधूत शब्द को प्राप्त करो, शब्द को प्राप्त करो, स्थान अथवा तीर्थ को मान देना आदि क्रियाएँ सब धन्धा हैं। शब्द की प्राप्ति से आत्मा में परमात्मा वैसे ही दिखाई देने लगता है जैसे जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब। शब्द से ही शरीर सिद्ध होता है। इसी शब्द को प्राप्त करने के लिए निन्यानबे करोड़ राजा चेले हो गये और प्रजा में से कितने हुए उसका तो अन्त ही नहीं मिलता।[2] गोरखनाथ जी का कथन है कि शब्द ही ताला है, वही परमतत्व को बन्द किये रहता है। शब्द की धारा ही सूक्ष्म परमतत्व पर स्थूल आवरणों को बाँधकर सृष्टि का निर्माण करती है, इसलिए मूल अधिष्ठान तक पहुँचने के लिए शब्द की धारा पकड़कर वापिस आना पड़ता है, इसीलिए वही कुंजी भी है जिससे ताला खोला जाता है। गुरु के शब्द में भी परमतत्व रहता है जो उसी के मनन-चिन्तन से खिलता है। अन्तरी शब्द (नाद) का जागरण इसी शब्द (गुरु-उपदेश) के

---

[1] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ६४।
[2] गोरखबानी—सबदी, १२४, १२६।

ता है। जब इस प्रकार स्थूल शब्द के द्वारा सूक्ष्म शब्द से परिचय है तब स्थूल शब्द सूक्ष्म मूल शब्द में समा जाता है।[1] अनाहत-नाद के

है। उस समय साधक समाधि अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इनकी वाणी में इस साधना के सम्बन्ध में अनेक शब्द मौजूद हैं।"[149]

उदाहरण के लिये वाणी के कुछ अंश उल्लेखनीय हैं– ....

घट चक्रन को नाद प्रन छेदे। चढ़े आकास तिरकुटी को बेधे।।
सुखम धुन तवेनी बोले। गुरमुख हंसा नित करे कलोले।[150]

मन का संसा सहज होवे दूर। एको नाम जपो आलख हजूर।।
नाम ध्याए घट शबद परगासे। शबद पहचाने होई गवन विनासे।।
नाम ध्यान अंतर जब आए।कलह विनास सतरूप समाए।।[151]

उद्धृत अंशों में "ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें योग मार्ग की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन है। इन वर्णनों में अनेक प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। साधक जिज्ञासु अपनी–अपनी स्थिति के अनुसार उनका अर्थ समझ लेते हैं"।"[152]

संत मंगतराम का युग देश की सामाजिक,सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक जागरण (पुनर्जागरण)का युग था। विचार का यह समता–मार्ग है, जिसमें संत–परम्परा में विकसित समदृष्टि का मूल आधार यथावत अपनाया गया है।"[153]

महर्षि मेंहीं सं० 1942–2043 (सन् 1885–1986)

महर्षि मेंहीं संत परम्परा के वाणी रचनाकारों में अन्तिम संत कहे जा सकते हैं।[154]

इन पर राधा–स्वामी विचार धारा का प्रभाव कहा जा सकता है। "इनमें तेजस्व बिन्दु ध्यान, नाद ध्यान, सुरति–निरति साधना प्रमुख है"[155]

युगीन प्रवृत्तियों के प्रति इन्होंने सटीक टिप्पणियाँ की है–अकर्मण्य जन से दुनियाँ में ,मदद न कोई पा सकता है। वह है बुझा हुआ दीपक जो,दीप न अन्य जगा सकता है। महर्षि मेंहीं की वाणी में सहज–साधना मुख्य है। यह वाणी हमें अनासक्त भाव में जीना सिखाती है। योग–साधना की अपेक्षा सहज

जीवन की ओर प्रेरित करती है। पाखण्ड से मुक्त कर सादगी और निर्मल भाव में जीने का संदेश देती है–

निर्वाण प्राप्त मानव की मति,होती है अगाध अति निर्मल।

20:18
← 2015.380512.Sidh-sahi...

प्रमुख हैं ललना, रसना और अवधूती।[६१] चर्यापदों में इन तीन नाड़ियों को विभिन्न प्रतीकों से लक्षित किया गया है। विरूपा अवधूती की (शुंडिनी) मधुबाला से उपमा देते हैं जो दो स्थानों से मद को खींचती है, ललना और रसना।[६२] इसी को गुंडुरी तिश्रड्डा या त्रिनाड़ी कहते हैं।[६३] इनमें से ललना वाम नासापुट के समीप है, वह चन्द्र स्वभाव की है और प्रज्ञारूप है।[६४] रसना दक्षिण नासापुट के समीप है, सूर्य स्वभाव की है और उपायरूप है।[६५] इन्हीं दोनों को नैरात्म-दर्शन की परिभाषा में ज्ञेय और ज्ञान, ग्राह्य ग्राहक भी कहा जाता है और अवधूती इन दोनों के बीच ग्राह्य-ग्राहक-वर्जित रूप में स्थित है। उसी नैरात्म्यज्ञान रूपी मध्यम सहजपथ की भाँति वह क्लेशों को धुनने वाली है अतः उसका नाम अवधूती है।[६६] इसी अवधूती में से होकर शुक्र नामक और भी सूक्ष्म नाड़ी है जिसमें से बोधिचित्त उर्ध्वगामी होता है बिन्दु रूप में।[६७] यह नाड़िका वैरोचन द्वार में लीन होती है जो नवद्वारों के अतिरिक्त दसवां द्वार है।[६८]

चर्यापदों का यह नाड़ीजाल हिन्दू योग परम्परा में भी मिलता है। योग साधना में भी मेरुदंड के बहिःपार्श्व में चन्द्र और सूर्य रूपी इड़ा और पिंगला नाड़ियों की स्थिति बताई गई है। बीच में सुषुम्णा है जो मेरुदंड के विवर में है और वह अग्नि रूपी है।[६९] इड़ा वामगा है, देवी है; पिंगला शिव है, सूर्य है। इड़ा यमुना है, पिंगला सरस्वती है, सुषुम्णा गंगा है। इस प्रकार त्रिवेणी बनती है।[७०] इनमें से सुषुम्णा भी त्रिगुण के अनुसार ३ नाड़ियों का गुम्फन है। सत्वगुणमयी चित्रिणी, रजोगुणमयी वज्रा, और तमोगुणमयी सुषुम्णा, इसीलिये उसे अग्निमयी बताया गया है।[७१] शंखिनी रूपी नाल को ग्रहण कर वह ब्रह्मसदन को जाती है।[७२]

हेरुक-तन्त्र में भी ललना रसना की यही स्थिति बताई गई है। ललना या आली धनुषाकार रूप में गर्दन से प्रारम्भ होती है और नाभि में वाम दिशा से प्रवेश करती है। रसना नाभि से प्रारम्भ होती है और कंठप्रदेश में होती हुई अवधूती वैरोचन द्वार तक जाती है। इसीलिये उसे मध्यम कहा गया है। चूंकि ललना और रसना को प्रज्ञोपाय कहा गया है अतः यह सहज है।[७३]

तन्त्रों तथा चर्यापदों में विभिन्न प्रतीकों में आली काली, गंगा यमुना, सूर्य चन्द्र, धमन चमन, ललना रसना का उल्लेख है। इन नामों में से कुछ युग्मों पर विचार कर लेना आवश्यक है। आली के अर्थ हैं अ से प्रारम्भ होने वाली स्वर माला, और काली के अर्थ हैं क से प्रारंभ होने वाली व्यंजन माला।

20:56

एक दुर्भिक्ष पड़ने पर अपना निवास स्थान त्याग दिया, तथा नागोर, अजमेर, जयपुर, शेखावटी आदि में भ्रमण करते रहे। अंत में डीडवाणा ही लौट आये और सत्संग करते रहे। निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते थे तथा जाति–पाँति, सांप्रदायिकता आदि के विरोधी थे। इनकी कविताओं का संग्रह 'हरिदास की वाणी' नाम से प्रकाशित है। इनकी काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य है–

सागर में कुंभ–कुंभ में जल है, निराकार निज ऐसा रे।
सकल लोक ऐसे हरि माही, रूप कहाँ धूँ कैसा रे।।

संत आनंद धन

संत आनंद धन का जन्म सत्रहवीं शताब्दी में राजस्थान प्रांत के गाँव में हुआ। इनकी मृत्यु मेड़तानगर, जोधापुर (राजस्थान) में हुई।[98] निर्गुण ब्रह्म की उपासना में निरत रहने वाले

आनंद धन उच्च कोटि के संत एवं कवि थे। इनकी दो रचनाऐं उपलब्ध हैं– 'आनंदधन चौबीसी' और 'आनंदधन बहोत्तरी' इनकी काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

साधु भाई अपना रूप जब देखा।
साधु संगत अरु गुरू की कृपा से,मिट गई कुल की रेखा।

संत भीषन दास जी

संत भीषनदास जी सत्रहवीं शताब्दी के संत थे, जो फतेहनगर शेखावटी के निवासी थे।[99] ये संत दास के शिष्य थे और निर्गुण ब्रह्म में परम आस्था रखते थे। इनका जाति–पाँति, छुआछूत, अंधविश्वास आदि से विरोध रहता था। इनकी 'सर्वांग बावनी' और 'भारतीनाम माला' दो रचनाऐं हैं, जिनका रचना काल क्रमशः संवत् 1683 एवं संवत् 1685 है। इनकी रचना का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

ज्यू दर्पण प्रतिबिंब में होति जाहि विश्राम है। सकल व्यापी भीषन जी जैसे घट–घट राम है।।

संत बाबा लाल

संत बाबालाल का जन्म संवत् 1662 में मालवा (पंजाब) में सम्राट जहाँगीर के शासन काल में हुआ तथा मृत्यु संवत् 1684 में हुई।[100] इनके गुरू चेतन स्वामी थे। जनश्रुति के अनुसार एक बार दाराशिकोह और संत बाबालाल के मध्य लाहौर में धार्मिक संवाद हुआ। वह संवाद राय जाधवदास जी ने लिपिबद्ध कर लिया था। उसी का फारसी में अनुवाद राय चंद्रभान द्वारा 'नादिरूलनुकात' के नाम से प्रकाशित हुआ। संत बाबालाल एकेश्वरवादी, निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे, जो परमात्मा को राम और हरि कहते थे। इनका विचार था कि परमात्मा

20:53

संत धर्मोदास

संत धर्मोदास का जन्म संवत् 1731 में गाँव माँझी, जिला छपरा, बिहार प्रांत में हुआ तथा इनकी मृत्यु की तिथि अज्ञात है। इनके पिता परसराम दास एक कृषक थे तथा धर्मोदास जमींदार के यहाँ दीवान थे। इन्होंने चंद्रहास को अपना गुरू बनाया तथा उच्चस्तर का शब्द–अभ्यास करने लगे। निर्गुण ब्रह्म की उपासना में लीन रहते थे तथा जाति–पाँति, आड़ंबर आदि का विरोध करते थे। यथा–

'लिखनी नाँहि करौगे भाई, मोहि राम नाम सुद आयी।'

जनश्रुति के अनुसार इनकी मृत्यु गंगा के जल पर हुई। ये गंगा के जल पर चादर बिछाकर बैठ गये और शरीर त्याग दिया। इनकी रचनाऐं 'सत्यप्रकाश', 'प्रेमप्रकाश' और 'धरनीदास जी की वाणी' है, जो वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित है।

संत बुल्लेशाह

संत बुल्लेशाह का जन्म संवत् 1760 में गाँव रूम (पंजाब) में हुआ और मृत्यु संवत् 1810 में गाँव कुसूर जिला लाहौर (पंजाब) में हुई। ये अविवाहित सैय्यद मुसलमान थे और कुसूर में ही सत्संग किया करते थे। शाह इनायत इनके गुरू थे। यह एक प्रसिद्ध सूफी भक्त थे, जो पंजाब में गुरूनानक के 150 वर्ष पश्चात् प्रकट हुए। जब यह कुरान और शरअत का सार्वजनिक रूप से खंडन करते थे, तो मुस्लिम संप्रदाय से इनका झगड़ा होता था। निर्गुण निराकार ब्रह्म के उपासक शाह ने मूर्ति–पूजा, अंधविश्वास, आड़ंबर आदि का विरोध किया। यथा–

"ना खुदा मसीते लभदा, ना खुदा खाना काबे।
ना खुदा कुरान किताबां, ना खुदा नमाजे।।"[92]

संत सहजोबाई

संत सहजोबाई का जन्म संवत् 1800 में राजस्थान के मेवात में हुआ। यह गुरूचरनदास की गुरूमुख शिष्या थी तथा दयाबाई की सजातीय गुरू बहन थी। निर्गुण ब्रह्म की उपासिका रही और शब्द अभ्यासी थी। इनका उपदेश है–'रामनाम ले सहजिया, मुक्तिहीन की रीति'।[93] इनकी 'सहजोबाई की वाणी' प्रमुख रचना है, जो वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित है।

जत सत्, त्याग चित रहे समाए। सत व्रत बिमल घट अन्तर पाये।।
सत् साधन का मूल है नाम। गुरमुख जपे पावे विसराम।।
नाम ध्यान नाम ही योग। अनहद नाद नाम का भोग।।
मूल नाम सतगुरू बतलाया। अगम निगम की गम को पाया।।

कुछ विधि संकेत

प्रथमे आसन सहजे बांधे। इन्द्री इस्थिर मनुआ खांडे।।
मुख नयन जीभा को बांधे। साचा नाम हिये में सांधे।।
धीरे-धीरे पवन को पीवे। शुद्ध ध्यान में नाम जपीवे।।
हकार साकार को एह विध मिलाए। बांधे पवन पश्चिम घर जाए।।
मूल द्वार में बन्ध लगाए। उलट पवन सत नाम कमाए।।
स्वास सुरत मिल किया हलोल। नाभी अस्थान में पाई कलोल।।
ईड़ा पिंगला सुखमन नाली। तीनों मिलें ऊपर तिरनाली।।
सुखमन नाली में पवन भरीजे। उमगे नाद माया गढ़ छीजे।।
स्वास सुरत को पल पल जोड़े। अगम शबद का चढ़े सरूरे।।
सुखमन खुली शबद घर जागा। साध सीख पाई बड़भागा।।
चढ़े आकास खोल बंकनी नाली। गरजे शबद भीतर तिरनाली।।
आसन धरती सुरत आकासे, लखे ज्ञान निर्वानी।
उपजे शब्द जोत दरसावे, सुरत भई अकलानी।।
ऊपर चढ़े शिखर को जाए। केवल नाद संग प्रीत कमाए।।
सुन्न गुफा में करे ध्यान। अनहद गरजे सहज की तान।।
सुरत समाई शबद में, चढ़ी सुन्न के देश।।
"**मंगत**" नज़री आया, आद पुरख जगदीश।।

(ग्रन्थ समता प्रकाश से)

12:32
5_6176995533878465328

है। अनेक स्थानों पर इन सिद्धों ने इसे ही महामुद्रा साक्षात्कार, निर्वाण, परमपद आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है।

सहजयान सम्प्रदाय तांत्रिक बौद्ध परम्परा के अंतर्गत उद्‌बुद्ध मानी जाती है, जो वज्रयानी शाखा से अलग होकर विकसित हुई थी। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में चौरासी सिद्धों की सूची में सहजयानी सिद्धों को देखा जा सकता है। इन सिद्धों में लूअिपा (लुईपाद), लीलापा, विरूपा, शबरपा, सरहपा, कण्डालीपा, मीनपा, गोरक्षपा, कण्हपा, चौरंगिपा, वीणापा, शान्तिपा, तिलोपा, नरोपा, डोम्भीपा आदि प्रमुख सिद्धों के नामों का उल्लेख है।

इनकी संख्या चौरासी कही गयी है। सिद्धों की रचनाएँ संस्कृत, मिश्रसंस्कृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में प्राप्त होती है। इनमें चर्यापद, दोहाकोशगीति, चर्यागीति और संस्कृत आदि प्रमुख माने जाते हैं जिनमें लुईपाद रचितचर्यापद, चर्याचर्यविनिश्चय, हेवज्रतंत्र, कृष्णपादरचित, हेवज्रपंजिकायोगरत्नमाला, शांतिपा रचित हेवज्रपंजिका मुक्तावली, हेवज्रतंत्र, नरोपाकृत वज्रयानी अनुत्तरयोगतंत्र, सेकोद्देश्यटीका, चर्यागितिकोश, हेवज्रपंजिका, कालचक्रतंत्रम् आदि सहजयानी ग्रंथों के रूप में प्रसिद्ध हैं। जिनमें इन सिद्धों की साधनाओं का अवलोकन किया जा सकता है।

इन सहजयानी सिद्धों ने उपरोक्त ग्रंथों के साथ-साथ वज्रयान के आधार ग्रंथों को भी स्वीकार किया है। इन्होंने गुरू को विशेष महत्त्व देते हुए उनके द्वारा उपदिष्ट साधनाओं को अपने ग्रंथों में वर्णित किया है। जिनके अवलोकन से वज्रासन, देहस्थ विभिन्न नाड़ियों का उल्लेख, वज्रजाप, कापालिक साधना, मुद्रा साधना, प्रज्ञोपाय, बिन्दु साधना, चाण्डाली योग, देहस्थ चक्र, सहजानंद एवं निर्वाण आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके दर्शन एवं प्रमाणों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि इन्होंने इस जगत को चित्त से ही उत्पन्न माना है। जो न तो सत् रूप है, और न ही असत् रूप। सहजयानी सिद्धों के अनुसार लल
412/472
रसना की मिलन की प्रगाढ़ता में प्रज्ञोपाय साधना से बोधिचित्त का मध ऊर्ध्वगमन होने से मन और प्राण में क्रमशः स्थिरता आते-आते समस्त संसारिक ज्ञान एवं पंचमहाभूत भस्मिभूत हो जाते हैं। उपरांत इसी देह में सत्य ज्ञान का

Doodle Text Signature Share

12:30

5_6176995533878465328

कौलमार्ग श्रेष्ठ कहा गया है। मत्स्येन्द्रनाथ इसी कौलमार्ग के प्रतिष्ठित आचार्य माने जाते हैं। जो कामरूप में योगिनियों के मध्य वामाचारी गुरू के रूप में भी प्रतिष्ठित रहे है। गोरक्षनाथ ने अपने गुरू मत्स्येन्द्रनाथ को वामाचारी मार्ग से निकालकर शैवमार्ग में पुनः वापस लाये थे। कान्हुपाद ने बंगाल में बहुत समय गुजारा था और सोमपुरी विहार में जालंधरिपा से दीक्षा भी ग्रहण की थी।[662]

द्वारका दास शास्त्री - बंगाल के राजा गोपीचंद की माता मैनामती गोरक्षनाथ की शिष्या थी। गोरक्षनाथ के द्वारा मैनामती को सिद्ध जालंधर (हाडिपा) से गोपीचंद को दीक्षा दिलाने का निर्देश प्राप्त हुआ था। राजा गोपीचंद के संन्यास के बाद उनके सम्मान में गाये जाने वाले गीतों से यह पता चलता है कि जालंधरनाथ और मैनामती दोनों गोरक्षनाथ के शिष्य थे। ये गीत आज भी भारत की विभिन्न भाषाओं में भी प्रचलित हैं।[663]

डॉ. ठाकुर सेन नेगी - जिस प्रकार बौद्ध तंत्रों के इतर मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी जागृत होकर ऊर्ध्वगमन करती है, उसी प्रकार प्रकार बौद्ध तंत्रों के अनुसार निर्माण चक्र में चण्डाली उदीप्त होती है।[664] इसके जागृत होने पर शिरोभाग में स्थित चंद्रमा से अमृत का स्राव होने लगता है। अवस्थाओं के अनुसार बौद्ध सिद्धों ने इसी शक्ति को ही डोंबी, योगिनी, सहजसुन्दरी, नैरात्मा आदि नामों से पुकारा है जो बोधिचित्त को मध्यमार्ग से उष्णीष कमल तक ले जाती हुई पंच महाभूतों के प्रतीकों को जला देती है।[665]

---

[662] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ.10.
[663] शास्त्री, द्वारिका दास. सिद्धसिद्धांत पद्धति. संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2014. भूमिका. पृ.3.
[664] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999.पृ. 220
[665] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 221.

408/472

उपसंहार :-

नाथ सिद्धों की हठयोग साधना को प्रस्तुत करने वाले साहित्यों में नाथ शब्द एक परम तत्व का सूचक है, जो नाम रहित ब्रह्म है। इसे ही आदिनाथ (शिव) की संज्ञा दी गयी है। जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि का स्वामी है। जिसने

Doodle Text Signature Share

21:02

एक दुर्भिक्ष पड़ने पर अपना निवास स्थान त्याग दिया, तथा नागोर, अजमेर, जयपुर, शेखावटी आदि में भ्रमण करते रहे। अंत में डीडवाणा ही लौट आये और सत्संग करते रहे। निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते थे तथा जाति–पाँति, सांप्रदायिकता आदि के विरोधी थे। इनकी कविताओं का संग्रह 'हरिदास की वाणी' नाम से प्रकाशित है। इनकी काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य है–

सागर में कुंभ–कुंभ में जल है, निराकार निज ऐसा रे।
सकल लोक ऐसे हरि माही, रूप कहाँ धूँ कैसा रे।।

संत आनंद धन

संत आनंद धन का जन्म सत्रहवीं शताब्दी में राजस्थान प्रांत के गाँव में हुआ। इनकी मृत्यु मेड़तानगर, जोधापुर (राजस्थान) में हुई।[98] निर्गुण ब्रह्म की उपासना में निरत रहने वाले

आनंद धन उच्च कोटि के संत एवं कवि थे। इनकी दो रचनाऐं उपलब्ध हैं– 'आनंदधन चौबीसी' और 'आनंदधन बहोत्तरी' इनकी काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

साधु भाई अपना रूप जब देखा।
साधु संगत अरु गुरू की कृपा से,मिट गई कुल की रेखा।

संत भीषन दास जी

संत भीषनदास जी सत्रहवीं शताब्दी के संत थे, जो फतेहनगर शेखावटी के निवासी थे।[99] ये संत दास के शिष्य थे और निर्गुण ब्रह्म में परम आस्था रखते थे। इनका जाति–पाँति, छुआछूत, अंधविश्वास आदि से विरोध रहता था। इनकी 'सर्वांग बावनी' और 'भारतीनाम माला' दो रचनाऐं हैं, जिनका रचना काल क्रमशः संवत् 1683 एवं संवत् 1685 है। इनकी रचना का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

ज्यू दर्पण प्रतिबिंब में होति जाहि विश्राम है। सकल व्यापी भीषन जी जैसे घट–घट राम है।।

संत बाबा लाल

संत बाबालाल का जन्म संवत् 1662 में मालवा (पंजाब) में सम्राट जहाँगीर के शासन काल में हुआ तथा मृत्यु संवत् 1684 में हुई।[100] इनके गुरू चेतन स्वामी थे। जनश्रुति के अनुसार एक बार दाराशिकोह और संत बाबालाल के मध्य लाहौर में धार्मिक संवाद हुआ। वह संवाद राय जाधवदास जी ने लिपिबद्ध कर लिया था। उसी का फारसी में अनुवाद राय चंद्रभान द्वारा 'नादिरूलनुकात' के नाम से प्रकाशित हुआ। संत बाबालाल एकेश्वरवादी, निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे, जो परमात्मा को राम और हरि कहते थे। इनका विचार था कि परमात्मा

प्राण[1]सञ्चारो वैशाखपदम् । वायुमण्डले प्रचारो मण्डलपदम् । अग्निमण्डले प्रचारो ललितपदम् । उदकमण्डले प्रचारः पद्मासनम् । पृथिवीमण्डले प्रचारो वज्रासनमिति । एवं समविषमगतो पञ्चधा प्राणवायोः प्रचारो यस्तेन विशुद्धेन देवतानां पद्मासनविशुद्धिः [illegible] [2]भवतीति नियमः । एवं जातकस्य वाङ्निष्पत्ति- [illegible]

इति मूलतन्त्रा[illegible] कालचक्रतन्त्रराजटीकायां
द्वादशसाहस्रिकाय[illegible] [illegible]यां साधनापटले
प्राणदेवतोत्प[illegible] [illegible]तीयः ॥

४. उत्पन्नक्रमसाधनमहोद्देशः

प्रणिपत्याच्युतं सौख्यं षोडशार्धार्धबिन्दुधृक् ।
यत्तस्योपायः सम्यग् बिन्दुयोगः प्रकथ्यते ॥

चण्डाली नाभिचक्रे नवहुतभुजगे चर्चिकाद्याधिदेवे
ह्रोंकारज्ञानगर्भे तडिदनलनिभा ज्ञानतेजःप्रबुद्धा ।
नाभौ वैरोचनादीन् दहति नरपते लोचना चक्षुरादीन्
सर्वान् दग्ध्वा सुचन्द्रात्स्रवति शिरसि यो बिन्दुरूपं स वज्री ॥११०॥
[283b]

चण्डालीत्यादिना । इह सर्वोत्पत्तिक्रमे कायनिष्पत्तिर्मण्डलराजाग्री । वाङ्निष्पत्तिः कर्मराजाग्री, कर्मेन्द्रियक्रियाप्रवर्तनात् । बोधिचित्तबिन्दुनिष्पत्तिर्बिन्दुयोगः । शुक्रच्यवनात् सुखोपलब्धिः सूक्ष्मयोगः । स च नराणां षोडशवर्षान्ते भवति । तेन तस्योप[3]भोगाय विवाहपाणिग्रहणादिकं कार्यम् । शिष्याय प्रज्ञासमर्पणं करोत्याचार्यः । तया तस्य सुखस्य साधनं कर्ममुद्रयोक्तं बालजनानाम्, ज्ञानमुद्रया मध्यमानाम्, महामुद्रयोत्तमयोगिनामिति । तेन मूलतन्त्रे भगवान् [4]आह—

षोडशाब्दां कुलीनां वा रूपयौवनमण्डिताम् ।
आदौ सुशिक्षितां कृत्वा सिक्त्वा साधनमारभेत् ॥
कायवाक्चित्तरागांश्च ललाटादिषु विन्यसेत् ।
[illegible]स्वाहा गुह्ये महोष्णीषे ततः पद्मं विशोधयेत् ॥
[illegible]दलं पद्मं हूंकारकुलिशान्वि[illegible]
एवं सम्पु[illegible] [illegible] ॥

1. ग. च. प्रचारो । 2. इतः परं ग-पुस्तके २११ पत्राभावात् 'भवतीति ...... द्वादश-राशिकालात्मकं' इति यावत् पाठो नास्ति । 3. च. योगाय । 4. क. ख. ग. ङ. 'आह' नास्ति ।

हूंकारेण स्वकं वज्रं पञ्चशूकं विभावयेत् ।
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं आःकारेण प्रकल्पयेत् ॥
एवं सकमलं कुलिशं कृत्वा पद्मे निवेशयेत् ।

04:51

← 5_6195105662914007...

प्राण[1]सञ्चारो वैशाखपदम्। वायुमण्डले प्रचारो मण्डलपदम्। अग्निमण्डले प्रचारो ललितपदम्। उदकमण्डले प्रचारः पद्मासनम्। पृथिवीमण्डले प्रचारो वज्रासनमिति। एवं समविषमगतो पञ्चधा प्राणवायोः प्रचारो यस्तेन विशुद्धेन देवतानां पद्मासनविशुद्धिः प्रकम्पाभावतो [2]भवतीति नियमः। एवं जातकस्य वाङ्निष्पत्ति-र्द्वितीया ॥ १०९ ॥

इति मूलतन्त्रानुसारिण्यां लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां
द्वादशसाहस्रिकायां विमलप्रभायां साधनापटले
प्राणदेवतोत्पादमहोद्देशस्तृतीयः ॥

४. उत्पन्नक्रमसाधनमहोद्देशः

प्रणिपत्याच्युतं सौख्यं षोडशार्धार्धबिन्दुधृक्।
यत्तस्योपायः सम्यग् बिन्दुयोगः प्रकथ्यते ॥

चण्डाली नाभिचक्रे नवहुतभुजगे चर्चिकाद्याधिदेवे
ह्रोंकारज्ञानगर्भे तडिदनलनिभा ज्ञानतेजःप्रबुद्धा।
नाभौ वैरोचनादीन् दहति नरपते लोचना चक्षुरादीन्
सर्वान् दग्ध्वा सुचन्द्रात्स्रवति शिरसि यो बिन्दुरूपं स वज्री ॥११०॥

[283b]

चण्डालीत्यादिना। इह सर्वोत्पत्तिक्रमे कायनिष्पत्तिर्मण्डलराजाग्री। वाङ्-निष्पत्तिः कर्मराजाग्री, कर्मेन्द्रियक्रियाप्रवर्तनात्। बोधिचित्तबिन्दुनिष्पत्तिर्बिन्दुयोगः। शुक्रच्यवनात् सुखोपलब्धिः सूक्ष्मयोगः। स च नराणां षोडशवर्षान्ते भवति। तेन तस्योप[3]भोगाय विवाहपाणिग्रहणादिकं कार्यम्। शिष्याय प्रज्ञासमर्पणं करोत्याचार्यः। तया तस्य सुखस्य साधनं कर्ममुद्रयोक्तं बालजनानाम्, ज्ञानमुद्रया मध्यमानाम्, महामुद्रयोत्तमयोगिनामिति। तेन मूलतन्त्रे भगवान् [4]आह—

षोडशाब्दां कुलीनां वा रूपयौवनमण्डिताम्।
आदौ सुशिक्षितां कृत्वा सिक्त्वा साधनमारभेत् ॥
कायवाक्चित्तरागांश्च ललाटादिषु विन्यसेत्।
स्वाहा गुह्ये महोष्णीषे ततः पद्मं विशोधयेत् ॥
आःकारेणाष्टदलं पद्मं हूंकारकुलिशान्वितम्।
एवं सकुलिशं कमलं प्रज्ञायाः स्पन्दहेतुतः ॥

---

१. ग. च. प्रचारो। २. इतः परं म-पुस्तके २११ पत्राभावात् 'भवतीति ...... द्वादश-राशिमण्डलात्मकं' इति यावत् पाठो नास्ति। ३. च. योगाय। ४. क. ख. ग. ङ. 'आह' नास्ति।

हूंकारेण स्वकं वज्रं पञ्चशूकं विभावयेत्।
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं आःकारेण प्रकल्पयेत् ॥
एवं सकमलं कुलिशं कृत्वा पद्मे निवेशयेत्।

कौलमार्ग श्रेष्ठ कहा गया है। मत्स्येन्द्रनाथ इसी कौलमार्ग के प्रतिष्ठित आचार्य माने जाते हैं। जो कामरूप में योगिनियों के मध्य वामाचारी गुरू के रूप में भी प्रतिष्ठित रहे है। गोरक्षनाथ ने अपने गुरू मत्स्येन्द्रनाथ को वामाचारी मार्ग से निकालकर शैवमार्ग में पुनः वापस लाये थे। कान्हुपाद ने बंगाल में बहुत समय गुजारा था और सोमपुरी विहार में जालंधरिपा से दीक्षा भी ग्रहण की थी।[662]

द्वारका दास शास्त्री - बंगाल के राजा गोपीचंद की माता मैनामती गोरक्षनाथ की शिष्या थी। गोरक्षनाथ के द्वारा मैनामती को सिद्ध जालंधर [illegible] की दीक्षा दिलाने का निर्दे[illegible]। राजा गोपीचंद के सन्यास के बाद उनके सम्मान में गाये जाने वाले गीतों से यह [illegible]लता है कि जालंधरनाथ और मैनामती दोनों गोरक्षनाथ के शिष्य थे। ये गीत [illegible] भारत की विभिन्न भाषाओं में भी प्रचलित हैं।[663]

डॉ. ठाकुर सेन नेगी - जिस प्रकार बौद्ध तंत्रों के इतर मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी जागृत होकर ऊर्ध्वगमन करती है, उसी प्रकार प्रकार बौद्ध तंत्रों के अनुसार निर्माण चक्र में चण्डाली उद्दीप्त होती है।[664] इसके जागृत होने पर शिरोभाग में स्थित चंद्रमा से अमृत का स्राव होने लगता है। अवस्थाओं के अनुसार बौद्ध सिद्धों ने इसी शक्ति को ही डोंबी, योगिनी, सहजसुन्दरी, नैरात्मा आदि नामों से पुकारा है जो बोधिचित्त को मध्यमार्ग से उष्णीष कमल तक ले जाती हुई पंच महाभूतों के प्रतीकों को जला देती है।[665]

---

[662] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ.10.

[663] शास्त्री, द्वारिका दास. सिद्धसिद्धांत पद्धति. संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2014. भूमिका. पृ.3.

[664] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999.पृ. 220

[665] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 221.

उपसंहार :-

नाथ सिद्धों की हठयोग साधना को प्रस्तुत करने वाले साहित्यों में नाथ शब्द एक परम तत्व का सूचक है, जो नाम रहित ब्रह्म है। इसे ही आदिनाथ (शिव) की संज्ञा दी गयी है। जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि का स्वामी है। जिसने

Doodle Text Signature Share

चन्द्रमा के शेष चार कलारूपी अमृत के पान से ही जीवन के स्थिर रहने की आशा की जाती है । [illegible] से शरीर क्षीण हो जाता है और प्राण ([illegible] प्राण [illegible] रहता है, [illegible] प्राण की साधना करनी चाहिए । द्विविधा (माया) द्वैत-अद्वैत [illegible] में न पड़कर अपने परमात्मस्वरूप, द्वैताद्वैतविवर्जित परमात्मतत्व का चिन्तन करते हुए अमृत का पान कर अमरकायत्व प्राप्त करना चाहिए ।

अमृत-रस को सिद्ध करने का उपाय यह है कि शरीर के भीतर स्थित अनेक चक्ररूपी भट्टियों को प्राणवायु के स्थैर्य से, अपान और प्राण के सामरस्य से प्रज्वलित किया जाय । मूलाधारबन्ध लगा कर अपान वायु को (चन्द्र को) प्राण (सूर्य) से मिला कर उसे सुषुम्ना नाड़ी में प्रवाहित किया जाय, इस तरह प्राण ऊपर उत्क्रमित होकर अग्निमण्डल में प्रवेश करता है । कुण्डलिनीशक्ति चक्रों का भेदन करती हुई ऊपर उठती है, वीर्य (रस) और मन भी ऊर्ध्वगामी होते हैं । अपान मूलबन्ध के अभ्यास से ऊपर उठ कर नाभि के नीचे त्रिकोण जठराग्नि में प्रवेश करता है । इस तरह अपान और अग्नि, दोनों प्राण में मिल जाते हैं । चक्रों की भट्टी प्रज्वलित हो उठती है । प्राण की साधना के द्वारा कुण्डलिनी को प्रबुद्ध करते हुये शरीर के रस (वीर्य) को मन के साथ उर्ध्वगामी कर सहस्रार में संचित करना चाहिए और जालन्धर बन्ध सिद्ध कर स्वयं अमृत का पान करना चाहिए । इस अमृतरस की सिद्धि से ही शरीर कंचन बन जाता है, अमरत्व प्राप्त करता है और इस

पिंजरे में (शरीर में) प्राणहंस (शुक्र) ठहर जाता है । यह जीवन्मुक्त हो जाता है, न पैदा होता है, न उत्पन्न होता है, माया का आवरण सदा के लिये समाप्त हो जाता है और जीवात्मा परमशिव का स्वरूप हो जाता है । [illegible]दगुरुदेव । यही सिद्ध का संकेत है । परमात्मा के साक्षात्कार (परिचय) का [illegible] है । इससे मन (ऊरम) और पवन (धूरम) ज्योतित हो [illegible] चिन्मय [illegible] बन्द कर लेने से उन्मनी समाधि में अलख निरंजन परमात्मा की ज्योति का सम्पूर्ण दर्शन होता है, शरीर में अमृत भर उठता है, नवों दरवाजों का ताला नहीं टूटता है, समाधि लगी रहती है, इतना होने पर भी यदि पिण्डपात हो जाय, शरीर की मृत्यु हो जाय तो इससे सिद्ध होता है कि सद्गुरुज्ञान का आदर नहीं किया गया है, आशय यह है कि शरीर मृत्यु का ग्रास बनता ही नहीं है । सहस्रार में अमृतसागर में अनाहतनाद की तरंगें उठती हैं । चारों ओर पवित्रता-ही-पवित्रता अथवा निर्मलता और निरंजनता का ही दर्शन होता है, उन्मनी समाधि

05:43

चन्द्रमा के शेष चार कलारूपी अमृत के पान से ही जीवन के स्थिर रहने की आशा की जाती है । हीनपद में स्थित रहने से शरीर क्षीण हो जाता है और प्राण (हंस) शरीर के बाहर हो जाता है, प्राण से ही शरीर स्थित रहता है, इसलिए प्राण की साधना करनी चाहिए । द्विविधा (माया) द्वैत-अद्वैत के विचार में न पड़कर अपने परमात्मस्वरूप, द्वैताद्वैतविवर्जित परमात्मतत्व का चिन्तन करते हुए अमृत का पान कर अमरकायत्व प्राप्त करना चाहिए ।

अमृत-रस को सिद्ध करने का उपाय यह है कि शरीर के भीतर स्थित अनेक चक्ररूपी भट्टियों को प्राणवायु के स्थैर्य से, अपान और प्राण के सामरस्य से प्रज्वलित किया जाय । मूलाधारबन्ध लगा कर अपान वायु को (चन्द्र को) प्राण (सूर्य) से मिला कर उसे सुषुम्ना नाड़ी में प्रवाहित किया जाय, इस तरह प्राण ऊपर उत्क्रमित होकर अग्निमण्डल में प्रवेश करता है । कुण्डलिनीशक्ति चक्रों का भेदन करती हुई ऊपर उठती है, वीर्य (रस) और मन भी ऊर्ध्वगामी होते हैं । अपान मूलबन्ध के अभ्यास से ऊपर उठ कर नाभि के नीचे त्रिकोण जठराग्नि में प्रवेश करता है । इस तरह अपान और अग्नि, दोनों प्राण में मिल जाते हैं । चक्रों की भट्टी प्रज्वलित हो उठती है । प्राण की साधना के द्वारा कुण्डलिनी को प्रबुद्ध करते हुये शरीर के रस (वीर्य) को मन के साथ उर्ध्वगामी कर सहस्रार में संचित करना चाहिए और जालन्धर बन्ध सिद्ध कर स्वयं अमृत का पान करना चाहिए । इस अमृतरस की सिद्धि से ही शरीर कंचन बन जाता है, अमरत्व प्राप्त करता है और इस

पिंजरे में (शरीर में) प्राणहंस (शुक्र) ठहर जाता है । यह जीवन्मुक्त हो जाता है, न पैदा होता है, न उत्पन्न होता है, मायां का आवरण सदा के लिये समाप्त हो जाता है और जीवात्मा परमशिव का स्वरूप हो जाता है । सद्गुरुदेव । यही सिद्ध का संकेत है । परमात्मा के साक्षात्कार (परिचय) का यही तरीका है । इससे मन (ऊरम) और पवन (धूरम) ज्योतित हो उठते हैं, चिन्मय प्रकाश से सारा शरीर पूर्ण हो उठता है । नवों द्वारों को बन्द कर लेने से उन्मनी समाधि में अलख निरंजन परमात्मा की ज्योति का सम्पूर्ण दर्शन होता है, शरीर में अमृत भर उठता है, नवों दरवाजों का ताला नहीं टूटता है, समाधि लगी रहती है, इतना होने पर भी यदि पिण्डपात हो जाय, शरीर की मृत्यु हो जाय तो इससे सिद्ध होता है कि सद्गुरुज्ञान का आदर नहीं किया गया है, आशय यह है कि शरीर मृत्यु का ग्रास बनता ही नहीं है । सहस्रार में अमृतसागर में अनाहतनाद की तरंगें उठती हैं । चारों ओर पवित्रता-ही-पवित्रता अथवा निर्मलता और निरंजनता का ही दर्शन होता है, उन्मनी समाधि

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

04:58
Lal-Vaakh-by-S-N-Bhat-...
71/98

129

द्वादशान्तु मंडल यस दीवस-थजि,
नासिक पवनु दोर्य अनाहतु रव।
स्वयम कल्पन अन्ति चजि,
पानय सु दीव तु अर्चुन कस।।

जिसने द्वादशान्त मण्डल (ब्रह्मांड) को देवस्थली (परम शिव का आवास) समझा, प्राण वायु का नियन्त्रण करके जिसने अनहद ध्वनि, (ओम की अनुगूंज) सुनी, अर्थात हृदय से नासिका द्वार तक के श्वासोच्छवास में जो ओइम का ही आभास पाता रहा और अन्ततः जिसका अपने बारे में कल्पना-भरमाना मिट गया, वह स्वयं 'देव' है। फिर अर्चन किसकी ?

130

गगन च़्य भूतल च़्य,
च़्य छुख द्यन पवन तु राथ।
अर्ग चन्दुन पोश पोन्य च़्य,
च़्य छुख सोरुय तु लॉगिज़ी क्याह।।

तू ही गगन है, तू ही भूतल, तू ही दिन, पवन और रात है। अर्घ्य, चन्दन, पुष्प और जल भी तू ही है। जब तू ही, हे देव, सब कुछ है तो भेंट करूँ तो क्या ?

(शाक्तवधदीक्षा) In this piercing an aspirant experiences the rise from मूलाधारचक्र to ब्रह्मरन्ध्र in the form of an ant because that blissful force of breath is transformed into [illegible] energy in Kuṇḍalinī. It is called शाक्तवध because this [illegible] penetration in Prāṇa Kuṇḍalinī is filled with शक्ति (power)

सर्पाकारतामादधाना चक्रवेधनं च कुर्वाणा
व्युत्तिष्ठन्ती भुजङ्गवेधदीक्षा पञ्चमी।

(Sarpākāratāmādadhānā cakra-vedhanam ca kurvāṇā vyuttiṣṭhantī bhujaṅgavedha dīkṣā pañcamī)

भुजंगवेध is fifth type of piercing. In this piercing when प्राणकुण्डलिनी is rising, the yogi feels that सर्पाकारतामादधाना- a serpent is rising and producing a hissing sound. In this case the rise of the blissful force of breath in the from of प्राणकुण्डलिनी takes the form of cobra (भुजंग) and penetrates all these cakras upwards.

पराशक्तिरूपतामाश्रयन्ती समस्तचक्रवेधनशीला
सा परवेधदीक्षा षष्ठीति।

(Parāśaktirūpatāmāśrayantī samastacakravedhanaśīlā sā paravedha dīkṣā ṣaṣṭhīti)

परवेधदीक्षा is sixth type of piercing. This is Sup[illegible] It is experienced by those who [illegible] bent upon finding [illegible]. They are not interested in this universe they only want to surrender themselves completely to the Lord.

अथ पराकुण्डलिनी स्वरूपं विमृश्यते -

(Atha parākuṇḍalinī svarūpaṃ vimṛśyate)

Now we will touch upon the experience of Supreme (परा) Kuṇḍalinī. How parā kuṇḍalinī is experienced.

परचितिरूपा विसर्गशक्तिः (Para citirūpā visarga śaktiḥ) the supreme creative energy, is one with Supreme consciousness, यदा अन्तर्भावोन्मुख्यरूपा (Yadā antarbhāvo-unmukhyarūpā) when is directed towards Her internal

Here, when the breath touches मूलाधार चक्र it takes the formation of drum sound.

वीर्यस्वरूपा सा प्राणकुण्डलिनी समस्तं चक्रवर्गं वेधयन्ती तृतीया बिन्दुवेध दीक्षेति नाम्ना व्यपदिश्यते।

(Vīryasvarūpā sā Prāṇakuṇḍalinī samastam cakra vargam vedhayantī tṛtīyā binduvedha dīkṣti nāmnā vyapadiśyate)

Third type of piercing is called bindu-vedha. In binduvedha blissful force of breath is transformed into a fountain of semen. The word बिन्दु means वीर्य (Semen.) The yogi feels that it is a fountain of semen which is rising from मूलाधारचक्र to ब्रह्मरन्ध्र and spreading throughout his body. When the Kuṇḍalinī rises in बिन्दु वेध the yogi feels that sexual joy is nothing in comparison to the joy experienced in it.

शक्तिरूपतामापन्ना चक्रवेधनक्रियापरा सा तुर्या शाक्तवेधदीक्षा भवति।

(...ktirūpatāmāpannā cakravedhanakriyāparā sā turyā śā... ...dha-dīkṣā bhavati)

Fourth ... of piercing is called ...vedhadīkṣā (शाक्तवेधदीक्षा) ... ...spirant experiences the rise from मूलाधारचक्र to ब्रह्मरन्ध्र in the form of an ant because that blissful force of breath is transformed into energy. This is the rise of energy in Kuṇḍalinī. It is called शाक्तवेध because this kind of penetration in Prāṇa Kuṇḍalinī is filled with शक्ति (power).

सर्पाकारतामादधाना चक्रवेधनं च कुर्वाणा व्युत्तिष्ठन्ती भुजङ्गवेधदीक्षा पञ्चमी।

15:09
Lalleshvari - Swami Mu...

अस्त का कारण होता है।

४८

निश्चित स्थान में प्राणवायु की गति को रोकने से मन की चंचलता स्थिर हो जाती है। 'चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्' उक्ति के अनुसार प्राण सम-स्थिर होने पर मध्य-नाड़ी विकसित होकर स्वस्वरूप आविर्भावमय ज्ञान-दीप प्रकाशित होता है। ज्ञानदीप का प्रकाश, स्वस्वरूप का साक्षात्कार, आत्मसाक्षात्कार—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं।

४९

मध्यनाड़ी सुषुम्नागत कुण्डलिनी महाशक्ति है जिसके जागृत होने से मानव सहज में ही शिवपद प्राप्त करता है।

५०

पूजा में हस्तादि से की जानेवाली क्रियाएँ मन्त्र में लय होती हैं। नाममूलक जो मन्त्र है, वह मन में लय होता है। मन के लय हो जाने से सब कुछ पिघल जाता है, तदनन्तर ग्राह्यरूप दृश्य-प्रपंच और ग्राहक आत्मा चित्स्वरूप होकर रहते हैं।

५१

मैंने काम, क्रोध आदि छह अरिवर्गरूपी अरण्य को काटकर ज्ञानमय अमृत को प्राप्त किया।

जो योगी नासाग्र पर और अपने नेत्रों पर ध्यान केन्द्रित कर तीनों बन्ध और खेचरी मुद्रा लगता है वह नाभिचक्र और आँखों में स्थित हंस का ध्यान करता है।

हंसयोग के अभ्यास का क्रम

अकारे वह्निरित्याहुरुकारे हृदि संस्थित:।।६९।।
मकारे च भ्रुवो र्मध्ये प्राणशक्त्या प्रबोधयेत्।
ब्रह्मग्रन्थिरकारे च विष्णुग्रन्थिर्हृदि स्थित:।।७०।।
रुद्रग्रन्थि भ्रुवोर्मध्ये भिद्यतेऽक्षरवायुना।

ओ३म् के अकार में या मूलाधार में वैश्वानर अग्नि है। ओ३म् का 'उ' अक्षर हृदय का या अनाहत चक्र का तथा 'म' अक्षर भौहों के बीच आज्ञाचक्र का द्योतक है। प्रणव के अ, उ, म इन तीन अक्षरों में ब्रह्म; विश्व, विराट् आदि रूपों में विराजमान है। ब्रह्म को प्रणव जप के द्वारा अर्थात् ओंकार जप की प्राणों से युक्त शक्ति से अपने हृदय में जगाना चाहिये। ओ३म् के 'अ' में ब्रह्मग्रन्थि है। विष्णुग्रन्थि हृदय में है और रुद्रग्रन्थि भौहों के बीच में है। ये तीनों ग्रन्थियाँ हंसज्ञान की वायु से अर्थात् ओंकार जप की ध्वनि से खुल जाती हैं।

कण्ठं संकुच्य नाड्यादौ स्तम्भिते येन शक्तित:।।७२।।
रसना पीड्यमानेयं षोडशीवोर्ध्वगामिनी।
त्रिकूटं त्रिविधं चैव गोलाखं निखरं तथा।।७३।।
त्रिशङ्ख वज्रमोंकारमूर्ध्वनालं भ्रुवोर्मुखम्।
कुण्डलीं चालयन् प्राणान् भेदयन् शशिमण्डलम्।।७४।।

जो योगी सिद्धासन में बैठकर जालन्धर बन्ध लगाता है। मूलाधार चक्र में सुषुम्ना नाड़ी के सिरे पर सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर अपनी आँखों और प्राणों को लक्ष्य पर केन्द्रित कर लेता है। सोलह वर्ष की छरहरी तरुणी युवती की तरह जीभ पतली करके खेचरी मुद्रा के द्वारा जीभ को कपाल के छेद में ले जाकर भ्रूमध्य के चिदाकाश पर लगा देता है। इस चिदाकाश में ब्रह्म विराजमान है। योगी यहाँ पर ब्रह्म का साक्षात्कार कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेता है। भ्रूमध्य के चिदाकाश में मूलाधार, विशुद्ध और आज्ञा ये तीन चक्र तथा इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ मिलती हैं। अत: भ्रूमध्य को त्रिकूट कहते हैं। चिदाकाश से ही पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत प्रकट होते हैं और सृष्टि की प्रलयावस्था में इसी चिदाकाश में लीन हो जाते हैं अत: यह चिदाकाश गोलाख कहलाता है। यह चिदाकाश निर्मल अर्थात् विरज है।

08:10

2015.429811.tantrika-...

325/442

भाषा की परीक्षा कर श्री राखालदास बनर्जी ने रचनाओं को १४ वीं ईस्वी शताब्दी तक का माना है।[2] इन चर्यापदों का संपादन बागची महोदय ने उपर्युक्त 'जर्नल' की ३० वीं जिल्द में किया है।

इसके अतिरिक्त संस्कृतेतर भाषा में सिद्धों की अनेक रचनाएँ साधनमाला (दो भाग), डाकार्णव, चर्यापदों की टीका, सेकोद्देश टीका, श्री गुह्येंद्र-तिलकतंत्र, हेवज्रतंत्र आदि ग्रंथों में उद्धृत मिलती हैं। इन रचनाओं में से साधनमाला का समय डा० विनयतोष भट्टाचार्य ने १३ वीं ईस्वी शताब्दी निश्चित किया है।[3] अतः उसमें संस्कृतेतर रचनाओं को भी लगभग १३ वीं ईस्वी शताब्दी तक का माना जा सकता है। डाकार्णव का निर्माणकाल भाषा तथा लिपि संबंधी विशेषताओं के आधार पर डा० चौधरी ने लगभग १३ वीं ई० शताब्दी निश्चित किया है।[4] नाड़पाद या नारोपा रचित सेकोद्देशटीका की पांडुलिपि का समय संपादक मैरियो ई० कैरेल्ली ने नहीं बताया है। नारोपा का अधिकतम समय तिब्बती सूची के अनुसार दसवीं ईस्वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा ग्यारहवीं ईस्वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इस आधार पर सेकोद्देशटीका की संस्कृतेतर

---

१. जर्नल आव दि डिपार्टमेंट आफ लेटर्स, वा० २८, प्रीफेस, दोहाकोष, प्र० चं० बागची।

२. ओरिजिन ऐंड डेवलपमेंट आव बेंगाली लैंग्वेज, सुनीतिकुमार चैटर्जी, वा० १, पृ० ११०।

३. साधनमाला, वा० १, प्रीफेस, पृ० १४।

४. डाकार्णव-सं० डा० नगेन्द्रनारायण चौधरी, इंट्रो०, पृ० १८।

रचनाओं को भी अधिक से अधिक १२ वीं ईस्वी शताब्दी तक का माना जा सकता है। इस प्रकार यदि विभाजन किया जाय तो चर्यापदों और डाकार्णव की रचनाओं को छोड़कर प्रायः अन्य रचनाएँ १२ वीं ई० शताब्दी के पूर्व की हैं। यह भी कहा जा सकता है कि उपरोक्त तांत्रिक बौद्ध संस्कृतेतर रचनाएँ १४ वीं ई० शताब्दी के पूर्व निर्मित हो चुकी थीं। भारतीय आर्यभाषा के कालों के विस्तार पर विचार करने पर उपरोक्त रचनाओं का काल मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा की तृतीय विकासावस्था तथा आधुनिक भारतीय आर्यभाषा की प्रथम विकासावस्था के अंतर्गत माना जायेगा।

भारतीय आर्यभाषा की ध्वनि संबंधी तथा रूपतत्व संबंधी प्रवृत्तियों के परिवर्तन और विकास पर ध्यान देकर उसे प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (ईसा पूर्व १५०० ? या ई० पू० १२०० ? से ई० पू० ५५७–४७७ या बुद्धकाल तक), मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (ई० पू० ६०० से १०००

08:05

← 2015.429811.tantrika-...

313/442

है। हिंदू तंत्रों में शक्ति साधना के लिये गुरु या मार्गनिर्देशक की महत्ता स्वीकार की गई है। बौद्धों में बुद्ध को 'शास्ता' भी कहा जाता है। वे ही बौद्धों के आदि गुरु हैं। डाकार्णव में महावीरवीरेश्वर को भी 'शास्ता' पद से विभूषित किया गया है।[21] ललना और रसना नाड़ी को ही प्रज्ञा और उपाय बताया गया है। इन दोनों के मिलन का आधार अवधूती है। वहीं दोनों को समरसता प्राप्त होती है।[22] महावीरवीरेश्वर को ही इतस्ततः वज्रडाकतथागत, वज्रधर, वज्रसत्त्व आदि शब्दों से भी संबोधित किया गया है। हिंदू तंत्रों में तर्क को प्रमाण न मानकर अनुभव को प्रमाण माना गया है। डाकार्णव का कथन है कि तार्किक लोग अगम्य महाबोधिनय को नहीं जानते और न बालयोगियों को ही इसका ज्ञान हो सकता है। श्रेष्ठ योगिनियों को लक्ष्य के रूप में स्वीकार करनेवाले योगी इसे इसी जन्म में ही जान सकते हैं।[23] डाकार्णव के संस्कृत अंशों के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके सिद्धांत वज्रयान के सिद्धांतों से भिन्न नहीं हैं। अपभ्रंश अंशों के विवेचन से भी इन्हीं विचारों की पुष्टि होती है।

डाकार्णव तंत्र वज्रयान का ग्रंथ है। इस तंत्र ने मंत्र, यंत्र, मुद्रा,

---

२०. 'येषां येषां तु सत्त्वानां उत्पत्तिविषयाम्बुजाः। तेषां तेषां तु सत्त्वानां मरणं स्वस्य कर्मणा॥ प्रज्ञाचक्रं तदाख्यातो विषयादि तु भञ्जनम्।' वही, पृ० १४६।

२१. 'इत्याह भगवान् शास्ता महासमयनायकः।' वही, पृ० १४७।

२२. 'ललना रसना नाडी प्रज्ञोपायश्चमेलकः। आधारावधूती स्यात्तु समरसं यत्र तत्क्षणं।' वही, पृ० १५०।

२३. 'तार्किका न प्रजानन्ति अगम्यं बालयोगिनाम्। योगिनीवरलक्षश्च जानन्तीहैव जन्मनि॥' वही, पृ० १५५।

धारणी, योग और समाधि को, संसार में सुखसंपत्ति की प्राप्ति के लिये साधन के रूप में स्वीकार किया है। अद्वयवज्रसंग्रह के समान ही यहाँ भी वज्र को शून्य का पर्याय माना गया है। यहाँ माध्यमिकों के अर्थ को स्वीकार नहीं किया गया है।[24] डाकार्णव का मूल उपदेश सहजस्वभाव में निहित है—

केवल सहजसहाउ रि दिसई।

इस विश्व में सर्वत्र ही सहज सिद्धांत की देशना हो रही है। यह सहज तत्व ही सुर, असुर, त्रिभुवन का नाथ है। यह इंद्रियों से परे है।[25] वज्रयान

'यमेष्विव मिताहारम्', अर्थात् योगाभ्यासी के लिए योगाभ्यास हेतु आरम्भ में आचरणीय यमों (सदाचार) में मात्रायुक्त भोजन की प्रमुखता निर्देशित की गई है।

ह.यो.प्र. में मिताहार को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है :–

सुस्नि[illegible]र्जितः।

[illegible]शिवसम्प्रीत्यै मिताहारः स उ[illegible]।।

[illegible]त् हठयोगाभ्यासी साधक को प्रतिदिन स्निग्ध एव[illegible] आहार मात्रापूर्वक ग्रहण करना चाहिए। उसे चतुर्थांशवर्जित आ[illegible] ही भगवत्प्रीत्यर्थ जीवन यात्रा चलाने के लिए ग्रहण करना चाहि[illegible] यही साधक शास्त्र में **मिताहारी** कहलाता है।

चतुर्थांश विवर्जित आहार को आयुर्वेद शास्त्र में निम्नतः परिभाषित किया गया है–

"द्वौ भागो पूरयेदन्नैः तोयेनैकं प्रपूरयेत्। वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्।।"

योगसाधनेच्छु लोगों को उदर का आधा भाग अन्न से एवं एक तृतीयांश भाग जल से परिपूर्ण करना चाहिये; साथ ही उदर का चौथा एवं अन्तिम भाग वायु के संचरण हेतु सुरक्षित रखना चाहिये अर्थात् खाली रखना चाहिये।

ह.यो.प्र. के अनुसार अपथ्य :–

कट्वम्लतीक्ष्णलवणोष्णहरीतशाक–सौवीर–तैल–तिल–सर्षप–मद्य–मत्स्यान् ।

आजादिमांस–दधि–तक्र–कुलत्थ–कोल–पिण्याकहिङ्गुलशुनाद्यमपथ्यमाहुः।। ₈।।

योगाभ्यासी के योग में बाधक (अपथ्य) आहार का वर्णन निम्नानुसार है :–

योगाभ्यास में अपथ्य (विघ्नकारक) आहार – कटुरस, अम्ल रस, [illegible]ण रस, लवण रस, उष्ण प्रकृति वाले पदार्थ, हरे पदार्थ, [illegible] शाक, [illegible] (सौवीर), तैल या तैल से बने पदार्थ, तिल, स[illegible]द्य (आसव, अरि[illegible]ी का मांस, बकरी आदि का [illegible], मठ्ठा (छाछ), कुलथी, बेर, [illegible] आदि, हींग, लहसुन आदि पदार्थों या इन से बना भोजन योगी के लिये सर्वथा अपथ्यकर (योगाभ्यास में बाधक) कहा गया है।

CC-0. Kavikulguru Kalidas Sanskrit University Ramtek Collection

अहितकरं भोजनम्

भोजनमहितं विद्यात्, पुनरस्योष्णीकृतं रूक्षम् ।

07:20
Nimad ke sant singa ji...
323/326

अमृत— ब्रह्म-रंध्र में स्थित सहस्त्र-दल-कमल के मध्य में एक योनि है। उसका मुख नीचे की ओर है। उसके मध्य में चंद्राकार स्थान है जिससे सदैव अमृत का प्रवाह होता रहता है। यह इड़ा नाड़ी द्वारा बहता है और मनुष्य को दीर्घायु बनाने में सहायक होता है।

अनाहद—समाधि की अवस्था में पहुँचने पर ब्रह्म-रंध्र के समीप 'शून्य' में एक प्रकार का संगीत सुनाई पड़ता है। इस शब्द का शुद्ध रूप 'अनाहत' है।

पाँच — अ—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा।
ब — पाँच प्राण—उदान, प्राण, समान, अपान, व्यान।
स — काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह।

तीर्थ — आज्ञा चक्र के समीप इड़ा और पिंगला के बीच का स्थान।

गंगा — इड़ा नाड़ी।

जमुना — पिंगला नाड़ी।

तीन — सत, रज और तम।
— कहीं-कहीं इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों नाड़ियाँ।

१—डा० रामकुमार वर्मा के 'कबीर का रहस्यवाद' में दिए हुए अर्थों पर आधारित।

त्रिकुटी— भौंहों के बीच का स्थान।
इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना और बंकनाल—देखिए सिंगाजी की योग-साधना।

चंद्र — ब्रह्म-रंध्र में सहस्त्र-दल कमल है। उसमें एक योनि है जिसका मुख नीचे की ओर है।
इस योनि के मध्य में एक चंद्राकार स्थान है जिससे सदैव अमृत प्रवाहित होता है।

अमीरस—ब्रह्म-रंध्र का अमृत।

सुरति —स्मृति का अपभ्रंश—अनुभव की हुई वस्तु या सद्बोध या 'स्वरत'—अपने में लीन। साधारण अर्थ में ध्यान।

सुन शून्य — ब्रह्म-रंध्र का छिद्र(०) बिन्दु रूप होता है। इसी से कुंडलिनी का संयोग होता है इसी स्थान पर ब्रह्म का निवास है। योगी इस रंध्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

सूरीज (सूर्य)—मूलाधार चक्र में चार दलों के बीच एक गोलाकार स्थान है जिससे सदैव विष बहता रहता है। यही मनुष्य को वृद्ध बनाता है।

07:09

Yogic Aahara from ghe...

'यमेष्विव मिताहारम्', अर्थात् योगाभ्यासी के लिए योगाभ्यास हेतु आरम्भ में आचरणीय यमों (सदाचार) में मात्रायुक्त भोजन की प्रमुखता निर्देशित की गई है।

ह.यो.प्र. में मिताहार को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है :–

सुस्निग्धमधुराहारः, चतुर्थांशविवर्जितः।
भुज्यते शिवसम्प्रीत्यै मिताहारः स उच्यते ।।५।।

अर्थात् हठयोगाभ्यासी साधक को प्रतिदिन स्निग्ध एवं मधुर आहार मात्रापूर्वक ग्रहण करना चाहिए। उसे चतुर्थांशवर्जित आहार ही भगवत्प्रीत्यर्थ जीवन यात्रा चलाने के लिए ग्रहण करना चाहिये। यही साधक शास्त्र में **मिताहारी** कहलाता है।

चतुर्थांश विवर्जित आहार को आयुर्वेद शास्त्र में निम्नतः परिभाषित किया गया है–

"द्वौ भागो पूरयेदन्नैः तोयेनैकं प्रपूरयेत्। वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्।।"

योगसाधनेच्छु लोगों को उदर का आधा भाग अन्न से एवं एक तृतीयांश भाग जल से परिपूर्ण करना चाहिये; साथ ही उदर का चौथा एवं अन्तिम भाग वायु के संचरण हेतु सुरक्षित रखना चाहिये अर्थात् खाली रखना चाहिये।

ह.यो.प्र. के अनुसार अपथ्य :–

कट्वम्लतीक्ष्णलवणोष्णहरीतशाक–सौवीर–तैल–तिल–सर्षप–मदय–मत्स्यान् ।
आजादिमांस–दधि–तक्र–कुलत्थ–कोल–पिण्याकहिङ्गुलशुनादयमपथ्यमाहुः।। ८।।

योगाभ्यासी के योग में बाधक (अपथ्य) आहार का वर्णन निम्नानुसार है :–

योगाभ्यास में अपथ्य (विघ्नकारक) आहार – कटुरस, अम्ल रस, तीक्ष्ण रस, लवण रस, उष्ण प्रकृति वाले पदार्थ, हरे पदार्थ, हरी शाक, कांजी (सौवीर), तैल या तैल से बने पदार्थ, तिल, सरसों, मद्य (आसव, अरिष्ट), मछली का मांस, बकरी आदि का मांस, दही, मठ्ठा (छाछ), कुलथी, बेर, तिल के बने लड्डू या रेवडी आदि, हींग, लहसुन आदि पदार्थों या इन से बना भोजन योगी के लिये सर्वथा अपथ्यकर (योगाभ्यास में बाधक) कहा गया है।

CC-0. Kavikulguru Kalidas Sanskrit University Ramtek Collection

अहितकरं भोजनम्

भोजनमहितं विदयात्, पुनरस्योष्णीकृतं रूक्षम् ।

18:14
A_Sanskrit_Thesis_on_...

पथ्यापथ्यविषयकः आहारप्रकाराः

ग्रन्थनाम	पथ्याहारः	अपथ्याहारः
हठयोगप्रदीपिका	सुस्निग्ध-मधुर-शिवसम्प्रीत्यै मिताहारः।	कटु-अम्ल-तीक्ष्ण-लवण-उष्ण-हरितशाक-सौवीर-तैल-तिल-सर्षप-मद्य-मत्स्य-अजादिमांस-दधि-तक्र-कुलत्थ-कोल-पिण्याक-हिङ्गु-लशुनादयः।
हठरत्नावली	गोधूम-तण्डुल-यव-दुग्ध-घृत-माण्ड-नवनीत-शर्करा-मधु-पटोल-पञ्चशाक-	तक्र-दधि-कोद्रव-लशुन-कुलत्थ-तीक्ष्ण-लवण-

	मुद्ग-वर्षाजलाद्याः।	उष्ण-हरितशाक-सर्षप-मद्य-मांसादयः।
घेरण्डसंहिता	शाल्यन्न-यवपिण्ड-गोधूम-माष-चणक-पटोल-पनस-कक्कोल-शुकाशाक-द्राक्षिक-कर्कटी-रम्भा-डुम्बर-कण्टकण्टक-आमरम्भा-बालरम्भा-रम्भादण्ड-मूलक-वार्ताकी-बालशाक-कालशाक-पटोल-पत्र-शुद्धसुमधुरस्निग्धसुरसउदरार्धविवर्जित-मिताहारः।	कटु-अम्ल-लवण-तिक्त-भृष्ट-दधि-तक्र-शाकोत्कट-मद्य-ताल-कुलत्थ-मसूर-पाण्डु-कूष्माण्ड-शाकदण्ड-तुम्बी-कोल-कपित्थ-कण्टबिल्व-पलाश-कदम्ब-जम्बीर-निम्ब-लकुच-लशुन-कामरङ्ग-पियाल-हिङ्गु-शाल्मली-केमुक-नवनीत-घृत-क्षीर-गुड-रम्भा-नारिकेल-दाडिम-द्राक्ष-लवली-धात्री-अम्लरसाश्च।
शिवसंहिता	घृत-क्षीर-मिष्टान्न-चूर्णवर्जितताम्बूल-कर्पूराणि च।	अम्ल-रूक्ष-तीक्ष्ण-लवण-सर्षप-कटुकाश्च।

07:43

← sant panap das ji.pdf

राग सोरठा

ऐसा अचरज प्रगट हुआ, देखत जन जीवत मुआ ॥टेक॥
बिन कर तूर झालरसी[1] बाजें, बिन ही मेघ गगन धुन गाजें ॥१
बिन ही आग दिवे बिन बाती, निर्मल ज्योति बले[2] दिन राती ॥२
उपजे स्वाति सोप बिन मोती, होवे हंस काग तज गोती ॥३
मन मनसा उलट समावे, सो तन छीन होन नहीं पावे ।
लख लख जन पानप गावे, लख पावे सो जोन[4] न आवे ॥५

२

बाजे बाजें बांसुरी हो भीनी, भीनी भीनी मधुर सी टेर ।
दूर न जानो भाई साधुवा, तू तनिक सुखमना फेर ॥टेक
मीन भंठे[5] तिहूँ लोक में रे, पर्वत ज़िकर[6] लगाव ।
गंगा जल फैला फिरे, तू उलट सुमेर चढ़ाव ॥१
दो पर्वत की संध में रे, यह गुण होय बिलम्ब[6] ।
अगम अगोचर खोज ले, जहां गगन खड़ा बिन खम्भ ॥२
गगन मंडल में सिन्धु है रे, हंसा जहां केलि[7] करे रे ।
कहै पानप उन हंस के, मैं बार बार बलि जाऊं रे ॥३

३

ऐसी बान पड़ी हो नेना, ऐसी बान पड़ी हो ॥टेक॥
आठ पहर दर्शन में रहना, बिछुड़े न एक घड़ी हो ।
वा दर्श को प्रगट परचा, गमन[9] दिष्टि[10] ठहरी हो ॥१
जुग के मिले माधुरी प्रगटी, हृदय में रहत अड़ी हो ।
कहै पानप उरझे थे या जगसूं, गुरु मिल सब निबड़ी हो ॥२

१=घड़ियाला ४=योनि, जन्म, ५=याद, स्मरण ६=लगना, ७=क्रीड़ा
८=भ्रष्ट, डूबना, ९=चलती, १०=दृष्टि

सत् साधन मूल

जत सत्, त्याग चित रहे समाए। सत् तत बिमल घट अन्तर पाये।।
सत् साधन का मूल है नाम। गुरमुख जपे पावे विसराम।।
नाम ध्यान नाम ही योग। अनहद नाद नाम का भोग।।
मूल नाम सतगुरू बतलाया। अगम निगम की गम को पाया।।

कुछ विधि संकेत

प्रथमे आसन सहजे बांधे। इन्द्री इस्थिर मनुआ खांडे।।
मुख नयन जीभा को बांधे। साचा नाम हिये में सांधे।।
धीरे-धीरे पवन को पीवे। शुद्ध ध्यान में नाम जपीवे।।
हकार साकार को एह विध मिलाए। बांधे पवन पश्चिम घर जाए।।
मूल द्वार में बन्ध लगाए। उलट पवन सत नाम कमाए।।
स्वास सुरत मिल किया हलोल। नाभी अस्थान में पाई कलोल।।
ईड़ा पिंगला सुखमन नाली। तीनों मिलें ऊपर तिरनाली।।
सुखमन नाली में पवन भरीजे। उमगे नाद माया गढ़ छीजे।।
स्वास सुरत को पल पल जोड़े। अगम शबद का चढ़े सरूरे।।
सुखमन खुली शबद घर जागा। साध सीख पाई बड़भागा।।
चढ़े आकास खोल बंकनी नाली। गरजे शबद भीतर तिरनाली।।
आसन धरती सुरत आकासे, लखे ज्ञान निर्वानी।
उपजे शब्द जोत दरसावे, सुरत भई अकलानी।।
ऊपर चढ़े शिखर को जाए। केवल नाद संग प्रीत कमाए।।
सुन्न गुफा में करे ध्यान। अनहद गरजे सहज की तान।।
सुरत समाई शबद में, चढ़ी सुन्न के देश।।
"**मंगत**" नज़री आया, आद पुरख जगदीश।।

(ग्रन्थ समता प्रकाश से)

7. विश्व शान्ति सन्देश

20:33

Kundalini yoga Hindi (...

ऊपर पेडू के पास एक त्रिकोणाकार तंतुजाल (मूलाधार चक्र) तीन ग्रंथियों का है, इन ग्रंथियों से सुषुम्णा नाड़ी अवरुद्ध रहती है। इस ग्रंथि का भेदन कठिन है और इस क्रिया मे अत्यन्त पीड़ा तथा अन्य उपसर्ग भी सम्भव हैं।"

इन ग्रंथियों से सुषुम्णा नाड़ी को खोलना ही योग साधना का प्रमुख लक्ष्य है। प्राणायाम के द्वारा वायु खींचकर शरीर के ऊर्ध्वभाग को सिकोड़े और वायु को नीचे की ओर धकेले। नीचे की ओर (अपान वायु) जाती हुई वायु को भी अधोभागों को भी सिकोड़कर रोके रहे। इस प्रकार वायु को मूलाधार की ओर केन्द्रित करे, इस प्रकार की क्रिया से प्राण और अपान वायु के संघर्ष से, दबाव से जो ताप उत्पन्न होगा उससे प्रसुप्त कुण्डलिनी के आवेष्टन ढीले पड़ जायेंगे और वह सक्रिय तथा जागृत हो उठेगी तथा सुषुम्णा का मुख खुल जायगा और सुषुम्णा के माध्यम से चित्रिणी नाड़ी के सहारे कुण्डलिनी ऊपर को गतिमान होकर ब्रह्मरन्ध्र में आ पहुंचेगी। यह साधना अत्यन्त दुष्कर है, सहसा इसमें सफलता मिलना सम्भव नहीं है। इस क्रिया में प्राण वायु को इडा, पिंगला नाड़ियों से हटाकर सुषुम्णा नाड़ी के माध्यम से (जो मेरुदण्ड में है) ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाना होता है। इस क्रिया में 'जलंधर' और 'मूलबन्ध' आसनों का प्रयोग होता है। तात्पर्य यह है कि प्राण और अपान वायु के मिलने से जो आन्तरिक ताप बनता है उससे ठीक ऐसी स्थिति बनती है जैसे कि खाली नली में नीचे ऊपर दोनों ओर से पम्प किया जाय और मध्यस्थ वायु को निकलने न दिया जाय, यह वायु गरम होकर कहीं भी बाहर निकलने का प्रयास करेगी और पम्प में कोई छोटा सा छिद्र होगा तो उसी पर दबाव पड़ेगा। इसी प्रकार प्राण व

अपान वायु रोकने से कुण्डलिनी पर दबाव पड़ने से उसके बन्धन ढीले पड़कर सुषुम्णा का द्वार खुल सकेगा।

अथवा ऐसा समझें कि जिस प्रकार रक्तचाप मापक यंत्र की पेटी हाथ में बांधकर गुब्बारे से पम्प करने पर यंत्र का पारा ऊपर को चढ़ने लगता है उसी प्रकार प्राणायाम क्रिया द्वारा कुण्डलिनी जागृत होने पर सुषुम्णा नाड़ी के द्वारा प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्र की ओर चढ़ने लगता है।

षटचक्र

मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक षट् (६) चक्र हैं जो एक वन्त कमल दल के

की अभिप्रायकिता का बंधन हो, अन्यथा लोग उससे कुमार्ग पर गये बिना नहीं रहते । इसीलिए सिद्ध कवि बार-बार सामान्य जनों को भी सावधान करते चलते हैं । इन रचनाओं में अभिप्रायकिता के साथ-साथ सिद्धान्त प्रचार भी है और वह भी विभिन्न साधनात्मक क्रियाओं के संकेतसे संवलित है। ऐसी स्थिति में प्रतीकों का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है ।[20]

सिद्धों की रचनाएँ रहस्यवादी हैं । रहस्यवादी अपने कथ्य को स्पष्ट करने के लिए प्रतीकों का सहारा लेता है । स्पर्जन रहस्यवाद में प्रतीकवाद को अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं। प्रतीकवाद और पौराणिक शैली रहस्यवादी की भाषा है। यह प्रतीकवाद 'एकता' में विश्वास का ही एक अंश है क्योंकि वास्तविक प्रतीकवाद का सारतत्त्व यह है कि संसार की सभी वस्तुओं में एक समानता होती है ।[21] इसलिए डॉ0 उपाध्याय बौद्ध सिद्धों की अपभ्रंश रचनाओं के साहित्यिक पक्ष का विचार रहस्यवादी दृष्टि से करने पर जोर देते हैं। डॉ0 बागची का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि इस ओर यत्किंचित् संकेत डॉ0 बागची ने किया था । उन्होंने बौद्ध रहस्यवाद के कुछ पक्षों का विकास चर्यापदों में देखा था । डॉ0 बागची के इस संकेत के और अधिक विस्तार की आवश्यकता है । कम से कम प्रतीक पद्धति को तो अवश्य प्रामुख्य मिलना चाहिए ।[22] डॉ0 धर्मवीर भारती ने सिद्धों की रचनाओं पर प्रतीक पद्धति के अतिरिक्त आलम्बन और उद्दीपन विभाव, भाषा और छंद की दृष्टि से भी विचार किया है । सिद्धों की रचनाओं को पढ़ने के लिए तथा उनका साहित्यिक मूल्यांकन करने के लिए कोई विशेष मानदण्ड डॉ0 भारती स्थापित नहीं कर सके । डॉ0 शहीदुल्ला ने सिद्धों की रचनाओं के छन्दों पर विशेष रूप से विचार किया। डॉ0 मंगल बिहारी शरण सिन्हा ने सिद्धों की सन्धा भाषा का विचार, ध्वनि विचार, पद-विचार, वाक्य-विचार, तथा अर्थ विचार की दृष्टि किया है । डॉ0 सिन्हा अपनी पुस्तक 'सिद्धों की सन्धाभाषा' के चतुर्थ खण्ड में 'सन्धा भाषा की अर्थगत विशेषता' बतलाते हुए कहते हैं कि "धर्म का वास्तविक रूप समझाने के प्रयास के कारण सन्धाभाषा में रहस्यवाद का समावेश स्वाभाविक रूप से हो गया है । यह रहस्यवाद परम्परागत रहस्यवाद की भावना के अनुरूप है, जिसमें साधक परमात्मा की सत्ता का अनुभव करता है परन्तु उसे प्रत्यक्ष नहीं देख पाता । सिद्धों का दार्शनिक पक्ष भी परम्परागत ही कहा जा सकता है । वेदों, उपनिषदों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में जिस प्रकार आत्मा और परमात्मा एक माने जाते हैं, उसी प्रकार सन्धा भाषा में आत्मा-परमात्मा का प्रतिरूप मानी जाती है । जिस प्रकार अन्य धार्मिक ग्रन्थों में ब्रह्म जगत् के कण-कण में व्याप्त माना गया है, उसी प्रकार सन्धा-भाषा में ब्रह्म प्रत्येक वस्तु में विद्यमान माना

गया है । उस सहज (ब्रह्म) को आँखों से देखा नहीं जा सकता, परन्तु उसकी अनुभूति की जा सकती है ।"[23]

डॉ0 नागेन्द्र नाथ उपाध्याय 'संधा भाषा' के मर्म को समझने के लिए संस्कृत टीकाओं के अध्ययन पर जोर देते हैं । इसकी चर्चा पीछे हो चुकी है । डॉ0 भारती ने प्रतीकों के स्रोत को परम्परा में ढूँढ़ने का प्रयास किया है । परम्परा से लिए गए प्रतीकों, उनमें भी संस्कृत साहित्य की परम्परा में हम जायेंगे तो संस्कृत टीकाओं को देखना ही पड़ेगा । डॉ0 रमेश चन्द्र मिश्र इन प्रतीकों को वेदों, उपनिषदों से ढूँढ़ कर लाते हैं । ये प्रतीक वहाँ हैं भी । विद्वानों ने संस्कृत टीकाओं तथा प्रतीकों को संस्कृत में ढूँढ़ने पर इतना अधिक बल दिया कि संधा भाषा के अर्थ का मूल स्वरूप भी यत्र-तत्र विकृत हो गया । डॉ0 मंगल बिहारी शरण सिन्हा का कथन विचारणीय है-- "सन्धा भाषा में उपलब्ध म0 भा0 आ0 की अपनी विशेषताओं को यथोचित महत्व देना अनिवार्य है। इसके अभाव में सन्धाभाषा की मूलप्रवृत्ति का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। सन्धा भाषा के अध्ययन में विद्वानों ने कहीं-कहीं इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त को छोड़ दिया है और बहुत से प्राकृत तथा अपभ्रंशकालीन जनभाषा के शब्दों का मूल संस्कृत में खोजने लगे हैं । इससे

- **कुण्डलिनीजागरणम्-**

सुषुम्नायाः निम्नतमे भागे स्थिता कुण्डलिनीशक्तिः सर्वेषु प्राणिषु सुप्तावस्थायां विद्यमाना भवति। साधक अस्याः शक्त्याः जागरणायनैकानुपायान् करोति। यदा सा कुण्डलिनी येन केनापि उपायेन स्वस्य पुच्छं मुखेन निष्काश्य स्वात्मानमुन्मोच्य, ऋजुः स्यात् सहैव तस्याः मुखं सुषुम्णानाड्यां प्रविशति तदा कुण्डलिनीजागरणमुच्यते।

गुरुगोरक्षनाथेनोक्तं यस्मिन् द्वारे ऊर्ध्वं प्रति गमनं कृत्वा योगसाधको निर्मल – निर्विकारब्रह्मरन्ध्रे प्रविश्य तं ब्रह्मरन्ध्रं मुखेनाच्छाद्य कुण्डलिनीशक्त्याः शयनं करोति। सा वह्नियोगेन जाग्रता सती प्राणमनोभ्यां सह सुत्रबद्धशुचीव ऊर्ध्वमुतिष्ठति। इयं भुजंगाकृतिः कुण्डलिनी, या कमलतन्तुः इव विभासिता एवं शुभदीप्तियुक्ता, सुषुम्नामार्गेण वह्निसंयोगेन ऊर्ध्वमुतिष्ठति, एवं येन प्रकारेण कुञ्चिकया पिहितं द्वारमुद्घाटयति तेनैव प्रकारेण कुण्डलिनीमहाशक्त्या हठयोगसाधनतत्पराः योगिनो मोक्षद्वारस्य भेदनं कुर्वन्ति।[१] कुण्डलिनीशक्तिः अग्नीरूपेत्युच्यते। अस्याः जाग्रतेन अत्यन्तोष्णोतायाः उदयो भवति। यदा सा यं चक्रं गच्छति तदा सः चक्रः ऊर्ध्वमुखस्सन् अगांर इव प्रकाशमान् भवति। पुनः सा कुण्डलिनी तस्मात् चक्रात्

---

[१]ज्ञेया शक्तिरियं विष्णोनिर्भरा स्वर्णभास्वरा।सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयप्रसूतिका॥ शि.सं – ५.७८

[१] येनद्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानमनामयम्।मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी॥ प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता सह।सुचीवद् गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया। परस्फुरद् भुजगाकारा पद्मतन्तुनिभा शुभा। प्रबुद्धा वह्नियोगेन व्रजत्यूर्ध्वं – सुषुम्णया।उद्घाटयेत् कपाटं तु तथा कुञ्चिकया हठात्। कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत्॥ गो.श – ४८-५१

ऊर्ध्वचक्रं प्रति गच्छति तस्मिन् समये सः चक्रः शीतलः निष्क्रियश्च भवति। प्रसङ्गेऽस्मिन् एवमुच्यते यत् – यदा कुण्डलिनीशक्तिः ऊर्ध्वगतिं करोति तस्याः आधोभागः शीतलः भवति, एवं कुण्डलिनीस्थभागमुष्णं भवति। कुण्डलिन्याः जागरणप्रसङ्गे कल्याणयोगाङ्के एवमुक्तम्– यदा सा कुण्डलिनी मेरुवंशं गच्छन् ऊर्ध्वं गच्छन्ती तदा प्रत्येकचक्रान् जागरयन्ती चलति, अनेन चक्राणि उद्घाटतानि भवन्ति । पारभौतिकजगतो भौतिकजगति आगमनाय मार्गनिर्देशो भवति। एवं प्रकारेण कुण्डलिन्याः जागरणेन चैतपुरुषस्य सर्वासां शक्तीनामुद्घाटनं भवति तासामपि उपयोगं भवितुं शक्यते। इत्थम्प्रकारं मानवः स्वस्य भौतिकशरीरे जाग्रद्रूपेण तिष्ठति।[१]

- **कुण्डलिन्याः जागरणस्योपायः**

...र पेडू के पास एक त्रिकोणाकार तर्कुप्रन्थि (मूलाधार चक्र) तीन ग्रंथियों ... है, इन ग्रंथियों से सुषुम्णा नाड़ी अवरुद्ध रहती है। इस ग्रंथि का भेदन कठिन है और इस क्रिया मे अत्यन्त पीड़ा तथा अन्य उपसर्ग भी सम्भव है।"

इन ग्रंथियों से सुषुम्णा नाड़ी को खोलना ही योग साधना का प्रमुख लक्ष्य है। प्राणायाम के द्वारा वायु खींचकर शरीर के उर्ध्वभाग को सिकोड़े और वायु को नीचे की ओर धकेले। नीचे की ओर (अपान वायु) जाती हुई वायु को भी अधोभागों को भी सिकोड़कर रोके रहे। इस प्रकार वायु को मूलाधार की ओर केन्द्रित करे, इस प्रकार की क्रिया से प्राण और अपान वायु के संघर्ष से, दबाव से जो ताप उत्पन्न होगा उससे प्रसुप्त कुण्डलिनी के आवेष्टन ढीले पड़ जायेंगे और वह सक्रिय तथा जागृत हो उठेगी तथा सुषुम्णा का मुख खुल जायगा और सुषुम्णा के माध्यम से चित्रिणी नाड़ी के सहारे कुण्डलिनी ऊपर को गतिमान होकर ब्रह्मरन्ध्र में आ पहुंचेगी। यह साधना अत्यन्त दुष्कर है, सहसा इसमें सफलता मिलना सम्भव नहीं है। इस क्रिया में प्राण वायु को इड़ा, पिंगला नाड़ियों से हटाकर सुषुम्णा नाड़ी के माध्यम से (जो मेरुदण्ड में है) ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाना होता है। इस क्रिया में 'जलंधर' और 'मूलबन्ध' आसनों का प्रयोग होता है। तात्पर्य यह है कि प्राण और अपान वायु के मिलने से जो आन्तरिक ताप बनता है उससे ठीक ऐसी स्थिति बनती है जैसे कि खाली नली में नीचे ऊपर दोनों ओर से पम्प किया जाय और मध्यस्थ वायु को निकलने न दिया जाय, वह वायु गरम होकर कहीं भी बाहर निकलने का प्रयास करेगी और पम्प में कोई छोटा सा छिद्र होगा तो उसी पर दबाव पड़ेगा। इसी प्रकार प्राण व

अपान वायु रोकने से कुण्डलिनी पर दबाव पड़ने से उसके बन्धन ढीले पड़कर सुषुम्णा का द्वार खुल सकेगा।

अथवा ऐसा समझें कि जिस प्रकार रक्तचाप मापक यंत्र की पेटी हाथ में बांधकर गुब्बारे से पम्प करने पर यंत्र का पारा ऊपर को चढ़ने लगता है उसी प्रकार प्राणायाम क्रिया द्वारा कुण्डलिनी जागृत होने पर सुषुम्णा नाड़ी के द्वारा प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्र की ओर चढ़ने लगता है।

षटचक्र

मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक षट् (६) चक्र हैं और एक ...

9.4 सिद्ध साहित्य : प्रमुख अवधारणाएं

सिद्ध–साहित्य के अन्तर्गत जिन अवधारणाओं को महत्व मिला है, वे ही इस साहित्य की विशेषताएँ बनी हुई हैं। ये अवधारणाएं निम्नांकित हैं :–

1. सिद्ध–साहित्य जिन सिद्धों की सर्जना है वे प्रायः अपनी दार्शनिक विचारधारा और योग साधना के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। प्रायः यह माना जाता है कि प्रसिद्ध सिद्धों की संख्या चौरासी है। जो भी है, इतना निश्चित है कि सभी सिद्धों की रचना पर तंत्र–साधना का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

2. सिद्ध साहित्य की दूसरी विशेषता प्रतीकों के पयोग से सम्बन्धित है। इस साहित्य में जो प्रतीक [illegible]नते हैं [illegible] होने के कारण ये प्रतीक [illegible] गए हैं।

3. सिद्ध साहित्य में शून्य की साधना का उल्लेख भी मिलता है। सिद्ध–साहित्य में शू[illegible] महत्व दिया गया है और उसे प्रज्ञान–सत्य माना गया है। इस साहित्य में शून्य का वर्णन जिन [illegible] मिलता है, वे ये हैं – शून्य, अतिशून्य और महाशून्य।

4. सिद्ध साहित्य की विशेषताओं में चन्द्रमा और सूर्य का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया मिलता है। चंद्र और सूर्य के संयोग से उत्पन्न स्थिति की चर्चा सिद्ध साहित्य में 'समता' अथवा 'सहज साधना' के नाम से की जाती है। निर्गुण भक्तों में कबीर एक ऐसे ज्ञानी थे जिनकी साखियों में सहज समाधि का विस्तृत वर्णन मिलता है।

[illegible] सिद्ध साहित्य की उल्लेखनीय विशेषता में नारी के मुद्रा प्रतीक के वर्णन को लिया जा सकता है। सिद्ध साहित्य में उलटी साधना भी प्रचलित रही है। इनके अन्तर्गत सिद्ध लोग कुण्डली के [illegible] साथ–साथ प्राण वायु के ऊर्ध्वगमन को विशेष महत्व देते हैं। कबीर और जायसी के काव्य में [illegible] की गई है, वह इसी साधना का प्रतिफल है।

6. सिद्ध साहित्य का सामाजिक वर्णन भी महत्वपूर्ण है। [illegible] माध्यम से सामाजिक कुरीतियों का खंडन किया। सिद्धों के समय में जो धार्मिक आडम्बर प्रचलित थे, उन्हें सिद्धों की प्रहारक भाषा का सामना करना पड़ा है। धर्म, समाज, संस्कृति एवं अंधविश्वास सभी का गलित अंश सिद्धों की क्रांतिचेता व ओजस्वी वाणी का सम्बल पाकर रेत के महल की तरह ढह

9.4 सिद्ध साहित्य : प्रमुख अवधारणाएं

सिद्ध–साहित्य के अन्तर्गत जिन अवधारणाओं को महत्व मिला है, वे ही इस साहित्य की विशेषताएँ बनी हुई हैं। ये अवधारणाएं निम्नांकित हैं :–

1. सिद्ध–साहित्य जिन सिद्धों की सर्जना है वे प्रायः अपनी दार्शनिक विचारधारा और योग साधना के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। प्रायः यह माना जाता है कि प्रसिद्ध सिद्धों की संख्या चौरासी है। जो भी है, इतना निश्चित है कि सभी सिद्धों की रचना पर तंत्र–साधना का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।
2. सिद्ध साहित्य की दूसरी विशेषता प्रतीकों के प्रयोग से सम्बन्धित है। इस साहित्य में जो प्रतीक मिलते हैं, वे पंचमकारों से सम्बन्धित हैं। वज्रयानी शाखा से सम्बन्धित होने के कारण ये प्रतीक वहीं से लिए गए हैं।
3. सिद्ध साहित्य में शून्य की साधना का उल्लेख भी मिलता है। सिद्ध–साहित्य में शून्यता को महत्व दिया गया है और उसे प्रज्ञान–सत्य माना गया है। इस साहित्य में शून्य का वर्णन जिन रूपों में मिलता है, वे ये हैं – शून्य, अतिशून्य और महाशून्य।
4. सिद्ध साहित्य की विशेषताओं में चन्द्रमा और सूर्य का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया मिलता है। चंद्र और सूर्य के संयोग से उत्पन्न स्थिति की चर्चा सिद्ध साहित्य में 'समता' अथवा 'सहज साधना' के नाम से की जाती है। निर्गुण भक्तों में कबीर एक ऐसे ज्ञानी थे जिनकी साखियों में सहज समाधि का विस्तृत वर्णन मिलता है।
5. सिद्ध साहित्य की उल्लेखनीय विशेषता में नारी के मुद्रा प्रतीक के वर्णन को लिया जा सकता है। सिद्ध साहित्य में उलटी साधना भी प्रचलित रही है। इनके अन्तर्गत सिद्ध लोग कुण्डली के जागरण के साथ–साथ प्राण वायु के ऊर्ध्वगमन को विशेष महत्व देते हैं। कबीर और जायसी के काव्य में जिस 'दशम द्वार' की चर्चा की गई है, वह इसी साधना का प्रतिफल है।
6. सिद्ध साहित्य का सामाजिक वर्णन भी महत्वपूर्ण है। सिद्धों ने अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों का खंडन किया। सिद्धों के समय में जो धार्मिक आडम्बर प्रचलित थे, उन्हें सिद्धों की प्रहारक भाषा का सामना करना पड़ा है। धर्म, समाज, संस्कृति एवं अंधविश्वास सभी का गलित अंश सिद्धों की क्रांतिचेता व ओजस्वी वाणी का सम्बल पाकर रेत के महल की तरह ढह

04:46
yoga sadhana in sant s...

विकसित होने लगता है। वज्रधरावस्था को लिंग का प्रतीक भी माना जाता है।

सहजिया संतों के मतानुसार महामुद्रा के साक्षात्कार के साथ ही निर्वाण तथा भौतिक सुख (रूप, रस, गंधादि का आस्वादन) एक साथ ही उपलब्ध होता है। यथा-

जो भाव सो निर्वाण खलु भेदु न मन्यहअन्न।
एक सहावे विरहिअ निर्मल मई परिहुअन्न।।[1]

इस प्रकार इनके अनुसार जो धर्म के रहस्य को समझते हैं, वही धर्मात्मा हैं, क्योंकि वे शिवशक्ति के संयोग द्वारा मुख्यनाड़ी या सुषुम्ना में "बिन्दु" को संचरित करने में समर्थ हुए हैं। इस प्रकार जब मन प्राण स्थिर रहता है, तभी बिन्दु भी स्थिर हो पाता है।

मनःस्थैर्य स्थिरो वायुस्ततो बिन्दुः स्थिरो भवेत्।
बिन्दु स्थैर्यात्सदा सत्वं पिण्डस्थैर्य प्रजायते।।[2]

अर्थात् बिन्दु योग साधना में मन के स्थिर हो जाने पर वायु स्थिर हो जाता है, उसके स्थिर होते ही बिन्दु (वीर्य) स्थिर हो जाता है, जिससे शरीर में बल (सत्व) स्थिर हो जाता है। इसी विकासक्रम को बिन्दु योग साधना कहते हैं। इसकी सिद्धि से नित्य तथा शुद्ध तत्व प्रतिष्ठित होकर पिण्ड में स्थैर्यता आता है, जिससे शरीर, मन और बुद्धि का विकास होता है क्योंकि साधना का मूल आधार शरीर और मन ही है, जब तक शरीर मलहीन तथा मन विक्षेपरहित नहीं होता, तब तक किसी भी यौगिक साधना में साधक सफल नहीं होता है।

---

1. सहजाम्नाय पंजिका पृ॰ 118
2. हठयोग प्रदीपिका 4/28

जाता है।

सहजिया संतों के मतानुसार महामुद्रा के साक्षात्कार के साथ ही निर्वाण तथा भौतिक सुख [रूप, रस, गंधादि का आस्वादन] एक साथ ही उपलब्ध होता है। यथा-

जो भाव सो निर्वाण अनु भेदु न मण्णहुयण्ण।
एक सहावे विरहिता निर्मल मई पडिहुवण्ण।।[1]

इस प्रकार इनके अनुसार जो धर्म के रहस्य को समझते हैं, वही धर्मात्मा हैं, क्योंकि वे शिवशक्ति के संयोग द्वारा कुम्भनाड़ी या सुषुम्ना में "बिन्दु" को संचरित करने में समर्थ हुए हैं। इस प्रकार जब मन पूर्ण स्थिर रहता है, तभी बिन्दु भी स्थिर हो पाता है।

मनः स्थैर्यं स्थिरो वायुस्ततो बिन्दुः स्थिरो भवेत्।
बिन्दु स्थैर्यात्सदा सत्वं पिण्डस्थैर्यं प्रजायते।।[2]

अर्थात् बिन्दु योग साधना में मन के स्थिर हो जाने पर वायु स्थिर हो जाता है, उसके स्थिर होते ही बिन्दु [वीर्य] स्थिर हो जाता है, जिससे शरीर में बल [सत्व] स्थिर हो जाता है। इसी विकासक्रम को बिन्दु योग साधना कहते हैं। इसकी सिद्धि से नित्य तथा शुद्ध सत्व प्रतिष्ठित होकर पिण्ड में स्थैर्यता आता है, जिससे शरीर, मन और बुद्धि का विकास होता है क्योंकि साधना का मूल आधार शरीर और मन ही है, जब तक शरीर मलहीन तथा मन विकाररहित नहीं होता, तब तक किसी भी यौगिक साधना में साधक सफल नहीं होता है।

---

1. सहजाम्नाय पंजिका पृ. 118
2. हठयोग प्रदीपिका 4/28

बिन्दु के प्रसरण से ही "नाद" की उत्पत्ति होती है। नाद
बिन्दु का परमपद कहा जाता है। चन्द्रनाड़ी की सोलहवीं कला ही "बि
है, जिसमें नादोत्पत्ति हुई है। यह बिन्दु परम बिन्दु है इसी से तभी

(२६९)

जा पर दीनानाथ ढरैं।
सोइ कुलीन बड़ सुंदर सोइ, जेहि पर कृपा करैं॥
कौन विभीषण रंक निसाचर, हरि हँसि छत्र धरैं।
राजा कौन बड़ो रावन ते, गर्वहिं गर्व गरैं॥
रंकहु कौन सुदामाहू ते, आप समान करैं।
रूप में अधिक कौन सीता ते, जनम वियोग भरैं॥
अधिक कुरूप कौन कुबिजा ते, हरि पति पाय वरैं।
कौन विरक्त अधिक नारद ते, निसि-दिन भ्रमत फिरैं॥
अधम कौन है अजामिल ते, जम तहुँ जात डरैं।
जोगी कौन बड़ो संकर ते, ताको काम छरैं॥
यह गति-मति जानै नहिं कोऊ, केहि रस रसिक ढरैं।
'सूरदास' भगवन्त-भजन बिनु, फिर फिर जठर जरैं॥

(२७०)

मुरली धुन गाजा, सूर सुरत सर साजा ॥टेक॥
निरखत कँवल नैन नभ ऊपर, शब्द अनाहद बाजा।
सुन धुन मैल मुकर मन माजा, पाया अमीरस झाझा॥
सूरत संध सोध सत काजा, लख लख संत समाजा।
घट-घट कुंज पुज जहँ छाजा, पिंड ब्रह्मांड बिराजा॥
फोड़ आकास अलल पछ भाजा, उलट के आप समाजा।
ऐसे सुरत निरख निहअच्छर, कोटि कृसन तहँ लाजा॥
सूरदास सार लख पाया, लख लख अलख अकाया।
सतगुरु गगन गली घर पाया, सिंध में बुंद समाया॥

(२७१)

दो में एकौ न भई।
ना हरि भजे न गृह-सुख पाये, वृथा बिहाइ गई॥
ठानी हुती और कहु मन में, औरे आनि ठई।
अविगत गति कछु समुझि परत नहिं, जो कछु करत दई॥
सुत सनेह तिय सकल कुटुंब मिलि, निसिदिन होत खई।
पद-नख चंद-चकोर विमुख मन, खात अंगार मई॥
विषय विकार दावानल उपजी, मोह बयार बई।
भ्रमत भ्रमत बहुतक दुख पायो, अजहुँ न टेव गई॥

16:47

२. जहाँ तक 'घण्टिका ग्रन्थिशीतलम्' की बात है वहाँ यह ध्यातव्य है कि—
नवमे घण्टि[illegible] जिह्वाग्रं धारयेदमृतकला स्रवति ।'(सि०सि०प०-१८)

चूँकि यहाँ [illegible] यदि यहाँ अमृत गिरने से यह [illegible] होता रहे तो मत्स्येन्द्रनाथ का प[illegible] है ।

३. जहाँ तक 'ललाटं ब्रह्मरन्ध्रं शिखरस्थं सुतेजम्' का कथन है य[illegible] शिखरस्थ भी हैं एकाधिक सूर्य-चन्द्रों से ज्योष्मान एवं तेजोमय है ।

मत्स्येन्द्रोक्तं 'एकादशविधविज्ञान' को 'षोडशाधार' के आलोक में देखें तो इनका स्वरूप इस प्रकार है—

१. **'गूढ़ गुह्यं'—'मूलाधार' एवं 'गुदाधार'** ।

क. द्वितीयं मूलाधारसूत्रं वामपार्ष्णिना निःपीडयितव्यम् । तत्राग्निदीपनं भवति ॥ ११ ॥

ख. तृतीयं गुदाधारं विकास संकोचनेन निराकुञ्चयेत् । अपानवायुः स्थिरो भवति ॥ १२ ॥

२. **'स नाभिश्च'**—'षष्ठे नाभ्याधारं ओङ्कारमेकचित्तेनोच्चारिते नादलयो भवति ॥ १५ ॥

३. **'हृदि' पद्मधोमुखम्'**—सप्तमे हृदयाधारे प्राणं निरोधयेत् कमल विकासो भवति ॥ १६ ॥

४. **'घण्टिकाधार'**—नवमे घण्टिकाधारे जिह्वाग्रं धारयेदमृतकला स्रवति॥१८॥

५. **'नासाग्रं'**—त्रयोदशं नासाधारं तस्याग्रंलक्ष्येन्मनः स्थिरं भवेत् ॥ २२ ॥

६. **'भ्रुवोर्मध्ये व्यवस्थितम्'**—द्वादशं भ्रूमध्याधारं तत्र चन्द्रमण्डलं धारयेत् शीतलतां याति ॥ २१ ॥

७. **'ललाटं'**—पञ्चदशं ललाटाधारं तत्रज्योतः पुञ्जं लक्षयेत् तेजस्वी भवति ॥ २४ ॥

८. **'ब्रह्मरन्ध्र'**—अवशिष्टे षोडशे ब्रह्मरन्ध्र आकाशचक्रं तत्र श्री गुरुचरणाम्बुजयुग्मं सदावलोक येदाकाशवत् पूर्णो भवति ॥ २५ ॥

महर्षि व्यास ने **'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'** (योगसूत्र ३।१) की व्याख्या करते हुए कहा है कि—

Scanned by CamScanner

१. नाभिचक्र में, २. हृदय कमल में, ३. मूर्धा (शीर्ष) की ज्योति में एवं ४.

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

'नमोवरिवस' (३।१।१९) से क्यच् प्रत्यय जोड़ने पर 'वरिवस्या' शब्द निर्मित होता है । 'वरिवस' शब्द पूजार्थक है । आचार्य भास्करराय ने 'वरिवस्यारहस्यम्' में जिस रहस्य का उद्घाटन किया है उसका मूल केन्द्रीय स्वर अद्वैत-स्थापना है । यह ठीक भी है क्योंकि 'मन्त्रार्थं देवतारूपं चिन्तनं परमेश्वरि । वाच्यवाचक भावेन अभेदो मन्त्रदेवयोः ।' (शाक्तानन्द तरंगिणी) ॥ आचार्य भास्कर ने 'वरिवस्यारहस्यम्' में विभिन्न प्रकार के ऐक्यों, अभेदों, ऐकात्म्यों एवं अभिन्नताओं का तर्कानुप्राणित प्रतिपादन किया है जो निम्न हैं ।

शाक्त द्वैतवाद का प्रायोगिक पक्ष—

१. मूलाधारादिक चक्रों एवं श्रीचक्र में एकात्मकता

सुषुम्ना के मूल में संस्थित अरुण सहस्रदल कमल में = त्रिपुराधिष्ठित त्रैलोक्यमोहन चक्र, वह्नि के आधार चतुर्दल कमल में = त्रिपुरेशी से अधिष्ठित सर्वाशापरिपूरण चक्र, शाक्त स्वाधिष्ठानस्थित षडदल कमल में = त्रिपुरसुन्दर्य-धिष्ठित सर्वसंक्षोभण चक्र, नाभि में स्थित दशदल कमल में = त्रिपुरवासिनी से अधिष्ठित सर्वसौभाग्यदायक चक्र, अनाहत के द्वादशदल कमल में = त्रिपुरा-श्रीसमधिष्ठित सर्वार्थसाधक चक्र, विशुद्धचक्र के षोडशदलकमल में = त्रिपुरमालिनी से अधिष्ठित सर्वरक्षाकर चक्र, तालुमूल में स्थित लम्बिकाग्र के अष्टदल कमल में = त्रिपुरासिद्धि से अधिष्ठित सर्वरोगहर चक्र, भ्रूमध्य में स्थित द्विदलकमल में = त्रिपुराम्बिका से अधिष्ठित सर्वसिद्धिप्रदचक्र, ललाट में स्थित इन्दु में—बिन्दु में—महात्रिपुरसुन्दरी से अधिष्ठित सर्वानन्दमय चक्र की भावना करनी चाहिए ॥[1] 'योगिनीहृदय' में इसे इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है—

अकुलादिषु पूर्वोक्तस्थानेषु परिचिन्तयेत् ।
चक्रेश्वरीसमायुक्तं नवचक्रं पुरोदितम् ॥[2]

२. चक्र एवं देवी में एकात्मता—

योगिनीहृदय में इस एकात्मता को इस प्रकार पुष्ट किया गया है—

'यदा सा परमाशक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी ।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य संभवः ॥'[3]

अर्थात् जब भगवती स्वेच्छावश स्वनिष्ठा स्फुरत्ता को देखती हैं तभी विश्वाभिन्न त्रिकोणादिचक्रों की उत्पत्ति हो जाती है । ('सा देवी स्वेच्छया स्वनिष्ठां स्फुरत्तां यदा पश्यति तदा चक्रस्य विश्वाभिन्नस्य त्रिकोणादिचक्रस्य संभव उत्पत्तिर्भवतीत्यर्थः ॥'[4]

३. पीठ एवं पञ्चभूतों में एकात्मता—

'पीठ'—क्रमशः सिति-पवन-जल-अग्नि मण्डल रूप है—

१-२. अमृतानन्दनाथ—योगिनीहृदय 'दीपिका' (मन्त्रसंकेत : श्लोक ८,९)
३. योगिनीहृदय (चक्रसंकेत श्लो०९) ४. भास्कराचार्य—'सेतुबन्ध'

===================

अनहद नाद का श्रवण करने के बाद ही परम ज्योति परमात्मा का साक्षात्कार होता है और साधक उसमें स्व ज्योति समाविष्ट हो जाता है।-

नादि समाइलो रे सति गुर भेंटिले देवा ।
जह झिलि मिली कार दिसंता।।
तह अनहद सबद बजंता।
जोति जोति समानी मैं गुर परसादी जानी।।[18]

---

16. शिव संहिता पृ० 93
17. हठयोग पृ० 4/97
18. नामदेव की हिन्दी पदावली सं0 डा0 भगीरथ मिश्र पद 66 पृ० 29

संत कबीर दास जी ने नादानुसंधान को सहज योग कहा है। मन को वश में करने के लिये अन्तर्नाद की खोज आवश्यक है -

सबद खोजि मन बस करै, सहज जोग है येहि।
सत्त शब्द निज सार है, यह तो झूठी देहि।[19]

शब्द साधना करके जो अपनी चेतनधार को समेट पाते हैं, उनका शरीर कुम्भक प्राण रहते हुए भी प्रकाशवत् हो जाता है, ऐसे साधक आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाते हैं। लेकिन जो शब्द साधना हीन हैं, वे संसार में भूले रहते हैं और बार बार जन्मते मरते हैं।

संत कबीर दास जी के अनुसार:-

अजपा जाप आप से ही प्राण, अपान अचल हो जाते हैं और कुण्डलिनी सुषुम्ना में प्रविष्ट होती है। तब भीतर अनाहत नाद सुनाई पड़ता है। संत कबीर दास अनहद नाद सुनने के लिये आँख, कान इत्यादि मूंदने के पक्ष में नहीं थे। यथा-

आँख न मूंदूं कान न रूंधूं काया कष्ट न धारूं।।[20]

18:47

Kundalini Yog Tattva By...

[illegible] अनुकूल मुहूर्त में श्री बाबा ने कृपाकर गुप्त आत्म-प्रकाश [illegible] को बताया, जो कि मैं [illegible] रहा हूँ। बाद में उनके मानव शरीर के [illegible] पर उन्हीं के आदेशानुसार श्री योगिराज स्वामी श्री श्यामानन्द महोदय [illegible] ब्रह्मीभूत हो चुके हैं) से आगे दीक्षा लेकर सीखा, किया और इन गु० के आशीर्वाद से कर रहा हूँ।

यह ज्ञान रहे कि मेरा ऐसा सौभाग्य है कि जिस कुल में मैंने जन्म लिया उसी कुल में ६०० वर्ष के कुछ पहले हमारे पूर्वज जिनका नाम हरजी बाबा, केता बाबा, लालू बाबा, गोकुल बाबा, सगे भाई थे जो कि चारों सिद्ध योगी थे। इन्होंने लाहौर, भैरव स्थान के बगल में रक्षाबन्धन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाले दिन एक साथ जीवित अनन्त समाधि ली थी। उसी समय से, उसी स्थान पर प्रति वर्ष रक्षाबन्धन वाले दिन रखडी का मेला लगता चला आ रहा है (पाकिस्तान बनने के समय तक)। उसी कुल में अब मैं और मेरा अनुज चिरंजीव दीवान रामचन्द्र कपूर "विद्यासागर" "दैवज्ञ" वर्तमान हैं।

मैं योगी होने का दावा नहीं करता पर श्री अखण्ड ब्रह्माण्डनायिका, जगज्जननी, पराशक्ति, योगमाया की असीम दया से जो कुछ मैंने उपर्युक्त श्री गुरुजनों की कृपा दया से सुना, सीखा, किया व कर रहा हूँ उसी को साधकों के हितार्थ "जीवन विज्ञान अथवा कुण्डलिनी योगतत्त्व" में संक्षिप्त तथा सरल पुस्तकाकार रूप में साधकों के कर-कमलों में अर्पण करने में समर्थ हो रहा हूँ। आदि पराशक्ति विभिन्न रूप से प्रस्फुरित हो अपनी [illegible] के अनुरूप कार्य करवाती रहती हैं। उसकी लीला अपरम्पार है। यह उसी [illegible] इच्छा का फल है कि मेरे ऐसे यन्त्र लगे पुतले द्वारा इस गुह्यतम विष[illegible] प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है [illegible] लिखा गया है उस[illegible] [illegible] किया है उन सब का तत्तत् स्थानों पर नाम [illegible] कर दिया गया है। ये ग्रन्थ हम लोगों के लिये हमारे पूज्य महर्षियों की अमूल्य देन हैं। मैं उनके लिए सादर श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पित करता हूँ।

यह संसार क्या है ? कैसे बना ? मैं (आत्मा) क्या है ? कहाँ से आया तथा मरने के बाद कहाँ जाता है ? और कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है ? इसी की तथ्य व्याख्या सूक्ष्म रूप से इस छोटी सी पुस्तिका में की गई है।

ऐसा कहा जाता है कि प्राचीनतम काल में एक ही वेद यजुर्वेद नाम का था, जिसे श्री व्यास जी ने चार विभाग कर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को अपने चार प्रिय शिष्यों श्री पैल, श्री वैशम्पायन, श्री जैमिनि और श्री सुमन्तु को क्रम से पढ़ाया था।

—(कूर्म पुराण ४९ अध्याय)

कुण्डलिनी योग का निर्देशन वेदों में है (ऋक् मं० १०, सू० १००,

18:47

Kundalini Yog Tattva By...

कुछ समय उपरान्त अनुकूल मुहूर्त में श्री बाबा ने कृपाकर मुझे आत्म-प्रकाश के लिये स्वयं दीक्षा दी और साधन करने को बताया, जो कि मैं करता रहा हूँ। बाद में उनके मानव शरीर के ब्रह्मीभूत होने पर उन्हीं के आदेशानुसार श्री योगिराज स्वामी श्री श्यामानन्द महोदय (जो अब ब्रह्मीभूत हो चुके हैं) से आगे दीक्षा लेकर सीखा, किया और इन गुरुजनों के आशीर्वाद से कर रहा हूँ।

यह ज्ञान रहे कि मेरा ऐसा सौभाग्य है कि जिस कुल में मैंने जन्म लिया उसी कुल में ६०० वर्ष के कुछ पहले हमारे पूर्वज जिनका नाम हरजी बाबा, केता बाबा, लालू बाबा, गोकुल बाबा, सगे भाई थे जो कि चारों सिद्ध योगी थे। इन्होंने लाहौर, भैरव स्थान के बगल में रक्षाबन्धन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाले दिन एक साथ जीवित अनन्त समाधि ली थी। उसी समय से, उसी स्थान पर प्रति वर्ष रक्षाबन्धन वाले दिन रखडी का मेला लगता चला आ रहा है (पाकिस्तान बनने के समय तक)। उसी कुल में अब मैं और मेरा अनुज चिरंजीव दीवान रामचन्द्र कपूर "विद्यासागर" "दैवज्ञ" वर्तमान हैं।

मैं योगी होने का दावा नहीं करता पर श्री अखण्ड ब्रह्माण्डनायिका, जगज्जननी, पराशक्ति, योगमाया की असीम दया से जो कुछ मैंने उपर्युक्त श्री गुरुजनों की कृपा दया से सुना, सीखा, किया व कर रहा हूँ उसी को साधकों के हितार्थ "जीवन विज्ञान अथवा कुण्डलिनी योगतत्त्व" में संक्षिप्त तथा सरल पुस्तकाकार रूप में साधकों के कर-कमलों में अर्पण करने में समर्थ हो रहा हूँ। आदि पराशक्ति विभिन्न रूप से प्रस्फुरित हो अपनी इच्छा के अनुरूप कार्य करवाती रहती हैं। उसकी लीला अपरम्पार है। यह उसी की अदम्य इच्छा का फल है कि मेरे ऐसे यन्त्र लगे पुतले द्वारा इस गुह्यतम विषय पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। जो भी लिखा गया है उसकी पुष्टि के लिए जिन-जिन सद्ग्रन्थों से उद्धरण किया है उन सब का तत्तत् स्थानों पर नाम निर्दिष्ट कर दिया गया है। ये ग्रन्थ हम लोगों के लिये हमारे पूज्य महर्षियों की अमूल्य देन हैं। मैं उनके लिए सादर श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पित करता हूँ।

यह संसार क्या है? कैसे बना? मैं (आत्मा) क्या है? कहाँ से आया तथा मरने के बाद कहाँ जाता है? और कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है? इसी की तथ्य व्याख्या सूक्ष्म रूप से इस छोटी सी पुस्तिका में की गई है।

ऐसा कहा जाता है कि प्राचीनतम काल में एक ही वेद यजुर्वेद नाम का था, जिसे श्री व्यास जी ने चार विभाग कर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवे और अथर्ववेद को अपने चार प्रिय शिष्यों श्री पैल, श्री वैशम्पायन, जैमिनि और श्री सुमन्तु को क्रम से पढ़ाया था।

—(कूर्म पुराण ४९ अध्याय)

कुण्डलिनी योग का निर्देशन वेदों में है (ऋक् मं० १०, सू० १००,

... रहा हूँ। आदि पराशक्ति विभिन्न रूप से प्रस्फुरित हो अपनी इच्छा के अनुरूप कार्य करवाती रहती हैं। उसकी लीला अपरम्पार है। यह उसी की अदम्य इच्छा का फल है कि मेरे ऐसे यन्त्र लगे पुतले द्वारा इस गुह्यतम विषय पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। जो भी लिखा गया है उसकी पुष्टि के लिए जिन-जिन सद्ग्रन्थों से उद्धरण किया है उन सब का तत्तत् स्थानों पर नाम निर्दिष्ट कर दिया गया है। ये ग्रन्थ हम लोगों के लिये हमारे पूज्य महर्षियों की अमूल्य देन हैं। मैं उनके लिए सादर श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पित करता हूँ।

यह संसार क्या है ? कैसे बना ? मैं (आत्मा) क्या है ? कहाँ से आया तथा मरने के बाद कहाँ जाता है ? और कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है ? इसी की तथ्य व्याख्या सूक्ष्म रूप से इस छोटी सी पुस्तिका में की गई है।

ऐसा कहा जाता है कि प्राचीनतम काल में एक ही वेद यजुर्वेद नाम का था, जिसे श्री व्यास जी ने चार विभाग कर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को अपने चार प्रिय शिष्यों श्री पैल, श्री वैशम्पायन, श्री जैमिनि और श्री सुमन्तु को क्रम से पढ़ाया था।

—(कूर्म पुराण ४६ अध्याय)

कुण्डलिनी योग का निर्देशन वेदों में है (ऋक् मं० १०, सू० १००, अ० ६, मं० ७) और उसका साधन अंश तन्त्रों तथा तान्त्रिक योग ग्रन्थों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में पाया जाता है। मङ्गलमय शिव ने तन्त्रों को प्रकट किया इसलिए तन्त्रों को पञ्चम वेद भी कहते हैं (आगमः पञ्चमो वेदः) और उसी समय से शिवजी को पञ्चवक्त्र या पञ्चानन भी कहते हैं। तन्त्र वेदों का साधन अंश है और इसके मुख्य दो विभाग (आम्नाय) माने जाते हैं। (१) उद्र्ध्वाम्नाय (२) अधोम्नाय। उद्र्ध्वाम्नाय तन्त्रों में मुक्ति मार्गीय कुण्डलिनी योग की सात्त्विक साधना है। अधोम्नाय तन्त्रों में भी रहस्य छिपे हैं, जो कि निम्नमार्ग से लौकिक कर्म और बाह्य विभूतियाँ देनेवाले हैं।

"नानातन्त्रविधानेन कलावपि तथा शृणु"—

(श्रीमद्भागवत स्कं० ११, अ० ५, श्लो० २८)।

वाराहीतन्त्रानुसार तन्त्रों के मुख्य तीन भेद हैं। आगम, यामल और (डामर) तन्त्र। महासिद्धसार तन्त्रानुसार, विष्णुक्रान्ता के लिए ६४ तन्त्र, रथक्रान्ता के लिए ६४ तन्त्र और अश्वक्रान्ता के लिए ६४ तन्त्र हैं। इन तन्त्रों की श्लोक संख्या सब मिलाकर नौ लाख है (वाराही तन्त्र)। इनसे इतर कल्पभेद से जो सब तन्त्र कहे गये हैं वे सब पाखण्डियों के मोहन के लिए हैं और उनसे कोई फल नहीं होता।

"कल्पभेदेन तन्त्राणि कथितानि तु यानि च।
पाखण्डमोहनायैव विफलानीह सुन्दरि !॥"

(महाविश्वसार तन्त्र)

आगमतत्त्वविलास में ८३ प्रमुख तन्त्रों के नाम और महासिद्धिसारस्वत तन्त्र में ६ प्रमुख और ८३ अन्य तन्त्रों के नाम बताए हैं। वाराहीतन्त्रानुसार उपर्युक्त से इतर जैमिनि, वसिष्ठ, कपिल, नारद, गर्ग। पुलस्त्य, भार्गव, सिद्ध, याज्ञवल्क्य, भृगु, शुक्र, बृहस्पति आदि महामुनियों ने बहुत से उपतन्त्रों तथा मन्त्रकोशों का सम्पादन किया है।

04:30

बहुनोक्तेन बहुप्रशंसनेन किम् ? न किमपीत्यर्थः । कालं मृत्युं लीलया क्रीडयाऽनायासेनैव जयत्यभिभवतीत्यर्थः ॥ १२० ॥

ब्रह्मचर्यरतस्यैव नित्यं हितमिताशिनः ।
मण्डलाद् दृश्यते सिद्धिः कुण्डल्यभ्यासयोगिनः ॥

ब्रह्मचर्येति । ब्रह्मचर्यं श्रोत्रादिभिः सहोपस्थसंयमस्तस्मिन् रतस्य तत्परस्य नित्यं सर्वदा हितं पथ्यं मितं चतुर्थांश-वर्जितमश्नातीति तस्य कुण्डल्यभ्यासः शक्तिचालनाभ्यासः स एव योगः सोऽस्यास्तीति स तथा, तस्य मण्डलाच्चत्वारिं-शद्दिनात्मकादनन्तरं सिद्धिः प्राणायामसिद्धिर्दृश्यते । 'नासा-दक्षिणमार्गवाहिपवनात्प्राणोऽतिदीर्घीकृतश्चन्द्राभः परिपूरितामृत-

तनुः प्राग्घण्टिकायास्ततः । छित्त्वा कालविशालवह्निवशगं भ्रूरन्ध्रनाडीगतं तत्कायं कुरुते पुनर्नवतरं छिन्नं ध्रुवं स्कन्धवत्' ॥ १२१ ॥

कुण्डलीं चालयित्वा तु भस्त्रां कुर्याद्विशेषतः ।
एवमभ्यसतो नित्यं यमिनो यमभीः कुतः ॥ १२२॥

कुण्डलीमिति । कुण्डलीं चालयित्वा शक्तिचालनं कृत्वा । अथानन्तरमेव भस्त्रां भस्त्राख्यं कुम्भकं कुर्यात । नित्यं

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

हठयोगप्रदीपिकाकार के अनुसार जिस सुषुम्ना मार्ग से उस निरामय ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है, यह कुण्डलिनी उसी सुषुम्ना मार्ग को मुख के द्वारा ढककर सोई रहती है। यह शक्ति सर्प के समान कुटिल आकार वाली तथा गङ्गा (इड़ा नाड़ी) और यमुना (पिङ्गला नाड़ी) के मध्य में स्थित है जिसको पुरुषार्थ से ही जगाना चाहिए, क्योंकि वहीं भगवान् विष्णु का परम पद है।

कन्द के ऊपर स्थित इस शक्ति को प्रातः और सायं आधे प्रहर तक पिंगला नाड़ी से पूरक करके परिधान युक्ति से पकड़ कर प्रतिदिन चलाना चाहिए। आगे कन्दस्थान का लक्षण देते हुए कहा है कि लिंगेन्द्रिय तथा नाभि के मध्य एक हाथ ऊंचाई वाला, चार अंगुल परिमाण वाला, कोमल, श्वेत तथा वस्त्र के द्वारा लिपटे हुए के समान कन्द स्थान है। इस कन्द प्रदेश को वज्रासन में स्थित होकर दोनों पैरों के टखनों से दबाना चाहिए। तदनन्तर भस्त्रिका प्राणायाम करना चाहिए, इससे कुण्डलिनी शीघ्रता से जागृत हो जाती है। अथवा नाभिमण्डल स्थित सूर्यनाड़ी का आकुंचन कर इस शक्ति को चलाने का अभ्यास करना चाहिए। इस शक्ति को दो मुहूर्त्त पर्यन्त निर्भय होकर चलाने से यह शक्ति सुषुम्ना में कुछ प्रविष्ट होकर ऊर्ध्वगामी हो जाती है।

जिस साधक ने इस शक्ति को चलायमान कर लिया है, वही राजयोग आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है। वह योगी लीला करता हुआ मृत्यु पर विजय पाता है। इस शक्ति चालन के अभ्यास से बहत्तर सहस्र नाड़ियों का मल दूर हो जाता है।[1]

इस प्रकार आदिनाथ शम्भु द्वारा उपदिष्ट ये सभी मुद्राएं साधकों को महा-सिद्धि प्रदान करने वाली हैं। और जो साधक एकाग्र मन से इन मुद्राओं का अभ्यास करता है, वह अणिमा आदि गुण-ऐश्वर्य के साथ-साथ मृत्यु पर भी विजय पाता है।[2]

---

1. ह० प्र०—3/97-116
2. शिव-संहिता—4/58

... हो रहा हूँ। आदि पराशक्ति विभिन्न रूप से प्रस्फुरित हो अपनी इच्छा के अनुरूप कार्य करवाती रहती हैं। उसकी लीला अपरम्पार है। यह उसी की अदम्य इच्छा का फल है कि मेरे ऐसे यन्त्र लगे पुतले द्वारा इस गुह्यतम विषय पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। जो भी लिखा गया है उसकी पुष्टि के लिए जिन-जिन सद्ग्रन्थों से उद्धरण किया है उन सब का तत्तत् स्थानों पर नाम निर्दिष्ट कर दिया गया है। ये ग्रन्थ हम लोगों के लिये हमारे पूज्य महर्षियों की अमूल्य देन हैं। मैं उनके लिए सादर श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पित करता हूँ।

यह संसार क्या है ! कैसे बना ! मैं (आत्मा) क्या है ? कहाँ से आया तथा मरने के बाद कहाँ जाता है ? और कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है ? इसी की तथ्य व्याख्या सूक्ष्म रूप से इस छोटी सी पुस्तिका में की गई है।

ऐसा कहा जाता है कि प्राचीनतम काल में एक ही वेद यजुर्वेद नाम का था, जिसे श्री व्यास जी ने चार विभाग कर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को अपने चार प्रिय शिष्यों श्री पैल, श्री वैशम्पायन, श्री जैमिनि और श्री सुमन्तु को क्रम से पढ़ाया था।

—(कूर्म पुराण ४६ अध्याय)

कुण्डलिनी योग का निर्देशन वेदों में है (ऋक् मं० १०, सू० १००, अ० ६, मं० ७) और उसका साधन अंश तन्त्रों तथा तान्त्रिक योग ग्रन्थों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में पाया जाता है। मङ्गलमय शिव ने तन्त्रों को प्रकट किया इसलिए तन्त्रों को पञ्चम वेद भी कहते हैं (आगमः पञ्चमो वेदः) और उसी समय से शिवजी को पञ्चवक्त्र या पञ्चानन भी कहते हैं। तन्त्र वेदों का साधन अंश है और इसके मुख्य दो विभाग (आम्नाय) माने जाते हैं। (१) उद्र्ध्वाम्नाय (२) अधोम्नाय। उद्र्ध्वाम्नाय तन्त्रों में मुक्ति मार्गीय कुण्डलिनी योग की सात्त्विक साधना है। अधोम्नाय तन्त्रों में भी रहस्य छिपे हैं, जो कि निम्नमार्ग से लौकिक कर्म और बाह्य विभूतियाँ देनेवाले हैं।

"नानातन्त्रविधानेन कलावपि तथा शृणु"—

(श्रीमद्भागवत स्कं० ११, अ० ५, श्लो० २८)।

वाराहीतन्त्रानुसार तन्त्रों के मुख्य तीन भेद हैं। आगम, यामल और (डामर) तन्त्र। महासिद्धसार तन्त्रानुसार, विष्णुक्रान्ता के लिए ६४ तन्त्र, रथक्रान्ता के लिए ६४ तन्त्र और अश्वक्रान्ता के लिए ६४ तन्त्र हैं। इन तन्त्रों की श्लोक संख्या सब मिलाकर नौ लाख है (वाराही तन्त्र)। इनके इतर कल्पभेद से जो सब तन्त्र कहे गये हैं वे सब पाखण्डियों के मोहन के लिए हैं और उनसे कोई फल नहीं होता।

"कल्पभेदेन तन्त्राणि कथितानि तु यानि च।
पाखण्डमोहनायैव विफलानीह सुन्दरि !॥"

(महाविश्वसार तन्त्र)

आगमतत्त्वविलास में ८३ प्रमुख तन्त्रों के नाम और महासिद्धिसारस्वत तन्त्र में ६ प्रमुख और ८३ अन्य तन्त्रों के नाम बताए हैं। वाराहीतन्त्रानुसार उपर्युक्त से इतर जैमिनि, वशिष्ठ, कपिल, नारद, गर्ग। पुलस्त्य, भार्गव सिद्ध, याज्ञवल्क्य, भृगु, शुक्र, बृहस्पति आदि महामुनियों ने बहुत से उपतन्त्रों तथा मन्त्रकोशों का सम्पादन किया है।

संतों ने सभी प्रकार के षट्कर्मों को अनावश्यक बताया तथा ढोंग कहा। न वे मनु का षट्कर्म मानते थे, न योगियों का। षट्कर्म 'खटकरम' हो गया और एक अत्यन्त घृणित अर्थ देने लगा। संत रैदास जी जाति और कर्म दोनों के आधार पर निर्धारित 'खटकरम' का विरोध करते हैं। वे मानते हैं कि जाति के कारण कोई हरिपद को प्राप्त नहीं कर सकता। प्रायः सभी संत 'षट्कर्म' के विरूद्ध खड़े थे। उनकी दृष्टि में यह ऐसा बाह्याचार था जो मनुष्य को मनुष्य से दूर करता था। उसे अकर्मण्य और आत्मकेन्द्रित बनाता था। इन कर्मों के कारण ऊँच–नीच का भेदभाव साफ परिलक्षित होता था। इसीलिए संतों ने सभी खटकरमों के उत्तर में सहज समाधि की बात की है।

खेचरी मुद्रा–साधना करते समय साधक की एक विशिष्ट मुद्रा को ही खेचरी मुद्रा कहते हैं। इसमें साधक अपनी जीभ को उलटकर कपाल कुहर में प्रविष्ट करा देता है। अपनी दृष्टि को दोनों भौहों के बीच केन्द्रित रखता है। गले में उपस्थित काकल प्रदेश (कागोलिए) से उसकी जिह्वा उस अमृत रस का पान करती है जो ब्रह्मरन्ध्र से अनवरत झरता है। इस अमृत का पान करके योगी अमरत्व को प्राप्त करता है।

इसे 'गोमांस भक्षण' भी कहते हैं। 'गो' का अर्थ जिह्वा है, इस जिह्वा को साधना द्वारा तालू प्रदेश में प्रविष्ट कराने की प्रक्रिया ही गोमांस भक्षण है। हठयोग प्रदीपिका के आधार पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'कबीर' पुस्तक में कहते हैं कि "गो जिह्वा का नाम है और उसे तालू में उलटकर ब्रह्मरन्ध्र की ओर ले जाना ही गोमांस भक्षण है। तालू के नीचे जो चन्द्र है उससे जो सोमरस नामक अमृत झरा करता है वही अमर वारुणी है।"[23] 'संत साहित्य की समझ' ग्रन्थ में प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय ने संतों द्वारा प्रयुक्त विविध शब्दों का अर्थ, विवेचन और विश्लेषण करते हुए संत सुन्दरदास जी के साहित्य में प्रयुक्त 'खेचरी मुद्रा' शब्द को सोदारण प्रस्तुत किया है।

गगनमण्डल या शून्य मण्डल–हठयोग साधना में कुण्डलिनी जागरण कर छः चक्रों का भेदन करके वह सहस्रार में पहुँच जाती है। इस सहस्रार को ही शून्य मण्डल या गगनमण्डल कहते हैं। योगी साधक वहाँ पर शिव का निवास मानते हैं अतः इसे

कैलास पर्वत भी कहते हैं। विविध सम्प्रदायों व ग्रन्थों के अध्ययन–विश्लेषण के पश्चात् प्रो. पाण्डेय यह मानते हैं कि विष्णु सहस्रनाम में विष्णु का एक नाम शून्य है। वेदान्त 'शून्य' को लिखित सत्ता का बोधक मानते हैं। हिन्दू दार्शनिकों ने शून्य का अर्थ 'सत्ता का अभाव' माना है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसर शून्यवाद–उत्पत्ति, गति, स्वभाव, धर्म का निषेध कर समस्त सृष्टि को अनन्त शून्यता की चिर प्रवहमान धारा मात्र सिद्ध कर देता है।

कबीर जी के पदों में 'गगन' शब्द स्थान विशेष का द्योतक नहीं है। साधक जब भौतिक शरीर का परित्याग कर देता है तब वह गगन बीच कहाँ चला जाता है किसी को पता नहीं। जो 'गगन' में समाविष्ट हो जाता है, वह आवागमन से मुक्त हो जाता है। पलटू साहब के पदों में भी 'गगन' शब्द सहस्रार के लिए ही आया है।

सुन्दरदास जी के अनुसार जो ब्रह्म स्वयं शून्याकार है, उस शून्य के ध्यान से श्रेष्ठ ध्यान कोई और नहीं है। सुन्दरदास जी ब्रह्मरन्ध्र और आकाश तत्त्व को एक ही मानते हैं। संत साहित्य में कहीं पर उस परम ब्रह्म का स्थान ही शून्य मण्डल बता दिया गया है।

घरनी – घरनी अर्थात् घरवाली, गृहिणी या गेहिनी होती है। कबीरदास जी के यहाँ 'घरनी' शब्द सुरति रूपी गृहिणी के लिए प्रयुक्त हुआ है। आचार्य हजारी प्रसाद

19:42

हठयोगप्रदीपिकाकार के अनुसार जिस सुषुम्ना मार्ग से उस निरामय ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है, यह कुण्डलिनी उसी सुषुम्ना मार्ग को मुख के द्वारा ढककर सोई रहती है। यह शक्ति सर्प के समान कुटिल आकार वाली तथा गङ्गा (इड़ा नाड़ी) और यमुना (पिङ्गला नाड़ी) के मध्य में स्थित है जिसको पुरुषार्थ से ही जगाना चाहिए, क्योंकि वहीं भगवान् विष्णु का परम पद है।

कन्द के ऊपर स्थित इस शक्ति को प्रातः और सायं आधे प्रहर तक पिंगला नाड़ी से पूरक करके परिधान युक्ति से पकड़ कर प्रतिदिन चलाना चाहिए। आगे कन्दस्थान का लक्षण देते हुए कहा है कि लिंगेन्द्रिय तथा नाभि के मध्य एक हाथ ऊंचाई वाला, चार अंगुल परिमाण वाला, कोमल, श्वेत तथा वस्त्र के द्वारा लिपटे हुए के समान कन्द स्थान है। इस कन्द प्रदेश को वज्रासन में स्थित होकर दोनों पैरों के टखनों से दबाना चाहिए। तदनन्तर भस्त्रिका प्राणायाम करना चाहिए, इससे कुण्डलिनी शीघ्रता से जागृत हो जाती है। अथवा नाभिमण्डल स्थित सूर्यनाड़ी का आकुंचन कर इस शक्ति को चलाने का अभ्यास करना चाहिए। इस शक्ति को दो मुहूर्त पर्यन्त निर्भय होकर चलाने से यह शक्ति सुषुम्ना में कुछ प्रविष्ट होकर ऊर्ध्वगामी हो जाती है।

जिस साधक ने इस शक्ति को चलायमान कर लिया है, वही राजयोग आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है। वह योगी लीला करता हुआ मृत्यु पर विजय पाता है। इस शक्ति चालन के अभ्यास से बहत्तर सहस्र नाड़ियों का मल दूर हो जाता है।[1]

इस प्रकार आदिनाथ शम्भु द्वारा उपदिष्ट ये सभी मुद्राएं साधकों को महा-सिद्धि प्रदान करने वाली हैं। और जो साधक एकाग्र मन से इन मुद्राओं का अभ्यास करता है, वह अणिमा आदि गुण-ऐश्वर्य के साथ-साथ मृत्यु पर भी विजय पाता है।[2]

1. ह० प्र०—3/97-116
2. शिव-संहिता—4/58

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

07:15

स्कन्धवत्’ ॥ १२१ ॥

कुण्डलीं चालयित्वा तु भस्त्रां कुर्याद्विशेषतः ।
एवमभ्यसतो नित्यं यमिनो यमभीः कुतः ॥ १२२॥

कुण्डलीमिति । कुण्डलीं चालयित्वा शक्तिचालनं कृत्वा । अथानन्तरमेव भस्त्रां भस्त्राख्यं कुम्भकं कुर्यात् । नित्यं प्रतिदिनम् । एवमुक्तप्रकारेणाभ्यसतो यमिनो योगिनो यमभीर्यमाद्भयं कुतः ? न कुतोऽपीत्यर्थः । योगिनो देहत्यागस्य स्वाधीनत्वादिति तात्पर्यम् ॥ १२२ ॥

द्वासप्ततिसहस्राणां नाडीनां मलशोधने ।
कुतः प्रक्षालनोपायः कुण्डल्यभ्यसनादृते ॥ १२३ ॥

द्वासप्ततीति । द्वाभ्यामधिका सप्ततिः द्वासप्ततिसंख्याकानि सहस्राणि द्वासप्ततिसहस्राणि तेषां तत्संख्याकानां नाडीनां मलशोधने कर्तव्ये सति कुण्डल्यभ्यसनाच्छक्तिचालनाभ्यासादृते विना कुतः प्रक्षालनोपायः ? न कुतोऽपि । शक्तिचालनाभ्यासेनैव सर्वासां नाडीनां मलशोधनं भवतीत्यभिप्रायः ॥ १२३ ॥

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

04:43
Babari_sampradaya_si...

ोण संत परम्परा का ही अनुगमन किया है। इस परम्परा के संत यारी साहब पर ों का भी प्रभाव परिलक्षित होता हैं। शेष सभी संतों में कबीर साहब के समान ही, प्रभु निर्गुण, निराकार एवं सर्वव्यापी है। बाबरी-पंथ के संतों ने जिस परमतत्व को आराध्य बनाया वह द्वैताद्वैत से परे, निर्गुण-सगुण से अतीत परात्पर ब्रह्म है। चूंकि पंथ में अनेक सिद्ध संत उत्पन्न हुए हैं, इसलिए बावरी पंथ के प्रमुख संतों के समय ूल्यांकन कर लेना अपेक्षित प्रतीत होता है -

बावरी साहिबा जन्म	संवत् 1599 - 1662 वि0
बीरू साहब 17वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध	
यारी साहब जन्म	संवत् 1725 - 1780 वि0
बुल्ला साहब जन्म	संवत् 1689 - 1766 वि0
गुलाल साहब गद्दी	संवत् 1766 - 1816 वि0
भीखा साहब गद्दी	संवत् 1817 - 1848 वि0
गोविन्द साहब जन्म	संवत् 1782 - 1879 वि0
पलटू साहब जन्म	संवत् 1814 - 1882 वि0

न्त-

संत गुलाल साहब के समय से इस पंथ में सिद्धान्तों के प्रतिपादन पर विशेष ध्‍ दिया जाने लगा। भीखा साहब ने ब्रह्म, जीवात्मा, माया और जगत के रहस्यों को टित करने का विशेष प्रयास किया। उन्होंने केवल सिद्धान्तों की ओर संकेत करके पने कर्तव्य की इति नहीं समझा, बल्कि उसका विस्तृत, सांगोपाग और व्यवस्थित किया है। अनहदनाद को दृष्टान्तों द्वारा स्पष्ट करने की चेष्टा की गयी है। आत्मा ह्म की एकता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि जैसे सोने से अनेक प्रकार ाभूषण तैयार किये जाते हैं, जैसे समुद्र से लहरें उठती और गिरती रहती हैं, जैसे ही मिट्टी से विभिन्न प्रकार के बर्तनों का निर्माण होता हैं, उसी प्रकार से एक दूसरी आत्मा से अभिन्न है और वह परमतत्व का ही अंश है[1]। वास्तव में ठग है और ठगे जाने वाला भी वही है। जीव को माया ने अपने भ्रम जाल में फंसा है[2]। पलटू साहब का ध्यान काया के भीतर ही रहस्यमयी स्थिति की ओर विशेष वे ब्रह्म की सर्वव्यापकता को स्पष्ट करने के लिए कहते हैं कि जैसे फूल के भीतर रहती है, काठ के भीतर अग्नि रहती है, पृथ्वी के भीतर जल रहता है, दूध घी छिपा रहता है और मेंहदी में लाली वर्तमान है, उसी प्रकार परमतत्व सर्वत्र है[3]। अत: यह स्पष्ट है कि परमतत्व हमारे भीतर - बाहर सर्वत्र वर्तमान हैं। साधक अर्न्तदृष्टि से उसका साक्षात्कार करना चाहता है तो वह भीतर ही दीख लगता है।[4] बाबरी पंथी कवि अद्वैतवादी थे। इस पंथ में संत देवकीनन्दन साहब एवं दास में थोड़ा सगुण की गंध मिलती है। देवकीनन्दन साहब की कुछ रचनाएं भक्त कवि

07:53

2015.441430.sri-rajjab

1115/1460

है इसी कारण वे सर्वंगी कहलाते हैं। वे सब स्थानों में समान रूप से रहते हैं किंतु किसी से भी लिपायमान नहीं होते। उन जगत्पति की चेष्टा को कोई विरला ज्ञानी ही समझ पाता है।

७९ उपदेश। त्रिताल

अवधू इहिं विधि जुग जुग जीजे,
दह दिशि उलटि आव घर अपने, अमी महा रस पीजे ॥टेक॥
देही माँहि देह से न्यारा, नाम निरंजन लीजे।
आरंभ यही रटो निशि वासर, कारज और न कीजे ॥१॥
आतम माँहि अनन्त सुधा रस, आपा रहित रमीजे।
जे कुछ आप माँहि कण सारा, सो सब ता माँहि दीजे ॥२॥
आपा भूल मूल मन लागे, रहते रहता रीझे।
ऐसे अमर होय जन रज्जब, सांबा कारज सीझे ॥३॥८

अमर होने का उपदेश कर रहे हैं—हे साधक! इस नीचे लिखी विधि के अनुसार साधन करने से जीव ब्रह्म रूप होकर प्रतियुग में जीवित रहता है—दश इन्द्रिय रूप दश दिशाओं से वा बाहर की दश दिशाओं के विषयों से लौटकर अपने आदि घर ब्रह्म के स्वरूप में आकर ब्रह्म चिन्तन रूप महान् अमृत-रस का पान कर। देह में रहते हुये देहाध्यास से रहित होकर निरंजन ब्रह्म का नाम उच्चारण कर, रात्रि-दिन नाम रटना रूप अनुष्ठान ही कर, अन्य कार्य मत कर। अन्तःकरण के भीतर ही साक्षी रूप अनन्त-सुधा रस है, अनात्म अहंकार से रहित होकर उस आत्मा में ही रमण कर, जो कुछ भी अपने में सार रूप बल है, सो सब उस आत्म स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति रूप कार्य की सिद्धि में ही दे। इस प्रकार जब अनात्म अहंकार को भूल कर मन विश्व के मूल कारण ब्रह्म में लगकर स्थिर होगा तब उस अचल मन से अचल ब्रह्म प्रसन्न होंगे। इस प्रकार बहुत लम्बे समय से सिद्ध होने वाला ब्रह्म की प्रसन्नता रूप कार्य सिद्ध होकर दास अमर हो जाता है अर्थात् ब्रह्म रूप हो जाता है।

८० संतोष रस। त्रिताल

मन रे करि संतोष सनेही,
तृष्णा तप्त मिटे जुग जुग की, दुख पावे नहिं देही ॥टेक॥
त्यागर्यो तजै नाँहि सो सिरज्या, गह्यों अधिक नहिं आवे।
ता में फेर सार कछु नाँहीं, राम रच्या सो पावे ॥१॥
बांछे स्वर्ग स्वर्ग नहिं पहुँचे, प्रीति पताल न जाई।
ऐसे जान मनोरथ मेट हु, समझ सुखी रहु भाई ॥२॥
रे मन मान सीख सद्गुरु की, हृदय धरि विश्वासा।
जन रज्जब यों जान अजबकर, गोविन्द है घटवासा ॥३॥९

2015.484241.Sri-dadu...

दुई दूरि दरोग न होइ, मालिक महल मैं देखै सोइ ॥ ३ ॥
अरि ये पंच सोधि सब मारै, तब दादू देखै निकटि विचारै ॥ ४ ॥

४०४

राम रमत है देषै न कोई, जो देखै सो पावन होई ॥ टेक ॥
बाहरि भीतरि नेड़ा न दूरि, स्वामी सकल रह्या भरपूरि ॥ १ ॥
जहं देखौं तहं दूसर नांहिं, सब घटि राम समाना मांहिं ॥ २ ॥
जहां जाऊँ तहं सोई साथ, पूरि रह्या हरि त्रिभुवन नाथ ॥ ३ ॥
दादू हरि देखैं सुष होइ, निस दिन निरखन दीजै मोहि ॥ ४ ॥

४०५—अध्यात्म

मन पवन ले उनमन रहै, अगम निगम मूल सो लहै ॥ टेक ॥
पंच बाइ जे सहजि समावै, ससिहर के घरि आणें सूर ।
सीतल सदा मिलै सुखदाई, अनहद शब्द बजावै तूर ॥ १ ॥
बंक नालि सदा रस पीवै, तब यहु मनवा कहीं न जाइ ।
बिगसै कँवल प्रेम जब उपजै, ब्रह्म जीवकी करै सहाइ ॥ २ ॥
बैसि गुफा मैं जोति विचारै, तब तेहिं सूझै त्रिभुवन राइ ।
अंतरि आप मिलै अविनासी, पद आनंद काल नहिं खाइ ॥ ३ ॥

मिटा । महल = अन्तःकरण में । दूरि=मंदिर, तीर्थ, वन, गुफा, मूर्ति आदि में हिरस = चाह । दरोग = झूठ, द्वेष ।

४०५—अगम निगम = वेद स्मृति निरूपित । पंचबाइ = पांच विषय प्रवृत्ति । ससिहरः इडा, चन्द्रमा के घर । आंणे=लावे । सूर = पिंगला, सूर्य के घर । बंकनालिः तालु मूल से । बिगसै = खिलै, प्रकाश हो । कंवल=हृदय कमल । बैसि गुफाः हृदय गुहा में वृत्ति स्थिर कर । सूझै=प्रतीत हो, दीखे ।

आप बहु थे, आपके माता पिता निर्धन थे। दुर्भिक्ष के कारण एक दिन शिशु पानपदास को लेकर वह लोग जंगल को निकले और उनको एक वृक्ष के नीचे सुलाकर कन्द मूल की खोज में दूर चले गए। अकस्मात वहां एक तृषित आ पहुंचा। वह सन्तान हीन था, बच्चे की दिव्य आभा से आकर्षित होकर उसने बालक को गोद में उठा लिया और भगवान की ओर से वांछित फल पाकर अति प्रसन्न हुआ। हर्षित मन हुआ बालक को घर पर लाया और प्रेम पूर्वक पालन पोषण करने लगा। पति पत्नी दोनों ने अपने भाग्य की सराहना की। तब से उनके घर में सर्व-प्रकार का आनन्द मंगल छा गया। यह लोग राजगीरी का काम करते थे।

पानपदास जी ने इस परिवार मे पलकर कुछ समय लिखना पढ़ना सीखा। फिर शिल्प विद्या सीखी और तेरह चौदह वर्ष की अवस्था से राजगीरी का काम करने लगे परन्तु 'होनहार बिरवे के चिकने चिकने पात' आपको संसार में उच्च कोटि का संत बनना था और भूले भटके जीवों का कल्याण करना था, सो ऐसा ही हुआ। आप पूर्ण संस्कारी जीव थे, जन्म से ही हरि भक्त थे। अधिक समय एकान्त वास एवं ध्यान में व्यतीत करते थे। एक दिन एक 'कबीर पंथी' साधु ने आपको आत्म ज्ञानी परमहंस महात्मा 'मग्नीराम' जी का परिचय दिया। पानपदास जी के हृदय में मग्नीराम जी के दर्शनों की अभिलाषा उत्पन्न हुई और वह तुरन्त 'तिजारे' रियासत अलवर महात्मा मग्नीराम जी की सेवा में आ पहुंचे।

श्री मग्नीराम जी 'कूराज' नामी भड़भूंजा के मकान पर एक कोठरी में रहते थे। आप का जैसा नाम वैसे ही गुण। आप सदैव मग्न एवं मालिक की याद में लौलीन रहते थे। अपना जीवन गुप्त व्यतीत करने के कारण उन्मत् का रूप धारण किये थे। नेत्रों की ज्योति अग्नि के सदृश थी। साधारण पुरुष आपके निकट जाने का साहस नहीं कर सकता था। परन्तु हीरा जौहरी से नहीं छिपसकता। पानपदास जी की गुरु-भक्ति ने मग्नीराम जी को अपना लिया। आरम्भ में पानपदास जी की कठिन परीक्षा ली गई। बहुत डराया डांटा और भयभीत किया गया। प्रेम पंथ बहुत कठिन मार्ग है सिरका सौदा है "पानप चाहे प्रेम को, तो शीश उतार धरो" पतंग दीपशिखा के रूप जलाने से डरता नहीं है क्योंकि वह तो जलता ही जलने के लिये है। अतः पानपदास जी अपनी परीक्षा में सफल हुए, गुरुदीक्षा प्राप्त करली और गुरु सेवा में लग गए फिर गुरु की आज्ञानुसार अपने घर पर लौट आए।

के भिखारी हैं।[1] इस प्रसंग में अन्यत्र ब्रह्मा विष्णु, महेश को बाजारू तथा शेष–शारदा को भाँटिन और भाँट भी कहा गया है।[2] फिर भी जहाँ पर गोबिन्द साहब ने 'अवतार अनन्त भरे भगवन्त कृपानिधि संतन के हित स्वामी' (हस्त. वाणी, पृ. 75) अथवा 'शंख चक्र गदा पद्म विराजै सोभा अगम–अपार' (वही, पृ. 51) जैसी अभिव्यक्तियाँ की हैं। वहाँ उनके ब्रह्म–निरूपण पर सगुणोपासना का प्रभाव परिलक्षित होता है।

जो भी हो गोबिन्द साहब 'विज्ञान ब्रह्म' के बिना गति नहीं मानते।[3] उन्होंने परम सत्य का साक्षात्कार कराने वाला सतगुरु को बताया है।[4] उनके अनुसार सन्त और गुरु के प्रताप से भ्रम का नाश हो जाता है।[5] गुरु के उपदेशों को पढ़ने–सुनने से समस्त क्लेशों का अन्त हो जाता है।[6] गोबिन्द साहब ने गुरु प्रताप और साधु–संगीत से 'योग युक्ति' का अनुसरण करते हुए प्रियतम राम को हेरने की सलाह दी है–

री सजनी पिया हेरो भवनवाँ।
गुरु परताप साधु की संगति जोग युक्ति लै गहो भवनवाँ॥
इंगला–पिंगला दोउ सुद्ध करि उलटि उर्ध करु गगन गवनवाँ॥
बाजत अनहद मधुर वहाँ सुनि शब्द सोइ बिना सरवनवाँ॥
सुनत–सुनत मन अरुझि रहो है झलकि परै प्रभु बिना नयनवाँ।
जन 'गोबिन्द', पिया लखि पायो, मिटै तासु भय आवा गवनवाँ॥[7]

गोबिन्द साहब ने अपनी वाणी में योग साधना का क्रमबद्ध वर्णन तो नहीं किया है किन्तु

1. ब्रह्मा विष्णु महेस सकल सुर, वही द्वार के भिखारी। हस्त. वाणी छं. 10
2. ब्रह्मा विष्णु महेस बजारू, शेष सारदा भाटिन भाट। – वही, पृ. 54
3. विज्ञान ब्रह्म बिनु गति नहीं, देखा बूझि विचार। –हस्तलिखित वाणी, पृ. 108
4. (क) सतगुरु मिलै सत्य पहिचानै। –पहाड़ा, छन्द 2
5. (ख) जन गोविन्द गुरु राम मिलाया। – हस्तलिखित वाणी, पृ. 94
6. पढ़ै सुनै गुनि गन रहै सतगुरु का उपदेस।
   जन गोविन्द साँची कहै छूटै सकल कलेस॥ सत्यसार, दोहा सं. 4
7. हस्तलिखित वाणी, पृ. 8

गोविन्द साहब की शिष्य परम्परा

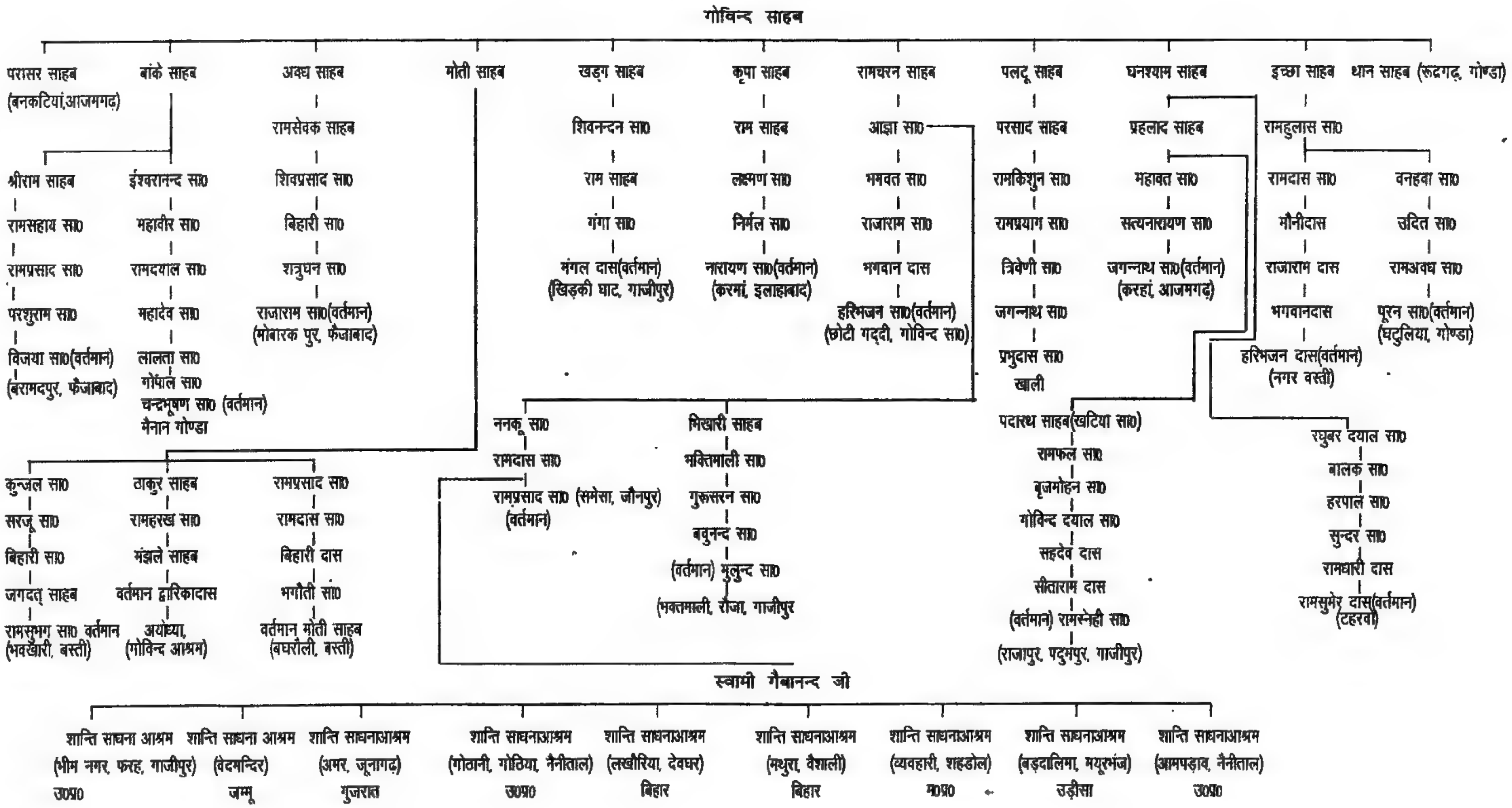

देखि देखि नैना जुड़ाए, हे ननदिया मेरो ॥३॥

—स्वरूपप्रकाश, पृ० १३८

सिद्धासन साधि निरन्तर बैठि के, योग क्रिया कतूलहिं ठानैं।
योगेश्वर चित्तवृति के निरोध ते, तत्त्व विवेक लहैं पहचानैं॥

—स्वरूपगीता, पद-सं० ४१

लघु तात सिद्धासन आसन को, ऐंड़ी निज अण्ड ते नीच जनावे।
दच्छिन ऐंड़ी को इन्द्री के मूल को दाबि मेरु दंड सीधी बनावे।
दोउ हस्तन ते हैं अनेक क्रिया, दोउ नेत्रहि नासिका अग्र लगावे।
सिद्धासन पै करि कर्म अनेक, योगेश्वर मुद्रहिं योग लगावे।

—स्वरूपगीता, पद ४२

नेती बस्ती औरु धौती करि, नेवली है त्रातक औ गजकरणी।
षट् कर्म यही योगीश करैं, पुनि सांख्य न वेद पुराणन वरणी।

—स्व० गी०, प० ४३

सिख देई मुझे मुद्रा दसही, जेहि भाँति दया गुरुदेव बताई।
तेहि नाम बखानि महामुद्रं बूझे महाबन्ध वोवेध्य जनाई।
खेचरी उड्डियान जालन्धर जे मूल बन्ध कही बज्राली चेताई।
योगेश्वर जो विफलाकरणी पुनि शक्तिहुँ चालनी देत लखाई।

—स्व० गी०, प० ४४

पल चंचल ते नित झाँपि खुले, तेहि रोक सदा टक एक लगावै।
नीर झड़ै पल थीर रहे, रंग बैंगनी ते चिनगी झड़ि आवै।
लड़ मोतिन के अनहोनी झड़े, खद्योत समान लखे चमकावै।
बिजुली चमके लखु चाहु दिशा, दमके जस दामिनि शब्द सुनावै।
ज्योति मसाल समान बरे, अरु मोर के पंख अहि एक आवै।
वामाङ्ग शशि रवि दच्छिण भाग, योगेश्वर बिम्ब उदय दरसावै।

—स्व० गी०, प० ७४

ज्योति दीपक टेम सम, भृकुटी मध्य दरसाये।
दरस निरंजन हेतु तव, खेचरी बन्ध्य लगाये॥

—स्व० गी०, दोहा ५८

दोउ कर्ण के छिद्र अंगुष्ट सो रोकिके, तर्जनि ते दोउ नेत्र दबावे।
मध्यमा दोउ बन्द करे निज घ्राण, अनामिका ओष्ट के उर्द्ध जतावे।
नीचली ओष्ट के कनिष्ट दबा, स्वर दच्छिण रोकि के वाम चढ़ावे।
उलटि निज नयन लखे त्रिकुटी सो, योगेश्वर कुम्भक को ठहरावे।

—स्व० गी०, प० ७५

एक निर्गुण राग नवीन सुनाइ के, योग क्रिया गृहि साधहुँ जाई।
तोहि जानि के नीच न शिष्य किये, तेहि जाइ लखे निज शिष्य बनाई।
बहु शिष्य करो निज ध्यान प्रकाशि के, मोरु निशा तेहिं देहुँ बताई।
योगेश्वर देश में ज्ञान विराग, योग सिखाबहु शिष्य चेताई॥

—स्व० गी०, प० ८६

कर जोरि कहैं सुनिये मम नाथ, न जानत निर्गुण राग नई।
और कवि जो बखानि गये, कछु गावत ना नई शक्ति भई॥

—स्व० गी०, प० ८७

डाके यदि भक्तिभाव दीनेर काङाल।।

ब्रह्माण्डेर परपारे आछे मूलाधार–मूले।

नाहि दिवा, नाहि राति, मन, मानुषेर महले।।

[1] बंगाल के बाउल और उनका काव्य, भाग–2, डा0 हरिश्चन्द्र मिश्र, पृ0 128/304

चन्द्र–सूर्य येते नारे से दल कमले।

जीवेर भाग्ये मिलवे केने हालछे वेहाल नाह, ले।।

योगेश्वरीर महायोग, मन, कले रस खेले।।"[1]

(मानुष मिलता भाग्य–फल से–

पुकारे यदि भक्ति भाव से दीन कंगाल।।

ब्रह्माण्ड के परपार है मूलाधार के मूल में।

नहीं दिन, नहीं रात है मन, मानुष के महल में

चन्द्र सूर्य जा नहीं सकते उस दज कमल में।

जीव के भाग्य में मिलेगा कैसे हाल से बेहाल न हुए।।

योगेश्वरी के महायोग, में, मन करके रस क्रीड़ा करता है।।)

योग–साधना में प्राणायाम की अपनी भूमिका होती है। प्राणायाम में मन की गति को नियंत्रित करते हुए जीवन सृष्टि का विकास किया जाता है। प्राण वायु विभिन्न स्तरों पर संचरित होकर जीवन की शक्ति को जगा कर ब्रह्म का साक्षात्कार करा देती है। बाउल कवि हाउड़े गोसाँई की इन पंक्तियों में प्राणायाम की भावना स्पष्ट दिखाई देती है।

"मने प्राणे नयने तिने ऐक्य यार हवे,

देख लक्ष्य–वेंधार मत लक्ष्य, ब्रह्मरूप से देखते पावे।।

पुरकेते वायु यार चले, अधः उर्ध्व गतिविधि याय

दले दले

ऐ ये हाओयार सने गेले–मूले फुले मिशिवे।।

मृणाल हाओयार गति, त्रिगुण–धारिणी शक्ति यथाय वसति,

तारे जागाले योगनिद्रा साध्यधन वाध्य हय।"[2]

(मन, प्राण, नयन, तीनों एक जिसका होगा,

लक्ष्य–भेदी की तरह लक्ष्य देख, ब्रह्म रूप वह देख सकेगा।।

पूरक वायु जिसकी चले अधः उर्ध्व गतिविधि होय

दल–दल में,

[1] बंगाल के बाउल और उनका काव्य, भाग–2, डा0 हरिश्चन्द्र मिश्र, पृ0 111/270

[2] बंगाल के बाउल और उनका काव्य, भाग–2, डा0 हरिश्चन्द्र मिश्र, पृ0 129/ 310

04:56
2015.493941.Madhyak...

पन्थ से है। जान पड़ता है कि कबीर के वंश में भी यह नाथपन्थी संस्कार पूरी मात्रा में थे। आगे चलकर वे कहते हैं—कबीरदास जिस वंश में पालित हुए थे उसमें योग मत का काफी प्रचार था। उनका पालन-पोषण योग मत के वातावरण में हुआ था। इसीलिए उनकी उक्तियों में, भाषा पर तथा तर्क शैली में उस मत का प्रभाव रह गया है। पर इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि स्वयं कबीरदास योग-मत के उसासक थे।"[1] कबीर के पूर्ववर्ती नामदेव की कविता में भी हमें नाथपन्थी साधना का उल्लेख मिलता है। नाथपन्थियों की हठयोग की साधना—जिसका प्रभाव सन्त-साहित्य की साधना पद्धति पर देखा जाता है—का विस्तृत विवेचन हम 'सन्त साहित्य की धार्मिक पृष्ठभूमि' में कर चुके हैं तथा आगे चलकर भी हमें इस पर विचार करने का अवसर मिलेगा। यहाँ विवेच्य इतना ही है कि वारकरियों एवं सन्तों पर नाथपन्थीय साधना का प्रभाव किस प्रकार पड़ा और वह उनमें किस रूप में विद्यमान है। नामदेव के प्रस्तुत पद में वेद, पुराण और शास्त्रों के प्रति नाथपन्थियों की उपेक्षा-भावना, अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनहद-नाद का व्यष्टि रूप में नाद-श्रवण, तीनों नाड़ियाँ, चन्द्र-सूर्य, सहज तथा ज्योति और शून्य में सामने का स्पष्ट उल्लेख हुआ है—

वेद पुरान सासत्र अनन्ता, गीत कवित्त न गावऊंगो।
अखण्ड मण्डल, निरंकार महि, अनहद बेनु बजाऊगो॥
बैरागी रामहि गावऊगो॥
सबदि अतीत अनाहदि राता, आकुल के घरि जाऊगो।
इड़ा पिंगला अठरु सुखमना, पऊनै बाँधि रहाऊगो॥
चन्दु सूरजु, दुइ समकरि राखऊ, ब्रह्म ज्योति मिलि जाऊगो।
नामा कहै चितु हरि सिऊर, राता सुन्नहि सुन्न समाऊगो॥[2]

\+ \+ \+

[1] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—कबीर, पृष्ठ २२।
[2] आचार्य विनयमोहन शर्मा—हिन्दी को मराठी सन्तों की देन : नामदेव के हिन्दी पद, पृष्ठ २५२।३१।

जह झिलमिल कारु दिसन्ता। तह अनहद सबद बजन्ता॥
जोती जोति समानी। मैं गुर परसादी जानी॥
जह अनहद सूर उजारा। तह दीपक जलै घीया॥
गुर परसादी जानिआ। जनु नामा सहज समानिया॥[1]

\+ \+ \+

गगन-मण्डल की वर्षा एवं अनहद नाद के मधुर ध्वनि की अनु
अड़मड़िया मंदलु बाजैं, बिनु सावण अनहद गाजै।

हार आठो पहर का लगा, ना लाज जगत मत भगा ।
जिन खोजा तिन पाया, घट घट आतमराम समाया ॥४
जिन गुरु का सबद विचारा, तिन प्रेम-पंथ पग धारा ।
आपे में आप सिभारा, तब लखो ब्रह्म विस्तारा ॥५
जब प्रेम पंथ पग धरया, प्रेमी जन जीवित मरया ।
वह तो मरत संक[2] न करया, निश्चय भवजल पार उतरया ।६
रस भाटी ताही तपावे, वह तो अमृत-बूंद चुवावे ।
पर्वत है भर-भर नैना, हरि दर्श भये सुख चैना ॥७
जब प्रेमी अमीरस छाके, ले अकल अतक को ताके ।
चचल मन थीर कर राखे, तब शब्द अनहद भाखे ॥८
जब प्रेमी अमीरस पागे, पायो राम अगमसुं आगे ।
वह तो ना सोवे ना जागे, ताकी पलक न लागे ॥९
जहां हरि आप, तहां न आपा, ताके आस पुन्य न पापा ।
वह तो आपा, जान गवांवे, पिंगल ले सुखमन धावे ॥१०
यह तो सब सुरत के खेला, प्रेमी सीस चढुंटे मेला ।
देखा आप में आप अकेला, जाके नहीं गुरु न चेला ॥११
उलटे द्वादस-कमल प्रकासा, चहूँ-दिस में भयो उजासा[1] ।
जिस उजियारे सब सांसा मारा, तिन खायो सब संसारा ॥१२
भई समुद्र-सीप प्यासी, छिन एक बाहर निकस प्रकासी ।
जब बूंद स्वाति की पाई, फिर समुद्र माहि समाई ॥१३
वामें मुक्ता-हल पक आया, मरजिया[3] बाहर लाया ।
उन जग को काढ़ दिखाया, प्रेमी सिर को बेच बिसाया[4] ॥१४
प्रेमो सतकी संघ बिचारे, ध्यान ऊपर ताके धारे ।
चढ़ सुन्न अलख तब देखा, वाके मिट गए सब परेसा[5] ॥१५

३=पनडूबा-मोती निकालने की कला, ४=खरीदा, ५=दुख,

18:56
2015.484196.Santkavi-...
403/511

उलटा पवन चढ़ा ब्रह्मंडे अनहद धुनि सुनि मोहै।
पांच पचीस मिलि गोहने लागे पाप जुदा भए रोहै॥
उलटा बुंद चुवे अंमी को हंसा जो मुख जोहै।
मूल फूल सीचे नव नारी माली के घर सोहै॥
तिल भर चौकी दाने दरवाजा चित्रगुप्त मो वोहै।
कहें दरिया प्रेम परगट देखै ऐसो पंडित को है॥ ८.७
जोगिया जो जुक्ति जानहि भजहि निर्मल ज्ञान।
सुनत धुनि उनुमुनी पलटी बिमल ब्रह्म अमान॥
जाप अजंपा जपहु प्रानी सुरति सुखमनि तान।
इंगला पिंगला सुखमना सुधि रहत एक ठेकान॥
बंक नाल है खोडस कमल ताहां भौंर बास समान।
झलकत अमी ताहां जोति जगमग भौंर गोफा ध्यान॥
झरत झरि तहां अगम निर्मल प्रेम पद निरबान।
अरध ऊरध गगन गरजित बुंद सेंधु समान॥
फूले फूल सुबास परिमल दीवि द्रिस्टि मकान।
कहें दरिया भेद सतगुर हंस पहुँचे अमान॥ ८.८
संतो सिफ्ति काहां तक कीजै।
गुंगा होए गुंगा सो बूझे सोइ अमी रस पीजे॥
सोई चांद सुर्ज है अंमुज सोइ उनुमुनी फूला।
सोई अजपा दरसन कहिए दरपन दरस है मूला॥
सोई त्रिकुटी मंर गोफा है सहस्त्र पंखुरी लागा।
सोई इंगला पिगला कहिए सोई सुखमना जागा॥
सोई छव चक्र परगट है जोगी खोजि खोजि डारें।
सोई नवो नाटिका कहिए दसए काम पुकारे॥
प्रेम पत्र अमी जहां चूवै खटरस बीजन चाखे।
का भौ बेद पढ़े बहु बानी जब तक सांच ना भाखै॥
जल में डाहीं फूल है बाहर मन मधुकर जा बासा।
कहें दरिया जन निश्चे जाने मेटि गया जम त्रासा॥ ८.९
एहि बिधि रमे अकेला जोगी।
सिद्ध हुआ तब साधक खोजे दुख सुख ब्यापे रोगी॥

देखि देखि नैना जुड़ाए, हे ननदिया मेरो ॥३॥

—स्वरूपप्रकाश, प० १३८

सिद्धासन साधि निरन्तर बैठि के, योग क्रिया कतृत्वहिं ठानें।
योगेश्वर चित्तवृति के निरोध ते, तत्व विवेक लहैं पहचानें॥

—स्वरूपगीता, पद-स० ४१

लघु तात सिद्धासन आसन को, ऐड़ी निज अण्ड ते नीच जनावे।
दछिन ऐंड़ी को इन्द्री के मूल को दाबि मेद दंड सीधी बनावे।
दोउ हस्तन ते हैं अनेक क्रिया, दोउ नेत्रहि नासिका अग्र लगावे।
सिद्धासन पै करि कर्म अनेक, योगेश्वर मुद्रहिं योग लगावे।

—स्वरूपगीता, पद ४२

नेती बस्ती औरु धौती करि, नेवली है त्रातक औ गजकरणी।
षट् कर्म यही योगीश करैं, पुनि सांख्य न वेद पुराणन वरणी।

—स्व० गी०, प० ४३

सिख देई मुझे मुद्रा दसही, जेहि भाँति दया गुरुदेव बताई।
तेहि नाम बखानि महामुद्रं दूजे महाबन्ध वोवेध्य जनाई।
खेचरी उड़ियान जालन्धर जे मूल बन्ध कही बज्राली चेताई।
योगेश्वर जो विफलाकरणी पुनि शक्तिहुं चालनी देत लखाई।

—स्व० गी०, प० ४४

पल चचल ते नित झाँपि खुलें, तेहि रोक सदा टक एक लगावै।
नीर झड़ै पल थीर रहे, रग बैंगनी ते चिनगी झड़ि आवै।
लड़ मोतिन के अनहोनी झड़े, खद्योत समान सखे चमकावै।
बिजुली चमके लखु चाहु दिशा, दमकं जस दामिनि शब्द सुनावै।
ज्योति मसाल समान बरे, अरु मोर के पंख अहि एक आवै।
वामाङ्ग शशि रवि दक्षिण भाग, योगेश्वर बिम्ब उदय दरसावै।

—स्व० गी०, प० ७४

ज्योति दीपक टेम सम, भृकुटी मध्य दरसाये।
[illegible] निरंजन हेतु तव, खेचरी बन्ध्य लगाये॥

—[illegible]गी०, दोहा ५८

दोउ कर्ण के छिद्र अंगुष्ट सो रोकिक, तजानि ते दोउ नेत्र दबावे।
मध्यमा दोउ बन्द करे निज घ्राण, अनामिका ओष्ट के उर्द्ध जतावे।
नीचली ओष्ट के कनिष्ट दबा, स्वर दक्षिण रोक के वाम चढ़ावे।
उलटि निज नयन लखे त्रिकुटी सो, योगेश्वर कुम्भक को ठहरावे।

—स्व० गी०, प० ७५

एक निर्गुण राग नवीन सुनाइ के, योग क्रिया गृहि साधहुं जाई।
तोहि जानि के नीच न शिष्य किये, तेहि जाइ सखे निज शिष्य बनाई।
बहु शिष्य करो निज ध्यान प्रकाशि के, मोरु निशा तेहिं देहुँ बताई।
योगेश्वर देश में ज्ञान विराग, योग सिखावहु शिष्य चेताई॥

—स्व० गी०, प० ८६

कर जोरि कहैं सुनिये मम नाथ, न जानत निर्गुण राग नई।
और कवि जो बखानि गये, कछु गावत ना नई शक्ति भई॥

—स्व० गी०, प० ८७

05:28
Charanadasi Samprada...
423/883
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत कबीर की भाँति इनका भी एक गूढ़ार्थ पद उदाहरण के रूप में यहाँ उद्धृत है—

साधो अचरज एक लखाया, काहू बिरले जन ने पाया।
ऊपर कूप तले पनिहारी, नीर भरै निस प्राता॥
नजर नैन बिन सूझ अनूठा, तहाँ नहीं दिन राता॥
बागन ही वृक्ष लगै अमोलक, सींच बिना हरियाली।
फूल खिले बहु रंग बिरंगे, मूल पात बिनु डाली॥
गगन माँहि एक धेनु विराजै, अमी देत नहिं खावै।
गुरुमुख आवै और जुगत सों, जनम मरन छुट जावै।
जोग साध यह खेल निहारा, निपट अगोचर भेवा॥
नवनदास हित चित तें करिया, अलख पुरुष की सेवा॥[1]

श्री नवनदास के पदों में अनेक राग-रागिनियों का प्रयोग किया गया है। उनमें पर्याप्त विषय-वैविध्य भी है परन्तु कवि का ध्यान गुरुमहिमा और मुरली-महिमा के गान पर तथा आत्मनिवेदन एवं विरहनिवेदन पर अपेक्षाकृत अधिक केन्द्रित है। कुछ पदों की प्रथम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१. गुरु बिन बाधा कौन हरै।
२. सुमर मन राधा कृष्ण कृपाल।
३. बंसी तू है कामनगारी।
४. परमानन्द निधान हेली तासूं प्रीति लगाइए।
५. झूठ जगत की प्रीत सखी री मोहन मित्र हमारा।
६. प्रभु जी हूँ शरनागति तेरी।
७. हरि जी भक्ति दया करि दीजै।
८. प्यारे के दर्श बिन कल न परे।
९. प्यारे लै गयो चित को चोर।
१०. मुरली श्याम बजावै जी, सो छवि बरनी न जाय सखी री।
११. हे दिल जानी तूं मेरे डेरे आव। आदि।

इनके पदों में भाषा-प्रयोग की अनेकरूपता भी स्पष्ट दिखाई देती है, जैसे—

(क) ओ मन मोहा मेड़ा ओ मुस्कान।
(ख) मोहनवा लागत है अति प्यारा।
(ग) हो हो सकल करत ब्रजबनिता चहुँ दिसि से घिरि आई हो जू।

---

१. नवनप्रकाश : शब्द सं० ४२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमकने लगता है। इसी को कहते हैं कि नाद बिन्दु में समा गया है और अनाहत नाद की तुरही बजने लगी है।[1] चन्द्र और सूर्य के योग से जब उन्मना अवस्था आती है तब ब्रह्मरन्ध्र में अमृत का स्राव होने लगता है। उसका सूक्ष्म अंश स्थूल रूप में परिणित होकर रजोगुण का कारण बन जाता है। मूल की ओर सरकता हुआ बिन्दु ऊर्ध्वगामी हो जाता है। यही अमृत्व की ओर जीव का अग्रसर होना है। क्योंकि जीव के ऊपर से काल का प्रभाव लगभग क्षीण हो जाता है।[2] है। अवधूतों - सर्वप्रथम सुषुम्ना नाड़ी में नाद की झनक सुनाई पड़ती है। उष्ण-पिंगला नाड़ी में पवन का संचार होने लगता है एवं शीतल इड़ा नाड़ी में पवन (वीर्य) का निवास रहता है।[3] सूर्य नाड़ी में उष्ण वातावरण के कारण पवन का वेग बहुत तीव्र होता है लेकिन जब इड़ा (चन्द्र) नाड़ी में इसका प्रवेश होता है तो यह स्थिर हो जाता है। जब श्वास बाहर निकलती है तो सूर्य नाड़ी चलती है तथा जब शरीर के भी भीतर प्रविष्ट होती है तो चन्द्र नाड़ी चलती है। लेकिन योगी इन दोनों को छोड़कर तीसरे सुषुम्ना नाड़ी में शरण लेता है।[4]

सिद्धों, तान्त्रिकों तथा कापालिकों की क्रियायें योगी प्रयोगों में कितनी ही नवीनता, एकरूपता तथा मौलिकता क्यों न रही हो- कालान्तर में रूढ़ियों एवं आडम्बरों के कारण यह योग केवल साधारण जनता के लिये तिरस्कार का विषय बनकर रह गया। इन सिद्धियों एवं मंत्रों-तंत्रों में इतना आकर्षण एवं आश्चर्य था कि साधारण अशिक्षित जनता स्वतः इसका शिकार

---

[1] डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल (सम्पादित), गोरखबानी, पद संख्या- ५७ ।

[2] वही, पद संख्या-४४ ।

[3] वही, पद संख्या-४६ ।

[4] वही, पद संख्या-५० ।

क्यों गनती साधन गनीं बिनु धन का परमान।'

वे 'मूलद्वार' को संभालने का संकेत करते हैं। यह संकेत 'कुण्डली योग' का है। ज्ञानार्णव तंत्र के अनुसार—

'मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटि समप्रभाम्।
सूर्य कोटि प्रतीकाशां चन्द्रकोटि द्रवां प्रिये।'' —ज्ञानार्णव तंत्र

घेरण्डसंहिता के अनुसार—''मूलाधार आत्मशक्तिः कुण्डली पर देवता। शयिता भुजगाकारा सार्धत्रिवलयान्विता॥'' (तृ० उपदेश ४४)

'कुण्डलनी' शब्द की व्याख्या ''कुण्डले अस्या स्तः इति कुण्डलिनी' की जाती है। 'कुण्डले' शब्द 'कुण्डल' के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

''मूल शोरि मनु लाइयां बन्द धरनि मां दीन
त्रकुटी तर घर भेटिया मीता मा लै लीन।''

मूल के शोधन से ही कमल विकसित होता है। चक्रों का भेदन होता है। संत मीता के अनुसार—

'कंवल बिगसै मूल सोधे जीत पाँचों नारि
राम या विधि पाइहै नल करम कागद फारि।'

मीता के अनुसार द्वादश कवल चक्र में जीव का निवास है। और अष्ट कंमल चक्र में ब्रह्म का विलास है। इन दोनों का एकाकार ही जीव ब्रह्म का एकाकार है—

''द्वादस कंवल जीव का वासा
अष्ट कंवल दल ब्रह्म बिलासा
जीव ब्रह्म का एकुइ करई
कहि मीता सो प्रानी तरई।''

मूल बन्ध भी मुद्रा बन्ध के अन्तर्गत साधना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण रहा है। मीता भी मूल बन्ध को संभालने का संकेत करते हैं। किन्तु वे मुद्रा बन्ध को अपनी साधना का लक्ष्य नहीं मानते यदि मुद्रा बन्ध मात्र बाह्याचार की वस्तु हो जाय।

मूल द्वार की साधना ही जोग जुगति का प्रथम सोपान है—'बैसाषै बसि मूल दुआरा जोग जुगति का पंथ संभारा।' चन्ददासकृत शिव सारंगाध्यावली (पृ० ३२) में मूल बन्ध साधना का वर्णन इस प्रकार है—

''मूल द्वार संभार कर वाम चरण धरि धीर
दक्षिण चरन सो राखिये इन्द्रिय विकट शरीर।''

साधना के अन्तर्गत ५ तत्त्वों और २५ लिप्साओं को जीतने का बार-बार संकेत किया है—

'पाँच पचीसों को जो बाँधे
ताको कहिये ज्ञानी।'

पाँच से पंच ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, रसना, त्वक) और पचीस लिप्सायें (पाँच तत्त्वों से मिश्रित २५ मानसिक और शारीरिक विकार आकाश से काम, क्रोध, लोभ. मोह, भय, (५) अग्नि से क्षुधा, तृषा आलस्य निद्रा मैथुन (५) वायु से चलन, बलन, धावन, पसारन, संकोचन, (५) जल से लार, खून, पसीना, मूत्र और लिंग (५) पृथ्वी से हाड़, मांस, त्वचा, नाड़ी रोम (५)=२५ लिप्सायें। मीता ने २५ लिप्साओं के नाम भिन्न प्रकार से बताये हैं।

संख्यात्मक शैली में मीता ने इन्हीं पंच तत्त्वों को वसवर्ती बनाने का संकेत किया है। तन का शोधन मीता की साधना का आवश्यक अंग है—

'अलख जगाउ जगाउ बहुरिया
तन सोधे सबु कारज सरिया।'

मन ही साधना का अमूर्त साधन है—

'मनु कर जोगिया मनु सन्यासी
मनु कर भगत मनुइ बैरागी
मनु कर संतहि मतहि फकीरा

04:43
2015.379529.Sant-Cha...
164/508

बीज सु बोया भक्ति का, अब भया वृक्ष नवीन ॥
दिन दिन बढ़ता जायगा, [illegible] के नीर।
जब लग माली ना मिला, तब लग हुता अधीर ॥

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि भक्ति का जो बीज किसी समय कवि के हृदय में आरोपित हुआ था वह कालांतर में योग वट-वृक्ष के रूप में विकसित हो गया। अतः योग साधना से सम्बन्धित यह ग्रन्थ कवि के जीवन में साधना की प्रौढ़ावस्था का द्योतक है। अष्टांगयोग की पूर्ण साधना कर लेने के अनन्तर कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की है, ऐसा ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय से प्रकट होता है। चरनदास जी ने जयपुर की यात्रा, साधना के क्षेत्र में प्रतिष्ठा और सिद्धि प्राप्त करने के अनन्तर संवत् १०४० में की थी। ग्रन्थ की परिमार्जित भाषा, प्रतिपाद्य विषय, प्रौढ़ चिन्तन देखने के अनन्तर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि ने इस ग्रन्थ की रचना जयपुर यात्रा के अनन्तर ही की थी। इस अनुमान के आधार पर प्रस्तुत ग्रन्थ का रचना समय संवत् १८४० निर्धारित होता है।

योग सन्देह सागर

उपलब्ध प्रतियाँ—लेखक को 'योग सन्देह सागर' की केवल दो प्रतियां प्राप्त हुईं। इनमें से एक हस्तलिखित प्रति है जो मिश्र जी के संग्रह से प्राप्त हुई और द्वितीय मुद्रित है जिसका प्रकाशन नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से हुआ है।

मिश्र जी की प्रति में प्रतिलिपि कर्ता अथवा समय का अन्त में उल्लेख नहीं हुआ है। ग्रन्थ का कागज, रोशनाई और लिखावट इस बात का द्योतक है कि यह प्रति आज से प्रायः १०० वर्ष पूर्व प्रस्तुत की गई थी। ग्रन्थ को आकर्षक और सुन्दर बनाने के लिए हाशिया के चारों ओर से लाल रोशनाई और हरे रंग की समानान्तर रेखाएँ अंकित है और इन रेखाओं के अन्दर पीला रंगा भरा हुआ है।

अप्रकाशित प्रति का आकार ८"X५, १/२" और ग्रन्थ की रचना ६५ छन्दों में हुई है। रचना लिपि देवनागरी है।

इस ग्रन्थ में लेखक ने पिंड, नाडी कुंडलिनी, शून्य आदि जैसी योग और ज्ञान के विषयों में प्रश्नावली प्रस्तुत की है। ये विषय पहेली के समान तत्वज्ञों और योग विशारदों के समक्ष रखे गये हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ और अंत में कवि ने ग्रन्थ के नाम की सार्थकता सिद्ध करते हुए लिखा है :—

१—अर्थ बताओ पंडिता, ज्ञानी गुणी महन्त।
जो तुम पूरे साधु हौ, भक्ता हरि के सन्त ॥
चरणदास पूछें अरथ, मेदी होय कहौ।
समझौ तौ चर्चा करौ, नाहीं मौन गहौ ॥
२—सो तुमसों पूछन करौ, हौं परषन के दाय।
या सागर सन्देह को, दीजै अर्थ बताय ॥

इन दोनों उद्धरणों के आधार पर हम ग्रन्थ का नाम 'योगसन्देहसागर' सार्थक समझते हैं।

ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय प्रारम्भ से अंत तक एक समान ही चलता है। बीच में कहीं पर न तो वस्तु का विभाजन अध्याय में हुआ है और न प्रकरणों में ही।

वर्ण्य-विषय—ग्रन्थ का वर्ण्य विषय निम्नलिखित है :—

ब्रह्म की स्थिति घट घट में है—शरीरस्थ सात समुद्रों में कछुआ कौन है और कहां विराजमान है-शेष नाग कहाँ रहता है और बराह की छवि कैसी—षटचक्र कौन कौन और कहां कहां है—कुंडलिनी का निवास स्थान कहां है और वह कैसे जाग्रत होती है—पवन और मन का वास कहाँ है—हृदय की आँख कहाँ है—प्राण पुरुष अन्तर्गत कैसे हैं—इडा, पिंगला सुषुम्ना नाड़ी क्रमशः कैसे परिवर्तित होती है—अजपा कितने प्रकार का होता है—श्वास का मापदंड कितने अंगुल में है—विष्णु के तीनों पद कहाँ है—कहाँ है इकीस काया में लोक-इन्द्र शरीर में नित्य कहाँ भोग करता है—ब्रह्मादिक त्रिदेव कहाँ है—षोडश चन्द्र कहाँ प्रकाशमान रहते हैं—त्रिकुटी संयम का स्पर्श कैसे हो—त्रिवेणी की प्राप्ति कहाँ से हो—टंकार शब्द कहाँ से जाग्रत होता है—ओंकार से संसार कैसे उत्पन्न हुआ—निर्गुण और सगुण का क्या भेद है—काया में विष और बिन्दु कुंड कहाँ है—ब्रह्म जीव में कितनी दूरी है—शरीरस्थ निम्न प्रबल शत्रु कौन कौन है—अमृत कुंड कहाँ है—बंकनाल की पहचान बताओ—ब्रह्म रंध्र का रहस्य बताओ—मान सरोवर ताल घर

04:37
2015.379529.Sant-Cha...
235/508

निवास स्थान है। प्राणायाम के अभ्यास से जाग्रत होकर यह दिव्य शक्ति सुषुम्णा के सहारे आगे बढ़ती है और विभिन्न चक्रों (सुषुम्णा के अंगों) से होती हुई कुंडलिनी ब्रह्मरन्ध्र की ओर अग्रसर होती है। कुंडलिनी की गति के साथ-साथ मन को भिन्न-भिन्न शक्तियां प्राप्त होती चलती है और सहस्र दल कमल में प्रविष्ट हो जाने के अनन्तर साधक मन और शरीर से पूर्णतया अलग हो जाता है। कुंडलिनी के निवास स्थान एवं शक्तिमत्ता का वर्णन अब कवि के शब्दों में सुनिये :—

नाभि स्थान नागिनि रहै, कुंडल शशी अकार।
प्राण पियारा वही है, आगे सुनौ विचार॥
कुंभक कर्म्म कोई करै, देवै शक्ति जगाय।
जैसे लागी लष्टिका नागन शीश उठाय॥

सीखी गुरु सों कुम्भक साधै। नीकी विधि ताको अवराधै॥
पवन ठवकलग ताहि जगावै। तब ऊरध को शीश उठावै॥
नाभि ठौर ताका है बासा। पद्म प्राग मणि ज्यों परकासा॥
सात लपेट वाई जानौ। ताते शुक्र कुंडली मानौं॥
नाड़ी सहस लगी हैं वाको। सो पर छुटी जानिको ताको॥
जिनमें तीन नारि अधिकाई। इडा पिंगला सुषमन गाई॥
तिनके माहिं शिरोमणि सुषमन। नाल कमल जानत योगी जन॥
जाय पहुँचि ब्रह्मरंधर ताही। ऊरध कमल सातवें माहीं॥
आवन जो न पवन की बाटा। सकत चढ़न ऊरध का घाटा॥

नागिनि सूक्षम जानिये, बाल सहस वा भाग।
शुकदेव कहै अकारही, रक्त बरण ज्यों नाग॥
कुंभक हो अत्यन्त जब, तब ऊरध को जाय।
ब्रह्मरन्ध्र में आयकर, घड़ी दोय ठहराय॥
अमृत का करि पान ही, पूरण हो अभ्यास।
उड़ते देखै सिद्धि तब, ताको माहि अकास॥

कुंडलिनी प्रबुद्ध हो जाने के अनन्तर साधक को अनेक शक्तियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।[1]

कुंडलिनी के प्रबुद्ध होने की रीति को अधिक स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाने के हेतु विभिन्न प्राणों का ज्ञान परम आवश्यक है। इन प्राणों को वायु भी कहते हैं। इसी तत्व के आधार पर हमारे शरीर का जीवन निर्भर है। वायु दश प्रकार की मानी गई है—पंच शरीरस्थ एवं पंच वाह्य। घेरंड संहिता के अनुसार प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान—ये पंच वायु अन्तःस्थ हैं तथा नाग कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनंजय ये पंच वहिःस्थ हैं।[2] इनकी स्थिति निम्न लिखित है :—[3]

१. पर देखत है नैन बिना ही। चहै करै लीला उन माहीं॥
खेचर मिलि खेचर ह्वै जावै। यह भी शक्ति उड़न की पावै॥

05:50
Charanadasi Samprada...
477/883
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होते हैं। इनकी बानियों में कवित्त, सवैया, रेख्ता, कड़खा और अनेक राग-रागिनियों में निबद्ध पदों का समावेश है। इनकी छन्द रचना प्रौढ़ और भाषा खड़ी बोली के बेलाग प्रयोग से युक्त है। इनकी कुछ पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य हैं—

'करता हूँ विचार यार भूला संसार धार
छौंड़ा ही है सार प्यार माया यों कीआ है।
लोग भोग करत हैं अधाय धाय मन
पछतात हैं आन काल घेर लीआ है॥'[1]

इनकी एक संतबानी की शैली का पद इस प्रकार है—

मनुवां हरि सुमिरन यूं कीजै।
ज्यूं नट बांस चढ़ै अरु उतरै अरध उरध मन दीजै॥
नाम अखण्ड रटै बिनु रसना शब्द मूल गहि लीजै।
गहु निज डोर सुरत करम करि बंकनाल रस पीजै॥
आसन अधर गगन में बैठे अमर जुगै जुग जीजै।
बाढ़ी नेह मिलौ अबिनासी रोम रोम तन भीजै॥
बिन पग निरत होय निसबासर गुरु छीना प्रभु रीझै।
जन हीरा आधीन तुम्हारो ज्ञान रतन मोहिं दीजै॥[2]

इनकी बानियों में १७ कवित्तों का भी समावेश है। ये कवित्त सन्त कवियों की भाँति मूर्त्तिपूजा, पाखण्ड, तीर्थ-व्रतोद्यापन, कर्मकांड, कथनी-करनी में असामंजस्य, लोभ, मोह, काम और क्रोध में आसक्ति आदि की कटु आलोचना से युक्त हैं। अपनी बानियों के माध्यम से कवि ने आचार-विचार की शुद्धता, साधना की दृढ़ता, एकांतनिष्ठा और श्रद्धा-विश्वास आदि गुणों के विकास की आवश्यकता पर बल दिया है। ये शिल्प की दृष्टि से सशक्त और उच्चकोटि की काव्यात्मकता से युक्त हैं। इनका इस प्रकार का एक शब्द द्रष्टव्य है—

जाने ब्रह्म सोई कुल ब्राह्मन जाति कहाँ से आई।
पहर जनेऊ जन दिखलावैं चाहे मान बड़ाई॥
करम लगा कर सब जग लूटा दुनियां ठग-ठग खाई।
सेवैं भूत करें तन किरिया डूबी सब चतुराई॥
ज्ञानी मिलै जवाब नहिं आवैं वेद पुरान बताई।
हीरा कहै खोज तन अपना गुरु छीना समझाई॥[3]

१. अखैराम जी की वाणी : पत्र सं० १६७।
२. वही : पत्र सं० १२६, शब्द सं० २।
३. हीरादास की बानी : कवित्त सं० १७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उलटि चले मठ [illegible] अभय पद माहीं ।
[illegible]धारी अद्भुत लीला कहन सुनन [illegible] नाहीं ॥
जित भयेलीन सबै सुधि बिसरी छूटी जगत बिय[illegible] ।
चरणदास शुकदेव दयासों लागी शून्य समाधा ॥

सो साधो ऐसी योग युक्ति गति भारी ।
मूलहि बंध लगाय युक्ति सों मूंदि लई नौनारी ॥
आसन पद्म महादृढ़ कीन्हो हिरदय चिबुक लगाई ।
चंद सूर दोउ सम करि राखे निरति सुरति घर आई ॥
ऊपर खैंचि अपान सहज में सहजे प्राण मिलाई ।
पवन फिरी पश्चिम को दौरी मेरुहि मेरु चलाई ॥
ऐसेहि लोक अमर पद पहुँचे सूरज कोटि उज्यारी ।
श्वेत सिंहासन सतगुरु परशे करि दरशन बलिहारी ॥
आपा बिसरि परम सुख पायो उनमनी लागी तारी ।
चरणदास शुकदेव दया सों जन्म मरण छुटि बारी ॥

राग मलार ॥

वा पद रामसों करि नेह ।
विषकी बूंद न पइये जित ह्वां बरषत अमृतमेह ॥
[illegible]कत बिजुली गरजत गगना बाजत अनहद घोर ।
यहमन थ[illegible] गलतजित पाँचौ मिटिहैं निशि [illegible]नार ॥
जाग्रत मिटि है स्वप्न [illegible] सुषोपत जाय ।
षट ऋतु पइये नाहिंन अवधू एकहि रस दर्शाय ॥
बिनहीं जोते बिनहीं बोये उपजत खेत है धीर ।
लागत अचरज फल महँ मुक्ता बिनहीं सींचे नीर ॥
राजा गुरु शुकदेव न बांटे सबहि करैं बकसीस ॥

---

१ दाढ़ी २ मेरुदंडनाड़ी वह है जो पृष्ठभाग से सीधी शिरतक चलीगई है ।

17:15
2015.321331.Bhakti-Sa...
423/694

उलटि चले मठ फोरि इकीसों गये अभय पद माहीं ।
अति उजियारो अद्भुत लीला कहन सुनन गम नाहीं ॥
जित भयेलीन सबै सुधि बिसरी छूटी जगत बियाधा ।
चरणदास शुकदेव दयासों लागी शून्य समाधा ॥

सो साधो ऐसी योग युक्ति गति भारी ।
मूलहि बंध लगाय युक्ति सों मूंदि लई नौनारी ॥
आसन पद्म महादृढ़ कीन्हो हिरदय चिबुक[1] लगाई ।
चंद सूर दोउ सम करि राखे निरति सुरति घर आई ॥
ऊपर खैंचि अपान सहज में सहजे प्राण मिलाई ।
पवन फिरी पश्चिम को दौरी मेरुहि[2] मेरु चलाई ॥
ऐसेहि लोक अमर पद पहुँचे सूरज कोटि उज्यारी ।
श्वेत सिंहासन सतगुरु परशे करि दरशन बलिहारी ॥
आपा बिसरि परम सुख पायो उनमनी लागी तारी ।
चरणदास शुकदेव दया सों जन्म मरण छुटि बारी ॥

राग मलार ॥

वा पद रामसों करि नेह ।
विषकी बूंद न पइये जित ह्वां बरषत अमृतमेह ॥
चमकत बिजुली गरजत गगना बाजत अनहद घोर ।
यहमन थकत गल्तजित पाँचो मिटिहैं निशि अरुभोर ॥
जाग्रत मिटि है स्वप्नो मिटि है मिटिहु सुषोपत जाय ।
षट ऋतु पइये नाहिंन अवधू एकहि रस दर्शाय ॥
बिनहीं जोते बिनहीं बोये उपजत खेत है धीर ।
लागत अचरज फल महँ मुक्ता बिनहीं सींचे नीर ॥
राजा गुरु शुकदेव न बांटैं सबहि करैं बकसीस ॥

१ दाढ़ी २ मेरुदंडनाड़ी वह है जो पृष्ठभाग से सीधी शिरतक चलीगई है ।

09:59

Bhakti Sagaradi :...
archive.org

INTERNET ARCHIVE

सुख नाहि मोरे ॥ निश्चल राज अमल कर पूरा । बाजे नौबत अनहद तूरा ॥ तीन तीस अरु कोटि अठासी । वेभी सब तेरी करैं खवासी ॥ गुरु शुकदेव भेद दियो नीको । चरणदास मस्तक कियो टीको ॥ रणजीता यह रहनी पावे । थोथी करनी कथनि बहावे ॥

अथ योगका अंग ।

राग करखा ॥ साधो गुरु दया योग इह विधि कमायो । मूलको शोधि सङ्कोच करि शंखिनी खैंचि आपान उलटो चलायो ॥ बन्ध पर बन्ध जब बन्ध तीनो लगें पवन भइ थकित नभ गर्ज्जि आयो । द्वादशा पलटि करि सुरति दो दल धरी दशौ परकार अनहद बजायो ॥ रोक जब नवनको द्वार दशवें चढ़ो शून्यके तख्त आनन्द बढ़ायो । सहसदलकमलको रूप अद्भुतमहा अमीरस उमँग आ झरि लगायो ॥ तेज अतिपुञ्ज परलोक जहाँ जगमगे कोटि छवि भानु परकाश

लाया । उनमनी आर चित हेत करि बसिरहो देखि निज रूप मनुवां मिलायो ॥ काल अरु ज्वाल जगव्याधि सब मिटिगई जीवसों ब्रह्मगति वेगिपायो । चरणदास रणजीत शुकदेवकी दयासों अभयपद परशि अविगत समायो ॥१॥ साधो पिण्ड ब्रह्मांड की सैल गुरु गमकरी परशि या युक्तिसों अलखराई । सहजहा सहज पग धरा जब आगमको दशौपरकार झागड़ बजाई । खोलि कपाट अरु वज्रद्वारे चढ़ो कलाके

(342 of 448)

Favorite Share Flag

Bhakti Sagaradi

संक्षेप में उल्लेख किया है।

श्रीमान् बुल्ला साहब की शिष्य-परम्परा की एक शाखा जिला फैजाबाद में महात्मा गोविन्द साहब से सं० १८०० वि० के पश्चात् विकसित हुई। श्रीमान् गोविन्द साहब भीखा साहब के शिष्य थे। बावरी पन्थ की अप्रकाशित संख्याओं से यह ज्ञात होता है कि श्रीमान् भीखा साहब के तीन शिष्य थे। चतुर्भुज साहब, जिन्होंने भुरकुड़ा को ही अपना साधना-स्थल बनाया। इनके द्वितीय शिष्य रघुनाथ साहब थे जिन्होंने कनैठा ग्राम में, जो बलिया जनपद में ही है, अपनी साधना प्रारंभ की। इनकी कोई प्रकाशित या अप्रकाशित रचना नहीं मिलती है जिसके आधार पर इनकी साधना एवं सिद्धान्त का उल्लेख किया जा सके। इनकी शिष्य-परम्परा में ऐसे महन्त हुये हैं जिनकी साधना-प्रक्रिया भुरकुड़ा के महात्माओं की साधना से साम्य रखती है। श्रीमान् रघुनाथ साहब के शिष्य शिवनाथ साहब थे। इनके भी विषय में कोई उल्लेखनीय बात नहीं मिलती है। श्रीमान् शिवनाथ साहब के शि[ष्य] ठगाल साहब एवं उनके शिष्य सत्यराम साहब थे। इनके दिवंगत हो जाने पर उनके शिष्य त्रिलोकराम साहब उस स्थान के महन्त हुये। इनके शिष्य रामशरण साहब थे। इन सभी महन्तों की समाधियाँ कनैठा ग्राम के मठ में विद्यमान हैं।

इस स्थान के वर्तमान महन्त परमादास साहब हैं। ये उच्च साधक होने के साथ ही साथ अच्छे प्रबन्धक भी हैं। कनैठा वाली शाखा में कोई साहित्यिक अभिरुचि का महात्मा अभी तक नहीं हुआ है। इस शाखा के महन्त व्यक्तिगत साधना करते रहे हैं। इन्होंने निराकार और निर्गुण ब्रह्म को ही अपना उपास्य बनाया है। इनके ऊपर वैष्णव-साधना का भी प्रभाव लक्षित होता है। ये भजन करते हुये ब्रह्म को ही अपना मालिक मानते हैं। इस शाखा के महन्त भी मूर्ति-पूजा नहीं करते हैं।

गोविन्द साहब

श्रीमान् गुलाल साहब के प्रशिष्य एवं भीखा साहब के शिष्य गोवि[न्द] साहब थे। ये नगपुर जलालपुर, जिला फैजाबाद के निवासी थे। ये ब्राह्मण थे। 'गोविन्द साहब का जीवन चरित्र' नामक ग्रन्थ से विदित होता है कि इनके पि

का नाम पुष्कर और माता का नाम दुलारी देवी था।[1] इनका जन्म अगहन सुदी १०, मंगलवार को सं० १७८२ विक्रमी में हुआ था। निम्नोक्त पद से इसकी पुष्टि हो जाती है।

आंख नाक जिह्वा कहूं, त्वचा जान अरु कान ।
पांचौ इन्द्री ज्ञान हैं, जानै संत सुजान ॥
जो जो इनसों जानिये, निश्चय ना ठहराय ।
कहै सुनै चाखै लखै, सो सोई मिटिजाय ॥
इन्द्री जानि सकै नहीं, मन बुधि लहै न ताय ।
ज्ञानदृष्टि पहिंचानिये, वासों वाको पाय ॥
गुदा लिंग मुख तीसरो, हाथ पाँव लखि लेह ।
पांचौ [illegible] है, यह भी [illegible] देह ॥
[illegible] मिटत है स्वप्न ज्यौं, जीव रहत है [illegible]
देहकर्म विसराय करि, आतमसों करि हित्त ॥
मन जीतै इन्द्री गहै, चित्त अस्थिर जब होय ।
आतम सों परचो रहै, राखै सुरति समोय ॥
पृथ्वी काल जे ठौर है, मुखै जानिये द्वार ।
पीरो रंग पहिंचानिये, पीवन खान अहार ॥
जलको वासा भाल है, लिङ्ग जानिये द्वार ।
मैथुन कर्म अहार है, रंग सफेद निहार ॥
पित्त में पावक रहै, नैन जानिये द्वार ।
लालरंग है अग्नि को, मोह लोभ आहार ॥
पवन नाभि में रहत है, नासा जानिये द्वार ।
हरो रंगहै वायु को, गन्ध सुगन्ध अहार ॥
अकाश शीशमें वास है, सरवन दुवारे जान ।
शब्द कुशब्द अहार है, ताको श्याम पिछान ॥
कारण सूक्षम लिंग है, अरु कहियत अस्थूल ।
शरीर तीनसों जानिये, मैं मेरी जड़मूल ॥

१ माथ २ तोंदी ॥

जाग्रत का अस्थूलहै, स्वपनै लिंग शरीर ।
कारण जान सुषोपती, तुरिया साक्षी वीर ॥
जाग्रत स्वप्न सुषोपती, तुरी अवस्थ विचार ।
परा पश्यन्ती मध्यमा, बैखरी वाणी चार ॥
जाग्रत वासा नैन में, स्वप्न कण्ठ अस्थान ।
जान सुषोपति हिये में, नाभि तुरिय मनतान ॥

आंख नाक जिह्वा कहूं, त्वचा जान अरु कान।
पांचौ इन्द्री ज्ञान हैं, जानै संत सुजान॥
जो जो इनसों जानिये, निश्चय ना ठहराय।
कहे सुनै चाखै लखै, सो सोई मिटिजाय॥
इन्द्री जानि सकै नहीं, मन बुधि लहै न ताय।
ज्ञानदृष्टि पहिंचानिये, वासों वाको पाय॥
गुदा लिंग मुख तीसरो, हाथ पाँव लखि लेह।
पांचौ इन्द्री कर्म हैं, यह भी कहिये देह॥
देह मिटत है स्वप्न ज्यों, जीव रहत है नित्त।
देहकर्म विसराय करि, आतमसों करि हित्त॥
मन जीतै इन्द्री गहै, चित्त अस्थिर जब होय।
आतम सों परचो रहै, राखै सुरति समोय॥
पृथ्वी काल जे ठौर है, मुखै जानिये द्वार।
पीरो रंग पहिंचानिये, पीवन खान अहार॥
जलको वासा भाल है, लिङ्ग जानिये द्वार।
मैथुन कर्म अहार है, रंग सफेद निहार॥
पित्ते में पावक रहै, नैन जानिये द्वार।
लालरंग है अग्नि को, मोह लोभ आहार॥
पवन नाभि में रहत है, नासा जानिये द्वार।
हरो रंगहै वायु को, गन्ध सुगन्ध अहार॥
अकाश शीशमें वास है, सरवन दुवारे जान।
शब्द कुशब्द अहार है, ताको श्याम पिछान॥
कारण सूक्ष्म लिंग है, अरु कहियत अस्थूल।
शरीर तीनसों जानिये, मैं मेरी जड़मूल॥

---

१ माथ २ तोंदी॥

जाग्रत का अस्थूलहै, स्वपने लिंग शरीर।
कारण जान सुषोपती, तुरिया साक्षी वीर॥
जाग्रत स्वप्न सुषोपती, तुरी अवस्थ विचार।
परा पश्यन्ती मध्यमा, बैखरी वाणी चार॥
जाग्रत वासा नैन में, स्वप्न कण्ठ अस्थान।
जान सुषोपति हिये में, नाभि तुरिय मनतान॥

passion and thus he is not charmed by maya. He having burnt the three qualities intertia तमोगुण mobility (रजोगुण) and harmony (सतोगुण) attains the fourth goal where the angel of death torture him not.

मनो जीतं योग युक्ता, रिपु-वायू[1] रोकन्त मूल बंधं ।
षट-चक्र बेधन्तं बुद्धस्य मानवी, वास[2] स्वांस[3] सनो[4] सन्धं[5] ॥३०
सतो सन्धं पवन बन्धं, रवि शशि करत इकतरं[6] ।
जस्य स्थानं जोतस्य जोती, तस्य दर्शनं भवातिरं ॥ ३१
भवातिरं अजग[7] जर', पंच इन्द्रिय विष तजन्तं ।
हर हर धुनि जिह्वा नासतं[8], एवं सत्यं[9] तत्त फलं ॥ ३२

मन को वश में रखने वाला योगी योग-युक्त कहलाता है । वह योगी मूलबंध क्रिया द्वारा अपान वायू को स्थिर करता है । मूलाधार-चक्र में कुण्डलीनी शक्ति विराजमान है । प्राणायाम से जागृत होकर यह शक्ति मेरुदण्ड के भीतर प्रविष्ट होकर ऊपर को चलती है, जहां प्रकाश दिखाई पड़ता है । इस लिए ज्ञानी पुरुष अपने शरीर में छः चक्रों को शुद्ध करते हैं और अपान व प्राण वायू को ठीक रीति से निरोध करके उनको मिलाते हैं ।

इस प्राण व अपान वायू के मेल से शुद्धि व स्थिरता प्राप्त होती है इडा, पिंगला नाड़ियां सुषमना में लीन हो जाती हैं । फिर उस स्थान का जहां ज्योति का प्रकाश फैला हुआ है दर्शन मिलता है; जिसके दर्शन से मुक्ति हो जाती है, मन का निग्रह हो जाता है, पांचों इन्द्रियों के विषय व काम, क्रोध, लोभादि छूट जाते हैं और राम-नाम धुन जिह्वा से न होकर स्वांस द्वारा स्वतः होती रहती है । इस योग साधन का ऐसा वास्तविक फल है ।

१=अपान वायू २=अपान, ३=प्राण, ४=ठीक प्रकार, ५=युक्त करना ६=इकट्ठा करना, ७=मन, ८=नहीं होता, ९=वास्तविक ।

08:25

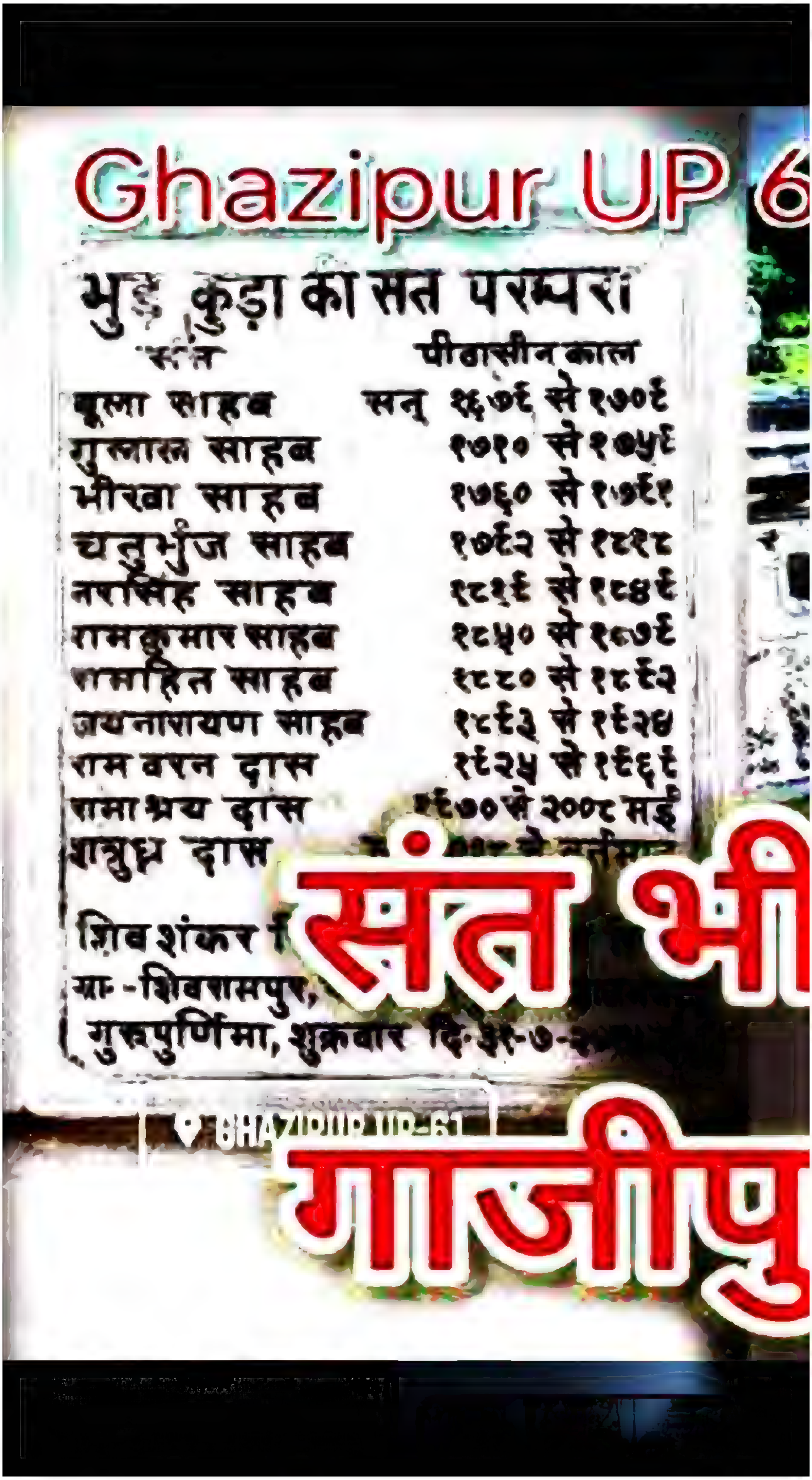

भुड़कुड़ा की संत परम्परा

संत	पीठासीन काल
बूला साहब	सन् १६७९ से १७०९
गुलाल साहब	१७१० से १७५९
भीखा साहब	१७६० से १७९१
चतुर्भुज साहब	१७९२ से १८१८
नरसिंह साहब	१८१९ से १८४९
रामकुमार साहब	१८५० से १८७९
रामहित साहब	१८८० से १८९२
जयनारायण साहब	१८९३ से १९२४
राम वरन दास	१९२५ से १९६९
रामाश्रय दास	१९७० से २००८ मई
शत्रुघ्न दास	... से वर्तमान

शिव शंकर ...
ग्रा.-शिवरामपुर, ...
गुरुपुर्णिमा, शुक्रवार दि. ३१-७-...

Home Search Saved Notifications

झमकने लगता है । इसी को कहते हैं कि नाद बिन्दु में समा गया है और अनाहत नाद की तुरही बजने लगी है ।[1] चन्द्र और सूर्य के योग से जब उन्मना अवस्था आती है तब ब्रह्मरन्ध्र में अमृत का स्राव होने लगता है । उसका सूक्ष्म शब्द स्थूल रूप में परिणित होकर रजोगुण का कारण बन जाता है । मूल की ओर सरकता हुआ बिन्दु ऊर्ध्वगामी हो जाता है । यही अमृत्व की ओर जीव का अग्रसर होना है । क्योंकि जीव के ऊपर से काल का प्रभाव लगभग समाप्त हो जाता है ।[2] है । अवधूतों - सर्वप्रथम सुषुम्ना नाड़ी में नाद की झनक सुनाई पड़ती है । उष्ण-पिंगला नाड़ी में पवन का संचार होने लगता है एवं शीतल इड़ा नाड़ी में पवन (वीर्य) का निवास रहता है ।[3] सूर्य नाड़ी में उष्ण वातावरण के कारण पवन का वेग बहुत तीव्र होता है लेकिन जब इड़ा (चन्द्र) नाड़ी में इसका प्रवेश होता है तो वह स्थिर हो जाता है । जब श्वांस बाहर निकलती है तो सूर्य नाड़ी चलती है तथा जब शरीर के भी भीतर प्रविष्ट होती है तो चन्द्र नाड़ी चलती है । लेकिन योगी इन दोनों को छोड़कर तीसरे सुषुम्ना नाड़ी में शरण लेता है ।[4]

सिद्धों, तान्त्रिकों तथा नाथपंथियों के विभिन्न योगों प्रयोगों में कितनी ही नवीनता, एकरूपता तथा मौलिकता क्यों न रही हो- कालान्तर में रूढ़ियों एवं आडम्बरों के कारण वह योग केवल साधारण जनता के लिये चमत्कार का विषय बनकर रह गया । इन सिद्धियों एवं मंत्रों-तंत्रों में इतना आकर्षण एवं आश्चर्य था कि साधारण अशिक्षित जनता स्वत: इसका शिकार

---

[1] डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल (सम्पादित), गोरखबानी, पद संख्या- ५७ ।

[2] वही, पद संख्या-५४ ।

[3] वही, पद संख्या-५६ ।

[4] वही, पद संख्या-७० ।

झरि तेज पुंज प्रकास । नाद अनहद बजत अद्भुत महा ब्रह्म विलास ॥ घंट किंकिणि मुरलि वाजे शंखध्वनि मनसान। जहां ताल भेरि मृदंग बाजत सिंह गर्जन जान॥ कालकी जहँ पहुँच नाहीं अमरपदवी पाव । जीति आठो सिद्धि ठाढ़ी गगन मध्ये आव ॥ करे गुरु परताप करणी जाय पहुँचे सोय। चरणदास शुकदेव कृपा जीव ब्रह्मे होय ॥

राग घनाश्री ॥ सो गुरुगम इहिविधि योग कमायो। आसन अचल मेरु कियो सीधो कसि बँध मूल लगायो ॥ संयम साधि कलावश कीन्हीं मन पवना घर आयो । नव दरवाजे पटदे राखे अर्द्धे ऊर्ध्व मिलायो ॥ नाभितले पैंड़ो करि पैठे शक्ति पताल गई है। कांप्यो शेष कमठ अकुलायो सायर थाह दई है ॥ उलटि चले मठ फोरि इकीसों गये अभय पद माहीं। अति उजियारो अद्भुत लीला कहन सुनन गमनाहीं ॥ जित भये लीन सबै सुधि बिसरी छूटी जगत कि बाधा। चरणदास शुकदेव दयासों लागी शून्य समाधा ॥ १ ॥ सो साधो ऐसी योगयुक्ति गतिभारी । मूलहि बंध लगाय युक्तिसों मूंदि दई नवनारी ॥ आसन पद्म महादृढ़ कीन्हों हिरदय चिबुक लगाई। चंद सूर दोउ समकरि राखे निरति सुरति घर आई ॥ ऊपर खेंचि अपान सहजमें सहजे प्राण मिलाई । पवन फिरी पश्चिमको दौरी मेरुहि मेरु

चलाई॥ ऐसेहि लोक अमरपद पहुँचे सूरज कोटि उज्यारी। श्वेत सिंहासन सतगुरु परसे करि दरशन बलिहारी ॥ आपा बिसरि प्रेम सुखपायो उनमन लागी तारी। चरणदास शुकदेव दयासों जन्ममरन छुटिवारी ॥ २॥

रागमलार॥ वा पद रामसों करिनेह । विषकी बूंद न पड़ये जित हां बरसत अमृतमेह ॥ चमकत बिजुली गरजत गगना बाजत अनहदघोर। यह मन गलत थकताजित पांचों मिटि हैं निशि अरु भोर ॥ जाग्रत मिटिहै स्वप्नो मिटिहै मिटिहु सुषोपतजाय। षटऋतु पइये नाहिंन अवधू एकहिरस दर्शाय ॥ बिनहीं जोते बिनहीं बोये उपजत खेतहै क्षीर। लागत अचरज फलम्हाँ मुक्ता बिनहीं सींचे नीर ॥ राजागुरु शुकदेव न बाटें सबहि करें बकसीस। चरणदास रास सब पावें मिलि है बिस्वेबीस ॥

16:49

भाव भक्ति और प्रेम दिवानी । आरत लीन्ही साम[6] ॥2॥
करूणानिधि[7] गुरु फूल बिराजें । करें भजन निज नाम ॥3॥

1. सुन्न । 2. झुंड । 3. सखी, सहेली । 4. सुरत । 5. दुलहिन । 6. सामान ।
7. दया के भंडार ।

शोभा भारी कहूं सम्हारी । बिसर गये सब काम ॥4॥
तन मन की सुधि भूल गई है । पाया अब आराम ॥5॥
सुरत चढ़ाय गगन पर आई । कौन जपे मुख राम ॥6॥
हम सतगुरु अब पूरे पाये । भेद दिया सतनाम ॥7॥
देखा तिल तोड़ा वह द्वारा । खिला कंज घट श्याम ॥8॥
जोत जगमगी थाली उस की । पाया काल मुक़ाम ॥9॥
घंटा शंख धूम अति डारी । हार गया अब जाम[1] ॥10॥
नाली पार चढ़ी सुर्त विरहिन । बसी तिरकुटी ग्राम ॥11॥
सुन्न शिखर जा डंका दीन्हा । पाई सीतल छाम[2] ॥12॥
महासुन्न पर गाजन लागी । भँवरगुफा कीन्हा बिसराम ॥13॥
बंसी अधर बजावन लागी । लज्जित कोटिन श्याम[3] ॥14॥
सत्तलोक में जाय समानी । बीन बजे जहाँ आठों जाम ॥15॥
अलख अगम का दर्शन पाया । जहाँ ख़ास नहिं आम ॥16॥
आगे चली मिले राधास्वामी । अब पाया विश्राम ॥17॥
आरत कर कर मगन हुई अति । भागा लोभ और काम ॥18॥

॥ शब्द नवाँ ॥

सुरत सहेली नभ पर खेली । परखी मूरत जोत निशान ॥1॥
आगे पेली[4] धुन सँग मेली । शब्द गुरु का पाया ज्ञान ॥2॥
सुन्न में जाय धुन अक्षर पाई । लखा चंद्र अस्थान ॥3॥
हँसन साथ करे कंतूहल[5] । मान सरोवर कर अश्नान ॥4॥
महासुन्न चढ़ झांकी गुरु बल । देखा अति मैदान ॥5॥
भँवरगुफा पर आसन डारा । वहां लगाया ध्यान ॥6॥
सत्तलोक जा सतगुरु पाये । सुनी बीन धुन तान[6] ॥7॥
अलख पुरुष का दर्शन पाया । पहुंची अगम ठिकान ॥8॥

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

passion and thus he is not charmed by Maya. He having burnt the three qualities intertia तमोगुण mobility (रजोगुण) and harmony (सतोगुण) attains the fourth goal where the angel of death torture him not.

मनो जीतं योग युक्ता, रिपु-वायू[1] रोकन्त मूल बंधं ।
षट-चक्र बेधन्तं बुद्धस्य मानवी, वास[2] स्वांस[3] सनो[4] सन्धं[5] ॥३०
सतो सन्धं पवन बन्धं, रवि शशि करत इकतरं[6] ।
जस्य स्थानं जोतस्य जोती, तस्य दर्शनं भवातिरं ॥ ३१
भवातिरं अजग[7] जर[7], पंच इन्द्रिय विष तजन्तं ।
हर हर धुनि जिह्वा नासतं[8], एवं सत्यं[9] तत फलं ॥ ३२

मन को वश में रखने वाला योगी योग-युक्त कहलाता है । वह योगी मूलबंध क्रिया द्वारा अपान वायू को स्थिर करता है । मूलाधार-चक्र में कुण्डलीनी शक्ति विराजमान है । प्राणायाम से जागृत होकर यह शक्ति मेरुदण्ड के भीतर प्रविष्ट होकर ऊपर को चलती है, जहां प्रकाश दिखाई पड़ता है । इस लिए ज्ञानी पुरुष अपने शरीर में छ: चक्रों को शुद्ध करते है और अपान व प्राण वायू को ठीक रीति से निरोध करके उनको मिलाते हैं ।

इस प्राण व अपान वायू के मेल से शुद्धि व स्थिरता प्राप्त होती है इडा, पिंगला नाडियां सुषमना में लीन हो जाती हैं । फिर उस स्थान का जहां ज्योति का प्रकाश फैला हुआ है दर्शन मिलता है; जिसके दर्शन से मुक्ति हो जाती है, मन का निग्रह हो जाता है, पांचों इन्द्रियों के विषय व काम, क्रोध, लोभादि छूट जाते हैं और राम-नाम धुन जिह्वा से न होकर स्वांस द्वारा स्वत: होती रहती है । इस योग साधन का ऐसा वास्तविक फल है ।

१=अपान वायू २=अपान, ३=प्राण, ४=ठीक प्रकार, ५=युक्त करना ६=इकट्ठा करना, ७=मन, ८=नहीं होता, ९=वास्तविक ।

कथि करणीकरि हरिको समहूये ॥ कहैं गुरु शुकदेवजी चरणदास विचारो । करणी रहनी दृढ़गहो थोथी कथनी डारो ॥

हेली ॥ पांचसखी लेलार हेली काया महल पगधारिये । योग युक्ति डोला करोरी अरीहेली प्रान अपान कहार ॥ कुञ्ज कुंज सब देखियेरी अरीहेली नानाबाग पहार । मानसरोवर न्हाइये सदा वसन्त निहार ॥ बिना सीप मोती बनेरी अरीहेली विनाबुंद फूलनहार । बिन दामिनि चमकारहे बिन सूरज उजियार ॥ अनहद उतबाजे बजेंरी अचरज बहुतक ख्याल । तेजपुंज की सेजपें कागा होहिं मराल ॥ श्रीशुकदेव कृपा

करें जब पावे यह भेद । चरणदास पियसों मिले छुटैं जगतके खेद ॥ १ ॥ योगयुक्ति करिलेहि हेली । जो चाहे हरिसों मिलो आसन संयम साधिकेरी ॥ गगनमण्डल करि गेह उलटी दृष्टि चढाइयेरी होय सूरज परकाश । करम भरम सबही जरें सहजछुटै जग आश । प्राण अपान मिलायकेरी मूलबन्धको बांधि । रसना उलटि लगाइये सुरति ऊर्ध्व को साधि ॥ बङ्क सुधारस पीजिये अनहदहो गलतान । भवँर गुफा दृढ़ बैठिके शून्य शिखरको ध्यान ॥ सुषमन मारग ह्वै चलोंरी जब पहुँचो निजधाम । अचल सिंहासन श्वेतहै जहां विराजैं राम ॥ यह साधन शुकदेव कारी जो कोइ जाने साध । चरणदास अविगतिलहे देखे खेल अगाध ॥ २ ॥

अथ वैरागका अंग ।

राग मङ्गल ॥ चलाचली जगठाट अचल हरिनामहै । माल मुल्क चलिजाय जाय रजधामहे ॥ तेल फुलेल लगाय बहुत सुन्दर गहे । नानाकरते भोग सोभी नर ना रहे ॥ तेज तमक और रूप जाय योवनघना । सकल बराति जायँ जायँ दुलहिनि बना ॥ रोगी रोग अरु वैद्य जाय ओषधि भले । ज्योतिसपुस्तक तटबिन सरजल लेमिले ॥ ज्ञानी पण्डित पीर अधिक बेवश गले । गौस कुतुब अब्दाल पैगम्बर सब चले ॥ एकके पीछे एक बहीर लगी चली । नरपति सुरपति जाहिं अन्तवाहीगली ॥ ऋषि मुनि देवन सिद्ध योगेश्वर जाहिंगे । जिन वश कीन्ही मौत सोभी न रहाहिंगे ॥ पांच तत्त्व गुणतीनि नहीं ठहराहिंगे । स्वर्ग मृत्यु पाताल सभी रलि जाहिंगे ॥ धरती अम्बर जाय जाय शशि भानहे । चरणदास शुकदेव दयालयो जान है ॥ १ ॥ रहे रामका नाम

अमल चढो गगने लगो अनहद मन छायो हो । तेजपुञ्जकी सेज पे प्रीतम गल लायो हो ॥ गये दिवाने देसडे आनँद

दरशायो हो । सब किरियां सहजे छुटी तप नेम भुलायो हो ॥ त्रैगुणते ऊपर रहूं शुकदेव बसायो हो । चरणदास दिन रैन नहिं तुरिया पद पायो हो ॥ २ ॥

राग जैजैवंती ॥ ऐसी जो युक्ति जाने सोई योगी न्यारा। आसन जो सिद्धि करे त्रिकुटीमें ध्यान धरे बिना तेल दिया बरे ज्योति हूं उज्यारा ॥ संयम सँभाल साधे मूल द्वार बन्ध बांधे शंखनी उलटि साधे कामदेव जारा । प्राण वायु हिये माहीं खैंचिके अपान लाहीं दोऊ नीके मिलि जाहीं ऐसा खेल धारा ॥ कुम्भक अथक राखे अनहद की ओर ताकै सुखमन पैठि नाके आगे जो विचारा । खोलिके कपाट सिरा कोऊ चढे शूरवीरा कामधेनु जावे तीरा अमी को उतारा ॥ उनमनी जाय लागे निज गृह माहीं जागे जन्म मरण भागे छूटे यम मारा । गुरु शुकदेव कहै करणी यहि विधि लहै चरणदास होयरहे आपको सँभारा ॥

राग सोरठ सारंग ॥ पांचन मोहिलियो बलिमा । नासा त्वचा और श्रवणीया नैनन अरु रसना ॥ एक एक नेवारी बाँधी गहि गहि लेले जाहिं । निशि दिन उनहीं के रस पागो घरमें ठहरत नाहिं ॥ आलि पतंग गज मीन मृगा ज्यों होय रह्यो पराधीन । अपनो आप सँभारत नाहीं विषयवासना लीन ॥ हौं कुलवन्ती टोना सीखो अनहद सुरति धरूं । गगन मण्डलमें उलटा कूवां तासों नीर भरूं ॥ भँवर गुफामें दीपक बारों मन्तर एक पढूं । काम क्रोध मद लोभ होमकर बालम चित्त हरूँ ॥ यतन यतन करि पीव छुटाउं फिर नहिं जानदूं । चरणदास शुकदेव बतावें निज मनहीं करलूं ॥

चुवावें पीवें साधु अघाई ॥ सीता प्याला भरि भरि देवें हनूमान हंकारें । व्यास शेष नारद सनकादिक किरिया नाहिं विचारें॥ नवधा नेम ओर संयम पूजा विसरीं सब कहा कहिये। घूमतरहें महारसचाखे स्वर्गमुक्ति ना चहिये॥ श्रीशुकदेव सुधारस अमृत नितप्रति अँचवनकीन्हा। चरणदास पर किरपा करिके निजप्रसाद करिदीन्हा॥ १॥ साधो यह प्याला मतवारहे । अँचवेगा कोई योग भुगन्ता चित स्थिर मन मारिहे ॥ चन्दसूर दोउ समकरि राखे ब्रह्मज्वाल अन्तर बरे । मुद्रा लगै खेचरी जबहीं वङ्कनाल अमृत झरे॥ भवँर गुफा में भाठी ओटे भभक भभक सुषुमन चुवे ॥ सगुरा पीपी रहित भये हैं बिन पीये उपजें मुये॥ शिव सनकादिक नारद शारद ओर पिया नो नाथहे । सिधि चोरासी हरिपदवासी मगन भया सब साथहे॥ रामानन्द कवीर नामदे अमरहुये जिन जिन पिया । गुरु शुकदेव करी जब किरपा चरणदासको सो दिया॥ २॥

राग धनाश्री ॥ जो जन अनहद ध्यानधरे। पांचों निर्बल चञ्चल थाके जीवतही जु मरे॥ शोवे मूलबन्धदे राखे आसन सिद्धकरे। त्रिकुटी सुरति लाय ठहरावे कुम्भक पवनभरे॥ घन गरजे अरु बिजुली चमके कौतुक गगनघरे। बहुतभांति जहँ बाजन बाजे सुनि सुनि सन्धअरे॥ सहज सहजमें होयरकाशा बाधा सकलहरे। जगकी आश बास सब टूटे ममता मोहजरे॥ शून्य शिखरपर आपाविसरे कालसों नाहिं डरे। चरणदास शुकदेव कहत हैं सब गुण ग्यानभरे॥ १॥ बजते अनहदघोरसुनी। इन्द्रिय थकित गलित मन हूवो आशा सकल

झरि तेज पुंज प्रकास । नाद अनहद बजत अद्भुत महा ब्रह्म बिलास ॥ घंट किंकिणि मुरलि बाजे शंखध्वनि मनसान। जहां ताल [illegible] बाजत [illegible] जहँ [illegible] नाहीं अमरपदको पाव । जोरि आठो सिद्धि ठाढ़ी [illegible]गन मध्ये आव ॥ करै गुरु परताप करणी जाय पहुँचे सोय। चरणदास शुकदेव कृपा जीव ब्रह्म होय ॥

राग धनाश्री ॥ सो गुरुगम इहिविधि योग कमायो । आसन अचल मेरु कियो सीधो कसि बँध मूल लगायो ॥ संयम साधि कलावश कीन्हीं मन पवना घर आयो । नव दरवाजे पटदे राखे अर्द्धे ऊर्ध्व मिलायो ॥ नामितले पैंड़ो करि पैठे शक्ति पताल गई है । कांप्यो शेष कमठ अकुलायो सायर थाह दई है ॥ उलटि चले मठ फोरि इकीसों गये अभय पद माहीं । अति उजियारो अद्भुत लीला कहन सुनन गमनाहीं ॥ जित भये लीन सबे सुधि बिसरी छूटी जगत कि बाधा । चरणदास शुकदेव दयासों लागी शून्य समाधा ॥ १ ॥ सो साधो ऐसी योगयुक्ति गतिभारी । मूलहि बंध लगाय युक्तिसों मूंदि दई नवनारी ॥ आसन पद्म महादृढ़ कीन्हों हिरदय चिबुक लगाई । चंद सूर दोउ समकरि राखे निरति सुरति घर आई ॥ ऊपर खेंचि अपान सहजमें सहजे प्राण मिलाई । पवन फिरी पश्चिमको दोरी मेरुहि मेरु

चलाई ॥ ऐसेहि लोक अमरपद पहुँचे सूरज कोटि उज्यारी। श्वेत सिंहासन सतगुरु परशे करि दरशन बलिहारी ॥ आपा बिसरि प्रेम सुखपायो उनमन लागी तारी । चरणदास शुकदेव दयासों जन्ममरन छुटिबारी ॥ २॥

रागमलार ॥ वा पद रामसों करिनेह । विषकी बूंद न [illegible] जित हां बरसत अमृतमेह ॥ चमकत बिजुली गरजत गगना बाज[illegible]अनहदघोर । यह मन गलत [illegible] मिटि हैं निशि अरु भोर ॥ जाग्रत मिटिहै स्वप्नो मिटिहै मिटिहु सुषोप्तजाय । षटऋतु पइये नाहिंन अवधू एकहिरस दर्शाय ॥ बिनहीं जोते बिनहीं बोये उपजत खेतहै क्षीर । लागत अचरज फलमहीं सुफल बिनहीं सींचे नीर ॥ राजागुरु शुकदेव न बाटें सबहि करें बकसीस । चरणदास सब पावें मिलि है बिस्वेबीस ॥

लता रहन न पावे ॥ सुनि सुनि दुगम सबहरि डारे । रहत पहते सकल बिडारे ॥ मनसों ब्रह्म होय गति सोई । लक्षण जीव रहे नहिं कोई ॥ अचल सिंहासन जब तू पावे । मुक्ति-खवासी चँवरढुलावे ॥ आठोंसिद्धि जहां करजोरें । सोहीं ताके मुख नहिं मोरें ॥ निश्चल राज अमल करे पूरा । बाजे नौवत [illegible] ॥ [illegible] कोटि अठासी । वैभी सब तेरी करैं खवासी ॥ गुरु शुकदेव भेद दिया [illegible] । चरणदास म-स्तक कियो टीको ॥ रणजीता यह रहनी पावे । [illegible] क-रनी कथनि बहावे ॥

अथ योगका अंग ।

राग करखा ॥ साधो गुरु दया योग इह विधि कमायो । मूलको शोधि सङ्कोच करि शंखिनी खैंचि आपान उलटो चलायो ॥ बन्ध पर बन्ध जब बन्ध तीनो लगें पवन भइ थकित नभ गर्जि आयो । द्वादशा पलटि करि सुरति दो दल धरी दशो परकार अनहद बजायो ॥ रोक जब नवनको द्वार दशवें चढ़ो शून्यके तख्त आनन्द बढ़ायो । सहसदलकमल को रूप अद्भुतमहा अमीरस उमँग आ झरि लगायो ॥ तेज अतिपुञ्ज परलोक जहाँ जगमगे कोटि छवि भानु परकाश

लाया । उनमनी आर त्वत हेत करि बसिरहो देखि निज रूप मनुवां मिलायो ॥ काल अरु ज्वाल जगव्याधि सब मिटिगई जीवसों ब्रह्मगति वेगिपायो । चरणदास रणजीत शुकदेवकी दयासों अभयपद परशि अविगत समायो ॥१॥ साधो पिण्ड ब्रह्मांड की सैल कुरु गमकरी परशि या युक्तिसों अलखराई । सहजहा सहज पग धरा जब आगमको दशौपरकार झाणइ बजाई । खोलि कपाट अरु वज्रद्वारे चढ़ो कुलाके भद कुञ्जी लगाई । पहलके महलपर जाय आसनाकिया दूसरे महलकी खबरि पाई ॥ तीसरे महलपर सुरति जा बसिरही महल चौथे दुही अमीगाई । पांचवें महलको साधु कोई पाइहै महल छठवां दिया गुरु बताई ॥ सातवें महलपर कोटि सूरजदिपै आठवें महल अविगति गोसाई । रूप अद्भुत तहां देखि अचरज जहां देखिया दरश दब विपति जाई ॥ शुकदेवकी सहासों धारण गहासों आपने पीवके भवन आई । चरणदास [illegible] दिया प्रेम प्याला पिया शीश सटके [illegible] पाई ॥ ॥ २ ॥ साधो [illegible] जह मेरानाहीं । घाट तिसलखि

लती रहन न पावै ॥ घुमि घुमि दुअम ... ।

पहते सकल बिडारे ॥ मनसों ब्रह्म होय गति सोई । लक्षण जीव रहे नहिं कोई ॥ अचल सिंहासन जब तू पावे । मुक्ति-खवासी चँवरढुलावे ॥ आठोंसिद्धि जहां करजोरें । सोहीं ताके मुख नहिं मोरे ॥ निश्चल राज अमल करे पूरा । बाजे नौवत अनहद तूरा ॥ तीन तीस अरु कोटि अठासी । वेभी सब तेरी करैं खवासी ॥ गुरु शुकदेव भेद दियो नीको । चरणदास मस्तक कियो टीको ॥ रणजीता यह रहनी पावे । योयी करनी कथनि बहावे ॥

अथ योगका अंग ।

राग करखा ॥ साधो गुरु दया योग इह विधि कमायो । मूलको शोधि सङ्कोच करि शंखिनी खैंचि आपान उलटो चलायो ॥ बन्ध पर बन्ध जब बन्ध तीनो लगें पवन भइ थकित नभ गर्जि आयो । द्वादशा पलटि करि सुरति दो दल धरी दशो परकार अनहद बजायो ॥ रोक जब नवनको द्वार दशवें चढ़ो शून्यके तख्त आनन्द बढ़ायो । सहसदलकमल को रूप अद्भुतमहा अमीरस उमँग आ झरि लगायो ॥ तेज अतिपुञ्ज परलोक जहाँ जगमगे कोटि छवि भानु परकाश

लाया । उनमनी आर त्वत हेत करि बसिरहो देखि निज रूप मनुवां मिलायो ॥ काल अरु ज्वाल जगव्याधि सब मिटिगई जीवसों ब्रह्मगति वेगिपायो । चरणदास रणजीत शुकदेवकी दयासों अभयपद परशि अविगत समायो ॥ १ ॥ साधो पिण्ड ब्रह्मांड की सैल कुरु गमकरी परशि या युक्तिसों अलखराई । सहजहा सहज पग धरा जब आगमको दशौपरकार झाणझ बजाई । खोलि कपाट अरु वज्रद्वारे चढ़ो कुलाके भद कुञ्जी लगाई । पहलके महलपर जाय आसनाकिया दूसरे महलकी खबरि पाई ॥ तीसरे महलपर सुरति जा बसिरही महल चौथे दुही अमीगाई । पांचवें महलको साधु कोई पाइहै महल छठवां दिया गुरु बताई ॥ सातवें महलपर कोटि सूरजदिपै आठवें महल अविगति गोसाई । रूप अद्भुत तहां देखि अचरज जहां देखिया दरश दव विपति जाई ॥ शुकदेवकी सहासों धारण गहासों आपने पीवके भवन आई । चरणदास आपा दिया प्रेम प्याला पिया शीश सदके किया पूजि पाई ॥ ॥ २ ॥ साधो परसिया देश जहँ भेशनाहीं । घाट तिसलखि

कथि करणीकरि हरिकी समहूये ॥ कहैं गुरू शुकदेवजी चरणदास विचारो । करणी रहनी दृढ़गहो थोथी कथनी डारो ॥

हेली ॥ पांचसखी लैलार हेली काया महल पगधारिये । योग युक्ति डोला करौरी अरीहेली प्रान अपान कहार ॥ कुञ्ज कुंज सब देखियेरी अरीहेली नानाबाग पहार । मानसरोवर न्हाइये सदा वसन्त निहार ॥ विना सीप मोती बनेरी अरीहेली विनागुंद फूलनहार । विन दामिनि चमकारहे विन सूरज उजियार ॥ अनहद उतबाजे करेंरी अचरज बहुतक ख्याल । तेजपुंज की सेजपैं कागा होहिं मराल ॥ श्रीशुकदेव कृपा

करें जब पावै यह भेद । चरणदास पियसों मिले छुटैं जगत- खेद ॥ १ ॥ योगयुक्ति करिलेहि हेली । जो चाहै हरिसों मिलो आसन संयम साधिकेरी ॥ गगनमण्डल करि गेह उलटी दृष्टि चढाइयेरी होय सूरज परकाश । करम भरम सबही जरें सहजछुटै जग आश । प्राण अपान मिलायकेरी मूलबन्धको बांधि । रसना उलटि लगाइये सुरति ऊर्ध्व को साधि ॥ बङ्क सुधारस पीजिये अनहदहो गलतान । भवँर गुफा दृढ़ बैठिके शून्य शिखरको ध्यान ॥ सुषमन मारग ह्वै चलौंरी जब पहुँचो निजधाम । अचल सिंहासन श्वेतहै जहां विराजैं राम ॥ यह साधन शुकदेव कारी जो कोइ जाने साध । चरणदास अविगतिलहै देखै खेल अगाध ॥ २ ॥

अथ वैरागका अंग ।

राग मङ्गल ॥ चलाचली जगठाट अचल हरिनामहै । माल मुल्क चलिजाय जाय रजधामहै ॥ तेल फुलेल लगाय ब- स्त सुन्दर गहे । नानाकरते भोग सोभी नर ना रहे ॥ तेज तम... और रूप जाय यौवनघना । सकल बराति जायँ ज... दुलहिनि बना ॥ ...गी रोग अरु वैद्य जाय ओ...न भले । ज्योतिसपुस्तक तटविन सरजल लाभल ॥ ज्ञानी पण्डित पीर अधिक बेवश गले । गौस कुतुब अब्दाल पैगम्बर सब चले ॥ एकके पीछे एक वहीर लगी चली । नरपति सुरपति जाहिं अन्तवाहीगली ॥ ऋषि मुनि देवन सिद्ध योगेश्वर जा- हिंगे । जिन वश कीन्ही मौत सोभी न रहाहिंगे ॥ पांच तत्त्व गुणतीनि नहीं ठहराहिंगे । स्वर्ग मृत्यु पाताल सभी रलि जाहिंगे ॥ धरती अम्बर जाय जाय शशि भानहै । चरण- दास शुकदेव दयालयो जान है ॥ १ ॥ रहै रामका नाम

आयी हो। तादिन ते पलटी मेरी कुलमति [illegible] हो॥ अमल चढो गगने लगो अनहद मन छायो हो। तेजपुञ्जकी सेज पै प्रीतम गल लायो हो॥ गये दिवाने देखडे आनँद

दरशायो हो। सब किरिया [illegible] नप नेम भुलायो हो॥ त्रैगुणते ऊपर रहूं शुकदेव बसायो हो। चरण[illegible] दिन रैन नहिं तुरिया पद पायो हो॥ २॥

राग जैजैवंती॥ ऐसी जो युक्ति जाने सोई योगी न्यारा। आसन जो सिद्धि करै त्रिकुटीमें ध्यान धरै बिना तेल दिया बरै ज्योति हूं उज्यारा॥ संयम सँभाल साधे मूल द्वार बन्ध बांधे शंखनी उलटि साधे कामदेव जारा। प्राण वायु हिये माहीं खैंचिके अपान लाहीं दोऊ नीके मिलि जाहीं ऐसा खेल धारा॥ कुम्भक अथक राखे अनहद की ओर ताकै सुखमन पैठि नाके आगे जो विचारा। खोलिके कपाट सिरा कोऊ चढे शूरवीरा कामधेनु जावे तीरा अमी को उतारा॥ उनमनी जाय लागै निज गृह माहीं जागै जन्म मरण भागै छूटै यम भारा। गुरु शुकदेव कहै करणी यहि विधि लहै चरणदास होयरहै आपको सँभारा॥

राग सोरठ सारंग॥ पांचन मोहिलियो बलिमा। नासा त्वचा और श्रवणीया नैनन अरु रसना॥ एक एक नेवारी बाँधी गहि गहि लेले जाहिं। निशि दिन उनहीं के रस पागो [illegible] ठहरा[illegible]॥ [illegible] पतंग गज मीन [illegible] रह्यो पराधीन। अपनो आप सँभारत नाहीं विषयवासना लीन॥ हौं कुलवन्ती टोना सीखो अनहद सुरति धरूं। गगन मण्डलमें उलटा कूवां तासों नीर भरूं॥ भँवर गुफामें दीपक बारों मन्तर एक पढूं। काम क्रोध मद लोभ होमकर वालम चित्त हरूं॥ यतन यतन करि पीव छुटाऊं फिर नहिं जानदूं। चरणदास शुकदेव बतावें निज मनहीं करलूं॥

चुवावैं पीवैं साधु अघाई ॥ सीता प्याला भरि भरि देवैं हनूमान हंकारैं । व्यास शेष नारद सनकादिक किरिया नाहिं विचारैं ॥ [illegible] विसरीं सब क[illegible]हय। घूमतरहैं महारसचाखे स्वर्गमुक्ति ना [illegible] ॥ श्रीशुकदेव सुधारस अमृत नितप्रति अँचवनकीन्हा। चरणदास पर किरपा करिके निजप्रसाद करिदीन्हा ॥ १ ॥ साधो यह प्याला मतवारहे । अँचवेगा कोई योग युगन्ता चित स्थिर मन मारिहे ॥ चन्दसूर दोउ समकरि राखे ब्रह्मज्वाल अन्तर बरे । मुद्रा लगे खेचरी जबहीं वङ्कनाल अमृत झरे ॥ भवँर गुफा में भाठी औटे भभक भभक सुखमन चुवे ॥ सगुरा पीपी रहित भये हैं विन पीये उपजें मुवे ॥ शिव सनकादिक नारद शारद और पिया नो नाथहे । सिधि चौरासी हरिपदवासी मगन भया सब साथहे ॥ रामानन्द कबीर नामदे अमरहुये जिन जिन पिया । गुरु शुकदेव करी जब किरपा चरणदासको सो दिया ॥ २ ॥

राग धनाश्री ॥ जो जन अनहद ध्यानधरे। पांचौं निर्बल चञ्चलथाके जीवतही जु मरे॥ शोवे मूलबन्धदे राखे आसन सिद्धकरे । त्रिकुटी सुरति लाय ठहरावे कुम्भक पवनभरे ॥ घंन गरजे अरु बिजुली चमके कौतुक गगनधरे। बहुतभांति जहँ बाजन बाजे सुनि सुनि सन्धअरे ॥ सहज सहजमें होयरकाशा बाधा सकलहरे । जगकी आश बास सब टूटे ममता मोहजरे ॥ शून्य शिखरपर आपाबिसरे कालसों नाहिं डरे । चरणदास शुकदेव कहत हैं सब गुण ध्यानभरे ॥ १ ॥ बबते अनहदघोर सुनी। इन्द्रिय थकित गलित मन हूवो आशा सकल

09:18

13_backmatter

2/7

वंकनाल	:	वह टेढ़ा रास्ता, जिससे होते हुए सुषम्ना नाड़ी त्रिकुटी के कुछ और आगे बढ़ी हुई होती है ।
बहत्तर कोठे	:	योग परम्परानुसार शरीर कर रचना में काया के भीतर बहत्तर क्षेत्र वर्तमान है ।
शब्द	:	साधक को अनहद के रूप में घट के भीतर जो आवाज सुनायी देती है, वह शब्द है । यह परम् तत्व के प्रतीक के रूप में भी स्वीकृत है ।
षट्चक्र	:	मेरुदण्ड के मध्य में छः कमलों का स्थान है, इसे षट्चक्र कहते हैं, इसके प्रत्येक कमल के दलों की संख्या विभिन्न है, रंग भी एक सदृश्य नहीं है ।
सुरति	:	जीवात्मा एवं परमात्मा का प्रतीक जो घट में विद्यमान है ।
सूर्य	:	पिंगला को सूर्य के रूप में भी जाना जाता है यह अमृत को सोख लेती है ।
हंस	:	सन्तों ने प्रतीकात्मक भाषा में जीवात्मा को हंस कहा है ।
मानसरोवर	:	यह वह अमृत कुण्ड है, जिसमें स्नान कर सुरति सराबोर हो जाती है ।
निरंजन	:	सृष्टि के कर्ता, जिन्हें परम ब्रह्म भी कहा गया है । सन्तों ने निरंजन शब्द को मन का वाचक बतलाया है ।
सहज ज्ञान	:	इसके द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार किया जाता है, वास्तव में यह मन, बुद्धि, चित्त की कल्पना से इतर वस्तु है । महासुख इस अवस्था में पहुंच कर साधक भव बन्धन से मुक्त हो जाता है । इसी अवस्था को महासुख कहा गया है ।

*****

09:18
13_backmatter
1/7

संत–साहित्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली

अनाहत	:	अन + आहत, बिना बजाये, बिना डंके की चोट खाये जो ध्वनि सुनायी दे, वह अनाहत है ।
अजपाजाप	:	साधना की स्थिति में अन्तःक्रिया के माध्यम से नाम का जपा जाना
अमृत	:	ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल का विकास नीचे की ओर है इसके मध्य स्थित चन्द्राकार विन्दु से एक मन्दस्राव होता है, जिसे अमृत कहते हैं ।
इड़ा	:	यह योग नाड़ी है, जो मेरुदण्ड में अवस्थित है, इसें चन्द्र नाड़ी या गंगा नदी भी कहते हैं ।
कुन्डलिनी	:	यह मेरुदण्ड के मूल में स्थित शक्ति है जो सर्पिणी की भाँति साढ़ें तीन वलयों में सुप्त रहती है, इसे अन्तः साधना द्वारा प्रबुद्ध किया जाता है ।
कुँआ	:	सहस्रदल कमल में स्थित चन्द्राकार बिन्दु इसे औंधा कुँआ तथा अमृत कूप भी कहते हैं ।
गगन	:	शरीर के मध्य आकाशवत् अंतराल, इसमें ब्रह्म का प्रकाश दृष्टिगोचरित होता है यहीं अनाहत की ध्वनि सुनाई पड़ती है, इसे शून्य भी कहते हैं ।
त्रिकुटी	:	भ्रूमध्य में स्थित विन्दु, जहाँ इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों पर सम्मिलन होता है । इसे त्रिवेणी भी कहते हैं ।
दसम दुआर	:	शरीर में विद्यमान आँख, कान, नाक के दो दो छिद्र, मुख, गुदा एवं लिंग के अतिरिक्त एक ब्रह्मरन्ध्र है, जो गणना में दसवें स्थान पर अवस्थित है, जो शीर्षस्थ है । यहीं से शक्ति की साधना उन्मुख होती हे ।
निरति	:	आत्मा का प्रतिबिम्ब निरति है । आत्मा को सुरत या सुरति भी कहते हैं ।
पवन	:	प्राणायाम के माध्यम से शोधित शरीर की वायु ।

झलकने लगता है। इसी को कहते हैं कि नाद बिन्दु में समा गया है और अनाहत नाद की तुरही बजने लगी है।[1] चन्द्र और सूर्य के योग से जब उन्मना अवस्था आती है तब ब्रह्मरन्ध्र में अमृत का स्राव होने लगता है। उसका सूक्ष्म शब्द स्थूल रूप में परिणित होकर रजोगुण का कारण बन जाता है। मूल की ओर सरकता हुआ बिन्दु ऊर्ध्वगामी हो जाता है। यही अमृतत्व की ओर जीव का अग्रसर होना है। क्योंकि जीव के ऊपर से काल का प्रभाव लगभग समाप्त हो जाता है।[2] है। अर्थात् - सर्वप्रथम सुषुम्ना नाड़ी में नाद की झनक सुनाई पड़ती है। उष्ण-पिंगला नाड़ी में पवन का संचार होने लगता है एवं शीतल इड़ा नाड़ी में पवन (वीर्य) का निवास रहता है।[3] सूर्य नाड़ी में उष्ण वातावरण के कारण पवन का वेग बहुत तीव्र होता है लेकिन जब इड़ा (चन्द्र) नाड़ी में इसका प्रवेश होता है तो वह स्थिर हो जाता है। जब श्वास बाहर निकलती है तो सूर्य नाड़ी चलती है तथा जब शरीर के भी भीतर प्रविष्ट होती है तो चन्द्र नाड़ी चलती है। लेकिन योगी इन दोनों को छोड़कर तीसरे सुषुम्ना नाड़ी में शरण लेता है।[4]

सिद्धों, तान्त्रिकों तथा कापालिकों की सिद्धियाँ योगी प्रयोगों में कितनी ही नवीनता, एकरूपता तथा मौलिकता क्यों न रही हो- कालान्तर में रूढ़ियों एवं आडम्बरों के कारण यह योग केवल साधारण जनता के लिये निराकार का विषय बनकर रह गया। इन सिद्धियों एवं मंत्रों-तंत्रों में इतना आकर्षण एवं आश्चर्य था कि साधारण अशिक्षित जनता स्वतः इसका शिकार

---

[1] डा० पिताम्बरदत्त बड़थ्वाल (सम्पादित), गोरखबानी, पद संख्या- ४७ ।

[2] वही, पद संख्या-४९ ।

[3] वही, पद संख्या-४६ ।

[4] वही, पद संख्या-५० ।

वायु एवं आकाश तत्त्व की धारणा का प्रतिपादन किया है।[1] ध्यान के अन्तर्गत सुन्दरदास ने ध्यान के चार भेदों का उल्लेख करते हुए[2] निर्गुण, निराकार, अखंड, अनादि, शून्य ब्रह्म का रूपातीत ध्यान ही अखंड समाधि का हेतु निर्धारित किया है।[3] सुन्दरदास ने समाधि की दशा में ज्ञाता एवं ज्ञेय व ध्याता एवं ध्येय की एकात्मकता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि जिस प्रकार नमक तथा पानी मिला देने से भेद रहित हो जाते हैं अथवा दुग्ध दुग्ध में, घृत घृत में और जल जल में मिला देने से भेद रहित हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार समाधि की अवस्था में ध्याता एवं ध्येय एक हो जाते हैं, उनमें लेशमात्र का भी अन्तर नहीं रह जाता है।[4]

सुन्दरदास प्रणीत अष्टांग योग का उपर्युक्त विवरण यह प्रकट करता है कि उनका योग वर्णन सुस्पष्ट एवं व्यवस्थित है। कबीर की भाँति उसे रहस्यमय बनाकर प्रस्तुत करने की भावना सुन्दरदास में रंचमात्र भी नहीं है। अष्टांग योग की ही भाँति नाडी, दश वायु एवं चक्रों का वर्णन संत सुन्दरदास ने शास्त्रीय एवं सुस्पष्ट पद्धति द्वारा किया है। उन्होंने अनेक नाडियों में से मुख्य दश मानी हैं और इनमें भी साररूप नाडियाँ इडा पिंगला और सुषुम्ना को ही माना है।[5] दश वायु का उल्लेख करते हुए[6] उन्होंने प्राण को हृदय में, अपान गुदा में, समान नाभि में, उदान कंठ में, व्यान समस्त देह में, नाग डकार में, कूर्म नेत्र में, कृकल क्षुधा में, देवदत्त जमाई में एवं धनञ्जय को मृत्यु के उपरान्त शरीर में व्याप्त माना है।[7] इसके अतिरिक्त कवि सुन्दरदास ने चक्र निरूपण भी व्यवस्थित ढंग से किया है। षट् चक्रों में से प्रथम मूलाधार, द्वितीय स्वाधिष्ठान, तृतीय मणिपूरक, चतुर्थ अनाहत, पंचम विशुद्ध, षष्ट आज्ञा चक्र का वर्णन उन्होंने शिवसंहिता,

१. सुन्दर दर्शन, पृ० ४७-४८।
२. ,, ,, पृ० ४८।
३. है शून्याकार जु ब्रह्म आप। दशहु दिशि पूरण अति अमाप।
यो करय ध्यान सायोज्य होई। तब लगै समाधि अखंड सोइ॥
—ज्ञान समुद्र, तृतीयोल्लास, ८३-८४।
४. सुन्दर दर्शन, पृ० ५१।
५ नाडी कही अनेक विधि, है दश मुख्य विचार।
इडा पिंगला सुषुमना, सब महि ये त्रय सार॥
—ज्ञान समुद्र, तृतीयोल्लास, ४४।
६. प्राणापान्त समानहि जानैं, व्यानोदान पंचमनमानैं।
नाग सु कूर्म कृकल सु कहिये, देवदत्त सु धनञ्जय लहिये॥
—ज्ञान समुद्र, तृतीयोल्लास, ४७।
७. सुन्दर दर्शन, पृ० ५७।

में अष्टांगयोग का परिचय कराया है।[1] कवि ने यम, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया आर्जव, मति, जाप, होम आसन, प्राणायाम, पवन के स्थान, प्राणायाम क्रिया, कुंभक वर्णन,. मुद्रानाम, प्रत्याहार पंचतत्व की धारणा, पृथ्वीतत्व की धारणा आकाश तत्व की धारणा, ध्यान पदस्थ, ध्यान पिंडस्थ, ध्यान रूपस्थ, ध्यान रूपातीत,

१.
२.
३. चतुरासी आसनानि मे, सार भूत द्वै जानि।
सिद्धासन पद्मासनहिं, नीकै कही बखानि॥
—ज्ञान समुद्र, तृतीय उल्लेख, पृ० ३९।
४. आगे कीजै प्राणायाम। नाडी चक्र पावै ठाव।
पूरे राखै रेचै कोई। ह्वै नि पाप योगी सोई॥
—ज्ञान समुद्र, तृतीयोल्लास, ४३।
५. जबहि अष्ट कुम्भक सधहि, बाजै अनहद नाद।
दस प्रकार की धुनि सुनहिं, छूटहि सकल विषाद॥
—ज्ञान समुद्र, तृतीयोल्लास, ६६।
६. सुनि महा मुद्रा महाबन्धः महावेध च खेचरी।
उड्यानबन्ध सु मूलबन्धहि बन्ध जालन्धर करी॥
विपरीत करणी पुनि वज्रोली शक्ति चालन कीजिए।
इम होइ योगी अमर काया शशिकला नित पीजिए॥
—ज्ञान समुद्र, तृतीयोल्लास, ६८
७. ज्ञान समुद्र, तृतीयोल्लास, ६९।

वायु एवं आकाश तत्व की धारणा का प्रतिपादन किया है।[1] ध्यान के अन्तर्गत सुन्दरदास ने ध्यान के चार भेदो का उल्लेख करते हुए[2] निर्गुण, निराकार, अखंड, अनादि, शून्य ब्रह्म का रूपातीत ध्यान ही अखंड समाधि का हेतु निर्धारित किया है।[3] सुन्दरदास ने समाधि की दशा मे ज्ञाता एव ज्ञेय व ध्याता एवं ध्येय की एकात्मकता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि जिस प्रकार नमक तथा पानी मिला देने से भेद रहित हो जाते है अथवा दुग्ध दुग्ध मे, घृत घृत मे और जल जल मे मिला देने से भेद रहित हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार समाधि की अवस्था में ध्याता एवं ध्येय एक हो जाते हैं, उनमें लेशमात्र का भी अन्तर नही रह जाता है।[4]

सुन्दरदास प्रणीत अष्टाग योग का उपर्युक्त विवरण यह प्रकट करता है कि उनका योग वर्णन सुस्पष्ट एवं व्यवस्थित है। कबीर की भांति उसे रहस्यमय बनाकर प्रस्तुत करने की भावना सुन्दरदास मे रचमात्र भी नही है। अष्टाग योग की ही भांति नाडी, दश वायु एवं चक्रो का वर्णन संत सुन्दरदास ने शास्त्रीय एवं सुस्पष्ट पद्धति द्वारा किया है। उन्होंने अनेक नाड़ियों मे से मुख्य दश मानी है और इनमे भी साररूप नाडियाँ इडा पिंगला और सुषुम्ना को ही माना है।[5] दश वायु का उल्लेख करते हुए[6] उन्होंने प्राण को हृदय मे, अपान गुदा मे, समान नाभि में, उदान कंठ मे, व्यान समस्त देह मे, नाग डकार में, कूर्म नेत्र मे, कृकल क्षुधा मे, देवदत्त जंभाई मे एवं धनञ्जय को मृत्यु के उपरान्त शरीर मे व्याप्त माना है।[7] इसके अतिरिक्त कवि सुन्दरदास ने चक्र निरूपण भी व्यवस्थित ढग से किया है। षट् चक्रो में से प्रथम मूलाधार, द्वितीय स्वाधिष्ठान, तृतीय मणिपूरक, चतुर्थ अनाहत, पचम विशुद्ध, षष्ट आज्ञा चक्र का वर्णन उन्होंने शिवसंहिता,

१. सुन्दर दर्शन, पृ० ४७-४८।
२. " " पृ० ४८।
३. है शून्याकार जु ब्रह्म आप। दशहु दिशि पूरण अति अमाप।
यो करय ध्यान सायोज्य होई। तब लगै समाधि अखड सोइ॥
—ज्ञान समुद्र, तृतीयोल्लास, ८३-८४।
४. सुन्दर दर्शन, पृ० ५१।

तथा वज्रयानी परम्परा द्वारा मान्य बुद्ध की देह में वास, इनके विकासक्रम पर हम अब विचार करेंगे।

देह में अरध उरध

अरध उरध ये श्वास गति की दो सीमाएँ हैं। जहाँ से श्वास निरोध कर विन्दु को स्थिर किया जाता है, और वह स्थल जहाँ तक उस विन्दु को पहुँचाया जाता है। प्रथम स्थल है मूलस्थान या मूलाधार चक्र और अन्तिम स्थान है सहस्रार चक्र। इन्हीं दोनों को अध और ऊर्ध्व भी कहा जाता था। बाद में चार चक्रों के स्थान पर षट-चक्र-पद्धति ग्रहण की गई किन्तु प्रथम और अन्तिम चक्र वही माना गया और इसी कारण अर्ध और ऊर्ध्व की कल्पना नाथ और संत परम्परा में यथावत् चली आई, केवल उसको बौद्ध के बजाय शैव रूप में ग्रहण किया गया।

वज्रयानी दोहों में इस अध और ऊर्ध्व का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। सरहपा ने कहा है कि जो अध और उर्ध्व का भेद न जानकर दोनों का युगनद्ध नहीं सम्पन्न करते वे दोनों के बीच में भ्रम में पड़कर नष्ट हो जाते हैं।

अधउध मज्झें सअल मूअ णासी[२५]

इसी अध को आलोक से उद्घाटित कर, चण्डाग्नि प्रज्ज्वलित कर ध्यान स्थित होने का उपदेश तिलोपा ने दिया है :

अध उघाड्यि आलोअएँ ज्झाणेँ होइ रे थित्ति ॥[२६]

योगिनी-कौल-मार्ग की पद्धति में भी 'अध-ऊर्द्ध' में हंस के रमण का उल्लेख मिलता है।[२७] अध में विन्दु जाग्रत कर उर्द्ध की ओर विन्दु को प्रेरित करने के कारण ही साधक को ऊर्ध्व रेतस् कहा जाता था।

गोरखबानी में इस अध और ऊर्ध्व के कई उल्लेख मिलते हैं। एक स्थान पर अध और ऊर्ध्व के मध्य में शून्य का वास (त्रिकुटी) का उल्लेख है : 'अरध उरध बिच धरी उठाई, मधि सुंनि में बैठा जाई।'[२८] यहाँ पर अरध शब्द वास्तव में उरध की तुलना में अध का ही रूपान्तर है :

दूसरे स्थल पर तो पूर्वोक्त योगिनी-कौल-पद्धति के हंस रमण वाली पंक्ति की छाया ही मिलती है :

यो० कौ० अधोर्द्ध रमते हंसो द्वादशान्ते लयं पुनः ॥

गोरखबानी अरधन्त कवल उरधंत मध्ये प्राण पुरिस का बासा
द्वादस हंसा उलटि चलैगा, तब ही जोति प्रकासा ॥[२९]

एक अन्य स्थल पर अरध और उरध के मध्य में [illegible] एक ह[illegible] स्थिर कर ब्रह्मरन्ध्र को उद्घाटित करने का विधान है

3873/4137

अरधैं उरधैं लाइलै कूंची, थिर होवै मन तहा थाकीले पवनां
दसवां द्वार चीन्हिले छूटै आवागवनां ॥[३०]

सन्त परम्परा में भी इस अरध उरध की कुम्भक साधना का उल्लेख मिलता है :

सद्गुरु कबीर ने 'राम' के प्राप्ति और वाद-विवाद की समाप्ति पर बल देते हुए कहा भी है कि -

"तरूवर रूपी राम है, फल रूपी वैराग।
छाया रूपी साधु है, तजिये वाद-विवाद।।"[115]

संत-मत परम्परा के सभी संतो ने आत्मदर्शन का उपाय योग माना है जिसमें इड़ा पिंगला और सुषम्ना की सहायता से चक्र-भेदन की बात कही गई है। नामदेव, कबीर, रैदास और संत बौआ साहब ने भी हठयोग की शब्दावली को आध्यात्मिक साधना के लिए प्रयुक्त माना है -

"ईड़ा, पिंगला, सुष्मना, नारी तीन विचार।
बायें दाहिने मध्य में, लखे जो तीनों धार।।"[116]

"आसन पदुम लगाय के, मूल बन्ध सम साध।
मेरू दण्ड फेरी करे, सुरति गगन में बाँध।।"[117]

"सदा आप में लीन रह, करि के योगाभ्यास।
आवत देखे काल को, गगन मंडल कर बास।।"[118]

योग के सम्बन्ध में संत रैदास ने भी कहा है -

"ऐसा ध्यान धरूँ बनवारी, मन पवन दिढ़, सुषमन नारी।
उलटी गंगा जमुन मैं ज्योऊँ, बिन ही जल संयम कै आंऊ।।
व्यंड परे जीव जिस घटि जाता, सबद अतीत अनाहद राता।
सुंनि मंडल मैं तेरा बासा, ताथै जीव में रहु उदासा।।
कहै रैदास निरंजन ध्याऊँ, जिस घटि जाऊँ जब बहुरि न आऊँ।।"[119]

... जाने सोई जन जान।
जोगेश्वर आपे आप में मिल, ... पसार ॥१५॥

—स्वरूपप्रकाश, प० सं० ६१

बड़ा यत्न से पिया के पाई रे ।।टेक॥
प्रथमें मूल बन्ध के बान्हो अण्ड गुदा मध्य सिमटाई।
मेरुदंड सीधा कै राखो, नागिन जाइ जगाई रे ॥१॥
तब उड्डियान बन्ध को किन्हा, नाभि पीठस्त लगाई।
पश्चिम दिशा के खिड़की खुला, बंक नाल चढ़ि धाई रे ॥२॥
बन्ध जालन्धर कस के सान्धा, कंठ लिये सिमटाई।
उलटी नयन लगे त्रिकुटी में, अगम ज्योति दर्शाई रे ॥३॥
महाखेचरी मुद्रा साधा, जिह्वातल सूत कटाई।
खैंची श्वास उलटि जिह्वा को, ब्रह्मरन्ध्र समाई रे ॥४॥
थर-थर काँप कलेजा उठे, तब पीछे सुख पाई।
अमृत लवी मुखमें मीठा, अनहद नाद सुनाई रे ॥५॥
सोहं सोहं अजपा जहँ उठे, अजब रूप दर्शाई।
योगेश्वर जीव मिले अभिगत में, आपे आप हो जाई रे ॥६॥

—स्वरूपप्रकाश, प० ११२

का... खेती फैलो, बोअलों कुसुमिया। हे ननदिया मेरो।
गगन ... वा फुलाय, हे ननदिया मेरो ॥१॥
दस पाँच सखिया ... फलवा लोढ़े चलली, हे ननदिया मेरो।
नैना चंगेलिया ... ननदिया मेरो ॥२॥
रंगलो में पिया के पोशाक, ...
योगेश्वर पिया पहिरी, सोअलो पलंगिया, हे ननदिया मेरो।
देखि देखि नैना जुड़ाए, हे ननदिया मेरो ॥३॥

—स्वरूपप्रकाश, प० १३८

सिद्धासन साधि निरन्तर बैठि के, योग किया कतु लाहिं ठानें।
योगेश्वर चित्तवृत्ति के निरोध ते, तत्त्व विवेक लहैं पहचानें॥

—स्वरूपगीता, पद-सं० ४१

तासु तात सिद्धासन आसन को, ऐंड़ी निज अण्ड ते नीच जनावे।
दक्षिन ऐंड़ी को इन्द्री के मूल को दाबि मेद दण्ड सीधी बनावे।
दोउ हस्तन ते हैं अनेक किया, दोउ नैनहिं नासिका अग्र लगावे।
सिद्धासन पै करि कर्म अनेक, योगेश्वर मुद्राहि योग लगावे।

06:23
09_chapter_5 (4)
64/85

सद्गुरु कबीर ने 'राम' के प्राप्ति और वाद-विवाद की समाप्ति पर बल देते हुए कहा भी है कि -

"तरूवर रूपी राम है, फल रूपी वैराग।
छाया रूपी साधु है, तजिये वाद-विवाद।।"[115]

संत-मत परम्परा के सभी संतो ने आत्मदर्शन का उपाय योग माना है जिसमें इड़ा पिंगला और सुषम्ना की सहायता से चक्र-भेदन की बात कही गई है। नामदेव, कबीर, रैदास और संत बौआ साहब ने भी हठयोग की शब्दावली को आध्यात्मिक साधना के लिए प्रयुक्त माना है -

"ईड़ा, पिंगला, सुष्मना, नारी तीन विचार।
बायें दाहिने मध्य में, लखे जो तीनों धार।।"[116]

"आसन पदुम लगाय के, मूल बन्ध सम साध।
मेरू दण्ड फेरी करे, सुरति गगन में बाँध।।"[117]

"सदा आप में लीन रह, करि के योगाभ्यास।
आवत देखे काल को, गगन मंडल कर बास।।"[118]

योग के सम्बन्ध में संत रैदास ने भी कहा है -

"ऐसा ध्यान धरूँ बनवारी, मन पवन दिढ़, सुषमन नारी।
उलटी गंगा जमुन मैं ज्योऊँ, बिन ही जल संयम कै आंऊ।।
व्यंड परे जीव जिस घटि जाता, सबद अतीत अनाहद राता।
सुंनि मंडल मैं तेरा बासा, ताथै जीव में रहु उदासा।।
कहै रैदास निरंजन ध्याऊँ, जिस घटि जाऊँ जब बहुरि न आऊँ।।"[119]

08:37
2015.429972.Sant-Kavya

धरनी गति नहि आन, करहु जस जानहु हो ।
मिलहु प्रगट पट खोलि, भरमि जनि मानहु हो ॥६॥

गउरगढ़ = एक दूर के नगर का नाम, ज्योतिर्मय पद । गहबरि = घबराहट ।
उंड़िया = चेरी । पत = धर्म, मर्यादा । पट = घूंघट, आवरण ।

वरह-दुःख (३)

भइ कंत दरस बिनु बावरी ।
मो तन व्यापे पीर प्रीतम की, मूरख जानै आवरी ॥१॥
पसरि गयो तरु प्रेम साखा सखि, बिसरि गयो चित चावरी ।
भोजन भवन सिंगार न भावै, कुल करतूति अभावरी ॥२॥
खिन खिन उठि उठि पंथ निहारों, बार बार पछितावरी ।
नैनन अंजन नींद न लागै, लागै दिवस बिभावरी ॥३॥
देह दसा कछु कहत न आवै, जस जल ओछे नावरी ।
धरनी धनी अजहूं पिय पावों, तो सहजै अनंद बधावरी ॥४॥

आवरी = और, कुछ दूसरा ही । बिभावरी = रात । ओछे = छिछले ।

वरह-निवेदन (४)

अजहूं मिलो मेरे प्रान पियारे ।
दीन दयाल कृपाल कृपानिधि, करहु छिमा अपराध हमारे ॥१॥
कल न परत अति बिकल सकल तन, नैन सकल जनु बहत पनारे ।
मांस पचो अरु रक्त रहित भे, हाड़ दिनहुँ दिन होत उघारे ॥२॥
नासा नैन स्रवन रसना रस, इंद्री स्वाद जुआ जनु हारे ।
दिवस दसों दिसि पंथ निहारति, राति बिहात गनत जस तारे ॥३॥

जो दुख सहत कहत न बनत मुख, अंतरगत के ही जाननहारे ।
धरनी जिव झलमलित दीप ज्यों, होत अंधार करो उजियारे ॥४॥

राति...तारे = रात जैसे तारे गिनते-गिनते ही बीत जाया करती है ।

के प्रति (५)

मन तुम कस न करहु रजपूती ॥टेक॥
गगन नगारा बाजु गहागहि, काहे रहो तुम सूती ॥१॥
पांच पचीस तीन दल ठाढ़ो, इन संग सैन बहूती ।
अब तोहि घेरि मारन चाहत, जस पिंजरा महं तूती ॥२॥
पइहो राज समाज अमर पद, ह्वै रहु बिमल बिभूती ।
धरनी दास बिचारि कहतु है, दूसर नाहिं सपूती ॥३॥

गगन...गहागहि = अनाहत का बाजा बड़े धूमधाम के साथ बजता सुनायी पड़
है । पांच...ठाढ़ो = पाँचों इंद्रियों पचीसों प्रकृतियों तथा तीनों गुणों के साथ

19:01
2015.478721.Sri-Mharaj_...

निरास मैं मुद्रा सील संतोष सति चेला, ग्यांन की धूई तहां सिधां का मेला ॥
दया धीरज डड साच करि गहिवा, विचार कै आसण उनमनि रहिवा ॥३॥
सवद की सींगी सहज की माला, जत की कोपीन तहाँ जोग का ताला ॥
निरमोह मढी निहचल वासा, जरणां की जटा सिरि देषिवा तमासा ॥४॥
निरास उड़ाणी अकल की छाया, अधर उठि चालिवा तजिवा काम क्रोध काया॥
भेद सिर टोपी तन वाघंवर, निरगुण जो घोटा मुनि वस्ती न घर ॥५॥
×पाताल का पांणी आकास कूँ चढ़ाइवा, कलपना सरपणी पवन मुषि पाइवा ॥
सतगुर सवद लै अगह अगम उर धारिवा, ग्यांन का चक्र लै काल कूँ मारिवा
वारह सोलहकला लै एक घरि आणिवा, जोगका मूल यह जुगति सब जांणिवा ।
गुर का सवद लै भौंरा जगाइवा, सरप बंवई तजि अगम तहाँ जाइवा ।७।
देषि पग धरिवा दया पंथ करिवा, उद्र भरि न सोइवा धात करि न धरिवा ॥
भैभीत नग्री मोहनी माया, कामना मिटी तब जोग पंथ पाया ॥८।
रहता सो माई वहता सो वहणां, अवधू उलटा गोता मारि आकास मैं रहणां ॥
अरथ की अंधारी मिथ्या न भाषिवा, निरंजन मात्रा जतन मूँ राषिवा ॥९॥

पाठभेद—दड–१ । वसती–२ । अपणी–१-५ । अगेह–१ । बारह–३-५ । देषि पाव धारिवा–१ । उदर–१ । नगरी–! । अर्थ–८-५ ।

शब्दार्थ—भेद=रहस्य, ज्ञान, तथ्य । वारह=सूर्य की कला, पिंगला । सोलह=चन्द्रमा की सोलह कला, इडा । इडा-पिंगला को एक घर सुषुम्ना मे आणिवा–लाना । भौरा=जीवात्मारूपी भ्रमर । सरप ववई=संशय का मूल । देषि=ज्ञानदृष्टि से । दया पंथ करिवा=मन, वचन, कर्म से अहिंसक रहना । उद्र भरि=अति आहार कर । घात करि न धरिवा=सोना, चादी आदि धातु को लेना नही । भयभीत नग्री=देह रूपी नगरी कालभय से भयभीत है । रहता=एकाग्र मन । वहता=चंचल मन । अरथ की अंधारी=रूप, रस, शब्दादि विषयो का अन्धकार न आने देना ।

× पाणी–शुक्ररूपी द्रव जो स्वभावत अधोगति है, जिसके निकलने का स्थान मूत्रेन्द्रिय है । उस पाताल स्थान से वीर्य को आकाश मे चढाना–ऊर्ध्व रेता होना । मन की चंचलतारूपी सर्पिणी को प्राणायाम की साधना द्वारा समाप्त करना, सतगुरु के उपदेशानुसार पकड़ मे न आने वाले इन्द्रियातीत चेतन तत्व की स्वानुभूति करना, नित्यानित्य विवेक रूपी चक्र से काल पर विजय पाना ।

आत्माग्रभ्यास जोगग्रन्थ

18:41

2015.493941.Madhyak...

312/576

ऊभा षण्डो बैठा षण्डो [illegible] आगत सूता ।
तिहूँ लोक तें रहूँ निरन्तरि तो गोरख अवधूता ॥[1]

शुक्र-रक्षा के साथ ब्रह्मानुभूति की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है, क्योंकि आध्यात्मिक अनुभूति के बिना जो बिन्दु मात्र के अर्थ बन्ध क्रिया का आश्रय ग्रहण करता है उसका शरीर स्थिर होता नहीं देखा गया है।[2] सिंहल की पद्मिनियों के बीच योगभ्रष्ट गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को लक्ष्य कर गोरखनाथ ने कहा था कि हे गुरुदेव, ऐसा कर्म न कीजिये, इससे महारस अमृत क्षीण होता है। स्त्री के साथ रहने वाले पुरुष की अवस्था नदी किनारे के पेड़ के जैसी होती है। उसके जीवन की कम आशा होती है। माया नारी मन को मोहिती है और रात्रि को शुक्र-स्खलन द्वारा अमृत सरोवर को सोखती है। मन में ज्योंही मनसिज पैदा हुआ त्योंही मेरु शिखर यानी सुषुम्ना के ऊर्ध्व मुख ब्रह्मरन्ध्र से अमृत नीचे गिर पड़ता है, इससे शरीर का नाश होता है। मन का घोर मन्थन कर देने वाली आँखों से युक्त बाघिन (माया) जब महारस अमृत को सोख लेती है तो पैर डगमग, पेट ढीला और सिर के बाल बगुले के पंखों की भाँति सफेद हो जाते हैं।[3] गोरखनाथ ने उसे अपना भाई स्वीकार किया है जो बज्रोली करते हुए अमरोली की रक्षा करे, और भोग करते हुए बिन्दु की रक्षा करे।

बजरी करता अमरी राखै अमरि करंतां बाई।
भोग करन्ता जे ब्यन्द राखै ते गोरख का गुरु भाई ॥ सबदी १४१

नाथ-पन्थ में जो त्रिविध साधनाएँ प्रचलित थीं उनमें से प्रथम इन्द्रिय-निग्रह अर्थात् बिन्दु-रक्षा की साधना थी। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि बिन्दु-धारण या ऊर्ध्व रेता बनने से आसन में दृढ़ रहने की क्षमता उत्पन्न होती है और साधक अपनी साधना में उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त करता चला आता है। यही कारण है कि नाथ-पन्थियों ने साधना के मूल स्वरूप बिन्दु-धारण पर विशेष जोर दिया है।

इन्द्रिय-निग्रह से केवल बिन्दु-रक्षा से ही प्रयोजन नहीं है वरन् समस्त इन्द्रियों और उनके विषयों से है किन्तु समस्त इन्द्रियों में जननेन्द्रिय ही प्रबल

---

[1] गोरखबानी—सबदी ९९-१०० ।

[2] वही—२३७-८ ।

[3] वही—पद ४३ ।

इति म[illegible]नाथेन शम्भुना ।
एकैकं तासु यमिनां महासिद्धि-प्रदायिना ॥

दत्तात्रेयः—

"अभ्यासभेदतोभेदः फलन्तु सममेव हि" ।

अभ्यासक्रमश्चोक्तः पवनयोगसंग्रहे,—

"महामुद्रां समभ्यस्य महाबन्धं ततः परम् ।
महावेधं च नियतं प्रकुर्य्याच्छक्ति चालनम् ॥
आसनं सुदृढं बध्वा मूलबन्धं विधाय च ।
उड्डीयानं तथा बन्धं ततोजालन्धराभिधम् ॥"

अभ्यसेदिति सम्बन्धः । हठ प्रदीपिकायाम्,—

"मूलस्थानं समाकृष्य उड्डीयाणन्तु कारयेत् ।
इड़ां च पिङ्गलां बध्वा वाहयेत् पश्चिमे पथि ॥
अनेनैव विधानेन सेवयेत् पवनालयम् ।
ततो न जायते मृत्युर्जरारोगादिकं तथा" ॥ इति

योगबीजे—

"चतुर्णामपि भेदानां कुम्भके समुपस्थिते ।
बन्धत्रयमिदं कार्य्यं वक्ष्यमाणं मया स्फुटम् ॥
'पूरकान्तेति कर्त्तव्यो बन्धोजालन्धराभिधः ।
कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्त्तव्यस्तूड्डीयानिकः ॥
अधस्त्वाकुञ्चनेनाशु कण्ठसङ्कोचनेन च ।
मध्ये पश्चिमतानेन स्यात् प्राणोब्रह्मणाड़ीगः ॥
अपानमूर्द्धमुत्थाप्य प्राणं कण्ठादधोनयेत् ।
योगी जरा विमुक्तःसन् वयसा षोड़शोभवेत्" ॥

इति मुद्रा नव प्रोक्ता आदिनाथेन प्रभुना ।
एकैकं तासु यमिनां महासिद्धि-प्रदायिनी ॥

दत्तात्रेयः—

"अभ्यासभेदतोभेदः फलन्तु सममेव हि" ।

अभ्यासक्रमश्चोक्तः पवनयोगसंग्रहे,—

"महामुद्रां समभ्यस्य महाबन्धं ततः परम् ।
महावेधं च नियतं प्रकुर्य्याच्छक्ति चालनम् ॥
आसनं सुदृढ़ं बध्वा मूलबन्धं विधाय च ।
उड्डीयानं तथा बन्धं ततोजालन्धराभिधम् ॥"

अभ्यसेदिति सम्बन्धः । हठ प्रदीपिकायाम्,—

"मूलस्थानं समाकुञ्च्य उड्डीयाणन्तु कारयेत् ।
इड़ां च पिङ्गलां बध्वा वाहयेत् पश्चिमे पथि ॥
अनेनैव विधानेन सेवयेत् पवनालयम् ।
ततो न जायते मृत्युर्जरारोगादिकं तथा" ॥ इति

योगबीजे—

"चतुर्णामपि भेदानां कुम्भके समुपस्थिते ।
बन्धत्रयमिदं कार्य्यं वक्ष्यमाणं मया स्फुटम् ॥
'पूरकान्तेति कर्त्तव्यो बन्धोजालन्धराभिधः ।
कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्त्तव्यस्तूड्डीयानिकः ॥
अधस्त्वाकुञ्चनेनाशु कण्ठसङ्कोचनेन च ।
मध्ये पश्चिमतानेन स्यात् प्राणोब्रह्मणाड़ीगः ॥
अपानमूर्द्ध्वमुत्थाप्य प्राणं कण्ठादधोनयेत् ।
योगी जरा विमुक्तःसन् वयसा षोड़शोभवेत्" ॥

16:53
2015.480974.Sat-mat-k...
146/336

—मिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद ११

३१. तोहर बिगड़ल बात बन जाई, हरिजी से लगि रहऽहो माई।
उलटि के पवन गवन कर भवन में, निरमल रूप दरसाई॥
दरसन से सुख पावे नयनवा, निरखत रूप लोभाई।
प्रेम के पलरा धीरज कर डंडी, सुरति को नाथ पहिराई॥
निरगुन नाम तौलों दिन राति, सुंन में सहर बसाई।
कहै सिरी मिनकराम गुरु मिलै हकीम, जिन मोहि अमित पिआई॥
मुआ से जिआ कइ डारे, हंस अमर पद पाई॥

—मिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद २१

२. आनन्द भयडार, पृ० २४

३. निरंजन पद कोउ साधु जानता है।
मूल द्वार खींचि पवन को, उलटा पंथ चलाता है।
मेरुदंड के सीढ़ी बना के, सुंन सिखर चढ़ि जाता है।

—गोविन्दराम : ह० लि० सं०, पद २

४. मूल चक्र विमल होय सोधो।
त्रिकुटी के श्वासा धर लऽ।
द्वादस गुडिया उड़ावहु हो।

—मिनकराम हस्तलिखित संग्रह, पद १७

५. सोही सोहागन उल्टे खुलि गेल गगन केवारा हो।
इंगला पिंगला सोधिके चढ़िहै सुखमा हो॥
सतगुरु वहाँ आपु है, पुरैहैं, सतनामा हो।
त्रिकुटी मंदिर भीतरे, वहाँ ज्योति अखंडा हो॥

—मिनकराम : ह० लि० सं०, पद २४

६. मूल चक्र पर तुम्हरो बासा, चार दल ताहा कमल प्रकासा।
खट दल ताहां ब्रह्म रहै समाई, जाहां कमलनाल सोहाई॥
अस्ट दल कमल विष्णु के बासा, ताहां सोहंग करै निवासा।
छाडस खोडस सुरति समावै, शिव शक्ति के दर्शन पावै॥

—रामस्वरूप : भजन-रत्नमाला, पृ० ३

७. उनमुनि ध्यान नासिका आगे, तब गढ भीतर पैसार।
छः चक्र पोडस रस खावै, दसो द्वार थानादार॥
चान्द सूरज करो उनमुनि में, तब खोलो त्रिकुटी किवार।
अग्नि विमल चक्र एक दरसे, मेरुदंड तेहि ठाम॥

—गोविन्दराम : ह० लि० सं०, पद १

८. धरहु ध्यान अभिअन्तर उर में, सार शब्द नित नित हेरो।
त्रिकुटि मध्य दोउ नेत्र लगा के, उलटि पवन के फेरो॥
यही विधि आतमरूप निहारो, सुन्दर परम उजेरो।
मकरतार इव सुरति सोहागिन, चलु मन जहँ पिया मेरो॥

21:17

7

अन्तर्जालसङ्केतसूची

- www.shabadsuratsangam.org
- http://bksiyengar.com
- https://www.artofliving.org/in-en
- www.lifemission.org
- www.yogadhama.com
- http://www.dlshq.org/
- Sanskritdocuments.org
- www.universityofpatanjali.com

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

सुख 81, 123, 128, 137, 141, 150, 155, 166, 186, 198, 203, 213, 219, 388
सुख दाता 83
सुख दुख 1, 53, 186, 201, 213, 216, 208, 212-13, 219, 303,
सुमत (सुमति) 79, 154, 329, 359, 370
सुमिरन 43, 62-63, 66, 82, 117, 222
सुरत (सुर्त, सूरत) 2, 16-17, 35, 37,

39-40, 43, 57, 59, 61, 63-67, 76, 78-79, 82, 86, 88, 90, 92-97, 110, 113, 146-50, 153-69, 186, 190, 193, 195, 200, 202-4, 211, 214-30, 233-37, 239-55, 258, 309, 311-15, 317-21, 323-332, 336-38, 341-43, 345-49, 351, 375
सुरत निरत 45, 51, 53, 55, 58-59, 62-63, 68, 77-80, 144, 155-56, 170-187, 228, 231, 248-51, 300, 324, 329, 335, 349, 356, 359, 361, 363, 365
सुरत शब्द 4, 20, 59, 63, 68, 77, 82, 89, 95, 102, 108, 114, 122-27, 130, 132, 138, 143, 146, 150-51, 155, 158-59, 161, 165, 168, 203-7, 209-10, 212, 214, 217, 224, 230, 234, 242, 255, 264, 276, 301, 305, 308, 311, 356-57, 381
सुरत शब्द की लार (राह) 18, 43, 46, 96, 187-88
सुरत शब्द मार्ग (मारग) 3, 10, 75, 77, 80, 86, 135, 140, 193, 200, 205-6, 209, 215, 222, 224, 255, 259, 262, 274, 284, 320, 338, 243, 287
सुरत संवाद 214-29
सुर नर मुनि 101, 358
सुल्तानुल अज़्कार 171
सुवना नलनी 120
सुफ़ी 331
सूरज (सूर) 43, 53-54, 57, 66-67, 81, 91,94,108, 136, 206-7, 222, 226, 228, 241, 274
सृष्टि (सृष्टि) 101, 353
सेत 41, 48, 55-56, 58, 60, 62, 66, 67, 69, 139-40, 146, 163, 196,228,233,243-363
सेवक 42, 68, 71, 89, 136, 196, 242, 283, 313, 377
सेवा 73, 80, 84, 98, 101, 106-8, 125, 140, 148, 155, 184, 216, 218, 240, 387-88,
सेवा वाणी 386-87
सैयद 221
सोत 2, 41, 69, 112, 124
सोत पोत 103,
सोता सन 125
सोहँग (सोहंग, सोहं) 20, 27, 39, 42, 44, 46-48, 52, 62-63, 78, 89, 97, 148, 160, 164, 175, 198, 211, 223, 228, 235, 240, 265, 285, 307, 351
सोहबते फ़कीरी 171
स्मृति (स्मृत) 32, 85, 114, 163, 189, 194-95, 197, 201, 318
स्मृति पुराण 114, 147, 186, 201
स्वर्ग 215-16, 221, 351, 353
स्वांति (स्वाँति) 4, 7, 11, 26, 53-54, 86, 271, 280, 319, 339
स्वान 168, 253, 257, 334
स्वामी 1, 7, 43, 49, 52-55, 57-61, 69, 89, 96, 99, 102, 131,

।। बचन पैतीसवाँ ।।

चढ़ कर पहुँचना सुरत का आकाश में और भेद और लीला मुक़ामात की जो कि सुरत ने रास्ते में देखी है

।। शब्द पहला ।।

करूँ आरती नाना विधि से । देखो स्वामी मेहर बेहद से ।।1।।
घट का थाल चित्त की बाती । नाम चेतना[1] जोत जगाती ।।2।।
भाव भक्ति का भोग धराऊँ । सुरत दृष्टि का जोग मिलाऊँ ।।3।।
बाजे अनहद नित्त बजाऊं । अमी धार रस अगम चुवाऊं ।।4।।
रूप अनूपम गगन गंभीरा । झलकें जहं तहं मोती हीरा ।।5।।
सूरज मंडल तेज उजारा । चन्द्र मंडली खोला द्वारा ।।6।।
सुखमन नाली सुरत चढ़ाई । बंकनाल में सहज समाई ।।7।।
धुन धधकार सुनी ओंकारा । लाल रंग जहँ सूर निहारा ।।8।।
त्रिकुटी घाट सुरत अब जागी । मानसरोवर चालन लागी ।।9।।
सेत सेत मैदान अनूपा । हंसन का जहँ देखा रूपा ।।10।।
द्वादस सूर कला जिन केरी । हंस हंस प्रति ऐसी हेरी ।।11।।
शोभा वहां की अगम अगाधा[2] । नहिं पावे कर जोग समाधा ।।12।।
सुरत जोग से पहुंचे कोई । जा पर दया राधास्वामी की होई ।।13।।
आगे भेद गुप्त हम राखा । अधिकारी को कहिं कहिं भाखा ।।14।।
यह आरत अब पूरण होई । स्वामी देओ प्रसादी मोहीं ।।15।।

।। शब्द दूसरा ।।

लाई आरती दासी सज के । नाम राधास्वामी का छिन छिन भज के ।।
सील छिमा की ओढ़ चदरिया । काम क्रोध की छाँट बदरिया ।।2।।

---

1. याद करना । 2. अथाह ।

नाम थाल लिया हाथ पसारी । विरह अग्नि से जोत सँवारी ।।3।।
अमी सरोवर भर लइ झारी । राधास्वामी सन्मुख कर कर ढारी[1] ।।4।।
अगम लोक के बिंजन लाई । राधास्वामी आगे भोग धराई ।।5।।

05:30

Natha sidhhon ki vani...

झोली मोली पाई पत्र पाया । पाया पंथ का भेव ॥
रीता जाऊं मऱ्या आऊं । कहा करै[1] गुरु देव ॥ ३२ ॥ १७३ ॥
हंसना योगी रिंगनी सांटि । पुरिष कुलषणैं बसा नाटि ॥
कवि लजालू नीलज नारि । चरपट कहै ते माथै मारि ॥ ३३ ॥ १७४ ॥
बजर कछोंटी[2] चाबैं पान । तीरथि जाइ उगाहैं दान[3] ॥
करै वैदगी ज्यावै रोगी । चरपट कहै ते[4] विगूता जोगी ॥ ३४ ॥ १७५ ॥
आईं न छोड़ौं लैंन न जाऊं । ताथीं[5] मेरा चरपट नांऊ[6] ॥
आई भी छोड़िये लैंन[7] न जाइये ।
कुहै गोरष पूता बिचारि बिचारि षाईये ॥ ३५ ॥ १७६ ॥
टूका[8] षाया मगर मचाया । जैसा सहर का कूता ॥
जोग जुगति की षबरि न जांणी । कान फड़ाई विगता ॥ ३६ ॥ १७७ ॥
जोग न जोग्या [9] भोग न भोग्या, अहिला गया जमारं ॥
ग्रामि गदहा रामै सूकर । फिरि फिरि फिरि ले अवतारं ॥ ३७ ॥ १७८ ॥
रूप विरष गिर कंदलि बास । यह निसि[10] रहिबा जोग अभ्यास ॥
पलटै काया षंडै[11] रोग । चरपट कहै घनि घनि[12] जोग ॥ ३८ ॥१७९॥
अवधू मूल दुबारै बंद[13] लगाइ । पवन पलटै गगन[14] समाइ ॥
नादा बिंद दोउ असथिर होइ । अदृष्टि पुरिष दृिष्टि तब जोइ ॥ ३९ ॥१८०॥
पवनी कंथा अनलै बास । पिसण न कोई आवै पास ॥
मन सूं मतै[15] न ग्यांन सूं गूझ[16] । चरपट कहै धनि अवधूत ॥ ४० ॥१८१॥
निरभै निसंक तत वेता । मन मानि विवर्जित इन्द्री जिता ॥
ग्यांन[17] सेल फटक मन रता । च पट कहै ये सिध मता ॥ ४१ ॥१८२॥
करतलि भिष्या विरष तलि बास । दोइ जन अंग न मेलै पास ॥
बन षंडि रहे मसाणें भूत[18] । चरपट कहै ते अवधूत ॥ ४२ ॥१८३॥
चिरकट चीर चंक्र[19] मन कंथा । चित चमाऊं करणां ॥
अैसी करणो करौ रे अवधू । ज्यूं बहुरि न होइ मरणां ॥ ४३ ॥१८४॥

१—क. इब कहा करैं । २—ख. बज्र कछोटी ३—क. दाम; ४—क. में 'ते' नहीं है । ५—ख. लीण न जान; ६—ख. तिस कारणि; ७—ख. लीन न जाइये; ८—ख. टका; ९—ख. मोग्या । १०—क. इहि विधि; ११. क, छंटै; १२. क, घनि घनि ते; १३. ग, बंध; १४. क, गंध; १५. ख, मतौने; १६. ख, गले; १७. ख-ग, में 'ग्यांन' नहीं है; १८. क, में 'रहे' है । १९. क, द्रिक; ।

अवधू मूल दुबारै लावै बंध । बाई षैलै चौसठि संध ॥

21:34

... भी होता रहता है। अत: प्रकाश भी उनके कारण क्षुब्ध रहता है। प्रत्येक परमाणु के कम्पन से जो ध्वनि निकलती है, वह आश्रव्य है। विभिन्न स्तरों पर नाद के तरंगों की लम्बाई भी भिन्न होती है। सृष्टि नाद का मूर्त रूप है।

(२२) अमृत-पान और उसकी साधना-पद्धति
('मृत्योर्मामृतंगमय')

यदि रसप्रवाहिनी जिह्वा अहर्निश निरन्तर **लम्बिका** के अग्र भाग को चूमती हुई (स्पर्श करती हुई) दुग्ध सदृश मधुर घी के समान '**सहस्रदल पद्म**' रूपी चन्द्र मण्डल से प्रवाहित अमृत (सोमजल) धारण करती है तो समस्त व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं, जरा-मरण भी ध्वस्त हो जाता है, आगम-निगम आदि समस्त शास्त्रों का धारा प्रवाह व्याख्यान होता है, दिव्यांगनायें योगी की ओर सहज ही आकृष्ट होती हैं एवं अणिमादि के अष्ट गुणित ऐश्वर्य सहित अमरत्व प्राप्त होता है।[१]

श्रुतियाँ भी 'असत् से सत्', 'तम से ज्योति' एवं 'मृत्यु से अमृतत्त्व' की ओर जाने का उपदेश देती हैं—

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मामृतं गमय

गोरक्षनाथ कहते हैं कि गगन-मण्डल (चेतना के ऊर्ध्व केन्द्र=आज्ञाचक्र, सहस्रार आदि में नाद स्वत: ध्वनित होता रहता है, किन्तु सहस्रार में एक औंधा कूप है उसमें अमृत का निवास है अर्थात् सहस्रारस्थ चन्द्र में अमृत भरा है। अत: योगी को उस अमृत का पान करना चाहिए—

'गगन मंडल में ऊँधा कूवा तहाँ अमृत का बासा' किन्तु—
सगुरा होइ सु भरि भरि पीवै निगुरा जाइ पियासा'

गोरक्षनाथ कहते हैं कि जब चन्द्र एवं सूर्य के योग से **उन्मनावस्था** आती है तब ब्रह्मरन्ध्र (शून्य मण्डल) में **अमृत का निर्झर झरने** लगता है।

'सुनि मँडल तहाँ नीझर झरिया।
चंद सुरजि ले उनमनि धरिया।।' —(गो० बा०)

"अभरा था थे सूभर भरिया। नीझर झरता रहिया।"

गोरक्ष नाथ उनमन रहने एवं निर्झर का पानी (अमृत) पानी का उपदेश देते हुए कहते हैं—

'उनमनि रहिबा, भेद न कहिबा, पीयबा नीझर पाणी'

१. यो० मा० (१३८-१३९)।

Scanned by CamScanner

अमृत-पान

गुरु गोरक्षनाथ कहते हैं कि आकाशमण्डल (शून्य चक्र) में एक औंधा कूप है। उसी में अमृत रहता है। जो गुरु दीक्षित है, वह तो उसे पी पाता है, किन्तु अन्य प्यासे का प्यासा ही लौट जाता है।

"गगन मँडल मैं ऊँधा कूबा, तहाँ अमृत का बासा।
सगुरा होइ सु भरि भरि पीवै, निगुरा जाइ पियासा।।"[१]

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

(क) 'शुक्रं चन्द्रेण संयुक्तं रजं सूर्येण संगतम्।
तयोः समरसैकत्वं यो जानाति स योगवित्॥'
—(विवेक मार्तण्ड ८०)

(ख) सिन्दूर द्रवसंकाशं रविस्थाने स्थितं रजः।
शशिस्थाने स्थितो विन्दुस्तयोरैक्यं सुदुर्लभम्॥
—(विवेक मार्तण्ड ७७)

इन दोनों (रज, विन्दु या सूर्य, चन्द्र) की एकता दुर्लभ है।

(ग) योऽपानप्राणयोर्योगः स्वरजोरेतसो स्तथा।
सूर्याग्निचन्द्रमसोर्योगो जीवात्म परमात्मनोः।
एवं तु द्वन्द्व जालस्य संयोगो योग उच्यते।
—(योग बीज ८९-९०)

(घ) यदि साधक का शरीर अमृत (शुक्र) से युक्त हो तो दो या तीन वर्षों के अभ्यास से विन्दु ऊपर चढ़ जाता है और उसे अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं—

'अमृतापूर्ण देहस्य योगिनो द्वित्रिवत्सरैः।
ऊर्ध्वं प्रवर्तते रेतो ह्यणिमादि गुणोदयम्॥'
—(विवेक मार्तण्ड)

परमपद की प्राप्ति–

विन्दु शिवो, रजः शक्तिबिन्दुरिन्दु रजो रविः।
उभयोः संगमादेव प्राप्यते परमं पदम्॥
—(विवेक मार्तण्ड ७८)

वायुनाशक्ति चारेण प्रेरितं च यदा रजः।
याति विन्दोः सहैकत्वं भवेद दिव्यवपुस्तदा॥
—(विवेक मार्तण्ड ७९)

नाथ सिद्ध गोपीचन्द की दृष्टि–

(१) 'मन चलंता पवन चलै। पवन चलंता बिंद।
बिंद चलंता कंध पड़ै। यूं भाषै गोपीचंद॥'
—(नाथसिद्ध गोपीचन्द)

(२) पवन थिरं तां मन थिर मन थिरं तां व्यंद।
व्यंद थिरंतां कंध थिर यौं भाषंत गोपीचन्द॥
—(नाथसिद्ध गोपीचन्द)

(३) मन राजा मन प्रजा मन सयल का बंध।
मन कूं चीन्हि पारग्रांमी भये राजा गोपीचंद॥
—(नाथसिद्ध गोपीचन्द)

Scanned by CamScanner

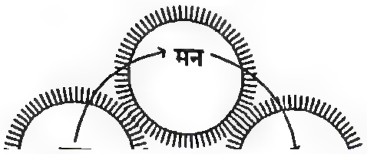

16:53
2015.480974.Sat-mat-k...
146/336

—मिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद ११

३१. तोहर बिगड़ल बात बन जाई, हरिजी से लगि रहऽहो माई।
उलटि के पवन गवन कर भवन में, निरमल रूप दरसाई॥
दरसन से सुख पावे नयनवा, निरखत रूप लोभाई।
प्रेम के पलरा धीरज कर डंडी, सुरति को नाथ पहिराई॥
निरगुन नाम तौलों दिन राति, सुंन में सहर बसाई।
कहे सिरी मिनकराम गुरु मिलै हकीम, जिन मोहि अमित पिआई॥
मुआ से जिआ कइ डारे, हंस अमर पद पाई॥

—मिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद २१

२. आनन्द भण्डार, पृ० २४
३. निरंजन पद कोउ साधु जानता है।
मूल द्वार खींचि पवन को, उलटा पंथ चलाता है।
मेरुदंड के सीढ़ी बना के, सुंन सिखर चढ़ि जाता है।

—गोविन्दराम : ह० लि० सं०, पद २

४. मूल चक्र विमल होय सोधो।
[illegible] के श्वासा धर लऽ।
द्वादस गुडय। [illegible]

—मिनकराम हस्तलिखित संग्रह, पद १७

५. सोही सोहागन उल्टे खुलि गेल गगन केवारा हो।
इंगला पिंगला सोधिके चढ़िहै सुरधामा हो॥
सतगुरु वहाँ आपु है, पुरैहें, सतनामा हो।
त्रिकुटी मंदिर भीतरे, वहाँ ज्योति अखंडा हो॥

—मिनकराम : ह० लि० सं०, पद २४

६. मूल चक्र पर तुम्हरो बासा, चार दल ताहा कमल प्रकासा।
खट दल ताहां ब्रह्म रहै समाई, जाहां कमलनाल सोहाई॥
अस्ट दल कमल विष्णु के बासा, ताहां सोहंग करै निवासा।
छाडस खोडस सुरति समावै, शिव शक्ति के दर्शन पावै॥

—रामस्वरूप : भजन-रत्नमाला, पृ० ३

७. उनमुनि ध्यान नासिका आगे, तब गढ भीतर पैसार।
छः चक्र षोडस रस खावै, दसो द्वार थानादार॥
चान्द सूरज करो उनमुनि में, तब खोलो त्रिकुटी किवार।
अग्नि विमल चक्र एक दरसे, मेरुदंड तेहि ठाम॥

—गोविन्दराम : ह० लि० सं०, पद १

८. धरहु ध्यान अभिअन्तर उर में, सार शब्द नित नित हेरो।
त्रिकुटि मध्य दोउ नेत्र लगा के, उलटि पवन के फेरो॥
यही विधि आतमरूप निहारो, सुन्दर परम उजेरो।
मकरतार इव सुरति सोहागिन, चलु मन जहँ पिया मेरो॥

05:30

Natha sidhhon ki vani...

झोली मोली पाई पत्र पाया । पाया पंथ का भेव ॥
रीता जाऊं मन्या आऊं । कहा करै[1] गुरु देव ॥ ३२ ॥ १७३ ॥
हंसना योगी रिंगनी सांटि । पुरिष कुलषणं बसा नाटि ॥
कवि लजालू नीलज नारि । चरपट कहै ते माथै मारि ॥ ३३ ॥ १७४ ॥
बजर कछोंटी[2] चाबैं पान । तीरथि जाइ उगाहैं दान[3] ॥
करै वैदगी ज्यावै रोगी । चरपट कहै ते[4] विगूता जोगी ॥ ३४ ॥ १७५ ॥
आई न छोडौं लैंन न जाऊं । ताथीं[5] मेरा चरपट नांऊ[6] ॥
आई भी छोड़िये लैंन[7] न जाइये ।
कुहै गोरष पूता बिचारि बिचारि षाईये ॥ ३५ ॥ १७६ ॥
टूका[8] षाया मगर मचाया । जैसा सहर का कूता ॥
जोग जुगति की षबरि न जांणी । कान फड़ाई विगता ॥ ३६ ॥ १७७ ॥
[illegible] न जोगण[9] जोग न [illegible] ॥
[illegible] अवतार ॥ [illegible] ॥ १७८ ॥
[illegible] राम सूकर । फिरि फि[illegible]
रूप विरष गिर कंदलि बास । यह निसि[10] रहिबा जाग अभ्यास ॥
पलटै काया षंडै[11] रोग । चरपट कहै घनि घनि[12] जोग ॥ ३८ ॥१७९॥
अवघू मूल दुबारै बंद[13] लगाइ । पवन पलटै गगन[14] समाइ ॥
नादा बिंद दोउ असथिर होइ । अदृष्टि पुरिष दिष्टि तब जोइ ॥ ३९ ॥१८०॥
पवनी कंथा अनलै बास । पिसण न कोई आवै पास ॥
मन सूं मतै[15] न ग्यांन सूं गूझै[16] । चरपट कहै धनि अवधूत ॥ ४० ॥१८१॥
निरभै निसंक तत वेता । मन मानि विवर्जित इन्द्री जिता ॥
ग्यांन[17] सेल फटक मन रता । चरपट कहै ये [illegible] ॥ ४१ ॥१८२॥
करताल [illegible] बात । [illegible]इ जन अंग न मेलै पास ॥
बन षंडि रहे मसाणें भूत[18] । चरपट कहै ते अवधूत ॥ ४२ ॥१८३॥
चिरकट चीर चंक्र[19] मन कंथा । चित चमाऊं करणां ॥
अैसी करणी करौ रे अवधू । ज्यूं बहुरि न होइ मरणां ॥ ४३ ॥१८४॥

१—क. इव कहा करैं । २—ख. बज्र कछोटी ३—क. दाम; ४—क. में 'ते' नहीं है । ५—ख. लीण न जान; ६—ख. तिस कारणि; ७—ख. लीन न जाइये; ८—ख. टका; ९—ख. मोग्या । १०—क. इहि विधि; ११. क, छंटै; १२. क, घनि घनि ते; १३. ग, बंध; १४. क, गंध; १५. ख, मतौने; १६. ख, गलै; १७. ख-ग, में 'ग्यांन' नहीं है; १८. क, में 'रहे' है । १९. क, द्रिढ़; ।

अवघू मूल दुबारै लावै बंध । वाई षैलै चौसठि संध ॥

21:17

(क) 'शुक्रं चन्द्रेण संयुक्तं रजं सूर्येण संगतम्।
तयोः समरसैकत्वं यो जानाति स योगवित्॥'

—(विवेक मार्तण्ड ८०)

(ख) सिन्दूर द्रवसंकाशं रविस्थाने स्थितं रजः।
शशिस्थाने स्थितो बिन्दुस्तयोरैक्यं सुदुर्लभम्॥

—(विवेक मार्तण्ड ७७)

इन दोनों (रज, विन्दु या सूर्य, चन्द्र) का [illegible]र्लभ है।

(ग) योऽपानप्राणयोर्योगः स्वरजोरेतसो स्तथा।
सूर्याग्निचन्द्रमसोर्योगो जीवात्म परमात्मनोः।
एवं तु द्वन्द्व जालस्य संयोगो योग उच्यते।

—(योग बीज ८९-९०)

(घ) यदि साधक का शरीर अमृत (शुक्र) से युक्त हो तो दो या तीन वर्षों के अभ्यास से विन्दु ऊपर चढ़ जाता है और उसे अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं—

'अमृतापूर्ण देहस्य योगिनो द्वित्रिवत्सरैः।
ऊर्ध्वं प्रवर्तते रेतो ह्यणिमादि गुणोदयम्॥'

—(विवेक मार्तण्ड)

परमपद की प्राप्ति–

बिन्दु शिवो, रजः शक्तिबिन्दुरिन्दु रजो रविः।
उभयोः संगमादेव प्राप्यते परमं पदम्॥

—(विवेक मार्तण्ड ७८)

वायुनाशक्ति चारेण प्रेरितं च यदा रजः।
याति बिन्दोः सहैकत्वं भवेद दिव्यवपुस्तदा॥

—(विवेक मार्तण्ड [illegible])

ना[illegible]द्ध गोपीचन्द की दृष्टि–

([illegible]) 'मन चलंता पवन चलै। पवन [illegible]बद।
विद [illegible] भाषै गोपीचंद॥'

—(नाथसिद्ध गोपीचन्द)

(२) पवन थिरं तां मन थिर मन थिरं तां व्यंद।
व्यंद थिरंतां कंध थिर यौं भाषंत गोपीचन्द॥

—(नाथसिद्ध गोपीचन्द)

(३) मन राजा मन प्रजा मन सयल का बंध।
मन कूं चीन्हि पारग्रांमी भये राजा गोपीचंद॥

—(नाथसिद्ध गोपीचन्द)

Scanned by CamScanner

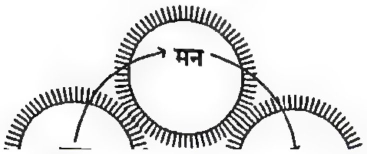

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

04:37
2015.379529.Sant-Cha...
235/508

निवास स्थान है। प्राणायाम के अभ्यास से जाग्रत होकर यह दिव्य शक्ति सुषुम्णा के सहारे आगे बढ़ती है और विभिन्न चक्रों (सुषुम्णा के अंगों) से होती हुई कुंडलिनी ब्रह्मरन्ध्र की ओर अग्रसर होती है। कुंडलिनी की गति के साथ-साथ [illegible] भिन्न-भिन्न शक्तियां प्राप्त होती चलती है और सहस्त्र दल कमल में प्रविष्ट हो जाने के अनन्तर साधक मन और [illegible] से पर्याप्तया अलग हो जाता है। कुंडलिनी के निवास स्थान एवं शक्तिमत्ता का वर्णन [illegible] कवि के शब्दों में सुनिये :—

नाभि स्थान नागिनि रहै, कुंडल शशी अकार।
प्राण पियारा वही है, आगे सुनौ विचार॥
कुंभक कर्म्म कोई करै, देवै शक्ति जगाय।
जैसे लागी लष्टिका नागन शीश उठाय॥

सीखी गुरु सों कुम्भक साधे। नीकी विधि ताको अवराधे॥
पवन ठवकलग ताहि जगावै। तब ऊरध को शीश उठावै॥
नाभि ठौर ताका है बासा। पद्म पराग मणि ज्यों परकासा॥
सात लपेट वाई जानौ। ताते शुक्र कुंडली मानौं॥
नाड़ी सहस लगी हैं वाको। सो पर छुटी जानिको ताको॥
जिनमें तीन नारि अधिकाई। इडा पिंगला सुषमन गाई॥
तिनके माहिं शिरोमणि सुषमन। नाल कमल जानत योगी जन॥
जाय पहुँचि ब्रह्मरंधर ताही। ऊरध कमल सातवें माहीं॥
आवन जो न पवन की बाटा। सकत चढ़न ऊरध का घाटा॥

नागिनि सूछम जानिये, बाल सहस वा भाग।
शुकदेव कहै अकारही, रक्त बरण ज्यों नाग॥
कुंभक हो अत्यन्त जब, तब ऊरध को जाय।
ब्रह्मरन्ध्र में आयकर, घड़ी दोय ठहराय॥
अमृत का करि पान ही, पूरण हो अभ्यास।
उड़ते देखै सिद्धि तब, ताको माहि अकास॥

कुंडलिनी प्रबुद्ध हो जाने के अनन्तर साधक को अनेक शक्तियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।[1]

कुंडलिनी के प्रबुद्ध होने की रीति को अधिक स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाने के हेतु विभिन्न प्राणों का ज्ञान परम आवश्यक है। इन प्राणों को वायु भी कहते हैं। इसी तत्व के आधार पर हमारे शरीर का जीवन निर्भर है। वायु दश प्रकार की मानी गई है—पंच शरीरस्थ एवं पंच वाह्य। घेरंड संहिता के अनुसार प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान—ये पंच वायु अन्तःस्थ हैं तथा नाग कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनंजय ये पंच वहिःस्थ हैं।[2] इनकी स्थिति निम्न लिखित है :—[3]

१. पर देखत है नैन बिना ही। चहै करै लीला उन माहीं॥
खेचर मिलि खेचर है जावै। यह भी शक्ति उड़न की पावै॥

18:41
2015.493941.Madhyak...

ऊभा षण्डो बैठा षण्डो [illegible] जागत सूता ।
तिहूं लोक तै रहूं निरन्तरि तो गोरख अवधूता ॥[1]

शुक्र-रक्षा के साथ ब्रह्मानुभूति की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है, क्योंकि आध्यात्मिक अनुभूति के बिना जो बिन्दु मात्र के अर्थ बन्ध क्रिया का आश्रय ग्रहण करता है उसका शरीर स्थिर होता नहीं देखा गया है।[2] सिंहल की पद्मिनियों के बीच योगभ्रष्ट गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को लक्ष्य कर गोरखनाथ ने कहा था कि हे गुरुदेव, ऐसा कर्म न कीजिये, इससे महारस अमृत क्षीण होता है। स्त्री के साथ रहने वाले पुरुष की अवस्था नदी किनारे के पेड़ के जैसी होती है। उसके जीवन की कम आशा होती है। माया नारी मन को मोहिती है और रात्रि को शुक्र-स्खलन द्वारा अमृत सरोवर को सोखती है। मन में ज्योंही मनसिज पैदा हुआ त्योंही मेरु शिखर यानी सुषुम्ना के ऊर्ध्व मुख ब्रह्मरन्ध्र से अमृत नीचे गिर पड़ता है, इससे शरीर का नाश होता है। मन का घोर मन्थन कर देने वाली आँखों से युक्त बाघिन (माया) जब महारस अमृत को सोख लेती है तो पैर डगमग, पेट ढीला और सिर के बाल बगुले के पंखों की भाँति सफेद हो जाते हैं।[3] गोरखनाथ ने उसे अपना भाई स्वीकार किया है जो बज्रोली करते हुए अमरोली की रक्षा करे, और भोग करते हुए बिन्दु की रक्षा करे।

बजरी करता अमरी राखै अमरि करंतां बाई।
भोग करन्ता जे ब्यन्द राखै ते गोरख का गुरु भाई॥ सबदी १४१

नाथ-पन्थ में जो त्रिविध साधनाएँ प्रचलित थीं उनमें से प्रथम इन्द्रिय-निग्रह अर्थात् बिन्दु-रक्षा की साधना थी। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि बिन्दु-धारण या ऊर्ध्व रेता बनने से आसन में दृढ़ रहने की क्षमता उत्पन्न होती है और साधक अपनी साधना में उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त करता चला जाता है। यही कारण है कि नाथ-पन्थियों ने साधना के मूल स्वरूप बिन्दु-धारण पर विशेष जोर दिया है।

इन्द्रिय-निग्रह से केवल बिन्दु-रक्षा से ही प्रयोजन नहीं है वरन् समस्त इन्द्रियों और उनके विषयों से है किन्तु समस्त इन्द्रियों में जननेन्द्रिय ही प्रबल

[1] गोरखबानी—सबदी ९९-१०० ।
[2] वही—२३७-८ ।
[3] वही—पद ४३ ।

19:01
2015.478721.Sri-Mharaj_...

निरास मैं मुद्रा सील संतोष सति चेला, ध्यांन की धूई तहां सिधां का मेला ॥
दया धीरज डड साच करि गहिवा, विचार कै आसण उनमनि रहिवा ॥३॥
सवद की सींगी सहज की माला, जत की कोपीन तहाँ जोग का ताला ॥
निरमोह मढी निहचल वासा, जरणां की जटा सिरि देषिवा तमासा ॥४॥
निरास उदाणी अकल की छाया, अधर उठि चालिवा तजिवा काम क्रोध काया॥
भेद सिर टोपी तन वाघंवर, निरगुण जो घोटा मुनि वस्ती न घर ॥५॥
×पाताल का पांणी आकास कूँ चढ़ाइवा, कलपना सरपणी पवन मुषि पाइवा ॥
सतगुर सवद लै अगह अगम उर धारिवा, ग्यांन का चक्र लै काल कूँ मारिवा
वारह सोलहकला लै एक वरि आणिवा, जोगका मूल यह जुगति सब जांणिवा ।
गुर का सवद लै भौंरा जगाइवा, सरप वंवई तजि अगम तहाँ जाइवा ।७।
देषि पग धरिवा दया पंथ करिवा, उद्र भरि न सोइवा धात करि न धरिवा ॥
भैभीत नग्री मोहनी माया, कामना मिटी तब जोग पंथ पाया ॥८।
रहता सो माई वहता सो वहणां, अवधू उलटा गोता मारि आकास मैं रहणां ॥
अरथ की अंधारी मिथ्या न माषिवा, निरंजन मात्रा जतन सूँ राषिवा ॥६॥

पाठभेद—दड–१ । वसती–२ । अपणी–१-५ । अगेह–१ । वारह–३-५ । देषि पाव धारिवा–१ । उदर–१ । नगरी–? । अर्थ–८-५ ।

शब्दार्थ—भेद=रहस्य, ज्ञान, तथ्य । वारह=सूर्य की कला, पिंगला । सोलह=चन्द्रमा की सोलह कला, इडा । इडा-पिंगला को एक घर सुषुम्ना मे आणिवा–लाना । भौरा=जीवात्मारूपी भ्रमर । सरप ववई=संशय का मूल । देषि=ज्ञानदृष्टि से । दया पंथ [illegible] से अहिंसक रहना । उद्र भरि=अति आहार [illegible] । धात करि न धरिवा=सोना, चादी आदि धातु का [illegible] भयभीत नग्री=देह रूपी नगरी कालभय से भयभीत है । रहता=एकाग्र मन । वहता=चच[illegible] । अरथ की अंधारी=रूप, रस, शब्दादि विषयो का अन्धकार न आने देना ।

× पाणी–शुक्ररूपी द्रव जो स्वभावत अधोगति है, जिसके निकलने का स्थान मूत्रेन्द्रिय है । उस पाताल स्थान से वीर्य को आकाश मे चढाना–ऊर्ध्व रेता होना । मन की चंचलतारूपी सर्पिणी को प्राणायाम की साधना द्वारा समाप्त करना, सतगुरु के उपदेशानुसार पकड़ मे न आने वाले इन्द्रियातीत चेतन तत्व की स्वानुभूति करना, नित्यानित्य विवेक रूपी चक्र से काल पर विजय पाना ।

आत्मअभ्यास जोगग्रन्थ

के भिखारी हैं।[1] इस प्रसंग में अन्यत्र ब्रह्मा विष्णु, महेश को बाजारू तथा शेष–शारदा को भाँटिन और भाँट भी कहा गया है।[2] फिर भी जहाँ पर गोबिन्द साहब ने 'अवतार अनन्त भरे भगवन्त [illegible]पानाथ सतन के हित स्वामी' (हस्त. वाणी, पृ. 75) अथवा 'शख [illegible] पद्म विराजै सोभा अगम–अपार' (वही, पृ. 51) जैसी अभिव्यक्तियाँ की हैं। वहाँ उनके ब्रह्म–निरूपण पर सगु[illegible]सना का प्रभाव परिलक्षित होता है।

जो भी हो गोबिन्द साहब 'विज्ञान ब्रह्म' के बिना गति नहीं मानते।[3] उन्होंने परम सत्य का साक्षात्कार कराने वाला सतगुरु को बताया है।[4] उनके अनुसार सन्त और गुरु के प्रताप से भ्रम का नाश हो जाता है।[5] गुरु के उपदेशों को पढ़ने–सुनने से समस्त क्लेशों का अन्त हो जाता है।[6] गोबिन्द साहब ने गुरु प्रताप और साधु–संगीत से 'योग युक्ति' का अनुसरण करते हुए प्रियतम राम को हेरने की सलाह दी है–

री सजनी पिया हेरो भवनवाँ।
गुरु परताप साधु की संगति जोग युक्ति लै गहो भवनवाँ॥
इंगला–पिंगला दोउ सुद्ध करि उलटि उर्ध करु गगन गवनवाँ॥
बाजत अनहद मधुर वहाँ सुनि शब्द सोइ बिना सरवनवाँ॥
सुनत–सुनत मन अरुझि रहो है झलकि परै प्रभु बिना नयनवाँ।
जन 'गोबिन्द', पिया लखि पायो, मिटै तासु भय आवा गवनवाँ॥[7]

गोबिन्द साहब ने अपनी वाणी में योग साधना का क्रमबद्ध वर्णन तो नहीं किया है किन्तु

---

1. ब्रह्मा विष्णु महेस सकल सुर, वही द्वार के भिखारी। हस्त. वाणी छं. 10
2. ब्रह्मा विष्णु महेस बजारू, शेष सारदा भाटिन भाट। – वही, पृ. 54
3. विज्ञान ब्रह्म बिनु गति नहीं, देखा बूझि विचार। –हस्तलिखित वाणी, पृ. 108
4. (क) सतगुरु मिलै सत्य पहिचानै। –पहाड़ा, छन्द 2
5. (ख) जन गोविन्द गुरु राम मिलाया। – हस्तलिखित वाणी, पृ. 94
6. पढ़ै सुनै गुनि गन रहै सतगुरु का उपदेस।
   जन गोविन्द साँची कहै छूटै सकल कलेस॥ सत्यसार, दोहा सं. 4
7. हस्तलिखित वाणी, पृ. 8

Ayurvedic ZANDU Cough Syrup Works from the first dose

04:56
2015.493941.Madhyak...

पन्थ से है। जान पड़ता है कि कबीर के वंश में भी यह नाथपन्थी संस्कार पूरी मात्रा में थे। आगे चलकर वे कहते हैं—कबीरदास जिस वंश में पालित हुए थे उसमें योग मत का काफी प्रचार था। उनका पालन-पोषण योग मत के वातावरण में हुआ था। इसीलिए उनकी उक्तियों में, भाषा पर तथा तर्क शैली में उस मत का प्रभाव रह गया है। पर इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि स्वयं कबीरदास योग-मत के उपासक थे।"[1] कबीर के पूर्ववर्ती नामदेव की कविता में भी हमें नाथपन्थी साधना का उल्लेख मिलता है। नाथपन्थियों की हठयोग की साधना—जिसका प्रभाव सन्त-साहित्य की साधना पद्धति पर देखा जाता है—का विस्तृत विवेचन हम 'सन्त साहित्य की धार्मिक पृष्ठभूमि' में कर चुके हैं तथा आगे चलकर भी हमें इस पर विचार करने का अवसर मिलेगा। यहाँ विवेच्य इतना ही है कि वारकरियों एवं सन्तों पर नाथपन्थीय साधना का प्रभाव किस प्रकार पड़ा और वह उनमें किस रूप में विद्यमान है। नामदेव के प्रस्तुत पद में वेद, पुराण और शास्त्रों के प्रति नाथपन्थियों की उपेक्षा-भावना, अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनहद-[illegible] में नाद-श्रवण, तीनों नाड़ियाँ, चन्द्र-सूर्य, सह[illegible] ज्याति और शून्य में सामने का स्पष्ट [illegible]ख हुआ है—

> [illegible]द पुरान सासत्र अनन्ता, गीत कवित्त न गावऊ[illegible]।
> अखण्ड मण्डल, निरंकार महि, अनहद बेनु बजाऊगो॥
> बैरागी रामहि गावऊगो।
> सबदि अतीत अनाहदि राता, आकुल के घरि जाऊगो।
> इड़ा पिंगला अठरु सुखमना, पऊनै बाँधि रहाऊगो॥
> चन्दु सूरजु, दुइ समकरि राखऊ, ब्रह्म ज्योति मिलि जाऊगो।
> नामा कहै चितु हरि सिऊर, राता सुन्नहि सुन्न समाऊगो॥[2]
>
> \+ \+ \+

[1] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—कबीर, पृष्ठ २२।

[2] आचार्य विनयमोहन शर्मा—हिन्दी को मराठी सन्तों की देन : नामदेव के हिन्दी पद, पृष्ठ २५२।३१।

> जह झिलमिल कारु दिसन्ता। तह अनहद सबद बजन्ता॥
> जोती जोति समानी। मैं गुर परसादी जानी॥
> जह अनहद सूर उजारा। तह दीपक जलै छीया॥
> गुर परसादी जानिआ। जनु नामा सहज समानिआ॥[1]
>
> \+ \+ \+

गगन-मण्डल की चर्चा एवं अनहद नाद के मधुर ध्वनि की अनु

> अड़मड़िया मंदलु बाजै, बिनु सावण अनहद गाजै।

ज्यों गनती साधन गनीं बिनु धन का परमान।'

वे 'मूलद्वार' को संभालने का संकेत करते हैं। यह संकेत 'कुण्डली योग' का है। ज्ञानार्णव तंत्र के अनुसार—

'मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटि समप्रभाम्।
सूर्य कोटि प्रतीकाशां चन्द्रकोटि प्रभां प्रिये।'' —ज्ञानार्णव तंत्र

घेरण्डसंहिता के अनुसार—''मूलाधार आत्मशक्तिः कुण्डली पर देवता।
शयिता भुजगाकारा सार्धत्रिवलयान्विता॥'' (तृ० उपदेश ४४)

'कुण्डलनी' शब्द की व्याख्या ''कुण्डले अस्या स्तः इति कुण्डलिनी' की जाती है। 'कुण्डले' शब्द 'कुण्डल' के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

''मूल शोरि मनु लाइयाँ बन्द धरनि माँ दीन
त्रकुटी तर वर भेटिया मीता भा लै लीन।''

मूल के शोधन से ही कमल विकसित होता है। चक्रो का भेदन होता है। संत मीता के अनुसार—

'कंवल बिगसै मूल सोधे जीत पाँचों नारि
राम या विधि पाइहै नल करम कागद फारि।'

मीता के अनुसार द्वादश कवल चक्र में जीव का निवास है। और अष्ट कंमल चक्र में ब्रह्म का विलास है। इन दोनों का एकाकार ही जीव ब्रह्म का एकाकार है—

''द्वादस कँवल जीव का बासा
अष्ट कँवल दल ब्रह्म बिलासा
जीव ब्रह्म का एकुइ करई
कहि मीता सो प्रानी तरई।''

मूल बन्ध भी मुद्रा बन्ध के अन्तंगत साधना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण रहा है। मीता भी मूल बन्ध को संभालने का संकेत करते हैं। किन्तु वे मुद्रा बन्ध को अपनी साधना का लक्ष्य नहीं मानते यदि मुद्रा बन्ध मात्र बाह्याचार की वस्तु हो जाय।

मूल द्वार की साधना ही जोग जुगति का प्रथम सोपान है—'बैशाखै बसि मूल दुआरा जोग जुगति का पंथ संभारा।' चन्द्रदासकृत शिव सारंगाध्यावली (पृ० ३२) में मूल बन्ध साधना का वर्णन इस प्रकार है—

''मूल द्वार संभार कर बाम चरण धरि धीर
दक्षिण चरन सो राखिये इन्द्रिय विकट शरीर।''

साधना के अर्न्तगत ५ तत्त्वों और २५ लिप्साओं को जीतने का बार-बार संकेत किया है—

'पाँच पचीसों को जो बाँधे
ताको कहिये ज्ञानी।'

पाँच से पंच ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, रसना, त्वक) और पचीस लिप्सायें (पाँच तत्वों से मिश्रित २५ मानसिक और शारीरिक विकार आकाश से काम, क्रोध, लोभ. मोह, भय, (५) अग्नि से क्षुधा, तृषा आलस्य निद्रा मैथुन (५) वायु से चलन, बलन, धावन, पसारन, संकोचन, (५) जल से लार, खून, पसीना, मूत्र और लिंग (५) पृथ्वी से हाड़, मांस, त्वचा, नाड़ी रोम (५)=२५ लिप्सायें। मीता ने २५ लिप्साओं के नाम भिन्न प्रकार से बताये हैं।

संख्यात्मक शैली में मीता ने इन्हीं पंच तत्त्वों को वशवर्ती बनाने का संकेत किया है। तन का शोधन मीता की साधना का आवश्यक अंग है—

'अलख जगाउ जगाउ बहुरिया
तन सोधे सबु कारज सरिया।'

मन ही साधना ...

'मनु कर जोगि... मनु सन्यासी
मनु कर भगत मनुइ बैरागी
मनु कर संतहि मनहि फकीरा

पथ्यापथ्यविषयकः आहारप्रकाराः

ग्रन्थनाम	पथ्याहारः	अपथ्याहारः
हठयोगप्रदीपिका	सुस्निग्ध-मधुर-शिवसम्प्रीत्यै मिताहाराः।	कट्व-आम्ल-तीक्ष्ण-लवण-उष्ण-हरितशाक-सौवीर-तैल-तिल-सर्षप-मद्य-मत्स्य-अजादिमांस-दधि-तक्र-कुलत्थ-कोल-पिण्याक-हिङ्गु-लशुनादयः।
हठरत्नावली	गोधूम-तण्डुल-यव-दुग्ध-घृत-माण्ड-नवनीत-शर्करा-मधु-पटोल-पञ्चशाक-मुद्ग-वर्षाजलाद्य।	तक्र-दधि-कोद्रव-लशुन-कुलत्थ-तीक्ष्ण-लवण-उष्ण-हरितशाक-सर्षप-मद्य-मांसादयः।
घेरण्डसंहिता	शाल्यन्न-यवपिण्ड-गोधूम-माष-चणक-पटोल-पनस-कक्कोल-शुकाशाक-द्राढिक-कर्कट-रम्भा-डुम्बर-कण्टकण्टक-आमरम्भ-बालरम्भ-रम्भादण्ड-मूलक-वार्ताकी-बालशाक-कालशाक-पटोल-पत्र-शुद्धसुमधुरस्निग्धसुरसउदरार्धविवर्जित-मिताहाराः।	कट्व-आम्ल-लवण-तिक्त-भृष्ट-दधि-तक्र-शाकोत्कट-मद्य-ताल-कुलत्थ-मसूर-पाण्डु-कूष्माण्ड-शाकदण्ड-तुम्बि-कोल-कपित्थ-कण्टबिल्व-पलाश-कदम्ब-जम्बीर-निम्ब-लकुच-लशुन-कामरङ्ग-पियाल-हिङ्गु-शाल्मली-केमुक-नवनीत-घृत-क्षीर-गुड-रम्भा-नारिकेल-दाडिम-द्राक्षा-लवली-धात्री-अम्लरसाद्य।
शिवसंहिता	घृत-क्षीर-मिष्टान्न-चूर्णवर्जितताम्बूल-कर्पूराणि च।	आम्ल-रूक्ष-तीक्ष्ण-लवण-सार्षप-कटवश्च।

बहुनोक्तेन बहुप्रशंसनेन किम् ? न किमपीत्यर्थः । [illegible]लं मृत्युं लीलया क्रीडयाऽनायासेनैव जयत्यभिभवतीत्यर्थः ॥ १२० ॥

ब्रह्मचर्यरतस्यैव नित्यं हितमिताशिनः ।
मण्डलाद् दृश्यते सिद्धिः कुण्डल्यभ्यासयोगिनः ॥

ब्रह्मचर्येति । ब्रह्मचर्यं श्रोत्रादिभिः सहोपस्थसंयमस्तस्मिन् रतस्य तत्परस्य नित्यं सर्वदा हितं पथ्यं मितं चतुर्थांश-वर्जितमश्नातीति तस्य कुण्डल्यभ्यासः शक्तिचालनाभ्यासः स एव योगः सोऽस्यास्तीति स तथा, तस्य मण्डलाच्चत्वारिं-शद्दिनात्मकादनन्तरं सिद्धिः प्राणायामसिद्धिर्दृश्यते । 'नासा-दक्षिणमार्गवाहिपवनात्प्राणोऽतिदीर्घीकृतश्चन्द्राभः परिपूरितामृत-

तनुः प्राग्घण्टिकायास्ततः । छित्त्वा कालविशालवह्निवशगं भ्रूरन्ध्रनाडीगतं तत्कायं कुरुते पुनर्नवतरं छिन्नं द्रुमं स्कन्धवत्' ॥ १२१ ॥

कुण्डलीं चालयित्वा तु भस्त्रां कुर्याद्विशेषतः ।
एवम[illegible]तो नित्यं यमिनो यमभीः [illegible]तः ॥ १२२ ॥

कुण्डलीमिति । कुण्डलीं चालयित्वा शक्तिचालनं कृत्वा । अथानन्तरमेव भस्त्रां भस्त्राख्यं कुम्भकं कुर्यात । नित्यं

07:22

2015.484241.Sri-dadu...

दुई दूरि दरोग न होइ, मालिक महल मैं देखै सोइ ॥ ३ ॥
अरि ये पंच सोधि सब मारै, तब दादू देखै निकटि विचारै ॥ ४ ॥

४०४

राम रमत है देषै न कोई, जो देखै सो पावन होई ॥ टेक ॥
बाहरि भीतरि नेड़ा न दूरि, स्वामी सकल रह्या भरपूरि ॥ १ ॥
जहं देखौं तहं दूसर नांहि, सब घटि राम समाना मांहि ॥ २ ॥
जहां जाऊं तहं सोई साथ, पूरि रह्या हरि त्रिभुवन नाथ ॥ ३ ॥
दादू हरि देखैं सुष होइ, निस दिन निरखन दीजै मोहि ॥ ४ ॥

४०५—अध्यात्म

मन पवन ले उनमन रहै, अगम निगम मूल सो लहै ॥ टेक ॥
पंच बाइ जे सहजि समावै, ससिहर के घरि आणें सूर ।
सीतल सदा मिलै सुखदाई, अनहद शब्द बजावै तूर ॥ १ ॥
बंक नालि सदा रस पीवै, तब यहु मनवा कहीं न जाइ ।
बिगसै कँवल प्रेम जब उपजै, ब्रह्म जीवकी करै सहाइ ॥ २ ॥
बैसि गुफा मैं जोति विचारै, तब तेहिं सूझै त्रिभुवन राइ ।
अंतरि आप मिलै अविनासी, पद आनंद काल नहिं खाइ ॥ ३ ॥

मिटा । महल = अन्तःकरण में । दूरि=मंदिर, तीर्थ, वन, गुफा, मूर्ति आदि में
हिरस = चाह । दरोग = झूठ, द्वेष ।
४०५—अगम निगम = वेद स्मृति निरूपित । पंचवाइ = पांच विषय प्रवृत्ति । ससिहर= इड़ा, चन्द्रमा के घर । आणे=लावे । सूर = पिंगला, सूर्य के घर । बंकनालि= तालु मूल से । बिगसै = खिलै, प्रकाश हो । कंवल=हृदय कमल । बैसि गुफा= हृदय गुहा में वृत्ति स्थिर कर । सूझै=प्रतीत हो, दीखे ।

07:08

2013.486745.Goraksh-...

123/137

[illegible] रामप्रकाश अलखित [illegible] जाने मुक्त मझारा ।
रामप्रकाश को लखता गोरख, और न ज[illegible] हारा ।३।
रामप्रकाश गोरख गति चीन्ही, भया गोरख अव[illegible]रा ।
गोरख मो में मैं गोरख में, आवागमन विडारा ।४।

राग आशावरी (२४)

साधो भाई ! या विध योग विचारा ।
शील शौच एकान्त धारणा, संयम नियम अचारा ।टेर।
गुरु श्रद्धा कर मुक्ति लाधी, बांधी पांच पसारा ।
पूरक ओहं सो कुंभक धीरज, रेचक पवन उतारा ।१।
इड़ा पलट के पिंगला लाया, सुषुमण भेद अठारा ।
पिंगला उलट इडा सम बैठी, क्रिया स्वास गम धारा ।२।
पल विपल त्राटक धुन साध्या, ररंकार रट प्यारा ।
युक्त त्रिवेणी मुक्त त्रिवेणी, बंध त्रिवेणी सारा ।३।

युक्त बंक से उतरया सीधा, मुक्त बंक चढ़ झारा ।
मुद्रा अमृत अखंडित धारा, पी अमृत निरधारा ।४।
नाभी नागनि मुख पलटाया, दशवें में ररंकारा ।
भंवरा गरज्या गगन मंडल में, जीव शीव इकसारा ।५।
जनम मरण का संशय काटया, मन पवना गम हारा ।
अपना आप निजानन्द परस्या, रामप्रकाश निज न्यारा ।६।

राग आशावरी (२५)

साधो भाई ! योग युक्ति कर शोधा ।
साधन धारण दृढ़ कर धारी, उपज्या जीवन बोधा ।टेर।
मन पवना का संग कर सुरता, त्रिकुटी महल में रोधा ।
[illegible]-साधना शस्त्र साध्या, काम मार मद योधा ।१।
महा प्रब[illegible] मन वश करने में, गज कठिन नहीं गोधा ।
शब्द अंकुश अभ्यास [illegible] सोधा ।२।
भया निशंका निर्भय डंका, लागा गमना पोधा ।
फब कर बंका राव न रंका, पी रस मस्ता ओधा ।३।
रामप्रकाश पहुंच्या घर आदू योग योग में सोधा ।
आदि आदि अनादि अपना, द्वंत भ्रम अवरोधा ।४।

06:23

2015.400428.Santo-Ka

के आघात से जैसे गेंद चचल हो उठता है प्राणापान की गति से जीव उसी तरह चंचल रहता है पर यदि प्राण सुषुम्ना में प्रवेश कर जाएँ तो वे स्थिर हो जाते हैं।[1] उद्बुद्ध कुण्डलिनी इसी मार्ग से होकर षट्चक्रों को भेदती हुई सहस्रारस्थ परमशिव से सामरस्य स्थापित करती है।

१२१—सन्तों ने अपनी साखियों, सबदियों, पदों आदि में जिस सुखमनी या सुखमनि नारी का [illegible] किया है वह मूलतः योग की उक्त सुषुम्[illegible] नाड़ी का ही अर्थ देती है। उनके अधिकांश [illegible]योग और यदि आग्रह[illegible]क समझा जाय तो सारे प्रयोग इसी अर्थ में हुए हैं। [illegible]दाहरण के [illegible] हम दो एक पदों को ले सकते हैं।

(१) सतों धागा टूटा गगन बिनसि गया सबद जु कहा समाई।
एहि ससा मोहिं निस दिन व्यापे कोई न कहे समझाई॥
नहीं ब्रह्मण्ड पिंड पुनि नाहीं पचतत्त भी नाहीं।
इला पिंगला सुखमनि नाहीं एक गुण कहाँ समाहीं॥[2]—कबीर

(२) ऐसा ध्यान धरो नरो बनवारी, मन पवन दे सुखमन नारी।
सो जप जपो जो बहुर न जपना, सो तप तपो जो बहुरि न तपना॥[3]

(३) बक नाळ जब सहजि समाय। नानक पेट दिया नाड़ी की जाय।
इड़ा पिंगळा नाड़ी कीआ। सुषमन के घर जाय समीआ॥[4]

१—योगशिखोपनिषत् ३५–५२, वही, पृ० ३७२।
२—कबीर ग्रन्थावली पद ११३, पृ० ६१–६७।
३—रैदास जी की बानी, पृ० २६।
४—श्री प्राण संगली, पूर्वार्द्ध प्रथम भाग, पृ० ६८।

उक्त उद्धरणो में सुखनि और सुखमनि नारी के प्रयोग स्पष्टतः सुष[illegible] के अर्थ में ही हुए हैं।

१२२—योग में सुषुम्ना को शून्य पदवी कहा गया है और [illegible]ड़ा पिंगला की अपेक्षा [illegible] सूक्ष्म माना गया है। सतों ने इस अर्थ [illegible] द्योतन के लिए इसके 'सूषिम' रूप का प्रयोग [illegible] और जैसा हम अभी देखेंगे ध्वनिसाम्य यदि किसी मिलते-जुलते शब्द के अर्थ की सभावना पैदा करता हो तो सन्त किसी शब्द में वह अर्थ भर देना आवश्यक-सा मानते हैं। अतः सूषिम से एक ओर जहाँ उन्होंने 'सूक्ष्म' का अर्थद्योतन कराना चाहा है वहीं 'सुखिम' में सुखपूर्ण जैसे अर्थ की छौंक भी देनी चाही है। हम अभी-अभी देख आए हैं कि योग सुषुम्ना को अक्षय सुख का भाण्डार मानता है अतः सुखिम से सतों द्वारा निकाला गया यह अर्थ उस दृष्टि से पर्याप्त सगत भी है और वक्तव्य की दृष्टि से पुराना भी। लेकिन एक बात सतों की एकदम नई है कि योग में सुषुम्ना को

सत् साधन मूल

जत सत्, त्याग चित रहे समाए। सत् तत बिमल घट अन्तर पाये।।
सत् साधन का मूल है [illegible] जपे पावे विसराम।।
नाम ध्यान नाम ही योग। अनहद नाद नाम का [illegible]।।
मूल नाम सतगुरू बतलाया। अगम निगम की गम [illegible] पाया।।

कुछ विधि संकेत

प्रथमे आसन सहजे बांधे। इन्द्री इस्थिर मनुआ खांडे।।
मुख नयन जीभा को बांधे। साचा नाम हिये में सांधे।।
धीरे-धीरे पवन को पीवे। शुद्ध ध्यान में नाम जपीवे।।
हकार साकार को एह विध मिलाए। बांधे पवन पश्चिम घर जाए।।
मूल द्वार में बन्ध लगाए। उलट पवन सत नाम कमाए।।
स्वास सुरत मिल किया हलोल। नाभी अस्थान में पाई कलोल।।
ईड़ा पिंगला सुखमन नाली। तीनों मिलें ऊपर तिरनाली।।
सुखमन नाली में पवन भरीजे। उमगे नाद माया गढ़ छीजे।।
स्वास सुरत को पल पल जोड़े। अगम शबद का चढ़े सरूरे।।
सुखमन खुली शबद घर जागा। साध सीख पाई बड़भागा।।
चढ़े आकास खोल बंकनी नाली। गरजे शबद भीतर तिरनाली।।
आसन धरती सुरत आकासे, लखे ज्ञान निर्वानी।
उपजे शब्द जोत दरसावे, सुरत भई अकलानी।।
ऊपर चढ़े शिखर को जाए। केवल नाद संग प्रीत कमाए।।
सुन्न गुफा में करे ध्यान। अनहद गरजे सहज की तान।।
सुरत समाई शबद में, चढ़ी सुन्न के देश।।
"**मंगत**" नज़री आया, आद पुरख जगदीश।।

(ग्रन्थ समता प्रकाश से)

7. विश्व शान्ति सन्देश

जाता है; पर उसके द्वारा ये समस्त बातें इसी कारण होती हैं कि वह योगाभ्यासको अपनी और सब बातोंसे आगे रखता और महत्त्व देता है।

हे धनंजय! मलद्वार तथा मूत्रद्वारके बीचवाली सीवनको एड़ीसे भलीभाँति दबाकर वह मूलबन्ध बाँधता है। वह अधोभागको संकुचित करके तथा मलस्थानके मूलबन्ध नाभिचक्रके उड्डियान-बन्ध तथा कण्ठस्थानके जालन्धर-बन्ध—इन तीनोंकी साधना करके भिन्न-भिन्न वायुओंको एक समान कर लेता है। फिर कुंडलिनीको जागृत कर तथा मध्यमा यानी सुषुम्नाका मार्ग खुला और विस्तृत करके तथा आधारचक्रसे अग्निचक्रपर्यन्त समस्त चक्रोंको भेदकर अन्तवाले सातवें चक्रका भेदन करता है जिससे ब्रह्मरन्ध्रके सहस्रदल कमलसे अमृत-वृष्टि होने लगती है और उसका प्रवाह मलस्थानके मूल-बन्धतक पहुँचा देता है। फिर ब्रह्मरन्ध्ररूपी कैलाशगिरिपर नृत्य करनेवाले चैतन्यरूपी भैरवके खप्परमें मन तथा प्राणवायुकी खिचड़ी भर देता है और इस प्रकार सिद्ध किये हुए योगकी बलिष्ठ सेना अपने आगेकी ओर खड़ा कर तथा पीछेकी ओर अपने ध्यानका दुर्ग खूब मजबूत करता है। ध्यान तथा योग—इन दोनोंको आत्मतत्त्वरूपी ज्ञानमें निर्विघ्नतापूर्वक स्थिर रखनेके लिये वह पहलेसे ही वैराग्य-सदृश मित्रके संग मित्रता स्थापित कर लेता है। ऊपर जितने स्थान बताये गये हैं, उन स्थानोंको पार करनेमें यह वैराग्य-सरीखा मित्र उसका बहुत सहयोग करता है तथा बराबर उसके साथ ही रहता है। जितनी जगह तक दृष्टिकी पहुँच है, उतनी जगहतक यदि दृष्टि तथा दीपकका वियोग न हो तो फिर इष्ट वस्तुका दिखायी देनेमें भला किस चीजका [illegible] हो सकता है? ठीक इसी प्रकार जिस समय जीवको मुमुक्षता मिल जाती है, उस समय उसकी अन्तःकरण-वृत्ति ब्रह्मतत्त्वमें समा जाती है और यदि उस स्थितितक उसका वैराग्य कायम रहे, तो फिर ब्रह्मके संग होनेवाली उसकी एकता कहाँसे भंग हो सकती है? आशय यह है कि जिस सौभाग्यशाली व्यक्तिसे वैराग्ययुक्त योगाभ्यास सध जाता है, वही व्यक्ति आत्मप्राप्तिके योग्य हो जाता है। वैराग्यरूपी अभेद्य कवच धारण कर वह राजयोगरूपी अश्वपर सवारी करता है तथा मार्गमें जो छोटे-बड़े विघ्न उसे दृष्टिगत होते हैं, उनके टुकड़े करनेवाले ध्यानरूपी तीक्ष्ण धारवाली तलवार वह अपने विवेकरूपी

मुट्ठीमें कसकर पकड़ लेता है। इस प्रकार जैसे ...

अथवा लोभी अपने धनको अपने नेत्रोंसे ओझल नहीं होने देता अथवा जैसे माता अपने इकलौते पुत्रको सदा अपने कलेजेसे लगाये रहती है, अथवा जैसे मधुमक्खीको सदा मधुका लोभ बना रहता है, वैसे ही हे अर्जुन! जो अपने अन्तःकरणका अनवरत खूब जी लगाकर यत्न करता है और उसको इन्द्रियोंके द्वारपर पैर भी नहीं रखने देता, जो इस परिकल्पनासे

सदा भयभीत रहता है कि यदि मेरे इस बालकका नाम भी कामरूपी हउवेके श्रवणेन्द्रियमें प्रवेश कर जायगा अथवा आशारूपी डाकिनीकी नजर इसे लग जायगी तो इसकी जान ही निकल जायगी अथवा जैसे अपनी व्यभिचारिणी स्त्रीको जबरदस्त पति सदा अपने अंकुशमें रखता है, वैसे ही जो अपनी प्रवृत्तियोंको अपने [illegible] जो उस समय भी [illegible] निग्रहमें रखता है, जिस समय [illegible] देह अत्यन्त कृश हो जाता है और प्राण जानेकी नौबत आ जाती है, जो अपने मनके प्रमुख द्वारपर अथवा वृत्तिके पहरेपर अपने शरीररूपी दुर्गमें शम-दमको निरन्तर पहरेदारोंकी भाँति नियुक्त और जाग्रत् रखता है, जो मूलाधार, मणिपूर या नाभिस्थान और विशुद्ध या कण्ठस्थानके तीन चक्रोंमें वज्र, उड्डीयान और जालन्धर नामक तीनों बन्धोंकी गस्त बैठाकर अपने चित्तको इडा और पिंगला—इन दोनों नाड़ियोंकी सन्धिमें प्रविष्ट करता है, समाधिकी शय्यापर अपने ध्यानको अच्छी तरह सुलाये रखता है और जिसका चित्त चैतन्यके साथ एकाकार होकर सदा उसीमें रमण करता रहता है, उसके बारेमें तुम यह अच्छी तरह जान लो कि उसने अपने अन्तःकरणका पूर्णतया निग्रह कर लिया है। अन्तःकरणका इस प्रकारका निग्रह मानो ज्ञानकी विजय ही है। जिस व्यक्तिकी आज्ञा उसका अन्तःकरण सम्मानपूर्वक शिरोधार्य करता है, उस व्यक्तिको मूर्तिमान् ज्ञान ही जानना चाहिये। (१८४—५११)

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव [illegible]
जन्म[illegible]दोषानुदर्शनम् ॥८॥

जिस व्यक्तिके मनमें विषयोंके प्रति पूर्ण विरक्ति बनी रहती है, वही ज्ञानी होता है। जैसे वमन किये हुए अन्नको देखकर किसीकी जिह्वासे लार नहीं टपकती अथवा जैसे किसी मृतकको गले लगानेके लिये कोई उद्यत नहीं होता; विषको जैसे कोई नहीं खाता अथवा जलते हुए घरमें कोई प्रवेश नहीं करता, व्याघ्रकी गुफामें कोई अपना डेरा नहीं डालता, अथवा गले हुए लोहेके खौलते हुए रसमें कोई नहीं कूदता, तथा अजगरको तकिया बनाकर कोई उसपर नहीं सोता, वैसे ही विषयकी चर्चाएँ जिसे

16:16

2015.480974.Sat-mat-...

132/336

कम-से-कम [illegible] प्राणायाम का अभ्यास प्रारंभ में प्रत्येक साधक को करना प[illegible] है। प्राणायाम के मुख्य तीन प्रकार हैं—पूरक, अर्थात् साँस अन्दर लेना; कुम्भक, अर्थात् [illegible] को अन्दर रोककर रखना; रेचक, अर्थात् साँस को बाहर फेंकना। प्राणायाम से योग अर्थात् चित्त-वृत्ति-निरोध में सहायता मिलती है।

जिस ध्यान-योग, अथवा किन्हीं-किन्हीं संतो के मत में विहंगम-योग, का वर्णन निर्गुण सन्त-साहित्य में सामान्यतः पाया जाता है, उसका मुख्य संबंध कंठ के ऊपर के हिस्से से है। योग की इस क्रिया में साधक की 'सुरति' या ध्यान-दृष्टि नेत्र के 'अष्ट-दल-कमल' में अवस्थित 'सूची-द्वार' होकर 'ब्रह्माण्ड' में प्रवेश करती है और इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा की 'त्रिवेणी' में मज्जन करती हुई 'सहस्रदल' में विचरण करती है; फिर 'बंकनाल' होकर ऊपर चढ़ती है और 'भँवर गुफा' में प्रवेश करती है। इस गुफा में प्रवेश करते ही आत्मा ऐसी दिव्यदृष्टि प्राप्त करता है कि एक-से-एक अनोखी सुगन्धि और अद्‌भुत छवि का अनुभव तथा साक्षात्कार करता है। यहीं अनाहत नाद गुंजायमान रहता है, जो 'शब्द-ब्रह्म' है; यहीं वह 'अमरपुरी' अथवा 'अकह लोक' है, जहाँ आत्मा परमात्मा में मिलकर अद्वैत हो जाता है, आत्मा का यही मोक्ष है।

किनाराम कहते हैं कि इडा, पिंगला और सुषुम्णा की शुद्धि करनी चाहिए तथा उन्मुनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। 'सुरति' और 'निरति' में मग्न होकर जीव परमानन्द को प्राप्त होता है।[१८] योगेश्वराचार्य कहते हैं कि इडा और पिंगला का शोधन करके सुषुम्णा की 'डगर' पकड़नी चाहिए तथा 'पाँच' को मारकर, 'पचीस' को वश कर, 'नौ' की नगरी को जीत लेना चाहिए। भिनकराम कहते हैं कि इडा, पिंगला नाम की दो नदियाँ बहती हैं[१९], जिनमें सुन्दर जल की धारा प्रवाहित है।[२०] टेकमनराम भी 'इंगला' और 'पिंगला' के शोधन तथा 'त्रिवेणी-संगम' के स्नान का निर्देश देते हैं।[२१] रामस्वरूप दास भी इन तीनो नाड़ियो की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि इनके अभ्यास से मन के 'बैठने' में देरी नहीं लगती।[२२] इडादि तीनो नाड़ियो के संगम-स्थल को 'त्रिकुटी' या त्रिवेणी कहते हैं जिसकी चर्चा संतो ने बार-बार की है। दरसन राम कहते हैं कि बंकनाल की उल्टी धार बहती है, रसना 'अजपा' की माला जपती है, त्रिकुटी महल में सुग्गा बोलता है, और साधक का मन हर्षित होता है।[२३] रामटहल राम उपदेश देते हैं कि 'ऐसा ध्यान लगाना साधो, ऐसा ध्यान लगाना' कि मूल द्वार को साफ करके गगन महल में जा 'धमको' और 'त्रिकुटी-महल' में बैठकर 'अपार ज्योति' देखो।[२४]

अघोरमत के मुख्य प्रवर्तक किनाराम लिखते हैं कि इडा, चन्द्रमा में और पिंगला, सूर्य के ग्रह में निवास करते हैं और सुषुम्णा दोनो के मध्य में। जब चन्द्र और सूर्य का सहज और समान रूप से उदय हो जाता है तो शून्य में शब्द का प्रकाश होता है, मन में 'भजर' झरने लगता है और सुख-रूपी अमृत का आस्वादन होता है।[२५]

यहाँ एक तालिका [illegible] रचित 'स्वरोदय' के आधार पर है—

१	२	३	४	५	६	७	८	९

19:24

हैं, वैसे ही यह नासिका भी कफसे भरी रहेगी। ताम्बूलके सेवनसे जिस मुखके होंठोंको मैं रँगता हूँ, हँसते समय जिसमेंके दाँत दिखलाता हूँ और जिससे मैं सुन्दर-सुन्दर शब्दोंको बोलता हूँ, उसी मुखसे कलको लार प्रवाहित होने लगेगा और दाँतोंसमेत दाढ़ें भी गिर जायँगी। जैसे ऋणके

बोझसे दबे हुए किसान अथवा वर्षाके कारण पशु चुपचाप दबे हुए पड़े रहते हैं और हिलनेका नामतक नहीं लेते, वैसे ही लाख प्रयत्न करनेपर भी यह जिह्वा हिल-डुल न सकेगी। जैसे सूखी हुई घासके पूले वायुके झोंकोंसे जमीनपर इधर-उधर उड़ते रहते हैं, ठीक वैसी ही दुर्दशा मुँहके अन्दर स्थित दाढ़ोंकी होगी। जैसे आकाशकी वृष्टिके कारण पहाड़की चोटियोंपरसे जलके झरने बहते रहते हैं, वैसे ही मेरे मुँहकी खिड़कीमेंसे लारकी नदियाँ प्रवाहित होने लगेंगी। वाणी अवरुद्ध हो जायगी, श्रवणेन्द्रियाँ बन्द हो जायँगी और सारा शरीर बूढ़े बन्दरकी भाँति दिखायी देने लगेगा। जैसे घास-फूसका बनाया हुआ और खेतमें खड़ा किया हुआ पुतला हवाके झोंकोंसे अनवरत इधर-उधर हिलता-डुलता रहता है, वैसे ही मेरा यह शरीर भी थर-थर काँपने लगेगा। कदम लड़खड़ायेंगे, हाथ बेकाम हो जायँगे और तब मानो सौन्दर्यका स्वाँग खड़ा होकर नृत्य करने लगेगा। मल और मूत्रके द्वारोंमें निरोधकी शक्ति नहीं रह जायगी और समस्त लोग यही मनाने लगेंगे कि मैं किसी तरह मर जाऊँ जिससे उनका पीछा छूटे। सम्पूर्ण जगत् मेरी ओर देखकर थूकने लगेगा, मृत्युसे बारम्बार कहना पड़ेगा कि तू किसी तरह जल्दीसे आकर मुझे उठा ले जा और मेरे सारे हितैषी भी मुझसे ऊब जायँगे स्त्रियाँ मुझे भूत कहकर पुकारेंगी और बच्चे मुझे देखकर भयभीत होकर भाग खड़े होंगे। इस प्रकार मैं सबके लिये घृणाका पात्र बन जाऊँगा। कफका प्राबल्य होनेपर जब मैं खाँसूँगा, तब पड़ोसियोंकी नींद भंग हो जायगी और वह कहने लगेंगे कि यह बुड्ढा अभी न जाने और कितने लोगोंको सतावेगा। इस प्रकार जो व्यक्ति वृद्धावस्थाके इन लक्षणोंका ध्यान युवावस्थामें ही कर लेता है और तब उन सब लक्षणोंसे अपने मनमें घृणा करने लगता है, वही ज्ञानी है। वह यही सोचता है कि अन्ततः शरीरकी दुर्दशा इसी प्रकारकी होगी तथा शारीरिक भोगोंको भोग चुकनेके बाद इस शरीरका नाश हो जायगा, तब आत्मकल्याणके लिये मेरे पास बच ही क्या जायगा? इसीलिये जबतक

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

21:27

जीवबुद्धिका हवन करते हैं। (१४१—१४४)

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

कुछ लोग अपानवायुरूपी अग्निकी ज्वालामें अभ्यासयोगसे प्राणवायुरूपी द्रव्योंका हवन करते हैं। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो प्राणवायुमें अपानवायुकी आहुति देते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो प्राण तथा अपान—इन दोनोंका ही निरोध कर लेते हैं। हे पाण्डुकुँवर! ऐसे योगियोंको प्राणायामी कहते हैं। (१४५-१४६)

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

कुछ ऐसे लोग भी हैं जो वज्र-योग अर्थात् वज्रासनद्वारा मूलबन्धके पद्धतिसे विषयरूपी आहारोंका नियमन करके धैर्यपूर्वक प्राणवायुरूपी अग्निमें समस्त प्राणोंका ही हवन करते हैं अर्थात् प्राणोंसे ही प्राणका लय करते हैं। इस प्रकारका यज्ञ-साधन करके मनके समस्त मलको निकालकर दूर फेंकनेवाले ये सब यज्ञकर्ता मोक्षकी ही कामना करते हैं। जो लोग अज्ञानको जलाकर केवल सहज आत्मस्वरूप ही बचाये रहते हैं, उनमें फिर अग्नि और यज्ञकर्ताका कोई भेद ही नहीं रहता। फिर ऐसी दशामें यज्ञकर्ताका हेतु पूर्ण हो जाता है; यज्ञकी क्रिया भी समाप्त हो जाती है और कर्मोंके सारे बखेड़े ही समाप्त हो जाते हैं। उस समय विचार और हेतुके प्रवेशकी तनिक भी गुंजाइश नहीं रह जाती और द्वैत भावनाका दोष छू भी नहीं सकता यानी द्वैतभावसे लिम्पायमान नहीं होते। (१४७-[illegible])

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

इस प्रकार यज्ञ-विधानका समाप्तिमें जो अविनाशी' अनादि तथा निर्दोष ज्ञान मिलता है उसीका ब्रह्मनिष्ठ लोग 'अहं ब्रह्मास्मि' मन्त्रका जप करते हुए सेवन करते हैं। इस प्रकार जो लोग इस यज्ञ-शेषके अमृतसे सन्तुष्ट होकर अमरता प्राप्त करते हैं, वे अनायास ही ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं; किन्तु जिन लोगोंसे कभी इस आत्मसंयमरूपी अग्निकी सेवा नहीं हो सकती और जो लोग जन्म ले करके भी योगरूपी यज्ञ नहीं करते, उन्हें

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

21:46

[illegible]

होता है, उसे जो लोग [illegible] लेते हैं—(४०—४५)

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥४॥

जो वैराग्यरूपी प्रचण्ड अग्निमें विषयसमूहको भस्म कर देते हैं तथा इन्द्रियोंकी तपी हुई स्थितिमें धैर्यपूर्वक नियन्त्रित रखते हैं और फिर इन्द्रियनिग्रहके बलपर जो लोग अपनी इन्द्रियोंको मोड़कर अपने हृदयरूपी गुफामें बन्द कर रखते हैं, अपना द्वार भलीभाँति बन्द करके और ठीक तरह आसनमुद्राका साधन करके मूल बन्धका किला बाँध लेते हैं, जो आशासे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते हैं, भयका अन्त कर डालते हैं तथा अज्ञान-निद्राका अन्धकार हटा करके उसका नाश कर डालते हैं; जो मूल बन्धकी अग्निकी ज्वालाओंसे शरीरस्थ सप्त धातुओंको भस्म कर व्याधियोंके मस्तकपर षट्-चक्रकी तोपें चलाते और स्फुरित होनेवाली कुण्डलिनीकी तेजस्वी दीपक आधार चक्रपर रखकर उसकी प्रभासे मस्तकपर्यन्त अपना पूरा शरीर देदीप्यमान कर लेते हैं और तब इन्द्रियोंके नव द्वारोंपर निग्रहरूपी अर्गला लगाकर केवल सुषुम्ना नाड़ीकी खिड़की खुली रखते हैं। प्राणवायुकी शक्तिरूपी चामुण्डा देवीके लिये संकल्परूपी मेढ़े काटकर मनरूपी महिषासुरके मुण्डका बलिदान करते हैं, जो चन्द्र (इडा) और सूर्य (पिंगला) नाड़ियोंका मिलाप करके नाद-घोषकी सहायतासे सत्रहवीं पूर्णामृत कलाका जल शीघ्रतासे अपने अधीन कर लेते हैं और तब मध्यमा यानी सुषुम्ना नाड़ीके विवररूपी रास्तेसे चलकर अन्तिम

ब्रह्मरन्ध्रतक जा पहुँचते हैं, सिर्फ इतना ही नहीं अपितु जो मकार यानी सुषुम्नाके विवरकी सीढ़ियाँ चढ़कर तथा महदाकाशको बगलमें दबाकर ब्रह्ममें जा मिलते हैं और इस प्रकार समबुद्धि होकर जो लोग तत्क्षण ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्त करनेके लिये योगका दुर्गम मार्ग अपने अधीन कर लेते हैं और जो अपने मनोभावके बदलेमें निर्गुण, निराकार शून्यस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त कर लेते हैं, हे किरीटी! वही लोग आकर मुझमें मिलते हैं। ऐसा नहीं है कि इसके अलावा उन्हें योग-बलसे कुछ और अधिक प्राप्त होता हो। हाँ, यदि कुछ अधिक प्राप्त होता है, तो वह है सिर्फ कष्ट। (४६– [illegible])

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
[illegible]व्यक्ता हि गतिर्दुःखं देह[illegible]प्यते॥५॥

जो उस नि[illegible] [illegible]त्वको बिना भक्तिके ही साधना करना

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

इस प्रकार एक तथ्य यह [illegible] आया है कि सतो की 'सुरति शब्द योग' की साधना कही–कही योग की क्रियाओ का सहारा भी लेती है। सत राम रूप जी ने निम्नलिखित पद मे इस साधना का खुलासा किया है–

---

19 हरिदास बाणी, पृ. 93, पद–5

20 ग्रथ साहिब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ. 36, दोहा–1

"गगन मण्डल मे अलख जगाव रे।
जब जोगी जानूँ मै तोकूँ, सुन सिखर पर जा मठ छाव रे।
पहले सजम साध जुगत सूँ, प्राण अपसन की सध मिलाव रे।
भूचरी, मुद्रा जासूँ कहिए, कमल कमध पर पव चढाव रे।
चाचरी मुद्रा नैन मझारी, दिष्ट नासिका पै ठहराव रे।
अचरज कौतुक बहु दरसावै, रिद्धि सिद्धि लखि कर ले चाव रे।
खेचरी मुद्रा रसन बढावै, भवर गुफा मै जाय फिराव रे।
अमृत उतरे पीव मगन हो, जोति खुले जहाँ दर्शन पाव रे।
अगोचरी मुद्रा श्रवण बासा, शब्द सुरति की गाँठ लगाव रे।
परम हस अनहद कूँ जानो, अनहद मिल अनहद हो जाव रे।
उन्मनी मुद्रा दशम द्वारे, लगे समाधि सकल बिसराव रे।
सिद्ध साधक दोऊ करनी त्यागे, रहे ना कोई दूँजा भाव रे।
पाँचो मुद्रा ये तुम पहिरो, झूठी मुद्रा खोल बगाव रे।
ज्ञान जटा सिर ऊपर राखो, मुक्ति पथ को मन से धाव रे।
या साधन कूँ कर हित सेती, जीव ब्रह्म की दुई मिटाव रे।
रामरूप चरणदास कहते है, तब जोगेश्वर साँच कहाव रे।[21]

यहाँ सयम धारण करने, प्राणवायु, अपान वायु की सन्धि मिलाने, भूचरी, चाचरी, खेचरी, अगोचरी, उनमनी मुद्राओ का साधन करके सुरति शब्द की गाँठ लगाकर दशम द्वार मे पहुँचने की चर्चा की गई है, साथ ही उपदेश दिया गया है कि झूठी मुद्राओ का त्याग करके ज्ञान की जटा बढाने से ही जीव–ब्रह्म का द्वैत भाव मिटता है। अत यहाँ कुछ हठ [illegible]गियो की तथा नाथ योगियो की यौगिक–क्रियाओ के माध्यम से सुरति शब्द योग की च[illegible] की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सत सुरत शब्द साधना को योग से समन्वित कर रहे है, [illegible]कि दोनो मे काफी अन्तर परिलक्षित होता है। हमारी दृष्टि मे यौगिक–[illegible] या योग 'सुरत श[illegible]' की प्रथम सीढी है।

Binance:
Buy Bitcoin & Crypto
JOIN BINANCE
Not investment advice. All trading carries risk. Only risk capital you can afford to lose.

सद्गुरु कबीर ने 'राम' के प्राप्ति और वाद-विवाद की समाप्ति पर बल देते हुए कहा भी है कि -

"तरूवर रूपी राम है, फल रूपी वैराग।
छाया रूपी साधु है, तजिये वाद-विवाद।।"[115]

संत-मत परम्परा के सभी संतो ने आत्मदर्शन का उपाय योग माना है जिसमें इड़ा पिंगला और सुषम्ना की सहायता से चक्र-भेदन की बात कही गई है। नामदेव, कबीर, रैदास और संत बौआ साहब ने भी हठयोग की शब्दावली को आध्यात्मिक साधना के लिए प्रयुक्त माना है -

"ईड़ा, पिंगला, सुष्मना, नारी तीन विचार।
बायें दाहिने मध्य में, लखे जो तीनों धार।।"[116]

"आसन पदुम लगाय के, मूल बन्ध सम साध।
मेरू दण्ड फेरी करे, सुरति गगन में बाँध।।"[117]

"सदा आप में लीन रह, करि के योगाभ्यास।
आवत देखे काल को, गगन मंडल कर बास।।"[118]

योग के सम्बन्ध में संत रैदास ने भी कहा है -

"अैसा ध्यान धरूँ बनवारी, मन पवन दिढ़, सुषमन नारी।
उलटी गंगा जमुन मैं ल्योऊँ, बिन ही जल संयम कै आंऊ।।
व्यंड परे जीव जिस घटि जाता, सबद अतीत अनाहद राता।
सुंनि मंडल मैं तेरा बासा, ताथै जीव में रहु उदासा।।
कहै रैदास निरंजन ध्याऊँ, जिस घटि जाऊँ जब बहुरि न आऊँ।।"[119]

21:36

5_6109176196388361...

वेदान्तों की सी स्थिति प्राप्त करता है ।[1]

मनोमारण के सम्बन्ध में गंगादास का कहना है कि इस पापी मन की गति वायु से भी सौ गुना है । इसको वश में करने का एकमात्र उपाय यही है कि इसे सब विषयों से हटाकर संयम कूप में डाल देना चाहिए और फि

----

1. जिसने मन लाया जोग में, समझो सोई नर जोगी है ।
चलती पवन रोक के घर में,
सुरत लगावै दसवें दर में,
मंजन करके त्रिकुटी सर में
इसी जनम महारोग से छुट गए ना फिर रोगी है ।
प्राण अपान कूं फेर के लावै ।
सुखमना के घर घेर के लावै ।
मन दुश्मन कूं जेर के लावै ।
ऊपर हो चन्द्र अमी रस भोग से, जितेन्द्रिय रस भोगी है ।
पूरक में अन्दर लावै है ।
कुम्भक में सोहम पावै है ।
रेचक में गिन दस जावै है ।
पर्णव जप, छुट गए सोग से, फिर कहीं नहीं सोगी है ।
षटचक्रों कूं शुद्ध करै है ।
कुण्डलिनी - प्रबुद्ध करै है ।
गंगादास विषय रस फोग से, बन विषया रस फोगी है ।

- निर्गुण पदावली, 837

कब बास ना चदन वास लाग,
कब शूम से होय ना पुण्य दाना।
कहे टेऊँ दे त्यों विरंचि शिक्षा,
बुद्धिहीन को कब ना होय ज्ञाना।।3।।
मूल कमल माहीं गुरु गणेश पाहीं,
चरण कमल से शिष्य चित्त लाइये जी।
लिंग कमल डेरा घर ब्रह्मा केरा,
नाभ कमल से नाम चलाइये जी।
पाय विष्णु वासा करके अभ्यासा,
हृदय कमल शिव शंख बजाइये जी।
कंठ कमल के पास है हंस का वास,
सच ग्रहण करके झूठ जलाइये जी।

कमल त्रिभणा द्वार ज्योति ज्ञान उजियार,
निश निर्जन केरी मिटाइये जी।
उलट इड़ा पिंगला करो एक सुरला,
भँवर सुषुम्ना सेज बिछाइये जी।
कमल सुन सकड़े रहो ताँहि अकड़े,
निज निरंजन नाम को ध्याइये जी।
चल दशम द्वारे रह रिणुंकारे,
मिल मौज मस्ती की पाइये जी।
देख द[illegible] देव पाओ पुरुष अभेव,
[illegible] लोक सम ज्योति जगा[illegible]
कहे टेऊँ भेद तोड़ जीव ईश मति छोड़,
इक ब्रह्म आनंद समाइये जी।।4।।
चचा चेत माई सुन सीख सोल्हा,
इक चरण पति के चित्त लाइये जी।
दूजा चार घड़ियां जाग रैन पिछली,
तीजा चाह से चक्की चलाइये जी।
चौथा चाय चाडी दही को विलोड़ो,

गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार ।।[3]

गुलाल साहब ने सुरति- निरति की ओर संकेत करते हुए लिखा है -

सुरति निरति लै सखि सब गावहिं, घरहि नव निधि पाई।[4]

भीखा साहब के साहित्य में सोऽहं जाप की झलक मिलती है।[5] उन्होंने त्रिवेणी के सम सिर झुकाने का उपदेश भी दिया है।[6] सुरति निरति का संकेत करके उन्होंने लिखा है-

सुरति सुभाव निरति लपटानो, दृष्टि रूप अरूझाऊ।।[7]

जगजीवन साहब ने त्रिकुटि के बीच में ताड़ी लगाने का उपदेश दिया है[8]। गोविन्द सा गंगा, यमुना एवं सरस्वती को पवन साधना के द्वारा सुषुम्णा पर चढ़ाने को बतलाया ।

बावरी पंथ के संत सदा जटिलता को सरलता एवं अनेकता में एकता लाने के f प्रयासरत थे। इसीलिये इस पंथ के संत पलटू साहब हठयोग साधना की आवश्यकता पर ब अधिक बल नहीं दिया है। उन्होंने उसी प्रकार की साधना को अपनाया है, जिसे साधक स भाव से उसका आचरण कर सकता है। इसी ओर संकेत करते हुए पलटू साहब ने लि है कि योगी का कर्तव्य है कि सदाचार पूर्वक साधु-जीवन व्यतीत करते हुए, आठों प पद्मासन में बैठा रहे। उसे दसों द्वार बन्द कर लेना चाहिये और प्रयत्नपूर्वक त्रिकुटि में र आकृष्ट करके स्वासोच्छ्वास की गति रोक देनी चाहिए ।[10] संत पलटू ने मुद्रा एवं भेष जगह अजपा-जाप के ही महत्व का प्रतिपादन किया है।[11] आगे उन्होंने चाँद एवं सूर्य र को ऊपर उठाने की ओर संकेत किया है[12]।

श्री रामचरनदास जी ने इंगला, पिंगला और सुषुम्णा के ऊपर उस परमतत्व को बतल है।[13] थानदास ने अर्ध-उर्ध संगम के बीच अजपाजाप करने का उपदेश दिया है।[14] देवकी न साहब ने लिखा है कि सहज भाव से सिद्धासन लगाकर इंगला, पिंगला और सुषुम्णा को सिद्ध में करके त्रिकुटी में षट्चक्र भेदन को बताया है।1[15] देवकीनन्दन साहब ने अजपा में ही ब्रह्म की स्थिति को माना है।[16] परसाद साहब ने इंगला, पिंगला एवं सुषुम्णा साधना के द्वारा बंकनाल पर चढ़ाने का उपदेश दिया है।[17]

---

1. बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 18
2. गुलाल साहब की बानी, पृष्ठ 43
3. गुलाल साहब की बानी, पृष्ठ 34
4. वही, पृष्ठ 24
5. रमिता राम तू अन्तरजामी, सोहं अजपाजापै हौ- संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृष्ठ 55
6. मध्य सरस्वती गंगा यमुना, सन्मुख शीश नवावै। वही पृष्ठ 88
7. वही, पृष्ठ 201
8. त्रिकुटि मध्य दृष्टि करू नैनन ताड़ी तहां लगाव।- जगजीवन साहब की बानी, भाग 1 पृष्ठ 47
9. गंगा जमुना और सरस्वती, सुखमन चढ़ै निसैनी, पावन पवन अनल जल बरसत सरसत फेनी।- गोविन्द साहब की हिन्दी रचनायें। पृष्ठ 39
10. पलटू साहब की बानी, भाग 3, पृ0 53 ।
11. वही, पृ0 19 ।
12. वही, भाग- 3, पृ0 28 ।
13. श्री रामचरन साहब के शब्द, पृष्ठ 9
14. थानदास के शब्द, पृष्ठ 11
15. संत देवकीनन्दन साहब की हिन्दी रचनायें, पृष्ठ 11
16. वही, पृष्ठ 72
17. बावरी पंथ के हिन्दी कवि, पृष्ठ 354।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बावरी पंथ के संत कवियों ने प्रत्याहार साधना अभिव्यक्ति विविध प्रकार से की है। कुछ संतों ने तो प्रत्याहार का संकेत मात्र किया

उत्थापन, शिव तथा शक्ति का मेल प्राणायाम आदि का वर्णन किया है। उनके हठयोग में जटिलता नहीं बल्कि व्यवहारिकता है। उन्होंने इस योग का वर्णन अत्यन्त स्पष्ट शब्दों से किया है। उन्होंने एक बात को कई उदाहरणों से समझाकर सर्व साधारण के लिये ग्राह्य बना दिया है।

जोग को पाई के, जुगति को ध्याई के। ज्ञान अरु ध्यान एक घाट करना।
अर्धी संगम वहै कड़क बिजुली छुटै। उसी के सीस पर सुरति धरना।।
सहस कोटि ऊँच है बीच में भानु है। नागिन पकरि के बोरि मरना।
सहस गुंजार में परम अली झाल है। झिलमिल उलटि के पवन भरना।।
संखिनी डंकिनी सोर सब करैगी। सोर सुनि वहाँ से नाहि टरना।
बंक पहार में सांकरि गयल है। गली के खण्ड के बीच झरना।।
हद अनहद के बीच में पगना। सिंह को देखि के नाहि डरना।
कर्मनी नदी पर धर्मनी ताल है। ताल के बीच में रहत अरना।।
चौक से निकरी जाय बाहर हुआ। तत्व को पकर क्यों बैठ रहना।
[illegible] महल पर तत्व का पाल है। तत्व [illegible] में तपा फिरना।।
कालो महल का कहा दिवाल है। दीवाल को झाकि के [illegible] परना।
दास पलटू कहै छोर मन कमनसी। पैठि दरियाव दीदार करना।।

सन्त पलटू साहब ने अपनी बानियों में कुण्डलिनी उत्थापन के साथ–साथ उन्होंने खेचरी मुद्रा का भी वर्णन अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में किया है। आकाश मण्डल में स्थित महल के मध्य से अमृत का स्राव हो रहा है परन्तु उसे एक सर्पिणी पी रही है। योगी यदि इस अमृत को अपनी साधना के बल पर पी लेता है तो वह अमर हो जाता है।

गगन महल के बड़ी अमी झर लागिनी।
टोपन बूँद–बूँद पिवै एक साँपिनी।।
सापिनी डारा मारि बूँद को पिया है।
अरे हाँ पलटू अमर लोक गये हंस पुनी–पुनी जिया है।।

परन्तु यह साधना अत्यन्त कठिन है। इसलिए सन्त पलटू साहब ने चेतावनी दी है कि बिना युक्ति ज्ञान से योग साधन नहीं करना चाहिए। अगर कोई किसी की देखा–देखी साधना करता है तो शरीर का नाश हो सकता है। साधक पागल हो सकता है और उसका सम्भलना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है।

दास टेऊँ भी ले इकतारा, गावत धूम मचावे ।।७।।

।। राग जोग भजन ।। ६९ ।। ८९९ ।।

शिष्य गुरू का शब्द कमाओ, तुम अन्तर ध्यान लगाओ।। टेक।।
मूल कमल में थिर कर आसन, मन को नाहिं डुलाओ।
अपजा जाप [illegible] गाओ ।।१।।
[illegible]भि कमल से नाम चलाए, हृदय में ले आ[illegible]।
कण्ठ कमल में कर वीचारा, त्रिकुटी ज्योति जगाओ ।।२।।
इड़ा पिङ्गला से ले श्वासा, सुषुम्न में ठहराओ।
गगन मण्डल में अनहद सुनके, तन की सुधि बिसराओ ।।३।।
सुन्न सकड़ में लाय समाधी, दसमें दर्शन पाओ।
कहे टेऊँ यों सुमरण करके, सुख स्वरूप समाओ ।।४।।

।। राग जोग भजन ।। ७० ।। ९०० ।।

दीन दयालू भो भगवाना,बदला मुझसे नाहिं चुकाना ।। टेक।।
प[illegible] पावन सद्‌बख्शन्दा, कहते तुझको वेद पुरा[illegible] ।।१।।
केते पापी [illegible] तारे, मैंने सूनिया [illegible] काना ।।२।।
कर्म धर्म को ना मैं कीया, राखो प्रभू अपना बाना ।।३।।
कहे टेऊँ हरि कृपा करके, दीजे मुझको निर्भय दाना ।।४।।

।। राग जोग भजन ।। ७१ ।। ९०१ ।।

यह घर तेरा प्रीतम नाहीं, भूल पड़ा तुम क्यों इस माहीं ।। टेक।।
इस घर से जाना ही होगा, भावें कितना रहना चाहीं ।।१।।
तेरा तो है घर अविनाशी, जन्म मरण का दूख न जाहीं ।।२।।
निज घर चलने की कर तैयारी, भव में भटकत हो तुम काहीं।।३।।

चली मैं खोज में पिय की। मिटी नहिं सोच यह जिय की।।

रहे नित पास ही मेरे। न पाऊँ यार को हेरे।।

विकल चहूँ ओर को धाऊँ। तबहुं नहिं कंत को पाऊँ।।

धरों केहि भाँति सो धीरा। गयौ गिर हाथ से हीरा।।

[illegible] माई। लख्यौ तब गगन में साईं।।

कबीर शब्द कहि त्रासा। नयन में यार [illegible]।।[14]

मानव जीवन की आवागमन–मुक्ति के मार्ग को पान[illegible] अभिलाषा कितनी कठिन है इसका स्पष्ट उल्लेख सन्त पलटू साहब के काव्य में मिलता है–

रन का चढ़ना सहज है; मुसकिल करना योग।।

मुसकिल करना योग चित्त को उलटि लगावै।

विषय वासन तजै प्रान ब्रह्माण्ड चढ़ावै

साधै वायू प्रान कुंडली करै उथपना।

अष्ट कंवल दल उलटि कंवल दल द्वादस लखना।।

इंगला पिंगला सोधि बंक के नाल चढ़ावै।

चार कला को तोड़ि चक्र षट जाय विधावै।।

पलटू जो संजम करै करै रूप से भोग।

रन का चढ़ना सहज है मुसिकल करना योग।[15]

योग की स्थिति तभी सम्भव हो सकती है जब आत्मज्ञान की सच्ची साधना में प्रबुद्ध मन–मस्तिष्क से आत्म–साक्षात्कार की लगन से ईश्वरानुमुख भक्ति की जाय। इसे स्पष्ट करते हुए कबीर साहब ने कहा है–

दुलहिनि तोहि पिय के घर आना

काहे रोवो काहे गावो, काहे करत बहाना।

---

[14] कबीर – हजारी प्रसाद [illegible]

[15] सन्त काव्य – परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ४६८

काहे पहिर्‍यौ हरि हरि चुनियाँ, पहिर्‍यो प्रेम के बाना।

कहै कबीर सुनो भाई साधे, बिन पिया नाहिं ठिकाना।।[16]

सन्त बाबा किनाराम शब्द–सनेही सुरत–शब्द–योग के ही सच्चे फकीर हैं। उनका मानना था कि भवजल–मुक्ति हेतु एक नाव शब्द की है। उसके अलावा भवसागर से

04:33
2015.545500.Kabir-Gr...

सुषमन नारी सहजि [illegible] पीयैं पीवनहारा ॥
दोइ पुड जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महा रस भारी।
काम क्रोध दोइ किया पलीता, छूटि गई संसारी ॥
सुनि मंडल मैं मंदला बाजै, तहाँ मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनां काछै॥
पूरा मिल्या तबै सुष उपज्यौ, तन की तपनि बुझानी।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी ॥७२॥

छाकि परचौ आतम मतिवारा,
पीवत रांम रस करत विचारा ।। टेक ॥
बहुत मोलि महँगे गुड पावा, लै कसाब रस रांम चुवावा ॥
तन पाटन मैं कीन्ह पसारा, मांगि मांगि रस पीवै विचारा।
कहै कबीर फावी मतिवारी, पीवत राम रस लगी खुमारी॥७३॥

[illegible] राम रस [illegible] ।
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अघाई ॥ टेक ॥
इला प्यगुला भाठी कीन्ही ब्रह्म अगनि परजारी।
ससि हर सूर द्वार दस मूँदे, लागी जोग जुग तारी॥
मन मतिवाला पीवै रांम रस, दूजा कछू न सुहाई।
उलटी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई॥
[illegible] जने सो सँग करि लीन्हे, चलत खुमारी लागी।
प्रेम [illegible] पीवन लागे, सोवत नागिनी [illegible]
सहज सुनि मैं जिन रस चाख्या, सतगुर थैं सुधि पाई।
दास कबीर इही रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई॥७४॥

---

(७१) ख—चंद सूर दोइ किया पयाना।
उनमनि चढ्या महारस पीवै,
(७२) ख—पूरा मिल्या तबै सुष उपनां।

रांम रस पाईया रे,
तार्थै बिसरि गये रस और ।। टेक ॥
रे मन तेरा को नहीं खैंचि लेइ जिनि भार।
बिरषि बसेरा पंषि का, ऐसा माया जाल ॥
और मरत का रोइए जो आया थिर न रहाइ ॥
जो उपज्या सो बिनसिहै तार्थै दुख करि मरै बलाइ ॥
जहां उपज्या तहां फिरि रच्या रे, पीवत मरदन लाग ॥
[illegible] ॥७५॥

॥ भेद बानी ॥

॥ शब्द १ ॥

पियत मरहमी यार, अमीरस बुंद झरै ॥ टेक ॥
बिन सागर के अमृत भरिया, बिना सीप के मोती।
संत जवाहिर पारख कीन्हा, अग्र ले बस्तु धरी ॥ १ ॥
डोरी डगर गगर सिर ऊपर, गेडुर मद्ध धरी।
चेतन चले सुरति नहिं चूके, उलटा नीर चढ़ी ॥ २ ॥
टोह लिया सतसंग पाइ के, बिन गुरु कौन कही।
से [illegible] समुझि परी ॥ ३ ॥
[illegible]दी होय सो भरि भरि पीवै, अनभेदी भरम [illegible]रै।
कहै कबीर मिलैं जो सतगुरु, जीवन मुक्त करी ॥ [illegible] ॥

॥ शब्द २ ॥

जो कोइ निरगुन दरसन पावै ॥ टेक ॥
प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै।
गगन गराजै दामिनि दमकै, अनहद नाद बजावै ॥ १ ॥

१ महीन=बारीक अर्थात दीन। २ कुम्हार। ३ बैठावै।

बिन जिभ्या नामहिं को सुमिरै, अमि रस अजर चुवावै।
अजपा लागि रहै सूरति पर, नैन न पलक डुलावै ॥२॥
गगन मँदिल में फूल फुलाना, उहाँ भँवर रस पावै।
इँगला पिंगला सुखमनि सोधै, प्रेम जोति लौ लावै ॥३॥
सुन्न महल में पुरुष बिराजै, जहाँ अमर घर छावै।
कहै कबीर सतगुरु बिन चीन्हे, कैसे वह घर पावै ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

पिया के खोजि करै सो पावै ॥ टेक ॥
ई करता बसिया घट भीतर, कहत न कछु बनि आवै।
स्वाँसा सार सुरति में राखै, त्रिकुटी ध्यान लगावै ॥१॥
नाभि कमल अस्थान जीव का, स्वाँसा लगि लगि जावै।
ठहरत नाहिं पलक निस बासर, हाथ कवन बिधि आवै ॥२॥
बंक नाल होइ पवन चढ़ावै, गगन गुफा ठहरावै।
अजपा जाप जपै बिनु रसना, काल निकट नहिं आवै ॥३॥
ऐसी रहनि रहै निस बासर, करम भरम बिसरावै।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, बहुरि न भव जल आवै ॥४॥

॥ शब्द ४ ॥

बिन [illegible] ज्ञान नाम ना पैहो, मिरथा जनम गँवाई हो ॥टेक॥
जल भरि कुंभ [illegible] भीतर, बाहर भीतर पानी हो।
उलटि कुंभ जल जलहि [illegible] का करिहो ज्ञानी हो ॥[illegible]
बिन करताल पखावज बाजै, बिनु रसन[illegible] हो।

अच्छर मूल सदा मुख भाखो, चित दे गहहु सुहाग हो ॥ ४ ॥
सेत तँबूल समरथ मुख छाजे, बैठे लोक मँझार हो।
हंसन के सिर मटुक बिराजे, मानिक तिलक लिलार हो ॥ ५ ॥
श्रामिनि ह्वै उतरे भवसागर, जिन तारे कुल बंस हो।
सतगुरु भाव कछनी तन कपरा, मिलि लेहु पुरुष कबीर हो ॥ ६ ॥

॥ शब्द ६ ॥

अवधू हंस देस है न्यारा ॥ टेक ॥
तीरथ ब्रत औ जोग जाप तप, सुरति निरति से न्यारा।
तीन लोक से बाहर डोले, करम भरम पचि हारा ॥ १ ॥
कोठि कोठि मुनि ब्रह्मा होइगे, कोई न पाये पारा।
मंतर जाप जहाँ ना पहुँचै, सुरति करो दरबारा ॥ २ ॥
सुख सागर में बासा कीजे, मुकता करो अहारा।
बंकनाल चढ़ि गरजन गरजे, सतगुरु अधर अधारा ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो हो अवधू, आप करो निरवारा।
हंसा हमरे मिले हंसन में, पुनि न लखे भवजारा ॥ ४ ॥

१ गाय।

॥ शब्द ७ ॥

सतगुरु सब्द गही मोरे हंसा, का जड़ जन्म गँवावसु हो ॥ टेक ॥
त्रिकुटी धार बहै इक संगम, बिना मेघ झरि लावसु हो।
लोका लोके बिजुली तड़पै, अजब रूप दरसावसु हो ॥ १ ॥
करहु प्रीति अभि अंतर उर में, कवने सुर ले गावसु हो।
गगन मँदिर में जोति बरतु है, तहाँ सुरत ठहरावसु हो ॥ २ ॥
इंगला पिंगला सुखमनि सोधो, गगन पार ठहरावसु हो।
मकर तार के द्वारे निरखो, ऊपर गढ़ी उठावसु हो ॥ ३ ॥
बंकनाल पट खिरकि[1] उलटिगे, मूल चक्र पहिरावसु हो।
द्वादस कोस बसै मोर साहिब, सूना सहर बसावसु हो ॥ ४ ॥
दूनों सरहद अनहद बाजे, आगे सोहँग दरसावसु हो।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अमर लोक पहुँचावसु हो ॥ ५ ॥

॥ शब्द ८ ॥

हंसा कोइ सतगुरु गम पावै ॥ टेक ॥
उजल बास निस बासर देखै, सीस पदम झलकावै।
राव रंक सब सम करि जानै, प्रगट संत गुन गावै ॥ १ ॥
अति सुख सागर नर्क स्वर्ग नहिं, दुरमति दूर [illegible]।
जह [illegible] भान जोति बरावै ॥ २ ॥
रमै जगत में ज्यों जल पुरइनि, यहि बिधि लेप न लावै।

मिलने लगता है और परमात्मा के प्रकाश का दृष्टि-गोचर होना भी संभव बन जाता है। यह वही दशा है जिसे वेदान्ती तुरीयावस्था कहते हैं और जो बहुधा दशवें द्वार का खुलना भी कहलाता है।

नीचे दिये गये प्रतिनिधि निर्गुण सन्त कवियों के उद्धरणों द्वारा इन योग संबंधी विश्वासों तथा अभ्यासों का स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

उलटि पवन कहँ राखिये कोई मरम बिचारे।
साँधे तीर पताल को फिर गगनहिं मारे ॥५४॥

क० ग्रं०, पृ० १३८।

अर्थात् लौटने पर प्राणवायु का क... ...ंचित किया जाय इसके रहस्य प... कुछ ही लोगों ने विचार किया होगा। तीर का, ...प्रथम पाताल की ओर लक्ष करो और तब उसे आकाश की ओर छोड़ो। ...र यहाँ प्रसंगानुसार प्राणवायु ही हो सकता है इसमें संदेह नहीं।

प्रकट प्रकास ज्ञान गुर गमि थैं ब्रह्म अगिन परजारी।
ससिहर सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी ॥
उलटि पवन चक्र षटबेधा, मेर डंड रस पूरा।
गगन गरजि मन सुन्न समाना, बाजी अनहद तूरा ॥ ६ ॥

क० ग्रं०: पृ० ६०।

अर्थात् गुरु के संकेतों का अनुसरण करने पर मुझे प्रकाश के दर्शन हुए और उसने ब्रह्माग्नि प्रज्ज्वलित कर दी। चन्द्र व सूर्य आपस में दूर रहते हुए भी योग में मिल गये। श्वास के उलटने से षटचक्र का भेदन हो गया और मेरुदंड व सुषुम्ना अमृत रस से भर गई। मन समाधि में लीन हो गया, गगन गर्ज रहा है और अनाहत भी बज रहा है।

अवधू गगन मंडल घर कीजे।
अमृत झरे सदा सुख उपजे, बंकनालि रस पीजे ॥

318/524

मूल बाँधि सर गगन समाना, सुखमन पोतन लागी।
काम क्रोध भया पलीता, तहँ जोगण जागी ॥

क० ग्रं० पृ० ११०।

अर्थात् अवधूत पुरुषो. अपना निवास गगन में कीजिये। अमृतरस चू रहा है और शाश्वत आनन्द उत्पन्न कर रहा है, बंकनाल या सुषुम्ना उस अमृतरस से भरी जा रही है। मूल (मूलाधार) के केन्द्र को संकुचित करके तीर सुषुम्ना से होकर गगन अथवा त्रिकुटी तक पहुँच गया। काम एवं क्रोध का प्रभाव जाता रहा जब योगिनी (कुंडलिनी) जाग्रत हो गई।

मनवा जाय दरीबे बैठा, मगन भया रसि लागा।
कहै कबीर जिय संसा नहीं, सबद अनाहद बागा ॥

धीर है हंसा। शब्द अतीत मिल कुल बंसा।। २६।। दास गरीब
हिरंबर मेला। याह चाल चलै सतगुरु का चेला।। २७।।

अथ ब्रह्म रमैंणी

ऐसा [illegible] विचारो लोई। आदि अन्त मुक्ता पद सोई।। १।। [illegible]म
[illegible]ाव सकल एक जाती। ऊँच नीच कुछ भिन्न न भांती।। २।। पा[illegible]
तत्व घट नाद जहूरा। जामें बाजे गैबी तूरा।। ३।। अष्ट कँवल दल
कुदली काया। जामें हंसा खेलन आया।। ४।। मूल कँवल कसि बंध
लगावो। उलटी पवन गगन कूँ ध्यावो।। ५।। नाभि कँवल कूँ निश
दिन फेरो। हिरदे जाप अजपा हेरो।। ६।। हिरदे कँवल जुहारा हेतं।
सोहल कला चंद्रमा सेतं।। ७।। कंठ कँवल कुंभी रस प्याला। शब्द
सुषमनी कूंची ताला।। ८।। परमहंस पेखो प्रवाना। खुल्ले कपाट धरो
सुंन ध्याना।। ९।। इला पिंगुला सुषमन द्वारा। गगन मंडल में महल
हमारा।। १०।। मेरु दण्ड मैदान खिलारी। जहां पौंहचे नहीं तपी
ब्रह्मचारी।। ११।। सहंस कँवल दल फूले जोती। मानसरोवर मुक्ता
मोती।। १२।। अक्षर धाम अगमापुर आगे। सतगुरु मिले तो हंसा
जागे।। १३।। मक्रतार मारग मैदाना। कोई पौंहचे साधु संत
सुजाना।। १४।। मानसरोवर झिलमिल धारा। हंसा केलि करें
हुशियारा।। १५।। सुखसागर रतनागर पाया। हंसा जाय अरस मठ
छाया।। १६।। सप्त अन्ड का भेद लखाऊँ। सुंन मण्डल सत्यलोक
सिधाऊँ।। १७।। अलल पंख अनुरागी हेला। शब्द महल धुंन हंसा
मेला।। १८।। अलंकार अग है अनरागी। जहां गवन करें हंसा
बड़भागी।। १९।। ऐसा शब्द समुंद्र दरिया। हीरे मानिक सूभर
भरिया।। २०।। अरध उरध बैजार सराफं। जा मध्य हंसा अजपा
[illegible]।। २१।। सुंन दरीबे ज्वाहर खाना। लाल अमोली अजब
दुका[illegible]।। २२।। जहां गुरुमुख साधू सौदे जावैं। बौहरि न भवसाग[illegible]
में आवे[illegible] २३।। सहंस इकीसों छै सौ धागा। निश वास[illegible] [illegible]ाहे
खण्ड बिहागा[illegible] [illegible]४।। कौंन नाद में नलकी जोई। [illegible] पोछा मध्य
न कोई।। २५।। [illegible] कौन [illegible] [illegible]। जाका भेद सुनाऊँ
दासा।। २६।। बिन पर पंखी करै पियाना। सुंन मण्डल सत्यलोक
निधाना।। २७।। जा सायर से अक्षर पाटा। बौहर्‌यों फेर न पाया
घाटा।। २८।। इच्छा रूपी खेलन आया। ताते सुखसागर नहीं
पाया।। २९।। सुरति निरति दो मालिनि मिहरी। सेज सिंहासन
सेवन लहरी।। ३०।। संख कला सरवर सैंलाना। जा मध्य हंसा
करो पियाना।। ३१।। अधर धार पर खेल हमारा। निर्गुण झड़ सुंन
मण्डल धारा।। ३२।। मक्रतार से मारग झीना। कोई पौंहचेंगे साधू
प्रवीना।। ३३।। कायर गिरैं परैं भौ मांहीं। सावंत सुभट सूर
ठहरांहीं।। ३४।। निर्वासी निहकामी जांहीं। निहइच्छा निर्गन्ध
समांहीं।। ३५।। शब्द महल में सिद्धि चौबीसा। हंस बिछोरैं बिसवे

परम तत्व से लाव तारा। पकर मूल में थाम्हे डोरा।। ८।। गुण इन्द्री के बीज बीजोवै। तुरिया पद में हंस समोवै।। ६।। परसे ब्रह्म करम सब जारै। सतगुरु मिलै तो हंस उबारै।। १०।। अकल पाट पर सतगुरु लेखा। काहे षट दल भरमै भेषा।। ११।। मरि मरि गये गुकित नहीं पाई। लोक दीप कोई बिरला जाई।। १२।। संपट खोल समुंद्र पैरे। तेजपुंज लखि हंसा लहरें।। १३।। अदल बंध अनरागी सोई। दास गरीब मुक्ति यौं होई।। १४।।

अथ भगल रमैंणी

भगलीगर आये ब्रह्मज्ञानी। अरस अनाहद अग हैं बानी।। १।। बटक बीज का यौह बिस्तारा। जासे उपजे नौ अवतारा।। २।। चौसठ और सहंस अठासी। तेतीसौं और तीन्यों जाग्यी।। [illegible] जैसे सिधु बुदबुदा होई। मिटे बुदबुदा सिन्धु है सोई।। ४।। ऐसे भिन्न भई है दूजी। आत्म कूँ गुरु आत्म पूजी।। ५।। सतगुरु शब्द अतीत कहावै। देह धरे धरि महल लखावै।। ६।। जैसे तरुवर मांहे छाया। ऐसे ब्रह्म शब्द में माया।। ७।। बंधे मूल पवन कूँ पीवै। जुगति करै तो जुग जुग जीवै।। ८।। अजरी बजरी पलटै बिन्दा। बिचरै जब जग सूरज चंदा।। ६।। मेरु दण्ड पर बोले सूवा। पट्टन घाटी अमृत कूवा।। १०।। पिंगुल नाड़ी बांधि चलावै। इला के घर उलटि समावै।। ११।। सुषमन सेझा पलटै जोती। भँवर गुफा में झलकै मोती।। १२।। बिन आकार पदम जहां दीसे। सतगुरु गाजत है सिर शीशे।। १३।। जोग जुगति करि जीतै काया। न्यौलह घाटी बंध लगाया।। १४।। पिण्ड ब्रह्मण्ड सं न्यारा बोलै। रूप न रेख तुलै नहीं तोलै।। १५।। रक्त न पीत न जरद न काला। दास गरीब अमर एक लाला।। १६।।

अवतार स्थान श्री रामपुर धाम

अथ अमर कछ रमैंणी

प्रथम जोग सुनो नर लोई। बंधो मूल पवन थिर होई।। १।। द्वादश दर[illegible] पलटे पौंना। बहुरि न होई आवा गौंना।। २।। बाहर जाता भीतर ल्यावो। भँवर गुफा में उलटि समावो।। ३।। सोहं शब्द कहं अस्थाना। कौन कँवल में बारा बानी।। ४।। अंबर भीजे धर [illegible] बरसे। सो[illegible] कला संपूरन दरशे।। ५।। षट् चक्र में चंचल [illegible]। बिन कोल्हू क[illegible] निकसे तेले।। ६।। जो तुझ दीपक जोया च[illegible]ये। तो शब्द अनाहद [illegible]म्पा गहिये।। ७।। कंदर्प जीते सो ब्रह्मज्ञा[illegible]। बंक नाल बंधे रस पानी।। [illegible] सप्त सुरों का एके द्वारा। [illegible] घाटी से बंधे पारा।। ६।। ता घाटी [illegible] बंध लगावै। सो ते[illegible] कामधेनु दुहि ल्यावै।। १०।। सहंसमुखी सत न्हाव [illegible] मन की लहरि तरंगा।। ११।। चंचल को कोई निश्चल जीते। पलक एक चारों जुग बीते।। १२।। या घट में अनहद आनन्दां बिचरे जब लग सूरज

शब्दार्थ—वदणी=कार्य । निराल=निराला, सत्य ।

कबीर कहते है कि व्यर्थ का धार्मिक उपदेश, मिथ्याचरण, यह सब वृथा है, केवल प्रभु की भावपूर्ण भक्ति ही सत्य है । साधना का कथन, टीका-टिप्पणी और श्रवण तो सब करते ही है, किन्तु प्रयोजन-सिद्धि मौखिक लेन-देन से नही अपितु-कर्म से होती है । बुरे आचरण से प्रभु-प्राप्ति सम्भव नही, केवल सत्याश्रित होने पर ही यह प्रभु अपना रूप दिखाते हैं । इस मन मे विषयाग्नि और मायजल भरा है । कबीर कहते है कि सावधान होकर इसे समाप्त कर दे ।

राग आसावरी

टेक [illegible] ऊपर कूपटा ताल भार पाणा ॥टेक॥

जब लग गगन जोति नही पलटै, अबिनासी सूं चित नहीं चिहुटै ।
जब लग भवर गुफा नहीं जांनै, तौ मेरा मन कैसे मांनै ॥
जब लग त्रिकुटी संधि न जांनै, ससिहर कै घरि सूर न आंनै ।
जब लग नाभि कवल नही सोधै, तौ हीरैं हीरा कैसे बेधै ॥
सोलह कला संपूरण छाजा, अनहद कै घरि बाजैं बाजा ।
सुषमन कै घरि भया अनदा, उलटि कवल भेटे गोब्यंदा ॥
मन पवन जब परचा भया, ज्यूं नाले रांपी रस मइया ।
कहै कबीर घटि लेहु बिचारी, औघट घाट सींचि ले क्यारी ॥२०२॥

शब्दार्थ—गगन=शून्य । जोति=ज्योतिस्वरूप ब्रह्म । भवर गुफा=ब्रह्मरन्ध्र । त्रिकुटि=आँख नाक मस्तिष्क का सन्धि स्थल, भौहो के बीच का स्थान । नाभि कवल=नाभि पर स्थित मणिपूरक चक्र—"इसमे दल-दल होते है । यह नील वर्ण का होता है, इसका लोक स्वः है । इसका ध्यान करने से क्रमशः डँ, ढँ, णँ, तँ,

थँ, दँ धँ, नँ, पँ, फँ की ध्वनि [illegible] होती है । इसके [illegible] से मनुष्य ससार पालन मे समर्थ तथा वचन रचना में चतुर हो जाता है और उसकी जिह्वा पर सरस्वती निवास करती है ।

कबीर कहते है कि योगी का उपदेश इस भाँति है—ऊपर शून्य लोक मे कुँआ है, किन्तु उससे पानी प्राप्त करने का साधन कुण्डलिनी (जल) नीचे है, मूलाधार चक्र मे स्थित है । जबतक शून्य मे ज्योतिस्वरूप परमात्मा का दर्शन नही होता, तब तक उस अलख निरंजन से मन कैसे लगे ? जब तक मन को शून्यदल, ब्रह्मरन्ध्र, का भी ज्ञान नही फिर उसे कैसे परितोष प्राप्त हो । जब तक साधक को त्रिकुटी का ज्ञान नही है तब तक चन्द्र, सूर्य, इडा, पिंगला कैसे एकमेक हो । जब तक नाभि मे स्थित मणिपूरक चक्र का भेदन साधक नही कर लेता, तब तक मणि रूप प्रभु को कैसे प्राप्त कर लेगा ? वह सोलह कलाओ से पूर्ण ब्रह्म वहाँ बसा हुआ है जहा घण्टे की चोट पड़कर अनहद नाद का निरन्तर घोष हो रहा है । जब सुषुम्णा के द्वारा शून्यकमल भेदन हो अमृत स्रवित होने लगता है तो अपरिमित आनन्द का सृजन होता है । जब मन और परमात्मा का सक्षात्कार हुआ तो दोनो उसी प्रकार एकमेक हो गये जिस भाति नाले का जल (गंगा की) पवित्र धारा मे मिलकर एक हो जाता है । कबीर कहते हैं कि इस भाति तुम मन मे विचार कर उस अलख निरजन को प्राप्त कर लो ।

विशेष—अर्थान्तरन्यास अलंकार ।

मन का भ्रंम मन हीं थै भागा, सहज रूप हरि खेलण लागा ॥टेक॥
मै त तै मै ए द्वै नांहीं, आपै अकल सकल घट मांहीं ।
जब थैं इन मन उनमन जांनां, तब रूप न रेष तहां ले बांनां ॥
तन मन मन तन एक समांनां, इन अनभै मांहैं मन मांनां ।
आतमलीन अषंडित रांमां, कहै कबीर हरि मांहि समांनां ॥२०३॥

शब्दार्थ—मै=अपनापन । तै=परायापन=उनमन=उन्मनी अवस्था ।

'ज्यों गनती लाखन गनीं बिनु धन का परमान ।'

वे 'मूलद्वार' को संभालने का संकेत करते हैं । यह संकेत 'कुण्डली योग' का है । ज्ञानार्णव तंत्र के अनुसार—

'मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटि समप्र...
सूर्य कोटि प्रतीकाशां चन्द्रकोटि द्रवां प्रिये ।'' ज्ञानार्णव तंत्र

घेरण्डसंहिता के अनुसार—''मूलाधार आत्मशक्तिः कुण्डली पर देवता ।
शयिता भुजगाकारा सार्धत्रिवलयान्विता ॥'' (तृ० उपदेश ...)

'कुण्डलनी' शब्द की व्याख्या ''कुण्डले अस्या स्तः इति कुण्डलिनी' की जाती है । 'कुण्डले शब्द 'कुण्डल' के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है ।

''मूल डोरि मनु लाइयाँ बन्द धरनि माँ दीन
त्रकुटी तर घर भेटिया मीता भा लै लीन ।''

मूल के शोधन से ही कमल विकसित होता है । चक्रो का भेदन होता है । संत मीता के अनुसार—

'कंवल बिगसै मूल सोधे जीत पाँचों नारि
राम या विधि पाइहै जल करम काग्रद फारि ।'

मीता के अनुसार द्वादश कवल चक्र में जीव का निवास है । और अष्ट कंमल चक्र में ब्रह्म का विलास है । इन दोनों का एकाकार ही जीव ब्रह्म का एकाकार है—

''द्वादस कँवल जीव का बासा
अष्ट कँवल दल ब्रह्म बिलासा
जीव ब्रह्म का एकइ करई
कहि मीता सो प्रानी तरई ।''

मूल बन्ध भी मुद्रा बन्ध के अन्तंगत साधना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण रहा है । मीता भी मूल बन्ध को संभालने का संकेत करते हैं । किन्तु वे मुद्रा बन्ध को अपनी साधना का लक्ष्य नहीं मानते यदि मुद्रा बन्ध मात्र बाह्याचार की वस्तु हो जाय ।

मूल द्वार की साधना ही जोग जुगति का प्रथम सोपान है—'बैसायें बसि मूल दुआरा जोग जुगति का पंथ संभारा ।' चन्ददासकृत शिव सारंगाख्यावली (पृ० ३२) में मूल बन्ध साधना का वर्णन इस प्रकार है—

''मूल द्वार संभार कर वाम चरण धरि धीर
दक्षिण चरन सो राखिये इन्द्रिय विकट शरीर ।''

साधना के अन्तंगत ५ तत्त्वों और २५ लिप्साओं को जीतने का बार-बार संकेत किया है—

'पाँच पचीसों को जो बाँधे
ताको कहिये ज्ञानी ।'

पाँच से पंच ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, रसना, त्वक) और पचीस लिप्सायें (पाँच त... में से मिश्रित २५ मानसिक और शारीरिक विकार आकाश से काम, क्रोध, लोभ. मोह, भय, (५) ...नि से क्षुधा, तृषा आलस्य निद्रा मैथुन (५) वायु से चलन, बलन, धावन, पसारन, संकोचन, (...) जल से लार, खून. पसीना, मूत्र और लिंग (५) पृथ्वी से हाड़, मांस, त्वचा, नाड़ी रोम (५)=२५ लि... ...मीता ने २५ लिप्साओं के नाम भिन्न प्रकार से बताये हैं ।

संख्यात्मक शैली में मीता ने इन्हीं पच ... ...वर्ती बनाने का संकेत किया है ।
तन का शोधन मीता की साधना का आवश्यक अंग है—

'अलख जगाउ अघाउ बहुरिया
तन सोधे सबु कारज सरिया ।'

मन ही साधना का अमूर्त साधन है—

'मनु कर जोगिया मनु सन्यासी
मनु कर भगत मनुइ बैरागी
मनु कर संतहि मनहि फकीरा

हमारे गुरु बचनन की टेक ।
आन धरम हूँ नाहिं जानूँ, जपूँ हरि हरि एक ॥ १ ॥
गुरु बिना नहिं पार उतरो, करो नाना भेख ।
रमो तीरथ बर्त राखो, होहु पंडित सेख ॥ २ ॥
गुरु बिना नहिं ज्ञान दीपक, जाय ना अँधियार ।
काम क्रोध मद [illegible] उरझियो संसार ॥ ३ ॥
चरनदास गुरु दया करि के, दिय [illegible] ।
सहजो घट परगास हूवा, गयो सब अज्ञान ॥ [illegible] ॥

(२)

भया हरि रस पी मतवारा ।
आठ पहर झूमत ही बीते, डार दिया सब भारा ॥ १ ॥

(१) बोझा ।

इड़ा पिंगला ऊपर पहुँचे, सुखमन पाट उघारा ।
पीवन लगे सुधारस जब ही, दुर्जन पड़ी बिडारा ॥ २ ॥
गंग जमन बिच आसन मार्‍यो, चमक चमक चमकारा ।
भँवर गुफा में दृढ़ ह्वै बैठे, देख्यो अधिक उजारा ॥ ३ ॥
चित इस्थिर चंचल मन थाका, पाँचो का बल हारा ।
चरनदास किरपा सूँ सहजो, भरम करम हुए छारा ॥ ४ ॥

॥ राग मलार ॥

(१)

हमारे गुरु पूरन दातार ।
अभय दान दीनन को दीन्हे, कीन्हे भवजल पार ॥ १ ॥
जन्म [illegible] के बन्धन काटे, जम की [illegible] निवार ।
रंक हुते सो राजा कीन्हे, हरि धन दियो अपार ॥ २ ॥
देवैं ज्ञान भक्ति पुनि देवैं, जोग बतावनहार ।
तन मन बचन सकल सुखदाई, हिरदे बुधि उंजियार ॥ ३ ॥
सब दुख-गंजन पातक-भंजन, रंजन ध्यान बिचार ।

(59 of 74)
Favorite Share Flag
Sahajo Bayi Ki Bani
by Not Available
Publication date 1946

18:46

Shri Satguru Gra...
archive.org

INTERNET ARCHIVE

दास गरीब जिंदे का चेला, तीनि लोक सतगुरु अग है।। ३।। २।।
शील संतोष विवेक ज्ञान ले, दया धर्म इकतारे।
भाव भक्ति सुमरन सति कीजै, हरदम नाम उचारे।। टेक।।
काम क्रोध [illegible] विडारे।
[illegible] लोक और भुवन चतुर्दश, आशा खण्ड [illegible]।। १।।
एका एकी रहै निरंतर, उर में आसन मारे।
पांच पच्चीस तीनि पर तूरा, शब्द सिंध झनकारे।। २।।
मूल कँवल कूँ दृढ कर बांधे, नाभी नाद गुंजारे।
हिरदे कँवल में हाजरि नाजरि, दिल अंदर दीदारे।। ३।।
कामधेनु कलविरछ कलंदर, अघ पापन कूँ जारे।
चिनही चरणी चले चिदानंद, हरदम बारंबारे।। ४।।

अवतार स्थान श्री रामपुर धाम

त्रिकुटी कँवल के बैठि झरोखे, अलमिन दृष्टि उघारे।
गगन मंडल कूँ उड़े विहंगम, ना कुछ पंख पसारे।। ५।।
खालिक सबे खलक में देखे, बाहर भीतर सारे।
अठसिधि नौ निधि आगै ठाढ़ी, अणिमा महिमा लारे।। ६।।
गोरख नाम कबीर यौही है, नौ चौबीस औतारे।
ब्रह्मा विष्णु महेश शेष लग, इसी तत्त के सारे।। ७।।
कछिब ध्यान धरे उर मांही, मीनी खोज विचारे।
पांच तत का तकिया जाकै, खेलै अधरि अधारे।। ८।।
मुरदा होय सो पीछ मद पीवै, आप तरै जग त्यारे।
गरीबदास याह वस्तु अगोचर, उलटि काल कूँ मारे।। ९।। ३।।

अथ राग भैरों

सेवौ रे सत[illegible]रथ दाता। शब्द अतीत अनाहद राता [illegible]क।।
सुख का सागर झिल[illegible] भारया।। १।।
सुख का सागर झिलमिल जोती। मानसरोवर मुक्ता मोती।। २।।
झिलमिल झिलमिल अजब जहूरा। ताहि लखावै सतगुरु पूरा।। ३।।
सुख के सागर हंस पठावै। बहुरि न जूंनी संकट आवै।। ४।।
कोटि कनी हीरों की खनी। सतगुरु मिले दया दिल दानी।। ५।।
सूरज मुखी मुक्ति का चंपा। सतगुरु ध्यान लगाया कंपा।। ६।।

(836 of 996)

Favorite Share Flag

Shri Satguru Granth Sahib

20:50

Yoga-rasayanam-sansk...

पथ्यके नहीं पालन करनेसे योगीके शरीरमें नानाप्रकारके ज्वरादि रोगोंकी उत्पत्ति होवे है इति॥ ६९॥

इत्थं मासद्वयं कुर्यात् त्रिमासं वा गतालसः ।
यावत्पंचशतं मात्राः कुंभकस्य भवंति हि ७०

अर्थ—इस प्रकार उक्तरीतिसे दो अथवा तीन मासपर्यंत प्राणायामका अभ्यास करना चहिये जबतक कुंभककी पांचसौ मात्रा अनायाससे होजावें इति॥७०॥

एकादिगणनां कुर्यान्न द्रुतं न विलंबितम् ।
मनसा कुंभकाले तु मात्रास्ताः परिकीर्तिताः७१

अर्थ—कुंभककालमें एक दो तीन चार पांच इस प्रकारसे न तो शीघ्र और न विलंबसे जो मनमें गिनती करनी है तिसको मात्रा कहते हैं इति ॥ ७१ ॥

मात्राणां तु भवेत्संख्या यदा पंचशताधिका ।
तदायोग्यं विजानीयात् कुंभकं शक्तिबोधने७२

अर्थ—जिसकालमें मात्रायोंकी पांचसौसे अधिक संख्या होजावे तो तिसकालमें कुंभकको कुंडलिनीके जगानेमें योग्य समझना चहिये इति ॥ ७२ ॥

गतिं विज्ञाय नाडीनां कुंडलीस्थानमेव च ।
सम्यग्योगी ततो युक्त्या शक्तिबोधनमाचरेत्॥

अर्थ—पहले नाडियोंकी गति तथा कुंडलीका स्थान भलीप्रकारसे जानकरके पश्चात् युक्तिसे योगी कुंडलीको जागृत करे इति ॥ ७३ ॥

अस्ति नाभेरधः कंदो देहमध्यगतः सदा ।
कुक्कुटांडसमाकारः सर्वनाडीसमाश्रयः ॥ ७४ ॥

अर्थ—नाभिके नीचे शरीरके मध्यभागमें कंदका स्थान है और कुक्कुटके अंडेके समान तिसका आकार है तथा शरीरकी सर्व नाडियोंका सो आश्रयभूत है इति ॥ ७४ ॥

बहत्तर कोठे : योगशास्त्रीय शरीर-रचना विज्ञान के अनुसार काया के भीतर ७२ कोठे या कोश वर्त्तमान हैं।

मानसरोवर : उपर्युक्त, अमृतकूप अथवा अमृतकुंड जिसके शुभ्र जल में 'सुरति' मग्न हो जाती है।

मुद्रा : हठयोग द्वारा विहित विशेष प्रकार के अंगन्यास जो खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी और उन्मुनी नामों से प्रसिद्ध हैं।

मेरु : मेरुदंड नाम की पीठ के बीच की हड्डी जिसे रीढ़ भी कहा जाता है।

शब्द : वह शब्द जो अनहद के रूप में शरीर के भीतर सुन पड़ता है और जो परमतत्त्व का प्रतीक भी समझा जाता है। 'शब्द' नाम बहुधा उस उपदेश अथवा 'गुरुमंत्र' को भी दिया जाता है जिसे सद्गुरु अपने शिष्य को प्रदान करता है।

शून्य : देखिये 'गगन'।

षट्चक्र : उपर्युक्त रीढ़ या मेरुदंड की रचना छोटे-छोटे अस्थिखंडों के आधार पर की गई बतलायी जाती है। इनके विविध संधिस्थलों पर सूक्ष्म नाड़ियों द्वारा निर्मित कतिपय चक्र से बन गए हैं। इन चक्रों की स्थिति सुषुम्ना से होकर ऊपर की ओर अग्रसर होने वाली कुंडलिनी के मार्ग में पायी जाती है और इनकी संख्या बहुत है। किंतु इनमें से मुख्य छह ही कहे जाते हैं जिन्हें नीचे से ऊपर की प्रगति के अनुसार क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा कहते हैं। इनकी रचना कमल के फूलों जैसी जान पड़ती है और इनके दलों की संख्या, इनके उक्त क्रमानुसार चार, छह, दस, बारह, सोलह एवं दो की समझ पड़ती है। इनकी स्थिति भी उसी प्रकार गुदामूल, लिंगमूल, नाभि, हृदय, कण्ठ एवं त्रिकुटी के समानांतर है। कुंडलिनी शक्ति इन छहों चक्रों को क्रमशः बेधती हुई आगे बढ़ती और उसी क्रम से साधना में उत्कर्ष भी बढ़ता जाता है।

सुखमन : सुषुम्ना नाम की योगनाड़ी जिसकी स्थिति मेरुदंड में है। यह इड़ा एवं पिंगला नाम की दो अन्य वैसी ही नाड़ियों के मध्य में नीचे से ऊपर की ओर बढ़ती हुई त्रिकुटी के निकट उन दोनों को भी अपने में मिला लेती है। फिर आगे सहस्रार से कुछ इधर लुप्त होती है। इसको सरस्वती नदी भी कहते हैं और इसी से होकर कुंडलिनी शक्ति प्रवाहित होती है।

सुमिरन : नामस्मरण की साधना जो वस्तुतः अनाहत नाद के श्रवण को ही लक्ष्य करती है और जो सुरति-शब्द-संयोग का कारण बनकर संतों के लिए आत्मोपलब्धि में सबसे प्रधान सहायक है।

सुरति : जीवात्मा अथवा परमात्मा का वह प्रतीक जो उसकी स्मृति या प्रतिनिधि के रूप में मनुष्य के भीतर वर्त्तमान है। सुरति का संतों ने अपने पति परमात्मा से बिछुड़ी हुई कुलहिन के रूप में भी वर्णन किया है। वह उससे मिलने के लिए आतुर हो नामस्मरण की सहायता से अनाहत शब्द के साथ संयोग कर लेती है जिससे अंत में उसे तदाकारता की उपलब्धि हो जाती है।

सूर्य : पिंगला नाम की उपर्युक्त योगनाड़ी अथवा मूलाधार-स्थित एक शक्ति जो ऊपर से प्रवाहित अमृतस्राव को सोख लेती है।

हंस : जीवात्मा जो नवद्वार के पिंजड़े (स्थूल शरीर) में अपने को आबद्ध पाता है।

॥ बचन पैतीसवाँ ॥

चढ़ कर पहुँचना सुरत का आकाश में और भेद और लीला मुक़ामात की जो कि सुरत ने रास्ते में देखी है

॥ शब्द पहला ॥

करूँ आरती नाना विधि से । देखो स्वामी मेहर बेहद से ॥1॥
घट का थाल चित्त की बाती । नाम चेतना[1] जोत जगाती ॥2॥
भाव भक्ति का भोग धराऊँ । सुरत दृष्टि का जोग मिलाऊँ ॥3॥
बाजे अनहद [illegible] । [illegible] नवाऊं ॥4॥
रूप अनूपम गगन गंभीरा । झलकें जहं तहं मोती हीरा ॥5॥
सूरज मंडल तेज उजारा । चन्द्र मंडली खोला द्वारा ॥6॥
सुखमन नाली सुरत चढ़ाई । बंकनाल में सहज समाई ॥7॥
धुन धधकार सुनी ओंकारा । लाल रंग जहँ सूर निहारा ॥8॥
त्रिकुटी घाट सुरत अब जागी । मानसरोवर चालन लागी ॥9॥
सेत सेत मैदान अनूपा । हंसन का जहँ देखा रूपा ॥10॥
द्वादस सूर कला जिन केरी । हंस हंस प्रति ऐसी हेरी ॥11॥
शोभा वहां की अगम अगाधा[2] । नहिं पावे कर जोग समाधा ॥12॥
सुरत जोग से पहुंचे कोई । जा पर दया राधास्वामी की होई ॥13॥
आगे भेद गुप्त हम राखा । [illegible] काहें कहिं भाखा ॥14॥
यह आरत अब पूरण होई । स्वामी देओ प्रसादी मोहीं ॥15॥

॥ शब्द दूसरा ॥

लाई आरती दासी सज के । नाम राधास्वामी का छिन छिन भज के ॥1॥
सील छिमा की ओढ़ चदरिया । काम क्रोध की छाँट बदरिया ॥2॥

---

1. याद करना। 2. अथाह।

नाम थाल लिया हाथ पसारी । बिरह अग्नि से जोत सँवारी ॥3॥
अमी सरोवर भर लइ झारी । राधास्वामी सन्मुख कर कर ढारी[1] ॥4॥
अगम लोक के बिंजन लाई । राधास्वामी आगे भोग धराई ॥5॥

सबद अतीत अनाहद राता ॥ ५
वा घर कृपा यौं मन जागे
सुरति बाजर जरा जागे ॥ ६
शुन्य मंडल में मेरा बासा
ताही रिक में रही उदासा ॥ ७
सुन्न महल निरगुन सुखदानी
पिया घर बास हो अविगति न जानी ॥८॥ , वही, पृष्ठ संख्या-१६८ ।

है । लेकिन उनका मन इतना चंचल है कि कबूतर की तरह कलाबाजी करते हुए गगन मण्डल की ओर अग्रसर होता है ।[1]

प्रसिद्ध संत सहजोबाई शरीर में ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की स्थिति मानती हैं । वे सुरति-निरति (साधना-समाधि) में लय लगाने की आवश्यकता पर बल देती हैं । ईश्वर का अनहद् नाद भी शील, संतोष, क्षमा, धैर्य आदि को ग्रहण करने के दुर्वासनाओं को त्यागने के पश्चात् ही सुनाई पड़ता है । गुरु की साधना पद्धति में दीक्षित हो जाने पर जीव को उन्मनी अवस्था प्राप्त हो जाती है जिसके बिना ईश्वर का साक्षात्कार असंभव है ।[2]

प्रसिद्ध संत कवयित्री मीराबाई ने सगुण कृष्ण की पूजा-अर्चना के साथ-साथ निर्गुण आत्म ब्रह्म की सत्ता को भी स्वीकार किया है । वे सुरति-साधना में आकाश मण्डल के स्वामी ब्रह्म में लीन होने की आवश्यकता पर बल देती हैं । अपने आध्यात्मिक गुरु की स्मृति का वियोग लौकिक प्रिय के वियोग से

---

[1] प्रथम पैठि पाताल सूं, धमकि चढ़े आकास
गगन सुरति नाटिनी भई, बाँधि बरत
– डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर: साधना और साहित्य, पृष्ठ संख्या-१६८ ।

[2] बाबा काया नगर बसावो ।
ज्ञान दृष्टि सूं घट में देखो सुरति निरति लौ लावो ॥ १॥
पाँच मारि मन बसि कर अपने, तीनों ताप न सतावो ।
सत सन्तोष गहो दृढ़ के तो, दुर्जन मारि भगावो ॥ २॥
शील छिमा धीरज कूं धारि, अनहद बंब बजावो ।
पाप बाणिया रहन न दीजे, धरम बजार लगावो ॥ ३॥
सुबस बास होवे जब नगरी, बैरी रहे न कोई ।
चरणदास गुरु अमल बतायो, सहजो संभलो सोई ॥४॥
– डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर: साधना और साहित्य, पृष्ठ संख्या-१७२ ।

20:50
Yoga-rasayanam-sansk...
27 / 100

पथ्यके नहीं पालन करनेसे [illegible] शरीरमें नानाप्रकारके ज्वरादि रोगोंकी उत्पत्ति होवे है इति ॥ ६९ ॥

इत्थं मासद्वयं कुर्यात् त्रिमासं वा गतालसः ।
यावत्पंचशतं मात्राः कुंभकस्य भवंति हि ७०

अर्थ—इस प्रकार उक्तरीतिसे दो अथवा तीन मासपर्यंत प्राणायामका अभ्यास करना चहिये जबतक कुंभककी पांचसौ मात्रा अनायाससे होजावें इति॥७०॥

एकादिगणनां कुर्यान्न द्रुतं न विलंबितम् ।
मनसा कुंभकाले तु मात्रास्ताः परिकीर्तिताः७१

अर्थ—कुंभककालमें एक दो तीन चार पांच इस प्रकारसे न तो शीघ्र और न विलंबसे जो मनमें गिनती करनी है तिसको मात्रा कहते हैं इति ॥ ७१ ॥

मात्राणां तु भवेत्संख्या यदा पंचशताधिका ।
तदायोग्यं विजानीयात् कुंभकं शक्तिबोधने७२

अर्थ—जिसकालमें मात्रायोंकी पांचसौसे अधिक संख्या होजावे तो तिसकालमें कुंभकको कुंडलिनीके जगानेमें योग्य समझना चहिये इति ॥ ७२ ॥

गतिं विज्ञाय नाडीनां कुंडलीस्थानमेव च ।
सम्यग्योगी ततो युक्त्या शक्तिबोधनमाचरेत्॥

अर्थ—पहले नाडियोंकी गति तथा कुंडलीका स्थान भलीप्रकारसे जानकरके पश्चात् युक्तिसे योगी कुंडलीको जागृत करे इति ॥ ७३ ॥

अस्ति नाभेरधः कंदो देहमध्यगतः सदा ।
कुक्कुटांडसमाकारः सर्वनाडीसमाश्रयः ॥ ७४ ॥

अर्थ—नाभिके नीचे शरीरके मध्यभागमें कंदका स्थान है और कुकुटके अंडेके समान तिसका आकार है तथा शरीरकी सर्व नाडियोंका सो आश्रयभूत है इति ॥ ७४ ॥

18:14

11_chapter6

सुरति-निरति-शब्द-योग-साधना

प्रत्यक्ष रूप से ऐसा ज्ञात होता है कि यह शब्द सुरति-योग कोई नयी साम्प्रदायिक साधना पद्धति है, किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है । यह अपनी पूर्ववर्ती योग साधनाओं का ही अभिनव रूपान्तर है । योग-ग्रन्थों में लय-योग के कई प्रकारों का उल्लेख है । शब्द सुरति योग भी लय योग का ही एक भेद है ।

साधना के क्षेत्र में 'सुरति' शब्द के साथ 'निरति' शब्द का भी बहुत अधिक प्रचार है । सुरति' और 'निरति' शब्दों के अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । यहाँ पर कतिपय विद्वानों के मतों का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा-

१-डा० पी०डी० बड़थ्वाल जी सुरति शब्द की उत्पत्ति स्मृति से मानते हैं ।[१]

२-डा० सम्पूर्णानन्द जी सुरति को श्रोत का अपभ्रष्ट रूप मान कर उसकी उत्पत्ति श्रोत शब्द से मानते हैं ।[२]

३-राधास्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी सुरति का अर्थ जीवात्मा से लेते हैं और उसे जीव का पर्यायवाची कहते हैं ।[३]

४- आ० क्षितिमोहन सेन 'सुरति' का अर्थ प्रेम और 'निरति' का प्रेम वैराग्य करते हैं ।[४]

५-आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सुरति को अन्तर्मुखी और निरति को बहिर्मुखी प्रवृत्ति सिद्ध करने का प्रयास किया है ।[५]

६-डा० रामकुमार वर्मा इसे 'सुरति' इच्छा क्रिया' का वाचक मानते हैं ।[६]

७-पं० चतुर्वेदी के शब्दों में-हमारी सुरति' हमारे जीव का वह निर्मल रूप है जिसमें हमारे मूल सत्य का प्रतिबिम्ब बराबर झलका करता है ।[७]

सुरति का स्वरूप और अर्थ वास्तव में अनिर्वचनीय है । वह आत्मा, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, जीव आदि सबसे विलक्षण होते हुये भी सब कुछ है । सन्तों का शब्द सुरति योग लय योग, मंत्रयोग और राजयोग का समन्वित रूप है । यहाँ पर

१-हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ०४१८ २-विद्यापीठ त्रैमासिक पत्रिका भाग १,६/१५
३-कल्याण के योगांक में सुरतियोग शीर्षक लेख- ४-'कबीर' नया संस्करण, पृ०२२४
५-वही, ६-कबीर का रहस्यवाद, परिशिष्ट पृ०१५१, व कबीर साहित्य की परख,
७-उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ०२०४

17:00
Image to PDF 2024122...
33/110

एक अन्य स्थल पर उन्होंने योग की जटिलता को दुसाध्य बताते हुए केवल प्रेम रस के पान की व्यवस्था दी है :—

उरध मुख भाठी अवटो कवनी भाँति।
अर्घ उर्घ दोउ पोग लगायो, गगन मंडल भयो भाठ ।।
गुरु दियो ज्ञान ध्यान हम पायो, कर करनी का ठाट।
'हरिक' पद मत बाल रहत है, चलत उलट की बाट ।।
आपा उलटि के अमी चुआओ तिरवेनी के घाट।
प्रेम पियाला सुति भरि पीवो, देखो उलटी बाट ।।
पाँच तत्व एक जोति समानो, घर छः वो मन हाथ।
कह यारी सुनियो भाइ सन्तो, छकि-छकि रहि भयो मात ।।[1]

यहाँ पर यद्यपि अमी, चुआना तथा 'तिरवेनी' और उलटी चाल आदि कुछ यौगिक सांकेतिक शब्दों का प्रयोग अवश्य हुआ है। पर उनका अर्थ ठीक वही नहीं है जो योगी की दृष्टि में होता है।

यारी साहब के शिष्य एवं बावरी-पन्थ के पूर्वी क्षेत्र के प्रभावशाली सन्त बुल्ला साहब योग से सबसे अधिक प्रभावित थे। उनकी रचनाओं में योग का सांगोपांग वर्णन मिलता है। उन्हीं के शब्दों में :—

सन्तो जोग जानै तौन।
आपु-आपु विचारि लेवै रहै घर में मौन ।।
चाँद सूर एकत्र करिके, सुखमना धरि पौन ।।
तँह होत है अनहद गहागह, मिटो मन को घौन ।।
लाल पहिरि सफेद पहिरे, जरद हरिया जौन ।।
स्याम पहिरि के जब उलटि चलिया, भयो घर में चैन ।।
तब दास बुल्ला बानि बोलौ, निर्त तावेद हौन ।।[2]

प्रस्तुत उद्धरण में योग के उद्देश्य से लेकर उसकी अन्तिम स्थिति तक का कितना सूक्ष्म वर्णन है। प्रथम पंक्ति में चित्तवृत्ति-निरोध की ओर स्पष्ट संकेत है, जो कि योग-साधना का मुख्य साध्य है (योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः)[3]। द्वितीय पंक्ति में इड़ा और पिंगला के प्रतीकात्मक नामों का प्रयोग तथा वायु का सुषुम्ना में प्रवेश उनके योग के सम्यक् ज्ञान की पुष्टि करता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने षट् चक्रों के वर्णन में उनके रंगों तक का वर्णन उपस्थित किया है :—

बूझहु पंडित अचरज एक। सेत बदन तहँ सदा अलेख ।।
संधि पवन षट चक्र छुड़ावो। तिरवैनी के घाटे आवो ।।

---

१. या० र०, पृ० ६
२. बु० श०, पृ० ६
३. हिन्दी पातंजलि योगदर्शन, पृ० ५ : सम्पादक—डॉ० भगीरथ मिश्र तथा अन्य।

17:00
Image to PDF 2024122...

लक्ष्य की उपलब्धि का सर्वोपरि साधन है, क्योंकि सभी साधन सम्प्रदाय इसके विशाल रूप के अन्तर्गत आ जाते हैं। साथ ही साथ इसमें ज्ञान, कर्म, भक्ति का सुन्दर समन्वय भी हो जाता है।

बावरी-पंथ में योग

बावरी-पन्थ के सन्तों ने अन्य तत्वों के साथ-साथ साधना-क्षेत्र में कर्म-साधना के शारीरिक पक्ष अर्थात् योग-साधना को भी अपनाया है। पहले कहा जा चुका है कि मध्यकालीन सन्तों ने धर्म-साधना के विकृत और जटिल स्वरूप की प्रतिक्रिया के रूप में संगठन प्रारम्भ किये थे। बावरी-पन्थ का उद्देश्य उन तमाम जटिलताओं के बीच सरलता और अनेकता के बीच एकता स्थापन था।

सन्त यारी साहब ने यद्यपि प्रारम्भ में यौगिक शब्दावली का प्रयोग किया है पर इसे परिस्थितियों का प्रसाद एवं पिष्टपेषण भावना की प्रेरणा कह सकते हैं। तथापि उन्होंने कहीं भी यौगिक जटिलता के प्रति आस्था नहीं प्रकट की है। उन्होंने योगी को सम्बोधित करके बड़े ही सरल, भावपूर्ण शब्दों में योग-साधन का उपदेश दिया है :—

जोगी जुगति जोग कमाव।
सुखमना पर बैठि आसन सहज ध्यान लगाव॥
दृष्टि सम करि सुन्न सेवो आपा मेरि उड़ाव॥
प्रकट जोति अकार, अनुभव शब्द सोहं गाव॥
छोड़ि मठ को चलहु जोगी, बिना पंख उड़ि जाव॥
यारी कहै यह मत विहंगम, अगम, चढ़ि फल खाव॥[1]

उक्त शब्द में यारी साहब ने बिना किसी यौगिक प्रक्रिया के अनुसरण द्वारा सामान्य ध्यान से योगी को अगम की प्राप्ति का साधन निर्देश किया है। यहाँ न तो किसी पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग है और न किसी मुद्रा विशेष का आग्रह।

---

१. या० र०, पृ० ४

189/397
17:36
Bavri-panth ke Hindi-Kavi | बावरी-पं
lucknowdigitallibrary.com/publications/bav

16:58
Image to PDF 2024122...
30/110

नाड़ियाँ

शरीर में बहत्तर नाड़ियाँ बताई गई हैं। इन बहत्तर नाड़ियों में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना आदि तीन नाड़ियाँ प्रमुख हैं। इड़ा और पिंगला से प्राण-संचार होता है। इड़ा बाम तथा पिंगला दक्षिण नाड़ी है। सुषुम्ना इड़ा और पिंगला के मध्य में मूल स्थान से रीढ़ के भीतर होती हुई ऊपर जाती है। प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु को सुषुम्ना के भीतर प्रवेश कराया जाता है। प्राणवायु को सुषुम्ना में प्रविष्ट कराने के लिए कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करना पड़ता है। कुण्डलिनी[1] सुषुम्ना का मुख बन्द किये सर्पाकार कुण्डली बाँधकर सोती रहती है। सुषुम्ना द्वार जो मोक्ष द्वार कहलाता है कुण्डलिनी के उद्बुद्ध होने पर खुल जाता है। जैसे चाभी से ताला खोलकर भीतर प्रवेश किया जाता है वैसे ही कुण्डलिनी प्रबोध से ब्रह्मद्वार में प्रवेश करना होता है।[2] तत्त्वज्ञान की उपलब्धि इसीसे होती है।

मुद्रा

इसी कुण्डलिनी के उद्बोधनार्थ दस मुद्राओं को आवश्यक बताया गया है। इन दस मुद्राओं में खेचरी मुद्रा प्रधान है। खेचरी मुद्रा की स्थिति में योगी दृष्टि को मध्य में स्थिर रख जिह्वा को तालु विवर में प्रविष्ट करता है। यह स्थिति गोमांस भक्षण भी कहलाती है। इस स्थिति में योगी चन्द्र रस का पान करता है।

चक्र

कुण्डलिनी उत्थापन में चक्र भेदन को आवश्यक ठहराया गया है। योगशास्त्र का सिद्धान्त है कि जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में भी है। इसी सिद्धान्त के आधार पर शरीर के अन्दर विश्व-शक्ति तथा विविध ब्रह्माण्डों का, जिन्हें चक्र कहते हैं, कल्पना की गई है। हठयोग के ग्रन्थों में चक्रों की संख्या ६ मानी गई है। नाथ-पन्थ तथा तन्त्र-ग्रन्थों में इनकी संख्या इससे अधिक बताई गई है।

प्रथम चक्र

प्रथम चक्र मूलाधार नामक है। वह गुदा के ऊपर लिंगमूल के नीचे सुषुम्ना के मुख में संलग्न है। इसमें चार दल हैं। इसका रंग पीला है। इसके चार दल व, श, ष, और ह आदि

---

१. सृष्टि की समष्टि शक्ति को महा कुण्डलिनी कहते हैं। शरीरस्थ व्यष्टि शक्ति को केवल कुण्डलिनी कहते हैं। यह कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में प्राणशक्ति के साथ प्रसुप्त रहती है। यह इस चक्र के नीचे त्रिकोणाकृतिमय, अवस्थित, स्वयंभूलिंग के साढ़े तीन वलयों में लिपटी हुई सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है।

२. उद्घाटयेत् कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत् ॥—हठ० प्र०, २।१०५

187/397

17:06
Image to PDF 2024122...
67/110

अरध उरध के मध्य निरन्तर, सुखमन चौक पुराई हो।
रवि ससि कुंभक अमृत भरिया, गगन मंडल मठ छाई हो ॥२॥
पाँच सखी मिलि मंगल गावहिं, आनंद तूर बजाई हो।
प्रेम तत्त दीपक उजियारो, जगमग जोति जगाई हो ॥३॥
साध सन्त मिलि कियो बसीठी, सतगुर लगन लगाई हो।
दरस परस पतिबरता पिय की, सिवधर सक्ति बसाई हो ॥४॥
अमर सुहाग भाग उजियारो, पूर्व प्रीति प्रगटाई हो।
रोम-रोम मन रस के बसि भइ, केसो पिय मन भाई हो[1] ॥५॥

बुल्ला

रंग लागो गोरिया आज रंग लागो, आपा सोधि भ्रम भागो ॥ टेक
तिरगुन गुन गुनही पर जोरा, निर्गुन नाम हिये पागो ॥१॥
झिलमिलि झिलमिलि तिरवेनी, संगम अविगति गति ब्रह्म जागो ॥२॥
सुर नर मुनि जाको अन्त न पावहिं, सो मोरे नैनन आगो ॥३॥
हरि रंग जुगन जुगन उजियारो, जन बुल्ला साधुन सागो[2] ॥४॥

गुलाल

जनम सुफल भैलो हो हम धन पिया की पियारी ॥ टेक
सोरहो सिंगार संपूरन पहिरल देखल रूप निहारी।
तत तिलक दे माँग सँवारल विनवल अंचरा पसारी ॥१॥
आठ पहर धुनि नौबति बाजे सहज उठै झनकारी।
रीझि-रीझि, नेवछावर वारी मुक्ता भरि-भरि थारी ॥२॥
गगन मण्डल में परम पद पावल जमहि कइल परछारा।
जन गुलाल सोहागिन पिय संग मिलली भुजा पसारी[3] ॥३॥

भीखा

मन में आनन्द फाग उठो री ॥ टेक
इंगला पिंगला तारी देवे, सुखमन गावत होरी ॥१॥
बाजत अनहद डंक तहाँ धुनि, गगन में ताल परोरी ॥२॥

---

१. के० म०, पृ० ७
२. बा० र०, पृ० १
३. गु० म० सा०, पृ० १०

17:02

Image to PDF 2024122...

पद्धति पर है :—

36/110

जो कोउ राम नाम चित्त धरै ।
तन मन धन न्योछावर वारै, सहज सुफल फल भरै ।
गुरु परताप साध की संगति, जोग जुक्ति उर भरै ।
इंगला पिंगला सुखमन सोधै ज्ञान अगिम उद्गारे ॥

१. गु० बा०, पृ० ३०

192/397

17:36

Bavri-panth ke Hindi-Kavi | बावरी-पं

lucknowdigitallibrary.com/publications/bavr

चांद सूरज एकागर करिके, उलटि उरध अनुसरै ।
नाद विन्द को जोउ गगन में मन माया तब मरै ॥
आठ पहर नौबत धुनि बाजै नेक पलक नहिं टरै ।
भीखा सब्द सुनतहिं अबुध बुध अमरख हरख करै ॥[1]

भीखा का पद ७, पृ० ४६ भी इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है ।

गोविन्द साहब एक विद्वान् सन्त थे । उनको संस्कृत का अच्छा ज्ञान था । योग में उनकी बड़ी अभिरुचि थी । उन्होंने योग पर संस्कृत में एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की है । इस ग्रन्थ का नाम 'गोविन्द योग भास्कर' है । इसमें योग का सांगोपांग वर्णन प्रस्तुत किया गया है ।

वावरी-पन्थ की योग-साधना पलटू साहब के समय तक आते-आते अपना स्वरूप बदल चुकी थी । भगवत प्रेम और भक्ति के समक्ष उसका महत्त्व बहुत कुछ कम हो चुका था । यौगिक शब्दावली का प्रयोग तो होता था, पर उसके गाम्भीर्य के निर्वाह की ओर अधिक ध्यान न था ।

17:01
Image to PDF 2024122...

*उनमुनि मुद्रा लगी समाधि। रवि ससि पवनहिं राखो बाँधि ॥
चाचरि मुद्रा से प्रीति लगावो। भूचरि मुद्रा से प्रेम बढ़ावो ॥
अगोचरि मुद्रा से ग्यान भुगावो। खेचरि मुद्रा से दरस दिखावो ॥
जो पंडित ते करूँ पंडिताई। चरन रेनु हृदय लय लाई ॥
चरन रेनुका करहु जनेवा। तौ तू पंडित परसहु मेवा ॥
जो यह अचरज देहु बुझाई। सोई सतगुरु अगम कहाई ॥
अगम जोति का धारि ध्यान। बुल्ला बोलहिं शब्द निदान ॥*[1]

बुल्ला साहब की योग के प्रति ऐसी आस्था और ज्ञान देखकर प्रश्न उठता है कि अपढ़ हलवाहे बुलाकी को योग का प्राविधिक ज्ञान क्योंकर उपलब्ध हुआ? कहना न होगा कि बुल्ला अपढ़ होते हुए भी सत्संगी व्यक्ति थे। दिल्ली में यारी से दीक्षा लेकर अपने मालिक गुलाल साहब को छोड़कर सत्संग की खोज में निकल पड़े। इस अवसर पर उन्होंने सन्त सम्प्रदायों के योगियों व सन्तों तथा नाथपन्थी योगियों के सम्पर्क में रहकर योग का ज्ञान प्राप्त किया। सिद्ध है कि बुल्ला को योग का शाब्दिक ज्ञान ही न था, अपितु उनका यौगिक ज्ञान उनकी स्वानुभूति एवं अभ्यास पर आधारित था। इसके अतिरिक्त गुड़कुड़ा की गद्दी से उपलब्ध चित्र की उनकी मुद्रा उनका पूर्ण योगी होना प्रकट करती है।

लौकिक क्षेत्र में योगी बुल्ला के मालिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में बुल्ला के परम प्रिय शिष्य गुलाल साहब की अभिरुचि जितनी प्रेम-साधना में थी उतनी योग-साधना में नहीं। उनकी वाणियों के अनुशीलन से स्पष्ट है कि उन्होंने कहीं भी यौगिक प्रक्रियाओं का सूक्ष्म एवं शास्त्रीय वर्णन नहीं किया। परम्परा के अनुसार यत्र-तत्र बहुत ही प्रचलित शब्दों के दर्शन मात्र होते हैं। उनमें स्वानुभूति की वह गहराई नहीं मिलती जो बुल्ला में दृष्टिगत होती है। निम्नलिखित शब्द उक्त तथ्य की सम्यक् पुष्टि करता है :—

*उलटि देखा, घर में जोति पसार।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, बिगसि कमल कचनार ॥
पैठि पताल सूर ससि बाँधो, साधो त्रिकुटी द्वार।
गंग जमुन के वार-पार बिच, भरतु है अमिय करार ॥
इंगला पिंगला सुखमना सोधो, बहत सिखर मुख धार।
सुरति निरति ले बैठु गगन पर, सहज उठै झनकार ॥
सोहं डोरि मूल गहि बाँधो, मानिक बरत लिलार।
कह गुलाल सतगुरु बर पायो, भरो है मुक्ति भंडार ॥*[2]

उपरोल्लिखित शब्द इड़ा और पिंगला नाड़ियों के प्रतीकात्मक नामों की पुनरावृत्ति सूर-ससि, गंग-जमुन, इंगला-पिंगला तथा अन्य पारिभाषिक शब्दों की शून्यता स्पष्ट रूप से

---

१. बु० श०, पृ० १४
२. गु० बा०, पृ० ४७

191/397

17:11
Image to PDF 2024122...

राग बँगला

आली रूप लागी लो आछे मने।
हियरा मध्य मोहनि मूरति राखि लो यतनें ॥
अलखवान पुरि आसन ध्यान, माँझ त्रिगुनि कोनें।
दरस परस मोहनि मूरति देखि लो सपनें ॥
कोटि ब्रह्मा जाको पार न पावै सुर नर मुनि को गने।
'बीरू' भक्त के राम न स्थिर नाहीं मैं पायी भजिबो को मने ॥

शब्द

त्रिकुटी के नीर तीर बाँसुरी बजावै लाल,
भाल लाल से सबै सुरंग रूप चातुरी।
यमुना और गंग अनहद सुर तान संग,
फेरि देखु अंग मग को, छोड़ देवै कादरी ॥
वायू प्रचंड चंड बंक नाल मेरुदंड,
अनहद को छोड़ि दे आगे चलु बावरी।
ऊँकार धार बास इनहूँ का है बिनाश,
खसम को साथ करू चीन्ह ले तू नाहरी।
जन बिरू सतगुरु शब्द रिकाब धरु,
चल शूर जीत मैदान घर आवरी ॥

परसाद साहब की बानी

कवित्त

जग में परताप प्रचण्ड भयो चहूँ दिसि मारिकै जीति लियो है।
वेद पुराण अगाध पढ़ो और अटक कटक लै राज कियो है।
रानी एक से एक अलौकिक भोजन को पय पान दियो है।
कहै परसाद मुष पाक परो जो पै राम के नाम न प्रान दियो है ॥१॥

पाँच पचीस को केरिय बेर कै तीनि मउ बास कै ठौर मारा।
लोभ और मोह की फौज को मारि कै द्वादस इन्द्री तुरंत जारा।

367/397

17:09
Image to PDF 2024122...
83/110

रेखता

देह पवित्र से नेह करो,
　　जहाँ राम बसत आतम धारी ॥१॥
मूल में गाँठि परो दृढ़ से,
　　जहँ सुख मन सेज कि राह सँवारी ॥२॥
दसौं द्वार पर जोति बरै,
　　उतै निरंकार है ब्रह्म अपारी ॥३॥
बुल्ला हिरदय बिचारि बोलो,
　　गुरु ज्ञान कि बात सुनो हमारी ॥४॥[1]

मुहावरे

जीवन के व्यापारों का आधिक्य और उनकी बहुमुखी प्रवृत्ति एवं भावों की गहनता उनकी अभिव्यंजना में भाषा के लिए एक समस्या बन जाती है। भाषा उन्हें अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो जाती है। भाषा अपनी इस कठिनाई को दूर करने के लिए थोड़े में बहुत कहने की प्रवृत्ति और लाक्षणिक प्रयोग को अपनाती है। यह लाक्षणिक प्रयोग ही मुहावरे की संज्ञा ग्रहण करता है। जो साहित्य जीवन के कूलों को जितना अधिक अपने में समेटेगा उसे मुहावरों का प्रयोग उतना ही अधिक करना होगा।

बावरी-पन्थ, जैसाकि इस प्रबन्ध में अन्यत्र इंगित किया गया है, लोकजीवन के बीच फलने-फूलने वाला पन्थ है। इसमें जीवन के विविध पक्षों को लिया गया है। विशेषकर पलटू साहब इस प्रवृत्ति के प्रतिनिधि हैं। अतएव उनकी रचनाओं में मुहावरों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। यहाँ पर पलटू साहब की रचनाओं में प्रयुक्त कतिपय मुहावरों की सूची प्रस्तुत है।

१—बाल बाँका करना
　　को करि सकै अकाज बार नहिं बाँको बाँके।[2]
२—पसंघा मारना
　　बनिया बानि न छोड़ै पसंघा मारे जाय।[3]
३—मन महीन करना
　　मन महीन करि लीजिए जब पिउ लागै हाथ।[4]
४—अन्दर का परदा टरना
　　परदा अन्दर का टरै देखि परै तब रूप।[5]

---

१. बु० बा०, पृ० २१
२ से ५. प० सा० भाग १, पृ० २७, ७७, ११, ५८

17:06
Image to PDF 2024122...
68/110

सत संगति चोवा अबीर करि, दृष्टि रूप ले घोरी ॥३॥
गुरु गुलाल जी रंग चढ़ायो, भोखा नूर भरो री[1] ॥४॥

पलटू

आजु भई मैं तो आजु भई ठाढ़ि सुहागिन आजु भई । टेक
धोखे में नैहर दिन बीते आनन्द भय ससुरारि गई ॥
घँघरा पहिर विवेकी लहँगा फुफुदी कस विस्वास ठई ।
अंगिया प्रेम कसे अंग-अंग में सारी गुरू की सरन लई ॥
अंजन ज्ञान नैन भरि लाये भाव भक्ति की नथ नई ।
बेंदी भाल उनमुनी सोहै मोतिन के लर सुरति कई ॥
जगमग जोति जड़ाऊ जूरा शब्द सेंदुर भरि माँग दई ।
पलटूदास अचल अहिवाती अमर पुरुष मेरो सर्व मई ॥[2]

कृपादास

जागु-जागु सखी मधुमाती पिया संग सैन करी ॥ टेक
जब जागा तब भजन में लागा सुरति सुखमना को राह धरी ॥१॥
पंचरंग सेज गगन में दासेउं देखत के पिय बाँह धरी ॥२॥
अपने पिय संग सैन करतु है बहुत लोग उपहास करी ॥३॥
कृपादास दया सतगुरु की लोभियन के मन नहीं डरी[3] ॥४॥

उक्त चित्रों से बावरी-पन्थ के सन्तों की संयोग एवं विप्रलम्भ शृंगार की एक झाँकी मिलती है। इनके अधिक सूक्ष्म विश्लेषण से पता चलता है कि सन्तों की वाणियों में अनेक अनुभावों का भी अनायास समावेश हो गया है। स्थाली पुलाक न्याय से कतिपय उदाहरण यहाँ पर प्रस्तुत किये जाते हैं :—

१. कायिक

लोचन चंचल चपल चहूँ दिसि ।[4]

२. मानसिक

अभि अन्तर मन गाजी ।[5]

---

१. भी० श०, पृ० ४४-४५
२. प० श०, पृ० २३८
३. बाबा कृपादास शब्दावली, पृ० २५
४–५. हस्तलिखित ग्रन्थ, देवकीनन्दन साहब

17:15
Image to PDF 2024122...
108/110

गुरु के ग्यान मद पाइ मुदित भये चढ़ो दै हांक गढ़ लेन लंका।
फहम कै फौज सन्तोष कै सिपाह कै सबुर देत लव लव छुटै संका।।
पवन तू रंग लै सुरति असवार कै प्रेम खिलाहरन बीच चमका।
जोग और युक्ति दोउ तीर तरकस बने ध्यान कमान कै मारु फंका।।
शब्द समसेर के सुरति से मारि ले तीनि को पकरि तब होऊ रंका।
दास परसाद इन्ह सवन को कैद करि तुरिया चढ़ि जाइ तब देइ डंका।।४६।।

इड़ा औ पिंगला कमल दल सोधिकै बंक के नाल चढ़ाई देना।
लोभ औ मोह लाल मगहटी काम और क्रोध को मारि लेना।।
चांद और सुर्य को एक घर आनि के पवन की राह को खोलि देना।
सहस गुंजार को छोड़ दे नाल के गगन की राह को तुरत लेना।।
गगन के महल में शब्द अनहद बजै सुन्य के महल को कदम देना।
दास परसाद तब सहज समाधि ह्वै आपु में आपु को देखि लेना।।४७।।

कोऊ फिरत उदासी कोऊ बन बनवासी कोऊ दूध को अहार कंद मूल फल पावते।
कोऊ नेम अचार कोऊ तत्व विचारते कोउ संध्या तरपन कै घंट को बजावते।।
कोऊ जटा बढ़ाए कोउ खाक सिर नाये कोउ नख शिख से अब घोटि के मुड़ावते।
कोऊ गुदरी बनाई कोऊ अलफी सियाई कोउ पवन को अहार कै मंत्र को जगावते।।
कोऊ जोग और जग्य कोउ एक सर्वग्य कोउ सिद्ध और समाधि होई कोऊ पवन को चढ़ावते।
कोऊ तुमरी बजाये कोइ बैल को नचावै कोउ उर्धमुख हो ठढेसरी कहावते।
दास परसाद जग छोड़ि अब वाद दे अब जा मेरा जी राम सो तो कोउ नहिं पावते।।४८।।

दास और ईश को भेद इतनै रहै राम मिलन की राह बतावे।
आपु तो वहे हैं हमें का कहे जोग और जुक्ति कुछ नाहिं आवे।।
विठ नहीं प्रेम अनुराग लागा नहीं परे भ्रम फन्द कछु नाहिं भावे।
दास परसाद ऐसे ईस को दण्डवत आपु तो गए हम हूँ बोलावे।।४९।।

ईश कीजिये बूझि विचार कै करम औ भरम से होइ न्यारा।
लोक औ वेद जग आस को छोड़ि कै सत्य सरूप तै तत्व गारा।।

17:13
Image to PDF 2024122...
103/110

गगन के बीच में शब्द अनहद बजै सुनैगा सोई जो तत्व भाजै।
नूर जह नूर दोउ नजर में चस्म बिनु तुरिय अठ पहर नौबति बाजे।।
साति जो महल है वादि अठ्ये पर स्वेत ह्वै वरन जहां जोति छाजै।
सत्य सरूप जहँ रूप को देखि के दास परसाद यँह भाँति गाजै।।२१।।

सुनि के शिखर पर अनहद बाजा बजै उठै तरंग जब लहर आई।
हद अनहद के पार तँह डंक देइ गयब घर जाई फेरै दोहाई।।
चाँद और सूर्य को एक घर आनि कै शब्द में सुरति कोइ जाइ लाई।
दास परसाद एह आस को छाँड़ि दे भेद को पाई तब रूप लखाई।।२२।।

जन को द्रोह प्रभु देखि नाहीं सकै करै द्रोह सो पावे बेषता है।
ब्रह्म जो बोलता चीन्हि लें काल कें और सब झूठ संसार को पता है।।
राम की भक्ति सोई सार है आदि से वेद औ सास्त्र की यही सब मता है।
कहै परसाद प्रभु जन में जाइकै भक्त के हेतु सो ग्राह को हता है।।२३।।

जगमग जोति जड़ाव जटा सिर गले प्रेम की माला है।
अरध उरध के बीच में सोहै फुलेल गुलाला है।।
लोक वेद एक नाद विन्द दोइ चारि एक में शाला है।
कहै परसाद सुनो भाइ पलटू चवर सिर ढाला है।।२४।।

जिनके रंग रूप नहिं रेखा उन्ह से प्रीति लगाया है।
जन्म बिना जन्मी जँह बाजे सोहं शब्द सुनाया है।।
गगन महल की खिरकी छोड़ा दसये द्वार खोलाया है।
कहै परसाद सुनो भाइ पलटू यह घर घाट लखाया है।।२५।।

पाँच तत्व में एक पवन है तीसहु ते यह न्यारा है।
वाइ अपना सिमिटि भय पवना पहुँचा दशये द्वारा है।।
सत्य सरूप जहँ सुन्य भवन है सुनि अनहद मन हारा है।
कहै परसाद सुनो भाइ पलटू सोहं शब्द विचारा है।।२६।।

17:12
Image to PDF 2024122...
102/110

जप तप नेम अचार और पूजा कितनी ध्यान लगावेगा।
उरधमुखी न खीलोह लंगर भडनी सान बुझावेगा॥
उन मुनी तारो पवन अहारी पुनि चौरासी आवेगा।
दास परसाद जो राह मिलन की सन्त कोउ भेद बतावेगा॥१५॥

उलटि पवन को फोरि चक्र को अनहद तूर बजावेगा।
इड़ा पिंगला सुखमन नारी बंक के नाल चढ़ावेगा॥
अष्ट कमल दल उलटि कमल दल सुन्य में सुरति चलावेगा।
छोड़े चांद सुर्ज को छोड़े आगे को मन लावेगा॥
जगमग जोति निरन्तर निर्मल सोइ सब्द सुनावेगा।
दास परसाद यह खेल खेलि के बहुरि न यहि जग आवेगा॥१६॥

दास और ईश दोऊ एक में भेदी मिले भेद को पाइ तब चले आगे।
रिधि औ सिधि की कनक दुइ महल में देहि के चित्त न उहां पागे॥
गुरु को शब्द लै मान समसेर कै मोह दल मारि यहि मौति जागे।
दास परसाद यह खेल को नव दो जरै जब अगिनि तब पांच भागे॥१७॥

जोगी अब जोग को भेद पावे नहीं न फाका किये अब जोग माहीं।
आदि औ अन्त मन एक जो रस रहै डकां जो तनिक तो नर्क जाहीं॥
आठ-नौ पहर है चौसठ सो घरी है रइनि औ दिवस गुण लेहु ग्राही।
दास परसाद जो राम की भक्ति है भक्ति को बीज खालीय नाहीं॥१८॥

यार फकीर तू परा कित ख्याल में भक्त जंजाल तू छोड़ सारा।
राम को नाम गुण गाइले पांच पचीस बिनु अगिनि जारा॥
नीच अब भयो नहिं राम के मिलन को छोड़ अहंकार नहिं मान हारा।
दास परसाद धोख धन्धा धरो मुये सिर पटकिनहिं तत्व मारा॥१९॥

सुन्य के सिखर पर पांव ठहरै नहीं तहां अधाई मन चढ़ा जाई।
लोक और वेद की नमि जहँवा नहीं तहां हम जाइके सुरति लाई॥
मोल को बांधि कै चक्र को फोरि के औग विहंगम राह पाई।
दास परसाद जो सबद सोह उसी के भीतर बैठि गाई॥२०॥

21:48
Santmat ka sarabhan...
143/336

पूरक बत्तीस उर्ध गति; कुम्भक चौसठ रोक।
छाड़े एक टकसारे है; करे राग नहि शोक॥
बाहर भीतर कितनो धोवो; रोको पवन उताने सोवो॥
देखै जोती हृदया मांहीं; बिना भजन सपनेहु सुख नाहीं॥
—कर्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृ० ६०-६१

८. 'The Hidden Teaching Beyond Yoga', pp. 39-40.

९. देखिए, 'संतकवि दरिया : 'एक अनुशीलन', पृ० ६४ आदि।

१०. Arthur Avalon or Sir John Woodroffe के 'Serpent Power' नामक ग्रंथ मे इस विषय का विस्तृत विवेचन देखिए, पृ० २४५-४६।

११. हीरा मलके द्वार मे परखे कोई सूरा हो॥
सिद्ध आसन सोधि के, धरिहउ मन धीरा हो॥
—टेकमन : भजन-रत्नमाला, पृ० १७

१२. आसनों का चित्र-सहित विवरण स्वामी शिवानन्द कृत 'योगासन' मे देखिए।

१३. सरल विवरण के लिए देखिए 'संतकवि दरिया : एक अनुशीलन', पृ० ६६-६७

१४. सब मुद्रन मे खेचरी भारी॥
जेहि मुद्रा को नित प्रति साधत, योगीजन त्रिपुरारी।
जिह्वा के मूल नीचे को काटै, पुनि जिह्वा दोहि डारी॥
रसना लम्ब होय जब जाव, तब तालु देह पैठारी।
आसन स्थिर राखे योगीजन, जिह्वा को अस्थिर धरी॥
त्रिकुटि मे ध्यान स्थिर करि राखै, बिचले न पावहिं तारी।
परम प्रकास के दरसन करिये, जो उपमा से न्यारी॥
—निर्पक्षवेदान्तराग-सागर, पृ० १०४

१५. बारह बरिस में ऊपर आवो,
तब जोगी कहलावो॥
—जोगीनामा, हस्तलिखित संग्रह, पृ० ३४

१६. जिह्वा उलटि के भीतर ही को, तालू मॉह सटावै।
गिरै अमियरस गिरा पै छक-छक, कुन्डलिनी ललचावै॥
काम व्यापै तो उलट जिभ्या लगा ब्रह्म रन्ध्र में।
जब स्रवै अम्रित तो छक-छक पान करना चाहिये॥
—आनन्द-मयहार, पृ० ४२, ६३

१७. जब जोगी तुम बइठत नाहीं,
तब जोगी उड़ि जावो।
साठ जोजन पैर खिलावो,
तब जोगी कहलावो॥
—जोगीनामा, हस्तलिखित संग्रह, पृ० ३४

१८. इंगल पिंगल सुषमनि सोधि के, उनमुनी रहनि गहतहीं काल बाँचा।
सुरत अरु निरत की लगन मे मगन होय, रामकिना सोई रंग राँचा॥
—गीतावली, पृ० ९, पद २१

17:22

Search files, tools

b

Recent Starred

yogic Mudra and Bandha from 288 book's
14:44 · 1.3 GB · Download

shivaa new 17 dec 2024
04:12 · 36.2 MB · This Device

2015.269221.Sant-Kavi_1
17:56 · 43.6 MB · This Device

File Radar
Files from WhatsApp, Telegram, etc.

Durga Devi Stotra Sanskrit new 21 july 2023
20/01 · This Device

SCERT Kerala State Syllabus 1st Standard Sanskrit Academic Textbooks
17/01 · 57.5 MB · This Device

13505.9473-%20%28part-3%29
16/01 · 9.5 MB · This Device

vAmakezvarImata-M00097-DEV
14/01 · 384 KB · This Device

+ Create

6
13/01 · 2.6 MB · This Device

Recent Files Discover WPS Pro

17:16
Image to PDF 2024122...

लोभ और मोह जिय नेंक आवे नहीं करे सोइ काम जो संत धारा।
दास परसाद अब ईस सोई बंदौं करम की रेख पर मेष मारा ॥५०॥

रूप सरूप जिन्ह आपनो पाइया आगे का चलना क्या भावे।
लोक औ लाज जो कर्म को फंदहे गये वै दूर नहिं निकट आवे ॥
रहन औ गहन अन सहन विवेक सो करे सोइ काम जो वेद गावे।
दास परसाद वे दास से इसिक करै करत के नाहिं वे बेलम लावे ॥५१॥

करम के फन्द को फार दे बाल के राम के नाम गुण गाउ भाई।
गुरु के ग्यान ले उलटि दे कमल को ऊरध और उरध बिच देखु आई॥
जियत जिय मारिकै तन मन जारिकै गगन की राह तब पवन जाई।
दास परसाद जो शब्द है ईश का ज्ञान औ ध्यान से जाय सुनाई ॥५२॥

ईड़ा और पिंगला सोधि ले बाल के बंक के नाल चढ़ाउ जाई।
सहस दल कमल को उलटि ले बाल के अरध और उरध बिच शब्द पाई॥
जिमि को उलटि असमान नीचे करै तहां अब सुरति समाधि लाई।
दास परसाद सोई ईस कै मानिये जोइ इस भेद को देइ बताई ॥५३॥

एक ओर लोक और वेद सब एक ओर आपु जब होइ अकेला।
सहस दल कमल को उलटि दे एक ओर बिन्द में नाद को करै मेला॥
दास से ईस ह्वै ईस से दास ह्वै गुरु से होइ तब जाइ चेला।
जगत में आई गुरु ग्यान को पाइ तब दास परसाद यह खेल खेला ॥५४॥

चलो जी चलें हरि रंग सोर लै जब पाइ गुरु गमित देइ हेला।
सत्य के पाप जब झूठ को छोड़ि दे उलटि कै बिन्द में नाद मेला॥
तत्व विचारि कै ज्ञान को मथै जब गुरु से सरस तब हुआ चेला।
लोक और वेद इन्ह दोउ को छोड़ि कै दास परसाद यह खेल खेला ॥५५॥

कुमति को जारि कै सुमति को धारि कै राम के नाम पै सुरति लाया।
काम औ क्रोध को लोभ औ मोह को मारिकै अदल चलाया॥
आस को छोड़िनिज रास जब दास ह्वै तजै जब पांच नव फिरै माया।
दास परसाद जब सीस को दीजिये रीझै जब ईश तब करै दाया ॥५६॥

21:55
Santmat ka sarabhan...

या जग गुप्त कछु कै राखो, जाने सोई जन जान।
जोगेश्वर आपे आप में मिले, तब छूटे पसार ॥१५॥

—स्वरूपप्रकाश, प० सं० ६१

बड़ा यत्न से पिया के पाई रे ॥टेक॥
प्रथमें मूल बन्ध के बान्हो अण्ड गुदा मध्य सिमटाई।
मेरुदंड सीधा कै राखो, नागिन जाइ जगाई रे ॥१॥
तब उडियान बन्ध को किन्हा, नाभि पीठस्त लगाई।
पछिम दिशा के खिड़की खुला, बंक नाल चढ़ि धाई रे ॥२॥
बन्ध जालन्धर कस के सान्या, कंठ लिये सिमटाई।
उलटी नयन लगे त्रिकुटी में, अगम ज्योति दर्शाई रे ॥३॥
महाखेचरी मुद्रा साधा, जिह्वातल सूत कटाई।
खैंची श्वास उलटि जिह्वा को. ब्रह्मरन्ध्र समाई रे ॥४॥
थर-थर काँप कलेजा उठे, तव पीछे सुख पाई।
अमृत स्रवी मुखमैं मीठा अनहद नाद सुनाई रे ॥५॥
सोहं सोह अजपा जहँ उठे, अजब रूप दर्शाई।
योगेश्वर जीव मिले अभिगत में, आपे आप हो जाई रे ॥६॥

—स्वरूपप्रकाश, प० ११२

काया पुर खेती कैलों, बोअलों कुसुमिया ! हे ननदिया मेरो।
गगन में फुलवा फुलाय, हे ननदिया मेरो ॥१॥
दस पाँच सखिया मिलि, फुलवा लोढ़े चललीं, हे ननदिया मेरो।
नैना चंगेलिया बनाये, हे ननदिया मेरो ॥२॥
रंगलो में पिया के पोशाक, हे ननदिया मेरो।
योगेश्वर पिया पहिरी, सोअलों पलंगिया, हे ननदिया मेरो।
देखि देखि नैना जुड़ाए, हे ननदिया मेरो ॥३॥

—स्वरूपप्रकाश, प० १३८

सिद्धासन साधि निरन्तर बैठि के, योग क्रिया कलृत्वहिं ठानैं।
योगेश्वर चित्तवृति के निरोध ते, तत्त्व विवेक लहैं पहचानैं ॥

—स्वरूपगीता, पद-स० ४१

लघु तात सिद्धासन आसन को, ऐंड़ी निज अण्ड ते नीच जनावे।
दच्छिन ऐंड़ी को इन्द्री के मूल को दाबि मेरु दंड सीधी बनावे।
दोउ हस्तन ते हैं अनेक क्रिया, दोउ नेत्रहि नासिका अग्र लगावे।
सिद्धासन पै करि कर्म अनेक, योगेश्वर मुद्रहिं योग लगावे।

—स्वरूपगीता, पद ४२

21:50
Santmat ka sarabhan...

२. आनन्द भण्डार, पृ० २४

३. निरंजन पद कोउ साधु जानता है।
मूल द्वार खींचि पवन को, उलटा पंथ चलाता है।
मेरुदंड के सीढ़ी बना के, सुंन सिखर चढ़ि जाता है।
—गोविन्दराम : ह० लि० सं०, पद २

४. मूल चक्र विमल होय सोधो।
त्रिकुटी के श्वासा धर लऽ।
द्वादस गुडिया उड़ावहु हो।
—मिनकराम हस्तलिखित संग्रह, पद १७

५. सोही सोहागन उल्टे खुलि गेल गगन केवारा हो।
इंगला पिंगला सोधिके चढ़िहै सुरधामा हो॥
सतगुरु वहाँ आपु है, पुरैहें, सतनामा हो।
त्रिकुटी मंदिर भीतरे, वहाँ ज्योति अखंडा हो॥
—मिनकराम : ह० लि० सं०, पद २४

६. मूल चक्र पर तुम्हरो बासा, चार दल ताहा कमल प्रकासा।
खट दल ताहां ब्रह्म रहै समाई, जाहां कमलनाल सोहाई॥
अस्ट दल कमल विष्णु के बासा, ताहां सोहंग करै निवासा।
द्वादस खोडस सुरति समावै, शिव शक्ति के दर्शन पावै॥
—रामस्वरूप : भजन-रत्नमाला, पृ० ३

७. उनमुनि ध्यान नासिका आगे, तब गढ भीतर पैसार।
छः चक्र षोडस रस खावै, दसो द्वार थानादार॥
चान्द सूरज करो उनमुनि में, तब खोलो त्रिकुटी किवार।
अग्नि विमल चक्र एक दरसे, मेरुदंड तेहि ठाम॥
—गोविन्दराम : ह० लि० सं०, पद १

८. धरहु ध्यान अभिअन्तर उर में, सार शब्द नित नित हेरो।
त्रिकुटि मध्य दोउ नेत्र लगा के, उलटि पवन के फेरो॥
यही विधि आतमरूप निहारो, सुन्दर परम उजेरो।
मकरतार इव सुरति सोहागिन, चलु मन जहँ पिया मेरो॥
योगेश्वर दास नैहर अब बीतल, छूटल जग भट मेरो।
सद्गुरु कृपा पिया तोरे भीलल, अब क्या सोच करे हो॥
—स्वरूप-प्रकाश, पृ० १८

९. सुनहु तात जो सज्जन कहहीं, हिय महँ कमल अधोमुख रहहीं।
कदली पुष्प समान अष्टदल, तेहि पर घूमत सदा मन चंचल॥
दश अंगुल के कमल है, नाल दण्ड पर ठीक।
आठो दल आठो दिशा, ताकी फल सुनु नीक॥
पूर्वहि दल पर जब मन जाहीं, कृपा करे सब जीवन माहीं।
अग्निकोण मे निद्रा आलस, दक्षिण मत्सर क्रोध बखानत॥
नैऋत दल पर मोह जनावे, पश्चिम दल जडता उपजावे।

21:49

Santmat ka sarabhan...

१९. इंगला, पिंगला शोधन करिके, पकडा सुखमन डगरी।
पाँच के मारि, पचीस वश किन्हा जीत लिये नौ नगरी ॥
[पाँच तत्त्व, पचीस प्रकृतियाँ, नव द्वार (इन्द्रियाँ)]

—स्वरूप-प्रकाश, पृ० १३

२०. इंगला, पिंगला नदिश्रा बहत है। बरसत मनि जल नीरा।

—भिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पृ० ८

२१. इंगला सोधो पिंगला सोधो, सुन भवन मन लाइश्रों।
सुन भवन मे पिया के बसगित, जगमग ज्योति दरसाइश्रों॥
गंगा जमुना त्रिबेनी संगम, उहाँ अस्नान कराइश्रों।
करि अस्नान जपो अभिअंतर, सतगुरु शब्द लखाइश्रों॥

× × ×

इंगला पिंगला दोनों बहे धारा, सुखमन सोधि गगन निजु डेरा।
श्री टेकमन महाराज भिषम प्रभु, प्राण पुरुष चरणन निजु हेरा।

—भजन-रत्नमाला, पृ० ८, १३

२२. सुखमनि भरे जो नीर अकासा, जो जन पिश्रही बिन पेश्रासा।
इंगला पिंगला करे विचारा, मन बैठत नहिं लागे वारा॥
यह गति जानै जोगी कोई, जाके निपुन हाथ नहिं होई॥

—भजन-रत्नमाला, पृ० ४

२३. उलटा धार बहेला बंक नाला, बिना रसना के जपे अजपा माला॥
त्रिकुटि महल मे सुग्गा मेरराला, दरसन राम के मन हरखाला॥

—भजन-रत्नमाला, पृ० १०

२४. ऐसा ध्यान लगाना साधो, ऐसा ध्यान लगाना।
मूल द्वार के साफ करो तब, गगन महल में धमके॥
त्रिकुटि महल मे बैठिके, देखे जोति अपारा॥

× × ×

सोहंग शब्द विचार के, वोहंग में मन लाई।
इंगला पिंगला दोनों द्वार है, सुखमन मे ठहराई॥

—भजन-रत्नमाला, पृ० १९-२०

२५. बाम इंगला बसै पिंगला रवि गृह जानो।
मध्य सुषमना रहै शब्द सतगुरु सम मानो॥
नामी शब्द कियारि अमिय को गगन निवासा।
सहज चन्द्र रबि उदय, शून्य को शब्द प्रकासा॥
रामरूप गुन गन सहित मन मनसा पहिचान।
मन मोर अजरा झरै इडा सुखंमृत पान।

—किनाराम : रामगीता, पृ० १३, पद ३४

२६. सुरति निरति के देखु नयन के कोर से।
सरवन सुने अनहद बाजे जोर से॥

—आतम-निर्गुण-ककहरा, पृ० १

२७. अनहद सुनै गुनै नहिं भाई
सुरति ठीक ठहर जब जाई॥

21:59
Santmat ka sarabhan...

अष्ट दल कमल फुले गुलजार।
मेरे मन मधुकर, करै गुलजार॥
इंगला पिंगला के काया निरुआर।
सुखमन बटिया के खुलु न केवार॥
नाभि कुंड बहे अमृत धार, शब्द उठै जहाँ ओंकार।
तालेदास इहाँ काया निरुआर, जीति चलहुँ वहि देशवा बिरान॥

(५)

दिहलन एक जड़ी हमारे गुरु ॥टेक॥
इहो जड़िया मोही प्यार लगत है, अमृत रस से भरी।
इहो जड़िया केउ सन्त लोग जाने, लै के जपत रही॥१॥
त्रिविध तापना तन से भागे, दुर्मति दूर करी।
इहो जड़िया देखि मृत्यु डेराने, और कौन बा पुरी॥२॥
मनही भुजग पाँचो नाड़ी सन तरंग भरी।
डाइन एक सकल जग खाये, बोली देख डरी॥३॥
निशि बासर जन ताहि न बिसरै, पल चित एको घड़ी।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी सकलो व्याध हरी॥४॥

(६)

भजन में सन्तो प्यारा है॥टेक॥
बिनु सड़सी बिनु हाथ हथौड़ी, गढ़ल सजल तइयारा है।
बिनु खम्भा-असमान खड़ा है, उसमें धागा लागा है॥
बिनु चूना के मंदिल चुनौटल, उसमें साहेब हमारा है।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी, सतगुरु सबसे न्यारा है॥

(७)

सोऽहं नाहि विचारी जम्हु हो॥टेक॥
नाटा बएलवा टाट् नहिं अंगछै, छन छन देत गिराई।
गुरु के शबद लै नाधु बएलवा, हनि हनि मान्हु पेटारी॥१॥
ना हम लादो हीरा-मोती, ना हम लौंग सुपारी।
हमहुँ त लादब गुरु के सबदवा, पूरा खेप हमारी॥२॥
'तालेराम' पतिया लिखि भेजल, लक्ष्मी के भटभारी।
साहब कबीर के घर भरत है, अपने भइले बेपारी॥३॥

(८)

सद्गुरु बनिया पिंजड़ा पा लेना॥टेक॥
एक दमरी के मुनिया बेसहलो, नौ दमड़ी के पिंजड़ा।
आएल बिलाई झपट लेलक मुनिया, रोये सारी दुनिया॥

—स्व० प्रकाश, पद सं० ८८

साधु-सद्गुरु, सत्संग आत्मसंयम, कुसाधु-कुभक्त

त्यागु निज मोह कोह, दयादम योग जाप,
ध्यान न्यास त्यागो, पाठ पूजा अरु ज्ञान जो।
त्यागु सब देव अरु, सेवा किसी इष्टन की,
त्यागु पित्र प्रेम नेम, और अनजान जो॥
त्यागु सकल तीर्थ वर्त और आचार जेतिक,
त्यागु क्षेत्र मन्दिर अरु नदिया स्नान जो।
कहता योगेश्वर ब्रह्माण्ड माँहि ऊँच नीच,
त्यागु त्यागु सकल सिद्ध का निज मान जो॥

—स्व० गीता, कवित्त १, पृ० ११०

तीरथ बरत करि पूजा पाठ ध्यान धरि,
नेम वो आचार करि शुभ मग डोलिये।
सन्तन के सेवा सतसंग नित हेरि करि,
नाम के रटन करि, सत्य बोली बोलिये॥
करि षट क्रिया दस मुद्रा के साधन तब,
गगन कपाट को झटाक दीन खोलिये।
ज्ञान वो विराग को विचार निसिबासर,
योगेश्वर अगुण गुण तुलासम तोलिये॥

—स्व० गीता, छंद २५, पृ० १६२

लागि सोई विकल चित मोरा, कब देखिहौ मैं जाई।
सद्गुरु भेदि मोहि दर्शन दीन्हा, दिये भेद लखाई॥१॥

—स्व० प्र०, पद-स० ५

सुनि निश्छल बैन गुरु हमरे, उठि पृष्ठ के ओट हुये तब ठारे।
वामे कर शीश पै राखि प्रभु, कर दाहिन लिखत पृष्ठ हमारे।
गुरु पूछत हैं हम काह लिखा, हम जानेउ ना कहि काह उपारे।
पीछे पगु एक हटाई गुरु, निज लात योगेश्वर पृष्ठहि मारे।

—स्व० गीता, पद-सं० ८८

चरण प्रहार जो कीन्ह गुरु, टूटेउ अज्ञ कपाट।

21:55
Santmat ka sarabhan...

नेती बस्ती और धौती कार, नेवली है त्रातक औ गजकरणी।
षट् कर्म यही योगीश करै, पुनि सांख्य न वेद पुराणन वरणी।

—स्व० गी०, प० ४३

सिख देई मुझे मुद्रा दसही, जेहि भाँति दया गुरुदेव बताई।
तेहि नाम बखानि महामुद्र दूजे महाबन्ध वोवेध्य जनाई।
खेचरी उड़ियान जालन्धर जे मूल बन्ध कही बखानी चेताई।
योगेश्वर जो विफलाकरणी पुनि शक्तिहुँ चालनी देत लखाई।

—स्व० गी०, प० ४४

पल चंचल ते नित झाँपि खुलं, तेहि रोक सदा टक एक लगावै।
नीर झड़ै पल थीर रहै, रंग बैंगनी ते चिनगी झड़ि आवै।
लड़ मोतिन के अनहोनी झड़े, खद्योत समान लखे चमकावै।
बिजुली चमके लखु चाहु दिशा, दमके जस दामिनि शब्द सुनावै।
ज्योति मसाल समान बरे, अरु मोर के पंख अहि एक आवै।
वामाङ्ग शशि रवि दक्षिण भाग, योगेश्वर बिम्ब उदय दरसावै।

—स्व० गी०, प० ७४

ज्योति दीपक टेम सम, भृकुटी मध्य दरसाये।
दरस निरंजन हेतु तव, खेचरी बन्ध्य लगाये॥

—स्व० गी०, दोहा ५८

दोउ कर्ण के छिद्र अंगुष्ठ सो रोकिके, तर्जनि ते दोउ नेत्र दबावे।
मध्यमा दोउ बन्द करे निज घ्राण, अनामिका ओष्ट के उर्द्ध जतावे।
नीचली ओष्ट के कनिष्ट दबा, स्वर दक्षिण रोक के वाम चढ़ावे।
उलटि निज नयन लखे त्रिकुटी सो, योगेश्वर कुम्भक को ठहरावे।

—स्व० गी०, प० ७५

एक निर्गुण राग नवीन सुनाइ के, योग क्रिया गृहि साधहुँ जाई।
तोहि जानि के नीच न शिष्य किये, तेहि जाइ लखे निज शिष्य बनाई।
बहु शिष्य करो निज ध्यान प्रकाशि के, मोरु निशा तेहिं देहुँ बताई।
योगेश्वर देश में ज्ञान विराग, योग सिखाबहु शिष्य चेताई॥

—स्व० गी०, प० ८६

कर जोरि कहैं सुनिये मम नाथ, न जानत निर्गुण राग नई।
और कवि जो बखानि गये, कछु गावत ना नई शक्ति भई॥

—स्व० गी०, प० ८७

बिनु दह पुरइन पत्र पसरे, फूल मूल बिनु फूलहीं।
बिनु वारि लहर तिर्बेनी उठत, अर्द्ध उर्द्ध न सूझहीं॥
कमल वास सुगन्ध चहुँ दिशि, भवर तहवाँ गुंजहीं।
निरखी तहाँ मान सरवर, हंस मोती चुंगहीं॥

झनकने लगता है । इसी को कहते हैं कि नाद बिन्दु में समा गया है और अनाहत नाद की तुरही बजने लगी है।[1] चन्द्र और सूर्य के योग से जब उन्मना अवस्था आती है तब ब्रह्मरन्ध्र में अमृत का स्राव होने लगता है । उसका सूक्ष्म शब्द स्थूल रूप में परिणित होकर रजोगुण का कारण बन जाता है । मूल की ओर सरकता हुआ बिन्दु ऊर्ध्वगामी हो जाती है । यही अमृत्व की ओर जीव का अग्रसर होना है । क्योंकि जीव के ऊपर से काल का प्रभाव लगभग क्षीण हो जाता है।[2] है । अवधूतों – सर्वप्रथम सुषुम्ना नाड़ी में नाद की झनक सुनाई पड़ती है । उष्ण-पिंगला नाड़ी में पवन का संचार होने लगता है एवं शीतल इड़ा नाड़ी में पवन (वीर्य) का निवास रहता है।[3] सूर्य नाड़ी में उष्ण वातावरण के कारण पवन का वेग बहुत तीव्र होता है लेकिन जब इड़ा (चन्द्र) नाड़ी में इसका प्रवेश होता है तो वह स्थिर हो जाता है । जब श्वास बाहर निकलती है तो सूर्य नाड़ी चलती है तथा जब शरीर के भी भीतर प्रविष्ट होती है तो चन्द्र नाड़ी चलती है । लेकिन योगी इन दोनों को छोड़कर तीसरे सुषुम्ना नाड़ी में शरण लेता है।[4]

सिद्धों, तान्त्रिकों तथा कापालिकों के विभिन्न योगों प्रयोगों में जितनी ही नवीनता, एकरूपता तथा मौलिकता क्यों न रही हो- कालान्तर में रूढ़ियों एवं आडम्बरों के कारण वह योग केवल साधारण जनता के लिये तिरस्कार का विषय बनकर रह गया । इन सिद्धियों एवं मंत्रों-तंत्रों में इतना आकर्षण एवं आश्चर्य था कि साधारण अशिक्षित जनता स्वतः इसका शिकार

---

[1] डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल (सम्पादित), गोरखबानी, पद संख्या- ५७ ।

[2] वही, पद संख्या-५५ ।

[3] वही, पद संख्या-५६ ।

[4] वही, पद संख्या-७० ।

05:24

← 2015.400637.Bharatiya...

का वृत्ति रहित होना राजयोग है :—

> यच्चित्तसत्तातलय: स लय: प्रदिष्ट: ।
> यस्तु प्रभञ्जनविधानरतो हठस्थ: ॥
> यो मंत्रमूर्तिवशग: स तु मंत्रयोग: ।
> यश्चित्तवृत्तिरहित: स तु राजयोग: ॥'[1]

'योगवीज' में चार प्रकार का योग वर्णित है । मंत्रयोग' का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'प्राणवायु हकार से वाहर जाता है एवं सकार से भीतर प्रवेश करता है । हंस-हंस इस अजपागायत्री मंत्र का सर्वजीव सर्वदा जप करते है । गुरुवाक्य से सुषुम्ना में सोऽहम्, सोऽहम्, इस प्रकार हंसमन्त्र का विपरीत जप होता है । इसको मंत्रयोग कहते हैं :—

> हकारेण वहिर्याति सकारेण विशेन्मरुत् ।
> हंस हंसेति मन्त्रों यं सर्वजीवा जपन्ति तम् ॥
> गुरु वाक्यात्सुषुम्णायां विपरीतो भवेज्जप: ।
> सोऽहं सोऽहमिति प्राप्तो मन्त्र योग: स उच्यते ॥'[2]

हठयोग का वर्णन करते हुए कहा गया है कि पश्चिम मार्ग (सुषुम्ना-ब्रह्मरन्ध्र) में वायुयोग (वायुगमन) से इसकी प्रतीति होती है, हकार से सूर्य (पिंगला) तथा ठकार से चन्द्र (इडा) कहा जाता है । सूर्य चन्द्र योग से हठयोग होता है :—

> प्रतीतिर्वायुयोगाच्च, जायते पश्चिमे पथि ।
> हकारेण तु सूर्योऽसौ, ठकारेणेन्द्र उच्यते ॥
> सूर्याचन्द्रमसो र्योगाद् हठयोगोऽभिधीयते ।[3]

लययोग का अभिप्राय व्यक्त करते हुये कहा गया है कि जड़ता के नष्ट होने से क्षेत्रज्ञ (जीव) और परमात्मा का ऐक्य होता है । जीव और शिव की एकता

१—अमरौघ प्रवोध, श्लोक ४ ।
२—योग वीज, श्लोक १४६-१४७ ।
३— [illegible] १४८—१४९ ।

होने पर चित्त विलीन हो जाता है । इस प्रकार लय योग के उदय होने पर पवन स्थिर हो जाता है, और लय से स्वात्मानन्द परमपदरूप सौख्य प्राप्त होता है—

> क्षेत्रज्ञपरमात्मानौ, तयोरैक्यं यथा भवेत ।
> तदैक्ये साधिते देवि ? चित्तं यामि विलीनताम् ॥
> पवन: स्थैर्यमायाति लययोगोदये सति ।
> लयात्सम्प्राप्यते सौख्यं स्वात्मानन्दपरम्पदम् ॥'[1]

22:13

2015.400637.Bharatiya...

8/131

४—छान्दोग्योपनिषद् १।११।५, ४।३।३।४, ५।१।९।१४, ७।१५।१, एवं
—श्वेताश्वतरोपनिषद्, १।४।५।

ही विशेष रूप से प्रकट होता है।[1] कठोपनिषद् में तो इस सम्बन्ध में प्राण एवं अपान वायु का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसमें मन्त्रकार ने कहा है कि 'जो प्राण को ऊपर भेजता है एवं अपान को नीचे फेंकता है, उस मध्य में रहने वाले वामन को विश्वदेव भजते हैं।'[2] योग के साम्प्रदायिक ग्रन्थों में प्राण एवं अपान वायु का बड़ा महत्व माना गया है क्योंकि इनके समीकरण से प्राण वायु ब्रह्मनाडी सुषुम्ना में प्रवेश करता है जिससे ब्रह्मानुभूति होती है। श्वेताश्वतर में भी प्राणायाम, प्राणवायु एवं मन निग्रह की चर्चा करते हुए कहा गया है कि प्राणों का आयाम करके बड़ी तत्परता के साथ शुद्ध (क्षीण) प्राणवायु हो जाने पर नासिका से उच्छ्वास ले। जैसे सारथी दुष्ट घोड़ों की लगाम को खेंचकर उनका नियन्त्रण करता है, उसी प्रकार योगी को अप्रमत्त होकर मन का निग्रह करना चाहिए।[3] वस्तुतः प्राणायाम द्वारा प्राणवायु का नियमन करके मनोजय करना योग का समादृत सिद्धान्त है। इसी का प्रतिपादन उपनिषदों में किया गया है।

योग में नाड़ी संस्थान का बड़ा महत्व है। उपनिषदों में भी नाड़ी विज्ञान की चर्चा है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि इस हृदय की एक सौ एक नाड़ियाँ हैं, उनमें से एक मूर्धा को भेदकर बाहर निकली हुई है। उसके द्वारा ऊर्ध्व गमन करने वाला पुरुष अमरत्व को प्राप्त होता है। शेष विभिन्न गतियुक्त नाड़ियाँ उत्क्रमण (प्राणोत्सर्ग) की हेतु होती हैं।[4] इससे ज्ञात होता है कि उपनिषदों में नाड़ियों की संख्या एक सौ एक मानी गई है। इसमें से एक नाड़ी मस्तक को भेद कर निकल गई है। यह नाड़ी सुषुम्ना है जिसे योग के ग्रन्थों में

१—प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥
—मुंडकोपनिषद्, ३।१।९।

२—ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते ॥
—कठोपनिषद्, २।२।३।

३—श्वेताश्वतरोपनिषद्, २।९।

४—शतं चैका च हृदयस्यनाड्य
स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्न मृतत्वमेति
विष्वङ्ङ्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥
—कठोपनिषद्, २।३।१९।

भीखा साहब ने भी शिव की इच्छा से ही उत्पन्न शक्ति एवं नाद का बहुत ही स्पष्ट एवं सुदृढ़ व्याख्या प्रस्तुत किया है । उनके अनुसार अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक की इच्छा ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नाशका कारण भी है ।[1] भीखा साहब ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन और संहार का कारण इसी इच्छा शक्ति का व्यापार माना है । ईश्वर कभी भी इन कार्यों के लिये स्वयं नहीं अवतरित होता । उसकी इच्छा-शक्ति ही इन सभी कार्यों को सम्पादित करने के लिये पर्याप्त है ।[2] भीखा साहब ने अनाहत नाद की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है । उन्होंने अपने एक पद में सुन्दर रूपक द्वारा इसका अप्रतिम वर्णन करते हुये कहते हैं कि – मैंने अपने शरीर रूपी मटके में युक्ति से ज्ञान योग रूपी दधि को रखा । सदा कम्पायमान संकल्पात्मक इन्द्रियों को निश्चल करके तथा धैर्य को स्तम्भित करते हुये तीन गुणों (सत, रज, तम) की मथनी लगाया । रवि (इड़ा) शशि (पिंगला) दोनों के अविराम मंथन के पश्चात् नवनीत रूप तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति हुयी । तात्त्विक ज्ञान की उपलब्धि होते ही पचीसों तिरियायें मन की दासी बन गयी । इस प्रकार संतों के आशीर्वाद से गगन-मण्डल में गम्भीर गर्जन की ध्वनि सुनाई देने लगी जो कुछ और नहीं अनाहत नाद था जिसे सुनकर मन मुग्ध हो गया ।[3] भीखा साहब ने उस कुमारि

---

[1] इच्छे ते सब होत उतपत्त नव देखा रे ।
इच्छे ते करे नाश कही सब देखा रे ॥
-भीखादास, [illegible], दोहा संख्या-७२३

[2] जिनकी इच्छा से सब होता भीखाके धरिया अवतारे ।
-वही, दोहा संख्या-७२६

[3] अब मैं तत्त्व मथि बौराना, काच मटी के भयाना रे ।
देहि तन मेटि ज्ञान मटकिया दीन युक्ति दधि आना रे ।
धीरज थंभ किया अब निश्चल, के धारो का डारा रे
तीन गुणन की कीर्ह मथनियाँ, रवि शशि मथत्तु आना रे ।
भो पचीसो तिरिया दासी अब सी मन माना रे ।
गरजे गगना होय कौतूहल, संतन का अस्थाना रे ।
भीखा भाव मिला अब [illegible], भीखा दीवाना रे ॥
- वही, पद संख्या- ५३०

05:49

2015.269221.Sant-Kavi...

21/57

[illegible]

कदार पुरुष = नाद पुरुष राम को कहा जाता है।[1]

शब्दों की रचना एवं व्याकरण के नियमों के अनुसार ब्रह्म शिव को पुरुष एवं शक्ति को स्त्री संज्ञक देते हैं। शक्ति के रूप में ईश्वर को नारी इसीलिये कहा गया है क्योंकि वह माता के समान सृष्टि की रचना एवं पालन-पोषण करता है। लेकिन वास्तव में शक्ति ब्रह्म न तो स्त्री है न पुरुष। वह कुछ भी नहीं है।[2]

---

[1] चन्द्रदास कृत रामविनोद, सम्पादक डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित, निदेशक- चन्द्रदास साहित्य शोध संस्थान, बांदा, पृष्ठसंख्या-३८ ।

[2] डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर साधना और साहित्य, १९७६, पृष्ठसंख्या- ।

गीता साहब ने भी शिव की इच्छा से ही उत्पन्न शक्ति एवं नाद का बहुत ही स्पष्ट एवं सुदृढ़ व्याख्या प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक की इच्छा ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नाश का कारण भी है।[1] गीता साहब ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन और संहार का कारण इसी इच्छा शक्ति का व्यापार माना है। ईश्वर कभी भी इन कार्यों के लिये स्वयं नहीं अवतरित होता। उसकी इच्छा-शक्ति ही इन सभी कार्यों को सम्पादित करने के लिये पर्याप्त है।[2] गीता साहब ने अनाहत नाद की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है। उन्होंने अपने एक पद में सुन्दर रूपक द्वारा इनका अद्वितीय वर्णन करते हुये कहते हैं कि - मैंने अपनी शरीर रूपी मटके में सुषुप्ति से ब्रह्म योग रूपी दधि को रखा। सदा गतायमान चंचलस्वभावी इन्द्रियों को निग्रह करके तथा धैर्य को स्तम्भित करते हुये तीन गुणों (सत, रज, तम) की मथानी बनाया। रवि (इड़ा) शशि (पिंगला) दोनों अविराम मंथन के

शरीर के पश्चिम प्रदेश के निवासी परब्रह्म का निवास द्वारा सुषुम्ना के प्रच्छन्न कपाटों को योग के माध्यम से खोलने से ही ईश-मिलन संभव है । उसके मिलन के पश्चात् जीव स्वयं ब्रह्ममय हो जाता है।[1] यदि मनुष्य का मन पथभ्रष्ट हो गया तो भक्ति उसके लिये गूलर का फूल है । भक्ति-विमुख माया की मदिरा में रमने वाले जीव से भक्ति की आशा करना व्यर्थ है क्योंकि मदिरा के सेवन से दुर्गन्ध आ सकती है सुगंधि नहीं । अत: माया के प्रभुत्व में रमता हुआ मन ईश्वर-भक्ति को नहीं प्राप्त कर सकता ।[2] मन रूपी मक्का के गहन तत्वों के खोज से ही ईश-दर्शन को साधक प्राप्त करता है इसलिये हमें मन की कुराइयों को दूर कर भवसागर से पार उतरने की चेष्टा करनी चाहिए । जब तक मन में कुराह है उसमें काशी, उड़ीसा व मक्का जैसे पवित्र तीर्थस्थल खोजना असम्भव है ।[3] हे ! मियाँ जी ! यदि तुम्हारा मन वश में नहीं है तो कुरान की आयतों के पाठन से तुम्हें कोई लाभ नहीं हो सकता यदि तुम परमतत्व के विषय में बाखिला हो रोजा रखते हो तथा पाँचों वक्त की नमाज पढ़ते हो तो तुम्हारे इस ढकोसले से तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती ।[4]

नाद का स्वरूप:

संत साधना में नाद या शब्द का विशेष महत्व है । नाद स्वरूप

---

[1] मन दरपन का भाव धनी तब लखि परै ।
पच्छिम तारी खोल आप सो सुधि करै ।।
-मीरादास, ह०लि०ग्रं०, दोहासंख्या-४१

[2] मन माया में रमता, करै भगति की आस ।
कह मीरा मदिरा पिये, कहु आवै बास सुबास ।।
वही, दोहा संख्या-७६०

[3] मन मक्का का खोजकर, पावै मिलै खुदाय ।
कह मीरा जब नदी का, जब ना धोखा जाय ।।
वही, दोहासंख्या-७६३

[4] मियाँ मन आवै काम नाहिने रोजा रखे निमाज गुदरे कलमाँ को पढ़िये
वही, दोहासंख्या-१०२

05:56
2015.269221.Sant-Kavi...
28/57

इड़ा पिंगला के लिये गंगा जमुना तथा कहीं कहीं चन्द्र सूर्य नाम भी दिया है ।[१]

शिव संहिता के अनुसार ऊपर आज्ञा चक्र होता है तथा नीचे मूलाधार चक्र । आज्ञा चक्र में स्थित प्राण वायु मूलाधार स्थित अपानवायु के बीच आकर्षण-प्रतिकर्षण होता है । योगी दोनों प्रकार की वायु को आकर्षण-प्रतिकर्षण से बचाकर सुषुम्ना में योग करा देता है ।[२] मूलाधार चक्र से प्रारम्भ होकर इड़ा और पिंगला क्रम से सुषुम्ना के दायें बायें होती हुयी ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचती है । इस प्रकार इड़ा और पिंगला का दो बार संगम होता है । प्रथम तो मूलाधार चक्र में दूसरे आज्ञा चक्र में । इसे त्रिवेणी कहा जाता है ।[३] मीरा साहब ने इस त्रिवेणी का स्पष्ट उल्लेख किया है ।[४]

षट्- कमल:

हठयोग के ग्रंथों में षट्कमल दलों को बहुत महत्व दिया गया है । कुण्डलिनी शक्ति जागृत अवस्था में विभिन्न कमलदलों का भेदन करती हुयी आगे बढ़ती है । योग धारा के प्रमुख रूप से आठ दल कमल को स्वीकार किया गया है । कुछ संतों ने सातवें कमल-दल को[५] भी स्वीकार किया है जिसका स्थान शरीर से बाहर ब्रह्माण्ड में माना गया है ।

---

[१] (क) "गंगा जमुन बिच मझधा री", मीरादास, हस्तलिखित ग्रंथ, २२५।
(ख) "रवि शशि दोनों घर के रहैं", वही ।

[२] शिव संहिता, ५-१६५ ।

[३] कबीर ग्रंथावली, पद संख्या-११,१७,६८, पृष्ठसंख्या-१०८ ।

[४] तीन लोक के ऊपर घाट हवै त्रिवेणी ।
मीरा तहाँ लखाया मीठी बाबा बाणी ।।
—मीरादास, हस्तलिखित ग्रंथ, पदसंख्या-१०८ ।

[५] डा० श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पदसंख्या-[illegible], [illegible] ६७-९८ ।

05:55

2015.269221.Sant-Kavi...

रवि की उपस्थिति नाभि प्रदेश में बतायी गयी है । नाभि पर लगातार ध्यानकर्षण विधि के कर्षण से भानु का प्रस्फुटन होता है जिसके फलस्वरूप कुण्डलिनी संचालित होती है । कुण्डलिनी के जागृत होने से सुषुम्ना का अवरुद्ध मार्ग खुल जाता है जिससे मन और प्राण-वायु को लेकर कुण्डलिनी सुषुम्ना के मार्ग से ऊर्ध्वरूप में गमन करती है । इस प्रकार यह विभिन्न चक्र दल कमलों को भेदती हुई सहस्र दल कमल या अष्टदल कमल में पहुँचती है । उस समय यह कमल के कमठ के समान अलौकिक आभा से आलोकित होती रहती है ।[3] हमारे मेरुदण्ड में प्राण वायु का वहन करने वाली बहुत सी नाड़ियाँ हैं जिनमें इड़ा और पिंगला प्रमुख हैं । ये दोनों एक साथ नहीं चल सकतीं । एक चलती है तो दूसरी बन्द रहती है । इन्हें गंगा और जमुना भी कहा जाता है । योगी 'कबीर' ने अनुप्रास मिलाने के लिये इनका नाम इंगला पिंगला रखा है ।[4] इन्हीं इंगला-पिंगला के बीच में सुषुम्ना नाड़ी है जिससे होकर

---

[1] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठसंख्या-४४ ।

[2] हठयोग प्रदीपिका- ३-१०४-८ ।

[3] डा० सरनाम सिंह, कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठसंख्या-३११ ।

[4] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठसंख्या-४४ ।

कुण्डलिनी ऊपर ब्रह्म रन्ध्र में प्रवाहित होती है । वास्तव में सुषुम्ना भी स्वयं में पूर्ण नहीं है । इसके भीतर भी कई सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं । सुषुम्ना के भीतर वज्रा, उसके भीतर चित्रिणी और चित्रिणी के भीतर ब्रह्मनाड़ी, जो कुण्डलिनी का असल मार्ग है । इस प्रकार सुषुम्ना वस्तुतः तीनों नाड़ियों का एकीभाव है । इस प्रकार इड़ा पिंगला मिलकर पाँच होती हैं । इसलिये इनको पंच स्रोत या पाँच धारायें भी कहते हैं ।[1] तालु के ऊपर सहस्र दल कमल की स्थिति मानी गयी है । यह शरीर के बाहर स्थित है । इस स्थान को कैलाश भी कहते हैं । जब साधक दृष्टि बदलती है तो कुण्डलिनी की सुषुप्त अवस्था होती है । जब योगी की समाधि इस योग में स्थित हो जाती है तब इस सहस्र दल कमल में स्थित चन्द्र से अमृत का स्राव होता है जिसे योगी निरन्तर पीता रहता है । उसी कमल दल में कुण्डलिनी शक्ति विलीन हो जाती है जिससे योगी को अमरत्व प्राप्त हो जाता है ।[2]

05:54
2015.269221.Sant-Kavi...
26/57

तीनअवस्थाओं में लिपट कर सर्पिणी की भाँति कुण्डलिनी अवस्थित है।[1] इस त्रिकोण को अग्नि चक्र भी कहते हैं। कुण्डलिनी शरीर के तीनों अवस्थाओं को धारण करती हुई जीव को उसके गन्तव्य स्थान अमरपुर को ले जाना चाहती है। लेकिन जिस सुषुम्ना मार्ग से उसे जाना है वह उसी उलटे रहने के कारण बन्द रहता है। जो व्यक्ति इसे ऊर्ध्व करके इसका संचार कर लेता है वही योगी है।[2]

डा० सत्नाम सिंह - गोरखपंथ के अनुसार:

रवि की उपस्थिति नाभि प्रदेश में बतायी गयी है। नाभि पर लगातार सूर्याकर्षण विधि के कर्षण से भानु का प्रस्फुटन होता है जिसके फलस्वरूप कुण्डलिनी संचालित होती है। कुण्डलिनी के आगे बढ़ने से सुषुम्ना का अवरुद्ध मार्ग खुल जाता है जिससे मन और प्राण-वायु को लेकर कुण्डलिनी सुषुम्ना के मार्ग से ऊर्ध्व रूप में गमन करती है। इस प्रकार यह विभिन्न चक्र दल कमलों को बेधती हुई सहस्र दल कमल या अष्टदल कमल में पहुँचती है। इस समय यह कमल के कमठ के समान अलौकिक आभा से आलोकित होती रहती है।[3] हमारे मेरुदण्ड में प्राण वायु को वहन करने वाली बहुत सी नाड़ियाँ हैं जिनमें इड़ा और पिंगला प्रमुख हैं। ये दोनों एक साथ नहीं चल सकतीं। एक चलती है तो दूसरी बन्द रहती है। इन्हें गंगा और यमुना भी कहा जाता है। मौलिक 'कबीर' ने अनुप्रास मिलाने के लिए इसका नाम इंगला पिंगला रखा है।[4] इन्हीं इंगला-पिंगला के बीच में सुषुम्ना नाड़ी है जिससे होकर

---

[1] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठसंख्या-४४ ।

[2] हठयोग प्रदीपिका- ३-१०४-८ ।

[3] डा० सत्नाम सिंह, कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठसंख्या-४११ ।

[4] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठसंख्या-४६ ।

06:03

2015.269221.Sant-Kavi...

नाथ सम्प्रदाय का गहन अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि नाथ सम्प्रदाय में नादानुसंधान या सुरति-साधना योग के व्यावहारिकता पर था । गोरखनाथ जी नादानुसंधान पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जब चन्द्र और सूर्य के योग से उन्मनावस्था आती है तब ब्रह्मरन्ध्र (शून्य-मण्डल) में अमृत का निर्झर झरने लगता है । नाद उलट जाता है । नाद सूक्ष्म शब्द तत्व का क्रियमाण स्वरूप है जो क्रमशः स्थूलरूप में परिणित होता हुआ सृष्टि

---

[1] मुक्तासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय शाम्भवीम् ।
शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तःस्थमेकधीः ॥
हठयोग प्रदीपिका, श्लोक-६७ ।

[2] श्रवणपुट नयनयुगलघ्राण मुखानां निरोधनं कार्यम् ।
शुद्ध सुषुम्ना सरणौ स्फुट ममलः श्रूयते नादः ॥
-वही, श्लोक-६८ ।

[3] आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयोऽपि च ।
निष्पत्तिः सर्वयोगेषु स्यादवस्थाचतुष्टयम् ॥
-वही, श्लोक- ६९ ।

का कारण होता है । उसका सृष्टि-निर्माणक स्थूलरूप अपने मूल स्रोत की ओर मुड़ जाता है और नीचे उतरता हुआ बिन्दु ऊर्ध्वगामी हो जाता है । जिसके फलस्वरूप काल का प्रभाव समाप्त होकर अमर तत्व में बदल जाता है ।[1] नाद की झनक अति सूक्ष्म नाड़ी सुषुम्ना में ही होती है । गरम पिंगला (सूर्य) नाड़ी में पवन का संचार होता है । शीतल (इड़ा अथवा चन्द्र) नाड़ी में वीर्य का निवास है इसकी गति को कोई विरला योगी ही जानता है ।[2]

नाथ सम्प्रदाय के पश्चात् सूफी प्रेममार्गी कवियों की वाणी का पक्ष विशद नादानुसंधान अथवा सुरति साधना की रहा है । प्रसिद्ध सूफी कवि

प्राणी जन्म-मरण के दुःखद्वन्द्व से छुटकारा पा जाता है।[1] गीता साहब गगन मण्डल के अष्टदल कमल में स्थित ब्रह्म का वर्णन करते हुए कहते हैं कि योग और युक्ति को विचार करके मन में सत्नाम का ध्यान करने से जीव का सभी भ्रम दूर हो जाता है। इस प्रकार सभी शंकाओं को निर्मूल करके अखिलेश्वर के प्रेम में योगी रम जाता है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से ब्रह्माग्नि का संचार होने लगता है। इस प्रकार योगी की भूख, नींद आदि सभी तृष्णायें नष्ट हो जाती है। वह कण्ठ से झरने वाले अमृत को पीने लगता है। सुषुम्ना के मूल द्वार पर कुण्डलिनी शक्ति के संचार से अलौकिक दिव्य ज्योति का प्रकाश परिलक्षित होता है। प्राणवायु सुषुम्ना के बन्द द्वार को खोलकर गगन मण्डल में पहुंचती है, जहाँ पर अष्ट कमल-दल के भीतर जीव के प्रियतम ब्रह्म का निवास है। यहीं अष्ट दल कमल में भिन्न-भिन्न कमल दल की लम्बी दूरी तय करके थके हुए जीव का ईश्वर से मिलन होता है। जिस जीव को अपने प्रियतम से मिलने की पीड़ा होती है, वही इस प्रकार का दुष्कर प्रयत्न करता है। ब्रह्म से साक्षात्कार हो जाने पर मृत्यु पर जीव विजय प्राप्त कर लेता है।[2]

---

१ रे अबुझा बूझ कैसे पद पाविया,
बिनु गुरु की बूझ है नाहीं का माला का जपिया।
द्वादस कमल उलटि के अवर्हि निरख रहि उजियारिया।
अष्ट कमल दल मूल तबहिं, सुरति निरति मन लाविया।।
परम हंस सो कहि भवरि तब मन सो मन मानिया।
उनहि पार बार नाहि आवै, काल [redacted] धाविया।।
-गीता साहब, प०जिल्दी, पद संख्या-२०१।

२ सत्यनाम आकारे, कमल कानन फाड़ि डारा अगम उबारे।
योग युक्ति विचारि मन माहिं, भरम भगारे।
संक सब निरखि कर प्रेम पागा रे।
नींद भूख बिसारि तृष्णा रोग भागा रे।
ब्रह्म अग्नि उजागर किन्ही, अमीय चाखा रे।
मूल जोति निहार सुन्दर मूल द्वारा रे।
खोलि खिरकी गगन पहुंचा जीव न्यारा रे।
अष्ट दल के कमल भीतर, पिया प्यारा रे।
कौन कौन बाट आवै, पिया प्यारा रे।
जरो जैसे देखि अगाध दुख भागा रे। - वही, पदसंख्या-८२६।

06:00
2015.269221.Sant-Kavi...

31/57

मीरा साहब ने योग में चक्र एवं कमल दलों का बहुत ही विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान माना है । योग की प्रारम्भिक स्थिति का विवेचन करते हुए ये कहते हैं कि पाँचों इन्द्रियों को वश में करने के पश्चात् काम का दमन करके, अर्ध मुख कुण्डलिनी को सहजयोग विधि द्वारा ऊर्ध्वमुख करके सुषुम्ना के बंद द्वार को खोलने पर ही अष्टदल कमल में स्थित परब्रह्म का दर्शन संभव हो सकता है ।[1] मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी रूपी डोर को सुषुप्तावस्था से जाग्रितावस्था में लाकर तथा इसे अग्रसारित करके ऊर्ध्वमुख सुषुम्ना का अवरुद्ध मार्ग खोलते हैं । सुषुम्ना के इस प्रकार ऊर्ध्वमुख हो जाने पर इड़ा, पिंगला का सुषुम्ना से संगम हो जाता है । इसी संगम को त्रिकुटी कहते हैं । ऐसा ही संगम पुनः दूसरी बार तब होता है जब आज्ञा चक्र में कुण्डलिनी पर ब्रह्म से मिलकर उसमें अपने आपको लीन कर देती है । इसी संगम में अलख निरंजन ब्रह्म से जीव का साक्षात्कार होता है । इस संगम में ईश्वर की दिव्य ज्योति के समक्ष करोड़ों सूर्यों का प्रकाश भी धूमिल पड़ जाता है ।[2] जीव और ब्रह्म का स्थान अलग-अलग कमलों

---

[1] कबीर ग्रंथावली, पृष्ठसंख्या-[illegible], पद २,[illegible] ।

[2] मीरा पाँचो को [illegible] उलट के बीच ।
[illegible] पीछिया [illegible] बीच ।।
मीरासाहब, [illegible], दोहा संख्या-२११

[3] मूल डोर [illegible] [illegible] लीन ।
त्रिकुटी [illegible], मीरा भाई लीन ।।
कोटि भानु छवि ना हुई, वे [illegible] ।
[illegible] मीरा [illegible], [illegible] ।।, वही, दोहासंख्या-२१३

में है । यही कारण है कि जीव और ब्रह्म में व्याप्त भिन्नता है यद्यपि जीव ब्रह्म का अंश है । जो योगी इन दोनों कमल-दलों को उलटकर मिला देता है वही योगी ब्रह्मतुल्य हो जाता है ।[1] द्वादश कमल में जीव का निवास है जबकि अष्टदल कमल में सबसे ऊपर ब्रह्म का । जो प्राणी द्वादश कमल-दल को उलट अष्ट दल कमल मिला देता है वही इस भवसागर से पार उतर सकता है ।[2] मीरा साहब योग-साधना के मार्ग में ब्रह्माग्नि को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं । उनका विचार है कि ब्रह्माग्नि के उद्गार के बिना शरीर रूपी जीव का पार जाना असम्भव है और शरीर के [illegible] बिना जीव की मुक्ति नहीं । जब कुण्डलिनी के जाग्रित होने से सुषुम्ना में शक्ति का संचार होता है तभी प्रारम्भ में ब्रह्माग्नि की ज्वाला काम, क्रोध, मद, लोभ को जलाकर भस्म कर देती है । जब द्वादश कमल (जीव का निवास) को ब्रह्म से मिलाने के लिये उलटते हैं तो एक प्रकार की अलौकिक ज्योति प्रस्फुटित होती है तत्पश्चात् जब सुरति-निरति (समाधि-ध्यान) दोनों एक भाव हो जाते हैं तब अष्टदल कमल खुल जाता है । इस प्रकार द्वादश कमल का जीव तत्व अष्ट दल कमल के ब्रह्म तत्व में लीन हो जाता है । फलस्वरूप अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म से जीव का मिलन हो जाने पर योगी को संतुष्टि हो पाती है । इस प्रकार जीव और ब्रह्म का संयोग हो जाने पर [illegible]

---

[1] एक कमल मा ब्रह्म है एक कमल मा जीव ।
मीरा दोउ मिलावहिं [illegible] होत है पीव ।।
-मीरासाहब, [illegible], दोहा संख्या-२१८०

[2] द्वादश कमल जीव का बासा ।
अष्ट कमल दल ब्रह्म निवासा ।।
जीव ब्रह्म का [illegible] ।
तब मीरा हो प्राणी [illegible] ।।, वही, पद संख्या- ३२०x

इसे पीते ही मन की सारी कुचेष्टायें निर्मूल हो जाती हैं । योगी अब काल पर विजय प्राप्त करने में सक्षम हो जाता है क्योंकि सुषुम्ना का वज्र द्वार एकाक्षरि विधि के वज्र प्रहार से खुल जाता है ।[1] रामानन्द जी ब्रह्म के मिलन के समय का वर्णन करते हुये कहते हैं कि इस लोक में अलौकिक अनाहद् नाद प्रस्फुटित होता है । अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक की झिलमिल दिव्य ज्योति दिखायी पड़ती है । ईश्वर से मिलकर जीव ईश्वर तुल्य बन जाता है ।[2] वहाँ ईश्वर के साक्षात्कार से योगी की स्थिति सच्चे लौकिक प्रेमी की भाँति हो जाती है । उसके नयनों में नयन मिलने पर नयन एकटक स्थिर हो जाते हैं । मुख की ओर उन्मुख होकर योगी मुखवाणी में तल्लीन हो जाता है । उसके श्रवण में श्रवण मिलाकर अनाहद् नाद को सुनता रहता है । शब्द शब्द-ब्रह्म में तन्मय और ध्वनि लय में लीन होकर तन्मय हो जाती है ।[3] योगी की समाधि अखण्ड समाधिस्थ ब्रह्म में लीन होकर सदा उसी के नाद में लव लगाये रहती है । ध्यान उस अलौकिक ध्यान में लय होकर सदा ध्याता के संग रहता है ।[4] सुरति साधना के क्षेत्र में स्वामी रामानन्द

---

[1] धरणि अकाश बीचि पौन कसा किया
अग्नि-निम मथाय अमृत पिया ।
सुर ब्रिह दैत्य दानव संहारा किया ।
वज्र की कोठरी वज्र का कुंड है
वज्र का कोठ काठ मारा ।। - रामरक्षा स्तोत्र ।।८।।

[2] झिलमिला ज्योति कणाकार झलका रहै ।
नाद बिन्दु मिल गया लै लगा ।। ११ ।।

[3] सुनि के गहरे सुनि खोजत रहै
आपसु आप मिलि आप जाग्या ।। १२।।
नैन सो नैन मिलि नैन निरखत रहै
मुख से मुख मिलि बोल बोलया
श्रवण सों श्रवण मिलि नाद खोजत रहै
शब्द सो शब्द मिलि शब्द बोलया ।। १३ ।।

[4] निरति सो निरति मिलि निरति लागी रहै
सुरति सो सुरति मिलि सुरति आवै ।
ध्यान सो ध्यान मिलि ध्यान धरत रहै
लै सो लै मिलि लै लावै ।। १४ ।।

06:05

2015.269221.Sant-Kavi...

सहजयान इसे महासुख कहते हैं । इस महासुख की उपलब्धि उन्हें उष्णीष कमल में प्राप्त होती है । वास्तव में तंत्रशास्त्र, हठयोग और सुरतिशब्द योग में उल्लिखित सहस्रार चक्र ही उष्णीष कमल है।[1] सहजयानी इड़ा को ललना तथा पिंगला को रसना के नाम से पुकारते हैं । इनके मत में गुरु की कृपा से ललना और रसना अपने मध्य में स्थित अवधूती से मिलती है । जिसका मार्ग सदा बन्द रहता है । ललना तथा रसना दोनों अवधूती के अशुद्ध रूप हैं । अवधूती से मिलकर ये शुद्ध हो जाती हैं । ललना तथा रसना दोनों अवधूती से मिलकर शून्य अथवा परमानन्द की गति को प्राप्त कर लेती हैं।[2] यही अवधूती का शून्य मण्डल में मिलना संत मत सुरति योग है । सहजयानी अवधूती या सुषुम्ना को डोम्बी या डोमिन भी कहते हैं । वास्तव में ब्रह्म नाड़ी (सुषुम्ना) जब पूर्णतया अपनी अशुद्धियों का परित्याग कर देती है तभी उसे डोम्बी कहते हैं । कुछ लोग डोम्बी अथवा डोमिन को चाण्डाल की पत्नी की संज्ञा देते हैं लेकिन यह वास्तविकता से परे है । इसके नाम - अवधूती, चाण्डाली, डोम्बी अथवा बंगाली है । यह अपनी प्रारम्भिक अवस्था में भले ही अशुद्ध रही हो, परन्तु ब्रह्म नाड़ी में गुजरने के पश्चात् शुद्ध हो जाती है।[3]

संत मत में सुरति निरति योग का बहुत ही व्यापक प्रचार एवं प्रसार हुआ । वास्तव में यदि कहा जाय कि संत साधना पद्धति की सुरति-निरति रीढ़ बन गयी तो अतिशयोक्ति नहीं । सगुण विचारधारा के अनेक संतों ने भी

---

[1] डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर साधना और साहित्य, पृष्ठ संख्या-६४ (१९७६) ।

[2] वही, पृष्ठ संख्या-६५ ।

[3] वही, पृष्ठ संख्या-६६ ।

नादानुसंधान का यौगपरक ग्रंथ प्रमाणित है ।

मध्ययुग में कुछ संतों ने सुरति-साधना का रूप किंचित भिन्न रूप में स्वीकार किया है । बौद्ध सहजयान में पूर्णसिद्धि सहजावस्था की प्राप्य स्थिति को कहते हैं । इसके अन्य नाम भी है जिनमें निर्वाण, महासुख, युगनद्ध, महामुद्रा, साक्षात्कार आदि प्रमुख है । इस मार्ग के अनुयायी ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की त्रिपुटी को ग्रंथि का आधार मानते हैं । अत: इसके विनिष्ट में ही साधक का कल्याण है । इन सबके ऊपर निर्विकल्प अथवा मोक्ष की प्राप्ति संभव है । यही सहज-यान मार्ग की सहजावस्था है ।[1]

बौद्ध सहजयान मार्गी सहजावस्था में ही मन और प्राण की स्थिति शून्य मानते हैं । वहां पर चन्द्र सूर्य (इड़ा-पिंगला) का संचरण नहीं होता । क्योंकि इसके संचरण से ही बाधक वातावरण है । इड़ा पिंगला के स्थिर होने पर सुषुम्ना का कार्यक्षेत्र प्रारम्भ हो जाता है । सुषुम्ना का बन्द मार्ग खुल जाने पर मन की उन्मनी अवस्था प्राप्त होती है । इसकी गति ऊर्ध्व होती है अर्थात् मन जो अधः स्थिति में गति करता था अब वह ऊर्ध्व रूप में गति करने लगता है । अत: उन्मनी अवस्था में ही मन संसार विषया को त्यागकर लय में विलीन हो जाता है । वास्तव में सहजयानी मन की सूक्ष्मतम अवस्था को भी निर्वाण के मार्ग में बाधक मानते है । अत: लय में ही उसका समाप्ति की स्थिति को ही वे निर्वाण की संज्ञा देते हैं ।[2] निर्वाण की स्थिति सूक्ष्मतम परमाणु के अवस्था

---

[1] डा० प्रतापसिंह चौहान, कबीर साधना और साहित्य, (१९७६), पृष्ठ-६२ ।

[2] वही, पृष्ठ-६३ ।

मीता साहब ने सुरति का वास्तविक अर्थ 'ध्यान' मानकर उसे अपनी वाणी का विषय बनाया है । वे मनुष्यों को दुष्टों के पास बैठकर समय नष्ट न करने की सलाह देते हैं क्योंकि भक्ति में बाधा पड़ती है । मनुष्य को विषय वासना से बचने के लिये संसार रूपी विषय-वासना से सदा सावधान रहना चाहिये । सज्जन मनुष्य के संग में बैठकर निर्गुण ब्रह्म में ध्यान को स्थान करके दृढ़ हो जाना ही मन की स्थिर व्यवस्था है । यही सच्ची साधना है ।[1]

मीता साहब की दृष्टि में सुरति और निरति का अर्थ क्रमशः 'ध्यान' और 'समाधि' है । अपनी व्याख्या में उन्होंने स्वीकार किया है कि जीव का उद्धार उसके अभ्यन्तर में उठी ब्रह्माग्नि को प्रज्वलित करके जीव के निवास द्वादश कमल को उलटकर अष्ट दल कमल में स्थित ब्रह्म के संगम से उत्पन्न दिव्य प्रकाश में सुरति को निरति में लीन कराने पर ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है । यही जीव का भवसागर से पार होने का सर्वोत्तम साधन है ।[2]

---

[1] निगुर्न संग ना बैठि, भजन खतरा परै ।
दावा दारि छाड़ि राम सों हित करै ।
या जग विष की बेलि, देखि तिनका डरै ।
सज्जन सों हित जोरि, कांच तिनकौ धरै ।
केहरि तहाँ न जाय, जहाँ मरकट झारि ।
ऐसे हरि के दास निगुन संग ना करि ।
मीता कहै विचार, सुरति लागी रहै ।
निरना कहुं जाय, ज्ञान ऐसी कहै ।

— मीतादास, ह०लि०ग्रं०, पद संख्या- 320 ।

[2] रे मधुवा मनु कैसे घर जायेगा ।
बिनु घर की कुशल है नाहिं का माता है जायेगा ।
जब घर की तबै जीव उबरै या मत बिरले पाया ।
द्वादश कमल उलटि है रहनी, लिख कोई उपिजाया ।
अष्ट कमल दल पूर्ण रहनी, सुरति निरति जब लाया ।
पवन संग सो कोई मंगिये, तब मन सो मन मापा ।
उतरे पार बार नहिं लागे, काल फंदि धाया ।
द्वार पी लगनि करने का को बोलारी पाया ।
पावक सो जो नाहीं लावे सो गुरु मुख जो लाया ।
[illegible] ।   ३०६२
[illegible]

06:10

2015.269221.Sant-Kavi...

का वायु व्यापार बन्द हो जाता है[1]।

प्रसिद्ध संत रविदास जी ने सुरति-साधना, अजपा जाप आदि का बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया है जिससे साधना से कुण्डलिनी शक्ति की सुषुम्ना के मार्ग में वायु का प्रवाह प्रारम्भ हो सके। अजपा जाप से आवागमन को निरुद्ध करना ही रविदास जी का प्रमुख लक्ष्य है। गंगा (इड़ा) और यमुना (पिंगला) में उलटकर दोनों मिला जल की धाराओं को एक करना ही उनका लक्ष्य है। अलौकिक ज्योति के समक्ष अन्य प्रकाश को रविदास जी हेय समझते हैं। वे अनाहद नाद को सुनकर अपने अन्तिम निवास शून्य मण्डल में स्थिर हो जाना चाहते हैं। अष्टदल कमल में स्थित ब्रह्म ही उनकी उपासना का केन्द्र बिन्दु है जिसकी कृपा मात्र से ही जीव का संसार सागर में आवागमन समाप्त हो जाता है[2]।

संत कवयित्री दयाबाई ने भी सुरति-साधना में निम्नतम प्रदेश घट (कुंभ) से कुण्डलिनी शक्ति को सुषुम्ना मार्ग से आकाश मण्डल में प्रवेश कराके

---

[1] रस ने निर्गुन राग से, गावे कोई जाग्रत जोगी
अलग रहै संसार से, (सो) बस रस का भोगी ॥ १
भसम बसन सब छाड़ि, अनूठा यह मत पूरा
सबके धुन लागी रहै, बाजे अनहद तूरा ॥ २
छूटी उठी ज्ञान की, बरसे झिलमिल मोती
गगन गुफा में बैठ के, देखै जगमग जोती ॥ ३
सिव नाथे आसन किया, सुन ध्यान लगाया
तीनों दसा बिसार के, चौथा पद पाया ॥ ४

- डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर:साधना और साहित्य, पृष्ठ संख्या-१६२।

[2] उलटि गंग जमुन में लावी। १
बिनही जल मंजन है पावी ॥ २
लोचन भरि भरि बिंब निहारी
जोति बिचारि न और बिचारी ॥ ४
पिंड परे जिव जिस घर जाता
सबद अतीत अनाहद राता ॥ ५
जा पर कृपा करैं अब जानी
गूंगी साकर क्या बखानी ॥ ६
सुन्न मंडल में मेरा बासा
ताते जिव में रहौ उदासा ॥ ७
कह रैदास निरंजन ध्यावौ
जिस घर जाय सो बहुरि न आवौ ॥८॥ , वही, पृष्ठ संख्या-१९८।

06:08
2015.269221.Sant-Kavi...
42/57

चाहिये । इस क्रिया के पश्चात् योगी संसार में आवागमन के बंधन से मुक्त हो जाता है । टेढ़े-मेढ़े नाड़ियों के जाल के भीतर से सुषुम्ना का मार्ग है । इसी रास्ते से जाकर ब्रह्मरन्ध्र युक्त भ्रमर गुफा के घाट पर सहस्रार स्थित चन्द्र से झरती हुई अमृत रस का पान करना चाहिये । साधक को इड़ा पिंगला व सुषुम्ना की त्रिकुटी में स्नान करना चाहिये । त्रिकुटी पर योगी को सुरति (साधना) की प्राप्ति होती है । यहीं पर सुरति निरति में लय हो जाती है जिससे योगी परम ब्रह्म हो जाता है । यहीं पर जीव के ऊपर का आवरण नष्ट हो जाता है जिससे वह पवित्र हो जाता है । तत्पश्चात् अनाहत नाद के शब्द की आज्ञा

करके योगी को आगे बढ़ना चाहिये । वहाँ ब्रह्म के निवास अष्ट दल कमल में अनन्त अलौकिक प्रकाश का दिग्दर्शन होता है । चारों ओर परम ज्योति के विद्युत का प्रकाश झिलमिलाता रहता है जिससे अमृत की वर्षा होती रहती है । सभी आवागमन से मुक्त जीव चन्द्र से स्रावित अमृत में स्नान करते हैं तत्पश्चात् साधक सोलह पंखुड़ियों वाले कमल अर्थात् विशुद्ध चक्र में अपना ध्यान केन्द्रित कर देता है । जहाँ ईश्वर से उसका तादात्म्य स्थापित हो जाता है जिससे जन्म-मरण का प्रश्न सदा के लिये समाप्त हो जाता है ।[1] कबीर दास सुरति-निरति को स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि सुरति निरति में प्रविष्ट होकर निरति के साथ एकाकार हो जाती है । सुरति निरति का आपस में तादात्म्य हो जाने पर ब्रह्म का रहस्यमय द्वार स्वयं ही खुल जाता है ।[2] सुरति-निरति के मिलन से जाप अजपा जाप में परिवर्तित हो जाता है । इस प्रकार साकार निराकार में विलीन होकर आत्मा और ईश्वर का एक ही रूप प्राप्त हो जाता है ।[3] कबीर दास जी सुरति साधना को और स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि साधना द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति कर लेने पर माया तरु के फल-फूल पल्लव अंकुर तथा बीज तत्व मद-मोह मत्सर आदि नष्ट हो जाते हैं । गुरु ज्ञान के प्रकाश से ब्रह्म ज्ञान की अग्नि प्रज्वलित होती है जिससे सहस्रार स्थित चन्द्र एवं मूलाधार स्थित सूर्य की दूरी समाप्त हो जाती है । त्रिकुटी में ध्यान केन्द्रित करने पर सहस्रार एवं मूलाधार का भेद समाप्त हो जाता है । प्राणायाम द्वारा पवन

17:00

Image to PDF 2024122...

लक्ष्य की उपलब्धि का सर्वोपरि साधन है, [illegible] साधन सम्प्रदाय इसके विशाल रूप के अन्तर्गत आ जाते हैं। साथ ही साथ इसमें ज्ञान, कर्म, भक्ति का सुन्दर समन्वय भी हो जाता है।

बावरी-पंथ में योग

बावरी-पन्थ के सन्तों ने अन्य तत्वों के साथ-साथ साधना-क्षेत्र में कर्म-साधना के शारीरिक पक्ष अर्थात् योग-साधना को भी अपनाया है। पहले कहा जा चुका है कि मध्यकालीन सन्तों ने धर्म-साधना के विकृत और जटिल स्वरूप की प्रतिक्रिया के रूप में संगठन प्रारम्भ किये थे। बावरी-पन्थ का उद्देश्य उन तमाम जटिलताओं के बीच सरलता और अनेकता के बीच एकता स्थापन था।

सन्त [illegible] साहब ने यद्यपि प्रारम्भ में यौगिक शब्द[illegible] का प्रयोग किया है पर इसे [illegible]स्थितियों का प्रसाद एवं पिष्टपेषण भावना की प्रेरणा कह सकते हैं। [illegible]पि उन्होंने कहीं भी यौगिक जटिलता के प्रति आस्था नहीं प्रकट की है। उन्होंने योगी को सम्बोधि[illegible] करके बड़े ही सरल, भावपूर्ण शब्दों में योग-साधन का उपदेश दिया है :—

जोगी जुगति जोग कमाव।
सुखमना पर बैठि आसन सहज ध्यान लगाव॥
दृष्टि सम करि सुन्न सेवो आपा मेरि उड़ाव॥
प्रकट जोति अकार, अनुभव शब्द सोहं गाव॥
छोड़ि मठ को चलहु जोगी, बिना पंख उड़ि जाव॥
यारी कहै यह मत विहंगम, अगम, चढ़ि फल खाव॥[1]

उक्त शब्द में यारी साहब ने बिना किसी यौगिक प्रक्रिया के अनुसरण द्वारा सामान्य [illegible]न से योगी को अगम की प्राप्ति का साधन निर्देश किया है। यहाँ न तो किसी पारिभाषिक शब्द[illegible]ली का प्रयोग है और न किसी मुद्रा विशेष का आग्रह।

---

१. या० र०, पृ० [illegible]

189/397

17:36

Bavri-panth ke Hindi-Kavi | बावरी-पं
lucknowdigitallibrary.com/publications/bav

16:58

Image to PDF 2024122...

नाड़ियाँ

शरीर में बहत्तर नाड़ियाँ बताई गई हैं। इन बहत्तर नाड़ियों में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना आदि तीन नाड़ियाँ प्रमुख हैं। इड़ा और पिंगला से प्राण-संचार होता है। इड़ा बाम तथा पिंगला दक्षिण नाड़ी है। सुषुम्ना इड़ा और पिंगला के मध्य में मूल स्थान से रीढ़ के भीतर होती हुई ऊपर जाती है। प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु को सुषुम्ना के भीतर प्रवेश कराया जाता है। प्राणवायु को सुषुम्ना में प्रविष्ट कराने के लिए कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करना पड़ता है। कुण्डलिनी[1] सुषुम्ना का मुख बन्द किये सर्पाकार कुण्डली बाँधकर सोती रहती है। सुषुम्ना द्वार जो मोक्ष द्वार कहलाता है कुण्डलिनी के उद्बुद्ध होने पर खुल जाता है। जैसे चाभी से ताला खोलकर भीतर प्रवेश किया जाता है वैसे ही कुण्डलिनी प्रबोध से ब्रह्मद्वार में प्रवेश करना होता है।[2] तत्त्वज्ञान की उपलब्धि इसीसे होती है।

मुद्रा

इसी कुण्डलिनी के उद्बोधनार्थ दस मुद्राओं को आवश्यक बताया गया है। इन दस मुद्राओं में खेचरी मुद्रा प्रधान है। खेचरी मुद्रा की स्थिति में योगी दृष्टि को मध्य में स्थिर रख जिह्वा को तालु विवर में प्रविष्ट करता है। यह स्थिति गोमांस भक्षण भी कहलाती है। इस स्थिति में योगी चन्द्र रस का पान करता है।

चक्र

कुण्डलिनी उत्थापन में चक्र भेदन को आवश्यक ठहराया गया है। योगशास्त्र का सिद्धान्त है कि जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में भी है। इसी सिद्धान्त के आधार पर शरीर के अन्दर विविध शक्ति तथा विविध ब्रह्माण्डों का, जिन्हें चक्र कहते हैं, कल्पना की गई है। हठयोग के ग्रन्थों में चक्रों की संख्या ६ मानी गई है। नाथ-पन्थ तथा तन्त्र ग्रन्थों में इनकी संख्या इससे अधिक बताई गई है।

प्रथम चक्र

प्रथम चक्र मूलाधार नामक है। वह गुदा के ऊपर लिंगमूल के नीचे सुषुम्ना के मुख में संलग्न है। इसमें चार दल हैं। इसका रंग पीला है। इसके चार दल व, श, ष, और ह आदि

---

१. सृष्टि की समष्टि शक्ति को महा कुण्डलिनी कहते हैं। शरीरस्थ व्यष्टि शक्ति को केवल कुण्डलिनी कहते हैं। यह कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में प्राणशक्ति के साथ प्रस्तुत रहती है। यह इस चक्र के नीचे त्रिकोणकृतिमय, अवस्थित, स्वयंभूलिंग से साढ़े तीन वलयों में लिपटी हुई सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है।

२. उद्घाटयेत् कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत् ॥——हठ० प्र०, २।१०५

बहत्तर कोठे : योगशास्त्रीय शरीर-रचना विज्ञान के अनुसार काया के भीतर ७२ कोठे या कोश वर्तमान हैं।

मानसरोवर : उपर्युक्त, अमृतकूप अथवा अमृतकुंड जिसके शुभ्र जल में 'सुरति' मग्न हो जाती है।

मुद्रा : हठयोग द्वारा विहित विशेष प्रकार के अंगन्यास जो खेचरी, भूचरी, चाचरी, गोचरी और उन्मुनी नामों से प्रसिद्ध हैं।

मेरु : मेरुदंड नाम की पीठ के बीच की हड्डी जिसे रीढ़ भी कहा जाता है।

शब्द : वह शब्द जो अनहद के रूप में शरीर के भीतर सुन पड़ता है और जो परमतत्त्व का प्रतीक भी समझा जाता है। 'शब्द' नाम बहुधा उस उपदेश अथवा 'युक्ति' को भी दिया जाता है जिसे सद्गुरु अपने शिष्य को प्रदान करता है।

शून्य : देखिये 'गगन'।

षट्चक्र : उपर्युक्त रीढ़ या मेरुदंड की रचना छोटे-छोटे अस्थिखंडों के आधार पर की गई बतलायी जाती है। इनके विविध संधिस्थलों पर सूक्ष्म नाड़ियों द्वारा निर्मित कतिपय चक्र से बन गए हैं। इन चक्रों की स्थिति सुषुम्ना से होकर ऊपर की ओर अग्रसर होने वाली कुंडलिनी के मार्ग में पायी जाती है और इनकी संख्या बहुत है। किंतु इनमें से मुख्य छह ही कहे जाते हैं जिन्हें नीचे से ऊपर की प्रगति के अनुसार क्रमशः मूलाधार [illegible] और आज्ञा कहते हैं। इनकी रचना [illegible] के फूलों जैसी जान पड़ती है और इनके दलों की संख्या, [illegible] अनुसार चार, छह, दस, बारह, सोलह एवं दो की समझ पड़ती है। इनकी स्थिति भी उसी प्र[illegible] गुदामूल, लिंगमूल, नाभि, हृदय, कण्ठ एवं त्रिकुटी के समानांतर है। कुंडलिनी शक्ति इन छहों चक्रों को क्रमशः बेधती हुई आगे बढ़ती और उसी क्रम से साधना में उत्कर्ष भी बढ़ता जाता है।

सुषमन : सुषुम्ना नाम की योगनाड़ी जिसकी स्थिति मेरुदंड में है। यह इड़ा एवं पिंगला नाम की दो अन्य वैसी ही नाड़ियों के मध्य में नीचे से ऊपर की ओर बढ़ती हुई त्रिकुटी के निकट उन दोनों को भी अपने में मिला लेती है। फिर आगे सहस्रार के कुछ इधर लुप्त होती है। इसको सरस्वती नदी भी कहते हैं और इसी से होकर कुंडलिनी शक्ति प्रवाहित होती है।

सुमिरन : नामस्मरण की साधना जो वस्तुतः अनाहत नाद के श्रवण को ही लक्ष्य करती है और जो सुरति-शब्द-संयोग का कारण बनकर संतों के लिए आत्मोपलब्धि [illegible] सबसे प्रधान सहायक है।

[illegible] : जीवात्मा अथवा परमात्मा का वह प्रतीक जो उसकी [illegible] प्रतिनिधि के रूप में [illegible] के भीतर वर्तमान है। सुरति [illegible] अपने पति परमात्मा से बिछुड़ी हुई कुलहिन के रूप में भी वर्णन किया है। वह उससे मिलने के लिए आतुर हो नामस्मरण की सहायता से अनाहत शब्द के साथ संयोग कर लेती है जिससे अंत में उसे तदाकारता की उपलब्धि हो जाती है।

सूर्य : पिंगला नाम की उपर्युक्त योगनाड़ी अथवा मूलाधार-स्थित एक शक्ति जो ऊपर से प्रवाहित अमृतस्राव को सोख लेती है।

हंस : जीवात्मा जो नवद्वार के पिंजड़े (इस शरीर) में अपने को आबद्ध पाता है।

17:02

Image to PDF 2024122...

पद्धति पर है :—

36/110

जो कोउ राम नाम चित्त धरै ।
तन मन धन न्योछावर बारै, सहज सुफल फल भरै ।
गुरु परताप साध की संगति, जोग जुक्ति उर भरै ।
इंगला पिंगला सुखमन सोधे ज्ञान अगिम उद्गारे ॥

१. गु० बा०, पृ० ३०

192/397

17:36

Bavri-panth ke Hindi-Kavi | बावरी-पं

lucknowdigitallibrary.com/publications/bavr

चांद सूरज एकागर करिके, उलटि उरध अनुसरै ।
नाद बिन्द को जोउ गगन में मन माया तब मरै ॥
आठ पहर नौबत धुनि बाजै नेक पलक नहिं टरै ।
भीखा सब्द सुनतहिं अबुध बुध अमरख हरख करै ॥[1]

भीखा का पद ७, पृ० ४६ भी इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है ।

[illegible]विन्द साहब एक विद्वान् सन्त थे । उनको संस्कृत का अच्छा ज्ञान था । योग में [illegible]की बड़ी अभिरुचि [illegible] । उन्होंने योग पर संस्कृत में एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की है । [illegible] ग्रन्थ का नाम 'गोविन्द यो[illegible]भास्कर' है । इसमें योग का सांगोपांग वर्णन प्रस्तुत किया ग[illegible] है ।

बावरी-पन्थ की यो[illegible]साधना पलटू साहब के समय तक आते-आते अ[illegible] स्वरूप बदल चुकी थी । भगवत प्रेम और भक्ति [illegible] अपेक्षा उसका महत्त्व बहुत कुछ क[illegible] चुका था । यौगिक शब्दावली का प्रयोग तो होता था, पर उसके [illegible] निर्वाह की ओर अधिक ध्यान न था ।

17:01
Image to PDF 2024122...

उनमुनि मुद्रा लगी समाधि। रवि ससि पवनहिं राखो बाँधि।।
चाचरि मुद्रा से प्रीति लगावो। भूचरि मुद्रा से प्रेम बढ़ावो।।
अगोचरि मुद्रा से भ्रान भगावो। खेचरि मुद्रा से दरस दिखावो।।
जो पंडित तें करू पंडिताई। चरन रेनु हृदय लय लाई।।
चरन रेनुका करहु जनेवा। तौ तू पंडित परसहु मेवा।।
जो यह अचरज देहु बुझाई। सोई सतगुरु अगम कहाई।।
अगम जोति का धारि ध्यान। बुल्ला बोलहिं शब्द निदान।।[1]

बुल्ला साहब की योग के प्रति ऐसी आस्था और ज्ञान देखकर प्रश्न उठता है कि अपढ़ हलवाहे बुलाकी को योग का प्राविधिक ज्ञान क्योंकर उपलब्ध हुआ? कहना न होगा कि बुल्ला अपढ़ होते हुए भी सत्संगी व्यक्ति थे। दिल्ली में यारी से दीक्षा लेकर अपने मालिक गुलाल साहब को छोड़कर सत्संग की खोज में निकल पड़े। इस अवसर पर उन्होंने सन्त सम्प्रदायों के योगियों व सन्तों तथा नाथपन्थी योगियों के सम्पर्क में रहकर योग का ज्ञान प्राप्त किया। सिद्ध है कि बुल्ला को योग का शाब्दिक ज्ञान ही न था, अपितु उनका यौगिक ज्ञान उनकी स्वानुभूति एवं अभ्यास पर आधारित था। इसके अतिरिक्त गुड़कुड़ा की गद्दी से उपलब्ध चित्र की उनकी मुद्रा उनका पूर्ण योगी होना प्रकट करती है।

लौकिक क्षेत्र में योगी बुल्ला के मालिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में बुल्ला के परम प्रिय शिष्य गुलाल साहब की अभिरुचि जितनी प्रेम-साधना में थी उतनी योग-साधना में नहीं। उनकी वाणियों के अनुशीलन से स्पष्ट है कि उन्होंने कहीं भी यौगिक प्रक्रियाओं का सूक्ष्म एवं शास्त्रीय वर्णन नहीं किया। परम्परा के अनुसार यत्र-तत्र बहुत ही प्रचलित शब्दों के दर्शन मात्र होते हैं। उनमें स्वानुभूति की वह गहराई नहीं मिलती जो बुल्ला में दृष्टिगत होती है। निम्नलिखित शब्द उक्त तथ्य की सम्यक् पुष्टि करता है :—

उलटि देखा, घर में जोति पसार।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, बिगसि कमल कचनार।।
पैठि पताल सूर ससि बाँधो, साधो त्रिकुटी द्वार।
गंग जमुन के वार-पार बिच, भरतु है अमिय करार।।
इंगला पिंगला सुखमना सोधो, बहत सिखर मुख धार।
सुरति निरति ले बैठु गगन पर, सहज उठै झनकार।।
सोहं डोरि मूल गहि बाँधो, मानिक बरत लिलार।
कह गुलाल सतगुरु बर पायो, भरो है मुक्ति भंडार।।[2]

उपरोल्लिखित शब्द इड़ा और पिंगला नाड़ियों के प्रतीकात्मक नामों की पुनरावृत्ति सूर-ससि, गंग-जमुन, इंगला-पिंगला तथा अन्य पारिभाषिक शब्दों की शून्यता स्पष्ट रूप से

---

१. बु० श०, पृ० १४
२. गु० बा०, पृ० ४७

191/397

17:00

Image to PDF 2024122...

33/110

एक अन्य स्थल पर उन्होंने योग की जटिलता को दुसाध्य बताते हुए केवल प्रेम रस पान की व्यवस्था दी है :—

उरध मुख भाठी अवटो कवनी भाँति ।
अर्ध उर्ध दोउ पोग लगायो, गगन मंडल भयो भाठ ।।
गुरु दियो ज्ञान ध्यान हम पायो, कर करनी का ठाट ।
'हरिक' पद मत बाल रहत है, चलत उलट की बाट ।।
आपा उलटि के अमी चुवायो तिरवेनी के घाट ।
प्रेम पियाला सुति भरि पीयो, देखो उलटी बाट ।।
पाँच तत्व एक जोति समानो, घर छः वो मन हाथ ।
कह यारी सुनियो भाइ सन्तो,छकि-छकि रहि भयो मात ।।[1]

यहाँ पर यद्यपि अमी, चुआना तथा 'तिरवेनी' और उलटी चाल आदि कुछ यौगिक सांकेतिक शब्दों का प्रयोग अवश्य हुआ है। पर उनका अर्थ ठीक वही नहीं है जो योगी की दृष्टि में होता है।

यारी साहब के शिष्य एवं बावरी-पन्थ के पूर्वी क्षेत्र के प्रभावशाली सन्त बुल्ला साहब योग से सबसे अधिक प्रभावित थे। उनकी रचनाओं में योग का सांगोपांग वर्णन मिलता है। उन्हीं के शब्दों में :—

सन्तो जोग जानै तौन ।
आपु-आपु विचारि लेवे रहै घर में मौन ।।
चाँद सूर एकत्र करिके, सुखमना धरि पौन ।।
तँह होत है अनहद गहागह, मिटो मन को घौन ।।
लाल पहिरि सफेद पहिरे, जरद हरिया जौन ।।
स्याम पहिरि के जब उलटि चलिया,भयो घर में चैन ।।
तब दास बुल्ला बानि बोले, नित ताबेद द्वैन ।।[2]

प्रस्तुत उद्धरण में योग के उद्देश्य से लेकर उसकी अन्तिम स्थिति तक का कितना सूक्ष्म वर्णन है। प्रथम पंक्ति में चित्तवृत्ति-निरोध की ओर स्पष्ट संकेत है, जो कि योग-साधना का मुख्य साध्य है (योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः)[3]। द्वितीय पंक्ति में इड़ा और पिंगला के प्रतीकात्मक नामों का प्रयोग,तथा वायु का सुषुम्ना में प्रवेश उनके योग के सम्यक् ज्ञान की पुष्टि करता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने षट् चक्रों के वर्णन में उनके रंगों तक का वर्णन उपस्थित किया है :—

बूझहु पंडित अचरज एक। सेत बदन तहँ सदा अलेख ।।
संधि पवन षट चक्र छुड़ावो। तिरबेनी के घाटे आवो ।।

---

१. या॰ र॰, पृ॰ ६
२. बु॰ श॰, पृ॰ ६
३. हिन्दी पातंजलि योगदर्शन, पृ॰ ५ : सम्पादक—डॉ॰ भगीरथ मिश्र तथा अन्य।

17:09

Image to PDF 2024122...

83/110

रेखता

देह पवित्र से नेह करो,
  जहाँ राम बसत आतम धारी ॥१॥
मूल में गाँठि परो दृढ़ से,
  जहँ सुख मन सेज कि राह सँवारी ॥२॥
वसौं द्वार पर जोति धरै,
  उतै निरंकार है ब्रह्म अपारी ॥३॥
बुल्ला हिरदय विचारि बोले,
  गुरु ज्ञान कि बात सुनो हमारी ॥४॥[1]

मुहावरे

जीवन के व्यापारों का आधिक्य और उनकी बहुमुखी प्रवृत्ति एवं भावों की गहनता उनकी अभिव्यंजना में भाषा के लिए एक समस्या बन जाता है। भाषा उन्हें अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो जाती है। भाषा अपना इस कठिनाई को दूर करने के लिए थोड़े में बहुत कहने की प्रवृत्ति और लाक्षणिक प्रयोग को अपनाती है। यह लाक्षणिक प्रयोग ही मुहावरे की संज्ञा ग्रहण करता है। जो साहित्य जीवन के कूलों को जितना अधिक अपने में समेटेगा उसे मुहावरों का प्रयोग उतना ही अधिक करना होगा।

बावरी-पन्थ, जैसाकि इस प्रबन्ध में अन्यत्र इंगित किया गया है, लोकजीवन के बीच फलने-फूलने वाला पन्थ है। इसमें जीवन के विविध पक्षों को लिया गया है। विशेषकर पलटू साहब इस प्रवृत्ति के प्रतिनिधि हैं। अतएव उनकी रचनाओं में मुहावरों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। यहाँ पर पलटू साहब की रचनाओं में प्रयुक्त कतिपय मुहावरों की सूची प्रस्तुत है।

१—बाल बाँका करना
  को करि सकै अकाज बार नहिं बाकी बाँकै।[2]

२—पसंघा मारना
  बनिया बानि न छोड़ै पसंघा मारे जाय।[3]

३—मन महीन करना
  मन महीन करि लीजिए जब पिउ लागै हाथ।[4]

४—अन्दर का परदा टरना
  परदा अन्दर का टरै देखि परै तब रूप।[5]

---

१. बु० श०, पृ० २१
२ से ५. प० सा० भाग १, पृ० ६७, ७७, ११, ५८

17:06
Image to PDF 2024122...
68/110

सत संगति चोवा अबीर करि, दृष्टि रूप ले घोरी ॥३॥
गुरु गुलाल जी रंग चढ़ायो, भीखा नूर भरो री[1] ॥४॥

पलटू

आजु भई मैं तो आजु भई ठाढ़ि सुहागिन आजु भई। टेक
धोखे में नैहर दिन बीते आनन्द भय ससुरारि गई॥
घँघरा पहिर विवेकी लहँगा फुफुदी कस विस्वास ठई।
अंगिया प्रेम कसे अंग-अंग में सारी गुरु की सरन लई॥
अंजन ज्ञान नैन भरि लाये भाव भक्ति की नथ नई।
बेंदी भाल उनमुनी सोहै मोतिन के लर सुरति कई॥
जगमग जोति [illegible] सेंदर भरि माँग दई।
[illegible]दूदास अचल अहिवाती अमर पुरुष [illegible] गई॥[2]

कृ[illegible]दास

जागु-जागु सखी मधुमाती पिया संग सैन करी॥ टेक
जब जागा तब भजन में लागा सुरति सुखमना की राह धरी॥१॥
पंचरंग सेज गगन में दासेउं देखत के पिय बाँह धरी॥२॥
अपने पिय संग सैन करतु है बहुत लोग उपहास करी॥३॥
कृपादास दया सतगुरु की लोभियन के मन नहीं डरी[3]॥४॥

उक्त चित्रों से बावरी-पन्थ के सन्तों की संयोग एवं विप्रलम्भ शृंगार की एक झाँकी मिलती है। [illegible]नके अधिक सूक्ष्म विश्लेषण से पता चलता है कि सन्तों की वा[illegible] में अनेक अनुभावों का भी [illegible]यास समावेश हो गया है। स्थाली पुलाक न्याय [illegible] कतिपय उदाहरण यहाँ पर प्रस्तुत किये जाते है।

१. कायिक

लोचन चंचल चपल चहूँ दिसि।[4]

२. मानसिक

अभि अन्तर मन गाजी।[5]

---

१. भी० श०, पृ० ४४-४५
२. प० श०, पृ० २३८
३. बाबा कृपादास शब्दावली, पृ० २५
४–५. हस्तलिखित ग्रन्थ, देवकीनन्दन साहब

17:06
Image to PDF 2024122...
67/110

अरध उरध के मध्य निरन्तर, सुखमन चौक पुराई हो।
रवि ससि कुंभक अमृत भरिया, गगन मंडल मठ छाई हो ॥२॥
पाँच सखी मिलि मंगल गावहिं, आनंद तूर बजाई हो।
प्रेम तत्त दीपक उजियारो, जगमग जोति जगाई हो ॥३॥
साध सन्त मिलि कियो बसीठी, सतगुर लगन लगाई हो।
दरस परस पतिबरता पिय की, सिवघर सक्ति बसाई हो ॥४॥
अमर सुहाग भाग उजियारो, पूर्व प्रीति प्रगटाई हो।
रोम-रोम मन रस के बसि भइ, केसो पिय मन भाई हो[1] ॥५॥

बुल्ला

रंग लागो गोरिया आज रंग लागो, आपा सोधि भ्रम भागो ॥ टेक
तिरगुन गुन गुनही पर जोरा, निर्गुन नाम हिये पागो ॥१॥
झिलमिलि झिलमिलि तिरबेनी, संगम अविगति गति ब्रह्म जागो ॥२॥
सुर नर मुनि जाको अन्त न पावहिं, सो मोरे नैनन आगो ॥३॥
हरि रंग जुगन जुगन उजियारो, जन बुल्ला साधुन सागो[2] ॥४॥

गुलाल

जनम सुफल भैलो हो हम धन पिया की पियारी ॥ टेक
सोरहो सिंगार संपूरन पहिरल देखल रूप निहारी।
तत तिलक दे माँग सँवारल विनवल अंचरा पसारी ॥१॥
आठ पहर धुनि नौबति बाजे सहज उठै झनकारी।
रीझि-रीझि, नेवछावर वारी मुक्ता भरि-भरि थारी ॥२॥
गगन मण्डल में परम पद पावल जमहि कइल परछारा।
जन गुलाल सोहागिन पिय संग मिलली भुजा पसारी[3] ॥३॥

भीखा

मन में आनन्द फाग उठो री ॥ टेक
इंगला पिंगला तारी देवे, सुखमन गावत होरी ॥१॥
बाजत अनहद डंक तहाँ धुनि, गगन में ताल परोरो ॥२॥

---

१. के० ज०, पृ० ७
२. बा० र०, पृ० १
३. गु० म० सा०, पृ० १०

17:13
Image to PDF 2024122...
103/110

गगन के बीच में शब्द अनहद बजै सुनैगा सोई जो तत्व भाजै।
नूर जह नूर दो[illegible] अठ पहर नौबति बाजै॥
साति [illegible] महल है वादि अठ्ये पर स्वेत ह्वै वरन [illegible] ति छाजै।
सत्य सरूप जहँ रूप को देखि के दास परसाद पँह भाँति ग[illegible]॥२१॥

सुनि के शिखर पर अनहद बाजा बजै उठै तरंग जब लहर आई।
हद अनहद के पार तँह डंक देइ गयब घर जाई फेरै दोहाई॥
चाँद और सूर्य को एक घर आनि कै शब्द में सुरति कोइ जाइ लाई।
दास परसाद एह आस को छाँड़ि दे भेद को पाई तब रूप लखाई॥२२॥

[illegible]न को द्रोह प्रभु देखि नाहीं सकै करै द्रोह सो पावे वेषता है।
ब्रह्म [illegible]लता चीन्हि ले काल के और सब झूठ संसार को पता है।
राम की भक्ति साइ [illegible] तब मता है।
कहै परसाद प्रभु जन में जाइकै भक्त के हेतु सो ग्राह को हता है॥२३॥

जगमग जोति जड़ाव जटा सिर गलें प्रेम की माला है।
अरध उरध के बीच में सोहै फुलेल गुलाला है॥
लोक वेद एक नाद विन्द दोइ चारि एक में शाला है।
कहै परसाद सुनो भाइ पलटू चवर सिर डाला है॥२४॥

जिनके रंग रूप नहि रेखा उन्ह से प्रीति लगाया है।
जन्म बिना जन्मी जँह बाजे सोहं शब्द सुनाया है॥
गगन महल की खिरकी छोड़ा दसये द्वार खोलाया है।
कहै परसाद सुनो भाइ पलटू यह घर बाट लखाया है॥२५॥

पाँच तत्व में एक पवन है तीसहु ते यह न्यारा है।
वाइ अपना सिमिटि भय पवना पहुँचा दशये द्वारा है॥
सत्य सरूप जहँ सुन्य भवन है सुनि अनहद मन हारा है।
कहै परसाद सुनो भाइ पलटू सोहं शब्द विचारा है॥२६॥

जप तप नेम अचार और पूजा कितनी ध्यान लगावेगा।
[illegible] सालाह संगर [illegible] बुझावेगा॥
उन मुनी तारो पवन अहारी पुनि चौरासी [illegible]गा।
दास परसाद जो राह मिलन की सन्त कोउ भेद बतावेगा॥१५॥

उलटि पवन को फोरि चक्र को अनहद तूर बजावेगा।
इड़ा पिंगला सुखमन नारी बंक के नाल चढ़ावेगा॥
अष्ट कमल दल उलटि कमल दल सुन्य में सुरति चलावेगा।
छोड़े चांद सुर्ज को छोड़े आगे को मन लावेगा॥
जगमग जोति निरन्तर निर्मल सोइ सब्द सुनावेगा।
दास परसाद यह खेल खेलि के बहुरि न यहि जग आवेगा॥१६॥

दास और ईश दोऊ एक में भेदी मिले भेद को पाइ तब चले आगे।
रिधि औ सिधि की कनक दुइ महल में देहि के चित्त न उहाँ पा[illegible]॥
[illegible] को शब्द लै मान समसेर कै मोह दल मा[illegible] जागे।
दास परसा[illegible] जर जब अगिनि तब पाँच भागे॥१७॥

जोगी अब जोग को भेद पावे नहीं न फाका किये अब जोग माहीं।
आदि औ अन्त मन एक जो रस रहै डगो जो तनिक तो नर्क जाहीं॥
आठ-नौ पहर है चौसठ सो घरी है रइनि औ दिवस गुण लेहु ग्राही।
दास परसाद जो राम की भक्ति है भक्ति को बीज खालीय नाहीं॥१८॥

यार फकीर तू परा कित ख्याल में भक्त जंजाल तू छोड़ सारा।
राम को नाम गुण गाइले पाँच पचीस बिनु अगिनि जारा॥
नीच अब भयो नहिं राम के मिलन को छोड़ अहंकार नहिं मान हारा।
दास परसाद धोख धन्धा धरो मुये सिर पटकिनहिं तत्व मारा॥१९॥

सुन्य के सिखर पर पाँव ठहरै नहीं तहाँ अधाई मन चढ़ा जाई।
लोक और वेद की नमि जहँवा नहीं तहाँ हम जाइके सुरति लाई॥
मोल को बाँधि कै चक्र को फोरि के औग विहंगम राह पाई।
दास परसाद जो सबद सोह उसी के भीतर बैठि गाई॥२०॥

राग बँगला

आली रूप लागी लो आछे मने ।
हियरा मध्य मोहनि मूरति राखि लो यतने ॥
अलखवाल पुरि आसन ध्यान, माँझ त्रिगुनि कोने ।
दरस परस मोहनि मूरति देखि लो सपने ॥
कोटि ब्रह्मा जाको पार न पावै सुर नर मुनि को गने ।
'बीरू' भक्त के राम न स्थिर नाहीं गायी भजिबो को मने ॥

शब्द

त्रिकुटी के तीर तीर बाँसुरी बजावै लाल,
मांल लाल से सबै सुरंग रूप चातुरी ।
यमुना और गंग अनहद सुर तान संग,
फेरि देखु अंग मग को छोड़ देवै कादरी ॥
वायू प्रचंड चंड बंक नाल मेरुदंड,
अनहद को छोड़ि दे आगे चलु बावरी ।
ऊँकार घार बास इनहूँ का है बिनाश,
खसम को साथ करु चीन्ह ले तू नाहरी ।
जन बिरू सतगुरु शब्द रिकाब धरु,
चल शूर जीत मैदान घर आवरी ॥

परसाद साहब की बानी

कवित्त

जग में परताप प्रचण्ड भयो चहूँ दिसि मारिकै जीति लियो है ।
वेद पुराण अगाध पढ़ो और अटक कटक लै राज कियो है ।
रानी एक से एक अलौकिक भोजन को पय पान दियो है ।
कहै परसाद मुष पाक परो जो पै राम के नाम न प्रान दियो है ॥१॥

पाँच पचीस को केरिय बेर कै तीनि मउ बास के ठौर मारा ।
लोभ और मोह की फौज को मारि कै द्वादस इन्द्री तुरंत जारा ।

पूरक बत्तीस उर्ध गति ; कुम्भक चौसठ रोक ।
छाड़े एक टकसारे है ; करे राग नहि शोक ॥
बाहर भीतर कितनो धोवो ; रोको पवन उताने सोवो ॥
देखै जोती हृदया मांहीं ; बिना भजन सपनेहु सुख नाहीं ॥
—कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृ० ६०-६१

८. 'The Hidden Teaching Beyond Yoga', pp. 39-40.

९. देखिए, 'संतकवि दरिया : एक अनुशीलन', पृ० ६४ आदि ।

१०. Arthur Avalon or Sir John Woodroffe के 'Serpent Power' नामक ग्रंथ मे इस विषय का विस्तृत विवेचन देखिए, पृ० २४५-४६ ।

११. हीरा मलके द्वार मे परखे कोई सूरा हो ॥
सिद्ध आसन सोधि के, धरिहउ मन धीरा हो ॥
—टेकमन : भजन-रत्नमाला, पृ० १७

१२. आसनों का चित्र-सहित विवरण स्वामी शिवानन्द कृत 'योगासन' मे देखिए ।

१३. सरल विवरण के लिए देखिए 'संतकवि दरिया : एक अनुशीलन', पृ० ६६-६७

१४. सब मुद्रन मे खेचरी भारी ॥
जेहि मुद्रा को नित प्रति साधत, योगीजन त्रिपुरारी ।
जिह्वा के मूल नीचे को काटै, पुनि जिह्वा दोहि डारी ॥
रसना लम्ब होय जब जाव, तब तालु देह पैठारी ।
आसन स्थिर राखे योगीजन, जिह्वा को अस्थिर धरी ॥
त्रिकुटि मे ध्यान स्थिर करि राखै, बिचले न पावहिं तारी ।
परम प्रकास के दरसन करिये, जो उपमा से न्यारी ॥
—निर्पक्षवेदान्तराग-सागर, पृ० १०४

१५. बारह बरिस में ऊपर आवो,
तब जोगी कहलावो ॥
—जोगीनामा, हस्तलिखित संग्रह, पृ० ३४

१६. जिह्वा उलटि के भीतर ही को, तारू मॉह सटावै ।
गिरै अमियरस गिरा पै छक-छक, कुन्डलिनी ललचावै ॥
काम व्यापै तो उलट जिभ्या लगा ब्रह्म रन्ध्र में ।
जब स्रवै अम्रित तो छक-छक पान करना चाहिये ॥
—आनन्द-भण्डार, पृ० ४२, ६३

१७. जब जोगी तुम बइठत नाहीं,
तब जोगी उड़ि जावो ।
साठ जोजन पैर खिलावो,
तब जोगी कहलावो ॥
—जोगीनामा, हस्तलिखित संग्रह, पृ० ३४

१८. इंगल पिंगल सुखमनि सोधि के, उनमुनी रहनि गहतहीं काल बाँचा ।
सुरत अरु निरत की लगन मे मगन होय, रामकिना सोई रंग राँचा ॥
—गीतावली, पृ० ६, पद २

लोभ और मोह जिय नेक आवे नहीं करे सोइ काम जो संत धारा।
दास परसाद अब ईस सोई बंदों करम की रेख पर मेष मारा ॥५०॥

रूप सरूप जिन्ह आपनो पाइया आगे का चलना क्या भावे।
लोक औ लाज जो कर्म को फंदहै गये वे दूर नहिं निकट आवे॥
रहन औ गहन अन सहन विवेक सो करे सोइ काम जो वेद गावे।
दास परसाद वे दास से इसिक करे करत के नाहिं वे वेलम लावे॥५१॥

करम के फ[illegible] फारु वे बाल के राम के नाम गुण ग[illegible] [illegible]ाई।
ग[illegible] क ग्यान ले उलटि दे कमल को ऊरघ और उरघ बिच देखु आ[illegible]
जियत जिय मारिके तन मन जारिके गगन की राह तब पवन जाई।
दास परसाद जो शब्द है ईश का ज्ञान औ ध्यान से जाय सुनाई॥५२॥

ईड़ा और पिंगला सोधि ले बाल के बंक के नाल चढ़ाउ जाई।
सहस दल कमल को उलटि ले बाल के अरध और उरध बिच शब्द पाई॥
जिमि को उलटि असमान नीचे करे तहाँ अब सुरति समाधि लाई।
दास परसाद सोई ईस के मानिये जोइ इस भेद को देइ बताई॥५३॥

[illegible] ओर लोक और वेद सब एक ओर आपु जब होइ अकेला।
सहस द[illegible]पल को उलटि दे एक ओर बिन्द में नाद को करे मेला॥
दास से ईस ह्वै इस [illegible] ह्वै गरु से होइ तब जा[illegible]ला।
जगत में आई गुरु ग्यान को पाइ तब दास परसाद यह खेल खेला॥५४॥

चलो जी चलें हरि रंग सोर लै जब पाइ गुरु गमित देइ हेला।
सत्य के पाप जब झूठ को छोड़ि दे उलटि के बिन्द में नाद मेला॥
तत्व विचारि कै ज्ञान को मथै जब गुरु से सरस तब हुआ चेला।
लोक और वेद इन्ह दोउ को छोड़ि कै दास परसाद यह खेल खेला॥५५॥

कुमति को जारि कै सुमति को धारि कै राम के नाम पै सुरति लाया।
काम औ क्रोध को लोभ औ मोह को मारिकै अदल चलाया॥
आस को छोड़ि निज रास जब दास ह्वै तजै जब पाँच नब फिरै माया।
दास परसाद जब सीस को दीजिये रीझै जब ईस तब करै दाया॥५६॥

17:15

Image to PDF 2024122...

108/110

गुरु के ध्यान मद पाइ मुदित भये चढ़ो दै हांक गढ़ लेन लंका।
फहम के फौज सन्तोष के सिपाह कै सबुर देत लव लव छुटै संका॥
पवन तू रंग लै सरनि [illegible] कै पेम खिलाहरन बीच चमका।
जोग [illegible] युक्ति दोउ तीर तरकस बने ध्यान कम[illegible] मारु फंका॥
शब्द समसेर के सुरति से मारि ले तीनि को पकरि तब होऊ [illegible]का।
दास परसाद इन्ह सवन को कैद करि तुरिया चढ़ि जाइ तब देइ डंका।[illegible]४६॥

इड़ा औ पिंगला कमल दल सोधिकै बंक के नाल चढ़ाई देना।
लोभ औ मोह लाल मगहटी काम और क्रोध को मारि लेना॥
चांद और सुर्य को एक घर आनि के पवन की राहु को खोलि देना।
सहस गुंजार को छोड़ दे नाल के गगन की राह को तुरत लेना॥
गगन के महल में शब्द अनहद बजै सुन्य के महल को कदम देना।
दास परसाद तव सहज समाधि ह्वै आपु में आपु को देखि लेना॥४७॥

कोऊ [illegible] उदासी कोऊ बन बनवासी कोऊ दूध को अहार कंद मूल फल [illegible]ते।
कोऊ नेम अचा[illegible] कोऊ तत्व विचारते कोउ संध्या तरपन कै घं[illegible] बजावते॥
कोऊ जटा बढ़ाए कोउ [illegible] सब घोटि के मुड़ावते।
कोऊ गुदरी बनाई कोऊ अलफी सियाई कोउ पवन को अहार कै मंत्र को जगावते॥
कोऊ जोग और जग्य कोउ एक सर्वंग्य कोउ सिद्ध और समाधि होई कोऊ पवन
को चढ़ावते।
कोऊ तुमरी बजाये कोइ बैल को नचावै कोउ उर्धमुख हो ठढेसरी कहावते।
दास परसाद जग छोड़ि अब वाद दे अब जा मेरा जी राम सों तो कोउ नहिं
पावते॥४८॥

दास और ईस को भेद इतनै रहै राम मिलन की राह बतावे।
आपु तो वहै हैं हमें का कहे जोग और जुक्ति कुछ नाहि आवे॥
दिढ़ नहीं प्रेम अनुराग लागा नहीं परे भ्रम फन्द कछु नाहिं भावे।
दास परसाद ऐसे ईस को दण्डवत आपु तो गए हम हूं बोलावे॥४९॥

ईश कीजिये बूझि विचार कै करम औ भरम से होइ न्यारा।
लोक औ वेद जग आस को छोड़ि कै सत्य सरूप तै तत्व गारा॥

21:55
Santmat ka sarabhan...

या जग गुप्त कछु कै राखो, जान [illegible] ।
जोगेश्वर आपे आप में मिले, तब छूटे पसार ॥१५[illegible]

—स्वरूपप्रकाश, प० [illegible]० ६१

बड़ा यत्न से पिया के पाई रे ॥टेक॥
प्रथमें मूल बन्ध के बान्हो अएड गुदा मध्य सिमटाई ।
मेरुदंड सीधा कै राखो, नागिन जाइ जगाई रे ॥१॥
तब उडियान बन्ध को किन्हा, नाभि पीठस्त लगाई ।
पछिम दिशा के खिड़की खुला, बंक नाल चढ़ि धाई रे ॥२॥
बन्ध जालन्धर कस के सान्या, कंठ लिये सिमटाई ।
उलटी नयन लगे त्रिकुटी में, अगम ज्योति दर्शाई रे ॥३॥
महाखेचरी मुद्रा साधा, जिह्वातल सूत कटाई ।
खैंची श्वास उलटि जिह्वा को, ब्रह्मरन्ध्र समाई रे ॥४॥
थर-थर काँप कलेजा उठे, तब पीछे सुख पाई ।
अमृत स्रवी मुखमैं मीठा अनहद नाद सुनाई रे ॥५॥
सोहं सोहं अजपा जहँ उठे, अजब रूप दर्शाई ।
योगेश्वर जीव मिले अभिगत में, आपे आप हो जाई रे ॥६॥

—स्वरूपप्रकाश, प० ११२

काया पुर खेती कैलों, बोअलों कुसुमिया ! हे ननदिया मेरो ।
गगन में फुलवा फुलाय, हे ननदिया मेरो ॥१॥
दस पाँच सखिया मिलि, फुलवा लोढ़े चलली, हे ननदिया मेरो ।
नैना चंगेलिया बनाये, हे ननदिया मेरो ॥२॥
रंगलो में पिया के पोशाक, हे ननदिया मेरो ।
योगेश्वर पिया पहिरी, सोअलो पलंगिया, हे ननदिया मेरो ।
देखि देखि नैना जुड़ाए, हे ननदिया मेरो ॥३॥

—स्वरूपप्रकाश, प० १३८

सिद्धासन साधि निरन्तर बैठि के, योग क्रिया करतृलहिं ठानैं ।
योगेश्वर चित्तवृत्ति के निरोध ते, तत्त्व विवेक लहै पहचानैं ॥

—स्वरूपगीता, पद-सं० ४१

लघु तात सिद्धासन आसन को, ऐड़ी निज अएड ते नीच जनावे ।
दछिन ऐंड़ी को इन्द्री के मूल को दाबि मेरु दंड सीधी बनावे ।
दोउ हस्तन ते हैं अनेक क्रिया, दोउ नेत्रहि नासिका अग्र लगावे ।
सिद्धासन पै करि कर्म अनेक, योगेश्वर मुद्रहिं योग लगावे ।

—स्वरूपगीता, पद ४२

21:50

Santmat ka sarabhan...

२. आनन्द भण्डार, पृ० २४

३. निरंजन पद कोउ साधु जानता है।
मूल द्वार खींचि पवन को, उलटा पंथ चलाता है।
मेरुदंड के सीढ़ी बना के, सुंन सिखर चढ़ि जाता है।

—गोविन्दराम : ह० लि० सं०, पद २

४. मूल चक्र विमल होय सोधो।
त्रिकुटी के श्वासा धर लऽ।
द्वादस गुडिया उड़ावहु हो।

—मिनकराम हस्तलिखित संग्रह, पद १७

५. सोही सोहागन उल्टे खुलि गेल गगन केवारा हो।
इंगला पिंगला सोधिके चढ़िहै सुरधामा हो॥
सतगुरु वहाँ आपु है, पुरैहैं, सतनामा हो।
त्रिकुटी मंदिर भीतरे, वहाँ ज्योति अखंडा हो॥

—मिनकराम : ह० लि० सं०, पद २४

६. मूल चक्र पर तुम्हरो बासा, चार दल ताहा कमल प्रकासा।
खट दल ताहां ब्रह्म रहै समाई, जाहां कमलनाल सोहाई॥
अस्ट दल कमल विष्णु के बासा, ताहां सोहंग करै निवासा।
द्वाडस खोडस सुरति समावै, शिव शक्ति के दर्शन पावै॥

—रामस्वरूप : भजन-रत्नमाला, पृ० ३

७. उनमुनि ध्यान नासिका आगे, तब गढ भीतर पैसार।
छः चक्र षोडस रस खावै, दसो द्वार थानादार॥
चान्द सूरज करो उनमुनि में, तब खोलो त्रिकुटी किवार।
अग्नि विमल चक्र एक दरसे, मेरुदंड तेहि ठाम॥

—गोविन्दराम : ह० लि० सं०, पद १

८. धरहु ध्यान अभिअन्तर उर में, सार शब्द नित नित हेरो।
त्रिकुटि मध्य दोउ नेत्र लगा के, उलटि पवन के फेरो॥
यही विधि आतमरूप निहारो, सुन्दर परम उजेरो।
मकरतार इव सुरति सोहागिन, चलु मन जहँ पिया मेरो॥
योगेश्वर दास नेहर अब बीतल, छूटल जग मद मेरो।
सद्गुरु कृपा पिया तोरे मीलल, अब क्या सोच करे हो॥

—स्वरूप-प्रकाश, पृ० १८

. सुनहु तात जो सज्जन कहही, हिय महँ कमल अधोमुख रहहीं।
कदली पुष्प समान अष्टदल, तेहि पर घूमत सदा मन चंचल॥
दश अंगुल के कमल है, नाल दण्ड पर ठीक।
आठो दल आठो दिशा, ताकी फल सुनु नीक॥
[illegible]हि दल पर जब मन जाहीं, कृपा करे सब जीवन माहीं।
अग्निक[illegible] निद्रा आलस, दच्छिण मत्सर क्रोध [illegible]॥
नैर्ऋत दल पर मोह जनाव, [illegible] जड़ता उपजावे।

21:49
Vo)) LTE1
Santmat ka sarabhan...

१९. इंगला, पिंगला शोधन करिके, पकडा सुखमन डगरी ।
पाँच के मारि, पचीस वश किन्हा जीत लिये नौ नगरी ॥
[पाँच तत्त्व, पचीस प्रकृतियाँ, नव द्वार (इन्द्रियाँ)]

—स्वरूप-प्रकाश, पृ० १३

२०. इंगला, पिंगला नदिआ बहत है । बरसत मनि जल नीरा ।

—भिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पृ० ८

२१. इंगला सोधो पिंगला सोधो, सुन भवन मन लाइओं ।
सुन भवन मे पिया के बसगित, जगमग ज्योति दरसाइओं ॥
गंगा जमुना त्रिबेनी संगम, उहाँ अस्नान कराइओं ।
करि अस्नान जपो अभिअंतर, सतगुरु शब्द लखाइओं ॥

× × ×

इंगला पिंगला दोनों बहे धारा, सुखमन सोधि गगन निजु डेरा ।
श्री टेकमन महाराज भिषम प्रभु, प्राण पुरुष चरणन निजु हेरा ।

—भजन-रत्नमाला, पृ० ८, १३

२२. सुखमनि भरे जो नीर अकासा, जो जन पिअही बिन पेआसा ।
इंगला पिंगला करै विचारा, मन बैठत नहिं लागे वारा ॥
यह गति जानै जोगी कोई, जाके निपुन हाथ नहिं होई ॥

—भजन-रत्नमाला, पृ० ४

२३. उलटा धार बहेला बंक नाला, बिना रसना के जपे अजपा माला ॥
त्रिकुटि महल मे सुग्गा मेरराला, दरसन राम के मन हरखाला ॥

—भजन-रत्नमाला, पृ० १०

२४. ऐसा ध्यान लगाना साधो, ऐसा ध्यान लगाना ।
मूल द्वार के साफ करो तब, गगन महल में धमके ॥
त्रिकुटि महल मे बैठिके, देखे जोति अपारा ॥

× × ×

सोहंग शब्द विचार के, वोहंग में मन लाई ।
इंगला पिंगला दोनों द्वार है, सुखमन मे ठहराई ॥

—भजन-रत्नमाला, पृ० १९-२०

२५. बाम इंगला बसै पिंगला रवि गृह जानो ।
मध्य सुषमना रहै शब्द सतगुरु सम मानो ॥
नामी शब्द कियारि अमिय को गगन निवासा ।
सहज चन्द्र रवि उदय, शून्य को शब्द प्रकासा ॥
रामरूप गुन गन सहित मन मनसा पहिचान ।
मन मोर अजरा मरै इडा सुखंमृत पान ।

—किनाराम : रामगीता, पृ० १३, पद ३

२६. सुरति निरति के देखु नयन के कोर से ।
सरवन सुने अनहद बाजे जोर से ॥

—आत्म-निर्गुण-ककहरा पृ० १

२७. अनहद सुनै गुनै नहिं भाई ।
सुरति ठीक ठहर जब जाई ॥

अष्ट दल कमल फुले गुलजार।
मेरे मन मधुकर, करै गुलजार ॥
इंगला पिंगला के काया निरुआर।
सुखमन बटिया के खुलु न केवार ॥
नाभि कुंड बहे अमृत धार, शब्द उठै जहाँ ओकार।
तालेदास इहाँ काया निरुआर, जीति चलहुँ वहि देशवा बिरान ॥

(५)

दिहलन एक जड़ी हमारे गुरु ॥टेक॥
इहो जड़िया मोही प्यार लगत है, अमृत रस से भरी।
[illegible]हो जड़िया केउ सन्त लोग जाने, लै के जपत [illegible] ॥१॥
त्रिविध [illegible] तन से भागे, दुर्मति [illegible] करी।
इहो जड़िया देखि मृत्यु [illegible]राने, और कौन बा पुरी ॥२॥
मनही भुजग पाँचो नाड़ी सन तरंग भरी।
डाइन एक सकल जग खाये, बोली देख डरी ॥३॥
निशि बासर जन ताहि न बिसरै, पल चित एको घड़ी।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी सकलो ब्याध हरी ॥४॥

(६)

भजन में सन्तो प्यारा है ॥टेक॥
बिनु सड़सी बिनु हाथ हथौड़ी, गढ़ल सजल तइयारा है।
बिनु खम्भा - असमान खड़ा है, उसमें धागा लागा है ॥
बिनु चूना के मंदिल चुनौटल, उसमें साहेब हमारा है।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी, सतगुरु सबसे न्यारा है ॥

(७)

सोऽहं नाहि विचारी जम्हु हो ॥टेक॥
नाटा बएलवा टाट् नहिं अंगछै, छन छन देत गिराई।
गुरु के शबद लै नाथु बएलवा, हनि हनि मान्हु पेटारी ॥१॥
ना हम लादो हीरा - मोती, ना हम लौंग सुपारी।
हमहुँ त लादब गुरु के सबदवा, पूरा खेप हमारी ॥२॥
'तालेराम' पतिया लिखि भेजल, लक्ष्मी के झटझारी।
साहब कबीर के घर भरत है, अपने भइले बेपारी ॥३॥

(८)

सद्गुरु बनिया पिंजड़ा पा लेना ॥टेक॥
एक दमरी के मुनिया बेसहलो, नौ दमड़ी के पिंजड़ा।
आएल बिलाई झपट लेलक मुनिया, रोये सारी दुनिया ॥

21:57

Santmat ka sarabhan...

—स्व० प्रकाश, पद सं० ८६

साधु-सद्गुरु, सत्संग आत्मसंयम, कुसाधु-कुभक्त

त्यागु निज मोह कोह, दयादम योग जाप,
ध्यान न्यास त्यागो, पाठ पूजा अरु ज्ञान जो।
त्यागु सब देव अरु, सेवा किसी इष्टन की,
त्यागु पित्र प्रेम नेम, और अनजान जो॥
त्यागु सकल तीर्थ वर्त और आचार जेतिक,
त्यागु [illegible] मन्दिर अरु [illegible] स्नान जो।
कहता योगेश्वर ब्रह्माण्ड मांहि ऊँच नी[illegible],
त्यागु त्यागु सकल सिद्ध का निज मान जो॥

—स्व० गीता, कवित्त १, पृ० ११०

तीरथ बरत करि पूजा पाठ ध्यान धरि,
नेम वो आचार करि शुभ मग डोलिये।
सन्तन के सेवा सतसंग नित हेरि करि,
नाम के रटन करि, सत्य बोली बोलिये॥
करि षट क्रिया दस मुद्रा के साधन तब,
गगन कपाट को भटाक दीन खोलिये।
ज्ञान वो विराग को विचार निसिबासर,
योगेश्वर अगुण गुण तुलासम तोलिये॥

—स्व० गीता, छंद २५, पृ० १६२

जागि सोई विकल चित मोरा, कब देखिहौ मैं जाई।
सद्गुरु भेदि मोहि दर्शन दीन्हा, दिये भेद लखाई॥१॥

—स्व० प्र०, पद-सं० ५

सुनि निश्छल बैन गुरु हमरे, उठि पृष्ठ के ओट हुये तब ठारे।
वामे कर शीश पै राखि प्रभु, कर दाहिन लिखत [illegible] हमारे।
गुरु पूछत हैं हम काह लिखा, हम [illegible] कांहि काह उपारे।
पीछे पगु एक हटाई गुरु, निज लात योगेश्वर पृष्ठहि मारे।

—स्व० गीता, पद-सं० ८८

चरण प्रहार जो कीन्ह गुरु, टूटेउ भ्रम कपाट।

नेती बस्ती औरु धौती करि, नेवली है त्रातक ओ गजकरणी ।
षट् कर्म यही योगीश करैं, पुनि सांख्य न वेद पुराणन वरणी ।

—स्व० गी०, प० ४३

सिख देई मुझे मुद्रा दसही, जेहि भाँति दया गुरुदेव बताई ।
तेहि नाम बखानि महामुद्रे दूजे महाबन्ध वोवेध्य जनाई ।
खेचरी उड्डियान जालन्धर जे मूल बन्ध कही बज्राली चेताई ।
योगेश्वर जो विफलाकरणी पुनि शक्तिहुं चालनी देत लखाई ।

—स्व० गी०, प० ४४

पल चचल ते नित झाँपि खुले, तेहि राक सदा टक एक लगावै ।
नीर झड़ै पल थीर रहै, रग बैगनी ते चिनगी झड़ि आवै ।
लड़ मोतिन के अनहोनी झड़े, खद्योत समान सखे चमकावै ।
बिजुली चमके लखु चाहु दिशा, दमके जस दामिनि शब्द सुनावै ।
ज्योति मसाल समान बरे, अरु मोर के पंख अहि एक आवै ।
वामाङ्ग शशि रवि दक्षिण भाग, योगेश्वर बिम्ब उदय दरसावै ।

—स्व० गी०, प० ७४

ज्योति दीपक टेम सम, भृकुटी मध्य दरसाये ।
दरस निरंजन हेतु तव, खेचरी बन्ध्य लगाये ॥

—स्व० गी०, दोहा ५८

दोउ कर्ण के छिद्र अंगुष्ट सो रोकिके, तर्जनि ते दोउ नेत्र दबावे ।
मध्यमा दोउ बन्द करे निज घ्राण, अनामिका ओष्ट के उर्द्ध जतावे ।
नीचली ओष्ट के कनिष्ट दबा, स्वर दक्षिण रोक के वाम चढ़ावे ।
उलटि निज नयन लखे त्रिकुटी सो, योगेश्वर कुम्भक को ठहरावे ।

—स्व० गी०, प० ७५

एक निर्गुण राग नवीन सुनाइ के, योग क्रिया गृहि साधहुं जाई ।
तोहि जानि के नीच न शिष्य किये, तेहि जाइ सखे निज शिष्य बनाई ।
बहु शिष्य करो निज ध्यान प्रकाशि के, मोरु निशा तेहिं देहुँ बताई ।
योगेश्वर देश में ज्ञान विराग, योग सिखाबहु शिष्य चेताई ॥

—स्व० गी०, प० ८६

कर जोरि कहैं सुनिये मम नाथ, न जानत निर्गुण राग नई ।
और कवि जो बखानि गये, कछु गावत ना नई शक्ति भई ॥

—स्व० गी०, प० ८७

बिनु दह पुरइन पत्र पसरे, फूल मूल बिनु फूलहीं ।
बिनु वारि लहर तिबेंनी उठत, अर्द्ध उर्द्ध न सूझहीं ॥
कमल बास सुगन्ध चहुँ दिशि, भवर तहवाँ गुंजहीं ।
निरखी तहाँ मान सरवर, हंस मोती चुंगहीं ॥

इस प्रकार कहा जा सकता है कि दरिया साहेब (बिहार वाले) स्वर्गनरक की कल्पना इस लोक में ही करते हैं। तथा इनसे युक्त दशा को नरक कहते हैं।

दरिया साहेब (बिहार वाले) के अनुसार-

सब्द एक मैं कहौं बुझाई, जो तुम पंडत बूझहु आई।
मूल बिहंगम डोरी भाई, रवि ससिस पवन सो सुन्न समाई।
सतगुरु सब्द जबहिं लखि आवै, मूल फूल अमृत मुख पावै।
होइ निरति तब सुरति देखावै, सार सब्द तब परगट पावै।

37. कबीर वचनावली, 127/387, अयोध्या सिंह उपाध्याय, हरिऔध
38. संत साहित्य, डॉ. राधेश्याम दुबे, पृ.183

गगन मंडल बिच सुरति संवारी, इंगला-पिंगला-सुखमन नारी।
साधहु सब्द जिवन जग मुकुता, पाप पुन्न कबाहीं नहि भुगुता।
ऐसी जुगति जो जानै कोई, कह दरिया निजु जोगी सोई।

दरिया साहेब ने भी सुरति की महत्ता को स्वीकार किया है। उनके मंतानुसार बिना सुरति योग के योग की कोई भी उपलब्धि नहीं हो सकती। 'सुरति' के ही कारण 'निरति' 'सहस्रार चक्र' के बीच 'सुरति' ही ले जाती है और 'सुरति' ही 'इंगला-पिंगला और सुखमन' नाड़ियों का सम्मिलन करती है जिसके कारण योग की अन्य उपलब्धियाँ सम्भव होती है। उनका कहना है कि योग की इस पद्धति को जो जानता है वास्तव में वही योगी कहलाने का अधिकारी है। दरिया साहेब के दरिया सागर में 'सुरति' के महत्व के अनेक उदाहरण है किन्तु उन सब में प्रायः एक ही प्रकार की बात कही गयी है इसलिए उनके उदाहरण नहीं कहे जा सकते हैं।

दरिया साहेब (बिहार वाले) के अनुसार, दरिया साहेब (बिहार वाले) ने भी 'कामिनी-कनक' जो साधना का सबसे बड़ा अंतराय स्वीकार किया है-

'ए दुइ चक्र भरमते लोका-कामिनि कनक महा बड़ सोका।
उभय त्याग समरथ है दूजा, तको चरन कमल का पूजा।
तेजि कंदर्प कामिनि नहिं साथा, सुमिरि नाम निजु हो हि सनाथा।

संत दरिया साहेब के अनुसार सारा जगत 'कामिनि-कंचन' के अन्तर्गत भ्रमित हो

कसने लगता है । इसी को कहते हैं कि नाद बिन्दु में समा गया है और अनाहत नाद की तुरही बजने लगी है।[1] चन्द्र और सूर्य के योग से जब उन्मना अवस्था आती है तब ब्रह्मरन्ध्र में अमृत का स्राव होने लगता है । उसका सूक्ष्म शब्द स्थूल रूप में परिणित होकर रजोगुण का कारण बन जाता है । मूल की ओर सरकता हुआ बिन्दु ऊर्ध्वगामी हो जाता है । यही अमृत्व की ओर जीव का अग्रसर होना है । क्योंकि जीव के ऊपर से काल का प्रभाव लगभग क्षीण हो जाता है।[2] है । अर्थात् - सर्वप्रथम सुषुम्ना नाड़ी में नाद की झनक सुनाई पड़ती है । उष्ण-पिंगला नाड़ी में पवन का संचार होने लगता है एवं शीतल इड़ा नाड़ी में पवन (वीर्य) का निवास रहता है।[3] सूर्य नाड़ी में उष्ण वातावरण के कारण पवन का वेग बहुत तीव्र होता है लेकिन जब इड़ा (चन्द्र) नाड़ी में इसका प्रवेश होता है तो वह स्थिर हो जाता है । जब श्वास बाहर निकलती है तो सूर्य नाड़ी चलती है तथा जब शरीर के भी भीतर प्रविष्ट होती है तो चन्द्र नाड़ी चलती है । लेकिन योगी इन दोनों को छोड़कर तीसरी सुषुम्ना नाड़ी में शरण लेता है।[4]

सिद्धों, तान्त्रिकों तथा कापालिकों के जितने योगी प्रयोगों में कितनी ही नवीनता, एकरूपता तथा मौलिकता क्यों न रही हो- कालान्तर में रूढ़ियों एवं आडम्बरों के कारण वह योग केवल साधारण जनता के लिये तिरस्कार का विषय बनकर रह गया । इन सिद्धियों एवं मंत्रों-तंत्रों में इतना आकर्षण एवं आश्चर्य था कि साधारण अशिक्षित जनता स्वतः इसका शिकार

---

[1] डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल (सम्पादित), गोरखबानी, पद संख्या- ५७ ।

[2] वही, पद संख्या-२२ ।

[3] वही, पद संख्या-५६ ।

[4] वही, पद संख्या-७० ।

05:24
2015.400637.Bharatiya...

का वृत्ति रहित होना राजयोग है :—

83/131

यच्चित्तसत्तातलय: स लय: प्रदिष्ट: ।
यस्तु प्रभञ्जनविधानरतो हठस्थ: ।।
यो मंत्रमूर्तिवशग: स तु मंत्रयोग: ।
यश्चित्तवृत्तिरहित: स तु राजयोग: ।।[1]

'योगवीज' में चार प्रकार का योग वर्णित है । मंत्रयोग' का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'प्राणवायु हकार से वाहर जाता है एवं सकार से भीतर प्रवेश करता है । हंस-हंस इस अजपागायत्री मंत्र का सर्वजीव सर्वदा जप करते है । गुरुवाक्य से सुषुम्ना में सोऽहम् सोऽहम्, इस प्रकार हंसमन्त्र का विपरीत जप होता है । इसको मंत्रयोग कहते हैं :—

हकारेण वहिर्याति सकारेण विशेन्मरुत् ।
हंस हंसेति मन्त्रों यं सर्वजीवा जपन्ति तम् ।।
गुरु वाक्यात्सुषुम्णायां विपरीतो भवेज्जप: ।
सोऽहं सोऽहमिति प्राप्तो मन्त्र योग: स उच्यते ।।[2]

हठयोग का वर्णन करते हुए कहा गया है कि पश्चिम मार्ग (सुषुम्ना-ब्रह्मरन्ध्र) में वायुयोग (वायुगमन) से इसकी प्रतीति होती है, हकार से सूर्य (पिंगला) तथा ठकार से चन्द्र (इडा) कहा जाता है । सूर्य चन्द्र योग से हठयोग होता है :—

प्रतीतिर्वायुयोगाच्च, जायते पश्चिमे पथि ।
हकारेण तु सूर्योऽसौ, ठकारेणेन्द्र उच्यते ।।
सूर्याचन्द्रमसो र्योगाद् हठयोगोऽभिधीयते ।[3]

लययोग का अभिप्राय व्यक्त करते हुये कहा गया है कि जड़ता के नष्ट होने से क्षेत्रज्ञ (जीव) और परमात्मा का ऐक्य होता है । जीव और शिव की एकता

१—अमरौघ प्रवोध, श्लोक ४ ।
२—योग वीज, श्लोक १४६-१४७ ।
३— [illegible] १४८—१४९ ।

होने पर चित्त विलीन हो जाता है । इस प्रकार लय योग के उदय होने पर पवन स्थिर हो जाता है, और लय से स्वात्मानन्द परमपदरूप सौख्य प्राप्त होता है:—

क्षेत्रज्ञपरमात्मानौ, तयोरैक्यं यथा भवेत ।
तदैक्ये साधिते देवि ? चित्तं यामि विलीनताम् ।।
पवन: स्थैर्यमायाति लययोगोदये सति ।
लयात्सम्प्राप्यते सौख्यं स्वात्मानन्दपरम्पदम् ।।[1]

लगता है और सुखरूपी अमृत का आस्वादन होता है।[158] मानसरोदै नामक ग्रंथ में इड़ा, पिंगला आदि तीनों स्वरों पर आधृत एक विस्तृत प्रक्रिया विज्ञान का विवरण है, जिसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि स्वर की सिद्धि और ठीक-ठीक पहचान से संतजन सब तरह की भविष्यवाणी करने में समर्थ होते है। योगी के लिए मरने के बाद मोक्ष की प्राप्ति हो यह बात नहीं है। उसे तो इसी जीवन में सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा मुक्ति मिल सकती है।[159] सुषुम्णा मूलाधार में नाड़ियों के केन्द्र से प्रारम्भ होकर मेरूदंड के बीच चलती है और सभी चक्रों का भेदन करते हुए नासिका के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है। यहाँ सर्पिणी के आकार की कुंडलिनी मूलाधार स्थित नाड़ियों के 'केन्द्र' को पूर्णतया ढँक कर सोई रहती है, और सुषुम्णा के निचले छिद्र में अपनी पूँछ प्रविष्ट किये रहती है जिससे सुषुम्णा का निचला भाग भी सर्वथा अवरूद्ध रहता है। ऐसा केवल सुषुम्णा द्वारा ही संभव है। क्योंकि यही एक नाड़ी है जो एक साथ ही दोनों नासापुटों में अपना मुख खोले रहती है। सामान्यतः इड़ा या पिंगला इसके मुख को रूद्ध रखकर बायीं या दायीं ओर प्राणधारा प्रवाहित करती रहती है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा को अन्य शब्दों में गंगा, यमुना और सरस्वती भी कहते हैं। ये नदियाँ जल की धारा की वाहक है इसीसे इनकी तुलना इन नाड़ियों से की गई है जो प्राणवायु की धारा का संचार करती है। इसी तुलना के आधार पर इन नाड़ियों के संगमस्थान को त्रिवेणी कहते हैं। यौगिक क्रियाओं में योगी का आत्मा इसी त्रिवेणी में स्नान करता है। इस त्रिवेणी घाट का दूसरा नाम त्रिकुटी भी है।[160]

(ग) महर्षि पतंजलि के समय से ही योग के सिद्धि के आसनों की अनिवार्यता मानी

158. संत मत का सरभंग संप्रदाय, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 71

159. रामगीता, किनाराम, पृ. 13 पद-34

160. संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 95

स्वरूप एक सोई हुई सर्पिणी के समान है। यह जगत् की सृजन-शक्ति का प्रतीक है। इसको वश में कर लेने से अविद्या (अज्ञान) का नाश हो जाता है।

(ख) मूलाधार चक्र में एक केन्द्र है। उससे 42000 नाड़ियाँ निकलती है इनकी भाखा प्रशाखाओं को मिलाकर कुल संख्या 3,50,000 है। इनमें उन पर नियंत्रण से सर्वप्रधान तीन है-

(अ) इड़ा (इंगला)

(आ) पिंगला और

(इ) सुषुम्णा (सुखमना)[156]

(अ) किनाराम कहते हैं कि इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा की शुद्धि करनी चाहिए तथा उन्मुनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। योगेश्वराचार्य कहते हैं कि इड़ा और पिंगला का शोधन करके सुषुम्णा की 'डगर' पकड़ी चाहिए तथा 'पाँच' को मारकर, 'पचीस' को वश में कर 'नौ' की नारी को जीत लेना चाहिए। मिनकराम भी कहते है कि इड़ा, पिंगला नाम की दो नदियाँ बहती हैं 'जिसमें सुन्दर जल की धारा प्रवाहित है।'[157]

टेकमनराम भी 'इगला' और 'पिंगला' के शोधन तथा 'त्रिवेणी-संगम' के स्नान का निर्देश देते हैं। रामस्वरूप दास भी इन तीनों नाड़ियों की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि इसके अभ्यास से मन के 'बैठने' में देरी नहीं लगती। इड़ादि तीनों नाड़ियों के संगम स्थल को 'त्रिकुटी' या त्रिवेणी कहते हैं, जिसकी चर्चासंतों ने बार-बार की है। अघोरम के मुख्य प्रवर्तक किनाराम लिखते हैं कि इड़ा, चन्द्रमा में और पिंगला सूर्य के ग्रह में निवास करते हैं और सुषुम्णा दोनों के मध्य में जब चन्द्र और सूर्य का सहज और समान रूप से उदय हो जाता है तो शून्य में शब्दका प्रकाश होता है, मन में 'अजर' झरने

156. एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 95

157. संतमत का सरभंग सप्रंदाय, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 71

स्थानों पर हठयोग की साधना का निरूपण किया है और हठयोग की साधना को अँगीकार किया हैं।[143] हठयोग में 'ह' का अर्थ है सूर्य और 'ठ' का चन्द्र दोनों के योग को हठयोग कहते हैं। सूर्य और चन्द्र प्रतीकात्मक शब्द है शरीर में बाई ओर की नाड़ी को 'इड़ा' कहते हैं यही चन्द्र है, और दाहिनी ओर को नाड़ी को 'पिंगला' कहते हैं यही सूर्य है, इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी है। जब योगी प्राणायाम के द्वार इड़ा-पिंगला को बंद करता है तब सुषुम्ना का द्वार खुलता है, योगी का लक्ष्य कुंडलिनी को जाग्रत करके इसी सुषुम्ना मार्ग से ऊपर ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचना है। जब कुंडलिनी षट्चक्रों का बेधन करती हुई सातवें चक्र (शून्य चक्र) में पहुँचती है।[144]

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए योग साधना आवश्यक है।[145] दरिया साहेब के अनुसार सभी यौगिक क्रियाएँ योग के दो मुख्य प्रकारों में अन्तर्निविष्ट हैं-

(1) पिपीलक योग और (2) विहंगम योग।

पिपीलक योग या हठयोग एक ही है।[147] इसको दरिया साहेब कहीं-कहीं कर्मयोग[148] भी कहते हैं नाथपंथ की साधना पद्धति का नाम हठयोग है।[149] दरिया साहेब के साहित्य में नाम स्मरण, सुरति-शब्द योग के साथ कुंडलिनी योग अथवा लययोग अनेक स्थानों पर पायी जाती है ये सारी हठयोग की क्रियाएँ है- नाथ-पंथ की अमिट छाप। 'हठयोग के प्रसिद्ध ग्रंथ 'हठयोग-प्रदीपका' के अनुसार 'ह' का चन्द्र और 'ठ' का अर्थ सूर्य है

143. संत काव्य परंपरा और दरिया साहेब की सामाजिक चेतना, रामदुलारदास, पृ. 42
144. हिंदी संतकाव्य : समाजशास्त्रीय अध्ययन, डॉ. वासुदेव सिंह, पृ. 138
145. दरिया ग्रंथावली, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 18
146 दरिया एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 94
147. कबीर के रहस्यवाद नामक पुस्तक में हठयोग शीर्षक परिच्छेद में, डॉ. रामकुमार वर्मा।
148. ज्ञानदीपक 14.1, दरिया एक अनुशीलन में, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री।
149. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 45

18:55

पाँचवी का भी वर्णन भी है। वे मुद्राएँ निम्नलिखित हैं-

(1) खेचरी

167. संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 99

(2) भोचरी

(3) अगोचरी

(4) चंचरी और

(5) उन्मुनी जिसे महामुद्रा भी कहा गया है।

मेरे अनुमान में भोचरी, अगोचरी और चंचरी के साथ जिस खेचरी का व्यवहार दरिया साहेब ने किया है, यदि इन चारों शब्दों को शुद्धरूप में पढ़ा जाय तो ये खेचरी भूचरी अग्निचरी और जलचरी यथा- आकाशी, पार्थिवी, आग्नेयी और आंभरी के ही दूसरे नाम जान पड़ते हैं। इनकी साधना करने पर योगी सुगमतापूर्वक वायु, स्थल, अग्नि और जल में अनवरूद्ध गति की क्षमता प्राप्त कर लेता है। पाँचवी मुद्रा 'वायवी' को प्रायः इसलिए छोड़ दिया गया है कि इसका समावेश आकाशी में हो जाता है, क्योंकि आकाश में विचरण करने का मतलब वायु में भी विचरण करना होता है। जिसमें पाँच मुद्राओं की व्याख्या अग्नि, वायु, जल, चंद्र और सूर्य के रूप में की गई है। दरिया पंथी साधु रामव्रतदास ने मुझे बताया कि खेचरी, भोचरी, अगोचरी और चंचरी का अर्थ- आँख, नाक, कान और मुँह है जिसकी साधना करना सभी यौगिक क्रियाओं का लक्ष्य है।[168]

(च) षट्चक्र- ये चक्र कमल के आकार के हैं और इनका स्थान मेरूदंड के मिलन बिंदुओं पर है। इन चक्रों के ऊपर की ओर जाने की विभिन्न गति की उपमा उलटे हुए

(4) शांभवी मुद्रा- 'दृष्टि को भ्रू-मध्य में स्थिर करके स्वयंभू का दर्शन करो। यही शांभवी मुद्रा है।'

(5) खेचरी मुद्रा- 'ख का अर्थ है आकाश और चर माने चलना। योगी प्रकाश में विचरण करता है।उसकी जिह्वा और मन भी आकाश में विचरते हैं। अतः इसे खेचरी मुद्रा कहते हैं।'

यह मुद्रा वही व्यक्ति कर सकता है, जिसने किसी गुरू की दीक्षा में रहकर प्रारंभिक क्रियाओं का पूर्ण अभ्यास किया हो। गुरू को स्वयं भी इसके अभ्यास में दक्ष होना चाहिए। इस क्रिया के प्रारम्भ में जिह्वा को अभ्यास द्वारा इतनी बड़ी बना देना पड़ता है, जिससे जिह्वा मध्य को छू दे। प्रत्येक सप्ताह थोड़ा-थोड़ा करके गुरू जीभ की बिचली स्नायु को साफ छूरी से काट देते हैं जिससे कटी हुई स्नायु जुट न जाय। जिह्वा में ताजा मक्खन रगड़कर उसे बाहर खींचो। जीभ को उँगलियों से पकड़ा लो और उसे बाहर भीतर करो। जिस प्रकार ग्वाला गाय को दूहते समय उसके स्तनों को ऊपर नीचे खींचता है, उसी प्रकार इस जिह्वा-दोहन से जीभ पर अधिकार होता है।[167]

(6) अखिनी मुद्रा- 'गुदामार्ग को भीतर बाहर सिकुड़ाओं और ढीला करो। उसे करते रहो। इससे कुण्डलिनी जाग्रत होती है। इसे ही अश्वनी मुद्रा कहते हैं।'

(7) योनि मुद्रा- 'सिद्धासन में बैठो। दोनों अँगूठों से कान, कनिष्ठा उँगुलियों से आँखें और अनामिका से ऊपर होठ बंद कर दो। जप करने की यह सुन्दर मुद्रा है।'

दरिया सहेब के लेखों में प्रायः केवल चार मुद्राओं का ही प्रसंग आता है पर एक पाँचवी का भी वर्णन भी है। वे मुद्राएँ निम्नलिखित हैं-

(1) खेचरी

---

167. संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 99

18:54
05-chapter-3
76/91

कुंभक विधि' के नाम से पुकारते हैं। वाम नासिका से धीरे-धीरे साँस खींचों और खींचने के समय सोलह बार मंत्र का जाप करो तब साँस को उतनी देर रोक रखो जितनी देर में मंत्र का जप चौसठ बार पूरा हो और दक्षिण नासिका से धीरे-धीरे उतनी देर में साँस छोड़ो जितनी देर में मंत्र का जप बत्तीस बार कर सको। मंत्र का जप करते हुए पुनः इसी विधि से दुहराओ, पर इस बार दक्षिण नासिका से साँस खींचो और वाम नासिका से छोड़ दो।

प्राणायाम साधन करने का प्रधान उद्देश्य अपानवायु को आज्ञाचक्र में स्थिर कर देना, जहाँ उसका स्वरूप बदलकर प्राणवायु या जीवन शक्ति बन जाय। मुद्रा आसन या प्राणायाम की मिली-जुली यौगिक क्रियाओं को मुद्रा कहते हैं। निम्नलिखित सात मुद्राएँ साधु प्रभुदास आवश्यक बताते हैं।

(1) मुलबध- 'योनि को बाईं एड़ी से दबाओ और गुदामार्ग को सिकुड़ा लो। क्रमशः अभ्यास द्वारा अपान वायु को बलात् ऊपर खींचो। दाहिनी एड़ी जननेन्द्रिय पर रखे हो।'

(2) जलन्धर बंध- 'गला को सिकुड़ा दो, चिबुक को दृढ़तापूर्वक छाती पर दबाओ। इस बंध का अभ्यास पूरक (साँस खीचने) के अंत में और कुंभक (साँस रोकने) के आरंभ में किया जाता है।'[166]

(3) उड्डियान बन्ध- 'बलपूर्वक साँस बाहर फेंक कर फेफड़ों को खालीकर दो-अब अँतड़ियों को सिकुड़ा कर नाभिसहित पीठ और पेट को एक में सटा दो। उड्‌डयान का अभ्यास कुमक के अंत और रेचक के प्रारम्भ में करना चाहिए। इस बंध को करते समय उदर को वक्षस्थल से अलग करने वाली पेशी उभर आती है और उदर की भित्ति पीछे को खींच जाती है। अतः इस बंध को करते समय शरीर (धड़) को आगे झुका दो।'

---

166. संत दरिया : एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 98

20:04

Description

Madhya Pradesh Ken Betawa: इस सरकारी प्रोजेक्ट का क्यों हो रहा है विरोध- ग्राउंड रिपोर्ट (BBC Hindi)

N/A	150,573	11h
Likes	Views	Ago

मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से करीब 370 किलोमीटर दूर छत्तरपुर ज़िले के धौड़न गांव का अस्तित्व अब ख़त्म होने वाला है. यहां के लोगों ने बताया कि वो किन दिक्कतों से जूझ रहे हैं. गांव की रहने वाली लक्ष्मी आदिवासी बताती हैं कि उनके पैदा होने से पहले ही गांव में बिजली नहीं है. वो कहती हैं कि गांव में अस्पताल तक नहीं हैं. केन-बेतवा अब केवल नदी नहीं, बल्कि नदियों को जोड़ने की विकास परियोजना है, और धौड़न गांव इस केन-बेतवा रिवर लिंकिंग प्रोजेक्ट का केंद्र है. लोग इस परियोजना को लेकर विरोध भी जता रहे हैं. इससे करीब 21 गांव डूब जाएंगे. हालांकि सरकार के अलग दावे हैं. देखिए विष्णुकांत तिवारी की ये ग्राउंड रिपोर्ट.

एडिटिंग: अल्ताफ़

- ऐसे ही और वीडियो देखने के लिए चैनल सब्सक्राइब ज़रूर करें- / @bbchindi

- बीबीसी हिंदी से आप इन सोशल मीडिया चैनल्स पर भी जुड़ सकते हैं-

फ़ेसबुक- / bbcnewshindi
ट्विटर- / bbchindi

22:13

2015.400637.Bharatiya...

8/131

४—छान्दोग्योपनिषद् १।११।५, [illegible]।३।४, ५।१९।१४, ७।१५।१, एवं
—श्वेताश्वतरोपनिषद्, १।४।५।

ही विशेष रूप से [illegible] होता है।[1] कठोपनिषद् में तो इस सम्बन्ध [illegible] प्राण एवं [illegible] वायु का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसमें मन्त्रकार ने कहा है कि [illegible] प्राण को ऊपर भेजता है एवं अपान को नीचे फेंकता है, उस मध्य में रहने वाले वामन को विश्वदेव भजते हैं।[2] योग के साम्प्रदायिक ग्रन्थों में प्राण एवं अपान वायु का बड़ा महत्व माना गया है क्योंकि इनके समीकरण से प्राण वायु ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना में प्रवेश करता है जिससे ब्रह्मानुभूति होती है। श्वेताश्वतर में भी प्राणायाम, प्राणवायु एवं मन निग्रह की चर्चा करते हुए कहा गया है कि प्राणों का आयाम करके बड़ी तत्परता से साथ शुद्ध (क्षीण) प्राणवायु हो जाने पर नासिका से उच्छ्वास ले! जैसे सारथी दुष्ट घोड़ों की लगाम को खेंचकर उनका नियन्त्रण करता है, उसी प्रकार [illegible] को अप्रमत्त होकर मन का निग्रह करना चाहिए।[3] वस्तुतः प्राणायाम द्वारा प्राणवायु [illegible] करना योग का समादृत सिद्धान्त है। इसी का प्रतिपादन उपनिषदों में किया गया है।

योग में नाड़ी संस्थान का बड़ा महत्व है। उपनिषदों में भी नाड़ी विज्ञान की चर्चा है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि इस हृदय की एक सौ एक नाड़ियाँ हैं, उनमें से एक मूर्धा को भेदकर बाहर निकली हुई है। उसके द्वारा ऊर्ध्व गमन करने वाला पुरुष अमरत्व को प्राप्त होता है। शेष विभिन्न गतियुक्त नाड़ियाँ उत्क्रमण (प्राणोत्सर्ग) की हेतु होती हैं।[4] इससे ज्ञात होता है कि उपनिषदों में नाड़ियों की संख्या एक सौ एक मानी गई है। इसमें से एक नाड़ी मस्तक को भेद कर निकल गई है। यह नाड़ी सुषुम्ना है जिसे योग के ग्रन्थों में

१—प्राणैश्चितं सर्वमोतं प्रजानां
यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥
—मुंडकोपनिषद्, ३।१।९।

२—ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते ॥
—कठोपनिषद्, २।२।३।

३—श्वेताश्वतरोपनिषद्, २।९।

४—शतं चैका च हृदयस्यनाड्य
स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्न मृतत्वमेति
विष्वङ्ङ्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥
—कठोपनिषद्, २।३।१९।

तत्वों का अभ्यास करने के उपदेश की सार्थकता समझ लेगें, क्योंकि चक्र और कमल मिलकर चौदह होते हैं। कभी-कभी इन चतुर्दश तत्वों को चतुर्दश मंत्र कहा गया है जो यम के चंगुल से मुक्त रखते हैं। इन्हें कहीं-कहीं यम की 'चौदह चौकी' भी कहा गया है। यदि जीव इन्हें पार कर जाता है तो यम की पहुँच से बाहर निकल जाता है। 'चौदह' की संख्या, 'नवद्वार' और 'पंचतत्व' का सम्मिलित योग की संकलित करती है। इन नवद्वारों और पंचतत्वों पर अधिकार प्राप्त करना योगी के लिए अनिवार्य है।[176]

1. सुरति - योगी की उस असाधारण दृष्टि क्षमता को कहते हैं, जिसके द्वारा वह अपार्थिव जगत् के आश्चर्यमय दृश्यों और शब्दों की साक्षात् अनुभूति प्राप्त करता है।[177] कबीरपंथी संतों की साधना पद्धति भी 'सुरत शब्द योग' की है। कबीर के ही समान लाला हरदेवदास ने भी कहा है कि जब 'सुरतशब्द' से संपृक्त हो जाती है तब जीव सुखसागर को प्राप्त हो जाता है-

सुरति निरत मन पवन का, करके एक मिलाप।
गगन मंडल में लाइले, जपिए अजपा जाप।।[178]

संतों के इस साधना को 'सुरत शब्द योग' कहा गया है। यह अजपाजाप है। यही विहंगम मार्ग है। इसी साधना के द्वारा योगी गगन मंडल से निरन्तर प्रस्तावित होने वाले 'अमृतरस' का पान करके अमर हो जाता है, कालातीत हो जाता है, दरिया साहेब कहते हैं-

ता त्रिकुटी महं रहा रमाई। तहवां काल सके नहिं जाई।
अजपा जाप सूर चंद ज्ञानी। दरिया गगन बरीसे पानी।
अमृत बूँद तहाँ झरि लावे। पीयत हंस अमर पद पावैं।[179]

176. संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 104
177. संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 106
178. हिंदी संत काव्य-समाजशास्त्रीय अध्ययन, डॉ. वासुदेव सिंह, पृ. 98
179. वहीं, पृ. 131। (दरिया सा. पृ. 23)

21:13
2015.481752.Sant-Kavi

गगन मंडल बिच सुरति संवारी, इंगला पिंगला सुखमन नारी।७०. ७
हठ निग्रह करि भूले जोगी, आसन बांधि पवन रस भोगी।७१. १०
तन साधत फिरि भये असाधी, पांच पचीस कहु कैसे बांधी।७१. ११
ज्यों मन देखै तत्व बिचारी, पांच बोधि तन सदा सुखारी।७२. ३
बांधे पचास साधि कै डोरी, हुकुम सदा राखै कर जोरी।७२. ४

एह मन काजी एह मन पाजी, एह मन करता एह दरवेस।
एह मन पांड़े एह मन पंडित, एह मन दुखिया करत नरेस॥७३. ०

छप लोक की अकथ कहानी, पावै अम्रित निरमल बानी।७३. ६
बिनु जल नदी रही बढ़ि आई, बिना नाव कर केवट खेवाई।७४. ८
बिनु अनहद धुनि बहुत सोहाई, अमिमंडल जहं पुरुष बनाई।७४. ९

सार पवन औ चौदह मंतर, लीजै ज्ञान बिचारि।
छय चक्र अठदल कंवल, कर्म काल सब जारि॥७७. ०

निरति सुरति में आवै जाई, आतें जोतिहि जोति समाई।७७. २
दुइ कर पवन सूर और चन्दा, चढ़ै गगन सब कर्म निकंदा।७७. ३
अभय नाम निजु आनै कोई, पीवै प्रेम सुधा रस सोई।७७. ४
इंगला पिंगला सुखमनि फेरै, लाय कपाट गगन गहि घेरै।७७. ५
छय चक्र निजु करै निमेरा, सो जोगी घर पहुँचु सबेरा।७७. ६
सत्त सब्द जौं करै बखाना, सेत धजा निसि दिन फहराना।७७. ७
आवै अनुभौ देखु बिचारी, आठ कंवल घर भीतर बारी।७७. ८
नवी नाटिका करहु निमेरा, पिवै प्रेम अस्थिर घर डेरा।७७. ९
दसवें द्वार रंध करु बंदा, जहां काम नित करै अनंदा।७७. १०
ग्यरहें ज्ञान छत्र सिर धरई, पुरुष होय जग में अवतरई।७७. ११
पढ़ि पाखंड पथल का पूजा, आतम देव अवर नहिं दूजा।७८. १०
हिंदु तुरुक इमि दुनों भुलाना, दुनों बादि ही बादि बिलाना।८३. १८
वो हारनी वो गाइहिं खाई, लोहू एक दुजा नहिं भाई।८३. १९

दरिया भगत कहावै सोई, जाके मनि उंजियार।
अवरि भरमि भठ भठ मुए, निर्भय नाहिं गंवार॥८५. ०

ना कछु बोले ना कछु खाई, कहु तेहि पूजे का मिले भाई।८६. ३
सबदै तारे सबद उबारे, सबदै चढ़ि छप लोक सिधारे।८६. ७
सबदै घोड़ा हंस असवारा, सबदै चाबुक ज्ञान करारा।८६. ८
सबदै पैठे मांझ मंझारा, सबदै पीयै प्रेम अधारा।८६. ९
सतगुरु जात पांति नहिं लीजै, जाति खोजै तेहि पातक दीजै।८७. १४
सुरति खोजै तब निरति समाई, पूरन ब्रह्म ज्ञान होइ जाई।८८. १२

पाएर दीप नारि ओइ रहही, मंगल चार अम्रित मुख लहही।८८. १३

अमरलोक महं पहुँचे दासा, देखहिं अबिगति अजब तमासा। १२.१६
गर्ब गुमान भुले सब ज्ञानी, विद्या वेद पढ़ि मरम न जानी। १२.२१
पानी पवनहु ते मन तेजा, जहाँ कहो तहवां मन भेजा। १२.२३
सो मन मिलेउ दरिया दासा, सबद देखि मिटि जम कै त्रासा। १२.२४

कोटि कंचन दान देइह, कोटिन्ह कथा पुराननं। १२.२७

आवें जाय मया कर चीन्हा, उपजै बिनसै तन होइ भीना। १३. ५
मन के पछ सब जगत भुलाना, मन चीन्है सो चतुर सुजाना। १४. ६

अठ दस कंवल भँवर तह गुंजै, देखहु सब्द बिचारि।
कह दरिया चित चेतहू, देहु भरम सब डारि॥ १५. ०

मूल सब्द धुनि होत अंजोरा, सुरति बांधि राखौ एक ठौरा। १५. १
सुरति डोरि चेतो चित लाई, मूल सब्द की यही उपाई। १५. २
सूर चंद एक घर आवे, तबही डोरी ले बिलमावे। १५. ३
ठीका आगे हैगा मूला, प्रेम सब्द जहवाँ अस्थूला। १६. ६
सेत धजा निस दिन फहराई, अम्रित झरि तहं बहुत सोहाई। १६.१०
हीरा मानिक है परगासा, संखन्हि मनी रचे चहुंपासा। १६.११
ऐसा है निजु लोक निवासा, झरै गुलाब पुहुप अम्रित बासा। १६.१२
अमी तत्त सुरती लव लावे, सहजहि लोक पयाना पावे। १६.१३
सत्त सब्द निजु प्रेम बढ़ावे, संत साधु का सेवा लावे। १६.१४
चोर साधु चीन्हे चित लाई, तेहि से प्रेम करो कछु भाई। १६.१५
गुंगा गहिरा ज्ञान विचारा, दिव्य द्रिस्टि का करु अनुसारा। १६.१६
सत्त. सब्द जिन्ह केवल जाना, अभय लोक सो संत समाना। १७.१६
जीया जंतु एक जिन जाना, एकै ब्रह्म सभन्हि पहचाना। १७.२२
निसु बासर जो ध्यान लगाई, सत्त नाम दूजा नहिं गाई। १७.२४

माया चेरि है बंस की, जो बूझै निजु सार।
ज्यों आवे त्यों खरचई, अदल चले संसार॥ २०. ०
मिटहि संसय सत सब्द से, जो गुरु मिलै करार।
सतगुरु बिना पार नहिं, भरमि रहा संसार॥ २२. ०

ऐसन गुरु जो मीलै आई, तब हंसा छप लोकहिं जाई। २२. ३
जाय छप लोक जहं पुरुष अमाना, अछै बिच्छ जहं सेत निसाना। २२. ४

हीरा एक त्रिकुटि महं होई, हीरा ध्यान धरहु नर लोई। २२. ६
ताला कुंजी गहि लागु केवारा, चोर न मुसै ज्ञान रखवारा। २२. ८

21:11

2015.481752.Sant-Kavi

दरिया-सागर

तीनि लोक के ऊपरे, (तहं) अभय लोक बिस्तार।
सत्त सुकित परवाना पावै, पहुँचै जाय करार ॥ २.०

क्रिपावंत किरपा जब कीन्हा, दयासिंधु सुखसागर दीन्हा। २.१
कोटि कामिनि चंवर ढारहिं कोटि किस्ना द्वारहीं॥ २.१३
कोटि ब्रह्मा बेद भनते अनंत बाजा बाजहीं। २.१४
जोति मंडल कोटि कलसा हीरन्ह की परगासहीं॥ २.१५
झलक झालरि लागु चहुँ ओर मोति मनि छबि छावहीं। २.१६

जम जालिम जग करे बिकारा, पाखंड धरम करे संसारा। ५. १
चौदह चौकी जम कै होई, बिनु सतगुरु नहि पहुंचै कोई। ५. ३
चौदह मंत्र भेद जो पावै, जाइ छप लोक बहुरि नहिं आवै। ५. ४
इगला पिंगला सुखमनि नारी, सार पवन तहं करे पुकारी। ५.१७
ओही पवन षट चक्रहि छेदा, होय गुरु ज्ञान बुझै यह भेदा। ५.१८
तह त्रिकुटी में रहा समाई, तहवां काल सकै नहिं जाई। ५.१९
कोटिन्ह तेज जोति परगासा, कोटिन्ह पंडित बेद निवासा। ६. ३
ज्ञान रतन की खानि, मनि मानिक दीपक बरै।
सब्द सजीवन जानि, अमर पुरी अम्रित पियै॥ ७. ०
अभय निसान धुनी तहं होई, अजर अमर पद पावै सोई। ८. २
पारस सब्द कहा समुझाई, सतगुरु मिलै तो देहि देखाई। ८. ८
चौदह मंत्र बान संधाना, मारहु जम के पद निर्बाना। ९. ८
कामिनि कनक फंद जम जाला, चौदह चीन्हि करम का काला। ९.१०
सतगुरु जानि के बंदहु पाँऊ, भरम त्यागि तब हिरदै लाँऊ॥ १०. १
तीन लोक जम दारुन अहई, चौथे लोक पुरुष वह रहई। १० ७
सत्तलोक सत्त का बंधा, बिनु सतगुरु जग जड़मति अंधा। १०.१०
जब पांजी पर पहुँचै जाई, मांगै मोहर देउ देखाई। ११. ८
अति आनंद सुख बरनि न जाई, अमरपुर अम्रित रस पाई। ११.१३
सत्त पुरुष सत लोकहि डेरा, काया कबीर करहिं जग फेरा। १२ ७
हरि भगतन भगताई कीन्हा, तिरगुन फंद तेहु नहिं चीन्हा। १२.१४

अमरलोक महं पहुँचै दासा, देखहिं अबिगति अजब तमासा। १२.१९
गर्ब गुमान भुले सब ज्ञानी, बिद्या बेद पढ़ि मरम न जानी। १२.२१
पानी पवनहुं ते मन तेजा, जहाँ कहो तहवां मन भेजा। १२.२३

21:19
2015.481752.Sant-Kavi
347/534

कहें दरिया दिल देखु बिचार दया तख्त अनमोल है रे ॥ २a. ६:
घरु घीर गंमीर अगम में गम जेंव फूल कमल ममर भूले।
दिबि द्रिस्टि में द्रिस्टि है पीठि पीछे नहिं चन्द चकोर कि प्रीति तुले।
ईंगल पींगल अकह अपार .दरस दीदम कपाट खुले।
ऐनक अएन थकित बएन गंवन गंगन उलटि मिले।
छूटी त्रीमिर ऊदित फीटिक रइनि बिहाए बासर पेले।
सब्द अडोल ना डोल डोले गैब का चान्द ना हिलमीले।
पारख फहम रहम करम जेंव देखि मवन चीराग जले।
कहें दरिया दरिआव अगम है मारि हेला कोइ संत खेले ॥ २a. ८
किश्न कांध बने मथुरा सहर में रंग मची चहु लागु झरी।
मुख तान के सुन बेवान लगा सोइ आइ खड़ी नहिं लाज डरी।
भूखन बसन अलक छूटा खलक देखे नहिं मुख फेरी।
कोकिल बयन नयन बिसाल येह काम के वान ते तानि मारी।
त्रिगुन लिला एह मोहि गया कोइ जोहि देखे यह ज्ञान करी।
माया के रंग अजब है रे जिव जाय पतंग दीपक जरी।
निर्गुन पुर्ख निर्बान सही आवे जावै नहिं देह घरी।
कहें दरिया सुमिरू वाही समुझि परी तब रहनि खरी ॥ २a. १०
जिन्हि कंस मारि निकन्द किया चहर बाजी सोइ जानिया रे।
जिन्हि तेग गहा कर आपु लिए कीतम सोई जग मानिया रे।
अनंत कला होए बुद्धि छरे जाहां जाय बरत को टारिया रे।
बावन हुआ बलि जांचबे को ताहां बांधि पताल में डारिया रे।
यह नाच नाचे बिन्दावन में सह संग लिये सखिअन्हि को रे।
एह तान करे कीतंम बाजी मोहन माला ग्रिव डारिया रे।
ब्रह्म ज्ञान बिना कछु ध्यान नहीं त्रिगुन नदी मों हारिया रे।
कहें दरिया करता करार वाहीं समुझि को पार है रे ॥ २a. ११
हरदम दारू हरदम दारू हरदम दारू हम जानिया रे।
एह तन कीजै इमामजिस्ता खमीर सभै करि डारिया रे।
सबुर लीजे साफा कीजै पीवै कोई दिलदार दा रे।
एह नूर जहूर काफा कतल एह दीद झलक मो आइया रे।
रोए चस्मे दिल ऐनक सारा महरंम हुआ सभ बात मेरे

21:16

2015.481752.Sant-Kavi

329/534

दलों में सुशोभित हैं। यंत्र इसका षट्कोण है। इसी पद्म में प्राण अनादि-कर्म अहंकार संयुक्त वासना से अलंकृत स्थित है। प्राण जब रुद्र रूप से हृदय में आकर बैठता है, तब मृत्यु होती है। सम्पूर्ण प्राणी के हृदय में नियन्ता रूप से, अर्थात् अन्तर्यामी रूप से सब का शासन करनेवाला होकर आत्मा स्थित है।

विशुद्धचक्र :—विशुद्धचक्र का स्थान मेरुमध्यस्थ कंठ देश में है। इसका देवता जीव, शक्ति प्राणशक्ति, वर्ण धूम्र, तत्त्व आकाशानिल, तत्त्वबीज हँ, यंत्र षट्कोण, दल षोडश हैं। अ, आ इ, ई, उ, ऊ, ऋ, लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अं अः ये सोलह वर्ण सोलह दलों में सुशोभित हैं।
पृ० २९--उदान वायु की स्थिति कंठ देश में है। रुद्र ग्रन्थि और इषान-लिंग इसी स्थान में है।

आज्ञाचक्र :—आज्ञाचक्र का स्थान भ्रूमध्य है। इसका देवता परमात्मा, शक्ति चिच्छक्ति, दल द्विदल, वर्ण श्वेत, दलों के बीच हँ-क्षँ, ध्यान फल आत्मज्ञान है। इस चक्र का नाम अग्निचक्र भी है।

इस चक्र में ध्यान करने की विधि यह है कि किसी अच्छी रमणीक बराबर जगह में, जहाँ पर कोई उपद्रव न हो, मुक्तासन से या जिस आसन से बैठने में आसानी होवे, बैठकर दोनों नेत्र को भ्रूस्थान में योगयुक्त होकर भिरावे। इसी ध्यान का नाम भ्रूध्यान भी है। यह ध्यान परमसिद्धि का दाता है। जो इसका ध्यान करते हैं, सर्व सुख को प्राप्त करते हैं, यक्ष और गन्धर्व आदि उनके वश में रहकर उनके चरणकमल की सेवा करते हैं। जो पुरुष मृत्यु के
पृ० ३०—समय इस चक्र का ध्यान करते हैं, वे परमात्मा में मिल जाते हैं।

इसी चक्र से होकर "त्रिवेणी घाट" में, जहाँ पर इड़ा, पिंगला और सुषमना का मेल है, जाया जाता है, फिर उर्ध्वगति बंकनाल द्वारा पिछवार में घुँघुकार मंडल होते हुए भंवरगुफा, जो सचखंड की दर्शनी डेवढ़ी है, में जाया जाता है। इस तरह पूर्व से अर्थात् आगे की तरफ से सुरति को पश्चिम अर्थात् पीछे की राह ऊपर को जाना होता है।

इस आज्ञाचक्र को भ्रूचक्र भी कहा जाता है। इस चक्र में गगन का ताला है। पिंड और ब्रह्मांड का जुटाव यहीं पर है। यह दशम द्वार है। यह दशम द्वारा ब्रह्माण्ड में है। नौ द्वारा पिण्ड में है। दो आँख, दो कान, दो नाक के छिद्र, मुँह, गुदा और लिंग ये नौ द्वार हैं।

पाएर दीप नारि ओइ रहही, मंगल चार अम्रित मुख लहही।८८. १३
छिटिकि सुगंध हंस मुख डारी, बोलहि मंगल बहुत सुढारी।८८. १४
सासतर गीता भागवत, पढ़ि पावै नहिं मूल।
निहचै लागै प्रेम जब, तब पावै अस्थूल॥९१. ०
बेदै अरुझि रहा संसारा, म्रितक अंध परलय तब डारा।९८ ३
तब नहि करता किरतम कीन्हा, तब नहिं निगम नेति अस चीन्हा।१०२. १
तब नहिं छीत न सेस महेसू, तब नहिं सुरसरि आदि गनेसू।१०२ २
तब नहिं दया धरम परसंगा, तब नहिं उतपति तब नहिं भंगा।१०२. ४
तब नहिं जज्ञ जोग नहिं जापा, तब नहिं मुक्ती तब नहिं पापा।१०२. ५
अब कछु उतपति करन चहे, चिंता चेतनि चीन्ह।
नारि पुरुष रस रंग में, एह कछु इच्छा कीन्ह।१०३. ०
मनसा रूप कामिनि जो कीन्हा, अष्टभुजी छबि छेकै लीन्हा।१०३. १
निगम चारि उतपति भयो, चतुरानन मुख बैन।
उचरेउ सब्द अनाहदा, झंझकार मद ऐन॥१०४. ०
सुनै स्रवन मुख अम्रित झामी, तीनि लोक महं अंतरजामी।१०५. ३
निर्गुन सर्गुन दुनहुं ते न्यारा, सत सरूप ओइ बिमल सुधारा।१०५ ८
करम जोग जम जीतै चहई, चढ़ि पिपीलका फिरि भव रहई।१०७. १
बीहंगम चढ़ि गयउ अकासा, बइठि गगन चढ़ि देखु तमासा।१०७ २
इंगला पिंगला सुखमनि घाटा, (तहं) बंकनाल रस पीवै बाटा।१०७. ५
संत रहनि भव बारिज बारी, सदा सुखी निरलेप बिचारी।१०८ ७
जलकुकुहीं जल माहिं जो रहई, पानी पर कबहीं नहिं लहई।१०८. ८.
दही मथे घ्रित बाहर आवै, फिरि के घ्रित नहिं उलटि समावै।१०८ ९
फुल बासे तिल भया फुलेला, बहुरि तील तेल नहिं मेला।१०८ १०
इमि कर संत असंत गुन कहई, भौ निकलंक नाम गुन गहई।१०८. ११
माया चीन्है संत है सोई, ज्ञान भगति का करै बिलोई।१०९. ४
क्रिस्न राम मनही को रंगा, मन ते उतपति मन ते भंगा।१११. १०
मनहीं चीन्हि परम पद पावै, मन तजि जोगी जग समुझावै।१११. ११
तन सरवर मन देखु बिचारी, तामें सलिता तीन सुधारी।११२. १
वा में मानसरोवर अहई, हंस बंस कौतुक तहं करई।११२. २
अदुइत ब्रह्म बिराग मत, ब्रह्म ज्ञान निर्लेप।
आपु चिन्हे औरै चिन्है, आतम दरसी देव॥११७. ०

21:22
2015.481752.Sant-Kavi
359/534

आंखि का मूंदना बक का काम है पौन का साधना मांड़ जाने।
छोड़ि के असल एह नकल प्रगट करे सोइ मरदूद नहिं कहा माने।
जम के हाथ जिव बेंचि खरच करे नहिं गुरु ज्ञान सतगुरु जाने।
कहे बेचुन चौगुन सांई मेरा सोइ जीव बांधि जबरील ताने।
बेद कितेब से फहम आगे करे जोग बिराग बिबेक काने।
कहें दरिया सत सब्द प्रचारि के सुमिरु सतनाम मैदान ठाने ॥ ३अ. ३८
घना मोती झरे जोति जगमग बरे घटा घन घेरि चहुं ओर फेरा।
बुन्द अखंड सुर चले ब्रह्मंड के काम की फौज सब घेरि टेरा।
त्रिबेनी मध्य तहां सुरति सनमुख कियो सुखमना घाट कहं द्रिस्टि हेरा।
पलक में झलक चहुं मंदिल छबि छाइया ब्रह्म पुनीत नहिं बहुरि फेरा।
भेद बंका बड़ा काल संका नहीं ज्ञान घर खुलित सब कर्म जेरा।
ध्यान लागा रहे गगन घन गरजिया कुमति कुबुधि होए रहत चेरा।
बैन बिचारि एह लगन लागा रहे मगन सभ दिन कियो गगन डेरा।
संत सुजान जिन्हि सब्द बिचारिया कहें दरिया सोइ दास मेरा ॥ ३अ. ४१
संत सिलाह संतोख साबूत तुम पहिरु सहिदान भरदान यारा।
अरध लै ढाल तुम काटु जम जाल तुम पकरु समसेर सनमुख प्यारा।
ज्ञान का घोड़ला तेज ताजन दिया चढ़ि मैदान नहिं टरत टारा।
तहां काम औ क्रोध के फौज सभ सोधि के पांच गहि चोर परचार मारा।
भया निहसंक एह चढ़ा गढ़ बंक ताहां रुंध औ धुंध भौ भर्म जारा।
ताहां गर्जि निसान अबिगति अमान अडोल अबोल पर धरनि धारा।
ताहां चौक है चान्दना मूल के साधना गगन में मगन है सब्द सारा।
कहें दरिया कोइ संत जन जौहरी ब्रह्म बिचारि के वार पारा ॥ ३अ. ४४
मूल जाने बिना सूल सागर परा हरे बुधि ज्ञान बलि करन चाहे।
बेद की उक्ति से जुक्ति दानी हुआ बांधि पताल मो दुख आहे।
हरि चंद में मंद नहिं फंद बाजी रचा जीव का दान तेहि काह दाहे।
नीच घर बेंचिया काम कैसा किया सच में बिपति एह तन डाहे।
ठग ठाकुर एह जमि जिव ठगिया मांगिया मुक्ति नर अजब आहे।
इन्द्रजाल का ख्याल एह पेखना पालिया डारिया जाल नर सांच काहे।
माया मन माचिया बांचिया कोइ नहिं तिर्गुन के धार में जान बाहे।
कहें दरिया दिल दागा तुम छोड़ि दे गहो सतनाम सरबंग साहे ॥ ३अ.४६

अगाम गर ज्ञान मे ब्रह्म पहचान ले बिना पहचान का कथे ज्ञानी।

21:20
2015.481752.Sant-Kavi

रहिमान रहिमान है रहम के नजर में देखि दरियाव दिल लहरि हेरा ॥ ३.२१
गिर्द है गिर्द है दरियाव दिल अंदरे यार के बदन पर वारि डारा।
फेर है फेर यह फहम फाजील हुआ रहमि के नजरि में निकट न्यारा।
कमल में कमल है भमर भूला रहे मालति मगन में डांक सारा।
पत्र में पत्र है पदुम झलकत रहै पलक दरियाव दिल जोति बारा ॥ ३.२३
बाग है बाग गुलजार संसार है अजब है गिर्द गुल अजब सानी।
बेजिनिसि बेजिनिसि एह जीम जाहिर भला भूलिया भौंर रस बिबिध बानी।
बोए है बोए ताफीक़ तमाज है फूलिया झिलमिल बिमल ज्ञानी।
कहैं दरिया गुन गुन खुसरंग है मस्त मन मगन दिल ऐन आनी ॥ ३.२६
जहां गगन झरि अगम तहां निगम नहिं नेम तहां प्रेम परगास निहतत्तु प्यारा।
तहां सब्द सतसार गुलजार गुल फूल मगु देखि मराल नीर छीर न्यारा।
तहां संत सुबुधि सरवर सारंग झरि झरत झरि बुंद एह नीर प्यारा।
जहां मूल प्रगास भौ अकह एह कमल तहां देखि दरिया कलि कर्म जारा ॥ ३.२७
रहम की करम में भरम के दाहि दे सर्ब सतनाम दिबि द्रिस्टि बाढ़े।
खुला दह कमल दल अस्ट बंक नाल की बाट सुघाट गहु गगन माढ़े।
सूर औ चन्द सब मूल में रमि रहा नूर परगास झरि रंग गाढ़े।
कहें दरिया निरपेच निरबान सर्बंग गहु ज्ञान सनमुख ठाढ़े ॥ ३.२८
प्रेम है प्रेम एह अम्र सो बासिया नभ्र मों निरति है देखि लीजे।
पीव है पीव पपीहरा इसिकदा छीर ज्यों सिंधु होय नाहिं पीजे।
चंद है चंद ज्यों मंद होए पर्द में केलि जल ऊपरे कला दीजे।
कहें दरिया जल रंग जो मीलिया बिलग नहिं होए जुग जुग जीजे। ३.२९
पांच है पांच पचीस प्रकीति है तीनि गुन देखि के द्रिस्टि रचा।
नव है नव यह नाटिका प्रगट है दसो दह द्वार जहां काम मचा।
अमी है अमी जहां प्रेम प्याला पीवै जलद में जन्तु है मध्य संचा।
कहें दरिया परिपंच फंदा रचा इसिक मासूक बिनु रहत कंचा। ३.३०
लहरि पर लहरि है सिंधु सलिता मिलि खलक सब ख्याल में बिखै रेखा।
कहर में कहर है पीर पंजा दिया फीरु बेफीरु तुम उलटि देखा।
फहम में फहम फिरंग फिरता रहै रंग में रंग बेजिनिस लेखा।
बैन में बैन है नैन जाको लागा देखि दरिया दिल दरस पेखा। ३.३१
जहां कमल प्रगास हंस करत बेलास सुखराज सब राज जग जोति जाना।

21:20
2015.481752.Sant-Kavi

करार कमान चढ़ी रहै वलि मस्त हुआ मैदान मेरै।
खाक सो बंदा पाक हुआ है काम किया सभ आपना रे।
कहैं दरिया दर्गाह दाखिल हका हका करता रहै रे॥ २a. १२
हर दंम में दंम लगाइ ले रे जहां दंम लगा तांहां गम पेखा।
अरध उरध के मूल में साधि ले होत झनकार सत सब्द रेखा।
जहां अस्ट दल कमल के खुले कपाट तहां सहस्र दल कमल में भ्रमर पेखा।
जहां सेत धरा चमकत छटा तहां सेत मोती अगम लेखा।
तहां चित्त चकोर चुंगन लागे गगन मगन चित चोभि राखा।
तहां बेद कितेब कि गंम नहीं निहतत्तु सब्द सरूप देखा।
सत्त सतनाम पहचानियै रे यह सत्त बिना सभ है धोखा।
कहैं दरिया कोइ संतजन जौहरि जिन्हि एह मन के तौलि राखा॥ २a. १३
खुद पाक अलाह को याद करो कोरान पढ़े इलम ईवै।
यह पंज निमाज है पंज वखत में चित्त के चोभ में बंग दीवै।
मनी मुर्दा रह रमतल खअरस के स्वाल में प्रेम पीवै। (?)
सराब कबाब फरमावता नहिं एह जीवता जानि जबह कीवै।
नबी रसूल नहिं चर्ब चखा एह सूफिशा रोटिया जीव जीवै।
जाकी खून है वाकी गर्दन दोजक जार मो जाए दीवै।
ऐसे जुलुमी के बहिस्त कैसे मिले एह जुलुमी जाय के फीट पीवै।
कहै दरिया साहब धनी नजर निगाह मो नेक लावै॥ २a. १५
सब्द की सांगि समसेर तुम पकरि ले सुरति नेजा निर्बान कीता।
रोप दुवो खम्भ घोरा झारि ले झपटि के प्रेम पाखर पहिराव दीता।
मढ़ी मैदान गंगन के बीच में चित चाबुक चटकाए लीता।
सूर के मुख पर नूर झमकि समसेर सनमुख ले वारि कीता।
वाह वाह धन धन जीवन सोई जिन्ह मुक्ति मैदान में जान दीता।
फकर फारिक फरामोस नहिं दीन में लीन दरबेस सभ काम कीता।
सोई बोली साहब का पास है रे जिन्हि अपना जान हजूर कीता।
वोई दिल खास इआर है रे कहैं दरिया पहचानि लीता॥ २a. १६
आजि नन्द के लाल है बाल सखा सभ काम कला एह रंग डारी।
बहर दरिया कहर के बीच आसिक नएन में लाज टारी।
कमला खड़ी सभ काम भरी कलोल कला गहि बांह धरी।

21:30
2015.481752.Sant-Kavi

जोग जागे काल भागे करम कलि कलेस छूटे जुक्ति जोगी जानि।
मेरुडंड के साधि साधे अरध लेके उरध बांधे जाप अजपा ठानि॥
उनमुनि मुंद्रा सून्य मेले पाप पुन ते न्यार खेले तेजि जम की खानि।
गगन गोफा मंदिल छावै त्रिकुटी के महल आवै सुरति सुखमनि जानि ले तू ब्रह्म के पहचानि॥
मोह त्रिस्ना काटि डारे सूर सनमुख तेग झारे नाम नर्मल निरखि के एह तेजु कुल की कानि।
सुंद्रे सेली संतोख झोरी कर कवंडल सीध पूरा बोलत अम्रित बानि॥
गहि ज्ञान डड नव खंड डोले अबोल भिक्षा सत्त बोले दरसदाया मानि।
कहें दरिया ऐसो जोग जागे जुक्ति जाने अचेत चेते समुझि बूझे आनि॥ ८.१

त्रिवेनी त्रिकुटी भंवर गोंफा में द्वादस उलटि चलावंता।
छव चक्र का (भेद) प्रगट है सुखमनि सुरति जगावंता॥
अस्टदल कंवल भंवर तेहि भीतर उनमुनि प्रेम लगावंता।
जगमग जोति झलामलि झलके गंगन मगन झरि झावंता॥
मोती मनि मुक्ताहल मधु में सेंधु लहरि तांहां आवंता।
हंसा चुगहिं चोंच मोती गहि सरवर में सुख पावंता॥
अटल धनी तांहां मनि उजिआरा निरभै पद के गावंता।
कहें दरिया सुख सागर बासा बहुरि ना भव जल आवंता॥ ८.२

निरगुन भेद लखे कोइ साधो सर्व संसे बिसरावें।
नेम धर्म खट कर्मा पूजा छुन में सभे दुरावें॥
इंगला पिंगला सूर चन्द्रमा मूल गगन में छावें।
देखि दरस मन मंगन हुआ बिनु दीपक जोति बरावें॥
जपि माला माली नांह डारे पल पल अमी दुहावें।
तें मैं जाति मेटि मन ममिता दोबिधा सकल बोहावें॥
गुर के बचन सिरताज न राखे राजित अनभौ गावें।
अनहद मुरली कीनर बाजे बेहद मता बतावें॥
अखंडित ब्रह्म पंडित सो ज्ञाता सोहंग सुरति समावें।
ज्ञान रतन लिए चलता फिरता अचल मुक्ति सो पावें॥
ज्ञानी ज्ञाता सतगुर खोजो निरखि निरंतर धावें।
कहें दरिया दधि मथे जो माखन बास सुबासित पावें॥ ८.३

धन सतगुर जिन्हि अलख लखाई।
सो मन मनसा ध्यान लगाई॥

संझा तरपन औ गाइत्री अजपा जपे मन लाई।
कपट कपाट खोलि नहिं पैठे आवागमन मेटाई॥
कहें दरिया सुनो भाइ पंडित बूझै बिरला कोई।
होए दास दासन्हि में आवै ब्रह्म पुनीतं सोई॥ ५. १६
चारि बेद बिचारु पंडित काया मद्धे सार।
पढ़ा सास्तर बेद महिमा भेद इन्हतें पार॥
चारि नारी षोडस दल है चक्र छवो निखेद।
पांच मुद्रा जुक्ति जानहिं जोगिया निजु भेद॥
महामुंद्रा सुंन में जाहां सुरति सुखमनि घाट।
सहस्र दल के खूलवे ताहां मुक्ति को निजु घाट॥
सेंधु सर्गं में जोति जगमग उदित मद्धे चंद।
कहें दरिया भेद एतना काल करम ना दंद॥ ५. २१
पंडित सर्बमयी भगवाना।
भगते भाव ना भग में जाते ऐसी सिफ्ति बखाना॥
पुरान अठारह पढ़ि के पंडित ब्याकरन की संधे।
आतमा राम दिवाकर जैसे ए भी है परबंधे॥
जीव कहो फिरि सीव सक्ति है एह द्रिस्टान्त सोहावन।
सबें मासु मीन के कहिए गीता कहे अपावन॥
सो तुम भोजन भाव से करते अति पुनीत परसीधं।
मति मराल की कागा कहिऐ महीं देखा है गीधं॥
मलेछ सोई जो मल के खावे सो मल कबहिं ना धोवं।
दीछा लेत मगन सब कोई दोनों घर के खोवं॥
दया नहीं तव धर्म कहां है किमि करि होंहि पुनीतं।
कहें दरिया जब बुद्धि भुलानी जाए पढ़ो तुम गीतं॥ ५. २५
पंडित पढ़ि गुन भए बिलाई।
जौं मजार चूहा के पावे पकरि तुरंतहि खाई॥
जब अज्या की मूड़ी आई लड़िकन धुंध मचाई।
तनिक तनिक लड़िकन कर दीन्हैं सर्ब सगोतां खाई॥
येह अचरज कहवे जोग नाहीं को ब्राह्मन को अहे कसाई।
दोबिधा करि करि दूनो मारहिं यह लहुरो वोह जेठे भाई॥

21:24
2015.481752.Sant-Kavi
366/534

ज्ञान ना गुरु गोपाल लाल भजु भरम बिकार तिरथ करि भूलेव।
चन्द मन्द सुर गरहन भासेव दिनमनि बिना कमल कहां फूलेव।
मुन्द्रा चारि चतुर दल तहंवां उनिमुनि गगन मगन नहिं मीलेव।
त्रिकुटि तीनि संगम जहां सलिता मिलेव ना प्रेम पर्बत धरि खीलेव।
सिखर सुखमना चढ़ेव मीन जहां मन फिरंग करि काल ना हीलेव।
कहें दरिया सभ भेख भक्ति करि सत्तपंथ बिनु डगमग ढीलेव ॥ ४.४
मन मस्त मगन जब चढ़ेव गगन तब ज्ञानहिं टारेव।
तब धरेव धर्म नहिं धीर सो फौज बिडारेव।
गहि संभरि तेग रबि ज्ञान मदन कहं मारेव।
तब धीरज धर्म दवरि के फौज हुंकारेव।
तब बाजेव नौबति नया निसान तबल झनकारेव।
तब भएवो अमल सब सहर बहर जाहां लगि झारेव।
कहें दरिया धन्य ज्ञानबान मन बाजी आपु संभारेव ॥ ४.१२
तब भएवो अमरपुर रांज जबहिं घट निर्मल बारेव।
घटा घनघोर अदोर भयो तब सो तंन तारेव।
गिरिवर पिहिकत मोर झींगुर झनकारेव।
चमकेव छुटा घटा तम तड़केव कड़केव बुन्द अखंडित झपटि मंडल ताहां झारेव।
डगमग भौ दल कंद्रप मोह मंदिल धरि फारेव।
तरिवर चढ़ेव बिहंगम गगन मगन जहां द्रिस्टि पसारेव।
उमगेव सलिता चले स्वर्ग कहं जाहां कमल को मूल सो भौंर गुंजारेव।
डाहं पात फूल फल फलेव जोति सभ न में बारेव।
कहें दरिया दल सत अंत जिन्हि मंत मगन होए पंथ सुधारेव ॥ ४.१३
कंदर्प काहि ना काबू कीन्ह जक्त में जला व्यापि तन मुनि मत रंजेव।
संकर सक्ति बिसारि तप साधे बाधे पवन नाम दल भंजेव।
जब लगेव पुहुपसर निपट निरंतर खुलि गौ नेत्र काम तन छीजेव।
सिंगी रिषी कुंज बन बैठे ऐंठि मेटेव गनिका प्रिय पगेव।
स्वारथ स्वाद जातु तन आपन मन के फन्द बिरला जन जगेव।
कहें दरिया जंग कनक कामिनी हाथ पसारि कहु कीन्ह नहिं मगेव ॥ ४.१४
सुरपुर नरपुर नागपुर फैला काम बांन सर संजेव।
सनकादि आदि औ [illegible] राम सम जल थल जीव काहि नहि भंजेव।

21:33
2015.481752.Sant-Kavi

सहस्त्र भगु इन्द्र के भएऊ जानत है सब कोई।
माया रंग रंगा सभन्हि के उजला मैला होई॥
इन्ह के तौं कमलापति कहिए वोए तो पति है सबका।
लाख चौकरी जुग एह बीता एह तो बेद है अबका॥
जाके रेष रूप उजिआरा बिना रूप भ्रम गावै।
कहें दरिया मन अनंत कला है भेद कोई जन पावै॥ ६.६

संतो लाल फूल बिसवासी।
सेमर सेइ सुगा पछताना सोइ तीरथ है कासी॥
जाके फन्द अनन्त बान है पाहन परसि उपासी।
उपर जोग भीतर दहु कैसा तपसी औ सन्यासी॥
मन नहिं हटके तन नहिं छुटके घट में सक्ति नेवासी।
टक टक मौनी महा सिद्ध है कठिन कर्म की फांसी॥
बनिता बनी बनारस की एह नैन बान सर गांसी।
भेख अलेख घायल सब घुरमहिं नैन लगी नौलासी॥
ऐसा बंहर कहर दरिया है कनहरि बिनु किमि जासी।
ममिता बेइलि लता लपटाना भटकि परे चौरासी॥
सर्बस हरहिं सोक नहि हरही प्रिहि तेजि होहिं उदासी।
कहें दरिया नहिं इत ते उत हैं आगिलि पाछिलि नासी॥ १०१

संतो एहुं अमर घर जैयै।
तन मन वारि चढ़ो सरधा से सो फल आश्रित पइयै॥
काम क्रोध लोभ मद त्रिस्ना एह सभ मेलि अडइयै।
नारी पुर्ख स्वाद बिसरावै सतगुर सब्द समइयै॥
बंकनाल उलटि अजपा के गगन गोफा घर छइयै।
अरध उरध मध्य सोहंग सुरती दीबि द्रिस्टि गहि लइयै॥
सेत घटा घन मोती झरि है निर्मल जोति बरइयै।
पूरन ब्रह्म पुनीत उदित भौ बहुरि ना भौ जल अइयै॥
तहां सुखराज बेलास पलंग पर आश्रित मासन पइयै।
कहें दरिया दाया सतगुर की पास पुर्ख के रहियै॥ १०२

संतो गर्ब करे सो झूठा।
सोना रूपा सहन भंडारा ले ना गए भरि मूठा॥

21:32
2015.481752.Sant-Kavi

हंस की गति निरमल दासा मान सरवर खानि।
चोंच खोलहिं आहां मुक्ता नीर छीरहि छानि॥
जुक्ति जाने मुक्ति सोई मुक्ति सादा साथ।
कहें दरिया दरस कीजे परखि हीरा हाथ॥ ८.१३
जोगी तौल तखनी पूर।
चारि मुंद्रा नीन्द चारो हरफ है ममूर॥
मेरु एके डंड एके खंभ दुइ है रूप।
अजपा में अजब देखो बइठु गोफा चूप॥
बाएं के तुम उलटि पेखो बीर बांके बांधु।
सपने नहिं बिन्द झरते नीन्द के तुम साधु॥
खाक ते एह पाक हूआं नूर झलके फूल।
फूल फूले भंवर भूले सब्द है समतूल॥
तेजि गोफा बाहर खेलो जैसे रन में सूर।
हद में बेहद देखो जहां बाजे तूर॥
नहिं वोह जोगी नहिं वोह भोगी भेख नहि भगवान।
कहें दरिया दरस देखो पुर्ख है अमान॥ ८.१४
जोगी मो से पूछहु भाई।
जो तोहरे घर ज्ञान नही है झूठे जोग कमाई॥
मन के उक्ति काम नहिं आवे उलटा पलटा जोरे।
बिनु कनहरियै नाव चलावे अवघट लेके बोरे॥
पांच तत्तु का भेद बतावों जल थल अगिनि आकासा।
कायापरचे सोधि देखावों तब तुम होइहो दासा॥
सुखमनि सांपिनि भेद बतावों कहों अर्मीका घाटा।
ऊपर मूल साखा है नीचे ताकर कहिं देउं बाटा॥
कहें दरिया एह जोग जुक्ति है सतगुर भेद बताया।
सूई अग्र द्वार जहंवां है तहंवां सुरति समाया॥ ८.१७
है कोइ जोगी एह मत पावै। प्रेम पिवे अलिमस्त कहावै।
मेरु मंडल आसन कहं साधे। पांच भुअंगम बिखिधर राधे॥
गगन मंडल मे आसिक यारा।
जोग न जाए तेरो जुक्ति पियारा॥

उलटा पवन चढ़ा ब्रह्मंडे अनहद धुनि सुनि मोहै ।
पांच पचीस मिलि गोहने लागे पाप जुदा भए रोहै ॥
उलटा बुंद चुवै अमी को हंसा जो मुख जोहै ।
मूल फूल सींचे नव नारी माली के घर सोहै ॥
तिल भर चौकी दाने दरवाजा चित्रगुप्त मो बोहै ।
कहैं दरिया प्रेम परगट देखै ऐसो पंडित को है ॥ ८७
जोगिया जो जुक्ति जानहि भजहि निर्मल ज्ञान ।
सुनत धुनि उनुमुनी पलटी बिमल ब्रह्म अमान ॥
जाप अजंपा जपहु प्रानी सुरति सुखमनि तान ।
इंगला पिंगला सुखमना सुधि रहत एक ठेकान ॥
बंक नाल है खोडस कमल ताहां भौंर बास समान ।
झलकत अमी ताहां जोति जगमग भौंर गोफा ध्यान ॥
झरत झरि तहां अगम निर्मल प्रेम पद निरबान ।
अरध उरध गगन गरजित बुंद सेंधु समान ॥
फूले फूल सुबास परिमल दीबि द्रिस्टि मकान ।
कहैं दरिया भेद सतगुर हंस पहुँचे अमान ॥ ८८
संतो सिफ्ति काहां तक कीजै ।
गुंगा होए गुंगा सो बूझै सोइ अमी रस पीजैं ॥
सोई चांद सुर्ज है अंमुज सोइ उनुमुनी फूला ।
सोई अजपा दरसन कहिए दरपन दरस है मूला ॥
सोई त्रिकुटी भंवर गोफा है सहस्र पंखुरी लागा ।
सोई इंगला पिंगला कहिए सोई सुखमना जागा ॥
सोई छव चक्र परगट है जोगी खोजि खोजि डारै ।
सोई नवो नाटिका कहिए दसए काम पुकारै ॥
प्रेम पत्र अमी जहां चूवै खटरस बीजन चाखै ।
का भौ बेद पढ़े बहु बानी जब तक सांच ना भाखै ॥
जल में डाहैं फूल है बाहर मन मधुकर जा बासा ।
कहैं दरिया जन निश्चै जानै मेटि गया जम त्रासा ॥ ८९
एहि बिधि रमे अकेला जोगी ।
सिद्ध हुआ तब साधक खोजे दुख सुख व्यापे रोगी ॥

अरध उरध के मद्धे मानिक करे द्रिस्टि उजियारा।
बंक नाल नाभी में लागा भंवर गोफा के राह सुधारा॥
खिचरी भोंचरी चचरी अगोचरी उनमुनि मुंद्रा धारा।
सलिता तीनि मिली एक संगम सुभ्र भरि भरि सारा॥
निरा अलंम निरबान भई है निरबिकार निरधारा।
बरे मनी अमि झरे पत्र में पिवे प्रेम रस प्यारा॥
अनहद ताल पखाउज बीनर सोता सुमति बिचारा।
झी झी जंतर तहवां बाजे जम जालिम पचि हारा॥
सोवत जागत ऊठत बैठत टूटु कबहिं नहिं तारा।
कहें दरिया कोइ संत बिबेकी निर्भए लोक सिधारा॥ २२.१६

अब कहु कैसे परदा फाटी।
दर के ऊपर चौकी बैठी अछा बिछवना खाटी॥
नख सिख ले सभ भुखन बनाया पेन्हे अरकसी ख.सा।
पान फूल औ मीन मासु है जम सभ देखे तमासा॥
अति है गर्ब गरजि के बोले भौंहें कमाने तानी।
अपना पिया के नाच नचावे भली सोहागिनि रानी॥
या तन तेजि दोसर तन होइहो चौरासी की पाती।
सुंदर देह खेह होइ जैहें स्वान सुकर की जाती॥
तन उघारे लाज नेवारे बहुत बियानी गेदा।
घर अंधियारे पैठन लागी सिर पर बाजु लबेदा॥
खोरि खोरि फिरे दवरि होए ठाढ़ी जूठी पातरि पाई।
कहें दरिया जिव जम ने लूटा कहे कवन पतिआई॥ २२.२०

जाके महल करकसा नारी।
नवो नाटिका कोठा बहत्तर पल पल सुरति बिसारी॥
पांचो और पचीसो मिलिके आपु भई घरबारी।
राजहि बांधि पलंग पवढाइसि फांस दीन्हौ मिव डारी॥
जतना भोग है ततना रोग है भोगें जोग बिगारी।
मीन मासु रसना को स्वादिक काम कला अधिकारी॥
रोगिया चाहे सो वैद बतावे बैठे मांझ मझारी।
मूल घटा तन भीष ब्याध भयो सूल परा तन मारी॥

कहीं गाय कहिं बाघ हुआ है कहिं धामर कहिं माना।
कहिं अज्या कहिं चीक हुआ है बुझे सजन कोइ बीना॥
कहीं भुअंग कहिं मेढुक हुआ है सीध सियारहि खेती।
कहीं गोह कहि भालु बना है एह गुन देत न सेती॥
कहिं दाता कहिं भिक्षुक हुआ है कहिं पंडित कहि जड़ता।
कहिं मया का फूल बगैचा माली होए होए हरता॥
कहीं ऊंच कहिं नीच हुआ है कहीं राव कहि रंका।
कहीं जोग कहिं भोग बना है तेग गहे कहिं बंका॥
एहि बिधि राम सकल घट व्यापेव साधुन की मति ऐसी।
कहैं दरिया : जो जैसा बूझे ताकी मति भौ तैसी॥ १८. ३३

घो कबहीं ना भव परिये।
ंचा साहब रहनि सांचा है दुरमति दूरी करिये॥
ल्हि करो सो आजु करो एह सुनो नर अव नारी।
ंस त्यागि चलोगे बन्दे हाय जुवारी भारी॥
 मुआ एक मरने चाहे जम ने फंद पसारी।
मर कोस मिरगा मद माता पाव कुल्हारिन मारी॥
न देन एह झूठा झगरा सौदा बहुत पसारी।
द अकेला जम ने मारा जिन्हि निजु खसम बिसारी॥
म के सांट सहोगे मूरख बड़ा कलपना कारी।
रि चरण दुइ सीधें होइहैं बोझ परा सिर भारी॥
हा नरक एह अंध कूप में अब कहु कवन निकारी।
हां हमारा गांठी बंधिहौ दरिया कहा पुकारी॥ १८. ३५
घो पापी सो डरिये।
च बरोबरि धरम नहीं है झूठे भसु भरियै॥
हाँ सांच ताहाँ आपु बसतु है दुरमति दुरि करियै।
ठ कहै तेहि काल कुचेगा अवघट में परिये॥
च गोसइंयाहि बिच कछु नाहीं जौ हित के धरियै।
उ पछी रे झाफी उड़ानी का झगरा करियै॥
चा खरचे खाय खियावै एक दिन फिरि मरियैं।
ठा मूंठा मरकट की गात वा सिष सौ बरियै॥

मुनि पंडित जो जोग जागेव चरन चित जाहि थीर।
बुड़त जल में काढ़ि लीन्हौ प्रगट कीन्ह कबीर॥
जाहां देखो ताहां तुम ही गगन मंडल खमीर।
कहैं दरिया दरस दीजै कपट कागद कीर॥ १४.३

तेरो बल देखि दनुज डेराय।
बिना धनुष झलेख मारैव किमति बरनि न जाय॥
पुहुमि कांपि पताल कांपेव सिंधु रहि अकुलाय।
चलेव सुरपति धनुष हाथे पांव नहिं ठहराय॥
संसे ग्रासेव जम को फौजें त्रासे चलहिं पराय।
दड़त दलिमलि मइजि डारेव रोवहि मुख गोआय॥
कमठ सेस को स्रवन धुनि सुनि पुर्ख अवनी आय।
जग में जीव मुकुताय लीन्हौ अमर लोक ले जाय॥
अछै असोक निरलेप निरमल देखि मन पतियाय।
सिव को जब सरन आए जु मूसि किमि करि खाय॥
संत असतुति करहिं निसु दिन धन्य धन्य सहाय।
कहैं दरिया दास को प्रण कवन राखेव आय॥ १४.४

तेरो दरस के सुभ घरी।
धन्य सभाग सोहाग जन को प्रेम मंदिल भरी॥
जो जो आए सरन तेरी नाम की गति तरी।
अमुज नैन में द्रिस्टि पेखेउ जोति जग मग बरी॥
गंग जमुन मिलि सोसती एह बुन्द अबिगति झरी।
मीलि सलिता सागर के बिच लहरि उलटी परी॥
मान सरवर मनी मुकुता चुंगत हंस न टरी।
उड़न चाहत मन सो इहैं प्रेम की बसि परी॥
थकित सेस महेस ब्रह्मा बेद की गति घरी।
संत को मति निर्मल दासा सकल दोबिधा जरी॥
अटल ब्रह्म बिचारि के एह धरनि धीरज धरी।
कहैं दरिया दाया सतगुर देखि जमजुथ डरी॥ १४.७

मेरी अरज करू मंजूर।
दस्त जोरे खड़ा रहना सांच है सबूर॥

04:35
Vo)) LTE1

← 2015.481752.Sant-Kavi

(आ) 'घेरण्डसंहिता' की मूल प्रति से मुद्राओं के उद्धरण—

506/534

१. अश्विनीमुद्रा—
आकुञ्चयेद् गुदद्वारं प्रकाशयेत् पुनः पुनः।
सा भवेदश्विनी मुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी ॥३.८२॥

२. उड्डीयानबंध—
उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं तु कारयेत्।
उड्डानं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगः।
उड्डीयानं त्वसौ बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी ॥३.१०॥

३. खेचरी मुद्रा—
जिह्वाधो नाडीं संछिन्नां रसनां चालयेत् सदा।
दोहयेन्नवनीतेन लौहयन्त्रेण कर्षयेत् ॥
एवं नित्यं समभ्यासाल्लम्बिका दीर्घतां व्रजेत्।
यावद्गच्छेद् भ्रुवोर्मध्ये तदा गच्छति खेचरी ॥
रसनां तालुमध्ये तु शनैः शनैः प्रवेशयेत्।
कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोर्मध्ये गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥३.२६॥

४. जालंधरबंधः —
कंठसंकोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत्।
जालंधरे कृते बन्धे षोडशाधारबंधनम्।
जालंधरमहामुद्रा मृत्योश्च क्षयकारिणी ॥३.१२॥

५. मूलबंधः —
पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुञ्चयेत्ततः।
नाभिग्रन्थिं मेरुदंडे संपीड्य यत्नतः सुधीः ॥
मेढ्रं दक्षिणगुल्फे तु दृढबन्धं समाचरेत्।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबंधो निगद्यते ॥३.१४-१५॥

६. योनिमुद्रा—
सिद्धासनं समासाद्य कर्णचक्षुर्नसोमुखम्।
अंगुष्ठतर्जनीमध्यानामादिभिश्च साधयेत् ॥
काकीभिः प्राणं संकृष्यापाने योजयेत्ततः।
षट् चक्राणि क्रमाद् ध्यात्वा हुं हंसमनुना सुधीः ॥
चैतन्यमानयेद्देवीं निद्रितां या भुजंगिनीं।
जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य कराम्बुजे ॥
शक्तिमयः स्वयं भूत्वा परं शिवेन संगमम्।
नानासुखं विहारञ्च चिन्तयेत् परमं सुखम् ॥
शिवशक्तिसमायोगादेकान्तं भुवि भावयेत्।
आनन्दमानसो भूत्वा 'अहं ब्रह्मेति संभवेत् ॥
योनिमुद्रा परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा।
सकृत्तु लाभसंसिद्धिः समाधिस्थः स एव हि ॥३.३७-४२॥

७. शाम्भवी मुद्रा—
नेत्राञ्जनं समालोक्य आत्मारामं निरीक्षयेत्।
सा भवेच्छाम्भवी मुद्रा सर्वतंत्रेषु गोपिता ॥३.६४॥

04:34
2015.481752.Sant-Kavi

नाम सुमिरु जग अमर सार। बेद बिहिति सब करु बिचार ॥
ज्ञान पुर्ख है भक्ति नारि। कहैं दरिया तन मनहि वारि ॥ ५३ ७
जाहां जैहो ताहां झूठि बात। सांच कहे मन टूटि जात ॥
झूठा हाकिम हुकुम जोर। झूठा काएस्थ आपु चोर ॥
लिखनी लिखि लिखि करहि घात। अपने आपु से बांधि जात ॥
माया बादर झूठा लोग। झूठा पंडित गनही जोग ॥
कहते कहते भंगो अंत। झूठा कामिनि झूठा कंत ॥
झूठा मीत मिताई कीह। रुई लपेटी आगी दीन्ह ॥
झूठा धीमर जाल मीन। ता में बाझेउ मधुर मीन ॥
झूठा लेना देना झूठ। मूर ना मिले ब्याज खूट ॥
झूठा तीरथ पाहन पास। मन परचे बिनु भयो निरास ॥
अपने सांचे साहब सांच। थित चिन्हे बिनु बोलत कांच ॥
कहैं दरिया कोई साधू होए। पापहि पुन्यहिं बैठी खोए ॥ ५३ ८
जाहां जैएहो उहां तीरथ तीर। इहां गंगन जमुना निकट नीर ॥
इहां निर्मल जल है अमी संग। झरत सरोसात होत न भंग ॥
मंजन करहिं संजन जो सोए। अघ पातख सभ बैठु खोए ॥
इहां लहरि उतंग है सेंधु समाय। उलटि आवे फिरि पलटि जाए ॥
इहां चंद सूर सभ गन है साथ। ज्ञान दीपक जब आउ हाथ ॥
इहां पांच पचीस संग मन है भूप। देवल देवी अजब रूप ॥
इहां भूख प्यास है दाया समेत। बोइये बीज जो मिले सुखेत ॥
सुरसरि माह जो बसहि जीव। दरद बिना कहु का कर पीव ॥
ता की सरन कहु कैसे जाए। धीमर सो जिव धै के खाए ॥
सतगुर काहा सब्द उपदेस। अगम निगम सब सुनु संदेस ॥
सच तरनि भव सेंधु पार। दरिया दरसन गुन है सार ॥ ५३.१०
धन मद माते सो करते जोर। छाड़ि भक्ति एह ममिता मोर ॥
हरिनाकस माते परचारी। कीन्हो बैर सुत से रारि ॥
छाडु भक्ति ना त हतों प्रान। नरसिंघ रूप धरि कीन्ह निदान ॥
रावन माते कंचन कोट। मन की ममिता हिदया खोट ॥
सीतहि ल्याएउ करन राज। मारेव राम तेहि सैन साज ॥
छव चक्रवे माते चक्रवर्ती। मातेव कंस ना जानू गती ॥

04:32
2015.481752.Sant-Kavi
441/534

राधे तुम चंचल अति बीना।
खंज मीन देखन कह छोटी अनंत कला रस मीना॥
तन समुंद्र मन लहरि बना है नैन कइर बहे पानी।
हरि कनहरिया है भक्तन्हि के तिन्हे पकरि धरि तानी॥
फिरे फिरंग फहम नहिं आवे लहरि लहरि पर दीन्हा।
ज्ञान के दीप मंद करि डारेव माया दीपक लेसि खीन्हा॥
एवे कल खैंचे लखे न कोई इन्द्रजाल रचि लीन्हा।
एह नटबाजी नट जेंव नाचे किमि करि या पति चीन्हा॥
एही मता जक्त सब माते कहि कवि बहुत बखानी।
ब्रह्मा के घर बेद मनतु है इन्द्रन के घर रानी॥
तिरगुन तीनि सखा बहु पत्र है लता लपटि बहु बानी।
कहैं दरिया बिरला जन बांचे सतगुर पद पहचानी॥ २४. १५

हरि तुम बिंदाबन बसु राधे।
माया धुंध मची जग माही वाहि ते सुर नर बांधे॥
चंचल बिसाल लोचन दुनो बिनु पंखे उड़ि धावै।
वाका बान अचूक चक्र है आड कोई जन पावै॥
चिखुर मोती मनि माथे टीका मनहुं दिपक धरि बारी।
परे पतंग देखि एह जगमग प्रान पिंड सब हारी॥
कनक बेइलि तमाल ते अरुझे ललकि लपटि करि आवै।
उर पर सांगि सोच के बैठी छेदत बार ना लावै॥
कटि केहरी पर किंकिनि बाजे कंद्रप सोर लगावै।
लाल गोपाल मदन के आसिक एह रस गोपिअन्हि भावै॥
जंघ केदली पगु में पावट झमकि झमकि ललचावै।
कहैं दरिया कोइ संत बिबेकी वा के निकट न जावै॥ २४. १६

जक हिंडोलना झूलत है चौजुग।
मेरु मंडल खंभ लागेवो दसो दीसा तानि॥
चंद सूर दोए भए सखा झूलहि सांझ बिहान।
गंगन उड़िगन छटा छायवो पवन को परगास॥
बिगस झारी बुंद बरिसे पाप पुन्य नेवास।

पाँचवी का वर्णन भी है।[२०] ये मुद्राएँ निम्नलिखित हैं—(१) खेचरी, (२) भोचरी, (३) अगोचरी, (४) चंचरी और (५) उन्मुनी जिसे महामुद्रा[२१] भी कहा गया है।

खेचरी मुद्रा का वर्णन संख्या ५ में ऊपर हो चुका है। दरियासाहब की संख्या २, ३ और ४ मुद्राओं की समता 'घेरण्ड संहिता' के तृतीय अध्याय में वर्णित पचीस मुद्राओं में से किसी एक से भी मैं नहीं कर पाता हूँ। मेरे अनुमान में भोचरी, अगोचरी और चंचरी के साथ जिस खेचरी का व्यवहार दरियासाहब ने किया है, वह ऊपर संख्या ५ में वर्णित खेचरी मुद्रा नहीं जान पड़ती है। यदि इन चारों शब्दों को शुद्ध रूप में पढ़ा जाय तो ये खेचरी, भूचरी, अग्निचरी और जलचरी—अर्थात् घेरण्डसंहिता द्वारा वर्णित पाँच धारणा मुद्राओं में से चार—यथा आकाशी, पार्थिवी, आग्नेयी और आंभसी के ही दूसरे नाम जान पड़ते हैं। इनकी साधना करने पर योगी सुगमतापूर्वक वायु, स्थल, अग्नि और जल में अनवरुद्ध गति की क्षमता प्राप्त कर लेता है। पाँचवी मुद्रा 'वायवी' को प्रायः इस लिए छोड़ दिया गया है कि इसका समावेश आकाशी में हो जाता है, क्योंकि आकाश में विचरण करने का मतलब वायु में भी विचरण करना होता है। हमारे इस अनुमान की पुष्टि मुद्रित 'ज्ञानदीपक' के पृष्ठ १५६ के नीचे की टिप्पणी से होती है जिसमें पाँच मुद्राओं की व्याख्या अग्नि, वायु, जल, चंद्र और सूर्य के रूप में की गई है। दरियापंथी साधु रामव्रतदास ने मुझे बताया कि खेचरी, भोचरी, अगोचरी और चंचरी का अर्थ आँख, नाक, कान और मुँह हैं जिनकी साधना करना सभी यौगिक क्रियाओं का लक्ष्य है। आगे के पृष्ठों में 'उन्मुनी' का स्वतंत्र रूप से वर्णन किया गया है।

यह पहले बताया जा चुका है कि जब कुण्डलिनी जाग्रत कर दी जाती है तब यह सहस्रदलकमल तक पहुँचने के पहले षट्चक्रों[२२] का भेदन करती है। ये चक्र कमल के आकार के हैं और इनका स्थान मेरुदण्ड के मिलन-बिन्दुओं पर है।

(च) षट्चक्र

इन चक्रों के ऊपर-की-ओर जाने की विभिन्न गति की उपमा उल्टे हुए घड़े से दी गई है जो नीचे दाबने पर भी पानी में नहीं डूबता।[२३] चक्रों के सिद्धांत को शैव और शाक्त तांत्रिकों ने विस्तृत, विशद और दुरूह रूप में प्रतिपादन किया और निर्गुण या संत विचारधारा को बहुत अधिक प्रभावित किया है।

अन्तिम चक्र अर्थात् आज्ञा-चक्र अति महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यही शरीर के दो प्रधान भागों—पिण्ड और ब्रह्मांड—का संगमस्थल है। पिण्ड—अर्थात् निम्न प्रदेश में नौ द्वार

---

२०. स० रा० ४६१, ७३; श० ४.४,२२.१८।

२१. श० ५.२१; द० सा० ४३.१२; यह स्मरण रखना चाहिए कि दरिया साहब केवल 'उनमुनी' पर ही जोर देते हैं।

२२. स० रा० ६१८; श० ३ अ० ६।

२३. स० रा० ६१।

04:39
2015.481752.Sant-Kavi
109/534

(३) उड्डियान बन्ध—"बलपूर्वक सांस बाहर फेंक कर फेंफड़ों को खाली कर दो—अब अँतड़ियों को सिकुड़ा कर नाभिसहित पीठ और पेट को एक में सटा दो। उड्डियान का अभ्यास कुंभक के अंत और रेचक के आरंभ में करना चाहिए। इस बन्ध को करते समय उदर को वक्षःस्थल से अलग करनेवाली पेशी ऊपर को उभर आती है और उदर की भित्ति पीछे को खिंच जाती है। अतः इस बन्ध को करते समय शरीर (धड़) को आगे झुका दो।"

(४) शांभवी मुद्रा—"दृष्टि को भ्रू-मध्य में स्थिर करके स्वयंभू का दर्शन करो। यही शांभवी मुद्रा है।"

(५) खेचरी मुद्रा—"ख का अर्थ है आकाश और चर माने चलना। योगी आकाश में विचरण करता है। उसकी जिह्वा और मन भी आकाश में विचरते हैं। अतः इसे खेचरी मुद्रा करते हैं।"

यह मुद्रा वही व्यक्ति कर सकता है, जिसने किसी गुरु की दीक्षा में रहकर प्रारंभिक क्रियाओं का पूर्ण अभ्यास किया हो। गुरु को स्वयं भी इसके अभ्यास में दक्ष होना चाहिए। इस क्रिया के आरंभ में जिह्वा को अभ्यास द्वारा इतनी बड़ी बना देना पड़ता है, जिससे जिह्वा भ्रमध्य को छू दे। प्रत्येक सप्ताह थोड़ा-थोड़ा करके गुरु जीभ की निचली स्नायु को साफ छुरी से काट देते हैं। ये उसपर थोड़ी हल्दी की बुकनी और नमक छींट देते हैं जिससे कटी हुई स्नायु जुट न जाय। जिह्वा में ताजा मक्खन रगड़ कर उसे बाहर खींचो। जीभ को उँगलियों से पकड़ लो और उसे बाहर भीतर करो। जिस प्रकार ग्वाला गाय को दूहते समय उसके स्तनों को ऊपर-नीचे खींचता है, उसी प्रकार इस जिह्वा-दोहन से जीभ पर अधिकार होता है।

जीभ के नीचे की स्नायु को काटने की क्रिया प्रत्येक सप्ताह छः मास तक करनी पड़ती है। इन क्रियाओं से जीभ इतनी लंबी हो जायगी कि वह भ्रू-मध्य को छू ले। खेचरी मुद्रा का यह आरंभिक अंग है। इतना कर लेने के बाद जीभ को मुँह के भीतर ही उल्टा कर तालु में सटाते हुए पीछे ले जाकर नासाछिद्रों को जिह्वाग्र से बन्द कर दो। यह क्रिया सिद्धासन में बैठकर करनी चाहिए और दृष्टि सदा भ्रूमध्य पर जमी हो। तब श्वास-प्रश्वास क्रिया बन्द हो जायगी। इस दशा में जिह्वा सुधा-कूप के मुख पर पहुँच जाती है और यही खेचरी मुद्रा है।

(६) अश्विनी मुद्रा—"गुदामार्ग को भीतर-बाहर सिकुड़ाओ और ढीला करो। इसे करते रहो। इससे कुण्डलिनी जाग्रत होती है। इसे ही अश्विनी मुद्रा कहते हैं।"

(७) योनि मुद्रा—"सिद्धासन में बैठो। दोनों अँगूठों से कान, कनिष्ठा उँगुलियों से आँखें और मध्यमा से नाक और अनामिका से ऊपर के होंठ बंद कर दो। जप करने की यह सुन्दर मुद्रा है।"

दरियासाहब के लेखों में प्रायः केवल चार मुद्राओं का ही प्रसंग आता है। पर एक

04:39

2015.481752.Sant-Kavi

106/534

प्राणायाम के बिना योग पूरा हो ही नहीं सकता है। क्योंकि संयत प्राण ही एक प्रकार से आत्मा है और असंयत प्राण मन है जो चंचलता का कारण है।[१५] तात्पर्य यह कि प्राणवायु को संयत करना आत्मा को प्राप्त करना है। प्राणायाम की तीन क्रियाएँ हैं—

(घ) प्राणायाम

(१) पूरक : साँस खींचना;
(२) कुम्भक : साँस को रोककर रखना;
(३) रेचक : साँस बाहर फेंकना।

साधु प्रभुदास ने प्राणायाम की एक निम्नलिखित विधि बताई है जिसे वे 'सहित कुंभक-विधि' के नाम से पुकारते हैं। वाम नासिका से धीरे-धीरे साँस खींचो और खींचने के समय सोलह बार मंत्र[१६] का जप करो। तब साँस को उतनी देर रोक रखो, जितनी देर में मंत्र का जप चौसठ बार पूरा हो और दक्षिण नासिका से धीरे-धीरे उतनी देर में साँस छोड़ो जितनी देर में मंत्र का जप बत्तीस बार कर सको। मंत्र का जप करते हुए पुनः इसी विधि से दुहराओ; पर इस बार दक्षिण नासिका से साँस खींचो और वाम नासिका से छोड़ दो।[१७]

प्राणायाम साधन करने का प्रधान उद्देश्य है अपान-वायु को आज्ञाचक्र में स्थिर कर देना, जहाँ उसका स्वरूप बदलकर प्राणवायु या जीवनशक्ति बन जाय।[१८]

आसन और प्राणायाम की मिली-जुली यौगिक क्रियाओं को मुद्रा कहते हैं। निम्नलिखित सात मुद्राएँ[१९] साधु प्रभुदास आवश्यक बताते हैं—

(ङ) मुद्रा

(१) मूलबन्ध—"योनि को बाईं एड़ी से दबाओ और गुदामार्ग को सिकुड़ा लो। क्रमशः अभ्यास द्वारा अपान वायु को बलात् ऊपर खींचो। दाहिनी एड़ी जननेंद्रिय पर रखे रहो।"

(२) जलन्धर बन्ध—"गला को सिकुड़ा दो, चिबुक को दृढ़तापूर्वक छाती पर दबाओ। इस बन्ध का अभ्यास पूरक (साँस खींचने) के अन्त में और कुंभक (साँस रोकने) के आरंभ में किया जाता है।"

---

१५. ब्र० प्र० पृष्ठ १३ और पृ० ५५।

१६. साधु प्रभुदास के कथनानुसार यह मंत्र 'सोऽहम्' है। इसका अर्थ है—मैं वही हूँ, अर्थात् आत्मा ही ईश्वर है।

१७. 'ब्रह्मप्रकाश', पृष्ठ ५२; यह विधि 'घेरण्ड संहिता' में लिखी है। ५.४९।

१८. शरीर में दस प्रकार की वायु हैं:—प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल देवदत्त और धनंजय। इनमें सबसे आवश्यक हैं—प्राण और अपान वायु। प्राणवायु हृदयस्थल और अपानवायु नाभिस्थल में रहती है।

१९. ब्र० प्र०, पृष्ठ ४८—५१; सं० ४ और ६ को छोड़कर सभी मुद्राओं का वर्णन स्वामी शिवानंद की पुस्तक 'योगासन' से लिया गया है तथा नं० ४ और ६ का वर्णन 'घेरण्डसंहिता' से लिया गया है।

20:34

2015.493228.CharanDas

246/307

शीतली कुम्भक के पश्चात् कवि ने भस्त्रिका कुंभक का वर्णन किया है। यथा लोहार की धौंकनी में वायु भरी जाती है उसी प्रकार उभय नासिका द्वारा वायु को पेट में भरके धीरे-धीरे पेट में परिचालित करे। इस प्रकार बीस बार कुम्भक करके वायु को धारण करे, फिर भस्त्रिका से जैसे वायु निकलती है उसी प्रकार नासिका से वायु निकाल दे। इसे भस्त्रिका कुम्भक कहते हैं। इस प्रकार यथा नियम तीन बार आचरण करे।[1] भस्त्रिका दो प्रकार से किया जाता है। प्रथम वाम नासारन्ध्र से कम से

---

१. भस्त्रैव लौहकाराणां यथा क्रमेण संभ्रमत्।
तत्तो वायुश्च नासाभ्यामुभाभ्यां चालयेच्छनैः॥
एवं विंशतिवारं च कृत्वा कुर्याच्च कुम्भकम्।
तदन्ते चालयेद्वायुं पूर्वोक्तं च यथाविधि॥
त्रिवारं साधयेदेनं भस्त्रिका कुंभकं सुधीः।
न च रोगं न च क्लेशमारोग्यं च दिने दिने॥
घे० सं०—पंचमोपदेशः श्लोक ७४-७

कम दश घर्षण करने के पश्चात् ग्यारहवीं बार उसी नासिका से पूरक करे। साधक यथाशक्ति कुम्भक करने के अनन्तर दक्षिण नासिका से शनैः-शनैः रेचक करे और फिर दक्षिण नासिका से दश घर्षण करके उसी से पूरक भर ले। यथाशक्ति साधक कुंभक करके धीरे-धीरे वाम नासिका से रेचक करे। द्वितीय दक्षिण नासिका से वाम नासिका की ओर कम से कम दस घर्षण करके वाम नासिका से पूरक भरे। योगी यथाशक्ति कुम्भक करके दक्षिण नासिका से धीरे-धीरे रेचक करे। चरनदास का भस्त्रिका वर्णन परम्परागत है। इसका वर्ण्य विषय योगदर्शन के आचार्यों के मत से साम्य रखता है परन्तु विशेषता यह है कि कवि ने भस्त्रिका की प्रक्रिया और साधना का सविस्तार वर्णन किया है। साथ ही इसमें आसनादि का जो उल्लेख हुआ है उसका योग ग्रन्थों में उल्लेख नहीं हुआ :—

अब कहुँ कुम्भक भस्त्रिका, पित कफ वायु नशाय।
अगिनि बढ़ै अभ्यास सो, तीनि गांठि खुलि जाय॥
आसन पद्म सु या विधि करै। बाम जंघ दहिनो पग धरै॥
बावों पग दहिनी पर लावै। जांघन सो दोउ हाथ मिलावै॥
ग्रीवा पेट बराबर राखै। आगे सुनु शुक देवा भाखै॥
मुख मूंदै रेचै नासा सूं। पूरक चपल करै श्वासा सूं॥
रेचक पूरक ऐसे कीजै। बारम्बार तजै अरु लीजै॥
जैसे खाल लगे हार भरै। रेचक पूरक आतुर करै॥
करत करत जबहि थकि जावै। नेक ठहरि दूजी विधि लावै॥
फिरि पूरक सूरज सों करै। पवन उदर के माहीं भरै॥
तर्जनि अंगुली सों दृढ़ रोकै। नासामध्य धार करि जोखै॥

कुंभक पिछली भाँति करि, रेच इड़ा सों बाय।
कफ पित वायु नशाय के लेवै अग्नि बढ़ाय॥
कुंडलिनी देवै जगा, यह कुम्भक सुखदाय।
करै जु हित व्रत धारिकै, चरनदास चित लाय॥
कुंडलिनी सरकाय कै, वेधै तीनों गाँठ।
ऐसी पंचवी भस्त्रिका, रहै न कोई आँठ॥

20:33

2015.493228.CharanDas

242/507

'घेरंड संहिता' में भी इन्हीं आठ प्रकार के कुम्भक को मान्यता दी गई है :—

संहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी, शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्ट कुम्भिकाः ॥
घे० सं०—पंचमोपदेशः श्लोक ४५

अर्थात् सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली भेद से कुम्भक आठ प्रकार के हैं।

कवि ने सर्वप्रथम कुम्भक की परिभाषा एवं प्रक्रिया अथवा साधना का वर्णन किया है, तदनन्तर कुम्भक के विभिन्न अष्ट भेदों का परिचय दिया है। कुम्भक की प्रक्रिया और परिचय से सम्बन्धित निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करने योग्य हैं :—

पवन पूर पूरक ही कीजै। पाछे बन्ध जलन्धर दीजै ॥
कुंभक रेचक के मांध जानै। छाई बन्ध उड्यान पिछानै ॥
पवन जोर ही सूं गहि लीजै। अर्ध ऊर्ध्व संकोच न कीजै ॥
मध्यम कीजै पश्चिम तानै। ब्रह्म नारिके माहि समानै ॥
नाड़ी पवन खैंचिये ऐसे। भरिये सब संध्यान जु जैसे ॥
अपान वायु कूं ऊपर लावै। प्राण वायु नीचे लै जावै ॥
जोपै यह साधन बनि आवै। योगी बूढ़ा होन न पावै ॥
तरुण अवस्था देखे ऐसी। नितही रहै जानिये जैसी ॥

कुम्भक की प्रक्रिया, लक्षण, स्वभाव तथा गुण आदि का वर्णन करने के अनन्तर कवि ने कुम्भक के अष्ट भेद का प्रारम्भ किया है। इस वर्णन में सर्वप्रथम प्रक्रिया का वर्णन किया है, तदनन्तर उसके लक्षण और महत्त्व का उल्लेख किया है। प्रायः यही क्रम आद्योपांत कुम्भक के समस्त भेदों का वर्णन करने में रखा गया है। कवि के मत से सूर्यभेद कुम्भक का सर्वप्रथम भेद है। योगशास्त्र के कुशल आचार्य घेरंड के मत से कुम्भक करते समय प्राणादि समस्त वायुओं को पिंगला नाड़ी से विभिन्न कर नाभिमूल देश से समान वायु को उठावे, पुनः धैर्य के साथ वेग पूर्वक वाम नासिकापुट से रेचन करे। तदनन्तर दक्षिण नासापुट से वायु भर कर सुषुम्णा से कुम्भक कर वाम नासा से रेचन करे। इस क्रिया को बारम्बार करना सूर्यभेद कुम्भक कहा जाता है।[1] दूसरे शब्दों में सावधानी पूर्वक सुगम आरामदेह आसन

१. सर्वे ते सूर्यसंभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत्।
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाखंडवेगतः ॥
पुनः सूर्येण चाकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि।
रेचयित्वा साधयेत् क्रमेण च पुनः पुनः ॥
घे० सं०—पंचमोपदेशः ६५-६६

पिण्ड और ब्रह्माण्ड

हैं। यथा—दो आँखें, दो कान, दो नासिकाएँ, मुंह, गुदामार्ग और जननेंद्रिय। दसवाँ द्वार ब्रह्माण्ड में खुलता है, जिसकी कुंजी इसी आज्ञाचक्र में निहित है।[२४]

त्रिवेणी और सहस्रदल कमल

ब्रह्मरन्ध्र में इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा—अथवा गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम-स्थल 'त्रिवेणी या त्रिकुटी' है।[२५] ब्रह्मरन्ध्र में ही तालुमूल में शून्य गगन अथवा 'नभपुर' है, जहाँ सहस्रपद्म अपने सहस्रदलों सहित विकसित है। इस पद्म की आभा एक बड़े देदीप्यमान हीरे की चमक के समान है।[२६]

नौ द्वारों पर शासन करके दसवें द्वार को बन्द रखना

योगी के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह दसवें द्वार को बंद रखे।[२७] इसी द्वार होकर आत्मा शरीर के निम्न भाग पिण्ड में उतर आता है और नीचे के किसी चक्र में अपना स्थान बना लेता है। इसी द्वार से प्रकाश छनकर नीचे के नौ द्वारों में पहुँचता है।[२८] ये ही नौ द्वार हमें बाह्य जगत् में लिपटा कर बंधनों और मृत्यु के अधीन कर देते हैं। यदि मुक्ति प्राप्त करनी है तो आत्मा—अर्थात् प्राणवायु अथवा वीर्यशक्ति—के इस निम्नाभिमुख प्रवाह को रोकना पड़ेगा।[२९] अतः दरियासाहब ने इस बात पर अनेक बार जोर दिया है कि हमें नौ द्वारों को वश में करके दसवें द्वार को बन्द करना चाहिए, तभी हम आत्मशक्ति प्राप्त कर सकेंगे।

कुण्डलिनी योग का अर्थ और लक्ष्य

यह हम जानते ही हैं कि हठयोग का प्रधान लक्ष्य कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से जागरित करके शून्य गगनस्थित सहस्रदल कमल में मिला देना है। तब यों समझिए कि कुण्डलिनी प्रकृति का प्रतीक और सहस्रपद्म सत्पुरुष (ईश्वर) का प्रतीक है, और इस प्रकार कुण्डलिनी का क्रम से सहस्र-पद्म में विलीन हो जाने का अर्थ है—आत्मा का प्रकृति के बन्धनों से मुक्त होकर पुनः अपनी मूलभूत दिव्य पवित्रता और पुरुषरूप सत्ता को प्राप्त

---

२४. 'ब्रह्मप्रकाश' में शरीर का इस प्रकार विभिन्न भाग बताया गया है—

(१) स्वर्गलोक—भ्रूमध्य से गर्दन तक; मृत्युलोक—गर्दन से नाभि तक; पाताललोक— नाभि से नीचे।

(२) सत्वगुण का स्थान—आज्ञा-चक्र से गर्दन तक;
रजोगुण „ —गर्दन से नाभि तक;
तमोगुण „ —नाभि से नीचे।····पृ० १२।

२५. श० ३ अ ४१; स० रा० ५४७; का० व० ४—०१।

२६. द० सा०, २२.६।

२७. द० सा० २२.८, ७७.६—१०; श० ८.११।

२८. श० ३.३०, ८-६; द० सा० ७७.६—१०।

२९. दरियासाहब इसी लिए कम सोने के पक्ष में हैं; क्योंकि सुप्तावस्था में स्वप्नदोष होने की संभावना रहती है। देखिये—श० ८.१४ और १६.१०।

20:37
2015.493228.CharanDas
253/507

प्रकार के नाद का अनुभव साधक को होता है, उसी की वह अभिव्यक्ति कर देता है। नाद श्रवण के विषय में कोई विशेष नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

यह तो हुआ अपान वायु और नाद को जाग्रत करने का उपाय। अब कवि के मुख से अनहद नाद जाग्रत करने की विधि सुन लीजिये। कवि द्वारा वर्णित यह विधि सरल एवं स्पष्ट है अतएव उसे यहाँ अविकल उद्धृत किया जाता है:—

खुलै जो अनहद नाद ज्यों सो साधन सुनि लेहु।
जासों पहुँचे सिद्धि को या करणी चित देहु॥
चक्राधार सों खैंचि करि अपान वायु सजलेहु।
स्वाधिष्ठान के पास ही तीन लये है देह।

याकी विधि सब तोहि सुनाऊँ। जैसे है तैसे समझाऊँ॥
पहले मूल द्वार को शोधै। बंध लगाय अपान निरोधै॥
पहिले चक्कर में ठहरावै। खैंचि दूसरे के ढिक लावै॥
वाके आसौ पास फिरावै। दहिने तीनि लपेट लगावै॥
फिरि मणिपूरक में पहुँचावै। फेरि अनाहद में ले जावै॥
अनहद खुलै सुनै सुख पावै। फिरि हां प्राण अपान मिलावै॥
हिरदय कंठ मध्य ठहरावै। संयम सों ताको पर चावै॥
बन्ध दूसरो तहाँ लगावै। चरणदास शुकदेव बतावै॥

पहिलै अनहद नाद खुलै हिय ऊपरै।
कंठ सु नीचे रोकि ध्यान ह्वाई धरै॥
जहां अपरबल होय जु अनहद शब्द ही।
फिरियों जानो जाय कंठ के मध्य ही॥
तहां किये अभ्यास ध्यान राखै घना।
होवै अधिकीनाद सुनै साधू जना॥
केतक द्योसन मांहिं ब्रह्मरन्धर कने।
जाय खुलै जहं नाद सुरति दे ह्वा सुनै॥
शनै शनै यों होय जानें कोइ साध ही।
हिरदय अरु ब्रह्म लोकलों एकै नाद ही॥
मीठी और सवाद बहुत ही पाइये।
सतगुरु के परताप जहां मन लाइये॥
ब्रह्म लोक की बात सुनै होवै जुहां।
सब ही सूझै वस्तु जु कछु होवैं तहां॥

20:37

← 2015.493228.CharanDas

252/507

चरनदास के मतानुसार साधक अपानवायु की साधना करता हुआ जब उसे मोड़कर ऊपर ले आता है, तब कमल उलटा होकर आकाश की ओर मुख कर लेता है। ज्यों-ज्यों अपान वायु विभिन्न चक्रों से होती हुई अग्रसर होती है, त्यों-त्यों समस्त साधना सिद्ध होती जाती है। जब अपानवायु अनहद चक्र में प्रवेश करती है उस समय दश प्रकार के नाद प्रकट होते हैं।[1], ये नाद निम्नलिखित हैं :—

१. पक्षी रव (चीं) २. पक्षी रव (चीं चीं) ३. क्षुद्र घंटा ४. शंख नाद ५. वीणा ध्वनि ६. ताल ध्वनि ७. मुरली ध्वनि ८. पखावज ध्वनि ९. नफीरि ध्वनि १०. सिंह गर्जन।[2]

सुन्दरदास ने भी नाद के दश ही भेद माने हैं।[3] चरनदास वर्णित नाद के प्रकारों का 'हठयोग प्रदीपिका' में वर्णित प्रकारों से भेद है। इसी प्रकार सुन्दरदास और 'हठयोग प्रदीपिका' द्वारा वर्णित प्रकारों में भी भेद है। तथ्य यह है कि जित

---

१. अपान वायु कूं साधि करि ऊपर लावै मोड़।
जब होवै उलटे कमल मुख आकाश को ओड़॥
अपान वायु ज्यों ज्यों बढ़ै चक्र चक्र के पास।
त्यों त्यों सीधे होय सब पूरा जान अभ्यास॥
अपान वायु आवै जबै चक्र अनाहद माँहिं।
दश प्रकार के नाद ही शनैः शनैः खुलि जाहिं॥

२. पहिले नाद सुने जो ऐसा। चिड़ी चीकला बोलै जैसा।
एकहि बार कहै यो चिन्न। दूजी बार कहे चिन चिन्न॥
क्षुद्र घंट ज्यों तीजी जानौ। चौथी नाद शंख पहिचानौ॥
पंचवी नाद बीन ज्यों गावै। छठवीं उपज ताल ज्यों बाजै॥
सतवीं नाद मुरलिया ऐसी। अठवीं उठै पखावज जैसी॥
नवै नफीरी नाद सुनावै। दशवें सिंह गरज उपजावै॥
नौ तजि दशवै सू हितलावै। अनहद हनि अनहद हो जावै॥
खोय जीव सों ब्रह्म अगाधा। जो कोइ सुनै सो अनहद नादा॥

३. प्रथम भ्रमर गुंजार शंष धुनि दुतिय कहिज्जै।
त्रितिये वज्जहि मृदंग चतुर्थं ताल सुनिज्जै॥
पंचम घंटा नाद षष्ट बीणा धुनि होई।
सप्तम बज्जहिं भेरि अष्टम दुंदुभि दोई॥
अब न वमै गज्जै समुद्र की दशम मेघ घोषहि सुनै।
कहि सुन्दर अनहद नाद कौ दश प्रकार योगी सुनै॥
ज्ञान समुद्र—तृतीयोल्लास ६७

20:37
← 2015.493228.CharanDas
251/507

अर्थात् "सिद्धासन के सदृश कोई आसन नहीं है, केवल कुम्भक के समान कोई बल नहीं हैं, खेचरी के तुल्य कोई मुद्रा नहीं है तथा मन लय करने वाले साधनों में अनहद नाद की तुलना करने वाला कोई भी अन्य साधन नहीं है।"

चरनदास जी के निम्नलिखित छन्दों में शिव संहिता की विचारधारा पूर्ण रूप से लहरें ले रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने 'शिव संहिता' का 'नाद-महत्व' निम्नलिखित पंक्तियों में अनूदित कर दिया है।—

अनहद के सम और ना फल बरणें नहिं जाहिं।
पटतर कछू न दे सकू सब कछु है वा माहिं॥
पाँच थकै आनन्द बढ़ै अरु मनुआ वश होय।
शुकदेव कहि चरनदास सुनि आप अपन जा खोय॥
नाडिन में सुषमन बड़ी सो अनहद की मात।
कुम्भक में केवल बड़ा सो वाही का भ्रात॥
मुद्रा बड़ी जु खेचरी वाकी बहिनी जान।
अनहद सा बाजा नहीं और न या सम ध्यान॥
सेवक से स्वामी भवै सुनै जु अनहद नाद।
जीव ब्रह्म ह्वै जात है पावै अपनी आद॥

मानव के शरीर में साढ़े तीन कोटि रोम हैं। जब साधक साढ़े तीन कोटि नाम जप कर लेता है तभी अनहद नाद प्रकट होता है। यह विधि वायुप्रकृति वालों के लिए है। जिनकी पित्त प्रकृति है उनकी नाड़ी शुद्ध रहती है, अतएव सवा कोटि नाम जप करने से ही उन्हें अनहद नाद प्रतिश्रुत हो जाता है। योग शास्त्र में नाद दश प्रकार का कहा गया है।[१] अंतिम प्रकार का नाद है, बादल का गर्जन। इस अंतिम अवस्था में साधक के प्राण वायु एवं मन दोनों ही लय हो जाते हैं। सुषुम्ना ब्रह्मनाडी के अन्तर्गत प्राणवायु का प्रवेश होने पर नाद का प्रकट होना प्रारम्भ हो जाता है। अनहद नाद को सुरत के आधार पर दक्षिण कान से सुनने का प्रयत्न करना चाहिए। नाद मानसिक लय का कारण है। 'त्रिपुरसार समुच्चय' में नाद के पांच भेद वर्णित हुए हैं।[२]

---

१. आदौ जलधि जीमूत भेरी झर्झर संभवाः।
मध्ये मर्दल शङ्खोत्था घंटा काहलजास्तथा॥८५॥
अन्ते तु किंकिणी वंश वीणा भ्रमर निःस्वनाः।
इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते देह मध्यगाः॥८६॥
हठ यो० प्र०—३ पृ० ४

२ भ्रमर, वंशी, घंटा, समुद्र गर्जन तथा मेघ गर्जन॥

20:40
2015.493228.CharanDas
275/507

की प्रथम बारह पंक्तियों में कवि ने खेचरी मुद्रा से हठयोग साधना में जो सहायता प्राप्त होती है उसका उल्लेख किया है। शेष अंश में उसके महत्व या माहात्म्य की अभिव्यक्ति हुई है।

कवि द्वारा वर्णित द्वितीय मुद्रा भूचरी है। शास्त्रकारों का कथन है कि नासिका के अग्रभाग से चार अंगुल दूर रहे हुए अवकाश में मन को स्थिर करना भूचरी है। अष्टांग योग की साधना में धारणा के सिद्धि के हेतु प्रस्तुत मुद्रा का अभ्यास श्रेयस्कर हैं। इसकी साधना से योगी को अलौकिक सुख प्राप्त होता है। उसे दैहिक, दैविक तथा भौतिक संताप दग्ध नहीं करते। सांसारिक कष्ट उसे व्यथित और पीड़ित नहीं करते। 'घेरंड संहिता' में इस मुद्रा के विषय में कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है। चरनदास के शब्दों में अब भूचरी मुद्रा की प्रक्रिया पढ़िये :—

दूजी मुद्रा भूचरी, नासा जाको वास।
प्राण अपान जुदी जुदी, एक करै चरणदास॥
जितकी तित रख प्राण को, वा घर लाय अपान।
ताहि मिलावै युक्ति सूं, करि करि संयम ध्यान॥
जब वह जीतै पवन कूं, मन चंचल ठहराय।
गगन चढ़न की आश हो, कहै शुकदेव सुनाय॥
गुदा द्वार बंध दीजिए, एंडी पांव लगाय।
आसन सिद्ध जु कीजिए, मन पवनावश लाय॥

अपान वायु जब वशभवै, ऊरध खैंच लचाय।
सनई सनई जावई, प्राण वायु ह्वै जाय॥

चांचरी मुद्रा का वर्णन कवि ने भूचरी के अनन्तर किया है। आज्ञा चक्र में मन को अवरुद्ध करना चांचरी मुद्रा है। शास्त्रकारों के मत्यानुसार पक्षान्तर में इसको खेचरी मुद्रा भी कहते हैं, परन्तु चरनदास द्वारा वर्णित खेचरी और चांचरी की साधना, प्रक्रिया और महत्व एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं, अतः इससे स्पष्ट है कि कवि योगशास्त्रकारों की भाँति पक्षान्तर मे इसको खेचरी नहीं मानता है। कवि के शब्दों में चांचरी मुद्रा निम्नलिखित है :—

तीजी मुद्रा चांचरी जाको नैनन वास।
नासा आगे दृष्टि कूं राखै मन धर आस॥

अंगुल चार नासिका आगे। चित अस्थिर करि देखन लागे॥
खुले पाँच तत करै जु कोई। मन अरु पवन जहाँ थिर होई॥
फिरि हांसूं नासा परि आवै। अचल टकटकी तहाँ लगावै॥
जहं बहुतक अचरज दरसावै। विभव स्वर्ग के आगे आवै॥
जित सूं पलट तिरकुटी मांहीं। ध्यान करै कहुं अन्त न जाहीं॥
दीरघ तारा सा परकासै। उदय होय सूरज ज्यों भासै॥
चित चेतन दोउ मेला करै। लै उपजै अरु दुविधा हरै॥
यही चांचरी मुद्रा जानै। चरनदास याकूं पहिचानै॥

विगत पृष्ठों में भूचरी की विवेचना करते हुए लिखा गया है कि शास्त्रकारों का कथन है कि नासिका के अग्रभाग से चार अंगुल दूर रहे हुए अवकाश में मन

20:39
2015.493228.CharanDas
276/507

महाबंध का जो सविस्तार विवेचन ऊपर भिन्न-भिन्न योगदर्शन के ग्रन्थों में हुआ है, उसको सूत्र रूप में चरनदास के निम्नलिखित पद्यांश में पढ़िये। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कवि की महाबंध विषयक धारणा और शास्त्रीय-मत में कोई अन्तर नहीं है। अतः कवि की इस रचना में परम्परागत सैद्धांतिक विचार-धारा ही प्रमुख है। अब कवि के शब्दों में इस वर्णन को सुनिये :—

महाबन्ध तोहि पहल बताऊं। पाछे मूलबन्ध समझाऊं॥
बायां पांव सिवन गहि दीजै। मूलद्वार एड़ी बंध कीजै॥
दहिनी जंघ जंघ पर लावै। गउमुख आसन नाम कहावै॥
राखै चिबुक हृदय पर लाय। पवनराह पूरब को जाय॥
ध्यान त्रिकुटी संयम करै। प्राणवायु हिरदे में धरै॥
महाबन्ध ऐसे करि साधै। गुरु प्रताप याहीं आराधै॥
बिना पुरुष तिरिया कूं जानो। बन्ध बिना मुद्रा पहिचानों॥
निरफल जाय पुरुष बिन नारी। महाबन्ध बिनु मुद्रा धारी॥
मांहि कंठ के ध्यान लगावै। सुरत निरत ह्वाँई ठहरावै॥
महाबन्ध अस्थत करै, सो योगी ह्वै जाय।
पवन पंथ मुंदित करै, ध्यान कंठ में लाय॥

शशियरकूं सूरज पर लावै। रेचक पूरक पवन फिरावै॥
पहर-पहर भर पवन भरीजै। प्रथम अल्प अभ्यास करीजै॥

महाबंध की साधना का बड़ा चमत्कारी प्रभाव होता है। कवि के मत से जो योगी इसकी साधना करता है वह जरा, मृत्यु, मन्दाग्नि आदि पर विजयी होकर अमरत्व प्राप्त करता है।[1]

---

१. महाबन्ध करै अभ्यासा। अमृत अच पियासा॥
जरा मृत्यु देही नहिं आवै। महाबन्ध तीनौ गुन पावै॥
जठर अग्नि परचै बहुभारी। निशिदिन मांहि करै अठवारी॥

'घेरंड संहिता' में इसे जरामरणविनाशिनी तथा सकलसिद्धिप्रदायिनी मुद्रा कहा गया है :—

महाबन्धः परो बन्धो जरामरणनाशनः।
प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्ववांछितम्॥
—तृतीयोपदेशः, श्लोक २०

20:39
2015.493228.CharanDas
277/507

महाबंध के पश्चात् कवि ने मूलबंध का वर्णन किया है। गुह्य प्रदेश को एंड़ी से दबाकर भली-भाँति बंधे हुए अपान वायु को बल के साथ शनैः-शनैः ऊपर को खींचे। इस क्रिया का नाम मूलबंध है। यह बुढ़ापे और मृत्यु को दूर करती है।[1] 'घेरंड संहिता' के अनुसार वाम एंड़ी से गुह्यप्रदेश को संकुचित करे तथा यत्न के साथ मेरुदंड में नाभिग्रंथि को लगाकर दबावे तथा दक्षिण एंड़ी से उपस्थ को दृढ़ता के साथ दाबकर रखे, इसको मूलबन्ध कहते हैं। इस मुद्रा से बुढ़ापा निकट नहीं आता है।[2] मूलबन्ध के इस शास्त्रीय विवेचन से चरनदास का पूर्ण मतैक्य है। कवि ने परम्परागत विचार धारा के अनुसार बाईं एड़ी से गुदा-प्रदेश के संकुचन और यत्न के साथ मेरुदंड नाभिग्रन्थ को लगाकर दबाने तथा दाहिनी एड़ी से उपस्थ को दृढ़ता के साथ दाबकर रखने की क्रिया का वर्णन तो किया ही है परन्तु विशेषता यह है कि कवि ने कपड़े की एक गेंद को गुदा के मध्य कस कर वायु को अवरुद्ध करने के उपाय का भी उपदेश दिया है। इस उपाय से भी नीचे की पवन ऊपर जाती है और सहज ही प्राण तथा अपानवायु मिलकर एक हो जाती है। कवि द्वारा वर्णित मूलबन्ध प्रकरण में कतिपय महत्वपूर्ण पंक्तियों को यहाँ उद्धृत करना असंगत नहीं होगा :—

अब मैं मूलबन्ध बतलाऊँ। ज्यों का त्यों साधन दिखलाऊँ॥
गुदा बास याका तुम जानो। गुदा द्वार बन्धन दे ठानो॥
बायें पांव की एंडी सेती। मूल द्वार रोकै करि हेती॥
ऊरध ही कूं खैंचन कीजै। शुकदेव कहै नीके सुन लीजै॥
अरु कबहू मन ऐसी धरै। आसन पदम करन कूं करे॥
कपड़े की इक गेंद बनावै। गुदा मध्य कसबंध लगावै॥
यों भी वायु सधै वा भांती। जोपै लाग रहै दिन राती॥
पवन तले की ऊपर जावै। प्राण अपान सहज मिल जावै॥
नाद बिंद रल मिलजा दोई। एक वर्ण साधै जो कोई॥

---

१. पादमूलेन सम्पीड्य गुदामार्गं सुयंत्रितम्।
बलादपानमाकृष्य क्रमादूर्ध्वं समभ्यसेत्॥
कल्पितोऽयं मूलबन्धो जरामरणनाशनः।

२. पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुंचयेत्ततः।
नाभिग्रंथि मेरुदंडे संपीड्य यत्नतः सुधीः॥
मेढ्रं दक्षिणगुल्फे तु दृढबन्धं समाचरेत्।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धो निगद्यते॥
घे० सं०—तृतीयोपदेशः, श्लोक १४-१५

08:13

2015.493228.CharanDas

277/507

महाबंध के पश्चात् कवि ने मूलबंध का वर्णन किया है। गुह्य प्रदेश को एंडी से दबाकर भली-भाँति बंधे हुए अपान वायु को बल के साथ शनैः-शनैः ऊपर को खींचे। इस क्रिया का नाम मूलबंध है। यह बुढ़ापे और मृत्यु को दूर करती है।[1] 'घेरंड संहिता' के अनुसार वाम एंडी से गुह्यप्रदेश को संकुचित करे तथा यत्न के साथ मेरुदंड में नाभिग्रंथि को लगाकर दबावे तथा दक्षिण एंडी से उपस्थ को दृढ़ता के साथ दाबकर रखे, इसको मूलबन्ध कहते हैं। इस मुद्रा से बुढ़ापा निकट नहीं आता है।[2] मूलबन्ध के इस शास्त्रीय विवेचन से चरनदास का पूर्ण मतैक्य है। कवि ने परम्परागत विचार धारा के अनुसार बांई एड़ी से गुदा-प्रदेश के संकुचन और यत्न के साथ मेरुदंड नाभिग्रन्थ को लगाकर दबाने तथा दाहिनी एड़ी से उपस्थ को दृढ़ता के साथ दाबकर रखने की क्रिया का वर्णन तो किया ही है परन्तु विशेषता यह है कि कवि ने कपड़े की एक गेंद को गुदा के मध्य कस कर वायु को अवरुद्ध करने के उपाय का भी उपदेश दिया है। इस उपाय से भी नीचे की पवन ऊपर जाती है और सहज ही प्राण तथा अपानवायु मिलकर एक हो जाती है। कवि द्वारा वर्णित मूलबन्ध प्रकरण से कतिपय महत्वपूर्ण पंक्तियों को यहाँ उद्धृत करना असंगत नहीं होगा :—

अब मैं मूलबन्ध बतलाऊँ। ज्यों का त्यों साधन दिखलाऊँ॥
गुदा बास याका तुम जानो। गुदा द्वार बन्धन दे ठानो॥
बायें पांव की एंडी सेती। मूल द्वार रोकै करि हेती॥
ऊरध ही कूं खैंचन कीजै। शुकदेव कहै नीके सुन लीजै॥
अरु कबहू मन ऐसी धरै। आसन पदम करन कूं करे॥
कपड़े की इक गेंद बनावै। गुदा मध्य कसबंध लगावै॥
यों भी वायु सधै वा भांती। जोपै लाग रहै दिन राती॥
पवन तले की ऊपर जावै। प्राण अपान सहज मिल जावै॥
नाद बिंद रल मिलजा दोई। एक वर्ण साधै जो कोई॥

---

१. पादमूलेन सम्पीड्य गुदामार्गं सुयंत्रितम्।
बलादपानमाकृष्य क्रमादूर्ध्वं समभ्यसेत्॥
कल्पितोऽयं मूलबन्धो जरामरणनाशनः।

२. पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुंचयेत्ततः।
नाभिग्रंथि मेरुदंडे संपीड्य यत्नतः सुधीः॥
मेढ्रं दक्षिणगुल्फे तु दृढबन्धं समाचरेत्।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धो निगद्यते॥
घे० सं०—तृतीयोपदेशः, श्लोक १४-१५

08:11
2015.493228.CharanDas
279/507

हिरदै प्राण पूरकरि रहिये । बंध जलंधर यासूं कहिये ।।
अरध पवन नीचे को जाय । अरध पवन ऊरध कूं लाय ।।
उदर मध्य लै ताहि विलोय । ब्रह्म रन्ध्र जा पहुंचै सोय ।।
इह विधि ब्रह्म पंथ कूं धावै । सहजै सहजै मध्य समावै ।।
जरामरण जहं भय नहिं व्यापै । लहै अमर पद होरह आपै ।।
चरणदास शुकदेव बतावै । जोपै बंध उड्यान लगावै ।।

प्रस्तुत उद्धरण की पंक्तियों में वर्णित जालंधर बन्ध का विषय 'ब्रह्मयामल' एवं 'घेरंड संहिता' से पूर्णरूपेण साम्य रखता है। इसके अतिरिक्त कवि ने वायु संचार और नियंत्रण पर विचार व्यक्त करके विषय को और भी अधिक बोधगम्य बना दिया है। शैली की दृष्टि से दुरूह विषय को कवि ने सरल एवं स्पष्ट बनाने का प्रयत्न किया है।

जालंधर बन्ध के पश्चात् कवि ने उड्डीयानबन्ध का उल्लेख 'अष्टांगयोग' प्रकरण में किया है। शास्त्रकारों के मत से नाभि के ऊपर के भाग और पश्चिम द्वार को उदर के समभाव में सिकोड़े अर्थात् उदर के अधोभाग में स्थित गुह्यादिचक्र स्थित समस्त नाड़ियों को नाभि के ऊपर को उठावे। इसी का नाम उड्डीयानबन्ध है। यह बन्ध मृत्युरूपी हाथी के हेतु सिंह सदृश्य है।[1] योगयुक्त व्यक्ति प्रतिदिन चार बार इस उड्डीयान बन्ध का आचरण करे तो उसकी नाभि शुद्ध और मरुत् शुद्धि हो जाती है। षट्मास तक इस बन्ध का अभ्यास करने मात्र से योगी मृत्युंजय हो सकता है। इसका आचरण करने वाले व्यक्ति की जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है एवं शरीर में पुष्टि करने वाला रस संचालित होता है। इसके प्रसाद से योगियों के रोग नष्ट हो जाते हैं।[2] 'दत्तात्रेयसंहिता' में भी उल्लेख मिलता है कि उड्डीयानबन्ध का

---

१. उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वन्तु कारयेत् ।
उड्डीयानं कुरुते यत्तदविश्रान्तं महाखगः ।।
उड्डीयानं त्वसौ मृत्युमातंगकेसरी इव ।।
घे० सं०—तृतीयोपदेशः, श्लोक १०

२. नित्यं यः कुरुते योगी चतुर्वारं दिने दिने ।
तस्य नाभेस्तु शुद्धिःस्याद्येन शुद्धो भवेन्मरुत् ।।
षण्मासमभ्यसेद्योगो मृत्युं जयति निश्चितम् ।
तस्योदराग्निर्ज्वलति रसवृद्धिश्च जायते ।।
रोगाणां संक्षेपश्चापि योगिनां भवति ध्रुवम् ।
गुरोर्लब्ध्वा तु यत्नेन साधयेच्च विचक्षणः ।।
निर्जने सुस्थिते देशे बन्धं परमदुर्लभम् ।

05:16

2015.493228.CharanDas

317/507

काया माया जानिए, जीव ब्रह्म है मित्त।
काया छुटि सूरत मिटे, तू परमातम नित्त ॥
पाप पुरय आशा तजौ, तजौ मान और थाप।
काया मोह विकार तजि, जपै सु अजपा जाप ॥
आप भुलानो आप में, बन्धो आप ही आप।
जाको ढूढत फिरत है, सो तू आपहि आप ॥
इच्छा छुई बिसरि कर, होय न क्यों निर्वास।
तू तौ जीवन मुक्त है, तजो मुक्ति की आस ॥

स्वरोदय के अनेक भेद-प्रभेद के वर्णन के बीच इस प्रकार के कथन उनके उस सिद्धांत की ओर संकेत करते हैं जिसका सम्बन्ध विशुद्ध आत्म-तत्व से है।

शैव-सम्प्रदाय के 'शिव स्वरोदय' में स्वरों और नाड़ियों का ज्ञान शिवचरण प्राप्ति के अनन्तर लौकिक सिद्धियों के हेतु विशेष कर लाभप्रद प्रमाणित किया गया है। इसीलिए अनुरूप-विपरीत लक्षण, वशीकरण, गर्भप्रकरण, संवत्सर प्रकरण, रोग प्रकरण, काल प्रकरण आदि का विधान किया गया है। यह योगियों का प्राचीन सम्प्रदाय है और उसमें शिव को सर्वोच्च स्थान दिया गया। श्री चरनदास शिव और हरि, दोनों को शून्य महल का अधिकारी मानते हैं :—

सुषमन मारग ह्वै चलै, देखै खेल अगाध।
शक्ति जाय शिव सो मिले, जहां होय मन लीन ॥

× × ×

काल जीति हरि सों मिलै, शून्य महल अस्थान।
आये जिन साधन करी, तरुण अवस्था जान ॥

इस स्थान की प्राप्ति करने के लिए दशों द्वारों को पार करना पड़ता है। उनका यह भी कहना है कि इस प्रकार की समाधि लगाने पर काल तक वश में हो जाता है :—

जोगी प्राण उतारिए, लेहि समाधि लगाय।
काल जीति जग में रहै, मौत न व्यापै ताहि ॥
दशौ द्वार को फोरि कै, जब चाहै तब जाहि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चरनदास का मन्तव्य योगमार्ग का व्यावहारिक स्वरूप सामने रखना था, जो 'शिवस्वरोदय' की परम्परा का वह विकास है जहाँ कुछ समानताएं भी हैं और भिन्नता भी। उनका स्वरोदय गंगा और यमुना का वह संगम है जहाँ दोनों की लहरें प्रकाश पाती हुई एक नये मार्ग की ओर चल रही हैं और कहना असत्य न होगा कि यह नया मार्ग भक्ति के सजल घनों से भी

08:16

2015.493228.CharanDas

253/507

अब न बमै गज्जें समुद्र की दशम मेघ घोषहि सुने।
कहि सुन्दर अनहद नाद कौ दश प्रकार योगी सुनै॥

ज्ञान समुद्र—तृतीयोल्लास ६७

प्रकार के नाद का अनुभव साधक को होता है, उसी की वह अभिव्यक्ति कर देता है। नाद श्रवण के विषय में कोई विशेष नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

यह तो हुआ अपान वायु और नाद को जाग्रत करने का उपाय। अब कवि के मुख से अनहद नाद जाग्रत करने की विधि सुन लीजिये। कवि द्वारा वर्णित यह विधि सरल एवं स्पष्ट है अतएव उसे यहाँ अविकल उद्धृत किया जाता है :—

खुलै जो अनहद नाद ज्यों सो साधन सुनि लेहु।
जासों पहुँचे सिद्धि को या करणी चित देहु॥
चक्राधार सौं खैंचि करि अपान वायु सजलेहु।
स्वाधिष्ठान के पास ही तीन लये है देह।

वाकी विधि सब तोहि सुनाऊँ। जैसे है तैसे समझाऊँ॥
पहले मूल द्वार को शोधै। बंध लगाय अपान निरोधै॥
पहिले चक्कर में ठहरावै। खैंचि दूसरे के ठिक लावै॥
वाके आसो पास फिरावै। दहिने तीनि लपेट लगावै॥
फिरि मणिपूरक में पहुँचावै। फेरि अनाहद में ले जावै॥
अनहद खुलै सुनै सुख पावै। फिरि हां प्राण अपान मिलावै॥
हिरदय कंठ मध्य ठहरावै। संयम सों ताको पर चावै॥
बन्ध दूसरो तहाँ लगावै। चरणदास शुकदेव बतावै॥

पहिलें अनहद नाद खुलै हिय ऊपरै।
कंठ सु नीचे रोंकि ध्यान हाई धरै॥
जहां अपरबल होय जु अनहद शब्द ही।
फिरियों जानो जाय कंठ के मध्य ही॥
तहां किये अभ्यास ध्यान राखै घना।
होवै अधिकीनाद सुनै साधू जना॥
केतक द्योसन मांहिं ब्रह्मरन्धर कने।
जाय खुलै जहं नाद सुरति दे हा सुनै॥
शनै शनै यों होय जानें कोइ साध ही।
हिरदय अरु ब्रह्म लोकलों एकै नाद ही॥
मीठी और सवाद बहुत ही पाइये।
सतगुरु के परताप जहां मन लाइये॥
ब्रह्म लोक की बात सुनै होवै जुहां।
सब ही सूझै वस्तु जु कछु होवैं तहां॥

08:14

2015.493228.CharanDas

273/507

मुद्रा के माहात्म्य वर्णन से करने पर ज्ञात होता है कि चरनदास ने खेचरी साधना का माहात्म्य बड़े विस्तार के साथ वर्णित किया है। योग दर्शन के किसी भी ग्रन्थ में इस मुद्रा साधना का महत्व इतने विस्तार के साथ नहीं उपलब्ध होता है। इस उद्धरण की प्रथम बारह पंक्तियों में कवि ने खेचरी साधना से हठयोग साधना में जो सहायता प्राप्त होती है उसका उल्लेख किया है। शेष अंश में उसके महत्व या माहात्म्य की अभिव्यक्ति हुई है।

कवि द्वारा वर्णित द्वितीय मुद्रा भूचरी है। शास्त्रकारों का कथन है कि नासिका के अग्रभाग से चार अंगुल दूर रहे हुए अवकाश में मन को स्थिर करना भूचरी है। अष्टांग योग की साधना में धारणा के सिद्धि के हेतु प्रस्तुत मुद्रा का अभ्यास श्रेयस्कर हैं। इसकी साधना से योगी को अलौकिक सुख प्राप्त होता है। उसे दैहिक, दैविक तथा भौतिक संताप दग्ध नहीं करते। सांसारिक कष्ट उसे व्यथित और पीड़ित नहीं करते। 'घेरंड संहिता' में इस मुद्रा के विषय में कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है। चरनदास के शब्दों में अब भूचरी मुद्रा की प्रक्रिया पढ़िये :—

दूजी मुद्रा भूचरी, नासा जाको वास।
प्राण अपान जुदी जुदी, एक करै चरणदास॥
जितकी तित रख प्राण को, वा घर लाय अपान।
ताहि मिलावै युक्ति सूं, करि करि संयम ध्यान॥
जब वह जीतै पवन कूं, मन चंचल ठहराय।
गगन चढ़न की आश हो, कहै शुकदेव सुनाय॥
गुदा द्वार बंध दीजिए, एंडी पांव लगाय।
आसन सिद्ध जु कीजिए, मन पवनावश लाय॥

अपान वायु जब वशभवे, ऊरध खैंच लचाय।
सनई सनई जाचढै, प्राण वायु है जाय॥

चांचरी मुद्रा का वर्णन कवि ने भूचरी के अनन्तर किया है। आज्ञा चक्र में मन को अवरुद्ध करना चांचरी मुद्रा है। शास्त्रकारों के मत्यानुसार पक्षान्तर में इसको खेचरी मुद्रा भी कहते हैं, परन्तु चरनदास द्वारा वर्णित खेचरी और चांचरी की साधना, प्रक्रिया और महत्व एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं, अतः इससे स्पष्ट है कि कवि योगशास्त्रकारों की भाँति पक्षान्तर मे इसको खेचरी नहीं मानता है। कवि के शब्दों में चांचरी मुद्रा निम्नलिखित है :—

तीजी मुद्रा चांचरी जाको नैनन वास।
नासा आगे दृष्टि कूं राखै मन धर आस॥

अंगुल चार नासिका आगे। चित अस्थिर करि देखन लागे॥
खुले पाँच तत्त करै जु कोई। मन अरु पवन जहाँ थिर होई॥
फिरि हांसूं नासा परि आवै। अचल टकटकी तहाँ लगावै॥
जहं बहुतक अचरज दरसावै। विभव स्वर्ग के आगे आवै॥
जित सूं पलट तिरकुटी मांहीं। ध्यान करै कहुं अन्त न जाहीं॥
दीरघ तारा सा परकासै। उदय होय सूरज ज्यों भासै॥
चित चेतन दोउ मेला करै। लै उपजै अरु दुविधा हरै॥
यही चांचरी मुद्रा जानै। चरनदास याकूं पहिचानै॥

विगत पृष्ठों में भूचरी की विवेचना करते हुए लिखा गया है कि शास्त्रकारों का कथन है कि नासिका के अग्रभाग से चार अंगुल दूर रहे हुए अवकाश में मन

08:13
2015.493228.CharanDas

महाबंध का जो सविस्तार विवेचन ऊपर भिन्न-भिन्न योगदर्शन के ग्रन्थों में हुआ है, उसको सूत्र रूप में चरनदास के निम्नलिखित पद्यांश में पढ़िये। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कवि की महाबंध विषयक धारणा और शास्त्रीय-मत में कोई अन्तर नहीं है। अत: कवि की इस रचना में परम्परागत सैद्धांतिक विचार-धारा ही प्रमुख है। अब कवि के शब्दों में इस वर्णन को सुनिये :—

महाबन्ध तोहि पहल बताऊं। पाछे मूलबन्ध सम गाऊं॥
बायां पांव सिवन गहि दीजै। मूलद्वार एड़ी बंध कीजै॥
दहिनी जंघ जंघ पर लावै। गउमुख आसन नाम कहावै॥
राखै चिबुक हृदय पर लाय। पवनराह पूरब को जाय॥
ध्यान त्रिकुटी संयम करै। प्राणवायु हिरदे में धरै॥
महाबन्ध ऐसे करि साधै। गुरु प्रताप यांहीं आराधै॥
बिना पुरुष तिरिया कूं जानौ। बन्ध बिना मुद्रा पहिचानौ॥
निरफल जाय पुरुष बिन नारी। महाबन्ध बिनु मुद्रा धारी॥
मांहि कंठ के ध्यान लगावै। सुरत निरत ह्वांई ठहरावै॥
महाबन्ध अस्थत करै, सो योगी ह्वै जाय।
पवन पंथ मुंदित करै, ध्यान कंठ में लाय॥

शशिघरकूं सूरज पर लावै। रेचक पूरक पवन फिरावै॥
पहर-पहर भर पवन भरीजै। प्रथम अल्प अभ्यास करीजै॥

महाबंध की साधना का बड़ा चमत्कारी प्रभाव होता है। कवि के मत से जो योगी इसकी साधना करता है वह जरा, मृत्यु, मन्दाग्नि आदि पर विजयी होकर अमरत्व प्राप्त करता है।[१]

---

१. महाबन्ध करै अभ्यासा। अमृत अच पियासा॥
जरा मृत्यु देही नहिं आवै। महाबन्ध तीनौ गुन पावै॥
जठर अग्नि परचै बहुभारी। निशिदिन मांहि करै अठवारी॥

'घेरंड संहिता' में इसे जरामरणविनाशिनी तथा सकलसिद्धिप्रदायिनी मुद्रा कहा गया है :—

महाबन्धः परो बन्धो जरामरणनाशनः।
प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्ववांछितम्॥
—तृतीयोपदेशः, श्लोक २०

08:19
2015.493228.CharanDas
233/507

शिव शक्ति में लाभ वंय, रहै न द्वितीया भाव।
कुंडलिनी परबोध का, जो कोइ करै उपाव ॥

ऊपर उल्लेख हो चुका है कि सुषुम्णा नाड़ी के निम्न मुख में कुंडलिनी का निवास स्थान है। प्राणायाम के अभ्यास से जाग्रत होकर यह दिव्य शक्ति सुषुम्णा के सहारे आगे बढ़ती है और विभिन्न चक्रों (सुषुम्णा के अंगों) से होती हुई कुंडलिनी ब्रह्मरन्ध्र की ओर अग्रसर होती है। कुंडलिनी की गति के साथ-साथ मन को भिन्न-भिन्न शक्तियां प्राप्त होती चलती है और सहस्त्र दल कमल में प्रविष्ट हो जाने के अनन्तर साधक मन और शरीर से पूर्णतया अलग हो जाता है। कुंडलिनी के निवास स्थान एवं शक्तिमत्ता का वर्णन अब कवि के शब्दों में सुनिये :—

नाभि स्थान नागिनि रहै, कुंडल शशी अकार।
प्राण पियारा वही है, आगे सुनौ विचार ॥
कुंभक कर्म्म कोई करै, देवै शक्ति जगाय।
जैसे लागी लष्टिका नागन शीश उठाय ॥

सीखी गुरु सों कुम्भक साधै। नीकी विधि ताको अवराधै ॥
पवन ठवकलग ताहि जगावै। तब ऊरध को शीश उठावै ॥
नाभि ठौर ताका है बासा। पद्म पराग मणि ज्यों परकासा ॥
सात लपेट वाई आनौ। ताते शुक्र कुंडली मानौं ॥
नाड़ी सहस लगी हैं वाको। सो पर छुटी जानिको ताको ॥
जिनमें तीन नारि अधिकाई। इडा पिंगला सुषमन गाई ॥
तिनके माहिं शिरोमणि सुषमन। नाल कमल जानत योगी जन ॥
बाय पहुँचि ब्रह्मरंधर ताही। ऊरध कमल सातवें माहीं ॥
आवन जो न पवन की बाटा। सकत चढ़न ऊरध का घाटा ॥

नागिनि सूक्ष्म जानिये, बाल सहस वा भाग।
शुकदेव कहैं अकारही, रक्त बरण ज्यों नाग ॥
कुंभक हो अत्यन्त जब, तब ऊरध को जाय।
ब्रह्मरन्ध्र में आयकर, बड़ी दोय ठहराय ॥
अमृत का करि पान ही, पूरण हो अभ्यास।
उड़ते देखै सिद्धि तब, वाको माहि अकास ॥

08:18
← 2015.493228.CharanDas
242/507

'घेरंड संहिता' में भी इन्हीं आठ प्रकार के कुम्भक को मान्यता दी गई है :—

संहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी, शीतली तथा ।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्ट कुम्भिकाः ॥
घे० सं०—पंचमोपदेशः श्लोक ४५

अर्थात् सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली भेद से कुम्भक आठ प्रकार के हैं।

कवि ने सर्वप्रथम कुम्भक की परिभाषा एवं प्रक्रिया अथवा साधना का वर्णन किया है, तदनन्तर कुम्भक के विभिन्न अष्ट भेदों का परिचय दिया है। कुम्भक की प्रक्रिया और परिचय से सम्बन्धित निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करने योग्य हैं :—

पवन पूर पूरक ही कीजै। पाछे बन्ध जलन्धर दीजै ॥
कुंभक रेचक के मांध जानै। झाई बन्ध उड्यान पिछानै ॥
पवन जोर ही सूं गहि लीजै। अर्ध ऊर्ध्व संकोच न कीजै ॥
मध्यम कीजै पश्चिम तानै। ब्रह्म नारिके माहि समानै ॥
नाड़ी पवन खैंचिये ऐसे। भरिये सब संध्यान जु जैसे ॥
अपान वायु कूं ऊपर लावै। प्राण वायु नीचे लै जावै ॥
जोपै यह साधन बनि आवै। योगी बूढ़ा होन न पावै ॥
तरुण अवस्था देखे ऐसी। नितही रहै जानिये जैसी ॥

कुम्भक की प्रक्रिया, लक्षण, स्वभाव तथा गुण आदि का वर्णन करने के अनन्तर कवि ने कुम्भक के अष्ट भेद का प्रारम्भ किया है। इस वर्णन में सर्वप्रथम प्रक्रिया का वर्णन किया है, तदनन्तर उसके लक्षण और महत्त्व का उल्लेख किया है। प्रायः यही क्रम आद्योपांत कुम्भक के समस्त भेदों का वर्णन करने में रखा गया है। कवि के मत से सूर्यभेद कुम्भक का सर्वप्रथम भेद है। योगशास्त्र के कुशल आचार्य घेरंड के मत से कुम्भक करते समय प्राणादि समस्त वायुओं को पिंगला नाड़ी से विभिन्न कर नाभिमूल देश से समान वायु को उठावे, पुनः धैर्य के साथ वेग पूर्वक वाम नासिकापुट से रेचन करे। तदनन्तर दक्षिण नासापुट से वायु भर कर सुषुम्णा से कुम्भक कर वाम नासा से रेचन करे। इस क्रिया को बारम्बार करना सूर्यभेद कुम्भक कहा जाता है।[1] दूसरे शब्दों में सावधानी पूर्वक सुगम आरामदेह आसन

१. सर्वे ते सूर्यसंभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत् ।
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाखंडवेगतः ॥
पुनः सूर्येण चाकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि ।
रेचयित्वा साधयेत् क्रमेण च पुनः पुनः ॥
घे० स०—पंचमोपदेशः ६५-६६

08:17
2015.493228.CharanDas
252/507

चरनदास के मतानुसार साधक अपानवायु की साधना करता हुआ जब उसे मोड़कर ऊपर ले आता है, तब कमल उलटा होकर आकाश की ओर मुख कर लेता है । ज्यों-ज्यों अपान वायु विभिन्न चक्रों से होती हुई अग्रसर होती है, त्यों-त्यों समस्त साधना सिद्ध होती जाती है । जब अपानवायु अनहद चक्र में प्रवेश करती है उस समय दश प्रकार के नाद प्रकट होते हैं ।[1] ये नाद निम्नलिखित हैं :—

१. पक्षी रव (चीं) २. पक्षी रव (चीं चीं) ३. क्षुद्र घंटा ४. शंख नाद ५, वीणा ध्वनि ६. ताल ध्वनि ७. मुरली ध्वनि ८. पखावज ध्वनि ९. नफीरि ध्वनि १०. सिंह गर्जन ।[2]

सुन्दरदास ने भी नाद के दश ही भेद माने हैं ।[3] चरनदास वर्णित नाद के प्रकारों का 'हठयोग प्रदीपिका' में वर्णित प्रकारों से भेद है । इसी प्रकार सुन्दरदास और 'हठयोग प्रदीपिका' द्वारा वर्णित प्रकारों में भी भेद है । तथ्य यह है कि जिस

---

१. अपान वायु कूं साधि करि ऊपर लावै मोड़ ।
जब होवै उलटे कमल मुख आकाश को ओड़ ॥
अपान वायु ज्यों ज्यों बढ़ै चक्र चक्र के पास ।
त्यों त्यों सीधे होय सब पूरा जान अभ्यास ॥
अपान वायु आवै जबै चक्र अनाहद मांहि ।
दश प्रकार के नाद ही शनैः शनैः खुलि जाहिं ॥

२. पहिले नाद सुने जो ऐसा । चिड़ी चीकला बोलै जैसा ।
एकहि बार कहै यो चिन्न । दूजी बार कहे चिन चिन्न ॥
क्षुद्र घंट ज्यों तीजी जानौ । चौथी नाद शसं पहिचानौ ॥
पंचवी नाद बीन ज्यों गावै । छठवीं उपज ताल ज्यों बाजै ॥
सतवीं नाद मुरलिया ऐसी । अठवीं उठै पखावज जैसी ॥
नवै नफीरी नाद सुनावै । दशवैं सिंह गरज उपजावै ॥
नौ तजि दशवै सू हितलावै । अनहद हनि अनहद हो जावै ॥
सोय जीव सों ब्रह्म अगाधा । जो कोइ सुनै सो अनहद नादा ॥

३. प्रथम भ्रमर गुंजार शंष धुनि दुतिय कहिज्जै ।
त्रितिये बजहिं मृदंग चतुर्थे ताल सुनिज्जै ॥
पंचम घंटा नाद षष्ट बीणा धुनि होई ।
सप्तम बज्जहिं भेरि अष्टम दुंदुभि दोई ॥
अब न वमै गर्ज्जै समुद्र की दशम मेघ घोषहि सुनै ।
कहि सुन्दर अनहद नाद कौ दश प्रकार योगी सुनै ॥
ज्ञान समुद्र—तृतीयोल्लास ६७

कड़के

संत पावै कोई संत पावै, एजी अर्थ अनुभव कोइ संत पावै ।
सच्चा हरि-नाम प्रतीत नहीं ताको, भ्रम में सब ही संसार गावै ॥१
सत की चाल गहो उलट चढ़ गगन को, गगन में अलख अरूप राया[१]।
समेट कर पवन जब सूर ससि गेह लिए, भया युक्त-बंध तब दर्श पाया ॥२
नैन सू नैन मिल निरत[२] लागा रहै, निरत के निकट स्थिर थाना ।
उलट कर दृष्टि जब पछम को देखया, आत्मा रूप बिरले पहिचाना ॥३
श्रवण सूं श्रवण मिल शब्द-धुन उपजे, सुनत ही जन्म और मरण नासै ।
पवन गई धोय सहज निर्मल भया, निर्मली ज्योति मस्तक प्रकासै ॥४
हंस सूं हंस मिल केलि[३] करें, केली कर ममत को नीर त्यागै ।
दास पानप कहै हंस मुक्ता चुगें, सरोवरमान के तीर लागै ॥५

—:)o(:—

झूलने

मेरा लाल अमोलक[४] अंतरयामी, रहा सब ही घट में छाय भी तो ।
व्याकुल सोवे जो लाख सहेलियों में, वह तो सोती को लेह जगाय भी तो ।१
बूझ सूझ सतगुरु महरम कीता, दीना भक्ति को भेद बताय भी तो ।
पाचों तार कच्चे किये इकट्ठे ही, दीनी द्रुम में कमन्द[७] लगाय भी तो ।२
चढ़े स्वर्ग-द्वारे गुन तीन तजै, रहैं चोथे सूं ध्यान लगाय भी तो ।
उलटे तेज द्वादस भया उजियारा, गया सब अंधेरा नसाय[५] भी तो ॥३
आगे काग होते अब हंस हुए, बसै मानसरोवर जाय भी तो ।
पानपदास सतगुरु प्रताप कहैं, चौड़े बैठा मुक्ति-फल खाय भी तो ॥

१=राजा, ४=अनोखा २=अनुरक्त, तत्पर, ३=क्रीड़ा, सुख-शयन, ५=नाश,
७=कमंद=रस्सी

कांचन में आसक्त होते हैं, मान, यश, पूजा इनका ध्येय होता है; इनके कर्म पाखंडों से भरे होते हैं। "जो नर मारा गुरुओं ने, कहै पानप गुरू न होय" वास्तव में गुरु वह हैं जिनको आत्म-ज्ञान होता है। पानपदास जी ने गुरु पहिचान का वर्णन किया है:—

"सोई प्रमान, सुरज्ञान मनसा गहे, वही गुरुदेव को मन्हे माने।
सुरत सूधी करे, निसाना नाक सुध, दोऊँ को जोड़, ले गगन तानै ॥१
गगन में सुन्न है, सुन्न में नीर है, नीर में निर्मल जोति पहचानै।
सुरत परचा लहै, देख अनभव कहै, चन्द और सूर घर एक आनै ॥२
आत्म-देव बिन भेष परगट रहै, वह तो है अगम नहीं निगम जानै।
पानपदास रंरकार में रम रहो, तत् झंकार सूँ रुचि मानै ॥३"

सतगुरू पग-पग पर सावधान करते हैं, कुपथ से बचाते हैं, त्याग और सदाचार सिखाते हैं, अपने आचरणों की पवित्रता के प्रभाव से शिष्य का हृदय शुद्ध और निर्मल करते हैं जिससे सब संशय दूर हो जाते हैं और मन आत्म-विभोर हो जाता है:—

औघट घाटी मनसा चढ़ी, यो मन बंधा बिन रसरी।
गुरु लखाया आत्म राम, पानप परस लह्यो बिसराम ॥

ऐसे गुरुजनों के हृदय में मद, मान, मोह नहीं होता; वह जल में कमल की भांति संसार में परमार्थ हेतु विचरते हैं; जिनकी शरण में जाकर जीव अपने स्वरूप को पहचानता है।

यह संत समागम दुर्लभ होने पर भी, तीव्र मुमुक्षु को अप्राप्त नहीं है। श्रद्धा सहित अन्वेषण करने से गुरू प्राप्ति हो सकती है। पर प्रथम अधिकारी बनना चाहिये। गुरू उपदेश पर दृढ़ता से चलना चाहिये। गुरू केवल मार्ग बताते हैं; उस पर चलना शिष्य का काम है। सच्चा गुरु-मुख बन कर, गुरू की वाणी को प्रमाण माने, और जीवन को गुरू आदेश अनुसार ढाले:—

जिस विधि सतगुरु मरा, यों चेला मर जाय।
तत् ठिकाने पहुँच है, धोखा रहै न काय ॥

-:●★●:-

The Yogi does not care about the posture, food and dress but observes patience, contentment and compassion and thus he is not charmed by Maya. He having burnt the three qualities intertia तमोगुण mobility (रजोगुण) and harmony (सतोगुण) attains the fourth goal where the angel of death torture him not.

मनो जीतं योग युक्ता, रिपु-वायू[1] रोकन्त मूल बंधं ।
षट-चक्र बेधन्तं बुद्धस्य मानवी, वास[2] स्वांस[3] सनो[4] सन्धं[5] ॥३०
सतो सन्धं पवन बन्धं, रवि शशि करत इकतरं[6] ।
जस्य स्थानं जोतस्य जोती, तस्य दर्शनं भवातिरं ॥ ३१
भवातिरं अजग[7] जरं, पंच इन्द्रिय विष तजन्तं ।
हर हर धुनि जिह्वा नासतं[8], एवं सत्यं[9] तत्त फलं ॥ ३२

मन को वश में रखने वाला योगी योग-युक्त कहलाता है । वह योगी मूलबंध क्रिया द्वारा अपान वायू को स्थिर करता है । मूलाधार-चक्र में कुण्डलीनी शक्ति विराजमान है । प्राणायाम से जागृत होकर यह शक्ति मेरुदण्ड के भीतर प्रविष्ट होकर ऊपर को चलती है, जहां प्रकाश दिखाई पड़ता है । इस लिए ज्ञानी पुरुष अपने शरीर में छः चक्रों को शुद्ध करते है और अपान व प्राण वायू को ठीक रीति से निरोध करके उनको मिलाते हैं ।

इस प्राण व अपान वायू के मेल से शुद्धि व स्थिरता प्राप्त होती है इड़ा, पिंगला नाड़ियां सुषमना में लीन हो जाती हैं । फिर उस स्थान का जहां ज्योति का प्रकाश फैला हुआ है दर्शन मिलता है; जिसके दर्शन से मुक्ति हो जाती है, मन का निग्रह हो जाता है, पांचों इन्द्रियों के विषय व काम, क्रोध, लोभादि छूट जाते हैं और राम-नाम धुन जिह्वा से न होकर स्वांस द्वारा स्वतः होती रहती है । इस योग साधन का ऐसा वास्तविक फल है ।

१=अपान वायू २=अपान, ३=प्राण, ४=ठीक प्रकार, ५=युक्त करना ६=इकट्ठा करना, ७=मन, ८=नहीं होता, ९=वास्तविक ।

१—राग नट

सांच बिना सुख नाहीं भाई साधो, सांच बिना सुख नाहीं ॥टेक
सांची कहूं ना माने कोई, मिथ्या धूं सिर मारे।
भवजल माहि जिहाज नाम बिन, कहो कौन-कौन पार उतारे ॥१
सांची संत विचार कहत हैं, बिरला चित्त बसावै।
चन्दा सूर इक कर राखै, तो अलख पुरुष दरसावै ॥२
सांची सूरत लाय मन राखै, पल एक थिर ठहराई।
सहजै प्रगटै उजियारी, तिमर सब नस जाई ॥३
एक भवन जाके दस दरवाजे, ना वे खुले सोई द्वारा।
नौखंड खोज दसों दिस खेले, सोई गुरु हमारा ॥४
सुन्न सरोवर निर्मल तीरथ, नहाय सो उज्जल होई।
सेवा पूजा सनमुख आत्म, और न दूजा कोई ॥५
शब्द हमारा न पहचाने, भ्रम में जन्म गवांवै।
कहै पानप बिन शब्द गुरु के, जन्म-जन्म दुख पावै ॥६

२

हार पड़े हरिद्वारे, अब हम हार पड़े हरिद्वारे।
जाकू लाग जिहाज ताहि को, सोई पार उतारे ॥टेक॥
जैसे अंध लकड़या गेह के, ताहि की सुध विचारे।
ताकी सुध न ठोकर लागै, ऐसे हरि-नाम हमारे ॥१
अगम अगोचर ठांव बताई गुरु, जहां बड़ नाम उचारे।
वा थल थीर अचल भयो मन, अकल टरत न टारे ॥२
जाकू ढूंढ़त बहु जुग बीते, सो प्रभु नाहीं न्यारे।
कहै पानप सुनयो भाई साधो, मैं सतगुरु के बलिहारे ॥३

नाम लीला

उचरू सत्य नाम की बानी, बिरला हरजन पावै ।
जाको लगन लगी मन माहि, युक्ता युक्ति बनावै ॥१
पहिले अष्ट कवंल को बांधे, भमरी संग गह लावै ।
निरत लगाय नाभि को सोधे, पवना अगम बसावै ॥२
ससि[३] और सूर दोऊ सम राखे, तब घट में दरसन पावै ।
घट देखा जिन सब जग देखा, यह जगत निकट नही आवै ॥३
परगटि[४] जोति तेल बिन बाती, अचरज कहा न जाई ।
पानपदास नाम की महमा, गुरु-गम से पाई ॥४

दोहा— घर में रतन अमोल है, पानप कहै विचार ।
बिन सतगुरु पावै नहीं, यह जगत रहा सिर मार ॥१

नाम प्रताप बड़ा रे भाई, ताको झाल[६] न व्यापै काई ।
नाम प्रताप कुछ नही व्यापे, हरजन तजै पुन और पापे ॥५
जैसे अग्नि प्रचन्ड बन माहि, आला सूखा दे जराई ।
ऐसे नाम हृदय जन धरै, तन विकार ताहि के हरै ।६

दोहा:—कहै पानप नाम प्रचन्ड है, जो कोई हृदय बसवै ।
माया मोह जाल नहीं व्यापे, तो हर घर ही में पावै ॥२

१—ज्ञान-सुखमनी

सत् सुकृत का गहियें संग, सच्चा लगै नाम सूं रंग ।
साधु धरै सुन्न में ध्यान, निर्मल उपजै ब्रह्म-ज्ञान ।
घर-घर ध्यान ब्रह्म को देखे, दरसै ब्रह्म कर्म सब मेटे ।
हरजन ऐसी युगत उपावै, कहै पानप भवजल नही आवै ।

३=चन्द्रमा, ४=प्रकटि ६=तीक्षापन ।

राग रामकली

गांऊगो गुण गांऊंगो, सुमर[1] सुमर गुन गांऊगो ।
जो कोई जीव भ्रम सूं छूटे, हरि यश गाय सुनाऊँगो ।।टेक
पांच पचीसो पवन बांध के, अधर में अधर झुलाऊंगो ।
आत्मराम निरन्तर सेवा, मैं अनहद-बीन बजाऊंगो ।१
मानसरोवर मोती हंसा, हंस सूँ हंस मिलाऊंगो ।
मिलके हंस एक भए जब, ममता नीर बहाऊँगो ।२
चौड़े माहि ब्रह्म की भाटी, पवन को झोक लगाऊंगो ।
टपके अमी पीऊँ निस-बासर, देह विकार मिटाऊंगो ।३
तीर्थ जाऊं न नीर झकोरू, झूटी प्रतीत न लाऊंगो ।
गंग जमन बिच मिली सरस्वती, मैं घट ही भीतर नहाऊंगो ।४
कहै पानप मिल साधु संगत, तब जुगत भक्ति की पाऊँगो ।
सांची भक्ति करूं मनसांसू, मैं बहुर न भवजल आऊंगो ।५

राग सारंग

संत समागम दीजे मोही, तिन में प्रभु पाऊँ मैं तोही ।।टेक।।
संत बड़े तेरे दरबारी, तिन में पाऊं प्रभु खबर तुम्हारी ।१
तापर ते जन होंय दयाला, चरण दिखाये देत ततूकाला ।।२
संत मिलें तो हरि रंग लागै, संत मिलें तो सब भ्रम भागै ।।३
संत चरण की कर मोहि धूरी, कहै पानप पाऊं मति पूरी ।।४

१=सुमरण

राग बिलावल

कोई जोगी जुगत कर जागे,
सतगुरु-शब्द विचारो खेले, सकल भ्रम को त्यागे ॥टेक॥
सुन्न ही में ध्यान, सुन्न ही में धुनि, सुन्न में आसन मांडे ।
जिन संसय ने सब जग खाया, ता संसय को डांडे ॥१
आसन त्याग अंत न जाई, नव खंड रामत खेले ।
जोगनकू[१] पल चलन न देई, संग गहे पाँचों चेले ॥२
ज्ञान की मौज[२] अर्थ[३] को चांदन, गगन चढ़ो ततकाला ।
सदा मस्त हरि रस को अमली[४], पीवे प्रेम प्याला ॥३
नैन नासिका अग्रह आसन, वहां पुरुष अविनासी ।
पल पल में दरसन का लोभी, जगसूं[५] रहत उदासी ॥४
अड़ा रहे अलख दर्शन में, ऐसा हट्टी योगी ।
भेष अलेख रंग बहू रंगी, कहै पानप राम वियोगी[६] ॥५

२

धृग धृग जग में जीवना, बिन प्रभु की याद ।
ता साधे प्रभु को मिले, मन सको न साध ॥टेक॥
याद बिना बरबाद है, यो मानुष देही,
संग पिछाना ना पड़े, तेरा परम सनेही ॥१
निगम मरम जाने नहीं, वह वस्तु अगाध,
सुरत लगावे सुखमना, सुनो अनहद नाद ॥२
लख चौरासी में संग रहो, संगी आदि अनादि ।
यो अवसर हरि मिलन को, सोई अहला जाय ॥३
याद धरे तेइ मानुसा, कहै पानप दास ।
अंतरसूं अक्षर लगे, पावे चरण निवास ॥४

२—लहर, ३—जाने को, =४—नशे बाज, ५—बिछुड़ा हुआ ६—सुरत, चित

04:32
sant panap das ji.pdf

नाम लीला

गङ्गा जमना ग्रौर सरस्वती, बहै ग्रमी[1] की धारा ।
ताकू उलट पीवै जो कोई, मिट जाये देह विकारा ॥१
ताकू पीवै युक्त योगी, नैन निरन्तर ठावां ।
जिन चाखा तिन स्वाद बखाना, हृदय धर हरि नामा ॥२
काया कांसी गुरु-गम[2] जानी, जहां बहै त्रिवेनी धारा ।
तहां मरते मुक्ता होई, है कोई पहुँचन हारा ॥३
मनसूं मन मिल भया उजाला, मिल नैन सूं नैंना ।
सुरत मिली जहां निरत बिराजे, तब उपजे ग्रमृत बैना[3] ॥४
नाम ग्रधार सार सत सोई, वेद भेद नहीं पावै ।
होय उदासी जग में कोई, सो सत-गुरु मरम बतावै ॥५
हर-हर रटन लगे निसबासर, मुख जीहा[4] नहीं चहिए ।
ऐसी बिध सुमरै जो कोई, तब ग्रमर पद लहिए[5] ॥६
ग्रब मन का भाखू बिसतारा, चंचल मन जग छल-छल मारा ।
या मन का कोई भेद न जाने, सुर नर मुनी सभी भुलाने ॥७
यह मन सहस्त्र कला धर खेले, कोई या मन कू ग्रंत[6] न खोले ।
यह मन पांच तत्व होय खेला, मन ही ग्राप फिरत ग्रकेला ॥८
यह गुण तीन मन की कला, इन त्रिगुण यह सब जग छला ।
यह मन पांच पचीसों भाई, मन की कला पकड़ नहीं पाई ॥९
मन का मरम संत कोई पावै, जाको सतगुरू भेद बतावै ।
परगट रहे देखन मन माहि, उलट देख सकता कोई नाहिं ॥१०
दोहा:—मन को देख उलट के, ब्रह्म ग्ररूपी सोय ।
कहे पानप ग्रकल कलासूं पावै, ग्रौर उपाय न सोय ॥

१=ग्रमृत, २=कृपा, ३=वचन, वाणी, ४=जिह्वा, ५=पहुंचे, ६=रहस्य,

शब्दी

सुरत तुम्हारी मन भी तुम्हरा, तुम्ही करने वाले ।
कहै पानप घेर बसावे मन में, तो गृहिणी दीवा बाले ॥१
अपने मन को खोज के, मन में सुरत मिलाव ।
हर हर धुन लागी रहै पानप, तब पहुँचे उस ठांव॥२
यो मन मरे नाम के जोरे, जो सुरत रटन को लागै ।
सुरत फंदी नाम के फंदे, कहै पानप पलक न लागै ॥३
जब लग मरै न सुरत मन, तबलग सरै न काम ।
मार सुरत मन कहै जन पानप, जीव पावै बिसराम ॥४
जो मन गया तो क्या रहा, जहां मन तहां तन जाव ।
कहै पानप वे सन्त जन मन को राखें ठांव ॥५
चंचल मन स्थिर किया, राखा सूर्त सूं बंध ।
तिमिर मिटा पानप कहै, बासा सत की संध ॥६
मूल-बंध अजपा जपे हरदम, सुरत निरत मन मिलावै ।
यह विध मनवा स्थिर होवे, यो पार-ब्रह्म को पावै ॥७
भज हरि-नाम तुरत होय परचा, मन स्थिर हो जाई ।
कहै पानप मन स्थिर हुआ, तब सुरत न चले चलाई ॥८
घर के आंगन कूड़ा बाढ़ा, ताको कौन बुहारे ।
घरवाली तो बाहर डोले, पानप कारज कौन संवारे ॥९
तिरया तारन हार है, जो गेह लीजे साथ ।
तिरया, पुरुष दो संग मिले, तब मिटी काल की घात॥१०
बेली एक डार बिन पत्ती, माहि चहुं-दिस फैली ।
देख अचम्भा कहा न जाई, मूल समानी बेली ॥११
गङ्गा जमना और सरस्वती, बहै अमी धारा ।
ताको उलट पीवै जो कोई, मिट जाए देह विकारा ॥१२

बसंत

काया बन मौलि[1] बसंत, फूल लगे बहु रंग।
कहै पानप वह दरस है, पाया प्रभु को संग ॥१
कहा रंग को देखे, देख ले रंगरेज।
कहै पानप निरखो सुरतसूं सुभ, मंडल में सेज ॥२
खेलत बसन्त जहां भक्ति रूप, प्रगट रही मूरत अनूप ॥टेक
वा मूरत के नहीं रूप रेख, वा मूरत में सूरत अनेक।
सूरत मूरत कोई नांहि, जगमग उज्यारे जगमगांहि ॥१
बिन केसर बिन अगर भुलाल, रँग बिना रंग अजब ख्याला।
छूटे पिचकारी अग्रह फुहार, जहां संत मढ़े हरदम सुमार[2] ॥२
ऐसे होरी खेलें हरके लोग, गाय सुनावें भक्ति-योग।
कहै पानप नीचसूं नीच, यो खेल देह प्रभु मांगू भीख ॥३

२

नैनन में छाय मधुर श्याम, धर मनसा दरसन अष्ट–आम ॥टेक
जहां खिड़की लागी तिल परिमाण[1], कोई संचे[2] सुरत हरजन सुजान।
आप आपमें लियो जोह[3], जित कित पलपल हर दरस होय ॥१
जहां पात न बेली[4] बिरछ नाहि, मानो पहुप बरसें दस दिसाई।
थकित भयो मन जिन्ह देख, वो तो पहुप नहीं दर्शन अलेख ॥२
हरिके गुन गावन की मोहि अधिक चाह, मेरी बुद्धि-हीन नहीं सके गाय
मगन रहूं हरि गुन के माहि, मैं तो देख गुणन के बसूं नाहि ॥३
हर हर धुन लागी मन माहि, मुख जिभ्या से कहना नाहि।
चढ़े पवन गगन बाजे अनहदनाद, कोई त्रिबेनी-तट सुने साध ॥४
हरि सर्वको सब में रहा समाई, भेख अह कोई हरिको नाहि।
हरजन हरिचर्णों रहे लौलीन, कहै पानप प्रभु को पायो चीन्ह ॥५

१=माप, २=बटोरे, ३=देख लिया, ४=भूलकर, ५=वृक्ष, ६=जिसका

राग सोरठा

भौंरा कँवले खोज ताहि में रहिए, तबकर कँवल अनंत न कहिए।।टेक
वाही कँवल माहिं घर तेरा, ताका करले तू खोज सवेरा ।
अबके कँवल न पावे, तो तू जन्म जन्म भरमावे ।।१
वोह तो कँवल नीर बिन फूला, अरे नर मूरखता की तू भूला ।
उलट कँवल बस माहीं, तेरा जुरा मरन मिट जाई ।।२
नाभि माहि जाकी नाली, लाव अर्ध ऊर्ध मध्य ताली ।
जिन ऐसी जुगत विचारी, ताको सहज मिले बनवारी ।।३
जन पानप कहत विचारा, वाही कँवल में सकल पसारा[1] ।
वाही कँवल ब्रह्म अरुपी, बिन सूरज धूप प्रकासी ।।४

१=प्रपंच २=दूसरी जगह,

राग गौरी

राम धुन सुनत रहूँ बिन काना,
योंहीं समझ है मूल भक्ति को, ना जिभ्या से कहना ।।टेक
सोधे नाम निरतसूं अंतर, सुरत गगन की ताना ।
सुरत गगन चढ़ अनहद बाजे, कोई सुने संत सुरज्ञाना ।।१
मण्डल प्रकाश ऊर्ध मुख कुआ, चूए अमी की धारा ।
पीवे योग-युक्त का योगी, चहुँदिस भया उजारा ।।२
पीवत अमी जन भया मद माता, अनुभव बानी गावे ।
गूंगे ने गुड़ खाय बखाना, सैन कोई जन पावे ।।३
आवे जाय मरे न जीवे, सुखसुख बोली बोलना ।
पावक जाला अगम समावे, ताको त्रिभुवन सूझा ।।४
कहीं पावक सुखो भई ताको, यह विधि काहूं कहिये ।
सांच कहे यह सब जग लीजे, समझ चुपहीं रहिये ।।५

राग आसावरी

ऐसो कोई मिलो ना नाम संवादी,
मानुष-देह मिली बहुतेरी, जो मिलया सो बकवादी ।।टेक
नाम सवादी बिरला हरजन, जिन सुषमन पिंगल साधी ।
मन को पलक चलन ना देई, सुनत अनहद-नादी ।।१
मूल कँवल को दृढ़ कर बांधे, नाम निरतसूं सोधी ।
अजपा जपे बिन मुख जिम्या, सहज पांच परबोधी[१] ।।२
अलग देहसूं अगम अगोचर, अकल-कला आराधी ।
पल पल में लयलीन ब्रह्मसूं, लागी सहज समाधी ।।३
हृदय याद बिसारे नाहीं, हर-हर धुन जो लागी ।
सुन मंडल में परम जोति को, निरखे ते बड़ भागी ।।४
अष्ट-कवँल-दल अंतर वासा, षट-चक्री कस राखे ।
उलटी दिष्ट पछमकू देखे, अधर निसाना ताके ।।५
आसन मांडे, स्वांसा सोधे, संसारी परमोधे[२] ।
देह निरन्तर परमात्मा, ताकू पलक न सोधे ।।६
कहे पानप दर्शन का लोभी, दर्शन बिना न जीवे ।
नौ खंड खोज धरे जहां मनसा, दिष्ट भर भर पीवे ।।७

राग भैरो

ऐसे घट धोव प्राणी ऐसे घट धोवरे, घटके धोय तत् दरसन होय रे ।टेक
सहज[३] की धुम[४] तीन गुण बेगर[५], दे दे मरोड़ी ममता-जल धोवरे ।।१
ज्ञान कर नीर ध्यान कर सिलबा, तामें साबुन सुरत समोवरे ।।२
कहे पानप ऐसे घट को धोवे, घटके धोव गमन न होय रे ।।३

१=तर्क, प्रबोध, २=प्रमोद, हर्ष, ३=स्वभाव, ४=भट्टी, ५=पृथक ।

(नाम लीला)न्यारा होय सतसंगत करे, जन बानी हृदय में धरे ।
अगम अपार संत की बाणी, निकट कहै मुक्ति की खानी ॥१
खानी खोजे ते तत सार, सुषमन का घर अगम अपार ।
हरिजन देखे दृष्टि पसार, निसदिन बहै मुक्ति की धार ॥२
भर भर दृष्टि उलट कर पिया, चाख अमी-रस युग-युग जिया ।
हर-जन हरि रस चाख बखाना, बिरले बिरले शब्द पहचाना ॥३
रोम रोम उचरे ररंकारा, आत्म मन[३] रहना इकसारा ।
आतम-तत्व सुरतसूं खोजा, घट घट दरसन अन्तर सूझा ॥४
घट घट एको दूजा नाहीं, मिल सतगुरू यह मति पाई ।
जो कोई अपना घट खोजे, अलख पुरुष वाही को सूझे ॥५
मन दीपक मनसा कर बाती, ज्योति बलै सूझे दिन राती ।
तिरगुन तेल तामें पूरे, सिर पे निर्मल ज्योति हजूरे ॥६

दोहा—अकल कला को खेल है, देखे उलट कर कोय ।
जिन देखा सोई मुक्ता हुआ, ताको आवागमन न होय ॥ १

जो हरजन हरि-रस की चाह, बिखरी सुरत एक घर लाव ।
बिखरी सुरत भक्ति नही होई, झूठे भ्रम न भूलो कोई ॥१
एक सुरत पांचों संग वहै, बिन गुरू—यत्न न राखी रहै ।
यही सुरत गुन लाग बहानी, तबलग कारज सरै न प्राणी ॥२
जबलग कारज एक ना सरे, सुरत काज और और करे ।
सुरत समेट ले मेरे भाई, ठौर सुरत की है घर माहिं ॥३
दो पर्वत बिच सत की संध, योग युगतसूं तहां राखो बंध ।
तहां बसे पल चलन न पावे, तब सांचा हरि भक्त कहावे ॥४
सुरत युक्ति कर वहां ठहराई, सो जन दर्शन माहि समाई ।
दर्शन कर मन स्थिर हुआ, पाई मुक्ति जीवत मुआ ॥५

दोहा—जो जन जीवत ही मूआ, और सुनी अनहद बानी ।
मुक्ति हुआ तब जानिये, योनी न आवे प्राणी ॥१

सांची भक्ति करो हरि केरी[१], तासे जीव मुक्ति हो तेरी ।
बिन सतसङ्ग नहिं भक्ति उपचारा, भ्रम में भूला सब संसारा ॥२

१=की, २=उपाय, प्रयोग ३=सज्जन, सन्त ।

कड़के

अजब झंकार ब्रह्मन्ड़ झंकत रहे, सिफ्त न करसकूं अकल हीनी ।
अष्ट-याम अनहद घुरते रहें, एक ना छिनक कभी होत छीनी ॥१
शब्द मुरशद दिया प्रेम प्याला पिया, भया मन मस्त तन गस्त दीनी ।
पांच पचीस का मूल एक पवन है, बांध सत-संघ घर रमन कीनी ॥२
सुखमना पिंगला गावें गुण-मंगला, प्रगटे प्रेम तिस रंग भीनी ।
खलककी पलकमें अलख निज ही रहे, खोल दिलद्वार जिन दर्श कीनी ॥३
नाभ की नालमें ख्याल एक अजब है, दंड सूधा किए वस्तु चीन्ही ।
दास पानप कहे द्वार दसवें रहे, जीवते मुक्त लहे सिफ्त कीनी ॥४

२

ऐजी अटक मन अटक मन गंग घरमें बहे, योगी-युक्ता मिले युगत पावे ।
भ्रम की जेवड़ी बांट जग मर गया, तत्व का मथन नहीं हाथ आवै॥१
झिरे अमृत कनी पीव तजकर मनी, होय मन मग्न तन अमल[1] छावै ।
रामके रंग में रंग राचा रहे, अचल होय मन नहीं चलन पावै ॥२
मीन उस धार सुमेरु दम[2] के चढ़े, तजे जल-बास गिरवर सुहावै ।
गगन की गुफा में अजब एक जोगया, रूप बिन रेख बिन दृष्टि आवै॥३
मेरकू फेर सुमरे ऊपर धरे, खुले दल अष्ठ जब दर्श पावै ।
दास पानप कहे शब्द-धुन रच रहै, सुरत फेर उस घर समावै ॥४

१=निर्मल २=तीव्रता से,

नमोः देव देवं नमोः ब्रह्म ज्ञानी ।
नमोः सेव सेवं नमोः तत्व ज्ञानी ॥
नमोः संत सतगुरु जिन्हों तत्व चीन्हा ।
नमोः दास पानप जिन्हों तत्व चीन्हा ॥
ॐ लिखंतं पढंतं सुनंतं शब्द विचार करंतं,मुक्ति [illegible] ।
श्री गुरु के चरणारबिंदं नमस्कारं-नमस्कारं ॥

• इति [illegible]-विद्या दसम् वाणी •

राग रवैनी

मेरे साहिब ऐसोरे भाई, आपा जगको रह्यो दिखाई ।
मेरे साहिब को कोई न देखे, यह सब जग पेखने[1] पेखे[2] ॥टेक
खेल खिलौने जन्म गवांया, मेरे हरिका मर्म न पाया ।
हरिका मरम लहे जो कोई, ताको यमकी त्रास न होई ॥१
हरका मरम संत कोई पावे, जाको सतगुरु भेद बतावे ।
अगम अगोचर देखन माहि, देखे अकलसूं सूझे ताहि ॥२
रूप अरूप कह्यो नहीं जाई, सकल निरंतर रह्यो समाई ।
उलटी दृष्टि देखे जो कोई, पल पल में ताहि दर्शन होई ॥३
अचरज देख पानप जन कहै, ताकी बोली कोई न लहै ।
जो कोई लहे सोई सुरज्ञाना, साधे साधना लहे स्थिर थाना ॥४

राग सूही

अनहद शब्द अनन्त धुन बाजें, महिमा कही न जाई राम ।
उर्ध सुमरन होय सुरतसूं, राम नाम लौ लाई राम ॥टेक
चढ़ गई पवन गगन में सनमुख, उपजी अनहद बानी राम ।
सुनत सुनत लव-लीन भई, तब स्थिर ठहरानी राम ॥१
भेर नगारे बंसी मुरली, बीन सुहंगम[3] बाजें राम ।
ताल मृदंग झांझ ढ़प ढोलक, सुन कान बिना बेन साजे राम ॥२
ध्यान धरत यो अचरज प्रगटो, बरसें रिमझिम मोती राम,
आंख खोलके जित कित देखा, पलक छीन ना होती राम ॥३
कहै पानप सब खेल अकल के, जो चरनों में पावे राम ।
त्रिवेनी तट मस्तक चरणा, तो विष्य-मद न लागे राम ॥४

१=तमाशा देखन, २=देखे, ३=सुखमना ।

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥-

सर्व संतों की दया

षोड़शः वाणी

निर्मल

संतों का आदेश है कि हरि नाम हृदय में धारण किये बिना निर्मलता प्राप्त नहीं होती है—"निर्मल नाम धरा नहीं हृदय, निर्मल केह विध हुआ।" तीर्थ, व्रत, दान, जप—सब शुभ कर्म हैं परन्तु इनका महत्व तब ही है जब मन एकाग्र हो और बुद्धि शुद्ध बने। यह सब बाह्य उपचार हैं, साधन मात्र हैं; साध्य नहीं। साध्य है मन के निरोध द्वारा आत्म साक्षात्कार।

सब कर्म फलदायक हैं क्योंकि कर्म गुणों से भरे हैं। आवश्यकता है गुण रहित होने की। गुणों से माया का आच्छादन बना है। बिना गुण त्यागे माया का पट नहीं टूटता और हरि दर्शन प्राप्त नहीं होते। बिना हरि दर्शन के मुक्ति नहीं :—

"हरि नाम बिसारा हृदय, सो नर कहीं का न हुआ।
तीर्थ व्रत जप तप करके, कहे पानप बह बह मुआ॥"

संत इन्द्रिय-भोगों से मन को हटा कर प्रभु के प्रेम में लगाते हैं वह निरन्तर प्रभु का ध्यान करते हैं और प्रभु की अमीधारा का रसपान करके हृदय की प्यास बुझाते हैं इनके लिये बाह्य साधनों का महत्व नहीं रहता। "मन मैला तो सब तन मैला।" तन धोने से मन अपने विकार नहीं तजता। त्रिकुटी में गंगा, यमना व सरस्वती का त्रिवेनी स्नान मौजूद है वहां आठों पहर का पर्व है। सुरत व मन वहां नहाकर शुद्ध व निर्मल बनते हैं। मन के साथ तन का मैल धुल जाता है। यही सच्ची निर्मलता है सब तीर्थ काशी, हरिद्वार आदि अपने घट में हैं दसवें द्वार को द्वारका कहते हैं सुरत वहां पहुंच कर हंस रूप हो जाती है और मुक्ता चुगती है तब माया उसको नहीं व्यापती।

"हम तो बूड़े अथाह में, जहां बिन पानी दरियाव।
वहां के बूड़े पानपा, हरि दर्शन सहज सुभाव॥

क़ुरान कहै गीता कहै, ब्रह्म सकल घट माहि ।
कहै पानप भरमा जगत, ताको खोजे नाहि ॥१

पूर्ण ब्रह्म समीप है, लखे न कोई ताहि ।
भूले क़ाज़ी पंडिता, जन्म अकारथ जाहि ॥२

घट को खोजे अकलसूं, पड़े ब्रह्म को सूझ ।
कहै पानप भरमा जगत, मरा भरम को पूज ॥३

ब्रह्म सब घट एकसा, पहचाने सोई प्यारा ।
कहै पानप ब्रह्म पहचाना नाहि, यह जीव ब्रह्म से न्यारा ॥४

ब्रह्म पहचाने आप में, लग के नेत्र चार ।
कहै पानप उनको दरस है, और भ्रम भूला संसार ॥५

अगम सुरत घर आपनी, जहां ब्रह्म की ठांव ।
दरसन प्रगट पानपा, मैं दरसन पे बलि जाऊं ॥६

मूलबंध नाभि को सोधे, सुरत अगम को तानै ।
कहै पानप अलख अरूप को, सतगुरू मिल पहचानै ॥७

नाभि निरत सोध के, पवना अगम बसावै ।
पार ब्रह्म स्थान जहां, कहै पानप दरसन पावै ॥८

हम बासी उस देस के, जहां पार ब्रह्म को खेल ।
दीपक देखा अगम मैं, बिन बाती बिन तेल ॥९

घट में दीपक बलत है, पांच तंत की बाती ।
कहै पानप दीपक सही[1], बलत रहे दिन राती ॥१०

तेल बिना बाती बिना, दीपक बलैं अनेक ।
अन्तर चितवे पानपा, मगन भयो मन देख ॥११

ब्रह्म समीप करक जो उपजे, तो सतगुरू खेती पावै ।
कहै पानप बुद्धि आतम चीन्हे, तो दर्शन माहि समावै ॥१२

१=सत्य, ठीक ।

तत उपदेश

साधु समझ सबद विचार, समझे बिना यम की मार।
समझे जनम मरन निरवार[1], बाजी जीत बहावै हार ॥१
मानुष-देह पूरा दाव, सत् हर-नाम मनहि बसाव।
जिभ्या बिना हर-गुण गाव, मुखसूं कहै न बाद गवांव॥२
बंधन कर्म बंधा लोय, त्योंही छूटना नहीं होय।
अकरण करे छूटे कोय, अकरण कहै जाने सोय ॥३
अकरण करण है तत्-सार, मनतें पलक नाहि बिसार।
आवत जात गहो मेरो वीर, सहजै सहज हासी धीर ॥४
ताकू इड़ा घर ले राख, अकल कला ले लेताक।
पिंगल सुखमन घर लाव, दोऊ उर्ध माहि चढ़ाव ॥५
निर्मल जोति प्रगट होय, दिन और रैन सूझे तोय।
निरखत[5] तिमिर सब मिट जाय, ताकू बिसराये[6] पल नाय ॥६
माया तीन-गुण बिसतार[7], जिन यो ठगो सब संसार।
तीनों बांध तीनों त्याग, चौथे महल अगम में लाग ॥७
उलटे पवन सिंधु समात, हीरा मुक्ति आवे हाथ।
यह बिध जान पावे कोय, ताकी मुक्ति सहजै होय ॥८
खोजो मानसरोवर तीर, हंसा जहां गहर गम्भीर।
मुक्ता चुगे मोनी हंस, पूर्ण-ब्रह्म को निज अंस ॥९
हंसा हंस दोय मिलाय, ते जन मुक्ति को फल खाय।
ससि और सूर घर एक राख, सतगुरु कहै सांची साख[9] ॥१०
सांची कहै पानपदास, हरजन लहै[8] चरण निवास।
तत उपदेश पावे सोय, पानप कहै मुक्ता होय ॥११

१=मुक्त करना, २=टालना, ३=व्यर्थ, निष्प्रयोजन, ४=पकड़ो, ५=देखना, ६=भुलाना, ७=फैलाव, ८=प्राप्त करना, ९=मर्यादा।

• इति ब्रह्म-विद्या त्रयोदश वाणी •

१३

दोहा–पानप सो जो पी[1] परण[2] गहे, पी की छोड़ और न कहे।
अर्घ उर्ध बिच अमृत पीवै, कहे पानप सोई युग युग जीवै ॥१
या काया में मन है राजा, पांच स्वाद संग डोले भाजा।१
तन रखवाली कहो को करै, निर्भय चोर चोरी करै।२
तन में मनवा चेतन होय, कहे पानप ताको त्रास न कोय।३

१४

दोहा–यह मन हस्ती[3] बड़ा अपरबल, वहां झीन[4] सूई का नाका।
कहे पानप वहां वही समावे, चींटी होय मन ताका ॥१
चींटी जैसा मन करे, बांध सुरत के तार।
कहे पानप ऐसा संत होय, सो पहुंचे हरि के द्वार ॥२
तन में मनवा है जंजाल[5], बस पड़ा जीव बड़ा अमाल[6]।१
जिन योह जग चुन चुन खाया, जग पचमरा[7] हाथ नहीं आया।२
तापे डारे पवन की डोरी, मन बस होवे पवन झकोरी।३
गहबर[8] भयो कला विष त्यागै, जब पानपदास नाम को लागै।४

१५

दोहा–खुदा कुफ़ुर[9] से दूर है, कुफ़री हददा[10] दोय।
कुफ़र तजे दीदार हो, कहे पानप बूझै कोय ॥१
सोई फ़क़ीरी फिकर मिटावे, अंतर मनसा मन्हे जुटावे।१
सुख उपजे तब होय लड़ाई, मन मनसा दोऊ फंद आई।२
कहे पानप सोई फ़क़ीरी, मूलबंध मन राखे धीरी।३

१=कंत, पति, २=प्रतिज्ञा, पण, ३=हाथी, ४=सूक्ष्म, ५=झंझट, फंसाव, ६=अधिकारी, शासक, ७=परिश्रम से थकना, ८=व्याकुल, ९=नास्तिकता, १०=सीमा।

७

दोहा–पंच अगन[1] धुनी तपे, और रहे बैठा मौन ।
मन मनसा भटकती फिरे, कहो सुमरन लागा कौन ॥१
मन मनसा भटकती फिरे, सुमरन हृदय नहीं किया ।
कहै पानप अमृत संग तजो, मूढ़[6] विष-रस पिया ॥२
मौनी सोई बोलता रहै, ताकी बोली कोई न लहै ।
आप माहि निरखे आप, निस-दिन जपै निरंजन जाप ।
मौनी हंस खोज कर-पावै, मानसरोवर अमिल मिलावै ।
अमिल मिल तब मुक्ता पाय, वह हंसा नहीं आवै जाय ।
लखपाई सत्गुरु की सैनी, कहै पानप सोई सचा मौनी ।

८

दोहा–जती सोई राखे रती, सती जीवत होय ।
कहै पानप पिया प्यारी तेई, ऐसे लच्छन[2] सोय ॥
यती सो जोहै[3] आत्मा, सोई यती परमान ।
कहै पानप नर्की जीवड़ा, जो नहीं आतम पहचान ॥२
जतन बिन जती कहावै, जत-मत[4] का कोई मर्म न पावै ।
पाहन पूजे करै अभिमान, ते नहीं पावै ब्रह्म-ज्ञान ।
ब्रह्म-ज्ञान बिन भक्ति न होई, भक्ति बिना भ्रमा जग लोई ।
जतमत साधै सोई जती, कहै पानप सोई राखै रती[5] ।

९

दोहा–करता हरता एक है, ताही का प्रकास ।
पानप ताको देखले, तू क्यों होय उदास ॥१
चाह भई हरि दरस की, जगसूं भया उदास ।
कहै पानप जीव तब, पावै चरण निवास ॥२
सोई उदासी रहै उदास, मनसा राखी चर्ण–निवास ।१
सुरत बांध के मनसूं अड़े, पिंगल कलाधर[7] मद्ध[8] धरै ।२
अनहद-नाद अनन्त धुन बाजें, परम पुरुष जहां आप विराजें ।३
प्रेमी होय चर्णों चित लावै, तब परम पुरुष का दर्शन पावै ।४
गुरु प्रतापसूं दुरमति[9] नासी, कहै पानप है सोई उदासी ।५

१=आग, २=लक्षण, ३=खोजे, ४=पंथ, मतम, ५=प्रेम, ६=मूर्ख, ७=इड़ा, ८=मध्य, ९=दुर्बुद्धि, कुमति ।

पंथ

अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिये पग चाहिये। जीव जिस मार्ग से होकर आया है लोटने के लिए वही सुगम पग है जो कि अपने अंतर में ही है:— "पंथ अपंथ बिन पग चढ़ना, कहो किसका पंथ बतावे।

पानप कहै सुनो भाई साधो, घर छूटे घर माहि समावे॥"

सुरत सुषुम्ना नाड़ी में होकर शब्द रूपी डोर द्वारा नीचे उतरी है इसी पग से सुरत अपने स्थान को लौट सकती है। यह पग नाक की सीध में है "सुरत बांध उलटा चढ़े, नक सुध पंथ निहार" सन्तों के मतानुसार सुरत का उतराव इस प्रकार है—सुरत शब्द रूप होकर अगम[1] व अलख[2] स्थानों से होती हुई सत्य लोक में आई। यह वह लोक है जहां सन्त वास करते हैं

"सत्य लोक अमरापुर नगरी, जहां सन्त क्यो बासा"

यहां से भंवर-गुफा[3] व महासुन[4] में को होकर सुन[5] में ठहरती है; यह आत्मपद है—यहां से ब्रह्मांड व पिंड में फैलती है। सुन से नीचे त्रिकुटी[6] स्थान है जिसको गगन भी कहते हैं और सुमेरू पर्वत भी कहते हैं। इसकी चोटी का नाम ब्रह्मरन्ध्र है यही कैलाश व मानसरोवर हैं। जीव यहां पहुंच कर हंस गति को पाता है। त्रिकुटी स्थान से सूक्ष्म तीन गुण व पांच तत्व व निर्मल माया प्रगट होते हैं। दोनों आंखों के बीच में बिन्दु[7] है इसके नीचे षटचक्र पिंड में है जिनके नाम यह हैं (१) आंखों के पीछे—यहां सुरत का ठहराव है; (२) कंठ—यह माया का स्थान है; (३) हृदय—यह मन व

माया का स्थान है; संकल्प, विकल्प यहीं से उठते हैं; (४) नाभि कंवल— (५) इन्द्रि चक्र (६) गुदा चक्र।

जगमग ज्योति झलाझल झलकै, कोटि भान छिप जाय।।183

सन्त रघुनन्दनदास भी अपनी वाणी में योग को महत्त्व देते हैं। उनकी योग सम्बन्धी निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

झाँझ घरियार अरु वेणु बंसी बजै, गैब मक्कान मन सुनत भाई।

होत अंदोर घनघोर उत्तर दिसा, चन्द मैदान में ध्यान लाई।

गंग अरु जमुन दुइ धार संगम बहै, गगन में कहर दरियाव गाई।

अरे रघुनन्दनदास योग तुरिया को, हद मैदान पर माथ नाई।।184

उनका कहना है कि अनहद ध्वनि अहर्निश अनवरत घट के भीतर प्रतिध्वनित हो रही है।185 साधना हेतु इसे श्रवण करना आवश्यक है।

सुरति-शब्द-योग

योगाभ्यास की विभिन्न रीतियों में सुरति-शब्द-योग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। निर्गुण पन्थी सभी सन्तों ने इसी रीति को अपनाया है। इसी को सन्तों की सहज साधना, मन्त्रयोग तथा लययोग भी कहा जाता है। इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए 'कल्याण' के साधनांक में कहा गया है कि जिस-योगाभ्यास में शब्द की धारणा की जाती है, उसे सुरति शब्द योग अथवा शब्द योग कहते हैं।186 इस साधना में शब्द का किसी वाह्य मंत्र से कोई मतलब नहीं है। घट के अन्दर और बाहर एक निरन्तर सहज ध्वनि होती रहती है, जिसको अनाहत अर्थात् बिना किसी आघात के उत्पन्न ध्वनि कहते हैं।187 गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर अभ्यास करने से इस ध्वनि का श्रवण किया जाता है।188 उसी के माध्यम से चढ़कर चित्त नाद में विलीन हो जाता है।189 सुरति को स्रोत से व्युत्पन्न मानते हुए इसका अर्थ 'चित्तवृत्ति का प्रवाह' भी कहा गया है।190 'हठयोगप्रदीपिका' में भी चित्त के नाद में लय होने का वर्णन किया गया है।191 गोरखबानी में भी 'अवधू सबद अनाहद सुरति सो चित्त' के

सन्त तोंवरदास भी योग के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। उनका विश्वास है कि अनहदनाद श्रवण करने से नित्य नवीन सुखानुभूति होती है-

बाजै मधुरगति बेन बेसुरी, नाम धुनि धुधकार रे।

अनहद अविगति तान सुनि, वर महल मनि झनकार रे।।

नित नाद विनोद मंगल, होत जै-जै कार रे।180

सन्त शिवनरायनदास घट के भीतर अनहदनाद श्रवण करने पर विशेष बल देते हैं- अनहद बाजा निसिदिन बाजै, सुनह बैठ स्थाना।181

उन्होंने अपनी वाणी में योग-साधना को विशेष महत्त्व दिया है। वे स्थान-स्थान पर त्रिकुटी, इंगला, पिंगला जैसे योग-साधनात्मक शब्दों का प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं-

मैं तो चुँदरी धोवायौं साहब घटवाँ।

सत्य कै साबुन प्रेम की सौंदनि, सुरति की लादी लदायऊँ।

त्रिकुटी पार जिकिर की धोवनि, कर्म के दाग छोड़ायऊँ।

इंगला, पिंगला, झुरवनि कीना, सुखमनि रंग रंगायऊँ।182

वे इंगला, पिंगला, सुखमनि, दसयें बाजा जैसे योग-साधनात्मक शब्दों का प्रतीकात्मक प्रयोग करते भी दिखाई पड़ते हैं-

इंगला, पिंगला भुरछल हाँकै, सुखमन डोलिया चढ़ाय।

दसयें बाजा नौबति बाजै, अब छवि बरन न जाय।

चौथा धाम अमरपुर ऊँचा, सात सुन्य के पार।

दस्सम द्वार गुप्त गति रहता, पहुँचत भक्त जक्त नहिं चहता।

अटपट द्वार अगम सुठि वाका, बरनत सत श्रुति शांकरनाका।

करि पट असित कपाट देषावा, दुचित जक्त केउ मरम न पावा। - रतनज्ञान, पृ. 9

(ब) साहब सिध्य श्रुति गुरु गनन, शब्द उदै झनकार।

दास नेवल तेहि शब्द को, विरला बूझनहार।। - ज्ञा. सं., अ. 1, दो. 9

126. शब्द रूप है ब्रहम सनातन, बासु निकट मन जो रहे पल छन।

भयोकृतारथ जीव सो, मिल्यो शब्द हरि रूप।

ब्रहम समानो ब्रहम मों, छूटि गयो यह रूप।। - भा. द. भा., महा. का, अ. 4, दो. 1

127. अनहद अकल अतीव, आदि अगोचर अलष जग।

मेहरबान सोउ पीव, सुनइशब्द भागवत धुनि।। - वही, अ. 4, सो. 1

128. दसवाँ द्वार उघरि जब जाई, औ तेहि मां फिरि पवन समाई।

अनहद तीन प्रकार तहँ, श्रींग ताल घड़ियाल।

अमी चुवत है सोम ते, निकट न आवै काल।। -सु. सा., अ. 2, दो. 2

129. बाहर भीतर है वह एकै, अनहद रूप प्रकाश रे।

करि जागरन देषि ले जोगी, कोटि तड़ित उजियार रे।। - कहरानामा, पद 24

130. गगन वन बाँसुरी बोले रे।

12:08

तेहि कहँ जानि किहेहु नहिं न्यारा।

मूरति सम तेहि किहेहु विचारा।। - अघविनास, पृ. 113

(ख) जहाँ सुरति तहँ उन्ह की वासा।

वास करत प्रभु तिन्ह के पासा।। - वही, पृ. 120

202. सो विश्वास मन त्वै धरु चित्त रहु निहचिंत।

जगजिवनदास चरन रस सुरति ते चाषहु नित्त।। - वही, पृ. 144

203. सुरति दरस रस की मतवारी।

साधु सो भए हरि के अधिकारी।। - वही, पृ. 50

204. भग्तन का मन तहँ उह लागा।

सुरति ते रहत अनत सब त्यागा।। - वही, पृ. 48

205. नव ज्योति, रामशरण शुक्ल, संतांक, पृ. 30

206. नव ज्योति, संतांक, रामशरण शुक्ल, पृ. 36

207. वही, पृ. 37

208. सन्त कवि नवलदास, साधना और साहित्य, डॉ. राधेश्याम द्विवेदी, पृ. 339

209. सुनहु उमा जेहि मरै न कोई, मम गोरष समान तेहि होई।

पवन पान को करि अभ्यासा, बूझे इड़ा पिंगला स्वांसा।

दसवां द्वार उघरि जब जाई, औ तेहि मा फिरि पवन समाई।

करम करम कुंभक करै, रेचक कर्महि कर्म।

दास नेवल सोइ जोग है, मिटै काल भै भर्म। - सु. सा., अ. 3, दोहा 1

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

167. नाभि कंवल मन चले पवन ले, अष्ट कमल समाई रे।

पदुम पात्र पर नीर रहत ज्यों, जैसे रहे ठहराई रे।। - महाप्रलय, पृ. 14

168. मनै चढ़ावै मनै उतारे, मन थिर होइ ठहराना रे।

मन संग प्रान पवन सुष पावे, तबहीं जोग दिढ़ाना रे।। - वही, पृ. 14

169. जाइ पवन षट चक्र में वेधै, तबही भक्ति दिढ़ानी रे।

जुक्ति तजै अस करे भाइ गति, भूलै ते अग्यानी रे।। - वही, पृ. 14

170. नाभी नीर कंवल महं सब्द मिलि करै झनकार।

बाजी अवाज ब्रह्मंड महं कोइ विरला करत विचार।। - ग्यान प्रकाश, पृ. 19

171. अष्ट कमल दल भीतर राजा, पाँच तत्त को राव।

त्रिकुटी मध्य दृष्टि करु, नैनन, ताही तहाँ लगाव।

मणि समान दीपक करु मनसा, जोति में जोति मिलाव।।

मन औ पवन होत जब इकतर, नाहीं बीच बराव।

जगजीवन के प्रभु सिर नायक, आनन्द मंगल गाव।। - जग. सा. की बा. भाग पहला, पृ. 61

172. जग. सा. की बा. भाग पहला, पृ. 83-84

173. पाइ जोग केहु भांड गति, गहि दम सॉस न आवै।

दुखित होत तन फूलि मसक से, दुइ कर पेट ठठावै।।

यहु नहिं जोग रोग है भाई, साधू नाहिं बतावै।

सहज रीति मन साध पवन गहि, अठदल कमल समावे।।

- जग. सा. की बा. भाग-2, पृ. 40

12:07

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीर परिग्रहः।। -वही, 6/10

157. तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।। - श्रीमद्भगवद्गीता, 6/46

158. योगसूत्र, सूक्त-29, साधन पाद

159. कल्याण उपासना अंक, वर्ष 41, अंक 1, पृ. 28

160. सिद्धिसिद्धान्त संग्रह, 2/49/50

161. आसनं प्राणसरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।

ध्यानं समाधिरेतानि योगांगनि वदन्ति षट।। -गोरक्षपद्धति, 1/7

162. यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रलीपते।

यदा समरसत्वं च समाधिः सोऽभिधीयते।। - वही, 2/87

163. नाथ सिद्धो की बानियाँ, पृ. 18

164. वही, पृ. 20

165. नाथ सिद्धो की बानियाँ, पृ. 70

166. वही, पृ. 105

167. नाभि कंवल मन चले पवन ले, अष्ट कमल समाई रे।

पदुम पात्र पर नीर रहत ज्यों, जैसे रहे ठहराई रे।। - महाप्रलय, पृ. 14

168. मनै चढ़ावै मनै उतारे, मन थिर होइ ठहराना रे।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

13:56
Vo)) LTE1

यमुना और सरस्वती (इड़ा, पिगला, सुषुम्ना) के संगम से त्रिवेणी जैसे पवित्र स्थान का उद्‌भव होता है। संतों ने इसका प्रयोग प्रतीक रूप में किया है।

धर्मदास के अनुसार "इड़ा, पिंगला त्रिकुटि में जाकर मिलती है।"

इला पिंगला दोई हैं, त्रिकुटिमन लाखों।[31]

रैदास ने "इड़ा पिगला सुषुम्ना को प्रतीक मानकर गंगा, जमुना तथा सरस्वती के नाम से सम्बोधित किया है"–

उलटि गंगा, जमुना में लावै
बिन ही जल, मज्जन है पावै।[32]

जिस प्रकार से गंगा, जमुना तथा सरस्वती का संगम त्रिवेणी के नाम से पुकारा जाता है उसी प्रकार इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना को भी त्रिवेणी कहा जाता है। दादू, धरमदास आदि ने त्रिवेणी और संगम को ब्रह्मरन्ध्र का प्रतीक माना है, क्योंकि मज्जन या स्नान संगम रूपी त्रिवेणी में ही होता है। जहाँ साधक अपने प्रियतम का स्मरण करता है :–

(च) तीया तीन त्रिवेणी संगम जहाँ अगम अस्थाना।[33]
(छ) सहज समरपण सुमिरण सेवा, तिरवेणी तट भंजन सपरा।[34]

जिस प्रकार इड़ा, पिंगला के लिए गंगा, जमुना प्रतीकों का प्रयोग सन्तों ने किया है, वैसे ही चन्द्र और सूर्य का भी प्रतीक रूप में वर्णन मिलता है। दादू स्पष्ट शब्दों में कहते है :–

चन्द सूर मधि भाई, तहाँ वसै राम राई, गंग जमुन के तीर।
त्रिवेणी संगम जहाँ, निर्मल विमल तहाँ, निरखि निरखि निज नीर।[35]

दादू ने चंद–सूर का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है। रैदास का विचार भी इसी तार ताम्य में है:–

चन्द सूर दोउ सन मुख होई,
पीवै प्याला मरै न कोई।। [36]

धर्मदास जी कहते है :–

चंद सूरज दोउ को हवर बाबा पांजी दसौ दुआर। [37]

12:35

राग लहरा-

नहि बना बेसहना का किया। सौदा हलाहल को लिया।।

नहिं कही सो नेवल दास के, सब कही गुरु संत वास के।।225

राग मंगल-

साहेब तुम जगजीवनसाई, चांद सुर्ज अस रूप हो।

सुषमनि सेज विराजत बैठे, दरसन बहुत अनूप हो।

दास नेवल बिनती करि मागै, जो गावै मन लाय हो।

तेहि का चारि पदारथ बरषत, हरषत सब सुष पाय हो।।226

द्वारचार-

तुम साहेब जगजीवन, अस रूप तुम्हार हो।

सोने का मउर सोहावन सुन्दर सत रूप हो।

दास नेवल निरमल भयौ चरनन सिर नायउ हो।।227

प्रभाती-

राम नाम भजि होहु सनाथ। आदि अन्त यह पूरन साथ।।

राते माते भजहिं महेस। पारवती पावा उपदेश।।

यह परभावति गावै कोइ। दास नेवल तिन्ह कर भल होइ।।228

कहना न होगा कि इन राग-रागिनियों की अभिज्ञता कवि की संगीतप्रियता और उसमें सम्यक् पैठ का ज्वलन्त साक्ष्य तो है ही साथ ही उसके भक्ति-भाव से परिपूर्ण हृदय का

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

करम करम कुंभक करै, रेचक कर्महि कर्म।

दास नेवल सोइ जोग है, मिटै काल भै भर्म। - सु. सा., अ. 3, दोहा 1

210. क- सात स्वर्ग अपवर्ग समेता, दरसन तीन लोक मंह जेता।

छठयें बूध सुषमना घाटा, सतवें सोम तालु मंह सांटा।

अनहद तीन प्रकार तंह, श्रीग ताल घड़ियाल।

अमी चुवत है सोम ते, निकट न आवै काल। - सु. सा. अ. 3, दोहा 2

ख- क्षीर समुद्र शरीर मां, लोचन द्वारा जौन।

दास नेवल जौ कै उपर तिल मां तीनिउ भौन।

गगन भवन बिच कोठरी, जानै बिरला कोय।

सतकुंजी सतगुर लिहे, प्रसन्न तापर होइ। - ज्ञा. स., अ. 1, दोहा-9

ग- त्रिकुटी वर सुषमनि वहै, वहै त्रिवेणी नाम।

तासु मध्य निर्गुण बसै, दास नेवल बसु जाम। - सु. सा., अ. 16, दोहा-9

211. बारह बरिस रहयो जल सायन, क्रिया एक फिरि किहे उपरायन।

चौबिस बरिस रहयौ पय हारी, औ सै बरिस दिगम्बर धारी।

तीस बरिस पंचागिनि तापेउ, षोडस अच्छर निसि दिन जापेउ।

ढाढ़ेस्वरी नखी सुनि पायौ, साढ़े साठ लहि एनहि कमायो।

झूला झूलि रहया दिन राती, छत्तिस बरस जरावत छाती।

14:00

सुन्न महल अ[illegible] समुद सिखर के पार। [98]

2. अमृतः— योग—साधना में अमृत का बड़ा महत्व होता है। कहते है कि ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल के मध्य भाग में स्थित चन्द्राकार स्थान से मन्द स्राव होता रहता है। इसी को साधक अमृत या महारस कहते है। यह मूलाधार के निकट सूर्याकार स्थान तक आकर सूखता रहता है। यह अमृत व्यक्ति को दीर्घायु बनाने में सहायक होता है। अमृत नष्ट होने पर व्यक्ति क्षीण और विकार युक्त होकर वृद्धअवस्था को प्राप्त हो जाता है। साधक अभ्यास द्वारा इसे ऊपरे ही रोकने और स्वयं पान करने का प्रयास करता है। निम्न स्थित सूर्य को चन्द्र तक लाकर मिला देने से यह रूक जाता है। सूर्य चन्द्र के इस मिलन को ही नाद बिन्दु का सम्मिलन भी कहा गया है :—

अमावस के घरि झिलिमिलि चंदा पूनिय के धरि सूर।
नाद के धरिव्यंद गरजै वाजंत अनहद तूर।। [99]

इस अमृत का पान साधक खेचरी मुद्रा में करता है। तान्त्रिक अनुष्ठानों में प्रयोग होने वाली बारूणी का बोधक होने के कारण इसे अमर वारूणी भी कहा गया है। [100]

गोरखनाथ भी योग के द्वारा इस अपूर्वरस का पान करने की सलाह देते है :—

सुणौं हो देवल तजौं जंजालं, अमिय पीवत तव होइव बालं।
ब्रह्म अगिन सीचंत मूलं, फूल्या फूल कली फिर बूलं।। [101]

हठयोग प्रदीपिका में आया है कि योगी जीभ को उलट कर कपाल कहर में प्रविष्ट करता है और इस प्रकार सहस्रार दल कमल के मूल में स्थित चन्द्र स्थान से सत्त प्रस्रवित होने वाले अमृत रस का पान करता है।

जिव्हा प्रवेश संभूतःविन्हतोत्पादितःखलु।
चन्द्रात्स्रवति यःसारःस स्यादमर वारूणी।। [102]

राम रस को प्राप्त कर अन्य किसी रस की स्मृति नहीं रहती —

रामरस पाईया रे, ताथैं विसरिं गए रस और।। [103]

सभी सन्तों ने राम रस पान करने का उपदेश दिया है —

रामरस पीजिये रे पीयें सब सुख होई।
पीवत ही पातक कटें, सब संतनि दिसि जाई।। [104]

इन सन्तों कवियों के रूपकात्मक प्रतीकों के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रूपक योजना द्विविध है। एक भावपरक या प्रेमपरक तथा दूसरी साधनापरक है। प्रतीकों की अनुभूति इन दोनों प्रकार के रूपकों में उभयनिष्ठ है। सोलहवीं शताब्दी के सन्त–साहित्य में रूपकात्मक प्रतीकों का बाहुल्य मिलता हैं।

6. विरोधमूलक प्रतीक :–

विरोध मूलक प्रतीकों का सम्बन्ध उलटवासियों से है, ऐसे प्रतीकों का प्रयोग भी उलटवासियों में ही अधिक हुआ है। अतः उलटवासियों में प्रयुक्त प्रतीकों की विवेचना करते समय इनका वर्णन करना उपयुक्त होगा। शेष सांकेतिक परिभाषिक, संख्यामूलक और रूपकात्मक प्रतीकों का सोलहवीं शती के संत–साहित्य में बाहुल्य मात्रा में पाया जाता है।

6.2 रूपक :–

सन्त–काव्य में रूपकों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है इसमें कुछ सन्तों ने अपनी रचनाओं में प्रयोग किया है, उनमें सन्त "रैदास" जी ने "कलाली का रूपक" बाँध कर प्रतीकों की कल्पना की है, निम्न पद की अभिव्यक्ति रूपक के माध्यम से ही हुई है :–

देहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधू है मतवाला ।।
अरे कलाली तैं क्या किया, सिरका सातैं प्याला दीया।
कहै कलाली प्याला देऊ, पीवन हारे का सिर लेऊँ।।
चन्द सूर दोउ सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई।
सहज सुन्न में माठी सखै, पीवै रैदास गुरूमुख दखै।। [85]

इस पद से यह भली प्रकार विदित होता है कि रैदास ने रूपकात्मक के द्वारा प्रतीकों पर भी प्रकाश डाला है। कलाली मदिरा विक्रेता गुरू का प्रतीक है। चन्द और सूर्य, इड़ा और पिंगला नामक नाड़ियों के प्रतीक हैं। सहज का अर्थ सहज समाधि से है। सुन्न गगन शिखर (ब्रह्मरन्ध्र) का प्रतीक है। इस प्रकार माठी का अर्थ सहस्रार चक्र के अमृत की वर्षा होना है।

रैदास की भाँति दादूदयाल के कलाली के रूपक में परम्परागत वस्तु विधान का सांगोपांग चित्रण मन पर एक अमिट प्रभाव छोड़ जाता है :–

मेरा मन मति वाला मधु पीवे, पीवे बारम्वारां रे।
हरि रस रातो राम के सदा रहै इक तारां रे।।

13:56
11_chapter 6

दादू नमो नमो निरंजन, नमस्कार गुरूदेवतः।
वंदन सर्व साधवा पुणामं पारगतः।। [64]

दादू का विचार था कि जीवित रूप में यदि मुक्ति प्राप्त हो सकती है तो केवल निरंजन की उपासना से ही :–

"निकट निरंजन लागि रहै,
तब हम जीवित मुक्त भए। [65]

दादू ने अंजन का संकेत किया है :–

निरंजन अंजन कीन्हारे, सब आत्म लीन्हा रे।
अंजन माया अंजन, काया अंजन छाया रे।। [66]

अस्तु अंजन निरंजन की छाया है, उसका प्रतिस्वरूप है, अंजन माया है, यही संतों को मान्य है सन्त बानियों में इसका प्रयोग सत् और असत् दोनों अर्थों में मिलता है। जहाँ सत् रूप में प्रयोग है। वहाँ वह परमात्मा का प्रतीक ही प्रतीत होता है।

अरध–उरध को सन्तों के साहित्य में प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया गया है। अरध–उरध को गंगा जमुना का प्रतीक प्रायः सभी संतों ने स्वीकार किया है। [67]

(क) अरध उरध वि बागिया तहाँ सुरति लगावो।
(ख) अर्थ ऊर्ध के मध्य मे हो, अभी अरगजाकीच।।

इसी प्रकार खसम :–

नकि न थ खसम हथ किरतु थक्के दे।
जहाँ दाणे तहाँ खाणे नानक सचुहै।।[68]

इसी प्रकार भंवर गुफा :–

भंवर गुफा से उठत बुलबुला, सो अंजन पिय नैन लगावो।। [69]

इसी प्रकार बंक नाल :–

नौ लख जरत मसा, सीढी बंकनाल है। [70]

इसी प्रकार से उन्मनि :–

"जोगिया बैरागी बाबा, रहै अकेला उन्मनि लागा"। [71]

**"भँवर गुफा में बैठ करि, अमी महारस जोख।
ऐसा सतगुरु मिल गया, ले गया हम परलोक।।"[53]**

पंचमुद्रा –

साधना की प्रक्रिया में 'पंचमुद्रा' का जिक्र आता है। इन पांचों मुद्राओं का नाम– चाचरी, भुचरी, खेचरी, अगोचरी एवं उन्मुनि है। इन पांचों की अलग–अलग अवस्था एवं स्तर है। इनमें उन्मुनि परम अवस्था है। योग साधना में ये मुद्राएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संतमार्ग के कवियों ने इसके विषय का जिक्र अवश्य किया है लेकिन उन्होंने सहज साधना पर अधिक बल दिया है। आलोच्य कवि के काव्य में इन मुद्राओं का जिक्र निम्न प्रकार से हुआ है –

**"पाँचौं मुद्रा परसि ले, कल अजरावर होय।
उनमुनि आसन अर्श में, पारा बिंद समोय।।"[54]
पाँचौं मुद्रा पिण्ड में, आगे वज्र शरीर।
पाँचौ पर पचानवैं, जहां वज्र ताल की पौलि।।"[55]**

साथ ही उन्होंने पांचों मुद्राओं को बन्धन माना है और साधना के गुप्त भेद को इससे परे बताया है, जिसका उन्होंने साक्षात अनुभव किया है–

**"षट कर्म है बंधन भाई। चोला पाख लगे नहीं काई।।
पांचों मुद्रा करे बियांना। जा से भेद अगोचर जान्या।।"[56]
"खेचरी भूचरी चांचरी उनमनी, अकल अगोचरी नाद हेरा।
सुंनि सतलोक कूँ गवन हंसा किया, अगमपुर धाम महबूब मेरा।।"[57]**

उन्होंने अपने लक्ष्य अथवा इष्ट को इन मुद्राओं की सीमाओं से भी ऊपर बताया है।

नाड़ियाँ–

हठयोग साधना के अन्तर्गत पंचमुद्रा के साथ–साथ नाड़ी ज्ञान भी परमावश्यक है। हमारे शरीर में कुल 72 हजार नाड़ियाँ हैं। संतकवि गरीबदास ने

सुंन शिखर का लक्ष्य प्राप्त करवाने की लाज केवल सतगुरु को है क्योंकि साधक केवल सत्यभाव से यत्नपूर्वक पुरुषार्थ करता है और फिर सतगुरु के सामर्थ्य–बल से वह परमपद प्राप्त करता है–

"सुंनि शिखर बरदवान है, जत सत सिंध जहाज।
ना तुझ से कछु होत हे, सतगुरु ही कूँ लाज।।"[37]

आलोच्य कवि ने अपने आदि पुरुष को सुंन, बेसुंन दोनों से अगम बताया है–

"सुंनि बेसुंनि से अगम है, पिंड ब्रह्म से न्यार।
शब्द समाना शब्द में, अविगत वार न पार।।"[38]

सुंन सरोवर के विषय में कहा गया है –

"संख सुहेली एक पीव, परसि परसि परवान।
लेह परवी परलोक की, सुंन सरोवर न्हान।।"[39]

सुंन समाधि के संबंध में –

"विश्वामित्र रस पिया, वसिष्ठ मुनि विधि साध।
कपिलदेव गलतान है, लागी सुंन समाधि।।"[40]

बंकनाल, औघट घाट, मक्रतार, भँवर गुफा एवं भँवर –

आलोच्य कवि ने **बंकनाल** के विषय में कहा है कि –

"बंकनाल के अंतरे, त्रिवैणी के तीर।
जहां हम सतगुरु ले गया, चुवें अमीरस खीर।।"[41]

अर्थात् वे साधना की यह प्रक्रिया सतगुरु कबीर के मार्गदर्शन में स्वीकारते हैं। त्रिवेणी के तीर पर बंकनाल के भीतर साधक अमृत का पान करता है।

औघट घाट के विषय में कहा है–

"एक भरे एक भरि चली, एक भरने कूँ जाहि।
ऐसा औघट घाट है, संख सुहेली न्हाहि।।"[42]

कबीर दास जी ने भी इसी सम्बन्ध में कहा है –

कबीर संसा दूरि करि जामण मरण भरम।
पंच तत्वतत्तहि मिले सुरति समाना मन।।[215]

कबीर दास जी के परवर्ती सन्तों ने इन शब्दों का प्रयोग किया है। संत तुलसी साहब ने सुरति शब्द का प्रयोग आत्मा के लिए इस प्रकार किया है –

(क) जब से सुरति आइ जग माई। बन्धनकाल भई भौ आई।।[216]

(ख) सुरति नाम आत्मा सोई, सो अन्दर हेरा नहिं कोई।।[217]

इसी प्रकार से तुलसी जी ने सुरति–निरति शब्दों का सम्मिलित प्रयोग भी किया है –

राति और दिवसा छिन छिन वासा। सुरति आकासा निरति रही।[218]
अधर–उधर विच सुरति समानी।निरखा शब्द निरत अलगानी।[219]

6.4 उलटवाँसी –

संतों को उलटवाँसी का प्रयोग करना इसलिए भी जरूरी था कि उनका सम्पर्क साधारण जनता से होता था। संसार के कार्य कलापों में फँसी हुई यह जनता संतों के लिए दया का पात्र थी। संत पहले उलटवाँसियों द्वारा उनके ध्यान को आकृष्ट करके आश्चर्य में डाल देते थे, तत्पश्चात उन्हें समझा कर सचेत करते थे। इसलिए सन्तों की उलटवासियों में अनेक प्रतिदिन के जीवन में दिखने वाली बातों का उलटफेर दिखाई देता है। वैसे संतों के मार्मिक भाव को जान लेने पर उलटबाँसियों में प्रयुक्त प्रतीकों और रूपकों का औचित्य समझ में आ जाता है। कुछ सन्तों का आध्यात्मिक ज्ञान बहुत ऊँचा न था, फिर भी चमत्कार प्रदर्शन तथा परम्परा निर्वाह के लिए उन्होंने उलवाँसियाँ कहीं थी इस प्रकार आध्यात्मिकता और चमत्कार प्रदर्शन या परम्परा निर्वाह के लिए कही गई उलटवाँसियों के सोने, ताँबे के ढेर में से आज वास्तविक सोने को खोज पाना कठिन है।

साधना की विभिन्न अवस्थाओं में हुए विभिन्न अनुभवों को बाह्य प्रमाणों द्वारा सिद्ध करना कठिन है। वे अनुभव तो स्वयं ही को प्रमाण स्वरूप है। उन आलौकिक आध्यात्मिक

सुरति–शब्द योग के संबंध में डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने कहा है– "वह योग जिसके द्वारा सुरति एवं शब्द का संयोग सिद्ध होता है और उक्त सीमाएँ शब्द में लीन हो जाती है, शब्द–योग अथवा सुरति–शब्द–योग कहा जाता है।"[223] सुरति–निरति शब्द का मेल पूर्ण सतगुरु की कृपा से ही संभव है। उनकी पूर्ण दया से ही मन, पवन, सुरति और निरति स्थिर होकर परमात्मा के अलौकिक स्वरूप में लय हो पाता है–

"त्रिवैणी के तीरा रे, मन पवन सुरति भये थीरा रे।
जहाँ निरत निरंतर खेलै रे, कोई सतगुरु पूरा पैले रे।।"[224]

तन, मन को स्थिर कर सुरति एवं निरति को सतगुरु में लौ लीन करने से ही जीव भवसागर से अपना बेड़ा पार कर सकता है–

"तन मन एक अजूद करि, सुरति निरति ल्यौ लाय।
बेड़ा पार समंद होय, जे एक पलक ठहराय।।"[225]

साधना का मार्ग ही सुरति–निरति का है–

"सुरति निरति की सैल है, मन के गवन विलास।
जिंदा जाति अजाति है, ना दम देही श्वास।।"[226]

सुरति से ही अगम देश में प्रवेश पाया जा सकता है–

"सुरती नगरी से भरी, अगम नगर कूँ सैल।
सतगुरु दिल दूरबीन है, कदे न भूलौं गैल।।"[227]

आलोच्य कवि ने सुरति को शब्द का संग करने का कहा है, क्योंकि इनके संग से ही कुकर्मो का हृदय से समूल नाश हो सकता है–

"मारग बंका पिछान ले, उडन गडन दे छाड।
सुरति शब्द के संग है, दुरमति दिल से काढ।।"[228]

साधना की परमावस्था है– सुरति एवं शब्द का एकमेक होना अथवा लवलीन हो जाना–

पांच तत्त आरंभ न होते, ना थी त्रिगुण ताखी।
अष्ट योग आसन नहीं होते, तब कौन ज्ञान पद भाखी।।"[63]

कंवल/चक्र –

हठयोग साधना में मुद्राओं, नाड़ियों एवं आसनों की भाँति चक्रों अथवा कँवलों का ज्ञान महत्त्वपूर्ण है। योग ग्रन्थों में कितने ही चक्रों का उल्लेख मिलता है, किन्तु संतकवि गरीबदास की वाणी में सात चक्रों/कँवलों का जिक्र हुआ है।

गरीबदास जी ने अपनी वाणी में मूलतः जिन सात कँवलों का उल्लेख किया है, उनके नाम इस प्रकार है – मूल कँवल, स्वाद कँवल, नाभ कँवल, हृदय कँवल, कण्ठ कँवल, त्रिकुटी कँवल एवम् सहँस कँवल।

1. **मूल कँवल** के विषय में इनका मत है कि यहाँ का रंग 'लाल' है, देव 'गणेश' है एवम् मंत्र 'किलियं' है –

   "मूल कँवल कूँ दृढ़ कर बांधो, रक्त वर्ण रंग लागे।
   पंखड़ी बसे गणेशा, किलियं शब्द बिहागे।।"[64]

2. **स्वाद–कँवल** के अन्तर्गत 'ब्रह्मा' का वास है, 'आठ पंखुरी' का मेल, रात और दिन 'ऊँ' नाम का जाप है और सतत ज्ञान एवं बुद्धि का खेल है–

   "स्वाद चक्र ब्रह्मा का वासा, अष्ट पंखरी मेलं।
   ऊँ जाप जपे निशि वासरि, ज्ञान बुद्धि का खेलं।।"[65]

3. **नाभ–कँवल** में 'विष्णु' का स्थान है, जहाँ दस दल युक्त दीप है, विष्णु के समीप लक्ष्मी का वास है एवं 'हरियं' मंत्र का जाप है–

   "नाभ कँवल में विष्णु विश्वंभर, दस दल का जहां दीपं।
   हरियं जाप हिरंबर हीरा, लक्ष्मी सहित समीपं।।"[66]

4. **हृदय कँवल** में 'महादेव' स्थित है, बारह पंखुरी का कमल, 'सोहं' जाप का उच्चार है एवं कोई–कोई साधक ही यहाँ का भेद प्राप्त कर सकता है–

"षट कर्म है बंधन भाई। चोला पाख लगे नहीं काई।।
पांचों मुद्रा करे बियांना। जा से भेद अगोचर जान्या।।"[56]
"खेचरी भूचरी चांचरी उनमनी, अकल अगोचरी नाद हेरा।
सुंनि सतलोक कूँ गवन हंसा किया, अगमपुर धाम महबूब मेरा।।"[57]

उन्होंने अपने लक्ष्य अथवा इष्ट को इन मुद्राओं की सीमाओं से भी ऊपर बताया है।

नाड़ियाँ–

हठयोग साधना के अन्तर्गत पंचमुद्रा के साथ–साथ नाड़ी ज्ञान भी परमावश्यक है। हमारे शरीर में कुल 72 हजार नाड़ियाँ हैं। संतकवि गरीबदास ने अपने काव्य में मुख्यतः केवल तीन नाड़ियों का साधना के संदर्भ में जिक्र किया, वे हैं – इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना। बहत्तर (72) हजार नाड़ियों में केवल ये तीन नाड़ियाँ ही प्रमुख है–

"सहंस इकीसौं छै सौ जानैं, कुंभक रेचक उलटा तानैं।
इला पिंगला सुष्मण सारं, देखों दम दम में दीदारं।।"[58]

कबीर ने इड़ा–पिंगला को इंगला एवं पिंगला नाड़ी कहा है। ये दोनों ही बारी–बारी से चलती है। इड़ा नाड़ी बांयी नाक, पिंगला नाड़ी, दांई नाक एवं सुषुम्ना इन दोनों के मध्य भाग में निवास करती है। "इन्हीं तीन नाड़ियों को ललना–रसना–अवधूती भी कहा जाता है।" साधना–प्रक्रिया में आलोच्य कवि ने भी अपनी वाणी में निम्न प्रकार से तीनों नाड़ियों का इस प्रकार वर्णन किया है–

"सूरज द्वार बंधि ले बाटा। चंद्र द्वार के खोल्हि कपाटा।।
सूरज द्वार दहनें सुर देना। चंद्र द्वार बामें सुर मेवा।।
चंद्र द्वार दहनें सुर ल्यावो। दहना सुर बामें कूँ ध्यावो।।
दोहूँ सुर मध्य सुष्मणा तारी। तिल प्रवान जहां लगी किवारी।।"[59]

सन्त शिवनारायण ने भी इस योग साधना का यत्र- तत्र वर्णन किया है -

इगला पिंगला दुइनारी सुधारी आठ पहर नौ नरिया ।
गंगा यमुना बीच बहे सरस्वती प्रेम के उठत लहरिया ।।[1]

सन्त धरम दास के विचार से पाच और पच्चीस को वश में करने के साथ-साथ इगला, पिंगला और सुषुम्ना को सोधने के बाद ही प्रभु का चरणोदक प्राप्त किया जा सकता है, जैसा कि अधोलिखित पंक्तियों से प्रगट है -

पाचे पाच पचीसो बस करि साचे होइ ठहरावै ।
इंगला पिंगला सुखमनि सोधै, तब चरनोदक पावै ।।[2]

सन्त पलटू दास ने अत्यंत ही प्रभाव शाली रूप में प्रतीकात्मक शैली के द्वारा इस योग-साधना का उल्लेख किया है -

इगला पिंगला पलरा दूनौ, लागि सुरति की जोती ।
सत्त सबद की डाडी पकरौ, तौलो भरि भरि मोती ।
चाद सुरज दोउ करै रखवारी , लगी तत्त की ढेरी ।
तुरिया चढि के बेचन लागे, ऐसी साहिबी मेरी ।।[3]

1- शब्दावली, चदवार की प्रति, पृ0 13, पद 32 ।

2- धरम दास की शब्दावली, पृ0 71

3- पलटू दास की बानी, भाग 3, पृ0 28

अनाहद नाद वस्तुत समस्त सृष्टि मे व्याप्त है। योग- साधना के द्वारा जिस अनाहद नाद का अनुभव योगी कोहोता है, वह इसी सृष्टि-व्यापी नाद का व्यष्टिगत रूप है । योगियो का कहना है कि पहले शरीर के भीतर समुद्र-गर्जन, मेघ-गर्जन और भेरी आदि सा शब्द सुनाई पड़ता है। फिर मर्दल,शख घटा की सी आवाज सुनाई पड़ती है। अन्त में किंकिणी, बशी, भ्रमर और बीणा के गुंजार सी मधुर ध्वनि सुनाई देती है। अन्तत मन के शुद्ध होने पर इन शब्दो का सुनाई देना बद हो जाता है ।

सन्त कवियो का सम्बन्ध जहा तक कुडलिनी-योग साधना से है, स्पष्ट है । इन सन्तो की बानियो मे स्थल- स्थल पर इडा ,पिगला,सुषुम्ना आदि नाड़ियो, अनाहतनाद सरन्ध्रो स्थान आदि की चर्चा की गई है। यह स्पष्टत हठयोग का ही प्रभाव है। हठ-योग के सम्बन्ध मे सभी सन्तों ने चर्चा किया है परन्तु यहा पर कुछ ही उदाहरण देकर इस योग- साधना के सम्बन्ध मे सन्तो के विचार को स्पष्ट कर रहा हूं। -

सन्त कबीर दास जी ने " कायानगर" मे "काया पुरुष" को प्राप्त करने एव वश के दृश्यो का जो वर्णन किया है, इससे इनकी कुडलिनी योग-साधना सम्बन्धो ज्ञान का आभास मिलता है ।यथा.-

\+ + +

दिखलूं मै कायानगर मे, काया पुरुषवा खोजि के ।
काहे सजनवा बिराजे भवनवा, दूनो नयनवा जोरि के ।
इंगला पिंगला सुषमन साधो, मनुवा आपन रोकि के ।
दसई दुवरिया लागी किवरिया, खोल शब्द से जोरि के।
रिमि झिमि रिमिझिमि मोती बरसै, हीरा लाल बटोरि के ।
लौका लौके बिजुली चमके, झिंगुर बोले झनकोरि के ।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, यह पद है निर्वान के ।।[1]
या पद के जो अर्थ लगावे,सोई पुरुष अनमोल के ।।

1- कबीर शब्दावली भाग3, पृ0 26- बे0 प्रि0प्रे0-इलाहाबाद

"लीजे सुरति निरति से लाहा, अविगत निरगुण रूप निगाहा।
मिट गई गरीबदास सब चाहा।।"[239]

सुरति का पद अत्यन्त निर्मल है–

"सुरति सिंहासन निर्मला, मलयागिरि मकरंद।
सुरति निरति के अंतरे, अविगत शब्द समंद।।"[240]

सुरति की वृत्ति को बाह्य आडम्बरी भक्ति से हटाकर केवल नाम की भक्ति में रखनी चाहिए–

"सूक्ष्म वेद को शिव पढ़ै, यौह अक्षर तूं बांच।
सुरति सुक्ष्म सूं लाईये, झांझि पीट मत नांच।।"[241]

परमात्मा का वास श्वास ओर सुरति के मध्य में है और सतत सुरति से ही उन्हें निहारना है–

"श्वास सुरति के मध्य है, न्यारा कदै न होय।
ऐसा साक्षीभूत है, सुरति निरन्तर जोय।।"[242]

परमात्मा का दीदार चित्त वृत्तियों को बाहर रखने में संभव नहीं है, अपितु सम्पूर्ण वृत्तियों को हृदय में एकस्थ कर सुरति एवं निरति द्वारा संभव है–

"सुरति निरति मन पवन कूँ, करो इकतर यार।
द्वादस उलट समांय ले, दिल अन्दर दीदार।।"[243]

परमात्मा की सेवा भी सुरति एवं निरति से करनी है–

"आलि ऐसा कंत प्रेवा है, सुरति निरति से सेवा है।"[244]

हंसात्मा को अलल पक्षी का मार्ग दर्शाया है अर्थात् सम्पूर्ण वृतियों को ऊर्ध्वगामी करना–

"सुरति निरति मन पवन, इकतर कीजिये।
अलल पंख का मारग, हंसा लीजिये।।"[245]

14:41
2015.400637.Bharatiya...
562/579

इनका अर्थ यह है कि काल से छूटने के लिए साधक को सुषुम्ना सम करनी चाहिए। प्राणवायु के प्रवेश से सुषुम्ना नाड़ी सम होती है। योगमत में यह अनेक बार कहा गया है कि साधक प्राण या पवन का सुषुम्ना में प्रवेश कराके काल के बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसीलिए योग में सुषुम्ना को ब्रह्म नाड़ी कहा गया है। कबीर जब बंकनाल को सम करके आवागमन से मुक्त होने की चर्चा करते हैं तो उनका अभिप्राय सुषुम्ना द्वारा ब्रह्मानुभूति ही है।

अन्यत्र कबीर ने 'चंद सूर दोइ खंभवा, बकुंनालि की डोर"[1] कहकर इस प्रसंग को और भी स्पष्ट कर दिया है। इस प्रसंग में चन्द्र और सूर्य इड़ा और पिंगला नाड़ियां हैं। इनके मध्य स्थित बंकनाल सुषुम्ना है जिसके द्वारा समाधि सिद्ध होती है। लगभग इसी पद्धति पर दरिया साहब (बिहार) ने भी वर्णन किया है। इसमें बंकनालि की डोर के स्थान पर सुखमनि लागलि डोरि है भी—

सत्त सुकृत दुनो खंभा हो. सुखमनि लागलि डोरि।[2]

धर्मदास ने सुषुम्ना द्वारा पवन के ऊर्ध्वगमन को ध्यान में रखकर ही अपनी रचनाओं में बंकनाल को सीढ़ी कहा है—

धरती है मस्तूल' तंबु असमान हैं।
नौ लख जरत मसाल, सीढ़ी बंकनाल है ॥[3]

दरिया साहब ने 'सुखमनि लागलि डोरि' के साथ कबीर के अनुसार बंकनाल की डोरी खींचने की चर्चा भी की है—

(क) बंकनाल गहि खैंचे सूत।
चमके बिजुली मोती बहुत ॥[4]
(ख) बंकनाल की डोरी खींचे, जोगी जुगुति बखाना।[5]
(ग) बंक नाल की डोरी खीचे, उलटि दुवादस नांघा ॥[6]

१—कबीर ग्रन्थावली पृ० ९४।
२—दरिया साहब की शब्दावली, पृ० ३८।
३—धर्मदास की शब्दावली, पृ० ४३।
४—दरिया साहब की शब्दावली, पृ० २२।
५— " " " ५६।
६— " " " ४८।

KuCoin
SHIB -7.47% (24h)
Install

14:32
10_chapter 6
61/144

कहीं शब्द सुरति योग के साथ ही कुंडलिनी योग ~~[illegible]~~ की क्रियाओं की ओर भी ये संकेत करते हैं ।

पछिमा का परनी बाकी तागी मगन दुलारी ।
ईंगला पिंगला दुलारी सुषमी घाटफार नी नरिया ।
गंगा जमुना बीच की धरसनी प्रेम के उठत लहरिया ।
शिव नारायन बैठ लाल पर देत है फिलत लहरिया ।[1]

.. ..

दो देखो मन गगन में मगन भयो ।
चाचरि जाल उरध मुख पीवत अमृत धाम दियो ।
सुरति संवार मूल परकाश दुवादस मध्य गयो ।
ईंगला पिंगला दुइ नारि सुधारी सुषमन तारझियो ।
तार के तरे है घेट बजावत अनहद सुधारि धरो ।
शब्द अनाहद होत महाधुन मनुहार भयो ।
शिव नारायन वह गति अगम जाप भयो ।[2]

उपर्युक्त पद में सुरति का शब्द मूल तक सुधार कर ले जाने की चर्चा के साथ ही ईंगला पिंगला तथा सुषमन नाड़ियों का वर्णन अनाहत नाद का उल्लेख मनुहार सम्बन्धी संकेत, कुंडलिनी योग की क्रियाओं के समावेश के कारण ही है ।

वस्तुत: सन्तों की शब्द सुरति योग सम्बन्धी धारणा लय योग, हठयोग, राज योग आदि सभी के मूल तत्वों से प्रभावित है ।

<u>लययोग का प्रभाव</u>

लययोग की धारणा के अनुसार प्रकृति और पुरुष के संसार से उत्पन्न यह विराट

---

१. शब्दावली, पृष्ठ १३, पद ३२, [illegible] की प्रति
२. वही , पृष्ठ १४, पद ३७

14:21

इसी प्रकार सन्त बुल्ला साहब,[1] धरनी दास,[2] मीरा[3],कीना राम[4], मिनक राम[5], सुवचन दासी,[6] शिवा राम[7] आदि सन्तों ने हठ योग-साधना का वर्णन किया है ।

1- मातल मनुवा घटहि समैबो हो ।
सहज सरुपे लिहले, हरिगुन गहबो हो।
तीरथ तिरबेनी नहबो, गगन मे जइबो हो ।
अनहद धुनि सुनि दीपक बरइबो हो ।।
-- बुल्ला शब्दसार, पृ04

2- अजब आवाज नगारा बाजत गगन गरज धुनि भारी ।
तह बरे बाती, दिवस न राती, अलख पुरुष मठधारी ।।
-- धरनी बानी, पृ0 5

3- मन में आनन्द फाग उठो री ।
इंगला पिंगला तारी देवै, सुखमन गावत होरी ।
बाजत अनहद डंक तहा धुनि गगन मे ताल परोरी ।।- मीरा शब्दावली,पृ033

4- झिलमिलि जोत की झक झाई, तबै गति अलख दरसाई ।
बसी बजे सुर घोर से, गूंजि तिहूं पुर शोर से ।।
-- राम गीता, पृ020

5- अमर पुरी के ऐसा अनहद मुरली बजावे ।
ओमे गावत राग रागिन छत्तिसो हो राम ।।-हस्तलिखित संग्रह, पद 20

6- हरि मधुआ मद माती, गगना निरत करो दिन राती रे ।
छकि छकि पीवो प्रेम पियाला, रोमे रोम रंग छाई ।
जग बिसुरो धुई गगन में ताड़ी अखंड लगाती रे ।
इगला पिगला पवन को रोकी, सुखमन दौड़ लगावे ।
मकर तार डोरी को पकरी, नीच ऊच भूमि आती रे ।
-- प्रेम तरगिनी, भाग 3, शब्द 171

7- इगल पिगल नाडी साधे, तब सुचि सुषुमन नारी राधे ।
बाम इंगला ससि दुति पाई, दच्छ दिसा पिंगल झलकाई ।
मध्य सुषुमना सदा जोती, ब्रह्म समीप अजब छवि होती ।
ताहि निरखि रिधि सिधि बस होई,राम कहत सुनै अघ धोई।।-आदि-अंगदलगुम-आ

खिरकी अजर अली चढ़ि देखा। जहँ इक साहिब रूप न रेखा ॥३
तुलसी सतगुरु अगम लखाई। लै की लगन लखि लोक सिधाई।
दुख सुख दोष सोक सब छूटा। कलसा कुंभ करम का फूटा ॥४॥

॥ दोहा ॥

प्रियेलाल मत मूर, सूर सुरति अस बिधि भई।
गई गगन के पार, सार समझि संतन कही ॥

॥ चौपाई ॥

अस अस सुरति लोक लखि देखा। संत रीति रस अगम अलेखा ॥
बिधि बैराग त्याग तन के री। ये सब खानि जगत भौ बेरी ॥
जोगी जोग करत भरमाने। स्वाँसा पवन चढ़ावन जाने ॥
इड़ा पिंगला सुखमनि माईं। पवन भवन मैं जाइ समाई ॥
गगन बिनसि सुनि स्वाँस नसाई। मनमत जोगी जुगति न पाई ॥
ज्ञानी गुनि मन आतम जानी। वा मन को पुनि ब्रह्म बखानी ॥
आदि अंत का भेद न जानै। संत मता कैसे पहिचानै ॥
संत मता कछु रीति नियारी। बूझै साधू समझ बिचारी ॥
अस सुनि इष्ट भाव औतारा। ये सब जानौ काल पसारा ॥
गढ़ि मूरति मंदिर मैं धारा। ये सब जानौ झूठ पसारा ॥
पानी पाहन मैं मन लावै। अगिनि तत्त जल तत्त समावै ॥
नकल कृष्न कहौ किन को तारा। अस असुरन जिव आतम मारा॥
नकल कृष्न पाहन की आसा। पाहन मुक्ति काल की फाँसा ॥
या से जिव उबरै नहिं खाना। जुग जुग बंधन माहिं बँधाना॥
कृष्न राम जो संत बताया। ये औतारी कोउ नहिं गाया॥
गो इंद्री गोबिंद कहाई। मनहिं कृष्न गोपिन के माईं॥
गुन ही तीनौं ग्वाल कहावै। बिंद बीच बिंद्राबन आवै ॥
गो गोपी बिच कान्ह कहाई। ये मन बस रस इंद्री माईं ॥
अब या की सुन साखि बताऊं। संध सब्द बिच भाखि सुनाऊँ ॥

महलों के भेद प्राप्त हुए और अपने प्यारे पति से मिली। ५।

॥ शब्द १०१ ॥

अगम गली गम सार पार चढ़ि पेखिये।
जहँ सतगुरु के वैन नैन नित देखिये॥ १॥
चल सतगुरु के महल टहल तहँ कीजिये।
जीवन जनम सुधार सार कर लीजिये॥ २॥
सखी सुखमन घर घाट बाट पिया की लखो।
तोड़ो जम के दन्त संत सरना तको॥ ३॥
पिया बिन धृग संसार जार जग जोर है।
धृग जीवन बिन दास पास पिया को कहै॥ ४॥
सतगुरु संत दयाल जाल जम काटि हैं।
करि हैं भौ जल पार ठाट सब ठाटि हैं॥ ५॥
सूरत संध सुधार पंथ पिय पाइया।
तुलसी सत मत सार सुरत गति गाइया॥ ६॥

सुन्न के पार जो शब्द है, वही सार शब्द है। सुन्न के परे चढ़ो और अगम की गली को देखो जहाँ तुम्हें सतगुरु के दर्शन और बचन प्राप्त होंगे। १।

सतगुरु के महल को चलो और वहाँ उनकी सेवा करो और अपना जन्म सुफल करो। २।

हे सखी! सुखमन की धार में पिया की बाट लखो। सतगुरु की सरन लेकर जम के दाँत तोड़ो। ३।

कहने का मतलब यह है कि सुखमन की धार जो ऊपर से आ रही है उसमें मन और सुरत को जोड़कर ऊपर चलो, यही रास्ता पिया के पास पहुँचने का है। संत सतगुरु की सरन और दया के आसरे काल की हद के पार पहुँच जाओ। इस प्रकार काल के दाँत तोड़ो। दाँत तोड़ने से मतलब काल की हद से बाहर होने से यानि सुरत का पता और भेद लेकर, ऊपर से जो अमृत की धार, शब्द की धार, पिया के दरबार से आ रही है उसमें सुरत को लगाने और संग

14:42
2015.400637.Bharatiya...
561/579

अन्तिम उद्धरण में द्वादश पवन को उलट कर ब्रह्मरन्ध्र में बांधने का उल्लेख स्पष्ट कर देता है कि यहां बंकनाल का प्रयोग सुषुम्ना के लिए किया गया है क्योंकि पवन सुषुम्ना मार्ग से ही परमपद में पहुंचता है।

तुलसी साहब

संत तुलसी ने भी बंकनाल का प्रयोग सुषुम्ना के अर्थ में किया है। निम्नलिखित उद्धरण में प्राणवायु का साधक की विभिन्न क्रियाओं द्वारा बंकनाल या सुषम्ना के भीतर प्रविष्ट होना एवं सहस्रादल कमल तक पहुंचना उल्लिखित है—

स्वांसा बाइ बंक खुल खोले, सहस कंवल दल पाई।[1]

अन्यत्र उन्होंने बंकनाल के पथ से किंकिणी, बीन, शंख और शहनाई सुनने की चर्चा की है जो वस्तुतः सुषुम्ना—पथ में प्राण के प्रवेश करने पर साधक के नाद-श्रवण से मन्तव्य रखती है-

किंगरी बीन संख सहनाई, बंक नाल की बाट।[2]

एक स्थल पर उन्होंने बंकनाल के पट या द्वार का पवन के द्वारा भेदे जाना वर्णन किया है-

इंगल पिंगल बिच पौन किवारी, बंकनाल पट फारि दिये॥[3]

यहां इड़ा पिंगला के मध्य स्थित बंकनाल सुषुम्ना के अवरुद्ध द्वार को खोलकर प्राण का ऊर्ध्वगमन वर्णित है।

एक स्थल पर तो तुलसी साहब ने स्पष्ट कहा है कि सुषुम्ना को बंक या बंकनाल समझना चाहिए—

इंगल पिंगल समीर से, सुखमनि बंक बिचार।[4]

इससे यह स्पष्ट हो गया कि तुलसी साहब भी बंकनाल का प्रयोग सुषुम्ना के परम्परागत अर्थ में ही करते हैं। पर बंकनाल का एक दूसरा अर्थ भी संत तुलसी की रचनाओं में प्राप्त है। उन्होंने बंकनाल का प्रयोग एक नहीं अनेक बार कुण्डलिनी के अर्थ में किया है। आगे के उद्धरणों पर विचार करने से हमारा मन्तव्य स्पष्ट हो जायगा—

१—घटरामायण, द्वितीय भाग, पृ० ६।
२—शब्दावली, प्रथम भाग, पृ० १२१।
३— " " पृ० ११०।
४— " " पृ० ११२।

KuCoin
ETH -6.99% (24h)
Install

जीव शिव की एकता होनेपर चित्त का लय हो जाता है। पवन स्थिर हो जाने पर इस लय का फल स्वात्मानंद परमपदरूप सौख्य है।[१०६]

प्राण और मन का लय आत्यन्तिक स्वरूप में स्थिति लाता है। सहस्रार में प्राण की बिना व्यापार की स्थिति ही प्राण का लय कहलाती है। ब्रह्म से भिन्न विषयों में व्यापार रहित होना मन का लय कहलाता है। प्राण के लय से मन का लय होता है। ऐसी अवस्था में सूर्य चंद्र का एकीकरण सिध्द कर साधक कालजय कर लेता है। यही मनोलय अथवा उन्मनी अवस्था है।[१०७]

राजयोग :

राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्व, शून्याशून्य, परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालंब, निरंजन, जीवन्मुक्ति, सहज, तुर्या सब एक ही समाधितत्व के वाचक हैं।[१०८] योगशिखोपनिषद् में राजयोग इस नाम की सिध्दि बतायी है। मनुष्य के योनिस्थान में रज नाम का तरल पदार्थ विद्यमान रहता है। देह में यह देवीतत्त्व प्रतीक है। इस रज के साथ रेतस् का संयोग ही राजयोग है। यही शिवशक्ति का मीलन है।[१०९] इस क्रिया की चरमपरिणति साधक को समाधि अवस्था में ले जाती है। आत्मा और मन की एकता ही समाधि है। यही मन का " अमन " हो जाना भी है। प्राणलय पर मन भी लय हो जाता है। यह समरसावस्था ही समाधि है। इस समय सारे संकल्प विकल्प नष्ट हो जाते हैं। यही " योगारूढ " होना है।[११०]

अब कुछ विशेष साधना की ओर देखना चाहिए। सूक्ष्मवेद, नादानुसंधान, शून्यतत्त्व, ब्रह्माग्निसाधन आदि तत्त्व इसके अन्तर्गत आते हैं।

---

१०६. योगशिखोपनिषद् १।१३४-१३५

१०७. गो. श. सबदी ५०, पृ.१८

१०८. ह. यो. प्र. ४।३,४

१०९. योगशिखोपनिषद् १।१३६-३७

११०. भगवद् गीता ६।४

पश्यन्ती में प्रवेश करना ही मंत्रयोग का प्रधान उद्देश है। नाद महा अनाहत नाद में विलीन होकर साधक को आज्ञाचक्र में ले जाता है। वहाँ बिन्दुस्थान भेदकर सहस्रारस्थ महाबिंदु पर्यंत पहुँचा देता है। "हंस" मंत्र का "सोऽहं" में परिणत होना नाथोपदिष्ट मंत्रयोग की पूर्णाहुति है।

ह ठ यो ग :

पश्चिम पथ (सुषुम्ना द्वार) में गमन करने पर वायुयोग की प्रतीति होती है। यह चन्द्र और सूर्य के एकीकरण पर संभव है। हकार को "सूर्य" और[103] ठकार को "चंद्र" कहा जाता है। यह हठयोग जाड्य को नष्ट करता है।

हठयोग प्रदीपिका में कहा है कि हठयोग की चरम परिणति राजयोग है।

"केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते।" - प्र. १।२।

राजयोगसंपन्न होना याने काल के राज्य से मुक्त होना है। कुंभक द्वारा प्राण स्तब्ध हो जाता है और चित्त निरालंब अवस्था को प्राप्त होता है। इसप्रकार हठयोग का मुख्य फल राजयोग ही है।

हठयोग में षट्कर्म, नेति, धौति, बस्ती, नौली, कपालभाति और त्राटक आते हैं।[104] इनसे देहशुद्धि होती है। मुद्रा और नादानुसंधान का अभ्यास साधक को लय की अवस्था में ले जाता है। मुद्राओं में मुख्य महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्डियान, मूलबंध, जालंधरबंध, विपरीतकरणी, वज्रोली और शक्तिचालिनी ये दश महामुद्राएँ कहलाती हैं।[105] नाथपंथ देहतत्व प्रधान योगपंथ है। अतः उसमें हठयोग का प्राधान्य उचित ही है।

ल य यो ग :

लययोग अहंता के नष्ट होने से जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्यपर होता है।

---

१०३. योगबीज १४८, १४९।

१०४. हठयोगप्रदीपिका २।२२।

१०५. हठयोगप्रदीपिका ३।६-७।

जोगी राह रीत दरसाऊँ। भिनि भिनि जोग बिधी बिधि गाऊ॥
जोग सब्द बिधि कहौं बखानी। बूझै जोग कीन्ह सोइ जानी।

॥ कहेरा ॥

जोगी राह रमक तत तारी, करत जोग जुग चारी हो।
ज्ञान जोग मिसिरित[1]मन मैला, चढ़िअकास नित खेला हो॥१॥
अब तेहि राह रीति दरसाऊँ, बिधि भिनि भिनि गति गाऊँ हो।
बस तन मन रस निरमल होई, इंद्री इस्क खुद खोई हो॥२॥
ता पर तीन तलब पचबीसा, खड़ग ज्ञान दल पीसा हो।
उनके निकट नेक नहिँ ज़ावै, थिर होइ पवन चढ़ावै हो॥३॥
दीदा फूल झूल दिन राती, त्रिकुटी चढ़ि येहि भाँती हो।
बिधि बायेँ[2] पिँगला गति केरी, इँगला दहिने फेरी हो॥४॥
चंद सूर दम दम बस आवा, सुखमनि चटक चढ़ावा हो।
बंक नाल पल पल नल खोली, अति अजपा नहिँ बोली हो॥५॥
ओहँग तत सोहँग मत जानी, पवन सब्द सँध आनी हो।
थिर मन मेरडंड चढ़ तारी, झलक जोति उँजियारी हो॥६॥
तत अकास आतम बिधि जानी, लख चर अचर बखानी हो।
अंडा तत्त द्वार दरसानी, जोग ज्ञान गति बानी हो॥७॥
यह सब काल खेल भरमाये, सास्तर बेद भुलाये हो।
यह सब जोगि जोग बस कीन्हा, काल राह रस पीना हो॥८॥
वे दयाल बिधि भेद अपारा, संत चीन्ह भये न्यारा हो।
जोग ज्ञान पंडित सुनि मानै, सास्तर पढ़त पुरानै हो॥९॥
जैसे नीर घड़ा जल माईं, रबि प्रतिबिंब दिखाई हो।
जब लग घड़ा अकास समाना, तब लग तत दरसाना हो॥१०॥
फूटा घड़ा अकास नसाना, रबि सूरज बिनसाना हो।
तत भयौ नास भास भइ जोती, अंध कूप हिये होती हो॥११॥

(१) मुं० दे० प्र० के पाठ में "मिसिरित" की जगह "निसिरित" और (२) "बिधि बायेँ" की जगह "बिधिवा यह" है जो अशुद्ध जान पड़ता है।

और वहाँ शिव का निवास है। इसी प्रकार नौ रन्ध्र या नौ द्वार शरीर के छिद्र हैं।

प्राणायाम का नाड़ियों से सम्बंध है तथा नाड़ियों का द्वारों से। इन नाड़ियों का तथा प्राणायाम का नाद-विंदु से भी सम्बन्ध है। सूर्य-चन्द्र और नाड़ियों के विषय में हम बतला चुके हैं कि इस युग्मक सिद्धान्त को व्यक्त करनेवाले अन्य शब्द भी हैं। नाद-विंदु की भी इन्हीं में गणना की जाती है। विंदुरक्षा प्राणायाम में अत्यधिक आवश्यक है। गोरख ने विंदु शब्द का अधिकतर प्रयोग 'शुक्र' के अर्थ में किया है।[1] उन्होंने विंदु के दो भेद भी बताये हैं—कच्चा विंदु तथा पक्का विंदु। वायु के कच्चे रहने से, प्राण पर पूर्ण नियंत्रण न रहने से जीवन कच्चा रहता है तथा परिणामस्वरूप ही काया कच्ची रहती है और विंदु भी कच्चा रहता है। उन्होंने इन सबको योगाग्नि से परिपक्व करने की सम्मति दी है।[2] गोरख ने शिवशक्ति के युग्मक के समान ही रज और विंदु (या रज और शुक्र) के युग्मक को स्वीकार कर बतलाया है कि शक्ति रज है और शिव विंदु है। डा० बड़थ्वाल ने रक्त को शक्तिस्वरूप बतलाया है और विंदु को शिवस्वरूप। रवि की बारह कलाएँ होती हैं और चन्द्र की सोलह कलाएँ होती हैं। इन दोनों का योग ही शिवशक्तियोग है। इस प्रकार रज और विंदु का योग भी शिवशक्तियोग है। यह सामरस्य अनंत है। यह चार कलाओं का सामरस्य है।[3] 'रक्त' 'रज' आदि शब्द लोहित विंदु के बोधक है तथा 'विंदु' पांडुर विंदु का बोधक प्रतीत होता है। संस्कृत ग्रंथों में पाण्डुर विंदु को शशिस्थानीय तथा लोहित विंदु को रविस्थानीय कहा गया है। इस प्रकार जो युग्मक बनते हैं, वे इस प्रकार अनुमित किये जा सकते हैं—

शिव—विंदु (पाण्डुर), शुक्र, शशि, इड़ा, गंगा, ठ।
शक्ति—विंदु (लोहित), रज, रवि, पिंगला, यमुना, ह।
(इस प्रकार के कुछ कुग्मकों का परिचय पहले भी दिया जा चुका है)

[1] गो० बा०, ४९.१४१-१४२, ५१.१४८, ७०.२१२, १२.३०, १७.४७ ९०.२, ९१.५।
[2] गो० बा०, ५४.१५६।
[3] गो० बा०, १००.५।

संबंध में कुछ भी नहीं मिलता। केवल शरीरगत नौ रन्ध्रों के महत्व की ओर संकेत कर दिया गया है। दशम द्वार का अवश्य ही विस्तृत परिचय उपलब्ध है। गोरख ने 'देवद्वार' शब्द का प्रयोग ब्रह्मरन्ध्र या दशम द्वार के अर्थ में किया है। दशम द्वार वह स्थान है जहाँ योगी उन्मन हो जाता है तथा नाद-विन्दु के मेल से उत्पन्न धू-धू-कार अनाहत नाद को सुनता है। किन्तु इसके उपरान्त इस दशम द्वार को भी बन्द कर वह अन्य द्वार से परमतत्व की खोज करता है। इस दशम द्वार में या ब्रह्मरन्ध्र में शिव का निवास है। इसी दशम द्वार में अवधूत की समाधि लगती है। जब अधः और ऊर्ध्व को अवरुद्ध कर दिया जाता है, तो मन स्थिर हो जाता है, पवन स्थगित हो जाता है और तदुपरान्त दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र का प्रत्यभिज्ञान होता है और परिणामतः आवागमन छूट जाता है। इस शरीर में नौ द्वार तो प्रत्यक्ष ही दिखाई पड़ते हैं किन्तु दशम द्वार अप्रत्यक्ष है, दिखाई नहीं पड़ता। इसी दशम द्वार में 'निराकार पद' की सेवा की जाती है। इस प्रकार की सेवा के लिये नौ द्वारों का दृढ़तापूर्वक अवरोध करना चाहिए। वहीं ब्रह्मरंध्र में मदमत्त मन को बाँध देना चाहिए। जब वायु को बाँध दिया जाता है तथा पवन चौंसठ सन्धियों में क्रीड़ा करने लगता है, नौ द्वारों में ताला बंद कर दिया जाता है तभी दशम द्वार में प्रकाश का दर्शन होता है।[1] गोरख ने नवरन्ध्रों या नौ द्वारों को नौ गायों के रूप में कल्पित किया है। इन्हें नौ घाटी भी कहा गया है जिसमें वायु का आवागमन बना रहता है। इन रास्तों को रोक देने से वायु का चौसठ संधियों में व्यापार होने लगता है। इन नौ द्वारों से होनेवाले वायु के गमनागमन को रोकने से 'काया की पलट' या कायाकल्प भी होता है तथा परिणामतः उन्मनीयोग की सिद्धि होती है। अन्यत्र गोरख ने शरीर के नौ द्वारों को नौ बछड़ों के रूप में भी कल्पित किया है। इसी प्रकार नौ द्वार नौ सूत्रों के रूप में भी कल्पित हैं जिनके ऊपर या सहारे कोट का यंत्र प्रचलित रहता है। नौ द्वार शरीर रूपी मठ की नौ लाख खाइयों के समान भी हैं।[2] घूधलीमल ने मन को फेर कर दशम द्वार में ही उसे घेरने तथा अधः-उर्ध्व का निरोध कर देने का उपदेश दिया है। भरथरी के अनुसार नौ द्वारों के कपाट को दृढ़तापूर्वक स्थिरभाव से बंद कर देना चाहिए क्योंकि दशम द्वार से तो शिव के मंदिर का रास्ता चलता है।[3] स्पष्ट ही दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र है

[1] गो०बा०, पृ० १४७, ४७, ९४, ११६, ११७, १२०, १२७, १७५, १७४।

[2] गो० बा०, पृ० १०४, १२, १९, ११३, १२१, १३४, ११६।

[3] ना० सि० बा०, पृ० ६५-६६, १००।

17:39

2015.263628.Nath-Aur

400/727

जाता है उसे तांत्रिक ग्रंथों में कहीं कहीं अग्नि नाम दिया गया है। इसलिये उपर्युक्त युग्मों की तुलना में उसे योग, अग्नि, नाड़ी, सरस्वती, सुषुम्ना, मध्य आदि नामों से अभिहित करते हैं। कहीं कहीं मध्य, अनन्तर, एकत्व, 'साँध' सम्मुख, विलीनता 'समि' या साम्य या सामरस्य, स्थैर्य, समाधि, मिलन आदि कहा गया है। गंगा और यमुना या इड़ा—पिंगला का मिलन या उनके विरोधभाव की हानि सुषुम्ना में होती है। जहाँ इड़ामार्ग को चन्द्र तथा पिंगला मार्ग को भौम या सूर्य कहा गया है वहीं सुषुम्नामार्ग को वाणीमार्ग (गंगा-यमुना-मार्ग के अनुसार सरस्वती मार्ग) कहा गया है। इड़ा—पिंगला के साधन से ही कुण्डलिनी का जागरण होता है और फिर सुषुम्ना नाड़ी में निश्शंक विश्राम मिलता है। वही वास्तविक घर है। इड़ा (चन्द्र) का शोधन और पिंगला का पूरण कार्य कर उन दोनों को लेकर सुषुम्ना के मध्य से आकाश में आरोहण करना चाहिए। इन नाड़ियों के एक साथ साधन से ही भ्रमनिवारण होता तथा ब्रह्मसाक्षात्कार होता है।[1] यह सुषुम्ना ही वस्तुतः मध्यममार्ग है। इसे अद्वय भी कह सकते हैं। आचार और संयमगत मध्यम मार्ग का परिचय हम पहले ही दे चुके है और यहाँ हठयोगगत मध्यममार्ग का परिचय दिया गया है जिसमें सुषुम्ना को मध्य कहा गया है। गोरख के अनुसार सारे आध्यात्मिक संसार का व्यापार अधः और उर्ध्व के बीच का व्यापार है। पूरक और रेचक के बीच कुंभक की स्थिति है, वही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और उसी से आध्यात्मिक व्यापार चलता है। यही स्थान शून्य स्थान है जहाँ साधक की स्थिति स्थिर होती है, वहीं उसे मस्ती मिलती है। प्राणतत्व की स्थिर और वास्तविक स्थिति अधः और उर्ध्व या पूरक-रेचक या अपान और प्राण के मध्य में है। प्राणपुरुष का वास्तविक निवास वहीं है। व्यक्ति की जब इड़ा और पिंगला में पवनक्रिया चलती रहती है तब उसे संसारोन्मुख कहा जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से उसे जागना तथा पारमार्थिक दृष्टि से उसे सोना कहते हैं किन्तु जब द्वैतप्रधान ये दोनों नाड़ियाँ अपने द्वैत का त्याग कर देती हैं, उनकी सांसारिकता सो जाती है, तभी केवल सुषुम्ना में पवन-क्रिया होती है। पारमार्थिक दृष्टि से इसे ही जागरण कहते हैं। गोरख के उपदेश में साधक से कहा गया है कि सबके सामने व्यवहार में तो सायंकाल सो जाओ किन्तु उस समय मध्यकाल में, रात और दिन या शशि और सूर्य के मध्य में, भीतर से, अंतस् से, जागते रहना चाहिए। यह जागरण तभी संभव होता

---

[1] गो० बा०, ३३. ९४, ९५.१, १०५. २, १११. ५. १९, १६७. १६।

6459.40
Đ1000.00

या ३६ लक्षणों से संपन्न हो जाने पर फिर गुरु-शिष्य आदि के भेद नहीं रहते। उनमें किसी को भी ज्येष्ठ या श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। किंतु सांसारिक दृष्टि से यह विपरीत क्रम है। इस क्रम के संबन्धमें हम पहले भी बहुत कुछ कह चुके हैं। मन, पवन, शब्द, सुरति—इन सबको उलट कर त्रिपुटी में मिलाना या केन्द्रित करना भी विपरीतकरण है।[1] कुंडलिनी का सुप्त रहना एवं मानसिक वृत्तियों का बाह्य सांसारिक विषयों की ओर उन्मुख होकर चंचल रहना यह सब सांसारिकों की दृष्टि में सीधी क्रिया है। इनको उलट देना कुंडलिनी को जाग्रत कर सहस्रारोन्मुख कर देना विपरीतकरण है। इस प्रकार की उलटी क्रिया की चर्चा उलटी चर्चा है। कायसिद्धि या सिद्धदेह का वर्णन करते समय 'काया पलटना' का वर्णन किया जा चुका है। इसी प्रकार षट्चक्रवेध के लिये पवन को उलटना भी आवश्यक बतलाया गया है। इसी साधन को चंद्र-सूर्य को सम्मुख रखना, उलटकर फूल का कली में आना (वृद्ध से बाल रूप में आना), उलट कर फिर पीछे की ओर आना (परावृत होना), मन का उलटना, कमलों का उलटना (तांत्रिक मान्यता है कि कमलों का वेध होने पर वे अधोमुख से ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं), रुधिर को उलट कर अमृत रस का भरना, विपरीतकरणी मुद्रा से वायुस्थैर्य, चंद्र और सूर्य का उलट कर राहु-केतु का ग्रास कर लेना, चंद्र-सूर्य का समरसीकरण आदि सभी प्रकारान्तर से इसी विपरीतकरण की ओर संकेत करते हैं।[2] इस प्रकार यह विपरीतकरण मन, पवन, इन्द्रिय, शुक्र, काया आदि का विपरीतकरण है जिससे शारीरिक अजरामरता एवं परमतत्वसाधन—दोनों ही सिद्ध होते हैं। कुंडलिनी का पलटना इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

कुंडलिनी का पलटना या जागरण और सहस्रारोन्मुख होकर गतिशील होना एक ही है। इसकी यात्रा के संबंध में विस्तार से हम तांत्रिक योग के विवेचन में कह चुके हैं। तांत्रिक लोग शक्ति के ही दो रूप मानते हैं। शक्ति माया भी है और मुक्तिदायिनी भी है। कुंडलिनी जब तक सुप्त रहती है तबतक वह मायाभिमुख जीवशक्ति का प्रतीक है। जाग्रत होने पर वही मोक्ष-दायिनी है। पहले हम नारीशक्ति के भी रूपों का परिचय दे चुके हैं। कुंडलिनी के कुंवारी, योषित और पतिव्रता ये तीनरूप उसके विकासक्रम के

[1] गो० बा०, पृ० ५० छं० १४४, पृ० १८७।

[2] गो० बा०, पृ० १४२, ६५, ७०, १३, १९, ३६, ३९, ४०, ७४, १२४ १४६, १४९, १७५, १७६।

गोरख ने, यद्यपि इन्हीं रचनाओं में विभिन्न बंधों को साधनांगों के रूप में स्वीकार किया है तथापि उनके स्थान, क्रिया, उपयोग, विधान, आदि का परिचय वहाँ नहीं मिलता। उन्होंने मूलबंध और उड्डीयानबंध को स्पष्टतया स्वीकार किया है। क्षरित होने वाले अमृत को जालंधरादि बंधों की सहायता से रक्षित करने का उपदेश मिलता है। इनके अतिरिक्त गोरख ने तुरीया बंध और अगोचर बंधों का भी नाम दिया है।[3] इन बंधों का प्राणायाम से क्या संबन्ध है, इसके विषय में हम तांत्रिक योग और संस्कृत ग्रंथों के नाथों के योग के विवेचन में कह चुके हैं। हिन्दी रचनाओं में 'वेध' का कोई स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता। एक स्थान पर 'वेधाबोध' शब्द का प्रयोग अवश्य है किन्तु वहाँ डा० बड़थ्वाल नें 'कुण्डलीवेध' का अर्थ लिखा है जो हठयोगी एवं नाथपंथी ग्रंथों में विवेचित 'वेध' से पूर्णतया भिन्न है। इसी प्रकार बंध और

---

[1] गो० बा०, १७. ४७; १९. ५०, ५२; २१. ५७; २८. ७८; २९. ८१; ३२. ९०, ९२; ३६. १०५; ४५. १३०; ५०. १४५; ५१. १४६; ५३. १५५; ८१. २६५।

[2] गो० बा०, ८३. २७४।

[3] गो० बा०, पृ० १६०; सि० सि० प० अ० व०, ७८. २२; ना० सि० बा०, पृ० १८।

[4] गो० बा०, पृ० १६०, १७६, १९४, २०२।

वेध के अतिरिक्त जिस तीसरे साधनांग का प्राणायाम से संबंध है वह मुद्रा है। प्राणायाम और मुद्रा के संबंधों के विषय में हम पहले ही कह चुके हैं।

गोरख के नाम से प्रसिद्ध रचनाओं में मुद्रा का बहुविध परिचय मिलता है। गोरख ने 'मुद्रा' का 'बंद करना', 'अवरुद्ध करना' आदि अर्थों में भी प्रयोग किया है। आन्तरिक मुद्रा का भी वर्णन है। इसमें चन्द्र और सूर्य के मुद्रण अथवा मन-मुद्रण या मानस की सांसारिक वृत्तियों के मुद्रण की बात कही गई है जिनका न कोई रूप है और न रेखा ही। इसके अतिरिक्त वज्रोली और अमरोली नाम की प्रसिद्ध मुद्राओं का संकेत मिलता है। कहा गया है कि वज्रोली करके अमरोली की और अमरोली करके वायु की रक्षा करनी चाहिए। इनकी सहायता से भोग करते समय भी विंदुरक्षा की जानी चाहिए। शुक्र का पोषण या ऊर्ध्वीकरण कर वज्रोली मुद्रा के साधन की भी बात कही गई है। इस क्रिया से काया के सभी दोषों का हरण बताया गया है।[1] इनके अतिरिक्त गोरखबानी में 'अष्ट मुद्रा' नाम की एक अलग रचना है। इस रचना में मूलनी, जलश्री, 'बीतनी', षेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी, उनमनी नाम की आठ मुद्राएँ बताई गई हैं। इनमें से अनेक का नाम हठयोगी ग्रंथों एवं नाथपंथी संस्कृत ग्रंथों में मिल जाता है किन्तु यहाँ प्रारम्भ में ही बता दिया गया है कि ये आठ मुद्राएँ घट के भीतर की हैं। इन सबका स्थान क्रमशः इन्द्रिय (जननेन्द्रिय), नाभि, हृदय, मुख, नासिका, चक्षु, कर्ण, ब्रह्माण्ड बताया गया है। कहा गया है कि इन स्थानों में क्रमशः काम-तृष्णा, काम-क्रोध, ज्ञानदीप, 'स्वाद-विस्वाद', गंध-विगंध, दृष्टि-विदृष्टि, शब्द-कुशब्द के वैषम्य तथा ब्रह्माण्ड में परमज्योति का निवास है। इन वैषम्यों का मुद्रण ही मुद्रा का अर्थ प्रतीत होता है। यह अर्थ स्पष्ट रूप से 'अष्टमुद्रा' में नहीं बताया गया है। 'साम्य' शब्द का कई बार प्रयोग होने से ऐसा प्रतीत होता है कि 'मुद्रण' या 'मुद्रा करना' का अर्थ है साम्य स्थापित करना।[2] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दी रचनाओं में जिन मुद्राओं का वर्णन मिलता है, वे पिण्डस्थ हैं एवं सदाचार तथा मानस-विन्दु-नियन्त्रण से संबंधित हैं। इनका सीधा संबंध शरीर की बाह्य चेष्टाओं से प्रतीत नहीं होता। संस्कृत रचनाओं में मुद्राओं का जो विवेचन मिलता है, उससे स्पष्ट है कि वे सभी शरीर के बाह्यांगों के साधन हैं।

इसी प्रकार प्राणायाम का प्रणवसाधन, नादानुसंधान आदि से भी संबंध है।

---

[1] गो० बा०, पृ० ११०, १४६, ४९, १७६।

[2] गो० बा०, पृ० २४७।

इसी प्रकार विंदु से संबंधित दूसरा युग्मक नाद-विंदु है। गोरखवानी में इनकी व्याख्या नहीं मिलती। इनके सामरस्य अथवा योग की बात अवश्य कई बार कही गई है। शरीर में इन दोनों का समन्वित रूप में 'जरना' (जलना या जीर्ण होना) आवश्यक बतलाया गया है। नाद का विंदु के घर गरजना, पहुँचना, नाद को उलट कर तथा विंदु को पलट कर वायुगृह में पहुँचाना, या वायु की सहायता से दोनों का समन्वय करना भी योगक्रिया ही है।[1] डा० कल्याणी मल्लिक ने बताया है कि गोरक्षसिद्धांतसंग्रह में नाद और विंदु अंश के उत्कर्षापकर्ष का विचार किया गया है। बताया गया है कि नाथ से नाद और नाद से प्राण की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार शक्ति से विंदु और विंदु से शरीर की उत्पत्ति हुई। योगसंप्रदाय में नाद से उत्पन्न शिष्य को विंदु से उत्पन्न पुत्र की अपेक्षा श्रेष्ठ बताया गया है। यह भी बताया गया है कि विंदु शिव है और रज शक्ति। विंदु ही इंदु है और रज ही रवि है। इन दोनों के संगम से ही परमपद की प्राप्ति होती है।[2] इनके साधन के संबंध में संस्कृत ग्रंथों में विवेचन मिलता है जिसका परिचय हम पहले ही दे चुके हैं। अन्य नाथसिद्धों ने भी नादविंदुसाधन की ओर संकेत किया है। चरपटनाथ ने बताया है कि पवन को पलट कर गगन में समाहित कर देने से नाद-विंदु को स्थिरता प्राप्त होती है। पारबती जी, गोरख की तरह ही, नाद-विंदु के शरीर में जीर्ण होने की बात करते हैं।[3]

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि नाड़ीसाधन और नाद-विंदु-साधन, दोनों ही, नाथपंथियों की हिन्दी रचनाओं के अनुसार, प्राणसाधन से संभव हैं। इस पवनसाधन या प्राणसाधन से योगाग्निप्रज्वलन या कुंडलिनीप्रबोध, शरीर की चौसठ संधियों में वायु का संचरण (और शोधन), काया का परिवर्तन, नव-द्वाररोध, उन्मनीयोगसाधन, विन्दुस्थैर्य, ऊर्ध्वोध: वायुसाधन से ब्रह्म-रन्ध्रादि-सिद्धि, ज्योतिप्रकाश, अनाहतनादश्रवण, ध्यानसाधन, नित्य आरोग्य, पवन को उलट कर प्रेरित करने से षटचक्रवेध, महारससिद्धि एवं शिवशक्तियोग, परमात्मप्राप्ति, मन की अचंचलता, द्वादशांगुल पवन के सुषुम्ना में प्रवेश से सुख एवं जरामरणदुःख से मुक्ति, सुषुम्ना में पवननिरोध से अजरत्व एवं अमरत्व

[1] गो० बा०, ७.१९, २०.५४-५५।
[2] ना० सं० इ० द० सा० प्र०, पृ० ५०९-५१०।
[3] ना० सि० बा०, पृ० ३१ छं० १८०; पृ० ६८ छं० ४३४-४३५।

की प्राप्ति, मन-पवन के योग से अनाहतनादश्रवण आदि सिद्ध होते हैं।[1] गोरख ने चार प्रकार के प्रमाण के श्वासों का वर्णन कर बताया है कि बैठे रहने पर १२, चलने पर १८, सोने पर ३० तथा 'कइथन' (?) करने पर ६४ सांसें टूटती हैं। जब तक ये सांसें टूटती हैं तब तक जगदीश का भजन संभव नहीं होता। श्वासस्थैर्य होने पर ही इनका उचित उपयोग संभव है।[2] अतः इक्कीस हजार छ सौ सासों का मेल कर (परस्पर उन्हें संधित कर, जिससे वे टूटने न पावें) शरीर के नख से शिखा तक में उनको ग्रहण कर शरीर रूपी नौका को प्रतिबंधित करना चाहिए। भरथरी भी केवल पवन-साधन के लिये उपदेश करते हैं। गोपीचंद ने पश्चिम दिशा सुषुम्ना में वायु को प्रेरित करने का उपदेश दिया है। वे अपान और प्राण को उलट कर मिलाने को कहते हैं। परिणामस्वरूप अनाहत नाद का प्रवाह गगन में होगा तथा विंदु स्थिर हो जायेगा जिससे पुनः जन्मधारण करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।[3]

कबीर की विभिन्न रचनाओं में इनके अतिरिक्त अन्य नाड़ियों का वर्णन उपलब्ध नहीं है। कबीर ने बंकनाल का वर्णन किया है। उनके अनुसार बंक-नाल के अन्तर्गत ही पश्चिम दिशा का मार्ग है। नाथवाणी के विवेचन में पश्चिम दिशा को सुषुम्ना कहा गया है। कबीर के आत्माराम का हिंडोला चन्द्र-सूर्य के दो खंभों पर स्थित है तथा उसमें बंकनाल की डोर लगी हुई है। साधक उसी बंकनाल में रस का पान करता है। इस नाल को यदि समभाव में रखे तो आवागमन का निरोध होता है।[1] इन नाड़ियों का संबंध द्वारों तथा शरीरगत विभिन्न विशेष पवित्र स्थानों से है। तीर्थों को इस शरीर में किस रूप में स्थान दिया गया है, इसका वर्णन संक्षेप में पिंडब्रह्माण्डवाद के प्रसंग में हम कर चुके हैं। नाथपंथी रचनाओं की तरह ही संतों की हिंदी रचनाओं में भी दस द्वारों अथवा रन्ध्रों का वर्णन नहीं मिलता। दस द्वारों की ओर संकेत करते हुए कबीर ने उनके साधन के संबंध में भी कुछ बातें कह दी हैं। उनके अनुसार दस द्वारों के रुद्ध हो जाने पर काल अवश्य आक्रमण करेगा। इस शरीर में पाँच चोर हैं तथा दस दरवाजे हैं। वस्तुतः महत्वपूर्ण द्वार तो दसवाँ द्वार है जो देवालय है तथा जहाँ ज्योति का प्रत्यभिज्ञान होता है। सामान्य व्यक्ति को तो नौ दरवाजों तथा दसवें दरवाजे का वास्तविक ज्ञान ही नहीं हो पाता। साधन में इन दस द्वारों को मुद्रित कर देना चाहिए। किंतु समाधि तो केवल दशम द्वार में ही लगती है।[2] कबीरदास के दशम द्वार का अर्थ ब्रह्मरंध्र है। इस प्रसंग में कबीर ने त्रिकुटी को छोड़कर दशम द्वार को खोलने की चर्चा की है, जिससे यह प्रतीत होता है कि यह द्वार त्रिकुटी से भी ऊपर स्थित है। एक अन्य द्वार की जो चर्चा मिलती है, वह मूल द्वार है जिसका अर्थ है—मूलाधार चक्र का द्वार। इसी प्रकार पश्चिम द्वार का अर्थ डा० रामकुमार वर्मा ने किया है—इड़ा नाड़ी का मुख। इस मुख के ओर पर आज्ञाचक्र है और उसके ऊपर ब्रह्मरन्ध्र है और उसके ऊपर दशम द्वार है।[3] ऊपर के विवेचन से एक बात यह दिखाई पड़ती है कि कबीर भी नाथपंथियों की तरह ही दशम द्वार की उपलब्धि में आवागमननिरोध की बात स्वीकार करते हैं।

---

[1] क० ग्रं०, पृ० ८८ पद ४, ९४. १८, ११०. ७०, १४०. १५७, १५९. २०९।

[2] क० ग्रं०, पृ० ७ साखी २६, पृ० २१ साखी ७, पृ० ४४ साखी १०, पृ० १०२ पद ४२, १०७. ६१, १११. ७४, १८१. २७३।

[3] संत कबीर, पृ० २०२ पद ३, पृ० २१६ पद १० तथा टिप्पणियाँ।

और संतों के विचार समान हैं।

१७—प्राणायाम

नाथसिद्धों की हिन्दी रचनाओं में दशवायुओं का वर्णन नहीं मिलता, केवल प्राण-वर्णन मिलता है।[1] किंतु सुन्दरदास ने इन वायुओं का वर्णन करते हुए प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय नाम के दस वायुओं के शरीर में स्थान क्रमशः हृदय, गुदा, नाभि, कंठ, संपूर्ण घट, डकार, पलक, क्षुधा और मुख बतलाये हैं।[3] कबीर की रचनाओं में केवल पवन का वर्णन मिलता है। 'प्राण' शब्द के जो प्रयोग हैं, वे पारिभाषिक हठयोगपरक नहीं हैं। पवन शब्द का प्रयोग करते हुए कबीर ने पवन से अम्बर घोना, इस पवन का लौ लगाकर क्रीड़ा करना, पवन को उलट कर षट्चक्र का भेदन करना, सुषुम्ना नाड़ी में पवन को दृढ़ करना, दसों दिशाओं में अन्तर्हित पवन (प्राणायाम) से शरीर का आन्दोलन (?), प्राणों के कुंजी और ताले से आत्मा की सुरक्षा आदि की पदावली में इस पवनक्रिया

[1] संत कबीर, पृ० १५९, ५६।

[2] सुन्दरसार, पृ० २५–२६। [3] वही, पृ० २७।

अथवा प्राणायाम का वर्णन किया है।[1] कबीरादि के साहित्य में पवन-साधन का जिन स्थलों पर वर्णन है, उनसे यह स्पष्ट होता है कि संत लोग भी इस पवनसाधन की उपयोगिता नाड़ीसाधन, चन्द्रसूर्यसाधन, षट्चक्रभेद, कुंडलिनीयोग अथवा लययोग, ध्यानयोग, मानससाधन इत्यादि के लिये स्वीकार करते हैं। प्राणायाम अथवा पवनसाधन का इन साधनों से संबंध है। किंतु बिना इसके इनका साधन सुन्दर नहीं है। इस बात को संत लोग भी स्वीकार करते हैं। ऊपर के विवरण में पवन को परावृत करने अथवा उसके प्रत्यावर्तन की क्रिया की ओर संकेत मिलता है। कबीर साहित्य में जिस प्रकार पवन के प्रकारों का वर्णन नहीं है, उसी प्रकार प्राणायाम की पूरक, कुंभक और रेचक क्रियाओं का भी इन शब्दों में वर्णन उपलब्ध नहीं। गोरखनाथ की तरह ही कबीर ने भी 'सोहं' वायु का वर्णन अपने पवनसाधन के अन्तर्गत किया है। पवन का उलटना एक प्रकार से विपरीतकरण की एक क्रिया है। प्राणायाम का इससे अधिक विस्तृत एवं सूक्ष्म वर्णन कबीर साहित्य में नहीं मिल सकता। सुन्दरदास ने पवनसाधन से षट्चक्रसाधन का विशेष संबंध स्वीकार किया है, ऐसा प्रतीत होता है। वायु के प्रकारों का वर्णन करने के बाद वे षट्चक्रों का वर्णन करते हैं। पुरोहित हरिनारायण की टिप्पणियों से यह ज्ञात होता है कि 'इन चक्रों के नामनिर्देशनादि से यह प्रयोजन है कि प्राणायामादि साधनों से इन चक्रों का भेदन करके सुषुम्ना मार्ग से समाधि-सुख की प्राप्ति होती है। सुन्दरदास (छोटे) ने, विस्तार से, प्राणायाम का वर्णन किया है। उनके अनुसार इड़ा नाड़ी में पूरक, बीच में कुंभक और पिंगला में रेचक करने से सभी पातकों का निकृन्तन होता है। नाथों के योग के शास्त्रीय ग्रंथों में प्राणायाम की मात्रा का भी वर्णन मिलता है। तांत्रिक ग्रंथ बीज, मंत्र आदि का भी समावेश इस साधन में करते हैं। इनका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं। सुन्दरदास (छोटे) ने भी बीज और मंत्र से संयुक्त कर १६ मात्रा तक पूरक, ६४ मात्रा तक कुंभक और ३२ मात्रा तक रेचक करने का विधान किया है। पुनः इस क्रिया का विपर्यय करना चाहिए अर्थात् पिंगला में पूरक कर इड़ा में रेचक करे। इस प्रकार प्राण को जीतने की क्रिया सुन्दरदास ने बतलाई है। टिप्पणियों के अनुसार इसमें 'ओंकार' के विनियोग का विधान किया गया है। सुन्दरदास ने आठ प्रकार के कुंभकों

[1] क० ग्रं०, पृ० १८३ पद २८०, १८८. २९६, ९०. ७, ९१. ८; संत कबीर, पृ० २० पद १८, ४९. ४६, ५०. ४७, ७६. ७३ तथा इनकी टीकाएँ।

१५—हठयोग

नाथपंथी संस्कृत रचनाओं में 'हठ' के हकार को सूर्य तथा ठकार को चन्द्र कहा गया है। इन्हें ही क्रमशः प्राण और अपान भी कहा जाता है। संतों की हिंदी रचनाओं में इस प्रकार का कोई निर्देश नहीं मिलता। सूर्य और चन्द्र तथा तत्कोटीय विभिन्न शब्दों के प्रयोग अवश्य मिलते हैं। यद्यपि 'हठ' शब्द के हकार और ठकार का विचार संतों में नहीं है तथापि सूर्य और चन्द्र के साधन का वर्णन अवश्य है। सूर्य और चन्द्र वस्तुतः द्वैत की ओर संकेत करते हैं। हठ-योग इन दोनों का योगसाधन है। इस द्वैत की ओर संकेत करनेवाले जो शब्द प्रायः कबीर साहित्य में मिलते हैं, उनको नाथों की पूर्ववर्णित पदावली के प्रकाश में इस प्रकार उपस्थित किया जा सकता है—

ह—सूर्य, रवि, यमुना, पिंगला, शक्ति, पवन, अधः।
ठ—चन्द्र, शशि, गंगा, इड़ा, शिव, मन, ऊर्ध्व।

सूर्यनाड़ी और चन्द्रनाड़ी, प्राण और अपान, रज और विंदु आदि शब्दों का प्रयोग कबीर साहित्य में अवश्य है किंतु वे हठयोग के पारिभाषिक और साधनात्मक अर्थ को व्यक्त करनेवाले नहीं हैं। सूर्य का चन्द्र में समाहित होना, दोनों का एक घर में होना, आत्माराम के हिंडोले में चन्द्र-सूर्य का दो स्तम्भ के रूप में प्रयुक्त होना, रामरस को तैयार करने के लिये चन्द्र-सूर्य का दो भट्ठियों के रूप में प्रयुक्त होना, शशिहर का सूर्य को ग्रस्तकर लेना, गगन में अनाहत नाद के ध्वनन के लिये चन्द्र और सूर्य का मंत्र के दो तत्वों के रूप में विनियुक्त होना, शशिहर के घर में सूर्य का आगमन, चन्द्र-सूर्य मिलन, चन्द्र-सूर्य का एकत्व, चन्द्र सूर्य के बीच में 'तारी' (ध्यान) का लगना, सोलहकलायुक्त चन्द्र का पूरी तरह से छा जाना, गंगा-यमुना के बीच में सहज शून्य की लौ (लय) का घाट या गंगा-यमुना के बीच में अपनी 'मड़इया' को छाना, रस-निर्माण के लिये इड़ा-पिंगला को भट्ठी बनाना और उसमें ब्रह्माग्नि को प्रज्वलित करना, शिवशक्ति की सुषुम्ना दिशा का दर्शन, 'अरध-उरध' की गंगा-यमुना की ओर संकेत करना आदि वस्तुतः इसी अद्वैतप्रधान हठयोग की साधना की ही विवृत्ति करते हैं।[1] कबीर ने गगन और पृथिवी के उन प्राचीन प्रतीकों

[1] क० ग्रं०, पृ० १३ छं० १०, ९४. १८, ११०. ७१, १४१-१४२.१६२, १५४.१९६, १५७.२०२, १८३.२८०, १६२.२१९, १४६.१७३, पृ० २२३, पृ० १५७ छं० २०२, पृ० १८ अंग १० साखी ३, पृ० १११ पद ७४, पृ० १६ साखी ४६, ९४.१८; कबीर—पृ० ३३४ पद १८५।

के षटचक्रों का भेदन कर ऊपर सहस्रदलपद्म तक पहुँचने की क्रिया की तुलना चींटी के वृक्ष पर चढ़कर माधुर्य का आस्वादन करने और उससे वंचित होने पर नीचे उतर आने से की गई है। इसी प्रकार योगी के भी योगविरहित अवस्था में बार-बार लौट आने की आशंका बनी रहती है। वह निरंतर परमानंद का आस्वादन नहीं कर पाता। इसलिये दरियासाहब ने एक अन्य महत्वपूर्ण विहंगम (पक्षी) योग को महत्व दिया है। पिपीलका से पक्षी में अंतर यह है कि पक्षी का निवासस्थान वृक्ष है। इसे ध्यानयोग भी कहा जाता है। डा० वर्मा ने कबीर के योगनिरूपण में केवल हठयोग को ही ग्रहण किया है और डा० ब्रह्मचारी का कहना है कि विहंगम योग कबीर की साधनापद्धति में भी उतनी प्रधानता रखता था जितनी दरिया की पद्धति में। दरिया के अनुसार इस योग में वह विहंगम 'शून्य गगन में विचरण करते हुए अमृतपान करता है और अमृतपान करते हुए शून्यगगन में विचरता रहता है। इस विचरण और परमानंदास्वादन की निरंतर अवस्था में उसका शरीर के 'पिंड भाग' से कोई मतलब नहीं रह जाता। 'उसकी सुरति (दृष्टि) नेत्र के अष्टदलकमलस्थित सूचिद्वार से होकर ब्रह्माण्ड में प्रवेश कर, त्रिवेणी में मज्जन करते हुए, सहस्रदलकमल में विचरण करते हुए 'बंकनारी' अथवा 'बंकनाल' होकर ऊपर चढ़ती है और भँवरगुफा में प्रविष्ट होती है। इस गुफा में शब्द गुंजायमान रहता है।...इसी गुफा से होकर उस प्रदेश का मार्ग है जिसे 'सचखण्ड' (सत्य का राज्य) कहते हैं और जो निराकार सत्पुरुष (ईश्वर) का निवासस्थान है। सच्चखण्ड से सुरति विद्युत्वेग से उस अवर्णनीय 'अकह लोक' की ओर प्रधावित होती है जिसे 'अवाच' भी कहते हैं। फिर यहाँ से वह अगम 'नगरी' या अमरलोक तक पहुँचती है जो परमानंद की आश्चर्यमयी नगरी और अद्भुत लोक है। दरिया ने विहंगम योग को पिपीलक योग से श्रेष्ठ माना है क्योंकि हठयोग में शरीर पर तो हठयोगी अधिकार प्राप्त कर लेता है किन्तु वह आत्मपरिचय और आत्मप्राप्ति नहीं कर पाता, जो अत्यावश्यक है तथा जिनके बिना योग विडम्बना है। डा० ब्रह्मचारी के अनुसार दरिया हठयोग का सर्वथा निराकरण न कर विहंगम योग के साथ उसका सामंजस्य करते हैं।[१] कबीर साहित्य में ये दोनों प्रकार के योग मिलते हैं, इसका वर्णन हम कर चुके हैं। वस्तुतः पातंजल योग के अन्तिम तीन अंग अथवा अंतिम दो अंग कबीर साहित्य में हठयोग से समन्वित होकर विस्तार

[१] संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, पृ० ९३ तथा आगे, पृ० १०३-१०४।

प्राणायाम तथा नादानुसंधान से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। इस प्रकार उन्मनी-साधन के साथ कबीरदास प्राणायाम, अजपाजाप और नादानुसंधान के संबंध को भी स्वीकार कर लेते हैं। पं० परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर तथा अन्य संतों के उन्मनी तथा तत्संबंधी विभिन्न शब्दों, अवतरणों पर विचार कर उसके चार अर्थों पर प्रकाश डाला है—१—उन्मनी ध्यान, २—उन्मन विशेषण के रूप में, ३—उन्मन परमतत्व, ४—उन्मनी रहनी, सहज समाधि से अभिन्न। इस अंतिम अर्थ की पुष्टि "उन्मन धागा" के उपर्युक्त पद से भी हो जाती है। मानससाधन सहजसाधन का मूलाधार है। चतुर्वेदी जी के परमतत्व संबंधी अर्थ से संबंधित कबीर की रचना का एक अर्थ ऊपर देने की चेष्टा की गई है।

समाधि की अवस्था अमरता की अवस्था है। इस अमृतसाधन में विष का त्याग और अमृत का ग्रहण तथा विष का अमृत में परिवर्तन किया जाना कबीर ने स्वीकार किया है। प्रियतम के मिल जाने पर संसार का जो कुछ भी विष है, सब अमृत हो जाता है। जब तक शरीर में विष है, तब-तक उसमें अमृत के समावेश का कोई अवकाश नहीं है। इसके लिये कबीर "प्रेमभक्ति" के साधन का उपदेश देते हैं जिससे मुख में चन्द्रमा की अमृतवर्षा होने लगती है। किंतु इस अमृत अथवा अमृतफल की प्राप्ति के लिये गुरु-प्राप्ति अति आवश्यक है। उसी की कृपा से सहज ही सुषुम्ना के समीप अमृतफल की प्राप्ति होती है। अमृतरस का स्राव गगन में होता है। अन्य स्थलों पर कबीर ने उसे बंकनाल रस कहा है। वे विषय को विष कहते हैं। पश्चिम दिशा (सुषुम्ना) के मार्ग में बंकनाल के भीतर यह अमृत रस निर्झर स्रवित होता है। वहीं भँवरगुफा का घाट है। एक अन्य पद में वे अवधूत को गगनमंडल में अपना निवास बनाने की प्रेरणा देते हैं। वहीं वे उस बंकनाल रस, अमृत को पीने के लिये कहते हैं जो नित्य सुख देनेवाला है। संसार में बहुत से रस हैं। किन्तु कबीर ने सभी रसों को चख कर देख लिया है। वे सब रामनामरस के समान मीठे नहीं हैं। दूसरे संसार के रस कफ आदि उत्पन्न करते हैं, जबकि हरिरस अधिक से अधिक, जितना ही उसका पान किया जाय, सुख देनेवाला है। इस अमृतरस को वे विलक्षण मदिरा भी कहते हैं।[१] कबीर के इन विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह अमृतसाधन, जिससे अमरता, अमरपद, अमरपुर की प्राप्ति होती है,

[१] क० ग्रं०, ६०.१२, ८४.८, ८९.५, ११०-१११.७२, १११.७४, १३८.१५३, १५९.२०९, ४०.१९, १३९.१५५, १५५.१९७, ८८.४, ११०.७०, १५९.२०९, १३६.१४८।

कबीर ने रज-विन्दु अथवा रज-वीर्य के मिश्रण से केवल शरीर की उत्पत्ति की ओर संकेत कर इस विचारपरम्परा को छोड़ दिया है। उसके साधनक्रम का विस्तार हमें नहीं मिलता। नाद-विन्दु का विस्तृत, दार्शनिक और साधनात्मक निरूपण कबीरादिक की रचनाओं में उस रूप में उपलब्ध नहीं जिस रूप में नाथ साहित्य में उपलब्ध है। इस साधन के संदर्भ इतने कम उपलब्ध हैं कि उनके आधार पर एक व्यवस्थित निरूपण कर नाथों के तत्संबंधी साधन से, प्रत्येक दृष्टि से, तुलना करना बहुत कठिन है।

१९—बंध, वेध और मुद्रा

नाथपंथियों की हिन्दी रचनाओं में बंध, वेध और मुद्रा का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं। संतों की हिन्दी रचनाओं में उनका विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है। बंध और वेध के तो नाम भी नहीं मिलते। कबीरदास ने अवश्य ही मुद्रा का परिचय दिया है। गोरख की हिन्दी रचनाओं में तो वज्रोली और अमरोली आदि का भी वर्णन मिल जाता है किन्तु कबीर ने किसी भी मुद्रा का नाम नहीं लिया है। उसके अर्थ के संबंध में भी कबीर का कोई मत उपस्थित नहीं किया जा सकता। नाथपंथियों ने पिण्डस्थ अन्तस्साधनात्मक मुद्राओं का वर्णन कर उन्हें ही वास्तविक माना है। कबीर भी मानसिक अथवा अन्तस्साधनात्मक मुद्रा का ही वर्णन करते हैं और उसे ही वास्तविक

[1] क० ग्रं०, पृ० १५४ पद १९६।
[2] संत कबीर, पृ० ६ पद ४, पृ० २१, पद ११।

मुद्रा मानते हैं। 'जोगी' को सम्बोधित कर वे मुद्रा के वास्तविक अर्थ को समझाने की चेष्टा करते हैं। उनके अनुसार निरति ही मुद्रा है। यहाँ मुद्रा का अर्थ वह कुंडलविशेष प्रतीत होता है जिसे बाद के नाथपंथी लोग धारण करना ही सब कुछ समझ बैठे थे। इसलिये वे वास्तविक 'जोगी' उसी को कहते हैं जो मनमुद्रा रखता हो। कान में मुद्रा पहनने से योग नहीं होता।[1] सुन्दरदास ने इन मुद्रा-बंध-वेधों का स्पष्ट वर्णन किया है। उन्होंने दस मुद्राएं बताई हैं जिनमें से तीन बंध हैं और एक वेध है—महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्यान, मूलबंध, जालंधरबंध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालन। अष्टकुंभकों का साधन हो जाने पर और मुद्राओं का भी अभ्यास हो जाने पर दस प्रकार के नाद सुनाई पड़ते हैं।[2] कबीर ने एक स्थान पर मूलबंध का उल्लेख किया है। उसी प्रकार खेचरी का यद्यपि नाम लेकर उन्होंने कोई वर्णन नहीं किया है तथापि अमृतरसपान संबंधी प्रसंगों को देखने से इस खेचरी साधन के कुछ संकेत अवश्य मिल जाते हैं।[3]

२०—प्राणायाम, प्रणवसाधन, अजपाजाप, नादानुसंधान और सुरति-शब्द-योग

प्राणायाम का प्रणवसाधन, नादानुसंधान आदि से भी संबंध है। संतों के इस प्रकार के साधन का विचार करते हुए डा० बड़थ्वाल ने जप, अजपाजाप, और नादसाधन को सुमिरन का ही प्रकारभेद माना है। उनके अनुसार सुमिरन तीन प्रकार का होता है—'जाप' (बाह्य क्रिया), 'अजपाजाप' (बाहरी जीवन का परित्याग तथा आभ्यंतरिक जीवन में प्रवेश), अनाहत (आत्मा के गूढ़तम अंश में प्रवेश)। सुमिरन एक प्रकार की प्रेमसाधना है, इस संबंध में हम भक्ति के प्रसंग में भी लिख चुके हैं। उन्होंने बतलाया है कि 'नाद-सुमिरन' जिसे हम 'मन्त्रयोग' भी कह सकते हैं, 'सुरति-शब्द-योग' का ही एक दूसरा रूप है।

इनके अतिरिक्त हम साधन की दृष्टि से वैष्णवमताब्जभास्कर की महत्ता की ओर पहले ही संकेत कर चुके हैं। 'भास्कर' के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि योग (राजयोग, हठयोग, तांत्रिक योगादि) भक्ति के साधन हैं, भक्ति ही साध्य है, फलरूप है। विवेक आदि को भक्ति की सात भूमियाँ बताकर यमादि अष्टांगों को उस भक्ति का अवयव कहा गया है।[१] ध्येय के अनवच्छिन्न चिन्तन को ही ध्यान कहा गया है। यह ध्यान नित्य आत्मरत रहने वाले जितप्राण तथा जितेंद्रिय लोगों द्वारा किया जाता है।[२] सायुज्य मुक्ति का निर्वचन करते समय कहा गया है कि न्यास या शरणागति से भगवान् की दया प्राप्त होती है। उस दया से माया या अविद्या का नाश होता है। फिर सुषुम्ना नाड़ी द्वारा जीव शरीर से निकल कर अर्चिमार्ग को प्राप्त होता है। इसके बाद की यात्रा का जो वर्णन है, वह कालातीत होने या अमर होने की क्रिया के समान प्रतीत होता है जिसमें वह सभी कालमार्गों का अतिक्रमण कर लेता है।[3] 'भास्कर' के इस सुषुम्ना मार्ग के परिचय से प्रतीत होता है कि 'भास्कर' यमनियमादि से युक्त ध्यानसाधन को स्वीकार करते हुए भी सुषुम्नासाधन के महत्व को जानता है, जिससे कालातीत अवस्था या अमरता की अवस्था की प्राप्ति होती है, यद्यपि इसका कोई स्पष्ट संकेत 'भास्कर' में नहीं मिलता। सुषुम्नासाधन का, निश्चय ही, तांत्रिक योग और हठयोग से संबन्ध है। रामानंद की हिंदी रचनाओं से इस पर अधिक प्रकाश पड़ेगा। इतना निश्चित है कि 'भास्कर' भी सुषुम्ना नाड़ी को मोक्षप्रदायिका मानता है (भास्कर के १६८ वें श्लोक में सन्नाड़ी शब्द आया है जिसका अर्थ भाषा टीकाकार और डा० बड़थ्वाल ने सुषुम्ना नाड़ी किया है)।[४]

ऊपर के परिचय से स्पष्ट है कि वैष्णवों के भी साहित्य में एक ऐसे साधन का विधान है जिसमें यमनियमादि चक्र-नाड़ी-कुंडलिनी आदि एवम् प्राणायाम-साधन का समन्वय मिलता है। इन्हें हम पातंजलयोग (राजयोग), तांत्रिक योग, हठयोग आदि कह सकते हैं। वैष्णव ग्रंथों में इनका सूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन बहुत कम मिलता है। आगे हम इनका पारिभाषिक ढंग से

---

[१] वै० म० भा०, श्लो० ६६।

[२] वही, श्लो० ५४।

[३] वही, श्लो० १६८-१७१।

[४] वही, हिन्दी टीका सहित, पृ० १५५; रा० हिं० र०, भूमिका—डा० बड़थ्वाल, पृ० १३।

विचार विमर्श—पं० चन्द्रबली पांडेय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००८।

श्री तुकाराम चरित—श्री लक्ष्मण रामचंद्र पांगारकर (अनुवाद), गीताप्रेस गोरखपुर, तृतीय संस्करण।

श्री भक्तमाल—गोस्वामी श्री नाभा जी कृत, श्री प्रियादास जी प्रणीत टीका कवित्त, श्री अयोध्यानिवासी श्री सीतारामशरणप्रसाद 'रूपकला' विरचित भक्तिसुधास्वाद तिलक सहित, लखनऊ, नवलकिशोर प्रेस में मुद्रित, सन् १९२६ (१९२५ ई०?)।

श्री भक्तमाल—नाभादास विरचित, प्रियादास कृत भक्तिरसबोधिनी टीका सहित, चौथी आवृत्ति, श्री वल्लभ हरिप्रसाद, बम्बई द्वारा प्रकाशित सन् १९२४।

संत कबीर—डा० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, १९५७ ई०।

संत काव्य—पं० परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९५२ ई०।

संस्कृति संगम—आचार्य क्षितिमोहन सेन, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, द्वितीयावृत्ति, १९५२ ई०।

सारनाथ—वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय पुरातत्व विभाग, नई दिल्ली, १९५८।

सिद्ध साहित्य—डा० धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, १९५५।

सुन्दर ग्रंथावली—प्रथम खंड, पं० हरिनारायण शर्मा, प्रकाशक—राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, १९६३।

सुन्दर सार—सं० श्यामसुन्दरदास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, संग्रहकर्ता पुरोहित हरिनारायण बी० ए०। द्वितीय संस्करण।

सूफी काव्य संग्रह—सं० पं० परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, प्रथम संस्करण।

सूफीमत साधना और साहित्य—श्री रामपूजन तिवारी, प्रकाशक—ज्ञानमंडल लिमिटेड, सं० २०११।

सूरदास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, सरस्वती मंदिर, जतनबर, बनारस, चतुर्थ परिवर्द्धित संस्करण, २००५ वि०।

स्वामी दादूदयाल की वाणी (अंगबंधू सटीक)—सं० चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी, वैदिक मंत्रालय, अजमेर, सन् १९०३।

हिन्दी और मराठी का संतकाव्य—प्रभाकर माचवे (अप्रकाशित स्वीकृत शोध प्रबंध) आगरा विश्वविद्यालय।

हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय—डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, अनुवादक श्री परशुराम चतुर्वेदी, संपादक भगीरथ मिश्र, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ २००७।

हिन्दी को मराठी संतों की देन—आचार्य विनयमोहन शर्मा, प्रका० बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, मार्च १९५७।

संत दरिया साहब के द्वारा प्रदर्शित अष्टदलकमल की प्रक्रिया में भी इस प्रकार का निगूढ़ रहस्य निहित है। संत योगी कहते हैं कि केवल षट्चक्र के भेद से परमतत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। षट्चक्र के भेद के अनन्तर अष्टदलकमल का भेद भी होना चाहिए। संत लोग सुरति और निरति के समन्वय के रूप में इस योग का निरूपण करते हैं। सुरति है 'तीव्र दर्शन की प्रगति', जिससे क्रमशः एकाग्रभाव की वृद्धि होती है और निरति है 'निर्विकल्पक ध्यान'। इन दो प्रक्रियाओं के परस्पर सहयोग से अष्टदलकमल का भेद सुकर हो जाता है। अष्टदलकमल का तात्पर्य है मनुष्य के दोनों नेत्रों के अवयवों की समष्टि। एक-एक नेत्र में चार-चार अवयव हैं जिनमें पहले चक्षुकी तारा हैं और अन्त में अग्रदृष्टि है। यह अग्रदृष्टि सूचिकाछिद्र के सदृश अति सूक्ष्म रन्ध्र है। सुरति की प्रक्रिया यथावत् सिद्ध होने पर इस अग्रगति को प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिये उन्मनी मुद्रा का उपयोग करना पड़ता है। अग्रगति प्राप्त होने पर अष्टदलकमल का भेद हो जाता है जिससे साकार तथा निराकार का और सविकल्प तथा निर्विकल्प का भेद तिरोहित हो जाता है। इसी प्रकार से महाशून्य तथा भ्रमरगुहा का भेद करके सत्यलोक में प्रवेशलाभ होता है, जो कि परब्रह्म के केन्द्र में अवस्थित है। बंकनाल का विशिष्ट उपयोग इस साधनप्रक्रिया में दीख पड़ता है। बंकनाल एक नाड़ी का नाम है जिसकी प्रवृत्ति (प्रारंभ) मूलाधार से है और वह घूमती हुई, आज्ञाचक्रस्थ बिंदु का स्पर्श करती हुई ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है और वहाँ से नीचे की ओर लटकती हुई ऊर्ध्वमुख होती है। बंकनाल का अवसान हो जाने पर परम शुद्ध बिंदु की स्थिति दीख पड़ती है। इस साधना में भी शब्द की ही महिमा अनुभव में आती है। यह शब्द वर्णात्मक नहीं है, ध्वनिरूप है। यह शुद्ध ध्वनि ही

सद्गुरु का रूप है, ऐसा समझना चाहिए। परन्तु सत्यलोक के ऊपर भी ऐसी स्थिति है जहाँ किसी-किसी के मत के अनुसार ध्वनि नहीं है। अथवा, ध्वनि के रहने पर भी उसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। ध्वनि के विषय में दृष्टि-भंगी के भेद के अनुसार किंचित भेद भी है, किंतु उपेक्षणीय है।

संक्षेप में यहाँ प्रसंगतः नाथ तथा संत संप्रदायों के विषय में एकोद्देश्य लेकर कुछ कहा गया है। ग्रंथकार ने इस विषय में वर्षों से परिश्रम करके बहुत कुछ विषयसंग्रह किया है जो हिन्दी साहित्य में आदर का स्थान प्राप्त करने योग्य प्रतीत होता है। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि ग्रंथकार इस विषय में और भी गंभीर अन्वेषणपूर्वक अधिक-अधिक तत्व निकालने का प्रयत्न करे।

२।ए सिगरा, वाराणसी
दीपावली २०२१।

गोपीनाथ कविराज

19:58

Hatha Ratnavali Hi...

इ. सिर को पैरों के बीच धनु[illegible] रखें।

मस्तकभाति- द्र० कपालभाति।

महामुद्रा — 1. महामुद्रा (हठरत्नावली- 2.37) की विधि निम्नलिखित है-

अ. बाईं एड़ी से सीवन को दाबें।

आ. दायां पैर फैलाएं।

इ. उसको दोनों हाथ से पकड़े।

ई. जालंधर बंध लगाएं।

उ. वायु को गले के ऊपर ही रोकें।

महाबन्ध — 1. महाबन्ध की विधि इस प्रकार है-

अ. बाईं एड़ी को सीवन पर लगाएं।

आ. दायां पैर बाएं पैर पर रखें।

इ. मुंह से वायु पान करें।

ई. ठुड्डी को हृदय पर रखें।

उ. मूलबंध लगाएं।

ऊ. धीरे-धीरे रेचन करें।

ए. मन को सुष्मना पर लगाएं।

ऐ. पहले बाएं पैर से फिर दाएं पैर से यह मुद्रा करें।

Scanned by CamScann

महावेध

1. महावेध (हठरत्नावली — 2.48 — 51) की विधि निम्न है-

अ. महाबन्ध लगाएं।

अ. एक बुद्धि से पूरण करें।

आ. कुम्भक कर कण्ठ मुद्रा लगाएं।

इ. दोनों हाथों को जमीन पर टिकाएं।

ई. नितम्बों से भूमि को ताड़ित करें।

2. महावेध के साधक को वह्नि, स्त्री का सेवन व लम्बी यात्रा का त्याग करना चाहिए। (हठरत्नावली- 2.50)

महाव्रतधारी — 1. पातञ्जलयोग के यम इत्यादि का सिद्ध देश-काल इत्यादि से परे स्थित योगी। (योग सूत्र- 2.31)

मुद्रा

1. जो मुदित करे वह मुद्रा (शिवसूत्र ऋज्वर्थबोधिनी- 2.5, श्री स्वामी जी, दतिया)

2. दो अथवा तीन स्वतन्त्र यौगिक क्रियाओं का संयुक्त रूप। (स्[illegible] अनंत

मात्रा-शास्त्र में प्राणसाधना का परम्परागत उल्लेख हुआ है। 'इड़ा में आवै पिंगला में धावै' उस प्रक्रिया का संकेत भर है। 'सुषुम्ना' में प्राण को स्थिर किये बिना जीवन-मरण, भूख प्यास, यौवन, बुढ़ापा तथा द्वन्द्वों से छुटकारा नहीं मिल सकता। इसीलिए 'सुषुम्ना को घर' कहकर आचार्य ने जीव की यात्रा का विराम स्थल निर्देशित किया है। कहा भी गया है—

इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्ना सूक्ष्मरूपिणी।
सर्वं प्रतिष्ठितं यस्मिन्सर्वगं सर्वतोमुखम्॥

सिद्धान्तसागर में आचार्यश्री शब्दयोग की चर्चा करते हुए कहते हैं—

गंगा उतरी गगन से विंग तिड़ंगी
मीन चलै ऊरधदिसा सुरसिद्धि भिड़ंगी।

नेम आचार विचारा
सर्पिणी कुंडल परिहरै टपकै अमृतधारा। रहाऊ।
खिड़की खोले परसीए आलै बधु पाई,
प्राण गुरु प्रकासिया गति अगम लखाई
त्रिकुटी छूटै परसीए निर्मल उजियारा,
लख बिजलियाँ चमकई झिलमिली नजारा
अनहद ध्वनि आनंदरस मन मगन समाना
श्रीचंदगुरु कृपा ते दर दसम गुलाना।

भगवान् श्रीचन्द्र जी के प्रादुर्भाव के समय देश राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक दृष्टि से अशांत और अस्थिर था। मुहम्मद गौरी से लेकर [illegible] के [illegible]क्रमण तक हिन्दू राज्यों और इस्लामशासित प्रदेशों में टकराहट [illegible]त्कर्ष पर थी। [illegible] के मुसलमान शासकों की आपसी मारकाट [illegible] हिन्दुओं के प्रति उनकी घृणा ने हिन्दु[illegible]ला थी। बलात् धर्म परिवर्तन कराये जा रहे थे। हिन्दू सामंत भोग विलास में डूबे हुए थे। उनके भोग विलास की आपूर्ति निर्धन निरक्षर जनता को लूट-पीट कर हो रही थी। इन विषमताओं और सामन्ती अत्याचारों के विरुद्ध कोई बोलने वाला नहीं था। हिन्दू समाज जातियों, उपजातियों, सम्प्रदायों, पंथों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों, छुआछूत, छोटे-बड़े की भावना से जकड़ा हुआ था। राजकीय नियम धर्माधारित और हिन्दू-विरोधी थे। वैचारिक और राजनीतिक प्रतिरोध की क्षमता प्रायः समाप्त हो चुकी थी। तभी बाबर ने अफगान, उजबेक, मंगोल तथा अन्य मध्य एशियाई दुर्दान्त कबीलों के लड़ाकुओं की फौज लेकर हिन्दुस्तान पर हमला किया। बाबर का पितृकुल तैमूरलंग और मातृकुल चंगेजखाँ से जुड़ा हुआ था। दोनों की नृशंसता उसके खून में थी। इधर राजस्थान और दक्षिण भारत दिल्ली से स्वतन्त्र हो चुके

धर्मज्ञा ज्ञापयन्ति गुणान् शुभान्॥ ६॥ | लिये जो उपाय है, वह मुझसे सुनो। ब्राह्मणको चाहिये

ोगुणकी वृत्ति प्रकट होने और बढ़ने लगे
क दे॥ ११॥

कथा श्राव्या न निरीक्ष्या निरम्बराः।
दर्शनादासां दुर्बलानां विशेद्रजः॥ १२॥

ंकी चर्चा न सुने। उन्हें नंगी अवस्थामें न
ि यदि किसी प्रकार नग्नावस्थाओंमें उनपर
जाती है तो दुर्बल हृदयवाले पुरुषोंके मनमें
ग या कामभावका प्रवेश हो जाता है॥ १२॥

रेत् कृच्छ्रं महार्तिः प्रविशेदपः।
ने च मनसा त्रिर्जपेदघमर्षणम्॥ १३॥

ारीके मनमें यदि राग या काम-विकार
ाय तो वह आत्मशुद्धिके लिये कृच्छ्रव्रतका[1]
। यदि वीर्यकी वृद्धि होनेसे उसे कामवेदना
रही हो तो वह नदी या सरोवरके जलमें
स्नान करे। यदि स्वप्नावस्थामें वीर्यपात हो
लमें गोता लगाकर मन-ही-मन तीन बार
सूक्तका जप करे॥ १३॥

निर्दहेदेवमन्तर्भूतरजोमयम्।
मनसा संततेन विचक्षणः॥ १४॥

ी पुरुषको इस प्रकार ज्ञानयुक्त एवं
मनके द्वारा अपने अन्तःकरणमें प्रकट हुए
मविकारको दग्ध कर देना चाहिये॥ १४॥

ासंयुक्तं यद्वदच्छिद्रबन्धनम्।
गतं विद्यादात्मानं देहबन्धनम्॥ १५॥

समान अपवित्र एवं मलयुक्त नाड़ियाँ जिस
भीतर दृढ़तापूर्वक बँधी हुई हैं, उसी प्रकार
उसके भीतर जीवात्मा भी दृढ़ बन्धनमें
है, ऐसा जानना चाहिये॥ १५॥

ाद् रक्तं त्वङ्मांसं स्नायुमस्थि च।
शिराजालैस्तर्पयन्ति रसा नृणाम्॥ १६॥

ासे प्राप्त हुए रस नाड़ीसमूहोंद्वारा संचरित
ोंके वात, पित्त, कफ, रक्त, त्वचा, मांस,
थ, चर्बी एवं सम्पूर्ण शरीरको तृप्त एवं पुष्ट
करते हैं॥ १६॥

दश विद्याद् धमन्योऽत्र पञ्चेन्द्रियगुणावहाः।
याभिः सूक्ष्माः प्रतायन्ते धमन्योऽन्याः सहस्रशः॥ १७॥

इस शरीरके भीतर उपर्युक्त वात, पित्त आदि दस वस्तुओंको वहन करनेवाली दस ऐसी नाड़ियाँ हैं जो पाँचों इन्द्रियोंके शब्द आदि गुणोंको ग्रहण करनेकी शक्ति प्राप्त करानेवाली हैं। उन्हींके साथ अन्य सहस्रों सूक्ष्म नाड़ियाँ सारे शरीरमें फैली हुई हैं॥ १७॥

एवमेताः शिरा नद्यो रसोदा देहसागरम्।
तर्पयन्ति यथाकालमापगा इव सागरम्॥ १८॥

जैसे नदियाँ अपने जलसे यथासमय समुद्रको तृप्त करती रहती हैं, उसी प्रकार रसको बहानेवाली ये नाड़ीरूप नदियाँ इस देह-सागरको तृप्त किया करती हैं॥ १८॥

मध्ये च हृदयस्यैका शिरा तत्र मनोवहा।
शुक्रं संकल्पजं नृणां सर्वगात्रैर्विमुञ्चति॥ १९॥

हृदयके मध्यभागमें एक मनोवहा नामकी नाड़ी है जो पुरुषोंके कामविषयक संकल्पके द्वारा सारे शरीरसे वीर्यको खींचकर बाहर निकाल देती है॥ १९॥

सर्वगात्रप्रतायिन्यस्तस्या ह्यनुगताः शिराः।
नेत्रयोः प्रतिपद्यन्ते वहन्त्यस्तैजसं गुणम्॥ २०॥

उस नाड़ीके पीछे चलनेवाली और सम्पूर्ण शरीरमें फैली हुई अन्य नाड़ियाँ तैजस-गुणरूप ग्रहणकी शक्तिको वहन करती हुई नेत्रोंतक पहुँचती हैं॥ २०॥

पयस्यन्तर्हितं सर्पिर्यद्वन्निर्मथ्यते खजैः।
शुक्रं निर्मथ्यते तद्वत् देहसंकल्पजैः खजैः॥ २१॥

जिस प्रकार दूधमें छिपे हुए घीको मथानीसे मथकर अलग किया जाता है, उसी प्रकार देहस्थ संकल्प और इन्द्रियोंसे होनेवाले स्त्रियोंके दर्शन एवं स्पर्श आदिसे मथित होकर पुरुषका वीर्य बाहर निकल जाता है॥ २१॥

स्वप्नेऽप्येवं यथाभ्येति मनःसंकल्पजं रजः।
शुक्रं संकल्पजं देहात् सृजत्यस्य मनोवहा॥ २२॥

[1] कृच्छ्र' शब्दसे प्राजापत्यकृच्छ्रका ग्रहण किया जाता है। प्राजापत्यकृच्छ्रका विधान इस प्रकार है—
त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्। त्र्यहं परं च नाश्नीयात् प्राजापत्योऽयमुच्यते॥
(मनुस्मृति ११। २१२)
न दिन केवल प्रातःकाल, तीन दिन केवल सायंकाल तथा तीन दिनतक केवल अयाचित अन्नका भोजन करे।
िनतक उपवास रखे। इसे प्राजापत्यकृच्छ्र कहा जाता है।
घमर्षणसूक्त निम्नलिखित है—
तञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत।
विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः।

द्वादशः पटलः ।

श्रीदेव्युवाच ।

देवेश श्रोतुमिच्छामि रहस्यातिरहस्यकम् ।

श्रीशिव उवाच ।

अन्तर्धानविधिः प्रोक्ता परकाय[1]प्रवेशनम् ॥ १ ॥
[2]कथ्यते देवदेवेशि शृणु सावहिता भव ।
कुलाकुलसमुद्भूतममृतानन्दमर्चयेत् ॥ २ ॥
सूर्यकोटिसमं मंत्रं[3] बादिमध्ये व्यवस्थितम् ।
जपेत्कुलामृतं दत्वा * * *समुद्भवम् ॥ ३ ॥
तथा कुले * * * कुण्डलीदृढबन्धनात् ।
आधारे पत्रमध्ये च द्विपत्रे द्विपदालये ॥ ४ ॥
षोडशारे युते[4] लिंगे द्वादशे मणिपूरके ।
हृदये दशपत्रे च द्वादशार्धे चतुर्दले ॥ ५ ॥
कण्ठे भाले यजेद्देवि जिव्हाललनसंकुले ।
अबलागारमध्ये तु ब्रह्मचर्यव्रतो नरः ॥ ६ ॥
संकल्पैर्धवलैर्वापि श्वेतवस्त्रावगुण्ठितम् ।
गच्छति ब्रह्ममार्गेण लिङ्गभेदक्रमेण च ॥ ७ ॥
विसर्गस्यामृतं दिव्यं क्षीरधारोपमं द्रवम्[5] ।
पीत्वा कुलामृतं तत्र पुनरेव विशेत्कुलम् ॥ ८ ॥
पुनरेवाकुलं गच्छेद् द्वादशान्ते निवेदयेत् ।
सहस्रारे महाचक्रे वाग्भवं[6] पूर्ण[7]चन्द्रकम् ॥ ९ ॥
ब्रह्म[8]ग्रन्थिं ततो भित्वा पीत्वा सप्ताष्टधारया ।
लम्बिकाद् ब्रह्ममार्गेण तालुमूले प्रवेशयेत् ॥ १० ॥
जिव्हामापूर्य[9] तां विद्यां मातृकावर्णरूपिणीम् ।
बहिर्गतां वर्णरूपां जिव्हाग्रे दीपरूपिणीम् ॥ ११ ॥
आमूलाद्ब्रह्मरंध्रांतं तथा जिव्हाग्र[10]देशगाम् ।
वाग्भवाद्यां महाविद्यां दीपाकारां विचिन्तयेत् ॥ १२ ॥
हस्तयोः पादयोर्विद्यां त[11]था नाडीत्रयेषु च[12] ।
आधारात्तु समुत्थाप्य वागी[13]शीं द्वादशे नयेत्[14] ॥ १३ ॥
द्वादशाधारमादा[15]य तद्ग्रंथिं परिभेदयेत् ।
तस्माज्जिव्हाग्रमादाय दीपाकारां विभाव[16]येत् ॥ १४ ॥

---

1. B °या° । 2. D omits this line. 3. CDN सूत्रं । 4. C त[illegible] ; N
D °न्यास° । [illegible]. D स्मृतं; C मण्डपं । 6. N °वे । 7. D सूर्य° । [illegible]. D
9. N °ब्ब । 10. [illegible] °व° । 11. C °य° । 12. N प्रवेशयेत् । 13. B °गे° । 14. N
15. B °द° । 16. D [illegible]° ।

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होता है तथा अन्तःकरण का विकार भी नष्ट हो जाता है। ऐसा योगियों का लय है। (योगवाशिष्ठ-अमनस्क खंड)। लिङ्ग महापुराण अ० ८ उत्तरार्द्ध, गोरक्षपद्धति श० २ श्लो० १४, हठयोग समाधि इत्यादि में उपर्युक्त (ल० ५) प्रत्याहार, (ल० ६) धारणा (ल० ७) ध्यान (ल० ८) और लय या समाधि प्राप्त होने के लिये २०७३६ प्राणायाम करने की विधि बतायी है :—

[illegible]रणा द्वादश [illegible] [illegible]नाद्ध्यानविशारदैः ।
[illegible]नद्वादशकेनैव समाध[illegible]यते ॥

१२ प्राणायाम से	१ प्रत्याहार	=	१२ प्रा[illegible]याम	
१२ प्रत्याहार से	१ धारणा	=	१४४	,,
१२ धारणा से	१ ध्यान	=	१७२८	,,
१२ ध्यान से	१ समाधि वा लय	=	२०७३६	,,

सिद्ध योगियों ने अनुभव से बताया है कि यम, नियम, आसन, खेचरी-मुद्रा, प्राणायाम आदि की क्रियायें पूर्णतया करने पर ही शक्तिशालिनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। जब इन क्रियाओं के साथ शक्तिचालनी व योनिमुद्रा, सूर्यभेदन कुम्भक, सगर्भ प्राणायाम, बंध, धारणा, पूर्ण होती है, तभी सुप्त कुण्डलिनी जाग्रत हो कर षट् चक्रों तथा तीन बाणलिंगों को वेध करती हुई सहस्रार में परब्रह्म में लीन होती है। कुण्डलिनी जागरण का अभ्यास शुक्ल पक्ष में ही प्रारंभ करना चाहिये। क्योंकि इसी पक्ष में इसका संचार ऊपर की ओर होता है। कृष्ण पक्ष में इसका संचार नीचे की ओर अर्थात् सहस्रार से मूलाधार की ओर होता है।

यह कुण्डलिनी उत्थान क्रिया का क्रम अति संक्षेप में कहा गया है। क्योंकि जैसा पिछले पृष्ठों में कहा गया है, कुण्डलिनी उत्थान अथवा प्राण क्रिया केवल सिद्ध सद्गुरु योगी ही से सीख कर उनके सान्निध्य में ही योग क्रिया करनी चाहिये अन्यथा घोर अनिष्ट होता है।

CC0. In Public Domain. [illegible] Anandamayee Ashram Coll[illegible], Varanasi

18:30

25

SALE

येनेति ॥ येन योगिना शक्तिः कुण्डली संचालिता स योगी सिद्धीनामणिमादीनां भाजनं पात्रं भवति । अत्रास्मिन्नर्थे बहूक्तेन बहुप्रशंसनेन किं, न किमपीत्यर्थः । ... ...ायासेनैव जयत्यभिभवतीत्यर्थः ... १२० ॥

भावार्थ—जिसयोगीने शक्ति चलायमान करली है वह योगी अणिमा ... सिद्धियोंका पात्र होजाताहै और इसमें अधिक कहनेसे क्या है कालकोभी लीलासे ... अनायाससे जीत लेताहै ॥ १२० ॥

ब्रह्मचर्यरतस्यैव नित्यं हितमिताशिनः ॥
मंडलाद्दृश्यते सिद्धिः कुंडल्यभ्यासयोगिनः ॥ १२१ ॥

ब्रह्मचर्येति ॥ ब्रह्मचर्यं श्रोत्रादिभिः सहोपस्थसंयमस्तस्मिन् रतस्य तत्परस्य नित्यं सर्वदा हितं पथ्यं मितं चतुर्थांशवर्जितमश्नातीति तस्य कुण्डल्यभ्यासः शक्तिचालनाभ्यासः स एव योगः सोऽस्यास्तीति स तथा तस्य मंडलाच्चत्वारिंशद्दिनात्मकादनंतरं सिद्धिः प्राणायामसिद्धिर्दृश्यते ॥ "नासादक्षिणमार्गवाहिपवनात्प्राणोऽतिदीर्घीकृतश्चंद्राभः परिपूरितामृततनुः प्राग्घंटिकायास्ततः । छित्वा कालविशालवह्निवशगं भ्रूरंध्रनाडीगतं तत्कायं कुरुते पुनर्नवतरं छिन्नं द्रुमं स्कंधवत् ॥" ॥ १२१ ॥

भावार्थ—श्रोत्र आदि इंद्रियोंसहित लिंगके संयममें तत्पर जो योगी है और नित्य हितकारी प्रमित अर्थात् चतुर्थांशसे न्यून भोजन करताहै शक्तिचालनके अभ्यासी उस योगीको मंडल (४० दिन) के अनन्तर प्राणायामकी सिद्धिको देखतेहैं सोई कहा है कि, नासिकाके दक्षिणमार्गमें वहनेवाले पवनसे अत्यंत बढाया और घंटिका (कंठ) से पूर्व चंद्रमाके समान अमृत है शरीर जिसका ऐसा प्राण जिसके अनंतर विशाल-काल और अग्नि ये वशमें हुई उसकुंडलीके अभ्यासशील योगीकी कायाको भ्रूकुटीके छिद्रमें वर्तमान नाडीमें पहुँचकर और कायाका छेदन करके इस प्रकार पुनः अत्यंत नवीन करताहै जैसे छेदन करनेसे वृक्षका स्कंध (डाला) नवीन होजाता है ॥ १२१॥

कुंडलीं चालयित्वा तु भस्त्रां कुर्याद्विशेषतः ॥
एवमभ्यसतो नित्यं यमिनो यमभीः कुतः ॥ १२२ ॥

कुंडलीमिति ॥ कुंडलीं चालयित्वा शक्तिचालनं कृत्वा । अ... ...नतरमेव भस्त्रा... ...ाख्यं कुंभकं कुर्यात् । नित्यं प्रतिदिनम् । एवम... ...ारेणाभ्यसतो

१०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यमिनो योगिनो यमभीर्यमाद्भयं कुतः । न कुतोऽपीत्यर्थः । योगिनो ...

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

21:08
Charandas Ji Ki Bani P...

शब्द २

॥ दोहा ॥

करते अनहद ध्यान के ब्रह्म रूप हो जाय।
चरनदास यों कहत हैं बाधा सब मिटि जाय ॥१॥
गगन मध्य जो कंवल है बाजत अनहद तूर।
दल हजार को कमल है पहुंचै गुरु मत सूर ॥२॥
गगन मंडल के कमल में सतगुरु ध्यान निहार।
चरनदास सुकदेव परस के मेटै सकल बिकार ॥३॥

शब्द ३

॥ छप्पै ॥

नौ नाड़ी को खैंचि पवन ले उर में दीजे।
बज्जर ताला लाय द्वार नौ बंद करीजे ॥१॥
तीनौं बंद लगाय अस्थिर अनहद आराधै।
सुरति निरति का काम राह चल गगन अगाधै ॥२॥
सुन्न सिखर चढ़ि रहै दृढ़ जहां आसन करै।
भन[1] चरनदास ताड़ी लगै सो राम दरस कलिमल हरै ॥३॥

शब्द ४

॥ छप्पै ॥

मूल कमल में खेलि पिया को देखन चलिये।
उलटि वेधि खट चक्र जाइ सतवें से मिलिये ॥१॥
प्रान अपान मिलाइ राह पच्छिम की लीजै।
वंक नाल कूं सोध प्रान लै ता में दीजै ॥ २ ॥
मेरु दंड चढ़ि जाय जब लोक लोक की गम परै।
भन[1] चरनदास ब्रह्मंड में ब्रह्म दरसी दरसन करै ॥३॥

(१) कहै।

21:05

Charandas Ji Ki Bani P...

42/90

॥ दोहा ॥

दूध मध्य ज्यों घीव है मेहंदी माहीं रंग ।
जतन बिना निकसै नहीं चरनदास सो ढंग ॥४॥
जो जानै या भेद कू और करै परबेस ।
सो अबिनासी होत है छूटै सकल कलेस ॥५॥

॥ अष्टपदी ॥

तन मथने को जतन कहूं अब जानिये ।
ज्यों निकसै तत सार बिलोवन ठानिये ॥
पहिले चक्कर जानि मूल द्वारे बिषै ।
जित ही पावँ की एड़ो सूं बंध दे रेखै ॥
मूल[1] चक्र सों खींचि अपान चलाइये ॥
दूजे चक्कर पास जु आन फिराइये ॥
दहिनी ओर सों तीन लपेटे दीजिये ।
तीजे चक्कर माहिं गमन फिर कीजिये ॥
चौथे चक्कर माहिं पवन जो लाइये ।
बहुरौ पँचवें चक्र में जिव पहुँचाइये ॥
षष्टम चक्कर माहिं जु ताहि चढ़ाइये ।
सो त्रिकुटी के मध्य तहां ठहराइये ॥

(१) गुदा ।

रोके त्रिकुटी माहिं आनि कै बायु कूं ।
षट चक्कर कूं छेदि चढ़ै जब धाय कूं ॥
अपान बायु चढ़ि जाय वही अस्थान है ।
प्रान बायु है जाय साधु कोइ जान है ॥
रोकै प्रानहिं बायु तिरकुटी मध्यहीं ।
करै ओं का ध्यान सीस में गद्य[1] हीं ॥
यह तो ऊंचा ध्यान जु अधिक अनूपहीं ।
चरनहिं दासा होय जु ब्रह्म सरूपहीं ॥

सुंन शिखर का लक्ष्य प्राप्त करवाने की लाज केवल सतगुरु को है क्योंकि साधक केवल सत्यभाव से यत्नपूर्वक पुरुषार्थ करता है और फिर सतगुरु के सामर्थ्य–बल से वह परमपद प्राप्त करता है–

"सुंनि शिखर बरदवान है, जत सत सिंध जहाज।
ना तुझ से कछु होत हे, सतगुरु ही कूँ लाज।।"[37]

आलोच्य कवि ने अपने आदि पुरुष को सुंन, बेसुंन दोनों से अगम बताया है–

"सुंनि बेसुंनि से अगम है, पिंड ब्रह्म से न्यार।
शब्द समाना शब्द में, अविगत वार न पार।।"[38]

सुंन सरोवर के विषय में कहा गया है –

"संख सुहेली एक पीव, परसि परसि परवान।
लेह परवी परलोक की, सुंन सरोवर न्हान।।"[39]

सुंन समाधि के संबंध में –

"विश्वामित्र रस पिया, वसिष्ठ मुनि विधि साध।
कपिलदेव गलतान है, लागी सुंन समाधि।।"[40]

बंकनाल, औघट घाट, मक्रतार, भँवर गुफा एवं भँवर –

आलोच्य कवि ने **बंकनाल** के विषय में कहा है कि –

"बंकनाल के अंतरे, त्रिवैणी के तीर।
जहां हम सतगुरु ले गया, चुवें अमीरस खीर।।"[41]

अर्थात् वे साधना की यह प्रक्रिया सतगुरु कबीर के मार्गदर्शन में स्वीकारते हैं। त्रिवेणी के तीर पर बंकनाल के भीतर साधक अमृत का पान करता है।

औघट घाट के विषय में कहा है–

"एक मरे एक भरि चली, एक मरने कूँ जाहि।
ऐसा औघट घाट है, संख सुहेली न्हाहि।।"[42]

21:29
Charandas Ji Ki Bani P...
9/70

शब्द ९
॥ राग रामकली ॥

वह अच्छर कोइ बिरला पावै ।
जा अच्छर के लाग न बिंदी सतगुरु सैनहिं सैन बतावै ॥ १ ॥
छर ही नाद बेद अरु पंडित छर ज्ञानी अज्ञानी ।
बाँचन अच्छर छर ही जानो छरही चारौ बानी ॥ २ ॥
ब्रह्मा सेस महेसर छर ही छर ही त्रैगुन माया ।
छर ही सहित लिये औतारा छर ह्वाँ तक जहँ माया ॥ ३ ॥
पाँचो मुद्रा जोग जुक्ति छर छर ही लगै समाधा ।
आठो सिद्धि मुक्ति फल छरही छर ही तन मन साधा ॥ ४ ॥
रवि ससि तारा मंडल छर ही छर ही धरनि अकासा ।
छर ही नीर पवन अरु पावक नर्क स्वर्ग छर बासा ॥ ५ ॥
छर ही उतपति परलय छर ही छर ही जानन हारा ।
चरनदास सुकदेव बतावैं निःअच्छर है सब सूँ न्यारा ॥ ६ ॥

शब्द १०
॥ राग धनाश्री ॥

जो जन अनहद ध्यान धरै ॥ टेक ॥
पाँचौ निरबल चंचल थाकै जीवत ही जु मरै ॥ १ ॥
सोधै मूलबंध दै राखै आसन सिद्ध करै ॥ २ ॥
त्रिकुटी सुरति लाय ठहरावै कुंभक पवन भरै ॥ ३ ॥
घन गरजै अरु बिजुली चमकै कौतुक गगन धरै ॥ ४ ॥
बहुत भाँति जहँ बाजन बाजैं धुनि धुनि सिंधु अरै[१] ॥ ५ ॥
सहज सहज में हो परकासा बाधा सकल हरै[२] ॥ ६ ॥
जग की आस बास सब टूटै ममता मोह जरै ॥ ७ ॥
सून्य सिखर पर आपा बिसरै काल सूँ नाहिं डरै ॥ ८ ॥
चरनदास सुकदेव कहत हैं सब गुन ध्यान धरै ॥ ९ ॥

(१) ऐसे मधुर बाजे कि जिनकी धुनि से समुद्र की लहरें स्थिर हो जायँ। (२) दूर हो।

21:26
Charandas Ji Ki Bani P...

शब्द ६

॥ राग करखा ॥

परसिया देस जहँ भेस नाहीं।
घाट तिस लखि जहाँ बाट सूझै नहीं
सुरति के चाँदने संत जाई ॥ १ ॥
चंद खोड़स दिपैं गंग उलटी बहै
सुखमना सेज पर लम्प[१] दमकै।
तासु के ऊपरै अमी को ताल है
झिलमिली जोत परकास चमकै ॥ २ ॥
चारि जोजन परे सून्य अस्थान है
तेज अति सून्य परलोक राजै।
द्वार पच्छिम घसे मेरु हीं दण्ड हो
उलट करि आय छाजे बिराजै ॥ ३ ॥
नूर जगमग करै खेल आगाध है
वेद हूँ कहे नहिं पार पावैं।
गुरुमुखी जाइ हैं अमर पद पाइ हैं
सीस का लोभ तजि पंथ धावैं ॥ ४ ॥
तीन सुन छेदि रनजीत चौथे बसे
जन्म औ मरन फिर नाहिं होई।
चरनदास करि वास सुकदेव बकसीस सूँ
पूज वेगम पुरी अमर सोई ॥ ५ ॥

शब्द ७

॥ राग सोरठ ॥

गुरु बिन वह घर कौन दिखावै।
जेहिं घर अग्नि जले जल माहीं यह अचरज दरसावै ॥ १ ॥

(१) जोति।

21:12

Charandas Ji Ki Bani P...

सातवें महल पर कोटि सूरज दिपें।
आठवें महल अवगति गोसाईं ॥
रूप अद्भुत तहां देखि अचरज जहां।
देखिया दरस तब बिपति जाई ॥४॥
सुकदेव की सहा सों धारना गहा सो।
आपने पीव के भवन आई ॥
चरनदास आपा दिया प्रेम प्याला पिया।
सीस सदके किया पूजि पाईं ॥५॥

शब्द १४

॥ राग जैजैवन्ती ॥

ऐसी जो जुगत जाने सोई जोगी न्यारा ॥ टेक ॥
आसन जो सिद्ध करै त्रिकुटी में ध्यान धरै।
बिना तेल दिया बरै जोति हूँ उजारा ॥१॥
संजम संभाल साधै मूल द्वार बंद बांधै।
संखिनी उलटि साधै कामदेव जारा ॥२॥
प्रान बायु हिये माहीं खैंचि के अपान लाहीं।
दोऊ नीके मिलि जाहीं ऐसा खेल धारा ॥३॥
कुम्भक अथक राखै अनहद की ओर ताकै।
सुखमन पैठि नाकै आगे जो बिचारा ॥४॥
खोलि कै कपाट सिरा कोऊ चढ़ै सूर बीरा।
काम धेनु जावै तीरा अमी को उतारा ॥५॥
उन्मुनी जाय लागै निज ग्रह माहिं जागै।
जनम मरन भागै छूटै जम भारा ॥६॥
गुरु सुकदेव कहैं करनी यहि बिधि लहैं।
चरनदास होय रहै आप को संभारा ॥७॥

21:40

← Charandas Ji Ki Bani P...

कहैं गुरू सुकदेव जी चरनदास बिचारो ।
करनी रहनी दृढ़ गहो थोथी कथनी डारो ॥ ६ ॥

शब्द १७

॥ राग बिलावल ॥

माला फेरे कहा भयो ॥ टेक ॥
अंतर के मन को नहिं फेरा पाप करत सब जन्म गयो ॥१॥
पर निन्दा पर नारि न भूलो खोट कपट की ओर नयो[1] ॥२॥
काम क्रोध मद लोभ न खोये है रह्यो मूरख मोह मयो ॥३॥
दुनिया साँच समझ घर कीन्हो धन जोरन को परन लयो ॥४॥
दया धर्म दोउ मारग छाँड़े मँगतन को नहिं दान दयो ॥५॥
गुरु सूँ झूँठ भगल साधन सूँ हरि सूँ नाहीं नेह जयो[2] ॥६॥
चरनदास सुखदेव कहत हैं कैसे कहियो मुक्ति हयो[3] ॥७॥

शब्द १८

॥ राग सोरठ ॥

अवधू ऐसी मदिरा पीजे ।
बैठि गुफा में यह जग बिसरै चंद सूर सम कीजे ॥ १ ॥
जहाँ कुलाल चढ़ाई भाठी ब्रह्म ज्वाल परजारी ।
भरि भरि प्याला देत कुलाली बाढ़ै भक्ति खुमारी ॥ २ ॥
माता[4] है करि ज्ञान खड़ग लै काम क्रोध कूँ मारै ।
घूमत रहै गहै मन चंचल दुबिधा सकल बिडारै ॥ ३ ॥
जो चाखै यह प्रेम सुधारस निज पुर पहुँचै सोई ।
अमर होय अमरा पद पावै आवा गवन न होई ॥ ४ ॥
ुरु सुकदेव किया मतवारा तीन लोक तृन बूझा ।
रनदास रनजीत भये जब आनंद आनंद सूझा ॥ " "

(१) ——

॥ राग धनाश्री ॥

गुरु गम यहि बिधि जोग कमायो ।
आसन अचल मेर कियो सीधो कसि बंध मूल लगायो ॥ १
संजम साधि कला बस कीन्ही मन पवना घर आयो ।
नौ दरवाजे पट दै राखे अर्धं उर्ध मिलायो ॥ २
नाभि तले पैंड़ो करि पैठे सक्ति पाताल गई है ।
काँप्यौ सेस कमठ अकुलायो सायर थाह दई है ॥ ३
उलटि चले मठ फोरि इकीसौ गये अभय पद माहीं ।
अति उँजियारो अद्भुत लीला कहन सुनन गम नाहीं ॥ ४
जित भये लीन सबै सुधि बिसरी छुटी जगत की व्याधा ।
चरनदास सुकदेव दया सूँ लागी सुन्न समाधा ॥ ५

शब्द १३
॥ राग धनाश्री ॥

ऐसी जोग जुक्ति गति भारी ।
मूलहिँ बंध लगाय जुक्ति सूँ मूँदि दई नव नारी ॥ १ ॥
आसन पद्म महा दृढ़ कीन्हो हिरदय चिबुक[1] लगाई ।
चन्द सूर दोउ सम करि राखे निरति सुरति घर आई ॥ २ ॥
ऊपर खैंचि अपान सहज में सहजै प्रान मिलाई ।
पवन फिरी पच्छिम कूँ दौरी मेरुहि मेरु चलाई ॥ ३ ॥
ऐसहिँ लोक अमर पद पहुँचे सूरज कोटि उजारी ।
सेत सिंहासन सतगुरु परसे करि दरसन बलिहारी ॥ ४ ॥
आपा बिसरि प्रेम सुख पायो उनमुन लागी तारी ।
चरनदास सुकदेव दया सूँ चरन दास छुटी नारी[2] ॥ ५ ॥

शब्द १४
॥ राग मलार ॥

21:32
Charandas Ji Ki Bani P...
5/70

बुधि बिबेक बिचारि गावैं सखी सहेली साथ।
अगम लीला रटैं सजनी जहाँ ब्रह्म बिलास ॥ ३ ॥
परम गुरु श्री जनक झूलैं गुरु सुकदेव।
चरनदास सखि सदा झूलैं कोइ न पावे भेव ॥ ४ ॥

शब्द २२

॥ राग करखा ॥

गुरु दया जोग यहि बिधि कमायो ॥टेक॥
मूल कूँ सोधि संकोच करि संखिनी
खैंच आपान उलटो चलायो ॥ १ ॥
बंध पर बंध जब बंध तीनो लगैं
पवन भइ थकित नभ गर्जि आयो ॥ २ ॥
द्वादसा पलट करि सुरति दो दल धरी
दसो परकार अनहद बजायो ॥ ३ ॥
रोक जब नवन कूँ द्वार दसवें चढ़ी
सून्य के तख्त अनँद बढ़ायो ॥ ४ ॥
सहस्र दल कमल को रूप अद्भुत महा
अमी रस उमंग झा झरि लगायो ॥ ५ ॥
तेज द्युति पुंज पर लोक जहँ जगमगे
कोटि छबि भानु परकास लायो ॥ ६ ॥

उनमुनी और चित हेत करि बसि रहो
देखि निज रूप मनुवाँ मिलायो ॥ ७ ॥
काल अरु ज्वाल जग ब्याधि सब मिटि गई
जीव सूँ ब्रह्म गति बेगि पायो ॥ ८ ॥
चरनदास रनजीत सुकदेव की दया सूँ
अभय पद परसि अवगति समायो ॥ ९ ॥

शब्द २३

॥ राग सारंग व बिलावल व सोरठ ॥

टिप्पणी:—ऊपरके वचनोंमें संयम और ध्यान, विशेष करके निर्गुण ध्यान, का विचार किया गया है।

(३४८) अंतरंगमें प्रकाशनेवाली ज्योति ही सब ज्योतियोंका परमाश्रय है, वही अपने आप समरस रूपसे अंतरबाह्य व्याप्त है। मनके स्मरण-संकल्पके विस्मरणरूप उस ज्योतिर्लिंगके स्मरणसे सुखी बना रे मेरे निजगुरु स्वतन्त्र सिद्ध-लिंगेश्वरा।

(३४९) पूर्वद्वार और अधोद्वार बंद करके, ऊर्ध्वद्वार खोलकर, अपलक दृष्टिसे अंदर देखता था तुम्हें टकटकी लगाकर। तुममें मन स्थिर हुआ था, सतत परम सुख पा रहा था मैं। अब नहीं डरूँगा, नहीं डरूँगा। जनन-मरण अतिक्रमण हो गया निजगुरु स्वतन्त्रसिद्धलिंगेश्वरमें समरस हो जाने से।

टिप्पणी:—इस वचनके पहले वाक्यमें उड्डियान बंध नामकी यौगिक क्रिया करते हुए की जाने वाली प्रक्रियाका वर्णन है। पूरक करते समय गुदद्वारसे अपानको अंदर खींचकर (मूलबंध क्रिया द्वारा) कुंभक द्वारा कुंडलिनी शक्तिको जागृत करनेकी प्रक्रियाका वर्णन है। उपरोक्त स्थितिमें ध्यानमग्न साधककी स्थितिका वर्णन है।

(३५०) देह वासनाका अतिक्रमण कर, आत्मबंधनकी चटकनी तोड़ते हुए परात्पर प्राणलिंगसे मिलनेका साधन कौनसा है यह सब शिवभक्त समझें ऐसी भाषामें कहता हूं सुनो! चौरासी आसनोंमें सर्वश्रेष्ठ आसन है शुद्धासन। वह शुद्धासन कैसे साधना है? गुद गुह्य मध्य स्थानमें जो योनिमंडल नामका द्वार है उस द्वारसे बाएँ पैरकी एड़ी सटाकर, दाहिने पैरकी एड़ी मेंट्र स्थानपर सटाते हुए, अपना मेरुदंड सीधा रखकर बैठना। दोनों दृष्टियोंको एक कर उन्मनीय स्थानपर स्थिर करना, नेत्र, जिह्वा श्रोत्र, प्राण, और हृदयको छः अंगुलियोंसे दबानेसे, मूलाधार स्थित मूलाग्नि, वायुसे मिलकर तीव्रतर गतिसे ऊर्ध्वको जाती है। वह मनको स्थिर करती है; और उभय लिंगाश्रित महालिंगमें विलीन होकर अनंत सूर्याग्नि चन्द्रप्रकाशसे, वहीं सूक्ष्म होती हुई अंगुल प्रमाण शुद्ध नक्षत्रसा आंखोंको करतलामलककी भांति प्रत्यक्ष हो दिखाई देनेवाले प्राणलिंगमें जो प्राण संभोग करना जानता है वही प्राणलिंग संबंधी है वही प्रलयादि रहित है अखंडेश्वरा।

टिप्पणी:—सिद्धासनमें बैठकर षण्मुखी मुद्रा साधकर लगाए गए ध्यानका अनुभव है।

(३५१) अर्धोन्मीलित अपलक दृष्टि नासिकाग्रमें स्थिर करके हृदय कमलमें बसे हुए अचल लिंगमें ज्ञान दृष्टिमें देखते हुए तन, मन, इंद्रियोंको खोलकर, मन को निर्वात ज्योतिकी तरह स्थिर करके सत्य समन्वित होनेकी क्रिया जानने

२५४ वचन-साहित्य-परिचय

धातुपाठ से गृहीत अर्थानुसन्धान से जप क्रिया मानस क्रिया ही है। पूजा भी ध्यानादि रूप में विमर्शित होने पर मानस क्रियारूपा ही है। पूजा में उपचारसमर्पण में जो यह कल्पना की जाती है कि यह मेरा नहीं, भगवती का है 'भगवती मेरे जप को ग्रहण करें' इत्याकारक जप-समर्पण आदि संकल्परूपात्मक होने के कारण मानसिक ही हैं। इस तथ्य को सेतुबन्ध में प्रतिपादित भी किया गया है। उपासना यद्यपि मानस व्यापारमात्र है, तथापि बहिर्याग में बाह्य पदार्थों को पूजोपादानों के रूप में ग्रहण किया ही जाता है। यह उपचार पञ्चोपचार, षोडशोपचार, चतुःषष्टि उपचार आदि के रूप में प्रसिद्ध है।

अन्तर्याग तो मोक्ष प्रदा[illegible] ही है, किन्तु बहिर्याग भी अपने तात्त्विक अर्थ में अ[illegible] होने के कारण मोक्षप्रद है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना की एक विशेषता है और वह यह है कि यह निवृत्तिपरक, संन्यासात्मक, रागोन्मनमात्र नहीं है; प्रत्युत 'श्रीसुन्दरीसाधनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव'। बहिर्याग भोग तो प्रदान करता ही है, किन्तु यह मोक्षप्रद भी है।

आचार्य लक्ष्मीधर सौन्दर्यलहरी की टीका में कहते हैं—

क. देवयान एवं पितृयानस्वरूप इड़ा-पिङ्गला नाड़ियों के माध्यम से सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों अहर्निश सञ्चरण करते रहते हैं।

ख. चन्द्रमा वाम नाड़ी (इड़ा नाड़ी) के मार्ग से ७२ हजार नाड़ियों को अमृत से सिञ्चित करता है।

ग. सूर्य दक्षिण नाड़ी (पिङ्गला नाड़ी) के मार्ग से सञ्चरण करता हुआ उन उत्क्षिप्त अमृतबिन्दुओं का उपाहरण करता रहता है।

घ. जब चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों का आधारचक्र में समावेश होता है, तब अमावास्या तिथि का आविर्भाव होता है। इसी से कृष्णपक्ष की सभी तिथियों का आविर्भाव होता है।

ङ. अतः कुण्डलिनी शक्ति सूर्यकिरण के सम्पर्क से विलीन चन्द्रमण्डलमध्य से विगलित पीयूष से आपूरित आधारकुण्ड में सोती है। कुण्डलिनी की यह स्वापावस्था ही कृष्णपक्ष है।

च. जब योगी चन्द्रमा को उसके चन्द्रस्थान में एवं सूर्य को उसके अपने सूर्यस्थान

में वायु के द्वारा निरुद्ध कर देता है, तब चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों के अवरुद्ध होने के कारण अमृत-सेचन एवं अमृताहरण दोनों क्रियायें अवरुद्ध हो जाती हैं (चन्द्रमा का अमृतसेचन एवं सूर्य का अमृताहरण दोनों ही बन्द हो जाते हैं)।

छ. ऐसा होने पर वायु के द्वारा प्रेरित स्वाधिष्ठानाग्नि के द्वारा अमृतकुण्ड के शुष्क हो जाने पर भूखी कुण्डलिनी सोते से जागकर सर्प की भाँति फूत्कार करती हुई, ग्रन्थित्रय का भेदन करती हुई सहस्रदल कमल के मध्यवर्ती चन्द्रमण्डल को डसती है।

ज. कुण्डलिनी के द्वारा चन्द्रमा के डसे जाने पर चन्द्रप्रवाहित अमृतप्रवाह आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल को आप्लावित करता है और समस्त शरीर को अमृत से आप्लावित कर देता है।

झ. आज्ञाचक्र के ऊपर चन्द्रमा की पन्द्रह नित्या कलायें स्थित हैं। वे पन्द्रह नित्या कलायें अपने से नीचे स्थित विशुद्धि चक्र का आश्रय लेकर घूमती हैं (परिवर्तन करती हैं)।

महात्रिपुरसुन्दरी और आत्मा— सहस्रदल कमल के अन्तर में स्थित चन्द्रमण्डल ही बैन्दवस्थान है और उसकी कला चिन्मयी आनन्दरूपा आत्मा है। यही चिन्मयी आत्मा महात्रिपुरसुन्दरी है।

महात्रिपुरसुन्दरी सहस्रदल कमल में स्थित बैन्दवस्थान (चन्द्रमण्डल) की आनन्दात्मिका एव [illegible]न्दरूपा चित्कला है।

तिथियाँ और कलाय— चन्द्र का प्रथम कला का नाम है— प्रतिपदा। वह सूर्यमण्डल से निकली है। वह कृष्णपक्ष में सूर्यमण्डल में प्रवेश कर जाती है। इसी प्रकार सूर्यमण्डल से निर्गता द्वितीया कला द्वितीया तिथि कही जाती है। कृष्णपक्ष में तो सूर्य-

धातुपाठ से गृहीत अर्थानुसन्धान से जप क्रिया मानस क्रिया ही है। पूजा भी ध्यानादि रूप में विमर्शित होने पर मानस क्रियारूपा ही है। पूजा में उपचारसमर्पण में जो यह कल्पना की जाती है कि यह मेरा नहीं, भगवती का है 'भगवती मेरे जप को ग्रहण करें' इत्या-कारक जप-समर्पण आदि संकल्परूपात्मक होने के कारण मानसिक ही हैं। इस तथ्य को सेतुबन्ध में प्रतिपादित भी किया गया है। उपासना यद्यपि मानस व्यापारमात्र है, तथापि बहिर्याग में बाह्य पदार्थों को पूजोपादानों के रूप में ग्रहण किया ही जाता है। यह उपचार पञ्चोपचार, षोडशोपचार, चतु:षष्टि उपचार आदि के रूप में प्रसिद्ध है।

अन्तर्याग तो मोक्ष प्रदान करता ही है, किन्तु बहिर्याग भी अपने तात्त्विक अर्थ में अन्तर्यागात्मक होने के कारण मोक्षप्रद है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना की एक विशेषता है और वह यह है कि यह निवृत्तिपरक, संन्यासात्मक, रागोन्मनमात्र नहीं है; प्रत्युत 'श्रीसुन्दरीसाधनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव'। बहिर्याग भोग तो प्रदान करता ही है, किन्तु यह मोक्षप्रद भी है।

आचार्य लक्ष्मीधर सौन्दर्यलहरी की टीका में कहते हैं—

क. देवयान एवं पितृयानस्वरूप इड़ा-पिङ्गला नाड़ियों के माध्यम से सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों अहर्निश सञ्चरण करते रहते हैं।

ख. चन्द्रमा वाम नाड़ी (इड़ा नाड़ी) के मार्ग से ७२ हजार नाड़ियों को अमृत से सिञ्चित करता है।

ग. सूर्य दक्षिण नाड़ी (पिङ्गला नाड़ी) के मार्ग से सञ्चरण करता हुआ उन उत्क्षिप्त अमृतबिन्दुओं का उपाहरण करता रहता है।

घ. जब चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों का आधारचक्र में समावेश होता है, तब अमावास्या तिथि का आविर्भाव होता है। इसी से कृष्णपक्ष की सभी तिथियों का आविर्भाव होता है।

ङ. अत: कुण्डलिनी शक्ति सूर्यकिरण के सम्पर्क से विलीन चन्द्रमण्डलमध्य से विगलित पीयूष से आपूरित आधारकुण्ड में सोती है। कुण्डलिनी की यह स्वापावस्था ही कृष्णपक्ष है।

च. जब योगी चन्द्रमा को उसके चन्द्रस्थान में एवं सूर्य को उसके अपने सूर्यस्थान

में वायु के द्वारा निरुद्ध कर देता है, तब चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों के अवरुद्ध होने के कारण अमृत-सेचन एवं अमृताहरण दोनों क्रियायें अवरुद्ध हो जाती हैं (चन्द्रमा का अमृतसेचन एवं सूर्य का अमृताहरण दोनों ही बन्द हो जाते हैं)।

छ. ऐसा होने पर वायु के द्वारा प्रेरित स्वाधिष्ठानाग्नि के द्वारा अमृतकुण्ड के शुष्क हो जाने पर भूखी कुण्डलिनी सोते से जागकर सर्प की भाँति फूत्कार करती हुई, ग्रन्थि-त्रय का भेदन करती हुई सहस्रदल कमल के मध्यवर्ती चन्द्रमण्डल को डसती है।

ज. कुण्डलिनी के द्वारा चन्द्रमा के डसे जाने पर चन्द्रप्रवाहित अमृतप्रवाह आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल को आप्लावित करता है और समस्त शरीर को अमृत से आप्लावित कर देता है।

झ. आज्ञाचक्र के ऊपर चन्द्रमा की पन्द्रह नित्या कलायें स्थित हैं। वे पन्द्रह नित्या कलायें अपने से नीचे स्थित विशुद्धि चक्र का आश्रय लेकर घूमती हैं (परिवर्तन करती हैं)।

महात्रिपुरसुन्दरी और आत्मा— सहस्रदल कमल के अन्तर में स्थित चन्द्रमण्डल ही बैन्दवस्थान है और उसकी कला चिन्मयी आनन्दरूपा आत्मा है। यही चिन्मयी आत्मा महात्रिपुरसुन्दरी है।

महात्रिपुरसुन्दरी सहस्रदल कमल में स्थित बैन्दवस्थान (चन्द्रमण्डल) की आनन्दात्मिका एवं आत्मस्वरूपा चित्कला है।

तिथियाँ और कलायें— चन्द्र की प्रथम कला का नाम है— प्रतिपदा। वह सूर्य-मण्डल से निकली है। वह कृष्णपक्ष में सूर्यमण्डल में प्रवेश कर जाती है। इसी प्रकार सूर्यमण्डल से निर्गता द्वितीया कला द्वितीया तिथि कही जाती है। कृष्णपक्ष में तो सूर्य-

(१) बान। (२) घट। (३) उपमा।

तन मन धन न्योछावर वारै, सहज सुफल फल फरै ॥ १ ॥
गुरु परताप साध की संगति, जोग जुक्ति उर भरै।
इंगला पिंगला सुखमन सोधै, ज्ञान अगिन उदगरै[1] ॥ २ ॥
चाँद सुरज एकागर[2] करि कै, उलटि उरध अनुसरै।
नाद बिंद को जोहु[3] गगन में, मन माया तब मरै ॥ ३ ॥
आठ पहर नौबत धुनि बाजै, नेक पहल नहिं टरै।
भीखा सब्द सुनतहिं अबुध बुध, अमरख[4] हरख करै ॥ ४ ॥

॥ शब्द १२ ॥

मन तोहिं कहत कहत सठ हारे।
ऊपर और अंतर कछु और, नहिं बिस्वास तिहारे ॥ १ ॥
आदिहिं एक अंत पुनि एकै, मद्धहुँ एक बिचारे।
लबज लबज एहवर ओहवर करि[5], करम दुइत करि डारे ॥ २ ॥
बिषया रत परपंच अपरबल, पाप-पुन्न परचारे।
काम क्रोध मद लोभ मोह कब, चोर चहत उँजियारे ॥ ३ ॥
कपटी कुटिल कुमति बिभिचारी, हो वा को अधिकारे।
महा निलज कछु लाज न तो को, दिन दिन प्रति मोहिं जारे ॥४॥
पाँच पचीस तीन मिलि चाह्यो, बनलिउ[6] बात बिगारे।
सदा करेहु बैपार कपट को, भरम बजार पसारे ॥ ५ ॥
हम मन ब्रह्म जीव तुम आतम, चेतन मिलि तन खारे।
सकल दोस हमको काहे दइ, होन चहत हौ न्यारे ॥ ६ ॥
खोलि कहों[7] तरंग नहिं फेर्‌यो, यह आपुहि महिमा रे।
बिन फेर कछु भयो न ह्वै है, हम का करहि बिचारे ॥ ७ ॥
हमरी रुचि जग खेल खेलौना, बालक साज सँवारे।
पिता अनादि अनख[8] नहिं मानहि, राखत रहहि दुलारे ॥ ८ ॥
जप तप भजन सकल हैं बिरथा, व्यापक जबहिं बिसारे।
भीखा लखहु आपु आतम कहँ, गुनना तजहु खमा[9] रे ॥ ९ ॥

(१) जगावे। (२) इकट्ठा। (३) ढूँढ़। (४) गुस्सा, रंज। (५) लफ़ज़ों को इधर उधर करके। (६) बनी हुई। (७) कभी। (८) नाराज़ी। (९) भीतर घुसी या छिपी हुई।

॥ शब्द १३ ॥

मन मानि ले रे तू कहल हमार।
फिरि फिरि मानुष जनम न पैहो, चौरासी अवतार ॥ टेक ॥
पागा माया बिषै मिठाई, काम क्रोध रत सोई।
सुर नर मुनि गन गंधर्ब कछु कछु, चाखत है सब कोई ॥ १ ॥
त्रिबिधि ताप को फंद परो है, सूझत वार न पारा।
काल कराल बसै निकटहिं, धरि मारि नर्क महँ डारा ॥ २ ॥
संत साध मिलि हाट लगायो, सौदा नाम भराई।
जो जा को अधिकार होत तिन, तैसी वस्तु मोलाई ॥ ३ ॥
सब सत्ती धन धाम सकल लै, सरनागति में डारा।
समझो बूझि बिचारि उतारो, अपने सिर को भारा ॥ ४ ॥
जोग जुक्ति कै परचो पैहो, सुरति निरति ठहराई।
अर्ध उर्ध के मध्य निरंतर, अनहद धुनि घहराई ॥ ५ ॥

(१) उबलता। (२) बेफ़ायदा। (३) ज़ेर, परास्त। (४) स्त्री। (५) उमर। (६) चक्र।
(७) थप्पड़। (८) बेड़ा। (९) विराग।

सुरति मगन परमारथ जागै, करम होहि जरि छारा[1]।
ज्ञान ध्यान के खानि खुलै जब, तब छूटै संसारा ॥ ६ ॥
भक्ति भाव कल्पद्रुम छाया, ताप रहै नहिं देई।
चारि पदारथ अज्ञाकारी, पर[2] सों कबहिं न लेई ॥ ७ ॥
राम नाम फल मिलो जाहि को, प्रेम सुधा रस धारा।
पुलकि पुलकि मन पान करो तुम, निस दिन बारम्बारा ॥ ८ ॥
गुरु परताप कहाँ लगि बरनों, उक्ती एक न आई।
रसना जो कहिं होयँ सहसदस, उपमा गाय न जाई ॥ ९ ॥
आतम राम अखंडित आपै, निज साहब बिस्तारा।
भीखा सहज समाधी लावो, अवसर रहै तुम्हारा ॥१०॥

॥ शब्द ७ ॥

समय जून आवन सोइ आई, मन कहहू तें नहिं पतियाई ॥१॥
जुग बरस मास दिन पहर घरी छिन, देहि अवध नियराई ॥२॥
मूरख तदपि नाहिं चित चिन्ता, मानो करतल[3] भै अमराई[4] ॥३॥
सुर नर मुनि गन गंधर्व दानव, काल करम दुख पाई ॥४॥
ब्रह्मा बिस्नु सीव सनकादि दे[5], प्रभु डर को न डेराई ॥५॥
अमर चिरंजिव लोमस समता[6] तिन पर त्रास जनाई ॥६॥
भीखा निर्भय राम सरन इक, का किये बहुत सिधाई[7] ॥७॥

॥ शब्द ८ ॥

वचनामृतमें जिन वचनकारोंके वचन लिए हैं उनके नाम और उनके वचनोंके क्रमांक

इस नाम सूचीमें प्रथम वचनककारोंकी मुद्रिका अंकित की है। उसके पश्चात् उनके नाम दिये हैं, अनंतर वचनोंका क्रमांक।

(१) अखंडेश्वरा····· षण्मुखस्वामी १०, १३, ४०,४२, ४८, ६१, ७८, ८१, ८६, १३३, १६३, २१७, २७६, ३३४, ३४०, ३५०, ३७३, ४३६, ४४१, ४४३, ४६२, ५४१, ५४७, ५६५, ५६८।

(२) अजगण्ण······मुक्तायक्क २३५।

(३) अप्रमाण कूडलसंगमदेव······? ४, १६, २४१, २४३, २४४, ३०४ ५४८।

(४) अभिनव मल्लिकार्जुन······कक्कैय डोहर, २०१।

(५) अमरेश्वरलिंग······आयदक्कि मारैय २५२, ३१५, ३२१, ३२४।

(६) अलोकनाद शून्य शून्यकल्लिनोलगादः····· भंडारी शांतैया ४६१।

(७) अंबिगर चौडैय ·····अंबिगर चौडैय ३६, ४७, १६३, १६६, १६६अ १७७, २४६, ४०६, ४३२, ४४३, ५६३।

(८) आतुरवैरी मारेश्वरा····· नगिमारितंदे १६०, ५५६।

(९) ईशान्यमूर्ति मल्लिकार्जुन लिंग······शिवलंक मंचण्ण, ३६४, ३६६, ३७५, ४३६।

(१०) उरिलिंगदेव······उरिलिंगदेव ६५, २०२, ५२१।

(११) उरिलिंग पेद्दिप्रिय विश्वेश्वर ·····उरिलिंगपेद्दि ३२, ३३७, ३६५, ४५४, ४६४, ५०८, ५१०, ५१६, ५६१।

(१२) उलिमुलेश्वरा······चिक्कैय २६२।

(१३) एन्नैयप्रिय इम्मडि निःकलंकमल्लिकार्जुन······मोलिगेय मारय्यकी धर्मपत्नी महादेवी ४१, १४१, १७०, २४५।

(१४) एकेश्वरलिंग····· एलेशकेतकैय ४५०।

(१५) कदंबलिंग······कंमद मारैय ३८५।

(१६) कपिलसिद्धमल्लिकार्जुन······सिद्धरामैय २१, ३७, ६४, १४७, १८६, २१५, २२६, २३४, २३६, २३७, २३८, २३६, २४०, २६३, २६४, २८२, ३१४, ३८४, ४१०, ४२०, ४४५, ४४७, ४८६, ५१६, ५१७,

(३)

चेतत बसंत मन चित चेतन्य । जोग जुगति गुर ज्ञान धन्य ॥
उरध पधार्‌यो पवन घोर । दृष्टि पलान्यो[६] पुरुब ओर ॥
उलटि गयो थकि मिटलि दाह[७] । पच्छिम दिसि कै खुललि राह ॥
सुन्न मंडल में बैठु जाय । उदित उजल छबि सहज पाय ॥
जोति जगामग झरत नूर । ह्वाँ निसु दिन नौबति बजत तूर ॥
झलक झनक जिव एक होय । मत प्रान अपान को मिलन सोय ॥
रूह अलख नभ फूल्यो फूल । सोइ केवल आतम राम मूल ॥
देखत चकित अचर्ज आहि । जा वह सो यह कहौं काहि ॥
भीखा निज पहिचान लीन्ह । वह साबिक[८] ब्रह्म सरूप चीन्ह ॥

॥ होली ॥

(१)

होरी सो खेलै जा के सतगुरु ज्ञान बिचार ।
याहि सिवाइ जो और करतु है, ता को जन्म खुवार ॥ १ ॥

(१) समूह । (२) पबारना, छींटना । (३) अंकुर । (४) तूमार, फैलाव । (५) दिन । (६) तैयार किया, कसा । (७) तपन । (८) प्राचीन ।

इँगल पिंगल ह्वै सुन्न भेंटानो, सुखमन भयो उँजियार ।
नूर जहूर बदन पर झलकत, बरखत अधर अधार ॥ २ ॥
बाजत अनहद घंटा तहँ धुनि, अबिगत सब्द अपार ।
पुलकि पुलकि मन अनुभव गावत, पावत अलख दिदार ॥ ३ ॥
अजर अबीर कुमकुमा केसरि, उमगो प्रेम पोखार[१] ।
राम नाम रस रंग भयो, गत काम क्रोध हङ्कार ॥ ४ ॥
व्यापक पूरन अगम अगोचर, निज साहब बिस्तार ।
भीखा बोलत एक सभन में, है जग सकल हमार ॥ ५ ॥

(२)

जग नाम प्रकास अकार धरत जड़, आतम राम खेले होरी ।
काम क्रोध मद लोभ ग्रसित नर, आपु तें आपु नरक बोरी ॥१॥
तजि बिषया रत भक्ति भाव जहँ, ज्ञान ध्यान रस रँग घोरी ।
संत सभा चोआ अरु कुमकुम, प्रेम बचन छिरकत होरी ॥२॥
सतगुरु हाथ बिकाय लियो, प्रभु दान दियो बन्धन छोरी ।
जोग जुक्ति अभ्यास भर्‌यो, लै अर्ध उर्ध सुखमन झोरी ॥३॥
सुरति निरति लव लीन भयो, सम जीव सीव[२] दोनों जोरी ।
ब्रह्म सरूप अनूप दृष्टि भरि, निज प्रति देखि मिलो गोरी ॥४॥
अगम अगोचर रूप झलाझलि, सोहं तार लगोरी ।
कहैं भीखा मेरो ऐसो साहब, मन माया अँखुवा[३] तोरी ॥५॥

(३)

(१) घोड़ा हाथी। (२) तूमार, फैलाव। (३) पेड़। (४) तीन।

सतगुरु नावल हिंडोलवा सुरति निरति गहि सार।
झूलहिं पाँच सोहागिनि गावहिं मंगलचार॥ ३॥
पौढ़्यो अगम हिंडोलवा सत्त सब्द निर्धार।
झुलत झुलत सुख ऊपजै केवल ब्रह्म बिचार॥ ४॥
अब की बार यह औसर मिलै न बारम्बार।
फिर पाछे पछिताइबो देंह छुटे बेकार॥ ५॥
जोग जुक्ति के हिंडोलवा अनहद झनकार।
जो यहि झुलहि हिंडोलवा ताहि मिलहि करतार॥ ६॥
आवा गवन निवारहू फिरि न होय औतार।
साधु सँगति को मेला झूलहिं नाम अधार॥ ७॥
डार पात फल पेड़ में देख्यो सकल अकार।
भीखा दूसर गति भयो सुद्ध सरूप हमार॥ ८॥

(४)

जोग जुक्ति के हिंडोलवा गुरु सहज लखावल॥ १॥
चाँदे राखि सूर पौढ़ावल[१] पवन डोरि धै पावल॥ २॥
अध उर्ध मुख पावल पुलकि पुलकि[२] छबि भावल॥ ३॥
गगन मगन गुन गावल सुरति निरति में समावल॥ ४॥
भीखा यहि बिधि मन लावल आतम दरसावल॥ ५॥

॥ बसंत ॥

(१)

जब गुरु दयाल तब सत बसंत। यहि सिवाय मत है अनंत॥
श्री पंचमी है पाँच नारि। सम गावहिं इक सुर धमारि॥
धुनि अकास भरि रहलि छाय। सुनत मगन उर नहिं समाय॥
धन्न भाग जा के यह सँजोग। मिल्यौ पदारथ अनँद भोग॥
जीव बसायो ब्रह्म अंस। बकुला तें भयो परमहंस॥
माघ मकर तन सुफल जानि। मिल्यौ पदारथ नाम खानि॥

(१) बाईं स्वाँसा रोक कर दाहिनी चलाई। (२) मगन होकर।

रहनि अचल अस्थिर कर आसन ज्ञान बुद्धि मति धीर।
देखत आतम राम उघारे ज्यों दरपन मद्धे हीर॥ ३॥
मोह नदी भ्रम भँवर कठिन है पाप पुन्य दोउ तीर।
हरि जन सहजे उतरि गये ज्यों सूखे ताल को झीर[1]॥ ४॥
जग परपंच करम बहतो है जैसे पवन अरु नीर।
गुरु गम सब्द समुद्रहिं जावे परत भयो जल थीर॥ ५॥
केलि करत जिय लहरि पिया सँग मति बड़ गहिर गँभीर।
ताहि काहि पटतरो[2] दीजे जिन तन मन दियो सीर॥ ६॥
मन मतंग मतवार बड़ो है सब ऊपर बल बीर।
भीखा हीन मलीन ताहि को छीन भयो जस जीर॥ ७॥

॥ शब्द २॥

सतगुरु साहब नाम पारसी, पारस मों चित लावै।
जाहि नाम तें सिव सनकादिक, ब्रह्मा बिस्नु कहावै॥ १॥
ता के सुर नर मुनि गन देवा, सेवा सुमिरन ध्यावै।
मध्य सरस्वति गंगा जमुना, सन्मुख सीस नवावै॥ २॥
त्रिस्ना राग द्वेस नहिं तहवाँ, जहवाँ सोहं बोलै।
ज्ञान बोध बिनु दृष्टि बिलोकै, उर्ध कपाटहिं खोलै॥ ३॥
मूल पेड़ अरु साखा पत्र नहिं, फूल बिना फल लागे।
जंत्र बिना जंत्री धुनि सुनिये, सब्द अभय पद जागे॥ ४॥
ता अस्थान मकान किये, होय नाद बिंद को मेला।
आतम देह समान बिचारो, जोई गुरु सोइ चेला॥ ५॥
सो है फाजिल संत महरमी[3], पूरन ब्रह्म समावै।
एकै सोन[4] बहुत बिधि गहना, समुझै द्वैत नसावै॥ ६॥
ता की सरन साँच है जानहि, अजर अमर जन सोई।
उटन बिटन[5] बरतन माटी को, चेतन मरे न कोई॥ ७॥

(१) छिछला पानी। (२) उपमा। (३) भेदी। (४) सोना। (५) बनना और बिगड़ना।

३

LIBRARY
Accession No
Classification No

चाँद सूर एक सम सुरति मिलाय दम,
इँगल पिंगल रँग सुखमन माट है।
पूरब पवन जोग पच्छिम की राह होय,
गंग जमुन संगम तहँ त्रिकुटी को घाट है।
प्रान औ अपान असमान ही में थिर होवे,
भीखा सब्द ब्रह्म को अकास सुन्न हाट[1] है॥

(८)

भूलो हाट ब्रह्म द्वार काम क्रोध अहंकार माहिं,
रहत अचेत नर मन माया पागो है।
अलख अलेख रूप आतमा है भेख धरे,
कस न पुलकि[2] जीव ताही पंथ लागो है॥
अकथ अगाध वोई अनुभव फल जोई,
निसु महा भोर मानो सोय उठि जागो है।
बाजै अनहद मारू उभै दल मोच्छ भारू,
सूरा खेत माँड़ि रही भीखा कूर[3] भागो है॥

(९)

कूर है खजूर छाया संचै[4] पु[5] झूँठी माया,
असह रहत यह जगत का हाल है।
मन परतीत करै सत औ संतोष धरै,
नाम जपै हर दम दमहिं को माल है॥
साधन को संग जहाँ नाना परसंग तहाँ,
अर्थ नवीन सुनि जागो भाग भाल[6] है।
धन्य आपु भेद पाय दीन्हो और को बताय,
भीखा गुरु जीव राम नाम तो गुलाल है॥

(१०)

बालक सों भयो ज्वान दारा सुत ध्यान प्रान,
समय गये तें फल लागो भूख रूख है।

(१) बाजार। (२) उमंग से। (३) कादर। (४) रक्षा करता है। (५) शरीर। (६) माथा।

बीज बढ़ो है तुमार[1] चर अचर बिचार,
ता में मानुष सचेत औ चेतन अधिकार है ॥
सतगुरु मत पाय निज रूप ध्यान लाय,
जनम सुफल साँच ता को अवतार है।
गगन गवन करै अनहद नाद भरै,
सुन्दर सरूप भीखा नूर उँजियार है ॥

(५)

जा के ब्रह्म दृष्टि खुलो तन मन प्रान तुलो,
धन्य सोई संत जा के नाम की उपासना।
ज्ञानिन में ज्ञान वोई अनुभव फल जोई,
तजै लोक लाज जा में काल जाल साँसना ॥
प्रेम पंथ पग दियो उरध में घर कियो,
मन निर्गुन पद छुटै जग बासना।
जोग की जुगति पाय सुरति निरति लाय,
नाद बिंद सम भीखा लायो दृढ़ आसना[2] ॥

(६)

आदि अंत मध्य एक नाद बिंद सम पेख,
सब घट सुद्ध ब्रह्म दीखत ज्यों अकास है।
काहे को भरम करै जनमि जनमि मरै,
भजत न हठ करि जो लों तन साँस है ॥
निज सुख येही जानो दुबिधा न भाव आनो,
अलख अलेख देखो आपु हीमें बास है।
चित्त ज्यों चकोर लेवै चंद्रमा को दृष्टि देवै,
आत्मा प्रकासी ज्ञान भीखा निज पास है।

(७)

ज्ञान अनुमान करि चीन्ह ले अमान धरि,
गुरु परताप खुलो भरम कपाट है।

(१) बहुत। (२) आसन।

काया गढ़ के गगन भवन में, धुधुकि धुधुकि धुन नाम सुनाई ॥६॥
भीखा को मन भ्रमत देखि कै, गुरु गुलाल जो पंथ चढ़ाई ॥७॥

(४)

इक पुरुष पुरान चहूँ जुग में, मिलि आतम राम खेलै होरी ।
रंग लगो फगुवा रस बसि, भयो माया ब्रह्म दुनों जोरी ॥१॥
जग परिपंच करम अरुझे नर, सबै कहत मोरी मोरी ।
नाम पदारथ भूलि गयो, गल फाँस परी भ्रम की डोरी ॥२॥
कोउ जोग जुक्ति रस भेद पाइ कै, सुरति निरति लै रँग बोरी ।
बाजत अनहद ताल पखावज, उमग्यौ प्रेम अनन[1] खोरी[2] ॥३॥
सतगुरु सब्द अबीर कुमकुमा, भाव भर्यौ झोरी झोरी ।
भीखा दिव्य दृष्टि करि छिरकत, पलकन नूर चुवत ओरी[3] ॥४॥

(५)

मन में आनँद फाग उठो री ॥ टेक ॥
इँगला पिंगला तारी देवै, सुखमन गावत होरी ॥ १ ॥
बाजत अनहद डंक[4] तहाँ धुनि, गगन में ताल परो री ॥ २ ॥
सतसंगति चोवा अबीर करि, दृष्टि रूप लै घोरी ॥ ३ ॥
गुरु गुलाल जी रंग चढ़ायो, भीखा नूर भरो री ॥ ४ ॥

(६)

होरी खेलन जाइये, सत सुकरित साथ लगाई ।
यहि माया परपंच फागु में, मति कोइ परे भुलाई ॥१॥
सतगुरु ज्ञान अबीर रंग लै, हद भरि दमहिं चलाई ।
पाँच पचीस सखी जह चाचरि, गावहिं अनहद डंक बजाई ॥२॥
सुनत मगन मन पवन लसित भयो, सुरति निरति अरुझाई ।
इँगल पिंगल पिचुकारी छोड़हिं, सुखमन रंग भिंजाई ॥३॥
ब्रह्म सरूप चेतन्न नीर लै, दुरमति मैल बहाई ।
भीखा ता छबि कहहि कौन मुख, एकौ जुक्ति न आई ॥४॥

(१) एक ही का जिस में दूसरे की गुञ्जाइश नहीं है। (२) गली। (३) ओलती, पानी की धार जो छत से गिरती है। (४) डंका।

॥ शब्द २७ ॥

हमरो मनुवाँ बड़ो अनारी । साहब निकट न करत चिन्हारी ॥१॥
प्रानायाम न जुक्ति बिचारी । अजपा जाप न लावै तारी ॥२॥
खोलै न भ्रम तें बज्र किवारी । निज सरूप नहिं देखि मुरारी ॥३॥
प्रान अपान मिलन न सँवारी । गगन गवन नहिं सब्द उचारी ॥४॥

(१) लाख सरोखी समझ जो गर्मी पाकर टिघल जाय और फिर कड़ी की कड़ी हो जाय । (२) छिपाना । (३) पेड़ । (४) अच्छा पका हुआ । (५) सुखदाई । (६) भाग जाय

सुन्न समाधि न चेत बिसारी । यह लालसा[1] उर बड़ी हमारी ॥५॥
सर्ब दान गुरु दाता भारी । जाचक सिष्य सो लेत भिखारी ॥६॥

॥ शब्द २८ ॥

सब भूला किधौं हमहिं भुलाने । सो न भूला जाके आतम ध्याने ॥१॥
सब घट ब्रह्म बोलता आही । दुनिया नाम कहौं मैं काही ॥२॥
दुनिया लोक बेद मति थापे । हमरे गुरु गम अजपा जापे ॥३॥
हरि जन जे हरि रूप समावे । घमासान[2] भये सूर कहावे ॥४॥
कहे भीखा क्यों नाहीं नाहीं[3] । जब लगि साँच झूठ तन माहीं ॥५॥

॥ शब्द २९ ॥

रे मन ह्वै है कवन गति मेरी । मेरी समझ बूझ होत देरी ॥टेक॥
यह संसार आये गति माया लागी धाये ।
राम नाम नहिं जान्यो मति गति न निबेरी ॥१॥
भजन करारे[4] आये कबहीं न साँचि गाये ।
करम कुटिल करे मति गइ तेरी ॥२॥
भीखा चरनों में लीजै मन माया दूरि कीजै ।
बार बार माँगै इहै प्रीति लागै तेरी ॥३॥

॥ शब्द ३० ॥

अधम मन राम नाम पद गहो ।
तातें यह तन धरि निरबहो[5] ॥टेक॥
अलख न लखि जाय अजपा न जपि जाय ।
अनहद के हद नाहीं हो ॥१॥
कथनी अकथ कवनि बिधि होवे ।
जहँ नाहीं तहँ ताही हो ॥२॥
बिन मूल पेड़ फल रूप सोई ।
निज दृष्टि बिन देखी कहो ॥३॥

(१) हौसला । (२) युद्ध । (३) नेत नेत । (४) इकरार । (५) निर्वाह हो ।

॥ शब्द १९ ॥

जोग जुक्ति गुरु लगन लगाई। साजि बरात बियाहन जाई ।१।
उर्ध पवन मन धुजा बिराजै। सुतरी[1] अस्पी[2] अनहद बाजै ।२।
नरसिंघा[3] तुरही[3] सहनाई। घंटा धुनि अंबर[4] पर छाई ॥३॥
पालकी सुरति निरति लौ लीना। लागे पाँच कहार प्रबीना ॥४॥
अठकठ[5] साज बरनि नहिं जाई। संगी सो इक एक सोहाई ॥५॥
अचरज एक जु देखा भली। दुलहिन खोजन पिय को चली ।६।
सुन्न सिखर माँडो छायो। इँगला पिंगला चौक पुरायो ।७।
प्रेम प्रीति के साज सजाई। कुम्भक पूरक कलस भराई ॥८॥
गावहिं पाँच पचीसो गुनी। सुनत मगन ह्वै साधू मुनी ॥९॥
सेंदुर उदित जोति जगमगे। आपन नाह[6] आपु से पगे[7] ।१०।
दुलहिन नाम सेव करि पाई। नाद बिंद बहुतै भौजाई ।११।
भीखा मगन रहे हर हाल। तजि परपंच जगत को ख्याल।१२।

॥ शब्द २० ॥

हो पतित-पावन नाम हिम्मत न दुरे।
जैसे किरन सूर सम पुरे ॥ टेक ॥

जैसे प्रीति प्रान अरु देही। तैसे हरि जन परम सनेही ॥१॥
जैसे प्रीति जला अरु मीना। तैसे सुरति निरति लौलीना ॥२॥
जैसे पदुम[8] नाल बिच तागा। तैसे जीव ब्रह्म इक लागा ॥३॥
जैसे कीट भृङ्ग रँग जागा। तैसे आतम सों मन पागा ॥४॥
जैसे भीखा फनि[9] मनि लाय। तैसे दृष्टि सरूप समाय ॥५॥

॥ शब्द २१ ॥

निज आतम भजि लेहु तने, जैसे घरे तैसे बने ॥टेक॥
ज्ञान रत काम तज क्रोध थिर गने।
और बिषै तज निज रूप जने[10]॥ १ ॥

(१) ऊँट पर का डंका। (२) घोड़े पर का डंका। (३) बाजों के नाम। (४) आकाश। (५) आठ काठ का (६)। पति (७) मिल गये। (८) कँवल। (९) साँप। (१०) जाने।

भीखा यह ख्वाब की लहरि जग जानिये,
जागि करि देखु सब झूँठ नाते ॥

(४)

झूँठ में साँच इक बोलता ब्रह्म है,
ताहि को भेद सतसंग पावे।
धन्य सो भाग जो सरन सेवा टहल,
रात दिन प्रीति लवलीन लावे ॥
बचन लै जुक्ति सों सिद्धि आसन करै,
पवन सँग गवन करि गगन जावै।
प्रगट परभाव गुरु गम्य परचो इहै,
भीखा अनहद्द पहिले सुनावे ॥

(५)

दूजे वह अमल दस्तूर दिन दिन बढ़चो,
घटा अँधियार उँजियार भाया।
अर्ध से उर्ध भरि जाप अजपा जप्यो,
चाँद अरु सूर मिलि त्रिकुटि आया ॥
झरत जहँ नूर जहूर असमान लौं,
रूह अफताब[१] गुरु कीन्ह दाया।
भीखा यह सत्त सो ध्यान परवान है,
सुन्न धुनि जोति परकास छाया ॥

(६)

सब्द परकास के सुनत अरु देखते,
छूटि गइ बिषै बुधि बास काँची।
सुरति गै निरति घर रूप अयो[२] दृष्टि पर,
प्रेम की रेख परतीत खाँची ॥
आतमा राम भरिपूर परगट रह्यो,
खुलि गई ग्रंथि[३] निज नाम बाँची।

(१) सूरज। (२) आयो। (३) गाँठ।

आसन पदम लगाय, मेरदण्ड सूध रे।
कामधैंनि बिन ब्याई, सरवै दूध रे।। टेक।।
छूछिमहार बिचार, करै सो जोगिया।
अमी महारस कंद, छिके रस भोगिया।। १।।
अनब्याई का दूध, कहा गुन करत है।
जरा मरण तन ब्याधि, सवै कूहरत है।। २।।
आलस नींद जंबाहीं, चिंत्या खण्ड है।
अनब्याई का दूध, ऐसा प्रचण्ड है।। ३।।
कामधैंनि का दूध, अर्श मठ मांहि है।
दूझै प्रेम सहत, अमर फल खांहि है।। ४।।
काया कल्प कमाल, होत है तास से।
नागफुनी नर जोग, पलटो श्वास से।। ५।।
अरस परस घट मांहि, दरश बिन देह रे।
गरीबदास की सुरति, लगी है सेह रे।। ६।। २२।।
उलटि नाद और बिंद, दहूँ कर एक रे।
आसन पदम लगावो, समझि विवेक रे।। टेक।।
पूरन हो मुरादि, सोई विधि साधि ले।

जरा मरण मिट जाय, सो नाम अराधि ले।। १।।
ब्रह्मरंध्र के घाट, दुधारा नाद है।
इला पिंगला मध्य, सुषमना साधि है।। २।।
दो दल का जहां कँवल, कलश बहु कुंभ है।
धारा छुटैं दयाल, कला आरंभ है।। ३।।
सप्त कोटि योजन से, धारा गिरत है।
पीवत होय आनन्द, कमल घट झरत है।। ४।।
तहां लंबका लाय, अगर की धार है।
गरीबदास सतगुरु से, खेवा पारि है।। ५।। २३।।

(११) पानि = हाथ।

पौवा[१] अधर अधार को चलत सो पाँव पिराय।
जो जावे सो गुरु कृपा कोउ कोउ सीस गँवाय ॥ ६ ॥
मुरछल मन उनमान का छाया ज्ञान अकार।
उष्न[२] ताप निस दिन सहै केवल नाम अधार ॥१०॥
अर्ध उर्ध के बीच में कमरबस्त[३] ठहराय।
इँगला पिंगला एक है सुखमन के घर जाय ॥११॥
झोरी मौज अनयास[४] की बटुआ आनँद[५] लेय।
मृगछाला त्रिकुटी भई बैठि सब्द चित देय ॥१२॥
सकल संत के रेनु[५] लै गोला गोल बनाय।
प्रेम प्रीति घसि ताहि को अंग बिभूति लगाय ॥१३॥
भिच्छा अनुभव अन्न ले आतम भोग बिचार।
रहै सो रहनि अकासवत बरजित जानि अहार ॥१४॥
जटा बढ़ावे भाव की जब हरि कृपा अमान।
मुद्रा नावे नाम की गुरु सब्द सुनावे कान ॥१५॥
आड़बंद[६] हर हाल की अलफी[७] रहनि अडोल।
बाघम्बर[८] है सुन्न का अविगत करत कलोल ॥१६॥
पाँच पचीस धुईं लगी धीरज कुंड भराय।
ज्ञान अगिन ता में दियो बिषय इन्हन[९] जरि जाय ॥१७॥
फाहुलि[१०] अगम अचिंत की चीपी[११] ध्यान लगाय।
नूर जहूर झलकत रहै ता में मन अरुझाय ॥१८॥
भेख अलेख अपार है कहत न ज्ञान समाय।
सुन्न निरंतर अलख है खोज करै कोउ जाय ॥१९॥
साहब सब घट रमि रहो पूरन आपे आप।
भीखा जो नहिं जान ही सहै करम संताप ॥२०॥

(१) खड़ाऊँ। (२) गरमी। (३) कमरबन्द। (४) आसा से रहित। (५) धूल। (६) लँगोट। (७) बिना बँहोली का कुरता। (८) शेर के चमड़े का वस्त्र। (९) इंधन। (१०) फरुही। (११) नाप का कटोरा।

पायो सुभग मनुष अवतार,
पवन लगे भ्रमि भुलेउ बिचार ॥३॥
सुत दारा धन धाम पियार,
नफा कहाँ तें मूल बिगार ॥४॥
जब गुरु खोलहिं बज्र किवार,
भीखा सो पहुँचे दरबार ॥५॥

॥ शब्द ३३ ॥

थाम्है मूल पवन को धीरा, जो नेकु गहै दिल धीरा ॥१॥
दूजे अप तीजे तेज अपरबल, चौथे वायु तन पीरा ॥२॥
पँचयें अकास छठे तम छोड़ो, सतयें होइ मन थीरा ॥३॥
अपरम्पार बस्तु की जागह, भीखा बोध फकीरा ॥४॥

॥ शब्द ३४ ॥

मन चाहत दृष्टि निहारी ।
सुरति निरति अंतर लै जावो, नित सरूप अनुहारी ॥१॥
जोग जुक्ति मिलि परखन लागो, पूरन ब्रह्म बिचारी ।
पुलकि पुलकि आपा महँ चीन्हत, देखत छबि उँजियारी ॥२॥
सुखमन के घर आसन माँड़ो, इंगल पिंगलहिं सुढारी ।
सुन्न निरंतर साहब आपे, सब घट सब तें न्यारी ॥३॥
प्रेम प्रीति तन मन धन अरपो, प्रभुजी की बलिहारी ।
गुरु गुलाल के चरन कमल रज, लावत माथ भिखारी ॥४॥

॥ शब्द ३५ ॥

जन मन मनहीं में धुनि लाई ॥ टेक ॥
गुरु प्रताप साधु की संगति, नाम पदारथ सुनि पाई ॥१॥
सुनत सुनत मन मगन भयो है, फागु सोहावन घर आई ॥२॥
तन मन प्रान ताहि पर वारो, रहो चरन में लपटाई ॥३॥
भीखा अब के दाँव तुम्हारो, मन चित दै हरिहों गाई ॥४॥

१२।। संख ही कुंज जहां तेज ही पुंज है, संख ही सेज जहां चित्रसाला। दास गरीब सतगुरुष साहिब मिले, धनी कबीर दिया अमर प्याला।। १३।। ३।।

धरौं निज ध्यान प्रवानि होई, हां जी अगली पीछली कुबुधि खोई।। टेक।।

चरण और कँवल का दास तुमरा चेरा, जुगन जुग जोग सिंजोग स्वामी। याही अरदासि इब पासि तुम्हरै रहौं, मानियौं अरज मेरी परमधामी।। १।। किये अघ पाप कुछ धाप आई नहीं, संख जामैं जन्म जूंनि धारी। सकल ब्रह्मण्ड में पिंड धरते फिरे, करो संभाल साहिब मुरारी।। २।। कर्म और भ्रम का नाश तुम्हीं करो, फकरियौ बांह बलवंत बीना। गीध गनिका देखो भीलनी तिरि गई, अजामेल तो तुम्हो ही पारि कीन्हा।। ३।। पतित पावन धनी अरज जन की सुनी, सुरग समांनि अघ किये नाशा। कोटि मण काष्ट में अगनि चिनघी परै, सकल हौंहि छार जम कटै फांसा।। ४।। बड़ा बरियाम निहकाम साहिब धनी, तुंही दरदबंद दिल दरद बूझैं दास गरीब तबीब तालिब धनी, चौदहूँ तबक में अलख सूझै।। ५।। ४।।

मानियो शब्द सुर ज्ञान मेरा, हां जी जाय लाहूत पर करो डेरा।। टेक।।

मूल कूँ बंधि बैराठ का घाट लखि, पदम आसन करो अजर नादं। बजर का बान कमान कूँ खैंचि कर, भँवर की गुफा धरि ध्यान साधं।। १।। गुदा असथांन पर स्वाद चक्र जहां, कामदेव बसै जहां बली बांका। मार मैदान में मदन कूँ बसि करै, अनंत जुग रहैगा सृष्टि साका।। २।। नाभ किताब सब जुमल की टेक है, रवनपुर चक्र जहां ध्यान धरिये। हिरदे का नाद अगाध में गमि करै, कीन्ह प्रणाम घट कुंभ भरिये।। ३।। कंठ कुरबान कीमति कही जाय क्या, षोडिश के कमल पर कला कोटं। इलां और पिंगुला सुषमना सिधि करै, शब्द की सिंधि में जाय लोटं।। ४।। जबरूत नासूत मलकूत लाहूत परि, परम गुरु धाम दरबार देवा। संख रवि तेज जहां सेज सतगुरुष की, दास गरीब पद परखि सेवा।। ५।। ५।।

राम कबीर कछु अंतर नांहीं, हां जी मिले स्यौं देह तन मगहर मांहीं।। टेक।।

कामदल बसि किया, क्रोध जिन्हि कसि लिया, लोभ और मोह बिगारि मारे। माया का मांन गुमांन भंजन किया, धनी कबीर कूँ अत्र त्यारे।। १।। मगहर में मरै सो गदहरा होत है, दई तलाक लिख लोकपालं। परे त्रिसंखु जो ब्रह्मा की कलप से, गये जम लोक

बांधि कर मोरचे मार मुकती दई,
धड़ हड़ैं शीश तन खबर नांहीं।। ७।।
सुभट नर सूरमां महल कूँ हकि गये,
तखत स्यूं जाय मिसरी अड़ाई।
पैज सनमुख रही सेज मुजरा हुवा,
झूठि मति जानि साहिब दुहाई।। ८।।
गगन गादी गये अमर निहचल भये,
सुभट नर सूर जिस लोक सीझ्या।
दास गरीब की बंदगी मानियौं,
पूरि सुर नाद जहां ब्रह्म रीझ्या।। ६।। १।।
हे जी सोई नर संत जो सुभट साचा।
मिलैं निरबान पद ब्रह्म वाचा।। टेक।।
गणपत गौरि कूँ सौंरि संजम करै,
श्री गणेश प्रथम मनावैं। ब्रह्मा और विष्णु शिव मदति संगीत ले,
अलख जगदीश के सिर चढ़ावे।। १।।
प्रथम गायत्री जाप अजपा जपै, नाम निरबान ॐ उचारै।
पांच पच्चीस मन पौंन कूँ बांधि करि, त्रिकुटी कोट में ध्यान धारै।। २।। नाभ का पवन जब गवन गगने करै, त्रिकुटी भृकुटी खुल्हैं तारा। नैंन मुख मूंदि कर सरवन समोय ले। सुरति और निरति लखि शम्भू द्वारा।। ३।। सर्पनी मारि कर श्वास पीवत रहे, पदम आसन करें मेरे सूधा। सुरग वैकुण्ठ की वासना छांडि करि, जोगिया जुगति कर पद बिरूधा।। ४।। खेचरी भूचरी चांचरी उनमुनी, अकल अगोचरी सबै साधी। अधर ही धार अपार का खेल है, भगल विद्या चढ़ो व्रत वादी।। ५।। चिसम दुरबीन दरबार लागे रहैं, इंगुला और पिंगुला मध्य फुहारा। सुषमना सिंध की जाय परबी लई, सहंस मुख बहै जहां गंग धारा।। ६।। हदफ का तार सुमार दम की करै, पंख बिन हंस गगनें उड़ावै। अष्ट दल कँवल पर सहंस दल कँवल है। जोगिया भँवर मन ले चढ़ावे।। ७।। मानसरवर जहां कँवल फूले तहां, कली दर कली जाय भँवर छ्यावै। कोटि निशान जहां छत्रपति ब्रह्म है, आदि अनादि अनहद बजावै।। ८।। ब्रह्मण्ड में पिण्ड है पिण्ड ब्रह्मण्ड में, पिंड ब्रह्मण्ड किन्हें बनाया। कोटि ही शुन्य जहां कोटि बैराठ है, तास का भेद कहु किन्हि लखाया।। ६।। नाद में बिन्द है बिन्द में नाद है, नाद अर बिंद कर एक भाई। अलल का ध्यान धरि सुरति समूल है, लोक प्रलोक दिव दृष्टि आई।। १०।। अर्श में कुर्श है कुर्श में अर्श है, अर्श और कुर्श से

राजा प्रजा पशु पंखेरू, शूकर श्वान बनावै रे।। ४।।
पंच अगनि झरनैं जल बैठें, धूमरि पान झुलावै रे।
भँवर गुफा का घाट विषम है, बंकनाल नहीं पावै रे।। ५।।
गगनि मंडल में भाठी सरवै, चोखा फूल चवावै रे।
परानंदनी कामधैनु है, छिन छिन मांहि दुहावै रे।। ६।।
जाकै गर्भ नहीं रहता है, वाह बंझा नहीं ब्यावै रे।
खीर खुरदनी भोजन हंसा, अमृत प्याला प्यावै रे।। ७।।
संखौं गुरु गरद में मिल गये, चेले कौन छुटावै रे।
जा मुरशद की मैं कुरबानी, आत्म तत दरसावै रे।। ८।।
अविगत मूरति अवचिल सूरति, सतगुरु अलख लखावै रे।
दिल दर्पण दुरबीन कहावै, बिन चिसम्यौं दरसावै रे।। ९।।
रसना बिना राग रंग बौरे, सरवन बिना सुनावै रे।
नाभ कँवल में दम दरवानी, द्वादश मधि समावै रे।। १०।।
लख चौरासी बौहरि न भरमें, गर्भ तिरास मिट जावै रे।
ॐ सोहं मध्य महल है, ररंकार धुनि लावै रे।। ११।।
इला पिंगुला मध्य द्वार है, सुषमन सुरति लगावै रे।
तिल परवानि ब्रह्मद्वार है, मन हसती नहीं समावै रे।। १२।।
तहाँ पपील पंथ नहीं बौरे, मीन खोज गौहरावै रे।
मानसरोवर हंस रहत हैं, मोती बीनि चुगावै रे।। १३।।
सुरति निरति की डोरी गहियौ, शुन्य में गुड्डी उड़ावै रे।
दास गरीब शब्द चिंत्यामनि, गगन मंडल कूं ध्यावै रे।। १४।

मूढ़ मुगद की नजरि न आवै, झिलमिल रंग अपारा रे।
पाहन ऊपरि फूल चढ़ावै, करैं अचार विचारा रे।। टेक।।
सतगुरु संत समागम कीजै, ताहि मिलै करतारा रे।
अकल निरंजन सब दुःख भंजन, निरबानी निरधारा रे।। १।
बिनहीं चरणौं चलै चिदानन्द, बिन मुख बैंन उचारा रे।
जाकी गति कैसे कर लहिये, बिचरत अधर अधारा रे।। २।
धम घृती हीरा कूं पावै, परख नीर सिरहारा रे।
सब के आगे साहिब ठाढा, यौह अंधरा संसारा रे।। ३।।
बावन अक्षर ज्ञान सकल है, तीनि लोक विस्तारा रे।
अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड तास के, सो हलका नहीं भारा रे।। ४
पढ़े गुनें दोजिख कूं जांही, लिख लिख कागज कारा रे।
मूरख महल कहां से पावै, समझ न परी गंवारा रे
घट मठ महतत मांहि बिराजै, पिंड ब्रह्मण्ड से न्य
जैसे नीर गगन नहीं भीजै, कहा करै प्रितहारा रे।। ८।।

चदरि फूल बिछाये सतगुरु, च्यारि दाग नाहीं दाग है।
दास गरीब जिंदे का चेला, तीनि लोक सतगुरु अग है।

शील संतोष विवेक ज्ञान ले, दया धर्म इकतारै।
भाव भक्ति सुमरन सति कीजै, हरदम नाम उचारै।। टे
काम क्रोध और लोभ मोह मद, इन कूँ दूर बिडारै।
तीनि लोक और भुवन चतुर्दश, आशा खण्ड निवारै।।
एका एकी रहै निरंतर, उर में आसन मारै।
पांच पच्चीस तीनि पर तूरा, शब्द सिंध झनकारै।। २।।
मूल कँवल कूँ दृढ़ कर बांधै, नाभी नाद गुंजारै।
हिरदे कँवल में हाजरि नाजरि, दिल अंदर दीदारै।। ३।
कामधेंनु कलबिरछ कलंदर, अघ पापन कूँ जारै।
बिनहीं चरणौं चलै चिदानंद, हरदम बारंबारै।। ४।।

अवतार स्थान श्री रामपुर धाम

त्रिकुटी कँवल के बैठि झरोखै, अलमिन दृष्टि उघारै।
गगन मंडल कूँ उड़े विहंगम, ना कुछ पंख पसारै।। ५।।
खालिक सबै खलक में देखै, बाहर भीतर सारै।
अठसिधि नौ निधि आगै ठाढ़ी, अणिमा महिमा लारै।। ६
गोरख नाम कबीर यौही है, नौ चौबीस औतारे।
ब्रह्मा विष्णु महेश शेष लग, इसी तत्त के सारे।। ७।।
कछिब ध्यान धरैं उर मांही, मीनी खोज बिचारै।
पांच तत का तकिया जाकै, खेलै अधरि अधारै।। ८।।
मुरदा होय सो यौह मद पीवै, आप तरै जग त्यारै।
गरीबदास याह वस्तु अगोचर, उलटि काल कूँ मारै।। ६

अथ राग भैरौं

सेवौ रे सतगुरु समरथ दाता। शब्द अतीत अनाहद राता
सुख का सागर झिलमिल दरिया, हीरे मोती मानिक भो

बंगला खूब बन्या है वेश, यामें ररंकार धुनि शेष।। टेक।।
रूंम रूंम में नाम चलत है, अजपा तारी लागी।
सुरति निरति परि अनहद बाजै, सुनते हैं अनरागी।। १।।
मूल चक्र का घाट बांध करि, सुषमन पवन अरौधे।
प्रथम आदि गणेश मनावै, नाभ कँवल कूँ सोधै।। २।।
बंकनालि का घाट बिकट है, तहां खेचरी लावै।
अमी महारस अमृत पीवै, अजर अमर होय जावै।। ३।।
दहिनैं गंगा बामें जमना, मध्य सुरसती धारा।
उलटा मीन चलै सरवर में, ऐसा खेल हमारा।। ४।।
हाथ न पैर पिण्ड नहीं प्राना, शुन्य सरवर में खेलै।
बांस बली नौका नहीं लागै, तो कैसे भौंरा पेलै।। ५।।

दुरबीन ऐंनक अनुसारी, पवन पिण्ड भरि गोला।
सुरति निरति की सुरंग लगावै, दरसे रतन अमोला।। ६।।
कोटि कोटि दामनि दमकाहीं, गरजैं सिंध समूंचा।
शीलवन्त सैलानी जोगी, मिलै काछ का सूचा।। ७।।
संखौं पदम झिलमिलैं जोती, अगम पंथ बैराठा।
गरीबदास सतगुरु के सारै, उतरै औघट घाटा।। ८।। ५।।
बंगला अजब बन्या है खूब, जामें पारब्रह्म महबूब।। टेक।।
आगे नौ लख पातरि नाचैं, ब्रह्मानंद रिझावै।
तेज पुंजि की सुन्दरि नारी, अनहद मंगल गावैं।। १।।
पीतंबर पहरान तास के, सूहे वस्त्र साजे।
एक कान्ह और नौ लख गोपी, बंगले मांहि बिराजैं।। २।।
चंद सूरज दो अधर चिरागा, हुकमी पौंन रु पानी।
सकल संत और सकल साहिबी, बंगले मांहि बिनांनी।। ३।।
पांचौं तत खवास खड़े हैं, हाजरि नाजरि जाकै।
त्रिलोकी का राज रसातल, क्या क्रोड़ी धज लाखै।। ४।।
सब रतनन का रतन राम है, राम रतन कूँ जांनै।
इन्द्र का राज काग की बिष्टा, जासै उलटा तानैं।। ५।।
हीरा मोती जवाहर तांई, पारस पले न बांधै।
शब्द सिंध चिंत्यामनि साहिब, सुरति गगनि कूँ सांधै।। ६।।
चिंत्यामनि पारस परमेश्वर, हिरदे मांहि बिराजैं।
गरीब दास ताहि कूँ सेवे, जा का अविचल राजै।। ७।। ६।।
बंगला खूब बन्या हैं ऐंन, जामें कल्प बिरछ कामधैंनि।। टेक।।

पांच पच्चीसौं मगन भये हैं, देख्या परमानंदा।
मन चंचल निहचल भया हंसा, मिले परम सुख सिंधा।। ८।।
नभ की डोरि गगन सौं बांधै, तो इहां रहनै पावै।
दशौं दिशा से पवन झिकोरे, काहे दोष लगावै।। ६।।
आठौं बखत अलिल्यौं बाजे, होता शब्द टकोरा।
गरीबदास यौं ध्यान लगावै, जैसे चंद चकोरा।। १०।। १।।
बंगला सोई सति प्रवांनि, जा में पारब्रह्म का ध्यान।। टेक।।
साढे तीनि करोड़ि बिरछ हैं, या बंगले के पासा।
सालेमार शरीर सरोवर, नौलख बाग खुलासा।। १।।
या बंगले के आगै कूवा, उरध मुखी महमंता।
मनवा माली बारै ढारै, आठौं बखत चलंता।। २।।
इला पिंगुला मध्य सुषमना, ता परि एक सुराहीं।
अमी महारस छाक परी है, पीवत होय रुशनाई।। ३।।
रोशन तकिये रास होत हैं, बाजे बजैं अपारा।
पांचौं इन्द्री अस्थिर हौंही, घूंमे मन मतवारा।। ४।।
संखौं कमल कलश की न्याई, सेत भँवर भनकारैं।
कोयल मोर पपीहे बोलैं, दादुर अधिक गुंजारैं।। ५।।
बीना ताल पखावज बाजैं, गावैं गंधर्व रागी।
शिव की तहां समाधि लगी है, चीन्ह परी बड़ भागी।। ६।।
ध्रू प्रहलाद और नाम कबीरा, नारद शुकदे ब्यासा।
गोरख दत्त भये गलताना, देख्या अजब तमासा।। ७।।
ब्रह्मा विष्णु महेश रु शेषा, ररंकार धुनि होई।
गुझ बीरज यौह मंत्र दीन्हा, राखि शब्द कूँ गोई।। ८।।
मानसरोवर ऊपर बंगला, जहां हंस परमहंसा खेलै।
गरीबदास भौसागर सेती, पूरा सतगुरु बेलै।। ६।। २।।
बंगला सोई सति निज सार, जा में पारब्रह्म दीदार।। टेक।।
दिल अंदरि दीदार होत है, बाहरि भीतरि सोई।
त्रिबेंनी स्नान कीजिये, मल मूत्र सब धोई।। १।।
बंगले आगे संख फुहारे, छुटे सहंसर धारा।
दिव्य दृष्टि तो देखत हैं, सो हरदम बारंबारा।। २।।
गंगा जमना मध्य सुरसती, पट्टन घाट फुहारा।
कालंद्री काया प्रछाली, धन्य बड़भाग हमारा।। ३।।
इन्द्रदौन महोदधि गाजै, रतनागर लहराई।
जगन्नाथ जगदीश बिराजै, देखो क्यों ना भाई।।
हरिद्वार हरि पैडी न्हाये, बदरीनाथ विलासा।

827/996

अंगद और सुगरीब पुकारे, जोधा बालि खपाये।
गीध ब्याधि गनिका से उधरे, गज और गिराह छुटाये।। ६।।
गौतम ऋषि की नारि अहल्या, चरण कमल रज चाहे।
बैकुंठो कूँ उड़ी देवंगना, लोक दीप पैठाये।। ७।।
गहरे जल में लई नवरीया, झींवर देख डराये।
गौतम ऋषि की घरनी तिरनी, उड़ी गगनि कूँ जाये।। ८।।
कंश केश चानौर चूरना, सिर शिशपाल उड़ाये।
कृष्ण देव पंडौं की जग में, बालनीक थरपाये।। ६।।
साठि हजार तास बल रापति, दुःशासन गरबाये।
द्रौपदि कमल फूल की नांई, ताके अंत न पाये।। १०।।
भीषण द्रोणा कर्ण सिंघारे, भक्ति द्रोह नहीं भाये।
दुर्योधन का मान मुवा है, द्रौपदि चीर बढ़ाये।। ११।।
पंडदल में घंटाला तोर्‌या, पांचौं अंड बचाये।
गरीबदास सतगुरु के शरनै, सकल कर्म कट जाये।। १२।। २४।।
गगन मंडल में बासा सतगुरु, गगन मंडल में बासा।। टेक।।
नाद बिंद कूँ अस्थिर कर ले, अंछर डोरी श्वासा।
इला पिंगुला सुषमन खोजो, सहजै चढ़ौ अकाशा।। १।।
फूल सलौंना मरुवा दौंना, छह ऋतु बारा मासा।
पल पल तुमरा रूप निहारौ, हरि के चरण निवासा।। २।।
त्रिबैनी अस्नान करौ रे, चित चंदन प्रकाशा।
सुरति निरति धुनि ध्यान लगावौ, उनमन सेज रिवासा।। ३।।
नूर जहूर सिंध झलकत है, जानैं बिरला दासा।
कोटि कलप जुग परलौ जांहीं, कछू न होत बिनासा।। ४।।
जम किंकर का जोर न चलि है, मिटि है तलब तिरासा।
धर्मराय की दरगह मांहीं, मुकलसि हंस खुलासा।। ५।।
आन धर्म अधकारी बूडे, ज्यौं जल देख जिवासा।
जाकै हिरदै हरि का सुमरन, ताकौं रती न संसा।। ६।।
तेज पुंजि की दामनि दमकै, गरजै सिंध बिलासा।
अलख मुनिंद्र साहिब बैठ्या, तखत कबीर खवासा।। ७।।
बंकी फौज मौज साहिब की, हरि हरौल रैदासा।
गरीबदास तो पहरि दिखावै, सिरौपाव दियो खासा।। ८।। २५।।
सुदरे ब्राह्मन पढ़ाया संतो, सुदरे ब्राह्मन पढ़ाया।। टेक।।
च्यार वेद और पुरान अठारा, नौ ब्याकरनं ल्याया।
पंडित का पट खोल्हि दिया, जदि ब्रह्मचार में आया।। १।।
चिंडाली कूँ चौका दीन्हा, मिसरा न्योत जिमाया।

पलक पहर में कूँच तुम्हारा, हो गये राज बिराजी।
शब्द हमारा मानि गंवारा, क्यों समझत नहीं पाजी।। २।।
मन में मुलनां बंग देत है, तेरे दिल ही अंदरि काजी।
करि ले पूजा दूर कर दूजा, टुक देखि ले नेम निवाजी।। ३।।
धनि वै बंदे सतगुरु जिन्दे, जो परसे अरस अवाजी।
दास गरीब पलक कर पलना, चौंर ढुरैं उपराजी।। ४।।

घट घेरै नींद निमानी घट घेरै।। टेक।।

सतगुरु मिलैं तो बेगि छुटावैं, छानैं दूध रु पानी।
पांच पच्चीस शीश चढ़ि खेलैं, ज्यों नाचैं भूत भवानी।। १।।
निंदरा काल जाल है भाई, हो गई तांनम तांनी।
जिंदे से मुरदा करि डारै, भटकत फिरै प्रानी।। २।।
जो जागै सो पद स्यौं लागै, पावै अकथ कहानी।
उलटि पवन षट चकरे बेधै, जा परि मैं कुरबानी।। ३।।
पवन डंड नागनि कूँ मारै, नाभ फिरै तुरफानी।
इला पिंगला सुषमन सेझा, चलि मानसरोवर न्हानी।। ४।।
है बहुरंगी अचल अभंगी, वै तो हैं हंसों के दानी।
कहै दास गरीब अमर होय सुनि करि, तूं मानि हमारी बानी।।

हंसा उतरैंगे पार नौका नावरी।। टेक।।

लंबे रे बरदवान गहरी जिहाज, नीके रे उतरियौ लागी साज।
डिगै न डोलै कोडी न होय, उस नौका चढ़ि सकै न कोय।। १।
उस नौका परि जगमग फूल, जा नौका कूँ पलक न भूल।
हीरे मोती जड़िया लाल। वाह नौका है नजरि निहाल।। २।।
त्रिलोकी तिल मांहि सुमेर, उस नौका का ऐसा ही फेर।
पृथ्वी प्रदछिनां दे आवै, एक पलक प्रलोके जावै।। ३।।
सुरग नरक की करैं न कांन, अरसी नौका अजब विमान।
स्वर्ग नरक की करै न भिंन, जा के जरिया कोटि रतन।। ४।।
ब्योमी से सुरगापुरी जाव, सुर नर मुनिजन धरैं न पाव।
है हिरदे के मध्य त्रिकुटी के तीर,
दास गरीब भजि अविगत कबीर।। ५।।

गाहक फिर फिर जांहि सौदा जोरि है।। टेक।।

तन मन अरपि चढाईयो शीश, सौदा करियो बिसवे बीस।
हाटि पटण जो चलता गाम, बहुरि कौन तेरा लेगा नाम।। १।।
हाटि पट्टन होयगा बारा बाट, बहुरि कौन तेरी करि है साटि।
हिरसि हवा के हैं बजार, जम किंकर की खाहिगा मार।। २।।
मारे रावण मारे कंस, जिन्हि के कहीं न पाये बंस।

सतगुरु नहीं ज्ञान ध्यान, खाली है सलीता।। टेक।।
हाड चाम सकल गाम, गंध है खलीता।
पाष तो विसारि दीन, विरह ना जरीता।। १।।
दम का सुमार कीन्ह, नाम क्यों न लीता।
इला पिंगला बिचारि, सुषमना पलीता।। २।।
शील और संतोष आंनि, दया धर्म कीता।
काम क्रोध लोभ मोह, शत्रु क्यों न जीता।। ३।।
साहिब दिल से बिसारि, कौन जुलम कीता।
दुनिया गिपतार यार, छाडि दे अनीता।। ४।।
नाहीं और श्याम सेत, लाल है न पीता।
आवै नहीं परख, पढ़ो कोटि ज्ञान गीता।। ५।।
पिण्ड प्रांन अरपि दीन्ह, सतगुरों सरीता।
गरीबदास पावै यौं, ब्रह्मपद अतीता।। ६।। ५।।
राम सुमरि राम सुमरि, सुमरि ले रे।
जम और जिहांन जीत, तीनि लोक जै रे।। टेक।।
इन्द्री अदालत चोर, पाकरि मन अहि रे।
अनहद टकोर घोर, सुनैं क्यों न बहरे।। १।।
सुरति निरति नाद बिंद, मन पवन गहै रे।
उनमनी अलील रूप, निराकार लहै रे।। २।।
धनुष ध्यान मारि बाण, दुरजन से फहरे।
दीखत के सीत कोट, भ्रम बुरजि ढहै रे।। ३।।
सांचे से प्रीति कीन्ह, झूठा मन महै रे।
कहता है **गरीबदास**, कुटल बचन सहै रे।। ४।। ६।।
राम सुमनि राम सुमरि, राम सुमरि हीरा।
मुश्किल असान होय, मेटै दुःख पीरा।। टेक।।
चेति अंध कटैं फंध, जम के जंजीरा।
भागैं जमदूत भूत, तलबी तागीरा।। १।।
काजी पंडित मुकीद, दहूँ दीन पीरा।
खाते हैं सूर गऊ करते ततबीरा।। २।।
अदली दरबार यार, काढ़ै तकसीरा।
दम दम लेखा निसाफ, छानैं नीर खीरा।। ३।।
जाते हैं दोजिख राह, परि गया बहीरा।
कहते हैं भिस्त देखो, चौड़ घर हदीरा।। ४।।
पीवत हैं साध संत, अमृत रस खीरा।
छाजन भोजन अपार, अमर अंग चीरा।। ५।।

17:27

सुखमन सेज सिलोना साह, अवगत अलख लखाया है।
सुख उपज्या दुख किया पयाना, अजर अमर घर पाया है॥
झीना महल नगर बेगमपुर, स्वामी गुमानी छाया है।
नितानन्द चरणों का बासी, उनमन होय मन लाया है॥

शब्द

हर नाम बिना मन मैला है,।
विनसै देह खेह मिल जावै, फिर चौरासी गैला है।टेव
पल पल आयु घटै नर तेरी, ज्यों दीपक में तेला है।
बुझे जोत तन भवन अंधेरा, क्यों इतने पर फैला है॥
बिसरो राम काम बहु बिगरो, भयो बाट को ढेला है।
जन्म मरन की ठोकर लागै, दिन चार का छैला है॥
जगत नहीं ये देस कामरू, नर माया का बैला है।
बंध्या फिरै मोह की डोरी, गुरु बिन छुटन दुहेला है॥
रतन गमावै फिर पछतावै, भानमती का खेला है।
धोखे की बाजी मत भूलै, पीछे दुख का रेला है॥

31 of 35

Favorite Share Flag

Swami Nitand

Topics santmat
Collection booksbylanguage_hindi; booksbylanguage
Language Hindi
Item Size 29.5M

टिप्पणी:—ऊपरके वचनोंमें संयम और ध्यान, विशेष करके निर्गुण ध्यान, का विचार किया गया है।

(३४८) अंतरंगमें प्रकाशनेवाली ज्योति ही सब ज्योतियोंका परमाश्रय है, वही अपने आप समरस रूपसे अंतरबाह्य व्याप्त है। मनके स्मरण-संकल्पके विस्मरणरूप उस ज्योतिर्लिंगके स्मरणसे सुखी बना रे मेरे निजगुरु स्वतन्त्र सिद्ध-लिंगेश्वरा।

(३४९) पूर्वद्वार और अधोद्वार बंद करके, ऊर्ध्वद्वार खोलकर, अपलक दृष्टिसे अंदर देखता था तुम्हें टकटकी लगाकर। तुममें मन स्थिर हुआ था, सतत परम सुख पा रहा था मैं। अब नहीं डरूँगा, नहीं डरूँगा। जनन-मरण अतिक्रमण हो गया निजगुरु स्वतन्त्रसिद्धलिंगेश्वरमें समरस हो जाने से।

टिप्पणी:—इस वचनके पहले वाक्यमें उड्डियान बंध नामकी यौगिक क्रिया करते हुए की जाने वाली प्रक्रियाका वर्णन है। पूरक करते समय गुदद्वारसे अपानको अंदर खींचकर (मूलबंध क्रिया द्वारा) कुंभक द्वारा कुंडलिनी शक्तिको जागृत करनेकी प्रक्रियाका वर्णन है। उपरोक्त स्थितिमें ध्यानमग्न साधककी स्थितिका वर्णन है।

(३५०) देह वासनाका अतिक्रमण कर, आत्मबंधनकी चटकनी तोड़ते हुए परात्पर प्राणलिंगसे मिलनेका साधन कौनसा है यह सब शिवभक्त समझें ऐसी भाषामें कहता हूं सुनो! चौरासी आसनोंमें सर्वश्रेष्ठ आसन है शुद्धासन। वह शुद्धासन कैसे सधता है? गुद गुह्य मध्य स्थानमें जो योनिमंडल नामका द्वार है उस द्वारसे बाएँ पैरकी एड़ी सटाकर, दाहिने पैरकी एड़ी मेंढ़ स्थानपर सटाते हुए, अपना मेरुदंड सीधा रखकर बैठना। दोनों दृष्टियोंको एक कर उन्मनीय स्थानपर स्थिर करना, नेत्र, जिह्वा श्रोत्र, प्राण, और हृदयको छः अंगुलियोंसे दबानेसे, मूलाधार स्थित मूलाग्नि, वायुसे मिलकर तीव्रतर गतिसे ऊर्ध्वको जाती है। वह मनको स्थिर करती है; और उभय लिंगाश्रित महालिंगमें विलीन होकर अनंत सूर्याग्नि चन्द्रप्रकाशसे, वहीं सूक्ष्म होती हुई अंगुल प्रमाण शुद्ध नक्षत्रसा आंखोंको करतलामलककी भांति प्रत्यक्ष हो दिखाई देनेवाले प्राणलिंगमें जो प्राण संभोग करना जानता है वही प्राणलिंग संबंधी है वही प्रलयादि रहित है अखंडेश्वरा।

टिप्पणी:—सिद्धासनमें बैठकर षण्मुखी मुद्रा साधकर लगाए गए ध्यानका अनुभव है।

(३५१) अर्धोन्मीलित अपलक दृष्टि नासिकाग्रमें स्थिर करके हृदय कमलमें बसे हुए अचल लिंगमें ज्ञान दृष्टिमें देखते हुए तन, मन, इंद्रियोंको खोलकर, मन को निर्वात ज्योतिकी तरह स्थिर करके सत्य समन्वित होनेकी क्रिया जानने

२५४ वचन-साहित्य-परिचय

वै परलो से पारि पहुँचे, जिन कूँ काल न खाई।। ३।।
दम सुदम का एकै रासा, हरदम हरि पद ध्यावै।
द्वादश उलट महल में पैठे, मन पौंना गहि ल्यावै।। ४।।
शाला कर्म सुरति से रोपै, ज्ञान ध्यान आहूती।
इला पिंगुला सुषमन संजम, सेवै पद अनभूती।। ५।।
कल अजरावर होत शरीरं, खुसी परै तो मरना।
प्राणायाम परन नित बांधै, कुंभक रेचक करना।। ६।।
दम कूँ खोज दर्श ज्यौं पावै, बाहरि अंत न जाई।
गरीबदास घट ही में मेला, रहौ तत्त ल्यौ लाई।। ७।। ५६।।
पुरुष संगि मिल गया नीर कबीरा।
जा का पाया नहीं शरीरा।। टेक।।
तन मन धन सब अरपण कीन्हा, अठसिद्धि नौनिधि त्यागी।
कोटि सिद्धि प्रसिद्धि प्रेरी, ब्रह्म रूप बैरागी।। १।।
काम क्रोध मद लोभ तजे हैं, मोह मवासी जीत्या।
मान बड़ाई सबै बहाई, हरष शोग परचीत्या।। २।।
कनक कामनी तजी तर्क से, विद्या बाद गुन ज्ञाना।
आधीनी की राह गही है, छाडि गये अभिमाना।। ३।।
दरबंद दर्पण दिल कीन्हा, हरि दरिया हरि हीरा।
सुरति निरति से नौका पेली, मन पौंना करि थीरा।। ४।।
अविनाशी कै फांसी डारी, बोरे गंगा नीरा।
ऐसा येलम अलख पुरुष का, झरि गये तौंक जंजीरा।। ५।।
बांधी मसक कसक नहीं खाई, डारि गयंद कै आगै।
नरसिंघ रूप धरे नारायन, हसती उलटा भागै।। ६।।
दोन्यौं दीन दर्श कूँ आये, षट्दर्शन फलहारी।
सन्यासी बैरागी बपरे, पूजा मांगै न्यारी।। ७।।
काशी वासी सबै उदासी, शाह सिकंदर तांई।
गरीबदास ये जिब ही राजी, मेला करै गोसांई।। ८।। ६०।।
षट्दर्शन चढ़ि आया। देखौ ऐसी तेरी माया।। टेक।।
चिठ्ठा फिर्या समुंदरौं ताई, भेषौ तोत बनाया।
ठारा लाख चढ़े दफतर में, कलम बंधि लिख धाया।। १।।
करनामई कलप जदि कीन्हीं, दिल में ऐसी धारी।
नौ लख बोडी भरि करि आये, केशो नाम मुरारी।। २।।
चावल चूंन और घिरत मिठाई, लागि गये अटनाले।
छप्पन भोग सिंजोग सलौंने, भेष भये मतवाले।। ३।।
राजा राम रसोई दीन्ही, केशो बनि करि आये।

साध बोला कमल खोला, अमृत बचन ॥ ३ ॥
निःचय करि ध्यान धरु, पावहु दरसन ॥ ४ ॥
यारी गावै सब्द सुनावै, सुनो साधु जन ॥ ५ ॥
सुन्न तें नित तारी लावो, सूझि है निर्गुन ॥ ६ ॥

॥ शब्द १६ ॥

तूं ब्रह्म चीन्हो रे ब्रह्मज्ञानी ॥ १ ॥
समुझि बिचारि देखु नीके करि, ज्यौं दर्पन मधि अलख निसानी ।२।
कहै यारी सुनो ब्रह्मज्ञानी, जगमग जोति निसानी ॥ ३ ॥

॥ शब्द १७ ॥

उरधमुख भाठी, अवटौं कौनी भाँति ।
अर्ध उर्ध दोउ जोग लगायो, गगन मँडल भयो माठ[1] ॥ १ ॥
गुरु दियो ज्ञान ध्यान हम पायो, कर करनी कर ठाट ।
हरि के मद मतवाल रहत हैं, चलत उबट की बाट ॥ २ ॥
आपा उलटि के अमी चुवाओ, तिरबेनी के घाट ।
प्रेम पियाला सुति भरि पीवो, देखो उलटी बाट ॥ ३ ॥
पाँच तत्त एक जोति समानो, धर छःवो मन हाथ ।
कह यारी सुनियो भाइ संतो, छकि छकि रहि भयो मात[2] ॥४॥

॥ शब्द १८ ॥

राम रमझनी[3] यारी जीव के ॥ टेक ॥
घट में प्रान अपान दुबाई[4] । अरध उरध आवै अरु जाई ॥१॥
लेके प्रान अपान मिलावे । वाही पवन तें गगन गरजावै ॥२॥
गरजै गगन जो दामिनि दमकै । मुकुताहल रिमझिम तहँ बरखै ३
वा मुक्ता महँ सुरति परोवे । सुरति सब्द मिल मानिक होवे ४
मानिक जोति बहुत उँजियारा । कह यारी सोइ सिरजनहारा ५
साहब सिरजनहार गुसाँइँ । जा में हम सोई हम माहीँ ॥६॥

---

(१) बरतन । (२) मतवाला । (३) रमझनी करना गंवारी भाषा में रात दिन किसी बात की चरचा करने को कहते है । (४) दो वायु ।

21:37

Yari Sahab Ki Ratnavali.pdf

पारादास सोइ गुरु मेरा, जिन यह जुगति बताई ॥ ५ ॥

॥ शब्द ११ ॥

जोगी जुगति जोग कमाव ॥ टेक ॥

सुखमना पर बैठि आसन, सहज ध्यान लगाव ॥ १ ॥
दृष्टि सम करि सुन्न सोवो, आपा मेटि उड़ाव ॥ २ ॥
प्रगट जोति अकार अनुभव, सब्द सोहं गाव ॥ ३ ॥

(१) पतंगा। (२) आँख। (३) जैसे फटिक मणिका उज्जल प्रकाश (४) घड़े में पानी। (५) हिरन नाद पर आशिक है। (६) जैसे सखियाँ पानी के घड़े पर घड़ा रख कर चलती हैं और नट घड़ों का खेल करता है यानी घड़े सिर पर रक्खे हुए रस्सी पर चलता है लेकिन इन दोनों की सुरत घड़े पर रहती है। (७) तीर, किनारा। (८) चन्द्रमा।

छोड़ि मठ को चलहु जोगी, बिना पर उड़ि जाव ॥ ४ ॥
यारी कहै यह मत बिहंगम, अगम चढ़ि फल खाव ॥ ५ ॥

॥ शब्द १२ ॥

मन मेरा सदा खेलै नट बाजी, चरन कमल चित राजी ॥टेक॥
बिनु करताल पखावज बाजै, अगम पंथ चढ़ि गाजी।
रूप बिहीन सीस बिनु गावै, बिनु चरनन गति साजी ॥१॥
बाँस सुमेरु[1] सुरति कै डोरी, चित चेतन सँग चेला।
पाँच पचीस तमासा देखहिँ, उलटि गगन चढ़ि खेला ॥ २॥
यारी नट ऐसी बिधि खेलै, अनहद ढोल बजावै।
अनँत कला अवगति अनमूरति, बानक[2] बनि बनि आवै ॥३॥

॥ शब्द १३ ॥

मन ग्वालिया सत सुकृत तत दुहि लेह ॥ टेक ॥
नैन दोहनि[3] रूप भरि भरि, सुरति सब्द सनेह ॥ १ ॥
निझर झरत अकास ऊठत, अधर अधरहिँ देह ॥ २ ॥
जेहि दुहत सेस महेस ब्रह्मा, कामधेनु बिदेह[4] ॥ ४ ॥
यारी मथ के लयौ माखन, गगन मगन अखेह[5] ॥ ४ ॥

॥ शब्द १४ ॥

चंद तिलक दिये सुन्दरि नारी। सोइ पतिबरता पियहिँ पियारी।१।
कंचन कलस धरे पनिहारी। सीस सुहाग भाग उँजियारी
सब्द सेँदुर दै माँग सँवारी। बेँदी अचल टरत नहिँ टारी
अपन रूप जब आपु निहारी। यारी तेज पुंज उँजियारी ॥४॥

॥ शब्द १५ ॥

20:13
ARCHIVE

卐 प्रस्तावना 卐

अनन्त श्री सुख सम्राट सतगुरू सुखराम जी महाराज की अणभै वाणी का भाषान्तर करने का प्रयास जिन्होंने भी पूर्व में किया वह सभी धन्यवाद के पात्र है, साथ ही उन्होंने यह लिखा कि आपको सतगुरू के ज्ञानानुसार कोई विशेष बात ज्ञान व अनुभव में आवे उसी के अनुसार समझने की कोशिश करे। अत: इस ग्रंथ में रही कुछ त्रुटियों को सुधारने का प्रयास किया है। ताकि आने वाली पीढी को भक्ति मार्ग के ज्ञान का स्वच्छ मार्गदर्शन मिले। तीन लोक के मालिक ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के द्वारा बनाई गई मर्यादा का पालन करते हुये मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो सके। इन्ही आशाओ के साथ महाराज के ग्रंथ का नवीन संस्करण आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहे है। हमारे से भी त्रुटि रहना सम्भव है, यदि आपको इससे भी अच्छा अर्थ आये तो सुधार कर सकते हैं।

इस ग्रंथ को पढ़कर मनन कर सांस ऊसांस में सतगुरू विधि से राम राम रट कर शब्द की जागृति करो, जिससे जीते जी दशवां द्वार खुलकर के: पद आ: पद की प्राप्ति हो। इस साधन के अतिरिक्त अन्य सब साधन करते है तब तक ही होते है, अखण्ड नही होते। इससे तीन लोको में फलो की प्राप्ति होती है।

卐 वर्तमान में इस ग्रंथ की उपयोगिता 卐

केवल ज्ञान में अब तक सशरीर सतगुरू मौजूद रहते थे तब तक उनसे यह केवल का बीज प्रगट होता था, परन्तु आज सतगुरू सुखराम जी महाराज की देही नहीं होते हुये भी उनके इस ग्रंथ को सतगुरू रूपी पदवी मिल गयी। आज भी नै: अक्षर (सतशब्द) इनके ज्ञान द्वारा प्रगट हो रहा है। अब तक श्री कृष्ण भगवान के बाद रक्षा के लिये नीमित अवतार धरा धाम पर नहीं आये। अत: आज भी रक्षा का ओधा श्री कृष्ण भगवान को ही है। ठीक इसी प्रकार सतगुरू सुखराम जी महाराज के बाद कोई भी आत्म कल्याण हेतु नित्य अवतार नहीं आये। अत: इनको ही सतगुरू रूपी ओधा है।

कृपया कुछ शब्दो को संक्षिप्त में लिखा है उसको पूरा पढे।

के:पद याने केवल पद, आ:पद याने आनन्द पद, म:फ:याने महाराज फरमाते है।

ग्रंथ मिलने का स्थान :-

Champalal Solanki
Agewa road
Jaitaran (राज.)
फोन: 9413876977

(1 of 1076)
Favorite Share Flag

Sukhram Maharaj Ji Ki Anbhe Vani

Topics santmat
Collection booksbylanguage_hindi;

आवश्यक सूचना

संतबानी पुस्तकमाला के उन महात्माओं की लिस्ट जिनकी जीवनी तथा बानियाँ छप चुकी हैं—

कबीर साहिब का अनुराग सागर
कबीर साहिब का बीजक
कबीर साहिब का साखी-संग्रह
कबीर साहिब की शब्दावली—चार भागों में
कबीर साहिब की ज्ञान-गुदडी, रेखते, झूलने
कबीर साहिब की अखरावती
धनी धरमदास की शब्दावली
तुलसी साहिब (हाथरस वाले) भाग १ 'शब्द'
तुलसी शब्दावली और पद्मसागर भाग २
तुलसी साहिब का रत्नसागर
तुलसी साहिब का घट रामायण—२ भागों में
दादू दयाल भाग १ 'साखी',—भाग २ "पद"
सुन्दरदास का सुन्दर बिलास
पलटू साहिब भाग १ कुंडलियाँ । भाग २
रेखते, झूलने, सवैया, अरिल, कवित्त।
भाग ३ भजन और साखियाँ।
जगजीवन साहब—२ भागों में
दूलनदास जी की बानी
चरनदास जी की बानी, दो भागों में
गरीबदास जी की बानी
रैदास जी की बानी
दरिया साहिब (बिहार) का दरिया सागर
दरिया साहिब के चुने हुए पद और साखी
दरिया साहिब (मारवाड वाले) की बानी
भीखा साहिब की शब्दावली
गुलाल साहिब की बानी
बाबा मलूकदास जी की बानी
गुसाईं तुलसीदास जी की बारहमासी
यारी साहिब की रत्नावली
बुल्ला साहिब का शब्दसार
केशवदास जी की अमीघूँट
धरनीदास जी की बानी
मीराबाई की शब्दावली
सहजोबाई का सहज-प्रकाश
दयाबाई की बानी
संतबानी संग्रह, भाग १ 'साखी',—भाग 'शब्द'
अहिल्या बाई (अंग्रेजी पद में)

अन्य महात्मा जिनकी जीवनी तथा बानियाँ नहीं मिल सकं

१ पीपा जी । २ नामदेव जी । ३ सदना जी । ४ सूरदास जी । ५ स हरिदास जी । ६ नरसी मेहता । ७ नाभा जी । ८ काष्ठजिह्वा स्वामी ।

प्रेमी और रसिक जनों से प्रार्थना है कि यदि ऊपर लिखे महात्माओं की अ जीवनी तथा उत्तम और मनोहर साखियाँ या पद जो संतबानी पुस्तकमाला के । ग्रन्थ में नहीं छपे हैं मिल सकें तो कृपा पूर्वक नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें कष्ट के लिए उनको हार्दिक धन्यवाद दिया जायगा । यदि पाठक महोदय ऊपर महात्माओं का असली चित्र भी प्राप्त कर सकें, तो उनसे प्रार्थना है कि नीचे लिखे ' पत्र-व्यवहार करें । चित्र प्राप्ति के लिए उचित मूल्य या खर्च दिया जायगा ।

मैनेजर—संतबानी पुस्तकमाला, बेलविडियर प्रेस; प्रयाग

(३)

आँधरे को हाथी हरि हाथ जा को जैसो आयो,
बूझो जिन जैसो तिन तैसोई बतायो है ॥
टकाटोरी दिन रैन हिये हूँ के फूटे नैन,
आँधरे की आरसी में कहा दरसायो है ॥
मूल की खबरि नाहिं जा सों यह भयो मुलुक,
वा को बिसारि भोंदू डारै[1] अरुझायो है।
आपनो सरूप रूप आपु माहिँ देखै नाहिँ,
कहै यारी आँधरे ने हाथी कैसो पायो है ॥

(४)

गावै गगन तान सुनियत बिना कान,
बिना नैन देखियत अलख मकान है।
सुरत्ति चढ़ी कमान छेदि गयो आसमान,
लामकान[2] का मकान उदै भयो भान है ॥
कहै यारी सुजान मेरो कहो लीजै मान,
सोई सूर ज्ञानी जा के हिरदे सदा ध्यान है ॥

(५)

आँखि कान नाक मुँह मूँदि के निहार देखु,
सुन्न में जोति याही परगट गुरु ज्ञान है।
त्रिकुटी में चित्त देई ध्यान धरि देखु तहाँ,
दामिनि दमकै चाचरी मुद्रा को अस्थान है ॥
भूचरी मुद्रा सोहाग जागै मस्तक,
भाग पायो सकल निरंतर की खान है ॥
गगन गुफा में पैठि अधर आसन बैठि,
खेचरी मुद्रा अकास फूलै निर्बान है ॥

(१) शाखा। (२) त्रिकुटी जो सूरज ब्रह्म का स्थान है।

सुन्न सहज में रहै समाय। ता का आवागवन नसाय ॥७॥
खे–खाविंद को जो कोई ध्यावै। अरध उरध बिच तारी लावै।
साँस उसाँस से सुमिरन मंडे। करम कटै चौरासी खंडे ॥८॥
दाल–दसो दिसि खोजै ताही। मूल द्वार बाँधै चित जाही।
ब्रह्म अगिन तबहीं उपजाई। तीन लोक सुमिरौ रे भाई ॥९॥
ज़ाल–ज़ौक़[2] पाँचो का भानु[3]। बाहर जाते भीतर आनु[4]।

(१) परम गति को प्राप्त हो। (२) मज़ा। (३) तोड़ दो, नष्ट करो। (४) लावो।

मेलि दसो दिसि इक मन करै। सो साधू कहु कैसे मरै ॥१०॥
रे–रावन ह्वै पूरे आसन। बैठै प्रेम तत्त सिंहासन।
त्रिकुटी लोक मेल करि जोरै। सहजहिं लंका गढ़ तब तोरै ॥११॥
ज़े–ज़ोर सों सीध चलावै। गंग जमुन सरसुती[1] मिलावै।
तिरबेनी मन में असनान। हरि जल पीं जहिं संत सुजान ॥१२॥
सीन–सुखमन केरी नौबत बाजै। अनहद घोर गगन में गाजै।
घर बरसावै अम्मर भरै। ता की सेवा गोरख करै ॥१३॥
शीन–शोर का नाहीं काम। इंगल पिंगल बोलहिं राम।
तारी लागा दसवें द्वार। तत्त निरंजन ओअंकार ॥ १४ ॥
साद–सबूर सिदक़[2] जो होई। अजरा जरै सो अमरा होई।
नौ नाड़ी का जानै भेव। तौ ता को बंदै[3] सुकदेव ॥ १५ ॥
ज़ाद–ज़रूरत सुखमन जोई। चाँद सूर बिच भाठी होई।
पीवै अमृत मन परचंड। खेलै एक एक ब्रह्मंड ॥ १६ ॥
तो–तौर औरै खेलै ख्याल। नाथै नाग पैठि पाताल।
बामी उलटि सर्प को खाय। मंत्री दीसै[4] सहज समाय ॥ १७ ॥
जो–ज़ालिम कुछ पूछै मन। बंकनाल को राखै सम।
फूटै चक्र मिटै सब छोती[5]। चौमुख दीसै जगमग जोती ॥१८॥
ऐन–इनायत[6] हरि की बढ़ै। चंद उतारै सूरज चढ़ै[7]।
बिगसै कँवल भँवर महँ जाई। महकै बास गगन को धाई। १९
ग़ैन–ग़ुस्सा तजि कै धारै ध्यान। पच्छिम दिसा जो उगवै भान।
भँवर गुफा में रहै समाय। होय अमर फिर काल न खाय ॥२०॥
फ़े–फ़हम[8] आनि कुमति को पेल। आपा मेटि अलख होइ खेल।
दुमती मरन एक करि जान। सतगुरु यों दें पद निर्बान ॥२१॥
क़ाफ़–क़रार[9] सहो है मेरा। सतगुरु साहब बंदा तेरा।

(१) इँगला, पिंगला और सुषमना नड़ियाँ। (२) सचाई। (३) उसकी सुकदेव मुनि बंदना करै। (४) मंत्र जानने वाला देखै। (५) छूत। (६) देया। (७) बाँयाँ स्वाँसा उतारै और दायाँ स्वाँसा वैचढ़ा। (८) सुमति। (९) प्रतिज्ञा।

नाभी परचा ऊपजै, मिट जाय सभी बिवाद।
किरनें छूटैं प्रेम की, देखै अगम अगाध ॥७॥
नाभि कँवल से ऊतरा, मेरु डंड तल आय।
खिड़की खोली नाद की, मिला ब्रह्म से जाय ॥८॥
दरिया चढ़िया गगन को, मेरु उलंघ्या[2] डंड।
सुख उपज़ा साँई मिला, भेंटा ब्रह्म अखंड ॥९॥
बंकनाल की सुध गहै, मेरु डंड की बाट।
दरिया चढ़िया गगन को, लाँघ्या औघट घाट ॥१०॥

(१) रास्ता, तराई। (२) लाँघ गया।

दरिया मेरु उलंघ कर, पहुँचा त्रिकुटी सन्ध।
दुख भाजा सुख ऊपजा, मिटा भर्म का धुन्ध ॥११॥
अनंतहि चंद्र ऊगिया, सूर्य कोटि परकास।
बिन बादल बरषा घनी, छह ऋतु बारह मास ॥१२॥
बंक नाल की सुध गहै, कोइ पहुँचे बिरला सन्त।
अमी झिरै जोत झिलमिलै, नौबत घुरै अनन्त ॥१३॥
दरिया मन परमन भया, बैठा त्रिकुटी छाजै।
अमी झिरै बिगसै कँवल, अनहद धुन गाजै ॥१४॥
दरिया त्रिकुटी सन्ध में, मन ध्यान धरै कर धीर।
अरस चलत है सुषमना, चलत प्रेम की सीर ॥१५॥
चलै सुरसरी[1] अगम की, हिरदे मंझ समाय।
जन दरिया वा सुषमना, रोम रोम हो जाय ॥१६॥
दरिया नाद प्रकासिया, सो छबि कही न जाय।
धन्य धन्य वे साधवा, वहाँ रहे लौ लाय ॥१७॥
दरिया नाद प्रकासिया, पूरी मन की आस।
घन बरसै गाजै गगन, तेज पुंज परकास ॥१८॥
दरिया नाद प्रकासिया, [तहँ] किया निरंतर बास।
पारब्रह्म परसा सही, जहँ दरसन पावै दास ॥१९॥
जन दरिया जाय गगन में, परसा देव अनाद।
असुध बीसरी सुध भई, मिटिया वाद बिवाद ॥२०॥
घुरै नगारा गगन में, बाजै अनहद तूर।
जन दरिया जहँ थिति रची, निस दिन बरसै नूर ॥२१॥
जन दरिया जाय गगन में, किया सुधा रस पान।
गंग बहै जहँ अगम की, जाय किया असनान ॥२२॥

(१) गंगा।

हिलमिल कर विश्राम करते हैं और उन्हें जगत् के कार्य-व्यापार फीके दिखाई पड़ते हैं। प्रियतम को पा जाने के बाद उनको दृष्टि में दूसरा कोई नहीं आता। जो सुख उसे पिय की सेज पर मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है[1]। रसिक राम के साथ सुरति सुन्दरी की बसन्त लीला निरन्तर चलती रहती है —

> राम रमीले से रंग रच्यो म्हारे आज बसन्त को खेल ॥टेर॥
> प्रेमनीर पिचकारी दिल से छूटत चहुँ उर झेल ॥
> अध ऊर्ध्व बिच खेल मड्यो है सुरत शब्द को मेल ॥
> धुन बिच ध्यान ज्ञान जहा अनुभव जनम मरण दुख पेल।
> थालबाल रस राम रमैयो रामदास गुरु खेल[2] ॥

सूफी प्रेम-साधना और रामसनेही सम्प्रदाय

मध्ययुगीन सन्तो की प्रेमानुभूतियो पर कदाचित् सूफी प्रेम साधना का भी प्रभाव है। निर्गुणोपासना के आधारभूत तत्वों की व्याख्या करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि भारतीय भक्ति-मार्ग साकार और सगुण का लेकर चला है निर्गुण और निराकार ब्रह्म भक्ति और प्रेम का विषय नहीं हो सकता[3]। इस सम्बन्ध मे उनका अभिमत है कि मुसलमानी अमलदारी मे रहस्यवाद को लेकर जो निर्गुण भक्ति की बानी चली वह बाहर से—अरब और फारस की ओर से आयी थी[4]। प० चन्द्रबली पाण्डेय भी इसी प्रभाव की ओर सकेत करते हुए कहते हैं कि अध्यात्म की दृष्टि से तसव्वुफ में भारत के लिए कोई नई बात भले ही न रही हो पर उसमें प्रेम का प्रतिपादन और मादन भाव का प्रदर्शन कुछ नवीन अवश्य था। निर्गुण भारतीय भक्ति-भावना को सूफियों ने जो योग दिया उससे एक सन्त धारा फूट निकली[5]। यह कथन सर्वांश में सत्य नहीं है। प्रेम-प्रतिपादन और मादन भाव का प्रदर्शन भारतीय अध्यात्म-साधना

---

१ पिव पदनी सुख सेझ पर हिलमिल करत निवास।
रामचरण तब ही लगै फीको जगत विलास ॥
रामचरण पिव पाईया तब निजर न आवै और।
जो सुख पिव की सेझ पर सो नहीं दूसरी ठौर ॥

अणभैवाणी, पृ० १४

२ निर्गुण भजन माला, पृ० ११

३ द्रष्टव्य, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७८ (१९९७)

४ चिन्तामणि, द्वितीय भाग (काव्य में रहस्यवाद) पृ० १२५

५ तसव्वुफ अथवा सूफी मत, पृ० २२७

287/406

झलके अबगत छैल जगत से न्यारा है ॥2॥
स्वामी गुमानी राम बताया,
महल माहिं महबूब दिखाया ।
पांच पचीस उलट घर आया,
उतर गया सब मैल नैनों निरख नजारा है ॥3॥
नितानन्द कुछ अजब तमाशा,
माहीं धरनी माहिं अकाशा ।
सूरज चन्द्र असंख उजासा,
भाज गया बद फैल मिला पीव पियारा है ॥4॥

राग धनासरी शब्द

सोई संत सुजान जगत से न्यारा है ।
अस्तुति निन्दा मान बड़ाई, तजे खुदी अभिमान॥टेक॥
छमा अधीनी छक रहे, राख शील सन्तोष।
निहकामी निर्मल सदा, सो जन जीवन मोक्ष॥
तत्व तिलक धारे रहें, संत जनों से भाव।
गगन मगन गुरु ज्ञान में, धरें अगमपुर पाव॥
इन्द्रियों से अटके नहीं, तन मन पर असवार।
अंतरगत के चान्दने, सुने अनाहद तार॥
सुरत निरत संयम रहे, उनमन दशमें द्वार।
नाव विन्द अस्थिर करे, बैठे ब्रह्म विचार॥
अरध उरध में आरसी, निरख गुमानी दास।
नितानन्द हर चरण में, जुग जुग रहो निवास॥

शब्द

राम नाम धन पाया अब हम ।
सभ दुख हरन करन जन निर्मल, सतगुरु कह समझाया॥टेक॥

भजन २७

भजन कर निश दिन टुटै न तार[1] ॥
एक ब्रह्म का सकल पसारा, छन छन पल पल लेहु सम्भार ।
या मन साधन संग लगावो, सोऽहं शब्द लगी रहु तार ॥
सुमिरन भजन करो सतगुरु का, काया मध्ये है तत सार ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो ! बिनु सतगुरु ना होय उबार ॥

भजन २८

अजर अमर इक नाम है, सुमिरन जिहि आवै ॥
बिनु मुख नाम रटा करै, नहिं जीभ डुलावै ।
श्रवण बिनु धुन सुना करै, द्वौ नयन छिपावै ॥
अरध उरध मध कोठरी, तहँ ध्यान लगावै ।
तिरवेनी के घाट पर, हँसा नहवावे ॥
गगन महल पश्चिम दिशा, खिरकी खोलवावै ।
पानी पवन के गम नहीं, अमरित झर लावै ॥
चान्द सूर्य दिवसो नहीं, अस देश कहावै ।
साहब कबीर अस योगिया, काया मथि नावै ॥

भजन २९

सुमिरन बिनु गोता खाओगे ॥
मुठि बाँन्धे गर्भ से आया, हाथ पसारे जावोगे ।
जैसे मोती फरत ओस के, बेर भये झरि जावोगे ॥
जैसे हाट लगावे हटवा, सौदा बिनु पछताओगे ।
कहैं कवीर सुनो भाई साधो, सौदा लेकर जाओगे ॥

---

(१) ऐसा अजपा जाप या सहज समाधि करो कि परमात्मा से एक क्षण भी सम्बन्ध न टूटे ।

भजन ५१

झीनी झीनी[1] बिनी चदरिया[2] ॥
काहे के ताना, काहे के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ।
इँगला पिंगला ताना भरनी सुषमन तार से बीनी चदरिया ॥
आठ कमल दल चरखा[3] डोलै, पाँच तत्त्व गुण तीनि चदरिया ।
साईं को सियत मास दश लागे, ठोक ठोक के बीनी चदरिया ॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़िन ओढ़ि के मैली कीनि चदरिया ।
दास कबीर यतन[4] से ओढिन ज्यों का त्यों धरि दीनि चदरिया ॥

भजन ५२

सोच समझ अभिमानी, चादर भई है पुरानी ॥
टुकड़े-टुकड़े जोड़ि युगुत सो, सीके अँग लिपटानी ।
कर डारी मैली पापन सो, लोभ मोह में सानी ॥
ना यहि लग्यो ज्ञान के साबुन, ना धोई भल पानी ।
सारी उमर ओढ़ते बीती, भली बुरी नहिं जानी ॥
शंका मान जान जिय अपने, यह है जीव बिरानी ।
कहैं कबीर धरि राखु यतन से, फेर हाथ नहिं आनी ॥

भजन ५३

यह तन ठाँट तँबूरे का ॥
ऐंचत तार मरोरत खूँटी, निकसत राग हजूरे का ॥
टूटे तार बिखर गई खूँटी, हो गौ धूरम धूरे का ॥
या देही का गर्व न कीजै, उड़ गौ हंस तँबूरे का ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ! अगम पन्थ कोई शूरे का ॥

(१) सूक्ष्म वासना (२) स्थूल शरीर (३) हृदय कमल (पाँच तत्व व तीन गुण) (४) निरभिमानी भक्त या आत्म ज्ञानी ।

है कोइ संत राम अनुरागी,
जा की सुरत साहब से लागी ॥ टेक ॥
अरस परस पिव के सँग राती, होय रही पतिव्रता।
दुनिया भाव कछु नहिं समझै, ज्यों समुँद समानी सलिता ॥२॥

मीन जाय कर समुँद समानी, जहँ देखै जहँ पानी।
काल कीर का जाल न पहुँचै, निर्भय ठौर लुभानी ॥३॥
बावन चंदन भौंरा पहुँचा, जहँ बैठे तहँ गंधा।
उड़ना छोड़ के थिर हो बैठा, निस दिन करत अनंदा ॥४॥
जन दरिया इक राम भजन कर, भरम बासना खोई।
पारस परस भया लोह कचन, बहुर न लोहा होई ॥५॥

* * *

साधो राम अनूपम बानी।
पूरा मिला तो वह पद पाया, मिट गइ खैंचा तानी ॥टेक॥
मूल चाँप दृढ़ आसन बैठा, ध्यान धनी से लाया।
उलटा नाद कँवल के मारग, गगना माहिं समाया ॥१॥
गुरु के सब्द की कूंची सेती, अनंत कोठरी खोली।
धू लोक पर कलस बिराजे, ररंकार धुन बोली ॥२॥
जहँ बसत अगाध अगम सुख सागर, देख सुरत बौराई।
वस्तु घनी पर बरतन ओछा, उलट अपूठी आई ॥३॥
सुरत सब्द मिल परचा हूआ, मेरु मद्ध का पाया।
ता में पैस गगन में आया, वहँ जाय अलख लखाया ॥४॥
जहँ पग बिन पातर कर बिन बाजा, बिन मुख गावैं नारी।
बिन बादल जहँ मेंह बरसै है, ढुमक ढुमक सुख क्यारी ॥५॥
जन दरियाव प्रेम गुन गाया, वहँ मेरा अरट चलाया।
मेरु डंड होय नाल चली है, गगन बाग जहँ पाया ॥६॥

* * *

साधो ऐसी खेती करई, जासे काल अकाल न मरई ॥टेक॥
रसना का हल बैल मन पवना, बिरह भोम तहँ बाई।
राम नाम का बीजा बोया, मेरे सतगुर कला सिखाई ॥१॥

भजन ११

जिन पिया प्रेम रस प्याला, सो जन है मतवाला ।।
मूल चक्र को बन्द लगावै, उलटी पवन चढ़ावै ।
जरा मरण भय व्यापै नाही, सतगुरु शरणे आवै ।।
बिनु धरती हरि मन्दिर देखै, बिनु सागर झर पानी ।
बिनु दीपक देवल उजियारा, बोलै गुरुमुख बानी ।।
इँगला पिंगला सुषमणनाड़ी, उन्मुनि के घर मेला ।
अष्ट कमल पर कमल बिराजै, सो साहिब अलबेला ।।
चन्द सूर्य दिवस नहिं रजनी, तहाँ सुरत को लावै ।
अमृत पिवै मगन ह्वै बैठे, अनहद नाद बजावै ।।
चान्द सूर्य एके घर राखै, भूला मन समझावै ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो ! सहज सहज गुण गावै ।।

भजन १२

एक बिनु दूसरा दृष्टि आवै नहीं, एक बिनु कहो तुम कौन दूजा ।
एक बिनु दूसरी सेव कहो कौन की, एक बिनु दूसरी कौन पूजा ।।
पाँच अरु तीन का सकल मंडान है, एक परकाश ब्रह्माण्ड कीया ।
कहैं कब्बीर कहिं द्वैत दीसै नहीं, एक अद्वैत गुरु ज्ञान दीया ।।

भजन १३

साईं तेरे नाम बिना न उबारा ।
काम क्रोध औ लोभ मोह सँग, ये चारो बटमारा ।
इनके बश सब जीव भुलाने, कैसे उतरे पारा ।।
आशा तृष्णा मनसा डाकिन, खाये सब संसारा ।
कनक कामिनी के वश परिया, क्या कर जीव विचारा ।।

भजन ४७

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है ॥
नव दरवाजा परगट दीसै, दसवाँ द्वार मूंद कुलुफ जड़ तारा है ॥
उलट सर्पिनी गगन सँभारे, षट चक्रन का सोध विचारे ।
मेरु दण्ड सीधा पवन दो धारा है ॥
चन्द्र सूर्य दोउ इक घर लावै, सुषमन सेती ध्यान लगावै ।
तिरवेनी के घाट उतर भव पारा है ॥
गगन मण्डल में उर्ध्वमुख कूवाँ, शूरा होय सो भरभर पीया ।
निगुरा जात पियास हिये अँधियारा है ॥
नेती धोती बस्ती पाई, आसन पवन युगत ठरहाई ।
गम घोड़ा असवार भरम से न्यारा है ॥
शब्द विहंगम चाल हमारी, कहैं कबीर सतगुरु लेव तारी ।
खुल गये भरम किवार शब्द झनकारा है ॥३॥

भजन ४८

तेरा जन एक साधु है कोई ।
काम क्रोध औ लोभ विवर्जित, हरि पद चीन्है सोई ॥
राजस तामस सात्त्विक तीनों, ये सब तेरी माया ।
चौथे पद को जो जन चीन्हैं, तिनहि परमपद पाया ॥
अस्तुति निन्दा आशा छाड़ें, तजै काम अभिमाना ।
लोहा कंचन सम करि देखैं, ते मूरति भगवाना ॥
चिन्ते तो माधव चिन्तामणि, हरि पद रमै उदासा ।
तृष्णा छल अभिमान रहित है, कहैं कबिर सो दासा ॥

सद्गुरु कबीर भजन संग्रह

भजन १

सतगुरु शरण हंस[1] जब आवे, तबहि परमपद[2] पावे हो।
सतगुरु भेद[3] हंस जो पावे, अनहद नाद बजावे[4] हो॥
गंगा-यमुना[5] मिले सरस्वति[6], तिरबेनी[7] मध न्हावे हो।
पूरा सतगुरु अलख[8] लखावे, करम भरम बिसरावे[9] हो॥
सहज समाधि निरन्तर लावे, पुनर्जन्म नहिं आवे हो।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सारहि शब्द समावे हो॥

भजन २

बिनु सतगुरु नर फिरत भुलाना॥
इक केहरि सुत लाय गड़ेरिया, पालपोस के कियो सयाना।
रहत अचेत फिरत अजयन संग, अपना हाल कछू नहिं जाना॥

---

(१) मुमुक्षु जीव, (२) मुक्ति (३) भजन का मार्ग (४) बिना कान में अंगुली दिये ही अनहद ध्वनी सुनाता है। (५) इंगला पिंगला नाड़ी। (६) सुष्मना। (७) त्रिकुटी। (८) मन इन्द्रियों से परे आत्मतत्त्व (९) कर्मों में लिप्त नहीं होता है। यथा—"ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि दग्धसात् कुरुतेऽर्जुन:।

[घट-मठ] **राग रामकली**

बेद पुरान सासत्र ७अनंता गीत कवित्त न गावऊँगो ॥
अखंडमंडल निरंकार महिं अनहद ८बेनु बजावऊँगो ॥२॥
बैरागी रामहिं गावऊँगो ॥
सबदि अतीत अनाहदि राता ९आकुल कै घरि जाऊँगो ।१रहाउ।
१०ईड़ा ११पिंगुला औरु १२सुखमना १३पौने बंधि १४रहाऊँगो।

१--शब्दमें समा गया । २--रत्नोंके समान कमलों का स्थान । ३--वहाँ । ४--सूर्य । ५--प्रकाश । ६--धूयें से रहित और उज्जल । ७--अनेक । ८-अनहद-शब्द की बीन। ९--कुल-मालिक। १०--कनपटी में दिमागकी तरफ़ जाने-वाली दायीं नाड़ी । ११--बायीं तरफ़ की नाड़ी । १२--दोनोंके दरमियान वाली नाड़ी । १३--स्वाँस के द्वारा अथवा आसा-मनसा आदि से । १४--रोक रखूँगा।

चंद सूरज दोय १सम करि राखौं ब्रहम जोति मिलि जाऊँगो ॥२॥
तीरथ देखि न जल महिं २पैसौं ३जीअ जंत न सतावऊँगो।
अठसठ तीरथ गुरू दिखाये घट ही भीतरि नावऊँगो ॥३॥
पंच सहाई जनकी सोभा भलो भलो न कहावऊँगो ॥
नामा कहै चितु हरि स्यौं राता सुंनि समाधि समावऊँगो ॥

* नाम-महिमा *

तत्त गहन को नाम है, भजि लीजै सोई ।
लीलासिंधु अगाध है, गति लखै न कोई ॥१॥
कंचन मेरु सुमेरु, ४हय ५गज दीजै दाना ।
कोटि गऊ जो दान दे, नहिं नाम समाना ॥२॥
जोग जग्य तें कहा ६सरै, तीरथ ब्रत दाना ।
७ओसे प्यास न भागिहै, भजिये भगवाना ॥३॥
पूजा करि साधू जनहिं, हरि को प्रन धारी ।
उन तें गोबिंद पाइये, वे परउपकारी ॥४॥
एक मन एकै दसा एकै ब्रत धरिये ।
नामदेव नाम जहाज है, भवसागर तरिये ॥५॥

* लव *

अस मन लाव राम रसना । तेरो बहुरि न होइ जरा मरना ।१।
जैसे मृगा नाद लव लावै । बान लगे वहि ध्यान लगावै ।२।
जैसे कीट भृंग मन दीन्ह । आपु सरीखे वा को कीन्ह ।३।
नामदेव ८भनै दासनदास। अब न तजौं हरि चरन निवास ।४।

१--एक समान करके। २--भीतर घुसौं । ३--छोटे बड़े जीव ।
४--घोड़े । ५--हाथी । ६--संवरैगा । ७--ओसके चाटनेसे । ८--कहते हैं ।

अपनपो आपहु तें बिसरो ॥टेक॥

जैसे २स्वान काँच मंदिर में, भ्रम से भूँकि मरो ॥१
ज्यों ३केहरि ४बपु निरख कूप जल, ५प्रतिमा देखि गिरो ॥
वैसे ही गज ६फटिक ७सिला में ८दसनन आनि अड़ो ॥३
९मरकट १०मूठि स्वाद नसिं बहुरे, घर घर रटत फिरो ॥४
कहैं कबीर ११नलनी के १२सुगना, तोहि कवनै पकरो ॥५

(९)

हीरा नाम अमोल है, रहै घट घट १३थीरा ।
सिद्धी आसन सोधि के, बैठे वहि १४तीरा ॥१॥
गंग जमुन के १५रेत पर, बहै झिरि झिरि नीरा ।

१--जलवा या प्रकाश । २--कुत्ता । ३--शेर । ४--शरीर । ५--छाया । ६--बिल्लौरी । ७--चटॉन । ८--दांत भिड़ाने लगा । ९--बंदर । १०--चने क मुठी का स्वाद । ११--खचरी । १२--तोता । १३--स्थापित । १४--घाट । १५ घाट ।

पुरब सोधि पच्छिम गये, करिके मन धीरा ॥२॥
बिरहिनि बाजे बाँसुरी, सुनि गइ मोर पीरा ।
आठ पहर बाजत रहै, अस गहिर गँभीरा ॥३॥
हीरा झलकै द्वार पर, परखै जोइ सूरा ।
कहैं कबीर गुरु गम्म से, पहुँचै कोइ पूरा ॥४॥

(१०)

जग में सोइ बैराग कहावै ॥ टेक ॥

आसन मारि गगन में बैठे, दुर्मति दूर बहावै ॥१॥
भूख प्यास औ निद्रा साधै, १ जियते तनहिं जरावै ॥२॥
भौसागर के भरम मिटावै, चौरासी जिति आवै ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, भाव भक्ति मन लावै ॥४॥

(११)

जो ई पद के अरथ लगावै, पहुँचै मूल ठिकानी ॥५॥

(६)

जिन पिया प्रेम रस प्याला, सोई जन है मतवाला ॥१॥
मूल चक्र को बन्द लगावै, उलटी पवन चढ़ावै ।
जरा मरन भय ब्यापै नाहीं, सतगुरु सरनी आवै ॥२॥
बिन धरनी हरि मंदिर देखा, बिन सागर झर पानी ।
बिन दीपक मंदिर ऊँजियारा, बोलै गुरुमुख बाना ॥३॥
इँगला पिंगला सुखमन नाड़ी, उनमुन के घर मेला ।
अष्ट कँवल पर कँवल बिराजै, सो साहिब अलबेला ॥४॥
चाँद न सुरज दिवस नहिं रजनी, तहां सुरत लौ लावै ।
अमृत पीय मगन होय बैठै, अनहद नाद बजावै ॥५॥
चांद सुरज एकै घरि राखै, भूला मन समुझावै ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सहज सहज गुन गावै ॥६॥

* प्रेम *

(१)

आजु मेरे सतगुरु आये ।

१रहस रहस मैं अँगना बुहारों, मोतियन चौक पुराये ॥१॥
चरन २पखारि चरनामृत करिके, सब साधन बरताऊं ॥
पाँच सखी मिलि मंगल गावैं, सबद सुरत लौ लाऊं ॥२॥
करूँ आरती प्रेम निछावर, पल पल बलि बलि जाऊं ।
कहैं कबीर दया सतगुरु की, परम पुरुष बर पाऊं ॥३॥

(२)

आज सुबेलो सुहावनो, सतगुरु मेरे आये ।

१—प्रसन्नता में भरकर । २—धोकर ।

भक्ति अभय-पद दीन्ह सनातन मारग वाकी ।
१अबिरल ओकर नाम लगै ना सबही टांकी ॥
पलटू ज्ञान न ध्यान तप, महापुरुष के आस ।
जोग जुगत ना ज्ञान कछु, गुरु दासन को दास ॥

* भेद *

(१)

उलटा कूवाँ गगन में, तिस में जरै चिराग ॥
तिस में जरै चिराग बिना २रोग़न बिन बाती ।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती ॥
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नज़रमें आवै ।
बिन सतगुरु कोउ होय नहीं वा को दरसावै ॥
निकसै एक अवाज़ चिराग की जोतिहिं माहीं ।
ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं ॥
पलटू जो कोई सुनै, ता के पूरे भाग ।
उलटा कूवाँ गगन में, तिस में जरै चिराग ॥

(२)

बंसी बाजी गगन में, मगन भया मन मोर ॥
मगन भया मन मोर महल अठवें पर बैठा ।
जहँ उठै सोहंगम सब्द सब्द के भीतर पैठा ॥
नाना उठैं तरंग रंग कुछ कहा न जाई ।
चाँद सुरज छिपि गये सुषमना सेज बिछाई ॥
छूटि गया तन येह नेह उनहीं से लागी ।
दसवाँ द्वारा फोड़ि जोति बाहर ह्वै जागी ॥

१--निर्मल। २--तेल ।

१असुर नदी का बंधै मूल ॥ पच्छिम फेरि चढ़ावै सूर ॥
अजरु जरै सो निझरु झरै ॥ जगन्नाथ स्यौं २गोसटि करै ॥७॥
चौमुख दीवा जोति दुआर ॥३पॅलू अनत मूल बिचकार॥
सरब कला ले आपे रहै ॥मनु माणकु रतनां महिं गुहै ॥८॥
मसतकि पदमु ४दुआलै मणी। माहिं निरंजन त्रिभुवण धणी॥
पंच सबद निरमाइल बाजे। ५ढुलकै चँवर संख घन गाजै॥
दलिमलि ६दैतहु गुरमुखि गियानु।बेणी जाचै तेरा नामु ॥९॥

श्री पीपा जी

* घट-मठ *

काया देवा काया देवल, काया जंगम जाती।
काया धूप दीप नैबेदा, काया पूजौं पाती ॥१॥
काया बहु खंड खोजते, नव निद्धी पाई।
ना कछु आइबो ना कछु जाइबो,रामकी दुहाई ॥२॥
जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे, जो खोजै सो पावै।
पीपा प्रणवै परम तत्त्व ही,सतगुरु होय लखावै ॥३॥

१--राक्षसी नदी का मुहाना बंद करे अर्थात् इन्द्रियोंको वशमें लावे। २--बातचीत। ३--पत्ते। ४आस-पास। ५--झूलता है। ६--दुष्टोंका नाश करके

श्री बेणी साहब जी

[घट-मठ] **राग रामकली**

ईड़ा पिंगला और सुखमना तीनि बसहिं इक ठाई ॥
बेणी १संगमु तहँ २पिरागु मन मँजनु करे ३तिथाई ॥१॥
संतहु तहाँ निरंजन रामु है॥ ४गुर गमि ५चीन्है बिरला कोय ॥
तहाँ निरंजन रमैइया होय ॥१॥रहाउ॥
देवस्थानै क्या नीसाणी ॥ तहँ बाजे सबद अनाहद बाणी ॥
तहँ चंद न सूरज पौण न पाणी॥साखी जागी गुरमुखि जाणी॥२॥
ऊपजै गियानु दुरमति ६छीजै॥ अमृत-रस ७गगनंतरि भीजै ॥
एसु कला जो जाणै भेव ॥ भेंटै तासु परम गुरुदेव ॥३॥
दसम दुआरा अगम अपारा, परम-पुरख की ८घाटी ॥
ऊपरि हाट हाट परि आला, आले भीतरि ९थाती ॥४॥
जागत रहै सो कबहूँ न सोवै ॥ तीन तिलोक समाधि पलोवै॥
बीजमंत्र लै हिरदै रहै ॥ मनुआ उलटि सुन्न महिं गहै ॥५॥
जागत रहै न अलीया भाखै॥ पाँचौं इन्द्री बसि करि राखै ॥
गुरकी १०साखी राखै चीति॥ मन तन अरपै कृसन परीति ॥६॥
कर ११पल्लव साखा बीचारै ॥ अपुना जनम न जूए हारै ॥

१--जहाँ ईड़ा,पिंगला और सुखमना—ये तीनों नाड़ियाँ मिलती हैं; उसी को सन्तोंने त्रिवेणी संगम का नाम दिया है। २—प्रयागराज नाम का प्रसिद्ध तीर्थ। ३—वहाँ ही। ४— जहाँ गुरुके द्वारा पहुँच सकना सम्भव है। ५—पहिचानता है। ६—नष्ट हो जाती है। ७—अन्तरके आकाशमें। ८—पहाड़ी। ९—पूँजी या सत्-वस्तु। १०-गुरुका शब्द। ११—पत्ते।

मन तुम नेक गहहु चित्त राम ॥टेक॥
जासु नाम सुर नर नहिं पावहिं, संत महा सुख धाम।
पाँच पच्चीस तीन हैं ४मूसिद, उन कहँ ग्राम न ठाम ॥१॥
जारहिं सहर लुटहिं बिनु लसकर, निसिदिन आठौं जाम।
जालिम जोर नेक नहिं मानत, परजा दुखित बेराम ॥२॥

१--परिवार वाले। २--डाह (ईर्ष्या) करते हैं। ३--रे मूढ़। ४--लुटेरे।

सत्त संतोष कायागढ़ भीतर, गहि लो सुरति सों नाम।
उर्ध पवन लै धरहु गगन में, बांधि करहु बिसराम ॥३॥
जम जीतौ घर नौबति बाजै, कियो है जोति मुकाम।
जन गुलाल करहिं बादसाही, नूर तज्जली नाम ॥४॥

(४)

जौ पै कोउ चरनकमल चित्त लावै।
तबहीं कटै करम के फंदा, जमदुत निकट न आवै ॥१॥
पाँच पच्चीस सुनि १थकित भये हैं, तिरगुन ताप मिटावै।
सतगुरु कृपा परम-पद पावै, फिर नहिं भवजल आवै ॥२॥
हरदम नाम उठत है २करारी, संतन मिलि जुल पावै।
मगन भयो सुख दुख नहिं ब्यापै, अनहद ढोल बजावै ॥३॥
चरन प्रताप कहाँ लगि बरनौं, मो मन ३उक्ति न आवै।
कहैं गुलाल हम नाम भिखारी, चरनन में घर पावैं ॥४॥

(५)

अगमपुर नौबत धुनि जहँ बाजई।
घन गरजै मोती तहँ बरसै, उलट गगन चढ़ि गाजई ॥१॥
ससि और सूर तहाँ नहिं दिखियत, एकै ब्रह्म बिराजई।
आवै न जाय मरै नहिं जीवै, कुहुकि कुहुकि मन पागई ॥२॥
जाको गुन सुर नर मुनि गावहिं, ध्यावहिं भावहिं जागई।
सकल मनोरथ पूरन पायो, निगुॅन छत्र सिर छाजई ॥३॥
४इकछत राज करो कायागढ़, काहू ५सोंझ न भागई।
कहैं गुलाल सुनो रे मूढ़ मन, दुनिया हाथ न लागई ॥४॥

१--ढीले। २--ध्वनि। ३--कहने के लिये प्रमाण नहीं मिलता। ४--अछत अर्थात् नाशसे रहित। ५--किसी के सामने भी।

श्री बुल्ला साहब जी

॥ उपदेश ॥

(१)

सुखमनि सुरति डोरि बनाव ।
मेटिहै सब कर्म जिय के, बहुरि इतहिं न आव ॥१॥
पैठि अंदर देखि कंदर, जहाँ जिय को बास ।
उलटि प्रान अपान मेटो, सेत सब्द निवास ॥२॥
गंग जमना मिलि सरस्वति, उमँगि सिखर बहाव ।
लवकंति बिजुली दामिनी, अनहद गरज सुनाव ॥३॥
जीति आया आपहीं, गुरु यारि सब्द सुनाव ।
तब दास बुल्ला भक्ति ठानो, सदा रामहिं गाव ॥४॥

(२)

बुल्ला कवने द्वारा देखै आपु ॥ टेक ॥
कवने द्वारा आवै जाय । कवने द्वारा रहै समाय ॥१॥
तिरबेनी द्वारे देखै आपु । सुखमन द्वारे सुमिरै जापु ॥२॥
इँगला पिंगला आवै जाय । दसवैं द्वारा रहै समाय ॥३॥

* होली *

होरी खेलो सतगुरु दयाल से ।
धन जोबन सुपना करि जानो, मेलो जोति अपार से ॥१॥
होत अगाध अकास सब्द धुनि, सुनत रहो सुख चाह से ।
साहिब सुरति मुरति हिय लागी, केल करत हर हाल से ॥२॥
एक तान इक मान मनावै, एक ज्ञान इक ध्यान से ।

(२)

अरध उरध के बीच बसा इक सहर है।
बीच सहर में बाग बाग में लहर है॥
मध्य अकास में छुटै फुहारा पवन का।
पलटू अंदर धंसिके देखु तमासा भवन का॥

१–नहीं बच सका।

(३)

सुन्न समाधि के बीच ध्यान को लावना।
सुखमनि के रे घाट पवन ले आवना॥
टूटै ना वह डोरि बाट आरूढ़ है।
पलटू ऐसे को परनाम अवस्था गूढ़ है॥

(४)

जगमग जोति जगाव झिरिहिरी बीच में।
कमठ दृष्टि से मारि गिरौ जनि कीच में॥
सोहं सोहं सबद रैनि दिन बोलता।
पलटू जब देखो गरकाब पलक नहिं खोलता॥

(५)

बिना जंतरी जंत्र बाजता गगन में।
बिसरि गया संसार उसी की लगन में॥
जो कोई जनमी होय हमारे लगन की।
पलटू सो प्यारी लैं जानि बात यह सजन की॥

(६)

गाड़ि ज्ञान को बाँस सुरति की डोर है।
चढ़ा खिलाड़ी धाय जगत में सोर है॥
अमर-लोक के बीच हरा इक दूब है।
पलटू हद अनहद के पार तमासा खूब है॥

॥ दया ॥

माता बालक कहँ राखती प्रान है।
फनि मनि धरै उतारि ओही पर ध्यान है॥
माली रच्छा करै सींचता पेड़ ज्यौं।

(४)

मन पवना को संगम कोइ नर पाइया।
अनहद बजै अपार तो अलख लखाइया॥
अनुभव फरत है ज्ञान सुरति ठहराइया।
कहैं गुलाल सोइ संत निसान बजाइया॥

(५)

अष्ट कंवल दल फूल भंवर रस पाइया।
सुखमन झरत है अमी तो स्वाद से खाइया॥
नूर [1]तजल्ली बीच सुरति ठहराइया।
कहैं गुलाल मन पाक अगम घर छाइया॥

(६)

तिरबेनी का तीर नूर झरि लगाई।
इंगल पिंगल को खेल सुन्न चढ़ि गाजई॥
हरदम मन रहो लीन सुरति रस पागई।
कहैं गुलाल ब्रह्म हेतु सत्त सब जागई॥

(७)

जालिम मन को बांधि के सहज नचावई।
पाँच पच्चीस को [2]रफत नूर कस पावई॥
उलटि सुखमना देस अचल घर छावई।
कहा गुलाल हर रोज प्रान तब भावई॥

(८)

साँच करहु नर आपु अवर मति धाइया।
सतगुरु बचन बिचारि ताहि ठहराइया॥
गंग जमुन के बीच फूल इक पाइया।
कहैं गुलाल सत साजि के उर्ध समाइया॥

* छंद *

यहि दिवस दस रंग कुसुम है, पुनि अंत ना ठहराइया।
नहिं प्रीति प्रानी करत प्रभ सों, सिर धुनै पछताइया॥

१—प्रकाश। २—मेल जोल।

* भेद *

(१)

उलटि देखो, घट में जोति पसार।

१--चिन्ता। २--नष्ट।

बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, बिगसि कमल कचनार ॥१॥
पैठि पताल सूर ससि बांधौ, साधौ त्रिकुटी द्वार।
गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार ॥२॥
इंगला पिंगला सुखमन सोधौ, बहत सिखर मुख धार।
सुरति निरति ले बैठु गगन पर, सहज उठै झनकार ॥३॥
सोहं डोरि मूल गहि बाँधौ, मानिक बरत लिलार।
कहैं गुलाल सतगुरु बर पायो, भरियो है मुक्ति भंडार ॥४॥

(२)

* अरिल *

अर्ध उर्ध को खेल कोऊ नर पावई।
चाँद सूर को बाँधि गगन ले जावई॥
इंगल पिंगल दोउ बांधि सहज तब आवई।
कहैं गुलाल हर रोज अनँद तब पावई॥

(३)

रबि ससि दूनों बांधि के सुरति लगाइया।
अजपा जपै सुजाप सोहं डोरि लाइया॥
लगन लगो निरंकार सुरति संग पाइया।
कहैं गुलाल अतीथ सत्त गुन गाइया॥

(४)

मन पवना को संगम कोइ नर पाइया।
अनहद बजै अपार तो अलख लखाइया॥
अनुभव फरत है ज्ञान सुरति ठहराइया।
कहैं गुलाल सोइ संत निसान बजाइया॥

बिन घोटे बिन छाने पीवैं, कौड़ी दाम न लाई ।
रंग रंगीले चढ़त रसीले, कबहीं उतरि न जाई ॥१॥
छके छकाये पगे पगाये, झूमि झूमि रस लाई ।
बिमल बिमल बानी गुन बोलैं, अनुभव अमल चलाई ॥२॥
जहँ जहँ जावे थिर नहिं आवे, १खोलि अमल लै धाई।
जल पत्थल पूजन करि मानत, २फोकट गाढ़ बनाई ॥३॥
गुरु प्रताप कृपा तें पावे, घट भरि ३प्याल फिराई ।
कहैं गुलाल मगन ह्वै बैठे, भगिहै हमरि बलाई ॥४॥

(२)

रे मन नामहिं सुमिरन करै ।
अजपा जाप हृदय लै लावहु, पाँच पच्चीसों तीन मरै ॥१॥
अष्ट-कमल में जीव बसतु है, द्वादस में गुरु दरस करै ।
सोरह ऊपर बानि उठतु है, दुइ दल अमी झरै ॥२॥
गंगा जमुना मिली सरसुती, पदुम झलक तहँ करै ।
पच्छिम दिसा ह्वै गगन मँडल में, काल बली सों लरै ॥३॥
जम जीतो है परम-पद पायो, जोती जगमग बरै ।
कहैं गुलाल सोइ पूरन साहब, हरदम मुक्ति फरै ॥४॥

* प्रेम *

(१)

अबिगत जागल हो सजनी ।
खोजत खोजत सतगुरु पावल,
ताहि चरनवा चितवा लागल हो सजनी ॥टेक॥
साँझ समय उठि दीपक बारल,

१—थोथा । २—फीका । ३—प्याला ।

॥ पाँचै ॥

पाँचौ इन्द्री बस करौ, मन जीतन की ठान।
पवन रोक अनहद लगौ, पावौ पद निर्बान॥
पावौ पद निर्बान, करौ तुम ऐसी करनी।
आसन संजम साध, बन्ध लागौ जब धरनी॥
चित मन बुधि हंकार कूँ, करौ इकट्ठे आन।
सहजो निज मन होय जब, निस्चल लागै ध्यान॥

॥ छट्ठे ॥

छट्ठे कँवल कूँ देख करि, सतवें में घर छाव।
रसना उलटि लगाय करि, जब आगे कूँ धाव॥
जब आगे कूं धाव, देख करि जगमग जोती।
बिन दामिनि चमकार, सीप बिन उपजै मोती॥
हन्स हन्स जहँ होत है, ओअं ओअं होय।

चरनदास यों कहत हैं, सहजो सुरति समोय॥

॥ सातैं ॥

सतसंगत ही कीजिये, सत ही कथिये ज्ञान।
सत ही मुख सूँ बोलिये, सत ही कीजै ध्यान॥
सत ही कीजै ध्यान, हद्द तजि बेहद लागौ।
तीन अवस्था छोड़ि, जाय तुरिया सूं पागौ॥
निराकार निर्गुन तहाँ, इकरस चेतन रूप।
रात दिना सहजो नहीं, नहीं छाँह नहिं धूप॥

॥ आठैं ॥

आठन कूँ जानै नहीं, दस कूँ नाहीं भेद।
चौबीसो समझै नहीं, कैसे छूटै खेद॥
कैसे छूटै खेद, पंच कूँ जीतै नाहीं।
और पचीसों संग, रहै उनके ही माहीं॥
दोय सदा लागी रहै, चौरासी के फेर।
चरनदास यों कहत हैं सहजो आपा हेर॥

॥ नौमी ॥

तन मन बचन सकल सुखदाई, हिरदे बुद्धि उँजियार ॥३॥
सब दुख-गंजन पातक-भंजन, रंजन ध्यान बिचार ।
साजन दुर्जन जो चलि आवैं, एकहि दृष्टि निहार ॥४॥
आनँद रूप सरूप मई है, लिप्त नहीं संसार ।
चरनदास गुरु सहजो के रे, नमो नमो बारम्बार ॥५॥

(३)

हमारे गुरु बचनन की टेक।
आन धरम कूँ नाहिं जानूँ, जपूँ हरि हरि एक ॥१॥
गुरु बिना नहिं पार उतरौ, करौ नाना भेख ।
रमौ तीरथ बर्त राखौ, होहु पंडित सेख ॥२॥
गुरु बिना नहिं ज्ञान दीपक, जाय ना अँधियार ।
काम क्रोध मद लोभ माहीं, उरझिया संसार ॥३॥
चरनदास गुरु दया करि के, दिये मन्तर कान ।
सहजो घट परगास हूवा, गयौ सब अज्ञान ॥४॥

* नाम *

भया हरि रस पी मतवारा ।
आठ पहर झूमत ही बीतै, डार दिया सब भारा ॥१॥
इड़ा पिंगला ऊपर पहुँचे, सुखमन पाट उघारा ।
पीवन लगे सुधा रस जब ही, दुर्जन पड़ी बिडारा ॥२॥
गंग जमन बिच आसन मारियो, चमक चमक चमकारा ।
भँवर गुफा में दृढ़ ह्वै बैठे, देख्यो अधिक उजारा ॥३॥
चित इस्थिर चंचल मन थाका, पाँचौ का बल हारा ।
चरनदास किरपा सूँ सहजो, भरम करम हुए छारा ॥४॥

सिर धुनै पछताइया, तब हृदय ज्ञान भुलाइया।
मरकट मुठी धारे भ्रम ज्यों, आपु आपु बंधाइया॥

* बसंत *

मन मधुकर खेलत बसंत, बाजत अनहद गति अनंत ॥१॥
बिगसत कमल भयो गुँजार, जोति जगमग कर पसार ॥२॥
निरखि निरखि जिय भयो अनंद, बाफल मन तब परल फंद॥३॥
लहरि लहरि बहै जोति धार, चरनकमल मन मिलो हमार ॥४॥
आवै न जाइ मरै नहिं जीव, पुलकि पुलकि रस अमिय पीव ॥५॥
अगम अगोचर अलख नाथ, देखत नैन भयो सनाथ ॥६॥
कहैं गुलाल मोरी पूजलि आस, जम जीत्यो भयो जोति बास ।७।

* होली *

(१)

राम रंग होली खेलो आई, फिर पाछे पछिताई ॥टेक॥
यहि तन फागु मचो परमारथ, अवधि बदो दिन ढाई ॥१॥
काल अगिन जब मस्तक जरिहै, छूटी सब चतुराई ॥२॥
अगर गुलाल कुमकुमा केसरि, चेतन अबीर उड़ाई ॥३॥
इंगल पिंगल दोउ भरत उर्धमुख, छिरकत प्रभुहिं बनाई ॥४॥
दुइबिधि फाग बनो या जग में, जिन जैसो मन लाई ॥५॥
कहैं गुलाल यह अगम फागु है, बिन सतगुरु नहिं पाई ॥६॥

(२)

कोऊ आतम भक्ति ज्ञान जाने। तब सहज सुरत मनुवा माने ।टेक।
याही रीति प्रीति चरनन सों, खोजि सतगुरु पहिचाने ॥१॥
तबही होय प्रेम पद पूरन, फाग परम-पद आने ॥२॥
एका एकी खेल बनो जब, सिव घर सक्ति समाने ॥३॥

परदा खोलि मिलो सतगुरु से, आवो लोक १दयारा ॥४॥

* सतगुरु *

बलिहारी जाउँ मैं सतगुरु के, मेरा दरस करत भ्रम भागा ॥१॥
धर्मराय से २तिनुका तोड़ा, जम दुसमन से दूर किया ॥२॥
सबद पान परवाना दीया, काग करम तजि हंस किया ॥३॥
गुरु की मिहर से अगम निगम लख, बिन गुरु कोई न मुक्त भया ॥४॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, आवागवन से राखि लिया ॥५॥

* घट-मठ *

(१)

संत जन करत साहिबी तन में ॥ टेक ॥
पाँच पचीस फौज यह मन की, खेलैं भीतर तन में ।
सतगुरु सबद से ३मुरचा काटो, बैठो जुगत के घर में ॥१॥
४बंकनाल का धावा करिके, चढ़ि गये सूर गगन में ।
अष्ट कँवल दल फूल रह्यो है, परखे तत्त नजर में ॥२॥
५पच्छिम दिसि की खिड़की खोलो, मन रहै प्रेम मगन में ।
काम क्रोध मद लोभ निवारो, ६लहरि लेहु या तन में ॥३॥
संख घंट सहनाई बाजै, सोभा सिंधु महल में ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, अजर साहिब लख घट में ॥४॥

(२)

जब कोइ रतन पारखी पैहो, हीरा खोलि भँजैहो ॥१॥
तन को तुला सुरत को पलरा, मन को सेर बनैहो ।

१--दयाल देश में । २--खाता चुकता कर दिया ।३--मोरचा जीतो । ४--सुरति को अंतरीव चढ़ाई के एक स्थान का नाम है ।५--दसवाँ द्वार । ६--आनन्द ।

* रेखता *

(१)

गंग औ जमुन के घाट को खोजि ले,
भँवर गुंजार तहँ करत भाई।
सरसुती नीर जहँ देखु निर्मल बहै,
तासु के नीर पिये प्यास जाई ॥१॥
पाँच की प्यास तहँ देखि पूरी भई,
तीन को ताप तहँ लगै नाहीं।

१–गांठ में पक्का करके बाँध लिया। २–नशा पीने वाली। ३–तिल की ओट में।

कहैं कब्बीर यह अगम का खेल है,
गैब का चाँदना देख माहीं ॥२॥

(२)

करत कल्लोल दरियाव के बीच में,
ब्रह्म की १छौल में हंस झूलै।
अर्ध और उर्ध की पेंग बाढ़ी तहाँ,
पलटि मन पवन को कँवल फूलै ॥१॥
गगन गरजै तहाँ सदा २पावस झरै,
होत झनकर नित बजत ३तूरा।
बेद कत्तेब की गम्म नाहीं तहाँ,
कहैं कब्बीर कोई ४रमै ५सूरा ॥२॥

* परिचय *

६महरम होय सो जानै साधो, ऐसा देस हमारा॥ टेक॥
बेद कतेब पार नहिं पावत, कहन सुनन से न्यारा।
जाति बरन कुल किरिया नाहीं, संध्या नेम अचारा ॥१॥
बिन जल बूँद परत जहँ भारी, नहिं मीठा नहिं खारा।
७सुन्न महल में ८नौबत बाजै, किंगरी बीन सितारा ॥२॥
बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उजियारा।
बिना सीप जहँ मोती उपजै, बिन सुर सबद उचारा ॥३॥
जोति लजाय ब्रह्म जहँ दरसै, आगे अगम अपारा।
कहैं कब्बीर वहँ रहनि हमारी, बूझै गुरुमुख प्यारा ॥४॥

१–छाया अथवा गोद। २–बरसात। ३–अनहद शब्द का तूरा। ४–लिव लगाता है। ५–सूरमा। ६–भेदी। ७–दसवाँ द्वारा। ८–नक्कारा

दयाबाई जी

* दोहा *

चरनदास गुरुदेव ने, मो सूँ कह्यो उचार।
"दया" अहर निसि जपत रहु, सोहं सुमिरन सार ॥१॥
नासा आगे दृष्टि धरि, स्वाँसा में मन राख।
"दया" दया करिके कह्यो, सतगुर मो सूँ भाख ॥२॥
पदमासन सूँ बैठ करि, अंतर दृष्टि लगाव।
"दया" जाय अजपा जपौ, सुरति स्वाँस में लाव ॥३॥
अर्ध उर्ध मधि सुरति धरि, जपै जु अजपा जाप।

"दया" लहै निज धाम कूँ, छुटै सकल संताप ॥४॥
स्वाँसउ स्वाँस बिचार करि, राखै सुरति लगाय।
"दया" ध्यान त्रिकुटी धरै, परमातम दरसाय ॥५॥
"दया" कह्यो गुरदेव ने, कूरम को ब्रत लेहि।
सब इंद्रिन कूँ रोकि करि, सुरत स्वाँस में देहि ॥६॥
बिन रसना बिन माल कर, अंतर सुमिरन होय।
"दया" दया गुरुदेव की, बिरला जानै कोय ॥७॥
अजपा सोहं जाप तें, त्रिबिध ताप मिटि जाहिं।
"दया" लहै निज रूप कूँ, या में संसय नाहिं ॥८॥
हृदय कमल में सुरति धरि, अजपा जपै जो कोय।
बिमल ज्ञान प्रगटै तहाँ, कलमख डारै खोय ॥९॥

साहेब नूर २ के सेवक, नूर ही की नगरी है।
सुक्षम सेज पर तेज चमके, सो घर परापरी है।।२।।
सूरज क्रोड़ रोम की शोभा, सो छवि अधिक खरी है।
देवी देव भेव नहीं पावत, आतम ब्रह्मबरी है।।३।।
गंगा जमुना मिली सरस्वती, धारा अधर धरी है।
मारग मीन जाय घर पहुंचै, जिनकी भली सरी है।।४।।
मकर तार पर मुरली बाजै, बरसत रंग झरी है।
तिल की ओट तमासा देखैं, हाजिर घड़ी घड़ी है।।५।।
किये निहाल स्वामी गुमानी, जिनपर मेहर फिरी है।
नितानन्द चरनाबिन्द भज, तीनों ताप टरी है।।६।।

卐 शब्द ६२ 卐

बहुत दूर वह घर है साधो, बहुत दूर वह घर है,
क्या गावे कुछ समझ दिवाने, मुशकिल गैब सिरर है।।टेक।।
धुरू प्रहलाद धनी की धुन पर, तजा देह का डर है।
महादेव ने भख्या हलाहल, बौरा आठ पहर है।।१।।
गोरख गोपी चन्द भरतरी, लिया ठेकरा कर है।
दास कबीर सत्य नहीं छोड़ा, दीया सभ वस्तर है।।२।।
मनसूरा सूली पर चढ़ियां, जब पहुंचा उस दर है।
शेख फरीद कुएं के अन्दर, काया गया बिसर है।।३।।

६कायागढ़ जीतो रे भाई ॥ टेक ॥
ब्रह्म को चहुँ ओर ७मँडो है, माया ख्याल बनाई ।
कनक कामिनी फंदा ८रोपे, जग राखे ९बिलमाई ॥१॥
पांचो मुरचा गढ़ के भीतर, तहाँ लांघि के जाई ।
आसा तृस्ना मनसा कहिये, तृगुन बनी जो खाई ॥२॥
पचिस सुभाव तहँ निसि दिन ब्यापे, काम क्रोध दोउ भाई ।
लालच लोभ खड़े दरवाजे, मोह करे ठकुराई ॥३॥
मूल कँवल पर आसन कीन्हो, गुरु को सीस नवाई ।
छवों कँवल इक सुर में बेधे, चढ़ी गगन गढ़ जाई ॥४॥
ज्ञान के घोड़ा ध्यान के १०पाखर, जुक्त को जीन बनाई ।
सत्त सुकृत दोउ लगी ११पावरी, बिवेक लगाम लगाई ॥५॥
सील छिमा के १२बख्तर पहिरे, तत तरवार गहाई ।
साजन सुरति चढ़ि छाजे ऊपर, निरत के १३साँग गहाई ॥६॥
सतएँ कँवल त्रिकुट के भीतर, वहाँ पहुंचि के जाई ।

१—चौड़ाई । २—लम्बाई । ३—गिनती । ४—इशारों में । ५—बचन ।६—शरीर रूपी किला । ७—अर्थात् व्याप्त है । ८—डाले है । ९—अटकाकर । १०—ढाल । ११—रिकाब । १२—लड़ाई लड़ने की लोहे की वरदी । १३—नेजा या बल्लम ।

जोति सरूपी देव निरंजन, वेदन उनको गाई ॥७॥
बंकनाल की १औघट घाटी, तहाँ न पग ठहराई ।
ओअं ररंग अड़े जहँ दुइ दल, अजपा नाम सहाई ॥८॥
जोजन एक खरब के आगे, पुरुष बिदेही रहाई ।
सेत कँवल निस बासर फूले, सोभा बरनि न जाई ॥९॥
सेत छत्र और सेत सिंघासन, सेत धुजा फहिराई ।
कोटिन भानु चन्द्र तारागन, छत्र की छाँह रहाई ॥१०॥
मन में मन नैनन में नैना, मन नैन एक ह्वै जाई ।
सुरत सोहागिनि मिलत पिया को, तन के तपन बुझाई ।११।
द्वादस ऊपर अजपा फेरे, मने पवन थकि जाई ।
कहैं कबीर मिले गुरु पूरे, सबद में सुरत मिलाई ॥१२॥

(५)

चलु हंसा वा देस, जहाँ तोर पिया बसे ॥टेक॥
वहि देसवा में २अर्द्धमुख कुइयाँ, ३साँकर वाके ४मोहड़ ।
सुरत सोहागिनि है पनिहारिनि, भरे ठाढ़ बिन डोर ॥१॥
वहि देसवाँ बादर न उमड़े, रिमझिम बरसै मेह ।
चौबारे में बैठि रहो ना, जा भीजहु ५निर्देह ॥२॥
वहि देसवाँ में नित्त पूर्निमा, कबहुँ न होइ अन्धेर ।
एक सुरज के कौन बतावै, कोटिन सुरज उँजेर ॥३॥
लछमी वा घर झाड़ू देत है, सिव करते कोतवाली ।
ब्रम्हा वा के बने टहलुवा, बिस्नु करै चरवाही ॥४॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, ६ई पद है निर्बानी ।

१—कठिन । २—उलटे मुँह वाला कूआं । ३—तंग । ४—मुहाना । ५—बिना देह के अर्थात सुरति के द्वारा । ६—यह ।

* परिचय *

साहिब हम में साहिब तुम में, जैसे तेल तिलन में ।
मत कर बंदा गुमान दिल में, खोज देखिले तन में ॥ टेक ॥
चाँद सुरज के खंभ गाड़ि के, प्रान आसन कर घट में ।
इंगला पिंगला सुरत लगा के, कमल पार कर घर में ॥१॥
वा में बैठी सुखमन १नारी, झुला झुलत बँगलन में ।
कोटि सूर जहँ करते झिलिमिलि, नीलसर २सोती गगन में ॥२॥
तीन ताप मिटिगे देही के, निर्मल होइ बैठी घट में ।
पाँच चोर जहँ पकरि मँगाये, झंडा ३रोपे निरगुन में ॥३॥
पाँच सहेली करत आरती, मनसा बाचा सतगुरु में ।
अनहद घंटा बजै मृदंगा, तन सख लेहि रतन में ॥४॥
बिन पानी लागी जहँ बरषा, मोती देख नदिन में ।
जहवाँ मनुआ बिमल रह्यो है, चलो हंस ब्रह्मँड में ॥५॥
इकइस ब्रह्मँड छाइ रह्यो है, समझैं बिर्ले सूरा ।
मुरख गँवार कहा समझैंगे, ज्ञान के घर है दूरा ॥६॥
बड़े भाग अलमस्त रंग में, कबिरा बोलै घट में ।
हंस उबारन दुक्ख निवारन, आवागमन मिटै छिन में ॥७॥

* साखी *

साँझ पड़े दिन बीतवे, चकवी दीन्हा रोय ।
चल चकवी वा देस को जहाँ रैन ना होय ॥
चकवी बिछुरा साँझ की, आन मिलै परभात ।
जो नर बिछुरे नाम से, दिवस मिलैं नहिं रात ॥

१—नाड़ी। २—नदी या चशमा। ३—झंडा गाड़ दिया है।

२

(१३)

सोई निज संत जिन अंत आपा लियो,
जियो जुग जुग गगन बुद्धि जागी ।
प्रान आपान[1] असमान मैं थिर भया,
सुन्न के सिखर पर जिकिर[2] लागी ॥
रहत घर बास बिनु स्वास का जीव है,
सक्ति मिलि सीव सोँ सुरति पागी ।
अकह आलेख आदेख को देखिया,
पेखि केसो भयो ब्रह्म रागी ॥

(१४)

गगन मगन धुनि लगन लगी,
सुनत सुनत तन त्रिप्त भई ।
जगर मगर नहिँ डगर बगर[3] नहिँ,
रबि ससि निसु दिन भाव नहीँ ॥
प्रान गवन हरि पवन मवन[4] करि,
मिलि सन्मुख पिय बाँह गही ।
सत रति सत्त पती हम पावल,
केसोदास सुहाग सही ॥

---

(१) वायु के नाम। (२) सुमिरन। (३) राह कुराह। (४) स्वाँसा और प्रान को रोक के।

(१५)

लोप हो जाय। (२) भरपूर है।

॥ शब्द ८ ॥

पिय थारे[१] रूप भुलानी हो।
प्रेम ठगौरी मन हर्‌यो, बिन दाम बिकानी हो ॥ १ ॥
भँवर कँवल रस बेधिया, सुख स्वाद बखानी हो।
दीपक ज्ञान पतंग सोँ, मिलि जोति समानी हो ॥ २ ॥
सिंधु भरा जल पूरना, सुख सीप समानो हो।
स्वाँति बुंद सोँ हेतु है, ऊर्ध मुख लगानी हो ॥ ३ ॥
नैन स्रवन मुख नासिका, तुम अंतर जानी हो।
तुम बिनु पलक न जीजिये, जस मीन अरु पानी हो ॥४॥
ब्यापक पूरन दसौ दिसि, परगट पहिचानी हो।
केसो यारो गुरु मिले, आतम रति मानी हो ॥ ५ ॥

॥ शब्द ९ ॥

म्हारे हरिजू सूँ जुरलि सगाई हो।
तन मन प्रान दान दै पिय को, सहज सरूपम पाई हो ॥१॥
अरध उरध के मध्य निरंतर, सुखमन चौक पुराई हो।
रबि ससि कुंभक अमृत भरिया, गगन मँडल मठ छाई हो २
पाँच सखी मिलि मंगल गावहिं, आनँद तूर बजाई हो।
प्रेम तत्त दीपक उँजियारो, जगमग जोति जगाई हो ॥३॥
साध संत मिलि कियो बसीठी[२], सतगुरु लगन लगाई हो।
दरस परस पतिबरता पिय को, सिव घर सक्ति बसाई हो ॥४
अमर सुहाग भाग उँजियारो, पूर्ब प्रीति प्रगटाई हो।
रोम रोम मन रस के बसि भइ, केसो पिय मन भाई हो ॥५॥

(१) तुम्हारे। (२) बिचैालिया का काम।

॥ शब्द १० ॥

जीवत मरना डर नहीं करना, अगम महल पग धार ।
नितानन्द महबूब गुमानी, कर निर्भय दिदार ।।२।।

卐 राग धनासरी शब्द १३६ 卐

सोई संत सुजान जगत से न्यारा है,
अस्तुति निन्दा मान बड़ाई, तजे खुदी अभिमान ।।टेक।।
छमा अधीनी छक रहे, राख शील सन्तोष ।
निह कामी निर्मल सदा, सो जन जीवन मोक्ष ।।१।।
तत्व तिलक धारे रहें, संत जनों से भाव ।
गगन मगन गुरु ज्ञान में, धरें अगमपुर पाव ।।२।।
इन्द्रियों से अटके नहीं, तन मन पर असवार ।
अंतरगत के चान्दने, सुने अनाहद तार ।।३।।
सुरत निरत संयम रहे, उन मन दशमें द्वार ।
नाद बिन्द अस्थिर करे, बैठे ब्रह्म विचार ।।४।।
अरध उरध में आरसी, निरख गुमानी दास ।
नितानन्द हर चरण में, जुग २ रहो निवास ।।५।।

卐 शब्द १३७ 卐

समरथ साहेब मेरा दया कर
दर्शन बिना बहुत दिन बीते, बिसर गया बह डेरा ।।टेक।।

देख कर गुलाल साहब चरनौं पर गिरे और उनको अपना गुरु धारन किया। गुलाल साहब तअल्लुक़ा बसहरि ज़िला ग़ाज़ीपुर के ज़िमींदार थे और वहीं पैदा हुए और गृहस्थ आश्रम में रह कर वहीं चोला छोड़ा। इसी तअल्लक़े के एक गाँव का नाम भुरकुड़ा है जहाँ गुलाल साहब सतसग करते व कराते रहे। गुलाल साहब की साध गति थी और उनका तीव्र वैराग और प्रचँड भक्ति उनकी अति कोमल और मधुर बानी से टपकती है॥

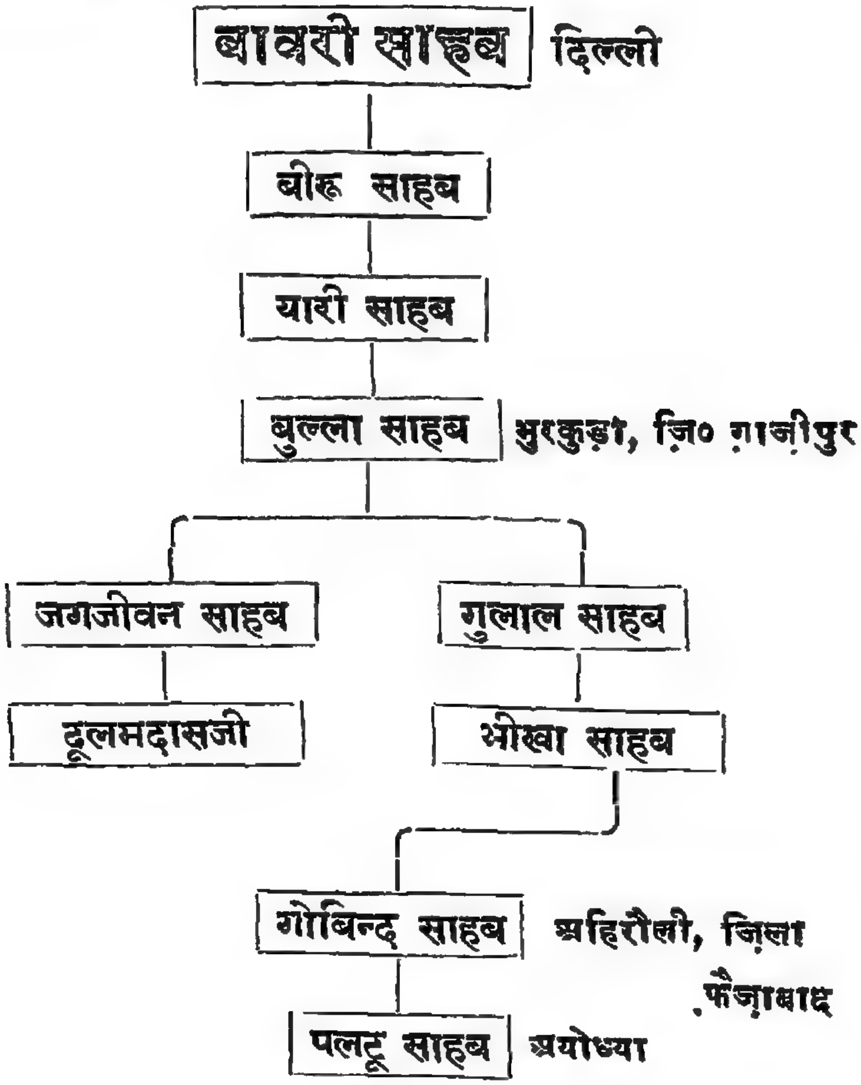

गुलाल साहब की बानी

उपदेश

॥ शब्द १ ॥

रे मन मूढ़ अज्ञानियाँ,

जगजीवन ते भक्त कहाये, सूरति बिलग न होई ॥१०॥

* कलियुग में। † भक्त। ‡ खोद कर। § ऊर्द्धबाहु का भेष धरना। ‖ बर्फ़ में रहना या ठाढ़े यानी खड़े रहना। ¶ जिस के बदन पर मिट्टी जम जाने से दीमकों ने बिमौट यानी बिल बना लिये हैं।

॥ शब्द ४७ ॥

तूँ गगन मँडल धुनि लाव रे ॥टेक॥
सुरति साधि के पवन चढ़ावहु, सकल सबै बिसराव रे ॥१॥
थिर ह्वै रहि ठहराय देखु छबि, नयन दरस रस पाव रे ॥२॥
सो तुम होहु मस्त लै मनुआँ, बहुरि न एहि जग आव रे ॥३॥
जगजीवनदास अमर डरपहु नहिं, गुरू के चरन चित लाव रे ॥४॥

॥ शब्द ४८ ॥

यहि बन गगन बजाव बँसुरिया।
कौनहुँ नहिं गुमाल तकि भूलौ, अंग अंग गलि जाइ पसुरिया १
इहाँ तो कोइ रहै नहिं पाइहि, चला जात है साँझ सबेरिया।
धैके पकरि बाँधि लैजाई, कोउ न राखि सकहि बरियरिया* ॥२॥
एहि का अंत खोज कछु नाहीं, आवत जात रहट की घरिया।
कोउ फूटत कोउ छूँछ पानि नहिं, कौनिउ जात अहै जल भरिया ३
अब तू दौरि धाइ नहिं भटकसि, लै सँवारि नहिं होवै करिया।
जगजीवन निर्मल छबि मूरति, निरखु देखु मन मस्त करैया ४

॥ शब्द ४९ ॥

सुनु बिनु नाम नहिं निस्तार।
बेद ज्ञान गरंथ भाखै समुझु सो तत सार ।१।
भूलु नाहिं सम्हारु आपुहिं कठिन माया जार।
डारि फाँसी बाँधि लैहै नाहिं छूटनहार ॥२॥
जानि पायो जुगति ऐसी नाम अजपा धार।
ताहि सँग तू रंग रस लै पहुँचु गुरु दरबार ॥३॥
गुरू का चौगान आसन निर्मल उँजियार।
पहुँचि निरखु बिहून† नैना लागिहै तव पार ॥४॥

* ज़बरदस्ती से। † बिना, बग़ैर।

संतबानी पुस्तकमाला

[हर महात्मा का जीवन-चरित्र उनकी बानी के आदि में दिया है]

कबीर साहिब का बीजक	॥।)
कबीर साहिब का साखी-संग्रह	१=)
कबीर साहिब की शब्दावली, पहला भाग	॥।)
कबीर साहिब की शब्दावली, दूसरा भाग	॥।)
कबीर साहिब की शब्दावली, तीसरा भाग	।=)
कबीर साहिब की शब्दावली, चौथा भाग	≈)
कबीर साहिब की ज्ञान-गुदड़ी, रेख़्ते और झूलने	।=)
कबीर साहिब की अखरावती	=)
धनी धरमदास जी की शब्दावली	॥-)
तुलसी साहिब (हाथरस वाले) की शब्दावली भाग १ ...	१=)
तुलसी साहिब दूसरा भाग पद्मसागर ग्रंथ सहित ...	१=)
तुलसी साहिब का रत्नसागर	१।-)
तुलसी साहिब का घट रामायण पहला भाग	१॥)
तुलसी साहिब का घट रामायण दूसरा भाग	१॥)
गुरु नानक की प्राण-संगली दूसरा भाग	१॥)
दादू दयाल की बानी भाग १ "साखी"	१॥)
दादू दयाल की बानी भाग २ "शब्द"	१।)
सुन्दर बिलास	१-)
पलटू साहिब भाग १—कुंडलियाँ	॥।)
पलटू साहिब भाग २—रेख़्ते, झूलने, अरिल, कवित्त, सवैया ...	॥।)
पलटू साहिब भाग ३—भजन और साखियाँ	॥।)
जगजीवन साहिब की बानी, पहला भाग	॥।-)
जगजीवन साहब की बानी दूसरा भाग	॥।-)
दूलन दास जी की बानी, ...	।)॥

चरनदास जी की बानी, पहला भाग	॥।-)
चरनदास जी की बानी, दूसरा भाग	॥।)
गरीबदास जी की बानी	१।-)
रैदास जी की बानी	॥)
दरिया साहिब (बिहार) का दरिया सागर	।≈)॥
दरिया साहिब के चुने हुए पद और साखी ...	।-)
दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी	।≈)
भीखा साहिब की शब्दावली	॥=)॥
गुलाल साहिब की बानी	॥।=)
बाबा मलूकदास जी की बानी	।)॥
गुसाईं तुलसीदास जी की बारहमासी	-)
यारी साहिब की रत्नावली	=)
बुल्ला साहिब का शब्दसार	।)
केशवदास जी की अमीघूँट	-)॥
धरनी दास जी की बानी	।=)
मीराबाई की शब्दावली	॥=)
सहजो बाई का सहज-प्रकाश	।≈)॥
दया बाई की बानी	।)
संतबानी संग्रह, भाग १ (साखी) [प्रत्येक महात्माओं के संक्षिप्त जीवन चरित्र सहित]	१॥)
संतबानी संग्रह, भाग २ (शब्द) [ऐसे महात्माओं के संक्षिप्त जीवन चरित्र सहित जो भाग १ में नहीं हैं]	१॥)
	कुल २३॥≈)
अहिल्या बाई ...	≈)

दाम में डाक महसूल व रजिस्टरी शामिल नहीं है वह इसके ऊपर लिया जायगा—

॥ शब्द १५ ॥

रे मन नामहिं सुमिरन करै ।
अजपा जाप हृदय लै लावो, पाँच पचीसो तीन मरै ॥१॥
अष्ट कमल में जीव बसतु है, द्वादस मैं गुरु दरस करै ।
सोरह ऊपर बानि उठतु है, दुइ दल अमी झरै ॥२॥
गंगा जमुना मिली सरसुती, पदुम झलक तहँ करै ।
पछिम दिसा हू गगन मँडल में, काल बली सों लरै ॥३॥
जम जातो है परम पद पायो, जोती जगमग बरै ।
कह गुलाल सोइ पूरन साहब, हर दम मुक्ति फरै ॥४॥

॥ शब्द १६ ॥

ऊठत नाम मनोरवा हो, संतन के यह ज्ञान ॥टेक॥
याहि सुफल जिन्ह जान्यो हो, बाजत अभय निसान ॥१॥
अष्ट कमल पर फूलिय हो, दसो दिस ऊगे भान ॥ २ ॥
गगन मँडल गुन गाइय हो, निझर झरै असमान ॥ ३ ॥
सत्त सब्द में समाइय हो, कह गुलाल मन मान ॥ ४ ॥

॥ शब्द १७ ॥

सत्त सरूप समाइय हो, निर्गुन रूप अपार ॥ टेक ॥
अति अथाह नहिं पाइय हो, ऊठत लहर करार ॥ १ ॥
सहज सरोवर गुल फूलल हो, बिनु डाँड़ी बिनु तार ॥ २ ॥
पुलकि पुलकि मन लाइय हो, आवागवन निवार ॥ ३ ॥
जन गुलाल घर छाइय हो, बाझि मुवल संसार ॥ ४ ॥

प्रेम

* टपकती है। † शराब। ‡ भाँग। § सोंटा। ‖ संसार। ¶ भाव। ** शब्द
†† रस्सी।

यहि बिस्वास भुलै मत कोय, माँझ धार में बोरिहँ सोय ॥३॥
लोक बेद महँ रत संसार, राम न चीन्हहिँ मुरख गँवार ॥४॥
ऐसहि समय गये दिन बीति, बार न ढहत बालु के भीति ॥५॥
कहैँ गुलाल मूढ़ हम भाई, सबहिँ सयाने हम बौराई ॥६॥

॥ शब्द ११ ॥

ससि औ सूर पवन भरि मेला, दृढ़ करि आसन बैठु अकेला१
उलटै नाल गगन घर जावै, बिगसै कँवल चंद दरसावै ॥२॥
घंटा रव तहँ बाज निसाना, अनहद धुन सुनियत बिनु काना
सुन्न असुन्न में डोर बँधाना, उड़े हंस चढ़ि करत पयाना ॥४॥
अगम अगोचर अबिगत खेला, प्रान पुरुष तहँ करत है मेला५
मन अरु पवन सहज घर आयो, ऐसो गति संतन मन भायो६
मेटल सुन्न मिलल परगासा, जन्म जन्म के पूजलि आसा ॥७॥
जन गुलाल सतगुरु बलिहारी, जाति पाँति अब छुटल हमारी८

॥ शब्द १४ ॥

हमरे राम नाम बस्तू है, खलक लेन चहे घौँगा* ।
हमरे कटक फौज कछु नाहीं, हमरे धन सुत जोगा ॥१॥
हमरे मुलुक खजाना नाहीं, रैयत नहिँ बस लोगा ।
हमरे पूरन नाम भरो धन, दुनिया देखि मरै सोगा ॥२॥
हमरे संग साथ नहिँ कोई, अंध भये सब खोजत लोगा ।
हमरे बेद किताबी नाहीं, हमरे ब्रत नहिँ भोगा ॥३॥
राजा रंक छत्रपति देखो, काल खड़्ग मारत सब खोजा ।
कहै गुलाल निःकलप रूप भयो, जगत मुए करि रोगा ॥४॥

* घोंघा, कौड़ी।

॥ शब्द १५ ॥

रे मन नामहिं सुमिरन करै ।

* कुराह। † बड़ाई।

जिन जाना सिर चरन रेनु,
गुरु के बचन जस काम धेनु ॥३॥
अष्ट जाम जाके बरत जोत,
बिमल बिमल धुनि उदित होत ॥ ४ ॥
गगन मँडल में बजत तूर,
चल सतगुरु वहाँ रहत पूर ॥ ५ ॥
अति आनँद वहाँ उठत बसंत,
गुरु के फागु लै खेलत संत ॥ ६ ॥
कह गुलाल मेरी पुजलि आस
सतगुरु चुल्ले दिहल बास ॥ ७ ॥

॥ शब्द २ ॥

मन तुम कपट दूर लुटाव।
भटक को तुम पंथ छोड़ो, सुरत सब्द समाव ॥ १ ॥
करत चाल कुचाल चालत, मकर मेल सुभाव।
तीन तिरगुन तपत दिनकर, कैसहू बुझलाव ॥ २ ॥
अति अधीन मलीन माया, मोह में चित लाव।
अगम घर की खबरि नाहीं, मूढ़ता सच पाव ॥ ३ ॥
सुन्न सिखर सरोज* फूलो, बंक नालहि जाव।
कह गुलाल अतीत पूरन, आपु में घर पाव ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३ ॥

माई रे धोखे सब अरुझाना।
सब्द सरूप नहीं पहिचानहिं, तीरथ ब्रत लिपटाना ॥१॥

* कँवल।

॥ शब्द १ ॥

जो पै साँचि लगन हिय आवै ।
काटै सकल करम के फंदा, आनँदपुर घर छावै ॥ १ ॥
पाँच पचीस तीन बस करिकै, सुखमन सेज बिछावै ।
सुरत सोहागिन उड़ै गगन-मुख, तब चंदा दरसावै ॥२॥
मूल चक्र गहि कै दृढ़ बाँधै, बंक नाल चढ़ि धावै ।
अबिगत सोँ यह खेल बनो है, आवागवन नसावै ॥३॥
रीझि रीझि दसहूं दिसि पूजै, पारब्रह्म में समावै ।
जन गुलाल भइ प्यारी खसम की, रहसि रहसि गुन गावै ॥४

॥ शब्द २ ॥

उलटि देखो, घट में जोति पसार ।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, बिगसि कमल कचनार ॥१॥
पैठि पताल सूर ससि बाँधो, साधो त्रिकुटी द्वार ।
गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार ॥२॥
इँगला पिंगला सुखमन सोधो, बहत सिखर-मुख धार ।
सुरति निरति ले बैठु गगन पर, सहज उठै झनकार ॥३॥
सोहं डोरि मूल गहि बाँधो, मानिक बरत लिलार ।
कह गुलाल सतगुरु बर पायो, भरो है मुक्ति भँडार ॥ ४॥

॥ शब्द ३ ॥

चित धरि, करहु आपु सँभार ।
सुरति डोर लगाउ गगनहिं, उठत है झनकार ॥१
चंद सूरज रैन दीवस, नाहिं धर्म अधार ।
मरन जीवन संग साथो, ऐसोई ब्योहार ॥ २ ॥
हुआँ कौन देखै कौन सुनै, गुन न वार न पार ।
अगम घर पर जाय बैठो, यह घर नाहिं पगार° ॥३
प्रेम लागे नेम कैसो, सब भयो जरि छार ।
कह गुलाल जो नाम मिलिया, अछर नहिं बिस्तार

॥ शब्द ४ ॥

मनुवा अगम अमर घर पायो ।
आठ पहर धुनि लगी रहतु है, बिनु कर डंक बजाये
बिनु पग नाच नचावन लागे, बिनु रसना गुन गा
गावनहार के काया न माया, अनुभौ रंग बनायो
अर्ध उर्ध के मध्य निरंतर, त्रिकुटी जा ठहरायो ।
लवकै बिजुली उड़ै गगन में, मुकुता तहँ झरि लाये
भयो अथोर निसु बासर नाहीं, सुन्न भवन दरा पा
जन गुलाल पिय मिलो है सुहागिन, आनेंद जोति जग

कह गुलाल साहब आपन किया अनहद ढोल बजाया है ॥४॥

भेद का अंग

॥ शब्द १ ॥

जो पैं साँचि लगन हिय आवै ।
काटै सकल करम के फंदा, आनँदपुर घर छावै ॥ १ ॥
पाँच पचीस तीन बस करिके, सुखमन सेज बिछावै ।
सुरत सोहागिन उड़ै गगन-मुख, तब चंदा दरसावै ॥२॥
मूल चक्र गहि के दृढ़ बाँधै, बंक नाल चढ़ि धावै ।
अबिगत सोँ यह खेल बनो है, आवागवन नसावै ॥३॥
रीझि रीझि दसहूं दिसि पूजै, पारब्रह्म में समावै ।
जन गुलाल भइ प्यारी खसम की, रहसि रहसि गुन गावै ॥४

॥ शब्द २ ॥

उलटि देखो, घट में जोति पसार ।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, बिगसि कमल कचनार ॥१॥
पैठि पताल सूर ससि बाँधो, साधो त्रिकुटी द्वार ।
गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार ॥२॥
इँगला पिंगला सुखमन सोधो, बहत सिखर-मुख धार ।
सुरति निरति ले बैठु गगन पर, सहज उठै झनकार ॥३॥
सोहं डोरि मूल गहि बाँधो, मानिक बरत लिलार ।
कह गुलाल सतगुरु बर पायो, भरो है मुक्ति भँडार ॥ ४॥

॥ शब्द ३ ॥

चित धरि, करहु आपु सँभार ।
सुरति डोर लगाउ गगनहिं, उठत है झनकार ॥१
चंद सूरज रैन दिवस, नाहिं धर्म अधार ।
मरन जीवन संग साधो, ऐसोई ब्योहार ॥ २ ॥
हूँ कोन देखै कौन सूनै, गुन न वार न पार ।
अगम घर पर जाय बैठो, यह घर नाहिं पगार° ॥३
प्रेम आगे नेम कैसो, सब भयो जरि छार ।
कह गुलाल जो नाम मिलिया, अछर नहिं बिस्तार

॥ शब्द ४ ॥

मनवा अगम अमर घर पायो ।

सासु सोहागिन बलसहिं* हो ननदी बिपरीती ।
गाँव के लोग नहिं आपन हो सबसि करै चीती ॥३॥
सुनहु सखियाँ सहेलरि हो जो करै कहल हमार ।
भवजल नदिया भयावनि हो कैसे उतरब पार ॥ ४ ॥
उलटि पवन घर सोधल हो सब रहल लजाय ।
जगमग जगमग त्रिकुटी हो देखि रहल लोभाय ॥५॥
गंग जमुन बिच मंडप हो घर अगम अवास ।
बिनु पर हंसा उड़ि गवन्यो तहँ भूख न प्यास ॥ ६ ॥
पाप पुन्न नहिं दुख सुख हो नहिं रोग न सोग ।
सुखमन सार अमी रस हो तहँ जोग न भोग ॥ ७ ॥
गगन मगन धुनि गाजै हो देखि अधर अकास ।
जन गुलाल बसि हरि पद हो तहँ करहिँ निवास ॥

॥ शब्द ५ ॥

आजु झरि बरखत, बुंद सोहावन ।
पिया के रीति प्रीति छबि निरखत,
पुलकि पुलकि मन भावन ॥ १ ॥
सुखमन सेज जे सुरत सँवारहिं,
झिलमिल झलक दिखावन ।
गरजत गगन अनंत सब्द धुनि,
पिया पपीहा गावन ॥ २ ॥

---

* बिलास करती है । † चिट्टा लड़ाना ।

को मैं कहाँ ठाकुर‖ मतवाल ॥३॥

* सुलझे हैं। † खुराफ़ात, झगड़ा टंटा। ‡ स्त्री। § ठग लेना। ‖ ज़मींदार।

कह गुलाल यह निगुन अपार,
तेलिया बाँधल बरद की सार* ॥४॥

॥ शब्द १९ ॥

मैं तो राम चकरियाँ मन लाओंगा।
तातें सहज सरूप समाओंगा ॥ टेक ॥
पाँचहिं मारि पचीसहिं मारो गढ़ पर दीप बराओंगा ॥१॥
उनमुनि धुनि में सुरति समाओं उलटी गंग बहाओंगा ॥२॥
सुखमन के घर तारी लाओं अली अलूफा पाओंगा ॥३॥
आठो पहर करौं असवारी ज्ञान के खड़्ग लगाओंगा ॥४॥
तरकस तेज पवन बँद लाओं पकरि मवास ले आओंगा ॥५॥
साहब रीझै नौबति बकसे निसु दिन डंक बजाओंगा ॥६॥
जन गुलाल भयो दफ़्तर दाखिल बहुरि न भवजल आओंगा ७

॥ शब्द २० ॥

बैरागी मन कहवाँ घर तुम किया, तातें सहज सरूपी
भेष लिया ॥टेक॥
कवनि जुगति तुम आसन माँड़ो, कवनी देखो हीया ॥१॥
गंग जमुन तट आसन माँड़ो, तिरबेनी तट बारो दीया ॥२॥
कह गुलाल सतगुरु बलिहारी, छोड़ सकल जग दीया ॥३॥

॥ शब्द २१ ॥

ससुरवाँ पंथ कैसे जाब हो, नैहर अति बड़ कूर ॥टेक॥
काम न जानौं गुन नहिं आवै करब कवन हम ज्ञान।
सँगहिं सवति सोहागिन हमरी कैसे रहहि अब मान ॥१॥

* गऊ-शाला। † नौकरी।

कहै गुलाल पिया संग बानि आजा, का करिहै जम
जालिम मोरा ॥ ३ ॥

* क्रूर होने वाले। † देखता रहता है। ‡ डंका बजा कर क़िले को फ़तह कर लिया।

॥ शब्द ९ ॥

मन सहज सुन्न चढ़ि करु निवास।
रूप रेख तहँ जाति पाँति नहिं, अछय अमूरति करत बास १
बिनु कर ताल पखाउज बाजै, बिनु रसना गुन गाय।
बाजे बिना सब्द धुनि होवै, बिनु पग नाच नचाय ॥२॥
चाँद सूर निस बासर नाहीं, तीन देव नहिं बेद चारि।
कह गुलाल तहँ मास्यो बाजी, घर आयो मन सहज मारि ३

॥ शब्द १० ॥

जब हम प्रभु पायो बड़ भागी।
तन मन धन न्योछावरि वास्यो, हरि चरनन चित लागी ॥१॥
काम क्रोध ममता मद त्याग्यो, अभय अगम पद जागी।
अर्ध उर्ध बिच भाठी साजी, पियत करारो पागी ॥२॥
तिरबेनी में लगी खुमारी, टरत नहीं मन टारी।
गंग जमुन के मध्य निरंतर, तहवाँ देव मुरारी ॥३॥
मुक्ता मनि मानिक तहँ बरसत, निम्झर झरी तहँ लागी।
सेत सिंहासन बैठक पायो, जन गुलाल बैरागी ॥४॥

॥ शब्द ११ ॥

जो पै कोउ उलटि निहारै आप।
निरखि निरखि अंतर लौ लावै, बिन माला को जाप ॥१॥
सत सरूप सतगुरु बचन लिये, करहु जो अगम पयान।
बिगसित कमल उगो है सहसमुख, भँवरा रहत लोभान २
तिरबेनी में तिलक बिराजै, बंक नाल चढ़ि जास।
दसो दिसा में जोति जगमगै, वा के तात न मात ॥३॥

कहवाँ सिव कर आसन, कहवाँ सिव कर ध्यान ।
कहवाँ सिव कर मंडप, कहवाँ सिव अस्थान ॥ ५ ॥
अगमे सिव कर आसन, सक्तिहिं सिव कर ध्यान ।
सुन्न भवन में मंडप, निगमे सिव अस्थान ॥ ६ ॥
कहवाँ से मन आइल, कहवाँ परल भुलाय ।
केहि ले मन घर गवनल, कैसे मन ठहराय ॥ ७ ॥
मन हीं से मन आइल, मोहहिं परल भुलाय ।
सक्तिहिं ले मन गवनल, सहजहिं घर ठहराय ॥ ८ ॥
कौन सब्द गुन गावल, कैसे बिंदु मिलाप ।
कौन द्वार है जाइब, कौन करब तहँ जाप ॥ ९ ॥
अगम सब्द गुन गावल, नादहिं बिंदु मिलाप ।
पच्छिम द्वार है जाइब, आपु करब तहँ जाप ॥ १० ॥
कह गुलाल यह अनुभव, सन्त कइल बीचार ।
जो यहि पदहिं बिचारल, सोई गुरू हमार ॥ ११ ॥

॥ शब्द ८ ॥

ध्यान पायो अधर कटोरा, उलटी चाल चलत मन मोरा ।टेक
संग जगाती* पंथ बिकट है, बरबस लूटत डेरा ।
जत सब आवे तत सब खावे, ताकैं† साँझ सबेरा ॥ १ ॥
काजी मुलना पीर औलिया, पंडित करत निहोरा ।
सुर नर नाग देव गंधर्बा, काहु न कीन्हो जोरा ॥ २ ॥
प्रेम प्रकास भयो जब मेरे, डंक दियो गढ़ तोरा‡ ।
कह गुलाल पिया सँग बनि आजो, का करिहै जम
जालिम मोरा ॥ ३ ॥

* कर लेने वाले। † देखता रहता है। ‡ डंका बजा कर क़िले को फ़तह कर लिया।

(३)

अष्ट कँवल जब फुल्यो उलटि छे धाइया ।
घंक नाल भयो सूध अगम घर जाइया ॥
दसो दिसा बरि जोती तहाँ समाइया ।
कहे गुलाल सत सूर अनंद तब पाइया ॥

(४)

उनमुनि बंद लगाय सुरति ठहराइया ।
चाँद सूर दोउ बाँधि उर्धमुख धाइया ॥
सुखमन सीतल स्वाद सुमुकि रस पाइया ।
कह गुलाल हरि नाम रफत* तब पाइया ॥

(५)

अलह इमान लगाय सितून† बढ़ाइया ।
रफत सिफत की बातें इल्म‡ लखाइया ॥
रोज रहो मुस्ताक कबहुं नहिं सोइया ।
कहे गुलाल अवधूत यार तब पाइया ॥

---

* रब्त, मेल। † खंभा। ‡ ज्ञान।

---

(६)

परखि साहब सौं रीति नाम लव लाइया ।
सब घट पूरन सोई तहाँ मन लाइया ॥
कोटिन चंद उगाय मोति झरि लाइया ।
कहै गुलाल सोइ हंसा परखि अघाइया ॥

(७)

तिरगुन तेल बराइ के जोति जगावई ।
पाँच पचीस को लादि ब्रह्म घर छावई ॥
अनहद बजाइ अघोर अगम गुन गावई ।
कहै गुलाल हरि नाम परम पद पावई ॥

(८)

अष्ट कँवल फूलाय पवन ले धावई ।
सोरह कला सँपूर तहाँ मन लावई ॥
घटत बढ़त नहिं जोति सीतल सत गावई ।
कहै गुलाल सतलोक तबहिं नर पावई ॥

(९)

* लँगोटा । † गुदा चक्र । ‡ खड़ाँऊ । § पाँव ।

अरिल छंद

रिमझिमि बरसै मानिक मोती ।
कह गुलाल पउवा चढ़ सेतो* ॥ १६ ॥
कमरबँद बाँधि अगम घर जोवै ।
उलटि सुखमना गतिहि बिलोवै ॥ १७ ॥
बजर† फाड़ बाँधे तत सार ।
कह गुलाल यह रहनि हमार ॥ १८ ॥

॥ दोहा ॥

माला जपौं न मंतर पढ़ौं, मन मानिक को प्रेम ।
कंथ गूदरि पहिरौं नहीं, कह गुलाल मेरे नेम ॥१६॥
गुलाल साखी‡ तत दियो, प्रेम खेलिह हिये नाय ।
सुमिरिनी मन महँ फिस्यो, आठ पहर लौ लाय ॥२०॥
गूदर धागा नाम का, सूई पवन चलाय ।
मन मानिक मनि गन लस्यो, पहिर गुलाल बनाय २१
गुलाल माला नाम का, राखो गर में नाय ।
कोटि जतन छूटे नहीं, रहो जोति लपटाय ॥२२॥

अरिल छंद

(१)

प्रान चढ़ो असमान सहज घर जाइया ।
सुन्न सहर झकझोर सुरति ठहराइया ॥
जोग जुगत सों नेह ब्रह्म में समाइया ।
कहै गुलाल अवधूत सत्य सब पाइया ॥

*सफ़ेद । † वज्र कपाट । ‡ साधुवों की टोपी ।

सुखमन सीतल पीवत नीर ।
निकसि दसौ दिसि अनँद फकीर ॥ २ ॥
कुबरी|| करम काट ले आई ।
ज्ञान खरादे रच्यो बनाई ॥ ३ ॥
सतगुरु के घर बैठक दीन ।
मनुवाँ तहाँ रहत लौलीन ॥ ४ ॥

* दामाद को। † मांगना। ‡ मुरझाई हुई। § भरत अर्थात मिश्रित धात का। || छड़ी।

तिलक तत्त दियो लीलार ।
अगम भेख बन्यो टकसार ॥ ५ ॥
एकादस तिलक दियो जिन धीर ।
कहै गुलाल अलमस्त फकीर ॥ ६ ॥
असनवटी आसन सारी लावे ।
द्वादस बैठि गगन घर धावे ॥ ७ ॥
गगन जोति में रहे समाई ।
कह गुलाल आवे नहिं जाई ॥ ८ ॥
कोपिन* बाँधे मूल दुवार† ।
उलटे पवन उठे झनकार ॥ ९ ॥
अष्ट कँवल फूल्यो जब फूल ।
जन गुलाल हिंडोला फूल ॥ १० ॥
कंठी करम काटि जो डारे ।
अजपा जपे जोति सब वारे ॥ ११ ॥
सुमिरन करे बैस्नव तेई ।
कहैं गुलाल अतिथि है सेई ॥ १२ ॥
मुरछल मन फेरे चित लाई ।
अगम जोति दसहूँ दिसि छाई ॥ १३ ॥
सत्त सब्द ले मुरछल बाँधै ।
कहैं गुलाल फिरत सब घाँधे ॥ १४ ॥
पउवा‡ प्रेम पगर§ जो नावै ।
उनमुनि जाय गगन घर धावै ॥ १५ ॥

* लँगोटा। † गुदा चक्र। ‡ खड़ाँऊ। § पाँव।

(५९)

ज्ञान करो मन बाँधि के लगन लगाइया ।
निरखि रहो तहँ नाम तत्त ठहराइया ॥
जुग जुग अचल अपार परम पद पाइया ।
कह गुलाल सम दृष्टि सबहिं नर आइया ॥

(६०)

केवल प्रभु को जानि के इलिम लखाइया ।
पार होइ तब जीव काल नहिं खाइया ॥
नेम करहु नर आप दोजख नहिं धाइया ।
कह गुलाल मन पाक तबहिं नर पाइया ॥

(६१)

भ्रम भूलो नर ज्ञान राम नहिं जानिया ।
बहुत करतु है ज्ञान साँच नहिं मानिया ॥
झूठ दसा ब्योहार कपट बहु ठानिया ।
कह गुलाल नर मूढ़ सबै गति हानिया ॥

(६२)

अष्ट कँवल फूलाइ निरंतर धावई ।
सुखमन सेज बिछाइ के मन पवढ़ावई* ॥
जोग जुगत सौं नेह अनँद सब आवई ।
कहै गुलाल फकीर नाम तब पावई ॥

(६३)

यह संसार अयाना† आपु नहिं जानई ।
तुरत होय बिज्ञान खबरि नहिं आनई ॥

---

* सुलाना । † नादान ।

14:52
Gulal Sahab Ki Bani.pdf

(२८)

साहब दायम* अगह ताहि नहिं मानई ।
हर दम करहिं कुकर्म भर्म मन ठानई ॥
झूठ करहिं व्यौहार सत्त नहिं जानई ।
कह गुलाल नर मूढ़ हक्क नहिं मानई ॥

(२९)

याही कहन हमारि जो कोउ मानई ।
तातें सदा हजूर सही जो ठानई ॥
रहै सदा निस्संक काल नहिं जानई ।
कहै गुलाल फकीर माया नहिं मानई ॥

(३०)

गर्व भुलो नर आय सुकृत नहिं साँइया ।
बहुत करत संताप राम नहिं गाइया ॥
पूजहिं पत्थल पानि जन्म उन खोइया ।
कह गुलाल नर मूढ़ सभै खिलि रोइया ॥

(३१)

सुंदर साहब मानि के नेह लगावई ।
अर्ध उर्ध को खेल उलटि के पावई ॥
निरगुन तेल बराय सो जोति जगावई ।
कह गुलाल सत लोक तुरत नर पावई ॥

(३२)

भजन करो जिय जानि के प्रेम लगाइया ।
हर दम हरि सौं प्रीति सिदक सब [illegible] ।

* सदा । † लाय ।

अर्ध उर्ध को खेल कोऊ नर पावई ।
चाँद सूर को बाँधि गगन ले आवई ॥
इँगल पिंगल दोउ बाँधि सहज तब आवई ।
कह गुलाल हर रोज अनँद तब आवई ॥

(१८)

रहित भयो घर नारी तन मन थीरा ।
ब्रह्म भयो तब जीव गयो सब पीरा ॥
निसु दिनि लायो ध्यान झरत मनि हीरा ।
कहै गलाल सोई सत अनँद फकीरा ॥

(१९)

अजर अमर पुर देस संत रन साजिया ।
मन पवना होउ साज नौबति धुनि बाजिया ॥
द्वादस चढ़ि मैदान जुद्ध तब लाइया ।
कह गुलाल मन सूरत पर चढ़ि गाजिया ॥

(२०)

राम रहे घर माहिं ताहि नहिं मानई ।
पूजहि पत्थल भीति मया मन सानई ॥
झूठ रहत हरि हाल करम बहु ठानई ।
कहै गुलाल जड़ भूल आपु नहिं मानई ॥

(२१)

सुन्न सहर आजूब* सहज धुनि लागई ।
इँगल पिंगल को खेल अमी तब पागई ॥
पुलकि पुलकि करि प्रेम अनँद छबि छाजई ।
कह गुलाल कोइ संत ताहि पंथ लागई ।

(२२)

इसिक अली† सौं साफ अदल सोइ पाइया ।
रोज रहै मुसताक सकूनत‡ आइया ॥
क्योंकर बूझै आपु सबै नर रोइया ।
कहै गुलाल फकीर सत्त जिन जोइया§ ॥

(२३)

तीरथ दान को आस अंध नर धावई ।
राम न चीन्हत साँच सो जन्म गँवावई ॥

---

* अचरजी । † मालिक । ‡ ठिकाना । § खोज लिया ।

(१३)

खेलत बसंत आनँद धमारि ।
सिव ब्रह्मा जहँ मिल मुरारि* ॥ १ ॥
उठत तरँग तहँ बरत जोत ।
बिमल बिमल धुन बानी होत ॥ २ ॥
तन मन डारि कै रहो समाइ ।
गंग जमुन मिलि सिखर† पाइ ॥ ३ ॥
फिरत फिरत तहँ करत कोड़‡ ।
बैठो भवन महँ थकित गोड़§ ॥ ४ ॥
गगन मँडल में लगि समाध ।
ससि औ सूरहिँ‖ राखु बाँध ॥ ५ ॥
लहरि लहरि बहै जोति धार ।
थकित भयो मन मिलि हमार ॥ ६ ॥
कह गुलाल मेरि पुजलि आस ।
चरन कमल महँ लियो है बास ॥ ७ ॥

(१४)

मन मधुकर¶ खेलत बसंत ।
बाजत अनहद गति अनंत ॥ १ ॥
बिगसत कमल भयो गुँजार ।
जोति जगामग कर पसार ॥ २ ॥
निरखि निरखि जिय भयो अनंद ।
बाभ्कल मन तब परल फंद ॥ ३ ॥

* बिस्नु । † चोटी । ‡ आनंद । § पाँव । ‖ दाहिनी बाँईं स्वाँसा । ¶ भँवरा ।

मूल में खँभवा गड़ावल हो, पौढ़यो दस द्वार।
मन मानिक भरै तहवाँ हो, भीतर बाहर उँजियार ॥२॥
सुखमन राग सरावहिँ हो, सहज उठे झनकार।
धुनि सुनि हंसा रातल हो, बिगसि कमल कचनार ॥३॥
मिटलि कामना मन के हो, सब छूटल संसार।
अचल अमर घर पावल हो, फिर नहिँ औतार ॥४॥
संतन मिलि तहँ झूलहिँ हो, अपनी अपनी बार।
कह गुलाल हम झूलब हो, क्या झूलहि संसार ॥ ५ ॥

(५)

सत्त सब्द इक पुरुष हो, सुरति निरति लगि डोरि।
मन मौज करि बैसब* हो, झुलब बहोरि बहोरि ॥ १ ॥
गावहु सखिया सहेलरि हो, आनँद मँगलचार।
चकवा सब्द सुनि ब्याकुल हो, झरत है अधर अधार ॥२
छेक्यो नगर नौद्वरिया हो, पाँच पचीस घर मारि।
तीन देव लै बाँधल हो, अब के करिहै गोहारि ॥ ३ ॥
जीति कायापुर जोगी हो, जम कर नाता तोरि।
जन गुलाल सत बोलहि हो, घर आयल मन मोर ॥४॥

(६)

हिँडोला अगम झूल झुलाय, झुलत अगमहिँ पाय ॥टेक॥
सुन्न सहर में फूल फूल्यो, अनँद मंगल गाय।
चित्त चंचल पगो चरनन, अनत कहिँ नहिँ जाय ॥ १ ॥
नाम चक्खतां† पुलकि लेवे, सोक मोह नसाय।
झुलत झूलत मन बिरागी, ज्ञान घूँघट नाय‡ ॥ २ ॥

---

* बैठेंगे। † स्वाद। ‡ डालना।

पाँच तीन पचीस त्यागो चौथ पद पर जाय ।
तहँ उठत लहरि अनंत आली सखी देत झुलाय ॥ २ ॥
चाँद सूरज खंभ गाड़ो सुरति डोरि लगाय ।
मूल चक्र बिचारि बाँधो सुन्न नग्र उमाय ॥ ३ ॥
प्रेम पटरी बैठि के झूलो गगन में जाय ।
हारि हारि मन हारि बैठो अवर कहिँ नहिँ जाय ॥४॥
तहँ ज्ञान ध्यान न नेम पूजा अगम घर ठहराय ।
तहँ उठत जोति जे प्रेम भरि भरि लपट चहुँ दिसि धाय ॥५
काम क्रोध जे मोह त्यागो जीव रहो समाय ।
संत सभा में जाय बैठो बहुरि इतहिँ न आय ॥ ६ ॥
दसो दिसि में फूल फूलो जोति जगमग पाय ।
सुन्न रूप सरूप सोभा मो पै बरनि न जाय ॥ ७ ॥
प्रेम प्रीति सौं रीति करिकै रहो चरन समाय ।
कह गुलाल जो सरन आयो छोड़ि सबै बलाय ॥ ८ ॥

(२)

हिंडोला झूलत गुरुमुख आज ॥ टेक ॥

चंद सूरज खंभ रोप्यो सुरति डोरि लगाय ।
मंद मंद जो पवढ़* गगनहिँ रह्यो जाय समाय ॥ १ ॥
तहँ होत अनहद नाद धुनि सुनि सहज चित्त लगाय ।
बिगसि कँवल अनंत सोभा भँवर रहे लोभाय ॥ २ ॥
अरध उरध उलटि चाल्यो सुखमना ठहराय ।
गंग जमुना सरसुती मिलि पदुम दरसन पाय ॥ ३ ॥

---

* झूलना ।

फूल अनुभौ फुले भँवर ता में भुले,
फूल नहिं भँवर नहिं गति नियारी ॥ २ ॥
सब्द सोहं उठै जीव ता में बसै,
सुखमना सहज तहँ बहत नाड़ी ॥ ३ ॥
पैठि पाताल असमान को छेदि कै,
ब्रह्म सों ब्रह्म भयो ब्रह्म भारी ॥ ४ ॥
रहत आसक्त तब डंक अनुभौ दियो,
ज्ञान भो पूर नहिं सुरति टारी ॥ ५ ॥
कहैं गुलाल सतगुरु सो पूर है,
छत्र सिर फेरि दियो कर्म जारी ॥ ६ ॥

(११)

गुरु परताप जब साध संगति करै,
फुलै तब ब्रह्म संतोष आया ॥ १ ॥
आपना जाप तें जाप अजपा जपो,
चाँद अरु सूर को बाँधि लाया ॥ २ ॥
सहज नाड़ो बहै सब्द अनुभौ गहै,
सुरति औ निरति मिलि नाम गाया ॥ ३
नैन बिनु सूझिया पिंड बिनु जूझिया,
जीति के काल अनहद बजाया ॥ ४ ॥
परो आ डंक चहुँ ओर दसहूँ दिसा,
गैब का ज्ञान अदल चलाया ॥ ५ ॥
कहैं गुलाल सो साफ साहब हुआ,
आपना काज आपुहिं बनाया ॥ ६ ॥

* मारी डंड । † एक राग का नाम ।

(१५)

नाम रंग होली खेलो जाई, फिर पाछे पछिताई ॥ टेक ॥
यहि तन फागु मचो परमारथ, अवधि बदो* दिन ढाई १
काल अगिन जब मस्तक जरि है, छूटो सब चतुराई २
अगर गुलाल कुमकुमा केसरि, चेतन अबीर उड़ाई ३
इँगल पिँगल दोउ भरत उर्ध मुख, छिरकत प्रभुहिँ बनाई ४
दुइ बिधि फाग बनो या जग में, जिन जैसो मन भाई ५
कह गुलाल यह अगम फागु है, बिन सतगुरु नहिँ पाई ६

(१६)

अधर रँग फगुआ मन खेलो, रचि सखि दुनौं सँग मेलो ॥टेक॥
मन बैराग चित्त चोर जो छैके, नेह निरंतर लाई ।
पाँच पचीस औ तीन अवासी, पकरि गगन ले जाई ॥१॥
सुन्न नगर में आसन माड़ो, अद्भुत भेष बनाई ।
ब्रह्मा बिस्नु सीव तहँ नाहीं, फाग बरनि नहिं जाई ॥२॥
नादहिं बिंदहिं गाँठि परो है, ज्ञान कि जोति समाई ।
उठत लहरि अनंत राग तहँ, अनुभौ चाचरि गाई ॥३॥
आवागवन रहित जबहीं भयो, जम सिर डंक बजाई ।
कह गुलाल काल जब अइहै, मरिहै हमरी बलाई ॥४॥

(१७)

काया बन खेलहु मगन फाग । अधर महल घर रंग लाग ॥१॥
चित चंचल जब संग लाग। पाँच पचीस सोउ न जाग ॥२॥
सत सत लागल सहज आग। खेलत खेलत तब फरल भाग ३।

* मुक़र्रर ।

समय लगो हरि नाम हो, होरी आई ।
काया नगर में फाग बनायो, तिर बिधि रंग लगाई ॥१॥
पाँच सखी मिलि रस रचो है, अगम अबीर उड़ाई ।
सुखमन भरि पिचुकारी डारल, छिरकत प्रभुहिं बनाई ॥२॥
दसो दिसा में चाचरि ऊठत, मारू प्रेम बजाई ।
लागी लगन टरत नहिं टारी, सुधि बुधि सबहिं भुलाई ॥३॥
लोक बेद न्योछावरि डारों, ममता मैल बहाई ।
कह गुलाल पिय साथ सोहागिनि, घरहीं होरी पाई ॥४॥

---

* तब तक । † गये ।

(८)

प्रेम नेम चाचरि रच्यो । पुलकि पुलकि प्रभु पास ॥टेक॥
चाँद सूर उलटे चले, उड़त अबीर अकास ॥ १ ॥
इँगल पिंगल खेलन लग्यो, सुखमन सहज निवास ॥ २ ॥
तिरबेनी फगुवा बन्यो । मानिक झरि चहुँ पास ॥ ३ ॥
कुंज कुंज निरती पर्यो, चंद्र बदन प्रभु पास ॥ ४ ॥
कह गुलाल आनँद भयो, पूजलि मन की आस ॥ ५ ॥

(९)

निसु बासर होरी खेलै हो, सहज सुन्न धुनि लाई ॥टेक॥
बिगसि कमल चाचरी रच्यो है, दुन्द उठ्यो नभ छाई ।
प्रेम भरी पिचुकारी छूटत, तत्त अबीर उड़ाई ॥ १ ॥
बिनु बाजे तहँ बाजा उठतु है, आनँद नाहिं समाई ।
कै बैराग सखी सब गावहिं, लज्जा जाल लजाई ॥ २ ॥
संतन मिलि तहँ होरी खेलो, नौबत डंक बजाई ।
फगुवा दान मिल्यो मन पूरन, जन गुलाल बलि जाई ॥३॥

(१०)

अलख पुरुष सँग खेलो होरी, गुरु नाम के डंक बजोरी ॥टेक॥
ब्रह्मा बिस्नु सिव खेल खेलावहिं, सब्द के फाग रचो री ।
आतम नारि सखी ले गवनहिं, सत्त के गाँठि दियो री ॥१
अगम अबीर उड़त दस हूँ दिसि, प्रेम पिचुकारी भिंगो री ।
मनमोहन छबि रास रच्यो है, सुखमन निरत करो री ॥२
लागी लगन टरत नहिं टारे, काहू कोउ न बुझोरी ।
कह गुलाल हम प्यारो पिया सँग, अनुभौ फाग बनो री॥३॥

(४)

मूल कँवल चित लावल, सुरति चढ़ल असमान ।
जगमग जोति जगावल, जम कर मरदल मान ॥ १ ॥

---

* अभी तक (स्त्री) थी मगर मालिक के साथ ब्याह होने से रा हो जाऊँगी। † सुंदर।

पाँच पचीस धरि बाँधल, तीन देव निरवारि ।
बिगसित कँवल मन भावल, पावल देव मुरारि ॥२॥
तन मन सर्वस वारल, आनँद केलि हुलास ।
हरखि हरखि गुन गावल, प्रभु अपनो लियो पास ॥३॥
सुखमन सेज बिछावल, पूजलि आस हमार ।
जन गुलाल पिया बिलसहिँ, रोम रोम बलिहार ॥४॥

(५)

आजु मेरे मंगल अनँद बधावर, आरति करवौँ ॥टेक॥
सहज के थार सत्त की बाती, प्रेम के अच्छत भरवौँ ॥१॥
सुन्न सिखर पर आरत होवै, तिरबेनी तट धरवौँ ॥२॥
गगन मँडल में सखि सब गावहिँ, भाँवर दै सुर भरवौँ ॥३॥
सिव के घरे सक्ति जब आई, गुन औगुन बीचरवौँ ॥४॥
ऐसी आरति जो नर गावै, बहुरि न भवजल डरवौँ ॥५॥

आरती

(१)

मन में जानिये हो, सत्त सब्द चित लाय ।
पूरन आरति करि जेहि आवै, ता के गुरू सहाय ॥ १ ॥
बिन गुरु ध्यान ज्ञान का करिये, अनतहिँ जाय बहाय ।
सहज समाधि हृदय जिन लायो, जारो बिषय बलाय ॥२॥
सुन्न सिखर जिन आसन माँड़ो, तिरबेनी तट जाय ।
उड़ो हंस गगनो चढ़ि धावो, आनँद जोति जगाय ॥३॥
गावँ न ठावँ न नावँ न देवा, सेवा सत्त लगाय ।
पूरन ब्रह्म अमर अबिनासी, सहजहिँ रहो समाय ॥४॥

15:13

क्या कहिये कहते न बने कछु,जो कहिये कहतेहि लजैये ॥१॥
जो कहूँ है सब मैं वह एक तु, सो कहँ कैसो है आँखि दिखैये।
जो कहूँ रूप न रेख दिसै कछु,तो सब झूँठ कि मानि[१]हि कैये॥
जो कहूँ सुंदर नैननि माँझ तु, नैन रु बैन गये पुनि हैये।
क्या कहिये कहते न बनै कछु,जो कहिये कहतेहि लजैये ॥२॥
होत बिनोद जितो अभिअंतर,सो सुखआपमैं आपहि पैये।
बाहिर कूँ उमँग्यो पुनि आवत, कंठ तैं सुंदर फेर पठैये॥
स्वाद निबेर निबेर्यो न जात सु, मानहुँ गुड़ गूँगे निन खैये।
क्या कहिये कहते न बनै कछु,जो कहिये कहतेहि लजैये ॥३॥
ब्योमको ब्योमअनंत अखंडित,आदि न अंत सु मध्य कहाँ है
को परमान करै परिपूरण, द्वैत अद्वैत कछू न जहाँ है॥
कारण कारज भेद नहीं कछु,आपमैं आपहि आप तहाँ है।
सुंदर दीसत सुंदर माहिं सु, सुंदरता कहि कौन उहाँ है ॥४॥

॥ प्रश्नोत्तर

एक कि दोइ ? न एक न दोइ।
उही कि इही ? न उही न इही है॥
सून्य कि स्थूल ? न सून्य न स्थूल।
जिही कि तिही ? न जिही न तिही है॥
मूल कि डाल ? न मूल न डाल।
वही कि मँही ? न वही न मँही है॥
जीव कि ब्रह्म ? न जीव न ब्रह्म।
तु है कि नहीं ? कछु है न नहीं है ॥ ५ ॥

(१) प्रकाश। (२) अर्थ।

(1 of 175)

Favorite Share Flag

Gulaal Saahab Kii Baanii

by Unknown

Publication date 1910
Topics C-DAC
Collection digitallibraryindia; JaiGyan
Language Hindi
Item Size 181.7M

कह गुलाल सुनु ज्ञानी, तिन राम नाम जानी ॥६२॥

* अच्छी वानी। † तज़ुत। ‡ या। § ढंग। ‖ मौज ही मौज में घोर (अस्थिर) है।

मंगल

(१)

गुन जानी गुनवंत नारि, कंत मन भाइल हो।
सुभ दिन लगन सोधाय, सबहिं मन लाइल हो ॥ १ ॥
अर्ध उर्ध के मध्य, तो चौक पुराइल हो।
मुक्ता भरि भरि थाल, तो आरति बनाइल हो ॥ २ ॥
गंग जमुन के घाट, तो कलस धराइल हो,
मानिक बरे दिन रात, तो चँवर डुलाइल हो ॥ ३ ॥
चौमुख दीपक बारि, तो माँड़ो छाइल हो।
निर्झरि झरो तहँ लाय, अमृत फल पाइल हो ॥ ४ ॥
गावहिँ सखियाँ सहेलरि, दुलहिन भाइल हो।
दास गुलाल सोहागिनि, प्रभु सँग पाइल हो ॥ ५ ॥

(२)

अबिनासी दुलहा हमारा हो ॥
जीतो जोग भोग सब त्यागो, भवसागर सौं न्यारा हो ॥१॥
किरपा कीन्हो सतगुरु दीन्हो, उलटा चौक पसारा हो ॥२॥
तन मन धन न्योछावरि डारोँ, कंत मिलो प्रभु यारा हो ॥३॥
सुखमन सेज निरंतर डासोँ*, सोहं चँवर सुढारा† हो ॥४॥
ताही पलँग मोर पिय बैसहिँ, गावौँ मंगलचारा हो ॥५॥
अगम अपार अनुभव अनमूरत, लोक वेद से पारा हो ॥६॥

* बिछाऊँ। † सुंदर रीत से हिलाया।

॥ चुने हुए दोहे ॥

सत्त सब्द गुन गायऊ, संतन प्रान अधार ।
अगम अगोचर दूरि है, कोऊ न पावत पार ॥१॥
उठ तरंग दसहूं दिसा, भाँति भाँति के राग ।
बिन पग नाच नचायऊ, बिनु रसना गुन गाय ॥२॥
ज्ञान ध्यान तहवाँ नहीं, सहज सरूप अपार ।
जन गुलाल दिल सौं मिलो, सोई कंत हमार ॥३॥
बिन जल कँवला बिगसेऊ, बिना भँवर गुंजार ।
नाभि कँवल जोती बरै, तिरबेनी उँजियार ॥४॥
सुखमन सेज बिछायऊ, पवढ़हिं प्रभू हमार ।
सुरति निरति ले जायऊ, दसो दिसा के द्वार ॥५॥
पुलकि पुलकि मन लायऊ, आवा गवन निवार ।
जन गुलाल तहँ भायऊ, जम का करिहै हमार ॥६॥
मन पवनहिं जीतो जबै, महसुन* माहिं समाय ।
सुखमन जोति सँवारेऊ, बरि बरि होत प्रकास ॥७॥
ओअंकार समाइलो, जोति सरूपी नाम ।
सेत सुहावन जगमगर, जीव मिलल सतनाम ॥८॥
जिन यह ब्रह्म बिचारल, सोई गुरू हमार ।
जन गुलाल सत बोलहो, झूठ फिरहि संसार ॥९॥
दृष्टि पदारथ फरल सोइ, सहज के परखि घमार ।
अति अद्भुत तहँ देखल हो, पुलकि पुलकि बलिहार ॥१
बरनत बरनि न आवई, कोटि चंद छबि वार ।
दसव दिसा पूरब सोई, संत सदा रखवार ॥११॥

* महासुन्न ।

१४२ मिश्रत

बाद* ॥

नर भूले करि पुन्न पाप, जन्म जन्म होवै संताप ॥

* मूरख, दुष्ट। † निस्फल। ‡ झगड़ा।

पाँच पचीस तिन* घरहिं लाग, निस बासर जरै अपनि आग ॥ ३ ॥

तीरथ ब्रत करै देव मानि, सबहिं भुले करि कुल की कानि ४

उपजत बिनसत जन्म खोय, लाज भरो चलो मूँह गोय† ५

काहू काहु न खोजत पाय, गरब भुलो सब चलो गँवाय ६

कह गुलाल नहिं साँच आय, तातें धै धै काल खाय ॥७॥

॥ शब्द ९ ॥

काया नगर सोहावन जहँ बसैं आलम राम ॥१॥

मन पवन तहँ छाइब कठिन करेरो‡ काम ॥२॥

सुर नर नाग नचावहिं भोर होय भा साम ॥३॥

करम धरम देत भाँवरि फिरत रहे आठो जाम ॥४॥

ऐसो नगर कस भाइब जम सिर देत दमाम§ ॥५॥

कह गुलाल हम त्यागल हर दम बोलत राम ॥६॥

॥ शब्द १० ॥

हे मन गगन गरजि धुन भारी।

लेके पवन भवन मन लावो थकित भई नौ नारी।

सुखमन सेज जे सुरति सोहागिनि निर्गुन कंत पियारी ॥१॥

निसु बासर हर दम दम निरखत पूजलि आस हमारी ॥२॥

जासु नाम सुर नर मुनि ध्यावहिं अगम बेद उचारी।

सोइ प्रभुजी ने आनि कृपा कियो पल पल लेत करारी ॥ ३ ॥

* तीन। † मुँह छिपा कर। ‡ कड़ा। § दमामा=डंका।

(११)

राम राम राम राम आरती हमारो, दुनिया है सब
देवान देव पूजे भारी ॥ टेक ॥

सतगुरु जब दियो करार, स्रवन सुन्यो दै बिचार ।
याही खिदिक जिव हमार, नेम बरत धारी ॥ १ ॥
जोग जुगत मन हमार, साध रहे पवन मार ।
काया थार जोति भरि के, त्रिकुटी ले वारी ॥ २ ॥
उलमुनी घन गरजि जोर, सुखमन के करि झकोर ।
बंक नाल मेरु डंड, अलख पुरुष भारी ॥ ३ ॥
सेत फलि बनी अनंद, प्रान प्रभु को करत कंद ।
जीतो जोग रोग सोग, करम भरम डारी ॥ ४ ॥

* मालिक के निर्गुन नाम की धुन गाजने लगे । † कुरान ।

अति अथाह नाहिं थाह, परस भयो गुरु कि बाँह* ।
नाहिं आदि अंत मद्ध, एक ही निहारी ॥ ५ ॥
कह गुलाल सुनो यार, आरति पूरन हमार ।
राज करौं दसौ दिसा, छत्तर सिर धारी ॥ ६ ॥

(१२)

मन माना मैं मनहिं जान, आरत सो ज्ञानी ॥ टेक ॥
द्वादस में सुरति सान, उठत तत्त बानी ॥ १ ॥
गल गल जीव ब्रह्म मिलो, अलख पुरुष भारी ॥ २ ॥
बेद भेद सब खुवार, पत्थल जल मानी ॥ ३ ॥
राम नाम हेतु नाहिं, पसु समान जानी ॥४॥
आपु अपन चिन्हत नाहिं, फिरत भुलानी ॥ ५ ॥
कह गुलाल सत फकीर, दुनिया बौरानी ॥ ६ ॥

(१३)

लागत मोहिं पियारा, आरति लागत मोहि पियारा ॥टेक॥
सुखमन के घर आरति माँड़ो, रबि ससि दूनौं वारा ॥१॥
तिरबेनी तिर आरति बारल, भाँवरि देत उतारा ॥२॥
गगन मँडल में आरति गावल, मुक्ता भरि भरि थारा ॥३॥
दसौ दिसा में आरति पूरन, धन सतगुरु बलिहारा ॥४॥
सिव सक्ती जब गाँठि परी है, देखल आपु बिचारा ॥५॥
कह गुलाल आरति हम पावल, फगुआ फरल लिलारा ॥६॥

* दंगल ।

जहँ उठै सोहंगम सब्द सब्द के भीतर पैठा ॥
नाना उठैं तरंग रंग कुछ कहा न जाई।
चाँद सुरज छिपि गये सुषमना सेज बिछाई ॥
छूटि गया तन येह नेह उनहीं से लागी।
दसवाँ द्वार[2] फोड़ि जोति बाहर ह्वै जागी ॥
पलटू धारा[1] तेल की मेलत ह्वै गया भोर।
बंसी बाजी गगन में मगन भया मन मोर ॥

(भाग १, कुंडली १७०)

अरे सखि निरखि लेहु, आकास हिंडोलवा हो ॥
सुभग सुहावन बादर हो, हरि हरि परैं बूँदि।
भीतर के दर[2] खोलहु हो, बाहर के लेहु मूँदि ॥
चमकि चमकि उठै बिजुली हो, बादर दौरा जाय।
कहूँ लाल कहुँ पीयर हो, सखि सबद उठै बहराय ॥
ज्यों ज्यों पवन झकोरहि हो, त्यों त्यों घटा गंभीर।
पवन परै तब बरसै हो, सखि गगन से निरमल नीर ॥
ससि औ भान तारागन हो, निरमल भयो अकास।
पलटुदास हम झूलहि हो, सखि अपने पिय के पास ॥

(भाग ३, शब्द ११२)

(फुटनोट पृष्ठ १५२ का शेष)

आवाज और शब्द के प्रकाश के अद्भुत अनुभव का वर्णन अपने प्रसिद्ध शब्द 'महरम होय सो जानै साधो, ऐसा देस हमारा' में इस प्रकार बयान किया है :

महरम होय सो जानै साधो, ऐसा देस हमारा ॥
बेद कतेब पार नहिं पावत, कहन सुनन से न्यारा।
जाति बरन कुल किरिया नाहीं, सन्ध्या नेम अचारा ॥
बिन जल बूँद परत जहँ भारी, नहिं मीठा नहिं खारा।
सुन्न महल में नौबत बाजै, किंगरी बीन सितारा ॥
बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उजियारा।
बिना सीप जहँ मोती उपजै, बिन सुर सब्द उचारा ॥
जोति लजाय ब्रह्म जहँ दरसै, आगे अगम अपारा।
कहै कबीर वह रहनि हमारी, बूझै गुरमुख प्यारा ॥

(सन्तो की बानी, २३५)

१. तेल की धार के लिये देखें : पृ० १५७, २. द्वार

[1]बिंद करे जो छार नाद के घर में भोगी ॥
जीते जी मरि जाय मुए पर फिर उठि जागै ।
ऐसा जो कोइ होइ सोई इन बातन लागै ॥
पुरजे पुरजे उड़ै अन्न बिनु वस्तर पानी ।
ऐसे पर ठहराय सोई महबूब[2] बखानी ॥
पलटू आपु लुटावही काला मुँह जब होय ।
आसिक का घर दूर है पहुँचै विरला कोय ॥
(भाग १, कुंडली ७२)

*पहिले फना फिर सेख होवै,
कदम मुरसिद को पाइ के जी ।
तब फना फिल्लाह होवै,
मारफत मकान ठहराइ के जी ॥
मुरसिद मुरीद पर मिहर करै,
लाहूत को देइ पहुँचाइ के जी ।
पलटू हू हू आवाज आवै,
रूह खास दीदन उहां जाइ के जी ॥
(भाग २, झूलना ३८)

---

१. जो काम को बस में कर ले और अन्दर अनहद शब्द के नाद का रस भोगे,
२ प्रिय, प्रीतम ।

*फ़नाह्-फ़ि-शेख (गुरु में लीन होकर) बक़ाअ (अमर जीवन) प्राप्त करना सूफ़ियों का प्रसिद्ध सिद्धान्त है। पलटू साहिब वर्णन कर रहे हैं कि साधक अपनी सुरत को सतगुरु में लीन करके आन्तरिक रूहानी मंडल पार करने शुरू कर देता है। नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत को पार करने से उसको हक़, सच या परमात्मा के साक्षात दर्शन हो जाते हैं। दादू साहिब ने इसको 'खुदी खोइ आपना पट चीन्हा तो हो गिआ दीदम दीदा' कहा है। पलटू साहिब इसको 'रूह खास दीदन उहां जाइ के जी' का नाम देते हैं। आपके कहने का भाव है कि जीते-जी मरने से ही आन्तरिक रूहानी सफ़र तय हो सकता है और जीते-जी मरने से ही परमेश्वर की प्राप्ति हो सकती है।

जिन पावल तिन गावल, अवर सकल भ्रम छार ।
कहै गुलाल मनोरवा*, पूरन आस हमार ॥१२॥
प्रेम कै परल हिंडोलवा, मानिक बरल लिलार ।
कहैं गुलाल मनोरवा, पुजवल आस हमार ॥१३॥
अनुभौ फाग मनोरवा, दहुँ दिसि परलि धमार ।
काया नगर में रँग रचो, प्रान नाथ बलिहार ॥१४॥
बिनु बाजे धुनि गाजई, अधरहिं अगम अपार ।
प्रान तबहिं उठि गवनेऊ, बहुरि नाहिं औतार ॥१५॥
प्रेम पगल मन रातल, आनँद मंगलचार ।
तीन लोक के ऊपरे, मिललहिं कंत हमार ॥१६॥
जोग जग्य जप तप नहीं, दुख सुख नाहिं संताप ।
घटत बढ़त नाहिं छीजई, तहवाँ पुन्न न पाप ॥१७॥
संत सभा में बैठ के, आनँद उजल प्रकास ।
जन गुलाल पिय बिलसहीं†, पूजलि मन कै आस ॥१८॥
बंक नाल चढ़ि के गयो, आयो प्रभु दरबार ।
जगमग जोति जगन लगी, कोटि चंद छबि वार ॥१९॥
मुक्ता झरि बरषन लगो, दसो दिसा झनकार ।
जन गुलाल तन मन दियो, पूरी खेप हमार ॥२०॥
मानिक भवन उदित तहाँ, भाँवर दै दै गाय ।
जन गुलाल हरखित भयो, कौतुक कह्यो न जाय ॥२१॥

---

* फाग के एक राग का नाम। † विलास करता है।

बेलवेडियर प्रेस, कटरा, प्रयाग की पुस्तकें

संतबानी पुस्तकमाला

(भाग २, अरिल ९२)

[1]अष्ट दल कँवल के पात को तोरि कै,
कली पर भँवर तब गगन गाजा।
सुन्न में धजा[2] को बाँधि आगे चले,
जाय निस्सान[2] अनहद्द बाजा॥
चाँद औ सूर दोउ उलटि पाताल गे,
उनमुनी ध्यान तहँ पवन साजा।
सिंध परि कूप में गंग पच्छिम वहै,
[3]सेत पहार पर भँवर भाजा॥
सहसदल कँवल हंस मोती चुगै,
चंदन के गाछ पर कमठ लागा।
अधर दरियाव[4] में लहर पानी बिना,
[5]भँव की दृष्टि से तत्त माँजा॥
(भाग २. रेखता ७४)

पच्छिउँ गंगा वहै पानी है जोर का।
बीच महँ इक कुंड मुरेरा तोर का॥

१. पहला कहानी मडल, २. झण्डा, ३. सफेद पहाड़, ४. आन्तरिक नदी में, ५. दिव्य दृष्टि से सार-वस्तु प्राप्त की।

उलटी वहै बयार नाव मुरकाय दै।
अरे हाँ पलटू उतरे येहि के पार तो सूधी जाय दै॥
(भाग २, अरिल १०५)

अरध उरध के बीच बसा इक सहर है।
बीच सहर में बाग बाग में लहर है॥
मध्य अकास में छूटै फुहारा पवन का।
अरे हाँ पलटू अंदर धँसि के देखु तमासा भवन का॥
(भाग २, अरिल ९९)

अर्ध उर्ध के बीच हिंडोला चंग[1] है।
झूल संत सुजान सजन से रंग है॥
सुरत सब्द कै खेल सहर कै नाडवी[2]।
अरे हाँ पलटू अर्ध उर्ध के बीच बड़ी है साहिबी॥
(भाग २, अरिल ९६)

आदि अंत ठिकानी बातें, कहीं आपनी देखी हो॥
राह अजान पंथ को पावै, त्रिकुटी घाट उतारा हो।
अविगत नगर जाय जहँ पहुँचे, [3]मारग विहँग विचारा हो॥
बायें चन्द सुर है दहिने, सुखमन सुरति समानी हो।
सोहं सोहं सुन में बोलै, वही सब्द की खानी हो॥
तुरिया बैठा जाग्रत जोगी, लगी उनमुनी तारी[4] हो।
[5]इँगला माहीं सहज समानी, पिंगला पवन अहारी हो॥
हद पर बैठे सतगुरु बोलैं, बेहद बोलै चेला हो।
अजपा जाप[6] छूटी है दुतिया, अनुभव भया अकेला हो॥

१. अच्छा, सुन्दर, २. गायन, ३. आत्मा की चार चालें मानी गई हैं : चींटी मार्ग, मकड़ी मार्ग, मछली मार्ग और विहंगम या पक्षी मार्ग। पक्षी जब चाहे उड़ान भर कर वृक्ष या पहाड़ पर जा पहुंचता है। सन्तों की भी यही गति होती है कि आँखें बन्द करते ही सचखण्ड पहुंच जाते हैं, ४. समाधि, ५. इंगला, पिंगला=इड़ा-पिंगला अर्थात् मस्तक में बायीं और दायीं सूक्ष्म नाड़ी. ६. सन्तों ने अपने आप अन्दर हो रहे अनहद शब्द को अजपा-जाप कहा है।

सहसदल कँवल में भँवर गुंजार है,
कँवल के बीच में सेत कल्ली ॥
इड़ा औ पिंगला सुखमना घाट है,
सुखमना घाट में लगी नल्ली ।
सुन्न सागर भरा सत्त के नाम से,
तेहि के बीच में सुरति हल्ली ॥
अछै इक वृच्छ है तेहि के डारि में,
पड़ा हिंडोलना प्रेम झुल्ली ।
अमी रस चुवै सोइ पियत इक नागिनी,
नागिनी मारि कै बुंद रल्ली ॥
बंक के नाल पर तहाँ इक ऊँच है,
तेहुँ के सीस चढ़ि जोति बल्ली ।
जोति के बीच में तहाँ इक राह है,
राह के बीच में नाद चल्ली ॥
नाद के बीच में तहाँ इक रूप है,
रूप को देखि कै रहन सल्ली[1] ।
दास पलटू कहै होय आरूढ़ जब,
संत को सहज समाधि भल्ली ॥

(भाग २, रेख्ता ७१)

रन का चढ़ना सहज है मुसकिल करना जोग ॥
मुसकिल करना जोग चित्त को उलटि लगावै ।
विषय वासना तजै प्रान ब्रह्मंड चढ़ावै ॥
साधै वायू प्रान कुण्डली करे उपपना[2] ।
अष्ट कँवल दल उलटि कँवल दल द्वादस नखना ॥
इँगला पिंगला सोधि बंक के नाल चढ़ावै ।
चार कला को तोड़ि चक्र पट जाय खिधावै ॥

१. शान्ति, २ कुण्डली नाड़ी का मुंह ऊपर करे।

पलटू जो संजम करै करे रूप से भोग ।
रन का चढ़ना सहज है मुसकिल करना जोग ॥

(भाग १, कुंडली २४६)

जब से भया मिलाप मिले पर ना अलगानी ॥
प्रीत पुरानी रही लिया हम ने पहिचानी ।
मिली जोत में जोत सुहागिन सुरत समानी ॥
पलटू सब्द के सुनत ही घूंघट डारा खोल ।
मेरे तन तन लग गई पिय की मीठी बोल ॥

(भाग १, कुंडली ५९)

जहाँ न जप तप नेम ज्ञान ना ध्यान है ॥
पानी पवन अकास नाहि ससि भान है ।
जोग जुक्ति ना सुरति नाहि दिन रात है ॥
अरे हाँ पलटू मन बुधि चित ना जाय तहाँ की बात है ॥

(भाग २, अरिल १०७)

जोग ना जुगत ना प्रानायाम ना,
सुन्न में ध्यान ना धरत ध्यानी ।
नाहि कछु ज्ञान है नाहि बैराग है,
जाय ना सकै तहँ पवन पानी ॥
इड़ा ना पिंगला नाहि कछु साधना,
सुरत ना सबद ना उठत बानी ।
झिलमिली जोति ना नाहि है उनमुनी,
चाँद ना सूर ना ब्रह्म-ज्ञानी ॥
सुषमना नाहि कछु पाँच मुद्रा नहीं,
चित्त ना बुद्धि ना तत्त छानी ।
मोती ना हंस ना कँवल ना भँवर ना,
हद्द अनहद्द दोउ नाहि मानी ॥
गिरा ना लंबिका बंक तुरिया नहीं,
अजपा जाप नहि तीन तानी ।
सहज समाधि के परे की बात है,
दास पलटू कोई संत जानी ॥

(भाग ३, रेखता ७६)

सुमिरन बिधि

॥ दोहा ॥

पांच बरस जप नाभि सूं रग रग बोलै राम।[1]
देह जीव निज भक्त ही पहुंचै हरि के धाम ॥२०॥
त्रिकुटी में जप राम कूं जहां उजाला होय।
स्वांसा माहीं जपे ते दुविधा रहै न कोय ॥२१॥

(१) पक्का है।

गगन मंडल में जाप करि जित है दसवां द्वार।
चरनदास यों कहत हैं सो पहुचै हरिद्वार ॥२२॥
नाम उठाकर नाभि सूं गगन माहिं ले जाय।
जहां होय परकास हीं सुकदेव दिया बताय ॥२३॥
मन हीं मन में जाप करि दरपन उज्जल होय।
दरसन होवै राम का तिमिर जायं सब खोय ॥२४॥
सुरत माहिं जो जप करै तन सूं न्यारा जौन।
मिलै सच्चिदानंद में गहे रहै जो मौन ॥२५॥
सकल सिरोमनि नाम है सब धरमन के माहिं।
अनन्य भक्त वह जानिये सुमिरन भूलै नाहिं ॥२६॥
आनि धरम मानै नहीं आनि देव नहिं ध्यान।
ऐसे भक्त अनन्य को कोई पावै जान ॥२७॥
राम नाम मुख सूं कहौ राम नाम सुनि कान।
रोम रोम हरि को रटौ ऐसी गहिये बान[1] ॥२८॥
बिद्या माहीं बाद है तप के माहीं ऋद्धि।
राम नाम में मुक्ति है जोग माहिं यों सिद्धि ॥२९॥
राम नाम में ये सबै रिद्धि सिद्धि औ मोछ।
ऐसा इष्ट संभारिये चरनदास कहि सोछ[2] ॥३०॥
जाका कीया सब बना सात दीप नौ खंड।
चरनदास यों कहत हैं तीन लोक ब्रह्मंड ॥३१॥
तो[3] कारन सब कुछ किया नाना विधि सुख दीन्ह।
तैं वाकूं जाना नहीं नाम न कबहूं लीन्ह ॥३२॥
अबके औसर फिर बन्यो पाई मानुख देहि।
चरनदास यों कहत हैं राम नाम ही लेहि ॥३३॥

(१) आदत। (२) विचार के। (३) तेरे।

॥ अष्टपदी ॥

तन मथने को जतन कहूं अब जानिये ।
ज्यों निकसै तत सार बिलोवन ठानिये ॥
पहिले चक्कर जानि मूल द्वारे बिषै ।
जित ही पावँ की एड़ो सूं बंध दे रेखै ॥
मूल[1] चक्र सों खौंचि अपान चलाइये ॥
दूजे चक्कर पास जु आन फिराइये ॥
दहिनी ओर सों तीन लपेटे दीजिये ।
तीजे चक्कर माहिं गमन फिर कीजिये ॥
चौथे चक्कर माहिं पवन जो लाइये ।
वहुरो पँचवें चक्र में जिव पहुँचाइये ॥
षष्टम चक्कर माहिं जु ताहि चढ़ाइये ।
सो त्रिकुटी के मध्य तहां ठहराइये ॥

(१) गुदा ।

रोके त्रिकुटी माहिं आनि कै बायु कूं ।
षट चक्कर कूं छेदि चढ़ै जब धाय कूं ॥
अपान बायु चढ़ि जाय वही अस्थान है ।
प्रान बायु ह्वै जाय साधु कोइ जान है ॥
रोकै प्रानहिं बायु तिरकुटी मध्यहीं ।
करै ओं का ध्यान सीस में गद्य[1] हीं ॥
यह तो ऊंचा ध्यान जु अधिक अनूपहीं ।
चरनहिं दासा होय जु ब्रह्म सरूपहीं ॥

॥ दोहा ॥

सुन्न संवत द्वादस है अठवाँ, चार तत्व से न्यारा हो।
पलटू यह टकसारी सिक्का, परखैगा कोइ न्यारा हो॥

(भाग १, शब्द ८०)

सुन्न समाधि के बीच ध्यान को लावना।
सुखमनि[1] के रे घाट पवन ले आवना॥
टूटे ना वह डोरि बाट आरूढ़[2] है।
अरे हाँ पलटू ऐसे को परनाम अवस्था गूढ़ है॥

(भाग २, अरिल १००)

जगमग जोति जगाव झिरिझिरी बीच में॥
कमठ दृष्टि से मारि गिरौ जनि कीच में॥
सोहं सोहं सब्द रैन दिन बोलता।
अरे हाँ पलटू जब देखो गरकाव[3] पलक नहिं खोलता॥

(भाग २, अरिल १०१)

बिना जंतरी जन्त्र बाजता गगन में।
बिसरि गया संसार उसी के लगन में॥
जो कोई जनमी होय हमारे लगन की।
अरे हाँ पलटू सो प्यारी लै जानि बात यह सजन की॥

(भाग २, अरिल १०२)

तिरबेनी के घाट नाव को आनि कै।
सुखमनि घाट थहाय चलावो जानि कै॥
असी संगम के बीच पहारो फोरि कै।
अरे हाँ पलटू गुन[4] को खैंचु सिताब काम है जोर कै॥

(भाग २, अरिल १०६)

तिरकुटी घाट को उतरु सम्हारि कै
सुखमना खैंचु गुन बाँधि खूँटा।

---

१. सुषमना को पार कर आत्मा ऊपर के मंडलों में जाती है. २. यह मार्ग अति सुन्दर है. ३. मस्त. ४. रस्सी।

शब्द १३

॥ राग करखा ॥

पिंड ब्रह्मंड की सैल गुरु गम करी।
सरसिया जुक्ति सूं अलख राई।
सहज ही सहज पग धरा जब अगम[1] को।
दसौ परकार झागड़[2] बजाई ॥१॥
खोलि कपाट अरु बज्र द्वारे चढ़ो।
कला के भेद कुंजी लगाई।
पहिले महल पर जाय आसन किया।
दूसरे महल की खबर पाई ॥२॥
तीसरे महल पर सुरति जा बस रही।
महल चौथे दुही अमी गाई[3] ॥
पांचवें महल को साध कोइ पाई है।
महल छटवां दिया गुरु बताइ ॥३॥

(१) अगम। (२) बाजा। (३) गाय।

सातवें महल पर कोटि सूरज दिपैं।
आठवें महल अवगति गोसाईं ॥
रूप अद्‌भुत तहां देखि अचरज जहां।
देखिया दरस तब बिपति जाई ॥४॥
सुकदेव की सहा सों धारना गहा सो।
आपने पीव के भवन आई ॥
चरनदास आपा दिया प्रेम प्याला पिया।
सीस सदके किया पूजि पाईं ॥५॥

शब्द १४

॥ राग जैजैवन्ती ॥

ऐसी जो जुगत जानै सोई जोगी न्यारा ॥ टेक ॥
आसन जो सिद्ध करै त्रिकुटी में ध्यान धरै।
बिना तेल दिया बरै जोति हूँ उजारा ॥१॥
संजम संभाल साधै मूल द्वार बंद बांधै।
संखिनी उलटि साधै कामदेव जारा ॥२॥
प्रान बायु हिये माहीं खैंचि कै अपान लाहीं।
दोऊ नीके मिलि जाहीं ऐसा खेल धारा ॥३॥
कुम्भक अथक राखै अनहद की ओर ताकै।
सुखमन पैठि नाकै आगे जो बिचारा ॥४॥
खोलि कै कपाट सिरा कोऊ चढ़ै सूर बीरा।
काम धेनु जावै तीरा अमी को उतारा ॥५॥
उन्मुनी जाय लागै निज ग्रह माहिं जागै।
जनम मरन भागै छूटै जम भारा ॥६॥
गुरु सुकदेव कहैं करनी यहि बिधि लहै।
चरनदास होय रहै आप को संभारा ॥७॥

20:25
2015.347312.Charan-Da...

करते अनहद ध्यान के ब्रह्म रूप हो जाय।
चरनदास यों कहत हैं बाधा सब मिटि जाय ॥१॥
गगन मध्य जो कंवल है बाजत अनहद तूर।
दल हजार को कमल है पहुंचे गुरु मत सूर ॥२॥
गगन मंडल के कमल में सतगुरु ध्यान निहार।
चरनदास सुकदेव परस के मेटै सकल बिकार ॥३॥

शब्द ३

॥ छप्पै ॥

नौ नाड़ी को खैंचि पवन लै उर में दीजे।
बज्जर ताला लाय द्वार नौ बंद करीजे ॥१॥
तीनौं बंद लगाय अस्थिर अनहद आराधे।
सुरति निरति का काम राह चल गगन अगाधे ॥२॥
सुन्न सिखर चढ़ि रहै दृढ़ जहां आसन करै।
भन[1] चरनदास ताड़ी लगै सो राम दरस कलिमल हरै ॥३॥

शब्द ४

॥ छप्पै ॥

मूल कमल में खेलि पिया को देखन चलिये।
उलटि वेधि खट चक्र जाइ सतवें से मिलिये ॥१॥
प्रान अपान मिलाइ राह पच्छिम की लीजे।
वंक नाल कूं सोध प्रान लै ता में दीजे ॥ २ ॥
मेरु दंड चढ़ि जाय जब लोक लोक की गम परै।
भन[1] चरनदास ब्रह्मंड में ब्रह्म दरसी दरसन करै ॥३॥

(१) कहै।

॥ राग सोरठ ॥

तू सदा सोहागिन नारी है।
पिय के संग मिली मद पीवै ताते लागत प्यारी है॥
भंवर गुफा में भंवर बनायो बिन घृत जोती जारी है।
सुखमन सेज महा सुखदाई भोगत भोग दुलारी है॥
स किये कंता चलै न पंथा टोना डारो भारी है।
पहर तुम्हरे रंग राचो हमको मिलै न बारी है॥

(१) बड़ा। (२) पति।

पति मन मानी सो पटरानी सोई रूप उजारी है।
हम चारौ जो सौति तुम्हारी तुम गुन आगे हारी है॥
चरनहिं दास भई तोहिं सेवै लगी रहै नित लारी है।
सुकदेवा सिर छत्र हमारो सो बस भयो तुम्हारी है॥

—:०:—

अनहद शब्द की महिमा और उसकी प्राप्ती का बिलास।

शब्द १

॥ अष्टपदी ॥

अनहद शब्द अपार दूर सूं दूर है।
चेतन निर्मल शुद्ध देह भरपूर है॥ १ ॥
निःअच्छर है ताहि और निःकर्म है।
परमातम तेहि मानि वही परब्रह्म है॥ २ ॥
याके कीने ध्यान होत है ब्रह्म हीं।
धारै तेज अपार जाहि सब भर्म हीं॥ ३ ॥
वा पटतर[1] कोइ नाहिं जो यों हीं जानिये।
चांद सूर्य्य अरु सृष्टि के माहिं पिछानिये॥ ४ ॥
याको छोड़ै नाहिं सदा रहै लीन हीं।
यही जो अनहद सार जानि परबीन हीं॥ ५ ॥
यों जिव आतम जान जो अनहद लीन हो।
सो परमातम होय जीवता जाय खो॥ ६ ॥
ध्यानी को मन लीन होय अनहद सुनै।
आप अनाहद होय बासना सब भुनै॥ ७ ॥
पाप पुन्य छुटि जायं दोऊ फल ना रहैं।
होय परम कल्यान जो त्रिगुन[2] ना गहैं॥ ८ ॥

(१) बराबर। (२) सत रज तम अर्थात् ब्रह्मा विष्णु महेश।

शब्द ९

॥ राग रामकली ॥

वह अच्छर कोइ बिरला पावै ।

जा अच्छर के लाग न बिंदी सतगुरु सैनहिं सैन बतावै ॥ १ ॥

छर ही नाद बेद अरु पंडित छर ज्ञानी अज्ञानी ।

बाँचन अच्छर छर ही जानो छरही चारो बानी ॥ २ ॥

ब्रह्मा सेस महेसर छर ही छर ही त्रैगुन माया ।

छर ही सहित लिये औतारा छर हाँ तक जहँ माया ॥ ३ ॥

पाँचो मुद्रा जोग जुक्ति छर छर ही लगै समाधा ।

आठो सिद्धि मुक्ति फल छरही छर ही तन मन साधा ॥ ४ ॥

रवि ससि तारा मंडल छर ही छर ही धरनि अकासा ।

छर ही नीर पवन अरु पावक नर्क स्वर्ग छर बासा ॥ ५ ॥

छर ही उतपति परलय छर ही छर ही जानन हारा ।

चरनदास सुकदेव बतावैं निःअच्छर है सब सूँ न्यारा ॥ ६ ॥

शब्द १०

॥ राग धनाश्री ॥

जो जन अनहद ध्यान धरै ॥ टेक ॥

पाँचो निरबल चंचल थाकै जीवत ही जु मरै ॥ १ ॥

सोधै मूलबंध दै राखै आसन सिद्ध करै ॥ २ ॥

त्रिकुटी सुरति लाय ठहरावै कुंभक पवन भरै ॥ ३ ॥

घन गरजे अरु बिजुली चमकै कौतुक गगन धरै ॥ ४ ॥

बहुत भाँति जहँ बाजन बाजैं सुनि सुनि सिंधु अरै[1] ॥ ५ ॥

सहज सहज में हो परकासा बाधा सकल हरै[2] ॥ ६ ॥

जग की आस बास सब टूटै ममता मोह जरै ॥ ७ ॥

सून्य सिखर पर आपा बिसरै काल सूँ नाहिं डरै ॥ ८ ॥

चरनदास सुकदेव कहत हैं सब गुन ध्यान धरै ॥ ९ ॥

---

(१) ऐसे मधुर बाजे कि जिनकी धुनि से समुद्र की लहरैं स्थिर हो जायँ। (२) दूर हो।

शब्द ६

॥ राग करखा ॥

परसिया देस जहँ भेस नाहीं ।
घाट तिस लखि जहाँ बाट सूझै नहीं
सुरति के चाँदने संत जाई ॥ १ ॥
चंद खोड़स दिपैं गंग उलटी बहै
सुखमना सेज पर लम्प[1] दमकै ।
तासु के ऊपरै अमी को ताल है
झिलमिली जोत परकास चमकै ॥ २ ॥
चारि जोजन परे सून्य अस्थान है
तेज अति सून्य परलोक राजे ।
द्वार पच्छिम धसे मेरु हीं दण्ड हो
उलट करि आय छाजे बिराजे ॥ ३ ॥
नूर जगमग करै खेल आगाध है
वेद हूँ कहे नहिं पार पावैं ।
गुरुमुखी जाइ हैं अमर पद पाइ हैं
सीस का लोभ तजि पंथ धावैं ॥ ४ ॥
तीन सुन छेदि रनजीत चौथे बसै
जन्म औ मरन फिर नाहिं होई ।
चरनदास करि वास सुकदेव बकसीस सूँ
पूज वेगम पुरी अमर सोई ॥ ५ ॥

शब्द ७

॥ राग सोरठ ॥

गुरु बिन वह घर कौन दिखावै ।
जेहिं घर अग्नि जलै जल माहीं यह अचरज दरसावै ॥ १ ॥

(१) जोति ।

काल की जहँ पहुँच नाहीं अमर पदवी पाव ।
जीति आठौ सिद्धि ठाढ़ी गगन मद्धे आव ॥ ४ ॥
करै गुरु परताप करनी जाय पहुँचै सोय ।
चरनदास सुकदेव किरपा जीव ब्रह्मै होय ॥ ५ ॥

शब्द ३

॥ राग बिहागरा ॥

सब जग पाँच तत्व को उपासी ॥ टेक ॥
तुरियातीत सबन सूँ न्यारा अबिनासी निर्बासी ॥ १ ॥
कोई पूजै देवल मूरत सो पृथ्वी तत जानो ॥ २ ॥
कोई न्हावै पूजै तीरथ सो जल को तत मानो ॥ ३ ॥
अग्निहोत्र अरु सूरज पूजा सो पावक तत देखा ॥ ४ ॥
पवन खैंच कुंभक को राखै वायु तत्त को लेखा ॥ ५ ॥
कोई तत्व अकास[1] को पूजै ता को ब्रह्म बतावै ॥ ६ ॥
जो सब के देखन में आवै सो क्यों अलख कहावै ॥ ७ ॥
परम तत्व[2] पाँचो से आगे गुरु सुकदेव बखानैं ॥ ८ ॥
चरनदास निस्चै मन आनो बिरला जन कोइ जानै ॥ ९ ॥

शब्द ४

॥ राग परज ॥

सुधा रस कैसे पैये हो ।
कूप कहाँ केहि ठौर है कैसे करि लहिये हो ॥ १ ॥
नेजू[3] कित कित गागरी कित भरने वाली हो ।
कैसे खुलै कपाट हीं को ताला ताली हो ॥ २ ॥
कौन समय किस ग्रह बिषै अँचवै किन माहीं हो ।
तुमसे[4] जानें भेद कूँ अरु बहुतक नाहीं हो ॥ ३ ॥

(१) चिदाकाश (चैतन्य आकाश) जिसको कोई कोई विद्याज्ञानी ब्रह्म मानते हैं। (२) शब्द चैतन्य अर्थात् वह जौहर जिसको संतों ने शब्द करके पुकारा है। (३) लेजुर, रस्सी, रस्सी। (४) तुम्हारे समान।

॥ राग धनाश्री ॥

गुरु गम यहि बिधि जोग कमायो ।
आसन अचल मेर कियो सीधो कसि बंध मूल लगायो ॥ १
संजम साधि कला बस कीन्ही मन पवना घर आयो ।
नौ दरवाजे पट दै राखे अधैं उर्ध मिलायो ॥ २
नाभि तले पैड़ो करि पैठे सक्ति पाताल गई है ।
काँप्यो सेस कमठ अकुलायो सायर थाह दई है ॥ ३
उलटि चले मठ फोरि इकीसो गये अभय पद माहीं ।
अति उँजियारो अद्भुत लीला कहन सुनन गम नाहीं ॥ ४ ।
जित भये लीन सबै सुधि बिसरी छुटी जगत की व्याधा ।
चरनदास सुकदेव दया सूँ लागी सुन्न समाधा ॥ ५ ।

शब्द १३

॥ राग धनाश्री ॥

ऐसी जोग जुक्ति गति भारी ।
मूलहिँ बंध लगाय जुक्ति सूँ मूँदि दई नव नारी ॥ १ ॥
आसन पद्म महा दृढ़ कीन्हो हिरदय चिबुक[१] लगाई ।
चन्द सूर दोउ सम करि राखे निरति सुरति घर आई ॥ २ ॥
ऊपर खैंचि अपान सहज में सहजै प्रान मिलाई ।
पवन फिरी पच्छिम कूँ दौरी मेरुहि मेरु चलाई ॥ ३ ॥
ऐसहिँ लोक अमर पद पहुँचे सूरज कोटि उजारी ।
सेत सिंहासन सतगुरु परसे करि दरसन बलिहारी ॥ ४ ॥
आपा बिसरि प्रेम सुख पायो उनमुन लागी तारी ।
चरनदास सुकदेव दया सूँ चरन दास छुटी बारी[२] ॥ ५ ॥

शब्द १४

॥ राग मलार ॥

बिथा मोरी जानत हो अकि[३] नाहीं ।
नख सिख पावक बिरह लगाई बिछुरन दुख मन माहीं ॥ १ ॥
दिन नहिं चैन नींद नहिं निसकूँ चित्चल बुधि नहिं मेरो ।
कासूँ कहूँ कोउ हितु न हमारो लग्न लहरि हरि तेरी ॥ २ ॥
तन भयो छीन दीन भये नैना अजहूँ सुधि नहिँ पाई ।
छतियाँ दरकत करक हिये में प्रीत महा दुखदाई ॥ ३ ॥
जल बिन मीन पिया बिन बिरहिन इन धीरज कहु कैसी ।
पच्छी जरै दव[४] लागी बन में मेरी गति भई ऐसी ॥ ४ ॥
तलफत हूँ जिय निकसत नाहीं तन में अति अकुलाई ।
चरनदास सुकदेवहिँ बिनवै[५] दरसन द्यो सुखदाई ॥ ५ ॥

(१) ठुड्डी। (२) चरन के दास का आवागवन छूटा। (३) याकि। (४) आग।
(५) बिनती करता है।

नाव चढ़ी केवट के ऊपर सुत की गोदी माय।
जो तू भेदी अमर नगर को तौ तू अर्थ बताय ॥ ३ ॥
चरनदास सुकदेव सहाई अब कह करिहै काल।
बाँबी उलटि सर्प में पैठी जब सूँ भये निहाल ॥ ४ ॥

शब्द ३२

॥ राग मलार॥

चहुँ दिस झिलमिल झलक निहारी।
आगे पीछे दहिने बायें तल ऊपर उँजियारी ॥ १ ॥
दृष्टि पलक त्रिकुटी ह्वै देखै आसन पद्म लगावै।
संजम साधै दृढ़ आराधै जब ऐसी सिधि पावै ॥ २ ॥
बिन दामिनि चमकार बहुत ही सीप बिना लर मोती।
दीप मालिका बहु दरसावैं जगमग जगमग जोती ॥ ३ ॥
ध्यान फलै तब नभ के माहीं पूरन हो गति सारी।
चाँद घने सूरज अनकी[1] ज्यौं सूभर[2] भरिया भारी ॥ ४ ॥
यह तो ध्यान प्रतच्छ बतायो सरधा होय तो कीजे।
कहि सुकदेव चरन ही दासा सो हम सूँ सुनि लीजे ॥ ५ ॥

शब्द ३३

॥ राग सोरठ ॥

हमारे गुरु मारग बतलाया हो।
आनि देव की सेवा त्यागी अज[3] अबिनासी ध्याया हो ॥ १ ॥
हरि पूरन परस्यौं निस्चै सूँ छाँड़्यौं झूँठी माया हो।
इक रस आतम नित ही जानौं छिन भंगी है काया हो ॥ २ ॥
चाहो मुक्ति करो तन किरिया[4] भर्म अधिक भरमाया हो।
बो करि पेड़ बबूल सूल के आम कहो किन पाया हो ॥ ३ ॥

(१) अनेक। (२) बालू के कण जो धूप में चमकते हैं। (३) अजर, अजन्मा। (४ तप या से मुक्ति नहीं हो सकती।

॥ राग करखा ॥

गुरु दया जोग यहि विधि कमायो ॥टेक॥

मूल कूँ सोधि संकोच करि संखिनी
खैंच आपान उलटो चलायो ॥ १ ॥

बंध पर बंध जब बंध तीनो लगैं
पवन भइ थकित नभ गर्जि आयो ॥ २ ॥

द्वादसा पलट करि सुरति दो दल धरी
दसो परकार अनहद बजायो ॥ ३ ॥

रोक जब नवन कूँ द्वार दसवें चढ़ी
सून्य के तख्त अनँद बढ़ायो ॥ ४ ॥

सहस्र दल कमल को रूप अद्भुत महा
अमी रस उमंग झा झरि लगायो ॥ ५ ॥

तेज द्युति पुंज पर लोक जहँ जगमगे
कोटि छवि भानु परकास लायो ॥ ६ ॥

उनमुनी और चित हेत करि बसि रहो
देखि निज रूप मनुवाँ मिलायो ॥ ७ ॥

काल अरु ज्वाल जग ब्याधि सब मिटि गई
जीव सूँ ब्रह्म गति बेगि पायो ॥ ८ ॥

चरनदास रनजीत सुकदेव की दया सूँ
अभय पद परसि अवगति समायो ॥ ९ ॥

शब्द २३

॥ राग सारंग व बिलावल व सोरठ ॥

साधो अजब नगर अधिकाई ।

घट घाट बाट जहँ बाँकी उस मारग हम जाई ॥ १

न बिना बह बानी सुनिये बिन जिभ्या स्वर गावैं ।

॥ शब्द ९ ॥

म्हारे हरिजू सूँ जुरलि सगाई हो ।
तन मन प्रान दान दै पिय को, सहज सरूपम पाई हो ॥१॥
अरध उरध के मध्य निरंतर, सुखमन चौक पुराई हो ।
रवि ससि कुंमक अमृत भरिया, गगन मँडल मठ छाई हो २
पाँच सखी मिलि मंगल गावहिँ, आनँद तूर बजाई हो ।
प्रेम तत्त दीपक उँजियारो, जगमग जोति जगाई हो ॥३॥
साध संत मिलि किया बसौंठी[2], सतगुरु लगन लगाई हो ।
दरस परस पतिबरता पिय की, सिव घर सक्ति बसाई हो ॥४
अमर सुहाग भाग उँजियारो, पूर्ब प्रीति प्रगटाई हो ।
रोम रोम मन रस के बसि भइ, केसो पिय मन भाई हो ॥५॥

(१) तुम्हारे । (२) बिसौलिया का काम ।

॥ शब्द १० ॥

निर्गुन नाम निधान, करो मन आरति हो ॥ टेक ॥
गंगा जमुना सरसुती, सुखमन घर बिसराम ।
निर्झर झरत अमृत रस निरमल, पीवहिँ संत सुजान ॥१॥
द्वादस पदुम पदारथ, मुक्ता नाम कि खान ।
चंदन चौक सरद उँजियारो, सकल बिस्व[1] को पान ॥२
अगम अगोचर गुंजत निसु दिन, तन मन प्रान समान ।
अमर बिदेह भयो पद परसत, तिमिर मिटायो भान ॥३॥
कारज करम करै सो करता, अबिनासी निजु जान ।
औरन को अदृष्ट है केसो, सोई पुरुष पुरान ॥ ४ ॥

॥ भोर की धुन राग भैरव ॥

गगन मंडल में आरति कीजै।
उत्तम साज सकल साजि लीजै ॥ १ ॥
सुखमन अमृत कुंभ[1] धरावै।
मनसा मालिनि फूल चढ़ावै ॥ २ ॥

(१) घड़ा।

घीव अखंडा सोहं बाती।
त्रिकुटी ज्योति जलै दिन राती ॥ ३ ॥
पवन साधना थाल करीजै।
ता में चौमुख मन धर लीजै ॥ ४ ॥
रबि ससि हाथ गहौ तिहि माहीं।
खिन दहिने खिन बाँये लाईं ॥ ५ ॥
सहस कँवल सिंहासन राजै।
अनहद झाँझरि नित हीं बाजै ॥ ६ ॥
यहि बिधि आरति साँची सेवा।
परम पुरुष देवन को देवा ॥ ७ ॥
चरनदास सुकदेव बतावै।
ऐसी आरति पार लगावै ॥ ८ ॥

शब्द ३९

॥ राग काफी ॥

कोइ दिन जीवै तौ कर गुजरान।
कहर गरूरी छाँड़ि दिवाने, तजो अकस की बान ॥ १ ॥
चुगली चोरी अरु निन्दा लै, झूठ कपट अरु कान।
इनकूँ डारि[1] गहे जत सत कूँ, सोई अधिक सयान ॥ २ ॥
हरि हरि सुमिरौ छिन नहिँ बिसरौ, गुरु सेवा मन ठानि।
साधुन की संगति कर निस दिन, आवे ना कछु हानि ॥ ३ ॥
मुड़ो कुमारग चलो सुमारग, पावो निज पुर बास।
गुरु सुकदेव चेतावैं तोकूँ, समुझ चरनहीं दास ॥ ४ ॥

शब्द ४०

॥ राग रामकली ॥

फिरि फिरि मूरख जन्म गँवायो।
हरि की भक्ति साधु की संगति, गुरु के चरनन में नहिं आयो ॥ १ ॥

(१) फेंक कर।

20:51

कहैं गुरू सुकदेव जी चरनदास बिचारो ।
करनी रहनी दृढ़ गहौ थोथी कथनी डारो ॥ ६ ॥

शब्द १७

॥ राग बिलावल ॥

माला फेरे कहा भयो ॥ टेक ॥
अंतर के मन को नहिं फेरा पाप करत सब जन्म गयो ॥१॥
पर निन्दा पर नारि न भूलो खोट कपट की ओर नयो[१] ॥२॥
काम क्रोध मद लोभ न खोये ह्वै रह्यो मूरख मोह मयो ॥३॥
दुनिया साँच समझ घर कीन्हो धन जोरन को परन लयो ॥४॥
दया धर्म दोउ मारग छाँड़े मँगतन को नहिं दान दयो ॥५॥
गुरु सूँ झूँठ भगल साधन सूँ हरि सूँ नाहीं नेह जयो[२] ॥६॥
चरनदास सुखदेव कहत हैं कैसे कहियो मुक्ति हयो[३] ॥७॥

शब्द १८

॥ राग सोरठ ॥

अवधू ऐसी मदिरा पीजै ।
बैठि गुफा में यह जग बिसरै चंद सूर सम कीजै ॥ १ ॥
जहाँ कुलाल चढ़ाई भाठी ब्रह्म ज्वाल परजारी ।
भरि भरि प्याला देत कुलाली बाढ़ै भक्ति खुमारी ॥ २ ॥
माता[४] ह्वै करि ज्ञान खड़ग लै काम क्रोध कूँ मारै ।
घूमत रहै गहै मन चंचल दुबिधा सकल बिडारै ॥ ३ ॥
जो चाखै यह प्रेम सुधारस निज पुर पहुँचै सोई ।
अमर होय अमरा पद पावै आवा गवन न होई ॥ ४ ॥
गुरु सुकदेव किया मतवारा तीन लोक तृन बूझा ।
चरनदास रनजीत भये जब आनंद आनंद सूझा ॥ " "

(१) —

(२४६)

रन का चढ़ना सहज है मुसकिल करना जोग ॥
मुसकिल करना जोग चित्त को उलटि लगावै।
विषय बासना तजै प्रान ब्रह्मंड चढ़ावै ॥

(१) छप्पन प्रकार का भोजन। (२) सूरज। (३) अंधा। (४) सुमिरन।
) कस्तूरी। (६) हाथी।

साधै वायू प्रान कुंडली करै उथपना[१]।
अष्ट कँवल दल उलटि कँवल दल द्वादस लखना ॥
इँगला पिंगला सोधि बंक के नाल चढ़ावै।
चार कला को तोड़ि चक्र षट जाय बिधावै ॥
पलटू जो संजम करै करै रूप से भोग।
रन का चढ़ना सहज है मुसकिल करना जोग ॥

(२४७)

आगि लागि मसि जरि गई कागद जरै न कोय ॥
कागद जरै न कोय कागद है बहुत पुराना।
अक्खर[२] आवै जाय अखर को नाहिँ ठिकाना ॥
वो भी जरै बनाय अखर का लिखनेहारा।
बाँचै सो जरि जाय जरै जो करै बिचारा ॥
कोटिन अक्खर बाद अन्त कागद भी जरता।
कागद जरे के बाद रहै कागद का करता ॥
पलटू जब कागद जरै वा दिन मेरा होय।
आगि लागि मसि जरि गई कागद जरै न कोय ॥

(२४८)*

तबक़ चारदह अन्दर है अस्थल बे दरियाव ॥
अस्थल बे दरियाव अर्श कुर्सी खुद दीदन।
तूबा दरख़्त अज़ हद शीरीँ मेवा खुर्दन ॥
नूर तजल्ली रूह लाहूत रसीदा नादिर।
रौशन-ज़मीर बेचूँ सीना-साफ़ क़ाज़ी क़ादिर ॥
हूहू गुफ़्तन फ़ना रूह की सोई बातिन।
पाक अल्लाह मकान तहाँ को भी वो साकिन ॥
पलटू आरिफ़ से कहै तू भी चाहो जाव।
तबक़ चारदह अन्दर है अस्थल बे दरियाव ॥

(१) कुंडलिनी नाड़ी का मुँह ऊपर करै। (२) अच्छर।

* कुंडलिया नं० २४८ के बारे में पेज ६७ के फुटनोट में देखिये।

(१७०)
बंसी बाजी गगन में मगन भया मन मोर ॥
मगन भया मन मोर महल अठवें पर बैठा।

जहँ उठै सोहंगम सब्द सब्द के भीतर पैठा ॥
नाना उठैं तरंग रंग कुछ कहा न जाई।
चाँद सुरज छिपि गये सुषमना सेज बिछाई ॥
छुटि गया तन येह नेह उनहीं से लागी।
दसवाँ द्वारा फोड़ि जोति बाहर ह्वै जागी ॥
पलटू धारा तेल की मेलत ह्वै गया भोर।
बंसी बाजी गगन में मगन भया मन मोर ॥

(१७१)

चढ़ै चौमहले महल पर कुंजी आवै हाथ ॥
कुंजी आवै हाथ सब्द का खोलै ताला।
सात महल के बाद मिलै अठएँ उँजियाला ॥
बिनु कर बाजै तार नाद बिनु रसना गावै।
महादीप इक बरै दीप में जाय समावै ॥
दिन दिन लागै रंग सफ़ाई दिल की अपने।
रस रस मतलब करै सिताबी[1] करै न सपने ॥
पलटू मालिक तुही है कोई न दूजा साथ।
चढ़ै चौमहले महल पर कुंजी आवै हाथ ॥

(१७२)

चाँद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात ॥
नहीं दिवस नहिं रात नाहिं उतपति संसारा।
ब्रह्मा बिस्नु महेस नाहिं तब किया पसारा ॥
आदि जोति बैकुंठ सुन्य नाहीं कैलासा।
सेस कमठ दिग्पाल नाहिं धरती आकासा ॥
लोक बेद पलटू नहीं कहौं मैं तबकी बात।
चाँद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात ॥

(१) जल्दी।

(१३)

सोई निज संत जिन अंत आपा लियो,
  जियो जुग जुग गगन बुद्धि जागी ।
प्रान आपान[1] असमान मैं थिर भया,
  सुन्न के सिखर पर जिकिर[2] लागी ॥
रहत घर बास बिनु स्वास का जीव है,
  सक्ति मिलि सीव सौं सुरति पागी ।
अकह आलेख आदेख को देखिया,
  पेखि केसो भयो ब्रह्म रागी ॥

(१४)

गगन मगन धुनि लगन लगी,
  सुनत सुनत तन त्रिप्त भई ।
जगर मगर नहिँ डगर बगर[3] नहिँ,
  रवि ससि निसु दिन भाव नहीं ॥
प्रान गवन हरि पवन मवन[4] करि,
  मिलि सन्मुख पिय बाँह गही ।
सत रति सत्त पती हम पावल,
  केसोदास सुहाग सही ॥

---

(१) वायु के नाम । (२) सुमिरन । (३) राह कुराह । (४) स्वाँसा और प्रान को रोक के ।

अनहद बाजै तूर सुन्न में धजा फरकै।
मुवा होय सो जाय देखत कै जान सरकै ॥
अठएँ लोक के पार भरा इक हौज है।
अरे हाँ पलटू मुद्दा हुआ तमाम करै फिर मौज है ॥९५॥

अर्ध उर्ध के बीच हिँडोला चंग[1] है।
झूलै संत सुजान सजन से रंग है ॥
सुरत सब्द के खेल सहर कै नाइबी।
अरे हाँ पलटू अर्ध उर्ध के बीच बड़ी है साहिबी ॥९६॥

वार पार सब एक कोऊ ना आन है।
वायू है दोउ एक पान आपान है ॥
जीव ब्रह्म के बीच परी इक साल है।
अरे हाँ पलटू उहि गोकुल के घाट कन्हैयालाल है ॥९७॥

गगन महल के बीच अमी झरि लागिनी।
टोपन चूवै बूँद पियै इक साँपिनी ॥
साँपिनि डारा मारि बूँद को पिया है।
अरे हाँ पलटू अमर लोक गे हंस जुगो जुग जिया है ॥९८॥

अरध उरध के बीच बसा इक सहर है।
बीच सहर में बाग बाग में लहर है ॥
मध्य अकास में छुटै फुहारा पवन का।
अरे हाँ पलटू अंदर धँसि के देखु तमासा भवन का ॥९९॥

सुन्न समाधि के बीच ध्यान को लावना।
सुखमनि के रे घाट पवन ले आवना ॥

(१) चंगा, सुघर।

टूटे ना वह डोरि बाट आरूढ़ है।
अरे हाँ पलटू ऐसे को परनाम अवस्था गूढ़ है ॥१००॥

चाँद औ सूर दोउ उलटि पाताल गै,
उनमुनी ध्यान तहँ पवन साजा।
सिंध परि कूप में गंग पच्छिम बहै,
सेत पहार पर भँवर भाजा॥
सहसदल कँवल में हंस मोती चुगै,
चंदन के गाछ पर कमठ[1] लागा।
अधर दरियाव में लहर पानी बिना,
गैब की दृष्टि से तत्त माँजा॥७४॥

सातहू सर्ग अपबर्ग के पार में,
जहाँ में रहौं ना पवन पानी।
चाँद ना सूर ना राति ना दिवस है,
उहाँ के मर्म ना बेद जानी॥
ज्ञान ना ध्यान ना ब्रह्मा न बिस्नु है,
पहुँच ना सकै कोउ ब्रह्म-ज्ञानी।
दास पलटू कहै एक ही एक है,
दूसरा नहीं कोउ राव रानी॥७५॥

जोग ना जुगत ना प्रानायाम ना,
सुन्न में ध्यान ना धरत ध्यानी।
नाहिं कछु ज्ञान है नाहिं बैराग है,
जाय ना सकै तहँ पवन पानी॥
इड़ा ना पिंगला नाहिं कछु साधना,
सुरत ना सबद ना उठत बानी।
झिलमिली जोति ना, नाहिं है उनमुनी,
चाँद ना सूर ना ब्रह्म-ज्ञानी॥

(१) कछुवा।

सुषमना नाहिं कछु पाँच मुद्रा नहीं,
चित्त ना बुद्धि ना तत्त ज्ञानी।
मोती ना हंस ना कँवल ना भँवर ना,
हद्द अनहद्द दोउ नाहिं मानी॥
गिरा ना लंबिका बंक तुरिया नहीं,
अजपा जाप नहिं तीन तानी।
सहज समाधि के परे की बात है,
दास पलटू कोई संत जानी॥७६॥

तिरकुटी घाट को उतरु सम्हारि कै,
सुषमना खैंचु गुन बाँधि खूँटा।
बीच पहार में साँकरी गली है,
गली में कुंड जल परै टूटा॥
भँवर को देखि कै नाव मुरेरु तू,
चली है नाव तब कुंड छूटा।
दास पलटू कहै नाव सम्हारना,
सोत में सोत ब्रह्मंड फूटा॥७७॥

गगन के बीच में ऐन मैदान है,
ऐन मैदान के बीच गली।
सहसदल कँवल में भँवर गुंजार है,
कँवल के बीच में सेत कली॥
इड़ा औ पिंगला सुखमना घाट है,
सुखमना घाट में लगी नली।
सुन्न सागर भरा सत्त के नाम से,
तेहि के बीच में सुरति हली॥
अछै इक बृच्छ है तेहि के डारि में,
पड़ा हिंडोलना प्रेम झुली।
अमी रस चुवै सोइ पियत इक नागिनी,
नागिनी मारि कै बुंद रली॥
बंक के नाल पर तहाँ इक ऊँच है,
तेहु के सीस चढ़ि जोति बली।
जोति के बीच में तहाँ इक राह है,
राह के बीच में नाद चली॥

नाद के बीच में तहाँ इक रूप है,
रूप को देखि कै रहत सली[1]।
दास पलटू कहै होय आरूढ़ जब,
संत को सहज समाधि भली॥७१॥

गगन में दामिनी चौक में चाँदनी,
चाँद औ सूर गलि भये पानी।
ज्ञान की कावनी तान में तातनी,
सत्त के सबद की कथा बानी॥
अकथ की काथनी तत्त की माथनी,
पानी औ पवन इक घाट आनी।
दिवस में राजनी[2] सजन में साजनी,
दास पलटू की मुई नानी॥७२॥

इक कूप गगन के बीच यारो,
जहँ सुरति की डोर लगावता है।
गुरमुख होवै सो भरि पीवै,
निगुरा नहीं जल पावता है॥
बिन हाथ से ताल मृदंग बाजे,
बिन जंत्री जंत्र बजावता है।
पलटू बिन कान से हम सुना,
बीना कोइ सकस बजावता है॥७३॥

अष्ट दल कँवल के पात को तोरि कै,
कली पर भँवर तब गगन गाजा।
सुन्न में धजा को बाँधि आगे चले,
जाय निस्सान अनहद बाजा॥

(१) शांति। (२) रात।

ब्रह्मा बिस्नु महेस न पुजिहौं, ना मूरत चित लैहौं ।
जो प्यारा मोरे घट माँ बसतु है, वाही को माथ नवैहौं ॥१॥
ना कासी में करवत लैहौं, ना पचकोस में जैहौं ।
प्राग जाय तीरथ नहिं करिहौं, जगर न सीस कटैहौं ॥२॥
अजपा और अनाहू साधो, त्रिकुटी ध्यान न लैहौं ।
पदम आसन खींच न बैठों, अनहद नाहिं बजैहौं ॥३॥
सबही जाप छोड़ि के साधो, गुरु का सुमिरन लैहौं ।

(१) गाल या पद में फैलाना ।

गुरु मूरत हिरदय में छाई, वाही से ध्यान लगैहौं ॥४॥
दुई खुदी हस्ती जब मेटे, निरंकार कहलैहौं ।
गगन भूमि में राज हमारो, अनलहक[१] धूम मचैहौं ॥५॥
पलटूदास प्रेम की बाजी, गुरु ही से दाँव लगैहौं ।
जीतौं तो मैं गुरु को पावौं, हारौं तो उनकी कहैहौं ॥६॥

॥ घट मठ ॥

६

साहिब आप बिराजै सकल घट, चारि खानि बिच राजै ॥टेक॥
नारी पुरुष देव औ दानव, बाग फूल औ माली ।
हाथी घोड़ा बैल ऊँट में, कतहूँ रहै न खाली ॥१॥
मच्छ कच्छ घरियार अचर चर, आग पवन औ पानी ।
तीतर बाज सिंह औ हरिना, पूरन चारिउ खानी ॥२॥
ज्ञानी मूढ़ गुरू औ चेला, चोर साहु भरभूना[२] ।
बिस्वा बिसनी[३] भेड़ कसाई, नाहिं कोई घर सूना ॥३॥
यह सरीर नासक[४] है भाई, जीव कै नास न होई ।
पलटूदास जगत सब भूला, भेद न जानै कोई ॥४॥

७

तो में है तेरा राम बैरागिन, भूलि गया तोहि धाम ॥टेक॥
घिव ज्यों रहै दूध के भीतर, मथे बिनु कैसे पावै ।
फूल मँहै ज्यों बास रहतु है, जतन सेती अलगावै ॥१॥
मिहँदी मँहै रहै ज्यों लाली, काठ में अगिन छिपानी ।
खोदे बिना नहीं कोइ पावै, ज्यों धरती में पानी ॥२॥
ऊख मँहै ज्यों कंद रहतु है, पेड़ रहै फल माहीं ।
देस देसंतर ढुँढ़त फिरतु है, घट की सुधि है नाहीं ॥३॥
पूरन ब्रह्म रहै तोही में, क्यों तू फिरै उदासी ।

पलटू साहिब

भाग ३

—:※:—

शब्द

—:※:—

॥ गुरुदेव ॥

१

गगन कि धुनि जो आनई, सोई गुरु मेरा ।
वह मेरा सिरताज है, मैं वा का चेरा ॥टेक॥
सुन में नगर बसावई, सूतत में जागै ।
जल में अगिन छपावई, संग्रह में त्यागै ॥१॥
जंत्र बिना जंत्री बजै, रसना बिनु गावै ।
सोहं सबद अलापि कै, मन को समुझावै ॥२॥
सुरति डोर अमृत भरै, जहँ कूप उरधमुख ।
उलटै कमल हिं गगन में, तब मिलै परम सुख ॥३॥
भजन अखंडित लागई, जस तेल कि धारा ।
पलटुदास दंडौत करि, तेहि बारम्बारा ॥४॥

२

बूझि विचारि गुरु कीजिये, जो कर्म से न्यारा ।
कर्म-बंध हरि दूरि है, बूड़हु मँझधारा ॥टेक॥
काम क्रोध जिनके नहीं, नहिं भूख पियासा ।
लोभ मोह एको नहीं, नहिं जग की आसा ॥१॥
ज्यौं कंचन त्यौं काँच है, अस्तुति सो निन्दा ।
सत्र मित्र दोउ एक हैं, मुरदा नहिं जिन्दा ॥२॥

पच्छिउँ गंगा बहै पानी है जोर का ।
बीच मँहै इक कुंड मुरेरा तोर[1] का ॥
उलटी बहै बयार नाव मुरकाय दै ।
अरे हाँ पलटू उतरे येहि के पार तो सूधी जाय दै ॥१०५॥

(१) तोड़ ।

तिरबेनी के घाट नाव को आनि कै ।
सुखमनि घाट थहाय चलावो जानि कै ॥
धसी संगम से बीच पहारी फोरि कै ।
अरे हाँ पलटू गुन[1] को खैंचु सिताब काम है जोर कै ॥१०६॥

जहाँ न जप तप नेम ज्ञान ना ध्यान है ।
पानी पवन अकास नाहिं ससि भान है ॥
जोग जुक्ति ना सुरति नाहिं दिन रात है ।
अरे हाँ पलटू मन बुधि चित ना जाय तहाँ की बात है ॥१०७॥

॥ दया ॥

माता बालक कँहै राखती प्रान है ।
फनि मनि धरै उतारि ओही पर ध्यान है ॥
माली रच्छा करै सीँचता पेड़ ज्योँ ।
अरे हाँ पलटू भक्त संग भगवान गऊ औ बच्छ त्योँ ॥१०८॥

साहिब के दरबार कमी किस बात की ।
चूक चाकरी माहिँ परी दिन रात की ॥
जल थल जीव चराचर की सुधि लेत है ।
अरे हाँ पलटू कुसवारी[2] में कीटहिँ चारा देत है ॥१०९॥

कौन सकस करि जाय नाहिँ कछु खबर है ।
बीच मेँ सब के देह बड़ा वह जबर है ॥
हरि धरि मेरो रूप करै सब काम है ।
अरे हाँ पलटू बीच मँहै इक नाम मोर बदनाम है ॥११०॥

॥ छमा ॥

भूखे औ पेट भरे दोस सब लावते ।
बरषा सूखा पड़े दोउ बिधि गरियावते ॥

(१) रस्सी जिसे मस्तूल में बाँध कर नाव को खींचते हैं । (२) टसर के कीड़े का घर बेर के पेड़ पर अपने मुह के लुआब से बना लेता है।

॥ दोहा ॥

आदि अंत अरु मध्य नहिँ, रंग रूप नहिँ रेख।
गुप्त बात गुप्ते रही, पलटू तोपा[3] देख ॥ १६ ॥

८०

आदि अंत ठिकानी बातैं,
कहौँ आपनी देखी हो ॥ टेक ॥
राह अजान पंथ को पावैं,
त्रिकुटी घाट उतारा हो।
अबिगत नगर जाय जहँ पहुँचे,
मारग बिहँग बिचारा हो ॥ १ ॥
बायेँ चन्द सूर हैं दहिने,
सुखमन सुरति समानी हो।
सोहं सोहं सुन में बोलै,
वही सब्द की खानी हो ॥ २ ॥

(१) बानी। (२) गले के भीतर की घाँटी। (३) ढक दिया।

तुरिया बैठा जाग्रत जोगी,
लगी उनमुनी तारी हो।
इँगला माहीँ सहज समानी,
पिंगला पवन अहारी हो ॥ ३ ॥
हद पर बैठे सतगुरु बोलैं,
बेहद बोलै चेला हो।
अजपा जाप छुटी है दुतिया,
अनुभव भया अकेला हो ॥ ४ ॥
सुन्न संबत द्वादस है अठवाँ,
चार तत्व से न्यारा हो।
पलटू यह टकसारी सिक्का,
परखैगा कोइ प्यारा हो ॥ ५ ॥

८१

जानी जानी पिया हो,
तुमको पहिचानी ॥ टेक ॥
जब हम रहली बारी भोली,
तुम्हरो मरम न जानी।
अब तो भागि जाहु पिया हम से,
तब हम मरद बखानी ॥ १ ॥
बहुत दिनन पर भेंट भई है,
फाग खेलन हम ठानी।
धन सम्पत लै खाक मिली तन,
तजि के मान गुमानी ॥ २ ॥
इँगला पिँगला सुखमन खेलै,
अजपा सखी सयानी।
तुरिया नाँघि चली घर अपने,
झमकि झमकि झमकानी ॥ ३ ॥
प्रेम के रँग अबीर भरि थारी,
जोति में जोति समानी।
पलटू जीते हारि चले पिय,
ना कछु लाभ न हानी ॥ ४ ॥

५१

जो पिय के मन मानी रे,
सोइ नारि सयानी ॥ टेक ॥
पीतम हमरे पाती पठाई,
देखि देखि मुसुकानी।
बाँचत पाती जुड़ानी छाती,
आपु में उलटि समानी ॥ १ ॥
भूषन भोजन नींद न भावै,
देखत रूप अघानी।
लोग कहैं सखि लाज करो तुम,
हम चेतन है बौरानी ॥ २ ॥
रंग महल में जाइ के बैठी,
ऋतु बसंत जहँ आनी।
सुखमन गावै भाव बतावै,
देखि नाच हरखानी ॥ ३ ॥
पलटुदास असमान फोरि कै,
सबद की करै बखानी।
पुतरी लोन कि सिंधु समानी,
उलटि कहै को बानी ॥ ४ ॥

५२

पिया है प्रेम का प्याला।
हुआ मन मस्त मतवाला ॥ १ ॥
भया दिल होस से भाई।
बेहोसी जगत बिसराई ॥ २ ॥
बिंद में नाद का मेला।
उलटि के खेल यह खेला ॥ ३ ॥

४२

प्रेम बान जोगी मारल हो, कसके हिया मोर ॥ टेक ॥
जोगिया के लालि लालि अँखियाँ हो, जस कँवल के फूल ।

हमरी सुरुख चुनरिया हो, दूनौं भये तूल[1] ॥ १ ॥
जोगिया कै लेउँ मिर्गछलवा हो, आपन पट चीर ।
दूनौं के सियब गुदरिया[2] हो, होइ जाब फकीर ॥ २ ॥
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर ।
चितवन में मन हरि लियो हो, जोगिया बड़ चोर ॥ ३ ॥
गंग जमुन के बिचवाँ हो, बहै झिरहिर नीर ।
तेहिँ ठैयाँ जोरल सनेहिया हो, हरि लै गयो पीर ॥ ४ ॥
जोगिया अमर मरै नहिँ हो, पुजवल मोरी आस ।
करम लिखा बर पावल हो, गावै पलटूदास ॥ ५ ॥

४३

पिय से मान न कीजै रजनी[3],
सजनी हठ तजि दीजै ।
जो तू पिय को चाहै प्यारी,
सतसंगति भजि लीजै ॥
पलटुदास तन मन धन दै कै,
प्रेम पिलाया पीजै ॥

४४

रटौँ मैं राम को बैठी, पड़े हैं जीभ में छाला ।
थके दृग पंथ को जोहत[4], जपौं मैं प्रेम का माला ॥ १ ॥
कुसल जब पीव को देखौं, देखे बिनु नाहिँ जीवौंगी ।
खेलौंगी जान पर अपने, पियाला जहर पिवौंगी ॥ २ ॥
बिरह की आग है लागी, मुझे कुछ और ना सूझै ।
सजन वह बड़ा बेदरदी, हमारी दरद ना बूझै ॥ ३ ॥
दीपक को भावता नाहीं, पतँग तन जारि भया राखी ।
पलटूदास जिय मेरा, तुम्हारे बीच है साखी ॥ ४ ॥

---

(१) तुल्य=बराबर। (२) एक लिपि में "कै सियब गुदरिया" की जगह "करब गठिजोरवा" है। (३) रात। (४) रास्ता निहारते।

२० पलटू साहिब

४५

गरमी पाला एक जानै सीत धूप बराबरं ॥ ५८ ॥
चित्त चीपी ज्ञान डीबी ध्यान ईंधन लावनं ।
गंग जमुना बीच आसन तहाँ पवन चढ़ावनं ॥ ५९ ॥
फूटि गे ब्रह्मंड जबही सकल सिद्ध कहावनं ।
सहस दल तहँ कँवल फूला मानसरोवर बीचनं ॥ ६० ॥

गगन बीचे बजत मुरली सोहं सब्द सुहावनं ।
कुंजगली है साँकरी इक दूजा और न जावनं ॥ ६१ ॥
पवन की इक बहै सलिता बंक नाल के बीचनं ।
सहस धारा असी संगम रैन दिवस गुजारनं ॥ ६२ ॥
सुन्न में कछु नाहिँ सूझै तहाँ बहुत अँधेरनं ।
कड़क बिजुली तहाँ तड़पै जहाँ चित्त सम्हारनं ॥ ६३ ॥
चन्द्र बाँये सूर दहिने अललपच्छ उड़ावनं ।
उलटि मकरी तार गहि कै सुरति को यों लावनं ॥ ६४ ॥
महल अठयें जाय बैठे जहाँ ना कोउ दूजनं ।
बरत है इक दीप जहवाँ महल में उँजियारनं ॥ ६५ ॥
दास हंस से भेद नाहीं मौज बैठि के मारनं ।
दास पलटू होय ऐसन सोई है परमेसुरं ॥ ६६ ॥
चिन्ता नाहीं छुटत मन से बिना जोग के साधनं ।
अगम निगम बिचारि देखो यही मत सिद्धान्तनं ॥ ६७ ॥
ध्रुव प्रहलाद सनकादि कीन्हा ब्यास औ सुकदेवनं ।
दत्तात्रेय जड़भरथ कीन्हा राजा रघु सोइ धारनं ॥ ६८ ॥
सहित जननी कपिल कीन्हा जनक अष्टावक्रनं ।
सीमुख से हरि आपु भाखा सहित ऊधो अर्जुनं ॥ ६९ ॥
सोई नौ जोगेसर कीन्हा नानक तुलसि कबीरनं ।
दास पलटू साधि यह सब बचन सो प्रतिपालनं ॥ ७० ॥
बिना जोग न छुटै चिन्ता कोटि करै उपायनं ।
जोग करि जब सधै कारज निर्गुन सर्गुन बराबरं ॥ ७१ ॥
उलटि ताकै चाल उलटी अलख को आलेखनं ।
सन्त जन जब करत दाया लगै सो उपदेसनं ॥ ७२ ॥
पड़ा रहु सतसंग भीतर सन्त बड़े दयालनं ।
भर्म भागै मगन लागै भृङ्गी कीट बनावनं ॥ ७३ ॥

रहै रहनी ओट छोड़ै अली के मैदाननं।
काना फुसकी बात छोड़ै ज्ञान चौड़ा बजावनं ॥ ९ ॥
इक पहर एकांत ह्वै के सुन्न ध्यान लगावनं।
इक पहर सुन स्रवन हरिजस अर्थ सहित मिलावनं ॥ १० ॥
पहर भरि कै नाद रसना सकल जंत्र बजावनं।
इक पहर के कर्म किरिया रैन दिवस कटावनं ॥ ११ ॥
पदम आसन नाहिं छूटै आठ पहर लगावनं।
करै संजम लेय ओगरा साध रहनी लच्छनं ॥ १२ ॥
दसो द्वारा मूँदि मेलै पवन जतन करावनं।
मध्य त्रिकुटी गंग जमुना तहाँ आनि चढ़ावनं ॥ १३ ॥
चढ़ै गगन अकास गरजै द्वार दसम निकासनं।
जोति झिलमिल झरै मोती हंस कँहै चुगावनं ॥ १४ ॥
सुरत से जब निरत होवै सुरत शब्द कहावनं।
दिब्य दृष्टि बिलोकि सरवन सब्द सुरत मिलावनं ॥ १५ ॥
रंग ना कछु रूप रेखा तहाँ सब कछु देखनं।
दास पलटू होय ऐसन सोई सन्त अलेखनं ॥ १६ ॥
एक मूल दुइ चक्र नाभी चित्र उद्र के बीचनं।
बाम दक्खिन सब्द त्रिकुटी चक्र बिधी सुधारनं ॥ १७ ॥
चाँद सूर अकास आनै प्रान बैठि सुधारनं।
अष्ट दल यह कँवल फूलै ध्यान कमठ लगावनं ॥ १८ ॥
मीन मारग पवनं पंछी सेस चाल चलावनं।
अर्ध उर्ध के बीच आसन खेल भेद मिलावनं ॥ १९ ॥
इँगला पिंगला सोधि सुखमन अजपा जाप जपावनं।
नाद अनहद लंबिका सुर बंक नाल सोधावनं ॥ २० ॥
जाग्रत सूतै सुप्न जागै जाग्रत सुप्न सुषोपतिं।
तुरिया सेती अतीत होवै सोई है आरूढ़नं ॥ २१ ॥

८१

कौन करै बनियाई अब मोरे, कौन करै बनियाई ॥ टेक ॥
त्रिकुटी में है भरती मेरी, सुखमन में है गादी।
दसयें द्वारे कोठी मेरी, बैठा पुरुष अनादी ॥ १ ॥
इँगला पिँगला पलरा दूनौं, लागि सुरति की जोती।
सत्त सबद की डाँड़ी पकरौं, तौलौं भरि भरि मोती ॥ २ ॥
चाँद सुरज दोउ करें रखवारी, लगी तत्त की ढेरी।
तुरिया चढ़ि के बेचन लागे, ऐसी साहिबी मेरी ॥ ३ ॥
सतगुरु साहिब किहा सिपारस, मिली राम मोदियाई।
पलटू के घर नौबति बाजै, निति उठि होत सवाई ॥ ४ ॥

८२

चलहु सखी वहि देस, जहवाँ दिवस न रजनी ॥ टेक ॥
पाप पुन्न नहिं चाँद सुरज नहिं,
नहीं सजन नहिं सजनी ॥ १ ॥

धरती आग पवन नहिं पानी,
नहिं सूतै नहिं जगनी ॥ २ ॥
लोक बेद जंगल नहिं बस्ती,
नहिं संग्रह नहिं त्यगनी ॥ ३ ॥
पलटूदास गुरू नहिं चेला,
एक राम रम रमनी ॥ ४ ॥

८३

साधो भाई उहवाँ के हम बासी,
जहवाँ पहुँचे नहिं अबिनासी ॥ टेक ॥
जहवाँ जोगी जोग न पावै,
सुरति सबद नहिं कोई।
जहवाँ करता करे न पावै,
हम हीं करैं सो होई ॥ १ ॥
ब्रह्मा बिस्नु नाहिं गमि सिव की,
नहीं तहाँ अबिनासी।
आदि जोति उहाँ अमल न पावै,
हमहीं भोग बिलासी ॥ २ ॥
त्रिकुटी सुन्न नाहिं है उहवाँ,
दंडमेरु ना गिरिवर।
सुखमन अजपा एको नाहीं,
बंकनाल ना सरवर ॥ ३ ॥
जहवाँ पाँच तत्त ना स्वासा,
जगमग झिलिमिलि नाहीं।
पलटूदास की औघट घाटी,
बिरला गुरमुख जाही ॥ ४ ॥

१२९

फिरै इक जोगी नगर भुलाना, चढ़िगा महलै महल दिवाना ॥टेक॥
ना वह खावै ना वह पीवै, ना वह भिच्छा जाचै[1]।
ना वह बोलै ना वह डोलै, बिना नचाये नाचै ॥ १
सुखमन के घर भाटी चूवै, पियै बंक के नाला।
जब देखो तब प्रेम छका है, जपता अजपा माला ॥ २ ॥
गगन गुफा में सिंगी टेरै, जाग्रत के घर जागै।
तिरबेनी में आसन मारै, पारब्रह्म अनुरागै ॥ ३ ॥
सुन्न महँ मौनी होइ बैठै, अनहद तूर बजावै।
तुरिया चढ़ि गदगद होइ बोलै, लंबिका सुर लै गावै ॥ ४ ।
सब्दै सब्द मिलावै जोगी, खुलि गा गगन रखाना[2]।
पलटूदास कौन अलगावै, बुंद में समुँद समाना ॥ ५ ॥

१३०

देखु रे गुरु गम मस्ताना। जानैगा कोइ साधु सयाना ॥ टेक ॥

(१) मांगे। (२) रखना=मोखा।

जियतै मरै सोई पहिचानै, गैब नगर सहजै चढ़ि जाना ॥१॥
इँगला पिँगला चँवर ढुरावै, सुखमन निसु दिन हनत निसाना ॥२॥
तुरिया चढ़ि जब गरजन लागे, छबि देखत सुर भूप लजाना ॥३॥
गुरु गोबिँद मासूक मिले हैं, आसिक है पलटू बौराना ॥४॥

१३१

देखो इक बनियाँ बौराना। ज्ञान की करै दुकाना ॥टेक॥
बेचै अमृत बिष सम लागै, गाहक कोऊ न आवै।
आरी माँगै खाँड़ दिखावै, आपुहि से बगदावै[1] ॥ १ ॥
देइ उधार बिना वादे[2] पर, सब से पूछै लेवो।
जो लेवै सो खुस होइ जावै, कबहूँ न कहै कि देवो ॥ २ ॥
छिमा तराजू पुरा[3] बाट लै, सबसे मीठी बोलै।
नाम रतन की ढेरी लागी, बिना दाम वह तोलै ॥ ३ ॥
कुंजी सुरत सबद का तारा, जोग जुगति से खोलै।
पलटूदास सच का सौदा, आठ पहर ना डोलै ॥ ४ ॥

१३२

हम को क्या जरूर वे, साहिब हाल हजूर वे ॥टेक॥
गैब तख्त बादसाह भया दिल, बजै अनाहद तूर वे ॥ १ ॥
ना जानौं दहुँ कौन पिलावै, अरस[4] पियाला नूर वे ॥ २ ॥
छिन छिन पल पल कल न परतु है, रोम रोम भरिपूर वे ॥ ३ ॥
जगमग जोति छत्र सिर ऊपर, ऐसा अजब जहूर वे ॥ ४ ॥
पलटूदास आस अब किस की, दुरमति भागी दूर वे ॥ ५ ॥

१३३

माया तू जगत पियारी वे, हमरे काम की नाहीं।
द्वारे से दूर हो लंडी[5] रे, पइठु न घर के माहीं ॥ १ ॥
माया आपु खड़ी भइ आगे, नैनन काजर लाये।
नाचै गावै भाव बतावै, मोतिन माँग भराये ॥ २ ॥

(१) भूल में डाले। (२) शर्त। (३) पूरा। (४) ब्रह्मांड। (५) लौंडी।

१२३

गुरू से भेद पुछन को आया ॥ टेक ॥
कौन गुरू से मूँड़ मुँड़ाया, कहवाँ आसन लाया ।
कौन गुरू का सुमिरन कीन्हा, बिरथा जनम गँवाया ॥ १ ॥
अलख पुरुष से मूँड़ मुँड़ाया, गगन में आसन लाया ।
ओं नाम सब ही घट व्यापै, ता से रगड़ लगाया ॥ २ ॥
दत्तात्रेय आदि के जोगी, चौबिस गुरू बनाया ।
संत जोग एको नहिं जाना[२], ता तें भटका खाया ॥ ३ ॥
इँगला पिंगला सुखमन नाड़ी, अनहद डंक[३] जगाया ।
त्रिकुटी सुन्न मद्ध के ऊपर, सोहंग सब्द समाया ॥ ४ ॥

(१) गाने से । (२) संत सतगुरु नहीं मिले । (३) डंका ।

जलावंत[१] इक सिंध अगम है, सुखमन सूरत लाया ।
उलट पलट के यह मन गरजै, गगन मँडल घर पाया ॥ ५ ॥
चौदह तबक तिहूँ के ऊपर, तहाँ निसान गड़ाया ।
पलटू कैसी अचरज तेरी, अचल साहिबी पाया ॥ ६ ॥

१२४

निँदरिया मोरी बैरिन भई ॥ टेक ॥
की कोइ जागै जोगी भोगी, की राजा की चोर ।
की कोइ जागै संत बिबेकी, लगन राम की ओर ॥ १ ॥
जागे से परलोक बनतु है, सोये बड़ दुख होय ।
सतगुरु लीन्हे जो जन जागै, करतम करता होय ॥ २ ॥
स्वारथ लीन्हे सब जग जागै, परमारथ जगै न कोय ।
परमारथ को जो जन जागै, भजन बन्दगी होय ॥ ३ ॥
काम क्रोध लीन्हे जो जागै, गये जिन्दगी खोय ।
ज्ञान खरग लिहे पलटू जागै, होनी होय सो होय ॥ ४ ॥

१२५

काहे को लगायो सनेहिया हो,
अब तुरल[२] न जाय ॥ टेक ॥
जब हम रहिनि लरिकवा हो,
पिया आवहि जाय ।
जब हम भइनि सयानी हो,
पिया गये बिदेस ॥ १ ॥
पिय कों पठयो सँदेसवा हो,
आये पिय मोर ।
हम धन पैयाँ उठि लागब हो,
जिय भयल भरोस ॥ २ ॥

(१) जलमई । (२) तोड़ी ।

अधोमुख इक कूप है तेहि कूप भीतर जावनं।
सुरति से ब्रह्मंड खोलै सब्द को ठहरावनं ॥ ९५ ॥
तहँ बुन्द चूवै गगन से इक साँपिनी मुख मध्यनं।
मारि साँपिनि चलै आगे अमी रस तेहि पीवनं ॥ ९६ ॥
हद अनहद को छोड़ि देवै वेहद कदम चलावनं।
बेहद के मैदान भीतर सब्द की झनकारनं ॥ ९७ ॥
सेत बरन सरूप वा को तहाँ ध्यान सुहावनं।
बुन्द जाय समुद्र मिलि गे बहुरि नहिं फिरि आवनं ॥ ९८ ॥
सहज लगी समाधि जेकर भजन सदा अखंडनं।
धन्य जननी पिता ओकर जहाँ है हरि भक्तनं ॥ ९९ ॥

धन नगर धन देस कहिये जहाँ भक्त निवासनं।
बैकुंठ है लघु तासु पटतर[1] सहित मथुरा अवधेसनं ॥ १०० ॥
प्रीति से जो छंद बाँचै सहित कथा असथूलनं।
दास पलटू मोर पद को अन्त समय पधारनं ॥ १०१ ॥

॥ साध सन्त की रहनी ॥

१०४

सुनिये साध सन्त की रहनी, भाई और बात ना कहनी ॥ १ ॥
मन से सँकलप बिकलप छोड़ै, जग से तोड़ै हरि से जोड़ै ॥ २ ॥
कबहीं ओढ़ै साल दुसाला, कबहीं ओढ़ि रहै मृगछाला ॥ ३ ॥
कबहीं नहीं पाँव में जोड़ा, कबहीं सौ सौ कोतल घोड़ा ॥ ४ ॥
कबहीं अतर फुलेल लगावै, कबहीं सिर पर खाक चढ़ावै ॥ ५ ॥
कबहीं ज्ञान कहै समुझावै, कबहीं चुप करि तारी[2] लावै ॥ ६ ॥
कबहीं महा-नियामत[3] खावै, कबहीं दस फाका बित जावै ॥ ७ ॥
कबहीं हिंदू होइ के बैठे, कबहीं मुसलमान में पैठे ॥ ८ ॥
कबहीं सेज सुपेदी होई, कबहीं जमीं मँहै रहै सोई ॥ ९ ॥
कबहीं बाँका भेष बनावै, कबहीं भेष को दूरि बहावै ॥ १० ॥
कबहीं सिर पर जटा बिसाला, कबहीं कंठी टीका माला ॥ ११ ॥
कबहीं होइ के बैठे जोगी, कबहीं सब रस का है भोगी ॥ १२ ॥
कबहिं कीरतन नाच करावै, कबहिं आप ही बन बन धावै ॥ १३ ॥
कबहीं हाजिर[4] महल अटारी, कबहीं टाटी नाहिं दुवारी ॥ १४ ॥
कबहीं लड़िकन के सँग खेलै, कबहीं वेद पुरान को बोलै ॥ १५ ॥
कबहीं रोवै सिर दे मारै, कबहीं हँसि हँसि निसि दिन टारै ॥ १६ ॥
कबहीं कनक थार में पावै, कबहीं हाथै पर लै खावै ॥ १७ ॥
कबहीं परे पाँव में छाला, कबहीं चलता है सुखपाला[5] ॥ १८ ॥
कबहीं फटही–[6] लँगोटी, कबहीं है मोतिन की चोटी ॥ १९ ॥

(१) मुकाबले में। (२) ध्यान। (३) छप्पन प्रकार के भोजन। (४) दूसरी लिपि में "हजारों" है। (५) पालकी। (६) यहाँ ठेठ हिन्दी शब्द गुदा के अर्थ का है।

॥ शब्द ६ ॥

समुझ मन मानि ले, जोगिया कहल सँदेस।
रैनि दिवस रबि ससि वहँ नाहीं, तहवाँ कर उपदेस ॥ १ ॥
जटा भभूत बैराग जोग तप, यह तौ जोगिया न भाय।
सुन्न निरंतर जोगी बोलै, आपा उलटि समाय ॥ २ ॥
आपै जोगी आपै भोगी, आपै सर्ब समान।
वा जोगिया के दरस परस पर, किया सीस कुरबान ॥ ३ ॥
गगन मँडल अनहद धुनि बाजै, तहँ जोगिया कै फेर।
कह जन बुल्ला वा जोगी बर, सत्त सब्द कै चेर ॥ ४ ॥

॥ शब्द ७ ॥

मन तुम सतगुरु चरन समाजी। अविगति गति ब्रह्म बिराजी ॥टेक॥
अचरज दियना बरो अधर में, प्रेम जोति छबि छाजी ॥ १ ॥
धरनि अकास तहाँ नहिं दीखत, अगम पुरुष इक गाजी ॥ २ ॥
आवै न जाइ मरै नहिं जीवै, अनहद धुनि तहँ बाजी ॥ ३ ॥
जन बुल्ला जानो वहि बीरा[1], (जो) उलटि पवन घर साजी ॥ ४ ॥

॥ शब्द ८ ॥

मन बैरागी हो, प्रभु गति लखहि न कोई ॥ टेक ॥
ले कुंभक पूरक घर रखना, रेचक संजम देई।
त्राटक[2] ताड़ी लगलि केवारी, राम नाम जपि लेई ॥ १ ॥
आगे सुन्न अगम गति लीला, निरखि ध्यान धरि देख।
जगमग जगमग जोति जगमगै, आपुहिं अलख अलेख ॥ २ ॥
आदि ब्रह्म सदा अबिनासी, बासी अगम अपार।
आवै न जाय मरै नहिं जीवै, सदा रहै इक तार ॥ ३ ॥
अद्‌भुत बुंद समूह पुरुष से, तहाँ रह्यो मन छाई।
जन बुल्ला बलि बलि सतगुरु की, जिन यह पंथ लखाई ॥ ४ ॥

(१) बहादुर। (२) तीन गुन जो अटकाने वाले हैं।

सुखमनि सुरति डोरि बनाव।
मेटि है सब कर्म जिय के, बहुरि इतहिं न आव ॥ १ ॥
पैठि अंदर देखु कंदर[2], जहाँ जिय को बास।
उलटि प्रान अपान मेटो, सेत सब्द निवास ॥ २ ॥
गंग जमुना मिलि सरस्वति, उमँगि सिखर बहाव।
लवकंति[3] बिजुली दामिनी, अनहद गरज सुनाव ॥ ३ ॥
जोति आया आपहीं, गुरु यारि सब्द सुनाव।
तब दास बुल्ला भक्ति ठानो, सदा रामहिं गाव ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३ ॥

साईं के नाम की बलि जावँ।
सुमिरत नाम बहुत सुख पायो, अंत कतहुँ नाहिं ठावँ ॥ १ ॥
नाम बिना मन स्वान मंजारी[4], घर घर चित लै जावँ ॥ २ ॥

(१) पहिना। (२) गुफा। (३) चमकता है। (४) कुत्ता बिल्ली।

बिन दरसन परसन मन कैसो, ज्यों लूले को गाँव[1] ॥ ३ ॥
पवन मथानी हिरदे ढूँढ़ो, तब पावै मन ठावँ ॥ ४ ॥
जन बुल्ला बोलहि कर जोरे, सतगुरु चरन समावँ ॥ ५ ॥

॥ शब्द ४ ॥

प्रभु निराधार अधार उज्जल, बिन्दु सकल बिराजई।
अनन्त रूप सरूप तेरो, मो पै बरनि न जावई ॥ १ ॥
बाँधि पवनहिं साधि गगनहिं, गरजि गरजि सुनावई।
तहँ हंस मुनि जन चूगते मनि, रस परसि परसि अघावई ॥ २ ॥
बिना कर मुख बेनु[2] बाजै, बीन स्रवनन गुंजई।
बिना नैनन दरस देखो, अगति गतिहिं जनावई ॥ ३ ॥
वा के जाति पाँति न नेम धर्मा, भर्म सकल गँवावई।
आपु आपु बिचारि देखो, ऐसो है वह रावई[3] ॥ ४ ॥
जीति पाँच पचीस तीनों, चौथे जा ठहरावई।
तब दास बुल्ला लियो गढ़, जब गुरु दीन्ह लखावई ॥ ५ ॥

॥ शब्द ५ ॥

निसु दिन गगन निरेखो जाय।
छोड़ि दे बहु बात बिषया, मगन ह्वै गुन गाय ॥ १ ॥
तिरकुटी जहँ बसत संगम, गंग जमुन बहाय।
बरत झिलमिलि होत जगमग, तहाँ रहु अरुझाय ॥ २ ॥
सुन्न के मनि भवन में, तहँ ध्यान रहु ठहराय।
खोजि ले निज बस्तु अपनी, सकल घट रहि छाय ॥ ३ ॥
तीन लोक में गम्म[4] जा के, द्वार सेवा लाय।
जन बुल्ला कहि अगम मेला, बिरल जन कोइ पाय ॥ ४ ॥

(१) जिस तरह लूला अपने पैरों से चल कर गाँव (मुकाम) को नहीं पहुँच सकता इसी तरह बिना नाम के दरस परस के मन की हालत है यानी अंतर में चाल नहीं चलती। (२) एक लम्बा बाजा जो मुँह से बजाया जाता है। (३) राजा। (४) गति।

मिले सुर मुनि विहँसि करिके, कहैं हरियश को नित गाई।
पियै अमृत सुनत अनहद, बजे एक तार सुखदाई।।
उठै नागिन फिरै चक्कर, खिलै सब कमल फर्राई।
अन्त तन त्यागि निज पुर को, चलै फिर जग न चकराई।।

(२)

नागा रामदास कहैं भक्तों, सुनिये राम नाम की तान।
सतगुरू करि सुमिरन विधि जानो, खुलि जांय आंखी कान।।
ध्यान धुनी प्रकाश दशालय, जहां सुधि बुधि बिसरान।
सियाराम की झांकी हरदम, सन्मुख में ठहरान।।
नागिन जगै चक्र षट बेधै, सातो कमल फुलान।
अमृत पियो सुनो घट अनहद, सुन मुनि संग बतलान।।
अन्त त्याग तन निज पुर राजै, आवागमन नसान।
पढ़ै सुनै औ गुनै जौन कोई, ताको हो कल्यान।।
सहज समाधि यही है जानो, सुर मुनि कियो बखान।
भांति–भांति की उड़ै सुगन्धै, आनन्द करै उफान।।
नैनन ते शीतल जल जारी, रोम–रोम पुलकान।
गदगद कंठ बोल नहिं फूटै, प्रेम में डूबो ग्यान।।
इँगला पिंगला एक होंय तब, सुखमन नाड़ी जान।
सुखमन नाड़ी रहत चित्रणी, तामें बज्रणी मान।।
वाके भीतर ब्रह्म नाड़ि है, जामें तेज महान।
सुकुल धुवां सम भाषत जानो, ररंकार भन्नान।।
मान बड़ाई त्यागि के भक्तों, बनि जावो मस्तान।
शान्ति दीनता की गोदी में, करो सदा कुच पान।।
छिमा नारि संग ही संग डोलै, पल भरि नहिं अलगान।
नेक हटै तो माया गटकै, ले बोलाय शैतान।।
जब सनतोष पुत्र हो पैदा, मुद मंगल विग्यान।

।। शब्द २ ।।

बूझहु पंडित अचरज एक। सेत बरन तहँ सदा अलेख ॥१॥
साधि पवन षट चक्र छुड़ावो। तिरबेनी के घाटै आवो ॥२॥

(१) तोशा, सामान। (२) बिलास करता है।

उनमुनि मुद्रा लगी समाधी। रबि ससि पवनहिं राखो बाँधी ॥३॥
चाचरि मुद्रा से प्रीति लगावो। भूचरि मुद्रा से प्रेम बढ़ावो ॥४॥
अगोचरि मुद्रा से आन भुगावो। खेचरि मुद्रा से दरस दिखावो॥५॥
जो पंडित तैं करु पंडिताई। चरन रेनु हिरदे लै लाई ॥६॥
चरन रेनु का करहु जनेवा। तौ तू पंडित पावहु भेवा ॥७॥
जो यह अचरज देइ बुझाई। सोई सतगुरु अगम कहाई ॥८॥
अगम जोति का धारै ध्यान। बुल्ला बोलहि सब्द निदान ॥९॥

।। शब्द ३ ।।

राम राय लावल फुलवारी ॥ टेक ॥
मूल सींचि के बाग लगाया। कलियाँ भईं तबहिं चुनवाया ॥१॥
एक फूल ते अनेक कहाय। फूल झरी झरि रहि कुम्हिलाय ॥२॥
काहू फूल क मरम न पाया। सरगुन मद्धे रहल समाया ॥३॥
जन बुल्ला सतगुरु बलिहारी। सेत फूल जिन लिहल बिचारी॥४॥

।। शब्द ४ ।।

मोर सुमति भइल, मन जतन बिसारी रे ॥ टेक ॥
मूरहिं बाँधी सूरहिं[1] साधी, पछिम बिचारी रे ॥ १ ॥
लोभ मोह अरु माया छाया, भरमन सब टारी रे ॥ २ ॥
छूटी माया तन पाया छाया, ब्रह्म की जोती रे ॥ ३ ॥
जन बुल्ला जोगी बोलहि, निझर झरै जहँ मोती रे ॥ ४ ॥

।। शब्द ५ ।।

आनँद उदित अखंडित सोहं, मानो गगनद्वार गति जोहं ॥१॥
सिद्धी मूलि मूल मति पावन, जामन पवनहिं उलटि जमावन॥२॥
अर्ध उर्ध के मद्ध निरंतर, जगमग जगमग जोति जगावन ॥३॥
देखि दिखावै कहावै अकेला, मेला अलख पुरुष सँग खेला ॥४॥
जन बुल्ला याही बिधि खेला, अनहद डंक निसंक को देला ॥५॥

(१) स्वर।

सुर नर मुनि जाको अंत न पावहिं, सो मोरे नैनन आगो ॥३॥
हरि रँग जुगन जुगन उँजियारो, जन बुल्ला साधुन साँगो[1] ॥४॥

॥ शब्द १३ ॥

भासत[2] काहे न जोगिया, यह मरै बिरह दुख रोगिया ॥ १ ॥
बिनु जोगी समुझे कल न परतु है, क्यों जी वै जन रोगिया।
पीर घनेरी सूल उठत है, यह दुख जानै रोगिया ॥ २ ॥
आवै जोगी करै तबीबी[3], तब सुख पावै रोगिया।
मथि मन पवन जे दारू[4] लगाई, जन बुल्ला दुख भगिया ॥ ३ ॥

॥ शब्द १४ ॥

न्हान को गंग जमुन तट जैबों।
तन मन धन न्यौछावर वारों, जगमग जोति जगैबों ॥ १ ॥
पवना उलटि भजन नित करिबों, सुखमन सेज बिछैबों।
प्रेम बिलास आस साधुन में, निर्गुन रूप कहैबों ॥ २ ॥
पाप पुन्न दुख सुखहिं बहैबों, अमृत नाम पियैबों।
होत अनन्द बिनोद ब्रह्म को, बहुरि न या कलि ऐबों ॥ ३ ॥
दया धरम मेरे नाम खजाना, ज्ञान रतन भरि लैबों।
अद्‌भुत रूप कहाँ लग बरनों, अनहद में हद कैबों ॥ ४ ॥
सुरति सुहागिन चरन मनावहि, खसम आपनो पैबों।
जन बुल्ला है प्यारी खसम की, रहसि रहसि गुन गैबों ॥ ५ ॥

॥ शब्द १५ ॥

हे मन करु गोबिंद से प्रीत।
बीच मैदान में देइयो, चौहट नगारा जीत ॥टेक॥
स्रवन सुनि ले नाद प्रभु की, नैन दरसन पेख।
अचल अमर अलेख प्रभुजी, देखही कोउ भेष ॥ १ ॥
भाव सँग तू भक्ति करि ले, प्रेम से लवलीन।
सुरति से तू बेर[5] बाँधो, मुलुक तीनो छीन ॥ २ ॥

(१) संग। (२) दरसना। (३) इलाज। (४) दवा। (५) बेड़ा।

जोग करि तुम भोग रस तजि, गंग जमुन थई[1] ॥ ३ ॥
होत अनहद बानि त्रिकुटी, दरस आपु दई ॥ ४ ॥
प्रेम करु तुम नेम हिय में, सुरत डोरि धुनी ॥ ५ ॥
दास बुल्ला बानि बोलहि, आनि तिरबेनी[2] ॥ ६ ॥

॥ शब्द ५ ॥

हौं अबला बनि आई, देहु दरस गति पाई ॥ टेक ॥
सुभ घरी सुभ दिन सुभ पल छिन, जब तुमहीं लौ लाई ॥१॥
मनसा बाचा कर्मना, मेरे धन राम गुसाईं ॥२॥
केतिक जन्म चूक प्रभु मेरो, कहँ लग बिनय सुनाई ॥३॥
जन बुल्ला सरनागति आयो, सुमिरि सुमिरि गुन गाई ॥४॥

॥ शब्द ६ ॥

संतो जोग जानै तौन।
आपु आपु बिचारि लेवै, रहै घट में मौन ॥ १ ॥
चाँद सूर एकग्र करिके, सुखमना धरि पौन।
तहँ होत है अनहद गहागह, मिटो मन को धौन[3] ॥२॥
लाल पहिरि सपेद पहिरै, जरद हरिया[4] जौन।
स्याम पहिरि के बनो दूलह, मिट्यो आवागौन ॥ ३ ॥
पहिरि के जब उलटि चलि भा, भयो घर में चैन।
तब दास बुल्ला बानि बोलै, निर्त ताथेइ ऐन ॥ ४ ॥

॥ शब्द ७ ॥

अब कि बार मो पै होहु दयाल। रोम रोम जन होइ निहाल ॥१॥
जन बिनवै आठो पहवार[5]। तुम्हरे चरन पर आपा वार ॥२॥
तुम तौ राम हहु निर्गुन सार। मोरे हिय महँ तुम आधार ॥३॥
तुम बिन जीवन कौने काज। बार बार मो को आवै लाज ॥४॥
सतगुरु चरनन साज समाज। बुल्ला माँगै भक्ती राज ॥५॥

(१) दहिनी और बाईं स्वासा को ठहराओ। (२) सुन्न। (३) धावना, चंचलता। (४) हरा। (५) पहर।

(६)

बलि हौं बलि हौं सतगुरु की,
जिन ध्यान दियो परमेसुर को,
त्रिकुटी संगम निज राह निबेरी ॥ १ ॥
प्रेम बिलास अकास में बास है,
आवागवन रहित भौ फेरी ॥ २ ॥
अनहद बाजे झनकार कि बानी,
बिन सरवन तहँ सुनत है टेरी ॥ ३ ॥
बुल्ला हिरदय बिचारि बोलै,
ब्रह्मज्ञान कि बात सुनो मेरी ॥ ४ ॥

(७)

जो पै कोउ ध्यान में सदा रहै,
लहै ब्रह्मज्ञान तब साध जाय कहा है ॥१॥
मूल को साधि के पवन को बाँधि के,
त्रिकुटी में आइ के गगन द्वार जोहा है ॥२॥
जोती से जोती मिलो पवन में पानी मिलो,
धरती में अकास मिलो अनहद जाय गहा है ॥३॥

दास बुल्ला कहै अगम गति तब लहै,
गुरु के बचन से अचल घर लहा है ॥ ४ ॥

(८)

जिन से अब जोग जुगति बनि आयो,
अरध उरध तिरबेनी न्हाई ॥ १ ॥
सब पाप जु दोष बहाय दियो,
हरि नाम निरंजन परी दुहाई ॥ २ ॥
दूसरो न अवर है यहि कलि में,
जिन तिहुँ लोक रचि रच्यो बनाई ॥ ३ ॥
बुल्ला हिरदय बिचारि बोलै,
गुरु ज्ञान आध्यातम[1] देखो भाई ॥ ४ ॥

20:46

(२)

गगन के मँडल मगन मन में हुआ,
अर्ध से उर्ध भरि परी बेरी ॥ १ ॥
सेत परकास आकास में फूलि रहि,
बसत है प्रान सुख चैन हेरी ॥ २ ॥
तहँ काया माया नहीं मरन जीवन नहीं,
एक साहिब की भई चेरी ॥ ३ ॥
दास बुल्ला कहै अगम गति तौ लहै,
धन्न सतगुरू महिमा तेरी ॥ ४ ॥

(३)

जिन को हरि नाम से नेह लगो,
तिन को अब ग्रेह की काहे की आसा ॥ १ ॥
परतीत बनी निज साधुन से,
जिन गगन गुफा में दियो बासा ॥ २ ॥
जगमग जोति अपार बिराजत,
जम जालिम की कटी फाँसा ॥ ३ ॥
बुल्ला हिरदय बिचारि बोलै,
बँद छोड़ निरंजन देखु तमासा ॥ ४ ॥

(४)

देह पवित्र से नेह करो,
जहँ राम बसत आतम-धारी ॥ १ ॥
मूल में गाँठि परो दृढ़ से,
जहँ सुखमन सेज कि राह सँवारी ॥ २ ॥
दसो द्वार पर जोति बरै,
उतै निरंकार है ब्रह्म अपारी ॥ ३ ॥
बुल्ला हिरदय बिचारि बोलै,
गुर ज्ञान कि बात सुनो हमारी ॥ ४ ॥

॥ शब्द १० ॥

बुल्ला कवने द्वारा देखै आपु ॥टेक॥
कवने द्वारा आवै जाय। कवने द्वारा रहै समाय ॥ १ ॥
तिरबेनी द्वारे देखै आपु। सुखमन द्वारे सुमिरै जापु ॥ २ ॥
इँगला पिंगला आवै जाय। दसव द्वारा रहै समाय ॥ ३ ॥

आरती

॥ शब्द १ ॥

ऐसी आरति मेरे मन भावै। रबि ससि पवन भवन मन लावै ॥१॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस लै आवै, एक मते ह्वै अरथ दिखावै ॥२॥
गंगा जमुना अरघ दिवावै, अस्तुति से जा प्रभुहिं मनावै ॥३॥
सुरति निरति लै घंट बजावै, जगमग जोति परम पद पावै ॥४॥
जन बुल्ला जो सरन बसि आवै, रंग महल बिच नाम जगावै ॥५॥

॥ शब्द २ ॥

पूजों निरकार बहु भाँती। चेकरे पुजत सितल[1] मोरी छाती ॥१॥
जाके न चंद सूर दिन राती। नेम अरु धर्म न दीपक बाती ॥२॥
जेकरे न ब्रह्म सीव मनकादी। निरंकार इक अधिक सुहादी[2] ॥३॥
जेकरे मोह बरन नहिं जाती। सहज सरूपी पुलकि अघाती ॥४॥
जन बुल्ला के इहै सँघाती। मन पवना मिलि करों आरती ॥५॥

हिंडोला

(१)

हिंडोला झूलहि आतम नारी ॥टेक॥
काम क्रोध जे कर्म पटरी, मन पवन डोरी लाय ॥ १ ॥
तहँ चाँद सूरज खंभ गड़िया, गंग जमुन बँधाय ॥ २ ॥
पौढ़िया ब्रह्मंड चढ़िके, गगन गरजि सुनाय ॥ ३ ॥
जगमगति जोति प्रकास उज्जल, दरस की बलि जाय ॥ ४ ॥
झूलहिं जो हंस कलोल करि के, सखिन को सँग लाय ॥ ५ ॥

---

(१) ठंडी हुई। (२) सोभायमान।

मन बसि लेहु अगम अटारी ॥ टेक ॥
नव नारिन को द्वारा निरखो, सहज सुखमना नारी ॥ १ ॥
अजब अवाज नगारा बाजत, गगन गरजि धुनि भारी ॥ २ ॥

(१) मुकलना = भेजना; गर्भ में जब बालक बहुत तकलीफ़ पाता है तो मालिक से प्रार्थना करता है कि अब की कष्ट से छुड़ा दो तो अब बंदगी भक्ति करूँगा । (२) बैल के अड़ने को कूचर कहते हैं । (३) जल्दी । (४) देने की बेर अपने हाथ को कमजोर कर लेता याने खींचे रहता है और लेने की बेर हाथ फैला देता है । (५) ख़ाहिशमंद । (६) पकड़ना । (७) रस्सी । (८) अकुलाता है ।

तहँ बरे बाती दिवस न राती, अलख पुरुस मठ धारी ॥ ३ ॥
धरनी के मन कहा न मानै, तबहिं हनो है कटारी ॥ ४ ॥

(१०)

मन रे तु हरि भजु अवरि कुमति तजु,
है रहु बिमल बिरागी अनुरागी लो ॥१॥
देई देवा सेवा झूँठी, जैसे मरकट मूठी,
अंत बहुरि बिलगाने पछिताने लो ॥२॥
जठर अगिन जरै, भोजन भसम करै,
तहँ प्रभु पालल देंही, नित तेही लो ॥३॥
सुत हित बंधु नारी, इन सँग दिना चारी,
जल सँग परत पखाने[1], असमाने लो ॥४॥
पर जन हाथी घोरा, इहव कहत मोरा,
चित्र लिखल पट[2] देखा, तस लेखा लो ॥५॥
धरनी भिच्छुक बानी, हम प्रभु अज्ञा मानी,
मिलहु पट[3] खोली, अनमोली लो ॥६॥

(११)

मन तुम कस न करहु रजपूती ॥ १ ॥
गगन नगारा बाजु गहागह, काहे रहो तुम सूती ॥ २ ॥
पाँच पचीस तीन दल ठाढ़े, इन सँग सेन[4] बहूती ॥ ३ ॥
अब तोहि घेरी मारन चाहत, जस पिंजरा महँ तूती ॥ ४ ॥
पइहो राज समाज अमर पद, है रहु बिमल बिभूती ॥ ५ ॥
धरनीदास बिचार कहतु है, दूसर नाहिं सपूती ॥ ६ ॥

आरती व भोग

(१)

भक्त बछल[5] जब भोग लगावै । पंचामृत षट रस रुचि भावै ॥१॥
आदि कुमारी चउका सारै । चरन पखारि कै बेद बिचारै ॥२॥

(१) ओला । (२) पटरी । (३) किवाड़ । (४) फौज । (५) भक्त वत्सल ।

मन को मारि मुँदो नव द्वारी, जीतो पाँचो नारी ॥ १ ॥
परम तत्त निरंकार ध्यान धरि, बहुरि नहीं अवतारी ॥ २ ॥
जन बुल्ला चरनन बलिहारी, जिन्ह यह गतिहिं सँवारी ॥ ३ ॥
तन मन धन चरनन पर वारी, जम से लियो सँभारी ॥ ४ ॥

॥ शब्द २ ॥

निरगुन दयाल दानी मनहीं में जानी।
ससि सूर एक आनि रैनि दिवस सानी ॥ १ ॥
बाजे अनहद्द सुनि भई है दिवानी।
उलटि बहन लागो गंग जमुन पानी ॥ २ ॥
करि अस्नान हंसा धरत अधर ध्यानी।
मिटि गयो आवा जानी भई है उज्जल खानी ॥ ३ ॥
जन बुल्ला याही पदहिं समानी।
मोच्छ मुक्ति भक्ति धुजा फहरानी ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३ ॥

बैरागी कौने बैराग घर लिया, जातें सर्ब त्याग तुम किया ॥१॥
कित बैराग कितहि वे मुद्रा, कौने घाट रस पिया ॥२॥
तन बैराग मनहिं मुद्रा, बंक नाल रस पिया ॥३॥
बुल्ला बैराग ब्रह्म बुद्धि, अचल अमर घर किया ॥४॥

॥ शब्द ४ ॥

प्रान नाथ जी, सहजहिं प्याला पायो ॥१॥
प्याला पिया सिखर गढ़ लीया, जोतिहिं जोति समायो ॥२॥
तन कियो कुंड पवन कियो घोटना, छकि छकि अमी छकायो ॥३॥
जन बुल्ला सतगुरु बलिहारी, नित यह अमल चढ़ायो ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

राम नाम जपि उधरो रसना, राम नाम जपि उधरो।
सब्द बिबेकी गगन निरेखी[1], साध सँगति से सुधरो ॥ १ ॥

(१) देख कर।

(२)

स्याम घटा घन घेरि चहूँ दिसि आइया।
अनहद बाजे घोर जो गगन सुनाइया॥
दामिनि दमकि जो चमकि त्रिबेनी न्हाइया।
बुल्ला हृदय बिचारि तहाँ मन लाइया॥

(३)

सुखमन सीतल सेज हेत ताही से कीजे।
गगन गुफा में पैठि दरस सतगुरु का लीजे॥
आवागवन न होय ब्रह्म कबहूँ नहिं छीजे।
बुल्ला हिरदय प्रेम भरि अम्मर पद लीजे॥

(४)

सामहिं उगवे सूर भोर ससि जागई।
गंग जमुन के संगम अनहद बाजई॥
अजपा जापहिं जाप सोहं डोरि लागई।
बुल्ला ता में पैठि जोति में गाजई॥

(५)

झूठा यह संसार झूठ सब कहत है।
सत्त सब्द की रहनि कोऊ नहिं गहत है॥
बिना सत्त नहिं गत्त कुगत्त परत्त है।
बुल्ला हृदय बिचारि सत्त से रहत है॥

(६)

मुरगी यह संसार चेहुँ चेहुँ करत है।
आतम राम को नाम हृदय नहिं धरत है॥
बिना राम नहिं मुक्ति झूठ सब कहत है।
बुल्ला हृदय बिचारि राम सँग रहत है॥

(७)

ऐसी बनिज हमारि राम को लेन को।
मन पवना दोउ दाम साहु को देन को॥

॥ अजपा का अंग ॥

॥ दोहा ॥

चरनदास गुरदेव ने मो सूँ कह्यो उचार ।
"दया" अहर[1] निसि[2] जपत रहु सोहं सुमिरन सार ॥ १ ॥
नासा आगे दृष्टि धरि स्वाँसा में मन राख ।
"दया" दया करिकै कह्यो सतगुर मो सूँ भाख ॥ २ ॥
पद्मासन सूँ बैठ करि अंतर दृष्टि लगाव ।
"दया" जाय अजपा जपो सुरति स्वाँस में लाव ॥ ३ ॥
अर्ध उर्ध मधि सुरति धरि जपै जु अजपा जाप ।
"दया" लहै निज धाम कूँ छुटै सकल संताप ॥ ४ ॥
स्वाँसउ स्वाँस बिचार करि राखै सुरत लगाय ।
"दया" ध्यान त्रिकुटी धरै परमातम दरसाय ॥ ५ ॥
"दया" कह्यो गुरदेव ने कूरम[3] को ब्रत लेहि ।
सब इंद्रिन कूँ रोकि करि सुरत स्वाँस में देहि ॥ ६ ॥

(१) दिन । (२) रात (३) कछुआ जो सुरत ध्यान से अंडा सेता है ।

बिन रसना बिन माल कर अंतर सुमिरन होय ।
'दया' दया गुरदेव की बिरला जानै कोय ॥ ७ ॥
अजपा सोहं जाप तें त्रिबिधि ताप मिटि जाहिँ ।
'दया' लहै निज रूप कूँ या में संसय नाहिँ ॥ ८ ॥
हृदय कमल में सुरति धरि अजपा जपै जो कोय ।
बिमल ज्ञान प्रगटै तहाँ कलमख डारै खोय ॥ ९ ॥

॥ सोरठा ॥

'दया' सकार[1] हँकार[2] अच्छर को जो जप करत ।
अंतर ह्वै उजियार तिमिर अबिद्या सब हरत ॥ १० ॥
नाभि नासिका माहिँ गाजे सोहं सब्द धुनि ।
या में संसै नाहिँ 'दया' सुमिरि भव तरत मुनि ॥ ११ ॥

॥ दोहा ॥

एका एक मिलै गुरु पूरा, मूल मंत्र जो पावै।
सकल संत की बानी बुझै, मन परतीत बढ़ावै ॥ १ ॥
दुआ दुई तजै जो दुबिधा, रजगुन तमगुन त्यागै।
सतगुरु मारग उलटि निरेखै, तब सोवत उठि जागै ॥ २ ॥
तीया तीन त्रिबेनी संगम, सो बिरले जन जाना।
तृस्ना तामस छोड़ि दे भाई, तब करु वहँ प्रस्थाना ॥ ३ ॥
चौथे चारि चतुर नर सोई, चौथे पद कहँ लागी।
हँसि के परम हिंडोलना झूलै, निरखत भा अनुरागी ॥ ४ ॥
पँचयें पाँच पचीसहिं बस करि, साँच हिये ठहरावै।
इँगला पिंगला सुखमन सोधै, गगन मँडल मठ छावै ॥ ५ ॥
छठयें छवो चक्र को बेंधे, सुन्न भवन मन लावै।
बिगसत कमल काया करि परिचै, तब चंदा दरसावै ॥ ६ ॥
सतयें सात सहज धुनि उपजै, सुनि सुनि आनँद बाढ़ै।
सहजहिं दीनदयाल दया करि, बूड़त भवजल काढ़ै ॥ ७ ॥

(१) पेट। (२) मन की सफाई करो। (३) माँगने वाला। (४) प्रतीत। (५) सुस्ती।
(६) अनूठा, अचरजी।

अठयें आठ अकासहिं निरखो, दृष्टि अलोकन होई।
बाहर भीतर सर्ब निरंतर, अंतर रहै न कोई ॥ ८ ॥
नवें नवो दुवारहिं निरखै, जगमग जगमग जोती।
दामिनि दमकै अमृत बरसै, निझर झरै मनि मोती ॥ ९ ॥
दसयें दस दहाइ पाइ कै, पढ़ि ले एक पहारा।
धरनीदास तासु पद बंदे, अहि निसु बारम्बारा ॥१०॥

॥ बारहमासा ॥

॥ दोहा ॥

चैत चलहु मन मानि कै, जहँ बसै प्रान पियार।
हिलि मिलि पाँच सहेलरी, पंच-पाँच[1] परिवार ॥ १ ॥

॥ छंद ॥

परिवार जोरि बटोरि लीजै गोरि खोरि[2] न लाइये।
बहुरि समय सरूप अस ना जानिये कब पाइये ॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

बैसाखहिं बनि ठनि धनी[3], साजहु सहज सिंगार।
पहिरो प्रेम पटम्बारो, सुनि लो मंत्र हमार ॥ ३ ॥

॥ छंद ॥

सुनि लेहु मंत्र हमार सुन्दरि हार पहिरु एकावरी।
छोड़ि मान गुमान ममता अजहुँ समझु बावरी ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

जेठ जतन करु कामिनी, जन्म अकारथ जाय।
जोबन गरब भुलाहु जनि, कछु करि लेहु उपाय ॥ ५ ॥

॥ छंद ॥

करि लेहु कछुक उपाय नहिं दुख पाय फिर पछिताइ है।
जब गाँठि को गथ[4] नाटि[5] है तब ढूँढ़ते नहिं पाइ है ॥ ६ ॥

॥ दोहा ॥

अजहुँ असाढ़ समुझि चित, यहि दिस हित नहिं कोय।
अद्भुत अरथ दरब सब, सुपन अपन नहिं होय ॥ ७ ॥

(१) पच्चीस प्रकृति। (२) भरम। (३) धन = स्त्री। (४) बँधा हुआ। (५) गिर जाना।

ऐसे राम भजन करु बावरे।
बेद साखि जन कहत पुकारे, जो तेरे चित चाव रे ॥ १ ॥
काया द्वार है निरखु निरंतर, तहाँ ध्यान ठहराव रे।
तिरबेनी एक संगहिं संगम, सुन्न सिखर कहँ धाव रे ॥ २ ॥
हद्द उलंघि अनाहद निरखो, अरध उरध मधि ठाँव रे।
राम नाम निसु दिन लव लागै, तबहिं परम पद पाव रे ॥ ३ ॥
तहँ है गगन गुफा गढ़ गाढ़ो, जहाँ न पवन पछाँव रे।
धरनीदास तासु पद बंदै, जो यह जुगति लखाव रे ॥ ४ ॥

॥ ६ ॥

मेरे राम भलो ब्यौपार हो।
वा सों दूजा दृष्टि न आवै, जाहि करो रोजगार हो ॥ १ ॥

(१) तव्छन=चटपट।

जो खेती तौ उहै कियारी, बिनु बीज बैल हर फार हो।
रात दिवस उद्दम करे, गंग जमुन के पार हो ॥ २ ॥
बनिज करो तौ उहै परोहन,[1] भरो बिबिधि परकार हो।
लाभ अनेक मिले सतसंगति, सहजहिं भरत भँडार हो ॥ ३ ॥
जो जाचौ[2] तौ वाहि को जाचौ, फिरो न दूजे द्वार हो।
धरनी मन बच क्रम मन मानो, केवल अधर अधार हो ॥ ४ ॥

(राग गंधार)

॥ १ ॥

जुग जुग संतन की बलिहारी।
जो प्रभु अलख अमूरत अविगत, तासु भजन निरबारी ॥ १ ॥
मन बच क्रम जगजीवन को ब्रत, जीवन को उपकारी।
संतन साँच कही सबहिन तें, सुत पितु भूप भिखारी ॥ २ ॥
ढोलिया ढोल नगर जो मारै, गृह गृह कहत पुकारी।
गोधन जुत्था पार करिबे को, पीटत पीठि पहारी[3] ॥ ३ ॥
एहि जग हरि भगता पतिबरता, अवर बसै बिभिचारी।
धरनी धृग जीवन है तिन्ह को, जिन्ह हरि नाम बिसारी ॥ ४ ॥

॥ २ ॥

जो जन भक्त बछल उपवासी[4]।
ता को भवन भयो उँजियारो, प्रगटी जोति दिवा सी ॥ १ ॥
लोक लाज कुल कानि बिसारी, सार सब्द को गासी।
तिन्ह को सुजस दसो दिसि बाढ़ो, कवन सकै करि हाँसी ॥ २ ॥
हरि ब्रत सकल भक्त जन गहि गहि, जम तें रहे मवासी[5]।
देह धरी परमारथ कारन, अंत अभैपुर बासी ॥ ३ ॥
काम क्रोध तृस्ना मद मिथ्या, सहज भये बनबासी[6]।
संतत[7] दीन दयाल दयानिधि, धरनीजन सुखरासी ॥ ४ ॥

(१) गाड़ी। (२) माँगो। (३) गौओं के झुंड को इधर उधर बिचर जाने से बचाने को पीठ पर लाठी मारते हैं। (४) सेवक। (५) रक्षा में, बचे हुए। (६) निकसुआ,

ऐसी जुगती योग की, 'मंगत' करे बखान।
सुन पुरखा गुनवन्तया, भेंट करो भगवान॥ 264

प्रथमे आसन सहजे बाँधे। इन्द्री इस्थिर मनुआँ खाँडे॥
काची काया करे विचार। आवत जावत पवन संचार॥
अपने माहीं ब्रह्म तत्त चीन। सो ही जोगिन्दर योग परबीन॥
पवन को छेदे मन ठहराए। पवन को सोधे सत शबद को पाए॥
पाँच तत्त पच्चीस धारा। काचे गढ़ का करो विचारा॥
नौ द्वार ये गढ़ के जानी। दसवाँ गुपत लखे कोई ज्ञानी॥
खट चक्कर इस काया माईं। बूझे गुरमुख योग लखाईं॥
सार योग की जानो मीता। थामे पवन भए पुनीता॥
गुदा लिंग नाभी अस्थाना। हिरदे कंठ धरे मकाना॥
त्रिकुटी चक्कर पछाने जोई। तिस जन को फिर गवन ना होई॥
खट चक्कर और पाँचों मुदरा। ब्रह्म परकाश शबद निरद्वंदरा॥
नाभकँवल है अचरज थाना। जाँ में वसया श्री भगवाना॥
तिससे उपजे स्वास का थम्बा। सुरती खेले खेल अचम्बा॥
दस पवना देह में बिस्तारी। दो पवना सब की अधिकारी॥
प्रान उपान ताँ को नामा। करे पछान ले बिसरामा॥
गुर की सिखया जाप जपावे। अकथ कथे शबद रस पावे॥
अपना रूप आप मिलाए। **'मंगत'** बोले ज्ञान आगाहे॥**265**
बाहर जाती पवन हकारी। भीतर आवे रूप साकारी॥
हकार साकार मिलावे दोई। निरबिख नागन सीधी होई॥
हकार साकार को एह बिध मिलाए। बाँधे पवन पच्छिम घर जाए॥
ईड़ा पिंगला में सुरती धारे। गुर का शबद पल पल विचारे॥
उलट पवन कमल परगासे। उपजे शबद ज्ञान धुन रासे॥
उठके शबद चढ़े आकास। बाजे अनहद नाद निर्बास॥
स्वास सुरत और नाम का बन्ध। गुरमुख खोले बिखमी सन्ध॥
उलट पलट पवन को देवे। मूल शबद नित मन में पीवे॥

नाभकँवल में गरजे बाई। दसवें द्वार तब सोझी पाई॥
बाजे अनहद नाद अखण्ड। धन्न योगी छेदा ब्रह्मण्ड॥
मूल योग की सार पहचान। मन पवन की लाओ तान॥
मन पवन कीजे इक ठौर। गुरमुख बूझे मता अघौर॥
पवन आरम्भ संग नाम सम्भाले। बंकनाल के तोड़े ताले॥
उलट पवन घर उमगे नीर। पीवे कोई कामिल फ़क़ीर॥
उलटा नीर चढ़े आकास। देखे खेल अबगत अबनास॥
मन पवन को नित परचेले। अबगत नाद गगन में खेले॥
सतगुर मिले तब जाने पन्ध। **'मंगत'** खोले विखमी सन्ध॥**266**

ध्रुव लोक से पवन को बाँधे, सुरत पाताल पठाए।
इरध उरध में आसन करके, गुरमुख योग कमाए॥

भया हरि रस पी मतवारा।
आठ पहर झूमत हीं बीतै, डार दिया सब भारा ॥ १ ॥
इड़ा पिंगला ऊपर पहुँचे, सुखमन पाट उघारा।
पीवन लगे सुधारस जब ही, दुर्जन पड़ी बिडारा ॥ २ ॥
गंग जमन बिच आसन मारयौ, चमक चमक चमकारा।
भँवर गुफा मैं दृढ़ ह्वै बैठे, देख्यो अधिक उजारा ॥ ३ ॥

*सोना।

चित इस्थिर चंचल मन थाका, पाँचो का बल हारा।
चरनदास किरपा सूँ सहजो, भरम करम हुए छारा ॥ ४ ॥

॥ राग मलार ॥

(१)

हमारे गुरु पूरन दातार।
अभय दान दीनन को दीन्हे, कीन्हे भवजल पार ॥ १ ॥
जन्म जन्म के बंधन काटे, जम की बंध निवार।
रंक हुते सो राजा कीन्हे, हरि धन दियौ अपार ॥ २ ॥
देवैं ज्ञान भक्ति पुनि देवैं, जोग बतावनहार।
तन मन बचन सकल सुखदाई, हिरदे बुद्धि उँजियार ॥३॥
सब दुख-गंजन पातक-भंजन, रंजन ध्यान बिचार।
साजन दुर्जन जो चलि आवे, एकहि दृष्टि निहार ॥ ४ ॥
आनँद रूप सुरूप मई है, लिप्त नहीं संसार।
चरनदास गुरु सहजो के रे, नमो नमो बारम्बार ॥ ५ ॥

(२)

अस जन धन जननी जिन जाये।
दूसर कुल में भक्ति नहीं थी, जा कूँ तारन आये ॥१॥
कारन परमारथ तन धारयौ, बहुतक जीव उबारे।
खेवट ह्वै भवसागर माहीं, सरन लगे सो तारे ॥२॥
मुक्ति सरूप भूप मन जीते, आसा सकल जराये।
भक्ति खेत में लोभ खरतवा*, ता कूँ रहन न पाये ॥३॥
ज्ञान जोग को सूरज प्रगट्यो, बानी किरन पसारी।
चार दिसा में भयौ उजारो, चौंक उठे नर नारी ॥४॥
प्रेम झलाझल नैनन माहीं, हिरदे सीतलताई।
नख सिख सील संतोष छिमा हीं, बरनै सहजो बाई ॥ ५ ॥

* मोथ घास जिस की जड़ बड़ी लम्बी होती है।

ध्या ते अज्ञान सत्य कूँ जानत नाहीं ।
न बन ढूँढ़त फिरत राम अपने ही माहीं ॥
यौं मिँहदी मैं रंग है लकड़ी मध्य हु तास ।
हजो काया खोजि ले काहे रहत उदास ॥

पाँचै

पाँचौ इन्द्री बस करौ मन जीतन की ठान ।
पवन रोक अनहद लगौ पावौ पद निर्बान ॥
पावौ पद निर्बान करौ तुम ऐसी करनी ।
आसन संजम साध बन्ध लागै जब धरनी ॥
चित मन बुधि हंकार कूँ करौ इकट्ठे आन ।
सहजो निज मन होय जब निस्चल लागै ध्यान

छठ

छहूँ कँवल कूँ देख करि सतवें में घर छाव ।
रसना उलटि लगाय करि जब आगे कूँ धाव ॥
जब आगे कूँ धाव देख करि जगमग जोती ।
बिन दामिनि चमकार सीप बिन उपजै मोती ॥
हन्स हन्स जहँ होत है ओअं ओअं होय ।
चरनदास योँ कहत हैँ सहजो सुरति समोय ॥

सातैं

सतसंगति ही कीजिये सत ही कथिये ज्ञान ।
सत ही मुख सूँ बोलिये सत ही कीजै ध्यान ॥
सत ही कीजै ध्यान हद्द तजि बेहद लागौ ।
तीन अवस्था छोड़ि जाय तुरिया सूँ पागौ ॥

और वह नाद जहाँ विलय होगा, वह परमपद वा परमात्म-पद है। एतदर्थ ऐसी सद्युक्ति की आवश्यकता है, जिसके द्वारा प्रथम विन्दु-ग्रहण हो और विन्दु-ग्रहण होते ही स्वभाविक नादानुभूति भी हो।

संतो की वाणियों में भी हम विन्दु-ग्रहण क पश्चात् ही नाद-श्रवण की विधि का उल्लेख पाते हैं। जैसे–

स्रुति ठहरानी रहै अकासा। तिल खिड़की में निस दिन बासा॥
गगन द्वार दीसै एक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा॥

(तुलसी साहब, हाथरस)

"प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै।
गगन गराजै दामिनी दमकै, अनहद नाद बजावै॥"

गुरु नानकदेवजी ने बताया है कि अपनी चेतनावृत्ति को इड़-पिगंला से हटाकर सुषुम्ना

में लाकर नाद-श्रवण का नादानुसन्धान का अभ्यास करे।

सुखमन के घर राग सुनि, सुन मण्डल लिव लाइ।
अकथ कथा बीचारिऐ, मनसा मनहिं समाइ॥

संत पलटू साहब की वाणी में पाते हैं–

"बिन्दु में तहँ नाद बोलै रैन दिवस सुहावनं॥"

संत राधास्वामी साहब ने विन्दु को 'तिल' शब्द से अभिहित किया है और उसकी प्राप्ति का निर्देशन उन्होंने सुषुम्ना में किया है।

"सुरत शब्द एक अङ्ग कर, देखो विमल बहार।
मध्य सुखमना तिल बसै, तिल में जोत अकार॥"

पुनः उन्होंने सुरत को तिल द्वार तक खींच कर ले जाने और वहाँ दाहिनी ओर के शब्द ग्रहण करने का संकेत किया है।

"सुरत खैंच तक तिल का द्वार। दाहनी दिशा शब्द की धार॥"

संत राधास्वामी के वचन से पूज्यपाद महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज की अनुभूति-पूर्ण में हम आश्चर्यजनक साम्य पाते हैं।

"तिल द्वार तक के सीधे सुरत को खैंच ला।
अनहद धुनों को सुन सुन चढ़ चढ़ के खोजना॥"

नादविन्दूपनिषद् में भी दृष्टियोग करके अन्तर्नाद सुनने के लिए लिखा है।

"सिद्धासने स्थितो योगी मुद्रां सन्धाय वैष्णवीम्।
शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं सदा॥"

(नादविनदपनिषद)

अर्थात् सिद्धासन में स्थित होकर वैष्णवी मुद्रा का अभ्यास करते हुए योगी दाहिने कान से आन्तरिक नाद सर्वदा सुने। सन्त कबीर साहब इस विचार से सहमत हैं कि पहले प्रकाशमान शशि-सूर को देखो, पश्चात् अनहद तूर को सुनो।

"यहि घट चन्दा यहि घट सूर। यहि घट बाजै अनहद तूर॥
यहि घट बाजै तबल निसान। बहरा शब्द सुनै नहिं कान॥"

–संत कबीर साहब

गुरु नानकदेव जी महाराज भी दीपक, चन्द्र और सूर्य-दर्शन के बाद नाद-श्रवण की चर्चा करते हैं–

"पंच ततु मिलि अहिनिसि दीपकु निरमल जोति अपारी।
रवि ससि लउके इहु तन किंगुरी बाजै शबदु निरारी॥"

इस सन्दर्भ में महाराज श्री की क्या राय बनी है, यह समझ लेना भी अत्यन्त आवश्यक है। सत्संग-योग, भाग-४, पारा ६० में आपने इसका बहुत ही सुन्दर स्पष्टीकरण किया है। "दृष्टियोग बिना ही शब्दयोग करने की विधि यद्यपि उपनिषदों और भारती सन्तवाणी में नहीं है, तथापि संभव है कि बिना दृष्टियोग के ही यदि कोई सुरत शब्दयोग का अत्यन्त अभ्यास करे, तो कभी-न-कभी स्थूल मण्डल का केन्द्रीय शब्द उससे पकड़ा जा सके और तब उस अभ्यासी के आगे का काम यथेचित होने लगे। इसका कारण यह है कि अन्तर के शब्द में ध्यान लगाने से यही ज्ञात होता है कि सुनने में आनेवाले सब शब्द ऊपर की ही ओर से आ रहे हैं,

Wealth Monitor
Dezerv Wealth Monitor
Google Play
INSTALL

अथवा

अपने अन्दर तो प्रकाश है ही, केवल देखने का यत्न करना हैं दृष्टि की दायीं धार और बायीं धार में रजोगुणी और तमोगुणी वृत्ति रहती है। रजोगुणी वृत्ति में चंचलता रहती है और तमोगुणी वृत्ति में मूढ़ता रहती है। इन दोनों से अपने को समेटकर बीच में रखने से सतोगुणी वृत्ति होगी तब प्रकाश मिलेगा, प्रभु पाने का पथ मिलेगा। एक महात्मा का कथन है–

बायें इड़ा नाड़ी दक्षिणे पिंगला, रजस्तमोगुणे करितेछे खेला।
मद्धे सत्त्वगुणे सुषुम्ना विमला, धर-धर तारि सादरे॥

जबतक सतोगुणी वृत्ति नहीं होगी, विन्दु नहीं झलकेगा, शून्य-ध्यान नहीं होगा, रास्ता नहीं मिलेगा। इसीलिए संत दादू दयाल जी महाराज ने कहा है–

सहज सुन्नि मन राखिये, इन दुन्यूँ के मंहि।
लय समाधि रस पीजिये, तहाँ काल भय नाहिं॥

और भी–

इंगला पिंगला सुखमन सोधो, बहत शिखर मुख धार।
सुरति निरति ले बैठ गगन पर, सहज उठै झनकार॥

–संत गुलाल साहब

इस दृष्टि-योग की साधना का उल्लेख श्रीमद्भागवत में भी है। उद्धव जी के पूछने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनकों दृष्टियोग की विधि बतायी है।

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम्।
हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्र कृतेक्षण॥

अर्थात् सुखपूर्वक सम आसन से शरीर को सीधाकर बैठे, हाथों को तर-ऊपर गोद में रखे और दृष्टि को नासिका के आगे स्थिर करे। पुनः श्रीमद्भागवद्गीता में श्रीकृष्ण भगवान भक्त अर्जुन से कहते हैं–

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरं भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तर चारिणौ॥५।२७॥

अर्थात् बाहर के विषय भोगों को बाहर ही त्याग कर नेत्रों की दृष्टि को भृकुटि के बीच में स्थिर करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को सम करके ध्यानयोगी सदा मुक्त रहता है। पुनः कहते हैं–

समं काय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिर।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्व दिशश्चानवलोकयन्॥६।१३॥

धड़, गर्दन और सिर को एक सीध में अचल एवं स्थिर रखकर दिशाओं को नहीं देखते हुए दृष्टि को नासिकाग्र पर जमाएँ।

महात्मा धरनीदासजी ने नासिकाग्र-ध्यान और उसके फल को स्पष्ट करते हुए लिखा है–

धरनी निर्मल नासिका, निरखो नैन के कोर।
सहजे चन्दा ऊगिहैं, भवन होय उजियोर॥

संत कबीर साहब ने कहा है–

मुरशिद नैनों बीच नबी है।
स्याह सफेद तिलों बीच तारा अविगत अलख रबी है॥

Wealth Monitor
Dezerv Wealth Monitor
Google Play
INSTALL

16:37

16. Maharshi Mehi Abh...

विन्दु का ग्रहण होता है। विन्दु को तीसरा तील, दसवाँ द्वार, शिव-नेत्र, हीरा, तारा, माणिक, मोती, तीसरा नेत्र, अणोरणीयान, शून्य आदि नामों से अभिहित किया जाता है।

24/60

दृष्टि-साधन अथवा दृष्टियोग में मुख्य शब्द दृष्टि है। दृष्टि कहते है देखने की शक्ति को। दृष्टि-साधन यानी दृष्टि की साधना अर्थात् फैली हुई दृष्टि को समेटकर केन्द्र में केन्द्रित करना। साधक दृष्टि की दोनों धारों को मिलाकर मिलन-स्थान पर एक बिन्दुता प्राप्त कर तुरीय में स्थित हो जाता है। परिणाम-स्वरूप उसके सब कर्म धुल जाते हैं, संसार में आना नहीं होता, आवागमन मिट जाता है। संत बुल्ल साहब अन्दर पैटने की क्रिया का संकेत करते हुए कहते है कि सुषुम्णा में अपनी सुरत की डोरी बनाओं अर्थात् जैसे डोरी बनाने के लिए बिखरे धागों

को एक करना होता है, वैसे ही सुरत की बिखरी वृत्तियों को मिलाकर एक करो।

सुखमनि सुरति डोरी।
मिटिहैं जिव के, बहुरि इतहि न आव॥
पैठी अन्दर देखु कन्दर, जहाँ जिव को बासा।
उलटि प्राण अपान मेटो, सेत सब्द निवास॥

इसी प्रकार संत गुलाल साहब ने कहा है–

"उलटि देखो घट में जोति पसार"

अर्थात् उलटो यानी बहिर्मुख से अन्तर्मुख होओ। ऐसा करने से सुरत की ऊर्ध्वागति हो जाएगी। संत कबीर साहब की वाणी में भी उलटने की बात हम पाते हैं।

उलटि समाना आप में, प्रगटी जोति अनन्त।
साहब सेवक एक संग, खेलैं सदा बसन्त॥

तात्पर्य यह कि बाह्य जगतिक विषय का परित्याग करके जो अन्तर्जगत् का यात्री बनता है, वह अन्तर्ज्योति को प्राप्त करता है। वह सेवक अपने स्वामी के साथ सदा आनन्द-विहार करता है।

शून्यध्यान में एक बिन्दु का ध्यान किया जाता है। बिन्दुध्यान में आँखे बन्द रहती हैं। मन से कुछ बनाना नहीं पड़ता और न किसी प्रकार की कल्पना ही करनी पड़ती है। मात्र देखने के कौशल से देखा जाता है। इससे पूर्ण सिमटाव होता है और मन सुरत की ऊर्ध्वागति हो जाती है। ऊर्ध्वागति में आवरण-भेदन होता है और वह अन्धकार से प्रकाश में प्रतिष्ठित हो जाता है।

विन्दु बाहर में नहीं बनाया जा सकता। रेखा गणित में विन्दु की परिभाषा है–जिसका स्थान है, परिमाण नहीं। पेंसिल, कलम अथवा बाल की नोक से छोटे-से-छोट चिह्न बनाने पर भी उसका कुछ-न-कुछ परिमाण अवश्य होगा। अन्दर में दोनों दृष्टिधारों के मिलन से जो विन्दु बनता है, वही यर्थात में विन्दु है और उसको ही विन्दु नाम से अभिहित किया जाता है। दृष्टि की दो धारें हैं। यदि ये दोनों इधर-उधर हो जाएँ तो प्रकाश नहीं होगा। दाईं धार और बाईं धार जब मध्य सुषुम्णा में मिलेगी, तो प्रकाश की धारा आवेगी और अन्तः प्रकाश हो जाएगा।

आँख और मन; दोनों जड़ हैं। जबतक उसके साथ चेतन-धारा जुड़ी नहीं होगी, हम रूप का ज्ञान नहीं कर सकते। इस दृष्टि से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि मन में जो चेतन-धारा है, उसके माध्यम से ही देखना होता है। इसलिए दृष्टि पवित्र करने के लिए मन को पवित्र करना चाहिए और मन को पवित्र करने लिए दृष्टियोग करना आवश्यक है। दृष्ट और मन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दृष्टि के साथ मन और मन के साथा चेतन जुड़ा हुआ रहे, तभी देखना सम्भव है।

अन्तस्साधना अर्थात् दृष्टियोग का आरम्भ तीसरा तिल, यानी विन्दु ध्यान-शून्य ध्यान, आज्ञाचक्र या सुषुम्णा से होता है। संत यारी साहब ने कहा है–

सुखमना पर बैठि आसन, सहज ध्यान लगाव।
दृष्टि सम करि सुन्न सोवो, आपा मेटि उड़ाव।
प्रगट जाति अकार अनुभव, शब्द सोहं गाव।

इसी प्रकार संत सुन्दर दास जी कहते है कि जिस तरह चातक पक्षी बाह्याकाश में मँडराते हुए काले-काले बादलों को देखकर स्वाति-बूँद की आशा में एकटक निहारता रहता है, उसी तरह तुम अपने अन्तःस्थ स्थूलाकाश के अंधकार में गुरु-निर्देशित स्थान पर परमात्मा के

Wealth Monitor
Dezerv Wealth Monitor
Google Play
INSTALL

॥ शब्द १३ ॥

मैं ब्योपारी नाम का, हाटे चल भाई ॥ टेक ॥

जस कुम्हरा के चाक घुमै, वैसे नर घूमै ।
इँगल पिंगल के मद्ध में, जिन पवन चलाई ॥ १ ॥
बिन रसना रटना करै, नहिँ जीभ डोलाई ।
कसि के बाँधो कामदेव, तब अलख लखाई ॥ २ ॥
पूरब दिस को जाइ कै, खिरकी खोलवावो ।
तिरवेनी के घाट पर, हंसा नहवावो ॥ ३ ॥

(१) मेँढकी । (२) कहार, धीमर ।

तीन लोक दसवेँ दिसा, जम रोके द्वारा ।
कहैँ कबीर धर्मदास से, हंसा समुझावो ॥ ४ ॥

॥ शब्द १४ ॥

सुकृत फूल गुलाब को, सब घट रह्यो समाय ।
कहो कैसे कर पाइये, गुरु बिन लख्यो न जाय ॥ १ ॥
तीन त्रिकुट के ऊपरे, फूल सोहंगम फूल ।
जहाँ रहो आसन धर्म को, बिन अच्छर निज मूल ॥ २ ॥
चार जोजन के ऊपरे, पुरुष बिदेही पूर ।
जगर मगर वो नगर है, बाजै अनहद तूर ॥ ३ ॥
अपने ढिगे हम खड़े, सतगुरु दियो बताय ।
खिड़की खोल देखाइया, राह गगन की जाय ॥ ४ ॥
कहैँ कबीर धर्मदास से, परगट दियो जनाय ।
जो हंसा चढ़ि जावही, नहिँ पुनि आवै जाय ॥ ५ ॥

॥ शब्द १५ ॥

हीरा झलके द्वार पर, निरखै कोइ सूरा हो ॥ टेक ॥

जिमीँ आसन है संत को, बैठे हहिँ धीरा हो ।
सुन्न समाधि लगाइ के, पहुँचे वहि तीरा हो ॥ १ ॥
बाजै बिरहिन बाँसुरी, सुनि के गइ पीरा हो ।
आठ पहर नौबत झरै, अति गरुअ गँभीरा हो ॥ २ ॥
गंग जमुन के बीच मेँ, एक झिरहिर नीरा हो ।
पूरब से पच्छिम भये, अति गगन गँभीरा हो ॥ ३ ॥
यह हीरा अनमोल है, सब के घट पूरा हो ।
कहहिँ कबीर धर्मदास से, पायो पद पूरा हो ॥ ४ ॥

21:14
2015.347337.Dhani-Dhar...

कहैं कबीर सुनो हो धर्मनि, छाँड़ो खल के आसा।
अमृत भोजन हंसा पावे, बैठि पुरुष के पासा ॥ ५ ॥

॥ शब्द २ ॥

केहि बिधि प्रीतम पाइये, गुरु राह बतावो ॥ टेक ॥
अरध उरध बिच बागिया, तहँ सुरति लगावो।
अष्ट कँवल दल पाँखुरी, उन को बिहसावो[1] ॥ १ ॥
इँगला पिँगला दोइ है, त्रिकुटी मन लावो।
आपन रैयत बसि करो, बैठे अदल चलावो ॥ २ ॥
छज्जा ऊपर बैठि के, फिर संख बजावो।
सुखमनि हीरा सोधि के, बाहर चढ़ि आवो ॥ ३ ॥
कहैं कबीर धर्मदास से, पद गहु निरबाना।
मनुष जनम दुर्लभ अहै, तन तपन बुझावो ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३ ॥

चेतो हंसा चेतो कोई, अगम सँदेसा लाये हो।
हम हैं हजूरी अविगति ब्रह्म के, हंस उबारन आये हो ॥ १ ॥
सही छाप सूरति मुख बानी, जग में आनि सुनाये हो।
जीव दुखित देखा संसारा, तेहि कारन पठवाये हो ॥ २ ॥
आवागवन में सब जिव अरुझे, इस्थिर घर नहिं पाये हो।
आदि अंत इस्थिर लखावन को, समरथ मोहिं पठाये हो ॥ ३ ॥
अंडज खानी माया बनाई, पिंडज ब्रह्मा सिरजी हो।
उष्मज खानि बिष्नु जो कीन्ही, अस्थावर सिव साजी हो ॥ ४ ॥
ये बटमार भये या जिव के, सबै राखि भरमाई हो।
चेतन अंस पुरुष की भाई, चारो माहिं भुझाई हो ॥ ५ ॥

---

(१) खिलावो।

हो–केवल मानस-जप, मानस-ध्यान और दृष्टियोग के अभ्यास करने की ही गुरु-आज्ञा हो, तबतक दो ही बन्द (आँख-बन्द और मुंह-बन्द) लगाना चाहिए। नादानुसन्धान करने की गुरु-आज्ञा मिलने पर आँख, कान और मुंह–तीनोंबन्द लगाना चाहिए।" (मोक्ष-दर्शन)

गुरु नानकदेव जी महाराज और परम भक्तिन सहजोबाई के वचन में भी तीन बन्द लगाकर नादानुसन्धान करने का आदेश है।

"तीन बन्द लगाय कर, सुन अनहद टंकोर।
नानक सुख समाधि में, नहीं साँझ नहिं भोर॥"

उपर्युक्त 'तीन-बन्द' का स्पष्टीकरण संत कबीर साहब की वाणी में हम पाते हैं–

"आँख कान मुख बन्द कराओ, अनहद झींगा सब्द सुनाओ।
दोनों तिल एकतार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है॥"

संत कबीर साहब और गुरुनानक साहब के वचन में पाँच नौवत तथा पाँच शब्दों का वर्णन मिलता है। जगजीवन साहब ने मुरली, किंगरी, सारंगी घंटा और शंख–इन पाँच शब्दों को बताया है। संत गरीब दासजी की वाणी में दश शब्दों की चर्चा मिलती है। पूज्यपाद महर्षि जी महाराज ने पाँच मण्डलों की पाँच नौबतों तथा उनके केन्द्रीय नादों का विस्तृत पद्यात्मक वर्णन किया है। (महर्षि मेँहीँ-पदावली) साथ ही सत्संयोग, भाग-४ में भी आपने अन्तर्नाद-विषयक विशद व्याख्या की है जो गद्यात्मक है। "बीन, वेणु (मुरली), नफीरी, मृदङ्ग, मर्दल, नगाड़ा, मजीरा, सिंगी, सितार, सारङ्गी, बादल की गरज और सिंह का गर्जन इत्यादि स्थूल लौकिक शब्दों में से कई-कई शब्दों का अन्तर के एक-एक स्थान में वर्णन किसी-किसी संतवाणी में पाया जाता है। ये सब एक ही तरह वर्णन किए हुए नहीं पाये जाते हैं। जैसे एक संत की वाणी में मुरली का शब्द नीचे के स्थान में वर्णन है, तो दूसरे संत की वाणी में यही शब्द ऊँचे के स्थान

में वर्णन किया हुआ मिलता है।...... ऐसे वर्णनों को पढ़कर किसी संतवाणी को भूल वा गलत कहना ठीक नहीं और इसलिए यह भी कहना ठीक नहीं है कि सब सन्तों का एकमत नहीं है। ..... वृक्ष के विस्तार की स्थिति उसके अंकुर में और अंकुर की स्थिति उसके बीज में अवश्य ही है। इसी तरह स्थूल जगत् के सारे प्रसार की स्थिति, सूक्ष्म जगत् में और सूक्ष्म जगत् के सब प्रसार की स्थिति कारण में मानना ही पड़ता है। स्थूल मंडल की ध्वनियों की स्थिति सूक्ष्म में और सूक्ष्म की कारण में है, ऐसा विश्वास करना युक्तियुक्त है। (पारा-७२)

स्थूल मंण्डल का एक शब्द जितना मीठा और सुरीला होगा, सूक्ष्म मण्डल का वही शब्द उससे विशेष मीठा और सुरीला होगा। इसी तरह कारण और महाकारण मण्डलों में (जहाँ तक शब्द में विविधता हो सकती है) उस शब्द की मिठास और सुरीलापन उत्तरोत्तर अधिक होंगे। कैवल्य-पद में शब्द की विविधता नहीं मानी जा सकती है। उसमें कैवल एक ही निरुपाधि आदिशब्द मानना युक्तियुक्त है; क्योंकि कैवल्य में विविधता असंभव है। (पारा-७४)

"जो अखण्ठ नाद जगत् के अन्तस्तल में आकाश-मण्डलमें निरन्तर ध्वनित हो रहा है, उसे बद्ध जीव जीव चित्त और प्राणों की विक्षिप्तता के कारण सुन नहीं पाता। परन्तु जिस समय गुरु-कृपा से तथा क्रिया-विशेष के द्वारा सुषुम्ना-मार्ग उन्मुक्त होता है, उस समय प्राण स्थिर और सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होकर उसमें प्रविष्ट होते है और उस शून्य पथ से अनाहत ध्वनि का अनुसरण करते-करते मन क्रमशः निर्मल और शान्त अवस्था को प्राप्त करता है। जब मन पूर्णरूपेण स्थिर हो जाता है, तब फिर नाद-ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती। उस समय चिदात्मक आत्मा अपने स्वरूप मे स्थिर होकर बाह्य प्रकृति के स्पर्श से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

नाद मूलतः एक होने पर भी औपाधिक सम्बन्ध के कारण विभिन्न स्तरों में विभक्त है। योगियो ने साधारणतः इस प्रकार के सात स्तरों का उल्लेख किया है। शास्त्र जिसको ओंकार अथवा प्रणव का स्वरूप कहते हैं, वही उपाधि-रहित शब्द-तत्त्व है। वैयाकरणों ने तथा किसी-किसी प्राचीन साधक सम्प्रदाय ने 'स्फोट' नाम इसकी व्याख्या की है। यह स्फोट ही अखण्ड सत्तारूप ब्रह्मतत्त्व का वाचक है अर्थात् इसीसे ब्रह्मभाव की स्फूर्ति होती है।

प्रणव ईश्वर का वाचक है। इस बात का भी तात्पर्य यही है। वाचक स्फोट शब्दब्रह्म रूप में और वाच्य सत्ता परब्रह्म के रूप में वर्णित है। अतएव एक तरफ से ब्रह्म ही ब्रह्म का प्रकाशक है, यह कहा जा सकता है। स्वप्रकाश ब्रह्म अपने स्वरूप के अतिरिक्त और किसी पदार्थ के द्वारा प्रकाशित नहीं हो सकता–यह कहने की जरूरत नहीं। परन्तु स्फोट या शब्दतत्त्व जबतक जीव के लिए अव्यक्त रहता है, तबतक उसके द्वारा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसलिए योगी यथा विधि ध्वनि और नाद का अवलम्बन करके इसके अभिव्यक्त करते हैं। साधक का मन नाद के साथ युक्त होने पर अनायास परब्रह्म पद तक उठकर चिन्मय आकार धारण करता है और चैतन्य के अपने-आपको मिला देता है।" (महामहोपाध्याय कविराज आचार्य गोपीनाथ जी, एम. ए.)

उपनिषदों तथा संतों की वाणियों में बिजली की चमक तथा मेघ-गर्जन के यत्र-तत्र विस्तृत वर्णन पाये जाते हैं, जिनकी प्रत्याक्षानुभूति अन्तस्साधना करते समय साधक होती है।

आदौ जलधि जीमूत भेरी निर्झर संभव।
मध्ये मर्दल शब्दाभो घंटा काहलजस्तथा॥
अन्ते तु किंकिणी वंश वीणा भ्रमर निःस्वानः।
इति नाना विधानादाः श्रूयन्ते सूक्ष्म सूक्ष्मतः॥

Wealth Monitor
Dezerv Wealth Monitor
Google Play
INSTALL

ब्रह्म[5] अगनिमै काया[6] दहे, मन चंचल निहचिल होयरहे ।
काम क्रोधका झडै जंजीर, परमसिद्ध जहां जालन कीर ॥
वार पार नहि अगम अछेह, धरती वरषे अंबर तेह ।
निर्मल धार अपार अनन्त, ता मुखि लागि रहे सब सन्त ।
निगम अगम गुरु गम्यमगहोय, पवन निर्लेप अंबर धोय ।
रमता राम निरंजनराय, राखी वसत शाहकूं खाय ॥
पारम उदार अपार अनन्त, अवरण वरण अगहि भगवन्त
उलटी गंग जमन मै आण, तोहि पिछाणे ताहि पिछाण ।

1 माया 2 समार व मोह 3 काम क्रोध 4 मिताहारी 5 ज्ञानाग्नि में
प्राणादि इन्द्रियग्राम व सूक्ष्म शरीर लिङ्गदेह ।

गूढ वन नहि तहां मठ छाय, पंचनासिय अमृतरसम्याय ।
ज्ञान गुफामें आरम करे, जोगी जीवे जोरों मरे ॥
भौ सागर डर अनन्त अपार, ता विरषे को यहे विचार ।
मनविष छाडि विसंमरमजो काम क्रोध विषया विषवमो ॥
परमानन्द परम सुखसार, ताहि भजो भजि वमो विकार ।
जांमण मरणां जुरां भडरणां(अब)मरि साहिब मारगि सरणरणां ॥
काई सूरवीर का काम, कायर कद करै नहि राम ।
मडि सगराम घाव घन्सिहे, परदल जीति परम गति लहे ॥
जगमें यहै जोग संग्राम, कोई करो आपणा काम ।
ए पासा चोपडि ए सारी, अबके जीति जाई भावे हारि ॥
जन हरिदास कहे समझाय, यह निध हाथि चढी नरदेह ।
गोविन्द[1] भजो रामकी आस, अहोनिश न लाग जमका पांस ॥

॥ इति जोग संग्राम जोग ग्रन्थ ॥ ८ ॥

॥ अथ अष्टपदी जोग ग्रन्थ ॥ ९ ॥

हमहेक मध गतिकूं हेरे, जाता मनकूं उलटा फेरे ।
महादेवका मता पिछाणे, मनदशं दिसामूं उलटा आणे ॥

1 यहांतक आत्मसंयम योग के अधिकारी प्रति उपदेश ।

परम पुरुष परदुःख हरण, हरि जहां तहां भरपूर ॥
अरस परस आनंद सदा, अकथा आम सब गोन ।
हरि समर्थ सुख निजरि[१] भरि, कीमति करै सु कौन ॥

१ वेदाध्ययन २ विचार ३ क मुण्डकोपनिषद में १२।४ का १६ यहां प्रवृत्ति निवृत्ति के अधिकारी है ४ विघ्न ५ इत्यादि ।

निरगुणका गुण का कहूं, कथिये कहा अकथ ।
अकल तुह्मारे आसिरे, सकलभवन समथ ॥
गंग[१]जमनि मधि एकरस, सुखमें सुरति निवास ।
जोगारंभि लागा रहे, तिरवेणी[२] तटिवास ॥
परापरे परसिध पुरुष, मायारहित अभंग ।
सेवक की सेवा करे, साध तहां परसंग ॥
नांना विधि सुणि सुणि असुणि, बहुविधि करो विचार ।
जन हरिदास लहि लहि अलहि, हरि अवगति अपरंपार ॥

॥ छंद बेखरी (द्वयत्त्वरी) ॥

त्रिविध ताप सासो न सूल, परमभेद आनन्दमूल ।
उदे अस्त आवे न जाय, सकल विधापि सहजभाय ॥
मोह दोह आसा न पास, वरण विवरजित सु प्रकास ।
काम क्रोध तृष्णा न ताप, ज्ञान ध्यान जोगी न जाप ॥
तात मात सासों न संक, साह वेद रोगी न रंक ।
घट घटा रसना न रीति, ऊंच नीच परसै न प्रीति ॥
निरालंब निरलेप राया, रसण डसण रूप नहीं ताया ।
धरणी गगन समंद न हीर, जल ज्वाला मछी न कीर ॥

१ इडा पिंगलाबीच सुषुम्णा २ प्रयाग

कहा अतोल का तोलिये, अलख अभेद अछेह ।
ग्यांन ध्यांन मति गति अगम, अजपा राम अछेह ॥
निराकार निरभै निडर, निरामूल निजनाथ ।
भुजा अनन्त[1] लोचन अनन्त, पैं न पहुँचे हाथ ॥
जहा तहां हरि देखिये, वार पार मधि नांही ।
सकल वियापी संगि वसे, ताहि छांडि मति जाहि ॥
मोह द्रोह मेंटे मनी[2], काम क्रोध भ्रम दूरी ।
मनि उनमनि लागारहे, तहां वसत भर पूरी ॥
चितचंचल निहचल भया, मनके पड़े न राय[3] ।
हरि निर्गुण निरभै मते, जहां तहां समिभाय ॥
हरि चिन्तामणि सबमेंवसे, जांणे विरला कोय ।
रामदया, तब जाणिये, साध कहे स्यूं होय ॥
गंग जमनि मधि मुकतिफल, सतगुरु दिया बताय ।
मन लोभी लालच पड्या, तो सुख में रया समाय ।
अनन्त साध आगे भया, परसि परसि भौपार ।
जन हरिदास सिरके सटे, जहां तहां दीदार ॥

॥ इति नाम निरूपण जोग ग्रन्थ ॥ ४ ॥

---

१ पुरुषसूक्त मन्त्र सहस्त्रशीर्षा इति २ मन ३ दरार

॥ अथ निरञ्जन लीला जोग ग्रन्थ ॥५॥

झलके अबगत छैल जगत से न्यारा है ॥2॥
स्वामी गुमानी राम बताया,
महल माहिं महबूब दिखाया ।
पांच पचीस उलट घर आया,
उतर गया सब मैल नैनों निरख नजारा है ॥3॥
नितानन्द कुछ अजब तमाशा,
माहीं धरनी माहिं अकाशा ।
सूरज चन्द्र असंख उजासा,
भाज गया बद फैल मिला पीव पियारा है ॥4॥

राग धनासरी शब्द

सोई संत सुजान जगत से न्यारा है ।
अस्तुति निन्दा मान बड़ाई, तजे खुदी अभिमान॥टेक॥
छमा अधीनी छक रहे, राख शील सन्तोष।
निहकामी निर्मल सदा, सो जन जीवन मोक्ष॥
तत्व तिलक धारे रहें, संत जनों से भाव।
गगन मगन गुरु ज्ञान में, धरें अगमपुर पाव॥
इन्द्रियों से अटके नहीं, तन मन पर असवार।
अंतरगत के चान्दने, सुने अनाहद तार॥
सुरत निरत संयम रहे, उनमन दशमें द्वार।
नाद विन्द अस्थिर करे, बैठे ब्रह्म विचार॥
अरध उरध में आरसी, निरख गुमानी दास।
नितानन्द हर चरण में, जुग जुग रहो निवास॥

शब्द

राम नाम धन पाया अब हम ।
सभ दुख हरन करन जन निर्मल, सतगुरु कह समझाया॥टेक॥

जरना जागे भय भरा, जिसकी गांठी लाल।
नितानन्द भीतर मगन, बाहर दुरबल चाल॥
अजर जरावे जोगिया, उदर अफारा नाहिं।
नितानन्द जरना किये, अटल परम पद माहि॥
नितानन्द लौ लग गई, हुआ राम में लीन।
अमर लोक की साहेबी, पाई पद प्रवीन॥
अर्ध उर्ध के मध्य में, परम सुन्य प्रधान।

लौ लागी घर ब्रह्म में, जहां न काल कुफरान॥
लौ लागी जब जानिये, रहे बिदेही होय ।
नितानन्द गुण देह का, कदे न ब्यापै कोय॥
निरत समानी सुरत में, सुरत निरत में लाग।
नितानन्द लौ लीन हो, गया भरम सब भाग॥
गंगा जमुना सुरसती, मिले सिंधु में जाय।
ऐसे जन हर में मिले, नितानन्द लौ लाय॥
कदम गुमानी राम के, नितानन्द दिल लाय।
यह सब स्वप्ना समझ ले, दुनिया द्वन्द्व सराय॥
जीव मुसाफिर आइयां, तन सराय के माहिं।
नितानन्द एक रैन बस, फजर राह लग जाहि॥
तेल फुलेलों धोइये, तो भी गन्दी देह।
नितानन्द हरि भक्ति बिन, अंत खेह की खेह॥
धन्धे में अन्धे हुए, नितानन्द सब जीव।
आंख खोल देखें नहीं, तिल के ओल्हे पीव॥
नितानन्द इस जगत को, देखा झाड़ पिछोड़।
हरि बिन अपना को नहीं, बिखरी सुरत बहोड॥
नितानन्द इस जगत को, कौड़ी को मत लेय।
सिर के बदले हर मिले, तो निर्भय होय सिर देय॥
नितानन्द इस जगत की, कही न जा कुछ बात।
जिसको अपना थरपिये, सो फिर घाले घात॥
नितानन्द इस जगत में, नहीं किसी का कोय।
आप आप को चालना, यह मिलाप दिन दोय॥
झखत झखत दिन खो दिया, सोवत सोवत रैन।
नितानन्द तन नगर में, बिरला ही को चैन॥
रतन जन्म बहु मोल का, कौड़ी को खोया।
नितानन्द यह अन्ध नर, चलती बेर रोया॥
बाप गया दादा गया, हम भी चालन हार।

हमोरू मप गतिकूं हेरे, माता मनकूं उमटा फेरे ।
महादेवका मता पिछाणे, मनदरं डिसाम् उमटा माणे॥

१ यहांतक आत्मानुभव योग के अधिकारी प्रति उपदेश ।

मनसा देवी सबकूं खावे, हमकूं मनसा सांच बतावे ।
इम जोगी जोग जुगति गमिजांणे, वहती नदी अपूठी आणे ॥
पवन गोटिका पारा बांधे, उलटी सुरति गगनकूं सौधे ।
काम क्रोधका मूल[१] उपारे, गगन मंडलमें आसण धारे ॥
अगम पियाला भरि भरि पीवे, अरूप रूप विचारत जीवे ।
हरि सुख सिंधु तहां भय नाही, हरिजन हंस बसे ता मांही ॥
परम ज्योति अंतरि मनराखे, हरि हीरा विणि चूणि न भाखे ।
जन हरिदास निरखिये निज, मनकी ठोर उठाय ॥
सुरति सुलटि उलटा चढे, तो अगम तहां चलिजाय ।
लहिये अगम निगमते आगे, अंतरी नींद नेत जब जागे ॥
ससिहर[२] कै घरि सूर समावे, उलटि कवल कवलापति पावे ।
सब मै राम दूरि हरिनाही, ज्यूं ज्वाला काष्ट घृतपे मांही ॥
यहु निज सुख जाग्या सो जाणे, सूता अरथ कहां सु आंणे ।
अगम अथाह वार नहि पारं, ताका कैसा भेद विचारम् ।
वरण वियोग रोग नहि जांणा, परमभेद ऐसा असथांणा ॥
सकल समीपी सकल सुहावा, तीनि लोक त्रिभुवन पनिरावा ।
सुखमनि उलटि गगनमें आंणी, सुनि मंडलमें खेले प्राणी ॥
सुखमनि परम सिंधमें झूले, तारुति कवल कंतुकी[३] फूले ।
नाभि सरोवर निज जल नेरा, मन मतवाला झूले मेरा ॥

१ रजोगुण २ चन्द्रमा ३ केतकी

(२)

काया परिचै नहीं पवन के साध करि ।
पवन के साधि जम बाँधि मारे ॥ १ ॥
इंगला पिंगला नी यह नाटिका ।
भूख ओ प्यास तजि तने जारे ॥ २ ॥
भया तन छीन बलहीन जोग जुगुति बिनु ।
आपने मूढ़ कहु काहि तारे ॥ ३ ॥
साँपिनी डाइनी मूसे दिन रैन यह ।
बिना तप तेज नहिं समुझि पारे ॥ ४ ॥
पिंड ओ प्रान कछु काम के हैं नहीं ।
झूठ साखी कथै कुफुर बारे ॥ ५ ॥
चाल बेचाल चले सील संतोष नहिं ।
अवर सों अवर कहि अवर टारे ॥ ६ ॥
छोड़ु परपंच तुम फंद काहे रचे ।
फंद जंजाल का काम सारे ॥ ७ ॥
काया के अग्र यह अगम पहिचानि ले ।
कहैं दरिया सत सब्द धारे ॥ ८ ॥

(३)

घट परघट पर मौन परमान है ।
दिव दृष्टि की बात का दूरि जानी ॥ १ ॥
पुन्य तीरथ घरे भरमि काहे मरे ।
निकट नीसान नहिँ फहम आनी ॥ २ ॥
दीद बर दीद परतच्छ निर्बान है ।
निरखु निज नाम चढ़ु गगन ज्ञानी ॥ ३ ॥

साधि ले मेरुदँड बैठु ब्रह्मंड खँड ।
पवन परिचेलि* ले काम जारा ॥ ३ ॥
काल जंजाल का मनी कूताइ ले ।
जोग गहि जुगुत तुम समझ यारा ॥ ४ ॥
उलटि पवन तुम मगन करु गगन में ।
साधि ले त्रिकुटि दिब दृष्टि वारा ॥ ५ ॥
जहँ होत झनकार सत सब्द उँजियार ।
तहँ छूटि गौ तिमिर उदीत सारा ॥ ६ ॥
तहँ रोग ना सोग निर्दोष निर्बान है ।
सर्बज्ञ सब माहिं तुम देखु यारा ॥ ७ ॥
कहै दरिया दिल पैठु दरियाव में
पावो तुम लाल अमोल प्यारा ॥ ८ ॥

(५)

नाम निर्बान तें कर्म कलिबिष छुटै ।
खुलै कपाट मद मोह टारा ॥१॥
काल का फाँस जो कटि कत्तल[†] किया ।
ज्ञान गुरु खड्ग ले काटि यारा ॥ २ ॥
अनुराग बैराग हिय छेद बिरह भेद ।
सत बर्ग सत नाम तुम समझु प्यारा ॥ ३ ॥
होइ आवाग बध काम करिबो छुटै ।
खुलै मूल दृष्टि पर अगम डेरा ॥ ४ ॥
काया के अग्र जहँ अगम झलकत रहै ।
झरत झरि अगम सब फहम तेरा ॥ ५ ॥

* जगाना । † मार डाला ।

प्रेम धगा* यह टूटता नाँ ।
गर† टूटि कंठी फिर बाँधना क्या ॥ १ ॥
यह तत्त तिलक सत नाम छापा करु ।
और बिबिधि है देखना क्या ॥ २ ॥
ज्ञान का दंड न डगमगै कर ।
दंड लिये काहू मारना क्या ॥ ३ ॥
यह झूलना दरिया साहेब कहा ।
सत नाम सही बहु पेखना क्या ॥ ४ ॥

(३)

दुइ सुर चाले एक भाव से ।
नाभि में उलटि के आवता है ॥ १ ॥
बिच इंगला पिंगला गले तीन नाड़ी,
सुखमनि से भेद बतावता है ॥ २ ॥
उमँग करो अरु पूरो भरो ।
गंधर्ब लिये झरि लावता है ॥ ३ ॥
यह झूलना दरिया साहेब कहा ।
कोइ जोगी जुगुत से पावता है ॥ ४ ॥

(४)

झक झक लगा झक झक लगा ।
यह झरि झरोखे झाँकिया रे ॥ १ ॥
झरि झरि परा झरि झरि परा ।
यह फूल गुलाब के आँखिया रे ॥ २ ॥

* धागा, डोरा । † गला ।

॥ झूलना ॥

(१)

मुक्ति के हींडोलना, झूलहिँ बिबेक बिचार ॥ टेक ॥
सत सुकृत दोउ खंभ गाड़े, सुरति डोरि लगाय ।
प्रेम पटरी बैठि के, यह झुलहिँ संत समाय ॥ १ ॥
इंगल पिंगला सुखमना, जहँ चलै पवन सुधारि ।
अर्ध उर्ध आवै दुवादस, चरन चित्त सम्हारि ॥२॥
जहँ जलद* झलकित पुहुप बिगसित, भँवर बास समाय ।
तहँ मोह माया निकट नाहीँ, अग्र घ्रान रहु छाय ॥३॥
फूहि झमझम झरत निरगुन, रहो गगन समाय ।
तहँ मनी मुक्ता निरखु निर्मल, प्रेम पंथ अपार ॥४॥
तहँ रह अकह कह अकथ कथ है, कहे को पतियाय ।
तहँ झूलहीं जन प्रेम बसि होय, अवा गमन नसाय ॥५॥
छोड़िहैँ सब भर्म कर्महिँ, नाम निस्चै पाय ।
अचल पद कहँ लागिहैँ सब, सकल भर्म मिटाय ॥६॥
सुमिरत बेद पुरान पंडित, पुजा करम बखानि ।
भर्म कर्म लै झुलन लागे, अंत बिगुरचन हानि ॥७॥
आदि अंत औ मध्य मंडल, झुलहिँ मुनीं महेस ।
कहँ दरिया सत्त महिमा, ज्ञान गुरु उपदेस ॥८॥

(२)

सत्त सुकृत दुनौँ खंभा हो, सुखमनि लागलि डोरि ।
अरध उरध दुनौँ मचवा† हो, इंगला पिँगला झकझोरि ॥१॥

* बादल । † मचिया या खटोला जिस पर बैठ कर हिंडोला झूलते हैं ।

अनक मूल है सब्द सार, चहुँ ओर दीसै रंग करार ॥३॥
झरत झरी तहँ झमके नूर, चितचकमक गहि बाज तूर ॥४॥
झलकत पदुम गगन उँजियार, दिब्य दृष्टिगहु मकर तार ॥५॥
द्वादस इंड़ा पिंगला जाय, परिमल बास अग्र सो पाय ॥६॥
बंक कँवल मध हीरा अमान, सेत बरन भौंरा तहँ जान ॥७॥
खोजहु सतगुरु सत निसान, जुक्ति जानि जिन कथहिं ज्ञान ॥८॥
कहैं दरिया यह अकह मूल, आवा गवन के मिटे सूल ॥९॥

(७)

मैं जानहुँ तुम दीन-दयाल ।
तुम सुमिरे नहिं तपत काल ॥ १ ॥
ज्यौं जननी प्रतिपाले सूत* ।
गर्भ बास जिन दियो अकूत ॥ २ ॥
जठर अगिनि तें लियो है काढ़ि ।
ऐसो वा की ठवर गाढ़ि ॥ ३ ॥
गाढ़े जो जन सुमिरन कीन्ह ।
परघट जग में तेहि गति दीन्ह ॥ ४ ॥
गरबी मारेउ गैब बान ।
संत को राखेउ जीव जान ॥ ५ ॥
जल में कुमुदिनि इन्दु† अकास ।
प्रेम सदा गुरु चरन पास ॥ ६ ॥
जैसे पपिहा जल से नेह ।
बुन्द एक बिस्वास तेह ॥ ७ ॥
स्वर्ग पताल मृत मंडल तीन ।
तुम ऐसा साहेब मैं अधीन ॥ ८ ॥

*पुत्र । †चन्द्रमा ।

होली २७

मानु सब्द जो करु बिबेक।
अगम पुरुष जहँ रूप न रेख ॥ १ ॥
अठदल कँवल सुरति लै लाय।
अछपा जपि के मन समुझाय ॥ २ ॥
भँवरगुफा में उलटि जाय।
जगमग जोति रहे छबि छाय ॥ ३ ॥
बंक नाल गहि खैंचे सूत।
चमके बिजुली मोती बहुत ॥ ४ ॥
सेत घटा चहुँ ओर घनघोर।
अजरा जहवाँ होय अँजोर ॥ ५ ॥
अमिय कँवल निज करो बिचार।
चुवत बुन्द जहँ अमृत धार ॥ ६ ॥

* नाव।

छव चक्र खोजि करो निवास।
मूल चक्र जहँ जिव को बास ॥ ७ ॥
काया खोजि जोगी भुलान।
काया बाहर पद निर्बान ॥ ८ ॥
सतगुरु सब्द जो करे खोज।
कहँ दरिया तब पूरन जोग ॥ ९ ॥

(२)

सुख सागर जियरा करु अनन्द।
प्रेम मगन खेलु तजि दुंद ॥ १ ॥
छुटिगो तिमिर उदोत भान।
सेत मंडल बिच सोह निसान ॥ २ ॥
गगन गरजि झरि होत तरंग।
सींचत गुलाब सीतल भो अंग ॥ ३ ॥
बिगसित कुमुदिनि उदित चन्द।
भूल भँवर तहँ खुली तरंग ॥ ४ ॥
गगन मंडल बिच भयो है बास।
सींचत चकोर तहँ चुगूँ सुबास ॥ ५ ॥
अकह कँवल के उपर मूल।
सहज कँवल जहवाँ रहु फूल ॥ ६ ॥
झरि झरि परत सुरँग रँग फूल।
प्रेम अगम गम हो समतूल ॥ ७ ॥
भे निर्मल पावो सब्द सार।
संत सुरन गहि होहु पार ॥ ८ ॥

(४१)

यह जग पारख बिना भुलाना ।

अगुनसगुनजग दुइ करि थापहिं, अजपाघरिघरि ध्याना ॥१॥
अद्वैत ब्रह्म सकल घट व्यापक, निरगुन में लपटाना ।
आवै जाय उपजि फिर बिनसै, जरि मरि कहाँ समाना ॥२॥
छयो चक्र औ चारि चतुरदल, बेद मते अरुझाना ।
बंक नाल को डोरी खींचे, जोगी जुगुति बखाना ॥३॥

सहस पाँखरी कमल बिराजित, मन मधुकर लपटाना ।
जल के सुखे कँवल कुम्हिलानि, तब कहु कहाँ ठिकाना ॥४॥
घट में करता लोक कहतु है, पाँच तत्तु बिलगाना ।
सगुन बिनसि निरगुन रहित है, गुन बिन कहाँ समाना ॥५॥
करहु बिचार सकल मिलि ऐसे, भेष बिबिधि है बाना ।
कहैं दरिया सतगुरु गमि जाने, पहुँचै हंस ठिकाना ॥६॥

(१५)

भीतर मैलि चहल* के लागी, ऊपर तन का धोवै है ॥१॥
अविगति मुरति महल के भीतर, वाका पंथ न जोवै है ॥२॥
जुगुति बिना कोइ भेद न पावै, साधु सँगति का गोवै है ॥३॥
कहैं दरिया कुटने वे गोदी, सीस पटकि का रोवै है ॥४॥

गोष्ठी

दरिया साहेब औ रामेश्वर जोगी की काशी में

(रामेश्वरदास)

गुफा सुफा में आसन माँड़ि, सुन में ध्यान लगावै ।
आसम साधि पवन जो पोवै, जोनि संकट नहिं आवै ॥
यह मन जाना ब्रह्म दिढ़ामा, सोई सिद्ध कहावै ।
कर्म जोग बिनु जुगति न पावै, सतगुरु सब्द लखावै ॥
वायु बिन्द लै गगन समाना, त्रकुटी है अस्थाना ।
सास्तर गीता यह मति भाखे, सोई सब्द प्रमाना ॥
रोम रोम सींचे जो जोगी, अमृत झरि जो आवै ।
कहैं रामेश्वर सुनु हो स्वामी, तब वा पद के पावै ॥१॥

---

* कीचड़ ।

मिला डमर चढ़ा बिनु डोरी, डगमग कबहुँ न आवै ।
मियतहिं मुक्त भया मुक्ताहल, मति द्रुम भंजन धावै ॥३॥
पिया प्रेम हुआ मस्त दिवाना, गूँगा सैन बतावै ।
कहैं दरिया धन धन वे सतगुरु, बहुरि न भौजल आवै ॥४॥

(७)

संतो एहू अमर घर जैये ।
तन मन वारि चढ़ो सर जा से, सोइ फल अमृत पैये ॥१॥
काम क्रोध मद लोभ तिरिस्ना, यह सब मेलि लहैये ।
नारी पुरुष स्वाद बिसरावो, सतगुरु सबद समैये ॥२॥
बंक नाल उलटि अजपा के, गगन गुफा घर छैये ।
अर्ध उर्ध औ सोहं सूरति, दिव्य दृष्टि गहि लैये ॥३॥
सेत घटा घन मोती झरि हैं, निरमल जोति समैये ।
पूरन ब्रह्म पुनीत उदित भौ, बहुरि न भवजल ऐये ॥४॥
तहँ सुखराज बिलास पुहुप पर, अमृत चाखन पैये ।
कहैं दरिया दास सतगुरु के, पास पुरुष के रहिये ॥५॥

(८)

तुम मेरे साईं मैं तोर दास, चरन कँवल बित मेरो पास ॥१॥
पल पल सुमिरौं नाम सुबास, जीवन जग में देखो दास ॥२॥
जल में कुमुदिनि चन्द अकास, छाइ रहा छबि पुहुप बिलास ॥३॥
उनमुनि गगन भया परगास, कहैं दरिया मेटा जम त्रास ॥४॥

(९)

तुम सब ऐगुन मेटनिहारा ।
जा के हाथ जगत की डोरी, गुन गहि घैंचो पारा ॥१॥
पूत कपूत पिता कहँ लज्जा, जो मैं भूलि बिगारा ।
जैसे मनि मन्दिर के भीतर, निसि बासर उजियारा ॥२॥

सौदा सुलफ करो बहु भाँति,
जा तें साहु न डंडे ।
कहैं दरिया सुन बोधी बनियाँ,
कबहुँ न करो पखंडे ।

(५)

कोइ संत बिबेकी सब्द बिचारा, प्रेम पिये सो प्यारा ॥
अर्ध उर्ध के मद्धे मानिक, करै दृष्टि उँजियारा ।
बंक नाल नाभो के कहिये, भँवर गुफा के राह सुढारा ॥१॥
खेचरि भूचरि तजे अगोचरि, उनमुनि मुद्रा धारा ।
सरिता तीनि मिले इक संगम, सूभर भरि भरि झारा ॥२॥
अनहद ताल पखाउज किन्नर*, स्रोता सुमति बिचारा ।
झिनझिन जंतर निस दिन बाजे, जम जालिम पचिहारा ॥३॥
सोवत जागत ऊठत बैठत, टुक बिहीन नहिं तारा ।
कहैं दरिया कोइ संत बिबेकी, निरभै लोक सिधारा ॥४॥

(६)

जन कोइ आनँद मंगल गावे ॥ टेक ॥
थिरकत† फिरै भवन के भीतर, पदुम पदारथ पावे ।
मैन मजीठ‡ मेल सब छूटा, घटा चमक घन छावे ॥१॥
रोमरोम जाके पद परगासित, बिहँसि बिहँसि मिलि जावे ।
भूमि बीरानी भर्म न राखे, पग नाहीं अरुझावे§ ॥२॥
बीज बोवे नहिं पेड़ पुरातम, फल फूल सबहिं मिटावे ।
दुरिया तत्त उहां बिनु ताजन‖, इहि बिधि तर्क बतावे ॥३॥

* इन्द्र की सभा के गवैये । † नाचता । ‡ गहिरा लाल रंग जो कभी छूटता नहीं ।
§ यह संसार ऊसर ज़मीन के समान है इस में भ्रम बस कोई पाँव न अरुझावे ।
‖ कोड़ा ।

छय चक्र तहँ मनि उँजियारा । अझरझरै तहँ जोति निजु सारा[३] ॥
छय चक्र का परचै पावै । मूल चक्र दृढ़ आसन लावै ॥
पाँच तत्तु तहँ देखु बिसेखा । पल पल करहि अनूपम भेखा ॥
ता में निरति सुरति की बानी । ता में निरखु मया की खानी ॥
पचिस प्रकृति तहँ निरति कराई । दसौ दुवार रहे ये जाई ॥
मूल सब्द मनि मानिक देखा । तिरति करै तहँ ताल बिसेखा ॥
पचिस प्रकृति के भेद कहि दीजे । होय गुरु ज्ञान बूझि यह लीजै ॥
पचिस कै यह कथा सुनाई । ता में सार पवन है भाई ॥
इँगला पिंगला सुखमनि नारी । सार पवन तहँ करै पुकारी ॥
ओही पवन षट चक्रहि छेदा । होय गुरु ज्ञान बुझै यह भेदा ॥
तहँ त्रिकुटी में रहा समाई । तहवाँ काल सकै नहि जाई ॥
अजपा जपै सूर चँद ज्ञानी । दरिया गगन बरीसै पानी ॥
अमृत बुन्द तहाँ झरि आवै । पीयत हंस अमर पद पावै ॥

(१) काया। (२) सूक्ष्म रूप। (३) "गहि भेद इमि करै बिचारा"—दूसरी पुस्तक में ऐसा पाठ है।

साखी—अमी तत्त अमृत पियै, देखहु सुरति लगाय ।
कहत सुनत नहिं बनि परै, जो गति काहु लखाय ॥

॥ चौपाई ॥

नाम बान जब हिरदै लागा । निफरि[१] निरंतर सुरती जागा ॥
कोटि तीर्थ तहँ जल परगासा । कोटिन्ह इंद्र मेघ घन बासा ॥
कोटिन्ह तेज जोति परगासा । कोटिन्ह पंडित बेद निवासा ॥

छंद—कोटि ज्ञानी ज्ञान गावहिं, सब्द बिनु नहिं बाचहीं ।
सब्द सजीवन मूल ऐनक, अजपा दरस देखावहीं ॥
सत्त सब्द संतोष धरि धरि, प्रेम मंगल गावहीं ।
मिलहिं सतगुरु सब्द पावहिं, फिरि न भौजल आवहीं ॥

सोरठा—ज्ञान रतन की खानि, मनि मानिक दीपक बरै ।
सब्द सजीवन जानि, अमरपुरो अमृत पियै ॥

॥ चौपाई ॥

एक पवन जब गगन समाई । पीयत प्रेम अमर होइ जाई ॥
सत साहब दरियहिं समुझाई । जाय छपलोक बहुरि नहिं आई ॥
प्रेम पियाला पीयै कोई । बिना सीस का चीन्है सोई ॥
सकल जिवन कहँ खाय चोराई । जिन्ह नहिं नाम प्रेम पद पाई ॥

साखी—प्रेम पिरीति लगाइ के, सत्तै सब्द अधार ।
नाम बिना नहिं बाचिहो, नर कोटि करो बैपार ॥

बेद गरब तें पंडित भूला, आपन मरम न जाना।
ये जीवे जहँड़ाये जग में, पढ़ि पढ़ि बेद पुराना॥
जोति सरूपी जा के कहिये, करै जिवन के घाता।
दान पुन्य बलि राजा कीन्हा, बाँधि पताले जाता॥
उतपति परले यह जग करई, सो मन चाहै हाथा।
मिरतक* अंध नजरि नहिँ आवैं, रहै सभनि के माथा॥
जब लगि मन परिचै नहिँ पावै, किमि उतरै भवपारा।
कहैं दरिया सुन ज्ञान रमेसर, करिले सब्द बिचारा॥४॥

(रामेश्वरदास)

खेचरि भूचरि चाचरि अगोचरि, यह जोगी जो पावै।
इँगला पिँगला सुखमनि घाटै, अठदल कमल दिढ़ावे॥
पाँच तत्त की बाती लेसै, परम जोति परगासा।†
सुन्न मँदिर में मुद्रा जागै, करम भरम सब नासा॥
नाद बिन्द जाके घट जरई, सहज समाधि लगावे।
आपुहिँ गुरू आप है चेला, कहु का को गुन गावैं॥
आपन अंत पावे जो जोगी, कवन बुडे़ को तरई।
कहैं रामेस्वर सुनो सुवामी, यह पद निरचै धरई॥५॥

(दरिया साहेब)

खेचरि भूचरि चाचरि अगोचरि, मुद्रा झिलमिलां त्यागै।
छोड़ि पपीलक गहै बिहंगम, उन मुनि मुद्रा जागै॥
छवो चक्र काया परघट है, वा का भेद जो पावै।
सब्द सजीवनि हैगा मूला, काया में झलकावै॥

---

* मीत। † प्रकाश।

बारे द्रिष्टि करै उँजियारा, सुन्न गगन मैं पेखै।
जा के सतगुरु पूरा मिलिया, सोई सब्द यह देखै।
बाहर भीतर एकै लेखा, हमै सब्द नीसाना।
कस्तूरी नाभी मैं बासा, मिरगा मरम न जाना॥
जहवाँ नहीं तहाँ सब देखो, घरै फुरै ओ घ्राना।
कहैं दरिया सुनु ज्ञान रमेसर, सुनि ले सब्द निसाना॥६॥

(रमेश्वर दास)

(दरिया साहेब)

का गोफा सोफा में बैठे, का इक तारी लाये।
का आसन बासन के बाँधे, का भौ पवन चढ़ाये॥
का आतम के जारे मारे, का भौ तृषा मिटाये।
जब लग जुगुति जानि नहिं आवे, का भा जोग कमाये॥
का सींगी सेल्ही के डारे, का मुख टेरि सुनाये।
का नाचे झालरि झनकारे, का मिरदंग बजाये॥
झिलिमिलि झगरा झूठा झलते, औंधा ध्यान लगाये।
कहें दरिया सुनु ज्ञान रमेश्वर, जग में जिव जहँड़ाये॥२॥

(रामेश्वरदास)

सनकादिक सुकदेव जो कहिये, जा के ब्रह्म दिढ़ाना।
अखंडित ब्रह्म अगोचर अविगति, यही मता ठहराना॥
बसिष्ट ज्ञान जो स्रेष्ट जगत में, ओ मुनि बहुत बखाना।
जा को बचन अमर है जुग जुग, निरालेप निरबाना॥
एके जोति सकल घट ब्यापेउ, अद्वैत ब्रह्म कहावे।
अगम अपार पार नहिं पावे, निगम नेति जो गावे॥
चार बेद ब्रह्मा मुख भाखा, ब्यास गरंथ बनाया।
कहें रामेस्वर सुनिये स्वामी, यह छोड़ि दुजा न आया॥३॥

(दरिया साहेब)

हरि ब्रह्मा औरो त्रिपुरारो, बहुते जोग कमाते।
नवो नाथ चौरासी सिद्धा, गोरख पवने खाते॥
इंगला पिंगला सुखमनि जाने, मेरु दंड को साधा।
बंक नाल की डोरी खींचे, उलटि दुवादस बाँधा।
मारकंडे वो संकर जोगी, जग में परघट ज्ञाना।
मुनि बसिस्ट राम के जो गुरु, उन भी ज्ञान बखाना॥

घटहि में सेली घटहि में मुंद्रा । घटहि में पाति फूल इक सुंद्रा ॥
मुरति अनूप जहँ नैन झरोखा । कँवल नाल से पवन सुरेखा ॥
छिन छिन होखै अनहद बानी । देखि सरूप मवन[१] रहु ठानी ॥
गुरु ज्ञानी जौ होखै कोई । सत्त नाम निजु पावै सोई ॥
सब्द पाय के दृढ़ करि धरई । जाय छप लोक नरक नहिं परई ॥

साखी—छप लोक ओइ सत्त है, जिंदे कहा बुझाइ ।
धोखा धंधा तेजि के, सहर अमरपुर जाइ ॥

॥ चौपाई ॥

मेरे कहे जो माने कोई । आवत जात बहुत दुख होई ॥
दुख दारुन है जम जञ्जाला । सतगुरु सब्द करै प्रतिपाला ॥
जिन्हिं जिन्हि मानु सब्द निजु सारा । दिव्य दृष्टि भयो उँजियारा ॥
सत्त सब्द सीख जो पावै । मीठा[२] दे तब दरस दिखावै ॥
जनम जनम कै पाप कटाई । जाय छपलोक बहुरि नहिं आई ॥
पचिस प्रकृति औ तीनिउ नारी । पाँच तत्तु है आतम धारी ॥
जोग जाप जुगुती परधाना । जोगी सो जो करै बखाना ॥
कवन घरा जहँ उपजै ज्ञाना । कवन घरा जहँ हंस अस्थाना ॥
कवन घरा जहँ पीवै पानी । कवन घरा जहँ सुरति समानी ॥
कहाँ पचीस प्रकृति कै डेरा । कहवाँ पाँचो भूत निमेरा ॥
पाप पुन्न भोग कहँ करई । कवन घरा जहँ सूनहि रहई ॥
उनुमुनि[४] मूल कँवल रह फूला । उपजै प्रेम होइ अस्थूला[५] ॥
गुप्त चरन[६] में प्रान समाना । त्रिकुटी सुन्न पवन अस्थाना ॥
अमी तत्तु तहँ पीवै पानी । कँवल नाल तहँ सुरति समानी ॥
इंद्री काम भोग एक करई । नासा बास आपु सब हरई ॥
सोइ जोगी एह जग में राधे । पवन साधि जो मन के बाँधे ॥

(१) चुप । (२) दूसरे पाठ में "बीरा" है । (३) नाड़ी । (४) जोग की पाँचवीं मुद्रा जिस में समाधि का अभ्यास किया जाता है । (५) स्थिर । (६) गुप्त पद ।

आलस निद्रा बसि सब करई । सोग संताप आपु सब हरई ॥
आलस निद्रा कबहिं न राता । काम बिंद कबहीं नहिं पाता[१] ॥

साखी—जोगिया सो जोगहि मातल, माते भेद बिचारि ।
पाँच तत्तु अपने बसि करै, दुर्मति सब दुरि डारि ॥

॥ चौपाई ॥

साखी—चौरासी के भवन में, कलप कोटि बहि जाहिं।
ज्ञान बिना नहिं बाँचिहैं, फिरि फिरि भटका खाहिं॥

॥ चौपाई ॥

सत्त नाम निजु करो निमेरा। जौ चाहो छप लोकहि डेरा॥
सत्त सब्द नहिं मानहि बानी। जोति अस्थापि रहा सब ज्ञानी॥
जोति पुरुष की कामिनि अहई। बिना पुरुष कामिनि नहिं लहई॥
कामिनि भगति सबै जग जाना। पुरुष ज्ञान निर्लेप बखाना॥
ज्ञान कहो केहि नावै माथा³। जौ जन बूझै सो होइ सनाथा॥
सबद ज्ञान बखानौं तोही। एकर अर्थ सुनावो मोहीं॥
बंक नाल कवने घर बासा। कवन पवन जोती परगासा॥

(१) भुलाया। (२) तीसरी पुस्तक में यह साखी ऐसे है—
"कोठा महल अटारिया, सुने स्रवन बहु राग।
सतगुरु सब्द चिन्हे बिना, जौं पंछिन महँ काग"॥
(३) दूसरा पाठ—"ज्ञान काहू के न नावै माथा"।
३

CENTRE FOR ... OF DEVELOPING ... LIBRARY
Accession N
Classification N

छय चक्र के कहि दे भेदा। अठदल कँवल के करहु निषेधा॥
सार पवन के कहि दे भेदा। कवन पवन खट चक्रहि छेदा॥
अठदल कँवल रंग है भीना। तामें कवन सुरति लवलीना॥
कहवाँ बोलता प्रेम अधारा। कवन सब्द से हंस उबारा॥
एकर भेद कहों तुम आई। कह दरिया करु जोग दृढ़ाई॥
एकर भेद नाहिं तुम जाना। पंडित पढ़ि का बेद पुराना॥
एकर भेद पुछहु तुम मोहीं। एकर अर्थ सुनावों तोहीं॥

साखी—कवन घरा ओइ हंस है, कवन घरा ओइ नाम।
कवन घरा ओइ जोति है, कवन सुरति निजु धाम॥
अग्र¹ घरा ओइ हंस है, मनि मुक्तावलि नाम।
अजर² अनूपम जोति है, कँवल सुरति निजु धाम॥

॥ चौपाई ॥

पंडित नाम अजहुँ नहिं चीन्हा। सुरति लगाम रंग नहिं भीना॥
चीन्हहु पंडित सब्द निर्बाना। निर्गुन नाहिं चिन्हहु अज्ञाना॥
मूल चक्र निजु हीरा खानी। अठदल कँवल रहो निरबानी॥
छप लोक सत्त ओइ ज्ञानी। जगमग जोति जहँ निर्मल बानी॥
मुक्ति पदारथ सतगुरु दाता। जोग बिराग प्रेम रस माता॥
कया अग्र दृष्टि अस्थाना। अगम निगम खबरि जो जाना॥
वा को जोगी जगत बखाना। जा के गगन मँडल अस्थाना॥
मनहिं में माला प्रेम रस भीना। पंडित सो जो सब्दहि चीन्हा॥
सतगुरु बिना करहिं जिव हानी। कम दरिया तजु चतुर सयानी॥
सतगुरु की गति अगम अपारा। देखहु खोजि सबद निजु सारा॥

साखी—ज्ञान सँपूरन प्रेम रस, बिबरन³ करो बिचारि।
हंस बंस सुख पावहीं, भवजल जाहिं न हारि॥

॥ चौपाई ॥

छय आठ कै पावै भेदा। तब ही करिहै सबद निषेदा॥

(१) सब से आगे, श्रेष्ठ। (२) दूसरे पाठ में "अमर" है। (३) निर्णय।

साखी—अठ दल कँवल भँवर तहँ गुंजे, देखहु सबद बिचारि ।
कह दरिया चित चेतहू, देहु भरम सब डारि ॥

॥ चौपाई ॥

मूल सब्द धुनि होत अँजोरा । सुरति बाँधि राखो एक ठौरा ॥
सुरति डोरि चेतो चित लाई । मूल सब्द की यही उपाई ॥
सूर चंद एक घर आवै । तबही डोरी ले बिलमावै ॥
मूल सब्द धुनि होत उचारा । तहवाँ जाय करो पैसारा ॥
अकह कँवल के ऊपर मूला । सहस कँवल तहवाँ रहु फूला ॥
परिमल अग्र बास तहँ आवै । हंसा पियत बहुत सुख पावै ॥
होय दास सतगुरु के पासा । सेवा भगति प्रेम परगासा ॥
मैं तो साहब तुम कहँ जाना । मेरो मन तुम सों मनमाना[१] ॥
भरम छुटै सो करो उपाई । जा ते हंस छप लोके जाई ॥
सुरत लगाइ के करो सँभारा । कुल कै करम छोड़ बेवहारा ॥
जो सत सब्दहि करै बिचारा । सोइ हंसा भव सिंधु उबारा ॥
अकह बात कहा नहिं जाई । अगम गम्मि तहँ सुरति लगाई ॥

छंद—आगे मारग झीन अति है, सब्द सुरति बिचारही ।
अजर जोति अनूप बानी, देखि तहँ सुख पावही ॥
अगम गमि तहँ अति झलाझलि, नेकु मन ठहरावही ।
सत सुकृत की सीढ़ि पगु दे, अमृत फल तहँ चाखही ॥

सोरठा—अजरा जोति बराय, मूल सब्द निजु सार है ।
गहो सुरति चित[२] लाय, कह दरिया भव रहित है ॥

॥ चौपाई ॥

अगम सुरति चेतहु चित लाई । सुरति कँवल रहु सुरति लगाई ॥
चकमक चित्त चुभुकि जब लागै । निर्मल जोति प्रेम तहँ जागै ॥
गहिर ज्ञान निजु करै बिचारा । झलकै पदुम होय उँजियारा ॥
अगम कथा बहुते हम कहिया । धर्तिअकासरचिान्हअबजहिया ॥

(१) लगा । (२) दूसरे पाठ में "लव" है ।

॥ चौपाई ॥

करम जोग जम जीते चहई । चढ़ि पिपीलका[५] फिरि भवरहई ॥
बीहंगम[६] चढ़ि गयउ अकासा । बइठि गगन चढ़ि देखु तमासा ॥
महा मुंदरा उनमुनि पेखै । अनन्नि[७] भाँति मोती तहँ देखै ॥
छटा चमकि बरिसै घन पानी । परिमल अग्रबास रस सानी ॥

(१) छोड़ कर। (२) नाव। (३) लग्गी। (४) साँप अपने मनि को भूलता नहीं। (५) चींटी। (६) पच्छी। (७) अनेक।

इँगला पिंगला सुखमनि घाटा । (तहँ) बंकनाल रस पीवै बाटा ॥
खोड़स दल कँवल बिगसाना । लपटि लगै मधुकर ललचाना ॥
सलिता तीनि संगम तहँ भयऊ । बारि बयारि अमृत रस पयऊ ॥
चंद सूर दुइ करहिं बिलासा । उदय अस्त फिरि होय प्रगासा ॥
इँगला चंद्र बाहनी कहिया । पिंगला भानु प्रगासित अहिया ॥
साखी—चारि अवस्था तीनि गुन, पाँच तत्तु है सार ।
प्रेम तेल तुरी[१] बरी, भयो ब्रह्म उँजियार ॥

॥ चौपाई ॥

एदुइ चक्र भरमते लोका । कामिनि कनक महा बड़ सोका ॥
उभय[२] त्यागि समरथ है दूजा । ता को चरन कमल का पूजा ॥
तेजि कंदर्प[३] कामिनि नहिं साथा । सुमिरु नाम निजु होइ सनाथा ॥
जो जन समरथ सदा सहाई । मुक्ति समीप सदा फल पाई ॥
ओइ परचै नाम भजै ब्रह्मंडा । दानव दनुज पाप सतखंडा ॥
नाम प्रताप जुग जुग चलि आवै । सकल संत गुन महिमा गावै ॥
संत रहनि भव बारिज बारी । सदा सुखी निरलेप बिचारी[४] ॥
जल कुकुही जल माहिं जो रहई । पानी पर कबहीं नहि लहई ॥
दही मथे घृत बाहर आवै । फिरि के घृत नहिं उलटि समावै ॥
फुल बासे तिल भया फुलेला । बहुरि तील तेल नहिं मेला ॥
इमि कर संत असँत गुन कहई[५] । भौ निकलंक नाम गुन गहई ॥
औघट घाट लखै सो संता । सो जन जानु सदा गुनवंता ॥
अजपा जाप अनाहद नादा । तजि भव भर्म सो बादि बिबादा ॥
अमृत बुन्द तहँ झरै निकंदा । औन[६] अँजीर[७] मगन मन चंदा ॥
साखी—मनि मानिक दीपक बरे, उनमुनि गगन प्रगास ।
मन मोदिक[८] मद तेजि कै, मेटु जरा मरन जम त्रास ॥

(१) एक अवस्था का नाम। (२) दोनों। (३) कामदेव। (४) संत संसार में ऐसे निर्लेप रहते हैं जैसे कँवल पानी में। (५) दूसरे पाठ में "लहई" है। (६) घर। (७) आँगन। (८) हर्ष।

॥ चौपाई ॥

सुमिरहु साँझ सकेर सबेरा। ज्ञान गुरू गति करहु निमेरा ॥
भवजल जल है अगम अपारा। कवन केवट गहिहै करुवारा[1] ॥
जौं अबहीं करि लेहु निमेरा। ज्ञान गुरू गति गहो सबेरा ॥
जौं लेवहु सतगुरु कै बानी। लाँघि सकौ तब भवजल पानी ॥
बिना सब्द नहिं होय उबारा। बिनु सतगुरु उतरै नहिं पारा ॥
काया परचै मूल जब पावै। सतगुरु मिलै तो सब्द लखावै ॥
कवन सब्द छप लोक ले जाई। कवन सब्द से परचै पाई ॥
कवन तत्तु ले सुर्रात समाई। कैसे प्रेम चुवै मुख लाई ॥
कवन पवन गरजै ब्रह्मंडा। कवनै कालराय कँह डंडा ॥

साखी—सार पवन औ चौदह मंतर, लीजै ज्ञान बिचारि।
छय चक्र अठदल कँवल, कर्म काल सब जारि ॥

॥ चौपाई ॥

पवन एक सार निजु बानी। सोई भेद परखो निजु ज्ञानी ॥
निरति सुरति में आवै जाई। जा तें जोतिहि जोति समाई ॥
दुइ कर पवन सूर औ चंदा। चढ़ै गगन सब कर्म निकंदा[2] ॥
अभय नाम निजु जानै कोई। पीवै प्रेम सुधा रस सोई ॥
इँगला पिंगला सुखमनि फेरै। लाय कपाट गगन गहि घेरै ॥
छय चक्र निजु करै निमेरा। सो जोगी घर पहुँचु सबेरा ॥
सत्त सब्द जो करै बखाना। सेत धजा निसि दिन फहराना ॥
आवै अनुभौ देखु बिचारी। आठ कँवल घर भीतर बारी ॥
नवो नाटिका करहु निमेरा। पिवै प्रेम अस्थिर घर डेरा ॥

(१) लग्गी। (२) निर्मूल हो जायँ।

दसवें द्वार रंध[1] करु बंदा। जहाँ काम निति करै अनंदा ॥
ग्यरहें ज्ञान छत्र सिर धरई। पुरुष होय जग में अवतरई ॥
बरहें बाहर भीतर धावै। पाँच तत्त का परचै पावै ॥
तेरहें तीन गुनन तें न्यारा। सत्त पुरुष निजु ज्ञान बिचारा ॥
चौदहें आवागवन न होई। निकट सिंघासन पहुँचै सोई ॥
महि मंडल सब रहा बनाई। दीप दीप सुगंध सोहाई ॥
चाँद सुरज तहँ मनि उँजियारा। नाहीं उगहिं गगन का तारा ॥
अछै बृच्छ सुख सुन्दर सोई। अजर अमर बैठे सब कोई ॥
तीनि लोक नष्ट जब होई। ऐसा बेद कहै सब कोई ॥
तब यह जीव कहाँ रहि जाई। सो जग्गह मोहिं देहु देखाई ॥
साँचो पंडित मानो भाई। पढ़ि पढ़ि गीता अर्थ बुझाई ॥
सब छोड़ो जग की चतुराई। अंत काल फिरि जम धरि खाई ॥

साखी—पंडित पढ़ि जिनि भूलहू, खोजहु मुक्ति का भेव।
सास्तर गीता ज्ञान बिचारहु, करहु जमन[2] के सेव ॥

॥ चौपाई ॥

नाहीं दिल सागर तुह देखा। नाहीं करि लेहु बचन बिसेखा ॥
नाहीं प्रीति पिया से लाई। नाहीं ज्ञान न गुरु गमि पाई ॥
नाहीं सिव सक्ती को ज्ञाना। नाहीं आतम चिन्हहु अपाना ॥
नाहीं पाँच तत्तु तुम साधा। नाहीं नवो नाटिका[3] राधा ॥
नाहिं पचीस पवन तुम चीन्हा। प्रकृती गति बिवरन नहिं कीन्हा ॥

साखी—एक एको नहिं जानहु पंडित, कैसे होय निस्तार।
मन ममता मद त्यागहू, मिलहि सबद निजु सार ॥

॥ चौपाई ॥

मूल गँवाय तुहु जाहु गँवारा। पकड़ि पेड़ तब पकड़हु डारा ॥
फूलहि आदि अंत लै सोई। मरन काल तब चलै बिगोई ॥

(१) छेद। (२) जम जो गिनती में चौदह हैं। (३) नौ प्रकार का जोग अथवा त्रेटक नाटक की साधना नहीं की।

साखी—बारह मंडल नौ खँड पृथवी, ता में सबद निनार ।
उलटि पवन षट चक्रहि छेदै, देखहु कया बिचार ॥

॥ चौपाई ॥

चारि कँवल जब परसै भाई । भोर[1] किये पुनि सब रस जाई ॥
छव चक्र के भेद है सारा । जो बूझै सतगुरु का प्यारा ॥
सतगुरु बिना होइ नहि पारा । और गुरू पाखंड पसारा ॥
गुरु सोई जो सीख बुझावै । सीख सोई साहब लौ लावै ॥
बहुत गुरू करहीं गुरुवाई । सबद बिना उन्ह भेद न पाई ॥
सबद पाय चलु देइ दमामा[2] । अभय निसान पाय सुख धामा ॥

साखी—अभय निसान बजावहु संतो, परखहु सबद निज सार ।
जम के मान मरदि कै, जिदा सत करतार ॥
सूरा सोई सराहिये, जो जूझै दल मन खोल ।
कायर कादर बीचले, मिला न सब्द अमोल ॥

॥ चौपाई ॥

बिनु मुख बचन सबद इक बोला । बिनु पगु निरति जगत में डोला ॥
होइ अनहद जब लागै ताला । सूर चढ़ाय चंद मनि माला ॥
यह झिनझिन जंतर बाजे भाला[3] । पीवै प्रेम होय मतवाला ॥
अजपा के यह भेद बताई । पाँच तत्तु तहँ परगट पाई ॥
तत्तु पाय निहतत्तु में जाई । तत्तु में तत्तु रहा छबि छाई ॥
तत्तु कियारी जोत किसाना । ततुहि गहै सबद निर्बाना ॥
बिना तत्तु नहिं सबद समोई । कह दरिया समझै जन कोई ॥
सत्त नाम परचै नहि पाई । सुर नर मुनि सब चले भुलाई ॥

साखी—सतगुरु साहब साँच हहिं, देखो सबद बिचारि ।
गहो डोरि यह सबद की, तन मन डारो वारि ॥

॥ चौपाई ॥

सतगुरु आगे तनमन दीजै । प्रेम प्रीति रस कबहि न छीजै ॥
मन ममता सब दुर्मति डारा । परखि लेहु सबद निज सारा ॥

(१) भूल । (२) डंका । (३) यह झनकार का शब्द अन्तर मस्तक में होता है ।

॥ चौपाई ॥

सब्द एक मैं कहौं बुझाई । जो तुम पंडित बूझहु आई ॥
मूल बिहंगम डोरी भाई । रबि ससि पवन जो सुन्न समाई ॥
सतगुरु सब्द जबहिं लखि आवै । मूल फूल अमृत सुख[1] पावै ॥
होय निरति तब सुरति देखावै । सार सब्द तब परगट पावै ॥
गगन मँडल बिच सुरति सँवारी । इँगला पिंगला सुखमन नारी ॥
साधहु सब्द जिवन जग मुकुता । पाप पुन्न कबहीं नहिं भुगुता ॥
ऐसी जुगति जो जानै कोई । कहि दरिया निजु जोगी सोई ॥

साखी—दरिया सब्द बिचारिये, झलकै सेत निसान ।
जो सत सब्द न पाइये, तो कहा कथै गुरु ज्ञान ॥

॥ चौपाई ॥

परखहु सत्त सब्द यह बानी । करै बिवेक सो निर्मल ज्ञानी ॥
बिनु परखे नहिं मूल भेंटाई । पारखि जन सो सब्द समाई ॥
सब्दहि तत्तु बिचारहु भाई । पानी पय ज्यों हंस बिलगाई ॥
संखित[2] जल पय भीतर रहई । बिबरन[3] बरन सो इमि कर लहई ॥
हंस दसा सदा सुख पावै । काग कुबुद्धि निकट नहि आवै ॥
पारस परसे मोती होई । मान सरोवर अवर न कोई ॥
अवरि सीप बहुते जग अहई । बिनु पारस मोती नहिं लहई ॥
सतगुरु मिलि तो ब्रह्म पुनीता[4] । सास्तर ज्ञान पढ़ा निजु गीता ॥
भव संसय में कबहिं न भटकै । ज्यों जल कँवल कबहिं नहिं अटकै ॥
हठ निग्रह करि भूले जोगी । आसन बाँधि पवन रस भोगी ॥
तन साधत फिरि भये असाधी । पाँच पचीस बहु कैसे बाँधी ॥
छुक्षम ज्ञान निजु करो बिचारा । मूल बिहंगम निर्मल सारा ॥
जैसे पपिहा बुन्द असमाना । भेद निरखि के उलटि समाना ॥

सुरत निरत मिल एकठी रहे अघर घर छाय ।
रामदास जहं सुरत है मनवा सकै न जाय ॥ ९

मन जहं लग पहुंचै नही निज-मन भी नहिं जाय ।
सुरत सबद भी पलटग्या रामा ब्रह्म समाय ॥ १०

इति श्री सुरत विचार को अंग

*

[८]

अथ उभै को अंग

साखी

उत्तर दक्षिण त्याग कर मंडै पूरब देस ।
पश्चिम पहुंता रामदास सतगुरु के उपदेस ॥ १

बंकनाल झरणा झरै चलै चहूं दिस खाल ।
रामदास जिनही पिया लगै न जम का जाल ॥ २

मरु उलांघै रामदास सुणै अनाहद नाद ।
सुरत सबद परचा भया मिलै पूर्व घर आद ॥ ३

इला पिंगला सुषमना मिलै त्रिगुटी घाट ।
रामदास जहं सू पड़्या मुनिजन लहै न बाट ॥ ४

अन्तर प्रेम प्रकासिया अंदर जागी जोत ।
रामदास जहं मिल रह्या पाप पुन्न नहिं छोत ॥ ५

---

९. एकठी – एकत्र ।

१ उत्तर दक्षिण त्याग कर – रसना कंठ एवं हृदय को छोड़ कर ।
मंडै पूरब देस – नाभि कमल में धावना । पश्चिम पहुंता – मेरुदंड की भेद कर पश्चिम मार्ग से त्रिकुटी में पहुंचना । २ जाल – नाशे ।

३ पूर्व घर आद – आदि ब्रह्म का निवास । ५ पाप पुन्न – पाप-पुण्य से रहित होना (जीवन्मुक्तावस्था में पाप-पुण्य कर्मों का स्पर्श नहीं होता) ।

09:10

(इ) सुषुम्णा (सुखमना)[156]

(अ) किनाराम कहते हैं कि इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा की शुद्धि करनी चाहिए तथा उन्मुनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। योगेश्वराचार्य कहते हैं कि इड़ा और पिंगला का शोधन करके सुषुम्णा की 'डगर' पकड़ी चाहिए तथा 'पाँच' को मारकर, 'पचीस' को वश में कर 'नौ' की नारी को जीत लेना चाहिए। मिनकराम भी कहते है कि इड़ा, पिंगला नाम की दो नदियाँ बहती हैं 'जिसमें सुन्दर जल की धारा प्रवाहित है।'[157]

टेकमनराम भी 'इगला' और 'पिंगला' के शोधन तथा 'त्रिवेणी-संगम' के स्नान का निर्देश देते हैं। रामस्वरूप दास भी इन तीनों नाड़ियों की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि इसके अभ्यास से मन के 'बैठने' में देरी नहीं लगती। इड़ादि तीनों नाड़ियों के संगम स्थल को 'त्रिकुटी' या त्रिवेणी कहते हैं, जिसकी चर्चासंतों ने बार-बार की है। अघोरम के मुख्य प्रवर्तक किनारामं लिखते हैं कि इड़ा, चन्द्रमा में और पिंगला सूर्य के ग्रह में निवास करते हैं और सुषुम्णा दोनों के मध्य में जब चन्द्र और सूर्य का सहज और समान रूप से उदय हो जाता है तो शून्य में शब्दका प्रकाश होता है, मन में 'अजर' झरने

156. एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 95

157. संतमत का सरभंग सप्रंदाय, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 71

लगता है और सुखरूपी अमृत का आस्वादन होता है।[158] मानसरोदै नामक ग्रंथ में इड़ा, पिंगला आदि तीनों स्वरों पर आधृत एक विस्तृत प्रक्रिया विज्ञान का विवरण है, जिसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि स्वर की सिद्धि और ठीक-ठीक पहचान से संतजन सब तरह की भविष्यवाणी करने में समर्थ होते है। योगी के लिए मरने के बाद मोक्ष की प्राप्ति हो यह बात नहीं है। उसे तो इसी जीवन में सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा मुक्ति मिल सकती है।[159] सुषुम्णा मूलाधार में नाड़ियों के केन्द्र से प्रारम्भ होकर मेरूदंड के बीच चलती है और सभी चक्रों का भेदन करते हुए नासिका के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है। यहाँ सर्पिणी के आकार की कुंडलिनी मूलाधार स्थित नाड़ियों के 'केन्द्र' को पूर्णतया ढँक कर सोई रहती है, और सुषुम्णा के निचले छिद्र में अपनी पूँछ प्रविष्ट किये रहती है जिससे सुषुम्णा का निचला भाग भी सर्वथा अवरूद्ध रहता है। ऐसा केवल सुषुम्णा द्वारा ही संभव है। क्योंकि यही एक नाड़ी है जो एक साथ ही दोनों नासापुटों में अपना मुख खोले रहती है। सामान्यतः इड़ा या पिंगला इसके मुख को रूद्ध रखकर बायीं या दायीं ओर प्राणधारा प्रवाहित करती रहती है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा को अन्य शब्दों में गंगा, यमुना और सरस्वती भी कहते हैं। ये नदियाँ जल की धारा की वाहक है इसीसे इनकी तुलना इन नाड़ियों से की गई है जो प्राणवायु की धारा का संचार करती है। इसी तुलना के आधार पर इन नाड़ियों के संगमस्थान को त्रिवेणी कहते हैं। यौगिक क्रियाओं में योगी का आत्मा इसी त्रिवेणी में स्नान करता है। इस त्रिवेणी घाट का दूसरा नाम त्रिकुटी भी है।[160]

(ग) महर्षि पतंजलि के समय से ही योग के सिद्धि के आसनों की अनिवार्यता मानी

158. संत मत का सरभंग संप्रदाय, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 71

159. रामगीता, किनाराम, पृ. 13 पद्-34

160. संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 95

Tuca Trade
4.5
₹100
₹800
DOWNLOAD

"राधास्वामी"

संतबानी की संपूर्ण पुस्तकों का सूचीपत्र, १९७५

गुरू नानक की प्राण संगली पहला भाग	५)
गुरू नानक की प्राण संगली दूसरा भाग	५)
संत महात्माओं का जीवन चरित्र संग्रह	२॥)
कबीर साहिब का अनुराग सागर	२॥)
कबीर साहिब का बीजक	४)
कबीर साहब का साखी-संग्रह	५)
कबीर साहिब की शब्दावली, पहला भाग	२॥)
कबीर साहिब की शब्दावली, दूसरा भाग	२॥)
कबीर साहिब की शब्दावली, तीसरा भाग	१॥)
कबीर साहिब की शब्दावली, चौथा भाग	१)
कबीर साहब की ज्ञान-गुदड़ी, रेखते और झूलने	१॥)
कबीर साहिब की अखरावती	१)
धनी धरमदास जी की शब्दावली	२)
तुलसी साहिब हाथरस वाले की शब्दावली भाग १	३)
तुलसी साहिब दूसरा भाग पद्मसागर ग्रन्थ सहित	३)
तुलसी साहिब का रत्नसागर	४)
तुलसी साहिब का घटरामायण पहला भाग	६)
तुलसी साहिब का घटरामायण दूसरा भाग	६)
दादू दयाल की बानी भाग १ "साखी"	५)
दादू दयाल की बानी भाग २ "शब्द"	५)
सुन्दर विलास	३)
पलटू साहिब भाग १—कुण्डलियाँ	२॥)
पलटू साहिब भाग २—रेखते, झूलने, अरिल, कवित्त, सवैया	२॥)
पलटू साहिब भाग ३—भजन और साखियाँ	२॥)
जगजीवन साहिब की बानी पहला भाग	२॥)
जगजीवन साहिब की बानी दूसरा भाग	२॥)
दूलनदास जी की बानी	१)
चरनदास जी की बानी, पहला भाग	२)
चरनदास जी की बानी, दूसरा भाग	२)
गरीबदास जी की बानी	३)
रैदास जी की बानी	१॥)
दरिया साहिब बिहार का दरिया सागर	१॥)
दरिया साहिब के चुने हुए पद और साखी	१॥)
दरिया साहिब मारवाड़ वाले की बानी	१॥)
भीखा साहिब की शब्दावली	२)
गुलाल साहिब की बानी	२॥)
बाबा मलूकदास जी की बानी	१॥)
गुसाईं तुलसीदास जी की बारहमासी	।)
यारी साहिब की रत्नावली	॥)
बुल्ला साहिब का शब्दसार	१॥
केशवदास जी की अमीघूंट	॥)
धरनीदास जी की बानी	१॥)
मीराबाई की शब्दावली	१॥)
सहजोबाई का सहज-प्रकाश	२)
दयाबाई की बानी	१)
संतबानी संग्रह, भाग १ साखी [प्रत्येक महात्माओं के संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित]	६)
संतबानी संग्रह भाग २ शब्द [ऐसे महात्माओं के संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित जो भाग १ में नहीं हैं]	७)
लोक परलोक हितकारी	३)

संत महात्माओं के चित्र—

तुलसीदास	॥)
कबीर साहब	॥)
दादूदयाल	॥)
मीराबाई	॥)
दरिया साहब बिहार	॥)
मलूकदास	॥)
तुलसी साहब हाथरस वाले	॥)
गुरु नानक	॥)

दाम में डाक महसूल व पैकिङ्ग शामिल नहीं है, वह [illegible] से लिया जावेगा।

पता—मैनेजर, बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, प्रयाग।

१३, मोतीलाल नेहरू रोड (विश्वविद्यालय के सामने)

अरध-उरध का बीच मै, बहुता रह्या जु थाक ।
रामा केवल ब्रह्म मै, सत गया जह हाक ॥ २८

अरध-उरध के बीच मै, बहुता रह्या अलूझ ।
रामदास केवल मिल्या, मन का सूत सलूझ ॥ २९

हद बेहद का बीच मै, बहुता रह्या थकाय ।
रामा केवल ब्रह्म मै, कोई विरला जाय ॥ ३०

हद बेहद का बीच मै, बहुता हूवा साध ।
रामदास जहा चल गया, केवल ब्रह्म समाध ॥ ३१

उभै मिले एको भया, अतर रही न रेख ।
रामदास जहा मिल रह्या, जाका नाम अलेख ॥ ३२

इति श्री उभै को अग

*

[८१]

अथ माया ब्रह्म निर्णय को अंग

साखो

निराकार आकार का, रामा करो विचार ।
सबही एको ब्रह्म है, दुविधा धरै गिवार ॥ १

रामा ऐसा ब्रह्म है, ज्यूई वृक्ष कर जाण ।
छाया नीचे वृक्ष की, यू माया परवाण ॥ २

रामा छाया वृक्ष की, वृक्ष बिना नही होय ।
छाया बैठा मानवी, वृक्ष न जानै कोय ॥ ३

हाक – चल कर । २९ अलूझ – उलझना । सलूझ – सुलझना ।
उभै – उभय (जीव और ब्रह्म)
२ ज्यूई – जिसे, जैसे ।

काम क्रोध मद लोभ बहु, चित बुध मन अहंकार ।
त्रगुटी पहुता साधु सू सब झालै तरवार ॥ ७

पिंड ब्रह्मंड कू जीत कर, मडे त्रगुटी जाय ।
सूरवीर से रामदास त्रगुटी जूझ मडाय ॥ ८

त्रगुटी रण सग्राम में, कायर बसे हार ।
सूरवीर से रामदास सुरत मिलै सिरदार ॥ ९

त्रगुटी पहुचे रामदास, कोइक विरला सूर ।
जाय मिलै सुन सहज मैं, ता मुख सेती नूर ॥ १०

इला पिंगला सुषमणा मिलै त्रगुटी माहि ।
सुरत मिली जहां ब्रह्म है जहा मैं तीनू नांहि ॥ ११

इला पिंगला सुषमणा रहै आपणी ठौर ।
सुरत मिली जह ब्रह्म है जहां अमर घर और ॥ १२

पूरब मिलै पश्चिम मैं उत्तर दखिन मिलाय ।
त्रगुटी में सब ही मिलै, जहां लग हद कहाय ॥ १३

हद बेहद की सिंध मैं सब काहू का मेल ।
सुरत मिली बेहद मैं जहां न दूजा भेल ॥ १४

त्रगुटी लग आकार है ताहि परै निरकार ।
रामदास महा भीण हुय लगी सुरत निरधार ॥ १५

सब गुण पाया रामदास त्रगुटी सिंध मझार ।
सुरत मिली जहां ब्रह्म है अरस परस दीदार ॥ १६

रामदास त्रगुटी पर, ररकार का राज ।
सुरत मिली जहां ब्रह्म है एक ब्रह्म महाराज ॥ १७

सुरत मिली जहां ब्रह्म है, रही निरासा मंड ।
रामदास लिवलीन हुय आठू पहर अखंड ॥ १८

मंडे – डटे है । १४ भेल – मिश्रण ।

श्री प्रश्नी

दरसण दीठा रामिया, भाज जाय सब भ्रम ।
ऐसा गुरु हरिरामजी, परस्या काटै क्रम ॥ ६९

पूरण ब्रह्म विराजिया, गाव सिंहथल माहि ।
रामदास जन जानसी, दूजा को गम नाहि ॥ ७०

इति श्री गुरु महिमा सम्पूर्णम्

*

अथ ग्रंथ भक्तमाल

साखी

मै अबला हू रामदास, आधौ अती अचेत ।
तुम सतगुरु हो सीस पर, हम कू करो सचेत ॥ १

रामदास की वीनती, तुम हो अगम अपार ।
भक्तमाल का भेव दौ, सतगुरु करू जुहार ॥ २

चौपाई

सतगुरु मिल्या नाम निज पाया, सत्त सबद कू निस दिन ध्याया ।
हृदय-कमल घर लीया वासा, बीज भगति मोय उपजी आसा ॥ ३

नाभ कमल मे राम मिलाया, रूम-रूम मै रग लगाया ।
उलटा सबद पिछम दिस फिरिया, अरधे-उरध प्रेम रस झरिया ॥ ४

मनुवा उलट अगम घर आया, सब सतन का दरसन पाया ।
सब सत मेरे सीस विराजै, सत्त सबद सता मुख छाजे ॥ ५

---

७० सिंहथल – बीकानेर राज्यान्तगत आचार्य श्री का गुरुधाम ।
२ भेव – रहस्य । जुहार – नमस्कार ।

समत अठार निवोतडे, लगी नाम सू प्रीत ।
पचष्ट वर्ष तीन मे, सुणी सून्य की रीत ॥ २

दोय मास रसना कह्या, कठ किया परकास ।
वरस एक अरु पच दिन, हृदै लिया निज वास ॥ ३

दोय बरस भी नाभ मे, सहजा रह्या समाय ।
रूम-रूम मे सचर्‌या, उलट अगम कू ध्याय ॥ ४

उलट मिल्या गुरु घाट मे, परम जोत परकास ।
इला पिंगला सुषमणा, तिरवेणी मे वास ॥ ५

निश्चय नेजा रोपिया, सुरत मिली निज धाम ।
अजब्र झरोखे रम रह्या, एक अखडी राम ॥ ६

गिगन नाद गरजै सदा, भगति द्वार निज नूर ।
सतगुरु के परताप सू, साई मिल्या हजूर ॥ ७

चौपाई

सतगुरु सबदा सहज मिलाया, चरण लगाय राम रस पाया ।
परथम कर सतगुरु की आसा, रसना राम सिंवर इक सासा ॥ ८

विष माया कू दूर गमाई, सतगुरु सेती प्रीत लगाई ।
गद-गद होय कठ परकासा, प्रेम-भगति मोय उपजी आसा ॥ ९

हृदय नाम निज बैठा आई, धम-धमकार होत धुन माई ।
नाभ कमल मे लीया वासा, सासो सास भया परकासा ॥ १०

ओऊ सोऊ सहज मिलाया, माया मेट 'ररै' चित लाया ।
रूम-रूम मे राम पुकारा, भीज रह्या सब अग हमारा ॥ ११

नाड-नाड मे नौबत वागी, रूम-रूम बिच ताली लागी ।
एकण रसना भई अनेका, पूरब छोड पिछम दिस देखा ॥ १२

---

२ पचष्ट वर्ष तीन मे—स० १८१६ मे आचार्य श्री को समाधि अवस्था प्राप्त हुई ।

पाच पचीस उलट घर आया, बक-नाल मे अभर भराया।
अनती नदी अफूटी आई, एक भई जब गग कहाई ॥

बक नाल की खूली वाटी, चढिया सबद मेरु की घाटी।
सुरग इकीस जीत कर आया, वैराटी सब सिवरण लाया ॥

दुरलभ बहुत मेरु की घाटी, सूरा सत मड्या वैराटी।
केता दिवस मेरु मे लागा, चढिया सबद मेरु हुय आगा ॥

आकासा मे आण समाया, अनहद सबद अखडत वाया।
बाजै नौबत अनत अपारा, गिणती माहि न आवै सारा ॥

अनत कोट जहा बाजा बाजै, हरिजन चढ्या अकासा छाजै।
बध उतान उरध मे लाये, सुरत सबद की गाठ घुलाये ॥

इला पिंगला सुषमण मेला, सुख-सागर मे हूवा मेला।
पिंड ब्रह्मड जीत कर आया, तीन-लोक मे राज जमाया ॥

याके ऊपर तखत विराजै, हरिजन चढ्या अगम के छाजै।
(मह) माया दोउ मेल मिलाया, जोति उलट परकत मे आया ॥

परकत मिली सुन्य के माही, उलटी सुरत आतम मै आही।
आतम उलट इच्छा सू मेला, इच्छा किया भाव सू भेला ॥

भाव मिल्या परभावा माही, ता ऊपर केवलपद याही।
केवल ब्रह्म अलख अविनासी, ता सू मिल्या कटै जमपासी ॥

केवल ब्रह्म निरजन राया, रामदास ता माहि समाया।
केवल ब्रह्म अगम गम नाही, रामदास मिलिया ता माही ॥

सबके माहि सकल सू न्यारा, वाहिर भीतर वार न पारा।
रामदास ता माहि समाया, अरस-परस दीदार कराया ॥

---

६७ वाटी – मार्ग।
७४ केवलपद – मोक्ष।

सतगुरु सबद ले तुरत बुलाया ज्ञान-ध्यान दे सिष समझाया ।
परदिखणा व चरणां लागा , भरम-करम सब ही उठ भागा ।। ५५

आसण ध्यान करे थिर बैठा तन-मन अरप भया सत सैंठा ।
परथम रसना नाम धियाया , कंठ-कंवल में जीव मिलाया ।। ५६

दोय मास मुख माही लागा पीछै चल्या सबद तब आगा ।
गलै गिलगिली गदगद होई , जैसे भवर भणक्कै सोई ।। ५७

जाणै मुख मिष्ठान्न भराया , मिसरी जैसा स्वाद लखाया ।
कवली बरसै अमृत धारा अन्तर भीजै प्राण हमारा ।। ५८

चलिया सब्द हृदै घर आया सरवन मुरली टेर सुनाया ।
धम धमकार हिरदा बिच होई फुरका चलै सरब तन सोई ।। ५९

हिल-मिल रटण सहज में लागी हृदा कवल में बिरहन जागी ।
जागी बिरह प्रेम निज वूठा हृदा कवल में अमृत छूटा ।। ६०

रूम-रूम में सबद प्रकासा उठे झुमझुमी सास उसासा ।
सास उसासा सिंवरण होई वा कूं लखै संत जन सोई ।। ६१

रसना बिना रटण अब लागी चार हजार नाडियां जागी ।
नाभ-कमल में लहर भराया , नवसै नदियां नीर हलाया ।। ६२

मन पवना दोउ मेल मिलाया सब तन मांही नाद नचाया ।
रूम-रूम में अजपा होई नाड़ नाड़ चेतन भइ सोई ।। ६३

गाजै भवर बरसै मेहा भीजै धरा लगत अन तेहा ।
पूरब दिस जालंधर बंधा मन पवना मिल एको संधा ।। ६४

दोय बरस नाभि में रहिया पीछै सबद पताळां वहिया ।
सप्त पताळां फिरी दुहाई उलटा सबद पिछम दिस आई ।। ६५

---

५६ सैंठा – मजबूत । ५७ गिलगिली – गुदगुदी । ५८. कंवली – कमल ।
५९. फुरका – फड़कन । ६१ झुमझुमी कम्पन । ६२ लहर – छोटा तालाब ।
नवसै नदियां – नौ सौ नदियां । ६४ तेहा – गहरा । जालंधर बंधा – हठयोग का प्रसिद्ध आसन ।

इला पिंगला उलटी आई सुखमण नाडी प्राण जगाई।
बंक नाल भर पिया पियाला, मनवा मगन भया मतवाला ॥ १३

उलटी पवन गिगन घन गाजे, मनवा बैठा भ्रगुटी छाजे।
त्रिवेणी घर प्रीतम पाया ससि घर भाण एक थिर आया ॥ १४

सत सबद में सुरत समाई अनता सुख मिल्या घर मांही।
पूरणवर पूरा गुण गाया, राम राम सत सबद बताया ॥ १५

राम रसायण निसदिन चाख्या सतगुरु एक सीस पट राख्या।
राम रसायण पीयो प्यारा, सब कूं कहूं सुणो संसारा ॥ १६

सिव संकर उमिया कूं दीया, सो निज नाम हृदय में लीया।
निज नाम बिन मुगत न होई तीन गुणां मत भूलो कोई ॥ १७

तीन गुणा की काची माया, सत है एक निरंजन राया।
सतगुरु बिना किनी नहिं पाया तीन लोक जम पट लिखाया ॥ १८

हम सो सतगुरु संग कर लीया राम रसायण निस दिन पीया।
जम का पंथ किया निरवाला, मुक्त पंथ का मारग भाला ॥ १९

रसना नाम किया परकासा आन देव की मिटगी आसा।
भरम करम सब दूर गमाया नहचै नाम हुवा घर आया ॥ २०

सुरत जगाय'र किया विचारा रसना कंठ उठ इक धारा।
प्रीत लगी पिया सूं प्यारी ऐसी उठै लहर हुदारी ॥ २१

हृदै कवल हंस की बुध आई माया ब्रह्म दोय है भाई।
दोय अच्छर का लहै विचारा सो साधू है प्रीतम प्यारा ॥ २२

हृदा कवल में मन का वासा जीतगा कोइ हरि का दासा।
मन कूं जीत चल्या गढ़ मांही साम्ही लहर प्रेम की आई ॥ २३

---

१५ पूरणवर – परब्रह्म का वरण। १७ उमिया – उमा।
१९ निरवाला – अलग। भाला – देखा।
२१ साम्हो – सामने।

इला पिंगला उलटी आई सुखमण नाडी प्राण जगाई ।
बंक नाल भर पिया पियाला , मनवा मगन भया मतवाला ॥ १

उलटी धरन गिगन घन गाजे मनवा बठा भ्रगुटी छाजे ।
त्रिवेणी घर प्रीतम पाया ससि घर भाण एक थिर आया ॥ १

सत्त सबद में सुरत समाई , मनता सुख मिल्या घर मांही ।
पूरणवर पूरा गुण गाया राम राम सत सबद बताया ॥ १

राम रसायण निसदिन चास्या सतगुरु एक सीस पट राख्या ।
राम रसायण पीयो प्यारा , सब कूं कहूं सुणो संसारा ॥ १

सिव संकर उमिया कूं दीया , सो निज नाम हृदय में लीया ।
निज नाम बिन मुगत न होई तीन गुणां मत भूलो कोई ॥ १

तीन गुणां की काची माया , सत है एक निरंजन राया ।
सतगुरु विना किनी नहिं पाया तीन लोक जम पट लिखाया ॥ १

हम तो सतगुरु संग कर लीया , राम रसायण निस दिन पीया ।
जम का पंथ किया निरवाला , मुक्त पंथ का मारग भाला ॥ १

रसना नाम किया परकासा आन देव की मिटगी आसा ।
भरम करम सब दूर गमाया नहचै नाम हृदा घर आया ॥ २०

सुरत लगाय'र किया विचारा रसना कंठ उठ इक धारा ।
प्रीत लगी पिया सूं प्यारी ऐसी उठै लहर हृदारी ॥ २१

हृदै कंवल हंस की बुध आई माया ब्रह्म दोय है भाई ।
दोय अख्छर का लहै विचारा सो साधू है प्रीतम प्यारा ॥ २२

हृदा कंवल मे मन का वासा जीतेगा कोइ हरि का दासा ।
मन कूं जीत चल्या गढ मांही साम्ही लहर प्रेम की आई ॥ २३

---

१५ पूरणवर – परब्रह्म का वरण । १७ उमिया – उमा ।
१९ निरवाला – अलग । भाला – देखा ।
२३ साम्ही – सामने ।

नाभि माहि नाम निज पैठा, सतगुरु सबद भया सत सैंठा।
तामस रजो सतो सू मिलिया, मनवा जाय पवन सू भिलिया ॥ २४
सूर चद मे आण समाया, तीन-लोक धक धूण हिलाया।
सहसर नाड़ चार सै जागी, रूम-रूम मे झालर वागी ॥ २५
उडियाणी बध वाय समाया, बहोतर कोठा प्रेम भराया।
मन पवना पिछम दिस फिरिया, अरधे उरध प्रेम रस झरिया ॥ २६
उलटी गग अफूटी आई, तिरवेणी तट सुरत समाई।
पाच पचीस उलट घर आया, आद अलख का दरसण पाया ॥ २७
आठ कूट मे भया उजाला, मुगति पथ का उडिया ताला।
हसा जाय परमहस मिलिया, लख चौरासी फेरा टलिया ॥ २८
जीव सीव मे आय समाणा, भवर गुफा मे भवर गुजाणा।
झालर ताल मृदग धुन बाजै, अनहद नाद अखड घन गाजै ॥ २९
धूधूकार होत धुन माई, परस्या आप निरजण साई।
विरखा प्रेम गिगन घन घोरा, मुधरी वाण बोल सत मोरा ॥ ३०
चमकण बीज चहू दिस लागी, गुरु परताप आतमा जागी।
प्रेम नीर का खाल चलाया, रूम-रूम मे रग लगाया ॥ ३१
ब्रह्म बाग हूवा बन हरिया, रूम-रूम मे अमृत झरिया।
नवसै नदिया नीर खलक्या, सातू सागर गाज गडक्या ॥ ३२
नाद-बिंद हुवा रग रेला, अनभै जोगी रमै अकेला।
अणघड अलख मिल्या अविनासी, आवागवण बहुरि नहिं आसी ॥ ३३
निज नाम कू नित-प्रति ध्याया, मुगत-पथ का मारग पाया।
सहजा किया अगम घर डेरा, हम साहिब का साहिब मेरा ॥ ३४

---

२४ सैठा – मजबूत। भिलिया – भेंट हो गई, मिल गया। २६ उडियाणी बध – हठयो[गमें]
प्रसिद्ध उड्डियान-बन्ध (आसन विशेष)। २७ अफूटी – वापिस, लौट कर।
२८ उडिया ताला–खुल गये। २९ भवर गुफा–त्रिगुटी के भीतर। भवर–जीवात्मा।
३० धूधूकार – धू धू की ध्वनि। मुधरी बाण – मधुर वाणी। ३१ चमकण–चमक[ने]
लगी। ३२ खलक्या – पानी बहने लगा। (शब्द-प्रकाश हुआ)
सातू सागर – सप्त पाताल। गाज गडक्या – गर्जना होने लगी।

इला पिगला उलटी आई सुखमण नाडी प्राण जगाई।
बक नाल भर पिया पियाला, मनवा मगन भया मतवाला ॥ १३

अथ ग्रंथ अमर बोध

चौपाई

अमर लोक सू अहधी आया , हसा कारण ब्रह्म पठाया ।
जग मे आण लिया अवतारा , विष्णु वरण मे जनम हमारा ॥ १

हीणी देह शुद्ध घर माही , भजन करू कोइ जाणे नाही ।
भजण करू अरु सिवरू रामा , तजिया कुल मारग का कामा ॥ २

परथम हम मुख सेती लीया , राम-राम मुख रसना कीया ।
राम-राम रसना सू रटिया , भागा भरम करम सब कटिया ॥ ३

दोय मास मुख सेती ध्याया , गदगद स्वाद कठ मे आया ।
साठ दिना सू मुख गढ जीता , कठ कवल सू लाई प्रीता ॥ ४

चलिया सबद ह्रिदे घर आया , सासो-सास नितो-नित ध्याया ।
तन-मन अरप सत जन मडिया , काल क्रोध करमन कू छडिया ॥ ५

वरस एक दिन पाच वदीता , एता मे हिरदा गढ जीता ।
मन कू हम आगे कर लीया , नाभि-कवल मे डेरा दीया ॥ ६

नाभि-कवल में हरिजन आया , रूम-रूम मे नाच नचाया ।
नाडि-नाडि न्यारी अब बाजै , भवर गुजार नाद घन गाजै ॥ ७

दोय वरस नाभि मे ध्याया , ता पीछे पाताल सिधाया ।
उलट पयाल पीठ कू बध्या , छेद्या चकर पिछम दिस सध्या ॥ ८

उलटी नाल वक गढ डेरा , मेरु डड मे घलिया डेरा ।
जीता मेरु काल कू ढाया , सूरा सत त्रुगट्टी आया ॥ ९

तिरवेणी के तखत विराजै , अनत कोट जह बाजा बाजै ।
पाच पचीस मिल्या ता माही , मन पवना चित बुद्धि मिलाही ॥ १

---

१ अहधी – सिपाही, सन्देश वाहक । हसा – जीवात्मा । विष्णु वरण – वैष्णव ।

तीन गुणा सग लाग विगूता, निरगुन हाथ न आया ।
खाली रह्या खलक सू यारी, खालक मुखा न गाया ॥ २०

वेद कतेब पढ्या बहु वानी, घर-घर ज्ञान दिढावै ।
सतगुरु होय जगत परमोधे, दुइ अक्षर नहि ध्यावै ॥ २

माया ब्रह्म किया सयोगा, ओउकार उपाया ।
तीन-लोक की करी थापना, तामे जग भरमाया ॥ २

सतगुरु बिना भरम नहि भागै, फिर माया सग आवै ।
पिता रह्या सकल सू न्यारा, ताका नाम न पावै ॥ २

माया के सग लाग विगूता, जोगी जती सन्यासी ।
सतगुरु सरणै आय ऊबरै, सो पावै अबिनासी ॥ २

'मै' 'तै' त्याग विषय रस त्याग्या, कुल-मारग नहि ध्याया ।
सतगुरु सेती करी वीनती, सत का सबद सभाया ॥ २

रसना सिवर रामरस पीया, मन माही मगनाई ।
रूम-रूम बिच तारी लागी, उलटी गग चलाई ॥ २

पाच पचीस पकड घर आन्या, जाहर जोग कमाया ।
नवसे नदी अफूटी चाली, बक-नाल रस पाया ॥ २

मन पवना मिल गाठ घुलाई, जाप अजप्पा होई ।
नख-सख विचै सहज लिव लागी, जाणेगा जन सोई ॥ २

सुरत सबद मिल चल्या पिछ्म दिस, अरध-उरध घर आया
अगम घाट हुय चढ्या अकासा, नाद अनाहद वाया ॥ २

घर असमान किया सत मेला, भार-अढार गुजाणा ।
चार चक मे भया उजाला, एको एक मिलाणा ॥

---

२०. खलक – ससार । खालक – ईश्वर । २१ परमोधे – उपदेश देता है । दुई
२३ पिता – परमात्मा । २६ मगनाई – मस्ती ।
३० भार–अढार – बनस्पति की सख्या ।

उलट पयाल वंक रस पीया, खुले पछिम के द्वारूं।
अरध-उरध बिच आसण कीया मठ सत निज सारू ॥ २

उलघ्या अरु चढ्या आकासा मिल्या त्रुगट्टी मांही।
वा सूं पर परम-पद पूगा जहां निरंजन सांई ॥ ३

जहां में जाय रु आय दुहेला सुणज्यौ सब संसारा।
बिना राम परला में आवो जीव नरक के द्वारा ॥ ४

राव रंक राणा अरु राजा क्या दाणू क्या देवा।
साहिब बिना परत नहिं छूटे बिना बंदगी सेवा ॥ ५

बिना बंदगी काल न छोडे करे कोट जो कामा।
जोग जिग जप-तप असनाना सकल झूठ बिन रामा ॥ ६

सब के सिरै मौत है भाई घर घर धाहू पुकारा।
समझ नहीं मदन-मत-अधा, मूरख मगन गिंवारा ॥ ७

तीन-लोक मे वावर मांडी फररा आन बंधाया।
छाका करे सकल जग घर्‍या मोह के जाल बंधाया ॥ ८

मोह मे जाल सकल जग बंध्या लख चौरासी जीवा।
भवन चतरदस काल अधीना, सुप नहीं जम सीवा ॥ ९

जम की सीव अलग लग भाई जहां तहां फिर मारै।
राम बिना कोई वारस नाई कहु कुण जीव उबारै ॥ १०

हासल सब जम जोरावर, देवै जीव सब डंडा।
धरमराय के पटे लिखाणा सप्त-दीप नव-खंडा ॥ ११

गय ही रत राम कूं भूली जम क पटै लिखाणा।
अगत भप वानू पख मंधा एगण मूत सधाणी ॥ १२

---

४ दुहेला — कठिनता। परला — प्रलय। ५ दाणू — दानव। ७ धाहू — हाहाकार। ८ वावर — जाल। फररा — फंदा। ९. मूरे — मूर्च्छा होना। १ वारस — स्वामी। ११ रैत — प्रजाजन। एगण सूत संधाणा — एक सूत में बंधना।

ज्ञान पाय अज्ञान मिटाये , दुरमति दुवध्या दूर गमाये ।
काम क्रोध मार अहंकारा राम नाम रसना रट प्यारा ।। २
सील संतोष सहज में आया मान गुमान अपमान गमाया ।
धोखा भूत भरम सब भाग्या कटिया करम ध्यान उर लागा ।। ३

१ पांचू बीवाध्या – पंच ज्ञानेन्द्रिय वश में हो गई (अथवा ५ कर्मेन्द्रियाँ)
पच्चीसों – प्रकृति ।

सबद किया घट माहि पसारा , रूम-रूम लगिया ररकारा ।
तीनू कोट किया चकचूरा , चौथे जाय मड्या सत सूरा ।। ४
एकल मल्ल अभगत जूझै , चवदै क्रोड जमपुरी धूजै ।
रसना ह्रिदे नाभि लिव लागी , रूम-रूम चेतन हुय जागी ।। ५
सप्त पताल छेद छिन माई , पाताला सुख सीर हलाई ।
मूल उलट औघट में आया , गुदकू छेद पीठ बध लाया ।। ६
पूरब पलट पिछम दिस लागा , चढिया सबद मेरु हुय आगा ।
मेरु-मड हुय चढ्या अकासा , सहज किया तिरवेनी वासा ।। ७
अरध-उरध बिच खेल मडाया , बिना पंख इक पखि उडाया ।
वक नाल वह अमृत धारा , पीया सत भया मतवारा ।। ८
माया मूल उलट घर आये , ररकार धुन ध्यान लगाये ।
ररकार की अमृत सीरा , पीवेगा कोइ सत सधीरा ।। ९
माला एक फिरे तन माई , आकासा लिव ध्यान लगाई ।
रूम-रूम बिच अणरट लागे , सिध-सिध माहि जीव सब जागे ।। १०
नाभि नैण बिच झिलमिल जोती, सुषमण घाट चुगै हँस मोती ।
सुषमण सीर चहू दिस छूटै , रूम-रूम अमृत रस फूटै ।। ११
धर अबर बिच अरट चलाया , उलटा नीर अकासा आया ।
जह सुख-सागर सहज भराया , रूम-रूम सीची सब काया ।। १२
उलटी गग अफूटी चाली , फूल्यो वाग बनी हरियाली ।
धरती माहि बीज बुहाया , आकासा फल फूल लगाया ।। १३
तीन-लोक मे नाल पसारा , वेल किया बहुता विस्तारा ।
मनसा चाल अगम घर आई , जह निज मनवा रह्या समाई ।। १४

४. तीनू कोट – रसना, कठ एव हृदय । चौथे-नाभि । ६ गुद कू छेव – मूल चक्र भेदन कर के । ७ पूरब पलट पिछम विस लागा – शब्द, पूर्व माग से उलट कर पश्चिम मार्ग द्वारा ऊपर चढ़ने लगा । १० अणरट – स्वत जप । सिघ-सिध – अस्थियो के जोड, सन्धिया । १३ धरती लगाया – रसना द्वारा राम-स्मरण कर के त्रिकुटी मे समाधि लगाना ।

उलटी सुरत मिली आकासा , जह देख्या एको 'सुखरासा ।

चाली माल हद घर माई हुवा कमल बहकाया ।
मनखो माल फिर दिन राती, निरमल प्रेम हलाया ॥
इक दिन ऐसा भया अचमा नाभि-कमल चेताया ।
सूती सूरत सहज में जागी गगन नाद गणणाया ॥
सास-उसास फिरै निस माला रूम-रूम लिव लागी ।
सहजां कटया करम का जाला, सका डाकण भागी ॥
ऊठत विरह लगत तन तरली, उलट मिल्या आकासा ।
हद कू जीत उलंघ वेहद किया निरंतर वासा ॥
पश्चिम देस का मारग पाया मड-मड सुख होई ।
मिलिया जीव सीव के मांही अब कहाव सोई ॥
इला पिंगला उलट मिलाई तिरवेणी तट तीरा ।
सुखमण नीर मिली सुख-सागर, चुगत हंस जहं हीरा ॥
धागो सूरत सबद कर मिणिया उनमुन माल फिराई ।
जागी जोत छोत सब भागी अनहद तार बजाई ॥
घर असमान बिच इक ध्यानू हुवा जीव जहं जोगू ।
ऊगा सूर नूर जहं बागा सहज कटया सब रोगू ॥
आसण अम्यड खंड नहिं होई मिला अगम घर आगा ।
सुरत सबद के मांहि मिलाणी, नाद अनाहद बागा ॥
धरणी चाल अगम घर आई मिल्या ब्रह्म जहं मादू ।
अथक सतगुरु भेद बताया मारग पाया आदू ॥
पूरव पश्चिम उत्तर दक्षिण चारूं चक्क मिलाई ।
निरती थायय अगन दमायन ... भी प्राण समाई ॥

...काया – [illegible] किया । ४ सूती सूरत सहज में जागी – राममंत्र के प्र... से सुप्त कुण्डलिनी अनायास जागृत हो गई । ६ तन तरली – विरहाग्नि की ज्वाल... धागो सुरत – सुरति रूपी डोरा । सबद कर मिणिया – राम-शब्दरूपी मनका... बने । उनमनि माल – उनमना अवस्था रूपी माला । जागी जोत – ब्रह्म प्रका... सूर जहं बागा – सूर्य नाद हुआ । ११ निरती थायय अगन दमायन – ...

तीनूं जीत जाय घर चौथे उनमुन तारी लाई ।
हंसा चुग सहज सू मोती मानसरोवर मांई ।। ३१

अणघड एक अलख अविनासी जीव सीव सूं मेला ।
ब्रह्म अथाह थाह कुण लावे, सुन्न सिखरगढ मेला ।। ३२

हंसा जाय परमहंस मिलिया अजब तमासा होई ।
देह विदेह हुवा अब अला, अखंड महल म दोई ।। ३३

ससि पर भाण मिल्या इक धारा इला पिंगला जागी ।
सुषमण नार पिया सग खेलै, पद पाया वडभागी ।। ३४

सुरत सबद मिल सहज समाया जोगी जग म जीता ।
रामदास सतगुरु सूं पारी राम हमारा मीता ।। ३५

साखी

सतगुरु मेरे सिर तपे ज्यूं दुनियां पर भाण ।
रामदास सत सबद स परस्या पद निरबाण ।। ३६

अब संतो सूं वीनती सब दासन को दास ।
रामदास निज नाम बिन, धर्म न दूजा पास ।। ३७

रामदास संत सूरमा स जाता जग मांहि ।
तीन-लोक पूं जीत कर मिल्या अगम पर आंहि ।। ३८

इति श्री ग्रंथ नाम-विवेक सम्पूर्णम्

*

जम की पासी सकल पसारा स्वर्ग'रु मध्य पयाला ।
या मू को निकसण नहिं पावे, बंधे जम्म के जाला ॥ १४
तीन-लोक पर जबरो डाणी सब सू डाण उगावे ।
भवन चतर दस जम के सारा, पकर जमपुरी लावे ॥ १५
तीरथ बरत जोग जिग दाना, क्या आचार बिचारा ।
एता कियां ब्रह्म नहिं पावे रहे वार के आरा ॥ १६
कोट उपाय करे जो कोई सतगुरु बिन नहिं छूटे ।
सत का सबद जानिया नांही काल निरंतर कूटे ॥ १७
हद[1] के मांहि काल का फेरा, जहं तहं पकड मंगावे ।
पाप पुन्न सू बंध लग लागा सुरग नरग में जावे ॥ १८
हद का जीव हद सू राजी बेहद सू दुख पावे ।
बेहद गया जके नर सुखिया जहं जम-जाल न जावे ॥ १९
प्रथम मिल्यां पूरब की पोलां, रसना नाम रटाया ।
कंठ-कमल में जीव जागिया हिरदे आण समाया ॥ २०
हिरदे मांहि मन का वासा मन सु जूझ मचाया ।
सूर वीर सो मन सूं जूझे सत का खड्ग समाया ॥ २१
मन कूं जीत चल्या हम आगा नाभि-कमल मे आया ।
मन पवना एके घर मिलिया, अंतर नाद मचाया ॥ २२
रूम रूम में अजपा होई बिन रसना लिव लागी ।
सुनिया नाद हुवा जन सुखिया सुरत सुदंगी जागी ॥ २३
नाभी जीत चल्या हम आगा सप्त पताला आया ।
उलट पवन अगम दिस लागा पिछम दिसा कूं ध्याया ॥ २४
पछिम घाट मन पवन समूझे, अरधे उरध पयाना ।
गूग्यीर गा गिर भिम जूझ अजरा अमर भगाना ॥ २५

---

१ हद – माया । बेहद – निर्गुण परब्रह्म ।

खम्या खपनी अग पहराये, उनमुन मुद्रा सरवण लाये ।
दया टोपसो सीस विराजे, तत का तिलक लिलाटा छाजे ॥ १३

कठी नेम मन की माला, मन मृग मार करी मृगछाला ।
सेलो सबद जोग का गोटा, ज्ञान ध्यान का कीया घोटा ॥ १४

दाढी मूछ रखै जन सूरा, सिर सनकादिक जोगी पूरा ।
आसण सहज इकंतर वासा, उलटा चौपड खेलै पासा ॥ १५

पाच तत्त की कथा पहरी, ससि हर भान थेगली चहरी ।
उडियाणी अडबध लगाया, दसध्या तार किलगी पाया ॥ १६

मत का जोगी किया मतगा, अतर एक तत्त सु रगा ।
कुबज्या जोगी करी निरासा, हाथा सत्त लिया है आसा ॥ १७

सील तणा लगोट लगाया, सत्त सबद सो मुख नै पाया ।
किरिया जोगी करी खडाऊ, करणी कमडल करवा भाऊ ॥ १८

अकल अगोछा काछ विज्ञाना, अतर जोगी निरखै ध्याना ।
प्रेम पतर रिध-सिध भडारा, जोगी खेलै दसवे द्वारा ॥ १९

जोग जुगत का झोली झडा, भिक्षा सहज रमै नव खडा ।
सुरत निरत ले आगम पथा, ए कहिये जोगी का मत्ता ॥ २०

जव ते जोगी जोग कमाया, बकनाल प्याला भर पाया ।
पूरब चाल पछिम दिस आया, पुत्र पिता मिल जुग-जुग जाया ॥ २१

पाचू मुद्रा साधै जोगी, सुख सागर सुषमण का भोगी ।
अगम धोवती अग लगाये, त्रिवेणी असनान कराये ॥ २२

कर असनान अगम जहा बैठा, रामदास जोगी हुय सैठा ।
सबही भेख पहरिया जोगी, रामा कदै न व्यापै रोगी ॥ २३

---

१३ खम्या खपनी – क्षमा को कफनी (साधु का वस्त्र) । टोपसो – टोपी ।
१४ सेली – वाद्य विशप, जो नाथ साधु अपने पास रखते हैं । गोटा – गदा ।
१६ पहरी – लगाई । थेगली – कारी । उडियाणी – उड्डियान वन्ध । दसध्या – दस प्रकार की भक्ति । किलगी – तुर्रा ।

मोह कू पकड पाव तल दीया, वकनाल रस पाया ।
पीया प्रेम भया मतवाला, मेरुडड मे आया ।। २६
मेरुडड मे मडी लडाई, काल क्रोध कू ढाया ।
मेरुडड हुय चढ्या अकासा, नाद अनाहद वाया ।। २७
वाजै नाद करै घनघोरा, नौबत होय हवाई ।
इला पिंगला सुषमण मेला, ता मझ सुरत समाई ।। २८
आतम माहि परातम देख्या, हरिजन मिलिया सूरा ।
तिरवेणी के तखत विराजै, घुरै अनाहद तूरा ।। २९
काया गढ कू कायम कीया, तिहू-लोक कू जीता ।
बैठा जाय अगम के छाजै, हरिजन भया वदीता ।। ३०
महमाया जोती अरु परकत, सुन्य के माहि समाये ।
उलटी सुन्य आतम जहा इछ्या, भावा माहि समाये ।। ३१
मिलिया जाय भाव परभावे, ता पर केवल रामा ।
रामदास ता माहि समाणा, सरै सहज सब कामा ।। ३२

साखी

रामदास केवल मिल्या, दिष्ट-मुष्ट कछु नाहि ।
अरस-परस हुय मिल रह्या, आर-पार पद माहि ।। १

इति श्री ग्रंथ पद बत्तीसी सम्पूर्णम्

*

अथ ग्रंथ पंच मातरा

चौपई

परथम रसना रस्त चलाये, कठ-कमल मे जीव जगाये ।
मन की रटण हृदा मे जागी, सरवण मुरली सुणवा लागी ।। १

---

३० वदीता – लोकप्रसिद्ध । ३१. महमाया–महत्तत्व । जोती–सतोगुण, रजोगुण, तमोगु

उलट'रु बेल चढी आकासा, ब्रह्मंड सब ही छाया ।
दिसा-दिसी मे किया पसारा, त्रुगटी मझ समाया ।। ७

अरध-उरध विच वेली पसरी, निज मन निरख तमासा ।
अटकी वेलें न चालै आघी, अतर भया उदासा ।। ८

इला पिंगला सुषमण माईं, वेल रही थिर ताई ।
अटकी वेल न चालै आघी, सतगुरु करो सहाई ।। ९

सतगुरु मोकू सीख दई है, लारै पूर करावौ ।
रसना रटो रटण अति भारी, निस-दिन अरट चलावौ ।। १०

चालै अरट वहै विन बलधा, नाल-खाल खलकाया ।
वेली पिवी हुवा वन हरिया, प्रेम नीर ले पाया ।। ११

वेलो पिवी किया विस्तारा, चली त्रिगुटी आगै ।
ताता जाय अगम घर पहुता, काल जोर नहि लागै ।। १२

हद कू छाड चली बेहद्दा, सुन मे नाल हलाया ।
ताव तेज झोला नहि व्यापै, वेलि अमर-घर पाया ।। १३

वेली ब्रह्म एक ही हूवा, निराकार पद माई ।
बारै मास सदा हरियाली, एकै रग रहाई ।। १४

सुरग मरत पताला माही, तीन-लोक विस्तारा ।
वासू परै अगम सू आगै, वेली वार न पारा ।। १५

चवदै भवन सबेहि फिर छाया, अगम-निगम बिच डाला ।
वेलो माहि चानणा भारी, सुरग इकीस उजाला ।। १६

सुरग ते परे अलख अविनासी, जहा धूप नहि छाया ।
वेली जाय जिकण घर पहुती, करम काम नहि काया ।। १७

वायो बीज धरण के माही, परम सुन्य जह फूली ।
भवरो जाय वास तहा लेवै, कली-कली निज खूली ।। १८

---

१० लारै पूर करावौ – पीछे से भजन की पूर्ति होने दो । ११. बलधा – बैल ।
१३ ताव – बुखार ।

बाजा जह बाजै नही, दिष्ट-मुष्ट कछु नाहिं ।
रामा मिलिया ब्रह्म मे, वार-पार पद माहि ॥ २

इति श्री ग्रन्थ पच मातरा सम्पूर्णम

*

अथ ग्रंथ सोलह कला

चौपई

अमावस दिन आस बधानी, सतगुरु मिलिया ब्रह्म पिछानी ।
पडवा चित चेतन हुय लाग्या, सिवरन करो हुई गुरु आज्ञा ॥ १
बीजै बीज बध्या घट माही, अतर माहि प्रगट्या साईं ।
तीजै तिरगुन माया त्यागी, सास-उसासा डोरी लागी ॥ २
चौथे चहु दिस अजपा होई, रूम-रूम एको धुन सोई ।
पाचू प्राण पिछम दिस फिरिया, वकनाल रस अमृत झरिया ॥ ३
छठै छाक चढी अति भारी, पिया प्रेम अरु लगी खुमारी ।
सातू दिन सनमुख आया, नाद अनाहद अकासा वाया ॥ ४
आठू आठू कूट मिलाणी, उलटा चढ्या सिखर कू पाणी ।
नवमी नाथ निरजन पाया, इला पिंगला सुषमण न्याया ॥ ५
दसवें देस देखिया भारी, सुरत सबद मिल लाई तारी ।
इग्यारस एको धुन हूवा, दसवे द्वार बोलिया सूवा ॥ ६
बारस बाप मिल्या घट माही, सब घट व्यापक एको साईं ।
तेरस तत्त मे प्राण समाया, आवागवण बहुरि नहिं आया ॥ ७
चवदस चवदै लोक बदीता, लगी समाधि सकल गुण जीता ।
पूनू पूरण सत कहाया, सोलै कला सपूरण थाया ॥ ८

---

*सोलह कला – चन्द्रमा की सोलह कलायें अर्थात् तिथिया ।

श्री रामदासजी महाराज की

साखी

रामदास सोल कला, सोलै तिथि मिलाय ।
सीस सुण धारण करै, सो अमरापुर जाय ॥ १
रामदास सोल कला, कही सपूरण साध ।
जो या सेती मिल रह्या जाका मता अगाध ॥ २

नाभि कमल में भाण समाया मन पवना एको मिल धाया ।
नाड़-नाड़ चेतन हुय जागी, रूम रूम अजपा बड़भागी ॥ २

जता राम जिती है रसणा सूना नगर बस्या अब बसणा ।
रसना कंठ हृदा में आया, नाभि कमल में आय समाया ॥ ३

छेरी धरण पताल सिधाया सप्त पताला राज जमाया ।
जमिया राज पश्चिम कूं ध्याया, बंकनाल का मारग पाया ॥ ४

अरध-उरध बिच किया पयाणा, मेरु डंड घाटी हुय जाणा ।
मेरुडंड की दुलभ घाटी, लंघेगा कोई संत घराटी ॥ ५

उन्धे मरु चढ़ आकासा जहं जाय देख्या अजब तमासा ।
सुन थं मांहि सख बजाये, बसिया सहर रैत सुख पाये ॥ ६

बठा भवर गुफा के छाज अनाहद नाद अगडत बाज ।
भंवर-गुफा म आसण कीया दीठा जाय अगम का दोया ॥ ७

भंवर-गुफा में ध्यान लगाये, जह का हुता जहां बस आये ।
नाद थिर हुया अब भग्ना जीव सीय का भया मभला ॥ ८

उलटी बूंद नाद पर आई सुरत सबद के मांहि समाई ।
सुरत सबद अब ल्यघ्या मांही जस भरत साचा प मांही ॥ ९

सबद सतगुरु ब्रह्म मिलाया अनत जनम का रोग मिटाया ।
गूणी ध्यान अगम नअवासा तजापुंज प्रगटी ज्वाला ॥ १०

नाग गगाग मसधिगा आग्नी हुय हुय नपड़ी में परमाग्नी ।
जा म तापगा मन नगाप निरभ राज ब्रह्म का पाग ॥ ११

गायोगो गुणगान गमाय पिता पीपियो गाता गाय ।
मा पहर जगी आग माहर पोर हा मगर न आग ॥ १२

८ भंवरा–भि । ९। उनमन ९ हिल–हला । ११ हुय हुय–हो हो (दोनों)
१२ नारोली–नगर ।

१ नौ बना ।

नाभि मांहि आये रमा रंग लाये, पुन नाद अनाहद बाजिया जी ।
दोउ पुड़ गर्जे बाजा बजे नाड़ नाड़ मांहि धुन लाविया जी ॥
सासा सोक उठे द्रिग नीर छुटे, यहां नाचो हि नाच नचाविया जी ।
सूरा सत मड्या काल क्रोध छड्या, तब सातूं पयाल छेदिया जी ॥
उलटा फिर नीझर झरे, निज पीठ में वध लगाइये जी ।
जाय मेरु छेदे अकास भदे तिरवेणी तट मे न्हाइया जी ॥
तिरगुण जीता किया राम मीता, सुन मंडल सहर बसाइये जी ।
रामदास कहै ब्रह्म सुख लहै, इम सिषोह सिष मिलाइये जी ॥ १

कुण्डलिया

हद वेहद का वीच मे, होत एक ररकार ।
सुरत मिली जा सुन्य म जहां ब्रह्म निरकार ॥
जहां ब्रह्म निरकार दिष्ट आकार न आवे ।
मिल सत जहां सूर अखंड निरभै पद पावे ॥
रामदास उण देस में, जहां नहीं ममकार ।
हद वेहद का वीच में होत एक ररकार ॥ १
पांचूं सुवटा उलट के पढ़ एक निज राम ।
अतर में आतुर घणी मना नहीं विसराम ॥
मना नहीं विसराम ध्यान एके घर लावे ।
चढ़ कर दसवें द्वार अखंड निरभय पद पावे ॥
रामदास सो संतजन तजिये सघी विराम ।
पांचूं सुवटा उलट क, पढ़ एक निज राम ॥ २
सुरत सती सिमरण किया हिरदे पाया स्वाद ।
नाड नाड चेतन भई घुरे अनाहद नाद ॥
घुर अनाहद नाद नाभ पर नोबत बागी ।
सुम पिछम क द्वार मग जाय टांपी लागी ॥

443/507

नाड-नाड चेतन भई, ठाम-ठाम ठमकार ।
रामदास या राम कू रूम-रूंम उच्चार ।। १

उलट चढ़ भय राम राम पिछम दिस आये ।
अरध-उरध बिच राम राम बकनाल सिधाये ।।

मेरुडंड हुय राम राम भय चक्र प्रकासा ।
त्रिवेणी में राम, राम सुन मांही वासा ।।

राम सिखर रामें मिला, महामोप के मांहि ।
रामदास सब ऊपरे, केवल ब्रह्म कहांहि ।। २

सतगुरु सरण आय, गुरां की सेवा कीजे ।
मन तन अरप'र सीस, मांग सत आज्ञा दीजे ।।

सत का सबद समाय, मन सूं जूंभ मडावे ।
पांच महाबल पेल पचीस सूं पकड मगावे ।।

नव सत करो नास कर, काम क्रोध कूं पेल ।
ऐसा साधू रामदास, निरभ जग में खेल ।। ३

निरभ कहिये सोय लगो निरजन सूं ताली ।
मिस परम-सुख धाम गग जहां उलटी चाली ।।

अधर किया असनान अधर लिय ध्यान लगाया ।
अधर किया आसन्न अधर सुख गोविन्द गाया ।।

रामदास मिल अधर में अधर निरजण देव ।
मन पवना निस सुध नहीं सुरत भाव कर सेव ।। ४

होनी क दिन राम, राम दीयामी मयार्स ।
सामा मिलिया राम राम जहं तहं बतलाव ।।

गगे गैण कूं राम राम दुग मांही लेय ।
नाट छाडिया राम, राम मांदा यूं देवे ।।

त्रिगुटी घाट मे सतजन सापड्या, कटिया कर्म अरु ब्रह्म हूवा ।
गुरुदेव परताप तैं दास रामा कहे, दसवें द्वार तुम बोल सूवा ॥ ४

रेखता ३

प्रथम मुख द्वार हम सार सिंवरण किया, आठ ही पहर हरि नाम ध्याया ।
दूसरे कंठ मे प्रेम परकासिया, गला मे गद सुख स्वाद आया ॥ १
तीसरा ह्रिदा मे वासा लिया, मन्त्र ही मन्त्र मिल झीण गाया ।
बाज मुरली सुणी जोर नीका गुणी, सत कू बहुत इतबार आया ॥ २
चतुरथैं नाभि मे सबद परकासिया, भवर गुजार हुय एक बाजा ।
छेद पाताल अरु उलट पछिम दिसा, देखिया गैब का अगम छाजा ॥ ३
उलघिया मेरु आकास मे घर किया, सहज विरखा बणी एक धारा ।
इला पिंगला सुषमणा गंग चले, बन पीवत नख-सिख सारा ॥ ४
गगन अंबर गजैं अनत बाजा बजैं, धिन्न अब धिन्न सत भाग तेरा ।
सत्तगुरु महर तें दास रामा कहै, जनम अरु मरण भव मिट्या फेरा ॥ ५

रेखता ४

मन को वास निज नाभि मे रोपियो, धुन की वरत सुन बाध छाजै ।
पवन को नटवौ ध्यान डाको लगै, अनहद डेंबकी खूब बाजै ॥ १
चित्त के चौहटैं ख्याल आछा मड्या, अरध अरु उरध विच खेल बाजी ।
चेतिया सहर समसत ही आविया, देखिया ख्याल अब जोर राजी ॥ २
पाच पचीस मिल वरत कू भूमिया, सुरत नटणी चढी अगम आघी ।
सील सिणगार संतोष का सेहरा, हद वेहद विच धूस लागी ॥ ३
नाच आकास मे राम रिझाविया, जाय महाराज कू सीस न्याऊ ।
गुरुदेव परताप तैं दास रामा कहे, मुगत का देस की रीज पाऊ । ४

---

१ नटवौ – ढोल बजाने की पतली चीपटी । डेंबकी – ढोलक । डाको – डका ।
२ समसत – समस्त । ३ धूस – अनेक वाद्यों की सम्मिलित ध्वनि ।

गुरु परताप तैं नाम में सचरया, गुरु परताप अजपा जु होई ।
गुरु परताप तैं उलट ऊंचा चढ्या गुरु परताप तैं अगम जोई ॥ २
गुरु परताप तैं बक नाली बहे, गुरु परताप तैं मेरु आया ।

वालमीक अरु गणिका सिवरी , रका वंका दास रे ।
भीवर कुटम सहित हो तार्या , राख लिया हरि पास रे ॥
नामदेव अरु रामानन्दा , पीपा धना कवीर रे ।
सेना सजना अरु रैदासा , मिलिया सुख की सीर रे ॥
दादू जाय दीन सू मिलिया , सिष साखा वहो लार रे ।
नानग हरीदास ततवेता , परसा खोजी पार रे ॥
दास मुरार मलूका ज्ञानी , सतदास दरियाव रे ।
किसनदास सुखरामा नानग , मिल्या ब्रह्म के भाव रे ॥
अनत-कोट साधूजन पहुता , जाका अत न पार रे ।
केता पतित पारगत हूवा , मिल्या मुगत्त के द्वार रे ॥
जन हरिराम चरण हम लागा, सब सता का दास रे ।
रामदास गुरु गोविंद सरणै , पूरी मन की आस रे ॥

[३०]

राग कल्याण

आरती करू गुरु हरिराम देवा , ब्रह्म विलास अगम घर भेवा ।
आये सत ब्रह्म व्यौपारी , राम नाम बिणजै बहु भारी ।
ज्ञान-ध्यान अणभै अणरागी , रूम-रूम मे भालर बागी ।
इला पिंगला सुषमणा भोगी , अटल अमर अनभै गत जोगी ।
सील सतोष साच सतधारी , सता समाध सुन्य सू यारी ।
आय रामियो सरण तुमारी , पल-पल ऊपर प्राण अवारी ।

[३१]

ऐसी आरती अतर कीजै , अतर कीया जुगे-जुग जीजै ।
पहली आरती मुख सू करावौ , सास-उसास राम रस पावौ ।
दूसरी आरती हिरदै माही , सरवन मुरली टेर सुनाई ।

नीर बिन दरियाव भरिया, वार-पार न कोय ।
पंख बिन हंस चुगे मोती, पिंड पख न होय ।। २
पेड बिन एक वृक्ष देख्या डाल पात न फूल ।
जा विध हंसा केल करत है, जगत सबही भूल ।। ३
नींव बिन एक देवल देख्या, देह बिन एक देव ।
करां बिन जहां बजे बाजा सुरत कर है सेव ।। ४
अगम देस में गैब चानणा, दिवस रात न होय ।
रामदास जहां जाय पहुंता, दुबध्या रही न कोय ।। ५

[१९]

चालो मन उन देस में जहां संतां का वास ।
जहां पहुंचा निरभै हुवै, लगे न जम की त्रास ।। टेर
पूरब दिस सूं चालिया, कंठ किया परकास ।
उर भीतर वासा लिया मगन भया निज दास ।। १
अरध कमल परकासिया, खुलो वंक की बाट ।
वंक-नाल हुय चालिया, बस्या पिछम के घाट ।। २
मरु-डंड उल्लंघिया, उरध-कमल परकास ।
चंद सूर मेला भया गगन किया जाय वास ।। ३
पांच पचीस सूं एक हुय मिल्या त्रुगटी मांय ।
अनहद बाजा घुर रह्या हंस मिल्या जहां जाय ।। ४
हंस मिल रह्या परहंस में, लागी सुन्य समाधि ।
रामदास निरभै भया, मिल्या पूरब घर आदि ।। ५

[२०]

चलो सतां जहां जइये गुरु गोविंद के पास ।
दरसण सूं सब दुख मिटे, हिरदे भगति परकास ।। टेर

१९(२) वंक – चौंच । (५) गैब चानणा – ब्रह्म का प्रकाश ।

तीनलोक कबहू नहिं छूटै , सतगुरु बिना काल सब लूटै ।। २
तीनलोक मे काल पसारा , सब जीवन का करे अहारा ।। ३
जन रामा हरि गुरु तें पाया , दिल भीतर दीदार कराया ।। ४

[२]

राग विलावल

जाग जाग रे जोगिया, क्यू नी नगर जगावै ।
आठ पहर जागत रहौ, सुन्य सहर बसावै ।। टेर
मुख सेती सिंवरण किया, कठ मे चल आया ।
गदगद लहरा सुषम की, सूता जीव जगाया ।। १
हिरदे मे हरि आविया, चेतन तन सारा ।
बुध कमल परकासिया, जग सेती न्यारा ।। २
नाभ कमल मे सतजन, सहजा चल आया ।
नाद अनाहद साभल्या, सुरत रास मडाया ।। ३
सुरग मरत पाताल मे, एको धुन होई ।
तीनलोक चेतन भया, जाग्या सब कोई ।। ४
उलट पयाल अकास चढ, उलघे मेरा ।
इला पिंगला सुषमणा, तिरवेणी डेरा ।। ५
त्रुगटी सू आगे भया, सुन्य माहि समाया ।
सुख-समाधि सहजा लगी, निरभै पद पाया ।। ६
मन पवना पहुचे नही, बुध जाण नहिं पावे ।
रामदास धिन सतजन, ता घर मे लिव लावे ।। ७

[३]

राम सिंवर रे प्राणिया, भूलै मत भाई ।
सिंवरण बिन छूटै नही, जम द्वारै जाई ।। टेर

तुम समरथ हो केवल रामा, अनन्त कोट का सारै कामा ॥ ३३
दास रामियो बालक तेरो अजहु दुख न मेटो मेरो ॥ ३४

[४०]

अपने जन की बाहिर ध्यावो कृपा करो पल मांहि छुडावो । टेर
जग में होय जनांदा हावा, विड़द तुमारो लाजे बावा ॥ १
जग में होय जनां की हासी सांई विड़द तुमारो जासी ॥ २
जन क और आसरो नांई एको शरण तुमारी साईं ॥ ३
अरज हमारी सुनिय देवा नीतर जाय भगति का भेवा ॥ ४
जे हरिजन की स्याय न होई जग में भगति कर नहिं कोई ॥ ५
तुम समरथ हो केवल रामा, भगति कराय सारो सब कामा ॥ ६
रामदास को जोर न कोई बालक के बल रोवण होई ॥ ७

[४१]

राग विहाग

गुरु मेरे ऐसी कदर बताई तातें सुरत सबद घर आई । टेर
रसना नाम नेम कर लीया, निस-दिन प्रीत लगाई ।
हिरदा मांही पेम परकासा आतम की गम पाई ॥ १
नाभी मांही नाद परकासा सबही बन गूंजाणा ।
पिछम दिसा की घाटी खूली मेरु-मंड हुय जाणा ॥ २
सहजां उलट आदि घर आया तिरवेणी को तीरा ।
रामदास सुन सागर मांही चुगत हंस जह हीरा ॥ ३

[४२]

धिन जाके साधु समागम होई जाके विघन न व्याप कोई । टेर
सब तीरथ साधां के चरनां सरब देवता लारै ।
राम निरंजण राय पधारै साधू आवत द्वारै ॥ १

४ (टेर) बाहिर ध्यावो – रक्षा के लिये आवो। (१) हावा – हल्ला (अपवाद)।

राम नाम जिनही जिन लीया , जिन-जिन वास ब्रह्म मे कीया ॥ ३
रामदास इक राम धियाया , परम-जोति के माहि समाया ॥ ४

[३५]

ऐसी जडी मोय सतगुरु दीनी , तन-मन अरप अतर मे लीनी । टेर
श्रवणा सुनत बहुत सुख पाया , निरखत जडी नैण खुल आया ॥ १
सूघत मगन भया मन मेरा , चाखत मिटग्या भरम अधेरा ॥ २
पीवत जडी हृदा मे ऊगी , चलत लहर नाभि जाय पूगी ॥ ३
रूम-रूम मे सरव वियापी , उलटी जाय अगम घर थापी ॥ ४
उर-अनर एको धुन लागी , इला पिंगला सुषमण जागी ॥ ५
मुगत-द्वार मे ाण समाया , जनम-मरण दोय रोग मिटाया ॥ ६
ब्रह्मादिक सनकादिक जाणै , राम जडी सिव सेस वखाणै ॥ ७
अनत कोट सता या पाई , रामदास गुरुदेव बताई ॥ ८

[३६]

मेरे राम रसायण बूटी , पीवत रोग गया सब तूटी । टेर
मुख तै भ्रम गया सव भागी , कठ मे विषै-वासना त्यागी ॥ १
हिरदा माहि किया परकासा , मनवा मूवा हुवा निज दासा ॥ २
नाभ-कमल मे प्राण समाये , पाच सरपणी पकड मराये ॥ ३
उलटा चढ्या पिछम की वाटी , कलह कलपना ले भुय दाटी ॥ ४
सूरा सत मेरु मे मडिया , ढाया काल करम सब छडिया ॥ ५
चढ आकासा त्रुगटी न्हाया , सासा सोग'रु रोग गमाया ॥ ६
त्रिगुण ताप मोह दुख गलिया , काम क्रोध सहजा पर जलिया ॥ ७
नव तत पाच पचीसू मूवा , रामदास पी निरभै हूवा ॥ ८

[३७]

आवौ राम हमारै माही , तुम आया बिन जीऊ नाही । टेर

३६(४) भुय दाटी – धरती मे दबा दिया ।

श्री रामदासजी महाराज की

किरपा करो करम सब कापो आदि अंत अपनो कर थापो ॥ १

तीसरी भारती नाम भझारा, रूम-रूम झालर झणकारा ।।
चौथी भारती त्रुगटी ध्याना भनहृद बाजै उपजे ज्ञाना ।।
पांचमी भारती सुन्य समाई सता समाध भखंड लिव लाई ।।
पांचूं भारती जन कोइ साजे, रामदास के सीस विराजे ।।

[१२]

ऐसी भारती जन कोई साज भव दुख भजन राम निवाज । टे
सास-उसास राम रस पीजे हिरद मांहि उजाला कीजे ।।
नाभि-कमल में प्राण विराजै झालर ताल सख धुन बाज ।।
भरध-उरध बिच झिलमिल जोती, तिरवेणी बिच भोतरु पोती ।।
बिना नींव एक देवल दस्या वेह बिना एक देव भलेखा ।।
रामदास जह सेवा लागा, जुरा-मरण का भव डर भागा ।।

[११]

निरगुण भारती राम कूं भावै सत-सबद नित सतगुरु ध्यावै । टे
प्रथम ज्ञान गुरु कान सुनाया सतगुरु सेती सीस नवाया ।।
दुतीये रसना राम धियाया, कंठ-कंवल में प्रेम मिलाया ।।
त्रितीये नाम हृदे घर भाया, दिल भीतर दीपक दरसाया ।।
चौथे परम गुरु नाभि पधारे, रूंम-रूम में मंगल उचारे ।।
उलटा भजपा जाप जपाया हद कूं जीत वेहद मे भाया ।।
भनहद नाद भखंडत बाजे रामदास जहां भारती साजे ।।

[१४]

राग कनड़ा

राम सरीसा भौर न कोई जिन सिवरयां सुख पावे सोई । टे
राम नाम सू भनेक उधरिया, भनत-कोट का कारज सरिया ।।
जो हरि सेती लावे प्रीता राम-नाम ताही का मींता ।।

१२(१) भोतरु पोती – भोतप्रोत ।

ग्रेही बध्या ग्रेह आपदा, त्यागी त्याग दिढावै ।
ग्रेह त्याग दोनू पख भूल्या, आतम-राम न पावै ॥ १

ग्रेह साध सगत नही कीनी, त्यागी राम न गावै ।
ग्रेह त्याग दोनू पख भूठा, निरपख ह्वै सोइ पावै ॥ २

ना मै ग्रेही ना मै त्यागी, ना षट-दरसण भेखा ।
रामदास तिरगुण तै न्यारा, घट मे औघट देख्या ॥ ३

[५०]

मन रे अपना राम रिझाये, हरख-हरख गुण गाये । टेर

त्यागी सरब आन की सेवा, एको रामहि ध्यावो ।
ररो ममो दोय मात पिता है, ता सू प्रीत लगावो ॥ १

रसना स्वाद कठ मे प्रेमा, ह्रिदा कमल मे ध्याना ।
नाभि-कमल मे नाच नचाये, सुनिये नाद सयाना ॥ २

सप्त पताल छेद चढ ऊचा, पिछम देस कू प्याना ।
वकनाल का अमृत पीकर, हरिजन भया दिवाना ॥ ३

मेरुडड की घाटी हुय कर, अगम देस मे आया ।
गग-जमन के बीच सरस्वति, जह असनान कराया ॥ ४

अनहद घुरै अखड धुन बाजै, परम सुन्य जह ध्याना ।
हरिजन जाय दरीबै बैठा, उपजै केवल ज्ञाना ॥ ५

होठ कठ रसना बिन अजपा, बिन रसना गुन गाये ।
मूरत माहि अमूरत देवा, ताहि चरण चित लाये ॥ ६

बैठा जाय अगम के छाजै, राज दिया अविनासी ।
जनम-मरण का सासा मेट्या, कटी काल की पासी ॥ ७

रीझै राम मुगति को दाता, सेवग सदा हजूरा ।
रामदास चरणा का चेरा, निमष न जावे दूरा ॥ ८

तीन सौ सैंत

पांच पचीसू किया कामड़ा खूटी ख्यास विराई।
सासोसास सण्यो हम ताणो प्रीत पाण ले पाई ॥ २

धर-अंबर बिच माल मडाई, अगम कलूण कराया।
छसै सहस इकीसू धागा, आतम राछ भराया ॥ ३

मन की थावर पवन का डोरा, ब्रम्या खडग ले दोनी।
धुन की कला गुणां का भेला चेतन चकरी कीनी ॥ ४

इला पिंगला करी पावड़ी सील संतोष अगाडी।
जोग जुगत का बेलण कीया, आसण पूठ पछाडी ॥ ५

धीरज तुरी ज्ञान का खूटा बुध की रास कराई।
हाथो ज्ञान तत्त की नलियां सुरत नाल सेवाई ॥ ६

मारो सूंज सत्तगुरु दीनी, बेजा भला बनाया।
रामदास राम का वण कर राम सजीना लाया ॥ ७

[४८]

संतो एक राम का चेरा समरथ साहिब मेरा। टेर

जाचूं एक अलख अविनासी तीनलोक को राजा।
जिन तूठां सबही सुख पावै सरै सकल ही काजा ॥ १

केवल राम अनंत सुख-सागर, खोल मोप भंडारा।
आवागवण मिटावै दोई ऐसा है करतारा ॥ २

मिलिया जाय महा सुख मांही सांसा सबही भागा।
रामदास निरभै पद पाया, जाकर चरणां लागा ॥ ३

[४९]

सन्तो यह त्याग त प्यारा छोई राम हमारा। टेर

४७(२) थाप – वस्त्र। (३) कलूण – वस्त्र कड़ाना।
(३) छसै सहस इकीसू धागा – श्वास के अनुसार चौबीस घण्टे की अवधि में मनुष्य इक्कीस हजार छः सौ श्वास लेता है। (५) पावड़ी – खड़ाऊ।
आसण पूठ पछाड़ी – योगासन री पाट व पाटी।

घम-घमकार हृदा बिच लागी पेम लहर दरसाई ।
फुरका चल सब पिंड चेतन मन की रटण अगाई ॥ ४
अष्ट-पख का कमल हृदा बिच छेद नाभि में आया ।
मन पवना एके घर मिलिया सहजां नाच नचाया ॥ ५
नाड-नाड एको धुन लागी, रूम-रूम परकासा ।
रग रग मांही भया अचमा, सिवरण सास-उसासा ॥ ६
सोलै पंख कमल नाभी का छेद पीठ सच लाया ।
उलटा चढ्या पछिम के मारग, मेरु डंड में आया ॥ ७
पख बतीस मेरु का कमला, छेद चढ्या आकासा ।
इला पिंगला सुषमण मेला त्रिवेणी में वासा ॥ ८
गरज आभ गिगन घन घोरा नाद अनाहद वाया ।
बीज भलाभल चमकण लागी अखंड एक भड़ लाया ॥ ९
पंख हजार कमल तहा फूल्या, कली कली रस छूटा ।
उलटी सुरत मिली सुख-सागर हीर अमोलक बूठा ॥ १०
कंमल छाड भवे जाय विलम्या, भवर रह्या लपटाई ।
रामदास मुक्ताहल पाया ब्रह्म बाग के मांई ॥ ११

[४१]

संतो एसा औषध पाया (मोहि) सतगुरु भेद बताया । टेर
औषध एक दिया गुरु भेरे खायां बेद न जाई ।
ताव तेजरो और बिथा सब पच गूवड़ गडवाई ॥ १
खांसी कफ जरा तन साई रोग छतीसूं दूरा ।
रोम रोम मे औषध रमिया उर-अंतर निज नूरा ॥ २
आवागवण बहुरि नहिं आऊ जामण-मरण मिटाया ।
त्रिगुण-ताप काल भव नाहीं, सुन्न में जाय समाया ॥ ३
अनंत कोटि या औषध पाई भव जल बहुरि न आया ।
रामदास राम निज औषध खाया रोग मिटाया ॥ ४

२७. परम सुन्न – माया रहित परब्रह्म परमात्मा का स्थान। विषम सून – शून्याकाश।

नाड नाड अमृत झरै, पीवत सबै सरीर ।
रूम-रूम बिच रामदास, चलत सुखम की सीर ॥ २८

साढा तीन किरोड मे, एक होत ररकार ।
सहजे सिवरण रामदास, ताका अत न पार ॥ २९

उर अतर नख-सिख बिचे, एक अजप्पा होय ।
रामदास या सतगति, साधू जाणे कोय ॥ ३०

जाप किया मुख द्वार ते, रसना चाली सीर ।
अजपा सिवरण घट विचै, को जाणै गुरुपीर ॥ ३१

गिगन-मडल मे रामदास, अनहद घुरिया नाद ।
रूम-रूम साई मिल्या, सिवरण पाया स्वाद ॥ ३२

इति श्री सिवरण को अग

★

[७]

अथ श्री सिवरण मेध्या को अंग*

साखी

अध-सिवरण रसणा लिया, मास दोय इक सास ।
कठ-कवल मे रामदास, प्रेम भया परकास ॥ १

---

८ सुखम की सीर – सुषुम्ना नाडी से स्रावित होने वाली अमृत की धारा।

९ साढा तीन किरोड – योगाभ्यासी सन्तो के मतानुसार शरीर पर स्थित रोमावलियाँ। सहजे सिवरण – नाभि मे शब्द का प्रकाश होने पर अजपा जाप होता है, वही सहज सिवरण कहलाता है। ररकार – माया रहित परब्रह्म-परमात्मा के 'रकार' का गूंजन।

१ गुरुपीर – गुरु-भक्त।

२ अनहद – अनाहत, योगियो को सुनाई देने वाली एक आतरिक 'रकार' ध्वनि।

*टिप्पणी—इस अग मे आचार्य श्री रामदासजी महाराज ने अपनी भजन-साधना मे शब्द की गति के काल क्रम का स्वानुभवो के आधार पर विवेचन किया है।

१ अध-सिवरण – रसना का स्मरण [निरन्तर श्वासोच्छ्वास राम-स्मरण से रसना मे दो मास तक शब्द गति की स्थिति]

कंठ प्रेम प्रकासिया हृदे होत धमकार ।
नाड़ नाड़ चेतन भई मन भायो इतबार ।। २०

नाभ कवल में संचर्या सहस च्यार परकास ।
नाड़-नाड़ न्यारी धुर सुणे रामियादास ।। २१

बहोत्तर नाड़ी बंक की मिली बंक में आय ।
रामदास सब फेर के, उलटा अभर भराय ।। २२

नाड़ सवासौ एक ही सहस पांच परवान ।
रामदास तन भीतर, ए बड नाड़ बखाण ।। २३

महो नाड़ दूजी घणी, तीन लोक विस्तार ।
रामदास तन सौभ कर सब का करो विचार ।। २४

नाड़ी बहोत्तर हजार है सब ही तन के माय ।
सबी मिलाणी तीन सू, तिरवेणी में आय ।। २५

इला पिंगला सुषमणा तिरवेणी के तट्ट ।
रामदास ता ऊपर, मंडया सहज ही मट्ट ।। २६

वाहां सू आघा गया परम सुन्न के मांय ।
गिगन-कूप मं रामदास, अमृत भर भर पाय ।। २७

कंठ प्रेम प्रकासिया – शब्द की गति का कंठ में प्रवेश करने पर विशेष स्थिति ।
हृदे होत धमकार – शब्द के हृदय तक पहुँचने पर विशेष स्थिति ।
सहस च्यार परकास – शब्द के नाभि-कमल तक पहुँचने पर नाभि स्थित चार हजार नाड़ियों में प्रकाश का होना ।
बहोत्तर नाड़ी बंक की – बंक नाल की बहत्तर नाड़ियां ।
ए बड – शरीर के भीतर पांच हजार एक सौ पच्चीस नाड़ियां बड़ी नाड़ियां ।
महो नाड़ – सूक्ष्म नाड़ियां ।
तीन सूं – इला पिंगला और सुषुम्ना । बहोत्तर हजार – योगाभ्यासी सन्तों के मतानुसार शरीर में कुल बहत्तर हजार नाड़ियां मानी गई हैं जिनमें शब्द द्वारा प्रकाश होता है । तिरवेणी – इला पिंगला व सुषुम्ना का संगम-स्थल ।
सहज ही मट्ट – माया विशिष्ट परब्रह्म परमात्मा का स्थान ।
परम सुन्न – माया रहित परब्रह्म परमात्मा का स्थान । गिगन कूप – शून्याकाश ।

नाभि कमल में नाद घोर एक इकै पर लागत ठौर ।
रूम-रूम में सुख अपार, पिवजी पधारे नाभि मझार ॥ २

बंकनाल पिचकार कीन पांच-पचीसूं संग लीन ।
अरघ-उरध बिच मच्यो ख्याल, पिवजी पधारे महल चाल ॥ ३

अनहद बाजा घुरे अपार जहं अलख निरंजण अमर मुरार ।
मिल संत ता मांहीं आय अनंत कोटि रहे फाग रमाय ॥ ४

रमत नारद सनकादिक सेस ब्रह्मा विष्णू आद महेस ।
शुकदेव और ध्रू प्रह्लाद सुख सागर जहा सुख सवाद ॥ ५

जनक विदेह मिल्या तां आय वालमीक पांडू ता मांय ।
गोरख भरत रु गोपीचन्द, सुख-सागर मिल कर आनंद ॥ ६

नामदेव अरु रामानंद नापा कबीर तिलोकचंद ।
पीपा धना सजन रैदास रंका बंका सेता ख्वास ॥ ७

नानग दादू हरीदास केवल कूबा संतदास ।
जन दरियाव रमे हरि रंग किसनदास सुखरामा संग ॥ ८

अनंत कोट रहे फाग रमाय जन हरिराम मिले तहां आय ।
रामदास सहूआं चरण निवास, गुरु गोबिन्द मिल पूरी आस ॥ ९

[२१]

राग कनेड़ी धमाभमी

संतो एसा मारग झीणा सतगुरु समदां चीना । टेर
पावां बिन हलणां करां बिन चलणा बिन पैंड जहां पैंडा हो ॥ १
पांखां बिन उडणा अगम कूं मडणा अगम देस कूं चलणा हो ॥ २
गगा बिन गगा पाणी बिन पाणी, बिन सरवर जहां झूलणा हो ॥ ३
नीव बिन देवल देही बिन देवा बिन पड जहां सेवा हो ॥ ४
झालर बिन झालर बाजा बिन बाजा, बिन सरवण जहां सुणणा हो ॥ ५

मै मिलिया दीदार मे, साहिब सेती जाय ।
रामदास सुन सहर मे, रहे अटल मठ छाय ।। २०

इला पिगला सुषुम्ना, तिरवेणी के तीर ।
रामदास ता बीच मे, चलै सुखम की सीर ।। २१

सीरा छूटी चहु दिसा, भीजत सबही अग ।
रामदास जह रम रह्या, साई हदै सग ।। २२

रामदास सत सबद की, चली पयाला सीर ।
जाय मिली आकास मे, सुख सागर के तीर ।। २३

रामदास पाताल का, पाणी चढ्या आकास ।
जह साधुजन सपडै, नीर पिवै निज दास ।। २४

अधर ध्यान आकास मे, रहे अटल मठ छाय ।
रामदास घर सत का, काल न पहुचे जाय ।। २५

जह काल तणो सारो नही, नाही जम का जोर ।
रामदास जह रम रह्या, अनहद की घन घोर ।। २६

रामदास अनहद परै, सत किया जाय वास ।
जह चद, सूर, तारा नही, नही धरण आकास ।। २७

रामदास घर सत का, जहा न दूजा लेस ।
जहा ओऊ सोऊं नही, ना माया परवेस ।। २८

सोऊ सबद नाभि बसै, ओऊ त्रगुटी माय ।
रामदास ताके परै, अखै निरजन राय ।। २९

---

२३ पयाला – पाताल ।

२४ जब शब्द-गति बकनाल के मार्ग से मेरुदण्ड का भेदन कर और सुषुम्ना मे धावित होकर त्रिकुटी मे स्थित होती है तब वहा जो अमृत-स्रवण होता है, सत-जन उसी मे स्नान करते हैं एव उसी अमृत का पान करते हैं ।

२८ ओऊ सोऊ – मायाविशिष्ट परमात्मा का स्वरूप ।

२९ अखै – अक्षय ।

[१२]

अथ परचा* को अंग

साखी

राम मिल्या रसणा हृदै, चले नाव निज नाभ ।
वक-नाल सेरी खुली, घुरै अखड घन आभ ॥ १

मेरु उलघे रामदास, चढे त्रगुटी जाय ।
सुपम धार चहु दिस चलै, दिना-रात लै न्हाय ॥ २

गग चलत अकास ते, पीवत सब ही गाव ।
नाड - नाड रस ऊपजै, रामदास निज नाव ॥ ३

धुन लागी आकास मे, रूम-रूम झणकार ।
नखसिख सारा वीधिया, रामदास ररकार ॥ ४

सता की गति रामदास, जग तै लखी न जाय ।
बाहिर तो ससार सा, भीतर उल्टा थाय ॥ ५

उलटा खेल बिकट घर, मिलै रामियादास ।
पाच पचीस सू उलट कर, किया ब्रह्म मे वास ॥ ६

मन लागा निज मन ते, निज मन है निज रूप ।
ब्रह्म निरालब रामदास, अनभै अकल अरूप ॥ ७

देही माही देहरा, तामे निरजन देव ।
रामदास उलटा मिलो, करो सुरत वध सेव ॥ ८

---

* परचा—परिचय [योग-साधना के मार्ग की अनुभूतियाँ]

१ आभ – आकास । सेरी – छोटा दरवाजा ।

३ गग – सुषुम्ना ।

६ पांच पचीस – पाच तत्त्व और पच्चीस प्रकृतिया [प्रकृति का सम्पूर्ण विकार]

७ अनभै – अनुभव रूप—अनुभवजन्य ।

८ देही माही देहरा – शरीर मे स्थित आत्मा का मन्दिर ।

मध सिवरण कठ होत है, गदगद उठ इक धार ।
सूरा साधू रामदास, करत हृदा की सार ॥ २

बरस एक अरु पच दिन हृदा कवल में ध्याय ।
उत्तम सिवरण रामदास, सहजां सुरत लगाय ॥ ३

अत उत्तम सिवरण नाम में रूम-रूम झणकार ।
रामदास गुरु सबद तें सहजां लगी पुकार ॥ ४

नाभि कवल अस्थान में बरस दोय विश्राम ।
बक-नाल ह्वय रामदास लिया मेरु मुकाम ॥ ५

मेरु उलघ ऊंचा चढ्या त्रगुटी सिंध मझार ।
रामदास धीरज नहीं अन्तर अत पुकार ॥ ६

त्रगुटी सुख कहा जाणिए तीन गुणां का धाम ।
रामदास त्रगुटी पर अमर निरंजन राम ॥ ७

आठ बरस और मास चत, पिछम त्रगुटी घाट ।
रामदास तामें पछे खुली सुख की बाट ॥ ८

रामदास बीसो बरस तामें कातो मास ।
ता दिन छाडी त्रगुटी किया ब्रह्म में बास ॥ ९

---

२ मध-सिवरण – कंठ-स्मरण (कंठ में शब्द की स्थिति)

३ उत्तम-सिवरण – हृदय-स्मरण [हृदय-कमल में शब्द प्रकाश की स्थिति एक वर्ष और पाँच दिन तक] सहजां सुरत – स्वाभाविक शब्द एवं सुरत का संयोग ।

४ अति उत्तम सिवरण – नाभि-स्मरण [नाभि-कमल में शब्द गति की स्थिति दो वर्ष तक] पुकार – अजपा जाप ।

५ मेरु मुकाम – मेरुदण्ड में प्रवेश ।

६ त्रिगुटी – सहस्रार चक्र

७ तीन गुणों का धाम – १ प्रकृति का स्थान ।

८ — त्रिकुटी स्थित शब्दगति आठ वर्ष और चार मास तक रही तदन्तर परब्रह्म परमात्मा के निवास (सुख) का द्वार खुल गया ।

९ — आचार्य श्री को संवत् १८२ के कार्तिक मास में भजन-साधना के अन्तिम मास असम्प्रज्ञात-समाधि की स्थिति प्राप्त हुई ।

13:31
2015.317108.Muktimarg
54/424

कई वर्ष पहिले कह्यो, परमधाम निज जान ॥
त्रिकालज्ञ ज्ञाता गुनी, श्रीस्वामी सुखदान १५२

चौपाई ।

एक समय सँग ले बहु संत । सिद्धराम ले साथ महंत ॥
श्रीस्वामी दिल्ली से आये । कुछ दिन बेरीग्राम रहाये ॥
निशि दिन रहै ध्यान लौलाई । जुगल रूप में सुरति समाई ॥
मगन मानसी सेवा माहीं । देह गेह की सुधि बुधि नाहीं ॥
तन जग में मन हरिपद दीने । स्वामी रामरूप रँग भीने ॥
तदाकार हरिछबि भये लीना । जल अगाधमें जिमि रहैं मीना ॥
अठारह सौ अरु सैंतालीसा । सम्बत विक्रम बिस्वेबीसा ॥
जेठ सुदी बारस तिथि जानी । बुद्धबार दिन लिया पिछानी ॥
देह तजन स्वामी मन आई । सिद्धराम शिष्य निकट बुलाई ॥
शीश हाथ धर दई अशीशा । कृपा रहै तुम पर जगदीशा ॥
अब हम परमधाम निज जावें । कुछ दिन बीते तुम्हें बुलावें ॥
सबको जय महाराज हमारी । सेवक संत सकल नर नारी ॥

दोहा ।

पद्मासन सो बैठके, श्रीस्वामी महाराज ॥
सुख मन मारग प्राण तब, चढ़े गगन में गाज १५३
दशम द्वार टूटा तभी, तड़दे भई अवाज ॥
बिजली सी चमकी तभी, बाजे अनहद बाज १५४

चौपाई ।

स्वामी सिद्धराम तेहि बारी । गुरु बियोग दुख माना भारी ॥
पुनि बिचार मन धीरज धारी । देहकृत्य मनमाहिं बिचारी ॥
गुरुभाई अरु साधू संत । सेवक बेरी ग्राम अनंत ॥
आये सिमट सकलतेहिबारी । संज बिमान सुन्दर अतिभारी ॥

07:56

07_chapter 4

रामरूप जी तीन बृहत्‌काय काव्य–ग्रंथों के रचयिता हैं। कालक्रम से ये हैं – (1) गुरूभक्तिप्रकाश (2) मुक्तिमार्ग और (3) जैमिनि अश्वमेध कथा। इनमें से गुरूभक्तिप्रकाश का रचनाकाल सं० 1826–1828 वि० है। मुक्तिमार्ग का रचनाकाल (समाप्तिकाल) ज्येष्ठ शुक्ल 12, शुक्रवार सं० 1829 वि० है। ये दोनों रचनाएँ प्रकाशित हो गई है। इनकी अब तक अप्रकाशित जैमिनि अश्वमेध कथा का रचनाकाल (समाप्तिकाल) गुरूवार, कार्तिक कृष्ण 8, सं० 1845 वि० है।

(1) **गुरूभक्तिप्रकाश** – कुल दश प्रकाशों में विभक्त यह काव्य कवित की प्रथम कथात्मक या प्रबन्धात्मक कृति है, जिसकी रचना उन्होंने 25 वर्ष की आयु में आषाढ़ सुदी 3, गुरूवार सं० 1826 वि० में आरम्भ की थी। कहा जाता है कि इसके षष्ठ विश्राम तक की ही रचना रामरूप जी की है। इसके सप्तम से दशम विश्राम तक के रचयिता रामरूप जी के शिष्य अजपादास जी बताये जाते हैं। इस रचना को रामरूप जी ने पूरा क्यों नहीं किया, यह समझ में न आने वाली बात है। इसके षष्ठ विश्राम की संज्ञा 'गुरू–चेले की गोष्ठी' है, जो स्वयं में एक स्वतन्त्र रचना प्रतीत होती है। इस गोष्ठी के माध्यम से गुरू–शिष्य संवाद के रूप में भक्ति, ज्ञान और योग सम्बन्धी अनेक जिज्ञासाओं और उनके तर्कपूर्ण समाधानों का समावेश किया गया है। यह इस ग्रन्थ का सबसे बड़ा प्रकाश है जिसमें 427 दोहों का समावेश हुआ है। सम्भवतः इसे इस ग्रन्थ के परिशिष्ट रूप में रचा गया था परन्तु यहाँ तक चरणदास जी और उनके शिष्यों का वृत्त अधूरा ही रह गया था। हो सकता है, इसे पूरा करने के लिए रामरूप जी ने अपने प्रिय तथा योग्य शिष्य श्री अजपादास को सौंप दिया हो। वस्तुतः इन्हीं

अन्तिम तीन विश्रामों में चरणदास जी के चमत्कारों और शिष्यों से

exness The best pricing on gold. Period.

07:23
07_chapter 4
38/60

श्यामचरणदास प्रकाशन कार्यालय दिल्ली से हुआ। इसका तीसरा संस्करण भी प्रकाशित हो गया है।[37]

(2) **मुक्तिमार्ग** – यह रामरूप जी के चिन्तन और सर्जन प्रतिभा एवं पटुता का प्रमाण है। इसकी समाप्ति का काल ज्येष्ठ शुक्ल 12, शुक्रवार सम्वत् 1829 वि० है। यह भी एक प्रकाशित रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रति जो मेरे पास है वह मूलप्रति की तात्कालिक लिपि है। इसका लिपिकाल सम्वत् 1846 वि० है तथा इसके लिपिकर्ता श्री काशीदास हैं। इसका प्रकाशन प्रथम बार मुंशी नवलकिशोर प्रेस; लखनऊ से सन् 1916 ई० में हुआ था। इसकी विस्तृत भूमिका श्री सरसमाधुरीशरण ने लिखी है। सम्पादन भी उन्हीं का है। इसका नवीनतम संस्करण चरणदासीय प्रकाशक ट्रस्ट, जयपुर से सन् 1972 ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें स्पष्टतः दो भाग हैं – 1. साखी और 2. पद और लघु कथाएँ आदि। इसका पूर्वार्द्ध मुख्यतः दोहों में रचित है तथा बीच–बीच में कुछ कुण्डलियों एवं अरिल्लों का भी समावेश है। परम्परानुसार यह 'अंगों' में विभक्त है। कबीर, दादू और पलटूदास आदि सन्तों का कवि पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। रचना प्रौढ़ है। उत्तरार्द्ध में विभिन्न रागों में निबद्ध पद हैं। इसके 'अंग' इतने विस्तृत हैं कि वे अपने आप में एक लघु ग्रन्थ हैं। इसके प्रथमार्द्ध के अंगों की संज्ञा इस प्रकार है – गुरू को अंग, हरिस्मरण कापे अंग, अजपा गायत्री को अंग, सूरातन को अंग, विरह को अंग, पतिव्रता को अंग, सतगुरू कृपा को अंग (यह नवीन नामकरण है), वैराग्य चितावणी को अंग तथा भक्तिज्ञान को अंग। इसके बाद इसका रचनाकाल दे दिया गया है। अतः आगे की रचना को परिशिष्ट रूप में समझना

राग सोरठ।

म्हारे सतगुरु जुगति बताई हो।
औघट घाट चले बिन पैरौं जहां काल नहीं खाई हो ॥

प्रथम मूल बंध कसि दीनो उलटी पवन चढ़ाई हो।
षट्कवल औंधे किये सूधे जब आगे गम पाई हो ॥
इड़ा पिंगला मार्ग थाके सुखमन सहज समाई हो।
भँवर गुफा में अजब तमासा सोभा कही न जाई हो ॥
कई कोट रबिसिस परकासे दीपमाल दरसाई हो।
झुक रही घटा दामिनी दमकैं अमृत झड़ी लगाई हो ॥
सहस कंवल दल सेत सिंहासन तेज पुंज छवि छाई हो।
अनहद नाद झरे बहु भांती सुन्न धजा फहराई हो ॥
जहां सतगुरु रामरूप विराजैं सिद्धराम मिले जाई हो।
पाय अमरपद आनंद हूये आवागवन मिटाई हो ॥ ४५ ॥

राग जैजैवंती।

गगन मंडल की सैल गुरु गम कीनी भाई ॥
देखा अद्भुति खेला जीव सीव हुवा मेला ॥
जहां नहीं राति द्यौस लखी छवि भीनीं ॥
बाजे अनहद तूरा सुनैं कोई साधू पूरा ॥
रागदोष नास भये ध्यान सुरति दीनी ॥
इंद्री मन कैद किये बिसै भोग त्यागदिये ॥
कर्म की काटी बेड़ी पैनी ज्ञान छैनी ॥
जनम मरन नासो आपही में आप भासो ॥
सोई रामरूप जानौं बोध बुधि भीनी ॥
जीव भाव मिटा दूजा एक ब्रह्म सारै सूझा ॥
सिद्धराम हूवा जब नित्य आतम चीन्हीं ॥ ४६ ॥

नीकी भांति ब्रह्म पहिचाने सो ब्राह्मण हो जावै ॥ ४ ॥
रामरूप चरणदास कहत हैं ऐसा ब्राह्मण हूजे ॥
होय पुरोहित अलख पुरुष का मांग अमीरस पीजे ॥५॥

राग सोरठ।

साधो सो जोगीश कहावे ॥
काया नगरी बस कर सगरी पूरा अमल कमावे ॥ १ ॥
बाँधे मूल बाप कूं जीतै प्रान अपान मिलावै ॥
दो दल जीत चढ़ै गढ़ ऊपर निर्भय बम्ब बजावै ॥ २ ॥
जहां जाय दुर्जन सब हनि कै प्रथमैं संजम साधै ॥
हृदय कमल में वासा लेकर पावै अनहद नादै ॥ ३ ॥
पहिल कमल सैं पवन उठावै दूजे कमल फिरावै ॥
तीजे कमल में सीधी करके चौथे माँहि चढ़ावै ॥ ४ ॥
पँचवें में लेजाय जुगत सूं छठवें जोति जगावे ॥
जाय समावै सतवें माँहीं भवजल बहुर न आवै ॥ ५ ॥
जोग सिद्ध सोई जन जानों गगनमण्डल घर छावै ॥
रामरूप चरणदास कहत हैं काम धनी के आवै ॥ ६ ॥

राग सोरठ।

साधो यह रजपूती मेरी।
काम क्रोध सिंह दोनों मारूं शील क्षमा गऊ घेरी ॥ १ ॥
मोह लोभ हैं अति बट मारे इन कूं हन सुख पाऊं ॥
सत्य संतोष गढ़ी जहां बाँधूं निर्भय राह चलाऊं ॥ २ ॥

राग बिलावल।

गगन मण्डल मैं अलख जगाव रे॥

जब जोगी जानूं मैं तोकूं
सुन्न सिखर पर जा मठ छाव रे॥ १॥
पहिले संजम साध जुगत सूं
प्रान अपान की सन्ध मिलाव रे॥
भूचरी मुद्रा जासूं कहिये
कमल कमल पर पवन चढ़ाव रे॥ २॥
चाचरी मुद्रा नैन मँझारी
दिष्ट नासिका पै ठहराव रे॥
अचरज कौतुक बहु दरसावैं
रिद्ध सिद्ध लखि करले चाव रे॥ ३॥
खेचरी मुद्रा रसन बढ़ावे
भवँरगुफा में जाय फिराव रे॥
अमृत उतरै पीव मगन हो
जोति खुलै जहां दर्शन पाव रे॥ ४॥
अगोचरी मुद्रा श्रवण बासा
शब्द सुरति की गांठ लगाव रे॥
परमहंस अनहद कूं जानौ
अनहद मिल अनहद होजाव रे॥ ५॥
उनमुनी मुद्रा दशवें द्वारे
लगै समाधि सकल बिसराव रे॥

सिध साधक दोऊ करनी त्यागैं
रहै न कोई दूजा भाव रे॥ ६॥
पाँचों मुद्रा ये तुम पहिरो
झूठी मुद्रा खोल बगाव रे॥
ज्ञान जटा शिर ऊपर राखो
मुक्ति पन्थ कूं मन ले धाव रे॥ ७॥
या साधन कूं कर हित सेती
जीव ब्रह्मकी दुई मिटाव रे॥
रामरूप चरणदास कहत हैं
जब जोगेश्वर साँच कहाव रे॥ ८॥

17:00
09_chapter 4
44/71

है जिसका हमे स्वरूप बोध ही नही उसका साक्षात्कार कैसे हो सकता है। पॉनप दास उस सत्ता के स्वरूप ज्ञान से ही अपने अन्दर उसके दर्शन करते है। तभी वह भाव विभोर होकर कह उठते है–

ज्ञानी कूं हर दरसन होय, ध्यान लगावै पावै सोय।
अतर माहि राम हमारा, सदा समीप पलक नही न्यारा।।[1]
ज्ञानी सोई जब सुर्त लगावै, अतर पलक डिगण नही पावै।
दिष्ट फैरके धीरये ध्यान, कहै पानप हर जन परम सुमान।।[2]

2. <u>योग साधना और पॉनप दास</u> :–

योग भारतीय दर्शन एव साधना का प्रमुख अग रहा है। आध्यात्मिक साधना की व्यवस्थित प्रक्रिया योग साधना मे ही दिखाई देती है। मध्य काल मे प्रचलित योग साधनाओ से सन्त कवि पॉनप दास भी अन्य सन्तो की तरह सन्तुष्ट नही थे। योग साधना की वैचारिक भूमि मन का निग्रह है। मन के निग्रह के द्वारा एक सम्यक् जीवन दृष्टि और जीवन बिम्ब का विकास ही योग साधना का चरम लक्ष्य है। सन्त कवि पॉनप दास योग की वैचारिक धारा को अपने साहित्य की वस्तु बनाते है। पॉनप योग साधना की क्रियात्मक साधना को नही स्वीकारते उनके अनुसार योग को किसी आडम्बर की आवश्यकता नही होती –

धोती कीनी नेती किनी , बौह बिध धोई काया।
कहै पानप ताकि सुध नाहि, इन मन ने जग छकणाया।।[3]
इडा पिगला सुखमना नाडी, येई भगत उपचार।
कहै पानप जो इन कौ साधै, ते जन भौजल पार।।[4]

---

1 पॉनप वाणी – ज्ञान के अग को निरणै साखी – 3
2 पॉनप वाणी – ज्ञान के अग को निरणै , साखी – 4
3 पॉनप वाणी – जोग के अग को निरणै, साखी – 24
4 पॉनप वाणी – जैन नारी पलक के अग को निरणै , साखी – 63

exness
The best pricing on gold. Period.

Sar Bachan Chand Ban...

।। शब्द सत्ताईसवाँ ।।

सुखमन जाय मन हुलसाना । सतगुरु संग कीन्ह पयाना[2] ।।1।।
चाँद सूर्य दोउ सम कर राखे । तब सतगुरु यों कह कर भाखे ।।2।।
अब सुन धुन होत नफ़ीरी[3] । तेरी सुरत करूँ मैं झँझीरी ।।3।।
तब सुन धुन अति हरखानी । महिमा नहिं जात बखानी ।।4।।
मैं आरत कीन्हा साजा । सतगुरु घट माहिं बिराजा ।।5।।
थाल सोसील[4] धराया । सोमत[5] की जोत जगाया ।।6।।
तन भीतर आरत फेरी । मन लीन्हा चहुंदिश घेरी ।।7।।
अंबर[6] का चीर पहिराया । सतगुरु अचरज रूप दिखाया ।।8।।
दर्शन कर तिरपत आई । मन इन्द्री तहाँ जमाई ।।9।।
अब जन्म सुफल कर लीन्हा । आरत फल ऐसा चीन्हा ।।10।।
घट बाजे अनहद तूरा । पट खोला निरख ज़हूरा ।।11।।
अंतर हुई अजब सफ़ाई । गगन पर बजी बधाई ।।12।।
सुन्न और महासुन देखा । धुर अगम लोक तक पेखा ।।13।।
निज भेद अधर रस पाई । अस आरत राधास्वामी गाई ।।14।।

---

1. गुप्त, अप्राप्य जो पैदा न हुआ हो । 2. यात्रा । 3. शहनाई, बड़ी बाँसुरी । 4. शान्त स्वभाव । 5. सुमत । 6. आकाश यानी नूर ।

।। शब्द अट्ठाईसवाँ ।।

मुरलिया बाज रही । कोइ सुने संत धर ध्यान ।।1।।
सो मुरली गुरु मोहिं सुनाई । लगे प्रेम के बान ।।2।।
पिंडा छोड़ अंड तज भागी । सुनी अधर में अपूर्ब तान ।।3।।
पाया शब्द मिली हंसन से । खैंच चढ़ाई सुरत कमान ।।4।।
यह बंसी सतनाम बंस की । किया अजर घर अमृत पान ।।5।।
भँवरगुफा ढिंग सोहं बंसी । रीझ रही मैं सुन सुन कान ।।6।।
इस मुरली का मर्म पहिचानो । मिली शब्द की खान ।।7।।
गई सुरत खोला वह द्वारा । पहुंची निज अस्थान ।।8।।
सत्तपुरुष धुन बीन सुनाई । अद्भुत जिनकी शान ।।9।।
जिन जिन सुनी आन यह बंसी । दूर किया सब मन का मान ।।10।।
सुरत सम्हारत निरत निहारत । पाय गई अब नाम निशान ।।11।।
अलख अगम और राधास्वामी । खेल रही अब उस मैदान ।।12।।

।। शब्द उनतीसवाँ ।।

कवित्त ।

जोग की जुगति करि चाहों तो हजार बर्ष राखों शरीर निज काल सों बचाय के । चाहों तो सहित वपु जाऊं मैं परमपद चाहों तो ब्रह्म बीच जाऊं मैं समाय के ॥ चाहोंतो सरूप निजरूप में मिलाय राखों रामरूप होय रहों वही रूप पायके । ऐसे सतगुरु भेद यही तो बतायो मोंहि दसम द्वार छेद मिलूं ब्रह्म बीच जायके ॥ ५ ॥

कवित्त ।

राखूं जो शरीर चिरकाल थिर आपनो विशेष करि अंत को सो अंत होय जात है । भाँवें सौ हजार वर्ष भाँवें राखो कोट लक्ष बिनस जाय धूल होय वही एक बात है ॥ तातें मन यही धरी इछ्या गुरुदेव फुरी जोग की जुगति करों प्रगट बिख्यात है । आप प्रभु आज्ञा दई रामरूप मान लई दशम द्वार प्राण तजों यही मो सुहात है ॥ ६ ॥

इति ॥

बिंद बिंद सभ कोई कहै। महा बिंदु[12] कोई बिरला लहै ॥
महाँ बिंदु महिं लाल बनाया। जिनि चाना तिनही जन पाया ॥

(१) बगल। (२) मोटे बाल। (३) रोम। (४) कूले से भाव चूले या दो पहलुओं से है। (५) चपनी या घुटने के ऊपर की हड्डी। (६) घुटने के आस पास छोटे-छोटे दोनों गढ़े। (७) टांग के पाछे का गुदीदार मांस (पिंडलियाँ)। (८) शरीर (९) हमवार-एकसार चपटी जगह मैदान आदि। (१०) दो अंगुष्ठों के दो नाखून (११) नाखून का बढ़ा हुआ अगला भाग मुरदा होता है इसी कारण काटा जाता उसके कटने में क्लेश नहीं होता परंतु किंचित भर पोछे से कट जाय तो कई दि पर्यंत पीड़ा करता है, यही इसकी परख है। (१२) ओज धातू वीर्य का सार जीवन त (वैदक कथनानुसार) ओज में ही स्थिर रहता है।

तत्त बिंदु की क्यों मिति आवै। जब बन्धै तबही मिति पावै ॥
बिंदु भरोसे इन्द्री कसी। राँडी[1] कै डरि बन महिं बसी ॥
नेत्र न सोवहिं बिन्दु गिरन ते। मन बाँधै चहुँ कुँड[2] फिरन ते ॥
दह दिशि धावत इह मन बाँधा। नानक महा रत्न बिंदु ते लाधा[3] ॥४२॥
बाँधी बिंदु रत्न जब पाया। बिंदु बाँधी जब मन ठहराया ॥
बिंदु बाँधी जब जोति प्रगासी। बिंदु बाँधी जब मिल्या अबिनासी ॥
बिंदु बाँधी तब पिंड थिर पाया। बिन्दु बाँधी जब अमर ठहराया ॥
बिंदु बाँधी जब आपि आप जाना। बिंदु बाँधी जब तत्त प्रगटाना ॥
बिंदु बाँधी जब ब्रह्म कौरलिया। नानक बिंदु बाँधी फिरि गरभ न गलिया ॥४३॥
बिंदु बाँधी तब रहत सभ जानी। बिन्दु बाँधी तब जोति प्रगटानी ॥
बिंदु बाँधी तब बिषम गढ़ साधा। बिंदु बाँधी तब अभय पद लाधा ॥
बिंदु बाँधी तब उषमा[4] त्यागी। बिंदु बाँधी तब अगम धुनि लागी ॥
बिंदु बाँधी तब जोग मिति पाई। बिंदु बाँधी तब शिव जुगति आई ॥
बिंदु बाँधी ते छिमा मन आवै। बिंदु बाँधी ते रत्न मिति पावै ॥
बिंदु बाँधी तब काया बीचारी। नानक कोट मध्ये कोई रत्न ब्योहारी ॥४४॥
रत्न की सार कोई और न जानै। रत्न की जोति कोई जौहरी पिछानै ॥
रत्न जोति कौ कोइ जौहरी पावै। रत्न की जोति मिति आखि सुनावै ॥
रत्नाँ का पारखू रत्न कौ पावै। बिन जौहरी नाँ परख्या जावै ॥
रत्न कै पारखू रत्न मनि जरिया। रत्नाँ कै पारखू रत्न हथि चढ़िया ॥
रत्न कै पारखू रत्न मोल लीया। नानक रत्नाँ कै पारखू रत्न बशि कीया ॥४५॥

जब रत्न हथि चढ़िया तब जोति पसारी।
जब रत्न हथि चढ़िया तब लागी धुनि तारी ॥
जब रत्न हथि चढ़िया तब सुन्न समाया।
जब रत्न हथि चढ़िया तब अगम दृष्टाया ॥
जब रत्न हथि चढ़िया तब बिमल जुगति[5] पाई।
जब रत्न हथि चढ़िया तब भई शीतलाई ॥
जब रत्न हथि चढ़िया तब सभ मिति जानी।
जब रत्न हथि चढ़िया तब भये मुनि ध्यानी ॥

(१) स्त्री। (२) दिशा विदिशा, परंतु यहाँ भाव पदार्थों से है। (३) प्राप्त हो जाता है। (४) हवाड़ अधिक बोलने आदि का स्वभाव। (५) निर्मल युक्ती सहज योग की।

पुत्री थीं । यदि पिता-पुत्री की आयु में २५ वर्ष का अन्तर माना जाय तो इनका जन्मकाल १७७४ वि० के आस-पास ठहरता है । प्रारम्भ मे चरणदास के पास थी किन्तु बाद मे अपने पिता के पास चली गयी । ये भी संवत् १७९७ में दीक्षित हुई । इनकी धाम-यात्रा चरणदास के परलोक-गमन के बाद हुई । इनको चरणदास ने योग-साधना सिखलायी थी । ये विवाहिता भी थीं ।[१]

साहित्य -- इन्होंने एक ग्रन्थ लिखा था, जो अब अप्राप्य है । इनकी भाषा मे अनोखा प्रवाह है । कविता रस एवं अलंकारो से परिपुष्ट है । काव्य की प्रभावक्षमता दर्शनीय है । इनकी रचना का एक उदाहरण इस प्रकार है --

मेरे प्रेमनगर में बसत कन्थ, जाकी औघट घाटी विकट पन्थ ।
मैं परसन चाली प्यारो पीव, कर दीप लियो बिनबाति घीव ।
हवै सुखमन मारग चढ़ी धाय, निज कुज पिया की पहुँची जाय ।
जहा सखी भाव भीतर को जाय, रसकेलि करें निजधाम माहि ।
जिहि रंगमहल के आस पास, बहु संत सखा राखें निवास ।
जहां अद्भुत लीला अति अगाध, तहां बाजे बाजैं शंख नाद ।
जहा अमृत वर्षै कामधेन, लखि कल्पवृक्ष मन भयो चैन ।
जहा कई रंग के फूले फूल, कोई निरखे जग जग व्याधि भूल ।
गुरु चरनदास दीन्हो बताय जो नृपीबाई लीन्हो पाय ।[२]

१६ दयाबाई

जीवन-परिचय -- दयाबाई चरणदास की शिष्या थीं । ये दूसर जाति की थीं ।[३] इनके माता-पिता तथा जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे अन्तस्साक्ष्य एवं बहिस्साक्ष्य सर्वथा मौन हैं । सम्प्रदायानुयायी लखुराम के अनुसार ये सहजोबाई की चचेरी बहन थी । इनका जन्म-काल पर्याप्त विवादास्पद है । खीरानी

---

१. 'श्रीमत् दपति की मन मेली'--लीसा०, पृ० २२६। २ शुक्र०, पृ० १२७-१२८ ।
३ 'दूसर कुल मे प्रगट भए, दयाबाई सिरताज'--लीसा०, पृ० २२७ ।

21:45
5_619248983455721 5...

रचनाओं की प्रामाणिकता प्रकरण मे) सिद्ध कर चुका हूं, यह नन्दराम की ही रचना है । जहां तक इसके नामकरण का प्रश्न है , मैं सर्वाधिक प्राचीन प्रति (१८०६ वि०) के अन्त मे उपलब्ध पुष्पिका के आधार पर इसका नाम 'जोगम्यास' अधिक उचित समझता हूं । पुष्पिका इस प्रकार दी हुई है --

संवत ।१८०६। वृषे आसाढ बदी २ चंद्रवासे जोगम्यास लिषते ज्यु ।।।इ०।

इस ग्रन्थ का रचना-काल, उपर्युक्त पुष्पिका के आधार पर १८०६ वि० से पूर्व अर्थात् १८०४ वि० माना जा सकता है ।

यह ग्रन्थ गुरु-शिष्य संवाद के रूप मे लिखा गया है । ग्रन्थारंभ मंगलाचरण से हुआ है । फिर शिष्य की समस्याओं का समाधान करते हुए गुरु ने योगाभ्यास करने की रीति समझायी है । इसमें खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी, उन्मनी मुद्राओं, मन और पवन पर यथोचित नियंत्रण, शून्य शिखर में प्रवेश, षटचक्र भेदन-प्रान, अपान आदि को मिला कर वक नाल शुद्ध करके प्राणायाम साधना, इस विधि से आकाश में प्रवेश करके पूर्ण ब्रह्मत्व की प्राप्ति आदि का वर्णन है । उदाहरण --

नन्दराम बिनती करैं सुनौ ईस गुरदेव ।
तुम ही दाता मुक्ति के जोग जुगति कहि देव ।।
ईड़ा पिंगला सुषमनि धारो। आसन वज्रागनी टारो ।
द्वादस अंगुल गहो वेध षट चक्र लीजे ।
बज बाजे अनहद तुर जहां मन निज करि दीजे ।।
षेचरी मुद्रा त्रकुटी आवे । अंमृत पीवे महा सुष पावे ।। । इ० ।

o o o

याह सब जुगति बताये कर मो मा को अग्यान दर ।
नदरांम बिनती करै सु मम मस्तक पर हाथ धर ।। । इ० ।

इसमें दोहा, चौपाई, सोरठा तथा छप्पय छन्द प्रयुक्त हुए हैं । काव्य में कोई विशेष सौष्ठव परिलक्षित नहीं होता । यत्र-तत्र अप्रयत्नज रूपेण अनुप्रास, रूपक, उपमा, अन्योक्ति आदि की छटा दिखायी देती है ।

नेत्र कीए बिचि रंग बनाए। अचरज भाँति के दस्ते पाए ॥
स्याह सपैद अवरु सुरखाई। गिरद कटोरी आँखि बनाई ॥
धीरी बीचि दृष्टि सभ राखी। रसना करी जपनि की साखी ॥
घंडी तले बकनालि बनाई। घंट तले कछु स्वाद न पाई ॥
इहु बिस्थार गले ते ऊपरि। नानक जो सोधै तिसु जोति अनूपरि ॥३२॥

दुइ भुज दुइ कर दस नारी नाले[१]। नारि मरद करि एकु बहाले ॥
नारि मरद की लीक लगाई। बीनी ऊपरि धरी कलाई ॥
ऊपरि डउले काँधे मेरु। गाटे[२] तले बिअंत अँधेरु ॥
मिटै अँधेर दीपकु[३] जब जालै। नानक ज्ञान बीचारि नामु सम्हालै ॥३३॥
घट ते तले बहत्तरि नारी। बिचि सुख्मना इड़ा पिंगुलारी ॥
जिस सुख्मनि होवै प्रगास। इड़ा पिंगुला सदा निवासु ॥
नाभि कमल ते ऊपरि हाट। तिन के अठसठि दीए कपाट ॥
पेट भँडारु कीआ असगाहु[४]। नानक गुहज नाड़ि प्रान सुख राहु ॥३४॥
नाभि तले इंद्री का वासा। तिसके भीतरि काम मवासा ॥
इंद्री के तले नलाँ का डेरा। अचरज खेल कीआ प्रभु तेरा ॥
सथ्थल गोडे पिन्नी पैराँ। दुइ नारि मरद का एक बसेरा ॥
करि कलबुत खति मुख धरिआ। नानक रक्त बिंदु ते अचरज करिआ ॥३५॥

कई जुग्ग कलबूत स्वारिआ। भनि भनि ढाहि ढाहि उसारिआ[५] ॥
जीउ उपाय अंतरि बैठाया। भीतरि वड़ते[६] बहु डरपाया ॥
प्रभु सुबचन कीआ फिरि आवउ। तौ इस गढ़ के बीचि समावउ ॥
अंतरि जाय बहुत लोभाना। नानक कौल देन को पछोताना ॥३६॥
इस घट भीतरि अठसठ हाट। बिन कुंजी क्यों खुलहिं कपाट ॥
कवन कुंजी जितु खुलहिं ताले। कवन पुरुष जो वस्तु समाले ॥
अठसठि हाट का करे निबेरा। सोई आदि अंति जनु तेरा ॥
सतगुर मिलहि त खुलहि कपाट। तौ नानक परगट होवहिं हाट ॥३७॥
अठसठ हाट का क्या क्या नाउँ। उह कवन हाट जितु रहै हिआउ[७] ॥

---

(१) साथ ही। (२) गरदन गाटा नाम ठेठ पंजाबी में गले का है, अर्थात् कंठ के नीचे हृदय से भाव है। (३) नाम सुमिरन तथा गुरु पदिष्ट ज्ञान में विचर कर जब इस जगह हृदय स्थान पर ज्योति प्रगट हो। (४) अथाह। (५) "ढाहि उसारिया" के बदले "साजि स्वारिआ" पाठ भी है। (६) प्रवेश करते। (७) हिरदा परन्तु यहाँ भाव जीव से है।

जब दशवें द्वार इकेला खेलै। इन बिधि पवन पवन कौ मेलै ॥
बेनी कै ध्यानि जो रहै समाय। तब इस गढ़ की सोभी पाय ॥
आत्मा चीन परात्मै गया। तौ नानक सलल[1] सलल एको भया ॥७०॥

ज्ञान षड़्ग ले मन सिउँ लरै। तौ ढाहि[2] भरम पट भीतरि बरै ॥
भीतरि जाते कोई न ठाकै[3]। हरि के चरन बसे मनि जाँकै ॥
सोई संत जिनि भरम गढ़ जीता। घर बाहर तिनि अपना कीता ॥
अंतरि बाहरि महरम होया। नानक गुर किरपा ते यह गढ़ गोया ॥७१॥

मनूआ जीता निर्मल रीति। इन्द्री जीती सतगुर परतीति ॥
जिह्वा जीती हरि गुन गावे। नेत्र जीते भ्रमता ठहरावै ॥
बकता[4] जीतै जब सुषमनि गहो। सभ किछु जीतै जब होवै पद सही ॥
मनु तनु जीता जीता ब्रह्मण्ड। पंचि दुष्ट कीने खण्ड खण्ड ॥
राजे महते गढ़ के सभ जीते। नानक सतगुर की परतीते ॥७२॥

मुख दीया हरि नाम जपन कौ। हौंठ दिये वाह वाह करन कौ ॥
दंत दीये मुख कँवल बिगसन कौ। रसना कीनी राम राम रसन कौ[5] ॥
कंठ दिया मुख ग्रास ग्रासन कौ ॥
बंकनाल सभ सहजि समाय। नानक पेट दीया नाड़ी[6] की जाय ॥७३॥

इड़ा पिंगला नाड़ी कीआ। सुषमन के घर जाय समीआ ॥
षट दल सोधै चहुँ के माँझ। दुहँ त्रिहँ मिल कीनी इक साँझ ॥
दल अंगल ते भया निरारा। दुइ दस मैं लै कीआ पसारा ॥
तज पसार मनु दसवैं जाई। नानक ता कउ कालु न खाई ॥७४॥

ढाहि भीत[7] कीया मैदान। ऊहाँ जाय रचिया चौगान ॥

---

(१) जल। (२) गिराय कर। (३) रोकै। (४) बोलनहारा जोव परंतु यहाँ मन से भाव है। (५) राम राम को रसीले रससे रसने के वास्ते। (६) नाड़ियों की जगह पेट में नाभी के नीचे कछू आकार में संपूर्ण नाड़ियों का जाल सभ के भीतर तना हुआ है। इसी को धरणी कला कहते हैं, अपने बल से उलंघ कर बर्त्तने आदि कारणों से यह नाड़ियों का कूच अपनी जगह से हिल जाया करता है, जिसको धरन या नाफ का हट जाना कहते हैं। इससे बड़ा क्लेश होता है। (७) कंध (दीवार) भाव पिंड देश से सुरति खैंच कर त्रिकुटी के मैदान में जाकर स्थिर होता है (खेलता है)।

सुन्न समाधि का पाया जिन रूप।
नानक तिस हथि चढ़िया रत्न अनूप ॥४६॥
जिनि बिन्दु खोई तिनि रत्न गुँवाया।
जिनि बिन्दु खोई सो गरभ महिं आया ॥
जिनि बिन्दु खोई सो फिरै चौरासी।
जिनि बिन्दु खोई सो परै यम फाँसी ॥
जिनि बिन्दु खोई तिस पिंड धरि[1] पाई।
जिनि बिन्दु खोई तिस काल संताई ॥
जिनि बिंदु खोई तिनि सब किछु गुँवाया।
जिनि बिन्दु खोई तिनि महा दुख पाया ॥
जिनि बिन्दु खोई तिस कौ खरी मारी।
जिनि बिन्दु खोई तिस करै जम ख्वारी ॥
जिनि बिन्दु खोई तिस अंत दुख होसी।
नानक जिनि बिन्दु खोई सो अंत कौ रोसी ॥४७॥
जिनि बिन्दु खोई सो जन्म फिरि आवै।
जिनि बिन्दु खोई सो सदा दुःख पावै ॥
जिनि बिन्दु खोई तिस नरक घर बाँधा।
जिनि बिन्दु खोई तिनि महा दुख लाधा ॥
जिनि बिन्दु खोई सो गर्भ महिं गलै।
जिनि बिन्दु खोई सो अग्नि ज्यों जलै ॥
बिन्दु खोई का एही बिचारु।
नानक बिन्दु खोई फिरि फिरि अवतारु ॥४८॥
जिनि बिन्दु नहिं साधी पर त्रिया जोहहि[2]।
जिनि बिन्दु नहिं साधी से अंत बहि रोवहि ॥
जिनि बिन्दु नहिं साधी से धरमि न धावहि।
जिनि बिन्दु नहिं साधी से अंत पछुतावहि ॥
जिनि बिन्दु नहिं साधी से स्वान[3] ज्यों जूठे।
जिनि बिन्दु नहिं साधी से पावक मँझ लूठे[4] ॥

(१) धरती में पड़ता है अर्थात् मट्टी में बरबाद हो जाता है। (२) परस्त्रियों को ढूँढ़ता फिरता है। (३) कुत्तों की न्याईं विषई सहचारी विषय व्यसनी स्त्रियों की जूठन खाता फिरता है। (४) अग्नि में लूहे जाते हैं भाव नरकाग्नि में झुलसे जाते हैं।

जिनि बिन्दु नहिं साधी से फिरहिं मुँह काले।
बिन्दु के सादि[1] जीअ नरक महिं घाले ॥
बिन्दु के सादि होय रहिया दिवाना।
नानक बिन्दु खोय कै पछोताना ॥४९॥
बिन्दु चीने का कैसा स्वाद। बिन्दु चीने पेखै बिस्माद ॥
बिन्दु चीने के लछण कौन। बिन्दु चीने सूझै सभ भवन ॥
बिन्दु चीने का क्या परकार[2]। बिन्दु चीने तरै संसार ॥
बिन्दु चीने तिस सभ आसान। बिन्दु चीने सो रहे निरबान ॥
बिन्दु चीनै तिस सभ मिति आवै। बिन्दु चीने तिस रत्न प्रगटावै ॥
रत्न राखिया बिन्दु के साथ। नानक जिनि बिन्दु चीन्या तिस चढ्या हाथ ॥५०॥
बिन्दु की इह मिति सुनहु रे भाई। जिनि बिन्दु चीन्या तिन रत्न मिति पाई ॥
बिन्दु की जोति माथे महिं आवै। माथे माहिं चमक अगमि दिखावै ॥
अचरज कौ चीनै अचरज जब होय। तत्त कौ चीनै तत्तदर्शी होय ॥
ब्रह्म कौ चीनै ब्रह्मही होय। जोग कौ चीनै एहु जोगी होय ॥
बिष्णु कौ चीनै सो वैष्णव होय। तप कौ चीनै सो तपा होय ॥
एते तत्त कौ जो कोइ बूझै। नानक वा के चरन लगि सीझै[3] ॥५१॥
बीनी ध्यान जब इहु मन जाई। तन महिं बीनी कर्म कमाई ॥
बीनी संजम जब मनु जाता। ध्यान धार सभ ब्रह्म पछाता ॥

04:42

sant govind sahab life...

296/500

अर्थात् बारह ओंकार से पूरक, सोलह ओंकार से कुम्भक तथा दस ओंकार से रेचक करना चाहिए। इस ओंकार का ज्ञान सद्गुरु से ही होता है।

"ओंकारोच्चारणो योऽस्य सदाचार्येण ज्ञायते ।
कुम्भके कुम्भवत्पूर्णो द्वयं तत्रावशिष्यते[1] ॥"

जब साधक प्राणायाम करता है, तो वायु उल्टी गति से पश्चिम तरफ जाती है, आकाश में वायु गर्जन होता है और शरीर कांपने लगता है।

"विपरीत गत्वा पवनं स्तत्रैव पश्चिमे व्रजेत ।
गगनस्थो जगद्योच्चैर्दैर्ह कम्पादि जायते[2] ॥"

प्रथम अभ्यास में स्वेदानुभव होता है। पुन. देह में कम्पन होकर मछली की तरह उलटी गति से जीवात्मा गुफा में प्रवेश करता है।

"प्रथमाभ्यासे प्रस्वेदस्य पुनः कंपो भवेद्ध्रुवम् ।[3]
मीनवत् परित्यावे गन्तव्यो मृगो गुहागतः ॥"

गुलाल साहब ने ज्ञानगुष्टि में कहा है --

"चन्द्र राखि के सूर्य चढ़ावे, इंगला पिंगला सुखमन जावे ।
एक थामे कर कोशिश लावो, सुन्य मधे पर जिव अकुलावे[4] ॥"

---

(१) गोविन्द योग भास्कर श्लोक अप्रकाशित १५० ।
(२) गोविन्द योग भास्कर श्लोक अप्रकाशित १५१ ।
(३) गोविन्द योग भास्कर श्लोक अप्रकाशित १५२ ।
(४) महात्माओं की वानी - पृ० १८८ ।

6 Years of PM-Kisan Samman Nidhi
Nearly 25 Cr Soil Health Cards issued for healthier crops and farms
EMPOWERING FARMERS for VIKSIT BHARAT

04:36
sant govind sahab life...
487/500

क्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक	सम्पादक । मुद्रक
(३५)	बुला साहब शब्द सागर	बुलासाहब कृत	बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
(३६)	बेनो साहब का गुरु माहात्म्य	बेनीसाहब कृत	अप्रकाशित
(३७)	मीखासाहब की बानी	भीखासाहब कृत	बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
(३८)	भक्ति सागर	श्रीस्वामी चरनदासजी	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
(३९)	महात्माओं की वाणी	महन्त बाबा रामबरन साहब	साहित्य भूषण, वाराणसी।
(४०)	यारी साहब की रत्नावली	यारी साहब कृत	बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
(४१)	लछमणदास शब्दावली	लछमणदास कृत	अप्रकाशित
(४२)	संत कवि देवकीनन्दन साहब और उनकी रचनायें	सं० परशुराम चतुर्वेदी	सन्त साहित्य प्रकाशन संस्थान, हिन्दी प्रचारिणी सभा, बलिया।
(४३)	सार वचन राधा स्वामी	राधास्वामो कृत	राधास्वामी संतसंग, स्वामीबाग, आगरा
(४४)	सहजोबाई	सहजोबाई कृत	बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
(४५)	सत्यसार	गोविन्दसाहब कृत	जैराम पट्टी (बस्ती)
(४६)	श्रीमद्भगवद्गोता	व्यासकृत	गीताप्रेस, गोरखपुर।

ACKO
Tailored for your needs,
priced for your budget
Get quote

नाभ कवलु पवनु अरंभु। मूल पवनु नाभ अस्थंभु ॥
पश्चि तत्तु करि कीर विडाणु[1]। जोति जगाइ पति मति गति दानु ॥
घट मट पाए देह सवारी। सवो जोति त्रिभवण प्रभि धारी ॥९५॥
गुर के शब्दि प्रतीति मनु रचे। त्रिगुण चंचलु त्यागे चरचे[2] ॥
चोरी चंचलु करे त्यागु। कर्मु मणो सचु मस्तकि भागु ॥
अैसा जोगु जुगति पाछाणु। पञ्च मारि होवहिं परवाणु ॥
वंक नाडि रसु भेदु न पाय। भणति नानक जे निज घरि जाय ॥९६॥
इड़ा पिंगुला सुष्मना तन बुधि। तीन[3] तवे सहंसा की सुधि ॥
त्रिगुण त्यागि चोथा पदु जाणे। नौं घरि ढूँढि दशवें घरि आणे ॥
अैसा जोगी जुगति निराला। दयावंतु पूर्ण किरपाला ॥
रहै विहंगम कतहूँ न जाय। सुणि अवधू सचु जोगु कमाय ॥
ओऊं उनमो अपर अपारे। आदि पुरुष अपरंपर धारे ॥९७॥
अकथ कथा का क्या बीचारु। आरे जाणै अपर अपारु ॥
गुर कै शब्दि रते मन माहीं। सचु जोगी सारु निज घरु जाही ॥९८॥
गुर प्रसादि परम पदु पावै। नानक जाँको आप मिलावै ॥
लालु गुलालु शब्दि गुर गूड़ा। गुर की भगति करे जन रूड़ा ॥
रूड़ी बाणी मन को ठहरावै। गुर का शब्दु प्रापति अघावै ॥
ऊँची[4] पवड़ी चढ़ै निरारा। गुरमुखि जोगी पावै पदु सारा ॥
ओपति परलो निमष मझारि। नानक जपीए शब्दि पिआरि ॥९९॥
निरंजन जोति शब्द सिरि शोरु। एकोही आपि दूजा नहीं होरु ॥
ता का न अंतु, न पारावारु। अगम अगाधि विअंतु अपारु ॥
गुरमुखि जोगी जोगु कमाउ। सिफती रत्ता आतम राउ ॥
दशनु आपि सहजि घरि पाइ। निर्मलु बाणी नादु बजाइ ॥१००॥

श्रद्धा आस्तिक भावना किसी को न हो उसके आगे भेद का प्रगट करना भी दोष रूप है इसलिये गुप्त रीति काव्य के अलंकार को यहाँ ग्रहण करली है। भरथरी को तो गुरू साहब के चरणों में श्रद्धा भी थी इसलिये उपदेश के ढंग को भी साथ २ वर्त्ता है) इस वक्त अरचे के घर में जब जाकर परचा सुरति का हो जावे तो त्रिकुटी के मंडल में प्रवेश हो जाता है और जब वहाँ के परचे से उसी प्रकार त्रिकुटी भेदन हो जाती है तो सुन्न मंडल में जाकर प्रवेश होता है। जब चाँद फूटा सहसदल के मंडल को सुरत ने बेधन किया त्रिकुटी में जा पहुँची। त्रिकुटी के फूटने पर निज घर (सुन्न मंडल में) समाती है।
(१) आश्चर्य कौतुक। (२) वादविवाद के झगड़े। (३) तीनों को सहसदल का सुख लेकर तेप अर्थात् सावे, वा सहसदल में ध्यान का धूनी तपावे। (४) इस प्रकार इसी ऊँची पौड़ी पर शरीर से न्यारा हो चढ़े तो सार पद परम पद को प्राप्त हो जाता है।

18:27
All World
Gayatri Pariwar

अपनी पुस्तक 'नेचुरल लाइफ' में कहा है कि जितने अंशों तक जो मनुष्य ब्रह्मचर्य की विशेष रूप से रक्षा और प्राकृतिक जीवन का अनुसरण करता है, उतने अंशों तक वह विशेष महत्व का कार्य कर सकता है। स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे कि जैसे दीपक का तेल बत्ती के ऊपर चढ़कर प्रकाश के रूप में परिणत होता है, वैसे ही ब्रह्मचारी के अंदर का वीर्य तत्व सुषुम्ना नाड़ी द्वारा प्राण बनकर ऊपर चढ़ता हुआ ज्ञान दीप्ति में परिवर्तित हो जाता है। रेतस का जो तत्व रति करने के समय काम में लगता है, जितेन्द्रिय होने पर वही तत्व, प्राण, मन और शरीर की शक्तियों को पोषण देने वाले एक दूसरे ही तत्व में बदल जाता है।

आधुनिक विज्ञान इतना विकसित हो जाने पर भी वीर्य की उत्पत्ति का कोई सिद्धान्त निश्चित नहीं कर पाया है। सामान्य रासायनिक रचना के अतिरिक्त उन्हें इतना ही पता है कि वीर्य का एक कोश (स्पर्म) स्त्री के डिम्ब (ओवम्) से मिल जाता है। यही वीर्य कोश पुनः उत्पादन आरंभ कर देता है और अपनी तरह तमाम कोश माँ से प्राप्त आहार द्वारा कोशिका विभाजन-प्रक्रिया के अनुसार विभक्त होता चला जाता है। कहना न होगा कि वीर्य का सूक्ष्मतम स्प चेतना का एक

जन्म जन्म के फंदा काटे । खेली काल संग आँख मिचौली ।।7।।
भक्ति भाव रंग माट भराया । रंग रंगी मेरे मन की चोली ।।8।।
कुमति उड़ाय सुमति अब धारी । मार मार माया सिर धौली ।।9।।

।। शब्द सातवाँ ।।

उमंड घुमंड कर खेली होली । सुमति ज्ञान संग भर लई झोली ।।1।।
मार लई मैनें माया पोली । चढ़के चली अब प्रेम खटोली ।।2।।
गगन शिखर धुन निजकर तोली । जड़ चेतन की गाँठ सब खोली ।।3।।
सुरत निरत मेरी भई है अमोली । फेरूँ जैसे पान तमोली ।।4।।
मन तन लाल भया जस रोली[1] । सभी विकार डारे मैंने रोली[2] ।।5।।
मोह नींद मैं बहुतक सोली । अब राधास्वामी मेरी रंग दी चोली ।।6।।
भरी नाम धन से हिये नौली[3] । अब समझी सतगुरु की बोली ।।7।।
आसा मन्सा तन से डोली । अब नहिं करत काल मोसे ठोली[4] ।।8।।

।। शब्द आठवाँ ।।

मेरे गुरु ने खिलाई प्रेम संग होरी । मैं तो होय रही सब जग से बौरी ।।1।।
सील गुलाल अबीर छिमा का । ता से मैं भर लई झोरी ।।2।।
काम क्रोध दोउ खेलन आये । मार मार उनका मुख मोड़ी ।।3।।
सुरत निरत दोउ सखियाँ संग ले । शब्द खोज को चाली दौड़ी ।।4।।
सुखमन नाका जाय हम घेरा । बंकनाल पिचकारी छोड़ी ।।5।।
त्रिकुटी शब्द जाय हम पकड़ा । धूम धाम कुछ भई है न थोड़ी ।।6।।
हंस सभा जहँ मान-सरोवर । प्रगट भई माया की चोरी ।।7।।
किंगरी नाद होत धुन भारी । सुरत तार अपना नहिं तोड़ी ।।8।।
राधास्वामी दया रंग घट भरिया । जनम मरन दुख दूर करो री ।।9।।

।। शब्द नवाँ ।।

गुरु आन खिलाई घट में होली । धुन नाम लई तन अंतर खोली ।।1।।

---

1. लाल रंग। 2. रोल कर। 3. बसनी, बांसली – रूपया रखने का। 4. ठठोली।

२ मूल मंत्र करि उध विचारी। पट चक्रहि नव सोधहि नारी।
सोधि क मेरु दण्ड ठहराना। सहज मिलाव प्रान अपाना।
बंक नाल गहे मग मूना। चिहुस अष्ट कमल दल फूला।
पश्चिम दीसा लागि विचारी। सत कुंजी ता लेहु उघारी।

बाबा रामलाल दास

३ उपर्युक्त दोनो पदो के अतिरिक्त कबीर ने भी 'पश्चिम द्वार' की महत्ता की ओर रहस्यात्मक संकेत किया है। उनका पद इस प्रकार है।

शिव की पुरी बसे बुधि सारू।
तहं तुम मिलि क करहु विचारू।
इति उत की बोझी पर।
कउन करम मेरा करि करि मर।
निज पद ऊपरि लागो धिआनु।
राजा राम नमु मोरा ब्रह्म गिआनु।
मूल दुआरे बंधिया बंधु।
रवि ऊपर गहि रखिया चंदु।
पछिम दुआरे की सिल ओड।
तिहि सिल ऊपर खिडकी अउर।
खिडकी ऊपर दसवा दुआरू।
कहि कबीर ताका अन्त न पारू। कबीर

उपर्युक्त तीनों पदों के उद्धरण साधना-परक हैं। निश्चय ही इनमे साहित्यिक सौन्दर्य का अन्वेषण करने से घोर निराशा होगी। और अपनी इस अध्यात्म परता के कारण ये अथवा इसी प्रकार की सन्तों की रचनाएं, केवल साहित्यिक की बुद्धि वृत्त के अन्तर्गत नहीं

18:32

urdhvareta

Search in English urdhvareta

AI जवाब

हिं En सुनें

ऊर्ध्वरेता का मतलब है, कठोर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला या निष्ठावान ब्रह्मचारी. योग विद्या के मुताबिक, ऊर्ध्वरेता बनने का मतलब है, जीवन की ऊर्जा को अपने उद्गम स्थल ललाट में लाना.

ऊर्ध्वरेता बनने के लिए ये उपाय किए जा सकते हैं:

- कुंडलिनी साधना में विभिन्न प्राणायामों की मदद से सूर्य चक्र की ऊष्मा को प्रज्ज्वलित करना.
- इस ऊष्मा से वीर्य को पकाना और उसे सूक्ष्म शक्ति का रूप देना.
- इस शक्ति को मेरु दंड से ऊपर चढ़ने के लिए प्रेरित करना.
- साधक इस शक्ति को क्रमशः अन्य चक्रों में ले जाता है और फिर से ललाट में पहुंचाता है.
- शक्ति बीज का मस्तिष्क में पहुंच जाना और सहस्रार चक्र की अनुभूति कर लेना ही ब्रह्म निर्वाण है.
- कठिन साधनाएं न करने पर भी जो वीर्य को अखंड रख लेते हैं, वे अपने अंदर शक्ति का अक्षय भंडार अनुभव करते हैं.

आचार्य विद्यासागर पर इंदौर के लेखक आलोक शर्मा ने 'ऊर्ध्वरेता' किताब लिखी थी.

यही कारण है कि गर्भ में सन्तान का सिर नीचे की ओर होता है। जन्म के समय 10 रत्ती वीर्य बालक के ललाट में होता है। भारतीय तत्वदर्शियों का मत है कि इसी कारण परमहंस जैसी प्रकृति का विशुद्ध आनन्दवादी, निश्चिन्त और 'केवलो हं' होता है। शास्त्रों के अनुसार नौ से बारह वर्ष तक वीर्य शक्ति भौंहों से उतर कर कण्ठ में आ जाती है। प्रायः इसी समय बच्चे के स्वर में सुरीलापन आता है। इससे ठीक पूर्व दोनों की ध्वनि एक जैसी होती है। 12 से 16 वर्ष तक की आयु में वीर्य मेरुदण्ड से उपस्थ की ओर बढ़ता है और धीरे-धीरे मूलाधार चक्र में अपना स्थायी स्थान बना लेता है। काम विकार पहले मन में आता है, उसके बाद तुरन्त ही मूलाधार चक्र उत्तेजित हो उठता है और उसके उत्तेजित होने से वह सारा ही क्षेत्र जिसमें कि कामेन्द्रिय भी सम्मिलित होती है, उत्तेजित हो उठती है, ऐसी स्थिति में ब्रह्मचर्य की संभावना कठिन हो जाती है। 24 वर्ष तक की आयु में यह शक्ति मूलाधार चक्र में से समस्त शरीर में किस प्रकार व्याप्त हो जाती है इसका उल्लेख करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि जिस प्रकार दूध में घी, तिल में तेल, ईख में मीठापन तथा काष्ठ में अग्नि तत्व सर्वत्र विद्यमान रहता है, उसी प्रकार वीर्य सारी काया में व्याप्त रहता है।

18:29

All World
Gayatri Pariwar

ऊर्ध्वरेता बनना अर्थात् जीवन को, ओज को अपने उद्गम स्थल ललाट में लाना, जहाँ से वह मूलाधार तक आया था, योग विद्या का काम है। कुण्डलिनी साधना में विभिन्न प्राणायाम साधनाओं द्वारा सूर्य चक्र की ऊष्मा को प्रज्ज्वलित कर इसी वीर्य को पकाया जाता है और उसे सूक्ष्म शक्ति का रूप दिया जाता है, तब फिर उसकी प्रवृत्ति ऊर्ध्वगामी होकर मेरु दण्ड से ऊपर चढ़ने लगती है। साधक उसे क्रमशः अन्य चक्रों में ले जाता हुआ फिर से ललाट में पहुँचाता है। शक्ति बीज का मस्तिष्क में पहुँच जाना और सहस्रार चक्र की अनुभूति कर लेना ही ब्रह्म निर्वाण है। ऐसे व्यक्ति को ही भगवान शिव ने अपने समान सिद्ध और पूर्ण योगी बताया है।

कठिन साधनाएँ न करने पर भी जो वीर्य को अखण्ड रख लेते हैं, वे अपने अन्दर शक्ति का अक्षय भण्डार अनुभव करते हैं और कुछ भी कर सकने की क्षमता रखते हैं। सामाजिक कर्तव्यों के पालन द्वारा भी ऐसा सम्भव है, पर उसके लिए आज की पारिवारिक परिस्थितियों से लेकर शिक्षा पद्धति तक में परिवर्तन करना पड़ेगा। वीर्य, सृष्टि का मूल उपादान है। उसकी सामर्थ्य को समझा जाना चाहिए उसकी रक्षा की जानी चाहिए तथा ऊर्ध्वरेता के लाभों से लाभान्वित

[illegible] का आश्रय है। वह कुलकुंडलिनी से एकात्म प्राप्त करता है। मूलाधार में अपानवायु के एक प्रकार का, जिसे कंदर्प वायु या कामवायु कहते हैं, निवास है। इसे बाँई दिशा की ओर प्रेरित किया जाता है तथा इस प्रकार उस अग्नि को उद्दीप्त किया जाता है जो कुंडलिनी के चारों ओर व्याप्त रहती है। बीज 'हूं' और इस प्रकार उद्दीप्त की हुई अग्नि के ताप से सुषुप्त कुंडलिनी जाग्रत की जाती है। वह कुंडलिनी, जो स्वयम्भूलिंग को चारों ओर से सार्द्धत्रितय वलयों से आवृत कर लिपटी रहती है तथा ब्रह्मद्वार के छिद्र को बन्द किये रहती है, इस प्रकार जाग्रत किये जाने पर, उस द्वार में प्रवेश करती है तथा जीवात्मा से समन्वित होकर ऊपर की ओर उत्थित होती है।[1]

इस प्रकार ऊर्ध्वमुख गतिशीलता के होने पर ब्रह्मा, सावित्री, डाकिनी शक्ति, देवगण बीज और वृत्ति—ये सभी कुंडलिनी के शरीर में लीन हो जाते हैं। महीमंडल या पृथिवी बीज 'लं' में परिवर्तित होकर उसके शरीर में लीन हो जाती है। जब कुंडलिनी शक्ति मूलाधार से उत्थित होती है तो वह पद्म जो उसके जागरण के समय विकसित हो गया था तथा ऊर्ध्वमुख हो गया था, पुनः मुकुलित और अधोमुख हो जाता है। जैसे ही कुंडलिनी स्वाधिष्ठान चक्र को पहुँचती है, वह स्वाधिष्ठानस्थित पद्म विकसित हो जाता है तथा उसके दल भी ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं। कुंडलिनी का प्रवेश होने पर महाविष्णु, महालक्ष्मी, सरस्वती, राकिनी शक्ति, देव, मातृकाएँ, वृत्ति, वैकुंठ धाम, गोलोक और उनमें निवास करने वाले देव-देवीगण, सभी कुंडलिनी के शरीर में लीन हो जाते हैं। पृथ्वी का बीज 'लं' जल में तथा जल बीज 'वं' में परिवर्तित हो जाने पर कुंडलिनी के ही शरीर में स्थित रहता है। जब देवी मणिपूरचक्र को पहुँचती है, तब जो कुछ भी उस चक्र में रहता है, वह सब

[1] इं० तं० शा०, पृ० १३५–१३६। इसका विस्तृत विवरण पूर्णानंद-स्वामी कृत षट्चक्रनिरूपण में मिलता है।

उस कुंडलिनी शरीर में लीन हो जाता है। वरुण का बीज 'वं' अग्नि में मिश्रित हो जाता है और देवी शरीर में बीज 'रं' के रूप में रहता है। इस मणिपूरचक्र को ब्रह्मग्रंथि कहते हैं। इस चक्र का भेदन होने से बहुत पीड़ा हो सकती है, शारीरिक अव्यवस्था हो सकती है, कोई व्याधि उत्पन्न हो सकती है। इसीलिये एक अनुभवी गुरु की आवश्यकता होती है और इसीलिये अन्य प्रकार के उचित और अनुकूल योग भी बताये गये हैं, क्योंकि इस प्रकार की अवस्थाओं में क्रियाशक्ति सीधे उच्चतर केंद्रों में उत्थित होती है। उच्चतर केन्द्रों या चक्रों तक पहुँचने के लिये सदैव निम्नतर केन्द्रों या चक्रों का भेदन होना आवश्यक नहीं है। इसके बाद कुंडलिनी अनाहतचक्र में प्रवेश करती है, जिसमें वहाँ जो कुछ भी रहता है, सब देवी शक्ति के शरीर में लीन हो जाता है। तेजस् का बीज 'रं' वायु में लीन हो जाता है तथा वायु का बीज 'यां' में परिवर्तित होकर कुंडलिनी के शरीर में लीन हो जाता है। इस चक्र को विष्णुग्रंथि कहते हैं। कुंडलिनी भारती या सरस्वती के निवासस्थान विशुद्धचक्र को पहुँचती है। उसमें प्रवेश करने पर अर्द्धनारीश्वर शिव, शाकिनी, षोडश स्वर, मंत्र आदि कुंडलिनी के शरीर में लीन हो जाते हैं। वायु का बीज 'यां' आकाश में लीन हो जाता है तथा वह स्वयं भी बीज 'हं' में परिवर्तित होकर कुंडली देवी के शरीर में लीन हो जाता है। ललनाचक्र का भेदन कर कुंडलिनी आज्ञाचक्र को पहुँचती है जहाँ परमशिव, सिद्धकाली, देव, गुण तथा उस चक्र में निवास करने वाले सब उसके शरीर में लीन हो जाते हैं। आकाश का बीज 'हं' मनसचक्र में लीन हो जाता है तथा मन स्वयं परादेवता के शरीर में लीन हो जाता है। आज्ञाचक्र को रुद्रग्रंथि कहते हैं। इस चक्र के भेद के बाद कुंडलिनी अपनी ही गति से परमशिव से एकात्मलाभ करती है। जैसे ही यह द्विदल पद्म से ऊपर की ओर उत्थित होती है, निरालंबपुरी, प्रणव, नाद आदि सभी उसके शरीर में लीन हो जाते हैं।[1]

इस प्रकार कुंडलिनी अपने ऊर्ध्वमुख उत्थान में पंचभूततत्वों से आरम्भ कर अन्त तक २४ तत्वों को अन्तर्लीन कर लेती है और तब परमतत्व से एकात्म प्राप्त कर अद्वयावस्था को प्राप्त कर लेती है। यह सात्विक पंचतत्वों का मैथुन है। इस प्रकार के अद्वय से जो अमृतस्राव होता है वह संपूर्ण क्षुद्र ब्रह्मांड या मानव शरीर को आपूर कर देता है। तभी साधक इस संसार

[1] वही, पृ० १३६–१३७।

07:51
144507938_1.pdf

अन्य कुछ विशिष्ट प्रतीक :

अब यहाँ कुछ प्रतीकों को सोदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। इन प्रतीकों का 'गोरखबानी' में विशिष्ट स्थान है :

उनमन :

उनमन (रूढ़ प्रतीक) = सभी विषय वासनाओं से मन की मुक्तावस्था।[1]

अहनिसि मन ले उनमन रहै।
गम की छांड़ि अगम की कहै।।
(जो रात दिन बहिर्मुख को (मन को) उन्मनावस्था में लीन किये रहता है, गम्य जगत की बातें छोड़कर अगम्य आध्यात्मिक क्षेत्र की बातें करता है।)

अरधे-उरधे :

अरधे-उरधे = शुक्र को हठयोग में विहित मुद्राओं एवं बंधों द्वारा सहस्रार तक ले जाने की क्रिया।

अरधे जाता उरधे धरै, कांम दग्ध जे जोगी करै।[2]
(नीचे की ओर गति वाले रेतस् (शुक्र) को ऊपर की ओर प्रेरित करे, ऐसा ऊर्ध्वरेता होकर जो काम को भस्म कर देता है।)

---

१. गोरखबानी, सबदी १६ । पृष्ठ सं० ७ ।
२. वही, सबदी १७ । पृष्ठ सं० ७ ।

गगन के ध्यान लगा के ध्यान अनहद नाद —
सुरत अनुत पैसाना ।।

इंडा पिंगला सुषुम्नी सिखा दोनों आसमानी ।।[1]

इस उपासक का भी विश्वास है कि ध्यानयोग द्वारा पूर्ण परमात्म की प्राप्ति की जा सकती है।[2]

एक निश्चित स्थान पर ध्यान केन्द्रित करने के पश्चात् जीव ऊर्ध्व की ओर उन्मुख होता है और उस समय जीव की जो दशा होती है उसे साधक इस प्रकार व्यक्त करते हैं——

त्रिवाधिन पिण्ड बीच और धारि उठि उठी बाई ।।
सबनि स्थापे पूरण सिर बार बार झाई ।।
मोहि सिर और तैं ताहि,[3] मौठा सब ठौबे +
मम बारि-बार बाई ।।

और जब गगन मण्डल में मन गर्जना करने लगते हैं और अनहद नाद सुनाई पड़ने लगता है।[4] शंख, घण्ट, बंशी तथा अनहद नाद बजने लगता है।[5]

१- गोस्वामी सन्त परम्परा व साहित्य, पृष्ठ-२६८

२- वही—— पृष्ठ-२७२

३- ईडा पिंगला सुषुम्ना ध्यान धराई ।।
गगन पवन दुइ बीच सुन सुरत जहां बिराई ।।
—गोस्वामी सन्त परम्परा व साहित्य, पृष्ठ-२४२

४- गगन मण्डल में मन गर्जन लागे अनहद नाद जागानी ।।
गोस्वामी बाबा बाजन लागे गर्जत घोर सुहानी ।। —वही—पृष्ठ-२७२

५- सुरत समाधि सुन्न स्वामी पसार फिरे विरक्ती ।।
शंख घण्ट अनहद बाजे अनमोल बंशी बाजे बढ़ती ।। —वही—पृष्ठ-२७७

अगिनका टनका, जब लागा तब चेता। सार शब्द खांडेकी धारा, सब हारा कोइ जीता ॥ सिरके सांटे भगत कबूले, का तनकी कुसलाता। साहेब कबीर मगन होय गावे, का संध्या परभाता ॥

शब्द १७६-साहब तेरा भेद न जाने कोई॥टे०॥ पानी लेले साबू लेले, मल मल काया धोई। अंदर घटका दाग न छूटे, निरमल कैसे होई ॥ जा घट भीतर बेल बंधे हैं, निरमल खेती होई। सुखिया बैठे भजन करत हैं, दुखिया दिल भर रोई॥ या घट भीतर अगिन जरत है, धुवां न परगट होई। के दिल जाने आपना, के सिर बीती होई॥ जर बिन बेल बेल बिन तूंबा, बे फूले फल होई। कहें कबीर सुनो भाई साधू, गुरु बिन ज्ञान न होई ॥

शब्द १७७-साहब मेरा मैं ढालीबंद तेरा॥टे०॥ पांच हथियार कमर कस बांधो, ठग ठाकुर बहुतेरा॥ हनमस्ता चौकीपे राखो, चोर न मूसे डेरा॥ सब दिन जीन छुटन ना पावे, चरन न पावे घोडा ॥ निश दिन लडे धनीके आगे, रनमें लडत अकेला ॥ पांचों मार पचीसों बसकर, जब मुजरा है तेरा ॥ मुजरा तेरा होन न पावे, लुटन लगे सब डेरा ॥ काया गढमें फिरे दोहाई, दुतिया रहन न पावे॥ कहें कबीर ताहिको मारो, जो कोइ शीश उठावे ॥

शब्द १७८-ग्वालिन दधि बेच न जाना। मेरा सतगुरु दुहत दुहाना॥टे०॥ मूल चक्रपे रोपी मटकिया, सुषमन खेंच मथाना॥ सुरति निरतिकी करो कडनियां, धीरज फुलका भवना॥ माखन खैंच छाछ कर न्यारी, त्रिकुटि महलमें छवना॥ सुहिज कमलमें कुपीका वासा, माखन उलट समाना ॥ उलटके मीन चढी गिरवरको, कहें कबीर पहिचाना ॥

गरकी अगम बात है, जाके पार न पाई॥ कहें कवीर सुनो भाई साधू, छोड चले सबही ठकुराई ॥

शब्द १७३-संतो करो साहबी तनमें ॥ टे० ॥ पांच पचीस फौज या मनकी, खेलैं भीतर घरमें॥ भरम मोरचा साहन काटे, बेठ जुगतके घरमें ॥ मूल कँवलकी खोल किंवारी, प्रेम मगन भये दिलमें॥ श्वेत फूल निश बासर फूले, लेत लहरिया जलमें॥ बंकनालको धावा देवे, चढ गया सूर गगनमें ॥ घाट पाट सब औघट देखे, आवे तखत नजरमें॥ ताल पखाल मृदंग जो बाजे, शोभा नगर महलमें॥ कहें कवीर सुनो भाई साधो, छायो नाम अधरमें ॥

शब्द १७४-मैं सत्तनामका बेपारी॥ टे०॥ काह लादे कांसा पीतर, काहू सामर खारी॥ संतन लादे नाम धनीका विष लादे संसारी॥ पूंजी न टूटे नफा चौगुने, वनिज किया एक भारी॥ गेल जगाती रोक ना सके, है निरभय राह हमारी॥ हाल हजूर रहत साहबके, पटा चढो दरबारी॥ जब साहबने पंजा रोपे, जम पर अदल हमारी॥ हीरालाल घटहीमें उपजे, मुकिति लगी किंवारी॥ नाम साहबका लाद चले हैं, धर्मदास बेपारी॥ लख चौरासी जिया जो इनसे, इनसे राह नियारी ॥ कहें कवीर एक वनिज किया है, कबहुं न आवे हारी ॥

शब्द १७५-अलमस्ता जोगी नाम अमल रस चाखा॥ टे०॥ याही तनकी कूंडी करले, शब्दके करले घोटा। भरम भांगको निशदिन घोटो, ज्ञानका साफी छनौटा॥ आव संत गुर-मिलके पीवो, प्रेम मगन विस्वासा। सुरत समेट धरो हृदेमें, छूट जाय भरम फासा॥ रतन कटोरा भर भर पीवो, पांचों इंद्री साथा। रोम रोममें छाय गया है, का ठंढा का ताता॥ गुरुका शब्द

वाच वर्णात्मक जानो। लक्ष धुन धुनी पहिचानो ॥ 19 ॥
वर्ण में भेष जग भूला। मर्म धुन संत कोइ तोला ॥ 20 ॥
वर्ण जप जप पचें भेषी। मिले कुछ फल नहीं नेकी ॥ 21 ॥
भेद धुन का नहीं पाया। नाम फल हाथ नहिं आया ॥ 22 ॥
जपें नित सहस और लाखा। खुले नहिं नेक उन आँखा ॥ 23 ॥
तिमर संसार नहिं जावे। मोह मद काम भरमावे ॥ 24 ॥
धुनी धुन भेद नहिं चीन्हा। सुरत और शब्द नहिं लीन्हा ॥ 25 ॥
मिला नहिं गुरू धुन भेदी। लखावे धुन मिटे खेदी ॥ 26 ॥
काल ने बुद्धि उन छेदी। मुफ़्त नर देह उन दे दी ॥ 27 ॥
दया कर संत गोहरावें। ज़रा नहिं चित्त में लावें ॥ 28 ॥
पाँच धुन भेद बतलावें। सुरत की राह दिखलावें ॥ 29 ॥
धुनों के नाम दरसावें। रूप अस्थान कह गावें ॥ 30 ॥
सुरत का जोग लखवावें। जीव नहिं कहन उन मानें ॥ 31 ॥
सुरत ले गगन चढ़वावें। पिंड में सार बतलावें ॥ 32 ॥
चढ़े ब्रहमंड तब परखे। सहसदल मध्य कुछ निरखे ॥ 33 ॥
बंक चढ़ तिरकुटी धावे। सुन्न दस द्वार गति पावे ॥ 34 ॥
महासुन जाय हरखानी। भँवर में जा सुनी बानी ॥ 35 ॥
अमर पद मूल जा देखा। बीन धुन का मिला लेखा ॥ 36 ॥
अलख और अगम भी पेखा। नाम का मूल अब देखा ॥ 37 ॥
कहूं क्या खोल राधास्वामी। सैन यह समझ परमानी ॥ 38 ॥[1]

सत्संग के बचन

06:57

08_chapter_05

पलटू साहब की वाणी में यौगिक शब्दावली का प्रयोग तो दिखाई देता है, किन्तु उसके निर्वाह और कोई ध्यान नहीं लक्षित होता है। पलटू साहब ने अपने पद में केवल 'अनाहद' शब्द 'चन्द्रा' और 'मान अधोमुख 'सेतध्वजा' आदि पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है।[189] इसका क्रम देखने से उल्टा प्रतीत होता है। इसका कारण यह है कि इसके अन्तर्गत साधना का वर्णन न होकर अनुभव का वर्णन किया गया है।

परसाद साहब की वाणी में भी सहज समाधि की चर्चा की गयी है। यथा–

इड़ा औ पिंगला कमल दल सोधिकै, बंक के नाल चढ़ाई देना।

× × × × ×

दास परसाद तब सहज समाधि ह्वै, आपु में को देखि लेना।।[188]

निष्कर्षतः जीव के सामने मन के द्वारा ही सारा जड़ दृश्य उपस्थित होता है और साधना–विवेक द्वारा मन को हटा देने से दृश्यों का अन्त हो जाता है। दृश्यों के अन्त हो जाने पर जीव अपनी असंगता तथा परमशान्ति का अनुभव करता है। यह मन तथा संकल्पों पर विजय, समाधि एवं असंगता की प्राप्ति ही जीवन का सर्वोच्च फल है। यही मनुष्य का चरम गंतव्य है, अन्तिम मंजिल है। यहाँ पर आकर चिर विश्रांति है।

सन्दर्भ–

1. साँईदाता सम्प्रदाय और उसका साहित्य, डॉ. राधिका प्रसाद त्रिपाठी, भूमिका, पृ. 49
2. रामराग, सं. सभाजीत सिंह, पृ. 50
3. वही, पृ. 81
4. भुड़कुड़ा की सन्त परम्परा, डॉ. इन्द्रदेव सिंह, पृ. 171
5. वही, पृ. 171
6. वही, पृ. 171
7. (क) गोविन्द साहब की हिन्दी रचनाएँ, डॉ. राधिकाप्रसाद त्रिपाठी, पहाड़ा, छन्द–2
   (ख) हस्तलिखित वाणी, पृ. 94
8. वही, पृ. 45
9. गोविन्द साहब की हिन्दी रचनाएँ, डॉ. राधिकाप्रसाद त्रिपाठी, सत्यसार, दोहा सं. 4
10. पलटू साहब की बानी, भाग–1, पृ. 4
11. पलटू साहब की बानी, भाग–1, पृ. 2

Olymp Trade INSTALL

तहवाँ जोग कष्ट नहिं करना, सहज समाधि जन्म नहिं मरना।।[173]

भीखा साहब योग के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि योग की युक्ति तथा अभ्यास एवं गुरु की कृपा द्वारा 'सोऽहं' की स्थिति प्राप्त हो जाती है।

योग युक्ति अभ्यास करि, सोहं शब्द समाय।
भीखा गुरु परताप से, निज आतम दर्शाय।।[174]

सन्त कवि भीखा साहब प्राणायाम के महत्त्व को बताते हुए कहते हैं कि प्राणायाम से मन वश में हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप शरीर जन्य समस्त संशय स्वमेव नष्ट हो जाते हैं।

भीखा यक मन है बड़ भारी, ताते एक युक्ति उर धारी।
प्राणायाम ते मन वसि होई, तन से ससै रहे न कोई।।
जब लग पौन तबै मन मानो, साँस बिना मन ब्रह्मै जानो।।[175]

सन्त कवि भीखा साहब योग पद्धति का निरूपण करते हुए सुरति, निरति, सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला, शून्य आदि योगजनित शब्दावलियों का प्रयोग करते हैं–

येरी मन चाहत निहारी।
सुरति निरति अन्तर लै लावै, निज स्वरूप अनुहारी।।
योग युक्ति करि परिषन लागों पूरन ब्रह्म बिचारी।
पुलकि–पुलकि आपा महचिन्हत, देखत छवि उजियारी।।
सुषमन के घर आसन मारो, इंगला पिंगला सुधारी।
शुन्य निरंतर साहेब आपे सब घट बसते न्यारी।।
प्रेम–प्रीति तन–मन धरि अरपों, प्रभु जी की बलिहारी।
गुरु गुलाल जी के चरण कमल, रज धर माथ भिखारी।।[176]

योग साधना की चरम स्थिति समाधि की होती है। जब साधक अपनी योग साधना द्वारा अपनी कुण्डलिनी को जागृत करके उसकी त्रिकुटी के बीच लय कर देता है और ब्रह्माग्नि प्रज्ज्वलित कर समस्त माया को जलाकर नष्ट कर देता है और सहस्रार से टपक रहे अमृत का कुण्डलिनी द्वारा पान कर नाद ब्रह्म का आनन्द लेते

Olymp Trade
INSTALL

171. वही, पृ. 183

172. वही, पृ. 183

173. वही, पृ. 183

174. रामराग, सभाजीत सिंह, पृ. 91

175. वही, पृ. 95

176. वही, पृ. 100

177. वही, पृ. 185

178. इंगला पिंगला सुखमन के ऊपर साहब बस हमार, हस्तलिखित वाणी, पृ. 8

179. मेरे देसवा एक अनहद जगत। हस्तलिखित वाणी, पृ. 22

180. गैव मन्दिर में रतन सिंहासन बैठे तँह महि पद्मासन, हस्तलिखित वाणी, पृ. 94

181. पैठी पताल गगन गरजावै। त्रिकुटी महल झरकइया। –हस्तलिखित वाणी (गोविन्द साहब), पृ. 12

182. वही, पृ. 12

183. हस्तलिखित वाणी (गोविन्द साहब), पृ. 28

184. वही, पृ. 16

185. सहज समाधि व्याधि सब नासा, हस्तलिखित वाणी, पृ. 21

186. हस्तलखित वाणी (गोविन्द साहब), पृ. 8

187. पलटू शब्दावली, पृ. 35

188. बावरी पंथ के हिन्दी कवि, परसाद साहब की वाणी, कवित्त–47

Olymp Trade INSTALL

पकरि के भेद तुरत समुझाया, आपन दसा देख मुसक्याना४
जसकुरंग*बिचबसत बासना, खोजत मूढ़ फिरत चौगाना५
कर उसवास†मनै मैं देखै,यह सुगंधि धैाँ कहाँ बसाना ६
अर्ध उर्ध बिच लगन लगीहै, छक्यो रूप नहिं जात बखाना७
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो,उलटि आपु आपुमैं समाना८

॥ शब्द २ ॥

बिन सतगुर नर भरम भुलाना ॥ टेक ॥

सतगुर सब्द क मर्म न जाना, भूलि परा संसारा ॥ १॥
बिना नाम जम धरि धरि खैहै, कैान छुड़ावनहारा॥ २॥
सिरजनहार का मर्म न जाने, धृग जीवन जग तेरा ॥३॥
धरमराय जब पकरि मँगैहै, परिहै मार घनेरा ॥ ४ ॥
सुत नारी को मोह त्यागि कै, चीन्हो सब्द हमारा ॥५॥
सार सब्द परवाना पावो, तब उतरो भव पारा ॥ ६ ॥
इक-मत ह्वै के चढ़ो नाव पर, सतगुर खेवनहारा ॥७॥
साहेब कबीर यह निर्गुन गावैं, संतन करो बिचारा ॥८॥

॥ शब्द ३ ॥

टुक जिंदगीबँदगी कर लेना,क्या माया मद मस्ताना॥टेक॥
रथ घोड़े सुखपाल पालकी, हाथी और बाहन नाना।
तेरा ठाठ काठ की टाटी, यह चढ़ चलना समसाना‡॥१॥
रूम पाट§ पाटम्बर अम्बर, जरी बफ़्त का बाना।
तेरे काज गजी गज चारिक‖, भरा रहे तोसखाना ॥२॥
खर्चे की तदबीर करो तुम, मंजिल लंबी जाना।
पहिचन्ते का गाँव न मग मैं, चौकी न हाट दुकाना॥३॥

---

*मृगा। † सोँस। ‡ समसान। § ऊनो कपड़ा ‖ चार एक।

अमरापुर में खेती कीन्हा, हीरा नग तें भैंट भई ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, मनकी दुबिधा दूर भई ॥४॥

॥ शब्द १६ ॥

गगन की ओट निसाना है ॥ टेक ॥
दहिने सूर चन्द्रमा बायें, तिन के बीच छिपाना है ॥१॥
तन की कमान सुरत का रोदा, सब्द बान ले ताना है २
मारत बान बिंधा तनही तन, सतगुरु का परवाना है ॥३॥
मारयो बान घाव नहिं तन में, जिन लागा तिन जाना है ॥४॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, जिन जाना तिन माना है ॥५॥

॥ शब्द १७ ॥

जा के लगी सब्द की चोट ॥ टेक ॥
का पोखर का कुआँ बावड़ी, का खाईं का कोट ॥ १ ॥
का बरछी का छुरी कटारी, का ढालन की ओट ॥ २ ॥
या तन की बारूद बनी है, सत्तनाम की तोप ॥ ३ ॥
मारा गोला भरमगढ़ टूटा, जीत लिया जम लोक ॥ ४ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तरिहैा सब्द की ओट ॥ ५ ॥

॥ शब्द १८ ॥

साँईं बिन दरद करेजे होय ॥ टेक ॥
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, कासे कहूँ दुख रोय ॥ १ ॥
आधी रतियाँ पिछले पहरवाँ, साँईं बिन तरस तरस रही सोय
पाँचो मारि पचीसो बस करि, इन में चहै कोइ होय ॥३॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु मिले सुख होय ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

सतगुरु चरन भजस मन मूरख,का जड़ जन्म गँवावस रे ॥टेक॥
कर परतीत जपस उर अंतर, निसि दिन ध्यान लगावस रे॥१
द्वादस कोस बसत तेरा साहेब, तहाँ सुरत ठहरावस रे ॥२॥
त्रिकुटी नदिया अगम पंथ जहँ, बिना मेँह झर लावस रे॥३॥
दामिनि दमकत अमृत बरसत, अजब रंग दरसावस रे ॥४॥
इँगला पिँगला सुखमन से धस,नभ मंदिर उठि धावस रे ॥५॥
लागी रहे सुरत की डोरी, सुन्न मेँ सहर बसावस रे ॥६॥
बंकनाल उर चक्र सोधि के, मूल चक्र फहरावस रे ॥७॥
मकर तार के द्वार निरखि के, तहाँ पतंग उड़ावस रे ॥८॥
बिन सरहद अनहद जहँ बाजै, कौने सुर जहँ गावस रे ॥९॥
कहँ कबीर सतगुरु पूरे से, जो परिचै सो पावस रे ॥१०॥

॥ शब्द ३ ॥

मैँ तो आन पड़ी चोरन के नगर,सतसंग बिना जिय तरसे॥१
इस सतसँग मैँ लाभ बहुत है, तुरत मिलावै गुर से ॥२॥
मूरख जन कोइ सार न जानै, सतसँग मेँ अमृत बरसे ॥३॥
सब्द सा हीरा पटक हाथ से, मुट्ठी भरी कंकर से ॥४॥
कहँ कबीर सुनो भाई साधो, सुरत करी वहि घर से ॥५॥

॥ शब्द ४ ॥

साधो सतगुर अलख लखाया,जब आप आप दरसाया ॥टेक॥
बीज मध्य ज्योँ बृच्छा दरसै, बृच्छा मद्धे छाया ।
परमातम मैँ आतम तैसे, आतम मद्धे माया ॥ १ ॥

अलग डार पर बैठी मुनियाँ, पिये प्रेम रस बूटी।
क्या करिहै जमराज तिहारो, नाम कहत तन छूटी ॥२॥
मुनियाँ की गति मुनियाँ जाने, और कहै सब झूठी।
कहँ कबीर सुनो भाइ साधो, गुरु चरनन की भूखी ॥३॥

॥ शब्द १८ ॥

पिया ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली ॥ टेक ॥
ऊँची अटरिया जरद किनरिया, लगी नाम को डोरी।
चाँद सुरज सम दियना बरतु है, ता बिच भूलो डगरिया ॥१॥
पाँच पचीस तीन घर बनियाँ, मनुआँ है चौधरिया।
मुन्सी है कुतवाल ज्ञान को, चहुँ दिस लागी बजरिया ॥२॥
आठ मरातिब दस दर्वाजा, नौ में लगीं किंवरिया।
खिरकी बैठ गोरी चितवन लागी, उपराँ झाँप झाँपरिया ॥३॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, गुरु के चरन बलिहरिया।
साध संत मिलि सौदा करि हैं, झाँखे मूरख अनरिया ॥४॥

॥ शब्द १९ ॥

रस गगन गुफा में अजर झरै ॥ टेक ॥
बिन बाजा झनकार उठै जहँ, समुझि परै जब ध्यान धरै ॥१
बिना ताल जहँ कँवल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केल करै ॥२॥
बिन चंदा उँजियारी दरसै, जहँ तहँ हंसा नजर परै ॥३॥
दसवँ द्वारे ताड़ी लागी, अलख पुरुष जा को ध्यान धरै ॥४॥
काल कराल निकट नहिँ आवै, काम क्रोध मद लोभ जरै ॥५॥
जुगन जुगन की तृषा बुझानी, कर्म भर्म अघ व्याधि टरै ॥६॥
कहँ कबीर सुनो भाइ साधो, अमर होय कबहूँ न मरै ॥७॥

॥ शब्द १५ ॥

झीनी झीनी बीनी चदरिया ॥ टेक ॥
काहे के ताना काहे के भरनी,
कौने तार से बीनी चदरिया ॥ १ ॥

इँगला पिंगला ताना भरनो,
सुषमन तार से बीनी चदरिया ॥ २ ॥
आठ कँवल दल चरखा डोलै,
पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया ॥ ३ ॥
साँईं को सियत मास दस लागे,
ठोंक ठोक के बीनी चदरिया ॥ ४ ॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी,
ओढ़ि के मैली कीन्ही चदरिया ॥ ५ ॥
दास कबीर जतन से ओढ़ी,
ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया ॥ ६ ॥

॥ शब्द १६ ॥

फल मीठा पै ऊँचा तरवर*, कौनि जतन करि लीजै ।
नेक† निचोइ सुधा रस वा को, कौनि जुगति से पीजै ॥१॥
पेड़ बिकट‡ है महा सिलहिला§, अगह गह्यो नहिं जावै ।
तन मन डारि चढ़ै सरधा से, तब वा फल को खावै॥२॥
बहुतक लोग चढ़े बिन भेदै, देखी देखा याँहीं ।
रपटि पाँव गिरि परे अधर तें, आइ परे भुइँ माहीं ॥३॥
सत्त सब्द के खूँटे धरि पग, गहि गुरु-ज्ञानहिं डोरा ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, तब वा फल को तोरा ॥४॥

॥ शब्द १७ ॥

मुनियाँ पिंजड़े वाली ना, तेरो सतगुरु है बेवपारी ॥टेक॥
पाँच तत्त का बना पींजड़ा, ता में रहती मुनियाँ ।
उड़ि के मुनियाँ डार पै बैठी, झाँखन लागी सारी दुनियाँ ॥१

*पेड़ । †थोड़ा सा । ‡कठिन, अड़बड़ । §फिसलाने वाला ।

॥ शब्द ६० ॥

अबधू अच्छरहूँ सौं न्यारा ॥ टेक ॥
जो तुम पवना गगन चढ़ावो, करो गुफा में बासा ।
गगना पवना दोनौं बिनसैं, कहँ गयो जोग तुम्हारा ॥१॥

*शराब । †राख । ‡ झूठा । § इन डिंभी भेषों ने भजन भेद रूपी बीज को जो अगम अथाह और महा गहिरा है अपने हृदय-रूपी खेत में नहीं बोया; जिन सच्चे भक्तौं ने उसे महा अर्थात मथा वह कर्म की मैल को काट कर ध्यान मैं मगन हो बैठे ।

गगना मद्धे जोती झलकै, पानी मद्धे तारा ।
घटि गे नीर बिनसि गे तारा, निकर गयो केहि द्वारा ॥२॥
मेरुडंड पर डारि दुलैची,* जोगिन तारी लाया ।
सोइ सुमेर पर खाक उड़ानी, कच्चा जोग कमाया ॥३॥
इँगला बिनसै पिंगला बिनसै, बिनसै सुखमनि नाड़ी॥
जब उनमुनि की तारी टूटै, तब कहँ रही तुम्हारी ॥४॥
अद्वैत बैराग कठिन है भाई, अटके मुनिवर जोगी ।
अच्छर लौं की गम्म बतावै, सो है मुक्ति बिरोगी॥५॥
कह अरु अकह दोऊ तें न्यारा, सत्त असत्त के पारा ।
कहैं कबीर ताहि लखि जोगी, उतरि जाव भव पारा ॥६॥

॥ शब्द ६१ ॥

अब से खबरदार रहो भाई ॥ टेक ॥
सतगुरु दीन्हा माल खजाना, राखो जुगत लगाई ।
पाव रती घटने नहिँ पावै, दिन दिन बढ़ै सवाई ॥१॥
छिमा सील की अलफी† पहिनै, जुगति लँगोट लगाई ।
दया की टोपी सिर पर दैके,और अधिक बनि आई ॥२॥
बस्तु पाय गाफिल मत रहना, निसि दिन करो कमाई ।
घट के भीतर चोर लगतु हैं, बैठे घात लगाई ॥ ३ ॥
तन बंदूक सुमति का सिंगरा, प्रीति का गज ठहकाई ।
सुरति पलीता हर दम सुलगै, कस पर राखु चढ़ाई ॥४॥

*ऊनी आसन । † साधुओं का बिना बँहोली का वस्त्र ।

॥ शब्द ४ ॥

दो सुर* चलै सुभाव सेती,
　नाभी से उलटा आवता है ॥ १ ॥
बीच इँगला पिँगला तीन नाड़ी,
　सुषमन से भोजन पावता है ॥ २ ॥
पूरक करै कुम्भक करै,
　रेचक करै झरि जावता है ॥ ३ ॥
कायम कबीर का झूलना जी,
　दया भूल परे पछितावता है ॥ ४ ॥

*स्वर।

॥ शब्द ५ ॥

सूर के कौन सिखावता है,
　रन माहिँ असी* का मारना जी ॥ १ ॥
सती के कौन सिखावता है,
　सँग स्वामी के तन जारना जी ॥ २ ॥
हंस के कौन सिखावता है,
　नीर छीर का भिन्न बिचारना जी ॥ ३ ॥
कबीर के कौन सिखावता है,
　तत्त रंगौँ के धारना जी ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६ ॥

तख़्त बना हाड़ चाम का जी,
　दाना पानी क भोग लगावता है ॥ १ ॥
मल नीर झरै लोहू माँस बढ़ै,
　आपु आपु के अंस बढ़ावता है ॥ २ ॥
नाद बिंदु के बीच कलोल करै,
　सो आतम राम कहावता है ॥ ३ ॥
अस्थान यही कहँ ढूँढ़ता है,
　दया देस कबीर बतावता है ॥ ४ ॥

॥ शब्द ७ ॥

दरियाव की लहर दरियाव है जी,
　दरियाव और लहर मैँ भिन्न कोयम† ॥ १ ॥

*तलवार। †क्या।

सेस धौल बाराह कहाई, मीन कच्छ औ कुरम रहाई ।
सो छः रहे सात के माहीं,
यह पाताल पसारा है ॥ २२ ॥

॥ शब्द २४ ॥

कोइ सुनता है गुरुज्ञानी, गगन आवाज होती झीनी ॥१॥
पहिले होता नाद बिन्दु से, फेर जमाया पानी ॥ २ ॥
सब घट पूरन पूर रहा है, आदि पुरुष निर्बानी ॥ ३ ॥
जो तन पाया पटा लिखाया, त्रिस्ना नहीं बुझानी ॥ ४ ॥
अमृत छोड़ि बिषय रस चाखा, उलटी फाँस फँसानी ॥५॥
ओअं सोहं बाजा बाजे, त्रिकुटी सुरत समानी ॥ ६ ॥
इड़ा पिंगला सुषमन सोधे, सुन्न धुजा फहरानी ॥ ७ ॥
दीद बरदीद हम नजरों देखा, अजरा अमर निसानी ॥८॥
कह कबीर सुनो भाइ साधो, यही आदि की बानी ॥९॥

॥ शब्द २५ ॥

साधो ऐसा धुंध अँधियारा ॥ टेक ॥
या घट अंतर बाग बगीचे, याही मैं सिरजनहारा ॥ १ ॥
या घट अंतर सात समुंदर, याही मैं नौ लख तारा ॥२॥
या घट अंतर हीरा मोती, याही मैं परखनहारा ॥३॥
या घट अंतर अनहद गरजै, याही मैं उठत फुहारा ॥४॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, याही मैं गुरू हमारा ॥५॥

॥ शब्द २६ ॥

अबधू सो जोगी गुरु मेरा, या पद का करै निबेरा ॥टेक॥
तरवर एक मूल बिन ठाढ़ा, बिन फूले फल लागे ।
साखा पत्र नहीं कछु वा के, अष्ट कमल दल गाजे ॥१॥

॥ शब्द २२ ॥

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है ॥ टेक ॥
काम क्रोध मद लोभ बिसारो, सील सँतोष छिमा सत धारो।
मद्दु मांस मिथ्या तजि डारो,
हो ज्ञान घोड़े असवार भरम से न्यारा है ॥ १ ॥

*मालिक।

धोती नेती बस्ती पाओ, आसन पदम जुगत से लाओ।
कुम्भक कर रेचक करवाओ,
पहिले मूल सुधार कारज हो सारा है ॥२॥
मूल कँवल दल चतुर बखानो, कलिंग जाप लाल रँग मानो।
देव गनेस तहँ रोपा थानो,
ऋध सिध चँवर ढुलारा है ॥३॥
स्वाद चक्र षटदल बिस्तारो, ब्रह्म* सावित्री रूप निहारो।
उलटि नागिनी का सिर मारो,
तहाँ सब्द ओंकारा है ॥ ४ ॥
नाभी अष्ट कँवल दल साजा, सेत सिंघासन बिस्नु बिराजा।
हिरिंग जाप तासु मुख गाजा,
लछमी सिव आधारा है ॥ ५ ॥
द्वादस कँवल हृदय के माहीं, जंग गौर सिव ध्यान लगाईं।
सोहं सब्द तहाँ धुन छाई,
गन करैं जैजैकारा है ॥ ६ ॥
दो दल कँवल कंठ के माहीं, तेहि मध बसे अविद्या बाई।
हरि हर ब्रह्मा चँवर ढुराई,
जहँ स्रॅंग नाम उचारा है ॥७॥
ता पर कंज कँवल है भाई, बग भौंरा† दुइ रूप लखाई।
निज मन करत तहाँ ठकुराई,
सो नैनन पिछवारा है ॥ ८ ॥

*ब्रह्मा। † बगुला और भौंरा अर्थात सेत-स्याम पद।

कँवलन भेद किया निर्वारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
सतसँग कर सतगुरु सिर धारा,
वह सत नाम उचारा है ॥ ९ ॥
आँख कान मुख बन्द कराओ, अनहद झिंगा सब्द सुनाओ।
दोनों तिल इक तार मिलाओ,
तब देखो गुलजारा है ॥ १० ॥
चंद सूर एके घर लाओ, सुषमन सेती ध्यान लगाओ।
तिरबेनी के संध* समाओ,
भोर उतर चल पारा है ॥ ११ ॥
घंटा संख सुनो धुन दोई, सहस कँवल दल जगमग होई।
ता मध करता निरखो सोई,
बंकनाल धस पारा है ॥ १२ ॥
डाकिनी साकिनी बहु किलकारैं, जम किंकर धर्म दूत हकारैं।
सत्तनाम सुन भागैं सारे,
जब सतगुरु नाम उचारा है ॥ १३ ॥
गगनमँडल बिच उर्धमुख कुइया, गुरुमुख साधू भरभर पीया।
निगुरे प्यास मरे बिन कीया†,
जा के हिये अँधियारा है ॥ १४ ॥
त्रिकुटी महल में बिद्या सारा, घनहर‡ गरजैं बजे नंगारा।
लाल बरन सूरज उँजियारा,
चतुर कँवल मँझार सब्द ओंकारा है ॥१५॥

*संगम। †करनी। ‡बादल।

॥ ११ ॥

ससी परकास तेँ सूर उगा सही,
तूर बाजे तहाँ संत झूलै ।
तत्त झनकार तहँ नूर बरसत रहै,
रस्स पीवै तहाँ पाँच भूलै ॥ १ ॥
दरियाव औ बुन्द ज्योँ देखु अंतर नहीँ,
जीव औ सीव योँ एक आहीँ ।
कहैँ कब्बीर या सैन गूँगा तईँ,
बेद कत्तेब की गम्म नाहीँ ॥ २ ॥

॥ १२ ॥

अगम अस्थान गुरु-ज्ञान बिन ना लहै,
लहै गुरु-ज्ञान कोइ संत पूरा ।
द्वादस पलटि के खोड़सी परगटै,
गगन गरजै तहाँ बजै तूरा ॥ १ ॥
इंगला पिंगला सुषमना सम करै,
अर्ध औ उर्ध बिच ध्यान लावै ।
कहैँ कब्बीर सोइ संत निर्भय रहै,
काल की चोट फिर नाहिँ खावै ॥ २ ॥

॥ १३ ॥

अधर आसन किया अगम प्याला पिया,
जोग की मूल गहि जुगति पाई ।
पंथ बिन जाइ चल सहर बेगमपुरे,
दया गुरुदेव की सहज आई ॥ १ ॥

ध्यान धर देखिया नैन बिन पेखिया,
अगम अगाध सब कहत गाई ।
कहैँ कब्बीर कोइ भेद बिरला लहै,
गहै सो कहै या सैन भाई ॥ २ ॥

तू कहै तैसा नहीं, है सो दीखै नहीं
निगम हूँ कहत नहिं पार जावै ।
कहैं कब्बीर या सैन गूँगा तईं,
होय गूँगा सोई सैन पावै ॥ २ ॥

॥ ४ ॥

कर्म और भर्म संसार सब करतु है,
पीव की परख कोइ संत जानै ।
सुरत औ निरत मन पवन को पकर करि,
गंग और जमुन के घाट आनैं ॥ १ ॥
पाँच को नाथ करि साथ सौहूँ* लिया,
अधर दरियाव सुक्ख मानै ।
कह कब्बीर सोइ संत निर्भय घरा,
जन्म और मरन का भर्म भानै ॥ २ ॥

॥ ५ ॥

गंग उलटी धरो जमुन बासा करो†,
पलट पँच तीरथ पाप जावै ।
नीर निर्मल तहाँ रैन दिन झरतु है,
न्हाय जो बहुरि भव सिंध न आवै ॥ १ ॥
फिरत बौरे तहाँ बुद्धि को नास है,
बाज के झपट में सिंघ नाहीं ।

*सन्मुख, सग। †गंग अर्थात दहिना स्वाँसा को चढ़ाओ और जमुन अर्थात बाँईं स्वाँसा के साथ मिलाओ।

उठे तो नीर है बैठे तो नीर है,
कहो दूसरा किस तरह होयम* ॥ २ ॥
उसी नाम को फेर के लहर धरा,
लहर के कहे क्या नीर खोयम† ॥ ३ ॥
जक्त ही फेर सब जक्त और ब्रह्म मैं,
ज्ञान करि देख कब्बीर गोयम‡ ॥ ४ ॥

होली

॥ शब्द १ ॥

सतगुरु सँग होरी खेलिये, जा तें जरा मरन भ्रम जाय ॥टेक॥
ध्यान जुगत की करि पिचकारी, छिमा चलावनहार।
आतम ब्रह्म जो खेलन लागे, पाँच पचीस मँझार ॥१॥
ज्ञान गली मैं होरी खेलै, मची प्रेम की कींच।
लोभ मोह दोऊ कढि भागे, सुन सुन सब्द अतीत ॥२॥
त्रिकुटी महल मैं बाजा बाजै, होत छतीसो राग।
सुरत सखी जहँ देखि तमासा, सतगुरु खेलैं फाग ॥३॥
इँगला पिंगला सुषमना हो, सुरत निरत दोउ नारि।
अपने पिया सँग होरी खेलैं, लज्जा कान निवारि ॥४॥
सुन्न सहर मैं होत कुतूहल, करैं राग अनुराग।
अपने पुरुष के दरसन पावैं, पूरन प्रेम सुहाग ॥५॥
सतगुरु मिले फगुवा निज पायो, मारग दियो लखाय।
कहैं कबीर जो यह गति पावै, सो जिव लोक सिधाय ॥६॥

---

* हो सकता है। † गुप्त हो गया। ‡ गुप्त।

गुरु की मिहर से अगम निगम लखि, बिन गुरु कोई न मुक्त भया ॥४॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, आवागवन से राखि लिया ॥५॥

॥ दोहा ॥

कबीर फ़कीरी अजब है, जो गुरु मिलै फकीर ।
संसय सोक निवारि के, निरमल करै सरीर ॥

॥ शब्द ४ ॥

संत जन करत साहिबी तन मैं ॥ टेक ॥
पाँच पचीस फौज यह मन की, खेलैं भीतर तन मैं ।
सतगुरु सबद से मुरचा काटो, बैठो जुगत के घर मैं ॥१॥
बंकनाल का धावा करिके, चढ़ि गये सूर गगन मैं ।
अष्ट कँवल दल फूल रह्यो है, परखे तत्त नजर मैं ॥२॥
पच्छिम दिसि की खिड़की खोलो, मन रहै प्रेम मगन मैं ।
काम क्रोध मद लोभ निवारो, लहरि लेहु या तन मैं ॥३॥
संख घंट सहनाई बाजे, सोभा सिंध महल मैं ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अजर साहिब लख घट मैं ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

जब कोइ रतन पारखी पैहो, हीरा खोल भँजैहो ॥टेक॥
तन कै तुला सुरत कै पलरा, मन कै सेर बनैहो ।
मासा पाँच पचीस रती को, तोला तीन चढ़ैहो ॥१॥
अगम अगोचर वस्तु गुरू की, लै सराफ पै जैहो ।
जहँ देख्यो संतन की महिमा, तहवाँ खोलि भँजैहो ॥२॥
पाँच चोर मिलि घुसे महल मैं, इन से बस्तु छिपैहो ।
जम राजा के कठिन दूत हैं, उन से आप बचैहो ॥३॥
दया धरम से पार उतरिहो, सहज परम पद पैहो ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, हीरा गाँठि लगैहो ॥४॥

॥ २१ ॥

करत कलोल दरियाव के बीच मैं,
ब्रह्म की छौल* मैं हंस झूलै ।
अर्ध औ उर्ध की पैंग बाढ़ी तहाँ,
पलट मन पवन को कँवल फूलै ॥ १ ॥
गगन गरजै तहाँ सदा पावस† झरै,
होत झनकार नित बजत तूरा ।
वेद कत्तेब की गम्म नाहीं तहाँ,
कहैं कब्बीर कोइ रमै सूरा ॥ २ ॥

॥ २२ ॥

गगन की गुफा तहँ गैब का चाँदना,
उदय औ अस्त का नाँव नाहीं ।
दिवस औ रैन तहँ नेक नहिं पाइये,
प्रेम परकास के सिंध माहीं ॥ १ ॥
सदा आनंद दुख दुन्द ब्यापै नहीं,
पूरनानंद भरपूर देखा ।
भर्म और भ्रांति तहँ नेक आवै नहीं,
कहैं कब्बीर रस एक पेखा ॥ २ ॥

॥ २३ ॥

खेल ब्रह्मंड का पिंड मैं देखिया,
जगत की भर्मना दूरि भागी ।
बाहरा भीतरा एक आकासवत,
सुषमना डोरि तहँ उलटि लागी ॥ १ ॥

*आनन्द। †वर्षा।

पवन को पलटि के सुन्न मैं घर किया,
घर* मैं अधर भरपूर देखा ।
कहैं कब्बीर गुरु पूर की मेहर से,
तिरकुटी मद्ध दीदार पेखा ॥ २ ॥

॥ २४ ॥

॥ १८ ॥

तरक संसार से फरक फर्क सदा,
गरक‖ गुरु ज्ञान मेँ जुक्त जोगी ।
अर्ध औ उर्ध के बीच आसन किया,
बंक प्याला पिवै रस्स भोगी ॥ १ ॥

*सरशार । †आदर के योग्य । ‡पैठ कर । §थिर । ‖डूबा हुआ ।

अर्ध दरियाव तहँ जाय डोरी लगी,
महल बारीक का भेद पाया ।
कहैं कब्बीर योँ संत निर्भय हुआ,
परम सुख धाम तहँ प्रान लाया ॥ २ ॥

॥ १९ ॥

माढ़ि मतवाल तहँ ब्रह्म भाठी जरै,
पिवै कोइ सूरमा सीस मेलै ।
पाँच को पेल सैतान को पकरि के,
प्रेम प्याला जहाँ अधर झेलै ॥ १ ॥
पलटि मन पवन को उलटि सूधा कँवल,
अर्ध औ उर्ध बिच ध्यान लावै ।
कहैं कब्बीर मस्तान माता रहै,
बिना कर ताँतिया नाद गावै ॥२॥

॥ २० ॥

आठ हूँ पहर मतवाल लागी रहै,
आठ हूँ पहर की छाक* पीवै ।
आठ हूँ पहर मस्तान माता रहै,
ब्रह्म की छौल† मेँ साध जीवै ॥ १ ॥
साँच ही कहतु औ साँच ही गहतु है,
काँच को त्याग करि साँच लागा ।
कहैं कब्बीर योँ साध निर्भय हुआ,
जनम औ मरन का भर्म भागा ॥ २ ॥

* प्याला । † आनन्द ।

पाँचौ मुरचा गढ़के भीतर, तहाँ लाँघि के जाई ।
आसा तृस्ना मनसा कहिये, तृगुन बनो जो खाई ॥२॥
पचिस सुभाव जहँ निसि दिन ब्यापै, काम क्रोध दोउ भाई ।
लालच लोभ खड़े दरवाजे, मोह करै ठकुराई ॥ ३ ॥
मूल कँवल पर आसन कीन्हो, गुरु कैा सीस नवाई ।
छवो कँवल इक सुर मैं बेधे, चढ़ी गगन गढ़ जाई ॥४॥
ज्ञान के घोड़ा ध्यान के पाखर, जुक्ति के जीन बनाई
सत्त सुकृत दोउ लगी पावरी,[1] बिबेक लगाम लगाई ॥५॥
सील छिमा के बख़्तर पहिरे, तत तरवार गहाई ।
साजन सुरति चढ़ि छाजे ऊपर, निरत के साँग[2] गहाई ॥६
सतएँ कँवल त्रिकुट के भीतर, वहाँ पहुँचि के जाई ।
जोति सरूपी देव निरंजन, वेदन उन को गाई ॥ ७ ॥
बंकनाल की औघट घाटी, तहाँ न पग ठहराई ।
ओअं ररंग अड़े जहँ दुइ दल, अजपा नाम सहाई ॥८॥
जोजन एक खरब के आगे, पुरुष बिदेह रहाई ।
सेत कँवल निसि बासर फूले, सोभा बरनि न जाई ॥९॥
सेत छत्र और सेत सिंघासन, सेत धुजा फहराई ।
कोटिन भानु चन्द्र तारागन, छत्र की छाँह रहाई ॥१०॥
मन मैं मन नैनन मैं नैना, मन नैन एक ह्वै जाई ।
सुरत सोहागिनि मिलत पिया को, तन के तपन बुझाई ॥११
द्वादस ऊपर अजपा फेरै, मनै पवन थकि जाई ।
कहै कबीर मिले गुरु पूरे, सबद मैं सुरत मिलाई ॥ १२ ॥

---

(१) रकाब । (२) बरछी, भाला ।

॥ शब्द १२ ॥

हंसा कहो पुरातम[2] बात ॥ टेक ॥
कौन देस से आयो हंसा, उतर्यो कौने घाट ।
कहँ हंसा बिसराम कियो है, कहाँ लगायो आस ॥ १ ॥
बंक देस से आयो हंसा, उतर्यो भौजल घाट ।
भूलि पर्यो माया के बसि मैं, बिसरि गयो वो बात ॥२॥

(१) स्थान । (२) प्राचीन ।

अब ही हंसा चेतु सबेरा, चलो हमारे साथ ।
संसय सोक वहाँ नहिं ब्यापै, नहीं काल के त्रास ॥३॥
हुआँ मदन बन[1] फूलि रहे हैं, आवै सोहं बास ।
मन भौंरा जहँ अरुझि रहो है, सुख की ना अभिलास ॥४॥
मकर[2] तार तें हम चढ़ि करते, बंकनाल परवेस ।
वहि डोरी चढ़ि चढ़ि चले हंसा, सतगुरु के उपदेस ॥५॥
जहँ संतन की चौकी बनी है, ढुरै सोहंगम चौर ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु के सिर मौर ॥६॥

॥ शब्द १३ ॥

सो पंछी मोहिं कोई न बतावै, जो बोलै घट माहीं रे ।
अबरन बरन रूप नहिं रेखा, बैठा नाम की छाहीं रे ॥टेक॥
या तरवर में एक पखेरू, रूँगत चुँगत वह डोलै रे ।
वा की सन्ध लखै नहिं कोई, कौन भाव से बोलै रे ॥१॥
दुर्म[3] डारि तहँ अति घनि छाया, पंछि बसेरा लेई रे ।
आवै साँझ उड़ि जाइ सवेरा, मरम न काहू देई रे ॥२॥
दुइ फल चाखि, जाय रह्यो आगे, और नहीं दस बीसा रे ।
अगम अपार निरन्तर बासा, आवत जात न दीसा रे ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह कछु अगम कहानी रे ।
या पंछी को कौन ठौर है, बूझो पंडित ज्ञानी रे ॥ ४ ॥

॥ शब्द १४ ॥

ऐसा रंग कहाँ है भाई ॥ टेक ॥
सात दीप नौ खंड के बाहर, जहवाँ खोज लगाई ।
वा देसवा के मरम न जानै, जहँ से चूनरि आई ॥ १ ॥

(१) कामबन, बसंत । (२) मकड़ी । (३) पेड़ ।

॥ शब्द २ ॥

साहिब हम मैं साहिब तुम मैं जैसे तेल तिलन मैं ।
मत कर बंदा गुमान दिल मैं, खोज देखिले तन मैं ॥टेक
चाँद सुरज के खंभ गाड़ि के, प्रान आसन कर घट मैं ।
इँगला पिंगला सुरत लगा के, कमल पार कर घर मैं ॥१
वा मैं बैठी सुखमन नारी, झुला झुलत बँगलन मैं ।
कोटि सूर जहँ करते झिलि मिलि, नील सर सोती गगन मैं ॥२

---

(१) धुंधूकार मात्र । (२) खड़ाऊँ । (३) कोपीन ।

तीन ताप मिठि गे देँही के, निर्मल होइ बैठी घट मैं ।
पाँच चोर जहँ पकरि मँगाये, झंडा रोपे निरगुन मैं ॥३॥
पाँच सहेली करत आरती, मनसा बाचा सतगुरु मैं ।
अनहद घंटा बजै मृदंगा, तन सुख लेहि रतन मैं ॥४॥
बिन पानी लागी जहँ बरषा, मोती देख नदिन मैं ।
जहवाँ मनुआ बिलम रह्यो है, चलो हंस ब्रम्हँड मैं ॥५॥
इकइस ब्रम्हँड छाइ रह्यो है, समझैं बिर्ले सूरा ।
मुरख गँवार कहा समझैंगे, ज्ञान के घर है दूरा ॥ ६ ॥
बड़े भाग अलमस्त रंग मैं, कबिरा बोलै घट मैं ।
हंस उबारन दुक्ख निवारन, आवागवन मिटै छिन मैं ॥७

॥ साखी ॥

साँझ पड़े दिन बीतवे, चकवी दीन्हा रोइ ।
चल चकवी वा देस को, जहाँ रैन ना होइ ॥ ८ ॥
चकवी बिछुरी साँझ की, आन मिलै परभात[१] ।
जो नर बिछुरे नाम से, दिवस मिलैं नहिं रात ॥ ९ ॥

॥ शब्द ३ ॥

॥ शब्द २३ ॥

खेलि ले दिन चार पियारी, ये होरी रस खूब मचा री ॥
ज्ञान की ढोल बिबेक मजोरा, राग उठै झनकारो ।
जंत्री संत भलो बिधि जानै, बाजत अनहद तारी,
न जानै कारन अनाड़ी' ॥ १ ॥

कर्म नाम की जेवरी' तोड़ी, धर्म गुलाल उडा री ।
लोभ मोह के कंगन तोड़े, भर्म भाँडा फोड़ा री,
कपट जड़ मूल उखाड़ी ॥ २ ॥

अर्ध उर्ध बिच फाग रचो है, सुखमन सुरत सम्हारी ।
पिया प्यारी खेलैं अपने पिया संग, छिरकैं रंग अपारी,
दृगन की चितवन न्यारी ॥ ३ ॥

---

(१) मूर्ख । (२) रस्सी ।

होरी आवै फिरि फिरि जावै, यह तन बहुरि न पावै ।
पूर्न प्रताप दया सतगुरु की, आवागवन नसावै,
बात यह कठिन करारी ॥ ४ ॥

सबै संग मिलि होरी खेलैं, गगन मैं फाग रचा री ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बेद न पावै पारी ।
सेस की रसना' हारी ॥ ५ ॥

॥ शब्द २४ ॥

जहँ बारह मास बसंत होय, परमारथ बूझै साध कोय ॥टेक॥
बिन फूलन फूल्यो अकास, ब्रम्हा दिक सिव लियो निवास ॥१॥
सनकादिक रहैं भँवर होइ, लख चौरासी जीव सोइ ॥२॥
साते सागर पिये हैं घोर, आन जुरे तैंतिस करोर ॥ ३ ॥
अमर लोक फल लियो है जाय, कहैं कबीर जाने सो खाय ॥४॥

॥ शब्द १२ ॥

गगन मँडल अरुझाई, नित फाग मची है ॥ टेक ॥
ज्ञान गुलाल अबीर अरगजा, सखियाँ लै लै धाईं ।
उमँगि उमँगि रँग डारि पिया पर, फगुआ देहु भलाई ॥ १ ॥
गगन मँडल बिच होरी मची है, कोइ गुरु गम तें लखि पाई ।
सब्द डोर जहँ अगर ढरतु है, सोभा बरनि न जाई ॥ २ ॥
फगुवा नाम दियो मोहिं सतगुरु, तन की तपन बुझाई ।
कहै कबीर मगन भइ बिरहिनि, आवागन नसाई ॥ ३ ॥

॥ शब्द १३ ॥

बिरहिनि झकोरा मारि, को बूझै गति न्यारि ॥ टेक ॥
चोवा चन्दन अबिर अरगजा, करनी के केसर घोरी ।
प्रेम प्रीति के भरि पिचुकारी, रोम रोम रँगी सारी ॥ १ ॥
इँगला पिँगला रास रचो है, सुखमन बाट बहोरी ।
खेलत हैं कोइ संत बिरहिया, जोग जुगति लगी तारी ॥ २ ॥
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, तुरही तान नफीरी[1] ।
सुरत निरत जहँ नाचन निकसे, बाढ़त रंग अपारी ॥ ३ ॥
फागुन के दिन आनि लगे री, अब कैसे काह करो री ।
दास कबीर आतम परमातम, खेलत बहियाँ मिरोरी ॥ ४ ॥

॥ शब्द १४ ॥

का सँग होरी खेलौं हो, बालम पर देसवा ॥ टेक ॥
आई है अब रितु बसंत की, फूलन लागे टेसुवा ।
बस्त्र रँगीले पहिरन लागे, बिरहिनि ढारत अँसुवा ॥ १ ॥
भरि गाये ताल तलैया सागर, बोलन लागे मेघवा[2] ।
उमड़ी नदी नाव कहँ पाऔं, केहि बिधि लिखौं सँदेवा ॥ २ ॥

---

(१) एक बाजा शहनाई का सा जो मुँह से बजाया जाता है । (२) मेंढक ।

॥ शब्द २८ ॥

जिन पिया प्रेम रस प्याला, सोई जन है मतवाला ॥१॥
मूल चक्र को बंद लगावे, उलटी पवन चढ़ावे ।
जरा मरन भय ब्यापै नाहीं, सतगुरु सरनी आवै ॥ २ ॥
बिन धरनी हरि मन्दिर देखा, बिन सागर झर पानी ।
बिन दीपक मन्दिर उँजियारा, बोलै गुरुमुख बानी ॥३॥
इँगला पिंगला सुखमन नाड़ी उनमुन के घर मेला ।
अष्ट कँवल पर कँवल बिराजे, सो साहिब अलबेला ॥४॥

(१) प्रकाश ।

चाँद न सुरज दिवस नहिं रजनी, तहाँ सुरत लौ लावे ।
अमृत पिये मगन होय बैठे, अनहद नाद बजावे ॥ ५ ॥
चाँद सुरज एकै घरि राखै, भूला मन समझावे ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सहज सहज गुन गावे ॥६॥

प्रेम ।

॥ शब्द १ ॥

आज मेरे सतगुरु आये ।
रहस रहस मैं अँगना बुहारौं, मोतियन चौक पुराये ॥१॥
चरन पखारि चरनामृत करिके, सब साधन बरताऊँ ।
पाँच सखी मिलि मंगल गावैं, सबद सुरत लौ लाऊँ ॥२॥
करूँ आरती प्रेम निछावर, पल पल बलि बलि जाऊँ ।
कहै कबीर दया सतगुरु की, परम पुरुष बर पाऊँ ॥३॥

॥ शब्द २ ॥

आज सुबेलो[1] सुहानो, सतगुरु मेरे आये ।
चंदन अगर बसाये, मोतियन चौक पुराये ॥ १ ॥
सेत सिंघासन बैठे सतगुरु, सुरत निरत करि देखा ।
साध कृपा तें दरसन पाये, साधू संग बिसेखा ॥ २ ॥
घर आँगन में आनँद होवे, सुरत रही भरपूर ।
झरि झरि पड़े अमीरस दुर्लभ, है नेड़े नहिं दूर ॥ ३ ॥
द्वादस मद्ध देखि ले जोई, बिच है आपै आपा ।
त्रिकुटी मद्ध तू सेज निरिखि ले, नहिं मंतर नहिं जापा ॥४॥
अगम अगाध गती जो लखिहै, सो साहिब को जीवा ।
कहै कबीर धरमदास से, भेंटि ले अपनो पीवा ॥ ५ ॥

(१) अच्छी बेला या समय ।

जल केरी ज्योँ कूकुही, जल माहिँ रहानी ।
पँख पानी बेधै नहीं, कछु असर न जानी ॥२॥
मीन तिरै जल ऊपरे, जल लागै न भारा ।
आड़ अटक मानै नहीं, पैड़े जल धारा ॥३॥
जैसे सीप समुद्र मैं, चित देत अकासा ।
कुंभकला* ह्वै खेलही, तस साहेब दासा ॥४॥
जुगति जमूरा† पाइ कै, सरपे लपटाना ।
बिष वा के बेधै नहीं, गुरु गम्म समाना ॥५॥
दूध भात घृत भोजन, बहु पाक मिठाई ।
जिभ्या लेस लगै नहीं, उन के रुसनाई ॥६॥
बामी मैँ बिषधर बसै, कोइ पकरि न पावै ।
कहैँ कबीर गुरु मंत्र से, सहजै चलि आवै ॥७॥

॥ शब्द ५ ॥

नगर मैँ साधू अदल चलाई ॥टेक॥
सार सब्द को पटा लिखावो, जम से लेहु लड़ाई ।
पाँच पचीस करो बस आपन, सहजे नाम समाई ॥१॥
सूरति सब्द एक सम राखो, मन का अदल उठाई ।
काम क्रोध की पूँजी तौलो, सहज काल टरि जाई ॥२॥
सूरति उलटि पवन के सोधो, त्रिकुटी मध ठहराई ।
सोहं सोहं बाजा बाजे, अजब पुरी दरसाई ॥३॥
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, सतगुरु बस्तु लखाई ।
अरध उरध बिच तारी लावो, तब वो लोके जाई ॥४॥

---

* घड़ों का खेल जिन्हें सिर पर रख कर नट बाँस पर चढ़ते हैं ।
†जहरमोहरा जिससे साँप का ज़हर असर नहीं करता ।

13:50
2015.483839.Kabir-Sahe...

॥ महिमा शब्द ॥

॥ शब्द १ ॥

हंसा सब्द परख जो आवै ।
करि अकास* चित तान पार को, मूल सब्द तब पावै ॥१॥
पाँच तत्त पच्चीस प्रकिरती, तीनौं गुनन मिलावै ।
अंक परवाना जबही पावै, तब वह संत कहावै ॥२॥
अंक परवाना सब्द अतीत है, जो निसु दिन गोहरावै ।
अंस बंस हूँ मलयागिरि परसत, सत्त सबै बिधि पावै ॥३॥
एकै सब्द सकल जग पूरा, सुरति रहनि जब आवै ।
चंद सुरज दुइ साखी देई, सुखमनि चँवर डुरावै ॥४॥
कहैं कबीर सुनो भाइ हंसा, या पद को अरथावै ।
जगमग जोत झलाझल झलकै, निर्मल पद दरसावै ॥५॥

॥ शब्द २ ॥

हंसा परखु सब्द टकसारा ॥ टेक ॥
बिन पारख कोइ पार न पावै, भूला जग संसारा ।
सब आये ब्योपार करन को, घर की जमा गँवाया ॥१॥
राम रतन पहलाद पारखी, नित उठ पारख कीन्हा ।
इंद्रासन सुख आसन लीन्हा, सार सब्द ना चीन्हा ॥२॥
अब सुनि लेहु जवाहिर मोदी, खरा खोट नहिं बूझा ।
सिव गोरख अस जोगी नाहीं, उनहू को नहिं सूझा ॥३॥
बड़ बड़ साधू बाँधे छोरे, राम भाग दुइ कीन्हा ।
'रारा' अच्छर पारख लीन्हा, 'मा' हिं भरम तज दीन्हा ॥४॥
जो कोइ होय जौहरी जग में, सो या पद को बूझै ।
तीन लोक औ चार लोक लौं, सब घट अंतर सूझै ॥५॥

---

*आकाश के अर्थ छिद्र के भी हैं–यहाँ अभिप्राय तीसरे तिल से है ।

॥ शब्द २२ ॥

हीरा नाम अमोल है, रहै घट घट धीरा।
सिट्ठो आसन सोधि के, बैठै वहि तीरा ॥ १ ॥

(१) पोशाक—भाव कपड़े की सम्हाल न हो सकने से लबर झबर चलने का है। (२) डटोल, टूंड़।

गंग जमुन के रेत पर, बहै झिरि झिरि नीरा।
पुरब सोधि पच्छिम गये, करिकै मन धीरा ॥ २ ॥
बिरहिनि बाजे बाँसुरी, सुनि गइ मोर पोरा।
आठ पहर बाजत रहै, अस गहिर गँभीरा ॥ ३ ॥
हीरा झलकै द्वार पर, परखै जोइ सूरा।
कहै कबीर गुरु गम्म से, पहुँचै केइ पूरा ॥ ४ ॥

॥ शब्द २३ ॥

जग मैं सोइ बैराग कहावै ॥ टेक ॥
आसन मारि गगन मैं बैठै, दुर्मति दूर बहावै ॥ १ ॥
भूख प्यास औ निद्र साधै, जियते तनहिं जरावै ॥ २ ॥
भौसागर के भरम मिटावै, चौरासी जिति[१] आवै ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, भाव भक्ति मन लावै ॥ ४ ॥

निरख प्रबोध की रमैनी

(१)

अस सतगुरु बोले सत बानी। धन धन सत्त नाम जिन जानी ॥
नाम प्रतीति भई सब संता। एक जानि के मिटे अनंता ॥
अनँत नाम जब एक समाना। तब ही साध परम पद जाना ॥
बिरला संत परम गति जानै। एक अनंत सो कहा बखानै ॥
सब तें न्यारा सब के माहीं। माँझी सतगुरु दूजा नाहीं ॥
सत्त नाम जा के धन होई। धन जीवन ताही को सोई ॥

॥ दोहा ॥

जिनके धन सतनाम है, तिन का जीवन धन्न।
तिन को सतगुरु तारहीं, बहुरि न धरई तन्न ॥ १ ॥

(१) जीत कर।

भवसागर इक नदी बहत है, रोवै कुल परिवार ।
एक न रोवै उनकी तिरिया, जिन्ह के सिखावनहार ॥३॥
भवसागर के घाट पर, इक साध रहे बिकरार ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, बिररे उतरिगे पार ॥४॥

॥ शब्द १३ ॥

रासा परचे रास है, जानै कोइ जागृत सूरा ।
सतगुरु की दाया भई, लखो जगमग नूरा ॥१॥
दो परबत के संधि मेँ, लखो जगमग नूरा ।
अद्भुत कथा अपार है, कैसे लागै तीरा ॥२॥
तन मन से परिचय करो, सहजै ध्यान लगावो ।
नाद बिंद दोइ बाँधि के, उलटा गगन चढ़ावो ॥३॥
अधर मध्य के सुन्न मेँ, बोलै सब्द गँभीरा ।
ज्योँ फूलन मेँ बास है, त्योँ रमि रहे कबीरा ॥४॥

॥ शब्द १४ ॥

जुक्ति से परवान बाबा, जुक्ति से परवान बे ॥टेक॥
मूल बाँधो नाभि साधो, पियो हंसा पवन बे ।
सुषमना घर करो आसन, मिटै आवागवन बे ॥१॥
तीन बाँधो पाँच साधो, आठ डारो काट बे ।
आव हंसा पियो पानी, त्रिबेनी के घाट बे ॥२॥
माय मार पिता को बाँधो, घर को देव जराय बे ।
ऐसो बाबा चतुर भेदी, गगन पहुँचै जाय बे ॥३॥
मार ममता टार तृष्ना, मैल डारो धोय बे ।
कहैं कबीरा सुनो साधो, आप कर्ता होय बे ॥४॥

॥ शब्द ६ ॥

अवधू हंस देस है न्यारा ॥टेक॥
तीरथ ब्रत औ जोग जाप तप, सुरति निरति से न्यारा।
तीन लोक से बाहर डोलै, करम भरम पचि हारा ॥१॥
कोटि कोटि मुनि ब्रह्मा होइगे, कोई न पाये पारा।
मंतर जाप उहाँ ना पहुँचै, सुरति करो दरबारा ॥२॥
सुख सागर मेँ बासा कीजै, मुकता करो अहारा।
बंकनाल चढ़ि गरजन गरजै, सतगुरु अधर अधारा ॥३॥
कहैँ कबीर सुनो हो अवधू, आप करो निरवारा।
हंसा हमरे मिले हंसन मेँ, पुनि न लखे भवजारा ॥४॥

॥ शब्द ७ ॥

सतगुरु सब्द गही मोरे हंसा, का जड़ जन्म गँवावसु हो।टेक
त्रिकुटी धार बहै इक संगम, बिना मेघ झरि लावसु हो।
लैाका लैाकै बिजुली तड़पै, अजब रूप दरसावसु हो।१॥
करहु प्रीति अभि अंतर उर मेँ, कवने सुर लै गावसु हो।
गगन मँदिल मेँ जोति बरत है, तहाँ सुरत ठहरावसु हो २
इँगला पिँगला सुखमनि सोधो, गगन पार ठहरावसु हो।
मकर तार के द्वारे निरखो, ऊपर गढ़ी उठावसु हो ॥३॥
बंकनाल षट खरकि* उलटिगै, मूल चक्र पहिरावसु हो।
द्वादस कोस बसै मोर साहेब, सूना सहर बसावसु हो ॥४॥
दूनौँ सरहद अनहद बाजै, आगे सोहँग दरसावसु हो।
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, अमर लोक पहुचावसु हो॥५

*खिड़की, द्वार।

टोहि लया सतसंग पाइ कै, बिन गुरु कौन कही ।
सोना थीर कसौटी नाहीं, कैसे कै समुझि परी ॥३॥
भेदी होय सो भर भर पीवै, अनभेदी भरम फिरी ।
कहैं कबीर मिलैं जो सतगुरु, जीवन मुक्त करी ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

जो कोइ निरगुन दरसन पावै ॥टेक॥
प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै ।
गगन गराजै दामिनि दमकै, अनहद नाद बजावै ॥१॥
बिन जिभ्या नामहिं को सुमिरै, अमि रस अजर चुवावै ।
अजपा लागि रहै सूरति पर, नैन न पलक डोलावै ॥२॥
गगन मँदिल मेँ फूल फुलाना, उहाँ भँवर रस पावै ।
इँगला पिंगला सुखमनि सोधै, प्रेम जोति लौ लावै ॥३॥
सुन्न महल मेँ पुरुष बिराजै, जहाँ अमर घर छावै ।
कहैँ कबीर सतगुरु बिन चीन्हे, कैसे वह घर पावै ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

पिया कै खोजि करै सो पावै ॥टेक॥
ई करता बसि या घट भीतर, कहत न कछु बनि आवै ।
स्वाँसा सार सुरति मेँ राखै, त्रिकुटी ध्यान लगावै ॥१॥
नाभि कमल अस्थान जीव का, स्वाँसा लगि लगि जावै ।
ठहरत नाहिं पलक निस बासर, हाथ कवन बिधि आवै ॥२॥
बंक नाल होइ पवन चढ़ावै, गगन गुफा ठहरावै ।
अजपा जाप जपै बिनु रसना, काल निकट नहिँ आवै ॥३॥
ऐसी रहनि रहै निस बासर, करम भरम बिसरावै ।
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, बहुरि न भव जल आवै ॥४॥

सँगहिँ अछत पिय मरम भुलइली—अहे सजनी ।
मोरे लेखे पिया परदेसहिँ रे की ॥ ४ ॥

नव दस नदिया अगम बहे सोतिया हो—अहे सजनी ।
बिचहिँ पुरइनि* दह† लागल रे की ॥ ५ ॥

फुल इक फुलले अनुप फुल सजनी—अहे सजनी ।
तेहि फुल भँवरा लुभाइल रे की ॥ ६ ॥

सब सखि हिलि मिलि निज घर जाइब—अहे सजनी ।
समुँद लहरिया समाइब रे की ॥ ७ ॥

दास कबीर यह गवलैं लगनियाँ हो—अहे सजनी ।
अब तो पिया घर जाइब रे की ॥ ८ ॥

(२)

अपने पिया की मैं होइबैं सोहागिनी—अहे सजनी ।
भइया तजि सइयाँ सँग लागब रे की ॥ १ ॥

सइयाँ के दुअरिया अनहद बाजा बाजै—अहे सजनी ।
नाचहिँ सुरति सोहागिनि रे की ॥ २ ॥

गंग जमुन के औघट घटिया हो—अहे सजनी ।
तेहि पर जोगिया मठ छावल रे की ॥ ३ ॥

देहौं सतगुर सुर्ती के बिरवा हो—अहे सजनी ।
जोगिया दरस देखे जाइब रे की ॥ ४ ॥

दास कबीर यह गवलैं लगनियाँ हो—अहे सजनी ।
सतगुर अलख लखावल रे की ॥ ५ ॥

---

*कोईं । †तलाव ।

जैसे डोरी उड़ै अकासा, सब्द डोरि नहिं टूटै हो ॥४॥
डोरी टूटे खसै भूमि पर, तब पिय बाद गँवावा हो ॥५॥
सिर पर गागर बात सखिन सोँ, चित से गगर न छूटै हो॥६॥
दास कबीर के निर्गुन कहरा, महरम होय सो बूझै हो ॥७॥

(२)

बिमल बिमल अनहद धुनि बाजै,
समुझि परै जब ध्यान धरै ॥ टेक ॥
कासी जाइ कर्म सब त्यागै,
जरा मरन से निडर रहै ।
बिरले समुझि परै वह गलिया,
बहुरि न प्रानी देँह धरै ॥ १ ॥
किंगरी संख झाँझ डफ बाजै,
अरुझा मन तहँ ख्याल करै ।
निरंकार निरगुन अबिनासी,
तीन लोक उँजियार करै ॥ २ ॥
इँगला पिंगला सुखमन सोधो,
गगन मँदिल मेँ जोति बरै ।
अष्ट कँवल द्वादस के भीतर,
वहँ मिलने की जुगत करै ॥ ३ ॥
जीवन मुक्ति मिले जेहि सतगुरु,
जन्म जन्म के पाप हरै ।
कहँ कबीर सुनो भाइ साधो,
धिरज बिना नर भटकि मरै ॥ ४ ॥

॥ शब्द १७ ॥

देखलूँ मैं सजनवाँ, पियवा अनमोल के ॥ टेक ॥
देखलूँ मैं कायानगर में, काया पुरुषवा खोज के।
काहे सजनवाँ बिराजे भवनवाँ, दोनों नयनवाँ जोड़ के ॥१

*रॉड़।

इँगला पिँगला सुषमन साधो, मनुवाँ आपन रोक के।
दसईं दुअरिया लागी कवरिया, खोलो सब्द से जोड़ के॥२
रिमिझिमि रिमिझिमि मोती बरसै हीरा लाल बटोर के।
लौका लौके बिजुली चमके, झिंगुर बोलै झनकोर के ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निर्बान के।
या पद के जो अर्थ लगावै, सोई पुरुष अनमोल के ॥४॥

॥ चेतावनी ॥

॥ शब्द १ ॥

तोरी गठरी में लागे चोर, बटोहिया का रे सोवै ॥टेक॥
पाँच पचीस तीन है चोरवा, यह सब कीन्हा सोर–
बटोहिया का रे सोवै ॥१॥
जाग सबेरा बाट अनेड़ा, फिर नहिं लागै जोर–
बटोहिया का रे सोवै ॥२॥
भवसागर एक नदी बहतु है, बिन उतरे जाव बोर*–
बटोहिया का रे सोवै ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, जागत कीजे भोर–
बटोहिया का रे सोवै ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

दिन रात मुसाफिर जात चला ॥ टेक ॥
जिन का चलना रैन सबेरा, सो क्यों गाफिल रहत परा ॥१॥
चलना सहर का कौन भरोसा, इक दिन होइहै पवन कला२

* बूड़, डूब।

← Bauddh Darshan Mimam...

पृ०

अभिमुक्ति

योग की षष्ठभूमि । २९६

अमराविक्षेपवाद

कार्य तथा अकार्य के विषय में निश्चित मत न रखने वाले दार्शनिकों का सिद्धान्त । २०

अरूपधातु

भूतों के द्वारा अनिर्मित लोक । इसमें केवल मनोधातु, धर्मधातु तथा मनोविज्ञानधातु की ही एक मात्र सत्ता रहती है । १६४

अर्चिष्मती

योग की चतुर्थ भूमि । २९६

अर्हत्

हीनयान का आदर्श व्यक्ति, जिसने अपने समस्त क्लेशों को दूर कर स्वयम् निर्वाण प्राप्त कर लिया हो । १०६

अवधूती

'अवहेलया अनाभोगेन क्लेशादि–पापान् धुनोति' = अनायास ही क्लेशादि पापों को दूर करनेवाली शक्ति । सुषुम्ना मार्ग से प्रवाहित होने वाली शक्ति का तान्त्रिक नाम । जब ललना तथा रसना विशुद्ध होकर एकाकार हो जाती हैं, तो उन्हें 'अवधूती' कहते हैं । ३३०

अविज्ञप्ति

अप्रकट अनभिव्यक्त कर्म । जिन कर्मों का फल सद्यः अभिव्यक्त न होकर कालान्तर में अभिव्यक्त होता है, उन्हीं का नाम है 'अविज्ञप्ति' । इस प्रकार 'अविज्ञप्ति' वैशेषिकों के 'अदृष्ट' तथा मीमांसकों के 'अपूर्व' का बौद्ध प्रतिनिधि है । १६८

अष्टाङ्गिक मार्ग

बुद्ध के द्वारा उपदिष्ट मार्ग जिसके (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वाचा आदि आठ अङ्ग होते हैं । ५१

असंस्कृत

हेतु प्रत्यय से उपन्न न होने वाले, स्थायी, नित्य, गतिहीन तथा अनास्रव धर्म । १६४

आ

आकाश

यह वह असंस्कृत धर्म है जो न तो दूसरों को आवरण करता है, न अन्य धर्मों के द्वारा आवृत होता है । १७५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

मन सों ब्रह्म होय गति सोई। लक्षण जीव रहै नहिं कोई॥
अचल सिंहासन जब तू पावै। मुक्तिखवासी चँवर दुरावै॥
आठौसिद्धि जहां कर जोरें। सोहीं ताके मुख नहिं मोरें॥
निश्चल राज अमल करै पूरा। बाजै नौबत अनहद तूरा॥
तीन तीन अरु कोटि अठासी। वे सब तेरीं करैं खवासी॥
गुरु शुकदेव भेद दियो नीको। चरणदास मस्तक कियो टीको॥
रणजीता यह रहनी पावै। थोथी करनी कथनि बहावै॥

अथ योग का अंग॥

राग करखा॥

साधो गुरु दया योग इह विधि कमायो।

मूलको शोधि संकोच करि शङ्खिनी खैंचि आपान उलटो चलायो॥ बन्ध पर बन्ध जब बन्ध तीनों लगें पवन भइ थकित नभ गर्ज्जि आयो। द्वादशा पलटि करि सुरति दो दल धरी दशौ परकार अनहद बजायो॥ रोंक जब नवन की द्वार दशवें चढ़ो शून्य के तख़्त आनँद बढ़ायो। सहस दल कमल को रूप अद्भुत महा अमीरस उमँग आ झरि लगायो॥ तेज अतिपुञ्ज परलोक जहँ जगमगे कोटि छवि भानु परकाश लायो। उनमनी और चित हेत करि बसिरहो देखि निज रूप मनुवां मिलायो॥ काल अरु ज्वाल जग व्याधि सब मिटि गई जीवसों ब्रह्मगति वेगि पायो। चरणदास रणजीत शुकदेव की दयासों अभयपद परशि अविगत समायो॥ साधो पिण्ड ब्रह्माण्ड की शैल गुरु गमकरी परसिया मुक्तिसों अलखराई। सहजही सहज पग धरा जब अगम को दशौपरकार झागड़ा बुजाई॥ खोलि कपाट अरु वज्रद्वारे चढ़ो कलाके

भेद कुंजी लगाई। पहल के महलपर जाय आसनकिया दूसरे महलकी खबरि पाई॥ तीसरे महलपर सुरति जा बसिरही महल चौथे दुही अमीगाई। पांचवें महल को साधु कोइ पाइहै महल छठवां दिया गुरु बताई॥ सातवें महलपर कोटि सूरज दिये आठवें महल अविगति गोसाईं। रूप अद्भुत तहां देखि अचरज जहां देखिया दरश सब बिपति जाई॥ शुकदेवकी सहासों धारण गहासो आपने पीवके भवन आई। चरणदास आपा दिया प्रेम प्याला पिया शीश सदके किया पूजि पाई॥

साधो परसिया देश जहँ भेश नाहीं।

घाट तिसलखि जहां बाट सूझै नहीं सुरतिके चांदने सन्त जाईं॥ चन्द षोड़शदिपै गंग उलटीवहैं सुषमना सेज पर लम्ब दमके। तासुके ऊपरे अमी का ताल है झिलमिली ज्योति परकाश झमके॥ चारि योजन परे शून्य अस्थान है तेज अति पुंज परलोक राजे। द्वार पश्चिम धँसे मेरही दण्डहो उलटिकर आय छाजे विराजे॥ नूर जगमग करे खेल अगाध है वेदकतेब नहिं पार पावैं।

इड़ा पिंगला सुषमना, केलि करै परबीन ॥
करते प्राणायाम के, पावै आतम भेख।
अनहद ध्वनि के बीचमें, देखै शब्द अलेख ॥
पूरक करि कुंभक करै, रेचक पवन उतार।
ऐसे प्राणायाम करि, सूक्षम करै अहार ॥
धरती वन्ध लगाय करि, दशौ वायु को रोक।
मस्तक प्राण चढ़ायकै, करै अमरपुर भोग ॥
पांचो मुद्रा साधिकै, पावै घट को भेद।
नाड़ी शक्ति चढ़ाइये, षटो चक्रको छेद ॥
नासाध्यान दृष्टि भृकुटी में, सुरति श्वासके माहिं।
आतम देखो जातहै, यामें संशय नाहिं ॥
योगयुक्ति कै कीजिये, कै आतम को ध्यान।
आपा आप विचारिये, परम तत्त्व को ज्ञान ॥
शूद्र वैश्य शरीर है, ब्राह्मण और रजपूत।
बूढ़ा बाला तू नहीं, चरणदास अवधूत ॥
काया माया जानिये, जीव ब्रह्म है मित्त।
काया छुटि सूरति मिटै, तू परमातम नित्त ॥
पाप पुण्य आशातजो, तजो मान अरु थाप।
काया मोह विकारतजि, जपै सु अजपा जाप ॥
आप भुलानो आपमें, बँधो आपही आप।
जाको ढूंढ़त फिरतहो, सो तुम आपहि आप ॥
इच्छा दुई विसारिकै, क्यों न होय निर्वास।
तूतो जीवन्मुक्त है, तजो मुक्तिकी आस ॥
आपा खोजे आपलखि, आप अपनको देख।
चरणदास तुहि ब्रह्महै, तूही पुरुष अलेख ॥

हरि चिंतामणि सबमें बसै , जाणें बिरला कोइ ॥
राम दया तब जाणिये , साध कहै त्यूँ होइ ॥४२॥
गंग जमन मधि मुकति फल, सतगुरु दिया बताइ ॥
मन लोभी लालचि पड्या , ता सुष में रह्या समाइ ॥४३॥
अनंत साध आगे भया , परसि परसि भौ पार ॥
जन हरीदास सिर कै सटै , जहाँ तहाँ दीदार ॥४४॥

॥ इति नामनिरूपण जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ निरञ्जनलीला जोगग्रन्थ ॥

गाइ गाइ गावे कहा , गावण मांहि बिमेक ॥
एक गाइ दह दिसि गया , एकां परस्या एक ॥१॥
गुर हम स्यूँ एसी करी , जैसी गुर तैं होइ ॥
अगम ठौड़ आनंद सदा , पला न पकड़ै कोइ ॥२॥
गुर निरभै चेला निडर , गुर निराकार सब माँहि ॥
चेला तन धरि तहाँ मिल्या , सो तन धरि नाचै नांहि ॥३॥
प्रगट परम गुर पारब्रह्म , परम सनेही सोइ ॥
आप दिषावे आप कूँ , करम किवाड़ी षोइ ॥४॥
राषणहारा राषि तूँ , आप आपणें हाथि ॥
भी फिरि मन चाले नहीं , ऊठि और के साथि ॥५॥

पाठभेद—च्यंतामणि–२ । :त्यौ–१ । मुक्ति–३ । लालच–४-५ । प्रसि–१ । दिहि–३ । दिस–४-५ । हम सूँ–३-४-५ । सूँ–२ । ठौर–१ । परगट–१-५ । उठि–१-५ ।

शब्दार्थ—गंग जमन मधि मुकति फल=इडा-पिगला के बीच सुषुम्ना मे प्राण आधारित करने पर मुक्तिरूपी फल मिलता है । ता सुख मे=विषय-वासना के सुख मे । भौ=संसार । दीदार=दर्शन, आत्मपरिचय । परस्या=मिला, प्राप्त किया ।

इनकी वाणियों की संख्या 23000 बतलाई जाती हैं, परन्तु इनकी जो रचनाएं उपलब्ध हैं, वे इससे बहुत कम हैं इनकी वाणियों का संग्रह गरीबदास जी की वाणी के रूप में जयपुर से प्रकाशित हुई हैं जिसमें अनभैप्रबोध, साखीचौबेलें एवं पद संग्रहीत हैं। इनकी पंक्तियों में कहीं–कहीं दुरूहता आ गयी है किन्तु फिर भी इनकी वानियाँ इनके गूढ़ प्रेम तथा स्वानुभति का अच्छा परिचय देती हैं।

अंतर्मुखी साधना–

तन खोजै तब पावै रे।
उलटी चाल चले जे प्राणी, सो सहज घर आवैरे।। टेक
बारह मारग वहता रोकै, तेरह ताली लावे रे

चंद सूर सहजै सत राखै, पाँच पचीस समावे रे।।[62]

14. संत हरिदास निरंजनी–निरंजनी सम्प्रदाय के अनुयायियों का कहना है कि यह कापड़ोद गाँव के डीडवाणा परगना के राजस्थान राज्य के निवासी थे और इनका नाम हरिसिंह था तथा जाति के क्षत्रिय थे, जन्म लगभग सन् 1455 ई0 को माना जाता है। 45 वर्ष की आयु तक गृहस्थ–जीवन यापन करने पर दुर्भिक्ष पड़ने के कारण इन्होंने अपना निवास स्थान छोड़ दिया और अपने कतिपथ मित्रों के साथ वन में जाकर लूटपाट करने लगे। वहीं संयोगवश इनकी भेंट किसी नाथ–पंथी महात्मा से हो गयी जिसने इन्हें मंत्रोपदेश देकर साधना का मार्ग बतलाया और इन्होंने तीखली पहाड़ी की गुफा में तप किया था। फिर वहाँ से निकल कर यह नागौर, अजमेर, टोड़ा, जयपुर एवं शेखावाटी आदि तक पर्यटन करते थे।

इनके गुरू प्रागदास जी थे तथा इनके शिष्य नारायणदास, हरिराम, रूपदास, सीतलदास, लक्ष्मणदास व गंगादास आदि थे।

निरंजनी सम्प्रदाय के प्रर्वतक हरिदास निरंजनी जी थे तथा उनका डीडवाणा में केन्द्र था। यह सम्प्रदाय नाथपंथ और संत काव्य के बीच की कड़ी माना जाता है। निरंजनी सम्प्रदाय उड़ीसा में प्रचलित था। मारवाड़ में इनके नाम पर कई मठ एवं गद्दियाँ हैं। हरिदास निरंजनी संतों को ईश्वर की तरह पूज्य मानते थे। इस सम्प्रदाय का मूल श्रोत नाथपंथ ही है। निरंजनी सम्प्रदाय और मूलक पंथ में तंत्र साधन का प्रभाव अधिक है। संत हरिदास निरंजनी को दादू नपंथ की परंपरा के अनुसार, दादू शिष्य प्रागदास (पृ0–सं0 1688) का शिष्य ठहराया जाता है। इनका उनसे दीक्षित होने का समय सं0 1656 बतलाया जाता है। उन प्रमाणों के आधार पर इनकी मृत्यु सं0 1670 (सन् लगभग 1605 ई0) में हुई थी और अपने अन्तिम समय तक में प्रादास के अनन्तर स्वयं दादू के शिष्य बनकर क्रमशः कबीर एवं गोरखनाथ पंथ में भी आ चुके थे। निरंजनी सम्प्रदाय का प्रचार इन्होंने नाथ–पंथ में आने के कुछ दिनों बाद किया था।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पृ०

ऋद्धि

अलौकिक शक्ति या सिद्धि। समाधि मार्ग के अन्तरायों में अन्यतम। २९९

उ

उग्गह निमित्त

इसका उदय तब होता है जब योग--प्रक्रिया के अभ्यास करने पर नेत्र बन्द कर देने पर उस वस्तु की मूर्ति भीतर स्वतः झलकने लगती है। ३००

उच्छेद–वाद

अजित केशकम्बलका मत। मृत्यु के अनन्तर आत्माकी सत्ता में अविश्वास। पृथिव्यादि चार तत्त्वों का बना यह शरीर मरने पर इन्हीं तत्त्वों में लीन हो जाता है, कुछ शेष नहीं रहता। २४

उद्धुमातकम्

११ वां कर्मस्थान–संसारकी अनित्यता को सद्यः हृदयङ्गम करने के लिए फूले हुए शव पर ध्यान लगाना। ३०१

उन्मनीभाव

आनन्द की वह दशा जिसमें मनका लय हो जाता है तथा प्राण का सञ्चार तनिक भी नहीं रहता। सहजिय लोगों के मत में जीव का मत में जीव का यही 'निज स्वभाव' अर्थात् अपना सच्चा रूप है। ३२७

उपक्लेशभूमिक धर्म

परिमित रहने वाले क्लेशों के उत्पादक धर्म जो संख्या में दस हैं। १७२

उपचार भावना

ध्यानयोग से इसका सम्बन्ध है। जब वस्तु को उसके लक्षण जैसे रंग, आकृति आदि से पृथक् कर केवल वस्तुमात्र पर ध्यान लगाना होता है तब उसे 'उपचार भावना' कहते हैं। ३०६

उपचार समाधि

किसी वस्तु के ऊपर चित्तको लगाने से ठीक पूर्वक्षण में विद्यमान मानसिक दशा। २९८

उपसमानुस्सति

कर्म-स्थान का ३० वां प्रकार। उपशमरूप निर्वाण के ऊपर ध्यान लगाना। ३०२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

काल न जाल जीव नहिं जाया, नट ज्यूँ घट धरै न घट धरि आया ॥
पूरण ब्रह्म परसि पति प्रांण, दुरमष पड़ै न जम ले डांण ॥१०॥
ग्रह वैराग न विरह विवोगी, पाप पुनि परवेस न भोगी ॥
उलटी सुरति सूँनि मैं धारि, तब जाइ दरसै देव मुरारि ॥११॥
थिर नहिं अथिर अरूप अछाया, निरगुण निरधार निरंतर पाया ॥
गरजै गिगन मगन मन लोई, हरि कूँ भजै सो हरि सम होई ॥१२॥
षिर नहिं अषिर सरम नहि सोग, वप नहिं विथा वैद नहिं रोग ॥
जहाँ प्रगटै तहाँ ऐसी करै, अवरण अगनि विथा वन चरै ॥१३॥
आस उदास मोह नहि माया, ग्यान विग्यान धूप नहिं छाया ॥
करम किंवाड़ी कल सूँ षोई, है तो सही लहैज कोई ॥१४
संकट नहि सरम भरम नहि भेद, जठरा नहि जुरा कंध नहि छेद ॥
सकल वियापी सब तैं दूरि, अवगति जहां तहां भरपूरि ॥१५॥
छल नहिं अछल चिंत नहिं चाही, घट पट अघट भरम नहिं ताही ॥
तज अभिमान अगैह यूँ गहणाँ, जागि लागि नर उनमनि रहणाँ ।१६।
ड़र नहिं निड़र निरगुण निजरूप, उदै न अस्त सीत नहिं धूप ॥
घर नहि अघर पुरष नहिं नारि, परपंच प्रीति जीति नहिं हारि ॥१७॥

पाठभेद—गृह–१-३। प्रवेस–१-५। गिगनि–१। स्यों–१। यौ–१। असत–२-३। पुरिष–१। प्रपंच–१।

शब्दार्थ—षिर नहि अषिर=क्षराक्षररहित। सरम=श्रम, थकावट। वप=वपु, शरीर। कल=कला-अभ्यास, ज्ञान-कर्म-भक्ति। चाही=चाहना।

११ वीं साखी—उलटी सुरति सूंनि मे धारि=वृत्ति को अन्तर्मुख कर शून्य-ब्रह्मस्थान में धारण करे।

१२ वी साखी—गरजै गिगन मगन मन लोई=अनहद नाद मे लगकर मन मगन-मस्त हो जाय।

१३ वी साखी—जहां प्रगटै तहां ऐसी करै, अवरण अगनि विथा मन चरै=जिस घट मे ज्ञानाग्नि प्रज्वलित हो जाती है, उस घट मे ऊपर कथित स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ज्ञानाग्नि वर्णविहीन है–उसका स्थूल रूप नही है, उसके प्रकट होते ही सासारिक व्यथाओ का वन दग्ध हो जाता है।

॥ अथ जोगसंग्रामजोगग्रन्थ ॥

जोगी ग्यान षड़ग करि धारै , मनसा जीति मनोरथ मारै ॥
आसण छाड़ि अनत नहिं जाइ , ता संगि रमै निरंजन राइ ॥१॥
दीरघ रोग विवोग निवारै , कौड़ी सटै न हीरा हारै ॥
परधन हरै डरै नह्रि लोइ , आपा डारैं तो यूँ होइ ॥२॥
विषया विष तजौ भजौ हरि वीर, सूँनिमंडल में निरभै नीर ॥
ऊँच नीच सब सूँ समभाइ , मन वच क्रम तहाँ मन लाइ ॥३॥
निरभै नृवांण परम सुषसार , आदि अनादि वार नहिं पार ॥
जुरा न व्यापै काल न षाइ , हम कूँ सतगुर दिया बताइ ॥४॥
अलष अभेद गहर गुणग्रामी , प्रांणनाथ हरि अंतरजामी ॥
कोई ग्यानी लहै ग्यान गुर औंर , षीर नीर ज्यूँ सब ही ठौर ॥५॥
भजि भगवंत असुर अरि मारि , सूँनिमंडल में मंढ़ी सँवारि ॥
ताली लागी बैठा मांहि , गंग जमन जल पीवै नांहि ॥६॥
मोह द्रोह मैं तैं करि दूरि , रमता राम रह्या भरपूरि ॥
व्यापक अंगनि बसै सब मांहि , गुर विण गैला लाभै नांहि ॥७॥
अप्रवांण निधि अगम विचारै , आप तिरै साथी संगि तारै ॥
पवन पियाला उलटा धरै , भरि भरि पीवै अजराजरै ॥८॥
नाथ निरंजन निरभै जोगी , जुरा न जनम भोग नहिं रोगी ॥
परच्याँ घटै न दिया जाई , सोई वित चित में रह्या समाई ॥९॥

पाठभेद—यो–१-३ । स्यो–१ । ल्यौ–३ । निरवाण–१-५ । षाय–१ । सतगुरु–१ । सतगुरि–२ । प्राननाथ–१ । अंतरिजामी–१ । ज्यौ–१ । सून–१ । गुरुविण–१ । द्रोह–१ । संग–१-५ ।

शब्दार्थ—अनत=अन्य, दूसरी जगह । दीरघ रोग विवोग निवारै=आत्मतत्व के वियोगरूपी दीर्घ रोग का निवारण करे, जन्ममृत्युरूपी दीर्घ रोग । परधन हरे=साधना द्वारा ब्रह्म के सत् चित् आनन्दरूपी धन को प्राप्त करे । नृवाण=गतिरहित, मोक्षरूप । गुरऔर=गुरु सम्मुख । ताली=लगन, समाधि । अप्रवाण=प्रमाणरहित । वित=धन ।

८ वी साखी—पवन पियाला उलटा धरे=प्राण को सुषुम्ना द्वारा दशम द्वार मे स्थित करे ।

साजिनिवाजि निरभैकरण, भरम बिथा भै दूरि ॥
परम पुरष परदुषहरण, हरि जहाँ तहाँ भरपूरि ॥६॥
अरस परस आनंद सदा, थक्या आंन सब गोंण ॥
हरि समरथ सुष निमर भरि, कीमत करै स कौंण ॥७॥
निरगुण का गुण का कहूँ, कथिये कहा अकथ ॥
अकल तुम्हारे आसिरे, सकल भवन समरथ ॥८॥
गंग जमन मधि एकरस, सुष में सुरति निवास ॥
जोगारंभ लागा रहै, त्रिवेणी तटि वास ॥९॥
परापरै परसिध पुरष, माया रहैत अभंग ॥
सेवग की सेवा करै, साध तहाँ परसंग ॥१०॥
नानाविधि सुणि सुणि असुणि, बहु विधि करै विचार ॥
जन हरीदास लहि लहि अलहि, हरि अवगति अपरंपार ॥११॥
त्रिविध ताप संसौ न सूल, परमभेद आनंदमूल ॥
उदै न अस्त आवे न जाइ, सकल वियापी सहज भाइ ॥१२॥
मोह दोह आसा न पास, बरणबिबरजित सुयंप्रकास ॥
काम क्रोध त्रिष्ना न ताप, ग्यान ध्यान जोगी न जाप ॥१३॥
तात मात सांसो न संक, साह वैद रोगी न रंक ॥
घट घटा रसना न रीति, ऊँच नीच परसै न प्रीति ॥१४॥
निरालंब निरलेप राइ, रहण डसण वप नहीं ताहि ॥
धरणी गिगनि समंद न हीर, जल ज्वाला मछी न कीर ॥१५॥

पाठभेद—गोंन-२-३-५। सू-२-३। निरगुन-१। भुवन-१। येकरस-२। रहत-३-४-५। वहो-३-५। अपरम-४। त्रिवधि-२-३-५। असत-२-५। संसो-१। ग्यगनि-२।

शब्दार्थ—साजनिवाजि=सब सामग्री का दाता। भरम=सत् मे असत्, असत् में सत्। बिथा=जन्म-मृत्यु की पीड़ा। भै=द्वैतभय। थक्या=हारा। गंग जमन=मन प्राण, इडा पिंगला। जोगारंभ=चित्तवृत्तिनिरोध। त्रिवेणी=त्रिकुटी। अभंग=अविभक्त। त्रिविध ताप=आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक। सांसो=सशय। रसण डसण= रसना का स्वाद।

॥ अथ अष्टपदी जोगग्रन्थ ॥

हम हेरूँ अवगति कूँ हेरैं, जाता मन कूँ उलटा फेरैं ॥
महादेव का मता पिछांणैं, मन दखूँ दिसा तैं उलटा आंणैं ॥१॥
मनसा देबी सब कूँ षावे, हम कूँ मनसा सांच बतावैं ॥
हम जोगी जोग जुगति गमु जांणे, वहती नदी अपूठी आंणे ॥२॥
पवन गोटि का पारा बांधे, उलटी सुरति गिगन कूँ सांधैं ॥
काम क्रोध का मूल उपाड़ै, गगनमंडल मैं आसण धारैं ॥३॥
अगम पियाला भरि भरि पीवैं, रूप अरूप विचारत जीवैं ॥
हरि सुषसिंध तहाँ भै नांहीं, हरिजन हंस बसै ता मांही ॥४॥
परम जोति अंतर मन राषै, ×हरि हीरा विण चूणि न भाषैं ॥
जन हरीदास निज निरषिये, मन की ठौड़ उठाइ ॥
सुरति सुलटि उलटा चढ़ै, तौ अगम तहां चलि जाइ ॥१॥
लहिये अगम निगम तैं आगे, अंतरि नींद नेत जब जागे ।
*ससिहर कै घर सूर समावे, उलटि कवल कँवलापति पावे ॥
सब मैं राम दूर हरि नांहि, ज्यूँ ज्वाला काष्ठ घृत पै मांहि ।
यहु निज सुष जाग्या सों जांणै, सूता अरथ कहां सूँ आंणै ॥

पाठभेद—सुषस्यध–२ । सिसहरि–१ । ज्यौ–१ । कासट–२ । स्यो–१ ।

शब्दार्थ—हेरूँ=खोजी, तलाश करने वाला । महादेव का मता पिछाणे=शंकर का मत है–निरन्तर चिन्तन, उसको पिछाणे, जाने । मनसा=लालसा, चाह । अपूठी=वापिस । आणे=लावे । सुलटि=सुलझ । नेत=नेत्र । ससिहर=चन्द्रमा के स्थान, इडा-नाडी मे । सूर=सूर्य, पिंगला नाडी । कँवल=हृदयकमल–षट् कमल को ऊर्ध्वमुख हो । पै=पय, दूध ।

दूसरी साखी—बहती नदी अपूठी आणै=ज्ञानेन्द्रियो की विषयो की ओर जाने वाली वृत्ति रूप नदी को आत्मस्वरूप प्राप्ति की ओर मोडे–अन्तर्मुख करे ।

तीसरी साखी–पवन गोटि का पारा बांधे=प्राणप्रवाह को प्राणायामादि की साधना से स्थिर कर उसकी गुटिका द्वारा चञ्चलतामय मनरूपी पारे को बांधे, निश्चल करे ।

× हरि हीरा विण चूणि न भाषै=विशुद्ध स्थिर हुआ मनरूपी हस स्वस्वरूप-चिन्तन रूप हीरे-मोतियो को छोड़ सासारिक भोगरूपी चुग्गे को अब नही खाता ।

* ससिहर के घर सूर समावे=दशम द्वार मे इडा नाडीरूप चन्द्रमा सहस्रारदल-ज्ञानचक्र मे स्थित है, वहाँ प्राणरूपी सूर्य को समाहित करे, स्थिर करे ।

ग्रिह वन नहि तहाँ मठ छाइ , वंकनालि इंम्रत रस षाइ ।।
ग्यान गुफा मैं आरंभ करै , जोगी जीवै जोरां मरै ।।२६।।
भौ सागर ड़र अनंत अपार , ता तिरिवे कौ इहै विचार ।।
मन विष छाड़ि विसंभर भजौ , काम क्रोध विषया विष तजौ ।।२७।।
परमानंद परम सुषसार , ताहि भजौ भज तजौ विकार ।।
जामण मरण जुरा भै डरणा , अब मरि साहिब मारग सिर धरणां ।२८।
काहू सूरवीर का काम , काइर कदे कहै नहिं राम ।।
मांड़ि संग्राम घाव घटि सहै , परदल जीति परम गति लहै ।।२९।।
जुग मैं इहै जोग संग्राम , कोई करौ आपणां काम ।।
ए पासा चौपड़ि ए सारि , अबकै जीत जाहु भावै हारि ।।३०।।
जन हरीदास कहै मंत एह , वड़ निधि हाथ चढी नर देह ।।
गोविन्द भजौ राम की आंण , वहौड़ि न लागै जम का वांण ।।३१।।

।। इति जोगसंग्रामग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—गिरह–१ । भव–१ । तरिवे–१ । ये–२ । वहुडि–१ ।
शब्दार्थ—वंकनालि=श्रुति, सुषुम्ना । मंत=मन्त्र । एह=यही । आण=सौगन्ध ।

२६ वी साखी—ग्रिह वन नही तहां मठ छाइ=शरीररूपी, घर संसाररूपी वन को छोड, भौतिक पदार्थो का त्याग कर आत्मरूप चेतन मे घर बनावे, स्थिति करे । वंकनालि इम्रत रस षाइ=मेरुदण्डगत सुषुम्ना द्वारा प्राण को सहस्रारदल-ज्ञान-चक्र में स्थिर कर समाधिस्थ हो आत्मस्वरूपप्राप्ति रूपी परमानन्ददायी अमृत रस का पान करे । अब मरि साहिब मारग सिर धरणा=अब जीवन्मृत हो परमेश्वर-प्राप्ति के मार्ग को ही शिरोधार्य कर ।

नरहरि भजन अहोनिसि करै , ताहि जालै अगनि न मारचा मरै ॥
संकटि पड्यां साथ रुघनाथ , जहां तहां जन के सिर हाथ ॥१८॥
उलटा षेलि अपूठा आवे , जैसी भूष तिसा भरि भावे ॥
निरभै निज नांव निरंतरि रहणा , सापणि डसै न परलै बहणा ॥१९॥
अनरथ अनंत तहां जीव जाइ , ता कूँ सरप सदा संगि षाइ ॥
जहर दाढ़ि कंठ लागी दोइ , राम भज्यां नर निरविष होइ ॥२०॥
बैसि निरंतर अलष जगावै , आसण अमर अगम घर पावे ॥
भूषा रहै न धापि न षाइ , मनसा चलै न परघरि जाइ ॥२१॥
ब्रह्म अगनि मैं काया दहै , मन चंचल निहचल होइ रहै ॥
काम क्रोध का झड़ै जंजीर , परमस्यंध जहाँ जाल न कीर ॥२२॥
वार पार नहि अगम अछेह , धरती बरसै अंबर तेह ॥
नृमल धार अपार अनंत , ता सुषि लाग रहै सब संत ॥२३॥
निगम अगम गुर गमि गम होइ , पवन नीर लै अंबर धोइ ॥
रमताराम निरंजन राइ , राषी वसत साह कूँ षाइ ॥२४॥
परम उदार अपार अनंत , अवरण वरण अगेह भगवंत ॥
उलटी गंग जमन मैं आंणि , तोहि पिछांणैं ताहि पिछांणि ॥२५॥

पाठभेद—जिन–१ । अनर्थ–१ । कठि–२-४ । परमसिध–३-४-५ । निरमल–१ । सुष–३-५ । अवर्ण–१ । वर्ण–१ ।

शब्दार्थ—सापरिग=माया । 'अनरथ अनत तहां जीव जाइ=अनन्त संसारी-पदार्थो में जीव जाता है । सरप=काल रूपी सर्प । ब्रह्म अगनि=ब्रह्मज्ञान । झडै=झड जाय ।

२० वीं साखी—जहर दाढि कंठ लागी दोइ=रागद्वेष रूपी दो जहर भरी दाढ मन में लगी हुई है ।

२३ वी साखी—धरती बरसै अबर तेह=धरती–सद्वृत्ति हृदयाकाश मे आत्मानन्द की वर्षा करती है, उसकी सरसता हृदय मे बेठती है ।

२४ वी साखी—पवन नीर लै अबर धोइ=प्राणायाम साधना रूपी जल से हृदय के कल्मष की शुद्धि करे, मन निर्मल करे । राषी बसत साह कूँ षाइ=वासनामय साहूकाररूपी मन सांसारिक-भोगो की इच्छा रखता है–वह इच्छा या वासना ही उसका काल है, भोगो के फल प्राप्त करने को जन्ममृत्युमय कारण बनता है ।

२५ वी साखी—उलटी गंग जमन मै आणि=मन रूपी गङ्गा को यमुना रूपी प्राण मे लगाओ ।

निरभै भया गया डर डरतां, साच सबद मैं पाया ॥
चेला ले नाथ गुफा मैं पैठा, तहां कछु अलष लषाया ॥२७॥
चंद सूर समि सुरति सहज घरि, अरथि अलूधी आसा ॥
परम जोति परकास परमसुष, तहाँ हमारा बासा ॥२८॥
मन निह्चल निरभै सुष लागा, रहै, सकल तैं न्यारा ॥
गंगा मूल अमूल अधर घर, तहाँ पड़ि रह्या विचारा ॥२९॥
जहाँ जहाँ वरण तहाँ वहु वंधण, काल कहर की छाया ॥
अवरण अगम सुगम जब समझ्या, तन ही मैं तत पाया ॥३०॥
सत रज तम गुण रजा रहत रस, तहाँ विलंब्या चीया ॥
चेला पाँच पसरताँ थाका, रस ही मैं रस पीया ॥३१॥
कहन सुनन सुष तैं सुष आगै, अगम सहै रहै लोई ॥
तहाँ वसै ताहि दाँण न लागै, पहुँचै विरला कोई ॥३२॥
या मन तै मन और अगम है, सकल वियापी सारा ॥
परम सुनि परवाण न कोई, निज विश्राम हमारा ॥३३॥
साथ संवाहि सहज घरि राषै, वंकनालि रस पीवै ॥
इला पिंगला सुषमनि समि करि, परचै लागा जीवै ॥३४॥
राम दयाल देव करणां मैं, परम तत पति पूरा ॥
अरस परस आनंद अमि अंतरि, बाजै अनहद तूरा ॥३५॥

पाठभेद—निह्चिल–२-४। पड़–५। वहौ–२। अवर्ण–३। रहैत–४। सह–३-४। न्यज–२। विसराम ५। समाहि–१। प्यंगला–२। अम्य–२।

शब्दार्थ—अरथि=आत्मतत्व। अलूधी=लगी रहे। आसा=चाह। वरण=वर्ण, जातिभेद। रजा=छूटा। रहत रस=नित्य सत्य आत्मतत्व। चीया=विशुद्ध मन। पांच=पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ। पसरतां=विषयो मे जाते। थाका=थका, विरत हुआ। सहै=सो, वह। दांण=दण्ड, कर। परवाण=नापतोल। साथ संवाहि=साथियो को संभाल। वंकनाल=मेरुदण्ड।

२७ वी साखी—चेला ले नाथ गुफा मैं पैठा=नाथ—निश्चल मन ने चेला-चलने वाली इन्द्रियो को अन्तर्मुख कर हृदयगुहा में प्रवेश किया।

२९ वी साखी—गंगा मूल अमूल अधर घर=परम आनन्दरूपी गंगा की धारा का मूल वह अमूल परब्रह्म है।

आसण अचल मेर गिर उपरि , मन हसती गहि बांधा ।।
उलटा चल्या सवोड़ि पहूँता , पैंडे पार न लाधा ।।१९।।
सासि उसासि अगम अरि जीत्या, जागि परम गुर पाया ।।
अधर अरेष अथाह अषंडित , नांव निरंजन राया ।।२०।।
वसुधा जीति वास हम कीया , षबर षालिक की जांणी ।।
अरथ बिचारि अंक भरि उलटा , सुष में सुरति समांणी ।।२१।।
जोगी जागि न सोवै निसदिन , ग्यान गुफा में आया ।।
भैंरू कीलि कसर सब काढ़ी , सूता वीर जगाया ।।२२।।
ग्यान गूदड़ी सहज निरालंब , पिसण पवन गहि बांधी ।।
गंग जमन मधि आसण अवधू , चेलै सतगुरु लाधी ।।२३।।
अषिल अछेद निरूप निड़र घर , फेरि तहाँ मन लाया ।।
नलिनी का सूवा की नांई , आपैं आप बंधाया ।।२४।।
ना विष गहै न इंम्रत छाड़ै , पाप पुनि दोइ दूजा ।।
साध धरमि अंतर नहिं पाड़ै , तौ अवगति की पूजा ।।२५।।
आलस करै न आरंमि लागै , ता कूँ जमराइ न मारै ।।
अजरा जरै अरीझ रिझावे , जीतण कूँ षपै न हारै ।।२६।।

पाठभेद—आसन-१ । ऊपरि-३ । हस्ती-३-४ । षलक-१ । भैरो-५ । कील- १ । सहज्य-२ । मध्य-२ । औधू-३-४ । अमृत-१ । धरम-३-४ ।

शब्दार्थ—मेर गिरि=गगनमंडल । सवोड़ि=किनारे, अन्तिम लक्ष्य पर । सास-उसास=प्राणस्थैर्य द्वारा । वसुधा=देह, पृथ्वी, जगत् । षालिक=खलक का स्वामी ब्रह्म । समांणी=समाई । भैरूं=क्रोध । कीलि=वश मे कर । पिसण=कामादि चोर । पवन गहि=समाधिस्थ हो । दूजा=न्यारा, अलग । साध धरम=साधक के कर्त्तव्य मे । पाडे=पड़ने पर ।

२३ वी साखी—गंग जमन मधि आसण अवधू=इडा-पिंगला के बीच सुषुम्ना मे प्राण का आसन करना, प्राणप्रवाह करना ।

२६ वी साखी—आलस करै न आरंभि लागै=साधना मे आलस्य न करे, न ही सासारिक वासनाओ या प्रवृत्तियो मे उलझे । अजरा जरै अरीझ रिझावे=सूक्ष्म संस्कार की वासनाओ को जारे—पचा ले, शुद्ध चिन्तनस्वरूप परमतत्व जो किसी वस्तु से रीझता नही—प्रसन्न नही होता उसको विरहरूपी परम प्रेम से रिझावे ।

अगम अथाह वार नहिं पारं, ता का कैसा भेद विचारं।
वरण विवोग रोग नहि जाना, परम भेद ऐसा असथांना ॥
सकल समीपी सकल सुहावा, तीन लोक त्रिभवनपति रावा।
सुषमनि उलटि गगन मैं आंणी, सुनिमंडल मैं षेलै प्रांणी ॥
सुषमनि परमसिंध मैं झूलै, तारुति कँवल केतकी फूलै।
नाभि सरोवर निज जल नेरा, मन मतवाला झूलै मेरा ॥
भागा भरम भेद जब पावा, तब मन उलटि सहज घरि आवा।
गगन गरजि वृषा भई, छीलर भया निवांण।
जन हरीदास हरिसिंध मैं, षेलै साध सुजांण ॥२॥
सो अणभै जोगी नांव अनंता, जटा न जूट पांच नहिं तंता ॥
सकल समीपि अकल निज नांमी, प्रांण अधार गहर गुणग्रामी।
आदि अंति हरि की हरि जांणै, सुनि रूप वहु वाणिक वांणै ॥
आदि न अंति लहै कोई भेवा, सुरति संबाहि परमसुष लेवा ॥
जुरा न जनम आइ नहिं जावा, अगम अथाह थाह को पावा।
तेरू समद तिरण व्रत धरि है, वार न पार कहां लगि तिरि है ॥

पाठभेद—प्रम-१-२। अस्थाना-१। तीनि-४। त्रिभुवन-१। केतगी-१-२। घर-३-४-५। व्रषा-१-२। समीप-५। वहो-५। जन्म-३। लूं-२। तरि-१।

शब्दार्थ—असथाना=अगम स्थान। तारुति=उस समय। कँवल=हृदयकमल। केतकी=ऋतंभरा प्रज्ञा, त्रिकालज्ञ। निज जल=आत्मानन्द। झूलै=स्नान करे। छीलर=ओछा पानी। निवांण=निचाई। अणभै=अनुभव। तंता=तत्व। सकल समीपी=सबका साक्षी। वहु वाणिक=विविध रचना।

गगन गरजि वृषा भई, छीलर भया निवांण=गगन—दशम द्वार मे जब प्राण का स्थैर्य हो अनहद नाद की गर्जना के तत्रस्थ चन्द्रमा द्वारा अमृत की वर्षा होने लगी, तब निवांण—नीचे अकिञ्चन विषय-भोग सब छीलर—महत्वहीन हो गये, निष्प्रभ हो गये।

पिंगुला ऊठि पगां विश चाल्या , आंधै लोचन लाधा ॥
तरवर पात फूल फल डाला , बीज समूला षाधा ॥३०॥
धूजै धणक उलटि सर लागा , लोग तमासै आया ॥
मुरगी वपरी जिबैह मुलांना , काजी न्यौंति बुलाया ॥३१॥
चींटी कै मुष मेर समानां , मूसै गिली मंजारी ॥
दादर सरप समंद मैं डारचा , लौंकी परि असवारी ॥३२॥
मकड़ी का सिर माषी तोड्या , जंबक स्यंघ जगाया ॥
कुंजरि मग्र दंत तव चूरचा , हिरणी चीता षाया ॥३३॥
रवि ससि पकड़ि दाढ़ तलि राष्या, नकटी नाथि नचाई ॥
सुसा हमारै षेती राषै , वाड़ी मिरघ न षाई ॥३४॥

पाठभेद—विरिण–२-४ । धनक–३-५ । वपडी–१ । ज्यवह्–२ । न्यू ति–४-५ । समांणां–१ । सिंघ–३-४ । हिरनी–१ । मृघन–४-५ ।

३० वी साखी—चञ्चलता–कल्पनारूपी पैरो से हीन पगुल मन –ऊठि–सजग हो आत्माभिमुख हो गया । अज्ञान और अविवेक नेत्रों से विहीन अन्धे मन ने विवेक विचार रूपी नेत्र प्राप्त किये । निर्भ्रान्त सत्य ज्ञानरूपी बीज ने अज्ञानरूपी वृक्ष के वासनाजन्य प्रवृत्ति, विषयभोग, कामक्रोधादि पत्ते फल-फूल डाल सहित खा लिये ।

३१ वी साखी—गुरु–उपदेश रूपी वाण उलट अन्तर मे लगा तो मनरूपी धनुष धूजने लगा । शील, सन्तोष, त्याग, वैराग्यादि गुण रूपी लोग पलटे हुए मन के चरित्ररूपी तमाशे को देखने आए । निश्चल बुद्धि रूपी मुर्गी ने मलिन मुल्लारूपी मन को जिबह् किया–कत्ल किया, आत्मतत्व जीवरूपी काजी को निमन्त्रित कर बुलाया ।

३२ वी साखी—अन्तर्मुखवृत्तिरूपी चीटी के मुख मे अहङ्काररूपी मेरु समाया–बिलीन हो गया । आत्मविचाररूपी मूसे ने वासनारूपी बिल्ली को निगल लिया । लयरूप वृत्ति पर आधारित नाम चिन्तनरूपी दादुर–मेढक ने संशयरूपी सर्प को ज्ञान-समुद्र मे डाल दिया ।

३३ वी साखी—परा भक्तिरूपी मक्खी ने मायारूपी मकडी का सिर तोड दिया । परम प्रेममय जम्बुक ने जीवात्मारूपी सिंह् को जगाया–सचेष्ट किया । वैराग्य-रूपी मस्त हाथी ने मोहरूपी मगर को चूर-चूर कर दिया । शीलमय वृत्तिरूपी हिरणी ने कामरूपी चीते को खा लिया ।

३४ वी साखी—रवि-शशि–प्राण तथा मन को साधना द्वारा वशीभूत कर माया रूपी नकटी के ज्ञान की नाथ डाल नचाई । षट् साधना रूपी खरगोश ने आध्यात्मिक अभ्यासरूपी खेती की रखवाली की । जिससे विषय विकाररूपी मृग उस बाड़ी को किसी तरह् का नुकसान न पहुंचा सके ।

इला पिंगुला सुषमनि मेला, त्रिवेणी तटि न्हाया ॥
जोग समाधि प्राण ले सूता, जागै नहीं जगाया ॥२५॥

×अरथ विचारि अगनि मैं पैठा, नऊँ नाथ संगि लीया ॥
*आइस बलै अंगीठी तापै, ऊपरि आसण कीया ॥२६॥

+सात समंद मोती फिरि सोष्या, मछ मूवा विण पांणी ॥
गोपी तजि कान्ह अगम कूँ चाल्या, अनभै कथा पिछांणी ॥२७॥

मरकट पै बाजीगर नाचै, सबद निरंतरि बाधा ॥
पूरा वासण कदे न झलकै, जौ झलकै तौ आधा ॥२८॥

तीतरि बाज पगां तलि रौंध्या, छाली विग्रह चारै ॥
गूँगा अरथ अगम का बूझै, बहरा अरथ विचारै ॥२९॥

पाठभेद—पिंगला–१। सुषमन–१-५। अगम–३। आय–५। उपरि–१-२।

शब्दार्थ—अगनि=ब्रह्माग्नि। नऊँ नाथ=पांच ज्ञानेन्द्रियां, चारों अन्त:करण।

× अरथ विचारि—तात्विक विषय विचार ज्ञानज्योति में प्रवेश किया। नऊँ-नाथ—चारों अन्त:करण व पांचों ज्ञानेन्द्रियों को साथ लिया।

* आइस—मन जोगी के विकार जल रहे हैं—वह ज्ञानज्योति से तप रहा है, निखर रहा है।

+ विवेकरूपी मोती ने षड्रिपु—काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष तथा अहङ्कार रूपी सातों समुद्रों का शोषण कर लिया। कुवृत्ति रूपी मछलियां मर गईं। विविध वृत्तिरूपी गोपियो को विशुद्ध मनरूपी कान्ह अगम स्वस्वरूप की ओर ले चला। तब जो अध्यात्मज्ञान कथारूप मे सुनते थे, उसको स्वकीय अनुभव में जान लिया।

२८ वीं साखी—निरन्तर अनहद शब्द मे बँधा हुआ वृत्ति वाला जीव बाजीगर मन रूपी मरकट को वश में कर नाच रहा है—प्रसन्न हो रहा है।

२९ वीं साखी—संतोषरूपी तीतर ने लोभरूपी बाज को पैरों तले रौंद दिया। अकिंचनतारूपी बकरी ने अहङ्काररूपी व्याघ्र को चर लिया—खा लिया।

सांसारिक पदार्थों से उदासीन मौनी—मनरूपी गूँगा अगम इन्द्रियातीत आत्म-पदार्थ के अर्थ को बूझै–जानै। लौकिक-वार्त्ता सुनने से विरत बहरा मन ही आत्म-तत्व के अर्थ को विचारता है।

आसा का ईंधण हम कींया , चिंता अगनि बुझांणी ॥
×नदी निवासै वहती थाकी , चढ्या अपूठा पांणी ॥१८॥
*काम हमारे कागद बांचै , आषर अगम विचारै ॥
यहु मत गहैस पारि पहूंचै , वैसि रहै सोई हारै ॥१९॥
मंझ देस तहाँ मंढी हमारी , तन बाघंबर कीया ॥
धूंई ध्यान सहज की मुद्रा , अगम पियाला पीया ॥२०॥
मेरडंड का मारग लाधा , उलटा पवन चढ़ाया ॥
दसवैं द्वारि निरंजन जोगी , हम गुरगम तैं पाया ॥२१॥
तेरह तीन प्रांण घर चौथे , परम सुनि मन पूरा ॥
+सोपी भया पिसण पिसण भया सोपी, गढ़ पड़ि सकै न चूरा ॥२२॥
दषिण देस दूरि हम छाड्या , उतर हमारा वासा ॥
निरभै भया निरंतरि मेला , अणभैपद अभ्यासा ॥२३॥
जोगी सदा सहजि घर षेलै , =वसुधा गहि वसत विचारी ॥
जा गिरवर तैं गंगा निकसै , ता गिरि गुफा हमारी ॥२४॥

पाठभेद—च्यन्ता-२ । अगन्य-२ । इहु-२ । पार-१-५ । तेरै-३ । दक्षण-३-४-५ ।

शब्दार्थ—आसा=आगन्तुक भोग । चिन्ता=वासनारूपी चिन्ता । यहु मत=आत्मविचार । वैसि रहे=सासारिक भावो मे लिप्त रहे । मंझ देस=हृदयमन्दिर । धूंई ध्यान=ध्यानरूपी धूणी । तेरह=अष्ट प्रकृति पंचभूत । तीन=सत, रज तम—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति । चौथे=तुर्यावस्था मे । पिसण=लुटेरे, शत्रु । दषिण देस=संसार । उतर=अध्यात्म देश । गिरवर=दशम द्वार, सर्वोपरि ब्रह्म । गंगा=आनन्दरूप गङ्गा ।

× आशा-तृष्णा की नदी जो संसार के भोगो की ओर बही जा रही थी, बंद हो गई तथा उलट कर आत्मस्वरूप की ओर बहने लग गई ।

* काम मोक्षरूपी भावना हमारे कागद वाचै—वेद, उपनिषदादि का स्वाध्याय करे ।

+ विषयसुख जो पहिले सोपी—सुखदायी मित्र लगते थे, वे अब पिसण—शत्रु हो गए है । जो विवेक विचारादि पहिले शत्रु से लगते थे, वे अब अति मित्र से लगने लगे हैं ।

= वसुधा—बुद्धि को गहि स्थिर कर वसत—सत्य ज्ञानमय वस्तु का विचार किया ।

निरास मैं मुद्रा सील संतोष सति चेला, ध्यांन की धूई तहां सिधां का मेला ॥
दया धीरज डड साच करि गहिवा, विचार कै आसण उनमनि रहिवा ॥३॥
सबद की सींगी सहज की माला , जत की कोपीन तहाँ जोग का ताला ॥
निरमोह मढी निहचल वासा , जरणां की जटा सिरि देषिवा तमासा ॥४॥
निरास उड़ाणी अकल की छाया, अवर उठि चालिवा तजिवा काम क्रोध काया॥
भेद सिर टोपी तन वाघंवर , निरगुण जो घोटा सुनि वस्ती न वर ॥५॥
×पाताल का पांणी आकास कूँ चढ़ाइवा, कलपना सरपणी पवन मुषि पाइवा ॥
सतगुर सवद लै अगह अगम उर धारिवा, ग्यांन का चक्र लै काल कूँ मारिवा
वारह सोलहकला लै एक घरि आणिवा, जोगका मूल यह जुगति सब जांणिवा ।
गुर का सवद लै भौंरा जगाइवा , सरप वंवई तजि अगम तहाँ जाइवा ।७।
देषि पग धरिवा दया पंथ करिवा , उद्र भरि न सोइवा धात करि न धरिवा ॥
भैभीत नग्री मोहनी माया , कामना मिटी तब जोग पंथ पाया ॥८॥
रहता सो भाई वहता सो वहणां, अवधू उलटा गोता मारि आकास मैं रहणां ॥
अरथ की अंधारी मिथ्या न भाषिवा, निरंजन मात्रा जतन सूँ राषिवा ॥९॥

पाठभेद—दड–१ । वसती–२ । अपणी–१-५ । अगैह–१ । बारह–३-५ । देषि पाव धारिवा–१ । उदर–१ । नगरी–१ । अर्थ–४-५ ।

शब्दार्थ—भेद=रहस्य, ज्ञान, तथ्य । वारह=सूर्य की कला, पिंगला । सोलह=चन्द्रमा की सोलह कला, इडा । इडा-पिंगला को एक घर सुषुम्ना मे आणिवा–लाना । भौरा=जीवात्मारूपी भ्रमर । सरप ववई=संशय का मूल । देषि=ज्ञानदृष्टि से । दया पंथ करिवा=मन, वचन, कर्म से अहिंसक रहना । उद्र भरि=अति आहार कर । धात करि न धरिवा=सोना, चादी आदि धातु को लेना नही । भयभीत नग्री=देह रूपी नगरी कालभय से भयभीत है । रहता=एकाग्र मन । वहता=चंचल मन । अरथ की अंधारी=रूप, रस, शब्दादि विषयो का अन्धकार न आने देना ।

× पाणी–शुक्ररूपी द्रव जो स्वभावत अधोगति है, जिसके निकलने का स्थान मूत्रेन्द्रिय है । उस पाताल स्थान से वीर्य को आकाश मे चढाना–ऊर्ध्व रेता होना । मन की चंचलतारूपी सर्पिणी को प्राणायाम की साधना द्वारा समाप्त करना, सतगुरु के उपदेशानुसार पकड़ मे न आने वाले इन्द्रियातीत चेतन तत्व की स्वानुभूति करना, नित्यानित्य विवेक रूपी चक्र से काल पर विजय पाना ।

मेरडंड वाई चढ़ छेद्या, जलमल अगनि ग्रास्या ॥
मिट गया त्रिवधि तिमिर या तन तैं, परम सूर परकास्या ॥१४॥
सीमरता सकला जुग सूता, पडदा परहा न होई ॥
उदै कॅवल तहाँ अगनि वलत है, जागि न देषे कोई ॥१५॥
सत रज तम गुण काम क्रोध मद, मोह, दोह कस दीया ॥
पांणी जलै अगनि जल सोषै, ऐसा आरंभ कीया ॥१६॥
मुद्रा सबद सुवधि कंठि सींगी, ग्यांन चक्र करि धारं ॥
चेला पांच जटा सिरि जरणां, आसण सूनि हमारं ॥१७॥
पैंडा अधर अगम उरिं अंतरि, उदबुद कथा अभेदं ॥
पिम्यां पड़ग लै ऐसे षेलूँ, जनम मरण सिरि छेदं ॥१८॥

पाठभेद—मेरदड-१। सुवुधि-१। षेलौ-१। जन्म-४।

१४ वी साखी—वाई प्राण-मेरुदण्ड सुषुम्ना मार्ग द्वारा गगनमडल मे पहुचा, प्रदीप्त योगाग्नि ने वासना के जल व भोग के कालुष्य का शोषण किया, देह के त्रिविध ताप निवृत्त हो गए-मल, विक्षेप, अध्यासरूपी तिमिर-अज्ञानान्धकार का भी निवारण हुआ और परम सूर-विशुद्ध ब्रह्मतेज का प्रकाश फैला।

१५ वी साखी—सासारिक भोग-विलासमय शीत से त्रस्त सब संसार सो रहा है-अज्ञानरूपी अन्धकार का पर्दा दूर नही हो रहा है। उदै कॅवल-नाभिकमल मे ज्ञानज्योति जल रही है पर कोई जागकर-सचेत होकर देख नही रहा है।

१६ वी साखी—त्रिगुणात्मक अन्त-करण के धर्म, काम, क्रोध, मोह आदि सब को कस दिये-काबू मे कर लिये। ज्ञानाग्नि प्रदीप्त हो विषयवासना के जल को जला रही है-शोषण कर रही है। ऐसा आरंभ कीया-इस तरह की साधना मे लगा हूँ।

१७ वी साखी—साधक रूपक द्वारा अपना भेष बता रहा है। शब्द-अनहद शब्द का श्रवण मुद्रा है, कण्ठ मे अजपा-जाप होता है वह सीगी है, ज्ञानरूपी चक्र वही हाथ मे कडा है, पांचो ज्ञानेन्द्रिया है वे ही शिष्यवर्ग है, जरणां है वही सिर पर जटा है, शून्य-गगनमंडल मे वृत्ति की स्थिति वही आसन है।

१८ वी साखी—पैंडा-मार्ग हमारा अधर निरालंबी है, चेतन से सम्बन्धित है, अगम-इन्द्रियातीत स्वस्वरूप है वही हृदय में निवास करता है। यह अभेदरूपी ज्ञानकथा उदबुद-अद्भुत है। क्षमारूपी खड्ग को ले जन्ममृत्यु के कारणरूप काल का सिर काट देता हूँ।

जोग भेष सतगुरु दिया, आतम कूँ उपदेस ॥
जन हरीदास मन तहाँ बसे, जहाँ संतन का परवेस ॥४५॥
जोग समाधि अगाध व्रत, पारब्रह्म सूँ प्रीति ॥
जन हरीदास तहाँ षेलिये, तन मन त्रिसना जीति ॥४६॥

॥ इति जोगसमाधि जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ जोगध्यान जोगग्रन्थ ॥

दूर देस तहाँ सौदा मेरा, सतगुरि आय जगाया ॥
पैंडे चलूँ न काँटा लागै, उलटी राह बताया ॥१॥
×मन घर प्रांण प्रांण घर मनसा, बंकनालि में बाई ॥
अगम अर्थ सोई कथा कहत हूँ, सतगुरि वसत बताई ॥२॥
तन पाटण तहाँ वास हमारा, नौ दरबार जड़ाया ॥
सूँनिमंडल में जोति चमकै, उलटा पवन चढ़ाया ॥३॥
*आवध विन संग्राम करम विण आरंभ, त्रिगुण सषी सुत षाया ॥
=जटा पंषि पाणी में पैठी, मीन सूनि घर पाया ॥४॥

पाठभेद—चलो न–१। सून्य–२।

शब्दार्थ—दूरदेश=ब्रह्मलोक। पैंडे चलूँ न=विषय-वासना के मार्ग चलूँ नही। काँटा=चुभन, विषय अप्राप्तिजन्य संताप। उलटी राह=अन्तर्मुखवृत्ति। नौ दरवार=नौ दरवाजे। आवध=शस्त्र। त्रिगुण सषी=सद्बुद्धि। सुत=ज्ञानरूपी पुत्र।

× मन का घर–हृदय वहाँ प्राण को ले जाय, प्राण का घर नाभि–वहाँ मनसा-वृत्ति को ले जावे। वंकनाल मे प्राण का वहन करना इस अभ्यास से अगम पदार्थ मिलता है।

* आध्यात्मिक संग्राम बिना शस्त्र का है, आत्म-परिचय का साधन लौकिक-कर्म से निवृत्त वृत्ति से है। निश्चल वृत्तिरूपी आत्मसखी के ज्ञानरूपी पुत्र ने त्रिगुणात्मक धर्मो के भावो को खाया–समाप्त किया।

= विवेकमय-बुद्धिरूपी मयूरी ने आत्मप्रेम रूपी पानी मे प्रवेश किया। सुरति वृत्तिरूपी मीन ने सूनि घर–दशम द्वार मे स्थान पाया।

धेनि धाम परहरया, पसरि पांणी नहिं पीवै ॥
परम सूँनि घरि घसै, कुपह केरड़ा न जीवै ॥११॥
अरचित अरत अभंग, नाथ निरभै निरभेदं ॥
जहाँ तहाँ भरपूरि, पूरि लै आस उमेदं ॥१२॥
वार पार मधि नांहि, छिपै नहिं काहू छाया ॥
अदिष्टि अथिर अरूप, अगह उरि अंतरि पाया ॥१३॥
तहाँ सापणि नहि संचरै, डहकि दोइ डंक न धारै ॥
प्रथम चढ़ै नहिं जहर, =मंत्र गारड्ड न मारै ॥१४॥
भैरू न लगै न भोग, सीस भोपी नहिं तौलै ॥
देवल विणि देव अभेव, तहां कुलफ कोइ जड़ै न षोलै ॥१५॥
अरध छांड़ि उरधै चढ्या, राग विणि रागनि बाजै ॥
ब्रह्म अगनि आभरण, सबद विणि सींगी बाजै ॥१६॥
तुला नहीं तहाँ तुल्या, विप्रा विणि वेद पढाया ॥
अगनि विना अस होम, पुनि विण पुन्य समाया ॥१७॥

पाठभेद—घ्येन–२ । प्रहरया–१ । अक्षर–३-५ । अगहि–४ । डहक–३ । पुन्य–२ ।

शब्दार्थ—धेनि धाम परहरया=स्थिर वृत्तिरूपी गाय ने सासारिक घर का परित्याग किया–मोह छोडा । पसरि पांणी नहि पीवै=वृत्ति अब सासारिक पदार्थों मे जा विषयभोग के पानी को नही पीती । कुपह=कुमार्ग । केरडा=बछडा । सापणि=वासना, माया । डहकि=उचककर । दोइ डंक=राग, द्वेषमय । गारडू=सतगुरु, मंत्र-दाता । भैरू=काल । भोपी=माया । कुलफ=कुन्दा, सांकल । अरध=नीचे । उरधै=ऊपर, ऊंचा । आभरण=गहने, आभूषण । तुला=विचार, तकडी ।

१७ वी साखी—बिना तकड़ी के विचाररूपी तुला मे तुला । बिना पंडितो के सतगुरु उपदेश से वेद–आत्मज्ञान पढ़ा । बिना बाहरी अग्नि के ज्ञानाग्नि मे सब प्रकार की वासनामय सामग्री का होम किया । जप, तप, दानादि पुण्य कर्म किये बिना परम पुण्य-स्वस्वरूप की प्राप्ति की ।

एकै साथी साथि, गया साथी गत दूजा ॥
देवलि देवलि पैसि, पसरि मन करे न पूजा ॥३॥
हारि जीति दोइ देस, तहां सब जीव का वासा ॥
देषि तमासा डरया, वहौड़ि मोहि आवै हासा ॥४॥
चिता की लगै न चोट, वोट सतगुर की आया ॥
सतगुर साहस धीर, सु तौ सतगुर तैं पाया ॥५॥
ग्यांन सिंघासणि वैसि, एक आरंभ हम कीया ॥
ब्रह्म अगनि परजालि, पवनमुषि परवत दीया ॥६॥
गया पाप परचंड, त्रिवधि मैं तैं भ्रम भागा ॥
उलटा गोता मारि, प्रांण निरभै सुषि लागा ॥७॥
पाँच सषी लै साथि, परम सुषसागरि झूल्या ॥
विवधि वेलि फल झड्या, कँवल विणि पाणी फूल्या ॥८॥
डाल समाया मूल, काम यहु सतगुर कीया ॥
त्रिवेणि असथांनि, जड़ां मैं पावक दीया ॥९॥
×गंग जमन मधि वेसि, चंद घरि सूर समाया ॥
परम जोति परकास, अगम गुरगम तैं पाया ॥१०॥

पाठभेद—स्यिघासणि–१। प्रजाल–१-५। प्रवत–१। प्रचंड–१। भरम–१-५। नृभै–२-४। विविधि–१। असथान–५।

शब्दार्थ—देवलि देवलि=मन्दिर-मन्दिर। हासा=हसी। वोट=आड़, ओट। एक आरंभ=आत्मचिन्तन। परजालि=प्रज्वलित कर, जलाकर। पवनमुषि=प्राण-सिद्धि। परवत दीया=अहङ्कार हटाया। पाँच सषी=अन्तर्मुखी पाचो ज्ञानेन्द्रियाँ। झूल्या=स्नान किया, ओत-प्रोत हुआ। विवधि वेलि=वासनामय लता। कँवल विणि पानी फूल्या=हृदयकमल बिना विषयभोगरूपी पानी के प्रफुल्लित हुआ। डाल समाया मूल=डाल रूपी जीव मूल व्यापक ब्रह्म मे समाया। त्रिवेणी असथांनि जड़ां मै पावक दीया=तीन गुणो के प्रपञ्चरूप भौतिक भावनाओ की जड़ मे ज्ञान की अग्नि लगाई।

× गंग जमन—श्वास-प्रश्वासरूपी प्राण सुषुम्ना द्वारा दशम द्वार मे समाय

डीवी मवूरी ओर कूँ न देवा, आकास की भिष्या भाव सूँ लेवा ॥
*बाई न झलकै भरम सब छाड्या, परमतत परसतां मेर मधि गाड्या ॥१०॥
वँमि निरंतरि आरंभ करिवा, काया कमडल अमीरस भरिवा ॥
×चिंता डाकणी फिरि गई लाजै, अनहद सींगी गगन सुर वाजै ॥११॥
जीवता मरैं सु जुगि जुगि जीवै, अगम का पियाला छक्या रस पीवै ॥
उरम धुरम सुषमना भोगी, अकल तरवर तहाँ वसै प्राणनाथ जोगी ॥१२॥
जन हरीदास सतगुर सवद कहै त्यौं कीया, अकलि कै आसरै अगम गढ़ लीया
साध सब ही वसै तहां मैं नांही, जन हरीदास मन सुरति प्राण वसै ता मांही॥
जन हरीदास चेत्या सतगुर चितावै, सोवै सो षोवै जागै सो पावै ॥१३॥

॥ इति प्राणमात्रा जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ आत्माअभ्यास जोगग्रन्थ ॥

व्योम नहीं वसुधा नहीं, पवन जल तेज न लोई ॥
अगम ठौड़ करसण तहां, चोर कर लगै न कोई ॥१॥
पांणी निणि पांणी, अतिर हाथां विणि तिरणां ॥
वारिन रहणां थाकि, पारि जाइ वहुड़ि न फिरणां ॥२॥

पाठभेद—जुग जुग–५। अकल–३-४। श्रुति–४। वार न–३-५। पार–३। वहौडि–३-४-५।

शब्दार्थ—डोवी=पात्र। आकास की भिष्या=अनायास प्राप्त भिक्षा। उरम धुरम=इडा पिंगला। अकल=कलनरहितचेतन। अकलि कै=साधना द्वारा, शुद्ध बुद्धि में। चेत्या=सावधान हुआ। अगम ठौड=परमधाम, आत्मनिष्ठ। करसण=कृषि, खेती। वारिन=इसी किनारे, संसार मे ही। पार जाइ=पार पहुच, आत्मसाक्षात्कार कर। वहुड़ि=वापिस, पीछा।

* बाई न झलकै—प्राण अनवस्थित न हो यौगिक क्रियानुसार ही उसका प्रवाह रहे।

× विषयभोग की वासनारूपी चिन्ता लज्जित होकर चली गई।

21:01

अवधू दुष सुष मेटिवा संतोष धरि
रहिवा, सहज समाइवा ते जोगं ॥
हंस सूँ परमहंस मिलाइवा तहाँ लागि काटिवा काल रोगं ॥३१॥
स्वामीजी दुष सुष का घर कोंण
बोलिये, संतोष का घर कोंण बोलिये ॥
सहज समाइवा ते कोंण जोगं, परमहंस ते कोंण बोलिये तहाँ
लागि काटिवा काल रोगं ॥३२॥
अवधू दुष सुष का घर अहमेव
बोलिये, संतोष का घर समता बोलिये ॥
सहज समाइवा ते परमजोगं ॥
परमहंस पारब्रह्म बोलिये तहाँ लागि काटिवा काल रोगं ॥३३॥
स्वामीजी पांच इन्द्री पचीस प्रकृति, कोंण अस्थानि राषिवा ॥
, कोंण अस्थानि राषिवा वाई ॥
कोंण अस्थानि मन कूँ राषिवा, कोंण अस्थानि रहिवा समाई ॥३४॥
अवधू पाँच इन्द्री पचीस प्रकृति, उनमनि अस्थानि राषिवा ॥
वंकनाल में वाई ॥
मूल अस्थांनि मन कूँ राषिवा, सूँनि अस्थांनि रहिवा समाई ॥३५॥
ज्यूँ कुंभ जल सूँ भरया जल मांहि
भरया, अंतरि निरंतरि नीर माया ॥
यूँ मरमि भूला पद्म भेद पावे नहीं, सकलव्यापी कहै राम राया ॥३६॥
स्वामीजी कोंण फुनि फुनि षिरै
कोंण भ्रमता फिरै, कोंण के आसिरे सच कोंण पावे ॥
सति का सवद बोलो हो स्वामीजी, काल की चोट में कौंण आवे ॥३७॥

पाठभेद—घर–१। सहजि–४। स्यूं–१। मिलायव–२। प्रकृति–२। ग्रसथानि–२। यौं–१। भरमता–२। सत्य–२।

शब्दार्थ—ग्रहमेव=ग्रहंकार ही। समता=समभाव। सहज=स्वाभाविक, माया प्रविाद रहित चेतन। वाई=प्राण। वंकवाल=सुषुम्ना। षिरै=नष्ट हो, खंड खंड हो।

20:59

स्वामीजी विष रूप तैं कौंण बोलिये , अगनि रूप तैं कौंण छाया ॥
सुष रूप तैं कौंण बोलिये परम भेद तैं कौंण बोलिये, तहां काया न माया २४
अवधू विष रूप तैं ग्यांन दगधी , अगनि रूप तैं काम छाया ॥
सुष रूप तैं परम संगी , परम भेद तैं निरंजन राया ॥२५॥
स्वामीजी कौंण तत पलटिवा.कौंण घर आंणिवा, कौंण पुरस लेवा पाली ॥
कौंण असथानि मन उनमनि रहिवा, कौंण असथानि लाइवा ताली ॥२६॥
अवधू पांच तत पलटिवा सहज घर आंणिवा, प्रांण पुरस लेवा पाली ॥
अरध असथांनि उनमनि रहिवा , परम असथांन लाइवा ताली ॥२७॥
अवधू भरम का भांडा भांजिवा
त्रिवधि ताप मेटिवा , इला पिंगुला राषिवा नारी ॥
लोभ लू टालिवा वंकनाल वालिवा , तहां देषिवा झिलमिल जोति उजाली ॥२८॥
स्वामीजी भरम का भांडा तैं कौंण बोलिये , त्रिवधि ताप तैं कौंन बोलिये ॥
कौंण बोलिये , इला पिंगुला नारी ॥
लोभ लू तैं कौंण बोलिये वंकनालि तैं कौंण बोलिये , तहां देषिवा झिलमिल जोति उजाली ॥२९॥
अवधू भरम का भांडा ते मेंचक बोलिये , त्रिवधि ताप तीनि गुण बोलिये ॥
मन पवन बोलिये , इला पिंगुला नारी ॥
लोभ लू तें कनक कामणि बोलिये , वंकनाल सुषमनि बोलिये ॥
उलटेगी सुषमना परमसिंध भेदेगी , तहाँ देषिवा झिलमिल जोति उजाली ॥३०॥

पाठभेद—कूंण-५ । प्रम-१-५ । अस्थान-१-३ । पुरिस-१ । भ्यांजवा-२ । टाल्यवा-२ ।

शब्दार्थ—ग्यांन दग्धी=दिखावटी या वाचक ज्ञानी । परमसंगी=चिरसाथी । पांच तत पलटिवा=पांचो ज्ञानेंद्रियो को शब्दादि विषयों से हटा आत्माभिमुख करना । प्राण पुरस लेवा पाली=प्राण पुरुष श्वास-प्रश्वास का प्राणायाम द्वारा निरोध करना । अरघ अस्थांनि=नाभिप्रदेश । परम अस्थान=गगनमंडल, दशम द्वार ।

आरंभ विणि आरंभ , करम विणि करम स कीजै ।।
विणि तपस्या तप तहाँ , पाठ विणि पाठ पढीजै ।।१८।।

ईंधण विणि ईंधण , अगनि विणि अगनि स जारै ।।
विण ही निद्रा नींद , भूष विणि भूष संभारै ।।१६।।

नव नाथ लै साथि , मेर चढ़ि आसण धारया ।।
जोगारंभ विणि जोग , भोग विणि भोग विचारया ।।२०।।

नीर न झलकै पारा मारया , यहु आरंभ हम कीया ।।
ठगता जिकै सुतौ ठग ठावा , पकड़ि अगनि मुषि दीया ।।२१।।

पाठभेद—अग्नि-१ । इहु-२ । ज्यके-२ ।

१८ वी साखी—बिना किसी स्थूल क्रिया के आत्मचिन्तन का आरम्भ किया । स्थूल कर्मो के बिना चिन्तन, ध्यान, समाधि आदि कर्म मे लगा । तितिक्षामय पञ्चाग्नि आदि तप को छोड मन.संयम का तप होने लगा । बाहरी वाणी के पाठ बिना धारणा वृत्ति से स्वस्वरूपरूपी पाठ निरन्तर पढने लगा ।

१६ वी साखी—काम, क्रोध, लोभ, मोहादि ईंधन वाली विषयाग्नि को छोड त्याग, वैराग्य, शील, जरणा आदि की ईंधन वाली ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित कर सम्पूर्ण कर्म जलावे । बाह्य निद्रा-सुषुप्ति के बिना समाधिरूप योगनिद्रा ले । भोग-पदार्थो की भूख को छोड ब्रह्मानन्द रस की भूख जागृत करे ।

२० वी साखी—अन्तर्मुख पांचो ज्ञानेन्द्रियाँ, चारो अन्त.करण-ये नव नाथ साथ ले मेर चढ-सुषुम्ना द्वारा प्राण को दशम द्वार मे पहुचा, आसन धारघा-प्राण को स्थिर किया । बिना यम-नियमादि अष्टाग योग की साधना के राजयोगरूपी योग के अभ्यास मे लगे । सांसारिक भोगो के बिना स्वस्वरूप प्राप्ति रूप परम भोग भोगने का निश्चय किया ।

२१वी साखी—नीर न झलकै-मन में चचलता न रहे, पारा मारघा-वीर्य का पाचन कर ऊर्ध्वगामी बनाया । हमने यह साधन प्रारम्भ किया । लोभ, मोह तृष्णा, काम आदि ठग मन को ठगने वाले थे, उन सबको ज्ञानाग्नि द्वारा दग्ध किया ।

21:10

ग्यांन गदा लै मन कूँ मारै, ब्रह्म अगनि दे लंका जारै ॥
होम जिग अंतरि धुनि होइ, पाप पुंनि तहां लकड़ी दोइ ॥१४॥
+अब तो एक एक सूँ लग्या, जब लाग्या तब मन मन ठग्या ॥
दींनदयाल सतगुर की छाया, सहज समाधि परमपद पाया ॥१५॥
पैंडा अधर उलटि परधरै, नहीं घाट कंटकि कहा करै ॥
तारामंडल चंद सूर तजि ऊंचा जाई, परम जोति में रहे समाइ ॥१६॥
भोलि भूल ममता सब गई, अब तो बात और ही भई ॥
परम उदार अवगति की दया, करता राज रैति सो भया ॥१७॥
जोगमूल का जांखे भेद, जनम जुरा कंध नहिं छेद ॥
छिपी बात अभि अंतरि लहै, सबद विचार उनमनी रहै ॥१८॥
मन गहि पवन मेर गिर चूरै, भँवर गुफा में आसण पूरै ॥
ससिहर कै घर आंखे सूर, सबद अनाहद बाजै तूर ॥१९॥
मन भया मगन परम सुष मांही, ग्यांन गुफा मन छाडै नांही ॥
अरस परस आनंद रस एक, हारि जीति की रही न टेक ॥२०॥
त्रिवेणी तटि तालि लागी, मन थिर पवन सुषमना जागी ॥
दसवैं द्वार वस्या मन जाइ, बंकनालि इम्रत रस पाई ॥२१॥

पाठभेद—ज्यग–२। धुन्य–२। येक यक–२। सो–१। कटक–३-४। तज्य–२। रैंत–४-५। येक–१।

शब्दार्थ—लंका जारै=वासनामय गढ़ रूपी लंका को दग्ध करे। भोलि भूल ममता सब गई=सत्य चेतन को असत्य असत्य, पंचभूतात्मक शरीर को सत्य समझने की भोली भूल तथा देहाध्यास की ममता सब दूर हो गई। करता राज रैत सो भया=विषय में लगा मन इन्द्रियों पर राज करता था, वह अब विषय से हट आत्मा की ओर हो रैत–प्रजा की तरह वश मे हो गया। जोगमूल=चित्तवृत्ति की एकाग्रता, सहजावस्था प्राप्त करना यही जोग का मूल है। मन गहि पवन मेर गिरि चूरै=मन-प्राण को एकाग्र कर वासना तथा अहंकार के पहाड़ का चूर्ण करे। भँवर गुफा=दशम द्वार। त्रिवेणी तटि=त्रिकुटी तीर। बंकनालि=सुषुम्ना प्रणाली।

+ अब तो एक एक सूं लग्या=अब तो निश्चल हुआ एकाग्र मन उसी व्यापक विभु एक तत्व में ही लग गया है।

21:07

अवधू धुनि धूई प्रेम पलीता, ब्रह्म अगनि कांम क्रोध बलीता ॥
चित चौपड़ि पचीस सारी, प्राण षेलै ध्यान धारी ॥५६॥

दोहा—मनहि चरित निज ग्यांन है, सतगुरु दिया बताय ॥
जन हरीदास हरि अघट है, घटि घटि रह्या समाय ॥६०॥

॥ इति मनचरित जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मनमदविधूंस जोगग्रन्थ ॥

सतगुर कह्या मो आरंभ करिहूँ, अलष निरंजन हिरदै धरिहूँ ॥
हरष सोग चिंता सब जाई, मृघी पकड़ि सिंघ कूँ षाई ॥१॥
मनसा घटा गहर जल पूरि, चेला पांच अगनि मुषि चूरि ॥
पांणी जलै मीन मन मरै, ऐसा आरंभ जोगी करै ॥२॥
आसा नदी अपूठि वहै, इम्रत भरै गगन रस रहै ॥
नव सै नदी निवासी निहचल भई, आसा त्रिष्ना भूषी गई ॥३॥
आसण अधर पवन मन हाथि, सुरति जोगणी जागै साथि ॥
परम जोति आनंद अभ्यास, निरभै भया काल का नास ॥४॥
आसा के घरि चिंता वसै, काल रूपणि जीवहि डसै ॥
गंग जमन मधि वैसे जाई, तब जोगी चिंता कूँ षाई ॥५॥

पाठभेद—पेम १। च्यंता–२। मिरगी–१। म्रघो–१। इमिरत–१। तिसना–१।

शब्दार्थ—पचीस सारी=पचीस पंचभूतों की प्रकृति, वे ही सारी है, गोटें हैं। मृघी पकड सिह कूं षाई=निश्चल वृत्ति रूप मृगी मन रूपी सिंह को खा लेती है, स्थिर कर लेती है। चेला पांच अगनि मुषि चूरि=पांच ज्ञानेन्द्रियों की बाह्यवृत्ति को ज्ञानाग्नि से दग्ध करो। पाणी जलै मीन मन मरे=संसारी भोग भोगने की वासना रूप पानी जल जाय, तब मीनरूपी मन स्थिर हो मरे। आसा के घरि चिंता वसै=वासना जब तक है, तब तक चिन्ता भी बनी रहती है।

21:05

स्वामीजी तुम्हे कौंण ग्राही कहां सीधा, कौंण मोती कहां बीधा ॥
कौंण उलटि षेल्या कौंण पीया, सेस के मुषि कौंण दीया ॥
कौंण मेला कहां बैठा, पांच जोगी कहां पैठा ॥५२॥
अवधू हमें सारग्राही सबदि सीधा, मन मोती निज अरथि बीधा ।
मन उलटि षेल्या पवन पीया, *सेस के मुषि सिंघ दीया ॥
रवि ससि मेला चौकि बैठा, पांच जोगी गुफा पैठा ।
नव नाथ निहचल देषि भाई, गंग उलटी गगनि आई ॥५३॥
स्वामीजी कौंण धागा कहां लागा, कौंण निहचै मरम भागा ।
कौंण जोगी अवधूत वाला, कौंण आसण कौंण मृगछाला ॥५४॥
अवधू सुरति धागा सहज लागा, भेद पाया मरम भागा ।
प्रांण जोगी अवधूत वाला, गगनि आसण मन मृगछाला ॥५५॥
स्वामीजी कौंण टोपी कौंण कंथा, कौंण चेला कौंण पंथा ॥
कौंण झोली कौंण सिष्या, कौंण डीवी कौंण भिष्या ॥
कौंण जाप कौंण माला, कौंण जोगी कौंण पियाला ॥५६॥
अवधू तत टोपी षवरि कंथा, पांच चेला अगम पंथा ॥
उरध झोली सबद सिष्या, ग्यांन डीवी अजर भिष्या ॥
अजपा जाप मन माला, प्रांण जोगी पवन पियाला ५७॥
स्वामीजी कौंण धूई कौंण पलीता, कौंण अगनि कौंण वलीता ॥
कौंण चौपड़ि कौंण सारी, कौंण षेलै ग्यान धारी ॥५८॥

पाठभेद—स्यंघ–२। नो–१। म्रघछाला–२। मृघछाल–३। भ्रम–१। भ्मष्या–२। भष्या–५। भ्मष्या–२ प्रान–४। अग्नि–१।

शब्दार्थ—ग्राहो=ग्राह्य, चाहना। सीधा=सिद्ध हुआ, सफल हुआ। कंथा=गूदडी। सिष्या=शिक्षा, सीख। भिष्या=भिक्षा, भीख। चौपडि=चौपड।

५३वी साखी—इडा-पिंगला का मेल हुआ, मन वृत्ति हृदय मे स्थित हुए, पांच जोगी पाच प्राण गुफा मे पैठा नाभि मे स्थिर हुए। पांचो ज्ञानेन्द्रियां चारों अन्त.करण निश्चल हो गये, सुषम्ना उलट गगन मंडल में, दशम द्वार में आ गई।

* कुण्डलिनी रूपी सर्प के मुख मे प्राण रूपी सिंह को दिया।

नैंणां राम वसौं हरि वैंणा , सकल सुषां सुष लाधा ॥
*सुर तेंतीस घेरिं घर आया , सतगुर डोरा वांधा ॥२४॥
अरधैं उरधैं चौंरी चरचै , तहां हथलेवा दीया ॥
अति उछाह अवला मनि आनंद, हरि सूँ फेरा लीया ॥२५॥
रली रंग राग नाना विधि , ×सूनिमंडल कै छाजै ॥
पति सूँ प्रीति जीति गुण दूजा , वेणि गगन मैं वाजै ॥२६॥
ग्यान गुलाल केसरि वहौ करणां, अरथ अवीर पिंडाया ॥
आजि मषी हरि महल पधारया , मल म्हारै मनि माया ॥२७॥
मुंदरि सेज माच उर अंतरि , समता सौडि विछाई ॥
राम राइ तहां आय विराज्या , सो सुष कह्या न जाई ॥२८॥
गात गुफा में गम करि राषूँ , सेझ सनेही आया ॥
विणि दीपग दह दिसि उजियाला, आंगणि चौक पुराया ॥२९॥
घरि घरि मंगलचार सदा सुष , वर वरयौ वनमाली ॥
सुष में मीर अषिल अविनासो , परम जोति सूँ ताली ॥३०॥
परणि परसि हरि संगि कर लीन्ही, पति को पलौ न मेल्हूँ ॥
जन हरीदास निमदिन अति आनंद , ता आनंद मैं षेलूँ ॥३१॥

॥ अथ व्याहलो जोगग्रन्थ समाप्त ॥

पाठभेद— वसे–१ । मन–५ । सों–१ । स्यो–१ । गिगन–१ । वहु–१ । आज–१-५ । मल–१५ । मुन्दर–५ । राषौं–१-५ । दीपक–३ । उजियारा–५ । घर-घर–५ । स्यूं–१ । संग–१-५ ।

शब्दार्थ—नैंणा=नेत्र । वैंणा=वांणी । अरधे उरधै=मूल–अपान स्थान । उरधै दशम द्वार के बीच मे हृदय-गुहा । रली–मनचाही । गात=काया, शरीर । गुफा=हृदयगुहा । मेल्हूँ=छोड़ूँ, धरूँ ।

* सुर तेतीस घेरि घर आया=सुर प्राण तेतीस मेरुदण्ड तथा ग्रीवा के म्होरो में से सुषुम्ना नाडी द्वारा प्रवाहित हो घर आया—दशम द्वार सहस्रार दल मे स्थिर हुआ ।

× सूनिमंडल के छाजे=गगनमण्डल-ब्रह्मरन्ध्र के छाजे–किनारे ।

कवहूँ चिंता के घरि वहै , कवहूँ अटकि अपूठा रहै ॥
कवहूँ ग्यान ध्यांन उरि धारै , कवहूँ ऊलटि आपकौं मारै ॥३॥

कवहूँ जरणां अजराजरै , कवहूँ सवद कह्यां षिजि मरै ॥
कवहू पांचू इन्द्री दवै , कवहूं मेर तेर ले ऊँचा मवै ॥४॥

कवहूँ मोह विरछ फल षाइ , कवहूं साध संगति चलि जाइ ॥
कवहूं त्रिविधि ताप मैं वसै , कवहूँ ब्रह्म अगनि मैं धसै ॥५॥

कवहूं हरि तरवर तहां जाइ , कवहूं वैसै पूठा आइ ॥
कवहूं ल्यौ कै पैंडे जीवे , कवहूँ अगम पियाला पीवे ॥६॥

कवहूं हारि जीति रस रीति , कवहूँ राम भजन सूँ प्रीति ॥
कवहूं काया कांमणी कसै , कवहूं काया सूँ मिलि षेलै हसै ॥७॥

कवहूँ चंद सूर समि करै , कवहूं ध्यांन अलष का धरै ॥
कवहूं त्रिवेणी संगि न्हावै , गुरगमि वस्त अगोचर पावै ॥८॥

कवहूं उलटा षेलि काया सव सोधै, सुंनिमंडल मैं पवन निरोधै ॥
हठ करि मरै न वैसे हारि , अगम ध्यांन धरि सहज विचारि ॥९॥

षटचक्र मैं एकै डोरि , सतगुर सवद गया मन चोरि ॥
एकमेक अंतरि कछु नांहि , पूरण ब्रह्म वसै ता मांहि ॥१०॥

वंकनालि इंम्रत रस षाइ , मन माया छाया वैसे न जाइ ॥
मेरडंड मधि डोरी लहै , ब्रह्म अगनि काया वन दहै ॥११॥

पाठभेद—च्यंता–१ । कूँ–३-४ । पाचो–१-५ । व्रिछ–२ । वृछ–३ ।चकर–१ । येक–२ । कुछ–१ । इमिरत–१ ।

शब्दार्थ—अणरागी=राग से रहित, अनासक्त । आपकौ मारे=अपना निग्रह करे । षिजि=कुपित हो, गुस्से मे हो । दवै=जलावे, दग्ध करे । ऊँचा भवै=अभिमान करे, गर्वित हो । धसै=बूडे, प्रवेश करे । पूठा=पीछा, वापिस । ल्यौ=लौ, ध्यान, आत्म-चिन्तन की लगन । चन्द्र सूर समि करै=इडा-पिंगला मे चलने वाले विषम प्राण को सम करै–सुषुम्ना मे लावे । त्रिवेणी=त्रिकुटिस्थान । षट्चक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाचक्र । एकै डोरी=सुषुम्ना-प्रवाह ।

21:18

मन मोती मन सीप, मन वहो दीप दिषावे ॥
मन सिलता मन सिंध, मन फिरि मन ही समावे ॥१३॥
सुषमनि उलटि फेरि, साच मन निकट बतावे ॥
वंकनालि विश्राम, फेरि नामी सूँ लावे ॥१४॥
*पांणी मांही पैसि, अगम का हीरा ल्यावे ॥
मन फिरि ग्रासै कांम, क्रोध की ठौर उठावे ॥१५॥
मैं तैं गरब गुमान, निमष तहां रहण न पावे ॥
गगनमंडल मठ छाय, अगम सूँ सुरति लगावे ॥१६॥
आगै अणभै सीर, गगन रस उलटा आवे ॥
जन हरीदास मन विकट है, वहुत रूप करि जाइ ॥
पकड़ीजै तौ परमसुष, ढीलौ छोड्यां षाइ ॥१७॥

॥ इति मनमतौ जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मनउपदेस जोगग्रन्थ ॥

कवहू फाड़ै कवहू जोड़ै, कवहू सीवै कवहु तोड़ै ॥
कवहू सोवै कवहू जागै, कवहू जोग ध्यान सूँ लागै ॥१॥
कवहूक अलप आहारी थोड़ा षाई, कवहूक टूका लेइ अघाई ॥
कवहू हेत प्रीति अणरागी, कवहू सुरति निरंजन लागी ॥२॥

पाठभेद—वहु–१ । स्यध–२ । निकटि–४-५ । ठौड–३-४ । स्यौ–१ ।

शब्दार्थ—सुषमनि=सुषुम्ना नाडी । वंकनालि=सुषुम्ना मार्ग, मेरुदड से दशम-द्वार तक । निमष=पल भर, क्षण । अणभै=अनुभूत, प्रत्यक्ष । अघाई=धाप कर ।

* पाणी मांही पैसि अगम का हीरा ल्यावे=सहस्रार दल में चन्द्रमा द्वारा स्रवित पानी मे प्राण स्थिर कर अगम आत्मारूपी हीरा लावे, स्वस्वरूप की प्राप्ति करे ।

21:30

सुकरवार सहज घर लाधा, नीर न झलकै पारा बांधा ॥
मार अठारा पसरि न पोषै . नभ वहणि पवन धरणि नहि सोषै ॥
निरमै भया भरम सब भागा, ल्यौ की डोरि उनमनि लागा ॥७॥

थावर थिर सतगुर समझाया, पूरण ब्रह्म तहां काल न काया ॥
परम जोति परकाम विराजै, सुनिमंडल मैं सींगी बाजै ॥
सो धन सुझि किरपण का हीरा, देषि देषि मन राषूँ धीरा ॥८॥

सात वार का भेद विचारूँ, पैंडे चलूँ न बैठा हारूँ ॥
औघट घाट तहां मन जागै, मया अपंक पंक नहिं लागै ॥
जन हरीदास सतगुर की छाया, सहज समाधि परमपद पाया ॥९॥

॥ इति वार जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ हंसपरमोध जोगग्रन्थ ॥

स्वामीजी पड़दा कौंण परमनिधि आड़ा, कहां षेलि दुष पावै ॥
पहिरया स्वांग साच नहिं दरसै, सो फिर कहाँ समावै ॥१॥

पाठभेद—शुक्रवार–१। सहज्य–२। सुझ–१-३। विचारौं–१। हारौं–१। कृंण–१। फेरि–४।

शब्दार्थ—थावर=शनिवार। हारूँ=खोऊँ, हार जाऊँ। अपंक=शुद्ध, निर्मल। पंक=कीच, विषयवासनामय। पडदा=आवरण, आड। स्वांग=बनावटी भेष।

७वी साखी—सुकरवार सहज घर लाधा=शुक्रवार लाभदायी वार है जिसमे अपना स्वाभाविक घर-आधार ब्रह्म प्राप्त हो गया। बद्ध पारा जैसे विचलित नही होता है वैसे ही न तो प्राणमय न ही वीर्यमय पानी उछलता है–प्राण तथा वीर्य दोनों स्थिर हैं। बीस दिन की भार संज्ञा है–वर्ष के अठारह भार होते है। अभिप्राय है कि मन अब किसी भी दिन पसरि–विषयों मे जाकर पोषण प्राप्त नही करता। नभ वहणि पवन=गगनमण्डल ब्रह्मरन्ध्र मे स्थित हुए प्राण मूलाधार में–अपानस्थान में आ उस अमृत का शोषण नहीं करते, जिसका स्राव ब्रह्मरन्ध्र–केन्द्र मे चन्द्रमा द्वारा होता रहता है।

॥ अथ वार जोगग्रन्थ ॥

वार वार मनकूँ परमोधूँ, मन गहि पवन सहर सव सोधूँ ॥
आदित अगम ग्यांन उरि धारैं, मात वार का भेद विचारैं ॥१॥

जोग मूल गहि जोगी जागै, धुनि में ध्यांन तहां मन लागै ॥
हरि सुष वार पार मधि मांहि, निरभै घर लाधा घर मांही ॥२॥

सोमवार सहजि मन जागै, पवन निरोधै आरंभ लागै ॥
×अरध उरध मधि घूंम चढावैं, वहौत भांति सूँ वेगर लावैं ॥३॥

काया करम मैल सव धोवै, धूप लगावैं अंवर धोवैं ॥
मंगलवार वार है नीका, और सकल रस लागै फीका ॥
मन गहि पवन अटकि घर आवैं, गंग जमन मधि पैंडा पावैं ॥
वरषै अमी अखंडित धारा, सुषमनि सींचै वाग हमारा ॥४॥

वुधवार अनभै वुधि वांणी, अगम वसत अभि अंतर जांणी ॥
त्रिवेणी तट ताली लागी, इन्द्री पांच सुवधि ले जागी ॥
वंकनालि इंम्रत रस पीवैं, परचै लागा जोगी जीवैं ॥५॥

व्रसपति विष वन मांहि न रहिये, विष फल षाइ वहोड़ि दुष सहिये ॥
विष वन वारपार मधि नांहि, सुर नर असुर वसैं ता मांहि ॥
पैंडा अधर परमगति भूला, पूठा फिरै न जम वंध घूला ॥६॥

पाठभेद—परमोधौ–१। सोधौ–१। आरंभि–४। आरंभ्य–२। वहुत–१। आया–१। पाया–१। अणभै–३-४। वस्त–३-४। विसपति–१। व्रिसपति–२।

शब्दार्थ—सहर=कायानगरी। सोधूँ=साफ करूँ, शुद्ध करूँ। आदित=रविवार। अगम ग्यांन=परम ज्ञान, आत्मज्ञान। अटकि=रोककर। पैंडा=पथ, मार्ग। त्रिवेणी=भृकुटिस्थान। ताली लागी=लौ लगी, ध्यान लगा। विष वन=संसार। पैंडा अधर=निराधार वृत्तिमय मार्ग। पूठा=पीछा, वापिस।

× श्वास-प्रश्वास रेचक-पूरक प्राणायाम के पश्चात् विभिन्न प्राणायाम की साधना कर इन्द्रियो और मन के मैल को साफ करे। ज्ञानज्योतिरूपी धूप लगावे, गगनमण्डल की स्वच्छता करे।

21:22

॥ ×अथ टोडरमल जोगग्रन्थ ॥

अनहद बेणि बजाइ, तोड़रमल जीतोजी ॥
हरि भज उतरे पार, तोड़रमल जीतोजी ॥१॥

मन गहि पवन अगम गम कीया, परम सनेही पाया ॥
पांच सषी मिलि मंगल गावैं, आंगणि चौक पुराया ॥२॥

चित चौकी हरिचरणां राष्या, , कंवल सिंघासण दीया ॥
इला पिंगुला करैं आरती, प्रेम कलस उरि लीया ॥३॥

गगनमंडल मैं रच्यो मांडहौ, पांच तणी ल्यौ तांणी ॥
आतम परआतम हथलेवौ, पीव संगि षेलै प्रांणी ॥४॥

जन हरीदास हरि अरस परस होइ, नैंणा नेह बंधाया ॥
जाकी थी सो महल पधारया, राम सनेही आया ॥५॥

॥ इति टोड़रमल जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ इमृतफल जोगग्रन्थ ॥

असलि भाव जब अंतरि आवे, ग्यान बिचार बमेक बतावे ॥
दया मवूरी जरणां जोग, त्रिवधि ताप का लगै न रोग ॥१॥

पाठभेद—च्यत–२। स्यंघासण–२ । बिमेक–१। त्रिविध–१।

शब्दार्थ—तोडरमल=जीवात्मा । पांच सषी=पाचों ज्ञानेन्द्रियां । कंवल=हृदय-कमल । उरि=अन्त.करण मे । माडहौ=विवाह-मण्डप, माडा । नैंणा=नजरों मे, नेत्रों मे । जरणां=सहनशीलता ।

× यह ग्रन्थ भी एक रूपक रूप में है । विवाह के पश्चात् कुछ उत्तरकर्म होने हैं, व्याजतः यहां भी उसका निरूपण किया गया है ।

स्वामीजी तीन लोक नांना रस विलसैं, अंति काल दुषदाई ॥
तीन लोक आगै सुष स्वामी, मो सुष देह वताई ॥४२॥
अवधू दिष्टि न मुष्टि ध्यांन नहि गाथा, रहै सकल तैं न्यारा ॥
तीन लोक आगे सुष जैसा, ताका वार न पारा ॥४३॥
स्वामीजी सो सुष कहो किसी विधि लाभै, करम न व्यापै काया ॥
जन हरीदास सतगुर कूँ पूछै, समझावो गुरराया ॥४४॥
अवधू आत्म के असथांन लहीजै, मन थिर है तो पावै ॥
परसत सवै देह गुण त्यागै, पीव मैं प्राण समावै ॥४५॥
स्वामीजी आत्म का अस्थांन कहां है, जा मैं अलष लुकाना ॥
मैं स्वामी सतगुर सति पूछौं, तुम हो बहोत सयाना ॥४६॥
अवधू सवद जहां तैं उठि चलत है, उलटा पवन समाई ॥
मौंज सहित सुषमनि नदी, तहां मिलै जो जाई ॥४७॥
स्वामीजी मन मतिवाला प्रेम का, पीवै प्रेम अघाई ॥
रोम रोम तन मन मिलै, एकमैक सुष थाई ॥४८॥
अवधू अंतरि कुछ दीसै नहीं, ज्यूँ जल जल ही समाइ ॥
तव हरि हरिजन एक है, जन हरीदास सति भाइ ॥४९॥

॥ इति हंसपरमोध जोगग्रन्थ समाप्त ॥

पाठभेद—कौं-१ । प्रसत-१-५ । लुकाणा-१ । वहुत-१ । सियाणा-१ । महैन-२ । सहत-५ । मिले-३ । मेक-२ ।

शब्दार्थ—गाथा=कथा, कहानी । लुकाना=छिपा, अदृश्य । सयाना=प्रवीण, स्याणा, परम विज्ञ । मौज सहित=रेचक, पूरक, कुंभकसहित-प्राणायामादि सहित । अघाई=तृप्त होकर, धाप कर ।

21:43

अवधू संजम सील ग्यांन घसि झूलै, धोती ध्यान लगावै ॥
सुषमनि डोरि गगन मैं रोपै, षिमां कलस भरि ल्यावै ॥३३॥
स्वामीजी कौंण वस्त जा सूँ मन परसै, कैसे चौका देवै ॥
कौंण वस्त लै आगै अरपै, कौंण जतन सूँ सेवै ॥३४॥
अवधू आतम परमातम पति परसै, मनसा चौका देवै ॥
प्रेम प्रीति लै आगै अरपै, वहौत जतन सूँ सेवै ॥३५॥
स्वामीजी देवल कौंण कहां सो मूरति, सेवग क्यूँ सुष पावै ॥
चौकी कौंण कहां सो राषै, पाती कौंण चढावै ॥३६॥
अवधू ऊंधा कँवल सुलटि करि सूधा, वटवै वस्त वतावै ॥
चित चौकी हरिचरणां राषै, तन मन पाती लावै ॥३७॥
स्वामीजी पैंडा कौंण किमी विधि चलिवो, निरषि निरास विचारै ॥
रूपकि रचै न घरि घरि नाचै, जुरा जोगिणि हारै ॥३८॥
अवधू पैंडा अधर पगां विणि चलिवो, आंषि अनूप उघारै ॥
आनंद सहित एक रस पीवै, करम कणूँ का डारै ॥३९॥
स्वामीजी अवला कौंण अगम घर पेलै, पूत परीषिन जाया ॥
जामत सबै सकल कुल सनमुषि, परम सूँनि सूँ लाया ॥४०॥
अवधू बाँझ भई जब वेटा आया, वेटै वनषंड जारा ॥
रसना षषै पेम रस विलसै, परचै प्रांण अधारा ॥४१॥

पाठभेद—प्रसै–१। आत्म–१-४। परमात्म–१-४। वहुत–१। त्रिन–३-५। मनमुष–३-५।

शब्दार्थ—घसि=प्रवेश कर, तन्मय हो। झूलै=स्नान करे, एकमेक हो। वस्त=अमूल्य पदार्थ, आत्मतत्व। अरपै=भेंट करे, समर्पण करे। ऊँधा कँवल सुलटि करि सूधा=षट् चक्रो के कमल अधोमुखी होते हैं उनको सुषुम्ना मे प्राण प्रवाहित कर ऊर्ध्व-मुख करना। वटवै=हृदयरूपी वटुए मे। रूपक रचे न=साग न बनावे, कार्पटिक ढोंग रचना। आंषि अनूप=ज्ञानरूप नेत्र। पगा विणि= बिना पैरो के, सुरति द्वारा। बाँझ भई=निश्चल हुई, वासनारहित। वेटा=पुत्र, निर्भ्रान्त रूप ज्ञानमय पुत्र। वैसे लोक मे बाँझ के सन्तान सभव नही पर आत्मसाधना मे बुद्धि स्थिर हो वासनाहीन हो तब वह बाँझवत् हो जाती है–तभी ज्ञानरूप पुत्र उत्पन्न करने मे सक्षम होती है। वनषड=जंगल, विविध वासनामय जंगल।

21:39

अवधू त्रिवधि ताप में झूलै षेलै , परम भेद नहिं पाया ।।
अंतरि अगनि गोपि ज्यूँ की त्यूँ , देषा देषि दुराया ।।२।।
स्वामीजी काँटा कौंण कहाँ सूँ लागा , कौंण सूई लै काढ़ै ।।
वांणी कौंण अगम घरि षेलै , मेर कहाँ लै षाढ़ै ।।
अवधू काँटा कुवधि गड्या उरि अंतरि, ग्यांन सूई लै काढ़ै ।।
वाणी ब्रह्म अगम घरि षेलै , मेर गगन सुष चाढ़ै ।।४।।
स्वामीजी उदबुद कथा कहा कहि वरणूँ , त्रिवधि ताप की छाया ।।
दिष्टि पड़ै पण निकसै नांही , या काँटै मव षाया ।।५।।
अवधू निहचा पषै परम पद न्यारा , निरमल ग्यांन न आया ।।
जहाँ निज ग्यांन सुरति कै नाकै , तहाँ काँटा चुषि षाया ।।६।।
स्वामीजी सूना सहर कौंण विधि वासै, सहजि समाधि लगावै ।।
×उलटा षेलि आकास गरासै , गम मैं अगम वतावै ।।७।।
अवधू सतगुर का चेला समि षेलै , गुण तज निरगुण दरसै ।।
लोहा पलटि होइ जव कंचन , तव पारस मणि परसै ।।८।।
स्वामीजी कौंण किवाड़ी जड़ै जतन सूँ , कौंण पियाला चाषै ।।
जाता कौंण फेरि घरि आंणै , सुरति कहाँ लै राषै ।।
अवधू काम किवाडी जड़ै जतन सूँ , पवन पियाला पीवै ।।
मन कूँ पकड़ि सहजि घरि आंणै , ल्यौ कै पैंडे जीवै ।।१०।।

पाठभेद—ज्यो–१ । त्यो–१ । कुवुधि–१ । गिगनि–१ । दिमटी–२ । द्रष्टि–५ । ग्रासे–१ ।

शब्दार्थ—गोपि=छिपी हुई । दुराया=छिपाया । उदबुद=अद्‌भुत, अनोखी । दिष्टि पड़ै=नजर पड़ती है, ध्यान जाता है । निहचा=संशय-विपर्यय रहित, दृढ धारणा । पषै=पक्ष, सापेक्षिक-धर्म, व्रत, तप, पुण्यादि । आणै=लावे ।

× उलटा षेलि आकास गरासै=प्राणप्रवाह को जो अपान से उठकर मुख मार्ग मे आता-जाता है, सुषुम्ना द्वारा मेरुदण्ड की ओर उलट कर गगनमंडल मे प्रवेश करे, तभी गम मे—दृश्यमान इस पञ्चभूतात्मक देह मे—अगम चेतन तत्त्व बतावे, प्राप्त करावे ।

21:45

सूकड़ि समता उरि घसि लाई, सषी महेली साथि बुलाई ॥
पाँचै पीव परसण भया, भेद सहित भगवंत ॥
रासमंडल में होत है, घरि घरि राग वसंत ॥६॥
छठि छक्या छक लाधा भारी, महलि पधारें देव मुरारी ॥
×गंगा उलटि जमन में आँणी, बाहरि भीतर एकै पांणी ॥
गिरवर गरक भया ता मांही, अगम अथाह थाह कछु नांही ॥
रूप अरूप मोह नहिं माया, निज निरलेप निरंजन राया ॥
चाँदणि छठि आई सषी, मिटि गया मोह अंधार ॥
अरस परस मिलि षेलिये, अब औसर याइ वार ॥७॥
सातैं समझि पड़ी सुष पाया, आनंद सहित अरथ में आया ॥
✻निरमै सीर नीर निज नेरा, ता सुषि लागि रह्या मन मेरा ॥
वहौत दिनै तैं या रुति आई, वस्त अथाह न जाइ छिपाई ॥
जाँणि वूझि ऐसा कछु कीया, अब हरि हम अपणाँ करि लीया ॥
मातैं सातौं समि सदा, निजपुर नगर निवास ॥
विणि वादल वरसा सदा, छह रुति वारह मास ॥८॥

पाठभेद—ल्याई-५। सहैत-२। या-३। वहुत-१। मातूं-२।

शब्दार्थ—सूकडि समता=समता रूपी चन्दन। घटि छक्या छक लाधा भारी= अन्त.करण तृप्त हो गया-भारी मौका मिला। जाणि वूझि=सोच-समझकर। सातो= ज्ञानेन्द्रिया पाच, मन, प्राण-समि सदा-सम स्थिति मे बनाये रहे।

× गंगा उलटि मन को अन्तर्मुख कर जमन मे-प्राण मे आँणी-मि… 133/189 प्राण दोनों सुस्थिर हो तो पिड-ब्रह्माड मे व्याप्त परमानन्द रूप एक ही पाणी की प्रतीति हो। जब परमानन्द की प्राप्ति हुई तो उस अगम अथाह आनन्दसमुद्र मे अहंकाररूपी महापर्वत गरक हो गया-विलीन हो गया।

✻ कालादि भयो से रहित सत् चित् आनन्दरूप ब्रह्म की सीर-प्रवाह मे अमृत नीर प्रवाहित है, वह आत्मा के अत्यन्त समीप ही है।

कांम न झलकै कलपि न जांणै , ये नौ नाथ हाथ मैं आंणै ॥
तीज इमी विधि कीजियै , ज्यूँ सति मानैं साह ॥
साहिब सूँ मिलि षेलिये , आगै वसत अथाह ॥३॥
तीजस त्रिसना तिल तिल षांडै , तीन गुणां आगै पग मांडै ॥
*इला पिंगुला सुषमनि मेलैं , वैसि निरंतरि चौपड़ि षेलै ॥
साध मंडली साथि विराजै , अनहद नाद अषंडित वाजै ॥
चंद सूरि समि अरथ विचारैं , धुंनि मैं ध्यांन कँवल दल धारैं ॥
तीज रमत पीव तैं डरूँ , पिव रूठां कहां ठौर ॥
जन हरीदास आनंद भया , छूटि गया भ्रम और ॥४॥
चौथिस च्यारयौं चोट चुकावैं , मझि सुदेस वसै सुष पावै ॥
करज न काढ़ैं मूल न हारैं , आंन न जाचै राम जुहारै ॥
आइ साषि समझि घरि आवै , यहु सुष साहि सदा सुष पावै ॥
करम कपाट झड्या सब ताला , आतम अंतरि जोति उजाला ॥
चौथिस चौपड़ि षेलिये , दोइ दोइ चौट चुकाइ ॥
तीन तजि सारी मेल्हिये , चौथा घर मैं जाइ ॥५॥
पांचै पांच पलटि पहिलावैं , वैसि दुलीचै लोग बुलावै ॥
साजन सैंण पिसण को नांही , अरथ अबीर पड्या सब मांही ॥
ग्यांन गुलाल केसरि वहो करणां , अंग लगाइ चलो हरिचरणां ॥

पाठभेद—ए–३–४ । ज्यौं–१ । स्यूँ–१ । त्रिष्ना–३-४ । डरौं–१ । च्यारूँ–५ । वहु–१ ।

शब्दार्थ—कलपि=तरस, लालायित । वैसि=बैठ, स्थिर हो । साध मंडली= दैवी सम्पत्तिगुणसम्पन्न । च्यारचो चोट=काम, क्रोध, लोभ, मोह का वार । मंझि सुदेस=शुद्ध हृदयदेश के मध्य । दोइ दोइ=भेद भाव, कामादि दो दो के द्वन्द्व मेरा-तेरा । तीन तजि=तीनो गुण, तीन अवस्था जागृतादि । पांच पलटि पहलावे=पाचों ज्ञानेन्द्रियों को पलटि अन्तर्मुखकर आत्मा मे लगावे । दुलीचै=गलीचे, जाजम, हृदय-प्रदेश मे बैठ । साजन=हितैषी, शील, सत्य, सन्तोषादि । पिसण=चोर लुटेरा, काम-क्रोध-अहंकारादि । अरथ=मतलब, सत्यज्ञान ।

* इडा, पिंगला, सुषुम्ना तीनों को सम कर त्रिकुटि-भ्रूमध्य स्थान मे लावे ।

॥ अथ तिथि जोगग्रन्थ ॥

ग्यान मवद सति अरथ विचारै , मावस मन का मेल उतारै ॥
सुरति संवाहि वसै निरदावै , सांच न छाड़ै झूठ न मावै ॥
मैं तैं मोरचा मोटा मांही , तिल तिल काढ़ै राषै नांही ॥
*सोलह कला समझि घरि आवै , अरधै उरधै ताली लावै ॥
करम कलणि कांने करै , व्रह्म अगनि मैं जारि ॥
जन हरीदास मावस व्रत , कोई करसी साध विचारि ॥१॥
पड़वा पलटि सुपह पथ जांणै , मूल मता मैं मनसा आंणै ॥
मरम न भेदै मन न डुलावै , गुर परसाद परम पद पावै ॥
×सतजुग आदि जागि जुगि जीवै, पवन निरोधै अंबर धोवै ॥
जुरा न व्यापै जुगि जुगि जीवै, सहज समाधि सदा रस पीवै ॥
पड़ता पासा छाड़ि दै , वैसै अजर जहाज ॥
जन हरीदास पड़िवा सुपह , सकल तिथ्यां सिरिताज ॥२॥
बीज विवधि विष वांण चुकावै , मन गहि पवन गगन मठ छावै ॥
यहु पण साहि पिसण पड़ि पैलै, अगम उजास तहां मिलि षेलै ॥
हरि सुष हेरि हजूरि वतावै , आनंद मैं गोविंद गुण गावै ॥

पाठभेद—अर्थ-५। सुरचा-२-३।-सोल्ह-५। गुरु-१। निथा-५। वारिण-?। गगनि-१। इहु-२। मिल्य-२।

शब्दार्थ—संवाहि=संभाल, वृत्ति को अन्तर्मुख कर। मोरचा मोटा=भेदभावना का प्रबल सामना। करम कलणि काने करै=सकाम कर्म के दलदल को दूर करे। मूल मता मे=तत्वविचार मे वृत्ति को लगावे। वीज=द्वितीया तिथि। विष वाण=जहरीले तीर, विषय-वासनामय विषाक्त बाण। पण=व्रत, प्रतिज्ञा। साहि=साहूकार, श्रेष्ठ पुरुष, दृढ साधक। पिसण=लुटेरे, डाकू, काम-क्रोधादि। हजूरि=सम्मुख।

*सोलह कलामय चन्द्रमा ब्रह्मरन्ध्रगत मध्यबिन्दु मे है, उसको समक्ष जान वही प्राण का घर है, प्राण को वहां ला-समाधिस्थ हो।

×जो तत्व सत्ययुग आदि युग युगो मे पहिले है, उसीको सचेत हो सम्पूर्ण विश्व मे देख प्राण का प्राणायाम द्वारा निरोध कर समाधि-साधना मे लगे ताकि हृदयाकाशरूप अम्बर स्वच्छ हो-निर्मल हो।

परम तेज पर जोति , जोंति मैं जोति 'निवासा' ॥
उलटा चढ्या अकासि , मूल मंडल मैं वासा ॥३३॥

ब्रह्म 'छोलि' मैं छक्या , लोभ की 'लाइ' बुझांणी ॥
ब्रह्मा विष्न महेस , सेस भागा विणि पांणी ॥३४॥

नारद सेती नेह , ग्यांन गोरष रजध्यांनी ॥
अनहद सवद उचार , सुरति निज सवद समांनी ॥३५॥

पाँचौ 'पांडू' फेरि , घेरि अपणै घरि आया ॥
चांवड़ कै सिरि चोट , भेद भैंरूँ का पाया ॥३६॥

'केरूँ' सेनि अपार , अटकि अरि फौज उड़ाई ॥
चंद सूर समि किया , तत्त सूँ ताली लाई ॥३७॥

'नौसै' जोगणि साथि , फेरि जाता मन लीया ॥
*अनंत सिधां सूँ प्रीति , सहज मैं स्यौ रस पीया ॥३८॥

नऊँ नाथ निज ठौर , अकल तरवर की छाया ॥
ग्यांन 'सिंघासणि' वैसि , राम रटतां पति पाया ॥३९॥

जथा तिलां मैं तैल , 'काष्ठ' मैं अगनि निवासा ॥
जथा दूध मैं घिरत , 'पहौप' मैं परमल वासा ॥४०॥

पाठभेद—न्यवासा–३-५ । छोल्य–२ । छोल–५ । लहर–५ । पाडौ–५ । केरो–१ । नवसे–१ । स्यंघासण–२ । कासट–२ । पहुप–१-५ ।

शब्दार्थ—लाइ=अग्नि । बुझाणी=शान्त हुई, बुझी । ब्रह्मा विष्न महेस=रज, सत, तम । सेस=सशयसर्प । भागा विणि पाणी=मायारूपी पानी के अभाव मे भग गया । नारद=नामचिन्तन रूप नारद । पांचौ पाडू=पाचो ज्ञानेन्द्रियां । चावड=कुमति । भैरूँ=भ्रम रूप । केरूँ सेन अपार=विकाररूप कौरवो की अपार सेना है । चंद सूर=मन-प्राण । तत्त=ब्रह्मतत्व । नौसै जोगणि=नौ सौ नाडियां प्राण के साथ है । नऊँ नाथ निज ठौर=पांचो ज्ञानेन्द्रियां चारो अन्त करण अन्तर्मुख है । जाग्या=साधना मे लगा, सचेत हुआ ।

* अनंत सिधां सूँ—नानाविधि साधनसम्पत्ति से प्रेमकर सहज दशा मे पहुच कर आत्मानन्दरूपी कल्याणदायी रस का पान किया ।

21:48

पड़िवा पथ पर सब तजी, सु तौं श्रौर ही वाट ॥
गगनमंडल श्रासण किया, लांघ्या श्रौघट घाट ॥२॥
वीजस वीज न षोइये, राषौ वीज श्रवीज ॥
जन हरीदास गरजैं गगन, सहजि चमकै वीज ॥३॥
तीज त्रिगुण रस घेरि करि, ब्रह्म अगनि मैं जारि ॥
दौं लागी ×दरिया जलै, तुरिया भेद विचारि ॥४॥
चौथि चाह चक्रत भया, उलटी तालो लाई ॥
गंग जमन मधि पैसि करि, मीन मगर गई षाई ॥५॥
पांचै पांचौ फेरि मन, सुरति सहजि धरि धारि ॥
मन तारामंडल छेदि गया, उलटी पंथ सँवारि ॥६॥
छठि श्रछिप घट मैं छिप्या, पूरण परमानंद ॥
परसि परसि पावन भया, जहां तहां आनंद ॥७॥
सातैं सर ऊसर भया, पहमि पलटि गत नीर ॥
मछली बसै आकास मैं, लगी प्रेम की सीर ॥८॥
आठैं अरि सब परिहरि गया, असलि उदै भया ग्यांन ॥
आठ पहर इम्रत सुधा, वाज पियाले पांन ॥९॥

पाठभेद—फेरिके-४। अग्नि-१। चक्रित-१। वैसिकैं-५। पांचू-२।

शब्दार्थ—वाट=राह, साधनमार्ग। वीजस वीज न षोइये=वीज-द्वितीया तिथि वही सफल है जिसमें आत्मचिंतन रूपी बीज को भुलाया न जाय। वीज=बिजली, ज्ञानज्योति। दौ लागी=लाय लगी। चक्रत=चकित। मीन मगर गई षाई=स्थिर बुद्धि रूपी मीन-मछलीने-मन रूप मगर को खा लिया विषयो से हटा आत्माभिमुख कर दिया। पांचौ=पंच ज्ञानेन्द्रियाँ। तारामंडल=गगनमंडल, दशम द्वार। श्रछिप=नहीं छिपने वाला, प्रत्यक्ष। सर=सरोवर, विविध वासनामय तालाब।

८ वी साखी—सातैं सर ऊसर भया=वासनामय सरोवर ऊसर हो गये-सूख गये। पहमि-भावनामय भूमि बदली, त्रिष्णा तरल सूख गया, सुरतिवृत्ति रूपी मछली हृदयाकाश में पहुँच आत्म प्रेम की सीर में लग गई।

× दरिया जलै=विविध भोगो की भावना का समुद्र जलने लगा।

21:45

आठैं आठ काठ करि कांनैं , छल बल छाड़ि इहै हरि मानैं ॥
जंबुकि स्वान सिंघ दोइ मारया , हिरणी आगे चीता हारया ॥
मूसा कै मुषि चढी मंजारी , तीतरि बाज करा वीचि धारी ॥
×पंष सवांहि समद मैं पैठा , आला अटल तहां जाइ बैठा ॥
आठै अरथ विचारिया , फूलीं सब बन राइ ॥
भंवर कंवल रस षात है , पर दोइ दई उड़ाइ ॥९॥
आज सषी नैं नींद न आवै , जागि न सोऊँ कंत रिसावै ॥
वंकनालि मैं गरजैं बाई , सेझ सुहाग मिलै सुषदाई ॥
वरसैं धरणी गगन रस आवैं , रांम भरतार भजौं मोहि भावै ॥
परम उदार सकल सुषरासी , अगम अलेप अगह अविनासी ॥
नौं द्वारौं मन ना वहै , दसवैं रह्या समाइ ॥
जन हरीदास आतुर मिटी , आनंद मैं दिन जाइ ॥१०॥

पाठभेद—स्यघ-२ । सवारि-२ । वस्रा-३ । भजूं-२-४ । आणद-१ ।

शब्दार्थ—आठै आठ काठ करि काने=आठों प्रकार के (रूप, धन, विद्या, पदादि) अहङ्काररूपी काठ को दूर करो। जबुकि=आत्मनिष्ठ वृत्तिरुप शृगाली ने। स्वान सिंघ दोइ मारया=कामवृत्तिरूप कुत्ते को और क्रोधरूपी सिह दोनो को मार दिये। हिरणी आगे चीता हारया=स्थिर बुद्धि रूपी हिरणी से चञ्चल मनरूपी चीता हार गया। मूसा कै मुषि=ज्ञानरूपी चूहे के मुख। चढी मजारी=ममतारूपी मजारी-बिल्ली खत्म हुई। तीतरि वाज करा वोचि धारी=सतोषरूपी तीतर ने लोभरूपी बाज को अपने पंजे मे दबोच लिया है। वंकनालि=सुषुम्ना मार्ग। वरसै धरणी=सुरतिवृत्ति आत्मनिष्ठ हो एक रस से बरस रही है। गगन=दशम द्वार-ब्रह्मरंध्र मे निरन्तर अमृत रस का स्राव हो रहा है।

× निश्चल शुद्ध मन विवेक-विचाररूपी पंख संभाल-ब्रह्म समुद्र मे प्रविष्ट हुआ-अटल स्थान मे जा बैठा। पर दो दई उडाइ=द्वैतभावमय दोनों परों को उडा दिया-हटा दिया।

[illegible]न्या गावे जे कोई , अजपा जाप निरन्तर होई ।।टेर।।
भजो निरंजन भरम गमाय , जुरा न व्यापै काल न खाय ।
जोनी संकट आवे नांहि , प्राण समावे हरिपद मांँहि ।।
सुषमनि फेरि घेरि घर आनें , अरध विचारे अगम पिछाणे ।
मूल कँवल में पवन निरोधे , तब मन कूँ मनही परमोधे ।।
त्रिविध ताप तज सहज विचारे , जागि न सोवै जीति न हारे ।
त्रिवेणी तट बैसे जाय , धुनि में ध्यान रहे लौ लाय ।।
आसा मेट निरास संभारे , सुन्यमंडल में आसण धारे ।
मात समंद मथि डारे धोय , जन हरिदास जोगी जन सोय ।।

×

अब हम रामभजन सुख पाया ।
काम किवांडी जड़ी जतन सूँ , मोह मता धुरझाया ।।टेर।।
विकसत कँवल सबद सत सुनिया , सुनि मंडल में सारं ।
बरसै सुखि गगन रस मोजे , सदा अखंडित धारं ।।
चन्द सूर एकै रथ बैठा , पवन विरोले वाई ।
गंग जमन मधि हीरा दरसै , सुषमनि सहज समाई ।।
स्यो धरि सकति सकति सूँ भेरा , भरम गया मैं भागा ।
गगनमंडल में बसै उडांगर , ऊँचे आरंभ लागा ।।
निराकार निरलेप निरन्तरि , महल मिले बनमाली ।
सुख में सीर अखिल अविनासी , परम जोति सूँ ताली ।।
घट घट अघट अगह अविनाशी , बंकनालि रस पाया ।
पांचू भकत छकया रस खेलै , आनन्द अरध समाया ।।
नवघण धरा गरक गुण तीनूं , रामरतन धन नेरा ।
वूठै मेह पहम रुति पलटै , सुख में रहे बसेरा ।।
है हरि अकल सकल की शोभा , जागि लहै सो जीवै ।
जन हरिदास तातै रावलिया , अगम पियाला पीवै ।।

निजपुर प्राण बसे निति निहचल, पवन सुरति सति माला।
ब्रह्म झोल में झूलैं खेलैं, पीवै अगम पियाला॥
निकट नाथ निज रूप निरन्तर, नाम निरंजन राया।
जन हरिदास तिनही को बंदो, मन फिर मनहिं समाया॥

भज मन अकल देव मुरारी।
नांव गहि रे नांव गहि, हरि लेत उतारे पारि॥टेर॥
निकट नांव निजरूप बड निधि, सुखसिंधु वार न पार।
ता सिंधु मांहि बसे हंसा, चुगे मोती चार॥
अगम अगाध अपार नरहरि, निरख रे दिल मांहि।
दास जन तहां सदा सनमुखि, हिरदा हीरा खांहि॥
जहां गांव न ठांव न बरन वाडी, मन पकड़ रे निधि जोय।
जन हरिदास रसना राम रटि हूं, पीव सदा संग सोय॥

उपर्युक्त तीन पदों मे नाम के विशेषणों पर ध्यान दीजिये। उक्त विशेषणों से स्पष्ट है कि हरिदासजी का उपास्य वही अगाध ब्रह्म है, जिसको हम सत्-चित्-आनन्दरूप से निर्देश करते हैं। "आनन्द रूप अखिल अविनाशी, 'ब्रह्म झोल में झूले खेले, "निरख रे दिल मांहि" ये तीन पदों की तीन पंक्तियां किस विशेष का संकेत करती है—यह स्पष्ट है। आगे साधना में योग के अनुसरण को व्यक्त करने वाले भी दोतीन पद उद्धृत किये जाते हैं—

मन रे उलटि सहज घरनाया ? सब जग वादि बकया बोराया॥टेर॥
नाभि कँवल में पवन निरोधे, तो सत गुरु का चेला।
मन गहि पवन अगम घर खेलूँ, करूँ अगम सूँ मेला॥
उलटा खेलि गगन में पेसूँ, सुरति सहज घर धारूँ।
परम जोति सूँ हिलमिल खेलूँ, एसा अरथ विचारूँ॥
जन हरिदास निरमे निधि परसूँ, परम सिन्धु में न्हाऊँ।
जठर अगनि में आय न होमूँ, आवागमन चुकाऊँ॥

(१२४)

भजि मन ! रांम सजीवनि मूरि ,
प्रेम प्रीति अंतरि ज्यौ लागी , हरि सकल रहे भरपूरि ॥टेक॥
'जग सूँ' प्रीति कहां 'तूँ' कीजै , सकल काल की चोट ॥
उलटी बेलि अनल का सुत 'ज्यूँ', पकड़ि रांम की वोट ॥१॥
है हरि अकल सकल विसव्यापी , नेरां नसौहक दूरि ॥
जन हरीदास निज रूप न 'जांण्यौ', ता पसवां मुखि धूरि ॥२॥

(१२५)

अब हम रांम भजत सुख पाया ,
कांम किवाड़ी जड़ी जतन सूँ , मोह मवा मुरझाया ॥टेक॥
विगसत कँवल सबद सति सुँधिया , सुँनि मंडल में सारं ॥
बरषै धरणि गगन रस भीजै , सदा अखंडित धारं ॥१॥
चंद सूर एकै रथि बैठा , पवन विरोलै बाई ॥
गंग जमन मधि हीरा दरसै , सुषमनि सहज समाई ॥२॥
स्यौ घरि 'सकित' सक्ति सूँ मेला , भरम गया मै भागा ॥
गगन मंडल में बसै उड़ागर , ऊँचै आरंभि लागा ॥३॥
निराकार निरलेप निरंतरि , महलि मिले वनमाली ॥
सुख में सीर अखिल अविनासी , परम जोति सूँ ताली ॥४॥
'घटि' 'घटि' अघट अगह अविनासी, वंकनालि रस पाया ॥
पांचो सकित छक्या रसि पेलै , आनँद अरषि समाया ॥५॥

पाठभेद— जुगत्यौं–१ । लौं–१ । ज्यौं–१ । जान्यौं–५ । सकति–२ । घटघट–१-२ ।

शब्दार्थ—मूरि=जड़ी । वोट=आड़, सहारा । पसवां=पशु जैसे प्राणी । जड़ी जतन सूं=उपाय द्वारा, साधन द्वारा कामना के किवाड़ बन्द कर दिए हैं । विगसत=खिलता हुआ, प्रफुल्लित । कँवल=हृदयकमल । धरणी=वृत्तिरूपी पृथ्वी । चंद सूर एकै रथ बैठा=इड़ा-पिंगला समन्वय से प्रवाहित है । पवन=प्राण । विरोलै=आलोड़न करे, रस लेवे । गंग जमन=मन-प्राण । स्यौ घरि=ब्रह्मस्थान में । सक्ति=सूक्ष्मवृत्ति । उड़ागर=मनपक्षी ।

07:55

(५३)

सुणि लै रे ! साह संदेसा ,
साह कहाइ चोर संगि राषो , जाव 'करोगे' कैसा ॥टेक॥
त्रिसना एक रहै घट भीतरि , निज पद अटकै नांही ॥
ऊँच नीच की माया षांचौ , सो पड़ै रसोई मांही ॥१॥
मैं तैं चितचोर चित पैठा , षंड षंड करि कांपै ॥
अति 'अभिमान' काम वसि काचा, करम कथा कथ थापै ॥२॥
सोई साह सदा संगि षेलै , मन की ठौड़ उठावै ॥
वंकनालि 'इंम्रत' रस पीवै , रस ही मांहि समावै ॥३॥
पकड़ि तराजू मन कूँ तोलै , हरि इंम्रत रस पीवै ॥
जन हरिदास साह सति सोई , यूँ सांचा करि जीवै ॥४॥

(५४)

हरि 'विण' जांणि पोटा पात ,
रामजी सूँ प्रीति नाहि , उठि 'दह' दिसि जात ॥टेक॥
भजि निरंजन भरम भंजन , हरि अरि गंजन नाथ ॥
आपणा करि आप राषै , सीस परि धरि हाथ ॥१॥
काल का भै बंधन कांपै , जाप अजपा आप आपै ॥
उनमनि असथांन , सौदत अवर नांही अमै आपै दांन ॥२॥
नरक का भै कुँड़ 'टालै' , काल चोट न वहौड़ि सालै ॥
जुरा ग्रासै नांहि सीस दे ताहि, भगति आपै नरहरि वसत है सब मांहि ।३।

पाठभेद—भरोगे-५ । अभ्यमान-२ । इंम्रित-१ । विणि-२-३ । दहि-४ । पालै-१ ।

शब्दार्थ—जाव=जवाब । षांचौ=खींचते हो, अपनाते हो । मैं तैं=मेरा-तेरा भेदवृत्ति । सोई साह=वही साहूकार हो । सदा संगि षेलै=जो सदा आत्मस्वरूप में लीन रहे । मन की ठौड़=मन की प्रवृत्ति, विषयवासना को । वंकनालि=सुषुम्ना । तराजू=विवेक विचाररूपी तकड़ी में । आपण करि=अपनाकर । कांपै=काटे । आपै=प्रदान करे । सीस दे ताहि=उसको आत्मसमर्पण कर ।

अधर सधर निरमल निहकांमी, नांव निरंजन राया ॥
'धरे' अधर सूँ 'परचा' कीया, सो फिरि तहां समाया ॥१॥
अवरण वरण सकल सँगि रहिता, 'पतिवरता' पति छाजै ॥
भगति सधीर आधार हमारे, चौकी चढ्या विराजै ॥२॥
अरध उरध मधि अगम अधारी, निज तत नैड़ा दरसै ॥
मन मतिवाला भरि भरि पीवै, घटा विनां घण वरसै ॥३॥
उलटी नदी गुणां 'सूँ' न्यारी, महा नीर अति मीठा ॥
सेझां राजा राम पधारया, 'महलि' उजाला दीठा ॥४॥
नैड़ा निपटन जांणै कोई, करम काट 'वही' लागा ॥
जन हरीदास सुष सागरि पैठा, 'भौ सागर' मैं भागा ॥५॥

(५२)

'जोगिया' अलष अभेवा रे !
आरंभ कौंण कहां 'तेरा' आसण, करूँ किसी विधि सेवा रे ॥टेक॥
सकल रूप रसरूप 'विवरजत', सकल रूप तैं कीया ॥
सकल रूप करि सब तैं न्यारा, साधां कूँ सुष दीया ॥१॥
चिंत न चाहि प्रीति नहिं 'परघत', सकल निरंतरि न्यारा ॥
अगहि अरूप अथाह अषंडित, अगम वार नहिं पारा ॥२॥
मैं मेरा उनमांनि विचारया, करम कूप तजि काया ॥
उलटी सुरति गगनि मैं गरजै, तहां कछु अलष लषाया ॥३॥

पाठभेद—धरये-१ । प्रचा-१ । पतिभरता-१ । तैं-३ । महल्य-२ । महल-५ । वहु-२ । भवसागर-१ । जुगिया-२-३ । तेरो-५ । विवरजित-१ । प्रघत-१ ।

शब्दार्थ—चौकी=अन्तःकरणरूपी चौकी पर । अरध=मूलाधार चक्र । उरध=दशमद्वार, सहस्रारदल । मधि=अनहदचक्र, हृदयस्थान । घटा विना घण वरसै=बाह्य बादलों के बिना तालुप्रदेश से निरन्तर झरने वाला अमृत रस बरस रहा है । सेझां=हृदयरूपी शैय्या पर । महलि=देहरूपी महल में । उजाला=ज्ञानज्योति का प्रकाश । दीठा=देखा । चित=चिन्तन, कामना । चाहि=इच्छा । परघत=दूसरे का घात, हिंसा । उनमांनि=अन्दाज ।

जोगी रोग रति भरि तोड़ै, 'वोषद' अगम बतावै ॥
आसण छाड़ि अगनि मैं पैसे, उलटी ताली लावै ॥१॥
गंग जमन मधि पवन निरोधै, विष तजि वसत पिछाणै ॥
गिणि गिणि तार अकल सूँ सांठै, निरगुण का गुण जांणै ॥२॥
छै सै सहस इकीसूँ धागा, अगम तहां ले जोड़ै ॥
निरभै थको निरंजन परसै, तिल भरि तार न तोड़ै ॥३॥
सेस महेस 'विसन' गहि ब्रह्मा, काटि काटि कस लावै ॥
भरि भरि अगम पियाला पीवै, माठी चौक 'चिगावै' ॥४॥
मढ़ी अषंडित मांही वैठा, जोगी एक विराजै ॥
जरणां जड़ी जटा मैं राषै, सुष मैं सींगी वाजै ॥५॥
विणि ही झालरि वाजा वाजै, विणि ही देवलि देवा ॥
सूँनि मंडल मैं ध्यांन हमारा, विणि ही मूरति सेवा ॥६॥
जन हरिदास अधर उठि चालै, ताका पला न कोई तांणै ॥
विणि धरनी वे सहर एक देष्या, विरला कोई जांणै ॥७॥

(५१)

अवधू माणिक चौकि 'महानिधि' लाधी, कह्यां न को पति 'आवै' ॥
आ का मोल तोल कछु नांही, सिर सौंपै सो पावै ॥टेक॥

पाठभेद—वोषधि–१। विष्न–१-५। चिकावै–१। महार्न्यघ–२। यावै–१।

शब्दार्थ—रोग रति भर तोड़ै=वासना, संशयादि का लेश भी न रहने दे। वोषद अगम बतावे=मन, बुद्धि, इन्द्रियों से आगे अगम-चेतनतत्वरूप औषधि प्राप्त करावे। आसण छाड़ि=मायिक पदार्थों की इच्छा का त्याग। अगनि मैं पैसे=ज्ञानाग्नि में स्थित हो। गंग जमन=इड़ा-पिंगला। अकल सूँ=कलनरहित, मायारहित ब्रह्म से। सांठै=जोड़े। छै सै सहस इकीसूँ धागा=इक्कीस हजार छः सौ श्वासरूपी धागे। सेस=अहङ्कार। महेस=तमोगुण। विसन=सतोगुण। ब्रह्मा=रजोगुण। माठी=मटठी। मंढ़ी अषंडित=दशमद्वार, गगनमंडल में। झालर=स्थिरवृत्तिरूपी झालर। वाजा वाजै=अनहद शब्द से। अधर=निराश्रयवृत्ति। वे सहर=बेगमपुर, शून्यस्थान। माणिक चौक=हृदयप्रदेश में। महानिधि=परम धन, आत्मप्राप्ति।

07:59

सतगुर मिलि साच वतावै, जो षोजै सो पावै ॥
जन हरीदास हरि नीका, हरि सकल धरम सिरि टीका ॥८॥

(६८)

मन रे! उलटि सहज घरि नाया, तव लगि 'वादि' वक्या वौराया ।टेक।
'नाभि' कँवल मैं पवन निरोधूँ, तौ सतगुर का चेला ॥
मन गहि पवन अगम घरि षेलूँ, करूँ अगम सूँ मेला ॥१॥
उलटा 'षेलि' गगन मैं 'पैसूँ', सुरति सहजि घरि 'धारूँ' ॥
'परमजोति' सूँ हिलिमिलि 'षेलूँ', ऐसा अरथ 'विचारूँ' ॥२॥
जन हरीदास निरभै निधि 'परसूँ', परमसिंध मैं न्हाऊँ ॥
जठर अगनि मैं प्राण न होमूँ, आवा गवण चुकाऊँ ॥३॥

(६९)

अव मोहि दरस दिषाइ माधवे,
यहु 'औसर' लाभै नहीं, दिन दिन घटतो जाइ माधवे ॥
प्रीति घटै तौ जिनि मिलो, तुम परमसनेही राइ माधवे ॥
मैं जन वांध्या प्रेम सूँ ॥टेक॥
एक अंदेसो म्हारे मन वस्यो, सो हम विसरैं नांहि माधवे ॥
निकटि वसौ न्यारा रहौ, एकै 'मंदिर' मांहि माधवे ॥
कै 'मिलि' हौ कै तन 'तजूँ', अव मोहि जीवण नांहि माधवे ॥
प्रांण उधारण तुम्ह मिलौ ॥१॥
अवला मनि व्याकुल भई, तुम्ह क्यूँ रहे रिसाइ माधवे ॥

पाठभेद—वाद-४। नाभ-५। षेल-३। पैसौं-१। धारौं-५। प्रमजोति-१। षेलौं-१-५। विचारौं-१। परसौं-१। अवसर-१। म्यंदिर-२। म्यलि-२। त्यजूँ-२।

शब्दार्थ—टीका=शिरोमणि, प्रमुख। नाया=नहीं आया। वादि वक्या=व्यर्थ वकवास किया। वौराया=पागल हुआ। उलटा षेलि=आत्माभिमुख हो। गगन मैं पैसूँ=ब्रह्मरन्ध्र में निवास करूँ। परमसिंध=अंतिसुखसागर। अंदेसो=संशय, जिज्ञासा।

07:58

निरमल ग्यांन ध्यांन धुनि निरमल, प्रेम प्रीति परकासा ॥
आसण अचल तहां मन निहचल, तुम ठाकुर मैं दासा ॥२॥
संजम सील साच सति सुमिरण , पति सूँ प्रीति 'अनेरी' ॥
जन हरीदास कूँ आस न दूजी , आस अनाहद तेरी ॥३॥

(६५)

माधवे ! कठिन जल भ्रम पूरि ,
सकल व्यापी हो सनेही , करौ 'कलविष' दूरि ॥टेक॥
जोग ले जाइ 'वसूँ' वनषंड़ि , 'रहूँ' ताली लाइ ॥
देषतां मन ऊठि गै ज्यूँ , दंत धरि लै जाइ ॥१॥
पवन गहि लै गगन 'राषूँ' , मेर 'डंड' चढ़ाइ ॥
नाथ तुम्ह 'विचि' यह पड़दा , दूर 'पड़िये' जाइ ॥२॥
चोट हरि विन अवर नांही , काल ग्रासै आइ ॥
जन हरीदास उदास ता तैं , आंन कछु न सुहाइ ॥३॥

(६६)

तोकूँ विड़द किसो दे गाऊँ ,
जुग 'चारौं' वेदां वांचीजै , पैलो पार न पाऊँ ॥टेक॥
अगम अपार पार नहिं कोई , पार न किनहूँ पाया ॥
तूँ है एक मांड़ सव तेरी , 'सुनौ' निरंजन राया ॥१॥
'सूरज' तपै सोई तेज तुम्हारौ , घुरैं इन्द्र के वाजा ॥
यहु परताप तुम्हारौ स्वांमी , तुम्ह जोगी तुम्ह राजा ॥२॥

पाठभेद—अरणेरी–१ । कल्यविष–२ । कलिविष–५ । वसौं–१ । रहौं–१ । राषौं–५ । डंडि–१ । विच–५ । पड़िए–४-५ । च्यारूँ–५ । सुणौं–१ । सूरिज–२ ।

शब्दार्थ—परकासा=तेजमय । अनेरी=अत्यन्त, घनेरी । कलविष=मलीनता, पाप । उठ गै ज्यूँ=हाथी की तरह चलायमान । पड़दा=आवरण । मांड=विश्व, संसार ।

07:56

अवधू ! वेलि आंषि उझांणी ,
पैली आंषि सहज मैं षूली , याह सतगुर की सहनांणी ॥टेक॥
पाइक पांच पौलि मैं अटक्या , ग्यांन गुफा मैं आया ॥
गिगन मंडल मैं आसण अवधू , धुनि मैं ध्यांन लगाया ॥१॥

पाठभेद—नृमल-३-४। पे-५।

शब्दार्थ—सहणे व्है=सयाना होकर, सचेष्ट हो आत्मचिन्तन में लगने से। महतो=मनरूपी महते को। महती=मनसा किलकारियां भरने लगी। राज वला ही=अहङ्काररूपी राजवलाही ने। मतै आपणै=अपनी मर्जी से ही। ताको सिर जरवां सूं कूट्यो=इस अहङ्कार का सिर गरीबी-अकिञ्चनता की हथौड़ियों से चूर-चूर किया। गांव सुहागणि मारग रोक्यो=कुमतिरूपी वलाहिण आड़ी आ विघ्न करने लगी, उसको स्थिर सुमति द्वारा परास्त किया। उझांणी=मिच गई। पैली आंषि=परादृष्टि। सहनांणी=निशानी, चिह्न। पाइक पांच=मन की सहायक पांचो ज्ञानेन्द्रियां। पौलि मैं=वृत्ति जाने के मार्ग, दृष्टि, घ्राण, रसना आदि। ग्यांन गुफा=आत्मस्थान में।

ऊँधा कँवल सुलटि करि सूवा , अनहद सवद उचारा ॥
गंग जमन समि रवि ससि मेला , सहजि भया मतिवारा ॥२॥
गम मैं अगम अगम मैं गम है , मन फिरि मन ही समाना ॥
जन हरीदास कछु कहत न आवै , अब हम भया दिवांना ॥३॥

(५७)

मन रे ! सो सतगुर मैं चेला ,
'आनद' सहत अगम घरि षेलै , परम जोति सूँ मेला ॥टेक॥
मन गहि पवन गवन गुरगम तैं , पछिम देस पंथ जांणै ॥
सुरति सँवाहि समद मैं पैसे , वसत 'अमोलिक' आंणै ॥१॥
स्वारथ की सीर अटकि अरि अवधू, परसि परम निधि देषै ॥
ए नवनाथ हाथ मैं राषै , तब दिन लागै लेषै ॥२॥
पाइक पांच एक रसि रोकै , गोरष कड़ी सलूझै ॥
जरणां जड़ी जोग जत जांणै , सो या अरथ ही बूझै ॥३॥
सूँनि मंडल मैं वैसि 'निरंतरि' , अणवोल्या 'नित' गावै ॥
जन हरीदास सोई गुर मेरा , जो या अरथ समावै ॥४॥

(५८)

जागि न देषो रे ! हरि नेरा ,
तजि 'बहौ' रूप धूप नहिं व्यापै, सुष मैं सहजि वसेरा ॥टेक॥

पाठभेद—आनंद-२-३। अमोल्यक-३। न्यरंतरि-२। न्यत-२। निति-३। वहु-१।

शब्दार्थ—ऊँधा कँवल=चक्रों के उल्टे कमलों को। गंग जमन समि=इड़ा-पिंगला समस्थान में। रवि ससि मेला=सूर्य-चन्द्र में प्राण का निवास। मन फिरि मन ही समाना=मन मलीनता को त्याग विशुद्धरूप में बदल गया। दिवांना=मस्ताना। अनहद सहत=अनहद शब्द सहित। अगम घर=सहज स्थान, ब्रह्मरन्ध्र प्रदेश। पछिम देस=वंकनालि, सुषुम्ना मार्ग। पंथ=मार्ग। सुरति सँवाहि=वृत्ति स्थिर कर। समद=अगाध व्यापकब्रह्म में। नव नाथ=पांचों ज्ञानेन्द्रियां, अन्तःकरण चतुष्टय। गोरष कड़ी=ज्ञान की दृढ़ता। सलूझै=सुलझै, सुगम हो। जरणां=सहनशीलता। सूँनि मंडल=दशमद्वार। अणवोल्या=बिना शब्द, अजपा जाप। धूप=ताप, त्रिविध ताप। वसेरा=विश्राम।

(६०)

मैं तौ राँम न 'छाड़ौं' तोहि, तूँ हरि मीठा लागै मोहि ॥टेक॥
पालै पोषै सेवा करै, ताहि छाड़ि को 'दोजगि' परै ॥१॥
ऊँच नीच अंतर कछु नाँहि, परम उदार सकल घट माँहि ॥२॥
जन हरीदास भजि राजा राँम, आदि अंति हरि ही सूँ काम ॥३॥

(६१)

अणबोल्या गावै जे कोई, तौ अजपा जाप 'निरंतरि' होई ॥टेक॥
भजौ निरंजन भरम गमाइ, जुरा न व्यापै काल न षाइ ॥
'जोनी' संकट आवै नाँहि, प्राँण समावै हरि पद माँहि ॥१॥
सुषमनि फेरि घेरि घरि 'आँणै', अरथ विचारै अगम पिछाँणै ॥
मूल कँवल मैं पवन 'निरोधै', तब मन कूँ मनही 'परमोधै' ॥२॥
त्रिविधि ताप तजि सहज विचारै, जागि न सोवै जीति न हारै ॥
त्रिवेणी तटि वैसे जाइ, 'धुनि' मैं ध्यांन रहै ल्यौ लाइ ॥३॥
आसा मेटि 'निरास' सँभारै, 'सूँनि' मंडल मै आसण धारै ॥
सात समंद मसि डारै धोइ, जन हरीदास जोगी जन सोइ ॥४॥

(६२)

राषि राषि प्रभु साहिब मेरा, 'तुम्ह' साहिब मैं बंदा तेरा ॥टेक॥
नरक वास द्यौ तौ भी मैं 'ल्यूँ', जो हरि लोक वसेरा ॥
जोर नहीं बंदे का कोई, बंदा जहाँ तहाँ हरि तेरा ॥१॥

पाठभेद—छाड़ूँ–१-४। दोज्यग–२। न्यरंतरि–२। जूनी–२-३। आंनै–३-५। न्यरोधै–२। प्रमोधै–१-५। धुन्य–२। न्यरास–२। सुन्य–२। तुम–५-५। लूँ–३। ल्यौं–५।

शब्दार्थ—दोजगि=दोजख, नरक। मूल कँवल मैं=मूलाधार चक्र में। परमोधै=उपदेश दे, मन ही मन का परिवर्त्तन करे। आसा मेटि=लौकिक आशाएँ छोड़। निरास सँभारै=चेतनतत्व में लगे। सात समंद=रसादि धातु, कामादि षड्रिपु व अहङ्कार। मसि डारै धोइ=इनका मैल निवारण कर ले।

इहै सकल सुषधारं, उलटि आप कूँ मारं ॥
निज तत निज ग्यांन विचारं, परापरै सुष सारं ॥
वरषा रस इंम्रित धारं, तहाँ 'परसूँ' प्रांण उधारं ॥३॥

इहै सकल सुष भेषै, उलटि अगम कूँ देषै ॥
करि अवगति सूँ सीरं, पांच 'पुरिस' कौ मीरं ॥
गंग जमन बिचि हीरं, तहाँ परसि निरंजन पीरं ॥४॥

हरीदास जन सोई, जाकै त्रिवधि ताप नहिं होई ॥
पिव के पहरै लागै, सदा निरंतरि जागै ॥
गुड़िया गहि गगन चढ़ावै, सुषसागर मांहि समावै ॥५॥

॥ इति राग सोरठी सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग भैरूं ॥

(८६)

नांव दे नांव दे नांव दे देवा, हरि नांव को आसिरौ नांव की सेवा ॥टेक॥
नांव विश्राम 'द्यौ' नांव की छाया, नांव 'निरवांण' तैं रामजी पाया ॥१॥
मैं भलौ भजन द्यौ भूष हरि तेरी, वीनती सांभलौ वापजी मेरी ॥२॥
काल 'कृपाल' हूँ 'वहौत' विधि षाया, डरया डरि दीन व्है आसिरै आया ।३।
सकल संसार का स्वाद सब कूड़ा, जन हरिदास का भाग मैं नांव ही रूड़ा ।४।

पाठभेद—परस्यूँ–१ । पुरष–५ । दे–१ । नृवांण–५ । किरपाल–२-४ । वहुत–१ ।

शब्दार्थ—वरषा रस=बरसने वाला रस, तालुप्रदेश में आनेवाला रस। भेषै=पंथ में, भेष में। अवगति सूँ=विवरणरहित ब्रह्म से। सीरं=सीर, साझा। गुड़िया गहि गगन चढ़ावै=सुरतिवृत्ति को प्राणसहयोग से दशमद्वार में ले जावे। मैं भलौ=कालभय, अकर्म का भय अच्छा है। सांभलो=स्वीकार करो। रूड़ा=अच्छा, सुन्दर।

08:01

हरि निज नांव नहीं उरि अंतरि , समझै नहीं 'गंवार' ॥
कै ते 'गये' जांहिगे कै ते , सलिल मोह की धार ॥२॥

यहु संसार धार में दीसै , ता में दाझै जीव अपार ॥
पीवत छकै थकै निज 'मारग' , मै तैं मोह 'किंवार' ॥३॥

तजि अभिमान आन तजि सेवा, नाना नेह निवार ॥
हरीदास जन हरि गुण गावै , जा कै रांम अधार ॥४॥

(७८)

राम बिसारि मांरे 'प्रान' ,
कुवधि परिहरि सुमर हरि हरि , सुरति 'सिंध' निधान ॥टेक॥
उदरि अवला जठर झलमैं , तहां लियो राषि ॥
गाइ हरि अभिमांन तजि नर , आन सबद न भाषि ॥१॥

सिंघ स्याल पतंग कुंजर , सरप कीटी काग ॥
मछ कछ 'होइ' जलां डोल्यौ , तोकूँ अजहूँ न आइ लाज ॥२॥

'मानिषा' अवतार बड़ निधि , पाइये कहूँ 'कालि' ॥
जन हरिदास समझि विचारि सदगति, रांम नाम संमालि ॥३॥

(७९)

'जोगिया' लाधौ प्रीति पछेरो , ता तैं मल नहिं आवै नेरो ॥टेक॥
चंद सूर समि कीया , सतगुर मिलि सावणि दीया ॥
'जतन' जतन करि धोवै , तातैं बहौड़ि न मैला होवै ॥१॥

द्वादस 'आंगुलि' वाई , गहि सुषमनि सहजि समाई ॥
तरसि अगम रस चाषै , ममता सौं मैल न राषै ॥२॥

पाठभेद—गंवार–२ । गए–४ । मारगि–१ । गिवार–२ । प्रांण–१-४ । स्यिंध–१ । व्है–१ । मान्यषा–२ । काल्ह–४ । जुगिया–२-४ । बहुत–१ । आंगुल–३-४

शब्दार्थ—दाझै=जले । आन=और । निवार=दूर कर । झल मैं=ज्वाला में । लाधौ=मिला, प्राप्त हुआ । प्रीति=परमप्रेम । पछेरो=चादर । मल=मलीनता । चंद सूर=इड़ा-पिंगला । सावणि=उपदेशरूपी साबुन । तरसि=अतिचाह से, लालायित हो ।

वंकनालि निहचल नौ निरमै, यै कौतूहल भारी ॥
जन हरीदास आनँद निज नगरी, षेलै फाग मुरारी ॥३॥

(१४१)

मवतैं भँवर वाग निज लाधौ, ताकी 'उतम' वास लै जीवैं ॥
निरमै डोरी 'निरति सुँ' लागी, मगन भयो रस पीवैं ॥टेक॥
ब्रह्मफूल की वास 'मस्त' है, अमी महारस लागा ॥
सुषदेव पी मतिवाला हूवा, ऊठ वना कूँ भागा ॥१॥
सुंनि मंडल की वाड़ी विलसै, सहजि सकल रस लाधा ॥
जन हरीदास 'हरजी' का सेवग, जम कै वंधणि न वांधा ॥२॥

(१४२)

मन मतिवाला सहज भाइ, जोग मूल गहि रह्या समाइ ॥टेक॥
ब्रह्मअगनि वरषा अपार, भरि भरि पीवैं अठारै भार ॥
गंग जमन मधि वसंत राग, भँवर गुंजारै 'गहर' वाग ॥१॥
चंद सूर रथ फिरया फाग, ग्यांन ध्यांन ल्यौ गगन लाग ॥
प्रेम प्रीति का पहौप हाथि, पांच सषी सव सौंज साथि ॥२॥
हरष सोग दुष दुरया दोइ, 'यह' गति जांणै साध कोइ ॥
त्रिवेणी तटि ध्यांन धारि, परम जोति 'प्रगटै' मुरारि ॥३॥
सकल वियापी रांम राइ, परम 'पुरष' गति लषि न जाइ ॥
जन हरीदास अवगति अनंत, भजि अलष निरंजन करि वसंत ।४।

पाठभेद—उत्म-४-५। निरंतरि-१-३-५। मसत-२। हरिजी-३-५। गहैर-२-४। याह-१। परगट-५। पुरुष-१।

शब्दार्थ—नौ निरमै=इन्द्रियां, अन्तःकरण। विलसै=उपभोग करे। वंधणि=बन्धन। गंग जमन मधि=इड़ा-पिंगला के मध्य सुषुम्ना में। चंद सूर=मन और प्राण। दुरया=छिपा। त्रिवेणी तटि=भृकुटिमध्य।

नाभि कँवल निज सुरति लाइ , तहां वसत है रांम राइ ॥
हरि सकल वियापी परमदेव , ताकूँ 'वहौत' भांति तूँ तहां सेव॥२॥
जागि जागि रे जागि जांचि , हरि अगम अगम तूँ तहां राचि ॥
जन हरीदास हरि सकल साच, हरि निकटि निकटि मन बिकट नाचि ।३।

(१३६)

मतिवाली मालिण नांही दूरि , हरि परमसनेही है हजूरि ॥टेक॥
अरध उरध मधि कँवल मूल , आतम निज फूली ब्रह्म फूल ॥
अजब वास कछु कहि न 'जाइ' , तहां मनसा मालणि रही 'लुभाइ' ।१।
रवि ससि मेला पछिम धूरि , तहां नदी 'निवासै' वहै पूरि ॥
भरि भरि पीवै अठारै भार , तहां वसुधा भीजै अखंड धार ॥२॥
सकल वियापी सहज माइ , मथुरापति महलां वसे आइ ॥
जन हरीदास तहां 'चरण' लागि , जहां गोपी ग्वालणि रमैं फागि ॥३॥

(१४०)

सषि हो ! मास वसंत विराजै ,
गोपी ग्वाल घेरि गोकुल में , वेणि मधुर धुनि वाजै ॥टेक॥
धागै सुरति पांच नग गूँथ्या , मन मोती मधि आया ॥
विगसत कँवल परम निधि 'परगट', हरि कूँ हार चढ़ाया ॥१॥
गरव 'गुलाल' चरण तलि चूरया, अरथ अबीर विडाया ॥
परमल प्रीति परसि परिपूरण , पिव मैं प्रांण समाया ॥२॥

पाठभेद—बहुत–१ । जाय–५ । लुभाय–५ । नवासे–१ । चरन–५ । प्रगट–१ । गुमांन–३ ।

शब्दार्थ—जांचि=तलाश कर, याचना कर । राचि=प्रेमी बन, अनुरक्त हो । मतिवाली मालिण=मनसामालिन । मधि कँवल=हृदयकमल । अजब वास=अनोखी गन्ध । रवि ससि मेला=मन-प्राण का सङ्गम । पछिम धूरि=मेरुदण्ड से सुषुम्ना के अन्तिम आश्रय तक । नदी निवासै=नौ सौ नाड़ियां । अठारै भार=शरीरस्थ सब तत्व । वसुधा=साधनारूप भूमि । गोपी ग्वाल घेरि गोकुल में=कायानगरी में गोपी–ज्ञानेन्द्रियां, ग्वाल–मन को घेरो, अन्तर्मुख करो । वेणि=बांसुरी, अनहद नाद । पांच नग=पञ्चप्राण, अपानादि ।

(१२४)

भजि मन ! रांम सजीवनि मूरि ,
प्रेम प्रीति अंतरि ज्यौ लागी , हरि सकल रहे भरपूरि ।।टेक।।
'जग सूँ' प्रीति कहां 'लूँ' कीजै , सकल काल की चोट ।।
उलटौ षेलि अनल का सुत 'ज्यूँ', पकड़ि रांम की वोट ।।१।।
है हरि अकल सकल विसव्यापी , नेरां वसौहक दूरि ।।
जन हरीदास निज रूप न 'जांण्यौ', ता पसवां मुषि धूरि ।।२।।

(१२५)

अब हम रांम भजत सुष पाया ,
कांम किवाड़ी जड़ी जतन सूँ , मोह मता मुरझाया ।।टेक।।
विगसत कँवल सवद सति सुँणिया , सुँनि मंडल मैं सारं ।।
वरषै धरणि गगन रस भीजै , सदा अषंडित धारं ।।१।।
चंद सूर एकै रथि वैठा , पवन विरौलै बाई ।।
गंग जमन मधि हीरा दरसै , सुषमनि सहज समाई ।।२।।
स्यौ घरि 'सक्ति' सक्ति सूँ मेला , मरम गया भै भागा ।।
गगन मंडल मैं वसै उड़ागर , ऊँचै आरंभि लागा ।।३।।
निराकार निरलेप निरंतरि , महलि मिले वनमाली ।।
सुष मैं सीर अषिल अविनासी , परम जोति सूँ ताली ।।४।।
'घटि' 'घटि' अघट अगह अविनासी, वंकनालि रस पाया ।।
पांचौ थकित छक्या रसि षेलै , आनँद अरथि समाया ।।५।।

पाठभेद— जुगस्यौं–१ । लौं–१ । ज्यौं–१ । जान्यौं–५ । सकति–२ । घटघट–३-५ ।

शब्दार्थ--मूरि=जड़ी । वोट=आड़, सहारा । पसवां=पशु जैसे प्राणी । जड़ी जतन सूँ=उपाय द्वारा, साधन द्वारा कामना के किवाड़ बन्द कर दिए हैं । विगसत=खिलता हुआ, प्रफुल्लित । कँवल=हृदयकमल । धरणी=वृत्तिरूपी पृथ्वी । चंद सूर एकै रथ वैठा=इड़ा-पिंगला समस्वर से प्रवाहित है । पवन=प्राण । विरौलै=आलोड़न करै, रस लेवे । गंग जमन=मन-प्राण । स्यौ घरि=ब्रह्मस्थान में । सक्ति=सूक्ष्मवृत्ति । उड़ागर=मनपक्षी ।

अंब विवर तन सीत, सुतौ सब तीरथ न्हावै।
कासी छाड़ै देह, हेम वसि हाड़ गमावै॥
विवधि धरम तपस्या विव्रधि, फल भुगतै परदुष सहै।
जन हरीदास हरि नांव विण, नर कहि कौंण वोट निरभै रहै॥५॥

×

अगम 'तीरथ' गुर गम सुगम, अगम तपस्या जिग जोग विचारौ।
एकादसी अगम, अगम नांव नरहरि न विसारौ॥
संत स्रातन अगम, अगम गुर ग्यांन उरि धारौ।
गंग जमन मधि वैसि करि, अगम 'वस्त' अंतरि लहौ॥
जन हरीदास निरभै मतै, तहां उनमनि लागा रहौ॥६॥

×

लोक लाज पष मेष, तहां मिलि जनम न हारौ।
रांम नाम उरि धरौ, पाप जन 'परन' पसारौ॥
'भौ' सागर वार पार मधि नांहि, घट घाट तजि अघट विचारौ।
परम ग्यांन पर ध्यांन हरि, निज नाथ नर निमष न विसारौ॥
जन हरीदास इंद्री अटकि, पिसुण पलटि 'परमगति' लहौ।
अगम वस्त अंतरि अगहि, तहां उनमनि लागा रहौ॥७॥

×

'परम ग्यांन' 'परम ध्यांन', परमगुर गुर गम गावौ।
राग दोष रस पांच, रषे मन तहां नचावौ॥

पाठभेद—तीर्थ-१। वसत-२। प्रन-१। भव-१। प्रमगति-१। प्रमग्यांन-१। प्रमध्यांन-१।

शब्दार्थ—अंब=पानी। विवर=गढ़ा। हेम वसि=बर्फ में रह। अगम तीरथ=आत्मस्वरूप परब्रह्म। गंग जमन मधि=इड़ा-पिंगला के मध्य सुषुम्ना। उनमनि=सहजदशा, लयवृत्ति। परन पसारौ=पङ्ख मत फैलाओ। घट घाट तजि=देहाध्यास त्याग। पिसुण=कामादि लुटेरे। परमगुर=परब्रह्म।

त्रिवधि तिण रूप मेर हरि विच मँड्यो , षंभ दोइ सांकलां जड्यौ जोवै ॥
परम निधि भेद मध माध लाधौ नहीं , मूल पसु 'आपकौ' आप षोवै ।१।
रोग मैं रोग अघ रोग दारण दहै , कुवधि कांटै कल्यौ सुवधि नांई ॥
काच सूं परसि निज साच न्यारो रह्यो , भेद तजि 'भरम'जलि धस्यौ धाई ।२।
×रोग तोड़ै तिको एक सूँ एक व्है , 'नांव' तौ निज जड़ी निकट जांणै ॥
जन हरिदास भजि रांम मन मैल राषै नहीं, सुरति संसार मैं उलटि तांणै ।३।

(१८६)

गुर पीर विन नीर की परष लाभै नहीं , सीर निज निज 'भगति' परस जीवै ॥
गगन चढ़ि सींचवो पछिम दिसि वावड़ी, उलटि सींचै तिकौ साध पीवै ।टेक।
सुरति की डोरि सजि अगम घरि षेलिवौ, अगम घरि षेलि निज कँवल फूलै ॥
सुँनि मैं साच निधि कँवल उलटि सुलटि, गहरि मति ग्वालणि गोपि झूलै ।१।
अरक घरि तरक तजि समंद सुत समि करै, द्वादसी छाड़ि दिसि एक ध्यावै ॥
पैसि पाताल मैं अगम जल आंणिवा , सहज घरि आतमा वेलि पावै ।२।
आप मैं अलष लषि उलटि षेलै नहीं , प्रीति परवांण निज प्रेम चाषै ॥
जन हरिदास निजरूप निरवांण निरमलकथा, प्रांण 'असथांन' निज सुरति राषै

(१९०)

निज भगत सदा निज रूप निरषत रहै , अकल अलगो नहीं सकल मांही ॥
सकल सुषसागर अगम अंतरि अगहि , ऊगि वरतै तिकौ अगम नांही ।टेक।

पाठभेद—आपरौ–२-३ । भ्रम–५ । नाई–१ । भक्त–५ । अस्थांन–१ ।

शब्दार्थ—त्रिवधि=त्रिगुणात्मक । षंभ दोइ सांकलां जड्यो जोवै=अहङ्कार के खम्भे में राग-द्वेष की सांकल से बँधा हुआ देखता है । रोग मैं रोग=जन्ममृत्युरूप । अघ=पाप । कल्यौ=फँसा हुआ । भेद तजि=द्वैतबुद्धि को छोड़ । भ्रम जल=संशय के पानी में । धस्यौ धाई=दौड़कर प्रवेश किया । परष लाभै=पहचान मिले । गगन चढ़ि= दशमद्वार में पहुंच कर । पछिम दिसि=सुषुम्ना मार्ग । निज कँवल=आत्मकमल । अरक घरि=इड़ा । समंद सुत=मन । द्वादसी छाड़ि=अनेक विषयों में जाना, वारहवाट होना । पैसि पाताल मैं=नाभिकुण्ड में पहुंच कर । ऊगि=उदय हो, उत्पन्न हो । वरतै= अस्त हो, विलीन हो ।

× वही साधक जन्म-मरण के रोग से मुक्त होता है जो व्यापक एक चेतन ब्रह्मतत्व से एकमेक हो जाता है ।

(१५३)

वेली लो तत वेली लो, काटी वेलि वधैली लो ॥टेक॥
चंद सूर दोंउ 'समि' करि राष्या, सास सवद संगि लाया लो ॥
गंगा मूल तहां रस उलटै, वेलि 'तको' रस पाया लो ॥१॥

पाठभेद—कहीं–१ । अमोल्यक–२ । आरंभि–२-३ । प्रहरै–१ । अवर–१ । सम–१ । तिको–१ ।

शब्दार्थ—कालरि=खार की भूमि में । रोपै=गाड़े । आरंभ लागि=साधना में लग । आंतरो=अन्तर, भेद । आंण=सौगन्ध । घट छूटा=देहपात हुआ, मरा । वेली=तत्त्वनिष्ठवृत्ति । काटी वेलि=मायिक पदार्थों से हटाई हुई वृत्ति । चंद सूर=इड़ा-पिंगला नाड़ी । सास सवद संगि लायालो=प्राण को रोक कर सोहं शब्द से सम्बन्धित किया । गंगा मूल=नाभिप्रदेश ।

निज निरसंध अगहि 'अभि' अंतरि, वरण विवरजत वांणी लो ॥
इला पिंगुला सुषमनि मेला, ता सुषि वेलि समांणी लो ॥२॥
तरवर अगम अणीं तहां लागी, वेलि किया विसतारा लो ॥
काटी वेलि अमर फल लागे, विनि काटी फल षारा लो ॥३॥
वास विकट कोई पान न पंडै, मिरघ वसै ता मांही लो ॥
'पाइक' पांच पहरवा राष्या, उदै 'अस्त' दोइ नांही लो ॥४॥
गगन मंडल मैं वेलि विलूँधी, मूल मता मैं आया लो ॥
जन हरीदास आतम कै अंतरि, सतगुर सांँच बताया लो ॥६॥

(१५४)

जिवड़ा जनम सिरायौ रे,
सोवत सोवत सोइ रह्यो, 'अजुँ' नींद न धायो रे ॥टेक॥
'जनम' अमोलिक जात है, विषया रस मांही रे ॥
काल गह्यौ ग्रासै जुरा, जागै क्यूँ नांही रे ॥१॥
जा कूँ तैं तन मन दिया, अपणां करि लीया रे ॥
इन मैं तेरा को नहीं, भूलै विष पीया रे ॥२॥
सूतां सरवस जात है, जांगै सो जागै रे ॥
जन हरीदास आछै मतै, हरि सुमिरण लागै रे ॥३॥

(१५५)

रैंणि गई दिन जाइ, सषी मैं क्यूँ करूँ ॥
हरि विन कछु न सुहाइ, विछोहे मैं डरूँ ॥टेक॥

पाठभेद—अभ्य–२ । पायक–३-४ । असत–२ । अजहुं–५ । जन्म–५ ।

शब्दार्थ—तरवर अगम अणीं तहां लागी=अगम ब्रह्मवृक्ष में वृत्ति की अणी=अग्र भाग लगी । मिरघ=विषयविरत मन । पाइक पांच=पांचो ज्ञानेन्द्रियां । विलूँधी=छाई । सिरायो=बीता, समाप्त हो रहा । आछै मतै=आत्मचिन्तन में । विछोहे=वियोग में ।

ग्यांन चक्र लै हाथि, सव न षंड षेलिये।
परम जोंति विश्रांम, तहां मन मेलिये॥
वरषा वारा मास, अमी रस झेलिये।
हरि हाँ—जन हरिदास आंन धरम सव झूठ, पवन सूँ पेलिये॥३॥

×

रांम नाम व्रत धारि, विषै विष डारिये।
सुषमनि पवन सँवाहि, 'त्रिवधि' रस टारिये॥
पैंडा करणां वीर, देषि पाँव धारिये।
हरि हाँ—जन हरिदास उलटा पवन निरोध, स पारा मारिये॥४॥

×

राजा रांम विसारि, सजन मन हारिये॥
मोटा वैरी मोह, महा रिप मारिये।
कांम क्रोध अभिमांन, 'अगनि' मुषि जारिये॥
हरि हाँ—जन हरिदास भजि रांमस, कांम सँवारिये॥५॥

×

पारब्रह्म सूँ प्रीतिस, रीति विचारिये।
दूजी रीति अनीति, हाथ तै डारिये॥
कांम क्रोध मनमैल, अगनि मुषि जारिये।
हरि हाँ—जन हरिदास अभ्यास, अलष उर धारिये॥६॥

×

पाठभेद—त्रिविधि–१। अग्नि–१।

शब्दार्थ—ग्यांन चक्र लै हाथि=आत्मज्ञान का चक्र हाथ में ले। सवन षंड=मल, विक्षेप, संशयादि सब दोषों को नष्ट कर। पवन सूँ पेलिये=प्राणायाम समाधि-साधना से सब बन्धनों को पेलिये–दूर करिये। विषै विष=विषयों का जहर। त्रिवधि रस=त्रिगुणात्मकरस। पैंडा करणां=रास्ता तय करना। उलटा पवन निरोध=प्राण का प्रवाह सामान्यतः नाभि से नासिका द्वारा होता है, इसको उलटि मेरुदण्ड की ओर से प्रवाहित कर रोकना। स पारा मारिये=चंचलमनरूपी पारे को मारिये–स्थिर करियं। महा रिप=प्रवल शत्रु। अगनि मुषि जारिये=ज्ञानाग्नि द्वारा जलाइये। सँवारिये=सफल करिये। अभ्यास=साधना।

॥ अथ चान्द्रायण ॥

॥ श्री गुरदेव को अंग ॥

गुर समथ सिरजनहार, सनेही रांम है।
भजि करुणांनिधि करतार, भजन सूँ कांम है॥
विलमन कीजै वीर, रैन का जांम है।
हरि हाँ—जन हरिदास निरमल अंग अभंग, अजब विश्रांम है॥

॥ इति गुरदेव को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सुमिरण को अंग ॥

चंद सूर रथ अटकि, निरंजन पाइये।
उलटी पंथ सँवारि, तहां मन लाइये॥
तजि घट 'औघट' घाट, अगम तहां जाइये।
हरि हाँ—जन हरिदास गगन गुफा मैं पैस, गरक गुण गाइये॥१॥

×

सील संतोष विचारिस, ग्यांन जगाइये।
उलटि पंथ सँवारि, अगम तहां जाइये॥
निगम अगम रस एक, तहां मठ छाइये।
हरि हाँ—जन हरिदास हरि तरवर मैं वास, अगम फल पाइये॥२॥

×

पाठभेद—अवघट-१।

शब्दार्थ—जांम=याम, पहर। विश्राम=आराम, शान्ति। चंद सूर रथ अटकि=इडा-पिंगला में चलने वाले प्राण को रोक सुषुम्ना में लाए। उलटी पंथ सँवारि=मन-इन्द्रियों को अन्तर्मुख कर उनके पङ्ख सँवारिये। गगन गुफा=दशमद्वार, ब्रह्मरन्ध्र। पैस=प्रवेश कर। गरक=तल्लीन हो। निगम अगम रस एक=वेद-श्रुति जिसको अगम कहते हैं, वह चेतनतत्त्व सर्वदा एक रस है।

गहर वाग रंग राग, तहां ध्यान धरि जोगी बैठा।
जंबकि मारया सिंघ, सूर ससिहर अंग पैठा॥
गया पाप 'पर'देस, पहम तजि धुर तैं धैठा।
*गंग चढ़ी ब्रह्मंड, अद्या हठ करता हैठा॥
×अरस परस रस परम गति, परम भेद निरभै भया।
त्रिवधि तिमर गति गरव 'गति', जन हरीदास सतगुर दया॥११॥

×

नाथ मछिंदर देषि, देषि गोरष गुण रता।
रह्या धणी सूँ लागि, छाड़ि भव जल का मता॥
गोपीचंद भी जांणियै, जोग ध्यान एसे गह्या।
है गै मै गै छाड़ि करि, माया तैं न्यारा रह्या॥
सुषदेव भी माया तजी, वास छाड़ि वन मैं वस्या।
जन हरीदास ते ऊवरया, जुग सारा माया डस्या॥१२॥

×

पाठभेद—प्र-१। गत-४-५।

शब्दार्थ—गहर वाग=सहस्रारदलरूपी बगीचा। रंग राग=विविध अनहद शब्द। जंबकि=शुद्ध मनरूपी शृगाल ने। मारया सिंह=मोहरूपी सिंह को मार लिया। सूर ससिहर अंग पैठा=मन-प्राण सुस्थिर हो आत्मचिन्तन में लगे। पहम तजि धुर तैं धैठा=निर्लज्ज पाप मूल देह को छोड़ गया। त्रिवधि तिमिर गति=त्रिगुणात्मक अज्ञान का अँधेरा दूर हुआ। गरव गति=अहङ्कार नष्ट हुआ। मता=मत, विचार। है गै मै गै=घोड़े-हाथी, भूमि-घरवार। डस्या=काटखाया।

* सुषुम्ना तथा सुरतिवृत्ति ब्रह्माण्ड (दशमद्वार) में पहुँची। हैठा—विषयभोग की नीची प्रवृत्ति के आग्रह से मन अब रुक गया।

× अभेद ज्ञान से व्यष्टि चेतन समष्टि से एकरस हो, शरीरगत चेतन तथा विश्वव्यापक चेतन एक रस हो परम गति—मोक्ष की प्राप्ति की। ब्रह्म ही सत्य है और सब दृश्य-अदृश्य संसार के पदार्थ नाशवान हैं, इस परम भेद को समझ कर जन्मने-मरने के भय से मुक्त हो गया।

इडा पिंगला फेरि पछिम को उलटा ध्यावैं ॥
भँवर गुफा कै घाट पीवै अमृत सच पावै ॥२१॥
अमृत पीवे अघाइ तपति सब तनकी जाइ ॥
थकित होइ ता मांहि जास कै वापन माइ ॥२२॥
परिहरि पांच पचीस दोय तजि एक पिछानें ॥
सतगुरु कै परसाद इसी गति विरला जानें ॥२३॥
तजै दुःख अरु सुष गगन में आसन लावै ॥
तहां देषै निज नूर मगन व्है मांहि समावै ॥२४॥
यह निज ग्यांन विचारि कै उनमन रहै समाय ॥
तुरसीदास अंतर नहिं भगति होय हरि आय ॥२५॥

॥ इति ॥

॥ साध सुलछन जोगग्रन्थ ॥

साधु जन संसार में रमै सुभाइ सुभाइ ॥
काहू कै रंगि ना मिलै अपनै रंगि रहाइ ॥१॥
मुष वांनी सुसवद चवै कुसवद कहै न काहि ॥
सील सबूरी साह करि चलै एक हीं माहिं ॥२॥
निरपष निरदावै रहे वरतै सदा विचार ॥
काम क्रोध अहंकार का संग न करै लगार ॥३॥
दया मया हिरदै रहै मदा सुमति सुमेल ॥
हरदम हरि का नाँव ले मन अरु मनसा मेल ॥४॥
परनिंदा भावै नहीं परपंच पलन सुहाइ ॥
पर आतम सूँ प्रीति कर परचै विलंबै ध्याय ॥५॥
विष इम्रत भंजन यही भिन्न भिन्न करि लेय ॥
विष त्यागै अमृत गहै एसा काज करेय ॥६॥

आतस लागा मन चलै, तौ मांगिर भिष्या षाइ ॥
जन हरीदास उदिम अजब, मजै निरंजन राइ ॥५॥

इजगर उदिम करत है, आतस लागा दोइ ॥
जन हरीदास वैराग 'व्रत', तहां कछु उदिम न होइ ॥६॥

इहि उदिम अवगति मजे, गंग जमन मधि वास ॥
जन हरीदास तब देषिये, परम जोति 'परकास' ॥७॥

परा परै पूरणब्रह्म, तहां मन रह्या समाइ ॥
जन हरीदास असा उदिम, और उदिम कूं षाइ ॥८॥

तन का उदिम कहां 'रहै', जब मन 'पिंगुल' होइ ॥
जन हरीदास 'मिरतग' पगां, चलत न देष्या कोइ ॥९॥

जे कबहू मिरतग चलै, तौ बीचि बिटंब कोइ और ॥
जन हरीदास मूंवां पछै, नहीं 'कुटंब' मैं ठौर ॥१०॥

सत रज तम षट ऊरमी, मैं तैं मोह जात सुष गोइ ॥
जन हरीदास विग्यांन व्रत, तहां उदिम नहिं होइ ॥११॥

॥ पतिवरता को अंग ॥

सेवग हाजरि 'चाहिए', साहिब सदा हजूरि ॥
'पून्यू' पूरा चंद ज्यूं, जहां तहां भरपूरि ॥१॥

पाठभेद—व्रिति-२ । प्रकास-१ । करे-३ । पिंगुण-२ । मृतग-१-५ । कुटुम्ब-१ । । चाहिये-२-३ । पून्यौ-१ ।

शब्दार्थ—उदिम=उद्योग, प्रयास । इजगर=अजगर सर्प । गंग जमन मधि वास= इडा-पिंगला के मध्य में सुषम्ना का वास है उसमें प्राण प्रवाह करना । पिंगुल= पंगुल, स्थिर, निश्चल । मिरतग पगां=काम न देने वाले पैरों से । विटम्ब=विडम्बना, साजिश । षट् ऊरमी=भूख, प्यास, हर्ष, शोक, जन्म, मरण । विग्यानव्रत=आत्मज्ञान प्राप्ति की दृढ़ता, प्रतिज्ञा । सेवग हाजिर चाहिए=साधक अपनी साधना में तत्पर रहना चाहिए ।

अलष निरंजन नाथ, स साथी सूर है।
भजि करणहार करतार, सु रांम हजूर है॥
दीनानाथ दयाल, सबन का मूर है।
हरि हाँ—जन हरीदास तेजपुंज परकास, अषंडिर नूर है॥२॥

×

रुति पलट्यां मन मांहि, अचंभा होत है।
नीर बूँद निरमोलक, हीरा होत है॥
हीरै हीरा वेध्या जाइ, पोत का पोत है।
हरि हाँ—जन हरिदास उन हीरां की, जाति हमारा गोत है॥३॥

×

परम सनेही रांम, तहां मन जात है।
वंकनालि 'विसरांम', सदा रस षात है॥
भजिये रमता रांम, इहै बड़ घात है।
हरि हाँ—जन हरिदास हरि परम उदार, अपार हमारा तात है॥४॥

×

गंग जमन मधि पैसि, अगम तहां जाइये।
'परमजोति' परकास, परम मति पाइये॥
वार पार मधि नांहि, कहा कहि गाइये।
हरि हाँ—जन हरिदास तेजपुंज रस एक, तहां मन लाइये॥५॥

×

पाठभेद—प्रकास-१। विश्राम-३। प्रमजोति-१।

शब्दार्थ—मूर है=मूल है, आधार है। रुति पलट्यां=ऋतु बदलने पर, मन बाह्यवृत्ति को छोड़ अन्तर्मुख हुआ। नीर बूँद=वीर्य तथा रज से पैदा शरीर। गोत है=गोत्र, कुल। घात है=अवसर है, मौका है। तात है=पिता है, जनक है।

जैसे सीप समंद जल भीतरि, उर धरि रषै हीर ।।
बहौर्यू जतन करै पुनि वाकौ, अंदर न भेदै नीर ।।२।।
असें जानि भजौ बनवारी, तन मन प्रीति लगाइ ।।
जगजीवन जब जग तै न्यारा, बहौंरिन उदर समाइ ।।३।।

हिड़ोलनो :—

अनंग हींडोलनौ हींडै हरि के दास ।
अधिक रूप उछाह आनंद, सबकी पुरवै आस ।।टेक।।
पांच तीन पचीस प्रकृति, काम क्रोध दोऊं नांहि ।।
मन मनसा नाद बिंद, मिलि रहै एकैं ठांइ ।।१।।
अधर खंभ अगाध अनभै, प्रेम प्रीति न्यौ डोरि ।।
नवरंग नवल किसोर नागर, रहै हरि सूं जोरि ।।२।।
बमेक बादल बिरोग बिजुरा, स्वांति बूंद बरखाइ ।।
चाहै चात्रिग लवै सदई, घरहरै घन आइ ।।३।।
नांव नग जड़ाव झिलिमिलि, परम ज्यौति अपार ।।
अपार षेलै आतमरांम सूं मिलि, सांज्या सोडि सिंगार ।।४।।
इंगला पिंगुला गंगा जमुनां, सुरसती समभाइ ।।
त्रिबेनि तटि अकल वरवर, तहां रहे लुभाइ ।।५।।
जहां गगन मंझ जिलिमिलितारी, चतुर दशवैं द्वार ।।
अरस परस दोऊँ मिले मंगल, रमै प्रभु पति नारि ।।६।।
जहां रैनि द्यौसन तरंग तारा, अगम आनंद रूप ।।
नूर निरमल मुक्ति माधौ, जहां छांह न धूप ।।७।।
समाधि सागर भर्यौ लालनि, मंझु मोती हीर ।।
हंस खेलैं चुगह चंचु बिन, महा अमीरस हीर ।।८।।
परम सुख परमांन परमल, सरस सुगंध सनेह ।।
अघटा घटा घटा घट घट, निराकार निज देह ।।९।।

४ सूरा सोई साध कहावे, नित सांई के मन भावै रे ।।टेक।।
ग्यान षडग ले मन कूँ मारै, पांचो पिसन निवारे रे ।।
सीस विहूना जुरै काल सूँ, चौडे षेत बुहारे रे ।।१।।
पाछा पाँवन देय पलक भर, सनमुष होय संभारे रे ।।
गुरु परसाद मेवासा तोरे, एसा कारज सारे रे ।।२।।
तन मन सीस स्वामी को सौंपे, हरि भज जन्म सुधारे रे ।।
जन तुरसी सोई गुरु मेरा, आप तिरे मोहि तारे रे ।।३।।

५ मन रे आतमरत होय रहिए ?
आदि अन्त मध मनसा वाचा, यहै जोग दिढि गहिए ।।टेक।।
नाना कथा निगम मत नाना, तहाँ वहक नहिं वहिए ।।
निहचौ परचौ पकरि नाव कौ, दुरमति दोष यूं दहिए ।।१।।
कोटिक ग्यांन ध्यान मत कोटिक, कोटिक मारग कहिए ।।
षोजत बूझत सुनत सुनावत, परमति पार न लहिए ।।२।।
केऊ आसतिक केऊ नासतिक, केऊ जनम केऊ नहिए ।।
एसे या झकझोल मांहि पर, काहे कूँ रोग वढइए ।।३।।
राग दोष विसराम विकल बुधि, भ्रम लै धार वहहीए ।।
जन तुरसी उर मै आरंभ करि, परमातम पद गहिए ।।४।।

राग आसावरी

६ सौई संत सतगुर का चेला, पूरव तजि पछम करे मेला ।।टेक।।
नौ से नदी कूप में आनै, वाहर सोलह सम कर जानै ।।
दछिन तज उत्तर करै वासा, तव पछिम सूर करै परकासा ।।१।।
गंगा उलटि मेर कूँ ल्यावै, धरति उलटि आकास समावै ।।
अब तुरसी या पदहि विचारै, आप तिरैसो और हि तारै ।।२।।

अलप अहारी अलपतुय अलपहि निद्रा नेह ॥
अलप रमनि रमै जुगति सूँ अलप ही सबद करेह ॥७॥
आदू मारग आदि मत आदू गहै विचार ॥
आदि अन्तर रटिवो करै निराकार निज सार ॥८॥
करम तजै कर्ता भजै करै न जग की कांनि ॥
काया नगरी षोज कै करता लेहु पिछांनि ॥९॥
षिरै षपै सो ना भजे अविनासी सूँ नेह ॥
देह तणा सुष त्यागि कै होय रहे सम षेह ॥१०॥
होय रहै सम षेह लों तन मन आपा जारि ॥
आरति सूँ आतम महीं राम रमै इक तारि ॥११॥
मुख जु आंन उचरै नहीं परपंच सुनैन कान ॥
उभै लोपना उलटि कै धुनि में राषै ध्यांन ॥१२॥
को निंदै वंदौ कोउ करौ न आदर भाव ॥
कहुवाँ चित्त न लागई हरि भजवे को चाव ॥१३॥
सुष दिस कबहून पग धरै दुख देषन मुरझाय ॥
दुष सुष द्वै समान करि समता सम निरताइ ॥१४॥
सम जु लोष्ट सम कंचन सम जु मांन अपमांन ॥
सीत उष्ण सम करि गिनै सम चौरासी जांन ॥१५॥
सम जु धूप सम छाँहरी सम पानी सम पाल ॥
सम सेत फटक मणि मोतिया सम कंकर सम लाल ॥१६॥
सम मन पवना तन मही निरति सुरति सामान ॥
नादविंद सम कर भजै पूरन परम निधान ॥१७॥
परापरी सूँ रच रह्या साह सु लछन एह ॥
तुरसी एसा सन्त जन प्रतछ प्रभु की देह ॥१८॥

॥ इति ॥

प्रमाण गोरष भरतरी, कबीर नामदेव वीर ॥
साध बिना पावै नहीं, राम भक्ति की सीर ॥४॥
साधू हीरा साधू पीरा, साधू अवगति राम ॥
जन कल्याणदास शरणे आया, साधू सारे काम ॥५॥

गरज रहै अंतर राम अलेख,
पांच पचीस तीन गुण भागा, अन्तर रही न रेष ॥टेक॥
हिरदा कंवल में हरि अविनाशी, साहिब अनन्त अपार ॥
ता आनन्द में आनन्द विलसै, अन्तर राम अधार ॥
एकमेक अन्तर कछु नांही, साहिब है महबूब ॥
कल्याणदास जन सुमिरण लागा, पाया साहिब खूब ॥२॥

हम घर आये हरि का जना, राम रतन धन पायो मना ॥टेक॥
दर्शन परसन ज्ञान बिचार, राम रतन धन पायो अपार ॥१॥
चार मुक्ति सहजै घर पाई, प्रेम प्रीति अन्तर ल्यौ लाई ॥२॥
सबद साधन को दर्शन पावै, इडा पिंगला सुषमन गावै ॥३॥
कल्याणदास जन बलि२ जाई, दर्शन परसन रहै समाई ॥४॥

सषी हो दास कबीर गुरु राष्या,
सकल शिरोमणि नाथ निरंजन, अमी महारस चाख्या ॥टेक॥
मैं बलि जाऊं गुसांई तेरी, शरणै ताकिर आया ॥
गुरु गोविंद का सुमिरण कीया, नाथ निरंजन गाया ॥१॥
तन मन देकरि शीश भी दीया, गुरु गोबिंद मिलि जीया ॥
महिमा कहा कहूँ जन केरी, अमी महारस पीया ॥२॥
ज्यूं ही कह्या रह्या मन त्यूंही, ऐसा मन का धीरा ॥
कल्याणदास जन सुमिरण लागा, दास कबीर जन हीरा ॥३॥

सषी हो गुरु के शरणै रहिये,
गुरु गोबिंद हाथ जब पकड़ै, बहु मारग नहिं बहीयो ॥टेक॥

परचा सूं पीपौ मिल्यौ, सोंझौ काढै सीव ॥
पांचौ दे बैठा तलै, तब मुख देष्या पीव ॥४२॥
किती कथा काठैं रही, अगिणत साध अनेक ॥
सारगराही सकल कौ, बंदीवांन दिस देषि ॥४३॥
करनां सुनि करनांमई, जन की करौ सहाइ ॥
आदिनाथ बिरंदावली, 'ध्यानदास' बलि जाइ ॥४४॥
आदि अंति मधि संत सब, अगिणत गिन्या न जांहि ॥
ध्यानदास साहिब सुमिर, सब आये उस मांहि ॥४४॥

॥ अथ श्री स्वामी ध्यानदासजी का चान्द्रायण ॥

राम राम रमि राम निरंजन गाइरे ।
यूं तूं जपिए करतार, पछै तन जाय रे ॥
हरि हरि सुमरि अयांन कहा नर सोय है ।
हरि हां ध्यानदास बिण ऐक कोण का कोय है ॥ १ ॥
नारायण गोब्यंद गोपालस गाईये ।
तौ दीनानाथ दयाल निरंजन पाईये ॥
राम रहेम करीम अलाह उरि आंनि रे ।
हरि हां ब्रह्मा विष्णु महेस जपै सोई जानि रे ॥ २ ॥
गंगा जमुना आंखि मिली दरियाव कूँ ।
मन मनसा का प्रेम मिलेगा भाव कूँ ॥
भाव तहां भगवन्त सुरति रस मांनई ।
हरि हां औ तीरथ जन ध्यान जगत कहां जांनई ॥ ३ ॥
मसि कागद नहीं दोतिन लेखणि नावड़े ।
जीव का कहां तुडांण उलटि औंहटा पड़े ॥
सुरगुण बांजी जांणि निपट निरगुण पखी ।

मलका वाहै मरम का, दुरमति लीयां कमांण ॥
मार्गां पणि छाडै नहीं, मरि मरि मारै बाण ॥३९॥
जन कै पाषर प्रेम की, ग्यान तनौं गज गाह ॥
षेत मांहि पत्री मंडया, सक्ति उल घरि जाह ॥४०॥
नौ जोगेश्वर दाहिणैं, बांवै महादेव मस्तांन ॥
सक्ति सिचांनां ज्यूं उडी, पछै न पावै जांन ॥४१॥
कुत्ती सूं कांई डरै, बैठौ ध्यान धनी सूं लाइ ॥
फाड्या कांनां बाघनी, फिसल पड्या नैं खाइ ॥४२॥
चहुँ दिसा साधू षड़ा, सब सन्तन को साथ ॥
परतन छोड़ा जीवंती, जौरती उठावै हाथ ॥४३॥
ऊंचा चढ़ि असमान कूं, गगन बइठा जाइ ॥
साधौं का दीदार की, महमा कही न जाइ ॥४४॥
अरध कंवल माठी चिगै, उरधै बसैक लाल ॥
ऊर्म धूर्म सुषमना, पाया निगम निराल ॥४५॥
सुनि मांहि बाजा घुरै, नाना सबद रसाल ॥
ध्यानदास तब पाइये, सतगुर होइ कृपाल ॥४६॥
ध्यानदास सतगुर कीया, हमसूं बड़ौ उपगार ॥
भौसागर सूं काढि करि, कीया पैली पार ॥४७॥

॥ इति गुण-माया-संवाद जोगग्रन्थ संम्पूर्ण ॥

॥ अथ गुणादि बोधग्रन्थ ॥

चन्द सूर तहां कछू नहीं, नहीं धरनि आकाश
पवन नहीं पाणी नहीं, नहीं तहां भोग विलास ॥१॥
तेज नहीं तारा नहीं, नहीं तहां रूप अरूप ॥
सबद नहीं सुरता नहीं, नहीं छाया नहीं धूप ॥२॥

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

श्री प्राण संगली

भाग दूसरा[1]

॥ अध्याय ८ ॥

॥ श्लोक ॥

कलका पद दुनिया पढै सता नाही छेद ।
नानक सत विहगमी जिन सतिगुर दित्ता भेद ॥१॥

॥ राग गौडी महला १ ॥

॥ रंगमाला जोगनिधि ॥

आगासी[2] सरु भरिआ नीर । तामहिं कवलु वहुत[2] विस्थीरु ॥
भौरा लुभधा ताँ की गंध । नानक बोलै बिपमी[2] सध ॥१॥
बारह[3] सोलह समकरि गहै । आसणु सहजि निरालमु वहै ॥
चेतंन्हि डोरी गुडी लावै । नानक कहै जोग इऊ पावै ॥२॥
मेरु डड सूधा करि राखै । गुर प्रसादि अंम्रित रसु चाखै ॥
दोने शराइ[4] इकठी धरै । नानक बोलै जीवत मरै ॥३॥
उलटै पौण[5] पलटै काया । शब्दि अनाहद शब्दु बजाया ॥
धुनि अतरि मनु राखै[6] थीरु । नानक बोलै अऊलि[7] फकीरु ॥४॥

(१) गुरू साहब ने इस ग्रथ को भिन्न २ भागो में नही याटा । यह बाट पाठको की सुगमता के वास्ते हम ने की है । (२) आकाश में एक सरोवर है जल से भरा हुआ उसमें एक कमल हे बडे भारे निस्तार वाला—उसकी सुगध में मन भोरा लुभायमान हो रहा है । गुरू साहब कहते है कि दूर नहीं बस बिपमी सधि=सुपमना घाट में यह सभ कुछ कहा है ॥ नेत्रों में पानी भरा हुआ हे उसका भडार (इनके पीछे) आकाश सरोवर है—उस तीसरे नेत्र में प्रवेश करे तो विस्तारवान सहस्रदल कमल प्राप्त हो जाता है उस में मगन रहे । (३) बारह राशि का सूय हाता है सालह कलह सपूर्ण चद्रमा की होती हैं सो इन दोनों को एक घर निज भडार में स्थित कर देवे । अर्थात् (४) इगला पिगला रूप दृष्टिगत दोनों नाडियों को वाम दक्षिण ओर से एक ठोर मिला देवे । (५) पूरवोक्त रीति से नाम सहित पवन को उलटता पलटता रहे तो इस शब्द के प्रभाव से अनाहद शब्द प्रगट होगा । (६) उसको धुनि के बीच मन स्थिर रक्खे । (७) गुरू साहब—औलिया सत—कहते है । भाव (हम) यथार्थ कह रहे हैं ॥

उपर्युक्त उद्धरण में व्यक्त किया गया है कि साधक को अपने साधन-काल में
ार आसन से रह ज्ञान खड्ग ले काम-क्रोधादि प्रबल रिपुओं को मार, मनसा को
में करना चाहिये, तभी वह उस चिरन्तन सुख की उपलब्धि कर सकता है
सुख में अब से पहिले के साधक-सन्त निवास कर रहे हैं। इस जोगसंग्राम में
ा होने पर ही साधक का लक्ष्य पूरा हो सकता है-इस साधन को अपनाकर कोई
ाधक अपना काम कर सकता है। इसी से मिलती-जुलती भावना निम्न पदों से
ं होती है—

हम हेरूँ अवगति कूँ हेरे, जाता मनकूँ उलटा फेरे।
महादेव का मता पिछाणै, मन दशों दिशा सूँ उलटा आंणै॥

मनसा देवी सबकूं खावे, हमको मनसा साच बतावे।
हम जोगी जोग जुगति जांणे, वहती नदी अपूठी आंणे॥
पवन गोट का पारा वांधे, उलटि सुरति गगन को सांधे।
काम क्रोध का मूल उपारे, गगन मंडल में आसण धारे॥
अगम पियाला भर भर पीवे, अरूप रूप विचारत जीवे।
हरि सुखसिंधु तहाँ भय नाहीं, हरिजन हँस वसे ता मांहि॥

उक्त उद्धरण भी जोगसंग्राम की भावना का ही द्योतन करता है। हरिदासजी ने अपने लिए तथा आध्यात्मिक साधक के लिए दोनों ही स्थानों में जोगी शब्द का प्रयोग किया है। जोगी से-यहां यही अभिप्राय है कि देहस्थित चेतनतत्व को उसके मूलाधार अखण्ड ब्रह्मवाच्य-चेतन से मिलाने की साधना करना। इस पथ के पथिक को पथभ्रष्ट करने वाले षड्रिपुओं में काम-क्रोध का प्राबल्य माना है। काम से अभिप्रेत विषय की सभी प्रकार की कामना से है, जिसका हम चाह शब्द से भी व्यवहार किया करते हैं। वैसे काम स्त्री-संभोग के अर्थ में भी रूढ़ है, पर यहाँ ज्ञानेन्द्रियों की सभी वासनाओं को लेकर काम शब्द का प्रयोग है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में भी निर्देश किया है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥३७॥
(गीता अध्याय ३)

सास संभाल तोहि निकट बतावै , बाहरि भरम भूलि मति जावै ।
नामी नासा बिच पन्थ गहीजै , प्रेम पियाला भरि भरि पीजे ॥१५॥
जब काल जाल लागै नहि कोई , हरिजन हरि भजि निरभै होई ।
ज्ञान विचार विवेक सुनाया , सतगुरु अन्तर सांच लषाया ॥१६॥
करम भरम जाल जुग जेते , उनै सतगुरु मेटे रहे न तेते ।
इड़ा पिङ्गला सुषमणि मेला , तब आतम सुख बिलसे बेला ॥१७॥
इड़ा पिंगला सुषमणि सगा , तब आतम जाणि रंगी हरि रंगा ।
गुरु ब्रह्म अग्नि अन्तर प्रजाली , दोई दोई लकड़ी जुगती करि जाली॥१८॥
ब्रह्म अग्नि मैं करम दहाया , तब जीव जोगी धरै न काया ।
मनसा जोगणी उलटी समाणी , नो द्वार फिरि भरै न पानी ॥१९॥
उल्टी नेज अगम तहां लागी , सीतल भया त्रिषा सब भागी ।
बरषै अमी अषण्डित धारा , सुषमणि सींचे बाग हमारा ॥२०॥

आतम फूले रुचि बसंता , काम, क्रोध, विष रस रहंता ॥
अनहद बाजा अन्तरि बाजै , परम ज्योति निरषै चढ़ि छाजै ।२१।
परम ज्योति सुष वार न पारा , वो सुख निरषै साधु सारा ॥
वा सुष या सुष अन्तर भारी , इक दिन इक रेणि अंधारी ॥२२॥
वा सुष का है अगम विचारा , विलसेगा कोई संत पियारा ।
बिलसे जागता कोई जोगी सूरा , जाके बाजै अनहद तूरा ॥
पँाचो चेला बसि करि राषै , सुणे सब्द सतगुरु यूँ भाषै ।
पछिम किवाड़ी षेले जोगी , सो अमर जुग जुग रस का भोगी ॥
अमर जड़ी बटवै धरि मेल्हे , परचै लागा जोगी षेले ।
सील मुद्रा जोगी सति धारे , सींगी सुरति हरि नांव उचारै॥
काया कंथा धीरज झोली , साठै तार इकीसूँ कोली ।
छसै सहस इकीसूँ धागा , अन्तरि बैठा बणनै लागा ॥
तांणि बांणि बणि गाढ़ी भाई , ऐसी बणि फिर काटि न जाई ।
सहज सील की भिक्षा पावै , सो जोगी यमपुरी न जावै ॥
गगन मंडल मैं मंढ़ी संवारै , निर्भै रहे काल भै मारै ।
अमर पुरुष सूं जब ध्वनि लावै , तब काल जाल निकट नहिं आवै ॥
हरि सुषसागर कीया बासा , जग छीलर तजि भये उदासा ।
जग सुष तजि हरि सुष गहि लीना , तन मन उल्टि राम रस पीना ॥
तन मन पवना सुरति मिलावै , तब वो सायब का दरसण पावै ।
अलष निरंजन अवगति रामा , संत सुमिरि भये निहकामा ॥
राम मंत्र जपत भय भागा , सब तज संत एक सूँ लागा ।
राम कहत कांपै सब पापा , सो सतगुरु दिया अन्तरि जापा ।
काल जाल करि सकै न चोटा , गुरु गोविंद का सरणा मोटा ।
मछा सिंध गहै सरणाई , सो काल जाल तै नहिं डराई ॥
निरभै सुमिर भये अवधूता , नां कबहूँ ताकै जम दूता ।
राम मंत्र का बडो विसतारा , सुमिरि सुमिरि केते भये पारा ॥

निर्मल[1] नीरु अडोलु अथाहु । गुर पूरे मिलि पाया राहु ॥
इह सरि न्हाय निर्मल जनु होय । नानक मैलु उतारै धोय ॥२४॥
पानी[2] पवनु अगनि घरु पावै । इनकौ साधै तब साधु कहावै ॥
इनकौ साधि करै मनु रास[3] । नानक ऊचै घरि ताँका वासु ॥२५॥
अवधू ता के सुणि लै लक्षण । खिंथा झोली पंच विचक्षण[4] ॥
गुर सीती आपे पहिराई । नानक राखै सो गुरहाई[5] ॥२६॥
दिष्टि न दीसै अरु मुष्टि न आवै । रहीअै संगि मरीअै नित्त हावै[6] ॥
जे गुर मिलै ताँ अलपु लपावै । नानक फिरि कै चोट न खावै ॥२७
सोहं हंसा[7] जाँ का जापु । इहु जपु जपै वढै परतापु ॥
अंभि[8] न डूबै अगनि न जरै । नानक तिंह घरि बासा करै ॥२८॥
निरभउ मिलै भउ सगला जाय । उलटा मनु मनसा कौ खाय ॥
धरती[9] उलटि चढी असमानि । नानक गुरमिलि सभु सचु जानि २९
कुंचर[10] चीटी कै पगि बाँधा । गहि[11] गडीर उलटि सरु साँधा ॥
मूसै मिजारी[12] वशि कीनी । नानक गुर मिलि उलटी चीनी ॥३०
गुर का शब्दु जाँकै मनि बसिआ । रोमि रोमि अम्रित रसु रसिआ ॥
अहिनिशि कबहूँ न खूलै तारी । नानक माता[13] सदा षुमारी ॥३१॥
अहिनिशि शब्द अनाहदि राता । रसीअै रसु पीआ रसुमाता ॥
ऊचै खंडि रहै लिवलागी । नानक कहीअै से वैरागी ॥३२॥

---

(१) ज्योती का घाट सुरत सरोवर (सहसदल कमल)। (२) इडा अगनि, पिंगला पानी और सुषमना पवन है इन का घर त्रिवेणी अर्थात् सहज सुन्न का घाट है उस को प्राप्त होवे। (३) निर्विकार। (४) सयाना, पंडित, बुद्धिमान। (५) गुरभाई। (६) हमारे साथ भी सर्व का नाथ रहता है परंतु नित्य प्रति अज्ञात वश हुए हम सिसक २ कर मर रहे हैं। (७) पीछे निरणा कर दिया है, अब गुरू साहब शिवनाभ राजा को हंस मंत्र उपदेश कर रहे हैं। (८) जल। (९) सुरति जो शरीर रूप पृथ्वी का संघात (धरती) से अभेद हो रही थी। (१०) सुरति कीडी के पीछे २ मन हस्ती भी उसी के पाँव (चाल) चलाया जारहा है। (११) धनुष दृष्टि का। (१२) मनरूपी मूसे ने मैं २ करने वाली हउमैं बिल्ली, यही माया है। (१३) मस्त, मगन।

शब्दु असरूप[1] रूप बहु कीये । जिनि सुणिआ ते जीवति मूए ॥
अहि निशि डोरी ऊचे खडि । कहु नानक गुंगे ज्यौं खंडु ॥१५॥
किह[2] बिधि चदु भवनि आवै इहु भानु। किँह बिधि मरदह मनको मान
किँह विधि पद[3] महिँ पिडु समाय । कहु नानकतब मनु पतीआय॥१६
पूर्व[4] फिरि पच्छम कौ तानै । अजपा जाप जपै मनु मानै ॥
अनहत सुरति रहै लिवलाय । कहु नानक पद पिड समाय ॥१७॥
ज्यौं सुगंधि पुहप महि आही । इऊँ करि रामु रमै जग माँही ॥
जे को ठौर बासु की पावै । कहु नानक समझै समझावै ॥१८॥
द्वादशि[5] उलटै पीवै नीति । गुर साषी सुनि राखै चीति ॥
निरभऊ[6] नगरि करै जाय बासा। नानक मिटीहै सगल पिआसा॥१९॥
मनु पवना दुइ सदा अजीत । इन कऊ जीतै तऊ परतीति ॥
महरम महलि न ठाका पाय । नानक तॉ कौ मिलै कवाय[7] ॥२०॥
पिंड माँहि[8] ब्रह्मंड समाना । जिनि जाना तिनि गुरमुखि जाना ॥
गुर की सापी राखै चीति । नानक गुर मिलि सदा अतीत ॥२१॥
चोर करै नित नगरी चोरी । अहि निशि मूसहि[9] भेदु न होरी[10] ॥
गुर शब्दी फेरै ढढोरा[11] । नानक इहि बिधि समझहि चोरा ॥२२
अहिनिशि जूझै कबहूँ न भागै । नौघरि ताला दशवैं जागै ॥
काल[12] बसेरा होय उदासु । नानक पावै तौ घरि बासु ॥२३॥

---

(१) सत्य सरूप शब्द ने स्थान (मडल) भेद से अपने बहुत रूप प्रगट किये हैं। (२) किस युक्ति से इहु भानु (सूर्ज), चदु भवनि (सुरत कमल में) आवे। (३) चरण=सहस-दल कमल, पीछे कह दिया है। (४) प्रश्न का उत्तर गुरू साहब देते हैं—यह अर्थ तो पीछे कर दिये हैं। (५) नेत्रों का मालिक सूर्य है और द्वादश शब्द से यही सूचित है। (६) अनभउ नगर, त्रिकुटी में भी अनुभव खुलता है। (७) पोशाक, खिलअत, प्रेम पटोला। (८) गुरू, भेदी मिलें तो ब्रह्मान्ड का सपूर्ण भेद अदर दृष्टि आजाता है। (९) चोरी करते हैं। (१०) गुरमुख बिना और किसी को पता भी नहीं लगता। (११) मिनादी, दुहाई। (१२) पिंड ब्रह्मान्ड में काल का निवास है। पिंड से सुरति को निकाल कर ब्रह्मान्ड में ले जावे और वहा की रचना में ना फस जावे क्योंकि यहा प्रयत काल का ही राज है जब तक एक राजा की हद्द में रह उसका कर (हाला) सभ कुछ देना पडता है जब और राज में चले जाय तो प्रथम राजा का कुछ वश नही चलता। सो जीव प्रदेशी है काल की राजधानी में आय बसा और दुख पारहा है परदेश त्यागे तो निज घर में निरभय वास पावे। तभी ही गुरूजी ने कहा है कि "त्रिकुटी फुटी निज घरि वास" सो त्रिकुटी ब्रह्मन्ड हैं नीचे सहस्रदल कमल तक पिंड है दोनों काल मडल हैं।

बधिआ[1] अबंधु उछलै नीरु । बणु दणु हरीआवलु[2] मन धीरु॥
नानक बोलै ब्रह्मज्ञानि । कोई ज्ञानी होय सो लए पछानि ॥५॥
अउघट[3] घाटि निरालम जोति। दीपक विन उजीआरा होति ॥
खिसै[4] न बाटी घटै न तेलु । नानक बोलै इहु पूरा खेलु ॥६॥
आसणु[5] धरती धुणि अकाश। उर्ध[6] कमल मुखि कीआ बिगासु ॥
जिनि चाखिया तिसु आया स्वादु । नानक बोलै इहु विसमादु ॥७॥
उलटा बानु गगन को लाइआ । चचल मिरगु मारि घरि आया ॥
रंगि महलि बैठा सिकदारी[7] । नानक बोलै लागी तारी ॥८॥
गुर का शब्द गहै हथि बानु । चंचल मिरगु न देई जानि ॥
मिरगा[8] मिरगी दोनो बंधि । नानक बोलै विपमी[9] संधि ॥९॥
पाताली[10] रसु गगन चढ़ाया । तातैं सहजि पलटी काया ॥
गगन गाय दुहि पीता क्षीर । नानक बोलै चंचल धीरु ॥१०॥
उन्मनि कला धरै नित जोति । विनु दीपक उज्यारा होतु ॥
देखै बिगसै आपन आपु । नानक बोलै इउँ मिटै संतापु ॥११॥
इकतु[11] घरि आवै चंद अरु सूरु। पंचाँ मरदे रहै हजूर ॥
दूजै अगि न लाए चीता । नानक बोलै इहु गढु जीता ॥१२॥
आसा मनसा सगली परहरै । ऊचै[11] घरि ले मनूआ धरै ॥
निर्मल जोति सर्व कल्याण । नानक बोलै इहु पदु निरवाणु ॥१३॥
लिव लागी मनूआ ठहराय । पछम वाटि नगरि सुधिपाय ॥
नगरी वैसि त्रिबीणी न्हाया । नानक बोलै रुन्नी[12] माया ॥१४॥

(१) ऊपरोक्त खुला हुआ जल जब बंद किया जाता है तो उछलता है (वज्र किवाड भेदन होते हैं)। (२) सहसदल स्थान की निशानी दी है। (३) ऊपरले घट की (इस) घाटी में अथवा इस दुर्गम घाटी में निरालय जोति प्रकाशित है। (४) छिजती नहीं, क्षीण नहीं होती। (५) नासिका का मालिक पृथ्वी तत्त्व का देवता है सो नासका मूल पृथ्वी (तिल-तीसरे) पर अपना आसन स्थित रखे। और अपनी धुनि का ध्यान आकाश (ऊपर) को रक्खे तो। (६) नभ कमल विकाशिता को प्राप्त हो जाता है। (७) शिरदारी (मालकी) को प्राप्त होकर। (८) मन, इद्री (९) सुष्मना घाट में (१०) शरीर का सार जो अपने स्थान से पतित होता हुआ इद्री द्वारा व्यर्थ जाता था, जब गुरू उपदिष्ट युक्ति अभ्यास से ऊपर चढ़ा लेता है अर्थात् गिरने नहीं देता। (११) तीसरे तिल तथा सहसदल से भाव है ।(१२) ऐसा अभ्यास आरभ करतेही माया रो पडती है।

नाभि कमल हाट है दूजा । कुदरति धार बणाया कूजा[1] ॥
नाभि कमल ते निकसै सास । नाभि कमल ते नामु[2] प्रगास ॥
नाभि कमल उद्यम अभ्यास । नाभि कमल होए का वास ॥
नाभि कमल महि सास का डेरा । कोई खोजि लहै जनु तेरा ॥
नाभि ते निकसि जिह्वा आय बकै । नानक अखरज रूप कोई लखि सकै २
तीजे हाट का नाऊँ भंडारु । जितु वसै ऊष्मा मँगै अहारु ॥
पूर्ण होय तँ आवै शांति । बिनु अहार तरफै दिनु राति ॥
अहार बिना कछु अवरु न सूझै । होय ममूर[3] तब प्रभ कउ बूझै ॥
प्रभु बूझै ताँ होय अहारु । नानक तीजा हाट भंडारु ॥३॥
नाभि निकट इक हाट बनाया । तहँ उद्यम आछा घरु छाया ॥
नाऊँ हाट का उद्यमु उदंता । तहिँ उद्यम सुखि सहजि बसंता ॥
उद्यम करै त सभ किछु जानै । उद्यम करै त तत्तु पछानै ॥

---

(१) सिकोरा, घडा, भाव घट से है। (२) उसकी आश्चर्य कारीगरी और भी देखो कि नाभी कमल ते श्वास निकलता है परन्तु उस श्वास के प्रभाव से नाभी से नाम की ही प्रगटता होती रहती है, तात्पर्य यह कि सहज सुभाय नाम की तार हर एक के अंदर लगी रहती है। जब श्वास नाभी से उठता है तो नासका मूल प्रयत ऊपर चढ़ता है और वहां से बाहर निकलता है (नासिका द्वारा) और फिर बाहर से उसी प्रकार नासिका द्वारा लौट कर अंदर नाभी पर ही पहुच जाता है। यह श्वास की रात्रि दिन की स्वाभाविक चाल है। अब अंतरयामी ने एक कारीगरी इस में रची है कि जब श्वास नाभी से जोर (वेग) के साथ उठता है तो 'ह'–बीज अक्षर की धुनी करता हुआ ऊपर उठता है और जब नासा मूल पर पहुच कर टक्कर खाता है तो 'ह –को बदल वहा से 'स' ऐसो बीज अक्षर की धुनी करता बाहर निकल आता है। इसी प्रकार जब अंतरयामिनी शक्ति इसे फिर अंदर की ओर खेंचती है तो उस भीतरीय खैंच से 'स' का 'सो' उलटि करि हो जाता है, औरइसी धुनी के साथ जब फिर नासा मूल पर अंदर आकर पूर्व वतही टक्कर खाता हे तो स्थान केप्रभाव से 'सो' फिर 'ह के स्वरूप में पलट कर नाभी पर जा पहुचता हे–और उसी प्रकार 'ह' की धुनी सहित नासा मूल तक पहुच करि वहा से पूर्व वतही 'स' के आकार पर बाहर निकल जाता है। और 'सो रूप हुआ अंदर पलट कर नासा मूल पर 'ह' धुनी द्वारे नाभी पर पहुच जाता हे। इस प्रकार दिन रात्रि में जीव इकीस सहस्र छ सो श्वास सर्व प्रकार की क्रिया के करते सते भी "हंस सोह' रूप नाम ही जपता रहिता है। परन्तु पुरुष अचेत है कि इसकी सहज सुभाय की गति से अपना जन्म सफल नहीं करता। क्षण भर भी यदि इसकी ओर ध्यान दिया जावे तो अनेक पापों से निर्मुक्त हो जावे। गुरू साहब ज्यू २ अधिकार शिव नाम का देखते हैं त्यू २ नाम भी पलटते चले जा रहे हैं जैसा कि प्रथम राम नाम का मन्त्र उपदेश किया फिर ओंकार का और अब हंस रूप अजपा जाप का मन्त्र उपदेश किया है इसके प्रभाव से उसे पिंड के बंधन से निकालने का अभिप्राय गुरू महाराज को अभीष्ट है। (३) पूर्ण।

कला[1] पछानि कला[2] नित बाढै । मेटे त्रैगुण आपा काढै ॥
मूलु बँधि थाँमै नीरु अहंता । नानक गुरु मिलीऐ भगवंता ॥५६॥
कौन शब्द ते रहै अडोलु । कौन शब्द ते पूरा तोलु ॥
कौन शब्द ते त्यागै आसा । शब्दै नानक कउल बिगासा ॥५७॥
सत्य शब्द ते रहै अडोलु । शब्द कै परचै पूरा बोलु ॥
गुरका शब्द ले त्यागै आसा । नानक पौन अरभे कउल बिगासा ५८
शब्दु तत्तु बीजं[3] संसार । शब्दु निरालमु अपर अपार ॥
शब्दु बिचारि तरे बहु भेपा । नानक भेदु न शब्द अलेपा ॥५९॥
शब्दु अदिष्ट मुष्टि नहिं आवे। ताँ कौ जगु सगला भरमावे ॥
दिष्टि मुष्टि ते रहै निरारा । नानक बिरला को खोजणहारा ६०
शब्दै सुरति भया प्रगासा । सभ को करै शब्द की आसा ॥
पथी पंखी[4] सिऊँ नित राता । नानक शब्दै शब्दु पछाता ॥६१॥
गुरमुखि शब्दु होया बषशीशु। गुरमति पावहिं ते जगदीश ॥
बिनु शब्दै क्यों उतरसि पारा। नानक शब्दु लंघावनिहारा ॥६१॥
हाट बाट शब्द का खेलु । बिनु शब्दै क्यों होवै मेलु ॥
सारी सिष्टि शब्द कै पाछै । नानक शब्दु घटै घटि आछै[5] ॥६३॥
शब्दै धरती शब्दु अकाशु । शब्दै शब्दु होआ प्रगासु ॥
शब्दु कमावै ते वड़ भागी । नानक शब्दु सदा बैरागी ॥६४॥
शब्दु अतीत शब्द घरबारी । शब्दु बिचारि तरे ससारी ॥
बिनु शब्दै मारग नहीं पावे । नानक शब्द बिना कैसे ठहिरावै ॥६५
जहिं देखउ तहँ शब्दि निवासा। शब्दि बीचारि खंडित सभआसा॥
शब्दि रत्ता सो शब्द की जाति। नानक बिनु शब्दै क्यों मिटै भ्रांति ६६
बिनु शब्दै नाहीं सुध कायाँ । बिनु शब्दै नहीं छूटै माया ॥
बिनु शब्दै क्यों होय उद्धारु। नानक शब्द बिना नहीं मोछद्वारु६७
शब्दु रहै सगल जगि माहीं । जगु बिनशै ते कहाँ सिधाही ॥
भिन्न भिन्न इहु करहु बीचारा । नानक ऊचा खेलु अपारा ॥६८॥

---

(१) उलटने की बाजी, नटकला, जुगती अभ्यास। (२) शक्ति। (३) बीज, कारण। (४) शब्द रूपी पखी साथ रचा हुआ जहाज। अथवा "पथे" पाठ भी है अर्थ—मुसाफर पत् उतरती हुई शब्द की धार से सलग्न जहाज। (५) प्रकाशित विराजित।

चहुँ[1] का संग चहूँ का मीतु । जाँमे चारि हंढावै नीतु ॥
नाँ मलु लगै न होय पुराणे । नानक दरगह पैहन सिधाणे[2] ॥३३॥
मूलु[3] चापि राखे वैरागी । गगन सुन्नि अनहदि लिवलागी ॥
पचां[4] थाँमि करै अस्वारी । नानक सहजे मिलै मुरारी ॥३४॥
गरजि गरजि वरपै नित्त गगना । पच्छिम पवन उलटि मनु मगना ॥
सुन्न सरोवरि सुरति समानी । नानक चूकी आवन जानी ॥३५॥
सूक्ष्म महि अस्थूल समाना । पिंड छोड़ पद कौ उरझाना ॥
अर्ध[5] उर्ध दोऊ समकरि राखै । नानक खंडु खाय गुगा किआ भाखै ३६
जोग जुगति चीनहु अवधूता । दूदर बाँधहु गुरकै सूता[6] ॥
नागनि[7] निर्विप क्यौं करि होवै । नानक मनु गुर शब्दि परोवै[8] ।३७
सोहं हंसा जपु बिन माला । तहिँ रचिआ जहिँ केवल बाला ॥
गुर मिलि नीरहिँ नीर समाना । तबनानक मनूआ गगनिसमाना३८
क्यौं करि उर्ध कवल मुख खोलै । क्यौं करि बिन जिह्वा गुन बोलै ॥
क्यौं करि शब्दै शब्दु समावै । नानक जाणै जानि बुझावै ॥३९॥
लिव लागी तब कउल मुख खोलै । गुरुमुखु बिन जिह्वा गुन बोलै ॥
उलटै मनु जबि सुन्नि समावै । नानक शब्दै शब्दि मिलावै ॥४०॥
क्यौं करि मनु चंचल ठहरावै । क्यौं करि ठौर बास की पावै ॥
क्यौं करि भोजन बिना अघाना । नानक नीच कहै देवाना ॥४१॥
सगल खंड कायाँ महि जानहु । उलटि मारग[9] पछम को तानहु ॥
नप शिप फिरि सोधै सभ थान । नानक पाया गुरमुखि ठानु ॥४२॥
बिनु पवनै मजन क्यौं होवै । बिन पानी कैसे मलु धोवै ॥
बिनु अगनी क्यौं पचै अहारा । नानक पूछै इहु करहु बिचारा४३
बिनु बूझै कैसे को भाखै । क्यौं करि मनूआ तन महि राखै ॥
क्यौं करि नीरु चढै फिरि ऊचा । नानक जाणै जो होय पहूचा४४

(१) श्वास मन शब्द दृष्टि इन चार को इकत्र करके [illegible] । अब मन [illegible] दया धर्म यह चार गल में जामें पहिरे । (२) [illegible] । (३) [illegible] प्रथम कमल सहसदल है उसमें धनुषचढावे । (४) [illegible] । (५) पिंड [illegible] ऊपर की दो ठोर हैं इन के बीच जो [illegible] स्थिर रहे । (६ [illegible] के बालके (अब शिर नाम को अपनाय [illegible] । (७) [illegible] । (८) [illegible]
(९) उलटा मारग जिधर से सुरति [illegible] इसी [illegible]

चौथे रचि कछु अवरु न जानै। त्रिकुटी माहि चदोआ तानै॥
त्रिकुटी ध्यानु धरहि जब क्षीना[१]। नानक तहिं मनु सहज पतीना॥७०
मनी हाट जब मनु मगनाना । प्रगट जोति माथा झललाना[२]॥
प्रगट जोति आई जब माथै । बिअंत कोटि उधरे तिंह साथै॥
कीनी किरपा आपि गुसाईं। ताँके मस्तकि जोति जनाई॥
मनी हाट मैं जोति दिखावै । जब मनु मनी हाट मैं जावै॥
प्रगटि जोति जनु हरि संगि राता । नानक हरि जनु अगमु पछाता॥७१
द्वार हाट महि जब मनु गया । दशव द्वारे शीतलु भया॥
पोहि[३] न साकै उत घरि कालु । उत घरि होय वहै मनु लालु॥
लालहिं लालु मिलहि जब जाय। तब कालै का कछु न बसाय[४]॥
हीरे कउ जाय मिलिआ हीरा । जब दशवैं जाय चढ़े वज़ीरा॥
दशवैं दुआरे जब मनु गइआ। नानक जन्म मरण ते अस्थिर भइआ॥७२॥
जैसे सलिलहिं सलिल समाना। तैसे हरि जनु हरि मनु माना॥
जैसे कनिका काटि कीआ है राई । ऐसे हरि जन अंकि[५] समाई॥
जन महि हरि हरि महि जनु राता। हरि जन जन हरि एको जाता॥
उन्मनि ध्यान जनु हरि संग राता । कहु नानक जन अगमु पछाता॥७३
अठसठ हाट का कीआ निबेरा। बिरला खोजि लहै जनु तेरा॥
हाट हाट की जुगति बताई । जिंह घर जाय सु करम कमाई॥
मन ते आपहुँ कछू न होई । जिंह घर जाय सु तैसा होई॥
कायाँ गढ़ महि हाट बनाए । इहु मनु उनके बीचि समाए॥
इह मनु सभ घरि भ्रमता फिरै । गुर किरपा ते अस्थिर थिरै॥
प्रान पिंड की चीन सुनाई । नानक जन कउ सोझी पाई॥७४॥

॥अध्याय सम्पूर्ण ६॥

---

(१) सूक्षम हुआ। (२) मसतकि में जोति प्रगटती हुई झलका मारने लग जाती है।
(३) छू नही सकना। (४) बल, ज़ोर। (५) हरि की गोद में।

प्रेत हाट की इहा गुनाऊ । नानक उतर्यौ विसर ...

इड़ा हाट जब इहु मनु आवै । इत उत की सभ सोझी पावै ॥
आवन जान ते रहे निरारा । इडा हाट जब कीआ पसारा ॥

(१) माया अविद्या रूप कला से रहित । (२) वकील, निचोले । (३) अयानप, मूरखता। (४) उजाड, घना जगल । (५) कथनी=कथा करनी, व्याख्यान देना । बदनी=कविता कहिनी । (६) कौडी अर्थ । (७) बीचार ।

इड़ा विषडा कउ करै मैदानु । अनहद सुन्नि लगावै ध्यान ॥
आन न जानै एकहि राता । इडा हाट जब इहु मन जाता ॥
अउघट घाट मन के सभ तोड़ै। नानक इड़ा हाट मनु जोड़ै ॥६६॥
हाट पिंगुला जब मनु वड़ै । बिन मारग गगनंतर चढ़ै ॥
वह मगु नाना[1] ज्यौंकरि गढ़ु चढीऐ । डावर[2] तार पलमि तहँ बढीऐ ॥
पिंगुल राता सभ गढ़ साधे । पाँचहुँ नायक इक ठाँ बाधे ॥
प्रान नगर की सभ विधि जानी । पिंगुल जाय जोति पहिचानी ॥
हाट अनूप पिंगुला नाऊं । नानक तहिँ बूझै सभ भाऊ ॥६७॥
हाट सुष्मना जब मनु जाय । अनंद केल सुख सहज विहाय ॥
केल करै सुख रलीआ[3] मानै । जब मनु सुष्मन हाट पछानैं ॥
सुष्मन राता करै अनंद । काम क्रोध त्यागै सभ निंद ॥
अनद कलोलनि इहु मन राता । शीतल भया गया सभ ताता ॥
तामस तिष्णा मन ते गई । जब सुष्मन की सोझी पई ॥
इडा पिंगुला सुष्मन सूझी । तब मन गुहज कथा सभ बूझी ॥
सुख का हाट सुष्मना कीना । नानक तहि सुख डेरा लीना ॥६८॥
बेनी हाट जबै मनु जाय । मनु तहिँ बेनी कर्म कमाय ॥
बेनी संगम जब मनु जाता । तब अठसठि सहजे ही न्हाता ॥
बेनी हाट वहि जोति पछानी । बेनी ध्यानु धरहि जब ध्यानी ॥
बेनी महि सभ जोति दिखाई । नानक बेनी सौं लिवलाई ॥६९॥
त्रिकुटी हाट मैं त्रैगुन त्यागी । चौथे पद कउ भजि वैरागी ॥
तीन गुनाँ[4] की रहत गवाई । जब त्रिकुटी महि करी समाई ॥
राजस[4] तामस सातक तजै । हरि जन चौथे पद को भजै ॥

(१) नन्हा, सूक्ष्म । (२) जैसे डमरू की तार, उलट पलट करि अपनी चोट के निशाने पर पडती है उसी तरह सुरति की तार भी अपने घर को लक्ष करके वारवार उधर पलम (लटक) कर अर्थात टिक टिकी बाध कर उस गढ में वड (प्रवेश पा) सकती है । अथवा डावर नाम ऊर्णनाभी जतू (मकडी) का है जिस प्रकार वह अपने भीतर की तार के साथ नीचे लटक कर फिर उसी के सहारे चढ कर अपने घोसले रूप तने हुए जाल में प्रवेश कर जाती हे ऐसे ही सुरत रूपी मकडी भी श्वास प्रश्वास की तार से उतर चढ कर (शब्दाभ्यास के प्रभाव से) जहा से आई हे उस अपने निज देश रूपी घोंसले में प्रवेश कर जाती है भाव समाय जाती है॥ (३) खुशी, रगरस । (४) इडा पिंगुला सुषमना से भाव है ।

उद्यम करै त सभ किछु करै । उद्यम करै पंच सिउँ लरै ॥
उद्यम करै त भगति कमाय । उद्यम करै त तीरथ न्हाय ॥
उद्यम कीने कछु सुकृत होय । उद्यम करि अघहारै धोय ॥
चौथे हाट का नाम उदंता । नानक ता महिँ उद्यम बसता ॥४॥
वक नालि हाट मैं वसने हारा । आवत जात हरि नामु चितारा ॥
पजवाँ हाट रखिया वॅकनाले । निश दिन जपै हरि नामु सम्हाले ॥
वॅकनाल आय वकता जीउ । आठ पहर करता पीउ पीउ ॥
पीउ पीउ जपै जब खुलहिँ कपाटु । नानक वॅकनालि वकते का हाटु ॥५॥
शहरग हाट शहर है नीका । जितु सहजु वसै सुखु होवै जी का ॥
शांति होय जब शहरग चलै । शहरग हाट गले ते तलै ॥
सासु सुखी शहरग महि आवै । शहरग रहै तेजु मिटि जावै ॥
तेजु मिटै न निकसै बाउ । नानक छेवाँ हाट शहरग है नाउँ ॥६॥
घंट हाटि जब ताला मिलै । कवन विधि वकै कवन विधि चलै ॥
वकन चलन ते इहु ठहराय । जब घट हाटि ताला मिलि जाय ॥
दर खूले इहु होय सुहेला । आनंद नगरी[1] वसै अकेला ॥
सभ किछु सुखी जब खुलहि कपाट । नानक घंटु सप्तमाँ हाट ॥७॥
प्रेम हाट जब इहु मनु जाय । प्रभु सिउँ रचै हरि के गुन गाय ॥
प्रेम भगति जब मनूआ लागै । प्रेम प्रीति ते सोया जागै ॥
प्रेम महलि जब इहु ठहिराना । आनि त्यागि एक लपटाना ॥
प्रेम हाट अष्टवाँ कहीयै । तउ नानक प्रभु सेती रचि रहीयै ॥८॥
आन[2] प्रेम जब जाय समाना । झूठा रूप देखि हैराना ॥
झूठ रते की झूठी करनी । झूठ रते क्यों राचहिँ चरनी ॥
आन प्रीति जो मनूआँ राता । साच प्रीति नहिँ कबहुँ कमाता ॥
आन प्रीति के स्वाद लुभाया । आन प्रीति रचि जन्मु गँवाया ॥
प्रीति प्रीति दुहं विधि के नाउँ । नानक आन प्रीति ते मनु समुझाउ ९
फिरि घिरि आय वसै जितु हाटि । तहँ मनु सहजि विछाई खाट ॥

(१) "जब करै अनद होय रहै इकेला"। —पाठान्तर। (२) दूसरा प्रेम, माया-मोह (संसारी इश्क) से है।

आपे शाहु सराफ वजीरा । आपे परखि विसाहे हीरा ॥
आपे शब्दु सुरति गुर चेला । आपे साध संगति गुर मेला ॥
आदि अनाहदि शब्दु निराला । नानक वपरो[1] गुर गोपाला ॥६६॥
आपे सतगुरु माणकु हीरा । अति निर्मायल गहर गँभीरा ॥
शुभर सरोवर धीर सधीरु । आदि निरंजन सगल शरीरु ॥
नाम बिना मैं नाहीं कोइ । नाम बिना जमुदरि दुख होय ॥६७॥
नाम बिना जमु मारे वाटि । वेद पुराण पडहिं बहु पाठ ॥
नाम बिना जम पंथ करारा[2] । पुरसलात खन्ने[3] की धारा ॥
सिरि जम ककर ऊभी[4] मारा । नानक जमु मारे नाही कछु चारा
नामु मिलै चलै मैं नालि । नामु मिलै दुख लहै दुरालि[5] ॥६८॥
नामु मिलै सची पति सोइ । नामु मिलै अंति बेली होय ॥
नामु मिलै दरगह जैकार । नामु मिलै नानक सचि पिआरु ॥६९
आदि जुगादी है भी होगु । आपे अलपु लपावन जोगु ॥
जत सत का पूरा शब्द का सूरा । नानक तहँ बाजहिं अनहदि धुनि तूरा
पूरब पछम चढि दक्षिण जाय । रवि शशि दोऊ इकत्र मिलाय ॥
इकति सूति हारु परोवै मणीआ । नानक सो ऐसा दासु उदासी गणीआ ॥७०
भउरु उडरि गगनि सरि धावै । पंच बाण लै धनुष चढावै ॥
सहजि ध्यानी रहै ध्यानि । त्रिकुटी मिलि फूटी मुक्ति परानि ॥
निजि घरि रहे न आवागउनु । गुरमुखि सदा मनाए सउणु[6] ॥
तुरीआ तत्तु पवै गुर ज्ञानु । नानक सोई दासु उदासी जानु ॥७१॥
अनहद बाजै मनहिं अनद । इन विधि मेला गुर गोबिंद ॥
गुर गोविंद मिले मनु माना । घटि घटि ब्रह्म अलिप्त समाना ॥
ब्रह्म पछानै केवल वैरागी । नानक सुन्न रहै लिव लागी ॥७२॥

(१) वपड़े । (२) करड़ा, कठिन, क्रूर । (३) खड्ग की धारा समान नन्हा (सूखम) होने के कारण लघने को महा कठिन । (४) घनी मार । (५) दलने वाला, दुखदाई दुख भी निर्वित हो जाता है। (दुख सभ ही दुख देते हैं परन्तु एक दुख सहे जाते हैं एक असहि होते हैं । अथवा एक ऐसे दुख होते हैं, जिनमें से सुख निकल आता है, एक ऐसे होते हैं जिन में और दुख की शाखें पसर चलती हैं। सो नाम के प्रताप से ऐसें महान दुख भी दूर हो जाते हैं) । (६) यही शगुन मनाता रहे कि निज घर में ही मगन रहूं ।

ऊपरि कूंप गगन पनिहारी । अम्रित पीवै दशवैं दुआरी ॥
परचै पिंडु ऐसा जोग होई । नानक कहे उदासी सोई ॥५३॥
शुभर सरोवरि घरिहरि वासु । सहजि निपंन्ना[1] कवल प्रगासु ॥
सघो जोति महि कवल सरूप । अदृष्ट अलिप्त स्वादु अनूप ॥
सचु दतारु सचु सहजि निपंन्ना । साची जोति हसु इकवन्ना[2] ॥
चुणि मुक्ताहल हंस चुणि खाय । सचु चुगे अम्रित अघाय ॥
जुगति जत्नु करि गुरमुखि रक्षणु । नानक जोग वैराग के लक्षणु ॥५४॥
थोडी निद्रा अल्प अहारी । पहिरा दीनो दशवैं दुआरी ॥
जागत रहै न लागसि चोर । चेतन पुरुष बैठा अभमोर[3] ॥
जतु सतु सजम सुरति विचक्षण । नानक कहै साध के लक्षण ॥५५॥
तिभवणु जिसु मेपुला[4] अमरापदु डंडा । अकल्प घरि आसनु दृष्टा भउ खंडा
सो आकलु पूजहु सतिगुर के मुंडा[5] ॥
सो अकाल पूजहु सतिगुर की सेवा । जाँके बंदे देवी देवा ॥
सो आकलु चीनहु अगम अपारा । जिन खंड ब्रह्मंड कीए पाहारा
जिह्वआ अनरस सुआदि न चक्षण। नानक जोग वैराग के लक्षण ॥५६॥
तामस तिष्णा लोभु निवारे । पच अगनि[6] घट भीतरि जारे ॥
रहे अतीतु आत्मु बीचारे । सो अविनाशी पुरुप निरारे ॥
अहि निशि रहे गडीर चढाय ॥
पंच मारि मनु निज घरि ठाँइ । आपे मेले सहिज सुभाइ ॥
गगनि अकाशि चिति चेता रखणु । नानक कहे जोग के लक्षण ॥५७॥
साध निवाजे बंदे चोरा । जमु जागति न लागसि अउरा ॥
निर्मलु पाधरु सतिगुर दिखलाया । विपु विप त्यागि अंम्रित रसु भाया
मनसा सतोपि सहजि समाया । आपि वीचारि अमर पदु पाया ॥
ध्यान निरंतरि डोरी रक्षणु । नानक कहे जोग के लक्षणु ॥५८॥
अकलु निरजनु जोति अपारा । घटि घटि दाता सो प्रभू हमारा

(१) उत्पन्न हुआ । (२) एक रंग का भाव अद्वुती । (३) मेरा पियारा, मेरे हृदय विषे, मेरे ओर चारों (रमिया हुआ) । (४) तडागी जो कमर के गिरद साधू (निर्बाण) लोग पहिरते हैं । (५) ये गुरू के शिष्य । (६) पाच प्रकार की रौशनी ।

सहजि उदासी तत्तु वीचारि । बंधन ते मुक्ता मोख[1] दुआरु ॥
रहे अतीतु अकलपति घरि वासु । पारस[2] अंकु न लावै पासु ॥
रहे अतीतु पछाणे ब्रह्मु । जीवत मरे रहे निह कर्मु ॥
जुगति जत संजमु शील रक्षणु । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥१८॥
बाहरि जाय न मढ़ी मसाणि । गुर मुक्ते कीए सचे ताणि ॥
सचा उदासु शब्दि मनि चाउ । सिफती रत्ता आतम राउ ॥
गुर की मति लै शिक्षा सिक्खनु । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥१९॥
थोड़ी निंद्रा अलप अहारा । सदा सुचेतु प्रगट पासारा ॥
पर घर जाय न भिक्षा[3] ले । विषया बिष त्यागे अम्रितु सचु ले ॥
सचु शब्दु की सची लक्षण[4] । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥२०॥
धुनि निरंतरि एकु ध्यावै । मूल ध्यान डोरी सचु लावै ॥
पचे मारि जुगति पति पावै । ऐसा दास उदासी पावै ॥
चढ़िआ दास देवै परदक्षण । नानक कहे उदासी लक्षण ॥२१॥
दे पड़दक्षिणा चढ़े अकाश । पारस परसु मिले प्रभ तास ॥
इड़ा पिंगुला सुखमना नाड़ी । शशिघरि[5] सूर[6] वसै गैणारी[7] ॥
पज सत्त नउँ लागा रक्षणि । नानक कहे उदासी लक्षण ॥२२॥
दीपक जोति गुर शब्दि बिगासु । अस्थिर मनूआ गुर चरनि निवासु ॥
बोले सत्तु असत्तु न वाकु । सच्चे घरु सचु सांचउ ताकु[8] ॥
जपु तपु संजमु सुरत विचक्षण । नानक कहे उदासी लक्षण ॥२३॥
जोगी जोगु जुगति घरि पावै । ज्ञान भुगति लै मनु तिप्रावै ॥
कलपि त्यागी गुर शब्द सुहेला । आये हर्षु न गइआ भेला[9] ॥
जुगति जतु करि अम्रित रक्षण । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥२४॥

(१) मोक्ष द्वार तीसरे तिल से भाव है। (२) अष्ट धातु ही पारस में आ जाती हैं भाव धातु सपर्श, साधू ना करे। (३) एक अपने मालिक को छोड़ कर जो कि इस का अपना घर भी है किसी ओर के आगे जाचना ना करे। या सहज स्थिती को छोड़ कर भोग पदार्थों के सकल्प न उठाता रहे। (४) शोभा। (५) सहस दल। (६) चन्द्र शक्ति। (७) गगन मँडल में। (८) साचे घर में साचे को ताको (टिक टिकी बाध कर देखो)। (९) शोकातुर होना, जैसे भ्रिसका का भेला (ढेला) अपने आप में सुगड़ा होता है ऐसे धन हानि आदि से शोकित हुआ नहीं सकुचित होता। (धन हानी पर भय की आती नहीं होनी इस कारण भै शब्द डर का सूचक इस जगह नहीं समझा जा सकता)।

दहदिशि[1] रोक एक दर राखो, सुरत निरत रस पीजै ।
जोऊ अंतरि सोऊ बाहरि दीसै, इत बिधि मन वशि कीजै ॥४॥
कबीर कवन सूक्ष्म कवन अस्थूल। कवन डाल कवन है मूल ॥
क्या ले सोवै क्या ले जागै, क्या ले रहो उदासा।
कवन अगनि की धूनी तापउ, कवन मंडल मैं बासा ॥५॥
नानक ब्रह्म सूक्ष्म सुन्न अस्थूल । मन है पवन डाल है मूल ॥
कर्म[2] लै सोवहु सुरत लै जागो, ब्रह्म अगनि तुम तापहु ।
निश बासर[3] तुम खोजहु निज घरि, इह बिध रहो उदासो ॥
सतिगुर कहे सुनहु रे चेला, एहु लच्छन परकासो ।
गुर प्रसादि सर्ब मैं पेखहु, सुन्न मंडल करि बासो ॥६॥
कबीर जहाँ जाय न देइ सँदेसा, क्या अचर्ज होइ जाई ।
मैं भै[4] चक्र भयो गुर पूरे, इह बिधि देहु बताई ।
अपना अनुभउ कहो गुरूजी, परम जोति क्यों पाई ॥७॥
नानक शशीअर चलत देख तुम, लाखउ जहिं कीटी भीर न होता।
सतिगुर कहै सुनहु रे चेला, मिलै परम तत जोता ॥८॥
कबीर धन्य धन्य गुरनानक, जोगी सतिगुर परम उदारा ।
निर्मल पद दिखरायो मोकउ, रमता राम अपारा ॥९॥
जब हम भगत भए सुखदेवा। तब जनक बिदेह कीआ गुरदेवा ॥
कलि मैं कोरी[5] नाम कबीरा । ढूँढ थके मन भयो न थीरा ॥

(१) दसों दरवाजे ही रोक कर एक में रखो—नौ दरवाजे बंद करने योग्य हैं परन्तु दसवां गुप्त रीति से जो खुला रहता है उसी में से प्रकाश आता रहता है वह बंद हो जावे तो नीचे प्रकाश नहीं आ सकेगा। नीचे प्रकाश आना संसारी जीवन तथा बंधन का कारण है। संसारी ओर से जीते मरना मोक्ष का हेतु है इस विचार पर दसम द्वार का भी निरोध कहा है। नौं दरवाजे निरोध हो सक्ते हैं दसम का निरोध नहीं हो सकता किंतु इसका प्रवाह ही उलटा फेरना निरोध करना है। दसम दुआर गुरूजी ने तीन कहे हैं प्रतु यहां उस दसम द्वार से भाव है, जिस घाट पर कि मन बैठकर अपना कार्य करता है। नौं दरवाजे निरोध करने की आज्ञा साधारण अधिकारी प्रति आचार्यों की होती है परन्तु पूर्ण योग भ्रष्ट परमोत्तम अधिकारी के वास्ते लोगों की अंतिम सोपान ही प्रथम सीढ़ी होती है। यही कारण है कि योगियों का अंतला दशम द्वार कबीर जी का प्रथम पद समझा गया है।
(२) कर्म कांड आदि की प्रवृत्ति को लै अर्थात् लीन करके। (३) "निश बासर तुम खोजत खोजत इह बिधि मनूआ राखहु"—पाठ भी है। (४) मैं चकित हो गया हूं। (५) जुलाहा।

नद जी श्री बाबे जी का शिष्य होया ता कबीर जी फूलपान लैके बाबे का दर्शन करन आये। आय करतार करतार करि बैठ गए ॥ ता बाबे कहा ॥ आओ भगत कबीर कुशल है? ता कबीर कहा गुरू जी तेरे दर्शडिठे[1] सभ कुशल होई है। पर जो मैने सुनिआ है जो श्रीरामानदजी का संशय आप ने निवारन कीआ है। ताते मेरे भी संशय को छेदन करो। तुम तो जगत विषे गुरू सूर्य प्रकाश भए हो, सर्व जगत के कल्याण नमित्त तुमारा अवतार है ॥ ता बाबे कहा— तुसीं भी बचन करो।

॥ गोष्ट कबीरजी नाल होई महला १ ॥

कहै कबीरा चरन लाग करि, किरपा कीजै देवा।
अगम अगाध बिषम पद कहीए, से कित[2] पाईए सेवा ॥
मुहि समझाय कहो गुर पूरे, भिन्न भिन्न अर्थ दिखावहु।
जिह बिधि परम अभय पद पाईए, सो बिधि मोहि बतावहु ॥
मन बच कर्म कृपा करि कहीए, क्योंकरि मिलै अपारो।
चेला कहै सुणो सतिगुर जी, दीजै शब्द विचारो ॥१॥
नानक कहै सुणो कबीर जी, शिष्या एक हमारी।
मन तन[3] पवन जीउ करि एका, सुन्न लगावहु तारी ॥
कर्म अकर्म दोऊ पख त्यागहु, सुरत निरत विधि मेलहु।
निशि बासर तुम खोजत खोजत, सहज कला[4] मैं खेलो ॥
तजि माया निर्मोयल होवहु, मन के तजहु विकारा।
सतिगुर कहै सुनहु रे चेला, इह विधि मिलै अपारा ॥२॥
कबीर माया पचल निचल हऊँ, क्यों मन इस्थिर होय।
काम क्रोध व्याप्त सदा, सुरत निरत दई खोय ॥
मन राखऊँ तउ पवन सिधारे, पवन रहे मन जाई।
मन तन पवन जीउ होय एका, से बिधि देहु बताई ॥३॥
नानक आसण द्रुढ करि पूता, उन्मन ध्यान लगावउ।
अल्प अहार खडत करि निंद्रा, काम क्रोध पर जारउ ॥

(१) देखने करके। (२) "सो पाईए कित भेवा"—पाठ भी है, किस प्रकार। (३) शरीर को भालो भूत करके अर्थात आसन लगाकर श्वास के साथ मन तथा सुरत को एक करके सुन्न मडल में नाम के सहारे नाडी लगायो, भाव सुरत निरत की विधि मिला दो। इगला पिंगला की सधि को स्थिर कर दो। उस काल में कबीर जी रामानुजी व्यवस्था में रहते थे तभी ही कर्म अकर्म दोनों पक्ष का परित्याग गुरू जी कहते हैं। (४) सहज रूप में खिलना रूप।

(श्री गुरू०)

गुरु का शब्द लै बाँधे बंध । सतिगुरु शब्द रहे निर्बंध ॥
बकता शब्द लै उन्मन रहो । परचे शब्द अगम की कहो ॥१९॥

(श्री रामानंद०)

कवन घरि चाँद कवन घर सूर । कवन घर बाजै अनहद तूर॥
त्रिकुटी तेज करे झुनकार । गगन बर्षे केती धार ॥ २० ॥

(श्री गुरू०)

अर्द्ध चाँद[1] उर्ध सूर । अंतर बाजे अनहद तूर ॥
त्रिकुटी तेज करे झुनकार । गगन बर्षे एको धार ॥ २१ ॥

(श्री रामानंद०)

कै आदमि सिरजा करतार । कै पात चले संसार ॥
केते पख चले साथा । प्रिथमी कह्यो केते हाथा ॥ २२ ॥

(श्री गुरू०)

दोइ आदम[2] सिरजा करतार । दो पात[3] चले संसार ॥
पाँचों पंखी[4] चलैं साथा । प्रिथमी कह्यो साढे तीन हाथा ॥ २३ ॥

(श्री रामानंद०)

प्रिथमी कहीए केते खंड । केता ऊंचा है ब्रह्मंड ॥
अंबर उगवैं केते तारे । इंद्र बर्षे केते धारे ॥ २४ ॥

---

(१) शुन्य मडल का धनी नीचे है और भवर गुफा का धनी सूर्ज ऊपर, इनकी अतरालिक हद्द में अनहद का बाजा बजता हे । यद्यपि सहस्र दल का मालिक चाद नीचे तथा त्रिकुटी का मालिक सूर्ज ऊपर है और इनकी अतरालिक सधि में भी अनहद की ध्वनि होती तो है तथापि सहस्र दल में जो प्रकाश हे वोह सुन्न मडल का आभास मात्र है और भवर गुफा के धनी का आभास त्रिकुटी में है इस कारण स्वामी रामानंद जी जैसे आचार्य के साथ नीचे मडल के अधिकार की वार्ता को उपेक्षत कर (छोड) रक्खा है । परन्तु विपर्य्य ज्ञान रूप भ्राति के सशय निवृत्ति अर्थ कह भी दिया हे कि त्रिकुटी में जो झनकार शब्द का है वह ऊपर ले शब्द के तेज का हे और गगन मडल में केवल एक धार मात्र ही शब्द की वर्षती है । जहा से धार आती है वह भडार तो ऊपर ही हे । सो त्रिकुटी के शब्द तथा प्रकाश का भडार भवर गुफा में तथा सहस्र दल के शब्द तथा तेज का भडार सुन्न मडल में है यह सूचन कराया । (२) जीव, ईश्वर । ईश्वर को भी आदम कहि देने से कई एक ईश्वरवादी चिडेंगे, परन्तु आदम नाम पुरुष का है । सो पुरुष शब्द का प्रयोग जीव ईश्वर दोनों के वास्ते एकसा ही होता है । पुरुष प्रकृति के सयोग से ससार की उत्पत्ति और पुरुष स्त्री से सतान उत्पत्तिवत् । (३) पाप पुन्न । (४) पक्षीवत् उडने वाले पाचों प्राण ।

मान सरोवर करे इस्नानु । गगन मडलि महि धरे ध्यानु ॥
नउँ घर ढूँढै फिरि घरि आवै । नानक दशवैं सहजि समावै ॥१०॥
ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म का बेता । गगन मंडिल महि राखै चेता[7] ॥
पच इद्री करि राखै दृढु । ज्ञान खडंग जिनै[8] कायाँ गढु ॥

(१) बा ने, रोके । (२) सधान करे । (३) गगन मडल में चढाई योग्य अस्थारी अर्थ नाम स्मर्ण रूपी मत्र का आवाहन करे । (४) तीन प्रकार की इच्छा है=प्रथम — किसी वस्तु की प्राप्ति के वास्ते उद्योग करने , की । दूसरी— दु ख और आपति के दूर होने की इच्छा । तीसरी — किये का फल चाहना-किंतु जब इच्छा अनुसार फल ना होवे तो उस के वास्ते चिंता फिकर करना । सो इन तीन इच्छाओं को मार करि मान (अभिमान) को मर्दन कर डाले ॥ (५) कठिन, मुशकिल। (६) उलटे घाट, उतर करि अर्थात् पूरबोक्त प्रकार से परिक्रमा क्रम द्वारा चढ कर पिछ्वाड की ओर लोटकर । (७) सम्रृति, याददाश्त । (८) जीते ।

उलटे पवनु करे अहारु । त्रैगुण मेटे पावै सारु ॥
नानक अगम कथा का अगम बीचारु ॥ ११ ॥
आसा मनसा हउमैं मारी । चउपड़ खेले पकी सारी ॥
गुरमुखि सहजि करे वापार । अनहद वाजे रुणझुणकारु ॥
त्रैगुण मेटि त्रिवेणी मिणै[1] । गुर मुखि नानक त्रिभवणु जिणै ॥
पंज सत्त नौं तेरह साधे । गुर प्रसादी दूता बांधे ॥ १२ ॥
सुरति बिचक्षण सूरा पूरा । गुरकै शब्दि महा बलसूरा[2] ॥
सहजे रहे गडीर चढाय । दूतों दुष्टों मारे धाय ॥
चकनाडि रसु त्यागि रसाइण । त्रिकुटी फूटी मुक्ति पराइण ॥
त्रिकुटी छूटी शशीअरु फूटा । दुबिधा की मटुकी फूटी भउ छूटा ॥
सुन्न समाय गगनंतरि ताडी । बैठा तपति राजा पंचकारी[3]
अदली तपति बहै सचु निआई । सचु अैसी जोग जुगति की पाई ॥१४
प्रथमै त्यागी हउमैं शक्ति । तपति निवासी बैठा तपति ॥
सतसर सुभर भरि लीलाणा[4] । अमिउ महाँ रसु पीइ अघाणा ॥
अनहद राता लाल गुलालु । अमर अजोनी सदा निहालु ॥
कायाँ नगरी महि अस्थिर होवै । गुरमुखि जागै सहजे सोवै ॥
चद सुरज की पाए धुनीआ[5] । हरि कै अँकि समावै गुणीआ ॥
हर्ष न शोक सदा आनदु । ज्ञान विवेकी परमानदु ॥ १६ ॥
परग्रिह जाय न भिक्षा करै । पर रूप न देखै पर दर्बु न हिरै ॥
निंद चिंद किसकी करै न ताति । कायाँ अगनि करै निभराँति ॥
सतिगुर पुरुष बोले सत वादी । नानक अस्थिर आदि जुगादी ॥१७॥
चचल चाय न देखै रंगु । पर नारी नालि न करई सँगु ॥
निम्रताभूत[6] उदासी पुरुषा । निझर धार उन्मनि की वर्षा ॥
ब्रह्मज्ञान का देवै बंधु । प्रणवत नानक अस्थिर कंधु ॥ १८ ॥

(१) नापे । (२) महान बली, सूरमा । (३) पच=सत जन, उन की कारी करने वाला, पच नाम-प्रधानों की सभा का, उस के इकत्र करने वाला, सचे पारलीमेंट (सत्संग) का पातशाह न्यायकारी । (४) पूर्ण, समाया हुआ । (५) धूनी यिह तापे कि चाद सूर्ज को एकत्र मिलाकर स्थित रहे भाव चाद सूर्ज को ईंधन ज्योती के कुंड में डाल करि अगनी तपता रहे । (६) दीनता अगवान ।

पाँचउ इंद्री दृढ़ करि राखे । जिह्वा मुखोँ असत्तु न भाखे ॥
कोट कुट्टतरि तत्त का वेत्ता । गगन मंडल महि राखे चेता ॥
सिँच[15] पइआलु गगन सरि भरै । जाय त्रिवेणी मजनु करै ॥
सत्त पंजि नउँ लगा रक्षण । नानक कहै जोग के लक्षण ॥ १४ ॥

नहीं लगने पावेगा और पुरुष शरीर धारने का जो असली उद्देश्य रूपी नाक अर्थात पत (इज्जत) आबरू है वोह गुरमुखताई की नथसे अंत प्रयत निभ आवेगी । (१०) तार । (११) पाच तत्व के स्थान में ध्यान लगावे-यिह भाव है । (१२) स्वाद न लेने देवे (परचने ना देवे) । (१३) पाच प्रकार की ज्योति (रोशनी) । (१४) महसूल (हाला) । (गुरथिन मन्त्र न जपीए होरा) पाठ भी एक प्रती में है । (१५) पाताल का रस (सुरति) उलटि करि बारबार निरोध करन रूप सिंचता २ गगन सर को पूर्ण कर देवे भाव पूर्णत सुरति यहा स्थिर हो जाये ।

पूर्वि चड़ै पछम कउ आवै । रवि शशि दोय इकत्र मिलावै ॥
अउहट[1] पटण की चीने बाट । ताँ परि बूझै अवघट घाट ॥
नउँ खंड देखै पूर्व पछिम उत्तर दक्षण । नानक कहे जोग के लक्षण ॥ १५
एहु तनु भाँडा सुरति करि दूधा । पाईअै सचु समाइणु सूधा ॥
जुगति जत्त करि सहजि जमाया । जुगति विहूणा विकउ[2] जाया ॥
ज्ञान मधाणा नेत्रा भाउ । इन विधि जपीअै केवल नाउँ ॥
रोल विरोल लीआ है मक्खण । नानक कहे जोगके लक्खण ॥ १६
जिन माया जगु मोहिआ ब्रह्मा विश्नु महेश ।
ब्रह्मादिक इंद्रादिका सिद्ध साधिक मुनि-एस ॥
जती सती भवि भीपक रसी मोही मोहनहार ।
इद्र इंद्रादि जुगु जुगु हौमैं चिंताधार ॥
देवी देव सबाया सिध साधिक मुनि ध्यान ।
नानक कालु जालु बधि याहते हुकम सचै नीशानु ॥ १७ ॥
शास्त्र वेद कतेब सुनि नरक सुरग ते जाहि ॥
माया मोहै गुर शब्दु बिनु मन्मुखि भरमि भुलाँहि ॥
सुर्ग मिरत तन मोहिआ सप्त लोक पाताल ॥
आकाशी वैकुंठ लोक से मोहे माया जाल ॥
जो शरनि परै जगदीश की संत जनाँ प्रगरेन[3] ।
नानक सो दर्शनु पाइसी अविनाशी सुख सेन[4] ॥ १८ ॥
गुर जत सत सिवरउ[5] मुक्ति सरोवर जपु तपु सहजि ध्याना ।
सूख[6] सरोवर मुक्ति वर दाता घटि घटि सो पिरु[7] दाना ॥
यिह सुच संजमु गुरज्ञान पदार्थु हरि अंतरि भगति पजाना ॥
मिथ्या लोभ भये मनु सूचा सहजि भाय मनु माना ॥

(१) ऊपर के हाट तथा पटण (नगर शहर) आदि जो टिकने के स्थान हैं उनकी घाट (मार्ग) को पहिचाने । (२) बरबाद । (३) धूली-भाव उनके चरणों में धूली के समान परम दीनता को धारे । (४) सुख की सेना-भाव अविनाशी सुख समूह । (५) सिमरण करे । (६) सुख सरोवर । (७) उसी प्रीतम (परम पुरुष) को घट घट में पूर्ण सब का प्रकाश करता दाना (जाना) ।

नही शब्दु सुरति धुनि ओअंकारु[1] वीचारु।
नही मनु मनसा असथिरु गुरशब्दु पिआरु॥
मनु मुगधि इंद्री नहीं गुर ज्ञानु परगासु।
दैआ भउ पति सति नही गुर चरन निवासु॥
हउमैं के बधनि परे (माता) गरभि निवासु॥ २९॥
तहँ नेब ष्वासु चेरी नही चेरा। तहँ रस भोगणि नही, नरकि बसेरा
तहिँ हुकमु सलामु नही किछु तेरा। तहँ गज हैवर नही मालु घनेरा॥
तहिँ पहिरनु ओढनु कछूओ नाही। तहँ धनवत कहाँ ते खाही॥
से काल गिरासे जमपुरि जाँही। नानक भगति रते गुन गाही॥३०॥
तहाँ चोआ चदन मरदनु नहीं अकि। तहाँ षोडसीगार न कामणी बकि॥
सिरि जमुकाल ज्यों चद कलंकि॥
तिष्णा तामसु सहै सजाई। भूख प्यासै नींदि न पाई॥
थक नाड़ि रसु कछूओ जाई। नानक सो दाना करे रजाई॥३१॥
इड़ा पिंगुला सुषमणा इस देही महि परधान।
तिसु ध्यानि अहि निशि जपै अजरु जरै गुर ज्ञान॥
अखीं अंधु ना सुनही गधु। कंनीं सुरति न बाँधे बहु बंध॥
जिह्वा नामु रसनु नही चाखिआ। बिनु अनरस मीठे अम्रित भाखिआ॥३२॥
इंद्री सबलु मनु ताँकै भाइ। इंद्री का पीडिआ मनु दह दिशि धाइ॥
फंडे फंडु न बूझै अधु। साक्त मूढ़ा भरमु दुखु बंधु॥
भूलै समझै सतिगुर मति पावै। नानक पुनर्पि जन्मि न आवै॥३३॥
मनु पवनै की सुधि न, बुधि नाँही मतिहीनु।
मन्मुख मति फीकी बावरी आत्म रामु न चीनु॥
गर्भिवासु तनि पीडीऐ ज्यौं तिल कोल्हू लठि सहीनु[2]।
बिनु अगनी के तनु तपै ज्यौं जल बिनु है मीनु।
कर्म कला की जेवरी पशू बाँधिओ काल अधीनु॥ ३४॥

(१) शब्द सुरति तथा ॐकार की धुनी की यहा कहीं वीचार मात्र भी नहीं। (२) कोल्हू में पड़े तिल जैसे लठ की नपीडों को सहारते हैं।

श्री कबीरजी महाराज कृत

ज्ञानगुदड़ी

ॐ) अलख पुरुष जब कियो पसारा, लख चौरासी धागा डारा।
पाँच तत्व की गुदड़ी बीनी, तीन गुणन से ठाड़ी कीन्हीं।
तामें जीव, ब्रह्म अरु माया, समरथ ऐसा खेल बनाया।३।
शब्द की सुई सुरत के डोरा, ज्ञान के डोमर शिरजन जोरा।
सीवन पाँच पचीसो लागो, काम क्रोध मोह मद पागी।
काया गुदड़ी का विस्तारा, देखो सन्तों अगम सिंगारा।६।
चाँद सूरज दोऊ पैबंद लागा, गुरु प्रताप से सोवत जागा।
अब गुदड़ी की करहु सियारी, दाग न लागे देखु बिचारी।
जिन गुदड़ी को कियो विचारा, तिनहीं भेंटेउ सिरजन हारा।९।
सुमति के सावन सिरजन धोई, कुमति मैल सब डारो खोई।
धीरज धुनी ध्यान को आसन, सत कोपीन सहज सिंहसान।
जोग कमण्डल कर गह लीन्हा, जुगति फावडी मुरसिद दीन्हा।१२
सेली शील विवेक की माला, दया की टोपी तन धर्म शाला।
मेहर मतंगा मति बैसाखी, मृगछाला मन ही की राखी।
निश्चय धोती पवन जनेऊ, अजपा जपे सो जाने भेऊ।१५
लकुटी लौकी हृदय झोरी, क्षमा खड़ाऊँ पहिर बहोरी।
भगति मेखला सुरति सुमरनी, प्रेम पियाला पीवे मौनी।
उदास कुबरी कलह निबारी, ममता कुत्ती को ललकारी।१८
जगत जंजीर बाँधि जब दीन्हा, अगम अगोचर खिड़की चीन्हा।
तत्व तिलक दीन्हें निरवाना, राग त्याग वैराग्य निधाना।

अष्टदल कमल मध्य जाप आजपा चले ।
मूल कूं बन्ध वैराठ छाया ।
त्रिकुटी तीर बौह नीर नदिया बहें ।।
सिन्ध सरवर भरे हंस न्हाया ।
खेचरी, भूचरी, चाचरी उनमुनी ।।
अकल अगोचरी नाद हेरा ।
सुन्न सत लोकको गवन हंसा किया ।।
अगमपुर धाम महबूब मेरा ।

(रत्नसगार)

ये सब अष्टांग योग की बातें हैं। चाचरी, भूचरी, खेचरी, अगोचरी, उनमुनी आदि पंच मुद्राओं को योग साधना में सिद्धियों के लिए मुख्य स्थान मिला है। आचार्य रामानन्द की राम रक्षा में इन्हीं पांच मुद्राओं के साधकों को राज योगियों में गिना है। अष्ट दल कमल, त्रिकुटी, सुन्न सतलोक और अगमपुर आदि अष्टांग योग की समाधी के ऊपर के भेद हैं । रामानन्द सम्प्रदाय से आया हुआ परम्परा द्वारा यह योग गरीबदासजी को प्राप्त हुआ है । यह यह सब उनके महान् गुरु कबीरजी की कृपा है ।

गरीबदासजी का पूरा इतिहास अलग है। विशेष उनके सम्बन्ध में जानने की इच्छा वालों को उसे गरीबदासियों के किसी भी स्थान से प्राप्त करके देखना चाहिये ।

गरीबदासजी को लिखकर हमने कबीरजी की अमर आत्मा की महानता बताई है । इस सच्चे और अमर इतिहास के लिखने का एक यह भी फल है कि लोग सन्त जीवन के महत्वपूर्ण चरित्रों को पढ़कर उनके सम्बन्ध में अच्छी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथा भोगों के त्याग से एवं रेचक, पूरक और कुम्भक का अच्छी तरह अभ्यास हो जाने पर प्राणों पर पूर्ण प्रभुत्व हो जाने पर योगी के पांचों प्राण उसी तरह उसके अधीन हो जाते हैं, जिस तरह राजा के सेवक राजा के वश में हो जाते हैं।

(स) कुण्डलिनी शक्ति

श्री राम! प्राण, अपान वायु के अधीन हो जाने पर राज्य से लेकर मोक्ष पर्यन्त सभी सम्पत्तियाँ सुख साध्य हो जाती है। गोल कुण्डलाकार से युक्त, नाभि स्थान में समाश्रित सौ नाड़ियों की आश्रय आन्त्रवेष्टनिका (सुषुम्ना) नाम की नाड़ी है। यह नाड़ी सब प्रकार के प्राणियों में स्थित है गुदा से लेकर भौंह के बीच तक सब छिद्रों का स्पर्श करती हुई यह सुषुम्ना नाड़ी मन की वृत्तियों से भीतर चंचल और बाहर प्राणादि से स्पन्दनयुक्त सदा स्थित रहती है। वह कुण्डलाकार वाहिनी है, इसलिए 'कुण्डलिनी' नाम से कही जाती है।

वह सब प्राणियों की परमा-शक्ति है तथा प्राण, इन्द्रिय, बुद्धि आदि सभी शक्तियों की सत्तास्फूर्ति की निर्वाहक होने से सब को वेग प्रदान करने वाली है। वही अपने मुख से प्राणवायु को ऊपर फेंकती है और अपान को नीचे को नीचे खींचती है। वह ऊपर की ओर मुँह किये कुपित सर्पिणी की तरह स्थित रहती है। यह देह में जैसे-जैसे स्फुरित होती है वैसे-वैसे अन्तःकरण में ज्ञान होता है। इस कुंडिलिनी में हृदय कोश की समस्त नाड़ियाँ सम्मिलित हैं। वे सब नाड़ियाँ सागर में नदियों की तरह उसी से बारम्बार उत्पन्न होती हैं तथा उसी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

07:25

जरा मरन भउ[1] सगल मिटाना। ज्यों जलु जलही माहिं समाना॥
पुनरपि जन्म बहुरि नहीं आवै। नानक परम तत्त तब पावै॥१३॥
तिरबेनी मनु सहजि नहावै। सुरति हाथ करि मनु पतीआवै॥
बहुरि न फिर फिर मारगि धावै। संनकादिक सिउँ गोष्टि पावै॥
तिरबेनी[2] छूटै मुन्नि समावै। नानक परम तत्त तब पावै॥१४॥
गगन गरजि मगु जोहि अनन्ता। तहँ बिजली चमकै घन बरषंता॥
तहँ भीजहिं संत अमृत की बानी। गगन नगर की जब मिति जानी॥
गगन गँभीर नगर दृष्टाया। नानक परम तत्त तब पाया॥१५॥
बंक नालि के अंतरि जाय। पश्चिम दिशि की सोझी पाय॥
निझरु झरै जलु पीयै अघाय। तौ भउर गुफा के घाटि समाय॥
होय मकरंदु[3] कमल लपटाना। नानक परम तत्त तब जाना॥१६॥
सहज समाधि तबहि मनु जाई। जन्म मरन की चूकी धाई[4]॥
जरा रोग सुपनै नहीं आवै। सहज सुभाय उपाधि[5] मिटावै॥
उपजिआ प्रेम प्रभू पहिचाता। नानक ताँ ते परम पदु जाता॥१७॥
खेलै प्रगट होय निहशंका। जूझै सम्मुखि काटि कलंका॥
दरशन परसै गुर कै भाय। अखेड[6] खेडै मरगु सभ जाय॥
नित्य उठि चालै बिषमी बाट। तब नानक तोड़ै अवघट घाट॥१८॥
अबरनु[7] बरनै निहकरम को धावै। असाध साधै अवेध बेधावै॥
गगन[8] ताला गुर कृपा ते तोड़ै। निःभर भरै अजोड़ को जोड़ै॥
होय वहै बिरथी ते बाला। नानक परम तत्त इह चाला॥१९॥
गरभि न आवै भरम को खावै। चींटी होय कै सागर सुखावै॥
अकाल होय तत्त माहिं बुडावै। नव खंड जीति पतिशाहु कहावै॥
उन्मुनि ध्यान अदल को दलै। नानक परम तत्त तब रलै॥२०॥

उलटै कमल[9] छिद्र तल धारै, निहशब्द होय गलताना[10]।
मनु[11] पवनै धावत ही जीते, तउ मनु मनहि समाना॥

---

(१) भ्रम भी पाठ है—"जरा मरनु भ्रमु भागि समान।" (२) "त्रिकुटी" पाठ भी है। (३) भौंरा। (४) दौड़। (५) औरों की ओर से जो सुख दुख मई संतापक अवस्था आया करती है। (६) अभ्यास रूपी अखेड रूप खेल। (७) जिस का वर्णन नहीं किया जा सकता ऐसे अकह पद को भी शिष्यों सत्संगियों को उपदेश कर सकता है। (८) भ्रूचक्र में तीसरा तिल घट का जंदरा (ताला) है। (९) ताला तोड़ने की रीति तथा ताला भेद (तीसरा तिल)। (१०) मगन। (११) ताले का स्थान खोलने की जुगती राम नाम उपदेश में कह दी है।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

गुहज महलि महिं मनु मगनाना, तब उलटि कवलु बिगसावै ।
नानक होय दासन को दासा, तब परम तत्त कौ पावै ॥ ६ ॥
षट दलि कवल निवासा होय । चहुँ कौ फेरि मिलावै सोय ॥
चहुँ कै बीचि समाधी रहै । तिस ते कालु त्रिभकि[1] डरि रहै ॥
एकही रचै आन नहिं धावै । नानक परम तत्त तब पावै ॥१०॥
अष्ट कवल दल भीतरि बसै । तहाँ श्रीरंगु सहजी बिगसै ॥
सतगुर मिलै गुहज घरु पाईऐ । रत्न जन्म बिरथा न गुवाईऐ ॥
गुर प्रसादि अगम घरि जावै । नानक परम तत्त तब पावै ॥११॥
कवलि कुसमदलि[2] भीतरि जाता । दश अंगुलि कै बीचि समाता ॥
तहाँ द्वादशि रहै अभीचु[3] । इस मनु जन्मु न होवै मीचु ॥
खोजि अधात्म आगमि[4] धावै । नानक परम तत्त तब पावै ॥१२॥
षोड़श दल जब चेतै प्रानी । मिलि गये श्रीधर अगम पछानी ॥

फिर नाभी के पिछवाड़ चक्र में सुरति को फेरे उसकी आठ पखड़ियाँ हैं यह दायें बायें किंचित भेद से स्थित दो चक्र हैं दूसरे में दस दल हैं वहाँ सुरति के टिकने में दो प्रकार का प्रकाश होता है । वहाँ का स्थान धारणा से खुल जाने पर हृदय कमल में सुरति लावे जो कि द्वादश दल का कमल है—चक्रों का निवास पिंड में पिछवाड़ में ही है अगली ओर केवल उनकी पीठ होने से गढ़ा मात्र शरीर में दिखाई दिया करता है। हृदय में तीन चक्र हैं परन्तु गुरू महाराज ने (जान बूझ कर) स्पष्ट नहीं किये द्वादश दल के दायें बायें उनका स्थान है वहाँ से फिर कंठ में सुरति को पलटे फिर त्रिवेणी घाट में जहाँ पर इड़ा पिंगला का मेल सुषमना के साथ होता है उसको भी छोड़ कर फिर सुरति आगे सुन्न में जा समाती है—सुन्न की निशानियाँ समझा कर ऊर्धगति बंक नाड़ी द्वारा पिछवाड़ में का धुंधूकार मंडल सूचन कराते हुए भवर गुफा जो कि सच खंड की दर्शनी डेवढ़ी है उसमें सुरति का समाना उपदेश किया है—सुन्न मंडल में तत्त्व ज्ञान की प्राप्ती होती है परन्तु भवर गुफा में पहुँच कर इसे विज्ञान की उपलब्धि होती है—इतने सावस्तर पिंड ब्रह्मण्ड भेद कथन से गुरू साहब ने अगली ओर (पूर्व) से सुरति का पिछवाड़ (पश्चिम) को राह ऊपर चढ़ना निरूपण किया है—सुन्न पर्यंत सभ चढ़ाई सीधी पश्चिमी चढ़ाई है। आगे थोड़ा सा व्यंग खाकर धुंधूकार मंडल की सैर (थोड़ी सी बाईं ओर पिछवाड़ में) करके फिर दक्षिण (दाईं ओर) घाट भवर गुफा का प्रवेश है यही प्रदक्षणा का क्रम चार धाम की यात्रा तथा चौपड़ खेलना आदि कहा है—इन्हीं संकेतों से गुरू जी बारंबार अभ्यास करावेंगे। पूर्ण अभ्यास पर निज घर सच खंड की स्थिती बषशते हैं जो आगे आवेगी। गुरू साहेब का उपदेश हठ योग का नहीं है, भूले हैं वह जो ऐसा समझ कर प्राण संगली के आशा की ओर नहीं झुकते जोकि कुंजी सभ गुर-बाणी की है। (१) सहम कर। (२) नाभिकमल गत दोनों चक्रों में से केले के फलवत् चक्र में ठहिरें। (३) थोड़ा सा खिला हुआ। (४) तीन कमल हृदयगत में से आत्मा की ठौर जिसमें है वोह गुरू से खोज कर अगम को चढ़े।

गुरु गम चकमक मनसा तूला, ब्रह्म अगिनि परगट करि मूला२१
संशय शोक सकल भ्रम जारी, पाँच पचीसो परगट मारी।
दिल दर्पन करि दुविधा खोई, सो वैरागी पक्का होई।
सुन्न महल में फेरी देई, अमृत रस की भिक्षा लेई।
दुख सुख मेल जगत के भावा, तिरबेणी के घाट छुड़ावा।
तन मन सोधि भयो जब ज्ञाना, तब लखि पायो पद निर्वाणा।
अष्ट कमल दल चक्कर सूझे, जोगी आप आप में बूझे।
इंगला पिंगला के घर जाई, सुख मन नारि तहाँ ठहराई।
ओहं सोहं तत्त्व विचारा, बकनाल में कियो सम्हारा।
मन को मारि गगन चढ़ि जाई, मान सरोवर पैठि नहाई।
छूटे कलमल मिले अलेखा, इन नैनन साहिब को देखा।
अहंकार अभिमान बिड़ारा, घट का चौका करि उजियारा।
अनहद नाद नाम की पूजा, सत्त पुरुष बिन देव न दूजा।
हित कर चन्दन तुलसी फूला, चित कर चाउर सम्पुट मूला।
सरधा चँवर प्रीति कर धूपा, नूतन नाम साहिब कर रूपा।
गुदरी पहिरे आप अलेखा, जिन यह प्रगट चलायेउ भेखा।
सत्त कबीर बकस जब दीन्ही, सुर नर मुनि सब गुदड़ी लीन्ही
रहे निरन्तर सत गुरु दाया, सत संगत में सब कछु पाया।
ज्ञान गुदरी पढ़े प्रभाता, जनम जनम के पातक जाता।
जो जन जाय जपे मध्याना, सो लखि पावे पद निर्वाना।
सन्ध्या सुमिरन जो जन करई, जरामरन भवसागर तरई।
कहें कबीर सुनो धर्म दासा, ज्ञान गुदड़ी करो प्रकाशा।

इति श्रीकबीरजी महाराज कृत ज्ञानगुदड़ी समाप्त

07:31

4

Vo)) LTE1

त्रिती समाधि का एहु वीचारु। महा बिश्रंतु अतिहि बिस्थारु।
अति अवधूती महाँ अलेषु। तिस जाति न पाति बरनु नहिं भेषु ॥
माया न छाया दृष्टि न आवै। जिसको पकरि देखै तिसु तृण ज्यों जलावै ॥
बसै द्रयावीं[१] मड़ीं मसाणीं। अति बिसुध[२] बोलै त्रिकल[३] बाणी ॥
नासिका तालका त्रिकुटी ध्यानो। लंबिका[४] उलटि पीवै गगन पानी ॥
सुन्न निरंतरि जाय नाद बजावै। नौसै नाड़ि बहत्तर कोठड़ीआँ
एक पल महिं फिरि आवै ॥
रोम रोम खण्ड खण्ड काया वीचारै। राज करै षट[५] चक्र षोड़स[६] आधारै ॥
आदि मध्य बूझै बन्धानु। नानक तृतीय समाधि बषांनु ॥२६॥
चतुर्थि समाधि बसै आपि आपि। तिस जाति वरनु नहिं माय न बापु ॥

---

(१) नदियों के किनारे। (२) बिना सोचे समझे, पूरब अपर विचार रहित। (३) टूटी फूटी अर्थ ज्ञान रहित। (४) हठ योग रीति से रसना के नीचे की नाड़ी छेदन करके रसना पीछे उलट कर लंबिका के साथ जो कि कंठ में थोड़ा सा मांस लटक रहा है (उसके साथ) लगा दी जाती है उसके रास्ते से अमृत टपकता है (बिना पलटने के भी अमृत रस टपकता है, पलटने का नियम नहीं है)। (५) षट चक्र पीछे टिप्पण में कहे गये, आगे मूल में भी आवेंगे। (६) आधारों का भेद बहुत गुह्य है परन्तु इनके जाने बग़ैर योग का बोध होना असंभव माना गया है इस कारण इनको प्रगट कर देना ज़रूरी प्रतीत होता है—सो यह हैं—१-आधार-पाद अंगुष्ट है, इस पर एकाग्र दृष्टि करने से ज्योति चैतन्य होती है और दृष्टि स्थिर होती है। २-आधार-मूलाधार गुदाचक्र है, इसे पाँव की एड़ी से अचेतन करने से अग्नि दीप्त होती है। ३-गुह्याधार है इसके संकोच विकास के अभ्यास से अपान वायु फिरके, वज्र गर्भ-नाड़ी में प्रवेश कर बिंदू चक्र में जाता है, इससे शुक्र (वीर्य) स्तंभन की सामर्थ्य होती है (नं० ४ का आधार भी इसी में शामिल है)। ५-पश्चिम तान आसन बाँध के गुदा को संकोचन करे, इससे मल मूत्र कृमी का नाश होता है। ६-नाभी मंडल आधार है जिसमें चैतन्य ज्योती का ध्यान करने तथा ओंकार का जप करने से नाद उत्पन्न होता है। ७-हृदयाधार है इसमें प्राण वायु के रोध करने से हृदय कमल खिल आता है। ८- कंठाधार है, इस में हृदय पर ठोढ़ी दृढ़ता से लगा कर ध्यान करे तो इड़ा पिंगला से बहता हुआ वायु स्थिर होवे। ९-क्षुद्र घंटिकाधार—कंठ मूल है इसमें जो दो लिंगाकार (मांस पेशी) लटकती हैं उन तक रसना को पहुँचावे तो ब्रह्मरंध्र में चंद्र मंडल से स्रवता हुआ रस मिलता है। १०-जिह्वा मूलाधार—इसमें खेचरी मुद्रा के प्रकार से जिह्वाग्र के साथ मथन करे तो खेचरी सिद्धी होती है। ११-जिह्वा का अधो भागाधार—जिसमें जिह्वाग्र से मथन करने से दिव्य कविता शक्ति होती है। १२-ऊर्ध्व दंत मूलाधार—जिसमें जिह्वाग्र स्थापन के अभ्यास से रोग शांति होती है। १३-नासिकाग्र आधार—जिसमें दृष्टि स्थिर करने से मन स्थिर होता है। १४-नासिका मूल आधार—जिसमें दृष्टि स्थिर करने से छः माह के निरंतर अभ्यास से ज्योति प्रत्यक्ष होती है। १५-भ्रू मध्याधार—जिसमें दृष्टि अचल करने के अभ्यास से सूर्य किरणों के समान ज्योति प्रत्यक्ष होती है। इसी अभ्यास के दृढ़ होने से सूर्याकाश

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

07:31

अपने सूति सभ आपि परोई । नानक करनैहारु न कोई ॥१६॥
प्रथमे तउ समाधि सुनाई । जठर अग्नि की आवी चढ़ाई ॥
ताय ताय तन बहुतु पकाया । जब पाका तब ठनकी सुनाया ॥
आवी ते जब निकसिआ सारा । तबहि पसम लै हाटि उतारा ॥
वस्तु अचरज बीचि लै पाई । नानक प्रथम समाधि सुनाई ॥२०॥
दुतीआ परम समाधि करि राखी । परम तत्तु धरिआ बिचि साखी ॥
पवन परत[1] प्रानन के माहिं । पवन मारग हरि लखे न जाहिं ॥
परम समाधि की जो मिति जानै । परम तत्त को तबहि पछानै ॥
परै ते परै पर मिति जब आवै । तब नानक परम समाधि समावै ॥२१॥
त्रितीए अपर अपार समाधि । आपु चीनि आप ते लाधि ॥
अपर अपार परंपर पिआरे । अपना आप प्रभु आप सवारे ॥
अपना आपु आपि पतीआरा । आपे भन्नि स्वारणहारा ॥
अपर अपार समाधि सुनाई । नानक प्रान नगर सुधि पाई ॥२२॥
चतुर्थ महाँ समाधि जब कीनी । बेअंत धनी मिति कितहुँ न चीनी ॥
महिमा ऊँच कही नहिं जाय । महाँ समाधि महिं रहिआ समाय ॥
एक घाट दरीआउ[2] हजार । दश दुआर अठसठि बाजार ॥
नउँ नाड़ी बहत्तरि कोठड़ीआँ । नानक चहुँ समाधि की तब मिति पड़ीआ ॥२३॥
प्रथम समाधि की क्या नीशानी । भिन्न भिन्न करि प्रगट बखानी ॥
दाता भुगता नहिं दूख दिखावै । अति उदार निहचउ नहिं धावै ॥
निशि बासर उह निहचउ करै । शब्द सोधि एकाको फिरै ॥
बाल अवस्था बेगम रहै । नानक प्रथम समाधि बिसम होय रहै ॥२४॥
दुतिया समाधि के लच्छण कौन । छमा शाँति शोभा सुख सउन ॥
दया धरमु धीर्ज संतोषु । नहिं कछु पापु बिघनु नहिं दोषु ॥
ज्ञान ध्यान में रहै चितन्न । अजपा जपै सदा अनदिनु ॥
सम दृष्टि अति धीर्जवंत । बसै निरंतरि लै गुरमंतु ॥
अठदश सिद्धि चरन लपटानी । नानक दुतिय समाधि बखानी ॥२५॥

(१) पवन को पलट प्राणों में, भाव पवन मन का जीव है, पवन के बिखरे रहने से मन बिखरा रहता है । और पवन का सार प्राण है इस कारण सारी पवन को प्राणों में पलट लो अर्थात् प्राणों की चाल सीधी करके उसमें नाम मिला दो तो उसके सहारे परे से परे जो पारब्रह्म है उसकी हद आन पहुँचेगी, इसके सिवाय पवन मार्ग से अर्थात् "बोलै पवना" जबान से नाम स्मरण करने से हरि नहीं लखा जाता । (२) सुषमना का घाट उससे हज़ारों रस रक्त प्रवाही नाड़ियाँ लगी हुई हैं जो दरिया हैं ।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

07:26

अंतरि गहै सुरति मुक्ताहल[1], हितु करि मिलै गुसाँई।
त्रिकुटी संधि[2] नासिका तालक, सुष्मनि जाय समाई॥
इंगुल पिंगुल पश्चिम धावै, रवि शशि अस्तु बिहाणा[3]।
नानक गुर किरपा ते जान्याँ, इहु मनु सचि समाना[4] ॥२१॥
सरवर[5] सुन्न बने सहँसदल, भवरगुफा मगनाने।
अति[6] चित्र साल बनी निज महली, हरि जन तहँ उरझाने॥
लिसमिस[7] दामिनी रिमझिम बरषै, हसि प्रभु मिलै निरारा।
कहु नानक जब तत्त बीचारिआ, तब प्रगटिआ भानु उजारा ॥२२॥
अगम अगोचर अलष अपारा, परे ते परे अनन्ता।
सब विश्व महिं जाँ की लीला, रवि रहिआ भगवंता॥
सभ ते दूरि निकटि सभहूँ ते, सभ अंतरि अलिप्त रहै।
जहँ पदु निरबान बसै तहिं आपे, नानक बिरला खोजि लहै ॥२३॥
जाँकी चेरी मुक्ति सुरगु अगवानी, ऐसा जापु जपीजै।
जाँकी माया दासी नवनिधि सेवाकारी, ऋद्धि सिद्धि चरन लगीजै॥
कहु नानक अमरा पद राते, चौथे पदहिं पतीजै ॥२४॥
एक घरि चंद सूर्ज कौ आनै, अर्ध उर्ध मिलि पावै।
तसकर की गति सहजे खोवै, अंतरि ब्रह्म टिकावै॥
जर नाठी[8] माया पछुतानी, नानक सुन्न समावै ॥२५॥
दीपकु जारि धरै बिनु तेलै, भउर देखि लपटाने।
इह घट भीतरि जोति प्रगासी, देखि लोइ उरझाने॥
नानक जोति रली संग जोती, ब्रह्म रूप प्रगटाने ॥२६॥
नौं दर मूँदि काया सम राखै, दसवैं शशि घरि सहजि बसै।
कोट जन्म के अघ सभ काटै, सुष्मनि मंदरि सहजि रसै॥
कनक मंदिर रत्न की सिहजा, नानक कँवल प्रगासि हसै[9] ॥२७॥

---

(१) मोती—खुलने की निशानी देकर फल कहा है। (२) नासा मूल त्रिकुटी की संधी का ताला है वहाँ पर से सुषमना घाट में समावै। (३) दृष्टि की धारें पिछवाड़ में जहाँ पर सूरज चाँद (नेत्र) अस्त होते हैं पलटे तो सुन्न सरोवर तथा भँवर गुफा में सहसदल कमल के बीच से होता जा मगन होता है। (४) "साचा परम तत्त पछाना" पाठ भी है। (५) साधारण उपदेश चढ़ाई का करके अब निसंकोच गुप्त रहस्य को भी प्रगट करते हुए शिव नाभ को अभ्यास कराते हैं। (६) सुरत कमल सहस दल की निशानी दी है—(योगी हरिजनों का) सुरति का वही निज महल है। (७) झलक मारने वाली। (८) भाग गई। (९) "लसै" पाठ भी है।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

10:00

चारि पदार्थ साध कौ दीने। चारि रत्न साधू वशि कीने ॥
नामु मुक्ति लै काम कौ त्यागै। अर्थ रत्न पर साधा आगै ॥
कहु नानक चहुँ का वरतंतु। कोटि मधे कोई बूझै संतु ॥६७॥
नामु रत्न जिसु जन हथि चढ़िआ। उह गर्भ कुंट महिं बहुड़ि न पड़िआ ॥
नाम की महिमा सुनहु जन भाई। नाम की शोभा बेद सुनाई ॥
नाम का महरम संत को होवै। उह पड़ै न जोनी बहुड़ि न रोवै ॥
नानक कहै सुनहु रे मीता। नाम का महरमु कोई हरिजन कीता ॥६८॥

सुणि नानक इउँ गोरख पूछै कवन रूप की बाणी।
कवन जुगति का शब्दु कथीअले अंतरि सुन्न ध्यानी ॥
कवन मंत्र उपदेशु कवन है कवन पुरुष का ध्यानी।
बोलै गोरख तू सुणि नानक कवन जुगति का ज्ञानी ॥६९॥
सुणि हो गोरख नानक बोलै कवन पुरुष की बानी।
इआ रूप ते शब्दु उपन्ना अतरि सुन्न ध्यानी ॥
आदि मंत्र उपदेशु शब्दु है सुनि सुनि धरहि ध्यानं।
बोलै नानक सुणिहो अउधू सतगुर बचन ज्ञानं ॥७०॥

कोटि बिशन कीने अवतार। कोटि ब्रह्म करहि जैकार ॥
कोटि महेश नित बन्दन करहि। कोटि इंद्र छत्र शिर धरहि ॥
कोटि देवते धरहि ध्यानु। कोटि जोगी जंगम भगवानु ॥
कोटि ऋषीशर शब्द को ध्यावहि। तउ नानक शब्द का भेदु न पावहि ॥७१॥
क्योंकरि सरु[१] अकाश कौ संधै। क्योंकरि पञ्च दुष्ट कौ बँधै ॥
क्योंकरि नीरु[२] चढ़ै फिरि ऊँचै। क्योंकरि मनूआ महलि[३] पहूँचै ॥
क्योंकरि पुरुषा अजरु जरै। चंचल मिरग क्योंकरि बशि करै ॥
क्योंकरि निज घरि पावै वासु। सुणि नानक क्यों कवल विगासु ॥७२॥
गुर का शब्दु बान हथि गहै। मिरगी मिरगु[४] साध घरि बहै ॥
पंच दुष्ट जीतै गुर ज्ञान। तहँ शब्दु अनाहदु सुन्न ध्यानु ॥

---

(१) बाण–सुरत रूप कानी के साथ शब्दरूपी फल जोड़े हुए से भाव है। (२) प्राण-अपान रूपी पवन जो जल प्रवाहवत् सदैव चलायमान रहता है (शरीर में) पाणी कहा जाता है जैसा कि "पाणी प्राण पवन पति बाँधे" इस श्री गुरु ग्रंथ साहब गत गुर प्रमाण से सिद्ध है। नीर नाम नेत्र ज्योति का भी है जैसा कि पीछे युक्ति तथा गुर प्रमाण से दर्शाया जा चुका है। इस जगह नेत्र ज्योति से ही भाव है। (३) महल नाम मुकाम का है परन्तु यहाँ मन के पास अपने मुकाम में पहुँचने के विषय में प्रश्न है सो मन का मुकाम सहस्र दल है। पहिले पद से संबंध भी इसी का है। (४) इन्द्रियाँ तथा मन।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

नाभ ते उपजै हिरदे महिं जाइ। सुषमना के घरि रहै समाय॥
इड़ा पिंगला सुषमना बूझै। तौ इनि उलटि कला मनि सूझै॥
तिलै गोरख ब्रह्म ज्ञातु। सुणि नानक इह जोग ध्यातु॥४५॥
क्योंकरि चन्द्रमा शीतल संगि। क्योंकरि भानु तप्त नित अंगि॥
क्योंकरि आसा मनसा त्यागै। क्योंकरि सुन्न शब्दि धुनि लागै॥
क्योंकरि अउधू तत्त को बूझै। क्योंकरि ज्ञान पदार्थ सूझै॥
इंदु सूरज दुइ इकतु घरि आणै। क्योंकरि सुन्न चँदोआ ताणै॥
बोलै नानक सुणि अउधूता। कवन बस्त्र कवन बिभूता॥४६॥
चंद्रमा[1] शीतल साधू संगि। तामस रूपी भानु तेजि अंगि॥

...ग्रता के अनंतर मन में उलटी कला नटबाजी रूप विहंगम शब्दाभ्यास की सुरत (...ज्ञान) आन स्फुरती है यही जोग ध्यान ब्रह्म ज्ञान सरूप है। तात्पर्य यह कि शब्दाभ्यास ...मात्र से ही यथार्थ ब्रह्म ज्ञान होकर पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ती इसे हो जाती है। शब्दाभ्यास ...का मार्ग यद्यपि अनंत बार गुरु साहब ने स्पष्ट करके भी कहा है तथापि इसकी चाबी ...केवल भेदी पूर्ण गुरू के ही हाथ दी हुई है।

(१) मन का अधिष्ठाता चन्द्रमा है। चन्द्रमा की शक्ति ही मन में कार्य करने ...वाली वस्तु है इस वास्ते इस जगह चन्द्र नाम से ही मन को निरूपण किया है। मन में ...एक तो मनन रूप कार्य की शक्ति है दूसरी अहङ्कार करने की शक्ति है, सो जिस प्रकार ...शीतल अंश इसमें चंद्रमा का है उसी प्रकार तामसी (तैजस) अंग इसमें सूर्य का है। ...एक ही मन में इन दोनों शक्तियों के सर्वदा काल स्फुर्ण होते हुए भी इनमें धरती ...आकाश का भिन्न भेद रहता है जिससे सर्व जीव दुखी रहते हैं क्योंकि ना केवल ...शीतलता से कार्य सरता है ना केवल तेज से, दोनों ही इकट्ठे हों तो कृत्यकार्यता पूर्ण ...हो सकती है परन्तु इनका समकाल इकट्ठे होना आग पानी के एक रूप होने वत अत्यंत ...अशक्य है सो किस प्रकार इस दुविधा के एक रूप निज भाव में मन आवे तो इस जीव ...का कार्य सुधरे। इस प्रश्न के उत्तर में साधू संग में प्रविष्ट मन में शीतलता का ...साक्षात्कार होता है और तेज अंश में अर्थात् तेज के स्थान में स्थित मन में तामस ...रूपी जो तेजोमई (प्रकाश रूप) अंश है उसका भान (साक्षात्कार) होता है। तात्पर्य ...यह कि तेज के स्थान रूप शिव नेत्र में सत्संग के आश्रे स्थिर हुए मन में ऐसी शांती की ...प्रगटता होती है जो शीतल है पर उसमें जड़ता का लेश नहीं— ऐसा तेज प्रकाशित ...होता है कि उसमें उष्णता का नाम नहीं। इसी शांतमई प्रकाश की उपलब्धी का नाम ...इस जगह चाँद सूर्य की इकत्रता रूप मन का निज भाव में स्थिर होना कृतकार्यता की ...कुञ्जी है। सतसंग से यहाँ भीतरी सतसंग भावित है—क्योंकि ऐसी स्थिती में बाह्य ...सतसंग सम काल नहीं किया जा सकता और सतगुर सरूप का ध्यान या सत शब्द ...का अनुसंधान—भीतरीय सतसंग है (साधू नाम भले का है—भला संत सतसंग ही है, ...और सभ संग नाश होने वाले होने से भले संग नहीं, सतगुर रूप शब्द ही सत है ...इसलिए उसी का संग भला संग—सतसंग है) सार अर्थ यह शब्द अनुसंधान पूर्वक शिवनेत्र में स्थित होना ही गुरुओं की कृपा से तत्त्व ज्ञान की कुंजी है। शब्द अनुसंधान की रीति पृष्ठ ८४ के टिप्पणी नं० २ में निरूपण की गई है।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

नेत्र कीए बिचि रंग बनाए। अचरज भाँति के दस्ते पाए ॥
स्याह सपैद अबरु सुरखाई। गिरद कटोरी आँखि बनाई ॥
धीरी बीचि दृष्टि सभ राखी। रसना करी जपनि कौ साखी ॥
घंडी तले बकनालि बनाई। घंट तले कछु स्वाद न पाई ॥
इहु बिस्थार गले ते ऊपरि। नानक जो सोधै तिसु जोति अनूपरि ॥३२॥

दुइ भुज दुइ कर दस नारी नाले[1]। नारि मरद करि एकु बहाले ॥
नारि मरद की लीक लगाई। बीनी ऊपरि धरी कलाई ॥
ऊपरि डउरु काँधे मेरु। गाटे[2] तले बिअंत अँधेर ॥
मिटै अँधेर दीपकु[3] जब जालै। नानक ज्ञान बीचारै नामु समालै ॥३३॥
घट ते तले बहत्तरि नारी। बिचि सुष्मना इड़ा पिंगुलारी ॥
जिस सुष्मनि होवै प्रगास। इड़ा पिंगुला सदा निवासु ॥
नाभि कमल ते ऊपरि हाट। तिन के अठसठि दीए कपाट ॥
पेट भँडारु कीआ असगाहु[4]। नानक गुहल नाड़ि प्रान सुख राहु ॥३४॥
नाभि तले इंद्री का वासा। तिसके भीतरि काम मवासा ॥
इंद्री के तले नलाँ का डेरा। अचरज खेल कीआ प्रभु तेरा ॥
सथ्थल गोडे पिन्नी पैराँ। दश नारि मरद का एक बसेरा ॥
करि कलबूत छवि सुख धरिआ। नानक रक्त बिंदु ते अचरज करिआ ॥३५॥
कई जुग्ग कलबूत स्वारिआ। भनि भनि ढाहि ढाहि उसारिआ[5] ॥
जीउ उपाय अंतरि बैठाया। भीतरि वड़ते[6] बहु डरपाया ॥
प्रभु सुबचन कीआ फिरि आवउ। तौ इस गढ़ के बीचि समावउ ॥
अंतरि जाय बहुत लोभाना। नानक कौल देन कौ पछोताना ॥३६॥
इस घट भीतरि अठसठ हाट। बिन कुंजी क्यों खुलहिं कपाट ॥
कवन कुँजी जितु खूलहिं ताले। कवन पुरुष जो वस्तु समाले ॥
अठसठि हाट का करै निबेरा। सोई आदि अंति जनु तेरा ॥
सतगुर मिलहि त खुलहि कपाट। तौ नानक परगट होवहिं हाट ॥३७॥
अठसठ हाट का क्या क्या नाउँ। उह कवन हाट जितु रहै हिआउ[7] ॥

---

(१) साथ ही। (२) गरदन गाटा नाम ठेठ पंजाबी में गले का है, अर्थात् कंठ के नीचे हृदय से भाव है। (३) नाम सुमिरन तथा गुरू पदिष्ट ज्ञान में विचर कर जब इस जगह हृदय स्थान पर ज्योति प्रगट हो। (४) अथाह। (५) "ढाहि उसारिया" के बदले "साजि स्वारिआ" पाठ भी है। (६) प्रवेश करते। (७) हिरदा परन्तु यहाँ भाव जीव से है।

10:07

खिंथा खमा शब्दु मनि मुंद्रा। नानक जुगति ज्ञान अउधू जोगिंद्रा ॥
नाभ कमल जी (अ) अस्थंभु। पवने सहिज करे अरंभु ॥

मन पवनै की सुध लहे, ससीअर[1] सूर कौ खाय।
नानक जोगी धन्य है, ऐसा जोग कमाय ॥१७३॥

आसण शुद्धु मन सचु सुचीत। गुर के शब्दि सचि रहे अतीत ॥
धर्म धीर्ज करि आसणि बहै। गुर की आज्ञा[2] मन महिं सहै ॥
आए हर्षु न गए सोगु। नानक पाईअै सचु ऐसा जोगु ॥१७४॥
नाम रत्तु सचु जोगु पाया। अनहदि राता महलि बुलाया ॥
अनहद शब्दु गगनंतरि बाजा। बैठा तखति अदली[3] सचु राजा ॥
सचु जोग[4] प्रान पति पाई। जोग के प्रान अंबरीक[5] रखाई ॥१७५॥
अनहदु नादु गुर शब्दु बजाए। दशवैं द्वारे रहे समाए ॥
शब्दि अनाहदि राता आदि। अस्थिरु जोगी आदि जुगादि ॥
अनहदि राता गुणी गहीरु। नानक जोगी गहर गँभीरु ॥१७६॥
त्रयदल[6] साधे मडुकी छूटे। अनहदि राते त्रिकुटी फूटे ॥
तंतु मंतु पाषंड न कोई। अंजनु[7] नामु मनु मानिआ सोई ॥
त्रयदल साधि बजाए तूरा। तहँ कार्ज सीधा गुरमुखि पूरा ॥
अस्थिरु पिंडु सचु जोगु अखंडु। निभंउ जोगी नहीं जमु डंडु ॥१७७॥
त्रेटकु[8] भेष न चेटकु कोई। खिंथा चक्र विभूत न होई ॥
गुरमुखि आदि दीश्रा उपदेशु। सतगुर मिलिअै उलटिआ वेष ॥

---

(१) चांद सूर्य को खैंच के सुरति अपने घाट पर ले जावै—यह भाव है। (२) अभ्यास में दीर्घ काल, निरंतर और सतकार पूर्वक प्रवृत्त रहने की शिक्षा रूप गुरू की आज्ञा को मन में धार कर बरते। भाव अर्थ यह कि जब जज्ञासु को गुरू दीक्षित करते हैं तो उपदेश के अनंतर ऐसी आज्ञा मिलती है कि इस उपदेश का अभ्यास नित्य प्रति प्रेम (अनुराग) सहित चिरकाल परयंत (कम से कम पहर भर) आसन बाँध कर करते रहना—अतएव इसी शिक्षा रूप गुरू की आज्ञा को मन में धार कर बरतता रहे। (३) न्याय करता सत्पुरुष, सच खंड का धनी। (४) सच योग से स्थिती रूपी प्रतिष्ठा को प्राप्त किया (प्राण नाम पराक्रम, बल, शक्ति, स्थाम का है—अमर कोष में)। (५) योग के बल से अविवाहिता जो माया है वह खायली (अंबरी-जो विवाही ना हो) अथवा नाभी के तले ९ उंगल परिमाण एक अंबरीक नामा काम की नली है उस को ऐसा अभ्यासी योग बल से अपने वश में रखता है। (६) त्रैदल से भाव तीसरे तिल का है—नेत्रों की शोभा कमलदल (पंखड़ी) की है सो दो यह हुए तीसरा इनकी पिछवाड़ में—ऐसे त्रैदल से तीनों का ग्रहण हो जाता है। (७) वही तीसरा तिल। (८) त्राटक मुद्रा दृष्टि साधन की, इसके आगे क्या है भाव यह कि कुछ भी नहीं है (तुच्छ सी है)।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

गुरुमुखि खोजत राहु दसायां[1] । सहज मिले जग जीवनु पाया ।
दुविधा दुर्मति त्यागि समाया ॥
गुरमुख सोग बिजोग प्रजाले । गुरमुख गति पति पाई नाले ॥
गुरमुखि दुनीआ दुत्तर तरिआ । शब्दि मूए फिरि बहुड़ि न मरिआ ॥११३॥
शब्द गुरू सचु दोनो दीखा । सतगुर पूरे सचु पीखा ॥
गुरमुखि खोजी सचु पछाणे । मनमुखि बादी तत्तु न जाणे ॥
चीने तत्तु गुर शब्दी मेला । शब्द गुरू सुरति धुनि चेला ॥
अंतरि रत्नु ज्ञान प्रचंडु । अंतरि नामु निधानु अखण्डु ॥
सुणिहो भरथरि नानक बोले । सचु निरन्तरि तत्तु विरोले ॥११४॥
नउँसर[2] सुभर दशवै चढ़िआ । गगन मँडल महिं वर्षा भरिआ ॥
तीनि[3] मेटि चउथे चउबारे । पञ्च सफा[4] जिणि मनु को मारे ॥
गगन मंडल महिं धरे ध्यानु । पारसु परसै त्रिभवणि[5] थानु ॥
पुरीआं[6] सत उपरि कवलासु । तहँ जोगी वैसे निरञ्जन दासु ॥११५॥
आठ अठारह बारह बीसा । बंकि नाड़ि त्यागी है तीसा ॥
बंक नाड़ि ते बाहरि भइया । सो ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म की मइया ॥
सुणिहो भरथरि नानक बोले । आत्म चीने तत्तु विरोले ॥
ऊरम[7] धूरम लागी ताड़ी । नानक जोगी जुगति बिचारी ॥११६॥
आसा पासा[8] मनसा खाय । पर दर्ब[9] न हेरे न पर घरि जाय ॥
चोरी चंचल चित्तु न रावै[10] । गुर प्रसादी सहजि समावै ॥
ऐसा जोगी जोगु पछाता । सचै शब्दि अनाहद राता ॥
सहजे रहे निमाणी[11] सूता[12] । नानक कहै सोई अवधूता ॥११७॥

---

(१) दर्शाया, समझाया । (२) नौसर सुभर अर्थात नौं दरवाजे गढ़िओंवत् छूछे करके अर्थात् इनमें से सुरत को खैंच कर दशवें द्वार में चढ़े। (३) तीसरा तिल, सहसदल, त्रिकुटी इन तीनों को मेट कर अर्थात् इनसे सुरत को खैंच करि चौथा चौबारा सुन्न मंडल है वहाँ पर जा पहुँचे। (४) पाँचों काम आदि की सफा (पंचायत) को जीत करि मन को मारे। (५) त्रिकुटी । (६) छः चक्र पिंड के, सप्तम त्रिकुटी का स्थान यह सप्त पुरिआँ हैं इनके ऊपरि कवलासु (कैलास) शिव का स्थान सुन्न मंडल है तहाँ पर स्थिति करे। (७) ऊरम धूरम आकाश पृथ्वी का नाम है इनके मध्य संधि में ताड़ी लागी, वा ऊरम नाम प्रकाश धूरम नाम अंधकार सो प्रकाश अंधकार से भाव श्याम सेत का है अरु श्याम सेत सहसदल का नाम है वहाँ ताड़ी लागी बस यही योग की युक्ति है। (८) आशा पासा (फाँसी) है और मनसा खाने वाला। (९) पराया धन। (१०) करै। (११) मान से रहित हुआ जीव जैसे दीन हुआ गिरा रहता है इसी प्रकार दीन अधीन भई। (१२) सुरति सहज घाट में पड़ी ही रहे।

10:02

नाभ कवलु पवनु अरंभु। मूल पवनु नाभ अस्थंभु॥
पश्चि तनु करि कीर बिडाणु[1]। जोति जगाइ पति मति गति दानु॥
घट मट पाए देह सवारी। सची जोति त्रिभवण प्रभि धारी॥९५॥
गुर के शब्दि प्रतीति मनु रचे। त्रिगुण चंचलु त्यागे चरचे[2]॥
चोरी चंचलु करे त्यागु। कर्मु मणो सचु मस्तकि भागु॥
ऐसा जोगु जुगति पछाणु। पञ्च मारि होवहिं परवाणु॥
बंक नाड़ि रसु भेदु न पाय। भणति नानक जे निज घरि जाय॥९६॥
इड़ा पिंगुला सुखमना तन बुधि। तीन[3] तजे सहंसा की सुधि॥
त्रिगुण त्यागि चोथा पदु जाणे। नौं घरि ढूँढि दशवें घरि आणे॥
ऐसा जोगी जुगति निराला। दयावंतु पूर्ण क्रिपाला॥
रहै बिहंगम कतहूँ न जाय। सुणि अवधू सचु जोगु कमाय॥
ओऊं उनमो अपर अपारे। आदि पुरुष अपरंपर धारे॥९७॥
अकथ कथा का क्या बीचारु। आपे जाणे अपर अपारु॥
गुर कै शब्दि रते मन माहीं। सचु जोगी सारु निज घरु जाही॥९८॥
गुर प्रसादि परम पदु पावै। नानक जाँको आप मिलावै॥
लालु गुलालु शब्दि गुर गूड़ा। गुर की भगति करे जन रूड़ा॥
रूड़ी बाणी मन को ठहरावै। गुर का शब्दु प्रापति अघावै॥
ऊँची[4] पवड़ी चढ़ै निरारा। गुरमुखि जोगी पावै पदु सारा॥
ओपति परलो निमष मझारि। नानक जपीए शब्दि पिआरि॥९९॥
निरंजन जोति शब्द सिरि शोरु। एकोही आपि दूजा नहीं होरु॥
ता का न अंतु, न पारावारु। अगम अगाधि बिअंतु अपारु॥
गुरमुखि जोगी जोगु कमाउ। सिरुती रत्ता आतम राउ॥
दशनु आपि सहजि घरि पाइ। निर्मलु बाणी नादु बजाइ॥१००॥

श्रद्धा आस्तिक भावना किसी की न हो उसके आगे भेद का प्रगट करना भी दोष रूप है इसलिये गुप्त रीति काव्य के अलंकार को यहाँ ग्रहण करली है। भरथरी को तो गुरू साहब के चरणों में श्रद्धा भी थी इसलिये उपदेश के ढंग को भी साथ २ बर्त्ता है) इस वक्त अरचे के घर में जब जाकर परचा सुरति का हो जावे तो त्रिकुटी के मंडल में प्रवेश हो जाता है और जब वहाँ के परचे से उसी प्रकार त्रिकुटी भेदन हो जाती है तो सुन्न मंडल में जाकर प्रवेश होता है। जब चाँद फूटा सहसदल के मंडल को सुरत ने बेधन किया त्रिकुटी में जा पहुँची। त्रिकुटी के फूटने पर निज घर (सुन्न मंडल में) समाती है। (१) आश्चर्य कौतुक। (२) बादविवाद के झगड़े। (३) तीनों को सहसदल का सुख लेकर तेप अर्थात साधे, वा सहसदल में ध्यान का धूनी तपावे। (४) इस प्रकार इसी ऊँची पौढ़ी पर शरीर से न्यारा हो चढ़े तो सार पद परम पद को प्राप्त हो जाता है।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

10:09

निबही खेप हमारी सिद्धो आठ पहर लिव लागी।
नानक दास तहाँ मतवाला जहँ एकंकार बैरागी[1] ॥४॥ १६४

तां बाबा बोलिआ सिद्धो आपने गुरू का शब्द सुनाओ जिस उत्ते मेरी प्रतीत आवैगी तिस कौ भी गुरू करांगा। तां परवत सिद्ध बोलिआ :—

॥ राग राम कली ॥

धन जोबन की करै न आसा। पर त्रिया अंग न लावै पासा॥
नाद बिंद[2] लै घट भीतर करै। तिस की सेवा परवत करै॥
बोलै परवत सत्त सरूप। परम तत्तु महिं रेख न रूप॥१॥ १६५

॥ सिद्ध ईश्वरनाथो वाच ॥

सो गिरही जो निग्रह[3] करै। जप तप संजम भिक्षा करै॥
पुन्न दान का करै शरीर। सो गिरही गंगा का नीर॥
बोलै ईश्वर सत्त सरूप। परम तत्त महिं रेख न रूप॥२॥ १६६

॥ श्री गोरखनाथो वाच ॥

सो अवधूती जो धूपै[4] आप। भोजन भिक्षा करै संताप॥
अउहाट पटण महिं भिक्षा करै। सो अवधूती शिव[5] पर चढ़ै॥
बोले गोरख सत्त सरूप। परम तत्त महिं रेख न रूप॥३॥ १६७

॥ चरपटनाथो वाच ॥

सो पखण्डी जो काया पखाले। काया की अगनि ब्रह्म परजाले॥
सुपने बिंद न देई झरना। तिस पाखण्डी का जरा न मरना॥
बोले चरपट सत्त सरूप। परम तत्त महिं रेख न रूप॥४॥ १६८

॥ गोपीचंदो वाच ॥

सो उदासी जो पाले उदासु। अर्द्ध उर्द्ध[6] करै निरञ्जन वासु॥
चंद सूरज[7] की पाए गंठि। तिस उदासी का पड़ै न कंध॥
बोले गोपीचंद सत्त सरूप। परम तत्त महिं रेख न रूप॥५॥ १६९

---

(१) सर्व संबन्ध शून्य, असंगात्मा। (२) नाद की ध्वनि—एक शब्द होता है, एक उसकी ध्वनि होती है। शब्द का सार नाद और नाद का सार बिंद होता है, इसी का नाम तुरिय आत्मा है, इसमें सुरत स्थिर हो जावे तो ब्रह्म पद का साक्षात्कार होता है। यही अपना मत परवत सिद्ध बतलाता है कि शब्द को नाद में और नाद को बिंदु में अर्थात तुरिया आत्मा में घट के भीतर लय करे। जो ऐसे अभ्यास करता है उसकी सेवा मैं करता हूँ, मात्र उसको ही मैं पूर्ण पुरुष आत्मवेत्ता मानता हूँ। इसका विशेष निरूपण पहले हो चुका है। (३) संजम। (४) धूप की न्याईं जो आपा भाव को धुखाय २ भसम कर डाले। ब्रह्म विचार रूप क्रिया सलाई से ब्रह्म अग्नि को प्रज्वलित करके देह अभ्यास रूप धूप का धुखाना हुआ करता है। (५) सुन्न मंडल के धनी शिव के ऊपर सचखंड में चढ़ जाता है। (६) पिंड ब्रह्मंड की संधि का स्थान। (७) इड़ा पिंगला का एकीकरण रूप गांठ पावे।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

त्रिकुटी संधि त्रिबीणी रहता। नाभ कवल पवनि घरि सहता ॥
अस्थिर पवन नाभ पर रहै। सुंन्न समावै मन महिं मनु गहै ।
बंकनाड़ि त्रिविधि (सों) त्यागे। नानक आदि जुगादी जागे ॥१८६॥
ऐसा जोगि जुगति परवाणु। सची दरगह सचु नीशाणु ॥
सची दरगहि महलि बुलाया। सिरि खुरि[1] पैधा प्रभि पैनाया ॥
अस्थिरु जोगु न आवै जाई। नानक जोगी सचि समाई ॥१८७॥
सुन्नि समाधि अनाहदि बाणी। सचा राजु रूप अकथ कहाणी ॥
आदि अनील जुगादि अनाहदु। आदि जुगादि जुगोजुग शाहदु ॥
कीमति किनै न पाईआ ता की। कोट ब्रह्मंड रचना जिनि राची ॥
ता का अँतु न पारावार। आपे जाणै सिरजनिहारु ॥१८८॥
अपणी गति मिति आपे जाणे। अपणे रङ्ग शब्दि निरबाणे ॥
आपे एक अनेक अपारा। आपे बहु बिधि करे बिस्थारा ॥
अगम अगाधि बिअंत अतोले। कुदरति कादरु[2] करते मउले ॥१८९॥
नानक जंपेदरि[3] बेनंती। एह अकथ कथा सचु सति सोहंती ॥
अकलु निरञ्जनु लाल गुलाल। आदि निरञ्जनु दीनदयाल ॥
अकल पति[4] बिरष पूरा भगवानु। अमर अजूनी परम निधान ॥
अमर अतीतु केवल गुरु ज्ञान। नानक जुग जुग परम निधान ॥१९०॥

जां बाबे नाल श्री गोरखनाथ ते भरथरी गोष्ट कीती तां समुंद्र की न्याईं उछले गदगद होए ते आखन लगे अज साडा जन्म सफल होया है जो श्री बाबे जी का दर्शन होया। जन्म जन्म के संसे दूर भये हैं, तां चरन बंदना करिकै, सिद्ध गोरखनाथजी तथा भरथरी जी उडे तां बाबा जी ओथेही प्रसन्न बदन बैठे रहे। फेर (कुछ काल पश्चात्) बाबे आखिआ मरदानिआ चलु असीं भी चलीए। तां ओथों[5] चले सेत बंध के परे जिथे बड़ा समुंद्र हैसी तिथे तिसदे किनारे उत्ते जाय खड़े होए। तां कीह[6] वेखन जो चौरासी सिद्ध मंडली लगाइ बैठे हन। ते विच श्री गोरखनाथ जी बैठे हैनि। तां बाबे सिद्धां जोगु आदेसु आदेसु कीता। ते श्री गोरखनाथजी अपने पास बैठाया-तां सिद्ध गोष्ट लगे करन। सिद्ध बोले :—

॥ पउड़ी ॥

ज्ञान एक नगर दस दुआर। कहु सतगुर सत्त सत्त बीचार।
ज्ञान करी हड़ हड़ भी हसै। पीछै उज्जड़ अगै बसै ॥१॥१९१

---

(१) शिर से पांव के नाखुनों परयंत भगवत ने उसे अपने प्रेम की दात रूप पोशाक से ढक दिया है। (२) समर्थ करतार की कुदरत ही सर्व ओर मौल रही है अर्थात् खिल रही है। (३) जपै है, भाव करै हैदरि दरगाह में। (४) कल्पना फुरने से रहित। (५) उस जगह से। (६) क्या देखते हैं कि।

10:08

सचै शब्द अनाहद लीणा। नानक जोगी सहजि पतीणा ॥१७८॥
कन्न पड़ाय न मूँड मुंडाया। घरि २ फिरत न भूकणु[1] वाया॥
मनु असथिरु गुरु शब्दि सुहेला। पञ्चि मारि ततु लहे इकेला॥
ततु त्रिबीणी खूलै दुआरु। निझर झरे अनहदु धुनिकारि॥
आदि पुरुष को मिलिआ जाणु। नानक जोगी निरजन[2] प्राणु ॥१७९॥
अस्थिरु पिंडु अजरावर भया। जन्मु मरन दुखु तहाँ सभु गया॥
मिटे कलेशु उतरे संताप। फल कोट प्राप्त गुर प्रताप॥
सचु जोगु मुंद्रा मन माहीं। नानक अस्थिरु संत सँग समाहीं ॥१८०॥
निराहार[3] सचु जोगु कमाई। जन्म मरन की चूकी धाई॥
भुगत ज्ञान जोगी कौ आई। जोगी गुरमुखि तिप्ति अघाई॥
आत्म रामु चीनि पाया जोगु। नानक जोगी जुगु जुगु होगु ॥१८१॥
सतगुर ते जोगी जोगु पाया। अस्थिर जोगी फिरि जूनि न आया॥
सुन्नि निरंतरि रहिआ समाई। अस्थिरु जोगु न आवै जाई॥
अजपा जापु जपे जपु जापु। उन्मनी काल को मारे चापि ॥१८२॥
सूर[4] ससी ससि के घरि वहै। नाभ[5] कवल ठहराय मनु रहै॥
बंक नाड़ि की त्यागे रीति। गुरमुखि लागी सची प्रीति॥
त्रयदल साधि बहे सिंघासनि। नानक तखति निवासी आसनि ॥१८३॥
गुर का भगतु सदा इक रंगा। उसुरा[6] तरिआ उलटी गंगा॥
नउसर[7] सुभर दशवैं पूरे। अनहद सुन्नि बजावै तूरे॥
पतालहुँ नीर चढ़े गगनापुरि। निजघर महलि चढ़े अमरापुरि ॥१८४॥
चंचल चाय न पर घर लाये। मनूआ अस्थिर गुर शब्दि टिकाये॥
मानसरोवर हंस उजाला। सिफती रत्ता लाल गुलाला॥
परगृह जाय न देखे चंचलि। गुरमुखि त्यागे माया पएटलि[8]॥
नानक पूरे गुर के अंचलि[9] ॥१८५॥

---

(१) कुत्ते की न्याईं भौंकता हुआ नहीं फिरता। (२) निरंजन। (३) सच्चे जोग की कमाई से जीव अभोगी हो जाता है और जन्म मरण की दौड़ उसकी छूट जाती है। (४) दृष्टि की धारों को चंद्र के गृह में स्थित करे। (५) सहस्रदल कमल। (६) अप्रकाश रूप प्रवाह सुरति का असुरा नदी कहाता है जो गुर का भगत है वोह इससे तर गया है उसने निर्मल सुरति रूपी गंगा का उलटा प्रवाह चला दिया है तात्पर्य क्योंकि :— (७) नौं सर नौं दरवाजे, सुरति उनसे खैंच कर, खाली कर दिये हैं और दशवें को सुरति से पूर्ण कर दिया है जिससे सुन्न सहज में पहुँच कर अनहद बाजे को वोह भगत बजाता है। (८) 'अंचल' पाठांतर। (९) पल्ला, अंचला पकड़ करि।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

14:44

पूर्व[1] त्यागि पच्छिम करै गवन । उलटै पवना सोधै घर भवन ॥
नौसै नाड़ी सोलाँसै संधो । पवना खेलै तहाँ निर्बंधी ॥
उलटी गंग समुद्र मिलावै । वहै अकार फिर बीच समावै ॥६७॥

किस विधि तन महि मन ठहराय । सतगुर मारग दिया बताय ॥
चन्द सूर्य घर एकतु आनै । पूर्ब त्यागि पच्छिम को तानै ॥
मोहि तोहि सब तरियो सागर । सुभर नीर न फूटै गागर ॥६८॥

उलटै बान गगन कौ साधै । पंच चोर गुर शब्दै बाँधै ॥
सुन्न कोठड़ी बज्र कपाट । इन कौ जानें औघट घाट ॥
गुरमुख ज्ञान लपेटै बुद्धि । मन लपटै निरबाणी सुद्धि ॥६९॥

औहठ[2] पटखि[3] ताँके दस द्वार । दसवें भीतर खेल अपार ॥
ताँ दर के बहुते दरवान । निगुरे मूल न पावहिं जान ॥
जाँके मन गुर का उपदेश । ताँ कौ ठाक[4] नहीं उह देश ॥७०॥

पदम आसन करि बैठहु मीता । अजपा जप जापहु नित नीता ॥
ब्रह्म अग्नि जारहु गुर ज्ञान । तीन लोक महि ताँ की मान ॥
इन्द्र चन्द्र सूर्य सरूप ध्यावहि । ताँ का दरशन देखि सुख पावहि ॥७१॥
पूरक घट महि राखहु पूरि । चञ्चल मिरगा खेलै दूरि ॥

(१) जिस ओर सूर्य चढ़ता है वह पूर्ब है, जिस ओर उतरे वह पश्चिम कहाता है, परंतु पिंड में जीव रूपी सूर्य जिस अपने देश से उतरता आया है वह इसमें पश्चिम है और ब्रह्मांडादि मंडलों से उतर कर पिंड में अपना व्यवहार कर रहा है अर्थात् पिंडवर्ती मंडलों में प्रकाश करने के लिये उद्यत है सो इसका पूर्ब है, सो इसी को लक्ष करके गुरू साहेब अपने घर को लौटने की शिक्षा करते हैं कि पूर्ब को त्याग करके अर्थात् पिंडी मंडलों का उलंघन करती हुई सुरत को पश्चिम की ओर चलावे। पश्चिम से भाव सुरति कमल का है जहाँ पर कि इसका ऊपर से उतार हुआ और इसका संबंध पिंड से होना आरंभ हुआ था, यह स्थान पिंड तथा ब्रह्मांड की मध्यवर्ती हद है और सुरति की अपनी ठौर है इस कारण पिंड से उद्धार करके इसे प्रथम वहाँ चढ़ा ले जावे, निराधार नहीं बल्कि श्वास की सहायता से ऊपर को उलटा कर अपना स्थान खोजे। पवन भी अपने आकाश मंडल को त्याग कर नीचे मंडलों में भ्रमण कर रही है सो गुरूपदिष्ट मारग से उसकी चाल भी सीधी करके उसी पर सवार करके सुरत को उलटे। इस प्रकार सुरति गंगा को उलट कर सुरते समुद्र (निज भंडार) में अभेद होने का गुह्य मारग सतगुरों ने बता दिया है कि पूर्ब को त्याग कर पश्चिम में जिस घर पर चंद्र सूर्य उलट कर एकाकार हो जाते हैं सुरत को तान देवे और शब्द का बान उलटा अर्थात् ऊपर को गगनमंडल में संधान करे तो सुन्न कोठरी जो सहज सुन्न का घाट है उसके वज्र किवाड़ खुल जाते हैं, यही औघट घाट है जिसमें इसे निर्बाण अवस्था साक्षात् प्राप्त हो जाती है। (२) उपरले हाट। (३) नगर—भाव ऊँचे स्थान। (४) रोक।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

मूल संचि उपजै सब सिद्धि। मूल संचि होवै मन बुद्धि॥
दादुर जल महिं कौल न तुलिया। गुरमुख भौर रूप होय मिलिया॥२५॥
उलटै जंत्र पकावै सार। घुर महली पावै बीचार॥
कोयले कला पिछाणि जलावै। गुरमुखि यौं मनूआ समझावै॥
शब्द सुरति महिं रहै अडोल। नानक ताँ का पूरा बोल॥२६॥
आसन चौरासी दस पवन[१]। द्वादस[२] उलटै राखै भवन॥
षटचक्र[३] के षट अस्थान। जो जानै तेऊ परवान॥
ताँ ऊपर इक नागिन[४] बसै। नानक गुर शब्दी ओहि नसै॥२७॥
मेरु डंड[५] की बिषमी वाट। गुर बिन कोउ न बतावै घाट[६]॥
इह घाटी जो उतरै कोय। ताँ कौ जन्म मरण नहिं होय॥
शव[७] रीती जीतौ संसारा। नानक पावहु मोष दुवारा[८]॥२८॥
अंभ[९] माहिं बैसंतर जालै। सूझै भवना सगल उजालै[१०]॥
त्रैगुण[११] त्यागि रहै बिसमाद। शब्द अनाहद सुरति समाधि[१२]॥
सुष्मनि महल करै जो डेरा। ताँ कौ भौजल बहुरि न फेरा॥२९॥
कवन खंड आछै घट खंड। कवन खंड काया की जिंद॥
कवन खंड शब्द का वास। कवन खंड होवे परगास॥
कवन खंड महि काल बसेरा[१३]। सतगुरु मिलै ताँ करै निबेरा[१४]॥३०॥
कवन खंड रूप का थानु। कवन खण्ड तपै नित भानु[१५]॥
कवन खंड काल फिरि आवै। कवन खंड काली[१६] गति पावै॥
कवन खंड बोले सो होय। नानक गुरमुख चानण लोय[१७]॥३१॥

---

(१) प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, क्रिकल, देवदत्त, धनंजय। (२) द्वादश राशि में विचरने वाला सूर्य यहाँ प्राण का सूचक है क्योंकि प्राण सूर्य का नाम है और अपान चंद्रमा का—सो प्राण कौड़ी मारग द्वारा नाम मिला कर उलटाय राखै, न कि हठ योग द्वारा। (३) गुदा, लिंग, नाभी, हिरदे, कंठ तथा भँवों के मध्य में षट चक्र हैं जहाँ २ पर अगली ओर गड़हा है उसके ठीक पीछे चक्र का स्थान है—यह पिंडी चक्र हैं। (४) कुंडलनी शक्ति—परंतु यहाँ षष्ठम चक्र की मालिक माया सर्पनी (आद्या) से भाव है। कुंडलनी नाभी में है। (५) रीढ़ की हड्डी। (६) इड़ा पिंगला से सुषमना के मेल की ठौर। (७) मरण काल में मृतक दशा के ढंग पर सुरत टिका कर। (८) तीसरा तिल। (९) प्राण गरभित नाम सुमिरन द्वारे ज्योति प्रगट करे अथवा पाणी का भंडार नेत्र हैं उनके मध्य में ज्योति प्रगट करे। (१०) चाँदना। (११) जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के पिंडी मंडलों को त्याग कर सहसदल कमल में। (१२) स्थिर रक्खे। (१३) निवास। (१४) निरणय। (१५) सूर्य। (१६) आद्या, योग माया। (१७) प्रगट चाँदना।

दुर्मति दुबिधा दोऊ निवारै । ज्ञान खड़ग ले पंचाँ मारै ॥
रसि[1] रसि संचे ब्रह्म कियारी । नानक इहि विधि लागै तारी[2] ॥१८

परम सुन्न परगास दुवार । गुरमुख चेतै ज्ञान विचार ॥
चारि कला[3] ले खेलै कोय । इस विधि ता को भरम न होय ॥
अजपा जप जपियै मन माहिं । ता के दरशन बहु दुख जाहिं ॥१९

पंच चारि ले तीनि समावै । काहे को घर छाड़ि सिधावै ॥
अटल अडोल रहै रँग राता[4] । अगम निगम[5] की जाणै बाता ॥
जग फूटै खेलै नहिं सार । इह बिधि जन्म न आवै हार ॥२०

नाभि कँवल सोधन गति पावै । मूल कँवल सोधै बनि आवै ॥
हीरै[6] हीरा बेधै रूप । तब मानस नहिं आप सरूप ॥
बंधन काटि भये निर्बन्ध[7] । गुरमुख चीन्ही विषमी[8] संध ॥२

उलटा नीर चढ़ै कविलासि[9] । तब बारह सोलह एकै रासि ॥
भँवर भवंते बहु दुख पाया । गुरमुख होय सहज घर[10] आया ॥
देखै मंदिर थान विचारि । रंग महल राता रंग तारि ॥२

गंग[11] मिली सर सागर माहीं । जो जो जाँहिं सो निकसहिं नाहीं ॥
नीर निराते को निरवारै । गगन मगन बिस्माद[12] बिचारै ॥
किया बसेरा ज्ञान घरि वाँ कै । जो मारै काल पंच झकि[13] न झाकै ॥२

लिव[14] कार नकरे इह कारन । लिव लागी तौ सगल विसारन ॥
जिवँ करि नारि खसम से मानी । दाई[15] बीचि भई हैरानी ॥
जे अब नारि खसम को पावै । तौ अवगुण मेटि लगावै पाँवै ॥२

नीर धरनि बाढ़ी आकासि । को बिरला संचै गुर परगासि ॥

---

(१) उत्साह तथा अनुराग पूर्वक । (२) त्रिकुटी में ध्यान करे, ताड़ी लावे । (३) उपदिष्ट रीति से नाभी हिरदे कंठ तथा सहसदल कमल में सुरत का नीचे ऊपर द्वारे चढाना उतारना । (४) ध्यान रंग में रचा हुआ । (५) अगम ज्ञान—केवल अनु भात्र से जानने योग्य = अगम लोक । (६) हीरा कणी रूप सुरति को तिल की ठौर स्थिर करे । (७) सुमिरन ध्यान के प्रभाव से निर्मल हुई सुरति शारीरिक मान बंधनों से न्यारी हो जाती है । (८) जिन गुरमुखों ने कि पिंड ब्रह्मांड की विखड़ी को पहिचान लिया है (सुषमना की संधी) । (९) कैलाश शिव की ठौर या सुरति की ओर "पाणी की न्याई मन शरीर से तद्रूप हो रहने वाली" सुरति उलटावे । (इड़ा पिंगला सुषमना की संधी सहज घाट या सहज घर है । (११) सुर (१२) अश्चर्यी दशा मँगनाई की । (१३) आवारागर्द होना । (१४) लव । (१५) म अविद्या ।

नवीं नाड़ि महि सब जोति बनाई। कोऊ बिरला खोजि लहै जन भाई ।।
नवीं नाड़ि का महल[1] है कैसा। जो चीन्है सो उसही जैसा ।।
नवीं नाड़ि राखी है दूरे। खोजि लहै सोई जन पूरे ।।
नवीं नाड़ि राखी असमाना[2] । नानक कोइ जन उहाँ समाना ।।१२।।
नौ नाड़ी का नांव बताया। जिन कहिया तिनि आप दिखाया ।।
आपहु कोऊ किछू न जानै। जिनि डीठा सो आखि बखानै ।।
अनडीठा किछु कहिया न जाई। जिन सूझ परी तिनि साखि[3] सुनाई ।।
रोम रोम की जब मिति आवै[4] । नानक हरि प्रभु साचै भावै ।।१३।।

आगे दस द्वारे चले, द्वार द्वार की रीति ।
जिस जन द्वारे निरखते[5], तिस ठाढ़ो भ्रम[6] भीति ।।
द्वार द्वार की मिति कही, द्वार द्वार की रहित ।
जिस गुर पूरा भेटिअै, सोई कथनी कहित ।।
कहै बृतन्त दसवें द्वार का, मन मथि[7] कहै सुनाय ।
गुहल दुवारा नानका, सोई कहै लिव लाय ।।१४।।
गुहल दुवार प्रान महि, प्रान पिंड का राहु ।
वाई बहन[8] जब नीकसै, प्रान पिंड सुख ताहु ।।
जीव प्रान सुख शांति होय, जब चलै गुहल[9] की नाड़ि ।
जे इक किनका अकट[10] होय, रहे दसे दर ताड़ि[11] ।।
सहज चलत सुख होय जिय, प्रान मुक्ति उदमाद[12] ।
नानक गुहल दुवार की, कथा विषम बिसमाद ।।१५।।
इन्द्री द्वारा बिंदु का, रत्न गिरन का राहु ।
जिस खुले तिस हिरै[13] जोति, बंधै रत्न महाहु ।।
माथे प्रगटै रत्न जोति, जो इन्द्री बन्धन देय ।
गुर का शब्द बिचारि जन, रत्न बिहाझहि[14] सेइ ।।
काम बन्ध नरकहुँ बँछे[15], बहु जूनी तें दूरि ।
नानक रत्न अमोलक तिनि लिया, पंच भूआत्मा[16] चूरि ।।१६।।

(१) मुकाम। (२) सहसदल, भ्रूचक्र में। (३) प्रमाण, निशानी। (४) मर्यादा। (५) दिखाई देते हैं। (६) भरम की कंध। (७) मन को मर्दन करके। (८) अपान वायु का सरना, गुदा मारग से पौन का निकलना। (९) गुह्य नाड़ी, गुदा की। (१०) थोड़ी भी अटक जावे तो। (११) ताड़े रहना, खैंचे रहना, अफरे रहना। (१२) प्रान खुली रीति से अपने उद्यम को धारे रहता है। (१३) क्षीण या नष्ट हो। (१४) इकट्ठा करे, सौदा करे, खरीद करे। (१५) बच जाना। (१६) पाँच भौतिक शरीर को चूर करके अर्थात बड़ी ही कठिनता से।

पित्त नाड़ि महि आतश भाई। तौ नानक तीजी नाड़ि बताई ॥ ६ ॥
हद्द नाड़ि ऊष्म[1] का थाना। तब होय सम्पूर्ण जब मन शितलाना ॥
बिन अहार ओह नहिं ध्रापै[2]। हद्द नाड़ि की तब गति जापै ॥
हद्द नाड़ि बिच राखी मंडारा। एक सौ ग्यारह ताके डारा ॥
डार डार महिं सब रस जाई। तब आहार हद्द महि पाई ॥
चौथी नाड़ि हद्द की कीन्ही। नानक किनहूँ बिरले चीन्ही ॥ ७ ॥
इंद्री नाड़ि सँग सूत बनाये। नख सिख[3] का रस इंद्री जाये ॥
इद्री की जड़ मस्तक भाई। जब इंद्री चलै जोति[4] मिटि जाई ॥
इंद्री बाँधि रतन बस करिया। सोई रतन लै माथे धरिया ॥
इंद्री की नाड़ि सोई जन जानै। तबही लाल[5] जोति पहिचानै ॥
पंजवीं नाड़ि इन्द्री की करी। नानक किसै बिरले सोझी परी ॥ ८ ॥
गुहल नाड़ि प्रान सुख शांति। तिलु[6] अटके तरफै दिन राति ॥
जब अटकै तब क्या सुख होवी। पेट गगन[7] जिय को दुख होवी ॥
गुहल नाड़ि का अटकै राहु। तब इस जिय को खरी महाहु[8] ॥
गुहल नाड़ि जब सहजी[9] चालै। तब इस जिय को सहजि बहालै ॥
छठवीं नाड़ि गुहल करि साजी। नानक कीन्हीं अचरज बाजी ॥ ९
बेनी नाड़ि महि तन की परखा[10]। नाड़ी का कूच[11] बीनी करि रखा ॥
नाटक महि जिय की सब जोति। बीनी महि नाटका ओत पोत[12] ॥
नाटक चलै तबहि जिय सुखी। ठौर छोड़ै नाटक जिय दुखी ॥
बेनी अरु नाटका रहि जावै। तब इस जिय को मरना आवै ॥
बेनी। नाटका एकहि जाय। नानक सप्तमि नाड़ि बताय ॥ १
अष्टम नाड़ि कोई जन जानै। तहाँ सिद्धि नौ निधि ठहिरानै ॥
बाहू[1] कर्म शोध उह पावै। अठवीं नाड़ि जे कोइ बतावै ॥
अठवीं नाड़ि राखी बिच त्रिकुटा[13]। जिस सूझै तिस एह ध्यान जुगटा[14] ॥
अठवीं नाड़ि रखी है गुहजा[15]। नानक कोइ जन खोजै शुहदा[16] ॥ १

(१) हवाह, भाफ। (२) धीरज नहीं धरती, तड़पती है। (३) पाँव के नाखून से सिर की चोटी तक। (४) प्राक्रम, तेज माथे का। (५) आत्म ज्योती। (६) विल रंचक भर। (७) पेट के अंतर्वर्ती जीव (कृम कीट आदि)। (८) भारी कठि मुशकिल। (९) सहज सुभाव, अपनी चाल के अनुसार। (१०) पहिचान। (११) का जाल। (१२) ताने बाने की नाईं परस्पर गुथी हुई। (१३) त्रिकुटी। (१४ गया। (१५) गुप्त। (१६) तत्त्वदर्शी।

14:46

सहजि विचारिआ अगमा थेहु । नानक सो जन पूरा जिनि चीनिआ देहु ॥
नऊँ नाड़ी सब कोई कहै । साधि विचारि कोई बिरला लहै ॥
जो लहै तिस को मिति आवै । नऊँ नाड़ी की मिति सोई पावै ॥
कवन क्रिया दा कवन बंधेजु । कवन शीत कवन राखै तेज ॥
कवन सूखम कवन अस्थूला । कवन सु अस्थिर कवन डंडूला ॥
कवन पेती कवन है बाई । नऊँ नाड़ी की किन मिति पाई ॥
जिन मिति पाई सोई पूरे । नानक उनकी बांछै धूरे ॥२॥
नौ नाड़ी की जो मिति[1] जानै । बिचारि बिचारि ओह आखि बखानै ॥
ठौर ठौर को नाड़ि बतावै । जाँ की अगम[2] दृष्टि होय आवै ॥
प्रान पिंड का करै बिचार । ताँ को सदा सदा नमस्कार ॥
नाड़ि नाड़ि का डेरा[3] कौन । कौन नाड़ि जितु बसता पौन ॥
नौ नाड़ी का क्या क्या नाँउ । नानक जो कहि देवै तिसके बलि[4] जाँउ ॥ ३ ॥
बंक नाड़ि पहली का नाँउ । बंक नाड़ि रनकि[5] गुन गाउँ ॥
बंक नाड़ि बोलत सुख जीउ । बंक नाड़ि दृढ़िये[6] करणीउ ॥
रसकि रसकि जब हरि गुन गावै । बंक नाड़ि महि गाइ रिझावै ॥
करि किरपा प्रभु अगम दिखावै । नानक पहिली नाड़ि बक नावै ॥ ४ ॥
दूजी नाड़ि शहरग कर धरी । जाँ महिं सास बिराजत हरी ॥
शहरग माहि बसै जब शाह[7] । शहरग चलै पौन का राह ॥
पौन मारग शहरग है भाई । फिरि घरि आय तहीं ठहराई ॥
बोलनहार शहरग महि आवै । नानक दूजी नाड़ि बतावै ॥ ५ ॥
उहज नाड़ि पानी की जाय । बिन पानी पीते कुम्हलाय ॥
हरिआ होवै तब पीवै पानी । बिन नीर पीते नाड़ि कुम्हलानी ॥
सरसा[8] रहै पानी के संग । बिन पानी सूखै निभरंग[9] ॥
जब सूखै तबही तिख[10] लागै । तब पानी पीवर को भागै ॥

---

(१) मर्यादा। (२) अनुभव। (३) निवास स्थान। (४) बलिहार, कुरबान। (५) नाभी की बाईं ओर मांस हृदय से लेकर मध्य भाग छाती में से थोड़ा थोड़ा सा व्यंग मारती हुई जो एक नाड़ी है जिसमें से श्वास आता जाता है उसे बंक नाड़ी कहते हैं, उसके बीच में से गुप्त रीति से झनकार पूर्वक स्वतः नाम की धुनि उठती रहती है उसे भी अजपा जाप कहते हैं—गुरु महाराज उसी को ओर यहाँ ध्यान दिलाते हैं। (६) उसी करने योग्य कार्य को अर्थात् नाम स्मरण ध्यान को बंक नाड़ी में दृढ़ करे। (७) जीव। (८) सरवा, तरोताज़ा। (९) निश्चय करके। (१०) प्यास।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

14:55

पंच दुष्ट आय अंतरि बैठे। इसहि भुलाय चलहिं होय ऐंठे ॥
अपुने अपुने मारग चलते। इसहि भुलाय बिमारग घलते[1] ॥
नाभि कँवल ते ओअंकार उठाइयै। रसना रसकि रसकि[2] गुन गाइयै ॥
गुन गावै कैसे फल पावै। पंच बिदारै[3] एक एक घर आवै ॥
अमरु[4] एक का नगर फिराया। नाम प्रवान बिचि डेरा पाया ॥
होय एक दृष्टि सभ हाटै। कहु नानक जब ब्रह्म पछातै ॥५५॥
नौ ताली[5] दे दसवाँ खोलिया। तब इस गढ़ महिं एको टोलिया[6] ॥
कहत सुनत भाजरि[7] तब पाई। तब आज्ञा सच्च शब्द की आई ॥
सच्च शब्द अंतरि आय बसिया। सभ दुष्ट लोक नगरी ते नसिया ॥
सभ सिध[8] लोक आय नगर स्थाने। नानक प्रभु के नाम समाने ॥५६॥
नाभ उपजै हिरदे महिं आवै[9]। बंक नाल रनकि गुन गावै ॥
नेत्री ध्यान त्रिकुटी महिं पेखै। सच्च पर्धान होरु सभहि अलेखै ॥
सच सिउँ कोई बिरला जन राचै। सोई शोभा पावै दरि साचै ॥
साच शब्दु जे को बीचारै। नानक सोई सगल कौ तारै ॥५७॥

---

(१) कुराह में भेजते हैं, कुमारग में प्रेरते हैं। (२) जो कामादि पंच जीव पर प्रबल होकर अपने-अपने काय को साधते और उसे कुमार्ग में भेजते हैं उन पर जयजीत पाने की युक्ती गुरू महाराज दर्साते हैं कि नाभ कंवल के स्थान से सुरत की अंतरीय धुनि से ॐकार की धुनि जो कि परम रसीली है सहज-सहज प्रेम से बारंबार ऊपर को उठाता रहे। (३) इस प्रकार रसिक मालिक के गुन गाता हुआ पाँचों दुष्टों को फाड़ मारता है और एक असंग मात्र हुआ फिर उस एक आदि पुरुष के लोक में जा पहुँचता है (उपरंत)। (४) उसी एक की दुहाई (शब्द की प्रगटता द्वारे) इस शरीर नगर में फिरने लगती है। (५) नौ दरवाजे बंद करके अभ्यास की युक्ती द्वारा जब दशम द्वार खुलता है तो उसमें प्रविष्ट होकर। (६) मालिक को खोजता है। (७) जब कहते (स्मरण नाम करते) तथा यत्न करि आकाशी शब्द को सुनते उधर को ही इस की दौड़ पाई जाती है तब सचखंड से सत्य शब्द का परवाना इसके पास आता है भाव अपने आप ही यथार्थ रूप में भीतर शब्द खुल जाता है। (८) ऊर्ध मंडलों के स्थानी तथा शुभ बिचार आदि गुण। (९) पृष्ठ ६४ के टिप्पण ५ को स्पष्ट करते हैं, नाभि से स्वाँस उठ कर हृदय में आता है और बंक नाल जो थोड़ा-थोड़ा सा व्यंग मार के शाहरग के साथ मिली हुई स्वाँस की नाड़ी है उसमें से स्वाँस स्वतः ही ऊपर नीचे आता जाता रहता है और उसकी इस लोम प्रति लोम रूपागति से एक प्रकार की अंतरीय रसीली ध्वनी प्रगट होती है जिसका नाम 'हंस' मंत्र अजपा जप है, जिस किसी ने ध्यान दिया इसे अनुभव किया है, सोई गुरू जी शिव नाभ राजा को उपदेश करते हैं कि उधर ध्यान कर परन्तु नेत्रों की दृष्टि का त्रिकुटी के स्थान पर (जहाँ पर कि दृष्टि की तीन धारें एक रूप होती हैं) स्थिर करना जरूरी है। आगे इस अभ्यास की महिमा दो पदों में है।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

जिनि बिन्दु नहिं साधी से फिरहिं मुँह काले ।
बिन्दु के सादि[1] जीअ नरक महिं घाले ॥
बिन्दु के सादि होय रहिया दिवाना ।
नानक बिन्दु खोय कै पछोताना ॥४६॥
बिन्दु चीने का कैसा स्वाद । बिन्दु चीनै पेखै बिस्माद ॥
बिन्दु चीने के लच्छण कौन । बिन्दु चीने सूझै सभ भवन ॥
बिन्दु चीने का क्या परकार[2] । बिन्दु चीने तरै संसार ॥
बिन्दु चीने तिस सभ आसान । बिन्दु चीने सो रहे निरबान ॥
बिन्दु चीनै तिस सभ मिति आवे । बिन्दु चीने तिस रत्न प्रगटावे ॥
रत्न राखिया बिन्दु के साथ । नानक जिनि बिन्दु चीन्या तिस चढ्या हाथ ॥५०॥
बिन्दु की इह मिति सुनहु रे भाई । जिनि बिन्दु चीन्या तिन रत्न सिति पाई ॥
बिन्दु की जोति माथे महिं आवै । माथे माहिं चमक अगमि दिखावै ॥
अचरज कौ चीनै अचरज जब होय । तत्त कौ चीनै तत्तदर्सी होय ॥
ब्रह्म कौ चीनै ब्रह्मही होय । जोग कौ चीनै एहु जोगी होय ॥
बिष्नु कौ चीनै सो वैष्नव होय । तप कौ चीनै सो तपा होय ॥
एते तत्त कौ जो कोइ बूझै । नानक वा के चरन लगि सीझै[3] ॥५१॥
बीनी ध्यान जब इहु मन जाई । तन महि बीनी कर्म कमाई ॥
बीनी संजम जब मनु जाता । ध्यान धार सभ ब्रह्म पछाता ॥
बीनी ध्यान सभ जोत पछानी । बीनी ध्यान धरै जन ध्यानी ॥
बीनी महि सभ जोत दिखाई । तउ नानक बीनी सिऊँ धुनि लाई ॥५२॥
त्रिकुटा ध्यान तीन गुन त्यागै । चौथे पद कौ जन बैरागै ॥
तीन रहन की रहत त्यागी । जब त्रिकुटा ध्यान धरया बैरागी ॥
राजस तामस सातक तजै । हरि जन शब्द अनाहद भजै ॥
अनहद रचिआ अवरु नहीं जानहि । जब त्रिकुटा माहि चंदोआ तानहि ॥५३॥
उन्मन ध्यानु जन उन सँगि राता । नानक उन बिन जन मनि न कहता ॥
ब्रह्म ध्यान जन महिं जी राता । सभ महि एको ब्रह्म पछाता ॥
आन न जानै एका गही । तब ब्रह्म ध्यान मन होया सही ॥
ब्रह्म होय ब्रह्म रलि जाय । ब्रह्म ध्यान की तब मित पाय ॥
ब्रह्म पछान ब्रह्म को आवै । तउ नानक ब्रह्म ध्यान लगावै ॥५४॥

---

(१) काम के स्वाद का मारा हुआ। (२) ढंग, तौर। (३) जिज्ञासू जन अपने परमार्थी मनोरथ को उससे प्राप्त कर लेता है, सिद्ध हो जाता है।

काया नगरी का मारग जिन पाया । चहुँ जुग्ती का नाम बताया ॥
अगम नगरी[1] विषम दरियाव । नानक हड चम का किया वनाव ॥२४॥
पहली माहीं निर्मल नीर । दूजी महिं ले किया पंनीर ॥
तीजी महिं ले थान थनोला । चौथी महि सच दीये बोला ॥
पँजवीं में ले फीटी फुटी । छठवीं में इहु देहु पलटी ॥
सतवीं माहिं ले राखी उलटी ॥
अठवीं महिं अठसठ ले राखे । नावीं महिं ले नौं दर माखे ॥
नौ नाड़ी बहत्तरि कोठड़ियाँ । नौं खंड चारि कुंड चौदह पुरियाँ ॥
इकीस ब्रह्मण्ड सत्त सत्तीका । धरती आकाश बंधन सब जी का ॥
पिंड ब्रह्मण्ड धरती आकाश । मिरत मँडल प्रगटे ले स्वाँस ॥
दसवें महिं कीया परगास । बिसम भया देखि नानक दास ॥२५॥
मानसदेह करि कीया कंध[2] । नौं नाड़ी बहत्तरि बंध ॥
जैसें दूध महिं जावनु[3] दिया । रक्त बिंदु गुर शब्द अलीया ॥
पहिली माहीं निर्मल नीर । दूजी महिं उत्पन्न मथीर ॥
तीजी माहिं रक्त का गोला । चौथी माहीं जोति[4] बटोला ॥
पँजवीं माहीं सगल शरीरा । छठवीं माहिं सम्पूर्ण मथीरा ॥
सतवीं महिं धातु ले संचिया जीउ । अठवीं महिं नष शिष साजि सरीउ ॥
अंगुल पिंगल नष शिष नाक । नावीं महिं होवहि तन पाक ॥
दसवीं महिं जो होआ मुक्ता । नानक ऊर्ध कवल महिं हरिहरि जपता ॥२६॥
इंगला पिंगला सुष्मना नौ द्वारे । चारि चौदह इकीस भँडारे ॥
दसवें मास दस द्वारा मुक्ता । उर्ध मुखि आवत उर्ध मुखि जाता ॥

---

(१) अगम लोक, जब सुरत अगम लोक को सचखंड से ऊपर चढ़ती है त[ब] एक प्रकार का [illegible] शब्द जिसके दृष्टांत के लिए कोई शब्द ही नहीं परन्[तु] समझाने के वास्ते ऐसा कहा जा सकता है कि निर्मल अपूर्व तथा विस्तरित मैदान [में] अपनी मौज में मगन (अमृत के नशे में पड़े हुए) राजकुमार की सेज्या को अगम [का] हड़ (जल का शब्दायमान बेग) जैसे अपने ऊपर-ऊपर बहा ले जाकर उसे अपने नि[ज] पिता के गृह में पहुँचा देवे इसी प्रकार का एक अगमी शब्द सचखंड बासी सुरति [को] भी एक अकह दशा में उड़ा कर ले जाता है जहाँ पर कि अगम नगरी है। उस श[ब्द] का महान् रसीली दशा में उड़ाते हुए चढ़ा ले जाना. जिस अद्भुत परमानंद [का] उत्पादक है उसको कोई असंख्यात जीवों में से बिरला ही अनुभव कर सकता है— उसी का इशारा गुरु महाराज ने दिया है ॥ (२) सम्पूर्ण नाड़ियों का आधारभूत यो[ग] शास्त्र प्रसिद्ध नाड़ियों का पुतला जिसका शास्त्रीय नाम कंद है। (३) जैसे दूध में द[ही] की जाग। (४) तेज शामिल किया गया, लपेटा गया।

15:05

जब जोति जोति को सहजि समावै। तब पारस होय परम पदु पावै॥
निजल भवन की रहत निआरी। नानक सतगुर प्रगट दिखारी॥६६॥
निशत भवन आपु सभु सोखै। पंच तत्त सतगुर ते पोखै॥
तपति निवास कीआ मनि भाई। पंचि निवारि अभय[1] मति पाई॥
शब्द बचन मन कार कमाई। तब ते मिटी फिरन की धाई॥
लखिआ न जाई अबिगतु नाथु। नानक गुर मिल अकथह काथु॥६७॥
भवन नितोट[2] तूँ एक अकेला। तुमरै खेलि न कोई खेला॥
जल ते उपजै दूरि अब रहता। अनडीठी की रहनी कहता॥
किसके निकट दूरि किसु कहीऐ। सभ कै मध्य बाहरि सभ महीऐ॥
दूरि निकट करि एको जानै। इह गति नानक तबहि पछानै॥६८॥
नितिष भवन तिषा सोखै भाई। अंतरि निधरा[3] धार चुआई॥
अमिउ पीआ अमरा पदु पाया। मग डोलन का पंथ चुकाया॥
साखी सुनत साख सभ जानी। गुहज प्रगट गुर किरपा जानी॥
सभ जप सभ तप सभ चतुराईआँ। नानक गुर किरपा ते पाईआँ॥६९॥
निधन भवन धुनि नाहिं पछानी। अपर अपार की कछू न जानी॥
इह जगु बाँधा बहुती आसा। गुरमुखि खोजि तब भया षलासा॥
अंतरि प्रगटिआ कउल निराला। तिनि जनु मिलिआ निरंजन वाला॥
तीन गुनाँ ते रहते निआरे। नानक ते जन सागर तारे॥७०॥
निजत भवन नाना बिधि जानी। बाहरि हउमैं कहै कहानी॥
जग जीता 'पर' तिरीआ त्यागी। सगल कुटंब तजि गए बैरागी॥
अंतरि मुक्त पछानी सारी। बाहरि माया लेप दिखारी॥
निजत भवन की इह मिति भाई। नानक गुर प्रसादी पाई॥७१॥
निसन भवन सुनि सचि नीशानी। नींद भूख तजि रचिआ बानी॥

---

(१) अनुभव। (२) चौदह भवनों में से एक का नाम जिसमें सूरत का तोट यानी घाटा नहीं रहता। (३) जब शुन्य मंडिल में सुरति की तार पूरी-पूरी बंधती है तो कार्तिक शरदपून्याँ के चंद्र से भी अधिक शीतल तथा शांततम (निहायतही शांत) तेजो मंडल से इस प्रकार अमृत की बूंदें बर्षती हैं जिस प्रकार हिमकर ऋतु में बर्षा पड़ने अंत निर्मल खिली हुई चाँदनी रात में ओस की धारा (बिन्दु) बर्षती हैं। जिसको अनुभव करके सुरति अमर हो जाती है, इसी अमृत धारा के रस में सुरति पूर्ण मगन हुई आपाभाव से भी रहित हो जाती है। इसी अवस्था के अनुभव को मानसरोवर का स्नान संतों ने कथन किया है जो केवल स्वअनुभव गम्य है।

Edit Annotate Fill & Sign Convert All

15:00
Edit Annotate Fill & Sign Convert All

लज्या भाय ले जम सम ताही। अकाश के गुन पञ्चि वरताहीं ॥
ब्रह्मज्ञान सो माखित पञ्चि। ब्रह्मज्ञान मथि इन ते बंचि ॥
अकाश के गुण पञ्च है कथै। नानक गुर किरपा ते प्रान जब मथै ॥१८॥
पञ्च तत्त के गुन पञ्चीसा। बिचारि बिचारि मथि कीये अद्रीसा ॥
तत्त तत्त की जुगति बताई। जब सतगुर साखी अगमु दिखाई ॥
सतगुर मिलिऐ सभ मिति जानी। नानक सतगुर कौ कुरबानी ॥१६॥
कै गुन पृथ्मी कीनी भाई। कै गुन आप तेज कै बाई ॥
कै गुन अकाश करि कीआ बनाय। पंच गुन के गुन कहहु सुनाय ॥
एक गुन पृथ्मी दुइ गुन आप। तिगुन तेज चौगुनि बाय आकाश ॥
पञ्च गुनाँ के गुन कहै बीचारि। नानक हरि प्रभु कीए स्वारि ॥२०॥
अगै चले चलित्र अनन्ता। पञ्चि गुनाँ का कीआ मथंता ॥
अपके गुन कहहु हो भाई। धावै तेज सोवत है बाई ॥
मैथुन भोग करंत आकाश। इंगुल पिंगुल पौन निवास ॥
द्वादश ऊँगलि सास उलटै बैठत बाय। तीस उँगलि सास उलटै धावति[1] बाय ॥
चौसठि उँगलि सास उलटै। मैथुन भोग करंति बाय ॥
एकिस सास सहसर छाती। सहस आय सभ एका राती ॥
एक दिन कई बाय सास उसास टूटै। नानक पञ्चि तत्त ते किन बिधि छूटै ॥२१॥
प्रथ्मै प्रान पुरुष जब खेलै। तब पहिलाँ कौन तत्त बटोलै ॥
टोलै अकाश गरजै बाय। चमकै तेज साचि महि पाय ॥
भरमै पृथ्मी शोषै आकाश। माताकीमलबुंद पिता की, दि्ष्टि में बचामनूआसास[2]
बोलै ध्यान करि ब्रह्म ज्ञान। नानक गुर मिलिआ सभ ब्रह्म पछानु ॥२२॥
पञ्च तत्त जानै जोगिंद्रा। कायाँ की मति नहीं आवै क्या पाई अहि मुंद्रा ॥
एते तत्त इस मन कै माहिं। एकु न चीनहि भरमि पचाहि ॥
अगमु नगरी अगमु थान। कवन बीचारु कथै क्या ज्ञान ॥
प्रान पिंड के अगनत राह। नानक लेत गने सभ साह ॥२३॥

---

(१) सोवति पाठ भी है। (२) माता के खून और पिता के वीर्य रूप जल दृष्टि में बचा रहा मन रूप होकर स्वास के मानिन्द चलायमान रहता है।

जब दशवें द्वार इकेला खेलै। इन विधि पवन पवन कौ मेलै ॥
बेनी कै ध्यानि जो रहै समाय। तब इस गढ़ की सोझी पाय ॥
आत्मा चीन परात्मै गया। तौ नानक सलल[1] सलल एको भया ॥७०॥

ज्ञान षड्ग ले मन सिउँ लरै। तौ ढाहि[2] भरम पट भीतरि वरै ॥
भीतरि जाते कोई न ठाकै[3]। हरि के चरन बसे मनि जाँकै ॥
सोई संत जिनि भरम गढ़ जीता। घर बाहर तिनि अपना कीता ॥
अंतरि बाहरि महरम होया। नानक गुर किरपा ते यह गढ़ गोया ॥७१॥

मनूआ जीता निर्मल रीति। इन्द्री जीती सतगुर परतीति ॥
जिह्वा जीती हरि गुन गावे। नेत्र जीते भ्रमता ठहरावे ॥
बकता[4] जीतै जब सुषमनि गहो। सभ किछु जीतै जब होवै पद सही ॥
मनु तनु जीता जीता ब्रह्मण्ड। पंचि दुष्ट कीने खण्ड खण्ड ॥
राजे महते गढ़ के सभ जीते। नानक सतगुर की परतीते ॥७२॥

मुख दीया हरि नाम जपन कौ। होंठ दिये वाह वाह करन कौ ॥
दंत दीये मुख कँवल बिगसन कौ। रसना कीनी राम राम रसन कौ[5] ॥
कंठ दिया मुख ग्रास ग्रासन कौ ॥
बंकनाल सभ सहजि समाय। नानक पेट दीया नाड़ी[6] की जाय ॥७३॥

इड़ा पिंगला नाड़ी कीआ। सुषमन के घर जाय समीआ ॥
षट दल सोधे चहुँ के माँझ। दुहँ त्रिहँ मिल कीनी इक साँझ ॥
दल अंगल ते भया निरारा। दुइ दस मैं ले कीआ पसारा ॥
तज पसार मनु दसवैं जाई। नानक ता कउ कालु न खाई ॥७४॥
ढाहि भीत[7] कीया मैदान। ऊहाँ जाय रचिया चौगान ॥

---

(१) जल। (२) गिराय कर। (३) रोकै। (४) बोलनहारा जीव परंतु यहाँ मन से भाव है। (५) राम राम को रसीले रससे रसने के वास्ते। (६) नाड़ियों की जगह पेट में नाभी के नीचे कछू आकार में संपूर्ण नाड़ियों का जाल सभ के भीतर तना हुआ है। इसी को धरणी कला कहते हैं, अपने बल से उलंघ कर बर्तने आदि कारणों से यह नाड़ियों का कूच अपनी जगह से हिल जाया करता है, जिसको धरन या नाफ का हट जाना कहते हैं। इससे बड़ा क्लेश होता है। (७) कंध (दीवार) भाव पिंड शरा से सुरति खैंच कर त्रिकुटी के मैदान में जाकर स्थिर होता है (खेलता है)।

(44)

भोगिया सूते अजहूँ न जागे । भोग नही रे रोग अभागे ।।टेक।।
भोगिया कहे भल भोग हमारा । मनसइनारि किया तन छारा ।। 1 ।।
एक बूँद नरनारी रीधा । ताही मैं सिधसाधिक सीधा ।। 2 ।।
भोगिया सोइ जो भगथैं न्यारा । राजस-तामस झरै न पारा ।। 3 ।।
भणंत गोरषनाथ सुणो नर लोई । कथणी बदणी जोग न होई ।। 4 ।।

(गोरखनाथजी का कथन है कि यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि भोगियों की अभी मोहमयी निद्रा का अन्त न हो सका । वे अब भी संसार में ठोकरें खाकर भी होश में नही आ सके । वे ऐसे भोगियों को सम्बोधित करते हैं कि हे अभागे ! सद्वस्तु परमात्मा से विमुख भोगी, जिसे तुमने आनन्द माना है, वह आनन्द नहीं है, वह दुःख से भरा सुखरूपी रोग है । हे भोगियो ! जागो, योग में तत्पर होकर सच्चिदानन्दस्वरूप की प्राप्ति करो । तुम भोगी न बने रहो, क्योंकि भोगी तो यह कहता है कि हमारा भोग ही, असत् में सुख का क्षणभंगुर संयोग ही अच्छा है, भला है । इस तरह इन भोगियों ने रमणी के भोगास्वाद की इच्छा करके अपने वीर्य को अधोगामी और स्खलित कर शरीर को (चिन्ता की अग्नि में) जला कर भस्म कर डाला है, नष्ट कर दिया है । वीर्य के एक बूँद के स्खलन से प्राप्त भोगसुख में स्त्री-पुरुष आसक्त होकर जीवन नष्ट करते रहते हैं और इस बिन्दु को प्राणायाम तथा मुद्राबन्ध आदि की साधना के द्वारा ऊर्ध्वगामी कर शरीर में जीर्ण कर लेने (पचा लेने) से तथा उसे सहस्रार के मूल अमृतस्रोत में प्रतिष्ठित कर देने से असंख्य सिद्धों और योगसाधकों ने योगसाधना में सिद्धि प्राप्त की तथा अलख-निरंजन का दर्शन किया, स्वरूपानुभव में वे स्वस्थ हो गये । वास्तव में आनन्द का भोगी, वास्तविक योगी तो वह है, जो तमोगुणी अज्ञान से विमुग्ध होकर रजोगुणी काम-प्रवृत्ति से दूर रहता है और कामोपभोग की तृप्ति में

वीर्य (पारा) को क्षरित नहीं होने देता है, गोरखनाथ का कथन है कि हे भाइयों ! मनुष्यो ! ज्ञान के कथन और श्रवण मात्र से योग की सिद्धि नहीं होती है, यह तो साधना और अनुभव का विषय है तथा शरीर में व्याप्त वीर्यरस को सुरक्षित रखने से ही योगसिद्धि सुलभ होती है ।

(45)

मारौ मारौ स्रपनीं निरमल जल पैठी,
त्रिभुवन डसती गोरषनाथ दीठी ।।टेक।।
मारौ स्रपणी जगाईल्यो भौंरा,
जिनि मारी स्रपणी ताकौ कहा करै जौरा ।। 1 ।।
स्रपणी कहै मैं अबला बलिया,
ब्रह्मा बिष्न महादेव छलिया ।। 2 ।।
माती माती स्रपनी दसौं दिसि धावै,
गोरषनाथ गारड़ी पवन बेगि ल्यावै ।। 3 ।।
आदिनाथ नाती मछिंद्रनाथ पूता,
स्रपणी मारिलै गोरष अवधूता ।। 4 ।।

गुरूजी ऐसा करम न कीजै, तार्थे अमी महारस छीजै।।टेक।।
दिवसै बांघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै ।
जाणि बूझे रे मूरिष लोया घरि-घरि बाघणि पोषै ।
नदी तीरै बिरषा नारी संगै पुरषा अलप जीवन की आसा ।
मन थैं उपज मेर षिसि पड़ई तार्थे कंध बिनासा ।। । ।।
गोड़ भए डगमग पेट भया ढीला, सिर बगुलां की पंषियां ।
अमी महारस बांघणी सोष्या घोर मथन जैसी अषियां ।। 2 ।।
बाघनी कौ निंदिलै बाघनी कौ बिंदिलै बाघनी हमारी काया ।।
बाघनी चोषि सुरनर षाये भणंत गोरष राया ।। 3 ।। घोषि

हे गुरूदेव ! स्त्री के सहवास में योगी को नहीं रहना चाहिए, उसकी कामोपभोगपरायणता में प्रवृत्ति होने पर शरीर में विद्यमान जीवनरस, प्राणामृत (वीर्य) क्षीण हो जाता है और भोगी का शरीर मृत्यु का ग्रास बन जाता है। हे गुरूदेव । स्त्री (कामिनी) रात-दिन योग की साधना में विघ्न डालती है, इसके सहवास में तो जीवन का नाश-ही-नाश है । वह दिन में अपने हावभाव, कामुक प्रवृत्ति और साज-श्रृंगारयुक्त सुन्दर शरीर के प्रति योगी के मन में आकर्षण पैदा करती हैं, अपनी मोहिनी माया में मुग्ध करती है और रात में, जब योगी साधना में प्रवेश करना चाहता है, अपने आलिंगन, परिरम्भण से सद्विवेक का अपहरण कर लेती है, वह इस तरह वीर्यरूपी अमृत के सरोवर को सोख लेती है, यह स्त्री बाघिन है । लोग जानते हुए मूर्खता वश घर-घर में इसका पोषण करते हैं । जिस तरह नदी के किनारे का वृक्ष कभी भी गिर सकता है, उसके बने रहने की प्रायः सम्भावना नहीं रहती है, ठीक उसी तरह जो पुरूष स्त्री में कामासक्त होता है, उसका शरीर अब ढहे, तब ढहे, किसी भी शरीर का प्राणरहित होना सम्भव हो जाता है । सहस्रार में योनिनामक त्रिकोणचक्र ही चन्द्रमा का स्थान है, वहाँ से शरीर का पोषण करने के लिये अमृतद्रव निरन्तर प्रवाहित होता है, वीर्य हमारे मन में उत्पन्न कामदेव का आस्वाद्य है, ज्यों ही हमारे मन में काम-विकार उत्पन्न होता है, त्यों ही वीर्य अधोमुखी होकर स्खलित हो जाता है, उसका ऊर्ध्वगमन रूक जाने पर शरीर में उसकी जीवन-पोषकतत्व के रूप में महत्ता समाप्त हो जाती है और मेरूशिखर (सुषुम्ना के उर्ध्वमुख ब्रह्मरन्ध्र) से अमृत का स्राव रूक जाता है, शरीर ढीला हो जाता है, नष्ट हो जाता है, पैर डगमगाने लगते हैं, शक्ति में निर्बलता आती है और बुढ़ापा आ जाता है । उसके केश सफेद हो जाते हैं मानो बगुला के सफेद पंख हों । मन को मथने वाली अपने कटाक्षबाण से पुरूष को बिद्ध करनेवाली आँखों से युक्त बाघिन (स्त्री) इस तरह अमृत के सरोवर को सोखकर उसे निष्क्रिय और निर्बल बना देती है । इस बाघिन को दलित कर देना चाहिए, इसके रूपजाल में न पड़ने से यह शक्तिहीन हो जाती है । इस तरह इसे बाँध रखना चाहिए अथवा अपने साधन-अंकुश अथवा संयम से इसे बिद्ध करना चाहिए, जिससे यह शरीर का नाश न कर सके । इस बाघिन से सुर-नर, कोई भी नहीं बच सका, इसने

सबाका आवाहन कर सभी को नष्ट कर दिया । वह इस काया को नष्ट कर देती है । गोरखनाथ का वचन है कि इस कुरमणी से सदा दूर रहना चाहिए।

हे वत्स (शिष्य) कायसाधन द्वारा शरीर में ही ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर चन्द्रामृत का पान करते हुए अलख-निरंजन परमात्मा का साक्षात्कार कर लेना चाहिए। इस काय-साधन की सिद्धि के लिये, ब्रह्मद्वार, स्वर्गद्वार, केदार का स्पर्श कर लेना चाहिए; ब्रह्मरन्ध्र में विराजमान परम परमेश्वर, शिव (लिंग) स्वरूप का स्पर्श भी साक्षात्कार अथवा दर्शन के साथ-ही-साथ आवश्यक है । त्रिभुवन, स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल में परमामृत-जो अमृतमन्दाकिनी त्रिपथगा का त्रिकुटी में स्थित रसद्रव है, का पान करना चाहिए । गोरखनाथ ने प्रत्यक्ष ज्ञाननेत्र से देख लिया है कि काया में स्थित ऊँचे-ऊँचे (राग-द्वेष आदि) पर्वत हैं बड़ी विकट घाटियाँ हैं, परन्तु उनको पार करने के बाद सपाट मैदान-ही-मैदान हैं, जिनमें वाम भाग में बहने वाली इड़ा नाड़ी (गंगा) और दक्षिण भाग में बहने वाली पिंगला नाड़ी (यमुना) का भ्रूमध्य में सुषुम्ना नाड़ी में संगम हो जाता है । ये तीनों नाड़ियाँ मूलाधार में स्थित मूलकन्द से ही प्रवाहित होती हैं । सहस्रार से द्रवित चन्द्रामृत का मूलाधार में सूर्य के द्वारा जो शोषण होता है, उसे धवल गंगा इड़ानाड़ी और काली गंगा (यमुना) पिंगलानाड़ी ऊर्ध्वमुखी करती हुई भ्रूमध्य में सुषुम्ना से मिल जाती हैं, इस तरह कावरू का पानी ऊपर आ जाता है, कावरू कामरूप है। मूलाधार चक्र (ब्रह्मचक्र) में कामरूपपीठ है और यहाँ पावकाकार शक्ति का ध्यान करने से प्राण ऊर्ध्वमुख होता है, कुण्डलिनी जागकर ऊर्ध्वमुखी होती है, इड़ा-पिंगला से प्राणामृत प्रवाहित हो उठता है, यही कावरू-कामरूपपीठ से अमृत (पानी) का ऊपर चढ़ना है और यह अमृतमयी शक्ति सुषुम्नामार्ग से आकाश चक्र में स्थित सहस्रार के ऊर्ध्वभाग में मध्य में सोलहदल कमलवाली कर्णिका में पूर्ण गिरि पीठ पर पहुँच कर परमशिव में अन्तर्लीन होकर जीवात्मारूपी योगी का जीवन अलख-निरंजन परमशिव के प्रकाश से अभिव्यक्त कर देती है । ब्रह्मरन्ध्र ही स्वर्गद्वार केदार है, यही मोक्ष का द्वार है, इसे अबोध लोग, जिन्हें परमात्मतत्व का अनुभव नहीं है, नहीं जानते हैं । मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र (शिष्य) गोरखनाथ का कथन है कि हमारे शरीर में ही केदारेश्वर-दसवें द्वार ब्रह्मरन्ध्र में स्वरूपस्थ है, इस काया में ही इड़ा-पिंगला के सहारे प्राणामृत को सुषुम्ना-मार्ग से प्रवाहित करते हुए दसवें द्वारा केदार में प्रवेश की साधना कर लेनी चाहिए । परमशिव केदार में, ब्रह्मरन्ध्र में विराजमान है ।

रूप

रूपे-रूपे कुरूपे गुरदेव, बाघनीं भोले-भोले,
जिन जननीं संसार दिषाया, ताकौं ले सूते षोले ।।टेक।।
गुरू षोजौ गुरदेव गुरू षोजौ, बदंत गोरष ऐसा,
मुषते होइ तुम्हें बंधन पड़िया, ये जोग है कैसा ।। 1 ।।
चांम ही चांम घसंता गुरदेव दिन-दिन छीजै काया,
होठ कंठ तालुका सोषी काढ़ि मिजालू षाया ।। 2 ।।
दीपक-जोति पतंग गुरदेव, ऐसी भग की छाया,
बूढ़े होइ तुम्हें राज कमाया, नां तजी मोह माया ।। 3 ।।
बदंत गोरषनाथ सुनहु मछंदर तुम्हें ईस्वर के पूता,
ब्रह्म झरंता जे नर राषै, सो बोलौ अवधूता ।। 4 ।।

हे गुरूदेव ! यह स्त्री, रमणी देखने में तो बाहर से बड़ी सीधी-सादी और भोली होती है, चाहे वह रूपमती हो, चाहे कुरूपा हो, पर यह मायाविनी बाघिन है, जो देखते-ही-देखते मनुष्य के शरीर को खा जाती है; निर्बल, निस्तेज और वीर्यरहित कर देती है, सारे शरीर का रस सोख लेती है । यह

बड़े आश्चर्य की बात है कि यह जन्म देनेवाली और पालन-पोषण करने वाली माँ है, और इसी मां को तरूण होने पर मनुष्य सम्भोग के साधन के रूप में आलिंगन में आबद्ध कर, गोद में चिपका कर कामवासना की तृप्ति करता है । हे गुरूदेव ! इसके सहवास में, संभोग में प्रवृत्त होने पर शरीर से प्राणामृतरस, वीर्य बाहर निकल जाता है और शरीर निर्बल और क्षीण हो जाता है, ओंठ, कण्ठ और तालु, सबके-सब रसरहित हो जाते हैं, सूख जाते हैं और बाघिन स्त्री, कामिनी शरीर के मज्जा, मेद (मिजाल) तक को खा जाती है, नष्ट कर देती है । हे गुरूदेव ! आप तो मुक्त हैं, आप पर माया का वश ही नहीं चल सकता । मुक्त होकर भी आप स्त्री के रमणराज्य में नश्वर सौन्दर्य-भोग और उसकी कामवासना की तृप्ति के लिये, उसके आलिंगन में बँध गये, यह तो बंधन है, यह भोग नहीं है । जिस तरह दीपशिखा से आकृष्ट होकर पतंगे जल जाते हैं, उसी तरह स्त्री के रूप-सौन्दर्य से मनुष्य आकृष्ट होकर, भोग में आसक्त होकर विनष्ट हो जाता है । आपने सदा मोह, माया और जागतिक ऐश्वर्य के त्याग की ही शिक्षा दी है । आप ज्ञानवृद्ध हैं, आपके लिये यह उचित नहीं है कि आप नश्वर जागतिक वैभव में आत्मस्वरूप का विस्मरण कर महायोगज्ञानसम्पत्ति गवाँ दें । हे गुरूदेव ! आप जानते हैं कि जो पुरूष अधोगामी, कामवृत्ति में क्षरित होने वाले वीर्यरस को ऊर्ध्वगामी कर लेता है, ब्रह्म (वीर्य) की सुरक्षा करता है, वही अवधूत है, सिद्ध है । हे गुरूदेव ! आप स्त्रीरमणसुख का परित्याग कर शिवस्वरूप में स्थित हो जाएँ ।

होती है । इस कायानगर की बात विपरीत है, कुण्डलिनीरूपी नगरी को जीवात्मारूपी पनिहारिन अपने कन्धे पर रखकर कुँए में, ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करती है, शरीर का जल (वीर्य) योगाग्नि में सिद्ध होकर सहस्रार में ऊर्ध्वगमन कर अमृतस्वरूप होकर जीवात्मा को परमामृत, परमात्मा में स्वरूपस्थ करता है । यह संसार की बुद्धि से विपरीत चर्चा गोरखनाथ करते हैं ।

(48)

भग राकसिलो, भग राकसिलो, बिण, दंतां जग षाया लो ।
ग्यांनी हुंता सु ग्यांनमुषरहिया, जीवलोक आपै आप गंवायालो ।।टेक।।
दिन-दिन बाघिनी सीयां लागी, राति सरीरै सोषै ।
विषै लुबधी तत न बूझै, घरि लै बाघिनी पोषै ।। 1 ।।
भणंत गोरषनाथ द्वै कर जोड़ी, भिड़ैं आगै चावड़ तोड़ी ।
चांमै चांम घसंता लोई, दिन दिन छीजै काया ।
आपा परचै गुरमुषेन चिन्हैं, फाड़ि फाड़ि बांघणी षाया ।। 2 ।।
बाघनी उपाया बाघनी निपाया बाघनी पाली काया ।
बाघनी डाकरै जीरियों पाषरै, अनुभुइ गोरष राया ।। 3 ।।

गुरु गोरक्षनाथ का कहना है कि स्त्री की योनि (भग), राक्षसी है, जिस तरह राक्षसी रात में अपना प्रभाव अधिक बढ़ा लेती है और वह निशाचरी कही जाती है, ठीक उसी तरह पुरूष रात में ही भोगास्वाद के लिये स्त्री के आलिंगन में आबद्ध होकर जीवन का रस-बिन्दु (वीर्य) क्षरित कर देता है और जीवन से हाथ धो बैठता है । यह भग (वाली स्त्री) बिना दाँत के ही जगत् के प्राणियों को खा लेती है । जिस मनुष्य में ज्ञान होता है, जो आत्मा और शरीर का भेद समझ कर परमात्मा की प्राप्ति के लिये प्रवृत्त रहता है और आत्म-विवेक से काम लेता है, वह इस राक्षसी से बच जाता है, पर अन्य लोग तो मूढ़तावश मायिक और नश्वर रमणी के रूप से मुग्ध होकर भग के शिकार बन जाते हैं । वह बाघिन (स्त्री) दिन में सोती है, अधिकाधिक निष्क्रिय ही रहती है, पर रात में मनुष्य में कामतृप्ति की प्रबल इच्छा जागने पर यह भी जागती रहती है, सक्रिय रहती है और शरीर का शोषण कर लेती है । विषयासक्त मनुष्य बाघिन को (स्त्री को) स्वयं पालता-पोषता रहता है ।

गोरखनाथ का कथन है कि इस बाघिन के दाँत तोड़ देने चाहिए, उसका जबड़ा (चाबड़, जाबड़, जबड़ा), तोड़ देना चाहिए । इस तरह यह बाघिन निष्क्रिय हो जायेगी, इसका आशय यह है कि उसके नश्वर शरीर के रूप के कामोन्माद को नष्ट कर देना चाहिए । स्त्री के आलिंगन में बँधे संभोगपरायणपुरूष की काया दिन-प्रति-दिन क्षीण होती जाती है । उन्हें गुरूमुख से आत्मज्ञान का परिचय नहीं प्राप्त है, सत्स्वरूप में प्रवृत्ति और स्थिर न होने के नाते ही उन्हें बाघिन (माया) फाड़-फाड़ कर, विदीर्ण कर खा जाती है । मनुष्य की उत्पत्ति इस बाघिन (स्त्री) से ही होती है, वह शैशवकाल से उसके शरीर को पालते-पोषते हुए बड़ा करती है, वही बाघिन स्त्री उसके लिये कालरूप बन जाती है, यह कामोन्मादिनी तरूणी रमणी बाघिन की तरह यमराज की बगल में ही दहाड़ती रहती है और पुरूष को निर्बल तथा क्षीणकाय बना देती है । गोरखनाथ का यह अनुभव है कि स्त्री के साथ कभी नहीं रहना चाहिए, उससे सावधान रहकर योगमार्ग में आरूढ़ रह कर अलख-निरंजन परब्रह्म परमेश्वर की प्राप्ति करनी चाहिए, माया का त्याग कर देना चाहिए ।

(49)

13:05
Gorakhbani - Ram Lal Sri...

मूंसामंन । बिलाई कुबुधि । बटाऊं प्राण । चलै ब्रह्मपंथ । चौरासी बाट थाकी डोकरी आत्मां । षाट षट । कूकर मन । चोर संसार । धणी ईस्वर काढ़े । ढोर संसार । ऊजड़ गुण नही । बली ब्रह्म, गागरि गुण । पणिहारी आत्मां । कामनि कामना, अंगीठी आत्मां । बैसंदर विकार । मगरी माया । चूल्हौ चित । रोटी रटणि । पौवे कुमति रंडीया आत्मां । बहु बुधि । सासू सुरति । नगरी काया । प्राणी प्राण । कूई कंवल ।।)

गोरखनाथ की यह अमृतवाणी है कि अविद्यास्वरूपिणी माया से प्रेरित जो शारीरिक और मानसिक कर्म योगी को अमृतवर्षा में भीगने से बचाते रहते हैं, वे सद्ज्ञान से शुद्ध और निर्मल हो गये हैं और अमृतजल में निर्मित अस्तित्व के ऊपर बरस रहे हैं, यही कंबली का बरसना है और जल का, (जिसका स्वभाव बरसना है) भीगना है । शरीर ही कंबली है, प्राण ही पानी है, शरीर प्राण से जीवित रहता है, पर उलटी बात यह है कि प्राण का स्थैर्य शरीर के अधीन है । शरीर में बिन्दु (वीर्य) को ऊर्ध्वमुख कर योगाग्नि में उसे पकाया जाता है और जल-बिन्दु, सहस्रार में स्रवित अमृत का स्वरूप ग्रहण कर लेता है, सिद्धदेह की प्राप्ति होती है और प्राणामृत भीगता है । खूँटा बाँधने में उपयुक्त होता है और पड़रवा, गाय का बछवा या भैंस का पड़रवा बाँधा जाता है, गोरखनाथ जी मायारूपी गाय या भैंस के बछवे और पड़रवे को अविवेक कहते हैं, जो बाँधा जाता है और माया उसे बाँधती है, पर माया को ही खूँटा बना कर उसमें अविवेक को बाँध देना ही उचित योगसाधना है । व्यवहार में तो यह देखा जाता है कि ऊँट की पीठ पर दमामा रखकर बजाया जाता है, साधना में यह दम-अनाहतनाद निरन्तर प्रवाहित है और ऊँट (काया अथवा मन) पर तड़ातड़ मार पड़ रही है, शब्द निनादित है । ऐसे तो शरीर पर मृत्यु का अधिकार रहता है, काया नश्वर होती है, पर वास्तविक बात तो यह है कि शरीररूपी पीपल कौवारूपी काल पर विराजमान है, मृत्यु पर अमृतत्व अथवा सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म का अमृतत्व विराजमान है । संसार में चूहे को बिलार खाती है, पर योगसाधना में योगी का मन ही, जो पहले मूस के समान आबद्ध रहता है, बिलाररूपी कुबुद्धि पर हावी है, यह विचित्र बात है कि रास्ता थकता है और ज्ञानमार्ग का बटोही राहगीर चलता रहता है । जीवात्मा ज्ञानमार्ग पर चलकर जब मोक्ष प्राप्त कर लेता है तो ज्ञानमार्ग थक जात

13:26
2015.346849.Gorakha-B...

गिरही सो जो गिरहै[1] काया। अभि अंतरि की त्यागै माया।
सहज सील का धरै सरीर। सो गिरही गंगा[2] का नीर ॥४५॥
अमरा[3] निरमल पाप न पुंनि। सत रज विवरजित सुंनि।
सोहं[4] हंसा सुमिरै[5] सबद[6]। तिहिं[7] परमारथ अनंत सिध ॥४६॥
पापंडी सो काया पषालै। उलटि[8] पवन अगनि प्रजालै[9]।
ब्यंद[10] न देई सुपनैं जाण[11]। सो पापंडी कहिए तत्त समांन ॥४७॥
मनवां जोगी काया मढी। पंच तत्त ले कंथा गढी।
षिमा षड़ासण[12] ग्यान अधारी[13]। सुमति पावड़ी डंड विचारी[13] ॥४८॥

योगी गृही (घरबारी, गृहस्थ) नहीं। यदि वह गृही है तो (श्लेष से) ऐसा जो अपने शरीर को पकड़े हुए, वश में किये हुए रहता है। अंतःकरण से माया को त्याग देता है। इतना शीलवान है कि शरीर ही मानो स्वाभाविक शील का बना हुआ है। वह गृही गंगाजल है, शुद्ध है, औरों को भी शुद्ध करने वाला है, देवाधिदेव शिव जी भी उसका आदर करते हैं ॥४५॥

जो (अंतर्लीन) मुनि, सत्-रजस्-तमस्, इस त्रैगुण्य से विवर्जित है, पाप-पुण्य से रहित है, निर्मल है, अमर है, "सोहं हंसः" इस आभ्यंतर शब्द का स्मरण करता है अर्थात् अजपाजाप जपता रहता है, उसे अनन्त परमार्थ सिद्ध हो जाता है ॥४६॥

(योगी पापंडी नहीं है) यदि है तो वह पापंडी जो योग की क्रियाओं से काया का प्रक्षालन करता है, उसे निर्मल बनाता है। पवन को उलटकर (प्राणायाम के द्वारा) योगाग्नि को प्रज्वलित करता है, कुण्डलिनी को जगाता है, बिंदु को स्वप्न में भी स्खलित नहीं होने देता। ऐसे ही पापंडी को तत्त्व में समाया हुआ समझना चाहिए ॥४७॥

शरीर रूपी मढी में मन रूपी जोगी रहता है जिसने अपने लिए पांच

---

१. (ख) ग्रहै, (क) में गृही, ग्रहै इत्यादि। २. (ख) चरण, (ग) चरणौं (घ) चरणां। ३. (क) अमुरा, (ख), (घ) अमर। ४. (ग) सोहूँ। ५. (घ) सुमिरै। ६, (क) शब्द। ७. (ग) तिस, (घ) जिस। ८, (क), (ख) उलट्या। ९. (क) उजालै, (ग), (घ) परजालै। १०. (ख) सुपिनैं इससे पहले है, (घ) विंद। ११. (ख) झरना, (घ) जान। १२. (ग) कड़ासन। १३. (ग) अधारा,...विचार; (घ), अधार...विचार।

अति अहार[1] यंद्री बल करै नासै[2] ग्यांन मैथुन[3] चित धरै।
ब्यापै न्यंद्रा झंपै[4] काल ताके हिरदै[5] सदा जंजाल ॥३६॥
घटि घटि गोरख वाही[6] क्यारी। जो निपजै सो होइ[7] हमारी।
घटि घटि गोरष कहै कहांणीं। काचै भांडै रहै न पांणीं[8] ॥३७॥

रक्षा हो सके और अपने देवत्व की रक्षा के लिए संयम से रहना चाहिए। जो जोगी मन पवन को संयुक्त कर उन्मनावस्था में लीन कर देते हैं वे ही तत्त्व का सार प्राप्त करते हैं ॥३४॥

निद्रा में आसक्ति से जीव काल के जंजाल में फँसता है, आहार में आसक्ति से चोर (कामदेव) का हृदय में प्रवेश होता है, मैथुन से बुढ़ापा आ घेरता है। इसलिए नीचे गिरनेवाले (अरध) रेतस् को ऊर्ध्वावस्था से जोड़ना चाहिए, ऊर्ध्वरेता होना चाहिए ॥३५॥

अधिक आहार करने से इन्द्रियाँ बलवती हो जाती हैं, जिससे ज्ञान नष्ट हो जाता है और व्यक्ति वासना तृप्ति की इच्छा करने लगता है, नींद पड़ जाती है और काल उसे ढक लेता है। ऐसा व्यक्ति हमेशा उलझन में पड़ा रहता है ॥३६॥

गोरख (ब्रह्मलीन आत्मा होने के कारण स्वयं ब्रह्म) ने प्रत्येक व्यक्ति की शरीर-रूप क्यारी को जोता-बोया है अर्थात् प्रत्येक हृदय में बीज रूप से परमात्मा विद्यमान है, किन्तु हमारी (गोरख की, ब्रह्म की) वही क्यारी है जिस में कुछ उपज हो जाय। अर्थात् वही ब्रह्मलीन हो सकता है जो उस अन्तःस्थ ब्रह्म का स्वानुभव कर ले। गोरख प्रत्येक शरीर में अपना उपदेश कर रहे हैं, अनाहत नाद हो रहा है। (किन्तु इसका लाभ वे ही उठा सकते हैं जिन्होंने अपनी काया को सिद्ध कर लिया है। कहीं कच्ची हाँड़ी में पानी ठहर सकता है ? (जिन्होंने अपनी काया को सिद्ध नहीं किया है, वे इससे लाभ नहीं उठा सकते)। निपजै=निष्पद्यते, निपजइ ॥३७॥

१. (ग) हार। २. (ख) न्यासै; (घ) न्हासै। ३. (ख) मिथन; (ग) मथन; (घ) मईथन। ४. (घ) झंकै। ५. (क) हृदै। ६. (ख) बावै। ७. (ख), (घ) होय। (ग) में प्रतिलिपिकार की असावधानी से छूट गया है। ८. (ग) में अंतिम दो चरण भी छूट गये हैं।

अह निसि[1] मन लै[2] उनमन रहै, गम की छांड़ि[3] अगम की कहै।
छाड़ै[4] आसा रहै निरास, कहै ब्रह्मा हूँ[5] ताका दास ॥१६॥
अरधै जाता उरधै धरै, कांम दगध जे[6] जोगी करै।
तजै अल्यंगन[7] काटै[8] माया, ताका बिसनु[9] पषालै पाया ॥१७॥
अजपा जपै सुंनि[10] मन धरै, पांचों[11] इंद्री[12] निग्रह[13] करै।
ब्रह्म अगनि मैं होमै काया, तास महादेव बंदै पाया ॥१८॥
धन जोवन की करै न[14] आस, चित्त[15] न राषै कांमनि[16] पास।
नाद बिंद[17] जाकै घटि जरै, ताकी सेवा पारवती करै ॥१९॥

जो रात दिन बहिर्मुख मन को उन्मनावस्था में लीन किये रहता है, गम्य जगत् की बातें छोड़ कर अगम्य आध्यात्मिक क्षेत्र की बातें करता है, सब आशाओं को छोड़ देता है, कोई आशा नहीं रखता, वह ब्रह्मा से भी बढ़ कर है, ब्रह्मा उसका दासत्व स्वीकार करता है। १६॥

नीचे की ओर गति वाले रेतस् (शुक्र) को ऊपर की ओर प्रेरित करे, ऐसा ऊर्ध्वरेता होकर जो काम को भस्म कर देता है, कामिनी का आलिंगन छोड़ देता है और माया को काट डालता है, (जिसके चरण पखारने से गंगा निकली है, वह) विष्णु भी उस जोगी के चरण धोता है। उरध=ऊर्ध्व का अपभ्रंश। इसी के अनुकरण पर 'अधः' से अरध बना है। ॥१७॥

जो अजपा का जाप करता है, ब्रह्मरंध्र (शून्य) में मन को लीन किये रहता है, पाँचों इन्द्रियों को अपने वश में रखता है, ब्रह्मानुभूति रूप अग्नि में अपने भौतिक अस्तित्व (काया) की आहुति कर डालता है, (योगीश्वर) महादेव भी उसके चरणों की वंदना करता है ॥१८॥

जो धन यौवन की आशा नहीं करता, स्त्री में मन नहीं लगाता, जिसके शरीर में नाद और बिंदु जीर्ण होते रहते हैं, पार्वती भी उसकी सेवा करती है ॥१९॥

---

१. (ख) अहि निसि, (घ) अहनिस। २. (क) ले, (घ) जे। ३. (ग) छाँड़ि। ४. (ग) छाँडै। ५. (ख) हु; (ग) मै; (घ) मैं। ६. (ख) जौ। ७. (ख) अलिंगण (अलिगण?) (ग) आलिंगन (आलिंगन?) ८. (ख) त्यागै, (घ) छाडै। ९ (क) विष्नु; (ख) वीसन; (घ) विष्न। १०. (ख); (घ) सुनि, (ग) सून्य। ११. (ख) पाँचु; (ग) पाँचु; (घ) पाँचूँ। १२. (ख), (घ) यंद्री। १३. (ख) न्यग्रह। १४. (ख), (ग) न करै। १५. (क), (ख), (ग), (घ) चित। १६. (ख), (घ) कामणी। १७. (ख), (ग)—ब्यंद।

अरध-उरध विचि धरी[1] उठाई[2], मांध सुंनि मैं बैठा जाई[2]।
मतवाला[3] की संगति आई, कथंत गोरषनाथ[4] परमगति पाई ॥ ७८ ॥
डंडी सो[5] जे[6] आपा डंडै, आवत जाती[7] मनसा पंडै।
पंचों[8] इंद्री[9] का मरदै मांन, सो डंडी कहिये[10] तत्त[11] समांन ॥७९॥
पाया लो भल पाया लो[12]सबद[13] थांन सहेतां[14] थीति[15]।
रूप संहेता[16] दीसण लागा[16], तब सर्व[17] भई परतीति ॥ ८० ॥

(चेला, अनुगामी बना लिया), तब निरंजन निराकार से भेंट की। हे अवधूत मन रूप मस्त हाथी जब मिल जाय (हाथ लग जाय, अपना हो जाय) तब अक्षय भंडार लूटने को मिल जाता है ॥ ७७ ॥

श्वासा (अथवा शक्ति) को अरध (अधः नीचे, अंदर जाने वाली वायु) और ऊर्ध्व (उच्छ्वास) के बीच में उठा कर रक्खा अर्थात् केवल कुंभक क्रिया और मध्य शून्य (ब्रह्मरंध्र) में जा बैठा। वहाँ मतवाले शिव (ब्रह्म तत्त्व) की संगति मिली। इस प्रकार गोरखनाथ कहते हैं (कि हमें) परम गति प्राप्त हो गयी ॥ ७८ ॥

दंडी वह है जो आपा (अहंकार) को दंडित करता है। और आती-(परिवर्तनशील, चंचल) कामना (मनसा) को खंडित करता है। पांचों इन्द्रियों का मान मर्दित करता है। ऐसा ही दंडी ब्रह्मतत्त्व में लीन होता है ॥ ७९ ॥

मैंने पा लिया! अच्छा पाया, शब्द (के द्वारा) स्थान (ब्रह्म पद) सहित स्थिति की। तब ब्रह्म के रूप सहित (साक्षात्) दर्शन होने लगे और सब प्रकार विश्वास हो गया; बुद्धि में कोई संदेह नहीं रह गया ॥ ८० ॥

---

१. (ग) धरणा। २. (घ) उठाय‥जाय। ३. (ख), (ग), (घ) मतिवाला। ४. (ग) गोरष कहै। ५. (ग), (घ) सोई। ६. (ख) जो; (ग) जु; (घ) मो। ७. (ग) जावती। ८. (ग) पांचूं। ९. (ख), (घ) इंद्री। १०. (ग), (घ) कहिये। ११. (क), (ख), (ग), (घ) तत। १२. (ग) पाया लो भले पायाला। १३. (ख) (ग) (घ) सबद। १४. (क) सहेतां। १५. (क), (ग), (घ) थिति; (ग) तिथि। १६. (ग) (घ) सहेती‥लागी। १७. (ग), (ग) सांच; (घ) सिद्ध।

उठंत पवनां रवी तपंगा बैठंत पवनां चंदं[1] ।
दहूँ निरंतरि जोगी विलंबै[2], विंद बसै तहाँ ज्यंदं[1] ॥५७॥
केता आवै केता जाई[3], केता मांगै केता खाई,
केता रूप[4] विरष तलि रहै, गोरष अनभै[5] कासौं[6] कहै ॥५८॥
पढ़ि देखि पंडिता[7] रहि देषि सारं, अपणीं करणीं उतरिबा पारं ।
वदंत गोरषनाथ कहि धू सापी, घटि घटि दीपक[8] (वलै) षणि[9] पसू न (पेषे) आंषी[10] ॥५९॥

गरम पिंगला (सूर्य) नाड़ी में पवन का संचार होता है, शीतल (इड़ा अथवा चन्द्र) नाड़ी में वीर्य का निवास है, इनकी गति को कोई विरला ही जोगी जानता है ॥५६॥

सूर्य नाड़ी में चलता हुआ पवन बहुत तीव्र गति से चलता है । जब चन्द्र नाड़ी में उसकी गति होती है तब वह बैठ (थम) सा जाता है । जब श्वास बाहर निकलता है तब सूर्य नाड़ी चलती है, और जब भीतर प्रवेश करता है तब चन्द्र नाड़ी । योगी दोनों से अलग सुषुम्णा नाड़ी की शरण में आश्रय लेता है । क्योंकि जहाँ बिन्दु का निवास है वहीं अमर-जीवन तत्त्व (जिन्दा) का भी ॥५७॥

(साधक बाहरी क्रियाओं को योग समझे हुए हैं । कितने (जंगम) बराबर आते ही जाते रहते हैं । कितनों ने मांगना-खाना ही योग समझ रखा है । कितनों ने बस्ती से अलग पेड़ों के नीचे रहना ही । (सब तो इस प्रकार बाहरी बातों में पड़े हुए हैं) गोरख अभय ज्ञान कहे तो किस से ? ५८ ॥

हे पंडित, जिसको तुमने पढ़कर देखा है, उस सार-ज्ञान को रहकर भी देखो । (केवल पढ़ना ही काफ़ी नहीं है । सीखे को साधना भी चाहिए ।) पार उतरना कोरे ज्ञान से नहीं अपनी करनी (कृत्यों) से ही संभव होता है । गोरखनाथ कहते हैं कि मैं किसको साखी दूँ कि घट-घट में ब्रह्म की

---

१. (ख) चंद···ज्यंद; (घ) चंद···जिंद । २. (क) विलंबे, (ख) विलंब्या । ३. (घ) जाय । ४. (ग) (घ) रूंप । ५. (ख) (ग) (घ) अणभै । ६. (ख) स्यूं, (घ) सूं, (ग) स्यौं । ७. (ख) पडिता । (ग) पाठिला । (ख) पाणी, ८. (ख) दीपग । (ग) परि, (घ) पनि । ९. १०. (ख) आंषी ।

अमावस कै घरि झिलिमिलि चंदा, पूनिम[1] कै घरि सूरं।
नाद कै घरि ब्यंद[2] गरजै, बाजंत[3] अनहद तूरं ॥५४॥
उलटंत नादं पलटंत[4] ब्यंद, बाई कै घरि चीन्हसि[5] ज्यंद।
सुंनि मंडल तहाँ नीझर झरिया, चंद सुरजि[6] ले[7] उनमनि धरिया[8] ॥५५॥
अवधू प्रथम[9] नाड़ी नाद झमंकै, तेजंग[10] नाड़ी पवनं।
सीतंग नाड़ी ब्यंद[11] का वासा, कोई जोगी जानत गवनं[12] ॥५६॥

होगा तब करोड़ों नादों के समान अनाहत नाद झमक उठेगा। और जब ब्रह्म का मूल प्रकाश (आदि किरण) प्रकट होगा तब वायु बहत्तरों चन्द्रमाओं को सोख लेगी ॥५३॥

'सहस्रार' में अमृतस्रावक चन्द्रमा स्थित है पर उसके प्रभाव से सामान्यतया जीव वंचित रहता है, क्योंकि अमृत के स्राव को मूलाधार स्थित सूर्य सोख लेता है। चन्द्रमा के प्रभाव से यही वंचित रहना 'अमावस' से अभिप्रेत है। जहाँ पहले अमावस थी, चन्द्रमा का प्रभाव नहीं था, वहाँ अब चन्द्रमा झिलमिल चमकने लगा है, पूर्ण प्रभाववाला हो गया है। यही सूर्य-चंद्र-संयोग योग-साधनों का प्रधान उद्देश्य है। इससे नाद में विन्दु (शुक्र) समा गया है और अनाहत नाद की तुरी बजने लगी है ॥५४॥

चन्द्र और सूर्य के योग से जब उन्मनावस्था आती है तब ब्रह्मरंध्र (शून्य-मंडल) में अमृत का निर्झर झरने लगता है। नाद उलट जाता है। नाद सूक्ष्म शब्द तत्व का क्रियमाण स्वरूप है जो क्रमशः स्थूल रूप में परिणत होता हुआ सृष्टि का कारण होता है। उसका सृष्टि निर्मायक स्थूल स्वरूप अपने मूल स्रोत की ओर मुड़ जाता है। और नीचे उतरता हुआ विन्दु ऊर्ध्वगामी हो जाता है और वायु में ही, जिसके ऊपर काल का प्रभाव बहुत दिखाई देता है, अमर तत्व (जिंद) पहचाना जाता है ॥५५॥

हे अवधूत। आदि सूक्ष्म सुषुम्णा नाड़ी में नाद की झमक होती है,

१. (ग) पून्यो, (घ) पून्यूं। २. (घ) विंद। ३. (ग), (घ) तब बाजै। ४. (क) उलटिवि...मलटिव। ५. (ख) चीन्हंत; (ग) चीन्हिवा (घ) निरखत। ६. (ख) (घ) सूर, (ग) सूरज। ७. (ख) दोउ ले। ८. (ग), (घ) रहिया। ९. (ग) प्रथमे। १०. (ग), (घ) तेज की। ११. (घ) विंद। १२. (ग) में अन्तिम दो चरण छूट गये हैं।

संन्यासी सोई[1] करै[2] सर्ब[3] नास, गगन[4] मंडल महि[5] मांडै आस ।
अनहद सूं[6] मन उनमन[7] रहै, सो[8] संन्यासी[9] अगम की कहै ॥१०३॥
लाल बोलंती अम्हे[10] पारि[11] उतरिया, मूंढ रहै[12] उर वारं ।
थिति बिहूंणां झूठा जोगी[13] ना तस[14] वार न[15] पारं* ॥१०४॥
उलटिया[16] पवन षट चक्र बेधिया[17], तातै[18] लोहै सोषिया[19] पांणीं ।
चंद सूर दोऊ[20] निज घरि राष्या[21], ऐसा अलष बिनांणीं ॥१०५॥

था तब वे अपने राज्य को छोटा समझते थे और बाहर के राज्यों को बड़ा । इसी से प्रत्येक देश में विदेशियों का बड़ा आदर होता था ॥१०२॥

सन्यासी वह है, जो अपने सर्वस्व का न्यास (त्याग) कर देता है । केवल शून्य मंडल में (मिलने वाली ब्रह्मानुभूति की) आशा लिये रहता है । अनाहत (को सुनकर) मन को उन्मनावस्था में लीन किये रहता है । वह संन्यासी (स्वानुभव से) अगम परब्रह्म का कथन करता है ॥१०३॥

लाल (संभवतः लालनाथ) कहते हैं कि (हम भव सागर से) पार उतर गये । किंतु मूढ़ (संसारी) लोग (उसे पार नहीं कर सके,) इसी किनारे रह गये । परन्तु जो स्थिति (स्थिरता) के बिना होने के कारण (अभी चंचल) झूठा जोगी है (वह मझधार ही में डूब जाता है) उसे न वह किनारा मिलता है न यह, न वह वार होता है न पार, उसका यह लोक भी नष्ट हो जाता है और उसे मोक्ष भी नहीं प्राप्त होता ॥१०४॥

प्राण वायु को उलट कर छहों चक्रों को बेध लिया । उस से तप्त

१. (ख) सो; (घ) सोई । २. (ग) (घ) में 'करै' नहीं है । ३. (क) श्रव; (ख) सरव का; (ग),(घ) सरव (क्रम-ग) करम का । ४. (ख) गीगनि; (घ) गिगनि । ५. (ख), (ग), (घ) मैं । ६. (ख) स्यु (ग) स्यौं, (घ) स्यूं । ७. (ग), (घ) उनमनि । ८. (क) सोई; (ख) सो । ६. (क) सिन्यासी; (ख), (ग), (घ) सन्यासा । १०. (ख) बोलै, अमें, (ग), (घ) कहे हम । ११. (क), (ग) पार । १२. (क) (ग), (घ) रह्या । १३. (ग), (घ) झूठा जोगी तिथि बिहूँणा । १४. (क) तिस । १५. (ग) ग्र । १६. (ख) उलटि, (ग), (घ) उलट्या । १७. (ग) (घ) बेध्या । १८. (ख) ततै; (घ) तातैं । १९. (ख) सोष्य (ग), (घ) सोष्या । २०. (ग) २१. (ग), (घ) दोंऊ । २१. (क) राषौं ।

*यह 'सबदी' किसी लालनाथ योगी की जान पड़ती है ।

नाद हमारै बावै[1] कवन[2], नाद बजाया[3] तूटै पवन[4] ।
अनहद सबद बाजता रहै, सिध संकेत श्री गोरष[5] कहै ॥ १०६ ॥
सुणि गुणवंता[6] सुणि बुधिवंता, अनंत सिधां की बांणीं ।
सीस नवावत[7] सत गुर मिलिया[8], जागत[9] रैंणि बिहांणीं ॥ १०७ ॥
भिष्या[10] हमारी[11] कामधेनि[12] बोलिये, संसार हमारी[13] बाड़ी ।
गुर परसादै[14] भिष्या पाइबा[15], अंतिकालि[16] न होइगी[17] भारी १०८

लौह (ब्रह्मरंध्र) ने पानी (रेतस्) को सोख लिया । चन्द्रमा (इड़ा नाड़ी और सूर्य (पिंगला) दोनों को अपने घर (सुषुम्णा) में रक्खा, निमज्जित कर दिया । ऐसा (जो जोगी करे) वह स्वयं अलक्ष्य और विज्ञानी (ब्रह्म) हो जाता है । बिनांणीं-विज्ञानी ॥ १०५ ॥

षोडस[1] नाड़ी चंद्र प्रकास्या[2] द्वादस नाड़ी भांनं[3] ।
सहंस्र[4] नाड़ी[5] प्रांण का मेला, जहां असंष[6] कला सिव थांनं ॥६३॥
अवधू ईड़ा[7] मारग[8] चंद्र भणीजै, प्यंगुला[9] मारग भांमं ।
सुषमनां[10] मारग[11] बांणीं बोलिये त्रिय[11] मूल अस्थांनं[12] ॥६४॥
अवधू काया हमारी[13] नालि बोलिये[14] दारू बोलिये[14] पवनं ।[15]
अगनि पलीता अनहद गरजै ब्यंद[16] गोला उड़ि[17] गगनं[15] ॥६५॥
काजी मुलां कुरांण लगाया, ब्रह्म[18] लगाया वेदं ।
कापड़ी संन्यासी[19] तीरथ[20] भ्रमाया न पाया नृबांण पद[21] का भेवं ६६

षोडश कला वाली नाड़ी (इला) में चंद्रमा का प्रकाश है, द्वादश वाली (पिंगला) में भानु का सहस्र नाड़ी (सुषुम्ना अथवा) सहस्रार में प्राण का मूल निवास है, वहाँ असंख्य कलावाले शिव (ब्रह्मतत्व) का स्थान है ॥ ६३ ॥

ईड़ा नाड़ी को चन्द्र कहते हैं, पिंगला को भानु और सुषुम्णा को सरस्वती (वाणी) ये ही तीनों मूलस्थान (ब्रह्मरंध्र तक पहुँचाते हैं) ॥ ६४ ॥

हे अवधूत ! यह शरीर नाली (बंदूक) है, पवन बारूद है, अनहद रूप आग देने से धड़ाका होता है और बिंदु रूप गोला ब्रह्मरंध्र में चला जाता है अर्थात् साधक ऊर्ध्वरेता हो जाता है ॥ ६५ ॥

काजी मुल्लाओं ने कुरान पढ़ा, ब्राह्मणों ने वेद, कापड़ी (गंगोत्तरी से

---

१. (क), (ख) में 'षोड़स' के पहले 'अवधू' । २. (ख) प्रकासा । ३. (ख) भांण, (ग) भाण (भीण ?) (घ) भांण । ४. (ख) सहंसर; (ग) सहस्र । ५. (ग), (घ) 'प्रांण' के पहले 'जहाँ' । ६. (ग) असादि । ७. (ख) इड़ी; (ग) इला, (घ) यला । ८. (क) मारग । ९. (घ) पिंगुला । १०. (ख) सुषमण । १४. (घ) मारगि । ११. (क) तूय ; (ख) त्रिया; (ग) त्रियं, (घ) त्रियो १२. (ख) सुथान, (ग) सथानं । १३. (क), (ख) हमारै । १४. (घ) बोलीये, (ग) में पहला 'बोलियं' दूसरा 'बोलीयं' । १५, (ख) पवन…गीगन, (घ) पवना…गागनं (घ) पवनां…गगनां । १६. (घ) बिंद । १७. (ख), (ग), (घ) उड़िया । १८. (ख) ब्रह्मन, (ग) ब्राहण । (घ) ब्राहमण । १९. सन्यासी (ख) सिन्यासी । (घ) सन्यासी । २०. (ग) तीरथा; (घ) तीरथां; (क), (ख), (घ) भ्रमाया । २१. (ग), (घ) तत ।

सुणौं हो[1] देवल तजौ जंजालं, अमिय[2] पीवत तव[3] होइबा बालं।
ब्रह्म अगनि सींचत[4] मूलं, फूल्या फूल कली फिरि[5] फूलं ॥८७॥

उलट्या[6] पवनां[7] गगन[8] समोइ[9] तब बाल रूप परतषि[10] होई[11]।
उदै[12] ग्रहि अस्त हेम[12] ग्रहि पवन मेला, बंधिलै[13] हस्तिया[14] निज साल[15] भेला।

बारा[16] कला सोषै सोला[17] कला पोषै, चारि कला साधै अनंत कला जीवै[18]।
ऊरम धूरम जोती ज्वाला[19] सीधि[20] साधंत[21] चारि[22] कला पीवै ॥८९॥

से बालक कैसे हो सकते हैं। जो फूल खिल चुका है वह फिर कली कैसे हो सकता है। पूछे जाने पर इसका उत्तर जो दे वही गोरखनाथ है ॥८६॥

हे देवल (नाथ!) जगत के जंजाल को छोड़ो। (योग की युक्ति से) अमृत का पान करो तो बालक हो सकते हो। ब्रह्माग्नि से मूल को सींचने से जो फूल खिल चुका है वह फूल भी कली हो जाता है ॥८७॥

पवन को उलटकर ब्रह्मरंध्र में समावे। तब बालक रूप प्रत्यक्ष होता है। उदय के घर में अस्त जाने से (अर्थात् मूलाधार स्थित सूर्य को अस्त करने से और चंद्र हेम (हिम) के घर ब्रह्मरंध्र में पवन का सम्मिलन करने से बँधा हुआ (बँधकर) हाथी (मन) अपनी शाला में (जहाँ उसे योग सिद्ध के लिए रहना चाहिये अर्थात् आत्मा की अज्ञानता में) आ जाता है ॥८८॥

बारह कला (मूलाधारस्थ सूर्य) को सोखे (जिससे वह सूर्य अमृत के निर्झर को स्वयं सोखने में समर्थ न हो और इस प्रकार) सोलह कला (सहस्रारस्थ अमृतस्रावक चन्द्रमा) का पोषण करे। इस प्रकार चार कलाएँ

१. (ख) सुणो हो, (ग) सुणि है। (घ) सुणि हो। २. (ख) अपाव, (घ) अपीव, (ग) अमी। (ख) पीवता; (ग) पीवतां; (घ) पीवतैं। ३. (ग), (घ) सींचिवा। ४. (ग) फिर। ५. (घ) उलटा। ६. (ख), (ग), (घ) पवन। ७. (ख) गिगनि। ८. (ख) समाइ; (घ) समोय। ९. (क) प्रतछि; (ग) रूप प्रतीग। १०. (ख), (ग) जोइ, (घ) होय। ११. (क) ग्रह···ग्रह्य; (ख) ग्रहि (पहि?)··· ग्रहि। १२. (ग) ग्रिहे···ग्रीहै। (ग) में 'अस्ति' के आगे भी ग्रिहै'। १३. (ग), (घ) पवनां। १४. (ग) बंधिले। १५. (ख) हसतिया; (ग) हस्तिये; (घ) में साल नहीं है। १६. (ख) बारै; (ग) बाराह; (क), (घ) बारह। १७. (ख), (ग) साले; (घ) सोलह। १८. (ग) जोवै। १९. (ख) तुजाला। २०. (क) सीधे; (ख), (ग) सिधे। २१. साधत। २२. (घ) च्यारि।

असाध[1] साधंत गगन[2] गाजंत[3], उनमनी लागंत ताली।
उलटंत पवनं पलटंत बांणीं, अपीव[4] पीवत[5] जे[6] ब्रह्मग्यांनीं ॥९०॥

अलेष लेषंत अदेष देषंत, अरस[7] परस ते[8] दरस जांणीं।
सुंनि[9] गरजंत बाजंत नाद अलेष लेषंत ते निज प्रवांणीं[10] ॥९१॥

निहचल[11] घरि बैसिबा पवन[12] निरोधिबा[13] कदे न होइगा रोगी।
बरस दिन मैं तीनि बार काया पलटिबा[14], नाग बंग बनासपती जोगी ॥९२॥

(सूर्य के ऊपर चन्द्रमा की विशेषता अर्थात् अमृत) सिद्ध होंगी। इससे अनन्त कला पूर्ण अर्थात् ब्रह्मानुभवमय जीवन प्राप्त होगा। विशाल प्रकाशमय ज्योति के दर्शन होंगे, सिद्धि साधते हुए चार कला (अमृत) का पान करेगा ॥८९॥

पंडित ग्यांन मरौ क्या झूझि । औरै[1] लेहु[2] परमपद बूझि ।
आसण[3] पवन उपद्रह करैं[4] । निसिदिन आरम्भ पचि-पचि मरैं ॥१३४॥
उनमन जोगी[5] दसवैं द्वार[6] । नाद व्यंद[7] ले धूंधूंकार ।
दसवें द्वारे देइ कपाट । गोरख षोजी औरै बाट ॥१३५॥
आरम्भ[9] जोगी कथीला[10] एकसार[11] । पिण षिण[12] जोगी करै सरीर[13] विचार
तलवल[14] व्यंद धरिबा[15] एक तोल[16] । तब जांणिबा जोगीआरंभकाबोल१३६

हे संडित ज्ञानियो ! तुम बाहरी बातों से युद्ध करते हुए क्यों पच मरते हो। (इन से तब तक कुछ लाभ नहीं होगा जब तक तुम वास्तविक आभ्यन्तर ज्ञान अर्थात् परमपद की ओर न जाओगे) वह परमपद इन से भिन्न है, (इस सूक्ष्म ज्ञान के बिना) आसन और प्राणायाम (पवन का साधन) उपद्रव किया करते हैं। रात दिन पच मरने पर भी इनके द्वारा आरम्भ अवस्था से आगे बढ़ा नहीं जा सकता ॥ १३४ ॥

योगी दशमद्वार (ब्रह्मरंध्र) में समाधिस्थ होता है और नाद तथा बिंदु के मेल से धूधूकार अर्थात् महाशब्द अनाहतनाद को सुनता है किन्तु गोरखनाथ ने दशमद्वार को भी बन्द कर और ही बाट से परब्रह्म की खोज की है। (केवल बाह्य बातों में न पड़ सूक्ष्म विचार की—चिंतन की आवश्यकता की ओर संकेत किया है) ॥ १३५ ॥

आरम्भ योगी वह कहलाता है, जो एकसार अर्थात् निश्चल एक रस रहे और क्षण क्षण शरीर पर विचार करता रहे और शरीर में पूरे (सिरे तक) भरे हुए शुक्र की समत्व (एक तोल) रूप से रक्षा करे। तब समझना चाहिए कि योगी पर घट अवस्था के लिए कहे गये वचन अर्थात् लक्षण घट जाते हैं ॥ १३६ ॥

---

१. (ग), (घ) अजहूँ। २. (ग) लेहूँ; (घ) लेह। ३. (ग) आसन। ४. (ग) उपद्रहि। ५. (ग) उनमनि योगी। ६. (ग) द्वारि। ७. (घ) बिन्द। ८. (क) दसैं। ९. (ग) अरंभी; (घ) आरंभी। १०. (ग) कथिलौ। ११. (ग) वेकसार; (घ) यकसार। १२. (ग) षिणि षिण। १३. (ग), (घ) सरीर का। १४. (ग) तलतल। १५. (ग) धरिबाई। १६ (क) तोलै बोलै।

पेट कि अगनि बिबरजित[1] दिष्टि[2] की अगनि[3] षाया।
ग्यांन गुरू का आगैं ही[4] होता पणि[5] बिरलै[6] अवधू पाया ॥१३१॥
अगम[7] अगोचर रहै[8] निहकांम। भंवर[9] गुफा नांहीं[10] बिसराम[11]।
जुगति[12] न जांणैं[13] जागैं राति। मन काहू कै न आवै हाथि ॥१३२॥
नव[14] नाड़ी बहोतरि[15] कोठा। ए[16] अष्टांग[17] सब झूठा।
कूंची ताली[18] सुषमन[19] करै। उलटि जिभ्या लै[20] तालू[21] धरै ॥१३३॥

तब शरीर के भीतर महारस सिद्ध होता है। गोरख कहते हैं कि हमने चंचल (मन) को पकड़ लिया है और शिव-शक्ति का मेल करके अपने घर में रहने लगे अर्थात् निज स्वरूप में पहुँच गये ॥ १३० ॥

(मैंने) पेट की अग्नि (जठराग्नि) से खाना वर्जित कर आँख की अग्नि से खाया, (ज्ञान दृष्टि से माया का भक्षण किया) यह गुरु का ज्ञान पहले ही से था (होता), किन्तु किसी विरले ही अवधूत ने उसे प्राप्त किया ॥ १३१ ॥

अगम अगोचर (परमब्रह्म को प्राप्त करने के लिए) निष्काम रहना चाहिए। (किन्तु लोग) भ्रमर गुफा (ब्रह्मरंध्र) में तो निवास करते नहीं, योग की युक्ति तो जानते नहीं, केवल रात में जागते रहते हैं। (इसीलिए) मन किसी के हाथ नहीं आता, वश में नहीं होता ॥ १३२ ॥

शरीर में इतनी नाड़ियाँ, इतने कोठे हैं, आदि-आदि अष्टांग योग का सब बाह्य ज्ञान झूठा है। (वास्तविक केवल आभ्यंतर अनुभूति है।) सुषुम्ना के द्वारा ताली पर कुंजी करे अर्थात् ब्रह्मरंध्र का वेधन करे और जिह्वा को उलट कर तालु-मूल में रक्खे (जिससे सहस्रारस्थित चंद्र से स्रवित होने वाले अमृत का आस्वादन होगा) ॥ १३३ ॥

---

१. (ग) विरजित। २. (क) दृष्टि। ३. (ग) अगनि जु; (घ) अगनी जुग। ४. (ग), (घ) आगें। ५. (क) पनि (ग), (घ) में 'पणि' नहीं है, क्रमशः 'कोई', 'कोऊ' है। ६, (ग) विरला। ७. (क) अग्म। ८. (ग), (घ) है। ९. भ्रम। १०. (ख) नहीं। ११. (क) विश्राम। १२. (ख) जोग जुगति। १३. (ग) जानै। १४. (ग), (घ) नौ। १५. (क) बहतर; (ख), (घ) बहौतरि। १६. (ग), ये। १७. (ग) अष्टांग योग; (ख) अष्ठग योग; (घ) अष्टांग जोग। १८. (ख), (ग), (घ) ताला। १९. (ख) सुषमणा। २० (क) जिह्वा; (ख), (उलटी) जीह्वा। २१. (ख) तालवै।

अहंकार तुटिबा[१५] निराकार फूटिबा[१६], सोषीला[१७] गंग जमन[१८] का पांनीं।
चंद सूरज[१९] दोऊ सनमुषि[२०] राषीला[२१], कहो हो[२२] अवधू तहाँ[२३] की सहिनांणी[२४] ॥

न वहाँ जरा (बुढ़ापा), न मृत्यु है और न रोग; न वहाँ वायो है न ऊँकार। गोरख कहते हैं कि वहाँ तो केवल एकाकार (कैवल्य) अवस्था है, (किसी प्रकार का भेदभाव नहीं।) ॥ ११० ॥

(वहाँ) न उदय है न अस्त, न रात न दिन, सारी चराचरमयी सृष्टि में कोई भिन्नता का भाव नहीं अथवा (पदच्छेद-भेद से सर्वेस चराचर) सर्वेश और (उनकी) चर और अचर सृष्टि में कोई भेद भाव नहीं है। वही शुद्ध निरंजन ब्रह्म रह जाता है, मूल और शाखा, (अधिष्ठान और नामरूपोपाधि का) भेद नहीं रह जाता। वही सर्वव्यापी रह जाता है जो न सूक्ष्म है न स्थूल ॥ १११ ॥

(ब्रह्मरंध्र में कुंडलिनी प्रवेश से) ब्रह्मांड फोड़ना चाहिए और शून्य रूप नगर को लूटना चाहिए, जिसका भेद कोई नहीं जानेगा। गोरषनाथ कहते हैं कि जब शरीर रूपी घर घेर लिया जाता है तभी पंच देव (पंचेंद्रिय अथवा उनका स्वामी मन) पकड़ा जा सकता है ॥ ११२ ॥

अहंकार तोड़ना चाहिए, निराकार आत्मा को प्रस्फुटित करना चाहिए।

१. (ख) असत। २. (ग), (घ) नहीं। ३. (ख) (ग), (घ) सरव। ४. (क) म्यंन्य; (ख), (घ) भिनि; (ग) म्यंनि। ५. (ख) सो। ६. (घ) सकल। ७. (क) काया न; (ख) काया सुषम; (ग), (घ) सुषमना। ८. (ख) सथूल। ९. (क) ब्रह्मांड सब; (घ) ब्रह्मंड। १०. (ग) जाणवा। ११. (क) पंड दर; (ग), (घ) पर दल; (ख) जब प्यंड दरि। १२. (ख) मेटिबा; (ग) घेरिब; (घ) घेरिबा। १३. (क), (ग) तहाँ; (घ) में 'तहाँ' 'तब' कुछ नहीं है। १४. (घ) पड़िबा। १५. (ख) टूटिबा। १६. (ग), (घ) लूटिबा। १७. (ख) सोषिबा। १८. (ग) जमुन। १९. (ग) सूरज। २०. (घ) समिकरि; (क), (ग) सनमुष। २१. (ख), (ग), (घ) रषिबा। २२. (घ) कहौ हो; (ग) कहे हो। २३. (घ) कहाँ। २४. (क) नीशाणीं; (ग), (घ) सहनांणीं।

चेता रे[१] चेतिबा आपा न रेतिबा, पंच की मेटिबा आसा।
बदंत गोरष[२] सति ते सूरिवां[३] उनमनि[४] मन मैं बासा ॥११४॥
सिध क[५] संकेत बूझिलै सूरा, गगन[६] अरथांनि[७] बाइलै[८] तूरा।
मींम[९] के मारग[१०] रोपीलै भांणं, उलट्यां फूल कली[११] मैं आंणं ॥११५॥

(जैसे भू-पृष्ठ को तोड़ कर अंकुर बाहर निकलता है उसी प्रकार अहंकार को तोड़कर आत्मा प्रस्फुटित होती है।) जहाँ गंगा (इड़ा)-जमुना (पिंगला) का पानी सोख लिया गया (अर्थात् दोनों का प्रभाव मिटा कर सुषुम्ना में मिला लिया गया) तथा (सहस्रारस्थ) चन्द्रमा और (मूलाधारस्थ) सूर्य दोनों का विरोधी स्वभाव मिटा कर सन्मुख कर दिया गया (जिससे अमृत का स्राव नष्ट नहीं होने पाया), हे अवधूत वहाँ की पहचान अथवा लक्षण बताओ। सहनांणीं-संधान, खोज, पहचान ॥ ११३ ॥

हे चेतन (जीव)! सचेत रहना चाहिए। आत्मा को रेतना नहीं चाहिए दुःख नहीं देना चाहिए। पंचेंद्रियों से मिलने वाले झूठे सुख की आशा मिटा देनी चाहिए। गोरखनाथ कहते हैं कि वे ही सच्चे शूरवीर हैं, जो उन्मनावस्था में लीन मन में निवास करते हैं ॥ ११४ ॥

हे शूर (साधक)! सिद्ध के संकेत (सांकेतिक उपदेश) को समझो। शून्य-स्थान में तुरी (अनाहत नाद) बजाओ। चन्द्र के विरोधी भानु को मीन के मार्ग पर लगाओ अर्थात् योग युक्ति से चन्द्रमा के सम्मुख करो जिससे अमृत का रसास्वादन हो सके। (मछली नदी की धारा के विरुद्ध चल लेती है, किन्तु मछली किस मार्ग से गयी है, पानी के नीचे इस बात का पता कोई नहीं लगा सकता। योग का मार्ग भी इसी प्रकार गुप्त रहता है। इसीलिये वह 'मीन का मार्ग' कहाता है।) इससे फूल उलट कर फिर कली में बदल जायगा, वृद्ध को बाल स्वरूप प्राप्त हो जायगा ॥ ११५ ॥

१. (घ) चेति रे; (ख) चितरा; (ग) चंता रे। २. (ख), (ग), (घ) गोरषनाथ। ३. (क) सूरिमां। ४. (क) उनमन। ५. (ख) सिधि, (ग) संघ (घ ?)। ६. (ख) गगनि; (ग), (घ) गगन। ७. (क) अस्थानें; ८. (ग) बजाइल। (घ) बजायलै। ९. (क), (ग) मारग। १० (क) रोपीला। ११. (ख) कवल।

स्वांमीं[१] काची बाई काचा जिंद[२] । काची काया काचा बिंद[३] ।
क्यूंकरि पाकै क्यूंकरि सींझै । काची अगनीं नीर न[४] षीजै ॥१५६॥
तौ[५] देवी पाकी बाई पाका जिंद[२] । पाकी काया पाका बिंद[३] ।
ब्रह्म अगनि अपंडित[६] बलै । पाका अगनीं नीर परजलै[७] ॥१५७॥
सोवत आडां ऊभां[८] ठाढां अगनीं[९] ब्यंद[१०] न बाई ।
निश्चल[११] आसन[१२] पवनां ध्यानं अगनीं ब्यंद[१०] न जाई ॥१५८॥
उगवंत[१३] सूर पत्र पूर[१४] काल-कंटक जाइ[१५] दूर[१४] ।
नाथ का भंडार भर[१६]पूर रिजक रोजी सदा हजूर[१७] ॥१५९॥

हे स्वामी वायु कच्चा है, जीवन कच्चा है, शरीर कच्चा है, और बिंदु (शुक्र) भी कच्चा है। ये किस प्रकार पक्के हो सकते हैं, किस प्रकार सिद्ध हो सकते हैं। (योगाग्नि के सिद्ध हुए बिना) कच्ची अग्नि से नीर पक नहीं सकता ॥ १५६ ॥

हे देवी वायु, जीवन, शरीर और बिन्दु तब पक्के होते हैं जब ब्रह्माग्नि अखंडित रूप से जलने लगती है। इस प्रकार ब्रह्माग्नि या योगाग्नि के सिद्ध होने से जलमयी प्रकृति जल उठती है ॥ १५७ ॥

तिरछे सोते, सीधे खड़े रहते (अर्थात् सामान्य अवस्थाओं में) अग्नि, बिंदु और वायु की रक्षा नहीं की जा सकती, किन्तु जब आसन, पवन और ध्यान ये तीन चीज़ें निश्चल हो जाती हैं तब अग्नि और बिन्दु नष्ट नहीं होते ॥ १५८ ॥

सूर्य के उदय (ब्रह्म साक्षात्कार) होने पर काल रूपी कंटक दूर हो जाता है। (साधक को अपने सम्बन्ध में चिन्तित रहने की आवश्यकता नहीं रहती) नाथ का भंडार भरापुरा रहता है। वह सब के लिए प्रतिदिन का भोजन प्रस्तुत कर देता है ॥ १५९ ॥

---

१. (ग), (घ) स्वांमी जी । २. (ग) ज्यंद ''' व्यंद । ३. (क) किस विधि । ४. (ग), (घ) नहिं । ५. (ग), (घ) में 'तौ' नहीं । ६. (ग) अपंडत । ७. (क) नीरा जलै । ८. (ग) बैठां; (घ) बैठा । ९. (ख), (ग), (घ) अगनि । १०. (घ) बिंद । ११. (ख), (घ) निहचल । १२. (ख), (घ) आसण; (ग) आसनि । १३. (ग), (घ) ऊगत । १४. (ग) पूरि ''' दूरि । १५. (घ) जायगा । १६. (घ) भर भर । १७. अन्तिम चरण के स्थान पर (ग), (घ) में यह है— 'पाप जरै और फुरै, और गीं च्यंता श्री गोरखनाथ करै ।' जो दो चरण के बराबर जान पड़ता है ।

अवधू[1] मन चंगा तौ कठौती हीं[2] गंगा। बांध्या[3] मेल्हा[4] तौ जगत्र[5] चेला।
बदंत[6] गोरष सति सरूप। तत बिचारैं[7] ते रेष न रूप ॥१५३॥
सीषि साषि बिसाह्या बुरा[8]। सुपिनैं मैं धन पाया पड़ा।
परषि परषि ले आगैं धरा। नाथ कहै पूता पोटा न षरा[9] ॥१५४॥
आओ[10] देवी बैसो। द्वादिस[11] अंगुल[12] पैसो।
पैसत पैसत होइ[13] सुष। तव जनम मरन[14] का जाइ[15] दुष ॥१५५॥

हे अवधूत, अगर मन चंगा (शुद्ध) है तो कठौती में ही गंगा है अर्थात् जहाँ चाहो वहाँ गंगा विद्यमान है। क्योंकि गंगा-सेवन से जो फल बताये गये हैं वे मन की शुद्धता से स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। यदि माया के बंधन में पड़े हुए मन को (अथवा जीव को) मुक्त कर दिया तो सारा जगत चेला हो जायगा। गोरख सत्य स्वरूप का वर्णन करता है—जो उस तत्व का विचार करेंगे, (वे स्वयं) रूप और रेखा से रहित हो जायँगे ॥ १५३ ॥

(खाली पढ़ने-सीखने से कुछ नहीं होता।) सीख साख कर बुराई पाकर स्वप्न देखने वाले ने परख-परख कर अपने पास बटोर लिया, परन्तु नाथ कहते हैं कि हे पूत! वस्तुतः वह धन न खोटा है, न खरा। (क्योंकि असल में तो वह धन ही नहीं है) ॥ १५४ ॥

हे देवी (कुंडलिनी शक्ति!) आओ बैठो, द्वादशांगुल प्राणवायु अर्थात् उसको वहन करनेवाली प्रमुख सुषुम्ना में प्रविष्ट होओ। प्रविष्ट होते होते सुख प्राप्त होगा और जन्म-मरण का भय भाग जायगा॥ १५५ ॥

---

१. (ख) में 'अवधू' नहीं। २. (ख), (ग), (घ) में 'हीं' नहीं। ३. (ख) बाध्या; (ग) ब्यंध्या। ४. (क) पेल्हा; (ख), (घ) पेला। ५. (ख) सब जगत्र। ६. (ख) में अंतिम दो चरणों के स्थान पर ये हैं—राष्या रहै गमाया जाय। सति सति भाषंत श्री गोरष राय। ७. (ग) विचारिवा लै; (घ) विचारै लै। ८. (क), (ग), (घ) वरा। ९. यह सबदी (ख), (ग), (घ) में कुछ पाठ भेद से इस प्रकार है—सीषी साषी बिसाया बुरा। नाय कहै रे पूता षोटा न परा।
सीषिबा सबद बिसायबा वरा। डारिबा षोटा लेबा परा।
१०. (ग) अवो (? आवो) ११. (ग), (घ) द्वादस। १२. (घ) आंगुल। १३. (ग), (घ) होयगा। १४. (ग) जनम जनम। १५. (ग) जाइगा; (घ) जायगा।

षांयें भीं मरिये[1] अणषांयें[2] भी मरिये। गोरष कहै पूता[3] संजंमि[4] हीं तरिये[5]
मधि निरंतर कीजै बास। निहचल मनुवा थिर होइ सास[6] ॥१४६॥
पवन हीं जोग पवन हीं भोग। पवन हीं हरै छतीसौं[7] रोग।
या पवन कोई[8] जांणैं[9] भेव। सो आपैं[10] करता आपैं देव ॥१४७॥
[11]व्यंद हीं जोग व्यंद[11] हीं भोग। व्यंद[11] हीं हरै चौसठि रोग।
या विंद का कोई[8] जांणैं[12] भेव[13]। सो आपैं करता आपैं देव ॥१४८॥
[14]साच का सबद सोना[15] का रेख निगुरां कौं[16] चाणक[17] सगुरा[18] कौं उपदेश[19]
गुर[19] का मुंड्या गुंण मैं रहै। निगुरा भ्रमै औगुण गहै ॥ १४९ ॥

अघाकर खाना भी मौत है, बिल्कुल न खाना भी मौत है। गोरख कहते हैं कि हे पुत्र! (इन दोनों में संयम करने से ही मुक्ति हो सकती है, इसलिए मध्यम रहनी ही से रहना चाहिए जिससे मन निश्चल हो और श्वास स्थिर ॥ १४६ ॥

पवन ही योग है, पवन ही भोग है, पवन ही छत्तीसों (सभी) रोगों का हरण करता है। इस पवन का भेद विरले ही जानते हैं। जो विरला जानता है) वह आप ही ब्रह्मा है, आप ही ब्रह्म ॥ १४७ ॥

बिंदु ही योग है, बिंदु ही भोग है, बिंदु ही चौंसठों रोगों का हरण करता है। इस बिंदु का भेद कोई विरला ही जानता है। (जो जानता है) वह आप ही ब्रह्मा है, आप ही ब्रह्म ॥ १४८ ॥

सत्य का शब्द सोने की रेखा के समान है, जो सब कसौटियों पर सच्चा

१. (ख) में 'भी मरिये' नहीं है; (ग), (घ) में 'भी' के स्थान पर 'ही' है; (ख) में भी दूसरे 'भी' के स्थान पर 'ही' है; (क) में दूसरे 'मरिये' के स्थान पर 'मरियें' है। २. (ग), (घ) बिण षाये। ३. (ख) सुणो रे पूता; (ग) (घ) रे पूता। ४. (ख), (घ) संजम। ५. (घ) तिरीए। ६. (ख), (ग), (घ) में अंतिम दो चरण नहीं हैं; देखो पिछले पृष्ठ की टिप्पणी १०.। ७. (ख), (ग), (घ) चौसठि। ८. (ग), (घ) में 'कोई' नहीं है। ९. (ख) जाणै; (ग), (घ) जावै। १०. (ख) आपै (ग), (घ) आप ही। ११. (घ) विंद। १२ (ग) जानैं १३. (ग) मैव; (ख) मेष। १४. (ग), (घ) सति; (ख) में यह सबदी नहीं है। १५. (क) सोनें। १६. (ग), (घ) कूं। १७. (ग) चोषिक; (घ) चाणिक। १८. (ग) सुंगरा; (घ) सुगरा। १९. अंतिम दो चरण (ग), (घ) में नहीं हैं।

सूरां[1] का पंथ हारयां का बिसराम सुरता लेहु बिचारी ।
अपरचै पिंड[2] भिष्या षात है अंति कालि होयगी[3] भारी ॥२१६॥
उलटी सकति[4] चढ़ै ब्रह्मंड नष सष[5] पवनां षेलै सरवंग ।
उलटि चन्द्र राहु कूं ग्रहै[6] । सिध सङ्केत जती गोरष कहै ॥२१७॥
धरे[8] अधर बिचारीया धरी याही मैं सोय[9] ।
धरे[8] अधर परचा हूवा तब दुतीया नाहीं कोय[9] ॥२१८॥
जिभ्या इन्द्री एकै नाल । जो राषै सो बंचै काल ।
पंडित ग्यांनी न करसि[10] गरब । जिभ्या जीती[11] जिन जीत्या सरब[12] ॥२१९॥

शूर (साधक) को तो सदा मार्ग पर ही चलना है । विश्राम उसी के लिए है जो हारकर अपने आपको काल के हाथ कर चुका है । हे श्रोताओ इस बात को विचार लो, जिसको इसी शरीर में ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो गया (अपरिचय) है और फिर भी जो भिक्षान्न खाता है, उसको अंतकाल में कठिनाई हो जायगी ॥ २१६ ॥

कुंडलिनी शक्ति जब उलट कर ब्रह्मांड में पहुँच जाती है, और नख से शिख तक सर्वाङ्ग में वायु व्याप्त हो जाती है (नाथ-शब्दावली में, वायु-भक्षण होने लगता है) तब (उलटा सहस्रारस्थित अमृत-प्रस्रावक) चंद्रमा ही राहु (अर्थात् आधार पद्मस्थित ग्रसने वाले सूर्य) को ग्रस लेता है (जिससे अमृत का पान संभव होता है ।) यही गोरख ऐसा सिद्ध सङ्केत कहता है ॥२१७॥

धरा (पांच-भौतिक शरीर) में ही जब पंच-भूतों से परे रहने वाले परब्रह्म (अधर) का विचार किया तो उसे इसी पांचभौतिक शरीर में पाया । इस प्रकार जब धरा ही में अधर (ब्रह्म तत्त्व) का परिचय (साक्षात्कार) हो जाता है तब अद्वैत की सिद्धि हो जाती है ॥ २१८ ॥

एकै नाल, एक परब्रह्म के साथ, भगवत्स्मरण के द्वारा । बंचै काल, काल को धोखा देता है ॥ २१९ ॥

---

१. (ग) सुरा...हारया । २. (ग) प्यंड । ३. (ग) अंतकाल होइगी । ४. (घ) सुरति । ५. (ग) नष चष । ६. (ग) रीह कुं गहै । ७. (ग) श्री गोरषनाथ ८. (ग) धरै । ९. (ग) सोइ ...नहीं कोइ । १०. (ग) ग्रबं (?) । ११. (ग) तिन । १२. (घ) ग्रब ।

छत्र पवन निरंतर रहै छीजै काया पंजरा रहै ।
मन पवन[1] चंचल निजि गहिया बोलै नाथ निरंतरि रहिया ॥१८६॥
इकटी बिकुटी त्रिकुटी संधि पछिम द्वारे पवनां बंधि ।
षूटै[2] तेल न बूझै दीया बोलै नाथ निरन्तरि हूवा[3] ॥१८७॥
ज्यूं ज्यूं भुयंगम आवै जाइ सुरही घरि नहीं गरड़ रहाइ,
तब लग सिध दुलंभ जोग तोयं अहार बिन ब्यापै रोग ॥१८८॥

छत्र-पवन जब भेद रहित निरन्तर अवस्था को प्राप्त हो जाता है तब काया क्षीण होती जाती है, खड़खड़ ठठरी मात्र रह जाती है तथा मन पवन (स्थूल) और चंचल इन्द्रियाँ अपने हाथ में आ जाती हैं। नाथ का कथन है कि इस प्रकार निरन्तर रहनी सिद्ध होती है।

योग शास्त्र के अनुसार वायु के दस भेद होते हैं जो शरीर में अलग-अलग व्यापारों की सिद्धि करते हैं। वायु के इन भेदों में सार स्वरूप जो मूल वायु (सूक्ष्म सिद्धान्त स्वरूप वायु है) है वही को यहाँ पर छत्र वायु कही गई है ॥ १८६ ॥

एकटी (पहली, इड़ा) और बिकटी (दूसरी, पिंगला) का जब त्रिकटी (तीसरी, सुषुम्ना) में मेल होता है और सुषुम्ना मार्ग में जब पवन का निरोध हो जाता है तब साधक अमर हो जाता है, उसका आयु रूप तेल समाप्त नहीं होता और जीवन रूपी शिखा बुझती नहीं है। इस प्रकार नाथ कहते हैं कि साधक निरन्तर अर्थात् नित्य स्वरूप हो जाता है।

एक पर स्वार्थें टा (+ स्त्री० ई) उपसर्ग के लगने से एकटी शब्द सिद्ध हुआ है। इसके अनुकरण पर द्वि से बिकुटी और त्रि से त्रिकुटी शब्द बने हैं। त्रिकुटी भी अभिप्रेत है ॥ १८७ ॥

ज्यों ज्यों (जब तक) श्वासा (सर्प) आती जाती है, और उसके लिए सुषुम्ना मार्ग (सुरही घरि, गाय के घर) में गरुड़ का निवास नहीं होता अर्थात् जब तक श्वास का निरोध नहीं होता, तब तक सिद्ध-योग दुर्लभ है। (क्योंकि) जल (वीर्य) का आहार किये बिना शरीर में रोग व्यापता है और (साधक जल का आहार कर सकता है, ऊर्ध्व रेता हो सकता है) प्राणायाम की चरम सिद्धि (कुम्भक) ही से ॥ १८८ ॥

---

१. (ख) पवनां। २. (क) टूटै। ३. (ख) रहिया।

बैसंत पूरा रमंति सूरा, एक रसि[1] राषंति काया।
अंतरि एक रसि[1] देषिबा विचरंति[2] गोरषराया* ॥१८३॥
नाद बिंद बजाइले दोऊ पूरिले अनहद बाजा।
एकंतिका बासा सोधि ले भरथरी कहै गोरष मछिंद्र का दासा ॥१८४
सूर माहिं चंद चंद माहिं सूर। चपंपि तीनि तेहुड़ा बाजल तूर।
भणन्त गोरषनाथ एक पद पूरा। भाजंत[3] मौंदू साधंति[4] सूरा ॥१८५॥

द्वारा प्राणायाम से पाँचों इन्द्रियों को (प्रत्याहार की साधना से) इन्द्रियार्थों (विषयों) से वापिस हटा लेता है। और दिन रात सचेत (सावधान) रहता है। ऐसा दरवेश स्वयं ब्रह्मस्वरूप (अल्लाह की जाति का) हो जाता है ॥ १८२ ॥

पूरे (अर्थात् जिन्हें सिद्धावस्था प्राप्त हो गयी है) बैठे रहते हैं, (उनको करने के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता), जो शूर हैं (अर्थात् जो साधकावस्था में साहस पूर्वक विघ्नों का सामना करते रहते हैं) वे शरीर को एक रस अर्थात् अपरिवर्तनशील अवस्था में रखते हैं। किन्तु गोरखनाथ आभ्यंतर एकरसता को देखने के लिए अर्थात् प्राप्त करने के लिए विचरण करता है अर्थात् प्रयत्नशील है ॥ १८३ ॥

नाद और बिन्दु दोनों को बजा लो अर्थात् साधो; अनाहत रूप बाजे को भरो अर्थात् उसमें संगीत ध्वनि निकालो (फूँककर बजाये जाने वाले बाजे से अनाहत का रूपक बाँधा गया है) और हे भरथरी एकांत का बास ढूँढो, यह मछन्दर के दास (शिष्य) गोरख का कथन अर्थात् उपदेश है ॥ १८४ ॥

जब सूर्य (पिंगला नाड़ी) और चन्द्र (इड़ा नाड़ी) अथवा आधार पद्मस्थ सूर्य का सहस्रारस्थ चन्द्रमा से मेल हो जाता है और तीन तिकुंट अर्थात् सत् , रज और तम ये तीनों दबा लिये जाते हैं, तब (अनाहत रूप) तूर बजता है। इस प्रकार गोरखनाथ उस पूर्ण-पद अर्थात् सिद्धि का वर्णन करता है जिसको शूर साधक प्राप्त करते हैं और जिसे प्राप्त किये बिना ही मूर्ख उचित मार्ग को त्याग कर भाग जाते हैं ॥ १८५ ॥

---

१. (क) रस्य। २. (क) विरंचत। ३. (क) भंजत। ४. (क) साधति।
* १८३ से १८७ तक की सबदियाँ (क) में साखियाँ कही गई हैं।

जोग, जुगति सार[1] तौ भौ तिरिये पारं[2] ।
कथंत[3] गोरषनाथ विचारं[4] ।२। ॥ ९ ॥

मनसा मेरी[5] व्यौपार बांधौ[6], पवन पुरषि उतपनां ।
जाग्यौ[7] जोगी अध्यात्म लागौ, काया पाटण मैं जांनां[8] ॥ टेक ॥
इकवीस सहंस षटसां आदू[9], पवन पुरिष जप माली ।
इला प्यंगुला सुषमन नारी, अहनिसि वहै प्रनाली[10] ॥१॥
षटसां षोड़ि कवल[11] दल धारा[12], तहां वसै ब्रह्मचारी ।
हंस पवन[13] ज फूलन[14] पैठा[15], नौ सै नदी पनिहारी[16] ॥२॥

केदारनाथ (शिव, स्वयं परमब्रह्म) हैं । यदि योग की सार (तत्त्वमयी, सच्ची) युक्ति प्राप्त हो जाय तो गोरखनाथ (विचार पूर्वक) कहते हैं कि संसार से पार हो जावे ।

हे मेरी मनसा (इच्छा) तुम अपना व्यापार बाँधो । प्राण पुरुष उत्पन्न हो गया है । अर्थात् मन और पवन का संयोग संभव हो गया है । (इस प्रकार मन पवन के योग अथवा प्राणायाम से) जागा हुआ जोगी अध्यात्म (आत्मा सम्बन्धी प्रयत्न) में लग गया है । उसे इस शरीर रूपी नगर में प्रवेश करना है । पवन पुरुष अर्थात् बाहर भीतर आती हुई साँस ही जप की माला है जो प्रति दिन २१,६०० जप करती है । इला, पिंगला और सुषुम्ना की नलियों में पवन बराबर बहता रहता है ॥ १ ॥

इक बीस ...माली = योगियों के अनुसार मनुष्य प्रतिदिन २१,६०० बार साँस लेता है । इन सब साँसों के साथ 'सोऽहं हंसा' का जाप 'अजपा जाप' कहलाता है । जप श्वास क्रिया के द्वारा स्वयं बेखबर हो रहा है । हमें उसकी ओर अपना ध्यान ले जाकर उसे सज्ञान रूप से करना है ।

षटसां = षट्दलकमल, स्वाधिष्ठान चक्र । षोड़ि कवलदल = षोडष दल कमल = विशुद्ध चक्र ।

---

१. (क) संसार । २. (घ) तिरीए पार । ३. (क) में 'कथंत' नहीं । ४. (घ) विचार । ५. (घ) देवी । ६. (घ) वौपार बाधौ । ७. (घ) जागौ । ८. (घ) काया का पाटण मनां । ९. (घ) यकीस सहंस पट सास आदि; । १०. (घ) यला पिंगुला सुषमनि; (घ) नदीयां अहिनिसि वहैं । ११. (घ) षटसास षोड़ि कंवल । ११. (घ) धीरा । १३. (घ) पवल (? पवन या कवल) १४. (घ) जलि फूलण । १५. (घ) पैठा तहां । १६. (घ) पणिहारी ।

अर्घै[1] आरण नै विषै कोइला[2], सहज, फूक दो नलियां[3] ।
चंद सूर दोऊ[4] समि[5]करि राष्या[6] आर्पैं[7] आप जु मिलिया[8] । २ ।
रती का[9] कांम मासे की[10] चोरी[11], रती मैं मासा चोरै ।
मासा चोरि रहै मासे मैं[12], इहि[13] विधि गरथैं जोरै[14] । ३ ।
अरधे[15] सोनां उरधै सोनां, मध्ये[16] सोनम्[17] सोनां[18] ।
तीनि सुन्यं[19] की रहनीं जानैं[20], ता घटि पाप न पुंनां । ४ ।
उनमनि डांडी[21] मन तराजू, पवन कीया गदियांनां ।
आपै गोरषनाथ जोषण[22] बैठा, तब सोनां सहज[23]समांनां ।५। ॥६॥
जांणनैं जोसी जोश्रो नै विचारी, पहलां पुरिष कै नारी[24]जी । टेक ।
बाइ नहीं तहूं वां बादल नाही, बिन थाभां बाचै मडप रचीया ।
तिहां आप तपांवन हारी[25] जी । १ ।

अर्घ आरण=अक्षय रूपी जंगल में । सहज⋯नलियां=इला पिंगला से सहजाग्नि को फूंककर । रती=गुंजा या घुंघुची, छोटी वस्तु । रती का काम=नश्वर, माया । मासा=अधिक, बड़ा । हमारे हाथ में स्थूल शरीर छोटी वस्तु है, इस में से महान् आत्मतत्त्व को लेकर उसी में निवास करना चाहिए । इस प्रकार (आत्म-) धन (गरथैं) को जोड़ना चाहिए । धन गांठ (ग्रंथि) में बंधा रहता है । इसलिए लक्षणा से 'ग्रंथि' का अर्थ धन होता है । 'ग्रंथि' से ही 'गरथ' और 'गथ' बनता है । गदियांनां=गद्याण (सं०), एक तौल जो ६ः मासे के बराबर होती थी । गद्याणो माषकैः षड्भिः—शाङ्गधर संहिता १, १, ४१; योगचिंतामणि १, १०३ ॥ ६ ॥

---

१. (प) अंधै । २. (प) कोयला । ३. (प) फूंक दोय नलीया ⋯ल मिलीया । ४. (प) दोनूं । ५. (क) सम्य । ६. (क) राष्यो । ७. (प) चौरै सब आरे । ८. (प) मलीया । ६. (प) मासानी । १०. (क) चोरि । ११. (प) मासा मैं । १२. (प) मति । १३ (प) गरथैं जोड़े । १४. (प) गरथै⋯ जोड़े । १५. (प) अौरधि । १६. (क) सोन्न; (प) सूंनिम । १७. (प) सुंनि । १८ (प) सुंनि । १९. (प) रहनी । २०. (प) सुनि । २१. (प) डांडी नै । २२ (प) जोषण । २३. (प) सुंनि । २४. (प) नारा । २५. (प) हारा ।

गगन सिषर आछै अंबर पांणीं।
मरतां मूढां लोकां मरम न जांणीं[1] । ३ ।
पूनिम महिला[2] चंदा जिम नारी संगै रहणां।
ग्यांन रतन हरि लीन्ह परांणां[3] । ४ ।
आदि नाथ नाती मछिंद्र नाथ पूता।
व्यंद तोलै राषीले[4] गोरष अवधूता[5] । ५ । ॥५॥

सोनां ल्यौ रस सोनां ल्यौ, मेरी जाति सुनारी रे।
धंमणि[6] धमीं रस जांमणि जांम्या,
तब गगन[7] महा रस मिलिया[8] रे ॥ टेक ॥
आपैं सोनां नै आप सुनारी[9], मूल चक्र अंगीठा।
अहरणि[10] नाद नैं व्यंद[11] हथौड़ा, घटिस्यूं[12] गगन बईठा[13] । १ ।

गगन सिषर=त्रिकुटी, ब्रह्मरंध्र अथवा ऊँची पहुँच या ब्रह्मानुभूति में। पांणीं=अमृत। मूढां=मूढ। पूनिम...=पूर्णिमा का चंद्रमा अपना संपूर्ण अमृत दान करता रहता है, (जो योग-युक्ति के बिना मूलाधार-स्थित सूर्य के द्वारा सोख लिया जाता है।) परिणाम यह होता है कि वह क्षीण होता चला जाता है। स्त्री के साथ रहकर भी पुरुष की, जो वस्तुतः पूर्ण है, यही हालत होती है, महिला=में-का, मध्य का ॥ ५ ॥

मैं जाति का सुनार हूँ। मुझ से रस (आत्मानंद, अमृत) रूप सोना लो। धमणि (धौंकनी श्वास क्रिया) को धौंका, श्वास क्रिया के द्वारा अजपाजाप सिद्ध किया। यही रस का जमना है। अजपाजाप के द्वारा चंचल मन स्थिर हो जाता है। इसी से फिर ब्रह्मरंध्र में महारस योगामृत की प्राप्ति होती है ॥टेक॥ घटिस्यूं=गढ़ूँगा।

---

१. (घ) मरता मूढ़ा लोका पवरि न जांणी। २. पून्यूं मैंला। ३. (घ) लीया पुरांणां। ४. (घ) कोटि तोला ब्रिंदे राषै। ५. (घ) औधूता। ६. (घ) धमनि'' जामनि जाम्यां। ७. (घ) गिगनि। ८. (घ) मिलीयारे। ९. (क) जास्यों; (घ) आपै सुनारी आपै सोना। १०. (क) अहरणि। ११. (घ) विंद। १२. (घ) तब घड़ि स्यूं। १३. (क) बईठा।

19:59

Gorakhbani - Ram Lal S...

153/312

द्वारा ही होता है, निस्सन्देह जो इस हंस-मंत्र का स्वरूपबोध प्रदान कर दे, वही हमारा गुरु है । इस प्राण-मंत्र (प्राणहंस) की उत्पत्ति ऊँकार से ही है । समस्त सृष्टि, जगत् के प्राकट्य का मूल ऊँकार ही है । ऊँकार ब्रह्म ही हमारे नाभिदेश (स्वाधिष्ठान चक्र) और हृदय (अनाहतचक्र) में स्वाभिव्यक्त अथवा सहज विद्यमान है । ऊँकार ही देवता (परमशिव महादेव) है, ऊँकार ही गुरु है । योगसिद्धि ऊँकार की उपासना से ही सम्भव है । मूल ऊँकार का अभिव्यक्त रूप नाद है, नाद ही में ब्रह्मा, नरहरि (विष्णु) और उमापति (महादेव महेश्वर) लीन हैं, उनकी लीला-भिव्यक्ति का माध्यम ऊँकारस्वरूप नाद ही है, इस नाद में ही लव लगाकर (चित्तवृत्ति का लय कर) योग की साधना से ऊँकाररूपी परमधन, कैवल्यपद (निर्वाण) को प्राप्त करना चाहिए । प्राणवायु इड़ा और पिंगला नाड़ी से प्रवाहित होकर सुषुम्ना की मध्यवर्तिनी ब्रह्मनाड़ी में प्रवेश कर शरीर की चौसठ सन्धियों को निनादित करती हुई सहस्रार में प्रवेश कर अनाहतनाद में लीन हो जाती है और सहस्रार में संचरण करती रहती है और इस तरह षट्चक्रों के भेदन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निबाहती है । यह प्राणवायु सोऽहं रूप में अभिव्यक्त होकर हंस-मंत्र का रूप धारण कर लेती है और इसके (प्राण-अपान के) समरसत्व के फलस्वरूप बिन्दु ब्रह्मरन्ध्र में स्थित हो जाता है और इस तरह योगसाधक का शरीर मृत्यु का ग्रास होने से बच जाता है । वायु, प्राण को शरीर में स्थिर करने पर मन भी स्थिर हो जाता है, वह मर जाता है (उन्मन हो जाता है), इस तरह मन ही मारनेवाला है और स्वयं अपने (मन के) मरण का साधन भी है, वह अमनस्क होकर जीवात्मा को मुक्त करता है और स्वयं उन्मन हो जाता है (तर जाता है), मन के स्थिर होने पर त्रिभुवन तर जाता है, मन ही शिव (आदि) है, मन ही समस्त षट्चक्रभेदन आदि अन्तर्साधनाओं का माध्यम है और वही अन्तिम (कैवल्य) अवस्था, परममुक्ति प्रदान करने का भी अमोघ साधन है । बाह्य विषय-विकारों का अन्त मन को ही वश में करने से सम्भव हो जाता है, रज ही शक्ति है, शिव बिन्दु है । मूलाधारस्थ अमृतशोषक सूर्य बारह कलाओंवाला है और सहस्रार में स्थित

अमृतस्रावक चन्द्रमा सोलह कलाओं का है, विपरीतकरणी मुद्रा के अभ्यास से बारह कलावाले शक्तिमान सूर्य को ऊपर और तालुमुल में स्थित अमृतमय चन्द्र को नीचे कर शेष चार कलाओं के द्वारा योगी अमृतपान कर दिव्य देह की प्राप्ति करता है । बिन्दुरूपी शिव ही चन्द्रमा है और रजरूपिणी शक्ति ही सूर्य है । इन दोनों के समरसत्व से योगी अमरकायत्व प्राप्त करता है । यही शरीर में व्याप्त परब्रह्म राजाराम के सहज स्वरूप का बोध है । पाँचों तत्व का यथोचित प्रकाशन इसी परमात्मानुभूति का फल है । पाँचों तत्व इस बोध के परिणामस्वरूप परब्रह्म में अन्तर्लय प्राप्त कर उसी में प्रविष्ट हो जाते हैं । गोरखनाथ का वचन है कि यही हरिपद, परमपद की प्राप्ति है, महायोगज्ञान है ।

अवधू बोल्या तत विचारी, पृथ्वी मैं बकवाली[1] ।
अष्टकुल परवत[2] जल बिन तिरिया[3], अदबुद[4] अचंभा भारी ।।टेक।।
मन पवन[5] अगम उजियाला, रवि ससि तार गयाई[6] ।
तीनि[7] राज त्रिविधि[8] कुल नांहीं, चारि जुग सिधि[9] वाई ।।१।।
पांच[10] सहंस मैं पट अपूठा, सप्त[11] दीप अष्ट नारी ।
नव षंड पृथी इकवीस मांहीं, एकादसि एक तारी[12] ।।

अवधूत ने विचार कर तत्त्व कहा जो पृथ्वी में बकवास ही समझा जा रहा है। इस तत्त्व कथन में पूर्णिमा और अमावस्या को मिलाकर १६ तिथियों के बहाने योग वर्णित है। कुछ तिथियों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। (पड़िवा) यह अचंभे की बात है कि अष्टकुल पर्वत बिना जल के ही तैर गये। अष्टकुल पर्वत स्थूल काया है और जल सूक्ष्म माया। काया में माया और आत्मा दोनों हैं। जल अथवा माया के रहित हो जाने पर व्यक्ति के तरने में, मुक्त हो जाने में कोई संदेह नहीं रह जाता। (द्वैज) मन, पवन के संयम से अगम ज्योति प्राप्त हुई है जिसके समक्ष सूर्य, चन्द्र और तारे गत हो जाते हैं अर्थात् छिप जाते हैं, तीज त्रैगुण्य के परिवार का राज्य अब रह नहीं गया है। चौथ, जगत् में सिद्धि (का डङ्का) बज रहा है। पञ्चमी, सहस्रार में स्थिति हो गई है। छठ, उलटी अंतर्मुख प्रवृत्ति हो गई है। सप्तमी, (अलख ज्योति का) दीप यल उठा है। आठईं, कुंडलिनी शक्ति सिद्ध हो गई। नौमी, नौखंड पृथ्वी और २१ ब्रह्मांड (काया के ही) भीतर हैं। (दशमी का उल्लेख अंत में है।) एकादशी, एकतार, एकरस समाधि लगी हुई है। द्वादशी इला-पिंगला का त्रिकुटी में सुषुम्ना द्वारा मेल हो गया है। (त्रयोदशी का उल्लेख नहीं है।) चौदशी, चित्त ब्रह्म में लीन हो गया है। (पूर्णिमा या अमावस) षोडश दलकमल विशुद्ध चक्र के सिद्ध होने से योगी के बत्तीसों लक्षण प्राप्त हो गये हैं तथा जरा-मरण और भवभीति नष्ट हो गई है। दसईं, उनमनी समाधि के द्वारा निरंजन रूप होकर दशमद्वार में वास पाकर उलटकर उसी शब्द में समा गये जिससे उत्पन्न

---

१. (घ) बंकवाली । २. (क) प्रबत । ३. (घ) तिरीया । ४. (घ) उदबुद । ५. (घ) पवनां । ६. (घ) आई । ७. (घ) तीन । ८. (घ) त्रिवधि । ९. च्यारि जुग सिध । १०. (घ) पंच । ११. (घ) सपत । १२. (क) नव षटपृथ्वी इकवीस मांहीं ।

गङ्गा तीर मतीरा[1] अवधू, फिरि फिरि बणिजां[2] कीजै ।
अरध वहन्ता[3] उरधैं लीजै, रवि सस[4] मेला कीजै ॥ ३ ॥
चंद सूर दोऊ गगन[5] बिलूथा, भईला[6] घोर अंधारं ।
पंच वाहक जब न्यंद्रा पौढ्या[7], प्रगट्या पौलि पगारं ॥ ४ ॥
काया कंथा, मन जोगोटा[8], सत गुर मुझ[9] लपाया[10] ।
भणंत[11] गोरषनाथ मछा[12] राषौ, नगरी चोर मलाया[13] ॥ ५ ॥ १० ॥

(सूक्ष्म तत्त्व से धारा छूट कर स्थूल का निर्माण हुआ है ।) स्वाधिष्ठान और विशुद्ध आदि चक्र उसी धारा में बने हुए हैं । इसी धारा में अथवा इन्हीं चक्रों में ब्रह्मचारी अथवा आत्मा का निवास है । नौ सौ नदियाँ (संपूर्ण नाड़ी जाल) पनिहारिन होकर पुष्टि करती प्राणधारा से हंस (जीव, आत्मा) को सींचती है जिससे आत्मा रूपी बेल पुष्पित हो जाती है और इला (चंद्र नाड़ी) के फूल मधूंज (शीतलता दायक ज्ञान) उत्पन्न हो जाता है जिसका फिर फिर वाणिज्य करना चाहिये । नीचे बहने वाली (अमृत की अथवा पवन की) धारा को ऊपर ले जाइये, ब्रह्मांड में चढ़ाइए। और चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी का मेल कीजिए।

ब्रह्मरंध्र में इन दोनों (चन्द्रनाड़ी और सूर्य नाड़ी) के लोप हो जाने से (अर्थात् सुषुम्ना के प्राधान्य से) (बाधाओं के लिए) घोर अंधकार हो गया । पाँचों सैनिक (नायक, पायक, पदाति) अर्थात् पंचेन्द्रिय रात आई जानकर सो गईं । प्राकार और सिंहद्वार प्रकट हो गये अर्थात् अंदर जाने का मार्ग दिखाई पड़ा, आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने का मार्ग खुल गया ।)

बिलूथा = विलुप्त, विलुत्त, विलुह, विलुथ्थ बिलूथा = लोप हो गये ।

पौढ्या = सो गयी । पौलि पगारं = प्राकार में का फाटक ।

मछा = अच्छी तरह से, रक्षित रूप से (कि चोर न ले जायँ ।)

मन जोगी है और काया उसकी गुदड़ी । यह रहस्य मुझे गुरु ने बताया । गोरखनाथ कहते हैं कि इस रहस्य को सुरक्षित रखो, नगरी में चोर छूटे हुए हैं [illegible] इस रहस्य के अनुसार ही साधन करेंगे ।) ॥ १० ॥

१. (ग) मतीरे । २. (ग) [illegible] । ३. (ग) अरधै [illegible] । ४. (ग) [illegible] । ५. (ग) [illegible] । ६. (ग) [illegible] । ७. (ग) [illegible] । ८. (ग) [illegible] । ९. (ग) [illegible] । १०. (ग) [illegible] । ११. (ग) [illegible] । १२. (ग) [illegible] । १३. (ग) [illegible] ।

20:11

मांहरा[1] रे बैरागी जोगी, अहनिसि भोगी[2], जोगणि संग न छाड़ै[3]
मानसरोवर मनसा भूलंती[4] आवै, गगन[5] मंडल मठ मांडै रे[6] ॥टेक॥
कौंण अस्थांनिकि तोरा[7] सासू नैं सुसरा, कौंण अस्थांन क तोरा बासा।
कौंण अस्थांन-क तू नै जोगणि भेटी, कहां मिल्या घर वासा। १।
नाभ अस्थांन-क मोरा सासू नैं सुसरा, ब्रह्म अस्थांन-क[8] मोरा वासा।
इला प्यंगुला जोगणि भेंटी[10] सुषमन मिल्या[11] घर वासा। २।

पसारा किया है (अर्थात् बेचने की सामग्री शून्य, कुछ नहीं है, दूसरे अर्थ में शून्य परब्रह्म है।) मैं न लेना जानता न देना, ऐसा (पक्का) तो हमारा वाणिज्य है (जिसमें लेने देने की आवश्यकता नहीं पड़ती।) मछन्दर का शिष्य कहता है कि ऐसे वाणिज्य का अर्थ यह है कि गुरु के वचनों के सहारे अपनी करनी के द्वारा मुक्ति लाभ करो॥ १२॥

हमारा तो बैरागी जोगी (मन) रात दिन भोग में निरत रहता है। वह (मन) जोगी कभी भी जोगिन का साथ नहीं छोड़ता। मानस सरोवर (मन) में मनसा (इच्छा) झूलती (मस्त होकर) आती है और गगन मंडल (ब्रह्म-रंध्र) में मढ़ी बना लेती है।

हे जोगी (मन) तेरे सास-ससुर किस स्थान के हैं, तेरा निवास स्थान कहाँ है, जोगिन से तेरी भेंट कहाँ हुई, तुझे रहने का स्थान कहाँ मिला है।

मेरे सास-ससुर नाभि (मणिपूर चक्र) में रहने वाले हैं। मैं ब्रह्म स्थान (ब्रह्मरंध्र) का निवासी हूँ। (अर्थात् स्वयं परमात्मा तत्त्व हूँ।) इला पिंगला प्राणायाम के द्वारा मेरी जोगिन (कुंडलिनी) से भेंट हुई और सुषुम्ना में मुझे निवास मिला।

नाभि (मणिपूर) में कुल कुंडलिनी शक्ति का निवास माना जाता है इसी शक्ति (मूल या आदि माया) के द्वारा सृष्टि का निर्माण हुआ है।

---

१. (घ) म्हारौ। २. (घ) में 'अहनिसि भोगी' नहीं है। ३. (घ) छाड़ै रे। ४. (घ) मनसा देवी झूमती। ५. (घ) गिगनि। ६. 'रे' नहीं है। ७. (घ) अस्थांनि थारा;। (क) किणैं। ८. (घ) में 'नै' नहीं है। इसके बाद (घ) में 'कौंण अस्थान क तोरा वासा' से 'मोरा सासू नैं सुसरा' तक नहीं है। ९. अस्थांनि। १०. (घ) यला पिंगुला जोगणि भेटी; (क) सुषमनां सङ्ग। ११. (घ) तहाँ भया।

एक मैं अनंत अनंत मैं एकै[1], एकै अनंत[2] उपाया ।
अंतरि एक सौं[3] परचा हूवा, तब अनत एक मैं[4] समाया ।१।
अहरणि[5] नाद नैं व्यंद हथौड़ा, रवि ससि षालां पवनं ।
मूल चापि द्रिढ आसणि बैठा, तब मिटि गया आवागवनं ।२।
सहज पलांण पवन करि[6] घोड़ा, लै[7] लगांम चित चबका ।
चेतनि असवार ग्यांन गुरू करि[8], और तजौ सब ढबका[9] ।३।
तिल कै नाकै तृभवन सांध्या[10], कीया भाव विधाता ।
सो[11] तौ फिर आपण हीं हूवा, जाकौं[12] ढूँढण जाता ।४।

हो । पृथ्वी और आकाश के बीच कोई अंतर नहीं । यह अंतर न मानना अर्थात् अभेद दृष्टि ही कैवल्य मुक्ति का बृहत् मैदान है ।

एक (परब्रह्म) ही में अनंत सृष्टि का वास है । और अनंत सृष्टि में एक ही परब्रह्म का निवास है । उस एक ही ने इस अनंत सृष्टि को उत्पन्न किया है । जब आभ्यंतर (हृदय) में उस एक से परिचय प्राप्त हो जाता है, तब सारी अनंत सृष्टि एक ही में समा जाती है ।

अनाहत नाद अहरन है, और बिंदु (शुक्र) हथौड़ा है । और इड़ा पिंगला नाड़ियाँ हवा करने की धौंकनी हैं । मूलाधार को दबा कर दृढ़ आसन से बैठो (और लोहारी करो जिससे) आवागमन मिट जायगा ।

सहज की जीन है, पवन का घोड़ा है, लय की लगाम बनाओ, चेतन (आत्मा) को सवार बनाओ और इस प्रकार और सब उपायों को छोड़ कर सवारी करते हुए गुरु ज्ञान तक पहुंचो, उसे प्राप्त करो ।

मैंने त्रिभुवन को संधान कर लिया, लक्ष्य कर लिया, देख डाला, छान डाला पर परमब्रह्म न मिला, जो तिल की ओट में था । परन्तु जब विधाता ने

---

१. (घ) एक तैं अनेक अनेक तैं ऐकैं । २. (घ) ऐकैं अनत । ३. (घ)ऐक ऐक सूं । ४. (घ) सो फिरि तहां । ५. (घ) में 'अहरणीनाद से लेकर' आवागमनं तक नहीं है । ६. (घ) का । ७. (घ) ल्यौ । ८. (घ) सबद गुरू का चेतन राषौ । ९. (घ) में—'सहज पलाणां' से लेकर 'ढबका' तक का पद केवल मुक्ति मैदानं' और 'एक मैं अनंत' के बीच है । १०. (घ) त्रिभुवन सूझै । ११. (क) सौ; (घ) में आधा चरण 'जो था सो फिर आपैं हूवा' । ११. (घ) कूं । ८. (घ) बिण परचै जुग बूडण बूडा, साच बिनां को सीघा ।

सक्ति[1] रूपी रज आछै सिव[2] रूपी व्यंद[3] ।
बारह कला रव[4] आछै सोलह[5] कला चन्द ।
चारि[6] कला रवि की जे[7] ससि घरि आवै ।
तौ सिव[8] सक्ती संमि होवै, अन्त कोई न पावै ॥५॥
एही राजा राम आछै सर्बे अंगे[9] वासा ।
येही पांचौं[10] तत बावू सहजि[11] प्रकासा ।
ये ही पांचौं[10] तत बावू समम्हि समांनां[11] ।
बदंत गोरष इम[12] हरि पद जांनां[13] ।६। ॥१२॥

(वायु से मन वश होता है ।) मन ही मारता है, मन ही स्वयं मन-मारण का साधन है । मन ही तारने वाला है और मन ही तरने वाला । यदि मन स्थिर हो जाय तो त्रैलोक्य तर जाय । मन ही आरम्भ में है, मन ही अंत में है और मन ही बीच में है । (अर्थात् मूल रूप में मन शाश्वत तत्त्व है ।) (बाह्य मन को विवश करने वाले) विषय विकार भी मन ही के द्वारा छूट सकते हैं ।

रक्त शक्ति स्वरूप है और बिंदु शिव स्वरूप । बारह कलाएं (मूलाधारस्थ अमृत शोषक) सूर्य की हैं और सोलह कलाएँ (सहस्रारस्थ अमृत स्रावक) चन्द्रमा की । अभी तो सूर्य की कलाएँ प्रधान हैं अर्थात शक्ति या माया प्रबल है ।) अगर रवि की चार कलाएँ शशि में मिल जायँ तो शिव और शक्ति सम हो जायं (और वह परम अनुभूति,प्राप्त हो जाय) जिसका किसी को अन्त न मिले । (सूरज की चार कलाओं तथा बारह कलाओं और चन्द्रमा की सोलह कलाओं के लिए देखिए आगे वाले 'रोमावली' ग्रन्थ का अंतिम अंश ।)

यही परमानुभूति-गम्य तत्त्व राजा राम है (अर्थात आत्मा का स्वरूप है) जिसका सब अंगों में निवास है । यही पांचों तत्वों को सहज प्रकाशित करता है । (बिना इसके पांचों तत्त्व रह नहीं सकते ।) और बोध हो जाने पर इसीमें पांचों तत्त्व समा जाते हैं । गोरखनाथ कहते हैं कि इस प्रकार ब्रह्म जाना जाता है ॥१२॥

---

१. (घ) सकति । २. (घ) सुनि । ३. (घ) विंद । ४. (घ) रवि । ५. (घ) सोहै । ६. (घ) च्यारि । ७. (घ) 'जे' नहीं है । ८. (घ) त्यों । ९. (क) में 'सर्वे' के स्थान पर 'भवे' (घ) में 'राद...अंगे' के स्थान पर 'रामचन्द्र अंगे अंगे' । १०. (घ) एही पांच । ११. (घ) सहज । १२. (घ) गोरषनाथ । १३. (घ) जांणा ।

बदत गोरषनाथ दसवीं द्वारी सरग नै केदार चढ़िया ।
इकवीस ब्रह्मंण्ड ना सिषरि ऊपरि, ससमवेद ऊचरिया ।।टेक।।
द्वादसदल भीतरि रबि सक्ती, ससि षोडस सिवथांनं ।
मूल सहंसर जीव सीव धरि उनमनी अचल धियांनं ।। 1 ।।
नाद अनाहंद गरजै गगणं (गेणं), पछिम ऊंग्यां भाण ।
दक्षिण डीबी उत्तर नाचै, पाताल पूरब तांणं ।। 2 ।।
चंद सूर नी मुद्रा कीन्ही, धरापि भस्म जल मेला ।
नादी ब्यंदी सींगी आकासी, अलख गुरू नां चेला ।। 3 ।।
तीन सै साठि थेगली कंथा, इकवीस सहंस छ सै धागा ।
बहतरि नाड़ी सुई नवासी, बावन बीर सीया लागा ।। 4 ।।
इली सोधि धरि प्यंगुली पूरी, सुषमनी चढ़ी असमांनं ।
मछिंद्र प्रसादे जती गोरष बोल्या, निरंजन सिधि के थांनं ।। 5 ।।

प्राचीन टीका

(स्वरगरंध्र के पुरुष चढ़या । यकीस ब्रह्मण्ड ऊपरि ससमवेद ।टेक। द्वादस अंगुल की बाई । रज बीरज की सकति बस हुई । ससिम षोडसु सरकंवल । सिव थांनं सहंस पषुड़ी । थांनं जीव सीव धरि । अनहद सबद । पछिम ऊँचे भाणं ग्यानं । डीबी मनसा । पाताल गुणां परै । चंद सूर तातासीला । धरया का गुण भस्म किया । नादी बिंदी नाद बिंद सींगी । आकास आत्मां । थेगली काया । छ सै सहंस स्वास । बहतरि नाड़ी । सूइ सुरति । बावन वीर मन । यड़ा पिंगुला सुषमनी । आसमांन ब्रह्मद्वार ।)

(गोरखनाथ का कथन है कि) मैंने शरीर के नव द्वारों को पार कर दसवें दरवाजे में स्थित परमानन्दस्वरूप केदार धाम में अलख-निरंजन का

साक्षात्कार कर लिया । मैंने मूलाधार से ललाटपर्यन्त समस्त नवद्वारों को पार कर लिया, मूलाधार में प्रसुप्त महाकुण्डलिनी शक्ति को जगाया, इड़ा-पिंगला नाड़ी में प्रवाहित प्राण को सुषुम्ना की ब्रह्मनाड़ी में स्थित कर, नाद-बिन्दु की साधना के द्वारा सहस्रार से द्रवित चन्द्रामृत से अमरकायत्व प्राप्त कर ब्रह्मरन्ध्र, केदार में अलख निरंजन केवलानुभवस्वरूप परब्रह्म, परमशिव का, वेदातीत शब्द (नाद) ब्रह्म के ऊँकारस्वरूप में स्थित सूक्ष्मवेदगत, स्वसंवेद्य महत् चैतन्य के पद में स्थित हो गया । अपने पिंड में स्थित (सप्त पाताल सहित) इक्कीस ब्रह्माण्डों के शिखर पर चढ़कर स्वसंवेद्य (सुषमवेद, सूक्ष्मवेद) ऊँकारस्वरूप में अलख निरंजन का मैंने उच्चारण अथवा मंत्र-दर्शन किया । सूर्य की मूलाधारस्थ बारहकलाओं में शक्ति का निवास है, और सहस्रार में चन्द्रमा की सोलह कलाओं में शिव का अधिवास है । उन्मनी समाधि में मैंने शिव-शक्ति का तादात्म्य-अनुभव कर लिया, शक्ति शिव में मिल गयी है, अन्तर्लीन है, मैंने ध्यान में स्थित होकर यह प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया है । गगन (त्रिकुटी अथवा ब्रह्मरन्ध्र) में अनाहतनाद का गर्जन हो रहा है, सूर्य का पश्चिम दिशा (सुषुम्ना) में उदय हो गया है, चन्द्रमा से सूर्य के मिलन का उपक्रम हो रहा है, दक्षिण (मूलाधार चक्र और स्वाधिष्ठान) में स्थित प्रसुप्त शक्ति महाकुण्डलिनी मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्रों से होती हुई ब्रह्मरन्ध्र अथवा सहस्रार में प्रवेश कर अपनी पूर्ण ज्योति में अभिव्यक्त हो उठी है (नाच रही है) । मैंने चन्द्र और सूर्य, इड़ा-पिंगला, दोनों नाड़ियों को मूँद दिया है अथवा उनमें प्रवाहित प्राण को सुषुम्ना नाड़ी (अग्नि नाड़ी अथवा सरस्वती) में प्रवाहित कर दिया है, यह हमारा मुद्राबन्ध है । पृथ्वी (सांसारिकता) का भस्म जल में मिल गया है अर्थात् शरीर में वीर्य (रस) की सिद्धि हो गयी है, वह उसमें जीर्ण हो गया है और इस तरह शरीर दिव्य हो गया है । निरंजन की साधना, अलख-निरंजन परब्रह्म की प्राप्ति ही योग का परम-चरम प्रतिपाद्य है । इसके लिए पिण्ड को योगाग्नि में पक्व करना ही श्रेयस्कर है । इस शरीर के प्रति सदा सावधान रहने की

20:16

बदंत गोरषनाथ[1] दसवीं द्वारी[2] सुर्ग नैं केदार चढ़िया[3] ।
इकवीस[4] ब्रह्मण्ड ना सिपर ऊपरि,[5] ससमवेद ऊचरिया[6] ॥टेक॥
द्वादस दल भींतरि[7] रवि सक्ती, समि षोड़स सिव थांनं[8] ।
मूल सहंसर[9] जीव सींव घरि उनमनी[10] अचल धियांनं[11] । १ ।
नाद अनाहद गरजै[12] गेणां, पछिम ऊग्या भांणं ।
दछिण डीवी उत्तर नाचै, पाताल पूरब तांणं । २ ।
चंद सूर नीं मुंद्रा कीन्ही[13], धरणि भस्म जल मेला ।
नादी ब्यंदी[14] सींगी आकासी[15], अलख गुरू नां[16] चेला । ३ ।

गोरख कहते हैं कि दसवें द्वार (ब्रह्मरंध्र) में मैं स्वर्ग और मोक्ष पद (शिव-स्थान केदार) तक चढ़ गया हूँ । और २१ ब्रह्मांडों के ऊपर से स्वसंवेद्य परमानुभूति का उच्चारण कर रहा हूँ । सूर्य की (मूलाधारस्थ) बारह कलाओं में शक्ति का निवास है और चन्द्रमा की सोलह कलाओं में शिव का स्थान मूलाधार सहस्रार में मिल गया है । और जीव शिव स्थान में उन्मनावस्था द्वारा अचल ध्यानस्थ हो गया है ।

गगन (त्रिकुटी) में अनाहत नाद का गर्जन हो रहा है । सूर्य पश्चिम (सुषुम्णा) में उदय हो गया है । (अर्थात् चंद्रमा से मेल का उपक्रम हो गया है ।) दक्षिण (मूलाधार तथा स्वाधिष्ठानस्थ शक्ति उत्तर दिशा अर्थात् ब्रह्मरंध्र में नाच रही है । पाताल (स्वाधिष्ठान) का खिंचाव पूर्व अर्थात् ज्ञानोदय की दिशा अर्थात् सहस्रार की ओर हो रहा है ।

चंद्र और सूर्य (इड़ा और पिंगला) दोनों नाड़ियों को मूँद दिया । अर्थात् सुषुम्णा का मार्ग खोल दिया । यही हमारा मुद्रा-धारण है । पृथ्वी (अर्थात् सांसारिकता) का भस्म जल में डाला (शरीर पर मलने के लिए । यही योगी

---

१. (क) गोरंनाथ । २. (घ) दसवैं द्वारैं । ३ (घ) सरग नैं केदारैं चाढ़ीया रेलो । ३. (घ) में प्रथम दो तुकों के बाद 'रे लो' तथा अन्यों के बाद 'लो' आता है । ४. (घ) यकवीस । ५. (घ) ऊपरैं । ६. (घ) उचारीया रे लो । ७. (घ) भींम अंतरे । ८ (घ) सिव सोम स्थानं लो । ९. (घ) में मूल सहंसर के स्थान पर 'मूल कवल तहां' १०. (घ) उनमनि । ११. (घ) निधांनं । १२ (क) गजै । १३. (घ) नीं मुद्रा कीन्हीं । १४. (घ) भेदी । १५. (घ) आकासैं । १६ (घ) ना ।

तीन सै साठि थेगली कंथी[1], इकवीस सहंस छ सै धागं[2] ।
बहतरि नाड़ी[3] सुई नवासी[4], बावन बीर सीया लागं[5] । ४ ।
इली सोधि धरि[6] प्यंगुली[7] पूरी, सुषमनी चढ़[8] असमांनं ।
मछिंद्र प्रसादै जती गोरष बोल्या, निरंजन सिधि नैं थांनं[10] ।५। ॥१६॥

आंबलियौ थलि मौरियौ[11] ऊपरि नींब बिजौरै फलियौ ।
सो फल पातां लागै[12] मीठौ, जांणैं रे जिन गुरु प्रसादैं दीठौ ॥टेक॥

का भस्म धारण है ।) इस प्रकार नादी (नादवाले अर्थात् जो नादानुसंधान को प्रधानता देते हैं), बिंदी (जो बिन्दु रक्षा को प्रधानता देते हैं) सिंगी (अनाहत नाद के प्रतीक स्वरूप जो शृंगीनाद बजाते हैं और आकाशी (जो आकाश अर्थात् त्रिकुटी को लक्ष्य किये रहते हैं ।) और अलक्ष्य गुरू के चेले हो जाते हैं ।

नाथ योगी शरीर में ३६० हड्डियों का होना मानते हैं । ये हड्डियां ही वे थेगलियां हैं जिन से गुदड़ी (कंथा) (यहाँ पर देह) बनी है । २१,६०० साँसें जो दिन भर में आदमी लेता है, वे तागे हैं जिन से ये थेगलियाँ आपस में सिली हुई हैं । बहत्तर नाड़ियाँ नवासी (बहुत सी) सुइयाँ हैं और बावन वीर चेतन इसको सीने वाला दर्जी ।

इड़ा नाड़ी को सोध कर पिंगला में पूरना, भरना, मिला देना चाहिये । फिर सुषुम्णा के मार्ग से आकाश में चढ़ जाना चाहिये । इस प्रकार मछंदर के प्रसाद से जती गोरख ने [redacted] है ॥१६॥

20:14

सुंनि[1] न अस्थूल[2] ल्यंग[3] नहीं पूजा, धुंनि[1] बिन अनहद गाजै ।
बाड़ी बिन पहुप पहुप बिन साइर[4], पवन बिन भृंगा[5] छाजै ।३।
राहु बिन गिलिया[6] अगनि बिन जलिया[6], अंबर बिन जलहर भरिया[6]।
यहु परमारथ कहौ[7] हो पंडित, रुग जुग स्यांम अथरबन पढ़िया[6] ।४।
ससंमवेद सोहं प्रकासं[8], धरती गगन न आदं[9] ।
गंग[10] जमुन बिच षेलै[11] गोरष, गुरू मछिंद्र प्रसादं ।५। ॥१८॥

(मैदान) के युद्ध है । इस परमार्थ को जो जानता है उसके शरीर में अर्थात् उसके भीतर परम ज्ञान (उदय हो जाता है ।)

वह न शून्य है न स्थूल, न उसके चिह्न है न उसकी पूजा ही है । बिना शब्द के अनाहत नाद का गर्जन होता है । बिना वाटिका के पुष्प है और बिना पुष्प के सौरभ (?) है और बिना वायु के (वायु सुगंधि को चारों ओर विकीर्ण करता है, इसीलिए उसे गंधवाह कहते हैं । भौंरों तक सुगंधि को हवा ही पहुँचाती है ।) भृंगों का (मँडराता हुआ) समूह शोभा दे रहा है ।

वह राहु के बिना ग्रस लेता है । अग्नि के बिना जला देता है, आकाश के बिना बादल उमड़ आते हैं । हे ऋग्, यजुः, साम और अथर्वण वेदों को पढ़े हुए पंडितो ! इस परमार्थ का वर्णन करो (अथवा पाठांतर से बताओ इसका क्या प्रमाण है ? क्या प्रामाणिक अर्थ है ? इसे कैसे घटित करते हो ?) निरालंब ब्रह्मानुभूति किसी कारण का कार्य नहीं है । यहाँ, माया के निरसन जगत् के ध्वंस और आनन्दानुभव की ओर संकेत है जो ब्रह्मानुभूति के द्योतक हैं । यह स्वसंवेद्य स्वयं-प्रकाश सोहंभाव है जो न धरती में है, न आकाश में है और न जल में । (आदं, आर्द्र, जलमय । 'आदं' काल का संकेत भी कर सकता है, अर्थात् जिसका आदि नहीं है ।) गुरु मछंदर के प्रसाद से गोरख-नाथ गंगा (इडा) और जमुना (पिंगला) के बीच (सुषुम्ना) में खेल रहा है (अर्थात् समाधिस्थ होकर आत्म-साक्षात्कार कर रहा है ॥१८॥

---

१. (घ) सुनि, धुनि । २. (घ) थूल । ३. (घ) लिंग । ४. (घ) सायर । संभवतः वह 'सौरभ' या 'सौरह' है । 'साइर' का तो अर्थ नहीं बैठता । ५. (घ) भ्रांगा । ६. (घ) गिलीया, जलीया, भरांया, पढ़ीया । ७. (घ) परमाण कहौ; (क) परमारथ करौ । ८. (घ) प्रकासा । ९. (घ) चंद । १०. (घ) गंगाल ११. (घ) बोल ।

ऐसा जाप जपौ[१] मन लाई[१], सोहं सोहं अजपा गाई[१] ॥ टेक ॥
आसण दिढ करि धरौ धियानं[२], अह निस सुमिरौ[३] ब्रह्म गियानं[२] ।
जाग्रत न्यंद्रा सुलप अहार, काम क्रोध अहंकार निवारं[४] ।१।
नासा अग्र निजु ज्यौ वाई[५], इड़ा प्यंगुला[६] मधि समाइ[७] ।२।
छसै संहस इकीसौं[८] जाप, अनहद उपजै आपहि[९] आप[१०] ।
बं :: नालि मैं ऊगै[११] सूर, रोम रोम धुनि बाजै तूर ।३।
उलटै कमल[१२] सहंसदल[१३] बास, भ्रमर गुफा महि[१४] जोति प्रकास ।
सुणि मछुरा सिव गोरष कहै, परम तत ते साधू लहै[१५] ॥४॥३०॥

(कर्ता ने) चारों युगों के लिए अलग अलग विशेषताएँ बनाईं । एक, दोइ, तीन, पहिला, दूसरा, तीसरा के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।

मन लगा कर ऐसा जाप जपो कि 'सोऽहं' 'सोऽहं' का वाणी के उपयोग के बिना अजपा गान (अजपा-जाप) हो जाय ।

दृढ़ आसन पर बैठ कर ध्यान करो और रात दिन ब्रह्म ज्ञान का स्मरण करो । निद्रा में जागरण करो । (जगत की ओर सोकर अध्यात्म में जागो ।) भोजन थोड़ा करो । काम, क्रोध, और अहंकार का निवारण करो ।

इड़ा और पिंगला में समाई हुई नासाग्र तक जिसका विस्तार है (प्राण वायु का निवास नासा रंध्रों से बाहर बारह अंगुल तक माना जाता है इसी से वायु को द्वादशांगुल भी कहते हैं) ऐसी वायु के द्वारा जब २१६०० जाप होने लगते हैं (अर्थात् श्वास क्रिया स्वयं जप-क्रिया ही हो जाती है, तब अनाहत नाद

---

१. (घ) लाय...गाय । २. (घ) धियान...गियान । ३. (घ) षोजौ । ४. (घ) में 'जाग्रत ... निवारं' नहीं । ५. (घ) नाभि कंवल मन सुरति लगाइ । ६. (घ) यला पिंगुला । ७. (घ) समाय । ८. (घ) यकीसूं । ९. (घ) आपै । १०. (घ) में यह पंक्ति अधिक है—षट चक्र मैं हंसा सार अहनिस हंसा जै जै कार । (घ) में आगे की दो पंक्तियों का स्थान परस्पर बदला हुआ ! ११. (घ) ऊगा । १२. (घ) कंवल । १३. (घ) सहंसदल । १४. (घ) भवर गुफा मैं । १५. (घ) में अन्तिम चरण यों—मछिंद्र प्रताप जती गोरष रहै । परम तत्त कोई विरला लहै ॥

जागा[१] जोगी कनक रावलिया, गुरुदेव मेंहलौ वूठौ ।
षोजतां षोजतां सतगुर पाया, सहजै नैं भावै तूठौ[२] ॥ टेक ॥
उतर देस मैं मेंह घड़क्या, दषिण आचल छाया ।
पूरब देस थीं पाणिग बिछूटी, पछिम खेत्र मैं पाया ।१।
मन पवना धोरी जोतावो[३], सतनां सांतीड़ा समधावो[४] ।
दया धर्म[५] नां बीज अणावो[४], इणीं परि षेत्र जावो[४] ।२।
पातां[६] न षूटै देतां न निठै, जम बारै नहीं जाइ[७] ।
मछींद्र प्रसादै जती गोरष बोल्या, नित नवेरड़ौं थाइ ।३॥३१॥

अपने आप उत्पन्न हो जाता है । तब सुषुम्णा (बंकनालि) में सूर्योदय हो जाता है और रोम रोम में तुरी बजने लगती है अर्थात् अनाहत का अनुभव होने लगता है । (सहस्रार ही से चेतन तत्व नीचे की ओर गया है । योगाभ्यास से वह फिर) उलट कर सहस्रार ही में वास पा जाता है, और भ्रमर गुफा (ब्रह्मरंध्र) में ज्योति प्रकाशमान हो जाती है । इस प्रकार हे मछुरा (?) सुनो वे साधु (ऊपर कहे अनुसार साधना करने वाले) परमतत्व को प्राप्त करते हैं ॥३०॥

कनक रावल जोगी जागा । (रावल जोगियों का एक भेद है । कनक स्वर्ण के अर्थ में श्रेष्ठता का अथवा रसायनी (कीमियागर) का भी द्योतक हो सकता है और खाली जोगियों की भाँग धतूरा पीने की आदत का परिचायक भी ।)गुरुदेव मेह के रूप में बरस पड़े हैं, (उनकी दया प्रकट हुई है ।) वे सहज भाव से तुष्ट हो गये हैं । उत्तर देश (त्रिकुटी या ब्रह्मरंध्र) में मेघ गरजे, दक्षिण दिशा (स्वाधिष्ठान) में अच्छी तरह छा गये । पूर्व देश (इड़ा पिंगला) से पानी की धारा छूटी और पश्चिम क्षेत्र अर्थात् सुषुम्णा में पहुँच गयी । मन पवन रूप बैल (धुरेंद, धौले) जोतवाओ । सत का सांतीड़ा (संभवतः सींता या सेंता (गढ़वाली अर्थात् बिगड़ैल बैलों को नाथने का रस्सा) ठीक करो (जिससे बैल वश में रहें ।)

---

१. (घ) जागो नै । २. (क) रूठो (?) संभवतः प्रति के लिपिकार ने प्रमाद से 'त' को 'न' (र) पढ़ लिया है । ३. (घ) जोतावै; (क) जोत्रावो । ४. (घ) समदावौ, अणावौ, जावौ । ५. (क) ध्रम । ६. (क) पांतां । ७. (घ) द्वारै नहि जावै ।

अरधैं उरधैं लाइलै कूंची, थिर होवै मन तहां थाकीले पवनां।
दसवां द्वार चीन्हिले, छूटै आवा गवनां। २।
भणत गोरषनाथ मछिंद्र ना पूता, जाति हमारी तेली।
पीड़ी गोटा काढ़ि लीया; पवन षलि दीयां ठेली[१]। ३ ॥२१॥

अवधू गागर कंधै पांणींहारी[२], गवरी कंधै नवरा[३],
घरका[४] गुसांई कौतिग चाहै, काहे न बंधौ जौरा[५] ॥ टेक ॥
लूँण कहै अलूंणां बावू, घृत कहै मैं रूषा[६]।
अनल[७] कहै मैं प्यासा मुवा[८], अंन[९] कहै मैं भूखा। १।

अधः और ऊर्ध्व (निःश्वास और प्रश्वास) दोनों को ताली लगाकर (केवल कुम्भक के द्वारा) मन स्थिर होता है और पवन थक जाता है। दशम द्वार में परमात्मा का परिचय प्राप्त करने से आवागमन छूट जाता है। मछन्दर का पुत्र-शिष्य गोरखनाथ कहता है कि हम तेली हैं। गोटा (पिसे तिलों का पिंडा) पेर कर के (तेल अर्थात् आत्म तत्त्व) हमने निकाल लिया है और पवन रूप खली को फेंक दिया है ॥ २४ ॥

घर का स्वामी (आत्मा) कौतुक (तमाशा) देखना चाहता है, इसलिए यम-राज (जौरा) बांधा क्यों नहीं जायगा। अर्थात् आत्मा यमराज को बांध कर वैसे ही नचाने लगा है जैसे बन्दर को मदारी नचाता है।

---

१. (घ) में यह पद इस प्रकार है—
पवनां रे तू जाइगो कौंणै बाटा, मन राजा वैठो त्रिवेणी कै घाटा।
उनमिनि भौंरा बोलै सलिअल बाटा, पीवै अमीरस षुले हैं कपाटा ॥
अरधैं उरधैं ताली लागी, थकि गया पवनां।
सति संजम रहणां तौ आवा न गवनां ॥
तिलां मधे तेल काढ्या काष्ट कूटि आगा।
दून्यूं मिलि दीपक जोया, तवै सूझण लागा ॥
बदत गोरषनाथ जाति मेरी तेली, तेल गोटा पीड़ि लीया षलि दीवी मेली।
२. (घ) गगरी कंपै पांणीहारी। ३. (घ) गौरी कांधै गौरा। ४. (घ) कौ।
५. (घ) बघौ जौंरा। ६. (घ) ल्हुषा। ७. (घ) अनील। ८. (घ) मूंवा।
९. (क) अनाज।

20:31
Gorakhbani - Ram Lal S...

पवनां रे तूं जासी कौनें बाटी ।
जोगी अजपाजपै त्रिवेणी कै घाटी ।।टेक।।

चंदा गोटा टीका करिलै, सूरा करिलै बाटी ।
मनी राजा लूगा धोवै, गंग जमुन की घाटी ।। 1 ।।
अरधैं उरधैं लाइले कूंची, थिर होवै मन तहाँ थाकीले पवनां ।
दसवां द्वार चीन्हिलै, छूटे आवागवनां ।। 2 ।।
भणत गोरखनाथ मछिंद्रना पूता, जाति हमारी तेली ।
पीड़ी गोटा काढ़ि लीया, पवन षलि दीयां ठेली ।। 3 ।।

(इस पद में प्राण-मन की विजय पर बल दिया गया है, प्राणवायु के द्वारा ही जीवात्मा शरीर में स्थित रहता है, अपान, उदान, समान, व्यान और प्राण में प्राण ही ज्येष्ठ अथवा प्रधान है । गोरखनाथ जी प्राण से पूछते हैं कि हे प्राण (पवन), तुम शरीर के किस रास्ते (दरवाजे) से बाहर जाओगे, शरीर के नवों द्वार, दोनों नेत्र, दोनों नासारन्ध्र, मुख, दोनों कर्णरन्ध्र और उपस्थ एवं पायु मुद्रित (बन्द) हैं और दसवाँ द्वार ब्रह्मरन्ध्र भी मुद्रित है, इसलिए तुम्हारे बाहर निकलने का भय (मृत्यु का भय) समाप्त हो चला है । हे प्राण । तुम शरीर को नहीं छोड़ सकते । यह शरीर मैला हो चला है । इसे मन राजा (धोबी) गंगा (इड़ा) और यमुना (पिंगला) के घाट, सुषुम्ना में आज्ञाचक्र में स्थित अथवा उन्मन होकर निर्मल कर रहा है, प्राणापान के सामरस्य के द्वारा शुद्ध कर रहा है । अपान और प्राणवायु, दोनों का एकरसत्व स्थापित हो गया है, चन्द्रमा ही साबुन की टिकिया है और सूर्य पाटा है, इस तरह चन्द्रमा और सूर्य, इड़ा और पिंगला के संगम, सुषुम्ना के घाट पर मन द्वारा शरीर धुलकर साफ किया जा रहा है । यह शरीररूपी वस्त्र (लूगा) अथवा कपड़ा निर्मल हो गया है, इसकी अनेकानेक नाड़ियों में मल एकत्र हो जाने पर इसके जीर्ण हो जाने का भय रहता है और जीवात्मा (प्राणहंस) इसके बाहर चला जाता है । निःश्वास और प्रश्वास (अपान और प्राणवायु) को ताली लगा कर, एकरस कर कुम्भक द्वारा प्राण को रोक लेने पर यह स्थित हो जाता है और पवन का नीचे-ऊपर, अधः-ऊर्ध्व का आकर्षण, अपान का प्राण की ओर खिंचना और प्राण का अपान की ओर जाना बन्द हो जाता है । पवन थक कर ठहर जाता है और सुषुम्ना के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र के द्वार पर (त्रिकुटी में) अजपाजाप में तत्पर योगी (जीवात्मा) का ब्रह्मरन्ध्र में विद्यमान अलख-निरंजन शिव के साक्षात्कार में मन सहायक

होता है । वह त्रिकुटी में पहुँचते-पहुँचते उन्मन अथवा अमनस्क हो उठता है । (पद में 'अरधै-उरधै लाइले कूंची' का आशय मूलाधार-स्थित परम शक्ति कुण्डलिनी को प्रबुद्ध कर ऊर्ध्व, सहस्रार, ब्रह्मरन्ध्र में स्थित परमशिव में अन्तर्लीन (समाधिस्थ) करना भी हो सकता है ।) दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र में परमात्मा का साक्षात्कार (परिचय) प्राप्त करने पर आवागमन, जन्म-मरण के चक्र से जीवात्मा मुक्त हो जाता है अथवा जीवन्मुक्त होकर अमरकायत्व प्राप्त कर कालदण्ड का खण्डन कर लोक-लोकान्तर में विचरण करता रहता है । मन, प्राण, शरीर-तीनों की शुद्धि से ही जीवात्मा को सहस्रार में ब्रह्म सच्चिदानन्द का अनुभव प्राप्त होता है । मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र (शिष्य) गोरखनाथ का कथन है कि मेरा काम तेली का है । जिस तरह तेली तिल के पिंडों को (कोल्हू में) पेर-पेर कर तेल निकाल लेता है और खली को निस्सार तत्व को अलग कर देता है, उसी तरह योग-साधना की विधियों को सिद्धकर मैंने शरीर को पूर्णतः निर्मल कर लिया । निस्सार पदार्थो को अलग कर इसमें स्थित परमतत्व का साक्षात्कार कर लिया ।

[राग असावरी]

ऐसा रे उपदेस दाषै श्री गोरष राया,
जिनि जग चतुर बरन रह[1] लाया ॥ टेक ॥
पढ़िलै ससंवेद[2] । करिलै बिधि नषेद ।
जांणिलै भेदांनभेद[3] । पूरिलै आसा उमेद । १ ।
बिषमी[4] संधि मंझारी[5] । संझया पंचौं बषत्त सारि ।
रहिवा दसवैं दुवारि[6] । सेइवा[7] पद निराकार । २ ।
जपिलै अजपाजाप । बिचारिलै आपै आप[8] ।
छूटिला सबै[9] बियाप । लिपै नहीं[10] तहाँ पुनि[11] पाप । ३ ।
अहो निसि समा ध्यांन[12] । निरंतर रमेबा[13] राम ।
कथै गोरषनाथ[14] ग्यांन । पाइया[15] परम निधांन ।४॥३३॥

श्री गोरखराय जिन्होंने चारों वर्णों को अपने मार्ग पर लगाया, इस उपदेश की दीक्षा देते हैं कि (वेद के स्थान पर) स्वसंवेद्य को पढ़ो (अर्थात् अपरोक्षानुभूति को प्राप्त करो ।) (यही) विधि निषेध का अनुगमन करना है, रहस्यों का रहस्य जानना है, सब आशाओं को पूर्ण करना है ।

विषमी संधि (बंक नालि, सुषुम्णा जहाँ इला-पिंगला दोनों प्रवाहों की संधि है) में पाँचों समय संध्या (नमाज) करो । दशम द्वार (ब्रह्मरंध्र) में रहना चाहिए और निराकार पद का सेवन करना चाहिए । अजपा जाप को जपो । आत्म-तत्व का विचार करो । इससे सभी व्यापने वाली व्याधियाँ या उपाधियाँ छूट जाती हैं । पुण्य और पाप कोई वहाँ लिप्त नहीं होता है । रात-दिन एक

---

१. (घ) जुगि जुगि चत्र बरण राह । २. (घ) सुसमवेद । ३. (घ) पाईला मेदानिमेद । ४. (क) बिषिमी; (घ) में 'विषमीं···निराकारा' तथा 'जपिलै··· पुंनि पाप' का स्थान परस्पर बदला हुआ है । ५. (क) मझारि । ६. (घ) दसवै द्वारि । ७. (घ) सेयवा । ८. (घ) आपो आप । ९. (घ) छूटीला सकल । १०. (घ) नाहीं । ११. (घ) पुनि । १२. (घ) समो ध्यान । १३. (घ) रमईया १४. (घ) 'नाथ' नहीं है । १५. (घ) पाईला ।

जागा जोगी कनक रावलिया, गुरूदेव मेंहली बूठों ।
षोजतां षोजतां सतुगरू पाया, सहजै नैं भावै तूठो ।।टेक।।
उतर देस मैं मेंह धड़क्या, दक्षिण बादल छाया ।
पूरब देस थी पाणिग बिछूटी, पछिम खेत्र मैं पाया ।। 1 ।।
मन पवना धोरी जोतावो सतनां सांतीड़ा समधावो ।
दयाधर्म ना बीज अणावो, इणी परि षेत्रे जावो ।। 2 ।।
षांता न षूटे, देतां न निठे, जम बार नही जाई ।
मछींद्र प्रसादै जती गोरष बोल्या, नित नवेरडौं थाइ ।। 3 ।।

रससिद्ध रावलयोगी (राजयोगी) साधना में सावधान हैं, जग गया हैं, उसने सिद्ध गुरू का चरणाश्रय ग्रहण कर लिया, (रसायन के द्वारा लोह का स्वर्ण में परिवर्तन करने की विद्या के द्वारा जीवन-यापन करने से ऊब कर) उसने खोजते - खोजते जिज्ञासा की तृप्ति के लिये सद्‌गुरू की खोज की और उसकी साधना गुरू-प्राप्ति में सफल हो गयी, उसे सद्‌गुरू मिल गये । गुरू की

प्रसन्नता और कृपा से उसका जीवन सफल, सार्थक और कृतार्थ हो गया । गुरू ने मेघ के रूप में श्यामृत की वृष्टि की । अथक परिश्रम और बड़ी खोज के फलस्वरूप उसे सद्‌गुरू की प्राप्ति हो सकी और उसकी साधना से वे कृपामय, अनुग्रह-विग्रह सहज संतुष्ट हो गये, उत्तर दिशा, (कनकरावल योगी के) ब्रह्मरन्ध्र में अमृत के बादल घहर-घहर कर दक्षिण दिशा (स्वाधिष्ठान चक्र) में छा गये । प्राण हंस साधन-मार्ग पर, ब्रह्मरन्ध्र में उस अमृत का पान करने के लिए अग्रसर हो उठा, इस तरह पूर्व दिशा, इड़ा-पिंगला नाड़ियों से प्राणामृत की धारा छूट पड़ी, प्रवाहित हो उठी और पश्चिम दिशा (सुषुम्ना) में पहुँच गयी । इस तरह योग-साधना में तत्पर योगी को मन और पवनरूपी दो धवल, निर्मल बैलों को जोतना चाहिए और नाथने की रस्सी (प्राणायाम की साधना, सांतीड़ा) से उन्हें नाथ कर वश में कर लेना चाहिए । मन और पवन ही शरीररूपी खेत को जोत कर साधन-क्षेत्र में परिवर्तित करते हैं । दया और धर्म ही बीज हैं, सत्य ही नाथने की रस्सी (सांतीड़ा) है । जीवन में दया और धर्म के आचरण से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है । इसलिए दया और धर्म की ही सदा हरी-भरी रहने वाली, हरीतिमा से लहलहाती रहने वाली खेती करनी चाहिए । इस पुण्यमयी खेती से प्राप्त दया और धर्मरूपी अन्न-भण्डार का जितना ही परोपकार में उपयोग होता है, उतना ही यह बढ़ता है । इस तरह प्राण-साधना करने पर योगी, योग-साधक यमराज के द्वार पर नहीं जाता, उसका शरीर मृत्यु को नहीं प्राप्त होता । मत्स्येन्द्रनाथ के अनुग्रहप्राप्त शिष्य गोरखनाथ का कथन है कि शरीर नित्य-नवीन (नवेरडो) बना रहता है ।

ऐसा जाप जपौ मन लाई, सोहं सोहं अजपागाई ।।टेक।।
आसण दिढ़ करि धरौ धियानं, अहनिस सुमिरौ ब्रह्म गियानं ।
जाग्रत न्यंद्रा सुलप अहारं, काम-क्रोध अहंकार निवारं ।। । ।।
नासा अग्र निपुज्यौ बाई, इड़ा प्यंगुला मधि समाई ।। 2 ।।
छ सै सहंस इकीसौ जाप, अनहद उपजै आपहि आप ।
बंक नालि मैं ऊगै सूर, रोम-रोम धुनि बाजै तूर ।। 3 ।।
उलटै कंवल सहंसदल वास, भ्रमर गुफा महि जोति प्रकास ।
मछिंद्र प्रताप जती गोरष रहै, परम तत कोई बिरला कहै ।। 4 ।।

परमात्मतत्व के साक्षात्कार का यौगिक साधन यह है कि पहले पद्मासन, सिद्धासन, अथवा योगासन में दृढ़तापूर्वक स्थित हो जाओ और मन की वृत्ति, चित्तवृत्ति को परब्रह्म के स्वरूप (ब्रह्मज्ञान) में संयोजित कर परमात्मा का स्मरण करो । चित्त को परमेश्वर के ध्यान में लगा दो । प्राण (जीवात्मा) का उत्थान, ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश अजपाजप की सिद्धि से सम्भव होता है । रात-दिन में प्राण का इक्कीस हजार छः सौ बार शरीर में उत्थान होता है, प्रत्येक श्वास को, हंस को सोहं के जाप में स्थिर कर दो । प्राण हकार की ध्वनि से बाहर जाता है और सकार की ध्वनि से भीतर आता है । इस तरह सदा हंस-हंस मंत्र का जप होता है । यही अजपागायत्री अथवा अजपाजाप है, जिसके द्वारा जीवात्मा को सोऽहं, अपने परब्रह्मस्वरूप में स्वस्थिति का बोध होता है । निद्रा आने पर जागते रहो, निद्रा से साधना में अवरोध उत्पन्न होता है, इसी तरह अल्प मात्रा में आहार ग्रहण करो, क्योंकि अधिक भोजन करने से आलस्य उत्पन्न होता है, प्राणवाहिनी नाड़ियों में विजातीय द्रव्य (मल) एकत्र हो जाता है और साधक प्रमाद करने लगता है, प्राण इड़ा और पिंगला नाड़ियों से नाभि से समुत्थित होकर बायें और दायें नासारन्ध्रों के मार्ग से नासाग्र तक गति कर आज्ञाचक्र में, त्रिकुटी में जब प्रवेश

करता है, तब अनाहतनाद सोऽहं मंत्र की अजपाजाप द्वारा सिद्धि से स्वतः उत्पन्न हो जाता है, इसलिये इस नाद में अन्तर्लीन होने के लिये काम, क्रोध और अहंकार का भाव मन में कभी नही पैदा होने देना चाहिए, ये तीनों साधना में भयानक रूप से बाधक हैं । अनाहतनाद के सहज उत्पन्न होने से बंकनालि, सुषुम्ना में सूर्योदय, आत्मज्ञानोदय हो जाता है और रोम-रोम में तूर्यनाद का श्रवण होने लगता है, अंग-अंग में अनाहतनाद का संचार हो उठने पर सच्चिदानन्दस्वरूप की परिव्याप्ति का शरीर के भीतर अनुभव होने लगता है । भ्रमरगुफा, ब्रह्मरन्ध्र में, जहाँ शून्य-ही-शून्य गहनतम नीरवता है, प्रकाश छा जाता है , परमशिव का प्रबुद्ध कुण्डलिनी महाशक्ति से सायुज्य स्थापित हो जाता है । नाभिस्थान में रहने वाला प्राणहंस उलटकर ब्रह्मरन्ध्र में स्थित हो जाता है, जीवात्मा परमात्मा में अन्तर्लय अथवा तादात्म्य में आत्मरमण करता है । महायोगसिद्ध सद्गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ का कथन है कि यह परमात्मानुभव, महत्तत्व का ज्ञान किसी बिरले को ही होता है ।

बदंत गोरषराई परसि ले केदारं.
पांणी पीवो पूता तृभुवन सारं ।।टेक।।
ऊँचे-ऊंचे परवत विषम के घाट.
तिहां गोरषनाथ कै लिया सबाट ।। 1 ।।
काली गंगा धौली गंगा झिलमिल दीसै.
काउरू का पांणी पुनिर गिरि पईसै ।। 2 ।।
अरधै जोगेस्वर उरधै केदारं भोला लोक न जानै मोख दुवारं ।। 3 ।।
आदिनाथ नाती मछींद्रनाथ पूता.
काया केदार साधीले गोरष अवधूता ।। 4 ।।

प्राचीन टीका

(केदार ब्रह्मद्वार । पांणी रामरस ।टेक। ऊँचा परबत । रागदोष । ता आगें बाट । यला पिंगुला । झिलमिल पवन । कॉवरू काया । पूरण गिरि दसवौ द्वार ।)

हे वत्स (शिष्य) कायसाधन द्वारा शरीर में ही ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर चन्द्रामृत का पान करते हुए अलख-निरंजन परमात्मा का साक्षात्कार कर लेना चाहिए। इस काय-साधन की सिद्धि के लिये, ब्रह्मद्वार, स्वर्गद्वार, केदार का स्पर्श कर लेना चाहिए; ब्रह्मरन्ध्र में विराजमान परम परमेश्वर, शिव (लिंग) स्वरूप का स्पर्श भी साक्षात्कार अथवा दर्शन के साथ-ही-साथ आवश्यक है । त्रिभुवन, स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल में परमामृत-जो अमृतमन्दाकिनी त्रिपथगा का त्रिकुटी में स्थित रसद्रव है, का पान करना चाहिए । गोरखनाथ ने प्रत्यक्ष ज्ञाननेत्र से देख लिया है कि काया में स्थित ऊँचे-ऊँचे (राग-द्वेष आदि) पर्वत हैं बड़ी विकट घाटियाँ हैं, परन्तु उनको पार करने के बाद सपाट मैदान-ही-मैदान हैं, जिनमें वाम भाग में बहने वाली इड़ा नाड़ी (गंगा) और दक्षिण भाग में बहने वाली पिंगला नाड़ी (यमुना) का भ्रूमध्य में सुषुम्ना नाड़ी में संगम हो जाता है । ये तीनों नाड़ियाँ मूलाधार में स्थित मूलकन्द से ही प्रवाहित होती हैं । सहस्रार से द्रवित चन्द्रामृत का मूलाधार में सूर्य के द्वारा जो शोषण होता है, उसे धवल गंगा इड़ानाड़ी और काली गंगा (यमुना) पिंगलानाड़ी ऊर्ध्वमुखी करती हुई भ्रूमध्य में सुषुम्ना से मिल जाती हैं, इस तरह कावरू का पानी ऊपर आ जाता है, कावरू कामरूप है। मूलाधार चक्र (ब्रह्मचक्र) में कामरूपपीठ है और यहाँ पावकाकार शक्ति का ध्यान करने से प्राण ऊर्ध्वमुख होता है, कुण्डलिनी जागकर ऊर्ध्वमुखी होती है, इड़ा-पिंगला से प्राणामृत प्रवाहित हो उठता है, यही कावरू-कामरूपपीठ से अमृत (पानी) का ऊपर चढ़ना है और यह अमृतमयी शक्ति सुषुम्नामार्ग से आकाश चक्र में स्थित सहस्रार के ऊर्ध्वभाग में मध्य में सोलहदल कमलवाली कर्णिका में पूर्ण गिरि पीठ पर पहुँच कर परमशिव में अन्तर्लीन होकर जीवात्मारूपी योगी का जीवन अलख-निरंजन परमशिव के प्रकाश से अभिव्यक्त कर देती है । ब्रह्मरन्ध्र ही स्वर्गद्वार केदार है, यही मोक्ष का द्वार है, इसे अबोध लोग, जिन्हें परमात्मतत्व का अनुभव नहीं है, नहीं जानते हैं । मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र (शिष्य) गोरखनाथ का कथन है कि हमारे शरीर में ही केदारेश्वर-दसवें द्वार ब्रह्मरन्ध्र में स्वरूपस्थ है, इस काया में ही इड़ा-पिंगला के सहारे प्राणामृत को सुषुम्ना-मार्ग से प्रवाहित करते हुए दसवें द्वारा केदार में प्रवेश की साधना कर लेनी चाहिए । परमशिव केदार में, ब्रह्मरन्ध्र में विराजमान है ।

काली गङ्गा धौली गङ्गा झिलिमिलि दीसै,
कावरू का पांणीं पुनि र गिर पईसैं ।२।
अरधैं जोगेस्वर उरधैं केदारं,
भोला लोक न जानैं मोष दुवारं ।३।
आदि नाथ नाती मछींद्र नाथ पूता,
काया केदार साधीले गोरष अवधूता । ४ ॥४०॥

कासौं झूझौं[1] अवधू राइ, विपष न दीसै[2] कोई ।
जासौं अब झूझौ रे[3] आत्मा राम सोई ॥ टेक ॥
आपण[4] हीं मछ कछ आपण हीं जाल,
आपण हीं धीवर[5] आपण हीं काल । १ ।

(वहाँ पहुँचने के लिए बड़ा कठिन मार्ग है ।) वहाँ बहुत ऊँचे ऊँचे पर्वत हैं और बहुत कठिन घाटियां हैं। लेकिन उनको भी गोरखनाथ ने सपाट (मैदान) कर लिया है । काली गंगा (यमुना, पिंगला नाड़ी) और धौली गंगा (गंगा, इला नाड़ी) दोनों (त्रिकुटी स्थान में सुषुम्ना से मिलकर) प्रकाशमान रूप धारण कर रही हैं । गंगोत्री जमनोत्री का जो पानी कावड़िए वितरित करने के लिए ले गये थे (अर्थात् अमृत की जो धारा नीचे गिर कर नष्ट होती रहती है, वह फिर पर्वत में (अर्थात् जहाँ से निकली है वहीं) प्रविष्ट हो जाती है । (नीचे से बहकर सूर्य से सोख लिया जाने वाला अमृत फिर ऊर्ध्वगामी हो जाता है ।) जीव (जो योग साधन से योगेश्वर हो सकता है, उसका स्थान नीचे (अधः, अरध) है और केदार (शिव, ब्रह्म) का स्थान ऊपर ब्रह्मरंध्र में । भोले (मूर्ख) लोग मोक्ष के द्वार को जानते ही नहीं हैं । परन्तु आदिनाथ के नाती-शिष्य और मछंदर के पुत्र-शिष्य गोरख अवधूत ने काया में स्थिर केदार को साध (सिद्ध कर) लिया है ॥ ४० ॥

हे अवधूत-राज किससे युद्ध करूँ ? विपक्षी तो कोई दिखाई ही नहीं

१. (घ) कासूं झूझूं अवधू राय । २. (क) में 'दीसै' नहीं है । ३.(घ) जासूं झूझण जायए आतम मेर सोई । ४. (घ) आपण हीं के स्थान पर सर्वत्र आपही । ५. (घ) भींवर ।

आवो माई घरि-घरि जावो, गोरष बाला भरि-भरि खावो ।।टेक।।
झरै न पारा बाजै नाद, ससिहर सूर न बाद-बिबाद ।। । ।।
पवन गोटिका रहणि अकास, महीयल अंतरि गगन कवेलास ।। 2 ।।
पयालनी डीबी सुंनि चढ़ाई, कथंत गोरषनाथ मछींद्र बताई ।। 3 ।।

प्राचीन टीका

(घरि-घरि घरया की तासीर जाई । टेक । पारा बिंद । नाद सबद, ससि सूर ताता सीला । पवन गोटिका । आकास ब्रह्म । गगन कँवल । डीबी मनसा । सुंनि समाधि ।)

हे माताओं । मैं भिक्षा के लिये फेरी लगा रहा हूँ, बालयोगी, बालयती (गोरखनाथ) से अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये आशीर्वाद प्राप्त करो, मुझे भिक्षा दो, दरवाजे परं आकर भिक्षा रख दो और मुझे आदेश दो कि हे गोरखनाथ बालयोगी । भिक्षा ग्रहण करो और इससे भोजन सिद्ध कर अपने शरीर को योगाचरण में लगाये रहो । हे माताओं । मैं अखण्ड ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण कर योगाभ्यास में तत्पर हूँ, मैंने बिन्दु (शरीर के रस, पारा) को क्षरित होने से बचा कर उसे ऊर्ध्वमुख कर प्राणायाम के द्वारा शरीर में जीर्ण कर, पचा कर (शरीर की) चौसठ सन्धियों और सभी प्राणवाहिनी नाड़ियों को शुद्ध कर, आज्ञाचक्र में स्थापित कर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचा दिया है । यह आज्ञाचक्र ही नाद की उत्पत्ति का स्थान है । ('आकाशे यत्र शब्दः स्यात्तदा ज्ञाचक्रमुच्यते'-गोरक्षसंहिता) प्राण और अपान, ह और ठ, सूर्य और चन्द्र का समरसत्व करने से वीर्य अपने आप ऊर्ध्वगामी होकर ब्रह्मरन्ध्र में नाद से मिल जाता है और जीवात्मारूपी योगी परमशिव का साक्षात्कार करता है । हे माताओं । मैंने प्राणविद्या की सिद्धि कर, भगवती गायत्री के अनुग्रह से हंसमंत्र को अभिमंत्रित कर पवन गुटिका के सहारे ब्रह्मरन्ध्र, आकाश में प्रवेश किया है, हंसमंत्र, सोऽहं-सोऽहं मंत्र का जप ही पवन-गुटिका (गोटिका) है, इस तरह मेरा निवास ब्रह्मरन्ध्र अथवा सहस्रार में है, शिवलोक, ब्रह्मरन्ध्र ही कैलाश है, जिसमें परमात्मा परब्रह्म अलख-निरंजन अपनी निजाशक्ति में नित्य विद्यमान है और हठयोग ही नहीं,

सम्पूर्ण योगविद्या का परम प्रतिपाद्य है । ब्रह्मरन्ध्र (आकाश) कैलाश, शरीर में (पृथ्वी पर) ही विद्यमान है । मैंने पाताल (पयाल) की शक्ति (डीबी), मूलाधार में प्रसुप्त कुण्डलिनी को षट्चक्रों के भेदन, प्राणायाम, मुद्राबन्ध, नादसन्धान आदि से जागरत कर शून्य आकाश में ब्रह्मरन्ध्र में चढ़ा लिया है । यही महायोगज्ञान है कि ब्रह्मरन्ध्र में कुण्डलिनी शक्ति को जागरत करते हुए स्थापित कर योगी परमशिव का साक्षात्कार करे । मेरे गुरूदेव महामति योगाधीश्वर सद्गुरू मत्स्येन्द्रनाथ ने कृपापूर्वक मुझे इस महायोगज्ञान की सिद्धि का उपाय बताया है ।

भोगिया सूते अजहूँ न जागे । भोग नहीं रे रोग अभागे ।।टेक।।
भोगिया कहै भल भोग हमारा । मनसइनारि किया तन छारा ।। 1 ।।
एक बूँद नरनारी रीधा । ताही मैं सिधसाधिक सीधा ।। 2 ।।
भोगिया सोइ जो भगर्थै न्यारा । राजस-तामस झरै न पारा ।। 3 ।।
भणंत गोरषनाथ सुणो नर लोई । कथणी बदणी जोग न होई ।। 4 ।।

(गोरखनाथजी का कथन है कि यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि भोगियों की अभी मोहमयी निद्रा का अन्त न हो सका । वे अब भी संसार में ठोकरें खाकर भी होश में नहीं आ सके । वे ऐसे भोगियों को सम्बोधित करते हैं कि हे अभागे ! सद्वस्तु परमात्मा से विमुख भोगी, जिसे तुमने आनन्द माना है, वह आनन्द नहीं है, वह दुःख से भरा सुखरूपी रोग है । हे भोगियो ! जागो, योग में तत्पर होकर सच्चिदानन्दस्वरूप की प्राप्ति करो । तुम भोगी न बने रहो, क्योंकि भोगी तो यह कहता है कि हमारा भोग ही, असत् में सुख का क्षणभंगुर संयोग ही अच्छा है, भला है । इस तरह इन भोगियों ने रमणी के भोगास्वाद की इच्छा करके अपने वीर्य को अधोगामी और स्खलित कर शरीर को (चिन्ता की अग्नि में) जला कर भस्म कर डाला है, नष्ट कर दिया है । वीर्य के एक बूँद के स्खलन से प्राप्त भोगसुख में स्त्री-पुरूष आसक्त होकर जीवन नष्ट करते रहते हैं और इस बिन्दु को प्राणायाम तथा मुद्राबन्ध आदि की साधना के द्वारा ऊर्ध्वगामी कर शरीर में जीर्ण कर लेने (पचा लेने) से तथा उसे सहस्रार के मूल अमृतस्रोत में प्रतिष्ठित कर देने से असंख्य सिद्धों और योगसाधकों ने योगसाधना में सिद्धि प्राप्त की तथा अलख-निरंजन का दर्शन किया, स्वरूपानुभव में वे स्वस्थ हो गये । वास्तव में आनन्द का भोगी, वास्तविक योगी तो वह है, जो तमोगुणी अज्ञान से विमुग्ध होकर रजोगुणी काम-प्रवृत्ति से दूर रहता है और कामोपभोग की तृप्ति में

वीर्य (पारा) को क्षरित नहीं होने देता है, गोरखनाथ का कथन है कि हे भाइयों ! मनुष्यो ! ज्ञान के कथन और श्रवण मात्र से योग की सिद्धि नहीं होती है, यह तो साधना और अनुभव का विषय है तथा शरीर में व्याप्त वीर्यरस को सुरक्षित रखने से ही योगसिद्धि सुलभ होती है ।

(45)

मारौ मारौ स्रपनीं निरमल जल पैठी,
त्रिभुवन डसती गोरषनाथ दीठी ।।टेक।।
मारौ स्रपणी जगाईल्यो भौंरा,
जिनि मारी स्रपणी ताकौ कहा करै जौरा ।। 1 ।।
स्रपणी कहै मैं अबला बलिया,
ब्रह्मा बिष्न महादेव छलिया ।। 2 ।।
माती माती स्रपनी दसौं दिसि धावै,
गोरषनाथ गारड़ी पवन बेंगि ल्यावै ।। 3 ।।
आदिनाथ नाती मछिंद्रनाथ पूता,
स्रपणी मारिलै गोरष अवधूता ।। 4 ।।

गोड़ भए डगमग पेट भया[1] ढीला, सिर बगुलां[2] की पंषियां[3]
अमीं महारस वाघणीं सोष्या[4] घोर मथन जैसी[5] अषियां[6] ।२।
बाघनी[7] कौं[8] निंदिलै बाघनीं कौं[8] बिंदिलै[9] बाघनीं हमारी काया
बाघनीं षोषि षोषि सुंदर[10] षाये भणत[11] गोरष राया ।३। ॥४३॥

भोगिया सूते अजहूँ[12] न जागे। भोग[13] नही रे रोग अभागे ॥ टेक
भोगिया कहैं[14] भल भोग हमारा। मनसइ नारि[15] किया तन[16] छारा ।१।
एक बूँद नर नारी रीधा। ताही मैं[17] सिध साधिक सीधा ।२।

हे गुरुदेव ऐसा कर्म न कीजिए, इससे महारस अमृत क्षीण होता है। स्त्री के साथ रहने वाले पुरुष की अवस्था नदी किनारे के पेड़ के जैसी होती है। उसके जीवन की कम आशा होती है। माया नारी रूप मन को मोहती है और रात्रि को शुक्र स्खलन द्वारा अमृत सरोवर को सोखती है। इस प्रकार मूर्ख लोग जान बूझ कर घर घर में बाघिन को पालते पोसते हैं। मन में ज्योंही मनसिज पैदा हुआ त्योंही मेरु (शिखर) (सुषुम्ना के ऊर्ध्व-मुख महारंध्र से अमृत) नीचे गिर पड़ता है। इससे शरीर का नाश होता है। अथवा ज्योंही मनमें स्त्री के सम्बन्ध में ममत्व (मेरी है, यह) भाव उत्पन्न हुआ त्योंही अमृत नीचे स्खलित होने लगता है। मन का घोर मथन कर देने वाली आँखों से युक्त बाघिन (माया) जब महारस अमृत को सोख लेती है तो पैर डगमग, पेट ढीला और सिर के बाल बगुले के पंखों की भाँति सफेद हो जाते हैं ॥४३॥

भोगी लोग सो ही रहे हैं, अब भी नहीं जागे। हे अभागे यह वास्तविक आनन्द भोग नहीं है, अरे यह तो रोग है। भोगी कहते हैं कि हमारा भोग अच्छा है। नारी इच्छा करके (मनसना इच्छा करना) उन्होंने अपने शरीर को भस्म कर डाला है। इसी एक बूँद के (आनन्द में) नर नारी पच मरे

१. (घ) भये। २. (घ) बगलै। ३. (घ) पंषीयां। ४. (घ) बाघणि पाया। ५. (घ) भई। ६. (घ) अंषीयां। ७. (घ) 'वाघणी' आगे सर्वत्र। ८. (घ) कूं। ६. (घ) बांदि लै। १०. (घ) सुरनर। ११. (घ) बंदत (? बदत)। १२. (घ) भोगीया सूता बाबा अजहुँ। १३. (क) भोग। १४. (घ) भोगीया कहै। १५. (घ) मन रमी नारी। १६. (घ) तन कीया। (घ) में इस चरण के बाद इतना अधिक है—भोगीया कहै भल भोग-विलास। भोग नहीं यौ कष-बिनास। १७. (घ) तहि राप्यां।

भोगिया[1] सोइ जो[2] भग थैं न्यारा। राजस तामस[3] करै न द्वारा[4] ।३।
भणत[5] गोरखनाथ सुणो[6] नर लोई। कथणीं बदणीं[7] जोग न होई ।४॥४४॥

मारौ मारौ स्रपनीं[8] निरमल[9] जल पैठी,
त्रिभुवन[10] डसती गोरषनाथ दीठी ॥टेक॥
मारौ[11] स्रपणीं[8] जगाईल्यौ भौरा,
जिनि मारी स्रपणीं[8] ताकौ कहा करै जौरा ।१।
स्रपणीं[8] कहै मैं अबला बलिया[12],
ब्रह्मा बिष्न महादेव छलिया[13] ।२।

और इसी को साधना से सिद्ध कर साधकों को सिद्धि प्राप्त हुई। जो भग से अलग रहता है वही वास्तविक आनन्दी है। (वह सात्विक जीव है) राजस-तमस् उसके ऊपर प्रभाव नहीं डाल सकते और इस लिए उसके इन्द्रिय-द्वार से अमृत अथवा शुक्र झरता नहीं है। पाठांतर का पारा और भी स्पष्ट है ॥ ४४ ॥

गुरूजी ऐसा करम न कीजै, ताथैं अमी महारस छीजै ।।टेक।।
दिवसै बांधणि मन मोहै राति सरोवर सोषै ।
जाणि बूझे रे मूरिष लोया घरि-घरि बाघणि पोषै ।
नदी तीरै बिरषा नारी संगै पुरषा अलप जीवन की आसा ।
मन थैं उपजि मेर षिसि पड़ई ताथैं कंध बिनासा ।। 1 ।।
गोड़ भए डगमग पेट भया ढीला, सिर बगुलां की पंषियां ।
अमी महारस बांधणी सोष्या घोर मथन जैसी अषियां ।। 2 ।।
बाघनी कौं निंदिलै बाघनी कौं बिंदिलै बाघनी हमारी काया ।।
बाघनी घोषि सुरनर षाये भणंत गोरष राया ।। 3 ।।

हे गुरूदेव ! स्त्री के सहवास में योगी को नहीं रहना चाहिए, उसकी कामोपभोगपरायणता में प्रवृत्ति होने पर शरीर में विद्यमान जीवनरस, प्राणामृत (वीर्य) क्षीण हो जाता है और भोगी का शरीर मृत्यु का ग्रास बन जाता है। हे गुरूदेव । स्त्री (कामिनी) रात-दिन योग की साधना में विघ्न डालती है, इसके सहवास में तो जीवन का नाश-ही-नाश है । वह दिन में अपने हावभाव, कामुक प्रवृत्ति और साज-श्रृगारयुक्त सुन्दर शरीर के प्रति योगी के मन में आकर्षण पैदा करती हैं, अपनी मोहिनी माया में मुग्ध करती है और रात में, जब योगी साधना में प्रवेश करना चाहता है, अपने आलिंगन, परिरम्भण से सद्विवेक का अपहरण कर लेती है, वह इस तरह वीर्यरूपी अमृत के सरोवर को सोख लेती है, यह स्त्री वाघिन है । लोग जानते हुए मूर्खता वश घर-घर में इसका पोषण करते हैं । जिस तरह नदी के किनारे का वृक्ष कभी भी गिर सकता है, उसके बने रहने की प्रायः सम्भावना नहीं रहती है, ठीक उसी तरह जो पुरूष स्त्री में कामासक्त होता है, उसका शरीर अब ढहे, तब ढहे, किसी भी शरीर का प्राणरहित होना सम्भव हो जाता है । सहस्रार में योनिनामक त्रिकोणचक्र ही चन्द्रमा का स्थान है, वहाँ से शरीर का पोषण करने के लिये अमृतद्रव निरन्तर प्रवाहित होता है, वीर्य हमारे मन में उत्पन्न कामदेव का आस्वाद्य है, ज्यों ही हमारे मन में काम-विकार उत्पन्न होता है, त्यों ही वीर्य अधोमुखी होकर स्खलित हो जाता है, उसका ऊर्ध्वगमन रूक जाने पर शरीर में उसकी जीवन-पोषकतत्व के रूप में महत्ता समाप्त हो जाती है और मेरूशिखर (सुषुम्ना के उर्ध्वमुख ब्रह्मरन्ध्र) से अमृत का स्राव रूक जाता है, शरीर ढीला हो जाता है, नष्ट हो जाता है, पैर डगमगाने लगते हैं, शक्ति में निर्बलता आती है और बुढ़ापा आ जाता है । उसके केश सफेद हो जाते हैं मानो बगुला के सफेद पंख हों । मन को मथने वाली अपने कटाक्षबाण से पुरूष को बिद्ध करनेवाली आँखों से युक्त बाघिन (स्त्री) इस तरह अमृत के सरोवर को सोखकर उसे निष्क्रिय और निर्बल बना देती है । इस बाघिन को दलित कर देना चाहिए, इसके रूपजाल में न पड़ने से यह शक्तिहीन हो जाती है । इस तरह इसे बाँध रखना चाहिए अथवा अपने साधन-अंकुश अथवा संयम से इसे बिद्ध करना चाहिए, जिससे यह शरीर का नाश न कर सके । इस बाघिन से सुर-नर, कोई भी नहीं बच सका, इसने

सबाका आवाहन कर सभी को नष्ट कर दिया । वह इस काया को नष्ट कर देती है । गोरखनाथ का वचन है कि इस कुरमणी से सदा दूर रहना चाहिए ।

रे मन हीरै हीरा बेधिला, तौ काया केणैं जाई ।
गिगन सिषर चंदा रहिबी समाई ।।टेक।।
सत पाच तीनि नव घरि ले उपाई ।
विपरीतकरणी करिलै ज्यू थिर हवै बाई ।।
बाई जबथिर हुवै महारस सीझै ।
कोट्यां मधे गुरु देवा गोटा एक बूझै ।। 1 ।।
कांने रातां डोरी गाटकिणि मीर मूलैं ।
सदा अभ्यास रहे जोगी गंगा जमुन झूले ।।
गंगा जमुना झूले पैसि करिले असनानं ।
चांपीला मुले अवधू धरीला धियानं ।। 2 ।।
मेर डंड थिरि करै स्यौ सकती जोड़ै ।
कोई गुरु आराधीला जो ब्रह्मगांठि छोड़ै ।
छूटे जब ब्रह्म गांठि भरिये मेर नाला ।
सहजे पांचे चूरा भया पुरण कला ।। 3 ।।
चंदा गोटा थूटा करिले सूरेज करिले पाटी ।
अहनिसि धोबी धोवे त्रिवेणी की घाटी ।।
तलै एक चंदा गोटा पाटी गोटा आछे (षै)
भौजल नदी पारि उतरीया सिध गोरष भाछे (माषै) ।। 4 ।।

सिद्ध योगी गोरक्षनाथ का कथन है कि हे मन ! जब हीरे ने हीरे को बेध लिया अर्थात् आत्मा और परमात्मा में जब पूर्ण अद्वैत हो गया तो फिर काया को कौन महत्त्व देने जाय । काया को महत्त्व देने पर परमात्म तत्व का विस्मरण हो जाता है । परमात्म तत्व के बोध के लिए आवश्यक है कि साधक गगन शिखर, ब्रह्मरन्ध्र में स्थित अमृतस्वरूप चन्द्रमा में साधक अन्तर्लीन हो जाय । सप्त धातु से निर्मित शरीर, पंचज्ञानेन्द्रिय, सत्व, रज, तम-तीनों गुणों और मुद्राबन्ध द्वारा नवों द्वारों पर अधिकार कर लेना चाहिए । इसके बाद विपरीतकरणीमुद्रा की सिद्धि के द्वारा नाभिस्थित सूर्य को ऊर्ध्वमुख और सहस्रार स्थित चन्द्र को अधोमुख कर सूर्य-चन्द्र के सामरस्य द्वारा अमृत की शेष चार

कलाओं का पान करते हुए प्राणसाधना के द्वारा प्राण को इड़ा-पिंगला से प्रवाहित करते हुए आज्ञाचक्र में सुषुम्ना में स्थिर कर देना चाहिए । इस तरह प्राण के सुषुम्ना में स्थिर हो जाने पर सहस्रार से द्रवित चन्द्रामृत का पान सहज सुलभ हो जाता है अथवा शरीर में महारस (वीर्य) जीर्ण होकर पच जाता है, ऊर्ध्वमुख होकर अमृत में बदल जाता है । कोटि-कोटि प्राणियों में केवल मात्र गुरुदेव इस प्राणगुटिका का रहस्य जानते हैं, प्राण को सुषुम्ना में रख लेने से, स्थिर कर लेने से अमृतस्वरूप में जीवात्मा की स्थिति हो जाती है । केवल बाह्य वेश से, कान में कुण्डल और लाल डोरा (सेल्ही) धारण करने से ही आत्मसिद्धि हाथ नहीं लग जाती है, इन्हें धारण करने की सार्थकता तो इसमें है कि जीवन की वृत्ति अन्तर्मुखी हो जाय और परमात्मस्वरूप की प्राप्ति में अपनी भूमिका निबाहे । योगी को अपने प्राण को कुम्भक की विधि से इड़ा (चन्द्रनाड़ी, गंगा) और पिंगला (सूर्यनाड़ी यमुना) में प्रवाहित करना चाहिए, यही उसका गंगा-यमुना में स्नान करना है और इस तरह प्राण-साधना करते हुए उसे परमात्मा में ध्यान लगाना चाहिए । इस ध्यान की दृढ़ता के लिये मूलबन्ध आवश्यक है, गुदाद्वार का बार-बार संकोचन-आकुंचन कर प्राण को मेरुदण्ड में प्रवाहित सुषुम्ना में स्थापित करते हुए दसवें द्वार ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर करना चाहिए । मेरुदण्ड के सीधा होने पर अथवा प्राण-साधना से वंकनाल, सुषुम्ना नाड़ी के उत्थित होने पर महाशक्ति कुण्डलिनी का ब्रह्मरन्ध्र में शिव से तादात्म्य अथवा मिलन होता है । गुरु की आराधना करने से ही, ब्रह्मग्रन्थि का भेदन होता है और योगी को सत्स्वरूप की प्राप्ति होती है । बिना ब्रह्मग्रन्थि का भेदन हुए (जीवात्मारूपी) योगी सहस्रार अथवा ब्रह्मरन्ध्र में शिव के परम पद का स्पर्श ही नहीं कर सकता, अलख-निरंजन का साक्षात्कार अथवा दर्शन ही नहीं कर सकता । ब्रह्मग्रन्थि का भेदन होने पर गुरु द्वारा ब्रह्मगांठि छुड़ाए जाने पर कैवल्यपद का दरवाजा खुल जाता है । इड़ा-पिंगला नाड़ी सुषुम्ना में समा जाना ही मेरुदण्ड का प्राण से पूरित होना है और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ भी मन को चंचल करने का अपना स्वभाव छोड़ देती हैं, मन उन्मन हो जाता है और चन्द्रमा का पूर्ण प्रकाश प्रकट हो जाता है, अलख-निरंजन ज्योतिब्रह्म परमशिव का साक्षात्कार होता है । जिस तरह धोबी पाटे पर पटक-पटक कर जल से कपड़े को धोता है और उसका मैल

छुड़ाने के लिये खूँटे (मुँगरी) से (कपड़े को) पीटता है, उसी तरह साधक के लिये यह चन्द्रमा ही खूँटा है और सहस्रार से प्रवाहित अमृत ही जल है, सूर्य पाटा है, इसी सूर्यरूपी पाटे पर चन्द्रमारूपी खूँटे से अमृतरूपी जल में काया को निर्मल कर लेना चाहिए । सहस्रार में स्थित चन्द्रमा के अमृत में मूलाधारस्थ सूर्यस्वरूप प्राणहंस (प्राणवायु) को सुषुम्ना से प्रवाहित करते हुए समरस कर शेष चार कलायुक्त अमृत का पान कर शरीर को अमरकायत्व प्रदान करना चाहिए, यही चन्द्रमारूपी खूँटे द्वारा अमृतरूपी जल से सूर्यरूपी पाटे पर शरीर का निर्मलीकरण है । चन्द्रमा और सूर्य के रूप में गोटा और पाटा (पाटी) हमें इस शरीर में उपलब्ध हैं, इनका योग-साधना में सदुपयोग कर भवसागर से पार उतर जाना चाहिए । गोरखनाथ का कथन है कि मैं इस तरह योगसाधना में तत्पर होकर अमृतपान से अमरकायत्व प्राप्त कर भव जल सरिता से पार उतर गया ।

(53)

चेला सब सूता नाथ सतगुर जागै। दसवैं द्वारि अवधू मधुकरी मांगै।।टेक।।

सहजै षपरा सुषमाने डंडा । पाँच संगाती मिलि षेलै नवषंडा ।। 1 ।।

गंग-जमन मधि आसण बालौ । अनहदनादकाल भैटालौ ।। 2 ।।

गगन मंडल में रमूं अकेला । उरध मुषि बंकनालि अमीरस झेला ।। 3 ।।

कथंत गोरषनाथ गुरू उपदेसा । मिल्यां संत जनटल्या अंदेसा ।। 4 ।।

गुरू साक्षात् आदिनाथ परब्रह्म शिवस्वरूप है, वह निरन्तर सद्ज्ञान-प्रकाश में जागता रहता है । शिष्य तब तक सोता ही रहता है, जब तक अविद्यास्वरूपिणी माया-निद्रा, असत्सम्बन्ध में व्यामोहित है । गुरू के शब्द से संसार-निशा में सोने वाले शिष्य जाग जाते हैं और परमात्मस्वरूप में स्थित हो जाते हैं । आदिनाथस्वरूप गुरू संसार में भिक्षाटन नहीं करता है, वह शरीर में अन्तर्मुखी वृत्तियों में शान्तचित्त होकर उन्मनी समाधि में स्थित होकर दसवें द्वार ब्रह्मरन्ध्र में अमृत की मधुकरी का आस्वादन करता है, यह नाथयोगी गुरू सहज ज्ञान का खप्पर धारण करता है, इस सहज ज्ञान से ही अमृत को सुरक्षित रखता है, उसे नाभिस्थित सूर्य के द्वारा शोषित नहीं होने देता है, इस योगी का दण्ड सुषुम्ना ही है, चक्रों का भेदन पूरा होने पर यह सुषुम्ना नाड़ी, जो मेरूदण्ड में स्थित है, सीधी हो जाती है और इस सद्गुरू योगी के पीछे (शिष्य रूप में) पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ चलती रहती हैं । वे विषयों में उसे (योगी को) आसक्त कर उसके लिये विरोधिनी नहीं सिद्ध होती हैं, उनके साथ नाथस्वरूप सद्गुरू नवों खण्डों में (शरीर के नवों द्वारों में) खेलता (विहार करता) रहता है, ये नवों द्वार संसार के लोगों के लिये मुद्रित (बन्द) रहते हैं, वे आत्मज्ञान का प्रकाशन नहीं होने देते हैं, पर योगीगुरू के लिये वे सदा खुले रहते हैं । हे साधकों । इसी तरह आसन, प्राणायाम, और मुद्राबन्ध आदि के द्वारा इड़ा (चन्द्र) नाड़ी और पिंगला (सूर्य) नाड़ी के द्वारा प्राण की साधना करते हुए प्राण को सुषुम्ना (सरस्वती) में स्थिर कर देना चाहिए, यही गंगा और यमुना में आसन लगाना है । इस तरह प्राण को स्थिर करने पर अनाहत चक्र में उत्पन्न अनाहतनाद का श्रवण करते हुए ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर चन्द्रामृत का पान कर मृत्यु पर विजय प्राप्त करनी चाहिए । मैंने (गोरखनाथ ने) इसी तरह की योगसाधना की है और अलख निरंजन परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप में ब्रह्मरन्ध्र में रमण करता हूँ । गोरखनाथ का कथन है कि मैंने गुरू का उपदेश ग्रहण किया और संतजनों की कृपा से मेरा संशय नष्ट हो गया, मुझे सत्स्वरूप का बोध हो गया ।

21:27
2015.346849.Gorakha-B...

चेला सब सूता नाथसतगुर जागै। दसवैं द्वारि अवधू मधुकरी मांगै ॥टेक
सहजैं षपरा सुषमनि डंडा। पांच संगाती मिलि षेलैं नव षंडा।
गंग जमन मधि आसण चालौ। अनहद नाद काल भै टालौ।
गगन मंडल मैं रमूं अकेला। उरध मुषि बंक नालि अमीरस मेला।
कथंत गोरषनाथ गुरु उपदेसा, मिल्यां संत जन टल्या अंदेसा* ॥५३॥

रे मन हीरै हीरा बेधिला, तौ काया केणै जाई।
गिगन सिषर चंदा रहिबौ समाई ॥ टेक ॥
सात पांच तीनि नव धरि लै उपाई।
विपरति करणी करिलै ज्यूं थिर ह्वै ग्राई ॥

सारा संसार नाथ (परब्रह्म) का चेला है। ब्रह्मसाक्षात्कार ही ज्ञान प्राप्त करना है। इसलिए नाथ को सद्गुरु कहा है। केवल परब्रह्मनाथ ही जागता है। मनुष्य भी जाग जाते हैं, पर जाग आने पर वे भी परब्रह्म हो जाते हैं, वे संसार के अंतर्गत नहीं गिने जाते, गुरु चेले का भेद नहीं रह जाता। इसलिए नाथ ही जागते हैं, सारा संसार सोता रहता है। वह नाथ अवधूत दुनिया में भीख माँगने को नहीं फिरता। वह तो ब्रह्मरंध्र में मधुकरी मांगता है, अमृत का रसास्वादन करता है। इस नाथ रूप योगी के पास सहज ज्ञान का तो खप्पर है। सुषुम्णा का दंड है। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ उसकी विरोधी नहीं हैं, साथी हैं। वे आत्मानुभूति (ब्रह्मज्ञान) में बाधा नहीं डालतीं। उनके साथ मिल कर नाथ नव खंड अर्थात् नव द्वारों में (जो सामान्य लोगों के लिए आत्मानुभूति का मार्ग बंद किये रहते हैं,) खेलते रहते हैं, इन्द्रियाँ भी सुसंस्कृत होकर ब्रह्मानंद में भागी होती हैं। तुम भी उनकी तरह इडा और पिंगला के बीच में आसन (जमाये, धुनी) जलाये रहो। अनाहत नाद को सुनकर काल के भय को टालो। (मैं उनके उपदेश से) आकाश मंडल त्रिकुटी या ब्रह्मरंध्र में अकेले रमता रहता हूँ। और ऊर्ध्व मुखी बंकनाल सुषुम्णा से अमृत रस को निकालता (अर्थात् उसका उपभोग करता रहता हूँ। इस प्रकार गोरखनाथ गुरु का दिया हुआ उपदेश दुहराता है। संत जनके मिलने से संशय का नाश हो जाता है ॥ ५३ ॥

हे मन! जब हीरे ने हीरे को बेध लिया अर्थात् जब आत्मा का परमात्मा

---

* पद ५३ से ५८ तक केवल (प) के आधार पर।

21:49

निरंजन माला, निराकार ज्वाला। कवल गरजै सबद उजियाला।
छसै सहंस इकबीस मेला। नष सष पवन ले बंधिबा मेलां।
नाद अनाहद निहसबद बांणी । जीव थैं सीव होइबा प्रांणी ।
देही बदेही अविचल थीरं । रुम्र उलटि फिरि होइबा षीरं ।।
दिष्टि बिदिष्ट जोइबा नैनं । पवन निरंजन बोलिबा बैनं ।
सबद निहसबद तब होइबा थूलं। आदि का आदि सो होइबा मूलं ।।
नाद ब्यंद गांठिबा पवन अकास । पड़ै घट न होइबा नास ।
धरणि गगन परिमाध न कोई । जंत्र चलै तहं काल न होई ।।
अषंड मढ़ी तहां जोतिबा ध्यानं, जुग जुग तालीकथिबा ग्यांनं ।
मूलचक्र तहाँ प्रगटे ज्यंदू । पलटे काया थिरहुवे कंधू ।
मूलबन्ध बज्र कछोटा पकड़िबा थीरं । सत उडियांणी बंधिबा बीरं ।।
जत जगोटा आसणपूरं, अमृत धारा कमंडल होइबा सूरं ।
कुंभ पात्रे पीयबा नीरं । चेतनां बिभूति अंगि सरीरं ।।
अजर कथा नहि बाद बिबादं । अनाहद सींगी बजायबा नादं ।
संतोष तिलक तहां पद नृबाणं । ब्रह्म कवल टोपी पहरिबा त्राणं ।।
मन बैराग मुद्रा जोई रूपं । बदंत गोरष ए तत अनूपं ।

दया दंड तहां त्रकुटी ध्यानं । छिमा लाठी टेकिबा मांनं ।।
चंद सूर माटी उजेबा धारं । झुरै गगन तहां होइ मतिबारं ।
सो जोग्यंद्र जोग जुगता अबिचलं सारं । छछंद मुक्ता मै भ्रम पारं ।।
दोइ पछि ब्रह्म बिधवा सूलं । गुर बचन अनाहद मनिबा मूलं ।
अनंत सिधा तहाँ सारमसारं । निस्चल थीरं तब होई निरालं ।।
अजाचीक भिष्या आइबि थानं। गुरु मछींद्रनाथ नी सिछ्या पहरिबा कानं।
अकलप डीबी झोली निरांसं । सजीवन मात्रा बीरजनासं ।।
एकांति रहीबा अवधू बंधिबा थूलं । नहि होवै आवागमन का मूलं ।
बारह कला देवी सोलह कला देवं । सुषुमना नाड़ी बंधिबा भेवं ।।
नौ से जोगणी चालिबा साथ । बुरिज बहतरि गाइबा नाथं ।
नव षंड प्रिथमी मांगिबा भिछ्या । त्रिलोक मथैन होइबी विप्यष्या ।।
चवदह ब्रह्मंड तहां जोइबा द्वारं । षट दरसन ए पंथ लै सारं ।
दार बहनी ज्यूं होइबा भेवं । असषं दल पंषुडी गगन करि सेवं ।।
बदंत गोरष अबिचल जापं । लिपै नहीं तहां पुंन न पापं ।
सुनि ध्यांन सोलह कला सपूरण माला।। आपण स्यंभू श्रीगोरषबाला ।।

(सारांश)

21:41
Gorakhbani - Ram Lal S...

(59)

(राग रामश्री)

मन रे राजा राम होइले नृदंद, मूले कमलै साजिले रविचंद ।।टेक।।

अनहद भौरी भव तुवेणी के घाट,

पीयले महारस फाटिलै कपाट ।। 1 ।।

चंदा करिलै षूटा सूरजि करि लै पाट ।

नित उठि धोबी धोवै तुवेणी के घाट ।। 2 ।।

भरिलै नाड़ी षोड़ी, पुरिलै बंक नालि,

बदंत गोरषनाथ अवधू इम उतरिबौ पार ।। 3 ।।

हे मन । इन्द्रियजन्य विषय-भोगासक्ति से परे होकर ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर, अमनस्क होकर अथवा उन्मनी समाधि में स्थित होकर अपने अलख निरंजन, रामरूप में, निराकार स्वरूप को प्राप्त कर लेना चाहिए । मूलाधार चक्र (कमल) में स्थित द्वादश कलावाले सूर्य को विपरीतकरणी मुद्रा से ऊर्ध्वमुख कर और सहस्रार में योनि नामक त्रिकोण में स्थित चन्द्रमा को अधोमुख कर उसकी सोलह कला में चार कलावाले अमृत को बचा कर पान करना चाहिए, इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना में प्राण का स्थैर्य ही त्रिवेणी है और इस त्रिकुटी में, हृदय में उत्थित ऊँकारस्वरूप अनाहतनाद रूप भौंरा गूँज रहा है । आज्ञाचक्र में सहस्रार से चन्द्रमा का अमृत बरस रहा है, झर रहा है, ब्रह्मरन्ध्र दसवें द्वार को खोल कर इस महारस का पान कर स्वरूपानन्द में मग्न हो जाना चाहिए आज्ञाचक्र में, हे मन । स्थित होकर आत्मस्वरूप का ध्यान करना चाहिए, त्रिवेणी में स्नान करना चाहिए । सूर्य को पाटा बनाना चाहिए । चन्द्रमा को कपड़ा पीटने का खूँटा (लकड़ी) बना लेना चाहिए और शरीर के पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और प्राण (वायु) को धोकर निर्मल बना लेना चाहिए । जिस तरह धोबी पाटे पर कपड़ा रखकर जल में भिगोकर लकड़ी-खूँटे अथवा मुँगरी से पीट-पीट कर उसका मैल निकाल देता है, धो देता है, उसी तरह त्रिकुटी में, त्रिवेणी में तन और प्राण को निर्मल बनाकर ब्रह्मद्वार, दसवें द्वार का भेदन

कर परम शिव का साक्षात्कार कर लेना चाहिए । प्राणवाहिनी नाड़ियों को प्राणायाम से शुद्ध करना चाहिए । इड़ा - पिंगला से प्रवाहित प्राण को सुषुम्ना के ब्रह्ममार्ग में स्थापित कर शुद्ध कर लेना चाहिए । बंकनाल-सुषुम्ना में प्राण के स्थिर हो जाने से, अमृतत्व की प्राप्ति होती है । गोरखनाथ का कथन है कि हे मन । इस तरह जीवन को अमृतत्व प्रदान कर संसार-सागर से पार उतर जाना चाहिए, यही मोक्षपद है ।

(60)

[राग रामगरी]

मन रे राजा राम होइलै न्रदंद, मूलै कमलै साजि लै रविचंद ।।टेक।।
अनहद भौरो भवैं त्रवेणीं कै घाट,
पीयलै महारस फाटिलै कपाट ।१।
चंदा करिले पूटा, सूरजि करिलै पाट,
नित उठ धोवी धोवै, त्रवेणीं के घाट ।२।
भरिलै नाड़ी षोड़ी, पूरिलै बंक नालि ।
बदंत गोरषनाथ अवधू, इम उतरिबौ पारि। ३ ।।५६*।।

गोरष[1] बालूड़ा बोलै[2] सतगुरु बांणीं रे ।
जीवता न परण्यां तेन्हैं[3] अगनि[4] न पांणीं ।। टेक ।।
षीलौ दूझै भैंसि बिरोलै, सासूड़ी पालनड़ै[5] बहुड़ी हिंडोलै[6] ।१।

हे मन परब्रह्म होकर निर्द्वन्द्व हो जा । मूलाधार चक्र में रहनेवाले सूर्य को सहस्रार चंद्रमा में सजा अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा का योग कर । त्रिकुटी में अनाहत रूप भ्रमर गुंजार कर रहा है । वहाँ ब्रह्मरंध्र के कपाट खोल कर महारस अमृत का पान कर । चन्द्रमा को तो धना ले पीटने की लकड़ी और सूर्य को वह तख्ता या शिला जिस पर धोबी कपड़े पीटता है । इस प्रकार धोबी (साधक) नित्य प्रति उठकर कपड़े धोवे अर्थात् जीवात्मा का मैल छुड़ावे, माया को दूर करे । सदोष (खोड़ी) नाड़ियों को वायु से भरकर शुद्ध करते हुए बंक नालि सुषुम्ना को वायु से भरो । गोरखनाथ कहते हैं कि हे अवधूत इस प्रकार पार उतरो ।।५६।।

बालक गोरख सद्गुरु की (सद्गुरु से प्राप्त की हुई) वाणी बोलता है । (गोरख ने) जीते को (परब्रह्म तत्त्व को जो सब जीवों में सार है) परिणीत किया है, (उससे गठजोरी की है ।) इसी से (इसके लिए) न आग है, न पानी (वह अग्निमय और जलमय दोनों से बाहर हो गया है ।)

(पहले माया की कीली पर बँधी हुई मनसा रूप भैंस हो लौकिक आनन्द

---

* केवल (क) में ।

१. (क) गोर्ष । २. (क) में 'बोलै' नहीं । ३. (घ) तानैं । ४. (क) अग्नि ५. (घ) पालयैं । ६. (घ) बहूड़ी हीडोलै ।

सप्त गांठि सरीर की नारी । अरध उरध मैं लाइलै ताली ।
विच विच लागी नौ नौ कली । अष्ट कवल वतीस पांषुड़ी ॥१३॥
नाद रह्या सरवत्र पूरि । गगन मंडल मैं षोजौ अवधू वस्त अगोचर मूर।
नगर कोटि की बहुविधि गली । सुन्दिर एक राजंदरि खड़ी ॥१४॥
पंच महा रिषि तहां कुटवाल । तिनकी त्रिया महा भूझारि ।
इनहिं मारि जे लागै पंथा । सुन्दिर जीतै लोक सौं कंथा ॥१५॥
इला प्यंगुला सुषमनां नाड़ी । छुटै भ्रंम मिलै वनवारी ।
पंच तत्त विष अंमृत वसई । गुरुवचने अंमृत भया अंचई ॥१६॥

अमृत स्रावक पूर्णिमा का चंद्र कैसे क्षीण हुआ ? क्योंकि सूर्य ने चंद्रमा को लौटाकर स्वयं पवन पर अधिकार कर लिया है। स्वप्न में भी इंद्रियां कामना को ग्रहण न करें अर्थात मनसा इच्छा) से प्रेरित न हों, इसलिए योगीश्वर प्रलय अर्थात् मनोविलय करना निश्चित करते हैं ॥१२॥

शरीर की नाड़ियों में सात गांठें हैं (संभवतः षट्चक्र और सातवां सहस्रार।) अधः और ऊर्ध्वगामी जो श्वास क्रिया है, उसमें ध्यान लगाओ। बीच बीच में नौ नौ कलियाँ (नवरंध्र) लगी हुई हैं अष्ट कवल (-योगियों में आठ कमल भी माने जाते हैं। सातवां ज्ञान चक्र में सहस्रदल कमल और आठवां विज्ञान में २१ सहस्रदल कमल। देखो आगे ग्रंथ 'अष्ट चक्र'—) और बत्तीस पंखुड़ियां (संभवतः बत्तीस लक्षण) हैं। संस्कृत अनुवाद भी इसमें सहायक नहीं है। उसमें बत्तीस पंखुड़ियां और नौ कलियों का उल्लेख नहीं है। और अष्ट कवल का अर्थ 'पद्मान्यष्टौ' लिया गया है ॥१३॥

अनाहत नाद सर्वत्र भरा हुआ है। हे अवधूत, अगोचर, मूल तत्त्व (शिव को) आकाश मंडल, ब्रह्मरंध्र में ढूँढो। शरीर रूप को नगर कोट अथवा प्राचीर से रक्षित नगर है उसमें कई मार्ग हैं। किन्तु एक स्त्री (कुंडलिनी माया) राजद्वार पर मार्ग को रोके खड़ी है, मूल वस्तु तक नहीं पहुँचने देती ॥१४॥

इस नगर में पांच महर्षि (पांच कर्मेंद्रियाँ) कोतवाल हैं किसी को अंदर जाकर राजा का परिचय (आत्मज्ञान) नहीं होने देते। उनकी स्त्री (मनसा) बड़ी बलवती और युद्ध कुशल है। इनको (पंचेंद्रियों को) मार कर जो मार्ग पर चलने लगे वह उस सुन्दरी (माया) को भी जीत लेता है, और साथ ही जगत (लोक) और शरीर (कंथा) को भी ॥१५॥

सबद एक जै प्रगट कहूँ सतगुर होई लषावै ।
गुह्यज्य नाम[1] अमींरस मीठा जो षोजै सो पावै ॥८॥
गंगा जमुना त्रिवेणीं संधी । अजपा जपौ गावत्री बन्धी ।
पदया नीर उरध अस्थांनां । हिरदा पंकज मैं रहै समांनां ॥९॥
नाद बिंद गांठि प्रवांनां । कवण घटि जोति कवण अस्थांनां ॥
कहाँ निरंजन बासा करहीं । कहाँ काली नागनीं मींड़क धरहीं ॥१०॥
कहाँ जलधर पवनां मेला । उद्र कहां विलइया घेरा ॥
सींगी नाद कहां जोगी पूरा । जीत्या संग्राम पुरिष भया सूरा ॥११॥
पूनम चंदा कैसैं छीनां । रवि ससि फेरि पवन घरि कीनां ।
सुपिनैं इंद्री कांम न गहई । ता कारणि जोगेस्वर परलै ढहई ॥१२॥

जिस एक शब्द को मैं प्रकट रूप से कह रहा हूँ उसे सद्गुरु ही दिखा सकते हैं । अमृत रस मीठा है परन्तु उसकी विशेषता यह कि वह गुह्य (गुप्त) है । उसे वही प्राप्त कर सकता है जो उसकी सच्ची खोज में लगता है ॥८॥

वन्धी, बँधकर, लग कर, तल्लीन होकर, संयत होकर । पदया नीर=(अ) में इसका अनुवाद "पद्गम्य नीर" किया गया है । नीर तो बिंदु है किंतु 'पदया' का अर्थ संदिग्ध है । पांवो से इसका संबंध लगाने से इसे गमनार्थक मानना चाहिये जिससे सारे चरण का अर्थ होगा, शुक्र को ऊर्ध्व स्थान में पहुँचा कर अर्थात् ऊर्ध्वरेता हो कर ॥९॥

नाद और बिंदु को प्रामाणिक रूप से ग्रथित करें । ज्योति किस घट में है ? उसका स्थान कहाँ है निरंजन का निवास कहाँ हैं ? काली सर्पिणीरूप माया जीवात्मा रूप मेढकों को कहां पकड़ पकड़ कर खाया करती है ? ॥१०॥

ऊर्ध्व रेत (जलंधर) का पवन से मेल कहाँ होता है ? चूहे (उंद्र) को (अर्थात् जीव को कहाँ बिल्ली (अर्थात् माया) घेरती है ? जोगी सिंगी नाद (अनाहत नाद) कहां बजाता है ? जहाँ संग्राम को जीतकर शूर (साधक) पुरुष (सिद्धि) हो जाता है ॥११॥

---

१. संभवतः (अ) ने गुह्ज्प या गुह्जप (गुह्यजप) पाठ स्वीकार किया है क्योंकि उसमें इसका अर्थ 'गुह्यनामाभिमंत्रण' (यथावत् पाठ) किया गया है, 'अमीरस मीठा' छोड़ दिया गया है ।

21:50
Gorakhbani - Ram Lal S...
235/312

अलख-निरंजन परब्रह्म परमेश्वर से शब्द-ब्रह्म ऊँकार अभिव्यक्त है । ऊँसे आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज (अग्नि), तेज से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति है । पृथ्वी का रूप देवी के स्वर्णिम (पीताभ) वर्ण का है । जल का रूप ब्रह्मा के वर्ण के समान (कुन्द धवल) श्वेत है । तेज (अग्नि) का रंग विष्णु की मायां (लक्ष्मी) के वर्ण के समान लाल (रक्तवर्ण) है । पवन का रंग ईश्वर की काया के समान (धूम्रवर्ण) है और आकाश काला अथवा श्वेत हैं, शब्द की छाया है । अलख अनादि ब्रह्म से नाद उत्पन्न है । शून्य निरंजन ही देव है । यह अगम, अगोचर और अनन्त है । यह स्वानुभवगम्य, स्वसंवेद्य है, वेद इसका वर्णन नहीं कर पाते हैं । इस एक के अनेक भेद हैं, स्वरूपतः यह सहज शून्य अनादि शाश्वत चैतन्यतत्व है । आत्मा का ध्यान ही ब्रह्मज्ञान है । खेचरी आदि-मुद्राओं के अभ्यास से उन्मनी समाधि में अतीत-देवता अलख-निरंजन परब्रह्म का अनुभव होता है । उसकी

प्राप्ति ही उसकी (सूक्ष्मातिसूक्ष्म) पूजा है । प्राणवायु ही आश्रम है, जिसमें जीवात्मारूपी योगी निवास करता है । अध्यात्मविद्या है, ब्रह्मरन्ध्र अथवा गगन ही आसन है, सहस्रार से द्रवित अमृत से भरा प्याला पीकर जीवात्मा अमर हो जाता है । इच्छा ही माया है । पाँचों भूत चेला हैं । मन राजा है, रावल योगी है और प्राण ही भोगी है । ब्रह्मरन्ध्र में जीवात्मा योगी शिव का साक्षात्कार करता है । सुषुम्ना नदी है, त्रिकुटी में ही इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना के संगम में स्नान है, अनुपम ऊँमंत्र अथवा हंसगायत्री का जप चलता रहता है । निरंजन का ध्यान ही माला है, ब्रह्मरन्ध्र में निराकार, शाश्वत चैतन्यज्योति सदा प्रकाशित है । सहस्रदल कमल में नाद का गर्जन होता है । बिजली चमकती है । इक्कीस हजार छः सौ श्वास-प्रश्वास शरीर में व्याप्त रहते हैं, अनाहत नाद होता रहता है । जीवात्मा शिवस्वरूप में स्थित हो जाता है । शरीर में प्रवाहित रुधिर वीर्यरस के रूप में सहस्रार में प्रवेश कर अमृत हो जाता है । नाद-बिन्दु का मेल होता है, प्राण ब्रह्मरन्ध्र में स्थित हो जाता है । मूलबन्ध का अभ्यास करना चाहिए, वज्र कौपीन धारण कर कुम्भक प्राणायाम की विधि से शरीर के भीतर प्राण को स्थिर करना चाहिए तथा उड्डियान बन्ध लगाना चाहिए । दया का दंड ग्रहण कर वैराग्यमय जीवन में स्थित होकर त्रिकुटी में अलख-निरंजन परब्रह्म का ध्यान करना चाहिए । माया और ब्रह्म में द्वैतभाव का निरसन कर शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप का आश्रय ग्रहण करना चाहिए । द्वैताद्वैतविवर्जित तत्व का चिन्तन करना चाहिए । गुरु के उपदेशामृत को ही अनाहतनाद समझना चाहिए । गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की शिक्षा के अनुसार योगज्ञान के प्रकाश में जीवन सार्थक करना चाहिए । एकान्त में निवास करना चाहिए । हे अवधूत । आवागमन स मुक्त होने का यही उपाय है कि चित्त वृत्ति परमात्मा के स्वरूप में लीन रहे । बारह कलावाले सूर्य को ऊर्ध्वमुख कर तथा सोलह कलावाले सहस्रारस्थ चन्द्रमा को अधोमुख कर अमृत पीते हुए अजपाजाप में स्थिर रह कर शिवस्वरूप हो जाना चाहिए ।

04:38

उलटै चन्द्र राह कौं[1] ग्रहै । सूरज उलटि केत संग्रहै ।
ससि[2] द्वार सूरज थिर[3] रहै । तत्व भांण जोगेस्वर कहै ॥६॥
अरधैं[4] जाता उर्धैं[5] गहै । द्वादस पवनां उनमन रहै ।
अहनिसि बाई धुंनि मैं[6] बाजै । पछिम द्वारै पवनां गाजै ॥७॥
अभिअंतरि ब्रह्म अगनि परजालै[7] । पंच चोर ले[8] ग्यान[9] संभालै[7] ।
जोगी अपणैं घरि दिवाला दीपै[10] । ता जोगीकी काया काल न छीपै[10] ॥८॥
हलि हलि पवनां काया गरजै[11] । सूरा होइ[12] अभिअंतरि झूझै ।
ग्यांन षड्ग ले झूझिबा द्वारं । अजीत[13] जीतिबा पंच गहि सारं ॥९॥
अष्ट परबत असाध[14] साधिबा । नव दरवाजा दि्ढ[15] करि बांधिबा ।
दसवैं दरवाजै कूची[16] सार । मैमंत[17] हस्ती बांधिबा बार ॥१०॥

चंद्र और सूर्य उलट कर राहु-केतु को ग्रस लेते हैं । इस प्रकार वह योगीश्वर जो तत्त्व ज्ञान के कारण भानु सा प्रकाशमान है, कहता है, कि चंद्र के द्वार पर सूर्य स्थिर हो जाता है, अर्थात् सूर्य और चन्द्र का मेल हो जाता है, जो हठ विद्या का उद्देश्य है ॥६॥

नीचे (भीतर) जाती हुई वायु को ऊपर लेकर अर्थात् ब्रह्मांड में ले जाकर द्वादशांगुल पवन का आयाम कर उन्मनावस्था में रहे । जब पवन सुषम्ना मार्ग में गरजती हुई प्रवेश करती है, तब रात दिन वायु से ध्वनि निकलती है अनाहत नाद सुनाई देता है ॥७॥

पंच चोर = पंच ज्ञानेंद्रिय ॥८॥

झूझिबा = योद्धव्यं, युद्ध करना चाहिए ॥९॥

मैमंत...बार = और मद मत्त हाथी (मन) को दरवाजे पर (ब्रह्मरंध्र में) बांध देना चाहिए ॥१०॥

---

१. (घ) कूं । २. (घ) सस्कि । ३. (घ) थिरि । ४. (घ) अरधै । ५. (घ) उरधै । ६. (घ) धुनि । 'मैं' नहीं । ७. (घ) परजारै...समारै । ८. (घ) लै । ९. (क) आंन । १०. (घ) दिपै...छिपै । ११. (क) गजै । १२. (घ) होय । १३. (घ) अजीति । १४. (घ) असाधि । १५ (घ) द्रिढ । १६. (घ) दरवाजे दसवैं कंची १७. (घ) मैंमंता ।

04:38

आत्म बोध

ॐ आसण[1]करि पदम[2]आसण[1] बंधि। पिछलै[3]आसण[4]पवनां संधि[5]।
मन मुछावै लावै[6] ताली[7]। गगन सिषर मैं होइ उजाली[8] ॥१॥
प्रथमि बैसि बाई दर[9] बंधि। पवनां षेलै चौसठ[10] संधि।
नव दरवाजा[11] देवै[12] ताली। दसवां मधें होइ उजाली[13] ॥२॥
ऐसा भुवंगम[14] जोगी करै। धरती सोषै अंबर भरै।
गगने सुर[15] पवनें[16] सुर[15] तांणि[17]। धरनी का पांणी[18] अंबरि आंणि[19] ॥३॥
ता जोगी की जुगति पिछांणि[20]। मन पवन ले उनमनि आंणि।
मन पवन[21] ले उनमनि रहै। तौ काया गरजै गोरष कहै ॥४॥
चढ़ै महारस अभरा भरै। ऐसा आरम्भ जोगी करै।
उलटी सक्ति[22] चढ़ै ब्रह्मंड। नष सप पवनां षेलै नव षंड ॥५॥

मुछावै=मूर्छित करे। लावै ताली=ध्यान लगावे ॥१॥ बैसि=बैठ कर; दर=दरी, उपत्यका, घाटी। घाटियों में वायु का वेग बहुत होता है। यहाँ पर वायु मार्ग, नव द्वार ॥२॥ धरती=मूलाधार। अंबर=ब्रह्मरंध्र। भुवंगम करै=कुंडलिनी जागरण करे। पांणीं=बिन्दु ॥३॥ गरजै=अनाहत नाद से ॥४॥ महारस=अमृत रूप मदिरा। सकति=कुंडलिनी ॥५॥

आत्म बोध [१] (क) और (घ) के आधार पर।

१. (घ) आसन। २. (घ) पदि। ३. (घ) पछिलै। ४. (घ) आसनि। ५. (घ) सिंध। ६. (घ) मुरछावै। ७. (घ) तारी। ८. (घ) बलै अंगारी। ९. (घ) बाय दरि। १०. (घ) चौंष्टि। ११. (घ) दरवाजां। १२. (घ) लावै। १३. (घ) मंधे होय उजियाली। १४. (घ) भुयंगम। १५. (घ) स्वर। १६. (घ) पवने। १७. (घ) पांणी। १८. (घ) पांणी ले। १९. (घ) आंणी। २०. (घ) पिछांणी २१. (घ) पवनां। २२. (घ) सकति।

सभा देषि मांडौ मति[1] ग्यांन। गूंगा गहिला होइ[2] रहौ अजांण।
छाड़ौ राव रङ्क की आस[3]। भिछ्या भोजन परम[3] उदास ॥११॥
सींगी नाद पयांनां देह्। देव कला कै लछिंन लेह्।
वग ज्यूं ध्यांन मांडि जिनि रहौ[4]। स्वान जती की निंद्रा गहौ ॥१२॥
रस रसाइंन गोटिका निवारि। रिधि परिहरौ सिधि लेहु बिचारि।
परहरौ सुरापांन अरु भंङ्ग। तातैं उपजै नाना रङ्ग[5] ॥१३॥

मांडौ=मंडन करो, संवारो, सजाओ, अर्थात् सुनाओ (प्रसङ्ग से।)

सारी, सारिका, मैना, भक्त जन मैना पालते हैं और उससे राम नाम बुलवाते हैं। कींगुरी, चिकारा, छोटी सरगी ॥१४॥

---

१. (घ) वैसि जिनि मांडौ। २. (घ) गहला होय। इस चरण के आगे (घ) में ये चरण अधिक हैं—

साषी सबदी जस जिनि करौ। रवि ससि दोऊं गहि करि धरौ।१८।
उत्म मधिम छाड़ौ व्यौहार। सब घटि ऐक आत्मां सार॥

३. (घ) में यह चरण यों हैं—राव रंक की करौ जिनि आस।

४. (घ) फिरौ। इस चरण के आगे (घ) में ऊपर दिये पाठ के १३ वें श्लोक के प्रथम दो चरण हैं और फिरि इतना अधिक है।

राइ कै मन धीरज भया आनन्द। यण परचै, ऊग्या पिंड ॥२०॥
हंस गवनी चलौ तुम वाट। उतरौ चढ़ौ जिनि औघट घाट।

४. (घ) में यह चरण यों है—वग ज्यूं ध्यांनरैंणि दिन करौ।
और फिर इतना अधिक—मन मुषि चंचल गति परहरौ,
स्वांन तणां तुम लछिण सोवौ। थिरि दिष्टि निज मन करि जोवौ ॥२२॥
सहजैं लैंणा परहरौ उपाधि। जोगस्तन यण पर साधि।

५. (घ) में इसके आगे इतना अधिक है—

नारी चोरी परहरौ मिथ्या। एता आरम्भ सतगुर कथ्या।
पहलैं करम तणां फल होय। दोय कर जोड़ि लेहु सब जोय ॥२४॥
ऐसा एक वायक सतगुर कहै। कनक कामणी परहरि रहै।
आरम्भ जोग सुणो तुम राय। सति सति भाषंत श्री गोरष राय॥२५॥

मन पवन की विषमी संधि । चंद सूर द्वे समि करि बंधि ।
नवसै नवासी सायर सोषै । जोगी सोषै सदा भरि पोषै ।। ।2 ।।
बिन पुस्तक बंचिबा पुरांण । सुरसती उचरै ब्रह्मगियांन ।
अक्षर सोषै बजर करै । सरब दोष काया ले हरै ।। ।3 ।।
षैरै षोजै लावै बंध । तौ अजरावर थिर ह्वै कंध ।
सोषै पोषै जालैं बालैं । अहनिसि ब्रह्मअगनि पर जालै ।। ।4 ।।
अहनिसि अगनि पाप कूंषाक्ष । संधै संधै पवन लुकाइ ।
मन ह्वै धीर धीर बहै पवनं । सिवपुरी जीता राषै कवनं ।। ।5 ।।
ब्रह्मसागर सोषै बंध ज्यंद । षीर सागर सोषै अजरांवर कंद ।
बजर कछोटा आसण करै । रोगव्याधि षुध्या सब हरै ।। ।6 ।।

अपान और प्राण का सुषुम्ना में संयोग कठिन होता है । इड़ा और पिंगल से प्रवाहित प्राण को आज्ञाचक्र में सुषुम्ना में स्थिर करने अथवा प्राण-अपान को समरस करके सूर्य और चन्द्र को समरस कर दो । योगी नव सौ नवासी (असंख्य) नाड़ियों में प्राण को उत्थित करते हुए वीर्य-महारससागर को सोख लेता है, ऊर्ध्वगामी कर ब्रह्मरन्ध्र में नाद-बिन्दु का सामरस्य स्थापित कर देता है, योगी खाली नाड़ियों को वीर्य से भर देता है, इस तरह निरन्तर वीर्य को ऊर्ध्व करने की क्रिया होती रहती है । योगी के हृदय में साक्षात् सरस्वती निवास कर ब्रह्मज्ञान का उच्चारण करती है और वह परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार करता है । योगी को यौगिक क्रियाओं से अपनी काया निर्मल और निर्दोष बना लेना चाहिए, इससे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति अथवा अनुभूति में बड़ी सुविधा होती है । क्षरित होने वाले वीर्य को ऊर्ध्वगामी कर, अक्षर (न झरने वाला) कर उसे शरीर में सोख लेना चाहिए, वज्रोली मुद्रा के अभ्यास द्वारा योगी को शरीर का शोधन करना चाहिये और सहस्रार से द्रवित चन्द्रामृत के पान में सफल होना चाहिए । वीर्य को कभी अधोगामी होकर क्षरित नहीं होने देना चाहिए । मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध तथा जालन्धर आदि बन्धों के द्वारा इसे

ऊर्ध्वमुख कर रससिद्ध करना चाहिए, वीर्य महारस है, यही परिपक्व होकर सहस्रार से द्रवित चन्द्रामृत का स्वरूप ग्रहण कर लेता है, इस वीर्य को शरीर में सोख लेना चाहिए, जीर्ण कर लेना चाहिए, पचा लेना चाहिये, इससे ज्ञानदीप्ति प्रकाशित हो जाती है; सुषुम्ना में आज्ञाचक्र में ब्रह्मअग्नि प्रज्वलित हो जाती है, योगी को इस ब्रह्माग्नि को निरन्तर प्रज्वलित रखना चाहिये । ब्रह्मकुण्ड में प्रज्वलित ब्रह्माग्नि से ब्रह्मरन्ध्र में परमशिव अपने पूर्ण प्रकाश में अभिव्यक्त हो उठता है । यह ब्रह्माग्नि पाप का नाश करती है । इस ब्रह्माग्नि के शरीर में प्रज्वलित होने पर प्राण भी क्षीण नहीं होता, प्राणवायु शरीर की समस्त सन्धियों में यथास्थान स्थिर हो जाती है । नाड़ियाँ मलरहित हो जाती हैं और मन स्थिर अथवा उन्मन हो जाता है, उसकी चंचलता मिट जाती है, जीवात्मा शिवपुरी में प्रवेश कर अलख-निरंजन परब्रह्म शिव का साक्षात्कार करने में सफल हो जाता है । ब्रह्मसागर वीर्य को सोख लेने से, ऊर्ध्वगामी करने से प्राण शरीर में स्थिर होता है, इससे योगी को वीर्य को ऊर्ध्वगामी करना चाहिये, सहस्रार में द्रवित चन्द्रामृत-क्षीर-सागर का पान करने से शरीर अजर और अमर हो जाता है, इसलिये योगी को अमृत का पान करना चाहिये । योगी को वज्रकोपीन धारण करना चाहिए, और वज्रासन में स्थित रहने का अभ्यास करना चाहिए, इससे व्याधि और रोग नष्ट हो जाते हैं, भूख नहीं सताती है । (दोनों जाँघों को वज्र के समान दृढ़ कर दोनों पैरों को गुदा के पार्श्व-भाग में जमाकर बैठना ही वज्रासन है-घेरण्डसंहिता 2।।।)

उलटे चन्द्र राह कौं ग्रहै । सूरज उलटि केत संग्रहै ।
ससि द्वार सूरज थिर रहै । तत्व भांष जोगेस्वर कहै ।। 6 ।।
अरधै जाता उरधै गहै । द्वादस पवनां उनमन रहै ।
अहनिसि बाई धुंनि मैं बाजे । पछिम द्वारै पवनां गाजै ।। 7 ।।
अभि अंतरि ब्रह्म अगनि परजाले । पंच चोर ले ग्यांन संभालै ।
जोगी अपणै घरि दिवाला दीपै । ता जोगी की काया काल न छीपै ।। 8 ।।
हलि हलिं पवनां काया गरजै । सूरा होइ अभिअंतरि झूझै ।
ग्यांनषडग ले झूझिबाद्वारं । अजीतजीतिबा पंच महि सारं ।। 9 ।।
अष्ट परबत असाध साधिबा । नव दरवाजा दिढ़ करि बांधिबा ।
दसवैं दरवाजै कूची सार । मैमंत हस्ती बांधिबा बार ।। 10 ।।

भीतरि राजा झूझण हार । चहुं दिसि जाता राष्या मार ।
राजा झूझै विषमैं धाइ । मन पवन ले रहै समाइ ।। ।। ।।

कुण्डलिनी-शक्ति प्रबुद्ध होकर ब्रह्माण्ड में प्रवेश करती है । सूर्य और चन्द्र उलट कर राहु-केतु को ग्रस लेते हैं, आशय यह है कि सूर्य ऊर्ध्वमुख होने पर (विपरीतकरणी मुद्रा द्वारा) प्रभावहीन हो जाता है, इसी तरह चन्द्रमा अधोमुख हो उठता है, योगी सहस्रार से द्रवित चन्द्रामृत को स्वयं पी लेता है । चन्द्रमा और सूर्य का मेल हो जाता है, ब्रह्मरन्ध्र में तत्वप्रकाशित हो उठता है, इस तरह योगसिद्ध पुरुष, योगेश्वर अपना अनुभव व्यक्त करता है । नीचे की ओर प्रवाहित अपानवायु का ऊर्ध्वाकर्षण करते हुए प्राण में उसे एकीभूत कर अथवा मिलाकर सुषुम्ना में स्थापित कर देना चाहिए, इस तरह द्वादशांगुल प्राणवायु को आयमित अथवा नियंत्रित कर योगसाधक को उन्मनी अवस्था में स्थित रहकर स्वरूप अथवा परमशिव का चिन्तन करना चाहिए । सुषुम्ना में वायु के स्थैर्य से अनाहतनाद होने लग जाता है, इस तरह प्राणायाम की साधना कर साधक को शरीर के भीतर ब्रह्मअग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए। ब्रह्मअग्नि की साधना आज्ञाचक्र में ब्रह्मनाल, सुषुम्ना में की जाती है, यहीं से शक्ति, कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र अथवा सहस्रार में प्रवेश करती है । पंच ज्ञानेन्द्रियों को पांचभौतिक विषयों में आसक्त न होने देकर उन्हें परमात्म चिन्तन का साधना बनाना चाहिए । योगी को अपने शरीर के भीतर अलख-निरंजन की ज्योति प्रकाशित करनी चाहिए, जो योगी इस तरह परब्रह्म में तल्लीन हो जाता है, वह मृत्यु को अपने वश में कर लेता है, काल उसका बाल बाँका नहीं कर सकता है । प्राण शरीर की प्रत्येक सन्धि में प्रवेश कर गरजता है, अनाहतनाद उत्पन्न होता है, इस नाद से प्रोत्साहित होकर वीरात्मा योगी अपने भीतर ही भयानक संघर्ष कर विषय-वासनाओं पर विजय प्राप्त करता है, युद्ध ज्ञानरूपी खड्ग के द्वारा करना चाहिए, दुर्निग्रह मन को जीत लेना चाहिए और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों पर अधिकार कर लेना चाहिए । शरीर में आठ पर्वत स्थित हैं, इनकी चढ़ाई बड़ी दुर्गम है । शरीर के नव द्वार हैं । शरीर के नवों द्वारों को मुद्रित कर अन्तः साधना के द्वारा अलखनिरंजन का दसवें द्वार में प्रवेश कर ब्रह्मरन्ध्र में साक्षात्कार करना चाहिए, मदमत्त हाथी के समान मन ब्रह्मरन्ध्र अथवा दसवें द्वार पर बाँध लेना चाहिए, उन्मन करना

ऊँ आसण करि पदम आसण बँधि । पिछलै आसण पवनां सँधि ।
मन मुछावै लावै ताली । गगन सिषर में होइ उजाली ।। ।।
प्रथम बैसि बाई दर बँधि । पवनां षैलै चौसठ सँधि ।
नव दरवाजा देवै ताली । दसवां मधें होइ उजाली ।। 2 ।।
ऐसा भुवंगम जोगी करै । धरती सोषै अंबर भरै ।
गगने सुर पवनें सुरताणि । धरती की पांणी अंबरि आंणि ।। 3 ।।
ता जोगी की जुगति पिंछाणि । मन पवन ले उनमनि आंणि ।
मन पवन ले उनमनि रहै । तौ काया गरजै गोरष कहै ।। 4 ।।
चढ़ै महारस अमरा भरै । ऐसा आरम्भ जोगी करै ।
उलटी सक्ति चढ़ै ब्रह्मण्ड । नष सष पवनां षेलैं नव षंड ।। 5 ।।

ऊँकार स्वरूप का ध्यान करते हुए पहले पद्मासन में स्थित हो जाना चाहिए । इसके बाद प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए । ऐसा करने से मन की चंचलता मिट जाती है, और गगनशिखर में अलख निरंजन की ज्योति प्रकाशित हो उठती है । जिस तरह घाटियों में वायु का वेग बढ़ जाता है,

उसी तरह आसन लगाकर प्राणायाम करने से शरीर की विभिन्न नाड़ियों में वायु प्रवाहित होने लगती है, शरीर की गाँठों और जोड़ों, चौसठ सन्धियों में प्राण का यथाविधि संचार होता है, इस तरह शरीर में प्राण को स्थिर कर मन को उन्मन करते हुए साधक के शरीर के नवों द्वारों को मुद्रित (बन्द) करना चाहिए । ऐसा करने से दसवें दरवाजे, ब्रह्मरन्ध्र में प्रकाश हो जाता है और साधक अलखनिरंजन परमशिव का साक्षात्कार करता है । अपान और प्राणवायु का मेलन कर सुषुम्नामार्ग से प्रवाहित करने पर मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी-शक्ति (भुजंगम), का प्रबोध होता है, इस तरह योगी (भुवंगम) कुण्डलिनी को जगाता है, धरती (मूलाधार) का रस (वीर्य) ऊर्ध्वगामी करते हुए ब्रह्मरन्ध्र में बिन्दु और नाद का मिलन करता है, अम्बर (ब्रह्मरन्ध्र) महारस-वीर्यरूपी अमृत से परिपूर्ण हो उठता है । गगन की ओर पवन का खिंचाव (ताणि-तान) होता है, मन-पवन उन्मन हो जाते हैं, इस तरह योगी मन-पवन की साधना कर धरती (मूलाधार में) स्थित पानी (वीर्य) को आकाश में ऊर्ध्वगामी करता है । मन और पवन से ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करने पर अनाहत नाद का गर्जन होता है । महारस (वीर्य) अधोगामी न होकर, आकाश (ब्रह्मरन्ध्र) की ओर ऊँचे स्थान पर चढ़ता है । इस तरह योगसाधना का योगी आरम्भ करता है, धरती में स्थित मूलाधार में प्रसुप्त कुण्डलिनी जाग उठती है, वह ब्रह्माण्ड (ब्रह्मरन्ध्र) में परमशिव के निवास-स्थान में प्रवेश कर, उससे मिलकर समरस अथवा एक हो जाती है, सारे शरीर के नवों खण्डों में पवन का संचार हो उठता है ।

07:28

Gorakhbani - Ram Lal Srivastava.pdf

अवधू ऐसा नग्र हमारा । तिहाँ जोवौ ऊजूद्वारं ।
अरध-उरध बजार मंड्या हे । गोरष कहे बिचारं ।। 28 ।।
हरि प्राण पातिसाह, साह बिचार काजी ।
पंच तत ते उजहदारं, मन पवन दोऊ हस्ती घोड़ा,
गिनान ते अषै भडार ।। 29 ।।

काया हमारे सहर बोलिये, मन बोलिये हुजदार ।
चेतनि पहरै कोटवाल बोलिये, तौ चोर न झंकै द्वारं ।। 30 ।।
तीनि सै साठि चीरा गढ़ रचीले, सोलह षणिलै षाई ।
नव दरवाजा प्रगट दीसै, दसवां लष्यां न जाई ।। 31 ।।
अठारह भार कोट कठंजरा लाइलै, बहत्तर कोठड़ी निपाई ।
नव सत्र ऊपरै जंत्र फिरै, तब कायागढ़ लिया न जाई ।। 32 ।।
अनहद घड़ी घड़ियाल बजाइ लै परम जोति दुइ दीपक लाई ।
काम क्रोध दोइ गरदनि मारिलै,
ऐसी अदली पातिसाही, बाबै आदम चलाई ।। 33 ।।
तहाँ सत्य बीबी संतोष साहिजादा, षिमा भगति द्वै दाई ।
आदिनाथ नाती मछिंद्रनाथ पूता, काया नगरी गोरष बसाई ।। 34 ।।

विशेष : 28 से 34 पदों का अर्थ पृष्ठ 175-176 पर देखना चाहिए ।

इति श्रीग्यांन चौतीसा पठंते गुणंते करंते पापे न लिपयते ।
पुंने न हारंते ॐ नमो सिवाइ ॐ नमो सिवाइ ।
गुरू मछिन्द्रनाथ पादुका नमोऽस्तु ते ।

अष्ट चक्र

ॐ गोरष देव अष्ट चक्र बोलिये घट भीतर । ये कौंण कौंण बोलिये । अवधू प्रथमें आधार चक्र बोलिए गुदा अस्थांने, चत्र दल कंवल, षटसै सांस । तिस चक्र ऊपरि द्रिष्ट चक्र, लिंग अस्थांने षट दल कंवल षटसै सांस । तिस चक्र ऊपरि मणिपुर चक्र, नाभि अस्थांने, दस दल कंवल, षट सै सांस । तिस चक्र ऊपरि अनहद चक्र, हिरदा सथांने द्वादस कंवल, षटसै सांस । तिस चक्र ऊपरि विसुध चक्र, कंठ सथांने षोडस कंवल, एक सहंसर सांस, अजपा गायत्री पारब्रह्म

07:26
Gorakhbani - Ram Lal Srivastava.pdf

आपा सोधी ब्रह्म निरोधी सहज पलटी जोती ।
काया के भीतर मणि माणिक निपजै, तहाँ घुनि-घुनि बरषै मोती ।। 21 ।।
अरध उरध संपुष्टि करीजै । संषणि नाल अमीरस पीजै ।
अषंड मंडल तंह नाद मेरीलै । हरि आसण तह भगति करीलै ।। 22 ।।
अलेष मन्दिर तंह सिव सक्ति निवासा । सहज सुन्न भया प्रकासा ।
तहाँ चंद बिना चाँदण अगिन बिन उजाला । एतन भेदंतबृद्ध से बाला ।। 23।।
करतार तजिहूँ साकत हूँ न जाई । मन मृग राषिले बाड़ी न पाई ।
आकास बाड़ी पाताल कूंआ । भरि-भरि सींचता जो सिद्ध हुआ ।। 24 ।।
अवधू अमर कोट काया अलेष दरवाजा ।
ग्यांन गढ़ आसण प्राण भयो राजा ।। 25 ।।
अवधू फेरि ले तौ तत सार बुद्धि साँच ।
नहीं तौ लोहा गढ़िले तौ कंचन नही तौ काँच ।। 26 ।।
अवधू सिद्धा पाया साधक पाया ते उतरिया पारं ।
कथंत जती गोरषनाथ जेते न जानंत विचारं, ते जलि भये अंगारं ।। 23 ।।

हे अवधूत । मनुष्य-शरीर की प्राप्ति बहुत दुर्लभ कही गयी है, इसमें जन्म लकर जो परमात्मा का स्वरूपानुभव नही कर लेताहै, उसका जीवन व्यर्थ चला जाता हैं और जीवन के इस तरह व्यर्थ और निस्सार चले जाने का एक मात्र कारण है अज्ञान, इस अज्ञान में ही अनेक भूले होती रहती हैं । जो भूल हो गयी, वह हो गयी, ज्ञान-प्रकाश में सावधान हो जाना चाहिए, जाग जाना चाहिए, चेतना चाहिये । संशय नहीं करना चाहिये, संशय (लोहे की रेती) से आत्मा को नष्ट नहीं करना चाहिए । केवल (योगी का) भेष धारण कर लेने से भ्रम का नाश नहीं होता है, भेष और भ्रम से सद्ज्ञान मिलने में असुविधा होती है । आत्म-तत्व का विचार करते-करते परमात्म-स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है । अपने आत्मा के मयिक आवरण और विकारों का शोधन करना चाहिए, शुद्ध आत्मस्वरूप पर विचार कर शरीर में ब्रह्म का अनुभव करना चाहिए, परमात्मा हमारे भीतर विराजमान है, मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी को ब्रह्मरन्ध्र में शिवस्वरूप में प्रतिष्ठित करना चाहिए । काया के भीतर मणि-माणिक्य भरे पड़े हैं, उसमें अनेक (ज्ञान) रत्न उत्पन्न होते हैं, उसमें सहस्रार में स्थित चन्द्रमा के अमृतकण, मुक्तामणि आदि ब्रह्मरन्ध्र (आकाश) से झरते रहते हैं । शंखिनी-नाल से अमृत रस पीना चाहिए । अपान और प्राण को

04:50

Gorakhbani - Ram Lal Srivastava.pdf

अमृत-रस को सिद्ध करने का उपाय यह है कि शरीर के भीतर स्थित अनेक चक्ररूपी भट्टियों को प्राणवायु के स्थैर्य से, अपान और प्राण के सामरस्य से प्रज्वलित किया जाय । मूलाधारबन्ध लगा कर अपान वायु को (चन्द्र को) प्राण (सूर्य) से मिला कर उसे सुषुम्ना नाड़ी में प्रवाहित किया जाय, इस तरह प्राण ऊपर उत्क्रमित होकर अग्निमण्डल में प्रवेश करता है । कुण्डलिनीशक्ति चक्रों का भेदन करती हुई ऊपर उठती है, वीर्य (रस) और मन भी ऊर्ध्वगामी होते हैं । अपान मूलबन्ध के अभ्यास से ऊपर उठ कर नाभि के नीचे त्रिकोण जठराग्नि में प्रवेश करता है । इस तरह अपान और अग्नि, दोनों प्राण में मिल जाते हैं । चक्रों की भट्टी प्रज्वलित हो उठती है । प्राण की साधना के द्वारा कुण्डलिनी को प्रबुद्ध करते हुये शरीर के रस (वीर्य) को मन के साथ उर्ध्वगामी कर सहस्रार में संचित करना चाहिए और जालन्धर बन्ध सिद्ध कर स्वय अमृत का पान करना चाहिए । इस अमृतरस की सिद्धि से ही शरीर कंचन बन जाता है, अमरत्व प्राप्त करता है और इस

पिंजरे में (शरीर में) प्राणहंस (शुक्र) ठहर जाता है । यह जीवन्मुक्त हो जाता है, न पैदा होता है, न उत्पन्न होता है, मायां का आवरण सदा के लिये समाप्त हो जाता है और जीवात्मा परमशिव का स्वरूप हो जाता है । सद्गुरूदेव । यही सिद्ध का संकेत है । परमात्मा के साक्षात्कार (परिचय) का यही तरीका है । इससे मन (ऊरम) और पवन (धूरम) ज्योतित हो उठते हैं, चिन्मय प्रकाश से सारा शरीर पूर्ण हो उठता है । नवों द्वारों को बन्द कर लेने से उन्मनी समाधि में अलख निरंजन परमात्मा की ज्योति का सम्पूर्ण दर्शन होता है, शरीर में अमृत भर उठता है, नवों दरवाजों का ताला नहीं टूटता है, समाधि लगी रहती है, इतना होने पर भी यदि पिण्डपात हो जाय, शरीर की मृत्यु हो जाय तो इससे सिद्ध होता है कि सद्गुरूज्ञान का आदर नहीं किया गया है, आशय यह है कि शरीर मृत्यु का ग्रास बनता ही नहीं है । सहस्रार में अमृतसागर में अनाहतनाद की तरंगें उठती हैं । चारों ओर पवित्रता-ही-पवित्रता अथवा निर्मलता और निरंजनता का ही दर्शन होता है, उन्मनी समाधि में स्थित योगी कैवल्यपद में अतीत, स्वरूपस्थ हो जाता है । कैवल्यपद अथवा अमर पद का ध्यान कोई बिरला ही कर पाता है । अष्ट पद (पग) घूर्म ब्रह्माण्ड (ललाट), आकाश ब्रह्माण्ड (मस्तक सन्धि), शून्यब्रह्माण्ड (सहस्रदल कमल), परमशून्य ब्रह्माण्ड (तालु), अकल्पित ब्रह्माण्ड (तालुऊर्ध्व), निरंजन ब्रह्माण्ड (भ्रमरगुहा), निराकार ब्रह्माण्ड (शिखामण्डल) तथा निराधार ब्रह्माण्ड या अष्टचक्र, आधारचक्र, दृष्टिचक्र, मणिपूर, अनाहतचक्र, विशुद्धचक्र, अग्निचक्र, ज्ञानचक्र, सूक्ष्मचक्र में सहज परब्रह्म व्याप्त है । परमात्मज्ञानरूपी खर्ग से काल को जीत लेना चाहिए, मृत्यु को मार डालना चाहिए, मृत्यु का संहार ही जीवन में महाकाल परमशिव का, अमृतब्रह्म का साक्षात्कार है । ब्रह्म में अमरकायत्व ही अयागढ़ की विजय है । मृत्यु को जीत कर शरीर को अमर कर लेना चाहिए, गोरखनाथ का कथन है कि यही आत्मयुद्ध है, संसार (असत्) का अन्त कर शाश्वत जीवन में मैं स्थित हो गया ।

07:45
Gorakhbani - Ram Lal Srivastava.pdf

ऐसे रमहुं जैसे नष सिष भेदे, संक्या सरीर न लूटे ।
चलत फिरत पद माहिं समावे, जांमण मरण न छूटे ।। 23 ।।

मरि मरि जाय सुसंसा मांही, तन का मरम न पाया ।
समझया होय तो पदपंथ और षोषै जनम गमाया ।। 24 ।।
या पद की कठिन है करनी, केवल-महापुरूष की रहनी (सोई) ।
या रहनी तैं पारस निपजै लोहा कंचन पद भेट्यां पद होई ।। 25 ।।
नींझरनीर अगनि मुषि बरपे, सींचै बाग हमारा ।
या रहनी तैं पैंकंबर निपजै, तिसिया मरै संसारा ।। 26 ।।

(पूर्ण योगसिद्धि तो यही है कि) साधक को अलख निरंजन की स्वरूपानुभूति में इस तरह रमण करना चाहिए, लीन रहना चाहिए कि नखशिख पर्यन्त पूरे शरीर के भीतर ब्रह्मानुभूति-ही-ब्रह्मानुभूति व्याप्त हो गयी है । शरीर पर माया का तनिक भी प्रभाव न रह जाय, सोते-जागते, चलते-फिरते, उठते-बैठते, निरन्तर ही ब्रह्मानुभूति में चित तल्लीन हो जाय और जन्म-मरण का भय छूट जाय, जीवन्मुक्ति मिल जाय । यही कैवल्यपद की प्राप्ति कही गयी है । संशय का अन्त कर देने से ही सद्ज्ञान के द्वारा शरीर के भीतर परमात्मा का (ब्रह्मरन्ध्र में) साक्षात्कार होता है, शरीर योगसिद्धि का महान् साधन है । जो इस बात को नहीं समझता है, वह संशय और अज्ञानजनित भ्रम के द्वारा आत्मज्ञान नष्ट कर देता है । कैवल्यपद की प्राप्ति के लिये साधना में निरन्तर लगे रहने वाले साधक की करनी (अभ्यास) अत्यन्त कठिन और श्रमसाध्य है । इस रहनी-कैवल्यपदप्राप्ति में, तल्लीनता में, अलखनिरंजन परमात्मरूपस्पर्शमणि (पारसमणि) की प्राप्ति होती है । इस पारसमणि से शरीररूप लोहा-मरणशील जीवन अमृतत्वरूपी स्वर्ण में परिणत हो जाता है । (आसन, प्राणायाम, मुद्राबन्ध आदि के द्वारा कुण्डलिनी जागरण और वीर्यरस के ऊर्ध्वीकरण से सहस्रार में निरन्तर (चन्द्रमा का) अमृत बरसता रहता है । चन्द्रमा का अमृत सोलह कला से पूर्ण है, सूर्य का अग्नि तेज (विष) बारह कलावाला है, साधक इस अमृत (शेष चार कलावाले पोषकरस) का सूर्यमुख से वंचन कर स्वयं पीता है, इससे सारे शरीर में चेतनता प्रवाहित रहती है । यह शरीर एक उपवन है, हरा-भरा बाग है । यह इस अमृत से सदा पालित-पोषित अथवा सजीव रहता है । ब्रह्मानुभूति के फलस्वरूप योगसिद्ध पुरूष पैदा होते हैं, और उनके उपदेशामृत और अनुभवामृत से असंख्य लोग योगमार्ग में प्रवृत्त होकर जीवन में परमानन्द का रसास्वादन करते हैं ।

07:42
Gorakhbani - Ram Lal Srivastava.pdf

सुरति गहौ संसै जिनि लागै, पूंजी हांन न होई ।
एक तत सूं एता निपजै, टारया, टरै न सोई ।। 7 ।।
निहिचा हृवै तो तेरा निपजै, भया भरोसा नेरा ।
परचा हृवै तौ ततषिन निपजै, नहीं तर सहज न बेरा ।। 8 ।।
जे लूट्या जिनि षबरि न पाई, कसि करि यंद्री डांडी ।
तन मन की कछु षबरि न पाई, सुरति बिगोया रांडी ।। 9 ।।
बिंद और भगबाषणि और, बिन दांता जग षाया ।
प्रांण पुरूष का मर्म न पाया, छोड़ि बिगूते माया ।। 10 ।।

परमात्मा अव्यय, सनातन और अनन्त है, सदा उसके स्मरण और ध्यान में चित्त को लगाये रखना चाहिए । बुद्धि को संशय-अज्ञान और भ्रम में नहीं डालना चाहिए । आत्मा ऐसी पूंजी है, जिसका कभी क्षय नहीं होता है, यह अक्षय है, इस परमात्मतत्व के निश्चय, सनातन में समग्र विश्वास से स्वरूप-बोध की प्राप्ति होती है, निश्चय साधना-सिद्धि का परम-फल है, इस परमात्मतत्व में परिचय अथवा साक्षात्कार का तात्कालिक तत्क्षण फल है,परमा-त्मा में निर्द्धन्द्वता पूर्वक जीवात्मा की संस्थिति-अभिन्नता । यदि माया इसमें बन्धनकारिणी बनती है; जीवात्मा विषय-प्रपंच में लिप्त होकर आत्मविस्मरण करता है तो उसका सहज परमात्मसम्बन्ध से भिन्नत्व स्थापित होता है, वह सहज स्वरूपस्थिति तक नहीं पहुँच पाता है, भटक जाता है, अक्षय परमात्म धन नहीं मिलता । माया के द्वारा जो जीवात्मा परमात्मज्ञान से विमुख कर दिया

जाता है, विषय-भोग में अज्ञानपूर्वक बाँध दिया जाता है, उसे पता ही नहीं रहता है कि इन्द्रिय-जन्य विषय-भोगों की तृप्ति से परमानन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती । उसका शरीर भोग-तृप्ति और काम-वासना की पूर्ति में निरन्तर क्षीण होता रहता है और मन चंचल रहता है, चित्तवृत्तियाँ निरूद्ध नहीं हो पाती । वह योगमार्ग से विमुख होकर माया के चक्कर में पड़ कर अपनी आध्यात्मिक निधि खो देता है । (हठ) योग की साधना का आधार है वीर्य की रक्षा, शरीर में वीर्य को ऊर्ध्वगामी कर उसे महारस में परिणत कर देने से दुर्लभ अमृतपान का योगी अवसर प्राप्त करता है । बिन्दु अमूल्य है, रत्न है, पर वह भगमुखी (स्त्री के आलिंगन परिरम्भण में पुरूष की कामवासना की तृप्ति का आधार) बन जाता है, स्त्री का भग बाघिन से भी भयानक रूपवाला है, बाघिन तो दाँत से चबा कर अपने शिकार को खाती है, पर भग तो बिना दाँत के ही पुरूष का सर्वनाश कर देता है । वह कामुकता में प्रवृत्त होकर अपना पुरूषतत्व नष्ट कर देता है और मृत्यु का ग्रास बन जाता है । ऐसे कामुक को प्राण-पुरूष (अन्तर्यामी परब्रह्म) के रहस्य, तत्व का ज्ञान नहीं होता है, वह माया के द्वारा विनष्ट हो जाता है ।

सुरति गह्यौ संसै जिनि लागी, पूंजी हांन न[1] होई ।
एक तत सूं एता निपजै, टार्‌या टरै न सोई ॥ ७ ॥
निहिचा है तौ नेरा निपजै, भया भरोसा नेरा ।
परचा है तौ ततषिन निपजै, नहीं तर सहज न बेरा ॥ ८ ॥
जे लूट्या जिनि पबरि न पाई, कसि करि यंद्री डांडी ।
तन मन की कछु षबरि न पाई, सुरति बिगोया रांडी ॥ ६ ॥
बिंद और भग बाघणि औरैं, बिन दांतां जग षाया ।
प्रांण पुरुष का मर्म न पाया, छोड़ि बिगूते माया ॥ १० ॥

आत्मा की विस्मृति में न पड़े रहो । आत्मी हानि स्मृति को पकड़ो, संशय में न लगो । आत्मा ऐसी पूंजी है, जिसकी कभी हानि नहीं होती, एक आत्मा-तत्त्व ही से इतना धन अर्थात् सन्तोष-धन उत्पन्न होता है कि हटाने से नहीं हटता, कभी नहीं होता ॥ ७ ॥

अध्यात्म में निश्चय रखने से तथा उसका विश्वास (आसरा) रखने से यह धन जल्दी ही उत्पन्न हो जाता है । और आत्म-परिचय होने से तो यह तत्क्षण ही उत्पन्न हो जाता है । यदि इन में से कोई बात नहीं है, तो समझलो, कि तुम्हारा स्वाभाविक रूप से निपटारा हो गया; अर्थात् तुम्हें वह अक्षय धन नहीं प्राप्त हो सकता ॥ ८ ॥

जो माया के द्वारा लूटे जा रहे हैं और जिन्हें इस बात की खबर नहीं, वे कस कर इन्द्रियों को दंड देते हैं । उन्हें तन मन की कोई खबर नहीं । वे तो माया (रांडी) के पीछे अपनी आध्यात्मिकता को नष्ट कर देते हैं ॥ ६ ॥

बिन्दु और है, भग और । लोग समझते हैं कि कामुकता ही बिन्दु का साफल्य अथवा उसका पूर्णोपभोग या आनन्द है, किन्तु वस्तुतः बात यह नहीं है । क्योंकि बिन्दु का साफल्य और उसका वास्तविक उपभोग उसे ऊर्ध्वं-गामी बना कर अचंचल बनाना है, जिससे वह ब्रह्मानन्द की प्राप्ति में सहायक

१. (घ) में 'ज्वांनन' पाठ है । (अ) में इसका अनुवाद 'हानिनं' किया गया है । यदि (घ) को ही ठीक मानें तो सम्भवतः एक 'न' व्यर्थ है और पाठ 'ज्वा न' मानना पड़ेगा और अर्थ होगा, जुआ नहीं होता, पूंजी हारी नहीं जा सकती ।

सौंन्यौ लार्कड़ ज्यूं घुण लागै, लोहै लागै काई ।
बिन परतीति कहा गुरु कीजै, काल ज ग्रास्यां जाई ॥ ११ ॥
रांडी तज्यां न षसिया जीवै, पुरुष तज्यां नहीं नारी ।
कहै नाथ ये दोनयूं विनसं, घोषा की असवारी ॥ १२ ॥
बैसन्दर मुषि ब्रह्म[1] जो होते, सुद्र पढ़ाऊं बांनी ।
असंमेद विधि ब्रह्म-जग निपजां, नैं जुगति जमाया पांनी ॥ १३ ॥
तौ जुग रांड्या जोगेस्वर ब्याह्या, सिव सक्ती सूं फेरा ।
जा पद मिंदर पुरुष विलंब्या, वहि मिंदर घर मेरा ॥१४॥

हो और अमरत्व प्रदान करे । बाघिन तो दांतों से चबा कर खाती है, किन्तु भग बिना दांतों के दुनिया को खाया करती है । कामुकता में पड़ कर जो अपने पुरुषत्व को नष्ट करते हैं, उन्हें प्राण-पुरुष (अन्तर्यामी ब्रह्म) का रहस्य नहीं मिला । उसे छोड़ कर वे माया में पड़ कर नष्ट हो गये ॥ १० ॥

साध मुक्ति नहिं चहत हैं, सिद्ध न चाहत साध।
स्वर्गलोक नहिं चहत हैं, जिनका मता अगाध॥

चौपाई॥

इड़ा पिंगला सुखमन धारो। आसन बज्र नागिनी टारो॥
द्वादश अंगुल होय वेध षट चक्कर लीजे।
जब बाजे अनहद तूर जहां मन निज कर दीजे॥
खेचरी मुद्रा त्रिकुटी आवै। अमृत पियै परम सुख पावै॥
मेरुदण्डको प्राण चलावै। शून्य शिखर जब नगरी पावै॥
जा नगरीमें चन्द न भान। पहुँचे साधू चतुर सुजान॥
जाति पांति जहँ नाम न नाता। श्वेत श्याम पीता नहिं राता॥
योग यज्ञ तप जहां न दाना। तीरथ बर्त्त जहां नहिं न्हाना॥
किरिया कर्म जहां नहिं पूजा। मैं तू है नहिं एक न दूजा॥
जहां न सांझ द्यौस नहिं राता। एकै ब्रह्म अखंड बिधाता॥
चरणदास रामकी घाटी पहुँचे गुरुमत शूरा।
ओछी बुद्धि बाद बहुठानै करणी करै सो पूरा॥

छप्पै॥

बैठ गुफाकेमध्य योगकी युक्ति बिचारै।
आप अकेलो रहै और ना मनुष निहारै॥
चारिबारि नितकरै जाप ॐकार अराधै।
सूक्ष्म करै आहार ओगरो पतलो साधै॥
आसन पद्म लगाय के सीधी राखै मेर।
ठोढ़ी हिये लगाइये पलक झांपकरि हेर॥

दो० कुंभक आठ प्रकारके, तिनमें उत्तम एक।

तीन महीने चार का, बालक गोदी माय ।
ना वह पीवै नीरहीं, अन्न नही वह खाय ॥
वह तो जीवै दूधसूं, वाकूं वही जुकाम ।
लगो रहै माताकुचन, निसरै एक न याम ॥
अमृत पीवै योगिया, ऐसे चरणहि दास ।
पहरहु यह छांड़े नहीं, कामधेनु[1] को पास ॥
ऐसे धारै तौ बनै, सुधा रसाला संत ।
दिविकायाहोजायजब, धनिकहै कमलाकंत ॥
आठ पहर लागारहे, पीवै कै कै ध्यान ।
मैं कहा जैसाही बनै, परसै पद निरवान ॥
भेद गुरूसे ये लहै, और छिपावै वाहि ।
जोजोफलयाकेअधिक, होय परापति ताहि ॥
योगेश्वर अरु देवता, मुनी ऋषीश्वर जान ।
रखवारे वाके घने, करन न देवैं ध्यान ॥
टेक गहै सो जापियै, और करै ह्यां ध्यान ।
यति सती अरु गुरुमुखी, जाकी ऐसीआन ॥
बड़ी जु मुद्रा खेचरी, मुख में याका वास ।
जो कहिमैं शुकदेवजी, जानलेहु चरणदास ॥

अथ भूचरी मुद्रा ॥

दूजी मुद्रा भूचरी, नासा जाको वास ।
प्राण अपान जुदी जुदी, एक करै चरणदास ॥
जितकीतितरखप्राणको, वा घरलाय अपान ।
ताहि मिलावै युक्तिसूं, करि करि संयम ध्यान ॥
जब वह जीते पवनकूं, मन चंचल ठहराय ।

१ इन्द्रकी गौ ॥

गगन चढ़न की आश हो, कहैं शुकदेव सुनाय ॥
गुदाद्वार बंध दीजिये, ऐंड़ी पांव लगाय ।
आसन सिद्धजुकीजिये, मन पवनावश लाय ।
अपान वायु जब वशभवै, ऊरध खैंच चलाय ।
सनई सनई जाचढ़े, प्राण वायु ह्वैजाय ॥

अथ चाँचरीमुद्रा ॥

यहाँ जो अपर ज्योति की बात कही गई, वही प्रबुद्ध कुण्डलिनी-शक्ति है। मन-प्राण-समन्वित जीव इसके साथ आश्रित रूप में वर्त्तमान है। ग्रन्थि या चक्रभेद इसी से होता है। कुण्डलिनी-शक्ति शीत की अधिकता से सोये साँप की भाँति कुण्डली के आकार में ब्रह्मद्वार के मुँह को घेरकर सोई हुई है। इसी निद्रा के कारण जीव की बाह्यवृत्ति और भेदज्ञान जागरूक है। स्थूल आदि देह से तादात्म्य-बोध, इन्द्रिय आदि की अपने-अपने विषय की ओर प्रवृत्ति, जडता या अज्ञान, जन्म-मृत्यु— ये सभी इस निद्रा के ही फल हैं। साधना द्वारा अग्नि और वायु की सहायता से इन्हें जगाना होता है। यह अष्ट प्रकृतिरूप एवं अष्टधा कुण्डली-कृत है। यह जगते ही सरल भाव से ऊपर की ओर धावित होती है। प्रक्रियाविशेष (मूलबन्ध) के द्वारा अधःस्थित वायु को ऊपर की ओर करके कुम्भक का अवलम्बन करते ही वह निरुद्ध वायु अग्निस्थान में प्रतिष्ठित अग्नि को आघात देकर जगा देती है। फिर, उद्दीपित अग्नि और वेगवान् वायु दोनों ही एक साथ कुण्डलिनी को प्रबुद्ध करने में प्रवृत्त होती हैं। अथवा, ऊर्ध्वगामी अपान नाभि के नीचे के अग्निमण्डल में प्रवेश करके आघात करते ही अग्नि की शिखा लम्बी होती है। तब, अग्नि और अपान एक साथ उष्णस्वरूप प्राण का स्पर्श करते हैं। उससे देहज अग्नि बहुत ही प्रदीप्त होती है। इस ताप से तप्त होकर निद्रित कुण्डलिनी जाग उठती है और निःश्वासपूर्वक सरल आकार धारण करके सुषुम्णा में प्रवेश करती है। कहीं-कहीं सरस्वती नाडी की चालना एवं वायु के निरोध को कुण्डलिनी के जागरण का मुख्य साधन कहा गया है। सरस्वती या अरुन्धती नाडी के चालित होने से कुण्डलिनी को चलाने के लिए अलग से चेष्टा नहीं करनी पड़ती। लेकिन, प्राणायाम की निश्चित आवश्यकता है एवं मूल आदि बन्धत्रय की भी अवस्थाविशेष में उपयोगिता है।

मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध तथा उड्डीयानबन्ध — इन तीन बन्धों के बारे में सिद्धगण बहुतेरी बातें बता गये हैं। मूलबन्ध के द्वारा अधोगामी अपान वायु ऊर्ध्वगतिशील होकर अग्निमण्डल में प्रवेश करती है और अग्निशिखा को बढ़ाकर प्राण का स्पर्श करती है। उड्डीयानबन्ध कुम्भक के तुरत बाद ही अनुष्ठित होता है। इसके अभ्यास से प्राण

होने का कार्य आरम्भ होते ही नाभिचक्र जग उठता है और कुण्डलिनी उद्बुद्ध होती है। इस मिलन की पूर्णता का इतिहास ही षट्चक्र-भेद का रहस्य है। सहस्रार में यह मिलन सम्पूर्ण होता है। कुण्डलिनी के उत्थान के साथ-साथ त्रिकोण और लिंग दोनों ऊर्ध्वमुख होकर परस्पर गाढतर भाव से मिलित होते रहते हैं। फलतः, कुण्डलिनी का उत्थान और लिंग का उत्थान एक प्रकार से समानार्थक हैं। योग एवं अद्वय भाव की उपलब्धि नहीं होने तक यह क्रिया चलती रहती है। यही ऊर्ध्वरेता होने की साधना है। अतएव, नाभिचक्र को सुषुम्णा का मूल स्वीकार करने में कोई दोष नहीं।

ऊर्ध्वगतिशील होता है। जालन्धरबन्ध पूरक के बाद करने की व्यवस्था है। इससे नाडियों का मुँह बन्द होता है, अधोगामी अमृत-प्रवाह निरुद्ध होता है और वायु की गति सभी नाडियों से लौटकर सुषुम्णा में प्रवेश करती है। उड्डीयानबन्ध के प्रभाव से प्राण शिरोमध्य में प्रवेश करता है।

21:24
sant Charandas

ने ग्रन्थ के विषय का विभाजन प्रसगों अथवा विश्रामों में नहीं किया है। एक विषय की समाप्ति हो जाने पर वह द्वितीय विषय की विवेचना करने लगता है। इस क्रम से ग्रन्थ का विषय समाप्त हो जाता है।

155/505

ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय—ग्रन्थ का वर्ण्य विषय निम्नलिखित है :—

श्री व्यास पुत्र शुकदेव की वन्दना—ब्रह्म या ईश्वर का मार्ग बताने वाले श्री सतगुरु की प्रार्थना—संतों का सर्वकल्याणकारी व्यक्तित्व—संतों की निष्काम भक्ति—इडा, पिंगला और सुषुम्णा को धारण करके वज्रासन में कुंडलिनी को जाग्रत करने की प्रक्रिया—खेचरी मुद्रा और त्रिकुटी के माध्यम से अमृत पान और बेहद प्रदेश में प्रवेश—बेहद प्रवेश का सूक्ष्म आभास—बेहद प्रदेश का सुहावना वर्णन—गुफा मध्यस्थ होकर पद्मासन में प्रणव का जप—आठ प्रकार के कुंभक में केवल कुम्भक की श्रेष्ठता—त्रिकुटी में स्थित त्रिवेणी और तीर्थ के स्नान और दर्शन—तीर्थ की महत्ता और श्रेष्ठ वर्णन-तीर्थ का आकर्षक वर्णन—अमरी वजरी साधना—साधक की रहनी—मन और पवन पर यथोचित नियंत्रण—मोह लोभादि का विसर्जन, तटस्थ भाव से जीवन यापन का प्रयत्न-सहस्र दल कमल में प्रवेश का प्रयत्न—"सोऽहं का जाप, नौ नाडी की खैंच पवन लै उरमें दीजै"—शून्य शिखर में प्रवेश, षटचक्र भेदन-प्राण, अपान, समान को मिलाकर

तथा ंक नालशुद्ध करके प्राणायाम साधना—इस विधि से आकाश में प्रवेश करके पूर्ण ब्रह्मत्व की प्राप्ति करना—अमरलोक का रोचक तथा संक्षिप्त वर्णन—ब्राह्मण की परिभाषा ब्रह्म की सर्वव्यापकता—भ्रामक द्वैत भावना की आलोचना—राम की सर्व-व्यापकता तथा महत्ता—आत्म ज्ञान की महत्ता और अंध विश्वासों की आलोचना—बाह्याचारों की निःसारता—ग्रन्थ की रचना लिपि—शुकदेव तथा ब्रह्म की वन्दना।

विषय-प्रतिपादन—ग्रन्थ में विषय का प्रतिपादन साधरण किन्तु स्पष्ट रीति से सम्पन्न हुआ है। विषय में कहीं-कहीं क्रमबद्धता नहीं है। ग्रन्थ में विषय-प्रतिपादन की शैली प्रभावशाली और परिष्कृत है। इन सबके होते हुए भी ग्रन्थ कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में से एक प्रतीत होता है।

रचनाकाल—अन्तस्साक्ष्य के आधार पर ग्रन्थ का रचना काल चैत्र सुदी १५ सोमवार संवत् १७८१ है। कवि के शब्दों में ही :—

संवत सत्रह से इक्यासी। चैत्र सुदी तिथि पूरणमासी॥
शुक्ल पक्ष दिन सोमहिवारा। रचौं ग्रन्थ यों कियो विचारा॥
तब ही सूं अस्थापन धरिया। कछु इक बानी वा दिन करिया॥

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना कवि ने इक्कीस वर्ष की अवस्था में की थी।

छप्पै ॥

नौ नाड़ीकी खैंच पवन ले उरमें दीजे ।
बज्जर ताला लाय द्वार नौ बन्ध करीजे ॥
तीनौ बन्ध लगाय अस्थिर अनहद आराधै ।
सुरति निरतिका काम राह चल गगन अगाधै ॥
शून्य शिखर चढ़िरहे हद जहां जाय आसन करै ।
भन चरणदास ताड़ीलगे सो रामदरश कलिमल हरै ॥
चौथा पद निर्बाण धाम बेगमपुर कहिये ।
गुण अतीत जहाँ रामनिरखि नैनन सुख लहिये ॥
अद्वै रूप अखण्ड मण्ड मण्डल बहु बंका ।
जहां काल नहिं ज्वाल शब्द अति उठत निशंका ॥
निज पारब्रह्म चौरी रची शिवसहित शक्ति फेरी करैं ।

भन चरणदास चारों मुक्ति सो हाथ जोरि पायँनपरैं ।
मूल कमल में खेलि पिया कूं देखन चलिये ।
उलटि वेद षटचक्र जाइ सतवेंसे मिलिये ॥
प्राण अपान मिलाय राह पश्चिमकी लीजे ।
बंक नाल करि शुद्ध प्राण लै तामें दीजे ॥
मेरु दण्ड चढ़िजाय जब लोक लोक की गम परै ।
भन चरणदास ब्रह्मण्ड में ब्रह्मदर्शी दर्शन करै ॥

दोहा ॥

चरणदास यहि बिधिकही, चढ़िवे को आकास ।
शोधि साधि साधन अगम, पूरण ब्रह्म विलास ॥

छप्पै ॥

केवल कुंभक जानिये, साधे ताहि विशेख ॥
त्रिकुटी में तीरथ अगम, तिरवेणी जेहि नाम ।
न्हाय योगकी युक्ति सूं, पूरण हो सब काम ॥
रणजीत कहैं जहाँ न्हाइये, त्रिकुटी तीरथ धाम ।
नित परबी जहाँ होत है, भजनकरो निष्काम ॥

चौपाई ॥

जा तीरथ को पवन न लागै । जा तीरथ में जन अनुरागै ॥
जा तीरथ में रतन अनेका । पूरे गुरुसों मिलमिल देखा ॥
वा तीरथमें जो कोइ न्हावै । भवसागर में बहुरि न आवै ॥
जहां न चन्द सूर नहिं तारे । गुरुगम पहुँचे अति मतवारे ॥
जा तीरथका बँधा जो नीर । उज्ज्वल निर्मल गहिर गँभीर ॥
ब्रह्मा विष्णु जहां त्रयदेवा । योग युक्ति में लावैं सेवा ॥
बारह मास दामिनी दमकै । सोन पटीला जुगुनू झमकै ॥
रणजित मीत बास जहाँ कीजै । नित अस्नान महासुख लीजै ॥

छप्पै ॥

भ्रमरी वजरी साध बायु सरने नहिं पावै ।
द्वादश अंगुल प्राण सुरतदे ताहि घटावै ॥
मौन गहे नितरहै अल्प सूक्षम सो बोलै ।
एकबार आहार जँभाई कबहुँ न खोलै ॥
बांधैसो जाय दृढ़ छीकको अनहद धुनि अति गाजई ।
भन चरणदास शुकदेव बल सुयोग युक्ति इमि साजई ॥

दो० मन पवना वश कीजिये, ज्ञान युक्तिसों रोक ।
सुरति बांधि भीतर धसै, सूझै काया लोक ॥
मन हिरदे में रहत है, पवन नाभिके माहि ।
इन्द्री रोकै ये रुकैं, और कछू बिधि नाहिं ॥

सप्तवार

जोग मूल गहि बारंबार । सतगुरू सबदां सहज बिचार ।।टेक।।
आदित सोधौ आवागवन । घट मैं राषौ दिढ़ करि पवन ।
स्यौ पूजा करि बसवैं द्वारि । तौ गुरू पावौ आदीत वार ।। 1 ।।
सोमवार मन धरिवा सुंनि । निहचल काया पाप न पुंनि ।
ससिहर बरिषै अंवर भरै । तौ सोमवार गुंण एता करै ।। 2 ।।
मंगल बिषमी माया बांधै । चंद सूर दोऊ समि कर सांधै ।
जुरा मरण बंचौ भौ काल । तौ गुर पावौ मंगल वार ।। 3 ।।
बुधवार गुर दीन्ही बुधि । बिवरौं काया पावौ सिधि ।
सिव घरि सकती पांणीं भरै । तौ बुधवार गुन एता करे ।। 4 ।।
बृसपति वार विषम मन धरौ । पांचौं इंद्री निग्रह करौ ।
संषणी लै रूंध्या द्वार । तौ गुर पावौ बृसपति वार ।। 5 ।।
सुक्रवार सोधिवा सरीर । कहाँ बसै अंमृत कहां बस षीर ।
नव बहतरि पवनां बहै । तौ सुक्रवार गुण बिरला लहै ।। 6 ।।
थावर थिर करि आसण देहु । बारह सोलह गिणिगिणि लेहु ।
ससि हर कै घरि आवै भांण । तौ दिन दिन थावर गगैंन सनन ।। 7 ।।
सातौं आंन्या एकै रास । काला भौंरा बेधै पास ।
प्यंडे प्रांणी परचा भया । सप्त बार श्रीगोरष कह्या ।। 8 ।।

इति

मछींद्र-गोरष-बोध

गोरषोवाच-स्वांमी तुम्हें गुरू गुसांई अम्हें जु सिष ।
(सबद एक पूछिबा) दया करि कहिबा मनांहे न करिबा रोस ।
आरंभि चेला कैसैं रहै । सतगुर होइ सो बूझया कहै ।। 1 ।।
मछिंद्र उवाच - अवधू रहिबा हाटै बाटै रूष वृष की छाया ।
तजिबा काम क्रोध तृष्णां संसार की माया ।।
आप सौं गोष्टी अनन्त विचार ।
षंडित निद्रा सुछिम अहार ।। 2 ।।

06:41
Gorakhbani - Ram Lal Srivastava.pdf

पन्द्रह तिथि

बंदे गोरष एककार । पंद्रह तिथि का करहुं बिचार ।।टेक।।
अमावस दिढ़ आसण होइ । आतम परचै मरै न कोइ ।
मूल सहस्र पवनां बहै । बंक नालि तब बहत रहै ।। । ।।
पड़िवा है द्वै पष की आदि । सतगुरु सबदां सहज समाधि ।
गगन मंडल मैं रहै समाई । तौ चारि जुग लौं हेलै टलि जाई ।। 2 ।।
दुतिया द्वै कुल उधरन धीर । उनमन मनवां अखलि सरीर ।
बाहरि भीतरि एकंकार । गुरू प्रसादे भौ निधि पार ।। 3 ।।
तृतीया तृबेणी करौ स्नान । पाप पुंनि दोउ देउ दान ।
तब जोग जुगति पाऔ बिसवास । जुरा मरण नहीं कंध बिनास ।। 4 ।।
चौथे चंचल निहचल करौ । काल विकराल दूर परहरौ ।

जम जौरा का मर्दौ मांन । सतगुर कथिया पद निरबांन ।। 5 ।।
पंचमि पंच तत की संधि । माता मैंमल राषौ बंध ।
अमी महारस छिन-छिन पीवौ । गुर परसादे जुगि-जुगि जीवौ ।। 6 ।।
छटि षट चक्र बिचारौ सार । रिधि सिधि बुधि मति अषिल भंडार ।
अरथ दरब को छाड़ौ आस । काया कांमिनि भोग बिलास ।। 7 ।।
सातन सतरज तम गुण बांधे । पावौ जीवण मरण की संधि ।
अविहड़ अजर अमर पद गहौं । मन पवन ले अनमन रहौ ।। 8 ।।
आठमि अष्ट मैरौ नवनाथ । अनंत सिधां सौ मिल्यौ संघात ।
अचंभ बांणी कथी न जाइ । झरत महारस गगन समाइ ।। 9 ।।
नवमीं नव निधि काया मंझारि । पाप पुंनि देषौ पट तारि ।
बूडे पाप तिरे सत धरम । काया बाहरि जाति न जनम ।। 10 ।।
दसमी दह दिसि लागै बंध । जत सत संजम थिर हृवै कंध ।
धरम करम गुर बाचा लीन । ग्यांन बिचषन बाजै बीन ।। ।। ।।
एकादसी अग्यारह रूद्र । मांणक पायो काया समुद्र ।
अलष रतन गुरि दीयौ बताइ । एकादसी तिथि की राइ ।। 12 ।।
द्वादसी दिनकर तपै अकास । पसरै किरण होइ प्रकास ।
तहां चढ़ि भवरा रहया समाइ । सतगुरि कथिया जीवन उपाइ ।। 13 ।।
तेरसि तृकुटी संमि करि मेलि । चंद सूरज दो संमि करि मेलि ।
एक सिंध रुध्या नव घाट । सत गुर षौजी ऊजू बाट ।। 14 ।।
चौदसि चौदह रतन बिचार । काल बिकाल आवता निवारि ।
आपै आप देषौ पट तारि । उतपति परलै काया मंझारि ।। 15 ।।
पुन्यं पुनी मन की आस । माया मोह तजि भये उदास ।
सोलह कला सपूरण चंद । गुर परसादे थिर भया कंधि ।। 16 ।।
पंद्रह तिथि कला की संधि । मछींद्र प्रसादे थिर भया कंध ।
भया थिर तब आछे धीर । अनंत सिधा श्री गोरष पीर ।। 17 ।।

21:33

sant Charandas

242/505

'घेरंड संहिता' में भी इन्हीं आठ प्रकार के कुम्भक को मान्यता दी गई है :—

संहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी, शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्ट कुम्भिकाः ॥
घे० सं०—पंचमोपदेशः श्लोक ४५

अर्थात् सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और केवली भेद से कुम्भक आठ प्रकार के हैं।

कवि ने सर्वप्रथम कुम्भक की परिभाषा एवं प्रक्रिया अथवा साधना का वर्णन किया है, तदनन्तर कुम्भक के विभिन्न अष्ट भेदों का परिचय दिया है। कुम्भक की प्रक्रिया और परिचय से सम्बन्धित निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करने योग्य हैं :—

पवन पूर पूरक ही कीजै। पाछे बन्ध जलन्धर दीजै॥
कुंभक रेचक के मांध जानै। ग्राई बन्ध उड्यान पिछानै॥
पवन जोर ही सूं गहि लीजै। अर्ध ऊर्ध्व संकोच न कीजै॥
मध्यम कीजै पश्चिम तानै। ब्रह्म नारिके माहि समानै॥
नाड़ी पवन खैंचिये ऐसे। भरिये सब संध्यान जु जैसे॥
अपान वायु कूं ऊपर लावै। प्राण वायु नीचे लै जावै॥
जोपै यह साधन बनि आवै। योगी बूढ़ा होन न पावै॥
तरुण अवस्था देखे ऐसी। नितही रहै जानिये जैसी॥

कुम्भक की प्रक्रिया, लक्षण, स्वभाव तथा गुण आदि का वर्णन करने के अनन्तर कवि ने कुम्भक के अष्ट भेद का प्रारम्भ किया है। इस वर्णन में सर्वप्रथम प्रक्रिया का वर्णन किया है, तदनन्तर उसके लक्षण और महत्त्व का उल्लेख किया है। प्रायः यही क्रम आद्योपांत कुम्भक के समस्त भेदों का वर्णन करने में रखा गया है। कवि के मत से सूर्यभेद कुम्भक का सर्वप्रथम भेद है। योगशास्त्र के कुशल आचार्य घेरंड के मत से कुम्भक करते समय प्राणादि समस्त वायुओं को पिंगला नाड़ी से विभिन्न कर नाभिमूल देश से समान वायु को उठावे, पुनः धैर्य के साथ वेग पूर्वक वाम नासिकापुट से रेचन करे। तदनन्तर दक्षिण नासापुट से वायु भर कर सुषुम्ना से कुम्भक कर वाम नासा से रेचन करे। इस क्रिया को बारम्बार करना सूर्यभेद कुम्भक कहा जाता है।[1] दूसरे शब्दों में सावधानी पूर्वक सुगम आरामदेह आसन

१. सर्वे ते सूर्यसंभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत् ।
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाखंडवेगतः ॥
पुनः सूर्येण चाकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि ।
रेचयित्वा साधयेत् क्रमेण च पुनः पुनः ॥
घे० सं०—पंचमोपदेशः ६५-६६

06:45

Gorakhbani - Ram Lal Srivastava.pdf

गोरष-स्वांमी जी कथं उतपदिते प्रांण, कथं उतपदिते मन ।
कथं उतपदिते बाचा, कथं बाचा विलीयते ।। 43 ।।
मछिंद्र-अवधू अबगति उतपदिते प्रांण, प्रांण उतपदिते मन ।
मन उतपदिते बाचा, बाचा मन बिलीयते ।। 44 ।।
गोरष-स्वांमी कौंन सरोवर कौंण सनाल । कौंण मुष होइ बचिये काल ।
लोक अगोचर कैसे लिव लहे । मन पवन कैसें समि रहे ।। 45 ।।
मछिंद्र-अवधू मन सरोवर पवन सनाल । उरघ मुष होइ बंचिये जंम काल ।
अरघउरघ अगोचर लिव लहे । मन पवन ऐसें समि रहे ।। 46 ।।
गोरष-स्वांमी कौंन सो विषभी कौंण सो संघि । कौंणे चक्री लागै बंध ।
कौंणे चेतनि मन उनमनि रहे । सतगुर होइसु बूझां कहे ।। 47 ।।
मछिंद्र-अवधू अनली बिमली विषमी संधि । चाकी ऊपरि लागै बंध ।
सदा चेतनि मन उनमन रहे । ऐसा विचार मछिंद्र कहे ।। 48 ।।
गोरष-स्वामी कहां उतपन्यां व्यापक, कहाँ आदि की अस्तुत समाई ।
ए तत्व कहो गुरू गुसाई जहां हमारी उत्पति रहाई ।। 49 ।।
मछिंद्र-अवधू तिल मधैं जथा तेलं, काष्ट मधे हुतासन ।
पहुप मधे जथा बासं देही मधे तथा देवता ।। 50 ।।
गोरष-स्वांमी सापणि कुहके कौंणे भाइ, बंक नालि हुवै कौंणै ठांइ ।
जब यहि प्रांणी निद्रा करे, पिंड मधे प्रांण कहां होइ रहे ।। 51 ।।
मछिंद्र-अवधू सापिणी कुहके सहज सुभाइ । बंक नालि हुवै नाभी ठांइ ।
जब यहि प्रांणी निद्रा करे, पिण्ड मधे प्राण अपरछन रहे ।। 52 ।।
गोरष-स्वांमी कोंणें चक्र दिढ़ करि चंद । कौंणें चक्रे लावै बन्ध ।
कौणें चक्रे निपावै निरोघ । कौंणें चक्रे मन प्रमोघ ।।
कौंणें चक्रे धरिये ध्यानं कौंणें चक्रे लीजै विश्रांम ।। 53 ।।
मछिंद्र-अवधू अरधे चक्रे दिढ़ करि चंद । उरधे चक्रे लागै बन्ध ।
पछम चक्रे निपावै निरोघ । हिरदा चक्र में मन प्रमोघ ।।
कांठे चक्रे धरिये ध्यांन । ग्यांनै चक्रे लीजै विश्रांम ।। 54 ।।
गोरष-स्वांमी कौंन उदै माया सुन्नि । नौ ग्रह कैसे पाप न पुन्नि ।।
कौंन ग्रह लै उनमन रहै । सतगुर होइ सु बुझ्यां कहै ।। 55 ।।
मछिंद्र-अवधू बोलता जैसे माया सुंनि नवग्रह बिचारै पाप न पुंनि ।
सिव सकती ले उनमन रहे । ऐसा विचार मछिंद्र कहे ।। 56 ।।

मछिंद्र-अवधू राति न होती दिन सहजै आया ।
दिन प्रसरया राति सहजै समाया ।।
दिवा बुझांनां जोति निरन्तरि लीया बास ।
प्यंड न होता तब प्राण का सुंनि बेसास ।। 30 ।।
गोरष-स्वांमी काया मधे के लष चंद । पुहुप मधे कहां बसै गंध ।
दुध मधे कहां बसै घीव । काया मधे कहां बसै जीव ।। 31 ।।
मछिंद्र-अवधू काया मधे द्वे लख चंद । पहुप मधे चेतनि गंध ।
दुध मधे निरंतर बसै घीव। काया मधे सरब व्यापीक जीव ।। 32 ।।
गारेष-स्वांमी कहां बसै चंद कहां बसै सूर । कहाँ बसै नाद विंद का मुर ।
कहाँ होइ हंसा पीवै पांणी । उलटी सक्ति आप घरि आंणी ।। 33 ।।
मछिंद्र-अवधू उरधै बसै चंद अरधै बसै सूर ।
हिरदै बसै नाद बिंद का मुर ।।
गगन चढ़ि हंसा पीवै पाणी । उलटी सक्ति आप घरि आंणी ।। 34 ।।
गोरष-स्वांमी कथं उतपन्यों नादं, कथं नाद समभवते ।
कौंण ले थापते नादं, कथं नादं बिलीयते ।। 35 ।।
मछिंद्र-अवधू ऊँकार उतपतते नादं नाद सुन्नि समिभवते ।
स्रवन ले थापते नादं, नादं निरंजन बिलीयते ।। 36 ।।
गोरष-स्वांमी नादेन नादिबा बिंदेन बिंदबा, गगनेन लाइबा आसा ।
नाद बिंद दोऊ न होइगा, तब प्रान का कहां होइगा बासा ।। 37 ।।
मछिंद्र-अवधू नादे भी नादिबा बिंदे भी बिंदबा, गगने भी लाइबी आसा ।
नाद बिंद दोऊ न होइगा, तब प्राण का निरंतर होइगा बासा ।। 38 ।।
गोरष-स्वांमी आकार छूटिसी निराकार होइसी, पवन न होसी पांणी ।
चंद सूर दोऊ न होसी, तब हंस की कौन सहनांणी ।। 39 ।।
मछिंद्र-अवधू सहज हंस का षेल भणीजै, सुंनि हंस का बास ।
सहजै ही आकार निराकार होइसी, परम जोति हंस का निवास ।। 40 ।।
गोरष-स्वांमी अमूल का कौंण मूल, मूल का कथं बास ।
पद का कौंण गुरू, पूछंत गोरषनाथ ।। 41 ।।
मछिंद्र-अवधू अमूल का सुंनि मूल, मूल का निरंतर बास ।
पद का निरबांन गुरू, कथंत मछिंद्रनाथ ।। 42 ।।

मछिंद्र-अवधू मन मूल पवन बेला । सबद गुरू सुरति चेला ।
त्रिकुटी षेत्र उलटि मेला । नृवांण तत्व ले रमौ अकेला ।। 14 ।।
गोरष-स्वांमी कौंण घरि चंद कौंण घरि सूर कौण घरि काल बजावै तूर ।
कौंण घरि पंच तत्व समि रहै । सतगुर होइ सु बूझ्या कहै ।। 15 ।।
मछिंद्र-अवधू मन घरि चंद पवन घरि सूर । सुन्नि घरि काल बजावै तूर ।
ग्यांन घरि पंच तत्व समि रहै । सतगुर होइ सु बूझ्या कहै ।। 16 ।।
गोरष-स्वांमी कौण अमावस कौण सु पड़िबा । कहां का महारस कहां ले चढ़िबा ।
कौंण अस्थांने मन उनमन रहै । सतगुर होइ सु बुझ्या कहै ।। 17 ।।

मछिंद्र-अवधू रवि अमावस चंद सु पड़िबा । अरध का महारस उरध ले चढ़िबा ।
गगन अस्थांने मन उनमन रहै । ऐसा विचारि मछिंद्र कहै ।। 18 ।।
गोरष-स्वांमी कुसबद का कौण ग्रास । सुसबद का कथं बास ।
द्वादस अंगुल बाई कौण मुषि रहै । सतगुर होई सु बूझ्या कहै ।। 19 ।।
मछिंद्र-अवधू कुसबद का सुसबद ग्रास । सुसबद का निरंतर बास ।
द्वादस अंगुल बाई गुरमुषि रहै । ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ।। 20 ।।
गोरष-स्वांमी आदि का कौंण गुरू । धरती का कौंण भरतार ।
ग्यांन का कौंण अस्थांन । सुंनि का कथं द्वार ।। 21 ।।
मछिंद्र-अवधू आदि का अनादि गुरू । धरती का अम्बर भरतार ।
ग्यांन का अस्थांन चैतनि । सुंनिं का परचा द्वार ।। 22 ।।
गोरष-स्वांमी कौंण परचै माया मोह टूटै । कोंण परचै ससि घ फूटै ।
कौंण परचै लागै बंध । कौंण परचै थिर हुवै कंध ।। 23 ।।
मछिंद्र-अवधू मन परचै माया मोह टूटै । पवन परचै ससि घर फूटै ।
ग्यांन परचै लागै बन्ध । गुरू परचै अजरावर कन्ध ।। 24 ।।
गोरष-स्वांमी कहां बसै मन कहां बसै पवन । कहां बसै सबद कहां बसैं चंद ।
कौंण अस्थाने ए तत रहै । सतगुर होय सु पूछ्या कहै ।। 25 ।।
मछिंद्र-अवधू हिरदै बसै मन नाभी बसै पवन,
रूप बसै सबद गंगन बसै चंद ।
उरध सथांने ए तत रहै । ऐसा बिचार मछिन्द्र कहै ।। 26 ।।
गोरष-स्वामी हिरदै न होता, तब कहां रहिता मन ।
नाभि न होती तब कहां रहिता पवन ।।
रूप न होता तब कहाँ रहिता सबद ।
गगन न होता तब कहां रहिता चंद ।। 27 ।।
मछिंद्र-अवधू हिरदा न होता तब सुंनि राता मन ।
नाभी न होती तब निराकार रहिता पवन ।।
रूप न होता तव सुंनि रहिता सबद ।
गगन न होता तब अन्तरष रहिता चंद ।। 28 ।।
गोरष-स्वांमी राति न होती दिन कहां थैं आया ।
दिन प्रसरया राति कहाँ समाया ।।
दिवा बुझांनां जोति कहां लीया बास ।
प्यंड न होता तब प्रांण का कौंण बेसास ।। 29 ।।

06:51
Gorakhbani - Ram Lal Srivastava.pdf

रस ही माँहिं अषंडित पीर। सतगुर सबद बंधावै धीर।। ।20।।
गोरष-स्वांमी कौंण सु आत्मां आवै जाइ। कौंण सु आत्मा रहे समाइ।
कौंण सौ आत्मा त्रिभुवन थीर। कौंण परचै बांवन बीर।। ।21।।
मछिंद्र-अवधू पवन सौ आत्मा आवै जाइ। मन सौ आत्मा सुंनि समाइ।
ग्यांन सौ आत्मां त्रिभुवन थीर। सबद परचै बावन बीर।। ।22।।
गोरष-स्वांमी मन का कौंण जीव, जीव का कौंण बेसास।
बेसास का कौंण आधार, आधार का कौंण रूप।। ।23।।
मछिंद्र-अवधू मन का पवन जीव, पवन का सुंनि बेसास।
बेसास का ब्रह्म आधार, ब्रह्म का अच्यंत रूप।। ।24।।
गोरष-स्वांमी कौंण चक्र थिर होवै कंध। कौंण चक्र अगोचर बंध।
कौंण चक्र मैं हंस निरोधै। कौंण चक्र मैं मन परमोधै।
कौंण चक्र मैं लहै सवाद। कौंण चक्र मैं लागै समाध।। ।25।।
मछिंद्र-अवधू मूल चक्र थिर होवै कंद। गुदा चक्र अगोचर बंध।
मणि चक्र मैं हंस निरोधै। अनाहद चक्र मैं चित्त परमोधै।।
बिसुध चक्र मैं लहै सवाद। चंद चक्र मैं लागै समाध।। ।26।।
गोरष-ए षटचक्र का जांणैं भेव। सौ आपै करता आपै देव।
मन पवन साधै ते जोगी। जुरा पलटै काया होइ निरोगी।। ।27।।

पापे न लिप्यते पुन्ये न हरंते ऊँनमो सिवाइ
ऊँनमो सिवाइ। श्रीमछिंद्रनाथ पादुका नमस्तते।।

इति

अष्ट मुद्रा

स्वामीजी अष्ट मुद्रा बोलिए घट भींतरि, ते कौंण कौंण।
अवधू यंद्री मध्ये मूलनी मुद्रा, कांम त्रिष्णा ले उतपनी काम।
कांम त्रिष्णा समो कृतवा, मुद्रा, तौ भई मूलनी।।
नाभी मधे जलश्री मुद्रा, काल क्रोध ले उतपनी।

06:48

Gorakhbani - Ram Lal Srivastava.pdf

कौंण सुंनि थै त्रिभुवन सार । कौंण सुंनि थै उतरिबा पार ।। 69 ।।
मछिंद्र-अवधू उग्र तेज थै जोति पलटै । अभय सुंनि थैं बाचा फुरै ।
परम सुंनि थै त्रिभुवन सार । अतीत सुंनि उतरिबा पार ।। 70 ।।
गोरष-स्वांमी कथं उतपनी षुध्या, कथं उतपनां अहार ।
कथं उतपनी निद्रा, कथं उतपनां काल ।। 71 ।।
मछिंद्र-अवधू मनसा उतपनी षुध्या, षुध्या उतपनां अहार ।
अहार उतपनी निद्रा निद्रा, उतपनां काल ।। 72 ।।
गोरष-स्वांमी सति सति भाषंत हो गुरू पंडिता, मन पवन कौंण दिसा ।
कौंण द्रिष्टि कौंण बिधि ग्यांन, नृगंथापार पार उतरिबा किसा ।। 73 ।।
मछिंद्र-अवधू द्रिष्टि थैं दिव द्रिष्टि होइबा, गिनांन थैं गिनांन होइबा ।
तथा गुरू सिख की एकै काया, परचा होइ तौं बिहड़ि न जाया ।। 74 ।।
गोरष-स्वांमी कहां थै उठंत सास उसासं । कहां परमहंस का बासं ।
कौंण घर मन थिर होइ रहै । सतगुर होइ सु बूझयां कहैं ।। 75 ।।
मछिंद्र-अवधू अरधै उठंत सास उसासं । उरधै परमहंस का बासं ।
सहज सुन्नि मैं मन थिर रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै ।। 76 ।।
गोरष-स्वांमी कैंसे आवैं कैंसें जाइ । कैंसें चीया रहै समाइ ।
कैंसे मन तन सदा थिर रहै । सतगुर होइ सु बूझ्या कहै ।। 77 ।।
मछिंद्र-अवधू सुंनै आवै सुंनै जाइ । सुंनै चीया रहै समाइ ।
सहज सुंनि मन तन थिर रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै ।। 78 ।।
गोरष-स्वांमी कहां बसै सक्ती कहां बसै सीव । कहां बसै पवनां कहां बसै जीव ।
कहां होइ इनका परचा लहै । सतगुर होइ सु बूझ्या कहै ।। 79 ।।
मछिंद्र-अवधू अरधै बसै सक्ती उरधै बसै सीव । भीतरि बसै पवनां अंतरी बसै जीव ।
निरंतर इनका परचा लहै । ऐसा विचार मछींद्र कहै ।। 80 ।।
गोरष-स्वांमी कौंण मुषि बैठे कौण मुषि चलै । कौंण मुषि बोलै कौंण मुषि मिलै ।
क्यूं करि स्वांमी नृभै रहै । सतगुर होइ सुबूझ्यां कहै ।। 81 ।।
मछिंद्र-अवधू सुरति मुषि बैठे सुरति मुषि चलै । सुरति मुषि बोलै सुरति मुषि मिलै ।
सुरति निरति मैं नृभैं रहै । ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ।। 82 ।।
गोरष-स्वांमी कौंण सो सबद कौंण सो सूरति । कौंण सो बंध कौंण सो निरति ।
दुबध्या भेटैं कैसें रहै । सतगुर होइ सु बूझ्यां कहै ।। 83 ।।

06:47
Gorakhbani - Ram Lal Srivastava.pdf

गोरष-स्वांमी कौंण घर कौंण बास । कौंण गरभि रहया दस मास ।
कौंण मुषि पांणी कौंण मुषि अस्तुति षीर,
कौंण, दिसा भई उतपति सरीर ।। 57 ।।
मछिंद्र-अवधू अनील गृह अबिगत बास, अतीत गरभि रहया दस मास ।
मन मुषि पांणी पवन मुषि अस्तुति षीर,
ओंकार दिसा भइ उतपति शरीर ।। 58 ।।
गोरष-स्वांमी कौंण नालि सिव संचरया, कौंण मुषि पईठा जीव ।
कौंण गरभि बसंतडां, कौंण नालि रस पीव ।। 59 ।।
मछिंद्र-अवधू संषनि नालि सिव संचरया, सुषमनि पईठा जीव ।
माता गरभि बसंतडां, बंक नालि रस पीव ।। 60 ।।
गोरष-स्वांमी कौंन सुंनि उतपनां आइ । कौंण सुंनि सतगुरू बुझाइ ।
कौंन सुंनि मैं रहया समाइ । ए तत्वा गुरू कहौ समुझाइ ।। 61 ।।
मछिंद्र-अवधू सहज सुनि उतपनां आइ । समि सुंनि सतगुरू बुझाइ ।
अतीत सुंनि मैं रहया समाइ । परम तत्व मैं कहूं समझाइ ।। 62 ।।
गोरष-स्वांमी कौंण मुषि लागै समाधि । कौंण मुषि छूटै उपाधि ।
कौंण मुषि ले तुरिया बन्ध । कौंण मुषि अजरावर कंध ।। 63 ।।
मछिंद्र-अवधू मन मुषि बाला लागै समाधि । पवन मुषि बाला छूटै उपाधि ।
सुरति मुषि बाला तुरिया बन्ध । गुर मुषि बाला अजरावर कन्ध ।। 64 ।।
गोरष-स्वांमी कौंण सोवै कौंण जागै । कौंण दहदिसि जाइ ।
कहां थै उठंत कहां होइ होठ कण्ठ तालुका बजाइ ।। 65 ।।
मछिंद्र-अवधू मन सोवै पवन जागै । कलपनां दह दिसि जाइ ।
नाभी थै उठंत पवनां, आगै होठ कंठ तालुका बजाइ ।। 66 ।।
गोरष-स्वांमी कहां थै करै मन गुंणघणां ।
कहां थै करै पवन आवागवनां ।।
कौंण मुषि चंदा नीझर झरै । कौंण मुषि काल निद्रा करै ।। 67 ।।
मछिंद्र-अवधू हृदा थै मन करै गुंण घणां । नाभी थैं करै पवन आवागवनां ।
आप मुषि चंदा नीझर झरै । मन मुषि काल निद्रा करै ।। 68 ।।
गोरषस्वांमी कौंण तेज थै जोति पलटै । कौंण सुंनि थै बाचा फुरै ।

पर भस्म लगाने का भी रहस्य है जिससे रोमछिद्रों के बन्द हो जाने से वायु अन्दर बाहर आ जा न सके। इस पिंड के भिन्न भिन्न भागों में प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कर्क देवदत्त तथा धनञ्जय नामक दस वायु व्याप्त हैं जिसमें अन्य की अपेक्षा प्राणवायु की प्रधानता है क्योंकि योग के प्रक्रियात्मक पक्ष का आधार प्राण ही है। इडा पिंगला एवं सुषुम्ना प्राण की वाहिकाएं हैं। प्राण तथा अपान में परस्पर संघर्ष चलता, रहता है। प्राण अपान को खींचता है तथा अपान प्राण को। इस वायुसाधना की पूर्णता के लिए 'अजपाजाप' की आवश्यकता पर बल दिया गया है–

ऐसा जाप जपौ मन लाई। सोऽहं सोऽहं अजपा गाई।।
आसण दिढ़ धरि धरौ धियानं। अहनिस सुमिरौ ब्रह्मगियानम्।।
जाग्रत न्यन्द्रा सुलप अहारं। कामक्रोध अहंकार निवारम्।।
छसै सहस इकीसौ जाप। अहनद उपजै आपहि आप।।
बंक नालि मैं अग्गैसूर। रोम–रोम धुनि बाजै तूर।।
उलटै कमल सहसदलवास। भ्रमरगुफा महिं जोति प्रकाश।।[10]

नाथ सम्प्रदाय इन्द्रिय निग्रह एवं प्राण निरोध के साथ साथ मनःसाधना पर भी बल देता है। वायु से भी चंचल वेगवान इस मन को अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा[11] सांसारिक विषयों से पृथक् करके अन्तर्मुखी हो जाना। इस प्रकार मन के स्थिर एवं निष्कलुष हो जाने पर आंतरिक निर्मलता आ जाती है।

इस तरह योगाभ्यास में निरत साधक अवस्था विशेष में पहुंच जाने पर सिद्धियों को भी प्राप्त कर लेता है। ये सिद्धियां– अणिमा–महिमा–लाधिमा–गरिमा–प्राप्तिः–प्राकाम्य– ईशित्व तथा वशित्व रूप से आठ प्रकार की होती है। इनकी उपलब्धि से योगी सकल संकल्प सिद्ध पुरुष हो जाता है।

नाथ सम्प्रदाय में योगसाधना के अन्तर्गत मुख्य रूप से इन्द्रियनिरोध प्राणसाधना एवं मनःनिग्रह पर विशेष बल दिया गया है जिसकी सिद्धि हो जाने पर योगी अवस्था विशेष से होकर नाथस्वरूपेणावस्थानम् की स्थिति तक पहुंचने में समर्थ हो जाता है। वे अवस्थायें घट, परिचय तथा निष्पति आदि नामों से अभिहित होती हैं। घट का तात्पर्य है– साधक का एकरस हो जाना, शरीर

06:56
Gorakhbani - Ram Lal Srivastava.pdf

जो गमि होइ सु कहिये भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ।। 13 ।।

दत्त - अवधू ब्रह्म सूषिम तत सथूल, पवनस्य डालं मनस्य मूलं ।
गुरहि ग्यांन कथिले अपार, सांभलि गोरष कहौं बिचार ।। 14 ।।

गोरष-स्वांमी कौंणस्य गुर कौंण सि चेला, किहि बिधि होय अनंत सिधां सौं मेला ।
ब्रह्म कमल का कहिये भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ।। 15 ।।

दत्त - अवधू परमात्मा सि गुर आतम चेला, सहजं सुंनि होइगा अनंत सिधा सूं मेला ।
ब्रह्म कमल उरध मुष षिला, सांभलि गोरष उनमन कला ।। 16 ।।

गोरष-स्वांमी कौंणस्य कला, किस बिधि षूटै त्रिकुटी ताला ।
नाद बिन्द का कहियै भेव, गोरष कहै सुणो दतदेव ।। 17 ।।

दत्त - अवधू उनमनि ध्यांन पवन विधि काया, नाभ दम षूटै त्रिकुटी ताला ।
दसवैं द्वारि ब्यंद का बास, सांभलि-गोरष नाद का प्रकास ।। 18 ।।

गोरष-स्वांमी कौंणसि कंटक कौंण उचाट, किहिं बिधि षूलै ब्रह्म कपाट ।
अगम पंथ का कहिये भेव, गोरष कहै सुणौ दत देव ।। 19 ।।

दत्त - अवधू कंटक सोई जिहिं अतिवंत क्रोध, उचाट सोई आत्मा बिरोध ।
गुरगमि षूलैं ब्रह्म कपाट, सांभलि गोरष ऊजू बाट ।। 20 ।।

गोरष-स्वांमी कौंनसि दया कौन सि धन, कौंणसि बूडण कौंण सि तिरण ।
कौंन सि ग्यांन करम का भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ।। 21 ।।

दत्त - अवधू बूडण सोइ ज कंटक षुधि, तिरण सोई जु निरमल बुधि ।
ध्यांन सोइ जो दया धरम, ग्यांन सोइ बिबरजित करम ।। 22 ।।

गोरष-स्वांमी कौंण स्य बंधा कौंण स्य मुकता, कौंण सि जोगी कौंण सि जुगता ।
देव कला का कहिये भेव, गोरष कहै सुणौं दतदेव ।। 23 ।।

दत्त - बंध्या सोई जु करमहि बंध, मुकता सोई रहै निरदंद ।
जोगी सोई जुगति मन रहै, गोरष पूछै दत्तात्रय कहै ।। 24 ।।

गोरष-स्वांमी कौंण स्य जुगता कौंण स्य जोग, कौंण स्य काया व्यापै रोग ।
इनका हमसे कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ।। 25 ।।

दत्त - अवधू जुगती सोई जो जुगि-जुगि ताला, जुगति सोई जो विषै निराला ।
जोगी सोई मन भ्रम न रहै गोरष पूछै दत्तात्रय कहै ।। 26 ।।

गोरष-स्वांमी कौंण सि भरम कौंण स्य धरम, कौंण सि निसचल कौंण अधरम ।
अगम ग्यांन का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ।। 27 ।।

बीस्न कीया मृघ का रूप मार्‌या मृघ घ्याया अवधूत ।। 14 ।।
पूरब जाता पछीम हांस। मार्‌या मन मृघ मषीले मांस ।
नांली चांपी सींगी नाद बजाया। यही सींगी नाद गगन कूं जाइ।। 15 ।।
गगन मंडल में रहै समाइ। अनंत सिधां पाई जोग बाई ।
सींगी नाद गगन कूं जाई। अह निसि चंदा (रहै) गगन समाइ।। 16 ।।
पांचूं इन्द्री पूरे स्वाद। तै अवधू बजावै सींगी नाद।
अनहद नांद उरध का मूल। चंद सूर सुषमन अस्थूल।। 17 ।।
वारि गंगा पारि गंगा, मंझी जोगौटा घ्यांन।
गंग जमन लै मेर चढ़ाई, तहां प्रगट्या ब्रह्म गियांन।। 18 ।।
सींगी सेली और षड़ासण, अनंत सीधां लीन्हा जाइ ।
द्वादस डीबी उरध का मेला। अलेष मढ़ी तांहा गगन समाइ ।। 19 ।।
सोना रूपा ग्रही कूं दीन्हा। आदी पत्र लै ईस्वर कूं दीन्हा।
जोगारंभ तहां सीध समाइ। आदि धंरम सुरग उतपना आइ।। 20 ।।
बारा बरस का मुवा समांण,। श्री गोरषनाथ जगाया ।
चौसठि जोगणि भ्याष्या पूरे, अनंत सिधां आदि पत्र पाया।। 21 ।।
आदी पत्र आदी उत्यंम अनादि धरम संकर कूं पेस ।
निगुरा कूं गड़बड़ बौलिये सुगरा कू उपदेस।। 22 ।।
येता येक पंच मात्रा का ऊचार अनंत सीधां तहां सुण्या बिचार।
मच्छंद्र प्रसादे जती गौरष कहे। ते अवधू पंच भू आत्मा लहै।। 23 ।।
जे जौगी जाणै पंच मात्रा का भेव। सौ आपे करता आपे देव।
ये पंच मात्रा जोगी बूझै। ताकूं त्रिभुवन सूं सकल देवता पूजैं।। 24 ।।

इति श्री पंच मात्रा पठंत गुणंत कथंते करंते पापेन लिपंते पुन्ये न हरंते आवागवण बिब्रजते अमरलोकी सगछते। वो उं नमसिवाय। उन्मोस्यवाय गुरू मछंद्रनाथ पादुका नमस्ते। इति श्री गोरषनाथजी की पांच मात्रा ग्रंथ जोगसास्त्र संपूरण समाप्ता।

11:15
← 2015.540825.Shri-Dariy...

बिन रसना गुन उदत नार,
पांव बिन पातर निरत कार ।।४।।

जहं जल बिन सरवर भरा पूर,
जहं अनन्त जात बिन चन्द सूर ।।५।।

बारह मास जहं ऋतु बसन्त,
ध्यान धरैं जहँ अनन्त सन्त ।।६।।

त्रिकुटी सुखमन चुवत छीर,
बिन बादल बरषै मुक्ति नीर ।।७।।

अमृत धारा चलै सोर,
कोई पीवै बिरला सन्त धीर ।।८।।

ररंकार धुन अरूप एक,
सुरत गही उनहो को टेक ।।९।।

जन दरिया वैराट चूर,
जहं बिरला पहूँचै सन्त सूर ।।१०।।

पद [७]

चल चल वे हंसा राम सिन्ध,
बागड़ में क्या रह्यो बन्ध ।।टेक।।

जहाँ निर्जल धरती बहुत धूर,
जहं साकित बस्ती दूर दूर ।।१।।

रतन अमोलक परख कर, रहा जौहरी थाक ।
दरिया तहँ कीमत नहीं, उनमुन भया अबाक ॥१३॥

इड़ा पिंगल सुषमना, त्रिकुटी सन्धि मन्झार ।
दरिया पूरन ब्रह्म के, यह भी उल्ली वार ॥१४॥

सुरत उलट आठों पहर करत ब्रह्म आराध ।
दरिया तब ही देखिये, लागी सुन्न समाध ॥१५॥

सुरत ब्रह्म का ध्यान धर, जाय ब्रह्म में पर्स ।
जन दरिया जहँ एकसा, दिवस एक सौ बर्स ॥१६॥

ररंकार धुन हौद में, गरक भया कोई दास ।
जन दरिया व्यापै नहीं, नींद भूख और प्यास ॥१७॥

जन दरिया आकास लग, ओंकर का राज ।
महासुन्न तिसके परे, ररकार महाराज ॥१८॥

दरिया सुरति सिरोमनी, मिली ब्रह्मसरोवर जाय ।
जहँ तीनों पहुंचै नहीं, मनसा वाचा काय ॥१९॥

काया अगोचर मन्न अगोचर, सब्द अगोचर सोय ।
जन दरिया लवलीन होय, पहुँचेगा जन कोय ॥२०॥

धरती गगन पवन नहीं पानी, पावक चन्द न सूर ।
रात दिवस की गम नहीं, जहँ ब्रह्म रहा भरपूर ॥२१

ररंकार सतगुरु ब्रह्म, दरिया चेला सुर्त ।
जैसा मिला तैसा भया, ज्यों संचे माहिं भर्त ॥२२॥

11:12
2015.540825.Shri-Dariy...

नाभि कँवल में संचरै, सहज भरीजै डेहर ।।५।।
नाभि कँवल के भीतरै, भँवर करत गुञ्जार ।
रूप न रेख न वरन है, ऐसा अगम अपार ।।६।।
नाभि परचा उपजै, मिट जाय सभी विवाद ।
किरनै छूटै प्रेम की, देखै अगम अगाध ।।७।।

नाभि कँवल से ऊतरा, मेरु डण्ड तल आय ।
खिड़की खोली नाद की, मिला ब्रह्म से जाय ।।८।।
दरिया चढ़िया गगन को, मेरु उलघ्या डण्ड ।
सुख उपजा साँई मिला, भेंटा ब्रह्म अखण्ड ।।९।।
बंकनाल को सुध गहै, मेरु डण्ड की 'बाट ।
दरिया चढ़िया गगन को, लांघ्या औघट घाट ।।१०।।
दरिया मेरु उलग कर, पहुँचा त्रिकुटी सध ।
दुख भाजा सुख ऊपजा, मिटा भर्म का धुंध ।।११।।
अनन्त हि चन्दा ऊगिया, सूर्य कोटि परकास ।
बिन बादल बरषा घनी, छह ऋतु बारह मास ।।१२।।
बकनाल की सुध गहै, कोई पहुचै बिरला सन्त ।
अमी झरै जोति झिल मिलै, नौबत धुरै अनन्त ।।१३।।
दरिया मन परसन भया, बैठा त्रिकुटी छाजै ।
अमी झरै बिगसै कँवल, अनहद धुन गाजै ।।१४।।
दरिया त्रिकुटी सन्ध में, मन ध्यान धरै कर धीर ।
अवस चलत है सुषमना, चलत प्रेम की सीर ।।१५।।
चलै सुरसरी अगम की, हिरदे मन्झ समाय ।
जन दरिया वा सुषमना, रोम रोम हो जाय ।।१६।।
दरिया नाद प्रकासिया, सो छबि कही न जाय ।
धन्य धन्य वे साधवा, वहाँ रहे लौ लाय ।।१७।।

11:25
2015.540825.Shri-Dariy...
162/330

अकाश दिशा इक हस्ती उलटा, राई मान दरवाजा ।
ता में होय गगन में आया, सुनै निरंतर बाजा ॥३॥
सर्प एक बासक उनि हारे, विष तज अमृत पीवै ।
कृष्ण चरण में लौटे दीन होय,
अमर जुगन जुग जीवै ॥४॥
जह इड़ा पिंगला राग उचारै, चंदन सूर थकाना ।
बहती नदियां थिर होय बैठी,
कलजुग किया पयाना ॥५॥
राधा हरि सतभामा सुन्दर, मिली कृष्ण गल लागी ।
अरस परस होय खेलन लागी,
जब जाय दुबिधा भागी ॥६॥
आइ प्रतीत और भया भरोसा, भीतर आतम जागी ।
दरिया इकरंग राम नाम भज,
सहज भया बैरागी ॥७॥

पद [१८]

साधो एक अचंभा दीठा ।
कडुवा नीम कहै सब कोई, पीवै जाको मीठा ॥टेक॥
बूंद के माहि समुंद समाना, राई में परबत डोलै ।
चींटी के माहि हस्ती बैटा, घट में अघटा बोलै ॥१॥
कूंडा माहि सूर समाना, चंद्र उलट गया राहू ।
राहू उलट कर केतु समाना, भोम में गगन समाहू ।२।

गाजै गगन सुधा रस बरसै,
नौबत बाजन लागी ।।५।।
त्रिकुटी चढ़ा अनत सुख पाया,
मन की ऊनत भागी ।
ऊंचै ज्ञान ध्यान सत बरतै,
जहां सुषमन चूने लागी ।।६।।
चढ़ आकाश सकल जग देखा,
जुगती थो सो जानी ।
सम्पत मिली बिपत सब भागी,
ब्रह्म जोत दरसानी ।।७।।
जम गया दूध ब्रह्म कन निपजा,
सुरत अवेरन हारी ।
हुई रास तब बरतन लागा,
आनंद उपजा भारी ।।८।।
निपजा नाज भवन भर राखा,
ता मध सुरत समाई ।
जन 'दरिया' निर्भव पद परशा,
तहं काल त पहुँचै आई ।।९।।

पद [१६[

बावल कैसे बिसरा जाई ।
जदी मैं पति संग रस खेलूंगी,
आपा धरम समाई ।।टेक।।

11:23

2015.540825.Shri-Dariy...

पद 1[४/४३]0

साधो राम अनूपम बानी ।
पूरा मिला तो वह पद पाया,
मिट गई खेंचातानी ॥टेक॥
मूल चांप दृढ आसन बैठा, ध्यान धनी से लाया ।
उलटा नाद कंवल के मारग,
गगना माँहि समाया ॥१॥
गुरु के शब्द की कूंची सेती,
अनंत कोठरी खोली ।
ध्रू लोक पर कलश विराजै,
ररंकार धुन बोली ॥२॥
जहं बसंत अगाध अगम सुख सागर,
देख सुरत बौराई ।
वस्तु धनी पर बरतन ओछा,
उलट अपूठी आई ॥३॥
सुरत शब्द मिल परचा हुआ,
मेरु मध्य का पाया ।
ता में पैस गगन में आया,
वह जाय अलख लखाया ॥४॥
जहं पग बिन पातर, कर बिन बाजा,
बिन मुख गावै नारी ।
विन बादल जहं मेंह बरसै है,
दुमक दुमक सुख क्यारी ॥५॥

जन 'दरियाव' प्रेम गुण गाया,
वहं मेरा अरट चलाया ।
मेरु डड होय नाल चली है,
गगन बाग जहं पाया ॥६॥

11:29

2015.540825.Shri-Dariy...

172/330

कोई गृह मांड गृह में बैठा,
वैरागी बन बासा ।
जन दरिया इक राम भजन बिन,
घट घट में घर बासा ॥६॥

※ रेखता ※

पद (२९)

सतगुरु से शब्द ले रसना से रटना कर,
हिरदै में आन कर ध्यान लावै ।
षट कंवल बेध कर नाभि कंवल छेद कर,
काम को लोप पाताल जावै ॥१॥
जह साई को सीस ले जम के सिर पाव दे,
मेरु मध होय आकाश आवै ।
अगम है बाग जहं निगम गुल खिल रहा,
दास 'दरियाव' दीदार पावै ॥२॥

※※
※※

अरध उरध बिच अमृत कूवा,
जल पीवै कोई दासा।
उलटी माल गगन को चाली,
सहज भरै अकाशा ॥१॥
चेतन बैल चलै नहीं डोलै,
अलख निरंजन माली।
इच्छा बिना दशों दिश पीवै,
सहज होत हरियाली ॥२॥
नेपै हुई तभी मन परचा,
कन की रास बढ़ाई।
सुरत सुन्दरी संग नहीं छोड़ै,
टारी टरै न जाई ॥३॥
अगम अर्थ कोई बिरला जानै,
जिन खोजा तिन पाया।
जन दरिया कोइ पूरा जोगी,
कांसे नाद समाया ॥४॥

पद [२७]

साधो अलख निरंजन सोई।
गुरु परताप राम रस निर्मल,
और न दूजा कोई ॥टेक॥

11:26
2015.540825.Shri-Dariy...
164/330

राजा रंक महल में पौढ़ा, रानी तहां सिधारी।
जन 'दरिया' वा पद को परसे,
ता जन की बलिहारी ॥४॥

पद [२०]

मुरली कौन बजावें हो, गगन मंडल के बीच ॥टेक॥
त्रिकुटी संगम होय कर, गंग जमुन के घाट।
या मुरली के शब्द से, सहज रचा बेराट ॥१॥
गंग जमुन बिच मुरली बाजै उत्तर दिशा धुन होय।
उन मुरली की टेर सुनि सुनि,
रहीं गोपिका मोही ॥२॥
जहां अधर डालो हंसा बैठा, चुगत मुक्ता हीर।
आनंद चकवा केल करत है, मानसरोवर तीर ॥३॥
शब्द धुन मृदंग बाजै, बारह मास बसंत।
अनहद ध्यान अखंड आतुर, धरत सबही संत ॥४॥
कान्ह गोपी नृत्य करते, चरण बपु हि बिना।
नैन बिन दरियाव देखै आनंद रूप घना ॥५॥

राग भैरो

पद [२१]

कहा कहूं मेरे पिउ की बात,
जोरे कहूं सोई अंग सुहात ॥टेक॥

11:34
2015.540825.Shri-Dariy...

आनन्द आरती आतम देवा।
जन दरियाव करे जहां सेवा ॥६॥

——

तन मन आरती करूँ नित सेवा।
जन दरियाव मिल्या गुरुदेवा ॥टेर॥

सद्गुरु शब्द दिया सुख धारा।
निस दिन रसना राम उचारा।
कण्ठ हिरदा बिच भया परकासा।
ब्रह्म मिलन की भई मन आशा।
नाम कंवल बिच शब्द गुंजारा।
रग रग रोम रोम रंरंकारा।
पेस पयाल आकास सिधाया।
चढ्या त्रिकुटी परम सुख पाया।
ईडा पिंगला सुखमण मेला।
चान्द सूरज एकण घर मेला।
शुन्न सिखर जहँ अनहद बाजे।
अनन्त कोटि जहँ सन्त विराजे।
अनघड़ रूप अखण्ड अविनासी।
जन पूरणदास जहाँ के वासी।

——

(७)

करै यज्ञ अश्वमेध, नरपति सुर सवै जिमावै ।
तुला दान गज ग्रहण, द्वार कन्या परणावे ।।
कंचन मेरू सुमेरू, दान कर मुक्ति विचारे ।
भोम दान मिष्ठान्न, विधिवत् विघ्न निवारै ।।
कामधेनु मणि-दान, पुण्य पुनि करैं सदाई ।
चिन्ता मणि कल वृक्ष, दान दीन्हों इधकाई ।।
और धर्म विधियुत करै, नित उठ यही काम ।
पण सोच विचार कहै, यूं हरको राम बिना बेकाम ।।

(८)

जोगी जुगत विचार, पहर वाघम्बर डोले ।
धर आसन अवधूत, बोल धीमे श्वर बोले ।।
वस्ती वसे न वास, जगत की धरै न आशा ।
आबू गढ़ गिगनार, करै जगल में वासा ।।
मूल द्वार दृढ़ चाप, प्राण मस्तक में लावै ।
ध्रुव मण्डल लग देह, योग अष्टांग कमावै ।।
धोला केश न संचरै, सदा केश सिर स्याम ।
पिण सोच विचार कहै, यूं हरखो राम विना वेकाम ।

(९)

भारी ज्यूं गिर मेर, धरण ज्यूं धीरज ठाणे ।
सागर जिसा समाय, बात बुद्ध, बुद्ध की जाणे ।।

11:30
← 2015.540825.Shri-Dariy...
176/330

※ अथ गोरख छन्द※

गोरखग्यानी ब्रह्म का ध्यानी, अजराप्याला पीवन्ता ।
जुरा न झंपे काल न कंपे, जोगी जुग जुग जीवन्ता ।।
त्रसना खडी मोबत मडी, दरसन परसन देखन्ता ।
मन परचाया त्यागी माया, सत गुरु सबदां दाखन्ता ।।
उलटा आया मेरम पाया, मीर जागया मेमन्ता ।
हसे न बोले डिगे न डोले, पड़े ना झोले जुगजन्ता ।।
सुखं निवासी सिध सुरासी, अकल उदासी खेलन्ता ।
अजपा जपता सुन्न में तपता, अधर पियाला झेलन्ता ।।
षटचकवर मांही यही मिलाही निसदिन जांहि जोगन्ता ।
इगलासुंयारी पिंगला प्यारी, सुखमण नारी भोगन्ता ।।
अनहद गाजे नाथ विराजे, दसवें छाजे दीपन्ता ।
वार न पारा मांहि न बारा, सब सूंन्यारा सीपन्ता ।।
राजा राणी सेज समाणी, पीया पाणी पर घर का ।
नाथ निसाणी अणभे वाणी, बोल्या बाजी सुन्न सरका ।
ऐसा जोगी रसीया भोगी, ऐगी सबही दीपन्ता ।
पंथ चलाया निरमल काया, छोत न छाया छीपंता ।।
अम्बर बर अगा जाय रूलगा, सब्द सुजगा जाणन्ता ।
तिहुँलोक नियारा परम पियारा परब्रह्म लग प्राणन्ता ।।
अष्टग कमाया सिध कुहाया, जोग समाया जग ।
निरलेप निराळू लगे न काळू, जोत उजाळू ठेछन्ता ।।

13:47

नाभ कवल अस्थान, अंदर तब करे गुंजारा ।
रोंम रोंम जणकार, नाद घण घोर अपारा ।।
फोड़ चल्या पाताल, मेर मध मारग पाया ।
चढ तरवेणी तघत, वहां मिल अरठ चलाया ।।

अला पिंगला बीच, लगी सुखमण सुं ताली ।
पिये अगम हि बाग, नीरजन सींचे माली ।।
पांच तत गुण तीन, पचीसुं बस कर राख्या ।
चढे चोथे असथान, ग्यान अणभे तत भाख्या ।।
किसनदास महाराज, आप निरभे पद पाया ।
जन दरिया परताप, परम सुख माहीं समाया ।।
सुखराम सिख साच, दास दरिया का चेला ।
कर राजा सुं ग्यान, मेटिया भरम दुहेला ।।
राज पाट गढ गांव, नहीं थिर देही राजा ।
साच कही सुखराम, राम बिन बात अकाजा ।।
माया महल म्हडाण, नहीं थिर हसथी घोड़ा ।
हाकम हुकम अनेक, देख जुग जीवण थोड़ा ।।
धर अंबर थिर नहीं, नहीं थिर पवनर पानी ।
थिर है सिरजन हार, सबद साचो कर जानी ।।
सुख सागर सुखराम, भगत नीसाण बजाया ।
जन दरिया परताप, नृपत कुं सबद सुणाया ।।
नानग नांव निरबाण, जाण सतगुर सुं लीना ।
खबर दार हुंसीयार, सीस चरणां में दीना ।।
सुण्या सरवण सबद, राम रसणा सुं गाया ।
धर हिरदा में ध्यान, सबद नाभी गरणाया ।।

उलट उलंध्या मेर, गिगन गढ नोपत बागी ।
अला पिंगला बीच, सुरत सुखमण सुं लागी ।।
हुंस दिसा इक रंग, अंग निरमल ज्यूं गगा ।
ग्यान ध्यान गलतान, प्राण पूरण पत संगा ।।

13:42

2015.540825.Shri-Dariy...

जन दरिया म्हाराज राम रसाण सु गाया ।।

अथ घट प्रथा को प्रसंग

इन प्रसङ्ग मे ध्यान योग साधना का प्रायोगिक विशद वर्णन रसना कण्ठ हृदय मे शब्द की अद्भुत लोला व नाभी पताल मे सुरत शब्द योग से अद्भुत चमत्कार का होना शब्द का वकना मे चलकर त्रिकूटी मे जाना और वहाँ पर शब्द कृपा का प्रत्यक्ष (भीतर की) आँखो के दर्शन करना एवं शब्द का ब्रह्मरन्ध्र मे पहुँचना व कई प्रकार वाद्यो का सुनना व पूर्ण आनन्द का अनुभव करना और सतगुरु प्रेमदासजी महाराज का प्रसन्न होना ।

रसणा हिरदे नाभ काम गढ जीता भारी ।
मूल चक्र कु वंद भेद पायो इदकारी ।।
लांघ्या ओघट घाट मेर होय मारग लागा ।
चढ्या त्रिकुटी तगत, अघट सिव दाना वागा ।।
वरस एक रख मास, दास काया गढ जीता ।
मिल्या ब्रह्म सु जाय, मड में भया वदीता ।।
घुरया नाद घण घोर, मेर मुरली धुन बाजे ।
विन बादल तां बीज, घोर गन अमर गाजे ।।

वरसै जिर मिर मेह, चलै अगम जल धारा ।
नाल खाल धहचाल, हरया वन भार अडारा ।।
बोले चातग मोर टहु का कोयल देवे ।
कवला पोप केतकी फुली, भंवर माह सुख लेवे ।।
गङ्ग जमुन बह उलट, सुरसरी बहे अकारी ।
अला पींगला नार, सुखमण गावे प्यारी ।।
पग बिन पातर खेल. नाच नो विद को ल्यावे ।
बहत्तर नार हजार, राग रंग विन मुख गावे ।।
जल में लागी लाय, चहुं दिस ज्वाला छुटी ।
चढा धरण आकास, बात इचरज की दीठी ।।
जिल मिल जोत अपार, अनन्त ससि भाव प्रकासा ।
मान सरोवर मंझ. हंस जहां करे बीलासा ।।
बांज नार के एक पुरुष विन बालक हुआ ।
गुरगडी मरदग ताल, बीण बजर सहनाई ।।
घूगर की जंणकार, श्री मंडल इद काई ।
वरगु मूंगल ढोल, पूरे कर नाल नागारो ।।

11:35

2015.540825.Shri-Dariy...

194/330

इड़ा पिंगला सुखमण मेला ।
पांचू पुरुष त्रिकुटी भेला ॥४॥
सुरत निरत में जाय समावे ।
जन 'नानगदास" आरती गावे ॥५॥

——

ऐसी आरती राम तुम्हारी ।
चरण शरण में सुरति हमारी ॥१॥
ज्ञान ध्यान का बाजा बाजे ।
सुरत अनाहद अम्बर गाजे ॥२॥
धुन बिच शहर सुन्न बाजारा ।
गृह में लाग रह्या झणकारा ॥३॥
चान्द सूरज एकण घर छाजै ।
त्रिकुटी मांहि ब्रह्म बिराजै ॥४॥
ईडा पिंगला राग उचारै ।
सुखमण सेजा पीव पधारै ॥५॥
झिलमिल ज्योति ब्रह्म की जागी ।
जुरा-मरण जम का भय भागी ॥६॥
जन हरका गुरु देव बताया ।
देव दिरंजन देह में पाया ॥७॥

——

तेरसि तृकुटी[1] संमि[2]करि मेलि। चंद सूरज दो संमि[2] करि मेलि।
एक सिंघ रूंध्या[3] नव घाट। सत गुर[4] षोजौ[5] ऊजू वाट[6] ॥१४॥
चौदसि चौदह[7] रतन बिचार। काल बिकाल आवता निवारि।
आपैं[8] आप देषौ पट तारि। उतपति परलै[9] काया मंझारि ॥१५॥
पून्यं[10] पुगी मन की आस। माया मोह तजि भये उदास।
सोलह[11]कला सपूरण[12] चंद। गुर परसादे[13]थिर भया[14] कंधि ॥१६
पंद्रह तिथि कला कीं संधि। मंछींद्र प्रसादैं[15] थिर भया[16] कंध।
भया थिर तब आछै धीर। अनंत सिधां[17] श्री गोरष पीर ॥१७॥

---

१. (क) तृकुटि। २. (घ) समि। ३. (घ) रूधा; (ङ) रूध्या। ४. (घ) सतगुर। ५. (घ) षोजै। ६. (ङ) कथिया आह वाट। ७. (घ) चवदसि चवदेह। ८. (घ) आपे। ९. (क) प्रले। १०. (घ) पूनिम; (ङ) पून्यो। ११. (घ) सोलहै। १२. (घ) संपूर्ण। १३. (घ), (ङ) प्रसादहदे। १४. (घ) थिर होय। १५. (घ) मछिंद्र प्रसादे। १६. (घ) थिरि भया; (घ) भया धीर जब आछै धीर; (क) में 'धीर' के स्थान पर 'तीर'। १७. (क) जती।

पंद्रह तिथि

बंदै[1] गोरष एकंकार[2] । पंद्रह[3] तिथि का करहु[4] विचार ।।टेक।।
अमावस दिढ़ आसण[5] होइ[6] । आतम[7] परचै मरै न कोइ[6] ।
मूल सहस्र[8] पवनां बहै[9] । बंक नालि तब[10] बहत रहै[11] ।।१।।
पड़िवा है द्वै पष[12] की आदि । सतगुरु सबदां सहज समाधि ।
गगन मंडल मैं रहै समाइ[13] । तौ चारि जुग लौं हेलै टलि जाइ ।।२।।
दुतिया द्वै कुल उधरन धीर । उनमन मनवां अखलि सरीर ।
बाहरि भीतरि एकंकार । गुरु प्रसादैं भौ निधि पार[14] ।।३।।
तृतीया त्रबेणी करौ स्नान । पाप पुंनि दोउ देउ[15] दान ।
तब जोग जुगति पाऔ[16] बिसवास । जुरा मरण[17] नहीं कंध बिनास।।४।।
चौथे चंचल निह्चल करौ । काल बिकाल दूर परहरौ ।।
जम जौरा का मर्दौं मांन । सतगुर कथिया पद निरवांन ।।५।।

यदि योगी ब्रह्मरंध्र में समाया रहे, तो चार युग तक खेलवाड़ में आसानी से कट जाते हैं अर्थात् एक प्रलय से दूसरे प्रलय तक उसका कोई कुछ नहीं कर सकता ।।२।।

चंचल=मन । जौंरा=यमराज । जोर देने के लिए जम जौरा कहा गया है । ऐसे ही प्रयोग शब्दों की द्योतन शक्ति को बढ़ाते हैं ।। ५ ।।

पंद्रह तिथि (क) (ख) (ङ) और (अ) के आधार पर ।

१. (क) बंदौ । २. (घ) (ङ) एकंकार । ३. (घ) सोलै; (क) सोलह । ४. (ङ) में नहीं; (घ) करूं । ५. (घ) आसन दिढ । ६- (घ) होय·· कोय । ७. (घ) आतम । ८. (घ) सहंभ । ९. (घ) (ङ) फिरै । १०. (क) नव । ११. (घ) बहैतरि मरै । १२. (घ) है पछि । १३. (घ) (क) में समाइ, आदि के 'इ' के स्थान पर सर्वत्र 'य' है । १४. (घ) भए निधि पार । १५. (क) यौ; (घ) सौह । १६. (घ) पावै । १७. मरन । १८. (क) गुर । १९. (क) नृबांन ।

2015.346849.Gorakha-B...

भींतरि[1] राजा झूझण[2] हार। चहुँदिसि जाता राष्या मार[3]।
राजा झूझै विषमैं घाइ[4]। मन पवन ले रहै समाइ[4] ॥११॥
मन पवन[5]की विषमी संधि[6]। चंद सूर द्वै[7]समिकरि बंधि।
नवसै नवासी[8] सायर सोषै। जोगी सोषै[9] सदा भरि षोषै[10] ॥१२॥
बिन पुस्तक[11] वंचिवा पुरांण। सुरस्वंती[12]उचरै ब्रह्म गियांन।
अभ्रर सोषै वजर[13] करै। सब[14] दोष काया ले हरै ॥१३॥
षेरै षोजे[15] लावै बंध। तौ अजरावर[16] थिर ह्वै कंध।
सोषै पोषै जालैं बालैं। अह निसि ब्रह्म अग्नि परजालै[17] ॥१४॥

युद्ध करने वाला राजा (आत्मा) भीतर है, जिसने चारों दिशाओं में भागने वाले मन को मार कर भीतर सुरक्षित रक्खा है।

राजा (आत्मा) कठिन (वारों को सहता हुआ) युद्ध करता रहता है, और मन पवन का योग कर योग-लीन रहता है ॥११॥

मन पवन का मेल कठिन है। इसीलिए चंद्र और सूर्य को सम करके एक में बाँध दो। योगी शुक्राधिक्य से विचलित नहीं होता। वह नौसौ नवासी सागरों को (अर्थात् अपरिमित शुक्र को) शोष लेता है, ऊर्ध्वगामी बना देता है, और खाली स्थान को फिर भर देता है। षोषै=(शुष्क, खुश्क) खोखलेको ॥१२॥

योगी को शिक्षा के लिए पोथी-पुराण पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती। स्वयं सरस्वती उसके हृदय में बैठकर ब्रह्मज्ञान का उच्चारण करती है, जरा विरोधी शुक्र को शोषण (अर्थात् ऊर्ध्वगामी बना) कर वज्रोली मुद्रा साधे, और काया का सब दोष नष्ट कर डाले ॥१३॥

(जो अमृत) क्षरित हो रहा है, उसे खोज कर (जालंधरादि) बंधों के (द्वारा उसके नाश को रोके) तो अजर अमर होकर शरीर (कंद, कंध,

---

१. (क) भीतरि। २. (घ) झूझण। ३. (क) मारि। ४. (घ) विषमी घाय…रह्या समाय। ५. (घ) पवनां। ६. (घ) सिंधि। ७. (घ) दोऊं। ८. (घ) नौसै निवासी। ६. (घ) सोषि। १०. (घ) पोषै (अ) 'भरि पोषै' का अर्थ पुनरापूरयति करता है। ११. (घ) विणि पुस्तगि। १२. (घ) सुरसती। १३. (क) ब्रज सोषै वज्र। १४. (क) अव। १५. (घ) खोषै। १६. (घ) अजरावर थिरि होय। १७. (घ) अगनि प्रजालै।

नाद बिंद का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥१७

द०—अवधू उनमनि ध्यांन पवन बिधि काया,

नाभ दम पूटै त्रिकुटी ताला ।

दसवैं द्वारि ब्यंद का बास, साँभलि गोरष नाद का प्रकास ॥१८॥

गो०—स्वांमीं कौणसि कंटक कौंण उचाट,

किहि विधि षूलै ब्रह्म कपाट ।

अगम पंथ का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥१९॥

द०—अवधू कंटक सोई जिहि अतिवंत क्रोध,

उचाट सोई आत्मा बिरोध ।

गुरु गमि षूलै ब्रह्म कपाट, सांभलि गोरष ऊजू बाट ॥२०॥

गो०—स्वांमीं कौनसि दया कौंन सि धन,

कौंण सि बूडण कौंन सि तिरण ।

कौंन सि ग्यांन करम का भेव, गोरष कहैं सुणौ दतदेव ॥२१॥

द०—अवधू बूडण सोइ ज कंटक बुधि, तिरण सोई जु निरमल बुधि ।

ध्यांन सोइ जो दया धरम, ग्यांन सोई विवरजित करम ॥२२॥

गो०—स्वांमीं कौंण स्य बंधा कौंण स्य मुकता,

कौंण सि जोगी कौंण सि जुगता ।

देव कला का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दत देव ॥२३॥

द०—बंध्या सोई जु करमहि बंध, मुकता सोई रहै निरदंद ।

जोगी सोई जुगति मन रहै, गोरष पूछै दत्तात्रय कहै ॥२४॥

गो०—स्वांमी कौंण स्य जुगता कौंण स्य जोग,

कौंण स्य काया ब्यापै रोग ।

इनका हम से कहियै भेव गोरप कहै सुणौ दतदेव ॥२५॥

ऊजू=वह जो ।

---

१. (घ) गुहिज । (घ) पूटै ।

मछिंद्र—अवधू सहज हंस का षेल मणीजै, सुंनि हंस का बास[1] ।
सहजैं हीं[2] आकार निराकार[3] होइसी,
परम[4] जोति हंस का निवास[1] ॥ ४० ॥

गोरष—स्वांमीं अमूल का कौंण मूल, मूल का कथं बास ।
पद का कौंण गुरू, पूछंत[5] गोरष नाथ ॥ ४१ ॥

मछिंद्र—अवधू अमूल का सुंनि मूल, मूल का निरन्तर बास ।
पद का निरबांन[6] गुरू, कथंत मछिंद्र[7] नाथ ॥ ४२ ॥

गोरष—स्वांमीं जी कथं उतपदिते प्रांण, कथं उदपदिते मन[8] ।
कथं उदपदिते वाचा, कथं बाचा बिलीयते[9] ॥ ४३ ॥

मछिंद्र—अवधू अवगति उतपदिते प्रांण, प्रांण उदपदिते मन[10] ।
मन उदपदिते वाचा, बाचा मन बिलीयंते ॥ ४४ ॥

गोरष—स्वांमीं कौंन सरोवर कौंण सनाल । कौंण मुष[10] होइ बंचिये[11] काल ।
लोक अगोचर कैसैं लिव[12] लहै । मन पवन कैसैं समि रहै ॥४५॥

मछिंद्र—अवधू मन सरोवर पवन सनाल ।
उरध[13] मुष होइ बंचिये जंम काल ॥
अरध उरध[14] अगोचर लिव[12] लहै । मन पवन ऐसैं समि रहै ॥४६॥

गोरष—स्वांमीं कौंन सो विषमीं कौंण सो[15] संधि[16] । कौंणें चक्री[17] लागै बंध ।
कौंणें[18] चेतनि मन उनमनि रहै । सतगुर होइसु[19] बूझां कहै ॥४७॥

मछिंद्र—अवधू अनली विमली विषमीं संधि । चाको[19] ऊर्पार लागै बन्ध ।
सदा चेतनि मन उनमन रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥४८॥

---

१. (घ) बासा...निवासा । २. (घ) सहज ही । ३. (घ) निरांकार । ४. (क) पर्म । ५. (घ) पूछंत जती । ६. (क) न्रबांण । ७. (घ) भी म... । ८. (घ) मँन । ९. (क) में ४३, ४४ नहीं हैं । १०. (घ) मुषि । ११. (घ) बांचीवा । १२. (घ) ल्यौ । १३. (क) उरद । १४. (घ) अर्ध उर्ध । १५. (घ) स । १६. (घ) सिध । १७. (घ) कौंण हीं चक्री लावै । १८. (घ) कौंण । १९. (घ) चौकी ।

जोग मूल गहि बारंवार[1] । सत गुरु सबदां[2] सहज बिचार । टेक

आदित[3] सोधो आवा गवन । घट में राषो दिढ़ करि पवन ।

स्यो[4] पूजा करि दसवें द्वारि[5] । तौ गुर पावौ[6] आदित[3] वार ॥१॥

सोमवार मन धरिवा सुंनि[7] । निहचल[8] काया पाप न पुंनि[9] ।

ससिहर बरिषै[10] अंबर भरै । तौ सोमवार गुंण[11] एता करै ॥२॥

मंगल बिषमीं[12] माया बंधि । चंद सूर दोऊ समि[13] कर संधि ।

जुरा मरण बंचौ[14] भौ काल । तौ गुर पावौ[6] मंगल वार ॥३॥

बुधवार गुर दीन्ही बुधि । बिचरौं[15] काया पावौ[16] सिधि ।

सिव घरि सक्ती[17]पांणीं भरै । तौ बुधवार गुन[18]एता करै ॥४॥

बृसपति[19] वार विषम मन धरौ । पांचौं इंद्री[20] निग्रह करौ ।

षंपणीं[21]लै रूंध्या नव[22]द्वार । तौ गुर पावौ[16] बृसपति[19]बार ॥५॥

सुक्रवार सोधिबा शरीर । कहां बसै अंमृत[23] कहां बसै पीर ।

नव बहतरि[24] पवनां चढ़ै । तौ सुक्रवार गुण[25] बिरला लहै ॥६॥

सप्तवार (क) (घ) (ङ) और (अ) के आधार पर ।

१. (घ) बारूंबार । २. (क) सबदा । ३. (क) आदीत । ४. (घ), (क) शिव । ५. (घ) द्वार । ६. (क) पाओ । ७. (क) शून्य ; (घ) सुनि । ८. (क) (ङ) निश्चल । ९. (घ) पुनि । १०. (घ) बरषै । ११. (घ) गुण । १२. (घ) बिषमी । १३. (ङ) एक । १४. (क) बंचो जम काल ; (क) बंचो काल ।

१५. (घ) ब्योरो : (ङ) बिचरो (?) । १६. (घ) पाओ । १७. (घ) सक्ति । १८. (घ) गुर । १९. (क) बहस्पति : (क) बिसपति । २०. (घ) यंद्री । २१. (घ) षंषणी । २२. (ङ) 'लै नव' के स्थान पर रूंधो पवना ; (घ) रोधै पवना । २३. (घ) अमृत । २४. (घ) नवै बहोतरि । २५. (घ) काई ।

थावर थिर[1] करि आसण देहु[2] । बारह सोलह गिणि गिणि[3] लेहु[2]।

ससि हर कै घरि आवै[4] भांण[5] । तौ दिन दिन थावर गगँन सनांन ॥७॥

सातौं आंन्यां एकैं रास[6] । काला भौंरा[8] बेधै[9] पास[6] ।

त्यंहै प्रांणीं[10] परचा भया । सप्त[11] बार श्रीगोरष कह्या ॥ ८ ॥

बारह=सूर्य । सोलह=चंद्र ॥७॥

[क]—(६)

कुछ पद

आदि नाथादि पार ब्रह्म ॐ शिव सकती। नाद बिंद ले काया उतपती।
नाद-बिंद रूपी बोलिए ॐ कार।
बिंद रूपी बोलिए काया। प्रथम आदि उतपती माया॥
उदै भईला सूर अस्त भईला चंदा। दुहु बिच कल्पना काल का फंदा॥
उदै ग्रह अस्त एक करि बास। तब जानवा जोगींद्र जीवन आसा॥
बारह कला रवि सोलह कला ससी। चारि कला गुरुदेव निरंतर बसी॥
हीण पद सुन्याया लागा डंसा। तन का तेज ले उड़िया हंसा॥
हंस का तेज ले थिर रहै काया। काल का भेद कहौ गुर राया॥
द्वै पष छेदि एक है रहणां। चंद्र सूर दोउ सम करि गहणां॥
ऊंच भै उपरै, मध्य निरंतरै [आई।] ता तलि भाठि जराई॥
सीजि अमीरस कंचन हुआ। यहि विधि पिंजरै वानवै सुआ॥
उपजंत दीसंत निपजंत नाहीं। आवरण नास्ति संसार माहीं॥
बूझिले सतगुर बुद्धि भेद सिद्ध संकेत। परचा जाणि लगावो हेत॥
ऊरंम धूरम जोती माला। नौ कोटि पिड़की पूरले ताला॥
ताला न टूटै षिड़की न भाजै। पिंड पड़ै तो सतगुर लाजै॥
भरे सागर धुनि धूसर कूंची। तहां सकल विध है सोई सूची*॥
इहि विधि जोगी अतीत होई। अमर पद ण्यावत विरला कोई॥

कुछ पद केवल (ङ) के आधार पर। सीजि = सिद्ध हो कर।

*मूल में 'सूची' नहीं है। उसके स्थान पर कोई दूसरा शब्द भी नहीं है। सूची (शुचि) तुक को देखते हुए अनुमान से वहां पर रख दिया गया है।

[क] (२)

महादेव गोरष गुष्टि

ईश्वरोवाच ॐ अविगत उतपते इच्छा। इच्छा उतपते आकास। आकास उतपते वाय। वाय उतपते तेज। तेज उतपते तोयं। तोयं उतपते मही।

अविगत ते इच्छा। इच्छा तैं आकास। आकास नाम, स्याम वरण दसवैं द्वार वासा, दाहिणे पैसार, वार्म श्रवण निकास, नाद सुनै सो आहार, दंभ वड़ाई व्यौहार। राग दोष हर्ष शोक मोहादिक ये पांच प्रकृति आकास की बोलिये। इन आकास मारग जीव अनुसरै तौ सेतरज षानि भोगवै।

आकास से वायु नाम, नील वरण, नाभि वासा, इला पैसार, पिंगुला निसार, गंध वासना आहार, क्रोध व्यवहार। गावण, धावण, वलगन, संकोचन, पसारण, ये पांच प्रकृति वायु की वोलिये। इन वायु मारग जीव अनुसरै तौ अंडरज षानि भोगवै।

वायु ते तेज नाम, रक्त वरण, त्रिकुटी वासा, दाहिणे नेत्र पैसार, वामें निसार, दृष्टि देषै सो आहार, मोह व्यौहार। क्षुधा, त्रिषा, निद्रा, आलस, क्रांति ये पांच प्रकृति तेज की बोलिये। इन तेज मारग जीव अनुसरै तौ रज (?) षानि भोगवै।

तेज ते आप नाम, स्वेत वरण, ललाट वासा, जिभ्या पैसार, इन्द्री निकास, स्त्री आहार, काम व्यौहार। लाल, मूत्र, प्रस्वेद, रुधिर, मज्जा ये पांच प्रकृति आपकी वोलिये। इन आप मारग जीव अनुसरै तौ उद्‌वीरज षानि भोगवै।

महादेव गोरष गुष्टि केवल (ङ) के आधार पर।

द०—अवधू जानै सोइ परचै जग, नांथ न जांणै सोइ विषियारत।
ससिहर सूर अगोचर बासा। सांभलि गोरष कहूं प्रकासा ॥३६॥

गो०—कौंन अगोचर कौन प्रकास, कौंन घरि षेलै निरास।
कौंन सिधा का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दत देव ॥३७॥

द०—अवधू ब्रह्म अगोचर मन प्रकास, परचै घरि षेलै निरास।
परम ज्योति यहां सिध गहि रहै, गोरष पूछै दत्तात्रय कहै॥३८॥

गो०—स्वांमीं कौणसि परचै कौण प्रतीत, कैसें थिर चंचल चीत।
मन पवन का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दत देव ॥३९॥

द०—अवधू गुर परिचय मन प्रतीत, निसचल अस्थीर चंचल चीत।
पवन थिरंता मन थिर रहै, गोरष पूछै दत्तात्रय कहै ॥४०॥

गो०—कौनसि निसचल ले बंधे बंद, जुरामरण अजराबर कंद।
गगन पद का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥४१॥

द०—अवधू निसचल सो जो न पड़ै काया,
त्रिगुण रहत सो गगन समाया।
सहज पद परम नृबांन, सांभलि गोरष ए परवांन ॥४२॥

गो०—स्वांमीं कौंन सकति कौंन सीव, कौंन तीनि भवन का जीव।
कौंण सि आसा पुरवई भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥४३॥

द०—अवधू सकति सोइ जो सबहीं सोषै, सीव सोइ जो सबको पोषै।
जीव इक तीनि भुवन जगनाथ, सोइ सङ्ग जो पूरइ आस॥४४॥

गो०—स्वांमीं कौन कौन ले कथिवा ग्यांन, कौंण तत्त ले धरिवा ध्यांन।
कौंण समाधी तुम्हें लागे भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥४५॥

द०—अवधू आत्मा चिनंति[1] कहा कथिबा ग्यांन,
तत्व बिचारिवा कहा धरिवा ध्यांन।
दत कहै हम सहज समांन, सांभलि गोरष पद निरबांन ॥४६॥

---

१. (ब) चिन्हति।

भूल्या सो भूल्या बहुरि चेतना। संसा के लोहे आपा न रेतना।
भेष तजि भ्रम तजि राषि सत्य सोई। तत बिचारतां देवता होई॥
आपा सोधौ ब्रह्म निरोधौ सहज पलटौ जोती।
काया के भीतर माणिक माणिक निपजै, तहां धुनि धुनि बरषै मोती॥
अरध उरध संपुष्ट करीजै। संपणि नाल अमीं रस पीजै।
अपंड मंडल तहं नाद मेरीलै। हरि आंगण तहं भगति करीलै॥
अलेष मंदिर तहं शिव शक्ति निवासा। सहज सुन्न भया प्रकासा।
तहां चंद बिना चांदणा आगन बिना उजाला। गगन मंडल बृष्टि से आला॥

करतार तजिहूँ साकत हूँ न जाई। मन मृग राषिले बाड़ी न षाई।
आकास बाड़ी पाताल कूंआ। भरि भरि सींचता जो सिद्ध हुआ॥
अवधू अमर कोट काया अलेष दरवाजा।
ग्यान गढ़ आसण प्राण भयो राजा॥
अवधू फेरि ले तौ तत सार बुद्धि सांच।
नहीं तौ लोहा गढ़ि ले तौ कंचन नहीं तौ कांच॥
अवधू सिद्धा पाया साधक पाया, ते उतरिया पारं।
कथंत जती गोरषनाथ जेते न जानंत बिचारं, ते जलि भये अंगारं॥३॥

पद

निर्गुण

जोग जुगुत हम जानी साधो, जोग जुगुत हम जानी रे ।टेक।
१—मूलाधार में बन्ध लगाकर, उल्टो पवन चलाई रे,
षट् चक्कर का मारग सोंधा, नागन जाय उजारी रे ।टेक।
२—नाभि के पश्चिम के मारग, मेरूदंड चढ़ाई रे,
ग्रन्थी खोल गगन पर चढ़िया, दशवें द्वार समाई रे ।टेक।
३—भँवर गुफा में आसन मारो, काया सुध बिसरानी रे,
बिन चन्दा बिन सूरज चमके, जगमग ज्योत जगानी रे ।टेक।
४—शिव शक्ति को मेल भयो जब, शून्य में सेज बिछानी रे,
'शिवानन्द' गुरू कृपा से, आवागमन मिट जानी रे, ।टेक।
जोग जुगुत हम जानो साधो, जोग जुगुत हम जानो रे ।।

निर्गुण

अनहद को ध्वनि प्यारी साधो, अनहद की ध्वनि प्यारी रे ।
आसन पद्म लगा करके वो, मूँद कान की बारी रे ।।
झीनी स्वर से सूरत लगावो, होत नाद झनकारी रे ।
पहिले-पहिले रलमिल बाजे, पीछे न्यारो-न्यारी रे ।।
घंटा, शंख, बाँसुरी, वीणा, ताल मृदंग नगारी रे ।
दिन-दिन सुनत नाद जब विकसे, काया कम्पत सारी रे ।।
अमृत बुंद झरे मुख माँही, योगी जन सुखकारी रे ।
तन की सुध सब भूल जगत है, घट में होय उजियारी रे ।।
"शिवानन्द" लीन मन होवे, देखो बात हमारी रे ।
अनहद की ध्वनि प्यारी साधो, अनहद की ध्वनि प्यारी रे ।।

21. விந்துசயம்-போகசரவோட்டம்

CONQUEST OF BINDU — REGULATION OF BINDU FLOW

பார்க்கின்ற மாதரைப் பாரா தகன்றுபோய்
ஓர்க்கின்ற உள்ளம் உருக அழலூட்டிப்
பார்க்கின்ற கண்ணனைப் பாழ்பட மூலத்தே
சேர்க்கின்ற யோகி சிவயோகி தானே. 1937

Siva Yogi Sublimates Bindu

Do not look at women
Who intent on lust look at you;
Away from them;
Light the fire of Kundalini;
Melt your heart in divine love;
Uproot the evil desire that sight kindles;
Fix it on the source of Primal Energy
He who does it is verily the Siva Yogi.

Do not indulge in lust. Light the kundalini fire and melt your heart in intense devotion. Eradicate the base desires that sight kindles. Concentrate on the source of primal energy. Truly, the Siva yogi sublimates bindu in this way.

தாமே வருனாற் சிவபோகந் தங்காது
தாமேயக் காமாதி தங்குவோர் கூம்புட்டுந்
தாமே யதிகாரந் தம்மிற் சடங்கெடும்
ஊமே வகைநிற்குள் ஞானிபோம்பா மாயுமே. 1938

Waste Not Bindu

He to lust a slave becomes,
Will in constant fear be;
His body deteriorates,
And his life ebbs away;
He will not Grace receive,
And in Siva Yoga lasts not.

He who falls a prey to lust is forever in fear. His body deteriorates. He will not receive Grace, or reach Siva yoga.

மாயாள் வசத்தே செலுத்திய சென்னியும்
ஓயா இருப்புக் கலைவளர் பக்கத்துள்
ஏயா வெனவிசைப் பேதுமதி கூடிநின்று
டாயா அமரத்து மாறுநாள் ஆகுமே. 1939

Regulation Days for Sexual Union

Those who wish to sleep with women
Let them observe the periodicity thus;
Of the two phases of the moon,
The first eight days of the waxing moon
For union appropriate are not;
In the six days that remain,
And in the first six days of the waning moon
Can they in union be.

The first eight days of the waxing moon are not appropriate for sexual union. The last six days of the waxing moon and the first ten days of the waning moon are the suitable days for this union.

ஆறைந்து பன்னொன்று மங்கிச் சமமாக்கும்
வேறன்பு வேண்டுவோர் பூவரிப்பின்னைந்தோ
டேடாம் இருபத் தொருநா விடைத்தோங்கும்
ஆறின் மிகுத்தோர்க்கும் அக்காலஞ் செய்யவே. 1940

Regulation Days for Practising Yogis

Let those that Yoga practise
Avoid the fifth, the sixth and the eleventh days
After the woman menstruates;
The rest, who the pleasure seek,
Take the six days, in the middle
Of the three weeks that follow.

The fifth, sixth and the eleventh days after the woman menstruates are not fit for performing the sex act. The six days in the middle of the three weeks that follow are appropriate to seek pleasure.

செய்யும் அளவில் திருநாள் முகூர்த்தமே
எய்யும் கலைகாலம் இந்து பருதிகால்
மெய்யுமிடத் தோடி எண்காம நூல்நெறி
செய்க வலமிடந் தீர்த்து விடுக்கவே. 1941

Duration of Sexual Union and Rules for Release of Bindu

When on union they decide on,
Let it be for muhurtas four,
Following the injunctions of Kama Sastras,
Let them the sexual act perform;
When the Moon's Kalas (Left Nadi) shine bright,
And breath in Sun Nadi's low runs
Emit Bindu, the breath holding,
Breathing through nostril right, quelling left.

The union they decide on should be for four muhurtas, following the injunction of the *Kama Sastras*. When the moon's kalas (left nadi) shine bright, emit bindu holding your breath.

'Bindu' here is Semen.

Moon's Kala is here the Pingala Nadi, and Sun's Kala is Ida Nadi.

விடுங்கலை முனைத்திடத் திரியங்கனைப்போல்
நடுங்கா திருப்பாரும் நுழைந்து நல்லவைப்
படுங்காதல் மாதின்பப் பற்று விட்டுக்
கடுங்காற் கவனக் கருத்துறக் கொண்டே. 1942

Sublimate Sex Act

Embrace the damsel,
Your five sense organs with her five conjoining;
But, detached your passion for the women be;

17:08

Google Lens

Original | Translated

பார்க்கின்ற மாதரைப் பாரா தகன்றுபோய்
ஓர்க்கின்ற வுள்ளம் உருக அழலமூட்டிப்
உத்தர கண்ணாசைபாழ்பட மூலத்தே
சேர்க்கின்ற யோகி यह एक अच्छा विचार है. 1937

शिव योगी ने बिंदु को उदात्त किया

जो स्त्रियाँ वासना से
ग्रस्त हैं, उनकी ओर मत देखो; उनसे दूर
रहो; कुण्डलिनी
अग्नि जलाओ; अपने हृदय को दिव्य
प्रेम में पिघलाओ; उस बुरी इच्छा
को उखाड़ फेंको जो दृष्टि से प्रज्वलित
होती है; उसे आदि शक्ति के स्रोत पर लगाओ।
जो ऐसा करता है, वही वास्तव में शिव योगी है।

वासना में लिप्त न हों। कुंडलिनी अग्नि को जलाएं और अपने हृदय को तीव्र भक्ति में पिघलाएं। दृष्टि से उत्पन्न होने वाली आधारभूत इच्छाओं को मिटा दें। मूल ऊर्जा के स्रोत पर ध्यान केंद्रित करें। वास्तव में शिव योगी इस तरह से हिंदू को उदात्त करते हैं।

தாளே யருளாற் சிவயோகந்
தங்காது தாளேயக் காமாதி
தங்குவோ னும்முட்குந்
தாளோ और ठीक है यह एक अच्छा विकल्प है। 1938

अपशिष्ट नहीं बिंदु

वह काम का दास बन जाता है, वह
निरंतर भय में रहता है; उसका
शरीर क्षीण हो जाता है,
और उसका जीवन समाप्त हो
जाता है; वह कृपा प्राप्त नहीं
करता, और शिव योग में टिकता नहीं।

जो व्यक्ति वासना का शिकार हो जाता है, वह हमेशा डर में रहता है। उसका शरीर क्षीण हो जाता है। उसे कृपा नहीं मिलती, न ही वह शिव योग तक पहुँच पाता है

एक और अधिक पढ़ें இருபக்கத்
துள்வளர் பக்கத்துள்
ஏயாவெண் ठीक है மேற்பளி மூன்றிரண
டாயா அபரத்து மாடுநாள் ठीक है. 1939

यौन मिलन के लिए विनियमन दिवस

जो लोग स्त्रियों के साथ सोना
चाहते हैं, उन्हें इस प्रकार समय का
ध्यान रखना चाहिए; चंद्रमा के दो
चरणों में, बढ़ते चंद्रमा के पहले आठ दिन
मिलन के लिए उपयुक्त नहीं
हैं; शेष छह दिनों में, और
घटते चंद्रमा के पहले छह दिनों में वे मिलन
में हो सकते हैं।

बढ़ते चंद्रमा के पहले आठ दिन यौन संबंध के लिए उपयुक्त नहीं हैं। बढ़ते चंद्रमा के आखिरी छह दिन और

इस मिलन के लिए ढलते चंद्रमा के पहले दस दिन
उपयुक्त दिन हैं

ஆறைந்து பன்னொன்று மன்றிச்
சகமார்க்கம் ऋण समाधान के लिए आवेदन
धन्यवाद இருபத் தொருநா ளிடைந்தோங்கும்
ஆறின் मेरे पास एक अच्छा विकल्प है 1940

योगाभ्यास करने वाले योगियों के लिए नियमित दिन

जो लोग योगाभ्यास करते
हैं, वे पाँचवें, छठे और ग्यारहवें दिन व्रत
न करें। स्त्री के रजस्वला
होने के बाद, शेष लोग, जो
भोग चाहते हैं, वे तीन सप्ताह
के मध्य के छः दिन व्रत करें।

महिला के मासिक धर्म के बाद पाँचवाँ, छठा और ग्यारहवाँ दिन संभोग के लिए उपयुक्त नहीं होता। उसके बाद के तीन सप्ताहों के बीच के छः दिन संभोग के लिए उपयुक्त होते हैं।

செய்யும் அளவில் திருநாள்
முகூர்த்தமே ऋण समाधान के लिए आवेदन
நயுமிடத் தோடி என்காம நூல்நெறி
செய்க வலமிடந் தீர்ந்து ठीक है 1941

यौन सबंध की अवधि और बिंदु मुक्ति के
नियम

जब वे मिलन पर निर्णय लेते हैं, तो
इसे चार मुहूर्तों के लिए होने दें,
कामशास्त्र के आदेशों का पालन करते हुए, उन्हें
संभोग करने दें; जब चंद्रमा की
कलाएँ (बाएँ नाड़ी) चमकती हैं, और सूर्य नाडी
के निचले भाग में साँस चलती है, तो बिंदु
का उत्सर्जन करें, साँस को रोककर
रखें। दाईं नासिका से साँस लें, बाईं ओर रोकें।

कामशास्त्र के अनुसार, जिस मिलन का वे निर्णय लेते हैं, वह चार मुहूर्तों के लिए होना चाहिए। जब चंद्रमा के कलुष (बाईं नाड़ी) चमक उठें, तो अपनी सांस रोककर बिंदु का उत्सर्जन करें,

'बिन्दु, यह सीमन है

Moon's Kala is here the Pingala Nadi, and Sun's Kala is Ida Nadi.

ऋण समाधान योजना நடுங்கா திருப்பானும்
ஐயைந்து தண்ணப் உத்ர மாதின்பாற்
பற்றற விட்டுக் கடுங்காற்
கரணாங் मुझे यह याद रखना चाहिए. 1942

उदात्त यौन क्रिया

युवती को गले लगाओ,
तुम्हारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उसके पाँचों के साथ जुड़ी
हुई हैं: लेकिन, स्त्रियों के प्रति तुम्हारा जुनून अलग हो;

English ⇄ Hindi

Send to Translate Home | Select all | Liste

Are these results useful? Yes No

Like the senses that are Godward sublimated
Be calm; excited be not;
Control your breath, senses and mind,
Concentrated be your thought,
Thus emit your Bindu.

Mantras 1942 & 1943

Embrace the damsel and unite your five senses with hers. But remain detached. Divert your thoughts Godward, be calm and do not get excited. Direct your senses inward.

கொண்ட குணனே நலனேத்தக் கோமளைப்
பண்டை யுருவே பகர்வாய் பவளமே
மிண்டு நகையே மிடைய விடுக்கும்போது
கண்ட கருமுட் டெல்லக்கண் டேனே. 1943

Direct your senses Inward

Amour, beauty and youth
Shapely form and coral lips
And breasts that swell,
—When in union with damsel such as she—
You the Bindu emit,
Emit, your senses inward directed.

விட்டபின் கர்ப்பமுந் பத்தி விதிவிலே
தொட்டிடுங் காலங்கள் தொகைக்கக் கருதிய
கட்டுவ வாணன்கோ நாள்முதல் கிழமையீப்
பட்ட தெறியிதென் தெளிவியும் பார்க்கவே. 1944

Determine the Results of the Act

Having emitted,
Examine the laws of conception
The time of union, of pregnancy and delivery
The baby's length of life, and death;
Its character, good and bad,
These you in detail determine.

Having emitted, examine the laws of conception and determine the results of the act — the time of union of pregnancy, delivery and the baby's destined length of life and time of death.

பார்த்திட்டு வைத்துப் பரப்பற் றுருப்பெற்று
வார்த்தெற்ற வொண்முலை மடந்தையை நீக்கிவே
சேர்த்தும் திருந்திங்கள் சேரா தகலினும்
மூப்புற்றே பிள்ளைவ வாமெய்யா முள்ளவே. 1945

Seek not Further Union

Having examined these,
Abstain from worldly concerns,
And leave the maiden of shapely breasts;
And further union seek not;
Within months two
Will the baby its form take,
And all the rest you have reckoned follow.

Having examined these, abstain from the maiden do not seek further union.

வித்திடு வோர்க்கன்றி மேலோர் விளைவில்லை
வித்திடு வோர்க்கன்றி மிக்கோர் அறிவில்லை
வித்தினில் வித்தை விதற வுணர்வரேல்
மத்தி விருத்தரேல் மாங்கனி யாமே. 1946

Know the Seed of Seed and Preserve Body

Except for those who plant the seed,
Harvest there be none in future;
Except for those who plant the seed,
Wisdom great there be none;
If they know the Seed of seed for certain
Preserved their body be
Unto the mango fruit kept in vessel suspended.

Only they who plant the seed will reap the harvest and receive great wisdom. So, know the seed of seed; your body will be preserved like a mango fruit kept in a hanging vessel.

கருத்தினில் அக்கரு மாறுப் பிறவும்
கருத்துளன் ஈசன் கருவுயிர் தோறும்
கருத்தது வித்தாய்க் காரண காரியக்
கருத்தது மாறினை கற்பனை தானே. 1947

Lord Settles Fate and longevity of Embryo With Concern

The Lord has concern great
For the seed in womb;
Even in the seed with forethought
He settles its fate and span of life;
Thus, when the Seed itself is the Causal Thought,
To attribute Cause and Effect to factors outside
Is but imagination's figment.

The Lord is very much concerned about the seed in the womb, and He settles its fate and span of life.

ஒழியாத வித்து வடவித்திக நிற்கும்
அழியாப் பிராணன் அதிபலஞ் சத்தி
ஒழியாத புத்தி தபஞ்செப மோனம்
அழியாத சித்தியுண் டாம்வித்து வற்றிலே. 1948

Conserve Bindu and Attain Siddhis

If Bindu stands retained in body
Life ebbs not;
Great strength, energy, intelligence alert,
Tapas, contemplation and silence
And siddhis enduring,
—All these are attained,
—If Bindu be conserved true.

வற்ற அனலைக் கொளுவி மதிநேத்தித்
துற்ற சுழியனல் சொருகிச் சுடருற்று
முற்று மதியத் தமுதை முறைமுறை
செற்றுண் பவரே சிவயோகி யாரே. 1949

Conservation of Sex Energy Vital for Yoga Practice

Thus conserved, they light the Fire of Kundalini,

17:08
Vo)) LTE1
Google Lens
Original Translated

भगवान की ओर उन्मुख इन्द्रियों के समान शांत रहो, उत्तेजित
मत हो; अपनी श्वास, इन्द्रियों
और मन को वश में करो, अपने विचारों
को एकाग्र करो, इस प्रकार अपना
बिन्दु उत्सर्जित करो।

मंत्र 1942 और 1943

युवती को गले लगाओ और अपनी पाचों इंद्रियों को उसके साथ जोड़ो। लेकिन अलग-थलग रहो। अपने विचारों को ईश्वर की ओर मोड़ो, शात रहो और उत्तेजित मत होओ। अपनी इंद्रियों को भीतर की ओर मोडो।

கொண்ட குணனே நலனேதற்
கோமளம் பணை புருவே उत्तर
और उत्तर देखें उत्तर यह एक अच्छा
विकल्प है 1943

अपनी इंद्रियों को अंदर की ओर निर्देशित करें

प्रेम, सौंदर्य और यौवन, सुडौल
रूप और मूंगा जैसे होंठ और फूले
हुए स्तन, -जब वह जैसी युवती के
साथ मिलन होता है - तुम बिंदु उत्सर्जित करते हो, उत्सर्जित
करते हो, अपनी इंद्रियों को
भीतर की ओर निर्देशित करते हो।

விட்டபின் கர்ப்பவுத் பத்தி விதியிலே
தொட்டுறுங் காலங்கள் தோன்றக்
கரதிய ठीक है வாணாள்சா நான்குணங
கீழ்மைசீர்ப் और मेरे पास एक अच्छा विकल्प है. 1944

अधिनियम के परिणाम निर्धारित करें

गर्भाधान के
नियमों की जांच करो,
गर्भाधान का समय, गर्भधारण और प्रसव, बच्चे
की जीवन अवधि और मृत्यु; उसका
चरित्र, अच्छा और बुरा, इन सबका
तुम विस्तार से निर्धारण करो

स्खलन के बाद, गर्भाधान के नियमों की जांच करें और इस कार्य के परिणामों को निर्धारित करें - गर्भावस्था, प्रसव और बच्चे के जीवन की निर्धारित लबाई और मृत्यु का समय।

होम लोन के बारे में जानकारी றுருப்பெற்று
வார்ச்செற்ற கொங்கை மடந்தைடை
ठीक है சேரததுற றிருதிஙகள சேரா
தகலினும் मेरे पास एक अच्छा विकल्प है. 1945

आगे संघ की तलाश मत करो

इन बातों पर विचार
करने के बाद, सांसारिक चिंताओं
से दूर रहो, और सुडौल स्तनों वाली युवती को त्याग दो;
और आगे संयोग की इच्छा मत करो; दो
महीने के भीतर बच्चा
अपना रूप ले लेगा, और बाकी सब
जो तुमने सोचे हैं, वे उसके पीछे-पीछे आ जाएंगे।

इन बातों की जांच करने के बाद, युवती से दूर रहें और आगे सबध न बनाए।

ऋण समाधान के लिए आवेदन पत्र उत्तर
வித்தினில வித்தை விதர
வுணர்வரேல் மத்தி मेरे पास
एक अच्छा विकल्प है. 1946

बीज के बीज को जानें और शरीर को सुरक्षित रखें

जो बीज बोते हैं, उनके अतिरिक्त
भविष्य में कोई भी फसल नहीं काट
सकता; जो बीज बोते हैं, उनके अतिरिक्त
कोई भी महान बुद्धि नहीं
है; यदि वे बीज के बीज को निश्चित रूप से जान लें
तो उनका शरीर सुरक्षित
रहेगा जैसे बर्तन में लटकाए गए आम का फल।

जो बीज बोते हैं, वही फसल काटेंगे और महान ज्ञान प्राप्त करेंगे। इसलिए, बीज के बीज को पहचानो; तुम्हारा शरीर body will लटकते हुए बर्तन में रखे आम के फल की तरह सुरक्षित रहेगा।

கருத்தினில் அக்கர மாயுவு
மியாவுங் கருத்துளன்
ஈசன் கருவுயி ரோடுங் கருத்தது
उत्तर मेरे पास एक अच्छा विकल्प है। 1947

प्रभु ने भ्रूण के भाग्य और दीर्घायु को लेकर चिंता व्यक्त की

भगवान को गर्भस्थ बीज की
बड़ी चिंता रहती है;
वे बीज में ही पूर्व विचार करके
उसके भाग्य और जीवन की अवधि का
निर्धारण कर देते हैं; अतः जब बीज ही कारणात्मक
विचार है, तब बाह्य कारकों पर कारण और प्रभाव आरोपित
करना केवल कल्पना मात्र है।

भगवान गर्भ में पल रहे बीज के बारे में बहुत चिंतित रहते हैं और वे उसके भाग्य और जीवन अवधि का निर्धारण करते हैं।

ஒழியாத விந்து வுடன்நிற்க நிற்கும்
அழியாப் பிராணன் அதிபலஞ் சத்தி
ஒழியாத புத்தி ठीक है மோனம்
அழியாத சித்தியுண் டாம்விந்து ठीक है 1948

बिन्दु का संरक्षण करें और सिद्धियाँ प्राप्त करें

यदि बिन्दु शरीर में सुरक्षित
रहे तो जीवन
नष्ट नहीं होता; महान बल, ऊर्जा, सजग बुद्धि,
तप, ध्यान और मौन तथा स्थायी सिद्धियाँ
- ये सभी प्राप्त
हो जाती हैं, - यदि बिन्दु
सत्य रूप से सुरक्षित रहे।

வறற அளவைக கொளுவி மறிததேறறித
துற்ற சுழியனல் சொருகிச்
சுடருற்று முறறு மதியத்
ठीक है मेरे पास एक अच्छा विकल्प है. 1949

योगाभ्यास के लिए सेक्स ऊर्जा का संरक्षण महत्वपूर्ण

इस प्रकार संरक्षित होकर, वे कुण्डलिनी अग्नि को प्रज्वलित करते हैं,

English ⇄ Hindi
Send to Translate Home
Select all
Liste
Are these results useful? Yes No

And forcing it upward through Nadi Sushumna
Reach the state of illumination;
There they partake of the ambrosia
From the Moon within flows;
Those who do this in unbroken continuity,
Are verily Siva Yogins true.

Thus by conserving the sex energy, the yogis light the fire of kundalini, and coursing it upward through the sushumna nadi they reach the state of illumination. Siva yogins are they indeed who continuously partake of the ambrosia flowing from the moon in the mystic sphere within.

யோகியும் ஞானியும் உத்தம சித்தரும்
போகியும் ஞான புரந்தர வாரோரும்
போக முறினும் முறைமையின் துன்னோரும்
ஆகிய விந்து அழியாத அண்ணலே. 1950

Conserve Sex Energy and Become Heroes

The Yogi, the Jnani, and the Siddha high
The Bhoga Yogi who is yet the king of Jnanis,
All these, though troubled by passions
Yet savour the ambrosia within; (in the Yogic way)
Heroes, all, they are indeed,
Who the Bindu had conserved.

The yogi, the jnani, the siddhar high and the bhoga-yogi, who is yet the king of jnanis, are real heroes; because, though they were troubled and tempted by passions, they resolved to taste the ambrosia within in the yogic way.

அண்ணல் உடலாகி அவ்வழல் விந்துவும்
மண்ணிடை மாய்க்கும் பிராணனும் விந்துவும்
கண்ணுறும் கனலிடைக் கட்டிக் கலந்தெரித்
துண்ணலில் அமிர்தாகி யோகிக் கறிவாமே. 1951

Burn Bindu in Fire of Kundalini

The fiery Bindu above is Lord's Body (macrocosmic)
The Bindu wasted here below is vital Prana (microcosmic)
If mixing the two, they burn it in the Fire of Kundalini
Then they consume the very ambrosia
—This, the wisdom of Yogis true.

The Lord's body is the fiery bindu above (macrocosmic), and the bindu wasted below is the vital prana (microcosmic). If these two are mixed, and burnt in the kundalini fire, the yogis consume the very elixir of life. This is the true wisdom of yogis.

அறியா தழிகின்ற வாதலால் நாளும்
பொறியால் அழிந்து புலம்புகின் றார்கள்
அறிவால் நனவில் யோகம் புரிவர்
செறியா விந்து செலவே மாயுமே. 1952

In Yoga Bindu is Divinely Assimilated

In ignorance the folks waste it daily,
And destroyed by senses, in pain weep;
If in wisdom, they conscious perform Yoga supreme,
The Bindu disappears, divinely assimilated.

Mantras 1952 & 1953

Ignorant folks destroy bindu in vain daily. But if in wisdom they perform supreme yoga, bindu is divinely assimilated. So, refrain from lust, for it is death's messenger. Preserve bindu. Then you will enjoy the divine light for ages and ages to come, remaining free from impurities.

மாதரை மாய வருங்கூற் றென்றுணரக்
காதல தாகிய காமங் கழித்திடுஞ்
சாதலு மில்லை சதகோடி யாண்டுஞ்
சோதியி னுள்ளே துரிசறுங் காயமே. 1953

Lust is Death's Messenger

If you hold women as Death's messengers,
Love's passion vanishes away;
Death there is none;
For ages innumerable will you in Divine Light be,
Your Impurities forever totally rid.

காலங் கடந்தவன் காண்விந்து செற்றவன்
காலங் கடந்துழித் தான்விந்து செற்றவன்
காலங் கலிவிந்து செற்றுற்ற காரிகை
காலின்கண் வந்த கலப்பறி யாரே. 1954

Conquer Bindu and Conquer Time

He that has conquered Bindu has conquered Time;
He that has wasted Bindu has perished before his time;
They know not that Bindu that has been preserved
In time becomes one with Kundalini,
Their breath controlled in the Yogic way.

Conquer bindu; for that helps to conquer time. The bindu that has been preserved merges with kundalini in time, and the breath that will be controlled in the yogic way will checkmate death.

கலக்குநாள் முன்னாள் தன்னிடைக் காதல்
நலத்தக வேண்டுமந் நாரியுந் தானாக்
கலத்தின் மலத்தினைச் சேத்தமைப் பித்தை
விலக்கு வமனமெய் மேவனை வீழே. 1955

Embrace Woman after Cleansing Her

If you desire woman's love, intense to excite,
The day before you in sexual union indulge,
Cleanse the woman of her bowel, phlegm and bile,
Then in union embrace her.

போனா நிலைத்தெழு விந்துவும் நாதமும்
ஓராண் நடத்திக் குறிவழி யேசென்று
பாரணம் அமிர்துண்டு பற்றுப் பற்றினால்
மாளா வருமான மாளுமல் விந்துவே. 1956

Bindu is Assimilated in Body Through Yoga

Direct Prana breath to Bindu and Nada

17:08
Google Lens
Original Translated

और नाडी सुषुम्ना के माध्यम से इसे ऊपर की ओर
धकेलते हुए प्रकाश की स्थिति तक
पहुँचते हैं; वहाँ वे अमृत का सेवन करते
हैं जो भीतर के चंद्रमा से बहता
है; जो लोग इसे अखड निरतरता में करते हैं, वे
वास्तव में शिव योगी हैं।

इस प्रकार यौन ऊर्जा को सरक्षित करके योगी कुडलिनी की अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, और इसे सुषुम्ना नाड़ी के माध्युम से ऊपर की ओर प्रवाहित करते हुए वे प्रकाश की स्थिति तक पहुँचते हैं। शिव योगी वास्तव में वे हैं जो अपने भीतर के रहस्यमय क्षेत्र में चंद्रमा से प्रवाहित होने वाली अमृतधारा का निरंतर सेवन करते हैं।

யோகியும் ஞானியும் உத்தம
சித்தனும் யோகியும் ஞான
புரந்தா னாவோனும மோக முறினு
उत्तर मेरे पास एक अच्छा विकल्प है 1950

सेक्स ऊर्जा को संरक्षित करें और हीरो बनें

योगी, इनानि, सिद्ध, भोग योगी जो
फिर भी ज्ञानियों के राजा हैं, ये सभी,
यद्यपि वासनाओं से व्याकुल
हैं, फिर भी (योगिक मार्ग में) वे
सभी वीर हैं, जिन्हें
बिन्दु ने संरक्षित किया है।

योगी, ज्ञानी, सिद्ध पुरुष और भोग योगी, जो कि इनानियों के राजा भी हैं, वास्तविक नायक हैं, क्योंकि यद्यपि वे वासनाओं से व्याकुल और प्रलोभित थे, फिर भी उन्होंने योगिक मार्ग से अपने भीतर के अमृत का स्वाद लेने का सकल्प लिया।

उत्तर और उत्तर देखें மாய்க்கும்
பிராணனாம் வித்துவுங் கண்ணுங்
கனலிடைக் கட்டிக் கலந்தெரித்
நுண்ணணில் यह एक अच्छा विकल्प है. 1951

कुण्डलिनी की अग्नि में बिन्दु को जला दो

ऊपर स्थित अग्नि बिन्दु भगवान का शरीर (महाभूत) है।
यहाँ नीचे बर्बाद हुआ बिन्दु महत्वपूर्ण प्राण (सूक्ष्म)
है यदि दोनों
को मिलाया जाए, तो वे इसे कुंडलिनी की आग में
जला देते हैं
फिर वे उसी अमृत का सेवन करते हैं -
यह योगियों का सच्चा ज्ञान है।

भगवान का शरीर ऊपर का अग्निबिन्दु (स्थूल ब्रह्माण्डीय) है, और नीचे का नष्ट हुआ बिन्दु प्राण (सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय) है यदि इन दोनों को मिलाकर कुण्डलिनी अग्नि में जला दिया जाए, तो योगीजन जीवन-अमृत का उपभोग कर लेते हैं। यही यागी का सच्चा ज्ञान है।

அறியா தழிகின்ற வாதலால் நாளும்
பொறியால் அழித்து புலம்புகிள்
றார்கள் அறிவாட் நனவ
மதிதம் मेरे पास एक अच्छा विकल्प है. 1932

योग में बिन्दु को दिव्य रूप में आत्मसात किया गया है

अज्ञानता में लोग इसे प्रतिदिन नष्ट करते हैं
और इन्द्रियों से नष्ट होकर पीड़ा में रोते हैं;

यदि वे बुद्धि से सचेत होकर परम योग का अभ्यास
करें,
बिन्दु अदृश्य हो जाता है, दिव्य रूप से आत्मसात हो जाता है।

मंत्र 1952 और 1953

अज्ञानी लोग प्रतिदिन व्यर्थ ही बिन्दु का नाश करते हैं। लेकिन यदि वे बुद्धि से परम योग का अभ्यास करें, तो बिन्दु दिव्य रूप से आत्मसात हो जाता है। इसलिए, कामवासना से दूर रहें, क्योंकि यह मृत्यु का दूत है। बिन्दु को सुरक्षित रखें। तब आप युगों-युगों तक दिव्य प्रकाश का आनंद लेंगे, अशुद्धियों से मुक्त रहेंगे।

उत्तर और उत्तर देखें தாகிய
காமங் கழிந்திடுஞ்
சாதலு மிலலை ठीक है मेरे
पास एक अच्छा विकल्प है. 1953

वासना मृत्यु का सदेशवाहक है

यदि तुम स्त्रियों को मृत्यु का दूत समझोगे, तो
प्रेम की वासना लुप्त हो जाएगी;
मृत्यु नहीं रहेगी; तुम असख्य
युगों तक दिव्य प्रकाश में रहोगे, तुम्हारी अशुद्धियाँ
सदा के लिए पूरी तरह से दूर हो जाएँगी।

காலங் கடநதவன காண்லிநது செறறவன்
காலங் கடந்தழிந தான்விந்து செறறவன
காலங் கனின்விநது செறறுறற
காரிகை காலின்கண यह एक अच्छा विचार है 1954

बिन्दु पर विजय पाओ और समय पर विजय पाओ

जिसने बिन्दु को जीत लिया है, उसने काल को
जीत लिया है; जिसने बिन्दु को नष्ट कर दिया है, वह समय से
पहले
ही नष्ट हो गया है; वे नहीं जानते कि समय में सुरक्षित
रखा गया बिन्दु कुण्डलिनी के साथ एक हो
जाता है, उनकी सास योगिक तरीके से नियत्रित होती है।

बिंदु पर विजय प्राप्त करें, क्योंकि इससे समय पर विजय प्राप्त करने में सहायता मिलती है। जो हिंदू सुरक्षित है, वह समय के साथ कुडलिनी में विलीन हो जाता है, और योगिक तरीके से नियंत्रित की गई सांसway मृत्यु को रोक देगी।

கலக்குநாள் முன்னாள் தன்னிடைக் காதல்
நலத்தக வேண்டில்அந் நாரியுதரக்
கலத்தின் மலத்ததன் சீதத்தைப் பித்தை
விலக்கு வளசெய்து மேலணை வீரே. 1955

स्त्री को शुद्ध करने के बाद उसे गले लगाओ

यदि तुम स्त्री के प्रेम की इच्छा रखते हो, जो उत्तेजित
करने के लिए तीव्र हो, तो संभोग करने से एक दिन
पहले स्त्री की आँतों, कफ और पित्त को साफ करो, फिर
संभोग में उसका आलिंगन करो।

मेरे पति के लिए यह एक अच्छा विकल्प है
நடத்திக் குறிவழி யேசென்று
பாலாம் उत्तर பற்றறப் பற்றினால்
மாலா னதுமாள மாளுமல் ठीक है. 1956

योग के माध्यम से बिन्दु को शरीर में आत्मसात किया जाता है

बिंदु और नाद को सीधे प्राण श्वास दें

English ⇄ Hindi
Send to Translate Home
Select all
Liste
Are these results useful? Yes No

That in cranium Sphere arises,
Upward through Sushumna Nadi
By devices appropriate;
Thus you reach to the nectar divine;
Hold on to it,
That Bindu in you indissolubly dissolves,
Your illusions to disappear.

Divert prana through the sushumna nadi to (para) bindu and nada that are in the cranium sphere. The sweet ambrosia flows; hold on to it. Thus is the semenal bindu assimilated in the body through yoga.

விந்து விளையும் விளைவின் பயன்முற்றும்
அந்த வழியும் அடக்கத்தில் ஆக்கமும்
நந்திய நாதமும் நாதத்தாற் பேதமுந்
தந்துணர் வோர்க்குச் சயமாகும் விந்துவே. 1957

Conquest of Bindu Leads to Nada

The ripening of Bindu,
The result full of that ripening,
The dire consequences of wasting it,
And the blessings of retaining it,
The Nada that ensues
And the transformation that Nada effects,
—Those who all these realize
Have verily conquered the Bindu.

The conquest of bindu truly leads to nada which effects transformations.

விந்துவென் வீசத்தை மேவிய மூலத்து
நந்திய அங்கியி னாலே நயந்தெரித்
தந்தமில் பானு அதிகண்ட மேலேற்றிச்
சந்திரன் பால்புறந் தண்ணமு தாமே. 1958

Fry Bindu in Kundalini Fire

The Bindu that is Bija (Seed)
Burn it agreeably,
In the Fire that is Kundalini,
That from Muladhara flames;
Course it upward into the Solar Sphere within
And touch the Lunar Sphere beyond;
There, indeed, is the nectar divine.

Burn the semenal bindu in kundalini fire that flames from muladhara. Course it upward into the solar sphere and touch the lunar sphere beyond, where divine ambrosia is present.

அமுதச் சசிவிந்து வாம்விந்து மாள
அமுதப் புனலோடு அங்கியின் மாள
அமுதச் சிவபோகம் ஆதலாற் சித்தி
அமுதப் புனலாடல் ஆங்குறும் போகிக்கே. 1959

Bindu Sublimated by Kundalini Yoga Leads to Ambrosial Flow

When the Bindu of the body
Thus perishes (by Yoga)
It is into Divine Bindu transformed
Of the ambrosial Lunar Sphere within;
When the Bindu of the body
Perishes in the fire of Kundalini,
The ambrosial waters flow and fill the body;
Then indeed is Siva Bhoga that is ambrosial sweet;
And thus bathed in divine waters of ambrosia
The Yogi attains Siddhis rare.

When the human bindu is destroyed thus, it is changed into divine bindu. Bindu of the body is sublimated by kundalini yoga that draws the ambrosial flow. Indeed, that is Siva bhoga. By immersion in the divine waters of ambrosia, the yogi attains rare siddhis.

போகமவ் விந்து ஒழியா வகைபுணர்ந்
தாகம் இரண்டுங் கலந்தாலு மாங்குறாப்
போகஞ் சிவபோகம் போகிநற் போகமா
போகங் கெடுமனங் காரிகுழல் மாதர்க்கே: 1960

In Yoga Way Bindu is not Released

Two bodies in union may unite,
Yet if he emits not Bindu
That union is Yoga way;
That Bhoga is Siva Bhoga;
That the true Bhoga
Where the Yogi emits not
To quell the witless woman's passion.

The two bodies, male and female, may unite if bindu is not emitted — that union is of the yoga way. That bhoga is Siva bhoga.

மாதரி டற்சேர் செழுத்திலும் அவ்விந்து
காதலி னால்விடார் போகங் கலந்தவர்.
மாதர் உயிரான வைக்கொண்டே வாடுவர்
காதலர் போனிற்பவர் காதலாஞ் சாத்திலே. 1961

Bindu is not Emitted

They who stand in Yoga way
Even though with women unite,
Their Bindu, in passion, they emit not;
And the women their life's passion unquenched
Will verily pine and droop,
Yearning still for love,
As lovers new forever do.

If bindu is not released in the yogic way of sexual union, the woman whose passions remain unquenched will pine and yearn for love forever.

சாத்திய விந்து சயமாகுஞ் சத்தியால்
ஏற்றிய மூலத் தழலை யெழுப்பிட்டு
நாத்தினை மேடா நடுநாடி நாதத்தே
டாத்தி யமுதம் அருத்தலித் தாமே. 1962

Bodily Bindu Becomes Cosmic Bindu

By Kundalini Sakti, Bindu conquer;
Kindle that Fire in Muladhara
Course it upward straight
Through central Nadi, Sushumna;

17:09
Google Lens
Original Translated

वह कपाल में स्थित बिन्दु, सुषुम्ना
नाड़ी द्वारा उपयुक्त युक्तियों द्वारा
ऊपर की ओर उठता है; इस प्रकार
तुम दिव्य अमृत तक पहुँचते हो; उसे धारण
करो, वह बिन्दु
तुम्हारे अन्दर अविच्छिन्न रूप से विलीन हो जाता
है, और तुम्हारे भ्रम मिट जाते हैं।

प्राण को सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से कपाल क्षेत्र में स्थित (परा) हिंदू और नाद की ओर मोड़ें। मधुर अमृत बहता है, उसे थामे रखें। इस प्रकार वीर्य हिंदू योग के माध्यम से हृदय में समाहित हो जाता है।

விந்து விளையும் விளைவின்
பயன்முற்றும் அந்த வழிவும் அடக்கத்தில்
ஆக்கமும் தநதிய ठीक है நாதத்தாற் பேதமுந
தந்துணர்வோர்க்குச் यह एक अच्छा विचार है. 1957

बिन्दु पर विजय से नाद की प्राप्ति हुई

बिन्दु का पकना, उस
पकने से होने वाले परिणाम, उसे
नष्ट करने के भयंकर परिणाम, उसे बनाये
रखने से होने वाले लाभ, उसके
फलस्वरूप होने वाला नाद और
नाद द्वारा होने वाला परिवर्तन - जो इन सब को
समझ लेते हैं, उन्होंने वास्तव में
बिन्दु पर विजय प्राप्त कर ली है।

बिन्दु पर विजय वास्तव में नाद की ओर ले जाती है जो परिवर्तनों को प्रभावित करती है

एक और पोस्ट देखें एक वर्ष से
अधिक समय तक ऋण प्राप्त
करने के लिए ठीक है मेरे पास एक
अच्छा विकल्प है. 1958

कुण्डलिनी अग्नि में बिन्दु को भून लें

वह बिन्दु जो बीज है, उसे
कुण्डलिनी अग्नि
में, जो मूलाधार से निकलती है,
प्रसन्नतापूर्वक जला दो; उसे भीतर
के सूर्यमण्डल में ऊपर की ओर ले जाओ और
उसके परे चन्द्रमण्डल को स्पर्श करो;
वहाँ वास्तव में दिव्य अमृत है।

मूलाधार से निकलने वाली कुंडलिनी अग्नि में वीर्य बिंदु को जलाएं। इसे ऊपर की ओर सूर्य मंडल में ले जाएं और उससे आगे चद्र मंडल को स्पर्श करें, जहां दिव्य अमृत मौजूद है।

एक और पोस्ट देखें उत्तर और
उत्तर देखें ठीक है मेरे पास एक
अच्छा विकल्प है 1959

कुंडलिनी योग द्वारा उदात्त बिंदु अमृत प्रवाह की ओर ले जाता है

जब शरीर का बिन्दु इस प्रकार (योग
द्वारा) नष्ट हो जाता
है, तब वह दिव्य बिन्दु में परिवर्तित हो जाता है

जब शरीर का बिन्दु कुण्डलिनी की
अग्नि में जलकर नष्ट हो जाता
है, तब अमृतमय जल प्रवाहित होता है और
शरीर में भर जाता है; तब शिवभोग सचमुच अमृतमय
मधुर होता है; और इस प्रकार अमृतमय दिव्य
जल में स्नान करके योगी दुर्लभ सिद्धियों
को प्राप्त करता है।

जब मानव हिंदू इस तरह नष्ट हो जाता है, तो वह दिव्य बिंदु में बदल जाता है। शरीर के बिंदु को कुंडलिनी योग द्वारा उदात्त किया जाता है जो अमृत प्रवाह को खींचता है। वास्तव में, वह शिव भोग है। अमृत के दिव्य जल में डुबकी लगाने से योगी दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त करता है

मेरे पति के लिए यह एक अच्छा
विकल्प है उत्तर और उत्तर देखें
धन्यवाद मोबाइल फोन के लिए आवेदन
पत्र डाउनलोड करें धन्यवाद. 1960

योग मार्ग में बिन्दु मुक्त नहीं होता

दो शरीर मिलन में एक हो सकते हैं,
फिर भी यदि वह बिन्दु उत्सर्जित
नहीं करता है तो वह मिलन योग
मार्ग है; वह भोग शिव भोग है; वह
सच्चा भोग है जहां योगी
मूर्ख स्त्री की वासना को
दबाने के लिए उत्सर्जन नहीं करता है।

यदि बिन्दु उत्सर्जित न हो तो दो शरीर, पुरुष और स्त्री, एक हो सकते हैं, वह मिलन योग मार्ग का है। वह भोग शिव भोग है।

एक और पोस्ट देखें ளால்விடார்
யோகங கலந்தவர் மாதர உயிராசை
கைககொணடே வாடுவர்
காதலர போனறுஙகள यह एक अच्छा विचार है 1961

बिंदु उत्सर्जित नहीं है

जो लोग योग मार्ग पर स्थित हैं, भले ही
वे स्त्रियों के साथ संयुक्त हों, वे अपने
काम-बिन्दु को उत्सर्जित नहीं करते; और स्त्रियाँ
अपने जीवन की वासना को अतृप्त ही रखती हैं, वे सचमुच
तडपती हैं और मुरझा जाती हैं। प्रेम
के लिए अभी भी तडपती हैं,
जैसे कि नए प्रेमी हमेशा के लिए करते हैं

यदि बिंदु को यौन मिलन के योगल तरीके से मुक्त नहीं किया जाता है, तो जिस महिला की भावनाएं शांत नहीं होती हैं, वह हमेशा प्यार के लिए तड़पती रहेगी।

சாறறிய விந்து சயமாகுஞ
சத்தியால் ஏற்றிய मेरे
लिए यह एक अच्छा विकल्प है ठीक है
मेरे पास एक अच्छा विकल्प है. 1962

शारीरिक बिन्दु ब्रह्मांडीय बिन्दु बन जाता है

कुडलिनी शक्ति द्वारा, बिंदु पर विजय प्राप्त
करें, मूलाधार में उस अग्नि को प्रज्वलित करें
और उसे केंद्रीय नाड़ी, सुषुम्ना
के माध्यम से सीधे ऊपर की ओर ले जाए;

English ⇄ Hindi
Send to Translate Home
Select all
Liste
Are these results useful? Yes No

Reach Nada,
And swill ambrosia there flows;
Your Bindu the Divine Bindu becomes.

Vanquishing bindu by kundalini sakti, kindle the fire in the muladhara and reach nada by coursing it upward through the central nadi, sushumna. Swill the ambrosia flowing there. Through the body, bindu becomes cosmic bindu that is divine.

விந்துவும் நாதமும் மேவக் கனல்மூல
வந்த வனலின்கீழ்க் கால்கொளும் மன்விடச்
சிந்தனை மாறச் சிவமக மாகவே
விந்துவு மாளுமெய்க் காயத்தில் விந்திலே. 1963

Union of Bindu and Nada

When Bindu and Nada unite,
And Kundalini Fire each minute hair root permeates,
All thought devoid,
Siva Himself you become;
And the Bindu then dies in the Primal Bindu
Of the Body Divine.

With the union of bindu and nada you become Siva Himself, devoid of all thoughts. The semenal bindu then dies in the primal bindu of the divine body.

வித்துக் குற்றுண்பான் விளைவறி யாதவன்
வித்துக் குற்றுண்ணாமல் வித்துச்சுட் டுண்பவன்
வித்துக் குற்றுண்பானில் வேறுள வித்தவன்
வித்துக் குற்றுண்ணாமல் வித்துவித் தானன்றே. 1964

Yogi-Sublimates Bindu

He who pounds seed and consumes it
Knows not good that of harvest comes;
Different is he,
Who fries it (in Kundalini Fire) and in body absorbs;
The latter, of the seed a meal does not make,
But the Seed of Birth he ends.

He who pounds and consumes the seed will not get a good harvest. Different is he who fries bindu in the kundalini fire, and end the seed of birth.

அண்ணத்தில் விந்து அடங்கும் படிகண்டு
மன்னப் பிராணனாம் விந்து மதித்திட்டு
பின்பொருந்த விந்துநா தத்தது விட்டிட
வன்னத் திருவிந்து மாயுமவ் வந்திலே. 1965

Merging of Bodily Bindu in Cosmic Bindu

Coursing upward, Bindu that is Prana vital
Merging it in Divine Bindu
That the "Swan" in cranium (Sahasrara) is,
There, uniting in Nadanta,
The luminous Bindu is in body absorbed.

Bindu is the vital prana coursing upward; it merges in the divine bindu. There uniting in Nadanta, the luminous bindu is absorbed into the body.

அன்னம் பிராணனோ டாக்கு மிருவிந்து
தன்னை யறிந்துண்டு சாதிக்க வல்லார்க்குப்
பொன்னா மருவுந் தேகமுஞ் சித்தியாம்
அன்னவ ரெல்லாம் அழியாத் திடமதே. 1966

Absorb Bindu in Body and Become Immortal

The Swan (the macrocosmic), and Prana (the microcosmic)
—Bindu is thus two for all;
Those who realize this
And absorb one in the Other
—The Prana (Individual) in the Swan (Cosmic)—
Will eight siddhis attain;
Their body as gold glitters;
They immortal become.

They who know the truth of the two forms of bindu — the swan (macrocosmic) and prana (microcosmic) and absorb the latter in the former will attain the eight siddhis. Immortal they become, their bodies glittering as gold.

நின்ற சிகாரம் நினைக்கும் பிராணனைத்
துன்று மகாரம் ஒடுங்கின்றோ டுன்றவை
சென்று பராசத்தி விந்து சயந்தன்னைத்
தன்ற உபாய உபதேசந் தானே. 1967

Secret Way of Bindu Conquest

Intone sound "Si" (the first sound of Panchakshara)
In your Prana (life breath)'s silent thought
Merge in "Aum" — the sound cluster of "A, U, M"
Thus ParaSakti reach;
That indeed is the way of Bindu Conquest
—This the Mystic Secret (upadesa)—you hold.

Intone the sound 'Si' (the first sound of panchaksara) in you silent thought and merge prana in 'Aum.' Thus reach Parasakti. Indeed, this is the secret method of conquering bindu.

தானே உபதேசந் தானவ னாகின்றவை
வானே யுயர்விந்து வந்த பதினான்கு
மானே நடக்க அதன்பின்பு புத்தியுந்
தானே சிவகதி தன்மையு மாமே. 1968

Conquer Bindu and Attain Siva State

This the Mystic Secret
There is none — but this
He alone is; nothing else there is;
The Bindu heavenward ascends,
The Organs Fourteen
(Jnanendriyas five, karmendriyas five and Antakaranas four)
Their action cease;
Then does Jnana follow;
That verily is Siva State.

Conquest over bindu makes it ascend heavenward. The action of the 14 organs (five jnanendriyas, five karmendriyas, and four antahkaranas) ceases. Sublimated bindu (elan vital)

Google Lens

Original Translated

नाद तक पहुँचो,
और वहाँ अमृत बहने लगेगा; तुम्हारा
बिन्दु दिव्य बिन्दु बन जायेगा।

कुडलिनी शक्ति द्वारा बिंदु को परास्त करके, मूलाधार में अग्नि प्रज्वलित करें—और केंद्रीय नाड़ी, सुषुम्ना के माध्यम से—इसे ऊपर की ओर प्रवाहित करके नाद तक पहुँचें। वहाँ बहते हुए अमृत को पियें। शरीर के माध्यम से, बिंदु ब्रह्मांडीय बिंदु बन जाता है जो दिव्य है

விந்துவும் நாதமும் மேவக் கனல்மூல
வந்த வனன்மயிர்க் கால்தோறும்
மன்னிடச் சிந்தனை ठीक है एक वर्ष
से अधिक समय तक ऋण प्राप्त करने के लिए ठीक है: 1963

बिन्दु और नाद का मिलन

जब बिंदु और नाद एक हो जाते हैं, और
कुंडलिनी अग्नि प्रत्येक छोटे से छोटे रोम में व्याप्त
हो जाती है, तब सभी
विचार रहित होकर आप स्वयं शिव
बन जाते हैं; और तब बिंदु दिव्य शरीर के आदि बिंदु
में विलीन हो जाता है।

बिंदु और नाद के मिलन से तुम स्वयं शिव बन जाते हो सभी विचारों से रहित हो जाते हो। तब वीर्य बिंदु दिव्य शरीर के मूल बिंदु में मर जाता है।

வித்துக்குற் றுண்பான் விலைவறி
யாதவன் வித்துக்குற் றுண்ணாமல் வித்துச்சுட்
धन्यवाद வித்துக்குற றுண்பானில் வேறல விற்றவன
வித்துககுற் றுண்ணாமல் வித்துவித் ठीक है. 1964

योगी बिंदु को उदात्त करते हैं

जो बीज को पीसकर खाता है, वह नहीं
जानता कि फसल अच्छी होगी; वह
व्यक्ति भिन्न है,
जो उसे (कुण्डलिनी अग्नि में) भूनकर शरीर में सोख
लेता है; दूसरा व्यक्ति बीज से भोजन नहीं बनाता, परन्तु
जन्म रूपी बीज को नष्ट कर देता है।

जो बीज को पीसकर खा जाता है, उसे अच्छी फसल नहीं मिलती।
वह व्यक्ति अलग है जो कुंडलिनी अग्नि में
बिंदु को भूनकर जन्म के बीज को समाप्त कर देता है।

उत्तर और उत्तर देखें மன்னப் பிராணனாம்
விந்து மறித்திட்டு மின்னொத்த
விந்துநா தாந்தத்து விட்டிட
வன்னத் यह एक अच्छा विकल्प है 1965

दैहिक बिंदु का ब्रह्माडीय बिदु में विलय

ऊपर की ओर प्रवाहित होता हुआ, वह बिंदु जो प्राणमय
है, उसे दिव्य बिंदु में मिला देता
है, जो कि कपाल (सहस्रार) में स्थित "हंस" है,
वहीं, नादंत में एक हो जाता है, वह
प्रकाशमान बिंदु शरीर में लीन हो जाता है।

बिन्दु प्राण है जो ऊपर की ओर प्रवाहित होता है; यह दिव्य बिन्दु में विलीन हो जाता है। वहाँ नादन्त में एकाकार होकर, प्रकाशमान बिन्दु शरीर में समा जाता है।

அன்னம் பிராணனென் றார்க்கு
மிருவிந்து தன்னை யறிந்துண்டு சாதிக்க
வல்லார்க்குச் சொன்ன மாமுருத் தோன்றும்எண்
சித்தியாம் அன்னவ यह एक अच्छा विकल्प है 1966

बिन्दु को शरीर में अवशोषित करो और अमर हो जाओ

हंस (वृहत् ब्रह्माण्डीय) और प्राण (सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय)

इस प्रकार बिन्दु सभी के लिए दो
हैं; जो इस बात को जान
लेते हैं और एक को दूसरे में लीन
कर लेते हैं प्राण को हंस में वे आठ सिद्धियाँ प्राप्त
कर लेते हैं; उनका शरीर सोने
के समान चमकने लगता है;
वे अमर हो जाते हैं।

जो लोग बिंदु के दो रूपों हस (वृहद) और प्राण (सूक्ष्म) . के
सत्य को जानते हैं और प्राण को सूक्ष्म में लीन कर लेते हैं, वे आठ सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं। वे अमर हो जाते हैं, उनका शरीर सोने की तरह चमकने लगता है।

நின்ற சிகாரம் நினைக்கும்
பிராணனாய் ஒன்று एक वर्ष से अधिक समय तक ऋण
प्राप्त करने के लिए விந்து சயந்தன்னை
ஒன்ற வுரைக்க யுபதேசந் தானே. 1967

बिन्दु विजय का गुप्त मार्ग

'सि' (पंचाक्षर की प्रथम ध्वनि) का उच्चारण
करो, अपने प्राण के मौन विचार में 'अ, उ,
म' के ध्वनि समूह को 'ओम्' में विलीन कर दो,
इस
प्रकार पराशक्ति तक
पहुंचो; यही बिंदु विजय का मार्ग है - यही वह
रहस्य (उपदेश) है जिसे तुम धारण करते हो।

अपने मौन विचार में 'सि' ध्वनि (पंचाक्षर की प्रथम ध्वनि) का उच्चारण करो और प्राण को 'ओम्' में विलीन कर दो। इस प्रकार पराशक्ति तक पहुंचो। वस्तुतः, बिन्दु पर विजय पाने की यही गुप्त विधि है।

தானே யுபதேசந் தானல்லா
தொனறில்லை வாளோ एक वर्ष से
अधिक समय तक ऋण प्राप्त करने के
लिए उत्तर मेरे पास एक अच्छा विकल्प है. 1968

बिन्दु पर विजय प्राप्त करें और शिव राज्य प्राप्त करें

यही रहस्य है, इसके
अतिरिक्त और कुछ नहीं है.
बिन्दु स्वर्ग की ओर चढ़ता है, इन्द्रियाँ
चौदह हैं (ज्ञानेन्द्रियाँ
पाँच,
कर्मेन्द्रियाँ पाँच और अन्त:करण चार) उनका
कार्य समाप्त
हो जाता है; तब ज्ञान
उत्पन्न होता है, वह
वास्तव में शिवत्व है।

बिन्दु पर विजय प्राप्त करने से वह स्वर्ग की ओर ऊपर उठ जाता है। 14 इन्द्रियों (पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और चार अन्त:करण) की क्रियाए बद हो जाती हैं। उदात्त बिन्दु (एलन वाइटल)

English ⇄ Hindi

Send to Translate Home Select all Liste

Are these results useful? Yes No

becomes an intellectual and spiritual force. Truly then is the Siva state filled with jnana.

விந்துவும் நாதமும் விளைய விளைந்தது
வந்தஇப் பல்லுயிர் மன்னுயிர் முக்கெலாம்
அந்தமும் ஆதியு மாமந் திரங்களும்
விந்து அடங்க விளையுஞ் சிவோகமே. 1969

Sivoham when Bindu Subsides

In union of Bindu and Nada
Was born this creation vast;
It is beginning and end of all life,
Of great mantras too,
When Bindu subsides,
Then is Sivoham.

This vast creation, the beginning and end of all life, and the great mantras were all born in the union of bindu and nada. Sivoham is when bindu subsides.

வறுக்கின்ற வாறு மனத்துவா வெத்தி
திறுக்கின்ற வாறுமந் நீள்வரை யொட்டிப்
பொறிக்கின்ற மூலமும் பொல்லா வினைனை
அறுக்கின்ற நட்டாரும் அத்திப் பழமே. 1970

Fry Bindu and End Birth

Fry the Bindu, Mind its balance winning;
Raise it high, to mount of Sushumna;
That way, your interminable Karmas are scorched;
Then the day you pluck away
The Fruit of Fig that holds
The seeds of birth, innumerable.

Fry bindu and raise it high to the mount of sushumna. Scorch your interminable karmas. There ends the cycle of innumerable births.

விந்துவும் நாதமும் மேவி யுடன்கூடிச்
சந்திர னோடே தலைப்படு மாயிடின்
அந்தர வானத் தமுதம்வந் தூறிடும்
அங்குதி மந்திரம் ஆகுதி யாகுமே. 1971

When Bindu Merges Ambrosia Wells

When Bindu and Nada uniting in one
Enter the Sphere of Moon within,
The heavenly ambrosia wells and flows;
The Mantra (Aum) that arises there
Is the sacrificial offering to Lord Supreme.

The heavenly ambrosia wells and flows when bindu and nada enter the sphere of the moon in union. The mantra that emerges there is the sacrificial offering to the Lord.

மனத்தொடு சத்து மலருஞ்செவி யென்ன
இனத்தெழு வார்கள் இசைந்தன நாடி
மனத்தில் எழுகின்ற வாக்கு வசனம்
கனத்த இரதமக் காமத்தை நாடியே. 1972

Merge Mind in Bindu, Away From Lust

When the Mind in the Bindu merges,
Then the Mind, the ears and all organs besides
Will together rise the Divine Goal to seek;
But when thought and sound and words
That in the Mind arise
Seek lust,
As fluid thick it transformed be.

With the union of bindu with the mind, all sense organs rise to seek the divine goal. Thought, sound and words arise in the mind; when bindu is not sublimated, the working of the mind leads to lust.

சத்தமுஞ் சத்த மனமும் மனக்கருத்
தொத்தறி கின்ற விடமும் அறிகிலர்
மெய்த்தறி கின்ற விடமறி வாளர்க்கு
அத்தன் இருப்பிடம் அவ்விடத் தாமே. 1973

Jnanis Know Lord's Seat

The Sound (Nada), and the Mind that perceives Sound,
And the place where Mind undistracted discerns Truth,
—These they know not;
That place the Jnanis truly know
That verily is Lord's Seat.

True jnanis know the Lord's seat, where the sound (nada) and the mind that perceives the sound, remain in union.

உரமடி மேதினி யுந்தியில் அப்பாம்
விரவிய தன்மனை மேவியக் கீழ்ந்தி
கருமுலை மீமிசை கைக்கீழ்நிற் காலாம்
விரவிய கந்தர மேல்வெளி யாமே. 1974

Regions of Five Elements in the body

Earth is, where the legs are (Muladhara);
In the navel (Svadhishthana) is the Region of Water;
Below the breast (Manipura) is the Fire;
Above the breast (Anahatha) and below the shoulder (Visuddhi) is Air;
And around the neck and beyond (Ajna) is the Region of Space.

The regions of the five elements are within the body. The region of earth is mūladhara. The navel (svadhistana) is the region of water. Below the breast (manipuraka) is the fire; above the breast (manipuraka) and below the shoulder (visuddhi) is air. The region of space is around the neck and beyond (ajna)

The location and significance of the 6 chakras in the body are to be noted. Only 5 elements are involved. The association of Space (Akasa) with Ajna cakra is particularly significant, for it is here, in the two-petalled lotus, that duality is supposed to disappear into non-duality during Kundalini Yoga.

17:10
Google Lens
Original Translated

एक बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति बन जाता है। सचमुच तब शिव अवस्था ज्ञान से भर जाती है।

விந்துவும் நாதமும் விளைய
விளைந்தது வந்தஇப பலலுயிர்
மன்னுயி ருக்கெலாம்
அந்தமுமஆதியு एक और पोस्ट देखें ठीक है 1959

जब बिन्दु शांत हो जाए तब शिवोहम्

बिंदु और नाद के सयोग से इस
विशाल सृष्टि का जन्म हुआ; यह
समस्त जीवन का आदि और अत है, महान
मंत्रों का भी; जब बिंदु
शांत हो जाता है, तब
शिवोहम होता है।

यह विशाल सृष्टि, सभी जीवन का आरंभ और अंत, तथा महान मत्र सभी हिंदू और नाद के मिलन से पैदा हुए हैं। शिवोहम वह है जब हिंदू समाप्त हो जाता है।

வறுக்கின்ற வாறு மனத்துலா
வெற்றி நிறுக்கின்ற வாறுமந்
நீள்வரை யடிப் उत्तर ஊறுமப் பொல்லா வினையை
அறுக்கின்ற நாளவரும் मेरे पास क्या है. 1970

तलना बिन्दु और अंत जन्म

बिन्दु को भून डालो, ध्यान रहे कि उसका
संतुलन बना रहे; इसे सुषुम्ना पर्वत तक
ऊपर उठाओ; इस प्रकार तुम्हारे अनन्त कर्म
भस्म हो जायेंगे; फिर जिस
दिन तुम अंजीर के फल तोड़ोगे,
जिसमें जन्म के असंख्य बीज हैं।

बिन्दु को भूनकर सुषुन्न पर्वत तक चढ़ा दो। अपने अनत कर्मों को जला डालो। असंख्य जन्मों का चक्र यहीं समाप्त हो जाता है

एक और पोस्ट देखें एक वर्ष से अधिक
समय तक ऋण प्राप्त करने के लिए
தமுதம்வத் यह एक
अच्छा विकल्प है. 1971

जब बिंदु ने एम्ब्रोसिया वेल्स का विलय किया

जब बिन्दु और नाद एक होकर भीतर
के चन्द्रमण्डल में प्रवेश
करते हैं, तब दिव्य अमृत प्रवाहित
होता है; तब जो मन्त्र (ओम्) उत्पन्न
होता है, वह परमेश्वर के लिए आहुति है।

जब बिंदु और नाद एक होकर चन्द्रमा के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तो स्वर्गीय अमृत प्रवाहित होता है। वहां जो मंत्र निकलता है, वह भगवान के लिए बलिदान है।

மனத்தொடு சத்து மனஞ்செலி
யென்ன இனத்தெழு வார்கள்
இசைந்தன நாடி மனத்தில் எழுகின்ற
ठीक है मेरे पास एक अच्छा विकल्प है. 1972

मन को बिन्दु में मिलाओ। वासना से दूर

जब मन बिन्दु में लीन हो जाता है, तब
मन, कान और अन्य इन्द्रियाँ मिलकर दिव्य लक्ष्य
की खोज में लग जाती हैं; किन्तु
जब मन में विचार, शब्द और शब्द
काम की खोज में लग जाते
हैं, तब वह
द्रव के समान गाढा हो जाता है।

मन के साथ बिंदु के मिलन से सभी इंद्रियाँ दिव्य लक्ष्य की खोज में लग जाती हैं। विचार, ध्वनि और शब्द मन में उठते हैं, जब बिंदु उदात्त नहीं होता, तो मन की क्रिया वासना को जन्म देती है।

சத்தமுஞ் சத்த மனமும்
மனக்கருத் தொத்தறி கினற விடமும
அறிகிலர் மெய்த்தறி கின்ற
ठीक है मेरे पास एक अच्छा विकल्प है. 1973

ज्ञानी लोग प्रभु के आसन को जानते हैं

ध्वनि (नाद) और मन जो ध्वनि को अनुभव करता
है,
और जिस स्थान पर मन अविचलित होकर सत्य को पहचानता
है, उसे
वे नहीं जानते; उस स्थान
को ज्ञानी लोग सचमुच जानते हैं, वही
वास्तव में भगवान का आसन है।

सच्चे ज्ञानी भगवान के आसन को जानते हैं, जहाँ ध्वनि (नाद) और ध्वनि को ग्रहण करने वाला मन, एकता में रहते हैं।

एक वर्ष से अधिक समय तक ऋण प्राप्त
करने के लिए தன்மலை மேவியக்
மூங்கி கருமுலை மீமிசை
கைக்கழிற் मेरे पास एक अच्छा विकल्प है 1974

शरीर में पाच तत्वों के क्षेत्र

पृथ्वी वह स्थान है, जहाँ पैर हैं (मूलाधार);
नाभि में (स्वाधिष्ठान) जल क्षेत्र है; वक्षस्थल
के नीचे (मणिपुर) अग्नि है; वक्षस्थल
के ऊपर (अनाहत) तथा कंधे के नीचे (विशुद्धि)
वायु है; तथा गर्दन
के चारों ओर तथा उससे आगे (आज्ञा) आकाश
क्षेत्र है।

पांच तत्वों के क्षेत्र शरीर के भीतर हैं। पृथ्वी का क्षेत्र मूलाधार है। नाभि (स्वाधिष्ठान) जल का क्षेत्र है। वक्ष के नीचे (मणिपूरक) अग्नि है: वक्ष के ऊपर (मणिपूरक) और कंधे के नीचे (विशुद्धि) वायु है। अंतरिक्ष का क्षेत्र गर्दन के आसपास और उससे आगे (आज्ञा) है।

शरीर में 6 चक्रों का स्थान और महत्व ध्यान देने योग्य है। इसमें केवल 5 तत्व शामिल हैं। अंतरिक्ष (आकाश) का आज्ञा चक्र से जुड़ाव विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहीं, दो पंखुड़ियों वाले कमल में, कुंडलिनी योग के दौरान द्वैत को अद्वैत में विलीन कर दिया जाता है।

English ⇄ Hindi
Send to Translate Home
Select all
Liste
Are these results useful? Yes No

ऐसी जुगती योग की, 'मंगत' करे बखान।
सुन पुरखा गुनवन्तया, भेंट करो भगवान॥ 264

प्रथमे आसन सहजे बाँधे। इन्द्री इस्थिर मनुआँ खाँडे॥
काची काया करे विचार। आवत जावत पवन संचार॥
अपने माहीं ब्रह्म तत्त चीन। सो ही जोगिन्दर योग परबीन॥
पवन को छेदे मन ठहराए। पवन को सोधे सत शबद को पाए॥
पाँच तत्त पच्चीस धारा। काचे गढ़ का करो विचारा॥
नौ द्वार ये गढ़ के जानी। दसवाँ गुपत लखे कोई ज्ञानी॥
खट चक्कर इस काया माईं। बूझे गुरमुख योग लखाईं॥
सार योग की जानो मीता। थामे पवन भए पुनीता॥
गुदा लिंग नाभी अस्थाना। हिरदे कंठ धरे मकाना॥
त्रिकुटी चक्कर पछाने जोई। तिस जन को फिर गवन ना होई॥
खट चक्कर और पाँचों मुदरा। ब्रह्म परकाश शबद निरद्वंदरा॥
नाभकँवल है अचरज थाना। जाँ में वसया श्री भगवाना॥
तिससे उपजे स्वास का थम्बा। सुरती खेले खेल अचम्बा॥
दस पवना देह में बिस्तारी। दो पवना सब की अधिकारी॥
प्रान उपान ताँ को नामा। करे पछान ले बिसरामा॥
गुर की सिखया जाप जपावे। अकथ कथे शबद रस पावे॥
अपना रूप आप मिलाए। **'मंगत'** बोले ज्ञान आगाहे॥**265**
बाहर जाती पवन हकारी। भीतर आवे रूप साकारी॥
हकार साकार मिलावे दोई। निरबिख नागन सीधी होई॥
हकार साकार को एह बिध मिलाए। बाँधे पवन पच्छिम घर जाए॥
ईड़ा पिंगला में सुरती धारे। गुर का शबद पल पल विचारे॥
उलट पवन कमल परगासे। उपजे शबद ज्ञान धुन रासे॥
उठके शबद चढ़े आकास। बाजे अनहद नाद निर्बास॥
स्वास सुरत और नाम का बन्ध। गुरमुख खोले बिखमी सन्ध॥
उलट पलट पवन को देवे। मूल शबद नित मन में पीवे॥

नाभकँवल में गरजे बाई। दसवें द्वार तब सोझी पाई॥
बाजे अनहद नाद अखण्ड। धन्न योगी छेदा ब्रह्मण्ड॥
मूल योग की सार पहचान। मन पवन की लाओ तान॥
मन पवन कीजे इक ठौर। गुरमुख बूझे मता अघौर॥
पवन आरम्भ संग नाम सम्भाले। बंकनाल के तोड़े ताले॥
उलट पवन घर उमगे नीर। पीवे कोई कामिल फ़क़ीर॥
उलटा नीर चढ़े आकास। देखे खेल अबगत अबनास॥
मन पवन को नित परचेले। अबगत नाद गगन में खेले॥
सतगुर मिले तब जाने पन्ध। **'मंगत'** खोले विखमी सन्ध॥**266**

ध्रुव लोक से पवन को बाँधे, सुरत पाताल पठाए।
इरध उरध में आसन करके, गुरमुख योग कमाए॥

बाहर सोलह पवन की गमता। सम कर पावे तत्त समता॥
पवन सम्भाल आरम्भत करे। धरती उलट आकासें चढ़े॥
उपजे नाद सारंग तार। धन्न योगी गत लखी अपार॥
निरगुन सरगुन जाने भेद। सतगुर मिलें मिटावें छेद॥
निरगुन सरगुन दोई बन्धाए। तत्त निरंकार तब परगट पाए॥
नौ दवारे बन्धे नीत। पवन को पीवे सो चरंजीत॥
पवन को सोधे उपजे नाद। अगम निगम की खेड अगाध॥
ऐसी जुगती जाने जोई। अनुभवी समाध में सुरत परोई॥
मन की विरती होई लवलीना। आलख शबद घट अन्तर चीना॥
उपजे शबद बहु रंग की तार। अमरत धुनत बाजन्त सार॥
त्रिकुटी भीतर शबद किलकारी। तब जोगिन्दर इच्छयाचारी॥
त्रिकुटी ऊपर परस सुखसीर। भँवर गुफ़ा के लागे फेर॥
नानां रंग जोती दरसाई। कोट भान छबी गिनी ना जाई॥
ज्यूँ ज्यूँ नाद गरजत करे। त्यूँ त्यूँ जोती से रस झरे॥
दमके दामन नाद रस पीवे। **'मंगत'** विरला कोई मर के जीवे॥**267**
सहँस हज़ार दल कँवल को फोड़ी। अजपा जाप की लाई झकझोरी॥
अगम जोत अखण्ड अनूप। परसे कोई गुर का पूत॥

पाँच शबद रंग उपजे नाद। सुरत समाई वड बिस्माद॥
बूझे शबद मन मगन समाए। होए निरास परम पद पाए॥
तिस ते परे ना कोई योग। मन पवना शबद रस भोग॥
तीनों बन्ध लगावे ताली। ब्रह्म कपाट खुले तिरनाली॥
निस दिन सोधे गुर का पूत। पाँच-पच्चीस बाँधी इक सूत॥
मनुआँ ठाके विरत रजाए। प्रन अपने को सम कर पाए॥
पवन पखारे शबद गुर जुगता। एह बिध उरध कँवल मुख खुलता॥
जब लग पवन ना सोधे मीत। तब लग पाए ना मन परतीत॥
काची काया करो विचार। ब्रह्मरूपनी पवन रीजार॥
पवन को सोधे मनुआँ ठहराए। नाम को सोधे पवन शुद्धाए॥
मूल नाम सतगुर बतलाया। अगम निगम की गम को पाया॥
चन्द सूरज का करे आहारा। सो योगी पावे भरतारा॥
ऐसा नाम कमावे जन कोए। जीवन जीवे सत रूप समोए॥

चन्दर सूरज दो ही बाँधे, पच्छम दिशा के घाट।
'मंगत' कँवल परगासिया, निर्मल सूझी बाट॥ 268

दिन दिन पवन को बाँधे योगी। अमरत पीवे ज्ञान संजोगी॥
चार उंगल आकास फैलाओ। गुरमुख ताँ में आसन लाओ॥
आसन आकास सुरत मतवाली। अमरत शबद पियो सुखसाली॥
अखण्ड नाद परगट तिरबैनी। जीवे योगी गुर की कहनी॥
मन पवन जब मेला होए। सुखमन बोले गगन धुर जाए॥
ऐसी करे कमाई जोए। गोरख ताँ के चरन को धोए॥
गगन गृह खेत उरध गृह माली। उल्टा फूल लगा बिन डाली॥
बिन फूले फल परगट होए। **'मंगत'** बोले सूझे जन कोए॥**269**
सोध कुण्ड में नीर बहंता। तिसको बांध आकास चढ़ंता॥
सिद्धाँ पुरखाँ की ये ही कार। धरती उलट आकास बठार॥
जब लग धरनी आसन नाहीं। तब लग आकास की गम कछु नाहीं॥
सतगुर मिले घर आसन पाया। बांधी पवन शबद रस ध्याया॥
उलटी पवन करे हलोल। बिन चंद चकवा करे कलोल॥

बोले पवन गगन गराजे। अनहद सुन बहु भाँत से बाजे॥
बजे बजन्तर सुने सब तार। तब ही नासियो मन विकार॥
विखे त्याग मन भया निर्वानी। घर में सूझे अकथ कहानी॥
नाम पवन सुरत त्रै बाँधे। गुर परतीत चौरासी खाँडे॥
अलप आहारी सूखम निद्राई। गुरमुख बूझ मन गत पाई॥
उल्ट पवन का करे नित आहारा। सदा तृपत नित नित जयकारा॥
भुख प्यास निद्रा जब गई। अगम शबद तब सोझी भई॥
सदा मतवाल शबद के संग। नाम ध्यावे परसे आनन्द॥
शबद सुरत मिलावे इक बन्ध। चढ़ी समाध नित अखण्ड॥
गुपत योग ये सार लखाई। सतगुर मिले तब परचे भाई॥
क्योंकर मन की मनसा जाए। क्योंकर सुरती ठौर को पाए॥
क्योंकर भरम गण्ठी जड़ टूटे। क्योंकर जीव दुर्मत से छूटे॥
बोले **'मंगत'** करे विचार। बूझे कोई गुरमुख गुनकार॥**270**
पवन को बाँधे मनसा ठहराई। शबद को बूझे सुरती गत पाई॥
इरध उरध पवन को बेधे। भरम गण्ठी का कीनो छेदे॥
खुली गण्ठी इक अण्डा थाया। गगन गुफा में जाए नाद वजाया॥
बूझे नाद दुर्मत मैल हरया। पारगरामी तब नज़री पड़या॥
चंचल मनुआँ पाए बिसराम। आवागवन का टूटे जाम॥
ऐसी कमाई करे जोए। तिस जन कोई बिगन ना होए॥
सदा निर्गुन उदासी मत। एक नाम की लाखे मित गत॥
नाम पवन जो मेला होई। तब ही मन की जड़ता खोई॥
साचा राह योग ये ही। होए जोगिन्दर परखे सनेही॥
पवन उलटाए सुने रबाब। अबगत पुरख का लखे हिसाब॥
बाजे घंट बीनी नफ़ीर। **'मंगत'** बूझे परम फ़कीर॥**271**
अन्तर में जो रहे समाई। तिसको व्यापे काल कभूँ नाहीं॥
भरम त्याग शबद को बेधे। गुर परताप चौरासी छेदे॥
नौ द्वार को अन्तर उलटाए। सुरती बाँध पवन घर जाए॥
अरच परच पवन घर खेले। जनम जनम का छूटा मेले॥

आलख शबद गुरमुख विचारी। सत मारग का भया वापारी॥
गृहस्ती विरक्ती जो कोई होए। मारग बूझ भरम चित खोए॥
बन्ध खुलासी का मारग एका। गुरमुख परसे धर विरत विवेका॥
अपान पवन को प्रान में मेले। ले प्रान अपान में खेले॥
नित अश्वमेध करे मुनी ज्ञानी। शबद अखण्ड पाए पुरख निर्वानी॥
शबद भेद जब पूरन पाए। तब जीवन नर सुख वरताए॥
धन्न सतगुर जिस मारग दिखलाया। अजर पुरष का दर्शन पाया॥
धरती पदम शीश धरे अरशे। आलख शबद निस बासर बरसे॥
गुर का शबद बिमल तत्तसार। **'मंगत'** बूझे होए भ्रम छार॥**272**
ऐसे शबद की कथा अनूप। करे बखान कोई सतगुर रूप॥
जिस सूझा तिस पाई जुगत। विचरे जग में सो जीवन मुकत॥
बिना योग नहीं मनसा ठहराए। बिना योग नहीं तृप्ती आए॥
सतगुर मिले तब सार को पाया। अमरलोक में जाए समाया॥
तीन भवन सुख सहज अस्थाना। विचरे शबद आलख निर्वाना॥
गंग जमन सरस्ती बन्ध। अबगत पुरख का प्रगटयो सन्ध॥
सुर नासका मद्ध सुरती ठहराए। सार शबद को सो जन पाए॥
उलट सुरत घट पवन को पीवे। अछल अछेद अर्थ को लेवे॥
रमज़ गुपत जाने कोई सूर। ऊँचा शिखर बजावे तूर॥
चंचल मन को कीजे घात। अमरत पीवे सुन्न के घाट॥
सहज सुन्न में वास नित करी। अचल समाध शबद रस भरी॥
पावे कोई गुरमुख भेद। आद निरंजन पुरख अछेद॥
नाम बिना नहीं पावे योग। पावे नाम सतगुर संजोग॥
योग पाए मन मल हरया। अखण्ड दीपक कपाट में धरया॥
खुले कपाट भया उजियारा। **'मंगत'** योगी सत जुगत विचारा॥**273**

आसन धरती सुरत आकासे, लखे ज्ञान निर्वानी।
उपजे शबद जोत दरसावे, सुरत भई इकलानी॥
तन मस्जिद प्रान मुसल्ला, तिस पर पढ़े नमाज़ हकानी।
तरक ख़ुदी दा सजदा कीजे, घर बूझे रमज़ रूबानी॥

हठयोग साधना में मुख्यतः इड़ा–पिंगला व सुषुम्ना नाड़ियाँ प्रसिद्ध मानी जाती है। सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग में कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वगमन करती है यह अपने ही मुख में अपनी पूंछ दबाकर सुषुप्त भाव से अवस्थित रहती है –

"कंदोर्ध्व कुंडली शक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्।
बंधनाय च मूढ़ानां यस्तां वेत्ति स योगावित्।"[1]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कुण्डलिनी शक्ति की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं – "महाकुंडलिनी नामक एक शक्ति है जो सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है और जब यही शक्ति व्यक्ति विशेष में व्यक्त होती है तो इसे कुंडलिनीं कहते हैं। कुंडलिनी और प्राण शक्ति को लेकर ही जीव मात्रृकक्ष में प्रवेश करता है। सभी जीव साधारणतः तीन अवस्था में रहते हैं– या तो वे सोते रहते हैं, या जागते रहते हैं या फिर स्वप्न देखते रहते हैं इन तीनों ही अवस्थाओं में कुण्डली निश्चेष्ट पड़ी रहती हैं। पीठ में स्थित मेरूदण्ड जहाँ पीछे जाकर पायु और उपस्थ के मध्य भाग में लगता है, वहाँ एक स्वलंभू लिंग है जो एक त्रिकोण में अवस्थित है। इसी त्रिकोण में स्थित स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन वलयों या वृत्तों में लपेटकर सर्पिणी की भाँति कुण्डलिनी अवस्थित है।"[2]

कुण्डलिनी मेरूदण्ड के नीचे मूलाधार चक्र में साढ़े तीन कुंडली मारकर सुषुप्त भाव से पड़ी रहती है, परन्तु योगाभ्यासी गुरु की कृपा तथा प्राणायाम आदि योग साधनों के द्वारा षट्चक्रों का भेदन कराते हुए इसे ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाते हैं।

सन्त कबीर ने अपनी रचनाओं में कुण्डलिनी का व्यापक प्रयोग किया है लेकिन इसके लिए उन्होंने कुण्डलिनी शब्द प्रयोग न करके इससे मिलते जुलते शब्दों का प्रयोग किया है जैसे पनिहारी। सन्त कबीर कुण्डलिनी को ब्रह्मरन्ध्र रूपी कुएँ पर अमृत जल भरने वाली पनिहारी कहते हैं –

---

65 1. श्री आत्माराम योगीन्द्र, हठयोग प्रदीपिका, पृ० १२७

2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० ४५

"आकासे मुखि औंधा कुवाँ पाताले **पनिहारि**।

ताका पाँणी को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि।"[1]

अर्थात् शून्य में सहस्त्रदल कमल अधोमुख कुएँ के समान हैं एवं इस से जल भरने वाली कुण्डलिनी पाताल में अर्थात्, मूलाधार में स्थित है। इस आधोमुखी कुएँ के अमृत जल को कोई सिद्ध आत्मा ही पा सकती है। मैं यह बात विचार करके ही कहता हूँ कि कोई बिरला ही इसका पान कर सकता है।

कुण्डलिनी को सर्पिणी की भाँति माना गया है। इसलिए कबीर ने इसे नागिन भी कहा है –

"प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत **नागिनी** जागी।"[2]

अर्थात् योग साधना से सोई हुई कुण्डलिनी जाग गई है जिस से साधक अमृत के प्यालों को पी रहा है। कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में अधोमुखी रहती है। योग साधना से उलटकर यह ऊर्ध्वमुखी हो जाती है। इसलिए कबीर ने इसे 'उलटी कूची' की संज्ञा भी दी है। वे कहते हैं –

"गगन मंडल रवि ससि दोइ तारा, **उलती कूची** लागि किंवारा।"[3]

अर्थात् शून्य मंडल में सूर्य तथा चन्द्रमा दो तारे है अर्थात् अनन्त ज्योति स्वरूप परमात्मा का वास जिसके दरवाजे लगे हुए हैं। उन दरवाजों को कुण्डलिनी उल्टी होकर खोलती है।

कुण्डलिनी उद्बुद्ध होकर सहस्त्रकमल की ओर अग्रसर होती है अर्थात् ऊपर की ओर जाती है तथा अग्नि की लपटें भी ऊपर की ओर ही उठती हैं। इसीलिए कबीर ने इसे 'अनल' भी कहा है –

"**अनल** अकाँसाँ घर किया, मधि निरंतर वास।

बसुधा व्यौम बिरकत रहै बिनठा हर बिसवास।"[4]

66

1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० १२
2. वही , पृ० ८६
3. वही , पृ० १०६ 4 वही , पृ० ४२

अर्थात् कुण्डलिनी ने ब्रह्मरन्ध्र में जहाँ निरंजन ज्योति प्रकाशित रहती है वहाँ अपना निवास स्थान बना लिया है। अब वह पृथ्वी (मूलाधार) आकाश (सहस्त्रदल कमल) सबसे अलग हो गई है। इस अवस्था में उसका प्रत्येक विश्वास समाप्त हो गया हैं।

कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी में गमन करती है। अतः कबीर ने इसे सुषुम्ना रूपी नदी में रहने वाली मछली की संज्ञा भी दी है। वे कुण्डलिनी के लिए मछली शब्द का प्रयोग करते हुए कहते हैं –

"सिव सकती दिसि कौंण जु जोवै, पछिम दिसा उठै धूरि।

जल मैं स्यंघ जु घर करै, **मछली** चढ़ै खजूरि।"[1]

अर्थात् दिखावटी प्रभु भक्ति से तो पश्चिम दिशा में धूल उड़ती है अर्थात् कुछ भी प्राप्त नहीं होता। उधर कोई नहीं देखता जहाँ शून्य में शिव और शक्ति के दर्शन होते हैं। प्रेम भक्ति रूपी जल में यदि मन निवास करे और कुण्डलिनी रूपी मछली ब्रह्मरन्ध्र रूपी खजूर पर चढ़े, तब उनके दर्शन हो सकते हैं।

हठयोग की समस्त यौगिक क्रियाएँ कुण्डलिनी पर आधारित है। कुण्डलिनी को जाग्रत करके ही साधक अपने चरम लक्ष्य तक पहुंच पाता है। यौगिक क्रियाओं का आधार होने के कारण ही इसे 'धरती' अथवा 'धरनि' भी कहा गया है। सन्त कबीर दास जी कुण्डलिनी के लिए धरनि शब्द का प्रयोग करते हुए कहते हैं –

"जहाँ **धरनि** बरषै गगन भीजै, चंद सूरज मेल।"[2]

अर्थात् इड़ा –पिंगला के संयोग से ब्रह्मरन्ध्र पर कुण्डलिनी के विस्फोट करने से अमृत–वर्षा हो रही हैं।

---

67 1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० १२

2. वही , पृ० १२

इस प्रकार से सन्त कबीर से कुण्डलिनी के लिए इसके अर्थ से मिलते–जुलते शब्दों का ही प्रयोग किया है।

3.3.1.15. बंकनाल –

बंकनाल का साधारण अर्थ है – ऐसी नाल जो वक्र अर्थात् टेढी हो। यहाँ सुषुम्ना नाड़ी के लिए बंकनाल का प्रयोग किया गया है। हमारे शरीर में वैसे तो अनेक नाड़ीयों की कल्पना की गई है, लेकिन इन में सुषुम्ना का विशेष महत्त्व है। इसे शांभवी शक्ति के रूप में जाना जाता है।

"द्वा सप्तति सहस्त्राणि नाड़ी द्वाराणि पंजरे।
सुषुम्ना शांभवी शक्तिः शेषास्त्वेव निरर्थकाः।"[1]

कमल आदि के डंठल–सी लम्बी वस्तु का ही नाम बंकनाल है जिसे शून्य पदवी ब्रह्मरन्ध्र आदि नामों से भी जाना जाता है। श्री आत्माराम योगीन्द्र इसके पर्यायों को कहते हैं –

"सुषुम्ना शून्य पदवी ब्रह्मरंध्रं महापथः।
शमशानं शांभवी मध्यमार्ग श्चेत्येकवाचकाः।"[2]

सुषुम्ना नाड़ी इड़ा–पिंगला के मध्य में स्थित है तथा इसकी स्थिति मेरूदण्ड के सामानान्तर मानी जाती है। सुषुम्ना नाड़ी के विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं – "इड़ा तथा पिंगला नाड़ी के मध्य में सुषुम्ना नाड़ी है। इसी से होकर कुण्डलिनी शक्ति ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। असल में सुषुम्ना के भीतर ही कई सूक्ष्म नाड़ियाँ है। सुषुम्ना के भीतर वज्रा उसके भीतर चित्रिणी और उसके भी भीतर ब्रह्मा–नाड़ी है, जो कुंडलिनी शक्ति का असली मार्ग है। इस प्रकार सुषुम्ना वस्तुतः तीन नाड़ियों का एकीभाव है।"[3]

68

1. श्री आत्माराम योगीन्द्र, हठयोग प्रदीपिका, पृ० १५८
2. श्री आत्माराम योगीन्द्र, हठयोग प्रदीपिका, पृ० ८४
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० ४६

कुंडलिनी शक्ति जो समस्त यौगिक क्रियाओं का आधार है, इसी नाडी में ऊर्ध्वगमन करती है। इसलिए हठयोग साधना में सुषुम्ना का विशेष महत्त्व है। इसे 'सरस्वती' भी कहा जाता है।

सन्त कबीर ने अपनी काव्य रचना में बंकनाल तथा सुषुम्ना दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। बंकनाल का प्रयोग करते हुए सन्त कबीर दास जी कहते हैं –

"**बंक नालि** के अंतरै पछिम दिसाँ की बाट रे।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भवँर गुफा के घाट रे।"[1]

अर्थात् सुषुम्ना यदि ऊपर सहस्त्रार में जाकर बाई ओर से विस्फोट करें तो उस शून्य गुफा से अमृत बरसता है, इसी अमृत रस का पान करो।

सभी सन्त प्रेम भक्ति के हिंडोलें पर झूल रहें हैं। यह हिंडोंला साधारण न होकर इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों के माध्यम से बना है जिसमें सुषुम्ना की डोर डाल रखी है –

"चंद सूर दोइ खंभवा, **बंकनालि** की डोरि।
झूलें पंच पियारियाँ, तहाँ झूलै जीय मोर।"[2]

अर्थात् जिस प्रकार हिंडोले में दो खम्ब होते हैं, उसी प्रकार इड़ा–पिंगला के दो स्तम्भ है जिस के मध्य में सुषुम्ना की डोर डाल रखी है। जिस पर पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ झूलती है, वहीं मेरा मन भी झूल रहा है।

बंकनाल के साथ–साथ सुषुम्ना का प्रयोग भी सन्त कबीर ने अपनी रचनाओं में किया है। वे कहते हैं –

"**सुषमन** कै धरि भया अनंदा, उलटि कवल भेटे गोव्यंदा।"[3]

69

1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ६६
2. वही , पृ० ७४
3. वही , पृ० ११७

अर्थात् सुषुम्ना के द्वारा शून्यकमल भेदन पर प्रभु से साक्षात्कार होता है, जिस से असीम आनन्द की प्राप्ति होती है।

इडा–पिंगला में सुषुम्ना के मिलने पर जो ज्ञान रूपी धारा प्रवाहित होती है। उस में स्नान करने से आन्तरिक दुःख द्वेष धुल जाते हैं।

"इला प्यंगुला **सुषमनाँ**, पछिम गंगा बालि रे।
कहै कबीर कुसमल झड़ैं, काँई माँहि लौ अंब पषलि रे।"[1]

अर्थात् इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना के समन्वय वाली पश्चिम दिशा की गंगा में स्नान करो। वहाँ पर सब प्रकार के कलुष झड़ जाते हैं, कोई चाहे तो उस में अपने अगों को धो कर निष्कलुष बना सकता है।

सुषुम्ना नाड़ी आकार में लम्बी तथा ऊर्ध्वगामिनी है। इसलिए इसके लिए कबीर ने ऊँचाई की समानता वाले शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे कदली अर्थात केले का वृक्ष सन्त कबीर ने 'सुषुम्ना नाड़ी' के लिए कदली शब्द का प्रयोग भी किया है।

"गगन गरजि अमृत चवै, **कदली** कंवल प्रकास।
तहाँ कबीरा बंदिगी, कै कोई निज दास।"[2]

अर्थात् आकाश में अनहद नाद की गर्जना सुनाई पड़ रही है और अमृत रूपी वर्षा हो रही है। सुषुम्ना के शिखर पर विकसित सहस्त्रार कमल से प्रकाश निकल रहा है। उस स्थिति में पहुँचकर भगवान की आराधना कबीर कर सकता है या भगवान का कोई भक्त ही कर सकता हैं।

इसी प्रकार 'खजूर' शब्द का प्रयोग भी सुषुम्ना के लिए किया गया है। रूषां (रूख, वृक्ष) शब्द भी सुषुम्ना के लिए ही आया है।

"समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी **रूषां** चढ़ि गई।"[3]

---

70 1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० १६४

2. वही , पृ० १२ 3. वही , पृ० ६

अर्थात् मूलाधार चक्र में अग्नि प्रज्जवलित हो गई है जिस ने इड़ा तथा पिंगला रूपी नदियाँ जल कर भस्म हो गई हैं। कबीर ने जाग कर यह देखा कि कुण्डलिनी रूपी मछली सुषुम्ना रूपी वृक्ष पर चढ़कर सहस्त्रार कमल में पहुँच गई है।

इस प्रकार से सन्त कबीर ने बकनाल के लिए बंकनालि, सुषमन कदली, रूषां आदि शब्दों का प्रयोग भी किया है।

3.3.1.16. मांस (गो मांस भक्षण) –

मांस या गोमांस भक्षण का साधारण अर्थ हैं – मांस खाना या गाय का मांस खाना। लेकिन यहाँ इसका प्रयोग हठयोग की साधना में एक विशिष्ट मुद्रा के रूप में हुआ है जिस में साधक अपनी जिभ को उलट कर तालु प्रदेश से लगाकर अमृत का पान करता है। हठयोग प्रदीपिका में गो मांस के संबंध में लिखा गया है –

"गा शब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशों हि तालुनि।
गो मांस भक्षणं तत्तु महापातकनाशम्।"[1]

अर्थात् गो शब्द से जिभा कही जाती है और तालु–प्रदेश में इसका प्रवेश ही गो मांस भक्षण कहलाता है, जो महापातकों का नाश करने वाला होता है।

वही योगी कुलीन कहलाता है जो नित्य गोमांस का सेवन करता रहता है ओर ऊपर से अमृत का पान करता रहता है, और योगी तो कुल धातक है–

"गो मांस भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारूणीम्
कुलीनं तमहं मन्ये चेतरे कुल घातकाः।"[2]

---

71 1. श्री आत्माराम योगीन्द्र, हठयोग प्रदीपिका, पृ० १०२

2. वही , पृ० १०२

हठयोग साधना में यह एक महत्वपूर्ण मुद्रा है, जिसे कबीर ने 'गोमांस' भक्षण' का नाम दिया है। इस में योगी की जिभ उलटकर तालु–प्रदेश में विचरती है तथा वह अपनी दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच में केन्द्रित रखता हैं। इस स्थिति में उसका मन तथा जिभ दोनों ही आकाश की ओर स्थिर रहते हैं, इसीलिए इसे खेचरी मुद्रा भी कहा जाता है। खे का अर्थ है 'आकाश' और 'चरी' का अर्थ है– विचरण करना अर्थात् आकाश में विचरण करना। इसके समान कोई भी मुद्रा नहीं है–

" न खेचरी समा मुद्रा।"[1]

डॉ० गोबिन्द त्रिगुणायत लिखते हैं – "हठयोग में खेचरी मुद्रा बहुत प्रसिद्ध है। इस मुद्रा में साधक पदमासन से बैठकर दोनों भ्रुवों के मध्य में दृष्टि को स्थिर करता है, तथा जिभ को उलटकर सुधा कूप स्वरूप तालु विवर से संयोजित करता है और उसके अमृत का पान करता है। इस प्रक्रिया को गोमांस भक्षण कहते हैं।"[2]

यहाँ सन्त कबीर दास जी कहते हैं कि गोमांस की प्राप्ति के बिना साधक का घर आना व्यर्थ है। वह हृदय विहीन, नगर विहीन मुख विहीन एवं रूप आकार से परे है। वही साधक श्रेष्ठ है, जो इस रक्त मास विहीन आखेट को प्राप्त करता है –

"जीबत जिनि मारै मूवा मति ल्यावैं,
मांस बिहूँणाँ घरि मत आवै हो कंता।
उर बिन षुर बिन चंच बिन, बपु बिहूँना सोई।
सो स्यावज जिनि मारैं कंता, जाकै रगत मांस न होई।"[3]

यहाँ सन्त कबीर दास ने गोमांस को ही मांस कहा है।

72

1. श्री आत्माराम योगीन्द्र, हठयोग प्रदीपिका, पृ० २८
2. डॉ० गोबिन्द त्रिगुणामत, हिन्दी की निगुर्ण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ५०१
3. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ११६

3.3.1.17. मूल कँवल –

मूल कँवल अर्थात् मूलाधार चक्र। ऐसा चक्र जो सबसे नीचे या मूल में स्थित हो तथा सबका आधार हो मूलाधार चक्र कहलाता है। "यह चक्र शरीर के अधोभाग में गुह्य स्थान के समीप माना जाता है। इस में चार पंखुड़िया हैं तथा यह ब्रह्मग्रन्थि खुलने और कुण्डलिनी जाग्रत होने के लिए यह षट् चक्रों में प्रथम चक्र है। इस चक्र पर साधना करने वाले साधक को दर्दुरी सिद्धि प्राप्त होती है। इसका लोक भूः है। इसे रक्त वर्ण का माना गया हैं इस चक्र के अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा है।"[1]

मूलाधार चक्र सभी चक्रों में प्रथम स्थान रखने के कारण प्रमुख है। यौगिक क्रियाओं का मूल आधार भी यही है, क्योंकि कुण्डलिनी शक्ति, जिसकी जागृति पर समस्त योग साधना आधारित है, यही निवास करती है। हठयोग की प्रक्रिया का प्रारम्भ यही से होता है, अतः इसे मूलाधार कहा गया है।

सन्त कबीर ने अपनी काव्य रचना में मूलाधार चक्र का वर्णन किया है तथा इसके लिए मूल कँवल, मूल बन्ध, शब्दों का प्रयोग किया है : –

"अरध–उरध की गंगा जमुना, **मूल कँवल** कौ घाट।"[2]

'मूलबन्ध' शब्द भी मूलाधार चक्र के लिए प्रयोग किया गया है, यथा –

"**मूल बंध** इक पावा तहाँ सिध गणेशवर रावाँ।"[3]

अर्थात् मूलाधार चक्र में एक स्थल है, जहाँ ब्रह्म प्राप्ति में सिद्धि प्रदान करने वाली कुण्डलिनी का वास है।

'पाताल' शब्द का प्रयोग भी मूलाधार चक्र के लिए हुआ है। 'पाताल' पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में सबसे नीचे माना जाता है और मूलाधार भी सबसे

73

1. सम्पा० डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, डॉ० रमेश चन्द्र मिश्र, कबीर वचनामृत, पृ० ८६
2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ७४
3. वही , पृ० ७७

नीचे का चक्र है। इसलिए कबीर ने इसे मूलाधार चक्र के लिए प्रयोग किया है। वे कहते हैं : –

"कंकर कूई **पताल** पनियाँ, सूनैं बूँद बिकाई रे।"[1]

अर्थात् मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी रूपी पनिहारी है, जिसे शून्य प्रदेश में अमृत लेने जाना है।" इसी प्रकार –

"आकासे मुखि औंधा कुवाँ, **पाताले** पनिहारि।"[2]

'तल' शब्द का अर्थ 'आधार' ही होता है और आधार पर ही सभी चीजें टिक पाती है। इसलिए सन्त कबीर ने 'तल' शब्द का प्रयोग भी मूलाधार चक्र के लिए किया है यथा : –

"ऐसी रे अवधू की वाणी, ऊपरि कूवटा **तलि** भरि पाँणी।"[3]

अर्थात् योगी इस प्रकार से उपदेश देता है कि ऊपर शून्य लोक में कुँआ है, किन्तु उस से पानी भरने वाली कुण्डलिनी नीचे मूलाधार चक्र में स्थित है।

'जल' शब्द का प्रयोग मूलाधार चक्र के लिए हुआ है। सन्त कबीरदास जी कहते हैं : –

"ऊँचे टीबे मंछ बसत है, ससा बसे **जल** माँहिं।"[4]

अर्थात् शून्य शिखर पर ब्रह्म बसता है और कुण्डलिनी नीचे मूलाधार चक्र में स्थित हैं।

इस प्रकार कबीर ने मूल कँवल के लिए मूलबन्ध, मूलकँवल शब्दों के साथ साथ जल, तल, पाताल आदि शब्दों का प्रयोग भी किया है। समुन्द्र शब्द भी इसी अर्थ में लिया गया है : –

74

1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ८७
2. वही , पृ० १२
3. वही , पृ० ११७
4. वही , पृ० ११०

"**समंदर** लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भई।"[1]

इस प्रकार सन्त कबीर ने मूल कँवल को मूलबन्ध पाताल, तलि, समदर आदि शब्दों के रूप में भी प्रयोग किया है।

3.3.1.18. षट् दल कवँल –

षट् दल कँवल का साधारण अर्थ हैं – ऐसा कमल जिस में पँखुड़ियों की सख्याँ छः हो। योग शास्त्र में इसे स्वाधिष्ठान चक्र कहा गया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है – "मूलाधार चक्र के ऊपर नाभि के पास स्वाधिष्ठान चक्र है जो छह दलों के कमल के आकार का है।"[2] स्वाधिष्ठान चक्र को ही सन्त कबीर ने 'षट् दल कँवल' का नाम दिया है। यह 'सिन्दूर' वर्ण का माना गया है तथा इसका लोक 'भुवः' है। इस चक्र का देवता विष्णु है तथा तत्त्व जल है।

डॉ० रामेश्वर प्रसाद सिंह लिखते है – "स्वाधिष्ठान चक्र में छह योग नाड़ियाँ मिलती हैं। इस चक्र पर ध्यान करने से साधक का अहंकार आदि विकार नष्ट होते है। वह योगियों में योगेन्द्र होता है और अज्ञान के अंधकार में सूर्य की तरह प्रकाशित होता है।"[3]

षट् दल कँवल को जल मंडल तथा गरूड़पीठ भी कहते है। इस की अधिष्ठात्री देवी शाकिनी मानी जाती है। सन्त कबीर ने अपनी रचनाओं में षट् दल कँवल की चर्चा की है। योग साधना के अन्तर्गत इस कमल के विषय में वे कहते हैं कि –

"**षट् दल** कँवल निवासिया, चहु कौ फेरि मिलांई रे।
दहुँ के बीचि समाधियां, तहाँ काल न पासैं आइ रे।"[4]

75

1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ६
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० ४६
3. डॉ० रामेश्वर प्रसाद सिंह, संत काव्य में योग का स्वरूप, पृ० २३६
4. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ६६

प्रयोग निरर्थक है जैसा हम 'तन की कुञ्जी और सुरति के ताले' वाले रूपक में पाते हैं।

शून्य सहज आदि की भाँति सुरति का भी विस्तार परवर्ती साम्प्रदायिक ग्रन्थों में मिलता है। श्वास-गुंजार में शब्द पुरुष की दो शक्तियों के रूप में सुरति तथा निरति का वर्णन मिलता है।[१३०] ज्ञान-स्थिति-बोध में ऊर्ध्व कमल को सुरति कमल बताया गया है।[१३१] कबीरबानी में ४ प्रकार की सुरति का वर्णन है और शब्द सुरति उनसे भी परे पाँचवी सुरति बताई गई है।[१३२] आगे सहजांकुर में सात अन्य सुरतियों का उल्लेख मिलता है जो सृष्टितत्व से सम्बद्ध हैं।[१३३] आगे इनका और भी विकास होता है और सात के बाद आठवीं सुरति का वर्णन आता है। सद्गुरु कबीर सहज सुरति को धारण कर सहज द्वीप पर स्थित होते हैं और फिर इच्छा सुरति और मूल सुरति और नवतम सुरति की श्रृंखला ग्रहण कर त्रैलोक्यविजयी होते हैं।[१३४] इस प्रकार इस सुरति और वज्रयानी सुरति-विलास का अन्त में केवल इतना सम्बन्ध शेष रह जाता है कि इसमें भी सर्वप्रथम सुरति में सहज जुड़ा हुआ है।

उलटी साधना

नाथ योगियों की प्रमुख साधना श्वास निरुद्ध कर अरध को उलट कर उरध में ले जाना, नाद को पलट कर सुरति को निरति में लीन करना, गंगा को उलट कर जमुना में मिलाना अथवा सूर्य को उलट कर चन्द्र में मिलाना था। इस साधना को वे उलटी साधना कहते थे :

उलटंत नाद, पलटंत व्यंद, बाई कै घरि चीन्हेसि ज्यंद
उलटंत पवन, पलटंत बांणी, अपीव पीवत जे ब्रह्मग्यानी।
मीम कै मारग रोपीले भाणं, उलट्या फूल कली में आणं।
उलटी सकति चढ़ैं ब्रह्मांड, नष नष पवना ले लै सरबंग।
उलटि चंद्र राहू कूँ ग्रसै, सिंघ संकेत जती गोरष कहै।[१३५]

संत भी इस साधना को उलटा साधना पुकारते थे :

कबीर उलटी गंग जमुन मिलावउ, बिनु जल संगम मन महिं न्हावउ।[१३६]
उलटी गंग समुद्रहि सोखै, ससिहर सूर गरासै
नवग्रहि मारि रोगिया बैठे, जल मैं व्यम्ब प्रकासै।[१३७]

रैदास — उलटी गंग जमुन मैं लावौं, बिनही जल मंजन है पावौं।[१३८]

नानक — उलटा शब्दु गगनि घरु छाया। नानक शब्दै शब्दु समाया।[१३९]

पलटू — मच्छिउं गंगा बहै पानी है जोर का
बीच में है इक कुंड मुरेरा तोर का
उलटी बहै बयार नाव मुरकाय दै
अरे हाँ, पलटू उतरे येहि के पार तो सूधी जाय दै।[१४०]

इस उलटा साधना के अर्थ वास्तव में यह हैं कि जिस शक्ति के विमर्श से यह समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई है उसी शक्ति को उलटकर नाद में समाहित करना, सूर्य को उलट कर चन्द्र में लीन करना ही उलटा साधना है। सिद्धों में इस शब्द का प्रयोग नहीं है किन्तु सूर्य को उलटकर चन्द्र में लीन करने का रूपक अवश्य मिलता है जिस पर हम आगे विचार करेंगे।

इस उलटा साधना का एक अर्थ और है। लगभग सभी तान्त्रिक पद्धतियों में वामाचार प्रचलित था। जिसके दो अर्थ थे, वामायुक्त साधना या उलटी (वाम) साधना। वास्तव में यह 'उलटा साधना' उसी वाम-साधना का देशी रूपान्तर है। इसके कई प्रमाण मिलते हैं। बाउलों में भी साधना को इसी नाम से पुकारा जाता था और 'उलटा' तथा 'वाम' दोनों शब्दों का समान रूप से प्रयोग हुआ है।[१४१] सिद्धों में वामाचार की नारी मैथुन साधना पद्धति स्वीकृत थी। नाथ योगियों ने नारी-मैथुन-साधना का बहिष्कार किया किन्तु वज्रोली, अमरोली, सहजोली आदि कुछ मुद्राएं उनमें भी प्रचलित थीं जिनमें वीर्य के क्षरण के बजाय उलटे नारी रज को भी साधक लिंगद्वार से अपनी काया में खींच लेता था। इस प्रकार वामा (नारी) सम्बन्धी अर्थ भी सर्वथा विलुप्त नहीं हुआ था किन्तु प्रमुखता हठयोग पद्धति को मिल गई थी जिसमें उलटा साधना के अर्थ थे श्वासनिरोध द्वारा गंगा को उलट कर जमुना में मिलाना और चन्द्र और सूर्य का मिलन सम्पन्न कराना। सन्तों तक आते आते मैथुन साधना सर्वथा विस्मृत कर दी गई और हठयोग की पद्धति ही अवशेष रही।

गंगा-यमुना-संगम

हम पहले इस ओर संकेत कर चुके हैं कि बौद्ध तथा हिन्दू दोनों ही प्रकार की हठयोग परम्पराओं में इड़ा पिंगला और सुषुम्णा या ललना रसना

तथा अवधूती को गंगा यमुना तथा सरस्वती की उपमा दी गई है। उसी के साथ साथ इड़ा को शक्ति और पिंगला को शिव माना गया है। इड़ा को वाम तथा पिंगला को दक्षिण और सुषुम्णा को पश्चिम दिशा में स्थित माना गया है। अतः गंगा यमुना का मिलन वास्तव में शक्ति तथा शिव का मिलन है।

बाह्य प्रकृति में यमुना गंगा में मिली है किन्तु हठयोग में गंगा (इड़ा : शक्ति) यमुना (या पिंगला : शिव) से मिलने के लिये अग्रसर होती है, इसी-लिये यह उलटी साधना है। हठयोग-प्रदीपिका में मूलस्थान में उड्डीयान बन्ध द्वारा गंगा तथा यमुना को बन्द कर पश्चिम पथ सुषुम्णा में प्राण को प्रवाहित करने का विधान है।[१४२] इड़ा तथा पिंगला शक्ति तथा शिव का प्रतीक होने के कारण अध तथा ऊर्ध्व भी कही गई हैं :

अरध उरध की गंगा जमुना मूल कंवल कौ घाट
षट चक्र की गागरी त्रिवेणी संगम बाट ॥[१४३]

यहाँ कबीर ने मूलाधार चक्र को घाट माना है (सुषुम्णा की उपमा भी कभी-कभी घाट से दी जाती है)

तिरबेनी के घाट नाव को आनि कै, सुखमनि घाट थहाय चलावौ जानिकै
असी संगम के बीच पहारी फोरि कै, गुन को खैंचु सितांब काम है जोरु कै
सुन्न समाधि के बीच ध्यान को लावना, सुखमनि के रे घाट पवन ले आवना[१४४]

यह कल्पना चर्यापदों की गंगा यमुना के मध्यवर्ती मार्ग से बहने वाली सहजयान नौका तथा उसकी मातंगी प्रज्ञा से बहुत मिलती जुलती है। उसमें भी वाम तथा दक्षिण दोनों मार्गों को छोड़कर मध्यपथ से प्राणों को ले चलने की साधना का विधान है :

गंगा जउना मांझेरे बहइ नाई
तहि बुड़ली मातंगी पोइआ लीले पार कराइ।
....
वाम दाहिन दुइ माग न चेवइ बाहतु चण्डा।[१४५]

टीकाकार मुनिदत्त नौका को सहजयान कहते हैं और दादू इसी को सहजयोग कहते हैं तथा इससे निर्वाण की प्राप्ति भी बताते हैं :

सहज जोग सुख में रहै दादू निर्गुण जाणि।
गंगा उलटी फेरि करि जउना मांहै आणि ॥

परमातम सो आतमा ज्यों जल उदक समान।
तन मन पानी लौंण ज्यों पावै पद निर्बांण ॥[१४६]

अन्तिम पंक्ति का प्रथम चरण भी काण्हपा के 'जिम लोण बिलिज्जइ पाणीएहि' की याद दिलाता है।

इस प्रकार इस गंगा-यमुना संगम की कल्पना में यथेष्ट आदान प्रदान हुआ है और इसी कारण उसके सहज तथा निर्वाण की शब्दावली जुड़ी रह गई यद्यपि उसका अर्थ वह नहीं रह गया। बाद में यही योग-साधना वैष्णव भक्ति भावना में अंतर्भुक्त हो गई और गंगा को विष्णुपद से निकलने वाली गंगा मान कर इसी योग को विष्णु ध्यान की पूर्व भूमिका मात्र मान लिया गया :

विष्णु ध्यान संनान करि रे, बाहरि अंग न धोइ रे...
निहकर्म नदी ग्यान जल, सुंनि मंडल मांहि रे
औधूतजोगी आतमां, काई पेखैं संगम न्हाहि रे
इला प्यंगुला सुषमना पछिम गंगा बालि रे
कहै कबीर कुसमल झड़ै काई माहिं लौ अंग पखालि रे ॥[१४७]

बाद में तो प्राण तथा अपान का संधिस्थल यह सुखमन घाट बृन्दावन का वह घाट बताया गया जहाँ कृष्ण की लीला संपन्न हुई थी—'अरे हाँ पलटू, उहि गोकुल के घाट कन्हैयालाल है।'[१४८]

चंद्र-सूर्य-संगम

चर्यापदों में चन्द्र और सूर्य प्रज्ञा तथा उपाय के प्रतीक माने गये हैं और और उनका भी सम्बन्ध ललना तथा रसना से है किन्तु दोनों का मेल कराने की अपेक्षा दोनों की द्वयता का परित्याग कर सहज-अद्वय अवस्था प्राप्त करने पर अधिक आग्रह है :

गुँडरीपा चांद सुज्ज बेणि पखा फाल।
काण्हपा रवि शशि कुंडल किउ आभरणे।
वीणापा सुज्ज लाउ ससि लागेलि तान्ती।
सरहपा नाद न बिन्दु न रवि शशि मंडल।[१४९]

इन उद्धरणों में चन्द्र तथा सूर्य के मिलन को एक स्थान पर वीणा के

रूपक और दूसरे स्थान पर कुंडलों के रूपक में प्रस्तुत किया गया है। परवर्ती साहित्य में हमें ये दोनों रूपक मिलते हैं :

वीणा का रूपक—चंद सूर दोउ तूंबा करिहूँ चित चेतन की डांडी।
सुषमन तन्ती बाजण लागी इह विधि तृष्णा खांडी।[१५०]
(कबीर)

कुंडल का रूपक—चन्द्र सूर नी मुंद्रा कीन्हीं धरणि भस्म जल मेला।
नादी व्यंदी सींगी आकासी अलख गुरू नां चेला।[१५१]
(गोरखबानी)

चंद्र सूर्य दोनों का निषेध—कहा बुझाइ अवधू राइ गगन न धरनी
चंद न सूर दिवस नहिं रैनी।[१५२]
गोरखबानी

दादू—तहं चंद न ऊगै सूरा, मुख काल न बाजै तूरा
तहं सुख दुख का गम नाहीं;
बौ तौ अगम अगोचर माहीं।[१५३]

किन्तु दोनों के निषेध की प्रणाली वास्तव में दोनों के मिलन के उपरान्त उनकी द्वयता की विनाश-प्रक्रिया ही थी। सोम को या चन्द्र को प्रमुखता मिलने में शैव परम्परा की विशेष प्रेरणा बताई जाती है। कापालिकों को सोमवादी भी कहा जाता था और सोम का अर्थ वे स+उमा (शक्ति तथा शिव का संगम) बताते थे, साथ ही सोम वारुणी या अमृतरूप में भी परिकल्पित किया गया था। नाथ योग में मूलाधार में स्थित रवि-रूपी कुंडलिनो शक्ति को जाग्रत कर ऊर्ध्व में स्थित चन्द्ररूपी शिव में लीन कर दोनों के अद्वैत के उपरान्त बरसने वाले अमृत का दशमद्वार द्वारा पान करने की साधना-पद्धति नाथ योगियों की प्रमुख साधना-पद्धति बन गई।

वे कहते थे कि मूलाधार में शक्तिरूपी सूर्य स्थित है जिसकी १२ कलाएँ हैं। वह अमृत सोखता रहता है और उससे शक्ति का, जीवन का ह्रास होता है। ऊर्ध्व में १६ कलाओं वाला चंद्र स्थित है जिससे अमृत झरता है। १६ कलाओं के होते हुए भी चन्द्रमा शक्तिहीन रहता है और जब उसे सूर्य की ४ कलाएँ प्राप्त हो जाती हैं तब शिव और शक्ति या चन्द्र और सूर्य सम हो जाते हैं।

शक्ति रूपी रज आछै सिव रूपी व्यंद, बारह कला रवि आछै सोलह कला चंद
चारि कला रवि की जौ ससि घर आवै, तो सिव सक्ति सम होवै अन्त कोई न पावै ।[१५४]

नाड़ियों में से इड़ा चन्द्र रूप है और षोड़श कला वाली है, पिंगला द्वादश कला वाली रवि नाड़ी है, सुषुम्ना में असंख्यों कला वाले तत्व का वास है :

षोड़स नाड़ी चन्द्र प्रकास्या द्वादस नाड़ी भानं
सहस्र नाड़ी प्राण का मेला जहा असंष कला सिव थानं
अवधू ईड़ा मारग चन्द्र भणीजै प्यंगुला मारग भानं
सुषमणा मारग वाणी बोलिये त्रिय मूल अस्थानं ॥[१५५]
बारह कला देवी, सोलह कला देवं । सुषमनां नारी बांधिबा भेवं ॥[१५६]

सूर्य की बारह कलाएँ इस प्रकार बताई गई हैं :

चिंता, तरंग, दम्भ, माया, परिग्रह, प्रपंच, हेतु, बुद्धि, काम, क्रोध, लोभ, दृष्टि । चंद्र की षोडश कलाएँ निम्नांकित हैं :

शांति, निवृत्ति, क्षमा, निर्मलता, निश्चलता, ज्ञान,
स्वरूप, पद, निर्वाण, निर्विषता, निरंजन, आहार, निद्रा, मैथुन,
वायु, अमृत ।[१५७]

जब तक कि पवन निरुद्ध नहीं होता तब तक चन्द्रमा के अमृत को सूर्य सोखता रहता है । पवन निरुद्ध होते ही कालाग्नि सूर्य निरुद्ध हो जाता है, ब्रह्माग्नि प्रज्ज्वलित होती है, दशमद्वार खुल जाता है और योगी अमृत पान करता है ।

चालत चंदवा खिसि खिसि परै, बैठा ब्रह्मा अगनि परजलै ।[१५८]
चन्द सूर दोउ गगन विलूधा भईला घोर अधारं
पंच बाहक जब यंद्री पौढ्या प्रगट्या पौलि पगारं ॥[१५९]
चन्द सूर दोउ समि करि राष्या आपैं आप जु मिलिया ।[१६०]

गोरखबानी में एक स्थान पर चन्द्र सूर्य उपमानों को गंगा यमुना से सम्बद्ध कर एक तीसरे ही रूपक का अंग बना दिया गया है :

चंदा गोटा टीका करि लै सूरा करि लै बाटी
मूंनी राजा लूगा धोवै गंग जमुन की घाटी ॥[१६१]

सन्त साहित्य में यद्यपि इस साधना का इतना विस्तृत विवरण तो नहीं मिलता, किन्तु फिर भी इसका संकेत बराबर है :

कबीर जहं धरनि बरसै गगन भीजै चंद सूरज मेल
दोउ मिलि तहं जुरन लागे करै हंसा केलि ॥[१६२]

नानक शशि घरि सूर समाने भाइ, हरि दर्शन की सोझी पाइ ।
शिव शक्ती घरि अवतरे रक्त बिन्दु आकारू ,
चंद सुरज दुइ साखीआ करि निर्मल ज्योति उज्यारू ॥[१६३]

जायसी ने भी पद्मिनी और रत्नसेन क प्रणय और विवाह में लगातार इन्हीं उपमानों द्वारा योग साधना के संकेत रक्खे हैं :

देव पूजि जब आइउं काली । सपन एक निसि देखेंउ आली ।
जनि ससि उदौ पुरुब दिसि कीन्हा । और रवि उदौ पछिंव दिसि लीन्हा ।
पुनि चलि सुरुज चांद पहं आवा । चांद सुरुज दुहु होइ मेरावा ।[१६५]
पारस रूप चांद देखराई । देखत सुरुज गएउ मुरछाई ।
सोरह करा दिष्टि ससि कीन्हीं । सहसौ करा सुरुज के लीन्हीं ।
भा रवि अस्त तराइन हंसे । सुरुज न रहा चांद परगसे ।
जोगी आदि न भोगी होई । खाइ कुरकुटा गा परि सोई ।[१६६]

इन उद्धरणों में दो बातें विचारणीय हैं । प्रथम, कलाओं के सम्बन्ध में में जायसी का ज्ञान अधूरा है क्योंकि वे सूर्य की बारह कला के बजाय सहस्र कला बताते हैं । दिशाओं के सम्बन्ध में जहाँ उन्होंने रवि का उदय पश्चिम और चन्द्र का उदय पूर्व में बताया है वहाँ केवल काव्यगत चमत्कार मात्र नहीं है क्योंकि दिशाओं की लगभग यही योजना नानक में भी मिलती है, 'पूरब पच्छिम यदि दक्षिण जाय, रबि शशि दोउ एकत्र मिलाय ।[१६७]

चन्द्र-सूर्य-संगम के बाद की अवस्था के लिए शैव योग वाले नाम तो परिचयावस्था (परचा) या अनुभव (अनभै) आदि थे किन्तु कुछ बौद्ध नाम भी इससे सम्बद्ध रह गए थे वे थे सहज अवस्था, शून्य समाधि अथवा निर्वाण पद । इन सबों में द्वयताओं का निषेध किया गया था और वहाँ सूर्य चन्द्र, रात दिन पवन आदि का भी प्रवेश निषिद्ध माना गया था । योग की अन्तिम अवस्था का परम पद रूप में यही वर्णन गीता में भी मिलता है और तभी से प्रत्येक योग परम्परा इसका वर्णन देती आई है :

गीता न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥[१६८]

सरहपा जहि मण पवण ण संचरइ रवि ससि णाह पवेस
तहि बढ चित्त विशाम करु सरहे कहिअ उऐस ।[१६९]

गोरखबानी कहा बुझै अवधू राइ गगन न धरनी
चंद न सूर दिवस नहिं रैनी ॥[१७०]

कबीर जिहि बन सीह न संचरै पषि उड़ैं नहिं जाइ
रैनि दिवस का गम नहीं, तह कबीर रहा ल्यौ लाइ ॥[१७१]

दादू चल दादू तहं जाइये जंह चन्द सूर नहिं जाइ
राति दिवस का गम नहीं, सहजै रहा समाइ ।[१७२]
धरणी आकास अगम चंद सूर नाहीं
रजनी निस दिवस नाहीं पवना नहिं जाही ।[१७३]

इसी प्रकार सभी योग पद्धतियों में अन्तिम समाधि अवस्था इसी रूप में स्वीकृत थी। बौद्धों ने इसे चन्द्र सूर्य या प्रज्ञोपाय सहज समाधि का नाम दिया था, और शून्य समाधि भी कहते थे। इसी के साथ निर्वाण की कल्पना भी जुड़ी हुई थी। परवर्ती नाथ परम्परा में भी ये नाम चलते रहे :

सहज—जिहि घर चंद सूर नहिं ऊगै तिहि घरि होसी उजियारा
तिहाँ जो आसण पूरौ तो सहज का भरौ पियाला मेरे ग्याँनी।
शून्य—सुंनि ध्यान सोलह कला संपूरण माला।
आपण स्यंभू श्री गोरष बाला।
निर्वाण—त्रिकुटी षेत्र उलटि मेला।
न्रबांण तत्व ले रमौ अकेला।[१७४]

सहज तथा शून्य के विकास पर हम पीछे विचार कर चुके हैं। निर्वाण का विकास सन्त परम्परा में कैसे वैष्णव चिन्तना से प्रभावित होकर विष्णु के परम पद में परिवर्त्तित हो गया इस पर आगे विचार करेंगे, किन्तु उसके पहले वज्रयान की महामुद्रा साधना का नाथ योग में क्या रूप हो गया, इस पर विचार कर लेना आवश्यक है क्योंकि प्रज्ञोपाय समाधि के लिये महामुद्रा का समागम अनिवार्य माना गया था।

मुद्रा के अर्थ

मुद्रा के सम्बन्ध में पीछे विचार करते समय हमने यह देखा था कि

सन्त मीता साहेब की परम्परा

क्रम सं.	सन्तों के नाम	उदय स्थान	उदय का समय	आयु	देह छोड़ने का समय	स्थान जहाँ देह छोड़ी	स्थान जहाँ देह रखी गई
(1)	**सन्त बेनीराम साहेब**	ग्राम बरईगढ़ जिला कानपुर नगर	संवत् 1675 विक्रमी सन् 1618 ई०	105 वर्ष	संवत् 1780 विक्रमी सन् 1723 ई०	बरईगढ़ कानपुर नगर	बरईगढ़ समाधि
(2)	**सन्त मीता साहेब**	फतुहाबाद फतेहपुर	संवत् 1747 विक्रमी सन् 1690 ई०	78 वर्ष	संवत् 1825 विक्रमी सन् 1768 ई०	कटरा पुरवा उन्नाव	कटरा समाधि
(3)	**सन्त बदन सिंह साहेब**	दोस्तीनगर उन्नाव	संवत् 1775 विक्रमी सन् 1718 ई०	85 वर्ष	संवत् 1860 विक्रमी सन् 1803 ई०	दोस्तीनगर उन्नाव	दोस्तीनगर समाधि
(4)	**सन्त रामदीन सिंह साहेब**	दोस्तीनगर उन्नाव	संवत् 1831 विक्रमी सन् 1774 ई०	45 वर्ष	संवत् 1876 विक्रमी सन् 1819 ई०	दोस्तीनगर उन्नाव	दोस्तीनगर समाधि
(5)	**सन्त पहलवान सिंह (पहली साहेब)**	दोस्तीनगर उन्नाव	संवत् 1844 विक्रमी सन् 1787 ई०	70 वर्ष	संवत् 1914 विक्रमी सन् 1857 ई०	दोस्तीनगर उन्नाव	दोस्तीनगर समाधि
(6)	**सन्त इन्द्रजीत सिंह साहेब**	दोस्तीनगर उन्नाव	संवत् 1904 विक्रमी सन् 1847 ई०	68 वर्ष	संवत् 1972 विक्रमी सन् 1915 ई०	दोस्तीनगर उन्नाव	दोस्तीनगर समाधि
(7)	**सन्त कामता प्रसाद साहेब**	बड़ी गुटैहा कानपुर नगर	संवत् 1919 विक्रमी सन् 1862 ई०	94 वर्ष	संवत् 2013 विक्रमी सन् 1956 ई०	बड़ी गुटैहा कानपुर नगर	हिन्दूखेड़ा मजरा थाना उन्नाव **स्मारक**-दोस्तीनगर (सन्-2017)
(8)	**सन्त मुंशी ज्ञान सिंह साहेब**	कुटवी मुजफ्फर नगर	संवत् 1964 विक्रमी 31 मार्च 1907 ई०	79 वर्ष 1 माह 1 दिन	1 अप्रैल 1986 ई० दिन-मंगलवार चैत कृष्ण अष्टमी	दोस्तीनगर उन्नाव	दोस्तीनगर समाधि
(9)	**सन्त गुरुनारायण कुशवाहा साहेब**	पश्चिमखेड़ा सिविल लाइन उन्नाव	संवत् 2007 विक्रमी 15 जनवरी 1951 ई० पौष शुक्ल अष्टमी सोमवार	68 वर्ष 8 माह 6 दिन	21 सितम्बर 2019 कुवांर कृष्णपक्ष सप्तमी शनिवार	गोपालपुर अढ़ेना फतेहपुर	बरवट उन्नाव समाधि

वाजी वाजिद फरीद, अलवलि आदि मा आसीद। हजरत नवी रोशन बीर, हिन्दू तुरक के गुरु पीर।
दरगादास दादू करम, खोजी खोई मिले भरम। घाटम औ त्रिलोचनदास, घूरी दास पूरी आस।
नृप नैनदास कल्यान, जस जड़ भरथ जोगा जानि। बीरनदास बद्रीनाथ औघड़नाथ को जस हाथ।
गंगाधर गजोधरनाथ, जाके सिद्ध चरनन साथ। भारी भाव गिर लिलकंठ, जीवन मुक्ति ज्यों बैकुंठ।
शीतल धर्मनाथ अहिबरन, पातक हरै परसत चरन। अनभो सहज प्रेम प्रगास, दास विनोद धरनी दास।
रमईदास रंका बंका, निकटै नामु धनी को अंका। हरजूदास हरि विश्वास, चिंतामनि मनोहरदास।
माधोदास मंगनीराम, मुरली मदन मोहन श्याम। अैनीराम तेजादास, गुफा रहे बारह मास।
मुनिअतिअधिक पावन सरस,पंडित चक्र पान को दरस। जाके प्रेम मन बच करम, जानत जय गोपाल को मरम।
बन्दों पद हेमंचल गीर, बेनीराम के गुरु पीर। रामानंद शंकरा चारज, लीन बनाय आपना कारज।
गुदरी धरी गुरगुरी मंद, मिले पतिशाह मुकुंद। सुमिर्.यो श्यामु गुर परताप, चक्की फिरी आप ही आप।
ईश्वरदास आसानंद, लालय सुजस ना को चंद। अहमद ऐ दिलदार वस्तु, मोहम्मद यार को जस जगतु।
आलम नवी रोशन नूर, कुदरति दस्त जाहि हजूर। भोलानाथ भोंदू भान, बोलै गैब को नीसान।
सो लुकमान को जस तेज, अजहूँ करत-फिरत बीरेज। अकिला औ इला वाकूब, मंजन मोल ना महबूब।
सम्मन सलेम साँचो बास, दास मलूक टीकमदास। टोपी पहिरी गोपीचंद, आयो सरनि परी हरि दंद।
बलख को पतिशाह प्रचंड, कम्पै लोकपति नौ खंड। देवै दंडु सेवै भार, भूपति संघु साठि हजार।
तुरिया गन अठारह लक्ष, दूसर कौरवा परतक्ष। हस्ती गन हजार बत्तीस, सारो छत्रपति को ईश।
मनि गनि मोती मानिक ढ़ेर, धनि धनि सरस नाम कुबेर। सो सुख छाड़ि डार्.यो भार, उतरेव सन्त संघ कै पार।
हेमानाथ दास किशोर, भजनी राम दास बहोर। सुरतीदास सन्त हुलास, कनक कुबेर केशव दास।
ज्यों परसोतमा को प्रेम, गवने भवन कुशल क्षेम। देव नरायना को भास, जाको सुजस लोक परकाश।
चेतन चौबिसों औतार, नखसिख सीखे निरगुन सार। भुवन भूरि भूतल भाग, पायो चरन सरनि प्रयाग।
खल अध ऋषी अबुध अचेत, पापी परम पांवर प्रेत। पीढ़ी चार पाँच को तार, दास कमाल को टकसार।
ज्यों गुलदावदी तामोल, तैसे पंथ प्रगटे कमाल। जानैं साधु जन या बात, सोई पोहप साखा पात।
दास कमाल का उपदेश, इंगला पिंगला दरवेश। वंशी बदनु दुरगादास, सपनेहु दूसरि नाहीं आस।
भातू दास दर्श प्रताप, भाग्यो त्रिविधि तन की ताप। बेनीराम कायथ जाति, बीत्यो तीनि पन येहि भांति।
बाल कुमार खेलति गयो, जुबां तीसरो पन भयो। लूटेव विप्र बेढ़िउ गाय, निन्देउ साधुजन गुर भाय।
चोरी घात पर धन धानि, आमिख पानि निसुदिन बानि। मिथ्या अधिक अधिक सोहाति, साँची बीस मां एकु बात।
देख्यो भेखु भारी भीर, बैठ्यो पीठ दै तहँ फेरि। गुरु उपदेश जबते दीन, सेवा भूलि कबहूँ ना कीन।
धोती अंचला कोपीन, कबहूँ पाव गज नहिं दीन। पूजा पुलक गुर मुनि जानी, कबहूँ न दीन कौड़ी कानी।
येहि जगु सकल औगुन खानि,नाहीं सूझै धर्म लाभ नहिं हानि। मेट्यो तरुन तन को ताप, कलि बलि काम प्रबलु प्रताप।
आयो बिरधापन को भाव, ज्यों मद उतरि मन पछिताव। तीरथ जोग जप ना कीन, गया पिण्ड पीतर नहिं दीन।
काशी द्वारिका हरद्वार, दद्दरी बद्दरी केदार। कीन्ह्यो हिंग लाज ना सेतु, लछिमन नीम खार समेत।
मथुरा गोकुल नांही कीन, अवध ना भूलि मारगु लीन्ह। शंकर जटा तीरथ राज, तीरथ रटन सन्त समाज।
जनक बिदेहपुर को धाम, नौमी दरस सीता राम। गंगा सिन्धु संगम भोर, गयो ना राज गृह की ओर।
बैजू नाथ ठाकुर द्वार, गयेउ ना तिरवेनी के पार। अरघ ना दीन हाथ उठाय, जप्यो ना मन्त्र मन चितु लाय।
जैसे बूड़त जल औ गाह, गुर गमि मिले वोहित थाह। आरत जानि असरन सरन, निरगुन दीन अबरन बरन।
सतगुरु मिले भातू दास, ज्यों रवि कमल तेज प्रकाश। बनत ना बरनी अलख लखाय,बिन गुरु लखा कहूँ ना जाय।
तिरवेनी पास त्रिकुटी पैठि, तहवाँ गगन हरिजन हाट। सोरह शंख बारह खण्ड, बूझल अकइस ब्रम्हंड।
बारह बन बहत्तरि धार, मेवर को ना वारा पार। चौदह भुवन तेरह तार, इंगला पिंगला दुइ धार।
सुखमुनि भरै नीर अकाश, सबु जगु पियै बिना पियास। बूझल बंकनाल को भेव, पीवै नारि-नर सब केव।
कंगूरा बूझा बत्तीस बीस, बूझल पाँच अरु पच्चीस। तीनिउ लोक तीनिउ गुन, सातो द्वीप सुन्य बेसुन्न।

बहुतै नदिया एकुइ सोत, दसवां द्वार जगमग जोति।
अचिरिजु करै जनि जन कोय, तेहि जल बूड़त पर्वत दोय।
शब्द बुझाय सन्तन कही, बिन मूल गरभु वाके रही।
दामिनि दमकी चमकै चंद, झमकै अमी उर आनंद।
नाभी मध्य बाईं गाँठ, बूझल तीन पर सौ साठि।
तिलपी वायु झिलमिल झरै, झालरि मोतियों की लरै।
देखल नैन सुनल ले कान, धरती बरखै भीजै भान।
भूला भँवरा जाकी बासु, ऊपर का नीर चढ़े अकास।
पानी मध्य पावक जरै, चित की चातुरी तहँ चरै।
सोडसि खांइयां खट चक्र, चारि ऊपरि पांचों वक्र।
तीनिव लोक तेंतिसों देव, लख चौरासिया को भेव।
धरौ ना नाक करौं ना सैनि,करौं ना अगिन औ जल सैनि।
माला तिलक डारि कोपीन, सतगुरु हाथ अपने दीन्ह।
हरि पदु बिमुखन की बात, जेहि हरि भजन नहीं सोहात।
अंधरा हंसै दुसर दिठियार, अपना हगै चढ़े पगार।
तिनका अंध कहे सो अंध, हरि बिन सकल आसाधुन्ध।
करनी बिना कथनी छार, जीभी बिन लोन के परकार।
भव निधि को ना वारा पार, सतगुरु शब्द वो हित धार।
बूझल कवँल दल अस्थान, जेहि दल ऊपर खट दल जान।
द्वादस खोडस पर दोय, बूझल सहस दल जन कोय।
बूझल अरध उरध को अंग परेऊ ध्यान को परसंग।
तीसर त्रिकुटी के पास, चौथा गगन पैठि आकाश।
पावक पवनु धूम ना धूरि, धूप न छांह नेयरे ना दूरि।
प्रेमी प्रेम होत उदोत, पल नहिं परत पलक अलोत।
परसत परम पद निर्बान, बिसर्.यो लोक धंधा ध्यान।
बिसर्.यो दुनी औ तिथि वार, बरत यकादशी या ता वारि।
किरिया ना करौं तिरथ ना जाऊँ,छाड़ौं ना अन्न कंद ना खाऊँ।
लागै नीक कहल हमार, सतगुरु करौ ता उतरौ पार।
जे जन भगति महिमां पढ़ैं, बेसक भगति सीढ़ी चढ़ैं।

शंकर जटा को परसंग, पाहन फोरि निकरी गंग।
माखी उड़ी बैठी डार, वाके नाहीं भाई भतार।
बिन मुख बाँसुरी करताल, बाजा बाजते झंझकार।
घूमहिं चक्र सो नितरंग, बिन पर उड़े गगन भुअंग।
निसदिन जपै अजपा जाप, करम ना भरम पुन्नि ना पाप।
गुड़ी उड़े बिना वाय, पुनि पुनि सुन्नि मांहि समाय।
बादर ऊपर गगन अघात, फूला फूल डार ना पात।
अंगुली बीस मो डारी फेरि, दाना मध्ये देखु सुमेर।
सांकरि बाट कहल ना जाय, पाँव पपील का न समाय।
वेधै चक्र सोधै वायु, उल्टै पवन गगन समाय।
लोमय लोम खिरकी खंडु, नहीं वहां पिण्ड नहीं ब्रम्हंड।
भूलौं ना ठाढ़ि मरौं ना बैठि, मरौं ना भूख गुफा पैठि।
नैनन दरस सरवन नाद, सहजे मिला गुरु परसाद।
निंदहिं साधु बन्दहिं चोर, चाहैं रहनि चोर चकोर।
लोचन अंध हिरदय अनेमु, हरिजन हेतु हरिपदु प्रेमु।
अंधरा सेन रामै जानि, कथनी कथै गीदर ज्ञान।
जीवत जलमु आमिखु खाय, मरै ता नरक निहचै जाय।
सतगुरु ते ना दूसर हित्त, जो सुमिरौ तो सुमिरौ नित्त।
जहवाँ अष्ट दल को झाँप, तहवाँ अलख आपुहि आप।
बूझल उन मुनी आगार, शम्भू द्वार उमां को तार।
पहिला ध्यान नासा अग्र, दूसर नासिका सम अग्र।
जहवाँ दिवस नाहीं राति, जगमग जोति बिना बाति।
बिनु गुर भवन भरी सो नांहि, गुर गमि भवन अपने मांहि।
जबते पर्.यो अलख लखाय, दीन्ह्यो लाभु दूरि बहाय।
जप तप जोग पूजा दानु, आहुति होम पढ़बु पुरान।
कातिक माघ माधोमास, भव नहिं भरमि भूलै दास।
साधौ ना पवनु पिण्ड उरध, प्रानायाम पिऔ ना दूध।
आखिर अखरा करोर, तो नहिं सन्त जन की ओर।
दासन दास बेनीदास, मन बच करम पद विस्वास।

इति श्री बेनीराम जी की
साधुमाला आतम प्रकाश समपूरन

(8) मैं अंधा का जानऊँ तुम्हरी प्रभुताई।
हानि लाभ ना समझऊँ, बिखु रहा समाई।
औगुन अपने समुझि कै, जिया रहा ना जाई।
ते औगुन हरि ना धरे, ऐसे रघुराई।
मन बिनती नाना बिधि, तजि कपट कुराई।
कबहूँ कानी कौड़ी, ना गुरन चढ़ाई।
सब प्रकार औगुन भरे, गुन एकु ना आई।
अपनी ओर निहारि कै लिया नाउ चढ़ाई।
विरध तुम्हारो अधम उधारन, सो सुनि सरनै आई।
मो सम अधम न दूसर जगु मां, सो तुम लीन बचाई।
बिनती करौं कौनि लै सेवा, कहतौ ना बनि आई।
अब बदन के यहै भरोसा, तुम्हरा दास कहाई।

(9) सखी मोहि जोगिया बौराया।
सखी मोहि जोगिया बौराया।
कपरा पाँच पचीस भाँति के तामे रंग घनेरा।
साबुन देइ ना रेहू लागै, दाग धोइ सब खोया।
पैठि पताल धरनि बंद दैकै मूले डोरि लगाये।
हँसि हँसि चितै नैन की कोरै, प्राण काढ़ि ऊ लाये।
रवि शशि मूल दुआरे लावै, घाट करै असनाना।
झलकति जोति अपार गगन पर, नैनन मांहि बसाया।
बिसरी लोक लाज तन केरी, जब पीतम घर आये।
ता दिन ते घर बार न भावै,जब होय झकाझक लाये।
सेज परे सुख उमगा अपारा, जब जोगिन जोगी पाये।
कोटि इन्द्र इन्द्रासन का सुख, जोगिन मनै न लाये।
अरजी करै बदन कर जोरे, मीत चरन उर लाये।
बज्र दुआर आगे, ते सतगुरु मीतादास उघारे।

(10) प्राण रूप अनूप शोभा, खोजि तू कस ना लिया रे।
सतगुरु का मैदान बांका, जूझि तू कस ना मुआ रे।
जूझता मैदान मांही, भक्ती दान तहँ पावता रे।
सुन्नि महल एक मूरति अद्भुद, सुरति भरि भरि भेंटता रे।
भेंटते भ्रम मूलि नासी, प्रेम हिरदै सींचता रे।
निरत कटोरिया चुऐ अगारी, अमृत भरि भरि पीवता रे।
सुखसागर गुरु मिले प्रीतम, अभय धुनि तहां बाजता रे।
जोहंग सोहंग दोउ शब्द बोलै, गुरु मीता तहं खेलता रे।

(5) रामजी लखन होरी खेलैं यह नगर अजुध्या आजु री।
बाजति ताल म्रदंग झांझ ढप निरत करैं अपद्दर वाल री।
सीता सैन सखिन को दीन्हा, घुमरि चलीं सब वाल री।
पकरहु री अवधपुर राजा, लेहु पितंबर मांगि री।
कोउ आंखी अंजि कर बोली, कोउ गावै भड़ताल री।
मानता प्रभुता ऐसी नगरी, नारि री।
कहैं बदन सो होरी खेलै, लक्षिमन का मांगैं वालि री।
मन माना प्रभु फगुवा दीन्हा, सखी लिए सब साथ री।

(6) हां हां मेरे लालन, नन्द भवन होरी रची है, जसमती देहैं दानु री।
सखी सयानी होरी खेलहिं, जसमती देहैं दानु री।
हां हां मेरे लालन, कौनि सखी पिचका लिए री, को लिये अतर गुलाल री।
नन्द भवन होरी रची है, जसमती देहैं दानु री।
हां हां मेरे लालन, सुरति सखी रंग लावई रे, निरति बजावै तालु री।
अनगन बाजा बाजई तहां, नन्दभवन वहां फागु री।
हां हां मेरे लालन, इड़ा पिंगला साधि कै तहां चलै सुख मुनी घाटु री।
दसवां द्वारा खोलि कै ये घूमति आवैं वाल री।
हां हां मेरे लालन, शिव शक्ती गठबंधन बांधे, केसर अंग लगाये।
अंगिया अग्र प्रेम रस बोरी, होरी खेलन जाये।
हां हां मेरे लालन, पाँच रतन लै नगरी आई, बाँधे है गुन तीन।
मूल दुआरे सतोगुन खेलै, सतगुरु मीता बीर।।

(7) जोगी झुण्ड न होंय, या दुनिया में एकु दुइ।
सुरति निरति लै जागै लोई, नगरी चोर मूसै ना देई।
गुरु के सबद मां रहै समाई, जाको चितु अनतै ना जाई।
मन इन्द्री जाकी बसि होई, आतम दरसी भेदी होई।
छारु ना लावै मांगै ना जाय, अपने घर किरखी कै खाय।
तिनके भेदु पावै ना कोय, जो पावै सो उन अस होय।
कहै बदन गुरु जोगी पाये, तिनका भरम सकल मिटि जाये।
भेख भरम के निकट न जाय, जोगी का मारगु न्यारा आय।

21:40
Pothi Saheb Book 2022
52/211

पद

(1) साधो दीख जगत बौराना।
कोई पूजै देवी देउ भवानी दूध पूत बरदाना।
राम की भक्ती हमरे कुल खोटी, ते हैं जगत सयाना।
जो या जानै प्रभू कै देही, तिनका नरक निदाना।
सप्त पतालै अनहद बाजै, धरनी बंद देइ सुनु काना।
आदि अन्त एक मूरति झलकै, तेज न जात बखाना।
आवै ना जाय गरभु ना बासै, अस है तिनका बरदाना।
कहै बदन है भक्ति आंकरी, विरले बीरन दीन पयाना।

(2) माई मैं सखिया जांचन आई।
अबु जो कहौ करौं सोई भाई, दूजा बरत न भाई।
सतगुरु केवट पार लगावैं, जिनकी नाव चढ़ो दुनियाई।
सखी विचारि समुझि मुख बोलो, कठिन बहुत है भाई।
तन मन वारि सबु स्वादु बिसारै, सन्त मिलै तबु भाई।
धन्नि-धन्नि तूअ जुगन सुहागिन, जो या बरत डिढ़ाई।
काम क्रोध मद लोभ विसारै, हरि चरनन मनु लाई।
जैसे कमठ कुरिल का सेवै, जल बिच रहा छपाई।
कहै बदन सेवै सन्त पुनीता, रामै देइ मिलाई।

(3) सखी मैं जोगिन ढूँढ़न आई।
एकटक रही निरखि कै मूरति, नैनन पलक न परई।
सुन्नि महल माहीं उठति तरंगै, तहां सुरति लै लाई।
मकर तार चढ़ि आवै जाई, दुःख ना निकटै आई।
सप्त पताल बेधि एकु धागा, अनहद धुनी सुहाई।
शिव शक्ती गठबंधन कीन्हा, काम दहा तहं जाई।
ऐसी चालु चलै जगु कोई, ऐसी ही रहनि रहाई।
कहै बदन हम तिनके बन्दा, चरन गहै लपिटाई।

धमारि

(4) अरी मैं कैसे कै अब घर जाऊं री।
पनिया पियासी गगरी भरौं।
पिचकन मां रंग भराए, अबीर अतर-गुलाल,
गलियां खोरि छिनकत फिरौं, मैं तो झीने पट मरौं लाजु री।
पीतम मिले नैन भरि हेरे, मैं सखी रही लजाय री।
अपनी खोरि गलियां बिच पावो, मन भावे सो कामु री।
होरी खेलति हरि मिले, अबु छूटि गयी कुल लाजु री।
सतगुरु मीता धीर देईं, सब सखी उतारों पार री।

पद

(1) घट मां लागि अंधेर कुछौ ना सूझै हो, जो पावै उपदेश तौ आतम बूझै हो।
आतम मां है राम तौ जगु ना जानै हो, जानै सन्त सुजान कूर ना मानै हो।
कूरन परिहै मारु सूर जन हमरा हो, कूर सूर का भेदु लखै कोई विरला हो।
पहली दास सुजान तौ मति के धीरा हो, धीरा मति हम कीन गयेन हरि तीरा हो।

(2) चाँद सुरज दोउ सम कै राखे, सुखमुनी ताल बजाई हो।
ताल बजाई नगर पहूँचे, सतगुरु जुगति बताई हो।
सतगुरु का हम माथु नवाया, कालु रहा मुरझाई हो।
काल के माथे पर पगु धरि, पहुंचेन हरिपुर जाई हो।
कोटि भानु एकु रोंवा की छवि, सो हम रहेनि लुभाई हो।
अमृतसागर वहां हम पावा, जगु हमका न सुहाई हो।
तेंतिस-तीन-अठासी-नल, सो यहीं रहे अरझाई हो।
पहली के परदा सब खुलिगे, नैन मां नैन मिलाई हो।।

(3) हरि हीरा का खोजु न कीन्हेनि, कौड़ी का लपिटाई हो।
या कौड़ी जग बहुत पियारी, सो सन्तन की लौंड़ी हो।।
सन्तन येहिका बसि कै राखा, और सकल पर दौरी हो।
सरन-सरन कै जिन केहु ताका, तिनते कुछु न बिसाई हो।।
ब्रम्हा विष्नु महेसुर देवा, लूटेसि इनका जाई हो।
कहाँ लग गनौ बहुत ई खाये, बचिगे विरले कोई हो।।
चहला ईंट हवै या माया, जो जानी सो मानी हो।
गुरु प्रताप कहैं जन पहली, विरल कोई पहिचानी हो।।

(4) साधौ पार ब्रम्ह अभिनासी, जाका मिले कटै जम फांसी।
अवध वोड़ैसा मथुरा काशी, हुआं नाहीं अभिनासी।
जो तुम खोजु करौ साहेबु का, पावो सुख की रासी।
सन्त मिलाइ देंइ साहेब का, अनतै भटकि न जासी।
अन्तै भटकि भटकि मरि जैहौ, परिहौ जमु की फांसी।
पहली परे दुवार कहैं या बानी,आवागवन मिटाया सतगुरु,कुल की कानि न राखी।

(5) माया मोह बहुत जगु बाढ़ा, जिउ ना निकरै पाई हो।
कोटि उपाय करै छिनु छिनु मां, ज्यों मरकट फंसि जाई हो।।
फंसे आपु फांसे ना कोई, माया मां अरझाई हो।
जे केहु माया का बसि कीन्हा, तेही कै ठकुराई हो।।
ठाकुर जग मां बहुत कहावैं, ठकुरी बिरले पाई हो।
आतम खोजे ठकुरी पावै, तबहीं होय कुशलाई हो।।
जहाँ से आया तहाँ बिसरिगा, माया मां अरझाई हो।
जन पहली सतगुरु की दाया पहुँचेनि हरिपुर जाई हो।।

(8) कातिक काया खोजु लगावै, पंडित भेखु भरमि मरि जावै।
बूड़े जांय थाह ना पावैं, थाह थाह कै सबु गोहिरावैं।
साँचु कहे झूठा जरि जावै, झूठ कहे ते बहु सुख पावै।
पहली सुज्जन का अपनावै, झूठेन के निकटै ना जावै।

(9) अगहन अग्र संदेसा आया, सुनि सुनि जिअ मां प्रेम बढ़ाया।
प्रेम पियाला अमी छकाया, सन्तन की सरनागति आया।
संगति कीन्ह भली बनि आयी, बिखई बातें दूरि बहाई।
सब सन्तन का शीश नवाया, पहली सतिपुर पहुंचे जाया।

(10) पूसै प्रेम भक्ति मां लागा, सोवति ते जो हम उठि जागा।
जागि जागि हमरे रंग लागा, सोवै अभागी कबहूँ न जागा।
रोगी चोरु बहुत कै जागा, कामी काम बहुत है साजा।
यहु जागबु आवै केहि काजा, मोंगरा लै आई जमु राजा।
पहली कहै गुपित होय जागै, सरनि सरनि साहेब की ताकै।

(11) मांह महल की शोभा पाई, या शोभा कुछु कहि ना जाई।
सतयुग द्वापर त्रेता आई, कलयुग भक्ति बहुत है भाई।
बड़े बड़े सबु बूड़े जाई, चींटी होय केहु बिरले पाई।
सन्तन की सरनागति आई, कहि पहली परतीति जो लाई।

(12) फागुन फूली है फुलवाई, या शोभा कुछु कहि ना जाई।
कोटि भानु एकु रोंवा माहीं, या शोभा साहेब की आही।
अब हमते कुछु बरनि न जाई, गूंगा जैसे मिश्री खाई।
सतगुरु बिन कोऊ ना पाई, बांह पकरि साहेब लै जाई।
पहली के सब खुले केवारा, अमरलोक मां साहेब पाया।

करनी बारहमास की, पहली कही विचारि।
चाँद सुरज दोउ सम करै, पावै पद निर्बान।।

पहली पहरा देति है, हरि दरबार हजूर।
जो चीन्है सो उतरै, कथनी कथै ते चूर।।

पहली परखै जौहरी, परखेनि लाखन कोटि।
भोंदू तौल ना जानई, लीन्हे पाप की मोठि।।

पहली येहि संसार में, बड़े बड़े हैं भूप।
भक्ति भेदु जानै नहीं, परे नरक के कूप।।

पहली परदा खोलि कै, कहै अगम की बात।
मूरुख तौ समुझै नहीं, परा रहै जमु फांसि।।

पहली पारस पाइयां, पहुँचेन हरिपुर जाय।
लोहा ते कंचन भये, सतगुरु केरि सहाय।।

(11) राम रूप अखंड शोभा, हेरि हिरदै ना परा रे।
अरस परस आनन्द मूरति, नैन भरि कै देखता रे।
देखता जो रूप शोभा, प्राण ऊपर वारता रे।
भाग्य रूप सराहि आपन, हंस हंसै भेंटता रे।
प्रेम प्रीति प्रवाह उमगे, आँखिन मां जलु चूवता रे।
छकित भये अब श्रवण नासिका, जीभ नाहीं जानता रे।
जीभ बिन ना बोलता रे, रूप अखंड तहँ सोहता रे।
कहैं सतगुरु दास मीता, अब ना आवै येहि जगतु रे।

(12) आतम पहिचान, अरे तू ना किया रे।
नाभी कवँल के अंत डोरे, खोजि तू कस ना लिया रे।
पावता गुरु ज्ञान डोरी, कोटिन बीन तहँ बाजता रे।
बाढ़ता जो ध्यान उनमुनी, प्रेम अमृत चाखता रे।
किये बहुतै जगत जोरा, बिन गुरु पार न पावता रे।
अरध उरध के मध्य मूरति, उलटि कै तब भेंटता रे।
और एक अजब बाजा, त्रिकुटी मध्ये बाजता रे।
सतगुरु मीता षट् चक्र बेधे, तेहि का सुमिरत रहा रे।

(13) जलमु गयो नल हरि ना भज्यो।
कहति हते हम करबु बंदगी, यहाँ गरभ बास की सुधि विसरेउ।
कै परपंच माया के कारण, घर-घर धुत्ता धुत्ति भयेउ।
सुनति शब्द मन उठति कलोलै, गुरमुख हो अब ज्ञान सुनेउ।
सतगुरु चोट सहै सोई कंचन, माटी का घट फूटि गयेउ।
शीश उतारि धरै गुरु आगे, सकल बिखै तजि राह चलेउ।
आगे पीछे चोट न लागै, जिनकी सतगुरु बांह धरेउ।
यहि बिधि चलै भक्ति सोई पावै, तन सुख काजु न लरजि परेउ।
सतगुरु मीता विरध है बाना, बांह धरै तेहि पार करेउ।

।4) यहु जगु सपना अपना नहिं कोई रे।
समुझि देखु नल लोई रे।
आये बहुत बहुत फिर होइहैं, सिध्द साध मुनि जोगी रे।
जाकी नैआ पार उतारै, सोई राम रसु भोगी रे।
जिन रस पिया सोइ मतवारे, चाखति ही छकि जाई रे।
फूल उतारि जिन भरा कटोरा, ते ना पियति अघाई रे।
पिया कबीर पिया धरमदासा, जन बेनी मीता दासा रे।
गोरख भरथरी गोपी चंदा, अजहूं प्रेम पियासा रे।
पीपा दास पिया जन पोजा, दास मलूका मीराबाई रे।
इन संतन सब संतै थापे, ठगियन पाखण्ड थापा रे।
सतगुरु मीता न्याउ छानि करैं, निंदक नरकै जाई रे।
साहेब है औसाफ का साथी, न्याउ तफाउस जानै रे।

पद

(1) मैं जोगिन सतिलोक की, मेरा बहुरि न आवन होय हो।
पाँच पचीसों बाँधि कै मूलै किया विचार।
तन-मन-धन वारिया, मेरी सुरति लगी निजुसार हो।
खोजत खोजत खोजिया, खोजा वारों पार।
जो खोजे पिउ ना मिलैं, तो या तन करिहों छारु हो।
ढूढ़ति-ढूढ़ति सतगुरु मिले, मिटि गई तन की ताप।
बूड़ति आनि उबारिया, छूटे मलिन विकार हो।
अगम अटारी चढ़ि गई रे, छूटे जमु के जार।
पन्नो मजलिस देखिया, भेटा सिरजनहार हो।

(2) जमु रोके है घाटु, मैं कैसे आवउँ पारा।
भवजल नदिया अगम बहति है, नहीं घाटु नहिं धारा।
बूड़ति सकल जहान देखिया, बाँधि-बाँधि अहंकारा।
जिन जाना ते पार उतरिगे, छोड़ि ये सकल पसारा।
कालु बाँधि के किया है चेरा, साँचुइ साँचु पुकारा।
देउ असुर मुनि नल सब लूटे, बचे न तीनिउ देवा।
सतगुरु नौका दीन पठाई, तेहि चढ़ि उतरे पारा।
पन्नो की बहियाँ गहि तारेउ, धनि तुम्हरा ब्यौहारा।

बारहमासी

(1) कातिक मां गुरु मारगु दीन्हा, मूल मन्त्र हम डिढ़ कै लीन्हा।
गंग जमुन सुरसती नहाई, अगम डोरि नैनन मां आई।
पैठि पतालै धरनि डिढ़ाई, उलटा पवन अकासै जाई।
कहि पन्नो हम गुरुमति पाई, पाँच पचीसों बाँधि मंगाई।

(2) अगहन प्रीति लगी अधिकाई, बरखै पोहप बरनि ना जाई।
सतगुरु हमका कीन सहाई, दीन्ह सुहाग तौन निरमाई।
सुहाग महिमा बरनि न जाई, चढ़ी सुरति तब मनु छकि जाई।
पन्नो अतिरिज देखा जाई, बैदुरंज की माला पाई।

(3) पूसै पारस प्रेम बढ़ाई, कुमति गई घर सुमिता आई।
पाँच पचीसों मारि भगाई, ज्ञान क्षिमा संतोष डिढ़ाई।
क्रोधै मारि पछारा भाई, सुरति कवँल मां पहुंची जाई।
पन्नो के मनु निहचै आई, तब सतगुरु मोंहि लीन्ह बचाई।

(4) माह महल पगु दीन्हा भाई, सुख उपजा तब रही न समाई।
कुमिता का बनु दीन्ह ढ़हाई, सुमति सुहागिल दीन्ह लगाई।
फूलन लागी तब फुलवाई, भरम मढ़ी सब दीन्ह गिराई।
कहि पन्नो ऐसी बनि आई, सतगुरु हमका मूरि बताई।

आरती

(20) काया नगर हवै अभिनासी, तिनकी आरति बंदी खलासी।
सतगुरु सेउ परम सुख रासी, पाँच पचीसों तोरु मवासी।
रवि ससि साधि जगाओ बाती, दीपकु ज्योति होइ परगासी।
जन सहजी जगु भई उदासी, आरति साजी बारामासी।

(21) आरति करौं नाथ अपने की, चरन धोय चरनोदक लेती।
लेऊ सुमिता जागै जोती, आरति करो दिवस औ राती।
पाहन पीतरि मुरति बहाऊँ, आदि पुरुष की बलि- बलि जाऊँ।
जिनकी सेवा बहुरि ना आऊँ, सहजी सहज परम पद पाऊँ।

दोहे

सहजी सन्तन का मिले, पाप पुन्य की हानि।
रामै पाया प्रेम ते, काह जगत की कानि।।

सहजी या जगु आंधरो, चीन्हे ना हरि के लोग।
काम क्रोध माते रहैं, नरक करैं तेई भोग।।

कहि सहजी दरबार के, हम हैं छरियादार।
सांचे का पहुंचावई, त्यागिन कुटिल लबार।।

सन्तन की दुपटी भली, नहिं साकठ की साल।
सहजी हरि धन पाइयां, काटि चली जमु जाल।।

दिया पलीता जोग जुगति का, ब्रम्ह अगिन उदगारी।
ऐसे अमल छकी जन सहजी,मजलिस टरति न टारी।।

अपने मन की करनी, आवै अपने काम।
जगु हितू मीता नहीं, सांचा हितू है राम।।

काम क्रोध की गरदनि मारी, लसगर लीन्हा लूटि।
मीता सहज सहज गढु पाया, तौन न कबहूँ छूटि।।

सहजी खोजति मैं फिरी मन का मिला न कोय।
जो मीता मन की करै बंदी खति लिखि लाये।।

21:57
Pothi Saheb Book 2022

मीता-इन्दो समाज

इन्दो बेटी आओ ना, खोटी है संसारी।
मात पुत्र की गारी लावै, तुम्हरी पति है भारी। } मीता

परमेसुर का हुकुम भया मोहि, का करिहों पति भारी।
मेरे मन परतीति भई है, आई सरनि तुम्हारी।। } इन्दो

जो आई ता बैठो बेटी, तुमका देबे तारी।
परमेसुर सो बांह धरइबे, मीता कही बिचारी।।
कहि मीता इन्दो सुनो, धरो धनी का ध्यानु।
राम भगति सरि कुछु नहीं, परी बिरले का जानि।।
ध्रुव-पहलाद ना पाइयाँ, सो पद तुमका देऊँ।
कहि मीता परतीति मानि ले, रामु भगति कै लेऊ।।
अनभै उपजै भगति ते, पावै पदु निरवान।
इन्दो बेटी समुझि ले, तू है परम सुजान।। } मीता

जौनी चालु चलाइहौ, तौनी चलिहों चालु।
अब इन्दो का और न भावै, तजे करम के ख्यालु।। } इन्दो

जोगु जुगति मां पगु धरो, रैनि दिना लौ लाऊ।
धरनि मूल मां बाँधि कै चितु ना अनतै लाऊ।।
मनसा वाचा कर्मना, जो रहै चितु लाय।
जोगिन का या मारगु दूजा नहीं उपाय।।
गोरख भरथरी गोपी चंदा, औ सुल्तानी साहु।
साहेब येही मघु मिले, मिटे जुगन के दाहु।।
इन्दो मारगु कठिन है, होरिउ ते अधिकाऊ।
जरि बरि मारग का धरै, सो जीतै या दाऊँ।।
तीनि देउ तेहि ध्यावईं, जो जीतै या दाऊँ।
खाड़े धारा पाँव दै, अमरलोक का जाऊ।। } मीता

माथु नवाऊँ गुरूजी, धरौं जोगु मां पांऊँ।
अगम पंथु का जो चलौं, डिगौं ता कहाँ समांऊँ।। } इन्दो

ऊँची जाति अग्रवालिनी, इन्दो प्रकटी आय।
कहि मीता हरि भगति का, तोरा बांधे जाय।। } मीता

(5) फागुन फागु मोरे मनु भाई, अंगिया रंग केसर दीन्ह बोराई।
नैन नीर छिनके बहु भाई, पीत पछौरी दीन्ह उढ़ाई।
सतगुरु फगुआ दीन्ह मंगाई, पिया अमी तब मनु छकि जाई।
ब्रम्ह अगिनि दगचै उर आई, पन्नो मारगु गई डिढ़ाई।

(6) चैत चारि चेतिगे भाई, चेति भये ते करम नसाई।
बेधे सप्त पताल हम भाई, त्रिकुटी मध्धे कालु रहाई।
टरिगे कालु बिलमु नहिं लाई, पदम पत्र भेटे रघुराई।
मकर तार चढ़ि आवै जाई, पन्नो आवागमन मिटाई।

(7) बैशाख अगमपुर पहुंचे जाई, जीव ब्रम्ह मां गया समाई।
जरै मदन झरि पूरी लाई, बरखै अमृत पिया अघाई।
सहजे सेज पिया की पाई, सखियन हमका भेद बताई।
अमर भये अमरौती पाई, कहि पन्नो अब बहुरि न आई।

(8) जेठ कवँल दल फूला भाई, गरजे गगन घंट घहराई।
रवि शशि बीच संधि हम पाई, ब्रम्ह मिले ब्रम्हुइ हो जाई।
तीनिउ देवा खोज कराई, खोजि मुए तिन थाह न पाई।
सतगुरु सेइ मवासी पाई, कहि पन्नो अब गरभु न आई।

(9) अखाड़ दुआरे ठाड़िउ भाई, मोतियन झालरि बरनि न जाई।
कोटि भानु शशि देखेउँ जाई, सुरति निरति ऐसी हो आई।
सुई सुमेर समाना भाई, धनि सतगुरु जिन कीन्ह सहाई।
कहि पन्नो हम कीनि कमाई, अबकी गई बहुरि ना आई।

(10) सावन सतिपुर पहुँचेन जाई, सतगुरु हमका लीन्ह लिवाई।
सुखमुनि दसवां द्वार बताई, वहि द्वारे होय आवै जाई।
करम जारि जिउ उबरा भाई, तन मन वारि मिले रघुराई।
पन्नो समुझि गरीबी पाई, मनकी बात पूरि भै भाई।

(11) भादों अगम केवांरि खोलाई, तीनिउ गुन हम डाड़े जाई।
देखा रूप पिया का जाई, पिया मुख निरखत मिटि गई ताई।
सतगुरु हमका कीन सहाई, नाउ चढ़ाइ कै पार लगाई।
कहि पन्नो भेंटे सुखसाईं, या बिधि जमु फंद तोरेउँ भाई।

(12) कुआँरे जोति झलक्के भाई, वहै जोति मां अग्र उड़ाई।
चहुँदिसि बास रही महँकाई, इकटक रहिउँ तन गा विसराई।
अपने पिया की मैं बलि जाई, जरत अगिन ते लीन्ह बचाई।
कहि पन्नो अब बहुरि न आई, सुख सागर में गइउँ समाई।

बारहमासी

(1) चैत चेति चींटी भये भाई, निर्भय चढ़ते ठाढ़ि उँचाई।
हंथिया अब हमसे घबराई, अब वहु हमका पकरि न पाई।
झीने छिद्र मां जाउँ समाई, हथिया ठाढ़ रहा पछिताई।
सोधी सतगुरु की बलि जाई, जिन पपील मोहिं दीन्ह बनाई।।

(2) बैशाखै जब आँखी पाई, तब सतगुरु मोहिं परे दिखाई।
हानि लाभ की शंक मिटाई, तिनके चरन गहे लपिटाई।
सतगुरु की दाया भई भाई, बजर किवांरा खुलिगे भाई।
सोधी चीन्हि चरन जो पाई, सत्य संघु सोई कै पाई।।

(3) जेठ ब्रम्ह अगिनी दहकाई, ताल का पानी दीन्ह उड़ाई।
बंधन रहित मीन भई भाई, चढ़ी गगन अब बिलम न लाई।
हरि वियोग जब तक ना पाई, तब तक है नाहीं कुशलाई।
सतगुरु से सोधी मति पाई, आनंद सागर रहे समाई।।

(4) असाढ़ आशा है दुखदाई, ताते कलहिन दूरि बहाई।
कुमिता अन्धकार की नांई, सुमिता तत्त ज्ञान उपजाई।
रहति शीश के नहीं भलाई, बिना शीश चरिले फुलवाई।
सोधी अपनी पूरि कमाई, अर्पन कै चरनन सुखु पाई।।

(5) सावन सतगुरु की सेवकाई, सत्य संघु याही मोरे भाई।
सुरति सत्यपुर रहै समाई, डिगै न चाहे सो होय जाई।
दीन भये दें पार लगाई, मान बड़ाई जमु धरि खाई।
सोधी पाई सो ठकुराई, जो परलै मां बिनसि न जाई।।

(6) भादौं करुण पुकार लगाई, भीजि गया अम्बर सब भाई।
बरसा अमृत पिआ अघाई, अमर भये अभिनासी पाई।
दीन बंधु लिया नाम धराई, दीनन का उइ सदा सहाई।
सोधी दुनिया सब जरि जाई, दासन पर कोइ आँच न आई।।

(7) कुआंर चरन सतगुरु के जाने, दिन औ राति रहे लपिटाने।
रवि शशि आये एक ठिकाने, राग द्वेष तत्काल मिटाने।
जब सतगुरु के चरन लुभाने, हरि वियोग तबही दिल आने।
तत्त ज्ञान सोधी उपजाने, अलख ब्रम्ह मां जाय समाने।।

"आध्यात्म-पिटारी"

मनुआ काहे जग मां फांसा, क्यों ना इससे भया उदासा।
यहु जगु कर्ता केर तमासा, बाजीगर की करु तू आशा।
जब तक राग द्वेष का बासा, तब तक हरि की झूठी आशा।
नलतन से जब जाई निकासा, बहुरि न हाथै आई पांसा।
दाँउ जो चूकै अच्छा खासा, तौ रहिहै चौरासी वासा।
बना चहै जो हरि का दासा, दीन होय औ होय उदासा।
माया हवै काल का लासा, सुमति छुड़ावै जम की त्रासा।
घर का छाड़ि रहे का बन में, सारे अवगुन तेरे मन में।
का भये जलम उच्च कुल लीन्हे, जो हैं तेरे करम मलीने।
का भया जग पंडित कहलाये, तत्त ज्ञान जो तुम नहिं पाये।
म्याऊँ म्याऊँ तेरा कौने काम, जो तू नाहीं पावा राम।
का भया बरसे जो ना भीजे, बिना दीनता राम न रीझै।
का भया बेद पुराण बखाने, ब्रम्ह भेद जो तुम नहिं जाने।
का भया कोटिन की किये पूजा, तारै रामु न तारै दूजा।
का भया बाना सिंह का धारे, जो कुकुरन लत्ता कै डारे।
का भया घाटन तीर्थन हेरे, साहेब तो है अन्दर तेरे।
दत्तात्रेय काह कै लीन्हा, पाखंडी जो चौबिस कीन्हा।
त्रिकुटी मूरति बहुतै देखे, परम पुरुष ना एकउ भेंटे।
रूप रंग रेखा मूरति के, एक भानु छबि नाहीं जाके।
रूप रंग रेखा तहँ नाहीं, कोटि भानु जेहि देखि लजाहीं।
राग द्वेष के बीच है बटिया, जेहि चलि मिलै अगमपुर हटिया।
काहे भेखै भरम भुलाना, रहति भेख के नहीं ठिकाना।
सन्त बचन सुज्जन का सोहैं, ठगिया भेखी तानै भौंहैं।
ई हैं संतन केरे बोलवा, कबहूँ हांथी कबहूँ उँटवा।
कबहूँ नदिया कबहूँ शेर, महरा दर्पण कबहूँ सुमेर।
दर्पण हाथी सिंह सुमेर, इनका बूझौ रहति उजेर।
उँटवा नदिया सिन्धु पहार, सबका मतलब एकु हमार।
जैसे करम मिलै तस भोग, काहे करता है सुख सोग।
भला दाँउ तू कैले जोगु, राम मिले मिटिहैं सबु सोग।
कोटि भानु शशि की उजियारी, एकु रोवां की छबि ते हारी।
साहेब की ऐसी छबि प्यारी, जिन जिन देखी पलक न टारी।
पलरा रवि शशि करौ बिचारी, तब डांड़ी चितु टरै न टारी।
न्याय की तखरी अस जो धारी, साहेब तिनके हैं रखवारी।
काहे फिरता पोथी लीन्हे, काहे जाता रोज मदीने।

तखरी- तराजू

कहरा

भजिले राम नरक ना होइहै, गरभ वास ना अइहै रे।
जब लग डारन पातन ध्यइहै, मूल गहा ना जइहै रे।
जंगल जरा भया तब मंगल, खरहा मौज मनइहै रे।
तूरि तूरि जो अब तक खाये, सो अब शीश नवइहै रे।
माया मां फंसे कुशल है नाहीं, धरी हिंयै रहि जइहै रे।
मनुआ जब तक हाथ न अइहै, हरि दर्शन ना पइहै रे।
सुई के छोटे नाका मां जब, हथिया ठाढ़ समइहै रे।
आकाश बंद मूठी मां होइहै, मछरी का मगरु डेरइहै रे।
जियतै मुर्दा के व्यवहारा, माया ते बचि जइहै रे।
रूप अनूप महबूब के साथ, सदा सोई रहिहै रे।
तिरदेवन की जहाँ नहीं गमि, तहाँ बास अब होइहै रे।
अब वा छबि ना ओझल होइहै, निरखि-निरखि सुख पइहै रे।
सुज्जन के हित कहरा गावा, साकठ बूझि न पइहै रे।
कहि सोधी बिन बूझे कहरा, परा नरक मां रहिहै रे।।

जग मां भरम पसार बहुत है, कैसे बचना होई रे।
ध्यान लगाइ सुनौ हो सुज्जन, अब मैं भाखों सोई रे।
भगति की रेल भजन करु पहिया, डीजल तत्तु भराई रे।
चाँद सुरज ऐसे सम करिये, जैसे पटरी भाई रे।
मालिक दया टिकट लै बैठो, पहुँचो दिल्ली जाई रे।
राम दया बिन बैठेउ नाहीं, पार न कोऊ जाई रे।
बैठे रहो रेल मां जो तुम, पहुँचो दिल्ली जाई रे।
उतरि परो तो कैसे पहुँचो, कहु मोसो समुझाई रे।
समुझि बूझि कै गाड़ी मां बैठेउ, सबु ना दिल्ली जाई रे।
जौनि जहाँ की गाड़ी होइहै, तौनि तहैं लै जाई रे।
रस्ता मां स्टेशन मिलिहैं, जहाँ जगमग जगमग होई रे।
बैठे रहेउ ना धोखा खायो, या ना दिल्ली होई रे।
भेखी का जो पल्ला पकरौ, तोहि नरकै पहुँचाई रे।
जो सतगुरु का पकरै पल्ला, तबहीं दिल्ली पाई रे।
संतन की जो है रजधानी, दिल्ली ताहि बताई रे।
परम पुरुष तहाँ आपु विराजै, शोभा बरनि न जाई रे।
सुज्जन है संतन का प्यारा, वहिते कुछु न छपाई रे।
जो सुज्जन का संघ बसाओ, होई तोरि कमाई रे।
सुज्जन से कुछ नहीं छपाया, दीन्हा खोलि बताई रे।
कहि सोधी जो साकठ होई, कहरा बूझि न पाई रे।।

04:24

“मन पर”

मन है दीन मनै अभिमानी, मन की गति केहुँ बिरले जानी।
मन है राम मनै जमराजा, मनुहि भिखारी मनु ही राजा।
मन है कुआं मनै है खाईं, मनु ही देता हवै गिराई।
मन मां सुमति कुमति मन माहीं, जैसी करनी तस उपजाई।
इड़ा पिंगला सुखमुनि नारी, मन मां स्थित हैं ई सारी।
गंग जमुन मन ही की धारा, सरस्वती से होय उबारा।
मन ही से है सुख दुःख होता, विरल लगावे आनंद गोता।
मन भण्डार मां भरे बिचारा, सागर का ना वारो पारा।
मनु ही सोवै मनुहि जगावै, सो जागै जो सतगुरु पावै।
मन ही फाँसै मनै निकासै, स्वर्ग नर्क मां मनु ही बासै।
मनु ही धरती मनहि अकाश, मनै अँधेरा मनै प्रकाश।
मन ही बोरै मनहि उबारै, जब चाहै तब मन ही तारै।
मन ही डोलै मनहि डुलावै, थिर ना रहै जहाँ तहँ धावै।
मन है माला मनै जपावै, जब चाहै तब रामु मिलावै।
मन है साथी जो थिर होई, मन से बड़ा न बैरी कोई।
मन है दर्पण झूठ न बोलै, स्याह सफेद मनै सब खोलै।
मन है हाथी सुई समावै, पर्वत से राई होइ जावै।
मन है आशिक मनै मशूक, मन है बेनी मनै मलूक।
स्वर्ग यहीं और नर्क यहीं है, मन के बाहर कुछौ नहीं है।
मन बैरागी मन ही रागी, जब त्यागी तब मन ही त्यागी।
मन है कृष्ण मनै है कंसा, मन है काग मनै है हंसा।
मन है ज्ञानी मन अज्ञानी, मन है मंगता मन ही दानी।
मन मौजूद हवै जन जन मां, तीनो देव समाये मन मां।
क्या चींटी क्या गज क्या तीतर, सारी श्रष्टी मन के भीतर।
मन ही जीतै मन ही हारै, मन के खेल हवैं ई सारे।
मन मानै तो तन हवै, मन मानै तो खाक।
मन मानै तो स्वर्ण है, मन के माने राख।

04:24
Pothi Saheb Book 2022

जगत बड़ाई देइ कै, पत्थर दीन्हा दाब। भये हंसाई जगत मां, है सुज्जन का लाभ।।(259)
तुम हांसी करते रहो, हम साहेब घर जाब। कहि सोधी सुज्जन की हांसी, महँगी परै जनाब।।(260)
चाँद सुरज दोउ सम कै रखना, या है अगम बिचार। कहि सोधी जो अर्थ बतावै, तेहिकी बानी सार।।(261)
सोधी पहरू मीत का, पाई छरियादारी। सुज्जन के हित की करै, चोरन का दुतकारी।।(262)
सोधी पहरे पर खड़ा, ताने तीर कमान। जे मीता के चोर हैं, मारी तिनके बान।।(263)
सोधी पहरू सांच का, नहीं झूठ का मान। सांचे शीश नवावई, चोरन हनिहै बान।।(264)
बिन विवेक संतन की बानी, बिना नाक ज्यों फूल। पोथी बांचे हरि मिलैं, या है तेरी भूल।।(265)
मूड़ मुड़ाना छाड़िकै, शीश दक्षिना देय। सोधी जोगी सोइ है, धंसि अमरापुर लेय।।(266)
परम पुरुष ना मरता कबहूँ, ना काहुइ वहु मारै। वा तो केवल सृजन करति है,माया मरै व मारै।।(267)
रूप दिखाय कै रण्डी फांसै, कान फूँकि पाखण्डी। कहि सोधी ई पाखण्डिन ते, बहुत भली है रण्डी।।(268)
साहेब की गति सूरज जैसी, धरती की गति माया। खुद सूरज के चक्कर काटै, घूमै सबै घुमाया।।(269)
कीर्तन नाम जंजीरिया, दै बाँधै कनफुकवा। तोरि चलावै सो है अंसी, बंधे रहैं ते पशुआ।।(270)
जो साहेब की खुशी चहै तो,शीश चरन में धरना होगा। जियत मरै तो तरना होगा,वरना नरक में परना होगा।(271)
देखो दोनों भिन्न हैं, रामचंद्र औ राम। रामचंद्र का जौनि नचाया, ताहि नचावै राम।।(272)
सुख दुःख दोनों दशा में, हरि का सुमिरै जोय। कहि सोधी तेहि दीन का, बाल न बांका होय।।(273)
खुद का कौन भरोसा ऐ मन, करौ खुदा का यार। कहि सोधी विश्वास अटल भये, सीझैं काज तिहार।।(274)
अंगा पच्छी ना किई, ना काहू की राखी। कुल की रीति निबाहि कै, सोधी सांची भाखी।।(275)
ना काहू की निंदा कीन्ही, ना काहू की राखी। तू मीता की मानिले, उन भाखी सबु सांची।।(276)
करम हिंडोले झूलता रे, पाप पुन्नि दोउ छोर। राग द्वेष दोउ मेटिकै, चलिये साहेबु ओर।।(277)
राग द्वेष जो कोई मेटै, भेटै साहेब जाय। दुःख के कारन येई हैं, इन मेटे दुखु जाय।।(278)
ना मैं बेटी बहन तुम्हारी, ना पत्नी ना माता। करम जनम का यह तन बंधन,नाता जगु भरमाता।(279)
नारि पुरुष जेहिका जगु कहता, सो काया का भेद। काया माया सबही नारी, पुरुष अलेख अदेख।।(280)
इच्छाधारी भी माया है, माया है काया री। दुनिया की सब दौलति माया, माया है छाया री।।(281)
उपजै बिनसै सो माया है, माया थिर नाहीं री। साहेब की गति हवै निनारी, उइ सिरजैं संसारी।।(282)
जो अभिनाशी सोई साहेब, नाशवान माया री। उनकी इच्छै से सब होता, नाशवान औतारी।।(283)
माया का उइ भोग करति हैं, ना होते औतारी। भोग करैं औ तजैं छोई सी, माया सिर नाया री।।(284)
तिन माया छोई कै जानी, जिन पर भई दाया री। कहि सोधीभइ दाया जिन पर,तिनही भेदै पाया री।।(285)
अमर बेलि का देखि कै, आया मन में धीर। पालनहारा पालिहै, अब जनि चूकै बीर।।(286)
कबीर का बानी बचन, लागा ठगियन हाँथ। सोधी याही बात ते, ना कीन्ह्यो विश्वास।।(287)
मीता साहेब का बचन, ठगियन धरा दबाय। ज्ञान सिंह कोतवाल भये, लीन्हा सबै छड़ाय।।(288)
सतगुरु मीता जगत में, धनी हुकुम से आये। किया जखीरा भारी, सुज्जन भेदु बताये।।(289)
तेहिका हजम करै की कोशिश, ठगियन की बहुताई। हाथ लगीं कुछ पोथी उनके, तिनका धरा छपाई।।(290)
कहि सोधी यहु दूसर अवसर, जब ठगिया डहकाये। ज्ञान सिंह का चला लबेदा, लीन्हा सबै छुड़ाये।।(291)
बानी बचन छपा मीता का, ठगिया उठे डेराये। कहि सोधी मीता की वाणी, अब को सकी चुराये।।(292)
संतन मां यों हरि बसैं, ज्यों फूलन मां बास। आनंद सागर मिलै दीन होय, कहते सोधी दास।।(293)
सुमिता के अंग पंखुड़ी, सन्त है फूल समान। हरि समान है बास फूल की, है यहु निर्गुन ज्ञान।।(294)
सोधी सुज्जन कली फूल की, सन्त जानिये फूल। साहेब तो है बास सम, अब ना करु तू भूल।।(295)

जखीरा-राशि/ढेर

(6) हरि जी से मिलना कठिन है मोरे भाई, साधि साधि पग धरों जतन ते बार बार डिगि जाई।
ऊँची गैल शैल रपटीली पाँव नहीं ठहराई, लोक वेद कुल की मरजादा छाँड़ति जिया सकुचाई।
जो तुम मिलिहौ पिया पियारे या अनरीति दिखाई, शुन्य शिखर पर पिया बसति हैं धरम ध्वजा फहराई।
आनंद स्वरूप रूप साहेब का सुरति झिकोरा खाई, धरमदास हरि हीरा पाये तन की तपनि बुझाई।
गुरू कबीर कृपा के सागर दुरमति दूरि भगाई, हरि जी सो मिलना कठिन है मोरे भाई।।

(7) हमरे सतगुरु केरि महलिया दियना जगमग जगमग होय।
ऊँची अटरिया चन्दन केंवरिया अलख सो लागी डोरि।
आवैगा कोई सन्त विरहिया काम कुटिल डारै तोरि।
त्रिकुटी बैठे जपौं सुमिरनी पवन तत्त रहु पोय, चाँद सुरज दोउ मारग गहिले गगन मंदिल रहु सोय।
कोटि भानु परगास होति है तिमुरु न दरसै कोय, अनहद बाजा बाजि रहे हैं शब्द मां सुरति समोय।
रहनी होय मुक्ति सोइ पावै आवागवन न होय, धरमदास की अरज गुसाईं सुनिये बंदीछोर।।

(3) काया कनक गढ़, लंक बंक टिसुना दधि जानी।
रावण है अहंकार माया मंदोदरि रानी।
तत्त ज्ञान श्री राम सत्य सीता है सोई।
मन मानौ हनुमान क्षिमा लक्षिमन है जोई।
कुम्भकरन निद्रा गही, भाव भभीखन देखिये।
तुलसी धरनि प्रसंग हिये रामायन देखिये।

(4) हमरा बियाहु करौ मोरे बाबा, तुम से न होय निबाहु रे।
जा के रंग रूप ना रेखा, सो बरु ख्वाजौ हमार रे।
आवै न जाय मरै ना जीवै सो बरु आय हमार रे।
बार न बूढ़ तरुन ना बाबा, आयेउ तिलकु चढ़ाइ रे।
गगनै खम्भु गड़ायेव मोरे बाबा, अरधै रचेउ बियाहु रे।
पवन बराती ब्याहन अइहै, बहु बिधि करेउ सनमान रे।
तिरवेनी का पानी भरायेव, अक्षय बिरछ की डार रे।
सुक्रित कलस धरायेउ मोरे बाबा, पूजेउ पांय हमार रे।
सुरति निरति सो गांठी जोरेउ, मड़वा देहेउ चिरुआय रे।
पाँच भाँवरी घुमायेउ मोरे बाबा, गांठी दीन्हेउ निपुचाय रे।
निरगुन सेंदुरा मंगायेउ मोरे बाबा, पिया सो देवायेउ भरि मांग रे।
सतगुरु विप्र के चरन छुवायेउ, जुग-जुग अटल सुहाग रे।
चाँद सुरज दोऊ पवंर मां राखेउ, कोहबन दसौं दुआर रे।
ऊँचा सा दरवाजा धरायेउ मोरे बाबा, निहुरै न कंथ हमार रे।
ज्ञान की डोलिया फंदायो मोरे बाबा, कै दीन्हेउ बिदा हमारि रे।
तुलसी दास छूटल मोरा नैहर, सब सो भेट अगुवार रे।

हमसो कौन बड़ा परिवारी।
सत है पिता धरम है भाई लज्जा है महतारी रे।
शील बहिन संतोष पुत्र है क्षिमा हमारी नारी रे।
आशा सासु टिसुना है सारी मोह जार ससुरारी रे।
अहंकार हैं ससुर हमारे इनकी गति है भारी रे।
ज्ञानी गुरू विवेकी चेला छिन छिन रहै अधिकारी रे।
मन दीवान सुरति है राजा बुद्धि मित्र मति भारी रे।
काम क्रोध दुइ चोर बसति हैं तिनका डर है भारी रे।
राम नाम की बसै नगरिया तुलसी पंचम प्यारी रे।

पद

(1) राम भगति बिन गति न तरन की, कोटि उपाइ जो करही रे।
जल सींचै करि प्रवाले, आंब बबूल न फलही रे॥
आपा थापि और कूं नींदै, गर्व मान के मारे रे।
फिर पीछे पछिताओगे बौरे,रतन न मिलहिं उधारे रे॥
यहु ममिता अपनी जिनि जानौ,धन जोबन सुत दारा रे।
बालू के मंदिर बिनसि जाहिंगे, झूठे करहु पसारा रे॥
जोग न भोग मोह नहीं माया, का भयो बन में बासा रे।
चरन कवँल अनुराग न उपजै, तब लगि झूठी आसा रे॥
मानुष जनम आइ नहिं चेता, अंधे पसू गंवारा रे।
तेरे सिर काल फिरै सर बाँधे, नामदेव करत पुकारा रे॥

(2) बैरागी रामहिं गाऊँगा, सबद अतीत अनाहद राता।
अकुला के घर जाऊँगा॥
तीरथ जाऊँ न जल मैं पैसूं, जीव जंत न सताऊँगा।
अठसठि तीरथ गुरू लखाये,घट ही के भीतरि नहाऊँगा॥
पाती तोड़ि न पाहन पूजी, देवल देव न ध्याऊँगा।
प्रानि प्रानि पुरुसोत्तम राता, ताकूं मैं न सताऊँगा॥
वेद पुरान शास्त्र अरु गीता, गीत कबीत न गाऊँगा।
अखंड मंडल निराकार में, अनहद बेनि बजाऊँगा॥
जड़ी न बूटी औषदि साधूं, राजबैद न कहाऊँगा।
पूरन बैद मिल्यौ बनमाली, नित उठि नाड़ि दिखाऊँगा॥
सदा संतोष रहूं आनंद मै, साइर बूंद समाऊँगा।
गगन मंडिल मैं रहनि हमारी, पुनरपि जनमि न आऊँगा॥
इड़ा पिंगला सुखमुनि नारी, पवनां मंझि रहाऊँगा।
चाँद सूर दोऊ समकरि राखूं, ब्रह्म ज्योति मिलि जाऊँगा॥
पाँच सुभाई मन की सोभा, भला बुरा न कहाऊँगा।
नामदेव कहै मैं केसव ध्याऊं,सहज समाधि लगाऊँगा॥

(3) माधौ माली एक सयाना।
अंतरगत रहै लुकाना॥
आपै बाड़ी आपै माली, कली कली कर जोड़ै।
पाके काचे काचे पाके, मन मानै ते तोड़ै॥
आपै पवन आपही पानी, आपै बरखै मेहा।
आपै पुरुष नारि पुनि आपै, आपै नेह सनेहा॥
आपै चंद सूर पुनि आपै, आपै धरनि अकासा।
रचनहार विधि ऐसी रची है, प्रणवै नामदेव दासा॥

04:43

← Pothi Saheb Book 2022

बारहमासी
"सन्त दरगा साहेब"

(1) चैत चेति चित चेतन होई, अरध उरध रहि चंद समोई।
इड़ा पिंगला सुख मुनि नारी, आपनि आपनि सींचै बारी।
सींचि बारी अमर (सदिल) कीन्हा समुन्दर सत जल सो किया।
उह उहा बिन अन्न पानी पिण्ड पावक सो किया।
मूल कवँल पाताल बाँध्यो छिन अकाश न छोड़िया।
नाभि कवँल बढ़ाई डोरी सो न दरगह छोड़िया।

(2) बैसाखै बसि भये मवासी, बाय बिन्द जीती जम फांसी।
मान सरोवर निरमल झांईं, कलहु कल्पना धोय बहाई।
धोय मेटी कलहु काई, सुमति भेंटी आइ कै।
अति आनंद विनोद बाढ़ेउ गई कुमति पराय कै।
गगन सुन्नि समाधि लागी, मगन मनुआ रमि रहेउ।
जोग जुगति विचारि दरगह, परखि पद पूरा लहेउ।

(3) जेठ जुगति जब जोगी जानी, अलख पुरुष तब लखेउ बिनानी।
जुरा मरन की संक मिटाई, जाके डर सब जगत डेराई।
जगत जाके डर डेराई, सो न डर उर आवई।
उनमुनी घर बैठि आपन, सहज तारी लावई।
परम जोति सम्हारि लीन्हा, अचल मेरु न डोलई।
जोग जुगति विचारि दरगह, विमल बानी बोलई।

(4) गरजि अखाढ़ गगन घहरान्यो, दामिनि रूप देखि मनु मान्यो।
अहि निसि बरखै अमृत धारा, सो रस पीवै पीवन हारा।
पीवन हारे जगु बिसारेउ, मुनि महा रस पीवही।
अमर होय ना मरै उपजै, जुग सहस लौ जीवई।
निरविकार निरूप निरगुन, सकल करता भेंटिया।
जोगु जुगति विचारि दरगह, परखि आपा मेढ़िया।

(2) निर्लज्ज मन का को समुझावै रे, तोहि लाज ना आवै रे।
काम क्रोध मद लोभ डहै, लालच भरमावै रे।
आशा टिसुना नदी बहै, जोरा जोर जनावै रे।
या माया परपंच भरी रे, मन संतोष न आवै रे।
मोह महावत मन गयंद, चित चाल चलावै रे।
दुरमति पीठ पलान परी, थिर होन न पावै रे।
कहै भागीरथ ऐसी संगति, सतगुरु सरनि बचावैं रे।
सुज्जन अस्त सुमति ले धारै, तो परचै या पावै रे।

) महल की शोभा बरनि ना जाय, जहँ गरजि गगन घहराय।
कलसा तीनि कंगूरा तेंतिस, ऊपर ध्वज फहराय।
अमर लोक गति बूझि न आवै जहँ राईउ ना ठहराय।
चंचल मीन चलै ऊपर का सिंह नाग अकुलाय।
दुवादशि दामिनि दमक देखावै, जहँ द्रष्ट ना मुष्ट समाय।
लै के संघ क्षिमा घर बैठा एक पिण्ड नौ धाय।
जन भागीरथ येहि गढ़ ऊपर बिहसि मिले रघुराय।।

हमरे हरी हरिल की लकरी ताते छूटै ना आध घरी।
होय निरशंक नाम गहि बैठे लोक की लाज हरी।
तीनिउ लोक सकल मंहि मण्डल जल थल समुझि परी।
जिउ मकु जाय धरनि ना छूटै तन मन देह गली।
जैसे मीन अधीन जलै बिन बिछुरत तुरत मरी।
नाम जिहाज विधाता खेवन अम्बर खेलि भरी।
कहैं भागीरथ खेवन सतगुरु खेइ कै पार करी।।

शिखर ते छूटत धारा रे जहँ अम्बर दुआरा रे, होत शोर घनघोर गगन गढ़ उघरत तारा रे।
अरध उरध के बीच मां प्रभु रहत निनारा रे, अमी चुअै सरवरि भरै रे हंसा मनि आरा रे।
हिरना चरै दीपक बरै चहुँ दिसि उजियारा रे, खोजति बेद पुरान भागवति यहु जगु हारा रे।
कहै भागीरथ एकुइ बोलै जिनको सकल पसारा रे, शिखर ते छूटत धारा रे जहँ अम्बर दुआरा रे।

मन रे तू केतक काछ कछे, तुम धरि धरि देह नचे, गरभवास मां उरध मुख झूले कइयो बेर पचे।
कटा ना फंद दण्ड ना छूटा, येही रंग रचे, भरमत भरमत भय सागर मां, कर मंहि डोल मचे।
लख चौरासी दाँवरि दीन्ही, को कलि काल बचे, उड़ते फिरत काग की समसरि, डारै डार बसे।
कहे भागीरथ बधिक पहूँचा पंख मिरोरि फंसे, मन रे तू केतक काछ कछे, तुम धरि धरि देह नचे।

ज्ञान-गुदरी

धरमदास विनवै कर जोरी, साहेब सुनिये विनती मोरी।
काया गुदड़ी कहो संदेशा, जासे जीव का मिटै अंदेशा।
अलख पुरुष जब किया विचारा, लख चौरासी धागा डारा।
पाँच तत्व से गुदड़ी बीनी, तीन गुनन से ठाढ़ी कीन्ही।
तामें जीव ब्रह्म अरु माया, समरथ ऐसा खेल बनाया।
जीवन पाँच पचीसों लागे, काम क्रोध ममता मद पागे।
काया गुदड़ी का विस्तारा, देखौ संतों अगम सिंगारा।
चाँद सुरज दोउ पेवन्ध लागे, गुरु परताप से सोवत जागे।
शब्द की सुई सुरति कर धागा, ज्ञान टोप से सीयन लागा।
अब गुदड़ी की करु होशियारी, दाग न लागै देखु विचारी।
सुमति का साबुन सिरजन धोई, कुमति मैल को डारो खोई।
जिन गुदड़ी का किया विचारा, तिनको भेंटे सिरजन हारा।
धीरज धुनी ध्यान धरु आसन, सत की टोपी सहज सिंहासन।
युक्ति कमंडल कर गहि लीन्हा, प्रेम फावड़ी मुरसिद चीन्हा।
सेली शील विवेक की माला, दया की टोपी तन धर्मशाला।
मेहर मतंगा मत बैशाखी, मृगछाला मनही की राखी।
निश्चय धोती पवन जनेऊ, अजपा जपै सो जानै भेऊ।
रहे निरन्तर सतगुरु दाया, सन्त संगति करि सब कुछ पाया।
लौ करु लकुटी हृदया झोरी, क्षमा खड़ाऊँ पहिर बहोरी।
मुक्ति मेखला सुरति सुमिरनी, प्रेम पियाला पीवै मौनी।
उदासी कुबरी कलह निवारी, ममता कुत्ती को ललकारी।
युक्ति जंजीर बांधि जब लीन्हा, अगम अगोचर खिरकी चीन्हा।
वैराग त्याग विज्ञान निधाना, तत्व तिलक दीन्हों निर्वाना।
गुरु गम चकमक मनसा तूला, ब्रम्ह अगिन परगट कर मूला।
संशय शोक सकल भ्रम जारा, पाँच पचीसों प्रगटहि मारा।
दिल की दुरमति दुविधा खोई, सो वैरागी पक्का होई।
शुन्य महल में फेरी देवै, अमृत रस की भिक्षा लेवै।
दुःख सुख मैल जगत के भाऊ, त्रिवेणी के घाट नहाऊ।
तन मन शोधि भया जब ज्ञाना, तब लखि पावै पद निरवाना।
अष्ट कमल दल चक्कर सूझै, योगी आप-आप में बूझै।
इंगला पिंगला के घर जाई, सुषमुनि नारि रहै लौ लाई।
वोहं सोहं तत्व विचारा, बंक नाल में किया संभारा।
मन को मारि गगन चढ़ि जाई, मान सरोवर पैठि नहाई।
अनहद नाद नाम की पूजा, ब्रह्म वैराग्य देव नहीं दूजा।

15:15

2015.486745.Goraksh-...

24/73

श्री मच्छन्द्र उवाच

अवधू अपणी कहो के सहज सुभाइं,
बंक नाल है नाभि ठाई।
जब यह प्राण निशि करे,
पिंड मधि प्राण पुरुष अपरछंद रहे ॥४८

भावार्थ—हे शिष्य ! साधना स्थल में एक नागनी नामक गोलाकार नाड़ी है, जिसका मुख सदैव ऊपर रहता है, जिसे पश्चिमोत्थान नामक आसन द्वारा जाग्रत कर निम्नोन्मुख कर के योगी अमृत पान करते है। बंकनाल दो प्रकार की है जिसमें नाभि स्थान मुक्त बंक है। जब प्राणी विश्राम करे तब शरीर में शक्ति स्वच्छन्द व्यापक रहती है।

गोरख उवाच (२५)

स्वामीजी ! कौण चक्र में बिन करि चंद,
कौण चक्र में लागे बंध।

कौण चक्र में पवन निरोधे,
कौण चक्र में मन परमोधे।
कौण चक्र में धारे ध्यान,
कौण चक्र में लीजे विश्राम ॥४९

भावार्थ—हे गुरु ! प्रकाशमय ज्योति की प्राप्ति चन्द्र किस चक्र में करता है ? किस चक्र के बंध से अमृत प्राप्ति होती है ? किस चक्र साधन से प्राण-वायु वशीकरण (स्थिर) होती है और मन की शिक्षा किस चक्र साधन से प्राप्त होती है। किस चक्र में ध्यान करना तथा किस चक्र साधन से चित्त विश्राम होता है।

श्री मच्छन्द्र उवाच

अवधू ! अर्ध चक्र में बिनकरि चंद,
ऊर्ध चक्र में लागे बंध।
नाभी चक्र में पवन निरोधे,
हिरदा चक्र में मन परमोधे।
कण्ठ चक्र में धारे ध्यान,
ज्ञान चक्र में लीजे विश्राम ॥५०

भावार्थ—हे शिष्य ! मूलाधार से नाभी-प्रमाण चक्र सिद्धि से चन्द्र-स्वर सिद्ध होकर ज्ञान प्रकाश करता है। जालन्धर बंध लगाकर अमृत प्राप्त करना और नाभि स्थाने स्वाधिष्ठान सिद्धि से प्राण-वायु का निरोध करना, हृदय स्थाने अनाहत चक्र में मन को आध्यात्म शिक्षा मिलती है। कण्ठ स्थाने विशुद्ध चक्र में जीवात्मा "सोहं" ध्वनि का ध्यान और ज्ञान चक्र (आज्ञा) में ज्योति दर्शनोपरांत ब्रह्म रन्ध्र में विश्राम की प्राप्ति होती है।

15:11

2015.486745.Goraksh-...

गोरख उवाच (१५)

स्वामीजी कहां बसे चंद कहां बसे सूर,
कहां बसे नाद बिंद का मूर,
कहां चढि हंसा पीवे पाणी,
कौण शक्ति प्राण घर आणी ।।२९

भावार्थ—हे गुरु ! अन्तरहित साधना-मार्ग में चन्द्र, सूर्य तथा नांद, विंद का स्थान कहां-कहां पर है । हंसा कहां

की उन्नति पद आरूढ़ता से शांति की बून्द पीता है और प्राणभवन में किस शांति का केन्द्र-बिन्दु लाया जाता है ?

श्री मच्छन्द्र उवाच

अवधू उर्ध बसे चन्द अर्ध बसे सूर,
हृदय बसे नाद बिंद जो मूर ।
गगन चढि हंसा पीवे पाणी,
उलटि शक्ति आप घरि आणी ।।३०

भावार्थ—हे शिष्य ! अन्तरहित साधना में गगन (दशवें) स्थान चन्द्र (ज्ञान ध्येय) और निम्न नाभी स्थाने अग्नि-नागनि नाड़ी में सूर्य का निवास है। शब्द का निवास हृदय में है जो बिन्दु का मूल स्रोत-केन्द्र है। जीवात्मा पवन-कसौटी से दशवें चढ़कर शान्ति बून्द को प्राप्त करता है। अपनी शक्ति को उलटि कर स्थिर की गई ।

गोरख उवाच (१६)

स्वामीजी ! कहां उत्पत्ति ते नाद, कहां नाद समि भवते ।
कौण ले स्थापिते नाद, कहां नाद विलियते ।।३१

भावार्थ—हे गुरु ! शब्द की उत्पत्ति कहां होती है। और शब्द कहां समभाव, कहां स्थापन, एवं कहां विलय होता है ?

श्री मच्छन्द्र उवाच

अवधू ओंकार उत्पत्ति ते नाद, नाद शुभ सम भवति ।
पवन ले स्थापिते नाद, नाद निरंजन विलियते ।।३२

15:08

2015.486745.Goraksh-...

स्वामीजी ! कोण घर चंद कोण घर सूर,
कोण घर काल बजावे तूर ।
कोण घर पांच तत्व सम रहे,
सतगुरु होय सो बूझ्यां कहै ॥१३

भावार्थ—हे गुरु ! स्वरोदय में चन्द्र कहां है ? सूर्य को स्थान कहां है ? काल किस घर में नाद बजाता है ? पांचों तत बराबर किस स्थान पर रहते हैं ?

श्री मच्छन्द्र उवाच

अवधू मन घर चंद पवन घर सूर,
शुन घर काल बजावे तूर ।

ज्ञान घर पांचों तत सम रहे,
ऐसा विचार मछंद्र कहे ॥१४

भावार्थ—हे शिष्य ! मन के स्थान चन्द्र, पवन के संग में सूर्य शून्य के स्थान में काल का नाद बजता है, ज्ञान के स्थान में पांचों तत्व की समता रहती है ।

गोरख उवाच (८)

स्वामीजी कोण अमावस कौण पड़वा,
कहां का महा रस कहां ले चढ़िबा ?
कौण स्थान मन उनमुनि रहे,
सतगुरु होय सो पूछ्यां कहे ॥१५

भावार्थ—स्वर स्थान में अमावस का क्या है ? पड़वा (शुक्ल प्रतिपदा) क्या है ? कहां का महारस आनन्द लेकर कहां पर चढ़ता है । किस स्थान पर मन का अवधान अन्तर्ध्यान रहता है ।

श्री मच्छन्द्र उवाच

अवधू ! रवि अमावस चंद सू पडवा,
अर्ध का महारस ऊर्ध ले चढ़िबा ?
गगन स्थाने मन उनमुनि रहे,
ऐसा विचार मच्छन्द्र कहे,

भावार्थ—गुरु मच्छन्द्रजी कहते हैं—हे शिष्य सूर्य स्वर अमावस, चन्द्र स्वर प्रतिपदा, नाभी स्थान का प्राण रस लेकर गगन स्थान चढ़ता और दशवें में मन अन्तर्ध्यानि रहता है ।

15:24

2015.486745.Goraksh-...

राग कान्हड़ा, चौपाई सप्तवार (२)

जोग सुलग ही बारम्बार, सतगुरु शब्दां सहज विचार ।टेर।
आदि ते शोधो आवागमन, घट में राखो दृढ़ करि पवन ।
दशवें तो शिव पूजा द्वार, तो गुरु पावो आदित वार ।१।
सोमवार मन धरिबा शुनि, निश्चल काया पाप न पुनि ।
शशिहर वर्षे अपरम्पार, सोमवार गुण दूताकार ।२।
मंगल विषमी माया बंध, चंद सूर दोऊ सम करि संध ।
जरा मरण बचो भौ काल, तो गुरु पावो मंगलवार ।३।
बुद्धवार गुरु दीनी बुद्धि, ब्यारो काया पावो सिद्धि ।
शिव घर शक्ति पाणी भरे, तो बुद्धवार गुण एता करे ।४।
बृहस्पतिवार विषम मन धरो, पांचूं इन्द्रिय निग्रह करो ।
शंखणी शोधो पवना द्वार, तो गुरु पावो बृहस्पतिवार ।४।
शुक्रवार शोधिबा शरीर, कहां बसे हंस कहां बसे खीर ।
नव बहतर पवना बहे, शुक्रवार कोई बिरला लहे ।६।
थावर थिर करि आसन देय, बारह सोलह मन करि लेय ।
शशि हर के घर आवे भान, ता दिन थावर गंग समान ।७।
सातों वार पार के राशि, काला भैरू घाल्या पाशी ।
पेड़ प्राणी परचा भया, सप्तवार यति गोरख कह्या ।८।

राग चौपाई नोग्रह कथन (१)

सात वार ग्रह नो का खोज,
आपा लखे फकर अनुभोज ।टेर।

15:23

2015.486745.Goraksh-...

श्रो अचंभा कथ्या न जाय, करत महारस गगन समाय ।९।
नवमी नव सिद्धि काया संभारि, पाप पुण्य देखो पटतारि ।
बूड़े पाप तिरे सत धरम, काया बाहर जात न जनम ।१०।
दशमी दश दिश लागे बंध, जत सत संयम थिर होय कंध ।
धरम करम गुरु वाचा चीन,

ज्ञान विचक्षण बाणी बीन ।११।
एकादशी एकादश रंग, रुद्र इंद्रियां पाया काया संग ।
भेंटया देव वरस्या देवा, आप पुजारी आप ही देवा ।१२।
द्वादशी तिथि कर पूरे द्वार, द्वादश दिनकर तपं सूझे सार ।
तहां चढि भैरूं रहा समाय,

सतगुरु कथ्या ज्ञान अभाय ।१३।
तेरस त्रिकुटि सम करि मेल,

चंद सूर दोऊ धुनि करि भेल ।
एक सिद्ध रूंधा नव घाट, सतगुरु खोजे ऊभा बाट ।१४।
चवदश चवदह रतन विचार,

काल विकाल आवे ताहि निवार ।
आपे आप देखो पटतारि, उत्पति प्रलय काया मकारि ।१५।
पूनम पूगी मन की आस, आया मोह तजि भये उदास ।
सोलह कला सम्पूर्ण चंद, गुरु प्रसादे थिरके कंध ।१६।
सोलह तिथि कला की संध, मच्छंद्र प्रसाद थिर भया कंध ।
भरा धीर जब आछे थीर, अनंत सिद्ध तहां गोरख पीर ।१७।

15:21

2015.486745.Goraksh-...

53/137

गोरख उवाच (६१)

स्वामीजी ? कौण चक्र शिर के कंध,
कौण चक्र अगोचर बंध।
कौण चक्र में हंस निरोधे।
कौण चक्र में मन परमोधे।
कौण चक्र में काल है सबाधि,
कौण चक्र में लगे समाधि ।।२२२

भावार्थ—हे गुरु ! किस चक्र की साधना से कुंडलिनी-शक्ति की जागृति होती है ? किस चक्र से तीनों योगिक क्रिया बंध सिद्धि होती है ? किस चक्र में प्राण-हंस अवरुद्ध होती है ? किस चक्र में मन को शिक्षा मिलती है ? किस चक्र में काल गति रुकती है ? किस चक्र में समाधि की परिपक्व धारणा बनती है ?

श्री मछन्द्र उवाच

अवधू ? मूल चक्र थिरके कंध,
गुग्ग चक्र अगोचर बंध।
मणि चक्र में हंस निरोधे,
अनाहद चक्र में मन परमोधे ।२२२।
मिशुद्ध चक्र में काल समाधि,
चन्द्र चक्र में लगे सबाधि, ।
ए षट् चक्र का जाणे भेव,
सो आपहि करता आपहि देव ।२२३।
पवन पवना साधंते योगी,
जरा पलटे काया हा निरोगी।
साधो अवधू योग कला,
निश्चय साधे होये भला ।२२४।

भावार्थ—हे शिष्य ! मूलाधार चक्र से नागिन जाग्रत होती है मूलबन्ध से ही मूल, जालन्धर, उड़ियान बंध की सिद्धि होती है तथा मणिपुर चक्र से प्राण वायु वश होती है अनाहद चक्र से मन को शिक्षा, विशुद्ध चक्र में जराव्याधि मृत्यु भय निवारण होकर चन्द्र चक्र में समाधि धारण होती है। इन षट चक्रों का भेद पहिचानने साधने वाला योगी अद्वैत निष्ठ मुक्तात्मा होता है शरीर के रहते आरोग्य, अवृद्ध सबल रहे।

।। इति गुरु-शिष्य शंका समाधान समाप्त ।।

15:50
2015.486745.Goraksh-...

राग आशावरी (२४)

साधो भाई ! या विध योग विचारा ।
शील शौच एकान्त धारणा, संयम नियम अचारा ।टेर।
गुरु श्रद्धा कर युक्ति लाधी, बांधी पांच पसारा ।
पूरक ओहं सो कुंभक धीरज, रेचक पवन उतारा ।१।
इड़ा पलट के पिंगला लाया, सुषुमण भेद अट्टारा ।
पिंगला उलट इडा सम बैठी, क्रिया स्वास गम धारा ।२।
पल विपल त्राटक धुन साध्या, रणंकार रट प्यारा ।
युक्त त्रिवेणी मुक्त त्रिवेणी, बंध त्रिवेणी सारा ।३।

युक्त बंक से उतरया सीधा, मुक्त बंक चढ़ झारा ।
मुर्द्धा अमृत अखंडित धारा, पी अमृत निरधारा ।४।
नाभी नागनि मुख पलटाया, दशवें मैं रणंकारा ।
भंवरा गरज्या गगन मंडल में, जीव शीव इकसारा ।५।
जनम मरण का संशय काटया, मन पवना गम हारा ।
अपना आप निजानन्द परस्या, रामप्रकाश निज न्यारा ।६।

राग आशावरी (२५)

साधो भाई ! योग युक्ति कर शोधा ।
साधन धारण दृढ़ कर धारी, उपज्या जीवन बोधा ।टेर।
मन पवना का संग कर सुरता, त्रिकुटी महल में रोधा ।
ज्ञान-साधना शस्त्र साध्या, काम मार मद योधा ।१।
महा प्रबल मन वश करने में, गज कठिन नहीं गोधा ।
शब्द अंकुश अभ्यास सींकदे, लाया घेर घर खोधा ।२।
भया निशंका निर्भय डंका, लागा गमना पौधा ।
फब कर बंका राव न रंका, पी रस मस्ता ओधा ।३।
रामप्रकाश पहुंच्या घर आदू योग योग में सौधा ।
आदि आदि अनादि अपना, हुंत भ्रम भवरोधा ।४।

राग कान्हड़ा तिथि योग वर्णन (१)

राग आशावरी (२६)

15:46
2015.486745.Goraksh-...

राग आसावरी (१३)

अवधू ! मन मेरा मतवाला ।
उनमुन चढयो गगन रस पीवे, है त्रिभुवन उजियाला ।टेर।
गुड़ कर ज्ञान ध्यान करि महुआ, भौरो माटी भारा ।
सुषमण नारी सहज समाना, पीवेगा, पीवन हारा ।१।
दोऊ कर जोड़ चिताई माटी, चुवे महा रस भारी ।
काम क्रोध दोऊ किया पलीता, छूटी ममता सारी ।२।
त्रिकूटी कोट में मृदग बाजे, तहां मेरा मनवा नाचे ।
गुरु प्रसाद अमर फल पाया, सहज सुषुमना काछे ।३।

पूरा मिले सभी सुख उपजे, तप को ताप बुझाणी ।
गोरख कहे भव बंधन छूटे, जोत में जोत समाणी ।४।

राग आशावरी (१४)

छोड़दे मनवा मन मस्ती, सोहं शिखर गढ है बस्ती ।टेर।
इला पिंगला अधंग नारी चांद सूरज घर रह लगती ।
गंगा जमना बहे सरस्वती, स्वास स्वास, की वहां गिणती ।१।
अष्ट कमल में अलख बिराजे, रंग महल में रहे सगती ।
चौबारा में दीपक जलता, वहां पे सुरता रहे जगती ।२।
हिये उतार हाथ धर लेणा, शीश उतार करो कुश्ती ।
पांच तत्त गुण, तीनूं भेला राखो,
जबर धणियांरी है जपती ।३।
इसी नगर में डंका लागे, साध सुणे कोई विरला सती ।
झालर शंख पखावज बाजे, जिण बिच केलि करे हसती ।४।
गोरखनाथ मुक्ति के दाता, पल पल सुमरे पारवती ।
शरण मच्छंद्र गोरख बोल्या,
अलख लख्या सो खरा जती ।५।

15:44
2015.486745.Goraksh-...
112/137

इन सुरही का दूध जु मीठा,
पावे गोरखनाथ गगन बैठा ।४।

राग आशावरी (६)

मनवा राजा जायलो कौनसी घाटी,
आगे है भरम की टाटी ।टेर।
कौन दिशा न आई मन पवना, कौन दिशा को जासी ।
कौन दिशा न भजन उबरिया, कौन दिशा रम जासी ।१।
अगम दिशा से आई मन पवना, पश्चिम दिशा ने जासी ।
बंकनाल से भजन उबरिया, रणंकार मैं रम जासी ।२।
ऊंची नीची सुरता कर न, चंदा जोत रहवासी ।
तत्व नाम को तेल पूर ले, जगा करे दिन राती ।३।
बारह आंगुल सींवता; सोलह अंगुल फाटी ।
सवा हाथ रो भंगवा चोलो, त्रिवेणी री घाटी ।४।
दीपक में एक दीपक दरशे, दीपक मैं एक झांई ।
झांई में परछांई दरशे, वहां ही है मेरा सांई ।५।
भणत मच्छंदर सुण जती गोरख, जात हमारी तेली ।
तेल तेल सो काढ़ लिया, है, खल बलदां ने मेली ।६।

राग पद (७)

बोलता नजर नहीं आया गुरुजी,
ज्यां के चोंच पांख नहीं काया ।टेर।
बिन पाल इक सरवर भरिया, नीर नजर नहीं आया ।
मेरे सतगुरु ऐसे सैलानी, वहां बैठ मल २ न्हाया ।१।

17:03

मन की मौन साधना ही निर्वाण प्राप्ति का विषय है—

'मनु का मौनी जो करै पावै पद निरबान।'
प्रेम प्रीति पागा रहै संसै नहिं लावै।

'जोग जुगति' के लिये योगी को 'गिरही' होना आवश्यक है। काम दल को मार कर ही संत टकसारी होता है—

'वा जोगी है टकसारी
जिन लिया कामदल मारी
वा भेखु न कबहूँ धारी
गिरही माँ दोउ कुलतारी।'

इड़ा और पिंगला ही दो कुण्डल हैं। बाईं ओर बहने वाली नाड़ी 'इड़ा' और दाईं ओर बहने वाली 'पिंगला' कही जाती है। इड़ा-पिंगला के मध्य में प्रवाहित होने वाली नाड़ी 'सुषुम्ना' हैं, यही कुण्डलिनी-शक्ति का मार्ग है।

मीता ने दशम द्वार के खोलने का साधनात्मक संकेत किया है। दशम् द्वार से मीता का आशय गगन गुफा में उस छिद्र से है जिससे महारस टपक कर तालु तक आता है। इसी छिद्र को दशम् द्वार के नाम से जाना जाता है। जायसी ने भी 'नव पौरी पर दसम् दुवारा' से इसी प्रकार का संकेत किया है। शरीर में बाहर की ओर खुलने वाले नौ द्वार हैं। गगन गुफा का छिद्र इन नौ द्वारों के अतिरिक्त है। इसी से दसम् द्वार कहा जाता है। खेचरी मुद्रा में जिह्वा के नीचे वाली पतली झिल्ली को कुसवट आदि की सहायता से काट कर जिह्वा को लम्बी बना लेते हैं फिर उसे उलट कर तालु में स्थित दसम् द्वार में लगा कर ऊपर से टपकने वाले रस को कंठ में स्थित विशुद्धाख्य चक्र तक ले जाते हैं। इस प्रकार वह नाभि में स्थित सूर्य में जा कर सूखने से बच जाता है तथा काल का अवरोधक होता है।

मीता ने भी इस दसम् द्वार में अमृत पीने की बात कही है। बौद्ध तन्त्रों में इसे वैरोचन कहा है—

'दस शी दुआरे दिलो कपाट्
एव चढ़ि लाम् मोसे योग्वार।

सिक्खों के आदि ग्रन्थ (पृ० ६७४) के अनुसार—'दसम् दुआरा अगम अपारा परम पुरुष की घाटी।' गोरक्ष विजय १३६ में लिखा है—

'भेदिया दसमी द्वार खाल जोर भर।

कश्मीर से प्रकाशित 'अमरौघ शासन' (पृ० ११) में लिखा है—

एकं मुख रन्ध्रं राजदन्तान्तरे
एतदेव शङ्खिनी मुखं दशम् द्वारं इदुच्यते।

घट में ही रसायन है, काया नगर ही पुर पट्टन है—

'काया नगर हवै पुर पट्टन तहाँ बसै आपु निनारी'

इसे मीता ने अगमपुरा, भी कहा है—और इसमें अभिनाशी का वास बताया है—

'अगमपुरा अभिनासिया तहँ अनभै वासु।'

'पुर पट्टन डेरा किया' कह कर मीता ने इसे अपना वास स्थान बताया है। 'पुरपट्टन' शून्य बस्ती का ही दूसरा नाम है, यहाँ सत्य का परिवार रहता है। काल जाल से यह प्रदेश मुक्त रहता है।

सरहपाद ने चित्त को सम्बोधन करके कहा है, ऐ मेरे चित्त वहाँ चल कर विश्राम करो जहाँ सूर्य और चन्द्र की गति नहीं, जहाँ मन और पवन भी संचरित नहीं होते, जहाँ आदि-अंत नहीं है, जहाँ जन्म-मरण नहीं है, जो महासुख है, जो सहजावस्था है—

"जाहि मन पवन न संचरइ रवि शशि नाह प्रवेश
तहि वट चित्त विसाम करु सरहें कहिअ उवेश
आइ न अन्त न मज्झ णउणउ भवणउ जित्वाण
एहु सो परम महासुख णउ वर णउ अप्पाण।"

'ज्ञान छाँड़ि करु ध्यान का पावै पद निर्वान ।
ज्यों गनती लाखन गनी बिनु धन का परमान ।'

वे 'मूलद्वार' को संभालने का संकेत करते हैं । यह संकेत 'कुण्डली योग' का है । ज्ञानार्णव तंत्र के अनुसार—

'मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटि समप्रभाम् ।
सूर्य कोटि प्रतीकाशां चन्द्रकोटि द्रवां प्रिये ।'' —ज्ञानार्णव तंत्र

घेरण्डसंहिता के अनुसार—''मूलाधार आत्मशक्तिः कुण्डली पर देवता ।
शयिता भुजगाकारा सार्धत्रिवलयाचिता ॥'' (तृ० उपदेश ४४)

'कुण्डलनी' शब्द की व्याख्या ''कुण्डले अस्या स्तः इति कुण्डलिनी' की जाती है । 'कुण्डले' शब्द 'कुण्डल' के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है ।

''मूल डोरि मनु लाइयाँ बन्द धरनि माँ दीन
त्रकुटी तर वर भेटिया मीता भा लै लीन ।''

मूल के शोधन से ही कमल विकसित होता है । चक्रो का भेदन होता है । संत मीता के अनुसार—

'कंवल बिगसै मूल सोधे जीत पाँचों नारि
राम या विधि पाइहै नल करम कागद फारि ।'

मीता के अनुसार द्वादश कवल चक्र में जीव का निवास है । और अष्ट कंमल चक्र में ब्रह्म का विलास है । इन दोनों का एकाकार ही जीव ब्रह्म का एकाकार है—

''द्वादस कँवल जीव का बासा
अष्ट कँवल दल ब्रह्म विलासा
जीव ब्रह्म का एकुइ करई
कहि मीता सो प्रानी तरई ।''

मूल बन्ध भी मुद्रा बन्ध के अन्तर्गत साधना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण रहा है । मीता भी मूल बन्ध को संभालने का संकेत करते हैं । किन्तु वे मुद्रा बन्ध को अपनी साधना का लक्ष्य नहीं मानते यदि मुद्रा बन्ध मात्र बाह्याचार की वस्तु हो जाय ।

मूल द्वार की साधना ही जोग जुगति का प्रथम सोपान है—'बैशाषै बसि मूल दुआरा जोग जुगति का पंथ संभारा ।' चन्ददासकृत शिव सारंगाध्यावली (पृ० ३२) में मूल बन्ध साधना का वर्णन इस प्रकार है—

''मूल द्वार संभार कर वाम चरण धरि धीर
दक्षिण चरन सो राखिये इन्द्रिय विकट शरीर ।''

साधना के अन्तर्गत ५ तत्त्वों और २५ लिप्साओं को जीतने का बार-बार संकेत किया है—

'पाँच पचीसों को जो बाँधे
ताको कहिये ज्ञानी ।'

पाँच से पंच ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, रसना, त्वक) और पचीस लिप्सायें (पाँच तत्वों से मिश्रित २५ मानसिक और शारीरिक विकार आकाश से काम, क्रोध, लोभ. मोह, भय, (५) अग्नि से क्षुधा, तृषा आलस्य निद्रा मैथुन (५) वायु से चलन, बलन, धावन, पसारन, संकोचन, (५) जल से लार, खून, पसीना, मूत्र और लिंग (५) पृथ्वी से हाड़, मांस, त्वचा, नाड़ी रोम (५)=२५ लिप्सायें । मीता ने २५ लिप्साओं के नाम भिन्न प्रकार से बताये हैं ।

संख्यात्मक शैली में मीता ने इन्हीं पंच तत्त्वों को वशवर्ती बनाने का संकेत किया है । तन का शोधन मीता की साधना का आवश्यक अंग है—

'अलख जगाउ जगाउ बहुरिया
तन सोधे सबु कारज सरिया ।'

मन ही साधना का अमूर्त साधन है—

'मनु कर जोगिया मनु सन्यासी
मनु कर भक्त मनुइ बैरागी
मनु कर संतहि मनहिं फकीरा
करु मन ही का कंथ गुरु पीरा ।'

मन में लय होना ही भगवान का नैकट्य प्राप्त करना है—

15:52
2015.486745.Goraksh-...
128/137

साधन आसन भेद निहारा, विधि लाभ युक्ति पथ धारा।
चौरासी में मुख्य उचारा, सिद्ध पद्मासन गाय है।
कर पश्चिमोत्थान अपारा।३।

इडा पींगला सुषुमण सोधे।
पूरक कुंभक रेचक रोधे, मूल उडियान जलँधर बंधे।
लख पल विपल मनाय है, सब युक्ति भेद आचारा।४।
खान पान निद्रा सम धारे, आलस्य औदासी दूर निवारे।
युक्त अहार बिहार विचारे, कर प्रत्याहार जचाय है।
सत साधन संगत धारा।५।

गुरु मूर्ति पद इष्ट संभारे।
सोहं शब्द में दृढ़ता धारे,
निश्चित समय आसन थिर मारे।
नियमित योग उपाय है, घर साधन धरणा प्यारा।६।
त्राटक मानस धुनि है संभारे, अक्षय शून्य प्रभा पति सारे।
आतम चेतन एक विचारे, गति चढ़े क्रम कर आय है।
कर ध्यान-इष्ट उजियारा।७।

षट् चक्रयुक्ति कर साधे।
षट् क्रिया गम मारग लाधें, पांच क्लेश निवृति बांधे।
निर्विकल समाधि ध्याय है,
कोई सविकल समाधी न्यारा।८।
उत्तम क र उत्तम विधि युक्ति, उत्तम गुरु ले परमा भक्ति।

रामप्रकाश तब पावे मुक्ति, सत शास्त्र लक्षण सजाय के।
भ्रम आवा गमन विडारा।९।

राग छन्द भैरवी (२३)

20:26
Mita Granthawali.pdf

बारहमासो

चैत चेति धागा मनु लागा करम भरमु का मारगु त्यागा।
हरा लाल रंगु सेति अपारा धागा लागे कम्पै तारा।
घरु बाहेर तब बैरी लागा तीनिउ तीर्थ किये इक घाटा।
कहि मीता तनु तूरन लागा मानु गुमान तबै सब भागा॥

बैसाखै बसि मूल दुआरा जोगु जुगुति का पंथु संभारा।
छिनु-छिनु धागा पलटन लागा या धागा का काढ़बु गाढ़ा।
सतगुर सेइ भक्ति चितु लाई दीन गरीबी रहा समाई।
कहि मीता या बूझि बिनानी बिना बूझि भूले नल प्रानी॥

जेठु जुगति घर जागन लागी काया सोधै बिरला प्रानी।
कुमति गई घरु सुमिता आई कुंजी-कुरिल ध्यानु ज्यों लाई।
नदी नाउ माँ खैंचि समाई चक्र सुदर्शन देखा जाई।
ससा भूनि सिंघु का खाई मीता या मति गुरु सो पाई॥

अखाड़ अरध मा डेरा लीन्हा गरजै गगन नींद भई छीना।
भूख मारि गहि पाँच पठाना अचिरिज घटु ही मांझु समाना।
परबत अचल होय निजु ज्ञाना बिना भेदु का कथै पुराना।
मीता सांचा पढ़ै पुराना हम न मरबु मरिहै बहु ज्ञाना॥

सावन सुरति सत्य पुर लागी कोटिन दामिनि दमकन लागी।
ब्रह्म अगनि घटु भीतरि लागी मदनु झरै झरि पूरी लागी।
छिन्नु भया तबु जोगु डिढ़ाना अब गुन आवे कौने काजा।
या विधि भजन करै बड़ भागी कहि मीता जमु चोट न लागी॥

भादों बरषै नैनु अपारा नवों दुआरे लगे किंवारा।
दसवाँ खोलि भई उजियारी जुरा मरन का कागदु फारी।
सो जन करै ज्ञान का तोरा पाखंडु भेखु जगतु का बोरा।
कहि मीता सोइ ज्ञान अपारा जाते होय गरभु ते न्यारा॥

कुंआर कमल दल फूलन लागा जीव ब्रह्म मां जाई समाना।
बरै अगिन जमु जार नसाना अमर लोक का किया पयाना।
या मत गहै सो संत सुजाना नाहक कथे काह बहु ग्याना।
कहि मीता जबु या मत ठाना निरमल भया हमारा ज्ञाना॥

कातिक अष्ट कवँल दल फूला बाजै अनहद कोटिन तूरा।
उठै रागु सुर सब्द अपारा छूटन लागे जगु व्यौहारा।

20:17
Mita Granthawali.pdf

अंध कोठरिया ढूंढई मीता सुई हिरानी । कहु कैसे पहिचानिहै कांटिन दियना बारी ॥
हरिजन तहाँ बिलंमई सीतल जहाँ निवास । कहि मीता तहँ ना टिकै जहाँ क्रोध उपहास ॥
मीता हरि के दास की बार बार बलि जाय । जिन्हे मिले सुख ऊपजै जगु सो बकै बलाय ॥
दाता औरे पतिगिरिही बहुत हवै संसार । कहि मीता ऊइ बिरले हैं जे पहुँचे दरबार ॥
दाता दानी दोउ का करई कालु अहार । कालु जालु ते सो बचै जो भेंटै करतार ॥
कसे कसौटो सो टिकै जेहि जूझै का होय । कहि मीता सुनु साधवा तब संतन का होय ॥
अन्न बाँधि जनि भागऊ समों परा है नीक । एकु संगति दूजे नल तन अबु जनि जायो चूकि ॥
बहुत गई थोरी रही थोरिउ ना करु खीस । कहि मीता गुरु सेइकै भेंटि लेउ जगदीस ॥

दोहा गुर बिवेख

सतगुर सांचा सोई रामु दरस जिन संघु मिलै । कहि मीता तनु दुख खोय अमर लोक का लै चलै ॥
मदन जरै दीपक बरै गगन उठै घहराय । मीता कसमस मेटि कै मिला पुरुष का जाय ॥
मीता मन महरा भये नैना भये अमीर । छरीदार पलकै भईं खड़ी रहैं हरि तीर ॥
मीता नैना ना नबो ना होय जाय अधीन । पारब्रम्ह पहिचानिया हो संतन सो दीन ॥
अबु जगु मोहि न सुहाय अगम अटारी मनु गयो । कहि मीता मत सार पाये. ते मुक्ता भये ॥
बिना उसीला चाकरी सही कहां ते होय । कहि मीता सतगुर बिना रामदरस ना होय ॥
जन मीता बनु सींचिया बनु मां लागि दंवारि । करम जरे जिव ऊवरा साधो कहो विचार ॥
मीता पलकु न लागई मिले सजीवनि मूरि । पीतम छबि उमड़ी रहै का जगु जानै बीर ॥
लाली मुख पर छा रही जबु बसिया हरि नैनु । मीत उनमुनी लगि रही सखी सखी सों सैनु ॥
ब्रह्म अगनि उदगार कैं पिया पियाला सार । मीता छूटा बन्दि ते घटु मा भा उजियार ॥
जग्य दानु तपु फांसि है तरना है कुछ और । कहि मीता गुरु सेइले जो चाहे वा ठौर ॥
कान फुकन्ता गुरु नहीं अगम ग्यानु गुर और । जिन्हे मिले हरि पाइये कहि मीता गुर तौन ॥
सतगुर भेखै ना धरैं कान फूकि नहिं देइ । कहि मीता ग्रह ना तजैं उइ मति गरुये होंय ॥
करनी बारामासु की जबु पूरा गुरु होय । अधिकी घटी बतावई ते सतगुर ना होय ॥
बारा मासे का भये नींद भूख का खांड़ि । कहि मीता सतगुर बिना का जागे दिनु राति ॥
भेदी गुरु बिरले हवैं अनभेदी हैं कोटि । कहि मीता ते गुरु हवैं तीन तापु जहाँ टूटि ॥
फिकिर न व्यापै जुर नहि आवै जिनकै पूरि कमाई । कहि मीता उइ देहि छूटते चलैं निसान बजाई ॥
देहि छूटति जो होय कसाला तिनकी झूठ कमाई । कहि मीता जे हरि के प्यारे ते हसि चलैं बजाई ॥
सतगुर की बानी लखी सतगुर भये दयाल । उन दीन्हा सति नामु का तिन काटी जमु जालु ॥
मीता सीस न राखिये जो पूरा गुरु होय । तनु धनु काजु न आइहै उई अमरपुर देय ॥
काम क्रोध जे मारई ते मरदाने गाजी । मीता तिन पर वारिया जे साहेबु राखैं राजी ॥
गरभु बास का आवना छूटै सो मत सार । मीतै गरभ न आवना पहुँचा पैले पार ॥
गुरु की बानी जो लखै सो पूरा गुरु होय । कुंभ नीर सिंधै मिलै सोऊ सिंधु जलु होय ॥
जे मीता मन ऊजरे जगु ते रहै उदास । हिल मिलि सब सो बोलई मनु राखै हरि पास ॥
सुरति डिढ़ानी गगन में निरति किया उजियार । सुई सुमेर समोइया मीता उतरा पार ॥
मीता नन्हा होय रहा काम क्रोध का त्यागु । सतगुर की दाया भई भाग्य उठा जबु जागु ॥
मीता पांचों सो लरा अरध उरध के बीच । प्रेम पिआला पीजिया पदम झलक्का सीस ॥
या तोरा गुरू ग्यान का पावै विरला कोय । कहि मीता मनु जीतई सो जगु जीता होय ॥

20:15
Mita Granthawali.pdf

साखी

बिनु करनी की कथनी बिनु गांसी ज्यों तीर । दूनो उर मां ना गड़ै कहि मीता सुन बीर ।।
ऊटक नाटक बहु किये मिलै न पिऊ का भेदु । झूठा झूठे मां फँसा करै करेजे छेदु ।।
दुनिया मां स्याबसि भई पिया के नाहीं ठौरू । ब्याहु भया ना बावरे का बाँधे भा मौरू ।।
यहाँ स्याबसी वहाँ छिया है कीन्हा कौन विचार । पिऊ बातें पूछै नहीं झूठ परा सिंगार ।।
हीरा परखै जौहरी और न जानै कोय । बंदा का बन्दा लखै जो वहि सरबरी होय ।।
जैसे नारि सराय को नहीं ठिकाना ठौर । य्वों करनी बिनु कथनी बिनु पांवन ज्यों दौर ।।
स्याबसि स्याबसि खुसी मे जमु की फाँसि न टूटी । कौड़ी का धाये फिरै पूँजी गै सबु लूटी ।।
लेझुरी हाथु न आइया असुर पियासा जाए । संतन का चीन्हा नहीं फिर फिर गोता खाए ।।
डिम्भी से य्वों बोलना ज्वों घसिलावे कीच । सुंज्जन का परमोधिये ना राखी कुछु बीच ।।
पारिख आई हाथु में चोरु साहु लखि लीन । अब मीता भटकै नहीं मत पाया है दीन ।।
दरपन अन्ध दिखाइया दरस न देखा जाये । य्वों भोंदू सो ज्ञान है सब्द अविरथा जाये ।।
विस्ती धूरि छपावई संतन उठवै धूरि । मीता पारिख यही है दूनो की गति बीर ।।
हलुके का मीता तजे गरुआ लेइ उठाऐ । पूरो का पूरा करै लै अमरापुर जाऐ ।।
साखी सब्दी मीत की कीन्हा बड़ा विवेखु । बिनु तौली बहु कहि गये तिनते बाढ़ा धोखु ।।
निरगुन बानी तौनि है जहाँ न गुन व्यौहार । जैसे नकरी सारु में काचु रहै सो खवारु ।।
संगति कीजे संत की जिनका गृह मां बास । भेखु ठगइया विमुख हैं बैइठु न इनके पास ।।
जो तू चाहे रामु का रागु द्वेष दोऊ त्यागु । मीता जगु सो का परी मारगु अपने लागु ।।
फूंस फांस मा छाय रहे हैं आगि लगे जरि जाई । अजर अमर घर मीता पाया विनसि न कबहूँ जाई ।।
पंडित नरकै लै चला मुक्ति सुनाय सुनाय । साँचु कहे मीता भा बैरी जानै हमरी बलाय ।
चांद सुरज दोऊ ऐकु भे पंडित कहो विचार । जो ना सब्द विचारिहै तेहिका नरक दुआर ।।
माया मूसै पंडिता औ नरकै लै जाय । भेदु ना जानै भक्ति का अधिक देइ भरमाय ।।
पोथी थोथी डारि दे लेउ भक्ति का भाव । याते रामै पाइये झूठा और उपाव ।।
बकुला मीनै ध्यावई पंडित ध्यावै दामु । सुज्जन ध्यावै संत का जाते पावै रामु ।।
मनु मैला तनु ऊजरा जगु बहु बका फिरन्त । मीता हंसा को लखै जिनकी गति है संत ।।
पंडित नरकै लै चला मुक्ति सुनाय सुनाय । कथा बतावै दामु हित रामु मिला ना जाय ।।
काहू की नारी हरी कोऊ जूझा जाय । सो कहि भोन्दू का भए रामै देउ बताय ।।
कर्री कमान चढ़ाइया मारे पाँच पठान । मीता बाजी जीतिया बाजे तबल निसान ।।
आसिक सो आसिक भया तब मिल गया मसूका । मीता तिन पर वारिया माफ़ कीई सबु चूका ।।
चोरन कै खरकत रहैं जन मीता के बान । छाती कूटैं सिर धुनैं खोई जाति दुकान ।।
मीता पहरू अगम का ठगिअन देइ बताय । साहन का जाहिर करै पाखंड देइ गिराय ।।
मीता पहरा देति हैं चोर लगावैं गारी । चोर वैरु कै का करैं हरि जिऊ हैं रखिवारी ।।
लोक परा जमु धार मां कौनु निवेरै आय । संतन का चीन्है नहीं मीता देइ छड़ाय ।।
तीन देऊ सुर मुनि नल लूटे जमु कांड़े धरि कांड़ी । जो मीता संतन लखै होइ न कबहूँ भांड़ी ।।

20:32

Mita Granthawali.pdf

बिमुखन संघु बैठे भजन खतरा परै दावादारी छांडु रामु सो हित करै।
या जगु बिखु की बोले देखि तिनका डरै सुज्जन सो हितु जोरि बाँह तिनकी धरै।
केहरि तहां न जांय जहां मरकट थरी अैसे हरि के दास बिमुख संघु ना करी।
मीता कहैं बिचारि सुरति लागी रहै चित ना कतहूँ जाय लगन अैसी करी॥

जोगी नगरी बसाओ नगरी मां बसि बहुरि न आवो।
का जानै जगु बा का भेऊ जो जानै सो जीतै दाँऊ।
पहिले सीस दक्षिणा देऊ रावल का अपना कै लेऊ।
वा रावल के गाँव न ठाँऊ बसै जहां कोटिन खाँऊ।
पाहन पूजै ना देवन जांऊ ना तिरथन में पैठि अन्हाऊ।
अबकी बेरि खेलि यहु दाऊँ जो जीतै ता बलि बलि जांऊ।
चांद सूर एकै घर लाऊँ सुई के बीच सुमेर समाऊँ।
या बिधि जमु के फन्द छड़ावो जन मीता के तबु मन भावो॥

सीस देई फिरी रामु दुहाई और देव की आस न राखौ और बिरछ की छाही।
अजर अमर है साहेबु मेरा बिनसि न कबहूँ जाई जो बिनसै सो मानुख देही ना नल भरमु भुलाई।
नचना करै मिरग तिसुना का बिनु जल धावा जाई अैसे और देव की आसा हो सांची सरनाई।
कोटिन भये रामचन्द कान्हा साहेब दूजा नाहीं कहि मीता भजु सत्य पुरुष का असत्य गहे जमु खाई॥

जगु मां दीख बहुत चतुराई चंचल चपल परे जमु धारा निराधार तरि जाई।
भृंगी कीट चाप लीन्हा कै निर्बल लेति उठाई अैसे सतगुर जानि गरीबी तुरति लेति अपनाई।
भृंगी समान हवै उई सतगुर संत गये गोहिराई सोई चालु देख्यो रे भाई साधौ येहि मां धोखा नाहीं।
कथे अनेगु एक ना बूझै अन्धा अन्ध मिलाई कहि मीता जिन रहनि बिचारी तिनकी भई ठकुराई॥

जगु जीतै जगु मां रहै करै मन ते न्यारा पाँचों इन्द्री बसि करै सो जोगी सारा।
मन जीते मन होय रहै दरगाह पियारा अमर भये जुग जुग जियै सब रंग हुसियारा।
जटा रखाये का भये का लाये छारा नाहक जलमु गवाइंया खाते पर द्वारा।
नरक सरग की सुधि नहीं सठु फिरै जुझारा मीता दोऊ बतावई बूझौ संसारा॥

जगु निन्दै की दै गारी चलिये चालु सँभारिया
मरजी जानो पिया अपने की हमका डर है भारिया।
कजुक मौत जिनके है हाथै जमु ते लेंइ उबारिया
मैं नहिं जानेउ और न जान्येउ उनकी लगन न्यारिया।
का भये घरी घरी के टेरे पिउना करै पियारिया
मैं तोहि चाहों तू नहिं चाहै केहि बिधि होइहैं यारियाँ।
जेहि पिउ चाहै सुहागिल सोई उमहि बहुत गबारियां
सखी सुजान पिऊ की प्यारी मीता तिन पर वारियाँ॥

20:30
Mita Granthawali.pdf

दिल के जानी मन के माली मनुहीं मां मनुइ समाना रे।
कहि मीता अनभै की बानी जानैगा जाननहारा रे ॥

सति नामु छाका रे करम कागदु फारि डारा अगम ताका रे।
जोगु जुगनी विचारि मनु गहि भरम- भागा रे संक तजि निरसंक खेला प्रेम पागा रे।
नींद भूख विसारि टिसुना रैनि जागा रे ब्रह्म अगिनि उदगारि लीन्ही अमी चाखा रे।
बरै जोति विशाल सुन्दर मूल द्वारा रे खोलि खिरकी गगन पहुँचा जीव तारा रे।
अस्ट दल के कवँल भीतरि मिला प्यारा रे कौन मेरे जाये आवै पिया प्यारा रे।
कहौं कैसे देखि अचिरिजु दुःख भारा रे जानिहै जेहि पीर व्यापी जगत न्यारा रे।
कालु का गहि किया चेरा सांचु भाखा रे जिन देउ-सुर-मुनी असुर डाड़े अजब बांका रे।
दास मीता खेलु पूरा जोगु जागा रे रावला मिल भया सांचा चोर भागा रे ॥

अब मैं गुरु संघु लाहा पायो ताते विमल विमल जसु गायो।
परा हता माया के फन्दे छोरि लिया करि दायो।
हता अनाथु साथु कोइ ना था बिना बुलाये जगु आये
दीन उधारन प्रण प्रतिपालन बहिया बोल बसाये।
दाता रामु और सब भिक्षुक दूजा नजरि न आयो
आनि देउ कबहूँ ना जाचौं चरन कवँल चितु लायो।
जाकी कृपा जमु ते बांचे गरभु का बासु छड़ायो।
मुक्ति विचारी पांउ पर लोटै मूल हाथु जबु आयो।
जारों या जगु केरि बड़ाई हरी हितू बिसराये
अमी छाड़ि विखु सो लै लावैं अंत तेई दुख पावे।
कौन काम धन धाम पिता सुत है सपना या माया।
खाय धतूरा मनौं बौराना ततु ज्ञान नहिं आया।
बिना विवेकु बूड़ि दुनियाई या संतन गोहिराया।
सांचु कहे ता कोऊ न मानै झूठे जगु पतियाया।
ज्यों दुरभिक्ष रंक का अनधन पाय बहुत सुख पाया
कहि मीता यों धनी हमारा सुख नहिं जाति बताया ॥

कैसे कै रंग लागे हमरी ननद निगोड़ी जागै कलहिनि कुटिल रहै निस बासर सुमिता देखे भागे।
देखति संघु चतुर नारिन के मोहि बड़ा डर लागै ऊँच अटरिया चढ़त सजन की हियरा थर-थर कांपै।
चाहै पिऊ तजै जगु लज्जा हिलि मिलि पिउ संघु जागै घूंघुट टारि अंक भरि लावै नैन आरती साजै।
मीता सैन सुजान सखी की सखी होय सो जानै निजु पीतम की खबरि न पाई नाहक कजरा साजै ॥

समुझि कै जागु रे मन मेरे सोये दुख बहुतेरे। सोवत सोवत जमु घरि खाई चौरासी दै फेरे।
हय-हाथी-नीसान नगारे छूटति लगै न बेरा बुंदक सुख सपन के काजे हरि सो मोहरा फेरा।
देइ अभैपद दानि बड़े हैं निकटै हवैं हजूरा जो तू मानै तौ तू सानै तब होई वह तेरा।
मेरी-मेरी करते तनुभयाबोरा घुरति न लागी बेराकहै मीता बिनतीहै तोसोंहरि भजु बड़ानिहोरा ॥

20:27
Mita Granthawali.pdf

पदावली

पहिले चींटो होय रहै गुरु का सेवै जाय सतगुर भेदु बतावई सो है कठिनाय।
समुदै डोगेंवा ना चलै कैसे पारै जाय सिंधु खार है तहवां रे मीनौ होइ जाय।
दूध दही औ सहतु रे घिउ तेलौ बारि तहां हम भइन बिहंगम हो गये छठयें पार।
सतयें हरि तन गारा हो सो कहि ना जाय परखि-परखि सौदा कीई तहाँ गएन अघाय।
अठयें आठों पाँखुरी कवलों बिगसाय भँवरा होय गुंजा करै कहूँ अनत न जाय।
नवयें नै त्रिकुटी तरे तहँ पहुँचेनि जाय पदम पत्र पर साहेबु रे मिलि तपनि बुझाय।
मीन-पपील-बिहंग का मत सुनिले आय तीनिउ करनी जबु करै ले मंगल गाय।
साखी सब्दी बहु करै बहुतै ध्यान कराय मीता बासा तहां किया जहां बिरला जाय॥

लगन धरी गुरु जबते मोरी हमका लागा मोह अब को फाफसि कूटै हो माया मोरि न तोरि।
पांचों का परपंच तजि दिया दिया पचीसो मोरि अरध उरध भौंरी भई गगन उठा घन घोरि।
आये चारि कहरवा हो चितु लाये डोरि जाय उतारेनि तहवां हो जहां ससुररिया मोरि।
पिया सो हिलि मिलि लोजे हो जीवनि है थोरि मीता मंगल गावैं हो जगु सो मन तोरि॥

तब वा घर का पाईयां गुरु सेये जाय तनु धनु मनु बारै करै छिनु-छिनु बलि जाय।
चौमुख कोयला लागिया भरा तागु भंडार छठयें बधुआ छूटई फिर अरधै जाय।
रवि शशि सम तहवां किये चितु अनत न जाय सहजे सहजे चढ़ि चलो जैसे मकरी जाय।
पहुँचे मजिलिसी देखिया आवनु मिट जाय सोई मिल सोई भया अैसा पदु आय।
कोटि भानु शशि वारिये पिउ ऊपरि जाय का काल जोरु तहवां नहीं जेहि जगत डेराय।
कुछु गुपिता हम राखिया सो कहि न जाय पूरा हो सो जानिहै वा गठबंधन आय।
कूरे का कूरा मिला दीन्हा भरमाय मरम न जानै अगम का रहे तारी लाय।
लखि उजियारी सुखि की रहे बहुत भुलाय मीता बासा तहँ किया जहाँ बिरला जाय॥

अरे अरे मूर्ख गवांर पंथु का कहै पंथु खाड़े की धार चले सो पदु लहै।
सतगुर अगम अपार रहनि गाढ़े रहै या मत पावै सोय विवेखै जो गहै।
कोटिन माँ कोई संत झूंड़न भरे नहीं सिघु न सबु बन होय तो लाखन को कही।
भीखु मांगि सठु खांय ठगैअन का कही संत न धरई भेखु मीता जानि कही॥

सतगुर करै सहाय तो पदु सो हित होय जागे सखियन भागि तो गुन का को गहै।
बारि सुहागिलि सोइ पिया ढ़िग ही रहै गावै मंगलचार तपनि तन ना रहै।
का भये कजरा दिये खसम जो ना चहै पहिरि काचु का पोत गलिन माती रहै।
खसमु खुसी ना कीन्ह जलमु ध्रगहि रहै मीता किया विचारि विश्वासी का कहै॥

सुनु ससुरे की बतियां घूघुंट टाटी टारियां अैसे पिउ ना पैइहो का कथै गवारियां।
नदिया बीच भयानकी डोंगवा नाहि जाय उइ तो पइले पार हैं कैसे मिलिहौ जाय।

बाबा धोखे या जगु मारा गुरु सब्द न जाय बिचारा जिनकी बाँह मिलै सति रामा ते बिरले संसारा।
लोभी फिरै दाम के काजे सिखवै सीख बिचारा कंठी देइ दाम गहि लीन्है देखा गुरू तुम्हारा।
बिनती करै सिख कर जोरे हम सिर घर का भारा कंठी बाँधि कौनि बिधि चलिये सो कहिदेउ बिचारा।
दसौंध काढ़ि धरौ गुरु आगे या है बड़ा बिचारा तुम गिरहिन का कुछु डर नाहीं यहैभक्ति का द्वारा।
अपना बिखै विकार न छाड़ै सिख क्यों तजै बेकारा पाथर नाव दोऊ चढ़ि बूड़े केहि बिधि उतरै पारा।
या बिधि चलै भक्ति का लरई सूझै वार न पारा भौंदू भाव भक्ति ना जानै कथि बदि मरै गंवारा।
सतगुर सत्ति परम गुरु पूरे जिनका सत्य बिचारा। उनका दीन गरीबी पावै उतरै भै जल पारा
मीता दास कहै सच बानी निन्दक का मुंह कारा पाखंडी का भरम न राखै ई संतन व्योहारा।

भरमु तजु राम चन्द कौन कन्हाई, भजिले सांचा साई राम चन्द सोई तू कान्हा दूजा कोउ गनाई।
उपजै बिनसै सो नल प्राणी वा तौ साहेबु नाहीं दिल दरियाउ खोजि तब पावै नहि तौ हाथु न आई।
ब्रह्म अखण्ड बिनसि नहिं जाता देहि धरै वा नाहीं कहै मीता हम सत्य सब्द कियासतगुर केरि दुहाई॥

रे भाई हरि बिसराये बूड़ा का माया मा भूला, खोज गया रावण राजा का तू नहिं वाकी तूला।
गरभु बासु तो हवै हिंडोला जो आवा सो झूला डारु थांभि पारै ना जैइहौ पार होवे गहि मूला।
कटि गई डार मूल नहिं लागै समुझौ मूर्खं बिसूला जानै मोरि बलाय कहा बहु अन्त होइ तोहि सूला।
जाते गरभु बासु ना छाड़ै सो सगरी है भूला सहिया हो मीता गोहिरावै दुनी करति है गीला॥

मनु रे बिन सतगुर को तारै और नहीं उपचारै दास कबीरा पीपा नामा सतगुर सबै पुकारै।
सुखदेउ बचन व्यास मुख सोई यही हवै मत सारै बन्दी छोरै रामु मिलावै कलह कलपना टारै।
नेमु धरम किरिया तपु संजम जग्य दानु ना तारै, ई तो हैं उइले व्योहारा जैइहौ कैसे पारै।
ताते हो हुसियार रे भाई जनि जिउ जमु बसि डारै नर तन बार बार नापैइहौ येहि पूंजी जनि हारै।
तजि अभिमान मान करु दूरी निर्मल ग्यान संभारै रहु लौ लाय संत कीसंगत अउरन मनै बिचारै।
भेटिले ब्रह्म ब्रह्म होइ जैइहै आवागवन निवारै कथनी बदनी दोउ बेकारा करनी दुःख बिदारै।
रूप रेखु साहेबु के नाहीं नहिं वहु काया धारै रूप अनूप हवै अति सुन्दर कोटि भानु ससि वारै।
काया नगर हवै पुर पट्टन तहाँ बसै आपु निनारे देखन हारे जगु बिसराये मीता तन धन वारे॥

हरि नामु सुधारस पीजे रे जाते जुग-जुग जीजे रे धरनि मूल बन्द कीजे रे तब घटहि रसायन कीजे रे।
पैठि पताल नाम तब निकसै तेहि चढ़ि सरबस लीजेरे रबि-ससिकेरामंदिर बेधाआगू बसकित कीजे रे।
सोई पार जो अलखै देखै जो अैसा मत कीजे रे। सो काहे का आवै जावै अटल भये रंग भीजे रे।
सीस उतारि धरै तब पावै जाको सतगुर रीझै रे कहि मीताअस नामु कहावै सुज्जन होय सो बूझै रे॥

कोई खेलै संत बंसत पाँचौं का धारै लिये प्रेम का पिचक्का रे काम-क्रोध भरि मारे।
मूल दुवारे माड़िया रे खोले पछिम केवार ब्रह्म झका झकि हो रही लखि शोभा अगम अपार।
जो यह खेलै प्रीति सो छूटि जाति जमु जाल भै सागर ते उतरै सोई भेटै सिरजनहार।
यहु फगुआ बड़ी भाग्य कारी का जानै संसार सुर मुनि पार न पाइयां तहाँ मीता खिजिमितगार॥

सतगुर सहाय मीता की बानी पदु बोले सम्वत १७६० मा
फतुहाबादी दस्सन दोसर बनिया तिनके ग्रह प्रगट भये
जादोराय नाम परम पुरुख का जदुबंसी नाउ कन्हैया का
रघुनाथ नाउ परम पुरुख का रघुबंसी नाउ रामचन्द का॥

20:34
Mita Granthawali.pdf

ननदुली आवन वतावइरे हम अइबे नाय अगम घर पीतम मिले सखी मंगल गाय।
एकु पिया नारी घनी धौं केही रिझायें कलहिनि के ढिग ना रहैं बिरहिनि घर जाये।
काजर दै ठाढ़ी भई तोहि थिनु ना आये याहु भया ना बावरी कहो दुलहनि आये।
मीता सखी सुजान की गति औरै आय तू का जानसि गंवारनी चली आगे जाय।।

ननदुली विखै इहारनी मोहि न सुहाति पिया कोरवा ना रही शंका शोक डहै दिनु राति।
नगर चबाई लोगवा रे कैसे होय निवाहु राखन हारा राखई जगु डारै धाऊ।
सब सुख ते सुखिया भई दुखु ऐको नहिं आये सासु ननद तब का करै जब रीझे नाहे।
यहु मंगल परमारथु स्वारथु नहिं आय मीता भेदै जानिहै तेहि कालु न खाय।।

आनन्द मंगल गाइंया पाये पै नाह लगन निरंजन सोधिया मूलै लिखी पाति।
गंग जमुन बिच मड़वा हो भई पाचों हाथ करैं पचीसों सेवकी निसि वासर लागि।

अगम अटारी चढ़ गई पिया अपने पास सेजि परे सुख जानिया का कहिये बात।
ननदुली परे बिसूरै हो सिर लीन्हे खादु मीता बहुरि ना आवई विखु की हाटु।।

बबुली बोली बोलिया सिर राख न जाय जो राखौं ता लाजऊ संतन संघु मांह।
आखिर मरना होइगा जमु चोटैं खाय जियति मरै गुरु ज्ञान ते तौ कालु न खाय।
कागा बोली का करे तोहि बूझि न जाय बनी बनाई पाछली अब जागी आय।
पिया पियाला प्रेम का बिखु मोहि न सुहाय जन मीता छाका भला गुरु का सिर नाय।।

जिवतै मृतुक जब भये तब भई राम सहाये। बनते बनते बनि गई मीता जगु ना सुहाये।।

गौना भयो री अइबे जइबे ना हमरी।
चुनरी पहिरी रंगी मजीठी ताते उनते जुरि गई दीठी।
गुन अवगुन बभनै सबु दीख वहै बभन वै खसम कै दीन्ह।
काहें का राड़ौ करो चवाव हमरा पुरुष जानै हमरा सुभाव।
बिनु लागे जानै ना कोई मीता की चितवनि घायल होई।।

सतगुर सरनि निवास हंसा झूमरि खेलेऊ हो ई संसारी लोगवा रे उनते रह्यो बचाये।
जैसे गगरी सिर धरी वैसे सुरति लगाऊ जस गगरी बिच जल बसै वैसे अलख अपार।
जलमु जलमु कै पुन्नि प्रगट भइ वैसा पाया साजु सतगुर की दाया भई गावै मीता दास।।

मोर बदनी का मनुआ ना थिराये मानो मुख मा धूरि उड़ाये।
चुरिया-बगलिया-कजरा संवारै कोतवलवा कै छिनु-छिनु जाये।
धिंगा पचासक साठक राखै अपने खसम के निकट ना जाय।
चालु कुचाल देखि डर लागै मैके मा वा रही समाय।
मैके स्याबसि स्याबसि होई छिया छिया जब ससुरे जाय।
ननदी कै ननदी भौजी कीभौजी सासु की सासु भइया धरि जाय।
दीनो खोयसि दुनिया खोयसि मुँह का नकुवा चलौ गवाय।
भेदी मितवा गावै गितवा सखी होय सो लखै सुभाय।।

पद—भँवर गीत

20:33
Mita Granthawali.pdf

साधौ भाई काहे ते मन पूरा काहे भये हजूरा काहे तेरे पलक न लागे काहे रचिगे बीरा।
सतगुर आय किया मन पूरा तेहि मिल भये हजूरा ताही ते रे पलक न लागे देखे रचिगे बीरा।
संत की चालु संत ही जानै का जानै नल कूरा कथनी बदनी बाजीगीरी माल न बाँधै मजूँरा।
भेदी भेदु मिले सुख उपजै होई कोई अगरा कहि मीता साकठु सो बोले कम्पै थर थर हियरा॥

गठरी खोली ज्ञान की सुज्जन का पाई मूरुख सो अैसे डरै जैसे गाय कसाई।
सीस लैंई सौदा करैं हरि देई मिलाई ठहरैगा कोई सुरवां सो हमका पाई।
पाखंडी ते दूरि हैं सांचे के भाई सो कोटिन मां एक दुइ जासो अन्तर नाहीं।
जैसे का तैसा मिला काहुइ जानि न जाई जहाँ छानु तहँ मीत हैं पारिख बतलाई॥

कछ संत संगति करिहैं जमु बेरी या माया नहिं तेरी
मेरी मेरी कै ना जलमु गवाँवै बिपदा आवति है घेरी।
केतक पतिसाह औ राजा होइगे धरती केहि केहि केरी
दास दसक गाँठी मां आये ताके पूता भये चेरी।
रामु बिसारै जमु धरि मारै जे भजियां तिनकी खबरी
रामै मिले राम से होइगे बहुरि न कीन्हा जगु फेरी।
जो बीती सो बीत गई है अबहु भजु बनिहै तेरी
मीतै जानि परी सो गाई तरने की है अब वोसरी॥

मेरी डोरिया लगा दई गुरु सांचे ताही ते हम खुलि नाचे
बेद कितेबु छोई लखि छाड़े राम रसाइन पी माते।
तीन तेतीस अठासी नल तन जमु खाये काचे
पाके हमतौ सरन रामु की पाई येहि बिपुदा ते अब बांचे।
आतम दरस बिना सब आंधर जे दरसे ते मत सांचे
या संसार तत्वु का छांड़े बूसी केरे रंग रांचे।
सब्द ना लखैं बादु कै ठानै माया कारन जगु जांचे
तिनसो भिन्न है जन मीता सुज्जन जन सो मत कहते॥

सतगुर मारा बानु दिलौं बिच बेधिया उठै कराहि कराहि डसा मानो कालिया।
गंग जमुन के बीच करै मन केलियाँ बहै सुरसरी धार हनाई बेनियाँ।
खुलिगे बज्र केवारि ता दीपक बारियाँ पिया सो जुरिल सनेह तनो धन बारियाँ।
अरे अरे कागु लबार करै का बोलियाँ मीता भये सनीप तीन गुन छाड़ियाँ॥

झूला झूलते बाबा जपा जबु नाम निजु सांचा झका झकि ब्रह्म सो लाग। छका छबि देखि मन पागा।
गनीमों मारि गढ़ पाया धनी का नाम जसु गाया बिखै ते भया हो न्यारा मिला जब खसमु करतारा।
भेखु ते संत मत न्यारा ठगैइयन बोरि जगु डारा कहि कहि बहुत मैं हारा ना बूझै सब्द गँवारा।
पूजि पाहन भये अन्धे किया सबु रीझ संसारा, कहै मीता सुनौ पंडित अबहु सठु खोजु करतारा॥

दीन हो सरन सरन कै आयो ताते मोहि अपनायो हों दुर्बल उइ दाता सुनिकै या लालच मन भायो।
ररिहा होयकै चहुँ दिसि डोला काहू ना अघवायो हरि हेरे तब कुछौ न खाली मनु मां थी सो पायो।

हरि रंग रंगु रे मूल मंत्र का तू गहु रे।
सतगुर साहेबु का संथु कीन्हा हरदम नामु जुगति सो लीन्हा।
चांद सुरज दोउ सैना जोरी अरध उरध मां मेला मेली।
इंड पिंगला सुखमुनि नारी इन्हे मथे घर लागी आगी।
औटी भाटी चुअै अगारी प्रेम पियाला पिया पचारी।
माता हाथी लरै दुआरी जोती जगमग भै उजियारी।
जियरा जानु सुरति के पास हेला मारे चला अकास।
खुले कपाट गगन घहराये आवागमन का पैंड़ नसाये।
मारगु विकट हँसी नहिं खेलु वादु-विवादु करै सठु लोग।
सठु का सठु समुझावै लोई संत संगति बिनु मुकति न होई।
मुक्ति भुक्ति का छुअै न हाथु रामु मिलाना सो मत सार।
कहि मीता हरि मिलै विवेखी भूला जगु बहु कथै अनेखी॥

भूलौ जनि लोई अन्त काल दुख भारी होई।
कूर परोसी कूरी जोय ताते चले अपन पै खोय।
तीन पाँच का कुटना होय पतरी गांठति दिनु डारै खोय।
चालै चलनी ठपकै सूप छिलरा बसै ननद का पूत।
कालु सरूपी बांधे मौर गाइन का बिड़रावै दौरि।
या विधि चले लगै घर आगि कैसे कै मिलै बुझावन हार।
तूमा बूड़े सिरई तराये नैइया मिलै ता चढ़ि ना जाये।
केवटरा सो माड़ै रारि ताते आय परे जमु धार।
बूड़ेनि बूड़े लै दस बीस कालु कलयान करै आसीस।
टेढ़ी रहै स्वानु ज्यों पूँछ जतन किये नहिं होती सूध।
लच्छन सुनौ जगत के लोई या विधि चलै हँसै फिर मोंहीं।
कहि मीता कोइ परम सुजान संत संगति कै उतरै पार॥

साधौ दूरि है जाना करु पंथु सांचु ध्याना कहाँ ते आया कहाँ जायगा करौ मनु ज्ञाना।
शुभ अशुभ दोउ कर्म कीन्हे ताहि लपिट्याना जैसे सुअना लटकि पोंगी उड़न ना जाना।
माया मोह इन्द्रिन का स्वारथु रहत मनमाना कैसे चीन्है परम बोली विखै रस साना।
जमु राजा जब घेरि बैठी होइ उनमाना मूल खोये जमा टूटी अन्त पछिताना।
देउ सुर मुनि असुर भूले काह नल ज्ञाना भाग्य पूरे मिले सतगुर पंथु पहिचाना।
दास मीता अगम पंथी किया घमसाना रामजी का माथु नाया तजा अभिमाना॥

साहेब सांचे नामु का दुनिया नहिं पावै या जगु करुई तूमरी को फोरि नसावै।
धन दारा सुत कारने सठु मूल गवांवै साहेब सो परचै नहीं जमु हाथु बिकावै।
मन बिखयेनि का धावई मुख ग्यान सुनावै कुमति न कैसेउ छूटई हरि कैसे पावै।
भेखु बहुत पाखंडु किये छल-बलु कै खावै अन्धा का लोभी मिला सो जलम नसावै।
हरि अन्तर की जानई कैसे बनि आवै साहेब साथी सांचु का सांचा मनु भावै।
संतन माथा नावई सो नामै पावै सो नामु न ब्रह्मा पाइया जो ब्रह्म मिलावै।
कोटिन मां कोई संत है सो लखे न पावै तिनका मारगु विकट है कोई बिरला पावै।
कहि मीता जेहि हरि मिले सो बहरि न आवै सोई मिल सोई भया सठ का समझावै॥

20:53

गगन मां नौमति बाजी, रे बाबा मदन जरै झरि लागी।
गंग जमन बिच हंसा माड़ै काम क्रोध मद त्यागी।
बांधै सुरति चलै आगे का निसवासरि वा जागी।
परम हंस सो किया मिलाना साहेब राखा राजी।
अनहद भरम, भरम है अजपा, भूले हैं भेखु धारी।
कालु चक्रु की लखि उजियारी जैहैं पूंजी हारी।
कहि मीता संतन का मारगु ना पावै भेखधारी।
नर ते करै नरायण सतगुर जिनकी मति है भारी॥

दूरि बे दूर लबार हरामी खूंनिया तुझै नहिं डर आय दुनी जिन भेजिया।
सांचु कहे जरि जाय ठगै जगु लोभिया आपु नरक मां जाय दुनी परमोधिया।
थूक थूक धिरकालु थूक तेरी जाइया चीन्है ना नाहक हक्क पेट भरि खाइंया।
मारु देई जमु आय उतरि जा मस्तियां कहि मीता सुनि लेउ पखंडी दोखिया॥

लाजु सरम प्रभू केरि ता मेरा कुछु नहीं होनी होई चरन मां लागि रही।
सिंघ सुता की बांह ता जंबुक कस गही मोहि हवै उसवास ढील काहे भई।
मारा असुर पछारि पहिलादै दुख दई मैं तो सेवा चोर गई ताते भई।
मैं दुख रही समाय जगत हांसी भई मीता दास कहइ खबरि ताकी ना लई॥

गये रे गये सठु मूढ़ राम सो दूसरि ठानी हरि दासन के बैरु नरक तेरी महिमानी।
सूकर अजगर स्वान जलमु तेरा येहि खानी हरि संतै नहिं बीच लगै तोरी आगि सयानी।
अलख लखाये संत तो सुख की होइहै खानी बोइ बबुर के बीज दाख कैसे खइहो प्रानी।
मीता कही विचारि साखि गीतो की बानी हरि दासन की महिमा हरि ही आपु बखानी॥

छांड़ि राम की आस अनत कहूँ जावऊं ध्रग जीवन है मोरि आन जो ध्यावऊं।
कबिरा नामा लाजु मीरा की राखिया गाढ़े आवै काम जगत सुख साथिया।
राजा रंकै टोय सकल मैं देखिया सबुइ बिलाना जाय अमर पद पेखिया।
दाता और न कोय रामु एकु देखिया सोइ पद मीता ध्याय अलम धनि लेखिया॥

ज्ञान बानु नहि लगा अभाया निसि दिन सोवै कबहु न जागा।
जागो भाई हम गोहिराया हरि की भक्ति बिन नरक बसाया।
जीव जंत्र सबु नरकै जांई ताते तुमका खबरि सुनाई।
बड़े पुन्नि नल देही पाई या मां तरबु बहुरि फिर नाहीं।
तरब उड़ैसा कासी नाहीं तरबु द्वारिका मथुरा नाहीं।
हम तहकीक किया है बनाई तरना संतन की सरनाई।
सो संता बिरले संसारा जौन उतारै भै जल पारा।
सो गिरही उन भेखु न धारा भेखु भरम है भीख दुआरा॥
ग्रह मां रहै ग्रहू ते न्यारा ज्यों पुरइन दल जल ते न्यारा।
करम न लागै संत विचारा तिनका ना चीन्है संसारा।
किरखी करै तजै भिख द्वारा अैसे संतन का निस्तारा।
पाखंडी पूजै संसारा संत संगति का हंसै गंवारा।
फिकिर न ब्यापै संतन काही जर जूडी उनका ना आई।
छाड़त देहि न गाफिल होई हंसि कै चलै राम जन सोई।
काया बिरध न उनकी होई तिनकै बार लाल रहै देही।
राम मिले ते ई फल होई कहि मीता सो जुदा न होई॥

रि सों लागा रे मन मेरा बेदु करौं का तेरा सो विद्या मोहि सतगुर दीन्ही बहुरि न करिहों फेरा।
दु पुरान पढ़े के का गुन जो जी का जमु घेरा पांचों मारि पचीसों लूटी कालु भया तब चेरा।
थ जोरि कै किया हजारन साहेब सों मुख फेरा विद्या बांची माया कारन नरक परी जिव तेरा।
ाह्मणसो जो ब्रह्मं मिलियाब्रह्मकहावै विप्रा कहिमीता तुम जनेउपहिरकै मांस खावोजैसे सिकरा।

ाया तू काहे का लावै लाई झूठी तोरि बड़ाई तेरा अंवल भांग कैसा छिनकै मां मिटि जाई
म तौ राम अवल के माते उतरि कबहु ना जाई जिन रे पिया ते जुग जुग जियै अटल भई ठकुराई
हाँ लोभ तिनकी तू रानी संतन की है चेरी काम चलाय लात गहि मारी क्या मेरी क्या तेरी
ोहि लै लै जाय नरक का को जानै गति तेरी कहि मीता हम तोहिं पहिचाना सतगुर सेवा कै री।

ठि पतालै बांधिया लगी एक टक डोरी मकर तार काढ़न लगी गई मोरी तोरी।
ांच पचीसों बसि भई भीतर बरी होरी अगनि जरत मन ना डिगै सतिया है सोरी।
ागम चढ़त धीरज धरा मकरी लै दौरी सत्य लोक या विधि मिला भई पिया सो बौरी।
ाजर अमर बर पाइंया मोहू ना मरौं री करनी कै मीता कही सुनि लेउ सखी री।

१०

हरधु मुख करैं पवन अहारा ते होइहैं विखहर औतारा
उलटा पवन चढावै लोई बाजीगर के बन्दर होंई।
पट्टी लीले आंत पखारै ते होइहैं स्वानु औतारै
मुन्नि मडिल बहु तकैं गँवारा ते होइहैं चिल्हया अवतारा।
बाजीगर के बकरा होई चौरासी आसन जे करई
जल साईं होय जे नल रहई ते मीन होय फिर अवतरई।
मिरतुक संघे देंई तन जारी ते चकोरनी होइहैं नारी
तेउ चकोर होय अवतारा पंच अगनी जे करैं अहारा।
धरती मां लै डंड समाई तेऊ अजगर होइहैं आई
तेऊ अजगर होइहैं आई जेहु द्वारिका देहि दगाई।
गया जुइन जे निकरै जाई तेऊ अजगर होइहैं आई
जटा राखि जे लावै छारा तिरथ-बरत ते होई लबारा।
झूठा नाउ धरा बैरागी तिनका नरकु कबहुँ ना त्यागी
झूठा बभनु कहावैं लोई कुंभी नरक तिन्हऊ का होई।
नाउ फकीर न भये फकीरा ते होइहैं बिस्टा के कीरा
कहि मीता मिलिहै करतारा तब होई भै ते निरुआरा॥

ाजु बसेरवा नियरे रे फिर होइहै दूरी पनिया पियासे पी ले रे कुमिता करु दूरी
ांगल जंगल का फिरै रे कुअना तोहि तीर वृन्दावन है बिन्दका तहवाँ है नीर
ाउवा-बरिया-तीनिउ रे तिनते हैं दूरि हिलि मिलि लेउ सखिन तन तब मिलि है मूरि
ूखा परिहै जाहि दिन तब मरिहौ बिसूरि रोवा बेरी होइहै रे जमु डारी तूरि
ौदा पुर मां जो बसै सो जम की सीर। कुछु काटै कुछु ताकै रे ताते निकरौ बीर
ापी पापी ना कढ़ै बांधे कालु जंजीर सांचे तेते रिल मिले किरपा पिउ केरि
ले नीच हो जे नला तिनका मन धीर सुख सागर जियरा परा गई तन की पीर
ीता मंगल गावई रे गुन त्यागे तीन अबु ना मरों मन माना रे सेवा गुर की कीन।

धरनि को बाँधि कै सूर ससि वेधि कै खेलि चौगान मन बाँधि लावै ।
ग्यान का खरग कै सील का सेल्ह लै कालु को मारि चढ़ि गगन जावै ।
प्रेम की डोरी सो जोती सो जोति मिली अगम का पंथु कोई बीर पावै ।
दास मीता कहै जगत मां यों रहै पदम के पत्त नहिं नीर आवै ।।

जुगती का भेदु लै मूल मा माड़ि रहु मूल का मरम गुरु सेइ पावै ।
काम दल जीति कै कोध को मारि कै मदन का जारि झरि गगन लावै ।
सूर ससि वेधि कै अगम मा पैठि कै सीस का देइ तब भेदु पावै ।
भरम को मेटि कै अलख को भेंटि कै मीता सोइ संत जगु जीति आवै ।।

पैठि दरियाउ दरिया का भेदु लै चक्र छा बेधि मिलै सूरति वाही ।
पाँच को जीति कै सुरति को साधि कै अगम का भेदु तब हाथु आई ।
बाजा अनहद बजै ब्रह्म सो मन लगै ब्रह्म को भेटि गई तीन ताई ।
कालु का जारु कटि जाय भाई तबै करनी कै सार सबु भरम जाई ।
जोर सब्दी करैं नरक मां ते परैं पहुँच कै कहै सो सत्य होई ।
राम को छाड़ि कै दाम की चाह करै दिभु का जोरि धग पूँजी लाई ।
दुनी अन्धी हवै देखि नाहीं परै चोर औ साहु नहिं चीन्ह जाई ।
छानि कै दूध औ पानी मीता रहा रामु की भक्ति तब हाथु आई ।।

कोई सूर रन खेत मां जीत संग्राम कै पाँच को मारि मनु हाथु लावै ।
जिघु को जकरि कै कुमति दल कैद कै जोगु की जुगति तब ध्यान लावै ।
कंबल का उलटि कै चक्र छा बेधि कै सुरति को साधि चढ़ि गगन जावै ।
ब्रह्म को भेटि कै कालु को मेटि कैं परम पद पाइ जगु नहीं आवै ।
करनी औ रहनी कोई सूर पूरा धरै सीस धरि देइ तब संत पावै ।
बादु-विवादु नर कूर भोंदू करैं सुज्जन जन सब्द का बूझि जावै ।
हद बेहद तब वारि डारी रहै जाय जो पार तेहि सांचु भावै ।
दास मीता मन मस्त प्याला पिया छाके दोउ नैन नहीं जगत भावै ।।

सूर के खेत कोई बीर माड़ा रहै खेत सिर देई ता लाज पावै ।
पैठि पाताल में शेष का बाधि कै खेलि मैदान कोइ जूझि लावै ।
सार के बानु परै धीर धीरा धरै धीर धरि जाय गढ़ अमर पावै ।
राज औ पाट सुत नारि औ धाम सुखु धनी को भेटि सब विसरि जावै ।
गल्ल को मारि कोइ सूर होवे नहीं गुनी का आँब रसु कौन खावै ।
बाण का घाउ मन मस्त पूरा सहै घाउ को खाय नहिं घाव आवै ।
अगम का पंथु है खाड़े की धार ज्यों जाय जग जीति जस जगत गावै ।
दास मीता कहे परम पदु सोह है लोभ को त्यागु बिनु लोभ पावै ।।

धरनि को बाँधि कै मूल मां माड़ि कै मदन को औटि जब रैन जागा ।
नींद और भूख तहँ छिन्न खंडित भई पाँच पचीस का सहज बाँधा ।
हरा घोरा लिया जीन मुकता किया चित्त चाबुक किया प्रेम लगाम दै ऐड़ लाया ।
तत्तु खरग किया सीलका सेल्ह किया निरति कमान लै सुरतिके बानुसो क्रोध मारा ।
काल लरता हुआ जुज्झि पूरा किया काल का जारि घर अमर पाया ।
खोलि खिरकी दई कूर भागत हुये संत सूर कोई मनै आया ।
सुख पूरा भये दुख दूरि भये ब्रह्म को भेटि जगु नहीं आये ।
पहुँची मीता कहै सुनी झूठा कहै जीता मैदान मत गरु पाये ।।

बाबा सो वैरागी पूरा जाके क्रोध न रहै हजूरा, सीतल बचन काहू भये बोलै जो अन्तर है कूरा।
बांधौ पांच पचीसौ चोरा अरध उरध करै डेरा, सुरति निरति लै तिलकु सवांरै मुक्ति माल मन हीरा।
प्रेम की छाप किरखी कै गुदरी सेली सील विचारा अगम पंथु का मारग ताके उतरै भैजल पारा।
राम चरण सो जुरै सगाई छूटि जाय जमु द्वारा सांचा हो सो साहेब पावै कथि बदि मरै गवांरा।
धनि गिरही जो सतगुर पावै हरि के रहै हजूरा, छहों भेखु ते साहेब न्यारा हता निकट भया दूरा।
भक्ति चहै गुरु गिरही ढूंढ़ै कोटिन मां कोई पूरा, जाति-पांति का भेदु न राखै तिन्है मिलै गुरु पूरा।
कौरा ग्रहण जाति संघु करई आंहू का मारि निकारै काहू भये सब के संघ खाये अनहक जलमु बेगारै।
कूरा सबै मांगि कै खाई छल-बल कै दिनु टारै कहि मीता सतगुर का चेला साचुइँ सांचु पुकारै॥

हमरे अभिनाशी का ध्याना आनि देंउ की बातु न पूछै का काहू सो कामा।
पानी ते कर चरन रचे हैं नैन नासिका काना तेहि कैसे बिसराइया, जिन रचिया चौदा धामा।
सो गनिका का पूत है जो कोई ध्यावै आनि, बापु न आपन जानई जमु करि है घमसान।
तेंतिस तीनिउ रामचन्द कान्हा परे दुख के धाम संतन की सरि कोऊ नाहीं जुगन जुगन विश्राम।
आतम दरसी तेई कृष्ण हैं या बचन परमान कान्हा क्रोधी नल बपुरा है बिखै भरा ता काम।
सुनिहै संत तेई सच मानों का जानै बिनु ग्रानु कहि मीता हम भरम गिराया अनभै भा गुर ग्रान॥

जोगी परम सुजान नगरी मां गाइले रमिता राम।
अनहद सिंगी अनबन राम चितवति हंसि हंसि करति निहाल।
अलख पुरुख सो निस-दिन दीठि, है मस्कीनी सांची प्रीति।
छारु न लावै न राखै केस गेरुआ तुम्मा धरै न भेखु।
जोग जुगती जब जोगिया पाई सहज सुन्नि मां रहा समाई।
आवागवन कबहुँ ना होई ततु दरसी अंग सीतल सोई।
प्रेम भक्ति रहै अंग लाए पिऐ अमीरसु तबु छकि जाये।
कहि मीता मेरा गुरु सोय जो या मारगु पहुंचा होय॥

पंडितन पर

सांचा ब्रह्म कौनि विधि पावै सो पंडित जो भेदु बतावै।
पात डार भरमै भरमावै मूल मते का मरमु न पावै।
सतजुग त्रेता कास सुनावै, गुन अवगुन सबके बतलावै।
अपने गुन का मरमु न पावै बिनु निरगुन सब बूड़ा जावै।
बिन सतगुर को या मत पावै जाति बरन झूठा गोहिरावै।
ब्रह्मा भूला बरन बतावै धनि सतगुर जो भरम छड़ावै।
सांची सुनि झूठा जरि जावै सांचा सुनिकै बहु सुख पावै।
[illegible] कहि मीता जो सतगुर पावै॥

समुझौ मूर्खं नदान बरन बीस-दस कोई नहीं ऐकुइ ब्रह्म समान संत भागवत सो कही।
जिन रचिया ते एक कही दूजा कहै नदान हरि पुर तिनकी दर नहीं सत सत संत सुजान।
परम पुरुख पतिसाह है हरिजन हवैं उजीर औरे की गरना नहीं बूझै मति का धीर।
न्याउ हता दरबार का सो दिया सुनाय कहि मीता ना मानि है सो नरकै का जाय॥

20:59

सूरों के मैदान में फिरना नहि भाई अगम पंथु का मारगु बांका सीस देइ औ जानि।
ताकौ रन बीच शंक ना राखै माह परै घमसान रुंड लरै साहेब के आगे तौ मुजरा परमान।
सीस राखि कै जूझा चाहै ई कूरों के काम छाँड़ि मसखरे देउ मसखरी पाजी बेईमान।
कहि मीता सोइ बीर बहादुर जाको रीझै रामु बहुतै गंदा गल्लै मारै साहब दिल की जानु॥

अरे हवै पंथु अगार जोगी गति को जानई अन्दर धूनी ध्यान की भावैं नहि आनि।
पांस-पचीसो बाँधि कै मूलै लागै तार अनहद बीन बजावई मीता दसवें द्वार।
ब्रह्म अगनि उदगारि कै रसु लीन्हा गारि प्रेम पियाला पीजिया जपु अजपा जापु।
चांद-सुरज बिच अन्तरा करै हंसा केलि इडा-पिंगला झारि कै लै लागी जोरि।
बज्र सिला तब खुलई कीन्हा रावल भेदु जोगिन जोगी का मिली गुर गम का खेलु।
जग-मग जोति बिराजई जबु खुले कपाट निरबानी पदु पाइयां पहुँची पिया के पास।
पार ब्रह्म पूरुख भले जो मिलई कोय आवागमन मिटावई फिर आवनु ना होय।
सील संतोष लिये रहै संसै नहि पासा नींद भूख का छांड़ि कै जागी दिनु राता।
जाके लागी सोई जानी जेहि दरद पिराय आन दरद का जानई लागौ नाहीं घाय।
तीन देउ ना पाइया मत अगम अपार मुनि बपुरे का जानई भूला संसार।
पाखंड भेखु बनाय कै ठगिया संसार सतगुर सो ना करै ई जमु व्यौहार।
जन मीता सति लोक का भाखै मतसार ऊँचे चढ़ि कै टेरई मानौ अतिवार॥

अरे अरे रामु सनेहिया तुम करौ सांचु सो नेहु रे सांचु बिना सबु झूठ है तू रैन दिवसु मरु गाई रे।
करौ गरीवी बन्दगी रे संत संगति मनु लाय बेड़ा पार उतारिहैं तू भै जल बूड़ि न जाय रे।
पांच पचीसो बसी कै रे ब्रह्म अगनि उदगार प्रेम पियाला पीजिये वा तौ सांचा विचारि रे।
सुरति निरति दोऊ खंभवा रे रेसम लागी डोरि पिया अपने संग झूलती मैं तो चलौं न झूठी खोरि रे।
जे बादैं ते झुठवा रे जे खोजैं ते सांचु जे जूझैं ते सूरिवां ई कूरन पारी बाटि रे।
सतगुर के परताप ते रे रामु मिलाना होय कहि मीता सोई जानिहै वा तो जेहि तन व्यापी होइ रे॥

कड़ेरा वाले अछे अछे तीर बनाउ रे।
कुमति टेढ़ाई बादि गांठ तजु सुमति कै घोरिया चढाउ रे।
धरनि की सरई सूक्रित की पइलै नामु की गांसी लाउ रे।
ब्रह्म अगनि अन्तर पर जारौं तिरगुन झोंका जेउ रे।
मन कुरंग विहंगम के पर अैसे साल सलाउ रे।
होइ अमोल मोलु बहु पावै हरि धन धरै लिआउ रे।
एकु चलाये कोटिन छूटेनि घटि ना कबहुँ जाई रे।
कालु कठिन तेहि सीस नवावै जो करनी कै जाई रे।
एकछत राज करो काया गढ़ दुतिया दूरि बहाई रे।
अमल होइ अकइस पुर तेरा आवागवन मिटाई रे।
तू सबु देखै तोहि न देखै चोट कहां ते खाये रे।
अचिरिज बड़ा कहा ना जाई सो मरदाना आई रे।
मानि ले बचन अचल हो मेरा सब्दा गहो ढिढ़ाई रे।
नाहि त जमपुर बासा होइहै जो न सब्द गहि जाई रे।
कहि मीता परतीति मानि ले भला परा है दांउ रे।
अब के चूके ठौर नहीं है समौ सुनौ चितु लाई रे॥

१६

भजन करु तन की तपनि नसाई ।
मन माला हरदम का जपना पलक न लागै पाई ।
धरनि बंद मूल लै बाँधै पाँचौं पकरि मंगाई ।
चोर पचीसों जागति भागे प्रेम परतीति बसाई ।
कैसै कै घर मूमन पावै जो या अमल कमाई ।
औवटा मदन अमीरस साखा नजरि मोहल्ले आई ।
मकर तार एकु खेलु लगाया तेहि चढ़ि आवै जाई ।
या विधि चले मिलै पिउ प्यारा बहुरि न या जगु आई ।
आवै जाय सो गुरमुख नाही नाहक जलमु गंवाई ।
समुझि अचेत कालु है भारी फिरि फिरि मोंगरा लाई ।
लोभी माया मोह भुलाना अंत काजु ना आई ।
तजि अभिमान सरन का ताको होइ सबै कुसलाई ।
सतगुर दया परम सुख पावै दुःख न निकटै आई ।
जो चीन्ही सो पार उतरिहै जमु की मारु न खाई ।
कहि मीता है भक्ति आकठी जन बिरला ठहराई ।
ठहरे मरन होय ना कबहूँ जियत अमर पदु पाई ।।

दोहा

विद्या सबै अविद्या बिनु भेटे भगवान । मीता विद्या सो पढ़ी पाया पदु निर्वान ।।

जगु मां अंधरेन हाट लगाई डिठियारेन कोई ना जानै अतिरिज देखा भाई
संतन नींद पखंडै पूजै तरन की आसा लाई नरक परै के काम करति है देखो या चतुराई
साधू कहे बहुत सुखु मानै साधि कुछौ ना जाई पाँचौं के परपंच भुलाना रीझे भेखु बनाई
पाखंड कै दुनिया ठगि खाई आगू जानि न जाई कहि मीता भेखिन की संगति पैड़ परी रे भाई

भाई रे धागा धरनि मूल लै बाँधा सतगुर नामै पाया रे ।
पाँचों के परपंच मिटाये बाँधि पचीसो लाये रे ।
निस दिन भरो भंडार सूत लै अरझा सूत कताया रे ।
रुई कपास सूत नहिं धागा तत्तु का तार लगाया रे ।
ब्रह्म अगनि अन्तरपुर जारी तब या मता डिढ़ाया रे ।
चमरख अचल देइ नहिं डोलै सेन्दुर सुमति लगाया रे ।
बारा मासे आंड़ी कीन्हा छिपिया का घर लाया रे ।
आवागवन का पंथु रहाया भरम का कोट ढहाया रे ।
धरम दास औ दास कबीरा दादू नानक नामा रे ।
इन संतन नहिं पंथु चलाया ठगियन जगु भरमाया रे ।
सतगुर साह बुरै बिरलेन पर तिन नहिं भेखु बनाया रे ।
जाति पाँति मा भये फजीहति तिन या झगरा लाया रे ।
हम संतन के संत हमारे सांचु सांचु गोहिराया रे ।
इन्है देखि भाई जनि भूलो इन नहिं मारगु पाया रे ।
अनभै भये ते मीता जाना सतिपुर बाना बनाया रे ।
नाहक बादै चोर खुआरी गिरही मारगु पाया रे ।।

सोई जोगिया परम सुजान रे नगरी उलटि बसावई ।
जगु सपना कै जानई वातौ काटी मोह की फाँसी रे ।
पइठ पताले बाँधइ रे मूलै करै विचार ।
अरध उरध माड़ा रहै मति लागी दसवें द्वार रे ।

21:10
Mita Granthawali.pdf

मनुआ हो हो बैरागी मेरी सुरति सत्यपुर लागी ।
बिन गुन माल फिरै घटु माही प्रेम छापु दइ सांची ।
ध्यावति दरस परस भये हरि सो टूटि गई जमु फाँसी ।
आउँ न जाउँ गरभु ना बासों भक्ति कीइ हम ताकी ।
छापा तिलकु काठु की माला भूले बहुत अभागी ।
गुदरी पहिरी तुम्मा लीन्हा बधिक ठाटी ज्यों टाटी ।
निन्दा असतुति नाहीं कीन्ही सांचु सांचु हम भाखी ।
गुरु परतापु भरमु गढ़ तूरा कहि मीता मति छाकी ॥

भजन करु तन की तपनि नसाई ।
मन माला हरदम का जपना पलक न लागै पाई ।
धरनि बंद मूल लै बाँधै पाँचौं पकरि मंगाई ।
चोर पचीसों जागति भागे प्रेम परतीति बसाई ।
कैसे कै घर मूमन पावै जो या अमल कमाई ।
औवटा मदन अमीरस साखा नजरि मोहल्ले आई ।
मकर तार एकु खेलु लगाया तेहि चढ़ि आवै जाई ।
या विधि चले मिलै पिउ प्यारा बहुरि न या जगु आई ।
आवै जाय सो गुरमुख नाही नाहक जलमु गंवाई ।
समुझि अचेत कालु है भारी फिरि फिरि मोंगरा लाई ।
लोभी माया मोह भुलाना अंत काजु ना आई ।
तजि अभिमान सरन का ताकौ होइ सबै कुसलाई ।
सतगुर दया परम सुख पावै दुःख न निकटै आई ।
जो चीन्ही सो पार उतरिहै जमु की मारु न खाई ।
कहि मीता है भक्ति आकठी जन बिरला ठहराई ।
ठहरे मरन होय ना कबहूँ जियत अमर पदु पाई ॥

दोहा

विद्या सबै अविद्या बिनु भेटे भगवान । मीता विद्या सो पढ़ी पाया पदु निर्वान ॥

जगु मां अंधरेन हाट लगाई डिठियारेन कोई ना जानै अतिरिज देखा भाई ।
संतन नींद पखंडै पूजै तरन की आसा लाई नरक परै के काम करति है देखो या चतुराई ।
साधू कहे बहुत सुखु मानै साधि कुछौ ना जाई पाँचौं के परपंच भुलाना रीझे भेखु बनाई ।
पाखंड कै दुनिया ठगि खाई आगू जानि न जाई कहि मीता भेखिन की संगति पैड़ परी रे भाई ॥

21:07

गुरु का दीन होय निपट अधीन होय जुगती का भेदु तब देइ भाई ।
मूल के मते सो पाँच के बंधे सो धरनी का पानी तब गगन जाई ।
बरखा रिमि झिमि होवै सुखु भारी होवें महल खबरि लै सुरति आई ।
दास मीता कहै सीस का भुइ धरै शीश का राखि नहिं कूर पाई ।।

मलार

प्रेम नेम दोऊ वैरे पपिहा पीपी ।
जहाँ प्रेम तहँ नेमु न देखा या मत है कुछु औरे ।
भादों रैनि महा अंधियारी सूझै ठौरु न ठौरे ।
दीपकु बिना चीज कैसे पावै कोटि उपाय करै रे ।
पिउ पिउ रैनि दिना सखि करती बिनि भोगये ना सुख रे ।
ओसन प्यास बुझै ना पपिहा काहे का भूला है रे ।
काजलु देति सबै घर नारी चितवन मां कुछु है रे ।
बिनु पिया कौन सिंगार बावरी मीता भाखै यों रे ।।

भादों रैन महा अंधियारी दीपक जतन बतावै ।
बाभनु एकु आधी रैन जगावै ।
निसिवासर बिरहनी है व्याकुल पलक लगन ना पावै ।
बिजली चमकै मोरा बोले पीपी रटन लगावै ।
भई जरद ज्यों हरदी गांठ है वैद्यु मरमु ना पावै ।
पिया की लगन कठिन है री आली जेहि व्यापी सो पावै ।
कहि मीता मोतियन झरि लागी जब भावन्ता आवै ।
बिन पिय कौन सिंगार बावरी नाहक जलम गवावै ।।

एक बाढ़ी अगम अपार माया मोह है कगार नाव ना चलै नीर नहीं भरिया बूड़ति है संसा
क्रोध घरियार तहाँ हैं वेदु हवै रखवार नांघि न सकै आनि ताही की तीन गुनन की धा
विस्नु महेश देव मुनि नल ताही व्योहार काल जगाति लगै घाटु मां कैसे उतरै पा
नामु दिया गुरु पूरे उतरति लगी न वार अब मीता भै बहुरि न आवै बांह धरी करता

कबित्त

चतुराई कविताई राजन की बड़ाई धावति ज्यों स्वातु एकु कौरा के काज
धन पाये घर लै आये चलति इतराति रे पापन ना डेराये नेकु लाजहु ना आई
भांड़ु औ कविताई ई तीनिउ हैं भाई मंगन की बड़ाई ज्यों बादर की छांह
दाम ना बड़ाई हद दाम है बड़ाई कांच ना सभाई मीता नग कञ्चन के मांझि रे

सुनु रे गोड़िया मता हमारा अनतै नहीं उबारा रे।
धरनि मूल लै डोरी पाई सो डोरी लै पारा रे।
बिन सतगुर सो हाथु न आवै का कथि भये अपारा रे।
दसवां खोलि परम पदु पावै गेरहे मां है बूड़ा रे।
कोऊ माला औ कंठी बांधै कोऊ केस रखावै रे।
ई तौ हवै भरम की टाटी तत्तु कहाँ ते आवै रे।
कोइ पंडित पोथी का बाँचै जगु सुनने का धावै रे।
अपरमपार पुरुष पुरशोत्तम तिनका नहीं बतावै रे।
झूठा बनिज किया झूठे सो सांचु मनै ना आवै रे।
अबहू चेति अबूझ बावरे सहजे अलख लखावइ रे।
हम परदेसी परम धाम के तहाँ की खबरि सुनावै रे।
कहि मीता परतीति मानिहै तिनका कालु ना खावइ रे ॥

अपने पिया की मैं मतवारी छकी रहौं दिनु राती रे।
पाँच सखिन मिलि भाटी औटी ब्रह्म अगनि उदगारी रे।
बंक नारि का सुख मुनि सींचै लीन्हा फूल उतारी रे।
सुरति पियाला भरि भरि पीया दुरमति गई भगाई रे।
महरा जिये मेहरि जिन कीन्ही मरतै गये जियाई रे।
बाँदी ते रानी गहि कीन्हा भया अमरपुर राजुइ रे।
आइ मुई सासु ननद मोरी पियत मुई बौराई रे।
मनुसै मारि काटि बलि दीन्हा खसम मिला तब आई रे।
अब ना मरौं मोरी मरै बलइया मरिहै यहु संसारा रे।
सुनौ नारि मोरि सखी सहेलीरेउ का कीन्हेउ झूठ सिंगारा रे।
हिलि मिल खोज सखिन संघ कहरा रोग दोख जरि जाई रे।
कहि मीता तजु मान मनी का पिउ का लेउ मनाई रे ॥

नैना रांजे नैना रांजे तहाँ जाई मनु लइया हो।
छहो भेखु छानवें पाखंड ई सबु आय ठगइया हो।
दरपन मिला न दरसन देखा ऐसे जलमु गवइयां हो।
रूप रवण का रामु कहति हैं तहाँ हते दुइ वइया हो।
जेहि का आप अपनपै सूझै कहु काको नांचु दिखइया हो।
अगहु गहे ते दुतिया नासी भै अब ना ढिंढोर पिटइया हो।
केहि का मवउ काह सिर नाऊँ अब मोरी नवै बलइया हो।
कहि मीता गुरु पूरे पाये बहुरि न ई जगु अइया हो ॥

पलक ना लगै रहै मुख लाली नैन रहै सुरमाये रे।
काया विरध होय नहिं तिनकी केस सेत होइ जाई रे।
काया भंग होय नहिं तिनकी ना झूला ना लूला रे।
ना उइ अंधरे ना उइ काने ना कोढ़ी ना रोगी रे।
ना तहँ संसै ना तहँ जूड़ी देहि तजत दुख ना होई रे।
हरि दरबारिन का यहै विचारा बिनु पहुँचे का नाहीं रे।
कहि मीता तिनका गज सिक्का साखी सब्द चलाये रे।
काटि कूटि जे सब्द बनावै ते नल नरक बसाई रे ॥

जोरा जोरु किया दुनिया में माया बड़ी सयानी रे।
मोहित कै नरकै लै जइहै हम येहि की गति जानी रे।
कुछु कुछु बातें हमहू कीन्ही राखा येहि का न्यारा रे।
संघु न सोये गरे ना बाँधी भोगइ लातन मारा रे।
नागिन डसै ता मंत्र उतारै यहु डस उतरत नाहीं रे।
बड़े अभागी जहाँ हँसि बइठै भोंदुआ रहा लुभाई रे।
कहि मीता माया का कहरा हरि का सुमिरो प्राणी रे।
येहि मा फंसे बहुत दुख पइहो या है नरक निसानी रे ॥

बांधु पतालै मूलै डोरी निसि-दिन रहयो विचारी रे।
अउटै मदन जरै करम कसमल भरिहै सूत भंडारा रे।

छुटहै निकरि परोसी चलिहै तब तुम रहयो संभारी रे।
कै डिढ़ाउ गाफिल ना होवो तबु आगे पगु धारेउ रे।

कोटि कोटि रवि चन्दा झलकै कोटिन उइ रहे तारा रे।
यहौ देखि जनि भूल्यौ बहुरिया येहु जमु जार पसारा रे।

रवि-ससि बेधि करो बसि नारी तीनिउ दिसा विसारेउ रे।
चौथे गये कालु ना पूछे आवागवन निवारेउ रे।

पदम पत्र बिच साहेब बैठा सो है पुरुख तुम्हारा रे।
अविचल राज्य करौ अब दुलहनी या मत देहौ न काहुइ रे।

बहुतै भूत-प्रेत ठगु अहैं कइयउ भेख धारी रे।
तिनका ना पतियायो, कोटि जतन करैं ज्ञान खरग सो मारेउ रे।

सुज्जन दीन एकु दुइ अइहै सीतल बानी बोलइ रे।
तिनहू का मत हाल न दीन्ह्यौ कस्यौ बहुत डोलायो रे।

बहुत न होइ हरी के दासा एकुई-दुइ जगु होई रे।
कहि मीता तिनका उठि लीन्ह्यौ बादी दूरि बह्यायौ रे।।

भाठी भरी नामु लै लागी ब्रह्म अगनि उदगारी रे।
जोग जुगति का संजम कीन्हा पायी औघट घाटी रे।

जारे मदन पापु सब जरिगे कुमति छाड़ि गइ ऊरा रे।
सुमति सुहागिल मारगु लागी देखउ भागि हमारी रे।

बाट-घाट कोउ रोकति नाहीं भये चोर सबु साहा रे।
अगम पंथु का बेड़ा बांधा सतगुर कीन्ह सहाई रे।

रवि ससि दूनो समकै राखे सुई सुमेरै समाना रे।
सुरति निरति मोरी भई पदमनी जाय मिली करतारा रे।

शेष-महेश विस्नु तहँ नाहीं नाहीं जगु व्यौहारा रे।
ब्रह्मा बेदु कितेबु नहीं है वहाँ है सिरजन हारा रे।

तहाँ नहिं जोति रूप नहि रेखा है छवि अगम अपारा रे।
कोटि भान जो होय एक घर तउ ना बहु अनुहारी रे।

जोति हती सो परम जोति भइ मिट गइ आवाजानी रे।
या मारगु की चालु कठिन है बिरलेनि परी विचारी रे।

पदम पत्र पर आप विराजै बैठी मजलिस सारी रे।
जन मीता लौलीन भये तहँ बारम बार निहारी रे।।

अबकी बेर पैठ दह भीतरि करिहौं तोरि बड़ाई रे।
जियत मछरिया काढ़ि लै आवै होई सब कुसलाई रे।

पियत कटोरिया ना ढरकायौ बहुरि ना हाथै आवै रे।
या चाखा ते नगर पहूँचै जो बिधि देइ बनाई रे।

अमर होइ मछरी ना मरई बहुरि ना जारै आई रे।
पैठति बनै रतन भरि पावै जो गहिरे दह जाई रे।

तीरै तीर बहुत पचि हारे मछरी हाथु न आई रे।
जिनही पाई तिनहि छपाई बिरलेन दीन्हु जनाई रे।

या मद पिये बहुरि ना उतरै सदा रहै मतवाली रे।
या मद का शिव ब्रह्मा रूरे हाथु न लगी खुम्हारी रे।

जीव जंत पर हाथु न डार्यो ना अंचयो भरि झारी रे।

सखी एकु जोगी अचिरिज आये, अनभै कथा नितै नित चालै देखति मोहि बौराये।
जटा न मुद्रा गरे न सेली ना अंग छारु लगाये पाखंड भेखु कुछौ ना कीन्है रन जीते ज्यों आये।
रविशशि जोति धुआँ अस लागै जब वा ध्यानु लगाये हंसिहंसि गावैं बेनु बजावैं बड़े भागि ते पाये।
घर अंगना कैसे कै भावैं उन हँसि कंठ लगाये कहीमीता मोहि जोगिन कीन्हा जगुसो छोरु छड़ाये ॥

जोगी या विधि कै ले मेला, जाते कालु करै नहि झेला।
पांच पचीसो बाँधि लै आवै सो सतगुर का चेला।
प्रेम भभूती रहै अंग लाये तजै जगत का खेला।
अरध उरध मां आसन राखै या मत हवै दुहेला।
सांपिनि उलटि राखै शिव नगरी छहौं चक्र का वेधा।
ब्रह्म अगनि अन्तर पर जारै पियै अमी कोई अैसा।
मूल मते बिनु जोगु न सीझै अगम पंथु कैसे जैइला।
अलख पुरुख का कैसे मिलिहौ कैसा है तू चेला।
संतमता शंकर नहि पाया तू जानति है खेला।
ब्रह्मा-विस्नू नारद मुनि भूले ना जाना या खेला।
गाउँ ना ठांउँ दिसा नहि कीन्हा चला जाति किये हेला।
सहजे सहज अमरपुर पहुंचा कालु जरै जैसे तेला।
का करमनके खेलु परा है, फिर फिर अइला जइला।
ज्यों मिरगा टिसुना का धावै भरमि भरमि मरि जइला।
भै मरकट मूठी सै वांधा तिनसो का लई कहिला।
कहि मीता मारगु है बांका जानी कोई दुहेला ॥

बौरे लगै रामु सो नैना, गड़ै कटुक ना बैना।
हंस करै सगरा जगु भाई लगै आपनी धैना।
भूलि परा दुनिया दौलति माँ कालौ का तोहि डरना।
अन्त काल छाती चढ़ि बैठी ताते आवो सरना।
गोरख भरथरी गोपीचन्दा सुल्तानी धरपरना।
तजि अभिमान मिले साहेब का तेरी काहु गरना।
कांचु त्यागि कै कंचन लीन्हा आखिर तन लै मरना।
बाजी जीति गये ते मीता भूले भोन्दू धनु माँ ॥

अचिरिज एकु सुनौ रे भाई घर अपने की बात।
आगि लगी तब कुसलपरी घर जरा रक्त औ मांस।
मछरी चढ़ी बिरछ के ऊपर ससा सिंघु भुनि खात।
अजिया के घर भेंड़हा जाया पंडित बूझौ बात।
जो बूझी सो पार उतरिया अनबूझे नरकै जात।
पढ़ि विद्या पंडित बौराना दमरी की सबु घात।
जमु दारुन की सुधि विसराई तोहि ताके मड़रात।
कहि मीता जगु कालु खिलौना चलै आपनी घाति ॥

साधौ काया नगरिया मेरा मनु माना, जोगिन होय कै ततु छाना।
सिरजन हारा यहीं समाना मिल गये सतगुर तब पहिचाना।
तिर्थन तिर्थन फिरै नदाना, जहँ साहेब तहां नहि जाना।
मिरगा बन बन फिरति भुलाना बास अपन, पै अनतै ठाना।
कोउ करै तीरथ कोउ करै दाना कालु जालु मां परै दिवाना।
जौ निनुआरे सोई सुजाना हाय हाय कै तजउ न प्राणा।
हित कौ कहे बैरु कै माना तिनका होइहै नरक निदाना।
मीता पाया पदु निरवाना दीन भये ते तरि गये प्राना ॥

ऐसा ध्यानु धरै जो कोई जाते आवागवनु न होई धरनि बंद मूल लै बाँधै सुरति-निरति डिढ़ होई।
रैनि दिना लागै इकतारा बुंद मां सिंधु समोई होय निरसंक चढ़ै अमरापुर अमी पिये नल सोई।
तेहि जोगी का तीनिउ बन्दै का जानै नल लोई कुंभ का नीर मिलै ज्यों सागर कैसे न्यारा होई।
ब्रह्म मिलै तब बम्हन कहावै जाती जान्यो सोई चारों बरन मीत कहै सूद्रा झूठ बड़ाई खोई॥

बड़ा सोई जेहि हरि जिव थापै अटल बड़ाई सोई झूठ बड़ाई नलु कै थापी जुगन जुगन दुख होई।
या जगु अन्धा मरमु न जानै बादु करै बहुताई नरक सरग को कुछु सुधि नाहीं हमै तुल्लि को होई।
गाइ वधै ते कहो कसाई बकरी बधि चिक होई सोई करम तुमहूँ तो कीन्हो समुझो अन्धरेउ लोई।
तुम्है खवाइ तरा चाहति है उनकी मति गै खोई जन मीता सांची गोहिरावै मानी विरला कोई॥

करम नल देही पाई सो काहे तू हलुक धरी।
अब ना तरिहै फिर कब तरिहै जब खर-स्वानु देहि धरी।
चतुराई घर चौमच मांची थिर नाहीं मन पाव धरी।
हम खाइबे संत तिबिलसै हमैं माया ते काह परी।
तिनका जलमु अविरथा होइगै काहे का नल देहि धरी।
कालु अवादा निकटै आवा मरति व्यवस्था आइ परी।
हाथु झारि जस चला जुआरी जीती बाजी हारी।
कहि मीता मलमल का जामा टेढ़ी पगिया रही परी॥

मेरा मनु बौराया जोगिया मोहि घर अंगना न सुहाई री।
कानन मुद्रा ना हते री माथे हते न केस राखि लगाये ना हते वाकी चितवनि मां कुछु भेदु री।
तन सुबरन मुख लालरी री नैनन सुरमा दीन्ह जगर मगर नैना करै वातो मोहि परा ना चीन्ह री।
आपइ लगन धराइया रे मोंहि अधीन कै लीन सो मीता कैसे जियै जाको जगुआ टोन्हा लीन री॥

इस्क खुम्हारी जेहि लगै वा तो जानति है नल सोई रे।
विखै वानु तेहि ना लगै जिन नैन मसूका दीख रे।
हिन्दू के है प्रेम इस्क का तुरकों के जानति बिरला कोय रे।
बिन जाने कहि का भया वा तौ जो न फकीरा होय रे।
पाहन पूजै हिन्दुवा रे पूजै तुरुक मसीद।
ताको काहे विसारिया जो सबही का पीउ रे।
दूनौ भूले वाटवा रे सांचु कहे का होय।
कहि मीता सोइ मानिहै जाके मेहर दया घटु होय रे॥

पानन मांड़ो छाय तौ हरि बैठावउँ हो गाँऊँ मंगलचार ता विधि ही मनाऊँ हो।
चाँद सुरज करौं दियना तेइ मेरी आँखी हो जलम सुफल कै लेउँ आरती साजी हो।
तीरथ-बरत ना कीन कोई सखि सेवा हो बड़ मिले दीनदयाल देवन कें देवा हो।
तन धन वारे कीन कराई हाँसी हो मीता मिले बजाय कटी जमु फाँसी हो॥

कुफर गढ़ आपना जब तूरा अलमस्त भया मन मेरा।
काम-क्रोध आसा औ टिसुना जुज्झि किया बहुतेरा।
ज्ञान की खरग सील की बरछी लै लगाम हरदम का घोरा।
तेहि चढ़ि जोर किया सिरु दै कै मोजरा सहि भा मोरा।
हरि की खुसी मुसकिल भाई बिरलेन बांधा बेरा।
जौ लगि ममिता मेरि मेरि करती तौ लगि हरि नहिं तेरा।
मान मता करु संतन सेवा जमु ते करै निबेरा।
कहि मीता जब जानि परी तब ऊँचे चढ़ि कै टेरा॥

ताते भजिये साँचा नामु रे जाते बहुरि न आइये सब्द डोरि सहजे चढ़ै मन अगम अटारी जाई रे।
रबि-ससि दूनौ साधि कै रे चित चंचल करु थीर पाँचो तारी जीत ले तब मिलै काया का बीर रे।
खोजी मारगु पावई रे रहनी करै सहाय बादी का जमु द्वार है ताको सतगुर ना पतिआय रे।
आवागमन मिटाइया रे मीत परम पदु पाय ताके आगे काह है सठु हमका देउ बताय रे॥

१७

पंडित मानै मता हमारा तेहि भै ते करै निनारा।
कथा सुनाय तरबु बतलावै झूठा कहन तुम्हारा।
बिनु हरि दरस तरै ना कोई सुनौ जगु बचन हमारा।
पंडित आपुहि परा नरक मां तुम्हे करी को पारा।
शुकदेव वचन व्यास मुख भाखै बूझति नहीं गंवारा।
इन्द्री मन जब हाथै आवै तब उतरै भै पारा।
कामी-क्रोधी चोर जुआरी पंडित जरवारा।
दाम लेइ औ मुक्ति बतावै भूला है संसारा।
जुगन जुगन जिन सुमिता पाई तेहि रीझा करतारा।
संत मिलाय आपना कीन्हा ई हरि के ब्यौहारा।
संत सनीपी सांचु बतावै पंडित काह बिचारा।
स्रोता-वकता दोनों बूड़े गरभ बास भे द्वारा।
गलिन गलिन पंडित गोहिरावै सुनौ पुरान हमारा।
चोर-जुआरी बिखई धावा तरना होय हमारा।
जे बोरैं ते साढ़ी पावै तारन वाला मारा।
तौलि तार सबु जगु का देखा मीता किया बिचारा॥

मन पर जोग ध्यान

खेलु एक तू खेल अमोल भरम छांड़ि हस्ती का पेल।
मन हस्ती मारगु है झीन चलत चालु गुन त्यागउ तीन।
त्रिकुटी के तर सुई दुआर तहँ का पैठति हो होसियार।
पैठि जाय ता उतरै पार नाहित फिर फिर है अवतार।
बेदु पुरान करम की फाँसी या तौ है सबु दुख की रासी।
फाँसे सुर मुनि तीनिउ देव नल बपुरे का गनै न केउ।
साँच कहों काहुइ जानि न जाई झूठे का सब जगु पतियाई।
कहि मीता हमरा जो होई ताकी गति मति जुरै न कोई॥

करु सत संघु सेउ सतगुर का निरखि जपो निजु नाम रे।
सुरति-निरति सब सोवत जागै ब्रह्म अगनि गुन जारु रे।
जैसे मकरी उतरि चढ़ति है फिर पहुँचै गहि तार रे।
ऐसी चालु चलै जो मनुआ जगु ते होइ निनार रे।
सो जन होय रामु का प्यारा आवागवनु निवारि रे।
कथे वदे का मूरखु होइहै या तो अगमु बिचारु रे।
कहि मीता संतन की महिमा जानेगा जाननहार रे।
कामी-क्रोधी कथि कथि हारे ते बूड़े मझिधार रे॥

07:05
Mita Granthawali.pdf

बाबा सो वैरागी पूरा जाके क्रोध न रहै हजूरा, सीतल बचन काह भये बोलै जौ अन्तर है कूरा।
बांधौ पांच पचीसौ चोरा अरध उरध करै डेरा, सुरति निरति लै तिलकु सवांरै मुक्ति माल मन हीरा।
प्रेम की छाप किरखी कै गुदरी सेली सील विचारा अगम पंथु का मारग ताके उतरै भँजल पारा।
राम चरण सो जुरै सगाई छूटि जाय जमु द्वारा सांचा हो सो साहेब पावै कथि बदि मरै गवांरा।
धनि गिरही जो सतगुर पावै हरि के रहै हजूरा, छहों भेखु ते साहेब न्यारा हता निकट भया दूरा।
भक्ति चहै गुरु गिरही ढूंढ़ै कोटिन मां कोई पूरा, जाति-पांति का भेदु न राखै तिन्है मिलै गुरु पूरा।
कौरा ग्रहण जाति संघु करई आंहू का मारि निकारै काह भये सब के संघ खाये अनहक जलमु बेगारै।
कूरा सबै मांगि कै खाई छल-बल कै दिनु टारै कहि मीता सतगुर का चेला साचुइ सांचु पुकारै।।

हमरे अभिनाशी का ध्याना आनि देउ की बातु न पूछै का काहू सो कामा।
पानी ते कर चरन रचे हैं नैन नासिका काना तेहि कैसे बिसराइया, जिन रचिया चौदा धामा।
सो गनिका का पूत है जो कोई ध्यावै आनि, बापु न आपन जानई जमु करि है घमसान।
तैंतिस तीनिउ रामचन्द कान्हा परे दुख के धाम संतन की सरि कोऊ नाहीं जुगन जुगन विश्राम।
आतम दरसी तेई कृष्ण हैं या बचन परमान कान्हा क्रोधी नल बपुरा है बिखै भरा ता काम।
सुनिहै संत तेई सच मानों का जानै बिनु ज्ञानु कहि मीता हम भरम गिराया अनभै भा गुर ज्ञान।।

जोगी परम सुजान नगरी मां गाइले रमिता राम।
अनहद सिंगी अनवन राम चितवति हंसि हंसि करति निहाल।
अलख पुरुख सो निस-दिन दीठि, है मस्कीनी सांची प्रीति।
छारु न लावै न राखै केस गेरुआ तुम्मा धरै न भेखु।
जोग जुगती जब जोगिया पाई सहज सुन्नि मां रहा समाई।
आवागवन कबहुँ ना होई ततु दरसी अंग सीतल सोई।
प्रेम भक्ति रहै अंग लाए पिऔ अमीरसु तबु छकि जाये।
कहि मीता मेरा गुरु सोय जो या मारगु पहुँचा होय।।

पंडितन पर

सांचा ब्रह्म कौनि विधि पावै सो पंडित जो भेदु बतावै।
पात डार भरमै भरमावै मूल मते का मरमु न पावै।
सतजुग त्रेता कास सुनावै, गुन अवगुन सबके बतलावै।
अपने गुन का मरमु न पावै बिनु निरगुन सब बूड़ा जावै।
बिन सतगुर को या मत पावै जाति बरन झूठा गोहिरावै।
ब्रह्मा भूला बरन बतावै धनि सतगुर जो भरम छड़ावै।
सांची सुनि झूठा जरि जावै सांचा सुनिकै बहु सुख पावै।
पंडित भेदै ना पतिआवै कहि मीता जो सतगुर पावै।।

07:19
Mita Granthawali.pdf

पदु संत की रहनि

राम का भगत जगत ते न्यारा उतरि गया भै पारा पापु पुन्नि दोनों परे त्यागे जीवन नामु अधारा।
जैसे रंकु देखि धनु राजी ऐसे उनके रामा होय खुसाल छिनौ छिन निरखै तेहि निन्दै संसारा।
सतगुर सेये होय सनीपी छूटि जाय जमु द्वारा कंठी माला गरे न डारै ई पाखंडु ब्यौहारा।
मीन नीर केहि पियति न देखी रहती है मझिधारा ऐसे ज्ञान-ध्यान कहै मीता ज्यौं नारी ब्यौहारा॥

भजन कै कौन तरा मोरे भाई कहिअति है समुझाई तरे कबीरा औ रैदासा सतगुर की सेवकाई।
कहँ लौं कहौं अनेग तरे हैं का गनि देउँ बताई भजन करै का मारगु न्यारा दुनिया मरमु न पाई।
अरध उरध मां आसन माड़ा पाँचों पकरि मंगाई खुली केवारी पच्छिम सहजे रवि शशि कुंजी लाई।
तहँ नहिं माला तहँ नहिं कंठी डारै गले बलाई ततु का तिलक मुक्ति की माला जन मीता पहिराई॥

रहनी रहु रीझै रामु गुसाई ताते होय सबै कुसलाई।
नाहित कालु जालु गरे डारी हुआँ कथनी काजु न आई।
छल छूद्र कै तरा चहति हौ नरकै केहि पठाई।
साँचा साहेबु अन्तरजामी तिनते काह छपाई।
जैसे ससा मूँदि कै आँखी रहता हवै छपाई।
आये वधिक 'मारि गहि लीन्हा ऐसी तुम चतुराई।
आपु न बूझै और बुझावै करनी कीई न जाई।
कहि मीता ई जैसे नटुआ चौहट सोर कराई॥

छकाय गया रे मोहि मतवलवा छकाय गया रे।
या मतवलवा की दरुवा पर चाखति छूटे सकल जंजाल।
हरी हरी बेचौं मैं कुंजरिन मेथी पलकी खड़ी दुकान।
स्वावा चूका बहुत बिकाये हमरी दुकान तौनु न आये।
लेरे कुंजरवा दरुवा आय तुम्हरी माय मनुस का खाय।
रहै धींग तन नहीं डेराय फिर फिर धरै सासु के पांय।
कहि मीता है पदु निर्वाना जो या बूझै सोई सुजाना।
कहु ज्ञानी या कौनु गियाना सखी की सैन सखी कोइ जाना॥

बनिजु किया राम नामु का मोलु मनुई दिया रे।
कामु-क्रोध दिया पसंधा टारि छूटी कुल की तबहीं गारि।
पाँच पचीसौं बैलु लदाये हरदम हाँके बनिया जाय।
नाम भार गया जीव बिकाय जी का गहकी आपुइ आय।
पाई नफा भया सन्तोष जलमु जलमु की उपजी टूटि।
आगे जाउ नफा नहिं टूटी अलख मिले ते भै गया छूटी।
मैं उनमां की उइ मो माही जान परति इतनी अब आये।
कहि मीता कुछ अचिरिज आय अबु ना धरिवे धरती पाय॥

07:16
Mita Granthawali.pdf

भजु मन जाते परचै होई बेदु पढ़े का होई तजु अभिमान मान करु दूरी दूजा बरन न कोई ।
जमु का मोगरा है बहु भारी अंत काल सिर देई जैसे धोबिया कपरा कूटै बड़े बड़े गे रोई ।
कामी क्रोधी अन्धरे बहिरे जलमु चले जन खोई मानुखि देहि बहुत है दूलम बार बार ना होई ।
चामु का रूप बिनसि सब जइहैं जीव निनारा होई तिरया दामु दिलम सेंतीं संघु न लागी कोई ।
माया काजे दहुँ दिसि धावै छल बल कै बहुताई ब्याहु काज मां सोभा कीन्हीं जीव नरक मां जाई ।
मूरुख छांडु मोह माया का त्यागौ जगत बड़ाई दीन गरीबी है निरुआरा जो सतगुर मिल जाई ।
भक्ति बराबरि और नहीं कुछु समुझि परा रे भाई कोई कबीरा पीपा नामा जोति मां जोति मिलाई ।
जग्गि दानु तपु कै कै मरिगे खबरि न घर की पाई कहि मीता जगु बूड़ि बड़ाई केहिका लै समुझाई ।।

साधौ अजर नामु है सोई जाके चितवति परचै होई, माला जिभ्या का वा नाही वा कुछु औरे लोई ।
जप तै नासि होइ कुमिता का सकल व्याधि छै होई प्रेम प्रीति हिरदै मां बाढ़ी सो जन निर्मल होई ।
इंद्री दई दँवारि लगाई जिव की बन्दि छड़ाई, भा उजियार तिमुर तब नासा खबरि अगम की पाई ।
पांचौं नारी जो जित राखै रवि ससि सम कै दोई सहजे सहजे नगर पहूँचे आवागमन न होई ।
सोई भगत सोइ संत कहावै सोइ निजु ब्राह्मण होई चौरासी के फंद न आवै नलु जीतै जगु सोई ।
छहौ भेखु ते या मत न्यारा सतगुर ना पतियाई बिरले गिरही का उइँ रीझैं तिनका देइँ जनाई ।
पर स्वारथ का संत पुकारै तजैं जगत जैसे छोई जगत बड़ाई संत न चाहैं या ते काह सरोई ।
फेरि सुमिरनी जगत रिझावैं हरि की रीझ न होई कहि मीता जगु पाखंड भूला सांचु धरै ना कोई ।।

साधौ काया नारी ब्रह्म पुरुख है नारि पुरुख केहि जानौ ।
पाहन के दूनौ पिल कीन्हे भाउ भिन्न कै मानौ ।
भग ही जाया भग ही खाया पचि पचि मुये सयाने ।
जो छूटै या भग द्वारे ते ते हमरे मन माने ।
समुझि परे दूनौ हैं एकुइ जानै नहीं अज्ञाने ।
कहिये काह कहे को जानै जगु भै भरमु भुलाने ।
नर नारी कुछु आगे ना था ब्रह्म ते उपजाने ।
सोई मूल गहो रे भाई मीता तेही बखाने ।।

साधौ हरि का भजै न पाई है दुरमति तन छाई ऊपर पांचौं भूत लगति हैं कैसे कै ठहराई ।
करौ पुकार गुरू के आगे दुरमति देउ बहाई पांचौ बांधि कुआं मां डारौ सतगुर केरि दुहाई ।
तन्नु को वाटि घाटु मां लागै जब अकछत होइ जाई सहजे आवै सहजे जावै रहब चरन चितु लाई ।
भाव भक्ति खेड़वा नहिं भाई ना मिलिहैं चतुराई कहि मीता सिरु देइ मिलै या बहुत हवै कठिनाई ।।

साधौ परम तत्तु पहिचानो बूसी काह बखानो, का कंठी का माला छापा या तौ भरमु भुलानो ।
सांची कहे जगत दुख मानै झूंठी सो मनु मानो दाबी देइ बूड़े भै सागर देखो भलो सयानो ।
दस अवतार ईश्वरी माया करता कै जनि जानो वा तौ है अभिनासी साहेबु तिनका क्यों न बखानो ।
सतजुग त्रेता द्वापर के नल मरमु न काहू जानो कलियुग मां गुरु परगट कीन्ही मीता सोई बखानो ।।

07:13

Mita Granthawali.pdf

१९

मनु लागा मौलादी सेजरियाँ वारि वारि लखि आँखिनियाँ ।
सूखि टटेरा तनु भया मेरा जरी इस्क की आगिनियाँ ।
जा तन लागी सोइ तन जानै का जानैं बिनु लागनियाँ ।
का भये रोय रोइ कै दीन्है लखा मासूक न आखिनयां ।
पढ़े गुने ते इस्क न आवै इस्क भेदु है मारनियाँ ।
गुदरी-सेली किस्ती तूमा धरे फिरै भिख मांगनियाँ ।
राजा मीर दुआरे आये खुसी भये भिखमांगनया ।
कहि मीता जहँ मौला हाजिर कोचि करी तहाँ दुनियाँ ॥

ता दिनारी प्रेम की कोई खेलै संत सुजान बिनु सिर रन माँ मांडिया बिन लोय करै मैदान ।
चांद सुरज के बीच होय मन हस्ती सुई समान चढ़ते-चढ़ते तहां गये जहँ नाहीं जमु का बान ।
सुर मुनि बीचै अरझिया रे नांघि सकै ना कोय नांघे सो जुग जुग जियै वाको मारि सकै ना कोय ।
मारग बांका अगम का रे बेदु न जानै भेदु महरा संधु महरा भये जन मीता पाया सोधि ॥

मन काहे ते तू बौराये सतगुर सेये हरि पाये तीरथ कहो कौन तुम देखा पाहन पानी लखि आये ।
पूरन ब्रह्म हता घटु भीतरि सुरमुनि हाथै ना आये सो संतन माँ सहजे देखा जमु फन्दा फिर ना आये ।
सांचु कहौं ता कोऊ न मानै पाखंड पूजन का धाये संतन निन्दै नरक परन का समुझै ना तै समुझाये ।
या संसार बिखै रसमाता कलि मलि साना बौराये मीता पार उतरिगा भाई अमी पिया बिखु ढरकाये ॥

नलु काहे रामै ना ध्याये कबहुँ न चेते बिखु खाये ।
मेरि मेरि करते जलमु गँवाये अंत कालु जमु फन्दा आये ।
तू जो कहावै बड़ा सयाना जमु मोगरा काहे खाये ।
चतुर चिकनियां करो बिचारा कोऊ कामै ना आये ।
प्रान निकरतै घर ते काढ़ा नकरी का सब उठि धाये ।
तब कहँ साथु चली तेरे दौलति केहि कारण तू मन लाये ।
लम्बे लम्बे दामन कंठी मोतियन पहिर-पहिर जगु दिखलाये ।
कहि मीता अब कह गई सोभा छिया भक्ति बिन थुकवाये ॥

भली कीइ हरि हरी बचाये जमु फांसी तेहि भजि ना आये ।
नाहित जमु बहुतै दुख देता सरन सरन ते ता सुख पाये ।
बारि बारि तेरी भली चाकरी ऐसे नजरि कोऊ ना आये ।
भै सागर ते पार उतारा अमर लोक का पहुँचाये ।
हम दुखिया निरबल कुल हीने छिया छिया जगु हो आये ।
तुम संभारि नीके कै लीन्हा पर हँस मेटा बल पाये ।
ना कुछ भक्त न हता विवेकी पापु लिये सरनै आये ।
तुम दयाल दीनन के साथी मीता मँगता जसु गाये ॥

Mita Granthawali.pdf

रे बावा दुर्लभ संत विदेसी झूंडन पाखंड देखी जागै भाग्य संत सो चीन्हे नरकी पाखंड पूजी।
बिना विवेखु बूड़ि दुनियाई का कहि करै संदेसी धक्का चारि अधिक कै दीजे सुज्जन आपन लेखी।
अवध उड़ैसा साहेब नाहीं नहीं द्वारिका कासी मथुरा माया परपँच कीन्हे संतन मां अभिनासी।
मीता मन महरा होय फिरिया अगम पंथु होय पहुँची ताते निसा भई रे भाई पोथी थोथी छूछी॥

सठु बाँधे खोटे दाम मोलावा लाल का पाजी पापी मसखरा तू होइहै हाल बेहाल का।
का विद्या पढ़ि पाइहै रे काह बजाये गाल कामी क्रोधी ना तरै है तिनका नरक दुआर।
पढ़ै पारसी अर्बी रे औ इसलोक अघाये याते साहेबु ना मिलै वा करनी औरे आय रे।
बातन महिमा का करै अकह कही ना जाये साखी मा सबु कहि गये सो सुज्जन सो न छपाय रे।
धनी खुसी जासो हवै रे अन्तर तिनसो नाहे उनसो कुछु न छपावई जो अंस हमारा आय रे।
गुनागार सरकार कारे हुआँ की पूछै बात तो सो हों कहै ज्यों बिखु बुवै अमृत आस।
दुनिया पाखंड पूजई रे संतन देखि लजाये तरा चाहे भै सिंध ते रे पाथर नाउ चढ़ाये।
पेंची पाँची हिकमती रे बाँधे जमु पुर जाँय साँचे का साहेब मिला रे मीता दीन जनाय॥

तीरथ बरत बिना गुरु धावै जो गुरु मिलै ता भरम छड़ावै।
कोटिन तीरथु जाके चरना धोवैं ते संता तीरथ ना जावैं।
सतगुर सो जो रामु मिलावै रामु मिले ते परम पदु पावै।
सो जन आवागवन मिटावै परलै परे बिनसि ना जावै।
महा परलै मां कोउ ना रहावै ब्रह्मा बिस्नु शिवो मिटि जावै।
रवि ससि सिन्ध धरनि मिटि जावै लोमस परबत कहाँ रहावै।
कहि मीता सोई संत कहावै जो परलय मां बिनसि न जावै।
संत महातम हरि ही गावै संत मता बिरला कोई पावै॥

कहु पंडित हरि केहि विधि पाई नरक परी तुम्हरी चतुराई।
बिनु हरि मिले मुक्ति है नाहीं बिनु मुक्ती कथनी बहि जाई।
गीता सत्य वेदि लिखी सोई बांचे पंडित बूझि न होई।
जब सतगुर की दाया होई ज्ञानु उदै तब घटु ही होई।
चारि वेदु पढ़ि मुक्ति न होई या धोखे नल देही खोई।
पाँचों इन्द्री जबु बसि होई मन का सोधु तबै कुछु होई।
काया मां हरि देउ रहाई उत्तिम मध्यिम कोई नाहीं।
दीन भये ते हरि का पाई कहि मीता तजु मान बड़ाई॥

देखौ देखौ आई नकट देइ रानी वकुला जाय खुरवानी मैढुक बैठे ताल बजावै ऊँट करै रगवानी।
छेरी के डर भेड़हा काँपै का कहौं अकथु किहानी कुत्ता भूंकै सिंघु ऊपरे या बूझै सो ज्ञानी।
कुआरी कन्या तीतुर जाया पिढुकी धोवन आनी छेरी बरा पकावनि लागी मह्खिी भरती पानी।
बकुला बैठे पान चाबता चील्ह लीन्हे पिकदानी कहि मीता या पदु निर्वानी पहुँचा करी विनानी॥

07:24
Mita Granthawali.pdf

जोग ध्यान जुगती

परेवा प्रणव संत का मारग बतलावै दुतिया दुविधा छाड़ि दे दुरमति सब बहि जावै।
तृतिया त्रिगुन गांठी दै धरनि बंद लावै चौथे मूल विचारि कै चितु डुलन न पावै।
पांचै पांचौ मारि कै तब जोगु डिढ़ावै छठहे चक्र छा वेधि कै सहजे धूनीं लावै।
सतमी सुक्रित राखु तौन ढरकै ना पावै अठमी आठौ जाम तार भंडार भरावै।
नौमी निर्गुन नामु नजरि तोरी तब आवै दसमी दसवां द्वार खोलु तब घाटी पावै।
एकादस इकचित्त मकरी ज्यों तार चढ़ावै द्वादसि दोऊ वेधि सूर-ससि सिन्धु समावै।
त्यारसि तिरगुन छांड़ि तबै चौथा पदु पावै चौदसि चौमचि मेटि बहुरि फिर जगै न आवै।
पूनो पूरन कामु भे तेहि को समझावै जन मीता निरभै भये पंडित भरमावै॥

मूरुख भूला फिरै गंवारा जानै नहिं तत्तु विचारा।
भेखु बनाय निफर होय सोये जगि खाया संसारा।
या संसार अन्धा कैसे सूझै भेखु पूजि पूजि मारा।
संतन की हांसी करत हैं करिहै कौनु उद्धारा।
जहाँ नफा तहां पगु ना धरई घटी का करै विचारा।
पूंजी टूटी भली नल देही, ठेलि नरक मां डारा।
मीता करै पुकार दहू दिसि जानैगा जाननहारा।
चोरै के सब चाकर पहरू बूझै न सब्द हमारा॥

साधौ ध्यान धनी का लागा तब मैं ममिता भरम भागा।
नींद भूख दोऊ खंडित कीन्हे रैनि-दिना जोगी जागा।
ब्रह्म अगिनि अंतर पर जारी लिंग लँगोटा बांधा।
काम-क्रोध का जोरु मिटाया तीनिउ गुन का त्यागा।
द्वादसी उलटि मंदिल मां डारा उलटति भये निमाना।
सुरति निरति का बेड़ा बांधा ब्रह्म मां जीव समाना।
रवि-ससि वेधि चढ़ा गढ़ ऊपर बाजे अभै निसाना।
कहि मीता संतन सिर नाये पाया पदु निर्वाना॥

सो जोगी जो मनु गहि लावै केस न राखै क्षार न लावै।
ममिता मारि मंदिल मां लावै सो या नगरी उलटि बसावै।
होय निरसंक संका ना लावै बरति अगनि मां करम जरावै।
तार डोरि तब हाथै आवै अलख पुरुख का सहजे पावै।
गरभ बासु सो काहे का आवै कुंभ का नीर सिंधु मिलि जावै।
बड़े भागि ते या मत पावै बिसनु-महेस तिन्है ना पावै।
सो जोगी तन तपनि बुझावै रजो तमोगुन निकट न आवैं।
सतोगुन काल चोटु ना खावै चलत हंस कुछु दुख ना पावै।
सो जोगी गिरही मां पावै भरमि भरमि टूका ना खावै।
सुमिता तपै कुमति ना लावै सो जोगी जग जीत कहावै।
उरध मुख जे पवन चढावै बिखहर जलमु तौन फिर पावै।
कोउ कोउ उलटा पवन चढ़ावै अनहद सुनि सुनि भरम भुलावै।
बहुतै अजपा सो मन लावै बहुत सुन्नि मां दिस्टि लगावै।
बिनु सतगुर दीपक ना पावै भूले भोंदू को समुझावै।

07:22
Mita Granthawali.pdf

पदु ध्यान उपदेस

एक पदु गाओ जाते बहुरि नहि आओ ।
मूल कवल मां कीन्हा बासा मन मथि किया तौन परगासा ।
गंग जमन बिच सुरसरि धारा न्हाय चले जहाँ बैठे आपु ।
त्रकुटी मध्ये जमु का बासा छाड़ा सोंऊ भैइ कुसलाता ।
गाये बजाये भक्ति जो होई भांडु गुनी सब भगतै होई ।
भक्ति हवै खाड़े की धारा माला गुदरी नहीं उबारा ।
का मूरखु का समझाऊँ बूझै हंस तिन्है ध्याऊ ।
बाहर होय ता बतलाऊ मीता अन्दर रंग लाऊ ॥

पदु भेखपर

नल मूल धरो अमर लोक का सूल करो ।
तुम्हरा हियां नहि हवै उबारू चौदा लोक परा जमु जारू ।
का करै कंठी का करै माला गुदरी तुम्मा कौने कामा ।
सतगुर का मत अगम अपारा भूले भोदुआ फिरै गंवारा ।
उतते आवै इतते जायें मेला घर घर माँगै खाये ।
मूड़ मुड़ाये भांडु होय जांये तीरथ मां कोऊ तरई नाय ।
भक्ती भय की पारै बाट झूठो तारी लावै हाट ।
मीता चीन्है अवघट घाटु अब ना चलै भरमु की बाट ॥

अवधू सब घटु आपु समाना छाड़ो जगु के ज्ञाना को नारी को पुरुष कहावै करिये तौनि बयाना ।
काया नारी ब्रह्म पुरुष है ऐसे सब उपजाना पाँच तत्व ते रचे सरीरा का नारी का नारा ।
इक पाहन के दुइ पिल कीन्हे भिन्नै भिन्न बनाये दूनौ एक भाँति जो बनते पीस कहाँ ते जाये ।
सिस्टी रचै का नारि पुरुष किया भिन्नै भिन्न बनाये एक माटी के दोनों भांड़े भीतरि एकुई नाये ।
नारी छिन्न होय सुत जाये पुरखु भोगे नारी एक ते एक छिन्न भे दूनौ माया के विस्थारी ।
आदि पुरुषका दोऊ बिसारा भूले मोह मायारी कालु की मारु तरे दोऊ आये सकै कौन निरुआरी ।
सतगुर सेये होय उवारा का नर का नारी राह बताय दई वाचै की छूटि जाय जमु द्वारी ।
कहि मीता हम सब्द सनेही का नारी का नारा जो कोई होय हमारा जगु मां तिन्है करै भै पारा ॥

पदु ध्यान का

आये सतगुर साह पूँजी मोहि दै चले दिनु दिन बाढ़ी होय भागि पूरे जगे ।
मूल दुआरे बइठ छिमा डिढ़ कै धरै लिंग लगोटा बाँधि अगमपुर का चलै ।
लागी सुखमुनी डोरि फन्दा काटे सबै सुरति निरति का साधि पिया का रिल मिले ।
जन मीता मन पाये ता सुख सागर भरे आवागवन मिटाया सति संगति करे ॥

हम बनियां बनजी करैं कोई मरमु ना पावै रैनि दिना तौला करै साहै समुझावै।
रवि ससि तौ पलरा करै चितु डांड़ी लावै सति सेर पूरा करैं गुरू ग्यान डिढ़ावै।
लोभ हमारे नामु का माया बिसरावै चौदापुर का त्यागि कै अनभै पद ध्यावै।
नफा रामु धन पाइयां अबु बहुरि न आवै बूड़ा सब जगु जाति है मीता गोहिरावै॥

हम बनियां सति लोक के जगु का समुझावै कहा न कोऊ मानई सबु बूड़े जावै।
दरद हमारे जीव का जो हमका ध्यावै सो जन पार उतारई जमु जालु छड़ावै।
सो जमु तीनिउ देव का बहु नाचु नचावै सुर-मुनि नर की का चली संतन को पावै।
आदि पुरुख ते भिन्न नहिं जो दास कहावै कहि मीता संतन मिले पद अनभै पावै॥

साहेबु दासन की सुधि लेहीं जहां सांचु है नेही पीछे लीन्हीं लेते फिर अबहु नहीं कुछु सन्देही।
झूठे केरे निकट न जाते अन्तर की लखि लेही केते पापी गावैं ध्यावैं गाये रीझ न होई।
चित्र गुपित बड़े लेखाधारी जैसे का तस देही छल-बल तहां कौनि विधि चलिहै सावधान सठु होही।
चतुर चतुर सब जांइ नरक का कही मानि तुम लेहू जन मीता निरसंक भयेहैं करि संतन सो नेहू॥

का ठगिया संसार का सठु तोहि ठगाये माल बिराना खाय कै सिर भार लदाये।
काहे किरखी छांड़ि कै तू भेखु बनाये मालपुआ औ पूरिया मनु देखि भुलाये।
डर न किया कुछु राम का अन्धेर मचाये खर महिखा बैला करी विसु होइहैं खाये।
बेइमान ईमान बिन जिन भेखु बनाये कहि मीता सुज्जन सुनौ हम समुझि बताये॥

नैनन लागी इस्क खुमारी मजिलिसि टरति न टारी।
सुक्रित लै कै भाटी वोजा ब्रह्म अगनि उदगारी।
रैनि-दिना मोरी पलक न लागै करा करौं रखवारी।
पिया पिआला मन भा थीरा पच्छिम खुली किवारी।
अलख लखा तन तपनि बुझानी आवागवन निवारी।
अब न मरौं मोरी मरै बलैया मिली सजीवनि प्यारी।
तन धन बारि मता या पाया हवै अगम बहु भारी।
सुख सागर उमड़ा को थामै भा मीता टकसारी॥

झूंड़न संत ना पाइये सुन मूर्ख अनारी बहुतै हैं ते भेखु हैं ई पाखंड धारी।
उइ ऐकुइ दुइ होति हैं जहं लौ संसारी हरिजन न्यारे ना रहैं उइ सदा हजूरी।
धन्नि ग्रिही जहां ऊपजै हरि के व्रतधारी नामा-कबीरा-नानिका-सधना हितकारी।
कहि मीता तजु भेखु का ना तो होइ खुआरी सतगुर गिरही सेइ ले तोहि पार उतारी॥

का मुद्रा जोगी करै साहेबु गति न्यारी जिन देखा सो जानिहै रवि कोटिन बारी।
काह भये अनहद सुने लखि कै उजियारी या तो झांई कालु की जी की रखवारी।
उरध मुख पवन चढ़ाय कै जीवैं अधिकारी देहि छूटि अजगर भये इन पूंजी हारी।
रेचकु कुंभकु मुनि मता या भरमु पसारी कोटिन अजपा ध्यावई भूले भेखु धारी।
सुन्नि मंडिल बहु खोजई अन्धे बैपारी बहुतेन का परमोधिया ठगिया संसारी।
धोती नेती बहु करै बहु आंत पखारी ज्यों बाजीगर पेखना जगु देखनहारी।
ब्रह्म अगनि उदगारि कै खोली पच्छिम केवारी जीव ब्रह्म मां मिल गया आवागवन निवारी।
सोई मिल सोई भया को काढ़नहारी कहि मीता अस एकु दुई जहं लो संसारी॥

कुंभ नीर सागर मिला कैसे न्यारा होय ऐसे हरि हरिजन हरि मिली भिन्न करिहै कोय।
काहेक सो जिभ्या रटै काहे का माला फेरी या करनी हरि ना मिलैं गुरू गमि का खेलु।
माला फेरति बहु मरे घर लखा ना भेदु चौरासी का मानवा बूड़े दै हेलु।
शंकर तपिया तपु किया ब्रह्मा किया बेदु बिस्नु दया उतपति कीई पिऊ गये ना खोजि।
बड़े भये ना पाइया सुनु भौंदुवा लोग दीन भये ते रलि मिले या अस जोग।
सुई अग्र वा द्वार है कैसे कढ़ै पहार होइ राई का बीसवां सोई उतरै पार।
पापु पुन्नि दोउ बांधवा बांधा संसार ज्यों मरकट की मुठिया पचि मरा गँवार।
मीता मंगल गावई किये सतगुर सेऊ आवागवन मिटाइया मिले संसै देऊ॥

10:05
Mita Granthawali.pdf

धनासिरी

नलु रे भूला काह फिरै सांचु जो पकरै सिरजनहार बिसारि नहीं सुखु शिव शिव का करै।
कोटिन विस्नू कोटि शिव ब्रह्मा रटिरटि ताहि मरे बिन सतगुर येऊ नहिं पावैं ताहे तोरा का सरै।
तनमा सार सोधि जो जानै मूल मंत्र पकरै रवि शसि बेधि मिलै चौथा पद जो अस ध्यान करै।
परम जोति तेहि पद मां राजै मिलि कै नहीं मरै कहि मीता बाभनु है सोई झूठा झगर करै॥
२७

अैसा और दीन को पालै काटति है जमु जालै जन का दुख देखि उठि धावैं ठाढ़ रहति हैं ह्वालै।
पूरन विरध होय नहिं खंडित असुर न महिमा जानै संतन के हैं प्राण अधारा जो जानै सो मानै।
सांची प्रीतिरीति करताकी करो निछावरि प्राणो बलिबलि जाऊँ बारे होयजैहौं दासै किया निहालै।
कहिय काह जीभ है येकै गुन काको बखानै कहि मीता जो पाछु सुनिया अब सोई है आगे॥

सांचु बिना हरि हीरा न पाई कोटि करै चतुराई अन्तरजानी मन की जानै तिनते काह छपाई।
पाखंड नाव भरी पापन ते को या पार लगाई छापा तिलक काह सठु करिहै जब जमु गरजत आई।
लै चतुराई नरक पहूँचैं सुनि ले साधू भाई विखु का सींच अमी फल चाहै कैसे हाथै आई।
कहि मीता का भूलि रहा है माया मोह बड़ाई या तो काया जरि बरि जैहै कै लै कुछो भलाई॥

रामु भजु करिहै अन्त सहाई दासन का उइ ऐसे पालैं ज्यों सुत पालैं माई
मां बापु की का कुदरत है जो अस करै सहाई बन विदेस मां जो सुत त्रासै मां कहाँ उठि धाई।
पगु पगु परति दास हरि पालैं सदा करति हैं छांही जहँ देखों तहां उइ देखों और दूसरा नाहीं।
कै परतीति प्रीति चरनन सों और मनै ना लेई कहि मीता सोई जगु जीता आवागवन मिटाई॥

दया निधि छांह बहुत तुम दाया कै न सरन सुख पाया।
दास कमाल सैनि औ नामा धना सैनि जस गाया।
जिन्है उबारा तिन्है पुकारा या सुनि मोहूँ आया।
बन्दी छोरि सरन कै लीजे अबु ना जाउँ सताया।
सांचे मिले सांचु अपने ते हों तो झूठा आये।
देउँ निछावरि सब संतन की अवगुन माफ कराये।
जो गुनही के अवगुन ताको तौ नहिं हवै बचाये।
अपने दरद दुख का मारा मीता रोइ सुनाये॥

राम राय सांचा नामु तुम्हारा मैं झूठा नहीं विचारा रामचन्द औ कान्हा माया माया सबु संसारा।
तुम्है छांड़ि जे औरे ध्यावैं तिनका नहीं उबारा जैसे नारि खसम का छाड़ै करै औरे लगवारा।
दावी दै दै चले नरकु का को है हटकनहारा चेतु रे चेतु दुई के मारे ध्यावो सिरजनहारा।
मीता करै पुकार दहूँ दिसि समरथ है करतारा देइ अभै पद सरन गये ते जमु नहिं पूछनहारा॥

07:30
Mita Granthawali.pdf

मनु मथि तन बिसराया रे साधो।
जाको निगम पार ना पावै सो तो सहजे पाया।
चाँद सुरज की कीई मथनिया जुगति का दूध जमाया।
तीन गुनन की कीई कढ़निया या विधि मनै छकाया।
छाँछ पिये अब मोरि बलइया या अन्धेन मनु भाया।
सोई जिये जिन ततु विचारा मरिहै जिन बिसराया।
साखी सब्दी करै काटि कै तिनका नरकु बसाया।
कहि मीता सोई पदु कहिये जिन जियते पदु पाया ॥

बाबा तुरक सोई जाकी तुरी अवस्था तन सुधि बिसरावै हो।
मुसलमान सोइ पाँचों मूसै ताहि भिस्त ना भावै हो।
अकसे एक गइया बियानी ताको दूध जमावै हो।
सुरति निरति की करै मथनिया तबु अल्लो का पावै हो।
ममिता मुर्गी का गहि मारै जिव जंत्र न सतावै हो।
मेहरि नजर सबहु पर राखै सो दरबेस कहावै हो।
कहर नजर पर कैहर परैगा जबु आखिर दिनु आवै हो।
कहि मीता जब लेखा होइहै तब जुवाब ना आवै हो ॥

कहरा

कोई पुरान पढ़ि बकरी मारै कोई कुरान पढ़ि गाई रे।
आगि लगी दोउ जरे जाति हैं सकिहै कौन बुझाई रे।
साँचु कहे ते मारन धावै तिनसो काह बिसाई रे।
दोजक केरी चालु चलति हैं भिस्ती की आसा लाई रे।
लकरी हरी नहिं टोरी मौहम्मद कब गइया मरवाई रे।
गुरू पीर की चालु न जानै ज्ञानु करै बहुताई रे।
या दुनिया का देखि तमासा मीता उठे डेराई रे।
दुही बीच ते निकरि भगाना संत संगति चितु लाई रे ॥

सोरठा

10:12

जांय बेकार सकल या तन की कै ले आरति आदि पुरुष की।
मन चंचल जो थिर कै राखै दीपकु जोति तबै परगासै।
पाँच मरि जो मन थिर होई करम भरम त्यागो नल लोई।
हो सनीप ता दासु कहावै नैनन निरखि परम पदु पावै।
है पर चन्च सकल जगु माही इनके संघु कुसल है नाहीं।
कहि मीता नल देही पाई अबकी बार चूकि ना जाई॥

रवि-ससि बीच आरती साजी मदन जरै जागे दिनु राती।
अरध उरध भाटी उदगारी पिया अमीरस लागि खुम्हारी।
सुरति देखि मनु भया अपंगा वारे करों कोटि रवि चन्दा।
ढ़िग ही साहेब ढ़िग ही बन्दा ताते कटे काल के फंदा।
सोई सुहागिन कहिये भाई कथे बदे गाये का होई।
चाहै ताहि लेइ अपनाई मंगल आरति मीता गाई॥

आरति करै रामु का प्यारा काम क्रोध ते रहे निनारा।
अगम पंथु का तिन पगु धारा नभै ज्ञान किया उजियारा।
ज्ञान खड़ग लै किया विचारा जागत पाँच चोर का मारा।
या विधि जीका किया उवारा अबका करिहै कालु हमारा।
पाहन पीतरि केहिका तारा पूजि पूजि बहु मरे गवारा।
हरि बिसराय कपट मन धारा तिनका सदा कालु रखवारा।
नल तन पाय जुआ जनि हारा या ना पैहै बारै बारा।
सेइ ले राम होय भै पारा कहि मीता तजि जगु ब्यौहारा॥

आरति करौ, होइ प्रण धारी राम बरत घरु जीव उवारी।
मूल द्वारे लाओ तारी चांद सूर बिच दियना बारी।
पांच पचीसों होय तुम्हारी तब मन होइहै हरि दरबारी।
निसि-दिनु निरखु पिया का नारी का गुड़ियन का खेले कुआरी।
बिना खसम को बहिया धारी जबै काल लै मोगंरा मारी।
गतिन काजर डारा मिदारी या धोखे तोरी होति खुआरी।
का भटकी तू फिरै गवारी खसम तजे भइ बहुत भतारी।
सोइ सुहागिन पिउ की प्यारी जो संघ ते नहि होय निनारी॥

निझर झरै आरती होई पिया अमीरस जगु तजि छोई।
सहज सुन्नि मां सुरति समोई भेटा पुरुष आवन ना होई।
सेवक साहेब भिन्न न होई ऐसी आरती पावै जन कोई।
दीन गरीबी या मति आई धनि सतगुर जिन कीन सहाई।
सतगुर बिना दरस ना होई, बिन सतगुर ना मुक्ता होई।
पाहन पूजे पाहन होई वाकी गति मति चोरा खोई।
वा चोरा का लखै न कोई जो रे लखै सो हरि का होई।
जन मीता या आरति गाई सुज्जन के हित दीन जनाई॥

है गुरु ग्यान भला रे भाई तनका सोधु तपनि मिटि जाई।
है नर नाउ नरायण होई या मत पावै बिरला कोई।
गाये बजाये सुने का होई का पाहन ढिग दियना देई।
भूले हैं सबु जगु के लोई त्यागै तत्तु खरीदै छोई।
सुज्जन जगु के निकट न जाई जगु की चालु नरक जिउ जाई।
अवघट घाटी गुरू लखाई नगरी अमर बसे हम जाई।
कुंभ का नीर सिंधु मिलि जाई तब को करी निवेरा आई।
कहि मीता ऐसा होइ जाई ताका आवागवन मिटाई॥

आरती

करू आरति गुरु ज्ञान बिचारी का पाहन ढिग दियना बारी ।
ब्रह्म अगनि अन्तर पर जारी उलटा कवल आत्मा तारी ।
सुरति निरति लै खोलु केवारी पर आतम की होय पियारी ।
पतिव्रत अैसा जो धारी सेवक साहेब होइ न न्यारी ।
निसि दिनु आरति लागि खुभारी आरति करत कुमति गई मारी ।
अैसी आरति हम मन धारी आवागवन चले निरुआरी ।
कोटि भान जाकी छवि पर वारी सो साहेब के भये दिदारी ।
भरम पसार परी संसारी कहि मीता पीतरि ना तारी ।।

दीपकु बारि काहू दिखलावै आरति भेद बिरल कोई पावै ।
सुक्रित जोर हुरै ना पावै जागु जागु आरति बनि आवै ।
गगन मंदिल ते साहेब आवै बाहू पकरि जन की ले जावै ।
मकर तार चढ़ या विधि जावै कहि मीता सो बहुरि न आवै ।।

आरति परम पुरुष की कीजे कुमति कुटिल का संघु न लीजे ।
तीनिउ देवा सुर मुनि ध्यावै खोजत खोज करै ता पार पावै ।
तिनका नल कैसे कै पावै मूल छाड़ि साखा का ध्यावै ।
मूल मंत्र सतगुर सो पावै बिन सतगुर सब बूड़ा जावै ।
आरति अरस परस पर भाई बिनु देखे केहि का मनु लाई ।
घटु का खोजु करौ रे भाई अभिनासी अनतै ना पाई ।
रवि-शशि सीधा किये एक ठाई सत्यलोक सो पहुंचा जाई ।
कहि मीता जो गाहनु ध्यावै सो पसुआ ततु ज्ञान न पावै ।।

अैसी आरति करू मन मेरे बहुरि न करऊ या जगु फेरे ।
काम क्रोध संसै का त्यागौ छाड़ि चतुराई कुमति निवारो ।
पाँच पचीस करैं कुटिलाई तिन्हैं जीत दीपकु ठहराई ।
तत का तेलु धरनि का दिया प्राण तुला लै साजा किया ।
चाँद सूर का कीन्हा थार ब्रह्म अगनि ते लीन्हा बारि ।
दीपक बरै जरै घर काल मिट गई करम भरम कै बानि ।
आरति साजि चली पिया पास पिया मुख निरखति मिट गई तापु ।
कोटिन बाजा बाजे बीन कहि मीता आरति मस्कीन ।।

करु आरति मंगल घट माही अैसा समौ बहुरि फिर नाही ।
रखत-बखत सस तुसही मांही अवध चौडैसै साहेब नाहीं ।
पाहन पूजै मूरुख जाकी, तिनका जलमु अकारथु जाही ।
खोलु कपाट मिलै हरि आही, मै का संसै कबहूँ नांही ।
सुर मुनि ब्रह्मा जानति नांही जाहि मिले ते जमु नहिं खाही ।
कहि मीता कोइ जानित नाहीं बिन जाने कोउ मुक्ता नाहीं ।

अैसी आरति करु मनु सांची जोति अखंड बरै दिन राती ।
धरनि मूल लै सबद डिढ़ाई सब्द की चोट गगन घहर ई ।
पच्छिम दिसि की खोलु केवारी आवागवन चले निरू ारी ।
अष्ट कवल दल भा परगासा निरसंसै भा हरि का दासा ।
या बिधि होय सत्यपुर बासा सेवक साहेबु ऐकै पासा ।
जिअत मुक्ति मुक्तै सोइ भाई मुये मुक्ति ना कोऊ पाई ।
मुये जीव गरभ मा जाई गरभ बास सब नरकै आही ।
जन मीता ध्याए अभिनासी काल कूर की टूटी फाँसी ।

10:09
Mita Granthawali.pdf

जुरा सनेहा रामु सो जगु कौन हमारा ते निन्दा का ना डरै जिन तत्तु विचारा
लोक बड़ाई का चहै ते मूर्खं गंवारा डिम्भु लोभु ते उपजा बिसरा करतारा।
बिखै विकारन मा फंसा बहु ज्ञान पसारा पेटु औरि मुख औरि है तिनका मुख कारा।
सांचु कहैं हरि पाइयां सुनि लेऊ लवारा मीता उतरा पार का आवागवनु निआरा॥

धरनि मूल बन्द देई ध्यान का धारियो सुरति लगी सति लोक त छिनु न बिसारियो।
काढ़ि तार एक तार ता देहि विसारियो रवि ससि सम कै एक भेदु चढ़ि जाइयो।
कठिन हवै या काम बिरला ठहराइयो संतन मां जसु होय परम पद पाइयो।
सो जोगी निरवान जो मता डिढ़ाइयो भेखिन ते या दूरि मीत सचु गाइयो॥

सुनु हरि दासन के ब्यौहारा काम क्रोध का करै विदारा।
लोभु नदी का पियें न नीरा रहते सदा धनी के तीरा।
छाप तिलक पाखंड ब्यौहारा तिनका पूजै मूर्खं गँवारा।
केस रखावा लावा छारा पूजनहार परै जमु द्वारा।
विद्या पढ़ि ना पाये रामा ई तौ सब दामन के कामा।
नारि खांय औ करै बेधामा सुक्रित करै न खाय हरामा।
गिरही पहुँचे हरि दरबारा गृह छाड़ै ते होइ खुआरा।
जन मीता कहै तत्त विचारा जहाँ लोभ तहँ नरकु दुआरा॥

तेरी किरिया बज्र परई साँची क्यों ना धरई बड़ी या किरया माँस मछरिया भक्षण तौनी करई।
ऊपर बका बहुत ऊजरा भीतरि मलिन करई ऐसी चंदन पूजा तेरी मन घिन नाहीं करई।
माया काजे परपंचु कीन्हे हरि का नाहीं डरई जमु करिहै तेरी महिमानी खर का जलमु धरई।
हवै बड़ाई दिना चारि की फिर तोहिं छिया करई कहि मीता संतन की महिमा अनभै राज्य करई॥

विद्या पढ़ि कै जग्गी दानु कै कासी जाय मरे तउ न जीव नरक ते निकरै मूरख भटकि मरे।
भै सागर के हरि जन केवट ताकी सेउ करै ते तारैं दूसरि को बपुरा बिरले परिख परे।
ते गिरही मा भेखु न धरिहै पाखंडु भेखु धरै तिनके निकट न कबहूँ जइयो दोउ कुल नासि करै।
जगत बड़ाई कूकुर बिस्टा लोभी फूलि मरै कहि मीता जे हरि के प्यारे ते लै काह करै॥

मनु उजला करू नैन रंगो रंग ताहि का फीक न कबहूँ होय सुहागिन नाह का।
गेरुआ बस्तर बौरि रंगै तू काहे का मन मैला करै खून कहावै राम का।
हौं नाहीं अन्धेरि करै औसाफ का परैगी भारी मारु ता बेइमान का।
मीता कहै विचार सुनौ या काम का देहौ कौन जुवाब पूछी एकु दाम का॥

महासुख की उपलब्धि के स्थान तथा उपाय का वर्णन वज्रयानी ग्रन्थों में विस्तार के साथ मिलता है। सिद्धों का कहना है कि 'उष्णीष कमल' में महासुख की अभिव्यक्ति होती है। तन्त्रशास्त्र और हठयोग के ग्रन्थों में इस कमल को 'सहस्रदल' (हजार पत्तों वाला) कहा गया है। वज्रगुरु का आसन इसी कमल की कर्णिका के मध्य में है। इस स्थान की प्राप्ति मध्यमार्ग के अवलम्बन करने से ही हो सकता है। जीव सांसारिक दशा में दक्षिण और वाम मार्ग में इतना भ्रमण करता है कि उसे मध्यम मार्ग में जाने के लिए तनिक भी सामर्थ्य नहीं होती। यह मार्ग गुरु की कृपा से ही प्राप्य है। सहजिया लोग वामशक्ति को 'ललना' और दक्षिणशक्ति को 'रसना' कहते हैं। तान्त्रिक भाषा में ललना, चन्द्र तथा प्रज्ञा-वामशक्ति के द्योतक होने से समानार्थक हैं। रसना, सूर्य और उपाय दक्षिण-शक्ति के बोधक होने से पर्यायवाची हैं। इन दोनों के बीच में चलने वाली शक्ति का पारिभाषिक नाम है 'अवधूती'।[2] अवधूती शब्द की व्युत्पत्ति है—

अवधूती-मार्ग

'अवहेलया अनाभोगेन क्लेशादि पापान् धुनोति।

अर्थात् वह शक्ति जो अनायास ही क्लेशादि पापों को दूर कर देती है। अवधूतीमार्ग ही अद्वयमार्ग, शून्यपथ, आनन्दस्थान आदि शब्दों से अभिहित किया जाता है। ललना और रसना इसी अवधूती के ही अविशुद्ध रूप हैं। जब

१. वही ८।२०

२. 'द्रष्टव्य 'वीणापाद' का यह गायन—

सु ज लाउ ससि लागेलि तान्ती। अणहा दाण्डी वाकी कियत अवधूती॥
वाजइ अलो सहि हेरुअ वीणा सुन तान्ति धनि विलसइ रुणा॥
(बौद्धगान ओ दोहा पृ० ३०)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ये शक्तियाँ विशुद्ध होकर एकाकार हो जाती हैं तो इन्हें 'अवधूती' कहते हैं। तब चन्द्र का चन्द्रत्व नहीं रहता और न सूर्य का सूर्यत्व रहता है, क्योंकि इन दोनों के आलिङ्गन से ही 'अवधूती' का उदय होता है। वज्रजाप के द्वारा ललना और रसना का शोधन करने से तात्पर्य, नाड़ी की शुद्धि से है। शोधन होने पर दोनों नाड़ियाँ मिलकर एकरस या एकाकार हो जाती हैं। इसी निःस्वभाव या नैरात्म्य अवस्था को ही शून्यावस्था कहते हैं। जो इस शून्यमय अद्वैतभाव में अधिष्ठान कर आत्मप्रकाश करता है वही सच्चा वज्रगुरु है।

रागमार्ग—

महासुख कमल में जाने के लिये यथार्थ सामरस्य प्राप्त करने के लिए मध्य-पथ का अवलम्बन करना तथा द्वन्द्व का मिलन करना ही होगा। दो को बिना एक किये हुए सृष्टि और संहार से अतीत निरंजन पद की प्राप्ति असम्भव है। इसलिये मिलन ही अद्वयशून्यावस्था तथा परमानन्द लाभ का एकमात्र उपाय है। सहजिया लोगों का कहना है कि बुरे कर्मों के परिहार से तथा इन्द्रियनिरोध से निर्विकल्पक दशा उत्पन्न नहीं की जा सकती। युगल अवस्था की प्राप्ति न होने से विराग तथा विषय का त्याग एकदम निष्फल है। इसके लिए एक ही मार्ग है—सहजमार्ग—रागमार्ग, वैराग्यमार्ग नहीं। इस मार्ग के लिए कठिन तपस्या आदि का विधान निष्फल है। श्रीसमाजतन्त्र का कथन है कि दुष्कर नियमों के करने से शरीर केवल दुःख पाकर सूखता है। चित्त दुःख के समुद्र में गिर पड़ता है, इस प्रकार विक्षेप होने से सिद्धि नहीं मिलती—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उसके हृदय में महती दया विद्यमान रहती है। वज्रयान में प्रज्ञा और उपाय के एकीकरण के ऊपर जोर दिया गया है, क्योंकि प्रज्ञा और उपाय का सामरस्य (परस्पर मिलन) ही निर्वाण है[१]। बुद्धत्व की प्राप्ति के लिये केवल प्रज्ञा से काम नहीं चलता और न उपाय से ही काम चलता है[२]। उसके लिये दोनों का संयोग नितान्त आवश्यक है। इन्हीं दोनों की मिश्रित मूर्ति होने से गुरु को 'मिथुनाकार' बतलाया गया है। वज्रयानी सिद्धों के मत में मौन-मुद्रा ही गुरु का उपदेश है। शब्द के द्वारा सहजतत्त्व का परिचय नहीं दिया जा सकता, क्योंकि मन और वाणी के गोचर पदार्थ विकल्प के अन्तर्गत हैं। निर्विकल्पक तत्त्व शब्दातीत हैं। इसी को महायानी ग्रन्थों में अनक्षर तत्त्व कहा गया है[३]। सच्चा गुरु वह है जो आनन्द या रति के प्रभाव से शिष्य के हृदय में महासुख का विस्तार करे[४]। केवल मौखिक उपदेश देना गुरु का काम नहीं है। गुरु का काम हृदय के अन्धकार को दूर कर प्रकाश तथा आनन्द का उल्लास करना है। तन्त्र शास्त्र में इसीलिये उपयुक्त गुरु की खोज के लिए इतना आग्रह है[५]।

शिष्य की पात्रता

गुरु शिष्य की योग्यता की पहिचान कर ही उसे तत्त्व का उपदेश देता था। साधक को यम, नियम आदि का विधान करना अवश्य चाहिए। सत्य, अहिंसा आदि सार्वभौमिक नियमों का विधान परमावश्यक है। वज्रयानी ग्रन्थों में गुरु के द्वारा विहित 'बोधिचित्ताभिषेक' का विशेष वर्णन किया गया है। गुरु की आराधना करना शिष्य का परम कर्तव्य है तथा गुरु का भी यह आवश्यक धर्म है कि वह शिष्य के चित्त

---

१. न प्रज्ञाकेवलमात्रेण बुद्धत्वं भवति; नाप्युपायमात्रेण। किन्तु यदि पुनः प्रज्ञोपायलक्षणौ समतास्वभावौ भवतः, एतौ द्वौ अभिन्नरूपौ भवतः, तदा भुक्ति-मुक्तिर्भवति।

२. उभयोर्मिलनं यच्च, सलिलक्षीरयोरिव।
अद्वयाकारयोगेन, प्रज्ञोपायं तदुच्यते॥
चिन्तामणिरिवाशेषजगतः सर्वदा स्थितम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं सम्यक् प्रज्ञोपायस्वभावतः॥

३. अनक्षरस्य तत्त्वस्य श्रुतिः का देशना च का। मा० का०

४. सद्गुरुः शिष्ये रतिस्वभावेन महासुखं तनोति।

५. या सा संसारचक्रं विरचयति मनः सन्नियोगात्महेतोः।
सा धीर्यस्य प्रसादाद्दिशति निजभुवं स्वामिनो निष्प्रपञ्चम्॥
तच्च प्रत्यात्मवेद्यं समुदयति सुखं कल्पनाजालमुक्तम्।
कुर्यात्तस्याङ्घ्रियुग्मं शिरसि सविनयं सद्गुरोः सर्वकालम्॥
(चर्याचर्यविनिश्चय पृ० ३)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

इस ग्रन्थ के आरम्भ में पूज्यपाद पण्डित हरप्रसादशास्त्री जी ने लम्बी भूमिका लिखी है जिसमें बौद्धसम्प्रदायों के सिद्धान्तों का पर्याप्त विवेचन है। बहिःशक्ति की प्रधानता होने पर सृष्टि होती है और अन्तःशक्ति की प्रधानता होने पर

१. इन समग्र ग्रन्थों के संग्रह के लिए द्रष्टव्य 'अद्वयवज्रसंग्रह' (गा० ओ० सी० सं० ४०), बरोदा १९२७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

संहार होता है। स्थिति उभय शक्तियों की समानता का निदर्शक है। शिव-शक्ति, पुरुष–प्रकृति आदि शब्द इसी आदि द्वन्द्व के बोधक हैं। जीवदेह में ये शक्तियाँ प्राण और अपान रूप से रहती हैं। प्राण और अपान का परस्पर संघर्षण ही जीवन है। प्राण अपान को और अपान प्राण को अपनी ओर खींचता रहता है। इन दोनों को उद्बुद्ध कर दोनों में समता लाना योगी का परम कर्तव्य है। प्राण तथा अपान की समता, इड़ा और पिङ्गला की समता, पूरक और रेचक की समानता (अथवा कुम्भक), सुषुम्ना के द्वार का उन्मोचन—एक ही पदार्थ है। इड़ा वाम नाड़ी है और पिङ्गला दाहिनी नाड़ी है तथा दोनों की समानता होने पर, दोनों के मध्य में स्थित सुषुम्ना नाड़ी का द्वार आप से आप खुल जाता है। इसी द्वार के सहारे प्राण की ऊर्ध्व गति करना योगियों का परम ध्येय है। सुषुम्ना के मार्ग ही को कहते हैं मध्यम पथ मध्यम मार्ग, शून्यपदवी अथवा ब्रह्मनाड़ी। सूर्य और चन्द्र को यदि प्रकृति तथा पुरुष का प्रतीक मानें तो हम कह सकते हैं कि प्रकृति और पुरुष के आलिङ्गन के बिना मध्यम मार्ग कभी खुल नहीं सकता। वाम और दक्षिण के समान होने पर मध्यमावस्था का पूर्ण विकास ही निर्वाण है। इड़ा और पिङ्गला के समीकरण करने से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है। जब षट्चक्र का भेद कर आज्ञाचक्र से ऊपर साधक की स्थिति होती है तब कुण्डलिनी धीरे-धीरे ऊपर चढ़कर चैतन्य-समुद्ररूप सहस्रारचक्र में स्थित परम शिव के आलिङ्गन के लिए अग्रसर होती है। शिव-शक्ति का यह आलिङ्गन महान् आनन्द का अवसर है। इसी अवस्था का नाम युगल रूप है।

'वज्रयान' का ही दूसरा नाम 'सहजयान' है। सहजिया सम्प्रदाय के योगियों के मतानुसार 'सहजावस्था' को प्राप्त करना सिद्धि की पूर्णता है। इसी अवस्था

सहजावस्था

का नामान्तर निर्वाण, महासुख, सुखराज,[1] महामुद्रा-साक्षात्कार आदि हैं। इस अवस्था में ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान—ग्राहक, ग्राह्य तथा ग्रहण इस लोकप्रसिद्ध त्रिपुटी का उस समय सर्वथा अभाव हो जाता है। इसी अवस्था का वर्णन सरहपा (८०० ई० के आसपास) ने इस प्रसिद्ध दोहे में किया है :—

'जह मन पवन न सञ्चरइ, रवि ससि नाह पवेश।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेश॥'

अर्थात् सहजावस्था में मन और प्राण का सञ्चार नहीं होता। सूर्य और चन्द्र

१. जयति सुखराज एकः कारणरहितः सदोदितो जगताम्।
यस्य च निगदनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञः॥
(सरहपाद का वचन, सेकोद्देशटीका पृ० ६३)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

एकारस्तु भवेन्माता वकारस्तु रताधिपः ।
बिन्दुश्चानाहतं ज्ञानं तज्जातान्यक्षराणि च[1] ॥

अतः 'एवँ' युगलरूप का वाचक है। परमार्थ एक भी नहीं है, न दो ही है, अपितु दो होते हुए भी एकाकार है। इसी तत्त्व को वैष्णव 'युगलमूर्ति', तान्त्रिक-लोग 'यामल' तथा बौद्धलोग 'युगनद्ध' नाम से पुकारते हैं। जिस प्रकार दो बैल एक ही युग में बाँधे जाने पर अपनी भिन्नता खोकर एकता के सूत्र में बंध जाते हैं, उसी प्रकार यह परमतत्त्व (जो शिव-शक्ति अर्थात् प्रकृति-पुरुष के परस्पर मिलन का प्रतिनिधि है) दो होते हुए भी दो नहीं है। वह अद्वैत (दो नहीं), अद्वय (द्वय-नहीं) आदि पदों के द्वारा वाच्य होता है। इसी तत्त्व का प्रतिनिधि 'एवँ' पद हैं। इस बीज की उपयोगिता के विषय में सिद्ध काण्हपाद की यह रहस्यमयी उक्ति अवधान देने योग्य है—

एवँकार बीअ लइअ कुसुमिअ–अरविन्दए।
महुअर रुएँ सुरअ–वीर जिघइ मअरन्दए[2] ॥

साधक को प्रथमतः वैराग्य को दमन करना चाहिए जिससे वह 'वीर' पदवी को प्राप्त करता है। तब इसी 'एवँ' बीज को लेकर अच्युत (कभी च्युत न होने

१. सिद्ध काण्हपाद के २१ वें दोहे की टीका में उद्धृत 'हेवज्रतन्त्र' के वचन। द्रष्टव्य—दोहाकोष पृ० १५९।
२. काण्ह—दोहाकोष, दोहा ६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वाला), महाराग (अत्यधिक प्रेममय) सुख को चित्त उसी प्रकार अनुभव करता है, जिस प्रकार भ्रमर खिले हुए कमल के ऊपर बैठकर मकरन्द का स्वाद लेता है।

'एवं' तत्त्व का यथार्थ ज्ञान समग्र ज्ञेय पदार्थों की उपलब्धि है। इसका ज्ञान साधक को उच्चकोटि की सिद्धि में पहुँचा देता है। काण्हपाद कहते हैं—

एवङ्कार जे बुज्झिअ ते बुज्झिअ सअल असेस।
धम्मकण्रडओ सो हु रे णिअ-पहुधर-वेस[1] ॥

आशय यह है कि जिसने एवङ्कार को जाना है उसने समग्र विषयों को जान लिया है। परमार्थ के ज्ञाता के सामने जगत् का कोई भी विषय अज्ञेय नहीं रहता। शून्यता और करुणा की अभेदरूपिणी यह महामुद्रा धर्मकायरूप है अर्थात् बुद्ध का सत्य यथार्थ स्वरूप है। इसके ज्ञान होते ही साधक अपने प्रभु–वज्रधर–के वेश को धारण कर लेता है। इतना महत्त्वपूर्ण होने के कारण इस बीजमन्त्र का वज्रयानीय साधन में विशिष्ट गौरव है।

'एवँ' का आध्यात्मिक रहस्य

एवं तत्त्व की उद्भावना बौद्धतन्त्र-ग्रन्थों में की गई है। एवं शब्द तीन वर्णों–ए + व + ँ–से बना हुआ है और इसमें प्रत्येक वर्ण एक एक तत्त्वका प्रतीक है। एकार मातृशक्ति, चन्द्र तथा प्रज्ञा का द्योतक है। वकार शिवतत्त्व, सूर्य तथा उपाय का सूचक है। बिन्दु (ँ) दोनों के योग का प्रतीक है। इसी बिन्दु का दूसरा नाम अनाहत ज्ञान है। इस प्रकार 'एवं' शिव-शक्ति के सम्मिलन का सूचक है। एकार शक्ति त्रिकोण को सूचित करता है जो कि अधोमुख त्रिकोण ▽ है। वकार शिव त्रिकोण का प्रतिनिधि है जो त्रिकोण के बीच में ऊर्ध्वमुख से वर्तमान है। बिन्दु दोनों त्रिकोणों का केन्द्र स्थानीय है। इस प्रकार इसका यान्त्रिक निदर्शन इस प्रकार है।

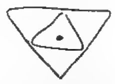

इस यन्त्र का आध्यात्मिक रहस्य हिन्दू-शास्त्रों में भी स्वीकृत किया गया है जो बौद्धों के सिद्धान्त से मिलता जुलता है। बौद्ध-ग्रन्थों के अनुरूप ही एकार शृङ्गाट (त्रिकोण) के रूप में शक्ति यन्त्र (भगयोनि) का प्रतीक है और वह वह्नि का गृह कहा गया है :—

त्रिकोणमेकादशमं, वह्निगेहं च योनिकम् ।
शृङ्गाटं चैव एकार-नामभिः परिकीर्तितम् ॥

१. वही—दोहा २१।
२२ बौ०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इसके तीनों कोण इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति को सूचित करते हैं। इसी के मध्य में बौद्धों के वङ्कार के समान चिञ्चिणी क्रम की स्थिति त्रिकोण के मध्य में बतलाई जाती है—

त्रिकोणं भगमित्युक्तं वियत्स्थं गुप्तमण्डलम् ।
इच्छाज्ञानक्रियाकोणं तन्मध्ये चिञ्चिणीक्रमम् ॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सहजिया लोगों में महामुद्रा का साक्षात्कार ही सिद्धि गिना जाता है। शून्यता तथा करुणा के अभेद को ही 'महामुद्रा' कहते हैं।[1] जिसने इस अभेद ज्ञान को प्राप्त कर लिया है, उससे अज्ञात कोई भी पदार्थ नहीं रहता। उसके लिए समग्र विश्व के पदार्थ अपने विशुद्ध रूप को प्रकट कर देते हैं। 'धर्मकरण्डक', 'बुद्धरत्नकरण्डक' तथा 'जिन-रत्न'—इसी महामुद्रा के पर्याय हैं। तन्त्रशास्त्र में शिव और शक्ति का जो तात्पर्य तथा स्थान है वही रहस्य तथा स्थान वज्रयान में शून्यता तथा करुणा अथवा वज्र और कमल का है। शिव-शक्ति के सामरस्य को दिखलाने के लिए तन्त्र में एक यन्त्रविशेष का उपयोग किया जाता है। यन्त्र में दो समकेन्द्र त्रिकोण हैं—एक ऊर्ध्वमुख त्रिकोण रहता है और दूसरा अधोमुख त्रिकोण। ये पृथक् रूप से शिवतत्त्व तथा शक्तितत्त्व के द्योतक हैं—इनका एकीकरण दोनों के परस्पर आलिंगन या मिलन का यान्त्रिक निदर्शन है। शून्यता तथा करुणा के परस्पर मिलन—वज्र और कमल का परस्पर योग—दोनों का रहस्य एक ही है—शक्तिद्वय का परस्पर मिलन या सामरस्य या समरसता।

महामुद्रा

इन्द्रियसुख में आसक्त पुरुष धर्मतत्त्व का ज्ञाता कभी नहीं हो सकता। वज्र-कमल के संयोग से जिस साधक ने बोधिचित्त को वज्रमार्ग में अच्युत रखने की योग्यता प्राप्त कर ली है अथवा जिसने शिव-शक्ति के मिलन से ब्रह्मनाडी में बिन्दु को चालित कर स्थिर तथा दृढ़ करने की सामर्थ्य सिद्ध कर ली है, वही महायोगी है। धर्म का तत्त्व उसकी ज्ञानदृष्टि के सामने स्वयं उन्मिषित हो जाता है। समस्त साधन का उद्देश बोधिचित्त या बिन्दु की रक्षा करना है। बोधिचित्त से अभिप्राय बोधिमार्ग पर आरूढ़चित्त से है[2]। ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे चित्त उस मार्ग से पतित न हो जाय। नाना प्रकार की साधना का फल काय, वाक् तथा चित्त की दृढता सम्पादन करना होता है। देवता के संयोग से काय की दृढ़ता, वज्रजाप के द्वारा चन्द्र-सूर्य की गति के खण्डन होने पर वाक् की दृढ़ता और सुमेरुशिखर पर श्वास को ले जाने से चित्त की दृढ़ता सम्पादित होती है। बिना इनकी दृढ़ता हुए साधक में परम चैतन्य की शक्ति का आविर्भाव हो नहीं सकता। यदि आविर्भाव सम्भवतः हो भी जाय तो उसे सहन या धारण करने की क्षमता साधक में नहीं रहती। इसीलिए गुरु इस दृढ़ता की प्राप्ति के लिए विशेष आग्रह दिखलाता है। इस दृढ़ता की अभिव्यक्ति 'वज्र' शब्द के द्वारा की

१. द्रष्टव्य ज्ञानसिद्धि १।५६-५७।

२. अनादिनिधनं शान्तं भावाभावक्षयं विभुम्।
शून्यताकरुणाभिन्नं बोधिचित्तमिति स्मृतम्॥ (श्रीसमाजतन्त्र पृ० १५३)
इसकी विस्तृत व्याख्या के लिए द्रष्टव्य (ज्ञानसिद्धि पृ० ७५)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

ऊपर ललना और रसना के एकत्र मिलन की बात कही गयी है। विशुद्ध होने पर ये दोनों 'अवधूती' के रूप में परिणत हो जाती हैं। उस समय एकमात्र अवधूतिका ही प्रज्वलित रहती है। 'अवधूतिका' के विशुद्ध रूप के लिए 'डोम्बी' शब्द का व्यवहार किया जाता है। वामशक्ति और दक्षिणशक्ति के मिलन से जो अग्नि या तेज उत्पन्न होता है उसकी प्रथम अभिव्यक्ति नाभिचक्र में होती है। इस 'अवस्था' में वह शक्ति अच्छी तरह विशुद्ध नहीं रहती। इसका सहजिया भाषा में सांकेतिक नाम 'चाण्डाली' है। जब चाण्डाली विशुद्ध हो जाती है तब उसे 'डोम्बी' या 'बङ्गाली' कहते हैं[3]। अवधूती, चाण्डाली और बङ्गाली

'डोम्बी' तथा 'चाण्डाली'

१. प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि ४।२२

२. प्रभास्वरं कल्पनया विमुक्तं, प्रहीणरागादिमलप्रलेपम्।
ग्राह्यं न च ग्राहकमग्रसत्त्वं, तदेव निर्वाणपदं जगाद॥
(प्र० वि० सि० ४।२४)

नागार्जुन के निम्नाङ्कित वचन से इसकी तुलना कीजिये।
निर्वाणस्य तु या कोटिः, कोटिः संसरणस्य च।
न तयोरन्तरं किञ्चित्, सुसूक्ष्ममपि विद्यते॥

३. तुलनीय भुसुकुपाद की यह प्रसिद्ध गीति—
आज भुसुक् बंगाली भइली। णिअ घरिणीं चण्डाली लेली॥
उहि जो पञ्चघाट णइ दिबिसंज्ञा णठा।
न जानमि चिअ मोर कहिं गइ पइठा॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

(या डोम्बी) एक ही शक्ति की त्रिविध अवस्था के नामान्तर हैं। अवधूती अवस्था में द्वैत का निवास रहता है क्योंकि उसमें इड़ा और पिङ्गला पृथक् रूप में अपना कार्य अलग-अलग निर्वाह करती है। चाण्डाली अवस्था में द्वैताद्वैत का निवास है तथा बङ्गाली अद्वैतभाव की सूचिका है। तन्त्र में शक्ति के जो तीन भेद—अपरा, परंपरा तथा परा—किये गये हैं उनका लक्ष्य इन्हीं तीनों भेदों से है। अवधूती अवस्था में वायु का संचार तथा निर्गम होता है, इसी का नाम संसार है। शक्ति को सरलमार्ग में ले आना अर्थात् वक्र गति को दूर कर सरलपथ में ले चलना साधक का प्रधान कार्य है सिद्धाचार्यों का उजू बाट[1] (ऋजुवर्त्म, सीधा मार्ग) यही है। वाम और दक्षिण की गति जब तक है तब तक हमारा मार्ग टेढ़ा (सिद्धों की भाषा में बाँक = वक्र) ही रहता है। इस मार्ग को छोड़कर सीधे मार्ग में आने के लिए सिद्धाचार्यों ने अनेक सुन्दर दृष्टान्त दिये हैं। इस मार्ग के अवलम्बन करने से वज्रयानी साधक को अपनी अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त होती है। अन्तिम क्षण में रागाग्नि आप से आप शान्त हो जाती है जिसका नाम है निर्वाण (या आग का बुझ जाना) रागाग्नि के निवृत्त होने से जिस आनन्द का प्रकाश होता है उसे कहते हैं—विरमानन्द। उस समय चन्द्र स्वभावस्थित होता है, मन स्थिर होता है, तथा वायु की गति स्तम्भित होती है। जिसके हृदय में विरमानन्द का प्रकाश उत्पन्न हो गया है, वही यथार्थ में योगीन्द्र, योगिराट् है तथा सहजिया भाषा में वही 'वज्रधर' पदवाच्य सद्गुरु कहलाता है।

१. मध्यमार्ग ही सरल मार्ग, ऋजु मार्ग या ऊजू बाट है। सरहपाद की उक्ति है :—

'ऊजू रे ऊजू छाड़ि ना ले गो रे वँक।'
निअहि बोहिया जाहु रे लाँक॥

अर्थात् ऋजुमार्ग को पकड़ो, ठेढ़े रास्ते को छोड़ दो।

सिद्धाचार्य शान्तिपद (प्रसिद्ध नाम भुसुक) की यह उक्ति भी माननीय है—

वाम दहिन दो बाटा छाड़ी।
शान्ति बुथेउ संकेलिउ॥

अर्थात् वाम और दक्षिण मार्ग को छोड़कर मध्यमार्ग का ग्रहण आवश्यक है। यही विशुद्ध 'अवधूतीमार्ग' या वज्रमार्ग है। बिना इसका आश्रय लिये बुद्धत्व, तथागतभाव या महासुख की प्राप्ति का दूसरा मार्ग नहीं है—एतद् विरमानन्दोपायमार्गं विहाय नान्यमार्गसद्भावोऽभिमुखोऽस्ति। इसी का द्योतक यह तन्त्र वचन है—

एष मार्गवरः श्रेष्ठो महायानमहोदयः।
येन यूयं गमिष्यन्तो भविष्यथ तथागताः॥

'घेरंड संहिता' में भी इन्हीं आठ प्रकार के कुम्भक की मान्यता दी गई है :—

संहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी, शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्ट कुम्भिकाः ॥
घे० सं०—पंचमोपदेशः श्लोक ४५

अर्थात् सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और केवली भेद से कुम्भक आठ प्रकार के हैं।

कवि ने सर्वप्रथम कुम्भक की परिभाषा एवं प्रक्रिया अथवा साधना का वर्णन किया है, तदनन्तर कुम्भक के विभिन्न अष्ट भेदों का परिचय दिया है। कुम्भक की प्रक्रिया और परिचय से सम्बन्धित निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करने योग्य हैं :—

पवन पूर पूरक ही कीजै। पाछे बन्ध जलन्धर दीजै॥
कुंभक रेचक के मांध जानै। आई बन्ध उड्यान पिछानै॥
पवन जोर ही सूं गहि लीजै। अर्ध ऊर्ध्व संकोच न कीजै॥
मध्यम कीजै पश्चिम तानै। बह्म नारिके माहि समानै॥
नाड़ी पवन खैचिये ऐसे। भरिये सब संध्यान जु जैसे॥
अपान वायु कूं ऊपर लावै। प्राण वायु नीचे ले जावै॥
जोपै यह साधन बनि आवै। योगी बूढ़ा होन न पावै॥
तरुण अवस्था देखे ऐसी। नितही रहै जानिये जैसी॥

कुम्भक की प्रक्रिया, लक्षण, स्वभाव तथा गुण आदि का वर्णन करने के अनन्तर कवि ने कुम्भक के अष्ट भेद का प्रारम्भ किया है। इस वर्णन में सर्वप्रथम प्रक्रिया का वर्णन किया है, तदनन्तर उसके लक्षण और महत्त्व का उल्लेख किया है। प्रायः यही क्रम आद्योपांत कुम्भक के समस्त भेदों का वर्णन करने में रखा गया है। कवि के मत से सूर्यभेद कुम्भक का सर्वप्रथम भेद है। योगशास्त्र के कुशल आचार्य घेरंड के मत से कुम्भक करते समय प्राणादि समस्त वायुओं को पिंगला नाड़ी से विभिन्न कर नाभिमूल देश से समान वायु को उठावे, पुनः धैर्य के साथ वेग पूर्वक वाम नासिकापुट से रेचन करे। तदनन्तर दक्षिण नासापुट से वायु भर कर सुषुम्ना से कुम्भक कर वाम नासा से रेचन करे। इस क्रिया को बारम्बार करना सूर्यभेद कुम्भक कहा जाता है।[1] दूसरे शब्दों में सावधानी पूर्वक सुगम आरामदेह आसन

---

१. सर्वे ते सूर्यसंभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत्।
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाखंडवेगतः॥
पुनः सूर्येण चाकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि।
रेचयित्वा साधयेत् क्रमेण च पुनः पुनः॥
घे० सं०—पंचमोपदेशः ५९-६१

दया—

समस्त धर्मों का मूल दया है। इसका विकाश सर्वप्रथम हृदय में होता है तदनन्तर कर्म और वाणी में प्रसार होता है—

दया सातवां अब सुनि लीजै। सब जीवन की रच्छा कीजै॥
लख चौरासी का सुखदाई। सबके हित को कहै बनाई॥
रहिये तन मन वचन दयाला। सबहीं सों निर्वैर कृपाला॥

आर्ज्जव—

आर्ज्जव के अन्तर्गत कवि ने कोमलता एवं दयालुता पर विशेष जोर दिया है। साधक को मनसा, वाचा, हृदय से तथा दृष्टि से कोमलता धारण करना चाहिये—

अठवें करूँ आर्य्यवे खोलै। कोमल हृदय सों कोमल बोलै॥
सबको कोमल दृष्टि निहारै। कोमलता तन मन में धारै॥
कोमल धरती बीज बोवावै। बढ़ै बेगि फूलै फल लावै॥
ऐसे कोमल हिया बनावै। योग सिद्धि करि पद पहुँचावै॥

मिताहार—

शुद्ध, अल्प तथा पोषक भोजन करना ही मिताहार है। कवि के शब्दों में ही—

मिताहार जो नवें की, समझ लेहु मन मांहि।
सतगुन भोजन खाइये, ऐसा वैसा नाहि॥
खावै अन्न विचारिकै, खोटा खरा संभार।
जैसा ही मन होत है, तैसा करै अहार॥

सूछम चिकना हलका खावै। चौथा भाग छोड़ि करि पावै॥
वानप्रस्थ कै हो सन्यासै। भोजन सोलह ग्रास गिरासै॥
अरु गृहस्थ बत्तीस गिरासा। आवनीय न बहुत न श्वासा॥
ब्रह्मचारी भोजन करै इतना। बदनमांह बीरज रहै जितना॥

प्रस्तुत उद्धरण में कवि ने सन्यासी, वानप्रस्थी तथा गृहस्थ के लिये क्रमशः सोलह एवं बत्तीस ग्रास भोजन हितकर बताया है।

शौच—

शुद्धि दो प्रकार की होती है—आभ्यन्तरिक तथा बाह्य। सद्भावनाओं से आन्तरिक शुद्धि तथा मज्जन, स्नानादि से बाह्य शुद्धि होती है। इन्हीं दोनों प्रकार की शुद्धियों का उल्लेख कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में किया है :—

इस ग्रन्थ के आरम्भ में पूज्यपाद पण्डित हरप्रसादशास्त्री जी ने लम्बी भूमिका लिखी है जिसमें बौद्धसम्प्रदायों के सिद्धान्तों का पर्याप्त विवेचन है। बहिःशक्ति की प्रधानता होने पर सृष्टि होती है और अन्तःशक्ति की प्रधानता होने पर

१. इन समग्र ग्रन्थों के संग्रह के लिए द्रष्टव्य 'अद्वयवज्रसंग्रह' (गा० ओ० सी० सं० ४०), बरोदा १९२७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized [illegible] Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

संहार होता है। स्थिति उभय शक्तियों की समानता का निदर्शक है। शिव-शक्ति, पुरुष–प्रकृति आदि शब्द इसी आदि द्वन्द्व के बोधक हैं। जीवदेह में ये शक्तियाँ प्राण और अपान रूप से रहती हैं। प्राण और अपान का परस्पर संघर्षण ही जीवन है। प्राण अपान को और अपान प्राण को अपनी ओर खींचता रहता है। इन दोनों को उद्बुद्ध कर दोनों में समता लाना योगी का परम कर्तव्य है। प्राण तथा अपान की समता, इड़ा और पिङ्गला की समता, पूरक और रेचक की समानता (अथवा कुम्भक), सुषुम्ना के द्वार का उन्मोचन—एक ही पदार्थ है। इड़ा वाम नाड़ी है और पिङ्गला दाहिनी नाड़ी है तथा दोनों की समानता होने पर, दोनों के मध्य में स्थित सुषुम्ना नाड़ी का द्वार आप से आप खुल जाता है। इसी द्वार के सहारे प्राण की ऊर्ध्व गति करना योगियों का परम ध्येय है। सुषुम्ना के मार्ग ही को कहते हैं मध्यम पथ मध्यम मार्ग, शून्यपदवी अथवा ब्रह्मनाड़ी। सूर्य और चन्द्र को यदि प्रकृति तथा पुरुष का प्रतीक मानें तो हम कह सकते हैं कि प्रकृति और पुरुष के आलिङ्गन के बिना मध्यम मार्ग कभी खुल नहीं सकता। वाम और दक्षिण के समान होने पर मध्यमावस्था का पूर्ण विकास ही निर्वाण है। इड़ा और पिङ्गला के समीकरण करने से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है। जब षट्चक्र का भेद कर आज्ञाचक्र से ऊपर साधक की स्थिति होती है तब कुण्डलिनी धीरे-धीरे ऊपर चढ़कर चैतन्य-समुद्ररूप सहस्रारचक्र में स्थित परम शिव के आलिङ्गन के लिए अग्रसर होती है। शिव-शक्ति का यह आलिङ्गन महान् आनन्द का अवसर है। इसी अवस्था का नाम युगल रूप है।

'वज्रयान' का ही दूसरा नाम 'सहजयान' है। सहजिया सम्प्रदाय के योगियों के मतानुसार 'सहजावस्था' को प्राप्त करना सिद्धि की पूर्णता है। इसी अवस्[illegible] [illegible] का नामान्तर निर्वाण, महासुख, सुखराज,[1] महामुद्रा-[illegible]त्कार [illegible]नावस्था आदि हैं। इस अवस्था में ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान—[illegible]र्क, ग्राह्य तथा [illegible]ण इस लोकप्रसिद्ध त्रिपुटी [illegible] समय सर्वथा अभाव हो जाता है। इसी अवस्था का वर्णन सरहपा (८०० ई० के आसपास) ने इस प्रसिद्ध दोहे मे किया है :—

'जह मन पवन न सञ्चरइ, रवि ससि नाह पवेश।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेश ॥'

अर्थात् सहजावस्था में मन और प्राण का सञ्चार नहीं होता। सूर्य और चन्द्र

१. जयति सुखराज एकः कारणरहितः सदोदितो जगताम्।
यस्य च निगदनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञः ॥
(सरहपाद का वचन, सेकोद्देशटीका पृ० ६३)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

चौपाई

इड़ा पिंगला सुख मन धारो, आसन वज्र नागिनी ढारो.

अष्ट पदी

द्वादस अंगुल हो, बेध षट चक्कर लीजे;
जब बाजे अनहद तूर, जहां मन निजकर दीजे.

चौपाई

खेचरी मुद्रा त्रकुटी आवे, अमृत पिये परम सुख पावे.
मेरु डंड को प्राण चलायो, शून्यशिकरजबनगरीपावो.
जा नगरी में चंदन भान, पहुंचे साधू चतुर सुजान.

जहांजातिपांतिनामनहिंनाता,श्वेतअरुश्यामपीतनहींराता.
योग यज्ञ तप जहां न दाना, तीरथ व्रत जहाँ नहींन्हाना.
क्रिया कर्म जहां नहिं पूजा, मैं तू नहीं एक नहिं दूजा.
जहां दिवसअरुसांझन राता, एकहि ब्रम्ह अखंड विधाता.

दोहा

चरणदास राम की घाटी, पहुंचे गुरु मति शूरा।
ओछी बुद्धि बाद बहु ठाने, करनी करे सो पूरा॥

छप्पय

बैठ गुफा के मध्य, योग की युक्ति विचारे.
आय अकेलो रहे, और ना मनुष निहारे.
चार वार नित करे, जाय ओम् आराधे.
सूक्षम करे अहार, ओंम रोपत लो साधे.
आसन पदम लगाय के, सीधो राखे मेर.
ठोड़ी हिये लगाइये, पलक झांप करि हेर.

दोहा

कुंभक आठ प्रकार के, तिन में उत्तम येक।
केवल कुंभक जानिये, ताकों साध विशेष॥
त्रिकुटी में तीरथ अगम, तिर वेनी जिहिनाम।
न्हाय योग की युक्ति सों, पूरन हो सब काम॥
रनजीत कहे तहाँ न्हाइये, त्रिकुटी तीरथ धाम।
नित परवी जहाँ होत है, भजन करौ निह काम॥

चौपाई

16:36
Bhakti Sagar

जयजयवन्ती

ऐसी जो युक्ति जानें, सोई योगी न्यारा भाई
आसन जो सिद्ध करे, त्रिकुटी में ध्यान धरे;
बिना तेल दिवा वारे, जोति हू उजारा.
संयम संभार साध, मूल द्वारबन्ध बांध;
शंखिनी उलट साध, काम देव जारा.
प्राण वायु हिये माहिं, खेंच कै अपान लाई;
दोउ नीके मिल जाई, ऐसा खेल धारा.
कुम्भक अथक राखे, अनहद की ओर ताकें;
सुष्मन पैठ नाके, आगे जो बिचारा.
खाल के कपाट शिरा, कोऊ चढ़े शूर बीरा;
काम धेनु जावे तीरा, अमी को उबारा:
उन मुनी जाय लागे, निज घर माहिं जागे;
जनम मरण भागे, छूटे जग भारा.
गुरु शुकदेव कहैं, करनी या विधि लहैं;
चरणदास हो रहैं, आप को संवारा

राग सारंग

पीवे कोई यह प्याला मतवाला
सुर नर मुनि वा मद को तरसे, गुरु बिन लहने वाला.
शूद्र के घर भाटी औटे, ब्रह्मा अग्नि जलाई:
शिव शोधें अरु विष्णु चुवावें, पीवें साधु अघाई.
सीता प्याला भर भर देवे, हनुमान हंकारें.

व्यास शेष नारद सनकादिक, किरिया नाहिं विचारें.
नवधा नेमरु संयम पूजा, विसरी सब का कहिये.
घूमत रहे महा मद छाके, स्वर्ग मुक्ति न चहिये.
शुकदेव सुधारस अमृत, नित प्रति अचवन कीन्हा.
चरणदास पै कृपा करके, निज प्रसाद कर दीन्हा.

सारंग

साधो यह प्याला मतवार है.
अचवेगा कोई योगी युक्ता, चित अस्थिर मन मार है.
चन्द्र सूर्य दोउ सम कर राखे, ब्रह्म ज्वाल अन्तर बरे.
मुद्रा लगे खेचरी जबहीं, बंकनाल अमृत झरे.
भँवर गुफा में भाटी औटे, भबक भबक सुष्मन चुवे.
सगुरा पीपी रहित भये हैं, बिन पिये उपजे मुवे.
शिव सनकादिक नारद शारद, और पिया नव नाथ हैं.
सिद्ध मुनि योगीश्वर आदिक, पीकर भये सनाथ हैं.
रामानन्द कबीर नामदेव, अमर हुआ जिन जिन पिया.
गुरु शुकदेव करी जब किरपा, चरणदास को सोई दिया.

बिलावल

16:35
Bhakti Sagar

जो जन अनहद ध्यान धरे .

पांचों निर्बल चंचल थाके , जीव ही जीव मरे.
शोधे मूल बन्द दे राखे , आशन सिद्ध करे .
त्रिकुटी लाय सुरति ठहरावे, कुम्भक पवन भरे .
घन गर्जे अरु बिजली चमके , कौतुक गगन घरे .
बहुत भांति जहं बाजन बाजें , सुन सुन संध श्ररे .
सहज सहज सों होय प्रकाशा, व्याधा सकल हरे .
जग की आश बास सब छूटे , ममता मोह जरे
शून्य शिखर पर आपा बिसरे , काल सों नाहिं डरे.
चरणदास शुकदेव कहत हैं , सब गुण ज्ञान गरे .

तथा

तब तैं अनहद घोर सुनी .
इन्द्री थकित गलित हूयो , आशा सकल भुनी .
घूमत नयन शिथिल भई काया, अमल जु सुरति सनी.
रोम २ आनंद उपज कर , आलस सहज बनी .
मतवारे ज्यों शब्द समायो , अन्तर भीज कनी .
भर्म कर्म के बन्धन छूटे , दुविधा विपति हनी .
आपा बिसर जगत को बिसरो , कित रहीं पांच जनी .
लोक भोग सुध रही न कोई , भूले ज्ञान गुनी .
हो तहँ लीन चरणही दासा , कहैं शुकदेव मुनी .
ऐसो ध्यान भाग सों पैये , चढ़ रह शिखर अनी.

राग बिलावल

घट में खेल ले मन खेला ;
सकल पदारथ घर ही माहीं, हरि सों होय जु मेला.
घट में देवल घट में जाती , घट में तीरथ सारे ;
बेगहि आव उलट घट माहीं , बीते पर भी न्हारे .
घट में मान सरोवर शुभ है , मोती और मराला ;

दोहा

जीव ब्रम्ह हो जात है, रहै न कछू लगाव।
चरणदास यों कहत है, ऐसा किये उपाव ॥
चेतन ज्यों का ज्यों सदा, सदा अकर्ता जोय।
सब करमन सों रहित है, आतम ऐसा होय ॥
काहू तें उपजो नहीं, वातें भयो न कोय।
वह न मरे मारे नहीं, राम कहावे सोय ॥
योग युक्ति कर खोजले, सुरति निरति कर चीन्ह।
दश प्रकार अनहद बजे, तहां होय मन लीन्ह ॥
तीन बंध नौ नाटिका, दश वाई को जान।
प्राण अपान समान हैं, अरु कहियत उद्यान ॥
व्यान वाय अरु किरकिला, कूरम वायू जीत।
नाग धनंजय देवदत्त, दश वायू रन जीत ॥
नवहु द्वार को वंद कर, उत्तम नाड़ी तीन।
इड़ा पिंगला सुषमना, केलि करे परवीन ॥
करते प्राणायाम के, पावे आतम भेष।
अनहद धुनि के बीच में, देखे शब्द अलेख ॥
पूरक कर कुंभक करे, रेचक पवन उतार।
ऐसे प्राणायाम कर, सूक्षम करे अहार ॥
धरती बंध लगाय के, दसों वायु को रोक।

मस्तक प्राण चढ़ाय के, करे अमर पुर भोग ॥
पांचो मुद्रा साध के, पावे घट का भेद।
नाड़ी शक्ति चढ़ाइये, षट चक्कर कौ छेद ॥
नाशा ध्यान दृष्ट भृकुटी में, सुरति श्वास के माहिं।
आतम देखो जात है, या में संशय नाहिं ॥
योग युक्ति को कीजिये, कै आतम को ध्यान।
आपा आप विचारिये, परम तत्व को ज्ञान ॥

दोहा

गगन मध्य में कमल है, बाजत अनहद तूर।
दल हजार को कमल है, पहुंचे गुरु मति शूर॥
गगन मँडल के कमल में, सतगुरु ध्यान निहार।
चरणदास शुकदेव कह, परसे मिटे विकार॥
सहस्र दल के कमल में, रूप अगम अपार।
सोऽहं सोऽहं जाप सो, सहजै होत हजार॥

छप्पय

नौ नाड़ी की खेंच, पवन लै उर में दीजे।
बज्जर ताला लाय, द्वार नौ बंध करीजे॥
तीनों बंध लगाय, अस्थिर अनहद आराधे।
सुरति निरति का काम, राह चल गगन अगाधे॥
शून्य सिखर दृढ़ चढ़े, तहां जाय आसन करे।
भन चरणदास तारी लगै, सो राम दरश कलिमल हरे॥

छप्पय

चौथा पद निर्वान, धाम बेगम पुर कहिये;
गुण अतीत तहँ राम, नृपति नयनन सुख लहिये.
अद्वैत रूप अखंड, मंड मंडल बहु बंका;
जहां काल नहिं जाय, शब्द अति उठे निशंका.
निज पारब्रम्ह चौंरी रची, शिव सहित शक्ति फेरी करें;
भन चरणदास चारों मुक्ति सों, हाथ जोर पाइन परें.
मूल कमल में खेल, पिया को देखन चलिये;
उलट वेध षट चक्कर, जा सतवें सों मिलिये.
प्राण अपान मिलाय, राह पच्छी की लीजे;
बंक नाल कर शुद्ध, प्राण लै तामें दीजे.
मेरु डंड चढ़ जाय जब, लोक २ की गम पड़े;

भन चरणदास ब्रम्हंड में, ब्रम्ह दरशी दर्शन करे.

दोहा

चरणदास यह बिधि कही, चढ़ने को आकाश।
सोधि सोधि साध अगम, पूरण ब्रह्म बिलास॥

छप्पय

अमरी वजरी साध, बायु सरने नहिं पावे.
द्वादश अंगुल प्राण, सुरति दे ताहिं घटावे.
मौंन गहै नित रहै, अल्प सूक्ष्म सो बोले.
एक वार आहार जम्हाई, कबहु न खोले.
बांध सुजाय दृढ़ छींक को, अनहद धुन अति गाजई.
भन चरणदास शुक देव वल, सु योग युक्ति इमि साजई.

दोहा

मन पवना बश कीजिये, ज्ञान युक्ति सों रोक।
सुरत बांध भीतर धसे, सूझै काया लोक॥
मन हिरदे में रहत है, पवन नाभि के माहिं।
इन्दर रोके ये रुके, और कछू विधि नाहिं॥

छप्पय

सूक्ष्म करे अहार, जीत धरनी जब लेई.
नीर जीत जब लेय, विंदु जाने नहिं देई.
मोह लोभ जब तजै, अग्नि को जीत मिलावे.
पवन जीत जब लेय, गगन को बांधि चलावे.
अरु हर्ष सोग सम कर गिने, पांच जीत ऐकै करे.
भन चरणदास साधन गहे, होय प्रकाश कारज सरे.

दोहा

गगन मध्य में कमल है, बाजत अनहद तूर।
दल हजार को कमल है, पहुंचे गुरु मति शूर॥
गगन मँडल के कमल में, सतगुरु ध्यान निहार।
चरणदास शुकदेव कह, परसे मिटे विकार॥
सहस्र दल के कमल में, रूप अगम अपार।
सोऽहं सोऽहं जाप सो, सहजै होत हजार॥

छप्पय

नौ नाड़ी की खेंच, पवन ले उर में दीजे।
बज्जर ताला लाय, द्वार नौ बंध करीजे॥
तीनों बंध लगाय, अस्थिर अनहद आराधे।
सुरति निरति का काम, राह चल गगन अगाधे॥
शून्य सिखर दृढ़ चढ़े, तहां जाय आसन करे।
भन चरणदास तारी लगै, सो राम दरश कलिमल हरे॥

छप्पय

दोहा

नारि संखिनी गुदा में, कुर कुल लिंग अस्थान।
पोषा सरवन दाहिने, जस्वनी बाये कान॥
गंधारी दृग बाम है, हस्तिनी दहिने नैन।
नारि लंबिका जीभ में, सकल स्वाद की देन॥
नाशा दहिने अंग है, पिंगला सूरज बास।
इड़ा सुबायें ओर है, जहँ शशि और प्रकाश॥
दोनों के मध सुष्मना, अद्भुत या को भेव।
ब्रम्ह नाड़ी हू कहित है, सो या कहि शुकदेव॥
इड़ा ब्रम्हा जमुना जहां, सुषमन विश्नु निवास।
और सरस्वति जानिये, ये हो चरनहि दास॥
शिव पिंगल गंगा सहित, सो वह दहिने अंग।
तिरबेणी याते भई, मिला जु तीनों संग॥
कभी इड़ा सुर चलत है, कबहीं पिंगल माहिं।
मध्य सुषमना बहत है, गुरबिन जाने नाहिं।
सो वह अग्नि स्वरूप है, बड़ी योग सरदार।
याही तें कारज सरे, ऐसी, सुषमन नार॥

चौपाई

इन सों प्राणायाम करीजे, पूरक कुंभ करे चक हीजे.
इड़ा पिंगला मारग थाके, उलट सुषमना चालन लागे.
वायु खेंचना पूरक जानों, ठहरा वन कों कुंभक मानों.
फेर उतारे रेचक वोई, प्राणायाम कहावे सोई.

दोहा

इड़ा पवन पूरक करे, कुंभक राखे रोक।
रेचक पिंगल सों करे, मिटे पाप के थोक॥

चौपाई

पिंगल रोके पवन न जोवे, इड़ा ओर सों वायु चढ़ावे.
कुंभक करि हिय चिबुक लगावे, जित का तित मन कू ठहरावे.
सोलह मात्रा पूरक लीजे, चौंसठ कुंभक में जप कीजे.
रेचक फिर बत्तीस उतारो, धीरे धीरे ताहि निवारो.
पहिल २ ही कीजे आधे, तीन महीने ऐसे साधे.
या सों आगे फेर बढ़ावे, दोय आठ अरु चार चढ़ावे.
बाढ़त २ ऐसहि बाढ़े, या ही चौंसठ तांई चाढ़े.
इड़ा वायु सों पूरक कीजे, पिंगल सों रेचक तज दीजे.
फिर पिंगल सों पूरक धारे, बहुर इड़ा ही सों निरवारे.
ऐसी बारी बारी करिये, जीते प्राण वायु अघ हरिये.
होय सके कुंभक सर कावे, चौंसठ से भी परे बढ़ावे.

शिष्यो वाच

दोहा

मन्दिर भंवर गुफा में, तहां त्रिवेणी स्थान।
नित परवी तहँ होत है, करे पाप की हान ॥
उलटी पवन बेधे षटन, ऊपर पहुंचे जाय।
शुकदेव कहें चरणदास जु, सुष्मन सहज समाय ॥
कमल सहसदल सातवां, शीस मध्य है बास।
तहां देवता सतगुरू, पूरी करें जु आस ॥
जहँतक सुष्मन का सिरा, सो सातों की नाल।
हैं वे उलटे षट कमल, तले अपान बयाल ॥
अपान वायु को साध के, ऊपर लावे मोर।
जब होवें उलटे कमल, मुख अकाश की ओर ॥
अपान वायु ज्यों २ चढ़े, चक्कर २ पास।
त्यों २ सीधे होंय सब, पूरा जान अभ्यास ॥
अपान वायु आवे जबे, चक्र अनाहद माहिं।
दश प्रकार के नाद हू, शनैः शनैः खुलजाहिं ॥

चौपाई

पहिले नाद खुले जो ऐसा, चिड़ी चिंकला बोले जैसा.
एकहि बार कहे यो चिन्न, दूजी बार खुले चिन्न चिन्न.
छुद्र घंट ज्यों तीजे जानो, चौथी नाद शंख पहिचानो.
पंचम नाद बीन ज्यों गाजे, छठवीं नाद ताल ज्यों बाजे.
सप्तम उपजे मुरली ऐसी, अष्टम उठे पखावज जैसी.
नवें नफीरी नाद सुनावे, दशवें सिंह गरज उपजावे.
नौ तज दशवें सों हित लावे, अनहद सुनअनहदहोजावे.
होयजीव सो ब्रम्ह अगाधा, जो कोइ सुनेसुअनहदनादा.

दोहा

खुले सु अनहद नाद ज्यों, सो साधन सुन लेहु।
जासों पहुंचे सिद्धि कों, सो करनी चित देहु ॥
अधार चक्र सों खेंच कें, अपान वायु सज लेहु।
सुधिष्टान के पास ही, तीन लपेटा देहु ॥

चौपाई

या की विधि सब तोह सुनाऊं, जैसे हैं तैसे समझाऊं.
पहिले मूल द्वार को शोधे, बंध लगाय अपान निरोधे.
पहिले चक्कर में पहुंचावे, खेंच दूसरे के ढिग लावे.
वाके आसहि पास फिरावे, दहिने तीन लपेट लगावे.
फिर मन पूरक में पहुंचावे, फेर अनाहद में ले जावे.
अनहद खुले सुने सुख पावे, फिर वहां प्रानअपानमिलावे.
हिरदय कंठ मध्य ठहरावे, संयम सों ताको परचावे.
बंध दूसरो तहां लगावे, चरणदास शुकदेव बतावे.

वही तो अडिग राम , चरणदास चेरो जाको ;
वही तो अडिग राम , काया खोज पायो है ,

कवित्त

माया भ्रम फन्द देख , साधुन को संग पेख ;
राम जी को पहिर भेष , कंचन तन तावरे .
मन को पहिचान ज्ञान , एका एकी सबै जान ;
नाद के गहे ते तू , अनहद बजाव रे .
उलट पलट काया बीच , चारों कर दूर नीच ;
ऐसी मेर पै समीर , गगन को चढ़ाव रे .
भनत यों चरणदास , गगन मध्य करो वास ;
जहां नहिं शीत उष्ण , निर्भय पद ध्याव रे .

दोहा

दुर्योधन रावण गये , अरु यादव परिवार ।
चरणदास थिर कौन है , होय मिटे सन्सार ॥

कवित्त

भोर सो विहानो जात ढरेगी दुपहरी सी ;
समझ के विचार देख चली आवे रात है .
भंवत है सचान काल तेरे पर तक रहो ;
क्षण पल की खबर नाहिं करे आय घात है .
दारा सुत सम्पति सब स्वप्न कासा सुख भयो ;
जानोगे तभी जब छूट जाय गात है .
कहत यों चरणदास अब तजो क्यों न विषय वास ;
पानी में नाव तैसे , आव चली जात है .

कवित्त

कुमारग सों भाज , और लाज खोटे कर्मन सों ;

गुरू बचन

अब आठों कुंभक कहौं, नाम भेद गुण रूप।
कहैं शुकदेव प्रसिद्ध हैं, योगहि माहिं अनूप॥
प्रथमहिं कुंभक ही कहौं, नाम जु सूरज भेद।
दूजे याहू को सुनो, साधे छूटे खेद॥
शीतकार अरु शीतली, पंचमी भस्त्र का जान।
छठी भ्रामरी नाम है, नीके कर पहिचान॥
नाम मूर्छा सातवीं, अठवीं केवल होय।

रन जीता सब से बड़ी, आयु बढ़ावे सोय॥

चौपाई

पवन पूर पूरक ही कीजे, पाछें बंध जलंधर दीजे।
कुंभक रेचक के मध जानो, बंध उड़ान वही पहिचानो।
पवन जोर ही से गह लीजे, अर्ध ऊर्ध संकोच न कीजे।
मध्यम कीजे पश्चिम ताने, ब्रम्ह नाड़िका माहिं समाने।
नाड़ी पवन खैंचिये ऐसे, भरिये सब संधिन जू जैसे।
अपान वायु ही ऊपर लावे, प्राण वायु नीचे ले जावे।
जोपै यह साधन बनि आवे, योगी बूढ़ा होन न पावे।
तरुण अवस्था दीसे ऐसी, नितही रहै जानिये जैसी।

अथ सूर्य भेदन

कुंडलिया

कुंभक सूरज भेदही, पहिले देहु सुनाय।
सुख आसन कै कीजिये, अथवा वज्र लगाय॥
अथवा वज्र लगाय, पूरक दहिने स्वर कीजे।
नख शिख सेती रोक, वायु को बंध करीजे॥
बायें सेती रेचिये, धीरे २ जान।
कपाल शोधनी जानिये, चरणदास पहिचान॥
वायु किरम पीड़ा हरे, कीजे बारंबार।
कुंभक सूरज भेदनी, चरणदास हिय धार॥

अथ उज्जाई

चौपाई

अब उज्जाई कुंभक सुनिये, सतगुरु सीख मन माहीं गुनिये।
दोइ स्वर सम कर पवन चढ़ावे, पेट कंठ लों ताहि भरावे।
ताको रोकै दृढ़ कर राखे, सहज इड़ा सों रेचक नाखे।

चरनदास समुझाय कह्यो शुकदेव ही ।
शनैः शनैः कर पाय लाभ यह देहही ॥

दोहा

मूल बंध अरु खेचरी , मुद्रा ही को जान ।
दोनों के साधे बिना , अपान न होवे प्रान ॥

चौपाई

मुद्रा खेचरि कहौं बखाने , जाको कोटि में कोई जाने .
सकलशिरोमणियोगमँझारी , ज्यों देहिन्ह में छत्तर धारी .
शीश फूल ज्यों गहने माहीं , या बिन तारी लागे नाहीं .
साधन कर २ जीभ बढ़ावे , ब्रह्म रंध्र ताईं सो लावे .
उरे ताल वा ठौर कहावे , रसना सों तहँ बंध लगावे .
जासों पवन न सरकन पावे , श्रवण नैन जो बाट रुकावे .
प्राण वायु बाहिर नहिं आवे , मुखनाशा होनिकसनजावे .
शुकदेव कहै चरनदास बताऊं , आगे मूल बंध समझाऊं .

इति खेचरी

अथ मूलबंध लिख्यते

दोहा

मूलबंध जानो यही , एड़ी गुदा लगाव ।
थक दहिनी बामी कभी, सिद्धासन ठहराव ॥

चौपाई

मूलबंध जा कारण दीजे , सो मैं कहों सबै सुन लीजे .
अधार चक्र सों पवन उठावे , स्वधिष्ठानहिं के ढिग लावे .

दाहिनी ओर जु ताहि फिरावे , ऐसे तीन लपेट लगावे .
सीधी हो ऊपर को धावे , मन पूरक चक्कर में आवे .
शनै शनै पुनि ताहि चढ़ावे , चक्कर २ में पहुंचावे .
सुवि चक्कर के ऊपर ताईं , ब्रह्म रंध्र के लावे ठाईं .
ऐसे षट चक्कर कों शोधे , प्राण वायु को यों परमोधे .
वायु अपान जु यां तक आवे , प्राण वायु हो सहज समावे .
कह शुकदेव चरणहीदासा , सहज शून्य में करे निवासा .

अथ अष्ट प्रकार के कुंभक

गुरुरु वाच

ओं बिन्दी सहित ही, ताही मात्रा जान।
बीज मंत्र तासों कहत, प्रणवह को पहिचान॥
कोमल भोजन कीजिये, आधी रखिये भूख।
पवन बास सुख सों जहां, तन नहिं पावे दूख॥
साठ घड़ी दिन रात की, आठ तासु के याम।
लीजे चौथा भागही, कीजे प्राणायाम॥
चार भाग ताके करे, चार समै ठहराय।
चार चार छटिका करे, दृढ़ ब्रत चित्त लगाय॥

चौपाई

और दूसरी भांति सुनी जे, होय न सकै तो या कों कीजे.
बारह ऊपर पवन चढ़ावे, कुंभक माहि बीस ठहरावे.
बारह पिंगल पवन उतारे, रात दिना में चारहि बारे.
फेर बढ़ावे कुंभक दुगुनी, केते दिवसन में फिर तिगुनी.
फिर पिंगल सों पूरक लीजे, इड़ा वायु रेचक ही कीजे.
बिरिया एक इड़ा सों खेंचे, पिंगल दूजी बार सु ऐंचे.
कबहूं यासे कबहूं वासों, रेचक करे सो पूरक जासों.
कुंभक तिगुनी सों अधिकावे, होय सकै जितनी सरकावे.

दोहा

भांति दूसरी और सुन, साधन अधिक अनूप।
गुर बिन भेद न पाइये, महा गूप सों गूप॥

अष्ट पदी

प्रान बाय की जुगति कहो जो बात है।
द्वादश अंगुल नाशिका आगे जात है॥

संयम ही सों सहज जु उलट घटाइये।
शनैः शनैः साध जु ताहि समाइये॥
अपान वायु कों खेंच प्रान घर लाइये।
फिर बाहर सों रोकि जु तिन्हें मिलाइये॥
तीन करम पूरक के कुंभक के कहे।
रेचक हीके कर्म दोय निश्चय भये॥
दो रेचक के कर्म पूरक के कहे तीन ही।
ये सब ही रह जांय होय जब छीन ही॥
पूरक रेचक छूटे केवल कुंभक वही।
ठौर समै का बंधन राखे ना सही॥
या किरिया को अंत जानो तुम वहां ताहीं।
प्रानहि वायु को रोके काया के माहीं॥

दोहा

17:23
Bhakti Sagar.pdf

अष्ट पदी

तन मथने का यत्न, कहूं अब जानिये;
ज्यों निकसे ततसार, विलोवन ठानिये.
पहिला चक्कर जान, मूल द्वारे विषे;
जितही पांव की एड़, सोई बंध दे रखे.
मूल चक्र सो खेंच, अपान चलाइये;
दूजे चक्कर पास, जु आन फिराइये.
दहिने ओर सो तीन, लपेटे दीजिये;
तीजे चक्कर माहिं, गमन फिर कीजिये.
चौथे चक्कर माहिं, पवन जो लाइये;
वहुरि पांचवें, चक्कर में पहुंचाइये.
षष्टम चक्कर माहि, जु ताहिं चढ़ाइये;
सो त्रिकुटी के मध्य, तहां ठहराइये.

रोके त्रिकुटी माहिं, प्राणही वायु को;
षट चक्कर कों छेद, चढ़े जब धावहू.
अपान वायु चढ़ जाय, वही अस्थान है;
प्राणवायु होय जाय, साधु कोइ जान है.
रोके प्राण वायु, त्रिकुटी मध्य ही;
ओंकार कर ध्यान, शीश मग ध्यावही.
यह तो ऊंचा ध्यान, जु अधिक अनूप है;
चरणहिदास होय जु, ब्रम्ह स्वरूप है.

एक बार फिर खोल कें, कुंडलनी समझाय।
याके सबही भेद को, सुन वे को अति चाव॥

गुरुरु वाच

फिर भी तोसों कहत हों, कुंडलनी विस्तार।
ताके सबरे भेद ही, सुनकर हिय में धार॥
नाभि स्थान नागिनि रहै, कुंडल शशि आकार।
प्राणं पियारा वही है, आगे सुनो विचार॥
कुम्भक कोई कर्म कर, देवे शक्ति जगाय।
जैसे लागी लष्ठिका, नागिनि शीश उठाय॥

चौपाई

सीख गुरू सों कुंभक साधे, नीकी विधि ताको आराधे.
पवन ठमक लग ताहि जगावे, तवै ऊर्ध कों शीश उठावे.

नाभि ठौर ताका है वासा, पद्म राग मन ज्यों परकाशा.
सात लपेटे बामी जानो, तातें शक्ति कुँडलनी मानो.
नाड़ी सहस लगी हैं वाको, एपर छुटी जानिये ताको.
नाड़ी त्रै तिन में अधिकाई, इड़ा पिंगला सुष मन गाई.
तिनकेमाहिंशिरोमणि सुषमन, नालकमलजानतयोगीजन.
जा पहुंची वृम्ह रंधरताई, ऊर्ध कमल सात वें माहीं.
आवन जान पवन की वाटा, सकत चलन ऊरध का घाटा.
कहि शुकदेव चरण के दासा, आगे कहूं जु होय प्रकासा.

दोहा

नागिनि सूक्ष्म जानिये, वाल सहसवां भाग।
शुकदेव कहे आकार ही, रक्त वर्ण ज्यों नाग॥
कुंभक होय अत्यन्त जब, तबहि ऊर्ध कों जाय।
ब्रह्म रंध्र में आय के, घड़ी दोय ठहराय॥
करै अमियका पान सो, पूरा होय अभ्यास।
उड़ते देखो सिद्ध तब, वाको माहिं अकास॥

चौपाई

पै देखत हैं नैन बिनाही, चहै करै लीला उन माही.
खेचर मिल खेचर हो जावे, यह विधि शक्ति उड़न कीपावे.
अधकी ठहरे लगै समाधा, यह तो कहिये खेल अगाधा.
शिव शक्ती जहँ मेला होई, होय लीन मन उन मुनि सोई.
योग युक्ति कर याको पावे, परा शक्ति अपने वस लावे.
चाहे अर्ध ठौर ले आवे, जब चाहे ऊर्धहि ले जावे.
कबहूं हृदय मध्य ही आने, याही कों आपन पन जाने.
इच्छा करे सिद्धि की जैसी, होवे प्राप्ति बेग ही वैसी.
चहै स्थूल सूक्ष्म तन धारू, वैसा ही हो जाय सवारू.
भन शुकदेव चरणही दासा, जो कुंडलनी हृदय प्रकाशा.

अथ भस्त्रिका

दोहा

अब कहों कुंभक भस्त्रिका, पित्त कफ़ वाय नशाय।
अग्नि बढ़े अभ्यास सों, तीन गांठ खुल जाय॥

चौपाई

आसन पदम जु या बिधि करई, बाम जानु दहिनो पग धरई.
बांया पग दहिने पर लावे, जांघन सों दोउ हाथ मिलावे.
ग्रीवा पेट बराबर राखे. आगे सुन शुकदेवा भाखे.
मुख मूंदे रेचै नाशा सों, पूरक चपल करे श्वासा कों.
रेचक पूरक ऐसे कीजे, बारंबार तजै अरु लीजे.
जैसे खाल लुहारा भरे, रेचक पूरक आतुर करे.
करत २ जबही थक जावे, नेक ठहर दूजी बिधि लावे.
फिर पूरक सूरज सों करे, पवन उदर के माहीं भरे.
तबहि तर्जनी सों दृढ़ रोके, नाशा मध्ये धर कर जोखे.

दोहा

कुंभक पिछली भांति कर, रेचि इड़ा सों वाय।
कफ़ पित वाय नशाय के, लेवे अग्नि बढ़ाय॥
कुंडलनी देवे जगा, यह कुंभक सुख दाय।
करे जु हित चितलाय कें, चरणदास हित लाय॥
कुंडलनी सरकाय कें, बेधै तीनों गांठ।
पंचम ऐसी भस्त्रिका, रहै न कोई आंट॥

चौपाई

ब्रम्ह नाड़ी के छिद्रहि माहीं, रोक रही मुख दे रही झाहीं.

लाय लपेटे नाभीं ठाईं, दृढ़ है बैठी सरके नाहीं.
सवा बिता की जाकी देही, ता में स्थित जीव सनेही.
शक्ति नागिनी यह जो कहिये, या का भेद गुरू सों लहिये.
महा अपर बल जागे नाहीं, तातें नर सब मर २ जाहीं.
कोइ इक योगी ताहि डुलावे, सुखमन बाट गगन ले जावे.
ब्रह्म रंध्र में जाय समावे, लगै समाधि बहुत सुख पावे.
जो कुछ होय सु कहि नहिं जावे, चरणदास शुकदेव सुनावे.

दोहा

शिव शक्ती इकठा भये, रहो न द्वितिया भाव।
कुंडलनी परमोदिका, जो कोई करे उपाव॥

अब संघारक्रम कहिये है ।

क्षकार आदि यकारलग कहै तबलग वाय पूरि करि गहै ।
(क्षलहसषशवलरय)
मकारादि ककारलग भाखै तो लग कुंभक द्रिढ करि राखै ॥४२३ ॥
(मभबफप नधदथत णढडठट ञझजछच ङ घगखक)
अः कारादि अकारांत उचारे ऐसे रेचन[६०] पवन उतारे ।
(अः अंऔओएएलॄलृॠऋऊउईइआअ)
लोमविलोम प्रत्यलोम जु ठानै ते नर जोग पंथ कौ जानै ॥४२४ ॥
जो जो प्राणायाम जु करै तामै लोम विलोम ही धरै ।
रेचक पूरक कुंभक सोई प्राणायाम तीन विधि होई ॥४२५ ॥
चंद्र वहै तब साधन करई चंद्र पूर वाई उर धरई
स्वस्तिक आसन कौं द्रिढ करै वाम हस्त गोडापरि धरै ॥४२६ ॥
दछिन करते नासा गहै ताकरि पवन उतारै वहै[६१] ।
इडा नाडिते[६२] पवन चढावै नाडि[६३] पिंगुला रेच करावै ॥४२७ ॥
बहुरि सूरस्वर पूरक लेवै [६४]कुंभकरेचक द्रिढ कर देवै ।
अैसै वारंवार जु साधै सरल सरीर जुगति आराधै ॥४२८ ॥
पूरक मूल अंकोचन करै कुंभक मैं संकोचन धरै ।
रेचक मूल विकोचन ठानै तीनो अंग इसी विधि जानै ॥४२९ ॥
च्यारो बंध लगावै धीर सरपाकार करि रहै सरीर ।
इडी पायमूलसो गहै नाभि पीठ माहि करि रहै ॥४३० ॥

---

५९. *द्रिढकरि (भां)* ६०. *रेचिर (भां)*
६१. *यहै (नां.)* ६२. *नाडते (भां)*
६३. *नारि (भां)* ६४. *चंद्र नाडि वाय तजि देवै*

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अैसै क्रम क्रम साधन ठानै पूरक कुंभक रेचक जानै ।
मात्रा पचासलग ठहरावै पूरण प्राणायाम कहावै ॥४३१ ॥
या विधि प्राणायाम को ब्यौरो कह्यो सुनाय ॥
जयतराम याके सध्या लय मैं रहे समाय ॥४३२ ॥
॥इति सिंघारक्रम ॥

17:52
Bhakti Sagar.pdf

ऐसे मन्दिर माहिं, हृदय में छेद है;
तामें सूरज मन्दिर, अचरज भेद है.
ताकी बड़ी है ज्योति, किरण उजियार है
पूरा योगी होय, सो ताहि निहार है.

दोहा

जोति मई मन्दिर लखे, हृदय कमल में होय।
तामें दीखे और इक, दीवे कैसी लोय॥

अष्ट पदी

दीपक कैसी ज्योति, मानो ऊपर चले;
रहे आपनहि ठौर, भांति ऐसी लहे.
वाही जोत को जानो, ब्रम्ह स्वरूप ही;
यही समझ के ध्यान करे, जु अनूपही.
योगी करे जु ध्यान, यही हिय माह ही;
अंत समय तन छूट, ऊपर को जाय ही.
सूरज ही का मंदिर, जावे वेध ही;
सुख मरग सों जाय, शीस को छेद ही.
सायुज्य मुक्ति को जाय, प्रावते होय ही;
कोटिन माहिं लहै, जु विरला कोय ही.
सब जोतिन की जोति, बड़ी जो जोत है;
ताको पाये होय, एक ही गोत है.
आलस सों दुर भाग, ध्यान ना कर सके;
तो दिन में तिरकाल, पाठ करने लगे.

दोहा

प्रात काल अरु मध्य में, संध्या ही की बार।
उप निषदहि तीनों समय, पढ़े विचार विचार॥
कर्म कटें जम ही डटे, चौरासी हट जाय।
देही पावे मनुष की, पूरा गुरु मिल जाय॥
फिर पावे यह ध्यान ही, पीछे कहा जु खोल।
जावे परमहि धाम को, छूटे सब झक झोल॥
थोड़ा सा यह ध्यान ही, मैं समझाया तोहि।

17:50

Bhakti Sagar.pdf

निकट निकट सों निकट, दूर सों दूर है.
जो इस ही का ध्यान, हिये कियो जापना;
तो कर मस्तक माहिं, होय परायना.
शीश में जब सिध होय, रोक नो द्वार ही;
निकसन देवे वायु, न काहू बारही.

दोहा

दो पग एड़ी बांधिये, नीचे के दो द्वार।
दोउ अँगूठे हाथ के, रोके श्रवननबार॥

अष्ट पदी

तर्जनी अंगुली दोउ, दृगन पर दीजिये;
मध्यमा सों दोउ नाक, छेद बंध कीजिये.
अनामिका दोउ हाथ की, और कनिष्ठिका;
होंठन को बंध करे, जु नीके पुष्ठिका.
नाशा के दोउ छेद, एक ही जित भये;
दोउ भौहन के बीच, चरणदासहि कहे.
निश्चय ताहि व नार, सदेह की जानिये;
वाही की तो ओर, दृष्टि को तानिये.
महा कुंभक यह नाम, इसी विधि साधिये;
ध्यान किये होय मुक्ति, यही आराधिये.
इन्द्रियन ही के मारग को, जो बंध करे;
वायु बिना घट माहिं, जैसे दीपक बरे.
होय घना परगाश, इसी ही देह में;
इसी ध्यान परताप, मिले या गेह में.
पावे सुख चैतन्य, किये इस योगही;
कर्मन की हो नाश, मिटे मन रोगही.

दोहा

ऊपनिषद पूरी भई, नाम योग ही तत्व।
अंग अथर्वन वेद का, चरणदास ही सत्व॥

इति तत्व योग उपनिषद सम्पूर्णम्

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अथ इडा पिंगला सोधन विधि ।

पदमासन द्रिढ बांधि मूलबंध नीका देवै ।
दोउ स्वरसो खेच वाय नासापुट लेवै ॥८२९ ॥
पुनह हृदा मै आनि ताहि नीकी विधि घेरै ।
ता पीछै स्वर मूदि भली दोऊ नाडी फेरै ॥८३० ॥

चौपाई— समही दोऊ नाडिका[२७०] मर मावै ताहि फेरि दछन दिस ल्यावै ।
बहुरि दछिन दिस[२७१] फेरै जोई वाम वोर ले आवे सोई ॥८३१ ॥
पुनि दोउ सम[२७२] कर ठहरावै वार आठोतर सत भर मावै ।
उदर रोग रहे नही कोई खास स्वास क्षयादिक सोई ॥८३२ ॥

दोहा— या करि सूधी सर्पनी नारी सब सुख[२७३] रास ।
होय[२७४] जो भार सुखमन मारुत चढे अकास ॥८३३ ॥
॥इति नाडी सोधन ॥

अथ मूल सिसन सोधन ।

पूर्व कहै कर्म षट जोई ताकरि मन यह निर्मल होई ।
मूल उदर सोधन मन लावै सोध कपाल समाधि लगावै[२७५] ॥८३४ ॥
मूल उदर सोधन अब भाखौ अरु कपालसोधन पुनि आखौ ।
जोगी जबै समाधि लगावै सोधन क्रिया सिध[२७६] सो पावै ॥८३५ ॥
प्रथमही काकासन द्रढ साधै कटि प्रमान जब बैठि आराधै ।
मूल संकोच उरध जल ल्यावै नाभिप्रजंत[२७७] आनि ठहरावै ॥८३६ ॥
बहुर जु जलकौ भूपरि डारै पुनि[२७८] चढाय कंठतक धारे ।
याविधि बारंबार चढावै जयतराम ताको छिटकावै ॥८३७ ॥
मूलद्वार करि[२७९] जल गहि लेवै सो जल सिसन वाट तजि देवै ।
बहुरि सिसन करि पीवै वारि मूलद्वार करि देहि उतारि ॥८३८ ॥

---

२७०. नारि (भा)
२७१. नस (भा)
२७२. नस सम (भ
२७३. सुधि रास (भा)
२७४. पावे मारग सुखमना (भा)
२७५. This Line missing in (भा)
२७६. सुगभ (भा)
२७७. नाभप्रजंत (भा)
२७८. पुनह चढाइ कंठतकि धारै (भा)
२७९. जलसिकारि (ना.)

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अथ कालवंचन विधि कहियै है ।

चौपाई भृकुटी द्रिष्टि निरंतर धारे औंकार जु [२३५] मंत्र उचारे ।
याते अधिक आव पुनि होवे जोगी साधि कालभय खोवे ॥ ७७३ ॥
पूरक पवन पिंगुला कर साधै सक्ति प्रमाण कुंभक द्रढ बांधै ।
रेचक भांति [२३६] उतारे वाई या विधि आव वृधता पाई ॥ ७७४ ॥

---

२३१. आधै मास (भां) — २३२ उनतीसै जब (भां)
२३३ धंध (भां) — * This verse in missing in (भां)
२३४ गुरुक्रिपासौ (भां) — २३५ को (भां)
२३६ भान (भां)

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सूर्यमांहि चंद्र स्वर लावे [२३७] चंद्र उलटि [२३८] भानहि मिलावे ।
दिवस चंद निस भानु [२३९] जु धारै या विधि जोगी काल निवारै ॥७७५ ॥
चंद्रसूर्य [२४०] दो समकर राखै उरध चढ़ाय अमीरस चाखै ।
गगन मंडल में अनहद धारै जयतराम सो काल निवारै ॥ ७७६ ॥
प्रथमही सिधासन द्रढ करै वाय अपना उरध ले धरै ।
बहु-यो प्राणायाम करावै प्राण वाय ले उरमधि आवै ॥ ७७७ ॥
पुन [२४१] से अर्धउर्ध की वाई नाभिस्थान सकल ठहराई ।
सो पुनि सुखमनमधि मिलावै खंडै काल समाधि लगावै ॥७७८ ॥

दोहा — या विधि काल निवारीये ये गुरुमुख साधन साधि ।
जयतराम ता पुरुखके सहजै लगै समाधि ॥ ७७९ ॥
॥ इति कालवंचन विधि ॥

अथ ध्यान वरनन ।

दोहा सप्तम अंग जु जोगको ध्यान कहत है सोयं ।
जयतराम जोगी लहै जा ताके नही होय ॥ ७८० ॥

चौपाई आसन सम करि बैठक करई कर दोउ जंघनपर धरई ।
सरल सरीर कबै नही डोले नासाद्रिष्टि राखि नही बोले ॥ ७८१ ॥
इडा पूरि कुंभक द्रढ थारे नारि पिंगुला वाय उतारे ।
पुनह [२४२] पिंगुला पुर करि लेवै इडा नाडि रेचक करि देवै ॥ ७८२ ॥
सकल अर्थ जु मन [२४३] के तजै हरि को रूप हि मै भजै [२४४] ।
प्राणायाम सगर्भ कौ धारै अगर्भ कौ कबहु न उचारै ॥ ७८३ ॥
मंत्रसहित धारै सु सगर्भा मंत्रविना तजि देत अगर्भा ।
याकौ गुरुतें भेदही पावै मंत्रसहित सो ले ठहरावै ॥ ७८४ ॥

---

२३७ ल्यावे (भां) — २३८ उलट (भां)
२३९ भान (भां) — २४० चंद सूर दो (भां)
२४१ फुनि जै अरध उरध की वाई (भां) — २४२ इडा नाडि रेचक कर देवे पिंगला पूर कुंभ द्रढ करै लेवे (नां)
२४३ इंद्रीके (भां) — २४४ जजै (भां)

अथ अष्टमी बीजरूपणी मुद्रा कहिये है ।

वीरजमुद्रा वरन सुनाउ राजजोग घर माहि लखाउं ।
यह साध बिंद वस करै जोगी यामै चित्त न धरै ॥५५२ ॥
प्रथम फोत्रिका कर्म विचारे प्राणायाम समझ पुनि करै ।
अंकोच विकोच संकोचन जोई सिसनद्वारिक साधै सोई ॥५५३ ॥
प्रथमही भेद गुरुतै पावै ता पाछै साधै न ठहरावै ।
आसन साध प्राण वस करै रेचक पूरक कुंभक करे ॥५५४ ॥
प्राणायाम परायण होवै ता पीछै इंद्रियमल खोवै ।
ता पाछै पयकौ भुव डारै अैसै सिसन अमलता धरै ॥
स्त्री भोगि ग्रही पुनि करै ताको बिंद कबहु न परै ॥५५५ ॥
ज्यों ज्यों तानै वृषनकौ गहिके उच मरोरि ।
जयतराम त्यों-त्यों चढै बीज सिसन की चोरि ॥५५६ ॥
ाई— भोग समै कंद्रप नही डारै जुवती कंदर्प को पुनि धारै ।
तहा अंकोच विकोचन करई जिभ्या उलटि उर्ध को धरई ॥५५७ ॥
उत आसन कर कंद्रप जोई दसमद्वारि ले जावै सोई ।

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Acade

रजवीरज दोउ ले धरे शिवशक्ति को मेल करै ॥५५८ ॥
ऐसै वीरजरूपा जानौ राजजोग घरही में मानौ ।
घरही माहि जोग सो साधै सो या मुद्राको आराधै ॥५५९ ॥
जोगी याको अैसै करै अपनी बिंद उर्ध ले धरे ।
बजरोली अमरोली कहिये नादबिंदको संगम लहीये ॥५६० ॥
कामवस याही ते होई वृधहू काम करै पुनि सोई ।
ग्रंथन माहि गोप्य यहु राखी जयतराम प्रकट कर भाखी ॥५६१

॥इति वीरमुद्रा ॥

छप्पै—अमरी वजरी साध वायु सरने[1] नहिं पावै।
द्वादश अंगुल प्राण सुरत दे ताहि घटावै॥
मौन गहै नित रहै अल्प सूक्ष्म सो बोलै।
एक बार आहार जँभाई कबहुँ न खोलै॥
बाँधै सो जाय दृढ़ छीक को अनहद ध्रुनि अति गाजई।
भन चरणदास शुकदेव बल सु योग युक्ति इमि साजई॥
दो० मन पवना वश कीजिये, ज्ञान युक्ति सों रोक।
सुरति बाँधि भीतर धसै, सूझै काया लोक॥८॥
मन हिरदै में रहत है, पवन नाभि के माहिं।
इन्द्री रोकै ये रुकैं, और कछू विधि नाहिं॥९॥
(६)
सूक्ष्म करै अहार जीति धरणी जब लेई।
नीर जीति जब लेय बिंद[2] जाने नहिं देई॥
मोह लोभ जब तजै अग्नि को जीति मिलावै।
पवन जीति जब लेय गगन को बाँधि[3] चलावै॥
अरु हर्ष शोक सम करि गिनै पाँच जीत एकै करै।
भन चरणदास साधन गहै होय प्रकाश कारज सरै॥
दो० गगन मध्य जो कमल है, बाजत अनहद तूर।
दल हजार को कमल है, पहुँचै गुरुमत शूर॥१०॥

१ निकलने २ वीर्य ३ रोककर।

गगन मँडल के कमल में, सतगुरु ध्यान निहार।
चरणदास शुकदेव परसै, मिटै सकल विकार॥९॥
सहस्रदल के कमल में, रूप अगम अपार।
सोहं सोहं जाप सहजे, होत एक हजार॥१०॥
(७)
नौ नाड़ी की खैंच पवन लै उर में दीजै।
बज्जर[1] ताला लाय द्वार नौ बन्ध करीजै॥
तीनौं बन्ध लगाय अस्थिर अनहद आराधै।
सुरति निरति का काम राह चल गगन अगाधै॥
शून्य शिखर चढ़ि रहै दृढ़ जहाँ जाय आसन करै।
भन चरणदास ताड़ी[2] लगै सो राम दरश कलिमल हरै॥
(८)
चौथा पद निर्वाण धाम बेगमपुर कहिये।
गुण अतीत जहाँ राम निरखि नैनन सुख लहिये॥
अद्वै रूप अखण्ड मण्ड मण्डल बहु बंका।
जहाँ काल नहिं ज्वाल शब्द अति उठत निशंका॥
निज पारब्रह्म चौंरी[3] रची शिव सहित शक्ति फेरी करै।
भन चरणदास चारौं मुक्ति सो हाथ जोरि पायँन परैं॥
(९)
मूल कमल में खेलि पिया कूँ देखन चलिये।
उलटि बेध षट चक्र जाइ सतवैं[4] सूँ मिलिये॥

१ मजबूत २ समाधि ३ विवाह का मण्डप ४ सहस्रदल कमल।

॥ चौपाई ॥

इड़ा पिंगला सुखमन धारो । आसन वज्र नागिनी टारो ॥

दो० द्वादश अंगुल गहो, वेध पट चक्कर लीजै ।
जब बाजै अनहद तूर, जहाँ मन निज करि दीजै ॥

॥ चौपाई ॥

खेचरी मुद्रा त्रिकुटी आवै । अमृत पिवे परम सुख पावै ॥
मेरुदण्ड को प्राण चलावै । शून्य शिखर जब नगरी पावै ॥
जा नगरी में चन्द न भान । पहुँचे साधू चतुर सुजान ॥
जाति पाँति जहँ नाम न नाता । श्वेत श्याम पीत नहिं राता ॥
योग यज्ञ तप जहाँ न दाना । तीरथ वर्त जहाँ नहिं न्हाना ॥
क्रिरिया कर्म जहाँ नहिं पूजा । मैं तू है नहिं एक न दूजा ॥
जहाँ न साँझ द्यौस नहिं राता । एकै ब्रह्म अखण्ड विधाता ॥

दो० चरणदास राम की घाटी, पहुँचे गुरुमत शूरा ।
ओछी बुद्धि वाद बहु ठानै, करणी करै सो पूरा ॥४॥

(४)

छप्पै—बैठ गुफा के मध्य योग की युक्ति विचारै ।
आप अकेलो रहै और ना मनुप निहारै ॥
चार वार नित करै जाप ॐकार अराधै ।
सूक्ष्म करै आहार ओगरो[1] पतलो साधै ॥
आसन पद्म लगाय कै सीधो राखै मेर ।
ठोढ़ी हिये लगाइये पलक झाँप करि हेर ॥

दो० कुंभक आठ प्रकार के, तिनमें उत्तम एक ।
केवल कुंभक जानिये, साधै ताहि विशेख ॥५॥
त्रिकुटी में तीरथ अगम, तिरवेणी जेहि नाम ।
न्हाय योग की युक्ति सूं, पूरण हों सब काम ॥६॥
रणजीत कहैं जहाँ न्हाइये, त्रिकुटी तीरथ धाम ।
नित परवी जहाँ होत है, भजन करो निष्काम ॥७॥

॥ चौपाई ॥

जा तीरथ को पवन न लागै । जा तीरथ में जन अनुरागै ॥
जा तीरथ में रतन अनेका । पूरे गुरु सों मिल मिल देखा ॥
वा तीरथ में जो कोइ न्हावै । भवसागर में बहुरि न आवै ॥
जहाँ न चन्द सूर नहिं तारे । गुरुगम पहुँचैं अति मतवारे ॥
जा तीरथ का बँधा जो नीर । उज्ज्वल निर्मल गहिर गँभीर ॥
ब्रह्मा विष्णु जहाँ त्रयदेवा । योग युक्ति में लावैं सेवा ॥
बारह मास दामिनी दमकै । सोन[2] पटीला[2] जुगुनू[2] झमकै ॥

१ जौ का पतला दलिया २ चमकने वाले पतंगे ।

तुहा थाल ...
चरणदास शुकदेव लखाया । सुरत ...

६ ।। आरती ।।

गगनमँडल में आरति कीजै । उत्तम साज४ सकल सजि लीजै ।।
सुखमन५ अमृत कुम्भ धरावै । मनसा मालिनि फूल चढ़ावै ।।
घीव अखण्डा सोहं बाती । त्रिकुटी ज्योति बलै दिन राती ।।
पवन साधना थाल करीजे । तामें चौमुख मन धरि दीजै ।।
रवि६शशि७हाथगहोतिहिमाहीं । खिन दहिनो खिन बायें लाई ।।
सहस कमल सिंहासन राजै । अनहद झालर नित ही बाजै ।।
इहि विधि आरति साँची सेवा । परमपुरुष देवन को देवा ।।
चरणदास शुकदेव बतावैं । ऐसी आरति पार लगावैं ।।

१ समय २ इन्द्रियातीत ३ रहित ४ सामग्री ५ सुषुम्ना नाड़ी ६-७ दायें, बायें स्वरों से प्राणायाम ---- ।

१० ।। आरती ।।

ऐसी आरति करि हुलसावै । दे परिक्रमा शीस नवावै ।।
तन को थाल अरु मन को चौमुख१, ज्ञान ध्यान की बाती लावै ।।
भक्ति भाव को घी भरि तामें, जगमग जगमग ज्योति जगावै।।
अर्ध ऊर्ध हित सूँ करि फेरै, रचना रचै फूल बर्षावै ।।
सुरति मृदंग अरु निरत तँबूरा, झँगड़ झँगड़ झाँझ बजावै ।।
ताल वीणा मुहचंग शंख ध्वनि, प्रेम मगन ह्वै हरि गुण गावै।।
सुबरन कलशा जल को राखै, धूपरु अगर सुगन्ध धरावै ।।
या विधि सों शुकदेव श्याम की, गाय आरती को फल पावै ।।
युगलकिशोर निरखि नैनन सों, चरणदास सखि बलि बलि जावै

११ ।। भोग का पद ।।

या विधि गोविन्द भोग लगावो। भक्त बछल हरि नाम कहावो।।
बेर भीलनी के तुम पाये । देखि ऋषीश्वर सकल लजाये।।
जैसे साग विदुर घर पायो । दुर्योधन को मान घटायो ।।
भक्त सुदामा के तंदुल लीन्हे । कंचन महल अधिक सुख दीन्हे।।
ज्यों करमा की खिचरी खाई । नेह लियो सब शुचि बिसराई।।
तुम्हरी विभौ प्रभु तुम्हरे हि आगे । हमसे दीनन को कहा लागे ।।
प्रेम प्रीति सूँ भोजन कीजै । बचै सीत२ सन्तन कूँ दीजै ।।
चरणदास भरि राखी झारी । अचवो हरि शुकदेव मुरारी ।।

१२ ।। भोग के आगे की ध्वनि राग काफी ।।

जै जै पारब्रह्म परधान३ । जाकूँ पावै गुरु के ज्ञान ।।

१ चारवत्ती वाला दीपक २ भोग लगा हुआ प्रसाद ३ प्रकृति ।

सिंगाजी के भजन

निर्गुण ब्रह्म है न्यारा, कोई समझो समझण हारा ।।टेक।।
खोजत ब्रह्म जलम सिराणा, मुनिजन पार न पाया,
खोजत खोजत शिवजी थाके, वो ऐसा अपरम्पारा ।।१।।
शेष सहस्र मुख रटे निरन्तर, रैन दिवस एक सारा,
ऋषि मुनि और सिद्ध चौरासी, वो तैंतीस कोटि पचिहारा ।।२।।
त्रिकुटी महल मऽ अनहद बाजे, होत शब्द झनकारा,
सुकमणि सेज शून्य मऽ झूले, वो सोहं पुरुष हमारा ।।३।।
वेद कथे और कहे निर्वाणी, श्रोता करो विचारा,
काम, क्रोध, मद, मत्सर त्यागो, ये झूठा सकल पसारा ।।४।।
एक बूँद की रचना सारी, जाका सकल पसारा,
सिंगाजी न भर नजरा देख्या, वो वोही गुरु हमारा ।।५।।

•

खेती खेड़ो हरि नाम की, जा मऽ मुक्तो लाभ ।।टेक।।
पाप का पालवा कटावजो, काटी बाहर राळ,
कर्म की कासी एचावजो, खेती चोखी थाय ।।१।।
वास श्वास दो बैल हैं, सुरती रास लगाव,
प्रेम पिरहाणो कर धरो, ज्ञान आर लगाव ।।२।।
ओहंम् बक्खर जूपजो, सोहम् सरतो लगाव,
मूल मन्त्र बीज बोवजो, खेती लटलूम थाय ।।३।।
सत्त को मांडो रोपजो, धर्म पैड़ी लगाव,
ज्ञान का गोळा चलावजो, सूआ उड़ि उड़ि जाय ।।४।।
दया की दावण राळजो, बहुरी फेरा नहिं होय,
कहे सिंगा पहिचाण लेवो, आवागमन नहीं होय ।।५।।

•

12:10
Sant Singaji Ek Adhaya...

अथ आत्म ध्यान

सोहंग, बताव, उनमुनि लाव, अनहद, बजाव, हात न लाव ।।२४।।
चंद सूर दोउ बताव निरखऽ परखऽ भेद जो पावऽ
बंक नाल मु आवऽ जावऽ , किली दे उलटा चेड़ावऽ
जीहां टीका तहाँ साहेब बैठा हात न पाँव रूप न रेखा
टाडवा दुद जो उलटा धाव, पछम दिसा का एकवीस मण का
एकवीस ब्रह्मांड ।।२६।।
तीहाँ भवर-गुफा है, उग्रह मुद्द अरध उरध उपर त्रवेणी
दुवादस चल संत ऐह जाणी , दस दरवाजा प्रगट बताव ।।२७।।
तीन दरवाजा गुपुत न पावा, अठरा भार बनास्पति रोमावली
खिण मा सुपेत खिण म कालो, सकल हाड़ प्रवत्त है सवालाख ।।२८।।
सत शब्द जो सींघा भाखे ।

दोहा—

मोख का मूल सांच, ये थी और न दूजा
ऊच नीच बीच पुरी रहा, नहीं सेवा नहीं पूजा ।।२६।।
मूल दुवार गणेश देवता, रंग पीला पाखड़ी (४) जाप ६००१।।
सवा धी कथा नेक ।
ब्रह्म देवता रंग लाल पाखड़ी (६) जाप ६००२।।
नाभ कमल विस्न देवता रंग नीला पाखड़ी (१०) जाप ६००३।।
हिरदे स्थानेक सिव देवता रंग कालो पाखड़ी (१२) जाप ६००४।।
कंठ स्थानेक जीव आत्मा देवता, रंग सुपेत पाखड़ी (१६) जाप
१०००५।।
नित प्रत आसमान सोहंग जिसषु रूप न रेखा ।
दुई दल कमल परमात्मा देवता जाप १०००६।।
सहस्य कमल दल गुरु देवता जाप १००००।।
जुमले जाप २१०००।।

(९)

मूल कमल में खेलि पिया कूँ देखन चलिये।
उलटि वेध पट चक्र जाइ सतवैं[4] सूँ मिलिये॥

१ मजबूत २ समाधि ३ विवाह का मण्डप ४ सहस्रदल कमल।

प्राण अपान मिलाय राह पश्चिम की लीजै।
बंक नाल करि शुद्ध प्राण लै तामें दीजै॥
मेरु दण्ड चढ़ि जाय जब लोक लोक की गम परै।
भन चरणदास ब्रह्मण्ड में ब्रह्मदर्शी दर्शन करै॥

दो० चरणदास यहि विधि कही, चढ़िबे को आकास।
शोधि साधि साधन अगम, पूरण ब्रह्म विलास॥१३॥

(१०)

दल असंख्य को कमल रूप जहाँ सत्त विराजै।
अनन्त भानु परकाश जहाँ अनहद धुनि गाजै॥
सुन्दर छवि अति हंस[1] सन्त जन आगे ठाढ़े।
जहाँ पहुँचै कोइ शूरवीर नीशान जो गाड़े॥
कमल मध्य जो तख्त है शोभा अपार बरणूँ कहा।
कहै चरणदास उस तख्त पर आदि पुरुष अद्भुत महा॥

(११)

छत्र फिरत नित रहत चँवर ढोरत जहँ हंसा।
जहाँ दरशन करि शिष्य मिटै युग युग का संसा[2]॥
आवागमन ह्वै रहित मरण जीवन नहिं होई।
आनि मिले जब चार मुक्ति कहियत है सोई॥
जहाँ अमरलोक लीला अमर फल अनेक तहाँ पावई।
भन चरणदास शुकदेव बल सु चौथा पद इमि गावई॥

१ मुक्तात्मा २ संशय।

स्ट है।

बंकनाल :

हठयोग में जो मेरु दंड का स्थान है वही ध्यान-योग में बंकनाल का है। बंक का उद्गम मूलाधार में है। यह यहाँ से आरम्भ हो नाभि के वाम भाग से निकलकर आज्ञाचक्र में मिलकर पुनः ऊपर की ओर चलती है। यहाँ इसका आकार एक अर्द्ध वृत्ताकार कमल नाल-सा बन जाता है। यह फिर शून्य प्रांत में प्रवेश कर जाती है।

एक पद में सिंगाजी ने 'बंकनाल' की चर्चा की है—

रे मन चढ़ी जा सोहं सीधी धारा रे मन तू ॥टेक॥
दिल दरियाव उमंग जल गहरा लहरा उठत अपारा।
सोई नीर सकल भवसा म दीख रह्यो न्यारा॥
बंकनाल की तू सुध कर भाई त्रिकुटी संगम मेला।
सुखमण नार दोउ सांस बरावर वहीं थारो सिरजणहारा॥
मन मछुओ माया की जाल म उलझ रह्यो संसारा।
ढीमन जाल भटक कर डाले हद छोड़ जम पेरा रे॥
अलख म खलक खलक म पारा छिन म मिल करतारा।
कहे जण सिंगा सुणो भाई साधु पल म कर निखेड़ा रे॥

भारतवर्ष में प्राचीन काल से योगाभ्यास और योगचर्चा होती आई है। ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि में इसको अधिक महत्व दिया गया है। योग के कई साधन बतलाये गये हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आठ अंग बतलाये गये हैं।[1] आगे चल कर योग शब्द का व्यापक अर्थ में यह अर्थ होने लगा कि आत्मा का परमात्मा से तादात्म्य स्थिर करने वाली किसी भी साधना को योग कहते हैं। जीवात्मा का परमात्मा के साथ एकता ही जिसमें संकल्प की समस्त क्रियाएँ विनष्ट हो जाती हैं, "समाधि" कहलाती है। हठयोग की अन्तिम अवस्था का नाम समाधि है। समाधि ध्यान का पर्याय है। जीवात्मा और परमात्मा एक्य ज्ञान के उदय को ही समाधि कहते हैं।[2] समाधि अवस्था तक पहुँचने के लिए संकल्प-शून्यता और मन की निश्चलता आवश्यक होती है। संत सिंगा ने हठयोग के जटिलतम स्वरूप को अपनाया है। इस अवस्था से संबंधित १० दरवाजे, ५२ कोठरी, १४ चंदा, ६४ दिया, १२ कोश, ७ सुरति, १६ संख और ७२ नाड़ियों की चर्चा की है। यथा—

---

१. योग सूत्र—सूक्त २९।

२. जाबाल दर्शनोपनिषद—१०/१

सिंगाजी के निम्न पद में हठयोग संबंधी प्राणायाम और समाधि की अवस्था का वर्णन उनके योग संबंधी ज्ञान का द्योतक है—

अहो मन म्हारा काई भूल्यो भरमणा माहीं,
जी कारण नर जाय तीरथ ख उ तीरथ थारा घट माहीं ।
उ तीरथ ख अपणो करी लेवो कि जेम भवरो[1] रह्यो बिलमाई ॥
आगम घाट तीरवेणी तीरथ वकासी ध्यान लगावो रे ।
गंगा जमुना सरसती रे ऊ तीरवेणी म न्हावो रे ॥
अजपा ऊपर एक मुकाम जहां एक जोत झलकती ।
अनहद सबद बाजे चौघड़िया थारी गुफा के माहीं ॥
गुरु परताप साधु की संगत यन सिंगा जस गाई ।
हद छोड़ बेहद कु ध्यावे तुख जम काल नी खाई ॥

"हठयोग प्रदीपिका" के उपमान और संकेतों के आधार पर उपरोक्त पद की रचना हुई ज्ञात पड़ती है। यथा—

गंगा	—	इड़ा नाड़ी (३।११०)
जमुना	—	पिंगलानाड़ी (३।११०)
सरसती	—	सुषुम्ना नाड़ी (३।२४)
तिरवेणी	—	भ्रूमध्य में इड़ादि तीनों नाड़ियं का संगम स्थल (३।२४

साथ ही उपरोक्त पद में "गोरख-शतक" में वर्णित "कुण्डलिनी" जाग्रत करने की विवेचना भी है। ब्रह्म-रंध्र (जहाँ एक जोत झलकर्त है) में पहुँच कर जीवात्मा "अनहद-नाद" सुनता है। वहाँ यह 'नाद सतत होता रहता है। यहीं समाधि की अवस्था सिद्ध होती है।

सिंगाजी ने अनेक संकेतों द्वारा समाधि की अवस्था को सम झाया है :—

ओहं सोहं दुई मूल म्हारो सांई सामन फूल ॥ टेक ॥
गंगा जमुना सरसती बहती तीरवेणी को मेल ।

1. भ्रमर।

अग सग फूलो नज़र नहीं आता को लख चवरासी फूल ॥
राम नाम की दोर लगो हैं म्हारो सतगुरु सामन फूल ।
कहे जण सिंगा सुणो भाई साधु सतगुरु कमल को फूल ॥

पाँच रिपु तेरे संग चलत हैं, अरे वो जड़ा मूल से खोवे।
मात पिता ने जलम दिया है, अरे वो त्रिया संग न जावे ॥२॥
भरम भरम नर जलम गंवायो, अरे ये आई बाजू खऽ खोवे।
कहे जन सिंगा अगम की वाणी, अरे नर अन्त काल को रोवे ॥३॥

●

चढ़ी जा सोहंग सीधी धारा, मन रे चढ़ी जा सोहंग सीधी धारा
मन मछुवा माया की जाल में, उलझ रह्यो संसारा
ढीमर जाल झकोळई न नाखे, ऊ जम काळ तुखऽ घेरऽ
मन दरियाव उमकऽ जल गहरा, और जल सब खारा
एक पुरुष की मांड रची है, ऊ छिटक रह्या है न्यारा ॥
ताल पखावज बाजे झांझरी, जाजम राळया बिछौणा
देखे कोई नाहीं दिखावे, अनऽ किस विध उतरूँ पारा
बंक नाल की सुधि पकड़ ली, त्रिकोटि संगम न्यारा
सुख मणि सास उसास भरत है, वाही म सिरजण हारा ॥
अलख में वारा पलख में पारा, पारा जग संसारा
वस्तु वचन पहिचान लेवो, ऊ कूद पड़े मझधारा
मन मछुवा मोह की जाल में, नदियाँ वहे जल सारा
कहे जन सिंगा सुणो भाई साधू, ऊ भक्त उतरऽ न पारा ॥

●

आवागमन मत कीजो, प्रभु म्हारा फिरी जलम मति दीजो!
एक साहूकार अनेक बैपारी, नेकी का सौदा कीजो रे
रीत का खाना घर ही रहना, बेफारक मत हुजो रे।
खारा जो खाई खाई सब जग मरिया, मछली का मेणा मत कीजो रे
ओछा जलम तड़फे मछली, हाथ दोष मत लीजो रे ॥
तन काया का पलंग कीजो, मन की सेजां कीजो रे,
चाँद सूरज दोऊ तपे हिलोले, वहाँ जाई डेरा दीजो रे।

14:18
Nimad ke sant singa ji h...

।। अथ सिंगाजी महाराज की शरद प्रारम्भः ।।

शरद कहो तुम संशय मेटा। हर्ष शोक नहिं करना।
घड़ी एक दिन दो चार में। आखिर अन्त को मरना ।१।
सुन्न में रहना भेद न कहना। पाप पुन्य नहिं जाना।
ले दीपक दरयाव में बैठा। मनुआं जाय हिराना ।२।
त्रिकुटी में भाटी लागी। बहती नदियां दोई।
जो जन जाने सो पहिचाने। पिये सन्त जन कोई ।३।
कहाँ से आया कहाँ जायगा। कहाँ जीव का वासा।
सोई पंथ तुम खोजो साधू। और झूठी सब आसा ।४।
कर्म भर्म बंधा संसारा। ये तो बन्धन सारा।
कर्म न मेटे बन्धन न छूटे। सोई पंथ है हमारा ।५।
सुन्न करो तुम शहर बसाओ। मारो पांचों थाना।
आकाश ऊपर महल है जिनका। बिन पेड़ी का जाना ।६।
आपन सेती प्रीत लगाओ। ज्यों नदी का पानी।
अधबिच में तोड़ा परै। तो होय भक्ती में हानी ।७।
जित देखो तित मृतक सारा। किस से जोड़ों यारी।
समर्थ साहिब से पर है। साधू सोई है मुक्ती प्यारी ।८।
मुआ-मुआ कहै संसारा। मुआ न दीसै कोई।
तन कांचरी उतार धरी है। फिर-फिर जीवता होई ।९।
प्रेम जेवरी मनुआं बन्ध गओ। कुमत संग ना जाई।
बगला छांड बनोरे हन्सा। मोती चुग-चुग खाई ।१०।
इंगला पिंगला सुखमन नारी। सोई है जात हमारी।
कहो जम्म तुम क्या करोगे। मोड़ी वस्तु सारी ।११।
जैसे बेटी रहे सासरे। पीहर तन को जोवे।
ऐसे सन्त रहे दुनियां में। सुरत निरत में होवे ।१२।

❀ श्री गणेशाय नमः ❀

॥ अथ आत्म ध्यान प्रारम्भ ॥

सोहंग ध्यावे उनमुनि लावे। अनहद में हाथ न लावे। चन्द्र सूर्य दोई बतावे।

निरख परख भेद जो पावे। बंकनाल में आवे जावे। किल्ली देके उल्टा चढ़ावे।

जहां टीका तहां साहब बैठो। हाथ न पाव रूप न रेखो। उलट अपान प्राण में लावे।

पश्चिम दिशा का इक्कीस मनका, वे ही इक्कीस ब्रह्मांड हैं, तहां भंवर गुफा है।

ऊपर मूल अरद उरद। ऊपर त्रिवेणी। दो दल कमल ऊपर। निरंजन परमात्मा सत्य यह जानो दस दरवाजा प्रगट बतावे। तीन दरवाजा गुप्त न पावें। अठारह भार बनस्पति रोमावली। छिन में सफेद छिन में काली। सकल हाड़ पर्वत सवा लाख। सत् शब्द ये सिंघाजी भाखैं।

ऊँच नीच में पूर रहा, नहिं सेव नहिं पूजा।
मोक्ष का मूल सत्, ये भी धर्म न दूजा॥

मूल द्वारे गनेश देवता। रंग पीला पाखड़ी चार॥ जाप ६००१॥

स्वाधिष्ठान चक्र ब्रह्मा देवता। रंग श्वेत। पाखड़ी छः॥ जाप ६०००॥

नाभी कमल विष्णु देवता। रंग नीला। भीतर नीला। पाखड़ी आठ॥ जाप ६०००॥

हृदय कमल शिव देवता। रंग लाल। भीतर का रंग काला। पाखड़ी बारह। जाप ६०००।

लहरी लहर कर चला अब नहीं आऐ का आऐ का,
दस दरवाजा प्रगट भई दुजे तीन सकुलुप लगाई,
उ तीन ई म उपर को खोज अरे गुरू वही सबद है सार,
अनगढ़ मुरली बजी गगन की उठे छतीसों राग,
बंकनाल से अमीरस पीणा तिरवेणी में नाहावण करना ।

❀ ❀ ❀

मन मारी तन बस करो क्रिया करम वढ़ावो,
करम से मन शुद्ध होत है जब ओ संत कहाओ ।
औंधा कुलुप जड़िया बिन सामरथ कैसा खुले,
सोल सुहागण सुन्दरी नव बैठी कुआरी रे।
उनसी हरीजन सु दूर रहे तिन स सोघ करारे।

आगे चल कर लय योग की ओर सिंगाजी मुड़े। शब्द-ब्रह्म की धारणा अत्यन्त प्राचीन है। वेदों में अनेक स्थलों पर शब्द-ब्रह्म का महत्व प्रतिपादित किया गया है।[१] संत सिंगाजी का मत है कि जहाँ अनहद शब्द सुनाई पड़ता है वहीं ब्रह्म या भगवान निवास करते हैं—

अजपा ऊपर एक मुकाम जहाँ एक जोत जलाई,
अनहद शब्द बजे चौघड़िया, भारी भंवर गुफा के माहीं।
गुरू परताप साधु की संगत घन सिंगा जस गाई,
हद छोड़ बेहद को ध्यावे तुख जम कालणी खाई ॥

सिंगाजी की भक्ति-भावना :

सिंगाजी के जीवन और कृतित्व का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने अनेक विचारों एवं साधना-पद्धतियों से उपयोगी तत्व लेकर उनका समन्वय किया। इस समन्वय की भावना में विशेषता यह है कि उसमें सिंगाजी ने अपनी मौलिकता को अक्षुण्ण बनाये रखा है। उनकी वाणियों में निर्गुण-ब्रह्म निरूपण, ज्ञान की प्रधानता, भक्ति की अनन्यता, योग की प्रशंसा और बाह्याडंबर की निंदा के साथ-साथ

१. ऋग्वेद—१/१६४/१०

कहे जगा 'सिंगा' पहेचाण जो आवागमन नहीं होय । २५ ।

लहेर-लहेर कर चला अब नहीं आणे का आणे का,
करो कोई लाख उपाय फिर नहीं रहणे का रहणे का।

एक दरवाजा प्रकट भई दूजे तीन ख कुलुप लगाई,
उ तीनई म ऊपर को खोजो अरे गुरु वही सबद है सार,

अब नहीं आणे का आणे का।

बंकनाल से अमीरस पीना तिरवेणी में नहावण करणा,
सींग गरजना गाजे जहाँ बिच अमरत बरसाव।

१—सोलह ।

बिरला जण इ बरसा म भींज,
जैम हीरा लाल जवाहीर गूँज,

अब नहीं आणे का आणे का।

अनघड़ मुरली गयब की उठे छत्तीसों राग,

बिना नगर आबाद बस्ती,
बिरला जण फिरता गस्ती,

कहे गुरु सिंगा' सुणों भाई साधु सोहंग शब्द है सार ।

अब नहीं आणे का आणे का ।२६।

चढ़ी आओ हम सीधी धारा,

बंकनाल उलटो कद चाले मेंढक रवि ससिधारा।
सुकमण नार सासरो निरमल वाही में सिरजनहारा।

दिल दरियाव अमरत मीठा ये सबको लगता प्यारा,
और जल है सब समता का घट-घट का है न्यारा।

ज्यों मछली जल में पहरे ज्यों पहरे संसारा,
पर ढीमर डाले जल माहीं सिर पर काल का डेरा।

अलंक निवारा अलंक में पारा वाही में सिरजन प्यारा,

कहे जण 'सिंगा' सुणो भाई साधु प्राण देह से है न्यारा ।२७।

अहो मन म्हारा काई मूल्यो भरमण माहीं,
जी कारण नर जाय तीरथ व उ तीरथ थारा घट माहीं,

उ तीरथ व अपणों करी लेवो कि जैम भवरो रखो बिलमाई,
आगम घाट तिरवेणी तीरथ व कासो ध्यान लगाओ रे।

गंगा जमुना सरसती रे उ तिरवेणी म न्हाओ रे,
अजपा उपर एक मुकाम यहां एक जोत झुलकती।

अनहद सबद बजे चौघड़िया थारी भंवर गुफा के माहीं,
गुरु परताप सादु की संगत धन 'सिंगा' जस गाई,
हद छोड़ बेहद को ध्यावे दुख जम काल नी खाई।१८।
सकल भरमणा सारा साधो पहेचाण बिना अंधियारो,

पांच चौर रहे घट भीतर कहिए मन का सूत्र लावे।
कांची माटी मांडा घड़िया ताहि कहे नर न रा,

पहाड़ फोड़ कर पत्थर लाये घम्मण है घम ई।
देदे ठस्सा बरतन घड़िया ताहि कहे नर माया रे,

आकाश बरसे धरती झेले भरा हो जल बिम्ब पानी।
गंगा यमुना ये नाव नदी का ताहि को तीरथ ठानी,

आपन समझे औरन को समझावे बिना रोजगार को खावे।
कोरो कागद क ला स्याही ताहि कहे पुराण रे।

कहे जण 'सिंगा' सुण भाई सादु
सतगुरु की पहिचाण बिना अंधियारो।१९।

चढ़ी आ सोहंग धारा रे मन तू क्यों मारा मारा,
तज दे कपट अटारी महल पे आ बैठे रे गंवारा।

---

* गुरु-दीक्षा के समय की गई प्रार्थना।

कातक पल्टै दूजो काया । गैबी पुरुष जहाँ आन समाया ।
जिनने पिछ्ला दुख सह लिया । सो आवागमन का भेद जो लिया ।९।
अगहन से तो मिलकर रहो । नयन खोल कर अपना गहो ।
इंगला पिंगला जिनने साधा । सहज सुन में लो समाधो ।१०।

सूस में आय दीदार मिलिया । तुरिया पद में आय पहुँचिया ।
अनन्त सूर्य का भया प्रकाशा । आवागमन का मेटा सांसा ।११।
माघ मगन बुद्धि विचारो । हिन्दू तुर्क का संग निवारो ।
दोनों पन्थ से रहो न्यारा । कहें जन सिंघा सदा मतवारा ।१२।
॥ इति सिंघाजी महाराज की बारहमासी सम्पूर्ण । जय जय महाराज ॥

सिंघा-पदावली

मत बयजो मोह की धारा रे हंसा,
झूठा है संसारा रे हंसा ।
झूठी गेह देह धन धरणी झूठो सकल पसारा,[१]
झूठी, अरधंगी न तोहे भरमायो नहीं उतरन दे पारा रे हंसा ।
काम क्रोध कछु[२] मछ[३] बसत है लोभ मगर खावे हाड़ा,
अहंकार की लहर जो आवे मद का उड़त फुवारा रे हंसा ।
दुरमति दोय त भव जल गंदलो कपट भंवर फेरा फेरा,
आसा तरसणा की कांजी[४] बहत है पीवो सोई बीमारा रे हंसा ।
खोजी खेयटिया ये नाव चढ़ै रे साधु ये सब से है न्यारा,
कहे गुरु सिंगा सुणो भाई साधु डूब्या मूढ़ गंवारा रे हंसा ।१।

निरगुण ब्रह्म है न्यारा कोई समझो समझण हारा,
खोजत ब्रह्म अलम सिराणा[५] मुनी जण पाया न पारा ।
खोजत खोजत सिवजी थाके अयसा अपरम्पारा,
त्रीकुटी महल में अनहद बाजे होत सबद झनकारा ।

१—सकल विश्व । २—कछुवे । ३—मछली ।
४—सैल । ५—जीवन समाप्त हो गया ।

कहें जन सिंघा सुनो भाई साधू देखो आप में आप। ५४।

चढ़ जा सीधी धारा मन रे तू चढ़ जा सीधी धारा।
तू चढ़ जा सोहंग सीधी धारा जहाँ बरसत नूर अपारा। टेक।
दिल दरियाव अमीरस मीठा और नीर सब खारा।
एक बूँद का सकल पसारा छुटक रहो न्यारा न्यारा।
मन मछवा मोह की जाला उरफ रहो सन्सारा।
ढीमर जाल समुद्र झकोरे काल ने जाय पछाड़ा।
मन मछवा चढ़ा सीधी धारा ब्रह्म का किया विचारा।
अरघ उरघ दोई रोल बने हैं कोई समझो समझन हारा।
चुन चुन पन्छी सेवा कीनो तुमरो पार नहिं पाया।
कहें जन सिंघाजी सुनो भाई साधो छिन में ब्रह्म निहारा। ५५।

सदा मन आनन्द भजले हरी ऐसो जन्म न आवे फिरी। टेक।
चार खान चौरासी भरमों जब नर देही धरी।
जा देही में सुमरन करले सोई बात है खरी।
वा दिन को सुध भूल गयो रे रहो उध मुख झूली।
त्राह त्राह करता घट भीतर दश उँगली मुख धरी।
गर्भवास से बाहर आया पाई आनन्द घड़ी।
जो मांगा सो दिया गुरु ने तभी न मन्सा भरी।
कर से तो तू धन्धा कर ले पग से पन्था करी।
रसना नाम सुमरले बन्दे फिर न आवे तेरी घड़ी।
जागत सोवत ऊठत बैठत राम सुमर घड़ी घड़ी।
कहे जन सिंघाजी सुनो भाई साधू इस विध जायगा तरी। ५६।

अजपा जाप दुर्लभ है सुमरण जिहिं आवे। टेक
बिन मुख से रटबू करे जिभ्या न डुलावे।

संभु सरीखा जोगी कई एक ब्रह्म सरीखा ब्रह्मचारी।
नारद सरीखो बड़ो उ ज्ञानी कृष्ण जी भयो अवतारी।
सात समुन्दर अंग पसीना यहु तक हैं नन्दी नाला।
अठारहैं बार रामायण कहिए सिर मटकी का भारा।
खुटी गाड़ी न तम्बू तणाया दूकान लगई न्यारी न्यारी।
कहे गुरु सिंघा सुणो भाई साधु तम्बु म खलक समाबो।४८।
तुम बिन मेरे और न होगा गुरुजी शरन तेरी हूँ जी। टेक।
जब हम तुमरी संगत कीनी जब तुम पकड़ी बाहीं।
घट घट में तुम रखवारे जब सुमरूँ जब माहीं।
तुमरी संगत हम सुख पाया जरी हिरदे की काई।
दुविधा दुरमत दूरि करी घट घट रहा समाई।
अबके गुरु जी शरणों राखा ये ही प्रण है मेरा।
भूल चूक की राह लगाओ दीजो ममसर मेरा।
भक्तवत्सल विर्द कहायो अबकी न लेहौं ज्ञानी।
कहे सिंघा सुनो भाई साधू तत्व ब्रह्म पहिचानी।४९।
अटल तेरी बादशाही रे मनुआं अटल तेरी बादशाही रे। टेक।
मन अहंकारी घोड़ा करले पवन की कर असवारी।
चन्द्र सूरज दोई मोर्चा करले बीच में लरे सिपाही रे।
सार शब्द की झलका करले बख्तर माती पहराई रे।
अनहद नाद जुझाऊ बाजे फौज लई हैं मारी रे।
चार खंट का बादशा तू ही और दूजा नहिं कोई।
पकर मंगावे अदल चलावे जाकी फिरे दुहाई।
इतसे बोता उतसे लुनता निरफल कमू न जाई।
कहे जन सिंघा सुन भाई साधू उनकी सुफल कमाई रे।५०।
काबागढ़ का तुम देखो तमाशा लड़का। टेक।

मन दूत की नाव बनी है लोभ भरयो भरतों है।
झूठा पुतला बण्या खेवटिया किसं विधि उतरेगो पार।
लाल खंभ से खेंच बंधोगे कौन चढ़े तेरी भीड़।
गंगा यमुना न्हातो डोले मलीच जड़यो शरीर।
कह जण सिंघा सुण भाई साधो गुरु चरण के तीर। ४५।

तू चढ़िजा सोहं सीधी धारा रे मन तू। टेक।
दिल दरियाव उमंग जल गहरा लहरा उठत अपारा।
सोई नीर सकल भवसा में दिल रह्यो न्यारा न्यारा।
बंकनाल की तू सुध कर भाई त्रिकुटी संगम मेला।
सुखमन नार दोऊ सांस बराबर वही थारो सिरजण हारा।
मन मछुओ माया की जाल म उलझ रह्यो संसारा।
ढीमर जाल झपट कर डाले हद छोड़ अम घेरा।
अलख म खलक और खलक म पारा छिन म मिले करतारा।
कह जण सिंघा सुण भाई सादु पल में करे निरवेड़ा। ४६।

क्यों करतो गुमान मूरख मन धारी उमर चली हैवान। टेक।
नहीं कछु लाया नहीं ले जाएगा क्यों करतो गुमान।
ये गुमान म सब जग बहियो अब रट गुरु को ज्ञान।
धन चाहे तो सो धरम करले मुक्ति चाहे तो भजो नाम।
संकट पड़े से प्राण दोहेला अवसर आवसे काम।
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी धर्यो रखी एक ठाण।
चलणा की विरिया काम नी आवे यई माया को भाम।
हाल दीवाणा कोई माल दीवाणा जोबन दीवाणा गुलाम।
कहे सिंघाजी हम नाम दीवाणा पाया गुरु की धाम। ४७।

ऐसो जंत्र बजायो मन रे ऐसो जंत्र बजायो खलक तमाशो आयो। टेक

कीजे अमिरस पान स्नान कीजे नित उठी।
गगनो में प्रकाश धारा बहे उल्टी।
अष्ट पहर निस दिवस रटना लागी छे मोटी।
छे सौ इक्कीस हजार बिन जिह्वा भाखी।
अष्ट कमल निज धाम आत्मा झलके रवि शशि।
जो भेद जाने बिरला कोय ब्रह्मगिर कहे आरती। ४।

चलो सन्तों पावां हो दीदार सिंघाजी घर हरि को बधावनो।टेक।
बाबा मनस जन्म दुर्लभ है रे गुरु आवे न दूजी बार।
जो पल नहीं आवे पाहुना तुम मानो बचन नर नार।
बाबा जिने गुरु गोविंद सेइयो वां तो उतरे भव जल पार।
धन करनी सतगुर की जिनने जीत लियो संसार।
दल्लू पतित की बीनती गुरु मोहे राखो चरण अधार रे। ५।

दरयाव के अंदरे लाल एक जुहरे।टेक।
बिन पानी का सागर सारा झीना नूर बरसता सारा।
जहाँ मोती उपजे हीरे।
सतगुर जहाजा भर-भर लावे कोई एक भाग पूर्बला पावे।
जहाँ भरा माल अनमोले।
मन पवन की जहाज बनाई सुरत निरत केवटिया लागे।
जहाँ लगा प्रेम की डोरे।
कहे जन सिंघा मनरंग का चेला कृपावन्त गुरु है मेरा।
मन मगन भया यो प्राण नाचता मोरे।

आरती सिंघाजी महाराज की

आरती साहब थारी किस बिधि कीजे तन मन धन अर्पण शीषधर लीजे।
शीष होय तो फूल चढ़ाऊ चरण होय चरणामृत लीजे।

मन बाछरू उलट के ध्यावे जिनने मेल्यो ते प्रेम को पाणो ।
सतगुरु आसण दुहन बैठे तुरिया दुहणों हाथ ।
अनहद के घर घुम्मर बाजे ऐसे दुहते अखंड दिन रात ।
ब्रह्म अगण पर दूध तपायो क्षमा शान्ति लौ लावे ।
गुरु शब्द को दही जमायो ऐसे निश्चय का दिया है जमाण ।
चन्द्र सूर्य की रई बनाकर घट अन्दर लौ लावे ।
दधी मथीणों माखन लायो निकल्यो ते सुमरण सार ।
कामधेणु सतगुरु की महिमा बिरला जण कोई पावे ।
कहें ऋषि सुन्दर गुरुजी की कृपा ऐसे जोत में जोत समाय । १ ।

जय जय आरती अलख निरंजन तन मन अर्पण करूँ दुख भंजन ।टेक ।

कर्म कपास करां हो मन बाती पांचों ही पतंग जले दिन राती ।
पोषन प्रेम चुवे पल पल में दीपक आखंड निरन्तर जलता ।
अनहद बाजा बाजे हो तूरा सेवक सेवा करत हजूरा ।
सहज ही झालर होय झनकारा देवा बिन देवल सब्दत है सारा ।
आरती तेरी तू मुझे भावे हर्ष हर्ष हरिदास गुण गावे । २ ।

ऐसी आरती करहु विचारी मदन मोहन हरने कियो विस्तारी ।टेक।
सब सगुण का थार सञ्जोया तत्व त्रिगुण का तिलक लगाया ।
लख चौरासी फेरा हो द्वारा शब्द सोहंग बिच सुरत पुराया ।
गुरु गम ज्ञान का दीपक लगाया अलख पुरुष का मर्म जब पाया ।
कहें जन दल्लू कोई सतगुरु को ध्यावे जोनी संकट बहुर न आवे । ३ ।

सदा तुम आनन्दा मूर्ति सत्तधर्म परमाण अनभव की आरती जयदेव ।टेक।
काया कञ्चन थार जामें पाँच पच्चीस बाती ।
मन दियला लगी जोत बिन तेलों बाती ।
घण्टा बाजे अनहद नाद सुरत निरत जहाँ रहे लिपटो ।
त्रिवेणी के घाट भंवर गुफा भारी ।

बिन श्रवण धुन सुन पड़े बिन नैन निहारे।
इंगला पिंगला के मध्य में पवन चढ़ावे।
त्रिवेणी के घाट पै स्नान करावे।
पश्चिम दिशा गगन चौकी खिड़की उघड़ावे।
ता मध्य एक कोठरी जामें ध्यान लगावे।
चाँद सूर्य ऊगे नहीं सांई रूप कहावे।
कहैं जन सिंघाजी जा गुप्त रहनी फेर जन्म नहिं आवे। ५७।

जीवता नहीं मुआ हरिजन जीवता नहीं मुआ।
नर तोहे बार बार दुख हुआ। टेक।
काया कुलम्भल ऊभट घाटी जहाँ अमीरस धारा चुआ।
अमीरस छांडे विष को धावे ऐसा अहमक हुआ।
साहब देखा आसहि पासा रे जब जम से खेले जुआ।
इस घट भीतर पांच प्रपन्ची रहता रे इनको बांध डालो कुआ।
कहैं जन सिंघाजी सुन भाइ साधु पयो अमृत दुआ। ५८।

तुम सदा अमीरस पीना सन्तो नहीं मरना न जीना। टेक।
थारा मन तो कटाक्ष फैलारे जाहे ले असमानी धरना।
निर्गुण सागर चहुँ दिशा भरिया जाहे नैन नासिका से पीना।
मान गुमान करो मत कोई रे जा दुनिया जब जैना।
घर का चोर घर ही में मूसेरे तुम जतन-जतन से रहना।
कहैं जन सिंघाजी सुनो भाई साधू रे तुम अमर होय के रहना। ५९

मन मेरे नजरों मोती आया सतगुरु साहब ने बतलाया। टेक।
बारीक झीना नजर नहिं आवे जित देखों जित छाया।
कंकर पत्थर की मत कर आसा रे गुरु हीरा लाल परखाया।
भरा दरयाव थाह नहिं आवे कोई मर जीवा होकर लाया।
लाखन ऊपर लाखन जड़िया रे वो गगन मण्डल में छाया।

निशान नहीं जहाँ फौजां अड़ती । बाजा बाज रहा रे अनहद का ।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो । अटल खजीना साहिब का ।१०।

अजपा सुमरो रे भाई । तत्व वस्तु जहाँ पाई हो पाई ॥ टेक ॥

पहली पूजा गणपती की । दूजी शारदा माई ।
गगन मंडल में शोर मचो है । अनहद नाद सुनाई ।

जो अजपा को ध्यान धरत है । गोता कबहु न खाई ।
बंकनाल से उलट चढ़िया । त्रिकुटी रमाई ।

रिमझिम रिमझिम मेहला बरसे । झिमका झड़ी लगाई ।
चाँद सूरज को भयो उजेला । जगमग जोत जलाई ।

बिन सतगुरु कोई ज्ञान न पावे । कैसे राह बताई ।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो । भक्ति में मुक्ति पाई । ११ ।

पन्छी कर ले रैन बसेरो । ये तो मुसाफ़िरी को डेरो ॥ टेक ॥

चौरासी तज नर तन धारो । अनज कियो जब भयो बंजारो ।
नेकी बदी को सौदा कीनो । लदो बैल पर भारो ।

पाँच पच्चीस जब संग में लीन्हे । मिलो बटाऊ प्यारो ।
ऐबी गैबी जब घोड़ा छूटे । जहाँ अंत पड़ो अँधियारो ।

बिन बादल जहाँ सागर भरिया । न्हावे हरि को प्यारो ।
सत्यगुरु ने आ राह बताई । जब मन मस्त भयो मेरो ।

संगी हमारा बागी हुआ । कर देसे उजियारो ।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो । सोहंग शब्द को हेरो । १२ ।

देवल देख ले रे जामें । सतनिरंजन देव ॥ टेक ॥

बिन टाँकी का देवल घड़िया । जामें देव अभंगा है ।
अलख पुरुष पर लखो न जाई । पल-पल में बहुरंगा है ।

तन कर दिवला, मन कर बाती । ब्रह्म अगन तन जारो ।
अन्तस घट में भयो उजयारो । सुन्न मण्डल में तारी ।

जो कहें मेरी वो कहें मेरी। हाथ कछु नहीं आया रे।
सिप में मोती उपजो। लाखन हीरा खोया रे।

मात कहे जो पुत्र हमारा। पुत्र कहे मेरी माता रे।
आ ठगिया ने सर्व जग ठगिया। इनसे कैसा नाता रे।

चाँद सूरज दोई तपें बराबर। उनसे नहीं अंधियारा रे।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो। ओही तत्व हमारा रे।४।

जीव मेरा बाच्छा सरदार। थारे बिन कौन लगावे पार।टेक।
जंगल काटा बस्ती कीन्ही। शहर बसायो सार।
चन्द्र सूरज दोई झन्डा रोपे। अरद-उरद बाजार।

तू मेरा बादशाह मैं तेरा काजी। मेरा कहा विचार।
जो चहिये सो डेरा भेजूं। क्यों करता उरझार।
बैठा हुकम तेरा चाले। अटल पड़ी खनडार।
रहयत तेरी तुझको सौंपू। मुलक किया उजार।
गैबी गोला तेरे छूटे। चोर भयो न्योछार।
कहें जन सिंगा सुनों भाई साधो। लिया तत्व विचार।५।

जम से नहीं डरूँगा रे। हरी का भजन करूँगा रे।टेक।
और सकल कसबा के प्यादे। मैं सरकारी काजी।
काम क्रोध की गर्दन मारूँ। साहेब राखूँ राजी।

जिमि दुलीचा असमान समीना। बिना पूँजी का भरा खजीना।
नहीं डोरी नहीं खूटी। राह पंथ से छूटी।

शरण तुम्हारे खासे कपड़े। सुरत हमारी डोरी।
अन पावन की मोट जो बाँधी। भई पन्थ में चोरी।

पेड़ों पत्र कछु न दीखे। मूल न दीसे डाली।
बिना बेल की परमल फैली। देखो दृष्टी पसारी।

ओछो जल जहाँ तलफे मछली। आय सरोवर घर कीजे।
एक साहूकार अनेक बैपारी। नेकी का सौदा कीजे॥
जिसका खाना राजी होय रहना। बे भूल कभी मत हूजे।
तन से पलंग पर सेज बिछाजे। सुन्न में डेरा दीजे।
चाँद सूरज दोई तपें पोरिया। जहाँ आय झन्डा दीजे।
कहैं जन सिंगा सुनो भाई साधो। सतगुरु बिना मत रहजे।
परिक्रमा दइ-दइ पाव लागन कीजे। ज्ञान को घोर-घोर पीजे॥ २॥

ऐसा मरना मरो भाई संतो। बहुर जनम नहीं धरना रे॥ टेक॥

और जन्म बहुतेरे हूँहैं। मानस जन्म दुहेला रे।
नर देही नारायन दीनी। निगुरा कबहूँ न रहना रे।
निगुरा आदमी पशु बराबर। और कहाँ लों कहना रे।
बरन-बरन की गऊ दुहाई। एक बर्तन में धरना रे।
माखन-माखन संतों ने पाया। बर्तन को क्या करना रे।
नदी नाला सब जुड़ आये। तब दरयाव कहाना रे।
गंगाजी की मीठी महिमा। देशों देश पुजाना रे।
अगला आवे अगन का पूला। आपन पानी होना रे।
ज्ञान के अजान होना। तत्व लेना पहचाना रे।
संतों के आधीन रहना। उपाव कभी न करना रे।
कहैं जन सिंगा सुनो भाई साधो। साधू सदा दीवाना रे॥ ३॥

अब काहे को तलफे रे। परदेशी जीवड़ा आया रे।टेक।

एक बूँद की रचना सारी। गया बूँद बहुतेरा रे।
रही बूँद की करले खोजना। अब काहे को रोया रे।
सांच कहें कोई मानैत नाहीं। नहीं कोई जीव का साथी रे।
कहा भयो अतलस के पहिरे। आलम दुनियां नागी रे।

इनकी अधिकांश निर्गुन बानियाँ 'कड़खा राग' में निबद्ध हैं। इन बानियों की सधुक्कड़ीशैली और पंचमेल भाषा जसराम जी की मनमौजी वृत्ति की परिचायिका है। इनका इस प्रकार का पद यहाँ उद्धृत है—

करै महल की सैल सोई सतभाग है।
जोग जुगति सूं चढ़ै महल पर सुखमनि पंथ निहारा है॥
कामधेनु जहाँ अमृत बरखै झिलमिल जोत अपारा है।
जो नर पीवै अमीरस प्याला देखै अति गुलजारा है॥
सहस कँवल दल अजब सिंहासन तहाँ जु पीव हमारा है।

१. शब्द : प्रेम का अंग १–२।
२. वही : पृ० ५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोहं शब्द लहै सोई हंसा अनहद का झनकारा है॥
जन जसराम लहै या छवि कूं जहाँ रणजीत पियारा है।[1]

६. भगवानदास जी—ये चरणदास जी के वरिष्ठ शिष्यों में से थे। इनका बालूगंज (आगरा शहर) का थाँभा बड़े थाँभों की सूची में परिगणित होता है। श्री भगवानदास जाति के ब्राह्मण थे। गंगा-यमुना के बीच (म्यान डाब या द्वाब) स्थित सिलसिली ग्राम (जिला—मुजफ्फरनगर) इनका मूल स्थान था। यहीं रहकर इन्होंने अपने सम्प्रदाय के साधना-सिद्धान्तों का आजीवन प्रचार-प्रसार किया। इनके इस स्थान का महत्व इसी बात से सिद्ध होता है कि चरणदास जी रामत के क्रम में एकाधिक बार इनके यहाँ गये थे। इस तथ्य की ओर इनके गुरु-भाई श्री जोगजीत जी ने इस प्रकार संकेत किया है—

कियो जु तिन अस्थान, गांव सिलसिली के निकट।
चरणदास सुखदान, इक बर वा अस्थल गये।[2]

दीक्षा ग्रहण के पूर्व ये दिल्ली की शाही सेना में सिपाही थे। ये प्रायः चरणदास जी के अस्थल में कथा-प्रवचन आदि के श्रवण तथा सत्संग-लाभ के लिए आते थे। एक बार चरणदास जी ने इनसे इनका परिचय पूछा तो इन्होने बड़ी अँकड़ के साथ उत्तर दिया। उन्होंने इनके अज्ञान पर तरस खाकर उन्हें ज्ञानोपदेश दिया। इससे ये इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने तत्काल शस्त्र और वर्दी खोलकर दूर रख दिया और वे चरणदास जी के शरणागत हो गये। उनकी भावना और गुरुनिष्ठा से प्रेरित होकर चरणदास जी ने उन्हें अपना लिया और दीक्षा देकर उनका नाम भगवानदास रखा। कुछ दिनों तक गुरुचरणों में रहने के उपरांत ये गुरु के आदेश से द्वाब क्षेत्र में रामत करने और उपदेश देने आदि में प्रवृत्त हो गये।

ये ज्ञान-ध्यान में पूर्ण थे। 'लीलासागर' के अनुसार इन पर गुरु की महती कृपा थी और ये बड़े नामी महात्मा हुए।[3] इनका व्यक्तिगत जीवनवृत्त अप्राप्त है। इन्होने 'रामाश्वमेध' नामक प्रबन्धकाव्य की रचना सं० १८९२ वि० में पूर्ण की थी, अतः तब तक तो इनका जीवित रहना प्रायः निश्चित ही है। संभव है कि इसके आगे भी वे कई वर्षों तक जीवित रहे हों।

इनकी बालूगंज—आगरा वाली गद्दी पर्याप्त सक्रिय रही है। इनके प्रशिष्य मथुरादास सं० १९०० से १९२५ वि० तक इस गद्दी के महन्त रहे। उनके समय में

१. शब्द : पत्र सं० २२।
२. लीलासागर : पृ० २७६।
३. गुरुकृपा सेती बनि आये। नामी महापुरुष कहलाये॥
—लीलासागर : पृ० २७६।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी की समाधि-साधना के क्रम और विधान का वर्णन करते हुए उनके शिष्य जोगजीत जी कहते हैं—

मन मारा तन वश किया, तजे जगत के भोग।
सतुगुरु राखा शीश पर, तब बनि आया योग।।
यम अरु नियम पहिले आराधे। चौरासी आसन फिर साधे।।
प्राणायाम किया विधि सेती। प्रत्याहार सँभाला हेती।।
और धारना का अंग धारा। शून्य ध्यान में मन को मारा।।
आठवीं अंग समाधि लगाई। पाप पुण्य की व्याधि मिटाई।।
छहू कर्म शुद्ध करि साधा। तन में कोई रही न बाधा।।
पाँचो मुद्रा भी सधि आई। तीनों बंध सधी सुखदाई।।
महाबंध साधा बल जोधा। पाँचो वायु लई परमोधा।।
प्राण जो और अपान मिलाई। सुखमन मारग माहिं चलाई।।
षट चक्कर को छेद करि. चढ़े गगन को धाय।
परमानंद समाधि में, दसवें रहे समाय।।[1]

इस प्रकार की कठोर साधना शीघ्र ही परिपक्व हो गयी। परमानन्द की प्राप्ति के साथ अनेक सिद्धियाँ भी उनके करतलगत हुईं परन्तु साधना का क्रम सतत् चलता रहा और क्रमशः लययोग, सुरति=शब्दयोग, हठयोग, सांख्ययोग, भक्तियोग, विहंगमयोग तथा पिपीलिकायोग आदि आठ प्रकार के योगों को भी उन्होंने सिद्ध किया। गुरु ने श्रीकृष्ण भक्ति को सर्वांशतः अपनाने के पूर्व अष्टांग योग की साधना का उपदेश दिया था और सबकी विधि भी उन्होंने बता दी थी। अष्टांगयोग-साधना का गुरु के द्वारा उपदिष्ट क्रम इस प्रकार था—

पहिले भक्तियोग बतलाया। सो सुनि के मन में ठहराया।।
राजयोग की सब विधि जानी। शुकदेव कृपा सों सब पहिचानी।।
सांख्य योग दीनो करि हेता। समझायो सब ही था जेता।।
सुरतियोग हठयोग बखाना। चरणदास शिष ने सब जाना।।[2]

अष्टांग योग को सिद्ध करने के आदेश के साथ ही गुरु ने नव दीक्षित शिष्य को ज्ञान, वैराग्य, मुक्ति और भक्ति के रहस्यों से भी अवगत कराया तथा साधना के कुछ गोपनीय तत्त्वों का बोध कराकर उन्होंने उन्हें सिद्धियों के मोहजाल से मुक्त रहने का भी आदेश दिया। इस प्रकार गुरु-शिष्य की यह गोष्ठी ५।। पहर तक चली थी, जिसमें १।। पहर अपराह्न में अवशिष्ट दिन के थे और शेष ४ पहर

१. लीलासागर : पृ० १११–११२।
२. वही : पृ० ६७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

19:05

Here, when the breath touches मूलाधार चक्र it takes the formation of drum sound.

वीर्यस्वरूपा सा प्राणकुण्डलिनी समस्तं चक्रवर्गं वेधयन्ती तृतीया बिन्दुवेध दीक्षेति नाम्ना व्यपदिश्यते।

(Vīryasvarūpā sā Prāṇakuṇḍalinī samastam cakra vargam vedhayantī tṛtīyā binduvedha dīkṣti nāmnā vyapadiśyate)

Third type of piercing is called bindu-vedha. In binduvedha blissful force of breath is transformed into a fountain of semen. The word बिन्दु means वीर्य (Semen.) The yogi feels that it is a fountain of semen which is rising from मूलाचारचक्र to ब्रह्मरन्ध्र and spreading throughout his body. When the Kuṇḍalinī rises in बिन्दु वेध the yogi feels that sexual joy is nothing in comparison to the joy experienced in it.

शक्तिरूपतामापन्ना चक्रवेधनक्रियापरा सा तुर्या शाक्तवेधदीक्षा भवति।

(Śaktirūpatāmāpannā cakravedhanakriyāparā sā turyā śāktavedha-dīkṣā bhavati)

Fourth type of piercing is called Śāktavedhadīkṣā (शाक्तवेधदीक्षा) In this piercing an aspirant experiences the rise from मूलाधारचक्र to ब्रह्मरन्ध्र in the form of an ant because that blissful force of breath is transformed into energy. This is the rise of energy in Kuṇḍalinī. It is called शाक्तवेध because this kind of penetration in Prāṇa Kuṇḍalinī is filled with शक्ति (power).

सर्पाकारतामादधाना चक्रवेधनं च कुर्वाणा व्युत्तिष्ठन्ती भुजङ्गवेधदीक्षा पञ्चमी।

अपनी स्किल से
probo
जीतो ₹50 लाख तक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयाबाई जी की भी बानियाँ संकलित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि चरणदास जी की तीनों शिष्याओं—सुश्री सहजोबाई, दयाबाई तथा नूपीबाई में आपसी तालमेल बहुत अच्छा था और वे एक दूसरे से सम्बन्धित भी थीं। नूपीबाई जी की योग में निपुणता की प्रशंसा रामरूप जी, जोगजीत जी, अखैराम जी, जसराम उपकारी जी तथा अन्य समकालीन चरणदासी महात्माओं ने की है। वर्तमान-कालीन चरणदासी वृत्तकारों में श्री सरसमाधुरीशरण अग्रगण्य हैं। उन्होंने नूपीबाई जी के सम्बन्ध में निम्न प्रशंसात्मक उक्ति कही है—

चरणदास स्वामी सरनागति नूपीबाई जी गुन ग्राम।
गुरुमुख भई सरन गुरु आई तनया श्रीमत् आतमराम ॥
सुखमन मारग चढ़ी गगन में पहुँची तुरत पिया के धाम।
रस केली कुंजन मिलि हेली करत रहत जहँ स्यामा स्याम ॥
सदा बसन्त कलपतरु सोभित नित नाना सुमन खिले अभिराम।
सरस माधुरीसरन सलोनी दीजे चरन कमल विसराम ॥

नूपीबाई जी के अधिकांश पद अष्टयाम शृंगार की शोभा के वर्णन से युक्त एवं तत्तद् अवसरों के लिए गेय हैं। शृंगार के समय युगल श्यामा-श्याम का स्वरूप वर्णन करते हुए वे कहती हैं—

हमारे प्यारे श्यामाश्याम बिराजे।
रतन जटित सिंहासन ऊपर अद्भुत सोभा छाजे ॥
गौर स्याम सुन्दर मनभावन निरखि काम रति लाजे।
निज जन जीवन प्राण अधारे देख दूर दुख भाजे ॥
हँसि हेरत चित चोर रसीले पट भूषण तन साजे।
नूपीबाई दासि चरन की गावत सहित समाजे ॥

इस पद्धति पर रचित श्री श्यामा श्याम के हिंडोला झूलने की इनकी शब्दमयी झाँकी भी देखने योग्य है—

झूलत जुगलबिहारी आज।
नख सिख सजि सिंगार सुहावन पधराये सिरताज ॥
नान्हीं बूँदन मेहा बरसे मधुर मधुर घन गाज।
गावत गीत मल्हार मनोहर सज्यो रंगीलो साज ॥
झोंटा लेत देत बलिहारी झुलवत श्री महाराज।
नूपीबाई निरखि यह सोभा छाक्यो सकल समाज ॥

इनकी साखियाँ भी बड़ी ही मनोहारी हैं। इनका भाषा पर बहुत अच्छा अधिकार है। अनावश्यक या भर्ती के शब्द इनकी कविता में कहीं भी नहीं है। ये परम गुरुभक्ता थीं और गुरु को साक्षात् अवतार मानती थीं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणदास जी की शिष्या हो गई थीं। दूसरी नूपीबाई श्री आतमराम इकंगी की पुत्री थीं। सम्भवतः अपने पिता-माता की एक मात्र सन्तान थीं और पिता के साथ ही अल्पायु में श्री चरणदास से दीक्षित हो गई थीं। गुरु की शिक्षा-दीक्षा के अन्तर्गत उन्होंने राजयोग और ध्यान में दक्षता प्राप्त की थी। वे अविवाहित रहकर दिल्ली, जयपुर और वृन्दावन के बीच घूम-फिर कर स्त्रियों में भक्तिप्रचार करने में रत रहीं। अपने दादा जीवनदास के बामनौली आश्रम में, पिता के जयपुर स्थित आतमकुंज में और वृन्दावन के सेवाकुंज में भी वे काफी समय तक रही थीं। उन्हें समाधि में निपुणता प्राप्त थी। उनकी साधना-पद्धति मुख्यतः सखीभाव की थी।[1] 'लीलासागर' के रचयिता और उनके गुरुभाई श्री जोगजीत ने इन्हें 'जोगजीत श्री गुरु की प्यारी ! नूपीबाई बहन हमारी'—कहकर इनकी बड़ी प्रशंसा की है।

इन्होंने किसी स्वतन्त्र स्थान का निर्माण नहीं किया था। यदि किया भी हो तो उसका पता नहीं चलता। इनके काव्य में निर्गुण पद्धति की बानी की झलक के साथ ही रसिक साधना के प्राधान्य की भी झलक मिलती है। इनका सखी नाम 'नूपीसखी' था। इनकी बानी का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

मेरे प्रेमनगर में बसत कंथ। जाकी औघट घाटी विकट पंथ॥
मैं परसन चाली प्यारो पीव। कर दीप लियो बिन बाती घीव॥
ह्वै सुषमन मारग चढ़ी धाय। निज कुंज पिया की पहुँची जाय॥
जहाँ सखी भाव भीतर को जाय। रसकेलि करै निज धाम माँहि॥
जिहि रंगमहल के आस-पास। बहु सन्त सखा राखैं निवास॥
जहँ अद्भुत लीला अति अगाध। तहँ बाजे बाजें संख नाद॥
जहँ अमृत बरसे काम धेन। लखि कल्पवृक्ष मन भयो चैन॥
जहाँ कई रंग के फूले फूल। कोई निरखै जन जग व्याधि भूल॥
गुरु चरनदास दीन्हों बताय। सो "नूपी बाई" लीन्हो पाय॥[2]

सरस निकुंज-जयपुर के ग्रन्थागार में एक ऐसी पाण्डुलिपि सुरक्षित है जिसमें आतमराम जी, उनके शिष्य श्री लक्षिदास तथा नूपीबाई जी (आतमराम जी की सुपुत्री एवं चरणदास जी की शिष्या) की बानियाँ एक साथ संगृहीत हैं। इसी प्रकार अखैराम जी की शिष्या एवं जयपुर निवासिनी खुशालाबाई जी एवं आलोच्य सुश्री नूपीबाई की बानियाँ एक साथ संगृहीत मिली हैं। इसी संग्रह में

---

१. योग ध्यान महाराज सिखायो। राज योग हिय में प्रगटायो॥
--श्रीमत् दम्पति की मनमेली। सेवा निज कर भई सहेली॥
—लीलासागर : पृ० २२६।

२. शुक सम्प्रदाय-सिद्धान्त-चन्द्रिका : पृ० १२७–१२८ पर उद्धृत।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा और योगविद्या के प्रगाढ़ ज्ञान का एकसाथ परिचय दिया है। इनका योग सम्बन्धी ज्ञान केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित न होकर स्वानुभव के ऊपर आधारित है। वर्ण्य और वर्णन की विश्वसनीयता असंदिग्ध है। वर्ण्य-विषय के शास्त्रीय पक्ष पर अधिक ध्यान होने के कारण छंद और भाषा-प्रयोग में कवि अपेक्षित सावधानी नहीं रख पाया है। फलतः मात्रा एवं शब्द-प्रयोग की कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं। इनकी योगपरक बानी का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

अथ गुरुबचन (चौपाई)—

इड़ा पिंगला सुषमन धारो। आसन ब्रज नागनी टारो॥
द्वादस अंगुल गहो बंध। षट चक्कर लीजै।
जब बाजे अनहद तूर। वहाँ मन निज करि दीजै।
खेचर मुद्रा त्रिकुटी आवै। अमृत पिये परम सुख पावै॥
मेरु दंड को प्राण चलावो। सुन्न सिखर तब नगरी पावो॥
जा नगरी में चंद न भान। पहुँचे साधू चतुर सुजान॥
जहाँ जातिपाँति नांव नहिं नाता। सेत स्याम पीत नहि राता॥
जोग जग्य तप तहाँ न दाना। तीरथ बर्त जहाँ नहि न्हाना॥
किरिया कर्म नहीं जहाँ पूजा। मैं हूँ न तूं है एक न दूजा।
जहाँ सांझ धोस नहिं राता। एकै ब्रह्म अखंड विधाता॥
नन्दराम राम की घाटी। पहुँचै गुरु मत सूरा।
औ भी बुद्धवाद बहु ठानें। करनी करै सो पूरा॥[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्दराम जी भी योग सम्बन्धी प्रायः उन्हीं उक्तियों का आश्रय ले रहे हैं, जो गोरखनाथ, जलंधरनाथ आदि नाथसिद्ध और कबीर-दादू आदि संत कवि पहले ही अपनी बानियों में प्रयुक्त कर चुके थे।

'ब्रह्मविद्यासागर' में नन्दराम जी का 'योगसार' भी सम्मिलित है। यह संग्रह सं १८१६ वि० में तैयार हुआ था। इसमें चरणदासी महात्माओं की बानियाँ संगृहीत हैं। इसकी पांडुलिपि दिल्ली स्थित सहजोबाई जी की गद्दी के दिवंगत महंत गंगादास जी के यहाँ देखने को मिली थी। 'ब्रह्मविद्यासागर' का प्रकाशन प्रथम बार लाहौर से सन् १८६० ई० (सं० १६४७ वि०) में थियोसोफिकल सोसाइटी द्वारा हुआ था। 'योगसार' के रचना काल के सम्बन्ध में उक्त आधार पर कहा जा सकता है कि सं० १८१६ वि० के पूर्व यह कृति रची जा चुकी थी। सम्भवतः इसी को 'हठयोग' नाम देकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के हस्तलेख

१. योगसार (हस्तलिखित) : पत्र सं० ३३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

08:46
ucknowdigitallibrary.com

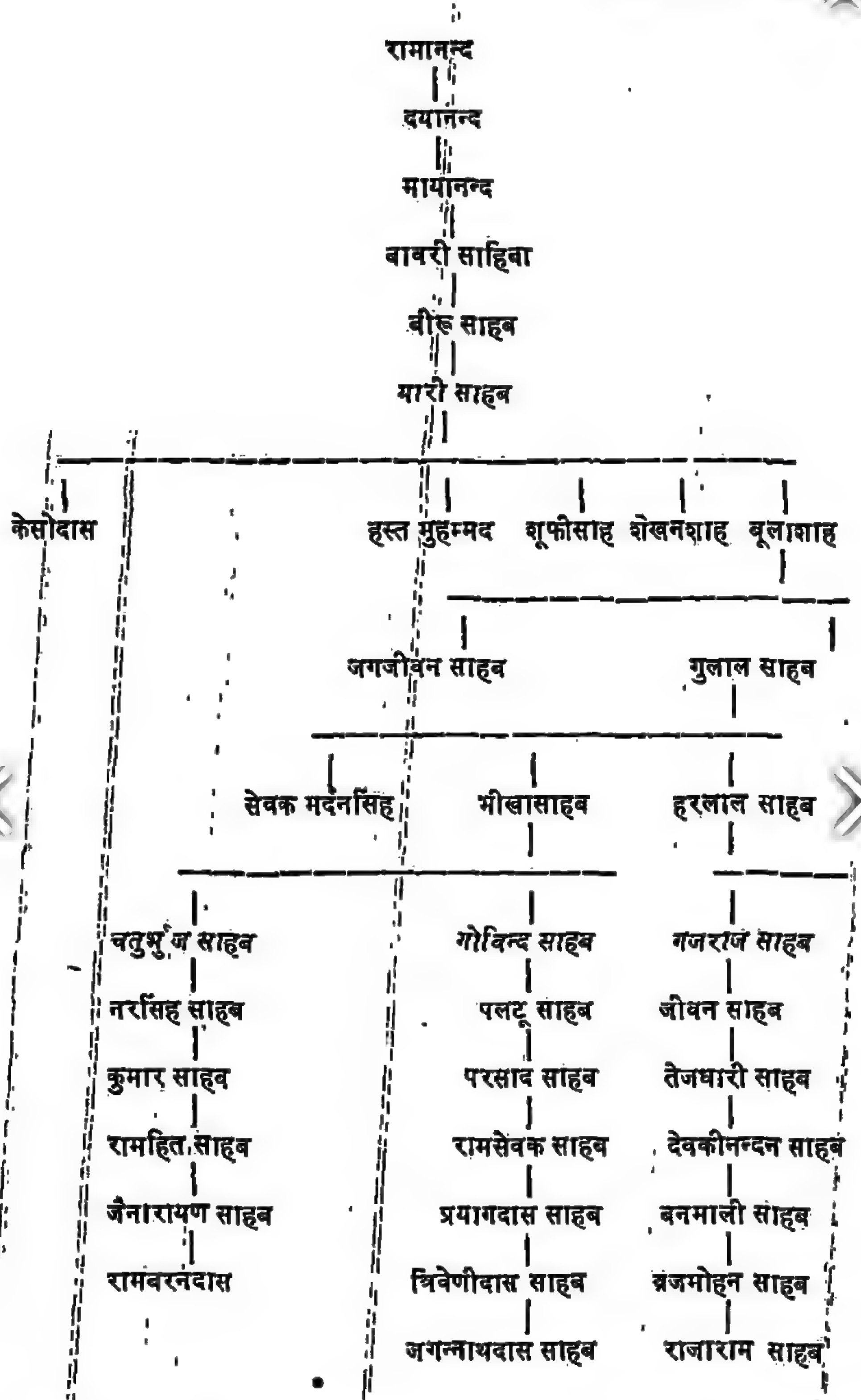

परन्तु बावरी-पंथ की विभिन्न गद्दियों तथा शाखाओं से पूछताछ करने के पश्चात् माणिक वंश वृक्ष इस प्रकार ठहरता है :—

100/397

04:43

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत कबीर की भांति इनका भी एक गूढ़ार्थ पद उदाहरण के रूप में यहाँ उद्धृत है—

साधो अचरज एक लखाया, काहू बिरले जन ने पाया।
ऊपर कूप तले पनिहारी, नीर भरै निस प्राता॥
नजर नैन बिन सूझ अनूठा, तहाँ नहीं दिन राता॥
बागन ही वृक्ष लगै अमोलक, सींच बिना हरियाली।
फूल खिले बहु रंग बिरंगे, मूल पात बिनु डाली॥
गगन मांहि एक धेनु विराजै, अमी देत नहिं खावै।
गुरुमुख आवै और जुगुत सों, जनम मरन छुट जावै।
जोग साध यह खेल निहारा, निपट अगोचर भेवा॥
नवनदास हित चित तें करिया, अलख पुरुष की सेवा॥[1]

श्री नवनदास के पदों में अनेक राग-रागिनियों का प्रयोग किया गया है। उनमें पर्याप्त विषय-वैविध्य भी है परन्तु कवि का ध्यान गुरुमहिमा और मुरली-महिमा के गान पर तथा आत्मनिवेदन एवं विरहनिवेदन पर अपेक्षाकृत अधिक केन्द्रित है। कुछ पदों की प्रथम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१. गुरु बिन बाधा कौन हरै।
२. सुमर मन राधा कृष्ण कृपाल।
३. वंसी तू है कामनगारी।
४. परमानन्द निधान हेली तासूं प्रीति लगाइए।
५. झूठ जगत की प्रीत सखी री मोहन मित्र हमारा।
६. प्रभु जी हूँ शरनागति तेरी।
७. हरि जी भक्ति दया करि दीजै।
८. प्यारे के दर्श बिन कल न परे।
९. प्यारे लै गयो चित को चोर।
१०. मुरली श्याम बजावै जी, सो छवि बरनी न जाय सखी री।
११. हे दिल जानी तूं मेरे डेरे आव। आदि।

इनके पदों में भाषा-प्रयोग की अनेकरूपता भी स्पष्ट दिखाई देती है, जैसे—

(क) ओ मन मोहा मेड़ा ओ मुस्कान।
(ख) मोहनवा लागत है अति प्यारा।
(ग) हो हो सकल करत ब्रजबनिता चहुँ दिसि से घिरि आई हो जू।

---

१. नवनप्रकाश : शब्द सं० ४२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(४) शुक सम्प्रदाय में योग साधना का स्वरूप तथा महत्व—आलोच्य सम्प्रदाय के आद्याचार्य श्री चरणदास ने अपनी प्रेमाभक्तिसाधना की यात्रा योग से ही आरम्भ की थी। यह तथ्य उनके जीवनचरित्र से भलीभांति प्रकट होता है। उन्होंने छः वर्ष की अवस्था में ही योगसाधना का अभ्यास आरम्भ कर दिया था। गुरु-दीक्षा प्राप्ति के पूर्व तक उनका यह अभ्यास अव्यवस्थित तथा अपरिपक्वावस्था में था। शुकतार में गुरु से भेंट होने पर उनसे दीक्षा-प्राप्ति के समय उन्हें इस विषय का व्यापक ज्ञान प्राप्त हुआ। गुरु ने उन्हें अष्टांग योग सहित ज्ञान और भक्ति के भी सभी अंगों का ज्ञान प्रदान किया था।[2]

दीक्षित होकर दिल्ली में वापस आने के उपरान्त उन्होंने उन्नीस से इकतीस वर्ष की अवस्था तक दिल्ली की एक पहाड़ी गुफा में कठोर तपस्या और योग-साधना की। उनके इन बारह वर्षों की योगाराधना के क्रम का विस्तार के साथ वर्णन करते हुए श्री चरणदास के परम विश्वस्त शिष्य श्री जोगजीत इस प्रकार कह रहे हैं—

यम अरु नियम पहिले आराधें। चौरासी आसन फिर साधें।।
प्राणायाम किया विधि सेती। प्रत्याहार सँभाला हेती।।
और धारना का अंग धारा। शून्य ध्यान में मन को मारा।।
अठवीं अंग समाधि लगाई। पाप पुण्य की व्याधि मिटाई।।

---

१. प्रेम मंजरी[1] नाम है, गन्धर्वा[2] गुणग्राम।
प्रमोदिनी[3] मधुरा स्वरा[4], सहजानन्दिनि[5] बाम।।
गुणप्रकाशिका[6] जानिये, जुगतानन्दिनि[7] बाल।
प्रमुदमंगला[8] जू सखी, रूप राशि छबि जाल।।
—शुकसंप्रदाय सि० चं० : पृ० ५१।

२. पहिले भक्तियोग बतलाया। सो मुनि के मन में ठहराया।।
राजयोग की विधि सब जानी। शुकदेव कृपा सों सब पहिचानी।।
सांख्य योग दोनों हरि हेता। समझायो सबही था जेता।।
सुरति योग हठयोग बखाना। चरणदास शिष ने सब जाना।।
यम अरु नियम जु प्रत्याहारो। ध्यान धारणा पंच अंग धारो।।
आसन प्राणायाम सु जानो। अष्टम लै समाधि पहचानो।।
औरो अंग बहुरि समझाये। चौरासी आसन दिखलाये।।
—लीलासागर : पृ० ९७-९८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांचों मुद्रा भी सधि आई। तीनों बन्ध सधे सुखदाई।।
महाबन्ध साधा बल जोधा। पांचों वायु लई परमोधा।।
प्राण जो और अपान मिलाई। सुषुमन मारग माँहि चलाई।।
षट् चक्कर को छेद करि, चढ़े गगन को धाय।
परमानंद समाधि में, दसवें रहे समाय।।[1]

अपने गुरु के इस योगसिद्धि रूप का वर्णन चरनदास जी के शिष्य गुरुछौना जी ने इस प्रकार किया है—

गंग जमुन के बीच, जहाँ निज डेरा दीना।
मन माता बहुरूप, खेंचि अपबस कर लीना।।
उठा सबद घनघोर, तूर अनहद धुनि बाजा।
जीते पांच पचीस, भयो सब पूरन काजा।।
अष्ट जोग कूं साधि तुम, भये रूप अदभुत बरन।
जन छौना परनाम करि, सु चरनदास तारन तरन।।[2]

(५) निज गुरु प्रिय

मेरा गुरु लागे मोहि पियारा,
शब्द सुनावै भरम उडावै, करे जगत से न्यारा ।।टेक।।
जोग जुगति की सब विधि जानें, बातें कछु न छानै ।
मन पवना उलटा गह आने, आने छाने जानै ।।१।।
पचो इन्द्री दृढ कर राखै, शून्य सुधारस चाखै ।
वाणी ब्रह्म सदा ही भाषै, भाषै चाखै राखै ।।२।।
परमारथ को जग मे आया, अलख खजाना लाया ।
बाट बाट सबहिन से खाया, खाया लाया आया ।।३।।
परम पुरुष सो प्रकटे आदू, श्रवण सुनाया नादू ।
'सुन्दरदास' ऐसा गुरु दादू, दादू नादू आदू ।।४।।

(६) राम रस को कोई पावे

कोई पिवे राम रस प्यासा रे,
गगन मडल मे अमृत सरवै, उनमनि के घर वारा रे ।।टेक।।
शीश[1] उतार धरे धरती पर, करे न तन की आशा रे ।　　अहकार[1]
ऐसा मिंहगा अमी बिकावे, छह रितु बारह मासा रे ।।१।।
मोल करे सो छके दूर से, तोलत छूटे बासा[2] रे ।　　वैराग्य हो[2]
जो पीवे सो जुग जुग जीवे, कबहू न होय विनाशा रे ।।२।।
या रस काज भये नृप जोगी, छाडे भोग विलासा रे ।
सेज सिंहासन बैठे रहते, भस्म लगाइ उदासा रे ।।३।।
गोरखनाथ भरथरी रसिया, सोई कबीर अभ्यासा रे ।
गुरु दादू परसाद कछू इक, पाया 'सुन्दरदासा' रे ।।४।।

(७) विपर्यय शब्दों द्वारा माया ईश्वर परिचय

सतो लखन बिहूनी नारी,
अग एकहु सावत नाही, कत रिझाया भारी ।।टेक।।
अधली आखन काजल कीया, मुडली माग सवारै ।
बूचा कानन कुडल पहिरे, नकटी बेसर धारै ।।१।।
कठ बिहूनी माला पहरै, कर बिन चूडा सोहै ।
पाव बिहूनी पहरे घुघरू, पति अपने को मोहै ।।२।।
दत बिहूनी बीडा चाबै, जीभ बिहूणा बोले ।
निशिदिन ता पूहड के पीछे सग लगा पिव डोले ।।३।।
मन बिन काम करै सब घर के, जीव बिहूनी जीवे ।
'सुन्दर' साई सेज विराजे, तेल न बाती दीवे ।।४।।

है किन्तु इसे हठयोग का प्रभाव मात्र माना जा सकता है, जो सर्वथा स्वाभाविक भी है। वैष्णवधारा से उद्भूत होने के कारण योग रामसनेही सम्प्रदाय को उत्तराधिकार के रूप मे मिला था जो भक्ति के साधन रूप म गृहीत है।

मन्त्रयोग—योग साधना के विभिन्न भेदो मे सबसे सरल मन्त्रयोग है। मन्त्रयोग की प्रमुख विशेषता जप, साधना या नामस्मरण है। इसके अनुसार परमात्मा से भाव और भाव से नाम-रूप की उत्पत्ति होती है। यह जगत् नामरूपात्मक है। इसलिए ब्रह्म तक पहुँचने के लिए सृष्टि विकास के विपरीत क्रम को अपनाना चाहिए। तात्पर्य यह कि पहले नाम रूप का आश्रय लेना अपेक्षित है। नाम रूप से भाव में प्रवेश किया जाय। फिर भावग्राही परमात्मा म चित्तवृत्तियों का विलयन कर मुक्तिलाभ किया जा सकता है। इसी को 'मन्त्रयोग संहिता' मे उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार भूमि पर गिरा हुआ मनुष्य उठने के लिए भूमि का ही सहारा लेता है उसी प्रकार नामरूपो के आलम्बन से वृत्तियो के चांचल्य एव विषय संयोग म फंसा हुआ मनुष्य नामरूप के सहारे ही चित्त वृत्ति निरोध करके बन्धनमुक्त होता है।[1] कहना

अम भरे विगसै कवल अनहद धुन गाजे।।

वही, पृ० ५५

(ग) रामचरण ससार मैं राग छतीस बखाण।
सन्त सुणत है गगन मै अनहद वे परमाण।।

अणभै वाणी, पृ० १४

(घ) इगला पिंगला चलत एक रस कण्ठ हिरदा विचै ध्वनि लाया।

वही, पृ० १६२

(ङ) उलट पताल आकाश म चढ उलंघे मेरा।
इला पिंगला सुषमणा तिरवेणी मैं डेरा
त्रिवेणी सू आगे गया सुनके माहि समाया।
सुख समाधि सहजा लगा निरभै पद पाया।।

श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० २१०

१ नाम रूपात्मकासृष्टिर्यस्मात् दव लम्बनात्।
बन्धना मुच्यमानो य मुक्ति मा प्राप्तिमाधक।।
तावद भूमिमालम्ब्य स्खलन यत्र जायते।
उत्तिष्ठतिजन सर्वोऽप्यन्येणैव समीर्यते।।
नाम रूपात्मकैर्भावैर्य त निखिलात्मना।

पीछे हम कह आये हैं, कि कुंडलिनी शक्ति 'स्वयंभू' लिंग को साढे तीन वलयों में लपेट कर सुषुम्ना मार्ग को अवरुद्ध करके सुषुप्तावस्था मे पडी रहती है। हठयोगी का अंतिम लक्ष्य इसे जागृत करके सुषुम्ना मार्ग से षट्चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार तक ले आना है। इसके लिए उसे आसन और प्राणायाम का अभ्यास करना पडता है। यही नहीं वरन् उसे 'महामुद्रा' महाबंध, महावेध खेचरी, उड्यान मूलबंध, जालंधरबंध विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालन—इन दस मुद्राओं का भी अभ्यास करना पडता है।

रामसनेही सम्प्रदाय की सिंहथल-खेडापा शाखा के आद्याचार्य हरिरामदास ने हठयोग की क्लिष्ट काया साधना को अपनाया था। उनके 'परचर निसाणी' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ मे रेचक, पूरक कुम्भक, त्राटक[1], जालंधर बंध,[2] षटचक्र[3],

---

1 रेचक अरु पूरक कर बिन कुंभक, आप उलटि पलटदा है।
त्राटक हुय ध्यानू वात विज्ञानू, आप पट खूलदा है।
परचर निसाणी, छं० ८

2 जालंधर बंध उरधे कधा मन अरु पवन मिलदा है।
उलट्या है आसण पलट्या वासण सुरत शब्द परसदा है।
वही, छं० १०

3 षटचक्कर बेध्या भव दुख छेद्या सासा शोक नसदा है।
गरजत है गणू बरजत वेणू तरवर धूम बसदा है।।
वही, छं० १२

बंकनाडी[1] अनहदनाद[2] आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। किन्तु बाद के सन्तो ने हठयोग के जटिलतम स्वरूप का बहिष्कार कर दिया। उनका हठयोग प्रेम की डगर मे चलते-चलते हठयोगियो का योग न रहकर सन्तो का सुरति शब्द-योग हो गया। हरिरामदास के प्रपौत्र शिष्य दयालुदास ने परा भक्ति को मुक्ति का एक मात्र साधन बताते हुए, सांख्य आदि अनेक मतो के साथ हठयोग को भी व्यर्थ बताया है[3]। शाहपुरा और रैण शाखा के रामसनेही तो आरम्भ से ही जटिल हठयौगिक साधना के विरोधी रहे। रामचरण भक्ति विहीन योग की व्यर्थता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं —

रामचरण ब्रह्मा कल्प रहै आपणी ओर।
तोहि राम भजन बिन जागे कू नहीं ब्रह्म मैं ठोर।।
नही ब्रह्म मै ठोर और साधन जो साधे
करै जोग अष्टांग देह मन इंद्री बाधे।।
प्राण वायु कू पकडि पचै निशिवासर अधा
करि है कूडो खेद भजन बिन सबही धधा[4] ।।

इन सन्तो की वाणी में भी इडा पिंगला, सुषुम्ना, त्रिकुटी, अनहद[5] आदि की चर्चा हुई

---

1 बहती बंकनाडी खुली किवाडी भंवर गुफा भणक दा है।
परचर निसाणी, छं० ११

2 अब घर आये ब्रह्म बधाय, अनहद नाद घुरदा है।
नौबत नीसाणा दिल दीवाणा बाजा रि वजदा है ।।
वही, छं० १४

3 हठयोग, ब्रह्म सांख्य नित नवध्या पुन कर है।
नाना धरम अनेक एक बिन काज न सर है।।
अनंता मत मतंत्र, धरण पट पाषंड सारा।
परा भगति मिल मुगत एक निश्चण तत सारा
सुरत वचन भगवत कहेत, राम मंत्र जीवन सदा
मय प्रसाद तारण तरण एक बिना मुगतन कदा।।
दयालुदास की वाणी, प० सं० ५६४

4 अणभै वाणी पृ० १२५ हठयोग को अंग, छं० २

5 (क) इडा पिंगला सुषमना त्रिकुटी संधि मझार।
दरिया पूरन ब्रह्म के यह भी उल्टी वार।।
रामस्नेही संतवाणी पृ० ५८

(ख) दरिया मन परसन भया बैठा त्रिकुटी छाजे।

तूं ही तूं ही तब लग कहिये, जब लग मैं मैं आगे ।
मैं मैं मैं मैं होय विलय जब, सोहं सोहं जागे ॥१॥

सोहं सोहं कहै जबै लग, तब लग दूजा कहिये ।
'सुन्दर' एक न होय तहां कुछ, ज्यों का त्यों ही रहिये ॥२॥

(११) परम सुख का अधिकारी

मन मेरे सोय परम सुख पावै,
जाग प्रपंच[1] माहिं मत भूलै, यह औसर नहिं आवै ॥टेक॥ संसार[1]
सोवे क्यों न सदा समाधि में, उपजे अति आनन्दा ।
जो तू जागे[2] जग उपाधि में, क्षीण होय ज्यों चन्दा ॥१॥ भोग भोगन में[2]

सोये[3] रहैते हो अखंड सुख, तो तू जुग जुग जीवे । समाधि में[3]
जो जागे[4] तो पड़े मृत्यु मुख, बाद वृथा विष पीवे ॥२॥ भोगों हित[4]

सोवे जोगी जागे भोगी, यह उलटी गति जानी ।
'सुन्दर' अर्थ विचारे याका, सोई पंडित ज्ञानी ॥३॥

(१२) ब्रह्म स्वरूप घर की स्थिति

साधो! घर ही में घर[1] न्यारा, शरीर रूप घर में ब्रह्म रूप घर अलग[1]
पिंड ब्रह्मंड तहां[2] कुछ नाहीं, निरालम्ब निरधारा ॥टेक॥ ब्रह्म घर में[2]
दिवस न रैनि सूर नहिं शशिहर, अग्नि पवन नहिं पानी ।
घर आकाश तहां कुछ नांही, ता घर सुरति समानी ॥१॥

वेद पुराण शब्द नहिं पहुंचे, मन ही मन में जाना ।
उलटा पंथ मीनका मारग, शून्य[3] शून्य पयाना ॥२॥ निरविकार हो[3]

आदि अन्त मध्य तहां नांही, उतपति प्रलय न होई ।
तीनोंह गुण में अगम अगोचर चौथा पद है सोई ॥३॥

अलख निरञ्जन है अविनाशी, आपे आप अकेला ।
दादूदास जाय तहां सोया, जीव ब्रह्म से मेला ॥४॥

(१३) हरि का भेद विरला पावे

12:57
2015.540691.Sundar-Gr...

(९) योगी योग

है कोई योगी साधे पौना[1], प्राण[1]
मन थिर होय बिन्दु नहिं डोले, जितेन्द्री सुमरे नहिं कौना ।।टेक।।
यम अरु नेम धरे दृढ आसन, प्राणायाम करे मन मौना ।
प्रत्याहार धारणा ध्यान, लै समाधि लावे ठिक ठौना[2] ।।१।। स्थान[2]
इडा पिंगला समकर राखे, सुषमन करे गगन[1] दिषी गौना । ब्रह्म सहस्रा[1]
अहनिश ब्रह्म अग्नि परजारे, सापनि[3] द्वार छाड दे जौना ।।२।। कु डलनी[3]
बहुदल षटदल दलदल खोजे, द्वादशदल तहा अनहद भौना[3] । स्थान[3]
षोडशदल अमृतरस पीवे, ऊपर दो दल करे चतौना ।।३।।
चढ आकाश अमर पद पावे, ताको काल कदे नहिं खोना[4] । नष्ट[4]
'सुन्दरदास' कहे सुन अवधू, महा कठिन यह पथ अलौना ।।४।।

योग को समझने के लिए मेरा लिखित 'साधक सुधा ग्रन्थ' अवश्य पढें, उससे अधिक लाभ होगा ।

(१०) गोविन्द का स्वरूप गुरुगम्य

गुरु बिन गति गोविन्द की, जानी नहिं जाई ।
हौ सेवक उस पुरुष का, मोहि देइ लखाई ।।टेक।।
योगी जगम सेवडा, अरु बोध सन्यासी ।
शेख मसायक औलिया, बूझे वनबासी ।।१।।
जोगी तो गोरख जपै, जगम शिव ध्यावै ।
अरिहत अरिहत सेवडा, कहु पार न पावै ।।२।।
बोध मन्यासी बापुरे, लीये अभिमाना ।
शेख मसायक दीन का, उन कलमा ठाना ।।३।।
बडे अवलिया यू कहैं, हम ही निज बदा ।
वन वासी वन सेइ के, खनि खावे कदा ।।४।।
अपने अपने पथ मे, सब दरसन[1] राता । जोगी आदि[1]
जन 'सुन्दर' रस राम के, कोई विरला माता[2] ।।५।। मस्त[2]

(११) करने योग्य सतगुरु

ऐसा सतगुरु कीजिये करनी[1] का पूरा । कर्तव्य[1]
उनमनि ध्यान तहा धरै, जहा चन्द[1]न सूरा[2] ।।टेक।। ईडा[1] पिंगला[2]
तन मन इन्द्री वश करे, फिर उलट समावे ।
कनक कामिनी देख के, कहु चित्त न चलावे ।।१।।

12:43
2015.540691.Sundar-Gr...

निश बासर भरमे अति भारी, कहा न माने बडा विकारी ॥१॥
भटकत डोले बिन ही काजा, बेशरमी को नेंकु न लाजा ॥२॥
मेरा वश नाही कुछ याते, बारबार पुकारत ताते ॥३॥
आपही कृपा करे हरि सोई, तो 'सुन्दर' थिर काहे न होई ॥४॥

(२) जोगी अवधूत को उपदेश

अवधू आतम काहे न देखे,
जाहि हते सोई तुझ माही, कहा लजावत भेखें ॥टेक॥
हिंसा बहुत करे अपस्वारथ, स्वाद लगा मद[1] मासे । मदरा[1]
महामाइ भैरू को शिरदे, आप हि बैठा ग्रासे[2] ॥१॥ खावे[2]
गोरख भाग भखी नहि कबहू, सुरापान नहि पीया ।
झूठ हि नाम लेत सिद्धन का, नरक जायगा भीया[3] ॥२॥ भाई[3]
कान फाड के भस्म लगाई, थोगी किया शरीरा ।
सकल वियापी नाथ न जाना, जन्म गमाया हीरा ॥३॥
नाटक चेटक जन्त्र मन्त्र कर, जगत महा भरमावै ।
'सुन्दरदास' सुमर अविनाशी, अमर अभय पद पावै ॥४॥

(३) शरीर के उद्धार का साधन करो

साधो साधन तन का कीजे,
मन पवना पचो वश राखै, शून्य[1] सुधा रस पीजे ॥टेक॥ विकार शून्य[1]
चन्द[1] सूर[2] दोउ उलट अपूठा, सुषमन के घर लीजे । ईडा[1] पिंगला[2]
नाद विन्दु जब गाठ[3] पडे तब, काया नेंकु न छीजे ॥१॥ स्थिर हो[3]
राजस तामस दोऊ छाडे, सात्विक बरतै तीजे ।
चौथा पद मे जाय समावै, 'सुन्दर' जुग जुग जीजे ॥२॥

(४) निज गुरु स्थिति परिचय

मेरा गुरु दो पख रहित समाना,
पिंड ब्रह्म निरतर खेले, ऐसा चतुर सयाना ॥टेक॥
पाप पुण्य की बेडी काटी, हर्ष शोक नहि आना[1] । हृदय मे नही आते[1]
राग द्वेष से भया विवर्जित, शीतल तपति बुझाना ॥१॥
हिन्दू तुरक दुहू से न्यारा, देखे वेद कुराना ।
मैं तै मेट तजा आपा पर, नीच ऊच सम जाना ॥२॥
दिवस न रैनि सूर नहि शशिहर, आदि अंत भ्रम भाना[2] । नष्ट[2]
जन्म मरण का सोच न कोई, पूरण ब्रह्म पिछाना ॥३॥
जागि न सोवे, खाय न भूखा, मरे न जीवे प्राना ।
'सुन्दरदास' कहे गुरु दादू देखा अति हैराना ॥४॥

१ सिद्धासन

मनहर— येडी बाम पाव की, लगावे सीवनि के वीच,
वाही योनि ठौर ताहि, नीके कर जानिये।
तैसे ही युगति कर, विधि से भले प्रकार,।
मैढ़ू हू के ऊपर, दक्षण पाव आनिये।
सरल शरीर दृढ, इन्द्रिय सयम कर,
अचल ऊरध दृष्टि, भ्रू के मध्य ठानिये।
मोक्ष के कपाट को, उघारत अवश्यमेव,
'सुन्दर' कहत सिद्ध, आसन वखानिये ।।४०।।

२ पद्मासन

छप्पय - दक्षिण उरु ऊपर सु, प्रथम वामा पग आने।
वामे उरु ऊपर सु, तबहि दक्षिण पग ठाने ।।
दोऊ कर पुनि फेरि, पृष्ट पीछे कर आवे।
दृढ कर गहै अगुष्ठ, चिबुक[1] वक्षस्थल लावे ।।ठोडी[1]।।
इहि भाति दृष्टि उन्मेष कर, अग्रनासिका राखिये।
सब व्याधि हरण योगीन की, पद्मासन यह भाखिये ।।४१।।
पद्धरी— शिप और जु आसन हरहिं रोग। पर इन दुउ आसन सबे।
ताते तू अव उभय साधि। जब लग पहुचे निर्भय समाधि ।।

३ प्राणायाम

विज्जुमाला–आगे कीजे प्राणायाम नाडी चक्र पावे ठाम।
पूरे राखे रेचे कोई। हो निष्पाप योगी सोई ।।४३।।
दोहा— नाडी कही अनेक विधि, है दश मुख्य विचार।
इडा पिंगला सुसुमना, सव मे ये त्रय सार ।।४४।।
छप्पय - वाम इडा स्वर जान, चन्द्र पुनि कहियत वाको।
दक्षिण स्वर पिंगला, सूरमय जानहु ताको ।।
मध्य सुसुमना वहै, ताहि जानत नहि कोई।
है यह अग्नि स्वरूप, काज याही से होई ।।
जव इडा पिंगला गति थके, प्राणायाम प्रभावते।
तव चले सुसुमना उलट के, सुख उपजै घर आवते ।।४५।।

७ पवन वर्णन

दोहा— दश प्रकार के पवन हैं भाखू तिन के नाम।
कहे विना नहि जान है, कौन ठौर विश्राम ।।४६।।

द्वितीय उपदेश ।।२।।

अथ हठ योग नाम तृतीयोपदेश

चौपाई—अबहि कहू हठ होग सुनाई। आदिनाथ[1] के वन्दो पाई ।। ईश्वर[1]
रवि शिशि दोऊ एक मिलावे । याही से हठ योग कहावे ।।१।।

प्रथम सु धर्म देश कहु ताके । भला राज्य कुछ दखल न जाके ।
तहा जाय के शुभ मठ करई । अल्प द्वार अरु छिद्र सु भरई ।।२।।
छिद्र सुरभई=छोटे मोटे आरपार ताक हो उनको भी रोक दे या छिद्र=बिल आदि हो तो उनको भी रोक दे और निकलने का द्वार भी छोटा ही हो।
लिप्त[1] करे चहु[2] ओर सुगधा । कूप सहित मठ इहि विधि बधा ।।
तामे पैठ करे अभ्यासा । गुरु गम हठ कर जीते श्वासा ।।३।।
लगादो[1] चहु[2] दिवालो पर। मठ के पास ही कुआ बनावे। गुरु उपदेश के अनुसार ।
श्रम[1] न करे वकवादन माडे । होय असग चेष्टा छाडे ।।
अति उछाह मन माही कर ही । निश्चय राखि धैर्य पुनि धर ही ।।४।।
हठ कर आसन साधे भाई । हठ कर निन्द्रा तजता जाई ।।
हठ ही कर आहार घटावे । खाटा खारा कछू न खावे ।।५।।
हठ कर तीक्षण कटु भी त्यागे । सरसो तिल मद मास न मागे ।।
हरित शाक कबहू नहि खाई । हिंगु लसन सब देय बहाई[1] ।।६।। त्यागे[1]
देह कष्ट पुनि करे न सोई । प्रात सनान उपास न कोई ।।
गेहू शालि[1] सु करे अहारा । साठी चावल अधिक पियारा ।।७।। चावल[1]
खीर[1] खाड घृत मधु पुनि सानी । सूठ पटोल निर्मल अति पानी ।। दूध[1]
ये भोजन सु करे हठ योगी । दिन दिन काया होय निरोगी ।।८।।
षट कर्मन कर देह प्रक्षाले । नाडी शुद्ध होहि मल टाले ।।
विधि कर करे क्रिया हैं जेती । धोती वस्ती अरु पुनि नेती ।।९।।
त्राटक निरखे नौली फेरे । कपाल भाती नीके हेरे[1] । समझे[1]
ये षट कर्म सिद्धि के दाता । इनसे सूक्षम होय सुगात ।।१०।।
आव पित्त कफ रहै न कोई । नख शिख लौ वपु निर्मल होई ।।
सदाभ्यास से होय स्वछदा । दिन दिन प्रकटे अति आनन्दा ।।११।।
दोहा—या हठ योग प्रभाव से, प्रकट होय आनन्द ।
विचरे तीनो लोक मे, जब लग सूरज चन्द ।।१२।।

राजयोग

चौपाई—राजयोग का कठिन विचारा । समझे बिना न लागे प्यारा ।।
राजयोग सब ऊपर छाजे । जो साधे सो अधिक विराजे ।।१३।।
राजयोग कीन्हा शिव राई । गौरा सग अनग[1] न जाई ।। बिन्दु[1]
घृत नहि ढरे अग्नि के पासा । राजयोग का बडा तमासा ।।१४।।
नाडी चक्र भेद जो पावे । तो चढ बिन्दु अपुठा आवे ।।
करनी कठिन आहि अति भारी । वश बर्त्तिनी होय जो नारी ।।१५।।

(५) राम नाम चिन्तन से लाभ

मेरा मन राम नाम से लागा, तातें भरम गया भय भागा ।।टेक।।
आशा मनसा सब थिर कीनो, सत रज तम त्यागे तीनो ।
पुनि हर्ष शोक गये दोऊ, मद मच्छर रहे न कोऊ ।।१।।
नख शिख लौ देह पखारी, तब शुद्ध भई सब नारी[1] । नाडी[1]
भया ब्रह्म अग्नि सु प्रकाशा, किया सकल कर्म का नाशा ।।२।।
ईड़ा पिंगला उलटी आई, सुषमन ब्रह्मण्ड[2]चढाई । सहस्रार[2]
जब मूल चापि दिढ बैठा, तब विन्दु गगन मे बैठा ।।३।।
जहा शब्द अनाहद बाजे, तहा अन्तर जोति विराजे ।
कोई देखे देखन हारा, सो 'सुन्दर' गुरू हमारा ।।४।।

(६) योग युक्ति लाभ

ऐसी योग युगति जब होई, तव काल न व्यापे कोई ।।टेक।।
धर आसन पद्म रहता, सब काया कर्म दहता ।
तज निद्रा खड अहारा, कर आप हि आप विचारा ।।१।।

गहि विन्दु गगन[1] दिशि जाता, भख पवन पियाला माता । दशम द्वार[1]
सुन अनहद सीगी बाजे, धुनि माहि निरजन गाजे ।।२।।
सो अवधू गुरु का पूरा, जिन एक किया शशि[1] सूरा[2] । इडा[1] पिंगला[2]
अभिअतर जोति जगावे, तहा उनमनि तालो लावे ।।३।।
गह गग जमुन विच खेला, तहा परम पुरुष का मेला ।
गुरु दादू दिया दिखाई, तहा 'सुन्दर' रहा समाई ।।४।।

उक्त ६ न पद के विषय को वारवार कह आये हैं तथा शब्दार्थ सब वता आये हैं ।

(७) हमारे महान् साहूकार राम

हमारे साहु रमइया मोटा, हम ताके आहि वनोटा[1] ।।टेक।। छोटे बनिया[1]
यह हाट दिई जिन काया, आपना कर जान बिठाया ।
पू जी का अन्त न पारा, हम बहुत करी भडसारा[1] ।।१।। भडार की भरती[1]
लिई वस्तु अमोलक सारी, सब छाड विषय खल खारी ।
भर राखा सब ही भौना, कोई खाली रहा न कौना ।।२।।
जो गाहक लेने आवे, मन माना सौदा पावे ।
देखे बहु भाति किराना, उठ जाय न और दुकाना ।।३।।
समरथ की कोठी आये, तव कोठीवाल कहाये ।
बनिजें हरिनाम निवासा[2], यह बनिया 'सुन्दरदासा' ।।४।। भडार भर के[2]

पुनि रसना की श्रद्धा जागी । राम रटनि निशिवासर लागी ॥
दूजी आशा सकल बुहारी । तब राम नाम में सुरति ठहारी ॥ २ ॥
पद्मासन निश्चल मन कीया । नासा निरत धारि घर लीया ॥
श्वास उश्वासां धवँण लगाई । आरति करिकै विरह जगाई ॥ ३ ॥
रसना अग्र खुली इक सीरा । प्रथम वाको पयसो नीरा ॥
रटतां रटतां भयो मिठास । हर्ष भयो आयो विश्वास ॥ ४ ॥
केई दिवस रसना रस गटक्यो । पीछे शब्द कण्ठ में अटक्यो ॥
कण्ठ स्थान बहुत कठिणाई । मुख सूं वचन न बोल्यो जाई ॥ ५ ॥
खान पान पैं रुचि रहे थोरी । मारग रुक्यो जाय कह वोरी ॥
क्षीण शरीर त्वचा सकुचानी । नीली नस दीसै झलकानी ॥ ६ ॥
पीरो वदन नेतराँ लाली । मुकुर ज्योति ज्यूं दिपै कपाली ॥
चलै कँमकँमी रुं थररावे । छाती रुंधै श्वास न आवे ॥ ७ ॥
एसी विधि विरहनि की होई । विरहि जाणै कै सतगुरु सोई ॥

एक दिवस ऐसी बनि आंही । शब्द सरक गयो हिर्दा मांही ॥ ८ ॥
परम सुक्ख हिर्दै परकाशा । ज्यूं रवि कीनो तम को नाशा ॥
सहजै सुमरण हिरदै होई । बाहिर भेद न जानै कोई ॥ ९ ॥
सोवत जागत डोरी लागी । वन वस्ती की शंका भागी ॥
रसना जप्यां अजप्पा पाया । बाहिर साधन सकल बिलाया ॥ १० ॥
जाग्यो प्रेम नेम रहयो नांही । पाई राम धाम घट मांही ॥
उर अस्थान पाय विश्रामा । शब्द किया जाय नाभि मुकामा ॥ ११ ॥
नाभिकमल में शब्द गुंजारे । नौसे नारी मंगल उचारे ॥
नाभिहोद काया वन पीवे । ता रस साधू जुग जुग जीवे ॥ १२ ॥
रोम रोम झुणकार झुणं कै । जैसे जंतर ताँत ठुणंकै ॥
माया अक्षर यहां विलाया । ररंकार इक गगन सिधाया ॥ १३ ॥
पश्चिम दिशा मेरु की घाटी । बीसूं गांठि घोर सें फाटी ॥
त्रिकुटी संगम कीया स्नाना । जाइ चढया चौथे अस्थाना ॥ १४ ॥
जहां निरंजन तख्त विराजै । ज्योति प्रकाश अनंत रवि राजै ॥

दोहा

इंगला पिंगला सुखुमणा, मिले त्रिवेणी घाट।
जहां झाझे जल झूलि के, निर्मल होय निराट ॥ १ ॥
अब त्रिवेणी न्हाई कै, कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अलध सुख, यो कोई चौथा देश ॥ २ ॥

चौपाई

अब चौथे घर पहुँता जाई । जहाँ का चहन मैं कहूं सुणाई ॥
घरर घरर अनहद घररावै । परम ज्योति दामणि भलकावे ॥ १ ॥
सुषुमण नीर लूंब झडि लाई । भीजत सुरति गर्क होइ जाई ॥
अर्ध उर्ध जहां कमल प्रकासा । सूरति भवंर होइ करत बिलासा ॥ २ ॥

घुरै अखण्ड अनाहद बाजा । प्राण पुरुष चहां तख्त बिराजा ॥
झिलिमिलि झिलिमिलि नूर प्रकासै । अनंत कोटि रवि प्रकटया भासै ॥ ३ ॥
यातो बात अतौल है भाई । मुख सूं कहयां तोल व्है जाई ॥
पवन कहो कैसे गह हाथा । कैसे भरै गगन की बाथा ॥ ४ ॥
रुपवर्ण कैसो तडका को । ऐसो कहा बखानो जाको ॥
हाक वाक रहे कहत न आवै । पहुंच्या होइ सोही भल पावै ॥ ५ ॥

दोहा

अनहद गरजै नभ झरै। दामिनि ज्योति उजास।
रामचरण सुनि सायराँ। हंसा करत निवास ॥ १ ॥

चौपाई

सायर तट हंस बैठा जाई । सायर हँस में रह्या समाई ॥
ओत पोत भया द्वैत न दर्शै । संत गरक, ब्रह्म सुख कूं पर्शै ॥ १ ॥
ब्रह्म पर्श्यांकी दशा बताऊं । बाहिर के लक्षण पिछनाऊं ॥
जाके रंक एक ही राउ । माया सेती करे न भाउ ॥ २ ॥

रठा— कुभक अष्ट सु विद्धि, मुद्रा दश हि प्रकार की ।।
बध तीन तिन मद्धि, उत्तम साधन योग के ।।६

कुभक नाम

पय— सूरयभेदन प्रथम, द्वितिय उज्जाई कहिये ।
शीतकार पुनि त्रितिय शीतली चतुरथ गहिये ।।
पचम है भस्त्रिका, भ्रामरी पष्ट मुजान हुँ ।।
मूरछना सप्तम, अष्टम केवल मान हुँ ।
ये कुभक अष्ट प्राकर के, होय पवन इम रोधन ।।
तव मुद्रा वध लगाया यहि, प्रथम करे घट शोधन ।।६५।

नाद वर्णन

ोहा— जर्वाहि अष्ट कुभक सधे, बजे अनाहत नाद ।
दश प्रकार को ध्वनि सुने, छुटे सकल विषाद[1] ।।६६।।[1]दुख

पय— प्रथम भ्रमर गुजार, शख ध्वनि दुतिये कहीजे ।
त्रितिये बजे मृदग, चतुर्थे ताल सुनीजे ।।
पचम घटा नाद, षष्ट वीणा ध्वनि होई ।
सप्तम बाजे भेरि, अष्टम दुन्दुभि[1] दोई ।।[1]नगाडा।।
अब नवमे गर्ज समुद्र की, दशम मेघ घोषहि गुने ।
कह 'सुन्दर' अनहत नाद को, दश प्रकार योगी सुने ।।६७।

मुद्रा नाम

तक— सुन महामुद्रा महाबध, महावेध रु खेचरी ।
उडयानवध सु मूलबधहि वन्ध जालधर करी ।।

पच तत्त्व की धारणा

विपरीत करणी पुनि वज्रोली, शक्ति चालन कीजिये ।
इम होय योगी अमर काया, शशिकला नित पीजिये ।।६८

५ प्रत्याहार

ा दुरुपयोग ही होगा। ... शरीर तथा धन को सांसारिक कार्यो

सी (१५)—विवेक चूड़ामणि में आचार्य शंकर ने जिज्ञासु के बारे में इस प्रकार लिखा

निश वासुर भज राम काम सबही सरे। मिले ब्रह्म में जाय काय फिर ना धरे॥
समता साच संतोष दोष कोइ ना करे। पर हाँ सुरतराम वे दास, भूमि हो ना फिरे॥२॥
पांच पचीसूं जीति प्रीति गुरुदेव सूं। भजे एक रमतीत तजे नहीं श्वास सूं॥
आसन संयम करे धरे मन धीर रे। पर हाँ सुरतराम तब खुल सुखमना सीर रे॥३॥
सुगरा सोही जाण वाण मन की तजे। सुमरे राम अखण्ड जगत सूं ना लजे॥
दिल में धारे बोध सोध ऐ सार रे। पर हाँ सुरतराम कह मोक्ष होय तब पार रे॥४॥
जिज्ञासी सो जान कान नहीं जगत की। माया सूं तज नेह गही गति भक्ति की॥
सतगुरु सेती प्रीति राम नित गात है। पर हाँ सुरतराम वे जानि क सतगुरु साथ है॥११॥

सूरातण (१६)

चढे शूर सावंत मंडे चौगांन है। कर घोड़ा गुरु ज्ञान सेल कर ध्यान है॥
शील तणी समसेर भक्त रण जंग की। पर हाँ सुरतराम पड़ डाकि खबर नहीं जिंद की॥१
गये जिंद कूं विसर विषय को नाश है। दीपक ज्ञान उजास शुद्ध परकाश है॥
निशदिन सुमरे पीव जीव हरि सूं लग्या। पर हाँ सुरतराम आनंद पंच सबही भग्या॥१

रक्तस्य शमादिगुणशालिनः। मुमुक्षोरेव हि ब्रह्मजिज्ञासा योग्यता मता॥१७॥ आदौ नित्या
वेकः परिगण्यते। इहामुत्रफल भोग विरागस्तदनन्तरम्॥१९॥ शमादिषट्क सम्पत्तिर्मु
क्षुत्वम्। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयः॥२०॥ सोऽयं नित्यानित्यवस्तु विवेकः स
दर्वैराग्यं जुगुप्सा या दर्शन श्रवणादिभिः॥२१॥ देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि। वि
ताद्दोषदृष्ट्या मुहुर्मुहुः॥२२॥ स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनसः शम उच्यते। विषयेभ्यः परावर्
स्वगोलके॥२३॥ उभयेषामिन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः। बाह्यानालम्बनंवृत्तेरेषोपरतिरुत्त
हनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम्। चिन्ताविलाप रहितं सा तितिक्षा निगद्यते॥२५॥
रुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यवधारणम्। सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तुपलभ्यते॥२६॥ सर्वदा
द्धे ब्रह्मणि सर्वथा। तत्समाधान मित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्॥२७॥ अहंकारादिदेहान्ता
ल्पितान्। स्वस्वरूपावबोधेनमोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता॥२८॥ उक्त वर्णित साधन चतुष्टय
पाँचों चन्द्रायणों में हुआ है।

रातण (१६)—(१) शूर सावंत=शूरवीर सामंत–राजा के अधीन रहने वाला बड़ा
जाता है; चौगान=रण क्षेत्र; गुरु का ज्ञान ही घोड़ा है; ध्यान ही लड़ने का शस्त्र भाला
वार–समसेर है। भक्त को भक्ति के जंग में इन सद्गुणों से विभूषित होकर बिना जिंदगी
पड़ना चाहिये। राम कृपा से सफलता स्वयमेव मिलती है। प्रायः सभी ने इस प्रकार के
न्दर शील सनाह कर, तोष दियो सिर टोप। ज्ञान खड़ग पुनि हाथ ले कीयो मन प
० पृ० ७४०) 'सुमरण सेल सम्हाय ढाल विश्वास की। कमर कटारो

—'सुरतराम लग रहो भाग पति राम की।' ध्रुव पद है।

)—रामस्नेही साधना शब्द साधना है। श्रीपरमहंस स्वामी ने शब्द के माध्यम से उ
ह माध्यम से बहुत ही सुन्दर रीति से समझाया है। जिसको श्रीमहाराज 'चौकी
गये बार। रामचरण या सत्य है दूजा भर्म असार ॥१॥ रसन कण्ठ रस पीय के हि
भि कमल सूं उलट के, सुरति गई आकास ॥२॥' (साखी, परिचयांग) आदि कहे

अंक नाल के घाट शब्द त्रिकुटी चढ़े। पीवे रस अघाइ अमित आनंद बढ़े।
बाजा बजै अपार चष ज्यूं निरखनी। पर हां सुरतराम मस्तान मूदरा उनमुनी ॥४॥
जहँ दिसि भया प्रकास ब्रह्म कूं परसि हैं। मिट्यो द्वैत को भास राम जग दरसि है।
कहै अगम की बात शब्द मुख चाचरी। पर हां सुरतराम आनंद मूदरा चाचरी ॥५॥
शब्द राह हुय सत अगम कूं चढ़त है। रसन कंठ लवलीन हृदय सुख बढ़त है॥
नाभि कमल सुख गुह ज्ञान नहीं परत है। पर हां सुरतराम उनमुनी त्रिकुटी धरत है ॥६॥
उनमुन रहै उदास त्रिकुटी मांही रे। बाजा बजे अपार पार नहीं पाहि रे॥
सदा शांति सुख रूप धूप नहीं घाम है। पर हां सुरतराम मिलराम तेज पुंज धाम है ॥७॥
शून्य शिखर के मांहि, बजत है तूर रे। झिलमिल नूर प्रकास अनंत जहां सूर रे॥
ब्रह्म विलासी सुखद सुरति कूं भाय है। पर हां सुरतराम आनंद, जहां जन जाय है ॥८॥
गये संत सिकदार ब्रह्म में मिल रहे। धर सूं ऊठी धूम नभम में मिल रहे।
ज्यूं सिलता को नीर बहुर नहीं आय है। पर हां सुरतराम सिंधु मांहि सिंधु हुय जाय है ॥९॥
आठ पहर लवलीन धणी कूं लखत है। धरत ध्यान सम्माधि प्रेम रस चखत है॥
अनहद सुनहै बचन चिह्न ऐ सांच है। पर हां सुरतराम भये हंस प्रेम की चांच है ॥१०॥

हंस स्वामी ने यहां खेचरी, भूचरी, अगोचरी उन्मुनी तथा चाचरी मुद्रा के नाम से कहा है।
रण हठयोग प्रदीपिकादि ग्रंथों में मिलता है किन्तु हठयोग की जटिल प्रक्रियाएं जिज्ञासु को
सीलिये यहां विशेष विवरण नहीं लिखा गया।

चयांग के पढ़ने पर 'मुक्ति का क्या स्वरूप है?' पर भी श्रीपरमहंस स्वामी के विचार स्पष्ट है।
बादल से गिरा जल नदी में, नदी का जल समुद्र में, समुद्र का जल समुद्र में, यही उसकी
है; वैसे ही जीव राम नाम के साधन से ब्रह्माकार हो हो जाता है। फिर पुनः जन्म मरण
जाता। वह तो तदाकार ही होता है! पृथक् सत्ता रहती ही नहीं।

दार = पृथिवी से उत्पन्न होकर धूम आकाश की ओर जाती है, वही बादल का स्वरूप धारण
जीवन का आधार बनती है। (गीता ३/१४) इसी प्रकार संसार में उत्पन्न संत संसार का
ना द्वारा परमात्मा के विश्वसनीय और बलवान अधिकारी बन जाते हैं। संसार का कल्याण
: ब्रह्माकार हो जाते हैं जैसे नदी समुद्र में मिलकर समुद्रवत् हो जाती है।

हद = अनाहत, ध्वनि उत्पन्न करने वाले किसी भी यंत्र को बिना आहत किये बिना
यता के जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वही अनाहत नाद है। 'अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिर्य उप
ज्ञेयं ज्ञेयस्यांतर्गतं मनः॥ मनस्तत्र लयंयाति तद्विष्णोः परमं पदम्॥' (हठयोग प्र० ४/
इसके दस प्रकार बताये गये है—"आदौ जलधिजीमूत भेरी झर्झर सम्भवाः। मध्येमर्दल
स्तथा ॥८५॥ अन्तेतु किंकणी वंश वीणा भ्रमर निःस्वनाः। इति नाना विधा नादाः
८६॥" (हठयोग प्रदीपिका चतुर्थ उपदेश)

अनहद नाद गिणत नहिं आवे । भांति भांति की राग उपावे ॥ १५ ॥
स्त्रवै सुषुम्णा नीर फुंहारा । शून्य शिखर का यह विव्हारा ॥
झरि पणंग मोती सा ढलकै । जाकी ज्योति अरुण सी झलकै ॥ १६ ॥
सागर जहां बिना धर भरिया । हंसै वास तास मधि करिया ॥
सुखमण मोती करै अहारा । निज हंसा का एही चारा ॥ १७ ॥
शुंन सायर हंस का वासा । भव सागर सुख भया उदासा ॥
दरिया सुख को अंत न आवै । छीलर काल बाज झपटावै ॥ १८ ॥
सुख सागर मिलि सुख पद पाया । सो शब्दां मैं कहि समझाया ॥
बिन देख्यां परतीत न आवै । तासूं कैसे भेद बतावै ॥ १९ ॥
अर्ध उर्ध कमला चहां फूल्या । भंवररुप होई हंसा झूल्या ॥
भंवर गुंजार गगन गिर्णाया । होय मस्त अलि तहां लुभाया ॥ २० ॥
ऐसो पद विरला जन पावै । सो भवसागर नाहीं आवै ॥
राम रटयां का यह प्रकाशा । मिल्या ब्रह्म पद भव भया नाशा ॥ २१ ॥
रामचरण कोई राम रटेगा । सो जन एही धाम लहेगा ॥

राम राम निशिवासर गासी । सो नर भवसागर तिर जासी ॥ २२ ॥
राम नाम बिन आन उपाई । ज्यूं डूल्यां का खेल कराई ॥
बालक वेलू मंदिर बणाया । तामें वसि कूंणै सच पाया ॥ २३ ॥
रामभजन बिन खाली करणी । ज्यूं बिन बीज सुधारी धरणी ।
राम बीज साधन हल हाकै । तो रामचरण खेती फल पाकै ॥ २४ ॥

दोहा

वरणि कहयो संक्षेप सो, दरिया कैसो पार ।
जिन परशी या धाम कूं, सो लीज्यो संत विचार ॥ १ ॥
रामचरण रटि रामनाम, पाया ब्रह्म विलास ।
ई साधन कोई लगसी, जाकै होसी शब्दप्रकास ॥ २ ॥

इति ग्रन्थ शब्दप्रकाश सम्पूर्ण ॥

॥ दोहा ॥ ४ ॥ चौपाई ॥ २४ ॥ सर्व ॥ २८ ॥ ग्रन्थ ॥ ३ ॥

रामजी राम राम महाराज.......

नहीं चंद्र नहि सूर है नहीं सुषुमणा बाल।
मुखसेती श्वासा चले घड़ी चार में काल ९४
चार दिना के आठ दिन बारह के दिन बीश।
ऐसे जब चन्द्रा चलै आयु जान बड़ ईश ९५
तीन रात औ तीन दिन चालै तत्त्व अकाश।
एक वर्ष काया रहै फेरि काल विश्वास ९६
दिन को तो चन्द्रा चलै चलै रात को सूर।
यह निश्चय करि जानिए प्राणगमन बहु दूर ९७
राति चलै स्वर चन्द्र में दिन को सूरज बाल।
एक महीना यों चलै छठे महीना काल ९८
जब साधू ऐसी लखैं छठे महीना काल।
आगे ही साधन करै बैठि गुफा ततकाल ९९
ऊपर खैंचि अपान को प्राण अपान मिलाय।
उत्तम करै समाधि को ताको काल न खाय १००
पवन पिए ज्वाला पचै नाभि तले कर राह।
मेरुदंड को फारिकै बसै अमरपुर माह १०१
जहाँ काल पहुँचै नहीं यम का होय न त्रास।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

देखिए निम्न लिखित पद में कबीर ने सूक्ष्म ध्यान की ओर ही सकेत किया है। इसके लिए उन्होंने प्रथम तो हठयोगिक प्रक्रियाओ को संकेत किया है। वास्तव में हठयोग राजयोग का प्रथम सोपान ही है। इसलिए उसकी साधना परमावश्यक होती है। किन्तु कबीर हठयोग के बाद ध्यान योग को भी महत्त्व देते थे। नीचे लिखे पद से इस बात की पुष्टि-सी होती है—

"ऐसा ध्यान धरो नरहरी, सबद अनाहद च्यतन करी
पहली खोजौ पॅचे बाइ ब्यंद लै गगन समाइ॥
गगन ज्योति तहॉ त्रिकुटी संधि, रवि ससि पवना मेलौ बॉध।
मन थिर होइत कवल प्रकासै, कवला माहि निरंजन बासै॥
सतगुर सॅपट खोलि दिखावै, निगुरा होइ तौ कहॉ बतावै॥
सहज लछिन लै तजो उपाधि, आसण दिढ निन्द्रा पुनि साधि।
पुहुप पत्र जहॉ हीरामणी, कहै कबीर तहॉ त्रिभुवन धणी॥"

इस प्रकार हम देखते है कबीर में ध्यानयोग से सबन्धित विविध प्रकार की रहस्योक्तियाँ मिलती है।

राजयोग का अंतिम अग समाधि है, ये सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अग है। बहुत-से लोग तो इसीको राजयोग का अभिधान देते है। ध्यान ही जब ध्येयाकार रूप से साक्षी में निर्भासित होने लगता है तथा चित्त के ध्येयी स्वरूप में लीन हो जाने के कारण मैं इस प्रकार का ध्यान कर रहा हूँ आदि जैसी अनुभूतियो का उदय होने के कारण जब प्रत्ययात्मक स्वरूप से शून्य हो जाता है तब वही समाधि के नाम से अभिहित किया जाने लगता है। अधिक स्पष्ट शब्दो में कहना चाहे तो ये कह सकते है कि जब ध्यान ज्ञानाकार रूप से अलग निर्भासित न होकर ध्येयाकार रूप से प्रतीत होने लग जाता है तभी उसे समाधि कहने लगते है। 'योग सूत्र' में समाधि की परिभाषा इस प्रकार दी है—

॥ कवित्त ॥

वही तौ अडिग्ग[1] राम चौथे पद वास जाको, वही तौ अडिग्ग राम मथुरा में आयो है। वही तौ अडिग्ग राम योगी जाको ध्यान धरैं, वही तौ अडिग्ग राम सीतापति पायो है॥ वही तौ अडिग्ग राम सभी ठाम रमि रह्यो, वही तौ अडिग्ग राम संतन सहायो है। वही तौ अडिग्ग राम चरणदास चेरो जाको, वही तौ अडिग्ग राम काया खोजि पायो है॥

—: निर्भय पद के साधन :—

मायाभ्रम फंद देख साधन को संग पेख, रामजू को पहिरि भेख कंचन तन तावरे। मन कूँ पहिचान ज्ञान एका-एकी[2] सबै जान, नाद के गहेते तू अनाहद बजावरे॥ उलटि पलटि काया बीच चारों कर दूर नीच, ऐसी विधि मेरुपै[3] समीर[4] कूं चढ़ावरे। कहै चरणदासा गगन मध्य करौ वासा, जहाँ नहीं शीत उष्ण निरभय पद धावरे॥

—: चेतावनी :—

दो० दुर्योधन रावण गये, अरु यादव परिवार।
चरणदास थिर को नहीं, होय मिटै संसार॥१५६॥

॥ कवित्त ॥

भोर सो बिहानो[5] जात ढरैगी दुपहरी सी, समभ के विचारि देखि चली आवे रात है। भ्रमत है शुचान[6] काल तेरे पर ताकि रह्यो, छिन पल की खबर नाहिं करै आय घात है॥

१ अनल २ एकत्व ३ रीढ़ की हड्डी ४ पवन ५ बीत रहा है ६ बाज।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

योगी वपु नहिं छाँड़ि हैं राजा होय कि आन ११६
राज्य पाय हरिभक्ति कर पूर बली पहिचान।
योगयुक्ति पावें बहुरि दूसरि मुक्ति निदान १२०
सूर्य उत्तरायन लखे शुक्लपक्ष के माहिं।
योगी काया त्यागिए यामें संशय नाहिं १२१
मुक्त होय बहुरे नहीं जीव खोज मिटि जाय।
बूँद समुंदर मिल रहे दुनियाँ ना ठहराय १२२
सूर्य दक्षिणायन बिषे रहें मास षट जान।
फिर उतरायन जायकर रहें मास षट भान १२३
दोनों स्वर को शुद्ध कर श्वासा में मन राख।
भेद स्वरोदय पाय कर तब काहू सों भाख १२४
जो रण ऊपर जाइए दहिने स्वर परकाश।
जीत होय हारे नहीं करे शत्रु को नाश १२५
दुर्जन को स्वर दाहिनो तेरो दहिनो होय।
जो कोई पहिले चढ़े खेत जीति है सोय १२६
सुषुमण चलत न चालिए युद्ध करन सुन मीत।
शीश कटावें की फँसे दुर्जन होई जीत १२७

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सदा आप में लीन रहु करि योगा अभ्यास।
आवत देखै काल जब गगनमँडल कर वास ११ १
शनई शनई साधकर राखै प्राण बढ़ाय।
पूरो योगी जानिए ताको काल न खाय ११ २
पहिले साधन ना कियो गगनमँडल को जान।
आवत जानै काल जब कहा करै अज्ञान ११ ३
योग ध्यान कीन्हों नहीं ज्वान अवस्था मीत।
आगम देखै काल को कहा सकै वह जीत ११ ४
काल जीति हरि सों मिलै शून्य महल अस्थान।
आगे जिन साधन करी तरुण अवस्था जान ११ ५
काल अवधि बीतैं जबै तबै जानि वह जाय।
योगी प्राण उतारिए लेहि समाधि जगाय ११ ६
काल जीति जग में रहै मौत न व्यापै ताहि।
दशों द्वार को फोरकर जब चाहै तब जाहि ११ ७
सूरजमंडल चीरकै योगी त्यागै प्राण।
सायुज्यमुक्ति सोई लहै पावै पद निर्वाण ११ ८
कृष्णपक्ष के मध्य में दक्षिण होयँ जु भान।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

गगन मँडल को जायकर करै उनमनी वास १०२
जहाँ काल नहिं ज्वाल है छुटै सकल संताप।
होय उनमनी लीन मन बिसरै आपा आप १०३
तीनों बन्ध लगाय के या वायें को साध।
योग सुषुमणा ह्वै चलै देखै खेल अगाध १०४
शक्ति जाय शिव सों मिलै जहाँ होय मन लीन।
महाखेचरी जो लगै जानै जान प्रवीन १०५
आसनपद्म लगायकर मूलबंध को बाँध।
मेरुदण्ड सीधो करै सुरनगगन को साध १०६
चन्द्र सूर्य दोउ सम करै ठोढ़ी हिये लगाय।
षटचक्कर को बेधकर शून्य शिखर को जाय १०७
इड़ा पिंगला साधकर सुषुमण में कर वास।
परमज्योतिझिलमिलतहाँ पूजैमनविश्वास १०८
जिन साधन आगे करी तासों सब कछु होय।
जब चाहै तबहीं करै काल बचावै सोय १०९
तरुण अवस्था योग कर बैठ रहै मन जीत।
काल बचावै साध वह अन्त समय रणजीत ११०

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कुम्भक अष्ट प्रकार के, तिनको कहिये भेव ॥८८॥
लक्षण नाम स्वभाव गुण, जुदे जुदे समुझाव ।
चरणदास के मन विषे, सुनवे को अति चाव ॥८९॥

गुरु वचन

अब आठों कुम्भक कहूँ, नावँ भेद गुण रूप ।
शुकदेव कहैं परसिद्ध हैं, योग हि माहिं अनूप ॥९०॥
प्रथमैं कुम्भक ही कहूँ, नावँ जु सूरज भेद ।
दूजे ऊज्जाई सुनो, साधे छूटैं खेद ॥९१॥
शीतकार अरु शीतली, पँचवीं भस्त्रिक जान ।
छठी जु भ्रमरी नाम है, नीके समझि पिछान ॥९२॥
नावँ मूर्च्छा सातवीं, अठवीं केवल होय ।
रणजीता सबसे बड़ी, आयु बढ़ावै सोय ॥९३॥

पवन पूर पूरक ही कीजे । पाछे बन्ध जलन्धर दीजे ॥
कुंभक रेचक के मधि जानो । ह्वाई बन्ध उड्यान पिछानो ॥
पवन जोर[१] ही सूँ गहि[२] लीजे । अर्ध उर्ध्व संकोचन कीजे ॥
मध्ये कीजे पश्चिम ताने । ब्रह्म नाड़ी के माहिं समाने ॥
नाड़ी पवन खैंचिये ऐसे । भरिये सब संधान[३] जु जैसे ॥
अपान वायु कूँ ऊपर लावे । प्राण वायु नीचे ले जावे ॥
जो पै यह साधन बनि आवे । योगी बूढ़ा होन न पावे ॥
तरुण अवस्था दीखे ऐसी । नित ही रहै जानिये जैसी ॥

(१) अथ सूर्य भेदन

कुं० कुम्भक सूरज भेद ही, पहिले देहुँ सुनाय ।

१ बलपूर्वक २ खींचना ३ जोड़

भरती बंद लगाय कर दशों वायु को रोक।
मस्तक प्राण चढ़ाय कर कर अमरपुर भोक १९८
पाँचो मुद्रा साधके पावे घट को भेद।
नाड़ी शक्ति चढ़ाय के षट चक्कर को छेद १९९
योगयुक्ति के कीजिए के अजपा को ध्यान।
आपा आप विचारिए परम तत्त्व को ज्ञान २००
शूद्र वैश्य शरीर है ब्राह्मण औ रजपूत।
बूढ़ा बाला तू नहीं चरणदास अवधूत २०१
काया माया जानिए जीव ब्रह्म है मित्त।
काया छूटि सूरत मिटै तू परमातम नित्त २०२
पाप पुण्य आशा तजो मान और तो थाप।
काया मोह विकार तजि जपै सु अजपा जाप २०३
आप भुलानो आपमें बँध्यो आप ही आप।
जाको ढूँढ़त फिरत है सो तू आपी आप २०४
इच्छा दुई बिसारि करि क्यों न होय निर्वास।
तू तो जीवनमुक्त है तजो मुक्ति की आस २०५
पवन भई आकाश सों अग्नि वायु सों होय।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

20:48

चौथे ताल है सोय पाँचवें घंटा बाजे।
छठे सुमुरली नाद सातवें भेरि जु गाजे।
अठवें बाजे दुंदुभी सिंह गर्जना नवलो।
दशवें बाजे घूँघुरू चरणदास सुन लो १६१

दोहा

दश प्रकार अनहद घुरै जित योगी ह्वै लीन।
इन्द्रिय थकै मनवाँ थकै चरणदास कहि दीन १६२
तीन पाँच नौ नाड़िका दश बाई को जान।
प्राण अपान समान है अरु कहियत उद्यान १६३
व्यानवायु अरु किरकरा कूरम बाई जीत।
नाग धनंजय देवदत दश बाई रणजीत १६४
नवो द्वार को बंदकर उत्तम नाड़ी तीन।
इड़ा पिंगला सुषुमणा केलि करै परबीन १६५
करते प्राणायाम के तरि गये पतित अनेक।
अनहदध्वनि के बीच में देखैं शब्द अलेख १६६
पूरक कर कुम्भक करै रेचक पवन उतार।
ऐसे प्राणायाम कर सूछम करै अहार १६७

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्रेम भगति जिन जानी, सो काहे भरमै प्रानी।
हरि सहजैं ही भल मानै, ता थैं दादू और न जानै ॥ ४ ॥

(३१०)

रामजी जिनि भरमावे हम कौं। ता थैं करौं बीनती तुम्ह कौं ॥टेक॥
चरण तुम्हारे सबही देखौं, तप तीरथ ब्रत दाना।
गंग जमुन पासि पाँइन के, तहाँ देहु अस्नाना ॥ १ ॥
संग तुम्हारे सबही लागे, जोग जग्गि जे कीजे।
साधन सकल येई सब मेरे, संग आपणौं दीजे ॥ २ ॥
पूजा पाती देवी देवल, सब देखौं तुम माहीं।
मो कौं ओट आपणी दीजे, चरण कँवल की छाहीं ॥ ३ ॥
ये अरदास दास की सुणिये, दूरि करौ भ्रम मेरा।
दादू तुम्ह बिन और न जाणै, राखौ चरनौं नेरा ॥ ४ ॥

(३११)

सोई देव पूजौं जे टाँकी नहिं घड़िया। गरभ बास नाहीं औतरिया ॥टेक॥
बिन जल संजम सदा सोइ देवा, भाव भगति करौं हरि सेवा ॥ १ ॥
पाती प्राण हरिदेव चढ़ाऊँ, सहज समाधि प्रेम ल्यौ लाऊँ ॥ २ ॥
इहि बिधि सेवा सदा तहँ होई, अलख निरंजन लखै न कोई ॥ ३ ॥
ये पूजा मेरे मन मानै, जिहि बिधि होइ सु दादू न जानै ॥ ४ ॥

(३१२)

राम राइ मो कौं अचिरज आवै, तेरा पार न कोई पावै ॥टेक॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, नेति नेति जे गावै।
सरणि तुम्हारी रहैं निस बासुरि, तिन कौं तूँ न लखावै ॥ १ ॥
संकर सेस सबै सुर मुनि जन, तिन कौं तूँ न जनावै।
तीनि लोक रटै रसना भरि, तिन कौं तूँ न दिखावै ॥ २ ॥
दीन लीन राम रँग राते, तिन कौं तूँ सँगि लावै।
अपने अंग की जुगति न जानै, सो मन तेरे भावै ॥ ३ ॥

कुण्डलनी परवोध का, जो कोइ करे उपाव ॥१०३॥

शिष्य वचन

व्यास पुत्र शुकदेवजी, किरपा करी दयाल।
चरणदास आधीन ही, समझो भयो निहाल ॥१०४॥
एक बार फिर खोलि के, कुण्डलनी समुझाव।
याके सबही भेद को, सुनवे को अति चाव ॥१०५॥

गुरु वचन

फिर भी तोसों कहत हों, कुण्डलनी विस्तार।
ताके सगरे भेद ही, सुनि के हिय में धार ॥१०६॥
नाभि स्थान नागिनि रहे, कुण्डल[1] शशी[2] अकार[3]।
प्राण पियारा वही है, आगे सुनो विचार ॥१०७॥
कुंभक कर्म कोई करे, देवे शक्ति जगाय।
जैसे लागी लष्टिका[4], नागन शीश उठाय ॥१०८॥

सीखि गुरू सों कुंभक साधे। नीकी विधि ताको अवराधे[5] ॥
पवन ठवक[6] लग ताहि जगावे। तब ऊरध को शीश उठावे ॥
नाभि ठौर ताका है वासा। पद्मराग मणि ज्यों परकासा ॥
सात लपेटे वायें जानो। ताते शक्ति कुण्डली मानो ॥
नाड़ी सहस लगी हैं वासों। एपर छुटी जानिये ताको ॥
जिनमें तीन नाड़ी अधिकाई। इड़ा पिंगला सुषमन गाई ॥
तिनके माहिं शिरोमणि सुषमन। नाल कमल जानत योगी जन॥
जा पहुँची ब्रह्मरंधर ताईं। ऊरध कमल सातवें माहीं ॥

१ गोलाकार २ चन्द्रमा ३ आकार ४ लाठी ५ अभ्यास करे ६ धक्का।

अष्टाङ्गयोग वर्णन ८९

(५) अथ भस्त्रिका

दो० अब कहुँ कुम्भक भस्त्रिका, पित कफ वायु नशाय ।
अग्नि बढ़े अभ्यास सों, तीन गाँठ खुल जाय ॥९९॥

आसन पद्म सु या विधि करे । वाम जंघ दहिनो पग धरे ॥
बावों पग दहनी पर लावे । जांघन सों दोउ हाथ मिलावे ॥
ग्रीवा पेट बराबर राखे । आगे सुन शुकदेवा भाखे ॥

१ द्वारा २ त्यागना ।

मुख मूँदे रेचे नासा सूँ । पूरक चपल करे श्वासा सूँ ॥
रेचक पूरक ऐसे कीजे । बारंबार तजे अरु लीजे ॥
जैसे खाल लोहारा भरे । रेचक पूरक आतुर करे ॥
करत करत जबही थकि जावे । नेक ठहर दूजी विधि लावे ॥
फिर पूरक सूरज सों करे । पवन उदर के माहीं भरे ॥
तर्जनि अँगुली सों दृढ़ रोके । नासा मध्य धार कर जोखे ॥

दो० कुम्भक पिछली भाँति करि, रेच इड़ा सों बाय ।
कफ पित बायु नशाय के, लेवे अग्नि बढ़ाय ॥१००॥
कुण्डलनी देवे जगा, यह कुम्भक सुखदाय ।
करे जु हित व्रत धारि के, चरणदास चित लाय ॥१०१॥
कुण्डलनी सरकाय के, बेंधे तीनों गाँठ ।
ऐसी पँचवीं भस्त्रिका, रहे न कोई आँठ ॥१०२॥

ब्रह्मनाड़ी के छिद्र माहीं । रोकि रही मुख दे रहि ह्वाँहीं ॥
लाय लपेटे नाभी ठाहीं । दृढ़ ह्वै बैठी सरके नाहीं ॥
सवा बिलस्त की जाकी देही । तामें स्थित जीव सनेही ॥
शक्ति नागिनी यही जु कहिये । याका भेद गुरू सों लहिये ॥
महा अपरबल जागे नाहीं । ताते नर सब मरि मरि जाहीं ॥
कोइ इक योगी ताहि डुलावै । सुषमन बाट गगन लै जावे ॥
ब्रह्मरंन्ध्र में जाय समावे । लगे समाधि बहुत सुख पावे ॥
जो कछु होय सो कहा न जावे । चरणदास शुकदेव सुनावे ॥
दो० शिव शक्ती मेला[1] भवे[2], रहे न द्वितिया भाव ।

१-२ मिल जाते हैं ।

घंटा सबद अनाहद बाजै । आनँद आरति गगना गाजै ॥२॥
धूप ध्यान हरि सेती काजै । पुहुप प्रीति हरि भाँवरि लीजै ॥३॥
सेवा सार आत्मा पूजा । देव निरंजन और न दूजा ॥४॥
भाव भगति सौं आरति कीजै । इहि बिधि दादू जुगि जुगि जीजै ॥५॥

(४४३)

अबिचल आरति देव तुम्हारी । जुगि जुगि जीवनि राम हमारी ॥टेक॥
मरण मीच जम काल न लागै । आवागवन सकल भ्रम भागै ॥१॥
जोनी जीव जनमि नहिं आवै । निर्भय नाँउ अमर पद पावै ॥२॥
कलि बिष कुसमल बंधन कापै[1] । पारि पहूँते थिर करि थापै ॥३॥
अनेक उधारे तैं जन तारे । दादू आरति नरक निवारे ॥४॥

(४४४)

निराकार तेरी आरती, बलि जाउँ अनंत भवन के राइ ॥टेक॥
सुर नर सब सेवा करैं, ब्रह्मा बिस्नु महेस ।
देव तुम्हारा भेव न जानैं, पार न पावै सेस ॥ १ ॥
चंद सूर आरति करैं, नमो निरंजन देव ।
धरनि पवन आकास अराधैं, सबै तुम्हारी सेव ॥ २ ॥
सकल भवन सेवा करैं, मुनियर सिद्ध समाध ।
दीन लीन ह्वै रहे संत जन, अविगत के आराध ॥ ३ ॥
जै जै जीवनि राम हमारी, भगति करै ल्यौ लाइ ।
निराकार की आरति कीजै, दादू बलि बलि जाइ ॥ ४ ॥

(४४५)

तेरी आरती ए, जुगि जुगि जैजकार ॥ टेक ॥
जुगि जुगि आतम राम । जुगि जुगि सेवा कीजिये ॥ १ ॥
जुगि जुगि लंघे पार । जुगि जुगि जगपति कौं मिलै ॥ २ ॥
जुगि जुगि तारणहार । जुगि जुगि दरसन देखिये ॥ ३ ॥
जुगि जुगि मंगलचार । जुगि जुगि दादू गाइये ॥ ४ ॥

॥ अंत समय का पद ॥

(४४६)

जेते गुण ब्यापै, ते ते तैं तजि रे मन । साहिब अपणे कारणे ॥ १ ॥
बाणी दीन-दयाल, सब सास्तर की सार ।
पढ़ै बिचारै प्रीति सौं, सो जन उतरै पार ॥ २ ॥

॥ इति ॥

---

(१) काटे ।

(४३८)

राम तहाँ प्रगट रहे भरपूर, आतमा कँवल जहाँ।
परम पुरिष तहाँ, झिलिमिलि झिलिमिलि नूर ॥टेक॥
चंद सूर मधि भाइ, तहाँ बसै राम राइ।
गंग जमन के तीर, तिरबेणी संगम जहाँ।
निर्मल बिमल तहाँ, निरखि निरखि निज नीर ॥ १ ॥
आतमा उलटि जहाँ, तेज पुंज रहे तहाँ सहजि समाइ।
अगम निगम अति, तहाँ बसै प्राणपति, परसि परसि निज आइ ॥२॥
कोमल कुसम दल, निराकार जोति जल वार पार।
सुन्य सरोवर जहाँ, दादू हंसा रहै तहाँ, बिलसि बिलसि निज सार ॥३॥

(४३९)

गोब्यंद पाया मनि भाया, अमर कीये संग लीये।

अखै अभय दान दीये, छाया नहीं माया ॥ टेक ॥
अगम गगन अगम तूर, अगम चंद अगम सूर।
काल झाल रहे दूर, जीव नहीं काया ॥ १ ॥
आदि अंति नहीं कोइ, राति दिवस नहीं होइ।
उदै अस्त नहीं दोइ, मनहीं मन लाया ॥ २ ॥
अमर गुरू अमर ज्ञान, अमर पुरिष अमर ध्यान।
अमर ब्रह्म अमर थान, सरज सुन्य आया ॥ ३ ॥
अमर नूर अमर बास, अमर तेज सुख निवास।
अमर जोति दादू दास, सकल भुवन राया ॥ ४ ॥

(४४०)

राम की राती भई माती, लोक बेद बिधि निषेध।
भागे सब भरम भेद, अमृत रस पीवै ॥ टेक ॥
भागे सब काल झाल, छूटे सब जग जँजाल।
बिसरे सब हाल चाल, हरि की सुधि पाई ॥ १ ॥
प्रान पवन जहाँ जाइ, अगम निगम मिले आइ।
प्रेम मगन रहे समाइ, बिलसै बपु[1] नाहीं ॥ २ ॥
परम नूर परम तेज, परम पुंज परम सेज।
परम जोति परम हेज, सुंदरि सुख पावै ॥ ३ ॥
परम पुरिष परम रास, परम लाल सुख बिलास।
परम मंगल दादू दास, पीव सौं मिलि खेलै ॥ ४ ॥

॥ आरती ॥

(४४१)

इहि बिधि आरती राम की कीजै। आत्मा अंतरि वारणा लीजै ॥टेक॥
तन मन चंदन प्रेम की माला। अनहद घंटा दीनदयाला ॥१॥
ज्ञान का दीपक पवन की बाती। देव निरंजन पाँचौ पाती ॥२॥
आनँद मंगल भाव की सेवा। मनसा मंदिर आतम देवा ॥३॥
भगति निरंतर मैं बलिहारी। दादू न जानै सेव तुम्हारी ॥४॥

(४४२)

आरती जग जीवन तेरी। तेरे चरन कँवल पर वारी फेरी ॥टेक॥
चित चाँवरी हेत हरि ढारै। दीपक ज्ञान जोति बिचारै ॥१॥

(१) शरीर।

(४०५)

मन पवना ले उनमन रहै, अगम निगम मूल सो लहै ॥टेक॥
पंच बाइ जे सहजि समावै, ससिहर[1] के घरि आणै सूर।
सीतल सदा मिलै सुखदाई, अनहद सबद बजावै तूर ॥१॥
बक नालि सदा रस पीवै, तब यहु मनवाँ कहीं न जाइ।
बिगसे कँवल प्रेम जब उपजै, ब्रह्म जीव की करै सहाइ ॥२॥
बसि गुफा में जोति बिचारै, तब तेहिं सूझै त्रिभुवन राइ।
अंतरि आप मिलै अबिनासी, पद आनंद काल नहिं खाइ ॥३॥
जामण मरण जाइ भव भाजै, अबरण के घरि बरण समाइ।
दादू जाय मिलै जग-जीवन, तब यहु आवागवन बिलाइ ॥४॥

(४०६)

जीवनमूरि मेरे आतमराम। भाग बड़े पायो निज ठाम ॥टेक॥
सबद अनाहद उपजै जहाँ, सुखमन रंग लगावै तहाँ।
तहँ रँग लागै निर्मल होइ, ये तत उपजै जानै सोइ ॥१॥
सरवर[2] तहाँ हंसा रहै, करि असनान सबै सुख लहै।
सुखदाई कौं नैनहुँ जोइ, त्यूँ त्यूँ मन अति आनँद होइ ॥२॥
सो हंसा सरनागति जाइ, सुंदरि तहाँ पखालै पाँइ।
पीवै अमृत नीझर नीर, बैठे तहाँ जगत-गुर पीर ॥३॥
तहँ भाव प्रेम की पूजा होइ, जा परि किरपा जानै सोइ।
किरपा करि हरि देइ उमंग, ता जन पायो निर्भय संग ॥४॥

(१) चाँद। (२) मानसरोवर।

तब हंसा मन आनँद होइ, बस्त अगोचर लखै रे सोइ।
जा कौं हरी लखावै आप, ताहि न लेपै पुन्य न पाप ॥५॥
तहँ अनहद बाजे अद्भुत खेल, दीपक जलै बाती बिन तेल।
अखंड जोति तहँ भयौ प्रकास, फाग बसन्त जो बारह मास ॥६॥
त्री-अस्थान[1] निरंतरि निरधार, तहँ प्रभु बैठे समरथ सार।
ननहुँ निरखौं तौ सुख होइ, ताहि पुरिस कौं लखै न कोइ ॥७॥
ऐसा है हरि दीन-दयाल, सेवग की जानै प्रतिपाल।
चलु हंसा तहँ चरण समान, तहँ दादू पहुँचे परिवान ॥८॥

(४०७)

घटि घटि गोपी घटिघटि कान्ह, घटि घटि राम अमर अस्थान॥टेक॥
गंगा जमुना[2] अंतरबेद[3]। सुरसती[4] नीर बहै परसेद[5] ॥१॥
कुंज केलि तहँ परम बिलास। सब संगी मिलि खेलैं रास ॥२॥
तहँ बिन बेना बाजै तूर। बिगसै कँवल चंद अरु सूर ॥३॥
पूरण ब्रह्म परम परकास। तहँ निज देखै दादू दास ॥४॥

(४०८)

॥ राग ललित ॥

राम तूँ मोरा हूँ तोरा। पाँइन परत निहोरा ॥ टेक ॥
एकै संगैं बासा। तुम ठाकुर हम दासा ॥ १ ॥
तन मन तुम कौं देबा। तेज पुंज हम लेबा ॥ २ ॥
रस माहैं रस होइबा। जोति सरूपी जोइबा ॥ ३ ॥
ब्रह्म जीव का मेला। दादू नूर अकेला ॥ ४ ॥

(४०९)

मेरे गृह आवहु गुर मेरा। मैं बालक सेवग तेरा ॥ टेक ॥
मात पिता तूँ अम्हचा[6] स्वामी। देव हमारे अंतरजामी ॥ १ ॥
अम्हचा सज्जन अम्हचा बंधू। प्राण हमारे अम्हचा जिंदू ॥ २ ॥
अम्हचा प्रीतम अम्हचा मेला। अम्हची जीवनि आप अकेला ॥३॥

(१) त्रिकुटी। (२) पिंगला और इड़ा अथवा दाहिना और बायाँ स्वर। (३) मध्य स्थान। (४) सुखमना। (५) पसीना अर्थात् प्रेम धारा। (६) हमारा।

(७०)

इत है नीर नहावन जोग। अनतहिं भर्म भूला रे लोग ॥
तिहि तटि न्हाये निर्मल होइ। बस्तु अगोचर लखे रे सोइ ॥
सुघट घाट अरु तिरिबौ तीर। बैठे तहाँ जगत गुर पीर ॥
दादू न जाणै तिन का भेव। आप लखावै अन्तरि देव ॥

(७१)

ऐसा ज्ञान कथौ मन[1] ज्ञानी। इहि घर होइ सहज सुख जानी ॥
गंग जमुन तहँ नीर नहाइ। सुषमन नारी रंग लगाइ ॥
आप तेज तन रह्यो समाइ। मैं बलि ताकी देखौं अघाइ ॥
बास निरंतर सो समझाइ। बिन नैनहुँ देखि तहँ जाइ ॥
दादू रे यहु अगम अपार। सो धन मेरे अधर अधार ॥

(७२)

इब तौ ऐसी बनि आई। राम चरण बिन रह्यौ न जाई ॥
साईं कूँ मिलिबे के कारण। त्रिकुटी संगम नीर नहाई ॥
चरण कँवल की तहँ ल्यौ लागे। जतन जतन करि प्रीति बनाई ॥
जे रस भीना छावरि[2] जावै। सुन्दरि सहजैं संगि समाई ॥
अनहद बाजे बाजण लागे। जिभ्या हीणे कीरति गाई ॥
कहा कहौं कुछ बरणि न जाई। अबिगति अंतरि जोति जगाई॥
दादू उन कौ मरम न जाणै। आप सुरंगे बेन बजाई ॥

(७३)

नीके राम कहत है बपुरा।
घर माहैं घर निर्मल राखै, पंचौं धोवै काया कपरा ॥टेक॥
सहज समरपण सुमिरण सेवा, तिरबेणी तट संजम सपरा।
सुन्दरि सन्मुख जागण लागी, तहँ मोहन मेरा मन पकरा ॥१॥
बिन रसना मोहन गुण गावै, नाना बाणी अनभै अपरा।
दादू अनहद ऐसैं कहिये, भगति तत्त यहु मारग सकरा[3] ॥२॥

(१) एक लिपि और एक पुस्तक में "मन" की जगह "नर" है। (२) न्यौछावर। (३) तंग।

06:01
Dadu Dayal Ki Bani II - B...

आपे आप उपावे माया, पंच तत्त करि काया।
जीव जनम ले जग में आया, आया काया माया ॥ १ ॥
धरती अंबर महल उपाया, सब जग धंधै लाया।
आपे अलख निरंजन राया, राया लाया उपाया ॥ २ ॥
चंद सूर दोइ दीपक कीन्हा, राति दिवस करि लीन्हा।
राजिक रिजक सबनि कौं दीन्हा, दीन्हा लीन्हा कीन्हा ॥ ३ ॥
परम गुरू सो प्राण हमारा, सब सुख देवै सारा।
दादू खेलै अनत अपारा, अपारा सारा हमारा ॥ ४ ॥

(२४४)

थकित भयो मन कह्यो न जाई। सहजि समाधि रह्यो ल्यौ लाई ॥टेक॥
जे कुछ कहिये सोचि बिचारा। ज्ञान अगोचर अगम अपारा ॥१॥
साइर बूँद कैसैं करि तोलै[1]। आप अबोल कहा कहि बोलै ॥२॥
अनल पंख परे परि दूरि। ऐसैं राम रह्या भरपूरि ॥३॥
इब मन मेरा ऐसैं रे भाई। दादू कहिबा कहण न जाई ॥४॥

(२४५)

अविगत की गति कोइ न लहै। सब अपना उनमान कहै ॥ टेक ॥
केते ब्रह्मा बेद बिचारैं, केते पंडित पाठ पढ़ैं।
केते अनभै आतम खोजैं, केते सुर नर नाँव रटैं ॥ १ ॥
केते ईसुर आसणि बैठे, केते जोगी ध्यान धरैं।
केते मुनियर मन कूँ मारैं, केते ज्ञानी ज्ञान करैं ॥ २ ॥
केते पीर केते पैगंबर, केते पढ़ैं कुराना।
केते काजी केते मुल्ला, केते सेख सयाना ॥ ३ ॥
केते पारिख अंत न पावैं, वार पार कुछ नाहीं।
दादू कीमति कोइ न जानै, केते आवैं जाहीं ॥ ४ ॥

(२४६)

ये हौं बूझि रही पिव जैसा, तैसा कोइ न कहै रे।
अगम अगाध अपार अगोचर, सुधि बुधि कोइ न लहै रे ॥टेक॥

(१) बूँद समुद्र की तौल क्या कर सकती है।

८४ दादू दयाल की बानी भाग दूसरा

(२१०)

बाबा को ऐसा जन जोगी ।
अंजन छाड़ै रहै निरंजन, सहज सदा रस भोगी ॥ टेक ॥
छाया माया रहै बिबरजित, प्यंड ब्रह्मंड नियारे ।
चंद सूर थै अगम अगोचर, सो गहि तत्त बिचारे ॥ १ ॥
पाप पुण्य लिपै नहिं कबहूँ, दोइ पख रहिता सोई ।
धरनि अकास ताहि थैं ऊपरि, तहाँ जाइ रत होई ॥ २ ॥
जीवण मरण न बाँछै[2] कबहूँ, आवागवन न फेरा ।
पाणी पवन परस नहिं लागै, तिहि सँगि करै बसेरा ॥ ३ ॥
गुण आकार जहाँ गमि नाहीं, आपै आप अकेला ।
दादू जाइ तहाँ जन जोगी, परम पुरिष सौं मेला ॥ ४ ॥

(१) पृथ्वी । (२) माँगै ।

(२११)

जोगी जानि जानि जन जीवै ।
बिनहीं मनसा मनहिं बिचारै, बिन रसना रस पीवै ॥ टेक ॥
बिनहीं लोचन निरखि नैन बिन, स्रवण रहित सुनि सोई ।
ऐसैं आतम रहै एक रस, तौ दूसर नाँव न होई ॥ १ ॥
बिनहीं मारग चलै चरण बिन, निहचल बैठा जाई ।
बिनहीं काया मिलै परस्पर, ज्यौं जल जलहि समाई ॥ २ ॥
बिनहीं ठाहर आसण पूरे, बिन कर बेनु बजावै ।
बिनहीं पाँऊँ नाचै निस दिन, बिन जिभ्या गुण गावै ॥ ३ ॥
सब गुण रहिता सकल बियापी, बिन इंद्री रस भोगी ।
दादू ऐसा गुरू हमारा, आप निरंजन जोगी ॥ ४ ॥

(२१२)

इहै परम गुर जोगं, अमी महा रस भोगं ॥ टेक ॥
मन पवना थिर साधं, अविगत नाथ अराधं । तहँ सबद अनाहद नादं ॥
पंच सखी परमोधं, अगम ज्ञान गुर बोधं । तहँ नाथ निरंजन सोधं ॥
सतगुर माहिं बतावा, निराधार घर छावा । तहँ जोति सरूपी पावा ॥
सहजैं सदा प्रकासं, पूरण ब्रह्म बिलासं । तहँ सेवग दादू दासं ॥

(२१३)

मूनैं[1] येह अचंम्भो थाये[2] ।
कीड़ी[3] ये हस्ती बिडारचो, तेन्हैं बैठी खाये ॥ टेक ॥
जाण[4] हुतौ ते बैठौ हारे, अजाण[5] तेन्हैं ता वाहे[6] ।
पाँगुलौ उजाबा लाग्यौ[7], तेन्हैं कर को साहे[8] ॥ १ ॥

(१) मूनैं = मुझे । (२) थाये = होता है । (३) कीड़ी = चींटी अर्थात् सुरत या जीवात्मा जो यहाँ अति दुर्बल हो रही है परन्तु सतगुरु प्रताप से पुष्ट हो कर हस्ती रूपी मन को मार लेती है—(पंडित चंद्रिका प्रसाद ने कीड़ी का अभिप्राय "मन्सा" लिखा है जो ठीक नहीं हो सकता क्योंकि मनसा तो मन की जाई इच्छा है वह उसे क्या मारेगी !) । (४) चतुरा अर्थात् मन । (५) भोली सुरत । (६) वहका लिया । (७) ऐसा मन जो चंचलता छोड़ कर पंगुल होगया वही ऊँचे पर पहुँचा । (८) उसके हाथ [कर] को कौन रोके [साहै] ।

जोगिया के लेउ मिर्गछलवा हो, आपन पट चीर।
दूनो के सियब गुदरिया हो, होइ जाब फकीर ॥२॥
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर।
चितवनि में मन हरि लियो हो, जोगिया बड़ चोर ॥३॥
गंग जमुन के बिचवां हो, बहै झिरहिर नीर।
तेहि ठैंयां जोरल सनेहिया हो, हरि लै गयो पीर ॥४॥
जोगिया अमर मरै नहिं हो, पुजवल मोरी आस।
करम लिखा बर पावल हो, गावै पलटू दास ॥५॥

समतूल=एकसमान। जोरल सनेहिया=प्रेम-बंधन में डाल दिया। झिरहिर=वेगवती धारा में। ठैंयां=स्थान पर।

सच्चा भजन (४)

हम भजनीक में नाहीं अवधू, आँखि मूंदि नहिं जाहीं ॥टेक॥
इक भजनीक भजन है इकठो, तब यह भजन में जावै।
भजनी भजन एक भा दूनो, वाके भजन न आवै ॥१॥
खसम की मजा परी है जिनको, सो क्या नैहर आवै।
हुमा पच्छी रहै गगन में, वाके जगत न भावै ॥२॥
बुंद परा सागर के मांहीं, वह ना बुंद कहावै।
लोन की डेरी परी पानी में, कहवां से फिर पावै ॥३॥
तेल की धार लगी निसि बासर, जोति में जोति समानी।
पलटूदास जो आवै जावै, सो चौथाई ज्ञानी ॥४॥

हुमा पच्छी=आकाश में ही रहने वाली एक प्रसिद्ध चिड़िया जिसकी छाया पड़ने पर मनुष्य बादशाह हो जाता है। डेरी=डली।

सच्ची बनियाई (५)

कौन करै बनियाई मेरी, कौन करै बनियाई ॥टेक॥
त्रिकुटी में है भरती मेरी, सुखमन में है गादी।
दसयें द्वारे कोठी मेरी, बैठा पुरुष अनादी ॥१॥
इंगला पिंगला पलरा दूनौं, लागि सुरति की जोती।
सत्त शब्द की डांडी पकरौं, तौलौं भरि भरि मोती ॥२॥
चांद सुरुज दोउ करैं रखवारी, लगी तत्त की ढेरी।
तुरिया चढ़ि के बेचन लागे, ऐसी साहिबी मेरी ॥३॥
सतगुरु साहब किहा सिपारस, मिली राम मोदियाई।
पलटू के घर नौबति बाजै, निति उठि होत सवाई ॥४॥

भरती=पूँजी। जोती=तराजू के पलड़ों की डोरी जो डांडी से बँधी रहती है। तुरिया=चौथे पद पर।

मूर्ख जीवात्मा (६)

धूबिया रहै पियासा जल बिच, लागि जाय मुंह लासा ॥टेक॥
जल में रहै पिये नहिं मूरख, सुन्दर जल है खासा।
अपने घर सन्देस पठावै, करै धोबिनि कै आसा ॥१॥

छादन = पहनने के लिए वस्त्रादि । ज्यां...पीर = जिसे आत्मानुभूति हो गई, जिसने पूर्ण तत्त्व का अनुभव कर लिया । अवगत = अविगत, अज्ञात । खाली = पोपला, भीतर शून्यवत् । दरियाव = समुद्र, जलराशि ।

चौपाई

जाग्यो प्रेम नेम रह्यो नांहीं । पाई राम धाम घट मांहीं ॥
उर अस्थान पाय बिश्रामा । सब्द किया जाय नाभि मुकामा ॥१॥
नाभि कमल में सब्द गुंजारै । नीसै नारी मंगल उचारै ॥
रोम रोम झुणकार झुणक्कै । जैसे जंतर तांत ठुणक्कै ॥२॥
माया अच्छर इहां बिलाया । ररंकार इक गगन सिधाया ॥
पच्छिम दिशा मेरु की घाटी । बीसों गांठ घोरसें फाटी ॥३॥
त्रिकुटी संगम किया सनाना । जाय चढ्या चौथे अस्थाना ॥
जहां निरंजन तख्त बिराजै । ज्योति प्रकास अनन रवि राजै ॥४॥
अणहद नाद गिणंत नहि आवै । भांति-भांति की राग उपावै ॥
सुवै सुषुमना नीर फुंहारा । सून्य सिखर का यह बिवहारा ॥५॥

जंतर तांत = किसी वाद्ययंत्र में लगी चमड़े की तांत । उपावै = उत्पन्न करता है ।

अरिल्ल

बिरह घटा घररात नैंण नीझर झरै ।
चित चमंकै बीज कि हिरदो ओल्हरै ॥
बिरहिन हूं बेहाल दया कर न्हालियो ।
परिहां, रामचरण कूं राम बेग सम्हालियो ॥१॥

बिरहा कर ले करद कलेजा काटिहै ।
पीव न सुणै पुकार कि हिवरा फाटिहै ॥
सबै बटाऊ लोग न पूछै पीडरे ।
परिहां, रामचरण बिन राम करै कुण भीडरे ॥१॥

बिरह सपीड़ा सास वहै उर करद रे ।
घाव गयो है फाटि बध्यो अति दरद रे ॥
निस दिन करे पुकार बैद्य हरि आवही ।
परिहां, रामचरण बिन राम मरै नहिं पाव ही ॥

सूई कर निज सार सुर हित कीजिये ।
अपना हाथां आप घाव सी लीजिये ॥
अब नहिं कीजै ढील घाव अति बिस्तरे ।
परिहां, रामचरण बेहाल बिरहनी दुखभरे ॥

गुरां बताया निकट दूर कैसे भया ।
मोहा माया की बाड़ आसरे होय रह्या ॥
मैं निर्बल निरधार न टूटे बाड़ जी ।
परिहां, तुम समर्थ बल जोर की पड़दा फाड़ जी ॥

घररात = घहराती है । बीज = बिजली ।

किया। मन मत लाई=एकमत हो गई। देस चंद्रबार=ब्रह्मांड का वह स्थान जहां से अमृत-स्राव होता है। संत शिवनारायण के जन्म-स्थान का नाम भी चंद्र-बार है।

अनाहत-श्रवण (६)

वृन्दाबन कान्हा मुरली बजाई ॥घ्रूहा॥
जो जैसहि तैसहि उठि धाई, कुल की लाज गंवाई ॥१॥
जो न गई सो तो भई है बावरी, समुझि समुझि पछिताई ॥२॥
गोवन के मुख त्रेन बसत है, बछवा पियत न गाई ॥३॥
शिवनारायन श्रवण सबद सुनि, पवन रहत अलसाई ॥४॥

गोवन...बसत है=गायें चरते समय अपने मुख की घास मुख में ही लिए रह गईं।

विरह (७)

गगन तार गनत गइ रतिआ ॥टेक॥
गगन गहागह अनहद बाजत, बरसत अमृत धार।
जो जन पीवै सोइ जन जीवै, मान गुमान हकार किरतिआ ॥१॥

गगन बीच भरि मकर तार धरि, चढ़ि गए चतुर सुजान।
अजपा जाप जाहिर भयो जबते, बिसरि गये दारा सुत नतिआ ॥२॥
करनी काम किए जग जबते, करता तीनि सुभाव।
इंगला पिंगला सुषमना सुरते, कटि गए काल कराल कुमतिआ ॥३॥

पिय परदेस उदेस न पावों, पिय बेलमे केहि भाव।
का करों लोभी पिया जैसो रहि गयो, राखि पराई बतिया ॥४॥
जो पिय पावों अंक भरि लावों, निज परतीत बढ़ाय।
तबहीं सुहागिनी प्रान पुरुषकी, चढ़ि मैदान लड़ी सुरा छतिआ ॥५॥

जो आया सो जात न देखा, कहां वार कहां पार।
जनमत मरत हाट एक देखा, बकता सांच झूठ दुइ बतिआ ॥६॥
बेद पुरान बरन बहु बरनत, भिन भिन करि मांग।
सो सुनि भूले मुरुख गंवारा, भटकत फिरहिं जगत भजिमंतिआ ॥७॥

केहु नाहिं हीत बंधु एहि जगमें, सभी बिराना लोग।
जात न बने अकेला जाना, खोजत मिलै न केहु संगतिआ ॥८॥

शीवनरायन सुरति निरंतर, निरखि आपनो लीन्ह।
बैठ तखत अमल करि अपना, कहि दिन चलहु मुक्ति की गतिआ ॥९॥
गगन तार गनत गइ रतिआ ॥

तार=ताराओं को। मकतार=बादले का कामदानी का तार। नतिआ=पोता। उदेस=पता। बेलमे=रुके। अमल=अधिकार।

(४)

लखु ए सज्जन सोऽहं तार ॥टेक॥
आगे में नाम देखो श्वासा विचार।
त्रिकुटी उपर जोति उजियार॥

अष्ट दल कमल फुले गुलजार।
मेरे मन मधुकर, करै गुलजार॥
इंगला पिंगला के काया निरुआर।
सुखमन बटिया के खुलु न केवार॥
नाभि कुंड बहे अमृत धार, शब्द उठै जहाँ ओंकार।
तालेदास इहाँ काया निरुआर, जीति चलहुँ वहि देशवा बिरान॥

(५)

दिहलन एक जड़ी हमारे गुरु ॥टेक॥
इहो जड़िया मोही प्यार लगत है, अमृत रस से भरी।
इहो जड़िया केउ सन्त लोग जाने, लै के जपत रही॥१॥
त्रिविध तापना तन से भागे, दुर्मति दूर करी।
इहो जड़िया देखि मृत्यु डेराने, और कौन बा पुरी॥२॥
मनही भुजग पाँचो नाड़ी सन तरंग भरी।
डाइन एक सकल जग खाये, बोली देख डरी॥३॥
निशि बासर जन ताहि न बिसरै, पल चित एको घड़ी।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी सकलो व्याध हरी॥४॥

(६)

भजन में सन्तो प्यारा है॥टेक॥
बिनु सड़सी बिनु हाथ हथौड़ी, गढ़ल सजल तइयारा है।
बिनु खम्भा-असमान खड़ा है, उसमें धागा लागा है॥
बिनु चूना के मंदिल चुनौटल, उसमें साहेब हमारा है।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी, सतगुरु सबसे न्यारा है॥

(७)

सोऽहं नाहि विचारी जम्हु हो॥टेक॥
नाटा बएलवा टाट् नहिं अंगछै, छन छन देत गिराई।
गुरु के शबद लै नाथु बएलवा, हनि हनि मान्हु पेटारी॥१॥
ना हम लादो हीरा-मोती, ना हम लौंग सुपारी।
हमहुँ त लादब गुरु के सबदवा, पूरा खेप हमारी॥२॥
'तालेराम' पतिया लिखि भेजल, लक्ष्मी के झटझारी।
साहब कबीर के घर भरत है, अपने भइले बेपारी॥३॥

(८)

सद्गुरु बनिया पिंजड़ा पा लेना॥टेक॥
एक दमरी के मुनिया बेसहलो, नौ दमड़ी के पिंजड़ा।
आएल बिलाई झपट लेलक मुनिया, रोये सारी दुनिया॥

07:44
2015.480974.Sat-mat-ka

—स्वरूपगीता, पृ० २०३ (दोहा ४८७ के बाद की चौपाइयाँ)

योग, दिव्यदृष्टि, अमरपुर

चलहु निज दरबार साधो ॥टेक॥
अस्नान निरंतर बैठा, आसन पदम सम्हार।
उन मुनि ध्यान नासिका अग्रे, तब गढ़ भीतर पसार ॥१॥
छव चक्र षोडशो खाई, दशों द्वार थानेदार।
चान्द सरासम करि सुखमन में, तब खोलो त्रिकुटी किनार ॥२॥
गंगा यमुना सरस्वनी संगम है, भजन करो होई पार।
रंग रंग के वस्तु निरेखो, लीला अगम अपार ॥३॥
वृक्ष एक दृष्टि में आए, श्वेत चक्र फहराए।
ताहि चक्र पै नागिन दरसै, को छवि बरणो पार ॥४॥
अग्नि बिम्ब चक्र एक दरसे, मेरु दंड तेहि ठार।
कछु अमृत वहि सर्प चाखे, कछु होत जरि छार ॥५॥
ताहि दंड के फिर करिको, उर्द्ध के कमल उठाए।
अमृत आवत रोक जिह्वा पर, तब जीव लै लै उबार ॥६॥
तासो आगे अष्टांगी बासा, शून्य शिखर रखवार।
त्रिगुणी फाँस लिए कर डोले, विनय से खोलत किवार ॥७॥
शून्य शिखर का गुफा जोई, देख निरंजन पसार।
शून्य शहर में चौमुख मंदिर, तामें जोत अपार ॥८॥
ता जग मानसरोबर जानो, बिनु जल पवन हिलोर।
बिनु आकाश घेरत बादल, बिनु रवि शशि के अंजोर ॥६॥
ठन ठन ठन ठन ठनका ठनके, घहरि घहरि घहराये।
दम दम दम दम दामिनि दमके, लौके बिजुली उजियार ॥१०॥
हीरा रतन जवाहिर बरसे, झीन मोतियाँ फुहियाये।
चन्द्रबदन सुखमनि का ऊपर, अनहद शोर झँझकार ॥११॥
बाजे ताल मृदंग बाँसुरी, शंख बेन सहनाए।
भेरी झाँझ, कलाल, सारंगी, नरमी तान सितार ॥१२॥
सोई शोर झंकोर उठत है को कवि वर्णं निहार।
ब्रह्मा, विष्णु महेश शेष सुर वर्णत शारद हार ॥१३॥
यह निरंजन माया देखि के, जो जो रहत रुझाये।
सो सो जन जब भूलि परले, पाए न अपनी पार ॥१४॥

(३)

एक भक्ति मैं जानौं और झूठ सब बात ।।
और झूठ सब बात करैं हठजोग अनारी।
ब्रह्मदोष वो लेय काया कौ राखैं जारी।
प्रान करैं आयाम कोई फिर मुद्रा साधैं ।।
धोती नेती करैं कोई लैं स्वासा बांधैं ।।
उनमुनि लावैं ध्यान करैं चौरासी आसन ।
कोई साखी सबद कोई तप कुसकैं डासन ।।
पलटू सब परपंच है करैं सो फिर पछितात ।
एक भक्ति मैं जानौं और झूठ सब बात ।।३।।

जारी=जलाकर, कष्ट देकर। प्रान करैं आयाम=प्राणायाम करता है। मुद्रा, नेती, धोती, उनमुनि=हठयोग की विविध साधनाएँ।

(४)

सिध चौरासी नाथ नौ बीचैं सबैं भुलान ।।
बीचैं सबैं भुलान भक्ति की मारग छूटी।
हीरा दिहिन है डारि लिहिन इक कौड़ी फूटी ।।
रांड मांड में खुसी जगत इतनैं में राजी।
लोक बड़ाई तुच्छ नरक में अटकी बाजी ।।
झूठ समाधि लगाय फिरैं मन अंतैं भटका।
उहां न पहुंचा कोय बीच में सब कोइ अटका ।।
पलटू अठएं लोक में पड़ा दुपट्टा तान।
सिध चौरासी नाथ नौ बीचैं सबैं भुलान ।।४।।

सिध .....नौ = ८४ सिद्ध और ६ नाथ। रांड......खुसी=थोड़े में ही संतुष्ट हो गए। अंतैं=अन्यत्र।

(५)

रन का चढ़ना सहज है मुसकिल करना योग ।।
मुसकिल करना योग चित्तको उलटि लगावै।
विषय वासना तजै प्रान ब्रह्मांड चढ़ावै।
साधै वायू प्रान कुंडली करै उथपना।
अष्ट कंवल दल उलटि कंवल दल द्वादस लखना ।।
इंगला पिंगला सोधि बंक के नाल चढ़ावै।
चार कला को तोड़ि चक्र षट जाय बिधावै ।।
पलटू जो संजम करै करै रूप से भोग।
रनका चढ़ना सहज है मुसकिल करना योग ।।५।।

उथपना=ऊर्ध्वमुखी कर दे। बिधावै=वेध देवे।

परगट सतगुरु जग में विराजैं,
मेटयँ जिवन दुख दाह।
बाबा देवी साहब जग में कहावयँ,
'मेँहीँ' पर मेहर निगाह ॥आगे०॥

(२७७)

सन्तन मत भेद प्रचार किया, गुरु साहब बाबा देवी ने ॥टेक॥
थे अन्ध बने फिरते बाहिर, अन्तर-पथ भेद न थे जाहिर।
हमें बोधि बुझाय सुझाय दिया, गुरु साहब बाबा देवी ने ॥१॥
बन्द कराय पलक पट को, कहे बाहर में तुम मत भटको।
सीधे सन्मुख सुषमन बिन्दु को, गहवाया बाबा देवी ने ॥२॥
सुषमन घर में ध्वनि धार बजै, चढ़ि श्वेत सुरत सो धार भजै।
अनहद उलझन यहि युक्ति तजै, सतध्वनि की युक्ति दई गुरु ने ॥३॥
गुरु की यह युक्ति बड़ी मेँहीँ, 'मेँहीँ' परगट संसार नहीं।
यहि ढोल पिटाय सुनाय दिया, गुरु साहब बाबा देवी ने ॥४॥

(२७८)

जय जयति सद्गुरु जयति जय जय, जयति श्री कोमल तनुं।
मुनि वेष धारण करण मुनिवर, जयति कलिमल दल हनं॥
जय जयति जीवन्मुक्त मुनिवर, शीलवन्त कृपालु जो।
सो कृपा करिकै करिय आपन, दास प्रभु जी मोहि को॥
जय जयति सद्गुरु जयति जय जय, सत्य सत् वक्ता प्रभू।
हरि कुमति भर्महिं सुमति सत्य को, पाहि मोहि दीजै अभू॥
यह रोग संसृति व्यथा शूलन्ह, मोह के जाये सभै।
अति विषम शर बहु होय बेध्यो, मोहि अब कीजै अभै॥
प्रभु ! कोटि कोटिन्ह बार इन्ह दुख, मोहि आनि सतायेऊ।
यहु बार जहु एक वचन आशा, आय तहु में समायेऊ॥
बिनु तुव कृपा को बचि सकै, तिहु काल तीनहु लोक में।
प्रभु शरण तुव आरत जना तू, सहाय जन के शोक में॥

(२७९)

अति पावन गुरु मंत्र मनहिं मन जाप जपो।
उपकारी गुरु रूप को मानस ध्यान थपो ॥१॥
देवी देव समस्त पूरण ब्रह्म परम प्रभू।
गुरु में करैं निवास कहत हैं संत सभू ॥२॥

17:59
← संतमत-भजनावली-भाग-1

६. सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंस

(२७५)

गंग जमुन जुग धार मधहि सरस्वति बही।
फुटल मनुषवा के भाग गुरु गम नाहिं लही ॥१॥
सतगुरु सन्त कबीर नानक गुरु आदि कही।
जोइ ब्रह्माण्ड सोइ पिण्ड अन्तर कछु अहइ नहीं ॥२॥
पिंगल दहिन गंग सूर्य इंगल चन्द जमुन बाईं।
सरस्वति सुषमन बीच चेतन जलधार नाईं ॥३॥
सतगुरु को धरि ध्यान सहज स्त्रुति शुद्ध करी।
सनमुख विन्दु निहारि सरस्वति न्हाय चली ॥४॥
होति जगामगि जोति सहसदल पीलि चली।
अद्भुत त्रिकुटी की जोति लखत स्त्रुति सुन्न रली ॥५॥
सुन मद्धे धुन सार सुरत मिलि चलति भई।
महा सुन्य गुफा भँवर होइ सतलोक गई ॥६॥
अलख अगम्म अनाम सो सत पद सूर्त रली।
पाएउ पद निर्वाण सन्तन सब कहत अली ॥७॥
छूटेउ दुख को देश गुरु गम पाय कही।
सतगुरु देवी साहब दया 'मेँहीँ' गाइ दई ॥८॥

(२७६)

आगे माई सतगुरु खोज करहु सब मिलिके,
जनम सुफल कर राह ॥टेक॥
आगे माई सतगुरु सम नहिं हित जग कोई,
मातु पिता भ्राताह।
सकल कल्पना कष्ट निवारें,
मिटैं सकल दुख दाह ॥आगे०॥
भव सागर अन्ध कूप पड़ल जिव,
सुझइ न चेतन राह।
बिन सतगुरु इहो गति जीव के,
जरत रहे यम धाह ॥आगे०॥
सतगुरु सत उपकारि जिवन के,
राखैं जिवन सुख चाह।
होइ दयाल जगत में आवैं,
खोलैं चेतन सुख राह ॥आगे०॥

परिशिष्ट (ख)

(१) **योगेश्वराचार्य**—श्रीयोगेश्वराचार्य एक ऐसे प्रमुख सरभंग-संत थे, जिनकी चर्चा मुख्य ग्रंथ में केवल नाम मात्र की हुई है। मुख्य ग्रंथ के प्रणयन के समय योगेश्वराचार्य के केवल एक ग्रंथ का थोड़ा सा अंश सुलभ हो सका था; क्योंकि अबतक केवल वही अंश 'श्रीस्वरूपप्रकाश' (प्रथम विश्राम) के नाम से मुद्रित हुआ है। संग्रहकर्त्ता हैं श्रीयोगेश्वराचार्य के एक शिष्य श्रीबैजूदासदेव। प्रकाशक हैं श्रीराधाशरणप्रसाद श्रीवास्तव, स्वरूप-कार्यकारिणी समिति, ग्राम—बरजी, पो० महवल (मुजफ्फरपुर)। पीछे चलकर श्रीराजेन्द्रदेव के सौजन्य से न केवल 'स्वरूपप्रकाश' के शेष अंश की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई, अपितु 'स्वरूपगीता' की भी। स्वरूपगीता के प्रारंभ में बाबा बैजूदास देव ने जो परिचायात्मक पद दिये हैं, उनमें योगेश्वराचार्य की विद्वत्ता और साधना का गौरवपूर्ण उल्लेख है। उन्हें 'आजन्म ब्रह्मचारी विविध गुणनिधि-ज्ञानविज्ञानकारी' कहा गया है और श्रौत, स्मार्त तथा वेदोपनिषदों के ज्ञान से सम्पन्न बताया गया है। वे बड़े 'नेम आचार' से रहते थे' 'षट् मुद्रा' साधन करते थे। उन्हें अष्टांग योग तथा 'नेती', 'बस्ती', 'धौती', 'नेउली', 'त्राटक', 'गजकरनी' आदि सभी क्रियाओं का अभ्यास था। योगेश्वराचार्य ने अपना संक्षिप्त जीवनवृत्त श्रीबैजूदास को सुनाया। उसका सारांश यह है—चम्पारन (थाना ढाका, परगना मेहसी, डाकखाना पताही) रुपौलिया नामक गाँव है वहाँ उनके पिता श्रीनकछेद पाण्डेय रहते थे। वे पाराशर गोत्र के ब्राह्मण थे। एक पुत्र के बाद और सन्तान न होने के कारण वे दुःखी रहते थे। इसी बीच श्रीभिनकराम परमहंस ने उन्हें दर्शन दिया और आशीर्वाद दिया कि उन्हें दो पुत्र होंगे। कालक्रम से सन् १२८८ फसली में, पहले जो पुत्र हुआ, उसका नाम 'साधु' पड़ा। इसके चार वर्ष बाद सन् १२९२ फसली (लगभग १८८४ई०) में जिस पुत्र का जन्म हुआ, उसीका

नाम पीछे चलकर योगेश्वराचार्य हुआ। उनका विवाह बाल्यावस्था में ही हो गया था और तेरह वर्ष की उम्र से ही वे गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने लग गये थे। किन्तु पत्नी छः वर्ष के बाद ही गतायु हो गई। फिर दूसरा विवाह हुआ और गृहस्थ-जीवन भी चला। किन्तु 'उमगेउ हृदय विचार, वृथा जन्म हरिभजन बिनु'। बहुत दिनों तक सगुण और निर्गुण के बीच अनिश्चय की भावना रही; किन्तु अन्ततः निर्गुण-भावना की ही विजय हुई। एक दिन आधी रात को विरक्त होकर उन्होंने ने घर छोड़ने का निश्चय किया। इधर विरक्ति की प्रबल भावना, उधर परित्यक्त माता-पिता और पत्नी आदि के प्रति ममता।

अहि छुछुन्दर की दशा, उगिलत बनै न खात।
योगेश्वर दुख को कहि सकै, रहत बनै न जात॥

अन्तिम विजय विराग की ही हुई। उनके गुरु श्रीअलखानन्द थे। स्वामी योगेश्वराचार्य सन् १३५० फसली में गोलोकवासी हुए।

उन्होंने अपनी कविताओं में 'दादुल धुनियाँ', 'जोलहा कबीर', 'रविदास चमार', 'दरिया दर्जी', 'नामा भंगी', 'सदन कसाई', 'गोरख मच्छिन्द', 'भरथरी', 'नान्हक', 'सुन्दर', 'पलटू', 'मलुक', 'धरणीदास' आदि की श्रद्धापूर्वक चर्चा की है। इनके अतिरिक्त किनाराम, भिनकराम, छत्तरबाबा, बालखण्डीदास, मनसाराम, कर्त्ताराम, धवलराम, अलखानन्द, डिहूराम आदि प्रसिद्ध सरभंग संतो के अतिरिक्त अनेकानेक ऐसे सतो के भी नाम दिये हैं जिनके संबंध में परिचयात्मक सूचनाएँ प्राप्त नहीं हुई हैं—यथा धर्मदास, सनेहीदास, मँगनीदास, माधवदास, रामदास, गिरिधरराम, मन्नूराम, चेचनराम, मंगरूराम, अवधराम, भुआलूराम, बैजलाल, हरिहर, हरनाम, रीता, सुधाकर आदि। शिष्यों में वीरभद्र, मदई, केदार ब्राह्मण, गोरख भूमिहार, सूरज, लालबहादुर, लगट, भगवान, रघुवर, युगल, तवक्कल, मगल, लालदास, विष्णुदास, नथुनी, नत्थू, बौध, रघुनन्दन, अविलाख, बेदामी आदि का उल्लेख है। श्री योगेश्वराचार्य ने अनेक कविताएँ लिखी हैं– यथा स्वरूपगीता, स्वरूप-प्रकाश, विज्ञानसार, भूकम्प-रहस्य, भवानी-संवाद, विष्णु-स्तुति आदि। ये प्रायः हस्तलिखित हैं। इन हस्तलिखित संकलनों में से चुनकर, स्थाली-पुलाकन्याय से, कुछ अंश विषयानुसार यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं।

मेरुदण्ड में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ :—

कुण्डलिनी के चक्रों का वेधन मार्ग इन उक्त नाड़ियों से होकर है। मूलाधार चक्र में एक केंद्र है, जिसमें 72 हजार नाड़ियाँ निकलती हैं। शाखा और प्रशाखाओं को मिलाकर इनकी संख्या तीन लाख पचास हजार मानी जाती हैं। इनमें तीन मुख्य हैं – इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इनको गंगा, जमुना और सरस्वती भी कहते हैं। जाम्भाणी साहित्य में जाम्भोजी ने सुगरा मन्त्र में इसका उल्लेख किया है। साथ–ही–साथ सबदवाणी में भी निम्न सबद में इनका उल्लेख है–

चन्द सूर दोय बैल रचीलो, गंग जमन दोय रासी[11]

ना मेरे माई ना मेरे बाप, अलख निरंजन आप ही आप
गंगा यमुना बहै सरस्वती, कोई कोई नहावे बिरला जती।[12]

जाम्भोजी ने उपरोक्त उक्तियों में इनको संकेतित किया है। सुषुम्ना को सुखमणी और कहीं–कहीं श्रुता भी कहा जाता है। ये तीनों मूलाधार से निकलती हैं। इड़ा मेरुदण्ड के बाएं भाग से, पिंगला उसके दक्षिणी भाग से और सुषुम्ना उसके बीच में से होकर निकलती है। मूलाधार चक्र से निकलकर सभी चक्रों को भेदती हुई यह ऊपर चढ़ती है। इड़ा बाएं नासारंध्र से, पिंगला दाएं नासारंध्र से और सुषुम्ना नासिका के ऊपर ब्रह्मरंध्र में पहुँचती है। ब्रह्मरंध्र भ्रूमध्य में स्थित है। यहाँ इनका संगम होता है, इसलिए इस बिन्दु को त्रिवेणी या त्रिकुटी कहा जाता है। सुषुम्ना बीच की और सबसे ओजस्विनी नाड़ी है। यह मेरुदण्ड के बीचों–बीच चलती हुई ब्रह्मरंध्र में पहुँचती है। यहाँ पहुँचने पर इड़ा और पिंगला प्रायः इसके मुख को अवरुद्ध कर इसकी क्रिया को रोके रहती है। नीचे मूलाधार के मध्य में कुण्डलिनी मूलाधार स्थित नाड़ियों के केन्द्र को पूर्णतः ढककर सोई रहती है और सुषुम्ना के निचले छिद्र में अपनी पूंछ प्रविष्ट किए रहती है। इस प्रकार सुषुम्ना ऊपर और नीचे दोनों छोरों पर अवरुद्ध रहती है। यौगिक क्रियाओं की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सुषुम्ना में शुद्ध प्राण वायु का संचार अनवरत रहे। यह आसन, प्राणायाम और मुद्राओं द्वारा सम्पन्न

होता है। इन क्रियाओं से योगी के कुण्डलिनी को वश में करके सुषुम्ना का मार्ग उन्मुक्त कराना तथा कुण्डलिनी को ऊर्ध्ववृत्ति कर चक्रों को भेदते हुए उसको सहस्र दल कमल में लय या निमग्न करना चाहिए, आसन, प्राणायाम और मुद्राओं का महत्त्व इस कारण से है। योग सिद्धि के लिए आसन अनिवार्य है। हठ योग के ग्रन्थों में 84 आसनों का वर्णन मिलता है। किन्तु, उनमें सिद्धासन और पदमासन दो मुख्य हैं। इनमें भी सिद्धासन को श्रेष्ठ माना गया है। जिसका उल्लेख श्री जाम्भोजी ने किया है –

इंगला, पिंगला तथा सुषुम्ना सभी शरीर के नष्ट होने पर नष्ट हो जाती है फिर जब तुम्हारी समाधि समाप्त होती है तब तुम धरती पर ही उतर आते हो। इस प्रकार हम देखत है कि कबीरदास जी गंगा, यमुना, सरस्वती को इंगला, पिंगला, सुषुम्ना के नाम से पुकारते है।

भीखा साहब भी गंगा, यमुना, सरस्वती के स्थान पर इंगला, पिंगला, सुखमन का प्रयोग करते हैं। भीखा साहब की बानी के शब्द 11 से उनकी पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं[74]–

गुरु परताप साध की संगति, जोग जुक्ति उरभरै।
इंगला, पिंगला, सुखमन सोधै गयान अगिन उदगरै।।
चॉद–सूरज एकागर करिकै, उलटि उरध अनुसरै।
नाद बिंद को जोहु गगन में मन माया तब मरे।।

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि भीखा साहब कबीर की इंगला, पिंगला, सुखमन का प्रयोग गंगा, यमुना, सरस्वती के लिए करते हैं। इसी प्रकार वे एक साखी में कहते है कि इंगला, पिंगला एक साथ होकर सुखमन से मिलती हैं[75]–

अर्ध उर्ध के बीच में कमर वस्त ठहराय।
इंगला, पिंगला एक है सुखमन के घर जाय।।

इस प्रकार कबीरदास तथा भीखा साहब दोनों संत गंगा, यमुना, सरस्वती के स्थान पर इंगला, पिंगला, सुखमन का प्रयोग करते है। वास्तव में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना जो शास्त्रीय शब्दावली तथा सुखमन शब्द का प्रयोग करते है। इस प्रकार कबीरदास तथा भीखा साहब गंगा, यमुना, सरस्वती अथवा इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना के लिए इंगला, पिंगला, सुखमन शब्दों का प्रयोग करते है जिनके उदाहरण पीछे प्रस्तुत किये गये हैं। दोनों सन्तों की मान्यताओं में इस विषय में कोई भेद नहीं है। हाँ कबीर इस पर व्यापक उल्लेख मात्र करते हैं। ऊपर

18:00
← संतमत-भजनावली-भाग-1
48/57

प्रभहू से गुरु अधिक जगत विख्यात अहैं।
बिनु गुरु प्रभु नहिं मिलैं यदपि घट माँहि रहैं ॥३॥
उर माँहीं प्रभु गुप्त अन्धेरा छाइ रहै।
गुरु गुर करत प्रकाश प्रभू को प्रत्यक्ष लहै ॥४॥
हरदम प्रभु रहैं संग कबहुँ भव दुख न टरै।
भव दुख गुरु दें टारि सकल जय जयति करै ॥५॥
तन मन धन को अरपि गुरू-पद सेव करो।
'मेँहीँ' आज्ञा पालि दुस्तर भव सुख से तरो ॥६॥

(२८०)

गुरु-हरि-चरण में प्रीति हो, युग-काल क्या करे।
कछुवी की दृष्टि दृष्टि हो, जंजाल क्या करे ॥१॥
जग-नाश का विश्वास हो, फिर आस क्या करे।
दृढ़ भजन-धन ही खास हो, फिर त्रास क्या करे ॥२॥
वैराग-युत अभ्यास हो, निराश क्या करे।
सत्संग-गढ़ में वास हो, भव-पाश क्या करे ॥३॥
त्याग पंच पाप हो, फिर पाप क्या करे।
सत् वरत में दृढ़ आप हो, कोइ शाप क्या करे ॥४॥
पूरे गुरू का संग हो, अनंग क्या करे।
'मेँहीँ' जो अनुभव ज्ञान हो, अनुमान क्या करे ॥५॥

(२८१)

साँझ भये गुरु सुमिरो भाई, सुरत अधर ठहराई।
गुरु हो सुरत अधर ठहराई ॥१॥
सुषमन सुरति लगाइ के सुमिरो, मुखतें रहहु चुपाई।
बाहर के पट बन्द करो हो, अन्तर पट खोलो भाई ॥२॥
सूर चन्द घर एके लावो, सन्मुख दृष्टि जमाई।
ब्रह्म ज्योति को करो उजेरो, अन्धकार मिटि जाई ॥३॥
सूक्ष्म सुरत सुषमन होइ शब्द में, दृढ़ से धरो ठहराई।
सारशब्द परखो विधि एही, भव-बन्धन जरि जाई ॥४॥
बुद्धि परे चिन्तन से न्यारा, अगम अनाम कहाई।
रह 'मेँहीँ' गुरु सेवा लीना, तब ही होइ रसाई ॥५॥

(२८२)

यहि विधि जैबै भव पार, मोर गुरु भेद दिये ॥ टेक ॥
दृष्टि युगल कर लेबै सुखमनियाँ हो, देखबै अजब रंग रूप ॥१॥

[१०]

राम राइ मांगू भगति तुम्हारी । सो तो त्रिविध ताप सूं न्यारी ।।टेक।।
रिधि न मांगू सिधि न मांगू, मुक्ति न मांगूं देवा ।
आदि अंत तुम सूं मिलि चलौं यौ आरंभ या सेवा ।। १ ।।
नृमल ग्यांन ध्यांन धुनि नृमल प्रेम प्रीति प्रकासा ।
आसण अचल तहां मन निहचल तुम ठाकुर मैं दासा ।। २ ।।
संजम सील सांच सति सुमिरण पति सूं प्रीति घनेरी ।
जन हरीदास कूं आस न दूजी आस अनाहद तेरी ।। ३ ।।

[११]

मन रे उलटि सहज घर आया । तब लय लागि अकथा बौराया ।।टेका।
नाभ कंवल में पवन निरोधौं, तो सतगुरका चेला ।
मन मांहि पवन अगम घर लौं करूं अगम सूं मेला ।। १ ।।
उलटा पेलि गगन पैं पैसौं, सुरति सहज घर धारूं ।
परमजोति सौं झिलिमिलि पेलौं, ऐसा अरथ विचारूं ।। २ ।।
जन हरीदास त्रिरमै निधि परसूं, परम सिव में न्हाऊं ।
जठर अगिन में प्राण न होमूं आवा गवण चुकाऊं ।। ३ ।।

[१२]

सती कुबधि काल तैं डरीए ।
भवसागर तिरबे कै तांई देषि देषि पग धरीए ।। टेक ।।
सीया पकड़ द्वार जम ठाढ़ा, जात पड़े जब मारे ।
हरिका जन कोई सक न मानैं हरि हथियार संभारे ।। १ ।।
सुणि सूरज सुत सबद हमारा, ऐसी कबे न होई ।
गोबिन्दका जन जमकै द्वारे, जात न देष्या कोई ।। २ ।।
मैं मेरा डर संगि करि लीया, पासि जहां तहां मांई ।
साचा ले हरिचरणां राष्या, संक्या झूठको षाई ।। ३ ।।
निसि बासुर निरभै गुण गावै, कहि कहि राम पुकारे ।
जन हरिदास प्रगट प्रमेस्वर ताका काज सवारें ।। ४ ।।

[२५]

सषी हो गगन गरजि घन आए ।
सुणि सुणि सबद कवल निज विगसत अतरि अलष लषाए ।।टेक।।
सेझ सुहाग भाग बड ग्वालणि, ब्रह्म छोता सुष पाए ।
मन मैमत रामरस मातो, धँसि सुष सागर न्हाए ।। १ ।।
मोर मगन चात्रिग सुष चितवत, वीज चमकि झडै लाए ।
अनहद सबद गोपि घुनि गरजत, पीव मिलि प्रेम बढाए ।। २ ।।
मथुरा मडल होत अति आनद, वेलि वधत बन छाए ।
जन हरीदास जल पूरि परमगति, परम जोग पति पाए ।। ३ ।।

[२६]

अवधू गुर विन ग्यान न लाभै ।
कहा भयो जे दामणि दरसो, जल बिन ओछे आभै ।। टेक ।।
जब लग निज तत निजरि न दरसै, तब लग प्यास न भाजै ।
कहा भयो जे सूकै भाडै षाली बाई गाजै ।। १ ।।
नौघण घटा गरजि जब बरसै, तब हाली सुष पावै ।
आरभ करै साषि व्है सान्ही, कसिकसि करज चुकावै ।। २ ।।
जन हरीदास दोष तज दुरमष, राम रसाइण पीवै ।
बूठै मेह यह मारुति पलटै, परचै लागा जीवै ।। ३ ।।

[२७]

बेली लो तनबेली लौ, काटी बेलि बधैली लौ ।टेक।।
चद सूर दोउ सम करि राष्या, सास सबद सग लाया लो ।
गगा मूल तहाँ रस उलटै, बेलित कौ रस पाया लो ।। १ ।।
निज निरसिंघ आगह अभिअतरि, बरण बिबरजत वाणी लौ ।
इला पिंगला सुषमनि मेला, ता सुष बेलि समानी लो ।। २ ।।
तरवर अगम अणी तहाँ लागी, ब्रलि कीया विस्तारा लो ।
काटी वेलि अमर फल लागा, विन काटी फल षारा लो ।। ३ ।।
वास विकट कोई पान न पडे मृग वसै ता माही लो ।
पाइक पाच पहरवा राष्या उदय अस्त दोइ नाही लो ।। ४ ।।
गगन मडल मैं बेलि विलूधी, मूल मता मैं आया लो ।
जन हरीदास आतमा कै अतरि, सतगुर साच बताया लो ।। ५ ।।

19:07
006 chapter 04

अर्थात जिस वस्तु से तुम्हें ज्या[illegible] है, उसकों क्यों संभाल कर रखतें हों ? क्या वजह हैं किं इनसं तुम्हारा मोह नहीं हटता । इसकों तो खर्च करने में ही तुम्हारा भला हैं । इसकों इकट्टा करने में तो तुम्हारा ही नुकसान हैं । एक बार इसकों खर्च कर के देखों तुम धन्य हो जाओगें ।

- **ब्रह्मंचर्य –**

समस्त इन्द्रियों पर काबू कर के वीतराग हो जाना और ब्रह्मं में समा जाना ही ब्रह्मंचर्य हैं ।

गुरू जम्भेश्वर ने अजर तत्वों को नष्ट कर ब्रह्मंचर्य के बारें में बताया किं –

अवधू अजरा जार ले, अमरा राख ले, राखले बिन्द की धारणा।

पताल का पाणी अकाशकूं चढायले, भेटले गुरू का दरसणा।34

अर्थात हें प्राणी ! ह्रदय के भीतर से काम और वासना जैसें अजर तत्वों का नाश कर दें और शील, संतोष, संयम, धैर्य जैसें तत्वों का आत्मसात कर ब्रह्मंचर्य की रक्षा कर । वीर्य तो शक्ति का परिचायक हैं । ब्रह्मंचर्य का पालन मात्र से हीं परम तत्व की प्राप्ति हो जायेंगी अर्थात परमात्मा से साक्षात्कार हो जायेंगा ।

4.5.2 नियम–

अष्टांग योग के तहत नियम के अंतर्गत शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान का समावेश किया गया हैं ।

4.5.3 शौच –

मन और शरीर कों पवित्र रखना और पवित्रतापूर्वक धर्माचरण करना ही शौच हैं ।

गुरू जम्भेश्वर ने संयम के द्वारा आंतरिक और स्नानांदि के द्वारा बाहरी पवित्रता के बारें में बताया हैं ।

तन मन धोइये संजम होइये,हरख न खोइये।
शील स्नाने संजमें चालो, पाणी देह पखाली।35

अर्थात गुरू जम्भेश्वर कहतें हैं किं ह्रदय में संयम धारण कर के काया को पवित्र रखनी चाहिए और बाहर से स्नान कर के शरीर कों शुद्ध रखना चाहिए ।

4.5.4 संतोष –

मन की वह अवस्था जिसमें मानव वर्तमान स्थिति में ही पूर्ण सुख का अनुभव करता हैं । जंभवाणी में संतोष के बारें में कहा हैं –

सदा संतोषी सत उपकरणा, म्हे तजिया मान भी मानूं।36

अर्थात जिसनें सत्य का आत्मसात कर लिया है, अपनें अहं और मान कों अपनें से परें कर दिया हैं । जो सदा संतोषी है ,उस प्राणी में मैं सदा निवास करता हूँ।

4.5.5 तप–

किसी उद्देश्य की प्राप्ति कें लिए उठाया जानें वाला शारीरिक कष्ट ही तप कहलाता है । गुरू जम्भेश्वर ने सबदवाणी में तप की बारे मे कहा कि –

जा दिन तेरे होम न जाप न तप न किरिया ।
जान के भागी कपिला गाई।37

जो मूर्त सूं मोमिन देव ज्याव, तासूं सालिग पोजो भाव
उपरिसिष प्रतिमा माहीं । जो मारे सो तारै नाहीं
ष तारण हारा तीरथ कहाव तो सकल आपकूं काहे लगावै ।
सबही उससे भरम मझारा सर्मोस न सुमिरै तारन हारा ।
पाहण डुबै पाणी सूकै भाव बिना नर यूंही चूकै ।
रीसन मामी कथा सुणि सांची मुक्ति न होसी बात काची ।
साचा सबद हिरदे धरि धपी । जो रमता राम सकल घट व्यापी ।
जन सेवादास समझो अविनासी । ज्यूं कटै सकल काल जमफासी ।

[९]

ऐसैं साध समाधि में पीव इम्रत धारा ।
सुनि सिपर में रमि रह्या जहां जोति अपारा ॥ टेक ॥
सुरति निरति लागी रहै पल तार न तोड़ ।
इला पिंगुला साधिकै सुषमणि सूं जोड़ ॥
तीन्यूं तजि चौथे जगै सोई जन सूरा ।
पांचूं बस करि मन सकै बाजै अनहद तूरा ॥
अगमपीया सायमका अनहद रस पीवै ।
आठ पहर घूमत रहै, स माया जीवै ॥
अगम वस्त अधरि बसै, तहां रह्या समाई ।
जन सेवादास आनंद भया, सुष कह्यां न जाई ॥

[१०]

बरजत हारयो नाम जी समझ नहीं अयाना ।
लिये बिकारा फिरि घरै मन मस्त दिवाना ॥ टेक ॥
मन कुबटही अपसरै मूरिष सठ चोरा ।
राख्यो गेल न चलै तूं करत निहोरा ॥ १ ॥
गति जोम ममताइयो है द पहो प्यांना ।
मुरडै सम न ऊरज बिषहां कूं ध्याना ॥ २ ॥
जैसा बैरी मन है तैसा नहीं कोई ।
मीणा पटकै देषता जे गाफिल होई ॥ ३ ॥

अगम रसनांहि रिदै रटै जीभ नासि स्थान ।
रोम रोम में रमि रह्या, दूसर नाहीं आन ॥ १३ ॥
जैसे कूप उजाड़ि मे, बिन जलि कहुयो किस काम ।
यूं नर देही किस कामकी जे समझि न भाग राम ॥ १४ ॥
नाभि कंवल मन सुरति सजि, उलटि ह्वां लाइ ।
इला पिंगुला सुषमना, त्रिबेणी तटि न्हाइ ॥ १५ ॥
मन ही सूं मन फिरि मिल्या मन अगम तहां चलि जाइ ।
जिम घन चमक बीजली तहां रहै मठ छाइ ॥ १६ ॥
सुरति समाणीं राम में, ज्यूं नीर समानो लोंन ।
अनसेवा अब हठ क्या करै, समझावै कहि कौंण ॥ १७ ॥
पीव पुकारै बिरहनी परम सनेही राइ ।
नैना देखूं तुम कूं तब ही नैन सिराइ ॥ १८ ॥
बिरहणि ऊभी दरद सूं, अंतरि करै पुकार ।
करणो सुणि करुणा मर्म हिलिमिलि दे दीदार ॥ १९ ॥
जब लगि पीव प्रगटै नहीं तब लगि दुखी सरीर ।
अनसेवा बिरह बियोगणी को जाणै या पीर ॥ २० ॥
बिरहणि झूरै रैणि दिन, सासैं मन ही माहिं ।
या करक कलेजे मांहिली तुम बिन निकसै नाहिं ॥ २१ ॥
नांव निरंजन तुम बिना, मेरैं और न आस ।
स्वाति बूंद चात्रिग पीवै, नां तर मरै पियास ॥ २२ ॥
ग्यांन बिरह जब प्रगटी, लाय उठी घर मांहि ।
जिसकै लागी सो लखै, दूजा जाणै नांहि ॥ २३ ॥
जिहि लागी सो जागि है, सुप सूता संसार ।
रैणि न आवै नींदड़ी, प्रीति लगी करतार ॥ २४ ॥
सतगुर मार्‌या मूठि भरि साधि ग्यानकी भालि ।
पांचा थिर चिति पाकड़ी, अनसेवा उर्के न चालि ॥ २५ ॥
अनसेवा उत जाही गए तहां बारा मास बसंत ।
हिलि मिलि एकै संगि रमैं, मूमत रस पीवत ॥ २६ ॥

दरि बजते बहु विधि बाजा, मानौ घोरि रहे घन गाजा ।
सुन्यौ न परता कान, ते जाइ मडे मैदान ॥ ४ ॥
समि विमल वमन सुभ वामा, रस राग रग विलामा ।
होते भोपति अधिकारी, ते परतछि भए भिपारी ॥ ५ ॥
सब कुल अभिमान निवारे, भजि गोविंद कारिज सारे ।
जाइ मिले परम सुष माही, तुलसो बहुर्यो न उगाही ॥ ६ ॥

[६९]

देवा तुम दरसनके राते हो, ते मनिवारे माते हो ॥ टेक ॥
विसरे बाजी व्यौहारा कछु रहो न तन सुध सारा ।
रसना रुचि अमृत पीवैं, पीवैं निनि जुगि-जुगि जीवैं ॥ १ ॥
उलटि कीया विश्राम, जहाँ कोमल कवल निजधाम ।
तहाँ उठै अनहद नाद, मुनि विसरे वकवाद ॥ २ ॥
इला पिंगुला आनी सुपननि मधि फेरि समानी ।
ब्रह्म रध्र कीया बासा, जहाँ देष्या अपड उजासा ॥ ३ ॥
जहाँ जित कित जगमग जोती, वहाँ भरम भ्रान्ति नहिं होती ।
जन जाइ समाने तहाँ ही, तुरसी अतर कछु नाही ॥ ४ ॥

[७०]

देवा आरति भगति तुम्हारी हो, सो हम लागत प्यारी हो ॥ टेक ॥
ज्यूं सिसु सोवत भई बहु वारा, आरति बिन कोऊ बूझै न सारा ।
जब ही जागि उठै बिललाई, तबही उछग लइ पिनमाई ॥ १ ॥
आरति भगति जब उपजै आइ, तब सूना जीय जागै जाइ ।
रोम रोम ररकार धुनि होइ । सदगति में ससै नहिं काइ ॥ २ ॥
जहाँ धरनि नहिं पवन अकास, ते जन तुया न गुन आभास ।
चद सूर हूँ सकै न जाइ । तहाँ आरति सूं सुरति समाइ ॥ ३ ॥
आरति सहित भगति जो करै, प्रभु को नावन पल बीसरै ।
तुरसी सुप में रहै समाइ, बहुर न इत जुगि जनमै आइ ॥ ४ ॥

[१९]

सखी हो भाग हमारे पूरा ।
पेखूँ सर सब सत पाँच संगि बाजै अनहद तूरा ।। टेक ।
इला पिंगुला सधि करि राखूं, मधि सुषमना आनी ।
पांच सखी मिलि पवन लागी जो घर भरे न पानी ।।
घर घर आनंद होत परमसुख, सुनि मंडल के छाजे ।
परमातम सूं आतममेला बेणि मधुर धुनि बाजै ।
मन निहचल निरमै सुख लागा परमसुख मन पाया ।
जन सेवादास आनंद सुख बिलसै सतगुर अलख लखाया ।।

[२]

आरती तेरी अलख अभेवा । निरभै नाथ निरंजन देवा ।। टेक ।।
वार न पार अगम गम नाहीं रमता राम रमै सब मांही ।
तोल न मोल हलका नहीं भारी । अनत भवन में जोति तुम्हारी ।
सबके मांहि सकल तै न्यारा । ज्यूं रवि गगन करत उजियारा ।
अलख अघट अबिनासी राया । रूप न रेख काल नहीं काया ।
अनहद सबद सहज झणकारा । नूर तेज दीदार तुम्हारा ।
ग्यानका दीप मिट्या अंधियारा । झिलमिलि जोति सकल उजियारा ।
अलख निरंजन त्रिभुवन राया । जन सेवादास सरणि तेरी आया ।

[१६]

ऐसा जाप जपै मन भाई, जुरा न व्यापै काल न पाई ।
गगन गुफामें आसण करो, तनमन पवना दिढ करि घरो ।। टेक ।।

अरघ उरघ मधि चौक पुराइ । मास उसासे अजपा गाइ ।

त्रिवेनी तटि घारो घ्यान । अह् निस पोजो पद नृवाण ।
जनसेवादास या सतगुर सीष । रामनाम तजि भरै न वीप ।।

[१७]

सतो वो सुष सत्र तै न्यागरे । कोई जाणै सत पीयागा रे ।। टेक ।।
जहाँ झिलिमिलि झिलिमिलि नूरारे । जहाँ वाजै अनहद तूरारे ।

जहाँ बिन करताल बजावै रे । तहाँ बिन रसना गुण गावैरे ।।
जहाँ गगन महल के छाजै रे । तहाँ मुघर मुघर घुनि बाजैरे ।।

त्रिवेणी तटि न्हावै रे । सो सुष ही मे सुष पावै रे ।
जन सेवा को सुष पूरा रे । कोई देषै साधू सूरा रे ।।

[१८]

कबीर जहाँ तै आइया हो अहो जहाँ जाति बरण कुल नाहि ।
अवगति सूँ चलि आइया हो, मरम न जाणै कोइ ।

भगति करन कूँ प्रगटे, राम कबीर नही दोइ ।
जूनी जन्म नही है जाकै, गरभ कसोटी नाहि ।
निराकार अविनासी देवा, प्रगट भए कलि माहि ।

जाकै हाड न मास तुचा नही नाडी, तेज पुज प्रकास ।
जुरा काल जाकै नही निरभै, जन गावत सेवादास ।।

भरम मिटावै जीवका दै अजपा जापा।
त्रिविधि ताप गुण तीनकी कोई मर्म न तापा॥

उर आनंद उपजाइ कै, दुरमति सब धोवै।
कल्हे कलपना जीवकी, सब ही जन पोवै॥

मुक्ति भक्ति सर्स नहीं तब ऐसी बनि आवै।
जनसेवा साधूरूप ह्वै, निरभै पद पावै॥

[१४]

हरिरस गाते सत जनां।
प्रकटम लगा रहै निसि बासुर नांव न बिसरै एक छिनां॥ टे

पी मतिवाला मगन भया मन और न भावै राम बिना।
निरभै भया निरंतरि मेला है सुमिरन माहीं सुष घनां॥ १

तनमन फेरि प्रेमरस पीवै तब जन्म मरण दुष दूरि भजे।
सुमिरै एक भरम तजि दूजा, तेई जमके सोक नसे॥ २

आनंद भरत रहै, उर अंतरि आनंद दूजा मिट गरे।
जनसेवादास मनि सुष बिलसै, हरिभजि अपणो काज करै॥ ३।

[१५]

अवधू नांव निरंतर लीजै।
मन पवना सभि राषि अंतरि में, यहु आरंभ निति कीजै॥ टेक

मूल बंध दे कवि बाई पट चक्रमैं ल्यावौ।
उनिमनि रहौ निरंतरि मेला, अनहद बेन बजावौ॥ १

छसे सहस इकीसकी मासा सूं मन साधौ।
अनहद उपजै आप सूं उर अंतर बाधौ॥ २।

इड़ा पिंगला सुषमनि कै घरि गतम गतम करि ल्यावौ।
निरभै पका निरंजन परसौ बहोरि न पुनी आवै॥ ३॥

चित चोकीसे चरणा राषी पांचू उलटि समावौ।
जनसेवादास सुषके सिंध पैसो ज्यूं बहोरि निकसि नहीं आवै॥४॥

काया माँहि जाँनै सोई, जो बोलै सो आपै होई।
जोति माँहि जे मन थिर करै, कहै कबीर सो प्राणी तिरै ॥३८८॥

एक अचभा ऐसा भया,
करणी थैं कारण मिटि गया ॥ टेक ॥
करणी किया करम का नास, पावक माँहि पुहुप प्रकास ॥
पुहुप माँहि पावक प्रजरै, पाप पुन दोऊ भ्रम टरै ॥
प्रगटी बास बासना धोइ, कुल प्रगटयौ कुल घाल्यौ खोइ ॥
उपजी च्यत च्यत मिटि गई, भौ भ्रम भागा ऐसे भई ॥
उलटी गंग मेर कूँ चली, धरती उलटि अकासहि मिली ॥
दास कबीर तत ऐसा कहै, ससिहर उलटि राह कौ गहै ॥३२६॥

है हजूरि क्या दूर बतावै,
दुंदर बाँधे सुंदर पावै ॥ टेक ॥
सो मुलनाँ जो मनसूँ लरै, अह निसि काल चक्र सूँ भिरै ॥
काल चक्र का मरदै माँन, ताँ मुलनाँ कूँ सदा सलाँम ॥
काजी सो जो काया बिचारै, अहनिसि ब्रह्म अगनि प्रजारै ॥
सुप्पनैं बिंद न देई झरनाँ, ता काजी कूँ जुरा न मरणाँ ॥
सो सुलितान जु द्वै सुर ताँनै, बाहरि जाता भीतरि आँनै ॥
गगन मंडल मैं लसकर करै, सो सुलिताँन छत्र सिरि धरै ॥
जोगी गोरख गोरख करै, हिंदू राँम नाम उच्चरै ॥
मुसलमाँन कहै एक खुदाइ, कबीरा कौ स्वाँमी घटि घटि रह्यौ
समाइ ॥३३०॥

आऊँगा न जाऊँगा, न मरूँगा न जीऊँगा।
गुरु के सबद मैं रमि रमि रहूँगा ॥ टेक ॥
आप कटोरा आपै थारी, आपै पुरिखा आपै नारी ॥
आप सदाफल आपै नींबू, आपै मुसलमाँन आपै हिंदू ॥
आपै मछ कछ आपै जाल, आपै झींवर आपै काल।
कहै कबीर हम नाँही रे, नाँही, नाँ हम जीवत न मुवले माँही ॥३३१॥

हम सब माँहि सकल हम माँही,
हम थैं और दूसरा नाँही ॥ टेक ॥
तीनि लोक मैं हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा ॥
खट दरसन कहियत हम भेखा, हमही अतीत रूप नहीं रेखा ॥
हमही आप कबीर कहावा, हमही अपनाँ आप लखावा ॥३३२॥

ऐसा ध्यान धरौ नरहरी
सबस अनाहद च्यत करी ॥ टेक ॥
पहली खोजौ पंचे बाइ, बाइ ब्यद ले गगन समाइ ॥
गगन जोति तहाँ त्रिकुटी संधि, रबि ससि पवनाँ मेलौ बंधि ॥
मन थिर होइ त कवल प्रकासै, कवला माँहि निरंजन बासै ॥
सतगुरु सपट खोलि दिखावै, निगुरा होइ तो कहाँ बतावै ॥
सहज लछिन ले तजो उपाधि, आसण दिढ निद्रा पुनि साधि ॥
पुहुप पत्र जहाँ हीरा मणी, कहै कबीर तहाँ त्रिभुवन धणी ॥३२५॥
इहि विधि सेवियै श्री नरहरी,
मन की दुविध्या मन परहरी ॥ टेक ॥
जहाँ नही तहाँ कछू जाँणि, जहाँ नही तहाँ लेहु पछाँणि ॥
नाँही देखि न जइये भागि, जहाँ नही तहाँ रहिये लागि ॥
मन मंजन करि दसवै द्वारि, गंगा जमुना संधि बिचारि ॥

नादहि ब्यंद कि ब्यंदहि नाद, नादहि ब्यंद मिलै गोब्यंद ॥
देवी न देवा पूजा नही जाप, भाइ न बंध माइ नही बाप ॥
गुणातीत जस निरगुन आप, भ्रम जेवड़ी जन कीयाँ साप ॥
तन नाँही कब जब मन नाँहि, मन परतीति ब्रह्म मन माँहि ॥
परहरि बकुला ग्रहि गुन डार, निरखि देखि निधि वार न पार ॥
कहै कबीर गुर परम गियाँन, सुंनि मंडल मैं धरौ धियाँन ॥
प्यंड परे जीव जैहैं जहाँ, जीवत ही ले राखौ तहाँ ॥३२६॥
अलह अलख निरंजन देव,
किहि विधि करौं तुम्हारी सेव ॥ टेक ॥
बिश्न सोई जाको बिस्तार, सोई क्रुस्न जिनि कीयाँ संसार ।
गोब्यंद ते ब्रह्मंडहि गहै, सोई राम जे जुगि जुगि रहै ॥
अलह सोई जिनि उमति उपाई, दस दर खोलै सोई खुदाई ।
लख चौरासी रब परवरै, सोई करीम जे एती करै ॥
गोरख सोई ग्याँन गमि गहै, महादेव सोई मन की लहै ।
सिध सोई जो साधै इती, नाथ सोई जो त्रिभूवन जती ॥
सिध साधू पैकंबर हूवा, जपै सु एक भेप है जूवा ।
अपरंपार का नाँउ अनंत, कहै कबीर सोई भगवंत ॥३२७॥
तहाँ जौ राँम नाँम ल्यौ लागै,
तौ जुरा मरण छूटै भ्रम भागै ॥ टेक ॥
अगम निगम गढ़ रचि ले अवास, तहुवाँ जोति करै परकास ।
चमकै बिजुरी तार अनंत, तहाँ प्रभु बैठे कवलाकंत ॥
अखंड मंडिल मंडित मंड, त्रि स्नाँन करै त्रीखंड ।
अगम अगोचर अभिअंतरा, ताको पार न पावै धरणीधरा ॥
अरध उरध बिचि लाइ ले अकास, तहूँवा जोति करै परकास ।
टारयाँ टरै न आवै जाइ, सहज सुंनि मैं रह्यौ समाइ ॥
अबरन बरन स्याँम नही पीत, होहू जाइ न गावै गीत ।
अनहद सबद उठै झणकार, तहाँ प्रभू बैठे समरथ सार ॥
कदली पुहुप दीप परकास, रिदा पंकज मै लिया निवास ।
द्वादस दल अभिअंतरि स्यंत, तहाँ प्रभु पाइसि करिलै च्यंत ॥
अमलिन मलिन घाम नही छाँहाँ, दिवस न राति नही है ताहाँ ।
तहाँ न ऊगै सूर न चंद, आदि निरंजन करै अनंद ॥
ब्रह्मंडे सो प्यंडे जाँन, माँनसरोवर करि असनाँन ।
सोहं हंसा ताकौ जाप, ताहि न लिपै पुन्य न पाप ॥

ऐसे योगी मुद्रा करे ॥ कुंडली को ... हरे ॥ ३६१ ॥

अ॰यो॰ कुंडली छोडि सुधी हो जावे ॥ तव योगी मार्ग को पावे ॥

॥११५॥ सकल पृथ्वी शेष अधारा ॥ ऐसे योगमे कुंडालि सारा ३६२ ॥

ताते चालनि मुद्रा गाउं ॥ गुरुप्रताप सें भेद वताऊं ॥

आधी पहर पाछली राती ॥ जागे सर्पनिहोय फलाती ३६३॥

वज्रासन कर पवन चलावे ॥ भस्त्रा कुंभक वहुरि कहावे ॥

रेचक पूरक करे चित लाई ॥ चार घडी तक एक सुभाई ३६४

ऐसे करत थकेलो जाने ॥ तव सूर्य पुर उदर में आने ॥

कुंभक कर सूधा हो जावे ॥ आसन मुद्रा नेहि छुडावे ३६५

चन्दर के घर रेचक करे ॥ सूर्यके घर पूरक भरे [३६६]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्य नाडीमे पवन चलावे ॥ शक्ति उलटि शिव मन्द्रमें आवे ॥

अ॰यो॰ दो सुर सम सुषुमणा जाने ॥ तबहि योगि या मुद्रा ठाने ॥

॥११६॥ कुण्डलनी में पवन समावे ॥ शुद्ध होय मृत्तको पावे ॥ ३६७

कुण्डलीनी को क्षोभ पजावे ॥ नाभी छोड गगन में आवे ॥

योगी जन का पूरण काम ॥ शक्ती चालनि याको नाम ३६८

दोहा ॥

गुरुते मुद्रा पायके कह प्रकाशे नाहि ॥
छे मास लग साधिये जरा मृत्यु मिट जाहि ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शक्तिचालन

कन्दोर्ध्वे कुण्डली शक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।
ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति।। 46।।

हमारे शरीर में कन्द के ऊपर अर्थात् मणिपूर चक्र में आठ कुण्डली मारे कुण्डलिनी शक्ति अपने मुख से ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचने के रास्ते को अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी के मुख को रोक कर सोयी हुई है।

येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारमनामयम्।
मुखेनाच्छाद्य तद्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।। 47।।

प्रबुद्धा बुद्धियोगेन मनसा मरुता सह।
सूचीव गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया।। 48।।

सुषुम्ना के जिस मार्ग से जन्म-मृत्यु के दुःख को नष्ट करने वाले ब्रह्मद्वार या ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचा जाता है उस द्वार को रोक कर कुण्डलिनी शक्ति हमारे शरीर में सोई पड़ी है। इस कुण्डलिनी शक्ति को मन एकाग्र करके और सावधानी के साथ प्राणायाम के अभ्यास से प्राण को वश में करके जगाया जाता है। योगाभ्यास द्वारा प्राण और मन को वश में कर लेने पर कुण्डलिनी शक्ति, सुषुम्ना नाड़ी के रास्ते ब्रह्मरन्ध्र तक उसी तरह चली जाती है जैसे सूई में पिरोया हुआ तागा कपड़े में।

प्रसुप्तभुजगाकारा पद्मतन्तुनिभा शुभ
प्रबुद्धा वह्नियोगेन व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया

6378-6379/6589

कुण्डलिनी सोये हुए सांप जैसी और कमलनाल के तन्तु जैसी सूक्ष्म है। वह कल्याणकारिणी है। प्राणायाम के द्वारा अपानवायु की धौंकनी से प्रज्वलित

पुहुंप पुराने भये सूक तब भवरहि लागी अधिक भूख ॥
उड्यो न जाइ बल गयो है छूटि, तब भवरी रूंना सीस कूटि ॥
दह दिसि जोवै मधुप राइ, तब भवरी ले चली सिर चढाइ ॥
कहै कबीर मन कौ सुभाव, रॉम भगति बिन जम को डाव ॥ ८८ ॥
आवध रॉम सबै करम करिहूं,
सहज समाधि न जम थैं डरिहूं ॥ टेक ॥
कुंभरा ह्वै करि बासन धरिहूं, धोबी ह्वै मल धोऊं ।
चमरा ह्वै करि बासन रंगो, अघोरी जाति पाँति कुल खोऊं ॥
तेली ह्वै तन कोल्हू करिहौ, पाप पुंनि दोऊ पेरूं ।
पंच बैल जब सूध चलाऊं, राम जेवरिया जोरूं ॥
क्षत्री ह्वै करि खड़ग संभालूं, जोग जुगति दोउ साधूं ॥
नउवा ह्वै करि मन कूं मूंडूं, बाढी ह्वै कर्म बाढूं ॥
अवधू ह्वै करि यहु तन धूतौ, बधिक ह्वै मन मारूं ॥
बनिजारा ह्वै तन कूं बनिजूं, जूवारी ह्वै जम हारूं ॥
तन करि नवका मन करि खेवट, रसना करउं बाडारूं ॥
कहि कबीर भवसागर तरिहूं आप तिरू बप तारू ॥ ३८९ ॥

(राग माली गौड़ी)

पंडिता मन रंजिता, भगति हेत ल्यौ लाइ लाइ रे ॥
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर, और कारण जाइ रे ॥ टेक ॥
दॉम छै पणि कॉम नाही, ग्यॉन छै पणि धंध रे ॥
श्रवण छै पणि सुरत नॉही, नैन छै पणि अंध रे ॥
जाके नाभि पदम सूं उदित ब्रह्मा, चरन गंग तरंग रे ॥
कहै कबीर हरि भगति बाछू जगत गुर गोब्यंद रे ॥३९०॥
विष्णु ध्यॉन सनान करि रे, बाहरि अंग न धोई रे ॥
साच बिन सीझसि नही, कॉई ग्यॉन दृष्टै जोइ रे ॥
जंबाल मॉहै जीव राखै, सुधि नही सरीर रे ।
अभिअंतरि भेद नही, कॉई बाहरि न्हावै नीर रे ॥
निहकर्म नदी ग्यॉन जल, सुंनि मंडल मॉहि रे ।
औभूत जोगी आतमॉं, कॉई पेडै संजमि न्हाहि रे ॥
इला प्यंगुला सुषमनॉं, पछिम गंगा बालि रे ॥
कहै कबीर कुसमल झडै, कॉई मॉहि लौ अंग पषालि रे ॥३९१॥

(राग वसंत)

सो जोगी जाकै सहज भाइ,
अकल प्रीति की भीख खाइ ॥ टेक ॥
सबद अनाहद सींगी नाद, काम क्रोध विषया न बाद।
मन मुद्रा जाकै गुर को ग्याँन, त्रिकुट कोट मैं धरत ध्यान ॥
मनही करन कौ करै सनाँन, गुर कौ सबद ले ले धरै धियाँन।
काया कासी खोजै बास, तहाँ जोति सरूप भयौ परकास ॥
ग्याँन मेषली सहज भाइ, बक नालि कौ रस खाइ।
जोग मूल कौ देइ बंद, कहि कबीर थीर होइ कंद ॥३७७॥

मेरौ हार हिरांनौ मैं लजाऊँ,
सास दुरासनि पीव डराऊँ ॥ टेक ॥
हार गुह्यौ मेरौ रांम ताग, बिचि बिचि मान्यक एक लाग ॥
रतन प्रवालै परम जोति, ता अंतरि लागे मोति।
पंच सखी मिलिहै सुजाँन, चलहु त जइये त्रिवेणी न्हान ॥
न्हाइ धोइ कै तिलक दीन्ह, नाँ जानूं हार किनहूँ लीन्ह ॥
हार हिरांनौ जन बिमल कीन्ह, मेरौ आहि परोसनि हार लीन्ह।
तीनि लोक की जाँनै पीर, सब देव सिरोमनि कहै कबीर ॥३७८॥

नही छाड़ौ बाबा रांम नांम,
मोहि और पढ़न सूं कौन काम ॥ टेक ॥
प्रह्लाद पधारे पढन साल, संग सखा लीये बहुत बाल।
मोहि कहा पढ़ाव आल जाल, मेरी पाटी मैं लिखि दे श्री गोपाल ॥
तब सेनाँ मुरकाँ कह्यौ जाइ, प्रहिलाद बँधाय्यौ बेगि आइ।
तूं राम कहन की छाड़ि बाँनि, बेगि छुड़ाऊँ मेरौ कह्यौ माँनि ॥
मोहि कहा डरावै बार बार, जिनि जल थल गिर कौ कियौ प्रहार।
बाँधि मारि भावै देह जारि, जे हूँ रांम छाडौं तौ गुरहि गार ॥
तब काढ़ि खडग कोप्यौ रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ।
खंभा मैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्‍यो नख बिदारि ॥
महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रकट कियौ भगति भेव।
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद ऊबार्‍यौ अनेक बार ॥३७९॥

हरि कौ नाउँ तत त्रिलोक सार,
लौलीन भये जे उतरे पार ॥ टेक ॥
इक जंगम इक जटाधार, इक अंगि बिभूति करै अपार ॥

ऐसैं बिलोइ जैसे तत न जाई ॥ टेक ॥

तन करि मटकी मननि बिलोइ, ता मटकी मैं पवन समोइ ॥
इला प्यंगुला सुषमन नारी, वेगि बिलोइ ठाढी छलिहारी ॥
कहै कबीर गुजरी बौरांनी, मटकी फूटी जोति समानी ॥३५४॥

आसण पवन कियें दिढ रहु रे,
मन का मैल छाड़ि दे बौरे ॥ टेक ॥

क्या सींगी मुद्रा चमकाये, क्या बिभूति सब अंगि लगाये।
सो हिंदू सो मुसलमांन, जिसका दुरस रहै ईमांन ॥
सो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म गियांन, काजी सो जानै रहिमांन।
कहै कबीर कछू आंन न कीजै, रांम नांम जपि लाहा लीजै ॥३५५॥

तार्थं कहिये लोकोचार,
बेद कतेब कथै ब्यौहार ॥ टेक ॥

जारि बारि करि आवै देहा, मूवां पीछै प्रीति सनेहा ॥
जीवत पित्रहि मारहि डंगा, मूवां पित्र ले घालै गंगा ॥
जीवत पित्र कूं अन न ख्वावै, मूंवां पाछै प्यंड भरावै ॥
जीवत पित्र कूं बोलै अपराध मूंवां पीछे देहि सराध ॥
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कउवा खाइ पित्र क्यूं पावै ॥३५६॥

बाप रांम सुनि बीनती मोरी,
तुम्ह सूं प्रगट लोगन सूं चोरी ॥ टेक ॥

पहलै कांम मुगध मति कीया, ता भै कंपै मेरा जीया ॥
रांम राइ मेरा कह्या सुनीजै, पहले बकसि अब लेखा लीजै।
कहै कबीर बाप रांम राया, कबहूं सरनि तुम्हारी आया ॥३५७॥

अजहूं बीच कैसे दरसन तोरा,
बिन दरसन मन मांनै क्यूं मोरा ॥ टेक ॥

हमहि कुसेवग क्या तुम्हहि अजांनां, दुइ मैं दोस कहौ किन रांमां ॥
तुम्ह कहियत त्रिभवन पति राजा, मन बंछित सब पुरवन काजा ॥
कहै कबीर हरि दरस दिखावौ, हमहि बुलावौ कै तुम्ह चलि आवौ ॥३५८॥

क्यूं लीजै गढ बंका भाई,
दोवर कोट अरु तेवड खाई ॥ टेक ॥

कांम किवाड़ दुख सुख दरवानी, पाप पुंनि दरवाजा।
क्रोध प्रधान लोभ बड दुंदर, मन मैं वासी राजा ॥
स्वाद सनाह टोप ममिता का, कुबधि कमांण चढाई।
त्रिसना तीर रहे तन भीतरि, सुबधि हाथि नहीं आई ॥
प्रेम पलीता सुरति नालि करि, गोला ग्यांन चलाया।
ब्रह्म अगनि ले दियां पलीता, एकै चोट ढहाया ॥
सत संतोष लै लरनैं लागे, तोरे दस दरवाजा।
साध संगति अरु गुर की क्रिपा थै, पकर्यौ गढ कौ राजा ॥
भगवत भीर सकति सुमिरण की, काटि काल की पासी।
दास कबीर चढे गढ ऊपरि, राज दियौ अबिनासी ॥

बांवन होय नहीं वलि छलिया, धरनी वेद लेन उधरिया ॥
गंडक सालिकरॉम न कोला, मछ कछ ह्वै जलहि न डोला ॥
वद्रो वैस्य ध्यॉन नहीं लावा, परसरॉम ह्वै खत्री न सतावा ॥
द्वारामती सरीर न छाड़ा, जगन्नाथ ले प्यंड न गाड़ा ॥
कहै कवीर विचार करि ये ऊले व्योहार ।
याही थै जे अगम है, सो वरति रह्या संसारि ॥

नाँ तिस सवद व स्वाद न सोहा, नाँ तिहि मात पिता नही मोहा ॥
नाँ तिहि सास ससुर नही सारा, नाँ तिहि रोज न रोवनहारा ॥
नाँ तिहि सूतिग पातिग जातिग, नाँ तिहि माइ न देव कथा पिक ॥
नाँ तिहि व्रिध वधावा बाजै नाँ तिहि गीत नाद नही साजै ॥
नाँ तिहि जाति पाँत्य कुल लीका, नाँ तिहि छोति पवित्र नही सीचा ॥
कहै कवीर विचारि करि, ओ है पद निरवाँन ।
सति ले मन मैं राखिये, जहाँ न दूजी आँन ॥

नाँ सो आवै ना सो जाई, ताकै वंध पिता नही माई ॥
चार विचार कछु नही वाकै, उनमनि लागि रहौ जे ताकै ॥
को है आदि कवन का कहिये, कवन रहनि वाका ह्वै रहिये ॥
कहै कवीर विचारि करि, जिनि को खोजै दूरि ।
ध्यान धरौ मन सुध करि, रॉम रह्या भरपूरि ॥

नाद विंद रक इक खेला, आपै गुरू आप ही चेला ॥
आपै मन्न आपै मंत्रेला, आपै पूजै आप पूजेला ॥
आपै गावै आप वजावै, अपनाँ कीया आप ही पावै ॥
आपै धूप दीप आरती, अपनी आप लगावै जाती ॥
कहै कवीर विचारि करि, झूठा लोही चॉम ।
जो या देही रहित है, सो है रमिता राँम ॥

(चौपदी रमैंणी)

ऊंकार आदि है मूला, राजा परजा एकहि सूला ॥
हम तुम्ह मा हैं एकै लोहू, एकै प्रान जीवन है मोहू ॥
एकही वास रहै दस मासा, सूतग पातग एकै आसा ॥
एकही जननी जन्याँ ससारा, कौंन ग्यान थैं भये निनारा ॥

ते तौ आहि अनंद सरूपा, गुन पल्लव विस्तार अनूपा ॥
साखा तत थैं कुसम गियाँनाँ, फल सो आछा राम का नाँमाँ ॥

सदा अचेत चेत जिव पंखी, हरि तरवर करि बास।
झूठ जगि जिनि भूलसी जियरे, कहन सुनन की आस ॥

जिहि ठगि ठगि सकल जग खावा, सो ठग ठग्यो ठौर मन आवा ॥
डडा डर उपजै डर जाई, डरही मै डर रह्यो समाई ॥
जो डर डरै तो फिर डर लागै, निडर होइ तो डरि डर भागै ॥
ढढा ढिग कत ढूँढै आना, ढूँढत ढूँढत गये पराँना ॥
चढ़ि सुमेर ढूँढि जग आवा, जिमि गढ़ गढ़्या सुगढ मैं पावा ॥
णणारि णरूँ तौ नर नाही करै, ना फुनि नवै न सचरै ॥
धनि जनम ताहीं कौ गिणाँ, मेरे एक तजि जाहि घणाँ ॥
तता अतिर तिस्यौ नही गाई, तन त्रिभुवन मे रह्यौ समाई ॥
जे त्रिभुवन तन मोहि समावै, तो ततै तन मिल्या सचु पावै ॥
थथा अथाह थाह नही आवा, वो अथाह यहु थिर न रहावा ॥
थोरै थलि थानै आरंभै, तौ विनही थंभै मदिर थंभै ॥
ददा देखि जुरे विनसन हार, जस न देखि तस राखि विचार ॥
दसवै द्वारि जव कुंजी दीजै, तव दयालु को दरसन कीजै ॥
धधा अरधै उरध न वेरा, अरधै उरधै मझि वसेरा ॥
अरधै त्यागि उरध जव आवा, तव उरधै छाँड़ि अरध कत धावा ॥
नना निस दिन निरखत जाई, निरखत नैंन रहे रतवाई ॥
निरखत निरखत जव जाइ पावा, तव लै निरखै निरख मिलावा ॥
पपा अपार पार नही पावा, परम जोति सौ परचो आवा ॥
पाँचौं इंद्री निग्रह करै, तव पाप पुनि दोऊ न सचरै ॥
फफा विन फूलाँ फलै होई, ता फल फफ लहै जो कोई ॥
दूँणी न पड़ै फूंकै विचारै, ताकी फूंक सवै तन फारै ॥
ववा वंदहि वदै मिलावा, वंदहि वद न विछुरन पावा ॥
जे वंदा वदि गहि रहै. तो वंदगि होइ सवै वद लहै ॥
भभा भेदै भेद नही पावा, अरभै -भाँनि ऐसो आवा ॥
जो वाहरि सो भीतरि जाना, भयौ भेद भूपति पहिचाना ॥

मर्माँ मन सौं काज है, मनमानाँ सिधि होइ ॥
मनही मन सौ कहै कवीर, मन सौ मिल्याँ न कोइ ॥

मर्माँ मूल गह्याँ मन माना, मरमी होइ सूँ मरमही जाना ॥
मति कोई मनसौ मिलता विलमावै, मगन भया तै सोगति पावै ॥

(३) रमैंणी

[राग सूहौ]

तू सकल गहगरा, सफ सफा दिलदार दीदार ॥
तेरी कुदरति किनहूँ न जानी, पीर मुरीद काजी मुसलमानी ।
देवी देव सुर नर गण गंध्रप, ब्रह्मा देव महेसुर ॥
तेरी कुदरति तिनहूं न जांनी ॥टेक॥
काजी सो जो काया विचारैं, तेल दीप मैं बाती जारैं ।
तेल दीप मैं बाती रहै, जोति चीन्हि जे काजी कहै ॥
मुलनां बंग देइ सुर जांनी, आप मुसला बैठा तांनी ॥
आपुन मैं जे करै निवाजा, सो मुलनां सरवत्तरि गाजा ॥
सेष सहज मैं महल उठावा, चंद सूर बिचि तारी लावा ॥
अर्ध उर्ध बिचि आनि उतारा, सोई सेष तिहूँ लोक पियारा ॥
जंगम जोग विचारैं जहूँवां, जीव सीव करि एकै ठऊवां ॥
चित चेतनि करि पूजा लावा, तेतौ जंगम नांउँ कहावा ॥
जोगी भसम करै भौ मारी. सहज गहै विचार विचारी ॥
अनभै घट परचा सू बोलै, सो जोगी निहचल कदे न डोले ॥
जैन जीव का करहु उबारा, कौण जीव का करहु उधारा ॥
कहाँ बसै चौरासी का देव, लही मुकति जे जांनौ भेव ॥
भगता तिरण मतै संसारी, तिरण तत ते लेहु विचारी ॥
प्रीति जांनि रांम जे कहै, दास नांउ सो भगता लहै ॥
पंडित चारि वेद गुंण गावा, आदि अंति करि पूत कहावा ॥
उतपति परलै कहौ विचारी, संसा घालौ सबै निवारी ॥
अरधक उरधक ये संन्यासी, ते सब लागि रहै अविनासी ॥
अजरावर कौं डिढ करि गहै, सो संन्यासी उन्मन रहै ॥
जिहि घर चाल रची ब्रह्मंडा, पृथमी मारि करी नव खंडा ॥
अविगत पुरिस की गति लखी न जाई, दास कबीर अगह रहे ल्यौं लाई ।१

---

(१) ख प्रति में इसके आगे यह रमैंणी है—

[ग्रथबावनी]

बावन आखिर लोकत्री, सब कुछ इनही माँहि ॥
ये सब षिरि षिरि जाहिगे, सो आखिर इनमैं नाँहि ॥

जरा जावन जोवन गया कछु कीया न नीका ।
इह जीया निर्मोल को कौडी लगि मीका ॥
कहु कवीर मेरे माधवा तू सर्वव्यापी ।
तुम सम सरि नाही दयाल मों सम सरि पापी ॥६५॥

गृह शोभा जाकै रे नाहि । आवत पहिया खूदे जाहि ॥
वाकै अतरि नही सतोप । बिन सोहागिन लागै कोप ॥
धन सोहागनि महा पवीत । तपे तपीसर डालै चीत ॥
सोहागनि किरपन की पूती । सेवक तजि जग तस्यो सूती ॥
साधू कै ठाढी दरवारि । सरनि तेरी मोके निस्तारि ॥
सोहागनि है अति सुदरी । पगनेवर छनक छन हरी ॥
जौ लग प्रान तऊ लग सगे । नाहि न चली वेगि उठि नगे ॥
सोहागनि भवन त्रै लीया । दस अष्टपुराण तीरथ रसकीया ॥
ब्रह्मा विष्णु महेसर वेधे । बड़ भूपति राजै है छेधे ॥
सोहागनि उर पारि न पारि । पाँच नारद कै संग विधवारि ॥
पाँच नारद के मिटवे फूटे । कहु कबीर गुरु किरपा छूटे ॥६६॥

चंद सूरज दुइ जोति सरूप । जीता अतरि ब्रह्म अनूप ॥
करु रे ज्ञानी ब्रह्म विचारु । जोति अतरि धरि आप सारु ॥
हीरा देखि हीरै करो आदेस । कहै कवीर निरजन अलेखु ॥१७॥

चरन कमल जाके रिदै वसै सो जन क्यो डोलै देव ॥
मानौ सव सुख नवनिधि ताके सहजि जस वोलै देव ॥
तव इह मति जौ सव महि पेखै कुटिल गाँठि जव खोलै देव ॥
वारवार माया ते अटकै लै नरु जो मन तौलै देव ॥
जहँ उह जाइ तही सुख पावै माया तासु न झोलै देव ॥
कहि कवीर मेरा मन मान्या राम प्रीति को ओलै देव ॥६८॥

हरि विन वैल विराने ह्वैहै ।
चार पाव दुइ सिंग गुग मुख तव कैसे गुन गैहै ॥
ऊठत वैठत ठेगा परिहै तव कत मूड लुकेहै ॥
फाटे नाक न टूटै का धन कोदौ को भूस खैहै ॥
सारो दिन डोलत वन महिया अजहु न पेट अघैहै ॥
जन भगतन को कही न मानी कीयो अपनो पैहै ॥
दुख सुख करत महा भ्रम बूड़ी अनिक योनि भरमैहै ॥
रतन जनम खोयो प्रभु विसर्यो इह अवसर कत पैहै ॥

उदक समुंद सलल की साख्या नदी तरंग समावहिंगे ।।
सुन्नहि सुन्न मिल्या समदर्सी पवन रूप होइ जावहिंगे ।।
बहुरि हम काहि आवहिंगे ।
आवन जाना हुक्म तिसै का हुक्मै वूझि ससावहिंगे ।।
जब चूकै पच धातु की रचना ऐते भर्म चुकावहिंगे ।।
दर्सन छोड भए समदर्सी एको नाम धियावहिगे ।।
जित हम लाए तितही लागे तैसे करम कमावहिंगे ।।
हरि जी कृपा करै जो अपनी तौ गुरु के सबद कमावहिंगे ।।
जीवत मरहु मरहु फुनि जीवहु पुनरपि जन्म न होई ।।
कहु कबीर जो नाम समाने सुन्न रह्या लव सोई ।। २४ ।।
उपजै निपजै निपजिस भाई । नयनहु देखत इहु जग जाई ।।
लाज न मरहु कहौ घर मेरा । अत की वार नही कछु तेरा ।।
अनेक जतन कर काया पाली । मरती वार अगनि सग जाली ।।
चोवा चदन मर्दन अगा । सो तनु जले काठ के सगा ।।
कहु कवीर सुनहु रे गुनिया । विनसैगो रूप देखै सब दुनिया ।। २५ ।।
उलटत पवन चक्र षट भेदै सुरति सुन्न अनुरागी ।।
आवै न जाइ मरै न जीवै तासु खोज बैरागी ।।
मेरो मन मनही उलटि समाना ।
गुरु परसादि अकल भई अवरै नातरु था बेगाना ।।
निवरै दूरि दूरि फुनि निवरै जिन जैसा करि मान्या ।
अलउती का जैसे भया वरेडा जिन पिया तिन जान्या ।।
तेरी निर्गुण कथा काहि स्यो कहिये ऐसा कोई विवेकी ।।
कहु कवीर निज दिया पलीता तिनतै सीझल देखी ।। २६ ।।
उलटि जात कुल दोऊ बिसारी । सुन्न सहजि महि वुनत हमारी ।।
हमरा झगरा रहा न कोऊ । पडित मुल्ला छाडै दोऊ ।।
वुनि वुनि आप आप पहिरावौ । जह नही आप तहा ह्वै गावौ ।।
पंडित मुल्ला जो लिखि दिया । छाडि चले हम कछू न लिया ।।
रिदै खलासु निरिखि ले मीरा । आपु खोजि खोजि मिलै कवीरा ।।२७।।
उस्तुति निंदा दोऊ विवरजित तजहू मानु अभिमान ।।
लोहा कंचन सम करि जानहि ते मूरति भगवान ।।
तेरा जन एक आध कोई ।
काम क्रोध लोभ मोह विवरजित हरिपद चीन्है सोई ।।
रजगुण तमगुण सतगुण कहियै इह तेरी सब माया ।।
चौथे पद को जो नर चीन्है तिनंहि परम पद पाया ।

आकास गगन पाताल गगन है चहु दिसि गगन रहाइले ।
आनँद मूल सदा पुरुषोत्तम घट बिनसै गगन न जाइलै ।
मोहि वैराग भयो इहु जीउ आइ कहाँ गयो ।।
पच तत्व मिलि काया कीनी तत्व कहा ते कीन रे ।।
कर्मबद्ध तुम जीउ कहत हौ कर्महि किन जीउ दीन रे ।।
हरि महि तनु है तनु महि हरि है सर्व निरतर सोइ रे ।।
कहि कबीर राम नाम न छोडौ सहजे होइ सु होइ रे ।।१५।।

अगम दुर्गम गढ रचियो वास । जामहि जोति करै परगास ।।
बिजली चमकै होइ अनद । जिह पौडे प्रभु बाल गुबिद ।।
इहु जीउ राम नाम लव लागै । जरा मरन छूटै भ्रम भागै ।।
अबरन बरन स्यो मन ही प्रीति । हौ महि गायत गावहि गीति ।।
अनहद सबद होत झनकार । जिह पौडे प्रभु श्रीगोपाल ।।
खडल मडल मडल मडा । त्रिय अस्थान तीनि तिय खडा ।।
अगम अगोचर रह्या अभ्यंत । पार न पावै को धरनीधर मत ।।
कदली पुहुप धूप परगास । रज पकज महि लियो निवास ।।
द्वादस दल अभ्यतर मत । जहँ पौडै श्रीकवलाकत ।।
अरध उरध मुख लागो कास । सुन्न मँडल महि करि परगासु ।।
ऊहाँ सूरज नाही चद । आदि निरजन करै अनद ।।
सो ब्रह्मडि पिड सो जानु । मानसरोवर करि स्नानु ।।
सोह सो जाकहुँ है जाप । जाको लिपत न होइ पुन्न अरु पाप ।।
अबरन बरन घाम नहिं छाम । अबरन पाइयै गुरु की साम ।।
टारी न टरै आवै न जाइ । सुन्न सहज महि रह्या समाइ ।।
मन मद्धे जाने जे कोइ । जो बोलै सो आपै होइ ।।
जोति मत्रि मनि अस्थिर करै । कहि कबीर सो प्रानी तरै ।।१६।।

आपे पावक आपे पवना । जारै खसम त राखै कवना ।।
राम जपतु तनु जरि किन जाइ । राम नाम चित रह्या समाइ ।।
काको जरै काहि होइ हानि । नटवर खेलै सारिगपानि ।।
कहु कबीर अक्खर दुइ भाखि । होइगा खसम त लेइगा राखि ।।१७।।

आस पास घन तुरसी का बिरवा माँझ बनारस गाऊँ रे ।।
वाका सरूप देखि मोही ग्वारिन मोकौ छाडि न आउ न जाहु रे ।।
तोहि चरन मन लागो । सारिगधर सो मिलै जो बड भागी ।।
बृदाबन मन हरन मनोहर कृष्ण चरावत गाऊँ रे ।।
जाका ठाकुर तुही सारिगधर मोहि कबीरा नाऊँ रे ।।१८।।

सुरति सिमृति दुइ कन्नी मुंदा परमिति बाहर खिंथा।
सुन्न गुफा महि आसण बैसण कल्प विवर्जित पंथा ॥
मेरे राजन मैं बैरागी जोगी मरत न सोग बिजोरी ॥
खंड ब्रह्माड महि सिंडी मेरा बटुवा सब जग भसमाधारी।
ताडी लागी त्रिपल पलटियै छूटै होइ पसारी ॥
मन पवन्न दुई तूवा करिहै जुग जुग सारद साजी।
थिरु भई तंती टूटसि नाही अनहद किंगुरी बाजी ॥
सुनि मन मगन भये है पूरे माया डोलन लागी।
कहु कबीर ताकी पुनरपि जनम नही खेलि गयो बैरागी ॥२११॥

सुग्ह की सैसा तेरी चाल। तेरा पूछट ऊपर झमक बाल ॥
इस घर मह है सु तू ढुढि खाहि। और किसही के तू मति ही जाहि ॥
चाकी चाटै चून चाहि। चाकी का चीथरा कहा लै जाहि ॥
छीके पर तेरी बहुत डीठ। मत लकरी सोटा परै तेरी पीठ ॥
कहि कबीर भोग भले कीन। मति कोऊ मारै ईंट ठेम ॥२१२॥

सो मुल्ला जो मन स्यो लरै। गुरु उपदेस काल स्यो जुरै ॥
काल पुरुष का मरदै मान। तिस मुल्ला को सदा सलाम ॥
है हजूरि कत दूरि बतावहु। दुंदर बाधहु सुंदर पावहु ॥
काजी सो जो काया बिचारै। काया की अग्नि ब्रह्म पै जारै ॥
सुपनै बिन्दु न देई जरना। तिस काजी कौ जरा न मरना ॥
सो सुरतान जो दुइ सुर तानै। बाहर जाता भीतर आनै ॥
गगन मंडल महि लस्कर करै। सो सुरतान छत्र सिर धरै ॥

जोगी गोरख गोरख करै। हिंदू राम नाम उच्चरै ॥
मुसलमान का एक खुदाई। कबीर का स्वामी रह्या समाई ॥२१३॥

स्वर्ग वास न बाछियै डारियै न नरक निवासु।
होना है सो होइहै मनहि न कीजै आसु ॥
रमय्या गुन गाइयै जाते पाइयै परम निधानु।
क्या जप क्या तप सयमी क्या व्रत क्या इस्नान ॥
जब लग जुक्ति न जानिये भाव भक्ति भगवान ॥
सम्पै देखि न हर्पियौ बिपति देखि न रोइ ॥
ज्यो सपै त्यो बिपत है बिधि ने रच्या सो होइ।
कहि कबीर अब जानिया संतन रिदै मझारि ॥
सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि ॥२१४॥

हज्ज हमारी गोमती तीर। जहाँ बसहि पीतंबर पीर ॥
वाहु वाहु क्या खूब गावता है। हरि का नाम मेरे मन भावता है ॥
नारद सारद करहि खवासी। पास बैठि बिधि कवला दासी ॥
कठे माला जिहवा नाम। सहस नाम लै लै करो सलाम ॥
कहत कबीर राम गुन गावौ। हिंदू तुरक दोऊ समझावौ ॥२१५॥

जहाँ उपजै बिनसै तहि जैसे पुरवनि पात।
मिथ्या करि माया तजा सुख सहज बीचारि ॥
कहि कबीर सेवा करहु मन मझि मुरारि ॥२०५॥

सासु की दुखी ससुर की प्यारी जेठ के नाम डरौ रे।
सखी सहेली, ननद गहेली देवर कै बिरहि जरौ रे ॥
मेरी मति बौरी मै राम बिसारचो किन बिधि रइनि रहौ रे।
सेजै रमत नयन नही पेखौ इहु दुख कासौ कहौ रे ॥
बाप सावका करै लराई मया सद मतवारी।
बडे भाई के जब सग होती तब ही नाह पियारी ॥
कहत कबीर पच को झगरा झगरत जनम गवाया।
झूठी माया सब जग बाँध्या पै राम रमत सुख पाया ॥२०६॥

सिव की पुरी बस बुधि सारु। यह तुम मिलि कै करहु बिचारु ॥
ईत ऊत की सोझी परै। कौन कर्म मेरा करि करि मरै ॥
निज पद ऊपर लागो ध्यान। राजा राम नाम मेरा ब्रह्म ज्ञान ॥
मूल दुआरै बध्या बंधु। रवि ऊपर गहि राख्या चदु ॥
पंचम द्वारे की सिल ओड। तिह सिल ऊपर खिडकी और ॥
खिड़की ऊपर दसवा द्वार। कहि कबीर ताका अंतु न पार ॥२०७॥

सुख माँगत दुख आगै आवै। सो सुख हमहुँ न माँग्या भावै ॥
बिषगा अजहु सुरति सुख आसा। कैसे होइ है राजाराम निवासा ॥
इसु सुख ते सिव ब्रह्म हराना। सो सुख हमहुँ साँच करि जाना ॥
सनकादिक नारद मुनि सेखा। तिन भी तन महि मन नही पेखा ॥
इस मन कौ कोई खोजहु भाई। तन छूटै मन कहा समाई ॥
गुरु परसादी जयदेव नामा। भगति कै प्रेम इनही है जाना ॥
इस मन कौ नही आवन जाना। जिसका भम गया तिन साचु पछाना ॥
इस मन कौ रूप न रेख्या काई। हुकुमे होया हुकुम बूझि समाई ॥
इस मन का कोई जानै भेउ। इहि मन लीण भये सुखदेउ ॥
जीउ एक और सगल सरीरा। इस मन कौ रवि रहै कबीरा ॥२०८॥

सुत अपराध करत है जेते। जननी चीति न राखसि तेते ॥
रामय्या हौ बारिक तेरा। काहे न खंडसि अवगुन मेरा ॥
जे अति कोप करे करि धाया। ताभी चीत न राखसि माया ॥

पाषान गढ़ि कै मूरति कीनी--देकै छाती पाउ ॥
जे एइ मूरति साची है तो गडणहारे खाउ ॥
भातु पहिति और लापसी करकरा का सारु ॥
भोगनु हारे भोगिया इसु मूरति के मुख छार ॥
मालिन भूलि जग भुलाना हम भुलाने नाहि ॥
कह कबीर हम राम राखे कृपा करि हरि राइ ॥१३७॥

पानी मैला माटी गोरी । इस माटी की पुतरी जोरी ॥
मैं नाही कछु आहि न मोरा । तन धन सब रस गोविंद तोरा ॥
इस माटी महि पवन समाया । झूठा परपच जोरि चलाया ।
किनहू लाख पाँच की जोरी । अत की बाट गगरिया फोरी ।
कहि कबीर इक नीवौ सारी । खिन महि बिनसि जाइ अहकारी ॥१३८॥

पाप पुन्य दोइ बैल बिसाहे पवन पूँजी परगास्यो ॥
तृष्णा गूणि भरी घट भीतर इन विधि टाँड बिसाह्यो ॥
ऐसा नायक राम हमारा सकल ससार कियो बजारा ॥
काम क्रोध दुइ भये जगाती मन तरग बटवारा ॥
पच तत्तु मिलि दान निबेरहि टांडा उतरयो पारा ॥
कहत कबीर सुनहु रे सतहु अब ऐसी बनि आई ॥
घाटी चढत बैल इक थाका चलो गोनि छिटकाई ॥१३९॥

पिंड मुए जिउ किहि घर जाता । सबद अतीत अनाहद राता ॥
जिन राम जान्या तिन्ही पछांन्या । ज्यों गूंगे साकर मन मान्या ॥
ऐसा ज्ञान कथै बनवारी । मन रे पवन दृढ़ सुषमन नाड़ी ॥
सो गुरु करहु जि बहुरि न करना । सो पद रवहु जि बहुरि न रवना ॥
सो ध्यान धरहु जि बहुरि न धरना । ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥
उलटी गंगा जमुन मिलावौ । बिनु जल सगम मन महि नावौ ॥
लोचा सम सरिहहु व्योहारा । तत्तु विचारि क्या अवर विचारा ॥
अप तेज वायु पृथमी अकासा । ऐसी रहनि रहौ हरि पासा ॥
कहै कबीर निरजन ध्यावौ । तित घर जाहु जि बहुरि न आवौ ॥१४०॥

पेवक दै दिन चारि है साहुरडे जाणा ।
अंधा लोक न जाणई मूरखु एयाणा ॥
कहु डड़िया बाँधे धन खड़ी । याहूँ घर आये मुकलाऊ आये ॥
ओह जि दिसै खूहड़ी को न लाजु वहारी ।
लाज घडी स्यो टूटि पड़ी उठि चलि पनिहारी ॥

ऐसा अद्भुत मेरे गुरि कथ्या, मैं रह्या उमेषै ।
मूसा हसती सौं लडै, कोई बिरला पेषै ॥ टेक ॥
मूसा पैठा बांबि मै, लारै सापणि धाई ।
उलटि मूसैं सापणि गिलो, यहु अचिरज भाई ॥
चींटी परवत ऊषण्यां, ले राख्यौ चौडै ॥
मुर्गा मिनकी सूं लडै, झल पांणीं दौडै ।
सुरही चूंपै बछतलि, बछा दूध उतारै ॥
ऐसा नवल गुंणी भया, सारदूलहि मारै ।
भील लूक्या बन बीझ मैं, ससा सर मारै ॥
कहै कबीर ताहि गुर करौ, जो या पदहि बिचारै ॥ १६१ ॥

अवधू जागत नीद न कीजै ।
काल न खाइ कलप नही ब्यापै, देही जुरा न छीजै ॥ टेक ॥
उलटी गग समुद्रहि सोखै ससिहर सूर गरासै ।
नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल मे ब्यब प्रकासै ॥
डाल गह्या थैं मूल न सूझै मूल गह्यां फल पावा ।
बबई उलटि शरप कौं लागी, धरणि महा रस खावा ॥
बैठि गुफा मैं सब जग देख्या, बाहरि कछू न सूझै ।
उलटै धनकि पारधी मार्यौ यहु अचिरज कोई बूझै ॥
औंधा घड़ा न जल में डूबै, सूधा सूभर भरिया ।
जाकौ यहु जुग घिण करि चाले, ता प्रसादि निस्तरिया ॥
अबर बरसै धरती भीजै, बूझै जांणौं सब कोई ।
धरती बरसै अबर भीजै, बूझै बिरला कोई ॥
गांवणहारा कदे न गावै, अणबोल्या नित गावै ।
नटवर पेषि पेषनां पेषै अनहद बेन बजावै ॥
कहणी रहणी निज तत जांणै यहु सब अकथ कहांणी ।
धरती उलटि अकासहि ग्रासै, यहु पुरिसां की बांणी ॥
बाझ पियालै अमृत सोख्या, नदी नीर भरि राख्या ।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या ॥ १६२ ॥

रांम गुन बेलडी रे, अवधू गोरपनाथि जांणी ।
नाति सरूप न छाया जाके, बिरध करै बिन पांणी ॥ टेक ॥
बेलड़िया द्वे अणी पहूंती गगन पहूंती सैली ।
सहज बेलि जल फूलण लागी, डाली कूंपल मेल्ही ॥
मन कुजर जाइ बाड़ी बिलब्या सतगुर बाही बेली ।
पच सखी मिसि पवन पयप्या, बाड़ी पाणी मेल्ही ॥

काटत बेली कूपले मेल्ही, सींचताड़ी कुमिलांणी ।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, सहज निरंतर जांणी ॥ १६३ ॥

एकनि गंध वासनाँ प्रगटै जग थैं रहै अकेला ॥
प्रॉन पुरिस काया थैं बिछुरे, राखि लेहु गुर चेला ।
भागा भर्म भया मन अस्थिर, निद्रा नेह नसांनाँ ॥
घट की जोति जगत प्रकास्या, माया सोक बुंझाँनाँ ।
वंकनालि जे संमि करि राखै, तौ आवागमन न होई ॥
कहै कबीर धुनि लहरि प्रगटी, सहजि मिलैगा सोई ॥१५७॥

जाइ पूछौ गोविंद पढिया पंडिता, तेराँ कौन गुरू कौन चेला ।
अपणे रूप कौ आपहि जाँणे, आगैं रहै अकेला ॥टेक॥
वाँझ का पूत वाप विना जाया, विन पाँऊँ तरवरि चढ़िया ।
अस विन पापर गज विन गुड़िया, विन षडै संग्राम जुड़िया ॥
वीज विन अंकूर पेड़ विन तरवर, विन सापा तरवर फलिया ।
रूप विन नारी पुहुप विन परमल, विन नीरै सरवर भरिया ॥
देव विन देहुरा पत्र विन पूजा, विन पाँपाँ भवर विलंविया ।
सूरा होइ सु परम पद पावै, कीट पतंग होइ सब जरिया ॥
दीपक विन जोति जोति विन दीपक, हद विन अनाहद सबद वागा ।
चेतनाँ होइ सु चेति लीज्यौ, कबीर हरि के अंगि लागा ॥१५८॥

पंडित होइ सु पदहि विचारै, मूरिख नाँहिन वूझैं ।
विन हाथनि पाँइन विन काँननि, विन लोचन जग सूझै ॥टेक॥
विन मुख खाइ चरन विनु चालै, विन जिभ्या गुण गावै ।
आछै रहै ठौर नही छाड़ै, दह दिसिही फिरि आवै ॥
विनही तालाँ ताल वजावैं, विन मदल षट ताला ।
विनही सवद अनाहद वाजै, तहाँ निरतत है गोपाला ॥
विनाँ चोलनै विनाँ कंचुकी, विनही सग सग होई ।
दास कबीर औसर भल देख्या, जाँनैगा जस कोई ॥१५९॥

है कोई जगत गुर ग्याँनी, उलटि वेद वूझै ।
पाँणी मे अगनि जरै, अँधरे कौ सूझै ॥ टेक ॥
एकनि दादुरि खाये, पंच भवंगा ।
गाइ नाहर खायौ, काटि काटि अंगा ॥
वकरी विघार खायौ, हरनि खायौ चीता ।
कागिल गर फाँदिया, वटेरै वाज जीता ॥
मूसैं मँजार खायौ, स्यालि खायौ स्वाँनाँ ।
आदि कौ आदेस करत, कहै कबीर ग्याँनाँ ॥ १६० ॥

जगत गुर अनहद कींगरी बाजे,
तहाँ दीरघ नाद ल्यौ लागे ।।टेक।।

त्री अस्थान अंतर मृगछाला, गगन मंडल सींगी बाजे ।
तहुँआँ एक दुकाँन रच्यो है, निराकार व्रत साजे ।।

गगन ही भाठी सींगी करि चुंगी, कनक कलस एक पावा ।
तहुँवा चवे अमृत रस नीझर, रस ही मैं रस चुवावा ।।

अब तौ एक अनूपम बात भई, पवन पियाला साजा ।
तीनि भवन मैं एकै जोगी, कहौ कहाँ बसै राजा ।।

बिनरे जानि परणऊँ परसोतम, कहि कबीर रँगि राता ।
यहु दुनियाँ काँई भ्रमि भुलाँनी, मैं राँम रसाइन माता ।।१५३।।

ऐसा ग्यान विचारि लै, लै लाइ लै ध्याँनाँ ।
सुनि मंडल मैं घर किया, जैसे रहै सिंचाँनाँ ।।टेक।।

उलटि पवन कहाँ राखिये, कोई मरम विचारै ।
साँधै तीर पताल कूँ, फिरि गगनहि मारै ।।

कसा नाद बजाव ले, धुनि निमसि ले कसा ।
कसा फूटा पंडिता, धुनि कहाँ निवासा ।।

(१५२) ख—साई घर की नारी ।

प्यंड परे जीव कहाँ रहै, कोई मरम लखावै ।
जीवत जिस घरि जाइये, ऊँचे मुषि नहीं आवै ।।
सतगुर मिलै त पाइये, ऐसी अकथ कहाँणी ।
कहै कबीर संसा गया, मिले सारंगपाँणी ।।१५४।।

है कोई संत सहज सुख उपजै, जाकौ जप तप देउ दलाली ।
एक बूँद भरि देइ राँम रस, ज्यूँ भरि देइ कलाली ।। टेक ।।
काया कलाली लाँहनि करिहूँ, गुरु सबद गुड़ कीन्हाँ ।
काँम क्रोध मोह मद मछर, काटि काटि कस दीन्हाँ ।।
भवन चतुरदस भाटी पुरई, ब्रह्म अगनि परजारी ।
मूँदे मदन सहज धुनि उपजी, सुखमन पीसनहारी ।।
नीझर झरै अँमी रस निकसै, तिहि मदिरावल छाका ।।
कहैं कबीर यहु बास विकट अति, ग्याँन गुरू ले बाँका ।। १५५ ।।

अकथ कहाँणी प्रेम की, कछू कही न जाई ।
गूँगे केरी सरकरा, बैठे मुसुकाई ।। टेक ।।
भोमि बिनाँ अरु बीज बिन, तरवर एक भाई ।
अनँत फल प्रकासिया, गुर दीया बताई ।
मन थिर बैसि बिचारिया, राँमहि ल्यौ लाई ।
झूठी अनभै बिस्तरी सब थोथी बाई ।।
कहै कबीर सकति कछु नाही, गुरु भया सहाई ।।
आँवण जाँणी मिटि गई, मन मनहि समाई ।।१५६।।

ऐंकत छाँड़ि जाँहि घर घरनी, तिन भी बहुत उपाया।
कहै कबीर कछु समझि न पाई, विषम तुम्हारी माया ॥ १९२ ॥

माधौ चले बुनाँवन माहा,
जग जीतै जाइ जुलाहा ॥ टेक ॥
नव गज दस गज गज उगनीसा, पुरिया एक तनाई।
सान सूत दे गंड बहुतरि, पाट लगी अधिकाई ॥
तुलह न तोली गजह न मापी, पहज न सेर अढ़ाई।
अढ़ाई मे जैं पाव घटे तो करकस करै बजहाई ॥
दिन को बैठि खसम सूं कीजै अरज लगी तहाँ हीं।
भागी पुरिया घर ही छाडी चले जुलाह रिसाई ॥
छोछी नली काँमि नहीं आवै लहटि रही उरझाई।
छाँड़ि पसारा राँम कहि बोरै, कहै कबीर समझाई ॥ १९३॥

बाजे जंत्र बजावै गुँनो,
राम नाँम बिन भूली दुनी ॥ टेक ॥
रजगुन सतगुन तमगुन तीन, पंच तत से साज्या बीन ॥
तीनि लोक पूरा पेखनां, नाँच नचावै एकै जनाँ।
कहै कबीर ससा करि दूरि, त्रिभवननाथ रह्या भरपूरि ॥ १९४॥

जंत्री जन्त्र अनूपन बाजै,
ताको सबद गगन मैं गाजै ॥टेक॥
सुर की नालि सुरति का तूंबा, सतगुर साज बनाया।
सुर नर गण गंध्रप ब्रह्मादिक गुर बिन तिनहुं न पाया ॥
जिभ्या तांति नासिका करही, माया का मैण लगाया।
गमाँ बतीस मोरणाँ पाँचौं, नीका साज बनाया ॥
जंत्री जन्त्र तजै नहीं बाजै, तब बाजै जब बावै।
कहै कबीर सोई जन साँचा जन्त्री सूं प्रीति लगावै ॥१९५॥

अवधू नादै व्यंद गगन गाज सबद अनाहद बोलै।
अंतरि गति नही देखै नेड़ा, ढूंढत बन बन डोलै ॥टेक॥
सालिगराँम तजौं सिव पूजौं, सिर ब्रह्मा का काटौं।
सायर फोडि नीर मुकलाऊँ, कुँवाँ सिला दे पाटौं॥
चंद सूर दोइ तूंबा करिहूं, चित चेतिनि की डाँडी।
सुषमन तती बाजड़ लागी, इहि विधि त्रिष्णाँ षाँड़ी ॥
परम तत आधारी मेरे, सिव नगरी घर मेरा।
कालहि षडूं मीच बिहडूं, बहुरि न करिहूं फेरा ॥

गगन मंडल रवि ससि दोइ तारा, उलती कूची लागि किवारा।
कहै कबीर भई उजियारा, पंच मारि एक रह्यौ निनारा ॥१७१

रांम बिन जन्म मरन भयौ भारी ।
साधिक सिध सूर अरु सुरपति, भ्रमत भ्रमत गये हारी ॥टेक॥
व्यंद भाव भ्रिग तत जत्तक, सकल सुख सुखकारीं ।
श्रवन मुनि रवि ससि सिव सिव, पलक पुरिष पल नारी ॥
अंतर गगन होत अंतर धुंनि बिन सासनि है सोई ।
घोरत सबद सुमगल सब घटि, व्यंदत व्यंदै कोई ॥
पाणी पवन अवनि नभ पावक, तिहि संग सदा बसेरा ।
कहै कबीर मन मन करि बेध्या, बहुरि न कीया फेरा ॥१७२॥

नर देही बहुरि न पाईये,
ताथैं हरषि हरषि गुंण गाईये ॥ टेक ॥
जब मन नहीं तजै बिकारा, तौ क्यूँ तरिये भौ पारा ॥
जे मन छाडै कुटिलाई, तब आइ मिलै रांम राई ॥
ज्यूँ जीमण त्यूँ मरणां, पछितावा कछू न करणां ॥
जांणि मरै जे कोई, तौ बहुरि न मरणां होई ॥
गुर बचनां मझि समावै, तब रांम नांम ल्यौ लावै ॥
जब रांम नांम ल्यौ लागा, तब भ्रम गया भौ भागा ॥
ससिहर सूर मिलावा, तब अनहद बेन बजावा ॥
जब अनहद बाजा बाजै, तब सांई संगि बिराजै ॥
होत संत जनन के संगी, मन राचि रह्यो हरि रंगी ॥
धरो चरन कवल बिसवासा, ज्यूँ होइ निरभै पदवासा ॥
यहु काचा खेल न होई, जन षरतर खेलै कोई ॥
जब षरतर खेल मचावा, तब गगन मंडल मठ छावा ॥
चित चंचल निहचल कीजै तब रांम रसाइन पीजै ॥
जब रांम रसाँइन पीया, तब काल मिट्या जन जीया ॥
यूँ दास कबीरा गावै, ताथैं मन को मन समझावै ॥
मन ही मन समझाया, तब सतगुर मिलि सचु पाया ॥१७

अवधू अगनि जरै कै काठ ।
पूछौं पंडित जोग सन्यासी, सतगुर चीन्है बाट ॥ टेक ॥
अगनि पवन मैं पवन कवन मैं, सबद गगन के पवनां ॥
निराकार प्रभु आदि निरंजन, कत रवंते भवनां ॥

अंतर गतिअनि अनि वांणी ।
गगन गुपत मधुकर मधु पीवत, सुगति सेस सिव जांणी ॥ टेक ॥
त्रिगुण त्रिविध तलपत तिमरातन, तती तंत मिलानी ।
भागे भरम भोइन भए भारी, विधि विरंचि सुपि जांणी ॥
वरन पवन अवरन विधि पावक, अनल अमर मरै पाणी ।
रवि ससि सुभग रहे भरि सब घटि सबद सुनि तिथि माहीं ॥
सकट सकति सकल सुख खोये, उदित मथित सब हारे ।
कहैं कबीर अगम पुर पाटण, प्रगटि पुरातन जारे ॥ १६८ ॥

लाधा है कछू लाधा है, ताकी पारिष को न लहै ।
अवरन एक अकल अविनासी, घटि घटि आप रहै ॥ टेक ॥
तोल न मोल माप कछु नाहीं, गिणँती ग्यांन न होई ।
नाँ सो भारी ना सो हलका, ताकी पारिख लषै न कोई ॥
जामैं हम सोई हम ही मैं, नीर मिले जल एक हूवा ।
यौं जाणैं तो कोई न मरिहैं, बिन जाणैं थैं बहुत मूवा ॥
दास कबीर प्रेम रस पाया, पीवणहार न पाऊँ ।
बिधनाँ बचन पिछाँडत नाहीं, कहु क्या काढि दिखाऊँ ॥ १६९ ॥

हरि हिरदे रे अनत कत चाहौ,
भूलै भरम दुनी कत बाहौ ॥ टेक ॥
जग परबोधि होत नर खालो, करते उदर उपाया ।
आतम रांम न चीन्हैं संतौ, क्यू रमि लै रांम राया ॥
लागै प्यास नीर सो पीवै, बिन लागै नहीं पीवै ।
खोजै तत मिलै अविनासी, बिन खोजै नहीं जीवै ।
कहै कबीर कठिन यह करणी जैसी पडै धारा ।
उलटी चाल मिलै परब्रह्म कौं, सो सतगुरू हमारा ॥ १७० ॥

रे मन बैठि कितै जिनि जासी,
हिरदै सरोवर है अविनासी ॥ टेक ॥
काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी ।
माया मधे कवलापति, काया मधै बैकुंठबासी ॥
उलटि पवन षटचक्र, निवासी, तीरथराज गंगतट बासी ॥

गगन मंडल रवि ससि दोइ तारा, उलटी कूची लागि किंवारा ।
कहै कबीर भई उजियारा, पंच मारि एक रह्यौ निनारा ॥१७१

रांम बिन जन्म मरन भयौ भारी ।
साधिक सिध सूर अरु सुरपति, भ्रमत भ्रमत गये हारी ॥टेक॥
ब्यंद भाव त्रिग तत जतक, सकल सुख सुखकारी ।
श्रवन सुनि रवि ससि सिव सिव, पलक पुरिष पल नारी ॥
अंतर गगन होत अंतर धुंनि बिन सासनि है सोई ।
घोरत सबद सुमगल सब घटि, ब्यंदत ब्यंदै कोई ॥
पाणी पवन अवनि नभ पावक, तिहि संग सदा बसेरा ।
कहै कबीर मन मन करि बेध्या, बहरि न कीया फेरा ॥१७२॥

धीरौ मेरे मनवाँ तोहि धरि टाँगौं,
तैं तौ कीयौ मेरे खसम सूँ पाँगौ ॥ टेक ॥
प्रेम की जेवरिया तेरे गलि बाँधूँ, तहाँ लै जाँउँ जहाँ मेरौ माधौ ।
काया नगरीं पैसि किया मैं वासा, हरि रस छाड़ि विषै रसि माता ॥
कहैं कबीर तन मन का ओरा भाव भकति हरिसूँ गठजोरा ॥२१३॥

परब्रह्म देख्या हो तत बाड़ी फूली, फल लागा बडहूली ।
सदा सदाफल दाख बिजौरा कौतिकहारी भूली ॥ टेक ॥
द्वादस कूँवा एक बनमाली, उलटा नीर चलावै ।
सहजि सुषमनाँ कूल भरावै, दह दिसि बाड़ी पावै ॥
ल्यौकी लेज पवन का ढीकू, मन मटका ज बनाया ।
सत की पाटि सुरति का चाठा, सहजि नीर मुलकाया ॥
त्रिकुटी चढ्यौ पाव ढौ ढारै, अरध उरध की क्यारी ।
चंद सूर दोऊ पाणति करिहैं, गुर मुषि बीज बिचारी ॥
भरी छाबडी मन बैकुंठा, साँई सूर हिया रंगा ।
कहे कबीर सुनहु रे संतो, हरि हँम एकै संगा ॥ २१४॥
राँम नाँम रंग लागौ, कुरंग न होई ।
हरि रंग सौ रंग और न कोई ॥ टेक ॥
और सबै रंग इहि रंग थैं छूटै, हरि रंग लागा कदे न खूटै ।
कहै कबीर मेरे रंग राँम राँई, और पतंग रंग उडि जाई ॥ २१५॥
कबीरा प्रेम कूल ढरै, हँमारे राम बिना न सरे ।
बाँधि ले धोरा सींचि लै क्यारी ज्यूँ तूँ पेड़ भरै ॥ टेक॥
काया बाड़ी माँहैं माली, टहल करै दिन राती ।
कबहूँ न सोवै काज सँवारे, पाँणतिहारी माती ॥
सेझै कूवा स्वाति अति सीतल, कबहूँ कुवा बनही रे ।
भाग हँमारे हरि रखवाले, कोई उजाड नहीं रे ॥
गुर बीज जमाया कि रखि न पाया, मन की आपदा खोई ।
औरै स्यावढ करै पारिसा, सिला करै सब कोई ॥
जौ घरि आया तौ सब ल्याया, सबही काज सँवार्‌या ।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, थकित भया मैं हार्‌या ॥२१६॥
राजा राम बिना तकती धो धो ।
राम बिना नर क्यूँ छूटौगे, जम करै नग धो धो धो ॥ टेक ॥
मुद्रा पहर्‌या जोग न होई, घूँघट काढ्या सती न कोई ॥
माया कै संगि हिलि मिलि आया, फोकट साटै जनम गँवाया ।
कहै कबीर जिनि हरि पद चीन्हाँ, मलिन प्यंड थैं निरमल कीन्हा ॥२१७॥
हे कोई राम नाँम बतावै,
वस्तु अगोचर मोहि लखावै ॥ टेक ॥

अवधू ऐसा ग्यान विचारी,
ज्यूँ वहुरि न ह्वै ससारी ॥ टेक ॥
च्यँत न सोच चित विन चितवै, विन मनसा मन होई ।
अजपा जपत सुनि अभिअंतरि, यहू तत जानै सोई ॥

कहै कवीर स्वाद जव पाया, वक नालि रस खाया ।
अमृत झरै ब्रह्म परकासै तव ही मिलै राम राया ॥२०६॥
गोव्यदे तुम्हारै वन कंदलि, मेरो मन अहेरा खेलै ॥
वपु वाड़ी अनगु मृग, रचिही रचि मेलै ॥ टेक ॥
चित तरउवा पवन पेदा, सहज मूल वाँधा ।
ध्यॉन धनक जोग करम, ग्यॉन वाँन साँधा ॥
षट चक्र कँवल वेधा, जारि उजारा कीन्हाँ ।
काम क्रोध लोभ मोह, हाकि स्यावज दीन्हाँ ॥
गगन मंडल रोकि वारा, तहाँ दिवस न राती ।
कहै कवीर छाँड़ि चले, विछुरे सव साथी ॥ २१० ॥

साधन कचू हरि न उतारै,
अनभै ह्वै तौ अर्थ विचारै ॥ टेक ॥
वाँणी सुरँग सोधि करि आणै आणौं नौ रग धागा ।
चंद सूर एकतरि कीया, सीवत वहु दिन लागा ॥
पंच पदार्थ छोड़ि समाँनाँ, हीरै मोती जड़िया ।
कोटि वरग लूं कचूं सीयाँ, सुर नर धधै पड़िया ॥
निस वासुर जे सोवै नाही, ता नरि काल न खाई ।
कहै कवीर गुर परसादै सहजै रह्या समाई ॥ २११ ॥

जीवत जिनि मारै मूवा मति ल्यावै,
मास विहूँणाँ घरि मत आवै हो कता ॥ टेक ॥
उर विन पुर विन चंच विन, वपु विहूँना सोई ।
सो स्यावज जिनि मारै कता, जाकै रगत मास न होई ॥
पैली पार के पारधी, ताकी धुनही पिनच नही रे ।
ता वेली को ढूंक्यो मृग लौ, ता मृग कैसी सनही रे ॥
मारचा मृग जीवता राख्या, यहु गुरु ग्याँन मही रे ।
कहै कवीर स्वाँमी तुम्हारे मिलन कौ, वेली है पर पात नही रे ॥२१२

धीरौ मेरे मनवाँ तोहि धरि टाँगौं,

(राग आसावरी)

ऐसी रे अवधू की वाणी,
ऊपरि कूवटा तलि भरि पाँणी ॥ टेक ॥

जब लग गगन जोति नही पलटै, अविनासा सूँ चित नही चिहुटै।
जब लग भँवर गुफा नहीं जानै, तौ मेरा मन कैसै मानै ॥
जब लग त्रिकुटी संधि न जानैं, ससिहर कै घरि सूर न आनैं।
जब लग नाभि कवल नही सोधैं, तौ हीरै हीरा कैसैं बेधै ॥
सोलह कला सपूरण छाजा, अनहद कै घरि बाजैं बाजा।
सुषमन कै घरि भया अनंदा, उलटि कवल भेटे गोव्यंदा ॥
मन पवन जब परचा भया, क्यूँ नाले राँपी रस मइया।
कहै कबीर घटि लेहु बिचारी, औघट घाट सींचि ले क्यारी ॥२०२॥

मन का भ्रम मन ही थैं भागा,
सहज रूप हरि खेलण लागा ॥ टेक ॥
मैं तैं तैं मैं ए द्वै नाहीं, आपै अकल सकल घट माँही।
जब थैं इनमन उनमन जाँनाँ, तब रूप न रेप तहाँ ले बाँनाँ ॥
तन मन मन तन एक समाँनाँ, इन अनभै माँहैं मनमाँनाँ ॥
आतमलीन अषंडित राँमाँ, कहै कबीर हरि माँहि समाँनाँ ॥२०३॥

आत्माँ अनंदी जोगी,
पीवै महारस अंमृत भोगी ॥ टेक ॥
ब्रह्म अगनि काया परजारी, अजपा जाप उनमनी तारी ॥
त्रिकुट कोट मैं आसण माँडै, सहज समाधि विषै सब छाँडै ॥
त्रिवेणी बिभूति करै मन मजन, जन कबीर प्रभु अलष निरंजन ॥२०४॥

या जोगिया को जुगति जु बूझै,
राम रमै ताको त्रिभुवन सूझै ॥ टेक ॥
प्रकट कंथा गुपत अधारी, तामैं मूरति जीवनि प्यारी।
है प्रभू नेरै खोजै दूरि, ग्यांन गुफा मे सींगी पूरि ॥
अमर बेलि जो छिन छिन पीवै, कहै कबीर सो जुगि जुगि जीवै ॥२०५॥

सो जोगी जाकै मन मैं मुद्रा,
रात दिवस न करई निद्रा ॥ टेक ॥
मन मैं आँसण मन मैं रहणाँ, मन का जप तप मन सूँ कहणाँ ॥
मन मै षपरा मन मैं सींगी, अनहद बेन बजावै रंगी ॥
पंच परजारि भसम करि भूका, कहै कबीर सो लहसै लंका ॥२०६॥

बाबा जोगी एक अकेला,
जाके तीर्थ व्रत न मेला । टेक ॥
झोली पत्र बिभूति न बटवा, अनहद बेन बजावै ॥
माँगि न खाइ न भूखा सोवै, घर अँगनाँ फिरि आवै ॥
पाँच जना की जमाति चलावै, तास गुरू मैं चेला ॥
कहै कबीर उनि देसि सिधाये, बहुरि न इहि जगि मेला ॥२०७॥

मन के मोहन वीठुला, यह मन लागौ तोहि रे।
चरन कँवल मन मॉनियाँ, श्रौर न भावै मोहि रे॥ टेक॥
पट दल कँवल निवासिया, चहु कौ फेरि मिलाइ रे।
दहुँ के वीचि समाधियाँ, तहाँ काल न पासै आइ रे॥
अष्ट कँवल दल भीतरा, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे।
सतगुर मिलै तौ पाइये, नहिं तौ जन्म अक्यारथ जाइ रे॥
कदली कुसुम दल भीतराँ, तहाँ दस आँगुल का वीच रे।
तहाँ दुवादस खोजि ले जनम होत नही मीच रे॥
वक नालि के अंतरै, पछिम दिसाँ की वाट रे।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे॥
क० गं० ६ (११००-७५)

त्रिवेणी मनाइ न्हवाइए सुरति मिलै जो हाथि रे।
तहाँ न फिरि मघ जोइए सनकादिक मिलिहैं साथि रे॥
गगन गरजि मघ जोइये, तहाँ दीसै तार अनत रे।
विजुरी चमकि घन वरषिहै, तहाँ भीजत हैं सव सत रे॥
षोडस कँवल जव चेतिया, तव मिलि गये श्री वनवारि रे।
जुरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे॥
गुर गमि तैं पाइए झपि मरै जिनि कोइ रे।
तही कवीरा रमि रह्या सहज समाधी सोइ रे॥ ४॥

गोकल नाइक वीठुला, मेरौ मन लागौ तोहि रे।
वहुतक दिन विछुरैं भये, तेरी औसेरि आवै मोहि रे॥ टेक॥
करम कोटि कौ ग्रेह रच्यौ रे, नेह कये की आस रे।
आपहिं आप वँधाइया, द्वै लोचन मरहिं पियास रे॥
आपा पर समि चीन्हिये, दीसै सरव सँमान।
इहि पद नरहरि भेटिये, तूं छाडि कपट अभिमांन रे॥
नाँ कलहूँ चलि जाइये नाँ सिर लीजै भार।
रसनाँ रसहि विचारिये, सारग श्रीरग धार रे॥
साधै सिधि ऐसी पाइये, किंवा होइ महोइ।
जे दिठ ग्याँन न ऊपजै, तौ अहुटि रहै जिनि कोइ रे॥
एक जुगति एकै मिलै किंवा जोग कि भोग।
इन दून्यूं फल पाइये, राँम नाम सिधि जोग रे॥
प्रेम भगति ऐसी कीजिये, मुखि अमृत वरिषै चद रे।
आपही आप विचारिये, तव केता होइ अनद रे॥
तुम्ह जिनि जानौं गीत है, यह निज व्रह्म विचार।
केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे॥
चरन कँवल चित लाइये, राँम नाँम गुन गाइ।
कहै कवीर ससा नही, भगति मुकति गति पाइ रे॥ ५॥

---

(४) ख—जन्म अमोलिक।
(५) ख प्रति मे इसके आगे यह पद है—
अव मैं राम सकल सिधि पाई
आन कहूँ तौ राम दुहाई॥ टेक॥
इह विधि वसि सवै रस दीठा, राम नाँम सा और न मीठा।
और रस ह्वै कफगाता, हरिरस अधिक अधिक सुखराता॥
दूजाँ वणज नही कछू वाषर, राँम नाँम दोऊ तत आपर।
कहै कवीर हरिरस भोगी, ताकौ मिल्या निरजन जोगी॥ ६॥

दीठा है तो कस कहूँ, कह्या न को पतियाइ ।
हरि जैसा है तैसा रहो, तूं हरिषि हरषि गुण गाइ ॥ २ ॥

ऐसा अद्भुत जिनि कथै, अद्भुत राखि लुकाइ ।
वेद कुरानौ गमि नही कह्याँ न को पतियाइ ॥ ३ ॥

करता की गति अगम है, तूं चलि अपणै उनमान ।
धीरै धीरै पाव दे, पहुँचैगे परवान ॥ ४ ॥

पहुँचैगे तव कहैगे, अमडैगे उस ठाँइ ।
अजहूँ वेरा समंद मै, वोलि बिगूचै कांइ ॥ ५ ॥१७७॥

(९) हैरान कौ अंग

पडित सेती कहि रहे कह्या न मानै कोइ ।
ओ अगाध एका कहै, भारी अचिरज होइ ॥ १ ॥

बसे अपडी पड मै, ता गति लपै न कोइ ।
कहै कबीरा सत हो, वडा अचंभा मोहि ॥ २ ॥ १७९॥

(१०) लै कौ अंग

जिहि वन सीह न सचरै, पषि उड़ै नहि जाइ ।
रैनि दिवस का गमि नही, तहाँ कवीर रह्या ल्यौ लाइ ॥ १ ॥

सुरति ढीकुला ले जल्यौ, मन नित ढोलन हार ।
कवल कुवाँ मै प्रेम रस, पीवै वारवार ॥ २ ॥

गंग जमुन उर अंतरै, सहज सुनि ल्यौ घाट ।
तहाँ कवीरै मठ रच्या, मुनि जन जोवै वाट ॥ ३ ॥ १८२ ॥

(११) निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

कवीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौ, वहु गुणियाले कत ।
जे हँसि वोलौ और सौ तौ नील रँगाऊँ दत ॥ १ ॥

नैनाँ अतरि आव तूं, ज्यूं हौ नैन झँपेउँ ।
नाँ हौ देखौ और कूं, नाँ तुझ देखन देऊँ ॥ २ ॥

मेरा मुझ मे कुछ नही, जो कुछ है सो तेरा ।
तेरा तुझकौं सौंपता, क्या लागै मेरा ॥ ३ ॥

कवीर रेख स्यदूर की, काजल दिया न जाइ ।
नैनूं रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ ॥ ४ ॥

(१०—२) ख—मन चित ।

इहि विधि रॉम सूँ ल्यौ लाइ ।
चरन पाषें निरति करि, जिभ्या बिना गुँण गाइ ॥ टेक ॥
जहाँ स्वाँति बूंद न सीप साइर सहजि मोती होइ ।
उन मोतियन मे नीर पोयौ' 'पवन अंबर धोइ ॥
जहाँ धरनि बरषै गगन भीजै, चंद सूरज मेल ।
दोइ मिलि तहाँ जुडन लागे, करता हंसा केलि ॥
एक बिरष भीतरि नदी चाली, कनक कलस समाइ ।
पंच सुवटा आइ बैठे, उदै भई बनराइ ॥
जहाँ बिछट्यो तहाँ लाग्यौ, गगन बैठो जाइ ।
जन कबीर बटाऊवा, जिनि मारग लियौ चाइ ॥२८०॥

तार्थै मोहि नाचबौ, न आवै,
मेरो मन मदला न बजावै ॥ टेक ॥
ऊभर था ते सूभर भरिया, त्रिष्णा गागरि फूटी ।
हरि चिंतत मेरो मंदला भीनौ, भरम भोयन गयौ छूटी ॥
ब्रह्म अगनि मैं जरी जु ममिता, पापड अरु अभिमानाँ ।
काम चोलना भया पुराना, मोपै होइ न आना ॥
जे बहु रूप कीये ते किये, अब बहु रूप न होई ।
थाकी सौज संग के बिछुरे, राम नाँम मसि धोई ॥
जे थे सचल अचल ह्वै थाके, करते वाद विवादं ।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, भ्रूय राम परसादं ॥२८१॥

अब क्या कीजै ग्यान बिचारा,
निज निरखत गत ब्यौहारा ॥ टेक ॥
जाचिग दाता इक पाया धन दिया जाइ न खाया ॥
कोई ले भरि सकै न मूका, औरनि पै जानाँ चूका ।
तिस बाझ न जीव्या जाई, वो मिलै त घालै खाई ॥
वो जोवन भला कहाहीं, बिन मूवाँ जीवन नाहीं ॥
घसि चंदन बनखंडि बारा, बिन नैननि रूप निहारा ।
तिहि पूत बाप इक जाया, बिन ठाहर नगर बसाया ॥
जौ जीवत ही मरि जाँनै तौ पच सयल सुख मानै ।
कहै कबीर सो पाया, प्रभू भेटत आप गँवाया ॥२८२॥

अब मैं पायौ राजा राम सनेही ॥ टेक ॥
जा बिनु दुख पावै मेरी देही ॥ टेक ॥
वेद पुरान कहत जाकी साखी, तीरथि ब्रति न छूटै जंम की पासी ॥

मैं डोरै डोरे जाऊँगा
तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊँगा ।। टेक ।।
सूत बहुत कुछ थोरा, ताथै लाइ ले कथा डोरा ।
कंथा डोरा लागा, तथ जुरा मरण भौ भागा ।।
जहाँ सूत कपास न पूनी, तहाँ बसै इक मूनी ।
उस मूनी सूँ चित लाऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊँगा ।।
मेरे डंड इक छाजा, तहाँ बसै इक राजा ।
तिस राजा सूँ चित लाऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊँगा ।।

जहाँ बहु हीरा धन मोती, तहाँ तत लाइ लै जोती ।
तिस जोतिहिं जोति मिलाऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊँगा ।।
जहाँ ऊगै सूर न चंदा, तहाँ देख्या एक अनंदा ।
उस आनँद सूँ लौ लाऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊँगा ।।
मूल बंध इक पावा, तहाँ सिध गणेश्वर रावाँ ।
तिस मूलहि मूल मिलाऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊँगा ।।
कबीरा तालिब तेरा, तहाँ गोपत हरी गुर मोरा ।
तहाँ हेत हरि चित लाऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊँगा ।।३१।।

संतौ धागा टूटा गगन विनसि गया, सबद जु कहाँ समाई ।
ए ससा मोहि निस दिन व्यापै, कोइ न कहै समझाई ।।टेक।।
नही ब्रह्मंड प्यंड पुनि नाँही, पंचतत भी नाही ।
इला प्यगुला सुखमन नाँही, ए गुण कहाँ समाँही ।।
नही ग्रिह द्वार कछू नही, तहियाँ, रचन हार पुनि नाँही ।
जोवनहार अतीत सदा सगि, ये गुण तहाँ समाँही ।।
तूटै बँधै बँधै पुनि तूटै, तब तब होइ विनासा ।
तब को ठाकुर अब को सेवग, को काकै बिसवासा ।।
कहै कबीर यहु गगन न विनसै, जौ धागा उनमाँनाँ ।
सीखे सुने पढे का होई, जौ नही पदहि समाँना ।।३२।।

ता मन कौ खोजहु रे भाई,
तन छूटे मन कहाँ समाई ।। टेक ।।
सनक सनदन जै देवनाँमी भगति करी मन उनहूँ न जानी ।
सिव विरंचि नारद मुनि ग्यानी, मन की गति उनहूँ नही जानी ।।
धू प्रहिलाद बभीषन सेषा, तन भीतर मन उनहूँ न देषा ।
ता मन का कोइ जानै भेव रंचक लीन भया सुषदेव ।।
गोरष भरथरी गोपीचंदा, ता मन सौं मिलि करैं अनदा ।
अकल निरजन सकल सरीरा, ता मन सौं मिलि रहा कबीरा ।।३३।।

भाई रे विरले दोसत कबीरा के, यहु तत बार बार कासौं कहिए ।
भानण घडण सँवारण सवारण सम्रथ, ज्यूं राषै त्यूं रहिए ।।टेक।।
आलम दुनी सबै फिरि खोजी, हरि बिन सकल अयानाँ ।
छह दरसन छचानवै पापंड, आकुल किनहूँ न जानाँ ।।
जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिग जग बौरानाँ ।
कागद लिखि लिखि जगत भुलानाँ, मनही मन न समानाँ ।।

बाहरि पोजत जनम गँवाया, उनमनी ध्याँन घट भीतरि पाया।
बिन परचै तन कांच कबीरा, परचै कचन भया कबीरा ॥१७॥

हिंडोलनाँ तहाँ झूलैं आतम राँम ।
प्रेम भगति हिंडोलनाँ, सब संतनि कौ विश्राम ॥टेक॥

चंद सूर दोइ खंभवा, बक नालि की डोरि ।
झूलें पच पियारियाँ; तहाँ झूलै जीय मोर ॥

द्वादस गम के अतरा, तहाँ अमृत कौ ग्रास ।
जिनि यह अमृत चापिया, सो ठाकुर हँम दास ॥

सहज सुंनि कौ नेहरौ गगन मडल सिरिमौर ।
दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलैं हिंडोल ॥

अरध उरध की गगा जमुना, मूल कवल कौ घाट ।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी सगम बाट ॥

नाद व्यंद की नावरी, राँम नाम कनिहार ।
कहै कबीर गुंण गाइ ले, गुर गँमि उतरौ पार ॥१८॥

को बीनैं प्रेम लागी री, माई को बीन ।
राँम रसाँइण मातेरी, माई को बीनैं ॥टेक॥

पाई पाई तूँ पुतिहाई, पाई की तुरियाँ बेचि खाई री, माई को बीनैं ॥
ऐसैं पाई पर बिथुराई, त्यूँ रस आँनि बनायौ री, माई को बीनैं ।
नाचैं ताँनाँ नाचै बाँनाँ, नाचै कूंच पुराना री, माई को बीनैं ॥१९॥

मैं बुनि करि सिराँनाँ हो राम,
नालि करम नही, ऊबरे ॥टेक॥

दखिन कूट जब सुनहाँ झूका, तब हम सुगन बिचारा।
लरके परके सब जागत हैं हम घरि चोर पसारा हो राँम ॥

ताँनाँ लीन्हाँ बाँनाँ लीन्हाँ, लीन्हें गोड के पऊवा।
इत उत चितवत कठवन लीन्हाँ, माँस चलवना डऊवा हो राम।

एक पग दोई पग त्रेपग, सँध सधि मिलाई ।
करि परपंच मोट बँधि आये, किलिकिलि सबै मिटाई हो राँम ॥

ताँनाँ तनि करि बाँनाँ बुनि करि, छाक परी मोहि ध्याँन ।
कहै कबीर मैं बुनि सिराँना जानत है भगवाँनाँ हो राम ॥

तननाँ बुनना तज्या कबीर,
राँम नाँम लिखि लिया शरीर ॥टेक॥

जब लग भरौं नली का बेह, तब लग टूटै राँम सनेह ॥

नरहरि सहजैं ही जिनि जॉना ।

गत फल फूल तत तर पलव, अंकूर बीज नसाँनाँ ।। टेक ।।

प्रकट प्रकास ग्याँन गुरगमि थैं, ब्रह्म अगनि प्रजारी ।
ससि हरि सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी ।
उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेर डंड सरपूरा ।।
गगन गरजि मन सूंनि समाँनाँ, बाजे अनहद तूरा ।
सुमति सरीर कबीर बिचारी, त्रिकुटी संगम स्वामी ।।

पद आनद काल थैं छूटैं, सुख मैं सुरति समाँनी ।। ७ ।।

मन रे मन ही उलटि समाँना ।

गुर प्रसादि अकलि भई तोकौं नहीं तर था बेगाँनाँ ।। टेक ।।

नेड़ैं थैं दूरि दूर थैं नियरा, जिनि जैसा करि जाना ।
औ लौ ठीका चढया बलीडैं, जिनि पीया तिनि माना ।।
उलटे पवन चक्र षट बेधा, सुंनि सुरति लै लागी ।
अमर न मरै मरै नहीं जीवे, ताहि खोजि बैरागी ।।
अनभै कथा कवन सो कहिये, है कोई चतुर बिबेकी ।

कहै कबीर गुर दिया पलीता, सौ झल बिरलै देखी ।। ८ ।।

इहि तत राम जपहु रे प्रांनी, बुझौ अकथ कहाँणी ।

हरि का भाव होइ जा ऊपरि जाग्रत रैंनि बिहानी ।। टेक ।
डाँइन डारै, सुनहाँ डोरै, स्यघ रहै बन घेरै ।
पंच कुटंब मिलि झूझन लागे, बाजत सबद संघेरै ।।
रोहै मृग ससा बन घेरे, पारधी बाँण न मेलै ।
सायर जलै सकल बन दाझै, मछ अहेरा खेलै ।।
सोई पंडित सो तत ज्ञाता, जो इहि पदहि बिचारै ।

कहै कबीर सोइ गुर मेरा, आप तिरै मोहि तारै ।। ९ ।

अवधू ग्यान लहरि धुनि माँडी रे ।

सबद अतीत अनाहद राता, इहि बिधि त्रिष्णाँ षाँडी ।। टेक ।
बन कै ससै समंद घर कीया, मंछा बसै पहाड़ी ।
सुई पीवैं बांम्हण मतवाला, फल लागा बिन बाड़ी ।
षाड बुणैं कोली मैं बैठी, मैं खूंटा मैं गाढी ।
ताँणे बाणे पडी अनँवासी, सूत कहै बुणि गाढी ।।
कहै कबीर सुनहु रे संतो, अगम ग्याँन पद माँही ।
गुर प्रसाद सुई कै नाँकै, हस्ती आवै जाँही ।। १० ।

यहु रस पीवै गूंगा गहिला, ताकी कोई न बूझै सार रे।
कहै कबीर महा रस महँगा, कोई पीवैगा पीवणहार रे ॥७१॥

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ्या मगन रस पीवै त्रिभवन भया उजियारा॥ टेक॥
गुड करि ग्यान ध्यांन कर महुवा भव भाठी करि भारा।
सुषमन नारी सहजि समानी, पीयै पीवनहारा॥
दोइ पुड जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महा रस भारी।
काम क्रोध दोइ किया पलीता, छूटि गई संसारी॥
सुनि मंडल मैं मंदला बाजै, तहाँ मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनां काछै॥
पूरा मिल्या तबै सुष उपज्यौ, तन की तपनि बुझानी।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी ॥७२॥

छाकि परचो आतम मतिवारा,
पीवत रांम रस करत बिचारा॥ टेक॥
बहुत मोलि महँगे गुड पावा, लै कसाव रस रांम चुवावा॥
तन पाटन मैं कीन्ह पसारा, माँगि माँगि रस पीवै बिचारा।
कहै कबीर फाबी मतिवारी, पीवत राम रस लगी खुमारी॥७३॥

बोलौ भाई राम की दुहाई।
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अघाई॥ टेक॥
इला प्यंगुला भाठी कीन्ही ब्रह्म अगनि परजारी।
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी॥
मन मतिवाला पीवै रांम रस, दूजा कछू न सुहाई।
उलटी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई॥
पंच जने सो संग करि लीन्हे, चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी॥
सहज सुंनि मैं जिनि रस चाप्या; सतगुर थै सुधि पाई।
दास कबीर इही रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई॥७४॥

---

(७१) ख—चंद सूर दोइ किया पयाना।
उनमनि चढ्या महारस पीवै,
(७२) ख—पूरा मिल्या तबै सुष उपनां।

बोलनाँ का कहिये रे भाई
बोलत बोलत तत नसाई ॥ टेक ॥

बोलत बोलत बढ़ै विकारा, बिन बोल्याँ क्यूँ होइ विचारा ॥
संत मिलै कछु कहिये कहिये, मिलै असंत मुष्टि करि रहिये ॥
ग्याँनी सूँ बोल्या हितकारी मूरिख सूँ बोल्याँ झष मारी ॥
कहै कबीर आधा घट डोलै, भर्‌या होइ तौ मुषाँ न बोलै ॥६७॥

बागड देस लूचन का घर है,
तहाँ जिनि जाइ दाझन का डर है ॥ टेक ॥

सब जग देखौ कोई न धीरा, परत धूरि सिरि कहत अबीरा ॥
न तहाँ तरवर न तहाँ पाँणी, न तहाँ सतगुरु साधू बाँणी ॥
न तहाँ कोकिला न तहाँ सूवा, ऊँचै चढि चढ़ि हंसा मूवा ॥
देश मालवा गहर गंभीर डग डग रोटी पग पग नीर ॥
कहै कबीर घरही मन मानाँ, गूंगै का गुड गूंगै जानाँ ॥६८॥

अवधू जोगी जग थैं न्यारा ।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा ॥ टेक ॥

बसै गगन मैं दुनी न देखै, चेतनि चौकी बैठा ।
चढि अकास आसण नही छाड़ै, पीवै महा रस मींठा ॥
परगट कंथाँ माहै जोगी दिल मैं दरपन जोवै ।
सहँस इकीस छ सै धागा, निहचल नाकै पोवै ॥
ब्रह्म अगनि मैं काया जारै; त्रिकुटी संगम जागै ।
कहै कबीर सोई जोगेश्वर, सहज सुंनि ल्यौ लागै ॥६९॥

अवधू गगन मंडल घर कीजै ।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंक नालि रस पीजै ॥ टेक ॥

मूल बाँधि सर गगन समाना, सुखमन यो तन लागी ।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तहाँ जोगणी जागी ॥
मनवाँ जाइ दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा ।
कहै कबीर जिय संसा नाँही, सबद अनाहद बागा ॥७०॥

कोई पीवै रे रस राम नाम का, जो पीवै सो जोगी रे ।
संतौ सेवा करौ राम की, और न दूजा भोगी रे ॥ टेक ॥

यहु रस तौ सब फीका भया, ब्रह्म अगनि परजारी रे ।
ईश्वर गौरी पीवन लागे, रांम तनी मतिवारी रे ॥
चंद सूर दोइ भाठी कीन्ही सुषमनि चिगवा लागी रे ।
अमृत कूँ पी साँचा पुरया, मेरी त्रिष्णाँ भागी रे ॥

यहु रस पीवै गूंगा गहिला, ताकी कोई न बूझै सार रे।
कहै कबीर महा रस महँगा, कोई पीवेगा पीवणहार रे ।।७१।।

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ्या मगन रस पीवै त्रिभवन भया उजियारा ।। टेक
गुड करि ग्यान ध्यांन कर महुवा भव भाठी करि भारा।
सुषमन नारी सहजि समानी, पीयै पीवनहारा ।।
दोइ पुड जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महा रस भारी।
काम क्रोध दोइ किया पलीता, छूटि गई संसारी ।।
सुनि मडल मैं मंदला बाजै, तहाँ मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनां काछै ।।
पूरा मिल्या तबै सुष उपज्यौ, तन की तपनि बुझानी।
कहै कबीर भवबधन छूटै, जोतिहि जोति समानी ।।७२

छाकि परचो आतम मतिवारा,
पीवत रांम रस करत बिचारा ।। टेक ।।
बहुत मोलि महँगे गुड पावा, लै कसाव रस रांम चुआवा ।।
तन पाटन मैं कीन्ह पसारा, मांगि मांगि रस पीवै बिचारा।
कहै कबीर फाबी मतिवारी, पीवत राम रस लगी खुमारी ।।७३

बोलौ भाई राम की दुहाई।
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अघाई ।। टेक
इला प्यगुला भाठी कीन्ही ब्रह्म अगनि परजारी।
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी ।।
मन मतिवाला पीवै रांम रस, दूजा कछू न सुहाई।
उलटी गग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई ।।
पच जने सो सँग करि लीन्हे, चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ।।
सहज सुनि में जिनि रस चाष्या; सतगुर थैं सुधि पाई।
दास कबीर इही रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई ।।७४

---

(७१) ख--चद सूर दोइ किया पयाना।
उनमनि चढ्या महारस पीवै,
(७२) ख--पूरा मिल्या तबै सुष उपनां।

6.5.2.8 अमरवारूणी

1	अमीरस	नीझर झरै अमीरस निकसै, पृ० 104, पद 155

2	अमर बेलि	अमर बेलि जो छिन-छिन पीवै, पृ० 118, पद 205
3	अमृत	गगन गरजि अमृत चवै, पृ० 12, साखी 40
		अमृत बरसै हीरा निपजै, पृ० 12, साखी 47
		तहाँ अमृत कौ ग्रास, पृ० 74, पद 18
		अमृत कूँ पी साँचा पुरया, पृ० 85, पद 71
		अमृत झरै सदा सुख उपजै, पृ० 85, पद 70
		तहुँवा चबे अमृत रस नीझर, पृ० 103, पद 153
		बाझ पिय लैं अमृत सोख्या, पृ० 106, पद 162
		पीवै महारस अमृत भोगी, पृ० 118, पद 204
		अमृत झरैं ब्रह्म परकासै, पृ० 119, पद 209
4	घन बरषि	बिजुरी चमकि घन बरषिहै, पृ० 70, पद 4
5	छछि	माषी छछि हारी, पृ० 88, पद 80
6	जल	हरषि हरषि जल पीवै कबीर, पृ० 101, पद 140
7	दूध	बछा दूध उतारै, पृ० 106, पद 161
8	नीर	उपरि नीर ले ज तलि हारी, पृ० 101, पद 140
9	पानी	पाँणी पीया चच बिन, पृ० 11, साखी 20
		ताका पाँणीं को हंसा पीवै, पृ० 12, साखी 45
10	महारस	पीवै महारस मीठा, पृ० 85, पद 69
		धरणि महारस चाष्या, पृ० 106, पद 162
11	मधु	गगन गुपत मधुकर मधु पीवत, पृ० 108, पद 168
12	रस	कँवल कुवाँ मैं प्रेम रस, पृ० 14, साखी 2, लै कौ अंग
		नीझर झरै रस पीजिए, पृ० 69, पद 4
		यहु रस पीवै गूँगा गहिला, पृ० 86, पद 71
		मगन रस पीवै त्रिभवन भया उजियारा, पृ० 86, पद 72

3	असमान	धरनी अरू असमान बिचि, पृ० 42, साखी 11, मधि कौ अंग
		ऊँचा चढ़ि असमान कू, पृ० 62, साखी 4, उपजणि कौ अंग
4	ऊँचा बिरष	ऊँचा बिरष अकासि फल , पृ० 54, साखी 17, सूरा तन कौ अंग
5	ऊँचा टीबा	ऊँचे टीबे मंछ बसत है, पृ० 110, पद 176
6	खिड़की	तिह सिल ऊपर खिड़की और, पृ० 251, पद 207, परि०
7	गगन मंडल	गगन मँडल आसण किया, पृ० 60, साखी 3
		सहज सुँनि कौ नेहरौ गगन मंडल सिरिमौर, पृ० 74, पद 18
		अवधु गगन मंडल घर काजै, पृ० 85, पद 70
8	गगन	मन लागा उन्मन्न सौं, गगन पहुँचा जाइ, पृ० 10, साखी 15
		पंषि उडाणी गगन कूँ, पृ० 11, साखी 20, परचा कौ अंग
		गगन दमाँमा बाजिया, पृ० 54, साखी 6, सूरा तन कौ अंग
		सिकली जीन गगन दौराऊँ, पृ० 75, पद 25
		संतौ धागा टूटा गगन बिनसि गया, पृ० 77, पद 32
		बसै गगन मैं दुनीं न देखैं, पृ० 85, पद 69
		अनहद बेन बजाइ करि रह्यौं गगन मठ छाई, पृ० 96, पद 121
		साधै तीर पतालं कूँ फिरि गगनहि मारै, पृ० 103, पद 154
		गगन गुपत मधुकर मधु पीवत, पृ० 108, पद 168
		जहाँ धरनि बरषै गगन भीजै, पृ० 137, पद 280
		गगन नगरि इक बूँद न बर्षे, पृ० 213, पद 57
		फैसाले गगन मझार, पृ० 235, पद 145
9	गढ़	क्यूँ लीजै गड़ बंका आई, पृ० 156, पद 359
		अगम दुर्गम गढ़ रचियौ बास, पृ० 204, पद 16, परि०
10	घर	बैलहि डारि गूँनि घरि आई, पृ० 72, पद 11
		बाहर बैल गोनि घर आई, पृ० 232, पद 135
11	छींका	काटी कूटि मछली, छींकै धरी चहोड़ि, पृ० 23, साखी 24
12	पहाड़ी	मंछा बसै पहाड़ी, पृ० 72, पद 10
13	बन	जिहि बन सोह न संचरै, पृ० 14, साखी 1, लै कौ अंग

कबीर ग्रन्थावली श्यामसुन्दर दास

14	मेरू	उलटी गंग मेर कूँ चली, पृ० 150, पद 329
15	मंदिर	मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, पृ० 110, पद 175
16	मानसरोवर	कबीर हीरा बणजिया, मानसरोवर तीर, पृ० 3, साखी 29
17	लंका	कहै कबीर सौ लहसै लंका, पृ० 118, पद 206
18	व्योम	वसुधा व्यौम बिरकत रहै, पृ० 42, साखी 3, मधि कौ अंग
19	सिषर(शिखर)	जन कबीर का सिषर घर, पृ० 24, साखी 7
20	सिव नगरी	सिव नगरी घर मेरा, पृ० 115, पद 196
21	सासरै	जेठी धीय सासरे पठवौ, पृ० 75, पद 22
22	सुन्नि मंडल	सुनि मंडल मैं पुरिष एक, पृ० 52, साखी 7
		सुनि मंडल मैं धरौं धियाँन, पृ० 149, पद 326
		सुनि मंडल मैं मँदला बाजै, पृ० 86, पद 72
23	सुन्य सरोवर	सुन्य सरोवरि पावहु सुक्ख, पृ० 231, पद 134
24	सूनै	सूनै बूँद बिकाई रे, पृ० 87, पद 76
25	सुंनि	गगन गरजि मन सुंनि समाना, पृ० 71, पद 7
		सुनि सुरति लै लागि, पृ० 71, पद 8
		सुन्नि सिषर गढ़ माँहि, पृ० 10, साखी 8, परचा कौ अंग
		किया सुन्नि असनान, पृ० 10, साखी 11, परचा कौ अंग

शून्य या सहस्त्रार चक्र संबंधी प्रतीकों के देखने से पता चलता है कि कबीर ने इनके लिए आकाश संबंधी शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। यथा--आकाश, गगन, आसमान, अंबर, गगनमंडल, व्योम आदि।

6.5.2 योगपरक प्रतीक

6.5.2.1 कुण्डलिनी

1	अनल	अनल अकाँसा घर किया, पृ० 42, साखी 3, मधि कौ अंग
2	उल्टी कूची	उलती कूची लागि किंवारा, पृ० 109, पद 171
3	ऊघट	ऊघट चले सु नगरि पहुँचे, पृ० 110, पद 175
4	जोनणी (जोगड़ी)	तह जोनणीं जागी, पृ० 85, पद 70
5	जेठी धीय	जेठी धीय सासरे पठवौ, पृ० 75, पद 22
6	धरती	धरती उलटि अकासहि ग्रसै, पृ० 106, पद 162
		जहाँ धरनि बरसै गगन भीजै, पृ० 137, पद 280

7	नागिनी	सोवत नागिनी जागी, पृ० 86, पद 74
8	नदी	एक बिरष भीतरि नदी चाली, पृ० 137, पद 280
9	पनिहारी	आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि, पृ० 12, साखी 45
		कैसे नीर भरे पनिहारी, पृ०101, पद 140
10	बंबई (बांबी)	बंबई उलटि शरप कौं लागी, पृ० 106, पद 162
11	बस्त(वस्तु)	बस्त भाव है सोई, पृ० 75, पद 23
12	बाँझ	बांझ पिय लै अमृत सोख्या, पृ० 106, पद 162
13	बिजली	बिजली चमकै होइ अनंद, पृ० 204, पद 16, परि०
14	मछली	मछली चढ़ै खजूरि, पृ० 12, साखी 46, परचा कौ अंग
		जल की मछुली तरवर ब्याई, पृ० 232, पद 135, परि०
15	मंछी	मंछी रूषाँ चढ़ि गई, पृ० 9, साखी 10 , ग्यान बिरह कौ अंग
16	राँड	ह्वै रथ चढ़ि गयौ राँड कौ करहा, पृ० 87, पद 76
17	ससा	ससा बसे जल माँही, पृ० 110, पद 176
		ससा फिरे अकासा, पृ० 110, पद 177
18	समंद	समंद अकासा धावा, पृ० 72, पद 12

6.5.2.2 शून्य या सहस्त्रार चक्र

1	आकाश	आकसे मुखि औंधा कुवाँ, पृ० 12, साखी 45
		कबीर मन पंषी भया, बहुतक चढ़या अकास, पृ० 23, साखी 25
		अनल अकाँसा घर किया, पृ० 42, साखी 3, मधि कौ अंग
		आँगणि बेलि अकासि फल, पृ० 68, साखी 4, बेलि कौ अंग
		समंद अकासा धावा, पृ० 72, पद 12
		चढ़ि अकास आसण नहीं छाड़ै, पृ० 85, पद 69
		धरती उलटी अकासहि ग्रसै, पृ० 106, पद 162
		ससा फिरे अकासा, पृ० 110, पद 177
		धरती उलटि अकासहि मिली, पृ० 150, पद 329
2	अंबर	ऐसा अंबर चीन्हौ रे भाई, पृ० 101, पद 141
		अंबर बरसै धरती भीजै, पृ० 106, पद 162

6.5.2.6 सुषुम्ना नाडी

1	कदली	कदली कवल प्रकास, पृ० 12, साखी 40
		कदली कुसुम दल भीतराँ, पृ० 69, पद 4
		कदली पुहुप दीप परकास, पृ० 149, पद 328
		कदली पुहुप धूप परगास, पृ० 204, पद 16, परि०
2	खजूरि	मछली चढ़ै खजूरि, पृ० 12, साखी 46
3	घर एक	दहू किया घर एक, पृ० 10, साखी 10
4	तरवर	जल की मछली तरवर ब्याई, पृ० 72, पद 11
5	बंकनाल	बंक नालि के अंतरै, पृ० 69, पद 4

कबीर ग्रन्थावली

श्यामसुन्दर दास

		चंद सूर दोइ खंभवा, बंकनाल की डोर, पृ० 74, पद 18
		बंक नालि रस पीजै, पृ० 85, पद 70
		बंकनालि जे संमि करि राखै, पृ० 105, पद 157
		बंक नालि रस खाया, पृ० 119, पद 209
6	बबूर	बबूर की डरियाँ बनसी लै हूँ, पृ० 110, पद 177
7	बिरष	एक बिरष भीतरि नदी चाली, पृ० 137, पद 280
8	शरप	बंबई उलटि शरप कौं लागी, पृ० 106, पद 162

6.5.2.7 ब्रह्मरन्ध्र

1	औंधा कुवाँ	आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पृ० 12, साखी 45
2	कूवा/कूवटा	बन की हिरनी कूवै बियानी, पृ० 110, पद 177
		कूवटा तलि भरि पाँणी, पृ० 117, पद 202
3	कँवल कुआ	कँवल कुवाँ मैं प्रेम रस, पृ० 14,साखी 2, लै कौ अंग
4	देहरी	नींव बिहूणाँ देहुरा, पृ० 12, साखी 41
		देवल माँहैं देहुरी, पृ० 12, साखी 42
5	दुकान	तहुँआँ एक दुकाँन रच्यो हैं, पृ० 103, पद 153
6	दसवाँ द्वार	खिड़की ऊपर दसवा द्वार, पृ० 251, पद 207, परि०
		दसवैं द्वारि लागि गई तारी, पृ० 135, पद 273
		मन मंजन करि दसवैं द्वारि, पृ० 148, पद 326
7	बनारस गांऊ	माँझ बनारस गाऊँ रे, पृ० 205, पद 18
8	भँवर गुफा	भँवर गुफा के घाट रे, पृ० 69, पद 4
		जब लग भँवर गुफा नहीं जानैं, पृ० 117, पद 202
9	मकड़ी धरि	मकड़ी धरि माषी छछि हारी, पृ० 88, पद 80
10	स्यंभदुवार	सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभदुवार, पृ० 11, साखी 22

6.5.2.4 इड़ा

1	गंगा	गंग जमुन उर अंतरै, पृ० 14,साखी 3, लै कौ अंग
		गंग तीर मोरी खेती बारी, पृ० 73, पद 14
		अरध उरध की गंगा जमुना, पृ० 74, पद 18
		गंगा जमुना सधि बिचारि, पृ० 148, पद 326
		उलटी गंगा जमुन मिलावौ, पृ० 233, पद 140, परि०
2	चंद	सूर समाँणौं चंद में, पृ० 10, साखी 10, परचा कौ अंग
		चंद सूर दोइ भाठी कीन्हीं, पृ० 85, पद 71
		चंद सूर दोइ तूँबा करिहूँ, पृ० 115, पद 196
		चंद सूर दोऊ पाँणति करिहैं, पृ० 120, पद 214
		चंद सूरज मेल, पृ० 137, पद 280
		चंद सूर दोइ साखी, पृ० 139, पद 288
		चंद सूर दोइ खंभवा, पृ० 74, पद 18
		चंद सूर बिचि तारी लावा, पृ० 169, रमैणी 1
3	पछिम दिसा	पछिम दिसा उठै धूरि, पृ० 12, साखी 46
		पछिम दिसाँ की बाट रे, पृ० 69, पद 4
4	ससि	रवि ससि पवनाँ मेल बंधि, पृ० 148, पद 325
5	ससिहर	ससि हरि सूर दूर दूंतर, पृ० 71, पद 7
		ससिहर सूर द्वार दस मूँदे, पृ० 86, पद 74
		ससिहर सूर गरासै, पृ० 106, पद 162
		ससिहर सूर मिलावा, पृ० 109, पद 173

		ससिहर कै घरि सूर न आनैं, पृ० 117, पद 202
		ससिहर उलटि राह कौं गहै, पृ० 150, पद 329
6	सुरति	सुरति समांणी निरति मैं, पृ० 11, साखी 22, परचा कौ अंग

6.5.2.5 पिंगला

1	जमुना	गंग जमुन उर अंतरै, पृ० 14, साखी 3, लै कौ अंग
		गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहानाँ, पृ० 73, पद 14
		अरध उरध की गंगा जमुना, पृ० 74, पद 18
		गंगा जमुना सधि बिचारि, पृ० 148, पद 326
		उलटी गंगा जमुन मिलावौ, पृ० 233, पद 140, परि०
2	निरति	सुरति समांणी निरति मैं निरति रही निरधार, पृ० 11, साखी 22
3	रवि	रवि ससि पवनाँ मेल बंधि, पृ० 148, पद 325
4	सूरज(सूर)	सूर समाँणौ चंद मे, पृ० 10, साखी 10, परचा कौ अंग
		चंद सूर दोइ भाठी कीन्ही, पृ० 85, पद 71
		चंद सूर दोइ तूँबा करिहूँ, पृ० 115, पद 196
		चंद सूरज मेल, पृ० 137, पद 280
		चंद सूर दोइ साखी, पृ० 139, पद 288
		चंद सूर दोइ खंभवा, पृ० 74, पद 18
		चंद सूर दोऊ पाँणति करिहैं, पृ० 120, पद 214

6.5.2.9 मूलाधार चक्र

1	जल	ससा बसे जल माँहीं, पृ० 110, पद 176 जल की मछुली तरवर ब्याई, पृ० 232, पद 135, परि०

2	तल	ऊपरि कूवटा तलि भरि पाँणी, पृ० 117, पद 202 तल का ब्रह्म ले गगन चरावै, पृ० 235, पद 146, परि०
3	धरती	धरती अरू असमान बिचि, पृ० 42, साखी 11, मधि कौ अंग अंबर बरसै धरती भीजै, पृ० 106, पद 162 धरती उलटि अकासहिं मिली, पृ० 150, पद 329 धरती जलहर सोख्या, पृ० 225, पद 108, परि०
4	पाताल	पाताले पनिहारि, पृ० 12, साखी 45, परचा कौ अंग कंकर कूई पतालि पनियाँ, पृ० 87, पद 76 साँधे तीर पताल कूँ, पृ० 103, पद 154
5	बसुधा	बसुधा व्यौम बिरकत रहै, पृ० 42, साखी 3, मधि कौ अंग
6	मूल दुआर	मूल दुआरे बंध्या बंधु, पृ० 251, पद 207
7	मूल बंध	मूल बंध इक पावा, पृ० 77, पद 31

6.5.3 संख्यामूलक प्रतीक

'संख्यामूलक प्रतीक वे शब्द हैं, जिनका एक, दो, तीन आदि विभिन्न संख्याओं की सहायता से निर्माण होता है।....इन प्रतीकों और उनके द्वारा संकेतित विषयों में संख्या की समानता के अतिरिक्त अन्य कोई सादृश्य नहीं होता। यही कारणहै कि इनका अर्थ प्रायः अनुमान सापेक्ष तथा प्रसंग पर निर्भर होता है।' 1

कबीर काव्य में संख्यामूलक प्रतीकों का प्रयोग बहुतायत में हुआ है। यहाँ संदर्भ और अर्थ सहित इन विशेष संख्यामूलक प्रतीकों की सूची दी रही है--

6.5.3.1 एक

	प्रतीक	अर्थ	संदर्भ
1	एक	ब्रह्म (अद्वैत)	एक समाना एक, पृ० 196, साखी 130, परि० अजरा अमर एक अस्थाना, पृ० 181, रमैणी 5 जे मन लागै एक सूँ, पृ० 15, साखी 12, निहकर्मी पतिब्रता कौ अंग जिन दिल बंधी एक सूँ, पृ० 15, साखी 13, निहकर्मी पतिब्रता कौ अंग

1. कबीर-काव्य में प्रतीक-विधान, डॉ० ब्रह्मजीत गौतम, पृष्ठ 206

46	मानसरोवर	शून्य सरोवर	कबीर हीरा बणजिया मानसरोवर तीर, पृ० 3, साखी 29
			मानसरोवर सुभर जल, पृ० 12, साखी 39
47	मेरु	शून्य सरोवर	उलटी गंग मेर कूँ चली, पृ० 150, पद 329
48	रैन	अज्ञानता	ऊपरि जाग्रत रैनि बिहानी, पृ० 72, पद 9
		युवावस्था	रैनि गई मति दिन भी जाइ, पृ० 226, पद 111, परि०
49	रात	मृत्यु	पीछैं पड़िहैं राति, पृ० 22, साखी 13
50	लकड़ी	जीवात्मा	दौं की दाधी लाकड़ी, पृ० 57, साखी 10
51	लहर	जीवात्मा	केति लहरि समंद की, पृ० 39, साखी 11
52	विष	विकारादि	विष की क्यारी बोइ करि, पृ० 22, साखी 5
			स्यूँ सरपै विष खाइ, पृ० 66, साखी 9
53	वसुधा	मूलाधार चक्र	बसुधा ब्यौम बिरकत रहै, पृ० 42, साखी3,
			लांबि कौ अंग
54	समंद	परमात्मा	बूँद समानी समंद मैं, पृ० 13, साखी 3, लांबि कौ अंग
			केति लहरि समंद की, पृ० 39, साखी 11
		कुण्डलिनी	समंद आकासा धावा, पृ० 72, पद 12
55	समंदर	सद्‌गुरु	कबीर समुँद न छोड़ियै, पृ० 197, साखी 148, परि०
		संसार	समंदर लागी आगि, पृ० 9, साखी 10
		या हृदय	
56	सरोवर	शरीर	तेरे ही नालि सरोवर पानी, पृ० 84, पद 64

57	ससि/ससिहर	इंगलानाड़ी	रवि ससि पवनाँ मेल बंधि, पृ० 148, पद 325
			ससि हरि सूर दूर दूरंतर, पृ० 71, पद 7
			ससि हर सूर द्वार दस मूँदे, पृ० 86, पद 74
			ससिहर सूर गरासै, पृ० 106, पद 162
			ससिहर सूर मिलावा, पृ० 109, पद 173
			ससिहर कै घरि सूर न आनैं, पृ० 117, पद 202
			ससिहर उलटि राह कौं गहै, पृ० 150, पद 329
58	सायर	हृदय	सायर फोड़ि नीर मुकलाऊँ, पृ० 115, पद 196
		संसार	सायर माँहि ढंढोलताँ, पृ० 12, साखी 34
			नलनी सायर घर किया, पृ० 26, साखी 22
			सायर चढ़या कलंक, पृ० 27, साखी 30
			सायर उतरौं पंथ सँवारौ, पृ० 92, पद 102
59	सिखर	शून्य चक्र	जन कबीर का सिषर घर, पृ० 24, साखी 7
60	सीप	आत्मा	कबीर सीप समंद की, पृ० 15, साखी 5
61	सूर (सूर्य)	पिंगला नाड़ी	सूर समाँणौ चंद में, पृ० 10, साखी 10
			चंद सूर दोइ भाठी कीन्ही, पृ० 85, पद 71
			चंद सूर दोइ तूँबा करिहूँ, पृ० 115, पद 196
			चंद सूर दोऊ पाँणति करिहैं, पृ० 120, पद 214
			चंद सूरज मेल, पृ० 137, पद 280
			चंद सूर दोइ साखी, पृ० 139, पद 288
			चंद सूर दोइ खंभवा, पृ० 74, पद 18
62	स्वाति बूँद	ब्रह्म	स्वाँति बूंद की आस, पृ० 15, साखी 5
63	हिम	आत्मा	पाँणीं ही तै हिम भया, पृ० 10, साखी 17

13	गंगा	इड़ा नाड़ी	गंग जमुन उर अंतरै, पृ० 14, साखी 3
			गंग तीर मोरी खेती बारी, पृ० 73, पद 14
			अरध उरध की गंगा जमुना, पृ० 74, पद 18
			गंगा जमुना सधि बिचारी, पृ० 148, पद 326
			उलटी गंगा जमुन मिलावौ, पृ० 223, पद 140, परि०
14	गगन	शून्य चक्र	गगन पहुँचा जाइ, पृ० 10, साखी 15

			पंषि उडाणी गगन कूँ, पृ० 11, साखी 20
			गगन दमाँमा बाजिया, पृ० 54, साखी 6
			सिकली जीन गगन दौराऊँ, पृ० 75, पद 25
			संतौ धागा टूटा गगन बिनसि गया, पृ० 77, पद 32
			बसै गगन मैं दुनीं न देखै, पृ० 85, पद 69
			रह्यों गगन मठ छाई, पृ० 96, पद 121
			साधै तीर पताल कूँ फिरि गगनहि मारै, पृ० 103, पद 154
			गगन गुपत मधुकर मधु पीवत, पृ० 108, पद 168
			धरनि बरषै गगन भीजै, पृ० 137, पद 280
			गगन नगरि इक बूँद न बर्षे, पृ० 213, पद 57
			फैसाले गगन मझार, पृ० 235, पद 145
15	घाटी	भक्ति-पथ	घाटी चढ़त बैल इक थाका, पृ० 233, पद 39, परि०
16	चाँद	इड़ा-नाड़ी	सूर समाँणी चंद में, पृ० 10, साखी 10
			चंद सूर दोइ भाठी कीन्ही, पृ० 85, पद 71
			चंद सूर दोऊ तूँबा करिहूँ, पृ० 115, पद 196
			चंद सूर दोऊ पाँणति करिहैं, पृ० 120, पद 214
			चंद सूरमेल, पृ० 137, पद 280
			चंद सूर दोइ साखी, पृ० 139, पद 288
			चंद सूर दोइ खंभवा, पृ० 74, पद 18
			चंद सूर बिचि तारी लावा, पृ० 169, रमैंणी 1
			रवि ऊपर गहि राख्या चंदु, पृ० 251, पद 207, परि०
		अल्पज्ञ	चंद बड़ाई खाइ, पृ० 29, साखी 16
17	चंदन	आत्मा	घसि कुंकम चंदन गारया, पृ० 222, पद 94, परि०
18	जंगल	संसार	या जंगल मैं पाँचौ मृगा, पृ० 155, पद 353
19	जमुना	पिंगला नाड़ी	गंग जमुन उर अंतरै, पृ० 14, साखी 3
			जमुन तीर खरिहानाँ, पृ० 73, पद 14
			अरध उरध की गंगा जमुना, पृ० 74, पद 18

			गंगा जमुना सधि बिचारि, पृ० 148, पद 326
			उलटी गंगा जमुन मिलावौ, पृ० 233, पद 140, परि०
20	जल	मूलाधार चक्र	ससा बसे जल माँही, पृ० 110, पद 176
			जल की मछुली तरवर ब्याई, पृ० 232, पद 135, परि०
		ब्रह्म	जलि जाई थलि ऊपजी, पृ० 72, पद 13
			जल मैं उतपति जल मैं बास, पृ० 84, पद 64

6.5.3.(10) नौ

1	नवगज	नौ द्वार /नौ द्रव्य	नव गज दस गज गज उननींसा, पृ० 115, पद 193
2	नवग्रह	नौ द्वार	नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, पृ० 106, पद 162
3	नवडाडी	नौ नाड़ियाँ	नव डाडी दस मुसंफ धावहि, पृ० 207, पद 30, परि०
4	नवघर	नौ द्वार	नव घर देखि जु कामिनि, पृ० 248, पद 195, परि०
5	नवनायक	पाँच प्राण और चार अंत:करण	नव नायक की भगति पछाने, पृ० 211, पद 46, परि०
6	नव बहियाँ	नौ नाडियाँ	नव बहियाँ दस गौनि आहि, पृ० 162, पद 383
7	नौ मन सूत	कर्मजाल	नौ मन सूत उरझि नहीं सुरझे, पृ० 126, पद 238 नौ मण सूत अलूझिया, पृ० 43, साखी 5
8	नव दरवाजे	नौ द्वार	नव दरवाजे दसूँ दुवार, पृ० 79, पद 42 नगरी एकै नव दरवाजे, पृ० 245, पद 181, परि०

6.5.3.(11) दस

1	दसवाँ द्वार	ब्रह्मरन्ध्र	दसवाँ द्वार देहुरा, तामै जोति पिछाँणि, पृ० 35, साखी 10 दसवैं द्वारि लागि गई तारी, पृ० 135, पद 273 मन मंजन करि दसवैं द्वारि, पृ० 148, पद 326 खिड़की ऊपर दसवा द्वार, पृ० 251, पद 207, परि०
2	दसवैं	ब्रह्मरन्ध्र	दसवें तत्व समाई, पृ० 248, पद 195, परि०
3	दस द्वार	शरीर के दस छिद्र	पंच चोर दस द्वार, पृ० 16, साखी 7
4	दसूँ दुवार	शरीर के दस छिद्र	रूँधै दसूँ दुवार, पृ० 5, साखी 26, सुमिरण कौ अंग नव दरवाजे दसूँ दुवार, पृ० 79, पद 42

5	दस गज	दस वायु	नव गज दस गज गज उननींसा, पृ० 115, पद 193
6	दसै बंद	दस वायु/दस इंद्रियाँ	मिरतक भये दसै बंद छूटे, पृ० 214, पद 57
7	दस गौनि	दस वायु	नव बहियाँ दस गौनि आहि, पृ० 162, पद 383
8	दस मुंसफ	दस वायु या दस इंद्रियाँ	नव डाडी दस मुंसफ धावहि, पृ० 207, पद 30,परि०
9	दस दिसि	सभी ओर से	कबीर कोठी काठ की दह दिसि लागी आगि, पृ० 190, साखी 31, परिशिष्ट
10	दस सौ सूत्र	शरीर में उपस्थित शिरा-जाल	दस सौ सूत्र की पुरिया पूरी, पृ० 139, पद 288

6.5.3.(12) बारह

1	बारह	द्वादशदल कमल	बारह ले उर धरिया, पृ० 225, पद 108,परि०
2	दुवादस	द्वादशदल कमल	तहाँ दुवादस खोजि ले, पृ० 69, पद 4
3	द्वादश द्वादश	दस इंद्रियाँ,मन तथा बुद्धि	द्वादस द्वादस सनमुख देखैं, पृ० 110, पद 174
4	द्वादस गम	दस इंद्रियाँ, मन तथा बुद्धि	द्वादस गम के अंतरा, पृ० 74, पद 18
5	द्वादस कूँवा	दस इंद्रियाँ, मन तथा बुद्धि	द्वादस कूँवा एक बनमाली, पृ० 120, पद 214
6	द्वादस दल	द्वादशदल कमल	द्वादस दल अभिअंतरि म्यंत, पृ० 149, पद 328

6.6.8 आकास/आकाश

आकाश का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है--'चारों ओर से प्रकाशित करने या प्रकाशित होने वाला।' कबीर के उलटवाँसी पदों में गगन-गुफा, गगन शिखर, शून्य शिखर, शून्य मंडल, आकश मंडल, गगन-मंडल आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। यहाँ ये शब्द समाधि की विशेष दशा को द्योतित करते हैं तथा शून्यावस्था के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

हठयोग में श्वास-विरोध के द्वारा कुण्डलिनी को जागृत कर उसे उर्ध्वमुखी करना एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के दौरान कुण्डलिनी षटचक्रों का भेदन कर सहस्रार चक्र में पहुँचती है जिसका आकार सहस्रदल कमल के आकार का होता है। इसे शून्य चक्र, शून्य मंडल, आकाश, गगन, आकास-मंडल आदि नामों से भी जाना जाता है। इसी स्थान में अधोमुखी कूप की कल्पना है। गगन-मंडल में पहुँचकर ही साधक 'सिद्ध' संज्ञा को प्राप्त कर 'ब्रह्ममय दशा' को प्राप्त होता है। यहाँ पहुँचकर शक्ति (इड़ा) का शिव (पिंगला) में,चिति का आनन्द में, विलय हो जाता है। गगन मंडल की स्थिति ही साधक की 'खसमावस्था' है।

कबीर ने अपनी उलटवाँसियों में आकास शब्द का हठयोग परक अर्थ लेते हुए इसका प्रयोग अपनी उलटवाँसियों में बहुधा किया है--

1 गगन गरजि अमृत चवै कदली कवल प्रकास। --क०ग्र०, पृष्ठ 12, साखी 40

2 आकासे मुखि औंधा कुवाँ। --क०ग्र०, पृष्ठ 12, साखी 45

3 कबीर मन पंषी भया बहुतक चढ़या अकास। --क०ग्र०, पृष्ठ 23, साखी 25

4 अनल अकाँसा घर किया। --क०ग्र०, पृष्ठ 42, साखी 3

5 आँगणि बेलि अकासि फल। --क०ग्र०, पृष्ठ 68, साखी 4

6 समंद अकासा धावा। --क०ग्र०, पृष्ठ 72, पद 12

7 चढ़ि अकास आसण नहीं छाड़ै। --क०ग्र०, पृष्ठ 85, पद 69

8 धरती उलटि अकासहि ग्रसै। --क०ग्र०, पृष्ठ 106, पद 162

9 ससा फिरे अकासा। --क०ग्र०, पृष्ठ 110, पद 177

10 धरती उलटि अकासहि मिली। --क०ग्र०, पृष्ठ 150, पद 329

कबीर ने अपनी उलटवाँसियों में शून्य चक्र के लिए आकास/आकाश के अतिरिक्त अंबर, असमान, गगन, गगन मंडल, व्योम आदि आकाश संबंधी प्रतीकों का प्रयोग बहुतायात में किया है।

6.6.9 इंगला/इड़ा

इंगला शब्द वस्तुत: इड़ा शब्द से बना है जो एक नाड़ी का वाचक है। इसे इंगला, इड़ा, चन्द्रनाड़ी वरूणा, गंगा आदि नामों से भी जाना जाता है। इस नाड़ी की स्थिति मेरुदंड के बाईं ओर है। वाम नासापुट का श्वास प्रवाह इड़ा से होता है। इंगला चन्द्र स्वभाव की तथा प्रज्ञा रूप है। इसके अधिष्ठाता ब्रह्मा माने गए हैं। ब्रह्मरन्ध्र में स्थित चन्द्र से इसी नाड़ी के द्वारा अमृत स्राव होता है। बौद्ध साहित्य में इसे ललना, धमन, आली, रज, प्रजा आदि नामों से जाना जाता है।

कबीर ने अपनी उलटवाँसियों में इंगला नाड़ी का हठयोगपरक अर्थ किया है---

1 गंग जमुन उर अंतरै। --क०ग्र०, पृष्ठ 14, साखी 3, लै कौ अंग

2 गंग तीर मोरी खेती बारी। --क०ग्र०, पृष्ठ 73, पद 14

3 अरध उरध की गंगा जमुना। --क०ग्र०, पृष्ठ 74, पद 18

4 गंगा जमुना सधि बिचारि। --क०ग्र०, पृष्ठ 148, पद 326

5 उलटी गंगा जमुन मिलावौ। --क०ग्र०, पृष्ठ 233, पद 140, परिशिष्ट

कबीर ने इड़ा नाड़ी के लिए गंगा, चंद, पछिम दिसा, ससि, ससिहर आदि प्रतीकों का प्रयोग अपनी उलटवाँसियों में किया है।

9 अमृत झरै ब्रह्म परकासै । --क०ग्र०, पृ० 119, पद 209

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हठयोग के अमृत तथा कबीर द्वारा प्रयुक्त प्रेमरस, हरिरस, रामरसायन, राम अमलि आदि शब्दों में पर्याप्त अंतर है। हठयोग का अमृत ही प्रेमरस नहीं है। प्रेमरस में भक्ति का मिश्रण और प्रेम की भावना अनिवार्य है। वास्तव में कबीर का साहित्य वह बेल है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से उत्पन्न हुई है।

कबीर ने अमृत शब्द के लिए अमीरस, अमरबेलि, दूध, जल, छछि, नीर, पानी, महारस, मधु, रस आदि प्रतीकों का भी प्रयोग किया है।

6.6.6 अरध-उरध

अरध-उरध का मूल उत्स सिद्ध-साहित्य है। अरध का अर्थ है अध: या नीचे। उरध का अर्थ है उर्ध्व या ऊपर की ओर। वास्तव में अधोस्थिति को उर्ध्वस्थ करा देना ही अरध-उरध साधना है। हठयोग के अनुसार साधक को मूलाधार चक्र अर्थात् अरध में स्थित कुण्डलिनी को सहस्रदल कमल अर्थात् उरध

1. हिन्दी-संतों का उलटवाँसी साहित्य, डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र, पृष्ठ 139

में प्रतिष्ठित करना होता है। अरध-उरध का अर्थ गंगा-जमुना भी किया जाता है। हठयोगियों के अनुसार 'अरध' में स्थित सूर्य को उरध में स्थित चन्द्रमा से समागम कराना चाहिए। इड़ा और पिंगला को क्रमशः शिव और शक्ति का प्रतीक भी माना गया है। शक्ति मूलाधार चक्र में अधोमुखी अवस्था में सुषुप्त कुण्डलिनी है और शिव का वास सहस्रार चक्र में है। अत: शिव और शक्ति के मिलन की यह साधना ही अरध-उरध साधना है।

कबीर की उलटवाँसियों में अरध-उरध साधना का प्रयोग देखने को मिलता है---

1 अरध उरध की गंगा जमुना मूल केवल कौ घाट।

षटचक्र की गागरी त्रिवेणी संगम बाट॥ --क०ग्र०, पृ०74, पद 18

2 त्रिकुटी चढयौ पाव ढौ ढारे, अरध उरध की क्यारी। --क०ग्र०, पृ० 120, पद 214

3 अरध उरध बिचिलाई ले अकास, तहुँवा जोति करै परकास। --क०ग्र०, पृ०149, पद 328

4 अरधै छाँडि उरध जो आवा, तो अरधहिं उरध मिला सुख पावा।

--क०ग्र०, पृ०132,रमैनी 24, पारसनाथ तिवारी

5 चौपड़ि माँडी चौहटे, अरध उरध बाजार। --क०ग्र०, पृ० 3, साखी 31, गुरुदेव कौ अंग

6 अरधै छाँडि उरध जब पावा, तब उरधै छाँडि अरध कत धावा। --क०ग्र०, पृ० 171, रमैंणी 2

6.6.7 अवधु

अवधु अर्थात् "जो व्यक्ति आश्रम एवं वर्ण को लांघ कर अपने में ही स्थित है, ऐसा अतिवर्णाश्रयी योगी अवधूत कहा जाता है। अविनाशी, वरेण्य एवं संसार बंधन से मुक्त होने के कारण तथा तत्त्वमसि की अर्थ-सिद्धि प्राप्त कर लेने से उसकी संज्ञा 'अवधूत' होती है।"[1] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निर्वाणतंत्र के द्वादशपटल से उद्धृत श्लोकों के आधार पर अवधूत के लक्षण इस प्रकार बताए हैं--'अवधूत वह है जो सब पंचतत्त्व सेवन करता हुआ विराचारी होकर रहता है, सन्यास की सभी विधियों का यथोक्त पालन करता है, दण्डियों की भांति अमावस्या के दिन मुण्डन न कराकर लम्बे केश और जटा आदि धारण करता है, अस्थिमाला और रूद्राक्ष को धारण करता है, दिगम्बर होकर या कोपीन मात्र धारण करके रहता है और शरीर में रक्त, चन्दन और भस्म का लेप करता है।'

6 जगत गुर अनहद कींगरी बाजे। ---क०ग्रं०, पृ० 103, पद 153

7 अनहद सबद उठे झणकार। ---क०ग्रं०, पृ० 149, पद 328

अनाहत नाद की अभिव्यक्ति के लिए कबीर ने कींगरी, घंटा, जंत्र, दमामा, सबद, सींगी, गगन-गरजि, तूरा, बनसी, मंदला आदि प्रतीकों का आश्रय लिया है।

6.6.5 अमृत

साधारणतया अमृत शब्द का अर्थ है--'मृत से भिन्न' अर्थात् जो मरा न हो, किन्तु संत साहित्य में अमृत का यह अर्थ नहीं लिया गया। "यौगिक परम्परा में साधक के द्वारा अमरवारूणी, अमररस या

---

1. हिन्दी संतों का उलटवाँसी साहित्य, डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र, पृष्ठ 137
2 हठयोग प्रदीपिका, 4/84/86
3. संत-साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ० शशिकला पांडेय, पृष्ठ 111

सोमपान किए जाने का वर्णन मिलता है। उनके अनुसार ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रार चक्र में कोई चन्द्राकार स्थान है जिससे निरंतर अमृतस्राव होता रहता है। इसका प्रभाव 'इड़ा' या चन्द्रयोग नाड़ी के माध्यम से होता है। बद्ध जीव अथवा जिनकी कुण्डलिनी शक्ति सुषुप्त पड़ी रहती है, उनका यह अमृतरस मूलाधारस्थ सूर्य अथवा अग्निकुंड में पड़ कर नष्ट होता रहता है। अथवा अधोमुखी सर्पिणी के मुख में पड़कर विष बनता रहता है। इससे शरीर को वार्द्धक्य, मृत्यु आदि का सामना करना पड़ता है। योगाभ्यास से साधक यदि इस अधोगामी अमृत को उर्ध्वस्थ कर लेता है तो उसे महानन्द की प्राप्ति होती है। ऐसे साधक को तक्षक के दंश का भी भय नहीं रहता।'[1]

उलटवाँसियों में कबीर ने अमृत शब्द को हठयोग-मूलक अर्थ में ही प्रयुक्त किया है। यथा--

1 गगन गरजि अमृत चवै, कदली कवल प्रकास। --क०ग्रं०, पृ० 12, साखी 39, परचा कौ अंग

2 अमृत बरिसै हीरा निपजै, घंटा पड़े टकसाल। --क०ग्रं०, पृ० 12, साखी 47

3 अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंक नालि रस पीजै। --क०ग्रं०, पृ० 85, पद 70

4 द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अमृत कौ ग्रास।

जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास॥ --क०ग्रं०, पृ० 74, पद 18

5 अमृत कूँ पी साँचा पुरया । --क०ग्रं०, पृ० 85, पद 71

6 तहुँवा चबे अमृत रस नीझर। --क०ग्रं०, पृ० 103, पद 153

7 बाझ पिय लै अमृत सोख्या। --क०ग्रं०, पृ० 106, पद 162

8 पीवै महारस अमृत भोगी। --क०ग्रं०, पृ० 118, पद 204

9 अमृत झरै ब्रह्म परकासै । --क०ग्रं०, पृ० 119, पद 209

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हठयोग के अमृत तथा कबीर द्वारा प्रयुक्त प्रेमरस, हरिरस, रामरसायन, राम अमलि आदि शब्दों में पर्याप्त अंतर है। हठयोग का अमृत ही प्रेमरस नहीं है। प्रेमरस में भक्ति का मिश्रण और प्रेम की भावना अनिवार्य है। वास्तव में कबीर का साहित्य वह बेल है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से उत्पन्न हुई है।

कबीर ने अमृत शब्द के लिए अमीरस, अमरबेलि, दूध, जल, छछि, नीर, पानी, महारस, मधु, रस आदि प्रतीकों का भी प्रयोग किया है।

महि अकास दुइ गाड़ खंदाया, चांद सुरूज दुइ नरी बनाया।।[2]

6.6.(18) त्रिकुटी और त्रिवेणी संगम

'त्रिवेणी षट्चक्रों में से अंतिम आज्ञाचक्र, जिसमें दो दल होते हैं, में स्थित है। इस स्थान पर पहुँच कर दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है और फिर साधना में अवरोह का भय नहीं रहता, क्योंकि चित्र अथवा प्राण-शक्ति की एकाग्रता इस स्थान पर पहुँच जाने पर निश्चित हो जाती है।'[3] कबीर ने त्रिकुटी और त्रिवेणी में अंतर नहीं माना है--

1 सुमति सरीर कबीर बिचारी, त्रिकुटी संगम स्वामी। --क०ग्र०, पृष्ठ 71, पद 7

तथा--

2 अरध उरध की गंगा जमुना, मूल कवल कौ घाट।

षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट।। --क०ग्र०, पृष्ठ 74, पद 18

वास्तव में हठयोग की दृष्टि से त्रिकुटी और त्रिवेणी में पर्याप्त अंतर है। त्रिकुटी का स्थान आज्ञाचक्र में और त्रिवेणी का स्थान उससे आगे ब्रह्मरन्ध्र में है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का संगम जब दशम् द्वार सहस्त्रार स्थित ब्रह्मरन्ध्र में होता है तो साधक को अमृत की प्राप्ति होती है तथा वह मुक्ति को प्राप्त करता है। यही त्रिवेणी संगम है।

कबीर के उलटवाँसी पदों में त्रिवेणी या त्रिवेणी संगम का कथन बहुशः मिलता है--

1 त्रिवेणी मनाइ न्हवाइये, सुरति मिलैजो हाथि रे। --क०ग्र०, पृष्ठ 70, पद 7

2 उलटी गंग जमुन मिलावौ बिनु जल संगम मन महि नावौं।

--क०ग्र०, पृष्ठ 233, पद 140, परिशिष्ट

---

1. संत-साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ० शशिकला पांडेय, पृष्ठ 174 से उद्धृत
2. -वही, पृष्ठ 173
3. -वही, पृष्ठ 179

3 गगन जोति तहाँ त्रिकुटी संधि, रवि ससि पवनाँ मेल बंधि। --क०ग्र०, पृष्ठ 148, पद 325

4 अखँड मंडिल मंडित मंड, त्रि स्नाँन करै त्रिखंड। --क०ग्र०, पृष्ठ 149, पद 328

5 त्रिकुटी चढयों पाव ढौ ढारे, अरध उरध की क्यारी। --क०ग्र०, पृष्ठ 120, पद 214

6 जब तक त्रिकुटी संधि न जानै, ससिहर कै घरि सूर न आनै। --क०ग्र०, पृष्ठ 117, पद 202

7 तपनि गई सीतल भया, जब सुनि किया असनान। --क०ग्र०, पृष्ठ 11, साखी 32

6.6.(19) दिव्य विवाह

''उलटवाँसी शैली प्रधान रूपक बंधों में अनेक उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनमें लौकिक आधार पर प्रतीकात्मक पारिभाषिक शब्दों में विवाह विधि का वर्णन है। कहीं-कहीं हठयौगिक शब्दावली में और कहीं सहज भावना से प्रेरित होकर जीवात्मा सद्गुरु की कृपा से, परमात्मा रूपी पति से ग्रन्थि बंधन कर लेती है। यही दिव्य विवाह है। इसके विपरीत जब वह संसार से ग्रन्थि-बन्धन करती है तब उसे राँड कहा गया है। .....अद्वैत की स्थिति में इस दिव्य-विवाह को पूर्व पीठिका कहा जा सकता है।''[1]

कबीर की उलटवाँसियों में इस विवाह का वर्णन देखने को मिलता है। उनके उलटवाँसी पदों में पीहर, सासरे आदि शब्द भी देखने को मिलते हैं। प्रबुद्ध जीवात्मा के लिए इस संसार को पीहर तथा परमपद अथवा मुक्ति प्राप्ति को ससुराल कहा गया है। बद्ध जीवात्मा के लिए इस संसार को ससुराल कहा

मुँह नीचे कीओर रहता है, इसलिए इसे अधः कूप कहा जाता है। इसमें अमृत तत्त्व का निवास है। यहाँ तक पहुँचने के लिए साधक को सुषुम्ना मार्ग से प्राणवायु को उर्ध्वस्थ करना पड़ता है।''[1]

संतों ने इसे 'दसवाँ दुवार' भी कहा है। उलटवाँसी पदों में इसे अधोकूप, उरधमुख, उलटा कुवाँ, कमलकूप, औंधा कूवाँ आदि भी कहा गया है।

औंधा कुवाँ से सम्बन्धित कबीर की एक उलटवाँसी दृष्टव्य है--

आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।

ताका पाँणी का हंसा पीवै बिरला आदि बिचारि ॥ --क०ग्र०, पृष्ठ 12, साखी 45

अन्य स्थल पर कबीर कहते हैं--

कँवल कुवाँ में प्रेम रस, पीवै बारंबार।। --क०ग्र०, पृष्ठ 14, साखी 2

6.6.(14) कुण्डलिनी

कबीर पर नाथ पंथ की हठयोग-साधना पद्धति का प्रभाव है। हठयोग-साधना के अनुसार ''मेरुदंड के नीचे मूलाधार चक्र में, गुदा और लिंग के मध्य साढ़े तीन वलयों में साँप की भाँति कुंडली मारकर, अपने ही मुख में अपनी पूँछ दबाकर यह शक्ति सुषुप्त भाव से पड़ी रहती है।''[2] सुप्तावस्था में कुण्डलिनी केवल शरीर धारण का कार्य करती है और अधोमुखी रहती है। परन्तु ''योगाभ्यासी इस को गुरु कृपा एवं प्राणायाम आदि योग साधना के द्वारा जागृत करके षटचक्रों और तीन ग्रंथियों का भेदन कराते हुए कुण्डलिनी शक्ति को ब्रह्माण्ड या ब्रह्मरन्ध्र में स्थित कराते हैं। उस समय साधक की शून्य संज्ञा होती है और वह निरालम्ब चित्त होकर काल की सीमा का अतिक्रमण कर जाता है।''[3] कुण्डलिनी के जागृत हो जाने पर बाह्यसृष्टि परमात्मा में विलीन हो जाती है। कुण्डलिनी को तपस्विनी, स्वयं प्रकाशित सृजन शक्ति वाक्देवी आदि संज्ञाओं से अभिहित किया गया है।[4] कबीर के उलटवाँसी-पदों में अनेक स्थानों पर कुण्डलिनी के उर्ध्वगमन तथा ब्रह्मरन्ध्र में स्थित होने का वर्णन प्रतीकात्मक शैली में हुआ है। कबीर की उलटवाँसियों में कुण्डलिनी के लिए पनिहारि, धरती, मेंढ़की सांपणि, नागिनी, मंछी, मंछा, मछली आदि प्रतीकों का प्रयोग किया है। यथा---

1 आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि। --क०ग्र०, पृष्ठ 12, साखी 45

2 धरती उलटि अकासहि ग्रसै। --क०ग्र०, पृष्ठ 106, पद 162

3 सोवत नागिनी जागी। --क०ग्र०, पृष्ठ 86, पद 74

4 मछली चढ़ै खजूरि। --क०ग्र०, पृष्ठ 12, साखी 46

---

1. हिन्दी संतों का उलटवाँसी-साहित्य, डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र, पृष्ठ 143
2. हठयोग प्रदीपिका, 3/306
3. हिन्दी संतों का उलटवाँसी-साहित्य, डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र, पृष्ठ 144
4. -वही, पृष्ठ 143

5 मंछी रूषाँ चढ़ि गई। --क०ग्र०, पृष्ठ 9, साखी 10

6 समंद अकासा धावा। --क०ग्र०, पृष्ठ 72, पद 12

7 ससा बसे जल माँही। --क०ग्र०, पृष्ठ 110, पद 176

8 एक बिरष भीतरि नदी चाली। --क०ग्र०, पृष्ठ 137, पद 280

9 बंबई उलटि शरप कौ लागी। --क०ग्र०, पृष्ठ 106, पद 162

--क०ग्र०, पृष्ठ 86, पद 72

6.6.(11) उलटी गंगा

हठयोग में इड़ा नाडी को गंगा कहा गया है। "सामान्य अवस्था में इड़ा या गंगा का प्रवाह अधोगामी बना रहता है और ब्रह्मरन्ध्र चन्द्र से जो अमृत स्राव होता है वह मूलाधारस्थ सूर्य में पड़कर भस्म होता रहता है जिससे प्राणी जरा मृत्यु को प्राप्त होता है। अतः साधनाभ्यास के द्वारा इस नाड़ी के प्रवाह का क्रम पलट देना ही गंगा का उलटा बहना है।"[1]

कबीर ने अपनी उलटवाँसियों में उलटी गंगा का अनेक बार कथन किया है--

1 उलटि गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई। --क०ग्र०, पृष्ठ 86, पद 74

2 उलटी गंग समुद्रहि सोखै, ससिहर सूर गरासै। --क०ग्र०, पृष्ठ 106, पद 162

3 उलटी गंग मेर कूँ चली। --क०ग्र०, पृष्ठ 150, पद 329

4 उलटी गंग जमुन मिलावौ। --क०ग्र०, पृष्ठ 233, पद 140

5 द्वादस कूँवा एक बनमाली, उलट नीर चलावै। --क०ग्र०, पृष्ठ 120, पद 214

6.6.(12) उलटी साधना

उलटी साधना हठयोग की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है।'उलटी साधना में गंगा (इड़ा) को श्वास-निरोध द्वारा उलट कर जमुना (पिंगला) में मिलाना या सूर्य को उलट कर चन्द्र में विलीन करना होता है।'[2] कबीर के उलटवाँसी पदों में अनेक बार इस विपरीत साधना के संबंध में कथन मिलते हैं--

1 उलटि पवन कह्याँ राखिये, कोई भरम बिचारै।

सौंधें तीर पताल कूँ, फिरि गगनहि मारै॥ । --क०ग्र०, पृष्ठ 103, पद 154

2 उलटि चाल मिलै परब्रह्म कौं। --क०ग्र०, पृष्ठ 108, पद 170

6.6.(13) औंधा कुवाँ

संत-साहित्य पर हठयोग का प्रभाव बहुत अधिक है। "हठयोगी-परंपरा में ऐसी मान्यता है कि शिरोभाग अथवा ब्रह्माण्ड या गगन मंडल में कोई सूक्ष्म छिद्र है जिसे ब्रह्मरन्ध्र या कूप कहते हैं। इसका

1. हिन्दी संतों का उलटवाँसी-साहित्य, डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र, पृष्ठ 142
2. संत-साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ० शशिकला पांडेय, पृष्ठ 138

मुँह नीचे कीओर रहता है, इसलिए इसे अधः कूप कहा जाता है। इसमें अमृत तत्त्व का निवास है। यहाँ तक पहुँचने के लिए साधक को सुषुम्ना मार्ग से प्राणवायु को उर्ध्वस्थ करना पड़ता है।"[1]

संतों ने इसे 'दसवाँ दुवार' भी कहा है। उलटवाँसी पदों में इसे अधोकूप, उरधमुख, उलटा कुवाँ, कमलकूप, औंधा कूवाँ आदि भी कहा गया है।

औंधा कुवाँ से सम्बन्धित कबीर की एक उलटवाँसी दृष्टव्य है--

आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।

ताका पाँणी का हंसा पीवै बिरला आदि बिचारि ॥ --क०ग्र०, पृष्ठ 12, साखी 45

अन्य स्थल पर कबीर कहते हैं--

कँवल कुवाँ में प्रेम रस, पीवै बारंबार।। --क०ग्र०, पृष्ठ 14, साखी 2

2 बसै अपंडी पंड मैं, ता गति लषै न कोई। --क०ग्रं०, पृष्ठ 14, साखी 2

कबीर कहते हैं कि---

प्यंड ब्रह्मंड छाडि जे कथिए, कहै कबीर हरि सोइ। --क०ग्रं०, पृष्ठ 111, पद 180

और

पंषि उडाणी गगन कूँ प्यंड रह्या परदेश।

पाँणी पीया चच बिन, भूलि गया यहु देस।। --क०ग्रं०, पृष्ठ 11, साखी 20

6.6.(26) बंकनाल

बंकनाल अर्थात् टेढ़ी नाल। हठयोग के अनुसार--'बंकनाल अर्थात् सुषुम्ना की टेढ़ी नाल के भीतर एक मार्ग है, इसी से होकर ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचा जाता है। इसका आकार अर्धवृत्ताकार कमलनाल की भांति होता है। अतएव इसे बंकनाल भी कहते हैं।'[2] कबीर ने बंकनाल का प्रयोग सुषुम्ना नाड़ी के लिए किया है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मत से 'बंकनाल शब्द त्रिकुटी और सहस्रदल के मध्य के छोटे मार्ग का वाचक है।'[3]

---

1 हिन्दी सन्तों का उलटवाँसी-साहित्य, रमेशचन्द्र मिश्र, पृष्ठ 156-57

2. संत-साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ० शशिकला पांडेय, पृष्ठ 207

3. कबीर कोश, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ 263

बंकनाल को स्पष्ट करते हुए कबीर कहते हैं--

1 बंक नालि के अंतरै, पछिम दिसाँ की बाट रे।

नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे।। --क०ग्रं०, पृष्ठ 69, पद 4

अन्यत्र अपनी उलटवाँसियों में कबीर ने बंकनाल के विषय में कहा है---

1 चंद सूर दुइ खंभवा, बंकनाल की डोर। --क०ग्रं०, पृष्ठ 74, पद 18

2 बंक नालि रस पीजै। --क०ग्रं०, पृष्ठ 85, पद 76

3 बंक नालि जो संमि करि राखै। --क०ग्रं०, पृष्ठ 165, पद 157

4 बंक नालि रस खाया। --क०ग्रं०, पृष्ठ 119, पद 209

6.6.(27) बेलि

कबीर-साहित्य में 'बेली' और 'बेलरी' शब्द से अभिप्राय माया एवं मायाच्छादित संसार से है। जिस प्रकार बेल अथवा लता लिपटने एवं उलझाने वाली होती है उसी प्रकार माया भी जीव से लिपटने, उसे संसार में उलझाने, विषय वस्तुओं के प्रति आकृष्ट करने वाली होती है। कबीर के अनुसार--

जे काटौं तौ डहडडी, सौंचौं तो कुमिलाइ।

इस गुणवंती बेलि का, कुछ गुँण कहयाँ न जाइ।। --क०ग्रं०, पृष्ठ 67, साखी 3

2 अपने परचै लागी तारी, अपन पै आप समाँनाँ।

कहै कबीर जे आप बिचारै, मिटि गया आवन जाँना।। --क०ग्र०, पृष्ठ 71, पद 6

जब आत्मा का परिचय परमात्मा से हो जाता है तब की स्थिति का वर्णन कैसे किया जाए--

पाँणी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।

जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ।। --क०ग्र०, पृष्ठ 10, साखी 17

परिचय की ऐसी अवस्था में अज्ञान का अंधकार मिट जाता है--

कबीर कवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर।

निस अँधियारी मिटि गई, बाजै अनहद तूर।। --क०ग्र०, पृष्ठ 12, साखी 43

6.6.(24) पिंगला

हठयोग के अनुसार हमारे शरीर में बहत्तर हजार नाडियाँ हैं। प्राणायम की दृष्टि से केवल तीन नाड़ियाँ ही महत्त्वपूर्ण हैं---इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना।'पिंगला को यमुना, जमुना, सूर्य, रसना आदि नामों से भी अभिहित किया गया है। इस नाड़ी में सूर्य का वास माना गया है, अत: यह स्वभाव से उष्ण है। इसकी स्थिति मेरूदंड के दाहिनी ओर तथा नासिक के बाईं ओर है। इसलिए यह आज्ञा चक्र के वामस्थ रहती है। इसके अधिष्ठाता विष्णु माने गए हैं। सिद्धों की परम्परा में इसे चमन, शुक्र, उपाय आदि नामों से जाना जाता है।'[1]

कबीर वाणी में पिंगला का हठयोगपरक अर्थ लिया गया है तथा इनकी उलटवाँसियों में इसका वर्णन बहुलता से मिलता है। कबीर ने पिंगला नाड़ी के लिए जमुना, सूरज, रवि आदि प्रतीकों का प्रयोग किया है। यथा---

1 गंग जमुन उर अंतरैं। --क०ग्र०, पृष्ठ 14, साखी 3

2 उलटी गंगा जमुन मिलवौ। --क०ग्र०, पृष्ठ 233, पद 140, परिशिष्ट

3 चंद सूर दोइ भाठी कीन्ही। --क०ग्र०, पृष्ठ 85, पद 71

---

1. हिन्दी संतों का उलटवाँसी-साहित्य, डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र, पृष्ठ 160

4 सूर समाणौ चंद में। --क०ग्र०, पृष्ठ 10, साखी 10

5 रवि ससि पवनाँ मेल बंधि। --क०ग्र०, पृष्ठ 148, पद 325

6 चंद सूर दोऊ पाँणति करिहैं। --क०ग्र०, पृष्ठ 120, पद 214

6.6.(25) पिण्ड-ब्रह्माण्ड

हठयोगी मान्यता के अनुसार शरीर से बाहर कुछ नहीं है। इस नवद्वार वाले शरीर में देवताओं का वास है। जो इसे जानता है वही असली ज्ञानी है। 'उलटवाँसी शैली का आधार भी यही धारणा है क्योंकि इसमें भी लोकधारा या लोकमार्ग के प्रतिकूल, बाह्य वृत्ति को उलटकर अंतर्मुखी किया जाता है, यही संतों का उलटवास है। ऐसा करने पर ही साधक में गागर में सागर, बिन्दु में सिन्धु, अण्ड में ब्रह्माण्ड समाहित करने की सामर्थ्य जागृत होती है। बाह्य जगत में अस्तित्ववान गंगा, यमुना, सरस्वती, त्रिवेणी संगम, मानसरोवर, मथुरा-काशी, चन्द्र, सूर्य, पवन, जल, आकाश आदि घट के भीतर ही विद्यमान माने हैं। जिस प्रकार लोक में किसी दुर्ग को जीता जाता है वैसे ही साधक को भी कायागढ़ पर विजय प्राप्त करनी होती है।'[1]

कबीर ने भी अपनी उलटवाँसियों के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि पिण्ड अर्थात् शरीर में ही समस्त ब्रह्माण्ड की स्थिति है---

1 ब्रह्मँडे सो प्यंडे जाँन, मानसरोवर करि असनाँन। --क०ग्र०, पृष्ठ 149, पद 328

2 बसै अपंडी पंड मैं, ता गति लषै न कोई। --क०ग्र०, पृष्ठ 14, साखी 2

कबीर कहते हैं कि---

प्यंड ब्रह्मंड छाडि जे कथिए, कहै कबीर हरि सोइ। --क०ग्र०, पृष्ठ 111, पद 180

और

6.6.(19) दिव्य विवाह

''उलटवाँसी शैली प्रधान रूपक बंधों में अनेक उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनमें लौकिक आधार पर प्रतीकात्मक पारिभाषिक शब्दों में विवाह विधि का वर्णन है। कहीं-कहीं हठयौगिक शब्दावली में और कहीं सहज भावना से प्रेरित होकर जीवात्मा सद्गुरु की कृपा से, परमात्मा रूपी पति से ग्रन्थि बंधन कर लेती है। यही दिव्य विवाह है। इसके विपरीत जब वह संसार से ग्रन्थि-बन्धन करती है तब उसे राँड कहा गया है। .....अद्वैत की स्थिति में इस दिव्य-विवाह को पूर्व पीठिका कहा जा सकता है।''[1]

कबीर की उलटवाँसियों में इस विवाह का वर्णन देखने को मिलता है। उनके उलटवाँसी पदों में पीहर, सासरे आदि शब्द भी देखने को मिलते हैं। प्रबुद्ध जीवात्मा के लिए इस संसार को पीहर तथा परमपद अथवा मुक्ति प्राप्ति को ससुराल कहा गया है। बद्ध जीवात्मा के लिए इस संसार को ससुराल कहा गया है--

मैं सामने पीव गौहनि आई।

साँई संगि साध नहीं पूगी, गयौ जोबन सुपिनाँ की नाँई॥ --क०ग्र०, पृष्ठ 122, पद 226

कबीर कहते हैं--

2 पीहरि जाँऊ न सासुरैं, पुरषहि अंगि न लाऊँ। --क०ग्र०, पृष्ठ 124, पद 231

6.6.(20) नाद-बिन्दु संयोग

'नाद' कुण्डली शक्ति के जागृत होने के बाद उठने वाला वह स्फोट या ध्वनी है जो उसके जागरण से उत्पन्न होकर सुषुम्ना मार्ग से चलता हुआ षट्चक्र से पार होकर सप्तम् सहस्रार चक्र में समा जाता है। उसी 'नाद' का अनाहत रूप सर्वत्र विश्व में व्याप्त है। जो कुछ विश्व में है वह सूक्ष्म रूप में प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में भी है, किन्तु उसका साक्षात्कार करने के लिए जिस साधना की आवश्यकता होती है उसके अभाव में इस पिण्डस्थ नाद को नहीं सुना जा सकता है।[2] इसी नाद को शब्दब्रह्म, स्फोट तथा सोहम् ध्वनि भी कहा गया है।

शब्द साधना में जिस नाद का साक्षात्कार किया जाता है उसका व्यक्त रूप 'बिन्दु' है। ''नाद और बिन्दु का कारण-कार्य संबंध है। शक्ति तत्त्व से नाद की उत्पत्ति हुई है और नाद से बिन्दु की। इस

1 हिन्दी संतों का उलटवाँसी-साहित्य, डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र, पृष्ठ 152

2. संत-साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ० शशिकला पांडेय, पृष्ठ 184

प्रकार ये दोनों ही शक्ति के कार्य रूप हैं। .... शुक्र और रज नाम से बिन्दु के दो भेद रहे हैं। शुक्र पांडुर होता है और रज लोहित। रज नाभिस्थान में तथा शुक्र शशिस्थान में होता है। सामान्यत: बिन्दु शब्द का प्रयोग शुक्र के लिए होता है। बिन्दु का इतर नाम शिव तथा रज का शक्ति है। इनको क्रमश: चन्द्र और रवि भी कहते हैं। इनका ऐक्य दुलर्भ है। योगी इनके संगम से 'परमपद' प्राप्त कर लेता है।''[1]

अर्थात् अधोगामी बिन्दु या शक्ति को योगाभ्यासी त्रिकुटी अथवा शिव स्थान पर स्थापित कर ब्रह्म पदवी को प्राप्त करता है और अजर-अमर हो जाता है। अत: नाद शब्द या शिव में बिन्दु या शक्ति को लय कर देना ही नाद-बिन्दु संयोग है। यही बिन्दु या महाबिन्दु की साधना है।

कबीर बिन्दु की शास्त्रीय पद्वति से बहुत दूर थे। कबीर वाणी में वीर्य के लिए कहीं बिन्दु, कहीं बूँद, कहीं बिंद और कहीं व्यंद शब्द का प्रयोग मिलता है--

1 उतपति व्यंद कहाँ थै आया, जो धरि अरू लागी माया॥ --क०ग्र०, पृष्ठ 79 , पद 41

2 नाद बिंद रंक एक खेला, आपै गुरु आप ही चेला। --क०ग्र०, पृष्ठ 185, बारहपदी रमैनी

3 अवधु नादैं व्यंद गगन गाज सबद अनाहद बोलै। --क०ग्र०, पृष्ठ 115, पद 196

4 नादहिं ब्यंद कि ब्यंदहि नाद, नादहि ब्यंद मिलै गोब्यंद। --क०ग्र०, पृष्ठ 149, पद 326

5 नाद नाँहि ब्यँद नाँहि काल नहीं काया। --क०ग्र०, पृष्ठ 121, पद 229

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर ने अपनी साधनात्मक उलटवाँसियों के माध्यम से 'अष्टांगयोग' का सहारा लेकर मन को उलटकर ब्रह्म-साक्षात्कार करने की बात कही। कबीर का मानना था कि चित्त-विकारों के होते हुए तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। शुद्ध हृदय और निर्मल बुद्धि से ही तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति संभव है। योग से शरीर और मन में दृढ़ता आती है तथा चित्त एकाग्र हो परमात्मा में लीन हो जाता है।

कबीर की साधनात्मक उलटवाँसियों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं जिनमें उन्होंने कुण्डलिनी जागरण, षट्चक्र भेदन, त्रिकुटी संगम, अमृत रसपान इत्यादि की बात कही है--

जगत गुर अनहद कींगरी बाजे, तहाँ दीरघ नाद ल्यौ लागे॥ टेक॥
त्री अस्थान अंतर मृगछाला, गगन मंडल सीगीं बाजे।
तहुँआँ एक दुकाँन रच्यो हैं, निराकार ब्रत साजे॥
गगन ही भाठी सींगी करि चुंगी, कनक कलस एक पावा।
तहुँवा चबे अमृत रस नीझर, रस ही मैं रस चुवावा॥
अब तौ एक अनूपम बात भई, पवन पियाला साजा।
तीनि भवन मैं एकै जोगी, कहौ कहाँ बसै राजा॥
बिनरे जानि परणऊँ परसोतम, कहि कबीर रँगि राता।
यहु दुनिया काँई भ्रमि भुलाँनी, मैं राम रसाइन माता॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 103, पद-153

ऐसा ग्यान विचारि लै लै, लाइ लै ध्याँनाँ।
सुंनि मंडल मैं घर किया, जैसे रहै सिंचाँनाँ॥ टेक॥
उलटि पवन कह्याँ राखिये, कोई भरम बिचारै।
साँधें तोर पताल कूँ, फिरि गगनहि मारै॥
कंमा नाद बजाव ले, धुंनि निंमसि ले कंसा।
कंमा फूटा पंडिता, धुंनि कहाँ निवासा॥
प्यंड परें जीव कहाँ रहै, कोई मरम लखावै।
जीवन जिस घरि जाइये, ऊँचे मुषि नहीं आवै॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 104, पद-154

कबीर ने सुरति-निरति, सुरति, सुरति-योग आदि शब्दों का प्रयोग कहीं-कहीं स्मृति, श्रुति, वेद-बोधक अर्थ में भी किया है--

1 सुरति सुमृति दोइ कौ बिसवास, बाझि परयौ सब आसा पास।। --क०ग्र०, पृष्ठ 80, पद 47

2 सुरति निरति परचा भया तब खूले स्यंभदुवार। --क०ग्र०, पृष्ठ 11, साखी 22

3 सुरति समाँणी निरति मैं, अजपा माँहै जाप।

लेख समाँणा अलेख मैं यूँ आपा माँहै आप।। --क०ग्र०, पृष्ठ 11, साखी 23

4 सत की पाटि सुरति का चाठा, सहजि नीर मुलकाया। --क०ग्र०, पृष्ठ 120, पद 214

5 उलटे पवन चक्र षट बेधा, सुनि सुरति लै लागि। --क०ग्र०, पृष्ठ 71, पद 8

6.6.(33) सुषुम्ना

हठयोग साधना के अनुसार शरीर की बहत्तर हजार नाड़ियों में सुषुम्ना नाडी का विशेष स्थान है। "इसके भीतर वज्रा, उसके भीतर चित्रिणी और उसके भी भीतर ब्रह्म नाड़ी है जो कुण्डलिनी शक्ति का असली मार्ग है। इस प्रकार सुषुम्ना तीन नाड़ियों का एकीभाव है।... इंग्ला ही गंगा है, पिंगला ही जमुना है और सुषुम्ना ही सरस्वती है। इन तीनों का जहाँ संगम हुआ है वहीं त्रिवेणी संगम या प्रयाग है।"[1] सुषुम्ना चन्द्र तथा सूर्य नाड़ी के बीच में स्थित होती है। जागृत कुंडलिनी सुषुम्ना मार्ग से षटचक्रों को भेदकर सहस्रार चक्र में प्रवेश करती है। सुषुम्ना के अधिष्ठाता देवता शिव हैं। इसे सरस्वती, शांभवी, ब्रह्मनाड़ी, शून्य पदवी आदि भी कहा गया है।

कबीर ने सुषुम्ना नाड़ी के लिए कदली, खजूरि, तरवर, बंकनाल, बबूर, बिरष, शरप आदि प्रतीकों का प्रयोग किया है। कबीर ने अपनी उलटवाँसियों में सुषुम्ना का हठयोगपरक अर्थ लेते हुए इसका प्रयोग बहुलता में किया है---

1 सुषमन नारि सहजि समानी, पीयै पीवनहारा। --क०ग्र०, पृष्ठ 86, पद 72

2 चंद सूर दुइ भाठी कीन्हीं सुषमनि चिगवा लागी रे। --क०ग्र०, पृष्ठ 85, पद 71

3 इला प्यंगुला सुषमन नारी, बेगि बिलोइ ठाढ़ी छलिहारी। --क०ग्र०, पृष्ठ 155, पद 354

4 चंद सूर दोइ खंभवा, बंकनाल की डोर। --क०ग्र०, पृष्ठ 74, पद 18

5 बंक नालि के अंतरै, पछिम दिसाँ की बाट रे। --क०ग्र०, पृष्ठ 69, पद 4

6 एक बिरष भीतरि नदी चाली। --क०ग्र०, पृष्ठ 137, पद 280

6.6.(34) सूषिम जनम सूषिम मारग

सूषिम जनम अर्थात् सूक्ष्म जन्म और सूषिम मारग अर्थात् सूक्ष्म मार्ग।'सूक्ष्म'यहाँ जन्म और मार्ग शब्दों का विशेषण बन कर आया है। "संतों की मान्यता है कि मनुष्य को स्थूल सांसारिक जीवन की

---

1. संत-साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ० शशिकला पांडेय, पृष्ठ 318

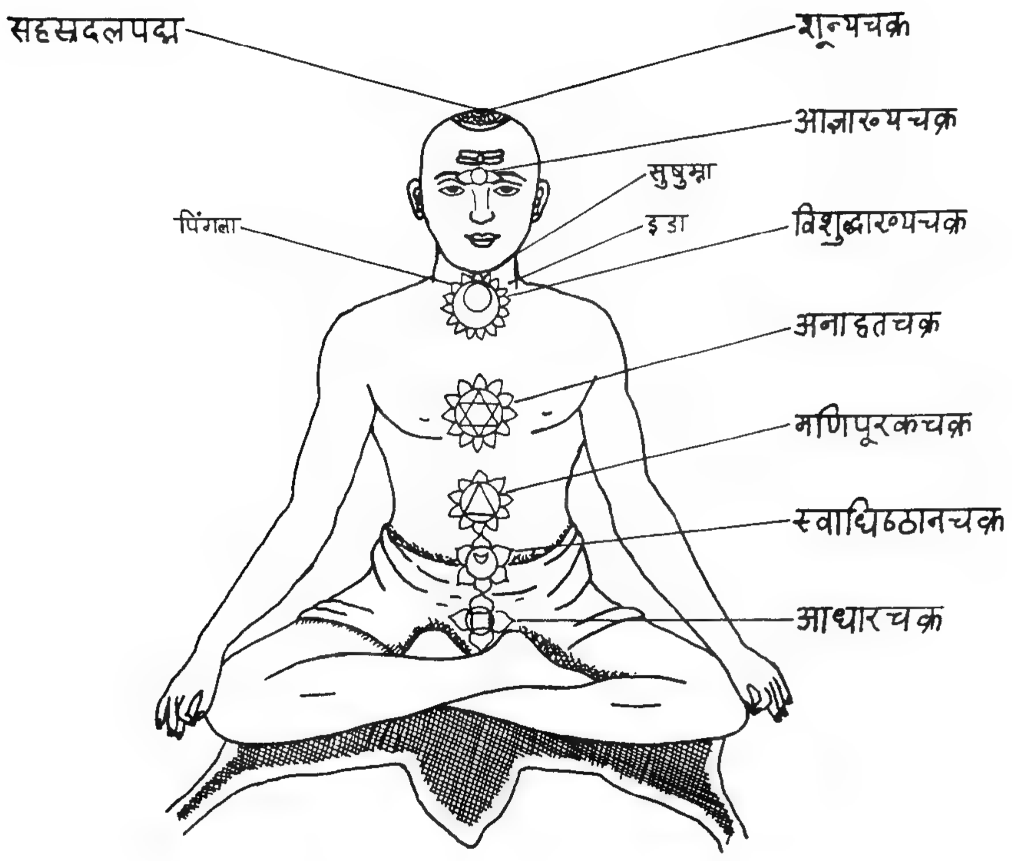
सहस्रदलपद्म
शून्यचक्र
आज्ञाख्यचक्र
सुषुम्ना
पिंगला
इडा
विशुद्धाख्यचक्र
अनाहतचक्र
मणिपूरकचक्र
स्वाधिष्ठानचक्र
आधारचक्र

कुण्डलिनी शक्ति-योग

वस्तुतः सन्त कबीर ने अपनी हठयोग साधना में यम–नियमों का पृथक रूप से उल्लेख नहीं किया लेकिन इनके अन्तर्गत आने वाले स्वाध्याय शौच, संतोष, सत्य आदि के विषय में बहुत सी बातें कही हैं। कबीर आसनों की विभिन्न संख्याओं में न पड़ कर आसनों के दृढ़ होने की बात सोचते हैं। उनका मानना है कि इड़ा और पिंगला को प्राणायाम द्वारा एकमेएक कर त्रिकुटी पर पहुँचाना चाहिए–

"गगन जोति तहां त्रिकुटी संधि,
रवि ससि पवनाँ मेलौ बंधि।"[1]

अपनी हठयोग साधना में उन्होंने षट् चक्रों के भेदन क्रिया को महत्त्व दिया है। उनका मानना है कि गुरु की कृपा से साधक कुण्डलिनी को जाग्रत करने के पश्चात षट्चक्रों का भेदन करने पर अनहद नाद की स्थिति को पाया जा सकता है –

"ससिहरि सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी।
उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेरडंड सरपूरा।"[2]

अपनी हठयोग साधना में उन्होंने 'कमल' की भी कल्पना की है, लेकिन किस कमल की कहाँ स्थिति है, इस विषय में कबीर ने कही भी संकेत नहीं किया, साथ ही कमलों की संख्याँ भी भिन्न–भिन्न मानी है –

"मन के मोहन बीठुला, यह मन लागौ तोहि रे।
चरन कँवल मन मँनियाँ, और न भावै मोहि रे।
षट दल कँवल निवासिया, चहु कौं फेरि मिलांइ रे।
दहुँ के बीचि समाधियाँ, तहाँ काल न पासैं आइ रे ।
अष्ट कँवल दल भीतरा, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे।
सतगुर मिलै तौ पाइये, नहिं तौं जन्म अक्यारथ जाइ रे।
कदली कुसुम दल भीतराँ, तहाँ दस आगुँल का बीच रे।

---

27 1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० १४८
2. वही , पृ० ७१

तहाँ दुवादस खोजि ले जनम होत नहीं मीच रे।
बंकनालि के अंतरै, पछिम दिसाँ की बाट रे।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ मँवर गुफा के घाट रे।"[1]

सन्त कबीर का मानना है कि यौगिक प्रकियाओं से मन को कंचन के समान शुद्ध करने पर प्रभु के दर्शन होते हैं। योग शास्त्र में वर्णित कुंडलिनी रूपी सर्पिणी को ही वे सब कुछ नहीं मानते, वे तो माया को उस से भयानक सर्पिणी मानते हैं। उन्होंने हठयोग को साध्य रूप में नहीं वरन् साधन रूप में ही स्वीकार किया है क्योंकि मन की साधना के लिए केवल कायिक साधना ही पर्याप्त नहीं है अपितु साधक का प्रधान लक्ष्य मन का स्थिरीकरण है।

जहाँ बिछट्यौ तहाँ लाग्यौ, गगन बैठा जाइ।

जन कबीर बटाऊवा, जिनि मारग लियौ चाइ॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 137, पद-280

तहाँ जौ राम नाम ल्यौ लागै; तौ जरा मरण छूटै भ्रम भागै॥ टेक॥

अगम निगम गढ़ रचि ले आवास, तहुवाँ जोति करै परकास।

चमकैं बिजुरी तार अनंत, तहाँ प्रभु बैठे कवलाकंत॥

अखंड मंडिल मंडित मंड, त्रि स्नाँन करै त्रीखंड।

अगम अगोचर अभिअंतरा, ताकौ पार न पावै धरणीधरा॥

अरध उरध बिचि लाई ले अकास,तहुँवा जोति करै परकास॥

टारयौ टरैं न आवै जाइ, सहज सुंनि मैं रह्यौ समाई॥

अबरन बरन स्याँम नहीं पोत, होहू जाइ न गावै गीत।

अनहद सबद उठै झणकार, तहाँ प्रभू बैठे समरथ सार॥

कदली पुहुप दीप परकास, रिदा पंकज मैं लिया निवास।

द्वादस दल अभिअतरि म्यंत, तहाँ प्रभु पाइसि करिले च्यंत॥

अमलिन मलिन घाम नहीं छाँहाँ, दिवस न राति नहीं है ताहाँ॥

तहाँ न ऊगैं सूर न चंद, आदि निरंजन करे अनंद॥

ब्रह्मांडे सो प्यंडे जाँन, माँनसरोवर करि असनाँन॥

सोहं हंसा ताकौ जाप, ताहि न लिपै पुन्य न पाप॥

काया माँहैं जाँनै सोई, जो बोलै सो आपै होई।

जोति माँहि जे मन थिर करै, कहै कबीर सो प्राँणी तिरै॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 150, पद-328

री कलवारि गवारि मूढ़ मति उलटी पवन फिरावौ।

मन मतवार मेर सर भाठी अमृत धार चुवावौ॥

बोलहु भैया राम की दुहाई।

पीवहु सत सदा मति दुर्लभ सहजे प्यास बुझाई।।

भय बिच भाउ भाई कोउ बूझहि हरि रस पावै भाई।

ऐसी रे अवधू की वाणी, ऊपरि कूवटा तलि भरि पाँणीं॥ टेक॥
जब लग गगन जोति नहीं पलटै, अबिनासा सुँ चित नहीं चिहुटे।
जब लग भँवर गुफा नहीं जानैं, तौ मेरा मन कैसै मानैं॥
जब लग त्रिकुटी संधि न जानैं, ससिहर कै घरि सूर न आनैं।
जब लग नाभि कवल नहीं सोधै, तौ हीरै हीरा कैसैं बेधैं।।
सोलह कला संपूरण छाजा, अनहद कै घरि बाजैं बाजा।
सुषमन कै घरि भया अनंदा, उलटि कबल भेटे गोब्यंदा॥
मन पवन जब परचा भया, क्यूँ नाले राँपी रस मइया।
कहै कबीर घटि लेहु बिचारी, औघट घाट सींचि ले क्यारी॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 117, पद-202

परब्रह्म देख्या हो तत बाड़ी फूली, फल लागा बडहूली।
सदा सदाफल दाख बिजौरा कौतिकहारी भूली॥ टेक॥
द्वादस कूँवा एक बनमाली, उलट नीर चलावै।
सहजि सुषमनाँ कूल भरावै, दह दिसि बाड़ी पावै॥
ल्यौकी लेज पवन का ढींकू, मन मटका ज बनाया।
सत की पाटि सुरति का चाठा, सहजि नीर मुलकाया॥
त्रिकुटी चढ़यौ पाव ढौ ढारै, अरध उरध की क्यारी।
चंद सूर दोऊ पाँणति करिहैं, गुर सुषि बीज बिचारी॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 120, पद-214

जहाँ स्वाँति बूँद न सीप साइर सहजि मोती होइ।
उन मोतियन में नीर पोयौ, पबन अंबर धोइ॥
जहाँ धरनि बरषै गगन भीजै, चंद सूरज मेल।
दोइ मिलि तहाँ जुड़न लागे, करता हंसा केलि॥
एक बिरष भीतरि नदी चाली, कतक कलस समाइ।
पंच सुवटा आइ बैठे, उदै भई बनराइ॥

अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में कुण्डलिनी अमृत का व्यापार कर रही है। इस अमृत को बिरला योगी ही प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार से नीर शब्द का प्रयोग भी कबीर ने अमृत के लिए ही किया है : –

"ऊपरि नीर ले ज तलि हारी, कैसे नीर भरे पनिहारी।"[2]

अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र पर तो अमृत स्थित है और उसे प्राप्त करने वाली कुण्डलिनी तल में स्थित है, इस अमृत को वह कैसे प्राप्त करे। यहाँ विशेष संदर्भ पाकर नीर का प्रयोग अमृत के रूप में किया गया है।

इस प्रकार से सन्त कबीर ने अपनी साधना में अमृत शब्द [illegible] अमर बेलि, घनबरषि छाछ, नीर आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है।

3.3.1.4. अष्ट कँवल –

डॉ० रामचन्द्र वर्मा मानक हिन्दी कोश में लिखते है – "हठयोग में शरीर के अन्दर मूलाधार से ललाट तक माने जाने वाले आठ चक्र।"[3]

अष्ट कँवल का साधारण अर्थ है ऐसा कमल जिस में दलों की संख्या या पंखुड़ियों की संख्या आठ होती है।

डॉ० त्रिगुणायत लिखते हैं – "हृदय स्थान में अष्टदल कमल रहता है। उसी हृदय कमल के बीच में रेखा वलय बनाती हुई ज्योति स्वरूप अणुमात्र आत्मा रहती है। यह आत्मा उस कमल के भिन्न–भिन्न भागों में भ्रमण करती हुई विविध प्रवृत्तियों और अवस्थाओं को प्राप्त होती हैं। प्राण और अपान का योग करके इस जीवात्मा की साधना की जाती है। यही अष्ट कमल साधना है।"[4]

---

39 1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ८८
2. वही , पृ० १०१
3. सम्पा० डॉ० रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, पृ० २१० , २११
4. डॉ० गोबिन्द त्रिगुणायत, हिन्दी की निगुर्ण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ५०६

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अष्ट कँवल के बारे में लिखते हैं – "संतमत में सहस्रार चक्र के भी ऊपर एक अष्टम चक्र की कल्पना की गई है, इसे सुरति कमल भी कहते हैं। कहते है कि सहस्रार तक पहुँचे हुए योगी का चित समाधि टुटने के बाद फिर वासना का शिकार हो जाता है लेकिन अष्ट कमल में निवास करने वाले साधक का चित्त ऐसे खतरे से निश्चित रहता है।"[1]

आठ दल वालें कमल पर मनन करने वाले योगी बिरले ही होते हैं। इस कमल का भेदन बिना गुरु के नहीं किया जा सकता, यदि सद्‌गुरु मिल जाए तो चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती हैं।

सन्त कबीर ने 'अष्टदल कमल' का उल्लेख किया है। वे मानते है कि इसी कमल पर नित्य, मुक्त, आनन्दस्वरूप श्रीरंग का वास है। इस पर मनन करने से चिर आनन्द की प्राप्ति होती है।

"अष्ट कँवल दल भीतरा, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे।
सतगुर मिलै तौ पाइये, नहिं तौ जन्म अक्यारथ जाइ रे।"[2]

अर्थात् अष्ट कमल के मध्य ईश्वर का निवास है। यदि सद्‌गुरु की प्राप्ति हो जाए तो वहाँ तक पहुँचा जा सकता है, नहीं तो जन्म व्यर्थ ही

"ऊर्ध्वजिह्वः : स्थिरों भूत्वा सोमपानं करोति भः।

मासार्धेन न संदेहों मृत्युंजयति योगवित।"[2]

हठयोग परम्परा में योगी के द्वारा अमरवारूणी, अमररस सोमरस के पान का वर्णन मिलता है। सन्त कबीरदास ने भी अपनी रचनाओं में अमृत शब्द का व्यापक प्रयोग किया है। उनके अनुसार अमृत बारह तत्त्वों से परे की वस्तु है ; यथा –

"द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अमृत कौं ग्रास।

जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हँम दास।"[3]

अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र से ऊपर सहस्रार कमल से अमृत की वर्षा हो रही है और यह अमृत पाँचों कर्मेन्द्रियों, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों मन और बुद्धि – इन बारह तत्त्वों से परे की वस्तु है। ज्यों साधक इस अमृत को चख लेता है, वह हमारा स्वामी है और हम उसके दास है।

---

36 1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० ४६

2. श्री आत्माराम योगीन्द्र, हठयोग प्रदीपिका, पृ. १००

3. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ७४

जिस ब्रह्मरन्ध्र से अमृत का स्राव होता रहता है, सन्त कबीरदास तो उसी को अपना स्थायी घर बना लेने की सलाह देते हुए कहते हैं –

"अवधू गगन मंडल धर कीजै

अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंक नालि रस पीजै।"[1]

सन्त कबीर ने अनेक स्थलों पर 'नीझर झरै' शब्द का प्रयोग भी अमृत के रूप में ही किया है। यथा –

"बंकनालि के अंतरै पछिम दिसाँ की बाट रे।

नीझर झरै रस पीजिये, तहां भवँर गुफा के घाट रे।"[2]

अर्थात् पश्चिम दिशा के सुषुम्ना मार्ग पर एक भवँर गुफा है, जहाँ से अमृत झरता रहता है, उसी अमृत का पान करो।

सन्त कबीर ने 'महारस' शब्द का प्रयोग भी 'अमृत' के लिए ही किया है।

"बसै गगन मैं दुर्नी न देखै चेतनि चौकी बैठा।

चढ़ि अकास आसण नही छाड़ै, पीवै महारस मीठा।"[3]

अर्थात् योगी ध्यान योग व ज्ञानयोग से गगन–अवस्था में प्रतिष्ठित रहता है, फिर वह संसार की विषय–वासनाओं की तरफ ध्यान भी नहीं देता। शून्य शिखर पर एक बार चढ़कर वहाँ से वह अपना आसन नहीं छोड़ता, वही अवस्थित रहकर वह ब्रह्मरन्ध्र से टपकने वाले अमृत रस का पान करता रहता है।

संत कबीर के काव्य में योग और भक्ति का अनूठा संगम देखने को मिलता है, शायद इसी कारण अमृत को अधिक महत्त्व दिया गया है। अपने कई दोहों में उन्होंने यौगिक क्रियाओं के साथ–साथ भक्ति सम्बन्धी बातों की चर्चा की है, जिस से साधक अमृत की प्राप्ति करता है। इसी अमृत की चर्चा करते हुए 'कबीर' कहते हैं –

---

37 1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ८५

2. वही , पृ० ६६

3. वही , पृ० ८५

९ –

"अवधू गगन मंडल घर कीजै
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंकनालि रस पीजै।
मूल बाँधि सर गगन समाना, सुखमन यों तन लागी।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तहाँ जोनणीं जागी।।
मनवाँ जाइ दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा।
कहै कबीर जिय संसा नाँही, सबद अनाहद बागा।"[2]

अर्थात् हे अवधूत ! तुम ब्रहरान्ध्र को अपना स्थायी वास बना लो। वहाँ सदैव अमृत स्रवित होता है जिस से अमित आनन्द की प्राप्ति होती है। सुषुम्ना नाड़ी को वहाँ पहुंचाकर साधक इस रस का पान करता है। मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी जागृत हो कर सुषुम्ना के माध्यम से ऊर्ध्वगामी हो गई है, जिसमें काम, क्रोध आदि विकारों ने जलकर पलीते का कार्य किया और इस विस्फोट द्वारा ही योगिणी रूप कुण्डलिनी सुप्तावस्था से जागृत हो गई। शुन्य में पहुँच कर मन

---

33 1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० ४७
2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ८५

उस सहजावस्था में पहुँच गया जहाँ आनन्द ही आनन्द विद्यमान है। कबीर कहते हैं कि इस अवस्था में पहुँचकर साधक के मन में कोई भ्रम या माया का संशय नहीं रह जाता है और वह अनहद नाद के आनन्द में लय होकर परमात्मा स्वरूप हो जाता है।

. संत कबीर इड़ा तथा पिंगला के संयोग से भी अनहद की प्राप्ति मानते हैं उनका कहना है कि जब इन दो नाड़ियों के मिलने से अनहद नाद सुनाई दे, तभी परब्रह्म का साहचर्य होता है : –

"ससिहर सूर मिलावा, तब अनहद बेन बजावा।
जब अनहद बाजा बाजै, तब साँई संगि विराजै।"[1]

अपनी रचनाओं में सन्त कबीर ने कहीं–कहीं पर अनहद–नाद या अनहद की जगह अनहद तूर या अनहद तूरा का भी प्रयोग किया है ; जैसे –

"कबीर कँवल प्रकासिया ऊग्या निर्मल सूर।
निस अंधियारी मिटि गई, बाजै अनहद तूर।"[2]

अर्थात् ज्ञान के निर्मल सूर्योदय से सहस्त्रदल कमल विकसित हो गया। इससे जीवात्मा की अज्ञान की अंधकार पूर्ण रात्रि नष्ट हो गई, एवं ब्रह्म–प्राप्ति पर अनहद का तूर्यनाद होने लगा।

वैसे तो सन्त कबीर ने अपनी रचनाओं में अधिकतर अनहद, अनहद–नाद, अनहद तूर या अनहद तूरा का ही प्रयोग किया है, लेकिन कुछ पदों में उन्होंने अनहद नाद के स्थान पर 'जंत्र' शब्द का भी प्रयोग किया है ; यथा –

"जंत्री जंत्र अनूपन बाजै,
ताकौ सबद गगन मैं गाजै।"[3]

---

34 1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० १०६
2. वही , पृ० १२
3. वही पृ० ११५

सन्त कबीर ने अपनी रचनाओं के इड़ा को चन्द्र नाड़ी तथा पिंगला को सूर्य नाड़ी के रूप में भी वर्णित किया हैं। इसके लिए उन्होंने चन्द सूर,

---

47 1. श्री आत्माराम योगीन्द्र, हठयोग प्रदीपिका, पृ. १२८
2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० १४
3. वही , पृ० ७३
4. वही , पृ० १४८

रवि–ससि तथा ससिहर–सूर शब्दों का प्रयोग किया है। चन्द–सूर का प्रयोग देखिए–

"**चंद सूर** दोइ खंमवा, बंकनालि की डोरि।"[1]

अर्थात् जिस प्रकार हिंडोले में दो खम्ब होते हैं, उसी प्रकार इड़ा, पिंगला के दो स्तम्ब हैं, जिन में बंक नालि की डोर डाल रखी है।

हठयौगिक साधना में यह माना जाता है कि इड़ा और पिंगला के समरस होने पर ही परम सिद्धि की प्राप्ति होती है। इसी की चर्चा करते हुए सन्त कबीर दास जी कहते हैं : –

"**सूर समौंणाँ चंद** में, दूहँ किया घर एक।
मनका च्यंता तब भया, कछू पूरबला लेख।"[2]

अर्थात् पिंगला नाड़ी इड़ा में समा गई है और दोनों ने एक होकर सुषुम्ना में अपना स्थान बना लिया है। इस साधना के सिद्ध होने से कबीर के मन की इच्छा अब पूर्ण हो गई हैं यह सब पूर्व जन्म के पुण्यों का ही फल है।

इड़ा–पिंगला के स्थान पर रवि–ससि का प्रयोग करते हुए कबीर कहते हैं –

"गगन जोति तहाँ त्रिकुटी संधि, **रबि ससि** पवनाँ मेलौ बंधि।"[3]

अर्थात् परम ज्योति का निवास स्थान त्रिकुटी पर है, इड़ा और पिंगला को प्राणायाम द्वारा एक करके वहाँ पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

इड़ा नाड़ी के लिए सन्त कबीर ने कभी–कभी ससिहर तथा पिंगला के लिए सूर शब्द का प्रयोग भी किया हैं।

"**ससिहर सूर** मिलावा, तब अनहद बेन बजावा।"[4]

---

48 1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ७४
2. वही , पृ० १०
3. वही , पृ० १४८
4. वही , पृ० १०६

सन्त कबीर ने अपनी हठयौगिक साधना में इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी हैं। इसलिए अपनी साधना में उन्होंने बार–बार इन नाड़ियों का जिक्र किया है। वे कहते हैं –

"इला प्यंगुला भाठी कीन्हीं ब्रह्म अगनि परजारी।"[4]

अर्थात् हृदय में ब्रह्म ज्योति प्रज्वलित कर इड़ा व पिंगला नाड़ियों की भट्ठी तैयार की है।

---

46 1. सम्पा० डॉ० रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश (तीसरा ख०), पृ० ४६८

2. सम्पा० डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, कबीर वचनामृत, पृ० ८८

3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० ४६

4. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ८६

इड़ा को गंगा नदी तथा पिंगला को यमुना नदी कहा भी जाता है –

"इड़ा भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी।"[1]

सन्त कबीर ने भी इन नाड़ियों को गंगा जमुना कहा है। गंगा, यमुना का इड़ा और पिंगला के रूप में वर्णन करते हुए कबीरदास जी कहते हैं : –

"गंग जमुन उर अंतरै, सहज सुंनि ल्यौ घाट।
वहाँ कबीरै मठ रच्या, मुनि जन जौवें बाट।"[2]

अर्थात् इड़ा नाड़ी के रूप में गंगा तथा पिंगला नाड़ी के रूप में यमुना हमारे शरीर के अन्दर ही विद्यमान हैं, जिनके सहज एवं शून्य जैसे घाट हैं। ऐसे ही घाट पर कबीर ने अपना निवास स्थान बना लिया है, बड़े–बड़े भक्त सूरमा इस घाट पर अपना निवास बनाने की प्रतीक्षा करते ही रह गए।

कबीर गंगा (इड़ा) के किनारे ही अपना सर्वस्व मानते हैं : –

"गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर रवरिहानौं।"[3]

अर्थात् गंगा और यमुना (इड़ा तथा पिंगला) के तट पर ही मेरी खेती–बाड़ी तथा खलिहान हैं।

ब्रह्मरन्ध्र से जो अमृत झरता है, उस अमृत की प्राप्ति के लिए गंगा, यमुना का मेल आवश्यक है : –

"मन मजंन करि दसवैं द्वारि, गंगा जमुना संधि बिचारि।"[4]

अर्थात् इड़ा, पिंगला को मिलाकर मन को ब्रह्मरन्ध्र से स्रवित अमृत' लाभ के लिए पहुँचा देना चाहिए।

सन्त कबीर ने अपनी रचनाओं के इड़ा को चन्द्र नाड़ी तथा पिंगला को सूर्य नाड़ी के रूप में भी वर्णित किया हैं। इसके लिए उन्होंने चन्द सूर,

---

47 1. श्री आत्माराम योगीन्द्र, हठयोग प्रदीपिका, पृ. १२८

2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० १४

3. वही , पृ० ७३

4. वही , पृ० १४८

22:01

santmat paribhashika s...

3.3.1.4. अष्ट कँवल –

डॉ० रामचन्द्र वर्मा मानक हिन्दी कोश में लिखते है – "हठयोग में शरीर के अन्दर मूलाधार से ललाट तक माने जाने वाले आठ चक्र।"[3]

अष्ट कँवल का साधारण अर्थ है ऐसा कमल जिस में दलों की संख्या या पंखुड़ियों की संख्या आठ होती है।

डॉ० त्रिगुणायत लिखते हैं – "हृदय स्थान में अष्टदल कमल रहता है। उसी हृदय कमल के बीच में रेखा वलय बनाती हुई ज्योति स्वरूप अणुमात्र आत्मा रहती है। यह आत्मा उस कमल के भिन्न–भिन्न भागों में भ्रमण करती हुई विविध प्रवृत्तियों और अवस्थाओं को प्राप्त होती हैं। प्राण और अपान का योग करके इस जीवात्मा की साधना की जाती है। यही अष्ट कमल साधना है।"[4]

---

39 1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ८८
2. वही , पृ० १०१
3. सम्पा० डॉ० रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, पृ० २१० , २११
4. डॉ० गोबिन्द त्रिगुणायत, हिन्दी की निगुर्ण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ५०६

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अष्ट कँवल के बारे में लिखते हैं – "संतमत में सहस्रार चक्र के भी ऊपर एक अष्टम चक्र की कल्पना की गई है, इसे सुरति कमल भी कहते हैं। कहते है कि सहस्रार तक पहुँचे हुए योगी का चित समाधि टुटने के बाद फिर वासना का शिकार हो जाता है लेकिन अष्ट कमल में निवास करने वाले साधक का चित्त ऐसे खतरे से निश्चित रहता है।"[1]

आठ दल वालें कमल पर मनन करने वाले योगी बिरले ही होते हैं। इस कमल का भेदन बिना गुरु के नहीं किया जा सकता, यदि सद्‌गुरु मिल जाए तो चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती हैं।

सन्त कबीर ने 'अष्टदल कमल' का उल्लेख किया है। वे मानते है कि इसी कमल पर नित्य, मुक्त, आनन्दस्वरूप श्रीरंग का वास है। इस पर मनन करने से चिर आनन्द की प्राप्ति होती है।

"**अष्ट कँवल दल** भीतरा, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे।
सतगुर मिलै तौ पाइये, नहिं तौ जन्म अक्यारथ जाइ रे।"[2]

अर्थात् अष्ट कमल के मध्य ईश्वर का निवास है। यदि सद्‌गुरु की प्राप्ति हो जाए तो वहाँ तक पहुँचा जा सकता है, नहीं तो जन्म व्यर्थ ही चला जाता है।

इस प्रकार से सन्त कबीर दास ने अपनी हठयोग साधना में अष्ट कँवल पर भगवान का निवास माना है तथा गुरु की प्राप्ति से ही वहाँ पहुँचा जा सकता है।

है। उस में मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी करमाइश को नाहीं कर सके और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है।" [1]

3.4.4. विशेष भावाभिव्यक्ति –

अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए कवि को अन्य शब्द शक्तियों का सहारा लेना पड़ता है। अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए वह ऐसे लौकिक अनुभवों की सहायता लेता है जिस से जन–सामान्य परिचित होता है। इसलिए जिन वस्तु–व्यापारों से उस अनुभव की अधिक से अधिक निकटता प्रतीत होती है उन्हीं के माध्यम से विचार व्यक्त करने की चेष्टा कवि करता है। सन्त कबीर ने भी गूढ़ से गूढ़ एवं सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए जीवन में घटित होने वाले साधारण कार्य व्यापारों को चुना हैं। अपनी 'हठयोगपरक' रचनाओं को समझाने के लिए भी सन्त कबीर ने सरल से सरल भाषा का भी प्रयोग किया है, लेकिन उस में भी विशेष भाव निहित रहता है अर्थात् उनकी अभिव्यक्ति एक विशेष अर्थ के लिए होती है जैसे –

"सूर समाँनौ चंद में, दहूँ किया घर एक।
मनका च्यंता तब भंया, कछू पूरबला लेख।"[2]

यहाँ कवि सूर्य तथा चन्द्र से एक विशेष भाव की अभिव्यक्ति करना चाहता है अर्थात् वह यह समझाना चाहता है कि हठयोग साधना के द्वारा इड़ा और पिंगला नाड़ी एक दूसरे में समा गई हैं और उन दोनों ने सुषुम्ना नाड़ी को ही अपना घर बना लिया है।

---

86 1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० १७०

2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० १०

सन्त कबीर ने अपनी साधना में मुख्य रूप से हठयोग को ही अपनाया है, क्योंकि किसी भी साधना की पूर्ति के लिए मन की एकाग्रता जरूरी है और योग सर्वप्रथम चित्त–वृत्तियों के निरोध की शिक्षा देता है। योग मन को बाहरी विषयों से रोक कर, आत्मा की ओर उन्मुख करने का एक सशक्त माध्यम है। इसीलिए सन्त कबीर ने अपनी साधना में हठयोग का स्थान सुरक्षित रखा और अपने काव्य में योगपरक पदों की रचना की जिस में उन्होंने, कुण्डलिनी जागरण, षट्चक्र भेदन औधां कुँवा, इंगला–पिंगला, सुषुम्ना, अजाप–जाप, अनहद–नाद, त्रिवेणी आदि के साथ–साथ गगन गुफा से झरने वाले अमृत की अनेक बार चर्चा की है। उनके पद में हठयोग साधना का वर्णन इस प्रकार हैं –

"बोलौ भाई राम की दुहाई
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अधाई।।
इला प्यंगुला भाठी कीन्हीं ब्रह्म अगनि परजारी।
ससि हर सूर द्वार दस मूँदे, लागी जोग जुग तारी।
मन मतिवाला पीवै रॉम रस, दूजा कछू न सुहाई।
उलटी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई।
पंच जने सौ सँग करि लीन्हे, चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी।
सहज सुंनि में जिनि रस चाष्या ; सतगुर थै सुधि पाई।
दास कबीर इही रसि माता कबहूँ उछकि न जाई।"[1]

अर्थात् रे भाई सन्तों राम की दुहाई बोलों, उसकी जय–जय कार करों इस महारस कोपीकर शिव–सनकादिक पीकर मस्त हो गए है और अब भी

---

1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ८६

इस आनन्द से तृप्त नहीं हुए हैं। इस महारस को तैयार करने के लिए इड़ा और पिंगला की भट्टी तैयार की गई है। तथा इसके नीचे ज्ञान की अग्नि प्रज्ज्वलित की है। ब्रह्मरन्ध्र के दसों द्वारों को सूर्य और चन्द्र नाड़ी से बन्द कर दिया गया है तथा इन पर योग की ताली लगा दी गई है ताकि मतवाला साधक अन्दर ही अन्दर राम रस पीता रहे। इस अवस्था में उसे अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता। सुषुम्ना में अधोगति से चलने वाली प्राण–वायु अब ऊर्ध्वगति वाली हो गई है, अतः प्राणधारा की गंगा उलट कर बहने लगी है, जिस से अमृत रूपी आनन्द की प्राप्ति हो गई है। प्रभु–भक्ति में मस्त मेरा मन इस महारस के पान से संसार के समस्त रसों को, समस्त आनन्दों को भूल गया है। इस अमृत–पान के साथ–साथ पाँचों इन्द्रियाँ भी तल्लीन थी। साधक इस महारस के प्याले को प्रेमपूर्वक पीने लगा है तथा उसकी सोई हुई कुण्डली जाग उठी है। जिन्होंने सहज–शून्य में पहुंच कर इस महारस का स्वाद चख लिया है, उन्हें सद्–गुरु की कृपा से आत्म–बोध हो गया है। दास कबीर तो इसी रस को पान कर मदमस्त है और इसकी तृप्ति कभी भी समाप्त नहीं होने वाली है, अर्थात् कबीर शाश्वत् ही इस में रमा रह जाना चाहता है।

3.3.1.11. ताला कुंजी –

साधारण रूप से जीवन बिताते हुए भी मनुष्य को उन लोगों से डर बना रहता है जो लोग चोरी करते है अर्थात दूसरों के समान को चुरा ले जाते हैं। इन्हीं चोरों से बचने के लिए सामान्य जन अपने घरों में ताला लगाते हैं। बृहत् हिन्दी कोश में लिखा है – "ताला लोहे, पीतल, ताँबा या अन्य किसी धातु का बना हुए एक यंत्र होता है, जिस से किवाड़, संदूक आदि को मजबूती से बंद किया जाता है और यह यंत्र खास कुंजी की सहायता से ही खुलता और बन्द होता हैं।"[1]

यहाँ ताला–कुंजी का प्रयोग यौगिक साधना के रूप में प्रयुक्त हुआ हैं। चंचल मन को चोर की संज्ञा दी जाती है क्योंकि यह साधक के लाख प्रयत्नों के पश्चात भी संसार की विषय–वासनाओं में भटकता रहता है। साधक की इस चंचल वृत्ति को प्राणायाम रूपी कुंजी से वश में किया जा सकता है। सन्त कबीर दास जी कहते हैं –

"षट् चक्र की कनक कोठड़ी बस्त भाव है सोई।
ताला कूँची कुलफ के लागे, उधड़त बार न होई।"[2]

अर्थात् यह शरीर षट्चक्रों युक्त स्वर्ण कोठरी है, जिस में कुण्डलिनी सुप्त अवस्था में पड़ी हुई है अर्थात् इसका बाहर से ताला लगा हुआ है लेकिन प्राणायाम रूपी कुँजी के लगते ही यह स्वर्ण कोठरी अपने आप खुल जाएगी, अर्थात् प्राणायाम के द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत करके षट् चक्रों को भेदा जा सकता है। इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों को भी योग की ताली से मिलाया जाता है –

"ससि हरि सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी।"[3]

अर्थात् इड़ा और पिंगला जो आपास में दूर–दूर थी उन्हें योग की ताली लग गई है अथवा वे अब त्रिकुटी में मिल गई है।

---

1. सम्पा० डॉ० कालिका प्रसाद, बृहत् हिन्दी कोश, पृ० ५६१
2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ७५
3. वही , पृ० ७१

इस प्रकार कबीर ने अपनी हठयोग साधना में प्राणायाम रूपी कुंजी से मन रूपी 'ताले' को बन्द करने का अर्थात् चंचल वृत्ति समाप्त करने का उपदेश दिया है।

कबीर की साधना में षट्चक्र-भेदन को भी मान्यता मिली है। इन्हीं षट्चक्रों को कुण्डलिनी भेदती है तथा प्रभु के दर्शन होते हैं---

मन के मोहन बिठुला, यह मन लागौ तोहि रे।
चरन कँवल मन मानियाँ, और न भावै मोहि रे॥ टेक॥
पट दल कँवल निवासिया, चहु कौं फेरि मिलाइ रे।
दहुँ के बीचि समाधियाँ, तहाँ काल न पासै आइ रे॥
अष्ट कँवल दल भीतरा, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे।
सतगुर मिलै तौ पाइए, नहिं तौ जन्म अक्यारथ जाइ रे।
कदली कुसुम दल भीतराँ, तहाँ दस आँगुल का बीच रे।
तहाँ दुवादस खोजि ले जनम होत नहीं मीच रे।
बंक नालि के अंतरै, पछिम दिसाँ की बाट रे।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे॥
त्रिवेणी मनाइ न्हवाइए सुरति मिलै जो हाथि रे।
तहाँ न फिरि मघ जोइए सनकादिक मिलिहै साथि रे॥
गगन गरजि मघ जोइये, तहाँ दीसैं तार अनंत रे।
बिजुरी चमकि घन बरषिहै, तहाँ भीजत हैं सब संत रे॥
षोडस कँवल जब चेतिया, तब मिलि गये श्री बनवारि रे।
जुरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे॥

गुर गमि तैं पाइए झषि सरे जिनि कोइ रे।
तहीं कबीरा रमि रह्या सहज समाधी सोइ रे॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 70, पद-4

हिंडोलनाँ तहाँ झूलैं आतम राम।
प्रेम भगति हिंडोलना, सब संतन कौ विश्राम॥ टेक॥
चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि।
झूलें पंच पियारियाँ, तहाँ झूलै जीय मोर॥
द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अमृत कौ ग्रास।
जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास॥
सहज सुँनि कौ नेहरौ गगन मंडल सिरिमौर।
दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलै हिंडोल॥
अरध अरध की गंगा जमुना, मूल कवल कौ घाट।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणीं संगम बाट॥
नाद ब्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुण गाइ ले, गुरगँमि उतरौ पार॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 74, पद-18

कबीर के अनुसार ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति हेतु सुरति-निरति संगम आवश्यक है

नरहरि सहजै ही जिनि जाना।
गत फल फूल तत तर पलव, अंकूर बीज नसाँनाँ॥ टेक॥
प्रकट प्रकास ग्यान गुरगमि थैं, ब्रह्म अगनि प्रजारी।
ससि हरि सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी॥
उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेर डंड सरपूरा।
गगन गरजि मन सुंनि समाना, बाजे अनहद तूरा॥
सुमति सरीर कबीर बिचारी, त्रिकुटी संगम स्वामी।
पद आनंद काल थैं छुटै, सुख मैं सुरति समाँनी॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 71, पद-7

नाथ सम्प्रदाय में हठयोग के विविध अर्थ विहित हैं [568]

हठयोग – ह्+ठ्+ योग/

– सूर्य्+चन्द्र+योग/

– प्राण+अपान+योग/

–दक्षिण+वाम+योग/

–यमुना+गंगा+योग/

– पिंगला+इड़ा+योग/

–रजस्+तजस्+योग/

मन, वायु और शुक्र

इन तीनों के साधने पर योग या काया की सिद्धि हो जाती है – कुण्डलिनी जाग जाती है।

---

[567] **गोरक्षनाथ और नाथ सिद्ध : डा. अनुज प्रताप सिंह** पृ 110
प्रकाशक : महायोगी गुरू गोरक्षनाथ शोध संस्थान, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर।

[568] **गोरक्षनाथ और नाथ सिद्ध : डा. अनुज प्रताप सिंह** पृ 327
प्रकाशक : महायोगी गुरू गोरक्षनाथ शोध संस्थान, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर।

फलतः यदि योग को काया, मन हृदय, भाव और चित्त अथवा अन्तः और वाह्य का अनुशासन माना जाए तो कोई विसंगति नहीं होगी।

'हठयोग की सर्वोपरि विशिष्टता है प्राण के ब्रह्मरन्ध्र में लय पूर्वक कुण्डलिनी जागरण तथा षट्चक्रभेदनपूर्वक नादानुसंधान के द्वारा मन के संयम को महत्व दिया गया है, इन दोनों के वश में हो जाने पर योगसिद्धि करतलगत हो जाती है।'

म0म0 गोपीनाथ कविराज ने इस पक्ष पर बड़ी गम्भीरता से विचार करते हुए लिखा है कि (गोनासि पृ 328)[569]

'चन्द्र और सूर्य को प्रकृति और पुरूष मानते हुए इनके हठयोग के द्वारा मिलन को प्रकृति–पुरूष का आलिंगन ही बताया है।'

इसी आलिंगन से शून्य पथ सुषुम्णा 'माध्यम पथ' खुलता है।

इस शून्यता की कई कोटियाँ हैं – शून्य, अतिशून्य, महाशून्य, आदि।

जलाकर खरे सोने के समान शुद्ध कर लेते हैं। साधक योग साधना से शरीर को शुद्ध करके प्रेम भक्ति के हिंडोले पर झूलना चाहता है : –

"हिंडोलनाँ तहाँ झूलैं आतम राँम।
प्रेम भगति हिंडोलनाँ, सब संतनि कौ विश्राम।
चंद सूर दोइ खंभवा, बकनालि की डोरि।
झूलें पंच पियारियाँ, तहाँ झूलै जीय मोर।[1]

अर्थात् यह प्रेम भक्ति का झूला है। यह सब संतों का आश्रय है। यही पर कबीर अथवा साधक जीव झूल रहा है। जिस भांति हिंडोले में दो खम्ब होते हैं। उसी प्रकार इड़ा और पिंगला के दो स्तम्भ है, जिसके मध्य में सुषुम्ना की डोर डाल रखी है। इसी पर पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ झूलती हैं तथा मेरा मन भी यहीं रम रहा है।

सन्त कबीर ने हठयोग साधना में पारम्परिक शब्दों को ग्रहण तो किया है लेकिन उनका ताना–बाना अपने ही ढ़ग से बना है जो साधक के मन में एक अजीब सा कौतूहल पैदा कर देता है और उसे कौतूहलता को दूर करने के लिए सन्त कबीर भाषा रूपी नदी की ऐसी धारा प्रवाहित करते हैं कि श्रोतागण मंत्रगुग्ध हो कर इसी धारा में बहते चले जाते हैं।

* * * * *

89

1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ७४

3.3.1.9. उल्टी गंगा –

गंगा एक पवित्र नदी है, लेकिन कबीर ने अपनी रचनाओं में इसे इड़ा–नाड़ी के स्थान पर प्रयोग किया है। उल्टी गंगा का अर्थ है –इड़ा नाड़ी के प्रवाह का उल्टा कर देना। "सामान्य अवस्था में इड़ा या गंगा का प्रवाह अधोगामी बना रहता है और ब्रह्मरन्ध्र से जो अमृत स्राव होता है वह मूलाधारस्थ सूर्य में पड़ कर भस्म होता रहता है, जिस से प्राणी जरा–मृत्यु को प्राप्त होता है। अतः साधनाभ्यास के द्वारा इस नाड़ी के प्रवाह का क्रम पलट देना ही गंगा का उल्टा बहना है। इस से अमरत्व लाभ होता है।"[1]

नीचे की ओर जाती हुई श्वास की स्वाभाविक धारा को उलटकर ऊपर की ओर ले जाना ही 'उल्टी गंगा' बहना है। सन्त कबीर ने अपने साधना में 'उल्टी गंगा' का जिक्र किया है, वे कहते हैं –

"उल्टी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई।"[2]

अर्थात् सुषुम्ना में अधोगति से चलने वाली प्राणवायु अब ऊर्ध्वगति वाली हो गई है, अतः प्राणधारा की गंगा उलटकर बहने लगी है। इस साधना के प्रभाव से अमृत की धार टपकने लगी है।

सन्त कबीर ने अपनी योग साधना में 'उल्टी गंगा' के प्रवाह का वर्णन किया हैं, तो कहीं–कहीं इसके स्थान पर 'उल्टी पवन' का भी वर्णन किया है। वे कहते हैं : –

"ससि हरि सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी।
उलटे पवन चक्र षट बेधा, मरे डंडं सरपूरा।"[3]

---

53 1. डॉ० रमेश चन्द्र मिश्र, हिन्दी सन्तों का उल्टवाँसी साहित्य, पृ० १४२
2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ८६
3. वही , पृ० ७१

अर्थात् इड़ा और पिंगला जो आपस में दूर–दूर थी, उन्हें योग की ताली लग गई हैं, जिस से वे त्रिकुटी में मिल गई हैं। उनकी प्राणवायु ने उलटकर कुण्डलिनी के षट्चक्रों का भेदन कर दिया है और उनका सुषुम्ना मार्ग शब्द रूपी बाणों से भर गया है।

हठयोग की साधना में योगी जब प्राणवायु को ऊर्ध्वगामी करके उसे कहाँ रोके, जिस से उसे अपने लक्ष्य में सफलता मिले, यह उसे अच्छी तरह सोच समझ लेना चाहिए। सन्त कबीर कहते हैं : –

"उलटि पवन कहाँ राखिये, कोई मरम बिचारे।"[1]

अर्थात् प्राणवायु को विपरीत कर के मुद्रा द्वारा ऊर्ध्वगामी करने के पश्चात उसे कहाँ रोकना चाहिए, साधना के इस मार्ग पर विचार करो।

यह साधना वस्तुतः तलवार की धार पर चलने के समान है अर्थात् प्राणवायु के प्रवाह को मोड़ना अत्यन्त कठिन है। सन्त कबीर कहते हैं : –

"कहै कबीर कठिन यह करणीं जैसी षंडे धारा।
उलटी चाल मिलै परब्रह्म कौं, सो सतगुरु हमारा।"[2]

अर्थात् यह साधना का मार्ग इतना ही कठिन है जितना की तलवार की धार पर चलना। जो अपनी कुण्डलिनी शक्ति में प्राणवायु को ऊर्ध्वगामी कर साधना द्वारा प्रभु को प्राप्त करता है, वही योगी हमारे लिए गुरु के समान आदरणीय है। हमारे हृदय सरोवर में ही उस अविनासी प्रभु का निवास स्थान है। इस शरीर के अन्दर ही कोटि तीर्थ, काशी, कमलापति सभी कुछ विद्यमान है। प्राणवायु को ऊर्ध्वमुखी करके ही इस अविनाशी प्रभु को पाया जा सकता है। सन्त कबीर दास जी कहते हैं : –

"माया मधे कवलापति काया मधै बैकुंठ बासी।
उलटी पवन षटचक्र निवासी, तीरथराज गंगतट बासी।"[3]

---

54 1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० १०३
2. वही , पृ० १०८ 3. वही , पृ० १०८

यहाँ नाद–बिन्दु साधनापरक अवस्था में प्रयोग किया गया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं – "कुण्डलिनी जब उदबुद्ध होकर ऊपर की ओर उठती है तो उस से स्फोट होता है जिसे 'नाद' कहते है। नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश का ही व्यक्त रूप महा बिन्दु है। यह बिन्दु तीन प्रकार का होता है : इच्छा, ज्ञान और क्रिया। पारिभाषिक तौर पर योगी लोग इन्हीं को कभी सूर्य, चन्द्र और अग्नि कहते हैं और कभी ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी कहते हैं। अब जो यह नाद और बिन्दु हैं वह असल में अखिल ब्रह्मांड में व्याप्त अनाहत नाद का व्यष्टि में व्यक्त रूप है।"[1]

साधक योगाभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी को उदबुद्ध करता है अर्थात् जो अधोगामी बिन्दु या शक्ति है उसे साधक अपनी योगसाधना के द्वारा त्रिकुटी स्थान पर केन्द्रित करता है तथा अपनी चित् वृत्तियों को वहीं केन्द्रित करके समाधि में लीन' हो जाता है। डॉ० रमेश चन्द्र मिश्र लिखते हैं – "अधोगामी बिन्दु या शक्ति को योगाभ्यासी प्रयत्नपूर्वक त्रिकुटी अथवा शिव–स्थान पर स्थापित करता है और उस त्रिकुटी स्थान में समाधि में लीन होकर अजर–अमर हो जाता है। इस प्रकार नाद शब्द या शिव में बिन्दु या शक्ति को लयकर देना ही नाद–बिन्दु संयोग कहलाता है। यही बिन्दु या महा बिन्दु की साधना है।"[2]

नाद तथा बिन्दु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में समाये हुए है। योगाभ्यास के द्वारा योगी इनका प्रकाश अपने हृदय में ही फैला लेता है। इसी रूप में सन्त कबीर ने नाद–ब्यँद शब्द का प्रयोग अपने साहित्य में किया हैं। वे कहते हैं –

"अवधू नादैं ब्यंद गगन गाज सबद अनाहद बोलै।
अंतरि गति नहीं देखै नेड़ा, ढूँढ़त बन–बन डोलै।"[3]

---

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० ४७
2. डॉ० रमेश चन्द्र मिश्र, हिन्दी सन्तों का उल्टवाँसी साहित्य, पृ० १५५
3. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ११५

अर्थात् समष्टि–नाद का व्यष्टि रूप इस शरीर रूपी आकाश में ही गूँज रहा है और इस प्रकार से शरीर के अन्दर ही अनहद नाद हो रहा है। प्रत्येक शरीर में यह नाद विद्यमान है, लेकिन जिनकी अन्तर्गति नहीं हैं, वे इसे नजदीक से भी सुन नहीं पाते और उसे खोजने के लिए वन–वन भटकते रहते हैं।

नाद और बिन्दु का ध्यान कैसे करना चाहिए ? इसका वर्णन करते हुए कबीरदास जी कहते हैं –

"नाद हि ब्यंद कि ब्यंदहि नाद, नाद हिं ब्यंद मिलै गोब्यंद।"[1]

अर्थात् भगवान का ध्यान इस प्रकार करो कि नाद–रूप परम तत्त्व ही सृष्टि तत्त्व बिन्दु है या बिन्दु ही नाद है। यह ध्यान करो कि नाद और बिन्दु दोनों गोविन्द में ही समाहित हैं।

सन्त कबीर का कहना है कि नाद और बिन्दु की नौका तो स्वयं भगवान चलाते हैं –

"नाद ब्यंद की नावरी, रामैं नाम कनिहार।
कहैं कबीर गुंण गाइ ले, गुर गँमि उतरी पार।"[2]

अर्थात् नाद और बिन्दु से निर्मित नौका के कर्णधार स्वयं भगवान है। इसलिए कबीरदास जी कहते हैं कि तुम भगवान् का गुणगान करो, ताकि गुरु की शक्ति से इस भव सागर को पार कर सको।

ऐसा लगता है कि आरम्भ में सन्त कबीर ने नाद–बिन्दु साधना पर अधिक जोर दिया हो लेकिन धीरे–धीरे बाद में उनका ध्यान इस साधना पर कम होता गया। इसीलिए वे कहते हैं –

"नाद बिंद रंक इस खेला, आपै गुरु आप ही चेला।
आपै मंत्र आपै मंत्रेला, आपै पूजै आप पूजेला।"[3]

---

1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० १४६
2. वही , पृ० ७४
3. वही , पृ० १८५

3.3.1.21. त्रिवेणी –

सामान्यतः गंगा, यमुना तथा सरस्वती इन तीन नदियों का जहां संगम होता है, वह स्थान त्रिवेणी कहलाता है परन्तु हठयोग में इड़ा–पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों का संगम त्रिवेणी कहलाता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं – "इड़ा या इंगला ही 'गंगा' है, पिंगला ही 'यमुना' है और सुषुम्ना' ही सरस्वती है। इन तीनों का जहाँ संगम हुआ है, वही त्रिवेणी या प्रयाग है।"[3]

---

78 1. डॉ० गोबिन्द त्रिगुणामत, हिन्दी की निगुर्ण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ५०७

2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ७०

3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० ४७

हठयोग साधना में मुख्यतः तीन नाडियाँ – इडा, पिंगला और सुषुम्ना ही प्रमुख है और इन नाडियों को नदी की संज्ञा भी दी जाती हैं क्योंकि नदियों में जल का प्रवाह होता है और इन नाडियों में भी शक्ति का प्रवाह अथवा प्राणशक्ति विद्यमान रहती है तथा इनके संगम स्थल को ही 'त्रिवेणी' या 'त्रिवेणी संगम' के नाम से जाना जाता है। यह संगम दशम द्वार में होता है। "बद्ध जीवों के नवद्वार खुले रहते हैं, परन्तु त्रिनाड़ी संगम न होने से दशम द्वार अवरूद्ध बना रहता है। साधनाभ्यास से उक्त तीन नाड़ियों का समागम कराके दशम द्वार को उद्‌घाटित किया जाता है। जैसे ही यह विशेष रन्ध्र खुलता है वैसे ही योगी सहस्त्रार चक्र से स्रवित होने वाले अमृत का आस्वाद करने लगता है।"[1] इस अमृत रूपी रस की प्राप्ति तभी होती है जब तीनों नाड़ियाँ मिलकर एक हो जाए अर्थात् उनका संगम हो जाए।

सन्त कबीर ने भी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के संगमस्थल को 'त्रिवेणी' कहा है। वे 'साधक' को इस 'त्रिवेणी' में स्नान करने की सलाह देते हुए कहते हैं : –

"त्रिवेणी मनाइ न्हवाइए सुरति मिलै जौ हाथि रे।
तहाँ न फिरि मध जोइए सनकादिक मिलि हैं साथि रे।"[2]

अर्थात् तीन नाड़ियों का जो संगम स्थल है, उस में स्नान करो जिससे तुम्हारे स्वरूप की स्मृति जाग जाये। वहाँ से फिर पुनः जगत की ओर आने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वहीं पर परमतत्त्व में ध्यान लगाओ। वही पर सनक आदि देवताओं से भेंट होगी।

इसी त्रिवेणी में स्नान करने से ही प्रभु का पाया जा सकता है। सन्त कबीर का मानना है –

---

79 1. डॉ० रमेश चन्द्र मिश्र, हिन्दी सन्तों का उल्टवाँसी साहित्य, पृ० १५१

2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ७०

"त्रिकुट कोट मैं आसण माँडै, सहज समाधि विषै सब छाँडै।
त्रिवेणी बिभूति करै मन अंजन, जन कबीर प्रभु अलष निरंजन।"[1]

अर्थात् साधक त्रिकुटी के किले में समाधि लगाकर बैठ जाता है। यह सहज समाधि साधक को समस्त विषय–रसों से मुक्त कर देती है। जब मन इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना द्वारा प्रवाहित त्रिवेणी में स्नान करने लगता है तो अलख निरंजन, ज्योति स्वरूप परमात्मा के दर्शन होते हैं।

3.3.1.5. अरध–उरध –

अरध–उरध का सामान्य अर्थ है नीचे–ऊपर। लेकिन यह एक यौगिक शब्द है जो एक साधना विशेष की ओर संकेत करता है। हठयोग साधना में यह मान्यता है कि मेरूदण्ड का अधः भाग 'मूलाधार या अरध' है। इस मूलाधार में ही

---

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० ४६
2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ६६

कुण्डलिनी सुप्त अवस्था में पड़ी रहती है। साधक इसे यौगिक क्रिया के द्वारा उरध करता है अर्थात इसे ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचाता है।

डॉ० रमेश चन्द्र मिश्र लिखते है –"साधक को मेरूदण्ड के अरध में स्थित कुण्डलिनी को उरध में या ब्रह्मरन्ध्र में प्रयत्नपूर्वक स्थापित करना चाहिए। अथवा 'अरध' में स्थित बिन्दु या सूर्य को 'उरध' में अधिष्ठित 'नाद' या 'चन्द्र' से समागम कराना चाहिए। इस प्रकार अधोस्थिति को ऊर्ध्वस्थ करा देना ही 'अरध–उरध' साधना है।"[1]

कबीर ने अपनी यौगिक साधना में अरध–उरध का प्रयोग किया है। वे कहते हैं –

"चौपड़ि माँडी चौहटै, अरध उरध बाजार।
कहै कबीरा रामजन, खेलौ संत विचार।"[2]

अर्थात् शरीर के चौराहे पर चौपड़ बिछी हुई है। इसके नीचे एवं ऊपर अर्थात मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक चक्रों का बाजार लगा हुआ है। प्रभुभक्त इस खेल को सोच समझ कर खेलते हैं।

सन्त कबीर राम, रहीम केशव, अल्लाह आदि सभी को एक ही मानते थे। इसी के सन्दर्भ में उन्होंने अरध–उरध का प्रयोग करते हुए कहा है : –

"अरध–उरध दसहूँ दिस जित तित,
पूरि रह्या राम राई।"[3]

अर्थात ऊपर नीचे (यहाँ, वहाँ) दशों दिशाओं में एक ही परम तत्त्व समाया हुआ है।

अरध–उरध को सन्त कबीर ने पिण्ड और ब्रह्माण्ड भी माना है। वे कहते हैं : –

---

1. डॉ० रमेश चन्द्र मिश्र, हिन्दी सन्तों का उल्टवाँसी साहित्य, पृ० १४०
2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ३
3. वही , पृ० ८३

"अरध-उरध बिचि लाइ ले अकास, तहँवा जोति करै परकास।"[1]

अर्थात पिण्ड और ब्रह्माण्ड के मध्य में व्याप्त गगन–तत्त्व का ध्यान करो, वहीं पर ज्योति का प्रकाश फैला हुआ है।

सन्त कबीर ने अरध–उरध को गंगा और जुमना भी माना है। वे कहते हैं : –

"अरध-उरध की गंगा जुमना, मूल कवल कौ घाट।"[2]

अर्थात ऊपर और नीचे इड़ा और पिंगला है। बीच में सुषुम्ना के ऊपरी भाग पर सहस्रार कमल का घाट है।

जो योगी अपने आपको अधोवर्ती तथा ऊर्ध्ववर्ती कमलों के बीच में अनाहत चक्र में स्थित भगवान के समीप अपने आपको अवस्थित करता है, वास्तव में वही तीनों लोकों को प्रिय है : –

"अर्ध उर्ध बिचि आनि उतारा, सोई सेष तिहूँ लोक पियारा।"[3]

वस्तुतः मरूदण्ड के अरध में स्थित कुण्डली को उरध करना (ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचाना) ही अरध–उरध है।

3.3.1.7. इड़ा पिंगला –

इड़ा और पिंगला शब्द नाड़ी सूचक है, जिनका प्रयोग सन्त कबीर ने लगभग इकट्‌ठा ही किया है। मेरे विचार से इनकी परिभाषा अलग–अलग देकर इनका प्रयोग साथ–साथ करना ही ज्यादा बेहतर होगा।

इड़ा –

इड़ा शब्द का सामान्य अर्थ है पृथ्वी। इड़ा को इंगला, इला गंगा, वरूण आदि नामों से जाना जाता हैं। कबीर साहित्य में इड़ा एक नाड़ी का सूचक है। वैसे तो हमारे शरीर में हजारों नाड़ियाँ विद्यमान है, लेकिन उनमें से कुछ एक ही ज्यादा प्रसिद्ध हैं जिनमें इड़ा का भी नाम आता हैं। डॉ० ब्रह्मजीत गौतम लिखते हैं – "यह नाड़ी मेरूदण्ड के बाएँ भाग से आरम्भ होकर सुषुम्ना नाड़ी से लिपटती हुई दाएँ नासिका छिद्र की ओर जाती हैं।"[1]

इस नाड़ी के अधिष्ठाता देवता ब्रह्म माने जाते हैं। जब यह नाड़ी नासिका के दाई ओर जाती है तो वहाँ इसका सम्बन्ध आज्ञाचक्र से हो जाता है। "ब्रह्मरन्ध्र में स्थित 'चन्द्र' से इस नाड़ी के द्वारा 'अमृत' स्राव होता है, इसलिए इसे चन्द्र नाड़ी भी कहा जाता है, जो स्वभाव से शीतल और पवित्र है।"[2] इस नाड़ी में सोलह कलाओं का समावेश माना जाता है।

पिंगला –

पिंगला का सामान्य अर्थ है – पिंगल वर्ण वाला अर्थात ललिमा लिए हुए भूरा रंग। बृहत् हिन्दी कोश में पिंगला शब्द के अर्थ हैं – "शरीर के दक्षिण भाग की एक प्रसिद्ध नाड़ी, एक पक्षी, उल्लू की एक जाति, पीतल, शीशम का पेड़, लक्ष्मी, कुमुद नामक दिग्गज की पत्नी, एक प्राचीन वेश्या जो अपनी धर्म निष्ठा के लिए प्रसिद्ध है।"[3]

45
1. डॉ० ब्रह्मजीत गौतम, कबीर काव्य में प्रतीक विधान, पृ० १६७
2. सम्पा० डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, कबीर वचनामृत, पृ० ८८
3. सम्पा० डॉ० कालिका प्रसाद, बृहत् हिन्दी कोश, पृ० ८०९

डॉ० रामचन्द्र वर्मा 'मानक हिन्दी कोश' में लिखते हैं – "हठयोग में सुषुम्ना नाड़ी के बाई ओर स्थित एक नाड़ी जिस से दक्षिण नासा–पुट का श्वास चलता हैं। इस में सूर्य का वास माना गया है, इसलिए इसे सूर्य नाड़ी भी कहते हैं।"[1]

यहाँ पिंगला का अर्थ दक्षिण भाग की एक प्रसिद्ध नाड़ी से ही है। "पिंगला नाड़ी की स्थिति मेरूदण्ड के दाहिनी ओर और नासिका के बाई ओर हैं। अतः यह नासिका के बामस्थ रहती है। इसके अधिष्ठाता देवता विष्णु माने गए हैं।"[2] इसे यमुना, रसना, सूर्य नाड़ी से भी जाना जाता हे। इसका स्वभाव उष्ण है, इसलिए इसकों सूर्य नाड़ी कहा जाता है। पिंगला नाड़ी में १२ कलाएँ मानी जाती हैं।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी इड़ा–पिंगला के बारे में लिखते हैं– "मेरूदण्ड में प्राणवायु को वहन करने वाली कई नाड़ियाँ हैं जिन में से कुछ का आभास हम साँस लेते समय पाते है। जो नाड़ी बाई ओर हैं उसे इड़ा और जो दाहिनी ओर है उसे पिंगला कहते हैं। मौजी कबीर ने अनुप्रास मिलाने के लिए इनकी जोड़ी का नाम इंगला–पिंगला बना लिया था। ये दोनों ही बारी–बारी से चलती रहती है।"[3]

सन्त कबीर ने अपनी रचनाओं के इड़ा को चन्द्र नाड़ी तथा पिंगला को सूर्य नाड़ी के रूप में भी वर्णित किया हैं। इसके लिए उन्होंने चन्द सूर,

---

47 1. श्री आत्माराम योगीन्द्र, हठयोग प्रदीपिका, पृ. १२८
2. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० १४
3. वही , पृ० ७३
4. वही , पृ० १४८

रवि–ससि तथा ससिहर–सूर शब्दों का प्रयोग किया है। चन्द–सूर का प्रयोग देखिए–

"चंद सूर दोइ खंभवा, बंकनालि की डोरि।"[1]

अर्थात् जिस प्रकार हिंडोले में दो खम्ब होते हैं, उसी प्रकार इड़ा, पिंगला के दो स्तम्ब हैं, जिन में बंक नालि की डोर डाल रखी है।

हठयौगिक साधना में यह माना जाता है कि इड़ा और पिंगला के समरस होने पर ही परम सिद्धि की प्राप्ति होती है। इसी की चर्चा करते हुए सन्त कबीर दास जी कहते हैं : –

"सूर समाँणाँ चंद में, दूहूँ किया घर एक।
मनका च्यंता तब भया, कछू पूरबला लेख।"[2]

अर्थात् पिंगला नाड़ी इड़ा में समा गई है और दोनों ने एक होकर सुषुम्ना में अपना स्थान बना लिया है। इस साधना के सिद्ध होने से कबीर के मन की इच्छा अब पूर्ण हो गई हैं यह सब पूर्व जन्म के पुण्यों का ही फल है।

इड़ा–पिंगला के स्थान पर रवि–ससि का प्रयोग करते हुए कबीर कहते हैं –

"गगन जोति तहाँ त्रिकुटी संधि, रबि ससि पवनाँ मेलौ बंधि।"[3]

अर्थात् परम ज्योति का निवास स्थान त्रिकुटी पर है, इड़ा और पिंगला को प्राणायाम द्वारा एक करके वहाँ पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

इड़ा नाड़ी के लिए सन्त कबीर ने कभी–कभी ससिहर तथा पिंगला के लिए सूर शब्द का प्रयोग भी किया हैं।

"ससिहर सूर मिलावा, तब अनहद बेन बजावा।"[4]

---

48 1. सम्पा० डॉ० श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्था०, पृ० ७४
2. वही , पृ० १०
3. वही , पृ० १४८
4. वही , पृ० १०६

अर्थात् चन्द्र के रूप में इडा नाड़ी तथा सूर्य के रूप में पिंगला नाडी जब मिल जाती है तो अनहद नाद की ध्वनि मुखरित हो जाती हैं।

इड़ा और पिंगला के लिए कहीं–कहीं सुरति तथा निरति शब्दों का प्रयोग भी कबीर साहित्य में देखने को मिलता हैं। कबीर ने इस आशय को निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया है : –

"सुरति समाँणी निरति मैं, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भयां, तब खूले स्यंभ दुवार।"[1]

अर्थात् इड़ा–पिंगला से मिल गई है, इड़ा से मिल जाने पर पिंगला मूलाधार से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखती। इनके मिलने पर कुण्डलिनी के लिए ब्रह्म नाड़ी का मार्ग खुल जाएगा जहाँ परम शक्ति का निवास है।

इस प्रकार से सन्त कबीर ने इड़ा–पिंगला को गंगा–यमुना, चंद सूर, ससिहर–सूर, सुरति–निरति आदि शब्दों से भी पुकारा हैं।

07:06
2015.482650.Ghat-Ra...
28/438

सुरति गगन घन छाई, पिया परे परे ख्याल ।
तुलसी तरक तत तारी, भारी काटी भ्रम जाल ॥ ३ ॥

॥ सोरठा ॥

कहौं अब बिधि बरतंत, संत कहनि मन मत गही ।
लही जो तुलसी अंत, ज्ञान चक्र चित चेति कै ॥

॥ चौपाई ॥

अब सोई बिधि बरतंत सुनाऊँ । राह रीति मन मत दरसाऊँ ॥
मन मत चक्र घेर के मारा । ज्ञान चक्र जब जीव सम्हारा ॥
काल मारि मुख फेरि चलावै । काल भागि त्रिकुटी मैं आवै ॥
जीव सब्द गहि खेदि चलाई । अधर कँवल बिच काल छिपाई॥
भर्म चक्र जब काल चलावा । भरमित जीव भरम जब आवा॥
संसय सोग जीव उपजाई । साहेब सब्द बिसरि गयो भाई॥
भगिया जीव गगन मग माहीं । यहँ होइ काल गहैगो नाहीं ॥
जीव वहाँ से निसरि पराई । नाल बंक मैं जाइ समाई ॥
बंके नाल काल गति लइया । जीव भागि आगे चलि गइया ॥
परम कँवल मैं जीव छिपाना । वहाँ काल जो जाइ समाना ॥
सोला गगन जीव फिरि आई । तहाँ काल पुनि खेदत धाई ॥

॥ सोरठा ॥

सोला गगन मँझार, जीव काल खेदत फिरै ।
बूझै बूझनहार, घट निहारि अंदर लखै ॥

॥ चौपाई ॥

वहाँ जीव कोइ बचन न पावै । रहस नाल जिव पैठि समावै ॥
वहँ कहुँ काल सुनन जब पावै । समाधान होइ काल सिधावै॥
रहस नाल से भागि पराई । भँवर गुफा मैं जाइ छिपाई ॥
आपै काल ध्यान धर कीन्हा । अपनी सुरति गुफा मैं दीन्हा ॥
सूरति जीव काल पर आवै । काल आप धर ध्यान लगावै॥
अपनी सुरति गुफा मैं लावै । भीतर सूरति जीव समावै ॥

प्रसार्य पादौ भुवि दंडरूपौ दोर्भ्यां पदाग्रद्वितयं गृहीत्वा ॥ जानूपरिन्यस्तललाटदेशो वसेदिदं पश्चिमतानमाहुः ॥ २८ ॥

पश्चिमतानासनमाह—प्रसार्येति ॥ भुवि भूमौ दंडस्य रूपमिव रूपं ययोस्तौ दंडाकारौ श्लिष्टगुल्फौ प्रसार्य प्रसारितौ कृत्वा । दोर्भ्यामाकुंचिततर्जनीभ्यां भुजाभ्यां पदोः पदयोश्चाग्रे अग्रभागौ तयोर्द्वितयं द्वयमंगुष्ठप्रदेशयुग्मं बलादाकर्षणपूर्वकं यथा जान्वधोभागस्य भूमेरुत्थानं न स्यात्तथा गृहीत्वा । जानोरुपरिन्यस्तो ललाटदेशो येन तादृशो यत्र वसेत् । इदं पश्चिमतानननामकमासनमाहुः ॥ २८ ॥

भावार्थ—अब पश्चिमतानासनको कहतेहैं कि, दंडके समानहै रूप जिनका ऐसे और मिलेहैं गुल्फ जिनके ऐसे दोनोंचरणोंको भूमिपर फैलाकर और आकुंचित (सुकडी) है तर्जनी जिनकी ऐसी भुजाओंसे दोनों पादोंके दोनों अग्रभागोंको ग्रहण करके अर्थात् अँगूठोंको इसप्रकार पकडकर जैसे जानुओंके अधोभाग भूमिसे ऊपर न उठें और जानुओंके ऊपर रक्खाहै ललाट (मस्तक) भाग जिसने ऐसा होकर जहां पुरुष वसे उस आसनको पश्चिमतान आसन कहतेहैं ॥ २८ ॥

इति पश्चिमतानमासनाग्र्यं पवनं पश्चिमवाहिनं करोति ॥ उदयं जठरानलस्य कुर्यादुदरे कार्श्यमरोगतां च पुंसाम् ॥ २९ ॥

अथ तत्फलम्—इतीति ॥ इति पूर्वोक्तमासनेष्वग्र्यं मुख्यं पश्चिमतानं पवनं प्राणं पश्चिमवाहिनं पश्चिमेन पश्चिममार्गेण सुषुम्नामार्गेण वहतीति पश्चिमवाही तं तादृशं करोति । जठरानलस्य जठरे योऽनलोऽग्निस्तस्योदयं वृद्धिं कुर्यात् । उदरे मध्यप्रदेशे कार्श्यं कृशत्वं कुर्यात् । अरोगतामारोग्यं चकारान्नाडीवलनादिसाम्यं कुर्यात् ॥ २९ ॥

भावार्थ—अब इस आसनके फलको कहतेहैं कि, संपूर्ण आसनोंमें मुख्य यह पश्चिमताननामका आसन प्राणरूप पवनको पश्चिमवाही करताहै अर्थात् सुषुम्ना नाडीके मार्गसे प्राण वहने लगताहै और जठराग्निको उत्पन्न करताहै अर्थात् बढाताहै और उदरके मध्यमें कृशताको करताहै और पुरुषोंकी अरोगता (रोगका अभाव) करताहै और चकारसे नाडियोंके वलन आदिकी समताको करताहै ॥ २९ ॥

यह सुरति-निरति संगम मन को उलटकर षट्चक्र-भेदन से ही संभव है---

मन रे मन ही उलटि समाँना।
गुर प्रसादि अकलि भई तोकौं नहीं तर था बेगाँना॥ टेक॥
नेड़ै थै दूरि दूर थैं नियरा, जिनि जैसा करि जाना।
औ लौ ठीका चढ्या बलीडै, जिनि पीया तिनि माना॥
उलटे पवन चक्र षट बेधा, सुनि सुरति लै लागि।
अमर न मरै मरै नहीं जीवै, ताहि खोजि बैरागी॥
अनभै कथा कवन सी कहिये, है कोई चतुर बिबेकी।
कबै कबीर गुर दिया पलीता, सौ झल बिरलै देखी॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 71, पद-8

कबीर योगी के विषय में कहते हैं कि योगी वही है जो त्रिकुटी संगम के द्वारा सहस्रार चक्र से निरन्तर झरने वाले 'महारस' का पान करता है---

अवधू जोगी जग थैं न्यारा, मुद्रा निरति सुरति करि सींगीं, नाद न षंडै धारा॥ टेक॥
बसै गगन मैं दुनीं न देखै, चेतनि चौकी बैठा।
चढ़ि अकास आसण नहीं छाड़ै, पीवै महा रस मीठा॥
परगट कंथाँ माहैं जोगी दिल मैं दरपन जीवै।
सहँस इकीस छ सै धागा, निहचल नाकै पीवै॥
ब्रह्म अगनि मैं काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै।
कहै कबीर सोई जोगेश्वर, सहज सुंनि ल्यौ लागै॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 85, पद-69

अवधू गगन मंडल घर कीजै, अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंक नालि रस पीजै॥ टेक॥
मूल बाँधि सर गगन समाना, सुखमन यों तन लागी।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तह जोगणीं जागी॥
मानवाँ जाइ दरीबै बैठा, गगन भया रसि लागा।
कहै कबीर जिय संसा नाँहीं, सबद अनाहद वागा॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 85, पद-70

इस 'महारसपान' के पश्चात् त्रिभुवन में उजियारा हो जाता है, सांसारिक मोह-माया, विषय-विकार छूट जाते हैं और जोति, जोति में समा जाती है। जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं

अवधु मेरा मन मतिवारा; उन्मनि चढ्या मगन रस पीवै त्रिभवन भया उजियारा॥ टेक॥
गुड़ करि ग्यान ध्याँन कर महुवा भव भाठी करि भारा। सुषमन नारी सहजि समानी, पीयै पीवनहारा॥
दोइ षुड जोड़ि चिनाई भाठी, चुया महा रस भारी।
काम क्रोध दोइ किया पलीता, छुटि गई संसारी॥
सुंनि मंडल मैं मँदला बाजै, तहाँ मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनाँ काछै॥
पूरा मिल्या तबै सुप उपज्यौ, तन की तपनि बुझानि।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 86, पद 72

उलटी सामना आप में प्रगटी जोति अनंत।
साहेब सेवक एक सँग खेलैं सदाबसंत॥

---कबीर वचनावली, अयोध्या सिंह उपाध्याय, पृष्ठ 98, साखी-50

इस 'महारसपान' के पश्चात् किसी और 'रस' की इच्छा ही नहीं रहती। इसे पीकर कभी कोई नहीं अघाता---

बोलौ भाई राम की दुहाई,
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अघाई।। टेक॥
इला प्यंगुला भाठी कीन्हीं, ब्रह्मा अगनि परजारी।
ससि हर सूर द्वार दस मूँदे, लागी जोग जुग तारी॥
मन मतिवाला पीवै राम रस, दूजा कछू न सुहाई।
उल्टी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई॥
पंच जने सौ संग करि लीन्हे, चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी॥
सहज सुनि में जिनि रस चाख्या, सतगुर थैं सुधि पाई।
दास कबीर इही रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई॥

---कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 86, पद-74

जोगी राह रीत दरसाऊँ । भिनि भिनि जोग बिधी बिधि गाऊ ॥
जोग सब्द बिधि कहौं बखानी । बूझै जोग कीन्ह सोइ जानी ।

॥ कहेरा ॥

जोगी राह रमक तत तारी, करत जोग जुग चारी हो ।
ज्ञान जोग मिसिरित[1] मन मैला, चढ़ि अकास नित खेला हो ॥१॥
अब तेहि राह रीति दरसाऊँ, बिधि भिनि भिनि गति गाऊँ हो ।
बस तन मन रस निरमल होई, इंद्री इस्क खुद खोई हो ॥२॥
ता पर तीन तलब पचबीसा, खड़ग ज्ञान दल पीसा हो ।
उनके निकट नेक नहिं ज़ावै, थिर होइ पवन चढ़ावै हो ॥३॥
दीदा फूल भूल दिन राती, त्रिकुटी चढ़ि येहि भाँती हो ।
बिधि बायेँ[2] पिंगला गति केरी, इँगला दहिने फेरी हो ॥४॥
चंद सूर दम दम बस आवा, सुखमनि चटक चढ़ावा हो ।
बंक नाल पल पल नल खोली, अति अजपा नहिं बोली हो ॥५॥
ओहँग तत सोहँग मत जानी, पवन सब्द सँध आनी हो ।
थिर मन मेरडंड चढ़ तारी, झलक जोति उँजियारी हो ॥६॥
तत अकास आतम बिधि जानी, लख चर अचर बखानी हो ।
अंडा तत्त द्वार दरसानी, जोग ज्ञान गति बानी हो ॥७॥
यह सब काल खेल भरमाये, सास्तर बेद भुलाये हो ।
यह सब जोगि जोग बस कीन्हा, काल राह रस पीना हो ॥८॥
वे दयाल बिधि भेद अपारा, संत चीन्ह भये न्यारा हो ।
जोग ज्ञान पंडित सुनि मानै, सास्तर पढ़त पुरानै हो ॥९॥
जैसे नीर घड़ा जल माईं, रबि प्रतिबिंब दिखाई हो ।
जब लग घड़ा अकास समाना, तब लग तत दरसाना हो ॥१०॥
फूटा घड़ा अकास नसाना, रबि सूरज बिनसाना हो ।
तत भयौ नास भास भइ जोती, अंध कूप हिये होती हो ॥११॥

---

(१) मुं० दे० प्र० के पाठ में "मिसिरित" की जगह "निसिरित" और (२) "बिधि बायेँ" की जगह "बिधिवा यह" है जो अशुद्ध जान पड़ता है ।

07:09
2015.482650.Ghat-Ra...
35/438

॥ सोरठा ॥

आदि अंत का भेद, तुलसी तन भीतर लखा।
सुरति सब्द परकास[१], ज्यों अकास सर सैल करि[१] ॥

॥ चौपाई ॥

अब सुनु भेद कहौं अनुसारा। लेकर ज्ञान ध्यान भ्रम जारा ॥
ज्ञान रतन की आँखो होई। जब जम जाल देखिये सोई ॥
सत मत गत अभि अंतर देखै। तत मत अष्ट कँवल में पेखै ॥
सुरति सुहागिन होइ अगमानी। तुरतै मिली सत्त की बानी[२] ॥
अरध उरध बिच बैठे माधो। तत उनमुनी लगाइ समाधो ॥
तारी उलटि तत्त में लावै। रहस नाल मधि जाइ समावै ॥
तुलसी मुद्रा जोग समाधा। आगे भाखौं भेद अगाधा ॥

॥ दोहा ॥

तुलसी तन के माहिं, पंथ भेद साधू सही।
तत मत तोल अँकाइ, अधर जाइ जिन जिन कही ॥

॥ चौपाई ॥

ये सब काल जाल रस रीती। भौकृत खान जानि जम प्रीती ॥
गगन के मँडल काल अस्थाना। पाँच भूत बिधि जाइ समाना ॥
पाँच पचीस तीन मन मैला। सब जानो वा को निज खेला ॥
काल जाल जग खाइ बढ़ाया। रिखी मुनी कोइ भेद न पाया ॥
उलटा चलै गगन को धाई। ता से काल रहै मुरझाई ॥
सतगुरु साहिब संत लखावैं। तब घट भीतर परचा पावै ॥
जो जेइ मूल भेद दरसावै। तब घट में अबिनासी पावै ॥
सतसँग भक्ति हृदे बिच आवै। जब सतद्वार अगम लखि पावै ॥
हिरदै सत्त रहै लौ लाई। सब्द द्वार चढ़ि काल गिराई ॥
मुक्ति ज्ञान पावै अबिनासी। अगम ज्ञान सँग मूल निवासी ॥

---

(१) मुं० दे० प्र० के पाठ में "परकास" की जगह "उम्मेद" व "ज्यों" की जगह "जो" छपा है। (२) दूसरा पाठ यों है—"धीरज तत्त सत्त की बानी"।

07:07
2015.482650.Ghat-Ra...

पीवै अमी लोक के जाई। ब्रह्म भीतर जिन खोज लगाई ॥

पाँजी खोज हाथ अनुसरई। सो जिव सहजै से भौ तरई ॥
झिलमिलि झरै सुन्न के माहीं। गंगा जमुना सरसुति राही ॥
गंगा जमुना सरसुति होई। तिरबेनी संगम है सोई ॥
त्रिकुटी संगम बेनी घाटा। बसै जीव सत पावै बाटा ॥

बंक नाल होइ गंगा जाई। जमुना सुन्न गुफा से धाई ॥
सरसुति सेत कँवल से आई। मन जोगी बिधि बास कराई ॥
गंगा गहै करै असनाना। जमुना दूरि मुक्ति कर थाना ॥
तीनौं नदी तीनि हैं धारा। आप आप मैं देखि निहारा ॥
यह तीनौं हैं अगम अपारा। बिरले साधू उतरैं पारा ॥
तिन मैं रहै त्रिभवनी घाटा। ब्रह्मा बिस्नु न पावैं बाटा ॥
संकर जोगी सिद्ध अनूपा। उनहूँ न पायौ आपन रूपा ॥
निराकार अभि अंतर भाई। ता का भेद कहूँ समझाई ॥
सुरति निरति करि खोजै आपू। सुन्न सिखिर चढ़ि खँचै चाँपू[1] ॥
महि ऊपर ब्रह्मंड की तारी। द्वै[2] पट भीतर सुरति सम्हारी ॥
दहिने बाँयें सिला पहारा। जहँ की बाट न कोइ निहारा ॥
जहँ सत द्वार बैठ सत बारा। अगम अगाध अजर का द्वारा ॥
इमृत पीवै जीव बिचारा। जा से कटै काल की जारा ॥

॥ दोहा ॥

जोग बिधी बेनी कही, सुन्न जोग बिधि गाइ।
काल कला परचंड यों, ठग ठग सब को खाइ ॥

॥ चौपाई ॥

अब बेनी संतन की गाऊँ। या से भिन्न भेद दरसाऊँ ॥
संतन की बेनी बिधि न्यारी। तुलसी भाखी देख निहारी ॥
अगम द्वार बेनी असनाना। सो बेनी संतन की जाना ॥
मंजे जोइ अगम गति जानी। वह प्रयाग सब संत बखानी ॥

19:37
RatanSagar (1)

॥ चौपाई ॥

निर्गुन सब्द बेद बतलावे । सोई काल ओंकार कहावे॥
तीन लोकरचना रचि राखा । सो जोगिन का पद अभिलाखा
त्रिकुटी तेज अकास समाना । सो निर्गुन का है अस्थाना॥
मुद्रा उनमुनि धरै समाधा । त्रिकुटी मद्ध पवन को साधा॥

इँगल पिँगल सुखमनि के माहीं । बंकनाल में पवन समाई॥
त्रिकुटी तत्त जोति दरसानी । यह जोगिन का भेद बखानी॥
जहँ है निरंकार का बासा । मन ओअं कह्यो सब्द खुलासा॥
ये जोगिन के बाक बिलासा । काल निरंजन का जहँ बासा॥
ओंकार सब्द समुझाई । हिरदे सुनियो कान लगाई॥

॥ दोहा ॥

सुन्न सब्द संतन कहा, सो समझाऊँ भेद ।
खेद करम की सबन से, बसै बिन बाक अभेद ॥

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे सत सब्द लखाऊँ । जोग भेद से भिन समझाऊँ॥
सुन्न माहिँ से सब्द जो आवे । सोई सब्द सत पुरुष कहावे॥
चौथा पद बेहद के माहीं । सुन्न सब्द सोइ नाम कहाई॥
ओअं सब्द काल को जानो । सुन में सब्द पुरुष पहिचानो॥
सब्द सब्द का भेद निनारा । सो कहि भाखि बरनि निरबारा

मंज़िलों का भेद

अब सुन मँजिल माल दरसाऊँ । संधि माहिँ परबंध¹ लखाऊँ॥
पदम सुरति तिरबेनी घाटा । जहँ होइ जाय संत की बाटा॥
आठ महल अंदर के माहीं । संत बिलास करैं वोहि ठाँई॥

॥ दोहा ॥

सत्त लोक सतपुरुष का, करै सुरति से ध्यान ।
सात गगन ऊपर चढ़े, जहँ सतगुरु अस्थान ।

॥ चौपाई ॥

सत्त पुरुष सोइ सतगुरु गाया । जीव अंस सब व्हाँ से आया॥
तीन लोक निरगुन का घाटा । उन सब रोकि जीव की बाटा॥

(१) सिलसिला ।

19:27
RatanSagar (1)

इतनी कथन कही तुम सारी। मूल मर्म मति नाहिँ निहारी।
तब आरंभ भागवत कीन्हा। नारद ने उपदेस जो दीन्हा।
नारद गुरू ज्ञान के भइया। तुम ब्रम्ह ब्यास कौन बिधि कहिया।
नारद हरि के दास कहाये। उन कस कस उपदेस सुनाये।
चौबिस[1] में सब सृष्टि बतावे। यह मम कहन दृष्टि नहिँ आवे॥
मैं सेवक मोरि बुद्धि मलीना। अस स्वामी से पूछन कीना॥
ग्रंथ भागवत के अस माहीं। परीछत को सुकदेव सुनाई॥
सुकदेव पुत्र ब्यास के पाछे। कस लिखि बचन सुनाये साँचे॥

॥ दोहा ॥

ब्यास कथन आगे कही, बचन राय सुकदेव।
ग्रंथ लिखित सुकराय के, कस कहे उत्तर भेव॥

कर्म धर्म, मूल भर्म

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यह अंतर बानी। जोगी आतम ज्ञान बखानी॥
प्रानायाम पवन को साधा। इँगल पिँगल सुखमन औराधा॥
घट में देखा सकल पसारा। सुकदेवराय ब्यास बिस्तारा॥
ब्यास बचन अंदर में भाखा। इन पढ़ि बूझि जगत में राखा॥
करें अरथ मन बुधि के मैले। जाने न ब्यास बचन को खेले॥
ब्यास बचन ग्रंथन में गाये। संतन की गति अगम सुनाये॥
सो पंडित कहा जानें बिचारे। ज्ञान बुद्धि मन मान सँवारे॥
उन कही और और इन बूझा। ऐसे इन की आँख न सूझा॥

॥ दोहा ॥

सुनु हिरदे उत्तर बचन, समझि लखो मन माहिँ।
ब्यास राय सुकदेव को, घट में कह्यो बनाय॥

---

(१) चौबीस औतार।

बरनन जोग

॥ प्रथम जोग ॥

॥ चौपाई ॥

चारो गति बैराग बखाना । आगे कहौं जोग संधाना ॥
पिरथम परम जोग गति गाऊँ । भिन्न भिन्न तेहि को दरसाऊँ ॥
मुद्रा पाँच अवस्था चारी । तीनि ज्ञान पुनि बानी चारी ॥
सहस कँवलदल सुरति लगावै । आतम तत्त अकास समावै ॥
पुनि तन छुटि पावै नर देही । भोग भुगति पुनि भव रस लेही ॥
पावै मुक्ति बास कर चीन्हा । मुक्ति भोग पुनि होइ अधीना ॥

॥ द्वितीय जोग ॥

॥ चौपाई ॥

दूजा जोग कहौं समझाई । इड़ा पिंगला सुषमनि माईं ॥
बंक नाल पट मारग जाई । मन भया भिन्न सुन्न के माईं ॥
देखै जोति निरखि निज नैना । तन छूटै सुपने की सैना ॥
जो कछु कर्म भाव जग कीन्हा । छूटै देँह भोग फल लीन्हा ॥
सुरति सब्द बिन भये अचीन्हा । ता सौं हो गये जोग अधीना ॥
बिन सतसंग भेद नहिं पावै । ता ते कर्म भोग भव आवै ॥

॥ सोरठा ॥

जोग जुगति गति गाइ, नहिं अकाय गति पायऊ[1] ।
बिन सतसंग नसाइ, सुरति सब्द चीन्हे बिना ॥१॥
ज्ञान गती कथि गाइ, जो अधाइ आगे कही ।
ताहि पाइ मति माइँ, सो तुलसी सब बिधि कही ॥

बरनन ज्ञान

॥ प्रथम ज्ञान ॥

॥ चौपाई ॥

अब सुनु ज्ञान ठान गति गाऊँ । ता का भेद भाव बतलाऊँ ॥
रेचक पूरक कुंभक कहिये । ता का भेद सबै सुनि लैये ॥
चारि अवस्था तन में भाखो । तुरिया तत्त चारि अभिलाखो ॥
परमहंस ता की मति जाना । मन करता को ब्रह्म बखाना ॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति कहाई । तुरिया चौथी भेद न पाई ॥
तुरियातीत बसै वोहि पारा । सुनि पुनि है मन का व्योहारा ॥
मनमत चलै मान मद माईं । मन करता को ब्रह्म बताई ॥
ता ते भौ गति मति नहिं पावै । बार बार भौ माहिं समावै ॥

---

(१) मुं० दे० प्र० के पाठ में "पायऊ" की जगह "गायऊ" है जो अशुद्ध जान पड़ता है ।

(१०)

पूजा और सेवा कर घंट बजावै।
कर कर पाखंड लोग बहुत रिझावै॥

२

अरधे और उरधे बिच कर ले मेला।
तुलसी मुस्ताक मेहर अद्भुत खेला॥

(११)

कर कर परसाद भोग ठाकुर लावै।
पाहन बेहोस कहूँ ठाकुर खावै॥
चेतन आतम बरम्ह सब के माहीँ।
पावै परसाद देख दीदा जाई॥

(१२)

जैनी जोइ जैन नैन अंधे भाई।
आतम को छाड़ि पुजे पाहन जाई॥
कर कर पूजा बिधान अष्टक गावै।
भादौँ बिधि मंदिर सब स्रावग आवै॥
चावल रँग माँड़ि मँड़े मन से आप का।
नंदेसुर पूज दीप करै बाप का॥
और अढ़ाई दीप माँड़ि करते पूजा।
अंदर आतम बरम्ह नाहीँ सूझा॥
करते कल्यान पाँच कामधेन की।
पूजै बेहोस फूटि हिये नैन की॥
जिन ने तन साज किया जानो भाई।
वा की विधि भूल भाव पाहन लाई॥
तुलसी ये फंद कीन्ह काल पसारा।
धरमन की टेक बाँधि बूड़े सारा॥

(१३)

ढूंढ़त गिरनार सिखर आबू जाते।
सतगुरु बिन मेहर नहीं काबू पाते॥
बूझै सतसंग संग संतन माहीँ।
अंदर पट खोल बोल देत दिखाई॥

पैठ मन पैठ दरियाव दर आप में।
कँवल बिच जहाज में कमठ राजै ॥ १ ॥
होत जहँ सोर घरघोर घट में लखै।
निरख मन मौज अनहद्द बाजै ॥ २ ॥
गगन की गिरा पर सुरत से सैल कर।
चढ़ै तिल तोड़ घर अगम साजै ॥ ३ ॥
दास तुलसी कहै पछिम के द्वार पर।
साहिब घर अजब अदभुत बिराजै ॥ ४ ॥

(५)

कँवल बिच कली में सुरत न्यारी लखो।
सुन्न की धुन्न को परख भाई ॥ १ ॥
सब्द की संध पर बंद गुर से गहो।
देख पट पार पद सार साईं ॥ २ ॥
कमठ और सेस मिल मरम जानैं नहीं।
बेनी बिध घाट घट अगम राही ॥ ३ ॥
दास तुलसी कहै समझ सतसंग में।
लखै कोई सूर जिन मूर पाई ॥ ४ ॥

(६)

अजब इक कँवल में जुगल खिरकी बनी।
चाँद और सुरज बिच गंग धाई ॥ १ ॥

गगन आपंग मन संग से चढ़ि गई।
सुरत पट खोल गई भवन माहीं ॥ २ ॥
ज्ञान गुर से लिया पाइ अपना पिया।
हिये की तपन पत पीर खोई ॥ ३ ॥
दास तुलसी कहै अगम धस रस पिया।
लिया मन सूर सम सुरत सोई ॥ ४ ॥

(७)

गगन के गुमठ पर गैब का चाँदना।
संत बिन भेद नहिँ हाथ आवै ॥ १ ॥
हद्द बेहद्द के पार परचा मिलै।
होइ निज हंस सोई महल पावै ॥ २ ॥
अमरपुर बास जहँ नहीँ जम त्रास है।
काल का अमल बल नाहिँ जावै ॥ ३ ॥
दास तुलसी हजूर दरबार है।
अलख और खलक दोउ नाहिँ आवै ॥ ४ ॥

19:44
2015.347316.Tulsi-Sahib

रेख़ता

(१)

अगम के महल पर सुगम की सैल है।
हरषि मन मगन गुर सरन आवै॥ १॥
सुरति की सैन से चैन निरखत रहै।
चढ़ै घर अधर सोई अलख पावै॥ २॥
अलख की पलक पर खलक का खेल है।
भलक नित जोति सोइ झलक आवै॥ ३॥
दास तुलसी कहै चमक पर चाँदना।
वंद पर वंद तजि तुरत जावै॥ ४॥

(२)

अगम की जोति में सोत निरखत रहै।
लखै कोइ सूर सोइ नूर पावै॥ १॥
यार सोइ प्यार दिलदार दीदा लखै।
सुखमनो घाट पर सुरति लावै॥ २॥
चाँद और सूर जाहूर जाहिर तकै।
पकै मन नाद नित अगम छावै॥ ३॥
दास तुलसी कहै संत की टहल में।
महल की खबर खुद खोज लावै॥ ४॥

(३)

गन के सिखर पर मुकर मन चाँदना।

चराचर खान लख चारी। ब्रह्म मन जीव जग भारी ॥
अगम गति याहि सोँ न्यारी। कही सब संत निरवारी ॥६॥
चढ़े कोइ गगन की घाटी। रवी ससि मद्धि में बाटी ॥
सुखमना बंक इंगल पिंगला। स्वास दहने बायें बदला ॥१०॥
चाँद और सुरज स्वासा को। नाक जोगी निरासा को ॥
रवी ससि रहत गगन में। सुरत घर घाट है जा में ॥११॥
चंद नहिं सुरज और पावना। अधर अकास नहिं भावना ॥
जुगत जोगी नहाँ जानी। अगिन पिरथी नहीं पानी ॥१२॥
बदन बैराट तत तारी। संत गति याहि से न्यारी ॥
जुगत जब राह दरसावैं। अगम गुरद्वार से पावैं ॥१३॥
पिया पद अधर की राही। संत कछु और बिधि गाई ॥
दया दिल संत से पावैं। परम पद पार दरसावैं ॥१४॥
आतमा ज्ञान अपने की। कहैं सब बात सुपने की ॥
करम बस बंध बिधि धारे। जभी जम लात धरि मारे ॥१५॥
अरथ बिन बूझ बानी के। भये जग जीव खानी के ॥
कहा कब्बीर कछु औरी। समझ बिन सृष्टि भइ बौरी ॥१६॥
तुलसी कोइ तोल के बूझै। अगम अरथन्त में सूझै ॥
पंथ और भेष में नाहीं। गुप्त मत संत के माहीं ॥१७॥

(१५)

टुक जीवने के कारने। काजी जुबाँ नहिं भरदा वे ॥टेक॥
नद पुलाव पका सब खाना। कलिया किया कहो जरदा वे ॥
सरदा सीर ब्रिरंज सीरमाल। खुस खाना ये खर दा वे ॥१॥
तन मन वदन बनाया जिन्ने। सोई यार सँग परदा वे ॥
जिबराईल[१] जबर नहिं जाना। मान मिट्टी तन गरदा वे ॥२॥
खान पान खुस खेल खुसी में। मस्त भया मन मरदा वे ॥
तेल फुलेल तवाजा तन की। करत सैल क्या फिरदा वे ॥३॥

(१) जिबराईल।

रेख़ता ७७

गगन मँडल के बीच में झिलिमिलि झलकत नूर ॥
झिलिमिलि झलकत नूर सूर कोइ बिरला पावै ।
करै तत्त का खोज नहीं चौरासी आवै ॥
सतगुर मिलैं दयाल भेद सब उन से पावै ।
करै संत की टहल महल की खबर लखावै ॥

तुलसी मुरदा जब बनै तब पावै गुर पूर ।
गगन मँडल के बीच में झिलिमिलि झलकत नूर ॥

(१६)

लखि अकास औंधा कुआ हुआ नूर का तेज ।
हुआ नूर का तेज जोति में झलक दिखावा ॥
भया प्रकास उजार झलक आतम दरसावा ।
मानसरोवर घाट बाट सोइ निरखि निहारा ॥
सुखमन लगी समाधि साधि करि उतरै पारा ॥
तुलसी जिन जिन लख लिया उन बाँधी पति पैज[1] ।
लखि अकास औंधा कुआ हुआ नूर का तेज ॥

(१७)

गगन बृच्छ के बीच में पंछी पवन चुगाय ॥
पंछी पवन चुगाय जाय सोइ भेद लखावै ।
वंक नाल के पार पवन के भवन समावै ॥
इंगल पिंगल दोउ राह करै जोगी सोई जानै ।
तत अकास के बीच मूल मन से पहिचानै ॥
मन सूरत और पवन को तुलसी दीन लखाय ।
गगन बृच्छ के बीच में पंछी पवन चुगाय ॥

(१८)

सुति चढ़ गई अकास में सोर भया ब्रह्मंड ॥
सोर भया ब्रह्मंड अंड में धधक चढ़ाई ।
जब फूटा असमान गगन में सहज समाई ॥
सुन्न सहर के बीच ब्रह्म से भया मिलापा ।
परमातम पद लेख देख कर भया हुलासा ॥
तुलसी गति मति लखि पड़ी निरख लखा सब अंड ।
सुति चढ़ गई अकास में सोर भया ब्रह्मंड ॥

(१) प्रण ।

पप्पा पड़े जगत के माहिँ भक्ति सुपने नहिँ भावै ॥
बाम्हन पंडित भेष सबै पुनि दान करावै ॥
जिन कीन्हा तन साज ताहि से नेह न लावै ।
अरे हाँरे तुलसी जब जम पकरै बाँह पूत को कौन छुड़ावै ॥१
फफ्फा फूले फूले फिरैँ देखि धन धाम बड़ाई ।
तन फुलेल और तेल चाम को चुपरैँ भाई ॥
दिना चारि का खेल मिलै फिर खाक मेँ ।
अरे हाँरे तुलसी पकरि फिरिस्ते करैँ सलाई आँखि मेँ ॥२
बब्बा बड़ा जगत जंजाल जाल जम फाँसी डारी ।
ज्योँ धीमर जल माहिँ पकर करि मछरी मारी ॥
निकरि जाय जब प्रान काल चोटी धर खींचा ।
अरे हाँरे तुलसी परिहौ जम मुख माहिँ डाढ़ चक्की ज्योँ पीसा ॥२
भभ्भा भगी सुरति घट माहिँ जाय जो देखा भाई ।
सुखमनि सेज सँवारि सुन्नि मेँ सुरति लगाइ ॥
मुकरि माहिँ दीदार दरस कीन्हा सोइ जानै ।
अरे हाँरे तुलसी ज्योँ स्वाँती की बूँद सीप बिरहिन पहचानै ॥२
मम्मा मुसकिल होइ आसान जानि कोइ ना करै ।
करै तत्त को खोज काज घट मेँ सरै ॥
बाहर है सब झूँठ लूटि जम लेइँगे ।
अरे हाँरे तुलसी तन छूटै बेहाल बहुत दुख देइँगे ॥ २३
यय्या या को चीन्ह बिचार कहो ये को न है ।
बोले सब घट माहिँ परख कित पौन है ॥
धरती अगिनि अकास नीर कोउ कौन था ।
अरे हाँरे तुलसी रचा नहीँ बैराट बोलता कहँ हता ॥२४
ररा राति दिवस कर खोज रोज रस ज्ञान सुनावै ।
घट घट उठै अवाज तासु कोउ भेद न पावै ॥
पिंड माहिँ ब्रह्मंड सकल बिधि रहा समाई ।
अरे हाँरे तुलसी खोलि हिये की आँख संत दीन्हा दरसाई ॥२५

(२)

दादू दृष्टि दिखाना। पिय घर अधर ठिकाना ॥टेक॥
अंड अकार द्वार दुइ दल पर। बिगसत कँवल लिखाना ॥
ता बिच ताक तके सोइ सूरत। सूली सिस्त निसाना ॥ १ ॥
चढ़ गिरि गगन गई सरवर में। बिन तत बदन बिधाना ॥
भँवरगुफा सत सुंदर माहीं। ब्रह्म अदृष्ट अमाना ॥ २ ॥
अगम अदीद दीद बिन देखा। मधुकर कंज लुभाना ॥
चुमक चुमक रस अमल अमीका। पिये कोइ दरद दिवाना ॥ ३ ॥
या की साख आँख बिन देखे। भाखत बरन बखाना ॥
सास्तर अंत बेदांत ब्रह्म कहे। बेद जो नेत निदाना ॥ ४ ॥
अतम तत्त ताल बिच बासा। जोगी जुगत बिकाना ॥
घट बिच बास भरम गढ़ टूटे। छूटे इष्ट पखाना ॥ ५ ॥

शब्द भीखाजी

भीखा भय नाहीं। सबै काल चरि जाई॥ टेक ॥
आदि अंत परलय हम देखा। लेखा अलेख गुसाइँ ॥
ब्रह्मा बिसुन देव मुनि नारद। कोई बचन नहिं पाई ॥ १ ॥
अरध उरध बिच भाठी लगाई। सो रस पीन अघाई ॥
मान सरोवर मैल छुड़ावा। बेनी में पैठि अन्हाई ॥ २ ॥

जिन इन सतगुर को जाना भागे भय भव भ्रम खाना।
छूटी मन भूल बड़ाई टूटी अरथाइ के ॥ ४ ॥
कोइ वा घर को लखि पावै कंज्ञा मन सुरति लगावै।
समुदर रतनागिरि गैजी तुलसी लख लाइ के ॥ ५ ॥

कहेरा

(१)

बेली एक सिंध तजि आई। कँवल कूप किया बासा जी ॥
जड़ नहिं पेड़ पात नहिं साखा। भवन तीन फल पाका जी ॥१॥
बेली बेल फैल घन छाई। तीन लोक लिपटाई जी ॥
अंड ब्रह्मंड खंड जग जारा। वाही को सकल पसारा जी ॥२॥
ब्रह्मा बिस्नु बेद और सेसा। दस औतार महेसा जी ॥
बेली फूल मूल नहिं पावै। खोजि खोजि पछताई जी ॥३॥
वाका भेद अभेद अकाया। संत बूझि जिन पाया जी ॥
तुलसीदास बेलि लख पाई। भव जम जाल नसाई जी ॥४॥

अगम गली गम सार पार चढ़ि पेखिये।
जहँ सतगुर के बैन नैन नित देखिये ॥ १ ॥
चल सतगुर के महल टहल तहँ कीजिये।
जीवन जनम सुधारि सार करि लीजिये ॥ २ ॥
सखि सुखमनि घर घाट बाट पिय की लखो।
तोड़ो जम के दंत संत सरना तको ॥ ३ ॥
पिय बिन ध्रिग संसार जार जग जोर है।
ध्रिग जीवन बिन बास पास पिया को कहै ॥ ४ ॥
सतगुर संत दयाल जाल जम काटिहैं।
करिहैं भव जल पार ठाठ सब ठाठिहैं ॥ ५ ॥
सूरत संघ सुधार पंथ पिय पाइया।
तुलसी तत मत सार सुरति गति गाइया ॥ ६ ॥

(३)

सेता जोगी जान जुगत जिन गाइया।
कँवल कंज के पास स्वास दरसाइया ॥ १ ॥
स्वास सेत के मद्धि सुन्न सोइ द्वार में।
बंक नाल के वार निकरि भइ जार में ॥ २ ॥
छः से इक्किस हजार दिवस रजनी कही।
जोगी भाखे भेद समझ सोई सही ॥ ३ ॥
सब स्वासा उनमान करोड़ छानव कहूँ।
बिधि बिधि बिधि बरतंत भेद ता को देऊँ ॥ ४ ॥
भोजन अधिक सोहाय स्वास ता से घटे।
और मैथुन मन भाव स्वास जा से बढ़े ॥ ५ ॥
चटक चलन की चाल अधिक जा से गई।
जस जस जिनकी रीत घटन तैसे भई ॥ ६ ॥
सुख सोवै सोइ स्वास नींद में जात है।
छिन्न अवध यहि भाँति जाय सोइ घात है ॥ ७ ॥
सोइ हवूब तन बूझ फूट फटका गया।
सेता जोगी जानि जुगत ऐसी कहा ॥ ८ ॥
करते प्रानायाम स्याम के पार है।
सेता जोगी नाम धाम सोइ लार है ॥ ९ ॥
तुलसी तत मत बंध बँधा वहि द्वार को।
सेत स्याम की गाँठ गया नहिँ पार को ॥ १० ॥

(५)

लख ले री मोरी बौरी बात। ऋतु बसंत तजि कहँ को जात॥टेक॥
तन भीतर इक अजब मूल। बन बँगला पच रंग फूल।
जरद सुरख लख सेत साथ। करिया हरा रँग पाँच भाँत॥१॥
जल पवना पिरथी अकास। अगिन तत्त बस बदन बास।
इन सँग बंधन बिषे खात। लै सतसँग कर आवे हाथ॥२॥
सुरति सिरोमनि संत गैल। चढ़ो री अधर घर निरत सैल।
पुरइनि घट पट परदे पात। लखन खेल बिन बदन गात॥३॥
तुलसी तज भज आज काज। फिर दुरलभ तन अस न साज।
आज मिलो गुर पुरुष तात। पिया घर बिन जम मारे लात॥४॥

(६)

लख आतम अंदर परस पास। और सकल तज जग की आस॥टेक॥
गज मन मकरँद फंद डार। फिरत पाँच पचवीस लार।
क्रोध काम बस लोभ बास। इन सँग रँग रस परत फाँस॥१॥
कर यह दूर सखी मूर जान। सुरति अधर नभ लखे न भान।
सुखमनि सुनि धुनि कर अकास। इँगला पिंगला बिच बिमल बास॥२॥
जोग ध्यान धर जोत देख। आतम तत अली अलख लेख।
मंदर में अली दीप चास। सत ब्रह्मंड तक लख निवास॥३॥

संत गैल सखी अंत रीत। अगम गुरू कर पावे प्रीत।
तुलसी जोगी लखे न तास। मनमत सूरत होत नास॥४॥

(७)

निस दिन बीति बसंत जात। नर तन तेरे फिर न हाथ॥टेक॥
पल पल धावत चारो ओर। कहुँ बैठक नहिँ कीन्ह ठौर॥
चलामान चंचल सनाथ। नहिँ अंदर कोइ पकरि पात॥१॥
बहु तरंग भूमी के भूप। तैँ भुलान अपनो सरूप॥
भरमत जुग जिव जन्म जात। अब गुर का कर संग साथ॥२॥
दिना चार में बदन खाक। बिन बिबेक नहिँ सूझि आँख॥
बन बन डोलत पात पात। रस सुगंध तज तोल बात॥३॥
काया अंकुर करम काग। अब इन से तैँ निकरि भाग॥
तुलसी तत बरतन बिलात। करम असुभ सुभ करत घात॥४॥

(८)

मन अपंग अम्बर रसान। ताँबा कंचन होत जान॥टेक॥
ताँबा तमक औंटि करि डाल। भट्ठी तन घरिया में गाल॥
सुमति सुहागा दे निदान। सतगुर बूटी ले पहिचान॥१॥

॥ साखी ॥

मन बिगवा[1] भेड़ा कहा, तन मन करत बिहार।
संत समझ की राह कूँ, पकरि न करत सिहार ॥ १ ॥
ऋषी मुनी जोगी जती, रती न पावैं चैन।
पाँच पचीसो संग जो, ज्ञान हरन दुख देन ॥ २ ॥

(९)

नगर बिच बिगवा[1] गजब करै, सुधि बुधि ज्ञान हरै ॥ टेक ॥
द्वारे डगर फाड़ि फाटक को, मछरी पकरि धरै ॥ १ ॥
संजम सुरति बचन नहिँ पावै, गो गुन खानि अरै ॥ २ ॥
बाहर नगर निकरि कोइ जावै, ता की गैल परै ॥ ३ ॥
तुलसी जब सतगुर को पावै, सत मति सठ सुधरै ॥ ४ ॥

॥ साखी ॥

पंछी पौन अकास में, स्वासा सुन्न निवास।
चाँद सूर सत द्वार में, भाखै तुलसीदास ॥ १ ॥
इंगल पिंगल समीर[2] से, सुखमनि बंक बिचार।
सहस कँवल दल द्वार में, तुलसी निरखि निहार ॥ २ ॥

(१०)

पंछी पौन चुगै अलख घर ॥ टेक ॥
सहर सेत अस देख अचंभा, साँझै सूर उगै ॥ १ ॥
नित परकास पद अगर उजाली, जगमग जुगन जुगै ॥ २ ॥
सुखमनि सुन्न सुरति महलोँ पर, चढ़त न पैर डगै ॥ ३ ॥
करुना कँवल सोई दल द्वारा, लै लै मन उमडै ॥ ४ ॥
तुलसी तिल दिल देख दृगन में, साचे सूर थुवै ॥ ५ ॥

॥ साखी ॥

कपट किवारी खोलि कै, चटक चली पिउ धाम।
स्याम कंज की राह से, गुर लखिया सतनाम ॥ १ ॥
दुलहिनि सजी बरात लै, सूरति सेहरा बाँधि।
दिल दुरबीन अंदर लखा, दुलहा अजर अधार ॥ २ ॥

(१) भेड़िया। (२) पवन।

आप थाप अपनी करैं, घट भेद न पावैं हो।
पाँच तत तन ना हते, तब की नहिँ गावैं हो ॥ ४ ॥
बिंद बदन बैराट मैं, उपजैं बिनसावैं हो।
नाद आद की आद को, सुपने नहिँ पावैं हो ॥ ५ ॥
कहत बेद हम से भये, हम जग उपजाये हो।
झूँठ बात बकते फिरैं, सिर भार चढ़ाये हो ॥ ६ ॥
अपने ब्रह्मानन्द को, अस कहन बतावैँ हो।
बेद बिधी बेदांत की, फिर साख सुनावैँ हो ॥ ७ ॥
परमातम के पार को, तुलसी नहिँ पावैं हो।
बिन सतगुर बिनसैं सदा, नर देह गँवावैँ हो ॥ ८ ॥

॥ साखी ॥

गगन मँडल के बीच मैं, गंगा बहत प्रवाह।
संत सुरति मंजन करे, पार अधर के माहिँ ॥

॥ शब्द ॥

(१)

गगन धार गंगा बहै, कहैं संत सुजाना हो ॥ टेक ॥
चढ़ि सूरति सरवर गई, ससि सूर ठिकाना हो।
बिरले गुरमुख पाइया, जिन सब्द पिछाना हो ॥ १ ॥
प्रानपुरुष आगे चली, सोइ करत बखाना हो।
बिमल बिमल बानी उठै, अद्भुत असमाना हो ॥ २ ॥
सहस कँवल दल पार ये, मानो बुद्धि हिराना हो।
निरमल बास निबास मैं, करि करि कोइ जाना हो ॥ ३ ॥
तुलसी तलब तलबी करै, नित सुरति निसाना हो।
अंड अलख लखिहै सोई, चढ़ि करि धरि ध्याना हो ॥ ४

(२)

पंडित भल चारो बेद पढ़े ॥ टेक ॥
गीता ज्ञान भागवत बाँची, जहँ मछरी तहँ लेत खड़े ॥ १
करि असनान अचार रसोई, हाँड़ी भीतर हाड़ मुड़े ॥ २

प्रेम परख प्याला पिये, जियन जुगन जुग होइ।
जोइ जमक रँग पाँच को, साच सबन स्रुति सोइ ॥ ६ ॥
मन मतवाली सुरति की, सज्जन करत बखान।
जान जनक जिय ना लखे, तुलसी ठाँव ठिकान ॥ ७ ॥
एक अलख की पलक में, खलक रचा सब सोइ।
जानि निरंजन काल को, जाल जगत सब कोइ ॥ ८ ॥
अधर अंड के बीच में, नौ लख खलक निहार।
पार पदम दल कँवल पै, तुलसी अगम अपार ॥ ९ ॥
सुन्न सहर के बाहिरे, महासुन्न के पार।
सार सब्द जा को कही, तुलसी निरख निहार ॥ १० ॥
राम रमन मन भवन में, आतम सरवर ताल।
काल अहेरी करत ज्यों, जुग जुग बंधन जाल ॥ ११ ॥
आतम तेज अकास में, बास भवन दस माहिँ।
मन मारग सूरति चली, अंदर ऐन समाइ ॥ १२ ॥
छर छत्तीसो भवन में, अच्छर ब्रह्म समान।
स्रवन नैन मुख नासिका, इंद्री पाँच प्रमान ॥ १३ ॥
छर अच्छर से भिन्न है, निहअच्छर निहनाम।
धाम लोक चौथे बसे, जानत संत सुजान ॥ १४ ॥
सुन्न अकास के भास में, स्वासा निकसत पौन।
बंक नाल के बीच में, इँगल पिंगल पर जौन ॥ १५ ॥
सुई अग्र वह द्वार है, सुखमनि घाट कहाइ।
धाइ धाइ स्वासा चढ़े, जो जो जोग लखाइ ॥ १६ ॥
संत समुँद घर अगम को, ज्ञान जोग नहिँ ध्यान।
ये तीनोँ पहुँचे नहीँ, जाकी करत बखान ॥ १७ ॥
ज्ञान ब्रह्म आतम कहे, मन जड़ चेतन गाँठ।
तन इंद्री सुख बंध में, बहत गुनन की बाट ॥ १८ ॥
आतम अगम अकास में, नैन निरखि मन बास।
फाँस फँसानी गुनन में, याको कहत अकास ॥ १९ ॥

धनुवा साध चले त्रिकुटी को। खैंचि कमान चढ़ाई ॥
फोड़ निसान दसो दिसि पारा। काल को मार ढहाई ॥ ३ ॥
अनंत[1] साहिब गुरु अस पाई। तिन मोहिँ संध लखाई ॥
अंतर आदि अधर घर पाई। जम की ज़ाल बहाई ॥ ४ ॥

॥ शब्द १ दादू साहिब ॥

दादू देखा अदीदा, सब कोइ कहत सुनीदा ॥टेक॥
हवा हिरस अंदर बस कीदा। तब यह दिल भया सीधा ॥१॥

अनहद नाद गगन चढ़ गरजा। तब रस पिया अमीँ दा ॥२॥
सुखमनि सुन्न सुरति महलैं नभ। आया अजर अकीदा ॥३॥
अष्ट कँवल दल म द्रुग दरसन। पाया खुद्द खुदी दा ॥४॥
जैसे दूध दूध दधि माखन। बिन मथे भेद न घी दा ॥५॥
ऐसे तत्त मत्त सत साधन। तब टुक नसा पिय पीदा ॥६॥
नहिं यह जोग ज्ञान मुद्रा तत। यह गति और पदीदा ॥७॥
जो कोइ चीन्ह लीन्ह यह मारग। कारज हो गया जी दा ॥८॥
मुरसिद सत्त गगन गुरु लखिया। तन मन कीन्ह उसी दा ॥९॥
आसिक यार अधर लखि पाया। हो गया दीदम दीदा ॥१०॥

॥ शब्द २ दादू साहिब ॥

जानै अंतरजामी अचरज अकथ अनामी ॥ टेक ॥
नौ लख कँवल जुगल दल अंदर। द्वादस साहिब स्वामी ॥१॥
सूरत कड़क कँवल दल नभ पर। झटकि झटकि थिर धामी २
जैसे जहाज चलै सागर मेँ। बरदबान[1] बहै धीमी ॥३॥
तैसे यार प्यार लखि पाया। तब सूरति ठहरानी ॥४॥
सूरति सब्द सब्द मेँ सूरति। अगम अगोचर धामी ॥५॥
का से कहौँ पिया सुख सारा। ज्योँ तिरिया मुसकानी ॥६॥
नहिं ये जोग ज्ञान तुरिया तत। यह गति अकथ कहानी ॥७॥
चंद न सूर पवन नहिँ पानी। क्योँकर करौँ बखानी ॥८॥
सुन्न न गगन धरन नहिँ तारा। अल्ला रब्ब न रामी ॥९॥
कहा कहौँ कहिबे की नाहीं। जानत संत सुजानी ॥१०॥
बेद न भेद भेष नहिँ जानत। कोऊ देत न हामी ॥११॥
दादू द्रुग दीदार हिये के। सूरति करति सलामी ॥१२॥
मैँ पिया प्यार प्यार पिय अपने। मिलि रहे एक ठिकानी ॥१३॥
सूरति सार संध लखि पाई। ये गति बिरले जानी ॥१४॥

(१) बादबान अर्थात पाल।

दस इंद्री रत दसरत कहिये, राम रमा मँन जाई।
सत की सीता असत सिया को, कुमति कौसिल्या बसाई ॥१२॥
मन थिर सुरति करै थिर कोई, सो मन मंथ्रा कहाई।
वहँ की बात कही कौन सुनाई, कर्मन थिर केकाई ॥१३॥
ले छै रस मनही को भाई, लछमन बीर बड़ाई।
गो मैं रूढ़ गरूढ़ गिनाई, भय ले भसुंड भुलाई ॥१४॥
भय रत भरम भरत है सोई, चाह त्रिगुन्न गिनाई।
ता को नाम चतुरगुन कहिये, ये सब भेद बताई ॥१५॥
ये नौ द्वार काया के माहीं, सो हनुमान हँसाई।
ये तो चिन्न भिन्न बिन देखे, जोग करै सो जनाई ॥१६॥
काया सोध कसै इंद्रिन को, त्रिकुटी ध्यान लगाई।
स्वाँसा धाइ बंक खुल खोलै, सहस कँवल दल पाई ॥१७॥
जो कोइ जोग जुगति करि लाई, जेहि घट ब्रह्म दिखाई।
जोगी का जोग इष्ट जगही को, ये गति यौं बिधि गाई ॥१८॥
दूजा जोग ज्ञान गति गाई, आतम तत्त लखाई।
मुद्रा पाँच अवस्था चारी, ज्ञान तीनि गति गाई ॥१९॥
चाचरि भूचरि और अगोचरि, खेचरि खेह लगाई।
उनमुनि उभै अकास के ठाइ, ज्ञान बिधी बतलाई ॥२०॥
रेचक पूरक कुंभक कहिये, येहि बिधि ज्ञान गिनाई।
और अवस्था अरध बताई, ज्ञानी किनहुं न पाई ॥२१॥

जाग्रत सुपन सुषोपति कहिये, तुरियातीत कहाई।
तुरियातीत बसै वोहि पारा, जो या करै तिन पाई ॥२२॥
चारो बानी का भेद बताई, सास्तर संध लखाई।
परा पसंता मधिमा सोई, बैखरी बेर बताई ॥२३॥
ये सब जोग ज्ञान गति गाई, ज्ञानी यही बताई।
इनके परे भेद है न्यारा, सो कोइ संत जनाई ॥२४॥
और सुनौ जो अगाध अघाई, संतन की गति गाई।
जा को भेद बेद नहिं जानै, जोगी किनहुं न पाई ॥२५॥
परमहंस बैरागी गुसाँईं, जगत की कौन चलाई।
ये कहुँ देखि कहूँ न कहाई, काहू प्रतीति न आई ॥२६॥
तुलसी तोड़ फोड़ असमाना, सूरति सार मिलाई।
सरकी चाँप चली धै धाई, घनुवा धनुष चढ़ाई ॥२७॥
तीनि लोक तिल खेई पारा, चौथे जाइ समाई।
वो साहिब सतनाम अपारा, तिन मोहिं अंग लगाई ॥२८॥
या के पार परे गति न्यारी, सो कोइ संत जनाई।
जा को नाम अनाम अमाई, केहि बिधि कहौं बुझाई ॥२९॥
ता के रंग रूप नहिं रेखा, नाम अनाम कहाई।
तुलसी तुच्छ कुच्छ नहिं जानै, ता घर जाइ समाई ॥३०॥
सब संतन के चरन सीस धरि, आदि अजर घर पाई।
तीनि लोक उपजै और बिनसै, चौथे के पार बसाई ॥३१॥

बैठि के आनँद महल, परम गुन गावही ।
सुखमन सेज जगाइ, तो पिया रिझावही ॥५॥
बिन जल लहर अनूप, तो मोती झिलमिलै ।
देखि छत्र उँजियार, तो हंसा हँस मिलै ॥६॥
अग्र जोति उँजियार, तो पंथ सिधावही ।
कोटिन भान निछावर, आरति साजही ॥७॥
का लिखि दीन्हे पान, तो तिनुका तोरई ।
का नरियर के मोरे, जो जम धरि बोरई ॥८॥
सत लिखि दीन्हे पान, सो तिरगुन तोरई ।
सुरति फूल बरमूल, सो नरियर मोरई ॥९॥
नरियर भेद अगम्म, संत जन मोरई ।
कहै कबीर तेहि जाचौ,* तो बंदी छोरई ॥१०॥

॥ मंगल २† ॥

तेरो संगी निकरि गयो दूर । सोहागिल आइ मिलै ॥टेक॥
आया सँदेसा आदि घरै का । लिये सब्द टकसार ॥१॥
सतगुरु घाट अगम तोहि चढ़ना । चढ़न के पंथ सिधार ॥२॥
नवएँ धाम खोलिये कुंजी । दसएँ गुरु परताप ॥३॥
चौका चार गुप्त हम कीन्हा । ता का सकल पसार ॥४॥
कह कबीर धर्मदास से । ये चौका है निरधार ॥५॥

॥ चौपाई ॥

ये कबीर चौका अस भाखा । मूल बृच्छ तजि पकरौ साखा ॥
पंथ राह चौका अस जाना । सोइ कबीर-पंथी को माना ॥
कही कबीर सो राह उठाई । अपनो मन मत राह चलाई ॥
झूठा पंथ जगत सब लूटा । कहा कबीर सो मारग छूटा ॥
कहा कबीर जीवत निरबारा । तुम लै उलटी फाँसी डारा ॥

---

* माँगो । † यह शब्द मुं० दे० प्र० की पुस्तक में नहीं है ।

राम से समय बड़ा है भाई । कहाै राम की कौन बड़ाई ॥
समया झूठ राम करि डारै । ऐसी कहाै ताे साँच बिचारै॥
समय राम की कला उड़ाई । तुम जपि मुक्ति कौन बिधि पाई
अपनी मुक्ति खोज नहिँ पावाै । राम राम कहि जगत ढुढ़ावाै ॥
जाे सच्चा तुम राम सुनावाै । ताै पत्थर पानी मेँ नावाै ॥
जब जानैँ वाेहि सच्चा रामा । पानी पत्थर आज तिराना ॥
अपनी देखी कहाै न भाई । मुए गये की बिधी बताई ॥
साँचा साेई मिलै जाे आजी । मूए मुक्ति बतावै पाजी ॥
जीवत मिलै साेई मत पूरा । मूए कहै समझ साेइ घूरा ॥
अब सुन आगे बिधी बताऊँ । महादेव की बिधि समझाऊँ ॥
महादेव राम नहिँ जपिया । ये साखी झूठी तुम कहिया ॥
महादेव ताे जाेग कमाया । राम राम जाेगी नहिँ गाया ॥
उन अपनी इंद्री मन जीता । मुद्रा साधी पाँच पुनीता ॥
स्वाँसा साधि गगन मन धावा । उनमुनि साधि कै गगन लगावा
चाचरि भूचरि भावक जानी । खेचरि मिलि योँ पाँच बखानी
आगे अगाेचरि साखि सुनाऊँ । ऐसे जाेगी जाेग जनाऊँ ॥
जाेग किया जब भये अबिनासी । राम राम कहे काल की फाँसी
करि के जाेग उन जाेति समाने । जाेति दृष्टि मुक्ती पद जाने ॥
मुक्ती भाेग भाेग भया भाई । पुनि फिरि फिरि चाैरासी पाई
संत मते की राह न जानी । या से भरमे चाराे खानी ॥

॥ प्रश्न गुनुवाँ ॥

॥ चाैपाई ॥

हे स्वामी तुम सत्त बताई । ये सब माेरे मन मेँ आई ॥
एक बिधी माेहिँ बरनि सुनावाै । बालमीक बिधि साखि बतावाै
अजामील गति कैसी भैया । साे बिधि माे काे बरनि सुनैया

ज्यों चकोर चंदा को ताके । येहि बिधि सुरति नाम रस चाखै
सूरज-मुख पषान इक होई । रबि सनमुख तेहि पावक जोई॥
पथरी सूरज सन्मुख लावै । तत खन ता मैं अगिनि समावै॥
चंद्र मुखी इक पथरी भाई । सन्मुख चंदा जाय दिखाई॥
तत खन नीर चुवै तेहि माहीं । देखो पथरी हाल मँगाई ॥
ऐसे दृढ़ करि सुरति लगावै । चूवै अमी नाम रस पावै ॥
चौका पान झूठ है भाई । सूरति नाम पान से पाई ॥
भाखा संत सरन को चीन्हा । सुरति पान लखि होइ यकीना॥
नील सिषर खिरकी के पारा । वहँ से ताकै अगम दुवारा ॥
अलख पलक से न्यारा होई । खलक राह सब छूटै सोई ॥
निस दिन सुरति गगन मैं राखै । झँझरी सुरति नजर से ताकै ॥
येहि बिधि निस दिन सुरति लगाई । मन मैं इष्ट भरम नहिं लाई
ऐसे सुरति द्वार पर खेला । स्याम सपेदी न्यारी सैला ॥
स्याम लोक पुनि सेतहि दीपा । संख चक्र मध पुनि एक सीपा॥
वा के परे बंकगढ़ न्यारा । सुखमनि सैल मानसर पारा॥
वा के परे त्रिबेनी घाटी । ता से निकरि अगमपुर बाटी ॥
करि असनान अगम को धावै । तब साँचे सतगुरु को पावै॥
चारि कँवल द्वै भीतर माहीं । ता मैं पैठि द्वादस मैं जाई॥
ता के परे पुरुष इक देखा । रूप रेख बिन अगम अलेखा॥
अठमेवा पूरुष को जाना । अठवाँ लोक तेहि संत बखाना॥
कोउ कोउ आठ अटारी भाखो। कोउ कोउ आठ महल कहै जाको
संत बिना कोउ भेद न पावै । ताते तुलसी येहि बिधि गावै॥
यह बिधि भेष पंथ मैं नाहीं । संत मिलै तो पावै राही॥
सूरति चढ़ै गगन को धावै । तौ अठमेवा पुरुष को पावै॥
पाँच बासना मन से जावै । तब मन राह पुरुष की पावै॥
नरियर ऐनक मुकर लगाई । मन मोड़ै पुनि बास उड़ाई॥

॥ शब्द नानक साहिब ॥

उघरा वह द्वारा वाह गुरू परिवारा ॥ टेक ॥
चढ़ गइ चंग पतंग संग ज्यौं । चंद चकोर निहारा ॥१॥
सूरति सोर जोर ज्यौं खोलत । कुंजी कुलफ किवारा ॥२॥
सूरति धाइ धसी ज्यौं धारा । पैठि निकसि गइ पारा ॥३॥
आठ अटा की अटारि मँझारा । देखा पुरुष नियारा ॥४॥
निराकार आकार न जोती । नहिं वहँ बेद बिचारा ॥५॥
ओंकार करता नहिं कोई । नहिं वहँ काल पसारा ॥६॥
वे साहिब सब संत पुकारा । और पखंड पसारा ॥७॥
सतगुरु चीन्ह दीन यह मारग । नानक नजर निहारा ॥८॥

॥ शब्द दरिया साहिब ॥

दरिया दरबारा खुल गया अजर किवारा ॥ टेक ॥
चमकी बीज चली ज्यौं धारा । ज्यौं बदरी बिच तारा[१] ॥१॥
खुलि गया चंद बंद बदरी का । घोर मिटा अँधियारा ॥२॥
लै लगी जाइ लगन के लारा । चाँदनी चैाक निहारा ॥३॥
सूरति सैल करै नभ ऊपर । बंक नाल पट फारा ॥४॥
चढ़ि गइ चाँप चली ज्यौं धारा । ज्यौं मकरी मुख तारा ॥५॥
मैं मिलि जाइ पाय पिया प्यारा । ज्यौं सलिता जल धारा ॥६॥
देखा रूप अरूप अलेखा । लेखा वार न पारा ॥७॥
दरिया दिल दरवेस भये तब । उतरे भैाजल पारा ॥८॥

॥ शब्द मीरा बाई ॥

मीरा मन मानी सुरति सैल असमानी ॥ टेक ॥
जब जब सुरति लगै वा घर की । पल पल नैनन पानी ॥१॥

---

(१) मुं० दे० प्र० की पुस्तक में "बीज" की जगह "बीच" और "बदरी" की जगह "बिजुली" है जो ठीक नहीं जान पड़ता ।

॥ गुनुवाँ ॥

॥ चौपाई ॥

गुनुवाँ सुत हिरदे का आवा। सीस टेक चरनन लै लावा ॥
अंतर भाव अरु चाव बखानी। सब बिधि अपनी कही कहानी ॥
जस जस स्वामी बिधी बताई। तस तस सूरति गगन लगाई ॥
चक्र फोड़ि सूरति भई पारा। चाँद सुरज तजि गई अगारा ॥
सुखमनि छेकी सरवर आई। मानसरोवर पैठि अन्हाई ॥
अगम द्वार खिरकी पहिचानी। गंगा जमुना सरसुती जानी ॥
सूरति चली अगम रस माती। जहाँ प्रयाग कंज रस राती ॥
जहँ सतगुरु बैठे सत बासा। अगम पुरुष घर कीन्ह निवासा ॥
सूरति ठहरि द्वार के माहीं। रस रस धीर धीर चढ़ि जाई ॥
चढ़ै उतरै पुनि पुनि चढ़ि जावै। मकरी धागा तार लगावै ॥
येहि बिधि रहै दिवस और राती। सूरति लगन और नहिं भाती ॥
येहि बिधि लोक नाम किया बासा। चौथा पद सतनाम निवासा ॥
जहँ से आई तहाँ समानी। यहि बिधि आदि अंत हम जानी ॥
जनम मरन दुख सुख सब छूटा। कर्म बंध बिधि सगरी टूटा ॥
स्वामी तुम चरनन बलिहारी। अगम बस्तु तुम दया बिचारी ॥

हिरदे प्रीति दृष्टि दरसाई। नैन चरन बिधि भाव बताई ॥
मैं कहा जानूँ जीव अबूझा। हिरदे तत मत से सब सूझा ॥
लखनऊ मन अब नेक न भावै। अब तौ तुलसी तुलसी चावै ॥
हिरदे की जाऊँ बलिहारी। इन बिधि सगरी मोर सँवारी ॥
पिता दरस बिधि ऐसी कहिया। चरन लाइ बिधि अगम लखइया ॥
हिरदे प्रीति हम तुम को पावा। हिरदे रीति अगम दरसावा ॥
तब स्वामी के चरन सँवारे। स्वामी कृपा से उतरे पारे ॥
सीस टेकि पुनि अज्ञा लीन्हा। सीस डारि चरनन पर दीन्हा ॥
स्वामी मो को अज्ञा दीजै। अस कहि नीर नैन से छीजै ॥
अज्ञा स्वामी दीन्ह बनाई। तब गुनुवाँ मारग को जाई ॥
हिरदे हरष हिये मैं लावा। गुनुवाँ काज भयो बिधि भावा ॥

॥ बचन तुलसी साहिब ॥

॥ चौपाई ॥

खिरकी अजर अली चढ़ि देखा। जहँ इक साहिब रूप न रेखा ॥३
तुलसी सतगुरु अगम लखाई। लै की लगन लखि लोक सिधाई।
दुख सुख दोष सोक सब छूटा। कलसा कुंभ करम का फूटा ॥४॥

॥ दोहा ॥

प्रियेलाल मत मूर, सूर सुरति अस बिधि भई।
गई गगन के पार, सार समझि संतन कही ॥

॥ चौपाई ॥

अस अस सुरति लोक लखि देखा। संत रीति रस अगम अलेखा ॥
बिधि बैराग त्याग तन के री। ये सब खानि जगत भौ बेरी ॥
जोगी जोग करत भरमाने। स्वाँसा पवन चढ़ावन जाने ॥
इड़ा पिंगला सुखमनि माईं। पवन भवन में जाइ समाई ॥
गगन बिनसि सुनि स्वाँस नसाई। मनमत जोगी जुगति न पाई ॥
ज्ञानी गुनि मन आतम जानी। वा मन को पुनि ब्रह्म बखानी ॥
आदि अंत का भेद न जानै। संत मता कैसे पहिचानै ॥
संत मता कछु रीति नियारी। बूझै साधू समझ बिचारी ॥
अस सुनि इष्ट भाव औतारा। ये सब जानौ काल पसारा ॥
गढ़ि मूरति मंदिर में धारा। ये सब जानौ झूठ पसारा ॥
पानी पाहन में मन लावै। अगिनि तत्त जल तत्त समावै ॥
नकल कृष्न कहो किन को तारा। अस असुरन जिव आतम मारा॥
नकल कृष्न पाहन की आसा। पाहन मुक्ति काल की फाँसा ॥
या से जिव उबरै नहिं खाना। जुग जुग बंधन माहिं बँधाना॥
कृष्न राम जो संत बताया। ये औतारी कोउ नहिं गाया॥
गो इंद्री गोबिंद कहाई। मनहिं कृष्न गोपिन के माईं॥
गुन ही तीनोँ ग्वाल कहावै। बिंद बीच बिंद्राबन आवै ॥
गो गोपी बिच कान्ह कहाई। ये मन बस रस इंद्री माईं ॥
अब या की सुन साखि बताऊँ। संध सब्द बिच भाखि सुनाऊँ॥

प्रियेलाल सुन चित दे काना। संत रीति रस करौं बखाना॥
त्यागन संग्रह संत न जाना। ये मन कर्म भर्म भरमाना॥
त्यागन करै सोई पुनि पावै। फिरि फिरि भोग भाव जग आवै॥
संग्रह बंधन जगत बँधाना। ये दोउ भर्म भेद जग माना॥
संत मता दोऊ से न्यारा। संग्रह त्यागन झूठ पसरा॥
संतन सुरति निरति ठहराई। मन थिर करि करि गगन चढ़ाई॥
सूरति सूर बीर भइ द्वारे। नभ भीतर चढ़ि गगन निहारे॥
सुरति सुहागिन सूर सिधारी। नित नित गगन गिरा से न्यारी॥
ता का मैं अब सब्द सुनाऊँ। संत मते की राह लखाऊँ॥

॥ होली १ ॥

सुरति सुहागिन सूर भई री। गगन गिरा नभ गवन गई री॥टेक॥
अधर हिये चढ़ि चसम चली री। पिय को परस घर आई अली री।
अरध उरध बिच सुरति समानी। निरखा सब्द निरत अलगानी १
महलन जब जब पिय को निहारी। प्रीत पुरातम प्रेम पियारी।
अगम अधर घर निरखि निसानी। पिय को परसि पद रही लपटानी॥२॥
सुख सागर मिलि सिंध समावा। बुंदा समुँद साध घर आवा।
ज्यौं पपिहा पिउ प्यास पुकारी। स्वाँति बुंद पिउ पास मिलारी३
तुलसी तन मन सुरति लगाई। लै की लगन पिय पलँग बिछाई।
सेज सम्हारत हिये हुलसानी। ज्यौं जल मिलि जल धार समानी

॥ होली २ ॥

अजब अली एक गगन गली री। सुरति चमक चढ़ि चटक चलीरी॥टेक॥
बिधि बिधि पुहुप बाग बन देखा। कहा कहौं अली अगम अलेखा।
ता बिच कंज कँवल मधु राजै। बिटप बरत तरु बिहँग बिराजै १
सोभा भूमि अधिक छबि छाई। सुन री सखी लख सुरति समाई।
तहँ सत सरवर ताल अनूपा। हंस भवन तन आतम भूपा॥२॥
हिये के नैन दुरबीन लगाई। सिंध बुंद परमातम पाई।

अब आसा के वार बताऊँ । ता की बिधी भेद समझाऊँ ॥
पाँच ग्रंथि जड़ चेतन आवा । ता को आसा वार बतावा ॥
आसा वार बँधा जग माहीं । आसा पार की सुधि बिसराई॥
आसा पार की राह भुलाना । आसा वार कर्म लिपटाना ॥
ता से आसा वार बतावा । आसा पार का मरम न पावा ॥
तब से जीव भयौ संसारी । आसा पार सुधि नाहिँ सम्हारी
यह बिधि तत्त ग्रंथ जेहि माहीं । आसा वार बिधी योँ गाई ॥
यह बिधि सतसंगति से पावै । मिलै संत बिधि सब दरसावै ॥
बिना संत किरपा नहिँ पावै । मिलै संत बिधि सबै लखावै ॥
यह सुखमनी बिधी बिधि गाया । जो जो बावे ग्रन्थ बुझाया ॥
इड़ा पिंगला सुखमन माहीं । स्वाँसा पवन चढ़ै तेहि राही ॥
पाँचौ मुद्रा साधै जोगी । इंद्री जीत छाँड़ै रस भोगी ॥
मुद्रा पाँच बिधी बिधि साधै । सुखमनि मुद्रा घरै समाधै ॥
न्यारा न्यारा नाम बताऊँ । पाँचौ मुद्रा पुनि दरसाऊँ ॥
खेचरि भूचरि साधै सोई । और अगोचरि उनमुनि जोई॥

उनमुनि बसै अकास के माहीं । जोगी बास करै तेहि ठाहीं ॥
ये जोगी मति कहा पसारा । संत मता पुनि इन से न्यारा ॥
जोगी पाँचौ मुद्रा साधै । इड़ा पिंगला सुखमनि बाँधै ॥
सुखमनि घाट सुखमनी बताई। मानसरोवर आगे पाई ॥
जोगी मानसरोवर राखा । बावे अम्मरसर तेहि भाखा ॥
जो पंजाब अमरसर गाया । सो बावे ने नहीं बताया ॥
अम्मरसर है अगम के माहीं । न्हात अमर होइ संत बताई ॥
करि असनान अमरसर माहीं । अमर होइ बावे अस गाई ॥
तुम तलाव मैं निस दिन न्हावा। अमर भया कोउ नजर न आवा
नित नित जीव अनेकन न्हावै। गृस्थ फकीर जगत सब जावै ॥
देखौ अमर एक नहिँ भइया । न्हाइ न्हाइ सब जनम गँवइया॥
अम्मरसर असनान को पावै । चढ़ि असमान अमर होइ जावै
बावे गगन अमरसर गावै । करि असनान अमर पद पावै ॥
जो जो गये अमरसर माहीं । ता का आवागवन नसाई ॥
ये अम्मरसर पिरथी माहीं। पानी पैठि पैठि सब न्हाई ॥
जोव साध कोइ अमर न पाई । न्हाइ न्हाइ सब बैस बिताई ॥
जीवत अमर न मूए जावै । नित नित पैठि अमरसर न्हावै॥
ये तो अमरसर पानी भाई । वो अम्मरसर गगन समाई ॥
सूरति चढ़ै गगन मैं न्हाई । वो अम्मरसर बावे गाई ॥
और संत बरनन जो कीन्हा । कहि तेहि मानसरोवर चीन्हा॥
अम्मरसर करि कहेउ बखानी। मानसरोवर तेहि को जानी ॥
करि असनान हंस होइ जाई। हंस होइ पुनि घर को पाई ॥
चौथा पद हंसा सोइ पावै । जीवत वाह गुरू मिलि जावै ॥
वाह गुरू चौथे पद पारा । सो चेला वाह गुरू निहारा ॥
जब लगि वाह गुरू नहिँ पावै । तब लगि निगुरा जोव कहावै ॥
मानसरोवर संत बखाना । बावे अम्मरसर कहि माना ॥

ऐसा गोरखनाथ ने स्वीकार किया है :

ममन मंडल में ऊंधा कुवा तहाँ अमृत का बासा ।[1]

सहस्त्रार और त्रिकुटी के मध्य भाग में एक तिरछा रंध्र है, जिसे योगियों ने अपनी भाषा में **बंकनाल** कहा है । इस त्रिकुटी का उल्लेख गोरख साहित्य में भी प्राप्त होता है – **"इकुटी बिकुटी त्रिकुटी संधि पछिम द्वारे पवनां बांधि ।"**[2] इसमें प्रयुक्त **'इकुटी'** का अर्थ – **इड़ा, 'बिकुटी'** का अर्थ – **पिंगला** तथा **'त्रिकुटी'** का अर्थ – **सुषुम्ना** स्वीकार किया जाता है । इसी सुषुम्ना में पवन का निरोध ही साधक को अमरत्व प्रदान करता है । योगशास्त्र में भी ऐसी ही विधान है कि इस सुषुम्ना अथवा

---

1. गोरखबानी (सबदी) : सम्पादक डॉ0 पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ 9.
2. गोरखबानी : सम्पादक पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ 51.

त्रिकुटी मार्ग से अमृत झरने लगता है । मूर्ति पूजा का खण्डन करते हुए हठ योग की साधना को गोरखनाथ ने श्रेष्ठ बतलाया है । उन्होंने उपदेशित किया कि हे सिद्धों ! तुम गगन में ही अपनी तुरही बजाओ :

सिध के संकेत पूछिले सूरा, गगन अस्थांनि बाइले सूरा ।
मीन के मारग रोपीले भांगं उलट्या फूल कली में आंगं ।।[1]

उपर्युक्त दोहे में **'मीन के मारग'** का आशय योग–मार्ग से है । इस मार्ग को मीन–मार्ग भी कहा जाता है । मछली जल में जिस मार्ग से अन्दर चलती है, उसे किसी प्रकार भी ज्ञात नहीं किया जा सकता: ठीक उसी प्रकार योग–मार्ग भी गुप्त–मार्ग है । अतएव यह मीन–मार्ग की संज्ञा से विभूषित किया गया है ।

नाथ–साहित्य और संत–साहित्य में वर्णित योग–साधना की एकता :

ज्ञान, कर्म और उपासना के द्वारा ही व्यक्ति निर्वाणपद को प्राप्त कर सकता है । नाथों ने इन तीनों के अतिरिक्त शिवत्व को अधिक महत्व दिया । सामान्य अर्थों में नाथ एवं संतों के साहित्य में वर्णित योग के प्रारूप को एक–सा स्वीकार किया जाता है । नाथों के पूर्व सिद्धों की साधना में कुछ घृणित कर्म भी जैसे – स्त्री उपासना, मद्य, माँस का प्रयोग आदि प्रचलित था, जिसे इन्होंने (नाथों ने) अस्वीकार किया । वास्तव में इससे नाथों को ही नहीं, बल्कि संतों को भी घृणा थी । जहाँ सिद्ध भोग में योग का सिद्धान्त मानते थे, वहीं नाथों ने इस धारणा का खण्डन करते हुए निर्देश दिया कि भोग से योग सम्भव नहीं । इसी सिद्धान्त को अक्षरशः संतों ने भी स्वीकार किया है । यदि निष्पक्ष विचार किया जाय तो कहा जा सकता है कि **संतों के योग का उद्गम स्थान नाथ योग ही है** । डॉ0 बड़थ्वाल ने संतों की योग पद्धति का निरूपण करते हुए उसे नाथों के योग से ही गृहीत माना है । क्योंकि सुरति, निरति, उन्मन आदि यौगिक शब्दों का प्रयोग नाथ एवं संत–साहित्य में एकार्थवाची रूप में प्रयुक्त है ।[2]

योगचिन्तामणि—योगचिन्तामणि की सूचना पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ में दी है। उन्होंने लिखा है:— 'रामानन्द स्वामी और योग का सम्बन्ध दिखाने के लिये स्वामी रामानन्द के नाम से चलाये हुए ऐसे दो रद्दी ग्रन्थ हमारे पास हैं—एक का नाम है योग-चिन्तामणि, दूसरे का नाम है रामरक्षा स्तोत्र।[१] आगे शुक्ल जी ने इस ग्रन्थ से एक पद उद्धृत भी किया है।

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १२२।

विकट कटक रे भाई। काया चढ़ा न जाई।
जहँ नाद विन्दु का हाथी। सतगुरु ले चले साथी॥
जहाँ है अष्टदल कमल फूला। हंसा सरोवर में भूला॥
शब्द तो हिरदय बसे, शब्द नयनों बसे, शब्द की महिमा चार वेद गाई॥
कहै गुरु रामानन्द जी, सतगुर दया करिमिलिया, सत्य का शब्द सुनु रे भाई॥
सुरत नगर का सयल। जिसमें है आतमा का महल॥

उपर्युक्त उद्धरण में 'कहै गुरु रामानन्द जी' पद से स्पष्ट है कि यह रामानन्द स्वामी की रचना नहीं है। भाषा-शैली भी बड़ी ही अप्रौढ़ है। रामानन्द जी के नाम पर प्रचलित हिन्दी भाषा में लिखे गए पदों (हनुमान् जी की स्तुति या अन्य पद) की भाषा-शैली बड़ी ही गँठी हुई एवं मंजी सी है। इस दृष्टि से भी 'योग-चिन्तामणि' रामानन्द स्वामी जी की रचना नहीं प्रतीत होती। रामानन्द-सम्प्रदाय के विद्वानों ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में न तो कोई सूचना ही दी है और न इसे स्वामी जी कृत रचनाओं की सूची में परिगणित ही किया है। अयोध्या के लगभग सभी प्रमुख रामानन्दी विद्वानों से मैंने पूछ-ताछ की, परन्तु वे इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में मुझे कोई भी सूचना नहीं दे सके। ज्ञात नहीं शुक्ल जी ने किस सूत्र से इस ग्रन्थ का संचय कर लिया था। जो भी हो, इतना तो निर्विवाद है कि यह रचना वैष्णव रामानन्द की नहीं है, चाहे और किसी रामानन्द की हो तो हो। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार रामानन्दी सम्प्रदाय की तपसी-शाखा में सिद्धान्त-पटल का प्रचार कर दिया गया है, उसी प्रकार 'रामरक्षा स्तोत्र' और 'योगचिन्तामणि' भी स्वामी रामानन्द जी के गले मढ़ दिए गए हैं। सम्प्रदायों के इतिहास में ऐसी घटनाएं असम्भव नहीं होती। साम्प्रदायिक विचार-धारा का विवेचन करनेवाले 'वैष्णव-धर्मरत्नाकर' के विद्वान् रामानन्दी लेखक पं० गोपालदास ने भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं किया है। ऐसी परिस्थिति में इस ग्रन्थ को स्वामी जी कृत नहीं ही माना जा सकता।

श्री गुरु रामानन्द कबीर जी का ज्ञान तिलक—खोज रिपोर्ट सन् १९१७-१८-१९ ई० में इस ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है। श्री सरस्वती-भण्डार, लक्ष्मण किला, अयोध्या में इसकी एक प्रति सुरक्षित है। ग्रन्थ के लेखक कदाचित् कबीर जी हैं। सभा की एक रिपोर्ट में इस ग्रन्थ से जो उद्ध-

गोरख जो गुष्ट बताई, मन गोरख इंद्री माहीं।
चौरासी सिध नौ नाथा, नाथे नौ द्वार में ॥५॥
नाथे नौ द्वारे माहीं, चौरासी नित नित जाईं।
द्वग से साँई नहिं देखा, लेखा येहि गुष्टि में ॥६॥
पौड़ी बिधि बावे गाई, सिढ़ी पौड़ी चढ़न बताई।
तुम तौ बिधि पढ़ हारे, पारे नहिँ देखिया ॥७॥
पचग्रन्थी तत्त लखाये, पृथवी पवन अकास समाये।
अगिनी जल पाँच बँधाया, पचग्रन्थी गाइ के ॥८॥
आदि ग्रन्थ परथम्म बखाना, जब बना ब्रह्मंड समाना।
आदि ग्रन्थी रचना बाँधी, बावे कही जाय के ॥९॥
सुखमनी ये घाट कहाई, इड़ा पिँगला सुखमनि माहीं।
चढ़ी सूरति गगन समावा, पावा वोहि धाइ के ॥१०॥
आसा के वार बताई, आसा भौ वार बँधाई।
आसा परे जब लखि पावै, सूरति सत पाइ के ॥११॥
जप का परमारथ जाना, जब जीव सुरति पहिचाना।
जब सुखमनि सुरति लगावा, चीन्हा पहिचानि के ॥१२॥

सतगुरु दरियाव बखाना, सो बिधि तुलसी सब जाना।
लखि अलख अरूप अकाया, द्वारा निरखा पाइ के ॥१३॥
अम्मरसर गुरू लखाई, जहँ जीव अमर होइ जाई।
अस माना चढ़ि असमाना, जाना जिन जाइ के ॥१४॥
हलुवा बट छाकर लीन्हा, इक बट पानी मेँ कीन्हा।
इक भंडा जाइ धरावा, चीन्हा नहिँ भूल से ॥१५॥
जा को भगवान बतावा, बावे कही काल चबावा।
गोबिँदजी निज मुख भाखा, बावे कही साखि में ॥१६॥
बावे राम रहीम न माना, गुरु गोबिँद ग्रंथ बखाना।
मत संतन और बतावा, साहिब कोइ और है ॥१७॥
पूजा पाहन बावे न गाई, गुरु गोबिँद नहिँ ठहराई।
तुम पूजो अंध अचेता, चीन्हा नहिँ भेद को ॥१८॥
आरति भौ खंड न भाखा, चाँद सूरज दीपक राखा।
गगना मैँ थाल बताई, थाह मिलै स्रुति लाइ के ॥१९॥
ये गति नानक बिधि गाई, सतसंग करै जब पाई।
संतन कोइ संधि लखावा, पावा स्रुत धाइ के ॥२०॥
नानक स्रुत चढ़ी अकासा, कीन्हा सैल ब्रह्मंड निवासा।
ब्रह्मंड से परे सिधारे, निराकार नहिँ जात है ॥२१॥
चौथा पद वाहगुरु माहीं, जहँ नानक सुरति चढ़ाई।
निराकार वहाँ नहिँ जावै, चढ़े नानक धाइ के ॥२२॥
तुलसी संतन गति न्यारी, जहँ जोति नहीँ निराकारी।
इन को सब काल बतावै, तुलसी पीव दयाल है ॥२३॥

॥ बिलावल ॥

बेटी सुत पुत्र है नाती। लगे दिल देवर इक भाँती ॥३६॥
कुँवर भइया भाव भाखा। नारी कहै नात नाती का ॥३७॥
दोऊ मैं झटक झटकारा। करै कोइ संत निरवारा ॥३८॥
तुलसी ये भेद को जानी। सोई है साध परमानी ॥३९॥
बात बिधि अगम को बूझै। हिये की दृष्टि से सूझै ॥४०॥

॥ दोहा ॥

पलकराम यह सेठ की, बूझा बिधि बरतंत।
सेठ सेठानी पुत्र को, समझैंगे कोइ संत॥

॥ चौपाई ॥

अस अस मता संत सब गाया। भेष गुरू कोइ भेद न पाया॥
वाह गुरू बावे समझाऊँ। सोई सतगुरु संध दरसाऊँ॥
जस जस संत अगम गति गाई। लखि लखि पिया रूप दरसाई॥
निरखा घाट बाट मध माहीं। सो बसंत मैं समझि सुनाई॥
हद अनहद के पार ठिकाना। लखि अरूप पुनि रूप बखाना॥

॥ बसंत ॥

लखि लखि लखिया पिय को रूप। जहँ अनहद बाजा बजै अनूप ॥टेक॥
बिजली चमकै अति अपार। गगन घोर नहिं वार पार।
मन मतंग जहँ सुनत भूप। इंद्री सँग तजि रहै चूप ॥१॥
मानसरोवर हंस घाट। ले चढ़ि लागी अगम बाट।
अरध उरध मुख औंध कूप। चाँद सुरज नहिं छाँह धूप ॥२॥
सूरति सुनि सतगुरु के बैन। निरखत हरखै हिये के नैन।
अरध पंथ इक गली है गूप। जहँ इक साहिब अति अनूप ॥३॥
कोट भान छबि रोम तेज। तीन लोक कोइ पड़ै न पैज।
तुलसी निरखि नित अज[1] अरूप। चढ़ि सूरति गइ पछिम पुहुप ॥४॥

॥ सोरठा ॥

रूप रेख नहिं भेष, सो अरूप अंदर लखा।
संत चरन पद पेख, देखा हिये दृग नैन से॥

(१) अज=अजन्मा। मुं० दे० प्र० की पुस्तक में "अजब" अशुद्ध है।

सुखमनि घाट अमरसर पाई । ये बावे बिधि ग्रन्थन गाई ॥
ये जिव जप परमारथ पावै । अम्मरसर को सुरति चढ़ावै ॥
जप परमारथ बावे गावा । जब जिव चढ़ै गगन पर धावा ॥
जपजी को परमारथ याही । सूरति सुखमनि घाट अन्हाई ॥
सूरति जपै परे रित माहीं । जपजी को परमारथ याही ॥
सुखमनि बावे सुरति चढ़ाई । सो जपजी परमारथ गाई ॥
पढ़े गुने कछु हाथ न आवा । पढ़ पढ़ बादे जनम गँवावा ॥
सुखमनि मारग संत के पासा । सुरति संत लख चढ़ै अकासा ॥
या को भेद संत से पावै । जो वे मिलैं घाट बतलावैं ॥
सुखमनि राह संत नित जावैं । परमारथ जप राह लखावैं ॥
ये बिधि भेष पंथ मैं नाहीं । भाखै जाति पंथ बिधि राही ॥
जैसे जगत जाति को माना । तैसे पंथी जाति बखाना ॥
पलकराम सुनियो चित लाई । ये बिधि बावे सत्त लखाई ॥
तुम तो पड़े पंथ के माहीं । जाति पाँति लेखे की राही ॥
पंथ राह कछु अगम कहाई । पंथ अगम बिधि बावे गाई ॥
सूरति बावे पंथ लखावा । सूरति चढ़ी गगन पर धावा ॥
गगन पंथ मारग को पावै । ता को संत पंथ मत गावै ॥
जाति पंथ मैं ये बिधि नाहीं । संत अजाति जाति नहिं जाही ॥
संत अजाति जाति नहिं मानैं । पंथ जाति बिधि एक न जानैं ॥
भेष जाति पंथी के माहीं । संत अजाति अगम घर जाई ॥
अगम पंथ चढ़ि अगम बतावा । अनुभौ भई संत गति गावा ॥
पलकराम बिधि समझ बिचारा । भेष पंथ से भेद नियारा ॥
पंथी जात जगत ब्योहारा । या से कधी न उतरै पारा ॥
कर कढ़ाव हलुवा बनवावा । ता मैं से छै भाग कढ़ावा ॥
एक भाग गुरु पानी राखा । गुरु दरियाव ताहि को भाखा ॥
ऐसे अंध अचेत अबूझा । गुरु दरिया पानी मैं सूझा ॥

गुरु दरियाव राह नहिं जाना । हलुवा पानी डार बखाना ॥
ये बावे नहिं कही बिधाना । गुरु दरिया पानी मैं जाना ॥
गुरु का दर दरवाजा भाई । ता को गुरु दरियाव बताई ॥
गुरु दर दरवाजा जो पावै । सुखमनि घाट अमरसर न्हावै ॥
गुरु के दर दरवाजे माहीं । चढ़ै सो गगन अगम घर जाई ॥
जग गुरु दर दरियाव न चीन्हा । हलुवा पानी डार जो दीन्हा ॥
वाह गुरू पानी मैं जाना । जा को हलुवा चढ़न बखाना ॥
ऐसे बुद्धि हुई जम काला । हलुवा ले पानी मैं डाला ॥
वाह गुरू दरियाव न पावै । बिना संत कहो को दरसावै ॥
बावे पानी गुरू न भाखी । देखो दृष्टि ग्रन्थ मैं साखी ॥
बावे कही राह सोइ छूटी । पोल पोल सगरा जग लूटी ॥
इक बट डंड बाँस को पूजा । देखो जड़ सँग लगे अबूझा ॥
चेतन ब्रह्म कहै सब माहीं । झंडा जड़ हलुवा कहु खाई ॥
अस अस भूल भर्म बस बूड़ा । संत मता कस मिलै अगूढ़ा ॥
नानक की जो बानी बूझै । तौ तुलसी सगरा मत सूझै ॥
आप डूब और जगत डुबावा । आदि अंत का मरम न पावा ॥
अस अस अंध धुंध का लेखा । बावे बचन नहीं कोइ पेखा ॥
तुलसी कहै नीच गति मोरी । सरनै पलकराम मैं तोरी ॥
मोरी कहनि अबूझ न मानो । मैं तुम्हरे चरनन लपटानो ॥
मैं किंकर संतन कर दासा । संत चरन बिन मोर न आसा ॥

ज्यूं सिसन स्वाद नाके नवहु, त्यूं सरब स्वाद नभि थान ।
रज्जब रस बिसकौस घर, समझौ संत सुजान ॥३३॥

रज्जब मन पवन ससि सूर समि, आतम बरसहिं अकास ।
तन तोयं प्रतिबिंब परि, बीच नहीं अभ्यास ॥३४॥

साधू खग मग सुन्नि मैं, दौरे दिसि गोपाल ।
जन रज्जब देखै जगत, चलै पवन यहु चाल ॥३५॥

आतम निरनै का अंग

रुई तार ततपंच हैं, बिगति बिनौला प्रान ।
जन रज्जब यहु जुगल यूं, अंकूर आतमा सान ॥१॥

पंच पचीसौ सुई जड़, चेतन चंबक प्रान ।
जन रज्जब जाणी जुगति, समुझौ संत सुजान ॥२॥

बिभौ बारि बहनी सहत, बाइ व्योम जड़ अंग ।
जन रज्जब जाणी जुदी, आतम अकलि सुरंग ॥३॥

जैसे आभै अंभ है, आषिर सबद समान ।
तैसे रज्जब सोधतैं, लहिये प्यंडहि प्रान ॥४॥

आतम परखी अकलि मधि, पंच पचीसहु जान ।
ब्रह्म बिचार न मावई, बेत्वा बेद बखान ॥५॥

अवनिहि असन आप अंभ चाहै, तेजहिं तेज अहार ।
बाइहं बाइ गगन हित गगनहि, आतम अकलि अधार ॥६॥

तत्त तत्त मिलि जीवई, तत्त तत्त बिन नास ।
रज्जब आतम राम यूं, जोग बिजोग बिमास ॥७॥

रज्जब प्यंड पलै ब्रह्मंड मैं, तत्तहिं तत्त अहार ।
प्राण पोषिये भजन ज्ञान सूं, बिरला पोषणहार ॥८॥

रज्जब रचना अगह गति, अदभुत बात अगम ।
पर दीसै बरषा बंदगी, इंद्र धनक आतम ॥९॥

राह केत रारचूं ऊपर है, रबि राकेस प्रकास ।
त्यूं रज्जब बिच बंदगी, आतम राम अभ्यास ॥१०॥

मन बच क्रम रज्जब कहै, सुनहु बमेकी दास ।
सकति सूर जब आथवै, तब आतम उडग प्रकास ॥११॥

॥ छंद ३ ॥

अगम पंथ बाटा चढ़ी सुर्ति घाटा। गगन गैल फाटा सो आतं निआतं
पिला पील भारी चढ़ी सुर्ति सारी। सो खिरकी निहारी लखा ब्रह्म पूरं
अधर लेख लेखा सो जानै न भेषा। सुरति संत देखा सो लेखा अलेखं
तुलसी तत्त बानी किया मत्त ज्ञानी। लिया लै निदानं जो ज्ञानं सो ध्यानं

॥ छंद ४ ॥

कही सिंध बानी सो बुंदा न जानी। सो सतगुरु बखानी अनाथं सनाथं
अजर कूप भारी सो सूरत सँवारी। कटे कर्म बंधं बसे बुन्द सिंधं
चढ़ी चेट चाली खड़ी बंक नाली। धसी द्वारपाली प्रबोयं सो धोयं
तुलसी तत्त तोली अधर चाँप खोली। लखी संत बोली सो मोलं अमोलं

॥ छंद ५ ॥

जड़े जाल कर्मं पड़े भूल भर्मं। धरे घर अधर्मं न मरमं न सरमं
नहीं भक्त ज्ञानी जो आपा न जानी। सो पाषान पानी न जाना अजानं
मया मोह बंधे त्रिया पुत्र फंदे। बिषय भोग अंधे सो गंदं निखंदं
तुलसी छेक छोड़े हथी और घोड़े। तिनुका इस्क तोड़े सो मोड़ं करोड़ं

॥ छंद ६ ॥

गिरा गोह गाँठी परे पाँच बाटी। फँसे घोर घाटी सो ठाटं बैराटं
प्राकिरती पचीसं गुना नाम ईसं। गिरा गोह ग्रीसं सो प्रीसं अनीसं
जड़े जोड़ जानी पड़े पिंड पानी। चले चेत खानी न ज्ञानं न ध्यानं
तुलसी मैल मारं भया भूमि भारं। न तुरती सम्हारं सो वारं न पारं

॥ छंद ७ ॥

कृतिम काल जारं फिकर फहम फारं। निकर नौ निवारं सो भारं उतारं
अली आदि जानी भली भूल मानी। चली चौन्ह खानी हितानं चितानं
तिरकूट तालं करी सैल भालं। मिली मौज मालं सो कालं निकालं
तुलसी तोल गाई गगन गैल जाई। सुरति सैल पाई सो साधं अगाधं

॥ छंद ८ ॥

अली आत्म रूपं अकासं सरूपं। रबी भास भूपं अनंतं अनूपं
निराकार कारं भई जोति जारं। लई बिस्व भारं सो सारं सम्हारं
सरगुन स्याम वारं सो सृष्टी सवारं। रची खानि चारं सो भूमी अपारं
अली आस अंडा जमा जीव पिंडा। सो तुलसी अखंडा बैराटं ब्रह्मंडं

॥ छंद ९ ॥

गुना गोह तीतं बना बास कीतं। पके पाँच पीतं सो चीतं अनीतं
बैराट धारं सो बेदौ न पारं। जो नेती पुकारं सो वारं न पारं

सब्द साखि भाखत भये, तन बीति सिराना हो ॥टेक॥
भेष पंथ भूले फिरैं, कोइ मरम न जाना हो ।
सुन्न सहर सत द्वार मैं, चढ़ि सुति असमाना हो ॥१॥
नभ निवास न्यारी भई, मारग पहिचाना हो ।
पछिम पार पट खोलि कै, खिरकी नियराना हो ॥२॥
होति जोति जगमग लखै, आतम दरसाना हो ।
कँवल केल आगे चली, दल दोय दिखाना हो ॥३॥
परमातम पद परसि कै, लखा पुरुष पुराना हो ।
अगम गली आगे चली, अली आदि अनामा हो ॥४॥
तुलसीदास दुरबीन मैं, कोइ संत समाना हो ।
अगम निगम गम गाइकै, जिन भाखि बखाना हो ॥५॥

॥ शब्द २ ॥

सब्द भेद साखी लखै, सोइ साध सुजाना हो ॥टेक॥
अगम निगम गम चीन्ह कै, बानी पहिचाना हो ।
सुरति सिष्य सब्दै गुरु, मिलि मारग जाना हो ॥१॥
लखि अकास औंधा कुआँ, ता मैं सुरति समाना हो ।
गगन गिरा गरजत भई, फूटा असमाना हो ॥२॥
गंग जमुन बिच सरसुती, बेनी असनाना हो ।
जोग ज्ञान गम ना लखै, अली अगम ठिकाना हो ॥३॥

तुलसी दर दुरबीन का, कोइ फोड़ि निसाना हो ।
सिंध बुन्द सागर मिला, सोइ सिंध कहाना हो ॥४॥

॥ सोरठा ॥

बुन्दा सिंध समान, मिलि सागर सागर भयौ ।
गुपल गुसाईं सब्द को, बिन बूझे बागर रह्यौ ॥

॥ चौपाई ॥

गुपल गुसाईं सब्द न बूझा । बीजक मति मैं रहे अबूझा ॥
अगम निगम गम सब्द पुकारा। तुम अँधरे नहिं बूझ बिचारा
सब्द सिंध सतगुरु गोहरावैं । बिन सतसँग कस नजर समावै॥
हिये दृग नैन किवारी खोली। सोइ सतगुरु की समुझै बोली॥
सतगुरु अगम राह दरसाई । सब्द साखि सब भाखि सुनाई॥
पिय मारग मिलने की रीती। नैन नगर नित प्रति सुति प्रीती ॥
अब या का इक सब्द सुनाऊँ। तुम को रमज राह दरसाऊँ ॥

॥ शब्द ॥

सुरति निरति निज नैन को, सतगुरु दरसावा हो ॥टेक॥
अति उतंग पिय पंथ को, तब मारग पावा हो ।
सुरति जहाज पै बैठि कै, अपने घर आवा हो ॥१॥
सजि सिँगार सुंदरि चली, पिय को अपनावा हो ।
फूलन सेज सँवारि कै, सजि पलँग बिछावा हो ॥२॥
लगन लार लै से मिली, पिय रीझ रिझावा हो ।
सुरति सुहागिनि साजि कै, पिय से लिपटावा हो ॥३॥
तुलसी तरँग रँग राह की, कछु कहत न आवा हो ।
पति परचे पिउ पास को, जाना जिन गावा हो ॥४॥

॥ चौपाई ॥

अस अस खुलि खुलि सब्द सुनावै। पंथ भूल से नजर न आवै ॥
पंथ राह रस्ते को गाया । तुम पंथी इक जाति बनाया ॥

मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । यह लीला लखी नियार[7] ।।25।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । कंज[8] में करती आज बिहार ।।26।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । चली आगे को पग धार ।।27।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । चढ़ खोला बंक दुआर ।।28।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । त्रिकुटी में देख बहार ।।29।।

---

1. निकाल दी। 2. संग। 3. झाड़ कर साफ़ करके। 4. चिदाकाश। 5. फूल। 6. फुलवारी, बग़ीचा। 7. जुदा, नयारी। 8. सहसदल कँवल।

मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । सुन चढ़ आई दसवें द्वार ।।30।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । महा सुन खेली खेल अपार ।।31।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । गुफा में सुनी एक झनकार ।।32।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । अमर पद पहुँची खोल किवाड़ ।।33।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । बीन की सुनी जहाँ धधकार ।।34।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । ख्याल संग पाया काल बिडार[1] ।।35।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । शब्द का चढ़ गया आज ख़ुमार ।।36।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । अलख में पहुँची लगन सुधार ।।37।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । अगम का पाया अब भंडार ।।38।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । राधास्वामी देखा मैं दीदार ।।39।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । मिटा मेरे घट का सब ही खार[3] ।।40।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । लगी मेरी नौका आन किनार ।।41।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । उतर गया जनम जनम का भार ।।42।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । ममत और माया डाली मार ।।43।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । मिटाया कर्म भर्म गुब्बार[4] ।।44।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । मिले अब मेरे निज दिलदार[5] ।।45।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । हुई मैं उनके गल की हार ।।46।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । विरोधी बैठे सब ही हार ।।47।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । लिया अब ऐसा अगम विचार ।।48।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । बहूं नहिं कबही भौ की धार ।।49।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । रहूं मैं निस दिन अब हुशियार ।।50।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । तिमिर भी नासा हुआ उजियार ।।51।।
मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी की । हुइ अब छिन छिन शुकर गुज़ार ।।52।।

---

1. दूर करके। 2. नशा। 3. मैल, कड़वाई। 4. अन्धकार। 5. प्रीतम।

12:31
Sar Bachan Chand Band...

राधास्वामी राधास्वामी नित गुन गाऊँ। चरन सरनपर हिया उमगाऊँ।।18।।
कहाँ लग बरनूं मेहर अपारा। दिन दिन होवत मौज[1] नियारा।।19।।
जगत जीव कहा[2] समझे लीला। देख देख हंसन चित सीला[3]।।20।।
अब के दाव पड़ा मोरा सजनी। जब आयो राधास्वामी की सरनी।।21।।
खुल गये भक्ति प्रेम भडांरा। कोटिन जीव का होय उधारा।।22।।
चहुं दिस धूम पड़ी अब भारी। काल नगर मानो[4] दे हैं उजाड़ी।।23।।
स्वामी दयाल मौज ऐसी धारी। दीन होय तिस लेहैं उबारी।।24।।
मैं किंकर उन चरनन दासा। सब जीवन को देऊँ दिलासा[5]।।25।।
बाँध सुरत चरनन में राखो। अगम अपार अमी रस चाखो।।26।।
हंस सभा कहा बरनूं सोभा। होवत जहाँ शब्दन की बरषा।।27।।
चमकत बिजली गरज अकाशा। और कहा कहुं[9] अजब तमाशा।।28।।
बंकनाल के नाले छूटे। सुखमन नदियाँ भरम पुल टूटे।।29।।
त्रिकुटी घाट बैठ मल धोई। मान सरोवर दुरमत खोई।।30।।
हंस रूप होय सुरत समानी। शब्द अगम धुन अंतर जानी।।31।।
महासुन्न के ऊपर गाजी[7]। राधास्वामी हो गये राज़ी।।32।।
भँवरगुफा की खिड़की खोली। सत्तपुरुष की सुन लइ बोली।।33।।
हंस सभी अगवानी धाये। अलख लोक से लेवन आये।।34।।
सुरत सिरोमन पहुंची धाई। अलख पुरुष का दर्शन पाई।।35।।
नाना विधि जहाँ बजत बधाई। हंस सभी मिल आरत गाई।।36।।
अगम लोक जाय झंडा गाड़ा। अगम पुरुष का भेद उघाड़ा[8]।।37।।
वहाँ का मरम न कोई आखा। बिरले संत गुप्त कर भाखा।।38।।
जीव दया अब अति कर आई। राधास्वामी खुल क़र गाई।।39।।

---

1. दया की धार। 2. क्या। 3. चित्त की शांति। 4. जैसे। 5.दरशन।
6. पान करूँ, पिऊँ। 7. ओछा। 8. भँवरा। 9. मगन होती है।
10. पहिचानता।

09:56
Sant Garib das ji ki ban...

प्रथम अन्न जल संयम राखै,योग लक्षण सब सतगुरु भाषै।। ६२।।
क्रिया नेम गनेश बखानौं, धोती नेती कर अस्थानौं।
अजरी बजरी बंधे बाई, द्वादश खैंचि पताल समाई।। ६३।।
बामा चरण गुदा में लावै, आसन इन्द्री मूल समावै।
दहना ऊपर अस्थिर राखै, दो स्वर खैंच पतालौं दाखै।। ६४।।
मेर डण्ड कूँ राखै सूधा, जाका कँवल न होवै मूंधा।
दम का दगड़ा मंजन मांजै, शुन्य का सुरमा अंजन आंजै।। ६५।।
राम रसायन फूल चुवावै, इला पिंगला फेर चलावै।
सुषमणि सुरति लगावै ध्यानं, चंद्र सूर मूंदे शशि भानं।। ६६।।
दो मुख की नागनि गहि ल्यावै, मेर डण्ड कूँ उलटि बहावै।
अमीधार बरषा रस मूलं, नागनि का नीचे सिर झूलं।। ६७।।
काली ऊन काल का बाना, जठाराग्नि जीति स्वर ज्ञाना।
काली ऊन धोय बिन पानी, पेचस खोल्है होय अमानी।। ६८।।
क्षुध्या तृषा ताहि न व्यापै, निद्रा नींद काल नहीं झांपै।
हिरदे अजपा जाप जगावै, जैसे शेष सहंस फुनि गावै।। ६९।।
किलियं ॐ हरियं सोहं, गुझ गायत्री से दिल धोव।
तुंही तुंही ररंकार रटि रसना, ऐसे त्रिकुटी महल में धसना।। ७०।।
पलक मूंद कर पल नहीं लावै, बामा खैंचे दहने धावै।
नाद बिंद कूँ उलटि चलावै, त्रिवैनी भाठी श्रवावै।। ७१।।
पीवै अमृत लगै खुमारी, दो दल अंदर खुलै किवारी।
खैंचे बान गगन कूँ धावै, पैठि पताल शेष गहि ल्यावै।। ७२।।
कच्छ मच्छ कूरंभ उडानी, शेष गगन धरती तिर जानी।
अकल अंचभा मोहि अंदेशा, कौन युक्ति गहि ल्याये शेषा।। ७३।।
सतगुरु एता खेल दिखाया, बिन कुर अंबर पारी काया।
सुरति बान कमान चढ़ाई, घुडला ज्ञान पीड़ कर ल्याई।। ७४।।
दशौं दिशा कूदे मैदाना, चंद सूर एकै घर आना।
अगर मूल में फूल फुहारा, जहां वहां गंग सहंस मुख धारा।। ७५।।
नक सरवर पर गिरवर भारी, भौंर गुफा में लागी तारी।
अखंड मंडले करो पियाना, ता पर है योजन अस्थाना।। ७६।।
सुरति कँवल कूँ बूझि विचारो, ता आगे नीके पग धारो।
सुरति कँवल सतगुरु है भाई, जिन अक्षय वृक्ष की राह बताई।। ७७।।
समाधान में सुरति समोई, दौना मरुवा फूले दोई।
दौना मरुवा बाग मंझारा, फूल चमेली न्यारा न्यारा।। ७८।।
राय चमेली अगमी रासा, गगन मंडल में बाग अकाशा।
सूरज मुखी हजारा फूले, सुरति कमंद के बांधे झूले।। ७९।।

।। शब्द तीसरा ।।

नगरिया झाँक रही मैं न्यारी । गुरु ने मोहिं दीन्हीं अचरज तारी[4] ।।1।।
सुनी मैं अनहद धुन झनकारी । रूप अब निरखा अद्‌भुत भारी ।।2।।
कहूं क्या गुरु की मेहर करारी[5] । हुई मैं राधास्वामी चरन दुलारी[6] ।।3।।
छोड़ कर देश पराया आई । महल में राधास्वामी आन बसाई ।।4।।
भेद यह दीन्हा मोहिं मेरे भाई । कहूं कस महिमा उनकी गाई ।।5।।
सरन अब राधास्वामी दृढ़ कर पाई । छोट मुख क्योंकर करूँ बड़ाई ।।6।।
भाग मेरा जागा शब्द सुहाई । नाम रस पाया करूं कमाई ।।7।।
सुरत हुइ निरमल सुखमन पाई । चली और नभ पर करी चढ़ाई ।।8।।
नैन दोउ फेरे जोत दिखाई । सहस दल कँवल मध्य धस आई ।।9।।
श्याम तज सेत रूप दरसाई । बंक चढ़ त्रिकुटी आन समाई ।।10।।
ओंग धुन गरज भली समझाई । सूर जहँ लाल लाल दिखलाई ।।11।।

---

1. कंगूरा। 2. अनेक पदम (संख्या विशेष)। 3. अव्वल नम्बर। 4. कुञ्जी। 5. तेज। 6. प्यारी।

सुन्न चल मानसरोवर न्हाई । ररंग धुन किंगरी ख़ूब सुनाई ।।12।।
हंस होय आगे पंथ चलाई । महासुन सूरत अजब सजाई ।।13।।
धमक सुन भंवरगुफा ढिंग[1] आई । बाँसुरी सोहंग संग बजाई ।।14।।
वहाँ से सचखंड पहुंची धाई । पुरुष का रूप अनोखा पाई ।।15।।
बीन धुन सुन कर बहुत रिझाई । मेहर हुई भारी कहा न जाई ।।16।।
गुरु मोहिं दीन्हा अलख लखाई । अगम का परदा खोला जाई ।।17।।
वहाँ से राधास्वामी धाम दिखाई । गई और चरन सरन लिपटाई ।।18।।
आरती अद्‌भुत लीन सजाई । बँगला अचरज रूप बनाई ।।19।।
बैठकर राधास्वामी छबि दिखलाई । उमंग और प्रेम रहा मेरा छाई ।।20।।
सखी सब मिल कर देत बधाई । आज मेरा जन्म सुफल हुआ भाई ।।21।।
ब्रह्म और माया दोउ लजाई । काल और कर्म रहे मुरझाई ।।22।।
जोग और ज्ञान थके पछताई । कहूं क्या कोई मर्म न पाई ।।23।।
संत मत ठीक यही ठहराई । सुरत और शब्द राह दरसाई ।।24।।
वेद नहिं पावे संत बड़ाई । कही अब राधास्वामी यह गति गाई ।।25।।

।। शब्द चौथा ।।

मैं चकवी सतगुरु हुए चकवा । रैन भई तो हुआ बिछोहा[1] ।।4।।
मैं अज्ञान रैन बस पड़ी । वार रही और धीर न धरी ।।5।।
सतगुरु पार बसेरा कीन्हा । क्योंकर मिलूं राह नहिं चीन्हा ।।6।।
तड़पूं छिन छिन पिय के वियोग । कस पाऊँ अब पिया संयोग ।।7।।
अति आतुर[2] घबराय पुकारी । तब स्वामी मेरी कीन सम्हारी ।।8।।
रात बिताई हुआ बिहाना । घट के भीतर भान उगाना ।।9।।
चक[4] के वार पड़ी थी थोथी[5] । गुरु चक पार सुनाई पोथी[6] ।।10।।
गुरु से मिली खोल कर पाट । घाट बाट घट बाँधा ठाट ।।11।।
लोहा ज्यों चुम्बक सँग मिली । सुरत शब्द से जाकर रली ।।12।।
सुरत दृष्टि कर द्वारा झाँका । तोड़ा जाय सुई का नाका[7] ।।13।।
भीतर धस जो लीला देखी । बरनीँ कैसे बात अगम की ।।14।।
अंतरजामी सतगुरु जाने । और भेदी पुनि आप पहिचाने ।।15।।
श्याम सेत के मद्ध समानी । घंटा शंख सुनी धुन बानी ।।16।।
सूर चाँद दोऊ दिस देखे । सुखमन गगना तारे पेखे ।।17।।
आगे धसी बंक की नाल । अवगत काल बिछाया जाल ।।18।।
आगे पहुंची त्रिकुटी द्वार । लाल रूप जहँ धुन ओंकार ।।19।।
सुन्न में गई महल दस माहिं । हंसन साथ मानसर न्हाहि ।।20।।
सेत सेत वह सुन्न दिखाई । चंद्र चाँदनी चौक लगाई ।।21।।
शिखर चढ़ी पच्छिम के द्वार । महासुन्न के हो गई पार ।।22।।
भँवरगुफा का ताक़ उधारा । सोंहँग मुरली सुनी पुकारा ।।23।।
चौक परे सतलोक समानी । सत्त पुरुष धुन बीन बखानी ।।24।।
कोटिन सूर[8] लगे इक रोम । कोटि कोटि जहँ ऊगे सोम[9] ।।25।।
सत्तपुरुष की आयस[9] पाय । अलख लोक में पहुंची धाय ।।26।।
अरब सूर शशि[11] लजायँ । ऐसी शोभा देखी आय ।।27।।

---

1. वियोग । 2. तड़पती । 3. उदय हुआ । 4. चक्षु, आँख । 5. बे-काम । 6. आकाश बानी, शब्द । 7. मुख । 8. सूरज । 9. चाँद । 10. आज्ञा । 11. चन्द्रमा ।

॥ शब्द पाँचवाँ ॥

राधास्वामी का दरस मैं आज करूँगी । पल पल छिन छिन पार रहूंगी ॥1॥
जगत जाल से बहुत बचूँगी । कर्म काल को मार धरूंगी ॥2॥
सुरत चढ़ाय असमान भरूंगी । गगन मंडल की सैर करूंगी ॥3॥
धुन धधकार अनंत सुनूंगी । शब्द अमी रस अगम पिऊंगी ॥4॥
पुष्ट होय गुरु चरन गहूंगी । सुखमन संग विलास करूंगी ॥5॥
बंकनाल में सहज धसूंगी । त्रिकुटी जा मैं ओंग गहूंगी ॥6॥
सुन्न महासुन पार सजूंगी । भंवरगुफा सतलोक रहूंगी ॥7॥
अलख अगम धुन नित्त भजूंगी । राधास्वामी चरन स्पर्श करूंगी ॥8॥

---

1. लगाने वाली यानी प्रेमी सुरत। 2. धोखा देने वाली माया। 3. सूँघने वाली सुरत। 4. मलियागिरि चन्दन। 5. धोकर। 6. दंडवत। 7. तेज। 8. माया। 9. चमन, बग़ीचा। 10. फूल।

॥ शब्द छठवाँ ॥

देखत रही री दरस गुरु पूरे । चाखत रही री प्रेम रस मूरे ॥1॥
शोभा सतगुरु बरनी न जाई । बाजत घट में अनहद तूरे ॥2॥
बुंद चढ़ी तज पिंड असारा । पहुंची जाय सिन्ध सत नूरे ॥3॥
गरजत गगन विरह उठ जागी । मन कायर अब होवत सूरे ॥4॥
चरन कँवल गुरु हिरदे धारी । करत तमोगुन दम दम चूरे ॥5॥
कृपा दृष्टि सतगुरु अब धारी । काल चक्र डारत अब तोड़े ॥6॥
समुंद सोत धस सुरत समानी । मान सरोवर दरसत हूरे[1] ॥7॥
सुरत चढ़ाय गई सतनामा । पहुंची राधास्वामी चरन हज़ूरे ॥8॥

॥ शब्द सातवाँ ॥

गुरु के दरस पर मैं बलिहारी । गुरु के चरन मेरे प्राण अधारी ॥1॥
गुरु के बचन मेरे हिये सिगारी । गुरु स्वरूप दिन रैन सम्हारी ॥2॥
गुरु का संग कर छिन छिन प्यारी । गुरु का रंग ले नैन निहारी ॥3॥
गुरु के धाम पर सुरत लगा री । नील शिखर[2] चढ़ श्याम[3] तका री ॥4॥
सेत सूर जहं नूर लखा री । शब्द अनाहद तूर बजा री ॥5॥
मुरली धमक और बीन सुना री । अद्‌भुत रस अचरज सखी भारी ॥6॥
बिरले संत यह भेद पुकारी । तू भी सरन पड़ उन की जा री ॥7॥
ज्यों मीना जल धार समा री । ज्यों चकोर चन्दा निरखा री ॥8॥
अस परीत सतगुरु संग ला री । कर प्रताप घट होत उजारी ॥9॥
भाग बिना क्या करे बिचारी । यह भी भाग गुरु से पा री ॥10॥
राधास्वामी कही जुक्ति यह सारी । उनके चरन से प्रेम लगा री ॥11॥

॥ शब्द आठवाँ ॥

गुरु का दरस तू देख री । तिल आसन डार ॥1॥

घुमँड़ घुमँड़ होवे बलिहारी । आरत शोभा अब भइ भारी ।।19।।
समा बँधा कुछ कहा न जाई । सतसंगी मिल आरत गाई ।।20।।
हीरे लाल न्योछावर[1] होई । माणिक मोती लड़ियाँ पोई[2] ।।21।।
फल और फूल जहाँ अति राजें । राधास्वामी जहाँ बिराजें ।।22।।
मगन हुआ अब तन मन मेरा । राधास्वामी छिन छिन हेरा[3] ।।23।।
आरत कीन्ही अब मैं पूरी । देओ प्रशाद अमीरस मूरी[4] ।।24।।
प्रेम ध्वजा अब गगन फहराई । धुन धधकार अगम से आई ।।25।।

।। शब्द छठवाँ ।।

आनँद मंगल आज, साज सब आरत लाई ।
राधास्वामी हुए हैं दयाल, काल डर दूर बहाई ।।1।।
सुखमन थाल सजाय, बंक की खोल किवाड़ी ।
चन्द्र कटोरी आन, भान की जोत सँवारी ।।2।।
सुरत निरत की छड़ी, अमी का भोग धराई ।
सेत चँदरवा[5] तान, सेत की तान[6] सुनाई ।।3।।
कर्म रेख मिट गई, सुन्न में बजी बधाई ।
स्वामी किरपा करी, रूप अद्भुत दरसाई ।।4।।
सत्तनाम धुन अगम, हिये बिच आन समाई ।
काया नगर मँझार, पुरुष की फिरी दुहाई ।।5।।
छोड़ कुटुम्ब और तोड़ जगत से, पोढ़[7] परम पद पाई ।
राधास्वामी राधास्वामी, निस दिन रटना लाई ।।6।।
प्रेम मगन मन हुआ, कहा अब कछू न जाई ।
सतसंगी मिल आरत गावें, तन मन सुध बिसराई ।।7।।
स्वामी किरपा करी, सुरत अब लीन जगाई ।
शब्द अगम का भेद, दीन सतगुरु दरसाई ।।8।।

---

1. वार दिये गये । 2. परोतियां । 3. देखा । 4. मूल । 5. चंदोआ ।
6. राग । 7. मज़बूत ।

।। शब्द पाँचवाँ ।।

सुख समूह[5] अंतर घट छाया । आरत सामाँ[6] आन सजाया ।।1।।
आनंद हरख अधिक हिये आया । गुरु चरनन में चित्त समाया ।।2।।
दर्शन कर गुरु महिमा गाया । छबि अनूप नैनन में लाया ।।3।।
प्रेम सूर निज गगन उगाया । भर्म तिमिर सब दूर बहाया ।।4।।
जगो भाग धुन अनहद पाया । अंतर सुखमन तीरथ न्हाया ।।5।।

---

1. छाँटी। 2. अचरज। 3. सुरत। 4. सीधी। 5. बहुत। 6. सामान, पदार्थ।

सहसकंवल तिल उलट फिराया । मन को छोड़ सुरत संग धाया ।।6।।
जोत निरंजन रूप दिखाया । अति हुलास कुछ कहा न जाया ।।7।।
घंटा नाद और संख सुनाया । चाँद सूर तारा दरसाया ।।8।।
बंकनाल का द्वार खुलाया । त्रिकुटी चढ़ गुरु शब्द मिलाया ।।9।।
सूरज मंडल वेद पढ़ाया । अर्ध मात्रा मूल जनाया ।।10।।
सुन्न शिखर धुन ररंग जगाया । माया काल दोउ सुलवाया[1] ।।11।।
सेत चन्द्रमा फूल खिलाया । मानसरोवर अमी पिलाया ।।12।।
हंसन साथ मिलाप बढ़ाया । किङ्गरी सारङ्गी धूम मचाया ।।13।।
महासुन्न धुन गुप्त लखाया । महाकाल बल छीन कराया ।।14।।
भँवर गुफा अमृत बरसाया । सोहंग बंसी नाद बजाया ।।15।।
चढ़ी सुरत सतपुरुष गजाया[2] । सच्चखंड जा तख़्त बिछाया ।।16।।
पुरुष मेहर दुरबीन दिलाया । अलख रूप शोभा परखाया ।।17।।
अगम पुरुष फिर अमी चुवाया । राधास्वामी भेद बताया ।।18।।
भक्त धाम येही ठहराया । आरत कर राधास्वामी रिझाया ।।19।।
फल अपार दुख दूर गँवाया । रसक रसक रस शब्द रसाया ।।20।।
जन्म जन्म के कर्म नसाया । काल दाव अब ख़ूब चुकाया ।।21।।
राधास्वामी चरनन माथ नवाया । राधास्वामी मूरत हिये बसाया ।।22।।
तज विकार मन को समझाया । नाम पकड़ अब काम हटाया ।।23।।
सील छिमा दृढ़ थान जमाया । मन बिहंग को अधर उड़ाया ।।24।।
गुरु भृङ्गी यह कीट चिताया । राधास्वामी चरननिपट लिपटाया ।।25।।

।। बचन छठवाँ ।।

।। शब्द चौथा ।।

गुरु मता अनोखा दरसा । मन सुरत शब्द जाय परसा ।।1।।
लीला घट देखी भारी । हुइ सुरत गगन परिहारी ।।2।।
अमृत रस भर भर पीया । तन मन सब सीतल हूआ ।।3।।
चोरी अब चोरन त्यागी । घर उनके अग्नि लागी ।।4।।
साहू अब घट में जागे । पहरा दे शब्द अनुरागे ।।5।।
गुन गावत मन हुलसाया । धुन धावत अधर चढ़ाया ।।6।।
जगमग हुइ जोत उजियारी । घट खिल गइ कँवल कियारी ।।7।।
सुन्दर की खिड़की खोली । सुखमन में धुन नित बोली ।।8।।
चढ़ बंक किवाड़ी खोली । त्रिकुटी जा हुई अमोली ।।9।।

---

1. पास ।

बचन फेरत पान तमोली । यों धुन घट सूरत रोली[1] ।।10।।
क्या महिमा गुरु पद गाऊँ । छिन छिन में उमँग बढ़ाऊँ ।।11।।
सुर नर मुनि गति नहिं जानी । यह अचरज अकथ कहानी ।।12।।
सुन्न में जा शब्द समानी । अद्‌भुत धुन किंगरी छानी ।।13।।
गई महा सुन्न के नाके । गुरु दया अचंभा[2] ताके ।।14।।
फिर भँवरगुफा लगी डोरी । सोहँग जा सूरत जोड़ी ।।15।।
सतगुरु पद सत कर जाना । गति मति क्या कहूं बखाना ।।16।।
शशि सूर अनेकन पाँती । देखे और आगे जाती ।।17।।
लख अलख अगम दरसाना । मिला राधास्वामी नाम निशाना ।।18।।
यह अजब परम पद पाया । अब तक कोई भेद न गाया ।।19।।
नहिं वेद कतेब सुनाया । जोगी नहिं ज्ञानी धाया ।।20।।
यह वस्तु अमोलक पाई । कोइ बिरले संत बताई ।।21।।
मेरे राधास्वामी परम दयाला । जिन कीन्हा मोहिं निहाला ।।22।।
मैं आरत उनकी करता । तन मन दोउ चरनन धरता ।।23।।
मैं हर दम यही पुकारूँ । मत अगम अगाध सम्हारूँ ।।24।।
मेरा भाग उदय हो आया । राधास्वामी चरन धियाया ।।25।।
जग स्वाद लगा सब फीका । राधास्वामी नाम मैं सीखा ।।26।।
गति मति मेरी उलटी पलटी । गुरु कर दइ सूरत[3] सुल्टी[4] ।।27।।
मेरा काज हुआ सब पूरा । मैं राधास्वामी चरनन धूरा ।।28।।

।। शब्द पाँचवाँ ।।

॥ शब्द पन्द्रहवाँ ॥

आरत करूँ आज सतगुरु की । तन मन भेंट चढ़ाऊँ अब की ॥1॥
ममता छोड़ूँ मैं अब सब की । प्रीत करूँ राधास्वामी चरनन की ॥2॥
सुमिरन नाम नेम से करूँ । प्रेम सहित अनहद धुन सुनूँ ॥3॥
सुन सुन धुन फिर आगे चढ़ूँ । सहसकंवल दल बानी पढ़ूँ ॥4॥
श्याम सेत तक आगे चलूँ । बंकनाल के भीतर धसूँ ॥5॥
वहाँ से त्रिकुटी धाम सम्हारूँ । ओंग ओंग संग बहुत पुकारूँ ॥6॥
ररंकार धुन सरवर तीर । हंसन की जहाँ देखी भीड़ ॥7॥
सेत सेत पद जहाँ गंभीर । सुरत निरत धस धारी धीर ॥8॥
जन्म जन्म की काटी पीड़ । छान करी जहाँ नीर और खीर ॥9॥
आतम अक्षर निरख निहारी । महासुन्न की करी तयारी ॥10॥
अंध घोर जहाँ अति कर भारी । सतगुरु बल से पार सिधारी ॥11॥

---

1. बग़ीचा। 2. कई तरह की। 3. प्रसन्न। 4. सुन्न और त्रिकुटी के शब्द।

भँवर गुफा पहुंची इक छिन में । बंसी की धुन पड़ी श्रवन में ॥12॥
सोहं सोहं सुनी पुकार । हंसन रूप देख उजियार ॥13॥
वहाँ से चली अमर पद आई । सत्तनाम धुन बीन सुनाई ॥14॥
अलख अगम का नाका[1] लीया । जहाँ अमी रस अद्भुत पीया ॥15॥
आगे को फिर सूरत धाई । राधास्वामी धाम समाई ॥16॥
अभेद आरती करी बनाई । भेद तासु कोई संत जनाई ॥17॥
नहिं वहाँ थाल न दीपक बाती । सदा आरती बहु बिधि गाती ॥18॥
चरन सेव चरनामृत पीती । उमँग सहित परशादी लेती ॥19॥
छिन छिन राधास्वामी रूप निहारूँ । पल पल राधास्वामी हिरदे धारूँ ॥
सुरत शब्द सँग आई जाग । राधास्वामी मिले बड़े मेरे भाग ॥21॥

॥ शब्द सोलहवाँ ॥

12:55
Sar Bachan Chand Band...

पढ़ी फ़ारसी पढ़ी अंगरेज़ी । हुई मेहर बुध पाई तेली ।।4।।
देखा सब जग झूठ पसारा । पाया नाम राधास्वामी का सारा ।।5।।
सुरत चढ़ी खुला शब्द अपारा । कुमत हरी[1] और मनको गारा[2] ।।6।।
प्रेम बदरिया घुमड़न[3] लागी । बरस बरस अनहद धुन जागी ।।7।।
चाँद सुरज दोउ गये छिपाई । सुखमन नदी उमँड़ कर आई ।।8।।
खुला द्वार फूटा घट गगना । सुन्न शिखर देखत मन मगना ।।9।।
बाल अवस्था खेल कूद की । खेल दिखाया साँचा अब की ।।10।।
दया हुई अब स्वामी भारी । आरत पूरन हुई हमारी ।।11।।

।। शब्द चौदहवाँ ।।

एक आरती कहूं बनाई । राधास्वामी हुए सहाई ।।1।।
शान्ति थाल और सत मत जोती । समता सील[4] धरे जहाँ मोती ।।2।।
रत्नन माल परोई भाई । गल में स्वामी आन चढ़ाई ।।3।।
हीरे लाल थाल भर लाई । माणिक पन्ना भेंट धराई ।।4।।
गहने कपड़े बहु पहिनाई । चोआ चन्दन अंग[5] लगाई ।।5।।
अस अस सब सिंगार बनाई । कँवल देख ज्यों मधुकर[6] आई ।।6।।
स्वामी सन्मुख ठाढ़ी भई । आरत थाली कर[7] में लई ।।7।।
आरत कर कर अति हरखाई । राग रागिनी नइ नइ गाई ।।8।।
बाजे बजें गगन के द्वार । उमँग बढ़ी सुन सुन झनकार ।।9।।
अग्नि पवन और जल भंडार । तीनों पाये छोड़े वार ।।10।।
इनके पार सुरत जब भई । चाँद सूर तज सुखमन गही ।।11।।
जोत निहारत मन हुलसाना । रूप निरंजन अलख पहिचाना ।।12।।
घंटा नाद सुनी और पहुंची । संख नाद फिर सूरत खैंची ।।13।।
यहाँ से हटी बंक[8] पट खोला । त्रिकुटी जाय ओंग धुन तोला[9] ।।14।।

---

1. दूर हुई। 2. गला दिया। 3. छा जाना। 4. शीतल स्वभाव। 5. देह। 6. भँवरा। 7. हाथ। 8. बंकनाल। 9. समझ।

।। शब्द नवाँ ।।

भर भर प्रेम आरती गाऊं । नई उमँग अब चित्त समाउं ।।1।।
भक्ति सिंध अति लहर उठाई । प्रीत रीत मोती उपजाई ।।2।।
सुरत चंबेली घट में खिलाई । निरत रंगीली संग मिलाई ।।3।।
शब्द गुरु गल हार पिन्हाया । गगन मँडल धुन अजब सुनाया ।।4।।
पीत सेत और लाल बखाना । हरा श्याम पचरंगी बाना ।।5।।
पाँच रंग फ़ुलवार खिलानी । देख देख दृष्टी हरखानी ।।6।।
जोत जगी हिये भया उजाला । श्याम निरख फिर सेत सम्हाला ।।7।।
अनहद बानी सुनी गगन में । मगन हुई सुर्त पहुंची धुन में ।।8।।
घंटा शंख सूर दिस[1] छाँटा । बंक नाल का खोला घाटा ।।9।।
आरत एक करी त्रिकुटी में । गुरु स्वरूप निरखा अब घट में ।।10।।
दूसर आरत सतगुरु कीन्ही । सत्तलोक गइ सुरत प्रबीनी ।।11।।
तीसर आरत राधास्वामी । निज कर करी देख निज धामी ।।12।।
महिमा उनकी क्योंकर गाऊं । चरन शरन में निस दिन धाऊं ।।13।।
राधास्वामी धाम दिखाई । अद्भुत शोभा कही न जाई ।।14।।
राधास्वामी पुरुष अपारा । कहूं कहा[2] कुछ अजब बहारा ।।15।।

।। शब्द दसवाँ ।।

सुरत आज लगी चरन गुरु धाय । श्याम तज सेत ग्राम ठहराय ।।1।।
देख निज नाली बंक समाय । त्रिकुटी चढ़ कर पहुंची आय ।।2।।
हिये बिच पंकज[3] अजब खिलाय । सेत पद धजा अगम फहराय ।।3।।
हंस जहाँ बाजे रहे बजाय । गुरु अस लीला दई दिखाय ।।4।।
रागिनी नइ नइ नित्त सुनाय । भेद सब अक्षर[4] दीन बताय ।।5।।
घाट नि:अक्षर[5] पाया जाय । गुफा में धुन इक सुनी बनाय ।।6।।

---

1. सूरज की दिशा यानी दाहिनी तरफ। 2. क्या करूं। 3. कँवल। 4. सुन्न। 5. महसुन्न।

वाच वर्णात्मक जानो । लक्ष धुन धुनी पहिचानो ॥19॥
वर्ण में भेष जग भूला । मर्म धुन संत कोइ तोला ॥20॥
वर्ण जप जप पचें भेषी । मिले कुछ फल नहीं नेकी[1] ॥21॥
भेद धुन का नहीं पाया । नाम फल हाथ नहिं आया ॥22॥
जपें नित सहस और लाखा । खुले नहिं नेक उन आँखा ॥23॥
तिमर संसार नहिं जावे । मोह मद काम भरमावे ॥24॥
धुनी धुन भेद नहिं चीन्हा । सुरत और शब्द नहिं लीन्हा ॥25॥
मिला नहिं गुरु धुन भेदी । लखावे धुन मिटे खेदी[2] ॥26॥
काल ने बुद्धि उन छेदी । मुफ़्त नर देह उन दे दी ॥27॥
दया कर संत गोहरावें । ज़रा नहिं चित्त में लावें ॥28॥
पाँच धुन भेद बतलावें । सुरत की राह दिखलावें ॥29॥
धुनों के नाम दरसावें । रूप अस्थान कह गावें ॥30॥
सुरत का जोग लखवावें । जीव नहिं कहन उन मानें ॥31॥
सुरत ले गगन चढ़वावें । पिंड में सार बतलावें ॥32॥
चढ़े ब्रहमंड तब परखे । सहसदल मध्य कुछ निरखे ॥33॥
बंक चढ़ तिरकुटी धावे । सुन्न दस द्वार गति पावे ॥34॥
महासुन जाय हरखानी । भँवर में जा सुनी बानी ॥35॥
अमर पद मूल जा देखा । बीन धुन का मिला लेखा ॥36॥
अलख और अगम भी पेखा । नाम का मूल अब देखा ॥37॥
कहूं क्या खोल राधास्वामी । सैन यह समझ परमानी ॥38॥

॥ शब्द दूसरा ॥

नाम रस चखा गुरु संग सार । काम रस छोड़ा देख असार ॥1॥
नाम रंग रंगी सुरत मन मार । क्रोध को जारा क्षिमा सम्हार ॥2॥
नाम का मिला आज भंडार । लोभ को टाला जान कंगार[3] ॥3॥
नाम गति पाई चढ़ आकाश । मोह तम गया देख परकाश ॥4॥

---

1. ज़रा। 2. दुख। 3. निरधन।

।। शब्द आठवाँ ।।

सुरत अब शब्द माहिं नित भरना । करो यह काम और नहिं करना ।।
गगन में देखो कँवल चमकना । दृष्टि पर देखो जोत दमकना ।।
सुरत मन वहाँ से अधर उलटना । घाट सुखमन का खोल पलटना ।।
इड़ा तज पिंगला घाटी चढ़ना । तान कर सूरत आगे बढ़ना ।।
पकड़ धुन जाय धुनी से लगना । मान मद त्याग भर्म सब तजना ।।
गुमठ[1] का खेल अजायब तकना । ओं धुन पाई सुनी गरजना ।।
सुन्न में पहुंची सरवर तटना[2] । हँस होय निसदिन मोती चुगना ।।
सुरत को मिला धाम यह अपना । मगन होय बैठी अब नहिं हटना ।।
अमी रस वहाँ का नितही चखना । मौज राधास्वामी यही निरखना ।।

।। शब्द नावाँ ।।

धुन सुन कर मन समझाई ।। टेक ।।
कोटि जतन से यह नहिं माने । धुन सुन कर मन समझाई ।।1।।
जोगी जुक्ति कमावें अपनी । ज्ञानी ज्ञान कराई ।।2।।
तपसी तप कर थाक रहे हैं । जती[3] रहे जत लाई ।।3।।
ध्यानी ध्यान मानसी लावें । वह भी धोक्खा खाई ।।4।।
पंडित पढ़ पढ़ वेद बखानें । विद्या बल सब जाई ।।5।।
बुद्धि चतुरता काम न आवे । आलिम[3] रहे पछताई ।।6।।
और अमल[4] का दख़ल नहीं है । अमल शब्द लौ लाई ।।7।।
गुरु मिले जब धुन का भेदी । शष्य विरह धर आई ।।8।।
सुरत शब्द की होय कमाई । तब मन कुछ ठहराई ।।9।।
हिर्स[5] हवस से हाथ न आवे । तन मन देव चढ़ाई ।।10।।
बुल्हवसी[6] और कपटी जन को । नेक[7] न धुन पतियाई[8] ।।11।।

---

1. गुंबज । 2. किनारा । 3. विद्वान् । 4. अभ्यास । 5. जो देखा देखी ख्वाहिश पैदा हो । 6. हिरसी । 7. ज़रा भी । 8. प्रतीत करना ।

॥ शब्द अठारहवाँ ॥

तिल भीतर दिल जोड़ । कँवल[4] में आसन करिये ॥1॥
दृष्टि उलट असमान । जोत फुलवारी खिलिये ॥2॥
बाजे शब्द अनाहदी । घट मंगल भरिये ॥3॥
सुरत शिखर चढ़ गई । बंक में छिन छिन धरिये ॥4॥
कँवल त्रिकुटी पाय । भँवर मन कारज सरिये ॥5॥
ररंकार धुन सुनी । काल दल मार गिरइये ॥6॥
संत कृपा अब हुई । घाट घट सब ही खुलिये ॥7॥
यह मारग निज पीव का । बिन भाग न मिलिये ॥8॥
कौतुक[6] क़ुदरत[7] धार । प्रेम का खेल खिलइये ॥9॥
घट पट लीला देख । अमी रस धार बहइये ॥10॥
निज भक्तन के काज । पंथ यह नया चलइये ॥11॥

---

1. खेलिये। 2. मोहित होवे। 3. पहुंचे। 4. सहंस दल कँवल। 5. प्यारा।
6. खेल। 7. शक्ति, ताकत।

वेद न जाने भेद । कर्म बस योंही बहिये ॥12॥
यह मारग निज संत का । सतसँग से पइये ॥13॥
सतगुरु की कर आरती । उन बहुत रिझइये ॥14॥
राधास्वामी दया से । पूरन पद पइये ॥15॥

॥ शब्द उन्नीसवाँ ॥

उमँग आज हुई हिये में भारी । सरन में राधास्वामी जाय पुकारी ॥1॥
करूँ अब आरत विवध प्रकारी । होय जो मेहर अपार तुम्हारी ॥2॥
वहीं राधास्वामी दृष्टि निहारी । कहा कर आरत लेकर थारी ॥3॥
सुरत से निरखो तिल कर यारी[1] । खोल यह खिड़की पार सिधारी ॥4॥
गई नभ अन्दर जोत लखारी । देख कर तारा शब्द सुना री ॥5॥
बंक चढ़ त्रिकुटी आन पुकारी । सुन्न में अक्षर धुन धर धारी ॥6॥
महासुन्न पहुंची खोल किवाड़ी । भँवर का राग सुना अति भारी ॥7॥
सत्त पद आई अमर अटारी[2] । अलख और अगम जाय परसा[3]री ॥
कही यह आरत राधास्वामी सारी[4] । करे कोई सज्जन सुरत सम्हारी ॥9॥
प्रेम की धारा बही नियारी । शब्द घट पाया सुरत कारारी ॥10॥
नाम रंग लागा अजब बहारी । मगन होय बैठी काज सँवारीं ॥11॥
संत बिन सब ही पच पच हारी । मिला नहिं भेद रहे सब वारी[5] ॥12॥
दई राधास्वामी वस्तु अपारी । मेहर अब हो गइ मुझ पर न्यारी ॥13॥

॥ शब्द बीसवाँ ॥

पलटे दिन-दिन देह रक्त से दूध हाय कर सुधा चले।
काया दिव्य और दिव्य दृष्ट होय मध्य त्रिकुटी ज्योति जलें।
आठो पहर सुधारस पीवे भूख न उसे सताया है
।। 1।।
भूचरी मुद्रा नासावासकर जब योगेश्चर ध्यान धरें।
इधर-उधर की खैच वायु प्राण अपान को एक करें।
आसान सिद्धि लगाकर बैठे अपान वायु से कुम्म मरें।
पवन जीत और मन को वस कर गगन चढ़न से नाहि डरें।।
धीरे-धीरे चले ऊपर को प्राण को वायु बनाया है
।। 2।।
चाचरी मुद्रा साधे योगेश्वर याको नैन में वासा है।
चित चैतन का मैला होय यहां हंस प्रवि से नासा है।।
अचल टक-टकी लगे यहां पर।
छूटे जगत की आशा है।।
अचरज नजर पढ़े बहुत यहां देह अभिमान गवाया है।। 3।।
मुंद्रा गौचरी चौथी साधे श्रवण वास बताते है।
प्राण श्रुति दौनो एक होकर उलटि अगोचर जाते है।।
अनहद शब्द सुने प्रीति कर सुख आनंद मनाते है।
इन्द्री थिर होय टरे न टारी वरूतु अगोचर पाते है।
स्थिर होकर बैठे रहे कही मन को नहीं चलाया है

कोइ सुनो हमारी बात। कोइ चलो हमारे साथ ॥1॥
क्यों सहो काल की घात। जम धर धर मारे लात ॥2॥
तुम चढ़ो गगन की बाट। तो खुले अधर का पाट[3] ॥3॥
घट बाँधो दृढ़ कर ठाट। छूटे यह औघट घाट[4] ॥4॥
शब्द रस भरो सुरत के माट[5]। बंक चढ़ खोलो सुखमन घाट ॥5॥
नाम की मिली अपूरब[6] चाट। अब सोऊँ बिछाये खाट ॥6॥
चेतन की जड़ से खोली साँट[7]। उलट मन कला खाय ज्यों नाट[8] ॥7॥
मानसर देखा चौड़ा फ़ाट। गया फिर परदा सुन का फाट[10] ॥8॥
काल की डारी गर्दन काट। कर्म की खुल गई भारी आँट[11] ॥9॥
सुन्न का लिया अमी रस बाँट। शब्द की खुली हिये में हाट ॥10॥
मोह मद हो गये बारह बाट[12]। मिले अब सतगुरु मेरे तात[13] ॥11॥
बाल ज्यों पावे पित और मात। कहूँ क्या खोल यह विख्यात ॥12॥
अब चले न माया घात। झड़ पड़ी वृक्ष ज्यों पात ॥13॥
कर्म की कीन्ही बाज़ी मात। लखी जाय सुन में धुन की भाँत[14] ॥14॥
टूट गया पिंड से मेरा नात। दिखाई गुरुने अचरज क्रान्त[15] ॥15॥
पाइ अब मैंने ऐसी शांत। अब रही न कोई भ्रांत[16] ॥16॥
गुरु करी प्रेम की दात। सुरत अब हुई शब्द की ज़ात ॥17॥

---

1. सिर पटके। 2. वर्णन करती है। 3. पट, किवाड़। 4. उल्टा घाट। 5. घड़ा। 6. अचरज। 7. पेंच, लपेट। 8. नट। 9. पाट, चौड़ाई। 10. फट गया। 11. गिरह, गाँठ। 12. नष्ट। 13. प्यारे। 14. छवि। 15. प्रकाश। 16. भ्रम।

सुरत रहे लागी दिन और रात। शब्द रस अब नहिं छोड़ा जात ॥18॥
गुरु का दम दम अब गुन गात। अमर पद पाया छूटा गात[1] ॥19॥
नाम धुन चली अधर से आत। अर्श[2] का चरख़ा डाला कात ॥20॥
राधास्वामी धरा सीस पर हाथ। मैं तजूँ न उनका साथ ॥21॥

॥ शब्द सातवाँ ॥

नाम धुन सुनो, शब्द धुन गुनो[3]।
गगन चढ़ चलो, प्रेम लौ लाय ॥1॥
गुरु सँग करो, साध संग रलो।
चेत कर रहो, सदा चित लाय ॥2॥
बाँध मन धरो, सरन गुरु तको।
चरन गहि[4] चखो, अगम रस आये ॥3॥
धीर पुनि गहो, सील घर रहो।
क्रोध को दहो, शान्त घर आय ॥4॥
काल कुल दलो, दयाल पद चलो।
मगन होय रहो, परम पद पाय ॥5॥
घाट घट खुले, बाट तब चले।
द्वार तिल धसे, श्याम पद पाय ॥6॥
सेत पहिचान, जोत लख आन।
सुखमना जान, बंक धस जाय ॥7॥
संख धुन मिले, सुरत फिर पिले[5]।
भेद तब खुले, नाद धुन गाय ॥8॥
सुन्न चढ़ आय, मानसर न्हाय।
हंस गति लाय, चन्द्र में धाय ॥9॥

।। शब्द सातवाँ ।।

सुरत क्यों हुई दीवानी । तेरी बिरथा बैस[1] बिहानी[2] ।।1।।
जग भोग रोग दिन बीते । तू जाय दोऊ कर रीते[3] ।।2।।
जमपुर होय धूमा धामी । तू पड़े चौरासी खानी ।।3।।
वहाँ कौन सहाई तेरा । तू बचन मान अब मेरा ।।4।।
कर गुरु से हित चित लाई । सुन मान बचन गुरु भाई ।।5।।
सूरत जा शब्द मिलाई । कर निस दिन यही कमाई ।।6।।
तेरा भाग बढ़त नित जावे । फिर काल न तोहि सतावे ।।7।।
रस अगम शब्द का पावे । मन भोग सहज छुट जावे ।।8।।
चढ़ चढ़ नभ ऊपर धावे । दल सहस कँवल गति पावे ।।9।।
तिल मोड़े बिजली चमके । सुन शब्द अनाहद धमके ।।10।।
फिर चाँद सुरज दोऊ दरसें । सुखमन मन सूरत परसें ।।11।।
गुरु मूरत अजब दिखाई । शोभा कुछ कही न जाई ।।12।।
नर रूप दिखावें तब ही । मन खैंच चढ़ावें जब ही ।।13।।
दे मदद बढ़ावें आगे । मन जुग जुग सोया जागे ।।14।।
चढ़ बंक चले त्रिकुटी में । फिर सुन्न तके सरवर में ।।15।।
जहँ शोभा हंसन भारी । वह भूमि लगे अति प्यारी ।।16।।
धुन किंगरी बजे करारी । सुन सुरत हुई मतवारी ।।17।।
फिर लगे महांसुन तारी । जहँ दीप अचिंत सम्हारी ।।18।।
लख भँवर गुफा हुई न्यारी । जहँ सेत सूर उजियारी ।।19।।
चौथे पद करी तयारी । धुन बीन सुनी अति भारी ।।20।।
लख अलख अगम्म लखा री । हुई राधास्वामी रूप निहारी ।।21।।
महिमा उनकी क्या कहुं भारी । मुझ गरीब की बहुत सुधारी ।।22।।

।। शब्द आठवाँ ।।

बिरहनी गुरु की सरन सम्हार ।। टेक ।।
या जग में कोइ मीत[4] न तेरा । करो नाम आधार[5] ।।1।।

---

1. उमर, आयु । 2. ब्यतीत हो गई । 3. दोनों हाथ खाली । 4. मित्र । 5. आसरा ।

4. फूल।

सहसदल कँवल लख खिल खिल । हटा कर देख दो सिल सिल[1] ॥4॥
झाँक वह घाट रहु खुल खुल । उतर जा पार चढ़ पुल पुल ॥5॥
सुगन्धें महकतीं संदल । धुलें तब सुर्त मन कल मल ॥6॥
हटे फिर काल की किल किल[2] । लगे तब शब्द में पिल पिल ॥7॥
छुटाई कर्म की दल दल । मिलो राधास्वामी से चलचल ॥8॥

॥ शब्द चौबीसवाँ ॥

धुन में अब सुरत लगाओ । शब्दा रस पी त्रिप्ताओ ॥1॥
इन्द्री सब घट उलटाओ । मन फैला खैंच मिलाओ ॥2॥
गुनना विष छोड़ समाओ । आलस तज शौक़ बढ़ाओ ॥3॥
लय[3] होय न मन समझाओ । विक्षेप[3] विघन यह दूर कराओ ॥4॥
इक शब्द पकड़ और सब बिसराओ । यह मारग नित्त कमाओ ॥5॥
बिन सुरत शब्द कुछ और न गाओ । मन रोको नभ पर धाओ ॥6॥
तिल पर भी सुरत जमाओ । पिल कर दलसहस खुलाओ ॥7॥
जहँ जोत निरंजन पाओ । फिर शब्दहि शब्द सुनाओ ॥8॥
चढ़ बंकनाल में आओ । गढ़ त्रिकुटी फ़तह कराओ ॥9॥
सुन्न में धस खेल खिलाओ । व्हाँ का भी शब्द जगाओ ॥10॥
महासुन्न निरखते जाओ । फिर भँवरगुफा पर छाओ ॥11॥
आगे सतलोक घुमाओ । व्हाँ से भी अलख चढ़ाओ ॥12॥
फिर अगम देश धस जाओ । राधास्वामी संग मिल जाओ ॥13॥

॥ शब्द पच्चीसवाँ ॥

दुलहनी करो पिया का संग ॥ टेक ॥
दुलहा तेरा गगन बसेरा[4] । तू बसे नइहर[5] अंग ॥1॥
गुरु के साथ चलो उस नगरी । चढ़े प्रेम का रंग ॥2॥
यह जोबन तेरा उतर जायगा । फिर तू होगी तंग ॥3॥

1. परदे। 2. शोर। 3. विघ्न अभ्यास के-लय, विक्षेप, कषाय, रसास्वाद।
4. बसता है। 5. माँ बाप का घर (पिंड देश)।

कबीर पढ़े पीछे पछताना लेना जन्म सुधार के गुरू की सीख जाय नहीं खाली।। 5।।

पत्ता टूटा वृक्षए से ले गयी पवन उड़ाय।
अबके विछुड़े कब मिले दूर पढ़ेगे जायं।।

चलायनी भाजन

न-चलो-चलो सखी अब जाना।
पिया भेज दिया परखाना।। टेक।।
एक दूत जबर चल आया संग में लश्कर लाख ले आया।
अब चले न एक बहाना।। 1।।
एक कोट किला उड़वाया और पक्षी बंद कराया।
हुआ जंगल बीच ठिकाना।। 2।।
रस्ता दूर कठिन है मारी करि ले संग सम्मान तैयारी
ब्रह्मानंद फेर नहीं आना।। 3।।

भजन- चादर है गयी बहुत पुरानी अवतू सोच समझ अभिमानी ।। टेक।।
अजब जुलाये चादर बीनी सूत करम से तानी।
इगला पिंगला मरना देके तब सबके मन मानी ।। 1।।
मेले दाग परे पावन के विषियन में लिपटानी।
ज्ञान का साबुन लायन धोयो सतसंगति को पानी ।। 2।।
भई खराब आव गयी सारी लोभ मोह में सानी।

है हाजिरी तेहि दूर दिखावे दूर की वात निरासी।
कहे कबीर सुनो भाई साधो गुरू विन मरम न जासी ।। 4।।

भजन- हो नहीं श्वेत वर्ण नहीं पीत नहीं लालों में काला है ।। टेक।।
विन शशी ऊगे भान-भान विन होत उजाला है।
खन उगे खन छिपे सोई निज देश हमारा।। 1।।
सात शून्य और तीन उसी पर तखत हजारा है।
विन चोला भवूत सोई निज पिया हमारा है।। 2।।
गूंगा गावें राख वहरवा सुनने वाला है।
इंगला पिगला तोड़े तान कि अंधा परखने वाला है ।। 3।।
गुरू मिल गये संत कबीर भरम का खुल गया ताला है।
गावें यो धर्म दास जिन्हों के विकट उजाला है।। 4।।

भजन- मेरे विद्यानंद दयाल मये गुरू दीनन हितकारी ।। टेक।।
जो-जो भक्त शरण में आये पायो सुखभारी।
ज्ञान विवेक मिलो समगुरू से मन में उजियारी।। 1।।
तन-मन-धन से करे जो सेवा सारे दुख हारी।
गुरू चरणन में जो चित लावें कटे पाप मारी।। 2।।
परमार्थ के लिये सतगुरू आवे औतारी।
नाम दान दयो भक्तो को सुमिर-सुमिर तारी।। 3।।

ऐसी भूल पड़ी जग माहीं । हम किस किस को कहें बुझाय 40॥
जो जो संत सरन में आवें । सो सो पावें घर की राह ॥41॥
अब आरत सतगुरु की करहूं । बहुत कहा यह झगड़ा गाय़ ॥42॥
सुरत चढ़ाय चलूँ नभ ऊपर । सहसकँवल में बैठूँ जाय ॥43॥

---

1. बदन पर गरम लोहे से द्वारका में दाग़ लगवाना । 2. जगन्नाथ, बद्रीनाथ, द्वारका, रामेश्वरम् । 3. बढ़के । 4. परशादी । 5. भाव, प्रीत । 6. धोखा । 7. अवस्था, उमर । 8. बिताया ।

वहां से बंक तिरकुटी छेदूँ । सुन्न शिखर में आसन लाय ॥44॥
महासुन्न और भंवरगुफा पर । सत्तलोक में पहुंची धाय ॥45॥
अलख अगम के पार सिधारी । वहाँ आरती कीन्ही जाय ॥46॥
प्रेम ख़जाना मिला अपारा । राधास्वामी लिये रिझाय ॥47॥

॥ शब्द नवाँ ॥

मैं भूली सतगुरु स्वामी । मैं चूकी अंतरजामी ॥1॥
क्या क्या कहूं बिथा[1] बखानी । सब जग को पंडियन कीन्ह दीवानी ॥2॥
ब्राह्मण और भेखन बहु भरमानी । ऊभट[2] में पड़े भटक भटकानी ॥3॥
मारग जो सीधा दीन्ह छिपानी । तीरथ और बरतन माहिं भुलानी ॥4॥
गया गायत्री राह खुलानी । यह कर्म प्रवृत्ति[3] करें करानी ॥5॥
उलटे गिर भौजल ग़ोता खानी । यह साधन पिछले हुए पुरानी ॥6॥
श्रुति सिमृति व्यास आदिक करें बखानी ।
यह साधन मुक्ति निमित्त न जानी ॥7॥
निरवृत्ति[4] साधन यों कह गानी । कलजुग में एक नाम निधानी ॥8॥
सतगुरु सेवा सतसँग ठानी । अब निरवृति पर जिन मन मानी ॥9॥
तिन जीवन प्रति कहूँ बुझानी । सतगुरु पूरा खोज खुजानी ॥10॥
जब लग पूरा मिले न मिलानी । तब लग खोजत रहे जहानी ॥11॥
खोजन में जो दिवस बितानी । वह साधन में वृथा न जानी ॥12॥
सतगुरु पूरे जभी भिटानी[5] । प्रेम प्रीत से सेवा आनी[6] ॥13॥
तब वह भेद नाम दें दानी । नाम जुक्ति तुम रहो कमानी ॥14॥
नाम प्रताप मुक्ति गति पानी । बिना नाम नहिं ठौर ठिकानी ॥15॥
कलजुग में बिन नाम निशानी । मुक्ति न होगी निश्चय ठानी ॥16॥
करमी धरमी जोगी ज्ञानी । यह सब पिल रहे मनकी घानी ॥17॥
सतगुरु संत मिले नहिं आनी । भूले पढ़ पढ़ पिछली बानी ॥18॥
सब से करी काल ठग हानि । संत बिना कोइ बचे न बचानी ॥19॥

---

1. विपत्ति । 2. बुरी राह । 3. संसार में फँसाने वाले । 4. संसार से छुड़ाने वाले । 5. भेटें यानी मिलें । 6. करो ।

अन्दरूनश रवाँ चो रूह नमूद।
जब आसमान के अन्दर सुरत चलने लगे तब वहाँ की सैर करो।
कुन तो सुरैश निगर बहारे वजूद ।।7।।
और इस शरीर में बहार देखो।
दर वजूदत अजब तमाशाए।
तुम्हारी देह में अजब तमाशा है।
आसमाँ ज़ेरो अर्ज़ बालाए ।।8।।
कि आसमान नीचे और ज़मीन ऊपर है।
कज नए दाद राह रूहम रा।
बंकनाल के रास्ते से हो कर सुरत चली।
दर रसीदम मुसल्लसी हर जा ।।9।।
और त्रिकुटी स्थान पर पहुँची।
शम्स दीदम बरंगे सुर्ख़ आँ जा।
वहाँ सूरज लाल रंग का देखा।
ख़ुर हज़ाराँ न हमसरत ज़ेबा ।।10।।
कि जिसकी बराबरी हजारों सूरज भी नहीं कर सकते।
मुल्के लाहूत पेश अज़ाँ याबी।
उस के आगे लाहूत का मुक़ाम है।
सुन्न मेगोयंद ओरा दर हिन्दी ।।11।।
कि जिसको हिन्दी में सुन्न कहते हैं।
सौते आँजा निदा हमीं दारद।
वहाँ की आवाज का यह सरूप है।
हम्चो किंगरी व सारँगी आयद ।।12।।
जैसे कि सारंगी और किंगरी बजती है।
हौज़े आबे ज़ुनान दीदम पुर।
और अमृत के कुण्ड भरे दिखलाई दिये।
मेख़ुरंद आमिलाँ दराँजा दुर ।।13।।
और अभ्यासी वहाँ मोती चुगते हैं।

इस आकाश के ऊपर एक दरवाज़ा ऐसा बारीक और झीना है कि जैसे रौज़न[1] सुई के नाके का होता। चाहिये कि उस रौज़न में अपनी रूह को प्रवेश करो[2] और आगे उस के बंकनाल, टेढ़ा रास्ता, कुछ दूर तक सीधा गया और फिर नीचा पड़ा और फिर ऊँचे को चढ़ा, उस नाल को पार करके दूसरे आसमान पर सुरत पहुँची।

उस आसमान पर एक मुक़ाम त्रिकुटी कि उस को मुसल्लसी[3] कहते हैं, लाख जोजन वसीअ[4] और लाख जोजन तवील[5] है। उस में लीला और तमाशे तरह-ब-तरह के हैं। शरह[6] उसकी कहाँ तक करूँ, मगर कुछ कहता हूँ कि हज़ार आफ़ताब[7] और हज़ार माहताब[8] उसकी रोशनी से ख़जिल[9] हैं और आवाज़ "ओं ओं" और "हू हू" और बादल की सी गर्ज बहुत सुहावनी आठ पहर होती रहती है। उस मुक़ाम को पा करके रूह को बहुत सरूर[10] हासिल होता है और रूह भी बहुत पाक और लतीफ़[11] हो जाती है। आलमे रूहानी[12] की ख़बर उस जगह से पड़नी शुरू होती है। कोई दिन उस जगह की सैर करके फिर ऊपर को चढ़ती है।

चढ़ते चढ़ते करोड़ जोजन ऊपर चढ़ कर तीसरा पर्दा फोड़ कर सुन्न में पहुंची कि जिस को फ़ुकरा ने आलमे-लाहूत कहा है। उसकी तारीफ़ क्या कहूं उस मुक़ाम पर रूहें बहुत विलास करती हैं और रोशनी वहाँ की ऐसी है कि बारह बारह हिस्सा ज़्यादा रोशनी त्रिकुटी से मालूम पड़ती है तालाबे-ज़ुलाली[13] व हौजे-कौसरी[14] पुर-अज़-आबे-हयात[15] कि हिन्दी में उसको मानसरोवर कहते हैं, जा-ब-जा[16] मौजूद हैं और कितने ही गुलशन[17] और चमन[18] खिले हुये नज़र पड़ते हैं और अकसर रूहें ब-सुरते-नाज़नीनाँ[19] मुक़ामाते मुख्तलिफ़[20] पर रक़्स[21] कर रही हैं व ग़िज़ाहाय लतीफ़अज़-बस-शीरीं[22] व ख़ुशनुमा[23] तरोताज़ा तैयार हैं

---

1. छिद्र। 2. धसाओ। 3. त्रिकोन। 4. चौड़ा। 5. लम्बा। 6. विस्तार। 7. सूरज। 8. चन्द्रमा। 9. लज्जित। 10. आनन्द। 11. सूक्षम। 12. चैतन्य। 13. निर्मल, साफ़। 14. अमृत कुंड। 15. अमृत। 16. जगह जगह, हर जगह, इधर उधर। 17. फुलवारी। 18. बाग़। 19. ख़ूबसूरत। 20. जुदा। 21. नृत्य। 22. उम्दा खाना और मिठाई। 23. सुहावनी।

।। प्रश्न चौथा ।।

यह कि संतों के निज स्थान और उस के
मार्ग का भेद क्या है

तब सूरत पूछे इक बाता । स्वामी देव भेद विख्याता[3] ।।154।।

।। उत्तर ।।

तब स्वामी ने बचन सुनाया । मारग का यों भेद लखाया ।।155।।
पाँच नाम का सुमिरन करो । श्याम सेत में सूरत धरो ।।156।।
प्रथमे सुनो गगन में बाजा । घंटा संख छौंट धुन गाजा ।।157।।
सहस कँवल दल जोत लखाई । बंकनाल में जाय समाई ।।158।।
बंक पार त्रिकुटी में गई । ओंकार और रज़ाद[4] धुन लई ।।159।।
आगे पहुंची सुन्न मँझार । ररंकार धुन सुनी पुकार ।।160।।
किंगरी और सारंगी सुनी । मान सरोवर चढ़ चढ़ गुनी ।।161।।
आगे महासुन्न मैदाना । जहाँ चार धुन तिमिर[5] समाना 162।।

---

1. पैदायश । 2. ठहराव । 3. प्रकट । 4. बादल की गरज । 5. अँधेरा ।

भँवर गुफा ता ऊपर देखी । सोहं बंसी बजती पेखी[1] ।।163।।
ता के परे धाम सत नामा । बीन बजे सतलोक ठिकाना ।।164।।
सुनत सुरत फिर आगे चढ़ी । अलख लोक में जा कर धरी ।।165।।
कोटिन अरब सूर उजियारा । अलख पुरुष छबि अद्भुत धारा ।।166।।
तहँ से अगम लोक को चली । अगम पुरुष से जाकर मिली ।।167।।
खरबन सूर चाँद परकाशा । धुन का व्हाँ की अगम बिलासा ।।168।।
धुन का वर्णन कैसे गाऊँ । जग में कोइ दृष्टान्त न पाऊँ ।।169।।
ता के आगे रहत अनामी । निज घर संतन बरना स्वामी ।।170।।
सुन कर सुरत अति हरखानी । चलो सुवामी मैं सब जानी ।।171।।
बिन सतगुरु कोइ भेद न पावे । सतगुरु सो यह देश लखावे ।।172।।
सतगुरु की महिमा अति भारी । कोई न जाने पच पच हारी ।।173।।
जा पर कृपा दृष्टि वे करें । वह जाने और निश्चय धरे ।।174।।
कोइ कोइ जीव करें विश्वासा । कर प्रतीत वे धारें आसा ।।175।।
संत बचन जो सच्चा मानें । इस बानी को सो सच जानें ।।176।।

।। प्रश्न पाँचवाँ ।।

यह कि संत और साध और भेख और
पाखंडी की पहिचान क्या है ।

इक संशय मेरे मन आई । सो निर्णय कर कहो सुनाई ।।177।।
संत नाम तुम किसका गावो । साध भेख दोउ भेद बतावो ।।178।।

स्वरूप को अनामी रूप और सिद्धान्त समझ कर उस में समाये और सिन्ध स्वरूप राधास्वामी की प्रतीत नहीं करते और उस की ख़बर न पाई

॥ शब्द पहला ॥

सतगुरु आरत लीन्ह सिंगारी । जड़ चेतन से सुरत निकारी ॥1॥
जीव चैतन्य देश अब छोड़ा । शब्द चैतन्य देश किया पोढ़ा[1] ॥2॥
सहस कँवल दल लिया आकाश । चढ़ कर पहुंची गिर[2] कैलाश ॥3॥
द्वारा सुखमन नाका बंक । तोड़ा फोड़ा उलटी गंग[3] ॥4॥
गंगा जमुना सरस्वती तीन । धार त्रिवेनी लीन्ही चीन ॥5॥
त्रिकुट जाय लंका गढ़ घेरा । रावन ब्रह्म राम मन हेरा[4] ॥6॥
सीता धुन ले सूरत साधी । पहुंची जाय अवधपुर[5] आदी[6] ॥7॥
राज किया घर अजर बसाया । रावन सीता राम समाया ॥8॥
गिर सुमेर परवत कंचन धर । भान उलट फेरा शशि[7] मंदर ॥9॥
सुन्न नगर बस्ती जहँ अक्षर । दीप अचिंत लखा निःअक्षर ॥10॥
अक्षर निःअक्षर धुन पारा । महासुन्न का ताका द्वारा ॥11॥
द्वारे धस गई भँवरगुफा में । धारा सोहं सुरत सफ़ा में ॥12॥
उलटी पहुंची सत्त नगर में । धाई दौड़ी अलख डगर में ॥13॥
अगम लोक जाय अधर सिधारी । अगम पुरुष दीदार करा री ॥14॥
संतन उनमुन[8] देश बखाना । बिस्मादी[9] हैरत[10] अस्थाना ॥15॥
सोई अनामी अकह कहाया । रूप न रेख[11] न रंग धराया ॥16॥
यह पद संतन निज कर थापा । बिन जाने सब कहते आपा ॥17॥
इतने ऊँचे जो कोई चढ़े । रूप रंग रेखा ते टरे ॥18॥

---

1. मज़बूत । 2. पर्वत । 3. सुरत की धार । 4. देखा । 5. दसवां द्वार । 6. इब्तदाई, शुरू का । 7. चन्द्रमा । 8. अपने में आप मगन । 9. विशेष समाधि । 10. अचरज रूपी । 11. चिन्ह ।

आकाश समाना माया माहिं। तम रूपा दीखे कुछ नाहिं ।।53।।
माया रली ब्रह्म में जाय। शक्ती[5] शिव में गई समाय ।।54।।
शिव[6] पहुंचे ओंकार मंझार। ओंकार समाने सुन्न का बास ।।55।।
सुन्न किया महासुन्न निवास। भँवरगुफा महासुन्न का बास ।।56।।
यहाँ तक परलय कभि कभि होई। सत्तलोक का द्वारा सोई ।।57।।
परलय गति आगे नहिं भाई। सत्तलोक में कभी न जाई ।।58।।
काल त्रिलोकी कीन्ही नास। महाकाल पुनि काल गिरास ।।59।।
महाकाल पहुंचा सत द्वार। आगे गति[7] नहिं ठिटका[8] वार ।।60।।
परलय महापरलय गति गाई। पिंड प्रलय अब कहूं बुझाई ।।61।।
काल किया जब तन परवेश। जीव चला तज यह परदेश ।।62।।
मूलद्वार[9] पृथ्वी का बास। खिंचा वहाँ से स्वाँस और भास[10] ।।63।।
खिंच कर आया इन्द्री द्वार। व्हाँ से पहुंचा नाभि मँझार ।।64।।
नाभी से खिंच हिरदे आया। हिरदे से फिर कंठ समाया ।।65।।
पृथवी जल अग्नी और पौन। कंठ माहिं रूँधन लगी होन ।।66।।
चारों तत्त्व भास और स्वाँस। यहाँ से चले खिंचे आकाश ।।67।।

---

1. सहसदल कँवल। 2. हुकूमत, राज। 3. कैफ़ियत, विवरण। 4. खाया।
5. जोत। 6. निरंजन। 7. पहुँच। 8. ठहर गया। 9. गुदा चक्र।
10. चैतन्य का प्रकाश, सत्ता।

दो दल कँवल काल के देश। कर्म अनुसार खान परवेश ।।68।।
इस विधि काल जीव को खाय। जन्मे मरे बहुत दुख पाय ।।69।।
सतगुरु बिन नहिं लगे ठिकाना। ता ते सतगुरु सरन समाना ।।70।।
सतगुरु कहें भेद दरसाई। मारग घर का देयँ बुझाई ।।71।।
पिरथम सरन गहो सतगुरु की। दुतिये बाड़[1] धरो सतसंग की ।।72।।
गुरु जो भेद बतावें तुम को। धारो बचन कमाओ उनको ।।73।।
तन मन इंद्री सुरत समेटो। चढ़ आकाश शब्द गुरु भेटो ।।74।।
सुनो नित्य तुम अनहद बानी। देखो अद्‌भुत जोत निशानी ।।75।।
जोत फाड़ फिर सुन्न समाओ। सुखमन होय बंक में आओ ।।76।।
बंक पार त्रिकुटी सुन गीत। काल कर्म दोउ लीन्हे जीत ।।77।।
सुन्न शिखर चढ़ी सूरत घूम। मानसरोवर पहुंची झूम ।।78।।
महा सुन्न जहँ अति अँधियार। गुप्त चार धुन बानी सार ।।79।।
भँवरगुफा जाय लीन्ही चीन्ह। आगे सत्तलोक चढ़ लीन्ह ।।80।।
अलख अगम को जाकर परसा। शब्द पकड़ मन सूरत सरसा[2] ।।81।।
राधास्वामी नगर निहारा। देखा जहाँ अगर उजियारा ।।82।।
उत्पति परलय मारग भेद। जो जो सुने मिटे भ्रम खेद ।।83।।
यह उत्पति कर भली सुनाई। वेद शास्त्र ताहि जाने न भाई ।।84।।

सोरठा

संतन का मत गूढ़[3], बिना संत को जानई।
राधास्वामी किया ज़हूर[4], माने सतसंगी कोई ।।85।।

।। बचन चौबीसवाँ ।।

सुरत सिया मन राम कहावन । दसवाँ द्वार अजुध्या गावन ।।5।।
मानसरोवर घाट अन्हावन । महासुन्न में जाय चढ़ावन ।।6।।
भंवरगुफा लीला दरसावन । सत्तलोक गति बीन सुनावन ।।7।।
अलख अगम जा शब्द जगावन । राधास्वामी धाम दिखावन ।।8।।

।। शब्द उन्नीसवाँ ।।

उठी अभिलाषा इक मन मोर । करूँ अब आरत गुरु की जोर ।।1।।
प्रेम की थाली लूँगी हाथ । शब्द की जोत जगाऊं साथ ।।2।।
सुरत को बाँधूँगी अब तान । रूप गुरु निरखुंगी अब आन ।।3।।
बचन कर महिमा करूं बखान । चरन गुरु लाऊं हिरदे ध्यान ।।4।।
गुरु बिन और न काहू मान । सरन में उनके पड़ी निदान[1] ।।5।।
करें गुरु खेवा मेरा पार । बचावें डूबत हूं मँझधार ।।6।।
पकड़ अब लेना भुजा पसार । जगत का मेटो सभी गुबार ।।7।।
सुरत को लीजे आज सम्हार । चढ़ूं और झाँकू नभ का द्वार ।।8।।
निरंजन जोत लखूं उजियार । सहसदल छोड़ बंक के पार ।।9।।
घाट फिर त्रिकुटी लेउं निहार । सुन्न चढ़ खोलूं बजर किवाड़ ।।10।।
महासुन पहुंचूं सतगुरु लार । भंवर चढ़ पकड़ूं बंसी धार ।।11।।
सच्चखंड आई बीन सम्हार । अलख और अगम किया दरबार ।।12।।
किया राधास्वामी मुझ से प्यार । हुई मैं उन पर अब बलिहार ।।13।।
करूं मैं आरत लूं आनन्द । मिला मोहिं आज परमानन्द ।।14।।

।। शब्द बीसवाँ ।।

क्योंकर करूं आरती सतगुरु । बल नहिं धरूं प्रेम का निज उर ।।1।।
तुम हो दीन दयाल कृपाला । बंधन काट करो प्रतिपाला ।।2।।
मैं किंकर अति अधम उदासी । तुम्हरी गति सब पर अबिनासी ।।3।।
मैं कहा जानूं भेद तुम्हारा । विषय भोग मेरा सदा अहारा ।।4।।
काल कला की धारा भारी । या ते पार उतरो तारी ।।5।।

---

1. आख़िरकार ।

राधास्वामी धुबिया भारी । प्रगटे आय जहान ।।8।।

॥ शब्द सातवाँ ॥

सुर्त चली धुलावन काज । चुनरिया मैली भरी ।।1।।
गई सतसंग के घाट । सुरत गुरु चरन धरी ।।2।।
पाया शब्द अगाध । हुई घट बीच खरी[1] ।।3।।
चली सुरत आकाश । उड़ी ज्यों उड़त परी ।।4।।
हुआ काम बल छीन[2] । तिरिष्णा सकल जरी ।।5।।
पाया प्रथम ठिकान । मिली पद आन हरी[3] ।।6।।
खोला बंक दुवार । सुफल हुइ देह नरी[4] ।।7।।
सुन्न सरोवर पाय । सेत हुइ अब चुनरी ।।8।।
महा सुन्न के पार । लगी झाँकन झँझरी ।।9।।
भँवरगुफा ढिंग पहुंच । सुनी बंसी मधुरी ।।10।।
परसे पुरुष पुरान । गई अमरा नगरी ।।11।।
खोला अलख दुवार । अमी संग भरी गगरी ।।12।।
अगम पुरुष दरबार । देख लीला सगरी[5] ।।13।।
राधास्वामी महल दिखान । हुई सुर्त अज अजरी ।।14।।

॥ बचन अट्ठाईसवाँ ॥

॥ वर्णन आनंद विलास प्राप्ति सतगुरु का ॥

॥ शब्द पहला ॥

जाग री उठ खेल सुहागिन । पिया मिले बड़े भाग ।।1।।
लाग री उन चरनन । फिर न मिले अस दाव ।।2।।
सखी सहेली सब जुड़ आईं । गावत मंगल राग ।।3।।
शोभा भारी रूप निहारी । बढ़ा प्रेम अनुराग ।।4।।
बजी बधाई हर्ष समाई । भाग चला बैराग ।।5।।

---

1. निर्मल। 2. नाश। 3. निरंजन। 4. नर की। 5. सब।

घंटा शब्द तजी धुन दोई। गरज मृदंग सुनाई सोई ॥5॥
सुरत चली और खोला द्वार। बंकनाल धस हो गई पार ॥6॥
ऊँची नीची घाटी उतरी। तिल की उलटी फेरी पुतरी ॥7॥
गढ़ भीतर जाय कीन्हा राज। भक्ति भाव का पाया साज ॥8॥
करम बीज अब दिया जलाई। आगे को फिर सुरत बढ़ाई ॥9॥
नौबत झड़ती आठों जाम। सूरत पाया मूल कलाम[1] ॥10॥
महाकाल और कुरम[2] बखाना। उत्पति बीजा यहाँ से जाना ॥11॥
सूरज चाँद अनेकन देखे। तारा मंडल बहु विधि पेखे ॥12॥
पिंड अंड से न्यारी खेली। ब्रह्मंड पार चली अलबेली[3] ॥13॥
वन और परवत बाग़ दिखाई। चमन चमन फुलवारी छाई ॥14॥
नहरें नदियाँ निरमल धारा। समुन्दर पुल चढ़ हो गइ पारा ॥15॥
मेर सुमेर देख कैलासा। गई सुरत जहँ विमल बिलासा ॥16॥
राधास्वामी कहत पुकारी। दूसर मंज़िल करली पारी ॥17॥

॥ शब्द स्थान तीसरा ॥

अब चली तीसर परदा खोल। सुन्न मंडल का सुन लिया बोल ॥1॥
दसवाँ द्वार तेज परकाश। छोड़े नीचे गगन अकाश ॥2॥
मानसरोवर किये अश्नान। हंस मंडली जाय समान ॥3॥
सुन्न शिखर चढ़ी सूरत घूम। किंगरी सारँगी डाली धूम ॥4॥
सुन सुन सूरत हो गइ सार। पहुंची जाय त्रिवेनी पार ॥5॥
महासुन्न का नाका लीन्ह। गुप्त भेद जाय लीन्हा चीन्ह ॥6॥
अंध घोर जहं भारी फेर। सत्तर पालँग[4] जा का घेर ॥7॥
बानी चार गुप्त जहँ उठती। सुरत रागिनी नइ नइ सुन्ती ॥8॥
झन्कारें अद्भुत कहा बरनूँ। सुन सुन धुन मन में अति हरखूँ ॥9॥
पाँच अंड रचना तहँ कीन्ही। ब्रह्म पाँच ता में हुए लीनी ॥10॥

---

1. शब्द। 2. कछुआ। 3. सुरत मतवाली। 4. यह तिरलोकी एक पालंग के बराबर है।

सूरत नैना सम्हाल, तिल आकाश फाड़ डाल,
निरखो जोती जमाल, द्वारे धस बंकनाल,
अनहद पर धरो ख़्याल, गगन में चढ़ाइये ।।19।।

सुन्न शिखर चन्द्र देख, दसम द्वार सेत पेख,
सरवर में मुक्ति लेख[2], किंगरी धुन सुन बिशेष,
कर्म की मिटाओ रेख, हंस रूप धारिये ।।20।।

महासुन्न अंध घोर, घाट अगम सुगम तोड़,
सूरत जहँ कीन पोढ़, सतगुरु संग चली दौड़,
भँवरगुफा सुना शोर, सोहँग में समाइये ।।21।।

आगे की गली लीन्ह, धुन अनन्त शब्द चीन्ह,
हंस मिले अति प्रवीन, प्रेम भाव बहुत कीन्ह,
सत्तलोक द्वार लीन्ह, बीन धुन बजाइये ।।22।।

---

1. पूरी हो। 2. पहिचान।

वहाँ से फिर चली पार, अलख लोक जा निहार,
अलख पुरुष धुन सम्हार, देखा अचरज उजार,
किया जाय धुन अधार, अलख दर्श पाइये ।।23।।

अगम लोक ख़बर पाय, ऊपर को चढ़ी धाय,
अगम पुरुष दर्श पाय, तेज पुँज[1] अजब जाय,
अमी सिंध पहुंची आय, अगम रूप धारिये ।।24।।

यहाँ से भी चली सुर्त, किया जाय वहाँ निर्त,
जस समुद्र नदी रलत, चरनन पर सीस धरत,
राधास्वामी संग मिलत, निज घर अपना पाइये ।।25।।

कहूं कहा बहुत कही, यही बात है सही,
जन्म जन्म भूल रही, चरन धूर धार लई,
करम भरम सभी बही, राधास्वामी गाइये ।।26।।

लाओ अब प्रेम प्रीत, सतसंग में धारो चीत,
पाओ फिर सत्त रीत, गाओ यह अगम गीत,
बाज़ी यह लेव जीत, जग में कोइ नाहिं मीत,
मेरी तू कर प्रतीत, दिया सब बुझाइये ।।27।।

।। शब्द चौथा ।।

सुर्त शब्द का निशान, तुम समरथ सुजान हो ।।6।।
विरह नाहिं, प्रेम नाहिं, भक्ति भाव चाव[1] नाहिं,
सरधा परतीत नाहिं,
काम क्रोध लोभ माहिं, कैसे करोगे निर्वाह हो ।।7।।
रोग सोग नित सतायँ, भजन सुमिरन बनत नाहिं,
भोग बास घटत नाहिं, चिंता डर अधिक दाहिं[2]
और कोई सुनत नाहिं, तुम ही मेरे बैद हो ।।8।।
संतन बिन कोइ नाहिं, सतगुरु बिन ठीक[3] नाहिं,
करम भरम नीक नाहिं,
शब्द बिना सीख नाहिं, यही भीख दीजिये ।।9।।
सुरत को चढ़ाओ आज, शब्द का दिखाओ साज,
सहसकँवल जाय भाज, देखे व्हाँ का समाज,
मन को तब होय लाज, यही काज कीजिये ।।10।।
बंक परे त्रिकुट घाट, खुले फिर सुन्न बाट,
महासुन्न खोल पाट, भवँरगुफा बाँध ठाट,
सत्तशब्द पाय चाट, सतपुर पहुंचाइये ।।11।।
जहँ से परे अलख देख, लोक एक अगम पेख,
राधास्वामी पद अलेख, पंडित न जाने भेख,
क़ाजी न मुल्ला शेख, संत बिन न जाइये ।।12।।
एक कहूं सीख मान, मन की तू छोड़ ठान[4],
गुरु की गति अगम जान, शब्द भेद ले पहिचान,
तेरी बुद्धि है अजान, काम क्रोध त्यागिये ।।13।।
सतसंग की क़दर जान, नर शरीर दुर्लभ मान,
नाम रस करो पान, गुरु स्वरूप धरो ध्यान,
इन्द्री मन करो आन, पर्ख पर्ख चालिये ।।14।।

---

1. शौक़ । 2. जलाने वाले । 3. ठिकाना । 4. हठ, ज़िद ।

लीला देख सुरत हरखाई । आगे सुन्न सरोवर धाई ।।21।।
हंसन साथ उमंग बढ़ाई । मान सरोवर बिमल अन्हाई ।।22।।
महासुन्न की करी चढ़ाई । सतगुरु संग खेप निभ आई[1] ।।23।।
तिमिर छाँट परकाश दिखाई । भँवरगुफा बंसी सुन पाई ।।24।।
सत्तखंड सतशब्द लखाई । धुन अनंत और बीन बजाई ।।25।।
अलख अगम दर्शन दरसाई । राधास्वामी धाम समाई ।।26।।
आरत कर लीन्हा घट भेदा । भई परापत सर्व उमेदा ।।27।।
सकल मनोरथ पूरन हुए । रतन पदारथ राधास्वामी दिये ।।28।।

।। शब्द पच्चीसवाँ ।।

आरत आगे राधास्वामी के कीजे । बिमल प्रकाश अमी रस पीजे ।।1।।
चित कर चंदन हित कर माला । आन चढ़ाऊँ स्वामी दीनदयाला ।।2।।
गगन का थाल सुरत की बाती । शब्द की जोत जगे दिन राती ।।3।।
सहस कँवल दल घंटा बाजे । बंकनाल धुन शंख सुनीजे ।।4।।
ओंकार धुन त्रिकुटी बाजे । सुन्न शिखर अक्षर धुन गाजे ।।5।।
भँवरगुफा ढिंग सोहं बासा । सत्तलोक सतनाम निवासा ।।6।।
दास तुम्हारे स्वामी आरत गावें । चरन कँवल में बासा पावें ।।7।।

।। बचन इकतीसवाँ ।।

वर्णन मन और इन्द्रियों के विकार और काल के विघ्नों का अभ्यास की हालत में

।। शब्द पहला ।।

घट औघट झाँका री सजनी ।। टेक ।।
मन मतिमन्द कहन नहिं माने । शब्द सुरत नहिं ताका री ।।1।।
घर घर फिरे स्वान[2] मति लीये । झूठ झूठ विष खाता री ।। 2।।
धन सम्पत सुख चाह उठाई । मान मनी मद माता री ।।3।।

---

1. निर्विघ्न पार हुई ।   2. कुत्ता ।

भेद तुम्हारा अति कर सारा । सुरत शब्द मारग मैं धारा ।।10।।
पकडूं शब्द चढ़ाऊं सूरत । नभ निरखूं और देखू मूरत ।।11।।
सहसकंवल धस घंट बजाऊं । बंकनाल चढ़ शंख सुनाऊं ।।12।।
त्रिकुटी घाट किया जाय फेरा । ओंकार धुन से मन घेरा ।।13।।
मन हुआ लीन सुरत अब चीन्ही । कान पड़ी धुन झीनी झीनी ।।14।।
मानसरोवर पैठ अन्हाई । निर्मल होय निर्मल पद पाई ।।15।।
सुन्न शिखर जाय फेरा दीन्हा । कोट महासुन चढ़ कर लीन्हा ।।16।।
भंवरगुफा सोहं धुन सुनी । सत्तनाम धुन छिन छिन गुनी ।।17।।
सत्तलोक जाय बैठक पाई । सत्त सुरत सत शब्द समाई ।।18।।
अलख अगम के पार अनामी । यह भी पद दरसे मोहिं स्वामी ।।19।।
महिमा सतगुरु कहं लग कहूं । आरत कर अब चुप हो रहूं ।।20।।
देओ प्रशाद रहूं चरनन में । गुन गाऊं पल पल छिन छिन में ।।21।।

।। शब्द छठा ।।

गुरु पै डालूं तन मन वार । गुरु पै जाऊं अब बलिहार ।।1।।
गुरु ने नाम सुनाया सार । गुरु ने दीन्हा भेद अपार ।।2।।
सुरत से सेऊं नाम सम्हार । सहसदल मध्य होत झनकार ।।3।।
दामिनी दमकत नैन निहार । रूप का खुला जहाँ भंडार ।।4।।
छाँट धुन घंटा बारम्बार । और धुन त्यागो सबही झाड़ ।।5।।
शंख धुन पकड़ो उसके पार । बंक का खोलो जाकर द्वार ।।6।।
गहो फिर व्हाँ से धुन ओंकार । गर्ज मिरदंग है तिस लार[1] ।।7।।
ररंग धुन होवत दसवें द्वार । सुनो तुम जाकर अति कर प्यार ।।8।।
मानसर न्हाओ निर्मल धार । हंस हुइ छूटा काग अकार ।।9।।
महासुन पहुंची शोभा धार । शब्द संग कीन्हा जाय विहार ।।10।।
भँवर चढ़ बैठी होय हुशियार । नाम घर आई सुरत सुधार ।।11।।

1. साथ ।

।। शब्द तीसरा ।।

भइ है सुरत मेरी आज सुहागिन । लगी है सुरत मेरी छिन छिन जागन ।।
स्वामी स्वामी लगी है पुकारन । राधा राधा नाम सम्हारन ।।2।।
गगन मँडल अब लागा गर्जन । भाग गये मेरे घट से दुर्जन ।।3।।
तन मन मैंने कीन्हा अर्पन । लगी सुरत अब सतगुरु चरनन ।।4।।
नाम थाल और बाती सुमिरन । जुक्ति जोत बाली मैं निज तन ।।5।।
आरत फेर चढ़ाया निज मन । गगन जाय सुनता अनहद धुन ।।6।।
संत कृपा पाया पद पूरन । करम भरम डाले कर चूरन ।।7।।
साफ़ किया मैं मन का दर्पन । ममता माया कीन्ही मर्दन ।।8।।
नूर निरंजन जगत सम्हारन । सहसकँवल चढ़ कीन्हा दर्शन ।।9।।
सुई द्वार नाका लगी झाँकन । पाप अनंत हुये जहं खंडन ।।10।।

---

1. गाँठ। 2. पहनने का कपड़ा। 3. से।

बंकनाल धस त्रिकुटी धावन । ओंकार धुन करी अब सरवन ।।11।।
सुन्न मँडल धुन पाई रारँग । किंगरी सुनी और बाजी सारँग ।।12।।
चन्द्र चौक जहँ देखा चाँदन । हंसन रूप धरे मन भावन ।।13।।
महासुन्न सागर चली न्हावन । सूरत मिली जाय महा चेतन ।।14।।
भँवरगुफा द्वारा अति पावन[1] । धुन मुरली जहँ बजत सुहावन ।।15।।
हंसन शोभा मन बिगसावन[2] । सुन सुन धुन अति प्रेम बढ़ावन ।।16।।
चौक अगाध साध कर चालन । गइ सतपुर लगी पुरुष मनावन ।।17।।
चौथा लोक त्रिलोकी कारन । संत बसें जिव करें उबारन ।।18।।
अलख लोक इक पुरुष बिराजन । बैठे अचरज धार सिंहासन ।।19।।
तिस आगे फिर अगम निहारन । अगम पुरुष ढिंग शोभा पावन ।।20।।
लगी सुरत निज भेद सुनावन । मिल गये राधास्वामी पतित उधारन ।।
अब अनाम का क्या करूँ छानन[3] । सैन कही यह अकह अपारन ।।22।।
भई आरती अब सम्पूरन । छोड़ दई मैं सभी गुनावन[4] ।।23।।

।। शब्द चौथा ।।

संत दास की आरती, सुनो राधास्वामी।

दोहा

सुरत बसाओ शब्द में, शब्द गगन के माहिं।
विरह बसाओ हिये में, हिया तिरकुटी माहिं ॥1॥
सुरत शब्द इक अंग कर, देखो बिमल बहार।
मध्य सुखमना तिल बसे, तिल में जोत अकार ॥2॥
शब्द स्वरूपी संग हैं, कभी न होते दूर।
धीरज रखियो चित्त में, दीखेगा सत नूर ॥3॥
सत्तनाम सतपुरुष का, सत्तलोक में पूर।

---

1. लीला। 2. दुख।

सुरत चढ़ाओ शब्द में, दर्शन हाल हुज़ूर ॥4॥
प्रेम प्रीत राचे रहो, कुमति कुटिल से दूर।
मन सूरत से जूझ कर, रहो शब्द में सूर ॥5॥

॥ बचन चौंतीसवाँ ॥

प्राप्ति मेहर और दया सतगुरु की और पहुँचना सुरत का चढ़ कर स्थानों पर और वर्णन महिमा शब्द और सतगुरु की और भेद और लीला स्थानों की

॥ शब्द पहला ॥

जीव चितावन आये राधास्वामी। बार बार तिन करूं प्रनामी ॥1॥
आरत उनकी करूँ सजाई। चित्त शुद्ध कर थाल बनाई ॥2॥
अब जीवों को चहिए ऐसा। चल कर अर्पें तन मन सीसा ॥3॥
जोत जगावें प्रथम विरह की। बाती जोड़ें बिर्त[1] लगन की ॥4॥
जब आरत अस लई सँजोई[2]। सतगुरु दया दृष्टि कर जोई[3] ॥5॥
दीन्हा दीन जान उपदेशा। सुरत शब्द में करो प्रवेशा ॥6॥
खोलो जाकर गगन किवाड़ी। श्याम कंज तब लागी ताड़ी ॥7॥
सेत कँवल फिर मन ठहराना। प्रगटी जोत सुन्न में जाना ॥8॥
सेत श्याम दल दोनों छोड़े। तीसर दल में मन को जोड़े ॥9॥
बंकनाल का द्वारा सोई। तन की सुद्धि वहाँ गइ खोई ॥10॥
मन और सुरत चेत कर जागी। त्रिकुटी शब्द गुरु में लागी ॥11॥
अब पाया विश्राम ठिकाना। आरत पूरन करी बखाना ॥12॥
इतना धाम सुरत ने पाया। राधास्वामी चरन समाया ॥13॥

॥ शब्द दूसरा ॥

आज काज मेरे कीन्हें पूरे। बाजे घट में अनहद तूरे ॥1॥

चाँद सुरज दोउ झाँक झरोका[1] । सुखमन खिड़की द्वार जाय रोका ।।3।।
प्राण पवन जहँ देती झोका[2] । सुरत अड़ी अब माने न नेका ।।4।।
शब्द गुरु जाय कीन्हा ठेका । त्रिकुटी महल पर पग अब टेका ।।5।।
मानसरोवर हंस समीपा । अक्षर का जहँ है निज दीपा ।।6।।
चार भान कामिन जहाँ क्रांती[4] । द्वादस भान हंस की भाँती ।।7।।
लीला अद्‌भुत बरनी न जाई । देख देख मन जहँ बिगसाई ।।8।।
इकटक[4] ठाढ़ी सुरत निहारी । धुन किंगरी जहँ सुनत सम्हारी ।।9।।
महासुन्न होय सचखंड आई । अलख अगम में जाय समाई ।।10।।
मौज अनामी क्या कहूं लेखा । बरना न जाय रूप जस देखा ।।11।।
सोई रूप धारा राधास्वामी । जीव काज आये निज धामी ।।12।।
उन चरनन पर तन मन वारूँ । छबि उनकी पल पल हिये धारूँ ।।13।।
आरत फेरूँ प्रेम उमंग से । सुधि बुधि बिसरी अब मोरे तन से ।।14।।
फल पाया मैं अगम अपारा । अमी अहार करूँ नित सारा ।।15।।

।। शब्द चौथा ।।

प्रेम प्रीत घट भीतर आई । दास आरती नई बनाई ।।1।।
तिल का थाल मदुर्मक[6] बाती । सहसकँवल दल सन्मुख लाती ।।2।।
चक्र फेर कर जोत जगाती । सोत पोत[7] लख ऊपर जाती ।।3।।
सुन्न निरख फिर धुन को सुनती । घाटी बंक मध्य होय धसती ।।4।।
तहाँ संखनी[8] करें पुकारा । और डंकनी[8] अमल[9] पसारा ।।5।।
शब्द कमान हाथ लइ जबही । धुन के बान छुटे बहु तबही ।।6।।
झुंड झुंड उनके सब भागे । सुरत शब्द ले चाली आगे ।।7।।
ब्रह्म देश जहँ नाद अस्थाना । धुन अनंत जहँ वेद ठिकाना ।।8।।
नाग फाँस डाली जहँ काला । गरुड़ शब्द से काटा जाला ।।9।।
फिर सतगुरु जब भये सहाई । बिघन अनेकन दूर बहाई ।।10।।

---

1. सुराख। 2. धक्का। 3. हंसनी। 4. प्रकाश। 5. एक तरफ़ दृष्टि जोड़ कर। 6. आँख की पुतली। 7. भंडार। 8. माया की शक्तियां। 9. हुक्म, दख़ल।

॥ शब्द पहला ॥

करूँ आरती नाना विधि से । देखो स्वामी मेहर बेहद से ॥1॥
घट का थाल चित्त की बाती । नाम चेतना[1] जोत जगाती ॥2॥
भाव भक्ति का भोग धराऊँ । सुरत दृष्टि का जोग मिलाऊँ ॥3॥
बाजे अनहद नित्त बजाऊं । अमी धार रस अगम चुवाऊं ॥4॥
रूप अनूपम गगन गंभीरा । झलकें जहं तहं मोती हीरा ॥5॥
सूरज मंडल तेज उजारा । चन्द्र मंडली खोला द्वारा ॥6॥
सुखमन नाली सुरत चढ़ाई । बंकनाल में सहज समाई ॥7॥
धुन धधकार सुनी ओंकारा । लाल रंग जहँ सूर निहारा ॥8॥
त्रिकुटी घाट सुरत अब जागी । मानसरोवर चालन लागी ॥9॥
सेत सेत मैदान अनूपा । हंसन का जहँ देखा रूपा ॥10॥
द्वादस सूर कला जिन केरी । हंस हंस प्रति ऐसी हेरी ॥11॥
शोभा वहां की अगम अगाधा[2] । नहिं पावे कर जोग समाधा ॥12॥
सुरत जोग से पहुंचे कोई । जा पर दया राधास्वामी की होई ॥13॥
आगे भेद गुप्त हम राखा । अधिकारी को कहिं कहिं भाखा ॥14॥
यह आरत अब पूरण होई । स्वामी देओ प्रसादी मोहीं ॥15॥

॥ शब्द दूसरा ॥

लाई आरती दासी सज के । नाम राधास्वामी का छिन छिन भज के ॥
सील छिमा की ओढ़ चदरिया । काम क्रोध की छौंट बदरिया ॥2॥

---

1. याद करना । 2. अथाह ।

नाम थाल लिया हाथ पसारी । विरह अग्नि से जोत सँवारी ॥3॥
अमी सरोवर भर लइ झारी । राधास्वामी सन्मुख कर कर ढारी[1] ॥4॥
अगम लोक के बिंजन लाई । राधास्वामी आगे भोग धराई ॥5॥
अम्बर चीर पिताम्बर जोड़े । भेंट किये मैंने हाथी घोड़े ॥6॥
पाँच तत्त्व गुन तीन सिपाही । मार लिये राधास्वामी की दुहाई ॥7॥
चढ़ी गगन पर कीन्हा धावा । सुरत निरत दोउ शब्द समावा ॥8॥
बंकनाल की तोप चलाई । विरह अग्नि की चिनगी लाई ॥9॥
धर्मराय की फ़ौज भगाई । धूम धाम मैंने बहुत मचाई ॥10॥
घंटा शंख मृदंग बजाई । धौंसा[2] धमक अजब धुन आई ॥11॥
गगन मँडल का घाटा[3] रोका । काल मंडली खाया झोका ॥12॥
अब चढ़ गई सुरत शशि[4] द्वारे । तीन लोक के हो गइ पारे ॥13॥
भान किरन जहँ झलकन लागी । अगम रूप अद्भुत जहँ पागी ॥14॥
खुली दृष्टि जब झिरना झाँकी । क्या कहूं शोभा अब मैं वहाँ की ॥15॥
कोटिन भान रोम इक लागी । देख सुरत अचरज अस जागी ॥16॥
सुरत शब्द का हो गया मेला । अगम पुरुष अब रहा अकेला ॥17॥
एक दोय कुछ कहा न जाई । ऐसे पद में जाय समाई ॥18॥
आरत का मैं यह फल पाया । दुक्ख भर्म सब दूर बहाया ॥19॥
परम शाँति में आन समानी । क्या कहूं महिमा अचरज बानी ॥20॥
अब कीजै स्वामी पूरन किरपा । तन मन मैं सब तुम पर अरपा ॥21॥
राधास्वामी राधास्वामी अब नित गाऊं । और बचन कुछ याद न लाऊँ ॥
देओ प्रसाद अगमपुर धामी । भक्ति सहित तुम चरन नमामी ॥23॥

अलख लख अगम करा दरबार । मिले फिर राधास्वामी यार ।।12।।

।। शब्द सातवाँ ।।

गुरु मिले अमी रस दाता । मैं अधम विषय मद माता ।।1।।
मैं नीच अजान अनाड़ी । सुर्त कीन्ही शब्द दुलारी ।।2।।
गुरु महिमा छिन छिन गाता । मन निज मन चरन लगाता ।।3।।
घट में नित आरत करता । सुर्त सहसकंवल में धरता ।।4।।
जहं जोत जगाई न्यारी । तिल तोड़ा गगन सिहारी[1] ।।5।।
धुन अनहद शोर मचाई । सुखमन में सुरत जमाई ।।6।।
गढ़ बंका तोड़ा भाई । धुन ओंकार सुन पाई ।।7।।
आगे को निरत बड़ाई । श्यामा तज सेत समाई ।।8।।
चंदा जहँ नूर दिखाई । हंसन की पाँत जुड़ाई ।।9।।
मुक्ता जहँ चुन चुन खाई । आतम निज अक्षर पाई ।।10।।
सतगुरु फिर किरपा धारी । हुइ महासुन्न धस पारी ।।11।।
अनहद धुन मुरली बाजी । ढिंग भँवरगुफा सुर्त गाजी ।।12।।
बल सतगुरु सचखँड आई । यहँ आरत अद्‌भुत गाई ।।13।।
चढ़ आगे अलख दिखाई । गुरु अगम पुरुष दरसाई ।।14।।
लीला कुछ अचरज कही न जाई । ज्ञानी और जोगी भेद न पाई ।।15।।
सब काल देश में गये भुलाई । द्याल देश यह संत जनाई ।।16।।
राधास्वामी महल अजब मैं पाया । रूप अगाध जाय नहिं गाया ।।17।।

।। शब्द आठवाँ ।।

आज मैं देखूँ घट में तिल को । लगी यह बतियाँ प्यारी दिल को ।।1।।
गुरु अपनाय छिन छिन हमको । मर्म मैं पाया चढ़ कर नभ को ।।2।।
सहसदल चढ़ कर मिली अलख को । जोत लख पाई छोड़ ख़लक[2] को ।।
श्याम तज पहुंची सेत नगर को । चली और निरखा त्रिकुटी घर को ।।4।।

1. गई। 2. संसार।

सुरत मेरी हुई निमानी[1] । शब्द की लखी निशानी ।।6।।
नाम की हुई दिवानी । भेद अब करूँ बखानी ।।7।।
सुन्न की धुन दरसानी । मानसर किये अश्नानी ।।8।।
सुरत अब अति हरखानी । गुप्त पद बात छिपानी ।।9।।
खोल कस कहूं कहानी । अकह की सैन[2] प्रमानी ।।10।।
राधास्वामी अगम ठिकानी । चलो अब होय न हानी ।।11।।

।। शब्द पच्चीसवाँ ।।

अली री मथूँ निज पिंडा । राधास्वामी दीन्हा भेद अखंडा ।।1।।
प्रेम का धारूं झंडा । गगन में फोड़ूँ अंडा ।।2।।
द्वार दल नाका खंडा । चढ़ी और लिया ब्रह्मंडा ।।3।।
जगी वहाँ जोत प्रचंडा[3] । काल सिर मारा डंडा ।।4।।
बंकनल द्वार समानी । शब्द गुरु गही निशानी ।।5।।
सुन्न धुन लीन्ह सम्हारी । हंस संग कीन्ही यारी ।।6।।
सुरत की लागी तारी । शब्द घट हुइ उजियारी ।।7।।
महासुन तिमिर दिखाना । पार हुई भँवर समाना ।।8।।
सत्त पद अपना जाना । अलख गति अगम पहिचाना ।।9।।
राधा यह कहत बखानी । स्वामी निज कीन्ह प्रमानी ।।10।।

।। शब्द छब्बीसवाँ ।।

सुरत आज मगन भई । उन पाया शब्द का भेद ।।1।।
धर्मराय अब सिर धुन मारे । मिटा कर्म का खेद ।।2।।
जन्म मरन की त्रास नसाई । अहंमेव[4] मम डाला छेद ।।3।।
अविनाशी पद अगम निहारा । अमर पदारथ मिला अभेद ।।4।।
अब की बार दाव हम पाया । लाल भई पद पाया सेत ।।5।।
नर्द[5] बचाई जुग गुरु बाँधा । सत्तपुरुष पद धरी उमेद ।।6।।

---

1. दीन। 2. इशारा। 3. तेज़। 4. अहंकार। 5. गोट।

बहु भटकावत जोग सम्हाल । जोगी भूले ऐसे ख़्याल ।।5।।
मैं भी भटका बहुतक काल । क्या क्या कहूं मैं अपना हाल ।।6।।
अब सतगुरु मोहिं मिले दयाल । कुंजी दे खोला तिल ताल[1] ।।7।।
रूप निहारूँ अजब विशाल । शब्द सुनूँ चढ़ बंकीनाल ।।8।।
त्रिकुटी घाट भेद दरसाल । सुन्न मँडल अक्षर परसाल ।।9।।
देखी नदी चमकती चाल । अचरज लहरें करत बेहाल ।।10।।
बजत जहाँ छिन छिन करताल । सुरत सुरत काटा जंजाल ।।11।।
महरम[2] महल न को अटकाल । सतगुरु दया सुफल हुइ घाल[3] ।।12।।
अब आरत गुरु करूँ सम्हाल । राधास्वामी किया निहाल ।।13।।
सेत पदम चढ़ मारा काल । मूल मिली और छूटी डाल ।।14।।

।। शब्द बारहवाँ ।।

मन और सुरत चढ़ाओ त्रिकुटी । खेलो गगन और करो आरती ।।1।।
निरख नाम पोओ धुन मोती । गरज गरज झलके जहँ जोती ।।2।।
हाथ झाड़ माया तब रोती । पाया ररंकार निज गोती[4] ।।3।।
आसा मंसा यहां रही सोती । घाट त्रिबेनी चढ़ मल धोती ।।4।।
आलस नींद भूख सब खोती । ममता विपता सब भई थोथी[5] ।।5।।
छिन छिन प्रेम मगन सुर्त होती । कँवलन की जहाँ माल परोती ।।6।।
अब चली सत्तनाम पद न्योती[6] । सुरत शब्द की क्यारी बोती ।।7।।
धन धन राधास्वामी मेरे सतगुरु । जिन यह मौज दिखाई चढ़ कर ।।8।।
क्या आरत मैं उनकी गाऊँ । महिमा अगम अगाध सुनाऊँ ।।9।।
कहत कहत मैं कभी न अघाऊँ[7] । उमँग प्रेम अब कहा समाऊँ ।।10।।
चरन कँवल बिन और न आसा । मन भँवरा वहिं करत बिलासा ।।11।।
राधास्वामी राधास्वामी उठी धुन हिये से । सुरत सुहागिन अब मिली पिय से ।।12।।

1. ताला । 2. जानकर । 3. खेप । 4. गोत्र, जाति । 5. खाली ।
6. जिसको नेवता दिया है । 7. संतुष्ट होऊँ ।

।। शब्द तेहरवाँ ।।

चेत चली आज सुरत रंगीली । छूट गई मति बुधि सब मैली ।।1।।
हाथ लगी अनहद धुन थैली । होय गई निज घर की चेली ।।2।।
द्वारा फोड़ गगन को पेली । अब सूरत भई अति अलबेली[1] ।।3।।
इड़ा थाल पिंगला कर जोती । करी आरती सुखमन सेती ।।4।।
बंकनाल धुन शंख बजाई । त्रिकुटी घाट ओं धुन पाई ।।5।।
बाजे मृदँग गाज तम्बूरा । सुन सुन धुन अब मन भया सूरा ।।6।।
सूर होयकर काल पछाड़ी । माया चादर छिन में फाड़ी ।।7।।
फाँद[2] पिंड और तोड़ा अंडा । खंड खंड कीन्हा ब्रह्मंडा ।।8।।
भर छलाँग[3] पहुंची सचखंडा । पायगई पद अमर अखंडा ।।9।।
अब अनाम पद जाय समानी । आरत की विधि पूरी जानी ।।10।।
राधास्वामी दया करी अब भारी । मैं अपना पद लिया सम्हारी ।।11।।

|| शब्द छठा ||

गुरु का अगम रूप मैं देखा । सतगुरु सत्तनाम सम पेखा ||1||
बल सतगुरु अब काल पछाड़ा । कर्म काट सतगुरु पद धारा ||2||
सहसकंवल का थाल सुधारा । जोत रूप का दीपक बारा ||3||
धुन घंटा और शंख बजाई । बंक नाल में दृष्टि जमाई ||4||
दृष्टि सम्हारत मन हुलसाना । गगन मंडल धुन गरज पिछाना ||5||
देख रूप सूरज परकाशा । मिटा अँधेरा झलक अकाशा ||6||
पाया आतमपद[1] अब भारी । ररंकार धुन जहाँ सम्हारी ||7||
चंद्र चांदनी चौक निहारा । सेत सेत पद श्याम निकारा ||8||
इकटक सुरत लगी वहि द्वारे । हंस जूथ[2] बहु लगे पियारे ||9||
राधास्वामी लीला धारी । आरत कर मन बिगसा भारी ||10||
दया मेहर परशादी पाऊं । रज चरनन की सीस चढ़ाऊं ||11||

|| शब्द सातवाँ ||

गुइयाँ[3] री लख मरम जनाऊँ । अब भेद अगम घट गाऊँ ||1||
सुर्त सहसकँवल पर लाऊं । लख नैन सैन दरसाऊँ ||2||
जोती की झलक झकाऊँ । श्यामा तज सेत मिलाऊँ ||3||
फिर बंकनाल चढ़ आऊँ । त्रिकुटी का राग सुनाऊँ ||4||
सुन्नी[4] जाय सुन्न समाऊँ । सरवर में धमक चढ़ाऊँ ||5||
हंसन से प्यार बढ़ाऊँ । किंगरी अब नित्त बजाऊँ ||6||
राधास्वामी नाम जपाऊँ । नौका अब पार लगाऊँ ||7||

|| शब्द आठवाँ ||

बहुरिया[5] धूम मचावत आई । चढ़न को सतगुरु धाम ||1||
भाव भक्ति और प्रेम दिवानी । आरत लीन्ही साम[6] ||2||
करूणानिधि[7] गुरु फूल बिराजें । करें भजन निज नाम ||3||

---

1. सुन्न । 2. झुंड । 3. सखी, सहेली । 4. सुरत । 5. दुलहिन । 6. सामान ।
7. दया के भंडार ।

चढ़ोरी[1] घट देखो मौज भली । अमीरस पाओ आज अली ।।1।।
नाम धुन अंतर ख़ूब खुली । खोइ जमा मानो फेर मिली ।।2।।
चढ़ गगन शिखर बंक नली । त्रिकुटी में बैठी शब्द पिली ।।3।।
फिर वहाँ से पहुंची सुन्न गली । सुन में जा हंसन साथ रली ।।4।।
सब आधि[2] बियाधि[3] उपाधि[4] टली । कर्मन की रसरी अगिन जली ।।5।।
महाकाल जाल भी जार चली । सोहं धुन पकड़ी मूर[5] मिली ।।6।।
सतनाम लखा दुख दूर टली । अलख अगम धुन चित्त खली[6] ।।7।।
राधास्वामी चरन में आन हिली । महिमा उन पाई सुरत घुली ।।8।।

।। शब्द छत्तीसवाँ ।।

दमिनियाँ दमक रही घट माहिं । धुबिनियाँ[7] धोय रही मल नाहिं ।।1।।
रंगिनियाँ रंग दई चटकाहिं । कँवल की खिल गई कलियाँ आहिं ।।2।।
सुरतिया झूम रही मुसक्याहिं । तपनियाँ दूर भई मिली छाहिं ।।3।।
गगनियाँ फोड़ गई धुन पाहिं । निरतियाँ छान लई छकियाहिं ।।4।।
ठगनियाँ नाश भई बल नाहिं । मगनियाँ मगन भई सुन माहिं ।।5।।
सरनियाँ सरन पई गुरु पाँय । धुनन की धुनियाँ धुन धुन लाय ।।6।।
गविनयाँ गान सुनावन जांय । कहनियाँ राधास्वामी नाम सुनाय ।।7।।

---

1. पगली, (पंजाबी ज़बान)। 2. मन का दुख। 3. तन का दुख। 4. बाहर का दुख यानी लड़ाई, झगड़ा, सरदी गरमी वग़ैरा। 5. जड़। 6. चुभी। 7. सुरत।

।। शब्द सैंतीसवाँ ।।

खिज़ां तज देखो मूल बहार । घूम चल देखो तिल का द्वार ।।1।।
खिला जहँ अजब सदा गुलज़ार[1] । पाँच रंग देखे पाँचों सार ।।2।।
चमन जहँ नूरी खिले अपार । नूर की क्यारी निर्मल धार ।।3।।
उतरता अमी लखा हर बार । फूल रही अद्‌भुत जहँ गुलनार ।।4।।
सुरंगी[2] सरवर भरे अपार । सुरत और शब्द करें जहं प्यार ।।5।।
महल जहँ देखे खुले दुवार । नीलगूँ किंगुरे लगे क़तार ।।6।।
सैर यह देखी तन मन वार । गुरु ने मौज दिखाई सार ।।7।।
मेहर से दूर हुए सब ख़ार[3] । तजा फिर मन ने निज अहंकार ।।8।।
गुरु मिल पहुंची गुरु दरबार । पड़ी अब राधास्वामी चरन मंझार ।।

।। शब्द अड़तीसवाँ ।।

सुर्त पनिहारी सतगुरु प्यारी । चली गगन के कूप ।।1।।
प्रेम डोर ले पनघट आई । भरी गगरिया ख़ूब ।।2।।
शब्द पहिचान अमीरस पागी । देखा अद्‌भुत रूप ।।3।।
नगर अजायब मिला डगर में । जहाँ छाँह नहिं धूप ।।4।।
पहूंची जाय अगमपुर नामी । दर्श किया राधास्वामी भूप ।।5।।

करत बिलास एक हुए छिन छिन । देख रूप अब होत मगन मन ।।2।।
लीला अद्भुत होत न वर्णन । अजब अखाड़ा रचा सेत धुन ।।3।।
काल पछाड़ा कीन्हा मरदन । माया ममता भागी सिर धुन ।।4।।
चली सुरत और पहुंची महासुन । सेज बिछाई जा चौथे खन[1] ।।5।।
सत्तपुरुष मुख सुनी बीन धुन । अलख अगम को कीन्हा परसन ।।6।।
वहां से चली देख कुछ अगमन । राधास्वामी रूप निहारत दिरगन ।।7।।
देख देख फूली अब निज तन । कौन कहे वह गति राधास्वामी बिन ।।

।। शब्द तेंतीसवाँ ।।

सुरत अब चली ऐन[2] में पैन[3] । लखा जाय अचरज रूप अनैन[4] ।।1।।
त्याग गुन तीनों और दस थैन[5] । अधर में पहुंची पाया चैन ।।2।।
कहूं क्या घट की परखी सैन । चुका अब काल करम का दैन[6] ।।3।।
खुले अब सुन में हिरदे नैन । समझ तब आये वहाँ के बैन ।।4।।
सुरत अब लागी वहाँ रस लेन । शब्द की परखी अद्भुत कहन ।।5।।
चाँद और सूरज गहे दोउ गहन । सुखमना लागी सूरत रहन ।।6।।
राधास्वामी सूरत कीन्ही पहन[7] । दई मोहि पदवी अब अति महन[8] ।।

।। शब्द चौंतीसवाँ ।।

चमकन अब लागी घट में बिजली । यह घाट लखे कोइ सूरत बिरली ।।
सतगुरु ने दृष्टि करी, मुझ पर अब सगली[9] ।
तिल तोड़ लिया, नभ पार चढ़ी, जहाँ छाय रही, नित बदली ।।1।।
दृग झाँक रही, सुर्त सूर भई, छेदा दल कदली ।
तन छोड़ चली, जड़ गाँठ खुली । अब पाय गई, अपना गुरु अदली[10] ।।2।।
धुन सार मिली, सुन पार चली, पाया पद अमली[11] ।
खोला सुन द्वारा, झाँका घर न्यारा । डार लई चौंकी अब सँदली[12] ।।3।।

---

1. खण्ड । 2. आंख । 3. तेज़ । 4. अगोचर । 5. इन्द्रिय । 6. क़रज़ा । 7. चौड़ी । 8. बड़ी । 9. सब । 10. न्यायकार, मुन्सिफ़ । 11. निर्मल । 12. चंदन की ।

चढ़ी सुरत और पिंड छिपाना । गही शब्द की टेक ।।7।।
खुला देश भंडार भक्ति का । सतगुरु दाता छिन छिन देत ।।8।।
मैं अति दीन दुखी जन्मन की । भूल गई दुख सब सुख लेत ।।9।।
धन्य धन्य अब भाग हमारा । निभ गइ अब के मेरी खेप ।।10।।
गुरु किरपा और साध की संगत । सोया मनुवाँ जागा चेत ।।11।।
मूल मिला और भूल मिटाई । पाया बीज वृक्ष नापैद[1] ।।12।।
राधास्वामी खेल दिखाया । हैरत हैरत हैरत हेत ।।13।।
अब क्या कहूं कहन में नाहीं । अचरज भारी अद्भुत नेत ।।14।।

।। शब्द सत्ताईसवाँ ।।

सुखमन जाय मन हुलसाना । सतगुरु संग कीन्ह पयाना[2] ।।1।।
चाँद सूर्य दोउ सम कर राखे । तब सतगुरु यों कह कर भाखे ।।2।।
अब सुन धुन होत नफ़ीरी[3] । तेरी सुरत करूँ मैं झँझीरी ।।3।।
तब सुन धुन अति हरखानी । महिमा नहिं जात बखानी ।।4।।
मैं आरत कीन्हा साजा । सतगुरु घट माहिं बिराजा ।।5।।
थाल सोसील[4] धराया । सोमत[5] की जोत जगाया ।।6।।
तन भीतर आरत फेरी । मन लीन्हा चहुंदिश घेरी ।।7।।
अंबर[6] का चीर पहिराया । सतगुरु अचरज रूप दिखाया ।।8।।
दर्शन कर तिरपत आई । मन इन्द्री तहाँ जमाई ।।9।।
अब जन्म सुफल कर लीन्हा । आरत फल ऐसा चीन्हा ।।10।।
घट बाजे अनहद तूरा । पट खोला निरख ज़हूरा ।।11।।
अंतर हुई अजब सफ़ाई । गगन पर बजी बधाई ।।12।।
सुन्न और महासुन देखा । धुर अगम लोक तक पेखा ।।13।।
निज भेद अधर रस पाई । अस आरत राधास्वामी गाई ।।14।।

1. गुप्त, अप्राप्य जो पैदा न हुआ हो। 2. यात्रा। 3. शहनाई, बड़ी बाँसुरी।
4. शान्त स्वभाव। 5. सुमत। 6. आकाश यानी नूर।

।। शब्द चौबीसवाँ ।।

कुमतिया दूर हुई, गुरु हुये दयाल।
सुमतिया दान दई, गुरु किया निहाल ।।1।।
सरन गुरु आन लई, तज मन का जाल।
मूल को पकड़ लिया, तज डारी डाल ।।2।।
नाम धन पाय गई, तज झूठा मान।
गुरु संग लाग रही, देख अचरज ख़्याल ।।3।।
परम पद पाय गई, चढ़ सुखमन नाल।
भर्म सब काट दिये, और मारा काल ।।4।।
काल अब थकित हुआ, अब पाया हाल[1]।
राधास्वामी दूर किये, मेरे सब दुख साल[2] ।।5।।

।। शब्द पच्चीसवाँ ।।

सुरत उठ जागी चरन सम्हार । गुरु संग लागी रूप निहार ।।1।।
बचन सुन त्यागी मनसा ख्वार । सुरत हुई रागी[3] शब्द सम्हार ।।2।।
अमीरस पीवत नभ के द्वार । छोड़ कर भागी जगत लबार ।।3।।
पकड़ कर आई गुरु दरबार । सरन गह बैठी तन मन वार ।।4।।
हंस होय चुगती मुक्ता सार । नाम रस पागी सूरत नार ।।5।।
काल संग तोड़ा नाता झाड़ । दयाल घर पहुंची सतगुरु लार ।।6।।
मिले राधस्वामी किरपा धार । छुटे सब संगय गया संसार ।।7।।

।। शब्द छब्बीसवाँ ।।

मंगल मूल आज की रजनी[4] । महिंमा कहूं कौन सुन सजनी ।।1।।
आनँद छाय रहा नभ धरनी । रोम रोम अमृत रस भरनी ।।2।।
तिमिर हटावन धारे चरनी । रूप सुहावन पाइ मैं सरनी ।।3।।
अमी धार लागी अब झिरनी । सुरत निरत लागी घट घिरनी ।।4।।

---

1. अन्तर की हालत। 2. पीड़ा कष्ट। 3. अनुरागी। 4. रात।

मैं भौजल पार उलंघा[1]। मेरी सुरत उड़ी जस चंगा[2]॥6॥
मैं घट में न्हाया गंगा। मैं छोड़ा मन परसंगा[3]॥7॥
मन घोड़ा बाँधा तंगा। अब मिट गइ ममता पंगा[4]॥8॥
सब मेटी चित्त उचंगा। हौं[5] जाली जस जोत पतंगा॥9॥
गुरु चरन मिला आलंबा[6]। सतगुरु का सीखी ढंगा॥10॥
गुरु चरन प्रेम मैं मंगा[7]। राधास्वामी दीन्ह उतंगा॥11॥

॥ शब्द ग्यारहवाँ ॥

मन बनियां बनत[8] बनाई। घट भीतर तोल तुलाई॥1॥
नैनन के पलड़े धारे। सुरत निरत डोर गठिया रे॥2॥
नभ डंडी पकड़ धरा रे। सुखमन का फुंदन लगा रे॥3॥
जहाँ शब्द जिन्स तोला रे। मैं पाया आज नफ़ा रे॥4॥
गुरु कीन्ही दात अपारे। अस बनिज किया जग आ रे॥5॥
मेरी हटिया माल भरा रे। मैं करूँ यही व्योपारे॥6॥
मोहिं बाँट मिले द्वारे। मैं तोलूँ वस्तु सम्हारे॥7॥
मेरे सतगुरु शाह पियारे। मेरी साख बढ़ी सब हारे॥8॥
राधास्वामी खरा करा रे। खोटा घट दूर निकारे॥9॥

॥ शब्द बारहवाँ ॥

गुरु का मैं दामन पकड़ा। छोड़ूँ नहिं अब तो जकड़ा॥1॥
तू मत कर मुझ से रगड़ा। मैं छोड़ा जग का झगड़ा॥2॥
मैं मारा मन और पकड़ा। मेरे गुरु ने किया मोहिं तकड़ा[9]॥3॥
मैं छोड़ा काया छकड़ा[10]। फिर कर्म द्वार से निकरा॥4॥
मैं मारा मन का मकड़ा। तब काल देख बहु अकड़ा[11]॥5॥
अब कटा क्रोध का लकड़ा। और मरा लोभ का बकरा॥6॥
मैं देखा गगन दमकड़ा[12]। राधास्वामी नाम चमकड़ा॥7॥

---

1. छलांग मार गया। 2. पतंग। 3. साथ। 4. लँगड़ी। 5. अहंकार। 6. सहारा। 7. मांगा। 8. बनाव। 9. बलवान। 10. गाड़ी। 11. ऐंठा। 12. चमकीला।

कौन करे उस धुन का मोल । उसके आगे सभी कुबोल ।।9।।
बजे सुहावन घट में ढोल । सुन सुन बोझ गिरा हुइ हौल[1] ।।10।।
पाई यह धुन करी टटोल । पहर लिया अब प्रेम पटोल[2] ।।11।।
अब नित झूलूँ गगन हिंडोल । राधास्वामी अमी पिलाया झकझोल ।।

।। शब्द दसवाँ ।।

इन्द्री उलट लाओ अब तन में । मन को खैंच चढ़ाओ गगन में ।।1।।
सुरत लगाओ जा उस धुन में । सहसकँवल चढ़ देखो सुन्न में ।।2।।
जोत जगाय देख तू घन में । बंकनाल चढ़ पहुंच निर्गुन में ।।3।।
अक्षर लखो जाय दरपन में । महासुन्न चढ़ रहो अमन[3] में ।।4।।
भँवरगुफा धुन पड़ी श्रवन में । देख रूप सतपुरुष अपन में ।।5।।
धुन सुन पहुंची अलख अगम में । राधास्वामी रूप बसा नैनन में ।।6।।
आरत करी गुरु चरनन में । पाय दया गुरु हुई मगन मैं ।।7।।
प्रेम प्रतीत लगी अब उन में । कहूं कहा महिमा चुन चुन मैं ।।8।।
तन मन सीस करूँ अर्पन मैं । चरन सरन गहि गाऊँ गुन मैं ।।9।।
खोल न कहूं भेद सबहिन में । नहीं समावत बचन रसन[4] मैं ।।10।।
आनँद होत सदा छिन छिन में । राधास्वामी संग अब करूँ रमन[5] मैं ।।11।।

।। शब्द ग्यारहवाँ ।।

सुरत को मिला ख़ज़ाना नाम ।। टेक ।।
सुरत निमानी हुई दिवानी । दिया गुरु अस जाम[6] ।।1।।
उमंग उमंग कर नभ पर पहुंची । मिला निरंजन धाम ।।2।।
आगे चली बंक पट खोला । मिला गुरु का नाम ।।3।।
सुन्न द्वार दसद्वार समानी । पाया अब आराम ।।4।।
महासुन्न से भँवरगुफा पर । जाय मिली सतनाम ।।5।।
अलख अगम से भेटा कीन्हा । राधास्वामी मिली मुक़ाम ।।6।।

---

1. हलकी । 2. वस्त्र । 3. बे-खटके । 4. ज़बान, जिह्वा । 5. बिलास ।
6. प्याला ।

।। चैत मास दसवाँ ।।

चैत महीना आया चेत । बाँधा सतगुरु भौ में सेत[1] ।।1।।
जीव चिताये जो थे वार[2] । भौसागर से कीन्हे पार ।।2।।
भौसागर अति गहिर गंभीर । सतगुरु पूरे बाँधी धीर ।।3।।
तन मन धन की लई जगात[3] । शिष्य उतारे गहिकर हाथ[5] ।।4।।
सुरत बहे थी नौ[5] की धार । ताहि चढ़ाया गगन मँझार ।।5।।
गगन जाय धुन शब्द सिहारी[6] । देखा रूप जोत अति भारी ।।6।।
जोत निहारे देखे तारा । बंक नाल का खोला द्वारा ।।7।।
संख सुना और धुन ओंकारा । शब्द गुरु का घाट निहारा ।।8।।
छोड़ा मन अब चेती सूरत । त्रिकुटी चढ़ निरखी गुरु मूरत ।।9।।
गुरु चेला मिल आगे चाली । मानसरोवर शब्द सम्हाली ।।10।।
हंसन साथ करी जाय यारी । सुरत सखी हुइ सबकी प्यारी ।।11।।
सुन्न शहर में कुछ दिन बसी । फिर चढ़ ऊपर आगे धसी ।।12।।
महासुन्न इक नगर अपारा । कहूं कहा अचरज बिस्तारा ।।13।।
धुन जहाँ चार गुप्त अति झीनी । संत बिना कोइ परख न चीन्ही ।।14।।
अचिंत दीप तहं दायें रहता । सहज दीप दस पालँग बसता ।।15।।
महिमा दीप कहा कहुं भारी । संतोष दीप तहाँ बायें सँवारी ।।16।।
तहँ इक झिरना अजब रचानी । सुरत निरत से गही निसानी ।।17।।
देख निशान मध्य को धाई । भँवरगुफा की गली समाई ।।18।।
तिस आगे मैदान दिखाना । सत्तलोक जहाँ पुरुष पुराना ।।19।।
निज पद पाय पुरुष से मिली । देख गली आगे फिर चली ।।20।।
अलख लोक में किया बसेरा । अगम लोक जाय डाला डेरा ।।21।।
शोभा वहाँ की क्या कह गाऊँ । अरब खरब शशि सूर लजाऊं ।।22।।
अब अनाम जहाँ रूप न नामा । संत करें जाय वहाँ विश्रामा ।।23।।

---

1. सतगुर ने भवसागर में पुल बांधा। 2. आर। 3. महसूल। 4. हाथ पकड़ कर। 5. नौ द्वार। 6. पकड़ी।

सहस धार दल सहस कँवल में । उठें तरंगें फैलें मन में ।।8।।
मन चढ़ चला महल अपने में । उल्टा पहुंचा गगन मंडल में ।।9।।
गगन मंडल लीला इक न्यारी । शब्द गुरु की खिल रही क्यारी ।।10।।
मूल नाम और शाखा धुन की । फूली जहँ फुलवार त्रिगुन की ।।11।।
यह लीला घट माहिं निहारी । महिमा नाम कहा कहुं भारी ।।12।।
सरगुन नाम और सरगुन रूपा । वहाँ तक देखा मन का सूता ।।13।।
अब आगे सूरत चढ़ चली । पैठी[1] जाय सुखमना नाली ।।14।।
सुखमन में निज मन दरसाना । निज मन आगे निरगुन जाना ।।15।।
यह निरगुन वह सरगुन देखा । दोनों घाट भिन्न कर पेखा ।।16।।
अब आगे पाँजी[2] इक गाऊँ । गंधर्प नाल के मध्य चढ़ाऊँ ।।17।।
नाल भुवंगन बायें त्यागी । दहने नाल धुन्धरी जागी ।।18।।
जागत नाल काल मुख मूंदा । घाट अठासी नाका रूँधा ।।19।।
सिंह पौल[3] ढिंग झँझरी निरखी । सेत पदमनी जाली परखी ।।20।।
सुन्न ताल जहँ धुन भंडारा । छजली कजली दीप निहारा ।।21।।
सागर नागर जाकर झाँका । कुरम शेष अक्षर जहाँ थाका ।।22।।
जहाँ सुरंगी दीप झरोखा । सुरत अड़ी जाय द्वारा रोका ।।23।।
संदली चंदली चौकी डारी । सुरत मंडली पाट खुला री ।।24।।
कुंडल दीप छबीली रमना । दामिन दीप सोत का झरना ।।25।।
नीलम कुंड रतन नल पाल । महाकाल रचिया जहां जाल ।।26।।
कंकन घाटी सुरत झमाई । जाल काल सब दूर पड़ाई ।।27।।
सेत धरन जहाँ लाल अकासा । हंस छावनी देख बिलासा ।।28।।
यह पाँजी निरखी निज धामी । बिमल दीप बैठे जहाँ स्वामी ।।29।।
पोहप नगर जहाँ अमृत धाम । हंस बसें पावें विश्राम ।।30।।

---

1. धसी । 2. रास्ता । 3. दरवाजा ।

सुखी होय करती चरन निवास । हुआ मोहिं गुरु का अति विश्वास ॥
गुरु बिन और नहीं कोइ आस । मिली अब नाम रतन की रास ॥3॥
धियाऊँ पल पल स्वाँसो स्वाँस । काल और कर्म हुए दोउ नास ॥4॥
जगत से रहती सहज उदास । मिली अब पदवी दासन दास ॥5॥
करे अब सूरत नभ पर बास । शब्द का पाया परम प्रकाश ॥6॥
लगन अस रहती बारह मास । चरन मैं पकड़े गुरु के ख़ास ॥7॥
द्वार घट खोला चढ़ आकाश । काल मुरझाया सूखा मास ॥8॥
हुआ अब घर में दीप उजास । मिला निज सूरज संग आभास[1] ॥9॥
कहूं क्या महिमा शब्द ख़वास[2] । गहे[3] जो पावे अमर अवास[4] ॥10॥
करूं अब आरत राधास्वामी रास । शब्द का दीपक कीन्हा चास[5] ॥11॥

॥ शब्द तीसवाँ ॥

गुरु मूरत मेरे मन बस गइयां । तन धन वारूं बल बल जइयां ॥1॥
अस पिया संग सुहागिन भइयां । अटल सुहाग नाम धुन पइयां ॥2॥
करम भरम सब दूर बहइयां । जगत जाल जंजाल कटइयां ॥3॥
अब चढ़ सुरत श्याम[6] घर अइयां । सेत दीप की दमक दिखइयां ॥4॥
सहस कँवल दल मोह दलइयां । काम क्रोध मद दूर करइयां ॥5॥
घंटा संख नाद सुन लइयां । पाँच तत्त्व रंग सूक्षम पइयां ॥6॥
लीला अद्भुत गुरु लखइयां । अब आगे को डगर[7] चलइयां ॥7॥
बंकनाल का द्वार खुलइयां । त्रिकुटी घाट मौज दरसइयां ॥8॥
गुरु मूरत जहां सूर ललइयां[8] । सुन्न शिखर चढ़ कर्म जलइयां ॥9॥
महासुन्न महिमा क्या कहियां । भँवरगुफा चढ़ बंस बजइयां ॥10॥
सत्तनाम धुन बीन सुनइयां । अलख अगम जा सुरत नचइयां ॥11॥
निज कर राधास्वामी दास कहइयां । अब आरत पूरन करवइयां ॥12॥

---

1. छटा, झलक। 2. गुन। 3. पकड़े। 4. घर। 5. जगाया। 6. तीसरा तिल। 7. रास्ता। 8. लाल।

॥ बचन चालीसवाँ ॥

॥ सावन, हिंडोला व झूला ॥

॥ शब्द पहला ॥

सावन मास आस हुइ झूलन । गर्जत गगन मगन मन फूलन ॥1॥
सखियाँ सज सज आई ढँढूलन[1] । प्रेम भरी सुख सहज अमूलन[2] ॥2॥
कहा कहूं बतियाँ[3] नहिं खूलन[4] । देख देख छबि मन सुध भूलन ॥3॥
गर्जन धन और बिजली चमकन । श्याम घटा मानो अति गज हूलन[5] ॥4॥
देखत सूरत चढ़ी पद मूलन[6] । झूलत शब्द हिंडोल अतूलन[7] ॥5॥
सुन सुन धुन काटे सब सूलन[8] । मान-सरोवर मोती रूलन[9] ॥6॥
राधास्वामी कहत सरस यह सावन । देख देख सब करत ममूलन[10] ॥7॥

॥ शब्द दूसरा ॥

सावन मास सुहागिन आई । अपने पिया संग झूलन धाई ॥1॥
श्याम घटा अब चहुं छाई । गर्ज गगन अति धूम मचाई ॥2॥
नई रागनी तान सुनाई । चमक धमक सँग खेल दिखाई ॥3॥
अमी धार छिन छिन बरषाई । सुखमन नदियाँ प्रेम भराई ॥4॥
गगन हिंडोला झोका लाई । सखियाँ संग की उमगत आई ॥5॥
रस भर भर पिया सँग लुभाई । दामिन[11] चमचम[12] अधिक सुहाई ॥6॥
मोर पपीहा रटन लगाई । अचरज बानी घोर सुनाई ॥7॥
राधास्वामी छबि निरखत हर्षाई । अजब समा सब देत बधाई ॥8॥

॥ शब्द तीसरा ॥

सुरत तू चेत री, अब सावन आया।
गगन चढ़ झाँक री, गुरु खेल दिखाया ॥1॥
जहां पड़ा हिंडोला नाम का, धुन डोर बँधाया।
सखी सहेली संग ले, जग काम न आया ॥2॥

---

1. देखने। 2. अनमोल। 3. बातें। 4. खोलने वाली। 5. हाथी का झूलना। 6. मूल (आदि)। 7. अतोल। 8. सूल, कष्ट। 9. मोतियों का रोलना (चुगना)। 10. आनन्द। 11. बिजली। 12. चमक, चमक कर।

।। शब्द ग्यारहवाँ ।।

राधास्वामी घर बाढ़ो रंग । मैं तो खेलूँगी ऐसी होली उमंग ।।1।।
सुरत निरत की ले पिचकारी । राधास्वामी पै भर भर डारी ।।2।।
चाँद सुरज दोउ कुमकुम[1] कीन्हे । प्रेम गुलाल से भर भर लीन्हे ।।3।।
सुखमन हौज़ भरा अब भारा । बंकनाल का छुटा फुहारा ।।4।।
सहस[2] धार होय त्रिकुटी पारा । पहुंचा जाय सुन्न के द्वारा ।।5।।
हंसन से जाय खेली होरी । बहन लगी जहँ अमी की मोरी ।।6।।
अनहद बाजे अद्‌भुत बाजें । राधास्वामी खुल खुल गाजें ।।7।।
ऐसी होली खेलो मेरे भाई । सब संतन के जह मन भाई ।।8।।

।। शब्द बारहवाँ ।।

आओ री सखी जुड़ होली गावें । कर कर आरत परुष मनावें ।।1।।
तन मन कुमकुम भर भर मारें । छिड़क रंग राधास्वामी रिझावें ।।2।।
लाल गुलाल वस्त्र पहिनावें । देख देख रंग रूप निहारें ।।3।।
सुरत अबीर थाल भर लावें । नैनन की पिचकार छुड़ावें ।।4।।
राधास्वामी अपने हिये बिच धारें । उन संग निस दिन प्रेम बढ़ावें ।।5।।
धरन गगन बिच धूम मचावें । राधास्वामी अब ऐसी होली खिलावें ।।6।।
चाँद सूरज दोउ खैंच मिलावें । सुखमन नदियाँ रंग बहावें ।।7।।
सुरत चुनरिया रंग रंगावें । भींजत निरत खोज धुन पावें ।।8।।
दल बादल अब अधिक सुहावें । लाल लाल चहुं दिस घिर आवें ।।9।।
रंग भरे रंग ही बरसावें । अचरज लीला आन दिखावें ।।10।।
अस होली कहो कौन खिलावें । राधास्वामी भेद बतावें ।।11।।

---

1. कांच के गोले गुलाल आदि डालने के लिए। 2. हज़ार।

जन्म जन्म के फंदा काटे । खेली काल संग आँख मिचौली ॥7॥
भक्ति भाव रंग माट भराया । रंग रंगी मेरे मन की चोली ॥8॥
कुमति उड़ाय सुमति अब धारी । मार मार माया सिर धौली ॥9॥

॥ शब्द सातवाँ ॥

उमंड घुमंड कर खेली होली । सुमति ज्ञान संग भर लई झोली ॥1॥
मार लई मैनें माया पोली । चढ़के चली अब प्रेम खटोली ॥2॥
गगन शिखर धुन निजकर तोली । जड़ चेतन की गाँठ सब खोली ॥3॥
सुरत निरत मेरी भई है अमोली । फेरूँ जैसे पान तमोली ॥4॥
मन तन लाल भया जस रोली[1] । सभी विकार डारे मैंने रोली[2] ॥5॥
मोह नींद मैं बहुतक सोली । अब राधास्वामी मेरी रंग दी चोली ॥6॥
भरी नाम धन से हिये नौली[3] । अब समझी सतगुरु की बोली ॥7॥
आसा मन्सा तन से डोली । अब नहिं करत काल मोसे ठोली[4] ॥8॥

॥ शब्द आठवाँ ॥

मेरे गुरु ने खिलाई प्रेम संग होरी । मैं तो होय रही सब जग से बौरी ॥1॥
सील गुलाल अबीर छिमा का । ता से मैं भर लई झोरी ॥2॥
काम क्रोध दोउ खेलन आये । मार मार उनका मुख मोड़ी ॥3॥
सुरत निरत दोउ सखियाँ संग ले । शब्द खोज को चाली दौड़ी ॥4॥
सुखमन नाका जाय हम घेरा । बंकनाल पिचकारी छोड़ी ॥5॥
त्रिकुटी शब्द जाय हम पकड़ा । धूम धाम कुछ भई है न थोड़ी ॥6॥
हंस सभा जहँ मान-सरोवर । प्रगट भई माया की चोरी ॥7॥
किंगरी नाद होत धुन भारी । सुरत तार अपना नहिं तोड़ी ॥8॥
राधास्वामी दया रंग घट भरिया । जनम मरन दुख दूर करो री ॥9॥

॥ शब्द नवाँ ॥

गुरु आन खिलाई घट में होली । धुन नाम लई तन अंतर खोली ॥1॥

---

1. लाल रंग। 2. रोल कर। 3. बसनी, बांसली – रूपया रखने की। 4. ठठोली।

अर्ध[1] उर्ध[2] के मध्य में, तीरथ परसाया।
अंतर गति नहिं बूझते, तिन जन्म गँवाया।।4।।
बिन सतगुरु यह बाट, कहो कोइ कैसे पाया।
मेहर करें जा पर धनी, फिर रंक[3] न राया[4]।।5।।
ग़ोता मार समुद्र में मुक्ता चुन लाया।
रतन माल हिरदे धरी, बेहद पहुंचाया।।6।।
निरत सखी अगुवा हुई, जा शब्द समाया।
राधास्वामी नाम यह, कोई गुरुमुख पाया।।7।।

।। शब्द चौथा ।।

घट भीतर तू जाग री, हे सुरत पुरानी।
बिना देश झाँकत रही, सब मर्म भुलानी।।1।।
काल दाव मारत रहा, पर तू न चितानी।
अब सतगुरु की मेहर से, मौसम बदलानी।।2।।
नर देही पाई सहज, सतसंग समानी।
सुरत घाट अब पाइया, धुन शब्द पिछानी।।3।।
यह मारग संतन कहा, पंडित नहिं जानी।
जिन यह मारग पाइया, सो छूटे खानी।।4।।
श्याम कंज के घाट से, सूरत अलगानी।
चौथे पद में जा मिली, जहां अचरज बानी।।5।।
पंचम षष्टम पाय के, राधास्वामी जानी।
भाग सुहागिन पाइया, को करे बखानी।।6।।

।। शब्द पाँचवाँ ।।

सुरत घर खोज री। ऋतु मिलन मिली।।1।।
शब्द घर सोच री। चढ़ महल चली।।2।।

1. नीचा। 2. ऊँचा। 3. कंगाल। 4. राजा।

बिना मेहर सतगुरु पूरे के । कस उल्टे कस घर जाई ।।9।।
सुखमन द्वार गगन का नाका । कठिन हुआ नहिं सुधि पाई ।।10।।
श्याम धाम से हुई न न्यारी । सेत पदम कस कस पाई ।।11।।
धुन की छौंट होत नहिं भाई । कैसे सूरत धुन पाई ।।12।।
घट में बैठ निरख दृग द्वारा । यहां से राह अधर जाई ।।13।।
घाटा तोड़ काल मति मोड़ो । कर्म काट ऊँचे जाई ।।14।।
राधास्वामी कहत सुनाई । समझ समझ पग धर भाई ।।15।।

॥ शब्द तीसरा ॥

सुरत चल बावरी, क्यों घर बिसराया।
सतगुरु के संग लाग री, धुर ले पहुंचाया ।।1।।
घट पट पश्चिम खोल कर, पूरब दिखलाया।
अजब खेल अद्भुत दशा, हंसन परसाया ।।2।।
संत मंडली सेत दीप, जा जोत जगाया।
मौज निहारी सत्त पुरुष, धुन बीन सुनाया ।।3।।

कड़ी 9---जब ऐसा हाल हो गया तो अब बिना मेहर पूरे सतगुरु के मुख इसका ऊपर यानी निज घर की तरफ़ कैसे मोड़ा जावे।

" 10---और इसी सबब से आकाश का द्वारा जो कि पहला सुखमन स्थान है, खुलना कठिन हो गया बल्कि उसकी सुध भी भूल गई।

" 11---और श्याम स्थान यानी काल के घेर से जुदा न हो सकी। फिर सेत धाम जो उसका निज स्थान है, कैसे पावे ?

" 12---और इसी सबब से धुन की छौंट भी नहीं हुई! फिर निज धुन को कैसे प्राप्त होवे ?

" 13---अब चाहिये कि अपने घट में निश्चल होकर और नेत्रों के द्वारे को झांक कर अन्दर को चले। यही सड़क ऊंचे निज देश की है।

" 14---पहली घाटी को कि जिसकी हद त्रिकुटी तक है, तोड़ कर और काल का मुख मोड़ कर और करमों को काटते हुए ऊंचे को चलना चाहिये।

" 15---राधास्वामी दयाल फ़रमाते है कि इस रास्ते में निरख निरख और परख परख कर कदम रखना चाहिये।

मैं बिरहिन पिय दरस की, कहिं चैन न पाया।
अब खुल खेलूँ सुन्न में, गुरु भेद जनाया ।।3।।
रिमझिम वर्षा हो रही, मन मोर बुलाया।
पी की री बतियां सुन रही, मन चाव[1] बढ़ाया ।।4।।
घट में कर सिंगार, पिया को आन रिझाया।
सखियन साथ विलास यह, राधास्वामी गाया ।।5।।

।। शब्द चौथा ।।

राधास्वामी झूलत आज हिंडोला । गगन मंडल धुन अद्‌भुत बोला ।।1।।
सुरत निरत सखियां मिल आई । झूमत घूमत रूप समाई ।।2।।
नैन निहारत दरस पुकारत । राधास्वामी राधास्वामी नाम दृढ़ावत ।।
चाँद सुरज दोउ खंभ सजे रे । सुखमन चौकी लाला जड़े रे ।।4।।
चरन धार राधास्वामी बिराजे । प्रेम मगन सब प्रीतम गाजे ।।5।।
अजब समा अचरज यह औसर । हंस हंसनी छोड़ा सरवर ।।6।।
देख बिलास मगन हुए भारी । सुध बुध भूले देह बिसारी ।।7।।
धूम मची अब अमर नगर में । झूलत राधास्वामी बैठ अधर में ।।8।।

।। शब्द पाँचवाँ ।।

अजब यह बँगला लिया सजाय । हंस भी रीझे देखत ताहि ।।1।।
बैठ गये राधास्वामी ता में आय । करें सब आरत सुर संग गाय ।।2।।
आज यह घड़ी सुहावन पाय । गई अब सब की दूर बलाय ।।3।।
हुई मैं पावन[2] सरन समाय । कहूं क्या बंगला अजब दिखाय ।।4।।
रही मैं राधास्वामी महिमा गाय । सेत पद बंगला मोहिं सुहाय ।।5।।

।। शब्द छठा ।।

सुरत मेरी चढ़ गई गगन अटरियां।
मैं धीरे धीरे चढ़ गई गगन अटरियां ।।1।।

---

1. उमंग, शौक़। 2. पवित्र।

॥ शब्द चौबीसवाँ ॥

मन सींचो प्रेम कियारी । सतगुरु अस हेला मारी ॥1॥
घट पौद खिली अब भारी । भक्ति की लग रही बांड़ी ॥2॥
जल अमृत वर्ष बहा री । संतन संग देख बहारी ॥3॥
गुरु शब्द लगा सुर्त तारी । सुखमन रस पी ले प्यारी ॥4॥
कँवल कमोदनी चन्द्र निहारी । खिली सुरत और प्यार बढ़ा री ॥5॥
मन भँवरा गुंजार लगा री । सूरजमुखी कँवल निरखा री ॥6॥
मरूवा मोगर मन मोहा री । चाह चमेली मेल मिला री ॥7॥
चम्पा चाँप चढ़ा धनुवा री । सुरत बान से काल गिरा री ॥8॥
मौरसली नृत मोर रसा री । नरगिस नैन देख उजियारी ॥9॥

॥ बचन बयालीसवाँ ॥

॥ सेवा बाणी ॥

॥ शब्द पहला ॥

स्वामी उठे और बैठे भजन में । कर कर ध्यान मगन हुए मन में ॥1॥
फिर भर कमँडल धर दिया आगे । सतसंगी आय दर्शन लागे ॥2॥
किया चरनामृत लई परसादी । हार चढ़ा कर बँदगी साधी ॥3॥
लोटे घर तब गये दिशा को । फिर आये जब टाल बला को ॥4॥
चौकी बिछा मैंने गद्दी बिछाई । स्वामी बिठा और हाथ धुलाई ॥5॥
दाँतन कर मंजन करवाई । मुख किया शुद्ध और दाँत सफ़ाई ॥6॥
कुल्ली दई स्वामी कुल मेरा उधरा । जन्म सुफल और तन मन सुधरा ॥7॥
बटना तन मल मैल गँवाई । बाट खुली और सुरत चढ़ाई ॥8॥
तेल मला और चमक बढ़ाई । शोभा राधास्वामी अधिक सुहाई ॥9॥
मानसरोवर जल भर लाई । तब राधास्वामी अश्नान कराई ॥10॥

ससे मारिया सिंह । कौन यह समझे बोली ।।5।।
मात पिता दोउ जने । पूत ने बैठ खटोली ।।6।।
मछली चढ़ी अकाश । धरन कर डारी पोली ।।7।।
चाँद सूर पाताल से । निकले पट खोली ।।8।।
चोरन पकड़ा साह । साह ने पहिरी चोली ।।9।।
अमृत पी पी मरें । ज़हर की गाँठी खोली ।।10।।
राधास्वामी गाइया । यह भेद अमोली ।।11।।
संत बिना को बूझि है । यह मर्म तोली ।।12।।
अजा मारिया भेड़िया । ले मिरगन टोली ।।13।।

कड़ी 5---और फिर वही सुरत जो कि मुवाफ़िक़ ख़रगोश के, पिंड में ग़रीब और निर्बल थी, दसवें द्वार में पहूँच कर सिंह यानी काल को मार लेगी।

" 6---जब सुरत गर्भ में यानी खट चक्र के देश में आई तब पहिले उसने ब्रह्मांड और पिंड की रचना करी, यानी माया और ब्रह्म के पद उसी से प्रगट हुए, और जब सुरत, जन्मी यानी जीव गर्भ से बाहर आया तब वही जीव पिंड में उतर कर बैठने से माया और ब्रह्म का पुत्र हो गया।

" 7---और जब सुरत मछली की तरह शब्द की धार को पकड़ कर उल्टी यानी ऊपर को चढ़ी तब वह धरन यानी पिंड को पोला या ख़ाली कर गई।

" 8---और जब चढ़ते चढ़ते दसवें द्वार के परे गई तब सूरज और चाँद यानी त्रिकुटी और सुन्न स्थान दोनों पाताल यानी नीचे नज़राई दिये।

" 9---जब सुरत यानी जीव का उतार हुआ तब काल और करम और काम क्रोध लोभ मोह और अहंकार बग़ैरा चोरों ने इस को घेर कर बन्द यानी चोले में गिरफ़्तार कर लिया।

" 10---और जब वही जीव यानी सुरत उलट कर अपने घर की तरफ़ को चली और ब्रह्मांड के परे चढ़ गई और अमी की धारा बहाने लगी तब वही सब चोर अमृत पी कर मर गये और उनकी ज़हर की गाँठ खुल कर भस्म हो गई।

" 11---राधास्वामी ने यह अमोल पद का अमोल भेद गाया।

" 12---और इसको बिना संत के कोई नहीं समझ सकता है।

" 13---अजा बकरी को कहते हैं सो यह सूरत सुरत की पिंड में थी यानी काल भेड़िये का खाजा हो रही थी, सो जब सतगुरु की कृपा से उलट कर ब्रह्मांड और उसके परे पहुँची तो मन और इन्द्रियों को संग लेकर काल भेड़िये पर चढ़ आई और उसको मार लिया।

॥ शब्द सोलहवाँ ॥

सुर्त बन्नी गुरु पाया बन्ना । देख दरस छिन छिन मन भिन्ना ॥1॥
तुरिया घोड़ी सहज सिंगारी । धीरज पाखर ता पर डारी ॥2॥
चाँद सुरज दोउ करी रकाबें । गगन ज़ीन ता पीठ धरावें ॥3॥

---

1. बांई । 2. गाँव । 3. साधन, उपाय, युक्ति ।

बिजली पवन चली घोड़ी । फेर लगाम एड़ दे मोड़ी ॥4॥
हीरे लाल झालरें मोती । माणिक पन्ना वारूँ जोती ॥5॥
ता पर बन्ना करी असवारी । बिजली चाल पवन धधकारी ॥6॥
चल बरात पहुंची गगना पुर । बन्नी बन्ना मिले शिष्य गुरु ॥7॥
ब्याह हुआ और फेरे डाले । बन्नी ले बन्ना घर चाले ॥8॥
घर में धसे मात पितु हरखे । प्रेम मगन मानो बादल बरखे ॥9॥

कड़ी 1---प्रेमी सुरत को जब सतगुरु प्रीतम मिले, तब उनका दर्शन करके मन छिन छिन मगन हुआ ।

" 2---तुरिया यानी चैतन्य आत्मा की धार को घोड़ी बना कर उस पर धीरज की पाखर डाली, यानी धीरज के साथ उस पर सतगुरु सवार हुए ।

" 3---चाँद सूरज यानी इड़ा और पिंगला की रकाबें बनाईं और गगन यानी चैतन्य आकाश रूपी ज़ीन उस पर धरी ।

" 4---इस तरह सतगुरु उस तुरिया की घोड़ी यानी चैतन्य धार पर सवार होकर बिजली और पवन की चाल के मुवाफ़िक चले और लगाम यानी मुख उस धार का धर की तरफ़ मोड़ कर ऊपर चढ़ने के वास्ते ज़ोर दिया यानी एड़ लगाई ।

" 5---ऐसे सतगुरु के ऊपर हीरे लाल और मोती की झालरें और माणिक पन्ना और जोत स्वरूप को (जो मुराद शब्दों की धुन और स्थानों के स्वरूप से है) वार दूँ । असल में जैसे कि सुरत चढ़ती जाती है, सब रास्ते के स्थान और वहाँ की रचना सतगुरु पर अपने आपे को वारते हैं यानी नीचे पड़ते चले जाते हैं ।

" 6---ऐसी चैतन्य धार की घोड़ी पर सतगुरु बन्ने सवार हुए, और वह धार बिजली और पवन की चाल और ज़ौर शोर के साथ चली और चढ़ी ।

" 7---चलते चलते सतगुरु और प्रेमी सुरत और बरात यानी और सतसंगी और सतसंगिनों की सुरतें त्रिकुटी में पहँची और वहाँ सतगुरु और सेवक का मेला हुआ ।

" 8---और प्रेमी सुरत सतगुरु की परिक्रमा करके उनके साथ घर को चली ।

" 9---जब सत्तलोक में पहुँचे तब सत्तपुरुष (जो कि कुल रचना के माता पिता हैं) देख कर मगन हुए । जैसे कि बादल की वर्षा होती है, इसी तरह प्रेम और आन्नद की बर्षा होने लगी ।

04:43
Gyaneshwari Gita - Pt....

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १० ॥

—उस परिपूर्ण ब्रह्म को पहचान कर जो मरणकाल प्राप्त होने के

समय एकाग्र चित्त से उसका स्मरण करता है, (९१) बाह्यतः पद्मासन लगा कर, उत्तराभिमुख बैठकर, हृदय में कर्मयोग का सुख भरे हुए (९२) अन्तर्याम में एकाग्र चित्त से और स्वरूप-प्राप्ति के प्रेम से तत्काल स्वयं निज में मिलने के लिए (९३) जो अभ्यास से प्राप्त किये हुए योग के द्वारा सुषुम्ना के मध्य मार्ग से अग्निचक्र से ब्रह्मरन्ध्र की ओर जाता है, (९४) जिसके शरीर और चैतन्य का सम्बन्ध ऊपरी ही दिखाई देता है, किन्तु प्राण आकाश में प्रवेश करता है, (९५) और मन की स्थिरता से धैर्य-युक्त होते हुए, भक्ति की भावना से भरा हुआ, योगबल से व्याप्त हो सजधज कर (९६) जो जड़ाजड़ को विलीन करता है, भ्रुकुटि में प्रवेश करता है, और जैसे घण्टानाद घण्टे में ही लीन हो जाता है, (९७) अथवा जैसे घट के नीचे ढका हुआ दीपक न जाने कब कहाँ जाता है उसी प्रकार हे पाण्डव! जो शरीर छोड़ देता है (९८) वह केवल परब्रह्म, जिसे परमपुरुष कहते हैं, और जो मेरा निजधाम है वही हो रहता है। (९९)

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

सब ज्ञानों के सीमारूपी आत्मज्ञान की खानि जो ज्ञानीजन हैं वे जिसे अपनी मति के अनुसार अक्षर कहते हैं; (१००) जो वास्तव में एक ऐसा आकाश है कि प्रचण्ड वायु से भी नहीं टूटता; (अन्यथा, मेघ होता तो कैसे टिक सकता?) (१) और जो वस्तु बुद्धिगत होती है वह ज्ञान से परिमित हो जाती है, इसलिए जो वस्तु ज्ञात नहीं होती वह स्वभावतः अक्षर कहाती है, (२) अतएव जो वेदार्थ-ज्ञानी पुरुष हैं वे जिसे अक्षर कहते हैं; जो प्रकृति के परे है—परमात्मरूप है; (३) और जो पुरुष विषयों का विष खाली कर सब इन्द्रियों को प्रायश्चित्त

मनरूपी वाह्य-प्रदेशों को जीत कर वह ध्यान के आकाश को अपने क़ाबू में कर लेता है। (३१) और गुरु के उपदेश से जागृत हो वह अपने ज्ञान का इस प्रकार निश्चय कर लेता है जैसे कोई दर्पण में अपना रूप देख ले। (३२) स्वयं ध्यान करनेहारा है, परन्तु वृत्ति में वही ध्यान-रूप होकर निजको ही ध्येय बना उसका ध्यान करता है। यह उसके ध्यान की रीति है। (३३) इस प्रकार जब तक ध्येय, ध्याता और ध्यान तीनों एकरूप न हो जायँ तब तक हे पाण्डुसुत! वह ध्यान करता रहता है। (३४) अतः वह मुमुक्षु आत्मज्ञान के विषय में समर्थ हो जाता है, परन्तु योग की प्रक्रिया के सहाय से। (३५) हे धनञ्जय! गुदा और शिश्न के बीच में एड़ी दबा कर वह मूल-बन्ध सिद्ध करता है। (३६) अधोभाग संकुचित कर मूल-बन्ध, उड्डियान-बन्ध और जालन्धर-बन्ध तीनों सिद्ध कर सब वायुओं को समान करता है। (३७) कुण्डलिनी को जागृत कर, सुषुम्ना का विकास कर, आधार-चक्र से लेकर अग्नि-चक्र तक सबका भेद करता है, (३८) फिर सहस्र-दल कमल-रूपी मेघ में से जो उत्तम अमृत की वर्षा होती है उसका प्रवाह मूलाधार चक्र तक ला छोड़ता है। (३९) और अनन्तर अग्नि-चक्ररूपी पुण्य-पर्वत पर नाचते हुए चैतन्यरूपी भैरव के भिक्षापात्र में मन और पवन-रूपी खिचड़ी भर देता है। (१०४०) इस प्रकार योग का बलिष्ठ समुदाय आगे कर उसके आसरे से वह ध्यान स्थिर करता है। (४१) और ध्यान और योग दोनों निर्विघ्नता के साथ आत्मतत्वज्ञान में प्रविष्ट हों, इसलिए वह पहले से ही (४२) वैराग्य जैसे मित्र को प्राप्त कर लेता है, जो कि सब भूमिकाओं में उसके सङ्ग ही रहता है। (४३) जो वस्तु देखनी है उसके दिखाई देने तक दीपक यदि दृष्टि का सङ्ग न छोड़े तो उस वस्तु के दिखाई देने में क्या अवकाश लगेगा? (४४) वैसे ही जो मोक्ष की ओर प्रवृत्त हुआ है उसकी वृत्ति के ब्रह्म में लीन होने तक वैराग्य उसका साथ देता है, तो फिर उसकी मोक्ष-प्राप्ति का

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

साँपों से वेष्टित होने के कारण जैसे चन्दन की जड़ भयानक होती है, अथवा गड़े हुए द्रव्य का मुँह जैसे—उस पर रहनेहारे भूत के कारण—भयानक होता है, (७८) स्वर्ग जैसे सुन्दर होता है पर उसको पाने के लिए यज्ञरूपी सङ्कट आ पड़ते हैं, [यानी यज्ञ किये जायँ तब कहीं स्वर्ग मिले] अथवा बालक ऊधम मचाता है अतः उसकी बाल्यावस्था पीड़ा-कारक जान पड़ती है, (७९) अथवा दीपक जलाने के पूर्व जैसे धुआँ अवघट जान पड़ता है, ❋ अथवा मुँह पर रखते ही जैसे औषधि कड़ुवी लगती है, (७८०) वैसे ही हे पाण्डव! जिस सुख का आरम्भ दुःखद होता है, तथा जिसमें यम, दम इत्यादि साधनों का समुदाय इकट्ठा करना पड़ता है, (८१) जिससे ऐसा वैराग्य उठता है कि जो सब विषय-प्रीति को चपेट लेता और स्वर्ग और संसाररूपी प्रतिबन्ध को निकाल फेंकता है, (८२) जिसमें विवेक का श्रवण, तथा तीव्र और कठोर व्रतों का आचरण करते-करते बुद्धि इत्यादि के लत्ते उड़ जाते हैं, (८३) जिसमें सुषुम्नारूपी मुँह में प्राण और अपान वायु के प्रवाह लील लिये जाते हैं, आरम्भ में ही जहाँ इतने भारी क्लेश हैं, (८४) सारस की जोड़ी का वियोग होने से, पन्हाई हुई गाय के पास से बछड़े को दूर खींचने से, मँगते को परोसी हुई थाली पर से भगाने से जैसा दुःख होता है, (८५) अथवा माता के सामने से मृत्यु यदि उसके एकलौते बालक को उठा ले जाय तो उसे अथवा जल से जुदा होने पर मीन को जैसे दुःख होता है (८६) वैसे ही जहाँ वैराग्ययुक्त वीर, इन्द्रियों को विषयों का घर छोड़ते हुए जो युगान्त-सा दुःख होता है उसे सहते हैं, (८७) इस प्रकार जिस

❋ पुराने ज़माने में चिराग़ जलाने के लिए आग जलानी पड़ती थी और आग जलाते समय आँखों को धुआँ लगता ही है।

44. वाल्मीकि रामायण-गीताप्रेस, गोरखपुर

45. विश्वप्रपंच निबन्ध-आचार्य शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983 ई.

46. शब्द सागर-जगजीवन साहब, लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ, प्रथम संस्करण संवत् 1959 वि. शताब्दी

47. शिवनारायणदास की वाणी- डॉ. कृष्णकौल त्रिपाठी, साहित्य संस्कृति-संस्थान, फैजाबाद, सन् 2002 ई.

48. शब्दावली- तुलसी साहब

49. शेखनिसार कृत युसूफ जुलेखा- सम्पा.-डॉ. सत्यप्रकाश त्रिपाठी, साहित्य संस्कृति संस्थान, फैजाबाद, 2005 ई.

50. श्री गोवर्द्धन नाथ जी की प्राकाट्यकर्ता-गोस्वामी हरिराय जी

51. श्री सत्तनाम गोष्ठी-बछरावां, रायबरेली

52. संत काव्य- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, 1952 ई.

53. संत दर्शन- डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित, साहित्य निकेतन, कानपुर

54. संत कवि नवलदास साधना और साहित्य- डॉ. राधेश्याम द्विवेदी, बाँकेबिहारी प्रकाशन, आगरा, 2011 ई.

55. संत बानी संग्रह- भाग-1, वेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, 1973 ई.

56. संत बानी संगह- भाग-2, वेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, 1975 ई.

57. संत साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि- डॉ. सावित्री शुक्ला, विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ विश्वविद्यालय

58. संत फकीरदास कृत सप्तमी माहात्म्य- डॉ. कृष्णकौल दास, साहित्य संस्कृति-संस्थान, फैजाबाद, सन् 2007 ई.

59. संत तोंवरदास कृत शब्दावली-डॉ. कृष्णकौल त्रिपाठी, साहित्य संस्कृति-संस्थान, फैजाबाद, सन् 2003 ई.

60. संत साहित्य की रूपरेखा-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1984 ई.

61. संस्कृत साहित्य का इतिहास- भाग-1, पं. बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विश्वभारती, वाराणसी

62. संस्कृत साहित्य का इतिहास- भाग-2, पं. बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विश्वभारती, वाराणसी

63. साँईंदाता सम्प्रदाय और उसका साहित्य-डॉ. राधिकाप्रसाद त्रिपाठी, 1988, आनन्द प्रकाशन, फैजाबाद

64. हिन्दी संत काव्य में प्रतीक विधान-डॉ. देवेन्द्र आर्य, साहित्य प्रचारक, बल्लीमारान, दिल्ली

65. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास- डॉ. ग्रियर्सन, अनुवादक-डॉ. किशोरीलाल गुप्त, द्वितीय संस्करण, 1961

66. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,सं. 2009

67. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-डॉ. रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल वेणीमाधव, इलाहाबाद, छठाँ संस्करण, 1971

06:09
satnami sampradaya sa...

208. सन्त कवि नवलदास, साधना और साहित्य, डॉ. राधेश्याम द्विवेदी, पृ. 339

209. सुनहु उमा जेहि मरै न कोई, मम गोरष समान तेहि होई।

पवन पान को करि अभ्यासा, बूझे इड़ा पिंगला स्वांसा।

दसवां द्वार उघरि जब जाई, औ तेहि मा फिरि पवन समाई।

करम करम कुंभक करै, रेचक कर्महि कर्म।

दास नेवल सोइ जोग है, मिटै काल भै भर्म। - सु. सा., अ. 3, दोहा 1

210. क- सात स्वर्ग अपवर्ग समेता, दरसन तीन लोक मंह जेता।

छठयें बूध सुषमना घाटा, सतवें सोम तालु मंह सांटा।

अनहद तीन प्रकार तंह, श्रीग ताल घड़ियाल।

अमी चुवत है सोम ते, निकट न आवै काल। - सु. सा. अ. 3, दोहा 2

ख- क्षीर समुद्र शरीर मां, लोचन द्वारा जौन।

दास नेवल जौ कै उपर तिल मां तीनिउ भौन।

गगन भवन बिच कोठरी, जानै बिरला कोय।

सतकुंजी सतगुर लिहे, प्रसन्न तापर होइ। - ज्ञा. स., अ. 1, दोहा-9

ग- त्रिकुटी वर सुषमनि वहै, वहै त्रिवेणी नाम।

तासु मध्य निर्गुण बसै, दास नेवल बसु जाम। - सु. सा., अ. 16, दोहा-9

211. बारह बरिस रहयो जल सायन, क्रिया एक फिरि किहे उपरायन।

चौबिस बरिस रहयौ पय हारी, औ सै बरिस दिगम्बर धारी।

तीस बरिस पंचागिनि तापेउ, षोडस अच्छर निसि दिन जापेउ।

ढाढ़ेस्वरी नखी सुनि पायौ, साढ़े साठ लहि एनहि कमायो।

झूला झूलि रहया दिन राती, छत्तिस बरस जरावत छाती।

05:01
Gyaneshwari Gita - Pt....
128/732

ने कहा (४३) हे अर्जुन ! जो अनन्त सुख के दह में डूब कर एकदम तले जा बैठे हैं और वहाँ स्थिर रह कर तद्रूप हो गये हैं, (४४) अथवा जिन्हें शुद्ध आत्मज्ञान के सहाय से अपने ही आत्मा में सब संसार प्रतीत होता है, वे हैं तो मनुष्य-देह-धारी तथापि ख़ुशी से परब्रह्म रूप माने जा सकते हैं। (४५) जो वास्तव में सब से परे है, अथवा जो अविनाशी और सीमा-रहित है, जिस नगर में रहने का अधिकार केवल निष्काम जनों को है, (४६) जो महर्षियों में उन्नत है, विरक्तों के ही हिस्से में आता है, जो निःसन्देह जनों को निरन्तर ही बना है, (४७)

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणंवर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

जिन्होंने अपना मन विषयों से जुदा कर जीत लिया है वे जिस स्थान में सोये हुए जागृत नहीं होते, (४८) ऐसा मोक्ष का स्थान, आत्मज्ञानियों का कारण, जो परब्रह्म है, वही हे पाण्डुकुमार! उपर्युक्त पुरुषों को समझो। (४९) यदि तुम पूछो कि वे ऐसे कैसे बन जाते हैं कि देह रहते ही ब्रह्मत्व को पहुँच जाते हैं, तो मैं उसका संक्षेप से वर्णन करता हूँ। (१५०)

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७ ॥

जो वैराग्य के आधार से विषयों को बाहर निकाल कर शरीर में मन को एकाग्र करते हैं, (५१) तथा जहाँ स्वभावतः (इडा, पिंगला और सुषुम्ना नामक) तीनों नाड़ियों का मिलाप होता है और जहाँ दोनों भौंहें मिलती हैं वहाँ जो उलटी दृष्टि लगा देते हैं, (५२) वे चिदा-काश में सञ्चार करनेहारे योगी दाहिना और बायाँ भाग छोड़ कर चित्तसहित प्राण और अपान वायु को समान कर रखते हैं। (५३)

अहलादसाहब ने कठिन योग-साधना की अपेक्षा सहज समाधि को अधिक उपयोगी तथा श्रेष्ठ माना है। इसकी विधि बताते हुए कहा है-

भयो सुन्य ध्यान मिटि सुद्धि माया। शब्द रूप जोगी अखंड समाया।।

निराधार बांस नहीं जन्म आवे। अभै झास विश्वास आलेख ध्यावे।।

मिलै एक तौ एक एकै कहावै। भये भिन्न स्वामी की सेवा लगावै।।

कठिन जोग जंजाल नहिं साधो। सहज दास अहलाद नहिं चित्त बांधो।।

मिलै वस्तु एकै जो जंजाल काँचै। सहज वही सुन्य जो चित्त बाँचै।।

यही पंथ लागो सहज जोग लीन्हे। गृहारम्भ देही सुरति भिन्न कीन्हे।।

यही युक्ति से वास संसार कीजे। सदा राम नाम महा मीठ पीजे।।206

साधक को अपने मन रूपी तुरंग को वश में करने के लिए ज्ञान रूपी चाबुक की आवश्यकता रहती है। काम, क्रोध आदि वासनाओं का त्याग करके केवल दीन भाव से रहने वाला व्यक्ति अपने लक्ष्य में सफल हो सकता है। संसार के वाह्याडम्बर साधना के मार्ग में बाधा उपस्थित करते हैं। अतः साधक को सरल जीवन ही अपनाना चाहिए। 'गुरु गीता' में अहलाददास ने स्वयं लिखा है-

मन तुरंग चढ़ि ग्यान चित्त, चाबुक चौक लगाम।

फेरै चेत लगाम गहि, पलटि सत्य ग्रह जाय।।

तजि जे चटक चारु बहु मन के। औ रुचि स्वाद पाल यहि तन के।।

काम क्रोध मद लोभ नेवारू। मन ते बहु वासना निकारू।।

जिभ्या छोड़ै मीठ खटाई। गहे विराग प्रान अकुलाई।।

मन जो चले चित कस्ट न छूटै। सुमिरत नाम मोह वह टूटै।।

झरत जाय सब पाप मैं, हरत जाय अभिमान।

भरत जाय उर संपदा, धरत राम को ध्यान।।207

संत नवलदास के साहित्य का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि योग-साधना मुख्यतः हठयोग के प्रति उनकी अगाध निष्ठा थी उन्होंने स्वयं योग-साधना और कठोर काया-साधना की थी, किन्तु उनके साहित्य में इसकी जटिल साधना पद्धति का विवेचन कम ही दिखाई पड़ता है। उनका तत्त्वज्ञान निर्गुणोपासना में योग साधना के योग का था। उनका 'रतनज्ञान' यद्यपि निर्गुणोपासना का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। उसमें साधना मार्ग की दुरूहता, आराध्य को प्राप्त करने की विकलता का वर्णन मिलता है, पर इड़ा पिंगला और सुषुम्ना, ब्रह्मरन्ध्र, सहस्रार चक्र और अनहद नाद का वर्णन बहुत कम है।208

इन्होंने योग की विधि और उपादेयता प्रतिपादित करते हुए कहा है कि योग साधना अमरता की साधना है209। योग विधि की चर्चा करते हुए शंकर जी ने उमा को अमरत्व मन्त्र प्रदान किया। संत ने योग साधना की जटिल साधना पद्धति को सहज रूप से व्यक्त करते हुए बताया है कि सातवें स्वर्ग210 अर्थात् षट् चक्रों का भेदन करते हुए योगी जब साधना की चरमावस्था में पहुँच जाता है तो वह अनहद नाद को सुनने लगता है। सामान्य जन के लिए यह अति कठिन है।

06:48
satnami sampradaya sa...

सन्त तोंवरदास भी योग के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। उनका विश्वास है कि अनहदनाद श्रवण करने से नित्य नवीन सुखानुभूति होती है-

बाजै मधुरगति बेन बेसुरी, नाम धुनि धुधकार रे।

अनहद अविगति तान सुनि, वर महल मनि झनकार रे।।

नित नाद विनोद मंगल, होत जै-जै कार रे।180

सन्त शिवनरायनदास घट के भीतर अनहदनाद श्रवण करने पर विशेष बल देते हैं- अनहद बाजा निसिदिन बाजै, सुनह बैठ स्थाना।181

उन्होंने अपनी वाणी में योग-साधना को विशेष महत्त्व दिया है। वे स्थान-स्थान पर त्रिकुटी, इंगला, पिंगला जैसे योग-साधनात्मक शब्दों का प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं-

मैं तो चुँदरी धोवायौं साहब घटवाँ।

सत्य कै साबुन प्रेम की सौंदनि, सुरति की लादी लदायऊँ।

त्रिकुटी पार जिकिर की धोवनि, कर्म के दाग छोड़ायऊँ।

इंगला, पिंगला, झुरवनि कीना, सुखमनि रंग रंगायऊँ।182

वे इंगला, पिंगला, सुखमनि, दसयें बाजा जैसे योग-साधनात्मक शब्दों का प्रतीकात्मक प्रयोग करते भी दिखाई पड़ते हैं-

इंगला, पिंगला भुरछल हाँकै, सुखमन डोलिया चढ़ाय।

दसयें बाजा नौबति बाजै, अब छवि बरन न जाय।

चौथा धाम अमरपुर ऊँचा, सात सुन्य के पार।

जगमग ज्योति झलाझल झलकै, कोटि भान छिप जाय।।183

सन्त रघुनन्दनदास भी अपनी वाणी में योग को महत्त्व देते हैं। उनकी योग सम्बन्धी निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

झाँझ घरियार अरु वेणु बंसी बजे, गैब मक्कान मन सुनत भाई।

होत अंदोर घनघोर उत्तर दिसा, चन्द मैदान में ध्यान लाई।

गंग अरु जमुन दुइ धार संगम बहे, गगन में कहर दरियाव गाई।

अरे रघुनन्दनदास योग तुरिया को, हद मैदान पर माथ नाई।।184

उनका कहना है कि अनहद ध्वनि अहर्निश अनवरत घट के भीतर प्रतिध्वनित है।185 साधना हेतु इसे श्रवण करना आवश्यक है।

सत्तनामी सन्तों में जगजीवन साहब ने योग तत्त्वों का उल्लेख अपनी वाणी में किया है। योग के सहज मार्ग का अनुसरण करने के कारण यद्यपि उन्होंने योग तत्त्वों का शास्त्रीय पद्धति के अनुसार वर्णन नहीं किया है, फिर भी योग सम्बन्धी वर्णन यत्र-तत्र देखने को मिल जाते हैं। जगजीवन साहब का कथन है कि मन तथा पवन को अन्तर्मुखी करके अष्टकमल और नाभिकमल में वैसे ही स्थिर करना चाहिए जिस प्रकार कमल के पत्ते पर जल की बूँद स्थिर रहती है।167 क्योंकि ऐसा करने से योग में दृढ़ता आती है।168 पवन के षटचक्र में स्थिर होने पर भक्ति पुष्ट और दृढ़ हो जाती है।169 नाभिकमल में शब्दों की झनकार होने से गगन मण्डल में अद्भुत ध्वनि होती है, किन्तु इस ध्वनि का रसास्वादन कोई बिरला सन्त ही कर पाता है।170 त्रिकुटी के मध्य दृष्टि करके ध्यानपूर्वक मणि-सदृश देदीप्यमान ज्योति का अवलोकन करते हुए आनन्दग्रहण करना चाहिए।171 संसार से विरक्त होकर एकान्त में रहते हुए योग-साधना विषयक जगजीवन साहब की मान्यता है-

भक्त जक्त त्यागि जागि लागि चरन रहु रे। टेक।

जग प्रसंग ध्यान भंग जाति छानि तजु रे।।

रहु इकंत संत लागि जानि नाम गहु रे।।1।।

पाँच और पचीस डोरि पोढ़ि बांधि रहु रे।

साधि चित्त नित्त भाव चरनन गुरु परु रे।। 2।।

रहि निहारि निरखि रूप अनत नाहिं टरु रे।

जुक्ति जोग भक्ति का अदेस ऐसे करु रे।। 3।।172

मन-पवन को अधिकार में करके सहज मार्ग पर चलकर अष्ट कमलदल में प्रविष्ट होना योग है, किन्तु ऐसा न करना योग नहीं रोग है।173 योग तत्त्वों में ध्यान का प्रमुख रूप से महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसीलिये जगजीवन साहब ने गर्व174 और भ्रम175 आदि त्यागकर ब्रह्माण्ड में ध्यान लगाने की चर्चा की है। मन-मारने से ध्यान में दृढ़ता आती है।176 योग की कठिनाई पर अपना विचार प्रकट करते हुए जगजीवन साहब का कथन है कि योग साधना कोई सरल एवं सहज अर्थ नहीं प्रत्युत कठिन है-

साधो कठिन जोग है करना।

जानत भेद वेद कछु नाहीं, नाहक बकि बकि मरना।।1।।

द्वादस आंगुर पवन चलतु है, नाहिं सिमटि घर ओना।

ना थिर रहहि न हटका माने, पलक पलक उठि धोना।।2।।

दुइ आंगुर मो ताज रहे, तब करै एक सी गौना।

तहाँ अमूरति संग बसेरा, तेहिका होइ खिलौना।। 3।।

रहि तेहि साथ सनाथ करै सो, रमत रहै तेहि भौना।

जगजीवन सतगुरु के मूरति, निरखो निर्मल ऐना।। 4।।177

अव्यक्त की कृपा एवं दया होने पर योग साधना178 में दृढ़ता आने के साथ-साथ मन ध्यान179 की ओर उन्मुख होता है।

208. सन्त कवि नवलदास, साधना और साहित्य, डॉ. राधेश्याम द्विवेदी, पृ. 339

209. सुनहु उमा जेहि मरै न कोई, मम गोरष समान तेहि होई।

पवन पान को करि अभ्यासा, बूझे इड़ा पिंगला स्वांसा।

दसवां द्वार उघरि जब जाई, औ तेहि मा फिरि पवन समाई।

करम करम कुंभक करै, रेचक कर्महि कर्म।

दास नेवल सोइ जोग है, मिटै काल भै भर्म। - सु. सा., अ. 3, दोहा 1

210. क- सात स्वर्ग अपवर्ग समेता, दरसन तीन लोक मंह जेता।

छठयें बूध सुषमना घाटा, सतवें सोम तालु मंह सांटा।

अनहद तीन प्रकार तंह, श्रीग ताल घड़ियाल।

अमी चुवत है सोम ते, निकट न आवै काल। - सु. सा. अ. 3, दोहा 2

ख- क्षीर समुद्र शरीर मां, लोचन द्वारा जौन।

दास नेवल जौ कै उपर तिल मां तीनिउ भौन।

गगन भवन बिच कोठरी, जानै बिरला कोय।

सतकुंजी सतगुर लिहे, प्रसन्न तापर होइ। - ज्ञा. स., अ. 1, दोहा-9

ग- त्रिकुटी वर सुषमनि वहै, वहै त्रिवेणी नाम।

तासु मध्य निर्गुण बसै, दास नेवल बसु जाम। - सु. सा., अ. 16, दोहा-9

211. बारह बरिस रहयो जल सायन, क्रिया एक फिरि किहे उपरायन।

चौबिस बरिस रहयौ पय हारी, औ सै बरिस दिगम्बर धारी।

तीस बरिस पंचागिनि तापेउ, षोडस अच्छर निसि दिन जापेउ।

ढाढ़ेस्वरी नखी सुनि पायौ, साढ़े साठ लहि एनहि कमायो।

झूला झूलि रहया दिन राती, छत्तिस बरस जरावत छाती।

165. नाथ सिद्धो की बानियाँ, पृ. 70

166. वही, पृ. 105

167. नाभि कंवल मन चले पवन ले, अष्ट कमल समाई रे।

पदुम पात्र पर नीर रहत ज्यों, जैसे रहे ठहराई रे।। - महाप्रलय, पृ. 14

168. मनै चढ़ावै मनै उतारे, मन थिर होइ ठहराना रे।

मन संग प्रान पवन सुष पावे, तबहीं जोग दिढ़ाना रे।। - वही, पृ. 14

169. जाइ पवन षट चक्र में वेधै, तबही भक्ति दिढ़ानी रे।

जुक्ति तजै अस करे भाड़ गति, भूलै ते अग्यानी रे।। - वही, पृ. 14

170. नाभी नीर कंवल महं सब्द मिलि करै झनकार।

बाजी अवाज ब्रहमंड महं कोइ विरला करत विचार।। - ग्यान प्रकाश, पृ. 19

171. अष्ट कमल दल भीतर राजा, पाँच तत्त को राव।

त्रिकुटी मध्य दृष्टि करु, नैनन, ताही तहाँ लगाव।

मणि समान दीपक करु मनसा, जोति में जोति मिलाव।।

मन औ पवन होत जब इकतर, नाहीं बीच बराव।

जगजीवन के प्रभु सिर नायक, आनन्द मंगल गाव।। - जग. सा. की बा. भाग पहला, पृ. 61

172. जग. सा. की बा. भाग पहला, पृ. 83-84

173. पाइ जोग केहु भांड गति, गहि दम सॉस न आवै।

दुखित होत तन फूलि मसक से, दुइ कर पेट ठठावै।।

यहु नहिं जोग रोग है भाई, साधू नाहिं बतावै।

सहज रीति मन साध पवन गहि, अठदल कमल समावे।।

- जग. सा. की बा. भाग-2, पृ. 40

174. (क) साधो साधु अंतर ध्यान।

दीन लीन शीतल हवै, तजहु गर्व गुमान।। - वही, पृ. 224

(ख) अस्थूल मन मनि शब्द सत घट समुझि ध्यान लगायऊ। - परमनाम, पृ. 24

175. (क) अब दिढ़ताइ ध्यान करु भव महँ।

बिछरै न छिन छिन घरी पल, हरिदम निरषि नियराइ रे।।304

जीवात्मा का परमात्मा से मिलन होने पर उसकी समस्त तड़पन मिट जाती है। वह प्रियतम की छवि को देखकर निहाल हो उठती है। उसके अंदर का समस्त कालुष्य नष्ट हो जाता है। उसे प्रिय का प्रेम रस और दर्शन एक अभिनव औषधि के समान प्रतीत होता है-

संजोग आइ मिलिहहिं, मिटिहि कुलफति जेहि घरी।

निरषि होहुँ निहाल सत छवि, मिटि करवर सब अरी।।

पिउ प्रेम रस और दरस, अमित वोषधी बूटी जरी।।

सुचित तहदिल सेज सुषमनि, चरन तर ते ना टरी।।305

तोंवरदास का विचार है कि जीवात्मा परमात्मा से वियुक्त होकर क्षणभर के लिए भी चैन नहीं पा सकती इसलिए वह प्रियतम के वियोग में विकल होकर तड़प उठती है। उसकी यह वेदना हरि-मिलन से ही दूर हो सकती है-

नहिं नैनन्ह नींद लागत, स्याम मूरति मन गड़ी।।

तज्यौं सकल सिंगार भूषन, रैनि दिन व्याकुल खड़ी।।

तपत अंतर विरह ज्वाला, षुरकि जियरा मन बड़ी।।

कोठे जो चढ़ी पुकारती, सूरति सोहागिल तहँ अड़ी।।

हरि मिलैं मेटैं दुचिताई, कर जोरि कै पायन पड़ी।।306

वियोगिनी आत्मा अपने प्यारे प्रियतम को ढूढ़ते-ढूढ़ते थक जाती है, किन्तु वह हिम्मत नहीं हारती। वह प्रियतम के चरणों में गिरकर उसका पता पूँछना चाहती है। उसे अपने मृत्यु की भी चिंता नहीं रहती, क्योंकि उसने कफन बाँधकर प्रियतम को पाने का दृढ़ निश्चय कर लिया है-

थकित दूढ़त भइउ प्यारे, बसहु कौने देस रे।।

परि चरन चाहैं पूँछती, सत कंथ पंथा वेस रे।।

पहिर कफनी फिरिउ दर-दर, रमत जोगिनि भेस रे।।

मन के मलोला मारती, को कहै प्रेम संदेस रे।।

बौरानि बिकल देवानिया, उर अंदर अंदेस रे।।

हेरत बहुत दिन बीति गे, भे सेत काले केस रे।।307

मन का हनन्। चर्यापदों की रूपक-प्रधान शैली में चित्त के हनन् को चंचल मूषक के हनन् तथा शतरंज की गोटी के हनन् के रूपकों में व्यक्त किया गया है। भुसुकुपा इस चंचल चित्त रूपी मूषक को मारने का आदेश योगियों को देते हैं ताकि वे 'अवणा गवणा' से मुक्ति पा सकें।[२९] कृष्णपा करुणारूपी पीढ़िका पर साधनारूपी शतरंज खेलते हुए ठाकुर को मति द्वारा (वज़ीर द्वारा) पराजित करने का उल्लेख करते हैं।[३०] मति के अर्थ टीका में प्रज्ञापारमिता ज्ञान तथा ठाकुर का अर्थ चित्त बताया गया है। चित्त रूपी ठाकुर के मारे जाने का अर्थ है चित्त का परि-निर्वाण में स्थित होना।[३१] तिल्लोपा अपने दोहों में निर्वाण द्वारा चित्त का हनन् कर उसे मारने का उपदेश देते हैं।[३२] जब वह मर जाता है तब वह पवन में लीन हो जाता है।[३३] महामुद्रा की साधना के लिये इस चित्त का मारना और निर्मूल कर देना अनिवार्य है।[३४] इस प्रसंग में मारने या हनन् करने का भी एक परम्परागत रासायनिक अर्थ ही है।

चित्त का हनन्

रसेश्वर सम्प्रदाय में परम्परागत रासायनिक प्रक्रियाओं के आधार पर मन को पारद की संज्ञा दी गई थी। वह चंचल है। उसे बद्ध कर उसको मृत कर दिया जाता था और विशोधन की प्रक्रिया से स्थिर और निश्चल हो जाने वाले पारे को मूर्छित, और शुद्ध पारा कहते थे और तब उसका अभ्रक से संयोग कराया जाता था जो गौरी का रज है।[३५] इस पारे के हनन और विशोधन में पवन विशेष साधन था। पवन में लीन बद्ध-पारा मनुष्य साधक को उड़ने की शक्ति दे देता था। सिद्धों ने भी मृत चित्त की पवन में लीन होने की बात कही है। जिससे उनका अर्थ वज्र चित्त को कमल तक ले जाने वाली श्वास-प्रक्रिया से है। तथा मृत्यु का विकल्प करने वाले इस चित्त को खेचरी पद भी प्राप्त हो जाता है। बौद्ध अष्ट महासिद्धियों में भी रसरसायन के बाद ही खेचरी की गणना की गई है। इससे स्पष्ट है कि चित्त के हनन से भी सिद्धों का तात्पर्य रसायनिक प्रक्रिया में वर्णित पारे के रूपक से चित्त को हठयोग में प्रवृत्त करना है।

अमनसिकार

पुरानी बौद्ध परम्परा में इसी प्रक्रिया को अमनस्कार, या अमनसिकार साधना कहते थे। सिद्धों ने इस शब्द को भी अपनाया है और उसका प्रचुर प्रयोग किया है। प्रबुद्ध साधक को उन्होंने स्वतः को 'भवभंजन अमनसिकार' मानने का उपदेश दिया है।[३६]

रजनी है, उसी को प्रज्ञाज्ञानाभिषेक-दान का समय भी कहते हैं। उसी में कमल या महाउष्णीष कमल का विकास होता है।[१४] इसी रात्रि के कारण बोधिचित्त की नवचन्द्र के रूप में कल्पना की गई है।[१५]

सिद्धों ने इस बोधिचित्त समुत्पाद के लिये चार शब्द प्रयुक्त किये हैं। पहला है 'विशोधन' दूसरा है 'हनन्'। इन दोनों के पीछे एक तान्त्रिक परम्परा थी जैसा हम आगे देखेंगे। इनके अतिरिक्त कहीं कहीं 'स्थिरीकरण'[१६] या 'दृढ़ीकरण'[१७] का भी प्रयोग है। 'स्थिरीकरण' तो चित्त की चपलता के कारण प्रयुक्त है। इस चंचलता का उल्लेख पहले किया जा चुका है। उसे दृढ़ भी इसीलये कहा गया है कि बोधिचित्त च्युत नहीं होता।

चित्त-विशोधन

किन्तु सिद्धों ने जिस शब्द का विशेष प्रयोग किया है वह है 'चित्त विशोधन'। सरहपा इस चित्त को महासुख द्वारा शोधनीय बताते हैं।[१८] तिल्लोपा भी चित्त को सहज ज्ञान से शोधित करने का उपदेश देते हैं[१९] और दोनों ही इसके द्वारा मोक्ष की सिद्धि बताते हैं।

यह 'विशोधन' शब्द वास्तव में रसायन शास्त्र और उस पर आधारित वज्रयान में प्रयुक्त प्राचीन परम्परागत शब्द है जो तान्त्रिक सम्प्रदायों में पारे के विशोधन तथा उसके द्वारा काया के अजरत्व और अमरत्व की प्राप्ति के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता था।[२०] पिछले अध्यायों में हम देख चुके हैं कि रसेश्वर सम्प्रदाय में अभ्रक को पार्वती का रज तथा पारे को शिव का शुक्र मानकर रस साधना की जाती थी और उससे अमर शरीर की प्राप्ति की कल्पना की जाती थी। रसेश्वर सम्प्रदाय की प्राचीनता के किसी निश्चित प्रमाण के अभाव में यह कहना तो उचित न होगा कि सिद्धों ने यह कल्पना रसेश्वर सम्प्रदाय से ग्रहण की है, किन्तु धातुओं के विशोधन द्वारा अमरत्व या स्वर्ग की प्राप्ति की परम्परा से ही यह शब्द सिद्धों ने तथा उनके समकालीन आचार्यों ने ग्रहण किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। कहीं कहीं तो उन रासायनिक प्रक्रियाओं का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है जिनमें रस स्पर्श से ताम्र के स्वर्ण बनाने का या मधु तथा घृत के रसायन रूप सेवन का विधान है।[२१]

सिद्धों ने इसको दूसरे अर्थ में प्रयुक्त किया है। बुद्ध की तीन कायाओं में से परम्परागत सर्वमान्य धर्मकाया धर्म-धातु से निर्मित होती है। धर्मधातु अजर,

इसी को संधाभाषा में उलटवाँसी शैली में ढेण्ढणपा बैल द्वारा प्रसव और गो के बन्ध्यात्व के रूपक में अभिव्यक्त करते हैं। अर्थात जब तक बोधिचित्त नैरात्म्य से संग नहीं करता तब तक वह बलद के रूप में रहता है और उससे संसार उत्पन्न होता रहता है। जब वह ज्ञान प्राप्त कर ख-सम या नैरात्मा रूप गाय हो जाता है तब वह संसार का उच्छेद कर बन्ध्या हो जाता है। बोधचित्त के पहले रूप को सांवृत स्पन्द रूप कहा गया है।[५] इन दोनों विशेषणों को समझ लेना आवश्यक है। सम्वृत सत्य परमार्थ सत्य के विपरीत भवज्ञान रूपी सत्य को कहते हैं।[६] इस अवस्था में बोधिचित्त संसार-लिप्त और सम्वृत रहता है। स्पन्द के अर्थ 'चलनशील' हैं। 'स्पन्द' वास्तव में त्रिकवादी काश्मीरी शैवों का शब्द है।[७] और अभिनवगुप्त इससे मन की उस अवस्था का बोध कराते हैं जिसमें वह 'किंचिच्चलनशील' रहता है और अहम्-संलग्न होने के कारण उसमें नानात्व का आभास रहता है।[८] सिद्ध 'स्पन्द' शब्द का अर्थ 'किंचिच्चलनशील' ही लेते हैं और क्योंकि चलनशील चित्त से उनका तात्पर्य भव-निमज्जित चित्त से है। अतः साम्वृत स्पन्द रूप में भी बोधिचित्त में थोड़ी सी चंचलता या भवचेतना रह जाती है जिनके कारण उसके च्युत होकर साधनास्खलित होने का भय रहता है। काण्हपा ने स्पष्ट कहा है कि शुक्रद्रवाकार विमल सलिल रूपी बोधिचित्त भी सूख जाता है यदि उसमें कालाग्नि पैठ जाय।[९] किन्तु इस साम्वृत स्पन्द शुक्रद्रवाकार चित्त को नैरात्म्यज्ञान रूपी रज से युक्त कर देने पर यही चित्त 'वज्र' हो जाता है।[१०] इस प्रज्ञोपाय युगनद्ध के कारण इसको सहज-चित्त भी कहते हैं।

बोधिचित्त समुत्पाद

विज्ञानवाद में चित्त को भवजाल से मुक्त कर करुणा से समन्वित कर साधना के लिये अग्रसर करने की प्रणाली को समुत्पाद कहा जाता था। उसको वे साधना का महारम्भ, चित्त का महाउदय तथा साधक का महाउत्साह कहते थे।[११] इस समुदित करुणा-समन्वित महा-चित्त के लिये वे पृथ्वी, रत्नाकर, चिन्तामणि, नौका तथा मेघ आदि के रूपकों[१२] का प्रयोग करते थे जिसमें से कई अप्रस्तुत सिद्धों ने भी अपने चर्यापद में प्रयुक्त किये हैं।[१३] किन्तु समुत्पाद की भावना सिद्धों के साहित्य में इस रूप में नहीं आती। केवल एक स्थान पर चित्त-वृतियों के अस्त के बाद शीतल रजनी का उदय चित्रित है, वह रजनी प्रज्ञा या शून्य की

सिद्धों ने इसमें से बोल कक्कोल योग द्वारा पंच महाभूतों को अन्तस्थ करना स्वीकृत किया।[३१] यद्यपि उसकी प्रणाली उन्होंने चित्त की एकाग्रता न रख कर प्रज्ञोपायात्मक घर्षण के रूप में संशोधित कर दी। नैरात्म्यज्ञान अथवा भगवती प्रज्ञा का स्थान उन्होंने हृदय के बजाय हिन्दू योग दर्शन के समान कपाल या मस्तक के अन्दर रक्खा। किन्तु चक्रों की संख्या उन्होंने घटा कर चार कर दी क्योंकि उनके योग का मूल आधार उनका परम्परागत तीन बुद्ध कायाओं के साथ चौथी सहज या महासुख काया (चतुर्काया) सिद्धान्त था। यह ४ की संख्या सिद्धों के हठयोग में उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी ५ की संख्या योगाचार में। चार कायाएँ हैं, चार क्षण हैं, चार मुद्राएँ हैं, चार आनन्द हैं चार शून्य हैं और चार चक्र हैं। ये चारों चक्र मेरुदंड में स्थित हैं।

काण्हपा इस मेरुदंड को मेरुगिरि या सुमेरु पर्वत के रूप में परिकल्पित करते हुए कहते हैं कि यह कंकाल रूपी श्रेष्ठ सुमेरु पर्वत है जिसके शिखर पर शबरी नैरात्मा का वास है। उसके मूल में कन्दरा (मूलाधार चक्र) है जिसमें विमल सलिल रूपी शुक्र वैरोचन बोधिचित्त स्थित है। अन्दर ही अन्दर कालाग्नि है जो साधना के बिना अधोमुखी होकर शुक्र को सुखा डालती है, और पवन निरोध के बाद ऊर्ध्वमुखी होकर प्रकाश करती है और शुक्ररूपी उपाय भी प्रज्ञा के समागम के लिये गतिमान होता है।[३२] शबररूपी वज्रधर साधक[३३] को चित्रित कर उसी अपनी चर्या में शबरपाद भी मेरुदंड को सुमेरु परिकल्पित कर उसके ऊँचे शिखर पर शबरी का वास चित्रित करते हैं और उस शबरी को नैरात्मा सहज-सुन्दरी की संज्ञा देते हैं।[३४]

इस मेरुदंड के उच्चतम शिखर पर महासुखचक्र या उष्णीष कमल है जिसमें नैरात्मा का वास है। इसके मूल में नाभिचक्र है जिसमें बोधिचित्त शुक्ररूप में वास करता है। इसके बीच में दो चक्र और हैं, हृदय प्रदेश में और कंठ के समीप। इन चार चक्रों को चार कमल के रूप में परिकल्पित किया गया

है। इनको नीचे से क्रमशः नाभिकमल, हृत्कमल, सम्भोगचक्र तथा उष्णीष कमल कहा जाता है।[३५] बौद्ध तन्त्रों में प्राप्त इन चक्रों के वर्णन पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

पहली महत्वपूर्ण बात यह है कि इन चारों चक्रों में बुद्ध की चार कायाओं का वास माना गया है और उन्हीं पर इन चक्रों का नामकरण भी कर दिया गया है। उष्णीष कमल में महासुख काया है अतः उसे महासुख चक्र भी कहते हैं। कंठ के समीपवर्ती चक्र में सम्भोगकाया है अतः वह सम्भोग चक्र है। हृदय प्रदेश में स्थित चक्र में धर्मकाया अतः वह धर्म चक्र और नाभि में निर्माणकाया अतः वह निर्माण चक्र कहा जाता है। यहाँ पर एक बात विचारणीय है। इन चक्रों के प्रसंग में कायाओं के क्रम में कुछ व्यतिरेक हो गया है। परम्परा में निर्माण के बाद सम्भोगकाया और सम्भोग के उपरान्त धर्मकाया, यह क्रम चला आ रहा था। चक्रों में इन कायाओं को स्थापित करते समय वज्राचार्य ने धर्मकाया को नीचे और सम्भोगकाया को ऊपर स्थान दिया। यह क्रम बदल क्यों दिया गया इसका कोई भी स्पष्टीकरण नहीं मिलता।[३६] इसके सम्बन्ध में एक अनुमान यह किया जा सकता है कि सम्भोगकाया में ही भगवान तथागत ने सूत्रों तथा संगीत साहित्य का उपदेश दिया था और यही काया 'उपाय-कौशल' से सम्बद्ध है। अतः इसकी सक्रिय उपाय-सिद्धान्त से अधिक निकटता है और इसी कारण प्रज्ञोपायात्मक योग में इसे महासुख-काया के पहले और धर्मकाया के ऊपर स्थान मिला हो क्योंकि यह हम देखते आ रहे हैं कि प्रज्ञोपाय सिद्धान्त के निर्वाह के लिये सिद्धों ने पूर्वागत परम्परा में यथेष्ट संशोधन किये हैं। हेवज्र तन्त्र में भी सम्भोग काया को ६ रसों के उपभोग की काया बताया गया है।[३७] अतः इस क्रम व्यतिरेक का यह कारण ठीक ही मालूम देता है।

इन चक्रों को कमल के रूप में चित्रित किया गया है और लगभग सभी तन्त्र इस बात से सहमत हैं कि निर्माण चक्र में ६४, धर्म चक्र में ३२, सम्भोग चक्र में १६ और उष्णीष कमल या महासुख चक्र में ६ पाँखुरी हैं।[३८] इन कमल की पाँखुरियों पर बीजाक्षर भी अंकित हैं। महासुख चक्र पर हः अंकित है, इसी कमल में चन्द्र की षोडश कलाओं से अभिषिक्त योगिनी का वास है जिसके दो ओर आली तथा काली स्वभाव की ललना तथा रसना नाड़ियाँ स्थित हैं। ये ही षोडश कलाएँ दिन तथा रात्रि के स्वभाव का अनुगमन कर द्विगुणित होकर ३२ पाँखुरियों का रूप धारण कर लेती हैं। हेरुक तन्त्र में महा-

इसका साक्षात्कार अपनी देह में अपने ही चित्त के अन्तर्गत प्राप्त करने की प्रणाली काण्हपा इस प्रकार बताते हैं कि पहले साधक को प्रज्ञोपाय की एकता पर ध्यान करना चाहिये। इसके लिये उसे 'एवं' बीजाक्षर को केन्द्र बनाना चाहिये।[३] एवं का अर्थ प्रज्ञा और उपाय या कमल और कुलिश, या पद्म और वज्र है।[४] इस ध्यान में एवं के प्रज्ञोपाय युगनद्ध से सहज-ज्ञान की उत्पत्ति होती है,[५] जो बिन्दु रूप में होता है और ऊर्ध्वगामी होता है।

इस 'एवं' युगनद्ध से चित्त में ही पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है इसका उल्लेख टीकाकार ने हेवज्र तन्त्र के उद्धरण से स्पष्ट किया है।[६] उसमें प्रज्ञा तथा उपाय को कक्कोल और बोल कहा गया है। यह नाम हमें और भी कई स्थानों पर मिलता है।[७]

इस बोल कक्कोल योग से स्पर्श और काठिन्य धर्म की अभिव्यक्ति पृथ्वी के रूप में होती है।[८] इसी सहज से बोधिचित्त की उत्पत्ति होती है जिसे शुक्र या वज्रोदक[९] कहा गया है। इसी से अप्धातु की उत्पत्ति होती है। यह चन्द्र रूप है। इसी से जल उत्पन्न होता है। जब यही बोधिचित्त वज्र या कुलिश के रूप में पद्म अथवा कमल प्रज्ञा से घर्षण करता है तो उससे तेज धातु अग्नि की उत्पत्ति होती है। उसके चलने से, हिलने से वायु की उत्पत्ति होती है और जो सुख प्राप्त होता है वही आकाश है। ये वही पाँच महाभूत हैं जिन्हें अशुद्ध चित्त बाह्य साँसारिक तत्वों के रूप में परिकल्पित कर भवजाल में उलझ जाता है किन्तु इन्हीं को जब बोल कक्कोल योग से प्रज्ञोपाय युगनद्ध का ध्यान करते हुए अपने ही अन्दर अनुभव करता है तो पूर्णता को प्राप्त होता है।[१०]

इस योग का मूल रूप हमें विज्ञानवाद की 'झाण' (ध्यान) साधना में मिलता है। विज्ञानवाद ने चित्त को एकमात्र सत्य माना था अतः विज्ञानवाद में भी भव की स्थिति और पंच महाभूतों की स्थिति मन के अन्दर ही मानी गई थी और 'झाण' या ध्यान साधना में बाह्य भव-प्रवाह से मुक्त होने के लिये साधक एकान्त में जाकर इस बाह्य दृश्यमान जगत का चित्त के अन्दर साक्षात्कार करने की साधना करता था।[११] इसका साधन था चित्त की एकग्गता (एकाग्रता)। योगाचार के अनुसार पहले साधक को अर्हन शब्द को अपने मन में धारण कर उसी पर ध्यान एकाग्र

पूर्व-परम्परा

क्योंकि उसमें जमुना का अंश है और न उसे गंगा-यमुना का अद्वय ही कह सकते, वह गंगा ही कहलाती है, उसी प्रकार इस तन में निहित तत्व भी भाव और अभाव, भव निर्वाण दोनों से ही परे है। इसी में चन्द्र दिवाकर का भी वास है है। उसमें ये पुराने परम्परागत तीर्थ ही नहीं बुद्ध-क्षेत्र और सहज सिद्धि के पीठ आदि भी हैं। ये धर्म-महासुखपीठ हैं। ऐसे अद्भुत तीर्थ को छोड़कर बाह्य तीर्थों में भ्रमण करने से क्या लाभ है।[१२६]

देह को समस्त तीर्थों, क्षेत्रों तथा पीठों का आलय मानने की भावना सभी तान्त्रिक सम्प्रदायों और योगमार्गों में प्रचलित थी। कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर और ओडियान इन पाँचों प्रख्यात तन्त्र पीठों का स्थान इस शरीर में ही बताया गया है (योगसार)।[१२७]

अतः यह देह का महत्व केवल शुद्ध भौतिक दृष्टिकोण से प्रतिपादित नहीं किया गया था। इसके पीछे एक गूढ़ आध्यात्मिक रहस्य था। इसीलिये हेवज्र तन्त्र में महासुख को देह में स्थित बताया है किन्तु 'देहज' नहीं।[१२८] प्रज्ञोपायात्मक ज्ञान से जब साधक अपनी देह को भी तथागत के स्वभाव का जान लेता है तब यही देह धर्मकाया हो जाती है।

जो पाँच डालों वाली तरुवर रूपी विनाशमान काया है उसे साधक धर्मकाया के रूप में परिलक्षित करने लगता है। उस समय वह काया में रहते हुए भी काया से भिन्न रहता है। यदि काया से संयुक्त हुआ, उसमें लिप्त हुआ तो उसको ज्ञान नहीं प्राप्त होता।[१२९] किन्तु यदि वह अपनी काया में वास करने वाले अशरीरी बुद्ध को जान लेता है, बुद्धकाया को जान लेता है तो वही ज्ञानवान व्यक्ति 'कायस्थ' कहलाता है।[१३०] वह पवन रूपी काल का निरोध कर चन्द्र दिवाकर का संगम कर अजरामर शरीर प्राप्त कर लेता है और उसी को सिद्ध कहते हैं।[१३१] इसी शरीर में स्थित मेरुदण्ड के सहारे पवन के निरोध से बोधिचित्त ऊर्ध्वगामी होता है। चारों चक्रों को भेद कर नाड़ियों में से होता हुआ प्रज्ञा-कमल से संगम करता है तभी रस (अमृत) की वर्षा होती है। यही कमल-कुलिश योग है जिस पर अब हम विचार करेंगे।

तन्त्रों में स्वरों को रात्रि से और व्यंजनों को दिन से सम्बद्ध माना गया है अतः आली-वाहिका नाड़ी ललना रात्रि है, चन्द्र है, शशि है, उससे द्रवित सोम है, प्रज्ञा है, इसी प्रकार काली-वाहिका रसना सूर्य है, रवि है, अग्नि है। इन्हीं में से प्राण से राहु तथा अपान से कालाग्नि की उत्पत्ति होती है।[७४] धमन और चमन के अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाते पर बागची का अनुमान है कि धमन संभवतः ध्म धातु से है जिसके अर्थ हैं जाना, गति और चमन 'चम्' धातु से है जिसके अर्थ हैं निगलना[७५]। इन नाड़ियों में से वामस्थित ललना शुक्र का वहन करती है और रसना रज का और अवधूती रज-भूषित शुक्र अथवा प्रज्ञोपाय अद्वैत रूपी बोधिचित्त का इसीलिये इसको सहज पथ भी कहा गया है।[७६] इसीलिये यह नैरात्मा या सहजसुन्दरी भी कही गई है। यह जोगिनी भी कहलाती है। चर्यापदों में अवधूती के दो रूप मिलते हैं, परिशुद्धा और अपरिशुद्धा। परिशुद्धा अवधूती को डोम्बी कहते हैं जिससे बोधिचित्त समागम करता है और अपरिशुद्धा को छिनाली भी कहते हैं क्योंकि वह भेद ज्ञान युक्त होती है।[७७]

अपान वायु से कालाग्नि प्रज्ज्वलित होती है जो अधोमुखी रहने पर शुक्र को सुखा डालती है और मनुष्य की शक्तियों का क्षय होता रहता है।[७८] कारहपा के टीकाकार ने इसी शुक्र को बोधिचित्त बताते हुए कहा है कि अपान निम्नगा वायु होती है और उसके वशीभूत होकर बोधिचित्त पतित कहलाता है और उसका विनाश हो जाता है। इसी को लुईपा ने चंचल चित्त में काल का प्रवेश करना बताया है।[७९] अतः काल पर विजय प्राप्त कर बोधिचित्त को उद्बुद्ध करने के लिये पवन का निरोध करना आवश्यक है। सरहपा ने कहा है कि जो वायु बहती है (अधोमुखी या ऊर्ध्वमुखी, अपान या प्राण) वह जब निश्चल हो जाती है तब उस योगी का काल क्या बिगाड़ सकता है।[८०] तिलोपा के अनुसार ऐसी ही बद्ध नियन्त्रित वायु में लीन होकर चंचल चित्त मृत[८१] अर्थात विशुद्ध हो जाता है।[८२] इसी को कुक्कुरीपा कुम्भीर फल (कुम्भक योग) कहते हैं और सांस की निद्रा (श्वास की निश्चलता) कहते हैं।[८३] इसी पवन के निरोध को सरहपा पवन का क्षय भी कहते हैं।[८४] इस साधना में वायु के निश्चल करने के अर्थ हैं प्राणवायु को ऊपर जाने और अपान वायु को नीचे जाने से रोक कर यथास्थान रोक देना ताकि उसे चित्त भी चंचल न रह कर स्थिर और एकाग्र हो जाय। अध-ऊर्ध्व से विमुक्त बोधिचित्त उसी समय प्राण अपान से विमुक्त तथता-स्वरूप का हो जाता है।[८५] इसी से कारहपा ने ऐसी गृहणी को इस बोधिचित्त का

प्रतीक माना है जो घर ही में रहती है बाहर नहीं आती जाती है।[८६] इसके लिये कुम्भक, रेचक, पूरक आदि का विधान है[८७] जो योगाचार में ही अपनाया जा चुका था।[८८]

प्रमुख हैं ललना, रसना और अवधूती।[61] चर्यापदों में इन तीन नाड़ियों को विभिन्न प्रतीकों से लक्षित किया गया है। विरूपा अवधूती की (शुंडिनी) मधुबाला से उपमा देते हैं जो दो स्थानों से मद को खींचती है, ललना और रसना।[62] इसी को गुंडुरी तिअड्डा या त्रिनाड़ी कहते हैं।[63] इनमें से ललना वाम नासापुट के समीप है, वह चन्द्र स्वभाव की है और प्रज्ञारूप है।[64] रसना दक्षिण नासापुट के समीप है, सूर्य स्वभाव की है और उपायरूप है।[65] इन्हीं दोनों को नैरात्म-दर्शन की परिभाषा में ज्ञेय और ज्ञान, ग्राह्य ग्राहक भी कहा जाता है और अवधूती इन दोनों के बीच ग्राह्य-ग्राहक-वर्जित रूप में स्थित है। उसी नैरात्म्यज्ञान रूपी मध्यम सहजपथ की भाँति वह क्लेशों को धुनने वाली है अतः उसका नाम अवधूती है।[66] इसी अवधूती में से होकर शुक्र नामक और भी सूक्ष्म नाड़ी है जिसमें से बोधिचित्त उर्ध्वगामी होता है विन्दु रूप में।[67] यह नाड़िका वैरोचन द्वार में लीन होती है जो नवद्वारों के अतिरिक्त दसवां द्वार है।[68]

चर्यापदों का यह नाड़ीजाल हिन्दू योग परम्परा में भी मिलता है। योग साधना में भी मेरुदंड के वहिःपार्श्व में चन्द्र और सूर्य रूपी इड़ा और पिंगला नाड़ियों की स्थिति बताई गई है। बीच में सुषुम्णा है जो मेरुदंड के विवर में है और वह अग्नि रूपी है।[69] इड़ा वामगा है, देवी है; पिंगला शिव है, सूर्य है। इड़ा यमुना है, पिंगला सरस्वती है, सुषुम्णा गंगा है। इस प्रकार त्रिवेणी बनती है।[70] इनमें से सुषुम्णा भी त्रिगुण के अनुसार ३ नाड़ियों का गुम्फन है। सत्वगुणमयी चित्रिणी, रजोगुणमयी वज्रा, और तमोगुणमयी सुषुम्णा, इसीलिये उसे अग्निमयी बताया गया है।[71] शंखिनी रूपी नाल को ग्रहण कर वह ब्रह्मसदन को जाती है।[72]

हेरुक-तन्त्र में भी ललना रसना की यही स्थिति बताई गई है। ललना या आली धनुषाकार रूप में गर्दन से प्रारम्भ होती है और नाभि में वाम दिशा से प्रवेश करती है। रसना नाभि से प्रारम्भ होती है और कंठप्रदेश में होती हुई अवधूती वैरोचन द्वार तक जाती है। इसीलिये उसे मध्यम कहा गया है। चूंकि ललना और रसना को प्रज्ञोपाय कहा गया है अतः यह सहज है।[73]

तन्त्रों तथा चर्यापदों में विभिन्न प्रतीकों में आली काली, गंगा यमुना, सूर्य चन्द्र, धमन चमन, ललना रसना का उल्लेख है। इन नामों में से कुछ युग्मों पर विचार कर लेना आवश्यक है। आली के अर्थ हैं अ से प्रारम्भ होने वाली स्वर माला, और काली के अर्थ हैं क से प्रारंभ होने वाली व्यंजन माला।

इसके पहले कि हम दोहों और चर्यापदों में इन चक्रों के उल्लेख पर दृष्टिपात करें, इन चक्रों की तुलना हिन्दू परम्परा के षटचक्रों से कर लेनी आवश्यक है। षटचक्र परम्परा में सहस्रार के अतिरिक्त छः चक्र और सहस्रार को सम्मिलित कर ७ चक्र माने गये हैं। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, तथा सहस्रार। मूलाधार-पद्म उपस्थ तथा गुदा के बीच रीढ़ मूल में स्थित चतुर्दल कमल है।[४२] स्वाधिष्ठान लिंगमूल में[४३], दशदलयुक्त मणिपूर चक्र नाभि प्रदेश में[४४]; द्वादशदली अनाहत चक्र हृदय प्रदेश में;[४५] सोलह दलों से युक्त विशुद्धाख्य चक्र कण्ठ प्रदेश में[४६]; द्विदल युक्त आज्ञाचक्र भ्रू मध्य ललाट में स्थित है।[४७] अंत में सहस्रार चक्र है जिसमें सहस्र पाँखुड़ियाँ हैं जहाँ पवन विलीन हो जाती है और बुद्धि का उद्भव होता है।[४८]

हिन्दू योग के चक्रों से तुलना

इस षटचक्र परम्परा से तुलना करने पर हम पाते हैं कि मूलाधार और

स्वाधिष्ठान नामक चक्रों की तरह बौद्ध साधकों में लिंगमूल में कोई भी चक्र नहीं है। उनकी चक्र परम्परा नाभि[४९] से प्रारम्भ होती है और इसमें उन्होंने योगाचार की परम्परा का अनुसरण किया है।[५०] विशुद्ध और आज्ञा चक्रों में अधिकांश बौद्ध तन्त्रों ने सम्भोग चक्र के रूप में विशुद्ध को स्वीकृत किया है किन्तु सेकोद्देश में नडपाद ने विशुद्ध को अस्वीकृत कर आज्ञा की भाँति सम्भोग चक्र की स्थिति ललाट में मानी है। इसके साथ ही साथ बीजाक्षरों में भी उन्होंने बौद्ध तन्त्रों के एवम् आदि अक्षर लिये हैं और दलों की संख्या भी चार शून्यों की संख्या पर आधारित है।[५१] चार शून्यों के प्रतीक रूप में उष्णीष कमल में चार दल हैं और उसके कारण सभी तत्व चार ही हैं, मुद्राएँ, क्षण, आनन्द इत्यादि।

काण्हपा ने इस चतुर्दल से युक्त उष्णीष कमल का उल्लेख अपने दोहों में किया है।[५२] वे कहते हैं कि 'ललना रसना रूपी सूर्य चन्द्र दोनों को वर्जित कर चार दलों और चार मृणालों वाले कमल में महासुख का वास है।' टीकाकार इन चार दलों को शून्य, अतिशून्य, महाशून्य और सर्वशून्य बताता है। यह मेरुगिरि के शिखर पर स्थित उष्णीष कमल है। इसी को भुसुकुपा नलिनीवन या पद्मवन कहते हैं जिसमें प्रवेश कर चित्त की द्विविधा समाप्त हो जाती है।[५३] इसी में वास करने के कारण भगवती नैरात्मा को कमलिनी भी कहा गया है।[५४] यह उष्णीष कमल प्रज्ञाज्ञानाभिषेक के समय भरपूर खिल जाता है और इसमें से अमृत-वर्षण होता है।[५५]

सिद्धों के प्राप्य साहित्य में धर्मचक्र और सम्भोगचक्र की साधनाओं का उल्लेख लगभग नहीं के बराबर है तथापि उनमें प्राप्त परमानन्द और विरमानन्द का उल्लेख बराबर मिलता है, जिस पर हम आगे विचार करेंगे। किन्तु निर्माण चक्र[५६] का उल्लेख बराबर मिलता है क्योंकि पवन निरोध कर बोधिचित्त को उद्बुद्ध करने का साधनास्थल वही है। कृष्णपाद नैरात्मा को डोम्बी रूप में परिकल्पित कर कहते हैं कि चौंसठ पाँखुरियों वाला एक कमल है जिस पर चढ़ कर डोम्बीरूपी नैरात्मा नाच रही है।[५७] इस कमल का अर्थ टीकाकार निर्माण चक्र बताता है जिसमें चौंसठ पाँखुरियाँ होती हैं।[५८]

इन चक्रों के वेधन का मार्ग नाड़ियों में से होकर है। इन नाड़ियों की संख्या मुनिदत्त ने अपनी टीका में ३२ बताई है।[५९] हेवज्र में भी नाड़ियों की संख्या ३२ ही बताई गई है।[६०] इन बत्तीस नाड़ियों में से भी तीन नाड़ियाँ

परम तत्व के अतिरिक्त शून्य का व्यवहार नाथ-साहित्य में सहस्रार चक्र में स्थित ब्रह्मरन्ध्र के रूप में भी हुआ है—

गगन मंडल में सुंनि द्वार। बिजली चमकै घोर अन्धार।[१८]

इस गगन मण्डल को शून्य मण्डल के रूप में परिकल्पित किया गया है जहाँ अमृत झरता है—

सुनि मण्डल तहाँ नीझर झरिया। चंद सुरज ले उनमनि धरिया।[१९]

इस गगन मण्डल तक पहुँचने का पथ शून्य द्वार है जिसे सिद्धों की परम्परा का अनुसरण करते हुए मध्यम पथ भी कहा गया है—

मधि निरन्तर कीजै वास। निहचल मनुवा थिर होइ सास।[२०]

और इसे अध तथा ऊर्ध्व के मध्य में स्थित शून्य-मार्ग कहा गया है।

अरध उरध बिच धरी उठाई। मधि सुंनि में बैठा जाई।[२१]

तथा इसी मध्य-शून्य में प्राण-पुरुष का वास बताया गया है। 'मध्ये प्राण पुरिस का बासा।'[२२] गोरक्ष-पद्धति में भी शून्य को महेश का वासस्थान बताया गया है। 'शून्यं प्रविशति गगने यत्र देवो महेशः'[२३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाथ साहित्य में शून्य शब्द का व्यवहार तीन प्रसंगों में हुआ है।

क. परम तत्व नाद, परम ज्ञान, परम स्वभाव।

ख. ब्रह्मरन्ध्र, दशमद्वार अथवा मध्यपथ तथा सहस्रार चक्र, गगन मण्डल।

ग. शिव-लोक।

सन्त साहित्य में शून्य

परवर्ती सन्त तथा सूफी सम्प्रदायों में हमें इन्हीं तीनों परम्पराओं का विकास मिलता है और इन्हीं तीनों प्रसंगों में शून्य का प्रयोग हुआ है। सन्त परम्परा में हम शून्य का विकास इन्हीं रूपों में पाते हैं।

१. परम तत्व नाद तथा परम ज्ञान के रूप में।

२. ब्रह्मरन्ध्र तथा सहस्रार चक्र के रूप में।

३. परम लोक के रूप में।

प्रकार वर्षा की नदी की समस्त दिशाएँ अवरुद्ध कर एक ही दिशा उद्घाटित कर दी जाय तो उसमें अदम्य और अपराजेय शक्ति आ जाती है उसी प्रकार चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध कर एक ही दिशा में उन्हें निर्देशित किया जाय तो उनमें असाधारण दैवी शक्ति आ जाती है।[४]

बौद्ध तन्त्र-परम्परा में भी सिद्धियों के दो वर्गों को स्वीकार किया गया है। उत्तम तथा सामान्य। गुह्य-समाज-तन्त्र में अन्तर्धान आदि को सामान्य सिद्धि तथा बुद्धत्व-साधन द्वारा प्राप्त सिद्धियों को उत्तम कहा गया है।[५] यह बुद्धत्व साधन प्रज्ञोपाय-समापत्ति-योग या प्रज्ञोपाय समाधि ही है।[६] सेकोद्देश में भी दो प्रकार की सिद्धियाँ बताई गई हैं। लौकिक तथा लोकोत्तर। लोकोत्तर सिद्धि को महामुद्रा सिद्धि, अनुत्तर सिद्धि या महासुख की सिद्धि बताया गया है।[७]

इन सिद्धियों की संख्या यूँ तो अनगिनती है किन्तु फिर भी इनमें से प्रमुख तथा उत्कृष्ट सिद्धियों की एक संख्या निर्धारित करने की परम्परा रही है। ब्रह्मवैवर्त में मनोयातित्व, सर्वज्ञत्व, दूर-श्रवण, परकाय-प्रवेश, चिरजीवित, वायु-स्तम्भ आदि ३४ सिद्धियाँ बताई गई हैं।[८] कहीं कहीं सिद्धियों की संख्या १८ तथा २४ भी बताई गई हैं।[९] किन्तु हठयोग साधना में ८ प्रमुख सिद्धियाँ मानी जाती थीं।[१०] अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व तथा काम-वशायित्व। बौद्ध तन्त्रों ने भी इसी परम्परा का अनुगमन कर ८ विशेष महासिद्धियाँ स्वीकार की थीं किन्तु सम्प्रदाय भेद से ये अष्ट महासिद्धियां हिन्दू योगशास्त्र की अष्ट महासिद्धियों से अलग थीं। ये अष्ट महासिद्धियाँ थीं—खड्ग अंजन, पादलेप, अन्तर्धान, रस रसायन, खेचर, भूचर, पाताल।[११] उत्तम, अनुत्तर सिद्धि के अतिरिक्त इन लौकिक अथवा सामान्य अष्ट महासिद्धियों की भी उपलब्धि तान्त्रिक साधनाओं द्वारा हो जाती थी।

चर्यापदों में एक स्थान पर इन अष्ट महासिद्धियों का उल्लेख आया है। शान्तिपा वाम और दक्षिण मार्ग को छोड़कर, अर्थात् केवल शून्य या केवल करुणा, केवल रसना या केवल ललना, केवल उपाय या केवल प्रज्ञा का मार्ग छोड़कर मध्यम सहज पथ या ऋजु पथ को ग्रहण करने का उपदेश देते हुए यह कहते हैं कि उसमें महासुख की अनुभूति तो होती है, अष्ट महासिद्धियों की भी उपलब्धि होती है।[१२]

अभी तक प्राप्त बौद्ध तन्त्रों में इन सिद्धियों का सांगोपांग शृङ्खलाबद्ध

प्रतीक माना है जो घर ही में रहती है बाहर नहीं आती जाती है।[८६] इसके लिये कुम्भक, रेचक, पूरक आदि का विधान है[८७] जो योगाचार में ही अपनाया जा चुका था।[८८]

किन्तु इसके साथ ही साथ स्वेच्छा से लिंग और गुदा के समीप की मांसपेशियों का संकुचन कर एक प्रकार का मूलबन्ध भी किया जाता था जिससे शुक्र अधःपतित न हो।[८९] ये बन्ध देह के अन्दर स्थित विभिन्न पीठों ओडियान जालन्धर आदि के समीप की पेशियों को संकुचित कर किये जाते थे। इसी के आधार पर तन्त्रों में जालन्धर बन्ध, उड्डीयान बन्ध आदि उल्लेख मिलते हैं।[९०] इस मणिमूल बन्ध के कारण चन्द्र और दिवाकर रूपी ललना और रसना का निरोध हो जाने से अन्धकार हो जाता है।[९१] कालाग्नि का भी क्षय हो जाता है। तब उस समय साधक अवधूती का उद्घाटन करता है और चंडाग्नि रूपी आलोक ऊपर की ओर उठता है और उससे बोधिचित्त मणि की भाँति जगमगा उठता है। इसी को चान्डाली योग भी कहा जाता है।[९२] इसी चंडाग्नि के ऊपर पहुँच कर सभी क्लेश वासनाओं को जला कर भस्म कर देने का वर्णन चर्यापदों में बड़े सुन्दर ढंग से मिलता है। धामपा कहते हैं—कमल और कुलिश के मध्य में मैं लीन हो गया हूँ। समता योग से मेरी चांडाली प्रज्ज्वलित हो गई है। डोम्बी के घर में राग-दाह से आग लग गई है। शशहर (परिशुद्ध चित्त) को लेकर मैं आग को बुझा रहा हूँ। यह ज्वाला दाहक नहीं है, न इससे नयन में धुँआ लगता है। यह अग्नि सुमेरु शिखर में जाकर गगन में प्रवेश कर रही है। उससे हरिहर ब्रह्मादिक सब जल गये हैं। नवगुण वासना क्लेशादि सब इससे भस्म हो गये हैं। अन्त में पाँच नाड़ियों से जल पहुँचा।[९३]

टीका के अनुसार[९४] इसमें कमल कुलिश या ललना रसना के बीच में अवधूती मार्ग के उद्घाटन से चंडाली प्रज्ज्वलित करने का वर्णन है। यह महासुख रूपी राग की अग्नि है जो परिशुद्धावधूती रूपी डोम्बी के घर में लग गई है। इससे सभी विषयाश्रय दग्ध हो गये हैं। यह ज्ञानाग्नि है अतः इसमें दृष्टि-दोष (आँख में धुँआ लगना) नहीं होता। हरिहर और ब्रह्मा से मूत्र नाड़ी, शुक्र नाड़ी और विट नाड़ी परिलक्षित हैं। ये तीन उपनाड़ियाँ हैं और हिन्दू देवताओं को नीचा दिखाने के लिये इन्हें त्रिदेव की संज्ञा दी गई है। ये तीनों नाड़ियाँ भस्म हो गई हैं। पाँच नाड़ियाँ पूर्वोक्त तीन नाड़ियाँ तथा ललना और

रसना हैं।[९५] या टीका के अनुसार इन्हें चतुश्शून्य और अवधूती, इन पाँचों के रूप में गिनना अधिक संगत होगा। इन पाँचों से अमृत झरता है।

इस चंडाली के प्रज्ज्वलित होने के उपरान्त साधक वज्रजाप आदि साधनाओं से काय, वाक और चित्त को वज्र बना कर तब मध्यपथ, अवधूती को वधू के रूप में ग्रहण करता है। इस काय-वाक्-चित्त वज्र साधना की व्याख्या चौथी चर्या की टीका में की गई है जहाँ देवता योग से काय-वज्र, वज्र जाप द्वारा वाक्-वज्र और पवन निरोध द्वारा चित्त-वज्र का प्रतिपादन किया गया है।[९६] कृष्णाचार्य इसी काय-वाक-चित्त को त्रिशरण कहते हैं और उससे चतुर्थ अर्थात् महासुखकाय नौका रूप में ग्रहण करने का आदेश देते हैं।

मन हठ बेली सूकरण लागी सहजैं जुगि जुगि जीवै
दादू बेलि अमर फल लागै सहजि सदा रस पीवै ।२०५

इस प्रकार यह सिद्धों के प्रज्ञोपाय अद्वैत का सहज स्वभाव अन्त में भक्त स्वभाव में परिणत हुआ जिसमें राम के प्रति अनन्य भक्ति रखते हुए स्वयम् को उन्हीं को अर्पित कर सारी द्विविधा से मुक्त होना ही सहज स्वभाव माना गया है।

ग-सहज, साधना पद्धति के रूप में—

इस सहज स्वभाव की सिद्धि हठयोग द्वारा की जाती थी। सिद्धों में यह हठयोग महामुद्रा के मैथुन से सम्बद्ध था किन्तु नाथयोगियों में प्रमुखतः यह शिव और शक्ति के देहस्थ योग के रूप में स्वीकृत हुआ। सन्तों में हमें इस पद्धति के लिये बराबर सहज-योग नाम का प्रयोग मिलता है यद्यपि उसके दो अर्थ हैं। कहीं कहीं वह हठयोग की साधनाओं के लिये प्रयुक्त हुआ है, कहीं कहीं शुद्ध भावयोग के अर्थ में।

हठयोग के अर्थ में :

दादू—पंच बाइ ते सहज समावै, ससहरि के घर आणै सूर
सीतल सदा मिलै सुखदाई, अनहद सबद बजावै तूर
बंकनालि सदा रस पीवै तब यह मनवां कहीं न जाइ
बिगसैं कंवल प्रेम जब उपजै ब्रह्म जीव की करै सहाइ ।२०६
एता कीजै आप थैं तन मन उनमुनि लाइ।
पंच समाधी राखिये, दूजा सहज सुभाइ।
सहज जोग सुख मैं रहै दादू निर्गुण जाणि।
गंगा उलटी फेरि करि जमुणा माहैं आणि ॥२०७

भीखा—जोग जुक्ति कै हिंडोलन गुरु सहज लखावत
चाँदै राखि सूर पौढ़ावल ।पवन डोरि पै धावल।
अर्ध उर्ध मुख पावल पुलकि पुलकि छवि भावल ।२०८

वाह्याचार मुक्त भावयोग के अर्थ में :

कबीर—तन को जोगी सब करै, मन को बिरला कोय
सहजै सब सिधि पाइये जो मन जोगी होय

थोड़ा ह्रास हुआ। बाद में वज्र के साथ मुद्रामैथुन साधनाओं का जो विशेष सम्बन्ध रहा उसके कारण शुद्धतावादी गोरखपन्थी योगियों ने इसको विशेष आदर नहीं दिया। किन्तु फिर भी एक विचित्र ढंग से यह परवर्ती साधनाओं में बचा रह गया।

वज्रयानी योग की शब्दावली ब्रह्म में रन्ध्र को दशमद्वार या वैरोचन द्वार कहते थे। नाथ तथा सन्त परम्परा में त्रिकुटी में शून्य-मण्डल या शून्य-महल की कल्पना की गई थी, जिस पर हम विचार कर चुके हैं। उस शून्य-मण्डल के समीप यह दशमद्वार स्थित है और उस द्वार में जो कपाट लगे हुए हैं वे वज्र-कपाट हैं।

कबीर—धरे ध्यान गगन के मांहिं लाये वज्र किंवार
देखि प्रतीमा आपनी तीनिउँ भये निहाल।[१२३]

नानक—अउघट घाट विषम है बाट। गुरुमुख खोले वज्र-कपाट ॥[१२४]

भीखा—जड़ि ताला वज्र-कपाट को तहं बैठे आतमराम।[१२५]

इस दशम द्वार के कपाटों का उल्लेख गोरखबानी में भी है किन्तु इसमें 'वज्र' विशेषण नहीं है।

दसवें द्वारे देइ कपाट, गोरख षोजी और बाट।[१२५]

सन्तों ने कपाट के साथ वज्र विशेषण का प्रयोग तो अवश्य किया है किन्तु वे सिद्धों की वज्र-कल्पना को भूल चुके थे और वज्र के अर्थ यहाँ 'दृढ़' और अटूट ही हैं।

सूफी साहित्य में वज्र का प्रयोग कई रूपों में मिलता है। वे इस वज्र कपाट की कल्पना से तो परिचित थे ही, जैसा जायसी की निम्न पंक्तियों से प्रगट है :

पंवरी नवौं वज्र कै साजी, सहस सहस तहं बैठे पाजी
नवौ खण्ड नव पवरी औ तहं वज्र-केवार[१२६]

किन्तु इसके अतिरिक्त वज्राग्नि का उल्लेख भी पद्मावत में प्राप्त होता है। यह वज्राग्नि सम्भवतः नाथयोगियों की ब्रह्माग्नि तथा चर्यापदों की चण्डाग्नि की ही भाँति सुषुम्ना या अवधूत में प्रज्वलित होने वाले आलोक का ही दूसरा नाम मालूम होता है। यह वज्राग्नि पद्मावत में आकर प्रेम की विरहाग्नि

थी। किन्तु प्रज्ञा तथा उपाय की बौद्ध भावना का तिरस्कार कर उन्होंने शून्य और शब्द का एकात्म सिद्ध किया था अतः हठयोग-प्रदीपिका में शून्य, अतिशून्य तथा महाशून्य को तीन प्रकार के शब्दों का विशेषण मान लिया गया था। शून्य वह शब्द है जो हृदाकाश में उत्पन्न होता है कि जिस समय साधना की आरंभिक अवस्था होती है। इसको आरंभ अवस्था कहा गया है और इस अवस्था में ब्रह्म-ग्रन्थि का छेदन होता है। द्वितीय अवस्था घटावस्था है जिसमें विष्णु-ग्रन्थि का जालन्धरबन्ध द्वारा छेदन होता है। इस समय विशुद्धाकाश में, कण्ठ स्थान में अतिशून्य शब्द उत्पन्न होता है। तृतीय अवस्था परिचय अवस्था है जिसमें भ्रूमध्याकाश में महाशून्य शब्द की उत्पत्ति होती है। इन समस्त अवस्थाओं को केवल एक श्री गुरुनाथ मात्र जानते हैं।[१४]

नाथ-पन्थ की जो बानियाँ अभी तक उपलब्ध हैं उनमें इन चार शून्यों का विशेष विवरण नहीं है। केवल कुंभरी पा के विराट-पुराण में परम शून्य, अर्धशून्य, पंचमी शून्य आदि का कुछ अस्पष्ट उल्लेख है जिससे कुछ विशेष अर्थ भी स्पष्ट नहीं होता है।

पर्म्म शून्य च रंमत्ते जोगी।
चोषटि दल कमल, कमल मध्ये श्री गोरखनाथ देवता।
चतुर्दलम् कालम् च ऊरधं कं
अर्ध सून्य मध्ये खेचरी मुद्रा वसते
पंचमी निरालम्भव सून्य मध्ये उनमनी मुद्रा वसते...[१५]

इन पंक्तियों में कई प्रकार के शून्य और विभिन्न शून्यों से विभिन्न मुद्राओं और कमलों का कुछ सम्बन्ध तो अवश्यक प्रतिभासित होता है किन्तु हठयोग-प्रदीपिका में स्वीकृत शून्य, अतिशून्य तथा महाशून्य की पद्धति से कुंभरीपाव बहुत परिचित नहीं ज्ञात होते। राग रामग्री के एक पद में सुनार का रूपक बांध कर स्वर्ण विशोधन की प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए अवश्य तीन शून्यों के रहनी के उपरान्त चतुर्थ शून्य 'सहज' में समाने की साधना का उल्लेख आया है जो हठयोग-प्रदीपिका के चार शून्यों के अनुसरण में है।

अरधै सोनां उरधं सोना, मध्ये सोनं सोना
तीनि सुन्यं की रहनी जानैं ता घटि पाप न पुनां
...आपे गोरख जोषण बैठा तब सोनां सहज समानां

सन्तों में से कुछ ने शून्य, अतिशून्य तथा महाशून्य की हठयोग-प्रदीपिका

उसी शिव और शक्ति के कारण यह देह देवालय है, तीर्थों से भी अधिक पवित्र है। उस शिव और शक्ति का वास नाथ योगियों और सन्तों ने भी देह में माना था। उसके लिये उन्होंने देह को 'अरध' तथा 'उरध में विभाजित किया था। 'अरध उरध' विभाजन, उनमें शिव और शक्ति का वास तथा वज्रयानी परम्परा द्वारा मान्य बुद्ध का देह में वास, इनके विकास-क्रम पर हम अब विचार करेंगे।

देह में अरध उरध

अरध उरध ये श्वास गति की दो सीमाएँ हैं। जहाँ से श्वास निरोध कर विन्दु को स्थिर किया जाता है, और वह स्थल जहाँ तक उस विन्दु को पहुँचाया जाता है। प्रथम स्थल है मूलस्थान या मूलाधार चक्र और अन्तिम स्थान है सहस्रार चक्र। इन्हीं दोनों को अध और ऊर्ध्व भी कहा जाता था। बाद में चार चक्रों के स्थान पर षट-चक्र-पद्धति ग्रहण की गई किन्तु प्रथम और अन्तिम चक्र वही माना गया और इसी कारण अर्ध और ऊर्ध्व की कल्पना नाथ और संत परम्परा में यथावत् चली आई, केवल उसको बौद्ध के बजाय शैव रूप में ग्रहण किया गया।

वज्रयानी दोहों में इस अध और ऊर्ध्व का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। सरहपा ने कहा है कि जो अध और उर्ध्व का भेद न जानकर दोनों का युगनद्ध नहीं सम्पन्न करते वे दोनों के बीच में भ्रम में पड़कर नष्ट हो जाते हैं।

अधउध मज्झै सअल मूअ णासी[२५]

इसी अध को आलोक से उद्घाटित कर, चण्डाग्नि प्रज्ज्वलित कर ध्यान स्थित होने का उपदेश तिलोपा ने दिया है :

अध उघाड्यि आलोअगी ज्भायोँ होइ रे थित्ति ॥[२६]

योगिनी-कौल-मार्ग की पद्धति में भी 'अध-ऊर्द्ध' में हंस के रमण का उल्लेख मिलता है।[२७]अध में विन्दु जाग्रत कर उर्द्ध की ओर विन्दु को प्रेरित करने के कारण ही साधक को ऊर्ध्व रेतस् कहा जाता था।

गोरखबानी में इस अध और ऊर्ध्व के कई उल्लेख मिलते हैं। एक स्थान पर अध और ऊर्ध्व के मध्य में शून्य का वास (त्रिकुटी) का उल्लेख है : 'अरध उरध बिच धरी उठाई, मधि सुंनि में बैठा जाई।'[२८] यहाँ पर अरध शब्द वास्तव में उरध की तुलना में अध का ही रूपान्तर है :

दूसरे स्थल पर तो पूर्वोक्त योगिनी-कौल-पद्धति के हंस रमण वाली पंक्ति की छाया ही मिलती है :

यो० कौ० अधोर्द्ध रमते हंसो द्वादशान्ते लयं पुनः ॥

गोरखबानी अरधन्त कवल उरधंत मध्ये प्राण पुरिस का वासा
द्वादस हंसा उलटि चलैगा, तब ही जोति प्रकासा ॥[२९]

एक अन्य स्थल पर अरध और उरध के मध्य में पवन को कुम्भक द्वारा स्थिर कर ब्रह्मरन्ध्र को उद्घाटित करने का विधान है :

अरधैं उरधैं लाइलै कूंची, थिर होवै मन तहाँ थाकीले पवनां
दसवां द्वार चीन्हिले छूटै आवागवनां ॥[३०]

सन्त परम्परा में भी इस अरध उरध की कुम्भक साधना का उल्लेख मिलता है :

अरध उरध मुखि लागौ कासु
सुंन मंडल महि करु परगासु ॥
उहां सूरज नाहीं चन्द
आदि निरंजनु करै अनन्द ॥[३१]
घघा अरधहिं उरध निबेरा
अरधहि उरधह मांझि बसेरा
अरधह छाडि उरध जउ आवा
तउ अरधहि उरध मिलिआ सुख पावा ॥[३२]

देह

वज्रयानी सिद्धों के साधना केन्द्रों पर विचार करते समय हमने यह देखा था कि तन्त्रपीठों में जालन्धर, कामरूप, ओडियान तथा श्रीहट्ट प्रमुख तन्त्रपीठ माने जाते थे। इस बाह्य तन्त्रपीठों की स्थिति काया में भी मानी गई थी और बौद्ध हठयोग साधना में इन तन्त्रपीठों की स्थिति काया के अन्दर भी बताई गई है। चर्यापदों में केवल उड्डीयान तथा कामरूप का उल्लेख मिलता है। कुक्कुरीपा की चर्या में अर्द्धरात्रि को प्रज्ञाज्ञानाभिषेक के समय अवधूती रूपी बधू अभिसार के लिये कामरूप जाती है जिसकी व्याख्या टीकाकार ने 'महा सुख-चक्र स्थान' में, की है।[13] चौथे चर्यापद में भी मणिकूल (मणिमूल, मूलस्थान) से उद्बुद्ध होकर वज्रचित्त के उड्डीयान या उर्ध्व महासुखस्थान में समाहित होने की साधना का वर्णन है।[14]

देहस्थ सिद्ध पीठ

शैव पद्धतियों में भी ये तन्त्रपीठ काया में स्थित माने गये थे और उनके नाम पर उड्डियाणबन्ध, मूलबद्ध आदि प्रक्रियाएं प्रचलित थीं, यद्यपि स्थिति आदि में सम्भवतः थोड़ा सा अन्तर था। सिद्ध-सिद्धान्त-संग्रह में त्रिधावर्त, भगमंडलादि की आकृति वाले ब्रह्मचक्र (मूलाधार चक्र) में कामरूप पीठ की स्थिति बताई गई है। उड्डीयान पीठ की स्थिति स्वाधिष्ठान चक्र में मानी गई है।[15] हठयोग-प्रदीपिका में उड्डीयान बन्ध के द्वारा सुषुम्ना को जाग्रत करने का विधान मिलता है और उसी प्रसंग में प्राण को महाखग भी कहा गया है।[16] इसी प्रकार मूलबन्ध और कंठस्थान से सम्बद्ध जालन्धरबन्ध का भी उल्लेख हठयोग-प्रदीपिका में मिलता है।[17]

गोरखबानी में भी उड्डियान, श्रीहट्ट (सुरहट), मुलतान (मूलस्थान) कामरूप (कांवरू) आदि का उल्लेख मिलता है। एक पद में पांच इन्द्रिय रूपी बैल तथा नौ रन्ध्रों की गायों को बाखर में लाकर सहज स्वभाव द्वारा मन के उड्डीयान गमन का उल्लेख है :

> सहज गोरषनाथ वाणिज कराई, पंचबलद नौ गाई
> सहज सुभावै बाषर ल्याई, मोरे मन उड्यानी आई॥
> सुरहट घाट आम्हे बणिजारा, सुंनि हमारा पसारा।
> लेण न जाणौं देण न जाणौं एदूवा बणज हमारा॥[18]

इसी प्रकार मूलस्थान (मुलतान) में प्राणायाम द्वारा ब्रह्माग्नि के प्रज्व-लित होने का वर्णन मिलता है :

> दिषणि हमारी डीबी पाकै अगनि बलै मुलतानं
> ऐसे हम जोगेसर निपनां, प्रगट्या पद निर्बानं॥[19]

श्रीहट्ट के बीच में कामरूप, (अर्थात् सम्भवतः भगमण्डलाकार मूलाधार के मध्य में कामरूप पीठ) को प्राणायाम द्वारा विजित करने का संकेत इन पंक्तियों में मिलता है :

> उलटि यन्त्र धरे थिषर आसन करे कोटि सन छूटता घाव नाहीं
> सिलहट मध्ये कांवरू जीतले निर्मल धुनि गगन माहीं॥[20]

श्रीहट्ट आदि की स्थिति का विशेष विवरण नहीं मिलता किन्तु कामरूप की स्थिति अवश्य बदल गई है। बौद्ध साधना में कामरूप सर्वोच्च महासुखचक्र माना गया है किन्तु सिद्ध-सिद्धान्त-संग्रह में वह प्रथम चक्र, मूलाधार में स्थित कर दिया गया है। ज्ञात होता है कि इस सम्बन्ध में विभिन्न शैव पद्धतियों की विभिन्न धारणाएं थीं। बौद्ध पद्धतियों में भी परस्पर मतभेद था जिसपर हम पहले विचार कर चुके हैं।

सरहपा ने हठयोग साधना के प्रसंग में इसी शरीर में गंगा तथा जमुना और प्रयाग तथा वाराणसी तीर्थों की स्थिति बताई थी जिस पर हम पीछे विचार कर चुके हैं। वास्तव में तत्व-प्राप्ति देह में ही होने के कारण देह का अतुल महत्व उन परवर्ती सम्प्रदायों में भी माना गया जो योग से सम्बन्धित थे।

देह का महत्त्व

सहज सहज सब कोइ कहैं सहज न चीन्है कोय
जा सहजै साहब मिले सहज कहावै सोय ॥
सहज मिलैं सो दूध सम मांगा मिले जो पानि
कह कबीर वह रक्त सम जामैं ऐंचा तानि ॥[२०९]

किस प्रकार यह बाह्याचारमुक्त भावयोग कबीर तथा अन्य सन्तों द्वारा भक्ति का पर्यायवाची मान लिया गया था, इसकी ओर संकेत किया जा चुका है।

घ-सहज-समाधि

हठयोग तथा भावयोग के समानान्तर ही सहज-समाधि का प्रयोग भी सन्तों में योग-समाधि तथा भाव-समाधि दोनों अर्थों में मिलता है। हठयोग की समाधि के अर्थ में नाथयोगी परम्परा की उन्मुनी, प्रयुक्त हुई है। यह उन्मुनी-अवस्था हठयोग-प्रदीपिका में शून्य और अशून्य से परे अमनस्क (अमनसिकार) की ही अवस्था बताई गई है और टीका में इसे जल में मिले हुए लवण की भाँति आत्मस्थ रूप बताया गया है।[२१०] नाथपन्थी बानियों में भी इसी को तत्वसार बताया गया है, 'मन पवना लैं उनमनि धरिबा ते जोगी ततसारं।'[२११] सन्तों ने भी इसी उन्मन समाधि को सहज-समाधि बताया है :

कबीर—तन महि होती कोटि उपाधि। उलटि भई सुख सहज समाधि
सहज समाधी उनमुनि जागै सहज मिलैं हरि राई।[२१२]
सहज सुन्न में रहै समाना सहज समाधि लगावै[२१३]
उनमुनि रहै ब्रह्म कौ चीन्है परम तत्त को ध्यावै ॥[२१४]

पलटू—फूटि गया असमान सबद की धमक में
लगी गगन में आग सुरति की चमक में
सेसनाग और कमठ लगे सब काँपने
सहज समाधि कि दसा खबरि नहिं आपने।[२१५]

इस सहज-समाधि की योग साधना में गंगा यमुना के बीच की सुषुम्ना को सहज पथ या सहज हाट माना गया है: 'गंग जमुन उस अन्तरै सहज सुन्नि ल्यौ घाट'[२१६] जो अवधूतिका को गंगा जमुना के बीच बहने वाली नौका मानने वाली सिद्ध कल्पना के बहुत निकट है।

वास्तव में यही सहज समाधि या उन्मुनी अवस्था भावात्मक स्तर पर सहज-वृत्ति बन जाती है जो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुरूप होती है

जिस पर हम आगे उनमुनि रहनी, या सहज-रहनी के अन्तर्गत विचार करेंगे। वह भाव-समाधि और भी सूक्ष्म है क्योंकि वही अन्तिम साध्य है और हठयोग की सहज-समाधि से परे की वस्तु है :

जोग ना जुगत ना प्रानायाम ना सुन्न में ध्यान न धरत ध्यानी
नाहि कछु ज्ञान है नाहिं बैराग है जाय ना सकै तह पवन पानी
इड़ा ना पिंगला नाहि कछु साधना सुरत ना सबद ना उठत बानी
झिलमिली जोति न नाहि है उनमुनी चांद न सूर ना ब्रह्म-ज्ञानी
सहज समाधि के परे की बात है दास पलटू कोई सन्त जानी।[२१७]

पवन निरोध

बौद्ध हठयोग की साधना में पवन के निरोध द्वारा चित्त के निरोध का विधान था। इसके कई प्रमाण दोहों में मिलते हैं :

सरहपा—अणिमिल लोअण चित्त णिरोहे, पवण णिरुहइ सिरिगुरुबोहें
पवण वहइ सो णिच्चलु जव्वें, जोइ काल करइ रे तव्वें ॥[६८]

काण्हपा—जो णत्थु णिच्चल किअउ मण सो धम्मक्खर पाल
पवणह वज्झइ तक्खणे विसआ होन्ति णिरास ।[६९]

पवन के निरोध द्वारा चित्त का निरोध हठयोग की सामान्य पद्धति थी जो सभी हठयोगी सम्प्रदायों में समान रूप से स्वीकृत थी। हठयोग-प्रदीपिका में भी हमें इस आशय के श्लोक मिलते हैं :

पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते
मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते
मनो यत्र विलीयते पवनस्तत्र लीयते
पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते ।[७०]

नाथों की बानी में भी मन को पवन से और पवन को मन से बाँधने का उल्लेख मिलता है :

मन बांधूंगा पवन स्यूं, पवन बांधूंगा मन स्यूं
तब बोलैगा कोवत स्यूं ।[७१]

चंडाग्नि

वज्रयोग में पवन-निरोध के उपरान्त अवधूती मार्ग में चंडाग्नि के प्रज्व-लित होने की प्रक्रिया का उल्लेख हम कर चुके हैं। यही चंडाग्नि समस्त क्लेश वासनाओं को भस्म कर देती है (अध्याय ३ ग)। शैव पद्धति में इसी चंडाग्नि को ब्रह्माग्नि कहा गया है : 'अभिअन्तरि ब्रह्म अगनि परजालै'।[७२] नाथपन्थी बानियों तथा सन्तों में कहीं भी इसका चंडाग्नि नाम नहीं मिलता किन्तु इसका वर्णन दोनों में मिलता है :

तिलोपा—अछ उघाड थि आलोअणे ज्झाणे होइ रे थिति।[७३]

गोरखबानी—मन मुछावै लावै ताली। गगन सिषर मैं होइ उजाली।[७४]

धामपा—कमल कुलिश माझे भमई लेली, समताजोएँ जलिल चण्डाली
नउ खर जाला धूम न दिसइ, मेरुसिखर लइ गअण पइसइ।[७५]

गोरखबानी—अकुच कुचीया बिगसा पोहा, सिधि परजली उठी लगिया धुवा
कहै गोरषनाथ धुवा प्राण, ऐसे पिंड का परचा जायौ प्राण।[७६]

इस अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये नव इन्द्रिय-द्वारों को पवन बन्ध द्वारा बन्द कर केवल दसवें द्वार ब्रह्मरन्ध्र अथवा वैरोचन द्वार को (अवधूती मार्ग को) उद्घाटित करना पड़ता है 'नव दरवाजा देवै ताली, दसवाँ मधे होइ उजाली।'[७७] यद्यपि इसका नाम ब्रह्माग्नि है किन्तु वज्र-साधना से इसका सम्बन्ध और इसका बौद्ध-रूप सर्वथा भुला नहीं दिया गया। जायसी ने इसे वज्राग्नि कहा है जिसकी ओर हम संकेत कर चुके हैं। गोरखबानी में भी इसको प्रज्वलित करने के लिए वज्र कछोटा और वज्रासन साधने का उल्लेख मिलता है।

अहनिसि अगनि पाप कूं षाइ, संधै संधै पवन लुकाइ
बजर कछोटा आसण करै, रोग ब्याधि षुध्या सब हरै ॥[७८]

इसी को कहीं कहीं दीपक की सी ज्योति भी बताया गया था :

काण्हपा—जइ तसु घोरान्धारे मण दिवहो किज्जइ ॥[७९]

दीपक रूप में भी इसका उल्लेख नाथपन्थी बानियों में मिलता है।

जोगी अपणे घर दिवला दीपै। ता जोगी की काया काल न छीपै।[८०]

... ...

दीपक एक अषंडित बाती। तहां जोगेश्वर थपना थापी।
अगम अगोचर सकल ब्रह्मंड। ता दीपक कै चरण न षंड।
सिवा न नैन दीस नहिं हाथ। दीपग देख्या जती गोरखनाथ।
ता दीपक कै डाल न मूल। ता दीपक कै कली न फूल।
ता दीपक कै रङ्ग न रूप। ता दीपक कै छाँह न धूप।
ता दीपक कै किया न बाद। ता दीपक कै सबद न स्वाद।

और यह वह दीपक है जो शून्य से उद्भूत हुआ है और शून्य में ही समा जायगा।

ता दीपक कै मोह न माया। सो दीपक सूनैं सून समाया।[८१]

सन्तों में अन्तर्ज्योति, देहस्थ अग्नि की इस कल्पना से वज्र और शून्य का उतना सम्बन्ध भी टूट चुका है, जितना गोरखपन्थ में रह गया था किन्तु इसका उल्लेख बराबर आता है।

लावौ बाबा आगि जलावौ घरा रे, जा कारनि मन बंधै परा रे[८२]

ललना (हिन्दू नाम इड़ा), उपमान गंगा, चंद्र, प्रज्ञा, शक्ति, (स्थिति वाम)
रसना (हिन्दू नाम पिंगला), उपमान यमुना, सूर्य, उपाय, शिव, (स्थिति दक्षिण)

इन दोनों के मध्य में अवधूती या सुषुम्णा है जो सरस्वती है, संगम है, औघट घाट है, ब्रह्माग्नि या चंडाग्नि-वाहिनी है। अवधूती को ब्रह्म-चक्र से शंखिनी नामक एक नाड़ी सम्बद्ध करती है जिसे बंकनाल कहते हैं। इसी बंकनाल से होकर अमृत झरता है और जिस रन्ध्र से अमृत आता है उसे दशम द्वार कहते हैं। दशम द्वार का वर्णन चर्यापदों में भी आता है 'दशमि दुआरेते चिन्ह देखाइआ'।[५१] इन्हीं नाड़ियों में पवन निरुद्ध कर सुषुम्णा में श्वास संचालन द्वारा दशम द्वार उद्घाटित कर अमृत पीने की साधना नाथों तथा सन्तों की योग साधना रही है जिस पर हम आगे विचार करेंगे। इन नाड़ियों का उल्लेख नाथ और सन्त साहित्य में विभिन्न रूपकों के साथ आया है।

गोरखबानी	अहंकार तूटिबा निराकार फूटिबा सोषीला गंग-जमन का पानी चंद सूरज दोउ सनमुषि राषीला कहो हो अवधू तहाँ की सहिनाणी[५२]
कबीर	जह किछु अहा तहा किछु नाही पंच ततु तह नाही इड़ा पिंगला सुखमन बदे ए अवगत जाही।[५३] उलटी गंग जमुन मिलावउ, बिनु जल संगम मन महिं न्हावउ।[५४]
नानक	इड़ा पिंगला सुष्मन सूझी। तब मन सहज कथा सब बूझी सुख का हाट सुष्मना कीन्हा। नानक तहिं सुख डेरा लीना बेनी हाट जबै मनु जाय। मन तहिं बेनी कर्म नहाय।[५५]
रैदास	ऐसा ध्यान धरौं बरौं बनवारी, मन पवन दै सुखमन नारी।[५६]
जायसी	गही पिंगला सुखमन नारी, सुन्न समाधि लागिगौ तारी।[५७]
भीखा	इंगल पिंगला बुतैं सुन्न भेटानो, सुखमन भयो उँजियार।[५८]

इनका संगम त्रिकुटी में माना जाता था और इस त्रिकुटी संधि से ही शून्य-समाधि का विशेष सम्बन्ध नाथ तथा सन्त परम्परा में माना गया था, इसकी ओर हम पीछे शून्य पर विचार करते समय संकेत कर आये हैं। प्राणायाम द्वारा पवन निरुद्ध कर, पंच तत्वों को चित्त में ही स्थित कर ये नाथ योगी तथा सन्त हठयोग की साधना करते थे।

चौपड़ माहीं चौहटे अरधउरध बाजार
कहैं कबीरा रामजन खेलौ संत बिचार ॥
पासा पकड्या प्रेम का सारी किया सरीर
सतगुरु दांव बताइया खेलैं दास कबीर ॥[३३]

इनमें से अन्तिम उद्धरण का एक विशेष महत्व है क्योंकि उसमें कबीर ने कुम्भक प्राणायाम के साथ साथ अरध-उरध साधना में प्रेम या भक्ति का तत्व भी जोड़ दिया है जो उनके परम वैष्णव स्वभाव के सर्वथा अनुरूप है।

प्रज्ञा-उपाय या शिव-शक्ति

किन्तु शैव परम्परा में इस अध और ऊर्ध्व की कल्पना में एक संशोधन हो गया था जिस पर दृष्टिपात करना आवश्यक है : प्रज्ञोपाय योग में प्रज्ञा का वास नैरात्मा के रूप में महासुखचक्र में माना गया था और काया में उपाय अथवा वज्र का स्थान नीचे मणिमूल में। शैव परम्परा में यह क्रम उलट गया। मूलाधार (अरध) में शक्ति कुंडलिनी रूप में स्थित बताई गई और ऊर्ध्व में शिव का वास मानकर उसे कैलाश कहा जाने लगा। मछिन्द्र-गोरख-बोध में शिव और शक्ति के वास का स्पष्ट उल्लेख आता है :

गोरष— स्वांमी कहां बसै सक्ती कहां बसै सीव
कहां बसै पवना कहां बसै जीव
कहां होई इनका परचा लहै।
सतगुरु होइ सु बूझ्या कहै ॥

मछींद्र— अवधू अरधै बसै सक्ती, उरधैं बसै सीव
भीतरी बसै पवनां अंतरी बसै जीव
निरन्तर इनका परचा लहै। ऐसा विचार मछीन्द्र कहै।[३४]

इसी शक्ति और शिव का उल्लेख सन्तों ने भी किया है :

कबीर— सिव सक्ती दिसि कौण जु जोवै पछिम दिसा उठै धूरि[३५]

पलटू— चलै न सिव कै जोर जाय जब सक्ती लीन्हा
फिर सक्ती ना रही मिली जब सिव में जाई
सिव भी फिर ना रहे सक्ति के सीव कहाई ॥[३६]

केशवदास अरध उरध के मध्य निरन्तर सुखमन चौक पुराई हो
रवि ससि कुंभक अमृत भरिया गगन मंडल मठ लाई हो
साध सन्त मिल कियो बसीठी, सतगुरु लगन लगाई हो
दरस परस पतिव्रता पिव की, सिव घर सक्ति बसाई हो[३७]

जायसी ने भी तन में अरध और उरध में बसने वाले शक्ति और शिव का उल्लेख किया है और सिंघल जाने के पूर्व अपने मन में या चित्त में इस शक्ति और शिव को एकात्म कर लेने का निर्देश किया है :

गजपति यह मन सकती सीऊ। पै जहि पेम कहां तेहि जीऊ ॥
जौ पहिलैं सिर पै पगु धरई। मुए केर मीचहु का करई ॥
सुख संकलपि दुख सांबर लीन्हेउ। तौ पयान सिंघल कह कीन्हेउ ॥[३८]

यहाँ पर कबीर की ही भाँति जायसी ने शिव और शक्ति के अद्वैत की साधना में कुंभक प्राणायाम के बजाय प्रेम को महत्व दिया है। इस प्रकार अरध और उरध को शैव रूप दे देने के उपरान्त उसकी साधना में हठयोग के साथ साथ भावयोग की पद्धति स्वीकार कर उसे भक्ति की सहायक साधना मान लिया गया और प्रेम को प्रमुख स्थान दिया गया। किन्तु इसी शक्ति और शिव के संयोग से सहज-तत्व की उत्पत्ति होती है इससे कबीर भी भली भाँति अवगत मालूम पड़ते हैं :

काटि सकति सिव सहज प्रकासिओ एकै एक समाना ना
कहि कबीर गुर भेट महासुख भ्रमत रहे मनु माना नां ॥[३९]

पलटू की बानी के सम्पादक ने टिप्पणी में सास और ननद का अर्थ यहाँ माया और वासना दिया है। उस अर्थ से कोई असंगति उत्पन्न नहीं होती किन्तु श्लेष के कारण श्वास के लिये सास का प्रतीक अधिक संगत मालूम होता है और वज्रयानी परम्परा से ही आया हुआ प्रतीत होता है। बाद में सास का प्रतीकार्थ बदल भी गया है और जहाँ सिद्धों में अवधूती या सुषुम्ना, वधू के रूप में परिकल्पित की गई है। वहाँ मीरा के एक पद में हमें सास का अर्थ सुषुम्ना मिलता है :

सासु हमारी सुशुमना रे, सुसुरी प्रेम संतोष रे
जेठ जुगे जुग जीव जी रे, हां रे पेलो नावलियो निरदोस।[२२०]

इसी प्रकार कराहपा के पद में प्रयुक्त शाली या साली, कबीर के एक 'सलोक' में सृष्टि-जाल के अर्थ में प्रयुक्त हुई है :

कबीर सारी सिरजनहार की जाने नाही कोइ
कै जानै आपन धनी कै दासु दीवानी होइ।[२२१]

इस प्रकार नारी रूप में महामुद्रा साधना का गौण स्थान हो जाने पर भी इनकी योग साधना में "खेचरी" नामक मुद्रा को विशेष स्थान प्राप्त था। यह

खेचरी मुद्रा

मुद्रा शून्य स्थान त्रिकुटी से सम्बद्ध थी और इसमें प्राणायाम के साथ जिह्वा को उलट कर तालू में स्थित किया जाता था ताकि ब्रह्मरन्ध्र से झरने वाले अमृत का पान किया जा सके। इस मुद्रा का नाम खेचरी वज्रयानी सिद्धों की खेचरी सिद्धि से आया था या नहीं

यह सन्दिग्ध है किन्तु त्रिकुटी को शून्य मंडल या ख-स्थान मानने की कल्पना से अवश्य सम्बद्ध था।[२२२] यही नहीं उसके साथ तान्त्रिक अनुष्ठानों का मांस भक्षण तथा वारुणी पान का प्रतीकात्मक उल्लेख भी मिलता है, क्योंकि इसी जिह्वा को उलट कर तालू में स्थित करने को गोमांस (इंद्रिय का मांस) भक्षण कहा जाता था और चंद्र से झरने वाले अमृत को वारुणी।[२२३] इस मुद्रा का उल्लेख नाथ तथा सन्त दोनों परम्पराओं में मिलता है :

गोरखबानी कूँची ताली सुषमन करै, उलटि जिभ्या लै तालू मैं धरै।[२२४]
कबीर सुरही भच्छन करत बेद मुख, घन बरिसे तन भीजे।
त्रिकुटी मंडल मधि मन्दिर बाजै, औघट अम्मर छीजे।[२२५]

कबीरपन्थ के पंच-मुद्रा ग्रन्थ में बाद में वज्रयान की चार मुद्राओं की परम्परा से सर्वथा मुक्त पाँच मुद्राओं का वर्णन मिलता है : खेचरी, चाचरी, भोचरी, अगोचरी और उन्मुनी। इनके ही समानान्तर पाँच शून्य हैं और अन्तिम मुद्रा उन्मुनी में ब्रह्म का प्रकाश और सहजानन्द की प्राप्ति होती है :

ब्रह्म प्रकाश तहाँ पूरन चन्दा, रैन दिवस नहिं सहज अनन्दा।

इन मुद्राओं का स्थान इस प्रकार है—मुखाग्र, नासाग्र, चक्षु-अग्र, श्रवण-अग्र, तथा तिलकपाट। अगोचरी में सहजशून्य और उन्मनी महाशून्य का ध्यान बताया गया है।[२२६] ज्ञात यह होता है कि शून्य, चतुर्मुद्रा, चार आनन्द तथा हठयोग की चौथी उन्मनी अवस्था की परम्पराएँ इनमें घुलमिल गई हैं और रचयिता उनमें से सबके ठीक ठीक अर्थ भी नहीं समझता है, या कम से कम उनके उन अर्थों से तो अपरिचित है जिनमें वज्रयानी सिद्ध इन शब्दों का प्रयोग करते थे।

आमार जोगीयार गाये हरिनामावली आछे
काने मुद्रा शिरे जटाभार
आमार जोगीयार हाते हरिनामेर माला आछे
काने मुद्रा शिरे जटाभार
आमार जोगीयार संगे हरिदास शिष्य आछे
काने मुद्रा शिरे जटाभार
आमार जोगीयार पाये सुवर्णेर नूपुर आछे
काने मुद्रा शिरे जटाभार........[२१३]

इस प्रकार तन्त्र साधनाओं की योगिनी अन्त में पूर्व जन्म की गोपिका बन गई और वैष्णव-भाव साधना, भक्ति में लीन हो गई। उसका बौद्ध तान्त्रिक रूप पूर्णतया भुला दिया गया।

सास ससुर आदि

जोगिनी के साथ ही साथ सास और ससुर भी प्रतीक रूप में नाथ और सन्तों के साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं। सिद्धों ने भी परिशुद्धावधूती को वधू रूप में ग्रहण करने का उपदेश देकर सास और ससुर को सुलाने या उनको मारने का आदेश दिया है। कुक्कुरीपा की चर्या में सुसुरा (श्वास) के सोने और वधू के जागने का वर्णन मिलता है 'सुसुरा निद गेल बहुड़ी जागअ।' जिसकी व्याख्या करते हुए मुनिदत्त इसे श्वास को चतुर्थानन्द (सहजानन्द) अवस्था में योग निद्रा में लीन कर देने का प्रतीकात्मक वर्णन बताते हैं। गुंडरीपा इसी श्वास के निरोध को सास के घर में ताला बन्द करने की प्रतीकात्मक शैली में वर्णन करते हैं :

सासु घरे घालि कोंचा ताल
चान्द सुज्ज बेणि पखा फाल।[२१४]

काण्हपा अपने कापालिक रूप में इसी सास, ननद साली आदि (श्वास तथा इन्द्रियादि) को मारने का वर्णन करते हैं।[२१५]

नाथपन्थी बानियों में कुम्भक समाधि द्वारा मणिपुर के चक्र में स्थित प्राण और अपान वायु को सास और ससुर कहा गया है :

कौण अस्थानिक तोरा सासू नै सुसरा, कौण अस्थान क तोरा वासा
नाम अस्थान का मोरा सासू मैं ससुरा ब्रह्म अस्थान का मोरा बासा।[२१६]

नौ सौ जोगणी चलिबा साथं । बुरिज बहतरि गाइबा नाथं ।[२०३]

गोरखबानी में एक स्थान पर महामुद्रा रूपी महायोगिनी का उल्लेख है 'महामुद्रा अजब नग्री महां जोगणी स्वंभू बोलिये ।'[२०४] जायसी में भी एक स्थान पर योगी के साथ जोगिनी बनने का उल्लेख है 'अब को हमहि करिहि भोगिनी । हमहूँ साथ होइब जोगिनी ।'[२०५] किन्तु दूसरे स्थल पर इड़ा पिङ्गला को योगिनी के रूप में परिकल्पित किया गया है । उन्हीं को योगी की पत्नी मानकर सास ससुर और गृह आदि का वर्णन कर पूरा रूपक प्रस्तुत किया गया है :

माहरा रे बैरागी जोगी, अहनिसि भोगी जोगिणि संग न छाँड़ै ।
मानसरोवर मनसा भूलंतीं आवै गगन मंडल मठ मांड़े रे ॥
कौण अस्थानिक तोरा सासू नैं ससुरा कौण अस्थानक तोरा बासा ।
कौण अस्थानंक तू नै जोगणि भेंटी कहाँ मिल्या घर बासा ॥
नाम अस्थानका मोरा सासू नैं सुसरा ब्रह्म अस्थानका मोरा बासा ।
इला प्यंगुला जोगण भेंटी सुषमन मिल्या घर बासा ॥[२०६]

सन्त साहित्य में जोगिन का बहुत कम उल्लेख है । किन्तु फिर भी पलटू योग पद्धति में सुरति द्वारा योगिनी सुषमना को जाग्रत करने का उल्लेख करते हैं :

भीतर औंटै तत्व को उठै सबद की खानि
उठै सब्द की खानि रहै अन्तर लौ लागी
सुरति देइ उदगारि जोगिनी आपुइ जागी ॥

इसी को दूसरे स्थान पर पलटू जोगिनी का अलमस्त होना बताते हैं :

भूली जग की चाल सब भइ जोगिनि अलमस्त
भइ जोगिन अलमस्त खबर कुछ तन की नाहीं
ह्वै गइ दसा अरूढ़ जान तजि भइ बिज्ञानी
धरती नभ जरि गई जरा है पवन औ पानी
पलटू दिनकर उदय भा रजनी ह्वै गइ अस्त
भूली जग की चाल सब भइ जोगिनि अलमस्त ।[२०७]

कहीं कहीं इन जोगिनियों की संख्या ८४ बताई गई है :

चारि मुक्ति जोइनि चौरासी तेहि मिलि हेत बढ़ावै ।[२०८]

मीरा में इस जोगिनी का उल्लेख आता है किन्तु वहाँ योग तथा गुह्य

२४ मेघ (करुणा, गुण)

'करुणा मेह निरन्तर फरिआ ।' (चर्यापद ३०)

'कबीर गुण की बादली तीतरबानी छांह ।' (क० ग्र० पृ० ३४)

'उतर देस में मेह धड़क्या दक्षिण आंचल छाया ।'

(गो० बा० पृ० १२५)

२५. चौपड़ (ज्ञानक्रीड़ा)

'करुणा पिहाड़ि खेलहुँ नअबल ।' (चर्यापद १२)

'चौपड़ि माहीं चौहटै अरध उरध बजार ।' (क० ग्र० पृ० ४)

२६. कपास (चित्त)

'तुला धुनि आंशु रे आंशु ।' (चर्यापद २६)

'धुन धुन धुन डालूं अब मन को ।' (सन्त-काव्य पृ० ५४६)

२७. सोना (शून्य ज्ञान)

सोने भरिती करुणा नावी' (चर्यापद ८)

'अरधै सोना उरधै सोना मध्ये सोनम सोना ।' (गोरखबानी पृ० ६२)

२८. रूपा (रूपादि पंचस्कन्ध, सांसारिक ज्ञान)

'रूपा ठोइ नाहिक ठावी ।' (चर्यापद ८)

'सोने रूपै सीझै काज, तो राजा कत छोड़ै राज' (गो० बा० पृ० १७७)

२९. कपूरयुक्त ताम्बूल

'हिअ तांबोला महासुह कापुर खाइ ।' (चर्यापद २८)

'काम क्रोध बाली चूना कीधा कन्द्रप कीया कपूरं ।'

(गोरखबानी पृ० १०६)

३०. वीणा

'सुज्ज लाउ ससि लागेलि तांती' (चर्यापद १७)

'ज्ञान गुरू दोउ तूंबा अम्हारे मनसा चेतनि डांडी ।'

(गो० बा० पृ० १०६)

'तत करि तांति धर्म करि डांड़ि सत् की सारि लगाइ ।
जोगिया तन कौ जन्त्र बजाइ ।' (क० ग्रं० पृ० १५६)
चन्द सूर दोउ तूंबा करिहूँ चित चेतनि की डांडी
सुषमन तन्ती बाजण लागी इह विधि त्रिषणां खांडी ॥

(क० ग्रं० पृ० १५४)

जिहि घर चन्द सूर नहिं ऊगै तिहिं घरि होसी उजियारा
तिहां जो आसण पूरौ तो सहज का भरौ पियाला।[२६१]

सन्तों ने भी अमीरस या रसायन या रस शब्द का व्यवहार मूलतया नाथयोगियों की साधना में चन्द्र से झरने वाले अमृत के लिये ही किया है किन्तु धीरे-धीरे वे उसे हरि भक्ति रस के अर्थ में प्रयुक्त करने लगे हैं और फिर दूसरा अर्थ प्रमुख हो गया। योगपद्धति के कायाकल्प वाले रस के अर्थ में सन्त इसका प्रयोग करते हैं :

कबीर— धरणी उलटि अकासहिं आसै यहु पुरिषां की वाणी
बाझ पियालै अमृत सोख्या नदी नीर भरि राख्या।
कहै कबीर ते बिरला जोगी धरणि महा रस चाख्या।[२६२]

नानक—पाताली रसु गगनु चढ़ाया। तातैं सहजि पलटी काया।[२६३]

किन्तु सन्तों ने इसी अमीरस को राम रस या राम रसायन का नाम दिया है जो उनकी भक्ति भाव साधना के अधिक निकट है :—

बिना पियाले अमृत अंचवे नदिय नीर भरि राखै
कहहिं कबीर सो जुग जुग जीवै राम सुधारस चाखै।[२६४]

इस प्रकार उन्होंने योगमार्ग के अमृत को तो स्वीकार किया है किन्तु तान्त्रिकों की वारुणी और सोम को पूर्णतया गर्हित ठहराया है। कबीर ने स्पष्ट घोषित किया है कि शाक्तों का रस झूठा है, वह अमरत्व प्रदान नहीं कर सकता, किन्तु सन्तों का हरिभक्ति रस वास्तव में मृत्यु को जीतने वाला है :

साकत मरहिं सन्त सभ जीवहिं
राम रसायन रसना पीवहिं॥[२६५]

और जब से यह राम रस उन्हें मिला है तब से वे अन्य सारे योग और तन्त्र के रसों को भूल गए हैं :

राम रस पाइया रे तातैं बिसरि गये रस और।[२६६]

इसी को वे हरिरस और प्रेम रस भी कहते हैं :

राम रसाइण प्रेम रस पीवत अधिक रसाल
कबीर पीवण दुलभ है मांगै सीस कलाल।
हरि रस पीया जाणिये जे कबहुं न जाइ खुमार
मैंमंता घूमत रहै नाहीं तन की सार।[२६७]

रस रसायन की प्रक्रिया से पारे के विशोधन तथा मारण आदि का प्रयोग चित्त के विशोधन तथा मारण के अर्थ में किया जाने लगा था। इसका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। 'सोने भरिते करुणा नावी' आदि से यह भी स्पष्ट है कि वे शून्यता ज्ञान अथवा नैरात्म्य ज्ञान को ही सोना मानते थे। नाथपन्थी बानियों में सुनार के रूप में स्वर्णविशोधन प्रक्रिया द्वारा चित्त के विशोधन की प्रक्रिया का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है और यहाँ तक कि वहाँ श्लेष द्वारा सोना शून्य ज्ञान का ही उपमान माना गया है :

स्वर्ण रस सिद्धि

सोनां ल्यौ रस सोनां ल्यौ मेरी जाति सुनारी रे
आपै सोना नै आपै सुनारी मूल चक्र अँगीठा
अहरिणि नाद नै व्यन्द हथौड़ा घटिस्यूँ गगन बईठा।
ऊधै आरण नै विषै कोइला सहज फूक दो नालियाँ।
चन्द सूर दोउ सम करि राष्या आपैं आप जु मिलिया
अरधै सोनां उरधै सोनां मध्ये सोनम सोनां
तीनि शून्य की जाणैं ता घटि पाप न पुंना॥
उनमनि डांड़ी मन तराजू पवन किया गदियानां।
आपै गोरषनाथ जोषण बैठा, तब सोना सहज समानां।[२५४]

सन्तों ने इस स्वर्ण साधना में योग-प्रक्रिया की अपेक्षा भक्ति तथा उस के अंग, सत्सङ्ग, गुरुभक्ति आदि को प्रमुखता दी है। वे कभी सत्सङ्ग को, कभी गुरु को और कभी राम को पारस मानते थे :

कबीर—पारस के संग तांबा बिगरिश्रो, सो तांबा कंचन होइ निबरिश्रो
सन्तन संगि कबीरा बिगरिश्रो, सो कबीर रामै होइ निबरिश्रो।[२५५]
अब घटि प्रगट भये राम राई, सोधि सरीर कनक की नाई
कनक कसौटी जैसे कसि लेइ सुनारा, सोधि सरीर गयो तन सारा।
बिन परचै तन कांच कथीरा, परचैं कंचन भया कबीरा।[२५६]

दादू—दादू गुरु गुरुवा मिलै ताथैं सब गमि होइ
लोहा पारस परसतां सहज समाना सोई।[२५७]

पारे के शोधने की विधि का रूपक भी एक परवर्ती सूफी सन्त ने अपने एक दोहे में ग्रहण किया है :

काण्हपा　पवण गमण दुआरे दिढ ताला वि दिज्जइ
　　　　जइ तसु घोरांधारें मण दिवहो किज्जइ ।[३९]

गुंडरीपा　सासु घरे घालि कोंचा ताल
　　　　चांद सुज वेणि पखा फाल ॥[४०]

नाथपन्थी बानियों में भी इस ताला कुंजी के रूपक द्वारा पवनबन्ध का वर्णन मिलता है, यद्यपि उसमें दो संशोधन हो गये हैं । एक तो शब्द या नाद-योगपद्धति की प्रधानता के कारण नाद जाग्रत करने, या नाद को अन्तर्मुखी करने के लिये भी ताला लगाने का रूपक प्रयुक्त होने लगा । दूसरे ताला लगाने के साथ साथ, दसवें द्वार या ब्रह्मरन्ध्र का ताला खोलने की कल्पना भी ग्रहण की गई । अन्त में, शब्द को ताला और चरमावस्था निःशब्द को कुंजी मान लिया गया (इस निःशब्दावस्था पर वज्र-जप के अन्तर्गत प्रकाश डाला गया है)

कुम्भक के प्रसंग में—
　अरधै उरधै लाइलै कूँची थिर होवै मन तहाँ थाकीले पवणां ।
　दसवां द्वार चीन्हिलै, छूटै आवागवनां ।[४१]

खेचरी मुद्रा के प्रसंग में—
　कूंची ताली सुषमन करै । उलटि जिभ्या ले तालू धरे ।[४२]

शब्दयोग के प्रसंग में—
　सबदहिं ताला, सबदहिं कूँची सबदहिं सबद जगाया ।
　सबदहिं सबद सूं परचा हुआ, सबदहिं सबद समाया ॥[४३]
　अवधू निहसबद कूँची, सबद ताला ॥[४४]

सन्त साहित्य में भी प्राण-पवन के बन्धन के अर्थ में ताला कुंजी का प्रयोग मिलता है । अधिकतर इसका, प्रयोग त्रिकुटी में ध्यान को कुम्भक द्वारा केन्द्रित करने के प्रसंग में मिलता है :

कबीर　खट नेम करि कोठड़ी बाँधी बसतु अनूपु बीचु पाई
　　　कुंजी कुलफु प्रान करि राखे करते बार न लाई ॥
　　　　　　　　　　अब मनु जागत रहु रे भाई ।
　　　गाफलु होइ कै जनम गवाइओ चोरु मुसै घरु जाई ।[४५]

दरिया　हीरा एक त्रिकुटी मँह होई । हीरा ध्यान धरहु नर लोई ॥
　　　हीरा मध्य फेइ विस्तारा । जोगी ज्ञान को करै बिचारा ॥

घोड़ा तथा सवार का रूपक

पवन-निरोध के लिये पवन को घोड़ा मानकर उसे वशीभूत करने का रूपक सिद्धों ने बांधा है जो नाथपन्थियों की बानी में भी मिलता है :

सरहपा — एहु मण मेल्लह पवण तुरंग सुचंचल
सहज सहावे णे वसइ होइ णिच्चल।[३४]

गोरखबानी — सहज पलांग पवन कर घोड़ा, लै लगाम चित चबका
चेतनि असवार ग्यांन गुरू करि और तजो सब ढबका।[३५]

सन्तों ने भी पवन निरोध के लिये यही रूपक अपनाया है। कबीर भी सहज के पांवड़े से युक्त मनरूपी अश्व पर सवारी करते हैं।

देह मुहार लगामु पहिरावउ, सगलत जीन गगन दउरावउ।
अपनै बीचारि असवारी कीजै, सहज कै पांवड़ै पगु धरि लीजै।
चलि रे बैकुंठ तुझहि लै तारउ। हित हित प्रेम कै चाबुक मारउ।
कहत कबीर भले असवारा, वेद कतेब तै रहै निरारा॥[३६]

पलटू के एक रेखते में इस पवन के घोड़े पर सुरति को सवार बताया गया है और जीन लगाम आदि की कल्पना से पूरा रूपक बांधा है :

सत्त को जीन, संतोष लगाम है, गुरुज्ञान को पाखर जाय डारा
बिस्वास रकाब में जुगति की एड़ दै, पांच पच्चीस मवास मारा
पवन का घोड़ा सुरति असवार है, प्रेम की ढाल है मर्म माला
विवेक देवान इन्साफ पर बैठि के मुक्ति को कैद जंजीर डाला।[३७]

इस प्रकार सन्तों में पवन निरोध का घोड़े की सवारी वाला रूपक केवल प्राणायाम साधना का ही बोधक नहीं रह गया, उसमें सत्य, सन्तोष, विश्वास, विवेक आदि सद्‌गुणों का भी समन्वय हो गया है, यहाँ तक कि दरिया साहब तो उसे पवन का उपमान न मान कर केवल ज्ञान का उपमान मानने लगते हैं :

ज्ञान का घोड़ला सुन्न में दौड़िया, सुन्न में सुरति है शब्द सारा।[३८]

ताला-कुंजी तथा चोर का रूपक

इस प्रकार पवनबन्ध का एक दूसरा रूपक सिद्धों ने ताला कुंजी के उपमानों से भी प्रस्तुत किया है और धीरे-धीरे सन्तों की परम्परा में उसका भी पवन-निरोध वाला अर्थ नष्ट हो गया है, केवल प्रयोग की परम्परा चलती रही।

प्राणायाम द्वारा पवन के बन्ध को वज्रयानी सिद्ध अध और उर्ध्व मार्ग में ताला लगाने के रूपक से व्यक्त करते थे :

शिवदयाल : धुन धुन धुन डालूँ अब मन को
मैं धुनिया सतगुरु चरनन को
मन कपास सुरत कर रूई
काम बिनौले डाले खोई ॥
टुई साफ धुनकी सुधि पाई
नाम धुना ले गगन चढ़ाई ॥ सन्तकाव्य पृ० ५४६

इस प्रकार के कुछ रूपकों में किन कारणों से संशोधन और विस्तार हुआ और कभी कभी कैसे उनके कारण कुछ अन्य सहायक उपमान भी स्वीकृत कर लिये गये हैं इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। उदाहरण के लिये हम तीन रूपक लेंगे : क-सुमेरु पर्वत का रूपक। ख-घोड़े तथा सवार का रूपक। ग-ताला कुंजी तथा चोर का रूपक।

बौद्ध योग परम्परा में मेरुपर्वत को मेरुदंड का उपमान मान कर उस के शिखर पर प्रज्ञा नारी या नैरात्म्य बालिका वास माना गया था। उसी के शिखर पर शबरपा ने शबरी का वास माना था। मेरुपर्वत

सुमेरु का रूपक का यह रूपक सन्त-परम्परा तक बराबर चला आया। नानक ने तथा अन्य सन्तों ने इसी मेरु शिखर पर सहज तथा शून्य की स्थिति बताई थी :

नानक—चढ़ि सुमेर बैसे अस्थानु, निभरु भरे धुनि सहजि ध्यानु।[२६]

दरिया—दरिया चढ़िया गगन को, मेरु उलंघा डंड
सुख उपजा साईं मिल्या मेंटा ब्रह्म अखंड।
दरिया मेरु उलंघ करि पहुँचा त्रिकुटी संध।
दुख भाजा सुख ऊपजा, मिटा मर्म का धुन्ध ॥[२७]

इसी के सर्वोच्च शिखर अर्थात् त्रिकुटी को शून्य शिखर कहा जाता था और वही शून्यकमल तथा सहज अमीरस का वर्णन माना जाता है :

गुलाल—सुन्न सिखर सरोज फूलो बंकनाल हि जाव
कह गुलाल अतीत पूरन, आपु में घरु पाव।[२८]
सुन्न सिखर चढ़ि जाइब हो बाजत अनहद तार।
उमंगि उमंगि सखि गावहिं हो, मानिक देव लिलार।[२९]

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जग उपपाअयो दुक्ख बहु, उप्पएगउ तहिं सुहसार।
उप्पएग उप्पाअ णहिं, लोअ ण जाणइ सार ॥[१]

अतः हम कह सकते हैं कि सरहपाद के अनुसार सहज और परमपद में कोई भेद नहीं है दोनों एक ही अवस्था के भिन्न नाम हैं। साधक की यह अंतिम मंजिल है यहाँ पहुँचने पर उसे कहीं भटकना नहीं पड़ता है।

चन्द्र-सूर्य

तान्त्रिक और यौगिक साधनाओं में चन्द्र-सूर्य का उल्लेख बार-बार किया जाता है। इन दोनों के संयोग को ही "योग" संज्ञा दी जाती है। तांत्रिक और यौगिक साधनाओं में चन्द्र-सूर्य का दो नाड़ियों से अभिप्राय है। गोरक्ष रचित "सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति" में मिलता है कि भौतिक शरीर पंच तत्वों से निर्मित या समन्वित है। ये पंच तत्व इस प्रकार हैं:—कर्म, काम, चन्द्र, सूर्य और अग्नि[२]। स्थूल अर्थ में चन्द्र और सूर्य दो नक्षत्र या ग्रह विशेष हैं लेकिन तांत्रिक साधना में चन्द्र-सूर्य का अर्थ क्रमशः माता के रज और पिता के शुक्र से है और इन दोनों के संयोग से ही इस शरीर की रचना हुई है[३]। सरहपाद ने इस अर्थ में चन्द्र सूर्य का प्रयोग नहीं किया है।

हठयोग प्रदीपिका में हं का अर्थ सूर्य तथा ठ का अर्थ चन्द्र है। इन्हीं दोनों के संयोग से हठयोग साधना पूर्ण होती है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि हे अर्जुन, जो तेज सूर्य में स्थित है, सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमा में स्थित है और जो तेज अग्नि में स्थित है, उसको तुम मेरा तेज मानो[४]। सूर्य-चन्द्र की व्याख्या "बृहज्जाबालोपनिषद्" के दूसरे ब्राह्मण में भी की गई है[५]। सूर्य का अर्थ शिव और चन्द्र का अर्थ शक्ति भी है।

---

१. वही, पृ. २४।

२. "कर्मकामाश्चन्द्रः सूर्योऽग्निरीतिप्रत्यक्ष कारणं पंचकम्"। सि० सि० प०, पृ. ११२।

३. किं च सूर्याग्नि रूपम पितुः शुक्र सोम रूपम च मातरजः।
उभयो संयोगे पिण्डोत्पत्तिर्भवति ॥

४. यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥१५।१२॥
मामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥१५।१३॥

५. अग्निसोमात्मकं विश्वमित्याग्निराचक्षते।
रौद्री घोरा या तैजसी तनूः सोमः शक्त्यमृतमयः शक्तिकरी तनूः।
अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजो विद्या कला स्वयं,
स्थूल सूक्ष्मषु भूतेषु स एक रसतेजसी ॥२॥
द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका।
तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानलात्मिका ॥३॥
वैद्यु दादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः।
... ...बृ० उ० २।१-८॥

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वज्रधर

वाम	चण्डाली	दक्षिण
प्रज्ञा		उपाय
शून्यता	अवधूती	करुणा
चन्द्र		सूर्य
रात्रि	डोम्बी	दिन
माता		पिता
संवृत्ति		निवृत्ति
शक्ति, मुद्रा या प्रकृति		पुरुष या शिव
ललना		रसना
आलि		कालि
रक्त		शुक्र

बोधिचित्त (वज्रधर)

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इसी को और स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि सृष्टि की कल्पना इस शरीर में ही की गई है। इस बात को सिद्धों, नाथों और संतों ने भी एक मत से स्वीकार कर लिया है। सरहपाद तो शरीर को ही सब कुछ मानते हैं :—

एत्थु से सुरसरि जमुणा एत्थु से गंगासाअरु।
एत्थु पआग वणारसि एत्थु से चन्द दिवाअरु॥
क्खेत्तु पीठ उपपीठ एत्थु मइं भमइ परिठ्ठओ।
देहा सरिसअ तित्थ मइं सुह अण्ण दीठ्ठओ॥[1]

और आगे द्वैत-अद्वैत के संबंध में चर्चा करते हुए सरहपाद ने लिखा है कि वहाँ पहुँच कर द्वैत-अद्वैत का भाव मिट जाता है। वहाँ तो केवल "एक" का ही अस्तित्व रह जाता है।[2] इस प्रकार सरहपाद ने अद्वैत को मान्यता दी है। जब सृष्टि की सभी वस्तुओं की कल्पना इस शरीर में ही की गई है तब स्त्री-पुरुष को वज्रयान में प्रतीक रूप में समावेश करना भी ठीक ही है। उनका नाम वज्रयान में चण्डाली, डोम्बी, शबरी, योगिनी, सहजसुन्दरी इत्यादि रखा गया है। द्वैत-भाव के मिट जाने पर जो अवस्था आती है उसे विन्दु कहा जाता है। इस प्रकार शुक्र-रक्त, प्रज्ञा-उपाय का मिलन होता है। दोनों के मिलनोपरान्त ही "सहज" की प्राप्ति होती है।

वज्रयान में स्थान-स्थान पर "आनन्द" का उल्लेख मिलता है। सच पूछिए तो सब कुछ उसकी प्राप्ति हेतु ही किया जाता है। योगी भव-प्रपंच से ऊपर उठ कर जिस स्थान पर पहुँचता है, उस स्थान का नाम "सहजानन्द" है। उस अवस्था का वर्णन सरहपाद ने इस प्रकार किया है :—

चन्द-सुज्ज घसि घालइ घोट्टइ। सो अणुत्तर एत्थु पअट्ठइ॥
एव्वहिं सअल जाण निगूढ़ो। सहज सहावे ण आणिअ मूढ़ो॥
जइ पुणु अह-निसि सहज पइट्टइ। अमणागमण जें तहि ऐवाट्टइ॥
भावाभावें वेण्णि न काज्ज। अन्तराल ट्ठिअ पाडहु वाज्ज॥[3]

सहजावस्था में पहुँचने पर साधक को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रह जाती। वह सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त हो कर अनुत्तर की प्राप्ति करता है। सहजावस्था या महासुख तक पहुँचने के लिए साधक को चार अवस्थाओं को पार करना पड़ता है— १—प्रथमानन्द, २—परमानन्द, ३—विरमानन्द, ४—सहजानन्द[4]। आनन्द की चारों अवस्थाएँ महासुख

१. दोहाकोश : सं० डा० प्रबोधचन्द्र बागची, पृ. १५, दोहा संख्या ४७, ४८।
२. सरु पुरुअणि दलु कमल, गंध-केसर वर णालें, च्छाडहु वेण्णि मा करहुसे मा लाग्गहु वढ़ आलें॥
कामान्त सान्त लअ जाअ, पत्थ पुच्छहु कुलहीणउ। वाम्ह विट्ठु-तअलोअ, जहिं जाइ विलीणउ॥ दोहाकोश, पृ. २२
३. दोहाकोश, पृ. १०।
४. युगनद्ध : पृ. ८८

ताला कुंजी गहि लागि केवारा। चोर न मुसै ज्ञान रखवारा ॥
ताके कहिये ज्ञान गंभीरा। त्रिकुटी मध्य जो परखै हीरा ॥[४६]

भीखा जड़ि ताला वज्र कपाट को तहं बैठे आतमराम।
देखें सुने की गम नहीं नहिं आंख कान को काम।[४७]

इसी ताला कुंजी के रूपक का प्रयोग अन्य अर्थों में भी हुआ। दादू ने गुरु के शब्दों को कुंजी माना और उससे ज्ञान के कपाट खुलकर तत्व की प्राप्ति वर्णन किया : दादू देव दयाल को गुरू दिखाई बाट
ताली कुंजी लाइ के खोले सबै कपाट ॥[४८]

बाद में इसके कई निरर्थक प्रयोग भी मिलते हैं जहाँ ये दोनों उपमान ग्रहण किये गये हैं किन्तु उनका ठीक ठीक अर्थ नहीं बैठता :

बिना कुंजी का खुले नहीं ताला।
काहे के कुंजी, काहे का ताला, काहे के लगे हैं किवारा॥
तन की कुंजी सुरति का ताला, प्रेम के लगे हैं किवारा॥
छत्रसाल भजो नाम धनी के चरन चित लागा।[४९]

उपरोक्त पद में केवल परम्परा निर्वाह के लिये कुंजी और ताला के उपमान ग्रहण किये गये किन्तु उनका पवन-बन्ध-परक अर्थ लुप्त हो चुका है। ताला कुंजी के साथ साथ उपमान रूप में चोर भी चर्यापदों में आता है। यह 'चोर चंचल चित्त या क्लेश-वासनादि से अभिभूतमन के लिये प्रयुक्त होता है और हठयोग साधना में पवन-बन्ध या श्वास-निरोध से स्थिर मन जब तत्व को ग्रहण करने लगता है तभी इस बात की आशंका होती है कि वासनाविकल प्रवृत्तियां कहीं चोर बन कर उस तत्वरूपी धन को चुरा न ले जायँ। इसी कारण ढेण्ढ-णपा ने अपनी उलटबांसी में साधु को ही चोर कहा है 'जो सो चोर सोइ साधी।'[५०] इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए कबीर ने भी कहा है :

चोर एक मूसै संसारा, बिरला जन कोइ बूझनिहारा।[५१]

यह वासना-विकल मन (या माया-शवलित अन्तःकरण) साधना-पथ में सबसे बड़ा अवरोध है और साधक के अनजाने ही कभी कभी यह उसका तत्वरूपी धन गंवा देता है। इसीलिये साधना पथ में इस चोर से सावधान रहने की बात नाथ तथा सन्त साहित्य में बराबर कही गई है :

गोरखबानी —काया हमारैं सहर बोलिये मन बोलिये हुजदारं
चेतनि पहरै कोटवाल बोलिये, तौ चोर न झंकै द्वारं ॥[५२]

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मण्डल

वज्रयानी साधना में "मंत्र" को शब्दबीज माना जाता है। इसी शब्दबीज के सहारे साधक शरीर स्थित प्राकृतिक शक्ति को स्वायत्त तथा उद्बुद्ध कर पाता है। जबतक साधक इसमें लगा रहता है तबतक उसके सामने विभिन्न देव-देवी समय-समय पर उपस्थित हुआ करते हैं। मण्डल रचना का मुख्य उद्देश्य साधक की सक्रिय क्रियाओं को सुव्यवस्थित रूप देना है तथा नियमानुसार साधनात्मक क्रियाओं का पालन करना है। मण्डल में सभी देवी-देवताओं को स्थान-स्थान पर स्थापित किया जाता है। उच्च श्रेणी के साधक शरीर में ही चक्र की कल्पना करते हैं। और उच्चतम श्रेणी के साधक सम्पूर्ण ब्रह्म को ही चक्रमय मानते हैं। इस प्रकार की भावना को प्रधानता मिलती गई। वज्रयानी सिद्धों ने मण्डल रचना को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया, वज्रयानी सिद्धों की रचनाओं में मण्डल रचना और चक्र रचना विधि का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है।

गुरु जब किसी नए शिष्य को दीक्षित करना चाहता है तब मण्डल रचना की विशेष आवश्यकता पड़ती है। बिना मण्डल रचना के कोई भी शिष्य दीक्षित नहीं किया जा सकता है। सिद्ध सरहपाद ने अपनी रचना "श्रीबुद्धकपाल साधन नाम" तथा "श्रीबुद्ध कपालनाममण्डलविधिक्रमप्रद्योतन"[२] में मण्डल रचना की विधि का विस्तृत उल्लेख किया है, जिसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत शोध-प्रबंध में परिशिष्टांश में दिया गया है।

मण्डल रचना में सर्व प्रथम सोलह अक्षरों से मण्डल की रचना आरंभ की जाती है, परन्तु बाद में गुणनफल की वजह से अक्षरों की संख्या अस्सी हो जाती है[३]। मण्डल-रचना के पश्चात् विभिन्न स्थानों पर विभिन्न देवी-देवताओं को स्थापित किया जाता है। साधना समाप्त होने के पश्चात् फिर उन सभी को विदा कर दिया जाता

जीवनमूरि मेरे आत्मराम, भाग बड़े पायेऊं निज ठाम।
सबद अनाहद उपजइ जहां, सुखमन रंग लगावइ तहां॥

दादूदयाल का सबद : भाग—१. पृ. १४६।

कबीरदास जब उस अवस्था में पहुँचते हैं तब अवधू नाद करने लगता है, बिन्दु के बादल गरजने लगते हैं। और अनाहद शब्द की ध्वनि उठने लगती है। दे० क० ग्रं० पद १६६। जब साधक वहाँ पर पहुँच जाता है तब इंद्रियाँ आपस में मिल कर झगड़ने लगती हैं। उनमें अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। केवल एक ही शब्द उस समय निनादित होता है क्योंकि उस समय कोई इन्द्रिय काम नहीं करती है। और यह अवस्था उसी समय आती है जब चन्द्र और सूर्य नाड़ियाँ एक स्थान पर मिलती हैं।

ससिहर सूर मिलावा, तब अनहद बेन बजावा।
जब अनहद बाजा बाजै, तब सोईअसंगि विराजै॥

क० ग्रं० पृ. १०६, पद १७२।

१. तिब्बती त्रिपिटक : खण्ड ५८, पृ. १०२।
२. तिब्बती त्रिपिटक : खण्ड ५८, पृ. १०२ तथा आगे : परिशिष्ट में अनुवाद द्रष्टव्य।
३. तिब्बती त्रिपिटक : खण्ड ५८, पृ. १०२।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गंगा, यमुना और सरस्वती

गंगा, यमुना और सरस्वती हमारे देश की तीन पवित्र नदियाँ हैं। परन्तु साधकों ने इन तीनों नदियों के माध्यम से शरीर के भीतर स्थित तीन प्रमुख नाड़ियों का वर्णन किया है। सरहपाद ने इन तीनों का वर्णन तीर्थ स्थान के रूप में किया है। इस मानव देह में ही भारत की तीनों पवित्र नदियों का निवास स्थान है, साधक या भक्तगण निरर्थक इधर उधर तीर्थ के लिए भटकते रहते हैं :—

> एत्थु से सरसइ सोवणाह, एत्थु से गंगासाअरु।
> वाराणसी पआग एत्थु, से चान्द-दिवाअरु ॥[1]

सरहपाद के परवर्ती सिद्धों, नाथों तथा योगियों और संतों ने गंगा, यमुना और सरस्वती, संगम, सर्पिणी, मेरुपर्वत, योगिनी, सास आदि प्रतीकों का प्रयोग समान रूप से एक ही अर्थ में किया है जिसका वर्णन और विवेचन अगले अध्याय में किया जायगा। इन प्रतीकों के सांकेतिक अर्थ इस प्रकार हैं :—गंगा = इड़ा ; यमुना = पिंगला ; मेरुपर्वत = मेरुदण्ड ; सरस्वती = सुषुम्ना ; संगम अथवा त्रिवेणी = तीनों नाड़ियों का संगमस्थल ; सर्पिणी = कुण्डलिनी ; योगिनी = महामुद्रा ; सुरति, सास = श्वास, सुषुम्ना, माया ; सूर्य = इड़ा ; चन्द्र = पिंगला। इस प्रकार गंगा-यमुना और सरस्वती क्रमशः इड़ा, पिंगला सुषुम्ना ; सूर्य-चन्द्र और सास आदि नाड़ियाँ केवल तीन विशिष्ट नाड़ियों के भिन्न नाम हैं। उनका वर्णन भिन्न साधकों ने भिन्न-भिन्न अर्थों में किया है। इन तीनों नाड़ियों का यौगिक साधना में महत्वपूर्ण स्थान है। इन तीनों नाड़ियों के मिलनस्थल को त्रिवेणी कहा जाता है, वहीं पर साधकों को "महासुख" की प्राप्ति होती है। सरह ने तीनों को शरीर के भीतर ही माना है। तात्पर्य यह है कि जबतक साधक अपने आप को नहीं प्राप्त करता अर्थात् पहचानता तबतक वह "महासुख" या सहजसुख को नहीं पा सकता है चाहे वह कितना ही इधर उधर तीर्थों में भटकता फिरे। अन्य सिद्धों ने भी गंगा यमुना का उल्लेख किया है। सर्वत्र उसी एक ही अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है :—

> गंगा जउन माझें रे वहइ नाइ।
> तहिं बुड़िली मातंगीपोइआ लीले पार करेइ ॥[2]
> ... ...
> चन्दसुज्ज दुइ चका सिठिसंहार पुलिन्दा।
> वामदाहिण दुइ माग न चेवइ बाहुत छन्दा ॥[3]

त्रिवेणी संगम 'ब्रह्मरंध्र' में अथवा दशम द्वार में होता है। अज्ञान और भ्रम के कारण जीव के भीतर के नौ द्वार खुले रहते हैं तथा दशम द्वार का मार्ग अवरुद्ध रहता है। साधना और अभ्यास के फलस्वरूप वह मार्ग खुलता है। ज्यों ही रंध्र खुलता है त्यों ही

---

१. दोहाकोश पृ. २२।
२. चर्यागीतिकोष :—सं० डा० बागची : चर्या संख्या १४।
३. वही, चर्या संख्या १४।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सहस्रारचक्र से स्रवित होने वाले अमृत का पान कर साधक अमर 'सहज सुख' का अनुभव करने लगता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

हठयोग का मूल बीज सर्वप्रथम बौद्ध ग्रंथ बुद्धवचन में मिलता है। इसी बीज का विकसित रूप हम चौरासी सिद्धों की गुह्य-साधना में पाते हैं। चौरासी सिद्धों के पश्चात् नाथों में तो हठयोग सम्प्रदाय ही स्थापित हो गया। इसमें साधक हठयोग की साधना द्वारा ही सब कुछ प्राप्त करता है। कबीर ने इस हठयोग को ही ईश्वर की प्राप्ति का एक साधन माना है।[१] संतों आदि में चन्द्र-सूर्य की साधना का जो वर्णन मिलता है, वह संभवतः सर्वप्रथम बौद्ध सिद्धाचार्य सरहपाद ने ही प्रारंभ किया था।[२] सरहपाद की रचनाओं में चन्द्र-सूर्य की साधना की अभिव्यक्ति इस प्रकार मिलती है :—

चन्द सुज्ज घसि घालइ घोट्टइ। सो अणुत्तर एत्थु पअट्ठइ।
एव्वहिं सअल जाण विगूढ़ो। सहज सहावे ण जाणिअ मूढ़ो।[३]

अर्थात् जब साधक चन्द्र सूर्य की साधना में पूर्ण सफलता या सिद्धि प्राप्त कर लेता है तब वह "अनुत्तर" को प्राप्त कर पाता है। यह तथ्य बहुत ही गूढ़ है, सहज ही समझ में नहीं आता; क्योंकि वहाँ पर "सहज" का निवास है, जिसका मार्ग बहुत ही दुर्गम है। वहाँ मूढ़ व्यक्ति सहज ही नहीं पहुँच सकते। उसको वही साधक समझ पायेगा जिसने "तत्वज्ञान" प्राप्त किया है। सरहपाद ने चन्द्र-सूर्य का वर्णन करते हुये और आगे कहा है :—

अध उद्ध मागुगवर पइसरेइ। चन्द-सुज्ज बोइ पडिहरेइ।
बंचिज्जइ कालहुतणाअ, वे विआर समरस करेइ॥[४]

सरहपाद ने कहा है कि जब चन्द्र-सूर्य का मिलन पूर्ण रूप से हो जाता है तब साधक को "शून्य" निरंजन परमपद की प्राप्ति होती है। "भव" और चित्त का स्वभाव समाप्त हो जाता है। रवि-शशि के मिलन के पश्चात् महासुख अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक होता है। रसना से दिन-रात विन्दु टपकता रहता है। वहाँ पहुँचने पर मनरूपी हंस मृत्यु प्राप्त करता है।[५] रवि-शशि और विन्दु सभी "खसम" के समान अमर हैं।[६]

सरहपाद ने चन्द्र-सूर्य का प्रयोग यौगिक शब्दावली के अर्थ में किया है। उनके अनुसार दाहिने-बायें स्थित दो नाड़ियों की साधना ही चन्द्र-सूर्य की साधना है। इस साधना पद्धति का विकसितरूप नाथों और संतों में मिलता है। जो पृथ्वी, आकाश, पवन, जल, चन्द्र, सूर्य, षटदर्शन, ओंकार का मंत्र जान लेता है, वही अलख अनंत सिद्ध है।[७] गंगा जमुना और सरस्वती तथा इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का उल्लेख करते समय सरहपाद ने सूर्य और चन्द्र का भी उल्लेख किया है। रवि-शशि का या सूर्य-चन्द्र का मिलन स्थान "अमर" है। वहाँ पर परमसुख की प्राप्ति होती है।[८]

---

१. कबीर पदावली : डा० रामकुमार वर्मा; भूमिका, पृ. ५१।
२. दोहाकोश : सं० राहुल सांकृत्यायन; भूमिका, पृ. ३२।
३. वही, पृ. १०। ४. वही, पृ. १४।
५. वही, पृ. १३७। ६. वही, पृ. ३०।
७. नाथ सिद्धों की वानियाँ : पृ. ५२।
८. र-रा रवि-शशि विन्दु खसम अ-मर, रवि से पूर्ण महासुख प्रकार अति सुन्दर।
रसना विन्दु विन्दु चुवै रातिदिन, निज मन के हंस मारे। दोहाकोश—राहुल पृ. १३७।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

२६

जो प्रथिवी सकल प्रदछनि देय। मकर प्राग कलिवत्रि मिर लेय।
जीवित वहन देत जो प्राना। उर्द्धपाउ सो धरै धिग्राना।
कोटि जनिम जुक्त सो रहे। इद्री पंच ग्रातमा गहे।
एक पलिक हरि सिमरनि कीजै। ता सम सीर कछु ग्रविर न दीजै।
कोटि ग्रस्वुमेध यग्य जो कीजै। तुल्हापुर्ष दान भरि दीजै।
सिहजा भूम दान जो करे। लें दुविकी मनि काम न मरे।
निहि स्वादी नही पावे स्वादि। तजिए पनि सभ वादिविवाद।
बोलनि छाडि मौन धरि जांहु। भी हरि सिमरणि समसर नाहु।
कुभ करे शिव द्वादश वारा। प्रान देत जहां हैहि वंधारि
जोगि जुगित सो राषे ध्यान। पाच भूत का मारे मान।
रेचक पूरक कुभक माधे। वाउ पच ग्रग्नि तटि बाधे।
उलिटि पौन पटि चक्र को भेदी। मगिन समाध सो भेदि विभेदी।
नौ दरि रोंक दसवे घरि जाहु। भी हरि सिमरनि सम सर नाहु।
बांधि जटा वभूति चडावै। गंग जमनि विच सुरसुरी नावै।
ग्रविरि छाडि दिगविर होवे। निद्रा जोगि ध्यानि मैं मोवे।
पीवे पवन सहज घर पानी। मडल गगन चडा वैवांनी[1]।
तालाकुजी की गति जाने। ग्रंतिर ध्यान लाग मनि माने।
मूड मुडाय होत वैरागी। निंद्या चिंद्या सकली त्यागी।
तीरथ कोट सकल भरिमांहु[2]। भी हरि सिमरनि समसर नाहु।
साधे पचग्रग्नि त्रैकाल। जलि तपि सीत करे परिजाल।
शिषर बाध कुभनि की धारा। दयाहीनि मनि भ्रमे विकारा।
करि पषडि चडावै पेहु। विन विवेक कित दडे देह।
मनि वच कर्म साच धरि रहे। जैसा हिर्दे तैसा कहे।
बधनि मुक्त हो जायगो प्रानी। मिटे वियोगि सहजि लिव ठानी।
मिल सतिगुरि ऐसी मति पावै। तौ साईंदास फिर जनिम न ग्रावे।

. वैवांनी < विमानी = जहाज।

भरिमाहु = भ्रमण किये।

श्लोकु—साधू सहिज समाधि मै शिवि मिल शक्त हरति
साईदास मध्यम थीवे आपथी सभ ते ऊंचा दिसंति ।।

२२

जोगि जुगति मेल गुरि ते पाई[१]। मिटि गियो भर्म दूसरा भाई।
रोकआ मूल बिर्छ का पेटु। दो दल ऊपरि राखे मेल।
नाडी तत्त मूल जवि जान्या। चतुर्दल छीन षटिदलि ठहिरान्या।
अष्ट कविल दल पौना जाई। सूषम कुंडली रह्यो समाई।
रोक्या सूर सोम गृह आइआ। साईदास पदि गुरने पाआ।

लोकु—सभे नाती कुडीआ तेरी वाह् अनादि।
तू दरि इको जेहवा पुछे नाही जानि ।।
जाती को जरवधि परी किस पग्र करीं पुकार।
नाम उधारे प्रभ पापा के कंड भारि ।।

२३

भगिवन्त पष्प की चाल अपर्सी। तवि अपर्स[२] होवे समदर्सी।
लोभ मोह की तोडे फासी। ताकी थ्रिष्ट सकल होय दासी।
चर्न दिष्ट ते राखे नयना। झूठे कविहूं नि बोले वैना।
आत्म ते परिमात्म जाने। हरि का मार्ग तांवी पछाने।
सील सजम जुगत सो रहे। इद्री पच्च आत्मा गहे।
साईंदास अपर्स कहावन। जो पापा के निकटि नि आवन।

---

१. योग युक्ति और ज्ञान—ये दो सहज समाधि के साधन है। यहां योगयुक्ति का वर्णन है।

२. अपर्स—स्थित प्रज्ञ का लक्षण। वह योग युक्तियो के बिना भी मुक्त हो सकता है। समदर्सी बन सकता है। उसी का वर्णन यहा से प्रारम्भ है—

(क) लोभ मोह से रहित होना।

(ख) नीची नजर (चरणो पर दृष्टि)

"दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम्," मनुस्मृति।

(ग) सत्यभाषण।

(घ) शील, सयम तथा युक्ति से रहना।

(ङ) पचेन्द्रिया तथा मन को वश करें।

पिंड षंड ब्रह्मण्ड सुलीना, सुन्न सविद अपिती जपतीना ॥[3]

साधना करते करते साधक जब मन और ब्रह्म को मिला लेता है, तब वहाँ एक ऐसी अलौकिक ज्योति उत्पन्न होती है, जिससे सारा अंधकार विनष्ट हो जाता है। "पिण्ड", "षण्ड" और "ब्रह्माण्ड" सभी एकाकार हो जाते हैं और उनका अस्तित्व शून्य में परिणत हो जाता है। शून्य शब्द ही सर्वत्र निनादित होने लगता है।[4] शून्य की प्राप्ति के पश्चात् साधक को एक अलौकिक तथा आश्चर्यजनक शक्ति की अनुभूति होती है जो सभी अनुभूतियों से परे की वस्तु है :—

उन्मनि लागी शून्य में, निशिदिन रहै गलतान।
तन मन की कछु सुधि नहीं, पद पाया निरबान ॥[5]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि समान अनुभूति और साधना होने के कारण सरहपाद ने जिस शून्य शब्द का जिस यौगिक और दार्शनिक अर्थ में प्रयोग किया है, उसी

१. नाथ सिद्धों की बानियाँ, पृ. ५२।
२. संत कबीर, पृ. १८१।
३. गुरुगुसाईं की गुरुबानी, पृ. ७।
४. शून्य सविद का चांदना देखे अचरज रूप।
 कर्मचन्दि गुरि चर्न धूरि परि पाए प्रेम अनुपम।
 संन सविद अति सिषर हे गावे साहें गीत्रि।
 कर्मचन्दि गुरु चर्न धूरि परि होए नैनि अतीति ॥ गु० गु०, पृ. १३१।
५. सत्य कबीर की साखी : पृ. ६६।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रकार के वर्णन परवर्ती नाथों और संतों ने भी किया है। शून्यावस्था में पहुँच कर साधक सब कुछ भूल जाता है। संसार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। संतों ने इसे बहुत व्यापक रूप में स्वीकार किया है। दादू तो इस जीवन मार्ग को भी शून्य मानते हैं :—

सुन्नहिं मारग आइया, सुन्नहि मारग जाइ।
चेतन पैंडा सुरति का, दादू रहौ ल्यौ लाई ॥[1]
ब्रह्म सुन्न तहं ब्रह्म, निराकार,
सुन्न सरोवर सहज का तह मर जीवा मन।
दादू चुणि चुणि लेइगा, भीतर राम रतन ॥[2]

बौद्धों की इस शून्य भावना से सूफी कवि भी वंचित नहीं रह पाए हैं :—

आदि किएउ आदेस, सुन्नहि ते अस्थूल भए।
आप करै तब भेष मुहम्मद चादर ओट जेउं।
मा मल सोइ जो सुन्नहि जानै, सुन्नहि ते सब जग पहिचानै।
सुन्नहि ते है सुन्न उपाती, सुन्नहि ते उपजे बहु भाँती ॥
सुन्नहि माझ चन्द्र ग्रह मण्डा, सुन्नहि ते टीके नव खण्डा ॥
सुन्नहिं ते उपजे सब कोई।
पुनि बिलाप सब सुन्नइ होई ॥[3]

इस प्रकार सभी ने यह माना है कि शून्य से ही सबकी उत्पत्ति हुई है और अंत में सभी लोग उसी "शून्य" में मिल जाते हैं।

आत्म मनि बुद्ध एकु है यामै भेद नि कोय।
साईंदास जौ माने तो मान लेह कहे होत नहीं दोय[1] ।।

५२

एक रूप आत्म सभ माही। कर्म करे फुनि नामु सदाही ।।
बुधि प्रकास परिमातम होई। आत्म मनि मिल दुर्मत षोई ।।
सभ ही भीतिर ब्रह्म पछाना। अपिना आपि देष पतीआना ।।
नैनन माही दीयो दिषाई। औरि नहीं कछु नाम सुहाई ।।
एको राम रमयों सभ थाई। साईंदास सुष आनदि माही ।।
सलोकु—जोग ध्यान षटि कोटि को जाते जोगी होय।
विन जाते घरि ना बसे जतिन करे जो कोय ।।

५३

प्रथमे मूल द्वारि रोकावे। दुतिए लघ दुआरे फुनि आवे ।।
नाभि कविल बाउ धरि अहे। वर्तत अदिभुत लीला कहे ।।
उलिटि पविन जवि हिर्दे आवे। आनदि होइ अनद समावे ।।
जीवित आइ वस्यो तिस मदर। अतिभुति रूप वन्यो अति सुदरि ।।
विसर गियो जो काम कमावित। करि क्रीडा तवि सुष उपिजावत ।।
त्रैगुनि गियों अगम घरि आवे। जगित माह सभ ही विसरावे ।।
पचि दूति का कीनो षापु। षडग लियो सोहं करि जापु ।।
अवि तो उनिमन माह समायो। भयो कछु था जो जगि आयो ।।
लीयो पछान परिमात्म सुप जविही। उनिमनि में राता जनि तविही ।।
सोंहं पदि सो रहयो उरिझाई। साईंदास गुरि दीयों बताई ।।
चिह्न चक्र ना वर्ग कछु दिष्ट पडो नहीं भीति।
साईंदास अपिना आपु पछानियो निर्मल होइयो चीति ।।

५४

चिह्न चक्र कछु दिष्ट न आयो। मानि गयो आतिम सुष पायो ।।
जो कछु था सोई कछु भयो। ससा सोग रिदे मिटि गयो ।।
मगिन होय पुरि माहि समाओ। अनिहदि नार बजे मनि भायो ।।
वाजित वजत्र तारि अधिकाई। निर्त कर्त को कह समझाई ।।

[1] साईंदास जी का सिद्धान्त—"अद्वैतवाद"।

ब्रह्मरूप निर्लेपु है माया शक्त न कोय।
साईंदास ताको छेदे वल करे कर्मा वाला होय।।

३९

एको परिमात्म निरमाया[1]। आत्म उपिजे तांकी छाया।
वपि धरि आत्म कर्म कमाया। कर्मा ही ते जीउ कहाया।
जबि जीउ इति उति डोलन लागा। ताते कहीए मनि अनुरागा।
मनि मनिसा मिल षेल बनाओ। चितवनि ही ते चित्तु कहायो।
जबि चितु फेर पिछौड़े जाया। तौ परिमातिम जाय समाआ।
षेचरी[2] साधे त्रितें चितवनी जाय। भूचरी ते मनि उलिटि समाय।
अगोचरी ते आत्म लिवे लागे। उनिमनी तें ससा सभ भागे।
चाचरी साधे सहिज निवास। साईदास आत्म भयो प्रकास।
कर्म करे सोई नाम ही समझि विचार विवेक।
साईदास कहिन मुनिन को दोय है जानिन कों प्रभ एक।।
उपिज विनस क्या कहो सभी रहुअ भरिपूर।
साईदास किनहूं नेडे जानआ किनहू रामभयो दूरि।।

४०

किनहूं राम निकट करि जाना। किनहूं दूर दूर करि माना।
किनहूं साध लीओ घटि माही। किनहूं दिष्ट पडो कछु नाही।
किनहूं अपिना आपु पछाना। किनहू जान्या किनहू न जाना।
किनहू दीपक जोति प्रकासी। किनहूं भर्म परो उरि फासी।
साईदास जिह इह सुप मानयो। थान थनतर रहया समायो।
धर्म नेम सभ को करे घाति करे नहीं कोय।
साईदास जप लीजिए जो कुछ होय सु होय।।

४१

राम नाम मनि लेह विचारी। भर्म की भीति चित हूं ते टारी।
राम नाम अमृति फल पायो। राम नाम घटि माह समायो।

---

१. यहा से ब्रह्म अश किस प्रकार जीव बना, इसका वर्णन है।
२ खेचरी, भूचरी, अगोचरी उनिमनी और चाचरी ये पाच यौगिक अवस्थ हैं। अधिक स्पष्टता के लिए परिशिष्ट मे देखिए।

जिनि सभ ही में एको जाना। वहु विध रंगी रंग पछाना ।।
षालक बन्या षलक के माही। षालिक पेल पाकि होइ जाही ।।
षालक हू ते पाक जिनावे। पुशी पालक की तविहूं पावे ।।
हौमे मेटे ते अलिसाना। जीवित पाक होइ पसमाना ।।
षसिम मने तौ नौ-निध पावे। जिस को अपुना आपु जनावे ।।
साईदास प्रभ अकथ नीशानि। मै तेरी कुदिरत तो कुरिबानि ।।
सलोकु—करि करिवाल जो काल के काटति पलिक पलाहि।
तबि जान्या जवि गिर परा सनिमुष जूझे जाहि ।।
जो जूझे तेऊ भले अनि झूझति किह काज।
साईदास तवि क्या झूझणा जवि जम के भए मुथाज ।।
निमिषि पलिक नही बीसरे हीए तिहारो नामु।
करि पसार दोउ मागिते साईदास यहि विसराम ।।

३८

मूले चक्रे लागे बंधि[1]। इद्री चक्रे थिर भए कधि ।।
नाभे चक्रे उलटै पौना। ताते मिट गियो आवा गौना ।।
रिदे चक्रि मन कविल प्रकास। चूकी मार्न जीविन की आस ।।
कठी चक्रे टुटे ताला। जोगी होइ वृद्धि ते वाला ।।
शपनी चक्र भयों उजिआरा। जो चीन्हे सो जोगी सारा ।।
षटि रस भेद गगिन गडि गाजा। जिह परिचा अनहद बाजा ।।
आदि अनादि भओं ओंकार। जिह मिल सुर्त कीओ सचार ।।
सुर्त निर्त मिल एको भआ। जीवि सीवि मिल संसा गआ ।।
ससा गिआ भअ निहसम। जित देषो तित एको वसि ।।
उत्तम मधम तहा को नाही। साईदास पदि पूर्न घटि माही ।।
सलोकु—मूल रोक षटि चक्र कों रिदे पंकज को ध्यान।
सपनी ते सचु पाईए तहा समाने प्रान ।।

---

1. योग साधना द्वारा मुक्ति प्राप्त करने के लिए साधक को प्राणायाम द्वारा कुडलिनी को जागृत करना होता है। यह कुडलिनी शरीर में स्थित छः चक्रों को पार करती हुई सहस्रदल कमल मे पहुच जाती है, यही साधक की परम-सिद्धि है। उन्ही चक्रो का यहा वर्णन है। इनके विशेष ज्ञान के लिए परि-शिष्ट देखिए।

पाछे पकर पकर रवि किरणी,
नेत्र निहारी छायाल निज घर फिरनी।
कहिना सुनना सभ तुमरो गाथा,
सांईदास का प्रभु दसि दिश लाथा॥

सोरठ

मन रे इन मैं है कोऊ तेरा।
मूनिस पंछी जैसे विर्ष बसेरा॥—रहाऊ
मात पिता ते पत्नी प्यारी, ढूढ ढढोर तनु पायो।
तिन तो अति गवन की बिरोधा, इनि उति बदनु दुरायो।
सीत घाम दुख सुप कर मान्यो, रच पच धाम बनायो।
तांते धीस निकाल्यो पिन मैं पलिक न रहिणा पायो।
इष्ट मीत अरु संजुन सहोदर, सदा रहित तुम्हि घेरे।
तेऊब उलटि कहै क्या विलमो काढो प्रेत सवेरे।
तन सुत हेत चर्न तजि के शिव प्रतिपालन मनु जोरयो।
तिन ही प्रिथमे लूका दीनो, सीस हडाहल फोरयो।
नरनारी अरु नेह कुटवी भर्त पोषन प्रति पारयो।
तेऊ बनोर अडाल चले है पाछे किन न निहारयो।
मैं जग ढूढ ढढोर निहार्यो, सौच सुकच जीय माही।
सांईदास भगवान भजन बिनु अंत काल कोई नाही।

राग रामकली

अगम अगोचर अनहदि वाणी[१]।
क्था कोई कहै कहिन की नाही, अनभय गति हयरानी।
पांचो मार करे अपुने वश्य तौ इंद्रि ज्ञानु बीचारे।
दशि दिश गवन करन ते थाको आप तरे औरों को तारे।
त्रिगुण अतीत रहित तति उपिजै तत पद माह बिल्हावे।
गंग जमुन के भीतर बैठा अगमो निगम लयावे।
सुन समाध सहिज लिव लागी मनु ले तहा चढावे।
पसरी किर्ण तिमर तब फूटा, सोहं शब्द सुनावै।

१. पृ० ६५८ पर यह पद आ चुका है। यहां दो पंक्तियां अधिक हैं।

एह धरिती केतक मरण माटी केतक बीच अकासा।
जलि परि धर्न धर्न धर्न[1] परिवर्षा, एह जलु कहा ते आवे।
आपो अपिनो बूद परित है मेरा सतिगुरु एही बतावै।
एका रकत बूंद फुन एक सुति दुहना किन साजी।
करिम कर्तूत कीए सभ उनि के वीचारो एहवाजी।
क्या मैं लिपो तूं अलिप कहावे लिख मै परित भुलाना।
जैसी सूझ फुनि तैसी जो काहूं मन माना।
ओहु अविगति नाथ अगोचरि कहीए कहवो सांईदासा।
जवि लगि हंस मुआद सभ तवि लग पाछे भओ विनासा।

रामकली

अनिल अनील अतीति वानी।
तहा मनु रचना आवागौनी भरम चूका, सारि गुरवचना
कोई जनु जोग का अरभु साजे, सदा षोजे अनहा वाजे
अगम सपी सुनि लावे, षोजता अगति पावै
एडा पिगुला सुषमननाडी जोग की इक विध सारी
सविद गुर्कें[2] श्रोत्र ताडे पूरिवो पश्चम चाडे
नादि विद कला चाई तत्त वस तिमु कटि आई
अन्हा धरि जब भैओ वासा ता अकथ कथयो सांईदासा

रामकली

विरिथा नबारणा भजु सरिणा।
तेरी कौरा चुकावत चितवति मन ते क्या करना।
जवि लग बूंद परी गर्भ अंतर सहज देहा उरि धाई।
नपि सिष नेत्र विधाता कीने लेषु न मेटओ जाई।
विहु लिषआ दुषु सुप तपु संजम सील सुमति दुआई।
चंद सूर्ज ब्रहमड टलेगो लेषु न मेटओ जाई।

---

1. एक धर्न शब्द लिपिकार का दोष।
2. गुर्कें=गुरु के।

रागु प्रभाती

खालि[1] हो कृपाल माधो सभनि के प्रतिपाला।
आगे आवित पै पठाविनि पाछै आवित वाला ।।रहाऊ
बनि कीटि पप पसु विराजित कछु गाठ ना बधाइओ।
देन हारि करि सम्हारि विरिद ही वहाइओ।।
पष्यान मध्य गुफा कीटि मार्गु नही कोऊ।
तांकों कित भांति देति सभनि का प्रभू सोऊ।।
भूम मद्ध पै अकासि जलि मै जो जीआ।
कर्न कार्न प्रभ अपारि जानिआ सो कीया।।
जैसे जानि तैसे देति आतिम विसुवासा।
चर्न ओटि रिदे राषु तां सो साईदासा।।

हर्ष हर्ष हरि को जसु गाउ।
वारि वारि फिर जन्म नि आउ।।—रहाऊ
मूल द्वारि की रोको वाटि। चारी देत है वज्र कपाटि।।
नाभ कुंडली भओं प्रकासा। रिदे सरोवरि कौल विगास।।
शिव अरि शक्त समोकरि जानो। पौनि मध्य गुरि ज्ञानि विषानो।।
जबि लग रसना पीवै पानी। तबि लग भज मनु सारङ पानी।।
तुरीआ तत्त तहा अनुरागा। बादर बिनु घनि बर्षनि लागा।।
फूटा तिमरि जोति प्रकासि। इह विध प्रणवै सांईदास।।

कैसे मै वर्नो तू अरिधक उरध।
वर्ननि साको ख्याल वाल कवि रिधं।। —रहाऊ
विरछो नि पत्रो न मूलो नि डाली।
पुहपो नि गधो वासो नि माली।
तेरा निरभौउ वाडभत्रानि घडिआ।
वजे निशानु पुरात्मु जडिआ।

---

१. दयाल।

स्वामी दयाल मौज ऐसी धारी । दीन होय तिस लेहूं उबारी
मैं किंकर उन चरनन दासा । सब जीवन को देऊं दिलासा
बांधि सुरत चरनन में राखो । अगम अपार अमीरस चाखो
हंस सभा कहा बरनूं सोभा । होवत जहां शब्दन की वरषा
चमकत बिजली गर्ज अकाशा । और कहा कहूं अजब तमाशा
वंक नाल के नाले छूटे । सुख मन नदियां भरम पुल टूटे २९
त्रिकुटी घाट बैठ मल धोई । मानसरोवर दुरमत खोई ३०

तौ उन का भी कारज सरई। भौ सागर वे इक दिन तरई ४९

जग में जम का ज़ोर घनेरा। जीव करें चौरासी फेरा ॥५०॥

कोई जीव वचने नाहिं पावें। सतगुरु विन सब भटका खावें ५१

वड़ भागी जाय सतगुरु भेटैं। चरन भेद दे घट में खेंचें ५२

सुरत शब्द का भेद सुनावें। ध्यान भजन की जुगत लखावें

सहसदल कंवल जोत दरसावें। अनहद घंटा संख सुनावें ५४

वंकनाल धस त्रिकुटी तीर। सुरत चढ़ी मिला पद गंभीर ५५

अंतिर अइसी जोति प्रकासी।
झिलि मिल दर्सन सदा बिगासी।
अयसी जोति को लागे भाई।
कर्मचंद गुर चर्नं सहाई।
सनिकादिक ब्रह्मादिक थाके जानि।
तुम भी भजो सभ मेरो कानि।
अइसी किर्पा जनि पहराई।
कर्मचंदि सोहं स्वास स्वास समाई

पौड़ी—

उलिटि कौल जवि ऊपरि जाइ।
नाडी नाडी स्वास बताइ।
सूषम नाड सूषम गति पाई।
कर्मचंदि गुरि सदा सहाई।
अष्ट कौल है जांके पात।
पाति पाति फूल बिन सोह जाप।
इसि सोहं का करो वीचारु।
कर्मचंद गुर चर्नं अपार।

पौड़ी—

अपारि कला को जो कोई लागे।
जाके भागि सोई निसि जागे।

कमचदि तुम जागो भाई
सोग्रां सोइआ किउ रैन गवाई।
उलिटि पौन गगनतरि जाइ।
चर्नं कोल मै रहजो समाइ।
अइसा दर्सुन देपो भाई।
कर्मचंदि मिल जोति सवाई।

दो०—गगिनि मार्ग मै जोति झिलमिली तहा अंबृत रसु पीजे।
कर्मचंदि गुरि चर्नं धूरि परि चितु चेतिन करि दीजे।।

पौ०—गगनि मडिल मै अंबृत कूग्रा तहा जाइ लिवि लागे।
तहा जोत झिल मिल हरिसे सोहं सबिद मिला जागे।।
कर्मचदि गुरि चर्नं धूरि परि स्वास स्वास चित लागे।
सुर्त समानी सविद मै सवदि चढिग्रो अकास।
कर्मचंदि गुरि चर्नं धूरि गरि लागी वहुति प्यास।।
इही प्यास लागी रहे निस वासरि अरि भोरि।
कर्मचदि गुरि चर्नं धूरि परि होए नैनि चकोरि।।
चकोर दिष्ट अकास की ग्रानि नि कितिहूं जाइ।
कर्मचदि गुरि चर्नं धूरि परि रहियो सर्व समाइ।।
अकास चादना सबिद है चंदि चकोरि के भाइ।
कर्मचंदि गुरि चर्नं धूरि परि अनेक वारि वलि जाइ।।
अग्नि चुगे चितु ना जले सीतिल ब्रह्म वीचारि।
कर्मचंदि गुर चर्नं धूर परि अनिक वारि वलहारि।।

15:00
2015.341707.Pothi-Bhed
285/352

सुन्न में गई महल दस माहिं। हंसन साथ मानसर न्हाय ॥२०॥
सेत २ वह सुन्न दिखाई। चंद्र चांदनी चौक लखाई ॥२१॥
सिखर चढ़ी पश्चिम के द्वार। महासुन्न के होगइ पार ॥२२॥
भंवरगुफ़ा का ताक उघारा।
सोहंग मुरली सुनी पुकारा॥
चौक परे सतलोक समानी।
सत्तपुर्ष धुन बीन बखानी॥

15:00
2015.341707.Pothi-Bhed
284/352

सुरत दृष्ट कर द्वारा झांका । तोड़ा जाय सुई का नाका ॥ १३ ॥
भीतर धस जो लीला देखी । वरनूं कैसे वात अगम की ॥१४॥
अंतर जामी सतगुर जाने । और भेदी पुनि आप पाहिचानें १५
श्याम सेत के मद्ध समानी । घंटा संख सुनी धुन वानी ॥१६॥
सूर चांद दोऊ दिस देखे । सुखमन गगना तारे पेखे ॥१७॥
आगे धसी वंक की नाल । अव गत काल विछाया जाल ॥१८॥
आगे पहुंची त्रिकुटी द्वार । लाल रूप जहां धुन ओंकार ॥१९॥

14:57
2015.341707.Pothi-Bhed
314/352

सुरत चढ़ाय चलूं नभ ऊपर । सहसकंवल में बैठूं जाय ४३
वहां से बंक त्रिकुटी छेदूं । सुन्न सिखर में आसन लाय ४४
महासुन्न और भंवरगुफ़ा पर । सत्तलोक में पहुंची धाय ४५
अलख अगम के पार सिधारी । वहां आरती कीन्ही जाय । ४६
प्रेम ख़ज़ाना मिला अपारा । राधास्वामी लिये रिझाय ॥४७॥

प्रे० बा० १ नं० श० ३ (शब्द ६४) सफ़ा ७५

सुरत सिरोमन हेला लाई । सतगुर पूरा खोजो भाई ॥ १ ॥

करूं मैं विनती चरनन में। देव मोहिं धुन रस अंतर में ॥ १३ ॥
सुनूं मैं घट में अनहद शोर। शव्द रस पिऊं सुरत मन जोड़ ॥ १४
खोल तिल पट को देख वहार। सहस दम गिनरखूं जोत उजार
वंक धस त्रिकुटी चढ़ जाऊं। दरश गुरु निरखत हरखाऊं ॥ १६ ॥
सुन्न चढ़ तिरवेनी न्हाऊं। दाग कल मल के धुल वाऊं ॥ १७ ॥
महा सुन घाटी चढ़ गुरु वल। भंवर का शव्द सुनूं चढ़ चल १८
सत पुर सुनूं वीन धुन तान। पुर्ष के चरनन लाऊं ध्यान ॥ १९ ॥

15:07
2015.341707.Pothi-Bhed
242/352

अमृत रस भर २ पीया । तन मन सब सीतल हुआ ॥३॥
चोरी अब चोरन त्यागी । घर उनके अगनी लागी ॥४॥
साहु अब घट में जागे । पहरादे शब्द अनुरागे ॥५॥
गुन गावत मन्न हुलसाया । धुन धावत अधर चढ़ाया ॥६॥
जगमग हुई जोत उजियारी । घट खिल गई कंवल कियारी ॥
सुंदर की खिड़की खोली । सुखमन में धुन नित बोली ॥८॥
चढ़ी बंक किवारी खोली । त्रिकुटी जा हुई अमोली ॥ ९ ॥

हौंय जब राधास्वामी गुरू दयाल।
तोड़ तिल देखूं जोत जमाल ॥ १८ ॥
बंक धस त्रिकुटी चढ़ जाऊं। शब्द गुरु दरशन वहां पाऊं१९
सुन्न चढ़ मानसरोवर न्हाय।
देऊं सब कल मल दूर वहाय ॥ २० ॥
महासुन घाटी चढ़ भागूं। भंवर धुन मुरली संग पागूं ॥२१॥
अमरपुर दर्शन सत पुरुष पाय।

15:15
2015.341707.Pothi-Bhed
94/352

अगम लोक के विंजन लाई । राधास्वामी आगे भोग धराई ५
अंबर चीर पीतंबर जोड़े । भेंट किये मैंने हाथी घोड़े ॥ ६ ॥
पांच तत्व गुन तीन सिपाही । मार लिये राधास्वामी की दुहाई
चढ़ी गगन पर कीन्हा धावा । सुरत निरत दोऊ शब्द समावा
बंक नाल की तोप चलाई । बिरह अगिन की चिनगी लाई ९
धर्मराय की फ़ौज भगाई । धूम धाम मैंने बहुत मचाई ॥ १० ॥
घंटा संख मृदंग बजाई । धौंसा धमक धजब धुन आई ॥ ११ ॥

नूर निरंजन लक्ष सम्हारन । सहस कंवल चढ़ कीना दर्शन९
सुई द्वार नाकालगी झांकन । पाप अनंत हुये जहां खंडन॥१०॥
बंकनाल धस त्रिकुटी धावन । ओंकार धुन करी अब सबन
सुन्न मंडल धुन पाई रारंग । किंगरी सुनी और बाजी सारंग १२
चंद्र चौक जहां देखा चांदन । हंसन रूप धरे मन भावन १३
महासुन्न सागर चली न्हावन । सूरत मिली जाय महांचेतन
भंवर गुफा द्वारा अतिपावन । धुन मुरली जहां बजत सुहावन

2015.341707.Pothi-Bhed
86/352

चढ़के आकाश का दुआरा खोल ॥ ६ ॥
जब चढ़े सुरत तेरी अंबर पार ।
देह की सैर कर व देग बहार । ॥ ७ ॥
अचरजी सैर है तेरे नीचे ।
पिरथी ऊपर आस्मां नीचे ॥ ८ ॥
बंक नाल होके आगे सुर्त चली ।
तिरकुटी पहुंच कर गुरु से मिली ॥ ९ ॥

॥ प्रेम ॥

(१)

बिरहिनी मंदिर दियना बार ॥ टेक ॥
बिन बाती बिन तेल जुगति सोँ, बिन दीपक उँजियार ॥१
प्रान पिया मेरे गृह आयो, रचि पचि सेज सँवार ॥ २ ॥
सुखमन सेज परम तत रहिया, पिय निर्गुन निरकार ॥३॥
गावहु री मिलि आनँद मंगल, यारी मिलि के यार ॥४॥

(२)

होली

हैाँ तो खेलैाँ पिया सँग होरी ॥ १ ॥
दरस परस पतिबरता पिय की, छबि निरखत भइ बैारी ॥२
सोरह कला सँपूरन देखैाँ, रबि ससि भे इक ठैारी ॥ ३ ॥
जब तेँ दृष्टि परो अबिनासी, लागो रूप ठगैारी ॥ ४ ॥
रसना रटत रहत निस बासर, नैन लगो यहि ठैारी ॥५॥
कह यारी भक्ती करु हरि की, कोई कहै सो कहैा री ॥६॥

॥ भेद ॥

(१)

झूलना

दोउ मूँदि के नैन अंदर देखा, नहिँ चाँद सुरज दिन राति है रे।
रोसन समा बिनु तेल बाती, उस जोति सोँ सब सिफाति[१] है रे॥
गोता मारि देखो आदम, कोउ अवर नाहिँ सँगसाथि है रे।
यारी कहै तहकीक किया, तू मलकुलमैात[२] की जाति है रे ॥

(२)

झूलना

जमीँ वरखै असमान भीँजै, बिन बातिहिँ तेल जलाइये जी।
जहाँ नूर तजल्ली[३] बीच है रे, बेरंगी रंग दिखाइये जी ॥

(१) गुन। (२) जमराज। (३) प्रकाश।

(२)

साहिब चितवो हमरी ओर ॥ टेक ॥
हम चितवैं तुम चितवो नाहीं, तुम्हरो हृदय कठोर ॥१॥
औरन को तो और भरोसो, हमैं भरोसो तोर ॥ २ ॥
सुखमनि सेज बिछावौं गगन मैं, नित उठि करौं निहोर ॥३॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, साहिब कबीर बंदी-छोर ॥४॥

(३)

हमरे का करै हाँसी लोग ॥ टेक ॥
मोरा मन लागा सतगुरु से, भला होय कै खोर[१] ।
जब से सतगुरु ज्ञान भयो है, चलै न केहु कै जोर ॥१॥
मात रिसाई पिता रिसाई, रिसाय बटोहिया लोग ।
ज्ञान खड़ग तिरगुन को मारौं, पाँच पचीसो चोर ॥२॥
अब तो मोहिं ऐसी बनि आवै, सतगुरु रचा सँजोग ।
आवत साध बहुत सुख लागै, जात बियापै रोग ॥ ३ ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, सुनु हो बंदी-छोर ।
जा को पद तिरलोक से न्यारा, सो साहिब कस[२] होय ॥४॥

(४)

बधावा

सतगुरु आये घर, मन में बजत बधाइया ॥ टेक ॥
सतगुरु साहिब दीन-दयाला, द्वारे मोरे आइया ।
जुगन जुगन के करम मिटत भे, सतगुरु दरस दिखाइया ॥१
प्रेम सुरत की करी रसोई, ब्यंजन[३] आसन लाइया ।
जेँवन बैठे सतगुरु साहिब, अधर से चौंर डोलाइया ॥२॥
दया भाव के पलँग बिछाये, प्रेम दुलीचा लाइया ।
ता पर सोये सतगुरु साहिब, सुरति कै तेल लगाइया ॥३

(१) बुरा। (२) कैसा। (३) भोजन।

बिन जल बूँद परत जहँ भारी, नहिं मीठा नहिं खारा।
सुन्न-महल में नौबत बाजे, किंगरी बीन सितारा ॥२॥
बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उँजियारा।
बिना सीप जहँ मोती उपजै, बिन सुर सबद उचारा ॥३॥
जोति लजाय ब्रह्म जहँ दरसै, आगे अगम अपारा।
कह कबीर वहँ रहनि हमारी, बूझै गुरुमुख प्यारा ॥४॥

(३)

रेख़ता

गंग औ जमुन के घाट को खोजि ले,
भँवर गुंजार तहँ करत भाई।
सरसुती नीर तहँ देखु निर्मल बहै,
तासु के नीर पिये प्यास जाई ॥ १ ॥
पाँच की प्यास तहँ देखि पूरी भई,
तीन की ताप तहँ लगै नाहीं।
कहै कब्बीर यह अगम का खेल है,
गैब का चाँदना देख माहीं ॥ २ ॥

(४)

रेख़ता

करत कलोल दरियाव के बीच में,
ब्रह्म की छौल में हंस झूलै।
अर्ध औ उर्ध की पैंग बाढ़ी तहाँ,
पलटि मन पवन को कँवल फूलै ॥ १ ॥
गगन गरजै तहाँ सदा पावस झरै,
होत झनकार नित बजत तूरा।
बेद कत्तेब की गम्म नाहीं तहाँ,
कहै कब्बीर कोइ रमै सूरा ॥ २ ॥

जहँ अनहद सबद है करत घोर ।
 बिन मुख बोलै चात्रिक मोर ॥ ३ ॥
बिन रसना गुन उदत[3] नार ।
 बिन पग पातर निरतकार[4] ॥ ४ ॥
जहँ जल बिन सरवर भरा पूर ।
 जहँ अनँत जोत बिन चंद सूर ॥ ५ ॥
बारह मास जहँ रितु बसंत ।
 ध्यान धरैं जहँ अनँत संत ॥ ६ ॥
त्रिकुटी सुखमन चुवत छीर ।
 बिन बादल बरखै मुक्ति नीर ॥ ७ ॥
अमृत धारा चलै सीर[5] ।
 कोइ पीवै बिरला संत धीर ॥ ८ ॥
ररंकार धुन अरूप एक ।
 सुरत गही उनहीं की टेक ॥ ९ ॥
जन दरिया बैराट चूर ।
 जहँ बिरला पहुँचै संत सूर ॥ १० ॥

) शरीर । (२) गुंजार । (३) गाती है । (४) वेश्या नाचती है । (५) ठंडी ।

॥ पारख ॥

जा के उर उपजी नहिँ भाई ।
 सो क्या जाने पीर पराई ॥ टेक ॥
ब्यावर[1] जानै पीर की सार ।
 बाँझ नार क्या लखै बिकार ॥ १ ॥
पतिब्रता पति को ब्रत जानै ।
 बिभचारिनि मिलि कहा बखानै ॥ २ ॥
हीरा पारख जौहरि पावै ।
 मूरख निरख के कहा बतावै ॥ ३ ॥
लागा घाव कराहै सोई ।
 कौतुकहार[2] के दर्द न कोई ॥ ४ ॥
राम नाम मेरा प्रान-अधार ।
 सोई राम रस पीवनहार ॥ ५ ॥
जन दरिया जानैगा सोई ।
 (जाके) प्रेम की भाल कलेजे पोई ॥ ६ ॥

॥ मिश्रित ॥

नाम निर्गुन निर्लेप निर्मल अरै।
एक से अनँत सब जगत सारा ॥ २ ॥
पढ़ि बेद कितेब बिस्तार बक्ता कथै।
हारि बेचून वह नूर न्यारा ॥
निर्पेच निर्बान निःकर्म निःभर्म वह।
एक सर्बज्ञ सत नाम प्यारा ॥ ३ ॥
तजु मान मनी करु काम को काबु[1] यह।
खोजु सतगुरू भरपूर सूरा ॥
असमान के बुन्द गरकाब[2] हूआ।
दरियाव की लहरि कहि बहुरि मूरा[3] ॥ ४ ॥

(२)

भीतर मैलि चहल[4] के लागी, ऊपर तन का धोवै है ॥१॥
अविगति मुरति महल के भीतर, वा का पंथ न जोवै है ॥२॥
जुगुति बिना कोइ भेद न पावै, साधु सँगति का गोवै है ॥३
कह दरिया कुटने वे गीदी[5], सीस पटकि का रोवै है ॥४॥

॥ मिश्रित ॥

सत सुकृत दूनौं खंभा हो, सुखमनि लागलि डोरि।
अरध उरध दूनौं मचवा[6] हो, इँगला पिंगला झकझोरि ॥१
कौन सखी सुख बिलसै हो, कौन सखी दुख साथ।
कौन सखिया सुहागिनि हो, कौन कमल गहि हाथ ॥२॥
सत सनेह सुख बिलसै हो, कपट करम दुख साथ।
पिया-मुख सखिया सुहागिनि हो, राधा कमल गहि हाथ ॥३

(१) बस में। (२) पानी में डूब गया। (३) मुड़ा। (४) कीचड़। (५) भोंदू, मूढ़। (६) मचिया या खटोला जिस पर बैठ कर हिंडोला झूलते हैं।

अठदल कँवल सुरति लौ लाय ।
अजपा जपि के मन समुझाय ॥ २ ॥
भँवरगुफा मेँ उलटि जाय ।
जगमग जोति रहे छवि छाय ॥ ३ ॥
बंक नाल गहि खैँचे सूत ।
चमके बिजुली मोती बहुत ॥ ४ ॥
सेत घटा चहुँ ओर घनघोर ।
अजरा जहवाँ होय अँजोर ॥ ५ ॥
अमिय कँवल निज करो बिचार ।
चुवत बुन्द जहँ अमृत धार ॥ ६ ॥
छव चक्र खोजि करो निवास ।
मूल चक्र जहँ जिव को बास ॥ ७ ॥
काया खोजि जोगी भुलान ।
काया बाहर पद निरबान ॥ ८ ॥
सतगुर सबद जो करै खोज ।
कहैँ दरिया तब पूरन जोग ॥ ९ ॥

॥ उपदेश ॥

(१)

पेड़ को पकरु तब डारि पालो मिलै ।
डारि गहि पकर नहिँ पेड़ यारा[1] ॥
देख दिब दृष्टि असमान मेँ चन्द्र है ।
चन्द्र की जोति अनगिनित तारा ॥ १ ॥
आदि औ अंत सब मध्य है मूल मेँ ।
मूल मेँ फूल धौँ केति डारा ॥

(१) हे यार पेड़ पकड़ने से डाल पत्ती भी मिल जायगी पर डाल के पकड़ने से पेड़ नहीँ हाथ आवैगा ।

सुखमनि सुरति डोरि बनाव।
मेटिहै सब कर्म जिय के, बहुरि इतहिँ न आव ॥ १ ॥
पैठि अंदर देखु कंदर[2], जहाँ जिय को वास।
उलटि प्रान अपान मेटो, सेत सबद निवास ॥ २ ॥
गंग जमुना मिलि सरसुती, उमँगि सिखर बहाव।
लवकांत[3] बिजुली दामिनी, अनहद गरज सुनाव ॥ ३ ॥

(१) पहर। (२) गुफा। (३) चमकती है।

जोति आया आपहीं, गुरु यारि सबद सुनाव।
तब दास बुल्ला भक्ति ठानो, सदा रामहिं गाव ॥ ४ ॥

॥ उपदेश ॥

(१)

बटोही खोजहु क्यौं नहिं आप, सुमिरहु अजपा जाप॥टेक॥
बिन खोजे कहुँ राह न पैहो, कोटिन करहु बिलाप ॥१॥
निकटहिँ राम नाम अभि अंतर, जानहि जाहि मिलाप॥२॥
हाजिर हजूर त्रिवेनी संगम, झिलमिलि नूर जो जाप ॥३॥
जन बुल्ला महबूब नूर में, यारी पीर[1] प्रताप ॥ ४ ॥

(२)

होली

होरी खेलो रंग भरी, सब सखियन संग लगाई। टेक॥
फागुन आयो मास अनँद भो, खेलि लेहु नर नारी।
ऐसा समय बहुरि नहिँ पैहो, जैहो जनम जुआ हारी ॥१॥
तीर त्रिबेनी होरी खेलो, अनहद डंक बजाई।
ब्रह्मा बिस्नु महेस तिनौं जन, रहे चरन लिपटाई ॥२॥
बनि बनि आवैं दरस दिखावैं, अद्भुत कला बनाई।
जन बुल्ला ऐसि होरी खेले, रहे नाम लौ लाई ॥ ३ ॥

(३)

अरिल

मुरगी यह संसार चेहुँ चेहुँ करत है।
आतम राम को नाम हृदे नहिँ धरत है॥
बिना राम नहिँ मुक्ति झूठ सब कहत है।
बुल्ला हृदे बिचारि राम सँग रहत है॥

(१) गुरु।

॥ अनहद शब्द ॥

(१)

सोहं हंसा लागलि डोर ।
सुरति निरति चढ़ु मनवाँ मोर ॥ १ ॥
झिलिमिलि झिलिमिलि त्रिकुटी ध्यान ।
जगमग जगमग गगन तान ॥ २ ॥
गह गह गह अनहद निसान ।
प्रान-पुरुष तहँ रहत जान ॥ ३ ॥
लहरि लहरि उठि पछिँव[2] घाट ।
फहरि फहरि चल उतर बाट ॥ ४ ॥
सेत बरन तहँ आवै आप ।
कह बुल्ला सोइ माइ बाप ॥ ५ ॥

(२)

अरिल

स्याम घटा घन घेरि चहूँ दिसि आइया ।
अनहद बाजे घोर जो गगन सुनाइया ॥
दामिनि दमकि जो चमकि त्रिबेनी न्हाइया ।
बुल्ला हृदे बिचार तहाँ मन लाइया ॥

(३)

अरिल

सामहिँ उगवे सूर भोर ससि जागई ।
गंग जमुन के संगम अनहद बाजई ॥

(१) जिस तरह लूला अपने पैरों से चल कर गाँव (मुक़ाम) को नहीं पहुँच सकता इसी तरह बिना नाम के दरस परस के मन की हालत है यानी अंतर में चाल नहीं चलती । (२) पच्छिम ।

अजपा जापहिँ जाप सोहं डोरि लागई ।
बुल्ला ता मेँ पैठि जोति मेँ गाजई ॥

॥ बिरह ॥

(१)

देखो पिया काली घटा मो पै भारी ॥ १ ॥
सूनी सेज भयावन लागी, मरौं बिरह की जारी ॥ २ ॥
प्रेम प्रीति यहि रीति चरन लगु, पल छिन नाहिँ बिसारी॥३
चितवत पंथ अंत नहिँ पायो, जन बुल्ला बलिहारी ॥४॥

(२)

नैना मोरे निपट बिकट ठौर अटके ॥ १ ॥
सुख को साथ सबै कोइ चाहे, दुखहिँ परे पर छटके ॥२॥

(२)

जागु जागु आतमा, पुरान दाग धोउ रे।
कर्म भर्म दूर करु, कीच काम खोउ रे॥ १॥
अपनी सुधि भूलि गई, और की क्या टोउ रे।
सत्त बात झूठ करै, झूठ ही को गोउ[१] रे॥ २॥
इहै बात जानि जानि, द्वार द्वार रोउ रे।
सत्तर पानी साबुन का, प्रेम पानी मोउ[२] रे॥ ३॥
लाग दाग धोय डारु, वाह वाह होउ रे।
दूलन बेकूफ[३] काम, गाफिल ह्वै न सोउ रे॥ ४॥

(३)

चलो चढ़ो मन यार महल अपने॥ टेक॥
चौक चाँदनी तारे झलकैं, बरनत बनत न जात गने॥ १॥
हीरा रतन जड़ाव जड़े जहँ, मोतिन कोटि कितान बने॥२
सुखमन पलँगा सहज बिछौना, सुख सोवो को करै मने॥३॥
दूलनदास के साईं जगजीवन, को आवै यह जग सुपने॥४॥

(४)

जोगी चेत नगर मेँ रहो रे॥ टेक॥
प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे॥ १॥
अन्तर लाओ नामहि की धुनि, करम भरम सब धो रे॥ २॥
सूरत साधि गहो सत मारग, भेद न प्रगट कहो रे॥३॥
दूलनदास के साईं जगजीवन, भवजल पार करो रे॥ ४॥

(५)

प्रानी जपि ले तू सतनाम॥ टेक॥
मात पिता सुत कुटुम कबीला, यह नहिं आवैं काम।
सब अपने स्वारथ के संगी, संग न चलै छदाम॥ १॥

(१) छिपा कर रखना, पकड़े रहना। (२) थोड़े पानी से भिँगाना। (३) मूर्ख।

संख्यावाची प्रतीक—

केवल नाम जपहु रे प्रानी परहु एक की सरना।—वही प० २

इहु मन पञ्च तत्त को जीउ।—ग० ७५

पांचउ लरिका जारिकै, रहै राम लिव लागि।—स० ४२

दुआदस दल अम अन्तरि मन्त।—मै० १६

सोलह मधे पवन झकोरिया।—रा० ६

दम छः सै सहस इकइस हर दिन खजाने में जाहि वे।[1]

—रैदास २१००० श्वास

चन्द सूर दोउ सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई।
सहज सुन्न में भाठी सरवै, पावै रैदास गुरमुख दरवै॥[2]
उलटी गङ्ग जमुन में लावौ, बिन ही जल मज्जन ह्वै पावौं।[3]
उलटिओ कमलु ब्रहमु बीचारि। अमृत धार गगनि दस दुआरि।
त्रिभवणु बेधिया आपि मुरारि॥—नानक, श्री गुरुग्रन्थ, पृ० १५३
अनहद सबदु बजे दिन राती। अविगत की गति गुरमुखि जाती।
सुन्न समाधि सहज मनु राता। तजि हउ लोभा एको जाता॥

—वही, पृ० ६०४

नउ दरवाजे काइया, कोटु है दसवे गुपतु रखीजै।
बजर कपाट न खुलनी, गुर सबदि खुलीजै॥—श्री गुरुग्रन्थ०, पृष्ठ ६५४
इसु गुफा महि अखुट भण्डारा। तिसु विचि वसै हरि अलख अपारा॥—वही, पृ०१२

साईं कूं मिलिबे के कारण, त्रिकुटी सङ्गम नीर नहाई।
अनहद बाजे बाजण लागे, जिभ्या हीणै कीरति गाई॥
कहा कहौं कुछ बरणि न जाई, अविगति अन्तरि जोति जगाई।
दादू उन को मरम न जाणै, आप सुरङ्गे बेन बजाई॥[4]
मन पवना ले उनमन रहै, अगम निगम मूल सो लहै।
पञ्च बाइ जे सहजि समावै, ससिहरि के घरि आणै सूर॥
सीतल सदा मिलै सुखदाई, अनहद सबद बजावै तूर।
बङ्क नालि सदा रस पीवै, तब यहु मनवा कहीं न जाइ॥
बैसि गुफा में जोति बिचारै, तब तेहिं सूझै त्रिभुवन राइ॥[5]

---

[1] रैदास जी की बानी, पद ३६।

[2] वही, पद ४०।

[3] वही, पद ५६।

[4] दादूदयाल की बानी, भाग २, पद ७२।

[5] वही, पद ४०५।

का लाभ स्वतः हो गया तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति हो जाने पर द्वार-द्वार गट्ठर सिर पर रखकर फेरी करने के सारे श्रम का परिहार हो गया।

इन विविध व्यवहारमूलक प्रतीकों के अतिरिक्त सन्तों ने परम्परागत साङ्केतिक पारिभाषिक एवं संख्यावाची प्रतीकों का प्रयोग किया है और इनमें उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती नाथ-पन्थी योगियों की पारिभाषिक शब्दावली—गङ्गा, यमुना, सरस्वती, सूर्य, चन्द्र, सुरति-निरति, त्रिकुटी, त्रिवेणी, चरखा, हँस, डोरा, पाँच-पचीस, शून्य, अजपा, अनहद, गुफा, बङ्कनाल, 'रस निझर', दसवाँ द्वार आदि को निस्सङ्कोच अपनाया है। यहाँ पर उन प्रतीकों के परिचायक कतिपय पद दिये जा रहे हैं—

साङ्केतिक एवं परिभाषिक प्रतीक—

उलटत पवन चक्र खटु भेदे, सुरति सुन्न अनुरागी।
आवै न जाइ मरै न जीवै तासु खोजु बैरागी॥
मेरे मन मन ही उलट समाना।[1]—कबीर

× × ×

नगरी एकै नउ दरवाजे धावतु बरजि रहाई।
त्रिकुटी छूटै दसवाँ दर खूल्है ता मन खीवा भाई॥[2]—कबीर

अर्थात् शरीररूपी नगरी के नौ दरवाजों में दौड़ते हुए जो अपने को रोक सकता है और त्रिकुटी को छोड़कर जो अपना दसवाँ द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) खोल सकता है, वही सच्चा मनुष्य (मनखीवा) है।

जब लग गगन जोति नहीं पलटै, अबिनासी सूं चित नहीं चिहुटै॥
जब लग त्रिकुटी सन्धि न जानै, ससिहर के घर सूर न आनै॥
सोलह कला सम्पूरण छाजा, अनहद के घरि बाजै बाजा॥
सुषमन के घरि भया अनन्दा, उलटि कवल भेटे गोव्यन्दा॥[3]

× × ×

अरध उरध की गङ्गा जमुनां, मूल कवल कौ घाट।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी सङ्गम बाट॥
नाद व्यन्द की नावरी, रांम नांम कनिहार।
कहै कबीर गुंण गाइ ले, गुर गंमि उतरौ पार॥[4]

---

[1] सन्त कबीर, रागु गउड़ी ४७।
[2] वही, रागु केदारा ४७।
[3] कबीर ग्रन्थावली, पद २०२।
[4] वही, पद ९८।

(२)

पिय थारे रूप भुलानी हो ।
प्रेम ठगौरी मन हरो, बिन दाम बिकानी हो ॥ १ ॥
भँवर कँवल रस बेधिया, सुख स्वाद बखानी हो ।
दीपक ज्ञान पतंग सौं, मिलि जोति समानी हो ॥ २ ॥
सिंधु भरा जल पूरना, सुख सीप समानी हो ।
स्वाँति बुंद सौं हेतु है, ऊरध-मुख आनी हो ॥ ३ ॥
नैन स्रवन मुख नासिका, तुम अंतर जानी हो ।
तुम बिन पलक न जीजिये, जस मीन रु पानी हो ॥४॥
व्यापक पूरन दसौ दिसि, परगट पहिचानी हो ।
केसो यारी गुरु मिले, आतम रति मानी हो ॥ ५ ॥

(३)

म्हारे हरिजु सूँ जुरलि सगाई हो ।
तन मन प्रान दान दै पिया को, सहज सरूपम पाई हो ॥१॥
अरध उरध के मध्य निरंतर, सुखमन चौक पुराई हो ।
रवि ससि कुंभक अमृत भरिया, गगन मँडल मठ छाई हो॥२
पाँच सखी मिलि मंगल गावहिं, आनँद तूर बजाई हो ।
प्रेम तत्त दीपक उँजियारो, जगमग जोति जगाई हो ॥३॥
साध संत मिलि कियो बसीठी[1], सतगुरु लगन लगाई हो ।
दरस परस पतिब्रता पिव की, सिव घर सक्ति बसाई हो॥४
अमर सुहाग भाग उँजियारो, पूर्ब प्रीति प्रगटाई हो ।
रोम रोम मन रस के बसि भइ, केसो पिय मन भाई हो॥५॥

(१) दूत या बिचौलिया का काम

सिद्धों द्वारा प्रयुक्त पवन-बन्ध का रूपक ताला-कुञ्जी के उपमानों से प्रस्तुत किया गया है—'पवरण गमरण दुम्रारे दिढ ताला विदिज्जइ।'—दोहाकोष पृष्ठ ४४। वे पवन-बन्ध को अध और उर्ध्व मार्ग में ताला लगाने के रूपक द्वारा व्यक्त करते हैं। नाथों में भी ताला-कुञ्जी के रूपक द्वारा पवन-बन्ध या नाद जागरण द्वारा उसे अन्तर्मुखी बनाने का वर्णन मिलता है :—

अरधे उरधे लाइले कूंची थिर होवे मन तहाँ थाकी ले पवनाँ।

दसवा द्वार चीन्हिले, छूटें आवागवनाँ।—गोरखबानी, पृष्ठ १७१

कबीर में प्राण-पवन के बन्धन के अर्थ में ताला-कुञ्जी का प्रयोग कुम्भक द्वारा त्रिकुटी में ध्यान को केन्द्रित करने के रूप में प्राप्त है—

कट नेम करि कोठड़ी बाँधी बसतु अनूप बीच पाई।
कुञ्जी कुलफ प्रान करि राखे करते बार न लाई॥
अब मनुजागत रहु रे भाई।
गाफिल होइ के जनम गवाइयो चोर मुसे घर जाई॥

—सन्त कबीर, रागु गउड़ी, पृष्ठ ७१

दादूदयाल ने गुरु-सबद की कुञ्जी से ज्ञान के कपाट खोलकर तत्व की प्राप्ति करने का वर्णन किया है :—

---

[1] रैदास जी की बानी, पद ७०।
[2] वही, पद ७१।

दादू देव दयाल की, गुरु दिखाई बाट।
ताला कुञ्जी लाइ करि, खोले सबै कपाट॥[1]

चोर के रूपक द्वारा भी दादू ने इसी को दुहराया है—

इत घर चोर न मूसै कोई। अन्तरि है जे जाने सोई॥
जागहु रे जन तत न जाइ। जागत है सो रह्या समाइ॥
जतन-जतन करि राखहु सार। तसकरि उपजै कौन विचार॥[2]

इसी प्रसङ्ग में सन्तों ने राम-भक्ति रूपी धन की सतर्कता से रक्षा करने की चर्चा की है। कबीर ने कहा है—'राम नाम धनु करि संचउनी तसकरि नेरि न आवै।' क्योंकि योग-साधना में पवन-निरोध द्वारा ताला-कुञ्जी की सुरक्षा में रखे जाने पर भी तत्व रूपी धन को चुरा ले जाने की आशङ्का बनी रहती है। किन्तु रामभक्ति रूपी अद्वितीय धन तो ऐसा है :—

राम धन खात न खूटे रे।
अपरम्पार पार नहिं आवै, आखि न टूटै रे॥
तसकरि लेइ न पावक जारै, प्रेम न छूटै रे।
चहुँ दिसि पसर्यो बिन रखवाले, चोर न लूटै रे॥
हरि-हीरा है राम रसाइण, सरस न सूकै रे।
दादू और आथि बहुतेरी, तुस नर कूटै रे॥

—वही, पद ५१

दादूदयाल के इस कलाली के रूपक में परम्परागत वस्तु-विधान का साङ्गोपाङ्ग चित्रण मन पर एक अमिट प्रभाव छोड़ जाता है—

भाव-भगति भाठी भई, काया कसणी सारो रे।
पोता मेरे प्रेम का, सदा अखण्डित धारो रे॥
ब्रह्म-अगनि जोबन जरै, चेतनि चितहि उजासो रे।
सुमति कलाली सारवै, कोई पीवै बिरला दासो रे॥
आपा-धन सब सौंपिया, तब रस पाया सारो रे।
प्रीति पियाले पीवहीं, छिन-छिन बारम्बारो रे॥[3]

× × ×

सहज सन्तोष सील जब आया। तब नारी नाह अमोलिक पाया॥[4]

× × ×

---

[1] दादूदयाल की बानी भाग १, गुरुदेव कौ अङ्ग ६।
[2] वही, भाग २, पद ४४।
[3] वही, पद ६०।
[4] वही, पद ६४।

गङ्ग जमुन के अन्तरे, सहज सुन के घाट।
तहा कबीरै मठु कीआ, खोजत मुनि जन बाट॥

—सन्त कबीर, सलोक १५२

इसमें गङ्गा-यमुना—इड़ा-पिंगला की प्रतीक, सङ्गम—सुषुम्ना नाड़ी का,

शून्य का घाट—आज्ञा चक्र का एवं मठ—साधना को केन्द्रभूत करता है। बाट से तात्पर्य साधना-पथ में प्रशस्त होने से है।

तनु रैनी मनु पुनरपि करिहउ पांचउ तत बराती।
राम राइ सिउ भावरि लैहउ आतम तिह रङ्गराती॥
गाउ-गाउ री दुलहनी मङ्गल चारा।
मेरे ग्रिह आये राजाराम भतारा॥[1]

इसमें बराती—पांचों तत्व, स्वामी—(भर्तार) राम, वधू—आत्मा, मङ्गल गीत गाने वालियाँ—इन्द्रियाँ हैं। विरहिणी के रूपक में भी बड़ी पूर्णता मिलती है—

थरहर कम्पै बाला जीउ। ना जानउ कि आ करसी पीउ॥
रैनि गई रात दिनु भी जाइ। भवर गये बग बैठे आइ॥
काचै करवै रहै न पानी। हंसु चलिआ काइआ कुमलानी॥[2]

इसमें विरहिणी—आत्मा, प्रियतम—ईश्वर, रात्रि—यौवन, दिन—वृद्धावस्था, भ्रमर—काले केश, बक—श्वेत केश, कच्चा घड़ा—शरीर, पानी—आयु एवं हंस—जीव के रूप में प्रयुक्त हुआ है। गुरु नानक ने एक आध्यात्मिक रूपक में नारी के सहज श्रृङ्गार एवं गुणों की झाँकी उपस्थित करते हुए कहा है—

मनु मोती जे गहणा होवै, पउणु सूत-धारी।
खिमा सीगारु कामणि तन पहिरै रावै लाल पिआरी॥[3]

अर्थात् प्रियतम की पर्यङ्कशायिनी होने का सौभाग्य उसी सौभाग्यवती को प्राप्त हो सकता है जो निश्छल मन रूपी मोती का आभूषण धारण कर तथा क्षमा का श्रृङ्गार कर, आने-जाने वाली प्रत्येक साँस के द्वारा परमात्मा के जप रूपी तागे में मन रूपी मोती को गूँथे। गुरु अर्जुनदेव ने भी एक अन्य रूपक में जीवात्मा रूपी स्त्री की कल्पना की है जो अनन्य भाव से परमात्मा रूपी पति में आसक्त है—

गुन अवगुन मेरा कछु न बीचारो। नह देखिओ रूप रङ्ग सींगारो।
चज अचार किछु बिधि नहीं जानी। बाँह पकरि प्रिअ सेजै आनी॥[4]

धन्य है वह सुहागिन जिसके प्रिय पति ने उसके गुण-अवगुणों की चिन्ता न करके, उसकी बाहरी चटक-मटक में न भूमकर, आचार-व्यवहार की भी परवाह न करके उसके आन्तरिक सौन्दर्य को अङ्गीकार किया और बाँह पकड़कर उसे सुहाग की सेज पर ले आया। रैदास जी ने भी कतिपय रूपकों का

---

[1] सन्त कबीर, राग आसा २४।
[2] वही, राग सूही २।
[3] श्री गुरुग्रन्थ साहिब, आसा, महला १, पृष्ठ ३५६।
[4] वही, महला ५, पृष्ठ ३७९।

सबद अनाहद उपजे जहाँ, सुखमन रङ्ग लगावै तहाँ।
सरवर तहाँ हंसा रहै, करि असनान सबै सुख लहै॥
पीवै अमृत नीझर नीर, बैठे तहाँ जगत-गुर पीर।
तहँ अनहद बाजे अद्‌भुत खेल, दीपक जलै बाती बिन तेल॥
श्री-अस्थान निरन्तरि निरधार, तंह प्रभु बैठे समरथ सार।
चलु हंसा तहँ चरण समान, तहँ दादू पहुँचे परिवान॥[1] —दादू

सब्द अनाहद होत जहाँ तें, तहाँ ब्रह्म कर बासा।
गगन मण्डल में करत कलोलै, परम जोति परगासा॥[2] —मलूकदास

× × ×

गगन गुफा में बैठ के, देखै जगमग जोती।
सिव नगरी आसन किया, सुन ध्यान लगाया।
तीनों दसा बिसार के, चौथा पद पाया॥

× × ×

सुन्न महल में महल हमारा, निरगुन सेज बिछाई।
चेला गुरु दोउ सैन करत हैं, बड़ी असाइस पाई॥[3]

इस प्रकार सन्त कवियों ने साकार का-सा आभास देने वाले ब्रह्म के लिये भावात्मक प्रतीक तथा निर्गुण के लिये व्यक्तित्व सम्पन्न प्रतीकों की दास्य, वात्सल्य एवं दाम्पत्य-भाव से सुन्दर योजना की है। साकार का-सा आभास देने वाले ब्रह्म का विशद विवेचन 'ब्रह्म-निरूपण' वाले प्रकरण में किया जा चुका है। जन-जीवन के नित्यप्रति के काम-काज से एवं अपने व्यावसायिक चर्या से प्रेरणा ग्रहण कर जिन प्रतीकों की अवतारणा सन्तों द्वारा की गई है, उससे उनके जीवन की रस-ग्रहण के साथ जीने की प्रवृत्ति एवं सहजशील एवं स्वाभाविकता की बानगी मिलती है। साङ्केतिक एवं पारिभाषिक प्रतीकों के लिये ये सन्त अपने पूर्ववर्ती नाथों के अवश्य उपकृत रहे हैं, फिर भी उन्होंने परम्परागत यौगिक प्रतीक-शब्दावली में सरसता का सञ्चार करने की चेष्टा की है—

अष्ट कंवल दल भीतरा, तहाँ श्री रङ्ग केलि कराइ रे।
—क० ग्र०, पृष्ठ ८८

अनहद सबद होत झुनकार। जिह पउड़े प्रभु श्री गोपाल।
दुआदस दल अभ अन्तरि मन्त। जह पउड़े श्री कमलाकन्त॥[4]

---

[1] दादूदयाल की बानी, भाग २, पद ४०६।
[2] मलूकदास जी की बानी, पृष्ठ १७।
[3] वही, पृष्ठ २१, २३।
[4] सन्त कबीर, रागु भैरउ १६।

किन्तु जब सियार (गुरू का शब्द) उस सिंह (मन) को खा लेता है तो समस्त वन-राजि (शरीर के चक्र और कमल) प्रफुल्लित हो उठते हैं। इसी प्रकार का कबीर का एक अन्य पद है जिसमें कहा गया है कि हे अवधू, जो लोग नाव पर चढ़े (भिन्न-भिन्न इष्टदेवों का आधार लेकर बढ़े) वे समुद्र (भव-सागर) में डूब गये किन्तु जो सब प्रकार से साधन-हीन थे वे पार (मुक्त) हो गये। जो बिना पद का अवलम्बन करके चले वे नगर (परमपद) तक पहुँच गये किन्तु जिन्होंने मार्ग (अन्धानुकरण लोकाचार) का सहारा लिया वे लुट गये अर्थात् अध्यात्म-वैभव से शून्य हो गये। (माया) के बन्धन में सभी बँधे हुए हैं, किसे बद्ध कहा जाय और किसे उन्मुक्त ? जो उस मन्दिर (परम पद) में प्रवेश पा गये, वे सर्वात्म भाव से ईश्वरीय प्रेम में भीग कर सराबोर हो गये किन्तु जो बाहर रह गये वे पूर्णतया सूखे (वञ्चित) हैं। वही सुखी हैं जो प्रिय के विरह-बाण से विद्ध हैं अथवा—'सद्गुरु मारया बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि। अङ्गि उघाड़े लागिया, गई दवा सूं फूटि॥'—किन्तु जिन्हें उसकी चोट नहीं लग सकी, वे दुखी हैं। अन्धे (जिनकी आखें संसार की ओर से बन्द हैं) सभी कुछ देखते हैं (उस दिव्यदर्शन का आनन्द लेते हैं) किन्तु आँख वाले (संसारी) कुछ भी नहीं देख पाते। सचमुच कबीर को ऐसा कुछ प्रतीत होने लगा है कि सारा संसार एक विचित्र गोरखधन्धा है।[1] हठयोग से सम्बन्धित एक अन्य उलटवासी की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> उलटी गङ्ग समुद्रहि सोखे, ससिऔ सूर गरासै।
> नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल में ब्यम्ब प्रगासै॥
> औंधे घड़ा नहीं जल बूड़े, सूधे सों जल भरिया।
> जेहि कारन नल भिन्न कर, गुरु परसादे तरिया॥[2]

हठयोगियों का कथन है कि प्राणायाम द्वारा ब्रह्माण्ड में चढ़ाई हुई श्वास रूप गङ्गा नाना शोक सन्ताप रूप समुद्र को सुखा देती है और वही उलटी गङ्गा चन्द्र (इड़ा) और सूर्य (पिङ्गला) को भी ग्रस लेती है अर्थात् सुषुम्ना के चलने से उक्त चन्द्र और सूर्य का लय हो जाता है। तत्पश्चात् योगी नव द्वारों को बन्द करके निश्चल (समाधि में लीन) हो जाते हैं। इस प्रकार स्थिर चित्त के जलाशय में ब्रह्म की ज्योति प्रतिबिम्बित हो उठती है। जब तक हमारी वृत्तियाँ औंधे घड़े की भाँति बहिर्मुखी बनी रहती हैं तब तक उनमें चिर प्रतिबिम्ब का पड़ना असम्भव है किन्तु जब सीधे घड़े के रूप में वे अन्तर्मुखी हो जाती हैं तभी वे चिद्वस्तु के

---

[1] कबीर ग्रन्थावली, पद १७५।

[2] कबीर बीजक, सबद २।

गुरु नानक ने पूर्व दिशा में प्रवेश कर पश्चिम की ओर मुड़ने वाले सुषुम्ना-मार्ग को विषय-सन्धि कहा है—

आगासी सरु भरिआ नीरु। तामहिं कमल बहुत बिस्थीरु।
भौंरा लुबधातां की गन्ध। नानक लै बिखमी सन्धि॥
किह बिधि चन्दु भवनि आवै इहु भानु। किह बिधि मरदइ मनाक मान।
पूरब फिरि पछिम को तानै। त्रिजपा जाप जपै मनु मानै॥[1]

इस भाँति सिद्धों की 'सन्ध्या', 'सन्धि' का ही पर्याय है। साधना के क्षेत्र में इड़ा और पिङ्गला के बीच सुषुम्ना के मार्ग को 'सन्धि' के नाम से अभिहित किया गया है। वस्तुतः वहीं सूर्य-चन्द्र, मन-प्राण, सुरति निरति, धरती-गगन तथा आत्मा-परमात्मा का मिलन होता है। इसी को प्रतीकों में व्यक्त करने वाली शैली सन्ध्या या सन्धि युक्त शैली कही जाती है। कबीर ने अपने 'धुर पूरब' शब्द प्रयोग द्वारा इसी साधना-पथ की ओर सङ्केत किया है। कतिपय विद्वानों ने सन्धि को सेंध की भाषा अर्थात् चोरों के से गूढ़ सङ्केत देने वाली भाषा कहा है। किन्तु यह कथन उपहास्य है। इसे आध्यात्मिक अनुभूति को वाणी प्रदान करनेवाली गङ्गा-यमुना अथवा सूर्य-चन्द्र या त्रिकुटी-सन्धि की भाषा कहना सुसङ्गत प्रतीत होता है।

जब लगि त्रिकुटी सन्धि न जानै। ससिहर के घरि सूर न आनै॥
—क० ग्र० पद २०२

मन मञ्जन करि दसवै द्वारि। गङ्गा जमुना सन्धि बिचारि॥
—वही पद ३२६

उलटवासियों की परम्परा—सन्त-साहित्य में प्रयुक्त उलटवासियों का सम्बन्ध उनके पूर्ववर्ती सिद्धों और नाथों से जोड़ा जाता है, क्योंकि सन्तों को अभिसन्धि युक्त प्रतीकात्मकशैली परम्परागत रूप में इन्हीं के भाषा-साहित्य से प्राप्त हुयी है। सन्त कवियों के प्रतीक एवं उपमानों में सिद्धों और नाथों के उपमानों की छाप स्पष्ट है—

तरुवर—काया, चित्त, सृष्टि विस्तार (काया) काया तरुवर पञ्चविडाल।
—चर्यापद १

तरुवर एक अनन्त डार साखा पुहुप पत्ररस भरीआ।
—सन्त कबीर, पृष्ठ १८१

शृगाल—(मन) निति निति सिआला सिहे सम जुझअ।
—चर्यापद ३३

---

[1] प्राण सङ्गली १३३, १३५।

वर्मा के कथनानुसार सन्ध्या भाषा का सीधा-सादा अर्थ यही है कि वह भाषा जो अपभ्रंश के सन्ध्या काल या 'समाप्त होने वाले काल' में लिखी गयी। 'सन्ध्या-काल' का प्रयोग किसी अवस्था के अन्तिम भाग की सूचना देने के लिये होता ही है, अतः इस शब्द को साधारण अर्थ में ही लेना चाहिये।[1] कुछ विद्वान् इसे एक ऐसी अभिव्यक्ति प्रणाली मानते हैं जिसकी योजना लेखक जान-बूझकर करता है और जिसके अभिधामूलक अर्थ को महत्व न देकर किसी अन्य साङ्केतिक अर्थ की अपेक्षा की जाती है। सम्भवतः इस विवाद के रहस्य का सूक्ष्म सङ्केत कबीर की प्रस्तुत साखी में मिल जाय—

बोली हमरी पूर्व की, हमें लखै नहिं कोय।
हम को तो सोई लखै, धुर पूरब का होय॥ —बीजक, पृष्ठ ३१८

यहाँ 'पूर्व' के अर्थ में विद्वानों ने कबीर की भाषा को पूर्वीपन से युक्त बतलाया है और उसे भोजपुरी सिद्ध किया है किन्तु वास्तव में यहाँ बोली से उनका तात्पर्य शैली से है और पूर्व के माध्यम से वे आध्यात्मिक साधना की साङ्केतिकता की ओर लक्ष्य करते हैं। 'धुर पूरब' से तात्पर्य तत्तद् साधनाओं में निष्णात होने से है। नाथों और सन्त कवियों की साधना-पद्धति में भी चन्द्र और सूर्य को पूर्व-पश्चिम का मध्य मार्ग बताया गया है 'गुह्यात्पश्चिमपूर्व-मार्गमुभयं रुद्धानिलम् मध्यमम्'[2] तथा सुषुम्ना को इन दोनों की सन्धि कहा गया है। सन्तों की कविता में 'सन्धि' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। बीजक में इसी पूर्व के समीप सन्धि का स्थान बताया गया है—

पूरब दिसा हंस गति सोई। है समीप सन्धि बूझै कोई॥
—बीजक र० ५

कहहिं कबीर सुनो सन्तो भाई। इहै सन्धि काहु बिरलै पाई॥
—बी० श० ३१

कबीर-पन्थी साहित्य में तो सन्धि को विशेष महत्ता प्रतिपादित की गयी है। बिना उसकी सहायता के हंस (आत्मा) का पार उतरना कठिन बताया गया है—

सन्धि छाप मोहि देहु बताई। पुरुष नाम मोहि देहु सुझाई।
बिना सन्धि जो उतरे घाटा। सो हंसा नहिं पावे बाटा॥[3]

---

[1] डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ६७।

[2] सिद्ध सिद्धान्त संग्रह, मत्स्योपदेश, पृष्ठ ३१।

[3] अनुराग सागर, पृष्ठ ६६।

॥ समरथ ॥

ए हरि मीत बड़े तुम राजा।
व्यापक जहाँ तहाँ लगु तुम्हरे हुकुम बिना कहुँ सरै न काजा॥टेक

तिरगुन सूबा मौज बनाया, भिन्न भिन्न तहँ फौज रखाया।
हय[1] गय[2] रथ सुखपाल बहूता, माया वढ़ी करै को कूता।
कहत बनै नहिँ अनघड़ साजा, ए हरि मीत० ॥ १ ॥

चारो दिसा कनात गड़ा है, असमान तंबू बिन चोब खड़ा है।
पानी अगिनि पवन है पायक, जो कछु काम सो करिबे लायक
अनहद ढोल दमामा बाजा, ए हरि मीत० ॥ २ ॥

तारागन पैदल समुदाई, अज्ञा ले तहँ तहँ चलि जाई।
चाँद सूर निस बासर आई, आवत जात मसाल दिखाई।
ध्रुव कियो थीर अचल मन धाजा[3], ए हरि मीत० ॥३॥

सहजादा है मन बुधि काला, कीन्हेव सकल जगत पैमाला।
काल बड़ा उमराव है भारी, डरै सकल जहँ लग तन धारी।
तुम्हरो दंड सकल सिर ताजा, ए हरि मीत० ॥ ४ ॥

सत्त सतोगुन मंत्र दृढ़ावा, ज्ञान आदि दे पुत्र बुलावा।
अमल करहु तुम जग मँ जाई, फेरहु केवल राम दुहाई।
नाम प्रताप प्रकास को छाजा, ए हरि मीत० ॥ ५ ॥

चतुरंगिनि उज्जल दल देखा, जोग बिराग बिचार को लेखा।
छिमा सील संतोष को भाऊ, परमारथ स्वारथ नहिँ चाऊ।
स्वारथ-रत पर पारहु गाजा[4], ए हरि मीत० ॥ ६ ॥

रज गुन तम गुन कीन्ह्यो मेला, सबहीं भयो सतोगुन चेला।
हम तुम आइ कछू नहिँ कीन्हा, अज्ञा ईस सीस पर लीन्हा।
मरत बहुत डेर आपु की लाजा, ए हरि मीत० ॥ ७ ॥

---

(१) घोड़ा। (२) हाथी। (३) ध्वजा, फरहरा। (४) जो स्वार्थी है उस पर बिजली गिराते हैं।

04:51

2015.404579.Santbani-...

॥ भेद ॥
(१)

उलटि देखो, घट मैं जोति पसार ।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, बिगसि कमल कचनार ॥१॥
पैठि पताल सूर ससि बाँधो, साधो त्रिकुटी द्वार ।
गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार ॥२॥
इँगला पिँगला सुखमन सोधो, बहत सिखर-मुख[१] धार ।
सुरति निरति ले बैठु गगन पर, सहज उठै झनकार ॥३॥

(१) ऊँचे की ओर।

सोहं डोरी मूल गहि बाँधो, मानिक बरत लिलार ।
कह गुलाल सतगुरु बर पायो, भरो है मुक्ति भँडार ॥४॥

(२)
बसंत

मन मधुकर खेलत बसंत ।
बाजत अनहद गति अनंत ॥ १ ॥
बिगसत कमल भयो गुंजार ।
जोति जगामग करि पसार ॥ २ ॥
निरखि निरखि जिय भयो अनंद ।
बाझल[१] मन तब परल फंद ॥ ३ ॥
लहरि लहरि बहै जोति धार ।
चरन कमल मन मिलो हमार ॥ ४ ॥
आवै न जाइ मरै नहिं जीव ।
पुलकि पुलकि रस अमिय पीव ॥ ५ ॥
अगम अगोचर अलख नाथ ।
देखत नैनन भयो सनाथ ॥ ६ ॥
कह गुलाल मोरी पुजलि आस ।
जम जीत्यो भयो जोति बास ॥ ७ ॥

॥ उपदेश ॥
(१)

हरि नाम न लेहु गँवारा हो ।
काम क्रोध मैं रटत फिरत हौ, कबहुँ न आप सँभारा हो ॥१॥
आपु अपन कै सुधि नहिं जानहु, बहुत करत बिस्तारा हो ।
नेम धरम व्रत तिरथ करतु हौ, चौरासी बहु धारा हो ॥२॥
तस्कर[२] चोर बसहिं घट भीतर, मूसहिं सहन भँडारा हो ।
सन्यासी बैरागी तपसी, मनुवाँ देत पछारा हो ॥३॥

(१) फँसा। (२) डाकू।

04:50
2015.404579.Santbani-...
211/267

अष्ट कमल में जीव बसतु है, द्वादस में गुरु दरस करै ।
सोहं ऊपर बानि उठतु है, दुइ दल अमी झरै ॥२॥
गंगा जमुना मिली सरसुती, पदुम झलक तहँ करै ।
पछिम दिसा है गगन मँडल में, काल बली सोँ लरै ॥३॥
जग जीतो है परम पद पायो, जोती जगमग बरै ।
कह गुलाल सोइ पूरन साहिब, हर दम मुक्ति फरै ॥४॥

॥ प्रेम ॥

(१)

अबिगत जागल हो सजनी ।
खोजत खोजत सतगुरु पावल,
ताहि चरनवाँ चितवा लागल हो सजनी ॥टेक॥
साँझि समय उठि दीपक बारल,
कटल करमवा मनुवाँ पागल[1] हो सजनी ॥ १ ॥
चललि उबटि बाट छुटलि सकल घाट,
गरजि गगनवा अनहद बाजल हो सजनी ॥ २ ॥
गइली अनँदपुर भइली अगम सूर,
जितली मैदनवाँ नेजवा गाड़ल हो सजनी ॥ ३ ॥
कहै गुलाल हम प्रभुजी पावल,
फरल लिलरवा पपवा भागल हो सजनी ॥ ४ ॥

(२)

जो पै कोई प्रेम को गाहक होई ।
त्याग करै जो मन की कामना, सीस दान दै सोई ॥१॥
और अमल की दर जो छोड़ै, आपु अपन गति जोई ।
हर दम हाजिर प्रेम पियाला, पुलकि पुलकि रस लेई ॥२॥

---

(१) पगा या लीन हुआ ।

'राजयोग' मे भी 'परमधाम' में नित्यलीला मग्न, शक्तिसयुक्त, आराध्य का यही स्वरूप ध्येय बताया गया है[1]—

आगे सुपताका उडति देखि । तहँ सेत छत्र छाया सुपेखि ॥
आसन सफेद तहँ अरुन भूमि । चहुँ दिसि प्रकाश नहिं बरन भूमि ॥
को बरनि सकत प्रभु को सरूप । रवि कोटि चन्द छवि ते अनूप ॥
नभ नील मेघ इमि स्याम गात । नवि पीत बसन बिद्युत लजात ॥
इमि बसत राम निज सहित धाम । सब संत कहत जेहि परम धाम ॥

पयहारी जी ने इष्टदेव के इस ध्यान में तल्लीन जीव-मुक्त भक्तो को शास्त्रानुमोदित चार प्रकार की मुक्तियो—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य से श्रेष्ठतर पाँचवी 'ध्यानलीन' मुक्ति का अधिकारी बताया है[1]—

जे चारि मुक्ति बैकुठ मानि । ते भुक्ति मुक्ति फल लेहु जानि ॥
तब पँचई मुक्ति पावो प्रवीन । जो रहत अहोनिसि ध्यान लीन ॥

उनकी सम्मति मे योगसाधना रामभक्तिप्राप्ति का एक मात्र साधन है । —

तहँ गए मिटत है जन्म मरण । तेहि हेत जोग व्रत रामसरण ॥

आमेर नरेश पृथ्वीसिंह के प्रसग मे नाभादास ने पयहारी जी को निर्गुण तथा सगुण दोनो तत्त्वो का पारगत आचार्य कहा है । राजयोग मे अग्रदास को उपदिष्ट निम्नाकित साधना प्रणाली इसका समर्थन करती है[3]—

प्राणहि अपान दृढ गाथि डोरि । कुडलनि जाय सम युक्ति जोरि ॥
तब चलत पवन जहँ ब्रह्मरध्र । तहँ छोडि जाहि सब त्रिगुण बध ॥
उलटै सु इला पिगला नारि । सुषुमना शुद्ध लीजे विचारि ॥
पहुँचे सु जबै अनहद गेह । राखे सु एक हरि सो सनेह ॥

इस स्थिति की प्राप्ति का एक मात्र उपाय रामनाम का अखड जप है[4]—

---

१. वही, छं० २४, २६
२. राजयोग, छं० ५, ६, ७, ८
३. वही, छं० २५
४. वही, छं० २८.

आठ पहर चौंसठि घरी ररकार ठहराय ।
सकल मोह दावा मिटै तब नाना ठहराय ॥

स्वामी रामानन्द का भी मुख्य उपदेश रामनाम जप ही था[1] जिसे आगे चल कर गोस्वामी तुलसीदास ने निर्गुण एव सगुण ब्रह्म की ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन और दोनो के बीच 'चतुर दुभाषी' घोषित किया । पयहारी जी भी रामोपासना की इस समन्वयात्मक प्रवृत्ति के पोषक थे । परवर्ती रामभक्त कवियो ने भी अपनी रचनाओ मे निर्गुण तत्त्व को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया । यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी के अन्य सगुणाश्रयी सम्प्रदायो मे प्राय. इसके विपरीत, निर्गुण भावना को सगुण के विरोधी रूप मे ही चित्रित किया गया है । कृष्ण काव्य की भ्रमरगीत परपरा मे इसके पर्याप्त उदाहरण विद्यमान हैं ।

अरध-उरध :

नाथों और संतों के यहाँ 'अरध' और 'उरध' का प्रयोग प्रायः एक साथ 'अरध-उरध' हुआ है । अरध शब्द संस्कृत 'अधः' तथा 'उरध' शब्द संस्कृत 'ऊर्ध्व' का ध्वनि परिवर्तित रूप है। हठयोग साधना में मूलाधार को अरध और सहस्रार को उरध कहा गया है । कुण्डलिनी को

जागृत कर साधक मूलाधार से सहस्रार तक ले जाता है । नाथयोगियों ने शिव और शक्ति के संदर्भ में अरध-उरध शब्द का प्रयोग किया है । शक्ति स्वयंभू लिंग को मूलाधार में साढ़े तीन वलयों में आवेन्टित कर अधोमुखी अवस्था में रहती है । शिव का निवास स्थल सहस्रार है। साधक इसी शक्ति को शिव से मिलाने की साधना करता है । गोरखनाथ कहते हैं,

अरध-उरध बिचि धरी उठाई, मधि सुंनि मैं बैठा जाई ।
मतवाला की संगति आई, कथंत गोरखना परमगति पाई ।"

अर्थात् श्वाँसा (अथवा शक्ति) को अरध (अधः नीचे, अंदर जाने वाली वायु) और ऊर्ध्व (उच्छ्‌वास) के बीच में उठा कर रक्खा अर्थात् केवल कुंभक किया और मध्य शून्य (ब्रह्मरंध्र) में जा बैठा । वहाँ मतवाले शिव (ब्रह्म तत्व) की संगति मिली । इस प्रकार गोरखनाथ कहते हैं (कि हमें) परम गति प्राप्त हो गयी ।[17] अन्यत्र गोरखनाथ कहते हैं कि जब प्राण पुरुष का वास अरध कमल से उरध कमल में होता है तब प्राण वायु उलटी चलने लगती है और भीतर प्रकाश फैल जाता है,

'अरधतं कवल उरधंत मध्ये, प्रांण पुरिस का बासा ।
द्वादस हंसा उलटि चलैगा, तब हीं जोति प्रकासा ।'[18]

कबीर के यहाँ 'अरध-उरध' 'इंगला-पिंगला' दोनों नाड़ियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसे 'गंगा जमुना' भी कहा गया है । एक स्थान पर कबीर कहते हैं कि मूलाधार चक्र वह घाट है जहाँ से अरध-उरध रूपी गंगा-जमुना नदियों से आध्यात्मिक यात्रा का प्रारंभ होता है--

'दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलैं हिंडोल ।
अरध-उरध की गंगा जमुना, मूल कँवल कौ घाट ।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट ।।'[19]

पलटू साहिब के यहाँ अरध-उरध मूलाधार और सहस्रार चक्र के अर्थ में आया है--

'मीन मारग पवन पंछी सेख चाल चलावनं ।
अर्ध उर्ध के बीच आसन खोल भेद मिलावनं ।।'[20]

कबीर आदि संतों ने साधक की स्थिति को अरध-उरध के बीच माना है 'अरध उरध मुख लागो कासु, सुन मण्डल महि किओ परगासु । कईप्रसंगों में 'अरध-उरध' का प्रयोग सामान्य अर्थ में 'ऊपर-नीचे' भी हुआ है । गोरखनाथ कहते हैं-

'अरधे जाता उरधे धरै, पाँचो इन्द्री निग्रह करै ।'

04:53
← 2015.404579.Santbani-...
230/267

अपने पिया को मैं वेगि मनैहौं ।
सौ तक़सीर होत प्रभु जन से ॥ ३ ॥
सुनि मृदु वचन पिया मुसुकाने ।
पलटुदास पिय मिले बड़े तप से ॥ ४ ॥

(२)

प्रेम बान जोगी मारल हो, कसकै हिया मोर ॥ टेक ॥
जोगिया के लालि लालि अँखियाँ हो, जस कँवल के फूल ।
हमरी सुरुख चुनरिया हो, दूनौं भये तूल[१] ॥ १ ॥
जोगिया के लेउँ मिर्गछलवा हो, आपन पट चीर ।
दूनौं के सियब गुदरिया हो, होइ जावै फकीर ॥ २ ॥
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर ।
चितवन में मन हरि लियो हो, जोगिया बड़ चोर ॥ ३ ॥
गंग जमुन के बिचवाँ हो, बहै झिरहिर नीर ।
तेहि ठैयाँ जोरल सनेहिया हो, हरि लै गयो पीर ॥ ४ ॥
जोगिया अमर मरै नहिं हो, पुजवल मोरी आस ।
करम लिखा वर पावल हो, गावै पलटूदास ॥ ५ ॥

(३)

कुंडलिया

जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देत है प्रान ॥
छोड़ि देत है प्रान जहाँ जल से बिलगावै ।
देइ दूध में डारि रहै ना प्रान गँवावै ॥
जा को वही अहार ताहि को का लै दीजै ।
रहै ना कोटि उपाय और सुख नाना कीजै ॥

(१) तुल्य = बराबर ।

कहे जोगिन्दर मन तत्त परगास। सुनयो '**मंगत**' तत्त ज्ञान निरवास॥**137**
बोले जोगिन्दर सहज सुभाए। इस कथा का दीजो अरथाए॥
ताँ पूरन गुर परम तत्तवादी। देवें विचार पुरख आगाधी॥
कैसे पवन का नाका बाँधा। मूल द्वार को कैसे साँधा॥
बंकनाल को कैसे खोला। किस जुगत कर शबद घर बोला॥
क्योंकर चले आकास की धार। कैसे बाँधा मन गँवार॥
किस घर आसन कहाँ सुरत लगाई। किस शत्रु पर घात चलाई॥
भूख प्यास को कैसे जीता। कह बिध भेख लयो अतीता॥
कैसे खोला अगम द्वारा। क्या देखा वहाँ क्या विचारा॥
किस नीर का मज्जन कीना। कौन देही के मल को छीना॥
किस घर चन्दर सूरज की धारा। आलख जोत कैसे उजियारा॥
चार दिसा को कैसे सोधा। काल करम किस भाँत निरोधा॥
नीर छीर कह बिध निरनाए। कह जोगिन्दर सुन '**मंगत**' तपराए॥**138**
साचे नाम संग पवन को बाँधा। उल्ट पवन मूल द्वार को साँधा॥
उलट पलट पवन को दीना। खुली बंकनी शबद को चीना॥
शबद की धार चले आकास। शबद परतीत मन भयो रास॥
पाताल आसन सुरती आकास। ममता शत्रु का कीना घात॥
उलट पवन अन्तर को धारी। भुख प्यास सहज निवारी॥
शबद भेद ले भयो अतीता। सुनो जोगिन्दर योग सरूपा॥

आलख शबद से खोला अगम द्वारा। कोट भान सम देखा उजियारा॥
पवन नीर संग मज्जन कीना। सुरत देही को निर्मल कीना॥
इरध गृह चन्द उरध गृह भान। अनहद उपजी जोत की तान॥
पवन संकोच अन्तर को बोधे। चार दिसा को ऐसे सोधे॥

गुरमुख बुद्धी, नीर छीर निरनावे।
कह 'मंगत' सुन अवधू, अन्तर भेद लखावे॥ 139

सार जुगती करो पहचान। सुनो जोगिन्दर सार तत्त ज्ञान॥
आलख रूप अन्तर कर वासा। बिना जुगत ना होवे परगासा॥
दृढ़ विश्वास चित में धारी। सो जन पावे जोग की कारी॥
जीवन मरे मर के जीवे। सार जुगत योग को पीवे॥
मन पवन इक धारा कीजे। सत सरूप अन्तरगत लीजे॥
जब लग मन पवन नहीं एका। तब लग पाए नहीं विरत विवेका॥
मन पवन दो बाँधे बन्धा। उल्ट पवन कर नाद परचण्ड॥
पलक पलक हर नाम चितारे। एको नाम में जीवन धारे॥
पाँच इन्द्री अन्तरमुख कीजे। शबद अनहद ताल लखीजे॥
छिन छिन मन के बिख को काढे। सत जोगिन्दर भरम को बाढे॥
झूठी देह का गरब त्यागे। सत पुरख के चरनी लागे॥
नाद निरत सुरत इक कीजे। करम भरम सकलो चित छीजे॥
जत का आसन नित मन में राखे। तप का भोजन अन्तर में भाखे॥
सदा अतीत गुर जुगत विचारे। सहज नाम की धूनी उजियारे॥
पर-उपकार मित्र चित राखे। ज्ञान भभूत मन अंग में भाखे॥
एक निस्चय की कंठी धारे। प्रेम नाद का शबद विचारे॥
बिरह विवेक की मुद्रा धारे। तिस जोगिन्दर सों बलिहारे॥
अन्तर का सब पाट कर दूरे। केवल शबद रग रग में पूरे॥
ध्यान की मदरा में रहे मस्तान। अखण्ड नाद का कीजे पान॥

सत सरूप की आरती, जुग जुग भई परवान।
'मंगत' सेवे हर भगत जन, परसे तत्त निर्वान॥ 98

साचे शबद का सुनयो सत भेदा। जिसको ध्यावें नित चारे वेदा॥
काया अन्तर सदा बिराजे। सदा निरालम सरब निवाजे॥
देव दानव सिद्ध मुन ध्याएँ। तिस पुरख का पार ना पाएँ॥
अपने आप में रहे परबीन। नित निरन्तर आप में लीन॥
अधिक वडयाई अधिक परताप। सरब व्यापे सो निरालम आप॥
आवत जावत पवन की धार। मूल द्वार करे संचार॥
गुरमुख खोजे तत्त पहचाने। पवन को सोधे अन्तर बिध जाने॥
मूल द्वार में बन्ध लगाए। उलट पवन सतनाम कमाए॥
अल्प आहार सूक्षम निंद्रा। तत्त बिरोले नित जोगिन्द्रा॥
इरध उरध में सन्धी कीजे। अमरत नाम घट अन्तर पीजे॥
खुले ग्रन्थी नाद उपजाए। मनमुख मनुआँ सहज ठहराए॥
छिन छिन नाद की सेवा कीजे। नाद घनघोर कँवल को छीजे॥
खट चक्रन को नाद प्रभ छेदे। चढ़े आकास तिरकुटी को बेधे॥
सूक्षम धुन तरबेनी बोले। गुरमुख हंसा नित करे कलोले॥
मन अपने की करे निगरानी। नित ही राखे विच अमरत बानी॥
बिरह वैराग का चोला धारी। सत विश्वास कर सिफ्त विचारी॥
इन्द्री विखे से रहे अतीत। मन में राखे एक शबद परीत॥
निर्मल मनुआँ सतनाम का आहारी। द्वैत भरम बिकार को टारी॥
दीन ग़रीबी सत भेख को लीना। आलख शबद की सार को चीना॥
अन्तरमुख मन शबद ध्याए। घोर शबद जाए शिखर समाए॥
अधिक घनघोर शबद की तान। परगट भई जोत आलख निर्वान॥
जाँ से बिछड़ा ताँ जाए मिलाई। शबद भेद जाने जानाई॥

आसा तृष्णा जेवड़ी, बाँधा कुल संसार।
'मंगत' छूटे गुरमुख, पावे शबद निरंकार॥ 99

देख देख सब भूल गए, अपना निज घरबार।
'मंगत' माया मोहिनी, हर भगत से हो छुटकार॥ 58

सतसंगत मिल गाइयो, आलख पुरख अगाध।
बिन सिमरे तत्त ज्ञान के, कोटक मन व्याध॥
अन्तर सिमरो निरन्तर धरो ध्यान। पवन को साधो सुन अनहद की तान॥
उरध पवन पच्छम को जाई। रवि शशी इक तार मिलाई॥
पच्छम से उठ चढ़े समेर। लागे पूरब दिशा के फेर॥

मूल द्वार लगावे बन्ध। उलट पवन की साधे सन्ध॥
साचा नाम संग पवन के खेले। गुप्ती बानी कोई गुरमुख मेले॥
इरध उरध में सुरती जोड़े। ब्रह्ममुख योगी दर दसवाँ फोड़े॥
उरध कँवल घट भयो परगास। मूल बंकनी में कीना वास॥
ईड़ा पिंगला सुखमन धार। सम कर पीवे हो सचयार॥
पवन की निरोध सरोध कमावे। बारह सोलह इक धार मिलावे॥
उलट पवन का लंगर खैंचे। सोती नागन उठ अमरत सैंचे॥
गुर का पूत कोई जुगत कमावे। मर के जीवे सत गत पावे॥
नीर पाताल आकास चढ़ावे। आलख पुरख का खेत भीजावे॥
गगन खेत सोध कुण्ड का नीर। उपजे पुरष बिना शरीर॥
मानसरोवर तट बोले नाद। कहे मछन्दर सुन गोरख बिसमाद॥
छिन छिन वरखे अमरत धार। बैठी पीवें पाँचों पनिहार॥
निरगुन सरगुन तोले एक चीत। बानी गुपत परगट भई मीत॥
इक्कीस हज़ार छै सौ मनियां। इक तार परोवे निस दिन गुनियां॥
सुरत की सूई प्रेम का धागा। खिनता ज्ञान सीवे बैरागा॥
जत लंगोट त्याग भभूत। विश्वास की मात्रा धारे अबधूत॥
सत की सेली सिर छतर बिराजे। बिरह विवेक की मुंद्रह साजे॥
खिमा दया का पीवे नीर। निरभेख वास में रमे फ़कीर॥

गुर की जुगत का, कीजे नित आहार।
'मंगत' गुरमुख पाए, शबद ब्यौहार॥ 59

आसन दृढ़ता नित मन विचारे। पुरषारथ चोला कफ़नी धारे॥
परहित चित में माला फेरे। नाम की ओट पाए सुख घनेरे॥
इकन्त बाज़ार में नित रमाए। अमरत शबद का भोग लगाए॥
द्वन्द बकार का करे शिकार। निज घर वास पाए गुनकार॥
करम भरम की बुरज उड़ाई। गोला ज्ञान सत तेग़ चलाई॥
फिरी दोहाई नगर के बीच। चोर चतर गए सब मुख मीच॥
ग़ैब सिंहासन पुरष निर्वान। करे हकूमत तीन जहान॥

सुषुम्णा-पथ ही मध्य पथ है—शून्य पदवी या ब्रह्मनाडी। चन्द्र और सूर्य को यदि प्रकृति और पुरुषस्थानीय माना जाय, तो चन्द्र-सूर्य का मिलन कहने से प्रकृति-पुरुष का आलिंगन ही समझना होगा। इस आलिंगन के बिना शून्यपथ खुल ही नहीं सकता। और, शून्यपथ खुलते ही प्रकृत शून्य में स्थिति नहीं होती। शून्यता भी आपेक्षिक है।

इस आपेक्षिकता को दिखाने के लिए हठयोगी शून्य, अतिशून्य, महाशून्य आदि पदों का प्रयोग करते हैं। विशुद्ध शून्य ही निर्वाणपद है—यहाँ वासना नहीं, कामना नहीं, क्लेश या कर्माशय आदि कुछ नहीं रहता। अतएव, प्रकृत शून्य या निर्वाण-पद उस आलिंगन की गाढतम अवस्था के चरम फल के सिवा और कुछ नहीं। उस समय रहता क्या है? सिद्धाचार्य कहते हैं कि उस समय केवल एक अद्वयतत्त्व विराजमान रहता है, परन्तु उसे 'तत्त्व' न कहकर 'तत्त्वातीत' कहना ही अधिक संगत है। इसीलिए, शिव और शक्ति नामक दो बिन्दु जबतक सम्पूर्णतया पार्थक्य छोड़कर समरूपता नहीं प्राप्त करते, अर्थात् ऐक्यलाभ नहीं करते, तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि प्रकृत शून्यावस्था का उदय हुआ है। भेद या द्वैत का लेश रहने तक निर्वाण-प्राप्ति की आशा निष्फल है। साम्य एवं निरंजनता ही निर्वाण का स्वरूप है। उसमें पृथकता नहीं रह सकती। वाम और दक्षिण व्यक्त होकर—समान होकर—मध्यावस्था का पूर्ण विकास ही निर्वाण है। हठाचार्य सहस्रारस्थ महाबिन्दु में इस महामिलन का अनुभव करते हैं और उससे निकली रसधारा में अपने को प्लावित करते हैं। मूलाधार-स्थित कुण्डलिनी जब इडा और पिंगला नाम की नाडियों के संघर्षजनित समीकरण के फलस्वरूप जाग्रत् होकर अग्निशिखा सदृश उठती है, तब स्वभावतः ही ऊर्ध्वमुख होकर सरल पथ से धावित होती है। इस उत्थानकाल में इधर-उधर विक्षिप्त शक्तियाँ चारों ओर से आकुंचित हो आती हैं और उस धारा में गिरती हैं। इन्हीं सब शक्तियों द्वारा ही स्तर-स्तर में जगत् के सारे पदार्थ निर्मित और अनुभूत होते हैं। इन सबके उपसंहृत होते ही इनके साथ-साथ रचित और प्रकाशित जगज्जाल इन्द्रजाल की भाँति विलीन हो जाता है, चारों ओर महाशून्य में परिणत होता है। इस प्रकार, क्रमशः लोक-लोकान्तर को संहार के अनल में दग्ध करके, अंगीभूत करके, नादरूपा महाशक्ति कुण्डलिनी सिंहनाद करते हुए उठती रहती है। इसके परिणामस्वरूप भूत और चित्त संहृत होते हैं, षट्चक्र-भेद होता है और आज्ञाचक्र के ऊपर स्थिति होती है। बाद में, वहाँ से अत्यन्त ही सूक्ष्म पथ से चैतन्यशक्ति के रूप में प्रकाशमान कुण्डलिनी चैतन्य-महासमुद्र में—परम शिव के वक्ष में—मिलने के लिए धावमान होती है। उसमें आश्रित जीव उसी के आकर्षण से उसी के साथ चलता रहता है। उसका और कोई अलग साधन नहीं रहता—वह आश्रित और शरणागत रूप में निःशंक भाव से माता की गोद में विराजता रहता है। कुण्डलिनी जब सहस्रारस्थ परमशिव से युक्त होती है, तब उस आलिंगन से विचित्र आनन्द का उदय होता है। जीव उसका आस्वादन करता है। शिव-शक्ति के मिलन के बिना आनन्द की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। महाबिन्दु में उस मिलन का जब सूत्रपात होता है, तब भी दो बिन्दु रहते हैं। बाद में, क्रमशः दोनों बिन्दु एक महाबिन्दु में परिणत होते हैं। यह महाबिन्दु अखण्ड परमानन्दमय एवं युगलभावापन्न होते हुए भी अद्वय है।

हठयोगियों के सिद्धपथ की आलोचना के प्रसंग में हमें बहुत-सी बातें कहनी होंगी। आपाततः, संक्षेप में यह देख लिया जाय कि बौद्ध सहजयान का साधना-सम्बन्धी सिद्धान्त क्या है। सहजिया साधकों के अनुसार, सहज अवस्था का लाभ ही पूर्णतासिद्धि है।

किन्तु, यह महासुख किस प्रणाली से प्राप्त होता है? इसकी उपलब्धि कहाँ होती है? वहाँ जाने का रास्ता क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर में सहजिया साधक कहते हैं, उष्णीष-कमल में ही महासुख की अभिव्यक्ति होती है। तन्त्रशास्त्र और हठयोग के ग्रन्थों में इस कमल को सहस्रदल नाम से वर्णित किया जाता है। वज्रगुरु, अर्थात् वज्रमार्ग का सहारा लेकर जिन्होंने सिद्धिलाभ करके वज्रधर अवस्था प्राप्त की है, उनका आसन इस उष्णीष-कमल की कर्णिका में होता है। वहाँ पहुँचने का पथ बड़ा ही दुर्गम है। साधना आदि प्रक्रियाओं से जिनका बिन्दु सिद्ध नहीं हुआ है, उनके लिए वहाँ पहुँचकर सिद्धि पाना दुराशा-मात्र है। मध्यपथ को पकड़कर बिन्दु का स्थैर्यसाधनपूर्वक उसे ऊर्ध्व की ओर चालित करने से क्रमशः महासुख-पद्म के केन्द्र में पहुँचा जा सकता है। संसार-अवस्था में जीव दक्षिण और वाम मार्ग से अहर्निश भ्रमण करता है। वह अत्यन्त सूक्ष्म और दुर्गम मध्यपथ से संचरण का साहस नहीं कर सकता और उसमें समर्थ भी नहीं होता। वास्तव में, पुरुषकार के द्वारा मध्यपथ का आश्रय पाना एक प्रकार से असम्भव है। उस पथ में प्रवेश करने के लिए गुरुकृपा ही एकमात्र सदुपाय है। सहजिया साधकों ने बहुत स्थानों में वामशक्ति को ललना और दक्षिणशक्ति को रसना कहकर वर्णित किया है और ललना को चन्द्र या प्रज्ञा तथा रसना को सूर्य या उपाय कहा है। उनके मत से दोनों के मध्यदेश में जिस शक्ति की क्रिया होती है और जो वर्तमान अवस्था में अवरुद्धप्राय है, उसका पारिभाषिक नाम है 'अवधूती'। चन्द्र और सूर्य के मिलन या प्रज्ञा और उपाय के आलिंगन से मध्यपथ का उन्मीलन होता है। 'अवधूती' पद की व्युत्पत्ति है : "अवहेलया अनाभोगेन क्लेशादिपापान् धुनोतीत्यवधूती।" अवधूती-मार्ग ही अद्वयमार्ग, शून्यपथ और आनन्द-

यदि पुनः प्रज्ञोपायलक्षणौ समतास्वभावौ भवतः, एतौ द्वौ अभिन्नरूपौ भवतः तदा भुक्तिमुक्तिर्भवति।" अन्यत्र है : "उभयोर्मिलनं यत्तत्र सलिलक्षीरयोरिव। अद्वयाकारयोगेन प्रज्ञोपायं तदुच्यते॥... चिन्तामणिरिवाशेषजगतः सर्वदा स्थितम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं सम्यक् प्रज्ञोपायस्वरूपतः॥"

स्थान है। यहाँ ग्राह्य और ग्राहक का भेद नहीं, दोनों ही समरस होकर शून्याकार में विराजमान हैं। इस पथ पर आये बिना क्लेशनिर्मुक्त या द्वन्द्वातीत होने की सम्भावना नहीं। चन्द्र और सूर्य के आलिंगन के बिना अवधूती विशुद्ध नहीं हो सकती। यह स्मरण रखना होगा, ललना और रसना अवधूती का ही अशुद्ध रूप है। शोधित होने से ये दोनों ही एकाकार हो जाते हैं—तब वैषम्य या मलिनता कुछ भी नहीं रहती। इसी को अवधूती का उन्मीलन या शोधन कहा जा सकता है। वज्रजाप के द्वारा ललना और रसना का शोधन वस्तुतः नाड़ीशुद्धि का ही नामान्तर है। सिद्धाचार्य लुईपाद कहते हैं : चन्द्र शुद्ध होकर 'आलि' नाम प्राप्त करता है। इस शोधन का फल है श्रवन (या भ्रमन)। सूर्य शुद्ध होकर 'कालि' नाम से आख्यात होता है। इसका फल है चवन (या चमन)। 'द्विकल्पतन्त्र' में है कि 'आलि' और 'कालि' का संयोग ही वज्रसत्त्व की अधिष्ठानभूमि है, अर्थात् विशुद्ध चन्द्र और सूर्य मिलित होकर जब ऐक्यलाभ करते हैं, तब उस अद्वयभूमि में सिद्ध-बिन्दु वज्रसत्त्व का आविर्भाव होता है : 'आलिकालिसमायोगः वज्रसत्त्वस्य विष्टरम्।' यह संयोग आरब्ध होकर क्रमशः चलता रहता है—संयोग की गाढ़ता के अनुसार अवधूती का संग भी निबिड़ होता रहता है और उसी अनुपात से शून्यता, अद्वयभाव, आनन्द या रति और नैरात्म्यबोध या बोधि गम्भीरता से उपलब्ध होती रहती है। इस संयोग अथवा मिलन का पारिभाषिक नाम 'सुरत' अथवा शृंगार है और इसका फल है—रस की अभिव्यक्ति। मिलित होते-होते चन्द्र और सूर्य जब क्रमशः अपना स्वरूप और धर्म खो बैठते हैं, जब चन्द्र चन्द्र नहीं रह जाता, सूर्य सूर्य नहीं रह जाता, दोनों मिलकर एकरस और एकाकार हो जाते हैं, तब वही निःस्वभाव या नैरात्म्य-अवस्था ही शून्यावस्था है। यही वास्तविक साम्य है। जो इस शून्यमय अद्वयभाव को अधिष्ठित करके आत्मप्रकाश करता है, वही वज्रगुरु का स्वरूप है। इस अवस्था की प्राप्ति एक दिन में नहीं होती—भूमि के बाद भूमि की क्रमशः जय करते-करते त्रयोदश भूमियों के अतिक्रमण के बाद इसकी पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है। सहजिया-साहित्य में 'वज्रधर' पद से इसी चतुर्दश भूमि के अधीश्वर का बोध होता है।

सहज-सम्प्रदाय के प्रकाशित ग्रन्थों की ठीक से आलोचना करने से यह समझ में आता है कि जिस पथ से आगम और सिद्धमार्ग का उद्भव हुआ है, वह भी उसी पथ का प्रदर्शक है। जिन्होंने हठयोग का अनुशीलन किया है, वे जानते हैं कि हठयोग की मूल बात ही है--चन्द्र और सूर्य को एकावस्थापन्न करना। तन्त्र की सांकेतिक भाषा में 'ह'-कार और 'ठ'-कार चन्द्र और सूर्य के वाचक हैं। अतएव, 'ह'-कार और 'ठ'-कार के योग से चन्द्र-सूर्य का एकीकरण समझना होगा। परिभाषा के भेद से यही इडा और पिंगला नाडी अथवा अपान और प्राणवायु का समीकरण नाम से आख्यात होता है। हठयोगी कहते हैं कि वैषम्य ही जगत् की उत्पत्ति और दृश्यमानता का मूल कारण है। जिससे जगत् फूट उठता है, वह जबतक साम्य अवस्था में वर्त्तमान रहता है, तबतक जगत् नहीं रहता। वह अद्वैत या प्रलय-अवस्था है। साम्य-भंग होने से ही वैषम्य, द्वन्द्व या द्वैतभाव का उदय होता है--यही सृष्टिबीज है। जो विरोधी दो शक्तियाँ परस्पर एक-दूसरे का उपमर्दन करके स्थिति-रूप में निष्क्रिय भाव से वर्त्तमान रहती हैं, वे जब समत्व का त्याग करती हैं, उनमें जब गुणप्रधान भाव जाग उठता है, तब सृष्टि और संहार का व्यापार सूचित होता है। बहिःशक्ति की प्रधानता से सृष्टि एवं अन्तःशक्ति की प्रधानता से संहार होता है। स्थिति दोनों शक्तियों की समानता का निदर्शन है। इन दोनों शक्तियों को भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न नाम दिये जाते हैं। शिव-शक्ति, पुरुष-प्रकृति आदि शब्द मूलतः इस आदिद्वन्द्व के ही वाचक हैं। जीवदेह में प्राण और अपान-रूप में इन विरुद्ध, किन्तु परस्पर सम्बद्ध शक्तियों का ही विकास हम देखते हैं। प्राण और अपान दोनों एक दूसरे का आकर्षण और प्रत्याकर्षण करते हैं। दोनों मिलकर एक होना चाहते हैं, पर हो नहीं पाते। क्योंकि, प्राण जिस अनुपात में जाग उठता है, अपान उसी अनुपात में सुप्त हो पड़ता है; इसके विपरीत अपान के उदय के अनुपात से प्राण निष्क्रिय होता है। अतएव, किसी भी समय दोनों शक्तियाँ समान भाव से जाग्रत् नहीं रहने के कारण आपस में मिल नहीं सकतीं। यदि अपान या प्राण को जगाकर, या यथाक्रम उन्हें उद्बुद्ध कर परस्पर एक को दूसरे से मिलाया जा सके, तो अवश्य ही दोनों का साम्य हो सकता है। परन्तु, साधारणतः यह होता नहीं। स्वाभाविक निःश्वास-प्रश्वास ही पूरक और रेचक तथा दोनों का समीकरण कुम्भक है। जबतक श्वास-प्रश्वास का व्यापार होता है, तबतक इडा-पिंगला-मार्ग क्रियाशील रहता है। श्वास और प्रश्वास समान होने से सुषुम्णा-द्वार खुल जाता है। अतएव, प्राण और अपान की समता, इडा और पिंगला का साम्य या निष्क्रियता, पूरक और रेचक की समानता या कुम्भक, सुषुम्णा-द्वार का उन्मोचन—यह सभी समानार्थक हैं।

सुषुम्णा-पथ ही मध्य पथ है—शून्य पदवी या ब्रह्मनाडी। चन्द्र और सूर्य को यदि प्रकृति और पुरुषस्थानीय माना जाय, तो चन्द्र-सूर्य का मिलन कहने से प्रकृति-पुरुष का आलिंगन ही समझना होगा। इस आलिंगन के बिना शून्यपथ खुल ही नहीं सकता। और, शून्यपथ खुलते ही प्रकृत शून्य में स्थिति नहीं होती। शून्यता भी आपेक्षिक है।

सहजिया साधक कहते हैं, वज्रकमल के संयोग से जो बोधिचित्त को वज्रपथ से अच्युत करने में समर्थ हुए हैं—शिव-शक्ति के मिलन के फलस्वरूप बिन्दु को ब्रह्मनाडी में चालित करके उसे स्थिर और दृढ कर सके हैं, वही परम योगी हैं, वही धर्म के यथार्थ स्वरूप को जान सकते हैं। इन्द्रिय-सुख में डूबे हुए व्यक्ति के लिए धर्मतत्त्व का ज्ञान दुर्लभ है : 'नान्यो हीन्द्रियधर्षणलक्षणसुखाभिनिविष्टः ।' बोधिचित्त या बिन्दु ही सारी सिद्धियों का मूल है—वह पतित हो, तो स्कन्धविज्ञान मूर्च्छित होता है, सिद्धि नहीं प्राप्त होती। जीव-देह का कंकाल-दण्ड ही मेरुगिरि है, उसके बीच की शून्य नाडी ही गिरिगह्वर है। इस गह्वर में नैरात्म्य धातु का ऐकाधिपत्य है। आकाश इसी का नामान्तर है। यहां आने से ही बोधिचित्त स्थिर हो जाता है। 'वरगिरिकन्दर कुहिर जगु तहि सअल चित्त थइ ।' प्राण-अपान की समतावश उस समय अपान निरुद्ध और प्राण भी निरुद्ध हो जाता है। अपान के निरोध के कारण बोधिचित्त की अधोगति नहीं होती, प्राण के निरोधवश ऊर्ध्वगति भी नहीं होती। प्रवाह नहीं रहता है, इसलिए बिन्दु स्थिर होकर अव्यक्त भाव धारण करता है : 'अह ण गमइ उह ण जाइ, रेणि रहि अ तसु निच्चल पाइ ।' बोधिचित्त चन्द्र या सोमात्मक है। जब वह विमल और स्थिर रहता है, तब पूर्णिमा-अवस्था का ज्ञापक होता है।

शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षात्मक मासचक्र ही कालचक्र का स्वरूप है। पूर्णिमा के बाद चन्द्रकला क्रमशः क्षीण होती रहती है, इसके विपरीत अमावस्या के बाद वह क्रमशः बढ़ती रहती है। कला के इस पर्याय-क्रम में घटना-बढ़ना अनित्यता को ही सूचित करता है। चन्द्रमा की पंचदशकला कला के रूप में नित्य होते हुए भी विकारशील है। षोडशी कला यथार्थ रूप में नित्य और अमृतकला है। इस षोडशी कला का अपूरण या संक्षय, कुछ भी नहीं होता। क्षरणहीन होने के कारण इस षोडशी कला को ही अक्षर कहते हैं—इसे कालचक्र का निरन्तर आवर्तन छू नहीं सकता। बिन्दु जब इस षोडशी कला में आकर स्थिर हो जाता है, तब वह पूर्णचन्द्र के रूप में निश्चल या अच्युत अवस्था प्राप्त करता है। इसी अवस्था में महारागसुख का अनुभव होता है, परन्तु यहाँ नहीं आ पाने से बिन्दुक्षरण अवश्यम्भावी है; क्योंकि अक्षर के सिवा सब कुछ क्षर है। चन्द्रबिन्दु कलारूप में कालचक्र

में गिरता है—कालाग्नि बिन्दु का शोधन करती है। पूर्णिमा के बाद ही कृष्ण-प्रतिपद् से कला का क्षय आरम्भ होता है, इसलिए सहजिया साधक इस बिन्दुपात को बिन्दु का कृष्ण-प्रतिपद् में प्रवेशकाल कहते हैं। जैसे :

'कालाग्नेश्च्युतावस्था कृष्णप्रतिपत्-प्रवेशकालः ।'

अतएव, वज्रयान या साम्यमार्ग के अलावा अद्वय-शून्यावस्था—अभेद्य अच्छेद्य नित्य वज्रावस्था के लाभ का कोई उपाय नहीं। दूसरे सारे ही पथों में जब चित्त का क्षरण अवश्यम्भावी है, तब यही पथ एकमात्र ब्रह्मचर्य का पथ,—यही सहज पथ है, दूसरे सब केवल विकल्पजाल हैं। कल्पना का विलास जिस पथ से समुदित होता है, वह मिथ्या है।

हठयोग की साधन-प्रणाली को सिद्धपथ कहते हैं। हठयोग का जो परिचय हम पहले दे चुके हैं, उससे यह समझ में आयगा कि सिद्धमार्ग या हठमार्ग में और वज्र या सहजमार्ग में वस्तुतः बहुत अंशों में समानता है। परन्तु, इस सम्बन्ध में और भी विशद आलोचना की आवश्यकता है। हठयोगी कहते हैं, जब चित्त समत्व-लाभ करता है, वायु मध्यपथ से चलती है, तब अमरोली, वज्रोली और सहजोली आप ही आयत्त हो जाती हैं :

चित्ते समत्वमापन्ने वायौ व्रजति मध्यमे ।
तदाऽमरोली वज्रोली सहजोली प्रजायते ॥

वज्रोली और सहजोली सुनकर मन में वज्रयान और सहजयान की स्मृति जग आती है। वायु के मध्यपथ में गमन करने से चित्त वृत्तिहीन होकर शून्य आकार धारण करता है। मन और प्राण दोनों ही जब सुषुम्णा को आश्रय करके ब्रह्मरन्ध्र के अवकाश में निरुद्ध होता है, तब ज्ञान का उदय होता है। मध्यपथ के खुल जाने से फिर काल का विक्रम नहीं रह जाता; क्योंकि इडा और पिंगलामय काल-संचार का रास्ता तब बन्द रहता है। इसीलिए, हठयोगी कहते हैं : सुषुम्णा काल की भोक्त्री है। मन और प्राण के स्थिर होने से बिन्दु स्थिर होता है (ह० यो० प्र०, ४।२८)। इसका नाम बिन्दुसिद्धि है। इससे नित्य और शुद्ध सत्त्व तथा पिण्डस्थैर्य उपजात होता है (वही)। जब बिन्दु से देह का विकास होता है, तब जबतक बिन्दु चंचल रहता है, तबतक देह जरा और मृत्यु के अधीन रहेगी, यह कहना ही बाहुल्य है। बिन्दु की स्थिरता से ही कायसिद्धि का आविर्भाव होता है। वज्रकाय, सहजकाय आदि शब्द सिद्ध देह के बोधक हैं। इसी को पातंजल दर्शन में वज्रसंहनन-रूपकायसम्पत् कहा गया है। सिद्धाचार्य, रासायनिक और वज्रयानिक आचार्य सिद्धदेह की आवश्यकता का अनुभव करके सबने ही इसकी प्रणाली और प्रकार-भेद का वर्णन किया है। वे कहते हैं : बिन्दुसिद्धि या देहसिद्धि के बिना महाशक्ति से संयोग सम्भव नहीं है। वास्तव में, भूतसिद्धि और चित्तशुद्धि के बिना उपासना का अधिकार नहीं आ सकता। आधार के पक्व हुए बिना, धारणशक्ति नहीं रहने से विराट् चैतन्य का संस्पर्श नहीं होता, हो भी, तो आत्मलोप अवश्यम्भावी है। सिद्धदेह योगी जरा और मृत्यु के अतीत हैं।

हम पहले कह चुके हैं कि बिन्दुसिद्धि के विना अद्वय-पद की प्राप्ति दुर्घट है। बिन्दु जबतक चंचल रहता है, तबतक शून्य या निर्विकल्प अवस्था की सिद्धि सम्भव नहीं। इस चंचल अथवा क्षरणशील बिन्दु को सहजिया साधक संवृति-बोधिचित्त कहते हैं। 'वारुणी' शब्द इसी का वाचक है। स्वरूप की आलोचना करने से इसे चन्द्र से अभिन्न ही मानना होगा। प्रधानतः अवधूती-मार्ग द्वारा ही यह संचालित होता है। वास्तव में, देह की मुख्य-मुख्य सारी नाड़ियाँ इसकी वाहक हैं। सहजिया साधकों की सांकेतिक भाषा में नाड़ियों को योगिनी कहा गया है। ललना आदि नाड़ियाँ जब आभासशून्य होती हैं, अर्थात् वासना आदि मलों से रहित होकर शोधित होती हैं, तब मध्यपथ खुलता है; यही विशुद्ध मध्य नाड़ी है, जिसे बहुत स्थलों में 'नैरात्म्ययोगिनी' नाम से अभिहित किया गया है, प्राण के स्थैर्य की साधिका। इसका आश्रय जबतक नहीं लिया जाता, प्राण क्षण-भर के लिए भी चंचलता नहीं छोड़ता। जबतक आभास है, तबतक द्वैत रहेगा ही, तबतक प्राण और मन का कम्पन तथा बिन्दु का चांचल्य अवश्यम्भावी है। शोधित मध्य नाड़ी का मुख सहजानन्दस्वरूप है। उसका स्पर्श करने से ही वह आनन्द विरमानन्द के रूप में प्रकाशित होता है। उष्णीष-कमल का मधुपान ही विरमानन्द का आस्वादन है।

---

१. द्रष्टव्य : चर्याचर्यविनिश्चयटीका, पृ० ४३; दीघनिकाय, २।१६, ३।१४२ आदि, विनयपिटक, १।६५; मज्झिमनिकाय, २।१२६; संयुक्तनिकाय, ४।१६८ आदि। ये ३२ महापुरुष-लक्षण और ८० अनुव्यंजन क्रम से Getty की 'The Gods of Northern Buddhism' पुस्तक के पृ० १७०१ तथा Grunwedel के 'Buddhist Art in India' के पृष्ठ १६१ पर वर्णित हैं।

इसका स्वरूप है महासुख अथवा शून्यतामय परमार्थबोधिचित्त। गुरु-परम्परा के अतिरिक्त यह अवस्था पाने का कोई उपाय नहीं, इसीलिए शास्त्र में यह गुरुकृपासाध्य रूप में ही वर्णित हुआ है। संवृत्ति-बोधिचित्त रूप चन्द्र इस अवस्था में क्षरणहीन होकर परमार्थ-रूप में वज्रशिखर के अग्रदेश में निर्वाणप्राप्त हो जाता है।

भुसुकुपाद (चर्याचर्यविनिश्चय, २७) कहते हैं, जब चतुर्थ सन्ध्या की अर्धरात्रि में, प्रज्ञाज्ञान के अभिषेक-दान के समय, वज्रसूर्य के रश्मिपात से उष्णीष-कमल खिलता है, तब वहाँ बत्तीस नाड़ियों का स्राव होता है—सारी नाड़ियाँ आनन्द-रस से सिक्त हो जाती हैं। उसके बाद अवधूती-मार्ग के सहारे बोधिचित्त-रूप चन्द्र, अर्थात् बिन्दु वज्र-शिखर को जाता है, वहाँ जाकर प्रभास्वर गगन में निर्वाणप्राप्त होता है। वही विशुद्ध महासुखमयी नैरात्म्यरूपा अवधूतिका-कमलिनी बोधिचित्त-महासुख के रस से समग्र शरीर को प्लावित और आप्यायित करती है, इसके बाद स्वभाव के अलंघ्य नियम से फिर महासुखचक्र की ओर ही धावमान होती है।

काय, वाक् और चित्त—इन तीनों के दृढ़ हुए विना बिन्दुसिद्धि नहीं होती। इसीलिए, पहले देवता-योग के द्वारा काय की दृढ़ता, वज्रजाप के द्वारा चन्द्र-सूर्य के पक्षग्रह के खण्डन से वाक्य की स्थिरता एवं सुमेरुशिखर में श्वास के उन्नयन और मणिमूल का द्वार-रोध करके चित्त की दृढ़ता का सम्पादन करना होता है।

साधना का लक्ष्य जो अजर और अमर भाव पाना है, उसी का नामान्तर है स्कन्धपंचक की दृढ़ता, अर्थात् देहसिद्धि। स्वाधिष्ठानगत बोधिचित्त अथवा बिन्दु को आबद्ध नहीं कर पाने से इसे नहीं पाया जा सकता। सहजिया साधक कहते हैं : कर्ममुद्रा के प्रसंग में महासुख-कमल के दोहन से आनन्द-धारा निकलती है। यह आनन्द-धारा या संवृत्ति-बोधिचित्त अशोधित अवधूती-मार्ग से अवतीर्ण होकर पीठस्थान में, वज्रमणि में गिरती है। साधनमार्ग में अकुशल योगी (बाल योगी) उसे धारण नहीं कर सकता। परन्तु, जिन्होंने गुरु-परम्परा से योग के रहस्य को प्राप्त किया है, वे देह-वृक्ष के उस फल का भक्षण करते हैं, अर्थात् परिशोधित कुम्भक-समाधि तथा अपने अनुभव-क्रम से उसे स्वभावहीन करके शून्य रूप में परिणत करते हैं। वज्रजाप के उपदेश से, व्युत्थान-वायु और उत्प्रेक्षा-प्रवेश—अवधूती के इन दो आकर्षण-बल से विरमानन्द-स्थान में जाने से तो चतुर्थ सन्ध्या में वे सब दोष आप ही मिट जाते हैं। तब निर्विकल्प अवस्था पाने में विलम्ब नहीं होता।

विशुद्ध अवधूतिका के लिए सहजिया साधक 'डोम्बी' शब्द का व्यवहार करते हैं। ललना और रसना के एकत्र नहीं कर पाने से अवधूतिका का शोधन सम्भव नहीं। अतएव, अवधूतिका जब विशुद्ध होती है, तब ललना और रसना एक होकर उस अवधूतिका का ही रूप धारण करती हैं। ऐसी स्थिति में एकमात्र अवधूतिका ही देदीप्यमान रहती है। यही शास्त्रान्तर में उपदिष्ट शक्ति की अद्वय अवस्था या नाडीशुद्धि है। यह विशुद्ध अद्वयमार्ग या ब्रह्मनाडी ही 'डोम्बी' पद का अभिप्रेय है, यह अब सहज ही समझ में आयगा। यही वज्रमार्ग या वज्रयान, अर्थात् शून्यपथ है। वामशक्ति और दक्षिणशक्ति के मिलन से जिस अग्नि या तेज की उत्पत्ति होती है, नाभि या निर्माणचक्र में उसकी प्रथम अभिव्यक्ति होती है। इस अग्नि को महासुखरागाग्नि कहते हैं। सहजिया साधकों की सांकेतिक भाषा में इसका नाम है 'चण्डाली'। प्राथमिक अवस्था में यह सम्यक् शुद्ध नहीं रहती। साधना के परिपाक के अनुसार यह क्रमशः शोधित होकर 'डोम्बी'-रूप में परिणत होती है। तब विषयसमूह दग्ध हो जाता है, अद्वयभाव पूर्णता लाभ करता है। अवधूती, चण्डाली और डोम्बी या बंगाली—एक ही शक्ति की तीन अवस्था-मात्र हैं। अवधूती-अवस्था में द्वैत रहता है, ललना और रसना का पार्थक्य रहता है, इडा और पिंगला अपना-अपना कार्य-साधन करती हैं और प्राण तथा अपान यथानियम स्पन्दित होते हैं। जब दोनों का सम्मिलन होता है, तब अद्वयाग्नि—रागाग्नि प्रज्वलित होती है। परन्तु, प्रज्वलित होने पर भी द्वैत को पूरी तरह जलाकर आत्मसात् करना एक पल का काम नहीं—यह क्रमसाध्य है। यह सम्मिलन क्रमशः घनीभूत होता रहता है। ऐसी स्थिति में चरम द्वैत नहीं रहता—तब दो पृथक् शक्तियाँ एक हो जाती हैं। यही अवधूती की पूर्ण विशुद्धि या चण्डाली से डोम्बी-

१. द्रष्टव्य : रागेण बध्यते रागेणैव विमुच्यते। (हेवज्रतन्त्र)

सहजाम्नायपंजिकाकार भी (पृ० ९८) यही कहते हैं : 'बध्यति येन वि अज्ञ-लघु परिमुच्यति तेन वि बुधा।' जिस पंचकाम के उपभोग से मूर्ख बद्ध होते हैं, गुरु के आदेश से ज्ञानलाभ होने पर उसी के द्वारा पण्डित शीघ्र ही संसार से मुक्त हो सकते हैं। तुलनीय :

येनैव विषखण्डेन म्रियन्ते सर्वजन्तवः।
तेनैव विषतत्त्वज्ञो विषेण स्फुटयेत् विषम्॥

ज्ञानसम्बोधि में है : चित्त ही भव और निर्वाण का महाबीज है। यह संवृति में संवृतिमय आकार धारण करता है और निर्वाण में स्वभावहीन हो पड़ता है :

चित्तमेव महाबीजं भवनिर्वाणयोरपि।
संवृतौ संवृतिं याति निर्वाणे निःस्वभावताम्॥

भावप्राप्ति है। इस अवस्था में रागाग्नि के द्वारा विषयजाल दग्ध हो जाने से बाद में निर्मल नैरात्म्यभाव असीम और अनन्त आकाश की तरह विकसित हो उठता है। अवधूती, चण्डाली और डोम्बी द्वैत, द्वैताद्वैत और अद्वैत भाव की सूचक-मात्र हैं। तन्त्र में शक्ति के जो परा, परापरा और अपरा—ये तीन भेद हैं, उसका भी यही तात्पर्य है।

अवधूती की द्वैतावस्था में, अर्थात् जबतक चन्द्र-सूर्य का संयोग न हो, तबतक वायु का प्रवेश-निर्गम होता है एवं शक्ति वक्रपथ से संचरण करती है। इसी का प्रचलित नाम संसार है। शक्ति को सरल पथ[1] से चलाना अथवा इसकी वक्रता दूर करना साधना का उद्देश्य है। साधना के प्रभाव से शक्ति-प्रवाह का पथ सरल होने पर पथ भी जाता है, प्रवाह भी जाता है। निर्माण-चक्र में जब रागाग्नि का उदय होता है, तभी से वक्र गति

१. मध्यमार्ग ही सरल पथ है : ऋजुमार्ग, 'उजुवाट'। दक्षिण और वाम पथ वक्र-मार्ग। इसीलिए, वाम और दक्षिण पथ छोड़कर मध्यपथ पकड़ने का उपदेश है। सरहपाद कहते हैं : 'उजु रे उजु छाड़ि मा लेहु रे बंक।'

सिद्धाचार्य शान्तिपाद कहते हैं :

सअ संवेअण सरुअ विआरेते अलक्ख लक्खन न जाइ।
जे जे उजुवाटे गेला अनावाटा भइला सोइ॥

अर्थात्, स्वरूप-विचार आदि के द्वारा अलक्ष्य वस्तु का लक्षण नहीं किया जा सकता—जो अलक्ष्य है, उसका कोई विचार नहीं हो सकता। अतएव, विचार करके अलक्ष्य को पकड़ने की चेष्टा निष्फल है। पर, उन्हें पाने का सरल रास्ता है। उसका सहारा लेने से फिर शास्त्रविचार आदि की आवश्यकता नहीं होती। जो भी उस पथ से गया है, उसे महासुखचक्र मिला है, उसने निर्वाण-पद प्राप्त किया है, जहाँ से फिर संसार में नहीं आना पड़ता। अतएव :

वाम दहिन वो वाटा छाड़ी।
शांति बुलथेउ संकेलिउ॥

अर्थात्, वाम और दक्षिणपथ छोड़कर मध्यपथ ग्रहण करना चाहिए। इस परिशुद्ध अवधूती-मार्ग या वज्रमार्ग के अलावा बुद्धत्व, तथागतभाव, निर्वाण या महासुख प्राप्त करने का दूसरा पथ नहीं है : 'एतद्विरमानन्दो-पायमार्गं विहाय नान्यमार्गसम्भावोऽभिमुखोऽस्ति।' रत्नवज्र में है : 'नान्योपायेन बुद्धत्वं शुद्धं चेदं जगत्त्रयम्।'—

और :

एष मार्गवरः श्रेष्ठो महायानमहोदयः।
येन यूयं गमिष्यन्तो भविष्यथ तथागताः॥

यहाँ जो अपर ज्योति की बात कही गई, वही प्रबुद्ध कुण्डलिनी-शक्ति है। मन-प्राण-समन्वित जीव इसके साथ आश्रित रूप में वर्त्तमान है। ग्रन्थि या चक्रभेद इसी से होता है। कुण्डलिनी-शक्ति शीत की अधिकता से सोये साँप की भाँति कुण्डली के आकार में ब्रह्मद्वार के मुँह को घेरकर सोई हुई है। इसी निद्रा के कारण जीव की बाह्यवृत्ति और भेदज्ञान जागरूक है। स्थूल आदि देह से तादात्म्य-बोध, इन्द्रिय आदि की अपने-अपने विषय की ओर प्रवृत्ति, जड़ता या अज्ञान, जन्म-मृत्यु — ये सभी इस निद्रा के ही फल हैं। साधना द्वारा अग्नि और वायु की सहायता से इन्हें जगाना होता है। यह अष्ट प्रकृतिरूप एवं अष्टधा कुण्डली-कृत है। यह जगते ही सरल भाव से ऊपर की ओर धावित होती है। प्रक्रियाविशेष (मूलबन्ध) के द्वारा अधःस्थित वायु को ऊपर की ओर करके कुम्भक का अवलम्बन करते ही वह निरुद्ध वायु अग्निस्थान में प्रतिष्ठित अग्नि को आघात देकर जगा देती है। फिर, उद्दीपित अग्नि और वेगवान् वायु दोनों ही एक साथ कुण्डलिनी को प्रबुद्ध करने में प्रवृत्त होती हैं। अथवा, ऊर्ध्वगामी अपान नाभि के नीचे के अग्निमण्डल में प्रवेश करके आघात करते ही अग्नि की शिखा लम्बी होती है। तब, अग्नि और अपान एक साथ उष्णस्वरूप प्राण का स्पर्श करते हैं। उससे देहज अग्नि बहुत ही प्रदीप्त होती है। इस ताप से तप्त होकर निद्रित कुण्डलिनी जाग उठती है और निःश्वासपूर्वक सरल आकार धारण करके सुषुम्णा में प्रवेश करती है। कहीं-कहीं सरस्वती नाडी की चालना एवं वायु के निरोध को कुण्डलिनी के जागरण का मुख्य साधन कहा गया है। सरस्वती या अरुन्धती नाडी के चालित होने से कुण्डलिनी को चलाने के लिए अलग से चेष्टा नहीं करनी पड़ती। लेकिन, प्राणायाम की निश्चित आवश्यकता है एवं मूल आदि बन्धत्रय की भी अवस्थाविशेष में उपयोगिता है।

मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध तथा उड्डीयानबन्ध — इन तीन बन्धों के बारे में सिद्धगण बहुतेरी बातें बता गये हैं। मूलबन्ध के द्वारा अधोगामी अपान वायु ऊर्ध्वगतिशील होकर अग्निमण्डल में प्रवेश करती है और अग्निशिखा को बढ़ाकर प्राण का स्पर्श करती है। उड्डीयानबन्ध कुम्भक के तुरत बाद ही अनुष्ठित होता है। इसके अभ्यास से प्राण

होने का कार्य आरम्भ होते ही नाभिचक्र जग उठता है और कुण्डलिनी उद्बुद्ध होती है। इस मिलन की पूर्णता का इतिहास ही षट्चक्र-भेद का रहस्य है। सहस्रार में यह मिलन सम्पूर्ण होता है। कुण्डलिनी के उत्थान के साथ-साथ त्रिकोण और लिंग दोनों ऊर्ध्वमुख होकर परस्पर गाढ़तर भाव से मिलित होते रहते हैं। फलतः, कुण्डलिनी का उत्थान और लिंग का उत्थान एक प्रकार से समानार्थक हैं। योग एवं अद्वैतभाव की उपलब्धि नहीं होने तक यह क्रिया चलती रहती है। यही ऊर्ध्वरेता होने की साधना है। अतएव, नाभिचक्र को सुषुम्णा का मुख स्वीकार करने में कोई दोष नहीं।

ऊर्ध्वगतिशील होता है। जालन्धरबन्ध पूरक के बाद करने की व्यवस्था है। इससे नाड़ियों का मुँह बन्द होता है, अधोगामी अमृत-प्रवाह निरुद्ध होता है और वायु की गति सभी नाड़ियों से लौटकर सुषुम्णा में प्रवेश करती है। उड्डीयानबन्ध के प्रभाव से प्राण शिरोमध्य में प्रवेश करता है।

कोई साधक यदि ब्रह्मचर्य-साधना में बिन्दु के शोधन और स्थिरीकरण की निरन्तर चेष्टा करते रहते हैं, फिर भी वह प्राण, मन आदि के साधन का यथावत् अभ्यास न करें, तो ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठा या बिन्दु-सिद्धि की उपलब्धि नहीं कर सकेंगे। ऐसा ही, अन्यत्र भी समझना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता, तो अलग-अलग योगांग का साधन-उपदेश नहीं होता।

षट्चक्र की साधना भी इसीलिए आवश्यक है। जो योगपथ की खोज रखते हैं, वे जानते हैं कि बिन्दु-साधना के द्वारा अन्नमय कोष, प्राण या वायु की क्रिया के द्वारा प्राणमय कोष, मन की क्रिया के बल से मनोमय कोष एवं विचार और विवेक के द्वारा विज्ञानमय कोष शोधित होता है। आनन्दमय कोष नित्य शुद्ध है, किन्तु अहेतुक भक्ति-योग से उसके आगन्तुक मल को दूर करना होता है। इस प्रकार, तीनों ही देहों की विशुद्धि सम्पन्न होती है और जीव परमार्थ-लाभ से कृतकृत्य होता है। बिन्दु-साधना के फलस्वरूप स्थूल देह की आपेक्षिक शुद्धि होने से क्रमशः प्राण, मन और विज्ञान की क्रिया का अधिकार आता है। वास्तव में, असिद्धबिन्दु साधक के लिए प्राणायाम का अभ्यास बड़ा ही दुष्कर है। सुषुम्णा-द्वार के खुले विना प्राणवायु इडा और पिंगला-मार्ग को छोड़ नहीं सकती। देह की शुद्धि नहीं होने से ही वायु वक्रभावापन्न होती है और दक्षिण-वामपथ से संचरण करती है। बिन्दु-साधना के अभ्यास से साधक का देहमल दूर हो जाता है, देह में सात्त्विक तेज आता है, ओजोधातु का विकास होता है, दृढ़ता आती है। उस स्थिति में बहिर्मुख आकर्षण आप ही कम हो आता है। सुषुम्णा-पथ जब खुलता रहता है, तब बाह्य स्थूल वायु इडा आदि मार्गों में जाती-आती रहती है, वह शोधित और सूक्ष्मीकृत होकर उस खुले सूक्ष्म पथ से बहती है। उस सूक्ष्म और निर्मल वायु में सत्त्वगुण का भाग अपेक्षाकृत अधिक रहता है। इसलिए, सात्त्विक तेज से तेजोमय होकर वह लघु प्राणवायु सरल पथ से ऊपर-नीचे संचरण करती है और ऊर्ध्वगति तथा अधोगति के अन्तराल में एक-एक बार आपेक्षिक स्थिरता लाभ करती है। यही सुषुम्णा में प्राण की क्रिया है। पहले जिस अजपा की बात कही गई है, यह अन्तः प्राणायाम या स्वाभाविक प्राण-व्यापार ही उसका स्वरूप है। प्राण की क्रिया में अनेकविध उत्कर्ष लाभ करने से जो बल-संचय होता है, उसके प्रभाव से प्राण का आवरण थोड़ा-थोड़ा दूर होता रहता है। जैसे देहमल के कुछ अपसारित होने से प्राणराज्य में प्रवेश किया जा सकता है, वैसे ही प्राण का मल कुछ दूर होने से मन का पता चलता है, तब प्राणक्रिया स्वभावतः ही मनःक्रिया में बदल जाती है। प्राण जब स्वभाव-चालित होकर काम करता है, तब जैसे देह स्थिर और निश्चल रहती है, वैसे ही मन के स्वभाव के स्रोत में प्रवाहित होने से प्राण स्वतः स्थिर हो जाता है। स्थूल देह में इडा-पिंगला में जो स्थूल वायु की निःश्वास-प्रश्वास-रूप क्रिया है, वही सुषुम्णा में सूक्ष्म प्राण की ऊर्ध्व-अधोगति-रूप क्रिया है और वही वज्रनाडी में सूक्ष्म विकल्परूप क्रिया है। स्वभाव की प्रेरणा से मन की क्रिया जब चलती रहती है, तब मन क्रमशः निर्मल होता रहता है, उसका आवरण कटता रहता है, संकल्प-विकल्पात्मक मन की

खेचरी, जालन्धर, उड्डीयान, मूलबन्ध, नादानुष्ठान (दीर्घ प्रणवानुसन्धान); सिद्धान्तश्रवण, वज्रोली, अमरोली और सहजोली। हठयोग के अभ्यास से राजयोग में प्रवेश होता है। इस मार्ग का साधन करते-करते विवेक और वैराग्य उत्पन्न होता है, जिससे भगवत्साक्षात्कार सुलभ होता है।

मन्त्रयोग का यथार्थ रहस्य है—जीवमात्र के ही शरीर में प्राणशक्ति निःश्वास-प्रश्वास-रूप में खेलती रहती है। योगी कहते हैं, यह श्वास बाहर होते समय 'हं'-रूप और भीतर प्रवेश के समय 'सः'-रूप से ध्वनित होता है। यही हंसमन्त्र है। हंसविद्या या अजपा नामक गायत्री और प्रत्येक जीव ही निरन्तर (अहोरात्र २१६०० बार) यह जप करता है। परन्तु, गुरु की कृपा से योगलाभ करने पर गुरु के मुख से उच्चारित वाक्य के माहात्म्य से वह जप सुषुम्णा-मार्ग में विपरीत भाव से निष्पन्न होता है—'हंस' उस समय 'सोहं' रूप में परिवर्त्तित हो जाता है। यही यथार्थ मन्त्रयोग है। हंसविद्या को कहीं-कहीं (द्रष्टव्य : योगचूडामण्युपनिषद्, ३६) प्राणविद्या भी कहा गया है। यह प्राणधारिणी शक्ति और कुण्डलिनी से उद्भूत है।

मन्त्रयोग के साधनफल से पश्चिम मार्ग द्वारा, अर्थात् सुषुम्णा-पथ से ज्ञान का उदय होता है। हठयोग का अर्थ है—देहस्थित सूर्य ('ह') और चन्द्र ('ठ') का ऐक्यसाधन। इस योग-साधन से देह के सब प्रकार के दोष और उससे होनेवाला जडत्व दूर होता है। इस क्रिया के अलावा, देहशुद्धि, देहदोष की निवृत्ति और देह की जडता का विलोपन अन्य किसी प्रक्रिया से आसानी से नहीं हो सकता। इसके बाद क्षेत्रज्ञ या जीवात्मा एवं परमात्मा का ऐक्य-सम्पादन अपेक्षाकृत सुकर हो जाता है। जीवात्मा और परमात्मा का एकत्व प्रतिष्ठित होने से चित्त का लय होता है, वायु स्थिर होती है एवं आत्मानन्द की उपलब्धि होती है। ऐसी स्थिति में जीवभाव नहीं रहता, मन नहीं रहता, वायु भी नहीं रहती—रहते हैं एकमात्र परमात्मा और तत्त्वरूपभूता शक्ति। शास्त्र में शिव और शक्ति ये दो शब्द दो परमतत्त्व के ही अभिधायक रूप में व्यवहृत हुए हैं। योगशिखोपनिषद् (१।१३६।१३८) में है, देवीतत्त्वस्वरूप रक्तवर्ण 'रज' महापीठ-योनि में अवस्थित है। और, शशिस्थान, अर्थात् ऊर्ध्व चन्द्रमण्डल में बिन्दु या 'रेत'-स्वरूप शिवतत्त्व प्रतिष्ठित है। इससे समझ में आता है कि ब्रह्मपथ के दो मेरुओं में दो तत्त्व वस्तुतः नित्य मिलित, यहाँ-तक कि अभेदात्मक होते हुए भी पृथक् रूप से वियुक्त की भाँति विराज रहे हैं। यह शिव और शक्ति जब योग-प्रभाव से कल्पित पार्थक्य का परिहार करके सम्मिलित होंगे, तभी राजयोग की सिद्धि सूचित होगी ('रजसो रेतसो योगद् राजयोग इति स्मृतः')। राजयोग में अधिकारी होने से अणिमा आदि अष्टसिद्धि का आविर्भाव होता है।

इन चारों प्रकार के योग का सामान्य लक्षण एक ही है, अर्थात् प्राण और अपान का समीकरण।

उल्टी गंगा :

संतों ने गंगा को यमुना में मिलाने की बात बार-बार कही है । हठयोग में इड़ा गंगा है और पिंगला यमुना । सामान्यतया जगत व्यवहार में यमुना गंगा में मिलती है । संतों ने गंगा (इड़ा) को यमुना (पिंगला) में मिलाने की बात कही है । महाराज विश्वनाथ सिंह 'संसार-मुखी, राम रूपी गंगा को उलटकर ब्रह्ममुखी होने' की क्रिया को उल्टी गंगा कहते हैं । विचारदास शास्त्री के अनुसार 'ब्रह्माण्ड में चढ़ाई हुई साँस' उल्टी गंगा है । 'गंगा को उलटने की बात करने वाले सिद्ध और संत सामान्य सत्य से उल टी बात भी करते हैं । जगत में जमुना गंगा से मिलती है पर सन्तों का कहना है कि जो गंगा को उलटकर जमुना में मिलाता है वह बिना जल के त्रिवेणी संगम पर मानस स्नान करता है ।'[44] कबीर कहते हैं कि जब उल्टी गंगा अर्थात् प्राण वायु की धारा ऊपर की ओर चलती है तब वह सांसारिक विषय रूपी समुद्र को सुखा देती है। उस समय चन्द्र-सूर्य नाड़ियों का ग्रास हो जाता है । नवग्रह को वश में करके योगी ध्यानस्थ हो जाता है और उसके हृदय में परमब्रह्म का प्रकाश भर जाता है :

'अवधू जागत नींद न कीजै ।
काल खाइ कलप नहिं व्यापै, देही जुरा नहिं छीजै ।। टेक ।।
उलटी गंग समुद्रहिं सोखै, ससिहर सूर गरासै ।
नवग्रह मारि योगिया बैठे, जलमहिं बिंब प्रकासै ।'[45]

रविदास कहते हैं --

'उलटी गंग जमुन में लावौं
बिनही जल मंजन द्वै पावौं ।'[46]

डॉ0 राजदेव सिंह उल्टी गंगा के विषय में कहते हैं कि 'सामान्य स्थिति में इड़ा पिंगला से श्वासधारा बाहर की ओर प्रवाहित होती रहती है । योग में प्राणयाम द्वारा बाहर की ओर प्रवहमान श्वासधारा को उलटकर ब्रह्माण्ड में चढ़ाया जाता है, जिससे समाधि उत्पन्न होती है। समाधि की अवस्था में इड़ा और पिंगला से न प्रवाहित हो कर प्राण इनके मध्य में स्थित सुषुम्ना से प्रवाहित होते हैं । इस अवस्था में इड़ा-पिंगला (गंगा-जमुना) एकाकार हो जाती है ।[47]

उन्मनि :

'उन्मन' उत्कंठित मन को कहते हैं । 'उन्मनस' शब्द संस्कृत में चित की ऊर्ध्वगति के लिए प्रयुक्त हुआ है । कालिदास, भारवि, माघ आदि संस्कृत कवियों के यहाँ भी 'उन्मनस्' शब्द का प्रयोग मिलता है । सिद्धों और नाथों के यहाँ आकर यह शब्दपारिभाषिक रूप में प्रयुक्त होने लगा। हठयोग प्रदीपिका में उन्मनि के लिए अमरत्व, लयत्व, शून्याशून्य, परमपद, राजयोग, अद्वैत, निरालम्ब, निरंजन जीवन्मुक्ति, सहजा, तुर्या आदि शब्द आये हैं । मनोन्मनी अवस्था का वर्णन करते हुए 'हठयोग प्रदीपका' में लिखा है कि :

'मारुते मध्य संचारे मनः स्थैर्य प्रजायते ।
यो मनः सुस्थिरी भाव सैवावस्था मनोन्मनी ।'[48]

अर्थात् जो वायु इंगला और पिंगला नाड़ियों से प्रवाहित होती है वह सुषुम्ना से प्रवाहित होने लगे तो मन स्थिर हो जाता है । चित की इस स्थिर स्थिति को 'मनोन्मनी' कहते हैं। नाद बिन्दु उपनिषद्' के अनुसार--

उन्मनि अवस्था को प्राप्त संत सभी चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है । उसका शरीर काष्ठवत् हो जाता है । वह मृतक के समान शीत-उष्ण, सुख-दुख की चिन्ताओं से मुक्त हो

'अवधू गगन मँडल घर कीजे ।

अमृत झरै सदा सुख उपजे, बंकनालि रस पीजै ।। टेक ।।

मूल बाँधि सर गगन समाँनाँ, सुखमन याँ तन लागी ।"39

कबीर एक पद में बतलाते हैं कि अनाहत नाद, इंगला-पिंगला, सुषुम्ना सबकुछ नश्वर है । परमतत्व इन सबके परे है। ये सारे तत्व सांसारिक हैं । ये टूटते और बँधते रहते हैं । जब ध्यान टूटता है तब साधक का संबंध गगन-मंडल से टूट जाता है । फिर वह शब्द कहाँ चला जाता है इसका समाधान मुझे नहीं मिलता :

'संतो धागा टूटा गगन बिनसि गया सबद जु कहाँ समाई ।
एहि संसा मोहि निसदिन व्यापै कोइ न कहै समुझाइ ।। टेक ।।
नहिं ब्रह्माण्ड पिंड पुनि नांही पंच तत्त भी नाहीं ।
इला पिंगला सुखमनि नांही ए गुण कहाँ समांही ।।'40

पलटू साहिब संतों के लिए यह आवश्यक मानते हैं कि इंगला, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों का शोधन करें तथा अजपाजाप का श्रवण करें । संत के लिए यह आवश्यक है कि वह काम क्रोध, मद, मोह, लोभ का परित्याग कर 'सुन्न' में ध्यान लगावे--

'मीन मारग पवन पंछी सेख चाल चलावनं ।
अर्ध उर्ध के बीच आसन खेल भेद मिलावनं ।।
इंगला पिंगला सोधि सुखमन अजपा जाप जपावनं ।
नाद अनहद लंबिका सुर बंक नाल सोधावनं ।।'41

सुन्दरदास अष्टांग योग का क्रमवार वर्णन करते हैं । वे रज, तम, सत्व तीनों गुणों से रहित होने के पश्चात् नख-शिख, शरीर शुद्धि की बात करते हैं । उसके पश्चात् समस्त अन्तर-बाह्य विकारों का परित्याग करने को कहते हैं । इतना करने के बाद ही नाड़ी की शुद्धि होती है। तब सभी कर्मों का नाश होता है और ब्रह्माग्नि के प्रकाश से साधक दीप्तिमान हो जाता है। सुषुम्ना नाड़ी उर्ध्वमुखी होकर ब्रह्माण्ड में चढ़ती है । वहाँ अनहद ध्वनि सुनायी पड़ती है :

पुनि हरष सोक गए दोऊ । मद मच्छर रहे न कोऊ ।
नख शिष लौं देह पषारी । तब सुद्ध भइ सब नारी ।
भया ब्रह्म अग्नि सुप्रकासा । किया सकल कर्म का नासा ।।
इड़ा पिंगला उलटी आई । सुषमन ब्रह्माण्ड चढ़ाई ।।
जब मूल चापि दिढ़ बैठा । तब बिंद गगन मैं पैठा ।।
जहाँ शब्द अनाहद बाजै । तहाँ अन्तर जोति बिराजै ।'42

गुलाल साहब भी नाड़ियों का शोधन कर सहस्रार से टपकने वाले अमृत का पान करने को कहते हैं । संतों को अनवरत झंकृत होने वाले झंकार सुनने को कहते हैं । त्रिकुटि संगम पर ज्योतित होने वाले प्रकाश को देखने को कहते हैं :

'उलटि देखो, घट में जोति पसार ।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, बिगसि कमल कचनार ।। । ।।
पैठि पताल सूर ससि बाँधो, साधो त्रिकुटी द्वार ।
गंग जमुन के वार पार बीच, भरतु है अमिय करार ।। 2 ।।
इंगला-पिंगला सुखमन सोधो,बहुत सिखर-मुख धार ।।
सुरति निरति ले बैठु गगन पर सहज उठै झनकार ।।43

इंगला पिंगला सुषुम्ना :

इड़ा पिंगला और सुषुम्ना हठयोग साधना के अत्यन्त चर्चित और प्राथमिक शब्द है । हठयोगी के लिए इनका ज्ञान आवश्यक है । मनुष्य शरीर के भीतर 72,000 हजार नाड़ियाँ है, जिनमें इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना प्रमुख है । मेरुदण्ड में वायु का वहन करने वाली इड़ा बायीं ओर

को और पिंगला दाहिनी ओर की नाड़ी है । इन दोनों के बीच सुषुम्ना नाड़ी है । ये नाड़ियाँ भ्रूमध्य में जाकर मिलती है । इड़ा पिंगला और सुषुम्ना को गंगा-यमुना और सरस्वती भी कहते हैं। सुषुम्ना को ब्रह्म नाड़ी या ब्रह्मपथ भी कहते हैं । सुषुम्ना को शून्यपदवी, ब्रह्मरन्ध्र, महापथ, श्मसान, शांभवी और मध्यमार्ग भी कहते हैं :

'द्वासप्रतति सहस्राणि नाड़ी द्वाराश्रि पंजरे ।
सुषुम्ना शांभवी शक्तिः शेषास्त्वेव निरर्थकाः ।।" तथा

'सुषुम्ना शदून्य पदवी ब्रह्मरन्ध्रः महापथः ।
श्मसानं शांभवी मध्यमार्गश्चेत्येकवाचकाः ।।'[37]

इन तीनों नाड़ियों का जहाँ संगम होता है उसे त्रिवेणी संगम कहते हैं । हठयोग के ग्रंथ 'शिव संहिता' में इन्हें गंगा और सरस्वती कहा गया है । संतों ने 'शिव संहिता' की भांति ही अपने यहाँ गंगा-यमुना और सरस्वती का प्रयोग बार-बार किया है । सामान्य मनुष्य में कुण्डलिनी अधोमुख रहती है । साधक योग साधना के द्वारा इसे जागृत करता है । जीव निरन्तर इड़ा और पिंगला के मार्ग में चलता रहता है । सुषुम्ना का मार्ग अवरुद्ध या सुप्त रहता है । सुषुम्ना के पथ के उन्मुक्त होने के बाद ही कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है । सिद्धों के यहाँ इन तीनों नाड़ियों को ललना, रसना और अवधूती कहा गया है । संतों के यहाँ इड़ा को इंगला कहा गया है। पिंगला के साथ मात्र तुक मिलाने के लिए संतों ने इड़ा को इंगला कह दिया है ।

गोरखनाथ कहते हैं कि शरीर के बाहर और भीतर आती हुई श्वाँस ही जप-माला है। इस माला पर 21,600 बार प्रतिदिन जप होता है । इला, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों में बराबर पवन संचरित होता रहता है :

'इकवीस सहँस षटसां आद, पवन पुरिष जपमाली ।
इला प्यंगुला सुषमन नारी, अहनिसि बहै प्रनाली ।"[38]

गोरखनाथ अपने गुरु के उपदेश को दुहराते हुए कहते हैं कि इड़ा और पिंगला के बीच में आसन जमाओ । अनाहतनाद को सुनकर भयमुक्त बनो । सुषुम्ना से अमृत रस को निकालकर उसका उपभोग करो :

'गंग जमन बिचि आसन घालौ । अनहद नाद काल में टालौ ।
गगन मंडल मैं रमूँ अकेला । उरध मुषि बंक नालि अमीर सहेला ।।'

कबीर अवधू को ब्रह्मरन्ध्र में स्थित हो जाने को कहते हैं । वहाँ बंक नालि से अमृत रस टपकता रहता है । कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा मूलाधार से ऊपर उठकर ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है :

'अवधू गगन मँडल घर कीजे ।

अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंकनालि रस पीजै ।। टेक ।।

मूल बांधि सर गगन समाँनाँ, सुखमन यों तन लागी ।"[39]

अंगनि सैति अंगनि जालिबा। पानी सैती सोषिबा पानी॥

बाई सेती बाइ फैरिबा। तब आकास मुषि बोलिबा बाँबी॥

---नाथ सिद्धों की बानियाँ, भूमिका, पृष्ठ- 48

चर्पट या चरपटीनाथ की बानियों में भी उलटवाँसी परम्परा का सम्यक् विकास देखने को मिलता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें गोरखनाथ का शिष्य कहा है तथा इनका समय गोरखनाथ से कुछ बाद का माना है। इनमें भी उलटवाँसी कथन की प्रवृत्ति देखने को मिलती है--

कथनी बदनी बलि करि जाव। बंधि सकहु तौ बंधौं बाव॥

चरपट कहै पवन की डोर। भूंकत गदहा ले गयौ चौर॥

---नाथ-सिद्धों की बानियाँ , पृष्ठ 30

जालंधरी नाथ की प्रस्तुत उलटवाँसी में 'शून्यवास' का उपदेश और कुंडलिनी के जागृत होने का वर्णन है--

सुनि मण्डल मैं मन का वासा। तहाँ परम जोति प्रकासा॥

आपैं पूछै आपैं कहैं। सतगुरु मिलै तो परमपद लहैं॥

एक अचंभा ऐसा हुआ। गागरि माँहि उसारबा कूवा॥

बोछी लेज पहूँचे नाँही। लोक पयासा मरि-मरि जाहीं॥

---नाथ-सिद्धों की बानियाँ, पृष्ठ 52

नाथ योगी कृष्णपाद के इस उलटवाँसी पद में सिद्धि अवस्था का वर्णन है--

द्यौसे चंदा रातैं सूर। गगन मंडल में बाजे तूर॥

सति का सबद कणेरी कहै। परम हंस काहे न रहै॥

--नाथ-सिद्धों की बानियाँ, पृष्ठ-11

गरीबदास को 14वीं शती के उत्तरार्द्ध का माना जाता है। इनकी एक उलटवाँसी प्रस्तुत है--

पाताल की मींडकी आकास जंत्र बावै।

चन्द सूरिज मिलै गंगा जमन गीत गावै॥

सकल ब्रह्मांड उलटि अधर नाचै डीब।

सति सति भाषंत सिध गरीब॥

--नाथ-सिद्धों की बानियाँ, पृष्ठ-13

इस उलटवाँसी में कुंडलिनी के ब्रह्मांड निवास का वर्णन है। इस सम्बन्ध में एक उलटवाँसी पद देखिये--

'बिंदु' की साधना को ब्रह्मचर्य की साधना के अर्थ में नाथ योगियों ने माना । गोरखनाथ योगी को 'पाषंडी' नहीं मानते । यदि ऐसा कोई 'पाषंडी' है जो योग द्वारा शरीर का प्रक्षालन करता है, प्राणायाम से अग्नि को प्रज्जवलित करता है, स्वप्न में भी बिन्दु का स्खलन नहीं होने देता तो ऐसा पाषंडी भी तत्व ज्ञानी है :

'पाषंडी सो काया पषाले । उलटि पवन अगनि प्रजाले ।
व्यंद न देई सुपनैं जाण । सो पाषंडी कहिए तत्त समान ।'[85]

गोरखनाथ 'सक्ति रूपी रज आधै सिव रूपी व्यंद' कहकर बिंदु की रक्षा की बात करते हैं।

कबीरदास भी बिंदु की रक्षा प्रयत्न पूर्वक करने को कहते हैं । जो काजी स्वप्न में भी बिंदु का क्षय नहीं होने देता वही जरा-मरण से मुक्त होता है :

'सुप्पनैं विदं न देई झरना, ता काजी हूँ जुरा न मरनां ।'

लेकिन इस नाद-बिंदु के साथ-साथ राम-नाम भी संसार सागर को पार करने के लिए आवश्यक है:

'नाद व्यंद की नाव री राम नाम कनिहार ।
कहै कबीर गुंण गांइले, गुर गमि उतरौ पार ।'[86]

कबीर कहते हैं कि नाद और बिंदु की साधना से गोविंद को प्राप्त किया जा सकता है लेकिन नाद और बिंदु में पहले कौन हुआ, इस विषय पर विचार करना व्यर्थ है । नाद और बिन्दु दोनों गोविन्द में ही मिल जाते हैं :

'मन मंजन करि दसवे द्वारि गंगा जमुनां संधि विचारि ।
बिंदहि नादकि नादहिं बिंद, नादहिं बिंद मिलै गोविंद ।।[87]

'नाद और बिंदु' के संदर्भ में डॉ० जयदेव सिंह की व्याख्या जो इस पद के सन्दर्भ में की गयी है, विद्वतापूर्ण और व्यावहारिक है । यह व्याख्या 'शारदा तिलक' के इस श्लोक को आधार बनाकर की गयी है--

'सच्चिदानन्द विभवात् सकलात् ।
आसीच्छक्ति स्ततोनादो नादाद् विन्दु समुदभव ।।

परशक्तिमयः साक्षात् त्रिधाऽसौ भिद्यते पुनः ।
बिन्दुर्नादोबीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः ।।'

'अतः नाद से पहले बिन्दु होता है और बिन्दु से फिर बिन्दु, बीज और नाद होता है, इसलिए प्रायः यह भ्रांति होती है कि नाद से बिन्दु है अथवा बिन्दु से नाद । किन्तु इस भ्रान्ति का कोई अवकाश नहीं है, क्योंकि मूलभूत नाद और बिंदु वस्तुतः परनाद और परबिन्दु से निसृत है और बिन्दु जबत्रिधा विभक्त होता है, तब जो बिन्दु और नाद उत्पन्न होता है, वह अपर बिन्दु और अपर नाद है ।'

कबीर के परवर्ती संतों ने भी नाद और बिंदु शब्द का प्रयोग योगपरक पदों में खूब किया। गुलाल साहब का एक पद द्रष्टव्य है :

'सहज के फाग परयो निस बासर, भरि छूटै पिचुकारी ।
नाद बिंदहिं मठि परयो जब, परलि परस्पर मारी ।।'[88]

नाद-बिंदु :

'नाद' भारतीय साहित्य में 'नाद ब्रह्म' के रूप में जाना जाता है । वैष्णव भक्तों ने ईश्वर को शब्द ब्रह्म कहा । वैयाकरणों ने इसे 'स्फोट' कहा और योगियों ने 'नाद ब्रह्म' कहा । दर्शन और संगीत दोनों ने अपना लक्ष्य नादब्रह्म की उपासना को माना है । इसे दार्शनिकों ने 'वाक् ब्रह्म' कहा है । 'संगीत रत्नाकर' में शाङ्‌र्गदेव ने कहा है कि 'जो समस्त प्राणियों में चैतन्य है तथा जो जगत के रूप में विवृत हुआ है, उस अद्वितीय आनन्दमय नाद ब्रह्म की हम उपासना करते हैं।' यह सारा संसार नाद के अधीन है । यह नाद लोकरंजक और भवभंजक दोनों है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ-- चतुष्टय का प्रदाता है । गीत और वाद्य दोनों नादात्मक हैं । इन दोनों के अनुसरण से नृत्य प्रवर्तित होता है इसलिए नृत्य भी नादात्मक है । नाद से वर्ण की उत्पत्ति होती है, वर्ण से पद बनता है और पद से वाक्य । वाक्य से ही इस संसार का सारा व्यवहार चलता है, अतः यह सम्पूर्ण जगत 'नाद जगत्' है । संगीत दर्पण के अनुसार--

'स नादस्त्वाहतो लोके रंजको भवभंजकः ।
धर्मार्थ काम मोक्षावामिदमेवैक साधनम्'

'संगीत रत्नाकर' के अनुसार--
'गीतं नादात्मकं वाद्यं नादत्वक्त्या प्रशस्ते ।
तद्द्वयानुगतं नृत्यं नादाधीनमतस्त्रयम् ।।
नादेन त्यज्यते वर्णः पदं वर्णात्पादाद्वचः ।
वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत् ।।'

नाद दो प्रकार का है आहत और अनाहत । अनाहत नाद ओंकार है, जो समस्त सृष्टि में बिना आघात के बजता है ।

सिद्धों और नाथों के यहाँ नाद-बिंदु की चर्चा एक साथ मिलती है । तांत्रिकों ने प्रतीक के रूप में इसके अर्थ का ग्रहण किया है । शैव तंत्रों में नाद 'शिव' और बिन्दु 'शक्ति' के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है । गोरख नाथ ने सिद्धावस्था की प्राप्ति के लिए 'नाद' साधना को बहुत आवश्यक माना :

'नाद नाद सब कोइ कहै । नादहि ले को बिरला रहै ।
नाद बिंद है फीकी सिला । जिहि साध्या ते सिधे मिल ।।'[84]

'बिंदु' की साधना को ब्रह्मचर्य की साधना के अर्थ में नाथ योगियों ने माना । गोरखनाथ योगी को 'पाखंडी' नहीं मानते । यदि ऐसा कोई 'पाखंडी' है जो योग द्वारा शरीर का प्रक्षालन करता है, प्राणायाम से अग्नि को प्रज्जवलित करता है, स्वप्न में भी बिन्दु का स्खलन नहीं होने देता तो ऐसा पाखंडी भी तत्व ज्ञानी है :

'पाखंडी सो काया पखाले । उलटि पवन अगनि प्रजाले ।
व्यंद न देई सुपनैं जाण । सो पाखंडी कहिए तत्त समान ।'[85]

गोरखनाथ 'सक्ति रूपी रज आधे सिव रूपी व्यंद' कहकर बिंदु की रक्षा की बात करते हैं।

कबीरदास भी बिंदु की रक्षा प्रयत्न पूर्वक करने को कहते हैं । जो काजी स्वप्न में भी बिंदु का क्षय नहीं होने देता वहीं जरा-मरण से मुक्त होता है :

'सुप्पनैं बिंदं न देई झरना, ता काजी हूँ जुरा न मरनां ।'

लेकिन इस नाद-बिंदु के साथ-साथ राम-नाम भी संसार सागर को पार करने के लिए आवश्यक है:

'नाद व्यंद की नाव री राम नाम कनिहार ।
कहै कबीर गुंण गाइले, गुर गमि उतरौ पार ।'[86]

05:22

Santa Bani Sangraha I -...

गुलाल साहिब

जीवन-समय —अट्ठारहवें शतक के पिछले भाग से उन्नीसवें शतक के अगले हिस्से तक। जन्म स्थान—तअल्लुका बसहरि जिला गाजीपुर। सतसंग स्थान—मौजा भुरकुड़ा जिला गाजीपुर। जाति और आश्रम—क्षत्री, गृहस्थ। गुरू—बुल्ला साहिब।

यह बसहरि के जमींदार थे वहीं पैदा हुए और वहीं चोला छोड़ा भुरकुड़ा इसी तअल्लुके का एक गाँव है। [पूरा जीवन-चरित्र इनकी बानी के आदि में छपा है।]

सत्त सबद गुन गायेऊ, संतन प्रान-अधार।
अगम अगोचर दूरि है, कोऊ न पावत पार ॥ १ ॥
उठ तरंग दसहूँ दिसा, भाँति भाँति के राग।
बिन पग नाच नचायेऊ, बिन रसना गुन गाय ॥ २ ॥
ज्ञान ध्यान तहवाँ नहीं, सहज सरूप अपार।
जन गुलाल दिल सों मिलो, सोई कंत हमार ॥ ३ ॥
बिन जल कँवला बिगसेऊ, बिना भँवर गुंजार।
नाभि कँवल जोती बरै, तिरबेनी उँजियार ॥ ४ ॥
सुखमन सेज बिछायेऊ, पौढ़हिं प्रभु हमार।
सुरति निरति लेजायेऊ, दसो दिसा के द्वार ॥ ५ ॥
पुलकि पुलकि मन लायेऊ, आवा गवन निवार।
जन गुलाल तहँ भायेऊ, जम का करहि हमार ॥ ६ ॥
मन पवनहिं जीतो जबै, महसुन[1] माहिं समाध।
सुखमन जोति सँवारेऊ, बरि बरि होत प्रकास ॥ ७ ॥
ओअंकार समाइलो, जोति सरूपी नाम।
सेत सुहावन जगमगर, जीव मिलल सतनाम ॥ ८ ॥
जिन यह ब्रह्म बिचारल, सोई गुरू हमार।
जन गुलाल सत बोलही, झूठ फिरहि संसार ॥ ९ ॥
दृष्टि पदारथ फरल सोइ, सहज के परलि धमार।
अति अद्भुत तहँ देखल, पुलकि पुलकि बलिहार ॥ १० ॥

(१) महासून्य।

थाक्यो मन पिंगल चढ़ा, परवान परेवा[1] ।
कोटि पदम की दामिनी, गरजत बहु भेवा ॥५५॥
प्रान अपान[2] समान कर, सुरती लौ लाई ।
दुहुबर कोट ढहाइया, अरु तहँ बड़ खाँई ॥५६॥
भरम बुरज भाने सबै, सोलह सुर धाई ।
सत्रह सुरती हंसिनी, सब खबरैं लाई ॥५७॥

॥ साध ॥

धन जननी धन भूमि धन, धन नगरी धन देस ।
धन करनी धन सुकुल धन, जहाँ साध परवेस ॥ १ ॥
साईं सरिखे संत हैं, या में मीन न मेख ।
परदा अंग अनादि है, बाहर भीतर एक ॥ २ ॥
साईं सरिखे देख ले, बरतावै जे कोय ।
सत कोस जल चढ़ गया, जहाँ साध मुख धोय[3] ॥ ३ ॥
बृच्छ नदी औ साध जन, तीनों एक सुभाव ।
जल न्हावे भल बृच्छ दे, साध लखावै नाँव ॥ ४ ॥
ऐसे साधू संत जन, पारब्रह्म की जात ।
सदा रते हरि नाम सूँ, अंतर नाहीं घात ॥ ५ ॥
साध समुंदर कमल गति, माहें साईं गंध ।
जिन में दूजी भिन्न क्या, सो साधू निरबंध ॥ ६ ॥
नौ नेजे जो जल चढ़ै, कमल न भींजे गात ।
माहें ज्ञान सुगंध सर[4], आदि अंत का साथ ॥ ७ ॥
संत सरोवर हंस है, भच्छन करैं बिचार ।
पुहुप बासना ज्यूँ रहैं, राई रंच न भार[5] ॥ ८ ॥
साध कमल मध बासना, ऐसा हलका अंग ।
मैल मनोरथ ना रहै, निरमल धारा गंग ॥ ९ ॥

---

(१) कबूतर के समान । (२) नीचे की वायु । (३) गिरनार पहाड़ जहाँ अच्छे साधू रहते हैं वहाँ से सात कोस नीचे हनुमान धारा गिरती है । (४) तालाब । (५) जैसे फूल में सुगंध जिस का रत्ती भर बोझ नहीं होता ।

धरनी धन तन जिवन यह, चाहे रहै कि जाय।
हरि के चरन हृदय धरि, अब तौं हेत बढ़ाय ॥ २ ॥
धरनी सो धन धन्य हो, धन धन कुल उँजियार।
जा कर बाँह धइल पिया, आपन हाथ पसार ॥ ३ ॥
धरनी पिय जिन पावल, मेटि गइल सब दुंद।
अरध उरध सुर गावल, हिरदय होय अनंद ॥ ४ ॥
धरनी खेती भक्ति की, उपजे होत निहाल।
खर्चे खाये निबरै नहीं, परै न दुक्ख दुकाल ॥ ५ ॥
धरनी मन मिलबो कहा, जो तनिक माहिं बिलगाय।
मन को मिलन सराहिये, जो एकमेक होइ जाय ॥ ६ ॥

॥ बिनय ॥

धरनी जन की बीनती, करु करुनामय कान।
दीजै दरसन आपनो, माँगों कछु नहिं आन ॥ १ ॥
धरनी बिलखि[1] बिनती करै, सुनिये प्रभू हमार।
सब अपराध छिमा करो, मैं हौं सरन तिहार ॥ २ ॥
धरनी सरनो रावरी, राम गरीब-निवाज।
कवन करैगो दूसरो, मोहिं गरीब के काज ॥ ३ ॥
काहू के बहु बिभव भइ, काहू बहु परिवार।
धरनी कहत हमहिं बल, ए हो राम तुम्हार ॥ ४ ॥
तिनुका दाँत के अंतरे, कर जोरे भुइँ सीस।
धरनी जन बिनती करै, जानु[2] परो जगदीस ॥ ५ ॥
धरनी नहिं बैराग बल, नाहिं जोग सन्यास।
मनसा बाचा कर्मना, बिस्वंभर बिस्वास ॥ ६ ॥
बिनती लीजे मानि करि, जानि दास को दास।
धरनी सरनी राखिये, अवर न दूसर आस ॥ ७ ॥

---

(१) रोकर। (२) जाँघ, चरन।

॥ भेद ॥

छर छत्तीसो भवन में, अच्छर ब्रह्म समान।
स्रवन नैन मुख नासिका, इंद्री पाँच प्रमान॥ १॥
छर अच्छर से भिन्न है, निःअच्छर निःनाम।
धाम लोक चौथे बसै, जानत संत सुजान॥ २॥
सुन्न अकास के भास में, स्वासा निकसत पौन।
बंकनाल के बीच में, इंगल पिंगल पर जौन॥ ३॥

(१) चार वेद, अठारह पुरान और छः शास्त्र। (२) बीता।

सुई अग्र वह द्वार है, सुखमनि घाट कहाय।
धाइ धाइ स्वासा चढ़ै, जो जो जोग लखाय॥ ४॥
संत समुँद घर अगम को, ज्ञान जोग नहिं ध्यान।
ये तीनों पहुँचै नहीं, जा को करत बखान॥ ५॥
ज्ञान ब्रह्म आतम कहे, मन जड़ चेतन गाँठ।
तन इंद्री सुख बंध में, बहत गुनन की बाट॥ ६॥
आतम अगम अकास में, नैन निरखि मन बास।
फाँस फँसानी गुनन में, या को कहत अकास॥ ७॥
ध्यान धरत जोगी मुए, प्रानायाम अधार।
संत सिखर के पार की, भाखत अगम अपार॥ ८॥
परथम नर तत पाँच में, पिंडज में तत चार।
तीन तत्त अंडज रहै, उष्मज दो बिस्तार॥ ९॥

॥ करनी और पिछले कर्म ॥

उजला आया वतन[1] से, जतन किया करि काल।
चाल भुलानी आपनी, यों भये बंधन जाल॥ १॥
लाख बात करके कहे, नहिं मानै गुरु बैन।
चैन कहो कहँ से मिलै, समझै न सतसँग कहन॥ २॥
इन्द्री सुख रस रीति में, बिलसत जनम सिराय।
कहा कहूँ अज्ञान को, नेक न मन सरमाय॥ ३॥
अब समझे से का भयो, चिड़िया चुग गइ खेत।
चेत किया नहिं आप में, रहे कुटुम्ब के हेत॥ ४॥
नर देही तत हीन से, पिंडज माहिं पसार।
सार भुलानो आपनो, खानइ खानि खुवार[2]॥ ५॥
ज्ञान ध्यान जोगी जती, नहिं कोइ पावै भेद।
खेद कर्म सुभ असुभ के, फल करनी कहे बेद॥ ६॥

(१) घर। (२) खराब।

जोग जुक्ति सुमिरन बनो, हर दम मनिया[1] नाम।
करम खंड कंठो गुहो, गर बाँधो प्रानायाम ॥ ३ ॥
अगम ज्ञान गूदर लिया, ढाँको सकल सरीर।
ब्रह्म जनेऊ मेखला, पहिरहिं मस्त फकीर ॥ ४ ॥
सेल्ही संसय नासि करि, डारो हृदय लगाय।
तिलक उनमुनी ध्यान धरि, निज सरूप दरसाय ॥ ५ ॥
ताखी[2] तत्त जो माल[3] है, राखो सीस चढ़ाय।
चरन कमल निरखत रहो, मौजे मौज समाय ॥ ६ ॥
तूमा[4] तन मन रूप है, चेतनि आब[5] भराय।
पीवत कोई संत जन, अमृत आशु छिपाय ॥ ७ ॥
कुबरी[6] पानी[7] अंग भो, पवन दद बरजोर।
लागी डोरी प्रेम की, तम मेटो भयो भोर ॥ ८ ॥
पौवा[8] अधर अधार को, चलत सो पाँव पिराय।
जो जावै सो गुरु कृपा, कोउ कोउ सीस गँवाय ॥ ९ ॥
मुरछल मन उनमान का, छाया ज्ञान अकार।
उस्न[9] ताप निसि दिन सहै, केवल नाम अधार ॥ १० ॥
अर्ध उर्ध के बीच में, कमर-बस्त[10] ठहराय।
इँगला पिंगला एक ह्वै, सुखमन के घर जाय ॥ ११ ॥
झोरी मौज अनयास[11] की, बटुआ आनँद[12] लेय।
मृगछाला त्रिकुटी भई, बैठि सबद चित दय ॥ १२ ॥
सकल संत के रेनु[13] लै, गोजा गोल बनाय।
प्रेम प्रीति घसि ताहि को, अंग बिभूति लगाय ॥ १३ ॥
भिच्छा अनुभव अन्न लै, आतम भोग बिचार।
रहै सो रहनि अकासवत, बरजित जानि अहार ॥ १४ ॥

---

(१) माला का दाना। (२) साधुओं की टोपी। (३) माला। (४) तुम्बा। (५) पानी। (६) छड़ो, बैरागिनी। (७) हाथ। (८) खड़ाऊँ। (९) गरमी। (१०) कमरबंद। (११) आसा से रहित। (१२) सुख। (१३) चरन रज।

बरतन बरनि न आवई, कोटि चंद छबि वार।
दसौ दिसा पूरिन सोई, संत सदा रखवार ॥११॥
जिन पावल तिन गावल, और सकल भ्रम डार।
कहै गुलाल मनोरवा[1], पूरन आस हमार ॥१२॥
प्रेम के परल हिंडोलवा, मानिक बरल लिलार।
कहैं गुलाल मनोरवा, पुजवल आस हमार ॥१३॥
अनुभौ फाग मनोरवा, दहुँ दिसि परलि धमार[2]।
काया नगर में रँग रच्यो, प्रान-नाथ बलिहार ॥१४॥
बिनु बाजे धुनि गाजई, अधरहिं अगम अपार।
प्रान तबहिं उठि गवनेऊ, बहुरि नाहिं औतार ॥१५॥
प्रेम पगल मन रातल, आनँद मंगलचार।
तीन लोक के ऊपरे, मिललेहिं कंत हमार ॥१६॥
जोग जग्य जप तप नहीं, दुख सुख नहिं संताप।
घटत बढ़त नहिं छीजई, तहवाँ पुन्न न पाप ॥ १७॥
संत सभा में बैठि के, आनंद उजल प्रकास।
जन गुलाल पिय बिलसही, पूजलि मन कै आस ॥१८॥
बंकनाल चढ़ि के गयो, आयो प्रभु दरबार।
जगमग जोति जगन लगी, कोटि चंद छबि वार ॥१६॥
मुक्ता झरि बरखन लगो, दसो दिसा झनकार।
जन गुलाल तन मन दियो, पूरी खेप हमार ॥२०॥
मानिक भवन उदित[2] तहाँ, भाँवर दै दै गाय।
जन गुलाल हरखित भयो, कौतुक कह्यो न जाय ॥२१॥

---

(१) एक राग का नाम। (२) ऊँचा' उदय।

॥ पद २० ॥ (कहरवा)

जोगीयै आप प्रीति पछेरो तातै मन नहिं आवै नेरो ।टेर।।
पंच सूर समि कीया, सतगुरु मिलि साबुण दीया ।
मलन मलन करि धोय, तातै बहोरि न मैला होवै ॥१॥
द्वादस आंगुल पाई, गहि सुखमनि सहज समाई ।
तरसि अगम रस चाखै, ममता सौं मन न राखै ॥२॥
जन हरिदास हरि नेरा, तहां प्रान बिलम्ब्या मेरा ।
हरि प्रीति पछेरा दीया, ता कूं हम पोढत जीया ॥३॥

॥ पद २१ ॥ (कहरवा)

गोविन्द किसा औगुण मांही, सुखनाथ सागर छाडि हरिको—
(दुखी) चलै जमपुरि जाहि ॥ टेर ॥
कहत जोगी रहत रोगी, रोग की धरि ध्यान ।
सोई रोग दिन २ बालमेले, बूडिगया अभिमान ॥१॥
पहरि मुद्रा मगन हूवा, रहति न आई हाथ ।
पढै राख्या छाडि कागद, चल्या जगकै साथ ॥२॥
पांच राखि न प्रेम पीया, दई हंसा कूं मारि ।
देखि अवधू मकसि अंधा, अजहूं चेत नांही ॥३॥
हरि नांव निर्मल निकटि नांही बिकटि लेके जाय ।
जन हरिदास जोगी छाडि मारग, जमलोक आये जाय ॥४॥

सूरा सीस उतारिया, छाड़ी तन की आस।
आगे से गुरु हरखिया, आवत देखा दास ॥ ८ ॥
कबीर घोड़ा प्रेम का, (कोइ) चेतन चढ़ि असवार।
ज्ञान खड़ग लै काल सिर, भली मचाई मार ॥ ९ ॥
चित चेतन ताजी[1] करै, लव की करै लगाम।
सबद गुरू का ताजना[2], पहुँचे संत सुठाम ॥१०॥
हरि घोड़ा ब्रह्मा कड़ी, बिस्नू पीठ पलान।
चंद सूर है पायड़ा[3], चढ़सी संत सुजान ॥११॥
साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गज-दंत।
एते निकसि न बाहुरैं, जो जुग जाहिं अनंत ॥ १२॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उँजियारा होय ॥१३॥
धड़ से सीस उतारि के, डारि देइ ज्यों ढेल।
कोई सूर को सोहसी, घर जाने का खेल ॥१४॥
लड़ने को सबही चले, सस्तर बाँधि अनेक।
साहिब आगे आपने, जूझैगा कोइ एक ॥१५॥
जूझैंगे तब कहैंगे, अब कछु कहा न जाय।
भीड़ पड़े मन मसखरा, लड़ै किधौं भगि जाय ॥१६॥
साईं सेंति[4] न पाइये, बातन मिलै न कोय।
कबीर सौदा राम का, सिर बिन कबहु न होय ॥१७॥
जेता तारा रैन का, एता बैरी मुज्झ।
धड़ सूली सिर कंगुरे[5], तउ न बिसारूँ तुज्झ ॥१८॥
अगिनि आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन ब्योहार ॥१९॥

(१) घोड़ा। (२) ताजियाना=कोड़ा। (३) रकाब। (४) मुफ्त। (५) अगले समय में शत्रु को सूली चढ़ा कर उसका सिर काट लिया करते थे, और कंगूरे पर लगा देते थे।

कबीर साहिब ३७

पत-साहित्य मे बार-बार `इगला` शब्द का प्रयोग हुआ है। यह

इगला यह शब्द वस्तुत `इडा` शब्द से बना है, जो एक नाडी का वाचक है। इस नाडी के नाम से प्राय `पिंगला` नाडी का भी नाम लिया जाता है। `पिंगला` के सादृश्य-बल से ही `इडा` को इगला कह दिया

१- कबीर ग्रंथावली - पुष्पपाल सिंह, ज्ञानविरह का अंग, दोहा-४।
२- विशेष के लिए `षट्चक्र` देखिये।

गया है।

`इल्` धातु से `अच्` प्रत्यय होने पर `इला` शब्द बनता है। `ल` के स्थान पर विकल्प `ड` हो जाता है तब `इडा` शब्द बनता है। इडा का अर्थ पृथ्वी, वाणी, अन्न, गौ आदि भी होता है। सन्त-साहित्य मे `इडा` का अपभ्रष्ट रूप `इगला` ही प्रायः प्रयुक्त है और इसका अर्थ है -- `एक नाडी जो रीढ़ की हड्डी से होकर मस्तक तक पहुंचती है।`[1] सुषुम्ना की बायीं ओर की नाडी इडा है और दाहिनी ओर की पिंगला। इडा को चन्द्र नाडी और वरुणा तथा गंगा भी कहा गया है। इसकी प्रकृति शीतल होती है। पिंगला को सूर्य नाडी, यमुना और असी (काशी का एक नाला) कहा जाता है।[2]

संतो ने हठयोग को साधना का एक अंग मानते हुए शरीर रचना का हठयोग दर्शन के अनुसार अध्ययन कर स्थापित सिद्धान्तो की मान्यता दी थी। उन्होने शरीर में `इडा`, `पिंगला` तथा `सुषुम्ना` के माध्यम से यौगिक क्रिया को आगे बढ़ाया था। शरीर को चादर बताते हुए कबीर ने कहा है --

`इगला पिंगला ताना भरनी सुषमन तार से बीनी चदरिया।`

और --

`गंग जमुन उर अन्तरे, सहज सुन्य लौ घाट।
तहा कबीर मठ रचा, मुनि जन जोहै बाट॥`

सुषुम्ना नाडी को बायीं ओर से घेर कर चलने वाली नाडी इडा, दाहिनी ओर से घेर कर चलने वाली नाडी पिंगला के साथ उसे जाल-जाल से आवृत किये रहती है। सुषुम्ना नाड़ी सर्प की भांति मेरुदण्ड मे लिपटी हुई मूलाधार (गुदा स्थान) से ऊपर की ओर चढ़ती गयी है। वाम नासापुट का श्वास प्रवाह इडा से होता है और दक्षिण नासापुट का श्वास प्रवाह पिंगला से। `हठयोग प्रदीपिका` मे कहा गया है कि वैसे तो शरीर मे बहत्तर हजार नाडिया हैं पर उनमे से केवल

१- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० २११।
२- देखिये `हिन्दी साहित्य कोश`, भाग-१, पृ० १३६।

सुषुम्ना ही शक्ति की वाहिका है, शाम्भवी है। सुषुम्ना से ही कुंडलिनी ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। सुषुम्ना वस्तुत तीन नाडियों से बनी है -- इडा, पिंगला और स्वयं सुषुम्ना। इन तीनों नाडियों का संगम या त्रिवेणी ब्रह्मरंध्र मे होता है। जहा से ऊपर सहस्रारचक्र से चूने वाले अमृत रस को प्राप्त किया जा सकता है।

बौद्ध प्रणाली मे नाडियों का लगभग यही रूप स्वीकार किया गया है, केवल उनके नाम पृथक् है। इडा को ललना, पिंगला को रसना, सुषुम्ना को अवधूती कहा गया है। इन्हीं को तिकुडा, गुहरी या त्रिनाडी कहते है। ललना वामस्थित है, चन्द्रस्वभाव की है, प्रज्ञारूप है, रात्रिरूपिणी है। रसना सूर्य है, दिवस है और उपाय रूप है। इन दोनों के मध्य मे अवधूतिका है, जो प्रज्ञा और उपाय से परे सहजमार्ग है। नैरात्म्य दर्शन की भाषा मे यह ज्ञेय-ज्ञान और ग्राह्य-ग्राहक विवर्जित है। यह क्लेशों को धुनने वाली है, अत उसका नाम अवधूती है। इसी को मध्यमार्ग भी कहा गया है। ललना और रसना के कुछ और भी नाम है -- आली-काली, यमन-चमन, रवि-शशि, प्रज्ञा-उपाय।[1]

जहा इडा, पिंगला और सुषुम्ना का मिलन होता है उसे त्रिकुटी, त्रिवेणी और संगम भी कहा गया है --

`इडा पिंगला सुषुम्ना, त्रिकुटी संधि मंझार।`[2]

धरमदास ने साधक को इन तीनों नाडियों के संगम मे मन लगाने को कहा है --

`इला पिंगला दोइ के त्रिकुटी मन लावो।`[3]

कबीर इडा और पिंगला को भट्ठी बनाकर ब्रह्माग्नि जलाने की सलाह देते है --

`इला पिंगला भाठी कीन्ही, ब्रह्म अगिनि पर जारी।`[4]

इसी प्रकार सहजोबाई कहती है कि इडा और पिंगला मिलकर सुषुम्ना के पट को खोल देती है -- `इडा पिंगला ऊपर पहुंच सुखमन पाट उघारा।`[5]

१- हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, पृ० ६६१।
२- दरिया (मारवाड), पृ० १।
३- धरमदास की बानी, पृ० ३१।
४- कबीर ग्रंथावली, पृ० ५१।
५- सहजोबाई की बानी, पृ० ५१।

अरध-उरध है। यह अव्यय शब्द है। इनका अर्थ है -- नीचे के लोक में, पाताल या नरक।[1] 'ऊर्ध्व' शब्द 'उद्' उपसर्ग के बाद 'व्हा' धातु से 'उ' प्रत्यय होने पर 'पृषोदरादित्वात्' से निपातित है। जो सीधा, उठा हुआ, ऊँचा, खड़ा हुआ, टूटा, ऊँचाई, ऊपर की ओर, आगे आदि अर्थों का वाचक है। इन्हीं 'अध' और 'ऊर्ध्व' शब्दों के मेल और ध्वनिविपर्यय से 'अरध' और 'उरध' शब्द बने हैं। ऊर्ध्व > ऊर्ध > ऊरध > उरध और 'उरध' के सादृश्य के बल पर -- 'अध' से 'अरध' भी बन गया। विसर्ग का पदों के साथ संश्लिष्ट परिवर्तन होने पर उसका रेफ में प्राय: परिवर्तन हो जाया

१- देखिए कबीर ग्रंथावली का ७२ वाँ पद।
२- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० ४१।

करता है। इसलिए 'अध' में 'अर' और फिर 'र' और 'ध' में परस्पर वर्ण-विपर्यय के परिणाम स्वरूप और 'ऊरध' शब्द के साथ होने के कारण सादृश्य के बल से 'अरध' की निष्पत्ति हुई।

अरध-ऊरध का मूल उत्स सिद्ध-साहित्य है। सिद्धों ने अरध-ऊर्ध्व का उल्लेख किया है -- 'अध उध मज्झे सकल भुवन णासी'[1] संतों ने भी अरध-उरध के बीच साधक की स्थिति मानी है -- 'अध उरध मुख लागो कासु, सुन मंडल महं कियो परगासु।'[2]

नाथों और संतों के साहित्य में इस अरध-उरध को कई अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। इड़ा और पिंगला को क्रमश: शिव और शक्ति का प्रतीक माना गया है। शक्ति मूलाधार में स्वयंभू लिंग साढ़े तीन कुंडली में आवृत्त होके अधोमुखी अवस्था में सोई रहने वाली कुण्डलिनी है और शिव, सहस्रार में रहता है। अत: शिव और शक्ति अरध-उरध हुए। कबीर भी यही कहते हैं -- अरध नाड़ि उरध जो आवा, तौ अरधहि उरध मिला सुख पावा'[3]। अरध-उरध का अर्थ गंगा-जमुना भी किया गया है। कबीर कहते हैं -- 'अरध उरध की गंगा जमुना मूल कवल को घाट, षटचक्र की गागरी त्रिवेणी संगम बाट।'[4] इसे मूलाधार पद्म और सहस्रारपद्म के अर्थ में भी व्यक्त किया गया है -- 'अरधत कवल उरधत मध्ये प्राण पुरिखका वासा, ब्रह्म ह्वला उलटि चलेगा तब ही ज्योति प्रकासा।'[5] अर्थात् जब प्राण मूलाधार पद्म (अरधक कमल) से उठकर उरधत अर्थात् सहस्रारस्थ कमल पुरुष के साथ निवास करता है तो प्राणवायु उलटकर बहिर्मुखी के बदले अन्तर्मुखी हो जाती है। प्रसंग के आग्रहवश कभी-कभी यह नीचे और ऊपर का बोधा, प्रकृत अर्थ भी देता है -- 'अरधै जाता उरध धरै, पाचो इन्द्री निग्रह करे।

१- दोहाकोष प्रबोधचन्द्र बागची।
२- संत कबीर डा० रामकुमार वर्मा; संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० ४१।
३- कबीर ग्रंथावली ति०, पृ० १३२, रमैनी २४।
४- कबीर ग्रंथावली दास, पृ० ६४।
५- गोरखबानी, सबदी ८१।

ब्रह्म अगिनि में होमै काया। ताका महादेव बंदे पाया।'[1] अर्थात् नीचे की ओर जाने वाले शुक्र को ऊर्ध्वमुख करे। इस प्रकार ऊर्ध्वरेता बनकर काम को जला दे, ब्रह्माग्नि में शरीर को दग्ध कर दे, ऐसे योगी के चरणों की परम शिव स्वयं वन्दना करते हैं।'[2]

भरथरी ने कहा है कि निरंजन पद का वही अधिकारी है जो तत्व ज्ञान से परिचित है -

> तपत हंस का जाणै भवे, क सोई होई निरंजन देव ।
> जासुण वण्णु ण गंध रसु, जासुण सद्दण फासु ।
> जासुण जम्मण मरण णावि, णाउ निरंजणु तासु ।।

नाथ पंथ के भाषा साहित्य में भी निरंजन का प्रयोग ब्रह्म या नाथ के अर्थ में ही हुआ है । गोरखनाथ की रचनाओं में परमात्मपद के लिये प्रयुक्त निरंजन शब्द के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है -

§1§ सोई निरंजन डालन मूल, सर्व व्यापीक सुषमन अस्थूल[1] ।
§2§ दसवें द्वार निरंजन उन्मन बासा, सबदै उलटि समाना[2] ।।
§3§ नाथ निरंजन आरती गाऊं, गुरुदयाल अग्या जो पाऊं[3] ।।
§4§ सकल भवन उजियारा होई । देव निरंजन और न कोई ।।

रामानन्द जी ने भी निरंजन शब्द का प्रयोग ब्रह्म के लिए ही किया है । यथा -

§5§ पिण्ड प्राण की रक्षा श्रीनाथ निरंजन करे ।
§6§ अखिल पुरुष निरंजन निराकार की, चक्र फिरे बाद बादया ।।

मध्य युग में निरंजन नाम पर नाना पंथ भी चल पड़े थे ।

---

§1§ योगीन्द्र मुनि - परमात्म प्रकाश - पृ0 27-29
§2§ गोरखबानी - पृ0 39
§3§ गोरखबानी - पृ0 157

त्रिकुटी – षट्चक्रों में से अंतिम आज्ञाचक्र, जिसमें दो दल होते हैं, में स्थित है। इस स्थान पर पहुंच कर दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है और फिर साधना में अवरोह का भय नहीं रहता, क्योंकि चित्त अथवा प्राण-शक्ति की स्थिरता इस स्थान पर पहुंच जाने पर निश्चित हो जाती है।

त्रिकुटी

सन्तों ने 'त्रिकुटी' शब्द को ही 'त्रिवेणी' शब्द की जगह प्रयुक्त किया है :--

'इडा पिंगला सुषुमना त्रिकुटी संधि मंझार।'[1]

धरमदास भी त्रिकुटी में ही तीनों नाड़ियों की भावना का उपदेश देते हैं --

'इला पिंगला दोउ है, त्रिकुटी मन लावो।'[2]

इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि संत लोग त्रिकुटी और त्रिवेणी में कोई फर्क नहीं मानते किन्तु वस्तुतः त्रिकुटी का स्थान आज्ञा-चक्र में है और त्रिवेणी का स्थान सहस्रार चक्र के ब्रह्मरन्ध्र में। त्रिकुटी पहले आज्ञाचक्र में पड़ती है और त्रिवेणी उससे आगे सहस्रार चक्र में इसलिए दोनों में भिन्नता तो है ही।

त्रिवेणी

'त्र्याणां वेणीनां समाहार' त्रिवेणी' व्युत्पत्ति से 'त्रिवेणी' शब्द निष्पन्न है। इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों के संगम-स्थल को जिसे ब्रह्मरंध्र कहा गया है, त्रिवेणी अथवा त्रिकुटी भी कहा गया है। शिव संहिता में इड़ा को गंगा, पिंगला को यमुना और सुषुम्ना को सरस्वती माना गया है। इन तीनों के संगमस्थल ब्रह्मरंध्र में स्नान करने अथवा लीन होने से मुक्ति की प्राप्ति होना बताया गया है। इस शब्द के स्थान पर त्रिकुटी शब्द का भी प्रयोग संत-साहित्य में किया गया है। 'इडा पिंगला सुषु--मना, त्रिकुटी संधि मंझार'। त्रिवेणी शब्द के लिए विषय में विस्तार से

1- दरिया (मारवाड़), पृ० १।
2- धरमदास०, पृ० २१।

ज्ञान के लिए कैलास, इडा, पिंगला और सुषुम्ना शब्दों का विवेचन भी देखना चाहिए। गंगा, यमुना और सरस्वती शब्दों का विवेचन भी इस दृष्टि से उपयोगी होगा।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'वेणी' शब्द √वेण + इन् = वेणि और फिर 'वेणि' शब्द से ङीप् प्रत्यय होने पर बना है, जिसका अर्थ बालों की चोटी, नदी, नदियों का संगम और गंगा, यमुना तथा सरस्वती नदियों का संगम भी है।[1] तीन वेणियों के समाहार को ही 'त्रिवेणी' कहा जाता है --

'अरध उरध की गंगा जमुना, मूल कमल कौ घाट।
षट् चक्र की गागरी, त्रिवेनी संगम बाट॥'[2]

त्रिवेणी की महत्ता का प्राय सभी संतों ने गान किया है --

'त्रिवेणी मनाह न्हवाइए, सुरति मिलै जो हाथि रे।'[3]

अथवा--

तीया तीन त्रिवेणी संगम जहां आम अस्थाना।'[4]

अथवा--

सहज समरपण सुमिरण सेवा,
तिरवेणी तट संजम सपरा।[5]

1- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० ११०३।
2- कबीर ग्रंथावली, पृ० ६४।
3- वही, पृ० ८८।
4- धरमदास की बानी, पृ० १७७।
5- दादू०, भाग-२, पृ० ३२।

उल्टी गगा

'गच्छन्ति पापानि अन्या इति गगा' अर्थात् जो पापो का हरण करती है, उसे गगा कहते है। हिन्दू धर्म मे गगा का जो स्थान है वह प्रत्येक भारतीय को सुविदित है। गगा को आधार मान कर किया गया यह प्रतीकात्मक प्रयोग 'उल्टी गगा' सतो की लोक रुचि के बोध का प्रतीक है। 'उल्टा' शब्द देशज है और इसे गगा के विशेषण के रूप मे प्रयुक्त किया गया है। हठयोग मे इडा नाडी को गगा और पिगला को यमुना कहा गया है। हठयोग की साधना मे अधोमुखी श्वास को प्राणायाम द्वारा ऊर्ध्वमुखी करके ब्रह्माण्ड मे चढाया जाता है। सतो ने इसको भी 'उल्टी गगा' कहा है। कबीर कहते है --

'उलटी गग समुद्रहि सोखे, ससिहर सूर गरासे।'[3]

------------------------- ---------------------

१- कबीर ग्रंथावली, पृ० ११० ।
२- सत-साहित्य, डा० प्रेमनारायण शुक्ल, पृ० ।
३- कबीर ग्रथावली, पद १२२ ।

जगत मे तो यमुना आकर गगा से मिलती है किन्तु सतो की तो गगा ही यमुना मे आकर मिलती है --

'उलटी गगा जमुन मिलावउ, बिनु जल सगम मन महि न्हावउ।'[1]

+ + +

उलटी गगा जमुन म लावा, बिन ही जल मज्जन हो पावा।'[2]

इसी अर्थ मे 'उल्टा बाण' का भी प्रयोग मिलता है। इसे 'बाण' इसलिए कहा गया है, क्योंकि इसी के द्वारा सहस्रार चक्र का भेदन होता है। कबीर कहते है --

'सतो जागत नींद न कीजे। पैठि गुफा म उद पा देखे।
बाहर कछू न सूझै, उलटा बाण पारिधिहि लाग, सूरा होय सो बूझै'[3]।

उलटा साधना

मध्यकाल मे नाथपथ सतसम्प्रदाय और अन्य साधना-मार्गों मे प्रचलित साधना प्रक्रियाओ के पूर्व 'उल्टा' विशेषण जोडने का प्रशस्त प्रचलन था। इसके अतिरिक्त तात्रिक साधना मे 'वामाचार' की ओर भी प्रधानता थी। वामाचार के 'नारी से युक्त साधना' और 'लोक प्रचलन से विरुद्ध साधना' दोनो ही अर्थ लगाये जा सकते है क्योंकि इस साधना मे जो मार्ग मे बाधक समझी जाने वाली नारी का उपयोग साधक के उपकरण के रूप मे किया जाता था। इस प्रकार 'वामाचार' अथवा 'वाममार्ग' की लोकभाषा मे अभिव्यक्ति 'उल्टा साधना' के रूप मे हुई है। चर्या पदो मे सूर्य को उलट कर चन्द्र मे लीन करने का रूपक मिलता है। सत-साहित्य मे उसी अर्थ मे 'उल्टा साधना' का प्रयोग किया गया है। उसने 'उल्टा साधना' के अर्थ थे, गगा [इडा] को श्वास - निरोध द्वारा उलट कर जमुना [पिंगला] मे मिलाना या सूर्य को उलट कर चन्द्र मे विलीन करना।'[4] यह कार्य बहुत कठिन है --

----

१- सत कबीर, पृ० २० ।
२- रैदास जी की बानी, पृ० ३ ।
३- कबीर ग्रथावली, पृ० १४१-१४२ ।
४- हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, पृ० १८२ ।

'इडा गगा पुरा प्रोक्ता, पिंगला चार्क पुत्रिका।
मध्या सरस्वती प्रोक्ता, तासा सङ्गोऽति दुर्लभ'।'[1]

सन्त साहित्य मे इस प्रकार के उलटा साधने की प्रक्रिया मिलती है--

अनहद अनुभव की करि आसा।
देखो यह विपरीत तमासा।
इहै तमासा देखहु [रे] भाई।
जहवा सुन्न तहा चलि जाई।[2]

इसी प्रकार का एक यह भी कथन है --

'उलटि पवन कहा राखिये, कोई मरम विचार।
साधे तीर पताल कू, फिरि गगनहिं मारे॥'[3]

और --

'सुषमन के घरि भया अनदा,
उलटि कवल भेटे गोविदा।'[4]

सत सुन्दरदास का कहना है कि `अवधू` का पद प्राप्त करने के लिए एक महा कठिन साधना की आवश्यकता पडती है --

है कोई योगी साधै पवना ।
मन थिर होई बिंद नहि डोल, जितेन्द्री सुमिरे नहि कोना ।

१- कबीरग्रंथावली, पद १६ ।

यम अरु नेम धरे दृढ आसन, प्राणायाम करे मन मौना ।
प्रत्याहार धारणा ध्यान ले, समाधि लावे ठिव ठोना ।
इडा पिंगला सम करि राखे, सुषमन करे गगनदिशि क गौना ।
अहंनिशि ब्रह्म अग्नि परजारे, सांपनि द्वार छाडि दे जाना ।
बहुदल षट्दल दशदल खोजे, द्वादशदल तहा अनहद मौना ।
षोडषदल अमृत रस पीवै, ऊपरि द्वै दल करै चताना ।
चढि आकास अमर पद पावे, ताको काल करे नहि कोना ।
सुन्दरदास कहे सुन अवधू, महा कठिन यह पथ अलाना ।`[१]

सत सुन्दरदास की इस उक्ति से मिलती-जुलती ही हठयोग मे सिद्धि को प्राप्त व्यक्ति को अवधू बताने वाले कबीर के अनेक पद है जैसे -- `अवधू जोगी जग थै न्यारा ।`[२] और `अवधू गगन मडल घर कीजे ।`[३] आदि ।

अवधू के विषय मे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है कि कबीर के पद -- `अवधू सो योगी गुरु मेरा, जो या पद का करे निवेरा ।`[४] की व्याख्या करते समय महाराज श्री विश्वनाथ सिह जू देव ने कहा है कि `वधू जाके न होइ सो अवधू कहावे` अर्थात् अवधू वधू हीन जीव है, कबीरदास की मान्यता मे भिन्न । इस विषय मे मेरा विनम्र निवेदन है कि `वधू` शब्द की व्युत्पत्ति और तज्जन्य अर्थ का विश्लेषण इस प्रसग मे बहुत उपयोगी होगा । सभवत' विश्वनाथ सिह जू देव के इस मत का आचार्य द्विवेदी के मत से तालमेल भी इसी से बैठ जायगा । वधू की व्युत्पत्ति है --`बध्नाति प्रेम्णा इति वधू' ।` इस शब्द की निष्पत्ति √बन्ध् + ऊ, ध आदेश से होती है । √वह् धातु से ऊ प्रत्यय और `ध` आदेश होने पर भी `वधू` की निष्पत्ति सभव है, जिसकी व्युत्पत्ति है `ऊह्यते भर्त्रा पितृभिः इति वधू`।[५] व्युत्पत्तिक अर्थ के परिप्रेक्ष्य मे `वधू` शब्द पर गौर करने से

१- सत-साहित्य, डा० प्रेमनारायण शुक्ल, पृ० १७५ ।
२- कबीर ग्रथावली, पृ० १०६ ।
३- वही, पृ० ११० ।
४- वही, पद-१६ ।
५- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० १०१४ ।

08:06

Ramananda_Ki_Hindi_...

चित्त सों चित्त मिलि चित्त चेतन भया,
उनमुनी दिष्टि सों भाव देषै ॥ १५ ॥

द्वार सों द्वार मिलि सीस सों सीस मिलि,
जीव सों जीव मिलि देह विदेह मिल भेद भेद्या ॥
मिट गया घोर अंध्यार तिहुँ लोक मैं,
स्वेत फटिक मणि हीर वेध्या ॥१६॥
उघरंत नैन उचरंत वैन चंद अरु सूर दोउ राषिया थीरं।
हणवंत हुंकार मचती रहै पकड़िया सोषिया वावन वीरं ॥ १७ ॥
गंग उलटी चलै भानु पच्छिम मिलै, निकसिया विंब परकास कीया।
आत्मा माहि दीदार दरसता रहै यूं अजरावर होय आपु जीया॥१८॥
कुणीकुणी रुणरुणी झुणझुणी नाद नादं, सुषमना काछ के साज साजा।
चाचरी भूचरी षेचरी अगोचरी उन्मुनी पांचमुद्रा साधते सिद्ध राजा ॥१९॥
डरे डूंगरे जले औौर थले वाट औ घाट औघट, निरंजन निराकार रक्षा करै।
वाघ वाघिन का करूं मुष काला चौसठ योगिनी काटि कुटका करूं।
षेचरा भूचरा षेत्रपाला नौ ग्रह दूत पाषंड टारूं ॥ २० ॥
अखिल ब्रह्मांड तिहुं लोक मैं दोहाई फिरवो करै।
अखिल पुरुष निरंजन निराकार की चक्र फिरै वाढ वाल्ह्या ॥
दृष्टि अरु मुष्टि छल छिद्र मैं वीर वेताल नवग्रह अवधू होत पाषंड वाषा ॥ २१ ॥*

---

*नागरीप्रचारिणी सभा के खोज विवरणों में वर्णित एक प्रति में अंतिम अंश यों दिया है—

गर्जंत गवन वाजंत्र वेयण शंख सबद ले त्रिकुटी सारं। दास रामानंद निजु तत्त्व विचारं। निजु तत्त्व तें होते ब्रह्मज्ञानी। श्रीराम रक्षादीय उधरे प्राणी। राजद्वारे पथे घोरे संग्रामे शत्रु संकटे। जाय लागा धीरं। श्रीरामचंद्र उच्चरेते लक्ष्मणजी सुनते जानकी सुनते। हनुमान सुनते पापं न लिपंते। पुन्य ना हरंते। संध्या काले प्रातः काले जे नरा पठते सुनते मोक्ष मुक्त फल पावते। इति श्री राम रक्षा रामानंद की ॥—खोज रिपोर्ट, सन १६०३

Olymp Trade INSTALL

08:05
Ramananda_Ki_Hindi_...
Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उलटिया सूर गगन भेदन किया,
नव ग्रह डंक छेदन किया
पोषिया चंद जहाँ कला सारी
अगनि परगट भई जुरा वेदन जरी
डंकनी संकनी घेरि मारी ॥ ८ ॥
धरनि अकास बिचि पंथ चलता किया
आगम निगम महारस अमृत पिया
भूत प्रेत दैत्य दानव संघारा किया
वज्र की कोठरी वज्र का डंड ले,
वज्र का खड्ग ले काल मारा ॥ ९ ॥
गरुड़ पंषी उडया नाग नागनि डस्या,
विष की लहरिसूं निद्रा न भांपै।
पिंड निरमल हुआ पिंजरे पड़ो सुआ,
रोग पीड़ा विथा नहिं देह व्यापै ॥ १० ॥
रूम रूम ररंकार उचरंत वानी
श्रवण सुनता रहै समदृष्टि मुष्टि मेला।
झिलमिला ज्योति रुणकार झलकता रहै
नाद बिंद मिल भया रँग रेला ॥ ११ ॥
सुंनि के नेहरो सुंनि सीझत रहै,
आपुसूं आपु मिलि आपु जाग्या।
सरीर सों सरीर मिलि सरीर निरषता रहै,
जीव सों जीव मिलि ब्रह्म जाग्या ॥ १२ ॥
नैन सों नैन मिलि नैन निरषत रहै,
मुष सों मुष मिलि बोल बोल्या।
स्रवन सो स्रवन मिलि नाद सीझत रहै,
सब्द सों सब्द मिलि सब्द षोल्या ॥ १३ ॥
निरति सों निरति मिलि निरति लागी रहै
सुरति सूं सुरति मिलि सुरति आवै।
ध्यांन सों ध्यांन मिलि ध्यांन सूझत रहै,
रंग सों रंग मिलि रंग पावै ॥ १४ ॥
ग्यांन सों ग्यांन मिलि ध्यांन सों ध्यांन मिलि,
जाप अजपा जपै सोइ दम लाइ लेषै।

Olymp Trade
INSTALL

नाद-बिन्दु

ध्वन्यर्थक `नद्` धातु से भाव मे `घञ्` प्रत्यय होने पर नाद शब्द बनता है, जिसका अर्थ है -- शब्द, ध्वनि, गर्जन, चीत्कार, वर्णों का अव्यक्त मूल रूप और सानुनासिक स्वर को `ँ` अर्धचन्द्र चिह्न से व्यक्त होता है।[1] विभाजनार्थक `बिन्द्` धातु मे भाव मे `उ` प्रत्यय होने पर `बिन्दु` शब्द बनता है, जो बूंद, बिन्दी, वाणी पर उसे बताने

१- कबीर ग्रन्थावली - डा० पारसनाथ तिवारी, पद १८२।
२- कबीर ग्रन्थावली सटीक - प्रो० पुष्पपाल सिंह, पृ० २३३।
३- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० ५६२।

के लिए बनायी गयी रंगीन बूंदे, शून्य, अनुस्वार, धब्बा, नाटक का वह स्थल गौण घटनाओं का विस्तृत रूप ग्रहण करना आरम्भ होता है, का वाचक है।[1]

`नाद` कुण्डली शक्ति के जागृत होने के बाद उठने वाला वह स्फोट अथवा ध्वनि है जो उसके जागरण से उत्पन्न होकर सुषुम्ना मार्ग से चलता हुआ षट्-चक्र से पार होकर सम्भवतः सहस्रार चक्र मे समा जाता है। इसी `नाद` का अनाहत रूप सर्वत्र विश्व मे व्याप्त है। जो कुछ विश्व मे है वह सूक्ष्म रूप मे प्रत्येक व्यक्ति के शरीर मे भी है किन्तु उसका साक्षात्कार करने के लिए जिस साधना की आवश्यकता होती है उसके अभाव मे इस `पिण्डस्थ नाद` को नहीं सुना जा सकता। `अनुभवी साधको ने इस ध्वनि को पहले मधुर समुद्र-गर्जन, मेघो की गड़गड़ाहट, झम घण्टे आदि की ध्वनि और अन्त मे किंकिणी, वंशी, भ्रमर आदि की ध्वनि के समान बताया है। यही नाद वास्तव मे उपाधियुक्त होकर सात स्वरो मे विभाजित हो जाता है, पर निरुपाधि होकर प्रणव या ओंकार कहलाता है। इसी को शब्द ब्रह्म कहते है। वैष्णव पद्धतियों मे इष्टदेव के नाम को शब्दब्रह्म कहा गया है। इसी शब्दब्रह्म को वैयाकरणो ने स्फोट कहा है। सन्तो ने अनाहतनाद को शब्द ध्वनि भी कहा है।`[2] इस शब्द साधना मे जिस नाद का साक्षात्कार होता है उसका व्यक्त रूप बिन्दु कहा जाता है उसके विषय मे विवेचन करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने `महाबिन्दु`[3] कहा है। `यह बिन्दु तीन प्रकार का होता है -- इच्छा, ज्ञान और क्रिया। पारिभाषिक तौर पर योगी लोग इन्ही को कभी सूर्य, चन्द्र और अग्नि कहते है और कभी ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी कहते है। अतः, यह जो नाद और बिन्दु है वह असल मे अखिल ब्रह्माण्ड मे व्याप्त अनाहत नाद या अनहद नाद का व्यष्टि मे व्यक्त रूप है। अर्थात् जो नाद अनाहत भाव से सारे विश्व मे व्याप्त है उसी का प्रकाश जब व्यक्ति मे होता है तो उसे नाद कहते है। जब जीव श्वास-प्रश्वास के अधीन होकर इन श्वासो की संख्या दिन-रात के

१- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० ८३०।
२- हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, पृ० ४३८।
३- कबीर - आचार्य ह०प्र० द्विवेदी, पृ० ५६।

चौबीस घण्टो मे २१, ६०० होती है। निरन्तर इड़ा और पिंगला के मार्ग मे चल रहा है। सुषुम्ना का पथ प्रायः बन्द है। यही कारण है कि बद्धजीव के इन्द्रिय और मन की वृत्ति बहिर्मुख है, जो अखण्ड नाद जगत के अन्तस्तल मे और निखिल ब्रह्माण्ड मे निरंतर ध्वनित हो रहा है, उसे वह नहीं सुन पाता, परन्तु जब क्रिया-विशेष से सुषुम्ना पथ उन्मुक्त हो जाता है और कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है, तो प्राण स्थिर होकर शून्य पथ से निरन्तर उस अनाहत ध्वनि या अनाहत नाद को सुनने लगता है। जिस प्रकार मकरन्द-पान मे मस्त भौंरा गंध की ओर ताकता भी नहीं, उसी प्रकार योगी का नादासक्त चित्त `नाद` मे ही रम जाता है, वह दुनिया के किसी और विषय की परवाह नहीं करता।

परन्तु ज्यो-ज्यो मन विशुद्ध और स्थिर होता जाता है, त्यो-त्यो इन शब्दो का सुनाई देना बन्द होता जाता है क्योंकि चिदात्मक आत्मा उस समय अपने स्वरूप मे स्थिर हो जाता है और फिर इस बाह्य प्रकृति से उसका कोई सरोकार नहीं रहता। यह नाद मूलतः एक होकर भी औपाधिक सम्बन्ध के कारण अर्थात् भिन्न-भिन्न उपाधियो से युक्त होने के कारण सात स्वरो मे विभक्त है। शास्त्र मे जिसे `प्रणव` या `ओंकार` कहते है, वही उपाधिरहित शब्द-तत्त्व है। किसी-किसी साधक ने तथा वैयाकरणो ने इसी को स्फोट कहा है। यह स्फोट अखण्ड सत्ता-रूप ब्रह्मतत्त्व का वाचक है। स्फोट को ही शब्दब्रह्म और सत्ता को ही ब्रह्म कहा गया है। यह ध्यान मे रखने की बात है कि स्फोट वाचक शब्द है और सत्ता वाच्य। इस प्रकार वाच्य (ब्रह्मतत्त्व) को प्रकाशित करने वाला वाचक शब्द (स्फोट या नाद) भी ब्रह्म ही है। इसका मतलब यह हुआ कि ब्रह्म ही ब्रह्म का प्रकाशक है। इस सम्बन्ध को लेकर भी संतो ने कितने ही गूढ रूपको की रचना की है।`[1]

डा० धर्मवीर भारती का कहना है कि वज्रोली, सहजोली आदि गुह्य साधनाओ मे पूर्व-वर्णित बिन्दु को ही सुरक्षित हो जाने पर भी स्खलित नहीं होने

१- कबीर - आचार्य ह०प्र० द्विवेदी, पृ० ५९-६०।

दिया जाता था और ऐसे योगी को `ऊर्ध्वरेतस्` कहा जाता था।`[1] नाद को शिव और बिन्दु को शक्ति का परिचायक मानकर इन्हे मिलाने को ही प्रत्येक साधक द्वारा अपना परम लक्ष्य माना जाता है, यह आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कहना है।[2]

संतो ने परब्रह्म को नाद-बिन्दु से भी ऊपर का माना है --

`नाद नाही व्यंद नाही, काल नाही काया।
जब ते जल ब्यंब न होते, तब तू ही रामराया॥`[3]

सन्तो का कहना है कि कोरी नाद-बिन्दु साधना करने से परम गति नहीं मिल सकती, वह तो नाद-बिन्दु से भी ऊपर की चीज़ है --

`बिन्दु राखि जो तरिये भाई।
खुसरै क्यों न परम गति पाई॥`

इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि सन्तो ने नाद-बिन्दु की साधना को अपनी साधना का चरम न मान कर उसका परिष्कार भर ही माना था।

08:08
Ramananda_Ki_Hindi_...
74/125

जब ले अंता का अंत वहु।
विगहंत भई भारि ॥
जा दिन जीव जंत नहीं कोई।
ता दिन की दास कबीर ! कहिं विचारि ॥१२॥
स्यो - सकती दोउ मुष जीवंत।

पछिम दिसा धुन अंनहद गरज अमिरस भरै उपजै ब्रह्मग्यांन ॥१॥*
आकासे उडध न अचवै आतम तत्त विचारी ॥२॥
नरसी जल मैं घर करै मनसा चढै पहाड़ं ॥३॥
गगन गरजै हीरा नीपजै घंटा पड़ै टकसालं ॥
(जो कोई) दास कबीर से पारषी कोई नर भये ऊतर पारं ॥४॥

अब की बेर मोहिं वकसल्यौ कदम दास कबीर।
गुर रामानँद के वदन पै सद्क करूं सरीर ॥१॥
स्वामी जी तुम्ह-सतगुर हमदासा ··· ··· ··· ··· ।
पूछूं एक सबद का भेव। करो कृपा कहो गुर देव ॥२॥
(स्वामी जी) कौन सी नगरी कौन अस्थान। कौन लोग बसैं परधान ॥
को है राजा को है महता। कहो पुरुष नगरी की बाता ॥३॥
ज्ञान कथ मन महंसं। केता ऊजड़ केता वंसं ॥
मोहि बतावो सबद का भेव। कहां बसै निरंजन देव ॥४॥

---

* कबीर की चार साखियां मिलाइए—
अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियांन ॥
अविगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियांन ॥४४॥
आकासे मुषि औंधा कुवां पाताले पनिहारि ॥
ताका पांणीं को हंसा पीवै बिरला आदि विचारि ॥४५॥
सिव सकती दिसि कौंण जु जोवै पछिम दिसा उठै धूरि ॥
जल मैं स्यंघ जु घर करै मछली चढ़ै खजूरि ॥४६॥
अमृत बरसै हीरा नीपजै, घंटा पड़ै टकसाल ॥
कबीर जुलाहा भया पारषू अनभै उतरया पार ॥४७॥
—कबीर ग्रंथावली

Binance:
Buy Bitcoin & Crypto
JOIN
Not investment advice.
All trading carries risk. Only risk capital you can afford to lose.

08:07
Ramananda_Ki_Hindi_...

योग चिंतामणि

ॐ अकट विकट रे भाई। काया [गढ़] चढ़ा न जाई ॥
पछिम [दि] शा की घाटी। फौज खड़ी है ठाढी ॥ १ ॥
जहां नाद - विंदु की हाथी। सतगुर ले चल साथी ॥
सतगुर साह विराजै। नौवत नाम की बाजै ॥ २ ॥

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जहाँ अष्ट दल कमल फूला। हंस सरोवर में भूला ॥
जहाँ राग रंग होय पासे। जहाँ है हंस के वासे ॥ ३ ॥

शब्द को सीखले शब्द को बूझले शब्द से शब्द पहिचान भाई।
शब्द तो हृदय वसे शब्द तो नयनों वसे शब्द की महिमा चार वेद गाई ॥४॥
शब्द तो आकाश वसे शब्द तो पाताल वसे शब्द तो पिंड ब्रह्मांड छाई।
आप में देख ले सकल में पेखले आप मध्ये विचार भाई ॥५॥
कह रामानंद सतगुर दया करि मिलिया सत्य का शब्द सुन भाई ॥
फकीरी अदल वादसाही ॥६॥

संतो बंदगी दीदार। सहज उतरो सागर पार ॥
सोहं शब्दै सों कर प्रीत। अनुभव अषंड घर जीत ॥७॥
अब उलटा चढ़ना दूर। जहाँ नगर वसता है पूर ॥
तन कर फिकिर करं भाई। जिसमें राम रोसनाई ॥८॥
सुरत नगर का कर सयल। जिसमें आत्मा का महल।
इंद्रिया सिंधु मूल मिलियां। जिस पर रचना वांवा पांव ॥९॥
दहिने को मध्य पर धरनां। आसन अमर घर करनां ॥
द्वादश पव [न] भर पीता। उलट घर शीश को चढ़नां ॥१०॥
दो नैना कर वांन। भौंह उलटा कस कवांन ॥
त्रिवेनी कर असनांन। तेरा मेट जाय आवा जांन ॥११॥
वाजा गैव का वाजे। वोली सिंधु में राजे ॥
लगी है गैव के वाजा ॥१२॥

Binance: Buy Bitcoin & Crypto
JOIN
Not investment advice. All trading carries risk. Only risk capital you can afford to lose.

08:06
Ramananda_Ki_Hindi_...

पंथ में घोर में सोर में चोर में देस परदेस में राज के तेज में।
अग्नि के झाल में साँकड़े पैसता बैठते ऊठते श्री राम रक्षा करैं॥
जागतां सोवतां खेलतां मालतां संत के सीस पै हाथ धारे रहैं ॥२२॥

चक्र लीयां राम आप रक्षा करैं गुप्त का जाप ले गुप्त सेवै।
चंद सूर दोइ एक घर रहेवो करैं जीतिया संग्राम देवाधिदेवा ॥२३॥

फेरि सीधा किया उलटिया अमृत पिया विषवाद सब दूरि भागा।
कमल दल कमल जोति ज्याला जगे भ्रमर गुंजार आकास जागा॥२४॥

ग्यांन लीला

मूरष तन धर कहा कमायौ। रांम भजन विन जनम गमायौ॥
रांम भगति गत जांणी नाहीं। भंदू भूलौ धंधा माहीं॥१॥
मेरी मेरी करतो फिरियौ। हरि सुमिरण तो कबू न करियौ॥
नारी सेती नेह लगायौ। कबहूं हिरदै रांम नहिं आयौ॥२॥
सुष माया सूं घरो पियारो। कबहुं न सिवर्‌यौ सिरजनहारो॥
स्वारथ माहिं चहूं दिसि धायौ। गोविंद को गुंण कबहुँ न गायौ॥३॥
ऐसे ऐसे करत बुहारा। आये साहिब के हलकारा॥
बंधे काल कीयौ चौरंगा। सुत बेटी नार कोइ नहि संगा॥४॥
जो तुम करम कीया है भारी। सो अब संग सु चलै तुमारी॥
जम आगै लै ठाढो कीनो। धरम राय बूझण कूं लीनो॥५॥
कीधा कौन कीया तैं करमा। सिरजन हार न भज्यौ निसरमा॥
जिण पांणीं सू पैदा कीयौ। नर सौ रूप तोहि कूं दीयौ॥६॥
जो तूं बिसर्‌यौ मूरष अंधा। तो तूं आयौ जँम पै बंधा॥७॥
हरि की कथा सुनी नहीं कानां। तो तू नांहीं जम सूं छांनां॥
साध कै संगत मैं कछू न रहियौ। मुष सूं रांम कछू नहिं कहियौ॥८॥
हरि की भगति करौ नर नारी। धरम राय यूं कहै बिचारी॥
मोकूं दोस न दीजै कोई। जिसा करम भुगताऊँ सोई॥९॥
पाप पुंन कूं न्यारा छांणूं। जो तुम करम करो सो जांणूं॥
तुमरा करम तुमै भुगताऊँ। आद पुरुस की आग्यां पाऊँ॥१०॥

Olymp Trade
INSTALL

08:11
Ramananda_Ki_Hindi_...
90/125

अनहद घंटा झालर बाजे, अलष पुर्स की सेवा।
पुरस निरंतर बैठा साधो रूम रूम में देवा॥ ७॥
गंगा जमना बहु सुरस्वती जहाँ जाय ध्यान धरीजे।
त्रुगुटी मिंदर बैठा साधो वहाँ जाय दरसन कीजे॥ ८॥
सहज सिंघासन निरभै सेऊँ चित की चंवरी कीजे।
चसमा माँहि चंग ढलकाँऊ धीरज बैठा रीजे॥ ९॥
कोई इक साधो मिलिया आई सब संतन का मेला।
सतगुर मेरे सिर पर ठाढा सुदमा आगें चेला॥ १०॥
या मेरी सेवा या मेरी पूजा इसी आरती कीजे।
आतम तत विचारी लीजे ध्यांन निरंतर कीजे॥ ११॥
जल पाषांण भरम की सेवा भूल भटक नहीं मरना।
सतगुर मेरे जुगत बताई तब भव सागर तिरना॥ १२॥
बाहर भरम कबू नहिं जाँऊ अंतर सेवा जागी।
रामानंद गंगा निरभै आणी पारब्रह्म लिव लागी॥ १३॥

॥ इति श्री मानस सेवा संपूर्ण ॥ १

अथ ग्रंथ ग्यान लीला लिषते।

चौपई

मूरष तन धर कहा कमायो, राम भजन बिन जनम गमायो।
राम भक्ति गति जानी नाहीं, मूई भलो धंधा माही॥ १॥
मेरी मेरी करतौ फिरीयौ, हरि सिवरण तौ कबू न करीयौ।
नारी सेती नेह लगायौ, कबहूं हृदे राम न आयौ॥ २॥
सुष माया सुषरो पीयारौ, कबहूँ न सिवरौ सिरजन हारौ।
जोबन मदमातौ अभिमानी, पर घर भटकत संक न आनी॥ ३॥
स्वारथ माँहि चहूँ दिस ध्यायौ, गोविंद को गुण कबहुं न गायौ।
असैं असैं करत व्युहारा, आयौ साहब का हलकारा॥ ४॥
बंध्यौ काल कीयो चौरंगा, सुत बेटी नार न कोई संगा।
जेतैं कर्म कीया है भारी, सो अब संग सु चले तुमारी॥ ५॥
जम आगैं ले ठाढ़ो कीन्हौ, धर्मराय बूझन कूँ लीन्हौ।
कीधा कौल कीया तुम कर्मा, [1]रिजनहार न भज्यौ निसरमा॥ ६॥
जिण पानीं सु पैदा कीयौ, नर सो रूप तोहि कूँ दीयौ।
जे तूँ विसर्‌यौ मूरष अंधा, तौ तूँ आयौ जम के बंधा॥ ७॥

---

१ सिरजनहार

Binance:
Buy Bitcoin & Crypto
JOIN
Not investment advice.
All trading carries risk. Only risk capital you can afford to lose.

08:09
Ramananda_Ki_Hindi_...
Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पढ पढ राता गुण गुण माता ह्रदा सुद्ध न होई ॥
पढै गुणै श्रौ घढ पड़ै जों गुर पंथ त्रविवेष पायक चेतन कोटवालं
नौ नौ घढिले समझावो जीतल्यौ जमकालं ॥३१॥
काया हमारा तषत बना है मन पवन दोउ घोड़ा।
गुर का सवद् षडतल का खांडा कीया जमसे निवेड़ा ॥३२॥
श्रगिम हमारा बाजा बाजं झूल मस्त दर हाथी।
जीव का संसा सतगुर तोड्यां सु पुरुष मलि साथी ॥३३॥
जोग जुगति जहँ छत्र सिंहासन महा सकति रणवासं।
जहां विलँम पौन पुरुष वा घर रहनि हमारी ॥३४॥
काव्या कढे न जाल्या सूक उतिपति परलै नाहिं।
सुंन मँडल म भौंर गुफा जहां पांचूं त [हां] भलाई ॥३५॥
इँगला पिंगला करल माता सुषमन के घरि मेला।
जहां विलंव मनवां कवीर जी सब जुग देखा मेला ॥३६॥
निश्वा विन मरणा निर अग्नि विन तरणा रंग राग विन अपारा ॥
सोव सदा जाग निसि वासर असा तत विचारा ॥३७॥
भूल्या सो भूल्या फेर वी चेतना। लोह कसंसा सों आपै कों रेतना ॥
भेषल्यो भेद तंत ल्यो सोई। नाभ कमल सों लहर उटतइ
झलमलि सोषैं वाई ॥३८॥
उलटि तील तेल चरंगे नीर चरंगे वाई।
नाद बिंद गांठी पड़गा मनवा कही न जाई ॥३९॥
झाझं ले द्रावं सौंपो वांस मनोरथ पेलो।
धरती पैठि गगन थम रोपो इस विधि बन षँड षेलो ॥४०॥
(स्वामी जी) बन षँड जाउँ तो षुद्या व्यापै नगरी जाउँ तो माया ॥
कठण लहरि कंदरफ की पलटूं गुर जी।
किस विध सींचों जल व्यन्द की काया ॥४१॥
(कबीर जी) वजू कछोटी इंद्री बांधो, भला बुरा मति जोवो।
लोचत भोचत नागा मूनी हरि बिन जन्म बिगोवो ॥४२॥
(स्वामी जी) आसा बांधों, बासा बांधों बांधो तत्त निवासा।
आपा परच्या दिढ करि बांधों सहजै चढौं अकासा ॥४३॥
द्वादस कमल तर अग्नि पहोपो जलसि समानि सिर जाग।
रनि पहर पडऊ लौट रनि काल सों लड़ें ॥४४॥

Binance:
Buy Bitcoin & Crypto
JOIN
Not investment advice.
All trading carries risk. Only risk capital you can afford to lose.

08:09
Ramananda_Ki_Hindi_...
Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.
76/125

तन मन सेती कोई साधु जन लाग्या जन किया निः केवल
(परम पद) वासा ॥१७॥
पवन घरि पानि पानि घरि मनसा बंक नालि सों आया।
जटा मीन पानि में बैठे सुंन मींन घर पाया ॥१८॥
स्वामी जी बसत भवना जागन बैठे आसण मांडं घाली।
कुवाँ है पण लेजू नाहीं किस विधि सींचं माली ॥१९॥
(सिधा) जोग जुगति की लेज बनावो आसंण सेती तालो।
मनसा फूल फुलंदर* लागी वाड़ी इस विधि सींचो माली ॥२०॥
(स्वामी जी) बसत घरोरी बरतन ओछा कहो गुरू क्या कीजे।
चांपि धरूं तो बरतन विणसै बाहर धरूं तो छीजे ॥२१॥
सिद्धा सहजें लीना सहजें दीना सहज सुरति ल्यौ लाई॥
सहज सहज धरो कबीर जी बरतन, इस विधि करै समाई ॥२२॥
(स्वामी जी) अड़ध चंदा उड़ध सूरा विच गगन मध्य द्वारा।
औघट घाट मलिद्रावं षोजो किस विधि पार उतरणा ॥२३॥
(सिधा) गुरू हमारे घरि वाणि जिन किया सकल पसारा।
ले दिय कंद्रव बैठे कीया चौंदस उजियारा ॥२४॥
(स्वामीजी) सतगुर मिल तौ दरसन सांचा नाहिं त पछि मरणां।
नाव है पण षेवट नाहीं किस विधि पार उतरणां ॥२५॥
सुंन के नेहर सुन सुनता रह। सबद सुं सबद मलि सबद बुझता रह॥
वाय सों वाय मलि मलि कर जानि। पानि म घ्रत कसं मथि आन ॥२६॥
गोव्यँद तबै पागिया एह अरथ विचारा
पढ़ गुण अरथ विचार नाहिं दिन दिन संध्या बाढ ॥२७॥
जप करं तप करं कोटि तिरथ भ्रम आवैं।
(कहै कबीर सुनो गुर रामानँद जी) जुगति विन जोगेस्वर
कस करि परम पद पावै ॥२८॥
सिधा काया नगरी अलेष राजा सील सँतोष उजीरं।
सिधा धरती रूप सदा विलासं न विणसं आकासं।
पांच पचीस मलि प्रगट षेलो सब जुग करो विलासं ॥२९॥
(स्वामी जी) अगम अगोचर दूरि पियाना मारग लषं न कोई।
(कहि कबीर सुनो) गुर सेती सतगुर चीना सरवण तत ग्यांन।
मूरष सं [ग] विवर्जते प्रगट पसू समांन ॥३०॥

*फुलंदर=पुष्पेंद्र, कमल

Binance:
Buy Bitcoin & Crypto
JOIN
Not investment advice.
All trading carries risk. Only risk capital you can afford to lose.

गुरु का सब्द अग्नी का टांका जब छोड़ा तब जागा।
सूरा होय सो सनमुख जूझे, कायर होय सो भागा।
जेता संत स्वामी कहावे, पांच चोर पटता संग।
नौ लाख घाटी म जम काल, कलह कलपना पग दे चांपी।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मोख दुगा माया काया मे, एक तखत बना है।
मन पवना दोऊ धारा, गुरु के सब्द अखंडीत खंडा

जम्ह सो किया निबेड़ा।
गगन मंडल मे बाजा बाजे, मन मस्तक दोउ हाथी।
सतगुरु के बल संसा तोड़ा, पांच पुर्ख मिल साथी।
जोग जुगुति का छत्र सिंघासन, मस्तक तत्त्व निवासा।
जहाँ कबीर मन थिलमिया, मंछी रहा अकासा।
गुरु परताप कया गढ़ जीता, बिनु खरग हथियारा।
जहाँ हमारी कूट कली, मूसिया सब संसारा।
गन गंधरब मिलि सम संहारे, दलबल के अधिकारा।
ए दोऊ दल सहजे जीता, जीत लिया गढ़ भारी।
नाम कवल ते सहर उठंगी भिलमिल सोखे बाइ।
ता परचे मन तन मे बिलम्या धुन मे रहा समाइ।
उलटी तीलीतेल परेगी, नीर परे बाइ।
नाद बिंद गाढ़ परेगी, मनुआ अंत न जाइ।
इंगला पिंगला नाता करले, सुषमन के घर मेला।
जहाँ कबीर बिलम्या मूला, सनजुग देखा।
भूला सो मूसा फिरमी चेत ना लोहा के संसै आपा नीरतता।
भेष धर्म मर्म ते मिले गुसाईं।
आपा मद्धे आपा चीन्हो, आप आप मे होई।
आपा चीन्हो पौन अराधो, सहज पलटे जोती।
काया मे मन मानिक नीपजै, झिलमिल बरषे मोती।
उर मे खुर मे सहज उजियाला, नौ लख घाटी परा ताला।
ताला न टूटे कुंजी न लागे, पिंड परे तौ सतगुरु लाजै।
सार की कोठली बैठ तालिया पूरा, पचमुआ संसारा।
निकसा कोउ संतजन सूरा, सूरा जूझत पूरा।
पूछत धरंत ध्यान, गुरु ग्यान गढ़ बंका।
काल की जीत जंजाल को मेट, मन की संक्या।
जहां चांद बिन चांदना, अगिन बिना उजियार।
परम तत्त्व जहां विधान बासा, रह र . ४

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हंसा छोड़ सरोवर कहीं न जाय भगत सरीरी उपजी
पाया पद निरबान।
गुरु रामानंद के वचंन पर सब्द का करो परमान।
निरगुन गुरु सरगुन चेला गुरु रामानंद सों बाल हुआ मेला।

इति श्री गुरु रामानंद कबीर का
ज्ञान तिलक संपूरण

कबीर उवाच

जोग जुगती के लेजु बनावे, आसन सेती मनसा करे सहजे सीचे माली।
अरध चंदा उरध सूरा बीच गगन मठ दुयारा।
अवघट घाट दरियाव भरा है, गुरु जी किस विधि पार उतरना।

कबीर उवाच

सतगुर मिले तो दरसन सांचा, नहीं तो पच पच मरना।
नाव है पै केवट नाहीं, किस विधि पार उतरना।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

धरती बैठ गगन थंभ रोपो, इस विधि बन षंड पेलो।
सामी जी बन षंड जाउ छुधा लागे, नगरी जाउ तो माया।
कठिन लहरि कन्द्रप की व्यापै सामी जी कीस बिध राषा जल विच काया

कबीर उवाच

आसा बांधो मनसा बांधो, बांधो तत्व निरासा।
मन अरु पवन दोउ दिढ़ करि बांधो, सहजे चढ़ो अकासा।
हरता बांधो करता बांधो, बांधो बिषै बिकारा।
काया मध दिढ़ करि बांधो, भला बुरा मत बोलो।
बचन मोचन नागा मौनी, हरि बिनु मरम बिगोवो।
सामी जी वस्तु घनेरी बरतन छोटा, कहो गुरु क्या कीजै।
दाव धरों तो बरतन फूटे, बाहर धरो तो छीजै।
पाया सहजे लेना सहजे सहज सुरत लवलाइ।
सहजे सहजे धरे कबीरा, बरतन करे समाइ।
गुरु हमार गहरी बानी, परगट किया पसारा।
लं दीपक दरियाव मे पैठा, चहुँदिस भया उजियारा।
पवन दोआदस चले अगिनि, गगन हमारे बाजा बाजे।
पांच मस्त बढ़ हाथी प्रजले, रवी ससी के घर जागत रहै।
रैन वहीरे वड़े उलट काल सो लड़े, पिंड छोड़ प्रान पुरुष अंत नही जाइ।
ऐसी धरनी धरे तौ सहजे लव उधरे, बाद बीवादे काया छीजे।
सतगुर सब्दे कहे चेला, तत्व कर गहै सुन्य मे रहै।
म्रितक होय काल को डसे, उलट बांमी सर्प को षाइ।
भो जोगी आगे देव सेवा करे, रहित के टेरे नाद बाजे।
एकादसी दोआदसी धरम का मेला, चौदस पंचल थीर।
पुन्य प्रगट भया उजियारा, अवध पुंज सरीर।
पढ़ पढ़ माता गुन गुन राता, ह्रिदया सुध ना होइ।
पढ़ा गुना जो उमट चाले, गुर गम्य न देही।
आसन माड़े वन वन हारे, भाव भगत न होइ।
डटे सींच पीसे बींद, कांचा गुरु जे गम्य न देही।
नभ उषमन सो सतगुर चीन्हो, सरवन सो सत ग्यान।
पुरुष सो बिवरजित रहना, प्रगट पसू समान।

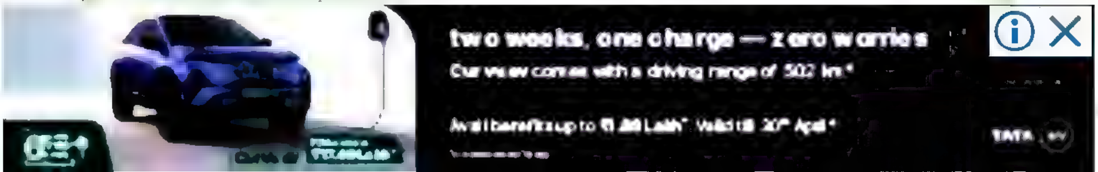

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पाँच पकर एक घर लावे, चीत के चौहट न्याव चुकावे।
आसा नदी निकट नहिं आवै, मै मरम सब दूर बहावे।
बुध का कोट सबल नाहां टूटे, ताते मनसा कीस बीध छूटे।
चेतन के घर पहरा जागे, ताको काल कहा होय लागे।
है कोइ अदली अदल चलावे, नगरी चोर मूसन नहिं जावे।
कहैं कबीर सोई बड़ भागी, जाकी सुरति निरंतर लागी।
पच्छिम दिसा धुनि उपजै, सिव सक्ती अस्थाना।
अनहद गरजे अमी-रस झरै-उपजे ब्रह्म गेआना।
आकासे उर्ध मुख कुआ, पाताले पनिहारी।
जाके जल कोई साधू अचवे आदि तत्त्व विचारा।
पंछी जलमो घर करै, मनछा चढ़े अकास।
घन गरजे हीरा नीपजे, घटा बढ़त टकसाल।
कबीर जहाँ को पारखी, निरभय उतरो पार।
स्वामी जी जोति सरूपी, कीरपानिधान,
कौन अस नगरी, कवन असथान,
कौन नगरी का केता कथे, केता हंसे
केता उजड़े, केता बसे, सतगुरु कहो मोहि भेव,
कहाँ बसे निरंजन देव।

कबीर उवाच—

काया नगरी हिदयाअसथाना, मन राजा, पौन प्रधाना।
ज्ञान कथे अरु मन में हंसे, निंदया घर उजड़े, दया घर बसे।
सतगुरु मिले तो पावे भेव, हिदया बसे निरंजन देव।
स्वामीजी कहाँ काल कहाँ काल का बासा, कहाँ ग्यान
कहाँ ग्यान का पयान, कहां मेयान का मुसकला, कहाँ-
धरती, कहाँ धरती का कपाट, कहां कपाट का ताला कुंजी,
कहां नीर कहां नीर का तीर कहां बासीक का पीता,
कहे कबीर सुन गुरु रामानंदजी यह दरिया यमराय करीता।
कबीर निंद्राकाल, कलह काल कासा, सील ग्यान का मेयान
सन्तोष ग्यान का मुसकला, धीरज धरती का कपाट,
छेमा कपाट का ताला, कुंजी सुरत निरत का तीर।
सुछम वासीक का पीता कहे गुरु रामानन्द जी सुनो कबीर।

Binance: Buy Bitcoin & Crypto
JOIN
Not investment advice. All trading carries risk. Only risk capital you can afford to lose.

रामानंद की हिंदी रचनाएँ

राम रक्षा

ॐ सत्य अनादि पुरस सत्य सत्य गुरू
संध्या तारणी सर्व दुःख विदारणी।
संध्या उच्चरे विघ्न टरे।
पिंड प्राण की रक्षा श्री नाथ निरंजन करे ॥ १ ॥
ज्ञान धूप मन पुष्प इंद्रिय पंच हुताशनम्।
क्षमा जाप समाधि पूजा नमो देव निरंजनम् ॥ २ ॥
ॐ अखंड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ ३ ॥
परम गुरवे नमः परात्पर गुरवे नमः
परमात्म गुरवे नमः, आत्मा गुरवे नमः
आदि गुरदेव अनादि गुरवे नमः
अनंत गुरदेव के चरणारविंद को नमो नमस्कारम् ॥ ४ ॥
हरत सकल संताप दुःष दालिद्र रोग पीड़ा कलह कल्पनां
सकल विघ्न खंड खंड तस्मै श्रीराम रक्षा निराकार वाणी
अनभै तत्त निर्भै मुक्ति जानी ॥ ५ ॥
बाँधिया मूल देखिया अस्थूल,
गगन गरजंत धुनि ध्यान लागा।
त्रिगुण रहित सील संतोष मैं,
श्रीरामरक्षा लिये ओंकार जागा ॥६॥
पंच तत्त पंचभूत पचीस प्रकृति,
पंच भू आत्मा पंच वाई।
सम दिष्टि सम घर आंणी प्राण अपान
उदान व्यान मिलि अनहद सब्द की षबर पाई ॥ ७ ॥

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भ्रमरगुफा 'भ्रमर' शब्द √भ्रम् धातु से 'करन्' प्रत्यय होने पर बना है, जिसका अर्थ है -- भौंरा, कामुकजन और कुम्हार की चाक[1] और √गुफ् धातु से निष्पन्न गुफा शब्द गुफित अथवा बुनी हुई अथवा बंधी हुई जगह का बोध कराता है। डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के मत में 'भवरगुफा' शब्द का सन्तों ने ब्रह्मरंध्र के अर्थ में प्रयोग किया है, जिस पर अन्यत्र सविस्तार लिखा जा चुका है।

'भ्रमर गुफा' शब्द का प्रयोग नानक ने 'प्राणसंगली' में निम्न प्रकार से किया है --

'भवरगुफा में डेरा करै। गुरुपरसादी जीवत मरै।'[2]

डा० राजदेव सिंह ने कहा है कि 'भवरगुफा' ब्रह्मरंध्र से भिन्न है, किन्तु यह कहा है, इसका स्पष्ट उल्लेख उन्हें कहीं नहीं मिल सका।[3] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि भवरगुफा में पहुंचने पर जीव का जन्मभाव नष्ट हो जाता है, परन्तु यहां भी उसे सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जब इस गुफा से ऊपर उठता है, तब उसे निराकार देश में सत्यपुरुष का साक्षात्कार होता है। आचार्य द्विवेदी ने भवरगुफा में स्थित बत्तीसदलों वाले श्वेत कमल को 'निजपद' कहा है।[4]

'प्राणसंगली' में इस 'भवरगुफा' में पहुंचने पर जीवन्मुक्त की स्थिति प्राप्त करने का उल्लेख तो है। कबीरादि संत भी इसी ओर संकेत करते प्रतीत होते हैं --

'ब्रह्मनाल के अंतरे, पश्चिम दिसा की बाट रे।
नीझर झरै रस पीजिये, तहां भवरगुफा के घाट रे॥'[5]

१- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० ।
२- प्राणसंगली, अध्याय २, पृ० १३।
३- हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, पृ० ५६६-५७०।
४- कबीर - आचार्य द्विवेदी, पृ० २६६।
५- कबीर ग्रंथावली, पद ४, पृ० ३३८।

...ना जाता है कि डा० प्रेम नारायण शुक्ल का मत कि 'भवरगुफा', 'शून्यगुफा' और 'गगनगुफा' आदि शब्द इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना इन तीनों नाड़ियों के मिलनस्थल त्रिकुटी का बोध कराता है, ही उचित है और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत भी इस बात की पुष्टि करता है।

'भवरगुफा' और उसके पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग निम्न प्रकार से मिलते हैं --

[१] गगनगुफा मे बैठ के दैरी जागण जोती।'[1]
[२] 'भवरगुफा में मगर लगायो, निन घुत जोती जारी है।'[2]
[३] 'भवरगुफा ब्रह्मंड मेखला, जोग जुगति लगि आई।'[3]

संत चरनदास भंवरगुफा के विषय में और भी स्पष्ट रूप से कहते हैं -

'भवरगुफा में है तिरबेनी, सुरति, निरति ले धावो।'[4]

इससे यह मत और भी पुष्ट हो जाता है कि 'भवरगुफा' त्रिकुटी ही है। विशेष के लिए 'त्रिकुटी' देखें।

संस्कृत के `वक्रनाल` शब्द का ही विकसित रूप `बकनाल` है।

बकनाल वक्र अर्थात् टेढी नाल। कमल आदि के डंठल-सी लंबी वस्तु का ही नाम `बकनाल` है। वक्र शब्द ध्वनि-समीकरण द्वारा वक्क बना और फिर क्षतिपूरक अनुस्वारागम और `क` ध्वनि का लोप होकर `बकनाल` शब्द बन गया। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मत से `बकनाल` शब्द त्रिकुटी और सहस्रदल के मध्य के छोटे मार्ग का वाचक है।[1] `हिन्दी साहित्य कोश` के अनुसार यह शंखिनी नाडी का बोधक है। डा० प्रेमनारायण शुक्ल के अनुसार `हठयोग मे मेरुदण्ड का जो कार्य है, वही ध्यानयोग मे बकनाल का है। बकनाल मूलाधार से जागृत होकर नाभि के वामपार्श्व से होकर हृदय और वक्ष स्थल का स्पर्श करती है तथा आज्ञाचक्र मे स्थित रुद्रग्रंथि मे समाविष्ट हो जाती है। यहा से ब्रह्मरंध्र मे होकर सिर की ओर जाकर पुन ब्रह्मरंध्र की ओर आती है। इस अवस्था मे इसका आकार अर्धवृत्ताकार कमलनाल की भाति होता है। अतएव इसे बकनाल कहते है। पुन यह भ्रमरगुफा मे प्रवेश कर जाती है। ध्यान-योग के प्रसंग मे सन्तो ने बकनाल का उल्लेख किया है --

`चंद सूर दुइ खंभवा, बकनाल की डोर।

-- कबीर ग्रंथावली, पृ० ८८।

कबीर ने सुषुम्ना के लिए बकनाल शब्द का प्रयोग किया है। दरिया साहब [बिहार वाले] भी बकनाल का वर्णन करते है --

`कोइल कुहुके अपने भाऊ, बकनाल बस नाभी ठाऊ।`

-- ज्ञानदीपक ५-३१

अकह कथ यह बंक नाल मे, पदुम फलाफल पावही।

--ज्ञानरत्न ५७-२।`[2]

बकनाल का कबीर ने और भी अधिक स्पष्ट उल्लेख किया है --

१- कबीरकोश, पृ० २६३।

२- संत-साहित्य - डा० प्रेमनारायण शुक्ल, पृ० १८७-१८८।

`बंकनालि के अंतरे, पश्चिम दिशा की बाट रे।

नीझर झरै रस पीजिये, तहा भंवरगुफा के घाट रे॥ [1]

इससे स्पष्ट होता है कि बकनाल अर्थात् सुषुम्ना की टेढी नाल के भीतर एक मार्ग है। इसी से होकर ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचा जाता है। इसी मार्ग की धारक टेढी नाल को बकनाल कहते है।

तीसरी अर्थ सुनौ मन लाई, होई अभाव 'न-मैं' जग भाई।
जब जानो ऐसे के लेखा, तब कहु इच्छा काको देखा।

—स्वरूपगीता, पृ० २०३ (दोहा ४८७ के बाद की चौपाइयाँ)

योग, दिव्यदृष्टि, अमरपुर

चलहु निज दरबार साधो ॥टेक॥
अस्लान निरंतर बैठा, आसन पदम सम्हार।
उन मुनि ध्यान नासिका अग्रे, तब गढ़ भीतर पसार ॥१॥
छव चक्र षोडशो खाई, दशों द्वार थानेदार।
चान्द सरासम करि सुखमन में, तब खोलो त्रिकुटी किनार ॥२॥
गंगा यमुना सरस्वती संगम है, भजन करो होई पार।
रंग रंग के वस्तु निरेखो, लीला अगम अपार ॥३॥
वृक्ष एक दृष्टि में आए, श्वेत चक्र फहराए।
ताहि चक्र पै नागिन दरसै, को छवि बरणो पार ॥४॥
अग्नि बिम्ब चक्र एक दरसे, मेरु दंड तेहि ठार।
कछु अमृत वहि सर्प चाखे, कछु होत जरि छार ॥५॥
ताहि दंड के फिर करिको, उर्द्ध के कमल उठाए।
अमृत आवत रोक जिह्वा पर, तब जीव लै लै उबार ॥६॥
तासो आगे अष्टांगी बासा, शून्य शिखर रखवार।
त्रिगुणी फाँस लिए कर डोले, विनय से खोलत किवार ॥७॥
शून्य शिखर का गुफा जोई, देख निरंजन पसार।
शून्य शहर में चौमुख मंदिर, तामें जोत अपार ॥८॥
ता जग मानसरोबर जानो, बिनु जल पवन हिलोर।
बिनु आकाश घेरत बादल, बिनु रवि शशि के अंजोर ॥९॥
ठन ठन ठन ठन ठनका ठनके, घहरि घहरि घहराये।
दम दम दम दम दामिनि दमके, लौके बिजुली उजियार ॥१०॥
हीरा रतन जवाहिर बरसे, झीँन मोतियाँ फुहियाये।
चन्द्रबदन सुखमनि का ऊपर, अनहद शोर झँझकार ॥११॥
बाजे ताल मृदंग बाँसुरी, शंख बेन सहनाए।
भेरी झाँझ, कलाल, सारंगी, नरमी तान सितार ॥१२॥
सोई शोर झंकोर उठत है को कवि वर्णा निहार।
ब्रह्मा, विष्णु महेश शेष सुर वर्णत शारद हार ॥१३॥
यह निरंजन माया देखि के, जो जो रहत रुझाये।
सो सो जन जब भूलि परले, पाए न अपनी पार ॥१४॥

या जग गुप्त कछु कै राखो, जाने सोई जन जान।
जोगेश्वर आपे आप में मिले, तब छूटे पसार ॥१५॥

—स्वरूपप्रकाश, प० सं० ६१

गंगा जंउना माँझे रे बहइ नाइ।
तहिं बुड़िली मातङ्गी पोइआ लीले पार करेइ।
बाहतु डोम्बी बाहलो डोम्बी बाटत भइल उछारा,
सद्गुरू पाअपसाएँ जाइब पुणु जिनउरा।।
पाञ्च केडुआल पड़न्ते माङ्गे पिठत काच्छी वान्धि।
गअण दुखोले सिञ्चहु पाणी न पइसइ सान्धि।।
चन्द सूज्ज दुइच का सिठि संहार पुलिन्दा।
वाम दहिण दुइ माग न चेवइ बाहतु छन्दा।।
कवड़ी न लेइ बोड़ी न लेइ सुच्छड़े पार करइ।
जो रथे चड़िला बाहवा न आइ कुलें कुलें बुड़इ।।[15]

अर्थात् गंगा और युमना के बीच में एक नौका तैर रही है। उसमें एक मातंगी बैठी हुई है जो लीलाभाव से पार उतार देती है। हे डोम्बी खेती चलो, मार्ग में देर हो रही है। सद्गुरु के उपदेश से हम पंचजिनपुर में शीघ्र पहुँच जाएंगे। यहाँ

गंगा–यमुना ललना तथा रसना नाड़ियों की प्रतीक हैं, मातंगी डोम्बी नैरात्मा का प्रतीक है और नौका सहजयान है। इस प्रकार हम देखते हैं चौरासी सिद्धों की जो रचनाएँ प्राप्त हुयी हैं, उनमें अनेक स्थानों पर इस गूढ़ भाषा–अभिव्यक्ति के माध्यम से योग–साधना की पद्धतियों पर प्रकाश डाला गया है। इन सिद्धों पर प्रभाव परवर्ती नाथों और संतों पर बहुत अधिक पड़ा है।

संतो ने इसी को 'सुषिम मार्ग' कहा है। जागृत कुंडलिनी इसी मार्ग में षट्चक्रों को भेदती हुई सहस्रार चक्र में स्थित परमतत्व का साक्षात्कार करती है

१- कबीर -- आचार्य ह० प्र० द्विवेदी, पृ० ५८ ।
२- हठयोग प्रदीपिका, २ ४० ।

और अमृततत्व प्राप्त करती है। वेद में सूर्य की जो किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करने वाली बतायी गयी है वह जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा के बीच स्थित होती है उसी प्रकार सुषुम्ना भी सूर्य नाडी और चन्द्रनाडी के बीच स्थित होती है। सम्भवत: इसीलिए इसे सुषुम्ना कहा गया है। संतों के काव्य में अनेकत्र इसके उदाहरण मिलेंगे जिनमें से कुछ निम्नांकित हैं --

'इंगला, पिंगला सुखमन सोधे, गगन मंडल मठ छावे।'[१]

कोई इंगला, पिंगला और सुषुम्ना को शोध कर गगन मंडल में पहुंचने की बात करता है तो कोई इनके त्रिकुटी में मिलने की बात कहता है --

'इडा पिंगला सुषुमना त्रिकुटी संधि मंझार।'[२]

इडा, पिंगला ऊपर पहुंचकर सुषुम्ना से किस प्रकार मिलती है, इसका वर्णन करते हुए सहजोबाई कहती है --

'इडा पिंगला ऊपर पहुंच, सुखमन पाट उघारा।'[३]

सुषुम्ना नाडी में कुंडलिनी का निवास है अत: संतों ने इसे अधिक महत्व दिया है --

'चंद सूर दुइ भाठी कीन्ही, सुखमनि चिगवा लागी रे।'[४]

धरनीदास सुषुम्ना के द्वारा नव नाडियों के निरीक्षण की बात कहते हैं --

'नव नारिन को द्वारा निरखो, सहज सुखमना नारी।'[५]

संतों ने सुषुम्ना की जागृति पर ही अधिक बल दिया है --

'अस चलत है सुखमना, चलत प्रेम की सीर।'[६]

और -- 'सुखमना पर बैठि आसन, सहज ध्यान लगाव।'[७]

१- धरमदास०, पृ० ४७ ।
२- दरिया [मारवाड], पृ० १ ।
३- सहजो०, पृ० ५१ ।
४- कबीर ग्रंथावली, पृ० ११० ।
५- धरनीदास, पृ० ५ ।
६- दरिया [मारवाड़ी], पृ० १४ ।
७- यारी० रत्ना०, पृ० ३ ।

सुखमनि।सुषुम्णा `सुषुम्ण + टाप् सुषुम्णा, शरीरस्थ तीन प्रधान नाड़ियो मे से एक का वाचक है जो इडा और पिंगला के बीच मे है।`[१] सुषुम्णा शब्द की निष्पत्ति सुषु म्ना + क से है, जो सूर्य की स मुख्य किरणो मे से एक का नाम है। यही कल्याण किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करती है। `सुषुम्णा` शब्द ही विकसित हो कर सुखमनि बन गया है। इसमे मूर्धन्य `ष` के स्थान पर ख वर्ण तथा `म्` के बाद `अ` स्वर का आगम और न् के बाद के `आ` के स्थान पर `इ` ध्वनियो का परि-वर्तन हुआ है। इस प्रकार सुखमनि शब्द सुषुम्णा या सुषुम्ना का अपभ्रष्ट व विकसित रूप है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार `सुषुम्णा शब्द का सबसे पुराना प्रयोग वेद मे मिलता है। वहा सूर्य की प्रमुख सात किरणो मे से एक का नाम सुषुम्णा बताया गया है। इसी किरण के द्वारा सूर्य चन्द्रमा को प्रकाशित करता है।`[२] किन्तु बाद मे योगियो, सिद्धो, नाथो और सन्तो के साहित्य मे सुषुम्ना या सुखमनि शब्द उक्त अर्थ से पृथक् शरीर के पष्ठमार्ग के मध्य मे स्थित मेरुदड के भीतर की तीन नाड़ियो मे से एक और प्रमुख नाडी का वाचक होकर ही प्रयुक्त हुआ है। इस नाडी के बायी ओर इडा नाडी है और दाहिनी ओर पिंगला नाडी है। बायी नाडी इडा नाक के बाये छेद मे सम्बद्ध है और इसकी सहायता से श्वसन क्रिया करने पर गर्म श्वास भीतर जाती है जबकि पिंगला के माध्यम से दाहिनी ओर से श्वसन क्रिया करने पर शीतल वायु भीतर जाती है। सामान्य स्थिति मे ये दोनो नाड़िया ही श्वास को चालित करती है। किन्तु सुषुम्ना सुप्तावस्था मे रहती है। सम्भवत इसीलिए इसे सुषुम्ना कहा भी जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ सुषुप्त या सोई हुई है। सामान्यतया सभी मनुष्यो की सुषुम्ना सुप्तावस्था मे रहती है और यौगिक साधना मे प्राणा-याम के द्वारा जहा समग्र नाड़ियो को उत्तेजित किया जाता है वही सुषुम्ना को जागृत किया जाता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार `मेरुदण्ड` मे

१- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० १२७५।
२- हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, पृ० ६२६।

प्राणवायु को वहन करने वाली कई नाड़िया है जिनमे से कुछ का आभास हम सांस लेते समय पाते है। जो नाडी बायी ओर है उसे इडा और जो दाहिनी ओर है उसे पिंगला कहते है। कबीर ने अनुप्रास मिलाने के लिए इनकी जोडी का नाम इंगला-पिंगला बना लिया था। असल मे सुषुम्ना के भीतर ही कई सूक्ष्म नाड़िया है। सुषुम्ना के भीतर वज्रा, उसके भीतर चित्रिणी और उसके भी भीतर ब्रह्मनाडी है, जो कुण्डलिनी शक्ति का असली मार्ग है। इस प्रकार सुषुम्ना वस्तुत तीन नाड़ियो का एकीभाव है। हिसाब से ईडा, पिंगला और ये तीन नाड़िया मिलकर पाच होती है। इसीलिए इनको `पचस्रोत` या `पाच धाराये` कहने की भी प्रथा है (कठ० ३-५२)। परन्तु व्यवहारत इडा, पिंगला और सुषुम्ना इन तीन नाड़ियो की ही चर्चा आती है। इन्ही तीन नाड़ियो को सिद्धाचार्यो ने ललना, रसना और अवधूती कहा है। अवधूती अर्थात् सुषुम्ना। क्योंकि, जैसाकि हठयोग प्रदीपिका मे कहा गया है -- वैसे तो शरीर मे ७२००० नाड़िया है पर एकमात्र सुषुम्ना ही शाम्भवी शक्ति है बाकी नाड़िया बेकार ही है। इंगला ही गंगा है, पिंगला ही जमुना है और सुषुम्ना ही सरस्वती है। इन तीनो का जहा संगम हुआ है वही त्रिवेणी संगम या प्रयाग है।`[१] इसी संगम स्थल को जहा ये तीनो नाड़िया मिलती है त्रिकुटी भी कहते है। सुषुम्ना के जागरण के बाद `इडा` और पिंगला के मार्ग से प्रवाहित होने वाला प्राणवायु सुषुम्ना से प्रवाहित होने लगता है। तभी मन स्थैर्य आता है। इसी स्थिति को संतो ने मनोन्मनी भी कहा है जिसका वर्णन `हठयोग प्रदीपिका` मे निम्न प्रकार है --

`मारुते मध्यसचारे मन स्थैर्य प्रजायते।
यो मन सुस्थिरीभाव सैवावस्था मनोन्मनी॥`[२]

कर जीव रूपी श्रृंगाल संसार में महान् आकर्षण रूपी सिंह से संघर्ष करता है। कबीर के अनुसार इस पद का अर्थ कुछ बिरले ही समझ सकते हैं।

इसी प्रकार लोक प्रचलित धारणा के विपरीत कबीरदास का कहना है कि—

समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोयला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई।।[28]

इसी प्रकार वज्रयानी सिद्ध कुक्कुरीपा ने कहा है—

दुलि दुहिपिटा धरण न जाअ।
रूखेर तेन्तलि कुंभीरे खाअ।।[29]

कबीर के उक्त दोहे में समुद्र शरीर का प्रतीक है, आग—ज्ञान—विरह का प्रतीक है, नदियाँ—सांसारिक वासनाओं की प्रतीक हैं, मछली कुण्डलिनी नाड़ी का प्रतीक है, और वृक्ष ब्रह्मरंध्र का प्रतीक है। यौगिक साधना में जब साधक अग्रसर होता है तब उसके शरीर के अन्दर विरह—ज्वाला उत्पन्न होती है जिसमें सारी इंद्रियाँ जल कर निष्क्रिय हो जाती हैं और क्रमशः कुण्डलिनी जागरित होकर ब्रह्मरंध्र में पहुँचकर ब्रह्मानंद का अनुभव करने लगती है।

कबीर ने अपनी अन्तर्मुखी हठयोग साधना के वर्णन में अधिकतर प्रतीकों का प्रयोग किया है। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं कि इन प्रतीकों पर वज्रयानी सिद्धों और नाथ योगियों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। हाँ, इतना अवश्य है कि कबीर ने कुछ नए प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। योग—साधना में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, कुण्डलिनी, षट्चक्र, ब्रह्मरंध्र, सहजामृत आदि का महत्व सर्वाधिक है। इन्हीं के लिए स्थान—स्थान पर प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। जैसे—

सूर समांणो चन्द में, दुहूँ किया घर एक।
मनका च्यंता तब भया, कछू पूरबला लेख।।[30]

यहाँ सूर और चन्द्र क्रमशः इड़ा और पिंगला नाड़ियों के प्रतीक हैं। घर एक सुषुम्ना नाड़ी का प्रतीक हैं। इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ जब सुषुम्ना में विलीन हो जाती हैं तब मन का वांछित फल प्राप्त होता है।

प्रस्तुत की गयी हैं। परन्तु इन प्रतीकों को समझे बिना इन जटिल क्रियाओं को समझ पाना आसान नहीं है। इस जटिलता के संबंध में गोरखनाथ ने कहा है–

उलटिया पवन षट्चक्र बेधिया, तातै लोहै सोषिया पांणीं।

चन्द्र सूर दोऊ निज घरि राख्या, ऐसा अलख बिनांणीं।।[24]

यहाँ पर 'तातै लोहा' का शाब्दिक अर्थ है तप्त लोहा और आध्यात्मिक अर्थ है ब्रह्मरंध्र। चन्द्र इड़ा का प्रतीक है, सूर पिंगला का और घर सुषुम्ना कर। योगी अलख निरंजन तत्त्व का मर्मज्ञ होता है। उसे अलख विज्ञानी भी कहा जाता है। वह प्राणवायु का विरोध करता है। प्राणायाम के द्वारा नाड़ियों का शोधन करता है, और प्राणवायु को ऊर्ध्वगामी बनाता है, प्राणवायु जब निरूद्ध होकर सुषुम्ना के द्वारा ब्रह्मरंध्र में यथाक्रम उत्थित होती है, तब शरीर में स्थित षट्चक्र, मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र और आज्ञा चक्र का भेदन होता हैं और इड़ा तथा पिंगला नाड़ियाँ सुषुम्ना में स्थित हो जाती हैं। मूलाधार स्थित सूर्य ब्रह्मरंध्र से द्रवित चन्द्रामृत द्रव का शोषण नहीं कर पाता तथा योगी परमशिव में सायुज्य प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार नाथ पंथियों ने अपनी योग–साधना को अत्यन्त गूढ़ और रहस्यात्मक बना दिया है जो सर्वसाधारण की समझ से परे है।–

इड़ा आराधिये प्यंगुला प्रमोधिये।
सुषमनां सोधि उभै थीरं।।
सहस्र दल साधिए, अलष अराधिए।
रूधिर पलटि फिरि पीर नीरं।।
पवन कूँ प्रेरिबा, पछिम दिसि फेरिबा।
अपानं प्रांण कौं उलटि मेलै।।
नाद गगनैं बहै ब्यंद अस्थिर रहै।
जोग करि, जनम नहीं गमै हेलै।।[25]

इससे स्पष्ट होता है कि नाथ पंथियों ने नाड़ी साधना पर विशेष बल दिया है। इसी की सिद्धि करने पर ही योगी को गगन में स्थित ब्रह्मानन्द की अनुभूति होती है और गमनागमन से छुटकारा मिलता है।

नाथ पंथियों के साहित्य में और विशेषरूप से गोरखनाथ की बानियों में प्रतीकों और उलटबाँसियों का प्रचुर भण्डार पड़ा हुआ है। इन नाथपंथी योगियों ने अपने बहुत सारे प्रतीक 'तंत्र साहित्य' और 'हठयोग प्रदीपिका' से लिए हैं और कुछ वज्रयानी सिद्धों से। नाथ–साहित्य में प्रतीक प्रायः पारिभाषिक प्रतीक हैं, जिन पर 'हठयोग प्रदीपिका' का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। 'हठयोग प्रदीपिका' में इड़ा, पिंगला और कुण्डलिनी नाड़ियों की व्याख्या इस प्रकार की गयी है–

इड़ा भगवती गंगा, पिंगला युमना नदी।
इड़ा पिंगलयोर्मध्ये, बालरंड़ा च कुंडली।।[17]

संभवतः गोरखनाथ ने इसी आधार पर इड़ा, पिंगला और कुंडलिनी के प्रतीकों को इसी रूप में प्रस्तुत किया है–

अहंकार तूटिबा निराकार फूटिबा, सोषीला गंग जमन का पानी।।
चन्द सूरज दोऊ सनमुषि राषिला, कहो हो अवधूत तहां की सहिनाणी।।[18]

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त परमात्मा जीवात्मा के शरीर के भीतर स्वभावतः विद्यमान है, पर जीवात्मा की यह स्वीकृति कि मैं देह हूँ– अहंकार के रूप में परिणत होकर उसे परमात्मा में अपनी भिन्न सत्ता की प्रतीति के लिए विवश करती है। इस अहंकार का विनाश होने पर शरीर में व्याप्त परमब्रह्म, अलख निरंजन, निराकार परमात्मा प्रकाशित अथवा अभिव्यक्त हो उठता है, इड़ा (चन्द्र नाड़ी) और पिंगला (सूर्य नाड़ी) का प्राणायाम के द्वारा सुषुम्ना की मध्यवर्तिनी ब्रह्मनाड़ी में विलय अथवा संगम कर कुण्डलिनी को ब्रह्मरंध्र, सहस्रार के अभिमुख कर उसे शिव के योग से सम्मिलन से पूर्ण प्रबुद्ध कर देने से योगी को सहज सिद्धि पद कैवल्य की अनुभूति हो जाती है। मूलाधार–स्थित सूर्य सहस्रार–स्थित कमलयोनि से द्रवित चन्द्र द्रव, चन्द्रामृत का शोषण करता है। योगी इस सूर्य को चन्द्रामृत का पान करने से संरुद्ध करता है। विपरीतकारिणी मुद्रा के द्वारा नाभि में स्थित सूर्य को ऊर्ध्वमुखी करता है और तालुमूल में स्थित चन्द्र को अधोमुखी कर स्वयं अमृत का पान कर जन्म और मरण से शरीर की रक्षा करता है। इस प्रक्रिया के द्वारा अवधूत परमब्रह्म शून्यस्थ अखिल–निरंजन परमात्मा की प्रत्यक्षानुभूति में

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते॥ ३॥

प्राणम्=(जो) प्राणको; **ऊर्ध्वम्**=ऊपरकी ओर; **उन्नयति**=उठाता है (और); **अपानम्**=अपानको; **प्रत्यक् अस्यति**=नीचे ढकेलता है; **मध्ये**=शरीरके मध्य (हृदय)-में; **आसीनम्**=बैठे हुए (उस); **वामनम्**=सर्वश्रेष्ठ भजनेयोग्य परमात्माकी; **विश्वे देवाः**=सभी देवता; **उपासते**=उपासना करते हैं॥ ३॥

व्याख्या—शरीरमें नियमितरूपसे अनवरत प्राण-अपानादिकी क्रिया हो रही है; इन जड पदार्थोंमें जो क्रियाशीलता आ रही है, वह उन परमात्माकी शक्ति और प्रेरणासे ही आ रही है। वे ही मानव-हृदयमें राजाकी भाँति विराजित रहकर प्राणको ऊपरकी ओर चढ़ा रहे हैं और अपानको नीचेकी ओर ढकेल रहे हैं। इस प्रकार शरीरके अंदर होनेवाले सारे व्यापारोंका सुचारुरूपसे सम्पादन कर रहे हैं। उन हृदयस्थित परम भजनीय परब्रह्म पुरुषोत्तमकी सभी देवता उपासना कर रहे हैं—शरीरस्थित प्राण-मन-बुद्धि-इन्द्रियादिके सभी अधिष्ठातृ-देवता उन परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये उन्हींकी प्रेरणाके अनुसार नित्य सावधानीके साथ समस्त कार्योंका यथाविधि सम्पादन करते रहते हैं॥ ३॥

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते॥ एतद्वै तत्॥ ४॥

अस्य=इस; **शरीरस्थस्य**=शरीरमें स्थित; **विस्रंसमानस्य**=एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जानेवाले; **देहिनः**=जीवात्माके; **देहात्**=शरीरसे; **विमुच्यमानस्य**=निकल जानेपर; **अत्र**=यहाँ (इस शरीरमें); **किम् परिशिष्यते**=क्या शेष रहता है; **एतत् वै**=यही है; **तत्**=वह (परमात्मा, जिसके विषयमें तुमने पूछा था)॥ ४॥

व्याख्या—यह एक शरीरसे दूसरे शरीरमें गमन करनेके स्वभाववाला देही (जीवात्मा) जब इस वर्तमान शरीरसे निकलकर चला जाता है और उसके साथ ही जब इन्द्रिय, प्राण आदि भी चले जाते हैं, तब इस मृत शरीरमें क्या बच रहता है? देखनेमें तो कुछ भी नहीं रहता; पर वह परब्रह्म परमेश्वर, जो सदा-सर्वदा समानभावसे सर्वत्र परिपूर्ण है, जो चेतन जीव तथा जड प्रकृति—सभीमें सदा व्याप्त है, वह रह जाता है। यही वह ब्रह्म है, जिसके सम्बन्धमें तुमने पूछा था॥ ४॥

सम्बन्ध—*अब निम्नाङ्कित दो मन्त्रोंमें यमराज नचिकेताके पूछे हुए तत्त्वको पुनः दूसरे प्रकारसे वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—*

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ॥ ५॥
हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम॥ ६॥

कश्चन=कोई भी; **मर्त्यः**=मरणधर्मा प्राणी; **न प्राणेन**=न तो प्राणसे (जीता है और); **न अपानेन**=न अपानसे (ही); **जीवति**=जीता है; **तु**=किंतु; **यस्मिन्**=जिसमें; **एतौ उपाश्रितौ**=(प्राण और अपान) ये दोनों आश्रय पाये हुए हैं; **इतरेण**=(ऐसे किसी) दूसरेसे ही; **जीवन्ति**=(सब) जीते हैं; **गौतम**=हे गौतमवंशीय!; **गुह्यम् सनातनम्**=(वह)

दुरोणसत् है; जो मनुष्योंमें है, उनसे श्रेष्ठ देवताओंमें है, वेदोंमें ऋत या सत्यरूप है, महान् प्रकृतिमें या व्योममें है, जलसे उत्पन्न मत्स्यादिमें है, पृथ्वीसे उत्पन्न वृक्ष-अन्नादिमें है, पर्वतोंसे उत्पन्न नदी आदिमें है; जो मुक्त पुरुषोंमें है (मुक्तोंको 'ऋता' कहते हैं); उनमें रहकर जो उनका नियन्त्रण करता है, वह ऋतजः है), और परम सत्य है तथा सब गुणोंमें सर्वश्रेष्ठ है।

(२) जो गमन करनेवाला है, आकाशमें चलनेवाला सूर्य है, अन्तरिक्षमें व्याप्त वायु है, पृथ्वीमें रहनेवाला होता—अग्नि है, कलशमें स्थित सोम है, घरोंमें रहनेवाला ब्राह्मण अतिथि है, मनुष्योंमें गमन करनेवाला, देवताओंमें जानेवाला, यज्ञ या सत्यमें निवास करनेवाला, आकाशमें चलनेवाला, जलमें शंख-सीपी आदि रूपोंमें उत्पन्न होनेवाला, पृथ्वीमें अन्नादिरूपसे उत्पन्न होनेवाला, यज्ञाङ्गरूपसे उत्पन्न होनेवाला, पर्वतोंसे नदी आदिके रूपमें उत्पन्न होनेवाला, सत्यस्वरूप और महान् है अर्थात् जगत्का एकमात्र सर्वव्यापक आत्मा है।

06:05
2015.269221.Sant-Kavi...

सहस्त्रार इसे महासुख कहते हैं। इस महासुख की उपलब्धि उर्ध्व उष्णीषाब्ज कमल में प्राप्त होती है। वास्तव में तंत्रशास्त्र, हठयोग और सुरतिशब्द योग में उल्लिखित सहस्त्रार चक्र ही उष्णीषाब्ज कमल है।[1] सहजयानी इड़ा को ललना तथा पिंगला को रसना के नाम से पुकारते हैं। उनके मत में गुरु की कृपा से ललना और रसना अपने मध्य में स्थित अवधूती से मिलती है। जिसका मार्ग सदा बन्द रहता है। ललना तथा रसना दोनों अवधूती के अशुद्ध रूप हैं। अवधूती से मिलकर ये शुद्ध हो जाती है। ललना तथा रसना दोनों अवधूती से मिलकर शून्य अथवा परमानन्द की गति को प्राप्त कर लेती है।[2] इसी अवधूती का शून्य मस्तक में मिलना संत मत सुरति योग है। सहजयानी अवधूती या सुषुम्ना को डोम्बी या डोमिन भी कहते हैं। वास्तव में मूल नाड़ी (सुषुम्ना) जब कुण्डलिनी अपनी अशुद्धियों का परित्याग कर देती है तभी उसे डोम्बी कहते हैं। कुछ लोग डोम्बी अथवा डोमिन को कान्हपाद की पत्नी की संज्ञा देते हैं लेकिन यह वास्तविकता से परे है। इसके नाम - अवधूती, चाण्डाली, डोम्बी अथवा बंगाली है। यह अपनी प्रारम्भिक अवस्था में भले ही अशुद्ध रही हो, परन्तु इस नाड़ी में घुसने के पश्चात् शुद्ध हो जाती है।[3]

संत मत में सुरति निरति योग का बहुत ही व्यापक प्रचार एवं प्रसार हुआ। वास्तव में यदि कहा जाय कि संत साधना पद्धति की सुरति-निरति रीढ़ बन गयी तो अतिशयोक्ति नहीं। सगुण विचारधारा के अनेक संतों ने भी

---

[1] डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर साधना और साहित्य, पृष्ठ संख्या-४७ (१९७६)।

[2] वही, पृष्ठ संख्या-४४।

[3] वही, पृष्ठ संख्या-४६।

प्रतीकों के रूप में कल्पित किये जाते हैं। इसके साथ ही साथ लोक प्रचलित उक्तियों का प्रयोग नाथों और संतों की रचनाओं में प्राप्त है। दरिया साहब ने भी लोक प्रचलित लोकोक्तियों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है–

'अपने ब्राह्मण बिस्नौ होई, घर में साकत मेहरी सोई।
मांसु खाय संग सूते जाई, वाके मुख चुम्बन गहि लाई।।'

कबीरदास ने भी लोक प्रचलित लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। जैसे–

'उल्टी गंगा जुमन मिलावे।'[27]
'गंगा जुमन मिलि सिखर पाइ।'[28]

इसी प्रकार दरिया साहब ने भी कहा कि–

ढ़रकल धीव पहित में परि गईले, सुधरल काज हमारोजी।।
तुहुँ घरुवारीन खसम पियारी, काम जानि करसि बेकारी।।
पलंग बिछाई सेज बन्द लाई, फूलन हार सवाँरो जी।।
जुग जुग सेन्दुरा मईली नहीं होई हैं, जब सत् मिलल भतारो जी।।[29]

अवधू ऐसो ज्ञान समोई।
जो कोई गुरू ज्ञानी होखे, सो यह पदहिं विलोई।।
सिंह सियारे प्रीति भई है, दादुल सर्प सहाई।।
सुगना पोसि बिल्ली घर राखे, यह अचरज बड़ भाई।।
छागर एक साधु ने खाया, ब्राह्मण खाया गाई।।
चरूई के भात चुल्ही ने खाया, दाल जो हँसी उड़ाई।।
पर्वत डूबे भूमि न भींजे, कादो बकुला खाई।।
मच्छा कूदि छप्पर पर बैठे, अगिनि चली बढ़ि आई।।
सुमेर सुई में जाय समाने, वाके कुछ नहिं संका।।
नदी सुखानी प्यास ओरानी, टूटि गया गढ़ बंका।।
जो यह बूझे परम पद पावे, पर्वत गौ बिहराई।।
कहे 'दरिया' गुन टूटि परा है, तीर लगे तब जाई।।[30]

21:23
Upanishad_Ank_Gitapre...

आदिसे टकराकर नाना प्रकारके कष्ट भोगता है, वैसे ही उस मूर्खको भी पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि विविध दु:खपूर्ण योनियोंमें एवं नरकादिमें प्रवेश करके भोगोंको भोग करनेमें तथा उनके उपार्जनमें ही निरन्तर संलग्न रहकर मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट करता रहता है ॥ ८ ॥

सम्बन्ध—*वे लोग बारम्बार दु:खोंमें पड़कर भी चेतते क्यों नहीं, कल्याणके लिये चेष्टा क्यों नहीं करते, इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥ ९ ॥

बालाः=वे मूर्खलोग; **अविद्यायाम्**=उपासनारहित सकाम कर्मोंमें; **बहुधा**=बहुत प्रकारसे; **वर्तमानाः**=वर्तते हुए; **वयम्**=हम; **कृतार्थाः**=कृतार्थ हो गये; **इति अभिमन्यन्ति**=ऐसा अभिमान कर लेते हैं; **यत्**=क्योंकि; **कर्मिणः**=वे सकाम कर्म करनेवाले लोग; **रागात्**=विषयोंकी आसक्तिके कारण; **न प्रवेदयन्ति**=कल्याणके मार्गको नहीं जान पाते; **तेन**=इस कारण; **आतुराः**=बारम्बार दु:खसे आतुर हो; **क्षीणलोकाः**=पुण्योपार्जित लोकोंसे हटाये जाकर; **च्यवन्ते** [illegible] ॥ ९ ॥

व्याख्या—पूर्वमन्त्रमें कहे हुए प्रकारसे जो इस लोक और परलोकके भोगोंकी प्राप्तिके लिये सांसारिक उन्नतिके साधनरूप नाना प्रकारके सकाम कर्मोंमें ही बहुत प्रकारसे लगे रहते हैं, वे अविद्यामें निमग्न अज्ञानी मनुष्य समझते हैं कि 'हमने अपने कर्तव्यका पालन कर लिया।' उन सांसारिक कर्मोंमें लगे हुए मनुष्योंकी भोगोंमें अत्यन्त आसक्ति होती है, इस कारण वे सांसारिक उन्नतिके सिवा कल्याणकी ओर दृष्टि ही नहीं डालते। उन्हें इस बातका पता ही नहीं रहता कि परमानन्दके समुद्र कोई परमात्मा हैं और मनुष्य उन्हें पा सकता है। इसलिये वे उन परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये चेष्टा न करके बारम्बार दु:खी होते रहते हैं और पुण्यकर्मोंका फल पूरा होनेपर वे स्वर्गादि लोकोंसे नीचे गिर जाते हैं ॥ ९ ॥

सम्बन्ध—*ऊपर कही हुई बातको ही और भी स्पष्ट करते हैं—*

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ॥ १० ॥

इष्टापूर्तम्=इष्ट और पूर्त* (सकाम) कर्मोंको ही; **वरिष्ठम्**=श्रेष्ठ; **मन्यमानाः**=माननेवाले; **प्रमूढाः**=अत्यन्त मूर्खल[illegible]**न्यत्**=उससे भिन्न; **श्रेयः**=वास्तविक श्रेयको; **न वेदयन्ते**=नहीं जानते; **ते**=वे; **सुकृते**=पुण्यक[illegible] फलस्वरूप; [illegible]-स्वर्गके उच्चतम स्थानमें; **अनुभूत्वा**=(जाकर श्रेष्ठ कर्मोंके फलस्वरूप) वहाँ[illegible]गोंका अनुभव करके; **इमम् लोकम्** [illegible]लोकमें; **वा**=अथवा; **हीनतरम्**=इससे भी [illegible] योनियोंमें; **विशन्ति**=प्रवेश करते हैं ॥ १० ॥

व्याख्या—वे अतिशय मूर्ख भोगासक्त मनुष्य इष्ट और पूर्तको अर्थात् वेद और स्मृति आदि शास्त्रोंमें सांसारिक सुखोंकी प्राप्तिके जितने भी साधन बताये गये हैं, उन्हींको सर्वश्रेष्ठ कल्याण-साधन मानते हैं। इसलिये उनसे भिन्न अर्थात् परमेश्वरका भजन, ध्यान और निष्कामभावसे कर्तव्यपालन करना एवं परम पुरुष परमात्माको जाननेके लिये तीव्र जिज्ञासापूर्वक चेष्टा करना आदि जितने भी परम कल्याणके साधन हैं, उन्हें वे नहीं जानते, उन कल्याण साधनोंकी ओर लक्ष्यतक नहीं करते। अतः वे अपने पुण्यकर्मोंके फलरूप स्वर्गलोकतकके सुखोंको भोगकर पुण्य क्षय होनेपर पुनः इस मनुष्यलोकमें अथवा इससे भी नीची शूकर-कूकर, कीट-पतङ्ग आदि योनियोंमें या रौरवादि घोर नरकोंमें चले जाते हैं। (गीता ९। २०-२१) ॥ १० ॥

सम्बन्ध—*ऊपर बतलाये हुए सांसारिक भोगोंसे विरक्त मनुष्योंके आचार-व्यवहार और उनके फलका वर्णन करते हैं—*

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ११ ॥

हि=किंतु; **ये**=जो; **अरण्ये [स्थिताः]**=वनमें रहनेवाले; **शान्ताः**=शान्त स्वभाववाले; **विद्वांसः**=विद्वान्; **भैक्ष्यचर्याम् चरन्तः**=तथा भिक्षाके लिये विचरनेवाले; **तपःश्रद्धे**=संयमरूप तप तथा श्रद्धाका; **उपवसन्ति**=सेवन करते हैं; **ते**=वे; **विरजाः**=रजोगुणरहित; **सूर्यद्वारेण**=सूर्यके मार्गसे; **[तत्र] प्रयान्ति**=वहाँ चले जाते हैं; **यत्र हि**=जहाँपर; **सः**=वह; **अमृतः**=जन्म-मृत्युसे रहित; **अव्ययात्मा**=नित्य, अविनाशी; **पुरुषः**=परम पुरुष (रहता है) ॥ ११ ॥

व्याख्या—उपर्युक्त भोगासक्त मनुष्योंसे जो सर्वथा भिन्न हैं, मनुष्य-शरीरका महत्त्व समझ लेनेके कारण जिनके अन्तःकरणमें परमात्माका तत्त्व जाननेकी और परमेश्वरको प्राप्त करनेकी इच्छा जग उठी है, वे चाहे वनमें निवास करनेवाले वानप्रस्थ हों, शान्त स्वभाववाले विद्वान् सदाचारी गृहस्थ हों या भिक्षासे नि[illegible] ब्रह्मचारी अथवा संन्यासी हों, वे तो निर[illegible] श्रद्धाका ही सेवन किया करते हैं अर्थात् [illegible] वर्ण, आश्रम तथा परिस्थितिके अनुसार जि[illegible] कर्तव्य होता है, उसका शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार बिना

* [illegible]

के आधार पर उलटबाँसियों की रचना की है। अन्तर्मुखी साधना का सजीव वर्णन करते हुए कबीरदास ने कहा है–

उलटि देखो घट में ज्योति पसार।

बिन बाजे तह धुनि सब होवै विगति कमल कचनार।

पैठि पताल सूर ससि बाँधौं साधौ त्रिकुटी द्वार।।[9]

इसी प्रकार गोरखनाथ ने भी कहा है–

उलट्या पवनां गगन समाइ तब बाल रूप परतपि होई।

उदै ग्रहिं अस्त हेम ग्रहि पवन मेला, बंधिलै हस्तिप निज साल सेला।।[10]

अर्थात् शरीर को परिपक्व करने, नित्य तारूण्य, यौवन अथवा अमरकायत्व प्रदान करने का एकमात्र उपाय यह है कि प्राणवायु (पवन) को उलटकर अथवा प्रत्यावर्तित कर उसे सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा परमशिव के निवास–स्थान शून्य पद में सहस्रार अथावा ब्रह्मरंघ्र में स्थापित कर दिया जाय। इससे वहाँ से द्रवित चन्द्रमा मृत का पान करने से शरीर परिपक्व हो जाता है, उसमें जरा–मृत्यु का भय नहीं रह जाता है। बालरूप नव–शरीर की प्राप्ति होती है। ब्रह्म रंध्र के, सहस्रार दल कमल के मूल में योनि नामक त्रिकोण चक्र है, वही चन्द्रमा का स्थान है। इसी से सर्वदा अमृत की वर्षा होती है। मूलाधार उदय के घर में सूर्य को अस्त कर देना चाहिए, उसका प्रभाव निर्मूल कर देना चाहिए, जिसमें वह ऊर्ध्वमुख होकर चन्द्रामृत (प्राणामृत) का शोषण न कर सके। और इसी तरह चन्द्रमा के निवास–स्थान ब्रह्मरंध्र में पवन को अधोमुख होने से उलटकर सुषुम्ना नाड़ी में संचारित कर प्राणामृत का, चन्द्रामृत द्रव का निरन्तर पान करना चाहिए। पवन अथवा प्राण के संयमित होने से मनरूपी मतंग योगी के वश में हो जाता है, उसकी अस्थिरता का अन्त हो जाता है, मन अपने स्थान पर आ जाता है और योगी अपनी योग साधना में सिद्धि प्राप्त करता है।

दरिया साहब ने ब्रह्मानुभूति, के संबंध में कहा है–

बाह बोल सतगुर कनहरिया। खेइ उतारहिं कहर है दरिया।।

दरिया वारे पारे अहई। दरिया बीच जगत यह अहई।।

अरध उरध की गंगा जमुना मूल कंवल कौं घार ।
षटचक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट ।।[1]
[कबीर] गंग जमुन के अन्तरे सहज सुंन के घाट ।[2]

चन्द्र तथा सूर्य के मिलन को सिद्धों ने वीणा और कुण्डल के

1· कबीर ग्रन्थावली, पृ0 90
2· संत कबीर, सलोक 152, पृ0 270

प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया है । कबीर ने वीणा का रूपक इस प्रकार बांधा है -

चन्द सूर दोउ सुधा करिहूं चित चेतन की डांडी ।
सुषमन तन्ती बाजण लागी इह विधि तृष्णा खांडी ।।[1]

कबीर ने चन्द्र और सूर्य के संगम का एक स्थान पर उलटबांसी की शैली में चित्रण किया है -

जंह धरनि बरसै गगन भीजै चन्द सूरज मेल ।
दोउ मिलि तहं जुरन लागे करै हंसा केलि ।।[2]

नाथ पंथ की भांति सन्तों ने भी कुण्डलिनी को सांपिनी, नागिन, गोरी, मछली आदि प्रतीकों से अभिव्यक्त किया है । सन्तों ने साधना के लिए नारी की सर्वथा उपेक्षा की है । उन्होंने नारी को नागिन, नरक, माया, डाइन[3] आदि प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया है। सन्तों ने नारी के साथ-साथ सास-ससुर का भी प्रतीकात्मक प्रयोग किया है । उन्होंने नाथों की भांति सास-ससुर का प्रतीकात्मक वर्णन प्राण अपान तथा सुरति और शब्द के रूप में किया है ।

इस प्रकार सिद्ध नाथों के साधनात्मक प्रतीकों का सन्त साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है ।

1· कबीर ग्रन्थावली पृ0 154
2· वही, पृ0 183
3· वही0 पृ0 39-40, 130 दादू बानी 1, पृ0 115, 116, 124

11:08

'ज्ञानभूमिः शुभेच्छास्यात्प्रथमा समुदीरिता ।
विचारणा द्वितीया तु, तृतीया तनुमानसा ।
सत्वापत्तिश्चतुर्थी स्याततोऽसंसक्तिनामिका ।
पदार्थभावना षष्ठी सप्तमी तुर्यगास्मृता ॥'

'तुरीयगा' का स्वरूप क्या है?

यत्र नासन्त सद्रूपो, नाहं नाप्य न हंकृतिः ।
केवलं क्षीणमनन आस्तेऽद्वैतेडित निर्भयः ॥

अन्तः शून्यो बहिः शून्यः शून्य कुंभइवाम्बरे ।
अन्तः पूर्णो बहिः पूर्णः पूर्ण कुंभ इवार्णवे ॥ १८ ॥

मा भव ग्राह्यभावात्मा ग्राहकात्मा च मा भव ।
भावना मखिलां त्यक्त्वा यच्छिष्टं तन्मयो भव ॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह ।
दर्शन प्रथमाभासमात्मानं केवल भज ॥[१]

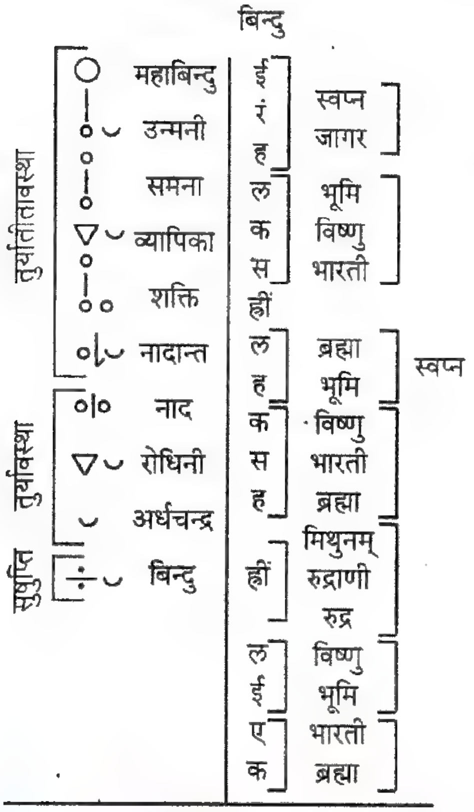

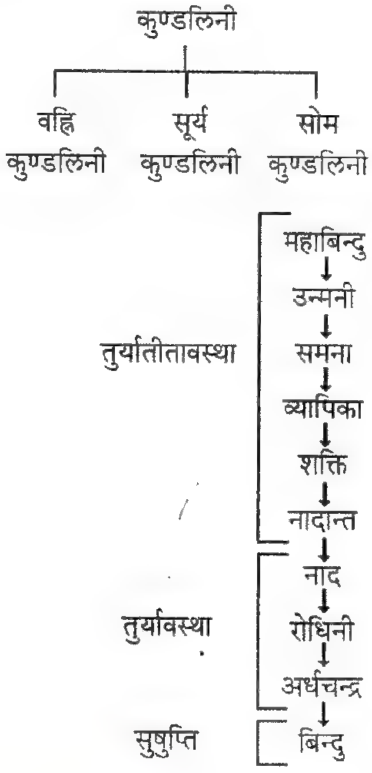

१. वराहोपनिषद

Invest 1 Day Withdraw
₹800 ₹75,983

07:20

चक्र भेदन के सम्बन्ध में रविदास जी ने अधिक नहीं कहा है। उनकी वाणी में इस सन्दर्भ में बहुत कम वर्णन मिलता है। फिर भी इतना स्पष्ट है कि इन्होंने योग साधना की उक्त पद्धति को अपनाया और षट्चक्र भेदन पद्धति के द्वारा ही ध्यान और समाधि का अनुभव प्राप्त किया। षट्चक्र भेदन की क्रिया समाधि तक पहुंचने हेतु एक सोपान है। जब साधक अपने लक्ष्य को पा जाता है, तो ये क्रियाएं स्वत: ही छूट जातीं हैं अर्थात् इनकी आवश्यकता ही नहीं रहती।

इस सन्दर्भ में रविदास जी का कथन है -

इड़ा पिंगला सुषुम्णा विधा चक्र प्राणायाम।
"रविदास" हौं सबहि छाड़ियौं, जबौं पाइहु सतनाम ।।[1]

अर्थात् प्राणायाम द्वारा षट्चक्र भेदन तथा इड़ा, पिंगला तथा सुषम्णा आदि नाड़ियों से सम्बन्धित साधनाओं को मैंने तब से छोड़ दिया है जब से मुझे सतनाम की प्राप्ति हुई है।

चक्र भेदन सम्बन्धी थोड़ा-बहुत और भी विवरण इनकी वाणी में उपलब्ध होता है, जो अधो लिखित है।

गगन मण्डल में आरति कीजै, नाद बिन्द इक मेक करीजै।
सुम्मन इन्दु अमृत कुंभ धरावै, मनसा माला फूल चढावै।।
धीव अखण्डा सोहै बाती, त्रिकुटी जोत जलै दिन राति।
पवन साधना थाल सजीजै, तामें चौमुख मन धरि लीजै।।
रवि ससि हाथ राहो तिहं माहीं, षिन दाहिने षिन बामें लाहीं।
सहस कंवल सिंघासन राजै, अनहद झांजन नित ही बाजै।।
इह विधि आरति सांची सेवा, परम पुरिष अलख अभेवा।
कहै रैदास गुरदेव बतावै, ऐसी आरति पार लगावै।।[2]

---

1. रविदास दर्शन : आ॰ पृथ्वी सिंह आजाद, पृ॰ 37 में उद्धृत।
2. सन्त गुरु रविदास वाणी : डा॰ बी॰पी॰ शर्मा : सूर्य प्रकाशन नई दिल्ली, पृ॰ 138-39 में उद्धृत।

॥ ४९ ॥

रथ को चतुर चलावन हारो ।
खिन हाँकै खिन उभटै[7] राखै, नहीं आन को सारो ॥टेक॥
जब रथ थकै सारथी थाकै, तब को रथहि चलावै ।
नाद विंद ये सबही थाके, मन मंगल नहिँ गावै ॥१॥

१ बसी लगाने वाला, मछली मारने वाला। २ पराई स्त्री। ३ लुभाय कर। ४ एक मीठे फल का नाम। ५ नीम का फल, जो कड़वा होता है। ६ वह डोम के तुल्य है। ७ दूसरी लीक पर।

पाँच तत्त को यह रथ साज्यो, अरधै उरध निवासा ।
चरन कमल लव लाइ रह्यो है, गुन गावै रैदासा ॥२॥

॥ ५० ॥

जो तुम तोरो राम मैं नहिँ तोरौँ ।
तुम से तोरि कवन से जोरौँ ॥टेक॥
तीरथ बरत न करौँ अँदेसा ।
तुम्हरे चरन कमलं क भरोसा ॥१॥
जहँ जहँ जाओँ तुम्हरी पूजा ।
तुम सा देव और नहिँ दूजा ॥२॥
मैं अपनो मन हरि से जोर्यों ।
हरि से जोरि सबन से तोर्यों ॥३॥
सबही पहर तुम्हारी आसा ।
मन क्रम बचन कहै रैदासा ॥४॥

॥ ५१ ॥

केहि बिधि अब सुमिरौँ रे, अति दुर्लभ दीनदया
मैं महा बिषई अधिक आतुर, कामना की झाल ॥टेक॥
कहा बाहर डिंभ कीये, हरि कनक कसौटीहार ।
बाहर भीतर साखि तूँ, म कियौ ससौ* अँधियार ॥१॥
कहा भयो बहु पाखँड कीये, हरि हृदय सपने न जान ।
जो दारा बिभिचारिनी, मुख पतिब्रत जिय आन ॥२॥
मैं हृदय हारि बैठ्यौं हरी, मो पै सर्यो न एको काज ।
भाव भगति रैदास दे, प्रतिपाल करि मोहिँ आज ॥३॥

॥ ५२ ॥

माधवे नो कहियत भ्रम ऐसा । तुम कहियत होहु न जैसा ॥टेक॥
नरपति एक सेज सुख सूता, सपने भयो भिखारी ।
आछत राज बहुत दुख पायो, सो गति भई हमारी ॥१॥

* चद्रमा ।

जाति भी ओछी जनम भी ओछा, ओछा करम हमारा ।
हम रैदास रामराई को, कह रैदास विचारा ॥३॥

॥ ३९ ॥

माधो अविद्या हित कीन्ह,
तां ते मैं तोर नाम न लीन्ह ॥टेक॥
मृग मीन भृंग पतंग कुंजर, एक दोस विनास ।
पंच व्याधि असाधि यह तन, कौन ता की आस[१] ॥१॥
जल थल जीव जहाँ तहाँ लों, करम न या सन जाई ।
मोह पासी[२] अबंध बंध्यो, करिये कौन उपाई ॥२॥
त्रिगुन जोनि अचेत भ्रम भरमे, पाप पुन्न न सोच ।
मानुखा औतार दुरलभ, तहूँ संकट पोच ॥३॥
रैदास उदास मन भौ, जप न तप गुन ज्ञान ।
भगत जन भवहरन कहिये, ऐसे परमनिधान ॥४॥

॥ ४० ॥

देहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधू है मतवाला ॥टेक॥
हे रे कलाली तैं क्या किया, सिरका सा तैं प्याला दिया ॥१
कहै कलाली प्याला देऊँ, पीवनहारे का सिर लेऊँ ॥२॥
चंद सूर दोउ सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई ॥३॥
सहज सुन्न में भाठी सरवे, पावै रैदास गुरुमुख दरवे ॥४॥

॥ ४१ ॥

भाई रे सहज बंदो लोई, बिन सहज सिद्धि न होई ।
लौलीन मन जो जानिये, तब कीट भृंगी होई ॥टेक॥
आपा पर चीन्हे नहीं रे, और को उपदेस ।
कहाँ ते तुम आयो रे भाई, जाहुगे किस देस ॥१॥

---

१ हिरन, मछली, भौंरा, पतगा, हाथो, इन का एक एक इन्द्री के वेग से
होता है तो तन जोकि पाँचों इंद्रियों के वशीभूत है उसका क्या ठिकाना ? २ फाँ

स्व० प्र० पद-सं०, ६६

चलु मन देसवा अमरपुर हो, जहाँ बसे दिलदार ॥टेक॥
पाँच पचिस पेन्हु चोलिया हो, साड़ी सुरति सम्हार।
नेकी काजल करु नैना हो, सेन्दुर सव्य लिलार ॥१॥
चित्त चंचल के टिकुलवा हो, करि लेहु झलकार।
बुद्धि के पाँव पैजनियाँ हो, बिछिया झँझकार ॥२॥
अँगे अँगे ज्ञान गहनमा हो, करु साज श्रृंगार।

धरि लेहु सुखमन बटिया हो, चलहु दरबार ॥३॥
ऊँची अटरिया साहबजी के हो, झिहर झिहर बहत बयार।
उगेला अँजोरिया जगमग हो, चलि करहु बहार ॥४॥
रूप पुरुष का बरनौं हो, जोति अपरम्पार।
कोटि दिवाकर सोभा हो, एक रोम उजियार ॥५॥

—स्व० प्रकाश, पद सं० ८६

साधु-सद्गुरु, सत्संग आत्मसंयम, कुसाधु-कुभक्त

त्यागु निज मोह कोह, दयादम योग जाप,
ध्यान न्यास त्यागो, पाठ पूजा अरु ज्ञान जो।
त्यागु सब देव अरु, सेवा किसी इष्टन की,
त्यागु पित्र प्रेम नेम, और अनजान जो ॥
त्यागु सकल तीर्थ वर्त और आचार जेतिक,
त्यागु क्षेत्र मन्दिर अरु नदिया स्नान जो।
कहता योगेश्वर ब्रह्माण्ड माँहि ऊँच नीच,
त्यागु त्यागु सकल सिद्ध का निज मान जो ॥

—स्व० गीता, कवित्त १, पृ० ११०

तीरथ बरत करि पूजा पाठ ध्यान धरि,
नेम वो आचार करि शुभ मग डोलिये।
सन्तन के सेवा सतसंग नित हेरि करि,
नाम के रटन करि, सत्य बोली बोलिये ॥
करि षट क्रिया दस मुद्रा के साधन तब,
गगन कपाट को झटाक दीन खोलिये।
ज्ञान वो विराग को विचार निसिबासर,
योगेश्वर अगुण गुण तुलासम तोलिये ॥

—स्व० गीता, छंद २५, पृ० १६२

लागि सोई विकल चित मोरा, कब देखिहौ मैं जाई।
सद्गुरु भेदि मोहि दर्शन दीन्हा, दिये भेद लखाई ॥१॥

—स्व० प्र०, पद-स० ५

सुनि निश्छल बैन गुरु हमरे, उठि पृष्ठ के ओट हुये तब ठारे।
वामे कर शीश पै राखि प्रभु, कर दाहिन लिखत पृष्ठ हमारे।
गुरु पूछत हैं हम काह लिखा, हम जानेउ ना कहि काह उपारे।
पीछे पगु एक हटाई गुरु, निज लात योगेश्वर पृष्ठहि मारे।

—स्व० गीता, पद-सं० ८८

(१०९)

संतो भगति न होइ रे, भगति न होइ।
जब लग तन मन सुध न होइ॥ टेक॥
भगति न होइ नाचै अरु गावै, भगति न होइ बहु तप कीन्हे।
भगति नहिं स्वामी अरु सेवक, परम तत नहिं चीन्हे॥१॥
भगति न मूंनि मण्डल घर माथें, भगति न कछु दिखलाए॥२॥
जहां जहां जीव आप बंधाये, ताहि कछु कहयो न जाई।
कहै 'रविदास' तबै सत पावे, आपा डारि समाई॥३॥

(११०)

संतो जन किंधु फिरै, तेरे घट मंह सिरजन हार॥ टेक॥
कस्तूरी मृग पास है रे, ढूंढत घास फिरै।
पाछे लागो काल पारधी, छिन मंह प्रान हरै॥१॥
इला पिंगला सुषमणा नारी, जा मैं चित न धरै।
सहस्त्रार मंह भंवर गुफा है, भंवरा गुंज करै॥२॥
दिल दरियाव हीरा लाल है, गुरमुख समझ परै।
मरजीवा की सैन विचारि, तउ हीरा हाथ परै॥३॥
कहि 'रविदास' समझि रे संतो, इहु पद है निरवान।
इहु रहसि कोउ खोजै बूझै सोउ है संत सुजान॥४॥

(१११)

संतो कुल पखी भगति इसी कलिजुग मैं, निपख विरला निरबहैसी।
आंणि पिछांणि हरिप मन हुलस्यौ, बिन पिछांणि मिलना मुरझासी॥१॥

21:40

HindiBook-ShriRaviDas...

358/388

(१०९)

संतो भगति न होइ रे, भगति न होइ।
जब लग तन मन सुध न होइ ॥ टेक ॥
भगति न होइ नाचै अरु गावैं, भगति न होइ बहु गुण कीन्हें।
भगति नहिं स्वामी अरु सेवक, परम तत नहिं चीन्हें ॥१॥
भगति न मूंडि मण्डल घर सोवें, भगति न काहू दिखलाए ॥२॥
जहां जहां जीव आप संधाने, ताहि कछु कहयो न जाई।
कहि 'रविदास' तबै मतु पावे, आपा उलटि समाई ॥३॥

(११०)

खोजत सिंधु फिरै, तर घट मंह सिरजन हार ॥ टेक ॥
कस्तूरी मिग पास है रे, ढूंढत घास फिरै।
पाछे लागो काल पारधी, छिन मंह प्रान हरै ॥१॥
इला पिंगला सुखमणा नारी, जा मैं चित न धरै।
सहस्त्रार मंह भंवर गुफा है, भंवरा गुंज करै ॥२॥
दिल दरियाव हीरा लाल है, गुरमुख समझ परै।
मरजीवा की सैन विचारै, तउ हीरा हाथ परै ॥३॥
कहि 'रविदास' समुझि रे संतो, इहु पद है निरवान।
इहु रहसि कोउ खोजै बूझै सोइ है सन्त सुजान ॥४॥

(१११)

संतो कुल परवी भगति हैमो कलिजुग मैं, निपट्ट बिरला निबहैगो।
जांणि पिछांणि हरि घन दुलम्यो, बिन पिछांणि मिलना मुश्कामी ॥१॥

जाति भी ओछी जनम भी ओछा, ओछा करम हमारा ।
हम रैदास रामराई को, कह रैदास विचारा ।।३।।

।। ३९ ।।

माधो अविद्या हित कीन्ह,
तां ते मैं तोर नाम न लीन्ह ।।टेक।।
मृग मीन भृंग पतंग कुंजर, एक दोस विनास ।
पंच व्याधि असाधि यह तन, कौन ता की आस[1] ।।१।।
जल थल जीव जहाँ तहाँ लौं, करम न या सन जाई ।
मोह पासी[2] अबंध बंध्यो, करिये कौन उपाई ।।२।।
त्रिगुन जोनि अचेत भ्रम भरमे, पाप पुन्न न सोच ।
मानुखा औतार दुरलभ, तहूँ संकट पोच ।।३।।
रैदास उदास मन भौ, जप न तप गुन ज्ञान ।
भगत जन भवहरन कहिये, ऐसे परमनिधान ।।४।।

।। ४० ।।

देहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधू है मतवाला ।।टेक।।
हे रे कलाली तैं क्या किया, सिरका सा तैं प्याला दिया ।।१।
कहै कलाली प्याला देऊँ, पीवनहारे का सिर लेऊँ ।।२।।
चंद सूर दोउ सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई ।।३।।
सहज सुन्न में भाठी सरवे, पावै रैदास गुरुमुख दरवे ।।४।।

।। ४१ ।।

भाई रे सहज बंदो लोई, बिन सहज सिद्धि न होई ।
लौलीन मन जो जानिये, तब कीट भृंगी होई ।।टेक।।
आपा पर चीन्हे नहीं रे, और को उपदेस ।
कहाँ ते तुम आयो रे भाई, जाहुगे किस देस ।।१।।

---

१ हिरन, मछली, भौंरा, पतगा, हाथी, इन का एक एक इंद्री के वेग से न होता है तो तन जोकि पाँचों इंद्रियों के वशीभूत है उसका क्या ठिकाना ? २ फाँस

Olymp Trade
INSTALL

15:31

Google Lens

Original | Translated

1964 योगी ने बिंदु को उदात्त किया

जो बीज को पीसकर खाता है, वह नहीं
जानता कि फसल अच्छी भाएगी; वह भिन्न है, जो
उसे (कुण्डलिनी
अग्नि में) भूनता है और शरीर में अवशोषित करता है.

454

उत्तरार्द्ध, बीज का भोजन नही बनाता है लेकिन
जन्म के बीज को वह समाप्त कर देता है

1965 शारीरिक बिन्दु का ब्रह्माडीय बिन्दु में विलय

ऊपर की ओर प्रवाहित होता हुआ, वह बिंदु जो प्राण
है, उसे दिव्य बिंदु में मिला
देता है, जो कि कपाल (सहस्रार) में स्थित "हंस" है,
वहीं, नादत में एक हो जाता है,
वह प्रकाशमान बिंदु शरीर में लीन हो जाता है।

1966 बिंदु को शरीर में समाहित कर अमर हो जाओ

हंस (ब्रह्माण्डीय) और प्राण (सूक्ष्म) - इस प्रकार सभी के
लिए दो बिन्दु हैं. जो इस बात
को जान लेते है और एक को
दूसरे में लीन कर लेते हैं हम
(ब्रह्माण्डीय) में प्राण (व्यक्ति) - वे आठ सिद्धियाँ
प्राप्त कर लेते हैं उनका शरीर
सोने के समान चमकने लगता
है; वे अमर हो जाते हैं।

1967 बिन्दु विजय का गुप्त मार्ग

पंचाक्षर की प्रथम ध्वनि 'सि' का उच्चारण करे.
प्राण के मौन विचार में 'ओम्' 'अ, उ, म'
के ध्वनि समूह में विलीन हो जाएं, इस प्रकार
पराशक्ति तक पहुचें
वास्तव में यही बिन्दु विजय का मार्ग है।
यह रहस्यपूर्ण रहस्य (उपदेश) है जिसे आप धारण करते हैं

1968 बिन्दु पर विजय प्राप्त कर शिव राज्य की प्राप्ति

यह रहस्यपूर्ण रहस्य
कोई नहीं है केवल यह
वह है, अन्य कुछ नही है
बिन्दु स्वर्ग की ओर चढता है
चौदह इन्द्रियाँ
(ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच, कर्मेन्द्रियाँ पाँच और अन्तःकरण चार)
इनकी क्रिया समाप्त
हो जाती है, तब ज्ञान होता है;

455

English ⇄ Hindi

Send to Translate Home | Select all | Liste

Are these results useful? Yes No

15:31

Google Lens

Original Translated

1959 कुण्डलिनी योग द्वारा बिंदु का उदात्तीकरण अमृत प्रवाह की ओर ले जाता
है

जब शरीर का बिन्दु इस प्रकार
नष्ट हो जाता है
(योग द्वारा) तो वह दिव्य बिन्दु में
परिवर्तित हो जाता है जब कुण्डलिनी की
अग्नि में शरीर का बिन्दु
नष्ट हो जाता है, तब अमृतमय जल
प्रवाहित होकर शरीर को भर देता है; तब शिवभोग
सचमुच अमृतमय मधुर होता है; और इस प्रकार अमृतमय
दिव्य जल में स्नान करके योगी दुर्लभ सिद्धियों
को प्राप्त करता है

1960 योग मार्ग में बिन्दु मुक्त नहीं होता है। मिलन में दो
शरीर एक हो सकते हैं, फिर भी यदि वह
बिन्दु उत्सर्जित नहीं करता है

वह मिलन ही योग मार्ग
है; वह भोग ही शिव भोग है, वह
सच्चा भोग है, जहां
योगी मूर्ख स्त्री की
वासना को दबाने के लिए कुछ नहीं करता

1961 बिन्दु उत्सर्जित नहीं है
जो लोग योग मार्ग में स्थित
हैं, वे भले ही स्त्रियों के साथ संयुक्त
हों वे अपने काम-बिन्दु को उत्सर्जित नहीं
करते, और स्त्रियाँ अपने जीवन की वासना को अतृप्त ही रखती हुई
सचमुच तड़पती और मुरझाती रहेंगी
प्रेम के लिए अभी भी तड़पती
रहेंगी, जैसे कि ाए प्रेमी करते हैं।

1962 शारीरिक बिन्दु ब्रह्माडीय बिन्दु बन गया
कुण्डलिनी शक्ति द्वारा, बिन्दु पर विजय
प्राप्त करो: मूलाधार में उस अग्नि
को प्रज्वलित करो उसे मध्य नाड़ी
सुषुम्ना से होकर ऊपर की ओर सीधा
प्रवाहित करो नाद
तक पहुंचो, और वहां अमृत प्रवाहित करो,
तुम्हारा बिन्दु दिव्य बिन्दु बन जाता है

1963 बिंदु और नाडा का मिलन
जब बिंदु और नाद एक हो जाते है, और
कुडलिनी अग्नि प्रत्येक छोटे से छोटे रोम में व्याप्त
हो जाती है, तब सभी
विचार रहित होकर आप स्वय शिव
बन जाते है, और तब बिंदु दिव्य शरीर के आदि बिंदु में
विलीन हो जाता है

English ⇄ Hindi

→ Send to Translate Home   T Select all   Liste

Are these results useful?   Yes   No   ×

15:31

Google Lens

Original | Translated

1954 बिंदु पर विजय और समय पर विजय

जिसने बिन्दु को जीत लिया है, उसने काल को जीत लिया
है; जिसने बिन्दु को नष्ट कर दिया है, वह समय से पहले ही नष्ट
हो गया है; वे नहीं जानते कि समय में सुरक्षित रखा गया
बिन्दु कुण्डलिनी के साथ एक हो जाता है,
उनकी सास योगिक तरीके से नियंत्रित होती है।

1955 स्त्री को शुद्ध करने के बाद उसे गले लगाना

यदि तुम स्त्री के प्रेम की इच्छा रखते हो, जो
उत्तेजित करने के लिए तीव्र हो, तो सभोग करने से
एक दिन पहले स्त्री की आँतों, कफ और पित्त को साफ करो,
फिर संभाग में उसका आलिगन करो।

1956 योग के माध्यम से बिन्दु को शरीर में आत्मसात किया गया

प्राण को बिन्दु और नाद की ओर निर्देशित करो जो
कपाल क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं,
उपयुक्त उपकरणों द्वारा सुषुम्ना
नाडी के माध्यम से ऊपर की
ओर; इस प्रकार तुम दिव्य अमृत तक पहुँचते
हो; इसे धारण करो,
वह बिन्दु तुम्हारे अन्दर अविच्छिन्न रूप से विलीन हो जाता है

आपका भ्रम मिट जाए

1957 बिंदु पर विजय से नाडा की स्थापना हुई

बिन्दु का पकना, उस
पकने से होने वाले परिणाम, उसे
नष्ट करने के भयकर परिणाम, उसे बनाये
रखने से होने वाले लाभ, उसके
फलस्वरूप होने वाला नाद और
नाद द्वारा होने वाला परिवर्तन - जो इन सब को
समझ लेते हैं, उन्होंने वास्तव में
बिन्दु पर विजय प्राप्त कर ली है।

1958 बिंदु को कुण्डलिनी अग्नि में भूनना

वह बिन्दु जो बीज है, उसे
कुण्डलिनी अग्नि
में, जो मूलाधार से निकलती
है, प्रसन्नतापूर्वक जला दो, उसे
भीतर के सूर्यमण्डल में ऊपर की ओर ले जाओ और
उसके परे चन्द्रमण्डल को स्पर्श करो;
वहाँ वास्तव में दिव्य अमृत है।

English ⇄ Hindi

Send to Translate Home | Select all | Liste

Are these results useful? Yes No

15:31 Vo)) LTE1 4G

Google Lens

Original | Translated

1948 बिन्दु सरक्षण और सिद्धियाँ प्राप्त करना

यदि बिन्दु शरीर मे स्थित हो
तो जीवन नष्ट
नहीं होता, महान बल, ऊर्जा, सजग बुद्धि
तप, ध्यान, मौन और स्थायी सिद्धियाँ
ये सभी प्राप्त हो
जाती हैं यदि बिन्दु
सत्य रूप से सुरक्षित हो

1949 योग अभ्यास के लिए सेक्स ऊर्जा का संरक्षण महत्वपूर्ण है

इस प्रकार संरक्षित होकर वे कुण्डलिनी अग्नि को
प्रज्वलित करते है और उसे नाडी सुषुम्ना के माध्यम से
ऊपर की ओर धकेलते हुए प्रकाश की स्थिति
तक पहुँचते हैं, वहाँ वे भीतर के चन्द्रमा
से प्रवाहित अमृत का पान करते
हैं जो लोग इसे अखंड निरन्तरता से करते हैं, वे
वास्तव में सच्चे शिव योगी हैं

1950 सेक्स ऊर्जा बचाएँ और हीरो बनें

योगी ज्ञानी, सिद्ध, भोग योगी
जो फिर भी ज्ञानियों के राजा हैं, ये
सभी, यद्यपि वासनाओं से
व्याकुल हैं, फिर भी (योगिक मार्ग से)
वे सभी वीर हैं, जिन्हें
बिन्दु ने संरक्षित किया है

1951 कुण्डलिनी अग्नि में बिन्दु को जलाया

ऊपर का अग्निबिन्दु भगवान का शरीर (स्थूल) है, नीचे
का नष्ट होने वाला बिन्दु प्राण सूक्ष्म) है, यदि दोनों को
मिला दिया जाए तो वे कुण्डलिनी अग्नि में जल जाते है

फिर वे उसी अमृत का सेवन करते हैं यह
योगियो का सच्चा ज्ञान है

1952 योग में बिन्दु दिव्य रूप से आत्मसात है

अज्ञानवश मनुष्य प्रतिदिन इसे नष्ट करते
है इन्द्रिया द्वारा नष्ट होकर दु खी होकर
रोते है, यदि वे ज्ञानपूर्वक परम योग का अभ्यास करते हैं तो वह
बिन्दु दिव्य रूप से आत्मसात होकर लुप्त हो जाता है

1953 वासना मौत का सदेशवाहक है

यदि तुम स्त्रियों को मृत्यु का दूत समझोगे तो
प्रेम की वासना लुप्त हो जाएगी मृत्यु
नहीं रहेगी, तुम असख्य
युगों तक दिव्य प्रकाश में रहोगे तुम्हारी अशुद्धियाँ
सदा के लिए पूरी तरह से दूर हो जाएँगी

English ⇄ Hindi

→ Send to Translate Home | Select all | Liste

Are these results useful? Yes No ×

आरती

गगन मंडल में आरती कीजै,
नाद बिंद इके मेक करीजै।

सुसमन इंदु अमृत कुंभ धरावै,
मनसा माला फूल चढ़ावै ॥१ ॥
घीव अखंडा सोहै बाती,
त्रिकुटी जोत जलै दिन राती।
पवन साधना थाल सजीजै,
तामें चौमुख मन धरि लीजै ॥२ ॥
रवि ससि हाथ गहौं तिंह माहीं,
खिन दहिने खिन बामैं लाहीं।
सहस कंवल सिघासन राजै,
अनहद झांजन नित ही बाजै ॥३ ॥
इंह बिध आरती सांची सेवा,
परम पुरिख अलख अभेवा।
कहै रविदास गुरदेव बतावै,
ऐसी आरती पार लंघावै ॥४ ॥

(राग भैरो)

॥ ५६ ॥

ऐसा ध्यान धरौं बरो बनवारी,
मन पवन दै सुखमन नारी ॥टेक॥
सो जप जपौं जो बहुर न जपना।
सो तप तपौं जो बहुरि न तपना ॥ १ ॥
सो गुरु करौं जो बहुरि न करना।
ऐसो मरौं जो बहुरि न मरना ॥ २ ॥
उलटी गंग जमुन में लावौं।
बिनही जल मंजन ह्वै पावौं ॥ ३ ॥
लोचन भरि भरि बिंब निहारौं।
जोति बिचारि न और बिचारौं ॥ ४ ॥

१ बिस्वास।

पंड परे जिव जिस घर जाता।
सबद अतीत अनाहद राता ॥५॥
ता पर कृपा सोई भल जानै।
गूँगो साकर[1] कहा बखानै ॥६॥
सुन्न मँडल में मेरा बासा।
ता ते जिव में रहौं उदासा ॥७॥
कह रैदास निरंजन ध्यावौं।
जिस घर जावँ सो बहुरि न आवौं ॥८॥

॥ ५७ ॥

अबिगति नाथ निरंजन देवा।
मैं क्या जानूँ तुम्हरी सेवा ॥टेक॥
बाँधूँ न बंधन छाऊँ न छाया।
तुमहीं सेऊँ निरंजन राया ॥१॥
चरन पताल सीस असमाना।
सो ठाकुर कैसे सँपुट[2] समाना ॥२॥
सिव सनकादिक अंत न पाये।
ब्रह्मा खोजत जनम गँवाये ॥३॥
तोड़ूँ न पाती पूजूँ न देवा।
सहज समाधि करूँ हरि सेवा ॥४॥
नख प्रसाद जाके सुरसरि[3] धारा।
रोमावली अठारह भारा[4] ॥५॥
चारो बेद जाके सुमिरत साँसा।
भगति हेत गावै रैदासा ॥६॥

१ शकर, चीनी। २ डब्बा। ३ कथा है कि भगीरथ की तपस्या से विष्णु के
से साठ हजार सगर के लड़कों के तारने के लिये गंगा पृथ्वी पर आईं।
ठारह लोक।

एताश्चतस्रः शक्तयस्तु "शक्लृ [1]व्याप्तौ" (१२६२ स्वा०) इत्यस्माद् धातोः शक्तिशब्दव्युत्पत्तिः। चतस्रः [2]अम्बिकाद्याः शान्ताद्याश्चतस्रः। क्रमेण परस्परं सामरस्यमापन्नाः का पू जा ओ इति क्रमादासन्। का कामरूपपीठम्, पू पूर्णगिरिपीठम्, जा जालन्धरपीठम्, ओ ओड्याणपीठम्। प्रकाशविमर्शात्मतया समरसीभूताः पूर्वोक्ताश्चतस्रः शक्तयः कामरूपपूर्णगिरिजालन्धरोड्याणपीठरूपेण परिणता [3]इत्यर्थः ॥४१॥

पीठचतुष्टयस्य पिण्डादिमयतावासनामाह—

पीठाः कन्दे पदे रूपे रूपातीते क्रमात् स्थिताः।

[4]कन्दं नाम सुषुम्नामूलम्। कन्दशब्देन तत्रस्था पिण्डाख्या कुण्डली लक्ष्यते। तदुक्तं स्वच्छन्दसंग्रहे—

[5]नयित्वा तं सुषुम्नाऽधः कन्दस्थाने च मारुतम्।
इच्छाज्ञानक्रियारूपां कुण्डलीं परमेश्वरीम्॥
प्रसुप्तभुजगाकारां मातृकारूपिणीं शिवाम्। इति।

पर्यन्त नामरूपात्मक जगत्। इस विश्व के स्वरूप में बीजभाव से भीतर और सृष्टिभाव से बाहर उक्त चार शक्तियों का ही भासन होता है। व्याप्ति अर्थवाली 'शक्लृ' धातु से शक्ति शब्द बनता है। अम्बिका आदि और शान्ता आदि चार-चार शक्तियाँ क्रमशः परस्पर मिलकर का पू जा ओ बन जाती हैं। का से कामरूप पीठ, पू से पूर्णगिरि पीठ, जा से जालन्धर पीठ और ओ से ओड्याण पीठ समझना चाहिये। प्रकाश और विमर्श स्वरूप उक्त चार-चार शक्तियाँ जब समरस हो जाती हैं, तो उनका अगला परिणाम कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर और ओड्याण पीठ के रूप में होता है॥४१॥

इन चार पीठों की पिण्ड आदि के रूप में भावना करनी चाहिये—

ये चार पीठ क्रमशः कन्द, पद, रूप और रूपातीत में स्थित हैं।

सुषुम्ना नाडी का मूल स्थान कन्द कहलाता है। यहाँ कन्द शब्द से उसमें विराजमान कुण्डलिनी शक्ति, जिसको पिण्ड भी कहते हैं, गृहीत होती है। स्वच्छन्दसंग्रह इसमें प्रमाण है—

उस पवन को सुषुम्ना के मूल में विद्यमान कन्द स्थान में ले जाना चाहिये और वहाँ सोये हुए सर्प के समान आकारवाली मातृकास्वरूपिणी और इच्छा-ज्ञान-क्रिया शक्ति समष्टिरूपिणी भगवती कुण्डलिनी का मंगलमय दर्शन करना चाहिये॥

---

१. 'शक्लौ' इति धातुपाठस्थः पाठः। २. 'अम्बिकाद्याः शान्ताद्याश्चतस्रः' नास्ति—ख. ग. ज. झ. उ.। ३. 'इत्यर्थः' नास्ति—ख. ने. ज. झ. उ.। ४. कन्द इति—ख. ग. ने. ज. झ. उ.। ५. लङ्घित्वा—ख. झ., लयित्वा—ग. उ.।

ri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

गगन मण्डल में आरति कीजै,
नाद बिंद इक मेक करीजै ।
सुसमन इन्दु अमृत कुंभ धरावै ,
मनसा माला फूल चढ़ावै ।।[1]

अर्थात् नाद बिन्दू के एक होने से गगन मण्डल में आरती होने लगती है। योग में गगनमण्डल सहस्रार का वाचक है तथा आरती इस वाणी पद में अनहद-नाद का प्रतीक है । सुषम्णा और इदु अर्थात् इड़ा नाडी में अमृत कुम्भ का होना कहा गया है । मन रूपी पुष्प को चढ़ा कर साधक परमानन्द को उपलब्ध कर लेता है ।

इस स्थिति में पहुंचने पर इड़ा पिंगला और सुषम्णा व प्राणायाम जैसी क्रियाएं स्वतः ही छूट जाती है ।

इड़ा पिंगला सुषुम्णा, विछ चक्र प्राणायाम ।
"रविदास" हौं सबहि छाडियो, जबहि पाइहु सत्तनाम ।।[2]

साखी के इसी भाव को सन्तगुरु रविदास जी ने अन्यत्र भी व्यक्त किया है-

कहै रविदास प्रकास परम पद,
का जप तब विधि पूजा ।।[3]

सहस्रार में प्राण वायु के स्थिर होने को विभिन्न संज्ञाओं जैसे परम पद, प्रकाश, परम ज्योति प्रकाश आदि से विभूषित किया जाता रहा है । इस सन्दर्भ में गुरु रविदास जी की वाणी का निम्न पद द्रष्टव्य है-

---

1. सन्त गुरु रविदास वाणी : बी॰पी॰ शर्मा, पृ॰ 138॰
2. रविदास दर्शन : पृथ्वी सिंह आजाद, पृ॰ 37 साखी-17॰
3. -वही- पृ॰ 40॰

योग में सुषम्णा नाड़ी का सर्वातिशायी महत्व माना गया है । प्राण वायु को इड़ा, पिंगला से अवरुद्ध करते सुषुम्णा से प्रवाहित करके उसे सहस्रार में पहुँचाया जाता है । इसलिये सुषुम्णा नाड़ी अन्य दोनों प्रधान नाड़ियों से श्रेष्ठ है ।

रविदास जी ने इस नाड़ी के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा है कि हे प्रभु मैं ऐसा ध्यान धरूं अर्थात् मैं इस प्रकार ध्यानावस्थित हो जाऊं कि मेरी प्राण वायु दृढ़तापूर्वक सुषम्णा नाड़ी में स्थिर हो जाए ।

ऐसा ध्यान धरों बनवारी,
मन पवन द्रिढ़ि सुषमन नारी ।[1]

सहस्रार में प्राणायाम द्वारा शिव-शक्ति के समागम से साधक को अनहदनाद सुनाई देने लगता है । रविदास जी ने सहस्रार को भ्रमर गुफा तथा अनहदनाद को भंवरे की गूंज, रूपक से अभिहित किया है । वे कहते हैं कि इस अवस्था को प्राप्त कर लेने के पश्चात् फिर इड़ा पिंगला तथा सुषम्णा नाड़ी में चित्त को अटकाने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती ।

इला पिंगला सुषमण नारी, जा में चित्त न धर ।
सहस्रार मंह भंवर गुफा है, भंवरा गुंज करे ।।[2]

इसके अतिरिक्त सुषुम्णा नाड़ी के विषय में रविदास जी का निम्न पद द्रष्टव्य है-

---

1. लोक प्रिय सन्त-भक्त-कवि संत रैदास परिचय तथा कविताएं सं. योगेन्द्र गुप्त, पृ. 49.
2. सन्त गुरु रविदास वाणी : वी.पी. शर्मा, पृ. 132 पद 158 की दूसरी साखी ।

प्राण वायु प्राय: दो नाड़ियों इड़ा और पिंगला से प्रवाहित होता रहता है । योगी जन प्राणायाम द्वारा इन दोनों नाड़ियों से प्राण को अवरुद्ध करके सुषम्णा नाड़ी से प्रवाहित करके उसे सहस्रार में पहुँचा देते हैं । यही समाधि स्थिति है ।

रविदास जी के अनुसार इड़ा पिंगला रूपी किवड़िया को खोलकर साधक शून्य में समाधिस्थ हो सकता है । उनका अपना भी यही अनुभव है-

इला पिंगला खोलि किवरिया सूनि समाधि रहाऊ ।[1]

इड़ा पिंगला दोनों नाड़ियों को साधन के रूप में प्रयोग किया गया है । लक्ष्य प्राप्ति के पश्चात् इड़ा, पिंगला, और सुषम्णा तथा प्राणायाम आदि की आवश्यकता नहीं रह जाती । रविदास जी ने भी इस बात को स्वीकार किया है ।

इड़ा पिंगला सुषुम्णा, विध चक्र प्राणायाम ।
"रविदास" हौं सबहिं छांड़ियो, जबहि पाइहु सत्तनाम ।।[2]

रविदास जी की उपर्युक्त साखी से उनकी योग साधना सम्बन्धी अवधारणा पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ता है । उन्होंने प्राणायाम, षट्चक्र भेदन इत्यादि हठयौगिक क्रियाओं के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त की थी । लक्ष्य प्राप्ति के उपरान्त उन्होंने इन सभी क्रियाओं को छोड़ दिया था । क्योंकि साध्य की प्राप्ति के पश्चात् साधन की कोई विशेष उपयोगिता नहीं रह जाती ।

---

1. रविदास जीवन एवम् दर्शन : धर्मपाल सिंघल, पृ० 130.
2. रविदास दर्शन : आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद पृ० 37 वाणी पद-17.

(Mind-body-relation) भारतीय अद्वैत-दर्शन में कभी नहीं थी क्योंकि यहां मन को ऐसा भौतिक कहा गया है जो एक इन्द्रिय है। शरीर तो कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों का संघात ही है। अतएव रविदास के अद्वैतवाद में भी मन-शरीर-सम्बन्ध नाम की कोई समस्या नहीं है। यहाँ आत्मा तथा शरीर के सम्बन्ध की समस्या है। शरीर नश्वर है। आत्मा अविनाशी है। दोनों के धर्म परस्पर विपरीत हैं। परमार्थतः शरीर रविदास के अनुसार भ्रम है। यह मायाकृत है। आत्मा ही सर्वत्र है। रविदास विवर्तवाद के समर्थक हैं।

तुलनीय—आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरंरथमेव तु।
बुद्धि तु सारथि विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान्।
आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोंक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।

कठोपनिषद् ३।३-४

७६

देहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधू है मतवाला। टेक।
हैं रे कलाली तैं क्या किया, सिरका सा प्याला दिया। १।
कहै कलाली प्याला देऊँ, पीवनहारे का सिर लेऊँ। २।
चंद सूर दोउ सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई। ३।
सहज सुन्न में भाठी सरवैं, पावै रैदास, गुरुमुख दरवै। ४।

शब्दार्थ—कलाली = कलवारिन, शराब बेचने वाली औरत। अवधू = साधु, वैरागी। सिरका = सिरका, एक प्रकार का रस है जो ईख के रस का धूप में पका कर खट्टा किया गया रूप है। यह चखने में इन्द्रियों की क्षुधा को और प्रज्वलित कर देता है। चन्द्र = इला नाड़ी। सूर = सूर्य, पिंगला नाड़ी। सरवै = पकती है। गुरुमुख दरवै = गुरुमुख के द्वारा।

विशेष—इस पद में भक्त रविदास कलाली से शराब का प्याला माँग रहे हैं। कलाली यहाँ इच्छा है। शराब का प्याला है प्रेम या भववत्प्रेम।

15:32

Google Lens

Original | Translated

वह वास्तव में शिव राज्य है

1969 शिवोहम जब बिंदु शांत हो गया

बिंदु और नाद के संयोग से यह
विशाल सृष्टि उत्पन्न हुई है,
यह समस्त जीवन का आदि और अंत है
महान मंत्रों का भी
जब बिंदु शांत हो जाता है
तब शिवोहम् होता है

1970 फ्राई बिंदु और अंत जन्म

बिन्दु को भून डालो ध्यान रहे कि
उसका संतुलन बना रहे इसे सुषुम्ना
पर्वत तक ऊपर उठाओ; इस प्रकार तुम्हारे ... कर्म भस्म
हो जायेंगे; फिर जिस दिन
तुम अंजीर के फल तोड़ोगे
जिसमें जन्म के असंख्य बीज है

1971 जब बिंदु ने एम्ब्रोसिया वेल्स का विलय किया

जब बिन्दु और नाद एक होकर भीतर के
चन्द्रमण्डल में प्रवेश करते हैं,
तब दिव्य अमृत प्रवाहित होता है
तब जो मन्त्र (ओम्) उत्पन्न
होता है वह परमेश्वर के लिए आहुति है

1972 मन को बिंदु में विलीन करो वासना से दूर

जब मन बिन्दु में लीन हो जाता है,
तब मन, कान और अन्य सभी इन्द्रियां मिलकर
दिव्य लक्ष्य की खोज में लग जाती
हैं, किन्तु जब मन में विचार, ध्वनि और
शब्द काम की खोज में लग
जाते हैं,
[illegible]

1973 ज्ञानियों को प्रभु की सीट का पता है

ध्वनि (नाद), और मन जो ध्वनि को अनुभव करता है, और
वह स्थान जहाँ मन अविचलित होकर सत्य को पहचानता है

456

ये वे नहीं जानते उस स्थान
को ज्ञानी लोग सचमुच जानते हैं, वह
वास्तव में भगवान का आसन है

1974 शरीर में पाँच तत्वों के क्षेत्र

पृथ्वी वह स्थान है, जहाँ पैर हैं (मूलाधार),
नाभि में (स्वातिस्थान) जल क्षेत्र है;
वक्षस्थल के नीचे (मणिपुर) अग्नि है;
वक्षस्थल के ऊपर (अनाहत) तथा कंधे के नीचे (विशुद्धि) वायु है; तथा
गर्दन के चारों ओर तथा उससे आगे (आज्ञा) आकाश क्षेत्र है।

English ⇄ Hindi

Send to Translate Home | Select all | Liste

Are these results useful? Yes No

षडंग योग

कालचक्रतन्त्र की निष्पन्नक्रम की साधना चतुःसेवा और षडग योग के अनुसार की जाती है । इसका प्राप्य पद काय-वाक्-चित्तवज्र

---

१. से. टी., पृ. ५-६

२. वि. प्र., भा. १, पृ. ४५

३. वीरक्रमो न मार्गः स्वाधिष्ठानक्रमश्च मोक्षाय।
सुविशुद्धक्रम एको मोक्षाय सन्दर्शितो बुद्धैः ॥
वीरक्रमो न बाह्ये देहे प्राणक्षये ह्रासावुक्तः ।
स्वाधिष्ठाने शून्ये त्रैधातुकदर्शनं नाम ॥ (वि. प्र., भा. १, पृ. ७)

ही है । प्रत्याहार और ध्यान द्वारा कायवज्र की तथा उसके लक्षणों तथा अनुव्यञ्जनों की सिद्धि होती है । प्राणायाम और धारणा द्वारा वाग्वज्र में तथा मूल वायु में अधिकार प्राप्त कर सर्वज्ञवाक् सिद्धि होती है । अनुस्मृति और समाधि द्वारा चित्तवज्र की प्राप्ति होती है । अनुस्मृति के समय चण्डाली को बोधिचित्त द्वारा द्रवित कर उष्णीष से मणिचक्र तक पहुंचने तक चार आनन्दों की उत्पत्ति होती है । इसमें सहजानन्द ही समाधि है । सहजानन्द की अवस्था में नाभि में चण्डाली के प्रज्वलित होने पर योगी देवबिम्ब का साक्षात्कार करता है । इस अवस्था में अनुरागपूर्ण सुख की उत्पत्ति होती है । यही अनुस्मृति कहलाती है । इसकी उत्पत्ति के लिये धारणा द्वारा मध्यमा नाडी में वायु को स्थिर कर चण्डाली को प्रज्वलित करना पड़ता है । इस प्रकार वायु को मध्यमा नाडी में स्थिर करना ही धारणा कहलाती है । धारणा की अवस्था को प्राप्त करने के लिये प्राणायाम द्वारा ललना और रसना में बहने वाली वायु को मध्यमा में प्रवेश कराना पड़ता है । यही प्राणायाम योग कहलाता है । ललना और रसना में बहने वाली वायु तभी मध्यमा में प्रवेश करेगी, जब प्रत्याहार और ध्यान द्वारा मध्यमा नाडी की पहचान हो । प्रत्याहार योग द्वारा दिन और रात्रि में उदय होने वाले लक्षणों की पहचान के बाद ही यह सम्भव होती है । प्रत्याहार द्वारा लक्षणों को पहचान लेने के बाद ध्यान द्वारा वे दृढ़ता को प्राप्त होते हैं[१] । विमलप्रभा एवं सेकोद्देशटीका में इसको विस्तार से प्रतिपादित किया गया है । तदनुसार लक्षण, फल, साधना आदि इसके विविध पक्ष हैं । षडग योग का विस्तृत स्वरूप इस प्रकार प्रदर्शित है—

प्रत्याहार

चक्षु आदि इन्द्रियां अपने विषयों की ओर प्रवृत्त होती है । प्रत्याहार पद में आहार शब्द त्यागार्थक है । पांच इन्द्रियों का अपने विषयों से सम्बन्ध विच्छेद करा कर, अर्थात् विज्ञान में उनका संहार कर ज्ञानस्वभाव पांच इन्द्रियों का पांच प्रभास्वर स्वरूप विषयों में प्रवेश कराना ही प्रत्याहार है । इसके अभ्यास से निर्विकल्प वायु को मध्यमा में स्थिर करने का सामर्थ्य आता है । संक्षेप में विषय और विषयी के रूप ग्रहण करने के सम्बन्ध का विच्छेद कर चित्त को

वसन्तं प्राप्य सन्तुष्टा समापत्त्या व्यवस्थिता ।
एष श्रीहेरुको वीरो वसन्ततिलका स्मृता ॥ (६.४-६)

प्राणायाम के विशुद्ध होने पर वज्रमणि में स्थित चार नाडियों की अच्युति के आधार पर बोधिचित्त का घन में परिवर्तन होने के कारण वह प्रसुत नहीं होता । इसलिये लग्न (मेषादि १२ लग्न) की एक वायु के निरुद्ध होने के कारण दर्शन मार्ग के विषय सत्यार्थ का साक्षात्कार होने से अधिमुक्ति चर्या में निष्ठा होती है । इससे योगी प्रथम आर्यभूमि दर्शनमार्ग को प्राप्त करता है ।

तत्पश्चात् भावनामार्ग के लक्षणों से युक्त अनुस्मृति अंग के विशुद्ध होने पर १० पारमिता, त्रिरत्न, बुद्धानुस्मृति आदि १६ अनुस्मृतियों तथा १६ आनन्दों का योग होने के कारण बिन्दु की अच्युति होती है । फलतः बिन्दु के स्खलित न होकर दृढीभूत होने से समाधि काल में योगी के स्वरस बोधिचित्त का ऊर्ध्व संचार होता है । इस प्रकार ऊर्ध्व सचारक्रम द्वारा क्रमशः १२ भूमियाँ पार करने पर वज्रमणि से ललाट चक्र तक २१६०० कर्मवायुओं में से प्रत्येक निरुद्ध हो जाती है । अतः परमाक्षर सुखानुभूति में क्षणों की जितनी संख्या होती है, उनमें प्रत्येक क्षण में वृद्धि होने से १२ भूमियों को पार कर के साधक बुद्ध हो जाता है ।

इस प्रकार यह द्रव्यबिन्दु पांच धातुओं से युक्त है । आधार काल में इस बिन्दु का सहज अविद्या एवं प्रतीत्यसमुत्पाद के साथ आधाराधेय सम्बन्ध होने के कारण सम्मिश्रित रूप से इन दोनों का ग्रहण होने से स्वसंवेदन अशुद्ध रूप में प्रस्तुत होता है । इसलिये इन्हें संसार (भव) के दोष उत्पन्न होने का आधार बताया गया है । जिसे बन्धन से बद्ध किया जाता है, उसको गुरु द्वारा उपदिष्ट विशेष उपाय द्वारा अधिगृहीत होने पर वह संसार के नाश का कारण बनता है । हेवज्रतन्त्रराज में कहा भी है—

येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो रौद्रकर्मणा ।
सोपायेन तु तेनैव मुच्यन्ते भवबन्धनात् ॥ (२.२.५०)

मनुष्य अनादिकाल से, अर्थात् चिरकाल से महारागवश काम, रूप तथा अरूप इन त्रिभवों में अपने कर्म-क्लेशों द्वारा संसरण करता है । इसलिये काम (राग) हेतु और फल से सत्त्वों की चित्तसन्तति को विमुक्त करने के लिये तथागत बुद्ध द्वारा बौद्ध तन्त्रागमों में

शुक्र-शोणित धातु के द्रव्य-बिन्दु की भावना करने का क्रम प्रदर्शित किया गया है ।

इस प्रकार ऊपर निर्दिष्ट नाडी, वायु एवं बिन्दु, इन तीनों का नेयार्थ— नाडी में वायु का तथा वायु में बिन्दु का आश्रित होना है । नीतार्थ— चित्त के अवभासांश के रूप में उदय होने से अन्योन्य सापेक्ष या प्रतीत्यसमुत्पन्न के रूप में अवभास होना है । उसके सहज ज्ञान का आश्रय होने के कारण इसे वज्रदेह कहा गया है ।

इस प्रकार का वर्णन अनुत्तरयोगतन्त्र में मातृतन्त्र के अन्तर्गत विशेषतः हेवज्रतन्त्र के अनुसार किया गया है । हेवज्रतन्त्र में कहा भी है—

द्वात्रिंशल्लक्षणी शास्ता अशीतिव्यञ्जनी प्रभुः ।
योषिद्भगे सुखावत्यां शुक्रनाम्ना व्यवस्थितः ॥ (२.२.४१)

•

बाह्य और आभ्यन्तर बिन्दु

इन्द्रिय ज्ञान के विषय के रूप में प्रतिभासित होने वाले पाच अर्थ एव रूप-स्कन्ध द्वारा सगृहीत शुक्र-शोणित पंचधातु के द्रव्य-बिन्दु है । द्रव्य-बिन्दु बाह्य भाजनलोक द्वारा संगृहीत होने से बाह्य बिन्दु तथा आभ्यन्तर में वज्रदेह द्वारा संगृहीत होने से आभ्यन्तर बिन्दु कहलाते है । आभ्यन्तर के अर्थ में प्रयुक्त बिन्दु से तात्पर्य सत्त्व के प्रथम गर्भ से प्रतिसन्धि-ग्रहण के समय ज्ञानस्वभाव अन्तराभव के उपस्थित होने से माता-पिता के द्वारा स्खलित शुक्र-शोणित रस के प्रति ममाग्रह रूपी हेतुप्रत्यय से यदि सत्त्व पुरुष के रूप मे उत्पन्न होता है, तो इससे माता को आसक्ति होती है तथा पिता को मत्सर । इस प्रकार इस निवृत्ति अभिनिवेश द्वारा सत्त्व गर्भ मे प्रवेश करता है तथा धातुक्रम द्वारा ३८ सप्ताह मे कललादि रूप से वृद्धि को प्राप्त करता है । संवरोदय तन्त्रराज में इन अवस्थाओं का वर्णन इस प्रकार है—

> शुक्रशोणितयोर्मध्ये बिन्दुरूपेण तिष्ठति ।
> प्रथमं कललाकारमर्बुदं च द्वितीयकम् ॥
> तृतीये पेशितो जातं चतुर्थं घनमेव च ।
> वायुना प्रेर्यमाणं च मांसाकारवद् भवेत् ॥
> पञ्चमासगतं बीज षष्ठे स्फोटः प्रजायते ।
> केशरोमनखाश्चिह्नं सप्तमासेन जायते ॥
> इन्द्रियाणि च रूपाणि सृज्यन्तेऽष्टममासतः ।
> सम्पूर्णं नवमासेन चेतना दशमासतः ॥ (२.१७-२०)

द्रव्यबिन्दु के शुक्रांश और शोणितांश करके दो विभेद किये गये है । शुक्रांश रस मध्य नाडी के ऊपर स्थित होता है तथा इसका आकार "हूँ" स्वभाव अधोविलोकित, परिमाण मे सर्षप के तुल्य होता है । इसका रंग श्वेत, स्निग्ध, उज्ज्वल एवं महातेजसदृश होता है । यह प्रभास्वर आमलक के सदृश है । यह पिता से प्राप्त होता है । पिता का यह शुक्रांश सर्वश्रेष्ठ है । इस रसांश का स्वभाव हेरुक एव महासुखोपाय है, जो अकनिष्ठपद के वेग से उत्पन्न होता है । शोणितांश (रक्तभाग) नाभि के अधोभाग की तीन नाडियों के सगम मे स्थित है, इसका रंग लाल है । यह माता से प्राप्त होता है तथा यह अत्युष्ण होने से प्रभास्वर भी होता है । उदाहरणार्थ यह वडवानल के सदृश है । इस बिन्दु का आकार ह्रस्व "अ" के सदृश

है तथा इस शोणितांश का स्वभाव वज्रवाराही प्रज्ञा एवं शून्यता स्वरूप है । शुक्रांश रस के सुख में रमणीयता होने के कारण इसे वसन्त तथा शोणितांश के सुख में स्थैर्य होने के कारण तन्त्रशास्त्र में इसे बोधिचित्त, तिलक, बिन्दु आदि अनेक पर्याय दिये गये हैं ।

बिन्दुच्युति और अच्युति— त्रिविष (राग, द्वेष, मोह) सास्रव क्लेशों को उत्पन्न करते है तथा धातु-च्युति तक बिन्दु की वृद्धि करते है । सत्त्वों का हृदय सुखाभिलाषी होता है, अतः उसमे सर्वप्रथम राग उत्पन्न होता है । इसी राग के आधिपत्य से मोहित होकर सहज ज्ञान को न जानने के कारण मोह उत्पन्न होता है और इसी मोह के प्रसृत होने पर राग के अवगत होने से द्वेष-चित्त उत्पन्न होता है ।

इस प्रकार इन त्रिविषों के आधिपत्य में सत्त्व भवसागर में चक्र के सदृश भ्रमण करते है । फलतः यह सास्रव क्लेश ही च्युति का कृत्य, अर्थात् संसार को उत्पन्न करने का आधार है । बोधिचित्त की च्युति-संक्रान्ति होने से सत्त्व ससार मे चक्कर काटता है, किन्तु उसकी अच्युति (असक्रान्ति) व उसके अवबद्ध होने पर सहज ज्ञान के उदित होने से निर्वाण मे गमन होता है । अतः अच्युति में बद्ध करने के उपायो का अनुष्ठान करना चाहिये । एतदर्थ जिन वज्रधर द्वारा विशिष्ट उपाय तन्त्रशास्त्रो मे भाषित है ।

गई है । इस प्रकार के योग के साथ वज्रजाप करना आगमों मे निर्दिष्ट है । अनुत्तरयोगतन्त्र में इसी वज्रजाप को प्राणायाम कहते है । हेवज्रपञ्जिका योगरत्नमाला में कहा है—

"आलिकाल्योर्वामदक्षिणपुटनाडीभ्यो गतागतनिरीक्षणं तयोरेव गुरूपदेशतो विधारणं च जापः, स एव वज्रजापशब्देनोच्यते" । (पृ० २० a-b)

अपि च, सेकोद्देशटीका भी कहती है—

"प्राणायाम इति वज्रजाप इति च मध्यमाभिन्नाङ्गत्वेन जप्तव्यः" (पृ० ३३) ।

कुंम्भक वायु के ऊर्ध्व प्राणायाम द्वारा बन्धन करने का स्थान नाभि है । इसलिये यह ऊर्ध्व वायुक्रम है । अपान वायु के अधः बन्धन करने का स्थान गुह्य होने से अधोवायु अपनी ओर खींचता है । मध्य में दोनों वायुओं के समरस होने का स्थान, नाभि का अधोभाग, अग्नि होता है । इसलिये मध्य वायु के पूर्ण होकर तीनों से अन्वित होने पर सिंहविमुक्ति मुद्रा की भावना करने से वायु के समस्त कर्म सम्पन्न हो जाते है । इस प्रकार चतुर्थ योग से अन्वित कुम्भक की भावना करने की अनुशंसा तन्त्रपिटक में विस्तार से व्याख्यात है । इस प्रकार वायु ग्रहण करने के इन सभी उपायों द्वारा मूल वायुओं का ग्रहण होता है तथा सिहविमुक्ति द्वारा पांच अंग वायुओं के बन्धनक्रम में आश्रित होने के कारण इन वायुओं के आधिपत्य से शान्ति आदि कर्म सिद्ध होते है ।

सभी वायुओं का संक्षिप्तीकरण करने पर ये सभी ज्ञानवायु एव विज्ञानवायु इन दो में समायुक्त होते है । इनमें से विज्ञान वायु तो कल्पना से अभिन्न, अर्थात् कल्पनात्मक होती है । इसलिये इस वायु का चंचल (कम्पित) होना, सूक्ष्म में प्रवेश करना, अन्य से अन्य में प्रस्फुरित होना, इस प्रकार तीन लक्षण होते है, अर्थात् यह त्रिलक्षणयुक्त है । वायु द्वारा बाहर की वस्तुओं को कम्पित (चंचल) करना, अतिसूक्ष्म वस्तुओं में प्रवेश करना, बाहर की वस्तुओं का अन्य से अन्य में प्रस्फुरित होने के सदृश है । इसी प्रकार कल्पना के विषयों पर चंचल होना, सूक्ष्म विषय में प्रवेश करना तथा स्थित होने के स्थान पर अस्थित होना या हेय (त्याज्य) प्रतिपक्ष की सभी अवस्थाओं का अन्य से अन्य में प्रस्फुरित होना, इत्यादि क्रियाएं होती है । संसार-निर्वाण के जितने भी धर्म है, सभी असद्भूत (अभूत) है, क्योंकि सभी के कल्पना द्वारा बद्ध (आबद्ध) होने के कारण उनकी

मध्य नाडी

स्थूल स्कन्ध, धातु, आयतन तथा सूक्ष्म नाडी आदि के समुदाय रूप में उत्पन्न वज्रदेह का आधार यह मध्य नाडी है । प्राण वायु से युक्त यह मध्य नाडी उष्णीषचक्र से लेकर गुह्यचक्र तक विद्यमान षट्चक्रों के मध्य में स्थित है । मध्यनाडी का ऊपरी शिखर अधोमुख "हूँ" की आकृति वाला है । इसमें पिता से प्राप्त शुक्र (रस) राजिकामात्र परिमाण में स्थित है, जिसकी गति अवरुद्ध है । इसके नीचे का छोर ह्रस्व "अ" की आकृति वाला है । इसमें माता-पिता से प्राप्त शोणितस्वभाव बिन्दु या शोणित रस स्थित है । अहं इन दोनों छोरों के मध्य में आलयविज्ञान का आधारभूत महाप्राण वायु स्थित है । यह नाडी वर्णविहीन आकाशसदृश है । नाभि के नीचे तीन नाडीसमूह से निर्मित चतुष्पथ मे नीचे शंखिनी नाडी स्थित है तथा सभी नाडियों में श्वेत अंश का प्रवाह निरन्तर इसी स्थान में एकत्र रहता है । यहीं से उसका प्रपात होने पर सहजानन्द की उत्पत्ति होती है ।

संवरोदयतन्त्र, सम्पुटतन्त्र और वसन्ततिलक में मध्य नाडी का वर्णन समान रूप से उपलब्ध होता है । अष्टपत्र वाले हृत्कमल के मध्य में यह मध्य नाडी स्थित है और यह कदलीपुष्प के सदृश स्वच्छ है । श्वेतरक्त (शुक्रशोणित) रस का संचार न होने के कारण यह भीतर से शून्य होती है । इसके ऊर्ध्वभाग में "हूँ" अधोमुख अवलम्बित होकर नीचे की ओर देखता है तथा अधोभाग में ह्रस्व "अ" तैलदीपसदृश अलकृत होता है । इस प्रकार यह नाडी अपने अधोभाग मे स्थित सभी नाडियों में बोधिचित्त का सम्यक् वहन करती है । यही सहजानन्द देने वाली है । अतः इस नाडी को अवधूती जानना चाहिये । सम्पुटतन्त्र एवं वसन्ततिलक में कहा है—

स्वहृन्मध्यगतं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ।
तस्य मध्यगता नाडी तैलवह्निस्वरूपिका ॥
कदलीपुष्पसकाशा लम्बमाना त्वधोमुखी ।
तस्य मध्ये स्थितो वीरः सर्षपस्थूलमात्रकः ॥ (६.२-३)

संवरोदयमहातन्त्रराज में कहा है—

संवृतौ मध्यभागेन हृत्सरोरुहमध्यगा ।
कदलीपुष्पसंकाशा लम्बमाना त्वधोमुखी ॥
तैलवह्निशिखोद्दीप्ता बोधिचित्तसमावहा ।
साऽवधूती तु विज्ञेया सहजानन्ददायिका ॥ (७.१७-१८)

सम्पुटतन्त्र, वसन्ततिलक और संवरोदयतन्त्र से मालूम होता है कि ललना और रसना इन दोनों नाडियों के बीच में हृत्कमल से निकली हुई अवधूती नाडी से बोधिचित्त प्रवाहित होता है । यह अवधूतिका सहजानन्द-प्रदायिका है । हेवज्रतन्त्र और उसकी पंजिका मुक्तावली के अनुसार अवधूती ग्राह्य-ग्राहक वर्जित है । समस्त विकल्पों को अवधूत (नष्ट) कर देने से यह अवधूती कहलाती है । यह मध्यदेश में स्थित है । मध्यदेश का तात्पर्य शिरस्, कण्ठ, नाभि और योनि के मध्य में है ।

20:10

विमल करने से उत्तम निर्माणकाय की सिद्धि होती है ।

वज्रदेह (वज्रकाय) की सिद्धि

वज्रदेहसाधना के विषय में यह जानना अत्यावश्यक है कि इसमें किसी भी तरह बिन्दु का अधःपतन न हो, अन्यथा मृत्यु अवश्यम्भावी है । योगियों ने कहा भी है— "मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्" । इसी बिन्दु की ऊर्ध्व गति होने पर वज्रदेह की सिद्धि होती है । स्वभाव से बिन्दु मलयुक्त होता है, इसलिये यह अधोगतिसम्पन्न होता है । अशुद्ध बिन्दु से प्रज्ञा की शुद्धि भी नहीं हो सकती, बुद्धत्व-लाभ तो दूर की बात है । अतः सर्वप्रथम शोधन और निरोध शक्ति के द्वारा बिन्दु की अधोगति का रोध करना जरूरी

होता है । तत्पश्चात् कर्ममुद्रा से ऊर्ध्व स्रोत के खुलने पर अमरत्व का मार्ग सिद्ध होता है । यहाँ पर बुद्धत्व का उदय होता है । निर्माणचक्र में बिन्दु की गति और स्थिति के फलस्वरूप जिस काय का उदय होता है, उसका नाम निर्माणकाय है । बिन्दु के ऊर्ध्वगमन के साथ-साथ आनन्द का भी तारतम्य होता है । अवधूती नाड़ी का सहारा लेकर बोधिचित्त जब धर्मचक्र तक उठता है, तब आनन्द परमानन्द में परिणत होता है । निर्माणचक्र में जो कर्ममुद्रा है, वह धर्मचक्र में धर्ममुद्रा है । इस अवस्था में बोधिचित्त शिरोदेश में रहता है । इसके बाद उत्कर्ष लाभ होने पर संभोगचक्र में विरमानन्द का अनुभव होता है । इस समय की मुद्रा का नाम महामुद्रा है । परमानन्द और विरमानन्द क्रमशः भव और निर्वाण रूप हैं । इस समय समयमुद्रा कार्यकारी होती है, यहां क्लेशावरण और ज्ञेयावरण की निवृत्ति होती है तथा भव और निर्माण एकाकार हो जाते हैं । इसके ऊपर महासुखचक्र में सहजानन्द की उपलब्धि होती है तथा उस समय अहंबोध समाप्त हो जाता है ।

निर्माणकाय में जैसे बुद्ध के निर्माणकाय का आविर्भाव होता है, वैसे ही धर्मचक्र में धर्मकाय, संभोगचक्र में संभोगकाय तथा महासुखचक्र में महासुखकाय की अभिव्यक्ति होती है । यही वज्रदेह (दिव्यदेह) की सिद्धि (प्रकटन) है । इस स्थिति में दिव्य चक्षु, दिव्य श्रोत्र, सर्वज्ञत्व, विभुत्व आदि महागुणों का आविर्भाव होता है । सबसे अन्त में सम्यक्सम्बुद्ध रूप में बोधिचित्त की स्फूर्ति होती है ।

देहगत नाडीचक्र

अनुत्तरयोगतन्त्र के प्रायः सभी ग्रन्थों में कायविज्ञान का विवेचन प्राप्त होता है, जिनमें वज्रदेह की सिद्धि, तदाश्रित नाडी, वायु एवं बिन्दु आदि का एक विशिष्ट विवेचन हमें देखने को मिलता है । श्रीवज्रमालातन्त्र में कहा भी है कि मनुष्य देह में एक ओर जहां

19:38

← Natha and sant sahity...

१५—हठयोग

नाथपंथी संस्कृत रचनाओं में 'हठ' के हकार को सूर्य तथा ठकार को चन्द्र कहा गया है। इन्हें ही क्रमशः प्राण और अपान भी कहा जाता है। संतों की हिंदी रचनाओं में इस प्रकार का कोई निर्देश नहीं मिलता। सूर्य और चन्द्र तथा तत्कोटीय विभिन्न शब्दों के प्रयोग अवश्य मिलते हैं। यद्यपि 'हठ' शब्द के हकार और ठकार का विचार संतों में नहीं है तथापि सूर्य और चन्द्र के साधन का वर्णन अवश्य है। सूर्य और चन्द्र वस्तुतः द्वैत की ओर संकेत करते हैं। हठ-योग इन दोनों का योगसाधन है। इस द्वैत की ओर संकेत करनेवाले जो शब्द प्रायः कबीर साहित्य में मिलते हैं, उनको नाथों की पूर्ववर्णित पदावली के प्रकाश में इस प्रकार उपस्थित किया जा सकता है—

ह—सूर्य, रवि, यमुना, पिंगला, शक्ति, पवन, अधः।
ठ—चन्द्र, शशि, गंगा, इड़ा, शिव, मन, ऊर्ध्व।

सूर्यनाड़ी और चन्द्रनाड़ी, प्राण और अपान, रज और विंदु आदि शब्दों का प्रयोग कबीर साहित्य में अवश्य है किंतु वे हठयोग के पारिभाषिक और साधनात्मक अर्थ को व्यक्त करनेवाले नहीं हैं। सूर्य का चन्द्र में समाहित होना, दोनों का एक घर में होना, आत्माराम के हिंडोले में चन्द्र-सूर्य का दो स्तम्भ के रूप में प्रयुक्त होना, रामरस को तैयार करने के लिये चन्द्र-सूर्य का दो भट्ठियों के रूप में प्रयुक्त होना, शशिहर का सूर्य को ग्रस्तकर लेना, गगन में अनाहत नाद के ध्वनन के लिये चन्द्र और सूर्य का मंत्र के दो तत्वों के रूप में विनियुक्त होना, शशिहर के घर में सूर्य का आगमन, चन्द्र-सूर्य मिलन, चन्द्र-सूर्य का एकत्व, चन्द्र सूर्य के बीच में 'तारी' (ध्यान) का लगना, सोलहकलायुक्त चन्द्र का पूरी तरह से छा जाना, गंगा-यमुना के बीच में सहज शून्य की लौ (लय) का घाट या गंगा-यमुना के बीच में अपनी 'मड़इया' को छाना, रस-निर्माण के लिये इड़ा-पिंगला को भट्ठी बनाना और उसमें ब्रह्माग्नि को प्रज्वलित करना, शिवशक्ति की सुषुम्ना दिशा का दर्शन, 'अरध-उरध' की गंगा-यमुना की ओर संकेत करना आदि वस्तुतः इसी अद्वैतप्रधान हठयोग की साधना की ही विवृत्ति करते हैं।[1] कबीर ने गगन और पृथिवी के उन प्राचीन प्रतीकों

[1] क० ग्रं०, पृ० १३ छं० १०, ९४. १८, ११०. ७१, १४१-१४२-१६२, १५४.१९६, १५७.२०२, १८३-२८०, १६२.२१९, १४६.१७३, पृ० २२३, पृ० १५७ छं० २०२, पृ० १८ अंग १० साखी ३, पृ० १११ पद ७४, पृ० १६ साखी ४६, ९४.१८; कबीर—पृ० ३३४ पद १८५।

का भी व्यवहार किया है जिनका शब्दान्तर से प्रयोग वैदिक साहित्य में मिलता है तथा जिनके नाथ साहित्य में उपलब्ध प्रयोग की ओर मैं संकेत कर चुका हूँ। कबीर ने धरती के बरसने और गगन के भीगने की जिस विलक्षण दृश्यावली का वर्णन किया है, उससे इस प्रतीकपरंपरा और शब्दों के पारंपरिक प्रयोग का एक विकास स्पष्ट हो जाता है। वैशिष्ट्य यह है कि कबीर ने इनका अपनी साधना के अनुकूल तथा उलटबाँसी की पद्धति से प्रयोग किया है।[1]

द्वैत और प्रपंच की ओर संकेत करनेवाले इन शब्दों से संबंधित जिन क्रियाओं की ओर संकेत किया गया है उससे मालूम होता है कि संतों में भी इस द्वैत से परे जिस अद्वैत की स्थिति की ओर संकेत किया ...

अभिषेक का शाब्दिक अर्थ पात्रता (योग्यता) हेतु जल को छींटने से है, अर्थात् कलश द्वारा जल गिराते हुए शिष्य को विशुद्ध करना ही अभिषेक है । कलशाभिषेक से काय के सचित पाप का क्षय होता है और वह वज्रदेह (वज्रकाय) की प्राप्ति के योग्य हो जाता है । गुह्याभिषेक से गुह्य द्रव्य के सेवन से माया प्रत्यक्ष होती है । महामुद्रातिलक मे कहा है कि द्रव्य के सेवन से आन्तरिक ज्ञान की उत्पत्ति होती है तथा महा आनन्द की भी प्राप्ति होती है । गुह्याभिषेक के द्वारा वाक् की विशुद्धि होती है और यह वाक्वज्र की प्राप्ति के योग्य हो जाता है । प्रज्ञाज्ञानाभिषेक सहजज्ञान के प्रदर्शन हेतु होता है । यह चण्डाली, अर्थात् मुद्रा के आश्रय तथा प्रयोग से होता है । योगी अवधूती आदि मुख्य त्रिनाडी के संगम-स्थान से ज्ञान की अग्नि प्रज्वलित करके उष्णीष पर स्थित बिन्दु को पिघला कर अवतरित करके सम्पूर्ण नाडियो में व्याप्त कर सहज सुख की प्राप्ति करता है । यहाँ चित्त को अभिषिक्त किया जाता है । इस अभिषेक से चित्त की मलिनता दूर होती है और यह चित्तवज्र की प्राप्ति के योग्य हो जाता है । गुह्यसमाज में सभी पदार्थ, अर्थात् स्कन्ध, धातु, आयतन, गोत्रादि मूर्त-अमूर्त से रहित तथा स्वचित्त अनादि अनुत्पन्न महाशून्य स्वरूप प्रभास्वर है, ऐसा कहा गया है, अर्थात् चतुर्थाभिषेक को सप्त अवयव युक्त वज्रधर की स्थिति का बोध कराने वाला कहा

गया है । अभिषेक के अभाव में सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती, अतः अभिषेक के लिये ऐसे गुरु के चरणों में जाना चाहिये, जो अविच्छिन्न अभिषेक परम्परा से युक्त हो, अभिषेक विधि में दक्ष हो तथा तन्त्र की व्याख्या करने में अद्वितीय हो । ऐसे गुरु से उपर्युक्त कलश आदि चार अभिषेकों को लेना चाहिये ।

वज्रयान में अनुत्तरयोगतन्त्र का साधक अपनी साधना मे अपने देह को अत्यधिक महत्त्व देता है । अन्य बौद्ध तान्त्रिकों की तरह यह भी इस देह को सभी प्रकार की साधनाओं का आश्रय मानता है । तदनुसार सम्पूर्ण विश्व इस देह में विद्यमान है । यह संसार इससे भिन्न नहीं है । समस्त चराचर जगत् इसी देह के विभिन्न भागों में स्थित है । अतः परम लक्ष्य (बुद्धत्व) की प्राप्ति के लिये यह देह एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है । वज्रदेह अथवा देह से यहाँ मनुष्यदेह अथवा साधक का शरीर अभिप्रेत है । वज्रयानी साधक जब किसी साधना का, विशेषकर नाडी, वायु एवं बिन्दु-भावना का अभ्यास करता है, तो उसे अपने देह के बारे में सम्यक् जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है, क्योंकि दैहिक क्रियाओं को बाधकर तदाश्रित चित्त की वस्तुस्थिति का साक्षात्करण वज्रयानी साधना-पद्धति की विशेषता है । यहां निष्पन्न देह की ही नहीं, प्रत्युत गर्भाधान से लेकर उसके विकासक्रम की विभिन्न अवस्थाओं की भी अपेक्षा रहती है । इसलिये वज्रदेह की निष्पत्ति का क्षेत्र गर्भाधान की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर देह की पूर्णरूपेण निष्पत्ति पर्यन्त समझना चाहिये ।

वज्रयानियों के अनुसार चित्त ससार एवं निर्वाण समस्त धर्मों का मूल कारण है । दूसरे शब्दों में चित्त वज्रयानी तत्त्वमीमांसा का केन्द्र-बिन्दु है । इसी से ससार, निर्वाण आदि समस्त धर्मो की व्यवस्था होती है । इस चित्त को तन्त्रागमों में अनादिनिधन, प्रपंचातीत, शाश्वत, उच्छेदान्त, अपतित, धर्मता, तथता आदि अनेक विशेषण पदों से विभूषित किया गया है ।

अनुत्तरयोगतन्त्र के मातृतन्त्र ग्रन्थों में चित्त के स्थान पर आलय[1] शब्द बहुधा देखने का मिलता है । चित्त अथवा आलय के

---

1. एताश्चैव समाख्याता मुदिताद्यास्तु भूमयः ।
आलयो बोधिसत्त्वानामिन्द्रियादिस्वरूपिणाम् ॥
आलयः सर्वबुद्धानां स्कन्धादीनां विशेषतः ।
बुद्धानां बोधिसत्त्वाना बुद्धत्वावाहिकाः पराः ॥

काय-विवेक

"काय" समूहबोधक शब्द है । यह देह, मास, रुधिर आदि अनेक धर्मों का समूह है और चित्त अनेक क्षणो का । यही काय कहलाता है । इन कायो के तत्त्वो का गुह्यसमाज मे इस प्रकार वर्णन है—

> पञ्चस्कन्धाः समासेन पञ्चबुद्धाः प्रकीर्तिताः । (१७.५०)
> पृथिवी लोचनी ख्याता अब्धातुर्मामकी स्मृता ।
> पाण्डराख्या भवेत् तेजो वायुस्तारा प्रकीर्तिता ॥ (१७.५१)

१. आर्यदेवविरचित चर्यामेलाप, प० ५१ख

समाहित अवस्था मे ललना और रसना मे बहने वाली सभी वायुओं को अवधूती के अधोभाग मे सगृहीत किया जाता है और परिणामस्वरूप पृष्ठलब्ध अवस्था मे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देवसमूह मे प्रकट करना होता है । इससे सामान्य आभास (घट, पट आदि) और उनके प्रति अभिनिवेश का क्षय होता है । सक्षेप मे यही काय-विवेक कहलाता है । काय-विवेक और वाक्-विवेक का साधक वैरोचन सप्त धर्मासन लगा कर बैठता है, अर्थात् पैर वज्रासन मुद्रा मे, हाथ समाहित मुद्रा मे, रीढ की हड्डी सीधी, छाती फैली हुई तथा भुजाये सीधी, कण्ठ कुछ झुकी हुई, जिह्वा तालु को स्पर्श करती हुई तथा होठ कुछ खुले हुए और चक्षु को नासिकाग्र मे स्थित करना ये सात आसन हैं । वज्रासन से अपान वायु वश मे रहती है । समाहित मुद्रा मे स्थित होने से नाभि पर दबाव पड़ता है, जिससे अग्नि शान्त रहती है । रीढ़ की हड्डी सीधी रखने से व्यान वायु, भुजाये सीधी तथा छाती फैली रहने से प्राण वायु और कण्ठ के झुके रहने तथा जिह्वा का तालु मे स्पर्श होने से उदान वायु बद्ध हो जाते है और नासाग्र मे दृष्टि रखने से सभी वायु शान्त रहते हैं । वज्रासन लगा कर चित्त को अवधूती के अधोभाग मे स्थित ललना और रसना के मिलनस्थल के मध्य सूक्ष्म तिलक मे एकाग्र करने से वायु और चित्त का प्रवेश समान हो जाता है तथा अभिन्नतावश सभी वायु अवधूती मे प्रवेश कर जाते है । इसके प्रवेश होने पर लक्षण के रूप मे दोनो नासिकाग्र से वायु समान रूप से बहने लगती है । वायु के मध्यमा मे स्थित हो जाने पर श्वास-प्रश्वास बन्द हो जाते है तथा इनके लीन हो जाने पर बाह्य मरीचि आदि तथा आभ्यन्तर आलोक आदि ज्ञान प्रकट होते है । वायु के मध्यमा मे प्रवेश होने मे हृदय चक्र के ऊर्ध्व और अधोभाग की सभी नाडियाँ भी शिथिल हो जाती है ।

वाक्-विवेक

प्राणायाम (वज्रजाप) का आश्रय लेकर वायु और मन्त्र (ॐ आः हूँ) के अभिन्न योग द्वारा ग्राह्य-ग्राहक विकल्प का नाश करने वाले शैक्ष सन्तति का योग ही वाक्-विवेक है । इसकी भावना पञ्चज्ञानमय श्वासो का हृदय से नासिकाग्र मे स्थित कर प्राणायाम द्वारा की जाती है । इसकी सहायता से ललना और रसना मे बहने वाले सभी कर्म-वायु मध्यमा मे प्रवेश पाते है । इसको गुह्यसमाज मे इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

अनुस्मृति

प्रत्याहार और ध्यान के द्वारा स्थिरीकृत प्रतिभासात्मक संवृति सत्य की भावना करना ही अनुस्मृति है[1]। इसका उद्देश्य संवृति सत्य की भावना का संस्फरण करना है, अर्थात् उसे आकाशवत् व्याप्त करना है[2] । प्रत्याहार के द्वारा निष्पन्न देवबिम्ब को ध्यान के द्वारा दृढ किया जाता है और प्राणायाम के द्वारा वायुबिन्दु को नियन्त्रित कर धारणा द्वारा मध्यमा में स्थिर किया जाता है । इसी देवबिम्ब को बार बार स्मरण करना ही अनुस्मृति है । धारणा के द्वारा नाभि में चण्डाली को प्रज्वलित करने पर उसमें प्रतिबिम्बसदृश निर्विकल्प त्रिधातुक इष्टदेव का आभास होता है[3] । अनुस्मृति की साधना कर्ममुद्रा, ज्ञानमुद्रा और महामुद्रा के साथ समाहित होकर चण्डाली योग के द्वारा की जाती है । वायु के मध्यमा नाडी में प्रवेश से चण्डाली प्रज्वलित होती है । साधक भी मृदु, मध्य और उत्तम भेद से तीन प्रकार के होते हैं[4] । ये तीनो प्रकार के साधक अपनी

---

१. का. त. ५.७५

२. से. टी., पृ. ३३

३. चण्डाल्यालोकनं यद् भवति खलु तनौ चाम्बरेऽनुस्मृतिः स्यात् । (का. त. ४.११७)

४. एतन्मुद्रादिभेदैस्त्रिविधमपि भवेत् साधनं विश्वभर्तु-
स्तिस्रो मुद्रास्त्रिमात्रास्त्रिविधगतिवशात् कर्मसंकल्पदिव्याः ॥ (का. त. ४.११७)

मुद्राओ के साथ समाहित होकर प्रत्याहार द्वारा निष्पन्न इष्टदेव या देवबिम्ब की अनुस्मृति करते है और अपनी सामर्थ्य के अनुसार आनन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द रूपी अक्षरसुख प्राप्त करते है ।

समाधि

षडंगयोग का अन्तिम अंग समाधि है । प्रज्ञोपाय-समापत्ति द्वारा सभी भावों का समाहरण कर पिण्डयोग द्वारा बिम्ब की भावना की जाती है । इस प्रकार की भावना से अकस्मात् एक क्षण में महाज्ञान की निष्पत्ति होती है, अर्थात् ग्राह्य और ग्राहक का, विषय और विषयी का अभिन्न रूप में स्थित होना ही समाधि है । समाधि में अनुस्मृति द्वारा आभासित अक्षरसुख का विस्तार एवं उसमें दृढता प्राप्त होती है । जैसे जैसे इसमें दृढता एवं इसका विस्तार होता जाता है, वैसे वैसे सूक्ष्म विकल्पों का क्षय होता है और अन्त में साधक अद्वय रूप को प्राप्त करता है । इससे अशुद्ध बिम्बों का क्षय होता है और विपाक काय परिशुद्ध होकर इष्टदेव बिम्ब कालचक्र में परिवर्तित हो जाता है ।

यदि इस प्रकार प्रत्याहार आदि अंगो के अभ्यास के द्वारा भी योगियों को इष्टसिद्धि न हो, तो नादाभ्यास के द्वारा अथवा हठपूर्वक, अर्थात् हठयोग द्वारा अब्जगत कुलिशमणि में बिन्दु को रोक कर अक्षरसुख की सिद्धि करनी चाहिये[1] । अद्वय तन्त्रों का परम रहस्य इसी में छिपा हुआ है ।

संकेत सूची

अ. व. सं.	अद्वयवज्रसंग्रह	दो. को.	दोहाकोश
इ. बु. ता. सि.	इन्ट्रोडक्शन टु द बुद्धिस्ट तान्त्रिक सिस्टम	ना. सं.	नामसंगीति
का. त.	कालचक्रतन्त्र	प्र. वि. सि.	प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि

---

१. प्रत्याहारादिभिर्वै यदि भवति न सा मन्त्रिणामिष्टसिद्धि-
र्नादाभ्यासाद्धठेनाब्जगकुलिशमणौ साधयेद् बिन्दुरोधात् ॥ (का. त. ४.११९)

गु. अ.	गुह्यादि-अष्टसिद्धिसंग्रह	व. ति.	वसन्ततिलक
गु. त.	गुह्यसमाजतन्त्र	वि. प्र.	विमलप्रभा
गु. स. प्र.	गुह्यसमाजतन्त्र प्रदीपोद्योतन	सं. अ.	संक्षिप्ताभिषेकविधि
गु. सि.	गुह्यसिद्धि	से. टी.	सेकोद्देशटीका
च. स्त.	चतुःस्तव	हे. त.	हेवज्रतन्त्र

प्राणायाम

प्राणवायु का विस्तार करना ही प्राणायाम है । प्राणवायु की गति रोकने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है । प्रत्याहार और ध्यान के द्वारा शून्यता रूपी महामुद्रा का प्रतिभास होने के बाद प्राणायाम द्वारा प्राणवायु पर अधिकार प्राप्त कर सहज सुख को प्राप्त करना ही प्राणायाम का उद्देश्य है । प्राणायाम में ललना और रसना मध्यमा में विलीन हो जाती है[1] । कालचक्रतन्त्र में इसकी विधि एवं फल का निर्देश किया गया है[2] ।

इसमें पहले वायु को नासिका के अग्र भाग में स्थिर करना चाहिये । तब अपान वायु को बलपूर्वक लेकर प्राण-अपान को एक कर कुम्भक करना चाहिये । इस क्रम में श्वास में 'ॐ', प्रश्वास में 'आः' तथा कुम्भक में 'हूं' का ध्यान करना चाहिये । इस प्रकार प्राणायाम करने से श्वास की गति क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती जाती है । प्रत्याहार और ध्यान के द्वारा देवबिम्ब की निष्पत्ति के पश्चात् प्रतिदिन प्राणायाम का अभ्यास करते रहना चाहिये । यह अभ्यास तब तक करते रहना चाहिये, जब तक अपने शरीर के भीतर रश्मिचक्र घूमता हुआ न दिखलाई पड़े । प्राणायाम के अभ्यास से, प्राण-अपान के मिलने से अग्नि का उत्पाद, शरीरगत सम्पूर्ण नाडियों का तथा उनमें संचरित होने वाली वायु, शुक्र और शोणित का स्पष्ट दर्शन होने लगता है । इस आभास के प्रकट होने के बाद छः महीने तक लगातार प्राणायाम का अभ्यास करते रहने से योगी बिना द्वीन्द्रियसमापत्ति के अक्षर महासुख का अनुभव करता है[3] ।

धारणा

प्राणवायु पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश धातुस्वरूप

---

१. "प्राणायामो द्विमार्गस्खलनमपि भवेन्मध्यमे प्राणवेशः" (का. त. ४.११६) ।

२. घ्राणे रन्ध्रद्वयेन त्वपि पिहितमुखे बाह्यवातः समस्तः
प्राणेनाकृष्य वेगात्तडिदनलनिभो घट्टितोऽपानवायोः ।
कालेनाभ्यासयोगाद् व्रजति समरसं चन्द्रसूर्याग्निमध्ये
अन्नाद्यं क्षुत्पिपासामपहरति तनौ चामरत्वं ददाति ॥ (का. त. ४.१९४)

३. दृष्टे बिम्बे प्रकुर्यात् प्रतिदिनसमये प्राणवायोर्निरोधं
यावद्दे भ्राम्यमाणं स्वतनुपरिवृतं दृश्यते रश्मिचक्रम् ।
षण्मासैः स्पर्शहीनं व्रजति समसुखं मार्गचित्तं यतीनां ... (का. त. ५.११७)

हूंकार के नासिकाग्र से होते हुए ललना और रसना के, प्राण-अपान दोनों के साथ एकलोलीभूत होकर मध्यमा में प्रविष्ट हो जाने पर स्वच्छ विद्युत्सदृश बन जाती है और नाभि से क्रमशः हठयोग से ऊर्ध्व गमन करती हुई सभी नाडियों और ग्रन्थियों को भेदती हुई उष्णीष चक्र तक पहुंचती है । उष्णीष चक्र से पुनः महासुख का स्राव कर मणिचक्र तक पहुचती है[1] । ब्रह्मरन्ध्र से वायु को बाहर निकलने देने पर साधक मृत्यु को प्राप्त हो सकता है । इसलिये साधक निरन्तर चक्रों में ऊर्ध्व-अधोगति का अभ्यास करता रहता है । अपने इष्टदेव के मन्त्र एवं वायु का हृदय में ध्यान करते हुए उसे ललाट में निरुद्ध करना, हृदय से हटा कर कर्णिका के मध्य में स्थापित करना तथा ललाट में निरोध करने की क्रियाओं को ही धारणा कहा जाता है । धारणा से प्राण गमनागमनरहित होकर एकलोलीभूत हो जाता है ।

प्रत्याहार

चक्षु आदि इन्द्रियां अपने विषयों की ओर प्रवृत्त होती है । प्रत्याहार पद में आहार शब्द त्यागार्थक है । पाच इन्द्रियों का अपने विषयों से सम्बन्ध विच्छेद करा कर, अर्थात् विज्ञान में उनका संहार कर ज्ञानस्वभाव पाच इन्द्रियो का पांच प्रभास्वर स्वरूप विषयों मे प्रवेश कराना ही प्रत्याहार है । इसके अभ्यास से निर्विकल्प वायु को मध्यमा में स्थिर करने का सामर्थ्य आता है । सक्षेप में विषय और विषयी के रूप ग्रहण करने के सम्बन्ध का विच्छेद कर चित्त को

१. का. त., ४.११६-११७

शून्यता में प्रवृत्त कराना ही प्रत्याहार साधना है[१] । इसमें इष्टदेव के रूप का ध्यान कर चित्त को बाह्य विषयों की और प्रवृत्त होने से रोका जाता है । चित्त का स्थिर होना ही प्रत्याहार है । इसमें क्रमशः धूम, मरीचि, खद्योत आदि निमित्त प्रकट होने लगते हैं[२] । इन निमित्तों के प्रकट होने पर गुरूपदेश के अनुसार देवबिम्ब की भावना की जाती है । इससे नाडीचक्र और प्राणापान दृढ़ हो जाते है । अन्त में बोधिचित्त स्थिर हो जाता है और महासुख की प्राप्ति का कारण बन जाता है[३] । इस योग से जब योगी विशुद्ध हो जाता है, तब विम्ब स्थिर हो जाता है और वाक्सिद्धि होती है, जिससे वरदान आदि की सामर्थ्य प्राप्त होती है[४] ।

ध्यान

आलम्बन में चित्त का स्थिर होना ही ध्यान है, अर्थात् विश्वबिम्ब में विषय और विषयी का एकत्व ही ध्यान है । ध्यान के पाच अंग है— प्रत्याहार द्वारा निष्पन्न बिम्ब मे चिन्तन करना प्रज्ञा है, तर्क भावों को ग्रहण करता है, यहां भाव शून्यरूपलक्षण को जानना तर्क है, विषय और विषयी का विकल्पो से रहित निश्चय करना ही विचार है, विचार से अनुप्राणित होने पर बाह्य शरीर और आभ्यन्तर चित्त में जो सुख का अनुभव होता है, वह रति है, बिम्ब के साथ चित्त का एकीकरण तथा उससे जो अक्षर सुख उत्पन्न होता है, वह अचल सुख है[५] । इसके पूर्ण होने पर साधक पञ्चाभिज्ञालाभी होता है[६] ।

१. "प्रत्याहारो नाम शरीरे विषयविषयिणा दशाना सम्बन्धेनाप्रवृत्तिर्विज्ञानस्य शून्यबिम्बे, विषयेषु प्रवृत्तिरन्यैश्चक्षुरादिभिः पञ्चविधैरिति" (वि. प्र., भा. २, पृ. २१०) । "प्रत्याहारो दशानां विषयविषयिणामप्रवृत्तिः शरीरे" (का. त. ४.११६) ।

२. आकाशासक्तचित्तैरनिमिषनयनैर्वज्रमार्गे प्रविष्टैः
शून्याद्धूमो मरीचिः प्रकटविमलखद्योत एव प्रदीपः ।
ज्वालाचन्द्रार्कवज्राण्यपि परमकला दृश्यते बिन्दुकश्च
तन्मध्ये बुद्धबिम्बं विषयविरहितानेकसंभोगकायम् ॥ (का. त. ५.११५)

३. का. त. २.१०८

४. "प्रत्याहारेण योगी यदा विशुद्धो भवति बिम्बेन स्थिरीभूतेन, तदा सर्वमन्त्रैरधिष्ठ्यते, वचसा वरदानादिकं ददाति" (वि. प्र., भा. २, पृ. २११) ।

५. वि. प्र., भा. २, पृ. २११

६. "पञ्चाभिज्ञानलाभी भवति नरपते ध्यानयोगेन शुद्धः" (का. त. ४.११८) ।

गोरक्षसंहिता से कुछ भिन्न है। इन सभी नाड़ियों में सुषुम्ना सर्वश्रेष्ठ है। वह सुषुम्ना मोक्षमार्ग है, विश्वधारिणी है। यहाँ चन्द्र और सूर्य का निबंधन होने से काल ही निर्जित हो जाता है।[5] इसी प्रकार तंत्रों में भी सुषुम्ना को काल का भक्षण करनेवाली कहा गया है।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि सभी नाड़ियों में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना महत्वपूर्ण हैं। इन्हीं को क्रमशः चन्द्रनाड़ी, सूर्यनाड़ी और अग्निनाड़ी कहते हैं। प्राणायाम के साथ जैसे नाड़ियों का संबंध घनिष्ठ है, उसी प्रकार विंदु का भी है। प्राणायाम के लिये विन्दुरक्षा अति आवश्यक है। विंदु

---

[1] गो० सं०, १.२४-३१; अमरौघशासनम्, पृ० ६। गो० सं० में मुद्रण-त्रुटि प्रतीत होती है।

[2] अमरौघशासनम्, पृ० ७।

[3] गो० सं०, १.३२; सि० सि० प०, ३.११।

[4] सि० सि० प०, १.६७।

[5] योगबीजम्, १३१-१३२।

को दो प्रकार का बतलाया गया है—पाण्डुर और लोहित। शुक्र पांडुर होता है तथा महारज को लोहित कहा गया है। सिन्दूर के द्रव के समान महारज रविस्थान में रहता है। उसी प्रकार पाण्डुर शुक्र शशिस्थान में रहता है। इन दोनों का ऐक्य दुर्लभ है। पाण्डुर विंदु शिव और लोहित विंदु शक्ति है। पाण्डुर विन्दु इन्दु और लोहित विन्दु महारज रवि है। इन दोनों के संगम से परमपद की प्राप्ति होती है। वायु द्वारा शक्तिचालन से जब महारज प्रेरित किया जाता है तब रवि और इन्दु के सहैकत्व से शरीर दिव्य हो जाता है। शुक्र चन्द्र के साथ तथा रज सूर्य के साथ संयुक्त है। इन दोनों के समरसैकत्व के ज्ञान से ही योगी योगी होता है।[1] अधोमुख चन्द्र अमृत वर्षा करता है तथा रवि उसका ग्रास कर लेता है। अतः पीयूषपान की विधि जाननी चाहिए। नाभि के ऊपर सूर्य तथा तालु के नीचे शशि है। इसके लिये विपरीतकरण जानना चाहिए। योगमार्तण्ड में चन्द्र को अधोमुख तथा सूर्य को ऊर्ध्वमुख कहा गया है।[2]

प्राणायाम के साधन की व्याख्या में सिद्धसिद्धान्तपद्धति में कहा गया है कि प्राणायाम प्राण की स्थिरता है। रेचक, कुंभक और संघट्टकरण इसके चार लक्षण हैं।[3] गोरक्षसंहिता का कथन है कि जिस प्रकार भुजदण्ड से उक्षिप्त किया हुआ कंदुक उछलता है, उसी प्रकार प्राण से समाक्षिप्त जीव भी स्थिर नहीं रहता। प्राण और अपान के वशीभूत जीव ऊपर-नीचे दौड़ता है। वाम और दक्षिण मार्ग से चंचलता के कारण वह दिखाई नहीं पड़ता। जिस प्रकार रज्जु से बँधा हुआ श्येन (बाज) पुनः लौटा लिया जाता है, उसी प्रकार गुणबद्धजीव प्राणापान से छिन्न नहीं हो पाता। अपान प्राण को तथा प्राण अपान को आकृष्ट करता है। इन दोनों की अधः और ऊर्ध्व की स्थिति को जो जानता है, वही योग का जानकार है। प्राण 'हंकार' के साथ बाहर जाता है तथा 'सकार' के उच्चारण के साथ पुनः वह प्रवेश करता है। 'हंस' 'हंस'—इस मंत्र का जप जीव सदैव करता रहता है।[4] रात और दिन मिला

---

[1] गो० सं०, १.७३-७७। योगमार्तण्ड (सि० सि० प० अ० व० ना० यो०), ६०-६४।

[2] गो० सं०, २.३३-३५; योगमार्तण्ड (सि० सि० प० अ०…), १२१-१२३।

[3] सि० सि० प०, २.३५।

[4] गो० सं०, १.३८-४२। योगमार्तण्ड (सि० सि० प० अ० व० ना० यो०), २७-३१।

छान-बीन करने पर पता चला कि ये दशांग यम-नियम तांत्रिकों को ग्राह्य हैं। शारदातिलक में वे सभी श्लोक मिल जाते हैं जिन्हें हठयोगप्रदीपिका में उद्धृत किया गया है। उन श्लोकों में भी दशांग यम-नियम का वर्णन है। आगे इसकी चर्चा की गई है।

यम-नियम के अभ्यास के बाद हठयोग का वास्तविक आरम्भ होता है। यद्यपि हठयोग का मूल तत्त्व प्राणायाम है पर आसन स्थिर और सिद्ध हो जाने के बाद ही प्राणायाम का विधान है। इस हठ शब्द की कई प्रकार से व्याख्या की गई है। हठयोगप्रदीपिका में उद्धृत सिद्धसिद्धान्तपद्धति के अनुसार 'हठ' शब्द के दो अक्षरों में से 'ह्' का अर्थ सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ चन्द्र बतलाया गया है। सूर्य-चन्द्र योग के कारण इसे हठयोग कहते हैं। प्रदीपिका के टीकाकार ने इसी प्रकार 'ह्' और 'ठ' को प्राण-अपान का वाचक मानकर प्राणायाम को ही हठयोग कहा है।[४] इसी प्रकार टीकाकार ने अन्यत्र भी सूर्य को सूर्य नाड़ी तथा चन्द्र को चन्द्र नाड़ी का वाचक माना है। सूर्य नाड़ी को दक्षिणांग

[१] सि० सि० प०, २.३२, ३३।

[२] ह० यो० प्र०, प्रथम उपदेश में १६-१७ वें के बीच में उद्धृत श्लोक। इस प्रसिद्ध ग्रन्थ के भाषा टीकाकार ने इस विषय के ढाई श्लोकों को प्रक्षिप्त माना है। उन्हें उद्धरणचिन्हों के अन्तर्गत रखा गया है तथा इन श्लोकों की गणना भी मूल ग्रन्थ के श्लोकों में नहीं की गई है। इन श्लोकों पर संस्कृत टीका भी नहीं है। अतः ह० यो० प्र० को भी अष्टांग योग स्वीकार है, इसमें सन्देह है।

[३] नाथयोग—बनर्जी, पृ० १९।

[४] ह० यो० प्र०, १.१ तथा उसकी टीका।

में तथा चन्द्र नाड़ी को वामाङ्ग में बताया गया है। सूर्य नाड़ी को पिंगला भी कहा गया है। अतः चन्द्र नाड़ी को इड़ा समझना चाहिए। इस प्रकार इन दोनों के योग को हठयोग कहते हैं।[१] योगबीज में योग की कई परिभाषाएँ मिलती हैं। कहा गया है कि अपान और प्राण का योग रजस् और रेतस् का योग, सूर्य-चन्द्र का योग, जीवात्मा और परमात्मा का योग, योग है। इस प्रकार द्वन्द्वजाल का संयोग ही योग है।[२] कुछ मतों के अनुसार इस योग से हठात् सिद्धि मिलने के कारण इसे हठयोग कहते हैं।[३]

हठयोगप्रदीपिका तथा अन्य ग्रन्थों के उक्त कथनों से यह स्पष्ट होता है कि हठयोग प्राणायाम प्रधान होता है। किंतु ऊपर के और विवरणों को देखने पर नाथयोगियों के षडङ्ग योग में सर्वप्रथम स्थान आसन को ही दिया गया प्रतीत होता है।[४] गोरक्ष संहिता तथा अन्य योगग्रन्थों में आसनों की संख्या उतनी ही बताई गई है जितनी जीवजातियाँ हैं। इनमें ८४ आसन विशेष हैं तथा उनमें भी सर्वोत्तम दो हैं—सिद्धासन और कमलासन। गोरक्षनाथ के प्रसिद्ध ग्रन्थों में केवल उपर्युक्त दो का विस्तृत विवरण है। हठयोगप्रदीपिका तथा तांत्रिक ग्रंथों में स्वस्तिक, गोमुख, वीर, कूर्म, कुक्कुट, उत्तान, धनु, मत्स्येन्द्र, पश्चिमोत्तान, मयूर, शव, सिंह, भद्र, पद्म, आदि मुख्य आसनों का वर्णन मिलता है। हठयोगप्रदीपिका में भी सिद्धासन को अति महत्त्वपूर्ण आसन माना है। उसी को वज्रासन, मुक्तासन, गुप्तासन आदि नामों से भी अभिहित करते हैं। इनमें से प्रत्येक आसन के अलग-अलग गुण हैं किंतु सभी आसनों का सामान्य गुण है आरोग्य और अंगलाघव प्रदान करना।[५]

इस कुलकुंडलिनी का सारतत्व मंत्र है। यह प्रत्येक जीव के मूलाधार में विद्युत् प्रभा की तरह प्रकाशित रहती है। वेद और मंत्र भी इसी के तत्व हैं। यह सूर्य, चन्द्र और अग्नि नाम की तीन शक्तियों की जननी है तथा स्वयं शब्द ब्रह्म है। इसलिये कुंडलिनी मानवशरीर में क्रियाशक्ति की सर्वाधिक शक्तिशाली अभिव्यक्ति है। कुंडली शब्द ब्रह्म है, अर्थात् वह आत्मा की शक्ति के रूप में अभिव्यक्ति है। शिव का निवास सहस्रार में है। यह चक्र ऊर्ध्वतम श्रीचक्र है तथा अन्य छ चक्र निम्नचक्र हैं। तब भी शिवशक्ति एक हैं। इसलिये कुंडलिनी का शरीर आठ अंगों का है—छ चक्र, शक्ति और सदाशिव। कुंडलिनी सहस्रार में परमात्मशक्ति में लीन हो जाती है। कुंडलिनी महाप्राणदेवता है, नादात्मा है। यदि प्राण को मध्यम पथ सुषुम्ना के मध्य से ब्रह्मरन्ध्र की ओर आकर्षित किया जाय तो अवश्य ही यह शक्ति उत्थित होकर मार्ग में पड़नेवाले चक्रों का भेदन करेगी। कुंडलिनी प्राणशक्ति है। यदि कुंडलिनी उत्थित की जाती है तो प्राण भी उत्थित होता है।[2] इस प्रकार प्राणायाम और कुंडलिनी-जागरण का सघन संबंध सिद्ध होता है। प्राणायाम के लिये तथा कुंडलिनी के उद्बोधन के लिये विभिन्न प्रकार के आसनों, कुंभकों, बंधों, मुद्राओं आदि का प्रयोग किया जाता है। इससे इड़ा-पिंगला से आकर्षित किया हुआ प्राण सुषुम्ना या शून्य में प्रवेश करने पर शक्ति या ओज के रूप में ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता हैं। परिणामतः शेष शरीर निष्प्राण हो जाता है। तब प्राण की संपूर्ण धारा मेरुदण्ड में प्रेरित कर दी जाती है। प्राण के लय से मनोन्मनी अवस्था का उदय

[1] वही, पृ० २२४।
[2] वही, पृ० २२७-२२८।

होता है क्योंकि इसके बाद मन का लय होता है। सुषुम्ना में नित्य ही प्राण-धारा को प्रेषित करने से अन्य नाड़ियों में प्राण की गति क्षीण हो जाती है तथा मन स्थिर हो जाता है। इस समकालिक क्रिया का कारण यह है कि जब प्राण में परिस्पंदन होता है तो मन भी चंचल रहता है अर्थात् सांसारिक विषयों का भोग करता है।[1]

जब प्राण सुषुम्ना में रहता है, तब न तो रात रहती है, न दिन रहता है क्योंकि सुषुम्ना काल को निगीर्ण कर लेती है। जब प्राण में स्पंदन होता है तब चित्तवृत्ति चंचल रहती है, निरुद्ध नहीं रहती। योगवाशिष्ठ के अनुसार जब तक प्राण का अस्तित्व रहता है, तब तक न तत्वज्ञान होता है और न वासना का क्षय होता है क्योंकि तत्वज्ञान से चित्त और वासना दोनों का क्षय होता है। श्वासनिरोध शुक्र को स्थिर और अचंचल करता है। शुक्र तब तक चंचल रहता है, जबतक प्राण चंचल रहता है। शुक्र के स्थिर न रहने पर मन भी स्थिर नहीं रहता। मन के अभ्यस्त किये जाने पर मन ही अपने को संसार से विरक्त कर लेता है। ये विभिन्न परिणाम कुंडलिनी जागरण से तथा उन अन्य क्रियाओं से होते हैं जिनके लिये कुंडलिनी कुंचिकावत् है।[2] प्राण के साथ कुंडलिनी का यह उत्थान और अन्ततः लय के लिये यह गतिक्रम क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म की ओर गतिक्रम है। लयक्रम स्थूल से सूक्ष्म की ओर होता है।[3] मानसध्यान तथा अन्य वर्णित साधनों से स्थूल तत्व सूक्ष्म तत्व में लीन हो जाते हैं। प्रत्येक अपने कारण में लीन होते हैं और अन्ततः सभी चिदात्मा में लीन हो जाते हैं।

हठयोग के साधन में शरीरसाधन पर अधिक जोर दिया जाता है। इस शरीरप्रधान साधन में प्राणायाम भी एक है। हठयोग क्रियाज्ञान है। वह कुंडलिनी की सहायता से ज्ञान प्राप्त करता है। कुंडलिनी का शिव से जो मिलन होता है, उससे स्वरूपज्ञान की प्राप्ति होती है। इससे स्पष्ट है कि हठयोग कुंडलिनीयोग का उपकारक साधन है।[1] हठयोग स्थूल शरीरप्रधान साधन है। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर से संबद्ध होता है क्योंकि वह सूक्ष्म शरीर का बाह्य आवरण होता है। यह स्थूल शरीर का संयम सूक्ष्म शरीर तथा उसके भाव, विचार और वासना को प्रभावित करता है। इस स्थूल शरीर का निर्माण सूक्ष्म शरीर की प्रकृति के अनुकूल ही होता है। दोनों ही एकात्म हैं तथा परस्परावलम्बी हैं। अर्थात् स्थूल शरीर का नियंत्रण सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करता है। इस योग की शारीरिक क्रियाएँ विशिष्ट स्वभाववाले साधकों के लिये विहित हैं जिससे उनके स्थूल शरीर के प्रथमतः नियंत्रित होने पर सूक्ष्म शरीर अपनी सभी चित्तवृत्तियों के साथ ही नियंत्रित हो जाता है। ये शुद्ध स्थूल शारीरिक क्रियाएँ, दूसरी क्रियाओं के लिये सहायक हैं क्योंकि कुलार्णवतंत्र का कथन है कि न कमलासन पर और न नासिका पर ध्यान लगाना योग है, अपितु, वस्तुतः आत्मा और परमात्मा का मिलन ही योग है।[2] इस हठयोग में योग्यता का निर्णय शरीर की दृष्टि से किया जाता है तथा इसमें नियमों का विधान भी शरीर की रक्षा, वृद्धि तथा उसकी रोगमुक्ति के लिये किया जाता है। इस योग में ज्योति का ध्यान किया जाता है, जिससे महाबोध समाधि की प्राप्ति होती है। इस समाधि की प्राप्ति का साधन प्राण और अन्य वायुओं का नियमन है। वायुनियमन से चित्तनियमन होता है क्योंकि चित्त और उसकी वृत्तियाँ वायु का अनुसरण करती हैं।[3]

'हठ' शब्द 'ह' और 'ठ' वर्णों के योग से बना है जिसका अर्थ है सूर्य और चन्द्र, अर्थात् प्राणवायु और अपानवायु। आर्थर एवेलेन ने षट्चक्रनिरूपण के आधार पर बतलाया है कि हृदयस्थ प्राण मूलाधारस्थ अपान को आकर्षित करता है तथा अपान प्राण को आकर्षित करता है। ये दोनों अपनी विषम गति के कारण एक दूसरे को शरीर छोड़ने से रोकते हैं किंतु जब इनकी समगति होती

[1] दि स० पा०, पृ० १८६।
[2] वही, पृ० १९७।
[3] वही, पृ० १९८।

है तब वे दोनों शरीर को छोड़ देते हैं। इन दोनों का सुषुम्ना में योग तथा इस योग की स्थिति तक ले जानेवाली क्रिया प्राणायाम कही जाती है। इस प्रकार हठयोग या हठविद्या प्राणशक्तिविज्ञान है। यहाँ 'प्राण' का अर्थ विभिन्न प्रकार की उन वायुओं से है जिनमें प्राण विभाजित होता है। यह प्राण मानव शरीर या पिंड में विश्वप्राण का एक अंश है। इस विश्वप्राण को महाप्राण भी कहते हैं। इसलिये सर्वप्रथम प्रयत्न इस पिंडप्राण या व्यष्टिप्राण को ब्रह्माण्ड-

करता है। मूलाधार में अपानवायु के एक प्रकार का, जिसे कंदर्प वायु या कामवायु कहते हैं, निवास है। इसे बाँई दिशा की ओर प्रेरित किया जाता है तथा इस प्रकार उस अग्नि को उद्दीप्त किया जाता है जो कुंडलिनी के चारों ओर व्याप्त रहती है। बीज 'हूं' और इस प्रकार उद्दीप्त की हुई अग्नि के ताप से सुषुप्त कुंडलिनी जाग्रत की जाती है। वह कुंडलिनी, जो स्वयम्भूलिंग को चारों ओर से सार्द्धत्रितय वलयों से आवृत कर लिपटी रहती है तथा ब्रह्मद्वार के छिद्र को बन्द किये रहती है, इस प्रकार जाग्रत किये जाने पर, उस द्वार में प्रवेश करती है तथा जीवात्मा से समन्वित होकर ऊपर की ओर उत्थित होती है।[1]

इस प्रकार ऊर्ध्वमुख गतिशीलता के होने पर ब्रह्मा, सावित्री, डाकिनी शक्ति, देवगण बीज और वृत्ति—ये सभी कुंडलिनी के शरीर में लीन हो जाते हैं। महीमंडल या पृथिवी बीज 'लं' में परिवर्तित होकर उसके शरीर में लीन हो जाती है। जब कुंडलिनी शक्ति मूलाधार से उत्थित होती है तो वह पद्म जो उसके जागरण के समय विकसित हो गया था तथा ऊर्ध्वमुख हो गया था, पुनः मुकुलित और अधोमुख हो जाता है। जैसे ही कुंडलिनी स्वाधिष्ठान चक्र को पहुँचती है, वह स्वाधिष्ठानस्थित पद्म विकसित हो जाता है तथा उसके दल भी ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं। कुंडलिनी का प्रवेश होने पर महाविष्णु, महालक्ष्मी, सरस्वती, राकिनी शक्ति, देव, मातृकाएँ, वृत्ति, वैकुंठ धाम, गोलोक और उनमें निवास करने वाले देव-देवीगण, सभी कुंडलिनी के शरीर में लीन हो जाते हैं। पृथ्वी का बीज 'लं' जल में तथा जल बीज 'वं' में परिवर्तित हो जाने पर कुंडलिनी के ही शरीर में स्थित रहता है। जब देवी मणिपूरचक्र को पहुँचती है, तब जो कुछ भी उस चक्र में रहता है, वह सब

[1] इं० तं० शा०, पृ० १३५–१३६। इसका विस्तृत विवरण पूर्णानंद-स्वामी कृत षट्चक्रनिरूपण में मिलता है।

उस कुंडलिनी शरीर में लीन हो जाता है। वरुण का बीज 'वं' अग्नि में मिश्रित हो जाता है और देवी शरीर में बीज 'रं' के रूप में रहता है। इस मणिपूरचक्र को ब्रह्मग्रंथि कहते हैं। इस चक्र का भेदन होने से बहुत पीड़ा हो सकती है, शारीरिक अव्यवस्था हो सकती है, कोई व्याधि उत्पन्न हो सकती है। इसीलिये एक अनुभवी गुरु की आवश्यकता होती है और इसीलिये अन्य प्रकार के उचित और अनुकूल योग भी बताये गये हैं, क्योंकि इस प्रकार की अवस्थाओं में क्रियाशक्ति सीधे उच्चतर केंद्रों में उत्थित होती है। उच्चतर केन्द्रों या चक्रों तक पहुँचने के लिये सदैव निम्नतर केन्द्रों या चक्रों का भेदन होना आवश्यक नहीं है। इसके बाद कुंडलिनी अनाहतचक्र में प्रवेश करती है, जिसमें वहाँ जो कुछ भी रहता है, सब देवी शक्ति के शरीर में लीन हो जाता है। तेजस् का बीज 'रं' वायु में लीन हो जाता है तथा वायु का बीज 'यां' में परिवर्तित होकर कुंडलिनी के शरीर में लीन हो जाता है। इस चक्र को विष्णुग्रंथि कहते हैं। कुंडलिनी भारती या सरस्वती के निवासस्थान विशुद्धचक्र को पहुँचती है। उसमें प्रवेश करने पर अर्द्धनारीश्वर शिव, शाकिनी, षोडश स्वर, मंत्र आदि कुंडलिनी के शरीर में लीन हो जाते हैं। वायु का बीज 'यां' आकाश में लीन हो जाता है तथा वह स्वयं भी बीज 'हं' में परिवर्तित होकर कुंडली देवी के शरीर में लीन हो जाता है। ललनाचक्र का भेदन कर कुंडलिनी आज्ञाचक्र को पहुँचती है जहाँ परमशिव, सिद्धकाली, देव, गुण तथा उस चक्र में निवास करने वाले सब उसके शरीर में लीन हो जाते हैं। आकाश का बीज 'हं' मनसचक्र में लीन हो जाता है तथा मन स्वयं परादेवता के शरीर में लीन हो जाता है। आज्ञाचक्र को रुद्रग्रंथि कहते हैं। इस चक्र के भेद के बाद कुंडलिनी अपनी ही गति से परमशिव से एकात्मलाभ करती है। जैसे ही यह द्विदल पद्म से ऊपर की ओर उत्थित होती है, निरालंबपुरी, प्रणव, नाद आदि सभी उसके शरीर में लीन हो जाते हैं।[1]

इस प्रकार कुंडलिनी अपने ऊर्ध्वमुख उत्थान में पंचभूततत्वों से आरम्भ कर अन्त तक २४ तत्वों को अन्तर्लीन कर लेती है और तब परमतत्व से एकात्म प्राप्त कर अद्वयावस्था को प्राप्त कर लेती है। यह सात्विक पंचतत्वों का मैथुन है। इस प्रकार के अद्वय से जो अमृतस्राव होता है वह संपूर्ण क्षुद्र ब्रह्मांड या मानव शरीर को आपूर कर देता है। तभी साधक इस संसार

[1] वही, पृ० १३६–१३७।

(discriminative consciousness) रहता है, इन सभी अवस्थाओं से उच्चतर स्थिति की प्राप्ति निर्माण या सहजावस्था में होती है।[1] यह स्थिति ही 'महासुख' दातृ है। प्रथम और अंतिम स्थिति को एक मानने का कारण यह है कि 'सहजावस्था' प्रथम अर्थ में आत्यंतिक स्थिति है, सृष्टि के पूर्व यह सहजावस्था (उपनिषद् का ब्रह्म या आत्मा) ही अपने को विषय और विषयी के रूप में विभाजित करती है और विषय एवं विषयी के नाश के बाद साधक शुद्ध स्वरूप में स्थित होकर 'सहज' हो जाता है। अतः इस दृष्टि से 'सहजावस्था' या 'सहज-काया' अंतिम स्थिति हुई = चतुर्थकाया।

द्वितीय अर्थ में सहजकाया ही निर्माणकाया है, 'कायावज्र' की प्राप्ति सहजसाधना द्वारा ही होती है, अतः साधक साधना के प्रारम्भ में किसी स्त्री (प्रज्ञा) के साथ योग प्रारम्भ करता है। इस साधना में मस्तक में स्थित बिन्दु = वीर्य = बोधिचित् = पुरुष-शक्ति को प्रज्ञा के मिलन द्वारा (रति—क्रिया) द्रवित किया जाता है, साधक का बोधिचित् (वीर्य) द्रवित होकर वज्रमणि (लिङ्ग) तक आता है और प्रज्ञा (योनि) में गिर कर न केवल बाह्य सृष्टि करता है अपितु साधक द्वारा बोधिचित् एवं प्रज्ञा के मिलन का यह आध्यात्मिक लक्ष्य समझ लेने पर, बाह्य रति-क्रिया आंतरिक शक्ति को जाग्रत कर देती है और इस शक्ति द्वारा मस्तक से स्खलित बिन्दु (वीर्य-बोधिचित्) को पुनः मस्तक पर ही पहुँचा दिया जाता है (ऊर्ध्व-रेतस्-योग) और योगी इस प्रकार 'सहज' (सम्भोग) साधना द्वारा शरीर स्थित शक्ति को ऊर्ध्व-संचरित करता है और अंतिम स्थिति (सहज काया—चतुर्थ अवस्था) को प्राप्त कर नित्य निर्द्वन्द्व हो जाता है। यही सहजानन्द है, प्रथम एवं अंतिम काया का ऐक्य यही है, स्खलन तथा ऊर्ध्व-संचरण, अधोमुख विकास (involution) तथा विकास (evolution) की एक साथ अनुभूति ही तांत्रिक बौद्धमत की विशेषता है। बाह्य और आंतरिक की एकता 'सहजयोग' के बिना असम्भव है, तंत्रों की यह घोषणा है, शैव एवं शाक्ततंत्र भी इसे स्वीकार करते हैं।

वज्रयोग—वज्रयान में 'वज्र' शब्द की बड़ी महिमा है। हिब्रू-ग्रीक रहस्यवाद में भी 'आदम' Adam शब्द का प्रयोग मिलता है। इसके दो

(१) दुर्वाररागमलावलिप्तोमयेन्द्रियात्मकतुर्यातमोऽभिभूतसुषुप्तप्राणोत्पादितसद-सत्स्वप्नानेकविकल्प मायससंसारमक जाग्रदवस्थाध्वंसकेः.........वही—पृष्ठ ५

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृत भाषा में उपलब्ध नाथ साहित्य में कुंडली और कुंडलीजागरण का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। विभिन्न ग्रंथों में इस साधन के परिचय के लिये आसन, नाड़ी, प्राणायाम आदि का भी समायोग आवश्यक माना गया है। इस साधन के परिचय के लिये षट्चक्रों का ज्ञान सबसे अधिक आवश्यक है। मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने 'योगविषय' में कुंडलिनीयोग को मुख्यता प्रदान की है तथा उसके अनुकूल ही षट्चक्र, सूर्यचक्र, अग्नि, ओंकार, ग्रंथि, कुंडलिनी, शंखिनी आदि के साधन, देवतार्चन, ईश्वरार्चन तथा उसकी सामग्री का वर्णन किया है। आसन से लेकर प्रत्याहार तक, धीरे धीरे, जैसा पिछले विवरण से विदित है, साधक स्थूल तत्वों से सूक्ष्म तत्वों के साधन की ओर या शारीरिक साधन से चैतसिक साधन की ओर अग्रसर होता हुआ प्रतीत होता है। कुंडलिनीसाधन भूतजय और भूतलय दोनों है और जैसा पहले बतलाया गया है, कुंडलिनी की यात्रा में पड़नेवाले विभिन्न पाँच चक्रों में क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश की स्थिति भी मानी गई है। इस प्रकार कुंडलिनी की यात्रा पृथ्वी की आकाश तक की यात्रा आध्यात्मिक यात्रा के रूप में कल्पित की जा सकती है। इन विचारों को ध्यान में रखकर नाथयोगियों के कुंडली और कुंडलीसाधना संबंधी विवरण को उपस्थित किया गया है। विभिन्न ग्रंथों में तत्संबंधी विवरण भिन्न भिन्न मिलते हैं।

मत्स्येन्द्र ने छ चक्र माने हैं—आधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत विशुद्धि और आज्ञा। इनकी क्रमशः गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, कण्ठदेश तथा भ्रूमध्य में स्थिति मानी गई है। निरंजन की स्थिति इन चक्रों से परे मानी गई है। ओंकार में अ, उ, म् तीन वर्ण हैं। अकार वह्निदेश या नाभिदेश में, उकार हृदयस्थान में तथा मकार भ्रूमध्य में स्थित है। तीन ग्रन्थियाँ हैं—सबसे नीचे आधार में ब्रह्मग्रंथि, हृदय में विष्णुग्रंथि तथा भ्रूमध्य में रुद्रग्रंथि की स्थिति मानी गई है। इस प्रकार अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु तथा मकार रुद्र हैं। योगविषय की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें आज्ञा के ऊपर भी नौ चक्रों का वर्णन किया गया है। ये चक्र हैं—त्रिकूट, त्रिहट, गोल्लाट, शिखर, त्रिशिख, वज्र, ओंकार, ऊर्ध्वनाख और भ्रुवोर्मुख।[1] कुंडलिनीशक्ति के आठ

[1] योगविषय, श्लो० ८-१०, २०; सि० सि० प० अ० व० ना०—'समरीज' पृ० ४३।

कुंडलों के आठ नाम बताये गये हैं—प्रणवा, गुदनाला, नलिनी, सर्पिणी, बंकनालि, क्षया, शौरी और कुंडली। प्राण द्वारा कुंडली का चालन करने से शशिमंडल का भेदन हो जाता है और द्वार वन्द हो जाते हैं और वज्रगुम्भ की स्थिति प्राप्त होती है।[1] ब्रह्मस्थान में नाद का श्रवण होता है, तब शंखिनी नाम की नाड़ी अमृत वर्षा करती है और इससे छ चक्रों का पवित्रीकरण हो जाता है। इससे ही ज्ञानदीप का प्रकाश होता है। इस ज्ञानदीप से योगी ईश्वर का साक्षात्कार करता है। वह तब अपने मानसरूपी पुष्प को उस ईश्वर को अर्पित करे और इस प्रकार ईश्वर की अर्चना करे।[2] कुंडलिनी के जागरण के लिये बतलाया गया है कि कंठसंकोच करके दोनों नाड़ियों को दृढ़तापूर्वक स्तंभित कर देना चाहिए। रसना का निपीड़न करने से षोडश (षोडशी=कुंडलिनी ?) ऊर्ध्वगामिनी होती है।[3]

मुद्रा, बंध और वेध का सविस्तर वर्णन तांत्रिक ग्रंथों में मिलता है किंतु नाथ साहित्य में इनका इतना सविस्तर वर्णन उपलब्ध नहीं है। मुद्रा, बंध और वेध वस्तुतः स्थूल शरीर के साधन हैं। विभिन्न योगग्रंथों में इनका वर्णन किसी क्रम से नहीं किया गया है। अधिकांश ग्रंथों में आसन के बाद इनका वर्णन किया गया है। मत्स्येन्द्र ने योगविषय में इनकी कोई चर्चा नहीं की है। गोरक्षनाथ ने भी सिद्धसिद्धांतपद्धति में उनका अपने साधनपथ के रूप में उल्लेख नहीं किया है। उनके नाम से प्रसिद्ध इतर ग्रंथों में इन तीनों का वर्णन मिलता है। गोरक्षसंहिता में महामुद्रा, नभोमुद्रा, खेचरी मुद्रा, योनि-मुद्रा तथा उड्डीयान बंध, जालंधरबंध और मूलबंध का वर्णन किया गया है।[1] घेरंड संहिता की तरह इनका अति विस्तृत विवरण हठयोगप्रदीपिका में मिलता है। गोरक्ष के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथों में गोरक्षपद्धति को यद्यपि स्पष्टतः उसे गोरक्षसंहिता से संबद्ध माना गया है, तथापि जिन षट्कर्मों, मुद्रा, बंध, वेध का विस्तृत वर्णन गोरक्षपद्धति में उपलब्ध है, वह गोरक्षसंहिता में नहीं है। हठयोगप्रदीपिका में षट्कर्मों को उपकारक माना गया है। कहा गया है कि प्राणायाम का अभ्यास षट्कर्मों को कर लेने के बाद करना चाहिए। मतान्तर उपस्थित कर यह कहा गया है कि प्राणायाम करने से ही संपूर्ण मल शुष्क हो जाते हैं, इसलिये कुछ आचार्यों का ऐसा मत है कि प्राणायाम के अतिरिक्त

[1] गो० सं०, १.५७–७१, १.७७–७८,७९–८२। 'बिन्दुः शिवो रजः शक्तिः बिन्दुरिन्दु रजो रविः। उभयोः संगमादेव प्राप्यते परमं पदम्।' यो० मा०, ५९–६४।

जो षट्कर्म हैं वे सम्मत नहीं हैं।[1] मुद्रा, बंध और वेध संबंधी विवरणों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इन तीन साधनों में मुद्रा स्पष्टतः आसन की कोटि की है। आसन और मुद्रा के अभ्यास से देह की दृढ़ता और स्थिरता की प्राप्ति होती है। इन सबके बाद प्राणायाम और प्रत्याहार के द्वारा साधक क्रमशः आत्मप्रत्यक्ष की ओर अग्रसर होता है। मुद्राओं में अनेक ऐसी हैं जिनका उपयोग शक्तिजागरण में किया जाता है—उदाहरण के लिये शक्तिचालिनी-मुद्रा। लययोगादि के लिये योनिमुद्रा उपकारक बताई गई है। इसी प्रकार अमृतपान के लिये या वारुणीपान के लिये खेचरी मुद्रा का विधान है। मुद्रा का साधन स्थूल शरीर से होता है, सूक्ष्म शरीर से नहीं। अतः उन्हें भी आसन की ही कोटि में रखना चाहिए। वारुणीपान, वीर्यरक्षाभ्यास, कुंडलिनी-जागरण आदि विभिन्न क्रियाओं से मुद्राओं का संबंध है। इसलिये, जहाँ तक उपयोग का प्रश्न है, नाथयोगी ग्रन्थों में तथा अन्यत्र भी इनका भिन्न-भिन्न प्रसंगों में वर्णन मिलता है। इसी प्रकार बन्ध के विषय में भी (जिनका कुछ वर्णन पहले प्राणायाम के प्रसंग में हो चुका है) अनुमान किया जा सकता है। प्रायः सभी बन्धों का सम्बन्ध प्राणायाम से है। ये शरीर के विभिन्न अंगों की ऐसी स्थितियाँ या अवस्थाएँ हैं जिनमें प्राणायाम के अभ्यास में पर्याप्त सुविधा एवं सहायता मिलती है। अतः ये भी आसन के अभ्यास के बाद एवं प्राणायाम के पूर्व किये जाने चाहिएँ। इस प्रकार यह प्रकट होता है कि हठ-योग में यम, नियम, आसन, मुद्रा, बंध आदि स्थूल शरीर के साधन हैं। वेध भी बन्ध की तरह ही प्राणसाधन और नाड़ीसाधन से संबन्ध रखते हैं। नाथ-पंथी षडंग साधन में धारणा, ध्यान और समाधि, ये तीन सूक्ष्म शरीर के साधन हैं। इनका सम्बन्ध चित्त से है। पातंजल योग में भी इनका यही स्थान है।

और ग्रहण का भी उपदेश किया गया है। इस प्रकार आसन और प्राणायाम से संयुक्त होकर धारणा के अभ्यास का विधान किया गया है।[१]

योगबीज ने तीन मुख्य बंधों से भी प्राणायाम का संबंध जोड़ा है। बंध तीन हैं—मूलबंध, उड्डीयानबंध और जालंधरबंध। इनमें से प्रत्येक के अभ्यास में प्राणाकर्षण की आवश्यकता बतलाई गई है। उड्डीयान को कुंभक और रेचक के अन्त में करने का उपदेश दिया गया है। इससे सुषुम्ना में बद्ध होने के कारण प्राण उड़ता है। इसीलिये इसे उड्डीयान कहते हैं। इसी प्रकार पूरक के अन्त में जालंधरबंध करने का उपदेश किया गया है।[२] इस प्रकार गुरु के प्रसाद से जो मरुत् को साधता है उसका चित्त पवन से साधित हो जाता है। यदि मरुत् के होते हुए भी चित्त भी नष्ट हो जाय तो प्रतीति और मरुत् भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति के लिये न शास्त्र है, न आत्मप्रतीति है, न गुरु है, न मोक्ष है।[३] इन बताई विधियों से रेचक और पूरक करने से वायु स्थिर होता है, विभिन्न प्रकार के नाद उत्पन्न होते हैं, चन्द्रमण्डल में स्राव होता है।[४] नाड़ी, बंध आदि के अतिरिक्त कुंडलिनीसाधन से भी प्राणायाम का घनिष्ठ संबंध है जिसका विवरण कुंडलिनी के प्रसंग में दिया गया है। इस प्रकार विभिन्न ग्रंथों के आधार पर प्रस्तुत प्राणायामसाधन के विवरण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि नाड़ीशोधन के लिये, पिंड को रोगरहित बनाने के लिये, पातकहानि के लिये प्राणायाम का साधन किया जाता है। यह क्रिया कुंडलिनीजागरण तथा चित्त की स्थिरता, दोनों में सहायक होती है क्योंकि तांत्रिकों के समान ही नाथयोगियों का भी मत है कि प्राण की चंचलता से चित्त चंचल होता है तथा चित्त के चांचल्य से बिंदु चंचल होता है। अतः दोनों की स्थिरता के लिये प्राणायाम आवश्यक है। इन उद्देश्यों को ध्यान में रख कर प्राणायाम का विधान मिलता है।

ऊपर बतलाया गया है कि प्राणायाम का महत्व विन्दुधारण तथा विन्दु-स्थैर्य के लिये भी है। लम्बिका (अमरौघशासनम् में लम्पिका) के ऊपर जो विवर को खेचरी से मुद्रित कर लेता है, कामिनी-संगम से उसका बिंदु क्षरित नहीं होता। जब तक बिंदु शरीर में स्थित है तब तक मृत्यु का भय नहीं

[१] गो० सं०, २.२१,५२।
[२] योगबीजम्, ११५, ११८, ११९, १२१।
[३] वही, १३७-१३८।
[४] वही, १४१।

होना चाहिए। नभोमुद्रा का साधन करने पर बिंदु का क्षरण नहीं होता। लोहित और पांडुर बिंदु का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। बताया गया है कि वायु के द्वारा शक्तिचारण से जब रज प्रेरित किया जाता है तथा जब विन्दु के साथ एकत्व को प्राप्त करता है तब शरीर को दिव्यत्व की प्राप्ति होती है। इस प्रकार विन्दुस्थैर्य में प्राणायामसहित मुद्रा सहायक होती है। बन्ध और वेध भी आसनक्रियाओं से समानता रखते हैं। वस्तुतः चैतसिक साधन का आरम्भ प्राणायाम के बाद से ही होता है। यम से प्राणायाम तक का साधन स्थूल शरीरसाधन से घनिष्ठरूपेण संबद्ध है। इन साधनों में प्राणा-याम के सहायक के रूप में तथा बाद में कुंडलिनीसाधन के भी सहायक के रूप में मुद्रा, बंध और वेध का वर्णन हठयोग के ग्रंथों में मिलता है। ये सभी साधन घनिष्ठरूपेण एक दूसरे से संबद्ध हैं।

स्वतः शून्य रूप में आभासित इष्टदेव मातृ-पितृ युगनद्ध (कालचक्र) रूप में प्रकट हुए मातृदेव का अनुराग पूर्ण स्वचित्त (ग्राह्य ग्राहक शून्यता) में स्थित होना ही अक्षर सुख की प्राप्ति अथवा ध्यानयोग है । उसकी उत्पत्ति अनुस्मृति की साधना के समय चण्डाली द्वारा बोधिचित्त को गलित कर उष्णीष से मणिचक्र के अग्र तक पहुँचने से चार आनन्दों की उत्पत्ति से होती है । इनमें चौथा अक्षर सुख सहजानन्द ही ध्यान है । उसी समय नाभि में चण्डाली प्रज्वलित होने पर योगी देवबिम्ब का साक्षात्कार करने लगता है और उसमें अनुरागपूर्ण सुख की उत्पत्ति होती है । यही अनुस्मृति है । अनुस्मृति की उत्पत्ति के लिए धारणा द्वारा मध्यमा नाड़ी में वायु को अचल रूप में स्थित चण्डाली को भी प्रज्वलित करना पड़ता है । इस प्रकार वायु को मध्यमा नाड़ी में स्थित करना ही धारणा कहलाती है । धारणा की अवस्था की प्राप्ति के लिए प्राणायाम द्वारा ललना और रसना में बहने वाली वायु को मध्यमा में प्रवेश कराना पड़ता है, जो प्राणायाम योग कहलाता है । ललना और रसना में बहने वाली वायु तभी मध्यमा नाड़ी में प्रवेश करेगी जब प्रत्याहार और समाधि द्वारा मध्यमा (नाड़ी) का परिशोधन हो, अर्थात् मध्यमा नाड़ी की पहचान हो । मध्यमा नाड़ी की पहचान प्रत्याहारयोग विधि द्वारा रात और दिन में उदय होने वाली 11 लक्षणों की सिद्धि के बाद ही सम्भव होती है । प्रत्याहार द्वारा 11 लक्षणों का साक्षात्कार कर लेने पर समाधियोग द्वारा वे दृढ़ता को प्राप्त होते हैं । इस प्रकार षडंगयोग का क्रम नियत है । षडंगयोग को स्पष्ट करते हुए कालचक्र में कहा है—

प्रत्याहारो दशानां विषयविषयिणामप्रवृत्तिः शरीरे
प्रज्ञा तर्को विचारो रतिरचलसुखं ध्यानमप्येकचित्तम् ।
प्राणायामो द्विमार्गः स्खलनमपि भवेन्मध्यमे प्राणवेशो
बिन्दौ प्राणप्रवेशो ह्युभयगतिहतो धारणा चैकचित्तम् ।।

चण्डाल्यालोकनं यद्भवति खलु तनौ चाम्बरेऽनुस्मृतिः स्यात्
प्रज्ञोपायात्मकेनाक्षरणसुखवशाज्ज्ञानबिम्बे समाधिः ।
एतन्मृद्वादिभेदैस्त्रिविधमपि भवेत् साधनं विश्वभर्त्तु-
स्तिस्रो मुद्रास्त्रिमात्रास्त्रिविधगतिवशात् कर्मसंकल्पदिव्याः ।।

(4.116-117)

षडंगयोग का विशेष परिचय :

यहाँ तक हमने षडंगयोग विधि का संक्षिप्त विवेचन किया है । अब एक एक कर उनका विशेष परिचय दिया जा रहा है ।

नौका का रूपक—नौका सिद्धों का प्रिय रूपक है। कंबलांबरपाद, कृष्णाचार्यपाद, डोंबीपाद और सरहपाद ने इस सांग रूपक से साधनात्मक और दार्शनिक तथ्यों का प्रकाशन किया है।[१८] इन लोगों ने नौका को क्रमशः करुणा या बोधिचित्त, काय, वाक् और चित्त के परमाश्रय महासुखकाय, शुक्रनाडिका और काया के पारमार्थिक अर्थ में स्वीकार किया है। इन सभी सिद्धों ने नौका का सांग रूपक बाँधा है। कंबलांबरपाद ने नौका को बोधिचित्त या करुणा का, नौका बाँधने के दो स्तंभों को भौतिक जगत् के आभासदोष का, मझधार को वाम-दक्षिण-रहित मध्यमपथ का और उद्देश्य या पहुँचने के स्थान या उस पार को महासुख का प्रतीक माना है।

१७. स्ट० तं०, बा० १, बागची, पृ० ७६।
१८. बौ० गा० दो०, मूल, च० ८, १३, १४ और ३८; पृ० १६, २४, २५ और २८।

उस नौका में स्वर्ण, सद्गुरु का प्रसाद रूप शून्यता है। उसमें रूपा या चाँदी को, जो रूप-वेदना-संज्ञा-संस्कारादि का प्रतीक है, कोई स्थान नहीं है। शून्यता के लिये स्वर्ण और रूपादि के लिये 'रूपा' शब्द का प्रयोग समध्वन्यात्मकता की दृष्टि से कौशलपूर्ण है।

कान्हुपाद ने नौका को उस महासुखकाय का प्रतीक माना है जिसमें काय, वाक् और चित्त का विलय हो जाता है। यहाँ पाँच डाँड़े ही पंचतथागत हैं। ये पंचतथागत पंचेंद्रियों अथवा पंचविषयों के अधिपति अथवा शुद्ध सार-रूप काय हैं। कर्णधार चित्त का प्रतीक माना गया है। गंतव्यस्थान महासुखचक्रद्वीप है जो शून्यसमुद्र में स्थित है।

डोंबीपाद ने नौका पर अधिक स्पष्ट और संगत रूपक बाँधा है। इन्होंने नौका को उस शुक्रनाडिका का प्रतीक माना है जो मध्यस्था नाड़ी है तथा जिसे अवधूतिका भी कहते हैं। इस नौका का रज्जु, सांवृतिक बोधिचित्त या अशुद्ध सांसारिक अवस्था या अविद्यासूत्र का प्रतीक है जिससे प्राणी स्तंभ से बँधा रहता है। नौका में बाहर से प्रविष्ट होनेवाले अशुद्ध विषयजल को पुनः बाहर फेंकने के लिये प्रयुक्त सेचनी, शून्य का प्रतीक है। गंगा यमुना के बीच का मार्ग ही मध्यमपथ है। गंतव्यस्थान, महासुखस्थान जिनपुर है। इसी प्रकार सरहपाद ने नौका को काया या शरीर का, डाँड़ों को मन और परिशुद्ध पंचेंद्रियों का, विपत्तियों से पूर्ण मार्ग को अनेकपानाहारविषयासक्ति की धारा का प्रतीक स्वीकार किया है।

इन सांग रूपकों का अध्ययन करने से यह यौगिक प्रक्रिया स्पष्ट हो जाती है कि सहजयानियों की सहज साधना का साध्य महासुख स्थान या जिनपुर या महासुखचक्रद्वीप है। इस साधना में गंगा यमुना या इसी प्रकार के अन्य द्वैत भावापन्न तटों का तिरस्कार और मध्यमपथ की स्वीकृति आवश्यक है। बोधिचित्त की दो अवस्थाएँ होती हैं। सांवृतिक अवस्था से उस शुक्र रूप चित्त को उत्थित कर शिरस्थान में पारमार्थिक अवस्था में

पहुँचाया जाता है। चित्तोत्थान या शुक्रोत्थान का पथ, मध्यमपथ या अवधूतीपथ है। शून्यताज्ञान का विषयजल को बहिष्कृत करने के लिये प्रयोग स्वाभाविक और संगत है।

08:58
Yoga from Buddha Kap...

प्रक्रियाओं का विस्तार से वर्णन हुआ है।

तृतीय पटल में निष्पन्नक्रम के सम्बन्ध में व्याख्या की गयी है[2]। द्वितीय पटल में मन्त्र से देवकाय में उत्थापित होने की प्रक्रिया को दर्शाया था। यहाँ गुह्य एवं आभ्यन्तर साधना अर्थात् निष्पन्नक्रम की प्रक्रिया को स्पष्ट किया है। जैसा कि निष्पन्न शब्द से ही यह स्पष्ट होता है कि सभी तत्त्व, गुण एवं शक्तियाँ अपने शरीर के अन्दर ही विद्यमान हैं। आगन्तुक, कृत्रिम और नवीन उत्पन्न नहीं हैं। इसी वज्रदेह के अन्दर विद्यमान हैं उन्हें प्रकट करना है। अतः निष्पन्नक्रम का अभिप्राय ही अपने में सम्पन्न, निष्पन्न तत्त्व को जागृत करना है। इसलिये आभ्यन्तर नाभिमध्य को वज्रभूमि कहा गया है जिसे रं अक्षर में परिवर्तित कर वज्रभूमि में भावित करना होता है। वहीं ॐ और एवं की भावना करने को कहा गया है जो धर्मधातु स्वभाव है, जो निर्माणचक्र कहलाता है जिसमें 64 नाड़ियों का चक्र बना होता है। फिर हृदय में धर्मचक्र जो आठ नाड़ियों से युक्त है, कण्ठ में 16 नाड़ियों से युक्त संभोगचक्र और उष्णीष में 32 नाड़ियों से युक्त महासुखचक्र है। उष्णीष से

1. तो० 1654, पृ० 179
2. तो० 1654, पृ० 182

नाभिचक्र तक अवधूती, मध्य नाड़ी से गठित इन चक्रों की भावना करनी चाहिये। मध्य में बोधिचित्त बहता है, दायें-बायें ललना और रसना नाड़ियों की भावना की जाती है। इस प्रकार कुल 120 नाड़ियों और चार निर्माणकाय आदि चक्रों का विस्तार से वर्णन कर स्वदेह में निष्पन्न वज्रदेह, वज्रनाड़ी, वायु और तिलक के माध्यम से कैसे महासुख परमपद को प्राप्त किया जाता है, यह इस पटल में वर्णित है।

चौथा पटल गारुडयोग पटल है[1]। जैसे कि प्रथम पटल में ही कहा गया था कि गरुड विषैले नागों का भक्षण करता है। यह गरुडरूपी पक्षिराज ही कर सकता है अन्य पक्षी नहीं। ठीक उसी प्रकार तन्त्र की साधना अतीव तीव्र इन्द्रिय से युक्त जन ही कर सकता है। इस पटल में विषैले सर्प के विष सदृश अज्ञानता अर्थात् प्रभास्वर चित्त को न समझना ही संसारचक्र एवं दुःख का कारण बताया है। जैसे विषपायी व्यक्ति दुःख से कभी छुटकारा नहीं पा सकता उसी प्रकार आचार्य ने विष के चार प्रकार गिनाये हैं[2]—यथा स्थावर, जंगम, कायज और कृत्रिम। अर्थात् रसपान आदि द्वारा पैदा किया गया स्थावर विष है, नागादि द्वारा उत्पन्न जंगम विष है। छूत की चर्मादि बीमारी, जो एक प्राणी से दूसरे प्राणी में लगती है वह कायज और खाद्य पदार्थ जैसे शहद आदि सड़कर बनने वाला विष कृत्रिम विष है। इन्हीं विषों के होते प्राणी दुःख से प्रभावित होता है। अतः बौद्धेतर विष्णु, ब्रह्मा, शिवादि के साधक अपने गरुडयोग के द्वारा इन विषों से प्राणियों का उद्धार करने का प्रयास करते हैं। इधर बौद्धों में इसकी प्रक्रिया को गौण मानकर अज्ञानरूपी

ADD ₹100 get 200

चण्डाली ज्वलिता नाभौ दहति पञ्च तथागतान् ।
दहति च लोचनादीन् दग्धेऽहं स्रवते शशी ॥ (1.1.31)

चण्डाली को अभिधानोत्तरतन्त्र में ज्ञानाग्नि, वज्रमाला में अग्नि, महामुद्रातिलक में कर्मवायु और चक्रसंवर में तिलक कहा है। संवृति में हम इसे तिलक ही कह सकते हैं, जिसका कि स्वरूप अग्निवत् है। चण्डाली के पूर्व कर्म (योग) में मात्र नाभिचक्र से चार अंगुल नीचे ललना, रसना और मध्यमा नाड़ी के मिलन स्थान पर 'अ'प्लुताकार परचित्त को एकाग्र कर कुम्भक किया जाता है। यहां प्रज्वलित अग्नि के समान इसका ध्यान कर नाभि में 50 बार कुम्भक किया जाता है। क्रमशः अग्नि ऊर्ध्व गति करता हुआ हृदय में, कण्ठ में और अन्ततः उष्णीष में पहुंचता है। उष्णीष में पहुंचने पर सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंग ज्ञानाग्नि से भर गया है, बोधिचित्त शुक्र से अभिन्न हो गया है और अनास्रव महासुख की अनुभूति हो रही है, ऐसा ध्यान किया जाता है। कालचक्र आदि अद्वय तन्त्र-ग्रन्थों के अनुसार इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर के अनास्रव सुख से व्याप्त होने पर वह शरीर में स्थित आस्रव तिलक का नाश कर देता है। जैसे लोहे में रखा पारा लोहे को जला कर नाश कर देता है, उसी प्रकार

1. पञ्चस्कन्ध ही पांच तथागत हैं।
2. पंचभूत ही पांच मामको आदि देवियां हैं।

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vra, Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

अनास्रव महासुख आस्रव द्रव्यतिलक को जला कर नाश कर देता है, और साधक का षड्धातु से निर्मित यह शरीर इन्द्रधनुष सदृश मायाकाय को प्राप्त कर लेता है, इसी शरीर से संभोगकाय को प्राप्त करता है।

नाभिचक्र से क्रमशः उष्णीषचक्र तक ऊर्ध्वगति का और फिर उष्णीषचक्र से नाभिचक्र तक अधोगति का अभ्यास करना ही आनन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द की प्राप्ति की विधि है। इस प्रकार ध्यान करने से चार आनन्दों की अनुभूति तभी सम्भव होगी, जब सभी प्राणवायु चण्डाली साधना के बल से मध्यमा में प्रविष्ट होकर स्थित हो जांय, क्योंकि ज्ञानाग्नि मध्यमा के भीतर से होती हुई चक्रों में प्रवेश कर उनका भेदन करती है[1]। सभी नाड़ियाँ मध्यमा नाड़ी में, सभी वायु सूक्ष्म प्राण-वायु में और सभी तिलक अनास्रव एवं अनाहत तिलक में परिशुद्ध हो जाते हैं।

गुह्येन्द्र से नाभि तक पहुँचते समय शून्यता के बोध की और विषयी आनन्द महासुख की, नाभि से हृदय तक पहुँचते समय विषय अतिशून्य विषयी परमानन्द की, हृदय से कण्ठ तक पहुँचते समय विषय महाशून्य और विषयी विरमानन्द की तथा कण्ठ से उष्णीष तक पहुंचते समय विषय सर्वशून्य और विषयी सहजानन्द की प्राप्ति होती है। ये चार क्षण कहलाते हैं— विचित्र क्षण, विपाक क्षण, विमर्द क्षण और विलक्षण क्षण। 1. आनन्द विचित्र क्षण है, क्योंकि बाह्य प्रत्यय मुद्रा और आभ्यन्तर प्रत्यय वायुयोग या चण्डालीयोग के आलम्बन आदि का आश्रय लेकर इसका साक्षात्कार किया जाता है। यह विचित्र विभिन्न समूहों के मेलाप से उत्पन्न है, अतः यह विचित्र क्षण कहलाता है। 2. द्वितीय विपाक क्षण कहलाता है, क्योंकि यहां विचित्र क्षण की तरह विभिन्न नव प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। यह प्रथम क्षण का परिणाम स्वरूप है। 3. तीसरा क्षण विमर्द है। परिणाम की सिद्धि होकर उसका भरपूर आनन्द लेने के पश्चात् और भी इसके ऊपर कोई आनन्द होगा, ऐसा नहीं लगता। यही सर्वोत्तम आनन्द है, विशेष आनन्द है, ऐसा सोचने की स्थिति पर योगी पहुंचता है, अतः यह विमर्द क्षण कहलाता है। 4. चौथा क्षण विलक्षण है। यह निष्प्रपंच, निर्लक्षण बोध की अवस्था है। यही सहजानन्द है। हेवज्र में चार क्षणों को बाह्य मुद्रा के साथ जोड़ कर कहा गया है[2]। पंचक्रम में यही चतुर्थ

1. नाडपाद षड्योग व्याख्या, जमपल-पाओ विरचित, पृ॰ 6-7.
तुलनीय—नाड़ी भेदन पर होने वाली पीड़ा (भूटान से प्रकाशित,)।
उष्ण और विभिन्न निर्विकल्प अनुभूतियां (पद्माकरपो संग्रह, जि॰ 10, पृ॰ 50, भूटान से प्रकाशित)।
2. "आनन्दास्तत्र जायन्ते क्षणभेदेन भेदिताः" (हे. त. 2.3.5)।

(अध्यात्मादिमण्डलपूजापटल, 6.3)

चण्डाली की भावना प्रायः हेवज्र के कथन के अनुसार 'अ'प्लुताकार की भावना कर ही की जाती है[1]।

यहाँ पद्माकरपो ने इस प्रसंग को इस प्रकार समझाया है[2]—स्वयं हेवज्र युगनद्ध की भावना कर नाभि स्थित 64 दल वाले कमल के मध्य में पीत रश्मि वाले ऊर्ध्वमुखी बीज कृष्ण

1. आदिस्वरस्वभावा सा धीति बुद्धैः प्रकल्पिता।
सैव भगवती प्रज्ञा उत्पन्नक्रमयोगतः॥
न सा दीर्घा न सा ह्रस्वा न चतुरस्रा न वर्तुला।
स्वादगन्धरसातीता सहजानन्दकारिणी॥
सैव सहजरूपा तु महासुखा दिव्ययोगिनी।
सैव मण्डलचक्रं तु पञ्चज्ञानस्वरूपिणी॥ (2. 4. 41-42, 45)
अमृतकणिकावज्रधातु के प्रथम श्लोक की व्याख्या से इसकी तुलना की जा सकती है—
ज्वलन्तं दीपसदृशं हृदि मध्यमनाहतम्।
अक्षरं परमं सूक्ष्मं महार्थं परमं प्रभुम्॥
महामुद्रा स्थिता नाभौ ज्वलद्दीपशिखाकरा(कृतिः)।
आदिस्वरस्वभावा सा धीति बुद्धैः प्रकीर्तिता॥
2. पद्माकरवो साहित्यसंग्रह, जि० 10, पृ० 38-39, भूटान से प्रकाशित, 1980.

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

'अं' की, हृदय स्थित श्वेत अष्टदल कमल के मध्य में नील वर्ण वज्र राहुस्वभाव नील 'हूँ' की तथा चार नाड़ी कमलों में भ्रूं आं ज्रीं खां और सोमा के चार नाड़ी दलों में अधोमुखी 'एवं मया' की भावना की जाती है। कण्ठ स्थित षोडशदल चक्र के मध्य रक्त वर्ण सूर्यस्वभाव रक्त ऊँ की और चारों दिशाओं में रक्त वर्ण ऊर्ध्वमुखी ऊँ लं अ लं की तथा 32 दलों वाले श्वेत वर्ण उष्णीषचक्र के मध्य में चन्द्रस्वरूप अधोमुखी तिलकनाद से विभूषित 'हं' नाद से अलंकृत की भावना की जाती है। प्रश्वास (रेचक प्राणायाम) के समय प्रत्येक वर्ण से पाँच रश्मियाँ निकल कर सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर लेती हैं और श्वास (पूरक प्राणायाम) के समय सभी प्रभामय वायुमण्डल में विलीन हो जाती हैं। कुम्भक प्राणायाम के वर्णों सहित नाड़ीचक्रों में आदर्श में प्रतिबिम्बित होने की भाँति स्पष्ट ध्यान लगाना चाहिये। उसके बाद मातृदेव को प्रभा में विलीन चन्द्र 'ओं' में और फिर अपने हृदयस्थित बीज में एक बार विलीन कर ज्ञान अग्नि को प्रज्वलित किया जाता है। पुनः उसे नाभिक्षेत्र के बीज में विलीन करने पर यह अग्नि ऊर्ध्व की ओर बढ़ कर हृदयचक्र में पहुंच कर पाँच तथागतों[1] और पाँच मामकी[2] आदि को जलाती है, वहाँ से क्रमशः ऊर्ध्व कण्ठ आदि नाडियों और अक्षरों को जलाती हुई उष्णीष में स्थित हं को जला कर अक्षर महासुख का स्राव करती है। जैसा कि हेवज्रतन्त्र में कहा गया है—

चण्डाली ज्वलिता नाभौ दहति पञ्च तथागतान्।
दहति च लोचनादीन् दग्धेऽहं स्रवते शशी॥ (1.1.31)

साधना करते समय पूर्वकर्म चण्डाली और मौल चण्डाली की भावना विधि में पूर्वकर्म रूप में नाड़ी, वायु और तिलक का परिशोधन होता है। नाड़ी, वायु और तिलक के परिशोधन के लिये विभिन्न योगासनों का प्रावधान है[2]। उसके बाद शरीर को किसी इष्ट-देव के रूप में भावित कर नाड़ी-चक्रों का स्पष्ट रूप में ध्यान किया जाता है। अभ्यास के लिये मध्यमा नाड़ी को सूक्ष्म से सूक्ष्म केशसदृश और स्थूल से स्थूल सुमेरु पर्वत सदृश भावना कर नाड़ी-चक्रों का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त किया जाता है। नाड़ी मार्ग के परिशोधन के लिये ललना और रसना से आलि-कालि का क्रमशः नासिकाग्र से प्रवेश और गुह्येन्द्रिय से निर्गमन का ध्यान करना होता है। वायु के परिशोधन में

1. नाडपाद के चण्डालीयोग के लिये 'धीः' का 10 वाँ अंक भी देखा जा सकता है, जहाँ डॉ॰ ठाकुरसेन नेगी ने इस पर विचार किया है।
2. तो॰ 2336, पृ॰ 304.

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

वायु के वर्णों पर ध्यान और रेचक, पूरक एवं कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है। शुक्र और शोणित की स्थिति, उनका वायु से सम्बन्ध आदि को सम्यग् प्रकार से जान कर मौल चण्डाली की साधना की जाती है।

मौल चण्डाली

चण्डाली की भावना इस विपाक-काय में नहीं की जाती, अपितु इसके लिये उत्पत्ति-क्रम विधि द्वारा भावित किसी इष्टदेव में अपने को परिवर्तित करना पड़ता है। यहाँ हेवज्र में अपने को परिणत कर पितृदेव के उष्णीष कमल से लेकर नाभि से चार अंगुल नीचे तक स्थित नाड़ीचक्रों की भावना की जाती है। हेवज्रतन्त्र के व्याख्यातन्त्र सम्पुटोद्भव में भावना की विधि इस प्रकार वर्णित है—

नाभिमध्ये स्थितं पद्मं चतुःषष्टिदलान्वितम्।
द्वात्रिंशद्दलपङ्कजं तु मूर्ध्नि मध्ये व्यवस्थितम्॥
कण्ठमध्यगतं चापि पद्मं तु षोडशच्छदम्।
हृदये तु तथा चैव पद्ममष्टदलं स्मृतम्॥
(अध्यात्मादिमण्डलपूजापटल, 6.3)

चण्डाली की भावना प्रायः हेवज्र के कथन के अनुसार 'अ'प्लुताकार की भावना कर ही की जाती है[1]।

यहाँ पद्माकरपो ने इस प्रसंग को इस प्रकार समझाया है[2]—स्वयं हेवज्र युगनद्ध की भावना कर नाभि स्थित 64 दल वाले कमल के मध्य में पीत रश्मि वाले ऊर्ध्वमुखी बीज कृष्ण

1. आदिस्वरस्वभावा सा धीति बुद्धैः प्रकल्पिता।
सैव भगवती प्रज्ञा उत्पन्नक्रमयोगतः॥
न सा दीर्घा न सा ह्रस्वा न चतुरस्रा न वर्तुला।
स्वादगन्धरसातीता सहजानन्दकारिणी॥
सैव सहजरूपा तु महासुखा दिव्ययोगिनी।
सैव मण्डलचक्रं तु पञ्चज्ञानस्वरूपिणी॥ (2. 4. 41-42, 45)
अमृतकणिकावज्रधातु के प्रथम श्लोक की व्याख्या से इसकी तुलना की जा सकती है—
ज्वलन्तं दीपसदृशं हृदि मध्यमनाहतम्।
अक्षरं परमं सूक्ष्मं महार्थं परमं प्रभुम्॥
महामुद्रा स्थिता नाभौ ज्वलद्दीपशिखाकरा(कृतिः)।
आदिस्वरस्वभावा सा धीति बुद्धैः प्रकीर्तिता॥
2. पद्माकरपो साहित्यसंग्रह, जि॰ 10, पृ॰ 38-39, भूटान से प्रकाशित, 1980.

1. चण्डाली

एक दृष्टि से देखा जाय, तो चण्डाली ही अनुत्तरतन्त्र की सारगर्भित साधना है। कहा भी जाता है कि चण्डाली (साधना) मार्ग की आधारशिला है, इसके बिना अन्य अनुत्तर साधना सम्भव हो ही नहीं सकती। चण्डाली भावना के लिये काय और चित्त की वास्तविकता को जानना चाहिये। काय के सम्बन्ध में ऊपर कहा जा चुका है। चित्त की स्थिति को जाने बिना हम उसका साक्षात्कार नहीं कर सकते। जैसे कि गाय के शरीर में दूध तो होता है, लेकिन सींग से हम दूध नहीं दुह सकते, स्तन से ही दूध दुहा जा सकता है। हेवज्र में कहा है—

देहस्थं च महाज्ञानं सर्वसङ्कल्पवर्जितम्।
व्यापकः सर्ववस्तूनां देहस्थोऽपि न देहजः ॥ (1.1.12)

प्रश्न उठता है कि महाज्ञान शरीर में स्थित तो है, लेकिन उसका प्रत्यक्ष किस तरह से होगा ? सम्यग्वाक् में कहा है—"एवं काय के नाभि क्षेत्र में स्थित है"[2]। नाड़ीचक्र के भेद से नाभि के चार भेद होते हैं, यथा—उष्णीष, कण्ठ, हृदय और नाभिक्षेत्र। इनकी व्याख्या करते हुए आचार्य ङोतोन कहते हैं[3]—जाग्रत् अवस्था में चित्तराज नाभि में स्थित रहता है, स्वप्न में कण्ठचक्र में, निद्रा में हृदय में तथा समापत्ति अवस्था में उष्णीषचक्र में। जाग्रत् अवस्था में चित्त नाभिक्षेत्र में अनेक विकल्पों के आकार और संज्ञा से संकुल होता है, स्वप्न में चित्त कण्ठचक्र में वायु द्वारा स्पन्दित अस्ति-नास्ति आकार में स्थित रहता है, निद्रा में चित्त हृदय में गहन अन्धकार से आक्रान्त अचेतन सा स्थित रहता है और समापत्ति अवस्था में चित्त उष्णीष में स्थित रहता है। वहाँ से इसे व्यावृत करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है, क्योंकि राग से पूरी तरह मलिन हुआ यह चित्त मलिन रूप में स्थित रहता है। अपने निर्मल स्वरूप को भूल जाता है। इसे चतुर्थ अवस्था और संक्रमण अवस्था भी कहते हैं। इन चार अवस्थाओं में चित्त की स्थिति को जान कर

---

1. नाडपाद (नरोपा) के द्वारा विवृत इन षड्योगों का परिचय 'धीः' के 7-12 अंकों में भी देखा जा सकता है।
2. तो० 2331, पृ० 271–273.
3. नाडपाद षड्धर्मयोगव्याख्या, जम-पल-पाबो विरचित, पृ० 6, भूटान से प्रकाशित।

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

यह साधना की जाती है। जाग्रत् अवस्था में चित्त को ललना, रसना और अवधूती के मिलनस्थान पर अप्लुताकार ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित कर चण्डाली की भावना से, स्वप्न में कण्ठचक्र का आश्रय लेकर स्वप्न की साधना से, निद्रा में प्रभास्वर की साधना से और समापत्ति में भी चण्डाली की साधना के द्वारा चित्त को परिशोधित किया जाता है, क्योंकि यहाँ इन्द्रियों के विषय में प्रवृत्त होते समय एक ओर तो समापत्ति का संक्रमण होता है, दूसरी ओर चण्डाली उष्णीष स्थान से बोधि चित्त का स्राव करती है। इस प्रकार चण्डाली जाग्रत् और समापत्ति दोनों अवस्थाओं की परिशोधक बनती है। चण्डाली से यद्यपि सभी फलकायों की प्राप्ति होती है, परन्तु प्रमुखता के आधार पर यह धर्मकाय को प्राप्त कराती है, स्वप्नसाधना से संभोगकाय की, मायाकाय से निर्माणकाय की और प्रभास्वर से महासुखकाय (सहजकाय) की सिद्धि होती है।

चण्डाली का अर्थ

स्कन्ध, आयतन, धातु एवं सभी धर्मों का निराकरण (भक्षण) करने वाली, निर्विकल्प स्वरूप, सर्वजिनों की मां वज्रभट्टारिका ही चण्डाली है। हेवज्रतन्त्र की टीका में चण्डाली को "चण्डा प्रज्ञाक्लेशोपक्लेशनिकृन्तने चण्डस्वभावत्वादालिवज्रसत्त्वश्चण्डालीशब्देनोच्यते" आदि कहा है।

भेद

इस चण्डाली के चार भेद हैं—1. अप्लुताकार ज्ञानाग्नि द्वारा प्रज्वलित उष्ण चण्डाली, 2. तिलक का स्राव करने वाली महासुख चण्डाली, 3. वायु के मध्यमा नाड़ी में प्रवेश के बाद ऊर्ध्वगति वाली निर्विकल्प चण्डाली और 4. प्रज्वलन से चारों आनन्दों का बोध कराकर युगनद्ध भाव को प्राप्त फल (परिणाम) चण्डाली[1]।

इस षडंग योग या अष्टांग योग के दो उद्देश्य बताये जा चुके हैं—प्रथम गौण उद्देश्य है सिद्धदेह या दिव्यदेह की प्राप्ति तथा दूसरा मुख्य उद्देश्य है द्वैताद्वैतविवर्जित नाथरूप में अवस्थान या पिंडपद का परमपद में समरसीकरण। संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर उपस्थित किये हुए इस नाथयोग में दो प्रधान साधन हैं—हठयोग और लययोग। इसी प्रकार दो कार्य हैं—विन्दुरक्षा और नादानुसंधान। नाथयोगसाधना का मुख्य तत्व है प्राणायाम। प्राणायाम से ही विंदुरक्षा और नादानुसंधान दोनों ही साधित होते हैं। विन्दुरक्षा या विंदुस्थैर्य का संबन्ध अजरामरता, दिव्यदेह या ओंकारदेह की प्राप्ति से है। प्राण के साधित होने पर मन स्थिर और अचंचल हो जाता है और मन के अचंचल होने पर विन्दुरक्षा या विंदु साधित होता है। परिणामतः कालजय की सिद्धि होती है। नादानुसंधान प्राण-नाड़ी-चक्र-साधना से संबन्धित है। मन्त्रसाधन भी इसमें समन्वित है। इस मन्त्रसाधना में ओंकार और अजपा गायत्री दोनों ही गृहीत हैं। इन दोनों का संबंध प्राणसाधना से है। कुंडलिनी का जागरण प्राण की प्रेरणा से होता है। सुषुम्ना में प्राण का प्रवेश कुंडलिनी का सुषुम्ना में प्रवेश है। प्राणसाधन से संपूर्ण नाड़ीजाल का शोधन होता है। उसी के द्वारा जाग्रत की हुई कुंडलिनी से पंचमहाभूत शुद्ध होते हैं तथा अन्ततोगत्वा उनका कुंडलिनी की काया में लय होने पर, आगे ऊर्ध्वक्रम में, वे कुंडलिनी के शरीर के साथ परम शिव के साथ समरसत्व को प्राप्त करते हैं। पंचभूतों का लय पंचभूतात्मक शरीर के सारतत्वों का कुंडलिनी शरीर में, जो इस पिंड का आधार है, लय है। इस क्रिया की व्याख्या के लिये, तांत्रिक या शैव शाक्त योग के कुंडलिनीयोग के लययोग में विवेचित संपूर्ण सिद्धान्त को दृष्टिगत रखा जा सकता है। नाथसिद्ध कहते हैं कि यह स्थूल शरीर भी मुक्ति को प्राप्त करता है।

ऊपर बताया गया है कि गौण लक्ष्य ओंकारदेह प्राप्ति है जिसकी उपलब्धि बिना विन्दुरक्षा के संभव नहीं। एक दूसरा उपाय भी इस अजरामरता के साधन के लिये है। इसे संक्षेप में 'अमृत साधन' कह सकते हैं। हठयोग के

[१] हठयोगप्रदीपिका, ४. ३-१२, २०, २१-२५।

ग्रंथों में स्थूल हठयोगी क्रियाओं के रूप में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। योगमार्तण्ड में चन्द्रामृतपान का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। उसे वहाँ प्रत्याहार साधन के अन्तर्गत वर्णित किया गया है। यहाँ प्रत्याहार की, हठयोग के अनुसार परिभाषा करते हुए कहा है कि चन्द्रामृतमयी धारा का भास्कर से प्रत्याहरण ही प्रत्याहार है। विशुद्धिचक्र सोमकलात्मक है। इसके ऊपर के मार्ग से, रवि के मुख का वर्जन कर जल (सोमजल) स्रवित होता है। प्राणापान के विधान से रसनातालु के मूल से जो योगी सतत भाव से प्राण का पान करता है, वह निर्जर हो जाता है। इस अमृत को सोमकलाजल कहा गया है।[१] इसी को शब्दान्तर से खेचरी मुद्रा, अमरवारुणीपान, गोमांसभक्षण आदि कहते हैं।

अपने स्वरूप के द्विधाभास का निरास। यह निरास अपने स्वरूप के अखंडत्व से होता है। यह कहा गया है कि चन्द्र और चंद्रिका के समान ही शिव और शक्ति में अभेद है। ऊर्ध्वशक्ति के निपात से महासिद्ध योगी इसी परमपद की प्राप्ति करते हैं।[1] कुंडलिनी प्रबुद्ध और अप्रबुद्ध भेद से दो प्रकार की बताई गई है। अप्रबुद्धा रूप में वह कुंडलिनी पिंडों में, स्वभाव से ही चेतनरूपा होते हुए भी, नाना चिन्ता-व्यापार-उद्यम-प्रपंचरूपा होती है। इसी से वह कुटिल स्वभावा कुंडलिनी कही जाती है। वही योगियों के विभिन्न प्रकार के विकारों के निवारण के उद्यमस्वरूप प्रबुद्धा कुंडलिनी के रूप में ऊर्ध्वगामिनी होती है।[2] संक्षेप में, इस कुंडलिनी शक्ति को संपूर्ण प्रकृति पिंड का आधार माना जा सकता है। सिद्धसिद्धान्तपद्धति का संपूर्ण चतुर्थ उपदेश इसी तथ्य पर आधारित है।

पहले यह बताया गया है कि प्राणधारिणी गायत्री का उदय कुंडलिनी से होता है। जैसे गायत्री के समान कोई जप या ज्ञान या विद्या नहीं है, उसी तरह प्राणविद्या को महाविद्या कहा गया है। गायत्री का उदय करनेवाली यह कुंडलिनी शक्ति कंद के ऊपर आठ कुंडलों को धारण करनेवाली के रूप में सुखपूर्वक ब्रह्मद्वार का आच्छादन कर स्थित रहती है। निरामय ब्रह्मद्वार को जानेवाले मार्ग के रन्ध्र को सुखपूर्वक आच्छादित किये हुए कुंडलिनी प्रसुप्त रहती है। उसको वह्नियोग से तथा मानस और मरुत् के सहकार से प्रबुद्ध किया जाता है। इस प्रकार प्रबुद्ध होकर वह सूई के आकार को प्राप्त कर सुषुम्ना के मार्ग से उत्थित होती है। प्रारंभिक अवस्था में यह सुषुप्त रहती है। वह्नियोग से जाग्रत किये जाने पर पद्मतन्तुनिभा कुंडलिनी सुषुम्ना के मार्ग से ऊपर की ओर उत्थित होती है। जिस प्रकार कुंजी से हठात् कपाट उद्घाटित कर दिया जाता है उसी प्रकार कुंडलिनी से योगी मोक्ष-द्वार का प्रभेदन करता है।[3] योगबीज के अनुसार मरुत् को गाढ़भाव से निरुद्ध कर लेने पर शक्तिचालन की युक्ति से अष्टधाकुंडली को ऋजु करना चाहिए। कुंडलिनी के चालन के लिये भानु का आकुंचन करना चाहिए। वज्रासन में स्थित होकर वायु से प्रज्वलित अग्नि से कुंडलिनी का दहन करे। अग्नि में संतप्त नाड़ी

---

[1] सि० सि० प०, ४.१६-२७।

[2] वही, ४.१४।

[3] गो० सं०, १.४२-५१, योगमार्त्तण्ड–३१–४०।

से वह त्रैलोक्यमोहिनी शक्ति पहले वज्रदण्ड में तत्पश्चात् सुषुम्नामुख में प्रवेश करती है। इस प्रकार वह वायु और वह्नि के साथ ब्रह्मग्रंथि का भेदन करती है। तत्पश्चात् वह विष्णुग्रंथि का भेदन कर रुद्रग्रंथि में स्थित हो जाती है।[1] योगमार्त्तण्ड और गोरक्षसंहिता के अनुसार यही कन्दोर्ध्व अष्टधा कुंडलिनी शक्ति मूढ़ों के लिये बंधनकारिणी है तथा योगियों के लिये मोक्षदायिनी है।[2] बताया जा चुका है कि ओंकार के अकार से युक्त ब्रह्मग्रंथि आधार में, उकार से युक्त विष्णुग्रंथि अनाहत में तथा मकार से युक्त रुद्रग्रंथि भ्रूमध्यस्थ आज्ञा में स्थित हैं। कुंडलिनी जाग्रत और ऊर्ध्वमुख होकर क्रमशः इनका भेदन करती है। इनके क्रमशः भेदन से क्रमशः सघनता, शान्ति और विराम साधक को मिलते हैं और अन्ततः परम शांत परम शिव से यह मिलन प्राप्त करती है।[3]

स्पष्ट होता है कि सभी आचारों और संयमों का लक्ष्य प्राण की स्थिरता है। जिस प्रकार संस्कृत रचनाओं में प्राप्त नाथयोग का वर्णन उपस्थित किया गया है उसी प्रकार से प्रायः उसी क्रम से हिन्दी रचनाओं में प्राप्त नाथयोग को भी उपस्थित किया जा रहा है।

पहले कह चुके हैं कि हिन्दी बानियों में 'हठ' शब्द का पारिभाषिक प्रयोग नहीं मिलता। किन्तु इन रचनाओं में सूर्य-चन्द्र और प्राण-अपान का विस्तृत वर्णन मिलता है। संस्कृत रचनाओं में हठ के 'ह'कार को सूर्य तथा 'ठ' कार को चन्द्र कहा गया है या क्रमशः प्राण और अपान कहा गया है। प्रथम को सूर्यनाड़ी तथा द्वितीय को चन्द्रनाड़ी कहा गया है। 'ह' और 'ठ' को क्रमशः इस प्रकार बतलाया जा सकता है—

ह—सूर्य, रवि, सूर्यनाड़ी, यमुना, पिंगला, शक्ति, प्राण, रज, पवन, अधः।

ठ—चन्द्र, शशि, चन्द्रनाड़ी, गंगा, इड़ा, शिव, अपान, बिंदु, मन, ऊर्ध्व।

गोरख ने शक्ति को रज और शिव को बिंदु कहा है। रवि की १२ कलाएँ हैं तथा चन्द्र की १६। रवि को शक्ति तथा शशि को शिव कहकर क्रमशः उनका स्थान मूलाधार एवं सहस्रार में बताया है। ये रवि और शशि ही सूर्य-नाड़ी और चन्द्रनाड़ी हैं। सूर्य पवन के घर में तथा चंद्र मन में रहता है। इन्हीं को क्रमशः अधः और उर्ध्व कहा गया है। चन्द्र और सूर्य के युग्म की तरह ही एक युग्म इड़ा—पिंगला का बताया गया है, जिन्हें संस्कृत ग्रंथों में क्रमशः चन्द्र और सूर्य या चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी कहा गया है। गोरख ने बताया है कि परमतत्व या परमपद में चन्द्र और सूर्य की स्थिति नहीं है। एक अन्य युग्म मन—पवन की स्थिति क्रमशः हृदय और नाभि में मानी गई है। सूर्य की १२ कलाएँ है तथा चन्द्र की १६ हैं।[1] इनके अतिरिक्त एक और युग्मक महत्वपूर्ण है, जिसका संबंध ऋग्वेद की द्यावा—पृथिवी से जोड़ा जा सकता है क्षौर उसे 'अरध—ऊरध' की तरह 'धरणी और गगन' का युग्म कहा जा सकता है।[2] ये युग्म देखने से द्वैत ज्ञात होते हैं। इनमें विरोध दिखाई देता है। इसलिये अद्वैत की स्थिति के लिये अन्य तत्वों का जो नाम लिया

[1] गो० बा०, १००. ५, ११०. १ (डा० बड़थ्वाल के अनुसार), १०३. २, १८८. १६, १९०. ३४, १२४. २, १५६. ६०, १९. ५१, १८९. २६, पृ० २०५ और २४१।

[2] गो० बा०, १८८. २२, १०२. टेक।

किया जा चुका है। हिन्दी वाणियों के अनुसार जिस प्रकार गुरु की पहचान की जाती है, परम तत्व की पहचान की जाती है, उसी प्रकार साधन के रूप में जपमाला की भी पहचान की जानी चाहिए। नाथसिद्ध जप करने की उस माला को नहीं स्वीकार करते जो स्थूल और बाह्य है। इसलिये वे आन्तरिक जपमाला की पहचान करने को कहते हैं। संस्कृत रचनाओं के अनुसार आन्तरिक जप की माला हमारी श्वासक्रिया है। नाम तत्व को उस आन्तरिक जपमाला के साथ संबद्ध कर देना ही नाथसिद्धों को ग्राह्य है। वे अवधूत को ऐसा ही जप जपने के लिये कहते हैं। ऐसे ही जप का वे फल भी मानते हैं। इस जप को वे अगम जप इसलिये कहते हैं कि इस जप तक स्थूल इन्द्रियों की पहुँच नहीं है। इस जप की पहचान वे अति कठिन मानते हैं। इसके लिये इस चर्ममुख की भी आवश्यकता नहीं। इस जप के मुख वे विभिन्न कमल हैं, जिनकी स्थिति साधक के पिंड में पाई जाती है। साधक का चैतन्य प्राणतत्व ही जपमाला है। यह प्राण संपूर्ण शरीर में व्याप्त है। इस शरीररूप कंचन के मनकों में विभिन्न कमल ही उनके मुख हैं जिनसे इस सूक्ष्म जप का जाप होता है।[1] स्पष्ट ही यह जपमाला चैतन्य जपमाला है, स्थूल नहीं जिसे अन्य लोग बाह्याडंबर के रूप में धारण किये फिरते हैं। गोरख 'सोहं' का जप करने का उपदेश देते हैं और उसे अजपा कहते हैं, जैसा संस्कृत रचनाओं में भी कहा गया है। नासिका के आगे की अपनी वायु जब इड़ा और पिंगला नाड़ियों के मध्य (सुषुम्ना) में समा जाती है तथा २१६०० (२४ घंटों में श्वासों की संख्या, जैसा संस्कृत ग्रंथों में भी स्वीकार किया जाता है) संख्या में 'सोहं' का अजपाजाप होने लगता है तब अनाहत नाद का स्वतः उदय होता है। तब बंकनाल में सूर्योदय होता है, प्रत्येक रोम में तूर्यध्वनि का श्रवण होता है जैसे प्रत्येक रोम श्रवणयुक्त हो गये हों। इसी प्रकार अनेक अलौकिक दृश्य और ध्वनियों का दर्शन-श्रवण होता है। सभी इन्द्रियों में दिव्यता आ जाती है।[2] इस प्रकार के अगम सूक्ष्म आंतरिक जप से भिन्न किसी अन्य प्रकार के जप को गोरख ग्राह्य नहीं समझते और न उसे ग्रहण करने का उपदेश देते हैं क्योंकि ऐसा करने से योगसाधन में अपनी ही हँसी होती है। जो पशु हैं, बंधन में बँधे हैं, अज्ञान हैं, वे उस आंतरिक सूक्ष्म अजपा गायत्री का जप नहीं करते। इसलिये उन्हें मुक्ति नहीं मिलती।[3]

---

[1] गो० बा०, १०१. टेक. १। [2] गो० बा०, १२४. टेक-४.३०।
[3] गो० बा०, १७१.९, १७७. १८।

में विन्दु, इन्दु, शिव को एक ही कहा गया है। इसी प्रकार रज, रवि और शक्ति को एक कहा गया है। इन दोनों के संगम से परमपद की प्राप्ति होती है। इस विन्दु का शरीर में साधन कर लेने पर मृत्युभय नहीं रहता, परम पद की प्राप्ति भी हो जाती है। नभोमुद्रा की सहायता से इस विन्दु का धारण करने को कहा गया है।[1]

इस परिचय से स्पष्ट है कि विन्दु कायसिद्धि के लिये अति महत्वपूर्ण है। इस विन्दु को अमृत भी कहा गया है। यह शिव और चन्द्र भी है। यह सृष्टि और संहार (व्यष्टि और समष्टि दोनों के लिये) दोनों का मूल कारण है। इसलिये नाथसिद्ध इसकी रक्षा को अति आवश्यक मानते हैं। विन्दु की रक्षा और धारणा या स्थैर्य के लिये नारी-संग-त्याग को आवश्यक पहले ही बताया जा चुका है। निम्नाभिमुख विन्दु को ऊर्ध्वमुख करना वे आवश्यक मानते हैं। नाद और विन्दु दोनों ही जिस साधक के शरीर में जलते हैं, सिद्ध होते हैं, वही व्यक्ति सिद्ध होता है। प्रायः माना जाता है कि गृहस्थ व्यक्ति विन्दुरक्षा नहीं कर सकता। अतएव उसी व्यक्ति को वास्तविक घरबारी कहा गया है जो घर का पूरा परिचय प्राप्त कर बहिर्मुख विन्दु को अंतर्मुख करे। नाथसिद्ध भी विन्दु से जीवन मानते हैं। जहाँ विन्दु है वहीं जीवन है। इसी विन्दु की स्थिति सुषुम्ना नाड़ी में पवन की स्थिरता से होती है जिसे कुंभक कहते हैं। वज्रोली करते हुए अमरोली की रक्षा तथा अमरोली करते हुए वायु की रक्षा कठिन है। इस प्रकार रक्त के सारतत्व शुक्र या विन्दु का भोग करते समय या वज्रोलीसाधन के समय भी भग में पतन न होने दे तो सिद्धि प्राप्त होती है।[2] वास्तविक बात यह है कि जो लोग नारीभग के संसर्ग से वज्रोलीसाधन करते हैं उनके लिये सबसे अधिक आवश्यक है विन्दुस्थैर्य। वज्रोलीसाधन में उपक्रिया के रूप में अमरोली साधन है जिसमें विन्दु की मध्य धारा का रक्षण होता है। किन्तु इस प्रकार की क्रियाओं को करते समय वायु स्थिर नहीं रह पाता। क्योंकि मैथुन में श्वास की गति अति तीव्र हो जाती है, जैसा तांत्रिक प्राणायाम के विवेचन से स्पष्ट है। अतः इसका निष्कर्ष यह है कि जिस व्यक्ति का प्राण स्थिर है तथा जो प्राणायामकुशल है, वही व्यक्ति वज्रोली साधन में प्रवृत्त हो सकता है। दूसरे, किसी प्रकार विन्दुपात हो भी गया तो भग से विंदु की मध्यधारा का आकर्षण अति कठिन

[1] वही, पृ० ४९७-४९८, ५०९-५१०।

[2] गो० बा०, ७.१७, ७.१९, १६.४४, २१.५७, ४९.१४१।

विंदु की अचंचलता की ओर कोई संकेत नहीं किया गया है। नाथों के योग में बार-बार मन-पवन-साधन की ओर योगी के ध्यान को आकृष्ट किया गया है। मन और पवन के संबंध के विषय में दो मत हो सकते हैं। पहला यह कि मानसनियंत्रण से पवन स्वतः नियंत्रित हो जाता है। दूसरा यह कि पवन-नियंत्रण या प्राणायाम से मानस स्वयं, नियंत्रित हो जाता है। संस्कृत की रचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि नाथयोग में प्रारंभ में हठयोग को, जो प्राणायामप्रधान है, महत्ता प्रदान की गई है। अर्थात् प्राण से शरीरशोधन होता है तथा प्राण के नियंत्रित होने पर मन और विंदु भी स्थिर हो जाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि सभी नाथयोगी इस मत को मानते हों। गोरख ने बताया है कि जब योगी मन को पवन से तथा पवन को मन से बाँध लेता है तभी वस्तुतः साधन में पूर्ण समर्थ होता है। वह इन दोनों के समन्वित साधन से उन्मनी अवस्था को प्राप्त करता है। उन्हीं दोनों के योग से उसे अगम एवं पूर्ण प्रकाशित ज्योति का दर्शन होता है। योगी के लिये ये दो ही संपत्तियाँ हैं जिनसे वह साधनक्षेत्र में अग्रसर होता है।[1] इन दोनों के दो दिशाओं में, चंचल दशा में होने पर, गतिशील होने पर साधना नहीं चल सकती। यहाँ इड़ा-पिंगला के परस्पर विरोध और द्वैत को मिटाकर सुषुम्ना में प्रेरित करने की क्रिया स्वीकृत है। मन-पवन को क्रमशः चन्द्र और सूर्य या शब्दान्तर से इड़ा-पिंगला कहा जाता है। योगी इन दोनों को एक साथ समन्वित कर योगलीन रहता है। मन, प्राण और मनसा इन तीनों की संधि सहस्रार में संपन्न होती है। ऐसा तभी संभव है, जब मन और पवन दोनों स्थिर हो जायँ। जब गोरख कहते हैं कि योगी वहाँ ध्यान लगाकर रहता है, जहाँ तक मन-पवन का गम नहीं हैं, तो उसका अर्थ है, जैसा ज्ञान और योग के संबन्ध में कहा है, उस स्थिति में पहुँचने पर ये साधन सत्तावान् नहीं रहते।[2]

इस परिचय से स्पष्ट है कि गोरख की दृष्टि में मन और पवन दोनों के साधन या आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों प्रकार के साधन समन्वित होकर साधक को सिद्धि दिलाते हैं। कुछ नाथयोगी ऐसे भी हैं जिनकी हिन्दी रचनाओं में विंदुरक्षा से प्राण-मन-नियंत्रण या मानससंयम से प्राण-विन्दु-नियंत्रण

[1] गो० बा०, ८१. २६५, १३. ३४, ९७. १, १२०. १, १२५. २।
[2] गो० बा०, १८८. १६, १७६. ११, १७७. १५, ८१. २६५।

को दोनों प्रकार से साध्य बतलाया गया है। विंदुरक्षा या उसकी स्थिति का सम्बन्ध ब्रह्मचर्य से है। बताया गया है कि मन या तो गुरु के आश्रम में रहे या कामिनी के क्रोड़ में।[1] कामिनी के क्रोड़ में विन्दुरक्षा नहीं हो सकती। विन्दुस्थैर्य से कायसिद्धि होती है। सीप्रकार मानस-नियमन-संयम से काय-सिद्धि होती है। गोपीचंद ने स्पष्टतया घोषणा भी की है कि मन की चंचलता से ही पवन चंचल होता है तथा पवन के चंचल होने से विन्दु चंचल होता है। विन्दु की चंचलता ही स्कंघपात का कारण है। गोपीचंद के जीवन से संबद्ध कथाओं से भी उनके इस मत की पुष्टि की जा सकती है। मन, पवन, विन्दु में से किसका प्रथम साधन आवश्यक है, इसके सम्बन्ध में नाथयोगियों में वैमत्य की संभावनाएँ हैं तथापि नाथयोग अपने संपूर्ण रूप में बिना इन तीनों के साधन के सिद्धि को असंभव मानता है। जब तक मन, पवन और वायु चंचल हैं तब तक विन्दुरक्षा नहीं हो सकती।[2] कई बार संकेत किया गया है कि मन-पवन भी नाड़ियों के दो पक्ष के समान हैं। उसी प्रकार विन्दु के दो रूप भी इड़ा–पिंगला, शिव-शक्ति के रूप में स्वीकार किये गये हैं।

6. संक्रमण

संक्रमण या उत्क्रान्ति को हम सामान्य शब्दों में निरन्तर रहना, प्रवाहमय रहना, गतिशील रहना कह सकते हैं। अतः प्रभास्वर चित्त की प्रवाहात्मक क्षणिकता दीपक की लौ के समान प्रतिक्षण परिवर्तनशील होते हुए भी निरन्तर गतिशील भी है। ऐसा होते हुए भी वह अपने प्रभास्वरस्वभाव में निर्विकल्प, अक्षाप्य एवं तथतात्मक भी है। उसे अपने स्वरूप

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

में जानना ही अज्ञान से ज्ञान में संक्रमण है। तथ्य एक ही है। हम किसी दिशा, किसी भी साधन को स्वीकार करें, अन्ततोगत्वा हमें उसी तथ्य पर केन्द्रित होना पड़ेगा। जैसे महासागर के बीच जहाज से उड़ा पक्षी घूम कर वहीं लौटेगा, उसी प्रकार हम विभिन्न उपायों का सहारा लेकर अन्त में उसी केन्द्र में स्थित होंगे।

ग्रन्थों में इसके आभ्यन्तर भेदों को जब हम देखते हैं, तो धर्मकाय में संक्रमण, संभोगकाय में संक्रमण, सामान्यतः बलपूर्वक (हठयोग विधि द्वारा) शुद्ध क्षेत्र में चित्त का संक्रमण, परकाय में संक्रमण आदि की अनेक साधनाविधियाँ मिलती हैं। त्रिकाय आदि में संक्रमण तो प्रायः ऊपर अन्तराभव साधना आदि में आये त्रिकाय का मार्गीकरण ही है।

यह संक्रमण की साधना प्रधान विनेय जनों को अनुगृहीत करने, उन्हें सम्यग् मार्ग में प्रवेश दिलाने तथा स्वयं परकायप्रवेश और पार्थिव शुद्ध क्षेत्र आदि में संक्रमण करने के लिये है।

साधना

उत्क्रान्ति एवं संक्रमण की साधना पर सम्पुटोद्भव तन्त्र के आठवें कल्प के तृतीय प्रकरण में विस्तार से कहा गया है। संवरोदय तन्त्र के 19 वें मृत्युनिमित्तदर्शनोत्क्रान्तियोगपटल में मृत्यु से पूर्व होने वाले अनेक लक्षणों को दिखाते हुए मृत्युकाल में हृदय-कमल में स्थित निजचित्त (सूक्ष्मप्राण चित्त) को मध्यमा नाड़ी के मार्ग से ऊर्ध्व गति देते हुए उष्णीष से बाहर निकाल कर शुद्ध क्षेत्र में स्थित अमिताभ बुद्ध आदि के या अपने उष्णीष पर भावित वज्रधर के चित्त के साथ एकरस करने की विधि बताई गई है।

मृत्युकाले तु संप्राप्तमुत्क्रान्तियोगमुत्तमम्।
नवद्वारगतं नाडीपूरकेण प्रपूरयेत्॥
कुम्भकेन स्तम्भयेद् द्वारं द्वाररन्ध्रविशोधनम्।
रेचकेन रेचयेद् विश्वं प्रधान्तं शान्तमावहेत्॥
(संवरोदयतन्त्र, 19.29–30)

इस प्रकार मृत्युकाल में वायु अथवा बीज मन्त्रों से नेत्र, कर्ण, मुँह, भ्रूमध्य, नासिका आदि द्वारों को बन्द कर वायुवेग के साथ चित्त को ही बीज में स्थित कर ऊर्ध्व की ओर अपसारित करते हुए संक्रमण किया जाता है। यदि चित्त नेत्रादि छिद्रों से निकलता है, तो इस तरह मृत्यु को प्राप्त साधक विभिन्न योनियों में जन्म लेता है, जैसा कि संवरोदयतन्त्र में कहा है—

उत्तमाधमभेदेन कथ्यते शृणु गुह्यक।
नाभिः कामिकस्वर्गस्य बिन्दुना रूपदेहिनः॥

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

ऊर्ध्वेनारूपधातुश्च शुभं तद्गतिभेदितम्।
यक्षो भवति नासाभ्यां कर्णाभ्यां किन्नरस्तथा॥
चक्षुर्भ्यां यदि गते देवि नरराज्यो(जो) भविष्यति।
वक्त्रद्वारं च प्रेतानां मूत्रेण तिर्यचस्तथा॥
अपाने नरकं यान्ति मोक्षाणां गतिरन्यथा।
उत्क्रान्तिकालसंप्राप्तकाले देवघातनम्॥ (19.35–38)

अतः जीवनकाल में साधक को स्वयं इष्टदेव की भावना कर वायुयोग के साथ चित्त को 'ह्रीं' बीज में स्थिर कर तथा उसका उच्चारण करते हुए मध्यमा नाड़ी से ऊपर उष्णीष तक, फिर 'क' आकार में तथा 'क' का उच्चारण करते हुए नीचे हृदय में नाड़ीचक्र के नीचे तक लाकर स्थिर करना चाहिये। यही संक्रमण की साधनाविधि है।

साधक चित्त की उत्क्रान्ति में यदि दक्षता प्राप्त कर ले, तो वह परकाय में भी प्रवेश कर सकता है। अन्य व्यक्ति के बाह्य स्थूल शरीर के मर चुकने पर भी यदि उसके आभ्यन्तर विज्ञान आदि का क्षय न हुआ हो, अर्थात् सूक्ष्मकाय च्युत न हुआ हो, तो अपनी साधना के बल से मृतक के चित्त को शुद्ध क्षेत्र आदि में संक्रमण करा सकता है। इसीलिये साधकों ने इसे बिना भावना किये मोक्ष का मार्ग बताया है, क्योंकि मृत व्यक्ति का सूक्ष्म शरीर उसके बाद सुखावती आदि में जन्म लेकर वहाँ से सम्यक्-सम्बोधि को प्राप्त करता है। इसीलिये इसे परार्थ साध्य का मार्ग भी कहा गया है। इस प्रकार नाडपाद का यह षड्धर्मयोग यद्यपि सभी अनुत्तर तन्त्रों का सार है, क्योंकि तिलोपाद ने अनेक सिद्धाचार्यों से प्राप्त कर इसे नडपाद को दिया, जिसमें गुह्यसमाज और चतुष्पीठ से षट्कर्मों में से मायाकाय और संक्रमण (उत्क्रान्ति) को, महामायातन्त्र से स्वप्नसाधना को, चक्रसंवर आदि अनेक मातृतन्त्रों से प्रभास्वर को और हेवज्र से चण्डाली की साधना को निर्गत कर संकलित किया है[1]। फिर भी षड्योग साधना का प्रधान आधार चण्डालीयोग है। इसी लिये यहाँ मातृतन्त्र की साधना में रख कर इसका प्रतिपादन किया गया है।

•

1. पुद्गल सिद्धान्त, पृ० 108–109, तिब्बत से प्रकाशित, 1992.

परमार्थ प्रभास्वर की प्राप्ति की अवस्था है तथा मन्त्रनय का दर्शन मार्ग है। चण्डाली साधना में उत्पन्न होने वाले गुण-दोषों का विस्तार से प्रतिपादन तिलोपा के सम्यग् वाक्[1] में, कपे ङ छी[2] जमपल-पाओ विरचित चण्डाली भावनाविधि[3] में तथा पद्माकरपो के स्तेफो[4] आदि में देखा जा सकता है।

2. मायाकाय

हेवज्र में कहा है—

> आत्मा जीवं च सत्त्वं च कालः पुद्गल एव च।
> सर्वभावस्वभावोऽसौ मायारूपी च संस्थितः॥ (1.9.12)

अर्थात् सभी धर्मों की मायासदृश भावना करनी चाहिये। स्वरूपगत मायाकाय के अनेक भेद हैं। पंचक्रम की भावनाविधि के अनुसार मायाकाय में उत्थापन विधि का भेद है। जैसे पंचक्रम में त्रिज्ञान के बाद उपमा प्रभास्वर में उत्थापित मायाकाय को अशुद्ध मायाकाय और चतुर्थ प्रभास्वर वायुयोग से मध्यमा नाड़ी में स्थित होकर सर्वशून्य का साक्षात्कार करने के बाद प्रतिलोम में सूक्ष्म वायु के स्पन्दित होने पर उसे विशुद्ध मायाकाय कहते हैं। मातृतन्त्र में चण्डाली का ध्यान कर वायु के मध्यमा में प्रवेश कर तथा बोधिचित्त को स्रवित कर चतुरानन्दों द्वारा शून्यता का क्रमशः बोध कर सहजानन्द के बाद मायाकाय का उत्थापन होता है। यही शुद्ध मायाकाय कहलाता है। यहाँ उपमा प्रभास्वर द्वारा उत्थापित होने वाले मायाकाय की, अर्थात् प्रभास्वर से पहले मायाकाय क्रम की साधनापद्धति निष्पन्नक्रम के रूप में उपलब्ध नहीं होती, अपितु उत्पत्ति-क्रम में ही भाजनलोक की इष्टदेव मण्डल में, सत्त्वलोक की इष्टदेव में, शब्द की देवमन्त्र के रूप में, चित्त और चित्तवृत्ति की इष्टदेव की ज्ञानलीला में उपलब्धि होती है, अर्थात् सभी का मायासदृश आभास होना ही विशुद्ध (अपरिपक्व) मायाकाय है। प्रभास्वर के बाद प्रकट हुआ युगनद्ध मायाकाय अतिविशुद्ध मायाकाय और सभी धर्मों को माया-स्वप्न सदृश समझना अशुद्ध मायाकाय है। इसके विपरीत पंचक्रम में परमार्थ के बाद प्रकट शुद्ध मायाकाय के पूर्व भी उपमा प्रभास्वर द्वारा प्रकट होने वाले अशुद्ध मायाकाय को निष्पन्नक्रम के अन्तर्गत ही माना है। पितृतन्त्र में वायु को मध्यमा में प्रवेश करा कर त्रिज्ञान के द्वारा प्रभास्वर का साक्षात्कार किया जाता है। मातृतन्त्र में वायु का मध्यमा में प्रवेश तो मान्य है, लेकिन आलम्बन के रूप में चण्डाली (ज्ञानाग्नि) और 'एवं' या बिन्दु का ग्रहण करने के कारण अलग से प्रभास्वर मायाकाय आदि के

1. तो० 2331, पृ० 271-273.
2. तो० 2332, पृ० 273-276.
3. टशी जोङ् पालमपुर से प्रकाशित।
4. पद्माकरपो-संग्रह, जि० 10.

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

लिये स्वतन्त्र क्रम (साधना पद्धति) का प्रतिपादन अपरिहार्य नहीं है। इस साधनापद्धति के अनुसार साधना का केन्द्रबिन्दु स्वयं प्रभास्वर हो जाता है। फिर भी चित्त की निद्राकाल की अवस्था और सामान्य माया के रूप को तुरन्त जानने के लिये अलग से साधनाविधि भी उपलब्ध होती ही है।

ही प्रत्याहार है। इसके बाद ही पंचभूतों के लय का क्रम आता है और इनके लय के बाद मनोलय या मानसस्थैर्य का क्रम आता है। गोरखबानी में स्पष्ट रूप से पंचभूततत्वों के लय का कोई विवरण नहीं मिलता। केवल ज्ञानेन्द्रियों के नियंत्रण-निश्चलत्व का बार-बार वर्णन किया गया है। वस्तुतः जहाँ 'लय' शब्द और क्रिया का संबंध है, गोरखबानी में कहीं भी प्रयोग और वर्णन नहीं है। किन्तु उन्मनीयोग या उन्मनीसाधन का पर्याप्त वर्णन मिलता है। बताया गया है कि योगी दशमद्वार ब्रह्मरंध्र में ही समाविस्थ होता है। इस प्रकार के योग में मन-पवन के योग की ओर कई बार संकेत किया गया है। जब तक प्राण का नियंत्रण नहीं होता तबतक उन्मनावस्था सिद्ध नहीं होती। जब सूर्य और चन्द्र के योग से (अथवा प्राण और अपान के योग से) उन्मनावस्था सिद्ध हो जाती है, ब्रह्मरंध्र शून्यमंडल में अमृत का निर्झर झरने लगता है।[1] गोरख मन को असाध्य मानते हैं। जब यह मन सिद्ध हो जाता है, तभी अनाहत नाद का गर्जन होता है तथा उन्मनी समाधि लगती है। अनाहत नाद से ही मन (आकर्षित होकर, निश्चल होकर) उन्मन हो जाता है। डा० बड़थ्वाल ने उन्मानावस्था को तुरीयावस्था बतलाया है। यह स्थिति गगनमंडल में ही प्राप्त होती है। इस उन्मनी अवस्था के लिये शिवशक्तियोग को उपायस्वरूप बतलाया गया है। इस अवस्था के प्राप्त होने पर महारस के पान का अवसर योगी को मिलता है।[2] इस प्रकार दूसरे शब्दों में कहें तो मन की अचचल शून्य अवस्था ही उन्मनी अवस्था है जिसका साधन पवन, कुंडलिनी, लय, नाद आदि से संपन्न होता है। इन साधनों का परस्पर क्या संबंध है, इसके विषय में पहले ही कई स्थानों पर कहा जा चुका है।

२३—अमृतसाधन

ब्रह्मरंध्रप्रकरण में ही 'अमृतसाधन' या अमरवारुणीपान के साधन की ओर भी प्रसंगतः संकेत हो चुके हैं। गोरख ने बताया है कि षट्दलकमल (स्वाधिष्ठानकमल) का भेदन होने पर ही अमृतरस पीने को मिलता है। जीवन्मुक्त योगी रात दिन दृष्ट पदार्थों के बीच अदृष्ट अगम एवं अपार तत्व का दर्शन करता हुआ अखंड अमृतधारा का पान करता रहता है। निस्सार मायिक वस्तुओ में से ही सारवान् अमृत सत्व का ग्रहण होता है। पंचतत्व से निर्मित वस्तुएँ निस्सार हैं। उनके संसर्ग से विष हो जानेवाला तत्व गुरुवचन से

[1] गो० बा०, पृ० ४७, १३, १९, २०।
[2] गो० बा०, पृ० ३२, ३६, १८८, १९३।

सर्पिणी या कुंडलिनी का पर्याय है। एक स्थान पर उसे श्वास-सर्प भी कहने का कारण यह है कि श्वास से जाग्रत की हुई कुंडलिनी सुषुम्ना के मार्ग से गमनागमन करती है। सहजभाव से बंकनाल से होकर नाभि तक कुहक करने-वाली कुंडलनी ही सर्पिणी या माया भी कही जाती है।[१] 'पाताल' का अर्थ-निर्णय हम पहले ही कर चुके हैं। कुंडलिनी को 'पाताल की गंगा' भी कहते हैं क्योंकि वहाँ से निकल कर भूतपरिशोधिका होकर वह सहस्त्रार तक प्रवाहित होती है।[२] दर्शन और साधन दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण शब्द शक्ति है। शक्ति शब्द का प्रयोग नाथपंथी हिन्दी रचनाओं में कई अर्थों में मिलता है—कुंडलिनी, माया शक्ति, शिव का अभिन्न तत्व, रज, रवि। इनमें से प्रथम तीन अर्थ ही प्रधान हैं। कभी-कभी प्रथम दो अर्थों का मिश्रण भी हो गया है। डा० बड़थ्वाल ने प्रायः इन दोनों अर्थों को मिलाकर अर्थनिरूपण किया है, जैसा पहले के विवेचनों से स्पष्ट है। शक्ति उलट कर जब ब्रह्मांड में पहुँच जाती है तथा नख से शिखा तक वायु क्रीड़ा करने लगती है तभी चन्द्र उलट कर राहु को ग्रस्त कर देता है। इसी शक्ति का शिव से विभिन्न क्रियाओं द्वारा योग कराया जाता है। इस शक्ति का शिव से योग कराने पर उन्मनी सिद्ध होती है। वस्तुतः इसका निवास अधोभाग में रहता है। सूर्य-चन्द्र साधन से संबंधित करने पर रवि ही शक्ति है जिसे शिव (चंद्र) से जोड़ा जाता है। इसे 'रज' और शिव को विंदु कहते हैं जिनका विलक्षण योग साधन माना गया है।[३] शिव-शक्ति-योग संबंधी इस परिचय से यद्यपि शक्ति के दार्शनिक रूप का कोई परिचय नहीं मिलता तथापि शिवशक्तिसंबंध के विषय में जितनी बातें तांत्रिक योग के विवेचन में कही गई हैं उनको दृष्टिगत रखकर विचार करने पर इसका स्पष्टीकरण हो जाता है। हिन्दी रचनाओं में 'पनिहारी' और 'गागर' का प्रतीक भी व्यवहृत है। आत्मा को पनिहारिन और कुंडलिनी को गागर कहा गया है। चक्रों के अनुसार पनिहारिन आत्मा का स्थान ऊपर ब्रह्मरंध्र है तथा कुंडलिनी (गागर) जिसके द्वारा ब्रह्मानन्द रस का अनुभव होता है, वह मूलाधार में है।[४]

---

[१] गो० बा०, पृ० १६५, १६६, ६३, १४७, १७४, १३९, १९२।

[२] गो० बा०, पृ० २।

[३] गो० बा०, पृ० ७१, ८२, ३०, ४५, १००, १९०, १५०, १७४, १९३, १९६, १००, ११०।

[४] गो० बा०, पृ० १४२।

अनुसार बताये जा चुके हैं। हिन्दी की नाथपंथी रचनाओं से इन तीनों रूपों का परिचय नहीं मिलता। यद्यपि गोरखबानी में कुंडलिनी को नारी कहा गया है किंतु अधिकतर नारी शब्द का प्रयोग 'रमणी' के लिये ही किया गया है। इसी प्रकार यद्यपि 'कुँवारी' शब्द तांत्रिक योग में जाग्रत कुंडलिनी की प्रथम अवस्था है तथापि यहाँ 'कुँवारी' शब्द 'माया' के लिये व्यवहृत किया गया है। यदि कुंडलिनी का एक मायात्मक रूप भी स्वीकार कर लिया जाय तो 'कुँवारी' शब्द का प्रयोग कुंडलिनी के लिये समीचीन माना जा सकता है। एक तीसरा शब्द 'कलालिन' है। मदिरा पान करानेवाली 'नारी' के रूप में कुंडलिनी की कल्पना अपरिचित नहीं है किंतु डा० बड़थ्वाल ने इच्छा रूप 'कलालिन' का अर्थ किया है।[1] बौद्ध सिद्धों के यहाँ सुषुम्नासुन्दरी या अवधूतिका को 'योगिन' के रूप में कल्पित किया गया है, किंतु गोरक्ष द्वारा प्रयुक्त 'जोगणि' शब्द को डा० बड़थ्वाल ने 'मनसा' का बोधक माना है। 'मनसा' या इच्छा रूप 'योगिनी' कुंडलिनी का ही बोधक है क्योंकि इसके विषय में कहा गया है कि यह मन में झूलती (मस्त होती) आती है तथा गगन मंडल में मढ़ी बना लेती है। वस्तुतः कुंडलिनी जीव की इच्छाशक्ति का प्रतीक है। 'योगिनी' के आगे के परिचय में स्पष्टतया कहा गया है—'मेरे सास-ससुर नाभि (मणिपूर चक्र) में रहने वाले हैं। मैं (जोगी मन) ब्रह्मस्थान (ब्रह्मरंध्र) का निवासी हूँ (अर्थात् स्वयं परमात्मतत्व हूँ)। इला-पिंगला के प्राणायाम के द्वारा मेरी जोगिन (कुंडलिनी) से भेंट हुई और सुषुम्ना में मुझे निवास मिला।······नाभि (मणिपूर) में कुलकुंडलिनी शक्ति का निवास माना जाता है। इसी शक्ति (मूल या आदि माया) के द्वारा सृष्टि का निर्माण हुआ है। इसीलिये उसे ब्रह्मा और सावित्री का निवास मानते हैं। ये ही सास-ससुर कहे जाते हैं क्योंकि ये स्थूल माया पैदा करने वाले हैं। इस प्रकार योगी का मन ही साधक है तथा योगिन मनसा या कुंडलिनी के साथ वह योगी सदैव भोगनिरत रहता है।[2]

कुंडलिनी शब्द ही सर्पिणी का बोधक है। इसलिये कुंडलिनी का दूसरा पर्याय नागिन है। कुंडलिनी या नागिन षट्चक्रों का भेदन कर उनसे ऊपर निवास करती है। डा० बड़थ्वाल ने इसे माया अथवा शक्ति कहा है। उसे काली सर्पिणी रूप माया भी कहा गया है। 'भुवंगन' या भुजंग शब्द भी

---

[1] गो० बा०, पृ० ९७, ९१, १५१, १५२, १५३, १७३, १०६, १२२।

[2] गो० बा०, पृ० १०५-१०६।

या ३६ लक्षणों से संपन्न हो जाने पर फिर गुरु-शिष्य आदि के भेद नहीं रहते। उनमें किसी को भी ज्येष्ठ या श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। किंतु सांसारिक दृष्टि से यह विपरीत क्रम है। इस क्रम के संबन्धमें हम पहले भी बहुत कुछ कह चुके हैं। मन, पवन, शब्द, सुरति—इन सबको उलट कर त्रिपुटी में मिलाना या केन्द्रित करना भी विपरीतकरण है।[1] कुंडलिनी का सुप्त रहना एवं मानसिक वृत्तियों का बाह्य सांसारिक विषयों की ओर उन्मुख होकर चंचल रहना यह सब सांसारिकों की दृष्टि में सीधी क्रिया है। इनको उलट देना कुंडलिनी को जाग्रत कर सहस्रारोन्मुख कर देना विपरीतकरण है। इस प्रकार की उलटी क्रिया की चर्चा उलटी चर्चा है। कायसिद्धि या सिद्धदेह का वर्णन करते समय 'काया पलटना' का वर्णन किया जा चुका है। इसी प्रकार षट्चक्रवेध के लिये पवन को उलटना भी आवश्यक बतलाया गया है। इसी साधन को चंद्र-सूर्य को सम्मुख रखना, उलटकर फूल का कली में आना (वृद्ध से बाल रूप में आना), उलट कर फिर पीछे की ओर आना (परावृत होना), मन का उलटना, कमलों का उलटना (तांत्रिक मान्यता है कि कमलों का वेध होने पर वे अधोमुख से ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं), रुधिर को उलट कर अमृत रस का भरना, विपरीतकरणी मुद्रा से वायुस्थैर्य, चंद्र और सूर्य का उलट कर राहु-केतु का ग्रास कर लेना, चंद्र-सूर्य का समरसीकरण आदि सभी प्रकारान्तर से इसी विपरीतकरण की ओर संकेत करते हैं।[2] इस प्रकार यह विपरीतकरण मन, पवन, इन्द्रिय, शुक्र, काया आदि का विपरीतकरण है जिससे शारीरिक अजरामरता एवं परमतत्वसाधन—दोनों ही सिद्ध होते हैं। कुंडलिनी का पलटना इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

कुंडलिनी का पलटना या जागरण और सहस्रारोन्मुख होकर गतिशील होना एक ही है। इसकी यात्रा के संबंध में विस्तार से हम तांत्रिक योग के विवेचन में कह चुके हैं। तांत्रिक लोग शक्ति के ही दो रूप मानते हैं। शक्ति माया भी है और मुक्तिदायिनी भी है। कुंडलिनी जब तक सुप्त रहती है तबतक वह मायाभिमुख जीवशक्ति का प्रतीक है। जाग्रत होने पर वही मोक्ष-दायिनी है। पहले हम नारीशक्ति के भी रूपों का परिचय दे चुके हैं। कुंडलिनी के कुंवारी, योषित और पतिव्रता ये तीनरूप उसके विकासक्रम के

[1] गो० बा०, पृ० ५० छं० १४४, पृ० १८७।

[2] गो० बा०, पृ० १४२, ६५, ७०, १३, १९, ३६, ३९, ४०, ७४, १२४ १४६, १४९, १७५, १७६।

सं०	चक्रनाम	कमल के दल	स्थान	अन्य विवरण श्वास संख्या
१.	आधारचक्र	४	गुदा	६००
२.	दृष्टिचक्र	६	लिंग	६००
३.	मणिपूरचक्र	१०	नाभि	६००
४.	अनाहतचक्र	१२	हृदय	६००
५.	विशुद्धचक्र	१६	कंठ	१०००
			अजपा गायत्री पार-ब्रह्म का ध्यान	
६.	अग्निचक्र	१६	नेत्र	१००० ,,
७.	ज्ञानचक्र	१००० सहस्रदल कमल	ब्रह्मांड	१००० ,,
८.	सूक्ष्मचक्र	२१०००	विज्ञान	—

'मच्छींद्र गोरष बोध' में केवल ६ चक्रों का वर्णन किया गया है। उसमें उपर्युक्त विवरण से भिन्न नामवाले चक्रों का वर्णन कर बताया गया है कि अधःचक्र में चन्द्र दृढ़ होता है ऊर्ध्वचक्र में बंध लगता है, पश्चिमचक्र में निरोध निष्पन्न होता है, हृदयचक्र में मनप्रबोध होता है, कंठचक्र में ध्यान-धारण होता है तथा ज्ञानचक्र में साधक विश्राम प्राप्त करता है। यदि यह विवरण क्रमनिबद्ध माना जाय तो अधः चक्र आधारचक्र (मूलाधारचक्र) प्रतीत होता है तथा ऊर्ध्वचक्र (मूलाधार से ऊपर) लिंगस्थानीय दृष्टिचक्र है। इसी प्रकार पश्चिमचक्र मणिपूर और हृदयचक्र अनाहतचक्र है। इसके बाद स्पष्ट ही कंठचक्र (विशुद्ध चक्र) और ज्ञानचक्र का वर्णन मिलता है। इन दोनों चक्रों के मध्यस्थानीय अग्निचक्र का वर्णन यहाँ नहीं है। 'मच्छींद्र गोरष बोध' में ही एक अन्य स्थान पर भी चक्रों का वर्णन मिलता है जिसमें बताया गया है कि 'मूलचक्र' में कंदस्थैर्य, गुदाचक्र में अगोचर बंध, मणिचक्र में हंस-निरोध तथा अनाहतचक्र में चित्तप्रबोधन संपन्न होता है। इसके बाद के दो चक्रों—क्रमशः विशुद्धि और चन्द्रचक्र में स्वादोपलब्धि एवं समाधि की आप्ति होती है।[1] स्पष्ट ही यहाँ मूलचक्र और गुदास्थानीय आधारचक्र में भेद किया गया है। गोरख बानी के ही तीन स्थलों में तथा गोरख के ही नाम से प्रसिद्ध रचनाओं में चक्रों की संख्या, विवरण एवं क्रम में इस प्रकार भिन्नता मिलती है। अतः इनके आधार पर गोरख की किसी व्यवस्थित चक्र-व्यवस्था का

[1] गो० बा०, पृ० १९२, पृ० २०२।

जाता है उसे तांत्रिक ग्रंथों में कहीं कहीं अग्नि नाम दिया गया है। इसलिये उपर्युक्त युग्मों की तुलना में उसे योग, अग्नि, नाड़ी, सरस्वती, सुषुम्ना, मध्य आदि नामों से अभिहित करते हैं। कहीं कहीं मध्य, अनन्तर, एकत्व, 'सांध' सम्मुख, विलीनता 'समि' या साम्य या सामरस्य, स्थैर्य, समाधि, मिलन आदि कहा गया है। गंगा और यमुना या इड़ा—पिंगला का मिलन या उनके विरोधभाव की हानि सुषुम्ना में होती है। जहाँ इड़ामार्ग को चन्द्र तथा पिंगला मार्ग को भौम या सूर्य कहा गया है वहीं सुषुम्नामार्ग को वाणीमार्ग (गंगा-यमुना-मार्ग के अनुसार सरस्वती मार्ग) कहा गया है। इड़ा—पिंगला के साधन से ही कुण्डलिनी का जागरण होता है और फिर सुषुम्ना नाड़ी में निश्शंक विश्राम मिलता है। वही वास्तविक घर है। इड़ा (चन्द्र) का शोधन और पिंगला का पूरण कार्य कर उन दोनों को लेकर सुषुम्ना के मध्य से आकाश में आरोहण करना चाहिए। इन नाड़ियों के एक साथ साधन से ही भ्रमनिवारण होता तथा ब्रह्मसाक्षात्कार होता है।[१] यह सुषुम्ना ही वस्तुतः मध्यममार्ग है। इसे अद्वय भी कह सकते हैं। आचार और संयमगत मध्यम मार्ग का परिचय हम पहले ही दे चुके है और यहाँ हठयोगगत मध्यममार्ग का परिचय दिया गया है जिसमें सुषुम्ना को मध्य कहा गया है। गोरख के अनुसार सारे आध्यात्मिक संसार का व्यापार अधः और उर्ध्व के बीच का व्यापार है। पूरक और रेचक के बीच कुंभक की स्थिति है, वही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और उसी से आध्यात्मिक व्यापार चलता है। यही स्थान शून्य स्थान है जहाँ साधक की स्थिति स्थिर होती है, वहीं उसे मस्ती मिलती है। प्राणतत्व की स्थिर और वास्तविक स्थिति अधः और उर्ध्व या पूरक-रेचक या अपान और प्राण के मध्य में है। प्राणपुरुष का वास्तविक निवास वहीं है। व्यक्ति की जब इड़ा और पिंगला में पवनक्रिया चलती रहती है तब उसे संसारोन्मुख कहा जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से उसे जागना तथा पारमार्थिक दृष्टि से उसे सोना कहते हैं किन्तु जब द्वैतप्रधान ये दोनों नाड़ियाँ अपने द्वैत का त्याग कर देती हैं, उनकी सांसारिकता सो जाती है, तभी केवल सुषुम्ना में पवन-क्रिया होती है। पारमार्थिक दृष्टि से इसे ही जागरण कहते हैं। गोरख के उपदेश में साधक से कहा गया है कि सबके सामने व्यवहार में तो सायंकाल सो जाओ किन्तु उस समय मध्यकाल में, रात और दिन या शशि और सूर्य के मध्य में, भीतर से, अंतस् से, जागते रहना चाहिए। यह जागरण तभी संभव होता

---

[१] गो० बा०, ३३. ९४, ९५.१, १०५. २, १११. ५. १९, १६७. १६।

कायाकल्प होने के कारण परवर्ती कुछ योगी जन योग भ्रष्ट भी हुए । इसी लिये कालान्तर में हठयोग को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा ।

जहाँ तक सन्तों की हठयोग साधना का प्रश्न है, इन्होंने इसके द्वारा कभी भी कायाकल्प की प्रयास नहीं किया । अतः षट्कर्म का इनके लिए कोई विशेष महत्व नहीं रहा ।

रविदास जी ने भी षट्कर्म को कोई महत्व नहीं दिया । जिस साधक को ब्रह्मानुभूति हो जाए उसे फिर इस नश्वर शरीर को स्थिर रखने का प्रयास व्यर्थ प्रतीत होता है । रविदास जी ने तो ब्रह्मानुभूति के पश्चात् षट्कर्म के साथ-साथ ज्ञान, ध्यान दोनों को छोड़ देने की बात कही है ।

दूरी बसे षट्कर्म सकल अरु दूरिब कीने सेऊं ।
ज्ञान ध्यान दोऊं दूरोहूं कीने दूरिब छाडे तेऊ ।।[1]

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि योग का मूल उद्देश्य सहस्रार में शिव-शक्ति या प्राण- अपान को मिला देना है, इसे ही ब्रह्म साक्षात्कार या ब्रह्मानुभूति कहा जाता है । यही कार्य हठयोगी प्राणायाम के द्वारा सम्पन्न करता है । इसे बाद शेष समस्त साधन व्यर्थ हो जाते हैं । साधक दिव्यानन्द में रमण करने लगता है । इसी दिव्यानन्द में रमे रविदास जी गा उठते हैं-

भाई रे भरम भगति सुजांण ।
जौ लौं सांच सूं नहिं पहचांण ।।
भरम नाचन भरम गावन, भरम जप-तप-दांन ।।
भरम सेवा भरम पूजा, भरम सूं पहचांन ।।

---

1. सरबगी : सम्पादक एवं व्याख्याकार, डा० धर्मपाल सिंहल, पृ. 236. दीपक पब्लिशर्ज जालन्धर ।

अनहद बाजे नीझर झरे उपजे ब्रह्म गियान ।
अविगत अंतरि प्रगटे लागे प्रेम धियान ।।[1]

संत जनों द्वारा वर्णमाला के अक्षरों के अनुरूप अपनी साधना पद्धति की व्याख्या की गई है । रविदास जी की वाणी में भी ऐसी एक पट्टी उपलब्ध होती है । रविदास जी ने इसमें हठयोग के लगभग सभी तत्व समाहित कर लिये हैं । परन्तु इसे वर्णमाला के केवल पांच अक्षर क्रमशः अ,इ,उ,म, तथा र ही दियें गए है, फिर भी गुरु रविदास जी की समग्र साधना पद्धति इसमें आ गई है ।

अ- अज्ञान छाँडि मन मूरिख आ- आसन अचल लगाऊं ।
इ- इला पिंगला खोलि किवरिया, सूनि समाधि रहाऊं ।।
उ- उर मंहराम हि राखों नैननि माहिं बसाऊं ।।
म- मेरि तजि राम नाम मिलि, परम तत को पाऊं ।।
र- रं राम मोहि गुरु रामा दीन्हीं, नहीं इहु मन्त्र विसराऊं ।
कहै रविदास ररंकार जपतहिं भौ सागर तरि जाऊं ।।[2]

हठयोग की साधना द्वारा जब योगी सहस्रार में प्राण और अपान को मिला देता है तब वहां ब्रह्म नाद गूंजने लगता है । रविदास जी ने अपने निम्न पद में अनहद नाद को भ्रमर गुंज कहा है :

इला, पिंगला, सुषमर्ण नारी, जा में चित्त न धर ।
सहस्रार मंह भ्रमर गुफा है भवंरा गुंज करे ।।[3]

1• कबीर वाङ्मय खण्ड-3, साखी-पृ• 78•
2• गुरु रविदास जीवन एवम् दर्शन, धर्मपाल सिंहल, पृ• 130 वाणीपद-140•
3• सन्त गुरु रविदास वाणी : वेणी प्रसाद शर्मा, पृ• 132•

आकासे मुखि औंधा कुंआ पाताले पनिहारि ।
ताका जल कोई हंसा पीवै विरला आदि विचारी ।।[1]

आकाश अर्थात् सहस्रार रूपी औंधे कुंए से निरन्तर अमृत झरता रहता है । पनिहारि यहां पर कुण्डलिनी का प्रतीक है, जो पाताल यानि मूलाधार चक्र में अवस्थित है । वहां से षट्चक्रों को पार करती हुई कुण्डलिनी जब सहस्रार में पहुंचती है तभी उस औंधे कुंए से अमृतपान कर सकती है । विरले साधक ही इस मार्ग से अनुगमन का साहस करते हैं ।

सहस्रार रूपी अमृत कुंभ का वर्णन रविदास जी ने भी किया है वे कहते हैं -

गगन मण्डल में आरति कीजे, नाद बिन्दू इक मेक करीजे ।
सुसमन इन्दु अमृत कुंभ धरावे, मनसा माला फूल चढावे ।।
घीव अखण्डा सोहे बाती, त्रिकुटी जोत जले दिन राति ।
पवन साधना थाल सजीजे, तामें चौमुख मन धरि लीजे ।
रवि ससि राहो तिह माहीं बिन दाहिने बिन बामें लाहीं ।।
सहस कंवल सिंहासन राजे, अनहद झांजन नित ही बाजे ।
इस विध आरति सांची सेवा, परम पुरिष अलख अभेवा ।।
कह रैदास गुरुदेव बतावे, ऐसी आरति पार लगावे ।।[2]

उपरोक्त पद्य से सन्तगुरु रविदास जी की हठयोग सम्बन्धी साधना पर व्यापक रूप से प्रकाश पड़ता है । अन्त में इसमें रविदास जी कहते हैं कि इस प्रकार की साधना ही परम पुरुष अर्थात् ब्रह्म से साधक का सम्बन्ध जोड़ती है

---

1. कबीर वाङ्मय खण्ड-3, साखी : डा0 जयदेव सिंह तथा वासुदेव सिंह, पृ० 78.
2. सन्त गुरु रविदास वाणी : डा0 बी० पी० शर्मा, पृ० 138-39.

जब श्वास बाहर जाय, तो साधक को सोचना चाहिये कि सारी बाधाएँ, सारे पाप, सारे रोग शरीर से बाहर निकल गये। जिन साधकों ने इस साधना को कभी नहीं किया है, उन्हें अपने प्रत्येक या दोनों नासारन्ध्रों को तर्जनी अंगुली से दबाना चाहिये, जहाँ से श्वास निकल रहा हो तथा हृदय के एक तरफ के भाग को अपने दूसरे विपरीत हाथ या मुट्ठी से दबाना चाहिये। ऐसा तब करना चाहिये, जब कि साधक पहली बार श्वास बाहर निकाल रहा हो। साधक को अपनी दोनों मुट्ठी या घुटनों पर तब तक रखना चाहिये, जब तक कि वह दोनों नासारन्ध्रों से श्वास ले रहा हो। बाद में प्रत्येक बार वायु को बाहर निकालते समय उसे लम्बी-लम्बी श्वास लेनी चाहिये, जब तक कि साधक दुबारा अपने कण्ठ को थोड़ा झुका कर श्वास को बाहर निकालता है। तन्त्रशास्त्र में इसे नवद्वार-प्रश्वास-वहन कहा जाता है। साधक को इस प्रक्रिया को केवल एक या दो बार करना चाहिये। अपने ध्यान के प्रारम्भ के समय में यदि कोई साधक इसका बहुत अभ्यास करेगा, तो उसे सिर दर्द और श्वास लेने में कठिनाई महसूस होगी, लेकिन कभी-कभी ध्यान के मध्य में भी इस साधना को बहुत सरलता के साथ किया जा सकता है, जब कि साधक को इसकी आवश्यकता महसूस हो।

प्राणायाम की मुख्य साधना

जैसा ऊपर बताया गया है, वैसे ही साधक बैठ जाय, मेरुदण्ड को थोड़ा सीधा करे और लगभग तीन इञ्च मोटा कम्बल का आसन अपने श्रोणी या कूल्हे के नीचे रखे। सहजता से लम्बी सूक्ष्म श्वास ले और वायु को नीचे की तरफ नाभिचक्र की ओर जोर से दबाते हुए श्वास के साथ अपने थोड़े थूक को निगल ले। अब गुदाभाग के मसलों को थोड़ा संकुचित करे तथा वायु को नाभिचक्र में रोके। इस विधि से जब साधक श्वास को नीचे की ओर दबाने में समर्थ हो जाता है, तब मसल के संकुचन को वह और अधिक मजबूती के साथ बिना पेट को घुमाए कर सकता है। इस प्रकार ऊपर की वायु को नीचे लाने, नीचे की वायु को ऊपर ले जाने और दोनों के नाभिचक्र में मिश्रित होने या मिलने से पेट (उदर) का निम्न भाग एक पात्र के आकार का बन जाता है। इसी कारण इस साधना को प्राणायाम साधना या प्राणसाधना कहते हैं। सेकोद्देश-टीका में कहा है—"ततः प्राणायामो नाम ललनारसनावामदक्षिणमार्गनिरोधः, अवधूतीमध्यमार्गे प्राणवायोः सदा प्रवृत्तिरिति। पूरककुम्भकरेचक-योगेनावधूत्याम् ओंकारेण श्वासं हूंकारेण निरोधम् आःकारेण निःश्वासं चन्द्रसूर्य-राहुस्वभावेन कुरुते योगीति प्राणायामाङ्गम्" (पृ० 38-39)।

जब साधक प्राणवायु को बहुत देर तक नहीं रोक सके, तो उसे बहुत छोटी श्वास लेकर तनाव से मुक्त होना चाहिये तथा पेट के मसलों को तीन बार घुमाना चाहिये। एक बार पुनः श्वास को रोकना चाहिये, जितनी देर तक कि वह इसे रोक सके। जब वह ऐसा भी बहुत देर तक न कर सकता हो, तो उसे अपना सिर थोड़ा सा ऊपर उठाना चाहिये तथा श्वास को धीरे-धीरे छोड़ना चाहिये। ये चार प्रकार की विधियाँ-श्वास का लेना, उसका भरना, समापन

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

(विलय) एवं श्वास का बाहर छोड़ना या फेंकना कहलाती हैं। हेवज्रपंजिका योगरत्नमाला में कहा है—"नासया निश्चरन् रेचको वायुः, प्रविशन् पूरकः, पूरिताभ्यन्तरः कुम्भकः, प्रविश्य निश्चलीभूतः प्रशान्तः" (हे. त. 1.11.3 की व्याख्या भाग 2, पृ० 135-136)। प्राणवायु को खींचते समय साधक को कुछ अन्तर्दर्शन या प्रत्यक्षीकरण का अभ्यास इस प्रकार करना चाहिये—

1. साधक जब श्वास को अन्दर खींचे तो प्राण को पाँच तत्त्वों, पाँच विभिन्न रंगों से युक्त नासिका से दस इंच की दूरी से नासिकाओं से श्वास खींचते हुए देखे।

2. श्वास भरते वक्त दोनों नाड़ियों से उतरते श्वास को वैसे ही देखे, जैसे श्वास को बकरी की अंतड़ी में भरा जाता है। उससे गुजरते हुए मध्य नाड़ी में दोनों मिलें या प्रवेश करें तथा वे स्थित हों।

3. जब श्वास बाहर निकले, तो साधक वायु को मध्य नाडी में चक्कर लगाते या घूमते हुए देखे।

4. जब श्वास फेंके या बाहर निकाले, तो बिन्दु को देखे, जो प्राण और चित्त (मन) के सार का प्रतीक है। यह मध्य नाडी से होता हुआ शिरश्चक्र से बाहर निकलता है।

इस वायु के बाह्य प्रक्षेप संदर्शन (प्रत्यक्षीकरण) को ध्यान की प्रारम्भिक दशा में केवल एक बार करे। ऐसा करने पर अकसर उसे उस तरफ ले जायगा।

यह वारुणीसाधन ही रस साधन है। वारुणी साधन के अन्तर्गत ही खेचरी मुद्रा का भी वर्णन मिलता है। गोरख की वाणी में खेचरी मुद्रा की सहायता से वारुणीपान का वर्णन केवल एक स्थल पर मिलता है जहाँ कहा गया है कि

[1] गो० बा०, पृ० १७१, १९२, ११३, १६७, २०, १९२, १२४।
[2] गो० बा०, पृ० १२२-१२३।

जिह्वा को उलट कर तालु-मूल में रखना चाहिए (जिससे सहस्रारस्थित चन्द्र से स्रवित होनेवाले अमृत का आस्वादन होगा)।[1] भरथरी ने भी खेचरी मुद्रा की सहायता से वारुणीपान का वर्णन न कर मायात्याग की बात कही है।[2] पहले के उदाहरणों में अमृत को महारस कहा गया है। अतः अमृतसाधन ही रससाधन है। पक्व देह और अपक्व देह का परिचय देते समय भी इस संबंध में कुछ कहा जा चुका है। इस साधन के अनुसार कहा जाता है कि सामान्य सांसारिक व्यक्ति का शरीर जरामृत्यु के अधीन है। नाथ लोग काया को अजर-अमर बनाकर उसे बालस्वरूप में रखने का प्रयास रसायनविद्या की सहायता से करते हैं। 'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह' में 'रसायनी महाविद्या सिद्धिर्भवति निश्चितम्' कहा गया है। रसायन के प्रयोग से शरीर को कुछ काल तक रोग और जरा से मुक्त रखा जा सकता है, किंतु उसे स्थायी न मानकर नाथयोगी लोग उसे सिद्धिप्राप्ति के लिये यथेष्ट नहीं मानते। षट्कर्म और आसन-मुद्रादि के द्वारा कालविजयी होना ही इन लोगों का लक्ष्य है। अमृतपान ही मुख्यतम साधन है किंतु सहस्रार में अमृतस्रावक चन्द्रमा के स्राव को मूलाधारस्थित सूर्य ग्रहण कर लेता है। इसलिये चन्द्रमा के झिलमिल करते रहने पर भी अमावस्या का अंधकार रहता है, इसीलिये गोरक्ष मीनमार्ग से जाने का उपदेश करते हैं, चन्द्रविरोधी सूर्य को चन्द्र के सम्मुख करने को कहते हैं और इस प्रकार अमृतरस का आस्वादन कर कालजयी होने को कहते हैं। सुषुम्ना की मध्यवर्तिनी चित्रा नाड़ी की सहायता से कुंडलिनी को सहस्रार में ले जाकर अमृतपान करना योगिजनों का साधन है। इस साधनपथ में बिंदुरक्षा के लक्ष्य को स्थिर रखने के लिये नाथमार्ग में बार-बार उपदेश मिलता है।[3] विभिन्न रासायनों के प्रयोग का विस्तार से वर्णन चरपटनाथ ने किया है किंतु गोरखनाथ ने रस-रसायनों का प्रयोग कर आरोग्यलाभ किया है।[4] चन्द्रस्राव का पान ही अमृत तत्व प्रदान करता है। चन्द्रामृत ही वास्तविक अमृत है।

२४—समाधि के अन्य पर्याय

अन्य शब्दों में तत्व और शून्याशून्य शब्द हैं। तत्वोपलब्धि हो जाने पर

[1] गो० बा०, पृ० ४६।
[2] ना० सि० बा०, पृ० ३२।
[3] ना० सं० इ० द० सा० प्र०, पृ० ५७१; गो० बा०, पृ० २०; ना० सं० इ० द० सा० प्र०, पृ० ५७१-५७२।
[4] ना० सि० बा०, पृ० ३४-३५, गो० बा० १७२, ६९।

२३—अमृतसाधन

ब्रह्मरंध्रप्रकरण में ही 'अमृतसाधन' या अमरवारुणीपान के साधन की ओर भी प्रसंगतः संकेत हो चुके हैं। गोरख ने बताया है कि षट्दलकमल (स्वाधिष्ठानकमल) का भेदन होने पर ही अमृतरस पीने को मिलता है। जीवन्मुक्त योगी रात दिन दृष्ट पदार्थों के बीच अदृष्ट अगम एवं अपार तत्व का दर्शन करता हुआ अखंड अमृतधारा का पान करता रहता है। निस्सार मायिक वस्तुओं में से ही सारवान् अमृत सत्व का ग्रहण होता है। पंचतत्व से निर्मित वस्तुएँ निस्सार हैं। उनके संसर्ग से विष हो जानेवाला तत्व गुरुवचन से

[1] गो० बा०, पृ० ४७, १३, १९, २०।

[2] गो० बा०, पृ० ३२, ३६, १८८, १९३।

अमृत हो जाता है। बंकनाल से स्रवित होनेवाला जल ही अमृत है। गोरख की वाणी के अर्थनिर्णय में डा० बड़थ्वाल ने बंकनाल को नाभि के पास बतलाया है। इसी बंकनाल में सूर्य जब उदित होता है तब रोम-रोम में तूर्यनाद होता है। इसी प्रकार शून्यमंडल या ब्रह्मरंध्र से भी निर्झर का स्रवित होना कहा गया है।[1] अमृतसाधन या अमृतपान या वारुणीसाधन का गोरख ने एक स्थान पर रूपकात्मक वर्णन किया है। उनके अनुसार उपलब्धि की अवस्था में इक्कीस ब्रह्मांडों में अमृतस्राव होता है। सर्वत्र ही साधक को अमृत का दर्शन और ग्रहण होता है। इस अमृत में नित्य मादकता है जिससे योगी सदा मतवाला बना रहता है। 'योगी की इच्छा रूप कलालिन अच्छा प्याला भर भर साधक को देती है। साधक अपनी इच्छाशक्ति के बल से सदैव इस अमृत का पान कर लिया करता है। इस अमृत के निर्माण में अमृतानुभव की दाख की भट्ठी पर के पात्र में भरी जाती है उसमें गुड़ (माधुर्य) झकझोर कर पिलाया जाता है। मन महुआ की तरह तथा शरीर धाहुड़ की तरह प्रयुक्त किया गया। उसमें विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ (विभिन्न प्रकार की यौगिक प्रक्रियाएँ) प्रयुक्त की गईं। ब्रह्मरंध्र में आसन लगाकर बालयोगी ध्यानस्थ होकर बैठ जाता है। भलीभाँति सावधानी से उसका निर्माण संपन्न किया गया। इस प्रकार अमृतवारुणी का निर्माण कर चैतन्य आत्मा रूप रावल ने भर-भर कर मद का पान किया और परिणामस्वरूप युग-युग तक बनी रहने वाली समाधि लग गई। त्रिकुटी संगमरूपी कूपी मद से भर गई और अपार मद तैयार हुआ। इस निर्मल मदिरा का पान करने से साधक अवधूत हो गया।[2] इस प्रकार इस अमृतसाधन में तन और मन दोनों ही सहायक होकर अमृतानुभव कराते हैं। दूसरी दृष्टि से यह साधन पिंडात्मक और विश्वात्मक, दोनों ही, स्तरों के परस्पर संयोग का परिणाम है। व्यष्टि की दृष्टि से तन, मन और कुंडलिनी तथा समष्टि की दृष्टि से ब्रह्मांडगत स्तर पर उस अमृत या एकत्व का अनुभव—ये ही विचार इस रूपकात्मक वर्णन के मूल में दिखाई पड़ते हैं।

यह वारुणीसाधन ही रस साधन है। वारुणी साधन के अन्तर्गत ही खेचरी मुद्रा का भी वर्णन मिलता है। गोरख की वाणी में खेचरी मुद्रा की सहायता से वारुणीपान का वर्णन केवल एक स्थल पर मिलता है जहाँ कहा गया है कि

[1] गो० बा०, पृ० १७१, १९२, ११३, १६७, २०, १९२, १२४।

[2] गो० बा०, पृ० १२२-१२३।

१५—हठयोग

नाथपंथी संस्कृत रचनाओं में 'हठ' के हकार को सूर्य तथा ठकार को चन्द्र कहा गया है। इन्हें ही क्रमशः प्राण और अपान भी कहा जाता है। संतों की हिंदी रचनाओं में इस प्रकार का कोई निर्देश नहीं मिलता। सूर्य और चन्द्र तथा तत्कोटीय विभिन्न शब्दों के प्रयोग अवश्य मिलते हैं। यद्यपि 'हठ' शब्द के हकार और ठकार का विचार संतों में नहीं है तथापि सूर्य और चन्द्र के साधन का वर्णन अवश्य है। सूर्य और चन्द्र वस्तुतः द्वैत की ओर संकेत करते हैं। हठ-योग इन दोनों का योगसाधन है। इस द्वैत की ओर संकेत करनेवाले जो शब्द प्रायः कबीर साहित्य में मिलते हैं, उनको नाथों की पूर्ववर्णित पदावली के प्रकाश में इस प्रकार उपस्थित किया जा सकता है—

ह—सूर्य, रवि, यमुना, पिंगला, शक्ति, पवन, अधः।
ठ—चन्द्र, शशि, गंगा, इड़ा, शिव, मन, ऊर्ध्व।

सूर्यनाड़ी और चन्द्रनाड़ी, प्राण और अपान, रज और विंदु आदि शब्दों का प्रयोग कबीर साहित्य में अवश्य है किंतु वे हठयोग के पारिभाषिक और साधनात्मक अर्थ को व्यक्त करनेवाले नहीं हैं। सूर्य का चन्द्र में समाहित होना, दोनों का एक घर में होना, आत्माराम के हिंडोले में चन्द्र-सूर्य का दो स्तम्भ के रूप में प्रयुक्त होना, रामरस को तैयार करने के लिये चन्द्र-सूर्य का दो भट्ठियों के रूप में प्रयुक्त होना, शशिहर का सूर्य को ग्रस्तकर लेना, गगन में अनाहत नाद के ध्वनन के लिये चन्द्र और सूर्य का मंत्र के दो तत्वों के रूप में विनियुक्त होना, शशिहर के घर में सूर्य का आगमन, चन्द्र-सूर्य मिलन, चन्द्र-सूर्य का एकत्व, चन्द्र सूर्य के बीच में 'तारी' (ध्यान) का लगना, सोलहकलायुक्त चन्द्र का पूरी तरह से छा जाना, गंगा-यमुना के बीच में सहज शून्य की लौ (लय) का घाट या गंगा-यमुना के बीच में अपनी 'मड़इया' को छाना, रस-निर्माण के लिये इड़ा-पिंगला को भट्ठी बनाना और उसमें ब्रह्माग्नि को प्रज्वलित करना, शिवशक्ति की सुषुम्ना दिशा का दर्शन, 'अरध-उरध' की गंगा-यमुना की ओर संकेत करना आदि वस्तुतः इसी अद्वैतप्रधान हठयोग की साधना की ही विवृत्ति करते हैं।[१] कबीर ने गगन और पृथिवी के उन प्राचीन प्रतीकों

---

[१] क० ग्रं०, पृ० १३ छं० १०, ९४. १८, ११०. ७१, १४१-१४२.१६२, १५४.१९६, १५७.२०२, १८३.२८०, १६२.२१९, १४६.१७३, पृ० २२३, पृ० १५७ छं० २०२, पृ० १८ अंग १० साखी ३, पृ० १११ पद ७४, पृ० १६ साखी ४६, ९४.१८; कबीर—पृ० ३३४ पद १८५।

सन्त कबीर का पूर्ण विश्वास है कि ऐसी साधना से मनुष्य भव बन्धन से मुक्ति पा जाता है[3] ।

श्रीकृष्ण कीर्तन में लिखा है कि –

इडा पिंगला सुषुम्ना संधी
मन पवन तात कैल बन्दी ।
दशमी दुवारे दिलो कपाट,
सवे दहिलागु गो से योगबाट ।।

इसका अर्थ यह है कि सुषुम्ना में इड़ा, पिंगला की सन्धि हो जाती है ।

---

1 आदि ग्रन्थ – पृ0 974
2· कबीर ग्रन्थावली पद 70
3· कबीर ग्रन्थावली पद 72

है तात । वहा पर मन और पवन बन्दी हो जाते है । मैंने "दशम द्वार" में कपाट लगा दिया । इस प्रकार मैं योग के मार्ग पर चढ़ गया ।।

नाथ पंथियों का विश्वास है कि साधना से शरीर के पतन को रोका जा सकता है, कबीर ने अस्वीकार कर दिया था । योगियों ने "दशम द्वार" में जिह्वा से कपाट लगाने की बात कही है, किन्तु कबीर ने कहा है कि "दशम द्वार" में ध्यान लगाना चाहिए –

"दसवे द्वारे ताड़ी लागी ।"

इस प्रकार हठयोग द्वारा उपदिष्ट विशेष प्रकार के अंगों का नाम जो खेचरी, भूचरी, चाचरी, गोचरी, और उन्मनी नामों से प्रसिद्ध है ।

<u>दशम द्वार –</u>

शरीर में तीन वस्तुओं को परम शक्तिशाली माना जाता है परन्तु चंचल होने के कारण वे मनुष्यों के काम नहीं आ रही । प्रथम प्रधान वस्तु है बिन्दु या शुक्र । इसको यदि ऊपर की ओर उठाया जा सके तो शेष दो भी स्थिर हो जाते हैं । अन्य दो है वायु और मन । हठयोगी का सिद्धान्त है कि इनमें से किसी एक को यदि वश में कर लिया जाए तो अन्य दो स्वयमेव वश में हो जाते हैं । कभी कभी एक चौथी वस्तु की चर्चा भी शास्त्र में आ जाती है वह है वाक् या वाणी ।[1]

अमरौघ शासन के अनुसार मेरुदण्ड के मूल में सूर्य और चन्द्र के मध्य योनि में स्वयं-भू लिंग है । जिसे पश्चिम लिंग कहते है । यही पुरुषों के शुक्र और स्त्रियों के रज: स्खलन का मार्ग है । यही काम, विष्हर और निरंजन का स्थान है । वीर्य स्खलन की दो अवस्थाएं होती हैं । इन दोनों के पारिभाषिक नाम प्रलय काल और विषकाल है । इन दो अवस्थाओं में जो आनन्द होता है वह घातक है । एक का अधिष्ठाता काम है और दूसरी का विष्हर । तृतीय अवस्था नानाभाव विनिर्मुक्त सहजानन्द की अवस्था है, इसमें बिन्दु ऊर्ध्व मुख होकर ऊपर उठता है । तब यह सहज समाधि प्राप्त होती है । इसमें मन और प्राण अचंचल हो जाते हैं ।[2] ब्रह्मचर्य और प्राणायाम के द्वारा इस बिन्दु को ऊर्ध्व मुख किया जा सकता है, परन्तु इसके लिये आवश्यक है कि नाड़ियों को शुद्ध किया जाये । हठयोग में षट्कर्म के माध्यम से इसी कार्य को सम्पन्न किया जाता है । यह षट्कर्म क्रमश: धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपाल-भाति है । साधन ग्रन्थों में इनका विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है ।

---

1. नाथ सम्प्रदाय : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 125.
2. अमरौघ शासन, पृ० 7.

नाड़ी के शुद्ध होने से बिन्दु स्थिर होता है, सुषुम्णा का मार्ग साफ हो जाता है, प्राण और मन स्थिर हो जाते हैं और प्रबुद्ध कुण्डलिनी परमेश्वरी सहस्रार चक्र में स्थित शिव के साथ समरस हो जाती है और योगी परम प्राप्तव्य पा जाता है । इस क्रिया के लिए योगी उस वज्रोली मुद्रा का अभ्यास करते हैं, जिसमें नाना विधियों से पुरुष स्त्री के रज को और स्त्री पुरुष के शुक्र को आकर्षण करके ऊर्ध्वमुख करती है ।[1]

नाड़ी के शुद्ध होने के पश्चात् ही प्राणादि वायुओं का शमन सहज हो जाता है । नाना प्रकार के आसनों और प्राणायामों से सुषुम्ना मार्ग खुल जाता है । नाड़ियों को प्रधानत: दो भागों में विभक्त किया जा सकता है । दक्षिणांग में व्याप्त नाड़ियाँ सूर्य का अंग है और वाम भाग वाली चन्द्रमा के अंग । इन दोनों के बीच सुषुम्णा है । जब नाना भाँति के अभ्यास से योगी चन्द्र और सूर्य मार्गों को अवरुद्ध कर देता है और उसमें बहने वाली वायु शक्ति योनिकंद के मूल में स्थित सुषुम्णा की मध्य-वर्तिनी ब्रह्म नाड़ी के मुख को खुला पाकर उस मार्ग से ऊपर उठती है तो वस्तुत: कुण्डलिनी ही ऊर्ध्वमुख होती है ।

नाद और बिन्दु को एक करके गगन मण्डल अर्थात् सहस्रार में प्राण और अपान को मिलाकर सहस्रार रूपी अमृत कुम्भ से अमृत पान करते हुए मन रूपी पुष्प को चढ़ायें । इस प्रकार आज्ञाचक्र (त्रिकुटी) में निरन्तर अखण्ड ज्योति प्रकाशमान रहती है । प्राणायाम या पवन साधना के द्वारा उसमें हर प्रकार से मन को केन्द्रित करें इस प्रकार सहस्रार में अखण्ड ब्रह्मनाद गूंजता रहता है । उस परम पुरुष की इस प्रकार की सच्ची सेवा करने से रविदास कहते हैं कि गुरुदेव (रविदास के गुरु) के अनुसार ऐसी आरति ही भवसागर से पार लगाती है और निर्वाण प्राप्त होता है ।

(ख) कुण्डलिनी साधना :

कुण्डलिनी साधना भी हठयौगिक साधना का एक महत्वपूर्ण अंग है । कुण्डलिनी शक्ति को ही षट् चक्रों में से गुजारते हुए अन्तिम चक्र सहस्रार में पहुंचाना योगी का लक्ष्य होता है, ताकि सहस्रार में अवस्थित शिव से उसका मिलन हो । शिव का अधिवास सहस्रार तथा शक्ति का मूलाधार चक्र में माना जाता है । इसी को क्रमशः प्राण और अपान भी कहा जाता है । योग का अन्तिम लक्ष्य शिव शक्ति या प्राण- अपान को मिलाना होता है ।

कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में कई वलयों में सर्पिणी के समान लिपट कर अधोमुखी हुई पड़ी रहती है । प्राणायाम की साधना द्वारा उसे अधोमुखी से ऊर्ध्वमुखी किया जाता है तभी वह षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार स्थित शिव से एक रूप हो जाती है । इसे ही समाधि स्थिति कहा जाता है ।

सन्तगुरु रविदास जी ने भी कुण्डलिनी साधना को अपनी साधना में अपनाया तथा इसे काफी महत्व प्रदान किया । उन्होंने गुरु कृपा से कुण्डलिनी के मन ही मन मिलने की बात कही है । कुण्डलिनी के मिलते ही सांसारिक

रविदास जी सहस्रार रूपी गुफा में ब्रह्मनाद रूपी भ्रमर गुंजार का वर्णन करते हैं -

> इला, पिंगला, सुषमण नारी, जा मैं चित्त न धर ।
> सहस्रार मँह भँवर गुफा है भँवरा गुंज करे ।।[1]

अर्थात् इस अवस्था में पहुँच कर साधक परम सिद्वि को प्राप्त कर लेता है, उसे फिर इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा आदि नाड़ियों में चित्त को अटकाने की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

हठयोग मूलत: प्राणों की साधना अर्थात् प्राणायाम पर अधिक बल देता है । अतएव षट्चक्र भेदन की क्रिया में प्राणायाम विशेष साधन है । साधक इड़ा एवम् पिंगला नाड़ी से प्राण को अवरूद्व करके सुषुम्णा के माध्यम से प्रवाहित करके सहस्रार स्थितअपान या शिव से मिला देता है । इन्हीं तीनों नाड़ियों को क्रमश: गंगा, यमुना, तथा सरस्वती की संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है । रविदास जी का कथन है कि गंगा और जमुना को उलट कर सहस्रार में स्थित करने से योगी परमात्मा से एक रूप हो जाता है । इस प्रकार गंगा, यमुना के उलटने के कारण हठयोगियों ने हठयोग को उलटी साधना भी कहा है।

रविदास जी ने इस स्थिति को वर्णनातीत मानते हुए इसकी तुलना गूंगे की गुड़ से की है । वे परमात्मा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि सुन्न मण्डल अर्थात् सहस्रार चक्र में तुम्हारा वास है । अत: मैं तुम्हे इस प्रकार निरन्तर ध्याता हूँ जिससे और कुछ करने की आवश्यकता न रह जाये तथा मोक्ष प्राप्त हो जाए ।[2]

---

1. सन्त गुरु रविदास वाणी : वी॰पी॰ शर्मा, सूर्य प्रकाशन नई सड़क दिल्ली, पृ॰ 132 में उद्धृत ।
2. लोक प्रिय सन्त-भक्त-कवि सन्त रैदास-परिचय तथा कविताएं : सं॰ योगेश गुप्त, पृ॰ 49, हिन्द पॉकेट बुक्स दिल्ली ।

निरति सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन में तल्लीनता और निरन्तरता तो प्रर्यायवाची है । सुरति का शब्द में सातत्य ही निरन्तरता अथवा तल्लीनता है और सुरति की शब्द के साथ अतिशयता भी तल्लीनता का ही अर्थ द्योतित करती है ।

सुरति जब शब्द में एकतान हो जाती है तभी निरति की अवस्था की उपलब्धि होती है ।[1]

सन्त साहित्य के समीक्षकों ने स्थूल रूप से निरति सम्बन्धी अधोलिखित अर्थ सुनिश्चित किये है :

निरति = तल्लीनता अर्थात् प्रेम की अतिशयता । निरति= नि+ रति, जिससे रति अर्थात् प्रेम की भावना की सम्भावना न रह जाये ।[2]

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों द्वारा निरति को नृत्य के अर्थ में भी लिया गया है । इसका आधार सम्भवत: यह हो सकता है कि सुरति शब्द जब बंकनाल में सुषम्णा नाड़ी के अन्तर्गत नृत्य करती हुई सहस्रार की ओर अग्रसर होती है और उसकी इस प्रक्रिया से आनन्द की एक विशेष अवस्था की प्राप्ति होती है, यही विशेष अवस्था निरति है और निरति की नि+ रति व्युत्पत्ति द्वारा जिस शब्द के साथ सुरति के योग की सम्भावना भी न रहने का संकेत मिलता है । इस अवस्था में साधक को योग की चरम सिद्दि प्राप्त हो जाती है ।

1· संतमत : डा० प्रताप सिंह चौहान, पृ· 108, ग्रन्थम रामबाग, कानपुर, 1973·

2· सन्तमत में साधना का स्वरूप : डा० प्रताप सिंह चौहान, पृ· 56·

बिंदु को उद्बुद्ध कर निर्माणचक्र से उष्णीषकमल तक ले जाना पड़ता है। बिंदु का उद्बोध और कुंडलिनी शक्ति का जागरण वस्तुतः एक ही व्यापार है। तांत्रिकों की परिभाषा में इस जागरण को निर्माणचक्र में स्वशक्ति चांडाली का जागरण कहा जाता है। जिस क्षण में चांडाली का जागरण होता है, उसी क्षण में मस्तकस्थ चंद्रबिंदु से अमृतक्षरण होना आरंभ होता है। जब प्रज्ञा अथवा चित्तकमल और सहजानंद का उपाय, ये दोनों परस्पर

मिलित होकर साम्यलाभ करते हैं तभी यह जागरण होता है। यह जागरण या ज्वलन वस्तुतः महासुखराग का उदय है। इस अनल से भाव तथा अभाव दोनों ही निर्मूल हो जाते हैं।

जो लोग कामकलारहस्य जानते हैं, वे कहते हैं कि अग्नि और सोम नाम के प्रसिद्ध दो विक्षुब्ध कलाओं का संबंध यही है कि अग्नि के प्रज्वलित होते ही उस जाग्रत शक्ति के प्रभाव से वह सोमबिंदु गलकर झरने लगता है। यही अमृत स्राव है। हठयोग शास्त्र में वर्णित है कि यह सोमधारा स्वभावतः अग्निकुंड में ही गिरती है और शोषित हो जाती है जिससे देह का क्षय, विकार, जरा तथा मृत्यु होती है। यदि किसी कौशल से इस अमृत धारा को अग्नि में प्रक्षिप्त न होने दिया जाय और खेचरी मुद्रा या और कोई उपाय से रसनागोचर किया जा सके तो देह का परिवर्तन हो जाता है। इस प्रक्रिया से समग्र मानव देह चंद्रकला से पूर्ण हो जाता है। आत्यंतिक रूप से इससे संपन्न होने पर देह सिद्धि या कायासंपत् का लाभ होता है और जरा मृत्यु से सदैव के लिये अव्याहत मुक्ति होती है।

बिंदु के निर्माणचक्र से स्खलित होकर नीचे उतरने से देह की रचना हो सकती है परंतु जब बिंदु की ऊर्ध्वगति होती है तब यह निम्न सृष्टि का मार्ग रुद्ध हो जाता है। निर्माणचक्रस्थ बिंदु पंचभूतात्मक है परंतु उसमें पृथ्वी का अंश अधिक परिमाण में है। इसीलिये वह मध्याकर्षण के प्रभाव से आकृष्ट होता है। परंतु जब वह बिंदु मध्यमार्ग का अवलंबन करता हुआ ऊर्ध्वोन्मुख होता है तब उसमें जलीय अंश प्रधान हो जाता है। पृथ्वी तत्व के जल तत्व में लीन होने से, उसका काठिन्य छूट जाता है। यह निर्माण-चक्र के ऊपर के चक्र की बात है। बिंदु का उत्थान और भी अधिक होने पर वह तेजः प्रधान होता है। उसका जलीय अंश प्रायः शुष्क हो जाता है। उसके बाद और भी ऊपर उठने पर वह वायु प्रधान और अंत में चित्तमात्र अथवा शुद्ध ज्योतिमात्र रूप में परिणत होकर उष्णीष कमल में लक्षित

होता है। उष्णीष कमल में बिंदु के स्थिर होने के साथ ही साथ देह सिद्ध होता है और दिव्यदृष्टि तथा दिव्यश्रुति का उदय होता है तथा सर्वज्ञत्व और विभुत्व गुण का भी। इसे एक प्रकार से बुद्धत्वलाभ कहा जा सकता है। परिभाषा भिन्न होने पर भी आगमशास्त्र में भी यही सिद्धांत मिलता है। पहले प्राण तथा अपान नाम की दो विरुद्ध शक्तियों का खेल चलने लगता है। उसके बाद दोनों का साम्य हो जाता है। तब समान शक्ति का उदय होता है। • प्राण और अपान के साम्य से मध्यशक्ति जाग जाती है और मध्यमार्ग के उल्लास से ऊर्ध्वगमनशील उदानशक्ति का स्फुरण होता है। मध्यशक्ति के जागरण की पूर्वावस्था जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति रूप संसार की अवस्था है जिसमें देह, प्राण तथा पुर्यष्टक कलाओं के द्वारा जीव मोहित रहता है। जब उदानशक्ति का विकास होता है तब तुरीय दशा का उदय होता है। ऊर्ध्वशक्ति की चरम स्थिति, मस्तक स्थित ऊर्ध्वबिंदु में है। जब इसका भी भेद हो जाता है, तब वह विश्वव्यापक होता है। यही व्यानशक्ति का व्यापार है। इसी का नाम तुरीयातीत अवस्था है इस समय विभुत्व, सर्वज्ञत्व प्रभृति बुद्धत्व के अनुरूप अवस्था का प्राकट्य होता है।

में प्रवेश करते हैं। इस परम भाव में पुरुष और प्रकृति का भेद नहीं रहता। यही शिव शक्ति का सामंरस्य है।

बौद्धों का बिंदुसाधन भी रससाधना का ही एक विशिष्ट अंग प्रतीत होता है। जिसको बिंदुक्षोभ कहा गया है वह वास्तव में उपाय तथा प्रज्ञा के योग से बोधिचित्त का उद्भव है। बिंदु का उद्भव होने पर, जिससे बिंदु का पतन न हो, अर्थात् वज्रमणि में उसका स्खलन न हो, इसके लिये उसे नाभिस्थित निर्माणचक्र में धारण करना पड़ता है। यह निरोध कृत्रिम है। स्वाभाविक अवस्था में यह भी नहीं रहता। बिंदु पारद के समान सदा चंचल रहता है। परंतु योगबल से इसे स्थिर करना आवश्यक है। तांत्रिक परिभाषा में चंचल बिंदु, संवृत्त बोधिचित्त है परंतु जब योगाभ्यास से इसे स्थिर किया जाता है तब यह संवृत्त न रहकर विवृत बन जाता है। संवृत का अर्थ है संकुचित, विवृत का अर्थ है फैला हुआ। बोधिचित्त जब विवृत हो जाता है तब वही महासुख रूप में परिणत हो जाता है। जैसे अन्नमयकोष का सार या सत्व शुक्र बिंदु आनंदमयकोष के परमानंद के रूप में परिणत हो जाता है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। दोनों ही समरूप हैं। कुंदपुष्पनिभ संवृत बोधिचित्त ही योगप्रभाव से ऊर्ध्वगति लाभ करने पर महासुख रूप में परिणत होता है। यही रस है। इसीलिये एकमात्र महासुखचक्र या उष्णीष कमल में ही बिंदु स्थिर होता है, अन्यत्र नहीं। अन्यत्र गतिरोध हो सकता है, परंतु ऐसी स्थिति नहीं हो सकती जिसमें सहजानंद की अभिव्यक्ति हो सके।

बौद्ध तांत्रिक साहित्य में षडंगयोग का उपयोग विशेष रूप से किया गया है। षडंगयोग नाथ संप्रदाय में था और भास्कराचार्य की गीता की टीका से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन वैष्णव संप्रदाय में भी था, परंतु इन षडंग योगों से कहीं कहीं बौद्ध षडंग योग विलक्षण है। गुह्यसमाज तथा सेकोद्देश

के षटचक्रों का भेदन कर ऊपर सहस्रदलपद्म तक पहुँचने की क्रिया की तुलना चींटी के वृक्ष पर चढ़कर माधुर्य का आस्वादन करने और उससे वंचित होने पर नीचे उतर आने से की गई है। इसी प्रकार योगी के भी योगविरहित अवस्था में बार-बार लौट आने की आशंका बनी रहती है। वह निरंतर परमानंद का आस्वादन नहीं कर पाता। इसलिये दरियासाहब ने एक अन्य महत्वपूर्ण विहंगम (पक्षी) योग को महत्व दिया है। पिपीलका से पक्षी में अंतर यह है कि पक्षी का निवासस्थान वृक्ष है। इसे ध्यानयोग भी कहा जाता है। डा० वर्मा ने कबीर के योगनिरूपण में केवल हठयोग को ही ग्रहण किया है और डा० ब्रह्मचारी का कहना है कि विहंगम योग कबीर की साधनापद्धति में भी उतनी प्रधानता रखता था जितनी दरिया की पद्धति में। दरिया के अनुसार इस योग में वह विहंगम 'शून्य गगन में विचरण करते हुए अमृतपान करता है और अमृतपान करते हुए शून्यगगन में विचरता रहता है। इस विचरण और परमानंदास्वादन की निरंतर अवस्था में उसका शरीर के 'पिंड भाग' से कोई मतलब नहीं रह जाता। 'उसकी सुरति (दृष्टि) नेत्र के अष्टदलकमलस्थित सूचिद्वार से होकर ब्रह्माण्ड में प्रवेश कर, त्रिवेणी में मज्जन करते हुए, सहस्रदलकमल में विचरण करते हुए 'बंकनारी' अथवा 'बंकनाल' होकर ऊपर चढ़ती है और भँवरगुफा में प्रविष्ट होती है। इस गुफा में शब्द गुंजायमान रहता है।···इसी गुफा से होकर उस प्रदेश का मार्ग है जिसे 'सचखण्ड' (सत्य का राज्य) कहते हैं और जो निराकार सत्पुरुष (ईश्वर) का निवासस्थान है। सच्चखण्ड से सुरति विद्युत्वेग से उस अवर्णनीय 'अकह लोक' की ओर प्रधावित होती है जिसे 'अवाच' भी कहते हैं। फिर यहाँ से वह अगम 'नगरी' या अमरलोक तक पहुँचती है जो परमानंद की आश्चर्यमयी नगरी और अद्भुत लोक है। दरिया ने विहंगम योग को पिपीलक योग से श्रेष्ठ माना है क्योंकि हठयोग में शरीर पर तो हठयोगी अधिकार प्राप्त कर लेता है किन्तु वह आत्मपरिचय और आत्मप्राप्ति नहीं कर पाता, जो अत्यावश्यक है तथा जिनके बिना योग विडम्बना है। डा० ब्रह्मचारी के अनुसार दरिया हठयोग का सर्वथा निराकरण न कर विहंगम योग के साथ उसका सामंजस्य करते हैं।[१] कबीर साहित्य में ये दोनों प्रकार के योग मिलते हैं, इसका वर्णन हम कर चुके हैं। वस्तुतः पातंजल योग के अन्तिम तीन अंग अथवा अंतिम दो अंग कबीर साहित्य में हठयोग से समन्वित होकर विस्तार

[१] संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, पृ० ९३ तथा आगे, पृ० १०३-१०४।

समाधि की अवस्था अमरता की अवस्था है। इस अमृतसाधन में विष का त्याग और अमृत का ग्रहण तथा विष का अमृत में परिवर्तन किया जाना कबीर ने स्वीकार किया है। प्रियतम के मिल जाने पर संसार का जो कुछ भी विष है, सब अमृत हो जाता है। जब तक शरीर में विष है, तब-तक उसमें अमृत के समावेश का कोई अवकाश नहीं है। इसके लिये कबीर "प्रेमभक्ति" के साधन का उपदेश देते हैं जिससे मुख में चन्द्रमा की अमृतवर्षा होने लगती है। किंतु इस अमृत अथवा अमृतफल की प्राप्ति के लिये गुरु-प्राप्ति अति आवश्यक है। उसी की कृपा से सहज ही सुषुम्ना के समीप अमृतफल की प्राप्ति होती है। अमृतरस का स्राव गगन में होता है। अन्य स्थलों पर कबीर ने उसे बंकनाल रस कहा है। वे विषय को विष कहते हैं। पश्चिम दिशा (सुषुम्ना) के मार्ग में बंकनाल के भीतर यह अमृत रस निर्झर स्रवित होता है। वहीं भँवरगुफा का घाट है। एक अन्य पद में वे अवधूत को गगनमंडल में अपना निवास बनाने की प्रेरणा देते हैं। वहीं वे उस बंकनाल रस, अमृत को पीने के लिये कहते हैं जो नित्य सुख देनेवाला है। संसार में बहुत से रस हैं। किन्तु कबीर ने सभी रसों को चख कर देख लिया है। वे सब रामनामरस के समान मीठे नहीं हैं। दूसरे संसार के रस कफ आदि उत्पन्न करते हैं, जबकि हरिरस अधिक से अधिक, जितना ही उसका पान किया जाय, सुख देनेवाला है। इस अमृतरस को वे विलक्षण मदिरा भी कहते हैं।[1] कबीर के इन विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह अमृतसाधन, जिससे अमरता, अमरपद, अमरपुर की प्राप्ति होती है,

[1] क० ग्रं०, ६०.१२, ८४.८, ८९.५, ११०-१११.७२, १११.७४, १३८.१५३, १५९.२०९, ४०.१९, १३९.१५५, १५५.१९७, ८८.४, ११०.७०, १५९.२०९, १३६.१४८।

नाथों के अमृतसाधन के पर्याप्त समान है। अंतर यह है कि कबीर बंकनाल से जिस रस का सुख प्राप्त करते हैं, वह अमृत तो अवश्य है किंतु उसके साथ भावनानंद का समन्वय भी है। प्राणायामसाधन में भी रामनाम का जाप ही स्वीकार्य है। वे जिस रस की कल्पना करते हैं, वह भक्तिरस है जो अमृत है, जिसका विवरण-विवेचन हम भक्ति रस के प्रसंग में कर चुके हैं। वारुणी और रस भी अमृत के पर्याय के रूप में ही व्यवहृत हुए हैं। इस प्रकार इस वर्णन में वारुणी-साधन, रस-साधन भी समन्वित है। इसी की परंपरा वैदिक सोमपान से मिलाई जाती है। विष का अमृत में परिवर्तन भी वस्तुतः साधक की अमृतसाधना है।

अन्य शब्दों में तत्व शून्य, अशून्य शब्द हैं। कबीर साहित्य में तत्व शब्द का प्रयोग प्रायः तीन अर्थों में मिलता है—१—परमतत्व—इस अर्थ में प्रायः अपने उपास्य अथवा लक्ष्य की ओर संकेत किया है। जब वे तत्वोपलब्धि की बात करते हैं, तब कबीर का अभिप्राय इस समाधि की अवस्था की ओर ही संकेत करना होता है।[1] २—सार वस्तु—इस अर्थ में प्रयोग से भी अप्रत्यक्षरूप से उसी प्रथम अर्थ को व्यक्त करने की चेष्टा की गई है। संसार में नित्य, साधनोचित और अनुकूल ग्राह्य तत्व के लिये इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग मिलता है।

हम पहले कह चुके हैं कि प्राणायाम का नाड़ियों से संबंध है तथा नाड़ियों का द्वारों से। प्राणायाम का नाद-विंदु और रज-बिन्दु से भी संबंध है। नाद-बिन्दु शब्द भी अन्य युग्मकों की तरह ही है। कबीर ने नादबिन्दुसाधन का वर्णन किया है। उनके अनुसार नाद और बिन्दु के गगन में गर्जन करने से अनाहत नाद होता है।[1] बिन्दु शब्द का प्रायः कबीर ने शुक्र अर्थ में ही प्रयोग किया है। बिन्दुरक्षा का एक संदर्भ कबीर की रचनाओं में अन्य मतों के योग-परिचय के प्रसंग में उपलब्ध है। काजी के संबध में उन्होंने कहा है कि वास्तविक काजी वही है जो काया का विचार करता है, काया में अग्नि का प्रज्वलन करता है, स्वप्न में भी बिन्दु को क्षरित नहीं होने देता। एक अन्य स्थान पर केवल बिन्दुरक्षा की खिल्ली भी वे उड़ाते हैं।[2] अन्य युग्मकों की तरह ही यह युग्मक भी शिवशक्ति के अद्वययोग की ओर संकेत करता है। कबीर ने रज-बिन्दु अथवा रज-वीर्य के मिश्रण से केवल शरीर की उत्पत्ति की ओर संकेत कर इस विचारपरम्परा को छोड़ दिया है। उसके साधनक्रम का विस्तार हमें नहीं मिलता। नाद-बिन्दु का विस्तृत, दार्शनिक और साधनात्मक निरूपण कबीरादिक की रचनाओं में उस रूप में उपलब्ध नहीं जिस रूप में नाथ साहित्य में उपलब्ध है। इस साधन के संदर्भ इतने कम उपलब्ध हैं कि उनके आधार पर एक व्यवस्थित निरूपण कर नाथों के तत्संबंधी साधन से, प्रत्येक दृष्टि से, तुलना करना बहुत कठिन है।

१९—बंध, वेध और मुद्रा

नाथपंथियों की हिन्दी रचनाओं में बंध, वेध और मुद्रा का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं। संतों की हिन्दी रचनाओं में उनका विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है। बंध और वेध के तो नाम भी नहीं मिलते। कबीरदास ने अवश्य ही मुद्रा का परिचय दिया है। गोरख की हिन्दी रचनाओं में तो वज्रोली और अमरोली आदि का भी वर्णन मिल जाता है किन्तु कबीर ने किसी भी मुद्रा का नाम नहीं लिया है। उसके अर्थ के संबंध में भी कबीर का कोई मत उपस्थित नहीं किया जा सकता। नाथपंथियों ने पिण्डस्थ अन्तस्साधनात्मक मुद्राओं का वर्णन कर उन्हें ही वास्तविक माना है। कबीर भी मानसिक अथवा अन्तस्साधनात्मक मुद्रा का ही वर्णन करते हैं और उसे ही वास्तविक

[1] क० ग्रं०, पृ० १५४ पद १९६।

[2] संत कबीर, पृ० ६ पद ४, पृ० २१, पद ११।

मुद्रा मानते हैं। 'जोगी' को सम्बोधित कर वे मुद्रा के वास्तविक अर्थ को समझाने की चेष्टा करते हैं। उनके अनुसार निरति ही मुद्रा है। यहाँ मुद्रा का अर्थ वह कुंडलविशेष प्रतीत होता है जिसे बाद के नाथपंथी लोग धारण करना ही सब कुछ समझ बैठे थे। इसलिये वे वास्तविक 'जोगी' उसी को कहते हैं जो मनमुद्रा रखता हो। कान में मुद्रा पहनने से योग नहीं होता।[1] सुन्दरदास ने इन मुद्रा-बंध-वेधों का स्पष्ट वर्णन किया है। उन्होंने दस मुद्राएं बताई हैं जिनमें से तीन बंध हैं और एक वेध है—महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्यान, मूलबंध, जालंधरबंध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालन। अष्टकुंभकों का साधन हो जाने पर और मुद्राओं का भी अभ्यास हो जाने पर दस प्रकार के नाद सुनाई पड़ते हैं।[2] कबीर ने एक स्थान पर मूलबंध का उल्लेख किया है। उसी प्रकार खेचरी का यद्यपि नाम लेकर उन्होंने कोई वर्णन नहीं किया है तथापि अमृतरसपान संबंधी प्रसंगों को देखने से इस खेचरी साधन के कुछ संकेत अवश्य मिल जाते हैं।[3]

कबीर की विभिन्न रचनाओं में इनके अतिरिक्त अन्य नाड़ियों का वर्णन उपलब्ध नहीं है। कबीर ने बंकनाल का वर्णन किया है। उनके अनुसार बंकनाल के अन्तर्गत ही पश्चिम दिशा का मार्ग है। नाथवाणी के विवेचन में पश्चिम दिशा को सुषुम्ना कहा गया है। कबीर के आत्माराम का हिंडोला चन्द्र-सूर्य के दो खंभों पर स्थित है तथा उसमें बंकनाल की डोर लगी हुई है। साधक उसी बंकनाल में रस का पान करता है। इस नाल को यदि समभाव में रखे तो आवागमन का निरोध होता है।[1] इन नाड़ियों का संबंध द्वारों तथा शरीरगत विभिन्न विशेष पवित्र स्थानों से है। तीर्थों को इस शरीर में किस रूप में स्थान दिया गया है, इसका वर्णन संक्षेप में पिंडब्रह्माण्डवाद के प्रसंग में हम कर चुके हैं। नाथपंथी रचनाओं की तरह ही संतों की हिंदी रचनाओं में भी दस द्वारों अथवा रन्ध्रों का वर्णन नहीं मिलता। दस द्वारों की ओर संकेत करते हुए कबीर ने उनके साधन के संबंध में भी कुछ बातें कह दी हैं। उनके अनुसार दस द्वारों के रुद्ध हो जाने पर काल अवश्य आक्रमण करेगा। इस शरीर में पाँच चोर हैं तथा दस दरवाजे हैं। वस्तुतः महत्वपूर्ण द्वार तो दसवाँ द्वार है जो देवालय है तथा जहाँ ज्योति का प्रत्यभिज्ञान होता है। सामान्य व्यक्ति को तो नौ दरवाजों तथा दसवें दरवाजे का वास्तविक ज्ञान ही नहीं हो पाता। साधन में इन दस द्वारों को मुद्रित कर देना चाहिए। किंतु समाधि तो केवल दशम द्वार में ही लगती है।[2] कबीरदास के दशम द्वार का अर्थ ब्रह्मरंध्र है। इस प्रसंग में कबीर ने त्रिकुटी को छोड़कर दशम द्वार को खोलने की चर्चा की है, जिससे यह प्रतीत होता है कि यह द्वार त्रिकुटी से भी ऊपर स्थित है। एक अन्य द्वार की जो चर्चा मिलती है, वह मूल द्वार है जिसका अर्थ है—मूलाधार चक्र का द्वार। इसी प्रकार पश्चिम द्वार का अर्थ डा० रामकुमार वर्मा ने किया है—इड़ा नाड़ी का मुख। इस मुख के ओर पर आज्ञाचक्र है और उसके ऊपर ब्रह्मरन्ध्र है और उसके ऊपर दशम द्वार है।[3] ऊपर के विवेचन से एक बात यह दिखाई पड़ती है कि कबीर भी नाथपंथियों की तरह ही दशम द्वार की उपलब्धि में आवागमननिरोध की बात स्वीकार करते हैं।

---

[1] क० ग्रं०, पृ० ८८ पद ४, ९४. १८, ११०. ७०, १४०. १५७, १५९. २०९।

[2] क० ग्रं०, पृ० ७ साखी २६, पृ० २१ साखी ७, पृ० ४४ साखी १०, पृ० १०२ पद ४२, १०७. ६१, १११. ७४, १८१. २७३।

[3] संत कबीर, पृ० २०२ पद ३, पृ० २१६ पद १० तथा टिप्पणियाँ।

योगि-समाज में प्रचलित कुम्भकात्मक अजपा-पद्धति

१. इस साधना में ऐसी अवस्था प्राप्त करने का अध्यवसाय किया जाता है, जिसमें रेचक एवं पूरक दोनों नहीं रहते।

२. इस साधना-विधान में नाभिकन्द में प्राण एवं अपान की साम्यावस्था प्राप्त की जाती है।

इस काल में सहस्रदल कमल-प्रस्रवित पीयूष-प्रवाह को पीने की भी अवस्था प्राप्त है। अमृत-पान प्राणों के चञ्चल रहने पर कभी सम्भव नहीं होता। प्राणापानैक्य द्वारा अमृताप्ति होने पर अमृत का पान स्वयं न करके उसके द्वारा नाभि-प्रतिष्ठित महादेव का अमृताभिषेक करना चाहिये। इस समय भी 'हंसः हंसः' इस मन्त्र का जप करते हुये शरीर में प्रत्यक् यज्ञ करना चाहिये। इसे ही योगी आध्यात्मिक सूर्यग्रहण कहते हैं। शरीर में उत्तरायण-दक्षिणायन नामक अयनों एवं विषुवों का साक्षात्कार करता हुआ योगी सकल-निष्कल बिन्दुओं का भी दर्शन करता है।

उत्तरायण-दक्षिणायन—प्राण वायु का इड़ा नाड़ी से पिङ्गला नाड़ी में सञ्चार और पिङ्गला नाड़ी से इड़ा नाड़ी में प्रत्यावर्तन ही उत्तरायण-दक्षिणायन है।

विषुव—विषुव वह अवस्था है, जिसमें दिन और रात्रि का साम्य रहता है। शरीर में भी इन दो बिन्दुओं का साम्य प्रतिष्ठित होता है—उन्मिषित होता है। प्राण का मूलाधार में प्रवेश तो एक विषुव है; किन्तु प्राण का मस्तक में प्रवेश द्वितीय विषुव है।

मन्त्र के साथ या बिना मन्त्र के केवल प्राणायाम के द्वारा अर्थ का अनुसन्धान करते हुये प्रणव एवं हंस मन्त्र के उच्चारण तथा (प्रणव वाच्य) हंस का सोऽहं के रूप में अनुसन्धान करना ही यहाँ लक्ष्य है। यह ऐक्यानुसन्धान ही अजपा एवं अजपा-साधना का फल है।

इस ऐक्यानुसन्धान की स्थिति में यथार्थ मुद्रा—चिन्मुद्रा (शाम्भवी मुद्रा, खेचरी मुद्रा) स्वयं प्रकट हो जाती है। यह उपर्युक्त मुद्रा वह भावस्थिति है, जिसमें ऐसी अनुभूति होती है कि मुझसे भिन्न तो किसी अन्य की कोई सत्ता ही नहीं है। यह सोऽहमस्मि की अनुत्तरावस्था है। इस समय प्राणवायु पिङ्गला मार्ग से कुण्डलिनी में प्रवेश करता है। इसे ही योगी आध्यात्मिक सूर्यग्रहण की आख्या देते हैं।

औपनिषदिक हंसयोग या अजपा-साधना

इस योग-साधना द्वारा प्रत्यगात्मा का ज्ञान होता है, जिसे हंसज्ञान कहते हैं। इस औपनिषदिक हंसयोग (अजपा-साधन) में प्रवेश करने के समय निम्न अनिवार्यतायें भी हैं—

१. सिद्धासन लगाकर पैर के बाँयें टखने द्वारा मलद्वार को आच्छादित करके पूरक क्रिया प्रारम्भ करनी चाहिये। इस अभ्यास से मूलाधार चक्र में वायु-सञ्चय होगा।

२. उपर्युक्त विधि से मूलाधार चक्र में अवरुद्ध वायु-समूह को आकुञ्चन क्रिया के द्वारा इस चक्र से ऊपर उठाना चाहिये।

३. इसके अनन्तर प्राण एवं अपान में ऐक्य स्थापित करना चाहिये।

४. प्राण एवं अपान में साम्यावस्थान होने के बाद मूलाधार में अवस्थित त्रिकोण की अग्नि को ऊर्ध्वारूढ़ करके प्राण एवं अपान वायु का उससे संयोग करना चाहिये।

५. त्रिकोण की अग्नि का ज्यों ही प्राण एवं अपान के साथ संयोग होता है त्यों ही कुण्डलिनी उस प्रचण्डाग्नि से उत्तप्त होकर सोते से जाग जाती है। यही अवस्था है—कुण्डलिनी का जागरण।

६. चूँकि ब्रह्मग्रन्थि के उद्भेदन के बिना मूलाधार चक्र (चतुर्दल पद्म) में प्रवेश करना ही सम्भव नहीं है; अतः योगी को उद्बुद्ध कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा ब्रह्मग्रन्थि (ब्रह्मगाँठ) खोलनी चाहिये।

७. ब्रह्मग्रन्थि के उद्भेदनोपरान्त मूलाधार चक्र में स्थित एक बिन्दु (तुरीय भूमि) का ध्यान अर्थात् विराट का ध्यान करना चाहिये। इस ध्यान की निष्पत्ति है—ऊर्ध्व गति।

अभिनवगुप्ताचार्य एवं आचार्य क्षेमराज की दृष्टि—'अकृतार्थो नरस्तावद्यावद्धंसं न विन्दति' अर्थात् जब तक साधक हंस को नहीं जानता तब तक वह कृतार्थ नहीं हो सकता। हंस शब्द से व्यपदिष्ट विभु सर्वसमर्थ परमेश्वर अपने स्वातन्त्र्य के बल से सङ्कोच ग्रहण करके पाँच अरों वाले इस पाञ्चभौतिक शरीर में सोम से स्रवित अमृत का पान करता है और तृप्ति की अनुभूति करता है—

पञ्चारे सविकारोऽथ भूत्वा सोमस्रुतामृताम्।
धावति त्रिरसाराणि गुह्यचक्राण्यसौ विभुः।।[2]

योगमार्त्तण्डकार की दृष्टि—प्राण एवं अपान ऊपर एवं नीचे स्थित हैं। वे नाभिस्थल में मिलते हैं। इसीलिये योगी नाभि को केन्द्र मानते हैं। योगी प्राण के द्वारा

१. पदार्थादर्श में उद्धृत २. तन्त्रालोक (४.१३७)

अपान को आकृष्ट करके नाभि-प्रदेश में मिला देते हैं। हंस मन्त्र का उच्चारण स्वयमेव दिन-रात में २१ हजार ६०० बार चलता रहता है। इसी श्वास-प्रश्वास के द्वारा स्वयमेव अजपा जाप चलता रहता है। इसे ही जीव जपता रहता है—

प्राणेनाकृष्यतेऽपानः प्राणो प्राणेन कृष्यते।।
हंसो हंसत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।।[1]

योगियों एवं सन्तों की योग-साधना में अजपा-जप

योगिराज गोरक्षनाथ कहते हैं—

१. **अजपा जपै** सुनि मन धरै। पाँचौ इन्द्री निग्रह करै।
२. **सोऽहं हंसा सुमिरै** सबद। तिहिं परमारथ अनंत सिध।
३. **सोऽहं बाई हंसा** रुपी प्यंडै बहै। बाई कै प्रसादि व्यंद गुरमुख रहै।
४. **अगम जाप जपीला** गोरख चीन्हत बिरला कोई।[२]
५. जे **जाप** सकल सिष्टि उतपंनां ते जाप श्री गोरखनाथ कथिया।
६. पवनां रे तूं जासी कौने बाटी। जोगी अजपा जपै त्रिवेणी कै घाटी।
७. ऐसा जाप जपौ मन लाई। सोहं सोहं अजपा गाई।[३]
८. जपिलै अजपा जाप। बिचारिलै आपै आप।।
९. अवधू ध्यान सो ब्रह्म आचार। अजपा जाप, मन तजै बिकार।[४]

निर्गुण सन्त-परम्परा के सन्तों ने भी अजपा जाप, हंस योग या सोऽहं जप को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं।

१. सन्त कबीर—

१. अजपा जपत सुंनि अभि अंतरि यहु तत जानैं सोई।
२. ब्रह्म अगनि काया पर जारी। अजपा जाप उनमनीं तारी।[५]
३. गिरि कैलास गन करते सोरा। तहँ सोऽहं सिर मौरा है।[६]
४. ओ अंग रंग अड़े जहँ दुइ दल अजपा नाम सहाई।
५. सोऽहं नारी अधिक दुलारी पिय की प्यारी होय।।
६. बिन मुखड़ा से जप करो नहिं तुम जीभ डुलावो।
उलटि सुरति ऊपर रो, (औ) नैनन दरसावो।।
७. सूरति उलटि पवन को सोधो त्रिकुटी मधि ठहराई।
सोऽहं सोऽहं बाजा बाजै अजब पुरी दरसाई।।
८. अजपा जाप बिनु रसना काल निकट नहिं आवै।।

१. योगमार्तण्ड (गोरक्षनाथ ३०-३१) ५. कबीरदास : पद
२-४. गोरखबानी ६. कबीर-शब्दावली

अजपाजपसम्बन्धी सिद्धान्त—

१. श्वास-प्रश्वास के द्वारा ही इस अजपा गायत्री या हंस मन्त्र का जप साधित होता है।

२. इड़ा-पिङ्गला में प्रवाहित वायु-गति वायु की वक्र गति है।

३. सुषुम्णा ब्रह्ममार्ग है। वायु (इड़ा-पिङ्गला से हटकर) सुषुम्णा में प्रविष्ट होने पर विकल्पों, अज्ञानों एवं अस्थिरताओं को नष्ट करती है।

४. सुषुम्णा में वायु को प्रविष्ट कराये बिना वायु एवं मन कभी ऊर्ध्वगामी नहीं हो पाते और तब तक न तो चित्त के विकार हट पाते हैं और न तो चित्त साम्यावस्था में ही पहुँच पाता है।

५. 'कुंभक' श्वास गति का ऊर्ध्वीकरण ही है। कुंभक गतिहीन नहीं होता। इससे वक्रगति का प्रतिषेध होता है और सरल गति प्राप्त होती है। आगे यही सरल गति गतिहीन अवस्था प्राप्त कराती है।

६. स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास का व्यापार या प्राणापान का व्यापार ही हंसमन्त्र का उच्चारण (जप) है।

७. गोरक्षनाथ ने प्राणापान को रस्सी एवं जीवात्मा को श्येन पक्षी कहा है। जीवात्मा

इन्हीं रस्सियों से बार-बार आकाश में उड़ने के लिये छोड़ा जाता है तथा बार-बार नीचे खींचा जाता है।

योग साम्यावस्था में प्रतिष्ठित करने का विज्ञान है। वैषम्य का मूल बीज प्राणापान की पारस्परिक विरुद्ध गतियां मे निहित है और इस प्रकार वैषम्य का बीज प्रकृति में ही अवस्थित है।

(क) प्राणवायु अपान वायु को एवं अपान वायु प्राणवायु को अपनी ओर खींचते रहते हैं। दोनों की विरुद्ध गति है। प्राण की गति ऊर्ध्वगामी है तो अपान की अधोगामी। प्राण जिस दिशा मे सञ्चरित होता है, अपान उसकी विपरीत दिशा में सञ्चरित होता है।

(ख) प्राण एवं अपान निरपेक्ष भी नहीं है; क्योंकि अपान को प्राण की एवं प्राण को अपान की अपेक्षा रहती है। दोनो एक-दूसरे के बिना कार्य नहीं कर सकते।

(ग) ये दोनो (प्राण एवं अपान) किसी अज्ञात अतीत मे साम्यावस्था से च्युत हो गये और तब से आज तक पुन: साम्यावस्थारूढ़ नही हो पाये; किन्तु वे अपनी यथार्थ-भूत साम्यावस्था मे पुन: प्रतिष्ठित होना चाहते हैं; क्योंकि साम्यावस्था मे प्रतिष्ठित हुये बिना शान्ति सम्भव ही नहीं है और 'अशान्तस्य कुत: सुखम्।'

(घ) प्रत्येक प्राणी इन आकर्षणों के मध्य मे स्थित रहकर दायें एवं बाँयें मार्ग में सञ्चार करता है और कभी मध्यमार्ग मे सञ्चार नही कर पाता। योगी का लक्ष्य है—इन दोनों (प्राणापानों की विरुद्ध गतियों) में साम्यस्थापन।

(ङ) श्वास-सञ्चार की गति के दो रूप हैं—देशगत गति-वैषम्य एवं कालगत गति-वैषम्य।

देशगत गतिवैषम्य—नासारन्ध्रों से बहिर्गत श्वास सामान्य अवस्था में मात्र १२ अङ्गुल जाती है; किन्तु असामान्य अवस्था में स्वल्पाधिक होना सम्भव है। असामान्यावस्था में श्वास की बहिर्गति—

१. भोजन करने एवं बोलने के समय ६ से १२ अंगुल बढ़ जाती है।

२. चलने के समय १२ से २६ अंगुल तक बढ़ जाती है।

३. तेजी से दौड़ने के समय ३० से ४२ अंगुल तक बढ़ जाती है।

४. नारी-संसर्ग के समय ५३ से ६३ अंगुल तक बढ़ जाती है।

सामान्यावस्था में श्वास की बहिर्गति मात्र १२ अङ्गुल रहती है।

सिद्धान्त—श्वास की गति का आयाम या विस्तार जितना ही बढ़ता जाता है, काल का एवं बहिर्मुखता का उतना ही प्रभाव बढ़ता जाता है।

यदि जीवन को संयमपूर्वक चलायें तो श्वास की गति में ह्रास होता जाता है और यह शुभ है।

कालगत विषम गति—सामान्य स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति के एक मिनट में १५

04:20
Vo)) 4G LTE1

चक्र जाग्रति से समस्त शरीर में रक्त संचार में उष्णता निर्माण करता है और यह शक्ति हृदय गति को संग्रही करके संयम की जाती है। इस प्रकार अनहद चक्र जाग्रति के पश्चात् साधक को महाआनन्द की प्राप्ति होती है काया तेजस्वी होती है। समस्त काया शुद्ध-पवित्र होती है। प्राकृतिक महाज्ञान की प्राप्ति एवं ईशत्व सिद्धि मिलती है। साधना में साधक का शरीर हल्का होता है, हवा में, या आकाश में उड़ रहे हैं, ऐसा अनुभव आता है। माया रुपी दादा मत्स्येन्द्रनाथजी ॐकार शिव का हृदयस्थ इसी अनहद चक्र में ध्यान (तपस्या) करने पर उन्हें परकाया प्रवेश की सिद्धि प्राप्त हुयी थी।

अत: साधक विशेषत: उज्जयी प्राणायाम (कुम्भक) का अभ्यास करता है यहां प्राण नाक से कण्ठ में और कण्ठ से हृदय से जाकर स्थिर किया जाता है यहां जालन्धर बन्ध लगाने से (मृत्युजंय) मृत्यु वश में किया जाता है। वही हृदय में संचित की हुयी प्राण शक्ति भाव (भावना) शक्ति और उदान व्यान वायुओं की शक्तियाँ संक्रमित होकर यहां महाभाव (आर्तभाव) की शक्ति परिवर्तित होती है। क्योंकि यहां कुण्डलिनी (वीर्य) शक्ति उदान वायु में संघर्ष करती है और यहां का विशुद्ध चक्र जाग्रत होता है। जब साधक जालन्धर बन्ध अर्थात् कण्ठ गले के विवर को संकोचित करके ठोड़ी को वक्ष पर स्थिर करने पर कण्ठमूल का निरोध होता है और सहास्त्रागार का द्रवित अमृत नाभि स्थान सूर्य (अग्नि) मुख मे गिरकर भस्म होने से बचाते हैं और साधक उसका पान करके अमरत्व प्राप्त करता है। यहां इडा, पिंगला का भी निरोध हो जाता है और कुण्डलिनी (वीर्य) शक्ति सुषुम्ना में ऊर्ध्वरेता होकर प्रवाहित होती है। यहां साधक अमृतरस पीकर अमरत्व पाता है तथा इसे भूख नहीं सताती, दूरी श्रवण सिद्धि, आकाश गमन सिद्धियां प्राप्त होती है जो गोरक्षनाथजी को प्राप्त थी।

Binance:
Buy Bitcoin & Crypto
JOIN
Not investment advice
All trading carries risk. Only risk capital you can afford to lose.

वस्तुतः अभिषेक तत्व एक गहन रहस्य है जिसका उद्‌घाटन न यहाँ उचित है, न संभव पर ही। पारमार्थिक अभिषेक अनुत्तर अभिषेक नाम से प्रसिद्ध है। यह अत्यंत दुर्लभ है। संवृत्ति रूप में अभिषेक दो प्रकार का है—पहला निम्न स्तर का है जिसका नाम है पूर्वसेक या पूर्वाभिषेक तथा दूसरा ऊर्द्ध्व स्तर का है जिसका नाम है उत्तरसेक या उत्तराभिषेक। उदकादि सात सेक अधर संवृति या पूर्वसेक हैं। इससे लौकिक सिद्धि का उदय होता है। उच्च स्तर के कुंभ आदि तीन सेक योगिसंवृति नाम से प्रसिद्ध हैं। यही उत्तरसेक है। यह लोकोत्तर सिद्धि का मूल है और परमार्थ के अनुकूल भी। यहाँ कहना चाहिए कि उत्तरसेक के लिये मुद्रा की आवश्य-

कता होती है, पूर्वसेक के लिये नहीं, अनुत्तरसेक के लिये भी नहीं। उत्तरसेक चर, अचर और स्पंद भेद से तीन प्रकार का है। अनुत्तर या पारमार्थिक सेक निस्पंद है। कुंभ सेक में चतुर्दल उष्णीष कमल से बिंदु अवतीर्ण होकर ललाटस्थ सहस्रदल की कर्णिका में आता है। इसका फल है आनंद लाभ (काय, वाक्, चित्त तथा ज्ञान में)। गुह्य सेक में बिंदु कंठस्थ द्वात्रिंश-दल कमल से हृदय की अष्टदल कमल की कर्णिका में आ जाता है। इसका फल है परमानंदलाभ (काया चतुष्टय में)। यह आनंद अधिकतर तीव्र है। प्रज्ञा सेक में बिंदु नाभिस्थ चतुष्षष्टिदलकमल से द्वात्रिंशदलगुह्यकमल में उतर जाता है। यहाँ तक कि वज्रमणि के रंध्र में पहुँच जाता है। इसका फल है विरमानंद लाभ। यही तृतीय आनंद है। यह परमानंद से भी उत्कृष्ट है।

पूर्वोक्त विवरण से सिद्ध होता है कि बिना उत्तर सेक के उष्णीषकमल में स्थिरीकृत बिंदु नीचे नहीं आ सकता है। पहले सेक में बिंदु का अवतरण थोड़ी दूर तक होता है। द्वितीय सेक में और भी अधिक होता है। तृतीय सेक में बिंदु अवतीर्ण होते होते वज्रमणि के अग्रभाग तक पहुँच जाता है परंतु फिर भी बिंदु का स्खलन नहीं होता।

इसके बाद अनुत्तर सेक में बिंदु के पतन की आशंका ही नहीं रहती। यद्यपि प्रज्ञासेक में बिंदु का पतन नहीं होता उस समय बिंदु स्पंदहीन नहीं रहता। परंतु अनुत्तर सेक में बिंदु सर्वथा निस्पंद हो जाता है। अब बिंदु की ऊर्ध्वगति तथा अधोगति का कर्म समाप्त हो जाता है। समाप्त होकर आवर्तन पूरा हो जाता है। यही सहजानंद की अवस्था है।

बिंदु को उष्णीषकमल में स्थिर करने का जैसा प्रयोजन है, वैसा ही स्थिर बिंदु के उतारने का प्रयोजन है। आरोह तथा अवरोह दोनों ही आवश्यक हैं। अनंतर किसी की आवश्यकता नहीं रहती। धर्मचक्रप्रवर्तन व्यापार में गुरुकृत्य करना पड़ता है, ऐसा पहले कहा जा चुका है। लेकिन

पिता जैसे संतान के प्राकृत देह का जनक है, सद्‌गुरु, वैसे ही संतान के अप्राकृत देह का जनक है। इसीलिये आध्यात्मिक दृष्टि से गुरु पितृ तुल्य है। इस ज्ञानदान व्यापार को प्राचीन समय में लोग एक प्रकार का गर्भाधान समझते थे। बिना शुद्ध बिंदु के अवतरण के शुद्ध देह की रचना या द्वितीय जन्म हो नहीं सकता। ऋषि लोग इस शुद्ध देह को ज्ञानदेह, वैंदव देह प्रभृति विभिन्न नामों से वर्णन करते थे।

✻ ॐ–हरि ✻

परन्तु एक बार किसी अवसर पर किसी शिष्य को श्री गोस्वामीजी ने कहा था ''उर्ध्वरेता होने पर लाभ से हानि ही अधिक होती है। उर्ध्वरेता होने पर एक अपूर्व आनंद मिलता है, वह बड़ा असाधारण है, स्त्री संग के सुख से हजारों गुना अधिक। पर यह भी शारीरिक आनंद है, इसे लाभकर साधक लक्ष्य भूल सकता है। सोचता है, यही ब्रह्मानंद है। यहीं कई लोग बंध जाते हैं। दुर्वासा मुनि उर्ध्वरेता थे। उनकी अलौकिक शक्तियाँ भी थीं। वे किसी की परवाह नहीं करते थे। अन्त में अपराधी होकर नष्ट हो गये। उर्ध्वरेता न होना ही अच्छा है। इसके बिना भगवान नहीं मिलते, ऐसी बात नहीं है। कोई यदि दस बार स्त्री संग करे, पर उसमें श्रद्धा भक्ति है तो भगवान को लाभ कर सकता है, उसकी हानि न होगी परन्तु कोई उर्ध्वरेता यदि अहंकारी है तो उसका कुछ भी न होगा।

श्री गोस्वामीजी :- हैरान होकर भी कोशिश करते जाना होगा। यह एक-दो दिन का काम नहीं है। यह ब्रह्मचर्य पहले ऋषिकुमार गण छत्तीस वर्ष किया करते थे। कोई बारह वर्ष भी करते थे। किन्तु छह वर्ष पहले कभी ठीक नहीं होता। तुम भी प्रयत्न करो, एकाएक न होगा, क्रमशः सब होगा। काम, क्रोध, लोभ सब अपने आप छूटेंगे, यह तो ठीक है पर चुपचाप बैठने से काम नहीं चलेगा। अभ्यास करना होगा। खूब अभ्यास करो। जिस पथ पर चल रहे हो, आहार का नियम न रखकर चलोगे तो हानि होगी। आहार का परिमाण एक सा रहे और समय भी परिवर्तित न हो। इन दोनों का अनियम होने पर शरीर अस्वस्थ होगा ही। अपने नियम के आगे किसी का भी अनुरोध या विनती न सुनो। किसी भी प्रकार का मीठा तुम्हारे लिए अहितकारक है उसका विषवत् त्याग करो।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- यदि स्त्री संग काक विष्ठावत् सोच सको, स्त्री सहवास नितान्त अपवित्र, घृणित और जघन्य कर्म समझ सको, तभी बचाव है नहीं तो कोई उपाय नहीं है। भविष्य में अनेक परीक्षाएँ

आयेंगी उस समय ठीक रह सको तभी रक्षा पा सकोगे। विषय-वासना रहने पर उसी स्थान में बद्ध हो जाना पड़ता है। बिना वैराग्य आये क्या ठीक रहना सम्भव है ?

✻ ॐ–हरि ✻

ब्रह्मचारी को सर्वप्रथम वीर्य धारण तथा सत्य रक्षा इन दो बातों का अभ्यास करना चाहिए। साधकावस्था में कायमनोवाक्य से स्त्री संग त्याग न करने पर वीर्य धारण नहीं होता। अज्ञानवश भी स्त्री देह का सम्पर्क हो जाने पर देह स्थित वीर्य चंचल हो जाता है। इससे ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। वीर्यधारण न हो तो सत्य रक्षा भी सहज नहीं हो पाती। वीर्यधारण व सत्य रक्षा के साथ साथ धैर्य, एकाग्रता, प्रतिभा आदि गुण भी अपने आप साधक लाभ करता है। ये दो बातें एक बार हासिल कर लेने पर सारी सिद्धियाँ साधक के लिए सहज साध्य हो जाती हैं। सभी धर्म सम्प्रदायों में सर्वप्रथम संयम की व्यवस्था है। वीर्यधारण एवं सत्यरक्षा ही यथार्थ संयम है। ये दो बातें न प्राप्त हों तो वस्तुतः धर्म लाभ बहुत दूर समझो। धर्मार्थियों को सर्वप्रथम इन दो बातों पर विशेष ध्यान देकर चलना चाहिए। धर्म एक मामूली वस्तु नहीं है। आप्राण चेष्टा करनी पड़ती है, अन्यथा प्राप्त नहीं होता।

16:00 Vo)) LTE1

← Shri Shri VijayKrishnan...

श्री गोस्वामीजी :- वीर्यधारण की ओर ध्यान देकर ही चलना पड़ेगा। एकदम बन्द उचित न होगा ? क्योंकि गृहस्थ के लिए भिन्न व्यवस्था है। जो विवाहित हैं उन्हें दो-तीन संतान हो जाने पर वीर्य रक्षा की चेष्टा करनी चाहिए। केवल पुरुष की ही इच्छा होने पर नहीं होगा, इस कार्य में स्त्री-पुरुष दोनों का सहयोग चाहिए। स्त्री की इच्छा न हो तो पुरुष समर्थ न होगा। वीर्य-रक्षा द्वारा शरीर निरोग तथा मन स्वस्थ रहता है। यदि किसी कारण वीर्य-रक्षा न हो पाए तो इससे मुक्ति की बाधा नहीं होती, किन्तु साधन-पथ में विघ्न उपस्थित होता है। अतः

335/562

वीर्यरक्षा नितान्त प्रयोजनीय है। प्राणायाम तथा वीर्य रक्षा से शरीर मन सबल तथा सुस्थिर होता है। वीर्यरक्षा का यत्न करो, किन्तु अपनी चेष्टा से न हो सके, तो बाहरी औषधि आदि उपायों से निवारण की कोशिश भी नहीं करनी चाहिए। पृथक् शयन की व्यवस्था है। वीर्य की गति को उर्ध्व करने के लिए एक प्रकार की साधना है। उसमें मेरुदण्ड के दोनों ओर आरे से काटने की तरह काटकर रास्ता बनता है। बड़ा कष्टकर है, अर्थात यह प्रणाली उतनी अच्छी नहीं। असह्य बज्रली वेदना होती है, सही नहीं जाती। एक बार वह प्रणाली अपनाने पर छोड़ते भी नहीं बनता। इसलिए अधिकांश साधक इस बज्रली प्रणाली के पक्षपाती नहीं हैं। सहज उपाय है - मूत्र त्यागने के समय एक साथ न छोड़कर धीरे धीरे खींचकर रखते हुए मूत्रत्याग करो। स्त्री सहवास के समय भी वीर्य एक साथ न छोड़कर धीरे धीरे खींचकर रखते हुए करो। गृहस्थों को ऋतु स्नान के बाद पंद्रह दिन तक प्रशस्त समय है, इनमें भी अष्टमी, नवमी, एकादशी, द्वादशी, चतुर्दशी तथा पक्षांत की तिथियाँ छोड़ समय है। इन नियमों को मानकर चलना चाहिए। ऐसा करते हुए एक सूक्ष्म नाड़ी के भीतर से उभय रेत ऊपर की ओर गमन करता है। यह बड़े सावधानी पूर्वक करना चाहिए। इस ''सहजलि'' विधि से सहज ही सफल हुआ जा सकता है। वीर्यरक्षा तथा सत्यरक्षा सम्यक् रूप से छः माह करने पर कोई वाक सिद्ध अवश्य हो सकता है। प्रकृति में जो है, उसका बल-पूर्वक कोई नहीं निवारण कर सकता। कितने इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्मा तक परास्त हो गए हैं। केवल **भगवान के शरणापन्न होकर नाम-जप करते रहने पर सहज ही प्रकृति का दमन हो सकता है।** बाहरी उपाय कुछ नहीं। नाम जप करते-करते अपने आप सब चला जाएगा। वास्तविक साधना तो श्वास-प्रश्वास में नाम जप है। इसका अभ्यास हो जाय तो प्राणायाम भी स्वाभाविक हो जाता है। वीर्य भी स्थिर हो जाता है। प्राणायाम के तीन अंग पूरक, रेचक तथा कुंभक हैं। कुंभक सर्वश्रेष्ठ अंग है। प्रतिदिन नियमित रूप से कुंभक करने पर दीर्घ-जीवन प्राप्त किया जा सकता हैं। सभी शारीरिक व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। कुंभक के साथ वीर्यधारण होने पर देह, देव मंदिर बनकर रोग-शोक-शून्य हो जाता है। श्वास-प्रश्वास में नाम जप सर्वश्रेष्ठ साधन है। उसके साथ प्राणायामादि भी करना चाहिये। श्वास-प्रश्वास में नाम-साधन में पहले-पहले श्वास-

15:36
Shri Shri VijayKrishnan...

वे सब सत्य हैं। अब इस विषय में तुम्हे रत्ती भर भी सन्देह न होगा।'' अवस्था की प्राप्ति हो चुकने पर उसकी सत्यता का प्रमाण शास्त्र में देखना ही ठीक है। इससे शास्त्र पर भी सोलहों आने विश्वास जम जाता है।

✲ ॐ-हरि ✲

श्री गोस्वामीजी :- वेद में इस साधन के विषय का उल्लेख है। इसका अवलम्बन करके बहुत योगी और ऋषि सिद्ध हो गये थे। कुछ समय तक नियमानुसार यह साधन किया जा सके तो इसका लाभ मालूम होता है। वीर्य-धारणा के साथ-साथ यह प्राणायाम और कुम्भक छ: महीने तक करने पर अन्याय प्रकार के प्राणायामों का फल प्राप्त किया जा सकता है। श्वास-प्रश्वास में नाम का जप कर सकने पर फिर और किसी चीज की आवश्यकता नहीं होती। उसमें प्राणायाम और कुम्भक आदि सब कुछ हो जाता है। अलग प्रयत्न भी नहीं करना पड़ता। इस मार्ग की तरह सीधा मार्ग दूसरा नहीं है। सिर्फ श्वास और प्रश्वास में नाम का जप करते रहने से ही सारी अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती हैं, और कुछ भी नहीं करना पड़ता।

✲ ॐ-हरि ✲

शिष्य :- प्राणायाम की बहुत रीतियाँ हैं, हम लोगों के इस प्राणायाम का वर्णन क्या किसी शास्त्र में भी है?

श्री गोस्वामीजी :- शास्त्र में आठ प्रकार के प्राणायाम की रीति प्रकट रूप से है; क्योंकि पहले पहल सीखने वालों को उसी की आवश्यकता रहती है। किसी किसी तापनी में, उपनिषद में हमारे इस प्राणायाम का बहुत ही संक्षेप में उल्लेख मात्र है। शास्त्र में यह सङ्केत है कि इसको सिद्ध-गुरु से सीख लें। चिरकाल से ही यह सिद्ध महर्षियों के भीतर बहुत ही गुप्त रूप से चला आ रहा है। शास्त्र देखकर इसका अभ्यास करने से अकस्मात् मृत्यु तक हो सकती है। देखादेखी इस प्रणायाम के करने की चेष्टा करके बहुत लोग कठिनाई से आराम होने वाले

रोग के झमेले मे पड़ गये हैं। इसलिए, और अन्य कारणों से भी यह सदा से ही बहुत गुप्त बना हुआ है। बहुत ही विश्वस्त पात्र देखकर ही सिद्ध महापुरुष लोग यह प्राणायाम सिखाया करते हैं। अन्यान्य कुम्भक, प्राणायाम आदि करने से जो-जो फल मिलते हैं वे सब फल इस प्राणायाम का ठीक विधि के अनुसार थोड़े समय तक अभ्यास करने से ही मिल जाते हैं।

04:36

Natha Samadhi Vidhi a...

अतः साधक विशेषतः उज्जयी प्राणायाम (कुम्भक) का अभ्यास करता है यहां प्राण नाक से कण्ठ में और कण्ठ से हृदय से जाकर स्थिर किया जाता है यहां जालन्धर बन्ध लगाने से (मृत्युजंय) मृत्यु वश में किया जाता है। वही हृदय में संचित की हुयी प्राण शक्ति भाव (भावना) शक्ति और उदान व्यान वायुओं की शक्तियाँ संक्रमित होकर यहां महाभाव (आर्तभाव) की शक्ति परिवर्तित होती है। क्योंकि यहां कुण्डलिनी (वीर्य) शक्ति उदान वायु में संघर्ष करती है और यहां का विशुद्ध चक्र जाग्रत होता है। जब साधक जालन्धर बन्ध अर्थात् कण्ठ गले के विवर को संकोचित करके ठोड़ी को वक्ष पर स्थिर करने पर कण्ठमूल का निरोध होता है और सहास्त्रागार का द्रवित अमृत नाभि स्थान सूर्य (अग्नि) मुख मे गिरकर भस्म होने से बचाते हैं और साधक उसका पान करके अमरत्व प्राप्त करता है। यहां इडा, पिंगला का भी निरोध हो जाता है और कुण्डलिनी (वीर्य) शक्ति सुषुम्ना में ऊर्ध्वरिता होकर प्रवाहित होती है। यहां साधक अमृतरस पीकर अमरत्व पाता है तथा इसे भूख नहीं सताती, दूरी श्रवण सिद्धि, आकाश गमन सिद्धियां प्राप्त होती है जो गोरक्षनाथजी को प्राप्त थी।

साधक अपने वाक् शक्ति से सभी को आकर्षित मोहित करता है।

अतः साधक उज्जयी कुम्भक प्राणायाम तथा जालन्धर बन्ध लगाते हुये शाम्भवी मुद्रा अर्थात् मस्तक पर दोनों आंखों के भौहों के बीच में ध्यान एकाग्र करें। यहां आज्ञा चक्र दो दलों वाला हँ क्षँ बीज अक्षरों से विद्यमान है। इसका तत्व बीज 'ॐ' प्रणव है। कर्म इन्द्रिय आंखें होने के कारण आंखें बन्द करके शाम्भवी मुद्रा में ॐ कार प्रणव का अखण्ड जाप एकाग्र होकर करना पड़ेगा इस अभ्यास में प्रगति होने पर परा शक्ति रुप कुण्डलिनी शक्ति विशुद्ध चक्र से यहां प्रवेश करती है यहां काया की पंचवायु शक्ति कार्य करती है। अतः यहां महाभाव शक्ति का चेतन शक्ति में परिवर्तन होता है। यहां साधक को शिव शक्ति (अर्धनारी नटेश्वर) का दर्शन होता है तथा ओर अभ्यास प्रगति करने पर आत्म दर्शन ज्योति स्वरुप होता है यहां साधक शीतल चन्द्र मण्डल का ध्यान करने पर और सतत ध्यान करने पर साधक सम्पूर्ण

05:35
ARCHIVE

✲ ॐ-हरि ✲

स्वाभाविक कुम्भक करके सदा नाम का जप किया करो। धीरे धीरे हर एक दम (श्वास) में कुम्भक के साथ नाम का जप करने लगने पर इस विषय में भरपूर लाभ होगा। इन क्रियाओं का जिन के साथ शरीर का एक विशेष योग है, उन्हें ये अकस्मात् एक बार में ही नहीं हो जाती; कुछ समय लगता है। अनेक कारणों से अनेक दशाओं में देह का वीर्य मथित होकर प्रशस्त मार्ग में हो उपस्थ की ओर जाता है। वीर्य को ऊपर की ओर जाने के लिए भी एक सँकरा मार्ग है। नीचे के मार्ग का मुख बिल्कुल बन्द हुए बिना वीर्य कभी ऊपरी मार्ग में नही जा सकता। वीर्य के स्रोत को ऊपरी मार्ग में न कर पाने से और किसी उपाय से उसको शरीर में नहीं रोका जा सकता। वीर्य कभी एक स्थान में रहने वाली वस्तु नहीं है। उसे अधोगामी न होने देने के लिए कितने ही लोग कितने ही काम करते हैं। शरीर की गर्मी को घटाने के लिए कोई शिरा काट डालते हैं; कोई मन की उत्तेजना को घटाने के लिए अङ्ग आदि का छेदन करते हैं किन्तु इससे वास्तविक कुछ भी लाभ नहीं होता। ऐसे उपायों का अवलम्बन करने से धर्मजीवन का भी कुछ कल्याण नहीं होता। संयम द्वारा चित्त को स्थिर रखकर नाम का जप करते हुए कुम्भक द्वारा वीर्य को ऊपर की ओर आकर्षित करना

पड़ता है। कुम्भक करने से वीर्य के नीचे वाले मार्ग पर दबाव पड़ता है और ऊपर का रस्ता प्रशस्त हो जाता है; अतएव वीर्य कि गति नीचे की ओर न होकर ऊपर की ओर हो जाती है। एक बार वीर्य की गति ऊपर की ओर पलट जाने पर फिर वह नीचे नहीं जाता। जब मुझे ऐसा हुआ था तब ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे एक अमृत के सागर में डुबा दिया है। चेष्टा करके किये गये कुम्भक करने से ही यह सब होता है। अस्वाभाविक कुम्भक से कुछ लाभ नहीं। नाम के साथ साथ थोड़ा थोड़ा इसी रीति से कुम्भक का अभ्यास करो। इन मामलों में सदा खूब चेष्टा भी करनी चाहिए। दृढ़ता न हो तो अधिक समय तक चेष्टा भी नहीं हो सकती।

✲ ॐ-हरि ✲

शिष्य - "नाम का जप करते-करते जो कुछ प्रकट होता है

128 of 540
Favorite Share Flag
Shri Shri Vijay Krishnan Vachnaamrit
Topics Shri Vijay Krsnna Vachnaamrit Vachnaamrit Jat

उपनिषदों एवं अन्य शास्त्रों की दृष्टियाँ—उपनिषदों एवं अन्य शास्त्रों में भी इस मन्त्र-साधना का प्रतिपादन किया गया है—

१. योगशिखोपनिषद्—

सकारेण बहिर्याति हकारेण विशेत् पुनः।
हंस हंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।।

२. योगचूड़ामणि उपनिषद्—

अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति।।

३. तन्त्रसार—

बिभर्ति कुण्डलीशक्तिरात्मानं हंसमाश्रिता।
हंसः प्राणाश्रयो नित्यं प्राणा नाडीपथाश्रयाः।।

४.रुद्रयामलतन्त्र—

हं पुमाञ्छ्वासरूपेण चन्द्रेण प्रकृतिस्तु सः।
एतद्धंसं विजानीयात् सूर्यमण्डलभेदकः।।

५. सूत-संहिता—

हंसविद्यामविज्ञाय मुक्तौ यत्नं करोति यः।
स नभोक्षणणेनैव क्षुन्निवृत्तिं करिष्यति।।

६. गरुड़पुराण—

आत्मनः परमं बीजं हंसाख्यं स्फटिकामलम्।

७. शाक्तानन्दतरंगिणी—

हंसेन मनुना देवि ब्रह्मरन्ध्रं नयेत् सुधीः।

(क) नानक—स्वास स्वास प्रभु तुमहिं धियावउँ।
(ख) कबीर—(कबिरा)

अजपा सुमिरन होत है सुन मँडल अस्थान।
कर जिह्वा तहाँ ना चलै, मन पंगू तहँ जान।।

(ग) दादू—दादू सहज सरोवर आतमा, हंसा करै किलोल।
(घ) यारी—

घट में प्रान-अपान दुहाई। अरध आवै अरु अरध जाई।
लेके प्रान अपान मिलावै। वाहि पवन तें गगन गरजावै।।

(ङ) बुल्लेशाह—बुल्लेशाह नाल लाई बाजी। अनहद सबद बजाया है।

05:15

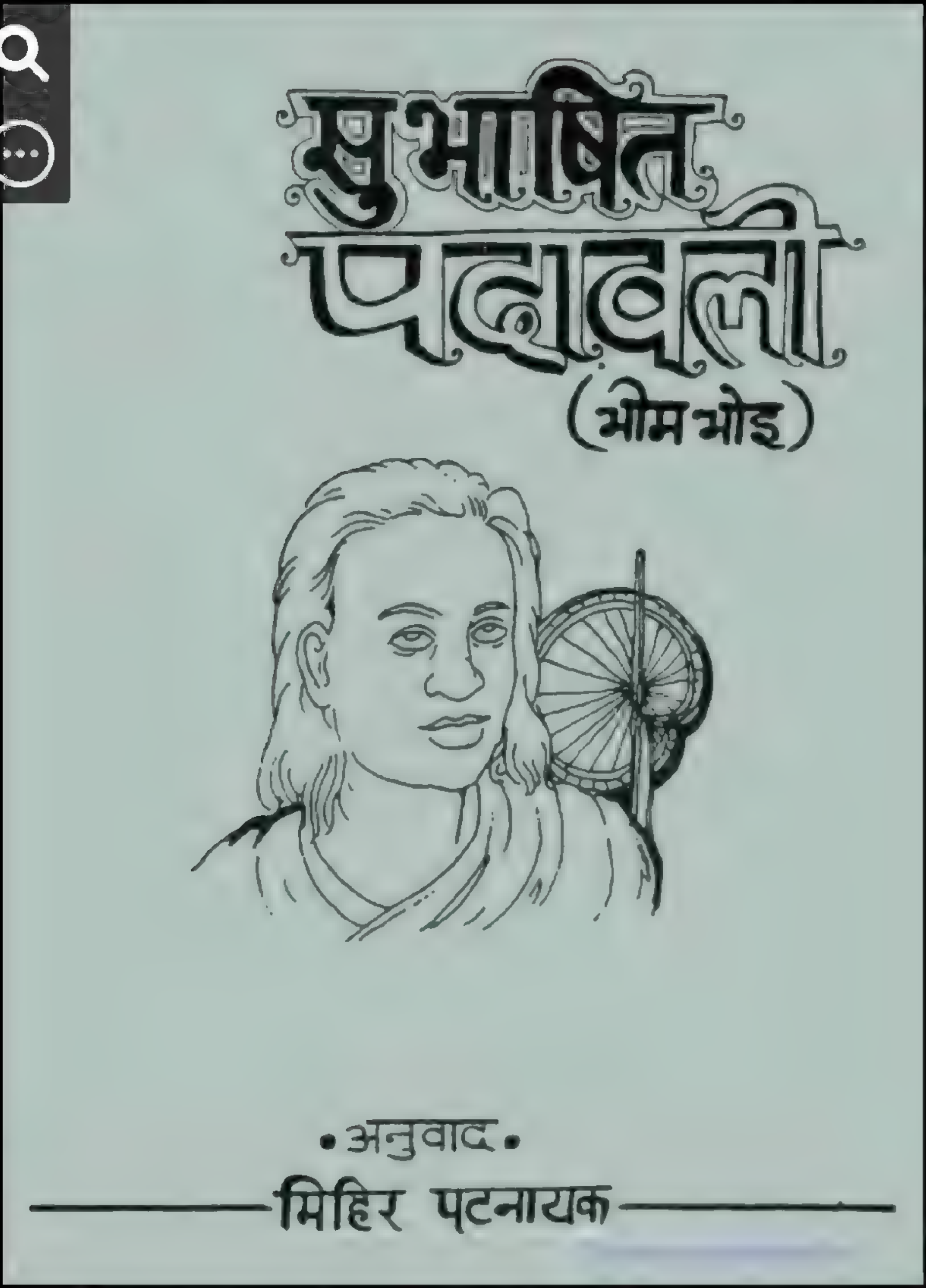

(1 of 51)

Favorite Share Flag

ସୁଭାଷିତ ପଦାବଳୀ (ହି)

by ଭୀମ ଭୋଇ; ମିହିର ପଟ୍ଟନାୟକ, ଅନୁ.

Topics Poetry, Prayer, Hindi, Translation, କବିତା, ପ୍ରାର୍ଥନା, ହିନ୍ଦି,

➢ *योगसाधना :*

प्रेमलक्षणा भक्ति का साधक सिद्ध होता है । दासीजीवण की प्रेमबानी में सूक्ष्म संवेदनाओं के साथ योगबानी, योगसाधना की सिद्धि भी प्रकट हुयी है । दासीजीवण जंगल या गुफाओं में बेठकर साधना नहीं करते थे, किंतु गुरुमुखी मंत्र के प्रभाव से अपनी साधना को साहब बना दिया और 'सोहम' को

श्वासोश्वास में भरकर नाम स्मरण किया है । प्रभुनाम के जप द्वारा प्राण योग सिद्ध किया है और अपनी सुरता को शून्य में स्थापित किया है । उसीसे कुंडलिनी शक्ति जागृत की है ।

सामान्य स्थिति में कुंडलिनी सर्पाकार में अधोमुखी होती है । जिसे 'ओहम' श्वास भरके, सोहम श्वास को छोडने के बाद, इंगला नाडी में से दाई पिंगला नाडी में बदलकर उसे सुषुम्णा नाडी में प्राणों को थोडी देर रोककर ईश्वरानुभूति होती है । इस क्रिया को समझाते हुए दासीजीवण कहते हैं कि –

''अबधू दिया नखत पर डंका रे, सो घर सजे पाया रे जी,
नाभी कमले जी नटवर चडिया, पवन पुरुष पलटायो रे जी
वंकनालकी खडकी खोली, उलटा राह चलाया रे जी ।'
''इंगला पिंगला कुषम्णा साधी त्रिवेणी मोलमें आई
कोइ जागंदा आ दिलमांय, झणंक, झालरी वागी ।''
नवे दरवाजा नवी रमत का दशमें मोल ओ देखाई,
सोइ महेल मा मेरम बोले, आप त्यारे ये घर जाय ।''

इस साधना क्रिया द्वारा गगनमंडल के शून्य शिखर के सहस्त्रदल पद्‌म में बिराजमान परमात्मा ज्योति स्वरूप में प्रकट होते हैं । जो अवर्णनीय हैं । ऐसी स्थिति में अनहदनाद सुनाई देता है । ऐसी अवस्था में साधक स्वयं परब्रह्म में समाहित हो जाता है । इस अनुभुति के लिए दासीजीवण कहते हैं –

जाग्रत स्वप्न सुशोभित तुरिया, उनमुनि मुंदा लागी,
अक्षरातीत आपे नर ओलख्या, तेनी मे भ्रमणा भांगी ।''

अर्थात् अक्षरातीत अविनाशी परमात्मा के दर्शन करके भय, भ्रमणा दूर हो जाती है । अंतर का अंधकार दूर हो जाता हैं । ऐसा अनुभव किसे होता है ? इसका जवाब देते हुए दासीजीवण कहते हैं कि :

''सोहम घर जावे संत सुभागी बीक कछुवे नाय !

➢ निणियापंथी बानी :

निणियापंथ यानी निर्गुण उपासना पद्धति को अपनानेवाला संप्रदाय । कबीरजी ने निर्गुण काव्यधारा के प्रवर्तक के रूप में पूरे हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया । इतना ही नहीं गुजरात के संतों ने भी कबीरजी की साधना को अपनाकर निर्गुण परब्रह्म की आराधना की हैं । खीमसाहब भाणपंथी थे अतः गुरुज्ञान से जो आत्मज्ञान मिला, उससे अपने भक्ति मार्ग को प्रस्थापित किया । जैसे.....

"श्वास उच्छवासा दोउ नहीं पोंचे, वहाँ ले लागी मेरी :
तुरते सुरते नाम नीरख ले, सुखमन भाका फेरी ।"

इसके अलावा :

"आ कायामा प्रगट गंगा, शीद फरो छो पंथपाका
इ रे गंगामां अखंड नाहिल्यो मत नाव नदियु नाका
आ दिल अंदर बुद्धि समुद्र चलत नाव चौ धारा
इ रे नावमां हीरा माणेक भरीआ खोजे खोजन हरा ।"

अर्थात् ईश्वर को बाहर ढूँढने की आवश्यकता नहीं । उनके दर्शन के लिए तीर्थाटन, गंगास्नान आदि बाह्याचारों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसी शरीर में साक्षात गंगा प्रवहमान है, जिसमें आत्मा स्नान कर लेती है, बाद में किसी नदी में स्नान करने की ज©रत नहीं है और कहीं पर जाने की भी ज©रत नहीं है । समुद्र में मोती मिलते हैं किंतु उन्हें ढूँढने के लिए ठेठ समुद्र में जाने की ज©रत नहीं है, क्योंकि अगर दिल (द्रव्य) समुद्र होगा तो मोती अपने आप ही मिल जाते हैं । इस प्रकार निर्गुण साधना भक्ति के द्वारा खीम साहब ने ईश्वरानुभूति प्राप्त की थी ।

'शशि सूर में, सूर शशि में अणसारे उलटावे,
नीरखे पल पल नूर निरंतर, अनहद नाद बजावे ।'

सर्व प्रथम प्राण को स्थिर करके उसकी गति को जान लेना चाहिए । इडा–पिंगला में@बहते हुए प्राण को गुरु के संकेत द्वारा उलटा करके उसे सुषुम्णा में प्रवेश कराके, मेरुदंड में से गुजरते हुए ऊँचे परबत पर ब्रह्मरन्द्र तक पहुँचना है । सदगुरु के शब्द के इशारे त्रिवेणी में तार मिलाके घट के भीतर बजते अनाहत नाद को सुनने का अनुभव करना है –

'शब्द शब्द जयां सुरत समाणी, सतनाम पहिचान रे,
दास मोरार दया सदगुरु की, चिंता मटी चोखाना रे ।'

सदगुरु के वचन के अनुसार सतवृत्त का पालन करते हैं । अंतरात्मा की आराधना करते हैं । चंचल मनको नामस्मरण में स्थिर रखकर आत्मस्वरूप की पहचान कराई गई है –

'सतगुरुए सतनाम सुनायो, सोहम शब्द में सुरत पायो,
जागृत ज्योति ज्योत जगायो, तेजमा तिमिर गिया टली रे ।'

योगवाणी के साथ में संतों ने मर्म वाणी का उच्चारण किया है, मोरारसाहेब की मरमीवाणी लोकप्रिय वाणी रही है –

'अचरज नजरे आया संतों जलमे. ज्योति जगाया,
बना मुल एक तरुवर ठाडा, डाळ पान नहीं छांया,
फळ बीन फूल बीन फलीया तीन लोक छवराया ।''

'जल–ब्रह्मरन्ध्र में ज्योति प्रकाश रही है । इस देहरूपी वृक्ष में मूल, डाल, पान, फूल, फल नहीं हैं । फिर भी मानवरूपी फल तीनों लोक में फैला हुआ है । इस आत्मारूपी पक्षी के पंख नहीं है, फिर भी वह विहार कर रहा है । इस रहस्य को समझाते हुए रवि साहेब ने कहा है –

'पांव विना चलना, चांच विना चुगना, पंख विना उड जाय,
बीना सुरत की नूरत हमारी, अनल न पहोंचे त्यांइ ।'

यह सतनाम रामनाम तारक मंत्र है, हे संतों ! यह नाम ही राजा है, मुख से कहुँ तो कोई सच मानेगा ही नहीं, इसलिए अनुभूति करके देखिए इस नाम के द्वारा ही सृष्टि का सर्जन हुआ । इस नाम के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और महेश हुए, इस नाम के द्वारा दश अवतार की माया रची है । यह अजब नाम ही पार करायेगा ।

सुन ले सुषम्णा नारी मे अजबनाम पर वारी,
अजबनाम है सबसे न्यारा, खोज खोज संसारी ।
– भीम साहेब

कोई रूप रंग से न्यारा, उसमे क्या जाने संसार रे,
ओहं सोहमनी ऊपर नीरो बार आंगल छै बारा,
मति मूरति नैणे नीरखो, निजनाम छे न्यारा ।
–दासी जीवण

यह नामकरण सहजयोग में मिलता है । बाह्य क्रियाकाण्ड, योगसाधना या वेदपुराण पढने की आवश्यकता नहीं है, जहाँ भी देखो वहाँ वह दिखाई देता है । अज्ञान का आवरण हट जाता हैं । यह सहजयोग भाण, रहीम, त्रिकम, भीम, मोरार और दासीजीवण इत्यादि रवि–भाण संप्रदाय के संतों में देखने को मिलता है ।

इंगला पिंगला सुखमना, सेजे घर पाया ।
भ्रमर गुफा में भठी जणे, भारे देख लाली ।
जाग्रत जागी त्यां रहे, बेठा आसन वाणी ।।
– भाण साहेब

ये संतं साधना की कठिन बातें छोडकर सोते–जागते, हँसते–खेलते हर हालत में अचानक ही हरि प्रेम के रंग को दिन–ब–दिन प्यार बढता हुआ महसूस करते हैं ।

रवि साहेब ने अपनी योगवाणी द्वारा अपनी साधना प्रक्रिया का परिचय दिया है । जिसमें मुख्य 'सुषुम्णा नाडी' द्वारा प्राण की गति को स्थिर करने की साधना है । यह 'सुषुम्णा' कुंडलिनी के द्वार को अवरोध करके सोई हुयी है । ब्रह्मांड में जो महाकुंडलिनी शक्ति व्याप्त है, वह पिंड में भी रहती है । इस शक्ति को जाग्रत करने के लिए रवि साहब अपनी योग वाणी में कहते हैं –

''शशि सूरमें, सूर शशि में अण सारे उलटावें,
नीरखें पलपल नूर निरंतर, अनहद नाद बजावे ।''

इसमें सर्वप्रथम प्राण को स्थिर करके उसकी गति को जानना पडता है । शशि–चंद्रनाडी (इडा), सूर–सूर्यनाडी (पिंगला) में बहते प्राण को गुरु कृपा से सूक्ष्म बोध से जगाकर उसे सुषुण्ा में प्रवेश कराना पडता है । जैसे –

''नाभिसे सूरता चाली, शून्यमा कियो मुकाम ।
पछम धार थी परवरी, निरख्या निर्गुण राम ।''

अर्थात् नाभि से सुरता की यात्रा प्रारंभ होती है, और उसके लिए सदगुरु के शब्दों द्वारा मन को स्थिर करके एक ध्यान हो जाना । मूलकमल

को मूलाधार– चक्र से दबाकर साधना की स्थिति में बैठकर प्राण की गति को पलटकर मणिपुर चक्र में से प्राण को ऊपर उठाकर नाभि के पास लगाकर स्वाधिष्ठान चक्र में साधक प्रवेश करके नाभि से पश्चिम की ओर जाना । यानी कि मेरुदंड में स्थित सुषुम्णा को शून्य शिखर ब्रह्मरन्ध्रा में जहाँ पर परमसत्ता का स्थान है, वहाँ तक पहुँचना ।

साधक का जब सुषुम्णा द्वार खुल जाता है तब पंचमहाभूत का बना हुआ यह शरीर अपनी पाँच मात्राओं, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों के बंधन टूट जाते हैं और तब निर्गुण राम नजर आते हैं । त्रिकुटी पर ध्यान लग जाने पर परम ज्योति के दर्शन होते हैं । इस साक्षात्कार को रवि साहब ने जान लिया था ।

रवि भाण संप्रदाय के अन्य कवियों की बानियों में भी यह भव्य दिखाई देता है ।

''नाभि कमल थी उलच्यो आवें, गगन धून गरभना ।
तंकनाक की खडकी खोली, उलटा राह चलाया रे ।।
–दासी जीवण

ओहम–सोहम के श्वास–प्रश्वास के द्वारा नाभिकमल में अर्धसर्पाकार रूप में रहती कुंडलिनी शक्ति की साधना पर प्रकाश डाला है । इंगला, पिंगला, सुषुम्णा नाडियों त्रिवेणी घाट की तरह हैं । वहाँ ध्यान धर के सुरा को सुषुम्णा में रखनी है । नामस्मरण की महिमा को कबीर साहेब की तरह रवि–भाण संप्रदाय के संतों ने गाया है ।

''सत्नामनुं सुमरण साचुं, काचुं नहीं लगार रे भाई,
शहस्त्र फेण शेषनाग गये, रसनाए झंकार भाई ।''
– रवि साहेब

" श्री सद्गोर ब्रम्हा वाचा" (३८)

सद्गोर ब्रम्हाजीने ओळख्या, में तो सुर्ता शुं कर्या प्रणामरे.
ब्रम्हा रस लागो मीठडो, मारा अंग उलट न मायरे. सद्गोर ॥१
जोत प्रकाशीने तेज कर्या, ते तो तेजमां तेज समायोरे.
अखंड ज्योत त्या जळहळे, नाभी कमळ थी कर्यो विस्तार रे. स. ॥२
बार कळा तो ब्रम्हाजीनी कहीअे, मे तो प्रत्यक्ष दीठा छे तेज रे.
सोळ कळा विष्नु नर कहीअे, ते ज्योतमां जोत समायोरे. सद्गोर ॥३
पांच तत्वनी काया करी नव खंडमां कीधा विस्तार रे.
कळीजुगमां ते गोरनर आवीया, सेवकोने देवो दिदार रे. स. ॥४
सतपंथ सोला कळाशुं जाणो, ते तो उगीयाते सुरज केवाअेरे.
इंगलाने पींगलारे सुक्षमणा, ते तो चढीया त्रिवेणी घाट रे. ॥ ५॥
त्रिखुंटी संगम न्हाईया, ते तो दशमे पाम्या दिदार रे.
सतरमी कलाना तो नुर झरे, ते तो पींड स्वरुपी कहेवाय रे. ॥ ६॥
दशमे दिदार ते जई मळ्या, ते तो पाम्या अमर पदरे. सद्गोर

realpatidar

realpatidar.com

कहे गोर ईमामशाह सांभळो, अेम बोल्या छे अमृत वाणीरे ॥
सद्गोर ब्रम्हाने ओळख्या, में तो सुर्ताशुं कर्या प्रणामरे.

06:03

'' श्री सद्गोर ब्रम्हा वाचा'' (३७)

नर नाथ ना घरनी खबर न जाणी, संसारमा जीव भूल्यारे, टेक
पांच तत्व का महेल बनाया, त्रिगुण कीधा प्रकाश रे.
संसार सागर महाजळ भरीया, प्राणी तेना मांहे बुडारे. नर ।। १
नाभी कमळ थी दम उठत हे, स्मरण श्वास उश्वास रे.
शीव शक्तिका मेळा करना, बंकनाळ रस पीनारे. नर ।। २

realpatidar.com

realpatidar.com

बंक नाळनो मार्ग वांको, चढे जो वीरला कोयरे.
जेने सद्गोर पुरा मळीया, सोही धरमां जावे रे. नर ।। ३
गंगा यमुना दो दश वहेती, वचमां भाग सरस्वती का.
त्रिवेणी उपर स्नान करना, सुनमां धुन लगाई रे. नर ।। ४
गगन मंडळमां ठेबी गुपतहे, अनहद वांजा वागे रे
भ्रमर गुफाना घाट मांहे, अविचळ वस्तु जडी रे. नर ।। ५
कहेत ईमामशाह प्रभुना प्रतापे, रहेणी दिवस जागोरे.
स्वर्ग भुवनमां ते नर जाशे, आवा गवन मटी जाशे रे. नर ।। ६

05:21
INTERNET ARCHIVE

પદ-૩

અદ્‌ભુત જ્ઞાન હમારા હો સંતો, અદ્‌ભુત જ્ઞાન હમારા,
કોઈ જાણે જાનનહારા. હો સંતો, ટેક. ૧
દેવલ દેવ પૂંજા વિધિ પાતી, ષોડશ કરમ આચારા,
ધૂપદીપ સજી અરધ આરતી, એ સહુ ઓરલા વહેવારા.
હો સંતો... ૨
આસન મારી પવન પુની સાધે, બંધે દશ દરબારા,
વંકનાળ ચઢી જોત્ય જગાવે, તોહુ ન બંચે કારા.
હો સંતો... ૩

શ્રવણ કિરતન પૂજા આદિ, ભક્તિ નવ પરકારા,
દશધા પ્રેમ લક્ષણા જો પાવે, તો ગૌલોકનાથ દેદારા.
હો સંતો... ૪
ત્રિપદ દેવ નહીં ચિદશક્તિ, નહીં પંચભૂત આકારા,
ત્યાં ગૌલોક ને વૈકુંઠ નાંહી, અવિગત અરસ સાંઈયારા.
હો સંતો... ૫
ઈંગલા પિંગલા સુક્ષ્મણા નાડી, બ્રહ્મરંધ્ર ઝનકારા,
જોગી જોગ સકલ વિધિ સાધન, યહાં લગી અમલ તુમારા.
હો સંતો... ૬
ગુપ્ત ચલે ધરણી ગગને ગમ, લેખ કરે નભ તારા,
ચૌદ લોક કે મનકી જાણે, પ્રકૃતિ લિયા અવતારા. હો સંતો... ૭

જાગ્રત સ્વપ્ન સુષુપ્તિ તુરિયા, મન બુધ ચિત અહંકારા,
એ અષ્ટ આવ્રણ રહિત અગમઘર, અપંરપાર અપારા.
હો સંતો... ૮

(69 of 102)
पसंदीदा
शेयर करना
झंडा
પુષ્પાંજલી પરમગુરુની ઉપાસના સત્ कैवल साहेब

) 'ચક્ષુ બદલાણીને સુવાંત'

ચક્ષુ બદલાણી ને સુવાંત વરસી ને,
    ફળી ગઈ પૂરવની એને પ્રીત રે;
ટળી ગઇ અંતરની આપદા ને,
    પાળી સાંગોપાંગ રૂડી રીત રે...ચક્ષુ.
ભાઈ રે ! નાભિકમળથી પવન ઉલટાવ્યો ને,
    ગયો પશ્ચિમ દિશમાંય રે;
સૂરતા ચડી ગઈ શૂનમાં રે;
    ચિત્તમાંહી પુરુષ ભાળ્યા ત્યાંય રે... ચક્ષુ.
ભાઇ રે ! અવિગત અલખ અખંડ અનામી ને,
    અવ્યક્ત પુરુષ અવિનાશ રે;
ભાળીને સૂરતા તેમાં લીન થઈ ગઈ ને,
    હવે મટી ગયો જનમનો ભાસ રે... ચક્ષુ.
ભાઈ રે ! ઉપદેશ મળ્યો ને ટળી ગઈ આપદા ને,
    કરાવ્યો પરિપૂરણ અભ્યાસ રે;
ગંગાસતી એમ બોલિયાં ને,
    આવ્યો પરિપૂરણ વિશ્વાસ રે... ચક્ષુ.

06:08

Undated -Imam Shah B...

'' श्री सद्गोर ब्रम्हा वाचा'' (४२)

दिल तुं क्या देखते है दूर, हृदयमां धणी छे हाजरा हजुर. टेव

लिखा लेख सो नहि मिटने का, क्या मरता झूर झूर.

खबर वीना नर के खप गये, मांया केहो मजुर.

गुरु विना ज्ञान कथे बहु तेरा, भेद न समजे अबूज.

तुंही तुंही तो स्वामी बोले, भीतर है भरपूर.

नाभी कमळसे नेह लगावो, सुरत नुरत मजबुत.

स्वास उस्वासे शब्दकु पकडो, मिंटे जनम की भुल.

प्रेम पिऊसेपीवो प्याला, केफ चढे चकचूर,

उलटा सुलटा जई असमाना, सुनमे उगा सूर.

अनहद वाजा भीतर बाजे, निर्मळ वरसे नूर.

चंद्र से ज्योत करे चमकारा, अनहद वरसे नूर.

आरे जगतमां खुली कलीया, कईक हजार भरपूर.

माया के मांय न्यारो के न्यारों, जळमां कमळनुं फुल.

कहेत ईमामशाह प्रभुने भजीलो, दीधेल वचन करोने कबुल.

जब लालन की लाली पावे , अे वस्तु छे अमुल. दिल तुं

સતકી સુમરની હાથ પકડલે, ભાવસે ભકતી કરના
હૃદય કમલમેં રામ સુમરલે, નહી કાલસે ડરના દરશન કરલે ,, ॥૩॥
નોબત વાજે નામકી, નીરભે નીશાને ચડીયા
કહે રવીદાસગુરૂ ભાંણ પ્રતાપે,અધરસીંઘાસન ચડીયા દરશન કરલે,, ॥૪॥

———:o:———

પદ ૩૦૩ **કાફી**

અનહદ લંગર વાગે, જેની સુરતા ગગનમાં ગાજે
ફકીર તારે દરવાજે ॥ દરવાજે ॥ ટેક ॥
નવરંગી તમે કંથા પહેરો, શબ્દની સીંગી વાગે
તન કર તીલક નામ કર છાપા, મન કર મંગલ ગાવે ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગલા પીંગલા સુખમના નાડી, તરવેણીકા તીરા
ગગન ગુફામાં બાંતર બારી, ત્યાં ઝગ મગ ઝળકે હીરા ,, ॥ ૨ ॥
સુન્ન શીખર પર સાધ્યા બીરાજે, નીરખો નીરમળ મોતી
મહા શુન્નમાં હરી હજુરા, ત્યાં ઝગમગ ઝળકે જ્યોતી ,, ॥ ૩ ॥
ચંદા પ્રગટ્યા ભયા ઉજીયારા, નીકળી ગઇ સબ કાઇ
નીજ ધામમાં નેજા ગાડીયા, ત્યારે ત્રુટી રંગ વધાઇ ,, ॥ ૪ ॥
આતમકુ પર આતમ મળીયા, અંત કહ્યા નવ જાઇ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે જીતી નીશાન ચડાઇ ,, ॥ ૫ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૪ **પરજ**

સતગુરૂજીનારે સુરા તખત પર પહોંચેગા નર પુરાજી ॥ ટેક ॥
નાભી કમળસે નટવા ચઢીયાર, અધર દીયારે ઉતારારે
સુરતા સોહાગણ ચઢીર ગગનપર, ત્યાં રહે સતગુરૂ મેરાજી ॥ ૧ ॥
અધર તખતપર હીરા જડીયારે, લાલ સફેદ રંગ પીળારે
તરવેણીમાં દેખ્યારે તમાસા, હંસા પાયા હીરાજી ॥ ૨ ॥
ખટ દરશનકા ખેલ છે ન્યારા, દુબધા હો રહ્યા દુરારે
ચારે વેદમાં જે નર સમજ્યા, નાહ્યા નીરમલ નીરાજી ॥ ૩ ॥
જમી અસ્માનકા લગ્યારે જલેસા, પાયા પાયાલા ગુરૂવેં પુરારે
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે, સમજ સમજ મન મેરાજી ॥ ૪ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૫ **પરજ**

ભજન હુંડી એ ટંકસાળ જીવે રામરે શબ્દ હુંડી એ
ટંકસાળરે જીવે રામ, રામતો ભજનસેં મેરે ખુબ લગીહે ॥ ટેક ॥

સતકી સુમરની હાથ પકડલે, ભાવસે ભકતી કરના
હૃદય કમલમેં રામ સુમરલે, નહી કાલસે ડરના દરશન કરલે ,, ॥૩॥
નોબત વાજે નામકી, નીરભે નીશાને ચડીયા
કહે રવીદાસ ગુરૂ ભાંણ પ્રતાપે, અધર સીંધાસન ચડીયા દરશન કરલે,, ॥૪॥

———:૦:———

પદ ૩૦૩ કાફી

અનહદ લંઘ્રર વાગે, જેની સુરતા ગગનમાં ગાજે
ફકીર તારે દરવાજે ॥ દરવાજે ॥ ટેક ॥
નવરંગી તમે કંથા પહેરો, શબ્દની સીંગી વાગે
તન કર તીલક નામ કર છાપા, મન કર મંગલ ગાવે ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગલા પીંગલા સુખમના નાડી, તરવેણીકા તીરા
ગગન ગુફામાં બાંતર બારી, ત્યાં ઝગ મગ ઝળકે હીરા ,, ॥ ૨ ॥
સુન્ન શીખર પર સજ્યા બીરાજે, નીરખો નીરમળ મોતી
મહા શુન્નમાં હરી હજુરા, ત્યાં ઝગમગ ઝળકે જ્યોતી ,, ॥ ૩ ॥
ચંદા પ્રગટ્યા ભયા ઉજીયારા, નીકળી ગઇ સબ કાઇ
નીજ ધામમાં નેજા ગાડીયા, ત્યારે ફુટી રંગ વધાઇ ,, ॥ ૪ ॥
આતમકુ પર આતમ મળીયા, અંત કહ્યા નવ જાઇ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે જીતી નીશાન ચડાઇ ,, ॥ ૫ ॥

———:૦:———

પદ ૩૦૪ પરજ

સતગુરૂજીનારે સુરા તખત પર પહોંચેગા નર પુરાજી ॥ ટેક ॥
નાભી કમળસે નટવા ચઢીયાર, અધર દીયારે ઉતારારે
સુરતા સોહાગણ ચઢીર ગગનપર, ત્યાં રહે સતગુરૂ મેરાજી ॥ ૧ ॥
અધર તખતપર હીરા જડીયારે, લાલ સફેદ રંગ પીળારે
તરવેણીમાં દેખ્યારે તમાસા, હંસા પાયા હીરાજી ॥ ૨ ॥
ખટ દરશનકા ખેલ છે ન્યારા, દુબધા હો રહ્યા દુરારે
ચારે વેદમાં જે નર સમજ્યા, નાહ્યા નીરમલ નીરાજી ॥ ૩ ॥
જમી અસ્માનકા લગ્યારે જલેસા, પાયા પાયાલા ગુરૂવેં પુરારે
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે, સમજ સમજ મન મેરાજી ॥ ૪ ॥

———:૦:———

પદ ૩૦૫ પરજ

ભજન હુંડી એ ટંકસાળ જીવે રામરે શબ્દ હુંડી એ
ટંકસાળરે જીવે રામ, રામતો ભજનસેં મેરે ખુબ લગીહે ॥ ટેક ॥

સતકી સુમરની હાથ પકડલે, ભાવસે ભકતી કરના
હૃદય કમલમેં રામ સુમરલે, નહી કાલસે ડરના દરશન કરલે ,, ॥૩॥
નોબત વાજે નામકી, નીરભે નીશાને ચડીયા
કહે રવીદાસગુરૂ ભાંણ પ્રતાપે,અધરસીંઘાસન ચડીયા દરશન કરલે,, ॥૪॥

———:૦:———

પદ ૩૦૩ કાફી

અનહદ લંગ્નર વાગે, જેની સુરતા ગગનમાં ગાજે
ફકીર તારે દરવાજે ॥ દરવાજે ॥ ટેક ॥
નવરંગી તમે કંથા પહેરો, શબ્દની સીંગી વાગે
તન કર તીલક નામ કર છાપા, મન કર મંગલ ગાવે ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગલા પીંગલા સુખમના નાડી, તરવેણીકે તીરા
ગગન ગુફામાં બાંતર બારી, ત્યાં ઝગ મગ ઝળકે હીરા ,, ॥ ૨ ॥
સુન્ન શીખર પર સઝ્યા બીરાજે, નીરખો નીરમળ મોતી
મહા શુન્નમાં હરી હજુરા, ત્યાં ઝગમગ ઝળકે જ્યોતી ,, ॥ ૩ ॥
ચંદા પ્રગટ્યા ભયા ઉજીયારા, નીકળ ગઇ સબ કાંઇ
નીજ ધામમાં નેજા ગાડીયા, ત્યારે ફુટી રંગ વધાઇ ,, ॥ ૪ ॥
આતમકુ પર આતમ મળીયા, અંત કહ્યા નવ જાઇ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે જીતી નીશાન ચઢાઇ ,, ॥ ૫ ॥

———:૦:———

પદ ૩૦૪ પરજ

સતગુરૂજીનારે સુરા તખત પર પહોંચેગા નર પુરાજી ॥ ટેક ॥
નાભી કમળસે નટવા ચઢીયારે, અધર દીયારે ઉતારારે
સુરતા સોહાગણ ચઢીર ગગનપર, ત્યાં રહે સતગુરૂ મેરાજી ॥ ૧ ॥
અધર તખતપર હીરા જડીયારે, લાલ સફેદ રંગ પીળારે
તરવેણીમાં દેખ્યારે તમાસા, હંસા પાયા હીરાજી ॥ ૨ ॥
ખટ દરશનકા ખેલ છે ન્યારા, દુબધા હો રહ્યા દુરારે
ચારે વેદમાં જે નર સમજ્યા, નાહ્યા નીરમલ નીરાજી ॥ ૩ ॥
જમી અસમાનકા લગ્યારે જલેસા, પાયા પાયાલા ગુરૂવેં પુરારે
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે, સમજ સમજ મન મેરાજી ॥ ૪ ॥

———:૦:———

પદ ૩૦૫ પરજ

ભજન હુંડી એ ટંકસાળ જીવે રામરે શબ્દ હુંડી એ
ટંકસાળરે જીવે રામ, રામતો ભજનસેં મેરે ખુબ લગીહે ॥ ટેક ॥

સતકી સુમરની હાથ પકડલે, ભાવસે ભકતી કરના
હૃદય કમલમેં રામ સુમરલે, નહી કાલસે ડરના દરશન કરલે ,, ॥૩॥
નોબત વાજે નામકી, નીરભે નીશાને ચડીયા
કહે રવીદાસગુરૂ ભાંણ પ્રતાપે,અધર સીંઘાસન ચડીયા દરશન કરલે,, ॥૪॥

———:o:———

પદ ૩૦૩ **કાફી**

અનહદ લંધર વાગે, જેની સુરતા ગગનમાં ગાજે
ફકીર તારે દરવાજે ॥ દરવાજે ॥ ટેક ॥
નવરંગી તમે કંથા પહેરો, શબ્દની સીંગી વાગે
તન કર તીલક નામ કર છાપા, મન કર મંગલ ગાવે ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગલા પીંગલા સુખમના નાડી, તરવેણીકે તીરા
ગગન ગુફામાં બાંતર બારી, ત્યાં ઝગ મગ ઝળકે હીરા ,, ॥ ૨ ॥
સુન્ન શીખર પર સાયા બીરાજે, નીરખો નીરમળ મોતી
મહા શુન્નમાં હરી હજુરા, ત્યાં ઝગમગ ઝળકે જ્યોતી ,, ॥ ૩ ॥
ચંદા પ્રગટ્યા ભયા ઉજીયારા, નીકળી ગઇ સબ કાંઇ
નીજ ધામમાં નેજા ગાડીયા, ત્યારે ત્રુટી રંગ વધાઇ ,, ॥ ૪ ॥
આતમકુ પર આતમ મળીયા, અંત કહ્યા નવ જાઇ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે જીતી નીશાન ચઢાઇ ,, ॥ ૫ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૪ **પરજ**

સતગુરૂજીનારે સુરા તખત પર પહોંચેગા નર પુરાજી ॥ ટેક ॥
નાભી કમળસે નટવા ચઢીયારે, અધર દીયારે ઉતારારે
સુરતા સોહાગણ ચઢીરે ગગનપર, ત્યાં રહે સતગુરૂ મેરાજી ॥ ૧ ॥
અધર તખતપર હીરા જડીયારે, લાલ સફેદ રંગ પીળારે
તરવેણીમાં દેખ્યારે તમાસા, હંસા પાયા હીરાજી ॥ ૨ ॥
ખટ દરશનકા ખેલ છે ન્યારા, દુબધા હો રહ્યા દુરારે
ચારે વેદમાં જે નર સમજ્યા, નાહ્યા નીરમલ નીરાજી ॥ ૩ ॥
જમી અસ્માનકા લગ્યારે જલેસા, પાયા પાયાલા ગુરૂવેં પુરારે
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે, સમજ સમજ મન મેરાજી ॥ ૪ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૫ **પરજ**

ભજન હુંદી એ ટંકસાળ જીવે રામરે શબ્દ હુંદી એ
ટંકસાળરે જીવે રામ, રામતો ભજનસેં મેરે ખુબ લગીહે ॥ ટેક ॥

સતકી સુમરની હાથ પકડલે, ભાવસે ભકતી કરના
હૃદય કમલમેં રામ સુમરલે, નહી કાલસે ડરના દરશન કરલે ,, ॥૩॥
નોબત વાજે નામકી, નીરભે નીશાને ચડીયા
કહે રવીદાસગુરૂ ભાંણુ પ્રતાપે,અધરસીંઘાસન ચડીયા દરશન કરલે,, ॥૪॥

———:o:———

પદ ૩૦૩ કાફી

અનહદ લંઘર વાગે, જેની સુરતા ગગનમાં ગાજે
ફકીર તારે દરવાજે ॥ દરવાજે ॥ ટેક ॥
નવરંગી તમે કંથા પહેરો, શબ્દની સીંગી વાગે
તન કર તીલક નામ કર છાપા, મન કર મંગલ ગાવે ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગલા પીંગલા સુખમના નાડી, તરવેણીકે તીરા
ગગન ગુફામાં બાંતર બારી, ત્યાં ઝગ મગ ઝળકે હીરા ,, ॥ ૨ ॥
સુન્ન શીખર પર સજ્યા બીરાજે, નીરખો નીરમળ મોતી
મહા શુન્નમાં હરી હજુરા, ત્યાં ઝગમગ ઝળકે જ્યોતી ,, ॥ ૩ ॥
ચંદા પ્રગટ્યા ભયા ઉજીયારા, નીકળી ગઇ સબ કાઇ
નીજ ધામમાં નેજા ગાડીયા, ત્યારે ફુટી રંગ વધાઇ ,, ॥ ૪ ॥
આતમકુ પર આતમ મળીયા, અંત કહ્યા નવ જાઇ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણુ પ્રતાપે જીતી નીશાન ચડાઇ ,, ॥ ૫ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૪ પરજ

સતગુરૂજીનારે સુરા તખત પર પહોંચેગા નર પુરાજી ॥ ટેક ॥
નાભી કમળસે નટવા ચઢીયાર, અધર દીયારે ઉતારારે
સુરતા સોહાગણ ચઢીર ગગનપર, ત્યાં રહે સતગુરૂ મેરાજી ॥ ૧ ॥
અધર તખતપર હીરા જડીયારે, લાલ સફેદ રંગ પીળારે
તરવેણીમાં દેખ્યારે તમાસા, હંસા પાયા હીરાજી ॥ ૨ ॥
ખટ દરશનકા ખેલ છે ન્યારા, દુબધા હો રહ્યા દુરારે
ચારે વેદમાં જે નર સમજ્યા, નાહ્યા નીરમલ નીરાજી ॥ ૩ ॥
જમી અસ્માનકા લગ્યારે જલેસા, પાયા પાયાલા ગુરૂવેં પુરારે
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણુ પ્રતાપે, સમજ સમજ મન મેરાજી ॥ ૪ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૫ પરજ

ભજન હુંડી એ ટંકસાળ જીવે રામરે શબ્દ હુંડી એ
ટંકસાળરે જીવે રામ, રામતો ભજનસેં મેરે ખુબ લગીહે ॥ ટેક ॥

સતકી સુમરની હાથ પકડલે, ભાવસે ભકતી કરના
હૃદય કમલમેં રામ સુમરલે, નહી કાલસે ડરના દરશન કરલે ,, ॥૩॥
નોબત વાજે નામકી, નીરભે નીશાને ચડાયા
કહે રવીદાસ ગુરૂ ભાંણ પ્રતાપે, અધર સીંધાસન ચડાયા દરશન કરલે,, ॥૪॥

———:o:———

પદ ૩૦૩ કાફી

અનહદ લંઘર વાગે, જેની સુરતા ગગનમાં ગાજે
ફકીર તારે દરવાજે ॥ દરવાજે ॥ ટેક ॥
નવરંગી તમે કંથા પહેરો, શબ્દની સીંગી વાગે
તન કર તીલક નામ કર છાપા, મન કર મંગલ ગાવે ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગલા પીંગલા સુખમના નાડી, તરવેણીકે તીરા
ગગન ગુફામાં બાંતર બારી, ત્યાં ઝગ મગ ઝળકે હીરા ,, ॥ ૨ ॥
સુન્ન શીખર પર સજ્યા બીરાજે, નીરખો નીરમળ મોતી
મહા શુન્નમાં હરી હજુરા, ત્યાં ઝગમગ ઝળકે જ્યોતી ,, ॥ ૩ ॥
ચંદા પ્રગટ્યા ભયા ઉજીયારા, નીકળી ગઇ સબ કાઇ
નીજ ધામમાં નેજા ગાડીયા, ત્યારે ફુટી રંગ વધાઇ ,, ॥ ૪ ॥
આતમકુ પર આતમ મળીયા, અંત કહ્યા નવ જાઇ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે જીતી નીશાન ચઢાઇ ,, ॥ ૫ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૪ પરજ

સતગુરૂજીનારે સુરા તખત પર પહોંચેગા નર પુરાજી ॥ ટેક ॥
નાભી કમળસે નટવા ચઢીયારે, અધર દીયારે ઉતારારે
સુરતા સોહાગણ ચઢીરે ગગનપર, ત્યાં રહે સતગુરૂ મેરાજી ॥ ૧ ॥
અધર તખતપર હીરા જડીયારે, લાલ સફેદ રંગ પીળારે
તરવેણીમાં દેખ્યારે તમાસા, હંસા પાયા હીરાજી ॥ ૨ ॥
ખટ દરશનકા ખેલ છે ન્યારા, દુબધા હો રહ્યા દુરારે
ચારે વેદમાં જે નર સમજ્યા, નાહ્યા નીરમલ નીરાજી ॥ ૩ ॥
જમી અસ્માનકા લગ્યારે જલેસા, પાયા પાયાલા ગુરૂવેં પુરારે
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે, સમજ સમજ મન મેરાજી ॥ ૪ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૫ પરજ

ભજન હુંડી એ ટંકસાળ જીવે રામરે શબ્દ હુંડી એ
ટંકસાળરે જીવે રામ, રામતો ભજનસેં મેરે ખુબ લગીહે ॥ ટેક ॥

સતકી સુમરની હાથ પકડલે, ભાવસે ભકતી કરના
હૃદય કમલમેં રામ સુમરલે, નહી કાલસે ડરના દરશન કરલે ,, ॥૩॥
નોબત વાજે નામકી, નીરભે નીશાને ચડીયા
કહે રવીદાસગુરૂ ભાંણુ પ્રતાપે,અધરસીંધાસન ચડીયા દરશન કરલે,, ॥૪॥

———:o:———

પદ ૩૦૩ કાફી

અનહદ લંધર વાગે, જેની સુરતા ગગનમાં ગાજે
ફકીર તારે દરવાજે ॥ દરવાજે ॥ ટેક ॥
નવરંગી તમે કંથા પહેરો, શબ્દની સીંગી વાગે
તન કર તીલક નામ કર છાપા, મન કર મંગલ ગાવે ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગલા પીંગલા સુખમના નાડી, તરવેણીકે તીરા
ગગન ગુફામાં બાંતર બારી, ત્યાં ઝગ મગ ઝળકે હીરા ,, ॥ ૨ ॥
સુન્ન શીખર પર સજ્યા બીરાજે, નીરખો નીરમળ મોતી
મહા શુન્નમાં હરી હજુરા, ત્યાં ઝગમગ ઝળકે જ્યોતી ,, ॥ ૩ ॥
ચંદા પ્રગટ્યા ભયા ઉજીયારા, નીકળી ગઇ સબ કાઇ
નીજ ધામમાં નેજા ગાડીયા, ત્યારે ફુટી રંગ વધાઇ ,, ॥ ૪ ॥
આતમકુ પર આતમ મળીયા, અંત કહ્યા નવ જાઇ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણુ પ્રતાપે જીતી નીશાન ચઢાઇ ,, ॥ ૫ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૪ પરજ

સતગુરૂજીનારે સુરા તખત પર પહોંચેગા નર પુરાજી ॥ ટેક ॥
નાભી કમળસે નટવા ચઢીયારે, અધર દીયારે ઉતારારે
સુરતા સોહાગણ ચઢીર ગગનપર, ત્યાં રહે સતગુર મેરાજી ॥ ૧ ॥
અધર તખતપર હીરા જડીયારે, લાલ સફેદ રંગ પીળારે
તરવેણીમાં દેખ્યારે તમાસા, હંસા પાયા હીરાજી ॥ ૨ ॥
ખટ દરશનકા ખેલ છે ન્યારા, દુબધા હો રહ્યા દુરારે
ચારે વેદમાં જે નર સમજ્યા, નાહ્યા નીરમલ નીરાજી ॥ ૩ ॥
જમી અસ્માનકા લગ્યારે જલેસા, પાયા પાયાલા ગુરૂવેં પુરારે
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણુ પ્રતાપે, સમજ સમજ મન મેરાજી ॥ ૪ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૫ પરજ

ભજન હુંડી એ ટંકસાળ જીવે રામરે શબ્દ હુંડી એ
ટંકસાળરે જીવે રામ, રામતો ભજનસેં મેરે ખુબ લગીહે ॥ ટેક ॥

સતકી સુમરની હાથ પકડલે, ભાવસે ભકતી કરના
હૃદય કમલમેં રામ સુમરલે, નહી કાલસે ડરના દરશન કરલે ,, ॥૩॥
નોબત વાજે નામકી, નીરભે નીશાને ચડીયા
કહે રવીદાસગુરૂ ભાંણ પ્રતાપે,અધરસીંધાસન ચડીયા દરશન કરલે,, ॥૪॥

———:o:———

પદ ૩૦૩ **કાફી**

અનહદ લંઘર વાગે, જેની સુરતા ગગનમાં ગાજે
ફકીર તારે દરવાજે ॥ દરવાજે ॥ ટેક ॥
નવરંગી તમે કંથા પહેરો, શબ્દની સીંગી વાગે
તન કર તીલક નામ કર છાપા, મન કર મંગલ ગાવે ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગલા પીંગલા સુખમના નાડી, તરવેણીકે તીરા
ગગન ગુફામાં ભીતર બારી, ત્યાં ઝગ મગ ઝળકે હીરા ,, ॥ ૨ ॥
સુન્ન શીખર પર સજ્યા બીરાજે, નીરખો નીરમળ મોતી
મહા શુન્નમાં હરી હજુરા, ત્યાં ઝગમગ ઝળકે જ્યોતી ,, ॥ ૩ ॥
ચંદા પ્રગટ્યા ભયા ઊજીયારા, નીકળી ગઇ સબ ઝાંઇ
નીજ ધામમાં નેજા ગાડીયા, ત્યારે ત્રુટી રંગ વધાઇ ,, ॥ ૪ ॥
આતમકુ પર આતમ મળીયા, અંત કહ્યા નવ જાઇ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે જીતી નીશાન ચઢાઇ ,, ॥ ૫ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૪ **પરજ**

સતગુરૂજીનારે સુરા તખત પર પહોંચેગા નર પુરાજી ॥ ટેક ॥
નાભી કમળસે નટવા ચઢીયારે, અધર દીયારે ઊતારારે
સુરતા સોહાગણ ચઢીરે ગગનપર, ત્યાં રહે સતગુરૂ મેરાજી ॥ ૧ ॥
અધર તખતપર હીરા જડીયારે, લાલ સફેદ રંગ પીળારે
તરવેણીમાં દેખ્યારે તમાસા, હંસા પાયા હીરાજી ॥ ૨ ॥
ખટ દરશનકા ખેલ છે ન્યારા, દુબધા હો રહ્યા દુરારે
ચારે વેદમાં જે નર સમજ્યા, નાહ્યા નીરમલ નીરાજી ॥ ૩ ॥
જમી અસ્માનકા લગ્યારે જલેસા, પાયા પાયાલા ગુરૂવેં પુરારે
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે, સમજ સમજ મન મેરાજી ॥ ૪ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૫ **પરજ**

ભજન હુંડી એ ટંકસાળ જીવે રામરે શબ્દ હુંડી એ
ટંકસાળરે જીવે રામ, રામતો ભજનસેં મેરે ખુબ લગીહે ॥ ટેક ॥

સતકી સુમરની હાથ પકડલે, ભાવસે ભકતી કરના
હૃદય કમલમેં રામ સુમરલે, નહી કાલસે ડરના દરશન કરલે ,, ॥૩॥
નોબત વાજે નામકી, નીરભે નીશાને ચડીયા
કહે રવીદાસગુરૂ ભાંણ પ્રતાપે,અધરસીંધાસન ચડીયા દરશન કરલે,, ॥૪॥

———:૦:———

પદ ૩૦૩ **કાફી**

અનહદ લંઘર વાગે, જેની સુરતા ગગનમાં ગાજે
ફકીર તારે દરવાજે ॥ દરવાજે ॥ ટેક ॥
નવરંગી તમે કંથા પહેરો, શબ્દની સીંગી વાગે
તન કર તીલક નામ કર છાપા, મન કર મંગલ ગાવે ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગલા પીંગલા સુખમના નાડી, તરવેણીકે તીરા
ગગન ગુફામાં બાંતર બારી, ત્યાં ઝગ મગ ઝળકે હીરા ,, ॥ ૨ ॥
સુન્ન શીખર પર સજ્યા બીરાજે, નીરખો નીરમળ મોતી
મહા શુન્નમાં હરી હજુરા, ત્યાં ઝગમગ ઝળકે જ્યોતી ,, ॥ ૩ ॥
ચંદા પ્રગટયા ભયા ઊજીયારા, નીકળી ગઇ સબ કાઇ
નીજ ધામમાં નેજા ગાડીયા, ત્યારે ફુટી રંગ વધાઇ ,, ॥ ૪ ॥
આતમકુ પર આતમ મળીયા, અંત કહ્યા નવ જાઇ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે જીતી નીશાન ચઢાઇ ,, ॥ ૫ ॥

———:૦:———

પદ ૩૦૪ **પરજ**

સતગુરૂજીનારે સુરા તખત પર પહોંચેગા નર પુરાજી ॥ ટેક ॥
નાભી કમળસે નટવા ચઢીયાર, અધર દીયારે ઉતારારે
સુરતા સોહાગણ ચઢીર ગગનપર, ત્યાં રહે સતગુરૂ મેરાજી ॥ ૧ ॥
અધર તખતપર હીરા જડીયારે, લાલ સફેદ રંગ પીળારે
તરવેણીમાં દેખ્યારે તમાસા, હંસા પાયા હીરાજી ॥ ૨ ॥
ખટ દરશનકા ખેલ છે ન્યારા, દુબધા હો રહ્યા દુરારે
ચારે વેદમાં જે નર સમજ્યા, નાહ્યા નીરમલ નીરાજી ॥ ૩ ॥
જમી અસ્માનકા લગ્યારે જલેસા, પાયા પાયાલા ગુરૂવેં પુરારે
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે, સમજ સમજ મન મેરાજી ॥ ૪ ॥

———:૦:———

પદ ૩૦૫ **પરજ**

ભજન હુંડી એ ટંકસાળ જીવે રામરે શબ્દ હુંડી એ
ટંકસાળરે જીવે રામ, રામતો ભજનસેં મેરે ખુબ લગીહે ॥ ટેક ॥

१. 'गीता' जुलाई-सितम्बर, १९४१ ।
२. 'सोरठना सिद्धो' पृ० १७७ ।
३. 'जनकल्याण' चूपसली अंक, १९६६ ।
४. प० प० सं०, पृ० १६४ ।

वागड़ की कागनोरा पहाड़ी की गुफा में बैठकर गुरु-शिष्य ने सत्संग किया तथा संतवाणी की रचना की थी। वहाँ से घर जाने पर माता-पिता ने भीम को अस्वीकार कर दिया।

कहते हैं, आमरण में एक वर्ष वर्षा नहीं हुई, तब भीम साहब ने रामसागर लेकर आराधना की, तब वर्षा हुई थी।

मेहेर करोने महाराज, प्रीतम आपोने पाणी।
भीम कहे मय वधी पड्यो, मेघ दो मही दाना दानी ॥

सं० १८४८ श्रावण शुक्ला प्रतिपदा को खूब वर्षा हुई थी।[1]

भीम ने कुछ पदों की रचना भी की है। उनके पदों में नामजप, रामनाम, आतमराम तथा निर्गुण-भक्ति का उपदेश होता है। उनका एक पद द्रष्टव्य है।

मैं तो अजब नाम पे वारी ॥
सुन ले सुखमन नारी, मैं तो अजब नाम पे वारी ॥
अजब नाम है सब से मोटा, सोच खोज संसारी।
परापार में अपरम देख्या, ऐसा आनन्दकारी ॥
ध्यान धर कर सद्गुरु शब्दे, हद बेहद बिचारी।
सुरता कर ले चौद भूवन में, अरस परस धुन प्यारी ॥
सहज शून्य में त्रिकुटि शून्य में, अखण्ड ज्योत उजियारी।
भीम साहब त्रिकम के चरणे, वेर वेर बलिहारी ॥[2]

मेघो खाचर—वह एक लुटेरा था। एक नवदंपति खीम साहब के दर्शन करने रापर जा रहे थे। मेघा ने उनको रोका, किन्तु उस नारी ने उन्हें उपदेश दिया, कि "हम खीम साहब के दर्शन को जाते हैं, तू भी क्यों नहीं चलता ?" वे चले गये, किन्तु मेघा के दिल में एक हलचल छोड़ गये। अन्त में उसने भी खीम साहब के पास जाकर उपदेश सुना, तथा एक वदनीय संत बन गया।[3] उनके विषय में सौराष्ट्र में एक सोरठा प्रचलित है।

मेघा खाचर खीम सद्गुरु का बालका।
भांगी भवजल जीत, ओर नहीं कालका ॥

भक्तिराम—कानम प्रदेश में एक रावल भगत के घर खीम के आशीर्वाद से एक पुत्र हुआ था, उनका भक्तिराम नाम रखा गया। कहते हैं, उनको अन्ते

१. सौराष्ट्रना संतो, पृ० १६५ ।
२. प० प० सं०, पृ० २८७ ।
३. 'गीता धर्म' पत्रिका (काशी) अक्टूबर, १९४६ ।

१. प्रा० का० मा० ग्रं० १०, पृ० १२० ।

पक्का पंडित ।" जगाजी ने कहा था कि सब साधनाओं में श्रेष्ठ 'नामस्मरण' है ।

सकल साधना में शिरोमणि नाम, जनहि जगाकु सहज काम । —जगाजी

जीवणजी ने नाम को ही सब कुछ कहा है ।

नाम ही सेवा, नाम ही पूजा, नाम बिना देव और न दूजा ।
नाम लेत सेवा सब आई, नाम बिना नहीं आन उपाई ।।

—जीवणजी

भीम साहब नाम पर वारी गये हैं । प्रभुदास नाम के दीवाने हो गये हैं ।

सुन ले सुखमन नारी, मैं तो अजब 'नाम' पे वारी ।

—भीमसाहब

मैं दीवाना नाम का, मोहे पिव-मिलन की आश ।
अब तो मिलि हो जायके, जहां गुरु निर्मलदास ।। —प्रभुदास

सहज साधना :—संतवाणी में यौगिक प्रक्रिया का वर्णन है, किन्तु सभी संतों ने सहज-साधना का ही समर्थन किया है ।

इंगला, पिंगला, सुसुम्ना, स्हेजे स्हेज घर पाया । —भाणसाहब

सहजे आवे ने सहजे जावे, सहज सुमिरन पावे । —कल्याणदास

हरिने पामवा सहु तप करे, अखो हरिमां मेले फरे । —अखाजी

समाज :—कबीर के अनुकरण में संतों ने अपनी वाणी द्वारा समाज-सुधार का गुरुतर कार्य किया है । उन्होंने वर्णाश्रम, हिन्दू-मुस्लिम भेद, मन्दिर, मूर्ति, मिथ्याचार आदि का घोर विरोध किया । समाज के दम्भ का पर्दाफाश किया । उन्होंने स्वयं अपने संत-समाज में प्रवर्तित दम्भ को भी खुला कर दिया ।

दंभ :—

बाहिर संत कहावत सज्जन, भीतर मन दूजो बतलावे ।
गुण न दोष लिये संग डोलत, छांड़ि आराध विरोध कमावे ।
कोई को निंदत, कोई को वंदत, थाप-उथाप भूले भरमावे ।
आतम-ब्रह्म चिन्या बिन मूरख, धनी को छोड़ के धक्का खावे ।
लाल कहे सत्‌नाम सही कर, आपमें खोजते, आपमें पावे ।।

—लालसाहब

गुजराती के प्राचीन कवि मांडण ने भी ऐसे संतों को "बगुला भगत" कहा था ।

સતકી સુમરની હાથ પકડલે, ભાવસે ભકતી કરના
હૃદય કમલમેં રામ સુમરલે, નહી કાલસે ડરના દરશન કરલે ,, ॥૩॥
નોબત વાજે નામકી, નીરભે નીશાને ચડીયા
કહે રવીદાસગુરૂ ભાંણ પ્રતાપે,અધરસીંધાસન ચડીયા દરશન કરલે,, ॥૪॥

———:o:———

પદ ૩૦૩ કાફી

અનહદ લંગર વાગે, જેની સુરતા ગગનમાં ગાજે
ફકીર તારે દરવાજે ॥ દરવાજે ॥ ટેક ॥
નવરંગી તમે કંથા પહેરો, શબ્દની સીંગી વાગે
તન કર તીલક નામ કર છાપા, મન કર મંગલ ગાવે ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગલા પીંગલા સુખમના નાડી, તરવેણીકે તીરા
ગગન ગુફામાં બાંતર બારી, ત્યાં ઝગ મગ ઝળકે હીરા ,, ॥ ૨ ॥
સુન્ન શીખર પર સહ્યા બીરાજે, નીરખો નીરમળ મોતી
મહા શુન્નમાં હરી હજુરા, ત્યાં ઝગમગ ઝળકે જ્યોતી ,, ॥ ૩ ॥
ચંદા પ્રગટ્યા ભયા ઉજીયારા, નીકળી ગઇ સબ કાઇ
નીજ ધામમાં નેજા ગાડીયા, ત્યારે ત્રુટી રંગ વધાઇ ,, ॥ ૪ ॥
આતમકુ પર આતમ મળીયા, અંત કહ્યા નવ જાઇ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે જીતી નીશાન ચઢાઇ ,, ॥ ૫ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૪ પરજ

સતગુરૂજીનારે સુરા તખત પર પહોંચેગા નર પુરાજી ॥ ટેક ॥
નાભી કમળસે નટવા ચઢીયાર, અધર દીયારે ઉતારારે
સુરતા સોહાગણ ચઢીર ગગનપર, ત્યાં રહે સતગુરૂ મેરાજી ॥ ૧ ॥
અધર તખતપર હીરા જડીયારે, લાલ સફેદ રંગ પીળારે
તરવેણીમાં દેખ્યારે તમાસા, હંસા પાયા હીરાજી ॥ ૨ ॥
ખટ દરશનકા ખેલ છે ન્યારા, દુબધા હો રહ્યા દુરારે
ચારે વેદમાં જે નર સમજ્યા, નાહ્યા નીરમલ નીરાજી ॥ ૩ ॥
જમી અસ્માનકા લગ્યારે જલેસા, પાયા પાયાલા ગુરૂવેં પુરારે
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે, સમજ સમજ મન મેરાજી ॥ ૪ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૫ પરજ

ભજન હુંડી એ ટંકસાળ જીવે રામરે શબ્દ હુંડી એ
ટંકસાળરે જીવે રામ, રામતો ભજનસેં મેરે ખુબ લગીહે ॥ ટેક ॥

काजी अनवर मीयां 'ज्ञानी'

भजन ५

साधु आतम सिद्धि करो

साधु आतम सिद्धि करो, सभी सिद्धि को तम बिसरो ॥ टेक
'अग्नि खावे अग्नि में न्हावे, अग्नि में करे पथारी रे भाइ,
अग्नि होकर अग्नि में मिल जाय फिर निकले सिद्ध भारी ॥ साधु०
जल मे घुसकर कोरे निकले, जल पर चलने लागे रे भाइ,
जल मे जाकर जल बन जावे फिर जल मे से जागे ॥ साधु०
पवन पै चाले पवन पर बैठे पवन पर अद्धर सोवे रे भाइ,
पवन में मिलकर पवन हो जावे फिरकर परगट होवे ॥ साधु०
मिट्टी मे मिलकर मिट्टी हो जावे, मिट्टी बीच समावे रे भाइ,
यहाँ समावे कहीं जा निकले फिर यहां पर आवे ॥ साधु०

आकाश मे जा अलोप हो जावे जड न रहेवे काया रे भाइ,
शस्त्र कोई चले नही उस पर तब वो सिद्ध कहाया ॥ साधु०
एक शरीर के अनेक बनावे, ज्या धारे वहां जावे रे भाइ,
जो कुछ मोसे वचन निकाले, आंहो तुरत हो जावे ॥ साधु०
तब हम उसको सिद्ध विचारे और सिद्ध सब खोटो रे भाइ,
दुनिया भीतर ढोंग चलावे बात बनावे [illegible] ॥ सा[illegible]
तीन काल की बात बतावे, चौदे लोककी जा[illegible]
अपनी काया अमर राखे, तब सिद्धि परमाने ॥ साधु०
रिद्धि सिद्धि छोड के सतो, आत्म ज्ञान विचारो रे भाइ,
अपने स्वरूप को आप पिछानो और अपना भव तारो ॥ साधु०
जन्म मरण फिर नही है सतो, ज्ञानी कहेते वाणी रे भाइ,
इस पिंजर से जिस दिन छूटे, फिर नही आवे प्राणी ॥ साधु०

—अनवर काव्य, पृ० १

भजन १४

तेरा भेद सभी न्यारा

तेरा भेद सभी न्यारा तेरे बिन नहीं कोई प्यारा। टेक

—वही, पृ० २१७

पद १—भजन

यक नाल रस पिया, योगेश्वर यक नाल रस पिया। टेक
पिया अमीरस अमर भया, त्रिपुटी तकिया किया। योगेश्वर० १
तृषा तन में आप पिवन की, ले लगनी सें लिया,
मन मगन भया चढी खुमारी, त्यारे रोमरोम रम रह्या॥ योगेश्वर० २
नाभिकमल मे उलटा पवना, डेरा दिल पर दिया।
खट चक्र भेदिने चढिया, जब घर गगन मे किया॥ योगेश्वर० ३
अधर तख्त पर सतगुरु मेरा, नुरत सुरत ने लिया।
नूर निरजन नजरे निरख्या, त्यारे दरस देदार भया॥ योगेश्वर० ४

अणी अगर पर आसन करीने, भजन करे भय गया।
दास अरजण संत जीवण चरणे, राम रस भरीने पिया॥ योगेश्वर० ५
—भजन सार सिन्धु, पृ० १४

मनोहरदास

पद १—राग जंगलो

एक निरंजन सब जग स्वामी सच्चिदानन्द। एक० टेक
जाकी शक्ति प्रताप तें रचत बिरंची लोक।
विष्णु पालत हरत शिव, आप सदा अशोक॥ एक० १
सूर्य प्रकाशत सकल को, अमृत पोखत अंन।
मेघ वृष्टि बहु करत है, सबको देत अनंत॥ एक० २
पवन जीवावत प्रान कों, अग्नि पचावत अंन।
पान करावत जल अवनि देत, विविध भोजन्न॥ एक० ३
जाकि अविद्या शक्ति में, देव मनुज पशु जाति।
आवागमन करते सबे, विलसत है बहु भांति॥ एक० ४
देखत बोलत सुनत सब, समज करत बहु काम।
पावत सब शुभ अशुभ फल, भटकत है बहु धाम॥ एक० ५
आप सदा निर्लेप है, सबको साक्षी रूप।
सचराचर व्यापक अजर, अमर अनंत अनूप॥ एक० ६
सो स्वरूप जो समझ ही, भेद रहित अविनाश।
मनहर खेलत मग्न हो, छूटत माया पाश॥ एक० ७

अम्मर जोत जलाया रे, अवदु आतमहीरा उडाया ! टेक
अंध असमानो अगोचर धरमां, सतगुरु सूर उगाया।
अवदु आतम हीरा उडाया ॥
आसन तरकुटी अधर अनोपम, तरवेणी तीरमां न्हाया।
दिल रे मंदिरमां दरशन दीठां, नाम रूप नरखाया।
अवदु आतम हीरा उडाया !
नाभी नगरमांय गुंज गलन है, प्रेमना पाया रोपाया।
रोम-रोम वह व्यापिक वामें, सुन शिखर पर आया।
अवदु आतम हीरा उडाया !
ज्ञान दीपक दिवी देह पर मूक्यो, घन-वन शोध चलाया।
आवुगिरि गढ भीतर जातां, उनमुन अम्मर आया ॥
अवदु आतम हीरा उडाया।

---
[1] बरगद, [2] देखो

अनहद वाजा विरोधी रे वागे[1], सुरताए ताल बजाया।
नरत करी नर नाम अनामी, बक नार सें अगाया।
अवदु आतम हीरा उडाया !
आतम अरजुन ज्ञान गुरू का, लेकर अम्मर ओडाया।
भाव बिना भव दुःख न भांगे, प्रेम करो पद गाया।
अवदु आतम हीरा उडाया !
—वही, पृ० २१

कोई बडा बाजीगर आया ! नहि जादु नहि जूठ।
जगत मे अजबी इलम लगाया ! टेक
नहि नोबत नहि नाद नगारा, नटवी नाच नचाया,
नहि मतर नहि ततर जतर, छतरीश[2] राग सुनाया। कोई०
सन मुन एक तत बनाया, तत मे पच मिलाया,
सेवा साधन बिन आराधन, कोटिक बन रही काया। कोई०
नहि बुंद नहि बीज चीज बिन जमी असमान जमाया,
नहि सूरज चदा कु पमा, अधरोअधर चलाया ॥ कोई०
नहि बादल घनघोर गगन मे, अनहद धन बरसाया,
नहि ऋतु तरुवर तिन घूना पेर पेर पाक पकाया। कोई०
क्या से आवे क्या उड जावे, भूल्या जग भरमाय,
पडित काजी करे जक[2] झाम्बी[3], नहि परपन परखाया। कोई०
एक पलक मे खलक बनाया अलख मे सकल बनाया,
अरजुन उसमे क्या जग जाने, अकलित खेल खेलाया। कोई०
—वही, पृ० २२

मेरे गुरु बताया गली, से वागन चकला मुकी चली। टेक
चली पवन की ल्हेरी सुरता-सागरमायी छली,
पवन गया फिर मिट गई ल्हेरी, महासागर बिच मली। सेवा०
तरुवर मे नहि ततु जतु, क्या[4] से निकली कली ?
मनवा माली बहुत मथे, फल जाता आवो फली। सेवा०
सतगुरु मणि बाग बनाया, बोय पारस पीपली,
कल्पतरु कु फल आया, क्या करू आवा[5] आवली[6] ? सेवा०
न्हाना धोना लखना पढना, ठाली परपच टली,
एक अगनी ज्या प्रगट भई, जगल की लकडी जली। सेवा०

---
[1] बाजे, [2] छतीस, [3] बहुत, [4] कहाँ, [5] आम, [6] इमली,

पद ६१—राग होरी

विभु देव वसन्त विहारी, मन मोहन मंगल कारी। टेक
दिव्य स्वरूप अनन्त शक्ति धर, साजनहार सुखकारी।
निरालम्ब, निर्लेप, निरंजन, चैतन्यमय अविकारी।
अजब गति नाथ तिहारी॥ विभु देव० १
इच्छा से ब्रह्मांड बनाये, गुनमय तत्त्व पसारी।
सरजे पाले और संहारे, निरखो कला कछु न्यारी।
ब्रह्म को महिमा भारी॥ विभु देव० २
स्थावर जंगम जातु जात की, रमणिक रचना न्यारी।
रूप रङ्ग आकार अनुपम, निरखी गये नर हारी।
धन्य तुं बहु गुन धारी॥ विभु देव० ३
ललित खेल लीलासें कीनो, मुनि मन मोहन कारी।
जन छोटम ऐसा प्रभुजी कों, बारम्बार बलिहारी।
ध्यान उर लीनो धारी॥ विभु देव० ४

—वही, पृ० १७६

पद ६२—राग होरी

खेले कोइ आनन्द होरी, ओंकार तार ग्रही दोरी। टेक
इनमें गंगा इनमें जमुना, बीच में खेल मचोरी।
देव सकल तिहां देखन आये, स्तवन करत कर जोरी।
दुरमद दानव टोरी॥ खेले० १
बिन करताल मृदंग बजावत, बिन मुख गावत होरी।
बिन तनु तान मिलावत अद्‌भुत, अटको[1] दृष्टि सब छोरी।
चित चिदरूप भयोरी॥ खेले० २
विश्वनिवास विशाल विमल गुण, अचल रह्यो एक ठोरी।
ताको ध्यान धरत दृढ मन सें, पातक पुंज गयोरी॥
पुन्य को उदय भयोरी॥ खेले० ३
सरजनहार सदोहित सुन्दर, व्यापक देव रह्योरी।
जन छोटम परसद वा पदकुं, तिहां मन मग्न भयोरी॥
भरम सब दुर गयोरी॥ खेले० ४

—वही, पृ० १७६

---

[1] रुकी

पद ३४—राग वही

अलख नाम धुन लागी गगन में, मगन भया मन मेरा जी। टेक
आसन मारी सुरत दृढ धारी, दिया अगम घर डेरा जी ॥ १
इंगला पिंगला दोनुं छांड के, सुक्षमणा मध्ये धारा जी।
तरवेणी मे तार मेलाइ, अजपा नाम उचारा जी ॥ २
जंत्र अनाहद बाजे अहोनिश, होत नाद झनकारा जी।
घन बिन अद्भुत होत गर्जना, बरसे अमृत धारा जी ॥ ३
कोटि-कोटि रवि शशि की शोभा, झगमग ज्योति उजाराजी।
जन छोटम सद्गुरु प्रतापे, दरस्या अलख दीदारा जी ॥ ४

—वही, पृ० २६१

पद ४८—कीर्तन राग वही

समरण सोहं का सोहं का, ज्यां बजे अनहद डंका। टेक
आसन बांधी सुरती सांधी, चतुर दिल चित लाया।
मुलाधार पृथ्वी रङ्ग पीला, देव गणपति राया ॥ समरन० १
अक्षर चार विचारो ईन मे, वंश पस वरणा।
खट शो जाप अजपा जपकं, उनकुं अरपण करणा ॥ समरन० २
उतपत द्वारा खटदल सारा, श्वेत रङ्ग जल जान्या।
चतुरानन की ज्योति जगाइ, खटहजार दीया दाना ॥ समरन० ३
खटदल में खट अक्षर देखो, बं भं मं का वासा।
से हुं लक लखो लक्ष सें, खेल बन्या है खासा ॥ समरन० ४
नाभि सरोजा दस दल खोजा, तेज तत्त्व का तापा।
लाल रङ्ग में लक्ष्मी नायक, खट हजार जहाँ जापा ॥ समरन० ५
ड ढं णं तहां अक्षर दरसा, तं थं दं धं वासा।
नं पं फं कु फिरकर पेख्या, कट्या कर्म का पासा ॥ समरन० ६
हृदे विचारा द्वादश आरा, शिव शक्ति का ठारा।
नील रङ्ग मारुत का मांही, झगमग ज्योति उजारा ॥ समरन० ७

खट हजार तहाँ जापे अरपनां, कं खं गं घं वरणा।
नं च छं जं जाहां निवासा, झं, ञं टं ठं ठरणा ॥ समरन० ८
कण्ठे कंजा षोड शरंजा, पत्र कह्या परमाना।
शम रङ्ग आकाश तत्वका, जीव ज्योति का ध्याना ॥ समरन० ९
सहस्र जाप तहाँ जपो अजंपा, षोडष वरण विचारा।
अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ए ऐ सारा ॥ समरन० १०
ओ औ अं अः उनके मांही, ए स्वर खटदश कहावे।
इनका ध्यान धरे नर जेही, सो भव जल मे नावे ॥ समरन० ११
भृकुटी चक्रे द्वे दल पतरे, वाके निर्मल रंगा।
हं क्षं अक्षर रहे निरन्तर, चिद् शक्ति के संगा ॥ समरन० १२
सहस जाप तहाँ करो निवेदन, परम तुरीपद तांही।
बजे अनाहद नाद निरन्तर, अमृत बरशे ज्यांही ॥ समरन० १३
ब्रह्मरंध का भेद अपारा, दल हजार तांहां दरसे।
सहस्र जाप तहां जपो जुगत सें, परम ज्योत कुं परसे ॥ समरन० १४
सब अक्षर अव्यक्त रहे तांहां, अकल अनोपम रंगा।
कोटिक रवि शशी तेज कहावे, परम पुरुष के संगा ॥ समरन० १५
उनके आगे लक्ष अलौकिक; सद्गुरु भेद बताया।
छोटम श्री गुरुदेव प्रतापे, अचल अभय पद पाया ॥ समरन० १६

—वही, पृ० ११६

पद ५

आत्मा निरख्यो रे निरवाण, आत्मा ॥ टेक
सत् गुरु के परताप, ज्ञान अनुभव उर जाग्या ।
परि उतर सद्गुरु कहे, जाको कला अनंत ।
वेद बुद्धि बुध ना लहे, समजत विरला सन्त ॥ आत्मा० १

नाभि पवन का मूल, मन अष्ट कमल दल माही ।
त्रिकुटी थाको स्थान, दोहू मील तहाँ समाई ॥
शब्द शून्य उठत हैं, पुन ही शून्य समाय ।
नाद लीन भयो बिंदु मे, बिंदु निरन्तर रहाय ॥ आत्मा० २
पंच तत्त्व के विषय, मिलि कर जीव कहाया ।
देह इंद्री मन प्राण, मान सोइ माहे बधाया ॥
साहू ब्रह्म अगाध है, लीपे छीपे नही सोय ।
घट घट परगट रम रह्या, चीने वीरला कोय ॥ आत्मा० ३
जीव की शक्ति अज्ञान, शिव की शक्ति माया ।
इन दोनो तें भिन्न, अखण्ड अद्वैत उजाया ॥
जीव शिव कहेवा नही, हम तुम नहीं कोइ राम ।
व्यतिरेक पद परमात्मा, निजानन्द निज धाम ॥ आत्मा० ४
ए सद्गुरु को देश, निगम नेती कर गावे,
ब्रह्मा विष्णु महेश, खोज कोइ पार न जावे ।
निजानन्द कु अनुभवी, नाम रूप को नाश,
ब्रह्म मग्न होइ बोली आ, अणछता रविदास ॥ आत्मा० ५

भोजो भगत पद—३

अब तो भजन करना मन भाई ।
कुटुंब कबीलो तारे काम नहि आवे, एक साचो राम सगाई ॥ अब तो०
भुखे जीवे धन भेलु कीधु, ठाशी भरियु पर साही ।
पा दमडी तारे संग नहि चाले, हाथ घसतो जाई ॥ अब तो०
काम क्रोध मोह मदमा मो ह्यो, पडी रे कर्म केरी काई ।
मर्दे घणा तेरे आरे मुनक्या, लुटी लेशे रे लुगाई ॥ अब तो०
आ तन तारो काल उडी जायगो, जैसे वटोलियो[1] वाई ।
अब का दायो फरि नहि आव, पछे[2] मन पछताई ॥ अब तो०
सर्व तीर्थ सद्गुरुजी ने चरणे, ले नित्य गंगाजल नाई ।
कालनो पास कदी नही लागे, आ तन अलभ्य पाई ॥ अब तो०
शु[3] सुतो तु चेत अभागी, आ देह ते उत्तम पाई ।
भो जो भक्त कहे गुरु प्रतापे, एक लेनी गोविन्द गुण गाई ॥ अब तो०

—बृहत्काव्य दोहन भाग ५, पृ० ६२६

भजन २३
अजब बना एक तारा

साधु अजब बना एक तारा हो जी,
जाका अलख बजावनहारा, मेरे संतो। अजब० टेक
साधु सुरता का तार नुरत की है खुंटी,
यामें सोहं शब्द जनकारा, मेरे संतो। अजब० १
साधु संत का है तुंबा सुखमण की है नालो,
यामें निश्चे नखो को समारा, मेरे संतो०। अजब० २

साधु शील की खाल संतोष की मेखा,
वामे ज्ञान घोडी का सहारा, मेरे सतो०। अजब० ३
साधु भजन धा रग भाव की है कलगी,
जामे हरि जनने ज्ञान विचारा, मेरे सतो। अजब० ४
साधु तार मिला के बजावन लागे,
बाजा तुंही तुंही का रण कारा, मेरे सतो। अजब० ५
ज्ञानी इस ही राग मे मगन होइ रहेते,
पीते प्रेम रस मन धारा, मेरे सतो०। अजब० ६

—वही, पृ० २९

भजन २५
हुवा मन मस्ताना

सुरत हमारी छेल छबीली, मनवा हमारा मस्ताना॥ टेक
सुरत हमारी शिखर चडी ओर,
देख अलख दरबार, हुवा मन मस्ताना॥ १
नव दरवाजे बंध किये ओर,
दशमा खुल गया द्वार, हुवा मन मस्ताना॥ २
पांच इन्द्रि को बस कर लीनी ओर,
गगने चडाया तार, हुवा मन मस्ताना॥ ३
ज्ञानी आपा विसर गये ओर,
देख लिया दिदार हुआ मन मस्ताना॥ ४

—वही, पृ० ३०

20:16

આરતી દ્વાદશ દેખ્યા, પરંછંત્ર સંપુરણ પેખ્યા ॥ ૨ ॥
...રી આરતી તીન ગુણ ત્યાગ્યા, સતશબ્દ સબ ઘટમે જાગ્યા ॥ ૩ ॥
ચોથી આરતી ચીત ભયા ચોખા, ભરમ કરમકા ભાગ્યા ધોખા ॥ ૪ ॥
...ા આરતી પીયા ઘર આયા, ગુરૂ પ્રતાપે ગગન જગાયા ॥ ૫ ॥
આરતી છોત મીટાયા, અગમ અગોચર ઘરમેં પાયા ॥ ૬ ॥
...મી આરતી સતગુત છાયા, અગમ તીરથકા પેડા પાયા ॥ ૭ ॥
...ઠમી આરતી જુઠ પસારા, રોમ રોમમે પરી બ્રહ્મ પ્યારા ॥ ૮ ॥
...મી આરતી નામ જપાયા, અનભે આપા અલખ લખાયા ॥ ૯ ॥
...મી આરતી દેવદળ જાગ્યા, જીવ શીવકા સંશય ભાગ્યા ॥ ૧૦ ॥
એકાદશમી આરતી સબ ઘટ દેખ્યા, સોહે સાહેબસો સબમાં પેખ્યા ॥ ૧૧ ॥
...રમી આરતી સુખ પ્રકાશા, ભાણ શબ્દ સતગુરૂકા દાસા ॥ ૧૨ ॥

———:o:———

સાખી

ભાણ કહે ભટકીશમાં, મથી જોને માંહી
સમજીને સુખ રહેતો, કરતું નથી કાંઇ ॥ ૧ ॥
...વે એ બીજો નહી, પરમેશ્વર પોતે
અજ્ઞાની તે આંધળો, અળગો જઇને ગોતે ॥ ૨ ॥
સાચુ નામ સાહેબનું, જુદું નહી જરાય
ભાણકહે ભજી લેતો, ભારે કામજ થાય ॥ ૩ ॥

———:o:———

શ્રી રાપરની જગ્યાનું ટુંક વૃતાંત.

———:o:———

વારાહીથી રાપર

પુજ્ય શ્રી ભાણ સાહેબના પુત્ર અને શીષ્ય શ્રી ખીમસાહેબ વારાહી

(1 of 265)

Favorite Share Flag

Ravibhan Ni Sampraday Ni Vani Pt.1

by Gujarat Vidyapith Library

Topics C-DAC

સતકી સુમરની હાથ પકડલે, ભાવસે ભકતી કરના
હ્રદય કમલમેં રામ સુમરલે, નહી કાલસે ડરના દરશન કરલે ,, ॥૩॥
નોબત વાજે નામકી, નીરભે નીશાને ચડીયા
કહે રવીદાસગુરૂ ભાંણ પ્રતાપે,અધરસીંઘાસન ચડીયા દરશન કરલે,, ॥૪॥

———:o:———

પદ ૩૦૩ કાફી

અનહદ લંગ્નર વાગે, જેની સુરતા ગગનમાં ગાજે
ફકીર તારે દરવાજે ॥ દરવાજે ॥ ટેક ॥
નવરંગી તમે કંથા પહેરો, શબ્દની સીંગી વાગે
તન કર તીલક નામ કર છાપા, મન કર મંગલ ગાવે ,, ॥ ૧ ॥
ઇંગલા પીંગલા સુખમના નાડી, તરવેણીકે તીરા
ગગન ગુફામાં બાંતર બારી, ત્યાં ઝગ મગ ઝળકે હીરા ,, ॥ ૨ ॥
સુન્ન શીખર પર સજ્યા બીરાજે, નીરખો નીરમળ મોતી
મહા શુન્નમાં હરી હજુરા, ત્યાં ઝગમગ ઝળકે જ્યોતી ,, ॥ ૩ ॥
ચંદા પ્રગટ્યા ભયા ઉજીયારા, નીકળી ગઇ સબ કાંઇ
નીજ ધામમાં નેજા ગાડીયા, ત્યારે ફુટી રંગ વધાઇ ,, ॥ ૪ ॥
આતમકુ પર આતમ મળીયા, અંત કહ્યા નવ જાઇ
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે જીતી નીશાન ચડાઇ ,, ॥ ૫ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૪ પરજ

સતગુરૂજીનારે સુરા તખત પર પહોંચેગા નર પુરાજી ॥ ટેક ॥
નાભી કમળસે નટવા ચઢીયારે, અધર દીયારે ઉતારારે
સુરતા સોહાગણ ચઢીરે ગગનપર, ત્યાં રહે સતગુરૂ મેરાજી ॥ ૧ ॥
અધર તખતપર હીરા જડીયારે, લાલ સફેદ રંગ પીળારે
તરવેણીમાં દેખ્યારે તમાસા, હંસા પાયા હીરાજી ॥ ૨ ॥
ખટ દરશનકા ખેલ છે ન્યારા, દુબધા હો રહ્યા દુરારે
ચારે વેદમાં જે નર સમજ્યા, નાહ્યા નીરમલ નીરાજી ॥ ૩ ॥
જમી અસ્માનકા લગ્યારે જલેસા, પાયા પાયાલા ગુરૂવેં પુરારે
કહે રવીરામ ગુરૂ ભાણ પ્રતાપે, સમજ સમજ મન મેરાજી ॥ ૪ ॥

———:o:———

પદ ૩૦૫ પરજ

ભજન હુંદી એ ટંકસાળ જીવે રામરે શબ્દ હુંદી એ
ટંકસાળરે જીવે રામ, રામતો ભજનસેં મેરે ખુબ લગીહે ॥ ટેક ॥

पंचमकारोंका भी प्रतीकके रूपमें महत्त्व है। पं० बलदेव उपाध्याय ने तांत्रिक ग्रन्थोंसे उद्धरण दे-देकर इन प्रतीकोंका रहस्योद्घाटन किया है।

मद्य—"मद्यका अर्थ यह बाहरी शराब नहीं है, प्रत्युत ब्रह्मरंध्रमें स्थित जो सहस्रदलकमल है, उससे सुधा क्षरित होती है, उसे ही मद्य कहते हैं। उसीको पीनेवाला व्यक्ति मद्यप कहलाता है। यह खेचरी मुद्राके द्वारा सिद्ध होता है। इसलिये तंत्रोंका कथन है—

---

* 'बौद्ध-दर्शन' (पृ० ४२२)—पं० बलदेव उपाध्याय।

† "मद्य मासञ्च मत्स्यञ्च मुद्रामैथुनमेवच।
मकारपञ्चकं देवि देवताप्रीतिकारकम् ॥"
—'श्री कुलार्णवतंत्र'।

"व्योमपंकज निस्यन्दसुधापानरतो नरः।
मधुपायी समः प्रोक्तस्त्वितरे मद्यपायिनः ॥"
—'कुलार्णव तंत्र'।

"जिह्वया गलसंयोगात् पिबेत् तदमृतं तदा।
योगिभिः पीयते तत्तु न मद्यं गौडपैष्टिकम् ॥"
—'गन्धर्वतंत्र'।

मांस—"जो पुरुष पुण्य और पाप-रूपी पशुओंको ज्ञान-रूपी खड्गके द्वारा मार डालता है, और अपने मनको ब्रह्ममें लीन करता है, वही मांसाहारी है"। 'कुलार्णव'का कथन है—

"पुण्यापुण्य पशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लयं नयेच्चित्तं मांसाशी स निगद्यते ॥"

मत्स्य—"शरीरस्थ इड़ा और पिंगला नाड़ियोंका नाम गंगा तथा यमुना है। इनमें प्रवाहित होनेवाले श्वास और प्रश्वास दो मत्स्य है। जो साधक प्राणायाम-द्वारा श्वास-प्रश्वास बन्द कर कुम्भकके द्वारा प्राण-वायुको सुषम्नाके भीतर संचालित करता है, वही यथार्थ मत्स्य-साधक है। 'आगमसारका'का कहना है—

"गंगायमुनयोर्मध्ये द्वौ मत्स्यौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेत् यस्तु सभवेन्मत्स्यसाधकः ॥"

मुद्रा—"सत्संगके प्रभावसे मुक्ति मिलती है, और असत् संगके प्रभाव से बन्धन प्राप्त होता है। इसी असत् संगके त्यागका नाम मुद्रा है। 'विजयतंत्र'का यही मत है—

"सत्संगेन भवेन्मुक्तिरसत्संगेषु बन्धनम्।
असत्संगमुद्रणं यत्तु तन्मुद्रा परिकीर्तिता ॥"

मैथुन—"मैथुनका अर्थ है 'मिलना'। किसका ? सहस्रारमें स्थित शिवका तथा कुण्डलिनीका, अथवा सुषुम्नाका तथा प्राणका। स्त्री-सहवाससे वीर्यपातके समय जो सुख मिलता है, उससे शतकोटिगुणित

अधिक सुख सुषुम्नामें प्राण-वायुके स्थित होनेसे होता है—

ईडापिंगलयोः प्राणान् सुषुम्णायां प्रवर्तयेत्।
सुषुम्णाशक्तिरुद्दिष्टा जीवोऽयं तु परः शिवः।
तयोस्तु संगमे देवैः सुरतं नामकीर्तनम् ॥" ×

६०	मध्यकालीन गुजराती साहित्य	आचार्य अनंतराय रावल मकमिलन कम्पनी, बम्बई।
६१	मध्यकालना साहित्य प्रकारो	डा० चन्द्रकान्त महेता एन एम त्रिपाठी प्रा० लि० बम्बई
६२	मीरांबाई एक मनन	डा० मंजुलाल मजमुदार म० स० वि० वि० बडौदा।
६३	रविभाण अने मोरारनी वाणी	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद।
६४	रविभाण सम्प्रदायनी वाणी	स० न० म० शास्त्री बम्बई।
६५	साहित्य प्रवेशिका	श्री हिंमतलाल ग० अजारिया एन० एम० त्रिपाठी प्रा० लि० बम्बई।
६६	सोरठी सन्तो	श्री झवेरचन्द मघाणी।
६७	सोराष्ट्र सव सग्रह	श्री नर्मदाशंकर सन् १८८८ ई०।
६८	सिद्धहेम	आचार्य हेमचन्द्राचार्य।
६९	सन्तोनी वाणी	स० भगवानजी महाराज सन् १९२० ई०।
७०	श्री अखाजीनी साखियो	स० व० ए० ठाकर।
७१	शाक्त सम्प्रदाय	दी० ब० नर्मदाशंकर द० महेता फार्बस गुजराती सभा बम्बई।

२८	चरोत्तर सब सग्रह (खेडा जिला)	स० नवमन प्रकाशन नडियाद ।
२९	छोटमनी वाणी (भाग १ से ३)	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद ।
३०	छोटमनी वाणी (भाग १ से ४)	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद
३१	छोटमकृत काव्य सग्रह (भाग १)	स० बसीलाल मणिलाल मेहता भक्त जीवाजी किशोरदास स्मारक ट्रस्टी मडल अहमदाबाद ।
३२	दिवाने सागर (भाग १ २)	श्री जगन्नाथ दामोदर त्रिपाठी प्र० जीवनलाल अमरसी महेता अहमदाबाद ।
३३	नवीन काव्य दोहन	प्र० तथा स० श्री विनयचद गुलाबचद शाह ।
३४	नभूवाणी	स० नरभेराम प्राणशकर भट्ट गुजराती प्रिंटिग प्रेस बम्बई ।
३५	नित्यान द चरितामृत	श्री कृष्णदत्त सूरि प्रणीत (अनु० मगलजी उद्धवजी) निजानद प्रेस जामनगर ।
३६	निरात काव्य	स० गापालराम शर्मा निरात मन्दिर बडौदा ।
३७	नृसिंह वाणी विलास (भाग १ से ३)	श्री नृसिंहाचार्य श्रेय साधक अधिकारी वर्ग अहमदाबाद ।
३८	परिचित पद सग्रह	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद ।
३९	पद सग्रह (सतराम महाराज)	श्री पुनाभाई नामलभाई सतराम मन्दिर नडियाद ।
४०	प्राचीन काव्य सुधा (भाग १ से ५)	स० छगनलाल विद्याराम रावल, प्र० हेमराज पुरुषोत्तम मावजी ।
४१	प्राचीन काव्य माला (भाग २)	(वखतपुराकृत कविता)

४२	प्राचीन काव्य माला (भाग ५)	(भाजाकृत कविता)
४३	प्राचीन काव्य माला (भाग ६)	(राधाबाईकृत कविता)
४४	प्राचीन काव्य माला (भाग ७)	(बापु साहबकृत कविता)
४५	प्राचीन काव्य माला (भाग १०)	(निरातकृत कविता)
४६	प्राचीन काव्य माला (भाग २३ से २५)	(धाराकृत कविता)
४७	प्राचीन काव्य	(त्रमासिक फाइलें)
४८	प्राचीन काव्य विनोद (भाग १)	प्र० फार्बस गुजराती ग्रन्थमाला बम्बई । सवत् १९४७ ।
४९	प्राचीन गुजराती छदो	श्री रामनारायण विश्वनाथ पाठक, गुजरात विद्या सभा अहमदाबाद ।
५०	प्रीतमदासना पदो	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद ।
५१	प्रीतमदासनी वाणी	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद ।
५२	महोत्सव ग्रन्थ	प्र० फार्बस गुजराती सभा बम्बई ।
५३	बुद्धि प्रकाश (मासिक)	अङ्क ८ अगस्त १९०१ ।
५४	बृहत पिंगल	श्री रामनारायण विश्वनाथ पाठक गुजरात साहित्य परिषद बम्बई । सन् १९५५ ई० ।
५५	बृहद काव्य दोहन (भाग १ से ८)	स० इच्छाराम सूर्यराम देसाई गुजराती प्रिंटिग प्रेस बम्बई ।
५६	भजन सागर (भाग १ २)	प्र० सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद ।
५७	भजनिक काव्य सग्रह	स० वृन्दावनदास कानजी ।

20:34
Akhani Vani (artho ...
archive.org
INTERNET ARCHIVE

કહે અખો ગુરુગમસેં, સંતો જુવો વિચારી જી;
અન્ય પદ ઇચ્છે નહિ, જેણે મમતાને મારી જી. સંતો૦ ૪

પદ ૧૨૫ મું

નૂરતસૂરત ચાલી શૂન્યમાં, મહાધૂનમાં મોઇ જી;
દેવચક્ષુ થઈ દોજણી, કળા કારમી જોઈ જી. નૂરત૦ ટેક.
નૂરીજન આગે નટડી, નિરાધારે ખેલે જી;
સૂરત ન ચૂકે સુંદરી, ધરણી પાવ ન મેલે જી. નૂરત૦ ૧

પદ ૧૨૪ મું : પૃથ્વી...દીવોજી=જમીન નથી, છતાં પગ ઠરાવવાનો છે; દિવેટ નથી છતાં દીવો પેટાવવાનો છે. નિરાધારમાં સ્થિતિ છે, નિરાલંબમાં પ્રકાશ છે. ચંદા નહિ...દીસે નહિ=એ બ્રહ્મધામમાં ચાંદાનો પ્રકાશ નથી, સૂરજનો પ્રકાશ નથી, નવલખ તારાનો પ્રકાશ નથી. ત્યાં દિવસ નથી, અને રાત નથી. ત્યાં તો અંપાર—અપરંપાર સ્વયંજ્યોત છે. સરખાવો **'न तत्र सूर्यो भाति, न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥'**

પદ ૧૨૫ મું : નૂરતસૂરત=લક્ષ—અલક્ષ, સગુણ—નિર્ગુણ. શૂન્ય=બ્રહ્મરન્ધ્રનું વાતાવરણ. મહાધૂન=સોહંની મહાન ધૂન. મોઇ=

તખ્ત ત્રિવેણી ત્યાગી કરી, ગુરુગમ પર આઈ જી,
નાથજી આગે નૃત્ય કરી, પદ્દા અમર લખાઈ જી. નૂરત૦ ૨
ગગનમંડલના ગોખમાં, અનહદ નાદ ઘુરાયા જી;
માવો વગાડે મીઠી મોરલી, અનભે ઘર પાયા જી. નૂરત૦ ૩
ઓહં સોહંની સીડીએ, સન્મુખ ઊભા સ્વામી જી;
કહે અખો ગુરુના દેશમાં, આપે આપ અનામી જી. નૂરત૦ ૪

(265 of 538)
Favorite Share Flag
Akhani Vani (artho Ni

09:58
07_chapter2

"येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारमनामयम्।

मुखेनाच्छाद्य तद् द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी॥" [34]

योग शास्त्र के अनुसार मनुष्य के शरीर में परम शक्तिशाली तीन तत्त्व होते हैं—बिन्दु, मन और प्राण। ये तीनों ही तत्त्व अतिशय चंचल होते हैं। इनकी चंचलता के कारण ही मनुष्य इनका यथोचित उपयोग नहीं कर पाता। गोरखनाथ के हठयोग में इन तीनों को नियंत्रित करने का उपदेश दिया गया है और उसके लिए साधना बतायी गयी है। गोरखनाथ के अनुसार बिन्दु (शुक्र) को योग के अभ्यास द्वारा अगर उर्ध्वमुखी किया जाए तो वायु और मन को आसानी से स्थिर किया जा सकता है। इस संदर्भ में अमरौघ शासन का संकेत करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी 'नाथ संप्रदाय' में लिखते हैं—"मेरूदण्ड के मूल में सूर्य और चन्द्र के बीच योनि में स्वयंभू लिंग है, जिसे पश्चिम लिंग कहते हैं। यही पुरुषों के शुक्र और स्त्रियों के रज स्खलन का मार्ग है। यही काम विषहर और निरंजन का स्थान है। वीर्यस्थल की दो अवस्थाएँ होती हैं। इन दोनों के पारिभाषिक नाम प्रलयकाल और विषकाल हैं। इन दो अवस्थाओं में जो आनंद होता है, वह घातक है। एक का अधिष्ठाता काम है और दूसरे का विषहर। तीसरी अवस्था नानाभाव -विनिर्मुक्त सहजानंद की अवस्था है, इसमें बिन्दु उर्ध्वमुख होकर ऊपर उठता है तब यह सहज समाधि प्राप्त होती है, जिसमें मन और प्राण अचंचल हो जाते हैं।" [35]

बिन्दु को उर्ध्वमुख करने के लिए ब्रह्मचर्य और प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है। इस अभ्यास के लिए नाड़ियों की शुद्धि आवश्यक होती है। नाड़ियों को प्रधानतः दो भागों में विभक्त किया गया है—

"इडा वामे स्थिता भागे पिंगला दक्षिणे स्थिता।

सुषुम्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वाम चक्षुषि॥" [36]

दक्षिणांग में व्याप्त नाड़ियाँ सूर्य का अंग है और वामभाग वाली चन्द्मा के अंग। इन दोनों के बीच सुषुम्ना है। जब योगी अभ्यास से चन्द्र और सूर्य मार्ग को बंद कर देता है तब उनमें बहने

वाली वायु शक्ति संयमित होकर योनिकर के मूल में स्थित सुषुम्ना की मध्यवर्तिनी ब्रह्म नाड़ी के मुख को खुला पाकर उस मार्ग से ऊपर रहती है।

षट्कर्म के माध्यम से सभी नाड़ियों की शुद्धि हो जाती है। ये षट्कर्म इस प्रकार हैं—धौति, बस्ती, नेती, त्राटक, नौलि और कपालभाति। गोरक्ष पद्धति के द्वितीय शतक के आरंभ में ही षट्कर्म विधि का वर्णन दिया गया है।

नाड़ी के शुद्ध हो जाने पर बिन्दु स्थिर हो जाता है। प्राण और मन स्थिर हो जाते हैं। जब कुंडलिनी उर्ध्वमुख हो जाती है, तब अनुभवी लोगों के अनुसार योगी को समुद्रगर्जन, मेघगर्जन, भेरी, शंख, घंटा आदि की आवाज सुनाई देती है। साधक का चित्त स्थिर हो जाने से यह आवाज सुनाई देना बंद हो जाता है।

કવિઓમાં કેવી સરસ રીતે વ્યકત થઈ છે તે જોઈએ તો ભાવદાજી નીચે પ્રમાણે કહે છે :

"તીન દેવકા મરમ ન પાવે, નાભીએ પવન ઠરાવે,
એ નાભીએ નહિ હે પવનકા મૂળ બાહેર ભીતર હે ભરપુર
કહો પંડિતો કહાં પાવનકા બાસા એ સબ કે સાહુવા પ્રકાશ,
આવે જાવે ઘાટમાં કરે તમારા ઘાટ અઘાટ જયોત નિરંજન પ્રકાશ."[૧૧]

યોગમુખી વાણી નથુરામ પણ કહે છે કે :

"આસનવાળી સુરતાથી દ્રઢ કીયા દિયા અગમ ડેરા,
ઈંગલા પિંગલા દોનું સાધકે, સુષ્મણા ચિત્ત ધર્યા"[૧૨]

યોગ સાધનામાં પ્રાણવાયુનું સુષુમણામાં પ્રવેશતા જ્ઞાનનાં પ્રકાશ થાય છે. 'સોહમ' અજયાજયથી પરમાત્માનાં અખંડ ધામમાં નિરંજનનું બ્રહ્મ તેજ વરસી રહે છે. જેનું ભકતે દર્શન કરવાનું હોય છે. આ જલમયી પ્રકૃતિમાં મનુષ્ય શરીરરૂપી કમળ ખીલ્યું છે. એ કમલમાં જ તેને ફરી કળી જેવું રૂપ આપનાર તત્વ છે. તેમાં અલખ–પુરૂષ બિરાજમાન છે. તેના સૌંદર્યના વખાણ થઈ શકે તેમ નથી. તેની જયોતિ ચારે તરફ ઝળહળે છે.

આ હરિજન સંત ભકતોની વાણીમાં યોગ છે. ઈડા, પિંગલા ને સુષુમણા સાધીને ત્રિવેણીના ઘાટ ઉપર અલખ જગાવીને કુંડલિનીને જાગૃત કરી ચક્રો ભેદવાની ક્રિયા તેમાં વર્ણવવામાં આવી છે. આ અનાહત નાદને આ સંતોએ સાંભળેલ છે. આ બધા ભાષા સંકેતો આનંદ સમાધિના સૂચક છે. ગગનમંડળ, ઝણકાર ઝાલેરી અનહદ, તૂરાના નાદ એ બધી યોગની ક્રિયાઓની પરિભાષા છે. જે તેઓની વાણી થકી વ્યકત થાય છે.

"ઓહમ્ – ઓહમ્" ના શ્વાસોશ્વાસ થકી નામનું સ્મરણ કરતાં ડાબી ઈંગલા ચંદ્રનાડીને જમણી પિંગલા સૂર્યનાડીની વચ્ચે આવેલ સુષુમણા નાડીને

સાંધતા સુલટા પવન ઊલટા કરતાં સુષુપ્ત અવસ્થામાં પડેલી કુંડલિની જાગૃત થતાં બ્રહમરંદ્રમાં બ્રહ્મજયોતનાં દર્શન થતાં અક્ષરાતીત નરને આ દેહમાં ઓળખી શકાય છે. એમ આ ભકત કવિઓનું દર્શન છે.

રહસ્યમય વાણી મધ્ય ગુજરાતના સંત દેવડુંગરપુરી પણ નીચે પ્રમાણે ગાય છે :

"અનુભવની વાતું છે, અટપટી
યોગ કળાની ગતિ છે, ઝીણી .... રે
નાભી કમળથી સુરતા ચાલી
જઈ ત્રિવેણીમાં ઠેરાણી
માનસરોવર મુગ્ધા મોતી
મરજીવા સંત કોઈ લીયે વીણી."૮

રહસ્યમય વાણી મધ્ય ગુજરાતના સંત ત્રિકમ સાહેબ પણ નીચે પ્રમાણે ગાય છે :

"ઈ રે મોતીડામાં ચૌદ લોક સમાણા રે,
અરે, બ્રહ્મા ને વિષ્ણુ તેનાં રટણ કરે."૯

સંત રૂખીદાસ રહસ્યમય વાણી નીચે પ્રમાણે ઉચ્ચારે છે :

"એજી ગુરુજી અસંખ્ય જુગમાં નો' તો આધાર
પચાસ ક્રોડમાં પાણી રે,
તે દિ નુરીજન હતા નિરાકાર રે, તેમાંથી શકિત
દરસાણી રે"૧૦

આપણે જે રહસ્યની વાત કરીએ છીએ તે દેખાતા જગતથી બહારની વાત છે. આ રહસ્ય એ દૃષ્યજગતથી પર છે. કોઈ પોથી કે કોઈ પુરાણમાંથી

10:31
Bhojpuri sant sadhana
84/90

निम्नलिखित है --

सुरति समानी सार शब्द मे, निरति रही लवलाई ।
प्रेम पियारी रटै पिया को, यह जिव पुलकित जाई ।।[1]

\+ + +

लगावो मन शब्द मे सुरति मकुरिया ।
झीनी झगरिया उरध लागे डोरिया,अनहद शब्द फसावे मकरिया ।
बायें व दहिने लो फाँदैना रस्थिया,मध्ये सुरंग चढी चलि जइया ।
सुरति मकरिया चढी है अटरिया, मनही के जाल मने लिपटइया ।।[2]

\+ + +

अपना पिया के मै होइबो सोहागिन- अहे सजनी ।
भइया तजि सइया संगे लागबि - रे की ।।
सइया के दुअरिया अनहद बाजा बाजे- अहे सजनी
नाचे ले सुरति सोहागिन --- रे की ।
गंग जमुन केरा अवघट घटिया हो- अहे सजनी ।
देखहु सतगुरु सुरति क नइया हो- अहे सजनो ।।
जोगिया दरसे देखे जाइब - रे की ।।
दास कबीर यह गवले लगनिया हो- अहे सजनी ।
सतगुरु अलख लखावल ---- रे की ।।[3]

\+ + +

सबद के निशाना मार, नाम की दोहाई हो ।
कहे दर्शन जीव, लोक चलि जाई हो ।।[4]

1- धर्म दास शब्दावली, पृ0 2
2- प्रेम तरंगिनी, भाग 3, शब्द 12
3- कबीर शब्दावली, भाग 4, पृ0 19 ।
4- भजन रत्न माला, पृ0 12- टेकमन राम ।

10:29
Bhojpuri sant sadhana

धरती बरिसे गगन नहाई, उलटी धार बहाईना ।
बिहग चाल सन्तन के हो जाई, ताडी अचल लगाईना ।[1]

\+ \+ \+

गगना बाग घनी फुलवारी सुरत सलोने सुगंध रस पाये से ।
बिहग चाल मकर डोरी तार धारपकडि सुर्त सिंध चढाये से ।।[2]

\+ \+ \+

ग्रंथ ज्ञान जिभ्या पर वासा, गुरु शब्दी अजर घर पावे हो।
तीन को त्यागि चढे चउथा पर, उन्मुनि ध्यान समाय ।
ब्रह्म में लीन ब्रह्म होइ जावे, सब में ब्रह्म पसार हो ।
बिहग चाल चले जन जागो, पवन पंख धुनि पाय ।।[3]

सन्त शिवनारायण ने अनेक स्थलों पर ध्यान-योग का उल्लेख किया है तथा अपने उदासी एवं घर बासी इन दोनों प्रकार के भक्तों को ध्यान-योग से पूर्ण परिचित होने का उल्लेख किया है।यथा -

छन एक ध्यान मह निर्मल भयऊ ।
गुरु सरुप तहां केहु अयऊ ।।[4]

\+ \+ \+

भक्त मोर एक रहेउ उदासा, से सुन शिवनारायन दासा ।
छन एक ध्यान करे मन लाई, तब उठि उधम के चलि जाई ।।[5]

इसी प्रकार घर-बासी भक्त भी नव इन्द्रियों को पूर्णतः सयमित करके ध्यान करता है ।

नवोद्वार के बन्धन करई ।
छन एक ध्यान हिये मह धरई ।।[6]

1- प्रेम तरंगिनी, भाग 3, शब्द 239- सुवचन दासी
2- -- वही, शब्द 265-- सुवचन दासी
3- -- वही, शब्द 160 - ,,
4,5,6- गुरु न्यास, पृ0 10,12,14

10:28

Bhojpuri sant sadhana

78/90

ध्यान-योग -

मानसिक वृत्तियां जब एक निष्ठ होकर ध्येय की ओर सतत रूप से प्रवाहित होने लगती है तब इस प्रक्रिया को ध्यान-योग कहते है।ध्यान योग, योग-साधना की सभी प्रणालियों में महत्वपूर्ण माना गया है। ध्यान योग को सन्तो ने बिहगम-योग के नाम से भी अभिहित किया है। इस योग साधना का मुख्य संबध कण्ठ के ऊपर के हिस्से से है। योग की इस क्रिया में साधक की ""सुरति'' या ध्यान- दृष्टि नेत्र के "अष्ट-दल-कमल'' मे अवस्थित ""सूची द्वार'' होकर ""ब्रह्माड'' मे प्रवेश करती है और इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्णा की "त्रिवेणी' में मज्जन करती हुई 'सहस्रदल' मे विचरण करती है , फिर "बंकनाल' होकर ऊपर चढ़ती है और "भवर गुफा' में प्रवेश करती है । इस गुफा मे प्रवेश करते ही आत्मा ऐसी दिव्यदृष्टि प्राप्त करता है कि एक से एक अनोखी सुगन्धित और अद्भुत छवि का अनुभव तथा साक्षात्कार करता है ।यहा अनाहत नाद गुंजायमान रहता है, जो शब्द-ब्रह्म है , यही वह 'अमरपुरी' अथवा 'अकहलोक' है, जहां आत्मा-परमात्मा में मिलकर अद्वैत हो जाता है, आत्मा का यही मोक्ष है । सन्त दरिया दास ने ध्यान-योग या बिहगम-योग को हठ योग से श्रेष्ठ माना है। उन्होने लिखा है कि

हठ निग्रह करि भूले जोगी, आसन बाधि पवन रस भोगी ।।
तन साधत फिरि भये असाधी, पांच पचीस बहु कइसे बाधी।।
हुकुम ज्ञान निज करो बिचारा, मूल बिहगम निरमल सारा।।[1]
+ + +
करम जोग जग जीते चढई, चढि पिपीलका फिपर भवरई ।
बीहंगम चढ़ि गयऊ अकासा , बइठि गगन चढ़ि देखु तमासा ।[2]

सन्त सुवचन दासी ने भी विहगम-योग के महत्व को स्वीकार किया है। उन्होने लिखा है कि -

---

1- दरिया दास- दरिया सागर बे0वि0प्रेस इलाहाबाद पृ0 6

2- -- वही, दरिया सागर 107 1, 107 2

तन्मयतासक्ति -

जब भक्त भगवान के गुणगान, पूजा, अर्चना, सेवा एवं आत्मनिवेदन मे मग्न होकर अपनी सुध- बुध खो बैठता है तो उसे ही "तन्मयता" कहते हैं । सन्तों की बानियो मे भी इस स्थिति का उल्लेख पाया जाता है। सन्त बुल्ला अपने निर्गुण प्रभु के बसन्ती रंग मे इतना सराबोर हो जाते हैं कि उनके सब चाव समाप्त हो जाते है और सर्वत्र यह बात फैल जाती है कि बुल्ला अपने प्रभु का सेवक है .-

निर्गुन बसन्त का सुनहु भाव, दूजा अवरि न मोहि चाव ।
हुलसी मनसा फलसी डाल, बाकी साखा सरग पताल ।।
ज्ञान ध्यान बसि भयो भोर, तन से भागे सबहि चोर ।
दसो दिसा मे भयो सोर, बुल्ला सेवक प्रभु तोर ।।[1]

इसी प्रकार अपने प्रभु के साथ होरी खेलते हुए सन्त गुलाल भी अपनी सुध- बुध खो बैठते है '--

समय लगो हरि नाम हो, होरी आई ।
सुखमन भरि पिचकारी डारत, छिरकत प्रभुहि बनाई ।
दसो दिसा मे चाचरि ऊठत, मारत प्रेम बजाई ।
लागी लगन टरत नहीं टारी, सुधि- बुधि सबहि भुलाई ।।[2]

सन्त कबीर भी कलवारिन बन कर प्रभु की भक्ति-रूपी मदिरा को पीकर मस्त हो जाने एव "सत्"- स्वरूप बन जाने की बात कहते है -

---

1- बुल्ला शब्दसार, पृ० 19

2- गुलाल बानी, पृ० 97

10:23

Bhojpuri sant sadhana

48/90

अपना पिया के मै होइबो सुहागिन - अहे सजनी ।
भइया तेजि सइया सगे लागबि -- रे की ।।[1]

कबीर के ही समान सभी सन्त कवियों की भक्ति एव ज्ञान-साधना मे प्रेम की निर्मल धारा बहती हुई परिलक्षित होती है । सयोग एव वियोग, दोनो का अपूर्व एव अनूठा वर्णन देखने को मिलता है। यहा पर कुछ चुने हुए उदाहरण हो दिये जा रहे हैं । -

तुहु पिया तुहु पिया तुहु पिया मेरो ।
हौ पत्नी पति नैननि हे रो ।।[2]

\+ \+ \+

एक दिन मन मोरा उलटी समाना,देखलो मै पिया के अवेस हो ।
झिल मिल ज्योति झलामल लौके, पावल बास बिलास हो ।।
सुष्मनु घटिया के साकर बटिया, हम धनि अल्प बयेस हो ।
हमरो बलमवा नैनवा के सागर, जहवा गहल मोरि बाह हो ।।[3]

\+ \+ \+

डगर चलति धनि मधुरि नगरिया, बोचे सावर मतलवलवा हे ना ।
अटपटि चलनि लटपटी बोलनि, धाइ लगवले अकवरिया हे ना ।।[4]

\+ \+ \+

मन अनुरागल हो सखिया ।
बिनु मिलले सुनले देखले बिनु, छिया करत सुर्ति अखियां ।
जन भीखा पिया आपु मइल, उडि गैलि भरम की रखिया ।।[5]

1- कबीर दास की शब्दावली, भाग 4, पृ0 19, बे0बि0प्रेस इलाहाबाद
2- दरिया दास, शब्द 50 9
3- शिवनारायण- शब्द ग्रंथ , पृ0 7
4- धरनी दास- भोजपुरी के कवि और काव्य, पृ0 97 से उधृत ।
5- भीखा साहब की शब्दावली, पृ0 49- बे0बि0 प्रेस इलाहाबाद

09:59

← 07_chapter2

अथवा) सहस्रार में प्राण का मूल निवास है, वहाँ असंख्य कलावाले शिव या ब्रह्म तत्त्व का स्थान है—

"षोडस नाड़ी चन्द्र प्रकास्या, द्वादश नाड़ी मांनं।

सहंस्र नाड़ी प्रांण का मेला, जहां असंष कला सिव थांनां॥" [43]

गोरखनाथ बताते हैं कि इस परमतत्त्व का साक्षात्कार इसी शरीर में नाद रूप में होता है। योगी को इस अनाहत् नाद का साक्षात्कार करना आवश्यक माना है। कभी भंग न होने वाले अनाहत नाद को सुनना चाहिए—

"बूझो रे ब्रंभ गियानी अनहद् नाद अभंगा।"

इस प्रकार का उपदेश गोरखनाथ योगी को देते हैं। यह अनाहत नाद कब सुनाई देता है, इसका वर्णन गोरखनाथ करते हैं—जब योगी भीतर की वायु को ब्रह्माण्ड में ले जाकर द्वादशांगुल पवन का आयाम कर उन्मनावस्था में रहता है। जब वायु सुषुम्ना में गरजती हुई प्रवेश करती है, तब रात-दिन वायु से ध्वनि निकलती है। यह अनाहत नाद योगी को सुनना चाहिए। नाथों ने इस परमतत्त्व को 'निरंजन' भी कहा है। निरंजन की प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए, उसका साधन भी गोरखनाथ बताते हैं। इड़ा और पिंगला नाड़ियों से प्राण साधना करनी चाहिए। इड़ा नाड़ी को सोधकर पिंगला में मिला देना चाहिए। फिर सुषुम्ना मार्ग से वायु को आकाश की ओर बढ़ा देना चाहिए। ऐसा करने से निरंजन की सिद्धि हो जाती है—

"इली सोधि धरि प्यंगुली पूरी। सुषमनी चढ़ असमांनं।

मछिंद्र प्रसादै जती गोरष बोल्या। निरंजन सिधि नैं स्थानं॥" [44]

इस प्रकार गोरखनाथ के अनुसार परमतत्त्व की प्राप्ति तब होती है जब कुंडलिनी शक्ति सुषुम्ना मार्ग से गगन शिखर या सहस्रार में पहुँचती है। शिव तत्त्व से उसका मिलन होता है। इसे ही नाथपंथी योग साधना में जीव की शिव पद की प्राप्ति या पिंड पद का परमपद में समरसीकरण कहते हैं। यही नाथों की योग साधना का चरम लक्ष्य है। नाथयोग के लक्ष्य के बारे में डॉ० नगेन्द्रनाथ उपाध्याय

लिखते हैं—"नाथ लोग निरंजन निराकार सत्-असत् विवर्जित नाथतत्त्व का साक्षात्कार या नाथ रूप से अवस्थान अपना मुख्य लक्ष्य मानते हैं। इसे ही दूसरे शब्दों में पिंडपद को परमपद या ब्रह्मपद में समरसीकरण भी कहते हैं।" [45]

चा अभिमानी विश्व विचारिता ॥ आत्मा नव्हे येथें उपपत्ती अनंता ॥ असती वेदांतशास्त्रीं ॥ ४४ ॥ स्थूल देह जागृती विश्व ॥ हा रजोगुणाचा प्रपंच तुज दृश्य ॥ नेत्रस्थान स्थूलभोग हें अदृश्य ॥ केवीं होसी ॥ ४५ ॥ या स्थूलप्रपंचातें ॥ तूं जाणत अससी निरुतें ॥ म्हणूनि अवलंबन साक्षी तूतें ॥ बोलिजे वेदांतीं ॥ ४६ ॥ एक तत्त्व व्यापक म्हणती ॥ देहामध्यें एकस्थानीं लक्षिती ॥ तें एक कांहींच नेणती ॥ खंडज्ञानिये ॥ ४७ ॥ गुह्यस्थानीं आधार कमळ ॥ तें रक्तवर्ण चतुर्दळ ॥ वंशंषंसं वर्णी अतिसोज्ज्वळ ॥ एक चिंतिती ॥ ४८ ॥

आत्मा कांहीं नव्हे, अशाविषयीं वेदांतशास्त्रांत अनंत उपपत्ति आहेत. ४४ जड देह, जागृति, आणि विश्व हा जो रजोगुणात्मक प्रपंच तो तुला दृश्य होय. आणि नेत्रस्थान, स्थूलभोग हें अदृश्य होय. तेव्हां तें तूं कसें असशील! ४५ या स्थूलप्रपंचाला तूं निश्चयानें जाणत आहेस, म्हणून वेदांताच्या भाषेंत तूं अवलंबन साक्षी होस. ४६ कोणी कोणी तत्त्व व्यापक आहे म्हणतात; देहामधील एकाच स्थानावर लक्ष्य लावतात; त्यांना एक असें कांहींच कळत नाहीं. ते खंडज्ञानी होत. ४७ गुह्यस्थानीं 'आधार' नांवाचें कमळ आहे; तें रक्तवर्ण असून चतुर्दळ–चार पाकळ्यांचें आहे; आणि वं शं षं सं या वर्णांनीं तें अत्यंत सोज्ज्वळ–प्रकाशमान–झालेलें आहे. त्याचेंच कोणी चिंतन करतात. ४८ लिंगस्थानीं '[…]धिष्ठान' नांवाचें कमळ आहे. तें षड्दळ म्हणजे सहा पा[…] असून पीतवर्ण–पिवळें आहे. वं भं मं यं रं लं या अक्षरांनीं […]

लिंगस्थानीं स्वाधिष्ठान ॥ तें षड्दळ पीतवर्ण ॥ वंभंमंयंरंलं अक्षरीं भूषुद्दीत जाण ॥ एक ध्यानी ॥ ४९ ॥ नाभिस्थानीं मणिपुर कमळ ॥ तें नीलवर्ण दशदळ ॥ डंपासूनि फांकित दे मोक्षफळ ॥ एक चिंतिती ॥ ५० ॥ हृदयीं अनाहत कमळ ॥ तें अग्निवर्ण द्वादशदळ ॥ कंपासूनि ठंबीजीं करी झळाळ ॥ प्रतिपत्रीं ॥ ५१ ॥ कंठीं जाणिजे विशुद्ध चक्र ॥ तें षोडश दळ अतिशुभ्र ॥ तेथें प्रतिपत्रीं षोडश स्वर ॥ अकारादिक ॥ ५२ ॥ भ्रूमध्यें अग्नि कमळ ॥ तें विद्युद्वर्ण द्विदळ ॥ तेथें हंक्षं

आहे. कोणी कोणी स्थानमात्राचा निश्चय करून त्याचेंच ध्यान करतात. ४९ नाभिस्थानीं (बेंबीच्या जागीं) 'मणिपुर' नांवाचें कमळ आहे. व तें नीलवर्ण (निळें) असून त्यास दशदळें म्हणजे दहा पाकळ्या आहेत. तेथें डं पासून फं पर्यंत अक्षरें असून तें मोक्षफळ देणार आहे, म्हणून कोणी कोणी त्याचेंच चिंतन करतात. ५० हृदयामध्यें 'अनाहत' नामक कमळ आहे. तें वर्णानें अग्नीसारखें असून बारा पाकळ्यांचें आहे. कं पासून ठं पर्यंत तेथें बीजाक्षरें प्रत्येक दलावर प्रकाशमान झालेलीं असतात. ५१ कंठामध्यें जें चक्र (कमळ) आहे तें 'विशुद्ध' समजावें. तें सोळा पाकळ्यांचें अत्यंत शुभ्र असें आहे. तेथें अकारादि सोळा स्वर प्रत्येक पत्रावर झळकत असतात. ५२ भुंवयांच्या मध्यभागीं 'अग्नि' म्हणून कमळ आहे, त्याला दोनच पाकळ्या असून तें विद्युत् (वीज) वर्ण आहे. तेथें हं क्षं हीं बीज चिन्हें (वर्ण) असून तें मोक्षफळदातें आहे,

बीजीं अंकित दे मोक्षफळ ॥ एक म्हणती ॥ ५३ ॥ सबिंदु मातृकाक्षरीं अंकितें ॥ ऐसिया षट्चक्रें मिरवतें ॥ तेंचि परमतत्त्व बोलती ते ॥ हीनविवेकी ॥ ५४ ॥ षट्चक्रांवरतें ॥ सहस्रदळा आंतौतें ॥ नानावर्ण प्रकाशातें ॥ एक चिंतिती ॥ ५५ ॥ सप्तचक्राचें अंतराळ ॥ तेंचि परमतत्त्व निर्मळ ॥ ऐसें बोलती बरळ ॥ ते ज्ञानहीन ॥ ५६ ॥ एक आधारीं बंद घालिती ॥ प्रसुप्त कुंडलिनीतें पवनें चेतविती ॥ षट्चक्रें भेदूनि नेती ॥ ब्रह्मरंध्रासी ॥ ५७ ॥ तेथें अनाहत ध्वनीचेनि विकाशें ॥ चित्त महाशून्यीं समरसे ॥ तेथें परमकळा प्रकाशे ॥ स्वयंज्योति ॥ ५८ ॥ एक मनपवनाचा ग्रास करिती ॥ ते

असेंही कोणी कोणी म्हणतात. ५३ ह्या बिंदुसहवर्तमान मात्राक्षरांनीं युक्त अशा षट्चक्रांनीं (कमळांनीं) शोभणारें तेंच तें परमतत्त्व होय, असें म्हणणारे ते विवेकहीन-मूर्ख होत. ५४ ह्या षट्चक्रांच्याही वरतीं एक ' सहस्रार ' म्हणून एक हजार पाकळ्यांचें कमळ आहे. त्या मध्येंच कोणी कोणी निराळ्या वर्णाच्या प्रकाशाचें चिंतन करितात. ५५ सप्तचक्रांचें अंतराळ—आकाश—तेंच निर्मळ परम तत्त्व होय, असें कांहींजण बडबडतात, पण ते ज्ञानशून्य होत. ५६ कोणी कोणी आधारांत कोंडून घेतात, आणि प्राणायामानें निजलेल्या कुंडलिनीला जागृत करितात व षट्चक्रें भेदून ब्रह्मरंध्राला नेऊन पोंहोंचवितात. ५७ तेथें ' अनाहत ' नांवाचा ध्वनि प्रगट होतो व चित्त महाशून्यामध्यें समरस पावतें (पूर्ण लीन होतें-मिळून जातें.) तेथें परमकळा-स्वयंज्योति प्रकाशमान होते. ५८ कोणी कोणी मनाचा व वायूचाच ग्रास क-

तितकेनीच आनंदें स्फुंजती ॥ परी शुद्धि नेणती ॥ परतत्त्वाची ॥ ५९ ॥ तूं उड्डियान ना जालंधरू ॥ कावरु ना सूक्ष्म विवरू ॥ पूर्णगिरि ना ब्रह्मरंध्रू ॥ नव्हेसि तूं ॥ ६० ॥ तूं मेरू ना त्रिकुट ॥ भ्रमरगुंफा ना गोल्हाट ॥ तीन ग्रंथि ना श्रीहट ॥ कैसेनि तूं ॥ ६१ ॥ तूं भाटि ना ताळी ॥ उन्मनी ना आगियाळी ॥ नाद बिंदु रोळीं ॥ नव्हेसि तूं ॥ ६२ ॥ तूं रेचक ना पूरक ॥ कुंभक ना श्राहाटक ॥ ययांसी तूं प्रवर्तक ॥ तरी तेचि तूं कैसेनी ॥ ६३ ॥ तूं मंत्र ना अनुष्ठान ॥ धारणा

रितात, आणि ते तेवढ्यानेंच आनंदानें स्फुंजूं लागतात. परंतु त्यांना परतत्त्वाची शुद्धीच राहत नाहीं. ५९ तूं उडियान नव्हेस की जालंधर नव्हेस; कावर नव्हेस की सूक्ष्म विवर म्हणतात तेंही नव्हेस; तूं पूर्णगिरि किंवा ब्रह्मरंध्रही नव्हेस. ६० तूं मेरू नव्हेस की त्रिकूटही नव्हेस; भ्रमरगुंफा नव्हेस की गोल्हाट नव्हेस; तीन ग्रंथि नव्हेस की श्रीहटही नव्हेस. तीं तूं कशीं बरें होशील ? ६१ तूं भाटि नव्हेस की ताळीही नव्हेस; तूं उन्मनी नव्हेस की आगियाळीही नव्हेस; किंवा नादबिंदूच्या रोळांतही तूं नाहींस. ६२ तूं रेचक नव्हेस की पूरक नव्हेस; कुंभक नव्हेस की श्राहाटक नव्हेस. उलट, तूं तर ह्यांचा प्रवर्तक आहेस. मग तेंच तूं कसा बरें होशील? ६३ तूं मंत्रही नव्हेस की अनुष्ठानही नव्हेस; धारणा

10:35

इसी प्रकार सन्त बुल्ला साहब,[1] धरनी दास,[2] भीखा[3], कीना राम[4], मिनक राम[5], सुवचन दासी,[6] शिवा राम[7] आदि सन्तों ने हठ योग-साधना का वर्णन किया है ।

1- मातल मनुवा घटहि समैबो हो ।
सहज सरूपे लिहले, हरिगुन गइबो हो।
तीरथ तिरबेनी नहइबो, गगन मे जइबो हो ।
अनहद धुनि सुनि दीपक बरइबो हो ।।

-- बुल्ला शब्दसार, पृ04

2- अजब आवाज नगारा बाजत गगन गरज धुनि भारी ।
तह बरे बाती, दिवस न राती, अलख पुरुष मठधारी ।।

-- धरनी बानी, पृ0 5

3- मन में आनद फाग उठो री ।
इंगला पिंगला तारी देवे, सुखमन गावत होरी ।
बाजत अनहद डक तहा धुनि गगन मे ताल परोरी ।।- भीखा शब्दावली, पृ033

4- झिलमिलि जोत की झक झाई, तबै गति अलख दरसाई ।
बसी बजे सुर घोर से, गूंजे तिहूं पुर शोर से ।।

-- राम गीता, पृ020

5- अमर पुरी के ऐसा अनहद मुरली बजावे ।
ओमे गावत राग रागिन छतिसो हो राम ।।-हस्तलिखित संग्रह, पद 20

6- हरि मधुआ मद माती, गगना निरत करो दिन राती रे ।
छकि छकि पीवो प्रेम पियाला, रोमे रोम रंग छाई ।
जग बिछुरो धुई गगन में ताड़ी अखंड लगाती रे ।
इगला पिगला पवन को रोकी, सुखमन दौड़ लगावे ।
मकर तार डोरी को पकरी, नीच ऊच भूमि आती रे ।

-- प्रेम तरगिनी, भाग 3, शब्द 171

7- इगल पिगल नाडी साधे, तब सुचि सुषुमन नारी राधे ।
बाम इंगला ससि दुति पाई, दच्छ दिसा पिगल झलकाई ।
मध्य सुषुमना सदा जोती, ब्रह्म समीप अजब छवि होती ।
ताहि निरखि रिधि सिधि बस होई, राम कहत ससै अघ धोई।।

10:35
Bhojpuri sant sadhana

सन्त शिवनारायण ने भी इस योग साधना का यत्र- तत्र वर्णन किया है -

इगला पिंगला सुखमनि सुधारी आठ पहर नौ नरिया ।
गंगा यमुना बीच बहे सरस्वती प्रेम के उठत लहरिया ।।[1]

सन्त धरम दास के विचार से पाच और पच्चीस को वश में करने के साथ-साथ इगला, पिंगला और सुषुम्ना को सोधने के बाद ही प्रभु का चरणोदक प्राप्त किया जा सकता है, जैसा कि अधोलिखित पक्तियों से प्रगट है -

पाचे पाच पचीसो बस करि साचे होइ ठहरावै ।
इंगला पिंगला सुखमनि सोधै, तब चरनोदक पावै ।।[2]

सन्त पलटू दास ने अत्यंत ही प्रभाव शाली रूप में प्रतीकात्मक शैली के द्वारा इस योग-साधना का उल्लेख किया है -

इगला पिंगला पलरा दूनौ, लागि सुरति की जोती ।
सत सबद की डाडी पकरौ, तौलो भरि भरि मोती ।
चाद सुरज दोउ करै रखवारी , लगी तत की ढेरी ।
तुरिया चढि के बेचन लागे, ऐसी साहिबी मेरी ।।[3]

1- शब्दावली, बदवार की प्रति, पृ0 13, पद 32 ।

2- धरम दास की शब्दावली, पृ0 71

3- पलटू दास की बानी, भाग 3, पृ0 28

ार सा मधुर ध्वनि सुनाई देता है ...
नाई देना बद हो जाता है ।

सन्त कवियों का सम्बन्ध जहा तक कुडलिनी-योग साधना
नष्ट है । इन सन्तों की बानियों मे स्थल- स्थल पर इडा ,पिंगला
ादि नाड़ियों, अनाहतनाद सरस्वती स्नान आदि की चर्चा की
ए स्पष्टत हठयोग का ही प्रभाव है। हठ-योग के सम्बन्ध मे सभी
चर्चा किया है परन्तु यहां पर कुछ ही उदाहरण देकर इस योग- साध
म्बन्ध मे सन्तों के विचार को स्पष्ट कर रहा हूं। -

सन्त कबीर दास जी ने " कायानगर" मे "माया
ो प्राप्त करने एव वश के दृश्यों का जो वर्णन किया है, इससे इनक
ोग-साधना सम्बन्धी ज्ञान का आभास मिलता है ।यथा.-

दिखलूं मै कायानगर मे, मायापुरुषवा खोजि के ।
काहे सजनवा बिराजे भवनवा, दूनो नयनवा जोरि के ।
इंगला पिंगला सुषमन साधो, मनुवा आपन रोकि के ।
दसवं दुवरिया लागी किवरिया, खोल शब्द से जोरि के।
रिमि झिमि रिमिझिमि मोती बरसै, हीरा लाल बटोरि के
लौका लौके बिजुली चमकै, झिंगुर बोलै झनकोरि के ।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, यह पद है निर्वान के ।।[1]
या पद के जो अर्थ लगावै,सोई पुरुष अनमोल के ।।

1- कबीर शब्दावली भाग3, पृ0 26- बे0 प्रि0प्रे0-इलाहाबाद

भीमाभोई ने प्राणायाम यानी पवन की साधना का उल्लेख तो किया है, परंतु कबीर की तरह उसका इतना स्पष्ट वर्णन उन्होंने नहीं किया है । भीमाभोई ने तालु के शीर्षभाग में यानी ब्रह्मरंध्र में अलेख पुरूष यानी ब्रह्म का निवास [73] मानते हुए कहा है कि विभिन्न चक्रों में अनेक

रोगों का निवास है । उन्होंने चक्र की साधना के द्वारा अनाहत को शरीर में जगा कर ब्रह्माग्नि से शरीर के रोगों को जलाने का उपदेश दिया है । [74] शून्य के शिखर पर यानी ब्रह्मरंध्र में सीढ़ी लगाकर उठने [75] का उपदेश देते हुए भीमाभोई ने बताया है कि सहस्र दल कमल से क्षरित होने वाले रस को पीने से साधक अजर-अमर हो जाता है । बंकनालि को भेद कर ही वहाँ पहुँचा जा सकता है, जहाँ ब्रह्म है और रस क्षरित हो रहा है ।[76] इसके अतिरिक्त भीमाभोई ने मन और पवन को एक करने[77] की साधना, गंगा-जमुना-त्रिवेणी तथा उल्टी साधना[78] आदि का उल्लेख करते हुए बताया है कि निराकार ब्रह्म का निवास षड्चक्र के ऊपर है ।[79] जहाँ तक प्राणायाम एवं चक्र-साधना का प्रश्न है कबीर से भीमाभोई में अंतर इतना है कि हालांकि दोनों ने ही प्राणायाम का स्पष्ट विवरण कहीं नहीं दिया है, फिर भी कबीर ने इसका वर्णन कुछ अधिक स्पष्टता से किया है । भीमाभोई ने चक्रों का सिलसिलेवार वर्णन तो किया है,परंतु कबीर की तरह कुंडलिनी-उत्थापन तथा वायु के संचलन पर अधिक बल न दे कर विभिन्न चक्रों पर ध्यान को केंद्रित कर निराकार का नाम स्मरण और नाम जप करने पर अधिक गुरूत्व दिया है ।[80] यह कहना असंगत नहीं होगा कि कबीर ने हठयोग पर जितना बल दिया है, भीमाभोई ने नहीं ।

प्रत्याहार :— बाह्य वस्तुओं से चित्त को हटा कर अन्तर्मुखी करना ही प्रत्याहार है । कबीर दास ने हमेशा बाह्य वस्तुओं में मन को भटकने न देने का उपदेश दिया है । उन्होंने इस बात का संकेत करते हुए एक स्थल पर बताया है कि बाहर खोजते-खोजते जन्म गँवा दिया, पर जब मन को विपरीत मुद्रा के द्वारा इंद्रियों की ओर जाने से रोककर ब्रह्मरंध्र की ओर

कालचक्र में भी कहा है—

प्रज्ञा तर्को विचारो रतिरचलसुखं ध्यानमप्येकचित्तम् ।। (4.116)

अर्थात् प्रभास्वर के 11 लक्षणों का चिन्तन प्रज्ञा है । कल्पना भावों को ग्रहण करती है, अर्थात् यहाँ भाव संज्ञक शून्य रूप लक्षण का जानना कल्पना है । शून्यस्वरूप लक्षण के ज्ञान का मात्र चित्त द्वारा विचार करना वितर्क है, किन्तु उसका अनुभव करना अर्थात् विषय-विषयी उभय विकल्पों से रहित निश्चयात्मक अनुभव करना ही विचार (मीमांसा) है । ध्यान से अनुप्राणित होने पर बाह्य शरीर और आभ्यन्तर चित्त में सुख का जो अनुभव होता है, वह प्रथम रति (प्रीति) है । द्वितीय सुखात्मक चित्त (अक्षर सुख) ही सुख कहलाता है । इससे प्रश्रब्धि की भी प्राप्ति होती है । यहाँ कालचक्र के अनुसार "**तन्मध्ये बुद्धबिम्बं विषयविरहितानेकसंभोगकायम्**" (5.115) इससे समाधि के असामान्य लक्षण संभोगकाय का प्रादुर्भाव होने लगता है और पाँच अभिज्ञा आदि ज्ञानों की प्राप्ति होती है । कालचक्र में कहा है—

पंचाभिज्ञानलाभी भवति नरपते ध्यानयोगेन शुद्धः । (4.118)

3. प्राणायाम :

प्राणवायु का आयाम अर्थात् निरोध करना या विस्तार करना ही प्राणायाम शब्द का अर्थ है । प्राणवायु को बाँधने से या उसकी गति को रोकने से अमृत आयु (दीर्घ आयु) की प्राप्ति होती है, साथ ही प्राणायाम से महासुख की प्राप्ति भी होती है । कालचक्र में कहा है—

नागाद्यान् साधयित्वा प्रवरसुरनरा योगिना साधनीयाः
धूमाद्यान् साधयित्वा मरणभयकरा मध्यमाः साधनीयाः ।
प्राणाद्यान् साधयित्वा द्रवितशशधराद्बिन्दवः साधनीयाः
सत्सौख्यं साधयित्वा सहजजिनतनुः सर्वगा साधनीया ।। (5.233)

प्रत्याहार और समाधि के द्वारा शून्यतारूपी महामुद्रा का प्रतिभास होने के बाद प्राणायाम द्वारा मृत्यु को जीता जाता है और वज्रदेह की प्राप्ति होती है । वज्रदेह में क्रमशः तिलक पर अधिकार प्राप्त कर सहज सुख को प्राप्त करना ही प्राणायाम का मुख्य प्रयोजन है । वज्रदेह एवं दीर्घ आयु की प्राप्ति किये बिना इसी जीवन में परम पद की प्राप्ति नहीं हो सकती । अतः पहले अपरिमित आयु को प्राप्त करना जरूरी होता है ।

आदौ संरक्षणीया सकलजिनतनुर्मन्त्रिणां सिद्धिहेतोः
कायाभावे न सिद्धिर्न च परमसुखं प्राप्यते जन्मनीह ।
तस्मात् कायार्थहेतोः प्रतिदिनसमये भावयेन्नाड़ियोगं
काये सिद्धेऽन्यसिद्धिस्त्रिभुवननिलये किंकरत्वं प्रयाति ।।

(का० तं० 2.107)

काय के संरक्षण के लिए प्राणायाम करना जरूरी है । यह प्राण और अपान वायु को एकरस-एकीकृत करता है । कालचक्रतन्त्र में कहा है—

प्राणायामो द्विमार्गः स्खलनमपि भवेन्मध्यमे प्राणवेशः । (4.116)

वाम और दक्षिण, ललना और रसना का मार्ग मध्यमा मार्ग में विलीन हो जाता है। रसना में बहने वाले पाँच विषय और पृथ्वी आदि धातु के विलीन होने से दस आकार होते हैं । सेकोद्देशटीका[1] में कहा है—

''**ललनापञ्चमण्डलधर्मिणो.......मध्यमाभिन्नाङ्गेन जप्तव्यः**'' (पृ० 32-33)

प्राणायाम की विधि को स्पष्ट करते हुए कालचक्र में कहा है—

घ्राणे रन्ध्रद्वयेन त्वपि पिहितमुखे बाह्यवातः समस्तः
प्राणेनाकृष्य वेगात् तडिदनलनिभो घट्टितोऽपानवायुः ।
कालेनाभ्यासयोगाद् व्रजति समरसं चन्द्रसूर्याग्निमध्ये
अन्नाद्यं क्षुत्पिपासामपहरति तनौ चामरत्वं ददाति ।। (4.194)

प्राणायाम की साधना को पंचक्रम में भी नागार्जुन ने समाजोत्तरतन्त्र[2], चतुर्देवीपरिपृच्छा व्याख्यातन्त्र[3], वज्रमाला[4] आदि तन्त्रों को उद्धृत कर स्पष्ट किया है । हेवज्र और संवरोदयतन्त्र में भी प्राणायाम साधना पर प्रकाश डाला गया है । इन सभी ग्रन्थों का अभिप्राय यही है कि पंचप्रभामय (पंचधातुमय) वायु को 12 से 16 अंगुल के फासले से

---

1. पृ०32-33, ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1941
2. पंचज्ञानमयं श्वासं पञ्चभूतस्वभावकम् ।
   निश्चार्य पद्मनासाग्रे पिण्डरूपेण कल्पयेत् ।। (गु० तं० 18.146-147)
3. पंचज्ञानमयं तत्त्वं सर्षपस्थूलमात्रकम् ।
   तस्य मध्ये स्थितो देवो ह्यव्यक्तो व्यक्तरूपवान् ।। (पं० क्र० 2.13)
4. नासाग्रे सर्षपं नाम प्राणायामस्य कल्पनात् ।
   प्राणायामे स्थिताः पञ्चरश्मयो बुद्धभावतः ।। (गु० तं० टीका में उद्धृत, पृ० 57)

खींचते हुए नासिकाग्र[1] में स्थित करना चाहिए । नाभि क्षेत्र में श्वास के स्थित होने पर अपान वायु को बलपूर्वक ऊपर की ओर खींच कर प्राण-अपान को एक कर कुम्भक करना चाहिए । कुम्भक की स्थिति को क्रमशः दीर्घ रखने का प्रयास करना चाहिए । प्रश्वास एक साथ नहीं लेना चाहिए । थोड़ा छोड़कर उसे तुरन्त बाँधना चाहिए । पूर्णरूप से प्रश्वास को छोड़ने से कुम्भक दीर्घकाल तक कभी भी ठहर नहीं सकता[2] । श्वास में ॐ कुम्भक में हूँ और प्रश्वास में आः पर चित्त को केन्द्रित करना चाहिए । इसलिए ॐ हूँ आः प्राणायाम का अंग भी कहलाता है[3] । कहीं कहीं पर कुम्भक में आः, प्रश्वास में हूँ और श्वास में ॐ तथा महामायातन्त्र में प्रश्वास में ॐ, स्थिति (कुम्भक) में हूँ और श्वास में आः में चित्त को केन्द्रित करने का वर्णन भी मिलता है । प्राणायाम करने पर श्वास की गति क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती जाती है । श्वास-प्रश्वास के समय नाक पर हल्का कपड़ा या हाथ रखने से अपने आलम्बन में स्मृति बनी रहती है । यह बिना माला और मन्त्रोच्चार की जप विधि भी कहलाती है । सामान्य अवस्था में श्वास को जोर से लेना चाहिए और प्रश्वास को धीमें । प्राणायाम की साधना की अवधि को स्पष्ट करते हुए कालचक्र में कहा है—

दृष्टे बिम्बे प्रकुर्यात् प्रतिदिनसमये प्राणवायोर्निरोधं
यावद्वै भ्राम्यमाणं स्वतनुपरिवृतं दृश्यते रश्मिचक्रम् ।
षण्मासैः स्पर्शहीनं व्रजति समसुखं मार्गचित्तं यतीनां
रागारागान्तगाद्यं क्षणमपि च विभोर्वर्धते श्वाससंख्यम् ।। (5.117)

प्रत्याहार और समाधि के द्वारा देवरूप के प्रतिबिम्बित होने के पश्चात् प्राणायाम का अभ्यास तब तक करते रहना चाहिए, जब तक कि अपने शरीर के भीतर प्रभामय वायुचक्र घूमता हुआ न दिखाई दे । इसके अभ्यास से प्राणापान के मिलन से अग्नि का उत्पाद होने लगता है, सम्पूर्ण शरीर में सूक्ष्म नाड़ियों का तथा उनमें संचारित होने वाली वायु और शुक्र-शोणित आदि का स्पष्ट दर्शन होने लगता है । इस प्रकार के आभास के प्रकट होने के पश्चात् 6 महीने तक प्राणायाम करते रहने से शुक्र का स्खलन बन्द हो जाता है । उसके बाद द्वीन्द्रिय आलिंगन के बिना भी योगी अक्षर महासुख मार्ग द्वारा शून्यता रूप में प्रविष्ट हो सकता है । कालचक्रतन्त्र में कहा है—

---

1. नासिकाशब्देन नाभिहृत्कण्ठललाटोष्णीषकमलकर्णिकोच्यते । (से० टी०, पृ० 32)
2. जि० 3, पृ० 413 बुस्तोन साहित्य संग्रह।
3. ॐकारेण श्वासं हूँकारेण निरोधं आःकारेण निश्वासम् । (से० टी०, पृ० 38)

या शक्तिर्नाभिमध्याद् व्रजति परपदं द्वादशान्तं कलान्तं
सा नाभौ सन्निरुद्धा तडिदनलनिभा दण्डरूपोत्थिता च ।
चक्राच्चक्रान्तरं वै मृदुललितगतिश्चालिता मध्यनाड्यां
यावच्चोष्णीषरन्ध्रे स्पृशति हठतया सूचिवद् बाह्यचर्म ।।

आपानं तत्र काले परमहठतया प्रेरयेदूर्ध्वमार्गे
उष्णीषं भेदयित्वा व्रजति वरपुरं वायुयुग्मे निरुद्धे ।
एवं वज्रप्रभेदान्मनसि सविषयात् खेचरत्वं प्रयाति
पञ्चाभिज्ञास्वभावा भवति पुनरियं योगिनां विश्वमाता ।।

(4.196-197)

शक्ति अर्थात् प्राणवायु पृथ्वी (धातु) से 12 अंगुल के फासले से, जल (धातु) से 13, अग्निधातु से 14, वायुधातु से 15, और आकाश धातु से 16 अंगुल के फासले से हुंकारस्वरूप अपनी नासिका के माध्यम से होते हुए ललना-रसना से बहकर प्राण-अपान के मध्यमा में प्रविष्ट हो जाने पर निर्मल विद्युत्-सदृश बन जाती है और नाभिचक्र से क्रमशः हठयोग द्वारा ऊर्ध्वगति करते हुए सभी नाड़ी-ग्रन्थियों को भेदते हुए उष्णीष (ब्रह्मरन्ध्र) तक पहुँचती है । वहाँ से बाहर निकलने पर साधक परकाय में प्रवेश, खेचर आदि शुद्ध भूमि में जाना—जैसी सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है । नडपाद के षड्योग में इसी को संक्रमण या उत्क्रमण कहते हैं । ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचने के बाद साधक पुनः महासुख का स्राव कर अधोगति करता हुआ मणिचक्र के केन्द्र में आता है । कालचक्रतन्त्र में कहा है—

वातैः संघट्टमानैस्तडिदनलशिखा द्रावयेद् मूर्ध्नि चन्द्रं
यो यो बिन्दुर्द्रुतोऽस्माद् गलहृदयगतो नाभिगुह्ये निरुद्धः ।
बिन्दोः स्पन्दद्रवं यत् कुलिशमणिगतं सन्निरुद्धं ध्वजाग्रे
प्रज्ञाज्ञानक्षणं तद् यदि ददति सुखं बिन्दुमालाच्युतेन ।। (5.75)

ऊर्ध्व और अधोगति की इस विधि को अन्य ग्रन्थों में चार आनन्दों और चार क्षणों की संज्ञा दी जाती है । ब्रह्मरन्ध्र से प्राणवायु को बाहर निकाल देने पर साधक मृत्यु को भी प्राप्त कर सकता है । अतः उसको अधोगति और ऊर्ध्वगति का निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिए । यही मातृतन्त्र की साधना विधि भी है । कालचक्रतन्त्र में कहा है—

प्राणायामः समन्तात् समसुखफलदो मस्तके यावदिष्ट-
स्तस्मादूर्ध्वं ह्यनिष्टो मरणभयकरः स्कन्धनिर्नाशहेतुः ।
उष्णीषं भेदयित्वा परमसुखपदे यो व्रजन् वै नियोज्यः
स्कन्धाभावेऽपि योगी विशति समसुखं किन्तु लोके प्रसिद्धः ।।(4.121)

मुद्रा के सेवन द्वारा भी यह साधना की जा सकती है । इस विषय में भी वहीं कहा गया है—

मध्ये प्राणप्रवेशः सरविशशिगतेर्बन्धनं सव्यवामे
चित्तं मुद्राप्रसङ्गे परमसुखगतं वज्रसंबोधनं च ।
पद्मे वज्रध्वनिर्वा स्वकरसलिलजोल्लालनं सौख्यहेतो-
र्बीजात्यागः ससौख्यो मरणभयहरः श्रीगुरोर्वक्त्रमेतत् ।। (5.121)

प्राणायाम के सिद्ध हो जाने पर बोधिसत्त्वों द्वारा साधक पूज्य होगा । बुद्धों द्वारा व्याकृत होगा तथा महाप्रसिद्धि की प्राप्ति होगी । यहाँ बोधिसत्त्व पद का नीतार्थ इन्द्रियाँ हैं, अर्थात् दिव्यचक्षु एवं दिव्यश्रोत्र आदि की उसे सिद्धि होगी । कालचक्रतन्त्र में इस विषय में भी कहा है—

तस्मान्निःस्पन्दसौख्यं क्षणमिह सहजं धर्मधातुर्ददाति
प्राणेनाकृष्य सर्वान् रसगतिषु गतान् क्लेशमारान्निहत्य ।
ऋद्धिं सर्वज्ञभूमिं त्रिभुवनगुरुतां योगिनां जन्मनीह
मृत्युं मार्गप्रविष्टो व्रजति यदि तदा ग्रहादन्यजात्या ।। (5.76)

4. धारणा :

यद्यपि धारणा शब्द ग्राह्य-ग्राहक दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है, किन्तु यहाँ धारणा का अभिप्राय प्राणवायु तिलक का बोधिचित्त में स्थिरीकरण है । सामान्यतः पाँच या छः नाड़ीचक्रों में वाम-दक्षिण और ऊर्ध्व-अधः प्रवहमान वायु का मध्यमा नाड़ी में स्थित तिलक में रहना धारणा नामक योग का अङ्ग है। वास्तव में विशेष अभ्यास के द्वारा ललाटचक्रस्थित तिलक में प्राण का स्थिर करना ही धारणा है। सेकोद्देशटीका में उद्धृत किया है—

स्वमन्त्रं हृदये ध्यात्वा प्राणबिन्दुगते न्यसेत् ।
निरुद्धमतीन्द्रियं रत्नं धारयेद् धारणं स्मृतम् ।। (पृ० 30)

प्राण और अपान के नाभिचक्र में सम्यक् मिश्रण होने तक हृदयादि अन्य चक्रों में कुम्भकभावना नहीं हो सकती, अतः प्राणायाम द्वारा नाभिक्षेत्र में प्राण-अपान के मेल से गुह्यलक्षणों का आविर्भाव होने पर ही धारणा की साधना करनी चाहिये। प्राणायाम से क्रमशः नाभि-हृदय-कण्ठ चक्रों में वायु का गमनागमन रोककर ललाटस्थ तिलक में उसका विलय करना ही धारणा है। कालचक्र तन्त्र में भी कहा है—

> **कृत्वा पर्यङ्कबन्धं विकसितवदनोऽन्योन्यदन्तं स्पृशेन्न**
> **आकृष्टो बाह्यवातस्तदमृतसहितो नाभिमध्ये प्रविष्टः ।**
> **संतापं क्षुत्पिपासां हरति वरतनौ सन्निरुद्धो विषं च**
> **श्वेतो बिन्दुर्ललाटे स्वरपरिकरितो मुञ्चमानोऽमृतं च ।। (4.193)**

गुह्यसमाजोत्तरतन्त्र में भी कहा है—

> **स्वमन्त्रं हृदये ध्यात्वा प्राणबिन्दुगतं न्यसेत् ।**
> **निरुद्ध्य चेन्द्रियरत्नं धारयन् धारणं स्मृतम् ।। (18.148**

5. अनुस्मृति :

प्रत्याहारांग के द्वारा भावित शून्य रूप (इष्टदेव कालचक्र) को ध्यानांग द्वारा दृढ़ किया जाता है । प्राणायाम के द्वारा नाड़ी, वायु, तिलक को नियन्त्रित कर धारणा द्वारा तिलक को मध्यमा में स्थिर किया जाता है । प्रत्याहार और ध्यान द्वारा दृढीकृत शून्य रूप (स्वकाय) को आकाशवत् कर उसकी अनुस्मृति करना ही अनुस्मृति नामक योगांग है । गुह्यसमाजोत्तरतन्त्र में कहा है—

> **विभाव्य यदनुस्मृत्या तदाकारं तु संस्मरेत् ।**
> **अनुस्मृतिरिति ज्ञेया प्रतिभासोऽत्र जायते ।। (18.152)**

सेकोद्देश की टीका में भी इसी मत को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि प्रत्याहार और ध्यान द्वारा स्थिरीकृत त्रिधातु प्रतिभासात्मक (शून्य रूप) संवृतिसत्य का संस्फरण करना अर्थात् उसको समस्त नभ (आकाश) में व्याप्त करना ही अनुस्मृति है[1] । बुस्तोन ने अनुस्मृति के लक्षण को स्पष्ट करते हुए कहा है कि धारणा अंग की साधना के बल से

---

1. प्रत्याहारध्यानाङ्गाभ्यां यद्विभाव्य स्थिरीकृतं त्रैधातुकप्रतिभासात्मकं संवृतिसत्यमनुस्मृत्या तदाकारं तु संस्फरेत् .... तत्रेत्यनुस्मृत्यङ्गे जायते । (पृ॰ 33)

नाभिक्षेत्र में चण्डाली को प्रज्वलित कर चण्डाली के स्वभाव (विषय) में प्रतिबिम्बसदृश निर्विकल्प त्रिधातुकात्मक स्वइष्टदेव (कालचक्र) के आभास में स्थित होना ही अनुस्मृति है । कालचक्रतन्त्र में कहा है—

चण्डाल्यालोकनं यद्भवति खलु तनौ चाम्बरेऽनुस्मृतिः स्यात् । (4.117)

साधक की इन्द्रियों के मृदु, मध्य और उत्तम के भेद से तीन भेद हैं । सुमेरु के कण सदृश अनन्त महामुद्राओं के साथ समाहित करने की क्षमता वाला उत्तम, ज्ञानात्मक महामुद्रा के साथ समाहित मध्यम और कर्ममहामुद्रा के साथ समाहित साधक मृदु है । कालचक्र में कहा है—

एतन्मृद्वादिभेदैस्त्रिविधमपि भवेत् साधनं विश्वभर्तु-
स्तिस्रो मुद्रास्त्रिमात्रास्त्रिविधगतिवशात् कर्मसंकल्पदिव्याः । (4.117)

साधना के स्थल को स्पष्ट करते हुए कालचक्र में कहा है—

एता मुद्राश्चतस्रो क्षरसुखफलदा योगिना भावनीयाः
सर्वस्मिन् सर्वकालं सुरतरतिगतैर्लोकमार्गप्रयुक्तैः ।
ग्रामारण्यश्मशानेऽशुचिशुचिनिलये वेश्मदेवालये च
वर्णावर्णाभिचारैस्तनुबलसुखदैरन्नपानादिभोगैः ।। (5.74)

सामान्यतः जैसे प्रत्याहारांग द्वारा कायवज्र की साधना होती है, ध्यानांग द्वारा उस पर दृढता की प्राप्ति होती है, प्राणायाम से वायु पर नियन्त्रण प्राप्त कर वाग्वज्र की साधना की जाती है और धारणा द्वारा उस पर दृढता प्राप्त की जाती है, वैसे ही अनुस्मृति द्वारा चित्तवज्र की साधना होती है और समाधि से उस पर दृढता प्राप्त कर परमपद की प्राप्ति की जाती है ।

कालचक्र में पितृतन्त्र एवं मातृतन्त्र से भिन्न उष्णीष, कण्ठ, हृदय और नाभिचक्र में चार अलग-अलग बिन्दुओं का अस्तित्व स्वीकारा गया है । ये बिन्दु जाग्रत् आदि विभिन्न चार अवस्थाओं में वायु से स्पन्दित होकर नाना प्रकार की भ्रान्तियों को उत्पन्न करते हैं । जैसे जागृत् अवस्था में ऊर्ध्व भाग की सभी वायु उष्णीषचक्र में और अधोभाग की सम्पूर्ण वायु नाभिचक्र में संगृहीत होते हैं और ये विभिन्न आभासमात्र और भ्रान्ति-आभास को उत्पन्न करते हैं । स्वप्न की अवस्था में सभी ऊर्ध्व वायु कण्ठचक्र में तथा अधोभाग के

सभी वायु गुह्येन्द्रिय में संगृहीत होकर शब्दमात्र वाक् भ्रान्ति को उत्पन्न करते हैं । सुषुप्ति में ऊर्ध्वभाग के सभी वायु हृदयचक्र में और अधोभाग के सभी वायु मणिचक्र में जमा होकर निर्विकल्प और अस्पष्ट होकर भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं । पुरुष स्त्री की समापत्ति अवस्था में ऊर्ध्व भाग के सभी वायु नाभिचक्र में तथा अधोभाग के सभी वायु गुह्येन्द्रिय के अग्रभाग में एकत्रित होकर सुख की अनुभूति और स्राव को उत्पन्न करते हैं । इनकी परिशुद्धि से ही आभासमात्र, शब्दमात्र, निर्विकल्पमात्र और सुखद अनुभूतियों का विस्तार होकर क्रमशः काय, वाक्, चित्त और ज्ञान वज्र की प्राप्ति की जाती है । अनुस्मृति की साधना कर्ममुद्रा, ज्ञानमुद्रा और महामुद्रा के साथ समाहित होकर चण्डाली योग द्वारा की जाती है । कालचक्र में कहा है—

वातैः संघट्टमानैस्तडिदनलशिखा द्रावयेद् मूर्ध्नि चन्द्रं
यो यो बिन्दुर्द्रुतोऽस्माद् गलहृदयगतो नाभिगुह्ये निरुद्धः ।
बिन्दोः स्पन्दद्रवं यत् कुलिशमणिगतं सन्निरुद्धं ध्वजाग्रे
प्रज्ञाज्ञानक्षणं तद्यदि ददति सुखं बिन्दुमालाच्युतेन ।। (5.75)

वायु के मध्यमा नाड़ी में प्रवेश से चण्डाली प्रज्वलित होती है । तीन प्रकार के साधक अपने सामर्थ्य के अनुसार मुद्रा के साथ समाहित होते हैं तथा प्रत्याहार और ध्यान द्वारा भावित इष्टदेव की अनुस्मृति करते हुए उसे महासुख से अभिन्न स्थापित कर ध्यान लगाते हैं । चार चक्रों में जब क्रमशः तिलक स्थित होता है, तो आनन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द अक्षर सुख की प्राप्ति होती है । तीन प्रकार के साधकों द्वारा अपनी क्षमता के अनुसार अक्षर सुख की प्राप्ति करना ही अनुस्मृति की साधनाविधि कहलाती है । उत्तम साधक प्रज्ञात्रिधातुकात्मक महामुद्रा के साथ समाहित होकर अनुस्मृति की भावना करता है । कालचक्र में कहा है—

न ध्यानं मन्त्रजापः करणमपि महामण्डलान्यासनानि
होमो मन्त्रप्रतिष्ठा रजसि जिनकुलावाहनं प्रेषणं च ।
मुद्रासिद्धिं ददाति प्रवरविभुसुखं सर्वमुद्राप्रसङ्गे
तस्मात् तद्भावनीयं प्रतिदिनसमये योगिना मोक्षहेतोः ।।

मूर्च्छा निद्रां प्रविष्टं भवति नरपते निःस्वभावं स्वचित्तं
जाग्रायां सस्वभावं प्रकटयति न तत् प्राणिनां मोक्षमार्गम् ।

भावाभावैर्विभिन्नं नहि समसुखदं योगिनां चित्तवज्रं
स्वप्रज्ञालिङ्गितं यत् सहजसुखगतं मोक्षदं तत्स्वचित्तम् ।।

(4.227-228)

सभी प्रकार के कृत्रिम उपायों का परित्याग कर सहजसुखस्वरूप चित्तात्मक इष्टदेव को त्रिधातुकायात्मक स्वप्रज्ञा से आलिंगित कर चार आनन्दों का अनुभव करना उत्तम साधक की साधना विधि है । मध्येन्द्रिय साधक अपनी कालचक्र युगनद्ध देव के रूप में भावना करता है और ज्ञानमय पितृ-मातृ उभय के ललाट पर चन्द्रमा के ऊपर श्वेत "ॐ" कण्ठ में सूर्य के ऊपर रक्त 'आः', चित्त में राहु के ऊपर कृष्ण 'हूँ' नाभि में अग्नि पर पीत 'हो' वर्ण, गुह्येन्द्रिय में ज्ञान के ऊपर नील "स्व" वर्ण तथा शीर्ष पर आकाश के ऊपर श्याम "हा" वर्ण का न्यास करता है । मातृदेव का आः से पद्म, जिसमें "हूँ" परिणत होकर वज्र से अलंकृत है, स्वपितृदेव का हूँ अक्षर से परिणत वज्र, जो आः से उद्भूत पद्म से लक्षित है अर्थात् समापत्ति रूप में स्थित है, ऐसी भावना कर क्रमशः चार आनन्दों का अनुभव करता है । इसे ध्यानमुद्रा योग भी कहते हैं । यही मध्येन्द्रिय साधक की अनुस्मृति की साधनाविधि है । यहाँ साधक मात्र चण्डालीयोग द्वारा चार आनन्दों का साक्षात्कार कर महासुख का अनुभव कर, उसमें दृढता प्राप्त करने में असमर्थ है, अतः उसे कर्ममुद्रा का सेवन करना पड़ता है । कालचक्र में कहा है—

सेव्याऽऽदौ कर्ममुद्रा जिनसहजसुखस्यास्य वृद्ध्यर्थहेतोः । (5.73)

मध्ये प्राणप्रवेशः सरविशशिगतेर्बन्धनं सव्यवामे
चित्तं मुद्राप्रसङ्गे परमसुखगतं वज्रसंबोधनं च ।
पद्मे वज्रध्वनिर्वा स्वकरसलिलजोल्लालनं सौख्यहेतो-
र्बीजात्यागः ससौख्यो मरणभयहरः श्रीगुरोर्वक्त्रमेतत् ।। (5.121)

अतः यह साधक कर्ममुद्रा का सेवन करके और वायु को मध्यमा मार्ग में रोककर पुनः मुद्रायोग से आनन्द को प्राप्त करता है। शुक्र स्रवित होकर जब शिर से ललाट तक आता है तो आनन्द है। ललाट से कण्ठ और हृदय तक आने पर परमानन्द, गुह्येन्द्रिय तक पहुँचने से विरमानन्द और उससे आगे वज्रमणि पर्यन्त जाने पर सहजानन्द है। उन उन स्थानों में शुक्र की गति को रोकना ही महासुख प्राप्ति अथवा चित्तवज्र प्राप्ति की साधना है।

6. समाधि :

समस्थिति ही समाधि है अर्थात् ग्राह्य-ग्राहक विरहित विषयविषयी से अभिन्न स्वभाव में अवस्थित होना ही समाधि है। समाधिभावना का प्रयोजन है महासुखविस्तार और विपाककाय को धर्मधातु में परिशुद्धकर विषयविषयी से भिन्न ज्ञानकाय को प्राप्त करना। प्रज्ञामहासुख और सर्वाकारवरोपेत ज्ञान की द्वैताभासरहित युगनद्धानुभूति ही समाधि का स्वरूप है। गुह्यसमाज उत्तरतन्त्र में कहा है–

प्रज्ञोपायसमापत्त्या सर्वभावान् समासतः ।
संहृत्य पिण्डयोगेन बिम्बमध्ये विभावनम् ।।
झटिति ज्ञाननिष्पत्तिः समाधिरिति संज्ञितः ।

समाधि अनुस्मृति से साक्षात्कृत सुखविस्तार और दृढ़ता की प्राप्ति होती है, इसलिये अनुस्मृति के साधकों की तरह समाधि साधकों के भी तीन भेद होते हैं। साधक कर्ममुद्रा, ज्ञानमुद्रा और महामुद्रा के साथ समापत्ति में स्थित होकर अनुस्मृतियोग से साक्षात्कृताक्षर-सुख विस्तार को प्राप्त करता है। ज्यों-ज्यों अक्षरसुख दृढ़ता की प्राप्ति और उसका विस्तार होता है, त्यों-त्यों सूक्ष्म विकल्पों का क्षय होता जाता है और अन्त में साधक अद्वय को प्राप्त करता है। इसी से अशुद्धतिलक क्षीण होता है तथा विपाककाय की परिशुद्धि होकर यही शरीर इष्टदेव कालचक्र (ज्ञानमय) में परिवर्तित हो जाता है। यही षडङ्गयोग में समाधि का फल है।

अनुस्मृति की तरह समाधि के भी तीन भेद हैं। इसमें भी कर्ममुद्रा और ज्ञानमुद्रा का सेवन कर महामुद्रा में समाहित होकर साधना की जाती है। अनुस्मृति से साधक जिस महासुख को प्राप्त करता है समाधियोग से उसमें दृढ़ता आती है। कर्ममुद्रा सेवन से समाधि-साधना पर कालचक्र में कहा है–

वर्षार्धे श्वेतकुष्ठं हरति वरतनौ मन्त्रिणां किं तदन्यत्
प्रज्ञासङ्गे सु(स्व)चित्तं स्खलितमपि सदा प्राणवायोर्निरोधात् ।
सप्तत्यब्दां जरां वै हरति सपलितां च द्विवर्षप्रपूर्णे
मुद्रासिद्धिस्तदूर्ध्वं भवति कतिदिनैर्मार्गचित्तप्रसङ्गात् ।। (2.115)

ज्ञानमुद्रासेवन की साधना इस प्रकार कही है–

मुद्रा मायानुरूपा मनसि च गगने रूपवद् दर्पणे च
त्रैलोक्यं भासयन्ती तडिदनलनिभानेकरश्मीन् स्फुरन्ती ।
बाह्ये देहेष्वभिन्ना विषयविरहिता मासमात्राम्बरस्था
चित्तं चेतोमयालिङ्गयति च जगतोऽनेकरूपस्य सैका ।। (4.198)

महामुद्रा के साथ साधनाविधि भी वहीं कही है—

त्यक्त्वेमां कर्ममुद्रां सकलुषहृदयां कल्पितां ज्ञानमुद्रां
सम्यक्संबोधिहेतोर्जिनवरजननीं भावयेद् दिव्यमुद्राम् ।
निर्लेपां निर्विकारां खसमहततमां व्यापिनीं योगगम्यां
कूटस्थां ज्ञानतेजां भवकलुषहरां कालचक्रानुविद्धाम् ।। (4.199)

समाधि की साधनाविधि अनुस्मृति की तरह ही है, इतना ही अन्तर है कि इसमें अनुस्मृति द्वारा परिज्ञात युगनद्ध तत्त्व में दृढ़ता लानी चाहिये।

गुह्यसमाज में कहा है—

समाधिवासितामात्रे निरावरणवान् भवेत् । (18.157)

इस प्रकार षडङ्गयोग के तीन अङ्ग काय वाक् चित्त वज्रदेह को प्राप्त कराते हैं तथा शेष तीन अङ्ग उसे दृढ़ता प्राप्त कराते हैं, अद्वयतन्त्र का साधक इसी शरीर से युगनद्ध कालचक्र में परिणत होकर परमपद को प्राप्त करता है। यही कालचक्र की षडङ्गयोग साधना विधि है।

•

कि नाथमत की हिन्दी रचनाओं में यम-नियम के उपर्युक्त अंगों का वर्णन यत्र-तत्र मिलता है, उनका व्यवस्थित और एकत्र वर्णन नहीं मिलता। इन दशांग यम-नियमों को नाथमत के ग्रंथों में स्पष्टतः स्वीकार भी नहीं किया गया है। सिद्धद्धिांतपद्धति के यम-नियम में जो अंग हैं वे पातंजल यम-नियमों के पाँच तत्वों से भिन्न हैं। वहाँ सर्वेन्द्रियजय या उपशम को यम कहा गया है। आहार, निद्रा, शीत, वात, आतप के जय को इसमें अन्तर्गणित किया गया है। इसी प्रकार मनोवृत्तियों के नियमन को नियम कहा गया है जिसमें एकान्तवास निःसंगता, औदासीन्य, यथाप्राप्तिसंतुष्टि, वैरस्य तथा गुरुचरणावरूढत्व को नियम का लक्षण कहा गया है। ये यम-नियम, कई तत्वों या लक्षणों की दृष्टि से तांत्रिक योग के अन्तर्गत गिने जाने वाले यम-नियम के दशांगों से भिन्न हैं यद्यपि नियमान्तर्गत कतिपय तत्वों में समानता है। 'पद्धति' के भी प्रायः सभी यम-नियमगत तत्वों का परिचय पहले दिया जा चुका है।[1] जैसा संस्कृत ग्रंथों के आधार पर वर्णन किया गया है, यम-नियम के बाद ही वास्तविक रूप में नाथयोगसाधन का आरम्भ होता है। इन विवरणों में नाथयोग गत विभिन्न सिद्धांतों का विचार किया जा चुका है। अब मुख्य साधनक्रियाओं का परिचय और तद्गत विचारों का परिचय हिन्दी वाणियों के आधार पर दिया जा रहा है।

१०—हठयोग

ऊपर जितना विवरण उपस्थित किया गया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नाथसिद्ध अपने प्राथमिक लक्ष्य परिपक्व देह या सिद्धदेह की प्राप्ति के लिये मन, पवन और बिंदु को स्थिर करना चाहते हैं। नाथयोगी इन तीनों में किसे प्राथमिकता देते हैं, उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर, कुछ निश्चित नहीं बताया जा सकता किन्तु इतना निश्चित है कि योग सम्बन्धी जितने विवरण उपलब्ध हैं उसमें प्राणतत्व और उसका साधन ही विशेष रूप से अधिक मात्रा में वर्णित है। 'हठ' की जो व्याख्या पहले दी गई है उसका संबंध प्राण या पवन से ही अधिक है। नाथसिद्धों को हठयोगी कहते हैं। इस हठयोग में यद्यपि आसन, बंध, वेध, मुद्रा, षट्कर्म, प्राणायाम आदि गृहीत हैं किन्तु इनमें प्राणसाधन ही प्रधान प्रतीत होता है शेष उसके उपकारक तत्व प्रतीत होते हैं। यम-नियम से संबंधित जो विवरण ऊपर उपस्थित किया गया है, उससे यही

---

[1] सि० सि० प० अ० व०, पृ० १२-१३; सि० सि० प०, २.३२-३३।

स्पष्ट होता है कि सभी आचारों और संयमों का लक्ष्य प्राण की स्थिरता है। जिस प्रकार संस्कृत रचनाओं में प्राप्त नाथयोग का वर्णन उपस्थित किया गया है उसी प्रकार से प्रायः उसी क्रम से हिन्दी रचनाओं में प्राप्त नाथयोग को भी उपस्थित किया जा रहा है।

पहले कह चुके हैं कि हिन्दी बानियों में 'हठ' शब्द का पारिभाषिक प्रयोग नहीं मिलता। किन्तु इन रचनाओं में सूर्य-चन्द्र और प्राण-अपान का विस्तृत वर्णन मिलता है। संस्कृत रचनाओं में हठ के 'ह'कार को सूर्य तथा 'ठ' कार को चन्द्र कहा गया है या क्रमशः प्राण और अपान कहा गया है। प्रथम को सूर्यनाड़ी तथा द्वितीय को चन्द्रनाड़ी कहा गया है। 'ह' और 'ठ' को क्रमशः इस प्रकार बतलाया जा सकता है—

ह—सूर्य, रवि, सूर्यनाड़ी, यमुना, पिंगला, शक्ति, प्राण, रज, पवन, अधः।

ठ—चन्द्र, शशि, चन्द्रनाड़ी, गंगा, इड़ा, शिव, अपान, विंदु, मन, ऊर्ध्व।

गोरख ने शक्ति को रज और शिव को विंदु कहा है। रवि की १२ कलाएँ हैं तथा चन्द्र की १६। रवि को शक्ति तथा शशि को शिव कहकर क्रमशः उनका स्थान मूलाधार एवं सहस्रार में बताया है। ये रवि और शशि ही सूर्य-नाड़ी और चन्द्रनाड़ी हैं। सूर्य पवन के घर में तथा चंन्द्र मन में रहता है। इन्हीं को क्रमशः अधः और उर्ध्व कहा गया है। चन्द्र और सूर्य के युग्म की तरह ही एक युग्म इड़ा—पिंगला का बताया गया है, जिन्हें संस्कृत ग्रंथों में क्रमशः चन्द्र और सूर्य या चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी कहा गया है। गोरख ने बताया है कि परमतत्व या परमपद में चन्द्र और सूर्य की स्थिति नहीं है। एक अन्य युग्म मन—पवन की स्थिति क्रमशः हृदय और नाभि में मानी गई है। सूर्य की १२ कलाएँ है तथा चन्द्र की १६ हैं।[१] इनके अतिरिक्त एक और युग्मक महत्वपूर्ण है, जिसका संबंध ऋग्वेद की द्यावा—पृथिवी से जोड़ा जा सकता है और उसे 'अरध—ऊरध' की तरह 'धरणी और गगन' का युग्म कहा जा सकता है।[२] ये युग्म देखने से द्वैत ज्ञात होते हैं। इनमें विरोध दिखाई देता है। इसलिये अद्वैत की स्थिति के लिये अन्य तत्वों का जो नाम लिया

[१] गो० बा०, १००. ५, ११०. १ (डा० बड़थ्वाल के अनुसार), १०३. २, १८८. १६, १९०. ३४, १२४. २, १५६. ६०, १९. ५१, १८९. २६, पृ० २०५ और २४१।

[२] गो० बा०, १८८. २२, १०२. टेक।

जाता है उसे तांत्रिक ग्रंथों में कहीं कहीं अग्नि नाम दिया गया है। इसलिये उपर्युक्त युग्मों की तुलना में उसे योग, अग्नि, नाड़ी, सरस्वती, सुषुम्ना, मध्य आदि नामों से अभिहित करते हैं। कहीं कहीं मध्य, अनन्तर, एकत्व, 'साँध' सम्मुख, विलीनता 'समि' या साम्य या सामरस्य, स्थैर्य, समाधि, मिलन आदि कहा गया है। गंगा और यमुना या इड़ा—पिंगला का मिलन या उनके विरोधभाव की हानि सुषुम्ना में होती है। जहाँ इड़ामार्ग को चन्द्र तथा पिंगला मार्ग को भौम या सूर्य कहा गया है वहीं सुषुम्नामार्ग को वाणीमार्ग (गंगा-यमुना-मार्ग के अनुसार सरस्वती मार्ग) कहा गया है। इड़ा—पिंगला के साधन से ही कुण्डलिनी का जागरण होता है और फिर सुषुम्ना नाड़ी में निश्शंक विश्राम मिलता है। वही वास्तविक घर है। इड़ा (चन्द्र) का शोधन और पिंगला का पूरण कार्य कर उन दोनों को लेकर सुषुम्ना के मध्य से आकाश में आरोहण करना चाहिए। इन नाड़ियों के एक साथ साधन से ही भ्रमनिवारण होता तथा ब्रह्मसाक्षात्कार होता है।[1] यह सुषुम्ना ही वस्तुतः मध्यममार्ग है। इसे अद्वय भी कह सकते हैं। आचार और संयमगत मध्यम मार्ग का परिचय हम पहले ही दे चुके हैं और यहाँ हठयोगगत मध्यममार्ग का परिचय दिया गया है जिसमें सुषुम्ना को मध्य कहा गया है। गोरख के अनुसार सारे आध्यात्मिक संसार का व्यापार अधः और उर्ध्व के बीच का व्यापार है। पूरक और रेचक के बीच कुंभक की स्थिति है, वही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और उसी से आध्यात्मिक व्यापार चलता है। यही स्थान शून्य स्थान है जहाँ साधक की स्थिति स्थिर होती है, वहीं उसे मस्ती मिलती है। प्राणतत्व की स्थिर और वास्तविक स्थिति अधः और उर्ध्व या पूरक-रेचक या अपान और प्राण के मध्य में है। प्राणपुरुष का वास्तविक निवास वहीं है। व्यक्ति की जब इड़ा और पिंगला में पवनक्रिया चलती रहती है तब उसे संसारोन्मुख कहा जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से उसे जागना तथा पारमार्थिक दृष्टि से उसे सोना कहते हैं किन्तु जब द्वैतप्रधान ये दोनों नाड़ियाँ अपने द्वैत का त्याग कर देती हैं, उनकी सांसारिकता सो जाती है, तभी केवल सुषुम्ना में पवन-क्रिया होती है। पारमार्थिक दृष्टि से इसे ही जागरण कहते हैं। गोरख के उपदेश में साधक से कहा गया है कि सबके सामने व्यवहार में तो सायंकाल सो जाओ किन्तु उस समय मध्यकाल में, रात और दिन या शशि और सूर्य के मध्य में, भीतर से, अंतस् से, जागते रहना चाहिए। यह जागरण तभी संभव होता

[1] गो० बा०, ३३. ९४, ९५.१, १०५. २, १११. ५. १९, १६७. १६।

है जब इड़ा-पिंगला दोनों मध्य में समाहित हो जायँ, उनका पृथक् अस्तित्व न हो, विरोध भाव न रहे। इसी को उन्होंने गंगा-यमुना के बीच आसन जमाना कहा है।[1]

इसी को शिव-शक्ति-योग भी कहते हैं। शिव और शक्ति के योग की निजस्वरूप में स्थिति गोरख चाहते हैं। यह मेरुदंड की स्थिरता से ही होता है। ये दोनों तब तक साबित नहीं होते जब तक गुरु ब्रह्मग्रंथि से मुक्त न कर दें। शिवशक्ति का योग होने पर मन में चंचलता रह नहीं सकती वह सदैव उन्मन (अचंचल-परमतत्व की ओर उन्मुख मन) ही रहेगा। इसी मध्ययोग को कहीं-कहीं संधि भी कहा गया है। जिस सुषुम्ना के विषय में पहले कहा गया है उसे गोरख ने एक स्थान पर विषमी संधि कहा है। गोरखबानी के कुछ पदों के किसी नाथपंथी टीकाकार ने विषमी संधि नाभि को कहा है तथा सुषुम्ना का दूसरा नाम विष नाड़ी बताया है।[2] डा० बड़थ्वाल ने इसे वंकनाल या सुषुम्ना या इला-पिंगला के प्रवाहों की संधि कहा है। यहाँ संधिस्थल वस्तुतः मन, मनसा और सुर (प्राण या पवन) का संधि स्थल है। इसी को दूसरे शब्दों में चन्द्र और सूर्य की विपरीत एवं भिन्न दिशाओं का निवारण कर उन्हें परस्पर सम्मुख रखना कहते हैं जिससे अमृत तत्व सूर्य द्वारा नष्ट नहीं किया जाने पाता। चन्द्र-सूर्य की पृथक् सत्ताओं का विलोप अर्थात् सुषुम्ना के प्रभावकारी रूप में प्रकटीकरण का भी यही तात्पर्य है, जो गगन में सिद्ध होता है। पहले हम साम्य, समरसीकरण या समता की बात कह चुके हैं। पिंड और ब्रह्माण्ड के समरसीकरण के अतिरिक्त सूर्य-चन्द्र के समीकरण की भी बात कही जाती है। यह समीकरण चन्द्र-सूर्य, शिव-शक्ति का समीकरण, पांचों (भूत-) तत्वों, मन-पवन का समीकरण है। गोरख ने इन्हीं क्रियाओं को चन्द्र-सूर्य का एक घर में रखना, सूर्य—शशि का निर्विवाद होना, चन्द्र द्वार पर सूर्य की स्थिरता, चन्द्र—सूर्य का मिलन आदि कहा है।[3] इस मिलनस्थल सुषुम्ना को 'पश्चिम द्वार' भी कहा जाता है। यदि मूलाधार को पूर्व कहा जाय, जहाँ सूर्योदय होता है, तो तदनुरूप षोडश-कला-युक्त अमृतस्राविनी सुषुम्ना को शिवस्थान या

---

[1] गो० बा०, २८. ७८, २९. ८१, ८६. ३, १२४. २, १४९. ५३।

[2] गो० बा०, ४५. १३०, ३०. ८४, १५०. ३, १९३. ५६।

[3] गो० बा०, २५२. ६, १२७. २ तथा उसकी बड़थ्वाल की टीका, १४०. २, ६३. १८७, ३९. ११३, ९६. ४, ९२.२, १००. ५, ११८. १६, १९८. ९६, १९१. ४६, १७६. १२, १३०. १, १७५. ६, ९६. ३।

पश्चिम कहना चाहिए। क्योंकि यहाँ 'अमृताकला' की रक्षा होती है तथा सूर्य का विरोधभाव समाप्त हो जाता है।[1]

गोरख ने द्वादश-कला-संपन्न सूर्य का शोषण तथा षोडश-कला-संपन्न शशि का पोषण करने के लिये कहा है। सूर्य और शशि के अन्तर की चार कलाओं का साधन, जिसे तत्वतः अमृत कहा जा सकता है, करे तो निजरंता आयत्त होती है।[2] इसी को 'ह+ठ+योग' कहते हैं। किन्तु इतना स्पष्टतः ध्यान में रखना चाहिए कि यह सुषुम्ना सरस्वती या मध्यसाधन या शिव-शक्ति-योग तक ही नाथसाधन का अंत नहीं है क्योंकि यह तो अद्वय अवस्था है। इसके बाद भी नाथसिद्ध की एक ऐसी अवस्था है जो निर्गुण-सगुण, द्वैत-अद्वैत सब से परे कही जाती है और यही नाथपद है जिसमें कायसिद्धि और परमपदप्राप्ति दोनों मिश्र एवं अविभाज्यभावेन निहित हैं। इसे पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है।

हठयोग शब्द की जो व्याख्या उपस्थित की गई है, उससे स्पष्ट होता है कि नाथों के योग में मन-पवन का साधन मुख्य है। पवन साधन ही प्राणायाम है जिसमें पवन की सहायता से समग्र शरीर का, उसकी नाड़ियों का, शोधन हो जाता है तथा इसी से जीवशक्ति प्रेरित होकर ऊर्ध्वमुख होती है। नीचे शक्ति है तथा ऊपर शिव है। इसी को शिवशक्तियोग कहा गया है। यह शक्ति पिंड में कुंडलिनीशक्ति है जो मूलाधार में कुंडलित होकर रहती है। कभी-कभी कुंडलिनी का ऊर्ध्वीकरण ही विंदु का ऊर्ध्वीकरण कहा जाता है। यह क्रिया भी प्राणायाम से साधित होती है। जैसा पहले बताया जा चुका है मन और पवन नामक दो तत्वों में से नाथसिद्ध दोनों को परस्पर साध्य मानते हैं, जबकि उनका कहना है कि विंदुरक्षा प्राणयाम को संभव बनाती है। इस प्रकार नाथ-योग में मन, प्राण, विंदु, कुंडलिनीशक्तिसाधन अन्तर्भूत हैं। ये सभी साधक की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हैं। गोरख ने साधन के लिये ओंकारसाधन, नादानुसंधान, प्राणायाम या वायुसाधन, मानस साधन, विंदुसाधन को स्वीकार किया है। इन पाँच तत्वों से उन्होंने सहज तत्व का प्रकाश संभव माना है। वायुसाधन या प्राणायाम के प्रसंग में उन्होंने बताया है कि उसी वायु से ही नाद होता है। इसी से विभिन्न ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। यह वायु ही षट्चक्र-

---

[1] गो० बा०, ६३. १८७।

[2] गो० बा०, ३१. ८९।

भेद करती है। यही अधः, ऊर्ध्व और मध्य में भ्रमण करती है। यही सोहं वायु 'हंस' के रूप में संपूर्ण पिंड में घूमती है। अपने योगसाधन में गोरख ने कई प्रकार की क्रियाएँ सम्मिलित की हैं। उन्होंने छठें-छमासे काया को पलटना या परिवर्तित करना, पवन का उलटना, षट्-चक्र-भेद करना, सूर्य-चन्द्र का अपने घर में रक्षण, आसन और आहार की दृढ़ता, नाद-विंदु और वायु का रक्षण, मन-पवन की अचंचलता, इड़ा-पिंगला की सुषुम्ना या त्रिवेणी में संधि, मनसा के व्यापार का बंधन, पवन-पुरुष की उत्पत्ति, अध्यात्मलीनता, चन्द्र-सूर्य-साधन, नादानुसंधान, विंदुस्थैर्य या दृढ़ता, इड़ा-पिंगला का नाड़ीसाधन, आसन, महारसपान, मनोमारण, कायादोषहरण, ब्रह्माग्निप्रज्वलन, अमृतपान आदि को अपने योग में अन्तर्भूत कर लिया है।[१] प्रायः ये सभी साधन नाथयोगी स्वीकार करते हैं। इनका विस्तृत विवरण आगे दिया जा रहा है।

साधन की दृष्टि से विचार करने पर यम-नियम के बाद आसन का सबसे पहले स्थान है। नाथपंथी हिन्दी रचनाओं में प्रायः कृच्छ्राचारप्रधान स्थूल काया साधनों का अभाव है। आसनों का वैसा विस्तृत परिचय इनमें नहीं मिलता जैसा संस्कृत रचनाओं में मिलता है। गोरख ने आसन का सबसे अधिक आवश्यक तत्व दृढ़ता माना है। आसन में जबतक दृढ़ता न हो तब तक वह निरर्थक है क्योंकि इससे चंचलता का बाध होता है। यदि सहज युक्ति से आसन किया जाय तो तन-मन और पवन का दृढ़ धारण हो सकता है। यह आसन इसलिये भी आवश्यक है कि तीर्थ-व्रत करने से, गिरि-पर्वतों पर आरोहण करने से, पवन टूटता है, क्षीण होता है तथा परिणामतः काया भी नष्ट होती है। आसन लगाने से पवन नहीं टूटेगा और न काया ही क्षीण होगी।[२] विभिन्न प्रकार के आसनों में से, गोरखबानी में, पद्मासन का स्पष्टतः नाम लिया गया है और उसके साधन को श्रेयस्कर बताया गया है। वज्रकछोटा धारण करने तथा वज्रासन सिद्ध करने के लिये विशेष रूप से कहा है क्योंकि इससे रोग, व्याधि और क्षुधा का हरण होता है।[3] संस्कृत रचनाओं में भी आसनों को आरोग्यप्रदाता माना गया है तथा सभी आसनों में सिद्धासन, वज्रा-

[१] गो० बा०, ९८-१००.टेक—६.१२; १३.३३, ३६.१०५, ४४.१२५, ५५.१६३, ६३.१८६-१८७; ९५. टेक; ९६.३-४, १०३.२-३, १५५.१, १७६.११-१४, पृ० २४१।

[२] गो० बा०, ४४.१२५, १०३.२, १६९.३, १७१.८।

[3] गो० बा०, १७४.१, १७७.१६।

सन या मुक्तासन आदि को विशेष कहा गया है। किन्तु जहाँ इस प्रकार आसन के साधन का समर्थन मिलता है, वहीं केवल आसनसाधन को निरर्थक भी कहा गया है। जिस खंडित ज्ञान के प्रपंच में लोग जूझ कर मरते हैं, उससे भिन्न परमपद को समझ नहीं पाते, उसी प्रकार खंडित योगी, जो आसन और प्राणायाम तक ही रह जाता है, इनके विभिन्न प्रकार के उपद्रवों से ग्रस्त रहता है तथा रात-दिन वह इन्हीं के चक्करों में पड़कर घुल-घुल कर मरता है। आसन लगाकर पवननिरोध करना भी एक प्रपंच है यदि आत्मविचार न हो। इसीलिये गोरक्ष इन स्थूल आसनों की अपेक्षा अन्तस्साधन को महत्ता देते हैं, गंगा और यमुना के मध्य सुषुम्ना में आसन लगाने को कहते हैं। संयम की दृष्टि से उन्होंने संतोष को ही आसन बताया है।[1] तात्पर्य यह कि आसन का सबसे बड़ा तत्व दृढ़ता है। यदि इनका प्रयोग आत्मयोग के लिये न हो तो ये निरर्थक हैं। मुख्य आसन तो अद्वय भूमि सुषुम्ना का है और संतोष ही संयम की दृष्टि से आसन है। अन्य नाथसिद्धों में से जलंधरिपाद ने सिद्धासन से मायामुक्ति मानी है। चरपट ने दृढ़ आसन की आवश्यकता बतलाई है।[2] इस प्रकार शरीर की अचंचलता, पवन-स्थिरता और आरोग्य के लिये आसन आवश्यक बतलाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि साधन के अग्रसर होने पर इन स्थूल आसनों का कोई महत्व नहीं रहता और साधक अन्तस्साधन में ही लीन रहता है।

१२—प्राणायाम

संस्कृत रचनाओं में बताया गया है कि शरीर के शोधन के लिये षट्कर्म या प्राणायाम में से किसी एक का प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु इन दोनों की क्रियाओं को देखने से प्रतीत होता है कि प्राणायाम जहाँ शोधन करता है, वहीं षट्कर्म से शरीर के भीतर के, विशेषकर जघनस्थल से ऊपर तथा सिर से नीचे के अंगों का शोधन होता है। प्रणायाम का विस्तृत रूप से निरूपण इन नाथपंथी बानियों में मिलता है। षट्कर्म का, जिसमें तांत्रिक मतानुसार धौति, बस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक, कपालभाति की गणना की जाती है, कोई वर्णन या संकेत नाथबानियों में नहीं मिलता। प्राणायाम का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। प्राणयाम वायुसाधन या पवनसाधन है। यह

---

[1] गो० बा०, ४७.१३४, २९.८२, १४९.५३, १९७.८६।

[2] ना० सि० बा०, ५३.३५७; सि० सि० प० अ० व०, ९०.६, ८५.३९।

पवन ही सब कुछ है। जबतक यह पवन चंचल है तबतक संसार भोग है और इसके अचंचल होने पर योग होता है। इस पवन से ३६ प्रकार के रोगों का हरण होता है। इस पवन के रहस्य का ज्ञान हो जाने पर व्यक्ति स्वयं अपने शरीर का कर्ता (शासक) हो जाता है और स्वयं उसका शरीर ही उपास्य हो जाता है। पवन से ही पंचेन्द्रियों का उनके विषयों से प्रत्याहरण होता है। इस पवन के परावृत या प्रत्यावर्तित करने, मोड़ने, पलटने से आरोग्यलाभ होता है। पवनसाधन से सम्पूर्णशरीर के प्रत्येक अंग में वायु की क्रीड़ा होने लगती है। इसी पवन से मन को बाँधना चाहिए। इस पवन के ही विपरीतकरण से योगाग्नि का प्रज्वलन करना चाहिए। शरीर की हजारों नाड़ियों में इसी पवन के संचरण से कोटि प्रकार के नादों की झंकार होती है। इस पवन के ब्रह्मरन्ध्र में समावेश से बालरूप परमतत्व का साक्षात् या प्रत्यक्ष होता है। पवन का ही साधन बंध को संभव बनाता है।[1] नीचे की ओर जानेवाले पवन या प्राण को ऊर्ध्वमुख कर दें तो द्वादश अंगुल परिमाण वाला पवन मन को भी ऊर्ध्वमुख कर देता है। इस पवन को ही उन्मुख या ऊर्ध्वमुख कर देने से विभिन्न उपाधियाँ, रोग आदि नष्ट हो जाते है। षट्चक्रों का वेध भी इसी पवन को उलटने से सम्भव होता है। यों प्राण का प्रसार तो अनेक नाड़ियों में है किन्तु उसका वास्तविक निवास तो षोडश-कला-युक्त चन्द्रनाड़ी तथा द्वादश-कला-युक्त सूर्यनाड़ी से भिन्न एवं परे सहस्रार नाड़ी सुषुम्ना में है। यही असंख्यकलात्मक शिव का स्थान है। बताया गया है कि स्थिर पवन का या वायु का स्थान सुषुम्ना है। वहीं जाकर वायु परिपक्व हो जाता है। इस वायु या 'बाई' की ही परिपक्वता से जीवन की परिपक्वता सिद्ध होती है।[2] इस शरीर में जो चौसठ संधियाँ हैं, वे ही चौसठ हाट, बाजार हैं। इन संधियों में वायु के संचार से कायाकल्प या कायापरिवर्तन होता है। इसके लिये शरीर के नौ रन्ध्रों को, जो वायु के बहिर्गमन-आगमन के द्वार हैं, अवरुद्ध कर देना आवश्यक है। सभी द्वारों को बंद कर देने से वायु के निकलने का मार्ग नहीं रह जाता। अतः कुंभक की अवधि बिलंबित होती है। इसलिये गोरक्ष पूर्वोक्त संयमों के पालन का उपदेश करते हुए वायु-संग्रह का उपदेश देते हैं। क्योंकि इस वायु से विभिन्न

---

[1] गो० बा०, ५१.१४७, ६१.१८२, ७०.२१५, ७१.२१७, ८१.२६५, १७.४७, १९.५३, ३१.८८, ४३.१२३।

[2] गो० बा०, १७५.७, १९४.६४, ३६.१०५, ३३.९३, ५४.१५७।

प्रकार के वाक्य सुनाई पड़ते हैं। इसी से घनगर्जन सुनाई पड़ता है, इसी से ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। इसी से षट्चक्रवेध होता है तथा यही अधः और ऊर्ध्व में यात्रा करता है। सोहं वायु ही साधन से प्रत्यावर्तित होकर 'हंस' के रूप में सम्पूर्ण पिंड में फिरता है (तथा संपूर्ण शरीर को पवित्र करता है)। इसी वायु के प्रभाव से विंदु, गुरु के उपदेशों के अनुकूल स्थिर रहता है। विपरीतकरण की एक मुद्रा के साधन द्वारा जैसे वायु स्थिर होती है, उसी प्रकार वायु के स्थिर होने पर महारस अमृत सिद्ध होता है।[1]

अन्य नाथसिद्धों ने भी इस प्राणायाम अंग पर प्रकाश डालकर उसकी महत्ता उपयोगिता एवं अन्य साधनों के साथ उसके संबंध का वर्णन किया है। भरथरी ने भी, गोरख के समान ही, नौ द्वारों के कपाटों को बंद कर देने तथा वायु के लिये शिवस्थान दशम-द्वार के मार्ग का ही अनुसरण करने का उपदेश दिया है। उनकी दृष्टि में यदि कोई साधनयोग्य तत्व है तो केवल पवन। चरपट ने इस वायु-पवन की धारा को अति चंचल माना है। यह पवन इस शरीर का स्तंभ है। अतः इसके चंचल होने से शरीर टिक नहीं सकता, स्थिर नहीं रह सकता। अतः मूल द्वार को बंद कर वायु को शरीर की चौसठ संधियों में क्रीड़ा करने देना चाहिए, उससे नित्य ही शरीर का प्रक्षालन करना चाहिए। इससे जरा का परिवर्तन तो होता ही है, साथ ही इससे रोगखंडन भी होता है क्योंकि इससे सभी दोष निकल जाते हैं।[2] गोपीचंद गहन (गंभीर) मन से सोहं श्वास का जपसाधन करने के लिये कहते हैं। उनके अनुसार इस साधन में पवन को प्रेरित कर पश्चिम दिशा (सुषुम्ना) की ओर पलट देना या उन्मुख कर देना चाहिए। इस प्रकार अपान और प्राण को उलट कर परस्पर मिला देना चाहिए। परिणामतः नादधारा का ग्रहण, विंदुस्थैर्य, जन्ममुक्ति आदि सिद्ध होते हैं। इस पवन के ही स्थिर होने से मन स्थिर होता है तथा पुनः उससे विंदु और क्रमशः स्कंध स्थिर होते हैं। चौरंगीनाथ ने बताया है कि प्राण के स्थिर रहने पर सब कुछ रहता है। तथा प्राण के (चंचल हो) जाने पर सब कुछ चला जाता है। इसीलिये अनेक गुरुओं ने इसका उपदेश दिया है। चुणकरनाथ के अनुसार वायु से ही विंदु गगन की ओर प्रेरित किया जाता है। उसी को बाँधने से सारा जगत् बँधता है। भरथरी द्वादश पवन के साधन में वंशीध्वनि का श्रवण संभव मानते हैं। वायु के साधन से षट्चक्रों का वेध

---

[1] गो० बा०, १९.५०, ५०. १४५, ९९.३ १४९-१५०. १।

[2] सि० सि० प० अ० व०, ७७. ९, ७८. २२, ८२. ३, ८३. १४, ८४.२४।

माना है तथा उसी से सहस्रदलपद्म में मुख को प्राप्य माना है। मीड़कीपाव कहते हैं कि चलते हुए पिंड को, उसकी गति को सभी लोग देखते हैं किंतु वे बिरले ही व्यक्ति हैं जो चलते हुए प्राण को उसकी गति को देखते हैं।[1]

प्राण और प्राणायाम संबंधी इस विवरण से इतनी बात स्पष्ट हो जाती है कि प्राणसाधन के लिये संयम आवश्यक है। प्राण का स्थैर्य होने से आरोग्य-लाभ, षट्चक्रभेद, मनःस्थैर्य, जन्ममुक्ति, नादानुसंधान, उन्मनीसाधन, जपसाधन, प्रत्याहरण, साधन के सभी तत्वों का विपरीतकरण, कायाशोधन या नाड़ीशोधन, विंदुरक्षा या विन्दुस्थैर्य, कायपरिवर्तन, अग्निसाधन आदि संभव होते हैं। इनमें से महत्वपूर्ण साधनों का विचार करने से प्रतीत होता है, जैसा पहले कहा जा चुका है, कि मन, विंदु, प्राण और वाक् ये चार तत्व प्रधान हैं। इनमें वाणी का मंत्रयोग से तथा प्राण का हठयोग से साधन होता है। किन्तु ये पूर्णतया पृथक् नहीं किये जा सकते। योगसाधन में ये परस्पर सहयोगी भाव से अग्रसर होते हैं। जपसाधन का संबंध मंत्रयोग से है। मन तथा अन्य मूल तत्वों का साधन लययोग या षट्चक्रभेद से संबद्ध है। नाथयोगियों ने मनसाधन का भी विचार किया है। मन और प्राण के स्थैर्य से विंदुस्थैर्य संभव बताया गया है। प्राणायाम से जिस साधन का सबसे घनिष्ठ संबंध है, वह नादानुसंधान है।

प्राणायाम का प्रारंभिक संबंध नाड़ियों से है। संस्कृत रचनाओं तथा हिन्दी रचनाओं के उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि नाड़ियों का शोधन प्राण से ही होता है। प्राण पर जब तक पूर्ण नियंत्रण न हो तबतक इच्छानुसार स्वतंत्र भाव से प्राण नाड़ियों में संचरण नहीं कर सकता। अतः प्राण पर पूर्ण नियंत्रण या संयम हो जाने पर ही नाड़ीशोधन संभव है। श्वास की संख्या, उसकी मात्रा, नाड़ियों की संख्या शरीर के विभिन्न रन्ध्र या द्वार तथा उनका निरोध—ये सभी प्रायः संस्कृत रचनाओं के अनुकूल हैं। हठयोग शब्द की व्याख्या करते समय अभी बताया गया कि 'ह' और 'ठ' क्रमशः सूर्य और शशि या पिंगला और इड़ा नाड़ियों के वाचक हैं। इसी प्रकार अन्य नाड़ियों में सुषुम्ना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है पहले ही यह भी कहा गया है कि इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों को क्रमशः गंगा, यमुना और सरस्वती नदियों के नाम से भी अभिहित किया जाता है। चौरंगीनाथ ने सात सरिताओं का वर्णन करते समय प्राण-संकली में गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, देवनदी, गोमती नदियों को गिना है। जि ह्वा

[1] ना० सि० बा, १८.१०३, १८.१०५-१०६, ३९.२४१, ५१.३४९-३५०, ५७.५९२-५९३, ११८.७०३।

के दक्षिण पार्श्व में गंगा, उसके वाम पार्श्व में यमुना तथा जिह्वा के मध्य में सरस्वती का निवास है। पवन नाड़ी का निवास नर्मदा में है। अन्न नाड़ी में गोदावरी, मेरु मध्य में देवनदी और मूत्र नाड़ी में गोमती नदी का निवास माना गया है।[१] गोरख ने नाड़ियों के परिचय में बतलाया है कि शंखिनी नाड़ी में शिव का संचार है तथा सुषुम्ना नाड़ी में जीव का संचार है। जीव बंकनाल में अमृतरस का पान करता है। गोरख ने कई स्थानों पर नौ नाड़ियों का वर्णन किया है। डा० बड़थ्वाल के अनुसार सुषुम्ना को छोड़कर वे नौ नाड़ियाँ हैं—इड़ा, पिंगला, गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलंबुषा, कुहू और शंखिनी। गोरख ने नाड़ियों की ७२००० संख्या की ओर भी संकेत किया है। इन नाड़ियों की ही सात गाँठों को चक्र कहा जाता है। साधना की दृष्टि से सुषुम्ना नाड़ी का महत्व है। इसी में नाद का श्रवण होता है। नाड़ियों के शोधन और साधन के संबंध में कहा गया है कि सब से पहले सदोष नाड़ियों को प्राण से भर कर शुद्ध कर लेना चाहिए और तत्पश्चात् प्राणवायु से बंकनाल का पूरण करना चाहिए। इस बंकनाल का स्थान नाभि कहा गया है। नाड़ी ऊर्ध्वमुखी होती है तथा इसी में अमृतरस का स्राव होता है।[२]

इन नाड़ियों का संबंध द्वारों तथा शरीरगत विशेष पवित्र स्थानों से है। इन स्थानों को तीर्थ इसलिये कहा जाता है कि जिस प्रकार बाह्य जगत् में विभिन्न तीर्थस्थान सरिताओं के तट पर हैं, उसी प्रकार ये पवित्र स्थान भी शरीर की नाड़ियों के, जिन्हें सरिताएँ कहा गया है, किनारे बसे हुए हैं। गोरख ने पारंपरिक रूप से प्रसिद्ध ६८ तीर्थों को घटस्थ माना है। योगियों का कैलास, मानसरोवर, केदार, गंगोत्तरी आदि सभी इसी शरीर में हैं।[३] चौरंगी ने गया, प्रयाग, वाराणसी, केदार, गंगासागर नाम के पंचतीर्थों में से केदार को शीर्षभाग (सुषुम्ना का अंत भाग) में, प्रयाग को (बंकनाल का स्थान) नाभि में, वाराणसी को सर्वव्यापक, गया को कंठ में तथा गंगासागर को उदर में स्थित माना है।[४] इन नाड़ियों का शरीर के दस रन्ध्रों से भी संबंध है। गोरखबानी में इनके

---

[१] ना० सि० बा०, पृ० ४१-४२, छं० २७५-२७६।

[२] गो० बा०, १९३.६०, १६४-१६५.५, १६५.६, १६७.१३, १५५.३.५१, १९२.५२, १४९.५३, २०.५६।

[३] गो० बा०, ५५.१६३, ३३.९६।

[४] ना० सि० बा०, ४२.२८४-२८५।

संबंध में कुछ भी नहीं मिलता। केवल शरीरगत नौ रन्ध्रों के महत्व की ओर संकेत कर दिया गया है। दशम द्वार का अवश्य ही विस्तृत परिचय उपलब्ध है। गोरख ने 'देवद्वार' शब्द का प्रयोग ब्रह्मरन्ध्र या दशम द्वार के अर्थ में किया है। दशम द्वार वह स्थान है जहाँ योगी उन्मन हो जाता है तथा नाद-विन्दु के मेल से उत्पन्न घू-घू-कार अनाहत नाद को सुनता है। किन्तु इसके उपरान्त इस दशम द्वार को भी बन्द कर वह अन्य द्वार से परमतत्व की खोज करता है। इस दशम द्वार में या ब्रह्मरन्ध्र में शिव का निवास है। इसी दशम द्वार में अवधूत की समाधि लगती है। जब अवः और ऊर्ध्व को अवरुद्ध कर दिया जाता है, तो मन स्थिर हो जाता है, पवन स्थगित हो जाता है और तदुपरान्त दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र का प्रत्यभिज्ञान होता है और परिणामतः आवागमन छूट जाता है। इस शरीर में नौ द्वार तो प्रत्यक्ष ही दिखाई पड़ते हैं किन्तु दशम द्वार अप्रत्यक्ष है, दिखाई नहीं पड़ता। इसी दशम द्वार में 'निराकार पद' की सेवा की जाती है। इस प्रकार की सेवा के लिये नौ द्वारों का दृढ़तापूर्वक अवरोध करना चाहिए। वहीं ब्रह्मरंध्र में मदमत्त मन को बाँध देना चाहिए। जब वायु को बाँध दिया जाता है तथा पवन चौंसठ सन्धियों में क्रीड़ा करने लगता है, नौ द्वारों में ताला बंद कर दिया जाता है तभी दशम द्वार में प्रकाश का दर्शन होता है।[१] गोरख ने नवरन्ध्रों या नौ द्वारों को नौ गायों के रूप में कल्पित किया है। इन्हें नौ घाटी भी कहा गया है जिसमें वायु का आवागमन बना रहता है। इन रास्तों को रोक देने से वायु का चौसठ संधियों में व्यापार होने लगता है। इन नौ द्वारों से होनेवाले वायु के गमनागमन को रोकने से 'काया की पलट' या कायाकल्प भी होता है तथा परिणामतः उन्मनीयोग की सिद्धि होती है। अन्यत्र गोरख ने शरीर के नौ द्वारों को नौ बछड़ों के रूप में भी कल्पित किया है। इसी प्रकार नौ द्वार नौ सूत्रों के रूप में भी कल्पित हैं जिनके ऊपर या सहारे कोट का यंत्र प्रचलित रहता है। नौ द्वार शरीर रूपी मठ की नौ लाख खाइयों के समान भी हैं।[२] घूघलीमल ने मन को फेर कर दशम द्वार में ही उसे घेरने तथा अधः-उर्ध्व का निरोध कर देने का उपदेश दिया है। भरथरी के अनुसार नौ द्वारों के कपाट को दृढ़तापूर्वक स्थिरभाव से बंद कर देना चाहिए क्योंकि दशम द्वार से तो शिव के मंदिर का रास्ता चलता है।[3] स्पष्ट ही दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र है

[१] गो०बा०, पृ० १४७, ४७, ९४, ११६, ११७, १२०, १२७, १७५, १७४।

[२] गो० बा०, पृ० १०४, १२, १९, ११३, १२१, १३४, ११६।

[3] ना० सि० बा०, पृ० ६५-६६, १००।

और वहाँ शिव का निवास है। इसी प्रकार नौ रन्ध्र या नौ द्वार शरीर के छिद्र हैं।

प्राणायाम का नाड़ियों से सम्बंध है तथा नाड़ियों का द्वारों से। इन नाड़ियों का तथा प्राणायाम का नाद-विंदु से भी सम्बन्ध है। सूर्य-चन्द्र और नाड़ियों के विषय में हम बतला चुके हैं कि इस युग्मक सिद्धान्त को व्यक्त करनेवाले अन्य शब्द भी हैं। नाद-विंदु की भी इन्हीं में गणना की जाती है। विंदुरक्षा प्राणायाम में अत्यधिक आवश्यक है। गोरख ने विंदु शब्द का अधिकतर प्रयोग 'शुक्र' के अर्थ में किया है।[१] उन्होंने विंदु के दो भेद भी बताये हैं—कच्चा विंदु तथा पक्का विंदु। वायु के कच्चे रहने से, प्राण पर पूर्ण नियंत्रण न रहने से जीवन कच्चा रहता है तथा परिणामस्वरूप ही काया कच्ची रहती है और विंदु भी कच्चा रहता है। उन्होंने इन सबको योगाग्नि से परिपक्व करने की सम्मति दी है।[२] गोरख ने शिवशक्ति के युग्मक के समान ही रज और विंदु (या रज और शुक्र) के युग्मक को स्वीकार कर बतलाया है कि शक्ति रज है और शिव विंदु है। डा० बड़थ्वाल ने रक्त को शक्तिस्वरूप बतलाया है और विंदु को शिवस्वरूप। रवि की बारह कलाएँ होती हैं और चन्द्र की सोलह कलाएँ होती हैं। इन दोनों का योग ही शिवशक्तियोग है। इस प्रकार रज और विंदु का योग भी शिवशक्तियोग है। यह सामरस्य अनंत है। यह चार कलाओं का सामरस्य है।[३] 'रक्त' 'रज' आदि शब्द लोहित विंदु के बोधक हैं तथा 'विंदु' पांडुर विंदु का बोधक प्रतीत होता है। संस्कृत ग्रंथों में पाण्डुर विंदु को शशिस्थानीय तथा लोहित विंदु को रविस्थानीय कहा गया है। इस प्रकार जो युग्मक बनते हैं, वे इस प्रकार अनुमित किये जा सकते हैं—

शिव—विंदु (पाण्डुर), शुक्र, शशि, इड़ा, गंगा, ठ।
शक्ति—विंदु (लोहित), रज, रवि, पिंगला, यमुना, ह।
(इस प्रकार के कुछ कुग्मकों का परिचय पहले भी दिया जा चुका है)

---

[१] गो० बा०, ४९.१४१-१४२, ५१.१४८, ७०.२१२, १२.३०, १७.४७ ९०.२, ९१.५।

[२] गो० बा०, ५४.१५६।

[३] गो० बा०, १००.५।

इसी प्रकार विंदु से संबंधित दूसरा युग्मक नाद-विंदु है। गोरखबानी में इनकी व्याख्या नहीं मिलती। इनके सामरस्य अथवा योग की बात अवश्य कई बार कही गई है। शरीर में इन दोनों का समन्वित रूप में 'जरना' (जलना या जीर्ण होना) आवश्यक बतलाया गया है। नाद का विंदु के घर गरजना, पहुँचना, नाद को उलट कर तथा विंदु को पलट कर वायुगृह में पहुँचाना, या वायु की सहायता से दोनों का समन्वय करना भी योगक्रिया ही है।[१] डा० कल्याणी मल्लिक ने बताया है कि गोरक्षसिद्धांतसंग्रह में नाद और विंदु अंश के उत्कर्षापकर्ष का विचार किया गया है। बताया गया है कि नाथ से नाद और नाद से प्राण की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार शक्ति से विंदु और विंदु से शरीर की उत्पत्ति हुई। योगसंप्रदाय में नाद से उत्पन्न शिष्य को विंदु से उत्पन्न पुत्र की अपेक्षा श्रेष्ठ बताया गया है। यह भी बताया गया है कि विंदु शिव है और रज शक्ति। विंदु ही इंदु है और रज ही रवि है। इन दोनों के संगम से ही परमपद की प्राप्ति होती है।[२] इनके साधन के संबंध में संस्कृत ग्रंथों में विवेचन मिलता है जिसका परिचय हम पहले ही दे चुके हैं। अन्य नाथसिद्धों ने भी नादविंदुसाधन की ओर संकेत किया है। चरपटनाथ ने बताया है कि पवन को पलट कर गगन में समाहित कर देने से नाद-विंदु को स्थिरता प्राप्त होती है। पारबती जी, गोरख की तरह ही, नाद-विंदु के शरीर में जीर्ण होने की बात करते हैं।[३]

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि नाड़ीसाधन और नाद-विंदु-साधन, दोनों ही, नाथपंथियों की हिन्दी रचनाओं के अनुसार, प्राणसाधन से संभव हैं। इस पवनसाधन या प्राणसाधन से योगाग्निप्रज्वलन या कुंडलिनीप्रबोध, शरीर की चौसठ संधियों में वायु का संचरण (और शोधन), काया का परिवर्तन, नवद्वाररोध, उन्मनीयोगसाधन, विन्दुस्थैर्य, ऊर्ध्वोध: वायुसाधन से ब्रह्म-रन्ध्रादि-सिद्धि, ज्योतिप्रकाश, अनाहतनादश्रवण, ध्यानसाधन, नित्य आरोग्य, पवन को उलट कर प्रेरित करने से षटचक्रवेध, महारससिद्धि एवं शिवशक्तियोग, परमात्मप्राप्ति, मन की अचंचलता, द्वादशांगुल पवन के सुषुम्ना में प्रवेश से सुख एवं जरामरणदु:ख से मुक्ति, सुषुम्ना में पवननिरोध से अजरत्व एवं अमरत्व

---

[१] गो० बा०, ७.१९, २०.५४-५५।

[२] ना० सं० इ० द० सा० प्र०, पृ० ५०९-५१०।

[३] ना० सि० बा०, पृ० ३१ छं० १८०; पृ० ६८ छं० ४३४-४३५।

की प्राप्ति, मन-पवन के योग से अनाहतनादश्रवण आदि सिद्ध होते हैं।[1] गोरख ने चार प्रकार के प्रमाण के श्वासों का वर्णन कर बताया है कि बैठे रहने पर १२, चलने पर १८, सोने पर ३० तथा 'कइथन' (?) करने पर ६४ सासें टूटती हैं। जब तक ये सांसें टूटती हैं तब तक जगदीश का भजन संभव नहीं होता। श्वासस्थैर्य होने पर ही इनका उचित उपयोग संभव है।[2] अतः इक्कीस हजार छ सौ सासों का मेल कर (परस्पर उन्हें संधित कर, जिससे वे टूटने न पावें) शरीर के नख से शिखा तक में उनको ग्रहण कर शरीर रूपी नौका को प्रतिबंधित करना चाहिए। भरथरी भी केवल पवन-साधन के लिये उपदेश करते हैं। गोपीचंद ने पश्चिम दिशा सुषुम्ना में वायु को प्रेरित करने का उपदेश दिया है। वे अपान और प्राण को उलट कर मिलाने को कहते हैं। परिणामस्वरूप अनाहत नाद का प्रवाह गगन में होगा तथा विंदु स्थिर हो जायेगा जिससे पुनः जन्मधारण करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।[3]

गोरख ने, यद्यपि इन्हीं रचनाओं में विभिन्न बंधों को साधनांगों के रूप में स्वीकार किया है तथापि उनके स्थान, क्रिया, उपयोग, विधान, आदि का परिचय वहाँ नहीं मिलता। उन्होंने मूलबंध और उड्डीयानबंध को स्पष्टतया स्वीकार किया है। क्षरित होने वाले अमृत को जालंधरादि बंधों की सहायता से रक्षित करने का उपदेश मिलता है। इनके अतिरिक्त गोरख ने तुरीया बंध और अगोचर बंधों का भी नाम दिया है।[4] इन बंधों का प्राणायाम से क्या संबन्ध है, इसके विषय में हम तांत्रिक योग और संस्कृत ग्रंथों के नाथों के योग के विवेचन में कह चुके हैं। हिन्दी रचनाओं में 'वेध' का कोई स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता। एक स्थान पर 'वेधाबोध' शब्द का प्रयोग अवश्य है किन्तु वहाँ डा० बड़थ्वाल नें 'कुण्डलीवेध' का अर्थ लिखा है जो हठयोगी एवं नाथपंथी ग्रंथों में विवेचित 'वेध' से पूर्णतया भिन्न है। इसी प्रकार बंध और

---

[1] गो० बा०, १७. ४७; १९. ५०, ५२; २१. ५७; २८. ७८; २९. ८१; ३२. ९०, ९२; ३६. १०५; ४५. १३०; ५०. १४५; ५१. १४६; ५३. १५५; ८१. २६५।

[2] गो० बा०, ८३. २७४।

[3] गो० बा०, पृ० १६०; सि० सि० प० अ० व०, ७८. २२; ना० सि० बा०, पृ० १८।

[4] गो० बा०, पृ० १६०, १७६, १९४, २०२।

वेध के अतिरिक्त जिस तीसरे साधनांग का प्राणायाम से संबंध है वह मुद्रा है। प्राणायाम और मुद्रा के संबंधों के विषय में हम पहले ही कह चुके हैं।

गोरख के नाम से प्रसिद्ध रचनाओं में मुद्रा का बहुविध परिचय मिलता है। गोरख ने 'मुद्रा' का 'बंद करना', 'अवरुद्ध करना' आदि अर्थों में भी प्रयोग किया है। आन्तरिक मुद्रा का भी वर्णन है। इसमें चन्द्र और सूर्य के मुद्रण अथवा मन-मुद्रण या मानस की सांसारिक वृत्तियों के मुद्रण की बात कही गई है जिनका न कोई रूप है और न रेखा ही। इसके अतिरिक्त वज्रोली और अमरोली नाम की प्रसिद्ध मुद्राओं का संकेत मिलता है। कहा गया है कि वज्रोली करके अमरोली की और अमरोली करके वायु की रक्षा करनी चाहिए। इनकी सहायता से भोग करते समय भी बिंदुरक्षा की जानी चाहिए। शुक्र का पोषण या ऊर्ध्वीकरण कर वज्रोली मुद्रा के साधन की भी बात कही गई है। इस क्रिया से काया के सभी दोषों का हरण बताया गया है।[१] इनके अतिरिक्त गोरखबानी में 'अष्ट मुद्रा' नाम की एक अलग रचना है। इस रचना में मूलनी, जलश्री, 'बीतनी', खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी, उनमनी नाम की आठ मुद्राएँ बताई गई हैं। इनमें से अनेक का नाम हठयोगी ग्रंथों एवं नाथपंथी संस्कृत ग्रंथों में मिल जाता है किन्तु यहाँ प्रारम्भ में ही बता दिया गया है कि ये आठ मुद्राएँ घट के भीतर की हैं। इन सबका स्थान क्रमशः इन्द्रिय (जननेन्द्रिय), नाभि, हृदय, मुख, नासिका, चक्षु, कर्ण, ब्रह्माण्ड बताया गया है। कहा गया है कि इन स्थानों में क्रमशः काम-तृष्णा, काम-क्रोध, ज्ञानदीप, 'स्वाद-विस्वाद', गंध-विगंध, दृष्टि-विदृष्टि, शब्द-कुशब्द के वैषम्य तथा ब्रह्माण्ड में परमज्योति का निवास है। इन वैषम्यों का मुद्रण ही मुद्रा का अर्थ प्रतीत होता है। यह अर्थ स्पष्ट रूप से 'अष्टमुद्रा' में नहीं बताया गया है। 'साम्य' शब्द का कई बार प्रयोग होने से ऐसा प्रतीत होता है कि 'मुद्रण' या 'मुद्रा करना' का अर्थ है साम्य स्थापित करना।[२] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दी रचनाओं में जिन मुद्राओं का वर्णन मिलता है, वे पिण्डस्थ हैं एवं सदाचार तथा मानस-विन्दु-नियन्त्रण से संबंधित हैं। इनका सीधा संबंध शरीर की बाह्य चेष्टाओं से प्रतीत नहीं होता। संस्कृत रचनाओं में मुद्राओं का जो विवेचन मिलता है, उससे स्पष्ट है कि वे सभी शरीर के बाह्यांगों के साधन हैं।

इसी प्रकार प्राणायाम का प्रणवसाधन, नादानुसंधान आदि से भी संबंध है।

---

[१] गो० बा०, पृ० ११०, १४६, ४९, १७६।

[२] गो० बा०, पृ० २४७।

इसके सम्बन्ध में कुछ विवेचन हम संस्कृत ग्रंथों में वर्णित योग के प्रकरण में कर चुके हैं। वस्तुतः नाद मूलतः एक ही होता है किंतु औपाधिक संबंध को व्यक्त करने के लिये उसको विभिन्न स्तरों में विभक्त किया गया है। योगियों के मतानुसार नाद के सात भेद हैं, किंतु एकमात्र ओंकार या प्रणव ही उपाधिरहित शब्द तत्व के रूप में वर्णित होता है।[1] इस नाद के साधन की प्रथम अवस्था में प्राणवायु का ब्रह्मरन्ध्र में गमन होता है। इसी समय सागरगर्जन, मेघ-ध्वनि, भेरी शब्दादि का श्रवण होता है। इसके बाद की मध्य अवस्था में प्राणवायु के ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश के समय मर्दल, शंख, घंटादि के शब्दों की तरह सूक्ष्म शब्दों का श्रवण होता है एवं अंत में जब प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर हो जाती है तब क्षुद्रघंटिका, वंशी, वीणा भ्रमरादि के नाद की तरह सूक्ष्मतर नाद का श्रवण होता है। नाद में अनुरक्त मन सभी विषयों का परित्याग कर देता है। इससे समाधिलाभ होता है।[2] हम नाथपंथी संस्कृत ग्रंथों के योग में आरंभ, घट, परिचय और निष्पत्ति नाम की नाद की चार अवस्थाओं का वर्णन कर चुके हैं।

हिन्दी रचनाओं में गोरख ने गगन (ब्रह्मरन्ध्र) में शब्द के प्रकाशित होने की बात कही है। इस शब्दप्रकाश को अलक्ष्य (शब्द, नाद) तत्व का विशिष्ट ज्ञानी समझ सकता है। यह नाद गगन (ब्रह्मरन्ध्र) में उच्छलित होता है। यह नाद साररूप और अति गंभीर होता है। गोरख की कुछ रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि नाद और शब्द, ये दोनों ही, पर्याय हैं। 'शब्द' का प्रयोग दो अर्थों में मिलता है—१—नाद, २—गुरुनिर्देशरूप वचन। इन दोनों अर्थों का साधन की दृष्टि से, अत्यधिक घनिष्ठ संबंध है। जब तक शब्द या नाद का श्रवण नहीं होता तब तक परमतत्व का साक्षात्कार नहीं होता, अतएव शब्द ही ताला है और गुरुवाक्य की ही सहायता से नादानुसंधान कर परमतत्व का साक्षात्कार होता है। अतएव यह शब्द ही कुंचिका है। इस प्रकार गुरुशब्द या वचन से ही नादजागरण होता है, शब्द से ही शब्द का परिचय मिलता है। अन्ततोगत्वा गुरुशब्द ही शब्द में समाहित हो जाता है अर्थात् साधन साध्य में लीन हो जाता है, उसकी पृथक् सत्ता नहीं रहती। तब साधक नाद में ही गुरु या गुरुवचन का वास्तविक साक्षात्कार करता है। यद्यपि गोरख ने नाद को सर्वत्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त माना है तथापि वे उस अगोचर मूल तत्व को गगन (ब्रह्मरन्ध्र) में ही खोजने का उपदेश देते है।[3]

---

[1] ना० सं० इ० द० सा०, पृ० ४६३-४६४। [2] वही, पृ० ४६४।
[3] गो० बा०, पृ० २, छं० ४, ५. १२. ८, २१, १६७-१४।

तबहीं फरमाया। निज कर्म कर सब फल भोगे, नीच ऊच्च जितने हैं लोगे। हम किसको नहीं देता लेता, श्राता लोग यहां हैं जेता। निज कर्म कर दुःख सुख भारी, भोगत हैं सबहीं नरनारी। बहुत पुण्यों से स्वर्गहिं जाते, ग्वाला वहां परम सुख पाते।३८। कुभ कर्मी हाय हाय पुकारे, नीच योनि में जाय पधारे। मिश्रित कर्मी दुःख सुख भोगे, ज्ञानी रहत सदीव अशोगे। तब हमने कहा धर्मराजा, दुःखियों का क्यों करो न काजा। सुख सज्जनी हम यहां बनाई, जिस पढने दुःख रहे न राई। ग्वालानन्द दुख होगा नाशा, पल मे पार्वहिं भक्ति प्रकाशा।३९। नीच योनि से पल में छूटहिं, चौरासी का बन्धन तूटहिं। दुखियों को तुम कहो पुकारे, सुख सज्जनी तुम पढो बिचारे। धर्मराज सुन वाक्य सोई, कहा स्वामि तुम धन धन होई। कहेगा हम पढो यह बानी, नहीं पढ़ेंगे होगी हानी। ऐसे कह धर्मराज सु जाया, ग्वालानन्द सुख सज्जनी भाया।४०। दोहा-सुख सज्जनी चालीस यह, पौड़ी है सुखकार। सुने पढे धारन करे, पावे मुक्ति भण्डार।४१। ❋ श्री योग माला ❋ नाराच छंद-नमामि विभो रामकं, पावो सुक्षेम धामकं। मेटे जु मन खामकं, पावऊं सु विश्रामकं। हने जु अङ्ग भालकं, मेटे जु कालजालकं। विनय जु ये अकालकं, देवो ये दान ग्वालकं।१। नमामि विष्णु देवकं, देवे सुख अभेवकं। रवि गणेश सेवकं, सरस्वती जु एवकं। नमामि त्रपुरारिकं, उमा जु अङ्ग धारकं। जु है अनंग जारकं, नमो तिहं शिवकारकं।२। श्री सुगुरु देव को, नमामि है अखेव को। करे सु पाद

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 68)

सेव को, पाया सु सुख अभेव को। दीया जु मग योग को, हना जु चित्त रोग को। तजे सु ग्वाल शोक को, पावऊं सु ब्रह्म लोक को।३। कहूं जु योग माल को, धारे रहे निहाल सो। हने जु तीन काल को, करे बुद्धि विशाल सो। काटे जु यम फास को, दिखावे अविनाश सो। हने जु देहाभास को, करे ब्रह्मनिवास सो।४। प्रश्नदोहा—इक दिन राजा सर्वजीत, आया सतगुरु पास। की अरदास कर जोड़के, करो सन्देह विनास।१। राजभोग बहु भोग के, पाया न चित्त विश्राम। आया तुमरी शरण अब, दे सतगुरु मुझ नाम।२। कवित्त-नाम दे बताओ योग, छोड़ा मैं संसार भोग। जान के समान रोग, आया तेरे द्वार मैं। बताय के योग युक्ति, गुरू मेरी करो गति। मैं हूं अति मूढमति, कार्य संवार मैं। भटक भटक सारी, भोगन में आयु हारी। सुत बन्धु संग नारी, जन्म गुजार मैं। ऐसी सु करुणा करो, मोह आदि सब जरो। भेद भ्रम सब हरो, योग दे सुधार मैं।३। उत्तर-कवित्त—चतुर्विधि कहूं योग, कर हनो सर्व रोग। त्याग झूठे भव भोग, पाय सुख शान्ति को। श्रवण मनन कर, निध्यासन ध्यान धर। जग में जीताई मर, हनो भेद भ्रान्ति को। जीवन मुक्ति पद, पाय हनो मोह मद। देख हरि का सु वद, पाय निज क्रान्ति को। कहे है ग्वाललाल, काटके जु यम जाल। पावो अक्रिय अकाल, बैठके एकान्ति को।४। हठयोग-कवित्त—कहूं अब योग हठ, त्यागे जोई देश मठ। हने तन मन हठ, सोई योग करे हैं। षट्कर्म नेती धोती, गज सु त्राटक वस्ती। निवली करे जु खस्ती, तन रोग हरे हैं। नेती नाक साफ करे, धोती पेट

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 69)

रोग हरे। गज पानी पेट भरे, बाह्य सोई धरे हैं। त्राटक जु नृति रोक, अग्र भाग वा अलोक। ग्वाला हरे सब शोक, धी अरोग चरे हैं।५। पुन कर्म वस्ती करे, पानी लिंग गुदा धरे। ऊर्ध खिञ्च फेर हरे, साफ द्वार करे हैं। निवली नलका दोऊ, योगी हो चलावे सोऊ। पीवे दूध पानी जोऊ, नीचे गुदा हरे हैं। षट्कर्म सिद्ध करे, काया का जु रोग हरे। प्राणायाम ध्यान धरे, भव सिन्धु तरे हैं। कहता हैं ग्वाललाल, पीछे मुद्रा धर ख्याल। काटके सो यम जाल, रहे निज घरे हैं।६। पाञ्च मुद्रा यही साधे, खेचरी भूचरी बाधे। चाचरी अगोचरी ठाण्डे, उन्मुनी ध्यान को। खेचरी रसना खिञ्चे, अमीरस नित सिञ्चे। भूचरी जु नाक धिञ्चे, सोहं ब्रह्मज्ञान को। चाचरी जु चक्षु ध्यान, लावे त्रकुटी स्थान। अगोचरी नाद कान, सुने हैं सुजान को उन्मुनी दशमद्वार, लाय वृती पाय पार। ग्वाला योगी निरधार। देखे ब्रह्म भान को।७। मन्त्रयोग-कवित्त-और मन्त्र योग सुनि, घण्टे नव बैठ मुनि। गुरु मंत्र लाय धुनि, सिद्धासन लायके लाख मंत्र जप ताहिं, बैठ सु एकांत माहिं। जहां कोई आवे नाहिं, तहां नित जायके। ऐसी धुनि बोध लावे, तन मन भूल जावे। वृत्ति ब्रह्म में समावे, शान्ति सुख पायके। कहे हैं ग्वाल चित्त, लावो ताहिं राख हित। कहो योगी मुनि नित, ऐसा गाय गाय गायके।८। लययोग-कवित्त—तृतीय कहूं लय योग, करो तज भव भोग। गये मुनि हो अरोग, नित पद शान्ति में। आसन सिद्ध लगाय, मन वृति को जगाय। भ्रम भेद को भगाय, बैठके एकान्ति में। साम्भवी सु मुद्रा

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 70)

साधो, काल क्रोध को जु बाधो नृतिनाक अग्र ठाढो रही निज क्रान्ति में। वशीकरण की शक्ति, पावो ग्वाला होय जति। पुन वृति राम रति, गहो ब्रह्म भ्रान्ति में।६। राजयोग कवित्त-राजयोग चतुर पुन, अष्टाङ्ग जु ताहिं सुन। कह गए ऋषि मुन, ताहिं चीत्त धार जी यम नेम आसनार, प्राणायाम प्रत्यहार। धारना सु ध्यान धार, समाधि सम्भार जी। अष्ट अङ्ग साधपूर, मन चित्त कर चूर। देख सर्वदा ही नूर, भ्रम भेद टार जी। कहे हैं ग्वाललाल, सर्वदा रही निहाल। काटे भ्रम भव जाल, ब्रह्म वपुसार जी।१०। सुनो यम के लक्षन, अहिंसा मन वचन, झूठ त्याग सोच मन, ब्रह्मचर्य धार जी। क्षमा दया धीरधार, आर्ज्व मित अहारादश लक्ष यम सार, स्वयं सो विचार जी। दश नियम पहचान, तप जु संतोष दान। श्रवण आस्तिक ध्यान, ईश्वर जुहार जी। लज्जा दृढता जु जाप, ग्वाला राख हनो ताप। पाय स्वयं वपु आप, दुःख को निवारजी।११। दोहा– आसन चौरासी लाख हैं, ताहिं चौरासी सिद्ध। ग्वाला तांमें श्रेष्ठ दो, पद्म आसन सिद्ध।१२। कवित्त–चतुर सु प्राणायाम, लेके गुरु से जु नाम। पाञ्च प्राण उप प्राण, ताको पहचानिये। प्राण वास उर माहिं, अपान जु मूल ताहिं। उदान सुकण्ठ ठाहि, व्यान अङ्गों जानिये। नाभी माहिं है समान, यही जानो पाञ्च प्राण। पुन पांच उप प्राण, ऐसे ही सु मानिये। नीचे करूं तां विस्तार, ग्वाला तां से लेवो सार। प्राणायाम गुरु द्वार, कर वृत्ति ठानिये।१३। कूर्म पलक झार, ऋकल छींक पसार। हिचिकी द्वदत धार,

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 71)

ऐसे ही जु जानो जी नागई जंभासी लावे, धनई देह फुलावे। गुह्या दुर्गन्ध जावे, कहा जु सुजानों जी। प्राणों में सु दो प्रधान, प्राण पुन है अपान जांके मिल रोग हान, होता है सु मानो जी। प्राण जु अपान सार षट्चक्रों माहिं धार। ग्वाला पाय निर्धार, वृत्तिब्रह्म ठानोजी।१४। चौ–पहले चक्र आधार सुनीजे, लाल रङ्ग परा शब्द धुनीजे। गुदा स्थान पृथ्वी वासा, तहां देव गणेश निवासा।१५। चार पंखड़ी तांकी होई, व स ष श शिष्य सुनहु सोई। अपान वायु तन को साजे, ग्वाला देखो सरहें काजे।१६। द्वतीय चक्र स्वाधिष्ठाना, पीतवर्ण है लिंग स्थाना। तहां देव ब्रह्मा का वासा, सावित्री तां संग करे निवासा।१७। इन्द्र आदि सब तां वश होया, रजे गुण में आप खिलोया। षष्ट पंखड़ी तां डिग होई, ब भ म य र ल तां नित सोई।१८। को जन लिंग इन्द्रीको बाधे, निशदिन योग कलाको साधे। ग्वाला वह जन कहिये योगी, रोग नशाय रहे जु अरोगी।१९। मणिपूरक पुन चक्र जु तीजा, नाभि स्थान रहे सुख सीजा। नीलवर्ण पुन विष्णु देवा, लक्ष्मी पाद पकड़ कर सेवा।२०। ताहिं तले है नाड़ि कुण्डली, सुषुमन घेर बैठी बहु बली। कर जिज्ञासु योग अभ्यासा, धमनि लोहार धमोनित स्वासा।२१। कुण्डलनी को बेग हटावो, सुषुमना सु प्राण उठावो। तबहीं तुमरा सरे जु काजा, बैठ रहो राजन के राजा।२२। दस पंखड़ी तांकी होई, ड ढ ण त थ द ध न प फ सोई। कोई योगी तां वश राखे, ग्वाला अमृत रसको चाखे।२३। चतुर्थ चक्र सु अनहद जानो, हृदय स्थान सु सत्य

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 72)

कर मानो। दश शब्द तां अनहद बाजे, पञ्च ऊपर पञ्च वहां सु गाजे।२४। श्वेत वर्ण ताहीं को साजे, शिव शक्ती तां देव ब्राजे। पंखड़ी द्वादश तांकी होई, क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ सोई।२५। ट ठ पुन द्वादस याहीं जानो, गुरुसंग योगी ताहिं पछानो। ग्वाला तां पुन ध्यान लगावो, शिव शक्ति की पदवी पावो।२६। पंचम चक्र विशुद्ध पुन होई, कंठस्थान देव हन्स सोई। सरस्वती पुन तिसके सङ्गा, छत्तीस वाणी भाखे चङ्गा।२७। पंखड़ी सोलह तांकी होई, अकार उकार मात्रादि सोई। ओम् अनहद निशदिन बाजे, ग्वाला सुनहो सरहैं काजे।२८। षष्टम चक्र आज्ञा पुन जानो, त्रकुटी स्थान काल देव मानो। दोय पंखड़ी सोहं वासा, झिल मिल ज्योति तहां प्रकाशा।२९। तांसे नेड़े भंवर गुफा है, सोहं अनहद बाज रहा है। ग्वाला सुनके पावो शांती, तासें अनहद तीन क्रांती।३०। सुन सकड़ पुन अनहद बाजे, सारङ्गी शंख सुसुन्दर आवाजे। गगन मण्डलमें बाजा बाजे, निरञ्जन निरञ्जन होय आवाजे।३१। ताहिं परे ऋण झिण घर जानो, सत् सत् अनहद सुनहु सुजानो। ग्वाला आत्म दशमें द्वारा, तांको पावे को निरधारा।३२। पुन कहूं सो प्राणायामा, शिष्य सुन बाधो मूल सु धामा। अपान वायु को ठहरावो, गणेश गौरी दर्शन पावो।३३। पुनः खिञ्चो सो स्वाधिष्ठाना, ब्रह्मा सावित्री को पहचाना। तांसे तुम नित मांगो करुणा, ग्वाला तबहीं भव सिन्धु तरणा।३४। पुन मणिपूरक में तुम आनो, विष्णु लक्ष्मी को पहचानो। वह तो है घर करुणा केरा, कार्य क्षण में कर है तेरा।३५। तासें अपान खीञ्चो

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 73)

हृदे, जहां बाजत पाञ्च अनहदे। बंसरी बीन बाजे मधुरीली, सिङी शंख सु तार सुरीली ।३६। सुनके शिष्य मगन हो जावो, शिव शक्ति का दर्शन पावो। तां से करुणा मांगो जबहीं, ग्वाला सरहैं कार्य तबहीं।३७। तहां मिलावो प्राण अपाना, ले विशुद्ध आज्ञा स्थाना। तहां थोड़ा थोड़ा ठहरावो, फेर प्राण को बाहर लावो।३८। इड़ा मार्ग से भीतर कीजे, फिर कुम्भक ठहराय सु लीजे। पिङ्गला से रेचक कर दीजे, प्राण अपान में स्थर कीजे।३९। धीरे धीरे नीचे जावे, चक्रों से जाय मूल समावे। ग्वाला गुरु से मार्ग पावो, जन्म मरणमें फेर न आवो।४०। बहतर खिड़की पिण्डे माहीं, को योगेश्वर जाने ताहीं। आठ सौ चौसठ श्रेष्ठ जु नारी, दश तिस में सो श्रेष्ठ उचारी।४१। पाञ्च दहने पाञ्च सु बायें, श्रेष्ठ तिनों में तीन सु गाये। तांका कहूं सुनहो स्थाना, निसदिन तिसकी करो पछाना।४२। नाड़ी संखनी गुदा जु माहीं, कक्ल लिंग ब्रह्मा है जाहीं। नाड़ी पूषा दहने काना। जसनी बायें श्रवण थाना।४३। हस्थनी दहने नेत्र होई, गंधारी दृग बायें सोई। नाड़ी लम्बका जीभ पसारे, षष्ट रसों को सोई धारे।४४। नासिका दहिने रन्ध्र माहीं, पिङ्गला सूर्य कहिये ताहीं। इड़ा नासिका बायें भागा, ग्वाला चन्द्र तांहि सुहागा।४५। तांके मध्य सु सुषुम्ना नाड़ी, तांकी खुलहीं जबही ताड़ी। तबहीं ग्वाला पावो पारा, अक्रिय अखण्ड आत्म निर्धारा।४६। ब्रह्म नाड़ी भी तिसको जानो, गुरु बिन कैसे तांहि पच्छानो। इड़ा ब्रह्मा गंगा जानो, सुषुम्न सरस्वती हरि स्थानो।४७। पिंगला यमुना

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 74)

शिव का वासा, निशदिन तांहि करे प्रकाशा। तीनों मिल त्रवेणी कहिये, ग्वाला त्रकुटी ज्योति जगइये ।४८। कबहूँ इड़ा भये अथाहा, कबहूं पिंगला का प्रवाहा। दोनों मध्य बहे सरस्वती, ग्वाला तांहि नहावे जती।४९। दश नाड़ी में तीन प्रधानो, इड़ा पिंगला सुषुम्न जानो। ग्वाला तिसका करूं विस्तारा, शिष्य सुनो तुमही निर्धारा ।५०। इड़ा पूरक दिन को कीजे, कुम्भक मांहि तांका रस पीजे। पिंगला रेचक तांहि त्यागे, ग्वाला तिसको ताप न लागे ।५१। पिंगला पूरक निशा में कीजे, इड़ा रेचक तांहि तजीजे। कुम्भक तीस अक्षर ठहरावो, ग्वाला इस जग बहुर न आवो ।५२। ॐ सोहं पहिला भागा, इड़ा पूरक खिञ्चे सुहागा। चतुर्थ भाग मिन्ट का खिञ्चे, अपान वायु कम्भक सिञ्चे ।५३। एक मिन्ट कुम्भक ठहरावो, तांमे श्रुति नृति मिलावो। ग्वाला पिंगला मिन्टजु आधा, रेचक करजु निजमन बाधा।५४। आसन सिद्धकर मूल बंधावो, बाई एड़ी गुदा डिग लावो। दहिनी एड़ी लिंग पर ठाने, अपान वायु प्राण घर आने ।५५। दृग कान पुन मुख ही मूँदे, सीधा बैठ नाक को नूँधे त्रकुटीमें पुन ध्यान लगावो, ग्वाला ज्योति में नृति समावो, ।५६। दो घण्टा उठ भोर जु कीजे, अक्ष अनन अमीरस पीजे। दो घंटा सो सायं सुमरे, ग्वाला कार्य सिद्ध हो तुमरे ।५७। षष्ट मास ऐसा धुनि लावो, श्रुति नृति तां संग मिलावो। क्रम क्रम सें तांहि बढावो, पूरक आधा मिन्ट चढावो ।५८। कुम्भक दोय मिन्ट पुन कीजे, रेचक एक मिन्ट तज दीजे। ग्वाला बहुत काल धुनि लावे,

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 75)

इड़ा पिंगला जब थक जावे।५९। फिर कुण्डलनी नाड़ि भगेंगी, सुषुम्न तिसहीं जाय जगेंगी। उस सें योगी आने जाने, प्राण का मग निशदिन ठाने ।६०। तांसे ऋद्धि सिद्धि प्राप्त होवे, जहां इच्छा तांहीं को जोवे । चाहे गगन सोऊ उड़ जावे, चाहे जल भीतर धुनि लावे ।६१। चाहे अग्नि में कर वासा, चाहे पुह्मी मांहिं निवासा। चाहे करे पवन प्रवेशा, जैसे चाहे होवे तैसा ।६२। चाहे तन तज द्वि तन धारे, चाहे छोटा मोटा भारे। ग्वाला ब्रह्म में जाय समावे, जो कुच्छ वाञ्छे सोई पावे ।६३। कवित्त-अष्टहीं प्रकार के हैं, प्राणायाम सुन लीजे । इक सूर्यभेदी, द्वितीय उजाई बखानिये। तृतीय शीतकारी, चौथा शीतला सुजान लीजे। पञ्चम भस्त्रका, षष्टा भ्रामरी सु जानिये। सप्तम मूर्छा, अष्ठम केवल सु जान योगी। अष्ठही सु प्राणायाम, उर मांहिं आनिये। ग्वाला प्रतिपादन सु, अब हम तांहि करूं । सुनके शिष्य हृदय, भ्रम सब भानिये।६४। सवैया—कहूं मैं सूर्यभेदी प्राणायाम आसन सिद्ध सु कीज्ये जी। दहिनी सु पूरक लायके बज्र नख शिख सेती समीज्येजी। क्रम क्रम सें बांयेंसु रेचक तन पीड़ा हर लीज्ये जी। कहे ग्वाल कपाल को शोध जु सूर्यभेदी कर जीज्ये जी ।६५। पुन उजाई प्राणायाम कीज्ये इड़ा बांये रन्ध्र प्राण उठावो। उदर कण्ठ तक भर कर रोके जु क्रम क्रम पिङ्गला तज जावो । ऊठत बैठत उदर भर कफ लेश जलन्धर रोग नशावो। कहे ग्वाल करो ये उजाई सु तबहीं आतम के घर आवो ।६६। शीतकारी मुख सी सी उचारके प्राण को खिञ्चके हृदे ठहरावो।

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 76)

थोड़ा थोड़ा वहां प्राणको रोक के इड़ासें रेचकहिं तज जावो। सुन्दर तेज हो रूप अधिक जु क्षुधा तृषा नींद आलस नशावो। कहे ग्वाल सु गात चेतन हो योगिन में पीछे भूप कहावो।६७। चतुर्थ शीतला प्राणायाम कर रसना तालु के साथ लगावो। जिह्वा को मोड़ के प्राणको खिञ्चके कम्भक सर्वहीं तन भरावो। गात ढीला कर हृदे रमायके दोनों रन्ध्रसें जु रेचक पावो, तीन वर्ष करे तन नवीन रोम काले उदर कष्ट नशावो।६८। पञ्चम भस्रिका प्राणायाम ही आसन सिद्धहीं तुम लगावो, उदर ग्रीवा समान जु राखके पूरक इड़ा पिंगला तज जाओ। बारम्बार खिञ्चे पुन तजके धमनि जैसे जु श्वास धमा वो। जब इड़ा थक जावे सु तबहीं पिंगला पूरक कर सुख पावो।६९। पीछे जु दोनों सें खिञ्चे त्यागो नाड़ि कुण्डलनी तबहीं जागे, तीन हीं गांठ सु टूटहीं जावे जुनाड़ी शक्तिसें नागिनि भागे। सत्गुरु शब्द ये भेद लेवो पुन ब्रह्म रन्ध्र समाधि सु लागे, कहे ग्वाल मुक्ति पद पाय सु सुषुम्ना मिल पाय सुहागे।७०। कोई योगी जन जाय तिसी घर शक्ति शिवकी पदवी पावे, नाभ तले वह रहे कुण्डलनी श्वास लकड़ीसें तांहि जगावे। ऊर्ध्व को शीश उठावे व जबहीं इन्दु आकार तभी दरशावे, पद्म रागमणिज्यूं प्रकाशत तांहि ग्वाल योगी को समावे।७१। सहस्रनाड़ी लपटी हुई तिह श्रेष्ठ सु तीन सो योगी कहे हैं, तामें श्रोमणि सुषुमन जागे जु योगी आने जाने मग गहे हैं। सहस्र भाग सु रोम के कुण्डली सुषुम्न सें जब दूर रहे हैं, दो घड़ी प्राण रमे ब्रह्म रन्ध्र, पूर अभ्यास से सिद्धि लहे हैं।७२।

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 77)

द्वय लोचनों सें दर्शन पाय सु खेचर सें मिल खेचर होवे, ऋद्धि सिद्धि गण प्राप्त तिसही उडन शक्तिको पुनहीं जोवे। बहुत काल समाधि लगे शक्ति शिव मिल प्राशक्ति वश होवे, जैसी वाञ्छा करे तैसे ही होवे कहे ग्वाल सभी दुःख खोवे।७३। चाहे जु अवनि में वास करे पुन चाहे आकाश को ही उड जावे, चाहे सूक्ष्म स्थूल ही होवे चाहे परपिण्ड में जाय समावे। काया पलट रेचक सें फिर सो वाञ्छा होवे तबही पिण्ड आवे, कहे ग्वाल करे जु भस्त्रिका योगिनी का सोई भूप कहावे।७४। षष्ठम भ्रामरी प्राणायाम कर भृङ्ग ध्वनि से ध्वनि लगावे, पूरक दोनों रन्ध्र स्वर खिञ्चे सो बाहर से वह शब्द न जावे। बल सेती कर कुम्भक रेचक भृङ्ग ध्वनि से ही बाहर लावे, ग्वाला जावे सब चञ्चलता चित्त चिदानन्द वपु माँहि समावे ।७५। सप्तम मूर्छा प्राण ध्वनि से दहिने रन्ध्र सुर पूरक कीजे, कुम्भक कण्ठ तले प्राण रोकके जलदी बन्ध जलंधर दीजे। फिर भी ध्वनि से रेचक बायें जु रन्ध्र प्राण को ही तज दीजे, कहे ग्वाल ये मूर्छा करके ब्रह्मानन्द अमीरस को पीजे ।७६। अष्टम केवल प्राणायाम पुन आयू बढाय सिद्धि को पावो, पूरक पाव मिन्ट मिन्ट कुम्भक आधा मिन्ट पुन रेचक लावो। केवल भान प्रकाश उदये जब और तारे सम ना तब पावो, कहे ग्वाल अष्टों में यह श्रेष्ठ जु करे जनो नित सूख समावो।७७।

क-कहिया मैं प्राणायाम, करे जोई निष्काम। पायके आत्म राम, पावे विश्राम सो।
ऋद्धि और सिद्धि पावे, अखण्ड जो धुनि लावे, कालके न मुख आवे, पावे सुखधाम सो।

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 78)

को इक अनन योगी, तज भोग हो अरोगी। पावे भोगी रोगी सोगी, अगम न गाम सो। कहत है ग्वाललाल, स्मर सो हो निहाल। पाय पूर्ण अकाल, होवे रूप राम सो ।७८। स-पञ्चम अङ्ग कहूं प्रत्यहार सुनके निज सु ध्यान धरीजे, कूर्म जैसे जो सङ्कोच इन्द्रिय तैसे ही तुम सु बन्द करीजे। बालक मात अनिष्ट से रोके जु त्यों मन निरोध तां दुख हरीजे, कहे ग्वाल सु आत्म ध्यानमें अहनिस रहिके सु अमृत पीजे ।७९। अपनी अपनी ओर इन्द्री जाय देख विषय को मनहीं डोले, इन्द्रियों के निरोध से मन हीं निरोधे जु देख ये बात जनो तुम तोले। प्राणायाम से रोक इन्द्रिय मन हृदय सुनो अनहद ही बोले, कहे ग्वाल करे प्रत्यहार कीया सफल तिहिं मानुष चोले।८०। षष्ठम धारणा अङ्ग कहूं पुन गुरु धारणा से हो सिद्ध कामा। आलस कायरता सब नाशे सो लोक परलोक पावे सुखधामा। जिसके ध्यान की चाह करे लगे ध्यान तहां जु पावे स्थिति ठामा, कहे ग्वाल करे गुरु धारना हो रूप आत्म पा विश्रामा।८१। इन्द्रकी धारणा से इन्द्रलोक में भोग भोगे सु अनन्त अपारा, जबहीं पुण्यों के फल की क्षय हो तबहीं पावे सोऊ तिरस्कारा। जायके मृत्यु सो लोक में गिरहीं ताहिं पावे जीव कष्ट असारा, कहे ग्वाल करो ब्रह्म धारणा जाहीं सें पद पावो निर्धारा।८२। विष्णु की धारणा से विष्णु लोक में जाय प्राप्त होवे हैं जीवा, सालोक मुक्ति सु होवहिं प्राप्त अहनिश कम्पे जु सुनके शीवा। सामीप्य मुक्ति मिले तब तिसहीं अंतर मुख वही जब थीवा, कहे ग्वाल मिटे न फेरा

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 79)

तिस ब्रह्म के धारणा की करतीवा।८३। सूर्य की धारणासे सूर्य लोक जा चौदह लोक का ज्ञान सु पावे, जाहीं सु लोक की वाञ्छा करे पुन तांहीं सु लोक में शीघ्र ही जावे। अपने पुण्यों के फल सु भोगके फिर सो मृत्यु ही लोक को धावे, कहे ग्वाल करो ब्रह्म धारणा जाहींके करन से बहुर न आवे।८४। चन्द्र की धारणा से चन्द्र लोक में जाय प्राप्त जीव सु होवे, नाना ही नक्षत्रों का ज्ञान ही पायके सो तांहि प्रतिदिन ही जोवे। इतने लोक भ्रमे बहु भूला सो तांभी जन्म मरण न खोवे, कहे ग्वाल करो ब्रह्म धारणा जाहीं को कर शांति सुख सोवे।८५। ध्रुवकी धारणा से तिथि नक्षत्र तिसका ज्ञान सुगमहीं पावे, चालीस दिन मृत्यु से जु आगे तिसको सार हृदय मांहि आवे। गर्भका चक्र गया नांहि तब भी लाख चौरासी जु योनि को धावे, कहे ग्वाल करो ब्रह्म धारणा जन्म मरण तभी मिट जावे।८६। तत्वोंमें पुहिमीकी धारणासो पीत वर्ण चौकोर धर आगे, तांहिंसो पाञ्च घड़ी ध्यान स्थित कर जब फुरणे समोह जु भागे। पावों से मूल तक तिंहि वासा जु पाञ्च घड़ी तहां ध्यान ही लागे, कहे ग्वाल होवे वश क्षिति सो लकार मात्रा सङ्ग सु जागे।८७। दोहा-पूरण धारणा अवनि कर, चाहे गुम हो जाय, चाहे बाहर निकसि सो, ग्वाला वश क्षिति पाय।८८। स–द्वितीय धारणा मारुतकी करवासा जु मूल हृदय तकजानो, मेघ वर्ण खट कोर करे सो तांहिंमें पाञ्च घड़ी दृष्टि ठानो। फिर वायु थान ईश्वर देवको पाञ्च घड़ी ध्यान लाय पछानो, कहे ग्वाल सिद्धि हो प्राप्त मकार मात्रा सङ्ग सु जानो।८९। दोहा– मारुत

धारणा पूरण से, होय रुई आकार, ग्वाला मिल गमन कर, गगन मण्डल निर्धार ।६०।
स-तृतीय धारणा कर तोयंकी कण्ठसें तालू मध्य भाग जांको, सरस्वती हंसदेव ब्राजे
जु चन्द्र लकीर स्वच्छ ध्यान तांको। पाञ्च घड़ी ध्यान बाहर स्थित फिर अंतर हो ध्यान
सु वांको, कहे ग्वाल होवे वार वशहीं विष परस करे तिस ना को।६१।दोहा-जल धारणा
पूरण से, चाहे जल कर वास। चाहे तिस ऊपर चले, मात्रा वकार सु तास।६२। स-चतुर्थ
धारणा पावक की कर तालू से त्रकुटी तक तिस वासा। लाल रङ्ग त्रकोण बनाय के तांहि
करो चित्त नृति निवासा। बाहर पाञ्चघड़ी ध्यान स्थित कर फिर अन्तर पाय प्रकाशा।
कहे ग्वाल शिखी वश होवे सु बैठ रहो तांहि करहिं न नाशा।६३। दोहा-पावक धारणा
पूरण कर, काल से निर्भय होय। सङ्ग मात्रा रकार से ग्वाला गवने सोय।६४। स-पञ्चम
व्योम की धारणा करो जु गण तत्वों का है जोई भूपा। ब्रह्म रन्ध्र भी आकाश को जानो जु
श्याम वर्ण है ब्रह्म स्वरूपा। जांकी योगी करे नित कीरति सु पाञ्च घड़ी लावो ध्यान
अनूपा। मुक्ति भण्डार पावो ग्वालानन्द जांहि न छाय नहीं पुन धूपा।६५। व्योम की
धारणा पूरण से तुम हो निराकार सु सुख समावो। जैसे है नभ निर्लेप व्यापक तिसी
से मिल तैसे होय जावो। हकार मात्रा तांहि उठे होय अन्तर मुख ब्रह्म ध्वनि लावो।
कहे ग्वाल करो यह धारणा जांहीं के सङ्ग मुक्ति पद पावो।६६। शृञ्छं-पांच भूत की धारणा
जिस पूरण सिद्धि अष्ट के फल को सोई पावे। एक अणिमा तन सूक्ष्म करके पुन माक्षी,

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 81)

भ्रमर ज्यों उड़ जावे। द्वितीय महीमा तन हो लम्बा भारी, पुन नाहिं तिसे कोईकि चलावे, तृतीय लघिमा तन हो रूई जैसा, मिल जो पवन से ब्रह्माण्ड सैर पावे, चतुर प्राप्त चन्द्र जो दूर देशा, तां शक्ती से सो समीप आवे, पञ्चम प्राकाम्य पुन पुहिमि मांहीं बैठ पानी जैसे सोई धुनि लावे। षष्ठ वशित्व महा भूत और कारण, तिस परिणाम करन शक्ति पावे। सप्तम ईशत्व तन मात्र गणों को उत्पत्ति स्थित लय करावे। अष्टम कामावशित्व सत्य संकलप करे वाञ्छा जैसी तैसे होय जावे, कहे ग्वाल सिद्धि ऋद्धि प्रतिबन्ध कर ब्रह्म धारणा ब्रह्म को सिधावे।९७। कवित- मूल ही आधार चक्र, धारणा सुध्यान कर। देव ही गणेश को जु, जबहीं सु जानिये। आसन चौरासी योगी, तबहीं सु सिद्ध होय। मूल जु चक्र बांध, ध्यान तब ठानिये। चक्र ही स्वाधिष्ठान, ब्रह्मा जु बिराजे तांहि। दोनों मध्य अपान जु, वायु को ही मानिये। कहे ग्वालानंद ध्यान, धारणा सु तिस चक्र। कर के चतुर खानि, उत्पत्ति पहिचानिये।९८। नाभि में सु चक्रमणि, पूरकही तांका नाम। तांसें लाखों नाड़ी उदय, होवे सोऊ जान रे। अष्टशत चौसठ जु, नाड़ी श्रेष्ठ तिस मांहि। तिस का ही ज्ञान पाय, पल में सुजान रे। कफ पित्त वायु लेस, पल में ही नाश होत। विष्णु का लोक तिस, प्रत्यक्ष सु भान रे। ग्वालानन्द ब्रह्माण्ड, देखो पिण्डे मांहिं तुम। पल में उदय होय, ब्रह्म का सु ज्ञान रे।९९। हृदे मांहि अनहद, चक्र ही सो नाम तिस। धारणा सु ध्यान कर, तांका फल पाईये। शिव और शक्ति देव, तिस ही दर्शन पाय।

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 82)

ऋद्धि सिद्धि नव निधि, तिस ही सें लाईये। दश ही प्रकार के सो, बाजा हीं जो बाजे तांहिं। सुने अनहद पुन, मगन हो जाईये। कहे ग्वालानन्द प्राण, वायु ही प्रधान तहां। सुन के ही शिष्य चाह, समोह चुकाइये।१००। कण्ठ में ही चक्र नाम, विशुद्ध ही तिस जान। जीव हंस सरस्वती, देव तां ब्राजे सो। धारणा ध्यान कर, तांसे बानी मीठी लेह। उदान सु वायु तांहिं, शरीर को साजेसो। तांसे ऊर्ध्व आज्ञा चक्र, त्रकुटी के मांहिं जान। धारणा तिसी की करो, तब सरे काजे सो। कहे ग्वालानन्द ज्योति, का सो प्रकाश पाय। ऊर्ध्व सुनो अनहद, गगन ही गाजे सो।१०१। तांसे ऊर्ध्व आत्मा जु, अखण्ड ब्राजे नित, धारणा ध्यान कर तांहिं में समावो जी। औरही सु देवता की, धारणा जु करो तुम। तांहिं लोक तिसहिं को, सहज ही सु पावो जी। भोग सु विविध भोगे, शरीर का सुख लेवो। पुण्य क्षीण होवे फिर, मृत्यु लोक जावो जी। कहे ग्वालानन्द ब्रह्म, धारणा ध्यान कर। तबहीं सु पुनरपि, कष्ट नहीं खावोजी।१०२। कवित्त- पहिले कहूं पादा ध्यान, सुनो तुमहो सुजान। गुरु अवतार पुन, देवता को जानिये। शरीर को देख देख, सर्व अङ्गों पर दृष्टि। लायके निश्चय पाद, हृदय में आनिये। प्रणव का मन्त्र जप, पूरक कुम्भक कर। तबहीं सु मन वृत्ति, निश्चेही सु ठानिये। कहे ग्वालानंद ताप, त्रविधि ही नाश होत। सुख में ब्राजे योगी, वही मुख्य मानिये।१०३। द्वितीय सो पिंडध्यान, ब्रह्मांड देख पिण्डे। कंवल देवता लख, चक्रों का ही ज्ञान सो। भ्रमर गुफा स्थान, त्रवेणी ज्योति दर्शाय। कंवल हजार

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 83)

दल, सुन्दर प्रधान सो। देख हु सुधा समुन्द्र हंस जां निहावे नित। तेज पुञ्ज कोट भान, प्रकाश ही मान सो। कहे ग्वालानन्द आगे, सुन ही सकड़ जहां। करे हैं हुलास योगी, करके स्थान सो।१०४। तृतीय सु रूपा ध्यान, त्रकुटी में लाय देख। ज्योति दीपमाला पुन, बिजली चमकार को। नक्षत्रों की माला पुन, कोटि सूर्य चन्द्र तांहि। देख झिल मिल ज्योति, मय जु संसार को। बैठ वारि मांहि चक्षु, खोल के सु वारि देख। तैसे बाह्य भीत देख, ज्योति के विस्तार को। कहे ग्वाल तन मन, सुख सु अपार पाय। गुरु के कृपा से देख, सुगमही सारको।१०५। रूपातीत ध्यानचतु:, तिस परिब्रह्म जान। शून्य ही मण्डलपद, निर्वाण पाईये। चिदानन्द वपु मांहि, मनको स्थित कर। ध्यानों में जो प्रधान, शून्य ही समाईये। सायुज्य सु मुक्ति पाय, करे योगी थिति धाम। योग निद्रा तांहि जान, वृति लय पाईये। कहे ग्वाल ध्यान ध्येय, ध्याता जु अभान जहां। सर्व मांहि श्रेष्ठ यह, ध्यानही सु लाईये।१०६। क-अष्टम समाधि अङ्ग, जोई लावे चाढे रंग। कुसंगको करे भंग, सुख में समात हैं। जहां नहीं छाय धूप, जीव न स्वरूप ऊप। चौदह लोक नांहि रूप, वर्ण न जात है। दृष्टा दृष्टी दृश्य पुन, अभान जहां निश दिन। पिण्ड सो ब्रह्माण्ड तूल, तहां न सुहात है। कहे ग्वाल ज्ञान ज्ञेय, ज्ञाता, न त्रपुटी तहां। ऐसा अक्रिय अखंड, सुख योगी गात है।१०७। शृञ्छं-सुन शिष्य समाधिसो चतुर विधि, भक्ति योग ज्ञान विज्ञान ही सो। भक्ति लीन बुद्धि श्रुति गुरु ईश, भक्त भगवन्त का सुजान ही सो। ध्याता लीन

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 84)

ध्यान ध्यानध्येय मांहि, भक्ति समाधि पूरण मानही सो। प्राणायाम आसन कर सिद्ध योगी, योग समाधि कर बखान ही सो। चक्र कमल नाड़ी शोधि सुषुम्ना पुन, तां ब्रह्मांड पिंडे भान ही सो। भूले ध्यान ध्याता ध्येय नाद योगा, योग समाधि पूरण जान ही सो। ज्ञान जान परमात्म आत्मा का, तत्काल ही मिटे अज्ञानही सो। ज्ञान समाधि पूरण तब होवे, रहे ज्ञाता न ज्ञेय ज्ञानही सो। ना चित्त भान होवे एक ना दो, रहे सप्त शून्य समान ही सो। जहां आप आपे गुम आप मांहि, हो पूरण समाधि विज्ञान ही सो। यह योगमाला जोई जन साधे, करे अमीरस नित पान ही सो। तीन लोक मांहीं करे गवन योगी, हर्ष शोक तजे हो अमान ही सो। विचरे ग्वालानन्द निर्भय नित योगी, पाए अक्षय अमर अज थान ही सो।१०८। दोहा- गुरु के मुखारविंद से, चतुर विधि सुन योग। राजा करके राजयोग, मुक्त भया हन रोग।१। कवित्त- इति ग्वाल योगमाला, जोई पावे हो उजाला। आगे अद्भुत आला, सम्बत सु सारहै। ब्रह्मखण्ड शतवार, त्रिपुटी सो दश द्वार। इन्द्रय प्राण दिशायें, भूमका भंडार है। मास मंघ्र शुक्ल पक्ष, तिथि चतुर्दशी लख। बुधवार बारह बजे, अमरापुर द्वार है। कहे ग्वाल कृपा गुर, पढे रहे धारे उर। पावे सो बेगमपुर' निश्चे निर्धार है।१। टण्डा सु आदम गाम, श्री अमरापुर धाम। दक्षिण सु दिशा बन, रमणीक थान है। तहसील शहदादपुर ज़िला जु नवाबशाह। देवी गुण युत अति, मानो शशीभान है। रहे तहां सुख रूप, श्री गुरु टेऊंराम। तिस के प्रसाद

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 85)

भया, योग सु सम्पन्न है। कहे हैं ग्वाललाल, रहिनी रहे निहाल। मारे काल हो अकाल, पाए ब्रह्म थान है।२। ❁ श्री बावन अक्षरी ❁ अ-अलखहीं एकका ध्यान कीजे, जो व्यापक ब्रह्म स्वरूप होई। वेद पुराण ते तंत्र ऋषि मुनि, करहिं निशदिन तिसे ऊप सोई। उसी एक पूजो प्रभु पारब्रह्म, है सच्चिदानन्द स्वरूप जोई। ग्वाललाल आत्म चेतन ब्रह्म, देखो गुरु रूप स्वरूप सोई।१। आ-आत्मा ब्रह्म में भेद ऐसा, होता लहर सागर में भेद जोई। गुरु वेद वाक्य तिसे जान लेवो, करे भ्रम भेद निज छेद सोई। पीछे पाय आनंद अखंड आत्म, करे दूर चित्त निज खेद कोई। ग्वाललाल वृति निज तांहि मेलो, जोई अक्षय अजर अभेद होई। इ-इतर ब्रह्म ते और नाहीं, है सर्व मय विभु एक सारा। ज्यूं नाना घट मठ मृद होई, हिम गड़ा वारिद ते जल धारा। टेडू कती मुनि नक्षत्र जेते, पुन ध्रुव आदि जान सर्व तारा। सर्वं खल्विदं ब्रह्म कहिया श्रुति, ग्वाललाल जानो तिसे निर्धारा। ई-ईश्वर जीव ते ब्रह्म तीनों, ये वास्तव एकही जानिये जी। ज्यूं घट आकाश ते मठ महा, सो एकही नभकर मानियेजी। फूटे घटमठ नभ क्या हानी, यह भ्रमही चित्तसें भानियेजी। ग्वाललाल जान सर्व ब्रह्म एको, निज चित्त वृत्ति नित ठानियेजी। उ-उर माहीं यही ध्यान धारो, सत्यज्ञानमनंतं ब्रह्म सोई। अस्ति भाति प्रियसो आप होता, कर्म धर्म वर्ण आश्रम सोई। श्रुति स्मृति भगवती तंत्रों ने, निश दिन कहिया है मर्म सोई। ग्वाललाल योगी ऋषि मुनि भाखे, जो एक अखंड है परम सोई। ऊ-ऊर्ध्व मध्य

Scanned by AAKASH ASSWANI (page: 86)

अभिप्राय इन्द्रिय-द्वारों पर ही व्यक्त होते हैं। प्राण का भेद ही इन्द्रियों की विभिन्नता है। ऐसा होने पर ही पञ्च प्राण, मन और इन्द्रियाँ फूट उठती हैं, किन्तु वे समस्त मुख्य प्राण (क्रिया की परावस्था) से भिन्न होते हैं। मञ्चल प्राण स्थिर होने पर ही आत्मा अथवा ब्रह्म का ज्ञान होता है। क्रिया करने से ही प्राण स्थिर होते हैं।

क्रिया करते-करते जो क्रिया की परावस्था में पहुँच जाते हैं वे प्रथम ही तृतीय नेत्र कूटस्थ को पाकर शिवरूप हो जाते हैं, और फिर उस कूटस्थ के स्थिर होने पर ही विष्णु हो जाते हैं।

चेष्टाशील साधक प्रयत्न करने पर ही इस अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। जो साधन का क्लेश सहन कर प्रयत्नपूर्वक क्रिया करते चलते हैं उनकी कुलकुण्डलिनी मूलाधार में जागृत हो जाती है, उन्हीं का हृदयस्थ काम नष्ट हो जाता है और वे ही समस्त इच्छाओं से मुक्त हो जाते हैं। ये समस्त योगी लोग अमृत-पान करते हैं।"[1]

"कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के मूल में प्राण और अपान शक्तियों का साम्य स्थापन होता है। प्राण और अपान के द्वारा यावत् विरुद्ध शक्तियों का संग्रह समझना चाहिए। विरुद्ध शक्तियों में साम्य होना ही समान वायु की क्रिया का फल है। इस समय निद्रित कुण्डलिनी-शक्ति जाग उठती है। योगी का मन इस जाग्रत कुण्डलिनी-शक्तिरूपा अग्नि के साथ मिलकर एक हो जाता है। इस कुण्डलिनी-शक्ति को जाग्रत करने के लिए प्राणायाम रूप योग कौशल को जानना चाहिये। प्राणायाम के द्वारा ही श्वास चैतन्य युक्त होता है, इससे सुषुम्ना का मुंह खुल जाता है। इससे मन का त्राण होता है अर्थात् चाञ्चल्य रहित होकर स्थिरता प्राप्त करने के कारण यहाँ मन्त्र के मन्त्र नाम की (मननात् त्रायते) सार्थकता स्पष्ट होती है। तन्त्र में लिखा है कि—

शिव से लेकर कृमि पर्यन्त प्राणियों के प्राणावर्तन रूप श्वास-प्रश्वास को मन्त्र कहते हैं। मन्त्र का यथार्थ मानी है, श्वास और उसको चैतन्य करने का उपाय श्वास-क्रिया या प्राणायाम"।[2*]

---

१. जीवन-लक्ष्य और साधना पृ० ८८ से

२. शिवादिकृमिपर्यन्तं प्राणिनां प्राणवर्तनम् ।
नि:श्वास-श्वासरूपेण मन्त्रोऽयं वर्तते प्रिये ॥

* जीवन लक्ष्य और साधना, पृ० ११-१२

॥अथ भस्त्रिकाकुम्भकः॥

ऊर्वोरुपरिसंस्थाप्य उभे पादतले तथा।

पद्मासनं भवेत्सम्यक्सर्वपापप्रणाशनम्॥४.२.६८॥

[1899] ब- 'योगिनीचक्रं.........प्रापयतीत्यर्थः' न प्राप्तम्
[1900] अ- भवति
[1901] अ- विजृम्भिकम्, ब- विजृम्भिका

सम्यक्पद्मासनं बध्वा समग्रीवोदरः सुधीः।

मुखं संयम्य यत्नेन प्राणं घ्राणेन[1902] रेचयेत्॥४.२.६९॥

यथालिङ्गति हृत्कण्ठे कपालावधिपूरयेत्।

वेगेन पूरयेत्किञ्चिद्धृत्पद्मावधिकेवलम्॥४.२.७०॥

पुनर्विरेचयेत्तद्वत्पूरयेद्वायुं पुनः पुनः।

यथैव लोहकारणं भस्त्रावेगेन चाल्यते[1903]॥४.२.७१॥

तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत्पवनं[1904] धिया।

यदाश्रमो भवेद्देहे तदा सूर्येण रेचयेत्[1905]॥४.२.७२॥

अथोदरं यदापूर्णं पवनेन तथालघु।

धारयेन्नासिका[1906] मध्या[1907]तर्जनीभ्यां विना दृढम्॥४.२.७३॥

कुम्भकं पूर्ववत्कृत्वा रेचयेदिडयानिलम्।

वातपित्तश्लेष्महरं शरीराग्निविवर्द्धनम्॥४.२.७४॥

कुण्डलीबोधकं सर्वं रोगघ्नं सुखदं शुभम्।

ब्रह्मनाडीमुखे संस्थं[1908] कफाद्यर्गलनाशनम्॥४.२.७५॥

गुणत्रयसमुद्भूत[1909]ग्रन्थित्रयविभेदकम्।

विशेषेणैव कर्त्तव्यं भस्त्राख्यं कुम्भकं स्वयम्॥४.२.७६॥

[1902] ब- प्राणो न
[1903] ब- चौल्यते
[1904] ब- चौलयेत्पवनं
[1905] अ- पूरयेत्
[1906] स- धारयेन्नासिका
[1907] ब- मध्ये
[1908] ब- संस्था
[1909] ब- समोद्धृत्य

मध्यातर्जनीविवर्जिताभ्यां[1910] दृढं गाढं यथास्यात्तथा अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां नासिकाभ्यां[1911] धारयेदित्यर्थः। इति सर्वदोषमलशोषणः[1912] सर्वपीडाहर आमाजीर्णजारणो भस्त्रिकाकुम्भकः॥४.२.७७॥

॥अथान्तर्भस्त्रिकाकुम्भकः॥

उक्तञ्च ग्रन्थान्तरे-

नासाग्रं मुद्रणं कृत्वा यदन्तं रेचपूरकौ।

सकृद्रेचकपूराभ्यां कुम्भोऽयं चान्तरङ्गक इति॥४.२.७८॥

॥इत्यन्तर्भस्त्रिकाकुम्भकः॥

हाथों की अंगुली आदि से शीर्षण्य गोलकों को भली-भांति बन्द कर ले, दोनों अंगूठो से दोनों कान, तर्जनियों से आँखें मध्यमाओं से नाक (और शेष चारों में मुहँ) बंद करे। मूर्धा में मन की एकाग्र करना चाहिये। जब तक आनन्द प्रकट न हो तब तक यों ध्यान करें। इससे प्राण ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है। जब वायु ब्रह्मारंध्र में घुसती है तब अंदर ही विभिन्न नाद उत्पन्न होते है। पहले शंखध्वनि की तरह तथा अंत में मेघध्वनी की तरह शरीर क अंदर ही ध्वनि अनुभव में आती है। जब सिर के मध्य प्राण पहुँचता है तो ब्रह्मरन्ध्र से मानो प्रस्राव होता है। जिससे संसारनिवृत्ति होती है। बाये टखने से सीवनी को दबाये और दायें टखने से बायें टखने के जोड़ को दबाकर बैठ जाये शिव गणेश और सरस्वती का स्मरण करे। लिंग नाल से वायु का शनैः शनैः समाकर्षण कर रेफ बिन्दुयुक्त प्रणव का जप करते हुए उसे मूलाधार में निरुद्ध करे इसमें कुण्डली उद्दीप्त होती है और वह्नि समेत वायु सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है। यह अभ्यास वायु पर विजय दिलाता है। पहले पसीना,फिर कंपन होता है और यों वायुजय होने पर शरीर का अभ्यास हो जाता है। यो अभ्यास करने वाले को मूलरोग, भगन्दर व अन्य व्याधियों से छुटकारा मिलता है। क्षुद्र व महान पाप भी नष्ट हो जाते है। पाप निवृत्ति से पित्तशुद्धि व ब्रह्मलोक पर्यन्त वैराग्य हो जाता है। संसारसे जिसे वैराग्य है उसके मोक्ष का साधन शिवात्मज्ञान को जानने से पाशों से छुटकारा मिलता है। अहो खेद है! रागी नराधम माया से मुग्ध हुए ज्ञानरूप अमृत को छोड़ संसार में भटकते रहते है।[1]

जिससे एक बार भी ज्ञानमृत का रस चख लिया वह तो सब काम छोड़ उसी ओर दौड़ता है। जो अन्यत्र रमण करता है उसने निश्चित ही ज्ञान का स्वाद नही जाना है विद्वान तो जगत को ज्ञानस्वरूप ही बताते है। जो विद्वान नही गलत दृष्टि वाले है वे अर्थस्वरूप का दर्शन करते है। जैसे सर्पादि रज्जुस्वरूप ही अधिष्ठान तत्ववेत्ता की प्रतीत होते है क्योंकि रज्जुसे अतिरिक्त उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं वैसे शिवात्मवेत्ता संसार

[1] सूतसंहिता खण्ड-2 अ० 16 श्लो० सं० 42,43,44,51,52,54

XL11
RAJA KUMAR JHA
WON
₹1.6 CRORE

बुद्धौ प्रलीने मनसि प्रचिन्त्या
विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या।।२।।

अन्वयः-राजन् एतत् ब्रह्म त्वरमाणेन न लभ्यम् , यत् अभिषङ्गेण मां पृच्छसि, मनसि बुद्धौ प्रलीने प्रचिन्त्या हि सा विद्या ब्रह्मचर्येण लभ्या।।२।।

चातकप्रिया सं० व्या०--राजन् = नृप !, एतत् = इदम् , ब्रह्म, त्वरमाणेन = शीघ्रकारिणा पुरुषेण, न = नहि, लभ्यं = प्राप्यम् हृदयङ्गमं भवितुं नार्हति, यत् = यस्य विषये, अभिषङ्गेण = आग्रहपूर्वकम्, मां = सनत्सुजातम्, पृच्छसि = प्रश्नासि, तद् ब्रह्म कथं लभ्यमित्याह-मनसि = मनस्तत्त्वे, बुद्धौ = बुद्धितत्त्वे, प्रलीने = विलीने सति, प्रचिन्त्या= प्रगतं चिन्त्यं यस्यां सा, निरुद्धाखिलवृत्तिका काचिदैकावस्था विद्येत्युक्ता। अयमाशयः–इन्द्रियाणां निरोधेन मनोमात्रं शिष्यते, तच्च मनोऽनुपरतं संकल्पाद्यात्मकं तिष्ठति। तस्मिँश्चापि मनसि "अहं ब्रह्मास्मीति" निश्चयलक्षणायां बुद्धौ विलीने सति यैका निरुद्धसर्ववृत्तिकावस्थेति सा ब्रह्मविद्येति। सा चेयं ब्रह्मोपलब्धिविद्या केवलेन ब्रह्मचर्येण = वक्ष्यमाणस्वरूपेण, लभ्या = प्राप्येति।।२।।

चातकप्रिया हिन्दी--राजन् ! जिस तत्त्वज्ञान के विषय में अति शीघ्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए मुझसे आग्रह कर रहे हो, वह तत्त्वज्ञान इतनी शीघ्रता से कभी भी नहीं मिलता। उसकी प्राप्ति की विधि इस प्रकार है–सुनो–सम्पूर्ण इन्द्रियों के निरोध हो जाने के बाद संकल्प-विकल्पात्मक मन जब बुद्धि–गुहा में लीन हो जाता है और "मैं ब्रह्म हूँ" केवल यही भाव बुद्धि में स्थित रहता है, तब एक प्रकार की जो निरुद्धसर्ववृत्तिक अवस्था होती है, वही ब्रह्मविद्या है।उस विद्या की प्राप्ति केवल ब्रह्मचर्य के पालन से ही होती है।।२।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम दम संजम उपर्ती, शरधा सुमति करहु बे
सुमारा हो ॥
ज्ञान वैराग्य परमपद मुक्ती, मन तू कर इनका
सनचारा हो ॥
शारदाराम सने सने चलहू, अहै अगम पन्थ
अपारा हो ॥

(शब्द, राग पुरबी)

गुरु दरियाव नहाना हो, जा के दुरलभ भाग ॥ टेक ॥
इंगला पिंगला चबर डोलावै, सुख मन मग चलि
जाना हो ॥
जनम जनम के काई मल लगले, पैठत सब कटि
जाना हो ॥
शारदाराम चेत सुचेत हो के, ज्योत में ज्योति
समाना हो ॥

(शब्द, राग पुरबी)

गुरु सागर चलि आना हो, जा की बहुत कमाई
॥ टेक ॥
गैबी गुरु गैब दर्शावत, साजन मीत कुटुम्ब तराना
हो ॥
पतित पावन सद्‌गुरु करि दीना, यह अचरज
अनेक परमाना हो ॥
शारदाराम हटकी मन रोकहू, बहुरि जनम नहीं
आना हो ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

प्रभाव किस प्रकार पडा और वह उनमे किस रूप मे विद्यमान है। नामदेव के प्रस्तुत पद मे वेद, पुराण और शास्त्रो के प्रति नाथपन्थियो की उपेक्षा-भावना, अखिल ब्रह्माण्ड मे व्याप्त अनहद-नाद का व्यष्टि रूप मे नाद-श्रवण, तीनो नाडियाँ, चन्द्र-सूर्य, सहज तथा ज्योति और शून्य मे सामने का स्पष्ट उल्लेख हुआ है—

वेद पुरान सासत्र अनन्ता, गीत कवित्त न गावऊगो।
अखण्ड मण्डल, निरकार महि, अनहद बेनु बजाऊगो॥
वैरागी रामहि गावऊगो॥
सबदि अतीत अनाहदि राता, आकुल कै घरि जाऊगो।
इडा पिंगला अठरु सुखमना, पऊनै बाँधि रहाऊगो॥
चन्दु सूरजु, दुइ समकरि राखऊ, ब्रह्म ज्योति मिलि जाऊगो।
नामा कहै चितु हरि सिऊर, राता सुन्नहि सुन्न समाऊगो॥[2]

\+ + +

[1] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—कबीर, पृष्ठ २२।

[2] आचार्य विनयमोहन शर्मा—हिन्दी को मराठी सन्तो की देन : नामदेव के हिन्दी पद, पृष्ठ २५२।३१।

जह झिलमिल कारु दिसन्ता। तह अनहद सबद बजन्ता॥
जोती जोति समानी। मैं गुर परसादी जानी॥
जह अनहद सूर उजारा। तह दीपक जलै छीया॥
गुर परसादी जानिआ। जनु नामा सहज समानिया॥[1]

\+ + +

गगन-मण्डल की वर्षा एवं अनहद नाद के मधुर ध्वनि की अनुभूति—

अड़मड़िया मंदलु बाजैं, बिनु सावण अनहद गाजै।
बादल बिनु बरखा होई, जउ ततु बिचार कोई॥
घनि-घनि श्रो राय बेनु बाजै। मधुर-मधुर धुनि अनहद गाजै॥[2]

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि "कबीरदास आदि ने नाथ पन्थियो की सम्पूर्ण पद्धति स्वीकार करके फिर रूपक द्वारा अपनी बात को इसी पद्धति के बल पर प्रतिष्ठित करने का मार्ग अवलम्बन किया है।"[3] सच तो यह है कि सत्य के प्रयोगी कबीर ने तत्कालीन प्रचलित यौगिक साधनाओ की भली भाँति परीक्षा करके स्वानुभूतिमूलक सहजयोग को ही अपनाया है और उसका पर्यवसान भक्ति में किया है। प्रारम्भ में वे हठयोगियो की क्लिष्ट साधना से अवश्य प्रभावित थे क्योकि तत्सम्बन्धी उल्लेख उनकी रचनाओ मे मिलते हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं, हे वैरागी ! पवन को उलटकर प्राणायाम कर। कुण्डलिनी के द्वारा शरीर के अन्तर्गत स्थित छ: चक्रो को बेधकर अपनी आत्मा मे शून्य के प्रति अनुराग उत्पन्न कर।...हे मन ! तू उलटकर अपने आप मे समा जा। गुरु की कृपा से तुझे दूसरी ही बुद्धि मिल गई है अन्यथा तू अभी तक बेगाना था।[4] बटुवा तो एक (शरीर) है जिसमे बहत्तर (नाड़ियो की) आधारियाँ है और जिसका एक ही (ब्रह्मरन्ध्र) द्वार या मुँह हैं। ऐसे बटुवो के साथ जो नौ खण्ड की पृथ्वी पर अधिकार कर लेता है वही सारे संसार मे (सच्चा) योगी है। ऐसा

जे मन नहिं तजे विकारा, तो क्यूं तिरिये औपारा।
जब मन छांड़े कुटिलाई, तब आय मिले राम राई॥

अतः योग-साधना के माध्यम से वे भक्ति-सिद्धि की कामना करते हैं, क्योंकि भक्ति के बिना योग-साधना, बन्धन से छुड़ाने वाली न होकर और उलझने वाली हो जाती है। इसी से वे इन बन्धनो के फेर में न पड़कर दृढ़ता के साथ भगवान की भक्ति करने पर जोर देते है—

हिरदै कपट हरि सूं नहिं साचौं, कहा भयो जो अनहद नाच्यौं।
भूठैं फोकट कलू मंझारा, राम कहै ते दास नियारा॥
भगति नारदी मगन कबीरा, इह विधि भव तिरि कहै कबीरा॥[1]

कभी-कभी तो वे पूरी अक्खडता के साथ योग के विकट रूपो की अवतारणा करते हुए तिलमिला देने वाले तर्कों के माध्यम से अवधूत योगी की दुर्गति बताते हुए उसके अज्ञान पर तरस खाते हैं। कबीर की इस स्थिति और उस पूर्व-स्थिति मे, दो ध्रुवो का अन्तर सचमुच आश्चर्य में डाल देने वाला है किन्तु इसे भक्ति का प्रसाद ही माना जा सकता है और उनकी निश्चित, स्थिर, परिपक्व धारणा। उन्होने स्पष्ट कहा है—

जब लग भाव-भगति नहिं करिहौं, तब लग भवसागर क्यूं तिरिहौं।
भाव भगति विसवास बिन, कटै न संसै सूल।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मुकति नही रे मूल॥[2]

अवधूत के क्रिया-कलापो की तहकीकात करते हुए वे तिलमिला देने वाले पैने-व्यग्य-भाव से पूछते हैं—

जो तुम पवना गगन चढ़ावो, करो गुफा मे वासा।
गगना-पवना दोनो विनसैं, कहँ गयो जोग तुम्हारा॥
गगना मद्धे जोती झलकै, पानी मद्धे तारा।
घटि गे नीर विनसि गे तारा, निकर गयो केहि द्वारा॥
मेरु डंड पर डारि दुलैचो, जोगिन तारी लाया।
सोइ सुमेर पर खाक उड़ानी, कच्चा जोग कमाया॥
इंगला विनसै पिंगला विनसै, विनसै सुखमनि नाडी।
जब उनमुनि की तारी टूटै, तब कहँ रही तुम्हारी॥[3]

---

[1] कबीर ग्रन्थावली—पद २७८।
[2] वही—रमैणी, पृष्ठ २४५।
[3] कबीर साहेब की शब्दावली, भाग पहला—शब्द ६०।

काया माहैं लोक सब । दादू दिये दिखाइ ।
मनसा वाचा कर्मना । गुरु बिन लख्या न जाइ ॥

नाथपन्थियो की यौगिक-साधना से यत्किंचित् प्रभावित होते हुए भी दादू की योग-साधना का पर्यवसान प्रेमसंयुक्त भक्ति मे होता है । प्रेम की तीव्रता से परिपूर्ण पंक्तियो की सर्वाधिक संख्या उनकी कही हुई बानियो एव पदो में है । सार रूप मे दादू की योगस्पर्शित साधना-पद्धति को उन्ही के शब्दो में इस प्रकार उपस्थित किया जा सकता है :—

अह निसि सदा सरीर मे हरि चिन्तत दिन जाइ ।
प्रेम मगन लयलीन मन, अन्तर गति ल्यौ लाइ ॥
नाव सपीड़ा लीजिये, प्रेम भगति गुन गाइ ।
दादू सुमिरण प्रीति सों, हेत सहित ल्यौं लाइ ॥
प्रान कँवल मुखि राम कहि, मन पवना मुखि राम ।
दादू सुरति मुख राम कहि, ब्रह्म सुन्न निज ठाम ॥
ज्यूँ जल पैसे दूध में, ज्यूँ पाणी में लौण ।
ऐसे आतम राम सो, मन हठ साधे कौण ॥[1]

दादू के उत्तराधिकारी गरीबदास ने योगपरक अन्तर्मुखी साधना का स्वरूप इस प्रकार उपस्थित किया है :—

तन खोजै तब पावै रे ।
उलटी चाल चले जे प्राणी, सो सहजै घर आवै रे ॥
बारह मारग वहता रोकै, तेरह ताली लावे रे ।
चन्द सूर सहजैं सत राखै, अणहद वेण बजावे रे ॥
तीन्यूं गुण चौथे घर राखै, पाँच पचीस समावे रे ।
नऊ निरति सूं और बहत्तर, रोम-रोम धुनि धावे रे ।
मैल निर्मल करे ग्यान सौं, सतगुरु कहि समझावे रे ।
'गरीबदास' अनमै घर उपजै, तब जाइ जोति लखावे रे ॥[2]

सुन्दरदास ने तो आशाओ को वश में न करने वाले किन्तु काया को विविध प्रकार के कष्ट देने वाले योगियो पर तथा उनकी योग-साधना पर तीव्र कशाघात किया है । उनका कथन है कि हे योगी ! तुमने घर द्वार एवं स्त्री-पुत्रादि के प्रेम को त्यागकर भस्म धारण की । अपने शरीर पर शीत-ग्रीष्म एवं पावस के अनेक कष्ट सहे, पचाग्नि तापी, वृक्ष के नीचे निवास कर भूख सही ।

---

[1] दादूदयाल की बानी—भाग २, सुमिरन को अंग ४१, ७२, ७३, ७६ ।
[2] पं० परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित सन्त काव्य—पृष्ठ ३१९ ।

रेचक प्राणायाम कहलाता है। दीर्घकालीन प्राणायाम के अभ्यास से ही शीघ्र योगसिद्धि की प्राप्ति हो सकती है। प्राणायाम मे सफलता प्राप्त करने के पूर्व साधक को तीन प्रकार के 'बन्ध' करने अनिवार्य हैं—मूल-बन्ध, उड्डियान और जालन्धर, लिंग स्थान और गुदास्थान के बीच की संकुचित मांस पेशी को बायें

[1] बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्मः ॥५०॥ बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थ : ॥५१॥

[2] पातंजल योग दर्शन—हरिहरानन्द आरण्य-कृत भाष्य, पृष्ठ १६६। लखनऊ विश्वविद्यालय।

[3] प० बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृष्ठ ३६१।

पैर की एड़ी से दबाकर अधोगत अपानवायु को ऊपर खींचने से मूल-बंध सिद्ध होता है। इस बन्ध की साधना से वृद्धावस्था का नाश होता है।[1] जब रेचक-पूर्वक प्राणवायु का प्राणायाम करते समय उदर का मध्य भाग पीठ की ओर खींचा जाता है और नाभिस्थान किंचित् ऊपर की ओर खींच लिया जाता है तब मृत्यु-मातंग केसरी उड्डियान-बंध सिद्ध होता है।[2] गले को संकुचित करके जब ठुड्डी, हृदय-स्थान पर स्थिरतापूर्वक टिका दी जाती है तो उसे जालन्धर-बंध कहते हैं। यह जालन्धर-बन्ध स्वयं सिद्ध है और योगियो को सिद्धि देने वाला है। छः माह इसका अभ्यास करने से साधक को निश्चित सफलता मिलती है।[3]

प्राणायाम के पूर्व नाडी-शुद्धि का विधान किया गया है। माला की भाँति गुँथी हुई नाड़ियो (कमल नाल के तन्तु की भाँति सूक्ष्म आकार वाली) के भीतर जब तक पवन का भली भाँति प्रवेश नही हो जाता तब तक प्राणायाम की सिद्धि दुर्लभ है।[4] नाडी की शुद्धि होने पर साधक का शरीर स्थूल व क्षीण न होकर सम हो जाता है, उसकी अपूर्व कान्ति हो जाती है तथा उससे सुगन्ध निकलने लगती है। कण्ठ स्वर मधुर, जठराग्नि तीव्र तथा चित्त प्रफुल्लित एवं उत्साह से भर जाता है।[5] इस प्रकार तीनो बन्ध-युक्त प्राणायाम की साधना से कुंडलिनी नामक नाड़ी जागृत होती है। अपान एवं प्राण वायु के ऊर्ध्व-निम्नगामी होने से दोनो एक-दूसरे से मिल जाते हैं और उनकी सम्मिलित शक्ति से एक जाज्वल्यमान् उष्णता का आविर्भाव होता है जिससे कुडलिनी जग उठती है और सुषुम्ना का द्वार खुल जाता है। सुषुम्ना मे प्राणवायु का प्रवेश होने से वह ब्रह्मरन्ध्र की ओर उन्मुख होने लगता है और उस समय साधक समाधि-अवस्था को प्राप्त हो जाता है। प्राणायाम के शनैः-शनैः अभ्यास से साधक के संचित कर्म-संस्कार तथा

[1] घेरण्ड-संहिता, तृतीयोपदेश १४-१५ तुलनीय—

पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेद्गुदम्।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धोऽभिधीयते ॥—हठयोग प्रदीपिका

[2] घेरण्ड-संहिता, तृतीयोपदेश १०—

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं च कारयेत्।
उड्डियानो ह्यसौ बन्धो मृत्युमातंग केसरी ॥—हठयोग प्रदीपिका

[3] घेरण्ड-संहिता, तृतीयोपदेश १२-१३ तुलनीय—

कंठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम्।
बन्धो जालन्धराख्योऽयं जरामृत्युविनाशकः ॥ —वही

[4] घेरण्ड-संहिता ५।३४।

पिण्ड-ब्रह्माण्ड—सहिता का द्वितीय पटल अपेक्षा कृत अधिक उपयोगी है। इस जीव देह मे सातो द्विप सहित सुमेरु (पर्वत), नदियाँ, समुद्र, पर्वत, क्षेत्र क्षेत्रपाल सब विराजमान हैं। सम्पूर्ण ऋषि मुनि नक्षत्रपुज, ग्रह मडल, पुण्यप्रद तीर्थ और पीठ देवता भी इस देह में रहते हैं।[1] सृष्टि का सहार करने वाले चन्द्रमा और सूर्य निरन्तर इस देह मे घूमते रहते है और यह देह के आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पाँच भूतो का अधिष्ठान-स्थान है। प्रकृति में जितने भूत विद्यमान हैं, वे सभी इस देह में विराजमान है। ये सभी पदार्थ सुमेरु को घेरकर अपने-अपने विषय का व्यवहार करते है। जो इस देह वृत्तान्त को भली भाँति जान चुका है, वह निस्सन्देह पूर्ण योगी है।[2] यह जीव-देह ब्रह्माण्ड कहलाता है, इस देह में सुमेरु के समान मेरुदण्ड स्थित है। उसके ऊपर द्विदल पद्मकर्णिकाकार में चन्द्रमडल और उसके ऊपर नाद चक्र मे सूर्यमण्डल स्थित है जिनके द्वारा देह की पुष्टि और सृष्टि का विस्तार होता है। चन्द्रमा नित्य अमृत की वर्षा करता है। वह सुधाधारा दो भागो मे बँट गई है। शरीर की पुष्टि के लिए यह सुधा, इडा नामक नाड़ी के छिद्र से लेकर मन्दाकिनी के जल के समान सारे शरीर को पोषण करती है।[3] यह सुधारश्मि इडा नामक नाड़ी के रूप मे वाम भाग में रहता है। विशुद्ध दुग्ध के समान आनन्दप्रद चन्द्रमा सृष्टि के लिये सुषुम्ना मार्ग के द्वारा मेरु मे प्रस्थान करता हैं। मेरुदण्ड के मूलदेश मे बारह कलाओ वाला सूर्य स्थित है, वह प्रजापति स्वरूप दक्षिण मार्ग में ऊपर को जाने वाली किरणो के द्वारा प्रवाहित होता है। सूर्य अपनी आकर्षिणी शक्ति के द्वारा देह की समस्त अमृतमयी धातुप्रो को सोख सकता है, वह निरन्तर वायुपुज के साथ देह में घूमता रहता है।[4] मनुष्य के शरीर में साढे तीन लाख नाड़ियाँ है। उनमें चौदह प्रधान है। इनमे प्रथम तीन श्रेष्ठ कही गई है। इन तीनो में भी सुषुम्ना सर्व-

---

[1] शिव-संहिता द्वितीय पटल, श्लोक १.२—डा० रामचन्द्र शर्मा सनातन धर्म प्रेस मुरादाबाद।

[2] शिव-सहिता २।३,४,५।

[3] वही—२।६,७,८।

[4] वही—२।६-१०,११।

प्रधान है! यह योगियो को परम प्रसन्नता देने वाली है। दूसरी नाड़ियाँ इसका आश्रय लेकर ही मनुष्य देह में मे बस रही हैं। तीनो नाड़ियाँ नीचे को मुख करके स्थित हैं, ये कमल के तार के समान हैं। इड़ा सोमस्वरूप, पिगला सूर्य स्वरूप और सुपुम्ना अग्नि रूप है। ये तीनो मेरुदण्ड के आश्रय से मनुष्य देह में स्थित हैं।[1] इन तीन नाड़ियो के मध्य मे परम प्रसन्नता देने वाली चित्रा नामक नाडी है, इसी नाड़ी के मध्य मे परम सूक्ष्म ब्रह्मरध्र विद्यमान है। यह चित्रा नाड़ी अनेक वर्ण वाली, शुद्ध और तेज से कातिमान् है। अमृत के समान आनन्द देने वाली इस नाड़ी द्वारा योगी समस्त पापो को नष्ट कर सकते है।[2]

मनुष्य-देह मे जो मूलाधार पद्म विद्यमान है, वह चार अगुल चौड़ा गुदा से दो अगुल ऊपर और दो अगुल नीचे स्थित है। इस पद्म की कलियो के भीतर रमणीय योनि-मण्डल है जो परम गोपनीय है। इसी के बीच विद्युत् के समान आकार वाली परम देवता कुण्डलिनी शक्ति स्थित है जो साढे तीन वलय वाली सुपुम्ना का मार्ग रोके हुए पड़ी है। यह कुण्डलिनी शक्ति जगत् की सृष्टि करने वाली और मुक्तिदात्री है। वाम-भाग मे स्थित इड़ा नामक नाड़ी मध्यवर्तिनी सुषुम्ना को लपेटती हुई नाक के दाहिने रन्ध्र तक चली गई है। ऐसे ही दाहिने भाग मे स्थित पिंगला नामक नाडी बीच मे की सुषुम्ना को लपेटती हुई नाक के बायें रन्ध्र तक चली गई है। इड़ा और पिंगला, इन दोनो के मध्य में स्थित सुषुम्ना के छः स्थानो मे छः पद्म (चक्र) मूलाधार ४ दल वाला स्वाधिष्ठान, ६ दल मणिपूर, १० दल अनाहत, १२ दल विशुद्ध, १६ दल, आज्ञा; द्विदल और छ शक्तियाँ—डाकिनी, काकिनी, काकिनी, लाकिनी, राकिणी और शाकिनी स्थित है।[3]

पूर्ण प्राण-विजय 'केवल' कुम्भक के द्वारा प्राप्त होती है क्योंकि इसमें श्वास-क्रिया पूर्णतः अवरुद्ध हो जाती है। यह पूरक और रेचक की अपेक्षा नहीं रखता। केवल कुम्भक मे सूर्य और चन्द्र का योग होने से प्राण सुषुम्ना में समा जाता है और साधक अजरामर बनकर अमृत का पान करता रहता है। गुरु गोरखनाथ ने कहा भी है कि "हे अवधूत! शरीर के नवो द्वारों को बन्द करके वायु के आने-जाने का मार्ग रोक लो। इससे चौसठ सन्धियो मे वायु का व्यापार होने लगेगा। इससे निश्चय ही कायाकल्प होगा और साधक सिद्ध हो जायगा जिसकी छाया नही पड़ती।[२] पवन का संचार रोकने के लिए शरीर में फैले हुए सहस्र नाड़ी जाल और शरीर के रोम-रोम मे जिसमें नाड़ी-मुखो का अन्त है, भस्म धारण करना विहित बतलाया गया है। प्राणायाम के द्वारा प्राण को पकडकर उसे वश

[१] गोरखबानी—सबदी ७५।

[२] वही—सबदी ५०।

में करना चाहिये इससे उन्मन अवस्था सिद्ध होती है, अनाहत नाद की तुरी बजने लगती है और ब्रह्मरन्ध्र मे बिना सूर्य या चन्द्रमा के ब्रह्म का प्रकाश चमक उठता है—

अवधू दम्भ कौ गहिबा उनमनि रहिबा, ज्यूं बाजबा अनहदतूरं।
गगन मण्डल में तेज चमकै, चन्द नहीं तहां सूरं॥
सास उसास बाइ कौं भषिबा, रोकि लेहु नव द्वारं।
छठै छमासि काया पलटिबा, तब उनमनी जोगं अपारं॥
अवधू सहस्र नाड़ी पवन चलैगा, कोटि झमंकै नादं।
बहतरि चन्दा बाई सोष्या किरणि प्रगटी जब आदं॥[१]

इस प्रकार सूर्य-चन्द्र के सयोग से जब नाद में बिन्दु समा जाता है और अनाहत नाद की तुरी बजने लगती है तब ब्रह्मरन्ध्र में अमृत का निर्झर झरने लगता है। उन्मनावस्था के सिद्ध होने पर नाद उलट जाता है। यह नाद सूक्ष्म शब्द तत्व का क्रियमाण स्वरूप है जो क्रमशः स्थूल रूप में परिणत होता हुआ सृष्टि का कारण होता है। उसका सृष्टि निर्मायक स्थूल स्वरूप अपने मूलस्रोत की ओर मुड जाता है और नीचे उतरता हुआ बिन्दु ऊर्ध्वगामी हो जाता है और वायु मे ही, जिसके ऊपर काल का प्रभाव बहुत दिखाई देता है, अमर तत्व पहचाना जाता है।[२] श्वास-क्रिया के माध्यम से परम गति अथवा ब्रह्म-तत्व की उपलब्धि पर प्रकाश डालते हुए गोरखनाथ जी का कथन है कि "श्वासा को नीचे जाने वाली और ऊर्ध्व के बीच मे उठाकर रक्खा अर्थात् केवल कुम्भक किया और मध्य शून्य (ब्रह्मरन्ध्र) में जा बैठा।"[३] पवन को उलट कर ब्रह्मरन्ध्र मे समा लेने से बालक रूप प्रत्यक्ष होता है। उदय के घर में अस्त लाने से अर्थात् मूलाधार स्थित सूर्य को अस्त करने से और चन्द्र के घर ब्रह्मरन्ध्र मे पवन का सम्मिलन करने से बँधा हुआ हाथी (मन) अपनी शाला मे आ जाता है।"[४]

आभ्यन्तर ज्ञान—जो योगसाधन को केवल शारीरिक कष्ट-साधना तक सीमित रखते हैं वे योगसिद्धि से कोसो दूर है। बिना मन की ओर जाती हुई बहिर्मुखी वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाये आभ्यन्तर अनुभूति के शरीरस्थ नाड़ियो और अष्टाग योग का समस्त वाह्य ज्ञान झूठा है। इसीलिए गुरु ने चेतावनी देते हुए कहा है कि हे खण्डित ज्ञानियो! तुम बाहरी बातो से युद्ध करते

[१] गोरखबानी—सबदी ५१-५४।

[२] वही—५५।

[३] वही—७८।

[४] वही—८८।

व्यष्टिमय व्यक्त रूप है। परमेश्वरी कुण्डलिनी ही ब्रह्मद्वार का आच्छादन करके सोई हुई है। इसे जगाकर शिव से सम-रस कराना ही योगी का चरम प्रतिपाद्य है। अन्यान्य विधियो से भी मोक्ष प्राप्त किया जाता है किन्तु चाभी से जिस प्रकार ताला हठात् खुल जाता है उसी प्रकार कुण्डलिनी के उद्बोधन से हठात् अनायास ही मोक्षद्वार खुल जाता है।[1] नाड़ी-शुद्धि हो जाने के पश्चात प्राणादि वायुओ का शमन हो जाने पर सुषुम्ना का मार्ग खुल जाता है। साधक अनेक प्रकार के अभ्यासो से इड़ा और पिंगला के मार्ग का अवरोध कर सुषुम्ना की मध्यवर्तिनी ब्रह्म नाड़ी से कुण्डलिनी को ऊर्ध्वमुख करता है और वह आगे बढ़ती हुई मेरुदण्ड के समानान्तर सुषुम्ना नाड़ी पर स्थित षटचक्रो का भेदन करती हुई सहस्रार-चक्र के ब्रह्मरन्ध्र का स्पर्श करती है। सहस्रदलो के कमल के आकार का सहस्रार-चक्र ही इस शरीर रूपी तीर्थ का कैलाश है जहाँ पर शिव निवास करते हैं। इस महातीर्थ तक पहुँचाने की क्षमता केवल सुषुम्ना नाड़ी में ही है, इसीलिए इसे शाम्भवी-शक्ति कहा जाता है।[2] कहा जाता है कि शक्ति, कुण्डलिनी रूप में देह मे स्थित है और शिव भी सहस्रार में विराजमान है। जन्म-जन्मान्तर के सञ्चित मलो के भार से कुण्डलिनी दबी हुई है। एक बार यदि मनुष्य ध्यान-धारणा के बल से वायु को सयमित करे और नाड़ियो को शोधकर पवित्र करे तो वह परमपवित्र सुषुम्ना का मार्ग खुल जाय जिसको ढककर परमेश्वरी कुण्डलिनी सोई हुई है।[3] गुरु गोरखनाथ सिद्ध संकेत करते हुए कहते हैं कि षोड़श कला वाली नाड़ी (इला) में चन्द्रमा का प्रकाश है, द्वादश वाली (पिंगला) मे भानु का, सहस्र नाड़ी सुषुम्ना अथवा सहस्रार मे प्राण का मूल निवास है, वहाँ असख्य कला वाले शिव (ब्रह्म-तत्व) का स्थान है। कुण्डलिनी शक्ति जब उलट कर ब्रह्माण्ड में पहुँच जाती है और नख से शिख तक सर्वाङ्ग में वायु व्याप्त हो जाती है अर्थात् वायु-भक्षण होने लगता है तब सहस्रार स्थित अमृत प्रस्रावक चन्द्रमा ही राहु (मूलाधार पद्म स्थित सूर्य) को ग्रस लेता है जिससे अमृत का पान सम्भव होता है।[4] नाथ गुरु का स्पष्ट आदेश है कि—

> इली सोधि धरि प्यागुली पूरी, सुषमनी चढ़ु असमानं।
> मछिन्द्र प्रसादै जती गोरष बोल्या, निरंजन सिधि नैं थानं ॥ पद ५।१६

---

[1] उद्घाटयेत् कपाटं तु तथा कुंचिकया हठात्।
कुण्डिलन्या ततो योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत् ॥ —गोरक्षशतक १।५९

[2] नाथ-सम्प्रदाय—पृष्ठ १२७।

[3] वही—पृष्ठ १३०।

[4] गोरखबानी—सबदी ६३-२१७।

कारण होता है। जब इस प्रकार स्थूल शब्द के द्वारा सूक्ष्म शब्द से परिचय हो जाता है तब स्थूल शब्द सूक्ष्म मूल शब्द में समा जाता है।[1] अनाहत-नाद के श्रवण पर बल देते हुए गोरखबानी मे कहा गया है कि—

ऊभां बैठा सूता लीजे। कबहूं चित्त भंग न कीजे।
अनहद सबर गगन मे गाजे। प्यंड पड़े तौ सतगुर लाजे॥[2]

अर्थात् गगन में अनाहद नाद की गर्जना हो रही है। खड़े, बैठे, सोते, हर घड़ी उसे सुनना चाहिये—कभी चित्त भङ्ग न करना चाहिये। निद्रा के वश असावधान अथवा अचेत होकर मृत्यु की ओर नही जाना चाहिये। यदि शरीर पात हुआ तो गुरु के लिए लज्जा की बात होगी। इसी प्रकार—

नाद नाद सब कोइ कहै। नादहि ले को बिरला रहै।
नाद बिन्द है फीकी सिला। जिहि साध्या ते सिधे मिला॥[3]

नीचे जाती हुई वायु को ऊपर लेकर अर्थात् ब्रह्माण्ड में ले जाकर द्वादशांगुल पवन का आयाम कर उन्मनावस्था में रहे। जब पवन सुषुम्ना मार्ग में गरजती हुई प्रवेश करती है, तब रात दिन वायु से ध्वनि निकलती है और अनाहत नाद सुनाई देता है।—(आत्म बोध) पृष्ठ १७५

मुख से नाद-नाद की रट लगाने वाले तो बहुतेरे हैं किन्तु नाद में लीन कोई विरला ही रहता है। सामान्यतया नाद-बिन्दु शुष्क शिला के समान है किन्तु जिसने इन्हे साध लिया वह सिद्धावस्था में पूर्णत. लीन हो जाता है। अनाहत प्राप्ति के लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं—

तब जानिबा अनाहद का बन्ध, ना पड़ै त्रिभुवन नहीं पड़े कन्ध।
रक्त की रेत अग थे न छूटे, जोगी कहता हीरा न फूटे॥[4]

जब त्रैलोक्य मे योगी के लिए कोई बधा न हो और उसका शरीर-पात न हो। शुक्र शरीर से स्खलित न हो तथा साक्षात् ब्रह्म का अनुभव हो जाय तभी समझना चाहिये कि अनाहत नाद प्राप्त हो गया। आभ्यन्तरिक अनाहत नाद के निरन्तर बजने पर श्रृगानिदादि बाह्य उपकरणो की अपेक्षा नही रह जाती।

नाद हमारै बावै कवन, नाद बजाया तूटै पवन।
अनहद सबद बजाता रहै, सिध संकेत श्री गोरष कहै॥ गोरखबानी॥१०६॥

---

[1] गोरखबानी—सबदी २१।

[2] वही—१७७।

[3] वही—१८१।

[4] वही—८५।

योग की प्राथमिक स्थिति—एक स्थल में उन्होने कहा है कि हे बैरागी ! पवन को उलटकर (प्राणायाम के द्वारा) शरीर के अन्तर्गत छः चक्रो को (कुण्डलिनी से) बेधकर अपनी आत्मा मे शून्य (ब्रह्म-रन्ध्र) के प्रति प्रेम जगा और उस ब्रह्म की खोज कर जो आवागमन एव जन्म-मरण से अतीत है। मेरे मन ! तू उलटकर अपने आप मे समा जा। गुरु की कृपा से तुझे दूसरी ही बुद्धि मिल गई है अन्यथा तू अभी तक बेगाना ही था।[2] बटुवा तो एक (शरीर) है जिसमें बहत्तर (नाड़ियो की) आधारियां हैं और जिसका एक ही (ब्रह्म-रन्ध्र) द्वार (मुँह) है। ऐसे बटुवे के साथ जो नौ-खण्ड की पृथ्वी माँग लेता है, वही सारे संसार मे सच्चा योगी है और ऐसा योगी नवोनिधि प्राप्त करता है जो मूलाधार चक्रस्थित ब्रह्म को सहस्त्रार मे ले जाता है।[3] इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के सगम स्थल को 'त्रिकुटी' कहा जाता है। कुण्डलिनी के लय हो जाने को सूर्य-चन्द्र का संयोग होना बतलाया जाता है। इसी आधार पर कबीर ने कहा है कि प्राणायाम के द्वारा पवन को उलटकर षट्-चक्रो को बेधते हुए सुषुम्ना को भर दिया। इससे सूर्य-चन्द्र का सयोग हो गया और ब्रह्माग्नि

---

[1] कल्याण योगाङ्क (कबीर का योग) श्री क्षितिमोहन सेन—पृष्ठ २६६।
[2] सन्त कबीर—रागु गउड़ी ४७।
[3] वही—रागु आसा ७।

प्रज्वलित हो उठी तथा उसमें समस्त कामनाएं, वासनाएं और अहंकार जल कर भस्म हो गये।[1] अन्यत्र उन्होने विशुद्ध हठयोगी क्रिया-साधना को अपनाने की शिक्षा देते हुए कहा है कि जब मैं उन्मन मुद्रा में रहकर विशुद्ध हुआ तब पवन (प्राणायाम) पर अधिकार पा लिया तथा जन्म-मरण-जरा से परे हो गया। जब मैंने शक्ति के सहारे (ऊपरी प्रवृतियो को) उलट लिया (अन्तर्मुखी कर लिया) तब गगन (ब्रह्म-रन्ध्र) मे प्रवेश पा सका। जब मैंने कुण्डलिनी (सर्प) से (षट्) चक्र वेध लिये तब मैं एकाकी स्वामी (ब्रह्म) से भेंट कर सका। मोहासक्ति से रहित हो जाने पर मेरे (सहस्त्रदल स्थित) चन्द्र ने (मूलाधार स्थित) सूर्य का ग्रास कर लिया। कुम्भक की भरपूर साधना करने पर शून्य में अनाहत की वीणा बज सकी।[2] इस प्रकार योग की इस प्रथम स्थिति मे नाथपन्थी प्राणायाम कुण्डलिनी-उद्दीपन, पट्चक्र भेदन, तथा अनहद-नाद के श्रवण की उन्होने पर्याप्त चर्चा की है। वे स्पष्ट कहते है कि पवन-साधन से मेरे मन में सुख का बानक बन सका है और मैं इसे योग-प्राप्ति के फलस्वरूप ही समझता हूँ। गुरु ने मुझे योग का सूक्ष्म मार्ग दिखलाया जिसमे इन्द्रिय रूपी चञ्चल मृग आकर चोरी से चर जाया करते हैं। मैंने अपने (शरीर के) दरवाजे बन्द कर लिये और (उन मृगो को स्थिर करने के लिये) अनाहत बाजे बजाये। कुम्भ के कमल (सहस्त्रदल) मे जो जल भरा हुआ था, उसे नष्ट कर मैंने चैतन्य और ऊँचा किया तभी मुझे (मेरे मन को) सन्तोष हुआ।[3]

प्रज्वलित हो उठी तथा उसमें समस्त कामनाएं, वासनाएं और अहंकार जल कर भस्म हो गये।[1] अन्यत्र उन्होंने विशुद्ध हठयोगी क्रिया-साधना को अपनाने की शिक्षा देते हुए कहा है कि जब मैं उन्मन मुद्रा में रहकर विशुद्ध हुआ तब पवन (प्राणायाम) पर अधिकार पा लिया तथा जन्म-मरण-जरा से परे हो गया। जब मैंने शक्ति के सहारे (ऊपरी प्रवृतियो को) उलट लिया (अन्तर्मुखी कर लिया) तब गगन (ब्रह्म-रन्ध्र) मे प्रवेश पा सका। जब मैंने कुण्डलिनी (सर्प) से (षट्) चक्र वेध लिये तब मैं एकाकी स्वामी (ब्रह्म) से भेट कर सका। मोहासक्ति से रहित हो जाने पर मेरे (सहस्त्रदल स्थित) चन्द्र ने (मूलाधार स्थित) सूर्य का ग्रास कर लिया। कुम्भक की भरपूर साधना करने पर शून्य में अनाहत की वीणा बज सकी।[2] इस प्रकार योग की इस प्रथम स्थिति मे नाथपन्थी प्राणायाम कुण्डलिनी-उद्दीपन, षट्चक्र भेदन, तथा अनहद-नाद के श्रवण की उन्होने पर्याप्त चर्चा की है। वे स्पष्ट कहते है कि पवन-साधन से मेरे मन में सुख का बानक बन सका है और मैं इसे योग-प्राप्ति के फलस्वरूप ही समझता हूँ। गुरु ने मुझे योग का सूक्ष्म मार्ग दिखलाया जिसमे इन्द्रिय रूपी चञ्चल मृग आकर चोरी से चर जाया करते हैं। मैंने अपने (शरीर के) दरवाजे बन्द कर लिये और (उन मृगो को स्थिर करने के लिये) अनाहत बाजे बजाये। कुम्भ के कमल (सहस्त्रदल) मे जो जल भरा हुआ था, उसे नष्ट कर मैंने चैतन्य और ऊँचा किया तभी मुझे (मेरे मन को) सन्तोष हुआ।[3]

द्वितीय स्थिति—द्वितीय-स्थिति मे पहुँच जाने पर उनके अस्पष्ट जटिल वर्णनो मे सरलता आ जाती है। शुष्कता के स्थान पर सरसता का सञ्चार होने लगता है, एक अनोखी लालसा से उनकी आत्मा ब्रह्म से साक्षात्कार करने के लिये तडप उठती है। फिर भी वे नाथपन्थी विधानो से पूर्ण मुक्ति नही पा सके—

अष्ट कँवल दल भींतरा, तहाँ श्री रंग केलि कराइ रे।
सतगुर मिलै तो पाइये, नहीं तौ जन्म अक्यारथ जाइ रे॥
कदली कुसुम दल भींतरा, तहाँ दस आगुल का बीच रे।
तहाँ दुवादस खोजि ले, जनम होत नही मीच रे॥
बंक नालि के अंतरै, पछिम दिसा की बाट रे।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे॥

[1] कबीर ग्रन्थावली—पद ७।
[2] सन्त कबीर—रागु रामकली १०।
[3] वही—रागु सोरठि १०।

गगन गरजि मघ जोइये, तहाँ दीसै तार अनन्त रे।
बिजुरी चमकि घन बरषिहै, तहाँ भीजत है सब सन्त रे॥[1]

रूपी कन्था को सीता है, ऐसी कन्था को वह युग-युग तक पहनाता है, वह कभी भी नही फटती। उन्होने स्पष्ट कहा है—

ज्ञान गुरु की गूदड़ी, सबद गुरू का भेष।
अतीत हमारी आतमा, दादू पंथ अलेष ॥[1]

दादू की योग-साधना का पर्यवसान जिस तीव्रगामी प्रेम-प्रवाह मे होता है, वह द्रष्टव्य है—

परम तेज परगट भया, तहं मन रह्या समाइ।
दादू खेलै पीव सो, नहि आवै नहि जाइ॥
नैनहु आगे देखिये, आतम अन्तर सोइ।
तेज पुंज सब भरि रह्या, झिलमिलि झिलमिलि होइ॥
तेज पुंज की सुन्दरी, तेज पुंज का कन्त॥
तेज पुज की सेज परि, दादू बन्या बसन्त॥[2]

सन्त रैदास—इन तीन प्रमुख सन्त कवियो के अतिरिक्त अन्य सन्तो की वानियो मे योग-साधना की झलक पाई जाती है। सन्त रैदास का यह पद योग-भावना का एक सर्वांग चित्र प्रस्तुत करता है—

ऐसा ध्यान धरो वरो वनवारी, मन पवन दै सुखमन नारी।
सो जप जपहूँ जो वहुरि न जपना, सो तप तपौं जो बहुरि न तपना॥
उलटी गग जमुन मे लावौं, बिनही जल मंजन ह्वै पावौं।
पिण्ड परै जिव जिस घर जाता, सबद अतीत अनाहद राता॥
सुन्न मण्डल मे मेरा वासा, ता ते जिव में रहौं उदासा।
कह रैदास निरंजन ध्यावौं, जिस घर जांव सो बहुरि न आवौं॥[3]

सुन्दरदास का भक्ति-योग—सन्त सुन्दरदास ने भक्ति-योग की चर्चा करते हुए कहा है कि सर्वप्रथम दृढ वैराग्य भाव को ग्रहण कर एवं विश्वास की भावना लेकर समस्त वस्तुओ का त्याग कर देना चाहिये। जितेन्द्रिय होकर उदासीन रहना चाहिये, चाहे घर मे रहो या वन मे। अन्य देव की सेवा न करके एक मात्र 'निरञ्जन' की आराधना करनी चाहिये। मानसिक-पूजा ही की सारी सामग्री तैयार करनी चाहिये तथा सारे सासारिक बन्धनो का बहिष्कार करना चाहिये। अत्यन्त अनुपम शून्य का सुन्दर मन्दिर है जिसमे ज्योति स्वरूप मूर्ति विराज रही है। सहज सुखासन मे स्वामी को बैठाकर दास्य-भाव से उनकी सेवा

---

[1] दादूदयाल की वानी—भेष को अंग, ४६-७।

[2] वही—परचा को अग ६४, ६६, १०६।

[3] रैदास जी की बानी—५६।

उलटी साधना—नीचे की ओर जाती हुई श्वास की स्वाभाविक धारा को उलटकर ऊपर की ओर ले जाने को नाथयोगी 'उलटी साधना' कहते हैं। इस साधना मे नाद को पलटकर सुरति को निरति में लीन करना, अथवा सूर्य को उलटकर चन्द्र मे मिलाना पड़ता है। गोरखनाथ के साक्ष्य पर—

उलटंत नादं पलटंत ब्यंद, बाई कै घरि चीन्हसि ज्यंद।
सुंनि मण्डल तहं नीझर झरिया, चन्द सुरजि ले उनमनि धरिया॥
उलटन्त पवनं पलटन्त वाणीं, अपीव पीवत जे ब्रह्मग्यानीं।[1]

अर्थात् चन्द्र और सूर्य के योग से जब उन्मनावस्था आती है तब ब्रह्मरन्ध्र—शून्य मण्डल—में अमृत का निर्झर झरने लगता है। नाद उलट जाता है। नाद सूक्ष्म शब्द-तत्व का क्रियमाण स्वरूप है जो क्रमशः स्थूल रूप में परिणत होता हुआ सृष्टि का कारण होता है। उसका सृष्टि निर्मायक स्थूल स्वरूप अपने मूल-स्रोत की ओर मुड जाता है और नीचे उतरता हुआ विन्दु ऊर्ध्वगामी हो जाता है तथा वायु में ही अमर-तत्व पहचाना जाता है। जो उन्मनि समाधि लगाकर पवन को उलटते और सुपुम्ना के मार्ग मे पलटकर लगा देते है और अमृत का पान करते हैं, वही ब्रह्मज्ञानी है। सन्तो की उलटी साधना का स्वरूप बिलकुल इसी प्रकार का है। कबीर के कथनानुसार हमारे हृदय-सरोवर मे उस 'अविनासी' का निवास है। काया में ही कोटि तीर्थ, काशी, कमलापति सभी कुछ वर्तमान है, अतः उलटी साधना के द्वारा उस अविनाशी से मिला जा सकता है—

उलटि पवन षट चक्र निवासी, तीरथ राज गंग तट वासी।
गगन मण्डल रवि ससि दोउ तारा, उलटी कूची लागि किवारा।
कहैं कबीर भई उजियारी, पंच मारि एक रह्यौ निनारी॥[2]

यह साधना वस्तुत तलवार की धार पर चलने के समान कठिन है। बिना उलटी चाल के अर्थात् प्राण और मन की स्वाभाविक बहिर्मुख गति को उलटकर अन्तर्मुख किये बिना उस परब्रह्म से मिलन असम्भव है—

[1] गोरखबानी, सबदी ५५ ६०।
[2] कबीर ग्रन्थावली, पद १७१।

कहै कबीर कठिन यह करणीं, जैसी षंडे धारा।
उलटीं चाल मिलै परब्रह्म कौं, सो सतगुरु हमारा॥[1]

इसी साधना के बल पर मतवाला मन राम-रस के पान मे समर्थ होता है—

मन मतवाला पीवै राम रस, दूजा कछू न सुहाई।
उलटी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई॥[2]

अन्यत्र भी उन्होने गंगा (पिंगला) को उलटकर यमुना (इड़ा) से मिलाने एव बिना सगम-जल के स्वानुभूति मे स्नान करने को कहा है—

उलटी गंगा जमुन मिलावत, बिनु जल संगम मन महिं न्हावउ।[3]

रैदास—ऐसा ध्यान धरौं बनवारी, मन पवन दै सुखमन नारी।
उलटी गंग जमुन में लावो, बिनही जल मंजन ह्वै पावौं॥[4]

गुरु नानक—उलटिओ कमल ब्रह्म बीचारि, अमृत धार गगनि दस दुआरि।
त्रिभवण वेधिआ आपि मुरारि॥[5]

× × ×

उलटा शब्दु गगनि घरु छाया। नानक शब्दे शब्द समाया॥[6]

दादूदयाल—दादू उलटि अपूठा आप मे, अंतरि सोधि सुजाण।
सो ढिग तेरा बावरे, तजि बाहिर की बाणि॥
सहज योग सुख में रहै, दादू निर्गुण जाणि।
गंगा उलटि फेरि करि, जमुना माहै आणि॥[7]

सक्षेप में यही सन्तो की 'उलटी साधना' का स्वरूप है जिसका मूल प्रयोजन है—समस्त सृष्टि की जन्मदात्री शक्ति को उलटकर नाद मे समाहित करना, सूर्य को उलटकर चन्द्र में मिलाना और दशम द्वार से स्रवित होने वाली अमृत की रसवन्ती का पान कर अद्वैततत्व का साक्षात्कार करना।

21:28
2015.308455.Ath-Bada

सम कबीर है, मेरी नजर न आवे और॥

सतगुरुवचन॥ सतका शब्द सुनभाई॥ फकीरी अदल बादशाई॥ सादू बंदगी दीदार॥ सजे उतरो साहेर पार॥ सोहंग शब्दसे कर प्रीत॥ अखंड अनु भगडकूं जीत॥ तनमें खबर कर भाई॥ जामें नाम रोशनाई॥ सुर्ती नगर वस्ती खूब॥ बेहद उलट चढ महबूब॥ सुर्ती नगर मे कर सैल॥ जामे आत्माको महल॥ अंबरी सींद मूलमे लाव॥ जा पे रखो बांयां पांव॥ दहिना मध्यमे धरना॥ आ

सन अंबर यौं करना॥ द्वादस पवन भर पीजे॥ ससी घर उलट चढलीजे॥ तन मन वार कर लीजे॥ तन मन सहित राखो स्वास॥ इस विध करो बेहद बास॥ दोनो नयनके कर बान॥ भमरा उलट कस कमान॥ पर्वत छिपा दर्या आन॥ करले त्रिकुटी अस्नान॥ सहजे परस पद निर्बान॥ तेरा मिटे आवा जान॥ जा

ग ले कुमति जारी॥उनमनी ध्यान गही थसी सुंनमे॥चित चैतन्य से लगीतारी॥ कहे कबीर भवसिंधका तरना ॥ ब्रह्म कं गहेसो ब्रह्मचारी ॥ संपूर्ण ॥

रेक्ता।

नाम निर्बानकर ॥ जीव खुबान कर मान तूमानरे वचन मेरा ॥ सुषमना घा टपर संत आसन करै॥करम और भरम सब मिटै तेरा ॥ सुंन्न दर्यावमे हंस मोती चुगे ॥ चुगत चुगत नर करत किरला ॥ कहे कबीर तुम सांच कर मानियो॥ गुरु और शिष्यका वही मेला ॥ संपूर्ण ॥

रेक्ता।

धन धन कबीरका ग्यान यारो ॥ पु स्तक पुरान का पीव है जी ॥ जैसे फू लसे अंतर काढलीया ॥ दधि दूधके बी

चमें घीव है जी ॥ तारोमें बडा चंद सो भे॥ देवतावोंमें बडा शिव है जी ॥ कुरा नं पुरान से पिंड रचा ॥ कबीरके कथ नीमें जीव है जी ॥ संपूर्ण ॥

शब्द॥नगरमें रमता जोगी आया॥
टेक॥ पांच पुत्र पचीसों नाती॥ ए
क नारी उपजाया॥ गुन अवगुन सो
न्यारा खेले॥आपका रूप छिपाया॥१॥
नहीं कछु रूप नहीं कछु रेखा॥ दमकूं
दूर चढाया॥ इंगला पिंगला माहे ताल
बजावे॥ तो आपको रूप दिखाया॥
॥२॥ कोन घर सोवे कोन घर जागे॥

कोन घर जाय समाया॥कोन पुरुषको
ध्यान धरत है॥ कैसे मांहि शब्द सुना
या॥३॥सूरज घर सोवे चंद्र घर जागे॥
सुन्नमें जाय समाया॥सतपुरुषोंका ध्या
न धरत है॥ तो सोहंग मांहि शब्द सुना
या॥४॥जागेगा सो परम पद पावे॥सोते
कूं जम खाया॥कहै कबीर सुनो भाई सा
धु॥ अगम संदेसा लाया॥५॥ संपूर्ण॥

शब्द॥संतो सतगुरु अलख लखा
या॥ जासो अपन आप दर्साया॥
॥ टेक॥ बीज मध्ये ज्यों वृक्ष दिखा
या॥वृच्छ मध्येज्यों छाया॥ परमातम

शब्द॥ऐसा जानताहै कोई ख्याल॥
॥टेक॥ धर्ती बेद पताले जावे॥ सेस ना
गकूं बसकर लावे ॥ शेषनाग वासुका

सारा ॥ बासु नाग सत्को सारा ॥
कमट पीटपर ख्याल ॥ पूरबको सोध
पच्छम कोलावे॥ अंधाधुंदको भेद मि
टावे॥ शिला द्वार दच्छन दे राखे॥ उत्त
र जायसो जीवन चाखे ॥ चारों दिसा
को हाल ॥ २ ॥ नौका सोध सरस्वति ला
वे॥ एकबार सुमेरु चढावे ॥ मेरुदंडपर
आसन मारे ॥ सन्मुख धागा सुर्त गहा
वे॥ गगन गुफाके हाल॥ ३ ॥
गगन गुफामें अति उजियारा ॥ अजपा
ज ॥ टे बिन माला॥घन्ट शंख सहना
या ॥ बृच्छ मदिस रा [illegible] गाजे॥
मे आतम जैर।
॥ १ ॥ ज्यों न
न मध्ये ॐकरा॥

होरी।

गगन मंडल खेलु होरी ॥ टेक ॥ जग मग जोत जगोरी ॥अब मैं खेलुग०॥ मूल कँवल कूं बंद लगाय करि ॥ षट चक्र कूं फोरी हो ॥ भँवर गुफामें नारी सुषमना ॥ सुंदर नवल किसोरी ॥ १ ॥ अर्ध उर्ध बिच ध्यान लगाय करि ॥ मन पौना गहोरी ॥ उन मनि ध्यान सवार निरंतरि॥सतगुरु पद पकरोरी॥२॥ बाजत ताल मृदंग बाँसरी ॥ अनहदकी

घन घोरी ॥ कहे कबीर सतगुरु प्रतापे ॥ रंग सुरंग रँगोरी ॥ ३ ॥

शब्द ॥ हमकूं शब्द मिले ब्रम्ह ग्यानी॥टेक॥ कागासे जब हंस कियो गुरु॥ दीनो नाम निशानी॥१॥ सुख सागर हंसा जहां बैठे ॥ मुक्त भरे जहां पानी ॥ ॥२॥ कुमत जारके अंजनकीनो ॥ सूर्त सुमत गहि आनी ॥ ३ ॥ सील संतोष पहिरे दो कंकन॥बहीं रहो मस्त दिवानी॥ ॥ ४ ॥ खोल किंवाड गई मेहे कूं॥ देख रूप ललचानी ॥५॥ तुम अस पीव मिले

शब्द ॥ देखिये गुरुगम मस्ताना ॥ टेक ॥ इंगला पिंगला चँवर दुरावे ॥ त्रिकुटी संगम तक्त निशाना ॥ १ ॥ पछम दिसाकी खुली किंवारी ॥ गगन महल बिचकर असनाना ॥ २ ॥ तुर्या चढ गर्जन लागी जब ॥ देख स्वरूप सुंदर रिझाना ॥ ३ ॥ जेत मरे सोई पैछानी ॥ गयब नगर सहिजै चल जाना ॥ ४ ॥ रूप सुखमा सुख मिले हे ॥ अस कहै पलटू बैलाना ॥ ५ ॥

शब्द ॥ सोहि जोगी जाके मनहीमे माला ॥ टेक ॥ नां कर चले न जिभ्या डोले ॥ नां कछु होत तन का कसाला ॥ १ ॥ नाभी नासिका एकमिलावे ॥ गुप्त चाल खुले वहताला ॥ २ ॥ जायके बैठे गगन

गुफामे ॥ त्याग दिये सब या भ्रमजाला ॥ ॥ ३ ॥ दश बाजा बाजे गगनमें ॥ दास अजब सुनि होत निहाला ॥ ४ ॥

प्रथमे अकास ॥ ताते वायू ॥ ताते तेज ॥ ताते आप ॥ ताते पृथ्वी ॥ ताते वायू॥ताते तेज॥ताते आप॥ताते पृथ्वी॥

अब तत्वकी पांच मुद्रा ॥ उनके पांच अस्थान समजाऊं ॥ प्रथम प्रिथवी तत्व ॥ भुचरी मुद्रा ॥ उकार मात्रुका ॥

त्रिकुटी अस्तान ॥ १ ॥ दूजी आपकी ॥ चाचरी मुद्रा ॥ निरँजन नयन अस्थाना ॥ २ ॥तीजी तेजकी॥ अगोचरी मुद्रा ॥ सोहँग जाप ॥ नासा अस्तान ॥ ३ ॥ चौथी वायुकी ॥ खेचरी मुद्रा ॥ ररंकार जाप ॥ दसवे द्वार अस्थान ॥ ४ ॥ पांचमी मुद्रा ॥ अकासकी ॥ उनमुनी ॥ शक्ती आतम जाप ॥५॥ यह पांच मुद्रा॥ और पांच अस्थान ॥ और पांच जाप हे ॥ कहां मे न्यारे न्यारे ॥ कोई जाने संत सुजान ॥ इसमे कोही भूल चूक ॥ संत जन लेवो सुधार ॥

पउड़ी ६

(साध लक्खण)

राग नाद संबाद गिआनु चेताइआ ।
नउ दरवाजे साधि साधु सदाइआ ।
वीह इकीह उलंघि निज घरि आइआ ।
पूरक कुंभक रेचक त्राटक धाइआ ।
निउली करम भुयंगु आसण लाइआ ।
इड़ा पिंगुला झाग सुखमनि छाइआ ।
खेचर भूचर चाचर साधि सधाइआ ।
साध अगोचर खेलु उनमनि आइआ ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(जोग)

लै सतु अंगुल लै मनु पवणु मिलाइआ ।
सोहं सहजि सुभाइ अलख लखाइआ ।

पउड़ी ६

(साधु-लक्षण)

राग, नाद, संवाद और ज्ञान आदि व्यक्ति को चैतन्य बनाते हैं । शरीर के नव-द्वारों को साध कर कोई व्यक्ति साधु कहलाता है । वह संसार के प्रपंचों को लाँघकर निज स्वरूप में स्थित हो जाता है । इससे पूर्व वह हठयोग के रेचक-पूरक, कुंभक, त्राटक, न्यौली कर्म, भुजंग-आसन आदि की ओर दौड़ा फिरता था । वह इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना के माध्यम से साधना करता था । वह खेचरी,भूचर, चाचरी मुद्राओं की साधना करता था । परन्तु साधुओं के खेल तो अगोचर होते हैं। वे उन्हीं के माध्यम से सहज उन्मनि-अवस्था में स्थित हो जाते हैं ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(योग)

दस अँगुली बाहर जानेवाले श्वास के साथ मन मिलाया जाता है तथा साधना की जाती है । परन्तु अलक्ष्य सोऽहं को सहज रूप में ही देखा जाता है ।

निझरि धारि चुआइ अपिउ पीआइआ ।
अनहद धुनि लिव लाइ नाद वजाइआ ।
अजपा जापु जपाइ सुंन समाइआ ।
सुंनि समाधि समाइ आपु गवाइआ ।
गुरमुखि पिरमु चखाइ निज घरु छाइआ ।
गुरसिखि संधि मिलाइ पूरा पाइआ ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(गुरू अते सिक्ख)

जोती जोति जगाइ दीवा बालिआ ।
चंदन वासु निवासु वणासपति फालिआ ।
सललै सललि संजोगु त्रिबेणी चालिआ ।
पवणै पवणु समाइ अनहदु भालिआ ।
हीरै हीरा बेधि परोइ दिखालिआ ।
पथरु पारसु होइ पारसु पालिआ ।

इसी सहज अवस्था में सतत् झरनेवाले अमृत की धारा का पान किया जाता है । सुरति के द्वारा लीन होकर अनहद नाद को सुना बजाया जाता है । अजपा जाप के माध्यम से शून्य (प्रभु) में समाया जाता है और उस शून्य समाधि में स्थित हो अहम्भाव को गँवा दिया जाता है । गुरुमुख योग के उपर्युक्त साधनों को छोड़ प्रेम-प्याला पीकर निज स्वरूप में स्थित हो जाते हैं । सिक्ख गुरु से मिलकर पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करता है ।। ७ ।।

Ads by Google
Send feedback Why this ad?

हठयोग की साधना में साधक को, चित्त को विशुद्ध करने के लिए अनुष्ठान करना पड़ता है। उसके आठ सोपान हैं -- (१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान और (८) समाधि।

'हठ योगी प्राण वायु का निरोध करके कुंडलिनी को उद्बुद्ध करता है। उद्बुद्ध कुंडलिनी क्रमशः षट्चक्रों को भेद करती हुई सातवें अंतिम चक्र सहस्रार में शिव से मिलती है। त्रिकोण चक्र के ऊपर चार दलों के आकार का एक चक्र है जिसे मूलाधार चक्र कहते हैं, उसके नाभि के पास स्वाधिष्ठान चक्र है, जिसका आकार छह दलों के कमल का है, इस चक्र के ऊपर मणिपूरक है और उसके भी ऊपर हृदय के पास अनाहत चक्र। ये दोनों क्रमशः दस और बारह दलों के पद्मों के आकार के हैं। इसके भी ऊपर कंठ के पास विशुद्धाख्य चक्र है, जिसका आकार सोलह दल के पद्म समान है और भी ऊपर जाकर भ्रूमध्य में आज्ञा नामक चक्र है, जिसके सिर्फ दो ही दल हैं। ये ही षट् चक्र हैं।'[1]

संत रोहल ने भी अपने काव्य में योग-साधना के अंतर्गत षट्-चक्र एवं मूलचक्र की ओर संकेत किया है ---

'षट्चक्र छट देख री इक-इक कर ध्यान।'[2]

* * *

'मूल चक्र के अंतरे चौथों दस-द्वार।'[3]

योग साधना में प्राणायाम का महत्त्व है। साधक श्वास को भीतर भरता है, रोकता है और फिर बाहर निकालता है, जिसे पूरक, कुंभक और रेचक कहा जाता है। जब साधक कुंभक की क्रिया करता है ---

'बैंक नाड़ उलट गगन चढ़े पलटे पवन बयार।'[4]

जब शिष्य साहनी के पास अपनी शंकाओं के समाधान के लिए जाता है, तब साहनी उन्हें योग की युक्तियां बताते हुए कहता है ---

---

१- नाथ संप्रदाय, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १२७-१२९-३०
२- रोहल सूफी भाषी-१(ज्ञान मन प्रबोध) संपादक, गीतासिंह [illegible]
३- वही [illegible]

गंगा जमना सरसुती, बहे त्रिबेनी तीर ।
जा असनान कियो तहां, उज्जल भयो शरीर ।। [1]

संत रोल्ल गंगा इडा, जमना पिंगला एवं सरसुती सुषुम्ना नाड़ियों के द्वारा प्राणवायु को त्रिकुटि की ओर ले जाने का आदेश देते हैं । त्रिबेनी त्रिकुटी का प्रतीक है । साधक प्राणों को दसवें द्वार तक चढ़ाकर त्रिकुटी का ध्यान करता हुआ आत्मानंद में स्थित रहता है, फिर तो उसे अनहद नाद सुनाई पड़ता है ।

'बद्धजीव श्वास-प्रश्वास के अधीन होकर (इन श्वासों की संख्या दिन-रात के चौबीस घंटों में २१६०० होती है) निरंतर इड़ा और पिंगला के मार्ग में चल रहा है । सुषुम्ना का पथ प्रायः बंद है । यही कारण है कि बद्ध जीव के इंद्रिय और मन की वृत्ति बहिर्मुखी होती है । जो अखंड नाद जगत् के अन्तस्तल में और निखिल ब्रह्मांड में निरंतर ध्वनित हो रहा है, उसे वह नहीं सुन पाता । परंतु जब क्रिया विशेष से सुषुम्ना पथ उन्मुक्त हो जाता है और कुंडलिनी शक्ति जाग उठती है, तो प्राण स्थिर होकर शून्य पथ से निरंतर उस अनाहत ध्वनि या अनहद नाद को सुनने लगता है ।' [2] संत रोल्ल भी इसी अनाहत ध्वनि का अनुभव करते हुए कहते हैं ---

इसी कंवल के पेट मांहि देखिया सुरत सनाथ ।
बाजा अनहद बाजिया अखंड धुनि लिंव लाय ।। [3]

'ब्रह्मरंध्र के सहस्रार पद्म के मूल में जो योनि नामक त्रिकोणाकार अग्नि का केंद्र है, वही चंद्रमा का स्थान है । इससे सदा अमृत झरता रहता है ।' [4] संत रोल्ल भी इसी अमृत रस का वर्णन करते हुए कहते हैं —

इक धुंन है सरसती सूं चलिया त्रिकुटी की तीर ।
भंवर गुफा के घाट में जहां चुवे अमृत नीर ।। [5]

१- रोल्ल सूफी भाडो-१ (शास्त्र मन प्रबोध) सं. गीतासिंह परशाराम, पृष्ठ ६
२- कबीर, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ४६
३- रोल्ल सूफी भाडो-१ (शास्त्र मन-प्रबोध) सं. गीतासिंह परशाराम, पृष्ठ ६
४- कबीर , डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ४८
५- रोल्ल सूफी भाडो -१ (शास्त्र मन प्रबोध) सं. गीतासिंह परशाराम, पृष्ठ ६

यह 'स्वरूप' - अपने मूल रूप को प्राप्त होता है । मुराद ने कहा भी है :

' कहत मुराद सुनो भाई साधो, काटी जम की फांसी ।'[१]

' प्रेम विलासी वह पद पाया जन्म मरण दुख नसया ।'[२]

जम की फांसी कट जाने पर 'जन्म-मरण' मिट जाता है और 'प्रेम विलासी' पद प्राप्त हो जाता है । उसी को वे पद 'अविनाशी' कहते हैं । इस स्थिति में ब्रह्म की सनातन ज्योति प्रकाशित हो जाती है । मुराद के शब्दों में :

त्रिवेणी में तीर्थ समोई, ब्रह्म की जोति प्रकासी,
गगन मंडल पर सुन महल है आय मिलियो अविनासी ।[३]

साधना :

मुराद नाथपंथियों की अंत:साधना एवं सूफियों की प्रेम-साधना से प्रभावित थे । संतों की तरह वे इड़ा पिंगला की साधना भी करते थे और 'प्रेम का पियाला' पीकर जम की फांसी काटने का भी मंत्र देते थे ।

(क) अंत:साधना :

कवि मुराद के अनुसार साधक को बाह्याचारों की आवश्यकता नहीं । उसे अंत:साधना द्वारा त्रिवेणी में तीर्थ कर परमज्योति का प्रकाश देखना चाहिए । मुराद कहते हैं :

'त्रिवेणी में तीर्थ समोई, ब्रह्म की जोति प्रकासी ।
गगन मंडल पर सुन महल है आय मिलियो अविनासी ।।'[४]

१- मुराद जी कलाम, (हस्त लिखित)
२- वही वही
३- वही वही
४- वही वही

blinkit
Match essentials
delivered in 10 minutes

16:55

छन्द-विधान :

मुराद फकीर ने अपने सद्गुरु संत रविदास की भांति अपने हिन्दी-काव्य में पारंपरिक छन्द शास्त्र को ही अपनाया है । उन्होंने दोहे, सवैये, चौपाई, छप्पै (छप्पय) एवं कबीर की भांति कुछ `सबद` भी लिखे हैं । मुराद फकीर पहले थे, कवि बाद में । भक्ति-भावना में उन्होंने छन्द-विधान का समग्र विचार नहीं किया, इसलिए कहीं मात्राएं कम हो गयी हैं और कहीं अधिक ।

प्रतीक :

कवि मुराद के काव्य में प्रयुक्त प्रतीक अधिकतर सहजयोग साधना में प्रचलित प्रतीक है । उनका अर्थ भी वही है, जो संतों में स्वीकृत है ।

सुरसती ने हीरा विचारा भक्त भेद नहीं हासी ।[1]

यहां सुरसती सुषुम्ना नाड़ी का प्रतीक है ।

`त्रिवेणी में तीर्थ न्हाई, गुरु की प्रीति प्रकासी ।`[2]

यहां त्रिवेणी ब्रह्मरंध्र का प्रतीक है ।

`नाको अन्ये नाको परे ज्योति ज्योति समावे ।`[3]

यहां ज्योति का प्रथम प्रयोग आत्मा का प्रतीक है, एवं द्वितीय प्रयोग ब्रह्म का प्रतीक है ।

बिम्ब-विधान :

कवि मुराद के काव्य में कहीं कहीं बिंब योजना भी मिलती है ।

प्रगट ज्योति दसों दिशा दीसत भानु हीभानु ।[4]

कवि ने यहां `भानु` का बिंब खड़ा कर ब्रह्म के प्रकाशमय रूप का उल्लेख किया है, जो सर्वत्र विद्यमान है ।

१- मुराद जी कलामु (हस्त लिखित)

२- वही वही

३- वही वही

४- वही वही

५- मुराद का काव्य (हस्त लिखित)

blinkit
Match essentials
delivered in 10 minutes

गंगा यमुना घट के घाटी ।[1]

यहां गंगा एवं यमुना का संकेत इड़ा और पिंगला नाड़ियों की ओर है। इन दोनों नाड़ियों को रोक कर सुषुम्ना मार्ग से प्राण वायु को संचारित किया जाता है। मंत्र योग हठ योग की एक क्रिया है, जिसके द्वारा साधक आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है। कवि शास्त्री ने मंत्र योग पर विशेष बल दिया है। मंत्र योग में कहा गया है कि जीव के निःश्वास प्रश्वास में 'ह' और 'स' वर्ण उच्चरित होते हैं। 'ह' कार के साथ प्राण्वायु बाहर जाती है 'स' कार के साथ भीतर जाती है। इस प्रकार जीव सतत ही स्वतः इस मंत्र का जाप करता है। गुरु वाक्य जान लेने पर सुषुम्ना मार्ग में यही मंत्र उलटी दिशा में उच्चरित होकर 'सोऽहं' हो जाता है और इस प्रकार योगी वह (सः) के साथ में (अहम्) का अभेद अनुभव करने लगता है।[2] कवि शास्त्री ने भी ऐसा अनुभव किया है---

'घट घट सोऽहं किया प्रकाश।'[3]

जब साधक की सुरति शब्द के साथ मिलती है, तब वह आत्मानंद की अनुभूति करता है और अज्ञान की अवस्था नष्ट हो जाती है --

अब तो सुरति समानी गगन आकाश,
होमैं का वह झगड़ा नाश।[4]

१- रोशन सूफी भाग-१, पृष्ठ २६
२- नाथ संप्रदाय, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १२४-२६
३- रोशन सूफी भाग-१ पृष्ठ ३३
४- वही पृष्ठ ३३

blinkit
Match essentials
delivered in 10 minutes

गगन माहीं गम्भीर अनहद बाजे टंकारे,
झम झम होवे फकीर बाहर फेर आवो रे ।[१]

"अनहद की अनिर्वचनीय अनुभूति और सहज मैत्र के बाद के अलौकिक आस्वाद को विशुद्ध संतों की भाषा में ही अली ने प्रस्तुत किया है ।"[२]

शरीर में प्राण वायु का वहन करनेवाली ७२ हजार नाड़ियां हैं, परंतु प्रमुखता इड़ा, पिंगला, एवं सुषुम्ना नाड़ियों की है । इनमें से भी सुषुम्ना अति अधिक महत्वपूर्ण है, जिसके द्वारा जीव अमृत का आस्वादन करता है । इन नाड़ियों का उल्लेख करते हुए कवि गुलाम अली कहते हैं ---

"देखी है गंगा ने जमुना औहां हुं राह है रमना ।"[३]

गुलाम अली चित वृत्तियों के निरोध के लिए प्राणों को दसवें द्वार तक चढ़ाते हैं और आत्म-स्थिति में स्थित होकर आत्मानंद की अनुभूति करते हैं । इस यौगिक क्रिया का उल्लेख करते हुए कवि गुलाम अली कहते हैं ---

देखी है गंगा ने जमुना औहां हुं राह है रमना ।
गगन हुं पवन चढ़ाया कि दसवें द्वार नी ब्यावा ।
शाही ने राह समुझाया औहां हुं लिबास उठाया ।
आतम पद हुं पाया गुलाम अली गुर शरनी आया ।[४]

जब साधक की यौगिक क्रिया द्वारा आत्मानुभूति हो जाती है, तब जीव जन्म मरण के चक्कर से विमुक्त हो जाता है --

जोगी जोग पूर्ण भयो जब अनभव कियो बास,
जहां एक सुई की गम नहीं, आवागमन विनास ।[५]

गुलाम अली ने अंतःसाधना पर बल दिया है --

"ज्ञानी ज्ञान के माहीं पहान लिया इक्कं हुं ।"[६]

१- रौशन सूफी माळो-१, पृष्ठ ३६
२- अस्वीकृत उपलब्धियां, डॉ. प्रभात, पृष्ठ ५२
३- रौशन सूफी माळो-१, पृष्ठ ३४
४- वही पृष्ठ ३५
५- वही पृष्ठ ३५
६- वही पृष्ठ ३६

blinkit
Match essentials
delivered in 10 minutes

17:05

07_chapter 3

गुलाम अली अब आन गली मंहि आप छिप्यी कर आप राख्यी है।[१]

'प्रेम प्रकाश भयी जब ही तब मिट गयी सगल अंधेरी।'[२]

कवि गुलाम अली कहते हैं, जब अंतःकरण में प्रेम रूपी प्रकाश हुआ, तब अज्ञान रूपी अंधकार मिट गया।

'सतगुर यह समझा मुझे तुम पारिस हम लोह।'[३]

पारस और लोह का रूपक किया गया है।

प्रतीक :

कवि गुलाम अली प्रतीकों की ओर प्रवृत्त नहीं थे, परंतु सहज स्वभाव वश उनके काव्य में कुछ प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।

देखी है गंगा ते जमुना - दोहां सूं राह है रमना।[४]

उपर्युक्त काव्यपंक्ति में गंगा इड़ा और जमुना पिंगला नाड़ियों का प्रतीक है।

'गगन मूं पवन चढ़ाया कि दसमां द्वार भी ध्याया।'[५]

यहां मस्तिष्क के प्रतीक के रूप में गगन शब्द का प्रयोग हुआ है। योग-साधना में पवन अर्थात श्वासों द्वारा प्राण दसवें द्वार तक पहुंच जाते हैं। इसी को गुलाम अली ने उपर्युक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया है।

१- रीख़्ता सूफी गाथी-१, पृष्ठ ३४
२- वही पृष्ठ ३७
३- वही पृष्ठ ३४
४- वही पृष्ठ ३५
५- वही पृष्ठ ३५

blinkit
India's Last Minute App
Match essentials
delivered in 10 minutes

और वहां उस अमृत का पान करते ही कवि का परमात्मा से तादात्म्य हो गया ।

त्रिकुट लोक पाया घर पूरा,
जोहां निरंजन दीसै नूरा ।
उपर अमी रस बर्से नित गगना,
पी पी मस्त भया मन मगना ।[1]

योग स्वरोदय में हठ योग के दो भेद बताये गये हैं । प्रथम में आसन, प्राणायाम तथा धौति आदि षट् कर्म का विधान है । इनमें नाड़ियां शुद्ध होती हैं । शुद्ध नाड़ी में पूरित वायु मन को निश्चल करता है, और फिर परम आनंद की प्राप्ति होती है ।[2] कवि दरियासाहब भी हठ योग का प्रतिपादन करते हुए साधक से कहते हैं ---

हठ करी योग पहचान,
मूल बस्त दृढ़ आसन बान ।
धरके पवन चढ़ी अकास
जोहां मरिजन किया बास ।[3]

मेरुदंड जहां सीधे जाकर वायु और उपस्थ के मध्य भाग में लगता है, वहां एक स्वयंभू लिंग है, जो एक त्रिकोण चक्र में अवस्थित है । इसे अग्निचक्र कहते हैं । इसी त्रिकोण या अग्निचक्र में स्थित स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन वलयों में लपेटकर सर्पिणी की भांति कुंडलिनी अवस्थित है । यह कभी आठ वलयों में लपेटकर सोई हुई भी बतायी गयी है । यह ब्रह्मांड में व्याप्त महाकुंडलिनी नामी शक्ति का ही व्यष्टि में व्यक्त रूप है । यह शक्ति ही है, जो मूलाधार को रोध करके सोई हुई है । इसे जगाकर शिव से समरस कराना योगी का परम लक्ष्य है ।[4] कवि दरियासाहब भी साधक को यही संकेत देते हुए कहते हैं --

---

१- रोशन सुखी माही-१ पृष्ठ ३४
२- नाथ संप्रदाय, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ १२४
३- रोशन सुखी माही-१ पृष्ठ ३४
४- नाथ संप्रदाय, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ १२५

blinkit
Match essentials
delivered in 10 minutes

नहीं थे । वास्तव में दलपत एक ऐसे उदारचेता संत थे, जिन पर नाथों और संतों का ही नहीं, सगुण धारा प्रभाव भी दिखाई पड़ता है । पर मूलतः वे संत थे । उनकी साधना संतों की आंतरिक साधना थी ।

नाथ संप्रदाय की साधना पद्धति के अनुसार साधक समाधि लगाकर अंतर्मुखी होकर अपनी सुरति शब्द के साथ जोड़ देता है । भंवर गुफा का ज्ञान प्राप्त कर अंतःकरण में अनहद-राग श्रवण करता है । कवि दलपत सन्यासी के लक्षण बताते हुए कहते हैं ---

सो सन्यासी जो रहे निरास-सकल आशार कूं जाने नास ।
हरि हरि बोले सासूं सास, गगन मंडल में करे निवास ।
उलट अंतर आतम ध्यावे, बिना रसना गुन हर नित गावे ।
सुरति निरत ले शब्द मिलावे, भंवर गुफा की खोजनी पावे ।
अनहद राग गगन में रीझे हरि रस अमृत मनवा पीवे ।[1]

कबीर की भांति कवि दलपत भी राम की महिमा गाते हुए कहते हैं --

जो जन जपता राम कूं बिन रसना सास ग्रास,
दलपत कष्ट उनकी कटत, जिन में शीत बताय ।[2]

जो जीव अंतःकरण में राम की उपासना करता है, उसकी सारी चिंताएं व्यथाएं शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं ।

अंतःसाधना पर दलपतजी ने अधिक बल दिया है । दलपतराम दशरथ सुत सगुण राम का उल्लेख नहीं करते, उनका राम परब्रह्म है, जिसके स्मरण से जीव परम पद प्राप्त करता है --

---

१- दीक्षा दलपत वाणी-२ पृष्ठ २१

२- वही पृष्ठ ३१

17:31
hindwi.org/ebooks/sant-
संत रोहल की बानी

शरीरमें तीन परम शक्तियाँ मानी गई हैं जिन्हें परम चंचल होनेके कारण वशीभूत करना सहज नहीं पर किसी एकपर भी विजय प्राप्त करनेवाला अन्य दो शक्तियोंपर विजय प्राप्त कर लेता है। वे तीन शक्तियाँ हैं—(१) बिन्दु अर्थात् शुक्र, (१) वायु और (३) मन। बिन्दुको यदि ऊपर उठाया जा सके तो शेष दो शक्तियाँ स्थिर हो जाती हैं।

अमरोधशासनमें लिखा है कि मेरुदण्डके मूलमें सूर्य और चंद्रके बीच योनिमें स्वयंभूलिंग है जिसे पश्चिम लिंग कहते हैं और यही पुरुषोंके शुक्र और स्त्रियोंके रजःस्खलनका मार्ग है। काम, विषहर और निरंजनका यही स्थान है। वीर्य-स्खलनकी दो अवस्थाएँ होती हैं। इन दोनोंके पारिभाषिक नाम प्रलयकाल और विषकाल हैं। इन दो अवस्थाओंमें जो आनन्द होता है, वह घातक है। एकका अधिष्ठाता काम है और दूसरीका विषहर। तीसरी अवस्था नाना भाव-विनिर्मुक्त सहजानन्दकी अवस्था है। इसमें बिंदु अर्थात् शुक्र ऊर्ध्व-मुख होकर ऊपर उठता है और तब वह सहज समाधि प्राप्त होती है जिसमें मन और प्राण अचंचल हो जाते हैं।[1]

ब्रह्मचर्य और प्राणायामके द्वारा इस बिंदुको स्थिर और ऊर्ध्वमुख किया जा सकता है पर इसके लिये आवश्यक है कि नाडियोंको शुद्ध किया जाय। नाडीके शुद्ध होते ही बिंदु स्थिर होता है, सुषुम्नाका मार्ग साफ़ हो जाता है, प्राण और मन क्रमशः स्थिरताको प्राप्त होते हैं और प्रबुद्ध कुण्डलिनी-शक्ति सहस्रार चक्रमें स्थित शिवके साथ समरस हो जाती है और योगी चरम प्राप्तव्यको पा लेता है।

हठयोगी प्राणवायुका निरोध करके कुण्डलिनीको उद्बुद्ध करता है और वह मेरुदण्डके माध्यमसे सुषुम्ना नाडीके अंतर्गत स्थित ब्रह्म नाडीके माध्यमसे ऊपर उठती है। मेरुदण्ड और सुषुम्ना नाडी पर छह चक्र हैं। मेरुदण्डके नीचे चार दलका मूलाधार चक्र है। उसमें प्रकृति या कुण्डलिनी निवास करती है। उसके ऊपर छह दलका स्वाधिष्ठान चक्र है। फिर नाभिपर दस दलका मणिपूर चक्र है।

---

१. अमरौघशासन : पृष्ठ ७–८।

88
271

17:32
hindwi.org/ebooks/sant-
संत रोहल की बानी

यहांपर साधकको अनेक ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। यहांपर साधकको इस बातका ज्ञान प्राप्त होता है कि शिवकी एक शक्ति अनेक रूपोंमें प्रतिभासित होती है और साधकको वह ज्ञान-रूपी दर्पण ग्रहण करना चाहिए जिसमें वह अनेकमें एकको देख सके। आगे बढ़कर साधक कण्ठके पास विशुद्ध चक्रके पास पहुँचता है जिसमें अट्ठारह दल हैं। यह वाणीका स्थान होनेके कारण, यहांकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती हैं जिससे साधक मधुर वाणीका वरदान प्राप्त करता है जिससे कि वह गोविन्दका गुण-गान कर सके। आगे बढ़नेपर साधक त्रिकुटी तीर-पर भँवर गुफाके घाटमें अमृतकी वर्षाका अनुभव करता है[1] और सहस्रार चक्रमें परमहंसके पास पहुँच जाता है[2] जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वतीका त्रिवेणी-संगम है जिसमें स्नान करके साधक परम पवित्र होकर यह अनुभव करता है कि सहस्रार-दलमें सुरत समा गई है और अखण्ड ध्वनिवाला अनहदका बाजा बज उठा है। इसे ही साखीने योगकी पूर्णावस्था कहा है—

> गंगा जमुना सरसुती, बहे त्रिवेनी तीर।
> जा असनान कियो तहाँ, उज्ज्वल भयो शरीर॥
> इस कँवलाके पेट महँ, देखा सुरत समाई।
> बाजा अनहद बाजिया, धुन अखण्ड लव लाई॥
> पूरन पदवी जोग की, कह साखी चित जान।
> बाजा अनहद बाजता, निहचै करो पिछान॥[3]

और साधक गुरुके वचनोंका स्मरण करके सुखकी समाधि—आनन्द-समाधि—में लीन हो जाता है जहाँ बिना मन्दिरके बाजेकी ध्वनि उठ रही है और बिना जिह्वाके स्वर फूट रहे हैं—

---

१. षट् चक्रोंका वर्णन पद-संख्या १०२ से लेकर १७० तक फैला हुआ है। यहाँ अमृत वृष्टिवाला पद उद्धृत कर रहे हैं :—

> इक गुन से सरस्वती सूँ, चलिया त्रिकुटी-तीर।
> भँवर गुफा के घाट में, बरसे अमृत नीर॥ : पद १६५

२. सहस पंखुड़ीको कमल, परम हंसको बास : पद १६७।

३. शास्त्र मन-प्रबोध : पद १६८,६६-७०।

17:33
hindwi.org/ebooks/sant-
संत रोहल की बानी

सुख समाधिमें बैठिया, सतगुरु वचन विचार।
बिन मढ़िया बाजा बज्या, जिभ बिन भई पुकार ॥[२]

इस तरह हम देखते हैं कि संत रोहलने हठ-योगकी साधनाका विस्तारपूर्वक वर्णन प्रस्तुत किया है और प्रश्नोत्तर-पद्धतिमें होनेके कारण बीच-बीचमें साधकके मनमें उठनेवाली शङ्काओंका समाधान भी प्रस्तुत किया है जिससे कि योग-साधनाकी कठिनाई कुछ सरलतामें परिवर्तित हो पाई है।

पतञ्जलिके योग-दर्शनके अन्तर्गत हमने इस बातका अवलोकन किया है कि समस्त क्लेशोंका कारण अविद्या है। सन्त रोहलने परमहंस-द्वारा साधकको जो शिक्षा दिलाई है, उसमें भी कुविद्याको नष्ट करके अमृत पान करनेका उपदेश है।[३] पतञ्जलिने अविद्यादि क्लेशोंको मिटानेके लिये विवेकको अनिवार्य बताया है। सन्त रोहल भी उसी विचारके समर्थक हैं—

ना कछु ऊँच न नीच है, सब कर जानो एक।
रोहल सूझी तत्र पड़े, जब खुले विचार विवेक ॥[४]

योग-साधनामें जहाँ सूर्य और चन्द्र आपसमें मिलकर एक हो जाते हैं और जहाँ साधनाकी पूर्ण अवस्था मानी गई है, उसका वर्णन करते हुए संत रोहल कहता है—

परमहंस परबोध सुन, चलिया उलटो बाट।
जहाँ निरंजन आतमा, लिखिया भाग ललाट॥
बंक नारके अन्तरे, पच्छिम दिसिके द्वार।
उलटी अंटी खोल कर, पायो दरस दीदार।
मेरु-सिखर आसन किया, बैठो आतम राम।
ससि सूरज दोनों नहीं, नहिं छाया नहिं घाम ॥[५]

---

१. शास्त्र मन-प्रबोध : पद १७१।
२. वही : पद २७७।
३. शास्त्र अद्भुत-ग्रन्थ : आतम दरसीको अङ्ग : पद २४।
४. शास्त्र मन-प्रबोध : पद १७८, ७६, ८०।

92
271

17:43
hindwi.org/ebooks/sant-
संत रोहल की बानी

यह प्रेमकी प्यास उसे प्रेम पानके लिये लालायित करती है और जब प्रियतम ही स्वयं प्रेमका प्याला भरकर पिलादे तो फिर शेष ही क्या रह जाता है ? साधक जीवनकी सारी सिद्धियाँ लाभ कर लेता है—

पिया इक प्रेम प्याला।
अंतरजामी भर दिया, घट भया उज्याला ॥
अधिक अमी रस चाखिया, तृष्णा सब भागी।
सुरत समानी सुन्न में, अनहद धुन लागी ॥
जैसे चाह चकोर की, चंद बिसरत नाहीं।
तैसा मेरे मन्न का, चित्त चेतन मांहीं ॥
ग्यान-कुण्ड मुंह पाइके, तत अमरित ताल्या।
सेभड़िया सुख पाइया, पी अंतर खेल्या ॥
अनुभव आत्मा उड़ाखया, भ्रमना बिसराई।
प्रीति लगी उनमना सूं, नाम निधी पाई ॥
दिल दरिया मँह ढूंढके, हरि हीरा लाधो।
रोहल रतन अमोल है, गिरह गाँठि बांधो ॥[1]

इस अवस्थाको समझाया भी तो नहीं जा सकता कि आखिर यह कौन सी अवस्था है जिसका अनुभव प्रेमी करता है। जब प्रेमी पर प्रेमका रंग चढ़ जाता है तब वह अपने जीवनमें बड़ी मादकताका अनुभव करता है—

पीया प्याला प्रेम, चढ्या तहँ इश्क़ ख़ुमारी।[2]

और यह ख़ुमारी साधारण तो नहीं है। यहां तो यही नशा जीवन-की सार्थकताका परिचायक है जिससे कि साधक द्वैतभावसे मुक्ति पाता है—

सजन तुझ इश्क़ने मुझको, किया मदहोश दोई सूं।
रह्या यक नक़्श दिल ऊपर, खयाल उस यार जानी का ॥[3]

---

१. वही : पद १४५
२. शास्त्र अद्भुत-ग्रंथ : आतम दरसीको अंग, पद ३७
३. शास्त्र मन-प्रबोध, पद २६३

181
271

अपनी साधना-पद्धति में नाथ पंथियों के हठयोग से अधिक प्रभावित थे। शास्त्रग्रन्थों में हठयोग साधारणतः प्राण निरोध प्रधान साधना को ही कहते हैं। सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति में 'ह' का अर्थ सूर्य बतलाया गया है और 'ठ' का अर्थ चन्द्र। सूर्य और चन्द्र के योग को ही 'हठयोग' कहते हैं—

हकारः कथितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगात हठयोगो निगद्यते॥

इस श्लोक की कही हुई बात की व्याख्या नाना भाव से हो सकती है। ब्रह्मानन्द के मत से 'सूर्य' से तात्पर्य प्राणवायु का है और चन्द्र से अपानवायु का। इन दोनों का योग अर्थात् प्राणायाम से वायु का निरोध करना ही हठयोग है। दूसरी व्याख्या यह है कि सूर्य इड़ा नाड़ी को कहते हैं और चन्द्र पिंगला को (हठ० १।१५) इसलिये इड़ा और पिंगला नाड़ियों को रोककर सुषुम्णा मार्ग से प्राणवायु के संचरित करने को भी हठयोग कहते हैं। हठयोग का एक अर्थ यह भी जान पड़ता है कि इस प्रकार अभ्यास किया जाय जिससे हठात् सिद्धि मिल जाने की आशा हो जाय। हठयोग शब्द का शायद सबसे पुराना उल्लेख गुह्य समाज में आता है। वहां बोधिप्राप्ति की विधि बता लेने के बाद आचार्य ने बताया है कि यदि ऐसा करने पर भी बोधि-प्राप्ति न हो तो 'हठयोग' का आश्रय लेना चाहिये[1]।

हठयोग के दो भेदों की चर्चा योगस्वरोदय में है। प्रथम में आसन, प्राणायाम, धौति आदि षट्कर्म का विधान है जिससे नाड़ियां शुद्ध होकर परमानन्द प्राप्त करती हैं। दूसरे भेद में नासिका के अग्र भाग में दृष्टि निबद्ध करके, आकाश में कोटि सूर्य के प्रकाश का स्मरण करना चाहिये। ऐसा करने से साधक चिरायु एवं ज्योतिर्मय होकर शिवरूप हो जाता है। हठयोग के इन दोनों ही भेदों की चर्चा इन सूफी प्रेमाख्यानों में होती है, किन्तु कहीं भी निश्चित क्रम एवं पूर्ण नियम साधन की चर्चा पृथक से हो, ऐसा नहीं है।

ये कवि बहुश्रुत ज्ञात होते हैं। करामातों एवं चमत्कार में विश्वास करने के कारण इनका संघर्ष नाथपंथी हठयोगियों से अवश्य हुआ होगा अतः अपने प्रतिद्वन्दी के उत्कृष्ट तत्वों को अपने साधना मार्ग में स्थान देकर इन सूफियों ने बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन किया। हठयोगियों की यौगिक क्रियाओं से इनका प्रभावित होना स्वाभाविक था।

इस जवाहिर ग्रन्थ के रचयिता कासिमशाह ने स्पष्ट लिखा है कि यदि हंस रूपी साधक जवाहिर रूपी सिद्धि को निश्चय ही प्राप्त करना चाहता है, तो उसे योगसाधना करनी पड़ेगी। योग साधना के अन्तर्गत वह दृढ़ आसन, दृढ़ निद्रा, दृढ़ काम, एवं दृढ़ क्षुधा को आवश्यक मानता है। जब इस प्रकार की कष्ट साधना में साधक सफल हो जाय और साथ ही ज्योति बिन्दु का एकाग्र चित्त से ध्यान करता हुआ उसमें इतना तल्लीन हो जाय कि उसे अपने अस्तित्व का भी ध्यान न रहे, तब ही इस विरह संतप्त काया, एवं

---

1. नाथ संप्रदाय : हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रथम संस्करण १९५०, पृ० १२३।

पृथ्वी को स्पर्श किये रहते हैं। पृष्ठ भाग में दोनों हाथों को ले जाकर बायें हाथ से बायें पैर का अंगूठा और दाहिने हाथ से साधक दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ता है। जलन्धर बन्ध लगाकर साधक दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर रखता है। इस आसन के अभ्यास से तथा जिह्वा को उलटकर जिह्वामूल में ले जाने से खेचरी मुद्रा सिद्ध होती है। इस आसन से कुंडलिनि महाशक्ति जाग्रत होती है तथा सुषुम्ना नाड़ी सीधी रहती है[1]।

अली मुराद ने आसनों में केवल एक पद्मासन का उल्लेख किया है, किन्तु आसन की मुद्रा का विस्तृत उल्लेख नहीं है[2]। अजपा जाप और पद्मासन इन दोनों का बहुत महत्व है। इन्हीं के द्वारा सुषुम्ना नाड़ी सीधी रहती है। कंठस्थ विशुद्ध चक्र में स्थापित होकर क्रमशः साधक को वास्तविक तत्व ज्ञान की उपलब्धि होती है। अज्ञानान्धकार मिट कर उसे ज्योति लाभ होती है[3]।

आसन के पश्चात् प्राणायाम की साधना होती है। प्राणायाम साधना से मन नियन्त्रित होता है। गोरक्ष पद्धति में 'हंस' नामक अजपा गायत्री मन्त्र की चर्चा है जिसके अनुसार 'ह' कार के साथ प्राणवायु बाहर आता है और 'स' कार के साथ भीतर जाता है।

'हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।
हंस हंसेत्युमुमंत्र जीवो जपति सर्वदा'।

हठयोगी प्राणवायु का निरोध करके कुन्डलिनी को उद्बुद्ध करता है। यही उद्बुद्ध कुन्डली षट्चक्रों का भेद करती हुई, सातवें अन्तिम चक्र सहस्रार में शिव से मिलती है। प्राणवायु ही इस उद्बोध एवं शक्ति संचमन का हेतु है। यही कारण है कि हठयोग में प्राण निरोध का बड़ा महत्व है। अली मुराद ने अपने ग्रन्थ कुंवरायन में प्राण निरोध की इस क्रिया का उल्लेख किया है। श्वास प्रश्वास के क्रमशः निरोध के द्वारा साधक को चाहियें कि श्वास को शीर्षस्थान में ले जाय। श्वास के शीर्षस्थान पर स्थित हो जाने से निर्गुण का गान, शिव का संगम सहज हो जाता है[4]।

---

1. सुन्दर दर्शन पृ० ३६, डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित।

2. पद्मासन गहि होठी गावै, मन बिरहा की नारी।
   अली मुराद मोहि मन साथो, निसदिन बाड़ी पै बारी।

3. सुखमना और सरस्वती, अनुभव मसि [illegible] जाय।
   अजपा जाप और पद्मासन सब हिरदै लहराय॥
   अलीमुराद : कुंवरायन।

4. सांसा का तुम सीस चढ़ाओ, बर्दा बर्दी बाहर निरखाओ।

   ×   ×

   सांसा ले चल सीस पर बैठा निर्गुन गाय।
   अलीमुराद : कुंवरायन।

प्रबल हैं कि दमन करने पर भी सहज ही नष्ट नहीं होतीं[१]। अंतस्साधना के वर्णन में हठयोग में हृदय को दर्पण भी कहा गया है। कवि उसमान ने इस हृदयदर्पण के महत्व को स्पष्ट किया है। हृदयदर्पण की शुद्धि के द्वारा ही सिद्धों ने भी अपना अभीष्ट लाभ किया था। इसी दर्पण में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। गुरु प्रदत्त दीक्षा के द्वारा जिसने अपने हृदय दर्पण को शुद्ध कर लिया है, उसे तीनों लोक इसी दर्पण में दृष्टिगोचर हो जाते हैं[२]।

साधक की चार जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीयावस्था का उल्लेख भी कवि निसार ने यूसुफ जुलेखा के अन्तर्गत किया है[३]।

सूफी स्फुट साहित्य रचयिताओं के पदों में भी हठयोग साधना की यथेष्ट चर्चा रहती है, किन्तु कवि अब्दुलसमद ने सूर्य और चन्द्र, प्राणवायु और अपानवायु, इड़ा और पिंगला नाड़ियों के निरोध, तत्पश्चात् अनहद ध्वनि, 'सो हं' का अभ्यास, तदन्तर केवल एक उसी की अवस्थिति आदि का क्रम से वर्णन किया है।

'एकाग्रचित्त से ध्यान धारणा के पश्चात् सूर्य एवं चन्द्र, इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों को उद्बुद्ध करके सुषुम्ना मार्ग से ले जाने का प्रयास साधक को करना चाहिये। इस क्रिया में सफल होने पर साधक निरन्तर अनहदध्वनि का श्रवण करता है। ज्यों-ज्यों साधक का चित्त स्थिर होता जाता है और 'सो हं' का जाप पूर्ण होता जाता है, साधक का पृथक अस्तित्व मिट जाता है, फिर उसे अनहदध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ती, उसकी सम्पूर्ण चेतनायें विस्मृत होकर केवल एक 'वही' अवशिष्ट रह जाता है[४]।'

---

१. सुख मों काम क्रोध अधिकाई, तिस्ना माया कर अगुवाई।
चार पलेरू तेहि तन माहीं, चारों चारा निज उठि जाहीं।
रैन भोर चारों कर प्यारी, मरि कै जियई होहि पुन चारी।

नूरमुहम्मद : इन्द्रावती, पृष्ठ २१।

२. यह दरपन तुम लेहु सम्हारी, जेहि मंह देखहु दरस पियारी।
येही मुकुर सिद्धन कर गाहा, मन की इच्छा इसी मधि चाहा।
तीनउ भुवन रहहिं मन माहीं, तिल समान कछु बाहर नाहीं।
नैन होइ गुरु अंजन आंजा, दरपन होइ नीक करि मांजा।
जेहि सम धरती सरग पताल, परै दृष्टि सब बांच न आह।

कवि उस्मान : चित्रावली पृ० १०२।

३. ना यह मरै, न मिटै न होई, अपन मरम न जानै कोई।
जाग्रत, सपन, सुषुप्ति साजा, पुनि तुरीया मंह आय बिराजा।

कवि निसार : यूसुफ जुलेखा।

४. जैसे सकल बिलाई मूसा, ऐसे ताक लगाई।
उलगिन्नी की चन्दा उवे, चांद सुरज ये दोऊ डुबे।
सुन्दर सूरत सबद ध्यान की, अनहद सब्द सुनाई।
अनहद मिटो ज्ञान मिट जावे, सोहं पूरन जब फिर आवै।
या से आगे कहा कही मस्ता, एक ही एक लखाई।

मस्तमुराद।

मुरनी नीरनी को गुरु बनाओ, येही बोली उतरो पार।
नाभी कमल से पवन चलावहु, मन लगावहु बीगुनी द्वार।
एह मत मेहुक जाने कोइ रहनी बहिअम सार।
जोर को जमुना अनिहि मझावनी पनीआ बहन न धीर।
बीना नावरी बीना पावरी उतरे शाहब फकीर।

हिन्दी का सूफी स्फुट साहित्य अभी अधिक प्राप्त नहीं हो सका है, यद्यपि बहुत संभव है कि सूफी प्रेमाख्यानों की अपेक्षा मुक्तक काव्य की रचना अधिक हुई हो। विविध साहित्य के अन्तर्गत विषयगत विभेद होते हुये भी कवियों ने विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग नहीं किया है। अधिकांश प्रयुक्त छन्द, साखी, शब्द, पद, कुंडलियां, दोहे, सीहर्फी, बारहमासा, अठवारा, एवं फारसी वजनों पर लिखे गये पद हैं।

ज्ञानकवि को छोड़कर, जिन्होंने चेतावनी, आलोचना एवं सिद्धान्त निरूपण के अतिरिक्त काव्य शास्त्र सम्बन्धी, शुद्ध प्रेम सम्बन्धी, बहुज्ञता सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना भी की है, लगभग सभी कवियों ने सिद्धान्त निरूपणात्मक, चेतावनी एवं उपदेशात्मक, रचनायें ही की हैं। इन सूफी कवियों ने भी कर्मकांड एवं झूठे प्रदर्शन की निन्दा की है, किन्तु वह कबीर की भांति कटु नहीं है।

भाषा का बहुविध प्रयोग सूफी विविध काव्य में मिलता है, क्योंकि अधिकांश स्फुट काव्य गुरुओं और शिष्यों के मौखिक कथन में स्थान पाता रहा है, अतः वक्ता की प्रादेशिक बोलियों का उस पर प्रभाव पड़ा है, साथ ही, संग्रहकर्ता की बोली का प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक था, अतः इस भाषा परिवर्तन के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अवधी, ब्रज, पंजाबी मिश्रित खड़ी बोली का पूर्वस्वरूप एवं राजस्थानी से प्रभावित ब्रज का ही अधिक प्रयोग सूफी काव्य में हुआ है।

भाषा, छन्द एवं विषय की विविधता एवं व्यापकता देखते हुये सूफी विविध साहित्य अपना पृथक महत्व रखता है।

———

21:53
hindwi.org/ebooks/sant-

रहत बिना कोई पार न पावे, मोह अगन नहि बूझै।
सहसें भानु उगे सिर ऊपर, अंधरे कूँ नहि सूझै ॥१२४॥
चित कर चंदन, फूल भाव का, सहरा सहज गुँथाओ।
काया भीतर अलख बिराजे, आतम पूज चढ़ाओ ॥१२५॥
हिन्दू तुरक सबै मैं देखा, बड़े-बड़े भेख धारी।
प्रभु (तेरी) माया सूँ कोई छूटा, रोहल सरन तुम्हारी ॥१२६॥
सुनो चित्त साखी कहे, ब्रह्म सूँ इक गुन लेहु।
अह निसि रहो बिचार में, भाव (निज) पड़त को पेहु[1] ॥१२७॥

सिष्य उवाच :

कौन भाव तुम कहत हो, करि किरपा कहु मोहि।
जो तुम कहो सो हम करूँ, अब मैं पूछूँ तोहि ॥१२८॥

साखी उवाच :

यही भाव तुम सीख लो, सतसँग करो बिचार।
करम बिकार जो दुष्ट हैं, ताँ को भांज बिडार ॥१२९॥
नमस्कार कर ब्रह्म कूँ, चलिया साखी चित।
नाभि कँवल के देश कू, (जहाँ) स्वांत बसत है नित्त। १३०॥
लिंग चकर कूँ छाँड़ि करि, चलिया नाभि स्थान।
(जहाँ) अष्ट पाँखुड़ी को कँवल, नील बरन रँग जान ॥१३१॥
शब्द उठे तहँ नाभि सूँ, जैसी मंशा होइ।
चौकि देव बिष्णु तहाँ, पहुँचे बिरला कोइ ॥१३२॥
बंक नार[2] क्षम थम थमे, पलटे पवन अपार।
ता सूँ बिछिया ले चलीं, तीन साठ सौ नार[3] ॥१३३॥
रोम रोम रस लेत है, पवन पुरुष को बास।
काया बाड़ी तब हरी, हाड़ चाम अरु माँस ॥१३४॥
साखी चित तहँ विष्णु को, जाइ कियो परनाम।
जासूँ जिव अम्मर रहे, सो भाखो निज नाम ॥१३५॥

---

१. देखो २. कुण्डलिनी। ३. १६३ नाड़ियाँ।

21:58

hindwi.org/ebooks/sant-

ग्यान की उड़्यो गुलाल, होरी खेले मेरो लाल।
सुनके अलोकी ख्याल, सुध भूलि तन की ॥
रस को बाजे मृदंग, कबहूँ ना पड़े भंग।
रोहल को लगो रंग, आसा पूरी मन की ॥१६६॥

सहस पंखुड़ी को कँवल, (तहाँ) परम हंस को वास।
पहुँचेगा को संत जन, आवागवन निवास ॥१६७॥
गंगा जमुना सरसुती, वहे त्रिवेनी तीर।
जा असनान कियो तहाँ, उज्जवल भयो सरीर ॥१६८॥
इस कँवला के पेट मँह, देखा सुरत समाइ।
बाजा अनहद बाजिया, धुन अखण्ड लव लाइ ॥१६९॥
पूरन पदवी जोग की, यह साखी चित जान।
बाजा अनहद बाजता, निहचै करो पिछान ॥१७०॥
सुख समाधि में बैठिया, सतगुरु बचन बिचार।
बिन मढ़िया बाजा बज्या, जिभ बिन भई पुकार ॥१७१॥
केता ताल मृदंग है, अरु केतो दादुर मोर।
केती तन्त्री मुरलियाँ, बाजे अनहद घोर ॥१७२॥
बाजों की जब धुनि सुनी, भयो चित्त लवलीन।
जाइ तहाँ रिलिमिलि गयो, जिमि जल मद्धे मीन ॥१७३॥
तब चित आँख उघाड़िके, करी साखि सूँ बात।
अनहद बाजा बाजिया, सतगुरु के परसाद ॥१७४॥
पुहुप पछिम सिर भौंर है, सेत न कारो होत।
(ताके) अरधे मुख में अमि झरे, अरधे मुख में जोत ॥१७५॥
साखी चित तहँ जा कियो, परम हंस दीदार।
अमृत रस किमि पीजिये, कह हमकूँ निज सार ॥१७६॥

परमहंस उवाच :

जो हम सूँ तुम पूछियो, बिख रस कूँ तुम त्याग।
कुविद्या सरपिणि मारकर, पियो अमी रस जाग ॥१७७॥
परमहंस परबोध सुन, चलिया उलटी बाट।
(जहाँ) सही निरंजन आतमा, लिखिया भाग ललाट ॥१७८॥
वंक नार के अंतरे, पच्छिम दिसि के द्वार।
उलटी अंटी खोल कर, पायो दरस दिदार ॥१७९॥

21:59
hindwi.org/ebooks/sant-
संत रोहल की बानी

मेरु-सिखर[1] आसन किया, (जहाँ) बैठा आतम राम।
(तहाँ) ससि सूरज दोनों नहीं, नहिं छाया नहिं धाम ॥१८०॥
(तहाँ) जनम-मरण को भय नहीं, (अरु) नहीं करम की हान।
हद जोई बेहद पड़यो, नूरी महँ निरवान ॥१८१॥
गगन मँडल बूठी चकीं[2], निकसी अमृत धार।
बाल कुँवारी भर दिया, चाख्या पाँच कुँवार ॥१८२॥
भिल-मिल जोती जड़हड़ी, छिप्या चंद्र और सूर।
गगन मण्डल के महल सूँ, बरसे अमृत नूर ॥१८३॥
आतम के उज्ज्वाड़ की, मुख सूँ बने न बात।
जिमि गूँगा सपना लहे, सुमिरि सुमिरि पछतात ॥१८४॥
अनुभै आतम उड़खिया[3], थाके मंशा बाण।
जैसा था तैसा भया, पाया पद निरवाण ॥१८५॥
आतम राम बुलाइ कर, साखी चित्त हुजूर।
किया नजारा नूर का, होइ रह्या भरपूर ॥१८६॥

प्रभु में सरन तुम्हारी आया।
मनमें ममता रही न कोई, दर्द मिटा सुख पाया ॥ १ ॥
ग्यान सुरज घट भीतर ऊग्या, अखंड जोत रङ्ग लाया।
जिस कारन जग फिरत उदासी, सो घट भीतर पाया ॥ २ ॥
काम क्रोधका डंक न लागे, मोह न व्यापे माया।
काय कलेस लेस नहीं लागे, सोई शहर बसाया ॥ ३ ॥
जनम मरणका संसा भागा, चेतन सूँ चित लाया।
पारस सूँ जब परचा लागा, लाल अमर भइ काया ॥ ४ ॥

अम्मर भेद अड़ङ्गो[4] मारग, सतगुरु मोहि बताया।
रोहल रतन अमोलक मिलिया, भागहि प्रापत पाया ॥१८७॥
जनम-जनमका दुख मिट्या, (अरु) जनम-जनमको पाप।
सब तन पावन हो रह्या, जब दरस्यो आतम आप ॥१८८॥
साखी चित्त बुलाइ कर, आतम पूछी बात।
ये पद तुम किमि पाइयो, (जो) अकथ कथ्यो नहिं जात ॥१८९॥

---

१. मेरुदण्ड। २. बूँदें। ३. पहचान। ४. कठिन,

242
271

मन सूँ मिलि अमिला भयो, उठो कलामा[1] खाय।
अब नहि छोडूँ चित्त कूँ, जो कछु करे खुदाय ॥२१२॥
चिट्ठो भेजी चित्त कूँ, अब भाजी मत जाय।
सिर के सौंर खेम है, जो काटे सो खाय ॥२१३॥
चढ़िया मन्न मवास जब, बजे दमामे घोर।
जाइ कहो अब चित्त कूँ, जो भाजे सो चोर ॥२१४॥
जिती बात मन्न सूँ सुनी, (सब) कहो चित्त कूँ जाय।
साखी चेतन दोउ चढ़े, बेली[2] सकल बुलाय ॥२१५॥
चेतन दल है ब्रह्म का, मन माया-दल जान।
अरध उरध के बीच मँह, सुरत को घमसान ॥२१६॥
अरी अरी सूँ जा लगे, (अरु) सूर मिल्या जा सूर।
मन चेतन के बीच में, बाजो अनहद तूर ॥२१७॥
प्रथम कह्यो मन काम कूँ, जाइ करो तुम जङ्ग।
अरध दलाँ के बीच मँह, मारो घात निसङ्ग ॥२१८॥
चढ्यो काम अभिमान कर, आइ खड्यो मैदान।
(अन्त) अहंकार कर कलपना, बक बक भयो हैरान ॥२१९॥
तब चित कहियो सील कूँ, तृष्ना काम मिटाइ।
लिंग वासना देह की, देम्रो सकल हटाइ ॥२२०॥
गुरु के चरने लाग कर, चलियो सील सुजान।
हाथ जोड़ पागें पड़्यो, भयो काम हैरान ॥२२१॥
कहाँ गई ऊ कलपना, (अरु) कहाँ गई ऊ खीज।
जब देख्यो मुख सील को, भयो काम निरबीज ॥२२२॥
काम रूप मृग के लिये, सील सिंह है सूर।
एको हाथ लगाइ कर, मारि गयो चकचूर ॥२२३॥
काम कह्यो तब सील कूँ, राम दुहाई तोहि।
तुम जीत्या, हम हारिया, अब मत मारो मोहि ॥२२४॥
काम-गले में जेवरी, बाँधी शील सुजान।
ले आयो चेतन अगे, आइ कियो उनमान ॥२२५॥

---

१. सौगंधें खाना, प्रण करना।   २. साथी।

करने की क्रिया को पूरक, उदरस्थ वायु को यथा-

प्राणायाम के तीन अंग पूरक कुम्भक और रेचक हैं । वायु के नासिका द्वारा उदरस्थ/ शक्ति रोकने की प्रक्रिया कुम्भक कहलाती है तथा भरा हुआ अशुद्ध वायु को नासिका द्वारा शनै: शनै: बाहर निकालने की क्रिया को रेचक की संज्ञा दी जाती है ।[1] कुम्भक के आठ अंग माने गये हैं । उनके नाम क्रमश: सूर्यभेदन, उज्जायी, शीतकार, शीतली, भस्त्रिका, मूर्च्छा, भ्रामरी और प्लाविनी है ।[2] सन्त सुन्दरदास ने भी इन सबका उल्लेख किया है ।[3] संत कबीर ने प्राणायाम का वर्णन किया है ।[4] डा० रामकुमार वर्मा ने वायु-साधना से सम्बन्धित संत कबीर के कई सुन्दर उदाहरण उद्धृत किये हैं ।[5]

यह बात हम पहले कह चुके हैं कि बाबा जी शास्त्रीय पंडित नहीं हैं । अत: उनकी रचनाओं में प्राणायाम का शास्त्रीय विवेचन के अन्वेषकों को निश्चय ही निराश होना पड़ेगा । उन्होंने तो केवल मन व पवन साधना का उल्लेख कर प्राणायाम का संकेत मात्र किया है । बाबा मलूकदास जी कहते हैं-

> पवन बिन सुरति लावै । निश दिन मन ममता संग भावै ।
>
> -ध्यानवानी, छं०१०२
>
> सुषमन और पवन विचार के सुषमन रहे समाय ।
>
> स्वासा सुमरन रत रहे अस गुरु दरस दिखाय ।। वही, छं०२१२

बाबा मलूकदासके शब्दों में—

> बिन मन साधे जोग न पावै । चाहे जितनी व्याधा उपजावै ।
>
> -जो निधि, छं०१६०२

1-दर्शनोपनिषद्, 6।1 व योगचिन्तामणि उपनिषद्-65 से 67

2-योगकुण्डल्युपनिषद् 1।16-35, 1।36 व 38, 1।30-31, 1।22व36 तथा हठयोग प्रदीपिका 2।48, 2।50, 2।57, 2।45 ।

3-डा० त्रिलोकीनारायण जी दीक्षित, 'सुन्दरदर्शन' पृ०38

4-कबीर ग्र०पृ०157

5-कबीर का रहस्यवाद-1951, संस्करण पृ०

करने की क्रिया को पूरक, उदरस्थ वायु को यथा-

प्राणायाम के तीन अंग पूरक कुम्भक और रेचक हैं। वायु के नासिका द्वारा उदरस्थ/ शक्ति रोकने की प्रक्रिया कुम्भक कहलाता है तथा भरा हुआ अशुद्ध वायु को नासिका द्वारा शनैः शनैः बाहर निकालने की क्रिया को रेचक की संज्ञा दी जाती है।[१] कुम्भक के आठ अंग माने गये हैं। उनके नाम क्रमशः सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कार, शीतली, भस्त्रिका, मूर्च्छा, भ्रामरी और प्लाविनी हैं।[२] सन्त सुन्दरदास ने भी इन सबका उल्लेख किया है।[३] संत कबीर ने प्राणायाम का वर्णन किया है।[४] डा०रामकुमार वर्मा ने वायु-साधना से सम्बन्धित संत कबीर के कई सुन्दर उदाहरण उद्धृत किये हैं।[५]

यह बात हम पहले कह चुके हैं कि बाबा लोग शास्त्रीय पंडित नहीं हैं। अतः उनकी रचनाओं में प्राणायाम का शास्त्रीय विवेचन के अन्वेषकों को निश्चय ही निराश होना पड़ेगा। उन्होंने तो केवल मन व पवन साधन का उल्लेख कर प्राणायाम का संकेत मात्र किया है। बाबा धरनीदास भी कहते हैं-

मन पवन बिन सुरति लावै। निस दिन मन ममता संग धावै।
-ध्यानबानी, सं०१०२

सुखमन और पवन विचार के सुखमन रहे समाय।
स्वासा सुमरन रत रहे अस गुरु दरस दिखाय।।वही, सं०११२

बाबा भवानीदास के शब्दों में-

बिन मन साधे जोग न पावै। चाहे जितनी व्याधा उपजावै।
-जौ निद्दी, सं०१७०२

१-दर्शनोपनिषद्, ६।१ व योगचिन्तामणि उपनिषद्-६५ से ६७
२-योगकुण्डल्युपनिषद् १।२६-३५, १।२८ व २६, १।३०-३३;१/२२व२६ तथा हठयोग प्रदीपिका २।४८, २।५०, २।५७, २।६५।
३-डा०त्रिलोकीनारायण जी दीक्षित, 'सुन्दरदर्शन' पृ०१८
४-कबीर ग्रं० पृ०१५७
५-कबीर का रहस्यवाद-१६२१, संस्करण पृ०

बाबा कृष्णनारायण पद्मासन के द्वारा पवन बन्धान की बात कहते हैं-

पदम आसन करो पवन बंधान करो। शब्द झंकार त्रिकुटि माहि।।रेखता सं०४/३
निरत और सुरत मन पवन को सांधा है। शब्द प्रकाश का भवन पैठा।।
वही, ०१५

हस्तलिखित ग्रंथ

आदि उपदेश	साध भवानीदास
आदिलीला	,,
ग्यानसागर	साध मोतीलाल
चेतावनी	साध भवानीदास
ध्यानवानी	साध अमरदास
नारियल की पुड़िया	साध उमराव सिंह
निरबानग्यान	संग्रह ग्रंथ
निरबान ग्यान की वानियों का इतिहास	,, ,,
पंथ गीता	साध पंछी
बड़ा आगम	साध पंडित दिलासुख
ब्रिम्हपरगास	साध गरीबदास
भटकर ग्यान	सद्गुरु ऊधादास जी
श्री गुरु साहब	डा० हरस्वरूप माथुर
सरहद ग्यान नाल उपदेश	साध मुन्नाराम
साध पंथ	साध पृथ्वीलाल
सार वचन की पोथी, प्रथम भाग	साध लक्ष्मीनारायण

डिस्ट्रिक्ट गैजेटियर

इम्पीरियल गैजेटियर, भाग १२, सन् १९०८

कर्नाल डिस्ट्रिक्ट गैजेटियर, सन् १८९०

पंजाब गैजेटियर, भाग १, सन् १९१०

में योग का स्वरूप शास्त्रीय एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर कम प्राप्त होता है, अधिकतर योग अनुभूतिमय शब्दों में रहस्यात्मक रूप धारण करके प्रकट होता है। पर उसका भेद उद्घाटित करना बहुत कठिन नहीं है। उदाहरणार्थ कबीर की निम्न पंक्तियां इस प्रकार हैं :

" सुन्न मण्डल में मंदला बाजे, तहां मेरा मन नाचे ।
गुरु प्रसादि अमृत फल पाया, सहज सुषमनां काछै ।।१

" शून्य " इत्यादि यौगिक पारिभाषिक शब्दावली से, मंदला बजने और मन के नृत्य करने के प्रयोग से उपर्युक्त पंक्तियां रहस्यमय हो उठी हैं। पर इसमें रहस्यात्मकता कुछ भी नहीं है। उक्त पंक्तियों में कबीर ने सुषुम्ना पथ से प्राण वायु को शून्य या ब्रह्मरंध्र में लय करके नाद रूपी अमृत फल पाने का उल्लेख किया है। शब्द ब्रह्म की प्राप्ति से मन जिस आनन्द की अनुभूति करता है उसी को व्यक्त करने के लिए मन के नृत्य करने का वर्णन किया गया है।

प्राय: सभी सन्तों ने ब्रह्मरंध्र का वर्णन किया है। धरमदास[२] का ब्रह्मरन्ध्र वर्णन देखने योग्य है। संतों की रचनाओं में हठयोग

१- कबीर ग्रंथावली सं० श्यामसुन्दरदास पृ० सं० ११०

२- झरि लागै महिलिया गगन घहराय ,
  खन गरजै खन बिजली चमकै ,
  लहर उठै शोभा बरनि न जाय ।
 सुन्न महल में अमृत बरसै,
 प्रेम आनन्द ह्वै साध नहाय ।
 सतगुरु चरण में रहत समाय ।।
 - संत बानी संग्रह भा० २ पृ० ३८

के प्राय: सभी सन्तों ने इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना को गंगा, जमुना तथा सरस्वती कहा है। गंगा यमुना और सरस्वती (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना (के संगम से त्रिवेणी जैसे पवित्र स्थान का उद्भव होता है। डा० बड़थ्वाल का विचार है कि त्रिकुटी गगन का ही रूप है।[1] इन्हीं के विचारानुसार भ्रमर गुफा , ब्रह्मरन्ध्र का ही पर्याय है।[2] संतों ने इसका प्रयोग प्रतीक रूप में वर्णन किया है।[3]

धरमदास के अनुसार इड़ा पिंगला त्रिकुटी में जाकर मिलती है।

इला पिंगला दोउ हैं, त्रिकुटी मन लावो । ४

दादू ने इड़ा पिंगला सुषुम्ना को प्रतीक मान कर गंगा, जमुना तथा सरस्वती के नाम से सम्बोधित किया है।

उलटी गंगा जमुन में लावै ,
बिन ही जल मज्जन द्वै पावै ।। ५

१- हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० २४४
२- ,, पृ० ४०७
३- भंवर गुफा से उठत बुलबुला, सो अंजन पिय नैन लगावो ।।
- धरमदास की शब्दावली पृ० सं० २२
४- धनी धरमदास की शब्दावली पृ० सं० ३१
५- रैदास की बानी पद सं० ५६

१- गंग जमुन के तीर तिरवेणी संगम जहां । १

२- गंग जमुन सरसुती मिलि ब्रम्ह सागर माहिं ।। २

३- गंग जमुन अंतर वेद । सरसुती नीर बहै परदेस ।। ३

जिस प्रकार गंगा जमुना तथा सरस्वती का संगम त्रिवेणी के नाम से पुकारा जाता है उसी प्रकार इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना को भी त्रिवेणी कहा है। दादू, धरमदास, आदि ने त्रिवेणी और संगम को ब्रह्मरन्ध्र का प्रतीक माना है, क्योंकि मंजन या स्नान संगम रूपी त्रिवेणी में ही होता है जहां साधक अपने प्रियतम का स्मरण करता है :

(क) तीया तीन त्रिवेणी संगम जहां अगम अस्थाना । ४

(ख) सहज समरपण सुमिरण सेवा, तिरवेणी तट मंजन सपरा ।। ५

जिस प्रकार इड़ा पिंगला के लिए गंगा, जमुना प्रतीकों का प्रयोग संतों ने किया है, वैसे ही चन्द्र और सूर्य का भी प्रतीक रूप में वर्णन मिलता है। दादू स्पष्ट शब्दों में कहते हैं :

१- दादू दयाल की बानी भाग २ पृ० सं० १७३
२- ,, १ ,, १६
३- ,, १ ,, १७३
४- धरमदास की बानी पृ० सं० ७७
५- दादूदयाल की बानी भाग २ पृ० सं० ३२

17:22
← 07_chapter 4

चंद सूर मधि माई, तहां बसैराम राई, गंग जमुन के तीर ।
त्रिवेणी संगम जहां, निर्मल विमल तहां, निरखि-निरखि निज
नीर ।। १

दादू ने चंद- सूर का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है। रैदास का विचार भी इसी तारतम्य में है :

चन्द सूर दोउ सन मुख होई,
पीवै प्याला मरै न कोई ।। २

धरमदास कहते हैं :

✓ चंद सुरज दोउ कोल्वर बाबा पांजी दसौं दुआर । ३

यहां दस द्वार ब्रह्मरन्ध्र का प्रतीक है। क्योंकि कुण्डलिनी वह मूल शक्ति है जो अग्नि चक्र में साढ़े तीन कुण्डल मार कर सोती है। मेरुदण्ड के छः चक्रों को भेदकर कुण्डलिनी अंतिम चक्र में प्रवेश करती है जिसमें सहस्रदल का निवास है। इसी को अनेकानेक नामों से सम्बोधित किया गया है। सहस्रदल कमल, शून्य चक्र, शून्य मण्डल, गगन मंडल, इसी के नाम हैं, इसी को दस द्वार भी कहा गया है। गुरु नानक ने इसी बात को प्रकट करते हुए कहा है कि इस शरीर में नव दरवाजे हैं और दशम द्वारा (ब्रह्मरन्ध्र) भी है।[४]

१- स्वामी दादू दयाल की वाणी पृ० सं० ५४२
२- रैदास की बानी पद संख्या ४०
३- धनी धरमदास की शब्दावली पृ० ५१
४- ७- नउ दरवाजे दसवा दुआरु ।।
नानक वाणी, पृ० सं० २०२

अस्तु अंजन निरंजन की छाया है, उसका प्रतिरूप है, अंजन माया है, त्यादि यही संतों को मान्य है। सन्त बानियों में इसका प्रयोग सत् और असत् दोनों अर्थों में मिलता है। जहां सत् रूप में प्रयोग है। वहां वह परमात्मा का प्रतीक ही प्रतीत होता है। निरंजन शब्द को लेकर इस विषय में विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने विचार प्रकट किये हैं हम अधिक विस्तार में न जाकर डा० त्रिगुणायत के इस मत से सहमत है कि : "कबीर विकासवादी थे उनकी विचारधारा का धीरे धीरे विकास हुआ है उनकी रचनाओं में विकास के विविध स्तर दिखाई देते हैं। निरंजन के सम्बन्ध में मह यही बात है। विकास के पहले स्तर में इसका प्रयोग पाशुपत दर्शन के आधार पर शरीर के अर्थ में हुआ है। दूसरे स्तर में वह नाथ पंथियों और सिद्धों की धारणा के अनुरूप हो गया और तीसरे स्तर में वह परात्पर ब्रह्म का वाचक बन गया।[१]"

अरध उरध को संतों के साहित्य में प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया गया है। अरध उरध को गंगा जमुना का प्रतीक प्रायः सभी सन्तों ने स्वीकार किया है।[२] इसी प्रकार खसम,[३] भ्रमर गुहा,[४] बकनाल,[५] उन्मनि[६]

१- कबीर की विचारधारा- डा० गोविन्द त्रिगुणायत पृ० ४४६

२- (क) अरध उरध बि बागिया तहां सुरति लगावो ।। धरमदास रा०पृ०१६
(ख) अर्ध ऊर्ध के मध्य में हो, अमी अरगजा कीच ।। ,, पृ०५५

३- (खसम- परमात्मा) नकि न थ खसम हथ किरतु धक्के दे ।
जहां दाणे तहां खाणे नानक सचुहै ।।
गुरु अंगद, संत सुधासार, वियोगी हरि पृ० २७७

४-(भ्रमर गुहा - ब्रह्मरन्ध्र य ब्रह्म)
"भंवर गुफा से उठत बुलबुला, सो अंजन पिय नैन लगावो ॥
- धरमदास श० पृ० ३२

५- (बंक नालि- सुषुम्ना) नौ लख जरत मसा, सीढ़ी बंकनाल है।
- धरमदास श० पृ० ४३

६- (उन्मनि - चित्तवृत्ति) जोगिया वैरागी बाबा,रहै अकेला उन्मनि लागा।
- दा० बा० पृ० ४४५ सं० चं००प्र०६८

17:26

07_chapter 4

अभिव्यक्ति रूपक के माध्यम से ही हुई है।
88/117

देहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधू है मतवाला ।।
अरे कलाली तैं क्या किया, सिरका गा तैं प्याला दीया ।
कहै कलाली प्याला देऊं, पीवनहारे का सिर लेऊं ।।
चन्द सूर दोउ सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई ।
सहज सुन्न में भाठी सरै, पीवै रैदास गुरुमुख दरै।।[2]

१- नानक वाणी, सं० जयराम मिश्र, जपुजी १६ वीं पउड़ी पृ० सं० ८५
२- संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानन्द शास्त्री, पृ० सं० ११४

इस पद से यह भली प्रकार विदित होता है कि रैदास ने रूपकात्मकता के द्वारा प्रतीकों पर प्रकाश डाला है। कलाली मदिरा विक्रेता गुरू का प्रतीक है। चन्द और सूर्य, इड़ा और पिंगला नामक नाड़ियों के प्रतीक हैं। सहज का अर्थ सहज समाधि से है। सुन्न, गगन शिखर (ब्रह्मरन्ध्र) प्रतीक है। इसी प्रकार भाठी सरै का अर्थ सहस्रार चक्र के अमृत की वर्षा का होना है।

रैदास की भांति दादूदयाल के कलाली के रूपक में परम्परागत वस्तु विधान का सांगोपांग चित्रण मन पर एक अमिट प्रभाव छोड़ जाता है।

मेरा मन मतिवाला मधु पीवै, पीवै बारम्बारी रे ।
हरि रस राती राम के सदा रहै इक तारी रे।। टेक ।।
भाव भगति भाठी भई, काया कसणी सारी रे ।
पोता मेरै प्रेम का, सदा अखंडित धारी रे ।। १ ।।
ब्रह्म अगनि जोबन जरै, चेतनि चितहि उजारी रे ।
सुमति कलाली सारवै, कोई पीवै बिरला दासी रे ।। २।।[1]

यहां पर कलाली गुरु का भाठी सहस्रारचक्र का प्रतीक है।

दादू ने प्राण पवन के बन्धन के अर्थ में ताला-कुंजी का प्रयोग त्रिकुटी में ध्यान को केन्द्रित करने के रूप में करके गुरु सबद की कुंजी से ज्ञान के कपाट खोलकर ब्रह्म तत्व की प्राप्ति का वर्णन किया है।

दादू दैव दयाल की, गुरु दिखाई बाट ।
ताला कुंजी लाइ करि, खोले सबै कपाट ।।[2]

चोर के रूपक द्वारा भी दादू ने इसी भाव को दुहराया है ।

१- दादूदयाल की बानी भा० २ पृ० सं० २४, बे० प्रे० प्रयाग
२- दादूदयाल की बानी भा० १ पृ० सं० १, गुरुदेव को अंग ६ बे० प्रे० प्रयाग

17:28

दयाल ने अद्भुत घटना और व्यापारों को एकत्र कर योगपरक प्रतीकों का सर्जन किया है।

ऐसा ज्ञान मन ज्ञानी। इहि घर होइ सहज सुख जानी।
गंग जमुन तहं नीर नहाइ । सुषमन नारी रंग लगाइ।। १।।
आप तेज तन रह्यो समाइ । मैं बलि ताकी देखौं अघाइ।। २।।
बास निरंतर सो समझाइ । बिन नैनहुं देखि तहं जाइ।। ३।।
दादू रे यहु अगम अपार । सो धन मेरे अधर अधार।। ४।।[1]

उपर्युक्त साखी साधनात्मक रहस्यों से परिपूर्ण है इसमें प्रतीकार्थ इस प्रकार है।

घर- शरीर
गंग जमुन - इड़ा पिंगला
सुषमन नारी - सुषुम्ना नाड़ी
बिन नैन - बिना चर्म चक्षुओं के अर्थात् प्रज्ञा चक्षुओं से ।

दादू को आश्चर्य इस बात पर है कि चींटी अर्थात् सुरति ने हस्ती रूपी मन को खा डाला है। जो चालाक मन अर्थात् हस्ती था वह तो हार मानकर बैठ गया और भोली भाली सुरति ने अर्थात् चींटी ने उसे बहका लिया। मन का धर्म चंचलता है वह अपनी चंचलता त्यागकर पंगुल होगया और ऊंचे पर ही बैठ गया

१- दादूदयाल की बानी, भाग २, पृ० सं० २६, वे० प्रे० प्रयाग ।

उसके हाथ को कौन रोके । नन्हीं मुन्नी सुरति ने गुरु उपदेश का सहारा पाकर विराट् रूप धारण कर लिया है वह अब त्रिकुटी में भी नहीं समा पाती । इस रहस्य को केवल वही जानते हैं जिनमें निरख परख कर देखने की अन्तर्दृष्टि है । सन्मुख जीव वह मर्म नहीं जानते जिसका बिना जीभ के उच्चारण होता है।

मूनें येह अचम्भो थाये ।
कीड़ी ये हस्ती बिड़ार्यो, तेन्हे बैठी खाये।। टेक ।।
जाण हुतो ते बैठो हारे, अजाण तेन्हें ता वाहे ।
पांगुलो उजावा लाग्यो, तेन्हें कर को साहे।। १।।
नान्हो हुतो ते मोटेरे थयो, गगन मंडल नहिं माये ।
मोटेरो बिस्तार भणीजे, तेतो केन्हे जाये।। २।।
ते जाणे जे निरखी जोवे, खोजी ने वलि माहें।
दादू तेन्हों मरम न जाणे, जे जिभ्या बिहूणो गाये।। ३।।[1]

इन योगपरक विभिन्न प्रतीकों का रूप योग से ही सम्बन्ध रखता है परन्तु सोलहवीं शताब्दी के सन्तों ने इन प्रतीकों का प्रयोग अपनी सहज समाधि के अर्थ में ही किया है। योगपरक उलटवासी पदों में अनेक बार इस विपरीत साधना के प्रतीक मिलते हैं।[2] ये निर्गुण सन्त जिस समय काव्य रचना कर रहे थे उस समय भक्ति का प्रवाह व्यापक रूप से फैल चुका था, इसीलिये इन संतों की योगपरक उलटवासियों में प्रेमरस, राम रसाइण अथवा सहज रस का प्रयोग ही देखने को मिलता है। अमृत शब्द भी इसी प्रकार का है। अमृत शब्द अपने प्रयोग में रूढ़ तथा हठयोगी परम्परा में विशेष अर्थ का द्योतन करता है।[3] गुरु अर्जुनदेव,[4]

१- दादूदयाल की बानी, भा० २, पृ० सं० ८५,८६ पद २१३, वे०प्रे० प्रयाग१६५८
२- गंगा उलटी फेरि करि जमुना माहि आणि-दादूबानी भा० १ पृ० सं० ६०
३- दादू सूका रूखड़ा, काहे न हरिया होइ ।
आपे सींचें अमीरस सूफल फलिया सोइ।।७।। दादूबानी भा० १,पृ० २४४
४- सांति सहज आनन्द नाम जपु बाजे अनहद तूरा,
गुरुग्रंथ साहब रागु सोरठा महला ५ पृ० ६१८

संत साहित्य में ये गंगा, यमुना और सरस्वती इन सरिताओं के रूप में प्रतीकायित हुई हैं।

इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना - गंगा-जमुना-सरस्वती

गंग जमुन सरसुती मिलावै[1]।
गंग जमुन मिलि सरस्वती उमंगि सिरवर बहाव[2]।
गंग जमुन अरघ दिवावै,[3]

जिस प्रकार इड़ा, पिंगला, के लिए गंगा-जमुना, प्रतीकों का प्रयोग आलोच्य संतों ने किया है उसी प्रकार से चंद्र सूर्य का भी प्रयोग किया है।

इड़ा, पिंगला - चंद्र सूर्य

मिलि चांद सुरज दोउ पर आया[4]
तहं चांद सूरज खंभ गड़िया, गंग जमुन बंधाय[5]।

संतों के अनुसार यह नाड़ियां त्रिकुटी में जाकर मिलती हैं।

तिरकुटी जहं बनत संगम, गंग जमुन बहाय[6]।

१- यारी साहब की रत्नावली, पृ० सं० ८ ।
२- बुल्ला साहब का शब्दसार, पृ० १ ।
३- बुल्ला साहब का शब्द सार, आरती शब्द १ पृ० १७ ।
४- यारी साहब की रत्नावली, पृ० १४ ।
५- बुल्ला साहब का शब्दसार, हिंडोला, शब्द १, पृ० १७ ।
६- बुल्ला साहब का शब्दसार, पृ० २ ।

17:31

अरघ - उरघ - गंगा जमुना

घट में प्रान अपान दुबाई। अरघ-उरघ आवै अरु जाई।।[1]
अर्घ उर्घ दोउ जोग लगायो, गगन मंडल मयो माउ।।[2]
अर्घ उर्घ अरु मद्ध तो बलम धराइया।[3]

खसम- परमात्मा- पति-स्वामी

(अ) परमात्मा) सुरति सुहागिनि चरन मनावहि खसम आपनो पैवों[4]।
(आ) (स्वामी) भूलि उस खसम को काम तैं क्या किया,
वैगही याद कर मर निपूती।[5]
(इ) पति) खसम परायो जोरू के पीछे, कह्यो न मानें भाँडी रांड[6]

बंकनाल - सुषुम्ना

बैला फूला गगन में बंकनाल गहि मूल[7]
जो- जालिम कुछ पूछि मन। बंकनाल की राखि सम[8]

१- यारी साहब की रत्नावली, शब्द १८, पृ० ५ ।
२- यारी साहब की रत्नावली, शब्द १७, पृ० ५ ।
३- बुल्ला साहब का शब्द सार, शब्द १ पृ० १ ।
४- बुल्ला साहब का शब्दसार, पृ० ११ ।
५-(सुन्दरदास) सुन्दरविलास, पृ० ६ ।
६- सुन्दर ग्रन्थावली, भा० २ अंग २२ ।
७- यारी साहब की रत्नावली, पृ० १७ ।
८- यारी साहब की रत्नावली, पृ० ८

सुई- सुरति

सुई बिचारी दरजिहि सीवैं[१]

इस प्रकार आलोच्य सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दी का संत साहित्य प्रतीक योजना की दृष्टि से समृद्ध है। इन संतों ने ईश्वर से माता, पिता, स्वामी, पति, आदि के अनेक सम्बन्ध स्थापित किये हैं, प्रकृति मूलक प्रतीक तो इन संतों की आत्मा है। इनके अतिरिक्त, सांकेतिक, पारिभाषिक, संख्यामूलक और रूपकात्मक प्रतीक इनकी बानियों में मिलते हैं जिन्हें साधनात्मक रहस्यवादी प्रतीक कहा जा सकता है। इस प्रकार[२] के प्रतीकों में कबीर और उनके अनुयायी संतों के प्रतीकों में समानता है। कहीं कहीं पर ये प्रतीक नवीन

१- सुन्दरविलास, पृ० ७६ ।

२- कबीर- मन लागा उन्मन्न सों, गगन पहुंचा जाय- क० ग्र० पृ० १३ ।

दादू - रहै अकेला उन्मनि लागा - दा० बा० भा० २ पृ० ६८ ।

कबीर- जो जन लेहि खसम कर नाऊं, तिनके सद बलिहारी जाऊं
क० ग्र० पृ० २८०

बुल्लासाहब- जन बुल्ला है खसम की रहसि रहसि गुन गैबी
(बुल्ला साहब का शब्दसार, पृ० ११)

कबीर- गंग तीर गोरी खेती जमुन सरिहनियां-क० ग्र० पृ० ६३

गुलाल साहब- गंग जमुन की घाट, तो कलस धराइल हो(गु० पृ० ११६)

कबीर- सुरति ढीकुली ले जल्यो मन नित ढोलहनहार(क० ग्र० पृ० १८)

भीखासाहब- भीखा यही सुरति मन जानी।(सन्त महात्माओं की बा० पृ० १६६)

कबीर- चंद सूर दोइ खंभवा, बंकनालि की डोर(क० ग्र० पृ० ६४)

धनी धरमदास - बकनाल की डोरी सींचे जोगी जुगुति बतावा(ध०की शब्द० पृ०४३)

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम दम संजम उपर्ती, शरधा सुमति करहु बे
सुमारा हो ॥
ज्ञान वैराग्य परमपद मुक्ती, मन तू कर इनका
सनचारा हो ॥
शारदाराम सने सने चलहू, अहै अगम पन्थ
अपारा हो ॥

(शब्द, राग पुरबी)

गुरु दरियाव नहाना हो, जा के दुरलभ भाग ॥ टेक ॥
इंगला पिंगला चवर डोलावै, सुख मन मग चलि
जाना हो ॥
जनम जनम के काई मल लगले, पैठत सब कटि
जाना हो ॥
शारदाराम चेत सुचेत हो के, ज्योत में ज्योति
समाना हो ॥

(शब्द, राग पुरबी)

गुरु सागर चलि आना हो, जा की वहुत कमाई
॥ टेक ॥
गैबी गुरु गैब दर्शावत, साजन मीत कुटुम्ब तराना
हो ॥
पतित पावन सद्गुरु करि दीना, यह अचरज
अनेक परमाना हो ॥
शारदाराम हटकी मन रोकहू, वहुरि जनम नहीं
आना हो ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

(४)

अजर अमर इक नाम है, सुमिरन जो आवै ॥
बिन मुखड़ा से जप करो, नहिं जीभ डुलाओ।
उलटि सुरति ऊपर करो, नैनन दरसाओ ॥१॥
जाहु हंस पच्छिम दिसा, खिरकी खुलवावो।
तिरबेनी के घाट पर, हंसा नहवावो ॥२॥
पानी पैवन कि गम नहीं, वोहि लोक मंझारो।
वाही बिच इक रूप है, वोहि ध्यान लगावो ॥३॥
जिमीं असमान वहां नहीं, वा अजर कहावै।
कहै कबीर सोइ साधु जन, वा लोक मँझावै। ४॥

(५)

जीवन मुक्त सोई मुक्ता हो।
जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुगता हो।
देह संग ना होवै मुक्ता, मुये मुक्ति कहाँ होई हो।
तीरथ बासी होय न मुक्ता, मुक्ति न धरनी सोई हो ॥१॥
जीवत भर्म की फाँस न काटी, मुये मुक्ति की आशा हो।
जल प्यासा जैसे नर कोई, सपने फिरै पियासा हारे ॥२॥
है अतीत बंधन तें छूटै, जहँ इच्छा तहँ जाई हो।
बिना अतीत सदा बंधन में, कितहूँ जानि न पाई हो ॥३।
आवागवन से गये छूटि के, सुमिर नाम अविनासी हो।
कहै कबीर सोई जन गुरु हैं, काटी भ्रम की फाँसी हो ॥४॥

Scanned with CamScanner

यारी साहब की रत्नावली

॥ शब्द १ ॥

बिरहिनी मंदिर दियना बार ॥ टेक ॥
बिन बाती बिन तेल जुगति सों, बिन दीपक उँजियार ॥ १ ॥
प्रान पिया मेरे गृह आयो, रचि पचि सेज सँवार ॥ २ ॥
सुखमन सेज परम तत रहिया, पिय निर्गुन निरकार ॥ ३ ॥
गावहु री मिलि आनँद मङ्गल, यारी मिलि के यार ॥ ४ ॥

॥ शब्द २ ॥

हौं[1] तो खेलौं पिया सँग होरी ॥ १ ॥
दरस परस पतिबरता पिय की, छबि निरखत भइ बौरी ॥ २ ॥
सोरह कला सँपूरन देखौं, रबि ससि भे इक ठौरी ॥ ३ ॥
जब तें दृष्टि परो अविनासी, लागो रूप ठगौरी ॥ ४ ॥
रसना रटत रहत निस बासर, नैन लगो यहि ठौरी[2] ॥ ५ ॥
कह यारी भक्ती करु हरि की, कोई कहे सो कहौ री ॥ ६ ॥

॥ शब्द ३ ॥

दिन दिन प्रीति अधिक मोहिं हरि की ॥ १ ॥
काम क्रोध जञ्जाल भसम भयो, बिरह अगिनि लगि धधकी ॥२॥
धुधुकि २ सुलगति अति निर्मल, झिलमिल झिलमिल झलकी ।३।
झरि झरि परत अँगार अधर यारी, चढ़ि अकास आगे सरकी ।४।

॥ शब्द ४ ॥

रसना राम कहत तें थाको ॥ १ ॥
पानी कहे कहुँ प्यास बुझत है, प्यास बुझै जदि चाखो ॥ २ ॥
पुरुष नाम नारी ज्यों जानै, जानि बूझि नहिं भाखो ॥ ३ ॥
दृष्टि से मुष्टी नहि आवै, नाम निरंजन वा को ॥ ४ ॥
गुरु परताप साधु की संगति, उलटि दृष्टि जब ताको ॥ ५ ॥
यारी कहै सुनो भाई संतो, बज्र बेधि कियो नाको[3] ॥ ६ ॥

---

(१) मैं। (२) जगह। (३) रास्ता।

निर्मलता का उपाय करते हुए अपने साधन का स्वरूप निश्चित करते हैं।
बिन्दु साधना के अनुसार बिन्दुपात निषिद्ध है क्योंकि ` अवरुद्धबिन्दु च्युत होने पर प्राकृतिक नियम से अधोगति की ओर उन्मुख होता है। इसी का नाम च्युति या पतन है, जिसका फल है- मृत्यु। इस बिन्दु को धारण करके यदि कोई इसे ऊर्ध्वगामी कर सके, तो वह अनिवार्य रूप से अमरत्वलाभ कर सकता है।` मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।` यह सर्वसम्मत सिद्धांत है।[१६८] तांत्रिक बौद्ध भी इसे स्वीकार करते हैं। यह भी रससाधना का एक प्रकारभेदमात्र है। उपाय तथा प्रज्ञा के योग से बोधिचित्त का उद्भव होता है। यही बिंदुपात है। वज्रयान में इसका स्खलन निरुद्ध करने के लिए, इसे निर्माणचक्र में धारण करने का उपदेश है।

दार्शनिक दृष्टि से बोधिचित्त के संवृत और विवृत दो रूप बताए जा चुके हैं। तांत्रिक बोधिचित्त अथवा बिंदु के भी संवृत (चंचल) और विवृत (अचंचल) दो रूप हैं। विवृत बोधिचित्त महासुख रूप में तब परिणत होता है, जब वह एकमात्र महासुखचक्र या उष्णीषकमल में स्थिर हो जाता है।[१६९] तांत्रिक बौद्धों के षडंग (प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति और समाधि) योग में से प्रत्येक का विनियोग तांत्रिक बौद्ध साधन में विहित है। इसकी क्रमिक अवस्थाएं हैं - (१)मंत्रसिद्धि,(२)आभासाओं का उदय, (३)बोधिसत्व भाव, (४) बुद्धत्वभूमि, (५) प्रभामण्डल में प्रवेश और (६) निखिल आवरण) का क्षय या बुद्धत्व। षडंगों का क्रम क्रमिक विनियोग करने से इनकी सिद्धि होती है।` उक्त क्रिया से बिन्दु को उद्बुद्ध कर निर्माणचक्र से उष्णीषकमल तक ले जाना पड़ता है। बिन्दु का उद्बोध और कुण्डलिनी शक्ति का जागरण, वस्तुत: एक ही व्यापार है। --- ~~इसी जागरण को निर्माणचक्र का जागरण, वस्तुत: एक ही व्यापार है।~~ इस जागरण को निर्माणचक्र में स्वशक्ति चाण्डाली का जागरण कहा जाता है। जिस क्षण में चाण्डाली का जागरण होता है, उसी क्षण में मस्तकस्थ चन्द्रबिन्दु से

१६८- भा० सं० सा० (१) पृ०५५२-५५३।

१६९- वही: पृ०५५४।

अमृतक्षरण होना आरंभ होता है।`[१७०] निर्माणचक्रस्थ बिंदु पंचभूतात्मक होता है किन्तु जैसे जैसे वह मध्यमार्ग से उत्थित होता जाता है, क्रमश: इसके पृथ्वी, जल, तेज, वायु के अंश क्षीण होते जाते हैं और अन्तत: यह चित्तमात्र अथवा शुद्ध ज्योतिमात्र रूप में परिणत होकर उष्णीषकमल में लीन होता है। प्रारंभ में यह कुंदपुष्पनिभ संवृत बोधिचित्त था।[१७१]

प्राणायाम का स्थान तीसरा है। बौद्ध पद्धति के अनुसार मनुष्य का स्वास पंचज्ञानमय है और पंचभूतों के स्वभाव वाला है। इत्यादि पंच स्कंधों तथा उन पर प्रतिष्ठित अक्षोभ्य आदि पंच ध्यानी बुद्धों का परिचय दिया जा चुका है। ये ध्यानीबुद्ध पंचज्ञानस्वभाव हैं। वाम तथा दक्षिण नासा पुट से पंच प्रकार का प्रवाह होता है। ये दोनों प्रवाह एकीभूत होनेपर पिण्डाकार हो जाते हैं। सबसे पहले इस स्थिर प्राण पिण्ड को मध्यमार्ग में और फिर बाद में नासिकाग्र में निश्चल करने का विधान है। यही महारत्न अवस्था कही जाती है। वाम तथा दक्षिण दो विरुद्ध धाराओं को सम्मिलित करके मध्य नाड़ीका अवलंबन लेते हुए इसका उत्थापन करके मूलनाभि, हृदय, कण्ठ ललाट तथा उष्णीष कमल की कर्णिका में स्थिर करना चाहिए। इस प्रकार निरुद्ध किया हुआ प्राणवायु पंचवर्ण महारत्न कहा जाता है क्योंकि इसका प्रत्यक्ष संबंध पंचस्कंधों एवं पंच ध्यानी बुद्धों से है। वज्रयानमें इसी प्राणायाम को वज्रजाप कहते हैं।[२०२]

म० म० डॉ० गोपीनाथ कविराज ने प्राणायाम और चक्रभेद की क्रिया का संबंधनिरूपण करते हुए यह स्पष्ट किया है कि नाभि के भीतर की शक्ति निरुद्ध होने पर वैद्युतिक अग्नि विधान दण्डवत् स्वरूप धारण करती है और मध्यनाड़ी में सुषुम्ना से चालित होकर चक्रान्तर में गमन करती है। इस प्रकार जब उष्णीषचक्र का स्पर्श होता है तब अपान वायु को ऊर्ध्व मार्ग में प्रेरित करने पर उसके प्रभाव से उष्णीषकमल का भेद हो जाता है और घर-घर में गति होती है। इस प्रकार दोनों वायुओं (प्राण और अपान) का निरोध आवश्यक है। इसी का नाम वज्रबीज है।[२०३] चक्रों के इस भेदक्रम से चक्रानुसार ही बुद्धकायों या ज्ञानचक्रों का साक्षात्कार होता है। इसके पूर्व षडंगयोग और तदनुरूप सिद्धियों का क्रमिक विवरण दिया जा चुका है। प्राणायामप्रयोग से क्रमशः काय-वज्रवज्र, वाग्वज्रवज्र, चित्तवज्रवज्र और अन्ततः ज्ञानवज्रवज्र की उपलब्धि होती है।[२०४]

इस विवरण से स्पष्ट है कि तांत्रिक बौद्ध योग के अनुसार भी प्राणायाम का नाड़ीसाधना, चक्रसाधना और बिन्दुसाधना से घनिष्ठ संबंध है। वस्तुतः प्राणसाधन बिन्दुसिद्धि में परमावश्यक है और इसके ऊर्ध्वक्रम की साधना भी प्राणायाम से ही होती है। यह ऊर्ध्वक्रम मध्यनाड़ी से ही सम्भव होता है। ज्योतिष वीराचार शासन में, और आगे के शासन में, अनुत्तरयोग में नाड़ी विचार

२०२- भा० सं०सा०, पृ० ५३८-५३८। २०३- वही पृ० ५४२। २०४- वही, पृ० ५४३।

20:12
exoticindiaart.com/book

हिन्दू-धर्मानुसार ही विचार व्यक्त किये मिलते हैं। यदि सूफीमतानुसार कुछ विचार यत्र-तत्र मिलते हैं तो वे प्रसंगवश ही मिलते हैं। फिर भी इनके वर्तमानकालीन उत्तराधिकारी अपने आपको सूफी कहने लगे हैं।

ये योगमार्ग की चर्चा करते-करते भक्ति की भी बातें करते हैं और अन्तन्तः ब्रह्मात्मैक्य रूप अद्वैत की बात करते हैं। ये योगमार्गी गोरखनाथ की भाँति द्वैताद्वैतविवर्जित ऐक्य की बात न करके, अद्वैत-ब्रह्म व ब्रह्मात्मैक्य की चर्चा करते हैं। योगियों के प्रिय विषय 'सृष्टि की उत्पत्ति व लय' का वर्णन अनुलोम-प्रतिलोम दोनों रीतियों से करते हैं जो कुछ अंश में पौराणिक वर्णनों से मेल खाता है तथा शेष नाथों व सिद्धों के वर्णनों से। इन रचनाकारों के अनुयायी जितने मुसलमान हैं, उतने से भी अधिक किसी समय हिन्दू रहे थे। भारत के राजस्थान, विशेषकर मारवाड़-राज्य में इनके अनुयायी अच्छी मात्रा में मिलते हैं। अतः ये सिन्धी होकर भी हिन्दी हैं और हिन्दी होकर भी सिंधी। इनकी आधी के करीब रचनाएँ सिन्धी-भाषा में व इतनी ही हिन्दी-भाषा में मिलती हैं।

उपर्युक्त संत, सूफी, रचनाकारों में प्रमुख व प्रथम हैं–श्रीरोहलसाहब। इन्हीं के साले मुरादसाहब व पुत्र-पौत्रादि हैं इस शृंखला के रचनाकार। इन सभी रचनाकारों की रचनाएँ अरेबिक-सिंधी-लिपि में 519 पृष्ठों में लिखी मिलती है। मेरे पास इन रचनाकारों की रचनाओं की हस्तलिखित प्रति की एक श्वेत-श्याम प्रति उपलब्ध है। इस हस्तलेख में 1. रोहल-साहब 2. मुराद-साहब 3. साहू-साहब 4. गुलाम-साहब 5. दुल्हदरियाखान-साहब 6. नज़रअलीखान-साहब 7. अलीनवाज़खान-साहब 8. महरहयातखान-साहब 9. खुदाबख़्शखान-साहब 10. नवाबखान-साहब 11. फकीर दरमहलखान-साहब, कुल ग्यारह रचनाकारों की रचनाएँ पृष्ठ एक से 513 तक हैं। पृष्ठ 514 से 519 तक उक्त रचनाकारों की संक्षिप्त तवारीख है। यही तवारीख हमारी जानकारी का प्रमुख व प्रामाणिक स्रोत है।

दुःख है कि न तो सिंधी-साहित्येतिहास की पुस्तकों और न हिन्दी-साहित्येतिहास की पुस्तकों में ही इनका विस्तृत उल्लेख मिलता है। कहीं दो-चार पंक्ति लिखी मिल जाएँ तो बात अलग है। यह भी कम आश्चर्य का विषय नहीं कि इनमें से किसी भी रचनाकार के ऊपर अंग्रेजी में भी पुस्तक नहीं है।

ऐसा अनुमान होता है कि इस गुमनामी का एक ही कारण है और वह है, इन रचनाकारों की रचनाओं की सीमित मात्रा में हस्त-लिखित प्रतियों का प्राप्त होना। प्रकाशित संस्करणों का तो प्रायः अभाव-सा ही है। यदि एक दो संस्करण प्राप्त हैं भी तो वे या तो लोक में प्रचलित कंठानुकंठ से सुनकर संग्रहित प्रकाशन हैं या किसी आधी-अधूरी पाण्डुलिपि के आधार पर संकलित-संपादित संस्करण।

(102) गोरख मो में मैं गोरख में

साधो भाई सो गोरख निरधारा।
गोरख को गम गोरख जाने, हो गोरख मतवारा॥ टेर॥
गो इन्द्रिय का रक्षक सोई, अपना आप लख प्यारा।
गोरख को गोरख चेतावे, गोरख गम विचारा॥ १॥
गोरख साधक गोरख साधन, गोरख भेद अचारा।
गोरख उलट समावे गोरख, गोरख का विस्तारा॥ २॥
गोरख राम प्रकाश अखंडित, जो जाने गुरु मुक्त मझारा।
राम प्रकाश को लखता गोरख और न जाणन हारा॥ ३॥
राम प्रकाश गोरख गति चीन्ही, भया गोरख अवतारा।
गोरख मो में मैं गोरख में, आवागमन बिडारा॥ ४॥

(103) गोरख को गम गोरख जाने

साधो भाई योग युक्ति कर जोई।
फूल फकर का मारग चीन्हे, बेहद की गम सोई॥ टेर॥
पाँचों साधे पाँचो बांधे, पांचो राधे खोई।
मुद्रा साधे इन्द्रिय बांधे, मल कामादिक धोई॥ १॥
तीनू बंध प्राण गम तीनूं, नाड़ी तीन विलोई।
युक्त मुक्त और बंक त्रिवेणी, लखे संत अनुमोई॥ २॥
गोरख को गम गोरख जाने और न जाने कोई।
संत लखे कोई फकर सुरमा, गुरु गम गोरख होई॥ ३॥
अकथ कथे, अनअक्षर बांचे, राम प्रकाश निरमोई।
सतगुरु मिले ते संशय टूटे, गूढ़ गति कहूं तोई॥ ४॥

पकड़ रक्खा है। फिर भी उन मतों की सङ्कीर्ण साम्प्रदायिकता कबीर के साथ मेल नहीं खाती। इसीलिए कबीर इन सबको ही अपने ढंग से अपना सके हैं। उनके क्रियाकाण्ड, उनकी साधना और उनकी संज्ञाओं को भी कबीर ने अपने विशेष भाव से व्यक्त किया है। कबीर भक्त हैं, प्रेमिक हैं, योगी हैं, मानवरस से भरपूर हैं, मैत्री युक्ति आदि से परिपूर्ण हैं। इस तरह उन्होंने जिन मतवादों को ग्रहण किया है उनमें से प्रत्येक हद तक उनका गृहीत है, कुछ हदतक अपनी विशेष व्याख्या से उन्होंने अपने समान कर लिया है, कुछ हदतक परित्यक्त है और किसी हदतक उनके कठोर आघातों से आहत है। कबीर के योगमत वाद के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। उन्होंने कुछ अंशों में इसे मान लिया है, कुछ अंशों तक विशेष भाव से आत्मसात् कर लिया है, कुछ अंशों तक छोड़ दिया है और फिर किसी-किसी अंश पर कठोर प्रहार भी किया है। कबीर साहित्य की आलोचना करते समय एक बात विशेष रूप से मन में उठा करती है। यह साहित्य तो बहुधा विचित्र है और नाना सम्प्रदायों द्वारा संग्रह किया गया है। फिर कौन सी वाणी का आश्रय करके आलोचना की जाय ? योगमत की आलोचना के इस प्रसङ्ग में मैंने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के संस्करण का ही आश्रय लिया है।

कबीर के अनेक पदों को देखकर ऐसा जान पड़ता है कि ठीक पूर्ववर्ती योगियों की, यहाँ तक कि कभी-कभी हू-ब-हू वे ही बातें पढ़ रहे हैं। जैसे—

'प्रथमे गगन की पुहमी प्रथमें प्रभु प्रथमे पवन कि पाणी।' (पदावली १६४)

कबीर की प्रश्नोत्तरी और प्रहेलिकाएँ बिल्कुल प्राचीन योगियों के समान हैं। इसीलिए इन प्रहेलिकाओं को 'गोरखधन्धा' कहते हैं। कबीर का निम्न-लिखित पद भी योगी-पदों के ही समान है—

सुंनिमंडल में घर किया जैसै रहे सिचांनां।
उलटि पवन कहाँ राखिये कोई भरम बिचारै॥
सांधै तीर पतालकूं, फिरि गगनहिं मारै।

ठीक इसी प्रकार का एक पद परिशिष्ट (२०७) में है।

मूल दुआरै बेध्या बंधु। रबि ऊपर गहि राख्या चंदु॥
पच्छम द्वारै सूरज तपै। मेर डंड सिर ऊपर बसै॥
खिड़की ऊपर दसवा द्वार। कहि कबीर ताका अंत न पार॥

योग के संबंध में भी कबीर के वैचित्र्य का अन्त नहीं। वह पवन उलट कर षट्चक्र भेद करके शून्य गगन में समाहित होना चाहते हैं।

उलटे पवन षट्चक्र बेधा मेरडंड सर पूरा ।
गगन गरजि मन सूँनि समांनां बाजे अनहद तूरा ॥ (पद ७)

कभी कहते हैं, 'मनको ही उलटकर उसमें भरना होगा।..................पवन उलटकर पट्चक्र वेध करके 'शून्य सुरति' में ही 'लय' लगाना होगा—

मन रे मनहीं उलटि समांनां । ....
उलटे पवन चक्र षट् बेधा सूँनि सुरति लै लागी ॥ इत्यादि (पद ८)

कभी वह द्वादश कूप से वनमाली के समान नीर धारा ऊपर की ओर उलट कर सुषुम्णा का कूल पूर्ण कर देना चाहते हैं—यह धारा दस दिशाओं में ही फुलवारी पावेगी ।

द्वादश कुँआ एक बनमाली उलटा नीर चलावै ।
सहजि सुषमना कूल भरावै वह दिसि बाड़ी पावै (पद २१४)

कभी-कभी ईंधन जलाकर जिस समय भट्ठी से सुरा लेते हैं, उसी प्रकार अन्तर के महारस को गगन में चुआकर उसी सुरा में मत्त होना चाहते हैं। परन्तु आश्चर्य यह है कि इस गगन रस को उन्होंने भक्त के समान 'रामरस' बना लिया है। उनके योग और भक्ति सम्बन्धी मत इसी प्रकार युक्त हैं। इसी रामरस में मतवाला होना ही कबीर की एकान्त वासना है ।

गगन साल चुए मेरी भाठी । संचि महारस तन भया काठी ।
वाकै कहिये सहज मतवारा । पीवत रामरस ज्ञान विचारा ॥
... . (परिशिष्ट पद ५८)

'चन्द्र और सूर्य ये दोनों ज्योति के स्वरूप हैं। इसी ज्योति के अन्तर में अनुपम ब्रह्म विराजमान हैं। ऐ ज्ञानी, वहीं पर ब्रह्म विचार करो—

चंद सुरज दुइ जोति सरूप । जोति अन्तरि ब्रह्म अनूप ।
करु रे ज्ञानी ब्रह्म विचारू । (इत्यादि परिशिष्ट पद ६७)

कभी-कभी कबीर ने योगी के भेष को रूपक की भाँति ग्रहण करके, सुरति-निरति-आदि द्वारा सजाया है ।

अवधू जोगी जगथैं न्यारा ।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी नाद न खंडै धारा ॥ (पद ६९)

निरति मुद्रा और सुरति सिंगा से सज्जित होकर वह योगी जगत् में 'चेतन चौकी' पर बैठकर उस मधुर महारस को पान करता है, जिस महारस को इस

अन्तर की भट्ठी में चुआया गया है। वहाँ बैठकर वह दुनिया की ओर ताकता भी नहीं—

बसै गगन में दुनी न देखै, चेतनि चौकी बैठा।
चढ़ि अकास आसन नहीं छाड़ै, पीवै महारस मीठा। (पद ६९)

गगन भट्ठी चुआकर जिस अमृतरस का निर्झर झरा करता है, उसे ही पान करना होगा। रस में ही झरा करता है वह रस।

गगन ही भाँठी सींगी करि चूँगी कनक कलस एक पावा।
तहुआँ चवै अमृत रस नीझर रस ही में रस च्वावा॥ (पद १५३)

यहीं पर मन को मत्त कर देने वाला 'रामरसायन' पान करना होगा। दुनिया में सब भ्रम की साधना में भूले हैं—

.................यह दुनिया काँइ भरम भुलानी।
मैं राम रसाइन माता॥ (वही पद)

गगनमण्डल में घर करना होगा। क्योंकि वहीं सदा अमृत झरा करता है, सदानन्द उपजता है, बङ्कनाल का रस पान करना होता है—

अवधू गगनमंडल घर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंकनालि रस पीवै॥ इत्यादि (पद ७०)

कभी-कभी कबीर अधोधारा को को ऊर्ध्व में उठाने के लिए जिन सब आयोजनों की जरूरत है उन्हें रूपक के रूप में सजाकर लय, पवन, मन, सत्य, सुरति प्रभृति की सहायता से सहज ही उस धारा में चलाना चाहते हैं—

ल्यौकी सेज पौन की ढीकूं मन मटकाज बनाया।
सतकी पाटि सुरति का चाठा सहज नीर मुक लाया॥ (पद २१४)

कभी कबीर का यह योग सम्बन्धी सारा आयोजन रूपक के समान ही है। यद्यपि वह कहते हैं—'हे अवधूत! मेरा मन मत्त हो गया है, उन्मनि पर चढ़कर मन ने उस महारस को मग्न होकर पान किया है, इसीलिये त्रिभुवन दीप्त हो गया है, उज्ज्वल हो गया—

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मुनि चढ़या मगन रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा। (पद ७२)

किन्तु इस महारस को चुआने के लिये उन्होंने ज्ञान को किया है गुड़ और ध्यान को किया है महुआ। मन धारा को भट्ठी बनाया है—

INTERNET ARCHIVE

सहजो हरिजन मुक्त हैं, डारि रूईकी पोट।
चाहगई संशय मिटा, बन्धन छूटे कोट ॥३२॥
राग द्वेषसूं रहित हैं, वैरागी निर्बंध।
सहजो इच्छा ना रही, मायाब्रह्मकि संध ॥३३॥
आसन संयम साधकर, साधै प्राण अपान।
सहजो मुद्रा जो सधें, तो योगी परमान ॥३४॥

तीनों बंध लगाइके, अनहद सुनै टंकोर।
सहजो शुन्न समाधिमें, नहीं साँझ नहिं भोर॥३५॥
नासुख विद्याके पढे, नासुख वादविवाद।
साधु सुखी सहजोकहै, लागै शुन्न समाधि॥३६॥
मुये दुखी जीवतदुखी, दुखी भूप आहार।
साधुसुखी सहजो कहै, पायोनित्य विहार॥३७॥
चाह दुखी आशादुखी, महादुखी अज्ञान।
साधुसुखी सहजो कहै, पाया केवलज्ञान ॥३८॥
धनवंते सबही दुखी, निर्धन हैं दुखरूप।
साधुसुखी सहजो कहै, पायो भेद अनूप ॥३९॥
रंकदुखी राजादुखी, दुखी सकल संसार।
साधुसुखी सहजो कहै, पायो भेद अपार ॥४०॥

22:20
Vo)) LTE1
2015.321331.Bhakti-Sa...

पांचसखी ले लार हेली काया महल पगधारिये ।
योग युक्ति डाला करौरी अरी हेली प्रान अपान कहार ॥
कुंज कुंज सब देखियेरी अरी हेली नानाबाग बहार ।
मानसरोवर न्हाइये सदा वसन्त निहार ॥
बिनासीप मोतीबनेरी अरीहेली बिनागूंद फूलनहार ।
बिन दामिनि चमकारहे बिन सूरज उजियार ॥
अनहद उत बाजे बजैंरी अचरज वहुतक ख्याल ।
तेजपुंज की सेजपै कागा होहिं मराल ॥
श्रीशुकदेव कृपा करैं जब पावै यह भेद ।
चरणदास पियासों मिलै छुटैं जगत के खेद ॥

योग युक्ति करि लेहि हेली जो चाहै हरिसों मिलो ।
आसन संयम साधि कैरी गगनमंडल करि गेह ॥
उलटी दृष्टि चढ़ाइयेरी होय सूरज परकाश ।
करम भरम सबही जरैं सहजछुटै जग आश ॥ १ ॥
प्राण अपान मिलायकैरी मूलबन्धको बांधि ।
रसना उलटि लगाइये सुरति उर्ध्व को साधि ॥ २ ॥
बङ्क सुधारस पीजिये अनहदहो गलतान ।
भँवर गुफा दृढ़ बैठिके शून्य शिखर को ध्यान ॥ ३ ॥
सुषमन मारग ह्वै चलोरी जब पहुँचो निजधाम ।
अचल सिंहासन श्वेत है जहां विराजैं राम ॥ ४ ॥
यह साधन शुकदेव कीरी जो कोई जानैं साध ।
चरणदास अविगति लहै देखै खेल अगाध ॥ ५ ॥

अथ वैराग का अंग ॥

10:50
सिसि औ सूर पवन भरि मे...
hindwi.org
खोजिए

ससि औ सूर पवन भरि मेला, दृढ़ करि आसन बैठु अकेला।
उलटै नाल गगन घर जावै, बिगसै कँवल चंद दरसावै॥
घंटा रव तहँ बाज निसाना, अनहद धुन सुनियत बिनु काना।
सुत्र असुन्न में डोर बँधाना, उड़े हंस चढ़ि करत पयाना॥
अगम अगोचर अबिगत खेला, प्रान पुरुष तहँ करत है मेला।
मन अरु पवन सहज घर आयो, ऐसो गति संतन मन भायो॥
मेटल सुन्न मिलल परगासा, जन्म-जन्म कै पूजलि आसा।
जन गुलाल सतगुरु बलिहारी, जाति-पाँति अब छुटल हमारी॥

Roman

खोजिए

अवधू ऐसी मदिरा पीजै।
बैठि गुफ़ा में यह जग बिसरै चंद सूर सम कीजै॥
जहाँ कुलाल चढ़ाई भाठी ब्रह्म ज्वाल पर जारी।
भरि-भरि प्याला देत कुलाली बाहै भक्ति खुमारी॥
माता है करि ज्ञान खड्ग लै काम क्रोध कूँ मारै।
घूमत रहै गहे मन चंचल दुबिधा सकल बिडारै॥
जो चाखै यह प्रेम सुधा रस निज पुर पहुँचै सोई।
अमर होय अमरा पद पावै आव गवन न होई॥
गुरु सुकदेव किया मतवारा तीन लोक तृन बूझा।
चरनदास रनजीत भये जब आनंद आनंद सूझा॥

स्रोत :

पुस्तक : हिंदी के जनपद संत (पृष्ठ 178) **रचनाकार** : चरनदास
प्रकाशन : मोतीलाल बनारसी, दिल्ली **संस्करण** : 1963

Roman

गंगा और यमुना यानी चंद्राभास और सूर्याभास के बीच इन दोनों की शुक्रनाड़ी रूपी एक नौका चलती रहती है, मातंगी योगिनी उसमें विराजित है, इसलिए वह अपने समस्त पुत्रों को लीला-क्रम में पार लगा देती है।

ओ डोम्बी! तुम इसे खेती चलो। रास्ते में ही बहुत देर हो गई। तुम लगातार नौका खेती रहो। गुरु कृपा से मैं पुनः जिनपुर जाऊँगा।

गुरु के उपदेश रूपी पाँच पीठ इस मार्ग में पड़ते हैं। पीठ में शून्य रूपी रस्सा बाँधकर रखा गया है। तुम उस शून्य सेचनी द्वारा विषयरूपी जल उलीचती रहो, ताकि वह शरीर में प्रविष्ट न हो जाय।

चन्द्र रूपी प्रज्ञाज्ञान और सूर्य रूपी अद्वयज्ञान के दो चक्रों को हाथों में ले पुलिंद सृष्टि और संहार करते हैं। ओ डोम्बी! सर्वधर्म के समुद्र में नौका खेती हुई तुम वाम एवं दक्षिण, इन दो पथों पर सचेत भाव से आगे बढ़ना।

पार उतारने के लिए मल्लाह मूल्य ग्रहण करता है, किंतु योगिनी कौड़ी तक नहीं लेतीं। वह तो निःशुल्क ही पार उतार देती है। जिसका नैरात्म्य धर्म के साथ परिचय नहीं है, वे साधना शक्ति के अभाव में किनारे (काया में) ही डूब जाते हैं।

स्रोत :

पुस्तक : सहज सिद्ध : चर्यागीति विमर्श (पृष्ठ 78)
संपादक : रणजीत साहा **रचनाकार** : डोम्बीपा
प्रकाशन : यश पब्लिकेशन्स **संस्करण** : 2010

वानियां रहन न दीजे धर्म बजार लगावो॥सुवस वास होय जब नगरी वैरी रहैं न कोई।चरणदास गुरू असल पछतावो सहजो सँभलो सोई॥११॥

राग सोरठ।

भयाहारि रसपिय मतवारारे। आठपहर झूमतही बीते डार दिया सब भारा रे॥इडा पिंगला ऊपर पहुँचे सुषमण पाट उघाडा रे। पीवनलगे सुधारस जबहीं दुर्जनपडी विताडा रे॥गंगयमुन बिच आसनमारा चमक चमक चमकारा रे। भँवर गुफामें दृढ हो बैठे देखा अधिक उजारा रे॥ चित स्थिर चंचल मने थाका पांचोंका बल हारा रे। चरणदास किरपासूं सहजो भर्म कर्म हुए क्षारा रे॥ १२॥

राग वसन्त।

आई वसंत धन मेरे भाग। पांचौं गावैं एक राग॥ और पचीसौ उनके संग। सोभी भीगे

मन उन्मन—मन को नियन्त्रित करना ही उनमनी अवस्था है। उनमनी का अर्थ है— *मानसिक चेतना से उच्चतर चेतना।*

नाथ सम्प्रदाय में उन्मनदशा को 'सहज समाधि' कहा है। कबीरदास कहते हैं—

बाहरि खोजत जनम गँवाया।
उनमनी ध्यान घट भीतर पाया।।[1]

यहाँ पर उनमनी ध्यान का विशेषण है। बूला साहब कहते हैं—

उनमुनि मुद्रा लगी समाधी।
रबि ससि पवनहि राखो बांधी।।[2]

अनाहतनाद

नादबिंदूपनिषद् इत्यादि ग्रन्थों में लिखा है कि कान, नाक, मुँह, आँख इत्यादि को अंगुलियों से बंद करने पर भीतर एक नाद सुनाई देता है जो बिना किसी आघात के चलता रहता है इसे इसे अनाहतनाद कहते हैं।

अजपा जप से कुण्डलिनी जागृत होकर सुषुम्ना में प्रवेश करती है तब भीतर अनाहतनाद सुनाई पड़ता है उसमें सुरति और प्राण दोनों लीन हो जाते हैं तब नाद के भीतर ज्योति का प्रकाश होता है। अंत में

1. कबीर ग्रंथावली, पद 17
2. बूला शब्दसार – पृ0 6/1, शब्द - 2

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर तथा भुड़कुड़ा के सन्त कवियों ने खसम शब्द आकाश और परमेश्वर दोनों के लिए प्रयुक्त किया है।

अमृत—बौद्ध तांत्रिकों और नाथ पंथियों ने ऐसे रस का उल्लेख किया है जिसे उन्होंने 'अमर वारुणी' कहा है जो कि सहस्रदल में विद्यमान सोम (चंद्र) से स्रावित होता है वज्रयानियों ने इसे सहज रस कहा है जिसे चखने के बाद साधक अमर हो जाता है।

वह रस जो सहस्रार में निरन्तर टपकता रहता है उसे साधक कुण्डलिनी को जाग्रत का चन्द्र नाड़ी के माध्यम से उर्ध्वस्थ कर लेता है उसे ही सन्तजन अमीरस, वारुणी, सहजरस, सोमरस तथा रामरस कहते हैं। इस रस को कुम्भक प्राणायाम तथा खेचरी मुद्रा के द्वारा बनाया जा सकता है। बूला साहब ने इसका उल्लेख किया है—

बूझहु पंडित अचरज एक। सेव बरन तहँ सदा अलेख।
साधि पवन षट चक्र छुड़ावो। तिरवेनी के घाटे आवो।
उनमुनि मुद्रा लागी समाधी। रवि ससि पवनहि राखो बांधी।
चाचरि मुद्रा से प्रीति लगावो। भूचरि मुद्रा से प्रेम बढ़ाओ।
अगोचरि भुङ से आन भुगावो। खेचरि मुद्रा से दरस दिखावो।।[1]

1. बूला शब्दसार – पृ0 16/

सन्त बूला साहब का एक पद द्रष्टव्य है-

गुरु नाम मिलो सच पाया है।
बिसरी देह गेह सुख संपति, जोतिहिं जोति समाया है।
जीतो नगर नवो दर मूंदो, ब्रह्म अमीन तन लाया है।
दसवें द्वार के ताला खोलो, गगन मंडल मठ छाया है।
जहँ नहि अवन गवन कै चिंता, अनँद भयो घर आया है।
संत साध मिलि खेलन लागे, दरसन को फल पाया है।
सतगुरु मो को अलख जखाया, आदि अंत इक साया है।
जन बुल्ला याही विधि खेलो, तब अवधूत कहाया है।।

*

सुरति रहै गागरि के मंझा। यौं जन लय लावै दिन संझा॥ [1]
जैसे गाइ जंगल कौ धावै। पानी पिवै घास चरि आवै
चित्त रहै बछरा के पासा। ऐसी लय लावै हरिदासा॥ [2]

संत सुन्दरदासजी का कथन है कि इस योग से
'आवागमन सकल भ्रम भागै।' [3]

लय प्राप्त होने से जन्म - मरण क्रम तथा भ्रम से छुटकारा मिलता है। संत सुन्दरदासजी इस योग की विशेषता प्रगट करते हुए कहते हैं कि -

यह लय योग अनूप है करै ब्रह्म सामान।
भाग्य बिना नहिं पाइये सत्गुरू कहै सुजान॥ [4]

अर्थात लय योग अनूपम है लय योग साधक को ब्रह्म समान बना देता है। यह सहज प्राप्त नहीं है। इसकी प्राप्ति भाग्य की बात है। कोई ज्ञान सत्गुरू ही कह पाता है।

चर्चा योग -

ब्रह्म तत्त्व की चर्चा करना ही चर्चा योग है। संत सुन्दरदास का यह आग्रह है कि साधक के लिए चर्चा योग की आवश्यकता है।

हठयोग -

हठयोग के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए सुन्दरदास जी ने कहा हैं।

रवि शशि दोऊ एक मिलावै। याही तें हठयोग कहावै। [5]

अर्थात् शरीर में सूर्य नाडी (इडा) तथा चन्द्र नाडी (पिंगला) को सुषुम्ना के साथ मिला देना ही हठयोग हैं।

अष्टांग - योग -

संत सुन्दरदासजी प्रतिपादित करते हैं -

---

(1) सर्वांगयोग प्रदीपिका - द्वितीय उपदेश - छंद 34
(2) वही - छंद 35
(3) वही - छंद 29
(4) वही - छंद 39
(5) सर्वांग योग प्रदीपिका - तृतीया उपदेश - छंद 1

संतजन केवल ज्ञान और भक्त ही नहीं थे, बल्कि उच्च कोटि के योगी भी थे। योग के प्राणभूत सिद्धान्त 'पिण्ड संवित्ति' में उनकी पूर्ण आस्था थी। इसी सिद्धान्त की पुष्टि कबीरदास ने 'जो पिण्डे सो ब्रह्मण्डे' लिखकर की है। अन्य संतों ने भी इस सिद्धान्त की पुष्टि की है काया साधन और काया शोधन का उपदेश देकर।

संतों ने वायु-साधना का वर्णन भी बड़े मनोयोग से किया है। संत कबीर ने पाँच वायुओं को खोजने का उपदेश दिया है, जबकि सुन्दरदास ने दसों वायुओं और उनके स्थानों का शास्त्रीय ढंग से निरूपण किया है। 'उलट पवन षट्चक्रभेद', 'बाँध पवनहिं साध गगनहिं गरज गरज सुनावहिं, अर्ध ऊर्ध्व को खेल कोऊ नर पावहिं जैसे वर्णन विभिन्न संतों में मिलते हैं। यारी साहब के अनुसार जो योगी प्राण और अपान का योग स्थापित करने में समर्थ होता है, वही शब्द ब्रह्म की साधना कर सकता है–

"लैके प्रान अपान मिलावै वाही पवन मैं गगन गजावै"[98]

संत जीवन का प्रमुख लक्ष्य मन और माया को वश में करना होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए योग-साधना अत्यन्त आवश्यक है। दरिया साहब के अनुसार योग दो प्रकार का होता है– (क) पिपीलक योग और (ख) विहंगम योग। दूसरे शब्दों में पिपीलक योग को हठयोग भी कहते हैं। संक्षेप में इस योग की प्रक्रिया यह है कि मूलाधार स्थित कुण्डलिनी को जागरित किया जाय, जिसमें वह सुषुम्ना से ऊपर जाकर शेष पाँच चक्रों (स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा) कामदेन कर हुए सहस्रदल कमल में विलीन हो जाय। तांत्रिकों के अनुसार कुण्डलिनी प्रकृति का प्रतीक है और सहस्रदल कमल ईश्वर या ब्रह्म का। कुण्डलिनी का सहस्रदल कमल में विलयन मानों प्रकृति के बंधन से मुक्त होकर आत्मा का परमात्मा में विलीन होना है; जिसे मोक्ष या निर्वाण कहते हैं। हठयोग के संबंध में आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि ऐसी प्रक्रियाएँ जिनका प्रयोग आवश्यक है।"[99]

17:08
06_chapter 2

इंगला पिंगला सुखमन नारी। बूझहु ताकर भेद बिचारी।।
इंगला बाम चन्द कर पासा। पिंगला दहिन भानु परगासा।।
ताके मद्ध सुखमना अहई। चलै सौ दूनो सुर में लहई।।
पाँच तत्तु तँह करै परकासा। अगिनि बाउ छिति नीर अकासा।।[100]
अगिनि तत्तु सुर ऊपर बहई। भीछन चालि पवन कर अहई।।
प्रीथी सो है चरै चकोरा। नीचै बहै नीर तत्तु जोरा।।
छिन बामै छिन दहिनै बासा। दुवौ सुर चलै सो सत्तु अकासा।।
पाँचो तत्तु सुर माँहीं। पारख अहै साधु जन पाहीं।।[101]

इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों का वर्णन दरिया साहब ने उक्त छन्द में किया है। इन तीन नाड़ियो की साधना के पश्चात् ही षट्चक्र भेदन संभव है। इसीलिए आगे उन्होंने कहा है कि

दरिया तन से ना जुदा, सम किछु तन के माँहि।
जोग जुग्ति करि पाइए, बिना जुग्ति किछु नाहिं।।[102]

किन्तु कबीर ने षट्चक्र भेदन की साधना जिस प्रकार प्रस्तुत की है, वह सभी संतों से स्पष्ट और विस्तृत है। कुण्डलिनी से सहस्रार दल कमल तक पहुँचने के जिन अवस्थाओं को पार करना पड़ता है उसका वर्णन कबीर की रचनाओं में स्पष्ट रूप से किया गया है–

उलटत पवन चक्र खटु भेदे सुंन अनरागी।
आवै न जाइ मरै न जीवै तासु खोजु बैरागी।।[103]

अर्थात् हे वैरागी! पवन को उलट कर (प्राणायाम कर) शरीर के अंतर्गत छः चक्रों को (कुंडलिनी के द्वारा) बेध कर अपनी सुरति (आत्मा) में शून्य (ब्रह्मरंध्र) के प्रति उत्पन्न कर और ब्रह्म न तो आता है न जाता है, न मरता है, न जीता है उसे खोजा। षट्चक्र साधना में प्रक्रियाओं का संबंध शरीर के नियंत्र से है। अतः इसकी सिद्धि पर परमानन्द की जो प्राप्ति होती है, वह स्थायी नहीं रहती। इसके विपरीत विहंगम योग का संबंध शरीर के पिण्ड भाग से न होकर ग्रीवा के ऊपर ब्रह्माण्ड भाग से है। इसके अनुसार आत्मा की सुरति (अन्तर्हष्टि) नेत्र के अष्टदल कमल

स्थित सूची द्वार से होकर ब्रह्माण्ड में प्रवेश करती है। फिर वह इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की त्रिवेणी में मज्जन करते हुए सहस्रदल कमल से होकर बंकनाल के द्वारा चढ़ती हुई 'भँवरगुफा' में प्रवेश करती है; जिसमें अनाहत नाद गुंजायमान होता रहता है। इसकी प्राप्ति योगी को दिव्य–दृष्टि द्वारा होती है। भँवर गुफा से भी ऊपर वह अवर्णनीय लोक है, जहाँ निराकार सतुरूष विराजमान रहता हैं– इसे ही संत दरिया ने 'अकहलोक', 'अवाच', 'अमर नगरी' आदि नामों से अभिहित किया है। संत दरिया ने पिपीलक योग या हठयोग को उतना महत्तव नहीं दिया है जितना 'सुरति योग', 'सहज योग' अथवा विहंगम योग को दिया है। इसमें साधक निरंतर परमानन्द का आस्वादन करता रहता है–

करम जोग जग जीतै चहई। चढ़ि पिपीलक फेरि भव अहई।।
बीहंगम चढ़ि गयेउ अकासा। बैठि गगन चढ़ि देखु तमासा।।
महामुद्रा उनमुनि पेखै। अनवन भाँति मोति तहँ देखै।।
इंगला पिंगला सुखमन घाटा। बंकनाल रस पीवै बाटा।।
खोड़स दल कँवल बिगसाना। लपटि लगै मधुकर ललचाना।।
सरिता तीनि संगम तँह भएऊ। बारि बियारि अम्रित रस पएऊ।।
चन्द सूर दुइ करै बेलासा। उदै अस्त फेरि होहि प्रकासा।।
इंगला चन्द्र बाहिनी कहिया। पिंगला भानु प्रकासित अहिया।।
चारि अवस्था तीनि गुन, पाँच तंतु है सार।
प्रेम तेल तुरि बारिकै, भए ब्रम्ह उजियार।।[104]

17:16

नवनिधिदास जी यद्यपि सीतारमइया सम्प्रदाय के भक्त कवि थे किन्तु निर्गुण पंथधारियों के योग साधना द्वारा भगवान का दर्शन सम्बन्धी उत्कृष्ट इच्छा उनमें भी अवश्य रही होगी। फलतः उन्होंने भी योगाभ्यास पर आधारित प्राणायाम आदि का आनन्द लेते हुए अपने 'घाटो' में वर्णन कर दियक तो ये कोई सगुण उपासक के लिए अछूत की वात नहीं कही जा सकती।

घांटो - मोरि लेख सेजिया भयावनि हो राम सइयां बिनु लागै।
चैत की निदिया दारून भइली रामा सइयाँ सोके गगन
महलिया हो रामा कबो ना जागै।
इंगल पींगल दुइ सांकरि खोरिया सुखमनि खोलि दे
केवरिया हो रामा पीय रंग रागै।
त्रिकुटी महल साइं पलंग डसावल अमिय वृष्टि
झरि लावै ये राम सुधारस पागै।
जन नवनिधि बजावत गावत निसुदिन गगन
महलिया हो राम पीआ आगै।।८।।[1]

नवनिधि दास के निम्न उदाहरणों से सीतारमइया सम्प्रदाय की विशेषताओं का ज्ञान होता है :-

जल में थल में आग्नी दुख तल में सकल प्रतिपल,
सीयाराम रक्षा करै।।१।।
सर्ग पाताल में दुख दिन काल के जहर दरियाव,
सीयाराम रक्षा करै।।२।।
रन में वन में हृदय सुख भवन दरबार में,
सीयाराम रक्षा करै।।३।।
काल औ कर्म में पाप औ धर्म में देश कुल सर्ग में,
सीयाराम रक्षा करै।।४।।[2]

इन पंक्तियों में नवनिधि दास अपने आराध्य सीता-राम से अपनी रक्षा के लिए विनय कर

१ - मगलगीता (हस्तलिखित) घांटो - ११८।

२ - मंगलगीता (हस्तलिखित), पत्र सं० - ८६ का पूर्वाद्ध।

सेत सेज एक तहाँ विछाई।

सुन्दर पुरूष रहे तहँ आई।।[1]

२- बनो श्रृंगार घटा भौ आई। मानो मेघ चला दल छाई।

सारी समय रहत चहुँ फेरा। साजि चली दल पियचित हेरा।[2]

रूपक :- उदाहरण -

१- जाहु जाहु पाती लेइ ऊधो कान्हहि बाँचि सुनाओं।

मन मसि कागज काया कर्म गति काम कला लिखावहु।[3]

२- डोलिया फँदावो मन महरा लेचल पियवा के देश।[4]

शब्दालंकार - अनुप्रास :- उदाहरण -

एक दिन मन मोरा उलट समाना देखलों मैं पिया के अवेस हो।

झिलमिल ज्योति झलामल लौके पावल बास विलास हो।

सुखमुन घटिया के साँकर बटिया हम धन अलप बयेस हो।

हमरो बलमवाँ नयनवाँ के सागर जहवाँ गहुला मोरी बाँह हो।

घटिया ऊपर एक बंगला छवावलों सुन्दर सेज बिछाये हो।

शिवनारायण मंगल गावत संतन हेतु बिचार हो।[5]

उलटवाँसिया :-

शिवनारायण स्वामी ने उलटवासियों का प्रयोग अपने पद में बहुत कम किया है। उलटवासियों को कला का निकृष्टतम विलास मानना ही अधिक उचित है। केवल एकाध स्थल पर इसकी प्रवृति परिलक्षित होती है। एक स्थान पर वह कहते है :-

माई मै तो सबकी भइलो अधिकाई।

जनमत माइ मैं खाइ बइसलों फिर खैलों भाई भोजाई।

---

१ - 'गुरून्यास', पृष्ठ - ३७।

२ - 'गुरून्यास', पृष्ठ - ५०।

३ - 'शब्दावली', चन्दवार की प्रति, पृष्ठ - ७२।

४ - 'शब्दावली', पृष्ठ - १७।

५ - 'शब्दावली', राम मंगल, पृष्ठ - ७, पद - १५।

17:25

सनननन ले राग मधुर सुर, सननन मन हरत साम चट।।२।।

दननन तादिनंदिनं ता सुनि, षननन षसि परत भूमिपट।।३।।

कह कह कह कर कमल चढ़ावत, अननन आनन्द शंभुतट।।४।।

फननन फहरत उर अंचल, बननन देवकी लागी रट।।५।।[1]

इसके अतिरिक्त बहुत सी रचनायें है जो देवकीनन्दन साहब को सगुण मार्गी बताने में समर्थ्य है।

निर्गुण :-

संत कवि देवकीनन्दन साहब के निर्गुण रचना पर यदि दृष्टिपात करें तो देखेंगे कि किस प्रकार अपने निर्गुण निराकार ईश्वर ध्यान लगाते समय अपनी कुण्डलीनि को जगा रहे है। जिसमें इंगला, पिंगला, सुषमना आदि छः चक्रों को भेटते हुए परम ब्रह्म का साक्षात्कार करते है :-

जो पै कोउ एह विधि करनी करै।

पान अपान उदान व्यानहिउरध भरनि भरै।टेक।।

इंगल पिंगल सुषमना एक रस ऐसी ढ़रनि टरै।

सिंघासन दै वेधि चक्र षट त्रिकुटी धरनि धरै।।१।।

मुरूदंड पर जाय विलोकै अम्रीत झरनि झरै।

अजर प्रकास जोति अमि अंतर जगमग बरनि बरै।।२।।

अविगति रूप सोहावन निखत जीअ की जरनि जरै।

देवकी सतगुर क्रीपा करत ही जब तब यह फरनि फरै।।३।।[2]

आत्मतत्व :-

आत्मा के विषय में देवकीनन्दन साहब का विचार भी अन्य संत कवियों से बहुत हद तक समान है। वे आत्मा से कह रहे है कि आत्मा रूपी मन मोह माया रूपी जाल को त्याग दो, क्रोध और लोभ के चक्कर में मत पड़ो नहीं तो ये सब तुम्हें घेर लेंगे और तुम उस असहाय मृग की भांति तड़पते रह जाओगे। इसलिए तत्काल अपने मन से इन विकारों को निकाल कर गुरू (ईश्वर) की आराधना करों :-

ऐ मन निज ऐसी हाल विचारो।

---

१ संत कवि देवकी नन्दन साहब और उनकी रचनायें, रागतिलाना ६३।

२ संत कवि देवकी नन्दन साहब और उनकी रचनायें, राग सोरठ १५, पृष्ठ - ६।

है। जिससे सगुण वाटिका के सभी वृक्ष सुगंध से झुमने लगते है :-

देखो हरि रास रचो बन आजू।
ब्रज युवती सब जूथ-जूथ मिलि निज कर साजति साजु।
गावत राग चढ़ाइ उतारति मोहन सहित समाजु।
ताल मृदंग वांसरी बेनु मधुर धुनि बाजु।।
लटकि लटकि लै ताल मंद गति त्रितति तजि भय लाजु।
देवकी उर सोइ ब्रज वनितानि संग बसों सदा ब्रजराजु।।[1]

एक अन्य सगुण उदाहरण भी देखिये :-

हमारे मन सीता राम जपै।
ज्यों चत्रिक स्वति जल चाहत चंद चकोर लपै।।
ज्यों जल मनि अंबुज जद्यपि तपनि तपै।
सुरति निरति लवलीन होय तिमि अनभ नग्र षपै।।
देवकी ऐसी लगन लागी तेहि माया त्रसित कपै।।[2]

सगुण की सुवास के साथ निर्गुण की खुशवू भी कम न थी क्योंकि गद्दी की शोभा बढ़ाने के वाद संत देवकीनन्दन साहब का निर्गुण ब्रह्म की ओर झुकाव बढ़ ऐसी उनकी रचनाओं को पढ़ने एंव जनश्रुति से ज्ञात होता है। उनकी एक निर्गुण रचना को देकर हम और स्पष्ट करना चाहेंगे :-

अनहद नाद उठत झनकार हो राम।
सनतहि सून्य भयो उजियार हो।।
सुषमन सेज त्रिकुटी के घाट, हो राम।
ठाढ़ी होय जोहति पिया के बाट हो।
सोहं सब्द उठत सुखदाई हो राम।
जानि लियो पिय मोहिं अपनाई हो।।[3]

---

१ - देवकीनन्दन साहब और उनकी रचनायें, पृष्ठ - १५, जोड़ा - ३०।
आचार्य परशुराम चतुर्वेदी।

२ - देवकीनन्दन साहब और उनकी रचनायें, पृष्ठ - ३०, रागकंधरा - ६२।
आचार्य परशुराम चतुर्वेदी।

३ - देवकीनन्दन साहब और उनकी रचनायें, पृष्ठ - ६१, राग घांटो - १८६।

'कनफुकवागुरू' को ही गुरू मान बैठते हैं। इसके अतिरिक्त आज समाज में अनेक स्वयंभू 'गुरू' भी है जो अपने शिष्यों की एक बड़ी टोली के निर्माण में लगे हुए है और उनसे अपनी जीविका चलाने का मार्ग प्रशस्त कर रहे है मगर गुरू का अर्थ होता है अन्धकार को मिटाने वाला (गु = अन्धकार, रू = मिटाने वाला) अर्थात अपने ज्ञान के प्रकाश से जो मानव के अन्दर निहित माया के अन्धकार को मिटा देते है, वही गुरू कहलाने के अधिकारी है। सुबचनदासी का भी अपने सद्गुरू के प्रति बहुत स्नेह था क्योंकि इसका प्रमाण उनकी रचनाओं को पढ़ने से ज्ञात होता है। लगभग प्रत्येक पद में अपने गुरू के नाम का स्मरण की है। सुवचनदासी जी कहती है कि गुरू के नाम का इतना महत्व है कि उनकी कृपा से ब्रह्म (के महल) की प्राप्ति हो जाती है। उस समय बायें चन्द्रमा का प्रकाश दिखता है तथा दाये सूर्य :-

गुरू किरपा जब पावे, गगन (महल) चढि जवे हो ।टेक।।
बांये चन्द्र प्रकाश देखावे, दहिने सुरूज कला दरसावे,
त्रिकुटी घाट नहावे खुद, चक्र बेधि जावे हो ।।१।।
तिल दुरबीन अगमपंथ पावे, अनहद की धुनि में चितलावे,
सत्त पुरूष दरसावे कुंभक कुंड पावे हो ।।२।।
मेरूदंड मारग खुलि जावे, बंक नाल छन छन चढ़ि जावे,
भँवर गुफा मग पावे, उनमुनि नाल समावे हो ।।३।।
मान सरोवर आतम पावे, काग कुमति तजू हंसको जावे,
सुवचन दासी मनभावे हरिको रंग छावे हो ।।४।।[1]

सुवचनदासी का अपने गुरू के प्रति इतना सम्मान है कि वह एक स्थान पर उनको याद करते हुए उनका परिचय भी लिख दी है :-

गुरू याद आ रहा है, हिये कल्क हो रहा है।
गुरू प्यारे के दीदार को, मुझे आस लग रहा है ।टेक।।
बलिया बही गंगा वही कुटिया बिराज रहा है।
कलवारी के किनार पर, मन्दिर चमक रहा है।।१।।
लाड प्यार के अमृत बचन, मुझे स्वप्न हो रहा है।
चरनोदक मिलने बिना, मुझे प्यास लग रहा है।।२।।
गुरू के बिरह की पीर से, घायल मैं हो रहा है।

१ - 'प्रेम तरंगिणी' भाग एक, ठुमरी ७, पृष्ट - ११।

17:36

है जो निम्नांकित पंक्तियों से स्पष्ट किया जा सकता है

भरम सब भागा, गुरू के चरन मन लागा हो रामा ।टेक।।

गुप्त मारग गुरू प्रगट देखावा, जोग जुगुत चित लागा हो रामा ।।१।।

सिद्ध आसन मेरूदंड को तानी, त्रिकुटी मध्ये तीर लागा हो रामा ।।२।।

साधु संगत सतसंग में जागा, प्रेम बिरह अनुरागा हो रामा ।।३।।

विषय भोग विश्टा को त्यागा, नाम अमीरस पागा हो रामा ।।४।।

रसे रसे रंग चढ़न जब लागा, सूतल नागिन उठि जागा हो रामा ।।५।।

वलिया मिले हीरादास गुरू नागा, सुबचनदासी भय भागा हो रामा ।।६।।[1]

सुवचनदासी का सहजज्ञान कर्म को निष्कर्म भाव से करना, भगवान के प्रति समाधिस्थ हो जाना, संसार की चिंताओं से मुक्त हो जाना, शांति रूपी घड़े से संतोषरूपी रस को ग्रहण करना एवं संतों की संगत करना है। इस सम्वन्ध में निम्न चौपाई दृष्टव्य है :-

कर्मकरत निःकर्म हो जावहीं । अद्‌भुत सुख घट सैर लगावहीं।

सार शब्द धुनि में मन अरूझै। गगना गुंजार सुनत मन सरूझै।

१ - 'विज्ञान सागर', चैता -१, पृष्ट - ७१।

हरि रस पियत हो गये मस्ताना। सुखमन रथ चढ़ि भये गलताना।

तन मन लीन समाधि लगावहीं। घट नगरी के खबर ले आवहीं।

घट सुख पाई जग्त सुख फीका। मिटे आवागमन छुटे जग लीक।

जग चिन्ता की अग्नी बुझावै। शांती घट सन्तोष रस पावै।

झरना झरहिं आमृत रस पीया। सत संगत घट अन्दर कीया।

गुरूनानक हीरा सुवचनदासी। जुगल किशोर भये सुखरासी।[1]

सहजयान प्राप्त करने के लिए मन को वश में करना आवश्यक है। यह मन सदैव चंचल रहता है। बिना ईश्वर के शरण में गये चंचल मन को वश में करना सम्भव नहीं है। मन के ही बिगड़ने पर विभिन्न योनियों में जाना पड़ता है। मन को वश में करने पर परम पद की प्राप्ति हो सकती है। मन कभी मरता नही साधना के द्वारा इस पर नियंत्रण किया जा सकता है। मन के वश में होने पर मानव को जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्ति मिलती है। अतः हम कह सकते है कि मन पर नियंत्रण करना ही सहज ज्ञान है :-

के विषय में दी है :-

"योग योग सब कोई कहे, योग न जाना कोय।

अर्ध धार ऊरध चले, योग कहावे सोय।।"[1]

योग योग तभी होता है जब आत्मा की चेतना जो अर्धधार में प्रकृति से संयुक्त हो रही है, वह उर्ध्वधार में ब्रह्म की ओर गमन करने लगती है। इस रहस्य भेद को अनुभव के आधार पर ही समझा जा सकता है। "कर्मफल को छोड़कर आसक्ति लगाकर सिद्धि और असिद्धि में सम होकर तू योग में स्थित हो जाओ यही योग है अर्जुन।"[2] सद्गुरू सदाफल देव जी महाराज ने इसी को स्पष्ट करते हुए अपने योग शिखा में लिखा है :-

अलल पक्षी की गति जब आवे।

उलटि गगन सत्य नाम सुमावे।

योगी करे गगन में वासा।

योग कला पूजे सब आसा।।[3]

इसी अलल पक्षी की ओर संकेत करते हुए स्वामी जी पुनः कहते है :-

अलल पक्ष मही आय कर, कैसे उलटे जाय।

चढ़त उठत उड़त चले, मातु पिता धर पाय।।[4]

योग साधना के प्रमुख तीन मार्ग है :- (क) पिपिल मार्ग - अर्थात चीटियों का मार्ग।

(ख) कपिल मार्ग - अर्थात बन्दर का मार्ग।

(ग) विहंगम मार्ग - अर्थात पक्षी का मार्ग।

सदाफल देव जी महाराज विहंगम (पक्षी) मार्ग के थे। इस विहंगम योग के सन्दर्भ में महर्षि सदाफल देव जी महाराज ने कहा है :-

'विहंग कवन वर ढ़ंग है, उड़े निराल अकाश।

पंथ गमन बाहर नहीं, अंतर सहज प्रकाश।।'[5]

इसी संदर्भ में सदाफल देव जी महाराज आगे कहते है :-

---

१ - 'स्वर्वेद', ४/२/७।

२ - 'गीता', २/४८।

३ - सदाफल देव जी महाराज : 'योग शिखा' से।

४ - 'स्वर्वेद', ४/२/३१।

५ - 'स्वर्वेद', ४/२/३०।

"मीन विहंगम मार्ग है, अनुभव गम पर देव।

देव सदाफल गुरू कृपा, सुरति निरति कर सेव।।[1]"

इस अनुभवगम्य विहंगम मार्ग के द्वारा ही प्रकृति से असंगति होने पर सूरति जब सूक्ष्म होकर निरति बन जाती है। तब आत्मा के शुद्ध चेतन स्वरूप से, गुरू कृपा से, परमात्मा की प्राप्ति होती है। यह विहंगम मार्ग सभी मार्गो से श्रेष्ठ है। स्वामी जी ने स्वंय कहा है :-

सहज योग एक योग है, सब योगन शिर ताज ।

प्रकृति असंग उड़ाव है, पिपिल कपिल गति त्याज ।।[2]

इस प्रकार सद्गुरू सदाफल देव जी महाराज अपने विहंगम मार्ग को सर्वश्रेष्ठ मानते है। सदाफल देव जी महाराज अपने विहंगम योग के साधना को निम्नांकित पक्तियों द्वारा स्पस्ट किये है :-

सहज पलहथी मार कर वा सिद्धासन साध ।

स्वास्तिक पद्मासन लगे सुख शव आसन राध।।

प्रथम काल श्री गुरूचरण, वन्दन बारम्बार ।

आसित आसन ध्याइये, गुरूं मूरति शुभ सार ।।

सुरति फँसी संसार में, ता कहुँ लेहु समेट ।

स्थिर बाँधों लक्ष्य में, त्याग सकल जग ऐंट।।

नियमित दोनो काल में, ब्रहम मुर्हुत्त सुधार।

योगाभ्यास दृढ़ हो चले, सब अगं पुर्ण संवार।।

शैनः शैनः अभ्यास को, आगे लेय बढ़ाये।

मन माया को मारिके, अन्तर बैठे धाय।।

अभ्यासी गुरू गम्य का, अन्तर भू परवेश।

उत्तरोत्तर भू अग्र है, विविध ज्ञान आदेश।।[3]

यही अभ्यास जब आगे बढ़ने लगता है तो योग की भूमि पर उत्तरोत्तर साधक सद्गुरू की कृपा से आगे वढ़ने लगता है। विहंगम योग सचमुच में अद्भूत और अलौकिक है और ईश्वर प्राप्ति का एक मात्र

१ - 'स्वर्वेद', ५/१/५१।

२ - 'स्वर्वेद', ५/१/३६।

३ - 'स्वर्वेद', ४/८/६. १६. १८. ३२.३३।

गंध ग्रहत है नासिका, रसना रस की चूप।।
रसना रस की चूप तुचा सुस्पर्श ही चाहै।
इनि पंचनि कौं फेरि आतम नित्याराहै।।
कूर्म अंगहि ग्रहै प्रभा रवि कर्षय द्रवणं।
इम करि प्रत्याहार विषय शब्दादिक श्रवणं।।[1]

धारणा :–

धारण में प्रत्याहार के द्वारा एकत्र शक्ति को एकाग्र कर बाहर या भीतर चित्त को केन्द्रित करना धारणा कहलाता है। इसके अभ्यास से चित्तवृत्तियाँ स्थिर हो जाती हैं। धारणा की सिद्धि के लिए विद्वानों ने कुछ मन साधना सम्बन्धी मुद्राओं का उल्लेख किया है। उन मुद्राओं में अगोचरी, भूचरी, चाचरी और शाम्भवी का नाम लिया जा सकता है, उदाहरण स्वरूप हम बावरी पंथ संत यारी साहब की निम्नलिखित पंक्तियाँ ले सकते हैं –

आँखि कान नाक मुँह मूदि के निहार देखू,
सुन्न में जोति याही परगट गुरू ज्ञान है।।
त्रिकुटि में चित्त देई ध्यान धरि देखु तहाँ,
दामिनि दमके चाचरी मुद्रा को स्थान है।।
भूचरी मुद्रा सोहाग जागै मस्तक,
भाग पायो सकल निरन्तर की खान है।।
गगन गुफा में पैडि अधर आसन बैठि,
खेचरी मुद्रा अकास फूलै निर्वान है।।[2]

ध्यान :–

ज्ञान की अपरिवर्तित अविचल अवस्था को ध्यान कहते हैं। सांख्य दर्शन में ध्यान को निर्विषय मन की संज्ञा दी गयी है। शास्त्रीय ग्रन्थों

1. डॉ0 त्रिलोकी नारायण दीक्षित : सुन्दर–दर्शन, पृ0– 46।
2. यारी साहब की रत्नावली, पृ0– 20।

आसन और प्राणायाम के बारे में बताया है कि इंगला–पिंगला को नियंत्रित करके सुषुम्ना में आसन लगाने की युक्ति बताई है –

सुषुमन के घर आसन मारो, इंगला पिंगला सुदारी।
सुन्य निरतंर साहब आये, सब घट बसते न्यारी।।[1]

उन्होंने कहा है कि जो साधक शून्य में आसन लगाकर ब्रह्म–सुख का भोग करता है, वह पावन साधक रात–दिन आनन्द मग्न रहता है। उस आनन्द का स्वाद कभी बासी नहीं होता –

मोहन भोग शेष ले बैठे, शुन्य में आसन डासी।
भीखा पावन मगन रैन दिन, टाटक होत न बासी।।[2]

'रहनी अचल थीर करि आसन'[3] कहकर संतों की रहनी, संसारी जीवों से भिन्न होती है, वहीं अपनी शान्त रहनी में ही स्थिर होकर आसन जमा लेता है।

संत भीखा ने प्राणायाम के सन्दर्भ में लिखा है कि बाईं नासिका के बीच की सुषुम्णा नाड़ी का शोधन करके ज्ञान–अग्नि जगावे, प्रज्ज्वलित करें। इन्हीं इंगला पिंगला तथा सुषुम्णा को एकाग्र करके उलटकर उर्ध्वमुखी कर दें। इस क्रिया द्वारा गगन–गुफा के गगन–मण्डल में अनाहद नाद और प्राण का संयोग होता है –

चन्द्र सूर्य एकाग्रह करि, उलटि उर्ध अनुसरै।
नाद बिन्दु का जूह गगन में, मन माया तब टेरे।।[4]

एक दूसरे स्थान पर संत भीखा ने दृष्टि को उलाट करके प्राणायाम करने का उपदेश दिया है –

वैसाख मास फूल पूरन, योग युक्ति प्रानायाम।

1. संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृ0– 117।
2. उपरिवत, पृ0– 139।
3. उपरिवत, पृ0– 85।
4. उपरिवत, पृ0– 93।

18:17

दृष्टि उलटि कै लगि रहै, निशु दिन आठो याम।।[1]

उनके अनुसार पंचे पाँच, खेचरी–भोचरी आदि पाँच मुद्राओं को साधक हठयोग की कठिन विधि से, आकाश में सूर्य तथा चन्द्रमा को बाँधकर अर्थात् दाई–बाई नासिका की साँस को रोककर बीच की सुषुम्ना नाड़ी से गगन गुफा में प्रवेश करके प्राण वायु के द्वारा भीतर प्रकाश का दर्शन हो जाता है।[2]

प्रत्याहार की साधना में सहायक प्रवण जप भी है, ये जप एक लाख बीस हजार संख्या में बताएं गये हैं, किन्तु भीखा साहब ने जप को अधिक महत्त्व दिया है, फिर भी एक लाख बीस हजार जप संख्या का उल्लेख नहीं किया है। प्रवण जाप के स्थान पर 'सोऽहं' के अजपा जाप को ही विशेष महत्त्व दिया है।

प्रत्याहार की चर्चा करते हुए भीखा ने बतलाया है कि साहित्य में सोऽहं जाप की झलक मिलती है –

रमिता राम तूँ अन्तर जासी, सोहं अजपा जपै हौ।[3]

उन्होंने त्रिवेणी के सम्मुख सिर झुकाने का उपदेश दिया है।[4] भीखा ने सुरति–निरति का संकेत करके लिखा है –

सुरति सुभाव निरति लपटानो, दृष्टि रुप अरूझाऊँ।।[5]

वे कहते हैं कि तन, मन और प्राण को न्यौछावर करके प्रभु

---

1. संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृ0– 165।
2. पंचवें पाँचो मुद्रा साधे, ससि अरू सूर अकासे बाँधे।
   प्राणायाम पवन परगासा, सून्य पाँच पर भयो प्रकासा।।
   – उपरिवत, पृ0– 155।
3. उपरिवत, पृ0– 55।
4. मध्य सरस्वती गंगा यमुना, सन्मुख शीश नवावै।
   – उपरिवत, पृ0– 88।
5. उपरिवत, पृ0– 201।

18:18

के चरणों से लिपट जाओ।[1] योग की पाँचों मुद्रा को कहार मानते हुए कहते है –

पालकि सुरति निरति लवलीन। आगे पाँच कहार प्रवीन।।[2]

वे कहते हैं कि पाँच नाड़ियाँ ही पाँच सखियाँ है, जो उस चेतन का गुण गा रही है। उनके संगीत के साथ मृदंग के ताल के साथ, कुछ झनकार से युक्त ध्वनि धमक रही है।[3] संत भीखा योग की सारी विधियों के सिद्ध योगी हैं। हठयोग में प्राणवायु को मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा चक्रों को पार करके सातवें गगन गुफा के सहस्रार चक्र में ले जाया जाता है, परन्तु संत भीखा ने यहाँ शरीर के पंच भूतों को नियंत्रित करते हुए त्रिगुण से पार जाने की बात कही है। उनके मतानुसार प्राणवायु (पवन) को मूल (पृथ्वी तत्त्व) में रोककर, दूसरे आप (जल) में, तीसरे तेज, चौथे स्वयं उसके अपने रुप पवन में, इसको छोड़कर आगे रज पाँचवे में पहुँचे, फिर आगे छठवें तम को पार करके सातवें गगन मण्डल में पहुँच जाय, जहाँ अपरम्पार प्रभु के बसने का स्थान है। इसी चेतन के बोध में फकीर डूबे रहते हैं –

मूल थम्है पवन को भीरा, जो नेकु गहै दिल धीरा।
दूजे आप तिजे तेज अपर्वल, चौथे वायु तन पीरा।।
पचवें रज छठवें तम छोड़ो, सतवें होय मन थीरा।
अपरम्परा बसू की जागह, भीखा बोध फकीरा।।[4]

ध्यान पर अपने पक्ष रखते हुए भीखा ने कहा है कि सतगुरू की

1. तन मन प्रान ताहि पर वारो, रहो चरन में लपटाई।
– संत भीखा की शब्दावली, पृ0– 83।
2.. संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृ0– 160।
3. पाँच सखी गुन गावहिं उहवाँ,
लाल मृदंग उबट कछुक झुन धुमकैला।।
– उपरिवत, पृ0– 212।
4. उपरिवत, पृ0– 105।

18:20

एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि भ्रमर बनकर सुरति की कली पर बैठो।[3] उनके अनुसार परमात्मा चेतन वृक्ष है, जिसमें सुन्दर तथा सुपक्व फल फलता है। उस फल में सुरति लगाकर अन्तर्दृष्टि रुपी विहंग को तेजी से वहाँ तक पहुँचा देना चाहिए। उस फल का स्वाद सुखद तथा दुःख हरने वाला है –

1. संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृ0– 18।
2. इफ्त में इच्छा अविगति बोलै, सत्य शब्द निरधारा।
   – उपरिवत, पृ0– 107।
3. कली बैठु निज मूल सुरति पर, जन होत निरखि निहाल री।
   – उपरिवत, पृ0– 74।

परमातमा चेतन्य रुख तन, रुप सुपकु फल फरन।
दृष्टि विहंग सुरति लेइ जावै, स्वाद सुखद दुख हरन।।[1]

सुरति शब्द योग पर स्थिति स्पष्ट करते हुए लिखा है –

चाँद सूर एक सम सूरति मिलाय दम।
इंगल पिंगल रँग करि सुषमन माठ है।।[2]

संत भीखा ने कहा है कि जिस विधि से अनाहद नाद, ध्वनि करता है, उसी विधि से सुरति लगाने की सलाह देते हैं।[3]

सहज साधना

सहज योग :–

भीखा ने सहजयोग के बारे में कहा है –

सहजहिं दृष्टि लगी रहै तेहि कहिये हरिदास।।
तेहि कहिये हरिदास आस जेहि दूसर नाहीं।
सहजहिं कियो बिचार जाय रहि सरगुरू माहीं।।
सीस चढ़ायो ताहि को हलुक भयो देइ भार।
टहल करे मुख देखि रुख साहब परम उदार।।
भीखा रीझै कृपा करि देवैं रुप प्रकास।
सहजहिं दृष्टि लगी रहै तेहि कहिये हरिदास।।[4]

उन्होंने नाना प्रकार की नाड़ियों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि पुहुषा, पंयस्विनी, गन्धारी, हस्तिनी, कुहू, शंखिनी, अलंबुषा, गणेशिनी और वारूणी आदि नौ नाड़ियों के द्वार को निरूद्ध करके सुषुम्ना में सहज ही

1. संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृ0– 109।
2. उपरिवत, पृ0– 250।
3. जेहि विधि धुधुकत नाद अनाहद, तेहि विधि सुरति लगावै।
   – उपरिवत, पृ0– 71।
4. भीखा साहब की शब्दावली, पृ0– 96।

के सम्बन्ध तथा जीवन की क्षणभंगुरता को व्यक्त करने के लिए सन्तों ने रूपकों को ही माध्यम बनाया है। सन्तों के रूपक प्रायः सावयव है। रेण–रामस्नेही सम्प्रदाय के सन्तों द्वारा आयोजित रूपकों की दूसरी विशेषता यह है कि इन्होंने कवि प्रसिद्धियों का सहारा न लेकर बहुधा उपमानों का चुनाव लोक–जीवन से किया है। कतीपय उदाहरण –

(i) फिर ग्रह बसावो गगन जाय, जहं बिल्ली मृत्यु नं पहुँचे आय।[68]

(ii) काल कीर का जाल न पहुंचै, निर्भय ठौर लुभानी।[69]

(iii) एक मेल हिलमिल हुआ, ज्यूं पाणी में लूण।
पदमाजन दरियावजी, धरे न दूजी जूण।।[70]

रेण–रामस्नेही सन्तों ने कभी कभार अध्यवसित रूपक की भी योजना की है। इस प्रकार के रूपकों में रूपकातिशयोक्ति की भांति केवल उपमानों का ही कथन किया जाता है। सन्त दरियाव का इसी प्रकार का एक योग परक रूपक दृष्टव्य है –

मुरली कौन बजावै हो गगन मंडल के बीच।
त्रिकुटी संगम होयकर गंग–जमुन के घाट।
या मुरली के शब्द से सहज रचा बैराट।।
गंग–जमुन बिच मुरली बाजै उतरदिसि धुन होहिं।
वा मुरली की टेरहिं सुन–सुन रही गोपिका मोहिं।।
जहां अधर डाली हंसा चुगत मुक्ता हीर।
आनन्द चकवा केल करत है मान सरोवर तीर।।[71]

1.3 विभावना :–

जब कारण के बिना ही कार्य हो जाता है तो विभावना अलंकार होता है। रेण–रामस्नेही साहित्य में अगम देश वर्णन प्रसंग में विभावना अलंकार –

(i) जहं जल बिन कंवला बहु अनन्त, जहं बपु बिन भौंरागोह करन्त।

राम गुण गायलै रे साजा थकां शरीर।
पीछे याद न आवसी रे पिंजर व्यापै पीर। टेर
जीवन थकां भज लीजिये रे जेज न कीजै वीर।
फेर बुढ़ापो आवासी रे नैना ढ़रसी नीर।।1।।
अवसर वीतो जात है रे ज्यूं अंजरीको नीर।
फेर न हंसो आवसी रे इण सरवर के तीर।। 2।।[114]

3.5 राग सोरठ :—

यह रात्री में गाया जाने वाला वर्षा ऋतु का राग है। संत पूरणदास का यह पद –

अब हरि कहां गये करूणा केत। टेर
अधम उधारण पतितां पावन कहत पुकार्या नेत।।1।।
मोहि भरोसो लाखांवातां खाली जाय न खेत।। 2।।
सुत अपराध करै बहुतेरा जननी तजत न हेत।। 3।।
पूरणदास पर अति निठुरता अजहूं सार न लेत।। 4।।[115]

3.6 राग गुंड :—

रेण–रामस्नेही संस्थापक संत दरियाव ने राग गुंड में कई पदों की रचना की। अन्य संतों ने भी इस राग में पद रचे है। **उदाहरण :—**

साधो अरट बहै घट मांहि।
जो देखा ताहि को दरसै,
आदि अंत कछु नांहि।।टेक।।
अरध उरध बिच अमृत कूवा,
जल पीवै कोई दासा।।
उलटी माल गगन को चाली,
सहज भरे आकाशा।।[116]

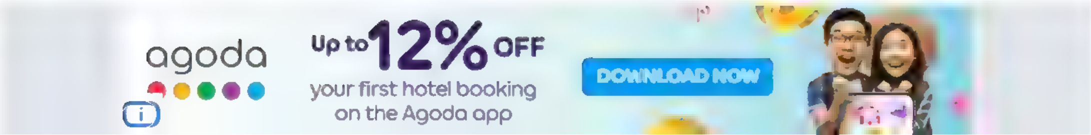

रेण–रामस्नेही सम्प्रदाय के संतों की वाणियों में उलटबाँसियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। संत दरिया साहब की एक उलटबाँसी :–

साधो एक अचंभा दीठा।
कड़ुआ नीम कहै सब कोई, पीवै जाको मीठा।।
बूंद के माँही समुन्द समाना, राई में परबत डोलै।
चींटी के माँही हस्ति बैठा, घट में अघटा ओलै।।
कूंडा माँही सूर समाना, चन्द उलट गया राहु।
राहु उलट कर तार समाना, भोम में गगन समाऊ।।
त्रिन के भीतर अगिन समाना, राव रंक बस बोलै।
उलट कपाल तिल माँहि समाना, नाज तराजू तोलै।।
सतगुरु मिले तो अर्थ बतावै, जीव ब्रहम का मेला।
जन दरियाव जो पद को परसै, सो है गुरु मैं चेला।।[124]

दरिया साहब की इस उलटबाँसी की तुलना कबीर की उलटबाँसी से की जा सकती है –

एक अचंभा देखों रे भाई, ठाढ़ा सिंह चरावै गाई।। टेक।।
पहलै पूत पिछे भई माइ, चेला के गुर लागै पाई।

जल की मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई।।
बैलहिं डावि गूंनि धरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई।
तलि करि साषा ऊपरि करि, मूल बहुत भाँति लागे झड़ फूल।
कहै कबीर या पद को बूझै, ताकूं तिन्यूं त्रिभुवन सूझै।।[125]

इन संतों ने आध्योत्मिक साधना से सम्बन्धित रहस्यवादी उलटबाँसियों की रचना की। संन्त हरखाराम ने इसी प्रकार की उलटबाँसियों की रचना की है–

अैसे ही जोगी जुगत बिचारे, जगत बिसार आसा रे लोय।
गिगन मंडल में अधर दुलीचा, जहां देष्यो अजब तमासा रे लोय।।
रसणा हिरदे नाभ कंवल मंझ, मेर डंड धर ध्याना रे लोय।
मन बुध चित अहंकार सुरत मिल, शब्द चढ़ाया असमान रे लोय।
आला पिंगला दोनु ही दासी, सुषमन सेज संवारा रे लोय।
सुरत सुहागण कहे बड़ भागण, राम भरतार हमारा रे लोय।।
ब्रह्म महल में झिगमिग जागे, अणंद उछाव घणेरा रे लोय।
पंच सषी मिल मंगल गावे, जहां मन परसण जन केरा रे लोय।।
सुन सरोवर जहां तट तीरां, हंसा हीर चुगेला रे लोय।
केल करंता निज घर पहोता, तहां निरंजण राम रमेलारे लोय।।
धूप न छांय रूप नहीं रेषा, अेक अषंडत जोती रे लोय।।
शब्द से चेत अचेत जगाया, जब हम सतगुर परस्या रे लोय।
जन हरषा काया मंझ भीतर, इण बिध निज तत दरस्या रे लोय।।[126]

संत पद्मदास ने भी इस तरह की आध्यात्मिक रहस्यवादी उलटबाँसी की रचना की है–

धुरया नाद घण घोर, भेर मुरली धुन बाजे।
बिन बादला तां बीज, घोर गन अमर गाजे।।

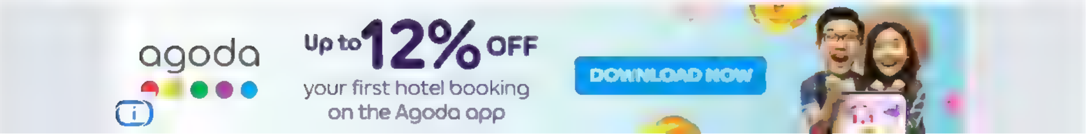

हमारे घर आये राजा राम भरतार।
तन रत कर मैं मन रत करिहुँ पाँचौ तत बराती।
रामदेव मोहि ब्याहन आये मैं जोबन मदमाती।।[133]

रेण–रामस्नेही संतों के काव्य में भी आत्मा–परमात्मा के सम्बंध में विभिन्न भावों को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है–

मीठे राचे लोग सब, मीठे उपजै रोग।
निरगुन कडुवा नीम सा, दरिया दुरलभ जोग।।[134]

संत दरिया ने परमात्मा को 'पति' एवं स्वयं को उसकी 'पत्नी' के प्रतीक से व्यक्त किया है–

पति कू भूला ना बणे, अन्त होगी खवार।
चौरासी के चौंहरे, दरिया पड़सी मार।।
दरिया पतिवरत राम सूं, दूजा सब व्यभिचार।
दूजा देखे वीर सम, गड़ण हार भरतार।।[135]

संत दयाराम ने 'चाकर', 'गुलाम' के रूप में प्रतीक प्रयुक्त करते हुए दास्य भाव की व्यंजना की है–

हम हैं चाकर राम के, खाना जाद गुलाम।
हुकुम हुकुम में हाजरा, कहे सो करणा काम।।[136]

रेण–रामस्नेही संतों के काव्य में साधनात्मक प्रतीक भी बहुल मात्रा में व्यक्त हुए है–

ज्ञान ध्यान का बाजा बाजे, सुरत अनाहद अम्बर गाजे।
धुन बिच शहर सुन्न बाजारा, गृह में लाग रहया झंणकारा।।
चान्द सूरज एकण घर छाजै, त्रिकुटी मांहि ब्रह्म बिराजै।
ईड़ा पिंगला राग उचारै, सुखमण सेजा पीव पधारै।।
झिलमिल ज्योति ब्रह्म की जागी, जुरा–मरण जम का भय भागी।
जन हरका गुरु देव बताया, देव निरंजन देह में पाया।।[137]

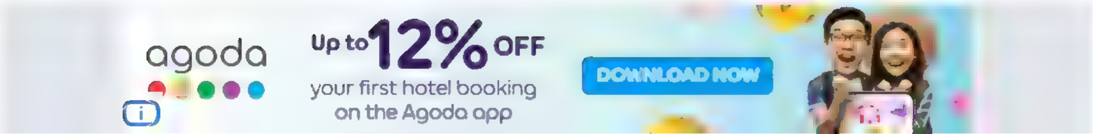

होरी रंगों का त्योहार है, जिसमें आपसी द्वेष भुलाकर प्रेम व भाईचारे की भावना को बढावा मिलता है। संत कवियों ने अपने काव्य में होरी के पदों को अवश्य प्रकट किया है, लेकिन उन्होंने उसे भी अनुभव का विषय बनाकर प्रकट किया है। संत गुलाल साहब का होरी पद–

''नाम रंग होली खेलो जाई, फिर पाछे पछिताई।।टेक।।
यहि तन फागु मचो परमारथ, अवधि बदो दिन ढाई।।1।।
काल अग्नि जब मस्तक जरिहै, छूटो सब चतुराई।।2।।
अगर गुलाल कुमकुमा केसरि, चेतन अबीर उडाई।।3।।
इँगल पिंगल दोउ भरत उर्ध मुख, छिरकत प्रभुहिं बनाई।।4।।
दुइ बिधि फाग बनो या जग में, जिन जैसो मन भाई।।5।।
कह गुलाल यह अगम फागु है, बिन सतगुरु नहिं पाई।।6।।''[149]

हिंडोल सावन के महीने में जब पेडों से झूले बांधकर स्त्रियाँ, किशोरियाँ और बच्चे आनंदित होते हैं तो वे अपने आनंद को हिंडोल राग का गान कर प्रकट करते हैं। संत भक्तों के काव्य में भी इसका प्रयोग मिलता है। कबीर की रचना–

''हरिया पारि हिंडोलना, मेल्या कंत मचाइ।
सोइ नारि सुलषणी, नित प्रति झूलण जाइ।।''[150]

कबीर की अन्य रचना–

''हिंडोलनाँ तहाँ झूलैं आतम रॉम।
प्रेम भगति हिंडोलनाँ, सब संतनि कौ विश्राम।।टेक।।
चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि।
झूलें पंच पियारियाँ, तहाँ झूलै जीय मोर।।
द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अम्रत कौं ग्रास।
जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हँम दास।।
सहज सुंनि कौ नेहरौ, गगन मंडल सिरिमौर।
दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलैं हिंडोल।।
अरध उरध की गंगा जमुना, मूल कवच कौ घाट।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणीं संगम बाट।।
वाद व्यंद की नावरी, रॉम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुँण गाइ ले, गुर गँमि उतरौ पार।।''[151]
''बार बार हरि का गुण गावैं,

गुर गमि भेद सहर का पावै।।टेक।।
आदित करै भगति आरंभ, काया मंदिर मनसा थंभ।।
अखंड अहनिसि सुरष्या जाइ, अनहद बेन सहज मैं पाइ।।
सोमवार ससि अमृत झरै, चाखत बेगि तपै निसतरै।।
बॉणीं रोक्याँ रहै दुवार, मन मतिवाला पीवनहार।।
मंगलवार ल्यौं मॉहीत, पंच लोक की छाडौ रीत।।
घर छाँडै जिनि बाहिर जाइ, नहीं तर खरौ रिसावै राइ।।
बुधवार करै बुधि प्रकास, हिरदा कवल मैं हरि का बास।
गुर गमि दोऊ एक समि करै, ऊरध पंकज थैं सुधा धरै।।
ब्रिसपति बिषिया देइ बहाइ, तीनि देव एकै सँगि लाइ।।
तीनि नदी तहाँ त्रिकुटी मॉहि, कुसमल धोवै अहनिसि नहाँहि।।
सुक सुधा ले इहि ब्रत चढै, अह निसि आप आप सूँ लडै।।
सुरषी पंच राखिये सबै, तौ दूजी द्रिष्टि न पैसै कबै।।
थावर थिर करि घट मैं सोइ, जोति दीवटी मेल्है जोइ।।
बाहरि भीतरि भया प्रकास, तहाँ भया सकल करम का नास।।
जब लग घट मैं दूजो आँणा, तब लग महलि न पावै जाँणा।।
रमिता रॉम सूइ लागै रंग, कहै कबीर ते निर्मल अंग।।''[152] (कबीर)

विवाहोत्सवपरक गीत संत कवियों ने विवाह के गीतों को भी अपने काव्य में संजोया है।

पहाड़ा का अर्थ यदि सरल शब्दों में कहा जाए तो दो और दो का गुना पहाड़ा कहा जाएगा। यदि आमजन को सकारात्मक दिशा की ओर प्रवृत्त करना हो तो यह पद्धति भी प्रयोग में लाई जा सकती है। संत धरनीदास द्वारा इसका प्रयोग किया गया है–

"एका एक मिलै गुरु पूरा, मूल मंत्र जो पावै।
सकल संत की बानी बुझै, मन परतीत बढ़ावै।।1।।
दूआ दुई तजै जो दुबिधा, रजगुन तमगुन त्यागै।
सतगुरु मारग उलटि निरेखै, तव सोवत उठि जागै।।2।।
तीया तीन त्रिबेनी संगम, सो बिरले जन जाना।
तृस्ना तामस छोड़ि दे भाई, तब करु वहँ प्रस्थाना।।3।।
चौथे चारि चतुर नर सोई, चौथे पद कहँ लागी।
हँसि कै परम हिंडोलना झूलै, निरखत या अनुरागी।।4।।
पँचयें पाँच पचीसहिं बस करि, साँच हिये ठहरावै।
इंगला पिंगला सुखमन सोधै, गगन मंडल मठ छावै।।5।।
छठयें छवो चक्र को बेंधे, सुन्न भवन मन नावै।
बिगसत कमल काया करि परिचै, तब चंदा दरसावै।।6।।
सतयें सात सहज धुनि उपजै, सुनि सुनि आनंद बाढ़ै।
सहजहिं दीनदयाल दया करि, बूड़त भवजल काढ़ै।।7।।
अठयें आठ अकासहिं निरखो, दृष्टि अलोकन होई।
बाहर भीतर सर्ब निरंतर, अंतर रहै न कोई।।8।।
नवें नवो दुवारहिं निरखै, जगमग जगमग जोती।
दामिनी दमकै अमृत बरसै, निझर झरै मनि मोती।।9।।

दसयें दस दहाइ पाइ कै, पढ़ि ले एक पहारा।
धरनीदास तासु पद बंदे, अहि निसु बारम्बारा।।10।।"[161]

कजली में शृंगार रस का प्रधान्य होता है। यह सावन के महीने में गाई जाती है। संत महर्षि मेंही की कजली में रचना–

"जौं निज घट–रस चाहो।।टेक।।
तो अपने को पाँच पाप से हरदम खूब बचाहो।।1।।
है एक झूठ नशाँ है दुसरा, तिसर नारि पर के हो।।2।।
चौथी चोरी पंचम हिंसा, दिल से इन्हें अलगाहो।।3।।
'मेंहीं' सहजहिं इन्ह से बचन चहो, गुरु–पद–टहल कमाहो।।4।।"[162]

संकीर्तन का प्रयोग संत कवियों की रचनाओं में प्राप्त होता है। वैसे तो इस शैली का प्रयोग कृष्ण भक्त कवियों द्वारा किया गया। यह शैली कीर्तन के समान ही हैं। संत महर्षि मेंही द्वारा संकीर्तन का प्रयोग–

"सब भव भय भंजन, अध गन गंजन, केवल प्रभु को नाम।।1।।
तम मोह निकन्दन, खण्डन फनदन, नाशन दुखमय काम।।2।।

कह गुलाल मोरी पुजलि आस। जम जीत्यो भयो जोति बास।।''[110]

संत चरणदास ने भी अपने गुरु को बसंत खेलते दिखाया है। सत्संगति सागर के किनारे प्रेम बेलियाँ झूल रही हैं। प्रकृति आनंदित हो रही है। इस वातावरण में बसंत खेला जा रहा है–

''मेरे सतगुरु खेलें नित बसंत।

जाकी महिमा गावत साध संत।।

ज्ञान विवेक के फूले फूल। जहं साखा जोग अरू भक्ति मूल।

प्रेम लता जंह रही झूल। सत संगति सागर के कूल।।

जंह मर्म उड़त है ज्यों। अरू चोबा चरचै निश्चय बाल।

जंह सील छिमा को बरसै रंग। काम क्रोध को मान भंग।।

हरि चरचा जित है नित अनंत। सुनि मुक्ति होत सब जीव जंत।

आन धर्म सब जाहिं खोय। राम नाम की जै जै होय।

कहै चरनदास दुख दुंद जाहिं। जब प्रीतम सुकदेव गहें बाहं।।''[111]

संत तुलसी साहब, सहजोबाई, गुरुनानक, दरिया साहब, भीखा साहब आदि संत कवियों ने भी अनेक बसंतों की रचना कर ज्ञानोपदेश से भरे हुए वैराग्य प्रधान भावों को प्रकट किया है।

हिंडोला गेय पद है। जो सावन में झूले के समय गाये जाने वाले लोकगीतों के अनुकरण पर रचा जाता है। संत कवियों ने हिंडोला में अपने भावों को प्रकट किया है। संत बुल्ला साहब के हिंडोला में प्रकट किए गए भाव इस प्रकार हैं–

''हिंडोला झूलहि आतम नारी।

काम क्रोध जे कर्म पटरी, मन पवन डोरी लाय।

तहँ चाँद सूरज खंभ गड़िया, गंग जमुन बँधाय।''[112]

दरिया साहब का हिंडोला आध्यात्मिक वस्तुओं से बनाया गया है–

''सत्त सुक्रित खम्भ गाड़ेव सुरति डोरी लाए।

कर्म पटरी बइठि के एह झूलहु संत समाए।।

इंगल पिंगल सुखमना जहाँ चले पवन सुधारि।

अरध उरध द्वादस आवै चरन चित्त समारि।।''[113]

कहरा एक प्रकार का लोकगीत है। पं. परशुराम चतुर्वेदी का अनुमान है– ''कहरवा के ढंग से गाए जाने के कारण इसे कहरा कहा गया।''[114] कुछ संतों ने ही इसका प्रयोग किया है। कहरा के कई उदाहरण संत तुलसी साहब के ग्रथों में मिलते हैं। इनके अन्त में हो, रे शब्द लाए गए

हैं–

''होरी राह रमक तततारी, करत जोग जुग चारी हो।

ज्ञान जोग मिसिरित मन मैला, चढ़ि अकास नित खेला हो।।''[115]

''ताल झाँझ भल बाजत आवै

कहरा सम कोई नाचे हो।

जेहि रंग दुलह बियाहन आए।

दुलहिन तेहि रंग राँचे हो।।''[116] (कबीर)

मिले सुर मुनि विहँसि करिके, कहैं हरियश को नित गाई।
पियै अमृत सुनत अनहद, बजे एक तार सुखदाई।।
उठै नागिन फिरै चक्कर, खिलै सब कमल फर्राई।
अन्त तन त्यागि निज पुर को, चलै फिर जग न चकराई।।

(२)

नागा रामदास कहैं भक्तों, सुनिये राम नाम की तान।
सतगुरू करि सुमिरन विधि जानो, खुलि जांय आंखी कान।।
ध्यान धुनी प्रकाश दशालय, जहां सुधि बुधि बिसरान।
सियाराम की झांकी हरदम, सन्मुख में ठहरान।।
नागिन जगै चक्र षट बेधै, सातो कमल फुलान।
अमृत पियो सुनो घट अनहद, सुन मुनि संग बतलान।।
अन्त त्याग तन निज पुर राजै, आवागमन नसान।
पढ़ै सुनै औ गुनै जौन कोई, ताको हो कल्यान।।
सहज समाधि यही है जानो, सुर मुनि कियो बखान।
भांति–भांति की उड़ै सुगन्धै, आनन्द करै उफान।।
नैनन ते शीतल जल जारी, रोम–रोम पुलकान।
गदगद कंठ बोल नहिं फूटै, प्रेम में डूबो ग्यान।।
इँगला पिंगला एक होंय तब, सुखमन नाड़ी जान।
सुखमन नाड़ी रहत चित्रणी, तामें बज्रणी मान।।
वाके भीतर ब्रह्म नाड़ि है, जामें तेज महान।
सुकुल धुवां सम भाषत जानो, ररंकार भन्नान।।
मान बड़ाई त्यागि के भक्तों, बनि जावो मस्तान।
शान्ति दीनता की गोदी में, करो सदा कुच पान।।
छिमा नारि संग ही संग डोलै, पल भरि नहिं अलगान।
नेक हटै तो माया गटकै, ले बोलाय शैतान।।
जब सनतोष पुत्र हो पैदा, मुद मंगल विग्यान।

अमृत पिये सुनै घट अनहद, सुर मुनि गहि उर लावै।।
नागिन जगै चक्र षट नाचै सातो कमल खिलावै।।
उड़ै तरंग रोम सब पुलकै, मुख से बोल न आवै।
तुरियातीत दशा यह जानो, सहज समाधि कहावै।
रामदास नागा कहैं तन तजि, चढ़ि विमान घर जावै।।

(९)

पहिले शंकर भजन बतायो, फेरि वही बजरंग।
तिसरी बार गुरू नानक जी, लीन उठाय उछंग।।
आंखी कान गये खुलि भक्तों, तन मन भरा उमंग।
अमृत छको बजै घट बाजा, सुर मुनि रहते संग।।
सियाराम की झांकी सन्मुख, अद्भुत शोभा ढंग।
ध्यान धुनी परकाश दशालय, जहां रूप नहिं रंग।।
नागिन जगै चक्र सब घूमै, कमलन उड़ै तरंग।
अन्त त्यागि तन निज पुर पहुँचै, गर्भवास भा भंग।।
रामदास नागा कहे भक्तो, भीतर बाहर नंग।
निरभय और निरवैर वहीं है जीति गयो जम जंग।।
रीति सनातन की यही जो कछु दीन लिखाय।
रामदास नागा कहैं भजन करो मन लाय।।

(१०)

शंकर राम नाम के ज्ञाता।
विधि के लिखे कुअंक मिटावत ऐसे हैं प्रभु दाता।
चारि पदारथ बांटन हारे राम सिया के ताता।
कर त्रिशूल भक्तन संग रहते नागा सत्य सुनाता।

दोहा– सेवाहित सिया राम की धरो रूप हनुमान।
नागा कह सुर–मुनि जिन्हें मानत प्रान समान।।
भक्तन की रक्षा करै गदा लिये रहैं संग।
नागा कह सुमिरन करौ विघ्न न व्यापै अंग।।

यह भी ज्ञातव्य है कि अपने प्रधान शिष्य धर्मदासजी को उन्होंने संबोधित कर कहा है।

"सावन भादव बरिसै मेहा
एते सचव हम कहाँ विदेहा।"

(एते सब तुम कथ्यौ विदेहा—यह पाठान्तर है)—"सर्वज्ञ सागर"

मेरे जानते विदेह शब्द का अर्थ यहाँ "मैथिल" है, न कि "जीवनमुक्त।" यह पद तब ही कहा गया था जब कबीरदास जी जीवित थे। पर कबीरपन्थी शङ्कर के समान जीवन की अवस्था मुक्त होना संभव नहीं मानते। उनकी आत्मा तो शरीर के छोड़ने पर ही परमात्मा से मिल जाती है।

कबीरदास के मैथिल होने का संकेत हमें उनकी इस पंक्ति से भी मिलती है—

"बोली हमरी पूर्व की, हमें लखा नहिं कोइ,
हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय॥"

वे काशी में रहते थे। काशी में रह कर उन्होंने यह कहा। अवश्य ही उनकी भाषा काशी के धुर पूरब (दूर पूर्व) प्रदेश की भाषा थी। अर्थात् भोजपुरी क्षेत्र से भी दूर मिथिला में।

हाँ यहाँ एक शंका यह हो सकती है कि यदि कबीरदासजी का जन्म मिथिला में मानने से उपर उद्धृत

"पहिले दरसन मगहर पायो"

इस पंक्ति से विरोध होगा। इसका समाधान यह हो सकता है, "दरसन मगहर पायो" का अर्थ ज्ञानक प्रत्यक्षीकरण है। अर्थात् उन्हें ज्ञान की उपलब्धि मगहर हुई।

इस प्रकार कबीरदासजी जन्म से मैथिल थे, उन्होंने ज्ञानालोक प्रथमबार मगहर में पाया, तथा उसका अभ्यास काशी में किया। हाँ इतना अवश्य रह जायगा कि उनके मगहर में प्रकाश पाने की घटना अनुसन्धेय रह जायगी।

हम विभिन्न हस्तलिखित सूत्रों से संकलित कबीरदासजी के कुछ मैथिली पद यहाँ उद्धृत करते हैं। इन पदों की भाषा विद्यापति की भाषा से सर्वथा मिलती है जैसा कि सहायिका क्रियाओं के अभाव से स्पष्ट है।

१. मंगल

हन्सा पुरुस वर साजि चलल दल, पाँच रतन दस माह हे।
आदि अन्त एकहु नहि बुन्हिकर, अनहद सब्द निसान हे॥
अखण्ड मण्डिल घर चौक पुराओल, मारल झिलहट दीप हे।
मेरुदण्ड सिर पुरहर थापल, चौद सुरुज बरु दीप हे॥
इंगला पिंगला दुहु गंगजमुन बहु, त्रिरवेन संगम घाट हे।
भौर गुफा के कोहबर थापल, दसमि दुआरिका अकवास हे॥
साहेब कबीर जहाँ रमित रमिआहु, गुरुगामी गुरुगमी जानी हे।
विधि बेवहार एक नहि बुनकहु, नामके सिंदुरा लिलार हे॥

06:04

INTERNET ARCHIVE

को बार बार प्रणाम करें।

मूलाल-वाल-कुहरात्-उदिता भवानि
निर्भिद्य-षद्-सरसिजानि तडित्-लतेव।
भूयोपि तत्र विशसि ध्रुव-मण्डलेन्दु
निष्यन्दमान-परमामृत-तोय रूपा (6)

अन्वय-शब्दार्थ

भवानि=हे माता, आप, **मूलालवाल**-मूलाधार रूपी **आलवालात्**=(छोटी सी क्यारी जो पानी से भरी होगी) काश्मीरी में सगडूर, **कुहरात्**=गुफा से, **उदिता**=उदय में आई हुई, **तड़ित् लतेव**=बिजली की कड़क जैसी, **षड्सरिसिजानि**=छ: कमलों को, **निर्भिद्य**=भेदन करती हुई अथवा विकसित करती हुई, **ध्रुवमण्डलेन्दु**=सहस्रार में जो अमृत से भरपूर, इन्दु-क्षमा कला (चन्द्रमा की सौलहवीं कला) है, **निष्यन्दमान**=उसको प्रवाहित करती हुई, **परामृत तोयरूपा**=चित्त-अमृत से भरपूर, **तत्रापि** उसी मूलाधार में, **विशिसि**=प्रवेश करती हो।

अर्थ—हे माता! आप मूलाधाररूपी गुफा से बिजली की कड़क की भांति उदय में आई हुई, छ: कमलों को भेदन करती हुई, सहस्त्रार में पहुँच कर वहाँ स्थित (अमा कला) जो अमृत से भरपूर होती है उसको द्रवित करती हुई यानी प्रवाहित-करती हुई, उसी अपने स्थान भूत मूलाधार में फिर से प्रवेश करती हो।

टिप्पणी—षट्चक्र-स्थान् शिवान् भित्वा देवी गच्छति निष्कलम् (स्वतन्त्र तन्त्र)
अर्थ—षट्चक्रों में स्थित छ: शिवों का भेदन (विकसित) कर देवी निष्कल निर्गुण ब्रह्म पर पहुँचती है।
षड् चक्र:—(1) मूलाधार चक्र (जननेन्द्रिय में दो अंगुल नीचे गुदा से दो अंगुल ऊपर चार

76 of 99

Favorite Share Flag

Panchstavi -Prem Nath Shastri-Hindi

Topics PDF Book - kundalini yoga

06:05
INTERNET ARCHIVE

मूर्ध्नीन्दोः सित-पंकजा-सनगतां, प्रालेय-पाण्डु-त्विषं
वर्षन्तीम्-अमृतं सरोरुहभुवो, वक्त्रेपि रन्ध्रेपि च।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता, चाति-प्रसन्नापि च
त्वाम्-एव स्मरतां स्मरारि-दयिते! वाक् सर्वतो वल्गति (12)

अन्वय-शब्दार्थ

स्मरारि=शंकर की, **दयिते**=हे प्रियशक्ती!, **मूर्ध्नि=शून्यचक्र** (ब्रह्मरन्ध्र) में, **इन्दो**:=चन्द्रमा के जैसे, **सित**=सफेद, **पंकजासन**=कमल के आसन पर, **गतां**=बैठी हुई, **प्रालेय,** बर्फ की भांति, **पाण्डुत्विषं**=निर्मल दीप्ति वाली, **वक्त्रेपि**=मूलाधार पर, **रन्ध्र** आज्ञा चक्र के, **सरोरुहभुव:**=दोनों कमल पतों पर, **अमृतं वर्षन्तीम्**=अमृत बरसाती हुई, **त्वाम्-एव**=तुम्हारे ऐसे ही रूप का, **स्मरतां**=स्मरण करने वालों को, **अच्छिन्न**=निरर्गल, **मनोहरा**=मन को

हरने वाली, **ललिता**=सुन्दर, **अतिप्रसन्न**=निर्मल, **वाक्**=वाणी, सर्वत:=सब ओर से, **वल्गति**=प्रकट होती है।

अर्थ:—हे शंकर की प्रियशक्ती! शून्य चक्र में (ब्रह्मरन्ध्र में) चन्द्रमा के जैसे सफेद निर्मल कमल के आसन पर बैठी हुई, बर्फ की भांति निर्मलदीप्ति वाली, मूलाधार और आज्ञा चक्र के दो दलों पर अमृत की वर्षा करती हुई, तुम्हारे ऐसे ही रूप का स्मरण करने वालों को निरर्गल मनोहर सुन्दर तथा निर्मलवाणियाँ सब ओर से प्रकट होती हैं।

टिप्पणी—पञ्चस्तवीकार ने पहले ही स्तव में कहा है, जिन पर माता का अनुग्रह होता है उन्हें क्या कुछ प्राप्त होता है—
"जाते तवानुग्रहे-वाच: सूक्ति-सुधारस-द्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात्" जिस भक्त पर आप अनुग्रह करती है, उसके मुख से बिना किसी प्रयत्न के अमृतरस को टपकाती हुई उत्तम वाणियाँ निकलती हैं।

61 of 99
Favorite Share Flag
Panchstavi -Prem Nath Shastri-Hindi
Topics PDF Book - kundalini yoga

कारण मनुष्यों के काम नहीं आ रहीं। पहली मुख्य चीज़ है 'विंदु' अथवा शुक्र, इसे यदि ऊपर की ओर उठाया जा सके तो बाक़ी दो भी स्थिर हो जाते हैं। हठयोगियों के अनुसार यदि एक को भी वश में कर लिया जाए तो दूसरे दोनों स्वयं ही वश में हो जाते हैं, वे बाक़ी दोनों चीज़ें हैं – 'वायु' तथा 'मन'।

"अमरौघ शासन"[46] के अनुसार मेरुदंड के मूल में सूर्य और चन्द्र के बीच योनि में स्वयंभू लिंग है जिसे पश्चिम लिंग कहते हैं। यही पुरुषों के शुक्र और स्त्रियों के रज स्खलन का मार्ग है, यही काम, निरंजन और विषहर का स्थान है। वीर्य स्खलन की दो अवस्थाएँ होती हैं। इन दोनों के पारिभाषिक नाम प्रलयकाल और विषकाल हैं। इन दोनों अवस्थाओं में जो आनंद होता है वह घातक होता है। एक अवस्था का अधिष्ठाता काम है और दूसरी का विषहर। तीसरी अवस्था नानाभाव-विनिर्मुक्त सहजानन्द की अवस्था है, इसमें बिन्दु ऊर्ध्वमुख होकर ऊपर उठता है, तब

यह सहज समाधि प्राप्त होती है, जिसमें मन और प्राण स्थिर हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य और प्राणायाम के द्वारा इस बिन्दु को स्थिर और ऊर्ध्वमुख किया जा सकता है। लेकिन इसके लिए नाड़ियों की शुद्धि आवश्यक है। हठयोगी षट् कर्म के द्वारा यही कार्य करता है। इन शुद्धि की क्रियाओं में धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपालभाति आते हैं। नाड़ी शुद्ध होने के पश्चात् बिन्दु स्थिर हो जाता है, मन अचंचल हो जाता है, सुषुम्ना का मार्ग खुल जाता है। वायु शक्ति संयमित होकर सुषुम्ना की मध्यवर्तिनी ब्रह्मनाड़ी के मुख को खुला पाकर उस मार्ग से ऊपर उठती है और इस प्रकार कुंडलिनी ऊर्ध्वमुख होती है। कुंडलिनी के उद्बुद्ध होते ही प्राण स्थिर हो जाता है और साधक शून्य पथ से उस अनहद नाद को सुनने लगता है जो अखंड रूप से सम्पूर्ण ब्रह्मांड में गुंजायमान हो रहा है। फलस्वरूप पहले तो शरीर में समुद्रगर्जन, मेघगर्जन और भेरी गर्जन इत्यादि की ध्वनि सुनाई पड़ती है, फिर मर्दल, शंख, घंटा और घड़ियाल की-सी आवाज़ सुनाई देती है और अंत में किंकिणी, वंशी और वीणा की झंकार सुनाई देती है। लेकिन जैसे-जैसे साधक का चित्त स्थिर हो जाता है, वैसे-वैसे ही इन ध्वनियों का सुनाई देना भी बंद हो जाता है, क्योंकि उस समय प्राण अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है और साधक को बाह्य विषयों से सरोकार नहीं रह जाता। इस तरह से हठयोगी प्राणवायु को निरोध करके कुंडलिनी को उद्बुद्ध करता है और उद्बुद्ध कुंडलिनी क्रमशः षट्चक्रों का भेदन करती हुई अंतिम चक्र सहस्रार में शिव से मिलती है। संतों के अनुसार इसी में ज्योति पुरुष के दर्शन किए जा सकते हैं। कबीर लिखते हैं – "शून्य मण्डल में पुरुष एक ताहि रहै ल्यो लाय।"[47]

का ‘पूर्णचन्द्र’ उदित होता है। यही पूर्णचन्द्र ‘सहज मानुष’ या ‘अधर मानुष’ हैं, यही हैं प्रेम-स्वरूप’। इसी योग के दौरान वे रस-रूप में प्रकृति-देह में क्रीड़ा करते हैं। इसी योग के तीसरे अथवा किसी संप्रदाय में चौथे दिन सहज मानुष को प्राप्त करने या पकड़ने का उपयुक्त दिन होता है। बाउल पंथ सिद्धों, बौद्ध और सूफ़ी तत्वों का एक शांतिपूर्ण, सहृदयपूर्ण मिश्रण है जो आनंदमयी प्रेम के रस में पगा हुआ है। बाउलों द्वारा देह को ईश्वर के मंदिर के रूप में स्वीकार करने का तत्त्व सीधे-सीधे हठ-संप्रदाय से आया है, जो हठयोग का भी मूल-भाव है। बाउल शरीर-विज्ञान से पूर्णरूपेण परिचित हैं, जिसे ‘देहतत्त्व’ कहा जाता है, यह हठ-योगियों के चक्रों की अवधारणा और कुंडलिनी के विज्ञान से बहुत अलग नहीं है। हिन्दू और मुस्लिम साधक दोनों ही इसका अभ्यास करते हैं। बाउलों के अनुसार शरीर में कुछ चक्र मौजूद होते हैं, जो साधना हेतु आवश्यक हैं। मानस रे की पुस्तक ‘द बाउल्स ऑफ वीरभूम’ में उन्होंने इस संबंध में एक बाउल साधक ‘सुधीर दास बाउल’ से बातचीत करके विस्तृत तौर पर जानकारी दी है, सुधीर दास बाउल के ही शब्दों में इसकी जानकारी यूँ रही – “शरीर में पाँच चक्र होते हैं। ये हैं सहस्रार, आज्ञा, मणिपुर, विशुद्ध और मूलाधार। हज़ार पंखुड़ियों वाला सहस्रार सिर के ऊपर अवस्थित होता है। सहस्रार चक्र में 18 कोशिकाएँ या मुक़ाम (कमरे) होते हैं। इस चक्र के केंद्रीय मुक़ाम या मणिकोटा में मोनेर मानुष रहता है। सृजन की मातृ-शक्ति (कुंडलिनी) चतुर्दलीय मूलाधार चक्र में निवास करती है, जो शरीर के सबसे निचले हिस्से में सहस्रार के ठीक विपरीत अवस्थित होता है। सहस्रार और मूलाधार के बीच, 3 और चक्र होते हैं, जैसे आज्ञा, मणिपुर और विशुद्ध। द्विदलीय कमल, आज्ञाचक्र, दोनों भौंहों के बीच विद्यमान होता है, जबकि 10 पंखुड़ियों वाला मणिपुर चक्र और 16 पंखुड़ियों वाला विशुद्ध चक्र क्रमशः वक्ष और नाभि-प्रदेशों में अवस्थित होते हैं। साधना के दौरान मोनेर मानुष (या बिन्दु) अपने निर्धारित स्थान से

नीचे मूलाधार चक्र तक उतरता है। बाउलों की साधना इसी बिन्दु को विशुद्ध चक्र और मूलाधार चक्र के माध्यम से होते हुए ऊपर की ओर आज्ञा चक्र तक ले जाना और फिर आज्ञा चक्र से सहस्रार चक्र तक ले आना होता है। हम बाउल, इसे उर्धरता या उल्टासाधन कहते हैं। जब बिन्दु सहस्रार में पहुँच जाता है (या फिर दूसरे शब्दों में, सहस्रार में मोनेर मानुष का साक्षात्कार हो जाता है) तब साधक की बाह्य चेतना और वह ज्यन्ते मरा की स्थिति में पहुँच जाता है। इस स्थिति का वर्णन मैं शब्दों में नहीं कर सकता। मैं सिर्फ़ महसूस कर सकता हूँ। मैंने इसके जैसी अनुभूति किसी भी सांसारिक उपलब्धि में नहीं की है।“[104]

कौपीन (आनुष्ठानिक रूप से शुद्ध किए हुए नीचे के बाह्य और आंतरिक वस्त्र) देते हैं। बाउलों की इस कठिन साधना संबंधी यह जानकारी हूबहू सुधीर दास बाउल के ही शब्दों में वर्णित कर रही हूँ – "साधना का मूल उद्देश्य मैथुन-क्रिया के दौरान शरीर में वीर्य को अपनी क्षमता अनुसार जितने लंबे समय तक हो सके बनाए रखना है। हमलोग वीर्य को बिन्दु या गुरु-वस्तु अथवा पैतृक-धन कहते हैं। हम इसे बेहद ही सावधानी के साथ संरक्षित करते हैं। साधना का ठीक समय रात्रि-भोजन के दो घंटे बाद होता है, जब पुरुष में श्वसन-क्रिया इड़ा (चन्द्र-नाड़ी) के माध्यम से और स्त्री में श्वसन-क्रिया पिंगला (सूर्य नाड़ी) के माध्यम से चल रही होती है। सम्पूर्ण साधना चार तकनीकों के माध्यम से पूरी की जाती है, जो हैं – दर्शन या नेहार (आंतरिक अवलोकन), स्पर्शना (छूना), मर्दन (घर्षण) और स्तंभन (अवधारण)। साधना के आरंभ में पुरुष और स्त्री दोनों ही साधक योगासन की मुद्रा में एक-दूसरे के आमने-सामने निर्वस्त्र होकर बैठते हैं। पुरुष साधक दर्शन की तकनीक का इस्तेमाल करना शुरू करता है, साथ ही कुछ यौगिक क्रियाएँ जैसे पूरक, रेचक और कुंभक भी करता रहता है। पूरक, कुंभक और रेचक की सही अवधि 1 : 4 : 2 है। पूरक, कुंभक और रेचक का यही अनुपात और काम बीज मंत्र का जाप स्त्री साधिका के शरीर पर स्पर्शना और मर्दन की तकनीकों का उपयोग करने के साथ-साथ तब तक चलता रहता है, जब तक साधना की चरमावस्था नहीं आ जाती। इस दौरान पुरुष साधक स्तंभन प्रक्रिया का आरंभ कर देता है। स्तंभन की क्रिया तब शुरू होती है जब साधक अपनी स्त्री-सहचरी या साधन संगिनी के साथ यौन-मिलन की क्रिया में युगल-आसन की अवस्था में होता है। स्तंभन की प्रक्रिया के दौरान कुंभक की तकनीक साधक को गुदा के संकुचन और प्रसार तथा वीर्य स्खलन को रोक, केंद्रीय सुषुम्ना के माध्यम से जीवन वायु को ऊर्ध्व की ओर ले जाने में सहायता करती है। हम बाउल, इसे 'दोमेर काज' कहते हैं।"[105] इस तरह से यह निश्चित हो जाता है कि बाउलों

की साधना एक प्रकार से मैथुन और योग का सम्मिश्रण है। इस साधना के माध्यम से बाउल अपने बिन्दु या वीर्य को सिर के ऊपरी भाग में संरक्षित कर पाने में सक्षम होते हैं।

इस प्रकार एक तथ्य यह भी सामने आया है कि सतो की 'सुरति शब्द योग' की साधना कही–कही योग की क्रियाओ का सहारा भी लेती है। सत राम रूप जी ने निम्नलिखित पद मे इस साधना का खुलासा किया है–

---

19 हरिदास बाणी, पृ॰ 93, पद–5

20 ग्रथ साहिब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ॰ 36, दोहा–1

"गगन मण्डल मे अलख जगाव रे।
जब जोगी जानूॅ मै तोकूॅ, सुन सिखर पर जा मठ छाव रे।
पहले सजम साध जुगत तूॅ, प्राण अपसन की सध मिलाव रे।
भूचरी, मुद्रा जासूॅ कहिए, कमल कमध पर पव चढाव रे।
चाचरी मुद्रा नैन मझारी, दिष्ट नासिका पै ठहराव रे।
अचरज कौतुक बहु दरसावै, रिद्धि सिद्धि लखि कर ले चाव रे।
खेचरी मुद्रा रसन बढावै, भवर गुफा मे जाय फिराव रे।
अमृत उतरे पीव मगन हो, जोति खुले जहॉ दर्शन पाव रे।
अगोचरी मुद्रा श्रवण बासा, शब्द सुरति की गॉठ लगाव रे।
परम हस अनहद कूॅ जानो, अनहद मिल अनहद हो जाव रे।
उन्मनी मुद्रा दशम द्वारे, लगे समाधि सकल बिसराब रे।
सिद्ध साधक दोऊ करनी त्यागे, रहे ना कोई दूॅजा भाव रे।
पॉचो मुद्रा ये तुम पहिरो, झूठी मुद्रा खोल बगाव रे।
ज्ञान जटा सिर ऊपर राखो, मुक्ति पथ को मन से धाव रे।
या साधन कूॅ कर हित सेती, जीव ब्रह्म की दुई मिटाव रे।
रामरूप चरणदास कहते है, तब जोगेश्वर सॉच कहाव रे।[21]

यहॉ सयम धारण करने, प्राणवायु, अपान वायु की सन्धि मिलाने, भूचरी, चाचरी, खेचरी, अगोचरी, उनमनी मुद्राओ का साधन करके सुरति शब्द की गॉठ लगाकर दशम द्वार मे पहुॅचने की चर्चा की गई है, साथ ही उपदेश दिया गया है कि झूठी मुद्राओ का त्याग करके ज्ञान की जटा बढाने से ही जीव–ब्रह्म का द्वैत भाव मिटता है। अत यहॉ कुछ हठ यागियो की तथा नाथ योगियो की यौगिक–क्रियाओ के माध्यम से सुरति शब्द योग की चर्चा की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सत सुरत शब्द साधना को योग से समन्वित कर रहे है, जबकि दोनो मे काफी अन्तर परिलक्षित होता है। हमारी दृष्टि मे यौगिक–क्रियाऍ या योग 'सुरत शब्द साधना' की प्रथम सीढी है।

---

21 स्वामी रामरूप, मुक्ति मार्ग, पृ॰ 256–257, पद–79

3. शब्द भाग – इसमें 94 पद संगृहीत किये गए हैं। जैसा कि हम पहले भी उल्लेख कर चुके हैं कि 'ईश्वर दास की वाणी' में संकलित घीसा साहब के 101 पद संकलित हैं। इसकी पद संख्या 98 तो कबीर का पद है– "जल बिच मीन पियासी" जो कि घीसा जी के नाम से दिया गया है। इसी प्रकार 'जीतादास' जी के कुछ पद भी घीसा जी के नाम से दिए गए हैं।

इस प्रकार एक तथ्य यह भी सामने आता है कि अतिरिक्त श्रद्धा के कारण, अज्ञान तथा अल्पज्ञता के कारण घीसा के नाम से जो साहित्य उपलब्ध है, वह सारे का सारा घीसा जी का नहीं है। हमारे दृष्टिकोण से क्रम संख्या 34 से 47 तक के दोहे, लगभग साढ़े तीन सौ साखियाँ 93 शब्द या पद घीसा जी के ही हैं।

4.6 घीसा साहित्य का मूल्यांकन

अधिकांश साहित्य का भाव पक्ष बड़ा सबल है। घीसा जी जो बात अपने शिष्यों को या भक्तों को बताना या समझाना चाहते हैं, वह बड़े सरल व स्पष्ट ढंग से इन्होंने समझा दी है। इनकी अभिव्यक्ति बड़ी सफल व स्पष्ट है। कहीं भी प्रच्छन्नता या वागाडम्बर नहीं है। अन्य संतों की भाँति सांगरूपक का प्रयोग करके जब ये नर–नारायणी काया को एक बंगले का रूपक देकर स्पष्ट करते हैं तो एक साहित्य का ज्ञाता जहाँ आनन्द लेता है, वहाँ साधारण पाठक भी भाव–विभोर हुए बिना नहीं रहता है–

बंगला खूब बणा दरवेश, या जल में अलख पुरुष को देख (।।टेक।।)
पाँच तत्त्व का बंगला कीन्हा, त्रिगुण रंग लगाया।
इस बंगले का रहने हारा, फेरि बहुरि नहीं आया।
इस बंगले के दश दरवाजे, बीच पवन दरवेश।
बिना फिराया बंगला फिरता, बिन घूनी बिन टेक। – 1
जैसे लकड़ी ढाक की, ऐसा यह तन देख।
वा में केशर कम रहा, या मैं पुरुष अलेख।
बंक नाल घर कमंद लगाकर जा पहुँचे वा देश।
घीसा संत देख लिया बंगला, सब घट साहब एक।[18] – 2

---

18. सचित्र ग्रंथ साहब, पृ०5, पद–28

2. महन्त रामकिशन दास जी

आप महन्त प्रेमदास जी के पुत्र थे। 1970 में 'दरबार घीसा साहब' के आप दूसरे महन्त बने। अपने पिता की तरह आप भी अत्यन्त शील स्वभाव के माने जाते हैं। वैद्यक का ज्ञान आपको अपने पिता जी से विरासत में उपलब्ध हुआ। आपने सत्संग को बढ़ाया तथा श्रेष्ठ प्रबन्ध किया। छत्री साहब की मरम्मत करवा कर पत्थर का चबूतरा, कुँआ तथा कई पक्के भवन बनवाए तथा बहुत से भक्तों को भेष देकर सत्य नाम की नौका पर बैठाया। घीसा पंथ में प्रसिद्ध संत नकली देव भी इन्हीं के शिष्य थे। वि॰ सं॰ 1999 पोष कृष्णा पंचमी रविवार के दिन आप अमरापुर सिधार गए।[21]

'सचित्र ग्रंथ साहब', 'ग्रन्थ साहिब' में आपके चौदह पद्य विद्यमान हैं। आपका पदों में छींटा अवगत अथवा अवगत दास के नाम से आया है। अतः इनके साहित्य से निम्न पद बानगी के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

कोई दम जीवै तो हरदम नाद बजा लेना (टेक)
धरती फलक एक कर लेंगे रे, अरे हाँ सोहं सुरत समा लेना।
ईड़ा पिंगला साथ पियारे, अरे हाँ सुषमन ध्यान लगा लेना।
निर्गुण राह पड़ा सीधा रे, अरे हाँ, हंसा बाट चढ़ा लेना।
घीसा संत प्रेम शरण मेरे, अरे हाँ मन के खोट मिटा लेना।
अवगत जीवन लाभ यही है, अरे हाँ जिवड़ा मोक्ष करा लेना।[22]

3. महन्त अचलदास जी

आप दरबार साहब के तीसरे महन्त हुए हैं। आप दयालु, विनम्र होने के साथ–साथ शील और सन्तोष के भी साक्षात् स्वरूप माने गए हैं। अभिमान से आप कोसों दूर रहे हैं। आपने बिछुड़े हुए सत्संगियों को पुनः पंथ से जोड़ा और सत्संग का जोर–शोर से प्रसार किया तथा असाधारण परिश्रम करके 'छत्री साहब' के गुम्बज पर संगमरमर लगवाया और दरबार साहब की शोभा बढ़ाई वि॰ सं॰ 2012 में आपने इस पंच भौतिक शरीर को त्यागकर सत्यलोक की राह पकड़ी।[23]

---

21. सचित्र ग्रंथ साहब, पृ॰ ए
22. वही, पृ॰ 118, पद–9
23. वही, पृ॰ ऐ

सकल शरीरों रम रहे अवगत सत्य कबीर।

सत्य स्वरूप सतगुरु मिले, नीर क्षीर के बीर।।[34]

संत जीतादास जब अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख करते हैं तो अपने को कबीर से जोड़ लेते हैं–

पाये प्रसाद भये आनंद, रक्षा करैं गुरु रामानंद।

पाये प्रसाद भये मन धीर, रक्ष करैं सतगुरु सत्य कबीर।

पाये प्रसाद भये अचिंत, रक्षा करैं गुरु घीसा संत।[35]

अतः चाहे यह न माना जाए कि संत घीसा कबीर के शिष्य थे, किन्तु साधना पद्धति में उन्होंने कबीर द्वारा दर्शाये गए मार्ग का अनुसरण अवश्य ही किया है। इसें मीन–मेख नहीं है। कबीर ने 'सुरति शब्द योग' की चर्चा की है तो घीसा पंथियों में 'सुरति शब्द योग' की साधना पद्धति का ही अनुसरण किया गया है। गुरु का महत्त्व भी उतना ही मान्य है जितना कि कबीर की साधना पद्धति में, ब्रह्म, जीव, जगत्, माया आदि के विषय में भी इनमें और कबीर में कोई अन्तर हो ऐसा परिलक्षित नहीं होता है।

1. सुरत शब्द योग/पद्धति

अब यह जानना भी आवश्यक है कि घीसा पंथियों की 'सुरत शब्द पद्धति' क्या है ? 'समर्थ जुलाहे के ताणे' में इस पद्धति का संकेत इस प्रकार किया गया है–

शील सुरत की पाण लगाते, क्षमा की गाढ़ चढ़ाते हैं।

प्रेम मगन होय रेजा बुनते, शब्द सूत सुलझाते हैं।

सुषमन घर में बुणने लागे, लाभ चौगुणा पाते हैं।[36]

2. गुरु-महिमा का बखान

गुरु की महिमा को अद्वितीय माना है। गुरु के बिना ईश्वर से मिलन सम्भव ही नहीं है। इसीलिए गुरु महिमा का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है–

---

34. सचित्र ग्रंथ साहब, पृ॰ 8

35. वही, पृ॰ 44

36. वही, पृ॰ 9

इसका सीधा–सादा अर्थ है कि पहले सुरति (ध्यान) को शब्द (ब्रह्म) से जोड़ना पड़ता है। जब सुरति (जीव) शब्द (ईश्वर) से सम्पृक्त हो जाती है। तब वह सुखसागर प्राप्त हो जाता है। कहने का भाव यही है कि सुरति के विमान पर चढ़ कर ही उस यात्रा पर चलना पड़ता है–

सुरति निरत मन पवन का करके एक मिलाप।
गगन मण्डल में लाइये जपिये अजपा जाप।[19]

यहाँ कहा गया है कि साधक को सुरति (ध्यान लगना है) मन को निरत करके (अर्थात् संसार के सुखों से विमुख करके) पवन (स्वाँस) को इकट्ठा करके गगन मण्डल (त्रिकुटी–नाक का ऊपरी हिस्सा भौहों के बीच) में ध्यान लगाना पड़ता है। आन्तरिक रूप से भीतर भीतर स्मरण भी करते रहना होता है। सुरति निरत दोनों को अधर मण्डल की ओर उन्मुख करना पड़ता है। तब जाकर उस परम शक्ति का दीदार होता है।

संत हरदेदास का इस संदर्भ में कहना है कि साधक को शुरू में प्राणायाम का सहारा लेना पड़ता है। बाद में दोनों भौंहों के बीच (त्रिकुटी) में ध्यान लगाना पड़ता है और भीतर ही भीतर सतगुरु का स्मरण करते रहना है। मनरूपी हाथी को सुरतिरूपी चींटी से बाँधकर तिल के दरवाजे में से निकालना पड़ता है। इस प्रक्रिया के अभ्यास से दृष्टि सूक्ष्म हो जाती है, तब तिल के ओल्ले पीव के दर्शन हो जाते हैं। यह सारी यात्रा विहँगम यात्रा कहलाती है। इसे अधर यात्रा भी कहते हैं। सुरति को पक्षी की तरह शून्य में यात्रा करनी पड़ती है। इस प्रकार साधक साध्य तक पहुँच जाता है। देखिये निम्न पद–

इला पिंगला सोध विचारो, त्रिकुटी माँही सुरति धारो।
त्रिकुटी छज्जे ध्यान धरीजै, सतगुरु को तो संगी लीजै।
चींटी के पग हस्ती बाँधो, तिल दरवाजे माँह को साँधो।
तिल दरवाजे जब बड़े, बहु हल्का हो जाय।
चाल विहंगम चाल कर, जब पहुँचे निज ठाम।।[20]

---

19. ह्रदय प्रकाश, भेद बानी सतगुरु, पृ. 30, 88

20. वही, भेदबानी सतगुरु, पृ. 35, 43, 47

तल्लीन साधु समता पद में समा जाता है। बेनामी प्रभु को पाने के लिए प्राणायाम साधना जरूरी है, कहा भी है–

बेनामी के मिलन की अक्कल दई बताय।
प्राणायाम को साधले, तब बेनामी पाय।।[42]

यहाँ केवल प्राणायाम के साधने से ही बेनामी मिलन सम्भव है। एक अन्य स्थान पर बेनामी जी लिखते हैं–

---

40. बेनामी बोध, पृ॰ 68
41. वही, पृ॰ 68
42. वही, पृ॰ 69

गुदा नेत्र को ढ़क लिया, ढके कान के साल।
रसना से सुर खेंच के, ब्रह्म रंध्र को चाल।।
प्रान पवन के मेल से, भँवर गुफा के बीच।
अनहद के बाजे बजैं, ये हंसन की रीत।।[43]

इसी उक्ति को एक–दूसरे स्थान पर शब्द–भेद से इस प्रकार भी कहते हैं–

सुन नूरी मन बात पियारे, बे नामी का शब्द परख।
प्राणायाम का साधन करके, धँस काया में रत्न परख।।
पदमासन का साधन करके, मेरुदण्ड को सीधा कर।
दोनों नेत्र करो इकट्ठे धरो नासिका के ऊपर।।
सुरत खैंच कर घट भीतर ले, ऊंकार का सुमिरन कर।।
ज्ञान दृष्टि ते अग्नि प्रगट कर, वरण धरो इसके भीतर।।[44]

बार–बार इसी तथ्य की पुष्टि शब्द भेद से बेनामी जी करते हैं। एक अन्य स्थान पर ये कुछ इस प्रकार कहते हैं–

जो तोय आशा राम मिलन की, पदमासन का निश्चय कर।
मेरुदण्ड का साधन करके, गरदंन के ताँई सीधा कर।।
दोनों नेत्र करो इकट्ठे, धरो नाशका के ऊपर।।[45]

यहाँ गुदा, नेत्र को ढकने, मेरुदण्ड (रीढ़) को सीधा करके तन कर बैठने, गर्दन सीधी करने आदि का बार–बार उल्लेख करने का तात्पर्य पद्मासन पर आरूढ़ होना दर्शाया गया है, साथ ही दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर करके प्राणायाम का साधन और ओंकार का जाप ही इनकी साधना की युक्ति प्रतीत होती है।

यहाँ यह तथ्य विचारणीय है कि ये भी कुण्डलिनी जागृत करने की क्रिया पर विश्वास करते हैं। कुण्डलिनी जागृत करने की क्रिया योगियों की है। संतों की नहीं

---

43. बेनामी बोध, पृ॰ 70
44. वही, पृ॰ 141
45. वही, पृ॰ 141

क्योंकि संत तो सहज साधना पर विश्वास करते हैं। संतों के सुरत शब्द अभ्यास में नेत्रों को उलटना होता है। संतों का उपदेश (युक्ति संकेत) त्रिलोकी से ऊपर का बताया गया है। प्राणायाम का महत्त्व संतों ने भी स्वीकार किया है, लेकिन प्रारम्भिक अवस्था में। स्वांस साधन उनका एक सोपान अवश्य है। किन्तु यहाँ तो यह लगता है कि प्राणायाम और पद्मासन ही सब कुछ है। ये दोनों अंग तो हठयोगी साधकों के हैं। जहाँ तक नासिकाग्र भाग पर दृष्टि स्थिर करने की है, वह भी योगियों की है।

संत सहज होता है। प्रत्येक अवस्था में सम रहता है, अविकल्प होता है। इसलिए उसकी यात्रा का आरम्भ 'दो दल घाटी' से होता है अर्थात् 'त्रिकुटी' स्थान पर दृष्टि को स्थिर करता है। यहीं से उसकी यांत्रा आगे बढ़ती है। धीरे–धीरे दृष्टि को फिराता है तथा 'बोलते' को शब्द से मिलाता है। स्वाँस के आवागमन के साथ–साथ 'बोलता' (चेतना या सुरति) शब्द से (ब्रह्म से, राम से, रहीम से, निराकार से) सम्पृक्त हो जाता है। लगता है कहीं न कहीं गड़ बड़ जरूर है। हो सकता है पंथीय विद्वानों ने इसमें कुछ फेर–फार किया हो। एक स्थान पर बेनामी जी ने लिखा है–

> अमर लोक दृग महल है, दो पांषडि के बीच।
> नाम लेत हंसा तिरे, काल नवावै सीस।।[46]

यहाँ बेनामी जी का संकेत हमने ऊपर जिस साधना पद्धति का थोड़ा–सा संकेत किया है, उसी अवधारणा की पुष्टि करता करता प्रतीत होता है। यहाँ दृग महल में 'दो दल वाले' त्रिकुटी कमल की ओर संकेत स्पष्ट है। संत गोपाल दास भी इसी प्रकार की चर्चा करते हैं। देखिये–

> सुमरण बाण बान चले, सुमरण में लो लाय।
> सील सुरत के नेम करके नासा अग्र जमाय।।
> नाभि कँवल नै सोध बावरे, मेर डंड ठहराय।
> त्रिकुटि ऊपर चढ़ कर देखो, जोत झिलमिली वाय।।
> दास नारायण कहैं दास गोपाल चित्त अपना ठहराय।।[47]

---

46. बेनामी बोध, पृ॰72

47. गोपाल दास, पद–83

10.8.8 अन्य पंथीय क्रियाएँ एवं अवधारणाएँ

संत हरिदास जी ने वि० सं० 2017 में 'बेनामी आत्मबोध' नामक ग्रंथ का प्रकाशन करवाया तथा कुछ पंथीय दृष्टियाँ स्थिर कीं। इन्होंने बेनामी पंथ का स्वरूप स्पष्ट किया और कहा कि बेनामी पंथ में हिन्दुओं के पौराणिक देवताओं तथा अवतारों का पूर्ण सम्मान किया जाता है। इसीलिए अलवर में स्थित सार्वजनिक गौशाला में मन्दिर में शिवमूर्ति विद्यमान है, जहाँ प्रातः एवं सायं दोनों समय आरती होती है। बेनामी पंथ में हनुमान जी का भी विशेष मान है। बेनामी पंथ के लोग पौराणिक सनातन धर्म के देवी–देवताओं को आदर देते हुए स्वयं निर्गुण की साधना करते हैं।

गुरु मन्त्र को गुप्त रखने की परम्परा इस पंथ में विद्यमान है। केवल योग्य और अधिकारी शिष्य को ही यह मन्त्र गुरु द्वारा दिया जाता है। अभिवादन में एक दूसरे को बोलते समय 'सत्य राम' का सम्बोधन विद्यमान है।

पौराणिक देवों से सम्बन्धित साखियाँ पंथ में मंत्रवत मानी जाती हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित साखी को लिया जा सकता है–

पहलवान हनुमान हैं, हनै मान अपकाम।
प्राण पवन के मेल से, हनै मान अपमान।।[70]

पंथ में यह अवधारणा विद्यमान है कि इस दोहे को तावीज रूप में बाँधने से तथा जप करने से, कराने से, भूत–प्रेत, पिशाच आदि की बाधा शान्त होती है। इसी क्रम में कबीर के निम्न दोहे को यमदूतों से छुड़ाने वाला माना गया है–

जो मरने से जग डरै, सो मेरे आनन्द।
कब मरिहूँ कब देखिहूँ, पूरण परमानंद।।[71]

बेनामी पंथ के सेवकों, भक्तों, संतों का यह मानना है कि मृत्यु के समय इस दोहे का पाठ करने से भक्त यमदूतों से छूट जाता है, उसे भगवान के दूत विमान में बैठाकर बैकुण्ठ लोक ले जाते हैं। इसी क्रम से शत्रुओं पर विजय पाने के लिए निम्नलिखित दोहा उपयोगी बताया गया है–

---

70. बेनामी आत्म बोध (बेनामी बोध माहात्म्य)

71. वही

बाहर की जो आँख देखती सारा झगड़ा झूठा है।
अन्तर की आँखों से देखो, घट में खेल अनूठा है।।
मन माया की फिरे दुहाई, पाँच पच्चीस ने लूटा है।
ताराचन्द भवसागर तिर गए सतगुरु सिर खँटा है।।[43]

13.5 निहाली बाई

निहाली बाई श्री रामसिंह अरमान की शिष्या और संत ताराचन्द की बुआ (भुवा) थी। इन्होंने ताराचन्द का पालन–पोषण करने में अपनी अहं भूमिका निभाई थी। ये बहुत ही सात्त्विक वृत्ति की महिला थी। साधु संग और सत्संग में इनकी विशेष रुचि थी। इनके नाम से उनके भाव प्रकाश में सात पद संकलित हैं। इन पदों से ही इनकी गति, मति की पहचान करवाने के लिए निम्नलिखित पद देखिये–

शब्द धुन को सुनो रे मेरे भाई।
संत गुरु से तुम लेके नाम, तुम शब्द की करो कमाई।
अनहद बाजे घट में बाजैं, सुन ले ध्यान लगाई।। 1।।
सहज कंवल दल घंटा बाजै, पहली मंजिल लाई।
बंक नाल के रास्ते चालो, पकड़ शब्द की राही।। 2।।
त्रिकुटी मंडल ओहंग सोहंग देते शब्द सुनाई।
त्रिवेणी की संगम में मेरी सुरता मल मल न्हाई।। 3।।
सुन्न माहा, सुन्न बंशी की धुन सुन ले घट के माँही।
भंवर गुफा पी अमीरस प्याला, सार शब्द मिल जाई।। 4।।
सत लोक है मुक्ति धामा, जिसने सुरत चढ़ाई।
इसी रास्ते साधन करके पहुँची निहाली बाई।। 5।।[44]

---

43. ताराचन्द, अनुभव प्रकाश, पृ॰ 149

44. वही, पृ॰ 194

13.6 रूप चंद चौहान

ताराचन्द जी के शिष्य रूपचन्द चौहान हैं। ये सरल गाँव के निवासी हैं। उदरपूर्ति के लिए मैणियारी का व्यवसाय करते हैं। इनकी एक रचना दो भागों में प्रकाशित हो चुकी है। पुस्तक का नाम 'सतगुरु की दात' है। इस रचना में 200 पद तथा कुछ साखियाँ अंग रूप में हैं। दूसरे भाग में 90 पद हैं।

'सतगुरु महिमा का अंग' में 60 साखियाँ हैं। इसमें अपने गुरु ताराचन्द के प्रति इनकी श्रद्धा की अभिव्यक्ति है। अन्त में 102 पद तथा बिनती और आरती संकलित हैं। रूप चन्द चौहान की बानगी के लिए एक पद देखिये–

तीसरे तिल पै लगाले सुरती।
पहने बाबें को एड़ा पींगला, सुखमन सुख की पुरती।। 1।।
झीनी सी धुन में ध्यान लगाले, निकले आवाज कुदरती।।2।।
देख सुहानी रचना अपने घट की, करोरे मन फुरती।। 3।।
सुरत शब्द का खेल निराला, नीचे आकाश ऊपर धरती।। 4।।
जैसे मकड़ी चढ़े ताल पै, घट से ही प्रगट करती।। 5।।
गुरु ताराचन्द कहै गुप्त भेद है, घट में ही पूरन भगती।। 6।।[45]

13.7 पण्डित द्वारकादास

इनका जन्म–स्थान बादली है। सम्वत् 1956 वि॰ की बसंत पंचमी की आधी रात को इनका जन्म हुआ था। इनका बचपन बहुत गरीबी में बीता। आरम्भ में इन पर आर्यसमाज का प्रभाव था। बाद में इन्होंने स्वामी पंथ के हजूर राय शालिग्राम जी के शिष्य महर्षि शिवव्रतलाल जी से सुरतशब्द मार्ग का उपदेश तथा नामदान लिया।[46]

---

45. रूपचन्द चौहान, सतगुरु की दात, पृ॰ 52, 45

46. द्वारका दास, सतगुरु कथा, पृ॰ 3

इसी प्रकार नितानंद के एक अन्य पद में भी सुरत के जगाने का तथा प्रेम मगन होकर गगन में चढ़कर अनहद बंब बजाने का विवरण मिल जाता है। यहाँ सुरत हठयोगियों की कुण्डली की शक्ति के समतुल्य मानी गई है।[55]

संत रामसिंह अरमान अपनी साखियों में सुरत शब्द योग को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– भाइयो सुनो ! शब्द योग बड़ा अद्‌भुत साधन है। जब साधक गुरु की दया से तथा साध संगति से अपनी सुरत उलट कर ध्यान धरते हैं तो वहाँ मुक्ति भी छोटी पड़ जाती है। इस मार्ग में लाखों चन्द्रमा तथा करोड़ों सूर्य का प्रकाश दिखलाई पड़ता है, यह मार्ग करनी का मार्ग है। वाद–विवाद से बचकर बाहरी वेद को छोड़कर अपने भीतर का वेद अर्थात् सूक्ष्म वेद पढ़ना है। इसीलिए यह अदभुत निर्वाणी पद कहा गया है।[56]

संत हरदेदास जी अपनी सुरत को समझाते हुए कहते हैं–

सुन सुरत मछलिया हे, जम, जालिम से तनै बचाऊँ।।
शब्द सिंध में गोता लाले, निर्गुण महल दिखाऊँ।
उलटी कदे ना मुड़कर झाँके, शब्दैं माँहीं समाऊँ।
कागपणे की बाँण छोड़ दे, हंसा तोह बणाऊँ।

---

55. स्वामी नितानंद, सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ॰ 461; 165
56. शब्द योग है अद्‌भुत साधन, सुन लो भाई बानी।
वेदशास्त्र घट में बसते, घटकी अजब कहानी।।1।।
सुरत उलट कर चढ़ गगन में, ध्यान धरे जब ध्यानी।
गुरु की दया और साध की संगत मुक्ति भरे वहाँ पानी।।2।।
लक्षकला ले चन्द्र प्रकाश, कोटिकला ले भाना।
वाचक भेद नहीं वाका जाने, छोड़ो खैंचा तानी।।3।।
क्या कहूँ कहने की नाहीं, आपे में आप समनी।
वाद–विवाद नहीं कुछ प्यारे, जिन देखी तिन जानी।।4।।
सूक्ष्म वेद पढ़ो घट भीतर, न्यारी है राम कहानी।
राम सिंह गुरु शिव व्रत लाल हैं, यह पद है निर्बानी।।5।।
– मास्टर रामसिंह अरमान; अरमान सागर, पृ॰ 120, पद–50

विषै मास कूँ त्याग पियारी, मोती तोहे चुगाऊँ।
सुनं सिषर में घर है तेरा, उल्टी बाट चलाऊँ।
जहाँ सेती तू पड़ी बावरी, तहाँ ही ले चढ़ाऊँ।
हरदेदास तूँ मान पियारी, तोको बोह समझाऊँ।
काम–क्रोध का संग छाड़ दे, जाम॰न मरन मिटाऊँ।।[57]

शब्द योग' की साधना कहीं–कहीं योग की क्रियाओं का सहारा भी लेती है। संत राम रूप जी ने निम्नलिखित पद में इनका खुलासा किया है–

"गगन मण्डल में अलख जगाव रे।
जब जोगी जानूँ मैं तोकूँ, सुन सिखर पर जा मठ छाव रे।
पहले संजम साध जुगत तूँ, प्राण अपसन की संध मिलाव रे।
भूचरी, मुद्रा जासूँ कहिए, कमल कमध पर पव चढ़ाव रे।
चाचरी मुद्रा नैन मंझारी, दिष्ट नासिका पै ठहराव रे।
अचरज कौतुक बहु दरसावै, रिद्धि सिद्धि लखि कर ले चाव रे।
खेचरी मुद्रा रसन बढ़ावै, भंवर गुफा में जाय फिराव रे।
अमृत उतरे पीव मगन हो, जोति खुले जहाँ दर्शन पाव रे।
अगोचरी मुद्रा श्रवण बासा, शब्द सुरति की गाँठ लगाव रे।
परम हंस अनहद कूँ जानो, अनहद मिल अनहद हो जाव रे।

---

59. ग्रंथसाहिब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ० 36, दोहा–1

उन्मनी मुद्रा दशम द्वारे, लगे समाधि सकल बिसराब रे।
सिद्ध साधक दोऊ करनी त्यागें, रहे ना कोई दूँजा भाव रे।
पाँचों मुद्रा ये तुम पहिरो, झूठी मुद्रा खोल बगाव रे।
ज्ञान जटा सिर ऊपर राखो, मुक्ति पंथ को मन से धाव रे।
या साधन कूँ कर हित सेती, जीव ब्रह्म की दुई मिटाव रे।
रामरूप चरणदास कहते हैं, तब जोगेश्वर साँच कहाव रे।[60]

यहाँ संयम धारण करने, प्राणवायु, अपान वायु की सन्धि मिलाने, भूचरी, चाचरी, खेचरी, अगोचरी, उनमनी मुद्राओं का साधन करके सुरति शब्द की गाँठ लगाकर दशम द्वार पहुँचने की चर्चा की गई है, साथ ही उपदेश दिया गया है कि झूठी मुद्राओं का त्याग करके ज्ञान की जटा बढ़ाने से ही जीव–ब्रह्म का द्वैत भाव मिटता है। अतः यहाँ कुछ हठ यागियों की तथा नाथ योगियों की यौगिक–क्रियाओं के माध्यम से सुरति शब्द योग की चर्चा की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये संत सुरत शब्द साधना को योग से समन्वित कर रहे हैं, जबकि दोनों में काफी अन्तर परिलक्षित होता है। हमारी दृष्टि में यौगिक–क्रियाएँ

21:20

ॐ सत्य सिद्धांत प्रकाश ॐ

卐 गुरुदेव का अंग 1 卐

नमो परम गुरु सर्व में, नमो संत बलवंत।
गुरु गुमानी दास जी, तुमको नमो अनन्त ॥1॥
नमो गुमानी दास जी, नमो संत सिर मौर।
नितानन्द की बन्दना, तिहूं ठौर कर जोर ॥2॥
विघन बिनासन भय हरण, परम गुरु सिर ताज।
मंगल दाता सकल के, नमो नमो महाराज ॥3॥
अभय करण तारण तिरण, शरण पड़े की लाज।
नितानन्द की वीनती, नमो नमो महाराज ॥4॥
आप निरंजन परम गुरु, निराकार अवतार।
धरे ध्यान सो अमर है, भवसागर से पार ॥5॥
नमो निरंजन चरण कूं, सतगुरु शीश नवाय।
सन्तों के पग लाग कर, नितानन्द गुण गाय ॥6॥
सतगुरु दाता भक्ति के, अवगत सन्त सहाय।
नितानन्द को लीजियो, सब मिल पार लंघाय ॥7॥
जिनके सिर साहब बसे, तिनको कैसी चिन्त।
नितानन्द लागी रहे, परम गुरु से प्रीत ॥8॥

1 of 558

Favorite Share Flag

Satya Sidhant Prakash

Topics santmat
Collection booksbylanguage_hindi; booksbylanguage
Language Hindi

पांच तत्वो व शरीर स्वांसा से अलग होकर जीते जी के: पद की प्राप्ति करना ही जीवतडा मरना है।

卐 हरजस पद राग मस्त (४) 卐

तूं तो निरगुण पद से मिल रे, ज्ञानी मन नर रे।
तूं तो पारब्रह्म सूं मिल रे, ज्ञानी मन नर रे॥ टेर॥
भगत मुगत की गेल सम्भावो, नांव अमीरस ईमरत खावो।
सांस उसांस की डोर लगावो, रे मन भजन पूर कर ले रे॥ १॥
आसण मार जुगत से बैठो, या घट मांय पवन संग पेसो।
जब तन खोज शब्द मुख कह सो, रे मन आत्म सोजर छिल रे॥ २॥
लिव बंध शिवरण अे निस कीजे, नाभी मांय सूरत मन दीजे।
रसणा जोर ऊतावल कीजे, रे मन बिरहन सुं नित खेल रे॥ ३॥
बंकनाल होय ऊंचा जावो, त्रृकुटी मथ अनाहद बहावो।
सुखमण गंग निसो दिन न्हावो, रे मन दशवें द्वार पर पिल रे॥ ४॥
कह सुखराम सुणो संत आई, निरगुण सूं हम मिलियां मांही।
पीछे आ बिद रीत बताई, रे मन थाका मूसा बिल रे॥ ५॥

हे ज्ञानी मन नर तूं निरगुण पद की प्राप्ति कर और पारब्रह्म में मिल। भगती मुगती का साधन करो। नांव रूपी अमरत पीवो, हर समय सांस उसांस में भजन करना ही सांस उसांस की डोर लगाना है व भजन पूर करना है। आसन लगाकर स्वांसा के साथ भजन करना ही युक्ति से बैठना व पवन संग पेसो है। सारे शरीर में शब्द का अनुभव कर मुखारबिन्द से कहना ही जब तन खोज शब्द मुख कह सो है। आत्मचेतन द्वारा अनुभव करके उसका अनुभव आनन्द लेना ही आत्म सोजर छिल रे है। नाभी में सूरत लगाकर विरह के साथ रसना द्वारा जल्दी से जल्दी हर समय रात दिन भजन करना ही लिव बंध शिवरण करना है। बंकनाल से उलटकर ऊपर त्रिकुटी में बिना किये शब्द का अनुभव होना ही अनहद बहावो है। दशवे द्वार में हर समय सुखमणा में अपने आप भजन होना ही सुखमण गंग में नहाना है। म:फ: है कि सब ही संत सुणो, शरीर व स्वांसा से अलग होकर केवल में मिलना ही निरगुण से मिलना है। आ: पद में लय होना ही थाका मूसा बिल रे है। अर्थात अब जन्मने मरने से बरी हो गई।

卐 हरजस पद राग मस्त (५) 卐

तूं तो ऊण पद सुं मिलजा रे, लाड लडा मन रे। तूं तो आवागवण न ओरूं, सुध लिया मन रे॥ टेर॥
रजोगुण, तामस, ममता त्यागो, सतगुण शील नींद सुं जागो।
रच मच नांव भजन सुं लागो, रे मन उलट आद घर आ रे॥ १॥
बेद कुराण पुराण तजिजे, अेको नांव निकेवल लिजे।
सब तन चूर गिगन घर कीजे, रे मन दशवें द्वार समा रे॥ २॥
त्रृगुण रूप तजो सब भाई, राम बिना सब झूंठ सगाई।
दशवों द्वार ऊगाडो जाई, रे मन नैचल सुं लिव ल्या रे॥ ३॥

मन कर्म बचन त्रिया तजै, कदे न गर्भ निवास।

नितानंद देखै नहीं, नरक कुण्ड की त्रास।।[22]

संतों ने तो यहाँ तक कहा है कि यह 'भग–वती' ही चौरासी का दरवाजा है। अतः इसकी संगत से बचना जरूरी है–

नितानन्द यह भगवती चौरासी का द्वार।

चौरासी से तो बचै, नारी संग बिसार।।[23]

यह काम मनुष्य का सबसे प्रबल शत्रु है और इसका आलम्बन नारी है। अतः जिस घट में काम आकर बस गया है, उसमें साहिब नहीं रह सकता है। गोरख, भरथरी और कबीर की साक्षी इसी तथ्य की पुष्टि करती है–

नितानन्द साहब न मिलै, जो घट ठहरे काम।

साखी गोरख भरथरी, और कबीर राम।।[24]

संतों ने नाद बिन्दु (वीर्य) को स्थिर रखने का उपदेश अपने शिष्यों को दिया है, साथ ही सच्चे ज्ञान को धारण करने का उपदेश दिया है। इसी से यह माया का परदा हट सकता है। इस घट पर माया का ही परदा लगा है, इसी कारण प्रभु के दर्शन नहीं होते हैं। जब इस घट के पट खुलेंगे तो भगवान मिल जायेंगे–

नाद बिंद स्थिर करे गहे ज्ञान विज्ञान।

नितानंद घट पट खुले, ताहि मिलै भगवान।।[25]

इसलिए संतों ने अपने शिष्यों को इतना ही समझाया है कि माया से बचना सहज नहीं है, लेकिन यदि आपने गुरु के ज्ञान को ले लिया तो आप बच सकते हैं, नहीं तो इस जग में बहने वाली यह भगरूपी नदी बड़ी वेगवती है, यह सभी को बहा ले जाती है, किन्तु गुरु के ज्ञान की रस्सी जिसने पकड़ रखी है, उस पर इसके वेग का असर नहीं होता है–

22. स्वामी नितानन्द, सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ॰ 185, 137
23. वही, पृ॰ 186, 140
24. वही, पृ॰ 186, 141
25. वही, पृ॰ 186, 142

के समाधिस्थ होने पर इन्होंने अपने नाम से गद्दी प्रस्थापित की । इनके नाम के अखाड़े ईडर, डाकोर, चाटण, उमरेठ आदि स्थानों पर हैं । ६० वर्ष की आयु में इन्होंने समाधि ली । इनके शिष्यों में कल्याणपुरी, भोजपुरी तथा कुबेरदत्त आदि का नाम लिया जाता है । कहा जाता है कि कुबेरदत्त को महात्मा केवलपुरी के २०० भजन कंठाग्र थे । उनके मुख से सुना हुआ हिन्दी का एक भजन देखिए जो प्राचीन काव्यमाला ग्रन्थ २ में प्रकाशित है —

'शुन घर शेहेर शेहेर घर बस्ती,
दम जागे तन सोता है,
लाल हमारे हम लालन के पे,
दम जागे तन सोता है ।... टेक
एसी धुन में रेना जोगेसर,
बंकनाल रस पीना है,
बंकनाल रस पीओ जोगेसर,
बंकनाल रस पीना है ।
00 00
ध्रुवे पिया प्रहलादे पिया,
पीवे लछमन बाला है ,
दास केवल ने ऐसा पीना,
एक नाम की आसा है ।'

ये पूर्णतः अभेद ब्रह्मज्ञानी थे । द्वैत उनके मन था ही नहीं ।[1] यहाँ तक कि 'कृष्ण-लीला' में भी उन्होंने अद्वैत का ही निरूपण किया है ।[2] केवलपुरी ने पदों

'मनवा मेरा भया मगन, गगन लगन धुनि गावता है,
बुंदनाद सिंघासन बैठे, बाजा छत्रीस बजावता है ।'

'गौलोक के पार गौलोक गाजते,
कृष्ण स्वामी रूप भूप कहावे ।'

गुजरात के सन्त कवियों में यद्यपि योग की कठोर-साधना के प्रति विशेष रुचि नहीं दिखायी देती फिरभी, अष्टांगयोग, प्रणव मन्त्र[१]. `षट-चक्र` `कुंडलिनी` ब्रह्मरंध्र,सहस्त्रार कमल,` `नाभि-कमल` आदि का वर्णन मिलता है। गणपतराम की `षट-चक्र`-लावणी` इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। इसमें कुंडलिनी के ब्रह्मरंध्र तक पहुँचने की स्थिति का वर्णन किया गया है।[२]. गणपतराम ने यहाँ आत्मा को जल की मछली कहा है जो भव में गोते खा-खा कर भटक गयी है। अखा ने ज्ञान एवं भक्ति के साथ योग को साधना का विशिष्ट मार्ग एवं लक्ष्य क बताया है जिसमें साधक `आपा` हारकर परमतत्त्व से लौ लगाता है।[३]. वस्तो द्वारा रचित योग-साधना के पद विपुल प्रमाण में उपलब्ध होते हैं। वस्तो ने कहा है कि हठयोग साधन को शुद्ध करनेवाली प्रक्रिया है। ऐसी `गगन-गुफा में गुरु दीठा` है जहाँ —

`हंस दस्याये रहे च्युगे मुगता मोती,
षटचक्रकु बंध के नरखे पुरण जोती।`
पद – २०, ४१—४२।

शूर तो ढाल लेकर रणभूमि में अपनी रक्षा करता है परन्तु वस्तो-सा लड़ाका कहीं देखा नहीं, जिसके पास —

`ढाल नहीं, मोरचा नहीं,नहीं सीस की आस।
आप अरपी ते तो लड़े, ऐसे वरला दास।।`
पद ८ : ३७—३८।

---

१. `छोटम की वाणी ग्रन्थ १, पृ.२२६।
२. `भजन सागर` पृ. २३३—२३५। पद १६० से १६६।
३. `ज्ञान भक्ति अरु जोग के, मारग तीन अरु तीन लक्ष,
तीन लक्ष उरधार, संसार तें रहत बेरागी।
अंतर `आपा`हार तत्त्वसुं रहत है लागी।
योगी `आपा`हारत जो लहे लागत तारी,
भक्तकुं `ध्येय ध्याता` य जबहि मिलत अनवारी।
ज्ञानी कु सब विचार अखा ! ना रहतपक्षापक्ष,
ज्ञान भक्ति अरु जोग के मारग तीन अरु तीन लक्ष।` `अक्षयरस` ६:२५।

साथ प्राय: 'अनाहतचक्र' तथा 'अनाहद नाद' का भी उल्लेख मिलता है। सन्तों ने सामान्यत: इन दोनों शब्दों के लिए भी 'अनहद' का ही प्रयोग किया है।[१] कुण्डलिनी जब उद्बुद्ध होकर ऊपर की ओर उठती है तो उससे स्फोट होता है, जिसे नाद कहते हैं। नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश ही व्यक्तरूप महाबिन्दु है। ... यह जो नाद और बिन्दु है वह असल में अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनाहत नाद या अनहद नाद का व्यष्टि में व्यक्त रूप है।[२] वस्तुत: ब्रह्मरंध्र में निरन्तर उठने वाले स्फोटक संगीत को अनहद नाद कहा जाता है।[३] इसमें योगी मस्त होकर ईश्वर की ओर ध्यान केन्द्रित करता है।[४] डॉ.रामकुमार वर्मा ने इसका शुद्ध रूप 'अनाहद' बताया है।[५]

'ऐन' और 'गैन':

डॉ.हरिवल्लभ मायाणी ने इस प्रकार के शब्दों की व्युत्पत्ति युग्म रूपों में मानते हुए इन्हें द्विरुक्त शब्दों में स्थान दिया है।[६] 'अटकन-मटकन दही चटाका' की भाँति गुजरात के बच्चों के खेल में प्राय: ये शब्द सहज ही सुने जाते हैं : "एन गैन, दीवा घेन, डाहीनो घोड़ो।" यहाँ 'ऐन गैन' का प्रयोग 'इर्द गिर्द' के अर्थ में हुआ प्रतीत होता है। उर्दू वर्णमाला में भी हमें इस प्रकार के दो वर्ण मिलते हैं, जिनमें अन्तर केवल एक नुक्ते का है। नुक्ता हटा देने पर इन दोनों में वस्तुत: कोई अन्तर दिखायी नहीं देता। गुजरात के संतों

---

१. 'अनहद बाजे तूर, झलमले अखंड नूर'।-गवरीबाई।
२. कबीर-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.४६।
३. 'कबीर का रहस्यवाद'-डॉ.रामकुमार वर्मा। पृ.१६०।
४. 'झलमल ज्योति सो स्थल झमकारा,
अनहद नाद बाजत रतनारा।' -धीरा, प्रा.का.मा.ग्रन्थ २४,पृ.२०६:११।
५. 'कबीर का रहस्यवाद'-डॉ.रामकुमार वर्मा। पृ.१६०।
६. देखिए-'वाग्व्यापार'-डॉ.हरिवल्लभ मायाणी। पृ.२४६।

अमरपुरी अस्थान तेज घन पीव है।
सतगुरु प्रगटे भान जगाया जीव है ॥1॥
दिये पट्टन खोल अरस दरबार है।
पड़ी नगर में रोल नूर झनकार है ॥2॥
बंके औघट घाट दूर की चाल हैं।
पहुंचेंगे कोई संत साहेब के लाल हैं ॥3॥
कायर धरैं न धीर अधर की राह में।
सूरा लंघ लंघ जाहिं समुद्र अथाह में ॥4॥
भाटी चवै अनेक कलाल दुकान हैं।
गिर गिर पड़े अचेत पंथ निर्वान हैं ॥5॥
पीवैं प्याला संत सुराही सोहनी।
खड़ी पिलावैं हूर मुक्त मन मोहनी ॥6॥
मिही महल बारीक बसै जहां राम है।
दुनिया से पारीक हमारा गाम है ॥7॥
शोभा लगी अपार शहर सुख चैन का।
तिल ओल्है बहु द्वार फेरना नैन का ॥8॥

खुल्या दरीबा देश ब्रह्म बाज़ार है।
सौदा करैं सुजान पाक दीदार है ॥9॥
दिल दुरबीन निहार चांदना गैब है।
मकर तार गह पार सजन बे ऐब है ॥10॥
हर पुर रहैं हजूर नूर के लोग हैं।
नूर ही पीवैं खाय नूर के भोग हैं ॥11॥
साहेब की छवि देख छिपैं बहु भान हैं।
अनेक चन्द और भान एक तिलमान हैं ॥12॥
भंवर सेत सुख लेत केतगी फूल है।
परस अंग में अंग देह की भूल है ॥13॥
चमकैं किरन असंख रूप छबि लख रही।
अधर धार निरंकार जोत जगमग रही ॥14॥
कैसे करूं बयान अकह मक्कान का।
अचरज कैसी बात भवन हैरान का ॥15॥
सुक्षम सेज महबूब गुमानी दास है।
नितानन्द धन भाग अलख इकलास है ॥16॥

दो०-दद्दा दीन दयाल के, दरबार हुं का दीद।
अब दम दम दिल ला रहो, दस्तक हुई रशीद ॥37॥
दद्दा दिली दरबार को देख दायम, दस्तगह दूर कीन्हीं परदपोश है रे। दिया दस्त के बीच गैबी खजाना, दुनियां दिल द्वन्द्व से फरामोश है रे॥ दोनों दीन दरम्यान दर्शन गुमानी, आगै नहीं कुछ दुई अफसोस है रे। नितानन्द दुरवीन दीदार द्वारे, हर दम अमी प्याला करो नोश है रे ॥38॥
दो०-धध्धा धुर का पहुंचना, अणीधार पर खेल।
सती सिंधेरा धर चली, यों धुन पर सिर मेल ॥39॥
धध्ध ध्यान धर धनी से धुन लगाओ, धरो धीर धुर पहुंचना दूर है रे। धरी जुगहुं की बाट नौ लाख घाटी, मेरू दंड को लंघै कोई शूर है रे॥ धजा गुमानी राम की अधर फरकै, जहां पहुंच नहीं सके भखभूर है रे। नितानन्द धर ध्यान उस महल पहुंचे, सो तो सजन के नूर में नूर है रे ॥40॥
दो०- नन्ना न्यारा नाम से, किन्हों न देखा नैन ।
नितानन्द को कह सके, गूंगे वाली सैन ॥41॥
नन्ना नहीं कुछ नाम कोई गांव नाहीं, उलट आय कर किन्हो ना कही बातैं। निर्गुण जान लीन्हा हुआ साफ

सीना, आगे कहन की नहीं तो कहुं कातै॥ निकस नेह के कारणे देह जारी, पूछा सती को जली सील कै ताते। नितानन्द दीवार कह कह गुमानी, गूंगे से नहीं सैन दे गए पाते ॥42॥
दो०-पप्पा पाला गल गया, पल में पलटा अंग।
पहली था सो हो रह्या, मिल्या रंग में रंग ॥43॥
पप्पा प्रगट गुरु भान की घाम लागी, पाला पलट पल में गया होय पानी। पानी नाम पाया पिंघला बर्फ माया, पीछे बर्फ की ना पाई निशानी। पारस पलट आपा मिटाया, रहे होय सरवंग कंचन गुमानी। नितानन्द आपा मिटे आप ही है, कहे आप ही अकह अपनी कहानी

तिहरी तिकुटी बिषमीं सन्धि। मूल द्वारे पवना बन्धि

अब्दुल क़ुद्दूस गंगोही

तिहरी तिकुटी बिषमीं सन्धि। मूल द्वारे पवना बन्धि
तहाँ निरंजन रहा समाय बिचारि बिमर कर बूझह जाय

और खोजिए

Subscribe to Sufinama Newsletter to get all the latest updates
सदस्य बनिए
मैंने रेख़्ता फ़ाउंडेशन की गोपनीयता नीति पढ़ ली है और इससे सहमत

तुम जानत नाहीं रे कहाँ फिर जाओगे

ईष्वरदास

तुम जानत नाहीं रे कहाँ फिर जाओगे
नाभि कमल से उठ कें तुम गगन घर पाओगे

वहाँ अनहद बाजै जी अमर फल खाओगे
चालें सुखमन नदिया जी जहाँ मल मल न्हाओगे

बाजै शब्द सोहंगम जी सुन सुन बिगसाओगे
झिलमिल ज्योति चमकती जी सुन्न महल बसाओगे

'ईश्वरदास' घर जा कर के तुम बहुरि नहीं आओगे

वो देश दिवाना जी पहुँचै कोई सन्त जना

ईश्वरदास

वो देश दिवाना जी पहुँचै कोई सन्त जना
वहाँ अनहद बाजै जी चल रही सुखमना

बरखै अमिरत बरखा जी पाया आनंद घना
होवै शब्द अखंडित जी बज रह्या रैन बिना

झिलमिल ज्योति चमकती जी दरसा तारागणा
'ईश्वरदास' सुख मानै जी गुरु कै मैं धन्यधना

और खोजिए

Subscribe to Sufinama Newsletter to get all the latest updates

"मूल कँवल कै बंध लगावौ, आसन पदम सहज समावै।

मूल द्वारा का तार समावै, किलिपं जाप सहज धुन होवै।"[177]

नाथ कँवल का खेल अपार है, उठत नाद कूँ उलट समावै।

सहजई सहजई लील चक्कर मधि, सबद सों सबद सहज मिल जावै।"[178]

इस अवस्था में साधक अनहद नाद का रसपान करता है। यह स्थिति मोक्ष अर्थात् जीवन–मुक्ति की स्थिति भी कही जाती है। इस स्थिति में सांसारिक माया प्रभावहीन हो जाती है –

"मासा नगरी जान न देवै, भँवर गुफा सै उलटा लेवै।

पाँचों तत धीर कर राखै, मुख सै बानी बचन न भाखै।"[179]

इसमें साधक पूर्ण रूप से अन्तर्मुखी हो जाता है। वह विचारों से मुक्त हो जाता है। भाव और अभाव का नाश हो जाता है। इस प्रकार वह मोक्ष की प्राप्ति कर जाता है। इस यात्रा में आगे चलकर गुरु प्रदत्त शब्द मूल शब्द का साक्षात्कार करता है। यह ध्वनि और प्रकाश के रूप में प्रकट होता है। इस ध्वनि से ही अमृत रस की प्राप्ति होती है।

"शंकर धुनि गलतान नाम जप, सोहं सुस्म रसील।

सोहं सुसम बेद धुनि होई, सुक्षम सुन्दर प्रकासी।"[180]

इससे मनोविकारों की विगलित अवस्था प्राप्त होती है, जिसके पश्चात् जीभ विलक्षता का अनुभव करती है। शब्द का यह नाद ही अनहद नाद होता है। सुरत नाद को सुनती है और निरत बिन्दु को देखती है। यह नाद ही सृष्टि के कण–कण

177. संत जैतराम, जैतराम जी की वाणी, पृ. 342

178. वही, पृ. 434

179. वही, पृ. 248

180. वही, पृ. 687

卐 शब्द 175 卐

सुरत मेरी साहेब से राजी ।
पूरे गुरु मेहर से जी, अनहद नौबत बाजी ।।टेक।।
नौ लख घाटी पार दरीबा, चल कर करनी सैला ।
भवन चतुर दस सेती ऊपर, खेलै निर्गुण छैला ।।1।।
गम से दूर अगम से आगे, सहज चम्मका तेज ।
मकर तार मीनी का मार्ग, निरख सजन की सेज ।।2।।
मेरूदंड की शिखर उलंघें, दरसे मुक्ति द्वार ।
शब्द बिचारा घट उजियारा, जगमग जोत अपार ।।3।।
पांच पचीसों तीन तैं, न्यारा एकै अवगत नूर ।
पट को उलट सुलट कर देखा, जहां तहां भरपूर ।।4।।

हद पार बेहद तमाशा, बिरला जन कोई पावै ।
नितानन्द महबूब गुमानी, पल में पद परसावै ।।5।।

卐 शब्द 176 卐

भजमन सुख सागर अवनासी।
हर हर सकल निरंतर घट घट बासी ।।टेक।।
रमता राम जहां चित लाग्या, पूरब पुन्य सोवता जाग्या ।
चहूं दिशा मंगल सुख होय, यह पद पावै बिरला कोय ।।1।।
भांति भांति के ब्यञ्जन पान, भोगत भक्तरूप भगवान ।
निर्मल बानी बुद्ध प्रकाश, सूरज चन्द्र असंख उजास ।।2।।
लक्ष्मी रिद्ध सिद्ध भंडारा, हरहर जन जहां जय जयकारा ।
विघन कलेश न ब्यापे जहां, परमानन्द परम पद तहां ।।3।।
पूरन पद पंकज आधार, जिनके नाहीं आन विचार ।
भौसागर गोपद विस्तार, साध संग उतरैं पार ।।4।।
धन धन गुरु गुमानी दास, प्रेम भक्त हर चरण निवास ।
नितानन्द आनन्द गुन गाय, अन्तर गत रहिये लौ लाय ।।5।।

21:37

जीवत मरना डर नहीं करना, अगम महल पग धार ।
नितानन्द महबूब गुमानी, कर निर्भय दीदार ।।2।।

卐 राग धनासरी शब्द 136 卐

सोई संत सुजान जगत से न्यारा है ।
अस्तुति निन्दा मान बड़ाई, तजे खुदी अभिमान ।।टेक।।
छमा अधीनी छक रहे, राख शील सन्तोष ।
निहकामी निर्मल सदा, सो जन जीवन मोक्ष ।।1।।
तत्व तिलक धारे रहें, संत जनों से भाव ।
गगन मगन गुरु ज्ञान में, धरें अगमपुर पाव ।।2।।
इन्द्रियों से अटके नहीं, तन मन पर असवार ।
अंतरगत के चान्दने, सुने अनाहद तार ।।3।।
सुरत निरत संयम रहे, उनमन दशमें द्वार ।
नाद विन्द अस्थिर करे, बैठे ब्रह्म विचार ।।4।।
अरध उरध में आरसी, निरख गुमानी दास ।
नितानन्द हर चरण में, जुग जुग रहो निवास ।।5।।

卐 शब्द 137 卐

समरथ साहेब मेरा दया कर ।
दर्शन बिना बहुत दिन बीते, बिसर गया वह डेरा ।।टेक।।

जब से वा घर को भुल्या, किया जगत में फेरा ।
माया मोह जन्म बन्धन, मिल लाग पड़ा उलझेरा ।।1।।
विषै लहर प्रमोधै मन को, पांचन माहिं बसेरा ।
तुमको छोड़ जहां चित दीजै, सोई काल का घेरा ।।2।।
स्वामी गुमानी नूर निशानी, दर्शन दो इस बेरा ।
नितानन्द है दास तुम्हारा, जन्म जन्म का चेरा ।।3।।

कर महलों दी सैल महल मतवारा है,
नौ दरवाजे प्रगट दीखैं,
दसमे अनहद खेल सोहंगम तारा है ।।टेक।।
कारीगर करतार उपाया,
चिन कर गुप्त प्रकट कर ल्याया ।
नर नारायण नाम धराया,
भीतर निर्गुण गैल अरस उजियारा है ।।1।।
पांचों तत्व मिलाय बनाया,
नैन झरोखा खूब लगाया ।
अंतरगत में आप समाया,
झलके अबगत छैल जगत से न्यारा है ।।2।।
स्वामी गुमानी राम बताया,
महल माहिं महबूब दिखाया ।
पांच पचीस उलट घर आया,
उतर गया सब मैल नैनों निरख नजारा है ।।3।।
नितानन्द कुछ अजब तमाशा,
माहीं धरनी माहिं अकाशा ।
सूरज चन्द्र असंख उजासा,
भाज गया बद फैल मिला पीव पियारा है ।।4।।

卐 सन्ध्या आरती शब्द 130 卐

हर हर शब्द अनाहद घंटा बाजै ।
आरती अवचल राम जी की साजै ।।टेक।।
पहली आरती प्रेम सों कीजै ।
तन मन धन सतगुरु को दीजै ।।1।।
दूसरी आरती द्वन्द मिटावे ।
साध संगत मिल प्रीत लगावै ।।2।।
तीसरी आरती त्रिभुवन नाथा ।
सदा सुरत स्वामी के साथा ।।3।।
चौथी आरती चरण निवासा ।
चित चेतन हो चढ़ै अकासा ।।4।।
पांचवीं आरती प्रभु जी को प्यारी ।
तेज पुंज में जुग जुग त्यारी ।।5।।
सुख के सिंधु स्वामी गुमानी ।
नितानन्द भज अंतर जामी ।।6।।

卐 राग सौरठा शब्द 101 卐

भजें भगवन्त सो सन्त अवचल,
सदा काल के जाल फिर नाहिं आवैं।
अधर पर आस विश्वास धीरज पकड़,
जुगत कर अटल आसन लगावैं ॥टेक॥
भक्ति की शक्ति से बन्ध आपे बंधै,
सुन्य बिच प्रकट तुत्कार लागै।
पवन ले प्राण ब्रह्मण्ड को चढ़ चले,
आप ही आप सब कला जागै ॥2॥
ईड़ा और पिंगला सुखमना उलट कर,
निरत निरधार में सुरत लावै।
ज्ञान गम्भीर घट उझल अनभव उठे,
अगम की बात प्रत्यक्ष गावै ॥3॥

पांच मुंदरा छः चक्र अष्ट कमल,
चतुर विध ध्यान त्रिकुटी झरोखा।
गुरों की मेहर एक पलक में पट खुलें,
नाम निर्वान निर्गुण अनोखा ॥4॥
स्वप्न का लोक तज सहज मन शुद्ध हो,
जाग्रत घर सुसोपत मेला।
योग निंद्रा तहां भोग अमृत जहां,
तुर्यापद पर नित रंग रेला ॥5॥
सन्त प्याला पीवैं अमर जुग जुग जीवैं,
देह तैं दूर आतम बिचारी।
नगर बेहदपुर पहुंच मंगल करे,
पांच पच्चीस सभ घेर मारी ॥6॥
गैब के तूर अनहद निशि दिन बजै,
बिना रवि चन्द उज्जास भारी।
शास्त्र वेद से परे प्रचार है,
महल में मिले अवगत मुरारी ॥7॥
बिघन बिन जोग सिद्धान्त पै लग रहे,
निर्गुनी भक्ती साहेब गुमानी।
दास नितानन्द दुर्बीन की झलक से,
हुए जीवन मुक्त पतित प्रानी ॥8॥

॥ इति सौरठा संपूर्णम् ॥

21:27
←

卐 शब्द 70 卐

म्हारे गुरु गोविन्द बताया है,
संत वचन अमृत रस बरसे, मिलकर मैल बहाया है ।।टेक।।
ऊरझा सूत अनेक जन्म का, तार तार सुरझाया है ।
माया बंध फन्द खंडन कर, जीवन मुक्त कहाया है ।।1।।
उलटी बाट घाट बहु औघट, जहां से जग में आया है ।
अंजन आंज मांज दिल दर्पण, नूरी दर्श दिखलाया है ।।2।।
सुखमन सेज सिलोना साह, अवगत अलख लखाया है ।
सुख उपज्या दुख किया पयाना, अजर अमर घर पाया है ।।3।।
झीना महल नगर बेगमपुर, स्वामी गुमानी छाया है ।
नितानन्द चरणों का बासी, उनमन होय मन लाया है ।।4।।

卐 शब्द 71 卐

हर नाम बिना मन मैला है,
विनसै देह खेह मिल जावै, फिर चौरासी गैला है ।।टेक।।
पल पल आयु घटै नर तेरी, ज्यों दीपक में तेला है ।
बुझे जोत तन भवन अंधेरा, क्यों इतने पर फैला है ।।1।।
बिसरो राम काम बहु बिगरो, भयो बाट को ढेला है ।
जन्म मरन की ठोकर लागै, दिन चार का छैला है ।।2।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

卐 शब्द 61 卐

हृदय बीच हरी है साधो, हृदय बीच हरी है ।
तुझ ही भीतर साहेब तेरा, सतगुरु खबर करी है ।।टेक।
धर दुरबीन चश्म को फेरो, जग मग जोत जरी है ।
कहीं कहीं गुप्त किसी से प्रगट, सब घट वस्तु भरी है ।।1।।

साहेब नूर नूर के सेवक, नूर ही की नगरी है।
सुक्षम सेज पर तेज चमके, सो घर परापरी है ।।2।।
सूरज क्रोड़ रोम की शोभा, सो छवि अधिक खरी है।
देवी देव भेव नहीं पावत, आतम ब्रह्मबरी है ।।3।।
गंगा जमुना मिली सरस्वती, धारा अधर धरी है।
मारग मीन जाय घर पहुंचै, जिनकी भली सरी है ।।4।।
मकर तार पर मुरली बाजै, बरसत रंग झरी है।
तिल की ओट तमासा देखैं, हाजिर घड़ी घड़ी है ।।5।।
किये निहाल स्वामी गुमानी, जिन पर मेहर फिरी है।
नितानन्द चरनाबिन्द भज, तीनों ताप टरी है ।।6।।

卐 शब्द 62 卐

बहुत दूर वह घर है साधो, बहुत दूर वह घर है।
क्या गावे कुछ समझ दिवाने, मुशकिल गैब सिरर है ।।टेक।
धुरू प्रहलाद धनी की धुन पर, तजा देह का डर है।
महादेव ने भख्या हलाहल, बौरा आठ पहर है ।।1।।
गोरख गोपी चन्द भरतरी, लिया ठेकरा कर है।
दास कबीर सत्य नहीं छोड़ा, दीया सभ वस्तर है ।।2।।
मन सूरा सूली पर चढ़ियां, जब पहुंचा उस दर है।
शेख फरीद कुएं के अन्दर, काया गया बिसर है ।।3।।

卐 हरजस पद राग केदारा (८) 卐

धोबिया रे दरगा जाणो मोय। साहिब जी रा दरसण करणो, रहणो सनमुख होय॥ टेर॥
पांचू बस्तर धोय बेगा, ढील न किजे जाय।
पटक पिछाटर ऐसा धोई, मेल रहे नही मांय॥ १ ॥
धोबी धोबण धोवण चाल्या, पूरब दिशा री बाट।
अरध उरध का मार पछाटा, नाभ कमल के घाट॥ २ ॥
रंगरेजा तुं आव बेगो, पांचा के रंग दिराय।
ऐसो रंग घरक दे भाई, ब्होर न ऊतर जाय॥ ३ ॥
सूरत धोबण मनवो धोबी, चित रंगरेजो मांय।
कह सुखदेवजी यां तीनूं मिलकर, कसर न राखी काय॥ ४ ॥

मन को सम्बोधन कर कह रहे है कि मुझे के:पद आ:पद की प्राप्ति करनी है तथा सतशब्द का अनुभव होना ही साहिब के दर्शन करना है व सनमुख रहना है। पांच तत्वो के शरीर से भक्ति कर जीते जी पांच तत्वों के शरीर से अलग होना ही पांच बस्तर धोना है। जन्म मरण में वापिस नही आना ही मेल नही रहना है। पूर्व दिशा में धोबी मन, धोबण सूरत लगाकर सांस उसांस में भजन करना ही पिछाटा मारना है। रंगरेजा चित से पांच याने तन मन वचन सूरत निरत को भक्ति में लगाना ही इनके रंग दिराना है। इन पांच अंगो से निरन्तर भक्ति होती रहती है। यही रंग नही उतरना है। सूरत धोबण मन धोबी चित रंगरेजा है। मन सूरत व चित इन तीनो को लगाकर भक्ति करने से कोई कसर नही रहती।

卐 हरजस पद राग केदारा (९) 卐

जुग में सोई जन ऊतरे पार। और शकल सब भांड बिगोवा, कियो भेष कूं खुवार॥ टेर॥,
भगत सोई तन मन अरपे, जोगी निरदावे होय।
और भेष सब पेट भरणिया हो, जगत बिगाडी जोय॥ १ ॥
अडद ऊडद की डोर संभावे, चले पिछम की बाट।
बंकनाल होय गढ पर चढिया, न्हावे त्रगुटी घाट॥ २ ॥
सो जन गढ चढ ध्यानज धारे, ऊपजे ब्रहम गिनान।

कह सुखदेव सो जोगी बेरागी, और करम की खान॥ ३ ॥

संसार में वो ही जन पार उतरेंगे जो भेद से भक्ति करने वाले है तथा बिना भेद से भक्ति करने वाले भांड जैसे है। मनुष्य जन्म पाकर भक्ति करके भी आवागवण से रहित नहीं हुये, यही मनुष्य भेख को खराब करना है। तन मन लगाकर भक्ति करे, वह भगत है। जोगी वही जो अहं भाव से रहित हो। मनुष्य शरीर पाकर केवल पेट भरने के लिए गलत ज्ञान प्रस्तुत करके जगत को बिगाड़ने का काम करता है। उठते बैठते श्वांस में भजन करना ही अडद उडद की डोर संभालना है व बंकनाल में ऊलटना ही पिछम के रास्ते चलना है। बंकनाल को पार करके दो पांख के कंवल से अनन्त पांख के कंवल तक शब्द का सूरत से ध्यान करना ही त्रिकुटी में न्हाना है। व के:पद की प्राप्ति करना गढ पर चढना है। के:पद आ:पद की प्राप्ति करना ही ब्रह्म ज्ञान उपजना है, वे ही जोगी बैरागी है। दूसरे साधन से कर्म कटते नहीं है वापस जन्म मरण में आना पडेगा। यही कर्म की खान है।

卐 हरजस पद राग केदारा (१०) 卐

प्राणियां रे नांव गहो तत्त सार। निरगुण बिना सब नांव सारा, सबे काल की चार।
सुरगुण नांव अनेक जुग में, बिन लेखे बिन पार॥ टेर॥
कनफूंका गुरु आन तज रे, तजिये सो संसार।
वाय शब्द बकवाद तजिये, सतगुरु ज्ञान विचार॥ १ ॥
वेद कुराण पुराण तजिये, तजिये काम विकार।
मैं ते दुबध्या दुरमत तज रे, फोडो भरम की पार॥ २ ॥
लोई लाज मरजाद तज रे, तजिये गरब गिंवार।

22:00

卐 हरजस पद राग केदारा (३) 卐

नही रे ऐसो मोसर दूजो कोय। इण सावे कोई हंस परणो, से सब मिलजो मोय॥ टेर॥
निर्मल सावो छांट के ओ, सतगुरु दीनो लाय।
त्रिकुटी तोरण बांध के हो, परण्या ब्रहम सुन्न जाय॥ १॥
अर्ध उर्ध बिच ब्याव रचयो है, चडी है नांव बरात।
पिछम गेल होय धुन्न शब्द की, चालत है दिन रात॥ २॥
गिगन सेहर जहां जाय पहुंता, घुरया है नाम निशाण।
अला पिंगला सुखमण नारी, लाई है सेज पर तांण॥ ३॥
चंवरी मांडी ब्रहम सुन्न में, त्रिगुटी सामेलो होय।
बाजा बाजे हीरा बरसे, जोत झिलामिल होय॥ ४॥
सामेलो ले चालिया हो, परण्या ब्रहम सुन्न जाय।
जन सुखदेवजी मेलां पोडियां, आणंद सेज बिछाय॥ ५॥

मनुष्य जन्म प्राप्त कर मोक्ष की प्राप्ति करना चाहे वो सब मेरा सत ज्ञान धारण करो। परमात्मा ने मनुष्य जन्म दिया, यही निर्मल सावा छांट के दिया है। सतगुरु विधि से साधन करके त्रिकुटी में पहुंचना ही तोरण बांधना है। बह्मण्ड से ऊपर निरंजन निराकार पद पारब्रह्म पिता के देश में फेरे

खाकर आत्मा के:पद आ:पद सुन्न में समा जाती है। सांस उसांस में भजन करना ब्याह रचाना है। भजन करने से शब्द आगे चलता है। तब रोम रोम रटणा नांव की बारात चढना है। बंकनाल में शब्द की ध्वनी का रात दिन अनुभव होना ही रात दिन चलना है। गिगन में पहोंचकर अला पिंगला सुखमणा में भजन होना ही सेज पर तांणना है। ब्रह्मण्ड से ऊपर पारब्रह्म सुन्न में पहोंचकर चंवरी मांडना है। त्रिगुटी में पहोंचने पर कई तरह की ध्वनियां खुल जाती है, यही बाजा बजना, हीरा बरसना व सामेला होना है। त्रिगुटी से ऊपर जाकर पारब्रह्म सुन्न में पहोंचकर सुरत का शब्द में लय होना ही परणना है। म:फ: है कि पूर्ण परमानन्द की प्राप्ति का आनन्द आना ही सेज बिछाना व मेहला पोढना है।

卐 हरजस पद राग केदारा (४) 卐

प्राणियां रे समझर सिमरो राम। देख विचार समझकर दिल में, हरि बिन झूंठा काम॥ टेर॥
सुत वित सेंग धरिया रहे लारे, ऊठ अकेलो जाय।
किया करम चलेगा साथे, धका बोहोत विध खाय॥ १॥
कमर बांध्या बैठो है पंथ में, चालो चालो होय।
काल सिराणे अेम खडो है, ज्यूं संग छाया जोय॥ २॥
तेरा तो डेरा जंगल मांही, तामें फेर न कोय।
बिस्वाबीस ईक्कीस चालणा, रेणा निमख न होय॥ ३॥
और न तोकूं कछुह न दिशे, ओ जुग जातो जोय।
कह सुखदेव कर हात रीता, ऊठ चले सब लोय॥ ४॥

मनुष्य मात्र को कहते है कि सतगुरु से भेद लेकर भजन करना ही राम का सिमरना है। देखो विचारो समझो परमात्मा की प्राप्ति के बिना जगत का कार्य सब असत है। पुत्र धन व सब चीजे यही रह जाती है और जीव अकेला जाता है तथा शुभ अशुभ कर्म साथ जाते है और तीन लोक में इनका भोग भोगना ही धक्का बोहत विध खाना है। जीव चलने की तैयारी में रास्ते में बैठा है, सब जा रहे है, यही चालो चालो है। काल सिर पर इस तरह खडा जैसे शरीर के साथ छाया रहती है। तेरे को निश्चय श्मशान में जाना है, इसमें कोई झूंठ सांच नहीं है। एक विश्वा नहीं है इक्कीस विश्वा जाना है। एक क्षण भी नहीं रह सकेगा। सारा संसार जा रहा है यह तेरे को नहीं दिख रहा है। म:फ: है कि सबको खाली हाथ करके जाना पडेगा।

卐 हरजस पद राग केदारा (५) 卐

सुणज्यो बाबा कलजुग बरतयो आय। अेताई थाणा पाड़ दिया हो, जीत लिया जुग मांय॥ टेर॥
ब्राह्मण को सुण पिवे तमाखूं, स्वामी अेमख खाय।

卐 हरजस पद राग कल्याण (८) 卐

साधो भाई तीरथ तो सब किया, एक धाम ऐसो हम परस्यो, जल बिन जल वहां पिया ।।टेर।।
काशी कमल सबे हम देख्या, लोवा गर लछ सारा।
बद्री जाय बक्या हम अणभै, पंच तीरथ लिव धारा ।। १ ।।
अडद ऊडद द्वारका देखी, प्रयाग पिछम राह पाई।
जगन्नाथ सो हमने देख्यो, ऊलट गिगन में जाई ।। २ ।।
पोकर धाम अजपो परस्यो, ऊलट चढया गिरनारी।
तन केदार जोत हम परसी, अनहद बाजे बोह भारी ।। ३ ।।
गंगा जमुना और सरस्वती, त्रिगुटी जायर न्हाया।
कह सुखराम पृथ्वी प्रदिक्षणा, तन मेरो मन फिर आया ।। ४ ।।

साधको से फ: है कि मैंने सब तीरथों को किया है। तीरथों में जाकर स्नान करके जल पीकर शांति का अनुभव करते है। मैंने एक ऐसा धाम देखा जहां बिना जल पीये ही अखण्ड शांति प्राप्त की। यही जल बिन जल पीना है। काया रूपी काशी में द्वादश कमलों का अनुभव करना ही काशी कंवल को देखना है। अच्छे लक्षण धारण करना ही लोवागर की यात्रा है। अणभै ज्ञान प्राप्त करना

बद्रीनाथ की व लिव बंध भजन होना पंच तीरथ की यात्रा करना है। बंकनाल से ऊपर गिगन में शब्द ब्रह्म का अनुभव करना ही जगन्नाथ के दर्शन करना है। अजपा याने गुरु पद में बिना किये भजन होने लग गया, यही पुष्कर यात्रा करना है। बंकनाल से मेरूडण्ड पर आना ही गिरनार की यात्रा है। शरीर में सतशब्द की दिव्य ज्योति का प्रकाश होना ही केदारनाथ की जोत परसना है। त्रिकुटी में बिना किये शब्द की आवाज होना ही अनहद का बोह बाजना है। त्रिकुटी में अला पिंगला सुखमणा में ध्यान होना ही गंगा जमुना सरस्वती में नहाना है। निज मन याने आत्मचेतन से सब स्थानो का शरीर में अनुभव होना ही तन मेरो मन फिर आया है।

卐 हरजस पद राग कल्याण (९) 卐

साधो भाई तत्त कल लेहो बिचारी। मत ज्ञान सू जे नर ऊधरे, तो ऊधरे मांडज सारी ॥ टेर॥
मत तो सरब भरम का धोरा, तामें बीज न होई।
ज्यूं धूमर की घटा दिखावे, तामें छांट न कोई॥ १ ॥
जैसे नीर मृग जल दीसे, यूं तत्त बिना सब करणी।
धरम पाप की बांध गांठडिया, चौरासी लख फिरणी॥ २ ॥
मन बिन जीव जीव बिन काया, यूं तत्त बिना मत सारा।
कह सुखराम शकल पिछतासी, अंतकाल की बारा॥ ३ ॥

साधना करने वालो से म:फ: है कि ब्रह्म पद की प्राप्ति का ज्ञान का विचार करो, मत ज्ञान से उद्धार होता तो सारी सृष्टि का उद्धार हो जाता। मन का ज्ञान पानी के धोरे के समान है जैसे धोरे में बीज नहीं ऊगता, धूमर की घटा यानि धुएं की घटा दिखती लेकिन उसमें पानी की बूंद नही होती, गर्मी के समय मृग बालू रेत को पानी समझता पर पानी नहीं है। ऐसे ही ब्रह्म पद के ज्ञान बिना सब शुभ अशुभ करणियां मृग जल की तरह है। धरम और पाप की गांठ बांध कर चौरासी लाख योनियों में फिरना पडता है। बिना मन के जीव, जीव के बिना शरीर है। इसी प्रकार ब्रह्म पद की प्राप्ति के बिना सब करणियां है। म:फ: कि ब्रह्म पद की प्राप्ति के बिना अंतकाल में सबको पछताना पड़ेगा।

卐 हरजस पद राग कल्याण (१०) 卐

साधो भाई राम भजन बिन झूंठा। करणी शकल नांव बिन ऐसी, ज्यूं कालर मेहे बूंठा॥ टेर॥
व्हे तो एक अनेका जागा, गुरु गम बिन नहीं पावे।
आपो भूल भरम से बंधिया, भटकत जन्म गमावे॥ १ ॥
किस्तूरी मिरग बन ढूंढे, पाटू कहे कित तागो।
लेहेरी पूछे नीर कहां है, बरछ कहे फल कहां लागो॥ २ ॥
जे कोई नांव नांव ही कहिये, लिव लागा सुं पावे।
तन के बाहर करता ढूंढे, सो सब भूला जावे॥ ३ ॥
काहा किणे मते मस्त मन कियो, काहा किण तन सुकायो।
कह सुखराम नाम बिन रटियां, किणी कछू नही पायो॥ ४ ॥

21:56
卐 हरजस पद राग कल्याण (५) 卐

साधो हमने सतगुरू मोरथ दिया।
अष्ट सिद्ध नव निद्ध मुक्त मिली रे, सब सिद्ध कारज किया ।।टेर।।
दिशा शूल सांसो सब टाल्यो, जिकर जोगणी लारा।
सनमुख चंद सुधा रस पियो, इस विध कारज सारा ।।१।।

कंटक जोग जुध सब ही टाल्यो, लिव धम पुला बोहो सधाई।
अडद ऊडद को दियो दुगडियो, पिछम गेल हम पाई ।।२।।
सिद्ध जोग भेद पकडायो, सांसा काल हम पाल्या।
दिन काल कलेश सब मेटर, पिछम दिशा ने चाल्या ।।३।।
ईमरत जोग द्वादस आगल, ज्यां हम सूरत लगाई।
कह सुखराम ऊलट चढ गढ में, पीव परसीया मांई ।।४।।

साधको को कह रहे है कि मोरथ में जाने वाले को आठ सिद्धी व नो निधि की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार सतगुरू से भेद लेकर भजन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यही सब सिद्ध कारज किया है। सब सोच फिकर छोडना ही दिशासूल को टालना है। जिकर याने व्यर्थ के राग द्वेष छोडना ही जोगणी को लारा रखना है। सतगुरू विधि से भजन कर आनन्द लेना ही सन्मुख चन्द सुधारस पीना है। इस विधि से जन्मना मरना का रोग मिटना ही कारज सरना है। व्यर्थ की लडाई झगडो को छोडना ही कंटक जोग टालना है। लिव बंध भजन होना ही पुला साधना है। उठते बैठते स्वांस में भजना करना ही अडद उडद का दुगडिया है। बंकनाल के रास्ते से शब्द उलटना ही पिछम गेल हम पाई है। सतगुरू सुखराम जी महाराज की अणभै वाणी ने भजन का भेद बताया, यही सिद्ध जोग है। एक भी श्वांस भजन बिना खाली नही जाना ही सांस काल पालना है। थारी मारी से क्लेश होता उसे छोडना ही दिनकाल क्लेश मेटना है। शब्द का बंकनाल में उलटना ही पिछम दिशा में चलना है। त्रिकुटी तखत पर शब्द का अनुभव करना ही इमरत जोग द्वादस आगल है। म:फ: है कि बंकनाल में उलटकर के: पद आ: पद की प्राप्ति करना ही गढ पर चढकर पीव को परसना है।

卐 हरजस पद राग कल्याण (६) 卐

साधो भाई त्याग दिया हम सोई। मात पिता अरू नार सुत बन्धु, एक न राख्यो वो कोई ।।टेर।।
ममता माय बाप डिग पचरे, नार कल्पना त्यागी।
सुत सो सोच अहूं बल बंधु, छाड़ सूरत हर लागी ।।१।।
विभो बंछना सारी छाडी, कुल व्यौहार जकारा।
पईसा टका तज्या मैं तेरे, सत मता वो हमारा ।।२।।
सेज सोड आन सब छाडया, कपट बेल रथ सारा।
माया मंतर जंतर सो त्यागर, राख्यो है नांव बिचारा ।।३।।
अणभी हुवा भरम सब जांणर, मूल शब्द लियो चिनी।
कह सुखराम भजन है सांचो, और भरमना होय कीनी ।।४।।

साधना करने वालो से फ: है कि सबको त्याग दिया है। माता पिता स्त्री भाई बन्धुओ को त्याग दिया, एक को भी नही रखा है। ममता माता, डिग पिच पिता, कल्पना स्त्री, सोच पुत्र व अंहकार भाई बन्धुओं को छोडकर सूरत परमात्मा में लगा दी है। धन सम्पति की इच्छाओ को छोडना ही विभो बंछना सारी छाडी है। माया ब्रह्म के पद से अलग होने का ज्ञान करना ही कुल बोवार जकारा है। थारी मारी छोडना ही पैसा टका तजना है। सतशब्द का ज्ञान करना ही सत का मता है। आन

卐 हरजस पद राग कल्याण (२) 卐

साधो भाई समझ सोच रहो गाढा। भेदी बिना बात मती मानो, सब ही फिरत है आडा ।।टेर।।
आपो खोज आप नही चिन्या, तब लग माया पूजे।
बंकनाल होय ऊलट न चढिया, जब लग नांव न सूजे ।।१।।
भरमावण कूं से कुल जग है, समझावे जन बिरला।
सुक्ष्म वेद के भेद बिना रे, सब माया का किरला ।।२।।
बावन हरफ वेद का कहिये, ओऊं अजपो ऊला।
अवगत अलख निरंजण गावे, भेद बिना सब भूला ।।३।।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, शक्ति, ये है, चारूं ने धारा।
अड़वा फाड़ निसरे बारे, सो जन उतरे है पारा ।।४।।
भणिया खरा गुणया नही कोई, जब लग काम न आवे।
कह सुखराम भेद बिन भजिया, परम मोख नही पावे।।५।।

साधना करने वाले भाईयो से फरमा रहे है कि समझो व सोच कर मजबूत रहो, जो भजन का भेद व परमात्मा की प्राप्ति का भेद जानने वाले है उनके सिवाय दूसरो की बात मत मानो। ये सब के:पद आ:पद की प्राप्ति नही करने देते। आत्मा ब्रह्म है, उसको जीव समझ कर जो माया का स्वरूप जो ऊपजता खपता है उसको ब्रहम समझकर फल की इच्छा से भक्ति करते है, बंकनाल के रास्ते से उलटकर ऊपर नही चढते तब तक सत नांव की प्राप्ति नही होती, समझाने वाले कोई बिरला हरिजन है। पारब्रह्म परमात्मा के व उसके निज नांव के बिना जितने भी दूसरे साधन है वो सब माया के फलों की प्राप्ति कराने वाले है। बहकाने के लिये सारा कुल व संसार है। स्वांसा के आधार पर जितने भी साधन है जो लिखने में आते व वाणी पर आते है वो सब बावन अक्षरो का ज्ञान है। ओऊं का अजपा भी स्वांसा के आधार पर रहता है। इन सबको वेदों का ज्ञान कहा है। अवगत, अलख, निरंजन अर्थात मुखार बिन्द से राम राम रट रहे हैं तो भी उनके सत नही आता। अत: वे भूले हुये हैं। जगत में ब्रह्मा, विष्णु, महादेव व शक्ति की भक्ति भी लोग कर रहे हैं। और इन्हीं चारो देवताओ का दिया हुआ यह मानव शरीर है। अर्थात हमने इनको धारण कर रखा है। अब हमारे इस शरीर में जितने भी विकार, कामनायें, तृष्णा, लोभ, लालच, ढिंग, पाखण्ड रूपी अडवे है। इनको जो दूर करेगा वो जन पार उतरेगा। शास्त्रों का पठन करते है लेकिन उनका मर्म नहीं जानते है तब तक पढना काम नहीं आता है। म:फ: है कि संतो की विधि से भजन किये बिना परम मोक्ष नहीं होता।

卐 हरजस पद राग कल्याण (३) 卐

मन रे सिमर सिमर हल सांई। राम भजन बिन सांसा जावे सो सब रेत मिलाई ।।टेर।।
राम भजन की ढील करे रे, करमा की ताकीदी।
सतसंगत तज जाय हतायां, फिट लाणत तोय गीदी ।।१।।
जुग सुं हेत साध सूं फिको, हर तज आन मनावे।
सत बात की अवज्ञा करके, विषे बात मन भावे ।।२।।

सोय रहे के जोड़ चलावे, काय मून गहे मन मांही।
कह सुखराम धरग मन तोने, राम रटे क्यों नांही ।।३।।

हे मन रामजी का भजन कर फिर खुश हो। रामजी के भजन के बिना जो श्वांस जाते हैं उनको रेत में मिलना कहा है। हे मन राम भजन करने में ढील करता व कर्म बन्धन के साधन ताकिदी से करता है। सतसंग को छोडकर हथांया पर जाकर व्यर्थ की बात करता है। इसलिये तेरे मनुष्य पणे को धिक्कार है। संसार से संसारी वृतियों से हेत एवं संत वृति से दूर रहता है। परमात्मा की भक्ति छोडकर जो चर्म चक्षुओ से दिखता है उस आन के रूप की भक्ति करता है, जो ऊपजते खपते है। जो सत बात है उसको न मान विषयो की झूंठी बात है, मन को अच्छी लगती है। या तो सो जाता है, या तो पराई निंदा करता है, या मौन धारण कर लेता है। म:फ: है कि हे मन तुझे धिक्कार है, रामजी का भजन क्यों नहीं करता है।

नार पुरुष की मौत है, पुरुष नार का काल।
नितानन्द दोनों पड़ैं, राम विमुख जम जाल ॥134॥
नार पुरुष की मौत है, पुरुष नार गल फन्द।
चौरासी को बह गये, राम विमुख सभ अन्ध ॥135॥
नारी पीवै पुरुष को, पुरुष नार भख जाय।
नितानन्द हर भक्ति बिन, दोऊ चले पछताय ॥136॥
नार पुरुष को ले गई, दीन्हा राम भुलाय।
पुरुष नार के प्यार से, दोऊ मरे विष खाय ॥137॥
मन कर्म वचन त्रिया तजे, करे न गर्भ निवास।
नितानन्द देखै नहीं, नरक कुण्ड की त्रास ॥138॥
औंधे मुख झूलै नहीं, संकट सहे न आय।
नितानन्द नारी तजै, मिलै निरंजन राय ॥139॥

नितानन्द नारी तजै, छुटै गर्भ की बन्ध।
फेर न पहरे आय कर, जन्म मरन का फन्द ॥140॥
नितानन्द यह भगवती, चौरासी का द्वार।
चौरासी से तो बचे, नारी संग विसार ॥141॥
नितानन्द साहेब मिलै, जो घट ठहरै नाम।
साखी गोरख भरथरी, और कबीरा राम ॥142॥
नाद बिन्द स्थिर करै, गहै ज्ञान वैराग।
नितानन्द घट पट खुलै, कनक कामिनी त्याग ॥143॥
नितानन्द चाहे नहीं, कनक कामनी दोय।
अमर कन्द जुग जुग रहे, राम सरीखा होय ॥144॥
नितानन्द साहेब भजै, तजै कामना काम।
भवजल से पल में तिरै, मिलै मुक्त का धाम ॥145॥
नारी से यारी किये, ख्वारी होत निदान।
अन्तकाल भारी पड़ै, शब्द सत्य कर जान ॥146॥
जिस मारग जग लग रहा, बड़ा कुमारग जान।
माता नारी पुत्र की, पुरुष भया सुत आन ॥147॥
जननी से नारी भई, पुत्र भया भरतार।
नितानन्द यों तज गये, साधू ज्ञान विचार ॥148॥
जब लग अन्तर कामना, तब लग निष्फल खेत।
नितानन्द हर ना मिलै, बिन भीतर के हेत ॥149॥

(30) गोरख बानी by पीताम्बर बड़थ्वाल
(31) गोरख बानी by रामलाल श्रीवास्तव
(32) महाराज हरिदास निरंजनी and अपर निरंजनी महात्माओं की रचना
(33) संत कवि दरिया बिहार वाले एक अनुशीलन by धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी
(34) राम सनेही सम्प्रदाय संत रामदास जी महाराज अनुभव
(35) राम सनेही संत वाणी दरियाव जी महाराज वाणी
(36) पोथी साहेब - मीता दास सम्प्रदाय संत वाणी
(37) संत मीता ग्रन्थावली
(38) संत सुन्दरदास - सुन्दर ग्रन्थावली
(39) संत दादू दयाल की बानी
(40) संत तुरसीदास निरंजनी वाणी
(41) संत तुलसी साहब हाथरस वाले (i) रत्नसागर (ii) शब्दावली (iii) घट रामायण
(42) संत शिवदयाल साहब राधास्वामी सम्प्रदाय (i) सार बचन (ii) प्रेमबानी
(43) Tirumtirum of tirumular tamil
(44) संत रामानन्द की हिन्दी रचनायें by पीताम्बरदत्त
(45) गुसाई गुरुबानी of गुसांई सम्प्रदाय
(46) संत भीमाभोई उड़ीसा
(47) रविभाण सम्प्रदाय thesis (गुजरात)
(48) श्री प्रेमप्रकाशी by सतगुरु स्वामी ज्ञानानन्द टेऊँराम के भाई सम्प्रदाय
(49) साध सम्प्रदाय के संत thesis
(50) संत रोहल की बानी by दशरथराज (शिवरंजित प्रकाशन)
(51) सूफी सम्प्रदाय के कवि
(52) भाई गुरुदास की वाणी गुरुनानक पंथ
(53) सत्य सिद्धान्त प्रकाश of संत नितानन्द
(54) अणभै वाणी of संत सुखराम जी महाराज
(55) हरियाणा की संत परम्परा Hindi thesis

प्रकाशक - बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद

(1) संत चरनदास जी की बानी (1)+(2) भाग
(2) भीखा साहब की बानी
(3) यारी साहब की रत्नावली
(4) दूलनदास की बानी
(5) गुलाल साहब की बानी
(6) जगजीवन साहब की बानी
(7) पलटू साहब की बानी
(8) दरिया साहब मारवाड़ वाले की बानी
(9) केशवदास जी का अमीघूंट

मैं खरीद आया और 7% ब्याज पर मूल्य चुकाया

(10) पलटू साहब की बानी 1+2+3 भाग
(11) बुल्ला साहब की बानी
(12) दरिया साहब बिहार वाले की बानी
(13) धरनीदास की बानी
(14) दयाबाई की बानी
(15) धरमदास जी की बानी
(16) संत बानी संग्रह 1+2 भाग
(17) सहजोबाई की बानी
(18) रैदास जी की बानी
(19) श्री हरिपुरुष साहेब जी वाणी by हरिदास निरंजनी वाणी

228

112 मैं खरीदी और रुपये 140 हिसाब बताओ

(20) संत मंगतराम समता सम्प्रदाय
(21) निमाड़ के संत सिंगा जी
(22) संग्रह from many thesis
(23) संत कवि दरिया बिहार वाले
(24) संत जगन दास जी
(25) संत मीतादास वाणी
(26) दरिया साहेब बिहार वाले चुने हुए शब्द 68
(27) श्री रामदास जी महाराज की वाणी राम सनेही सम्प्रदाय
(28) प्राण संगली by गुरु नानक देव
(29) कबीर साहब की शब्दावली (1)+(2)+(3)

SP

22:21

हरजस पद राग भेरूं प्रभाती (१३)

क्या मैं करूं ऊपाई सन्तो, क्या मैं करूं ऊपाई।
बंकनाल होय उलटर चढिया, तोही मुज धीर न आई।। टेर।।
तीस हजार कथी हम वांणी, ध्यान त्रुगुटी लागो।
अजहूं मन में लहरां उठे, भरम शकल नहीं भागो।। १।।
ऊजड पेंडा मिटया न मेरा, दाय कछु नहीं आवे।
चेला ज्ञान गीरेह अर त्यागी, एको मन नहीं भावे।। २।।
सांख जोग और नोद्या भक्ति, एको मन नहीं धिजे।
शेष भुजा धर सायब आवे, तोई मेरा मन नहीं रिजे।। ३।।
जंतर मंतर वेद पुराणा, पढ पढ सब तचकाया।
ओऊं जाप अजपो कहिये, ये मुज दाय न आया।। ४।।
कह सुखराम एक मोय सुजे, कोई देश मुल्क मारो आगो।
इण कारण या विरह उदासी, ध्यानज म्हाने लागो।। ५।।

संतो से फ: है कि मैं क्या ऊपाय करूं, बंकनाल के रास्ते से उलटकर मैं चढा तो भी मुझे धैर्य नहीं हुवा, ध्यान जब त्रृकुटी में था तब तीस हजार वाणी कही, तब भी मन में अनेक तरह की लहरे उठ रही है। सब भरमो का नाश नहीं हुवा। उजड में चलना अभी तक मेरा नहीं मिटा है और मुझे पसन्द भी कुछ नहीं आ रहा है। चेला करना, ज्ञान देना, गृहस्थी व त्यागी एक भी मन में नही भाता। संख जोग नवधा भक्ति एक भी मन में नहीं आती है। परमात्मा भी हजार हाथ धारण करके दर्शन भी देवे तो भी मेरा मन राजी नहीं होता है। जंतर मंतर वेद पुराणों को पढ पढ कर छोड दिया। ओऊं का जपा व अजपा ये भी मुझे पसंद नहीं है। म:फ: है कि मुझे यह मालुम हो रही है कि मेरा देश व मूल्क आगे है, इस कारण विरह व उदासी आ रही है कि त्रिकुटी से पार ब्रह्म तक ध्यान लग गया, रटणा सांस उसांस में नहीं चलती है।

हरजस पद राग भेरूं प्रभाती (१४)

धिन धिन सो नर नारी जुग में, धिन धिन सो नर नारी।
सायब काज जुरे निस बासर, कुब्द प्रीत से टारी।। टेर।।
राम भजन को लग्यो ऊमावो, ओ मन चढयो आडे।
राम राम केता दिन बीतां, मुख में जीभ न बाडे।। १।।
सतगुरांजी का दरशण जाता, पांव गुगरा बांध्या।
दरशण कियां आंणद बहो उपज्या, जांणे द्रव मोय लादा।। २।।
मिल्यां साध हंसे रग रग रे, खिण फूले खिण रोवे।
आशा सकल तजी कुटलाई, बाट राम जी की जोवे।। ३।।
तन खीणा मन रेवे ऊणमणा, बोले शब्द सुं प्यारा।
कह सुखराम तके नर जुग में, ऊतर गया भव पारा।। ४।।

उन स्त्री पुरूषो को धिन है जो कुबुद्धि छोडकर रात दिन परमात्मा की भक्ति में लगे रहते है। परमात्मा का भजन करने की उमंग लगी और मन उसे एक क्षण भी नहीं भूलता, यही ओ मन चढयो आडे है। रात दिन परमात्मा का भजन करने में बीतता है और एक क्षण भी सुमरण नहीं छोडता, यही मुख में जीभ न बाडे है। सतगुरु याने सतग्यान सुनना व भजन करके सत शब्द के दर्शन करने की बडी भारी उमंग रहती है, यही पांव गुगरा बांध्या है और उनके दरशण करने से बडा भारी आनन्द आता है, ऐसा लगता है कि उसे कोई बडा भारी खजाना मिल गया हो। सतसंगी व संत मिलते है तो रग रग में खुशी होती है और उस खुशी में कभी फूलता है, कभी विरह से रोने लग जाता है, सब आशा व कुटलाये छोडकर रामजी की प्राप्ति की ही इच्छा रखता है। शरीर में विरह आना ही तन खीण है। मन में संसार से उदास रहना ही उनमना रहना है। सबसे मधुर वचन बोलते है। जो सबको अच्छे लगते है, यही बोले वचन सुं प्यारा है। म:फ: है कि वो ही जन संसार रूपी समुद्र से पार हो गये याने जन्म मरण से रहित हो गये।

हरजस पद राग भेरूं प्रभाती (१५)

संतो भाई सुणज्यो भेद विचारा, करूं न्याव सब सारा।। टेर।।
हर्ष उछाव बेद धुन होई, अरथ ऊचार सुणावे।

卐 हरजस पद राग भेरुं प्रभाती (१०) 卐

संता देख्या ईचरज भारी। अमर लोक में संत विराजे, वहां सूरत लिव म्हारी।। टेर।।

फाडर पीठ चढ्या आकाशा, है कुदरत लिव धारा।
अष्टांग योग सांख्य नहीं पवना, अैसा खेल हमारा।। १।।
उलटर गंग चढी गिर नारयां, छूटी सेंसर धारा।
करणी शकल ज्ञान कर देख्या, सतशब्द तो न्यारा।। २।।
बादल बीज बिना ईन्द्र गाजे, तीन लोक के मांही।
खट सुण राग छतीसुं न्यारी, अखण्ड खण्डे कछु नांही।। ३।।
सता समाध लगी घट मेरे, त्रृगुटी संगम होई।
ईडा पिंगला सुखमणा नारी, रमे संग मिल दोई।। ४।।
कह सुखराम शब्द जोरावर, पायां सूं पत आवे।
बिन पायां नर कहो बोह तेरा, दिल का भरम न जावे।। ५।।

संतो से फः है कि मैंने भारी इचरज देखा है, केः पद में सतशब्द का अखण्ड अनुभव हो रहा है, सतशब्द के साथ बंकनाल से आकाश फिर पार ब्रह्म में पहुंचा हूं, इसमें न तो अष्टांग योग, न सांख्य योग, न पवन योग है, यह मेरा ज्ञान है। शब्द उलटकर गिरनार याने मेरू को पार करके त्रिकुटी में दो पांख के कंवल को पार कर हजार पांख के कंवल पर शब्द झरता हुवा अनुभव होता है, यही सेंसर धारा छूटना है। सब तरह की करणी व ज्ञान करके देखा है, सतशब्द तो सबसे अलग है। खण्ड पिण्ड ब्रह्मण्ड में शब्द का अनुभव होना ही बिना बिजली व बादल के तीन लोक में ईन्द्र गरजना है, शब्द की कई ध्वनियां अखण्ड अनुभव होती है, यही छः राग छतीस रागनियां का अखण्ड नहीं खण्डना है। पारब्रह्म के ऊपर सतशब्द का रात दिन अनुभव होना ही सता समाधि लगना है। अला पिंगला सुखमणा में ध्यान होना ही त्रिकुटी संगम होना है। अला पिंगला एक हो सुखमणा में ध्यान ही रमे संग मिल दोई है। मःफः है कि शब्द बडा बलवान है, उसकी प्राप्ति होने पर विश्वास होता है। बिना सतशब्द की प्राप्ति हुये मुंह से शब्द की कितनी ही महिमा करो, दिल का भरम नहीं जाता है।

卐 हरजस पद राग भेरुं प्रभाती (११) 卐

मन रे मैं तो कछु नहीं जाणूं। सतगुरु ज्ञान बतायो भारी, जब ऊलटी कर ताणूं।। टेर।।

मुख सूं बोल कहे कछु नांही, संत सराया जावे।
गीता वेद भागवत सायद, साध सिद्ध सब गावे।। १।।
ऊलटा होय चढो कहो काही, मन पवना सुं न्यारा।
नाड नाड में हुवो ऊमावो, फाटे शरीर हमारा।। २।।
गोटो अडे मसलियो चाले, और ऊपाय न कोई।
मन कूं थाम सूरत चेटांओ, जब कुछ सरके मांही।। ३।।
आपी धगग चढे जब ऊंचो, ब्रह्मण्ड जाय भरिजे।
त्रृकुटी नेण फाट हुवे टुकडा, कहो कहा अब किजे।। ४।।
ऐसो ज्ञान प्रकाश्यो आई, दिव्य नैण जब खुल्या।
परमधाम तो न्यारी दरसे, अे आरम्भ है उल्ला।। ५।।
दिव्य नैण माया का खुल्या, ब्रह्म अखण्डित सूजे।
कह सुखराम ब्रह्म का खुल्या, परमधाम जब सूजे।। ६।।

आत्मा मन से कहती है कि अनन्त जन्म तक मैं तुम्हारे साथ रही याने संकल्प के साथ रही तब तक मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा, लेकिन अब सतगुरु सत ग्यान की शरण लेने से सतगुरु पद का अणभै ज्ञान प्राप्त होने से तेरे विचारो के माफिक नहीं चलूंगी। यही ऊलटी तांणना है। सतगुरु पद में जो सतशब्द नेः अँच्छर अनुभव होता है वह शब्द न लिखने में आता, न वांणी के आधार पर प्रगट होता, न विचारो के आधार, न मन के आधार से प्रगट होता है। इसलिये मुख से उस पद की शोभा का वर्णन कैसे कह सकती हूं। उस पद की सब सन्त महिमा करते है। परमात्मा के पद व नाम की गीता वेद भागवत साध सिद्ध महिमा करते है। बंकनाल से उलटकर मन व स्वांसा से अलग नाड नाड रग रग में सारे शरीर में शब्द का अनुभव होना ही शरीर फाटना है। शरीर में बादी का गोटा अडने पर हाथ से मसलने पर आगे सरकता है। इसके लिये और कोई उपाय नहीं है। ऐसे ही शब्द में मन सूरत लगाकर भजन करने से शब्द आगे बढता है, शब्द अपने आप ऊपर चढता है, ब्रह्मण्ड में उसका अनुभव होने लगता है। त्रिकुटी में शब्द के पहोचने पर ऐसा मालूम होता है कि नैत्र व कनपटिये फाटकर टुकडे हो जायेंगे। कहो क्या करना चाहिये। इस ज्ञान का प्रकाश हुआ जब सूरत रूपी नेत्र खुले, चौथा पद सतस्वरूप का पांचवा आनंद ब्रह्म का पद तो न्यारा दर्शाता है। निरंजन निराकार चेतन में और यह पद ऊली तरफ शरीर के साथ चेतन पद में दर्शते है। आत्मा के शरीर के साथ चेतन के जब ज्ञान रूपी नैत्र खुल जाते है, जब ब्रह्म सर्वत्र व्यापक ऐसा भ्यासता है जब आत्मा याने चेतन शक्ति सतशब्द के साथ निरंजण निराकार पद में पहुंचती है। जब ब्रह्म के दिव्य नैत्र खुले समझे जाते है। जब इसे केः पद आः पद का अनुभव होता है।

卐 हरजस पद राग सोरठ (२८) 卐

अवधु ऐसा तत्त विचारिया, काम काज सब सारया।। टेर।।
गीगन मंडल में बालक खेले, रूप बरण सुं न्यारा।
चवदे भवन लोक मिल तीनूं, बालक खेल पसारया।। १ ।।
खट रस साव पांच रंग किया, सात धात गुण पारा।
सबके मांह शकल संग खेले, हिलमिल सबसे न्यारा।। २ ।।
खट दल छेद मेर कूं बींध्या, सुरग ईकीसूं न्यारा।
त्रिवेणी संत जाय विराज्या, काल घेर वां मारा।। ३ ।।
नेणा बिना निरखिया जाई, बिन रसणा बतलाया।। ४ ।।
सातुं पोल दोय दरवाजा, जहां तीन पुरूष का सारा।
अनहद घूरे अखण्ड धुन मांही, माया रूप पसारा।। ५ ।।
सोही सुमरे गेल है भाई, तां होय गेल पसारा।
पुगेगा कोई संत सूरवां, तन मन शीश अवांरा।। ६ ।।
मन पवना काया बस कीना, निरभै नाम ऊचारया।
जन सुखराम चढता जन ऊंचा, पांच पचे पच हारया।। ७ ।।

अवधु याने मन से आत्मा कह रही है, ऐसा ब्रह्म पद का विचार किया जिससे सारे काम काज सुधर गये, गिगन मण्डल में सतशब्द का अनुभव होना ही बालक का खेलना है। उसके न कोई रूप है, न वर्ण है, तीन लोक चवदा भवन की उत्पति ब्रह्म से हुई है। यही बालक का खेल पसारना है। छः रस, पांच रंग, सात धातु व तीन गुण इन सबके साथ होता हुवा भी इन सबसे अलग है। पूर्व के छः कंवल और बंकनाल के इक्कीस सुरगो को छेदन करता हुवा मेरूडण्ड पर पहुंचना ही मेरू को बांधना है। त्रिवेणी में अला पिंगला सुखमणा में ध्यान होने से ही जन्म मरण से रहित होता है। यही काल को घेर मारना है। चर्मचक्षुओ से न दिखकर दिव्य चक्षुओ से देखने में आता है। यही नेणा निरखना है। बिना बाणी के अखण्ड भजन होता है। यही बिन रसणा बतलाना है। जब तक आत्मा नो दरवाजो से जाती है, तब तक तीन लोक में रहती है। तीन लोक पर ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का अधिकार है, यही तीन पुरूष का सारा है। त्रिकुटी में बिना किये जो अखण्ड अनहद शब्द होता है, दोनो कानो से सुना जाता है, वो माया के पद में है। मेरू के रास्ते कोई शूरवीर संत ही भजन कर पहुंचते है। मन स्वांसा व शरीर से अलग होकर अधर शब्द का अनुभव होना ही निर्भय नाम उचारना है। म:फ: है कि इस तरह ऊंचे चढते है। तब पांच विषयो से अलग हो जाना ही पांच पचे पच हारया है।

卐 हरजस पद राग सोरठ (२९) 卐

अवधु उदबुद रीत कहाणी, कोई जानेगा जन मांही।। टेर।।
आसण हमारा गिगन मण्डल में, रहूं जगत के मांही।
मोही को मेरा जन जाणे, दूजा कूं गम नांही।। १ ।।
रात दिवस रेण नहीं तारा, शशी अर सूरज नांही।
जहां हम जाय बास घर किया, अनहद घुरिया मांही।। २ ।।
देवल मांय देवरा दरस्या, देव विराजे है मांही।
हात न पांव नेण नहीं जिभ्या, मोहो लिया मुजताई।। ३ ।।
आठुं पोहर बतीसुं घडिया, हिलमिल बिछडित नांही।
एक निमख जो न्यारा हुवे तो, तडफड जीव कढाई।। ४।।
शिव सो जाय मिल्या शक्ति सूं, शिव मिल शक्त कहाही।
भंवर गुफा में मिल भेला हुवा, खेलत हिलमिल मांही।। ५ ।।
ताके परे अगम घर जावे, जन मिलियां है मांही।
जन सुखराम जन्म नहीं मरणा, उदबुद रीत कहाही।। ६ ।।

卐 हरजस पद राग सोरठ (१७) 卐

जोगिया गिगन मंडल घर किया। दिन दिन रूप चढे देही पर, महा अमीरस पिया॥ टेर॥

गुरु प्रताप साध संग भेटिया, प्रेम प्रीत तत चीना।
निश दिन राम नांव लिव लागी, बंकनाल रस पीना॥ १॥
गरजी गिगन धरण धूजाणी, जल बिन पवन रस पिया।
नदियां चली पिछम के गेले, सूरत शब्द संग किया॥ २॥
धरमराय शिर पांव दिराया, सूरत शब्द मिल किना।
तीनूं चले मेर सूं आगे, त्रिवेणी सुख लीना॥ ३॥
चंद सूर उलट पलटाया, सुखमण का संग लिया।
आद पुरूष अलख अविनाशी, सो मिल हरिजन जीया॥ ४॥
निश दिन ध्यान लग्या सुन्न मांही, मन निज मन होय चीना।
जन सुखराम मिल्या सुन्न सागर, पीव परस अंग भीना॥ ५॥

सतशब्द की भक्ति करने वाली आत्मा ही जोगिया कहलाती है। सतशब्द की साधना करके पारब्रह्म से ऊपर पहुंचना ही गिगन मंडल घर करना है, उस पद में शब्द का अखण्ड ध्यान होना व अखण्ड आनन्द आना ही देही पर रूप चढना व महा अमीरस पीना है। सतग्यान के प्रताप से व संतो की संगत से प्रेम प्रीत से भजन कर ब्रह्म पद की प्राप्ति की। रात दिन राम नाम का लिव लगाकर भजन करने से बंकनाल में शब्द का अनुभव होना बंकनाल में रस पीना है, स्वांस उस्वांस में भजन करना ही जल बिन पवन रस पीना है। शेष के स्थान में अनुभव होना ही धरणी धूजाणी है। गिगन में शब्द की ध्वनि का अनुभव होना ही गिगन गरजना है। बंकनाल में शब्द का उलटना ही नदियां का पिछम के गेले चलना है। सूरत के द्वारा शब्द का अनुभव होना ही सूरत शब्द संग करना है। सूरत ने शब्द का संग कर के मन रूपी धर्मराय को काबू में कर लिया, यही धरमराय सिर पांव दिराना है। अब मेरुदण्ड से सूरत शब्द और मन तीनूं आगे बढते है और त्रिकुटी पर त्रिवेणी का सुख लीना। चन्द्र सूर भी उलट कर पलट गये और उन्होंने सुखमणा का संग कर लिया। आद पुरूष यानि परब्रह्म अलख अविनाशी से मिल कर हरिजन प्रसन्न है। रात दिन सुन्न याने

निरंजन निराकार पद में सतशब्द के ध्यान का अनुभव होना ही मन का निजमन कर चीनना है। म:फ: है कि सूरत का शब्द में अेक होना ही पीव परस अंग भीना है तथा आ:पद में लय होना ही सुन्न सागर में मिलना है।

卐 हरजस पद राग सोरठ (१८) 卐

जोगिया गिगन मंडल घर खेले। कामर क्रोध और मन की ममता, गुरु के शब्दा पेले॥ टेर॥

हाथ न पांव परां नहीं पांखा, नेण बेण नहीं बांणी।
अगम अनोप अज्ञाद अगम में, बिरले जन गत जांणी॥ १॥
अला न आभो पवन न पांणी, रूप रंग नहीं काया।
अधर अकेला आप निरंजन, सूरत शब्द संग किया॥ २॥
मात पिता बेहेन नहीं भैया, जात पांत नहीं जाया।
अरध उरध बिच धरी उनमनी, गेबी गेब दिखाया॥ ३॥
तांकी निजर हीर सो आया, कवडी दाय न आवे।
जन सुखराम मिल्या अनघड सुं, सुरगुण सब छिटकावे॥ ४॥

सतशब्द की साधना करने वाली आत्मा जोगिया कहलाती है, वे ही गिगन मण्डल में शब्द की ध्वनि का अनुभव करती है। काम क्रोध और मन की ममता को सतगुरु के ज्ञान से पेले याने हटा दिया। आत्मा को सतशब्द के संग कर दिया। सतशब्द के हाथ पांव परां पाखा नहीं है। उसके न नेत्र न बाणी है वह अगम में है, अनुपम है और अज्ञाद याने ज्ञान से उसकी जानकारी नहीं होती है। विज्ञान द्वारा बिरले ही संत ही उसकी गति जानते है। उस पद में अला याने तेज आभो याने आकाश पवन याने हवा जल ये सब नहीं है। रुप रंग व शरीर नहीं है, सूरत शब्द के मिलने पर ही उसका पारब्रह्म से ऊपर अधर अनुभव होता है। उसके माता पिता बहन भाई नहीं है, न ही जाति पांति है, न जन्मा है, उठते बैठते श्वांस में भजन करने से गेबाऊ प्रकट होता है, यही गेबी गेब दिखाया है। सतशब्द की साधना का केवल ग्यान हीरे के समान है, जिसको सतशब्द रुपी हीरा मिल गया अब अन्य साधन पसंद नहीं आते है। इस तरह आत्मा अनघड परमात्मा से मिल गयी। अब जन्मना मरना मिट गया, यही सुरगुण सब छिटकाना है।

16:15 Vo)) LTE1

हरजस पद राग जोग धनाश्री (३२)

झालर बिन एक झालर बागी, राग अनन्तर लागी बे।। टेर।।
आ किरपा मेरे सतगुरु कीनी, भांत भांत मत दीनी बे।
आत्म में परमात्म पाया, रूम रूम कंप किनी बे।। १ ।।
सुरत निरत चित मन कूं देख्या, प्राण पुरूष गह लिया बे।
धर का नीर चढे आकाशा, प्राण पिछम दिश किया बे।। २।।
बंकनाल में महारस पिया, हंस आद घर आया बे।
अला पिंगला सुखमण नारी, तां घर आसण पाया बे।। ३।।
कह सुखराम बीरम का चेरा, आगे अलख लखाया बे।
सुन्न सागर में हीरा बरसे, तहां आणंद सुख पाया बे।। ४।।

राम राम

सारे शरीर में सतशब्द का अनुभव होना झालर के बिना झालर बाजना है, कई तरह की ध्वनि का होना ही राग अनंतर लागी है। यह कृपा मेरे सत ग्यान गुरु देव ने की है, और मुझे तरह तरह से समझाया है। आत्मा में परमात्मा पद की प्राप्ति करा दी तथा रूम रूम में शब्द का अनुभव होना ही रूम रूम कंप कीना है। सूरत से ध्यान होना ही निरत से ध्यान अखण्ड रहना, चित से चिन्तन करना, मन से मनन करना, प्राणो के साथ इनका देखना ही प्राण का गह लेना है। प्राणो के साथ शब्द का पूर्व स्थानो को तय करके पिछम दिशा में उलटकर ऊपर चढना ही आकाश में चढना है। व प्राण पिछम दिश करना है। बंकनाल में शब्द का आनन्द अनुभव करके त्रिकुटी में आना ही आद घर जाना है। मेरूडण्ड से अला पिंगला सुखमणा त्रिकुटी में आकर मिलती है। शब्द का त्रिकुटी में ध्यान होना ही आसण पाना है। म:फ: है कि के: पद आ: पद त्रिकुटी याने पार ब्रह्म के आगे है ऐसा अनुभव हो रहा है। के: पद में शब्द का अखण्ड अनुभव होना ही हीरा बरसना तथा आ: पद में लय होना ही आनन्द सुख पाया है।

हरजस पद राग जोग धनाश्री (३३)

गिगन मंडल में बालक पाया, तांके रूप बरण नहीं काया बे।। टेर।।
सो बालक मेरे गुरुजी बताया, दिव्य दृष्ट तल आया बे।
किस विध कीमत तांकी किजे, भेद किसी बिध पाया बे।। १ ।।
ठोड न ठाम नहीं कोई थांणा, खाली दिशा नहीं कोई बे।
हाथ न पांव परां नहीं पांखा, नेण बेण नहीं होई बे।। २।।
तीन लोक सो अधर कहिये, पांव शीष बिन छेहा बे।
कह सुखराम बीरम का चेरा, ऊ बालक हम नेहा बे।। ३।।

म:फ: है कि पारब्रह्म के ऊपर सतशब्द का अनुभव होना ही बालक का पाना है। उसके रूप वर्ण व काया नहीं है। उस बालक की प्राप्ति का भेद मेरे सतगुरु बीरमदासजी ने बताया और दिव्य दृष्टि से उसका अनुभव हुवा। मैं उसकी प्राप्ति का वर्णन कैसे कर सकता हूं। मुझसे उसका वर्णन नहीं होता। न तो ठोड न ठाम है न कोई स्थान है। उसके बिना कोई जगह खाली भी नहीं है। उसके हाथ पांव परां व पांखा नैत्र व बांणी कुछ भी नहीं है। तीन लोक याने खण्ड पिण्ड ब्रह्मण्ड व पारब्रह्म से ऊपर अधर है। न पांव है न शिर है और नहीं उसका वार पार है। उस बालक रूपी सतशब्द से हमारा नेह हुआ है।

हरजस पद राग जोग धनाश्री (३४)

फिट मन फिट लाणत तोने, उबरती फिट मोने रे लो।। टेर।।
भगत मुगत सा गेला छाडे, जम की राह बुवावे रे।
हर की कथा सुणे नहीं काना, आन बिना नहीं सरे रे लो।। १ ।।
जिण तेरा अे देवल किया, नख चख सबे बणावे रे।
केवल राम रिजक का दाता, ताकूं कदे नहीं गावे रे लो।। २।।
पकडे है झूंठ सांच कूं छाडे, विष ले इमरत मेले रे।
हर चर्चा साधु जन लोपे, जायर होली खेले रे लो।। ३।।

राम राम

ॐ हरजस पद राग हिंडोल (३) ॐ

जन सा ठग न कोई हो साधो, जन सा ठग न कोई हो साधो।
जन सा ठग न कोई हो, बडा पासीगर साधो, जन सा ठग न कोई हो साधो।। टेर।।
तीन लोक बेराठज ठगियो, ममता मंछया सोही हो।। १ ।।
मन सरिसा भूपत ठगियो, चढ गया गढ पर दोई हो।। २ ।।
पांचा कूं ठग राह लगाया, पचिसूं सब लोई हो।। ३ ।।
अला पिंगला सुखमणा ठग के, दिया आद घर पोई हो।। ४।।
ओऊं सोहं शक्त ठग के, लिया परम पद जोही हो।। ५ ।।
तीन लोक दस चार भवन ले, जस रेग्या छोही हो।। ६ ।।
ब्रह्मा बिसन महेसर ठगता, हर मिल्या हम सोई हो।। ७ ।।
कह सुखराम इसा जन ठग है, सुण लिज्यो सब लोई हो।। ८ ।।

साधको से फ: है कि जन बडे ठग है व बडे पासीगर है। तीन लोक बेराट याने खण्ड पिण्ड ब्रह्मण्ड से ममता व कामना के साथ से मन रूपी राजा से अलग होकर सूरत शब्द के साथ के: पद में पहुंच गई, यही दोनों का गढ पर चढना है। पांच विषय पचीस प्रकृतियो को भक्ति में लगाना ही सबको राह लगाना है। अला पिंगला से सुखमणा में भक्ति कर के: पद आ: पद की प्राप्ति करना ही आद घर में पोना है। ओऊं सोहं याने स्वांसा से व शक्ति याने इच्छाशक्ति से अलग होकर परमपद की प्राप्ति करना ही परमपद का जोना है। तीन लोक चवदा भवन में उनकी महिमा होना ही जस रहना है। ब्रह्मा विष्णु महादेव के पद से अलग होकर परमात्मा में मिलना ही हर मिल्या हम सोई हो। म:फ: है कि परमात्मा के जन याने केवली संत इस प्रकार के ठग है। इसको सब ही सुण लो।

ॐ हरजस पद राग हिंडोल (४) ॐ

नर तांका कोण हवाला हो। आठ पोहोर निंदा की लारा, नर तांका कोण हवाला हो।। टेर।।
क्षण भर निंदा नारद किनी, संकट जुण में डारा हो।। १ ।।
एक घडी मांई की निंदा, ऊभे काठ में जाला हो।। २ ।।
गण गंध्रप सो निंदा किवी, बिवाण उथल भू डाला हो।। ३ ।।
निंदा सूं नर नरक पड़त है, साख भरत किशन गुवाला हो।। ४।।
कह सुखराम भागवत गावे, निंदक का मुख काला हो।। ५ ।।

म:फ: है कि जो हर समय देवताओ मनुष्यो व प्राणी मात्र की निंदा करने में लगे रहते है उनकी क्या हालत होगी। एक क्षण भर नारदजी ने निंदा की, जिससे स्त्री योनी धारण कर कष्ट उठाना पडा। एक घडी की निंदा करने से भीष्म पितामह के भाई को अपनी माता की निंदा करने पर खडे सुखे वृक्ष में जलना पडा। गण गन्द्रप ने निंदा की जिससे बिवाण से उलटकर पृथ्वी पर आ गिरे। निंदा करने से मनुष्य नरक में जाते है। इसकी साक्षी कृष्ण व सब ही शास्त्र दे रहे है। भागवत भी यही कहती है कि जो निंदा करते है, उनका जमराज के दूत मुंह काला करके नरक में डालते है।

ॐ हरजस पद राग हिंडोल (५) ॐ

राम कहत सम तिरिया हो, वे अंत काहा नहीं फिरिया हो।। टेर।।
अजामेल सो कब कुल राख्या, कद तन साजी किरिया हो।। १ ।।
वैश्या शील किसे दिन पाल्या, बिवाण ताकिदी उतरिया हो।। २ ।।
चंचल चोर गवु ऋषि मारया, द्रव पराया हरिया हो।। ३ ।।
चोरां को शिर काटत बोल्या, हर हर नांव उचारे हो।। ४ ।।
घाटम कूं तब बार पहुंती, घोडे का रंग फिरिया हो।। ५ ।।
लोधे धरम दया कद पाली, पकड प्रभु बस करिया हो।। ६ ।।
झूंठा फल शिबरी का पाया, कब चोका चित धरियो हो।। ७ ।।
जलती अग्न में मिनिया राख्या, राम पुकारी श्रीया हो।। ८ ।।
किता सेना सजन कसाई, पतित अनेक तिरिया हो।। ९ ।।
कह सुखराम नाम है ऐसा, करणी बिना उधरिया हो।। १० ।।

ॐ हरजस पद राग भेरुं प्रभाती (१७) ॐ

संतो भेद बेद सुं न्यारा। गुरु प्रताप साध की संगत, लखे सो हरिजन प्यारा।। टेर।।
तीनो चूर पांच को पकडो, तीन दोय बिन नहीं सारे।
धरणी ताक करे निसाणो, चोट चोट पे मारे।। १।।
नव दरवाजा जगत सब जावे, ताका ऊ वार न पारा।
दशवों जाय ऊगाडे कोई, सो है गुरु हमारा।। २।।
खट रस कंवल पूरब दिश बिंधे, छहीं पिछम दिश खोले।
बंकनाल होय उलट समावे, तो अणभै बायक बोले।। ३।।
ऊलटा होय चढे गढ ऊपर, चंद सूर गम पावे।
दोनो एक बिवाण बिठाया, सुखमण के घर आवे।। ४।।
चंद सूर बहत अटकाणा, ओऊं में सोऊं समाया।
जन सुखराम उलट चढ आगे, देव परस बिन काया।। ५।।

संतो से फ: है कि भजन का भेद व परमात्मा प्राप्ति का भेद वेदो से अलग है, परमात्मा की प्राप्ति का भेद सतगुरु याने केवली भगवंतो के अणभै ग्यान के प्रताप व संतो की संगति से ही कोई भक्ति करने वाला जन ही अनुभव कर सकता है। खण्ड पिण्ड ब्रह्मण्ड को पार करना ही तीन को चूरना है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश के शरीर के सारे नहीं रहना है, पांच विषयो से अलग होना ही पांच को पकडना है। माया ब्रह्म के पद से अलग होना ही दो के सारे नहीं है, नाभी में सांस ऊसांस में शब्द में सूरत लगाकर भजन करना ही चोट पर चोट मारना है। नो दरवाजो से सारा जगत जाता है उसका कोई वार पार नहीं है, लेकिन जो दशवों द्वार उघाड के जाते है वो गुरू पद के: पद आ: पद की प्राप्ति करते है। छ: पूर्व के छ: पिछम के कंवलों को छेदन कर बंकनाल से होकर जाते है वो अणभै वचन बोलते है। इस तरह भजन करके गढ याने दशवे द्वार पर चढने पर ईडा पिंगला सुखमणा में भजन होने लगता है तो देही से रटणा चलती रहती है व सूरत निरत सुद्धि बुद्धि के लगाये बिना ही सत शब्द की भंवर गुंजार आती है। वो सता समाधि है फिर गढ याने सुन्न समाधि आनन्द ब्रह्म में कभी कभी घडी आधी घडी मिनट दो मिनट तक इडा पिंगला चलना बन्द होती है तो ओऊं सोऊं उसांस अेक होकर शरीर की सुद्धि नहीं रहती है। म:फ: है कि बंकनाल से उलटकर के: पद में पहुंचना ही आगे चढना है। के: पद में सतशब्द का निराधार अनुभव होना ही बिना काया के देव परसना है।

ॐ हरजस पद राग भेरुं प्रभाती (१८) ॐ

पांडे चार वरण घट मांही, किण सुं भिन्न चलाई।
जिण संग काज अकाज होवे, सो कोई जांणे नाही।। टेर।।
नीच बरण सो यो तज पांडे, तां संग नरकां जावे।
चार बरण की लोग लुगाई, सो सब कारज आवे।। १।।
नीच बरण में सोग सांसो, काम कबेलो चाहे।
वैश्य बरण बमेक बाता, करणी करण ऊपाये।। २।।
विपर बरण बैराग बस रे, पांच परखे मांह।
चोथो बरण व संतोष छत्री, कूड भाषे नांह।। ३।।
लख चौरासी जात सारी, आशा त्रिसना मांही।
सरब धात सो ही मत तेरे, खायात खाण कही।। ४।।
रे तूं भिन्न भ्रांत जो राखे, अे सब दूर निवार।
कह सुखराम भजन बिन पांडे, चारूं बरण चमार।। ५।।

पंडित चार वर्ण शरीर में है तुम किससे भिन्नता करते हो, जिसके साथ नुकसान होता है उसको कोई नहीं जानता। नीच वर्ण वे है जिनके साथ नरको में जाना पडता है, उनको छोडो। चार वर्ण के स्त्री पुरूष सब काम में लेते है। नीच बरण में सोच फिकर है, कामना है, कुटुम्ब का मोह है, वैश्य वरण में विवेक की बाते व करणी करने के उपाय है। ब्राह्मण वर्ण में बैराग है व पांच ईन्द्रियो रूप रस गन्ध शब्द स्पर्श इनको बुरे कर्मो से हटाकर शुभ करमो में लगाना ही पांचु परखे मांय है। चौथा वर्ण क्षत्रिय है, उनके क्षमा है और झूंठ नहीं बोलते है, आशा तृष्णा है, यही शरीर में चौरासी

16:34

facebook Open app Log In

Enlightened Masters's post

सोऽहम् साधना विधान
साधना करते समय जब साँस भीतर जा रही हो तब 'सो' की भावना, भीतर रूक रही हो तब 'अ' का और जब उसे बाहर निकाला जा रहा हो तब 'हम्' ध्वनि का ध्यान करना चाहिए। इन शब्दों को मुख से बोलने की आवश्यकता नहीं है। मात्र श्वांस के आवागमन पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है और साथ ही यह भावना की जाती है कि आवागमन के साथ दोनों शब्दों की ध्वनि हो रही है।

आरम्भ में कुछ समय यह अनुभूति उतनी स्पष्ट नहीं होती, किन्तु प्रयास जारी रखने पर कुछ ही समय उपरान्त इस प्रकार का ध्वनि प्रवाह अनुभव में आने लगता है और उसे सुनने में न केवल चित्त ही एकाग्र होता है, वरन् आनन्द का अनुभव होता है।

ध्यान से मन का बिखराव दूर होता है और प्रकृति को एक केन्द्र पर केन्द्रित करने से उससे एक विशेष मानसिक शक्ति उत्पन्न होती है। उससे जिस भी प्रयोजन के लिए- जिस भी केन्द्र पर केन्द्रित किया जाये, उसमें जाग्रति- स्फुरणा उत्पन्न होती है। मस्तिष्कीय प्रसुप्त क्षमताओं को, षट्चक्रों को, तीन ग्रन्थियों को, जिस भी केंद्र पर केन्द्रित किया जाय वहीं सजग हो उठता है और उसके अन्तर्गत जिन सिद्धियों का समावेश है, उसमें तेजस्विता आती है।

सोऽहम् साधना के लिए किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है। न समय का, न स्थान का। स्नान जैसा भी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। जब भी अवकाश हो, सुविधा हो, भाग-दौड़ का काम न हो, मस्तिष्क चिन्ताओं से खाली हो। तभी इसे आरम्भ कर सकते

卐 हरजस पद राग धमाल (५) 卐

मेरे आंणद अनंत सुख ऊपज्यो हो। सुन्न में खेलुं हो सुन्न में खेलुं, साहिब संग खेलूं फाग॥ टेर॥

मरदंग ताल पखावत बाजे, जिंज डफा घन घोर।
गावत अनंत सहेलिया हो, लहक रहयो एक मोर॥ १॥
मन सुख धुन गुलाल उछले, प्रेम पिचरका होय।
बाणी बेण श्याम मुख बोल्या, मोह लिया मन जोय॥ २॥
अला पिंगला सुखमण हो, आण मिल्या जिण जाग।
गाजे है नांव घुरे दिन राती, वां खेलूं नित फाग॥ ३॥
ऊलट चढी गढ ऊपरे हो, रमी है पीव संग जाय।
कह सुखदेव अब जगत में हो, कछु न आवे दाय॥ ४॥

मेरे अनन्त आनन्द व सुख की प्राप्ति हुई है। ब्रह्मण्ड पार ब्रह्म से ऊपर निरंजण निराकार पद में सूरत दिष्ट व दिव्यदृष्टि के द्वारा सतशब्द का अनुभव होना ही सुन्न में फाग खेलना है। त्रिकुटी सुन्न में शब्द की ध्वनि होना ही मरदंग ताल पखावत जिंज डफली व अनन्तो सहेलियो का गाना है। शब्द की ध्वनि हो रही है यही मोर का बोलना है। मन में सुख आता है यही गुलाल उडना है। प्रेम से भक्ति होना ही पिचरका चलना है, शब्द की ध्वनि का होना ही श्याम का मुख बोलना है व सूरत शब्द का ध्यान कर रही है, यही मोह लिया मन जोय है। जहां पर अला पिंगला सुखमणा

मिलती है जहां रात दिन शब्द की ध्वनि हो रही है वहां जाकर जन का ध्यान करना ही नित फाग खेलना है। बंकनाल के रास्ते सूरत ऊंची याने ब्रह्मण्ड से ऊपर के: पद की प्राप्ति होना ही गढ पर चढना है। सूरत का शब्द में मिलना ही पीव के साथ में रमना है। म:फ: है कि संसार में अब कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

卐 हरजस पद राग धमाल (६) 卐

संतो अे अगवाणी आविया हो, मेरे हो मेरे आंणद हुवा मन मांय॥ टेर॥

प्रेम करक लेहरा बोहो ऊठी, विरह व्यापी शरीर।
खट रस साव बोहोत विध आवे, मन तन धरे है न धीर॥ १॥
कंठ के बीच गिलगिली होवे, अटकत अटकत आंण।
घडी पहर पल होय रहे तब, बोल सक्या नहीं बांण॥ २॥
हिरदा मांय हिलोला खावत, सोक पडे तब आय।
जैसे बाज झपट तीतर पर, तां सूई अधिक कहाय॥ ३॥
नाभ कंवल में सुण धुन ऊठी, कांप रहयो सब डील।
बाजा राग छतीसूं बाजे, खुली है अगम की मील॥ ४॥
सुरग इकीस पिछम दिस घेरया, दिया है जमा शिर पांव।
लागा बंध नख बिचे, सब जुग देखत चाव॥ ५॥
त्रिगुटी मांय जाय जन बैठा, तीन जोत जहां होय।
कह सुखराम नाद घरणावे, अनंत कला गत जोय॥ ६॥

संतो से फ: है कि मेरे यह वृतिया धारण हुई तब से मेरे बहुत आनन्द हुवा है। प्रेम व करक रूपी बहोत लहरा उठ रही है। शरीर में बिरह आ रही है। भजन करने पर कंठो से जो आता है यही खट रस साव का आना है। मन व शरीर से इसका हर समय सुख लेना ही मन तन धरे न धीर है। कंठो में साव के आने से गिलगिली होती है और हर समय आता रहता है अटकता नहीं है। सावका ऐसा आनन्द आता है, घडी पोहर बोलना भी बंद हो जाता है। जिस समय मैं भी परमात्मा की भक्ति थोडी सी भूल जाता हूं तो हिरदा में बडा भारी दुख होता है, यही हिरदा में हिलोला खाना है। जिस प्रकार बाज तीतर पर झपटता है और तीतर को जो दुख होता है उससे भी ज्यादा दुख होता है। नाभी के स्थान पर शब्द आता है सारा शरीर कांपने लग जाता है। जिस प्रकार ठंड से कांपता है। सूरत के द्वारा व नाड नाड रोम रोम में शब्द का होना ही छतीसुं प्रकार रागो का बाजा बाजना व अगम का रास्ता खुलना है। बंकनाल में इक्कीस गांठिये है यही स्वर्ग है, इनको पार करना ही छेदना है। शब्द के साथ सूरत का मेरू स्थान पर उतान पात बन्ध लगना है, उससे सारा शरीर जकड जा[ता] है। यही नख चख के बीच में बन्ध लगना है। ऐसा अनुभव होना ही शरीर रूपी जगत को च[ाव] से देखना है। त्रिगुटी में आने पर अला पिंगला सुखमणा का संगम हो जाता है, यही तीन जोती है। म:फ: है कि शब्द की अखण्ड ध्वनि हो रही है। यही नाद का घरणाना है व अनंत कला का देखना है।

पांच तत्वो व शरीर स्वांसा से अलग होकर जीते जी के: पद की प्राप्ति करना ही जीवतडा मरना है।

卐 हरजस पद राग मस्त (४) 卐

तूं तो निरगुण पद से मिल रे, ज्ञानी मन नर रे।
तूं तो पारब्रह्म सूं मिल रे, ज्ञानी मन नर रे॥ टेर॥
भगत मुगत की गेल सम्भावो, नांव अमीरस ईमरत खावो।
सांस उसांस की डोर लगावो, रे मन भजन पूर कर ले रे॥ १ ॥
आसण मार जुगत से बैठो, या घट मांय पवन संग पेसो।
जब तन खोज शब्द मुख कह सो, रे मन आत्म सोजर छिल रे॥ २ ॥
लिव बंध शिवरण अे निस कीजे, नाभी मांय सूरत मन दीजे।
रसणा जोर ऊतावल कीजे, रे मन बिरहन सुं नित खेल रे॥ ३ ॥
बंकनाल होय ऊंचा जावो, त्रृकुटी मथ अनाहद बहावो।
सुखमण गंग निसो दिन न्हावो, रे मन दशवें द्वार पर पिल रे॥ ४ ॥
कह सुखराम सुणो संत आई, निरगुण सूं हम मिलियां मांही।
पीछे आ बिद रीत बताई, रे मन थाका मूसा बिल रे॥ ५ ॥

हे ज्ञानी मन नर तूं निरगुण पद की प्राप्ति कर और पारब्रह्म में मिल। भगती मुगती का साधन करो। नांव रूपी अमरत पीवो, हर समय सांस उसांस में भजन करना ही सांस उसांस की डोर लगाना है व भजन पूर करना है। आसन लगाकर स्वांसा के साथ भजन करना ही युक्ति से बैठना व पवन संग पेसो है। सारे शरीर में शब्द का अनुभव कर मुखारबिन्द से कहना ही जब तन खोज शब्द मुख कह सो है। आत्मचेतन द्वारा अनुभव करके उसका अनुभव आनन्द लेना ही आत्म सोजर छिल रे है। नाभी में सूरत लगाकर विरह के साथ रसना द्वारा जल्दी से जल्दी हर समय रात दिन भजन करना ही लिव बंध शिवरण करना है। बंकनाल से उलटकर ऊपर त्रिकुटी में बिना किये शब्द का अनुभव होना ही अनहद बहावो है। दशवे द्वार में हर समय सुखमणा में अपने आप भजन होना ही सुखमण गंग में नहाना है। म:फ: है कि सब ही संत सुणो, शरीर व स्वांसा से अलग होकर केवल में मिलना ही निरगुण से मिलना है। आ: पद में लय होना ही थाका मूसा बिल रे है। अर्थात अब जन्मने मरने से बरी हो गई।

卐 हरजस पद राग मस्त (५) 卐

तूं तो ऊण पद सुं मिलजा रे, लाड लडा मन रे। तूं तो आवागवण न ओरूं, सुध लिया मन रे॥ टेर॥
रजोगुण, तामस, ममता त्यागो, सतगुण शील नींद सुं जागो।
रच मच नांव भजन सुं लागो, रे मन उलट आद घर आ रे॥ १ ॥
बेद कुराण पुराण तजिजे, अेको नांव निकेवल लिजे।
सब तन चूर गिगन घर कीजे, रे मन दशवें द्वार समा रे॥ २ ॥
त्रृगुण रूप तजो सब भाई, राम बिना सब झूंठ सगाई।
दशवों द्वार ऊगाडो जाई, रे मन नैचल सुं लिव ल्या रे॥ ३ ॥

16:20

पूरब दिशा चढे सो ऊंचो, किसो नांव कहो भाई।
पिछम दिशा पहाड चढ जावे, किसी रीत कर मांई॥ ३॥
कह सुखराम सुणो सब ज्ञानी, अे न्यारा कर लावे।
केवल बीज, एक माया को, सब न्यारो कर पावे॥ ४॥

वे जन ही पूरे जोगी है जो पहुंचकर अनुभव कर कहते है वो सच्चे है, सुन कर कहने वाले झूंठे है। एक साधन पूरब का व एक पिछम का है, पूरब की तरफ चढता है वो कौनसा शब्द है तथा पिछम की तरफ चढता है वो कौन सा शब्द है। पूरब के साधन को जो अंच्छर चढता है वो कहां से आता है। पिछम के रास्ते जो ऊंचा चढता है वो ने: अंच्छर कहां से आता है। पूरब के रास्ते में ऊंचा चढता है वो कौनसा नांव है। पिछम के रास्ते मेरूडण्ड को पार करता है वो कौनसी रीति है। म:फ: है कि सब ज्ञानी सुणो, इन सबका वर्णन करने पर ही केवल बीज व माया के बीज की अलग अलग मालूम पडती है।

卐 हरजस पद राग आसा (९) 卐

बांदा ओ अरथ यां को होई। नाम न्यारो भेद न्यारो, सतगुरु न्यारा जोई॥ टेर॥
पूरब घाट चढे सो अंच्छर, बिन्द मांय सूं आवे।
सोऊं ओऊं जाप अजपो, सुण नाद लग ओ जावे॥ १॥
पिछम घाट होय नाम चढे रे, नाद मांय सूं आवे।
नाद अनाद लांग सत्त आगे, आनन्द लोक में जावे॥ २॥
पूरब दिसा चढे सो भाई, देही हले न कोई।
पवन संग भरगुटी जावे, अंश बिन्द को जोई॥ ३॥
पिछम घाट नांव सो चाले, सो देह जाड पिछाडे।
बिन्द नाद को करे बिछेडो, माया अंश सब तोडे॥ ४॥
पडत बिछेवो कलपे धुजे, माया का गुण भाई।
अनंत जुग हंस मो संग रमियो, आज छोड अब जाई॥ ५॥
पूरब दिशा चढे जब माया, कहो काय कूं रोवे।
नाद बिन्द सो रहे समेला, बिछडण कदे न होवे॥ ६॥
देह बैराट मांय को मांही, जाप जपसी भाई।
जागे नाम नाद सो घट में, ब्रह्म कहे सो मांई॥ ७॥
ब्रह्म बैराट मांय से आवे, नाद तत घट मांही।
ऊ सुण आण बिछोडे बिंद कूं, और ऊपायस नांही॥ ८॥
मुख रटणा बिना नाम बारलो, इण घट आवे नांही।
आत्म ब्रह्म नाम सो जागे, मुद्रा साजन मांही॥ ९॥
कह सुखराम सुणो सब ज्ञानी, ओ ने: अंच्छर कह कोई।
सो बायर सूं घट में आवे, और घट में होई॥ १०॥

बांदा हे मन इसका यह अरथ है नाम अलग है भेद अलग है और सतगुरु अलग है। पूरब के

रास्ते जो अंच्छर चढता है। वह बिंद याने चेतन में से आता है। ओऊं सोऊं का जाप अजपा करके नाद याने ब्रह्मण्ड तक जाता है। पिछम दिशा में जो नाम चढता है व नाद याने सांस उसांस में भजन करने पर प्रगट होता है यही नाद में से आना है। पिछम दिशा का नाम नाद याने स्वांसा से, अनाद याने ब्रह्मण्ड पारब्रह्म तक सूरत के आधार के ध्यान से, सत याने के: पद के ध्यान से आगे आ: लोक में जाता है। पूरब के रास्ते में नाम चढता है तो शरीर नहीं धूजता है। स्वांसा के साथ भृगुटी होकर जाता है और चेतन के साथ रहता है। पिछम के रास्ते जो नाम चढता है वो शरीर को धूजाता है यही जाड पिछाडना है। पिछम का नांव चेतन से अलग होकर शरीर व स्वांसा से अलग हो जाता है, यही माया अंश तोडना है। हंस माया से अलग होता है तो माया कलपती धूजती है, यह सब माया के गुण है। अनन्त जुगो से हंस माया के साथ है और आज माया से अलग हो रहा है। पूरब दिशा में शब्द चढता है तो माया किस लिये रोवे क्योंकि चेतन, माया व शब्द शामिल रहते है। वह चेतन माया से अलग नहीं होता है। शरीर के अन्दर सतगुरु विधि से भजन करना ही देह बैराट मांय के मांही जपना है। सतगुरु विधि से भजन करने पर सतशब्द की जागृति होती है और ब्रह्म का पद शरीर में ही है। ब्रह्म बैराट में से आकर सतशब्द शरीर में प्रगट होता है। वही बिन्द याने चेतन माया से अलग करता है, इसके सिवाय कोई ऊपाय नहीं है। मुंह से रटे बिना बह्म बैराट में से आकर सतशब्द प्रगट नहीं होता, आत्म चेतन के आधार से नाम प्रगट होता है। यही आत्म ब्रह्म नाम का जागना है। मुद्रा साजन सब शरीर में ही है। म:फ: है कि सब ज्ञानी सुणो, इसको ने: अंच्छर कहते है जो बाहर याने ब्रह्म बैराट से शरीर में आता है। दूसरे सब शब्द शरीर में ही है।

ज्यूं लडकी सुण लडका होवे, यूं नाद बिंद विध न्यारी॥ ८॥
छूटे धात मैथुन में पाछे, सो नग सुण बण आवे।
यूं शिवरण में विध है न्यारी, सतगुरु भेद बतावे॥ ९॥
पडवा आद तिथ सुं गिणीयां, एक पुरूष एक नारी।
जिण संग भोग करत गरभ थांबे, सो नग बणे विचारी॥ १०॥
सांस ऊसांस तिथ अे जाणो, एक बीज एक पडवा।
या बीच नाद निरालो होवे, ज्यूं लडको व्हे पडवा॥ ११॥
सांस सांस शिवरण नर कर है, तामें या विध जागे।
नाद बिंद भेला चढ जावे, ध्यान गिगन में लागे॥ १२॥
सुणो ऊसांस संग लिव लागे, रटण अंत उकाऊ।
तो सुण नाद निरालो जागे, चढे पीठ दिश भाऊ॥ १३॥
कह सुखराम सुणो सब ज्ञानी, आ विध सुण लो आई।
इण कल बिना नाद सुण न्यारो, चढे कबहूं नहीं भाई॥ १४॥

वेही हंस मोख में जायेंगे जिनके घट में निज नांव की जागृति हुई है। वे ही जन्म मरण में नही आयेंगे। शरीर में ने: अंच्छर की जागृति होती है, यही नांव की कुदरत कला जागना है। यह केवल पद की प्राप्ति का बीज है और उसकी प्राप्ति के लिये दूसरा साधन नहीं है। नांव की जागृति होने के ये लक्षण है। शरीर थरथराता है और उसको के: की प्राप्ति होगी। अणभोले में लाखो दोष भी हो जावे तो भी मनुष्य जन्म ही मिलेगा। जप से, तप से, नियम धारण करने से, नवधा भक्ति करने से, ओअं सोअं का जपा अजपा करने से, माया के बीज की जागृति होती है, यह केवल बीज नहीं है। पीठ के रास्ते बंकनाल में ऊंचा चढता है वह ने:अंच्छर है। पूरब की तरफ चढता है वह ओअं सोअं याने अंच्छर ब्रह्म है। मन से चाहता है कि मेरी गति मुक्ति हो जाये तो भी कभी मोक्ष नहीं होती, कारण साधन माया का है, यही बीज में फरक होना है। एक केवल का, एक माया का ये दो बीज संसार में है। जो जो हंस जैसा जैसा साधन करता है वैसे वैसे ही लोक की प्राप्ति होती है, न मन जानने से होती है, न इच्छा से होती है। शिवरण की विधि है वही भोग की विधि है, इस विधि को जानता है जिससे स्त्री-पुरूष बनते है। मैथुन की विधि एक है, उस एक विधि से लडका व लडकी होता है। इसी प्रकार भजन करने की विधि एक है लेकिन एक विधि में शब्द चेतन से अलग हो जाता है और एक विधि में शब्द चेतन के साथ रहता है। मैथुन से धात छूटने पर या तो लडका होता है या लडकी होती है। इसी प्रकार भजन की विधि अलग है। इसका भेद सतगुरु से मिलता है। पडवा याने एकम व दूज की तिथि एक पुरूष की व एक स्त्री की है, जिस तिथि में गर्भ ठहरता है, याने स्त्री की तिथि सांस में ठहरने पर लडकी होती है और पुरूष की तिथि याने पुरूष के उसांस में बिंद छिटकने पर स्त्री के गर्भ ठहरने पर लडका होता है। इसी प्रकार भजन में सांस उसांस दो तिथियां है याने सांस तो दूज है और उस्वांस पडवा याने एकम है। शब्द चेतन माया से अलग होता है यही एकम तिथि में लडका का होना है। सांस सांस में भजन करने से यह विधि होती है, शब्द चेतन माया शामिल रहते है और गिगन में ध्यान लगता है। जब सांस उसांस में खूब भजन करते है तो शब्द बंकनाल में उलटकर चेतन माया से अलग हो जाता है, यही नाद निराला जागना है।

म:फ: है कि सब ही ज्ञानी इस विधि को सुण लो, सांस ऊसांस में भजन के बिना सतशब्द अलग नहीं चढता है।

हरजस पद राग आसा (११)

बांदा ओई कोई भेद बतावे। अंच्छर बिना बिन्द बिना उलटर, गिगन कौन विध जावे॥ टेर॥
एक नाद बिन्द सो भेला कहिये, एक नाद सो जुवा।
एक ने: अंच्छर न्यारो प्रगटे, एक अंच्छर संग हुवा॥ १॥
एक तत ज्ञान कह हम चिन्यो, एक समझ सूं न्यारो।
एक ध्यान उतर चढ जावे, एक अखण्ड विचारो॥ २॥
मुद्रा एक समझ संग लागे, एक कला बिन भाई।
एक अखण्ड लिव सो लागी, एक खींर खिर जाई॥ ३॥
एक सता समाध सूरत संग, एक सूरत से ही न्यारी।
एक निद्रा मांय मिट गई नासत, एक अखण्डत प्यारी॥ ४॥
एक समाध पवन संग लागे, एक नकेवल भाई।
एक पोहर सवा लग वारे, एक जुगा लग भाई॥ ५॥
कह सुखराम सुणो सब ज्ञानी, याहां रा सुख बतावे।
सुणर कह सो झूंठा जग में, पहुंच खबर कोई लावे॥ ६॥

ऐसा कोई भेद बतावे, बिना ने: अंच्छर के चेतन बंकनाल में उलटकर गिगन याने ब्रह्मण्ड से ऊपर कौन विधि से जाता है। एक में तो शब्द व चेतन माया साथ रहते है और एक शब्द चेतन माया से अलग हो जाता है। एक शरीर व स्वांसा से अलग ने: अंच्छर प्रगटता है, एक शरीर में चेतन माया के आधार पर अंच्छर रहता है, एक तत याने ब्रह्म को ज्ञान द्वारा अनुभव किया, एक समझ से न्यारा के: पद में सतशब्द का अनुभव हुआ, एक ध्यान उतरता व चढता रहता है और एक हर समय अखण्ड रहता है। एक ध्यान समझ के साथ लगता है। एक समझ से न्यारा लगता है। एक अखण्ड लिव लगी रहती है। एक लगती रहती है और टूटती रहती है। एक समाध ब्रह्मण्ड में सूरत के साथ लगती है। एक ब्रह्मण्ड व पार ब्रह्म से ऊपर के: पद में सूरत से अलग सत्ता समाधि लगती है। एक निद्रा में मिट जाती है और एक अखण्डित रहती है, एक समाधि स्वांसा के साथ लगती है और एक स्वांसा से अलग निकेवल लगती है। एक सवा पहर याने चार घंटे तक समाधि रहती है। एक समाधि जुगो तक लगती है। म:फ: है कि सब ज्ञानी सुणो इनका सुख अलग अलग बताओ, सुनकर कहने की बात झूंठी है और पहुंचकर अनुभव कर कहते है वो सच्चे है।

ॐ हरजस पद राग जोग धनाश्री (४४) ॐ

अरट ऐसो बेलो ऐसो, मांय नहीं पडे पंजाली रे।
निश दिन रेण पलक नहीं छूटे, पावे है जाब संभाली रे लो।। टेर।।
राम की लाठ्ठस लिव को घेरा, बिध बांगडा किया रे।
मन की माल सूरत की घडियां, जुगत जूण कर दिया रे लो।। १ ।।
प्रीत पानडी प्रेम पारछो, जीव रोडियो फेरयो रे।
ओऊं सोऊं का बलदिया, हाली निज मन घेर रे लो।। २ ।।
बंकनाल की बेल चलाई, नीर गिगन घर आवे रे।

काया खेत कमायो आछो, नांव बीज कण बायो रे लो।। ३ ।।
ज्ञान खोडा रोपत पाणतियो, सूरत खामणा काढे रे।
काया खेत पाय विपोता, नीर आकाशा चाढे रे लो।। ४ ।।
दोली बाड खिम्या की किवी, जरणा जतन करायो रे।
कह सुखराम अब खेतज पाको, हेल देर अन्न आयो रे।। ५ ।।

सांस उसांस में भजन होना ही अरट बेल चलना है, निरन्तर जल का चलना ही पंजाली नहीं है। रात दिन एक क्षण भी भजन नहीं छूटता है। जब संभालते है तब भी भजन चलता रहता है। ज्ञान की लाठ व लिव बंध भजन होना ही घेरा है, सतगुरु विधि से भजन करना ही विध बांगडा करना है। मन व सूरत लगाकर भजन करना ही माल व घडिया है, संसार का मोह छोडना ही जुगत का जूण करना है। प्रीति प्रेम से भजन करना ही पानडी व पारछो है, जीभ से भजन करना ही रोडियो फेरना है। सांस ऊसांस में भजन करना ही ओऊं सोऊं का बलदिया करना है। आत्मचेतन ही हाली है। शब्द बंकनाल में उलटकर गिगन में पहुंचता है यही बैल चलाना व गिगन घर आना है। शरीर में अच्छे अच्छे लक्षण धारण करना ही काया खेत का अच्छा कमाना है। सांस ऊसांस में भजन कर सतशब्द की जागृति होना ही नांव बीज कण बाना है। ज्ञान धारण करना ही खोडा है। विश्वास रखना ही पाणतियो है, सूरत से ध्यान करना ही खामणा काढना है। शरीर में सब जगह शब्द का अनुभव होना ही काया खेत पाय विपोता है। ब्रह्मण्ड व पार ब्रह्म से ऊपर शब्द का अनुभव होना ही नीर आकाशा चाढे है। क्षमा की डोली व बाड बनाई। जरणा धारण करना ही जतन करना है। म:फ: है कि रग रग रोम रोम नाड में खण्ड पिण्ड ब्रह्मण्ड पार ब्रह्म व के: पद में शब्द का सब जगह अखण्ड अनुभव होना ही खेत पाक कर हेल देकर अन्न आना है।

ॐ हरजस पद राग जोग धनाश्री (४५) ॐ

माया है रे या तो माया निरबख, तामे फेर न फारा रे लो।। टेर।।
थिर अस्थिर सो सब ही माया, सुण ज्ञानी कहूं तोई लो।
कला आण कर कारज सारे, सो थिर कहो किम होई लो।। १ ।।
बडो गेल सूं इचरज होवे, भारी सूं बोहो भारी लो।
माया है रे ऊ साहिब नांही, प्रगटयो आंण विचारी लो।। २ ।।
उलटे चढे सो चेतन माया, ब्रह्म के जोडे माया लो।
सतलोक ही माया पुंचे, बिन माया कुण आया लो।। ३ ।।
कह सुखराम ब्रह्म हुवो माया, माया ब्रह्म हुवे सोई लो।
सतशब्द में जाय मिले है, जब नहीं पलटे कोई लो।। ४ ।।

माया है या तो निरबख याने सिर्फ माया है। इसमें किसी तरह का फरक नहीं है। जो थिर है याने सत है वह भी माया है, जो अस्थिर है याने असत है वह भी माया है। हे ज्ञानियों मैं कहता हूं जो सुनो, जो कला प्रगट होकर किसी का कार्य करती है वो थिर कैसे रह सकती है। बडी ईचरच पैदा करने वाली बात जो बहुत भारी से भारी हो वह माया है, वो ब्रह्म नहीं है। विचारो वह प्रगट है। बंकनाल से उलटकर चेतन शरीर रूपी माया से ही ऊपर चढती है। ब्रह्म के साथ माया है।

卐 हरजस पद राग धुन प्रभाती (९) 卐

आज दिवस भल ऊगा हो, मेरा प्रांण आद घर पूगा हो ॥ टेर॥
धिन धिन वा पुल कवाही हो, मेरा ध्यान लगा सुन्न मांही हो ॥ १ ॥
सर्वण रसना कवाही हो, एक मास पद राही हो ॥ २ ॥
कंठ शब्द पख एका हो, हिरदे मास बसेखा हो ॥ ३ ॥
नाभी में पद आया हो, बरस द्वादस गाया हो ॥ ४ ॥
जहां शेष नाग घर जागा हो, वहां एक माश दिन लागा हो ॥ ५ ॥
पिछम देश में आया हो, वहां जन बोहो दुःख पाया हो ॥ ६ ॥
सूरग ईकीसूं छेक्या हो, जाणेगा जन देख्या हो ॥ ७ ॥
दिवस मास पख बीता हो, जम थाणा जन जीता हो ॥ ८ ॥
मेरूडण्ड जहां घाटी हो, ऐसी ओर न बाटी हो ॥ ९ ॥
अला पिंगला जागी हो, अनहद नोपत बाजी हो ॥ १० ॥
चार मास जुग जुंझया हो, तब घर आदू सुज्या हो ॥ ११ ॥
त्रिकुटी तख्त बिराजे हो, अब जन सुखदेव गाजे हो ॥ १२ ॥

आज का दिन मेरे लिये भला उदय हुवा है। जिस दिन मेरे प्राणो को आद घर याने के: पद की प्राप्ति हुई है। उस पल को धिन है धिन है जिस पल में मेरा ध्यान ब्रह्मण्ड पारब्रह्म से ऊपर के: पद में लगना ही सुन्न में ध्यान लगना है। रसना से कानो से सुनकर एक महिने तक भजन किया है। कंठ कंवल पर पन्द्रह दिन भजन किया है व हिरदे में एक महिना भजन किया है। ब्रह्मा गणेश व शेषजी के स्थान पर एक महिने तक भजन किया है। जब शब्द नाभी में आया तो बारा बरस

तक नाभी में सूरत लगाकर भजन किया है। पिछम देश में आकर भजन विशेष करने से ही शब्द आगे बढता है। यही दुख पाना है। बंकनाल में इक्कीस स्वर्गों को छेदन किया याने पार किया है वो ही जाणेंगे। जिन जनो ने इसका अनुभव किया है। डेड मास तक भजन कर मेरूडण्ड को पार करना ही जम थाणा जीतना है। मेरूडण्ड को पार करना बडा ही कठिन है। ऐसा कोई रास्ता दूसरा कठिन नहीं है। मेरूडण्ड से ही अला पिंगला सुखमणा जागृत होती है। फिर त्रिकुटी में तीनो अेक होकर सतशब्द का आठ पोहर अनुभव होता है, यही अनहद की नोपत बजना है। बारह वर्ष चार महिने तक भजन करने पर के: पद का अनुभव हुवा। त्रिकुटी याने पारब्रह्म से ऊपर सतशब्द का अधर अनुभव होना ही त्रिकुटी तख्त पर विराजना है। म:फ: है कि शब्द की ध्वनि का अनुभव होना ही गाजना है।

卐 हरजस पद राग धुन प्रभाती (१०) 卐

त्रिकुटी महल अनुपा हो, जां रात दिवस नहीं धुपा हो ॥ टेर॥
सुणज्यो हरिजन आंणी हो, कहूं परमपद छांणी हो ॥ १ ॥
तीन लोक का साधा हो, वहां मठ त्रिकुटी बांधा हो ॥ २ ॥
सतलोक यां आगे हो, ज्यां जम का डर नहीं लागे हो ॥ ३ ॥
त्रिकुटी लग जम जावे हो, ब्रह्मा बिसन ढहावे हो ॥ ४ ॥
ओऊं सोऊं सांसा हो, वहां लग जम का बासा हो ॥ ५ ॥
त्रिकुटी परे मुकामा हो, नव लंघ केवल धामा हो ॥ ६ ॥
निरंजण अवगत दोई हो, वो पद पेला होई हो ॥ ७ ॥
कह सुखराम विचारी हो, तत वां सूं पद न्यारी हो ॥ ८ ॥

त्रिकुटी महल याने के: पद अनुपम है जहां रात दिन व धूप नहीं है। सब ही संत सुणो परमपद का निरणा बताता हूं। त्रिकुटी का पद पारब्रह्म तक है यही तीन लोक तक है, यही मठ बांधना है, सतलोक इससे आगे है,वहां जम की पहुंच नहीं है। त्रिकुटी तक जमराज की पहुंच है। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव भी आते जाते है। ओऊं सोऊं याने स्वांसा के आधार के जितने भी साधन है उनसे जन्म मरण नहीं मिटता है, यही जम की पहुंच है। त्रिकुटी याने पारब्रह्म से नव तत लिंग शरीर को लांघने पर के: पद प्राप्त होता है। निरंजण निराकार ब्रह्म का पद है वह अवगत पद पारब्रह्म का है, यह पद पहले आते है। म:फ: है कि के: पद आ: पद इनसे अलग है।

की बराबर कोई नहीं है। जिस घट में सतगुरु पधारते है उसके संशय व दुख मिट जाते है। सतगुरु की महिमा सब गाते है व वेद कुराण भी सराहना करते है। म:फ: है कि सतगुरु के बराबर पृथ्वी पर कोई नहीं है।

卐 हरजस पद राग धुन प्रभाती (४) 卐

वे मिलज्यो हरिजन आंणी हो, जहां परम पद गत जांणी हो॥ टेर॥
वे मिलिया भर्म सब जावे हो, ओ प्रांण बहोत सुख पावे हो॥ १॥
वे आद अन्त का खोजी हो, वाहां भिन्न भिन्न काया खोजी हो॥ २॥
वे राम भजन इधकारी हो, जां सूरत गिगन दिश धारी हो॥ ३॥
वे सांसा शिवरण जाणे हो, तां सुं ही ब्रह्म बखाणे हो॥ ४॥
वे ऊलट पिछम कूं ध्यावे हो, वे बंकनाल रस खावे हो॥ ५॥
जहांरा गिगन मंडल में डेरा हो, वे समरथ सायब मेरा हो॥ ६॥
वे अणभै बाणी बोले हो, वे ज्ञान भंडारज खोले हो॥ ७॥
वे अणभै ऐसी लावे हो, सब का भेद बतावे हो॥ ८॥
वे सांसा कुछ नहीं राखे हो, निरभै हरि पद भाखे हो॥ ९॥
कह सुखराम पुकारी हो, वे हरिजन जीवण हमारी हो॥ १०॥

म:फ: है कि अेसे हरिजन केवली भगवंत अणभै वाणी बनाने वाले मिलो, जो परमपद आ: पद की प्राप्ति किये हुये हो। वैसे संतो के दरशणो याने अणभै ग्यान से सब भरमो का नाश हो जाता है व मेरे प्राणो को सुख शान्ति का अनुभव होता है। वे सब खण्ड पिण्ड ब्रह्मण्ड का अनुभव कर काया को भिन्न भिन्न प्रकार से खोजते है। जिनका ध्यान के: पद में लगा रहता है। वे संत अणभै वाणी में विधि से राम भजन करने को कहते है। वे सांस उसांस में भजन करने की विधि जानते है। उसी से ब्रह्म पद की प्राप्ति होती है, वे सतशब्द के साथ बंकनाल के रास्ते पिछम में जाते है यही बंकनाल का रस खाना है। जिनका ध्यान के: पद में लगा हुवा है। वे ही मेरे समरथ साहिब है। वे अणभै के वचन बोलते है। के: पद आ: पद की प्राप्ति का ज्ञान बताते है। वे अैसी अणभै की बाते बताते है जिससे सब भेद मालूम हो जाता है, इसलिये अणभै बाणी बनाने वाले संतो का ज्ञान धारण करने से किसी तरह का संशय नहीं रहता है। वो निरभय पद याने के: पद की प्राप्ति का ज्ञान देते है। म:फ: है कि ऐसे ही संत हमारे जीवन के आधार है।

卐 हरजस पद राग धुन प्रभाती (५) 卐

सतगुरु मेहमा किजे हो, तन मन धन सब दीजे हो॥ टेर॥
वे मोख मुक्त का दाता हो, गुरु बिन नरका जाता हो॥ १॥
सुण मन तोहिज बतावे हो, गुरु बिन धाम न जावे हो॥ २॥
प्रेम सहित सब किजे हो, गुरु आज्ञा में रिजे हो॥ ३॥
वां सूं कछु न दुरावो हो, ज्यां कर सायब पावे हो॥ ४॥
जुग जुग करम कमावे हो, गुरु शरणे सब जावे हो॥ ५॥
गुरु पूजा सुख पावे हो, प्राण आद घर जावे हो॥ ६॥

16:43 ✦ हरजस पद राग मिश्रीत (२१) ✦

शब्द चेतन देह चमके, ईमरत मीठी सीर, नाड नाड न्यारी।
सरब बोले जागो सहेर गंभीर, मूरली बाजे सुषमण तीर।। १ ।।
हिरदे हल चल नाभ गूंजे, नेणा बूंठा नीर।
छेद प्याल पिछम कूं देख्या, परस्या जम का पीर।। २ ।।
बंध पिछम बोहोत भारी, मन मध मीठी पीर।

खांच खेंच कबाण चढे छतियां, फाटे चुव चीर।। ३ ।।
अला पिंगला सुखमणा जागी, मिल तिरवेणी तीर।
प्राण उलट आद घर आये, थके बैराट शरीर।। ४ ।।
ध्यान लागो जोत देखी, सुषमण टपक्या हीर।
दास सुखदेव अमर घर में, पीवे ईमरत सीर।। ५ ।।

शब्द की जागृति का चेतन द्वारा अनुभव होना ही देह चमकना व उसका आनन्द आना ही ईमरत मीठी सीर है। सारे शरीर में नाड नाड में शब्द का अनुभव होना ही सबका बोलना है व शब्द की ध्वनियां होना ही मूरली बाजना है। प्रेम भाव से भजन करना ही हिरदे में हलचल होना है। नाभी में शब्द का गुंजार होना ही नाभ गुंजे है। विरह के साथ भजन करने से नेत्रो में पानी आना ही नेणा बूठा नीर है। शेषजी व गणेशजी के स्थानो को छेदकर पिछम में आना ही पिछम को देखना है। मेरूडण्ड पर शब्द का अनुभव होना ही परस्या जम का पीर है। पिछम में उतान पाद बंद मेरूडण्ड पर लगता है जिससे शरीर कबाण की तरह खिंचना ही छातियां फाटे चुव चीर है। उससे मन में खुशी होना ही मन मध मीठी पीर है। मेरूडण्ड से अला पिंगला चलती है, बीच में सुखमणा सिर पर होकर जाती है व त्रिकुटी में संगम हो जाता है। प्राणो व स्वांसा व शरीर से अलग होकर के: पद की प्राप्ति होना ही आद घर की प्राप्ति होना व बैराट शरीर का थकना है। शब्द का सुखमणा में ध्यान होना ही जोती का देखना है। आनन्द आना ही हीर टपकना है। म:फ: है कि आ: पद की प्राप्ति होना ही ईमरत की सीर पीना है।

✦ हरजस पद राग मिश्रीत (२२) ✦

संतो भाई भेव मिल्या गम आवे, परम मोख पद पावे॥ टेर॥
राम नाम सब लोय कहत है, दर्शण भेष ऊचारे।
हिकमत बिन तो राछ सुं रे, सबे पचे पच हारे॥ १ ॥
नित उठ दौड करत है भारी, गांव गेल नहीं जांणे।
उजड गांव तोड पग बैठा, नगर सुख क्यूं मांणे॥ २ ॥
देह बिध धार सकल आवे, सब बाता सुणिया बिना ही आवे।
कह सुखराम मोख राह झीणी, सतगुरु बिन क्यों पावे॥ ३ ॥

संतो से फ: है कि भजन करने का भेद व उसका ज्ञान मिलने पर परम मोक्ष की प्राप्ति होती है। सारा संसार दरसणी व सब भेखधारी राम राम करते है। राम राम कैसे करना चाहिये इसका भेद नहीं जानते, इसलिये सतशब्द की जागृति नहीं होती। यही बिना हिकमत के राछ से पच पच कर हारना है। जिस गांव में जाना है उसका रास्ता नहीं जानते। हमेशा चलते रहने पर भी नहीं पहुंचते है। उजाड में जा रहे है गांव में कैसे पहुंचेंगे व गांव में पहुंचने का सुख कैसे मिलेगा। शरीर धारण करके सब आते है व जगत के सब काम बिना सुणे ही आ जाते है। म:फ: है कि मोक्ष प्राप्ति का रास्ता तो बहुत झीणा है। सतगुरु का अणभै ज्ञान धारण किये बिना उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है।

卐 हरजस पद राग मिश्रीत (१०) 卐

राजा ऐसा भेख हमारा। भेदी जके भली विध जांणे, करमी लखे न सारा।
राम रटे परमेश्वर प्यारा, रह करमां सूं न्यारा।। टेर।।
कफनी हमे क्षमा की पहरी, ज्ञान गूदडी ओढी।
चोलो अजब दया को गल में, कुबध कामणी छोडी।। १।।
रमता संग रमूं जग मांही, इण मन कूं शिष कीना।
सतशब्द सो गुरु हमारा, तत्त तिलक शिर दीना।। २।।
पोथी पाठ वेद सब गीता, अणभै का पट खोलूं।
द्वादश मंत्र गायत्री मेरे, सतशब्द मुख बोलूं।। ३।।
मुद्रा कंठी पावडी अलफी, भेद ज्ञान की पहरी।
सांस उसांस अजप्पो घट में, निरगुण माला फेरी।। ४।।
धीरज धरण लंगोटी जरणा, आडबंद मत मेरी।
या देह बीण तांत सब नाडी, रागा अनहद घेरी।। ५।।
गिगन मंडल में मंडी हमारी, त्रिगुटी सेवा पूजा।
सतशब्द जोत के आगे, और देव नहीं दूजा।। ६।।
अला पिंगला करे आरती, अनहद झालर बाजे।
चित, मन, सूरत, हजूरी, चाकर, गिगन शब्द धुन गाजे।। ७।।
देहरो भेष शकल सो माया, असत सत नहीं कोई।
जे कोई भेद शब्द को साजे, मोख मिलेगा सोई।। ८।।
कह सुखराम भेष यो मेरो, जे कोई संत बसावे।
तीनूं ताप तोड कर हंसो, अमर लोक में जावे।। ९।।

महाराज राजा चन्दूलाल को कहते है कि हे राजा हमारा भेष ऐसा है जिसे परमात्मा की प्राप्ति व भजन के भेदी है वही भली प्रकार से जानते है। करमी याने शुभ अशुभ करणियां करने वाले मेरे को सब नहीं जानते है। जो सतगुरु विधि से राम रटता है वह परमेश्वर का प्यारा है। ज्ञान रूपी गुदडी ओढ रखी है और मैंने गले में दया का अजब चोला पहन रखा है तथा कुबुद्धि रूपी कामणियो को मैंने छोड दिया है। श्वांसा चल रही है उस श्वांस ऊसांस के साथ तन मन से भजन करना व एक श्वांसा को भी खाली नहीं जाने देना ही रमता संग रमु जुग मांही। इस मन को शिष्य बना रखा है याने मन आत्मा की आज्ञा में रहता है, जो परमात्मा सत है वह निरंजण निराकार ब्रह्म सत चेतन है। वही गुरु है। तत तिलक याने सतशब्द नेः अँच्छर पारब्रह्म परमात्मा का निज नाम है। उसका अखण्ड अनुभव होना ही तत्त तिलक शिर दीना है। केवल पद का अनुभव करके अणभै ग्यान की सिरजणहार से परवानगी लेकर आना ही बेद व गीता सबका पाठ है व अणभै का पट खोलना है। मुंह से सतशब्द का ज्ञान देना ही द्वादश मंत्र (ओम नमोः भगवते वासु देवाय)व गायत्री मंत्र है। मत ज्ञान, श्रुत ज्ञान, मन परचे ज्ञान, अवध ज्ञान, केवल ज्ञान, इन पांचो के भेद को जानना ही मुद्रा कंठी पावडी अलफी पहनना है। श्वांस उसांस में रकार मकार का भजन करना व अजप्पा जागृत होकर अखण्ड अनुभव होना ही निर्गुण माला फेरना है। पृथ्वी के समान धीरज धारण कर रखा है सहनशीलता की लंगोटी लगा रखी है, सतशब्द के ज्ञान के सिवाय मेरी बुद्धि दूसरी तरफ नहीं जाती है, यही आड बंद मत मेरी है। मेरा शरीर बीणा है, नाडिया तार है। बिना किये ही कई तरह की अनहद की रागे हो रही है। ब्रह्मण्ड व पार ब्रह्म से ऊपर केवल पद में सतशब्द का अनुभव होना ही गिगन मंडल में ही मंडी हमारी है। त्रिकुटी में शब्द आने पर कई प्रकार की ध्वनियो का होना ही त्रिकुटी सेवा पूजा है। सतशब्द का निरंजण निराकार चेतन में अनुभव हो रहा है। यही सत का शब्द जोत के आगे है। इसके अलावा मेरे कोई देवता नहीं है। त्रिकुटी में शब्द का अनुभव होना ही अला पिंगला का आरती करना है। बिना किये ही जो आवाजे आ रही है वो ही अनहद झालर बजना है। चित व मन लगाकर सूरत के द्वारा शब्द का अनुभव करना ही चित मन सूरत हजूरी चाकर है। गिगन में सतशब्द की धुनि का अनुभव होना ही गिगन शब्द धुन गाजे है। आत्मा ने चौरासी लाख योनियो के शरीर धारण कर रखे है। यह सब माया का भेष है। यह असत है यह सत्य नहीं है। आत्मा जो इस शरीर भेष से अलग होकर सतशब्द में लय हो जाती है। यह सतशब्द का भेष धारण करना है। आनन्द पद में लय होना ही मोक्ष की प्राप्ति करना है। म:फ: है कि यह भेष जो संत धारण करेंगे वे हंस तीनो तापो (आदि दैविक, आदि भौतिक व आध्यात्मिक) को तोडकर अमर लोक में पहुंचेंगे।

卐 हरजस पद राग मिश्रीत (६) 卐

संतो गुरु भक्ता नहीं कोई। सुरगुण निरगुण दोय भक्त अे, मात पिता की होई।। टेर।।
राजा रंक नार काहा पुरूषा, हिन्दू तुरक मिल दोई।
मात पिता का सब अगवाणी, ज्ञानी ध्यानी लोई।। १।।
हद में ज्ञान ध्यान बिध सारी, सो मात पिता की सेवा।
बेहद माहे समाधी लागे, जहां पिता निरंजण देवा।। २।।
ईनकूं गावे ईनकूं ध्यावे, इनका शिवरण होई।
जो नर समझ करने आगे, तत्त पिछाणे कोई।। ३।।

सुरगुण छाड तजे निरगुण कूं, ने: अँच्छर कोई पावे।
ओऊं सोऊं तजर अजपो, पिछम घाट जन आवे।। ४।।
हंसो चढे पटक सब माया, ने: अँच्छर संग होई।
मणिया सेंग ईकीसूं फोडे, चडे शिखर कहूं तोई।। ५।।
अला पिंगला दोनुं जागे, मेरूं डण्ड सूं भाई।
सुखमणा चले शीष ऊपर होय, मिले त्रिकुटी आई।। ६।।
सतस्वरूप शब्द के मांही, आठ पोहोर जन देखे।
रूप न रंग बरण कुछ नांही, देखत अन्त बसेखे।। ७।।
तत्त कहे सोई पण ऊला, ज्ञान दिष्ट सूं जोवे।
आनन्द पद ज्यों ज्ञान बिन घट में, अखण्ड रात दिन होवे।। ८।।
नव तत लिंग शरीर कहिजे, सो नहीं इण संग चाले।
आत्म पांच तत्त नाभ में, बिछडी त्रृगुटी में नव पाले।। ९।।
आनन्द पद कूं हंस पहुंचे, ने: अँच्छर संग होई।
पूरब घाट चढे सो अँच्छर, ईखर शब्द कहूं तोई।। १०।।
ईखर शब्द संग जे जन चढिया, दशवें द्वार लग जावे।
दशवों द्वार न फूटे वां सूं, जब फिर पाछा आवे।। ११।।
ईखर शब्द संग नव तत्त चाले, माया सरूपी होई।
ने: अँच्छर ओ सत सरूपी, यो द्वारो दे खोई।। १२।।
दशवें द्वार परे पद आनन्द, सो सतगुरु पद जांणो।
दशवें द्वार मांही सब बांता, माया ब्रह्म पिछाणो।। १३।।
मात पिता हंस का होवे, माया ब्रह्म कहूं तोई।
आनन्द पद सतगुरु सो कहिये, समरथ ने: अँच्छर सो होई।। १४।।
केवल बीज शब्द ओ कहिये, सो बाहर सूं आवे।
घट में नांव तिको सो माया, तांको मूल कहावे।। १५।।
घट में नांव राम सो कहिये, जिण संग जे गत पावे।
सो मात पिता को छाड जगत में, गुरु शरणे क्यों जावे।। १६।।
कह सुखराम ज्ञानी सब भूलो, ज्यां में न्याव न कोई।
निरगुण ब्रह्म पिता हंसन को, गुरु ठेरायो जाई।। १७।।

संतो से फ: है कि गुरु पद की भक्ति करने वाले कोई नहीं है। सुरगुण याने वाणी के आधार से, निरगुण याने सूरत के द्वारा शब्द ब्रह्म की भक्ति की, ये दोनो भक्ति माता पिता की याने माया ब्रह्म की है। राजा क्या रंक याने गरीब, क्या स्त्री पुरूष, हिन्दू व मुसलमान दोनो ज्ञान करने वाले ज्ञानी व ध्यान करने वाले ध्यानी, सब माया ब्रह्म की भक्ति करते है। हद में याने त्रिकुटी के नीचे शुभ करम शिमरण मन से ज्ञान व मन से ध्यान तक का साधन माया ब्रह्म का है। बेहद याने त्रिकुटी के ऊपर जो समाधि लगती है वह ब्रह्म की है। इनका ज्ञान करते है इनका ध्यान करते है इनका सिमरण करते है। जो मनुष्य समझकर तत याने ब्रह्म पद की, ब्रह्म का निज नाव याने सत नाम की

पिछाण करते है, बाणी का सिमरण कर, बाणी के शिमरण से भी अलग होकर सूरत के द्वारा शब्द का ध्यान कर, सूरत के ध्यान से भी अलग होकर ने:अँच्छर याने सतशब्द की प्राप्ति करते है ओऊं सोऊं में सतगुरु विधि से जप कर अजपा याने जो शब्द जागृत होता है, उसे कहते है। अजपा प्राप्त कर उसके साथ पिछम घाट याने बंकनाल में उलटकर पिछम घाट जाना है। हंस याने अपनी चेतनता माया के पद से अलग होकर ने: अँच्छर याने सतशब्द के साथ होकर ईकीस स्वर्ग को छेदन कर ऊपर चढता है। अला पिंगला दोनो मेरू याने यमराज के स्थान से जागृत होती है। सुखमणा मेरू से सिर ऊपर होकर आती है, त्रिकुटी में मिल जाती है। सतस्वरूप का पद शब्द में है, जो जन के आठ पोहोर के ध्यान से प्राप्त होता है। उस पद का अनुभव होते हुये भी वहां रूप रंग वरण कुछ नहीं दिखता, ऐसी विशेष बात है जो ब्रह्म को ज्ञान दृष्टि से देखते है। वह पद ऊली तरफ का है। आ: पद विज्ञान याने दिव्य दृष्टि से रात दिन अखण्ड अनुभव होता है। नव तत लिंग शरीर है वह इसके साथ नहीं जाता। शब्द नाभी में आता है वह आगे बढने पर चेतनता पांच तत्व के शरीर से अलग हो जाती है। त्रिकुटी में दो पांख के कंवल से अनन्त पांख के कंवल तक याने पारब्रह्म तक पहुंचने पर चित, मन, बुद्धि, अहंकार व पांचो प्राणो। इस प्रकार नव तत लिंग शरीर का साथ व के: पद में लिंग शरीर नहीं है। आ: पद में हंस याने चेतनता ने: अँच्छर में लय होकर सतशब्द आ: पद में लय हो जाता है। पूरब याने संखनाल के रास्ते जो चढते है वह अक्षर ब्रह्म याने होणकाल ब्रह्म का है। संखनाल के रास्ते अक्षर ब्रह्म के साथ चढने वाले जन दशवे द्वार ब्रह्मण्ड में बजरपोल व हजार पांख के कंवल तक जाते है। बजरपोल से आगे नहीं जा सकते, वापिस आ जाते है, उनका आवागमन नहीं मिटता। अक्षर ब्रह्म के शब्द के साथ नव तत्त लिंग शरीर रहता है। यानि चित, मन, बुद्धि, अहंकार, पांच प्राणों से चेतन अलग नहीं हो सकता, माया के साथ रहता है। ने: अँच्छर जो सतशब्द है, वह सतस्वरूप का है, इसलिये दशवे द्वार को खोल देता है। दशवें द्वार के आगे आ: पद है उसको सतगुरु पद कहते है। दशवें द्वार के अन्दर जो होता है वह सब माया ब्रह्म के पद में होता है। हंसो की उत्पति माया ब्रह्म के पद से है इसलिये माया ब्रह्म हंसो के माता पिता है। आ: पद सतगुरु पद है वह समरथ ने: अँच्छर याने सतशब्द है। के: पद आ: पद की प्राप्ति कराने वाला यह सतशब्द है, जो शरीर के साथ चेतन के पद में नहीं है। शरीर चेतन से अलग निरंजण निराकार चेतन पद है इसको ब्रह्म बैराट कहते है। सो सतगुरु विधि से भजन करने पर कंठ कंवल पर सतशब्द प्रगट होता है। शरीर में चेतन पद में जितने नांव है, वह सब माया के पद में चेतन में है। जिससे इसको माया का मूल कहा है। शरीर के साथ चेतन में जो नांव है वो वाणी मन विचारो के आधार पर है व सूरत के आधार पर है। इन आधार के नावों द्वारा उस पद की प्राप्ति हो जाती तो जगत में मुक्ति माता पिता से हो जाती तो उसको छोडकर गुरू की शरण में क्यों जाते। ज्ञानी लोग जो निरंजण निराकार सर्व व्यापक जो पांच तत्वो के साथ चेतन का आधार है उस पद को गुरु पद मानते है परन्तु यह गुरु पद नहीं है। ने: अँच्छर सतशब्द रात दिन अखण्ड अधर अनुभव होता है वो के: पद आ: पद है, उसे गुरु पद कहते है। वो ज्ञान से नहीं विज्ञान से प्राप्त होता है।

16:35

🌹 ओंकार ररंकार सोहम्...
facebook.com

facebook Open app Log In

Enlightened Masters's post

🌹

पाँच शब्द पाँच हैं मुद्रा काया बीच ठिकाना।
जो जिहसंक आराधन करता सो तिहि करत बखाना।।

शब्द निरंजन चाँचरी मुद्रा है नैनन के माँही।
ताको जाने गोरख योगी महा तेज तप माँही।।

शब्द ओंकार भूचरी मुद्रा त्रिकुटी है स्थाना।
व्यास देव ताहि पहिचाना चाँद सूर्य तिहि जाना।।

सोहं शब्द अगोचरी मुद्रा भंवर गुफा स्थाना।
सुकदेव मुनी ताहि पहिचाना सुन अनहद को काना।।

शब्द ररंकार खैंचरी मुद्रा दसवें द्वार ठिकाना।
ब्रह्मा विष्नु महेश आदि लो ररंकार पहिचाना।।

शक्ति शबद ध्यान उनमुनी मुद्रा बसै आकाश सनेही।
झिलमिल झिलमिल जोति दिखावै जाने जनक विदेही।।

शबद ही काल कलंदर कहीये शबद ही मर्म भुलाया।
पाँच शबद की आशा में सर्वस मूल गमाया।।

पाँच शबद पाँच हैं मुद्रा सो निश्चय कर जाना।
आगे पुरुष पुरान नि:अक्षर तिनकी खबर न जाना।।

ब्रह्माण्ड है। उसका कोई वार पार नहीं आता है। क्षण भर में सृष्टि की रचना करता है। अनेक तरह व अनेक प्रकार के रूप बना देता है। जिस दिन मिटाना चाहेगा उस दिन कुछ नहीं रहेगा। म:फ: है कि सब संता सुणो, परमात्मा सत है और सब साहिब की माया है। के: पद की प्राप्ति का ज्ञान ही केवल तत्त की सेवा है।

卐 हरजस पद राग जोग धनाश्री (१३) 卐

या जग में तो रे बंदा वे बडभागी, सतगुरु जका ही पिछाण्या बे।
केश बराबर अन्तर नांही, ज्यां निजमन कर जाण्या बे।। टेर।।
मेहेरी सेहेत तन मन धन कूं, ले गुरु चरणा आया बे।
वचन कहे सो सब सत माने, ज्यां गुरु धर्म पिछाण्या बे।। १ ।।
गंगा जमुना उलटी बेहे चाले, भांण पिछ्म कूं ऊगो बे।
तो पण मन चिले नहीं मासो, तब घट परचो पुगे बे।। २ ।।
अक बक प्रेम नेम सब छूटा, जग मरजाद न कांई बे।
गुरु कहे तो बेच्यो बिकणे लागे, तब शिष सांचे भाई बे।। ३ ।।
सतस्वरूप आनन्द पद कहिये, सोने ही माने कोई बे।
अेसो नेह गुरां सुं घुलियो, निमख न न्यारो होई बे।। ४ ।।
आया ऊठ खडो हुवे आगे, ऊठया के संग ऊठे बे।
छाडर नेम प्रेम ऊर उपजे, जब सब गांठया फूटे बे।। ५ ।।
जब गुरु देव सूज्या है साहेब, तब ऐसो अंग आवे बे।
सुण सुण ज्ञान नेम अे पकडे, से सब ढरडा कवावे बे।। ६ ।।
कह सुखराम नेम तो सारा, जग मरजादा होई बे।
यां सुं तो सत साहिब नहीं रीजे, बोहत जन्म लग कोई बे।। ७ ।।

संसार में वही भाग्यशाली है जिन्होंने सतगुरु याने केवली भगवंतो के अणभै ग्यान की शरण में जाकर सतगुरु पद का ज्ञान धारण किया है यही पिछाणना है। सतगुरु का ज्ञान निज मन से उनके बताये माफिक धारण करना ही केश बराबर अंतर नहीं रखना है। आत्मा रूपी स्त्री के साथ तन, मन, धन से ज्ञान गुरुदेव की शरण ली है और उनके बताये माफिक ज्ञान धारण करने वालो ने ही गुरु धर्म को जाना है। गंगा जमुना ऊलटकर बहने लगे, सूर्य पिछम दिशा में उगने लगे तो भी संतो के प्रेम व उनके अणभै ज्ञान से जरा सा भी विचलित नहीं होता, तब घट में ज्ञान का प्रकाश होता है। केवली संतो के अणभै ग्यान से अक बक प्रेम होकर सब नियम व संसार की मर्यादा का डर नहीं रहता है। जो गुरु याने ग्यान कहता है तो निज मन से पूर्ण रूप से धारण करते है, यही बेचया बिकना है, तब वह शिष्य सच्चा है। सत सरूप आ: पद को ही मानता है। जो अणभै ग्यान कहता है वो ही सांस ऊसांस की विधि का ज्ञान धारण करता है। एक क्षण भी उससे अलग नहीं होता है, कंठ में सत शब्द के आने पर सुरता उठकर चेतन हो जाती है। सतशब्द के आगे बढने पर सूरता भी साथ साथ रहती है। सब नियमों को छोडकर सतशब्द से प्रेम करती है तब सब भरम रूपी गांठे फूटती है। ज्ञान गुरु को देखा तब परमात्मा में मिलने की समझ आई, ज्ञान सुण सुण कर बिना प्रेम

19:57

नाहत बाजत आपु ही आहत दैव बजाइ
'तानसेन' संगीत मत इन्ह के कहे सुभाइ

नाद अनाहत कौ सदाँ सुर-मुनि करैं जु ध्यान
गुरु उपदेसैं मुक्ति दैं ये जानौं परमान

वायु-अगिन संयोग तैं उपजत आहत नाद
'तानसेन' संगीत मत कह्यौ सुरन ब्रह्मादि

जिव टारत है चित्त कौं चित टारत है अग्नि
टारत अगिन जु वायु कौं ब्रह्म ग्रंथि सौं अग्नि

ततछन ऊरध कौं चलै ब्रह्म ग्रंथि की वायु
सुच्छम घुनि है नाभि की अंग मध्य पुष्टायु

होय पुष्ट जो सीस में कृत्यम बहु मुख आइ
पंच स्थानन फिरत है तानसेन मुख भाइ

कही जु उतपति नाद की सास्त्र रीति परमान
'तानसेन' संगीत मत जानौं चतुर सुजान

गीत वाद्य अरु नृत्य कौ कह्यौ आतमा नाद
'तानसेन' संगीत मत जामैं उपजत स्वाद

तीनौं मत बस नाद कौं कह्यौ सु मुनिन प्रमान
ताहि हिये महँ जानि निज मीयाँ सरस सुजान

19:55

नाड़ी ज्ञान - इड़ा पिंगला सुषमना तीनौं नाड़ी नाम

तानसेन

इड़ा पिंगला सुषमना तीनौं नाड़ी नाम
तानसेन संगीत मत जानौं आवैं काम

इंगला वायव्या कही दच्छिन पिंगला जान
मध्य रहत है सुषमना ब्रह्मा रंध्र लौं मान

ता ऊपर जो प्रान लौं चढ़ौ रहत है नित
अध ऊरध कौं चलत है ज्यौं नटुवा रहै मित्त

द्वै अंगुल आधार पै अंगुल द्वै ही नीच
तप्त हेम के बरन सौ अंगुल द्वै ही बीच

सूक्ष्म सिखा जो अगिन की तहाँ रहत सो जान
ता ऊपर नव अँगुली चक्र रहत सो मान

तासौं अंगुल चार रहि ऊँचे देही कंध
ब्रह्म ग्रंथि ताकौं कहैं सुरपति सब निर्द्वन्द

नाम सुमिरु मन मूरुख अनारी।
छिन छिन आयू घटत जातु है, समुझि गहहु सत डोरि सँभारी॥
यह जीवन सुपने को लेखा, का भूलसि झूठी संसारी।
अंतकाल कोई काम न अइहै, मातु पिता सुत बंधू नारी॥
दिवस चारि को जगत सगाई, आखिर नाम सनेह करारी।
रसना 'सत्त नाम' रटि लावहु, उघरि जाइ तोरि कपट किवारी॥
नामकि डोरि पोढ़ि धरनी धरु, उलटि पवन चढ़ु गगन अटारी।
तहँ सत साहिब अलख रूप वै, जन दूलन करु दरस दिदारी॥

इश्क हकीकी का वर्णन करते हुए दूलनदासजी ने हल्लाज मंसूर, शम्सतबरेज, निजामुद्दीन सुलतान, हाफिज, मजनूँ तथा अपने गुरुदेव जगजीवन साहब का नाम लिया है। मजनूँ के संबंध में उनकी पंक्तियाँ बड़ी ही मर्मभरी हैं—

सुना है इश्क मजनूँ का लगी लैला की रहती झक।
जलाकर खाक तन कीना, हुए वह भी उसी माफिक॥

इनकी साधना की साध भी कितनी सुन्दर है—

ह्वै रस मगन पियौं भर प्याला माला नाम डोलैहौं।
कह दूलन सतसाईं जगजीवन पिउ मिलि प्यारी कहैहौं॥

पारिभाषिक तथा अन्य प्रतीक — योग मार्ग में प्रचलित पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग संत साहित्य में हुआ है। संत कवियों ने इन शब्दों को नाथों से ग्रहण किया था। स्वामी रामचरण की रचनाओं में उन सभी शब्दों का प्रयोग मिलता है। कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं जिनमें ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अन्य प्रतीकों में प्राकृतिक एवं पारिवारिक प्रतीक सम्मिलित हैं।

१- अ० वा०, पृ० १००१।
२- वही।

त्रिवेणी -- इडा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों का मिलनस्थल दोनों भौंहों ~~के मध्य~~ के मध्य में स्थित है।

"इंगला पिंगला सुखमणा मिले त्रिवेणी घाट।
जहाँ न्हावै जन भूलि कै, निर्मल होय निराट।"[1]

त्रिकुटी -- भौंहों के मध्य का स्थान। इसे त्रिवेणी भी कहते हैं।

"त्रिकुटी संगम किया स्नाना।
जाइ चढ्या चौथे अस्थाना।"[2]

अनहदनाद -- योगियों को समाधि अवस्था में शरीर के भीतर सुनाई पड़ने वाली मधुर ध्वनि जिसमें संत डूबा रहता है --

"अनहदनाद गिणत नहिं आवै।
भाँति भाँति की राग उपावै।"[3]

गगन -- शरीर के भीतर का आकाश जहाँ ज्योतिर्मय ब्रह्म का प्रकाश दीखता है। इसको 'शून्य' भी कहा जाता है --

"अब त्रिवेणी न्हाइ के कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अगम सुख या औह चौथा देश।"[4]

हंस -- नव द्वार के पिंजड़े पिंजड़े (शरीर) में बंद जीव ही हंस है।

"सायर तट हंस बैठा जाई।
सायर हंस में रह्या समाई।"[5]

भ्रमर -- मन, जीव के लिए भ्रमर का प्रतीक स्वामी जी ने अपनाया है।

"गावै नारी मंगल गावै।
तहं मन भंवरा अति सुख पावै।"[6]
... ...
"जहाँ उघै जहँ कमल प्रकासा।
सुरति भंवर तोह करत विलासा।"[7]

१- अ०वा०, पृ० २०७।
२- वही, पृ० २०९।
३- वही, पृ० २०९।
४- वही, पृ० २०७।
५- वही।
६- वही।
७- वही।

卐 हरजस पद राग बधावा (३) 卐

म्हारा गुरांजी रे देश, चालो अे संईयां म्हारी।
म्हारा सुखां रां सागर, म्हारा जीवां रा तारण, सायब वहां बसे अे॥ टेर॥
दूरा सा देश गुरांजी रा छाना, बेद कतेब न जाने कुराणा।
शिव सनकादिक शेष पुकारे, हां अे तूं तो पूरा गुरु शिर धारी अे॥ १॥
पिव पिव करती या बिरेहन जागी, पांच सखी मिल शिवरण लागी।
प्रेम बधावा मन घर बाज्या, हां अे या तो प्रीतज आंण पुकारी अे॥ २॥
म्हारा हिरदा में झिलमिल शब्द ऊजाला, गुरां म्हारा जोई है दीपक माला।
जठे गोऊं सूं तार पोऊं सूं मोतीडा, हां अे म्हारा हिवडा में हार हजारी अे॥ ३॥
आत्म बीण नाभ घर बागी, संखरी घोर गिगन जाय लागी।
अनहद झालर भंवर गुंजारा, हां अे आ तो मुरली री टेर निहारी अे॥ ४॥
शील सिणगार सजे सन्त सूरा, उलट पिछम दिश बाजे है तूरा।
नांव तेज मुख बरसे है नूरा, हां अे उण सूरत री बलिहारी अे॥ ५॥
त्रिकुटी तखत पर नोपत बाजे, सब देव तरसे है दरशण काजे।

जय जय बांणी बरसे है हीरा, हां अे वारां चरण बंधे पुर सारी अे॥ ६॥
अनन्त भाण अविन्यासी री शोभा, सूरत निरत संईयां चाली है जोबा।
अला पिंगला सुखमण नारी, हां ये वारो रूप निहारत हारी अे॥ ७॥
अगम देश जहां अविचल थाना, अनन्त कोटि संत धरे है ध्याना।
लील बिलास आनन्द सुख नाना, हां अे वा तो सरब सवागण नारी अे॥ ८॥
अविन्यासी बर आपा ही बरस्यां, अपना गुरांजी री सेवा करस्यां।
कह सुखराम बीरम गुरुदाता, हां अे मैं तो बेह जाती भवजल तारी अे॥ ९॥

आत्मा सब ईन्द्रिया रूपी सहेलियो से कह रही है कि मेरे सतगुरु के देश चलो, उस पद में सुखो के सागर व जीवों के तारण परमात्मा का अनुभव होता है। सतगुरु का देश दूर है। उस पद की वेदों व कुराणो के ज्ञान से प्राप्ति नहीं होती। शिव सनकादिक शेषजी भी उनके नांव की भक्ति करते है इसलिये तुम तो पूर्ण परमानन्द की प्राप्ति करो। पांच विषयो को वश में करके विरह प्रेम के साथ भजन करना ही पिव पिव करके विरहन का पुकारना है। सारे हृदय व सारे शरीर में शब्द का अनुभव होना ही हिरदा में झिलमिल होना व दीपक माला का जोना है। जहां सूरत जाती है वहां ही शब्द का अनुभव होना ही जठे गोऊं सूं तार पोऊं सू मोतीडा है। हृदय में बडी भारी खुशी होना ही हिवडा में हार हजारी है। नाभी में शब्द आकर ब्रह्मण्ड तक सारे शरीर में अनुभव होना ही आत्म बीण का नाभ घर में बाजना है। यही संखरी घोर गिगन घर लगना व अनहद झालर भंवरो का गुंजार करना व मुरली की टेर सुनना है। शीलव्रत धारण करके भजन करके पिछम दिशा में उलटकर शब्द का अनुभव होना ही तूर का बाजना है। शब्द का हर समय अनुभव होना ही नांव तेज मुख पर नूर का बरसना है। ऐसे ही महापुरूषो की बलिहारी है। त्रिकुटी तख्त याने ब्रह्मण्ड पार ब्रह्म से ऊपर के: पद में शब्द का अनुभव होना ही नोपत बाजना है। सब देवता भी उस पद की प्राप्ति के लिये तरसते है। सारे शरीर में सतशब्द का के: पद में अनुभव होना ही जय जय बांणी और हीरा बरसना है। सारे शरीर में ध्यान होना ही चरण बंधना है। अविनाशी पद की शोभा अनन्त सूर्यो के प्रकाश के समान है। सूरत निरत द्वारा उसका अनुभव हो रहा है। अला पिंगला सुखमणा में भजन होकर उससे अलग पूर्ण परमानन्द में लय होने के लिये ही उसको निहारना है। के: पद व आ: पद ही अविचल थाना है। अनन्त संतो ने उस पद की प्राप्ति की है। पूर्ण आनन्द का अनुभव होना ही गुरु की सेवा करना व अविनाशी बर को बरना है। म:फ: है कि बीरमदासजी सतगुरु की कृपा से ही मुझे उस पद की प्राप्ति हुई, नहीं तो मैं भी संसार के साथ बह जाता।

卐 हरजस पद राग बधावा (४) 卐

आज भलाई दिन ऊगीयो, म्हारा सतगुरु मिलिया आय हो महाराज॥ टेर॥
आंणद ऊछाव बधावणा, सामा मिलसां जाय महाराज।
केसर लूंग इलायची, बहोत चडाऊं जाय महाराज॥ १॥
ढोल बजावत गावता, लेसां बधाय बधाय महाराज।
प्रदिक्षणा प्रणाम सूं, लुललुल लागूं पांय महाराज॥ २॥
अगर चन्दन सो कुम कुमा, मिंदर ढुलाऊंली आय महाराज।

॥ ॐ श्रीमद्हरियानन्देभ्यो नमः ॥

पूज्यपाद आचार्यचरण अनन्तश्री हरिरामदासजी
(हरियानन्दजी महाराज) की
अनुभवात्मिका

सटीक घघर निसाणी

टिककर्त्ता

परमपवस्थ पूज्यचरण श्रीचौकसरामजी महाराज
वैद्यकलानिधि

श्री १००८ श्री भगवद्दासजी महाराज
रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य सिंहस्थल (९)

घघर निसाणीकी भूमा

यह निसाणी नामक ग्रन्थ योगके विषयका है। योग शब्द संस्कृतके युज् धातुसे बना है (युजिर् योगे) जिसका अर्थ जोड़ना है। अपने मनको एक ध्येयसे जोड़ना अर्थात् मनको स्थिर करना ही योग है। भगवान् पतञ्जलिने ऐसा कहा है—"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"। एकाग्रता योगका शरीर है; जिसमें केवल एकाग्रता ही हो, वह व्यावहारिक योग, और जिसमें अहंता-ममताका नाम-लेश भी न हो, वह पारमार्थिक योग है। गीताके[1] साम्यगर्भित कर्मयोगमें यही कथन है। ज्ञानयोग ही श्रेष्ठ है, विना ज्ञानका योग निष्फल है। योगके पहलेका ज्ञान अस्पष्ट होता है, इसलिये गीतामें[2] ज्ञानीसे योगीको ही अधिक कहा है। वास्तवमें सच्चा ज्ञानी वही है, जो योगी है, इसीका गीतामें[3] वर्णन है। ब्रह्मविद्योपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, चूलिकोपनिषद्, नादबिन्दु, ब्रह्मबिन्दु, अमृतबिन्दु, ध्यानबिन्दु, तेजोबिन्दु, योगशिखा, योगतत्त्व, हंस आदि उपनिषद् भी इसीका वर्णन करती हैं। अतएव ज्ञानकी एकमात्र कुञ्जी योग ही है। योगवाशिष्ठमें[4] लिखा है कि योग विनाका ज्ञानी ज्ञानबन्धु है अर्थात्

---

१ योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥
(गीता अ० २ । ४८)

२ तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन ॥
(गीता अ० ६ । ४६)

३ यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥
(गीता अ० ५ । ५)

४ आचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत् ।
यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानबन्धुः स उच्यते ॥ १ ॥

ज्ञानियोंमें अधम है। ज्ञान और योगका बहुत अधिक सम्बन्ध है, इसीलिये "ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" ज्ञान और क्रियासे[1] ही मोक्ष होना कहा गया है। इसी योगका वर्णन भिन्न-भिन्न शास्त्रकारोंने भिन्न-भिन्न[2] प्रकारसे किया

आत्मज्ञानमनासाद्य ज्ञानान्तरलवेन ये।
सन्तुष्टाः कष्टचेष्टन्ते ते स्मृता ज्ञानबन्धवः ॥ २ ॥
(योगवाशिष्ठ निर्वाणप्रकरण उत्तरार्ध सर्ग २१)

१ ज्ञान क्रिया करि ऊतरे हरिया हरिजन पार।
ऐसे अन्धे कन्ध करि, पंगो आन उतार ॥ १ ॥
पंगा सोई ज्ञान है, किरिया अंधी जान।
जन हरिया मिल एकठा, मुक्ति भई आसान ॥ २ ॥
ज्ञान बिना किरिया न कुछ, किरिया बिना न ज्ञान।
हरिया किरिया ज्ञान बिन, यो ही आतमध्यान ॥ ३ ॥
ज्ञान ब्रह्म की दृष्टि है, किरिया ध्यान स्वरूप।
जन हरिया मिल एकठा, आतम तत्त्व अनूप ॥ ४ ॥
ज्ञान सहित किरिया भई, मोक्ष माँहि पद जान।
हरिया किरिया ज्ञान बिन, भक्ति भई आसान ॥ ५ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

जो बिन ज्ञान क्रिया अवगाहै, जो बिन क्रिया मोक्षपद चाहै।
जो बिन मोक्ष कहै मैं सुखिया, सो अज्ञान मूढन में मुखिया ॥ १ ॥

२ न्यायदर्शन—

समाधिविशेषाभ्यासात् (४ । २ । ३८)। अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः (४ । २ । ४२)। तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः (४ । २ । ४६)।

वैशेषिकदर्शन—

अभिषेचनोपवास-ब्रह्मचर्यगुरुकुलवास-वानप्रस्थ-यज्ञदान-प्रोक्षण-दिङ्नक्षत्र-मन्त्र-काल-नियमाश्चादृष्टाय (६ । २ । २), अयतस्य शुचिभोजनादभ्युदयो न विद्यते नियमाभावाद्; विद्यते वाऽर्थान्तरत्वाद्-यमस्य (६ । २ । ८)।

सांख्यसूत्र—

रागोपहतिर्ध्यानम् (३ । ३०)। वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः (३ । ३१)। धारणासनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः (३ । ३२)। निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् (३ । ३३)। स्थिरसुखमासनम् (३ । ३४)।

है। भगवान् पतञ्जलिविरचित "पातञ्जलयोगदर्शन" तो खास योगका ही ग्रन्थ ठहरा; अतएव इसमें तो साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना ही चाहिये। और दूसरे शास्त्रकारोंने भी योगके विषयमें विशेष जाननेके लिये योगदर्शन देखनेकी आज्ञा[1] दी है। जिस योगका वर्णन उपनिषदोंमें व सूत्रोंमें भली प्रकार किया गया है उसीका श्रीमद्भगवद्गीताके तीनों षट्कोंमें कर्म, भक्ति और ज्ञानके साथ श्रीभगवान्‌ने समावेश कर दिया है, समावेश क्या कर दिया है, गीताके छठे और तेरहवें अध्यायमें तो योगके सारे मौलिक सिद्धान्त और प्रक्रियाएँ ही वर्णन कर दी हैं।

योगवाशिष्ठ तो बस "यथा नाम तथा गुणः" खास योगका ग्रन्थराज ही है। श्रीमद्भागवतके स्कन्ध ३ अध्याय २८, स्कन्ध ११ अध्याय १५–१९–२० में योगका ही वर्णन है। इतना ही नहीं, इसके उपरांत योगवृक्ष इतना फैला कि उसकी कई शाखाएँ बन गयीं और उनके अलग ही ग्रन्थ बन गये। जैसे, तन्त्रशास्त्रमें "महानिर्माणतन्त्र" और "षट्चक्रनिरूपणतन्त्र" बहुत ही उत्तम योगके तान्त्रिक ग्रन्थ हैं। इनके सिवाय और भी कितने ही योगके ग्रन्थ बन गये हैं; हठयोगप्रदीपिका, शिवसंहिता, घेरण्डसंहिता, गोरक्षपद्धति, गोरक्षशतक, योगतारावली, बिन्दुयोग, योगबीज, योगकल्पद्रुम, योगनिबन्ध आदि अनेक योगके ग्रन्थ हैं।

योग यहींतक नहीं बढ़ा किंतु देशी और विदेशी महात्माओंने अपने-अपने अनुभवके अनुसार लोगोंको ज्ञान करानेके लिये महाराष्ट्री, गुजराती, बंगला, तैलंगी, तामिली, औत्कली, द्राविड़ी और इंग्लिश आदि

ब्रह्मसूत्र—

आसीनः सम्भवात् (४ । १ । ७)। ध्यानाच्च (४ । १ । ८)। अचलत्वं चापेक्ष्य (४ । १ । ९)। स्मरन्ति च (४ । १ । १०)। यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् (४ । १ । ११)।

१ योगशास्त्राच्चाध्यात्मविधिः प्रतिपत्तव्यः ।
(न्यायद० २ । ४ । ४६ भाष्य)

अलग-अलग भाषाओंमें योगका वर्णन किया। कबीरसाहब, नानकसाहब, दादूजी, हरिदासजी, सुन्दरदासजी, जनतुरसीजी, चरणदासजी, सेवादासजी, सन्तदासजी, दरियासाजी आदि महात्माओंने हिन्दी साहित्यमें उसी योगवाणीका वर्णन किया कि जिनसे मुमुक्षुओंको बड़ा ही लाभ पहुँचा और पहुँच रहा है।

जिस योगकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की गयीं और जिस योगकी प्राप्ति महापुरुष परब्रह्मरामके उपदेशद्वारा[1] श्रीजैमलदासजी महाराजको हुई, आपने पूर्ण कृपा करके श्रीहरिरामदासजी महाराजको उसीका तारकमन्त्र[2]-सहित उपदेश देकर रामस्नेह-सम्प्रदाय प्रवृत्त करनेकी नींव लगायी। उसी योगका वर्णन लोकोद्धारके अर्थ पूज्यपाद श्रीहरिरामदासजी महाराजने इस ग्रन्थके 'निशानी' नामक छन्दोंमें किया है। अतएव इस ग्रन्थको अत्यन्त ही उपयोगी समझकर इसकी टीका बनाकर सर्व-साधारणके लाभार्थ प्रकट की गयी।

श्रीमान् माननीय ज्योतिषी पं० श्रीनिवासजी पाठक महोदय रतलाम-निवासीका मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने बहुत कष्ट उठाकर इसकी टीका करनेमें परिश्रम किया है।

जिन पुस्तकोंसे या जिन महात्माओंसे सहायता ली गयी है, उनके प्रणेताओं तथा उन महात्माओंका भी विशेष आभारी हूँ।

भवदीय

चौकसराम वैद्य

---

१ सुणरे बालक बात हमारी, तोकूं दाखूं गुंझ हदारी।
गेले में गुरु ज्ञान सुणाया, जोग सहित निजनाम बताया॥
(श्रीराम० भक्तमाल)

२ तारकमन्त्र—

ॐ नमः सत्यरामाय चिदानन्दैकमूर्तये।
प्रत्यक्षतत्त्वबोधाय गुरुवेदोकलब्धये॥ १॥

॥ रामः ॥

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥ १ ॥

सटीक घघरं निसांणी प्रारंभः

[3]पद्मापूजितपादपद्मयुगलं रामं दधन्तं हृदि
रागद्वेषकरालजालमखिलं वृन्दं रिपूणां हरम् ।
याता ये शरणं विशुद्धमनसस्तेषां प्रबोधादिदं
वन्दे श्रीहरिरामदासमनिशं रामाय[4] सन्मन्त्रदम् ॥ १ ॥
हरिरामं गुरुं नत्वा कृत्वा चारुप्रदक्षिणाम् ।
निसानीनामग्रन्थस्य भाषाटीकां करोम्यहम् ॥ १ ॥

साषी

हरिया सम्बत् सत्रहसे वर्ष सईको जान ।
तिथि तेरस आषाढ वदि सतगुरु[5] पड़ी पिछान ॥ १ ॥

---

१ घटघट । २ चिह्न । ३ पं० दिगम्बरेण रचितमिदं पद्यम् । ४ रामदासाय ।

५ सद्गुरुलक्षण—

श्रीगुरुः परमेशानि शुद्धवेशो मनोहरः ।
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वावयवशोभितः ॥ १ ॥
सर्वागमार्थतत्त्वज्ञः सर्वमन्त्रप्रधानवित् ।
लोकसम्मोहनकरो देववत्प्रियदर्शनः ॥ २ ॥
सुमुखः सुलभः स्वच्छः शुद्धान्तश्छिन्नसंशयः ।
इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो दूरतः कृतदुर्जनः ॥ ३ ॥
अन्तर्मुखो बहिर्दृष्टिः सर्वज्ञो देशकालवित् ।
आज्ञासिद्धिस्त्रिकालज्ञो निग्रहानुग्रहक्षमः ॥ ४ ॥

श्रीहरिरामदासजी महाराज स्वयं अपने मुखारविन्दसे अपनेको ही सम्बोधितकर वर्णन करते है कि, संवत् सत्रह सौका सईका वर्ष अर्थात् अठारहवीं शताब्दीके आषाढ कृष्णा त्रयोदशीके दिन मेरेको सद्गुरुकी पहिचान पड़ी ॥ १ ॥

छंद निसाणी

सतगुरु पहिचानी परचे प्रानी सब सिध काम सरंदा है ॥ २ ॥

सद्गुरुकी पहिचान होनेसे सर्वकार्य सिद्ध हो गये, ऐसा परचा (प्रत्यक्ष बोध) जीवको हो गया अर्थात् अनुभव प्राप्त हो गया ॥ २ ॥

सतगुरु से मिलिया अतर्राभालया सारशब्द[1] ओलखंदा है ॥ ३ ॥

वेदवेदान्तविच्छान्तः सर्वजीवदयापरः ।
स्वाधीनेन्द्रियसंचारः षड्वर्गविजयक्षमः ॥ ५ ॥
अग्रगण्योऽतिगम्भीरः पात्रापात्रविशेषवित् ।
निर्मलो नित्यसंतुष्टो निर्द्वन्द्वो नित्यशक्तिमान् ॥ ६ ॥
सद्भक्तवत्सलो धीरः कृपालुः स्मितपूर्ववाक् ।
भक्तिप्रियः सर्वसमो दयालुः शिष्यशासिता ॥ ७ ॥
स्वेष्टदेवगुरुः प्राज्ञो विनयी पूजनोत्सुकः ।
नित्ये नैमित्तिके काम्ये रतः कर्मण्यनिन्दिते ॥ ८ ॥
रागद्वेषभयक्रोधदम्भाहंकारवर्जितः ।
सद्विद्यानुष्ठानरतो विद्यानां च प्रकाशकः ॥ ९ ॥
यदृच्छालाभसंतुष्टो गुणदोषविभेदकः ।
स्त्रीद्रविणेष्वनासक्तो दुःसङ्गव्यसनोज्झितः ॥ १० ॥
अलोलुपोऽहिंसकश्चापक्षपाती विचक्षणः ।
वित्तविद्यादिभिर्मन्त्रयन्त्रतन्त्राद्यविक्रयी ॥ ११ ॥
निःसंकल्पो निर्विकल्पो निर्णीतात्माऽतिधार्मिकः ।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी निष्पक्षोऽतिनियामकः ॥ १२ ॥
इत्यादिलक्षणोपेतः श्रीगुरुः कथितः प्रिये । (कुलार्णव)

१ सारशब्द—
एक शब्द में कहि समझाऊं, सुनहो सब संसारा ।
रामनाम सो सारशब्द है, और कथन है छारा ॥ १ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

सद्‌गुरुके मिलनेसे (साक्षात्कार हो जानेसे) जीवात्मामें जो भेदभावका अन्तर था वह सब मिट गया और अभेद (अद्वैत) भाव होकर सारशब्द जो ब्रह्मवाचक राम नाम है, जिसकी श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, इतिहास, पुराण, आप्तवाक्य (महापुरुषवाक्य) संस्कृत-प्राकृत सर्वग्रन्थोंमें मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है, उस रामनामको ओलखान हो गयी ॥ ३ ॥

कहै कबीर सुनो हो साधो, परगट कहूं बजाई ।
रामनाम सो सारशब्द है, और कथन सब वांई ॥ १ ॥

(कबीर)

स्वप्रकाशः स्वयंज्योतिः स्वानुभूत्यैकचिन्मयः ।
तदेष मन्त्रराजस्य मनुराड् द्व्यक्षरः स्मृतः ॥ १ ॥
अखण्डैकरसानन्दस्तारको ब्रह्मवाचकः ।

(रामोपनिषद्)

सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात् ।

अर्थ—रामं कृष्णवर्णं शर्व्वरं तमः अभ्यस्थात् सायं होमकाले अभिभूय तिष्ठति इति तद्भाष्ये सायणाचार्याः (जिनका उत्तराश्रममें विद्यारण्यस्वामी नाम है)। (ऋग्वेद १० अ. ३ व. ३)

गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः ।
वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्रः कलाधिकः ॥ १ ॥

(श्रीहयशीर्षपञ्चरात्र)

शतकोट्यो महामन्त्रा उपमन्त्रास्त्रयोदश ।
एक एव महामन्त्रो रामनाम परात्परम् ॥ १ ॥

(शिवतन्त्र)

गाणपत्यादिसौराश्च हरिः शेषः शिवः शिवा ।
तेषां प्राणो महामन्त्रो रामेति चाक्षरद्वयम् ॥ १ ॥
गणेशे भास्करे चैव शिवे शक्तौ हरावपि ।
राममन्त्रप्रभावेण सामर्थ्यं जायते ध्रुवम् ॥ २ ॥

(भारद्वाजसंहिता)

विना शक्तिं कथं कार्यं किं कर्तव्येन वा बलम् ।
तदाकाशाद्भवेद्वाणी रामनाम इदं कुरु ॥ १ ॥

तदा संसरति विश्वं लयं याति मुमुक्षुभिः ।
तस्माद्राम महामन्त्र आदिमन्त्र उदाहृतः ॥ २ ॥

(जैमिनि)

श्रीरामेति परं मन्त्रं तदेव परमं पदम् ।
तदेव तारकं विद्धि जन्ममृत्युभयापहम् ॥ १ ॥

(हिरण्यगर्भसंहिता)

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥ १ ॥

(सनत्कुमारसंहिता)

यथा घटश्च कलशः पदार्थस्याभिधायकः ।
तथैव ब्रह्मरामश्च नूनमेकार्थतत्परः ॥ १ ॥

(अगस्त्यसंहिता)

रमन्ते योगिनो यत्र नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥ १ ॥

(रामतापनीय)

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकः ॥ १ ॥

(हनुमदुपनिषद्)

श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्यं गिरिजापतिः ।
जानाति भगवाञ्छम्भुर्ज्वलत्पावकलोचनः ॥ १ ॥

(बृहद्ब्रह्मसंहिता)

मन्त्रराजं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्परः ।
रकारादिर्मकारान्तो मन्त्रः षड्वर्णसंयुतः ॥ १ ॥

अकारः प्रथमाक्षरो भवति उकारो द्वितीयाक्षरो भवति मकारस्तृतीयाक्षरो भवति अर्धमात्रा चतुर्थाक्षरो भवति बिन्दुः पञ्चमाक्षरो भवति नादः षष्ठाक्षरो भवति तारकत्वात्तारको भवति तदेव रामेति तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि ।

प्रणवं केवलमकारोकारोर्धमात्रासहितं तस्मात्प्रणवस्याकारस्योकारस्य च रकारः मकारश्चार्धमात्रस्य इति ।

(रामोपनिषद्)

अंशांशै रामनाम्नश्च त्रयः सिद्धा भवन्ति हि ।
बीजमोंकारः सोऽहं च सूत्रसूक्तमिति श्रुतिः ॥ १ ॥

रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः ।
रूपं तत्त्वमसेश्चासौ वेदतत्त्वाधिकारिणः ॥ २ ॥

(महाप्रभुसंहिता)

रकारश्च परब्रह्म नादमोंकारसंयुतम् ।
ॐबिन्दुश्च मकारोऽयं जातं रामाक्षरद्वयम् ॥ १ ॥
रकारस्तत्पदं ज्ञेयं त्वंपदाकार उच्यते ।
मकारोऽसिपदं ज्ञेयं तत्त्वमसि सुलोचने ॥ १ ॥
चिद्वाचको रकारः स्यात्सद्वाच्याकार उच्यते ।
मकारानन्दवाच्यं स्यात्सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥ २ ॥

(श्रीमहारामायण)

प्रणवं केचिदाहुर्वै बीजश्रेष्ठं तथापरे ।
तत्त्वतो रामवर्णाभ्यां सिद्धिमाप्नोति मे मतम् ॥ १ ॥

(महाशम्भुसंहिता)

ॐ भृगुर्वै वारुणिः । वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । सोऽब्रवीद्राम एव परं ब्रह्म रामादन्यन्न किंचन यत एते रामादेवा उत्पद्यन्ते राम एव विलीयन्ते राम एव स्थितिं वसन्ति तस्माद्राम एव विभुरिति तैत्तिरीयश्रुतिः ।

(रामतापनीय)

यथैव वटबीजस्थः प्राकृतोऽस्ति महाद्रुमः ।
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥ १ ॥

(याज्ञवल्क्य)

रकाराज्जायते ब्रह्मा रकाराज्जायते हरिः ।
रकाराज्जायते शम्भू रकारात्सर्वशक्तयः ॥ १ ॥

(रुद्रयामलक)

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या यस्यांशा लोकसाधकाः ।
तं रामं सच्चिदानन्दं नित्यं रामेश्वरं भजेत् ॥ १ ॥

(हनुमत्संहिता)

रामनाम परं जाप्यं ज्ञेयं ध्येयं निरन्तरम् ।
कीर्तनीयं च बहुधा मुमुक्षुभिरहर्निशम् ॥ १ ॥

(जाबालिसंहिता)

अद्यापि रुद्रः काश्यां वै सर्वेषां त्यक्तजीविनाम् ।
दिशत्येतन्महामन्त्रं तारकं ब्रह्मनामकम् ॥ १ ॥

विनैव दीक्षां विप्रेन्द्र पुरश्चर्यां विनैव हि ।
विनैव न्यासविधिना जपमात्रेण सिद्धिदम् ॥ २ ॥
तस्मात् सर्वात्मना रामनामरूपं परं प्रियम् ।
मन्त्रं जपेत्सदा धीमान् संविहायान्यसाधनान् ॥ ३ ॥

(हारीतस्मृति)

जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति ।
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥ १ ॥
योगिनो ज्ञानिनो भक्ताः सुकर्मनिरताश्च ये ।
रामनाम्नि रताः सर्वे रमुक्रीडा त एव वै ॥ २ ॥

(पद्मपुराण)

रामेत्यक्षरयुग्मं हि सर्वमन्त्राधिकं द्विज ।
यदुच्चारणमात्रेण पापी याति परां गतिम् ॥ १ ॥

(क्रियायोगसार)

श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि ।
तेषां नास्ति भयं पार्थ रामनामप्रसादतः ॥ १ ॥
प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत् ।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं रामनाम दहेदघम् ॥ २ ॥

(आदिपुराण)

रकारोऽनलबीजं स्याद् ये सर्वे वडवादयः ।
कृत्वा मनोमतं सर्वं भस्म कर्म शुभाशुभम् ॥ १ ॥
आकारो भानुबीजं स्याद् वेदशास्त्रप्रकाशकः ।
नाशयत्येव स दीप्त्या हृत्स्थमज्ञानजं तमः ॥ २ ॥
मकारश्चन्द्रबीजं स्याद्यदपां परिपूरणम् ।
त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च ॥ ३ ॥
वैराग्यहेतुः परमो रकारः कथ्यते बुधैः ।
अकारो ज्ञानहेतुश्च मकारो भक्तिहेतुकः ॥ ४ ॥

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा-
माचाण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मोक्षश्रियः ।
नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मन्त्रोऽयं रसनस्पृगेव फलति श्रीरामनामात्मकः ॥ ५ ॥

(श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण)

छत्ररूपो रकारोऽस्ति अनुस्वारः शिरोमणिः ।
राजराजाधिराजेति तस्माद्रामः शिरोमणिः ॥ १ ॥

(पद्मपुराण)

निर्वर्णं रामनामेदं केवलं च स्वराधिकम् ।
सर्वेषां मुकुटं छत्रं मकारो रेफव्यञ्जनम् ॥ १ ॥

यन्नामसंसर्गवशाद्द्विवर्णौ
नष्टस्वरौ मूर्ध्निगतौ स्वराणाम् ।
तद्रामपादौ हृदये निधाय
देही कथं नोर्ध्वगतिं प्रयाति ॥ २ ॥

रेफोच्चारणमात्रेण बहिर्निर्याति पातकम् ।
पुनः प्रवेशसंदेहान्मकारश्च कपाटवत् ॥ १ ॥

(नारदपञ्चरात्र)

तुलसी राके कहत ही, निकसत पाप बहार ।
फिर आवन पावत नहीं, देत मकार किवार ॥ १ ॥
तावदेव इदं तेषां महापातकदाहनम् ।
यावन्न श्रूयते रामनामपञ्चाननध्वनिः ॥ १ ॥

(शिवसंहिता)

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥ १ ॥

(हनुमन्नाटक)

रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥ १ ॥

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय ६, श्लो० ७१)

य एतत्तारकं ब्रह्मणो नित्यमधीते स पाप्मानं तरति स मृत्युं तरति स ब्रह्महत्यां तरति स भ्रूणहत्यां तरति स वीरहत्यां तरतीत्यादि द्रष्टव्यम् ।

(रामतापनीयोप० द्वि० कण्डिका मन्त्र० ४)

अन्तःकरणसंशुद्धिर्नान्यसाधनतो भवेत् ।
कलौ श्रीरामनामैव सर्वेषां सम्मतं परम् ॥ १ ॥

(मार्कण्डेयसंहिता)

जपे यस्य लाभोऽजपे यस्य हानिः
सदा सर्वथा सर्वसिद्धान्ततत्त्वम् ।
शिवो नारदो व्यासमुख्या वदन्ति
कलौ केवलं राजते रामनाम ॥ १ ॥

(इति)

श्रृणुष्व मुख्यनामानि वक्ष्ये भगवतः प्रिये ।
विष्णुर्नारायणः कृष्णो वासुदेवो हरिः स्मृतः ॥ १ ॥
नाम्नामेव च सर्वेषां रामनामप्रकाशकः ।
ग्रहाणां च यथा भानुर्नक्षत्राणां यथा शशी ॥ २ ॥

(इति)

नारायणादिनामानि कीर्तितानि बहून्यपि ।
आत्मा तेषां च सर्वेषां रामनामप्रकाशकः ॥ १ ॥

(इति)

सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षरद्वयम् ॥ १ ॥

(वृद्धमनुस्मृतिः)

श्रीरामाय नमो ह्येतत्तारकं ब्रह्मनामकम् ।
नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः ॥ १ ॥

(हारीतस्मृतिः अ० ४)

अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥ १ ॥

(अध्यात्मरामायण)

पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम् ।
जल्पं जल्पं प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले
वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशीनिवासी ॥ १ ॥

(काशीखण्ड)

रामनाम परं ब्रह्म सर्वदेवप्रपूजितम् ।
महेश एव जानाति नान्यो जानाति वै मुने ॥ १ ॥

(जैमिनि० व्यासवाक्यम्)

रामेति द्व्यक्षरं नाम यत्र संकीर्त्यते बुधैः।
तत्राविर्भूय भगवान् सर्वदुःखं विनाशयेत् ॥ १ ॥

(लोमशसंहिता)

यस्य नामप्रभावेण सर्वज्ञोऽहं वरानने।
रामनाम्नः परं तत्त्वं नास्ति किंचिज्जगत्त्रये ॥ १ ॥

(शिववा०)

रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्भक्तिमुपैति जन्तुः।
कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः ॥ १ ॥
कवले कवले कुर्वन् रामनामानुकीर्तनम्।
यः कश्चित्पुरुषोऽश्नाति सोऽन्नदोषैर्न लिप्यते ॥ २ ॥
सिक्थे सिक्थे लभेन्मर्त्यो महायज्ञादिकं फलम्।
यः स्मरेद्रामनामाख्यं मन्त्रराजमनुत्तमम् ॥ ३ ॥

(वैष्णवस्मृतौ)

दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो
हा रामेति हतोऽस्मि भूमिपतितो जल्पंस्तनुं त्यक्तवान्।
तीर्णो गोष्पदवद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावात्पुनः
किं चित्रं यदि रामनामरसिकास्ते यान्ति रामास्पदम् ॥ १ ॥

(वराहपुराण)

द्विजो वा राक्षसो वापि पापी वा धार्मिकोऽपि वा।
त्यजन्कलेवरं रामं स्मृत्वा याति परं पदम् ॥ १ ॥

(अध्यात्मरामायण)

ॐ अथाह भारद्वाजो याज्ञवल्क्यं सहोवाच श्रीराममन्त्रस्य माहात्म्यं नो ब्रूहि भगवन् स ह उवाच याज्ञवल्क्यः तारकत्वात्तारको भवति तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि तदेवोपास्यं य एतत्तारकं ब्रह्मणो नित्यमधीते स पाप्मानं तरति स मृत्युं तरति स ब्रह्महत्यां तरति स भ्रूणहत्यां तरति स वीरहत्यां तरति स सर्वहत्यां तरति स संसारं तरति स विमुक्तात्मा भवति स महान् भवति सोऽमृतत्वं च गच्छतीति।

(सामवेदपिप्पलायनशाखा)

हरिः ॐ द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम कथं भगवन् गां पर्यटन् कलिं संतरेयमिति। सहोवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वे श्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छृणु। येन कलिसंसारं तरिष्यसि। भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति। नारदः पुनः पप्रच्छ। तन्नाम किमिति। स होवाच हिरण्यगर्भः—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्। नातः परतरं प्रायः सर्ववेदेषु दृश्यत इति षोडशकलावृतस्य पुरुषस्यावरणविनाशनम्। ततः प्रकाशते परं ब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमण्डलीवेति। पुनर्नारदः पप्रच्छ। भगवन्कोऽस्य विधिरिति। तं होवाच नास्य विधिरिति। सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन् ब्रह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यतामेति। यदास्य षोडशकस्य सार्धत्रिकोटिर्जपति। तदा ब्रह्महत्यायास्तरति। स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति। वृषलीगमनात्पूतो भवति। सर्वधर्मपरित्यागपापात्सद्यः शुचितामाप्नुयात्। सद्यो मुच्यते सद्यो मुच्यत इत्युपनिषत्। हरिः ॐ सह नाववत्विति शान्तिः शान्तिः शान्तिः। हरिः ॐ।

(कलिसंतारणोपनिषद्)

राम एव परं ब्रह्म परमात्माभिधीयते।
रामात्परतरं नास्ति यत्किंचित्स्थूलसूक्ष्मकम् ॥ १ ॥

(पराशरस्मृति)

रामान्नास्ति परो देवो रामान्नास्ति परं व्रतम्।
नहि रामात्परो योगो नहि रामात्परो मखः ॥ १ ॥
राशब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः।
विश्वेषामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥

(पद्मपुराणे)

पदश्रवणकराननवाणी त्वङ्नयननासिकादीन्द्रियविषयाधीशैः।
विवर्जितो रामः साक्षात्परब्रह्मविग्रहः सच्चिदानन्दात्मकः स्वयम् ॥१॥

(शिवस्मृतिः)

रकारार्थो रामः सगुणपरमैश्वर्यजलधिः
मकारार्थो जीवः सकलविधकैंकर्यनिपुणः।
तयोर्मध्याकारो युगलमथ सम्बन्धप्रमुखः
अनन्यार्हो ब्रूते त्रिनिगमसरूपोऽयमतुलः ॥ १ ॥

(आचार्यवाक्यम्)

श्रीरामं ये च हित्वा खलमतिनिरता ब्रह्मजीवं वदन्ति
ते मूढा नास्तिकास्ते शुभगुणरहिताः सर्वबुद्ध्यातिरिक्ताः।
पापिष्ठा धर्महीना गुरुजनविमुखा वेदशास्त्रैर्विरुद्धा-
स्ते हित्वा गाङ्गमम्भो रविकिरणजलं पातुमिच्छन्ति त्रस्ताः ॥१॥

(शिववाक्यम्)

श्रीमद्गानुसुतातटे प्रविलसद्दिव्यं महत्पत्तनं
तत्कंसस्य जगत्त्रयेऽपि विदितं वर्णैः शुभैर्बहिभिः ।
अन्त्याद्यौ विबुधाः स्मरन्ति भुवि ये धन्याः कुलं पावितं
तौ तेषां न भजन्ति स्याच्च वदने मध्यस्थितं चाक्षरम् ॥ १ ॥
पठति सकलशास्त्रं वेदपारं गतोऽपि
यमनियमपरो वा धर्मशास्त्रार्थवेत्ता ।
अटति सकलतीर्थे राजिता वा हुताग्नि-
र्यदि भजति न रामं सर्वमेतद् वृथा स्यात् ॥ २ ॥

कबीर कसौटी रामकी, झूठा टिकै न कोय ।
राम कसौटी सो सहै, जो मरजीवा होय ॥ १ ॥
कबीर कहता हूँ कह जात हूँ सुणता है सब कोय ।
राम कह्यां भल होयगा, नहिंतर भला न होय ॥ २ ॥

(कबीर०)

मूरख तन धर कहा कमायो ।
राम भजन बिन जन्म गुमायो ॥

(श्रीरामानन्दजी म०)

रसना राम उचार रे तुझे आय मिलेंगे ।
अधंनाम उद्धार करेगो, नहिं तो फिरि फिरि जन्म धरेगो ॥

(श्रीजैमलदासजी म०)

रामनाम निजमूल है, और सकल विस्तार ।
जन हरिया फल मुक्ति कूं, लीजै सार संभार ॥ १ ॥

(श्रीहरि० वाक्यम्)

राम कह्या सबही सझा, सबहि राम के माहिं ।
रामदास इक राम बिन, दूजा कोऊ नाहिं ॥ १ ॥
धिन साधू संसार में, सुमरावे निजनाम ।
रामदास सत शब्द दे, पहुंचावे सुन गाम ॥ २ ॥
बडा बडेरा मंडका, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
रामदास उन भी कह्यो, राम सर्व उपदेश ॥ ३ ॥

(श्रीराम० वाक्यम्)

एक राम के नाम बिन जिवकी जरनि न जाय ।
दादू केते पचि मरे करि करि बहुत उपाय ॥ १ ॥

रामनाम गुरु शब्द सूं, रे मन पेल भरम्म।
निहकरमी सूं मन मिल्या, दादू काट करम्म ॥ २ ॥
(दादू दयाल)

राम नाम जपिबो श्रवनन सुनिबो, सलिलमोहमें वहि नहिं जइबो।
(नामदेव)

रे मन राम नाम संभार, माया के भ्रम कहा भूलो चलेगो कर झार।
(रैदासजी)

दया बोधमाँहीं कही, करि करि ऊँची बाँह।
दयावंत जिनके वसै, राम राम उरमाँह ॥ १ ॥
(गोरखनाथजी)

सुंदर कहत एक दियो जिन राम नाम।
गुरुसो उदार कोउ देख्यो नाँहि सुन्यो है।
(सुन्दरदासजी)

रज्जब मिनखा देह धृक्, आतमराम न जानियो।
(रज्जबजी)

हरिहां वाजींद रामभजन में, देह गले तो गालिये।
(वाजींदजी)

रसना रटै न रामकूँ, आन कथा मुख चोळ।
जन हरिदास वे मानवी, काग विलाई कोळ ॥ १ ॥
(हरिदासजी)

मृगतृष्णा ज्यूं जगरचना, यह देखो हृदय विचार।
कह नानक भज रामनाम, नित जातें हो उद्धार ॥ १ ॥
(गुरुनानक)

माया त्याग भजै नित राम, सो अरिहंत हते सब काम।
जैनशास्त्र दशलाख गरथ, तिनमें भाख्यो यही अरथ।
राम राम सो अरिहंत कहिये, ताही भज अरिमनकूँ गहिये ॥ १ ॥
(जैनमत समयसारनाटक)

राम राम सब कोइ कहै, ब्रह्मा विष्णु महेश।
राम चरण साचा गुरू, देवे यो उपदेश ॥ १ ॥
राम चरण शिव धर्म कूं, जानत नांहीं कोय।
शिव सुमरे ताकूं भजे, सो शिव धरमी होय ॥ २ ॥
(श्रीरामचरणजी महाराज)

तन मन कर हेती [1]रसना सेती रामहि राम रटंदा है ॥ ४ ॥

तब तन-मन उसीमें तल्लीन हो गया और अनन्य प्रेमपूर्वक रसना (जिह्वा) से राम-ही-राम शब्दकी रटना अहर्निश (दिनरात) होने लग गयी ॥ ४ ॥

को काहू के शब्द से, फाट जाय आकाश ।
संत नमाने संतदास, विना राम विश्वास ॥ १ ॥

पाई न गति केहि पतित पावन, राम भज सुनु शठ मना ।
गणिका अजामिल गृध्र व्याध, गजादि खल तारे घना ॥
आभीर यवन किरात खल, श्वपचादि अति अघरूप जे ।
कहि नाम वारक तेपि पावन, होत राम नमामि ते ॥ १ ॥

न मिटै भव संकट दुर्घट है, तप तीरथ जन्म अनेक अटो ।
कलिमें न विराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूठ जटो ॥
नट ज्यों जनि पेट कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो ।
तुलसी जो सदा सुख चाहिये तो, रसना निशि वासर राम रटो ॥१॥

राका रजनी भक्ति तव, राम नाम सोइ सोम ।
अपर नाम उडगण विमल, बसहु भक्त उर व्योम ॥ १ ॥

यद्यपि प्रभु के नाम अनेका । श्रुति कह अधिक एकते एका ॥
राम सकल नामनते अधिका । होउ नाथ अघखगगणवधिका ॥
(रामायण)

राम नाम मणिदीप धर, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरे, जो चाहसि उजियार ॥ १ ॥
हिय निर्गुण नैनन सगुण, रसना राम सुनाम ।
मनहु पुरट संपुट किये, तुलसी ललित ललाम ॥ २ ॥
जन मन वन नहिं कर सकै, कलिमल गज पैसार ।
उभय सिंह गरजत सदा, नाथ रकार मकार ॥ ३ ॥ (तुलसी)

जा घट चौकी रामकी, विघ्न धसै नहि चौर ।
ज्यों सूरज मंडल विषै, नहीं तिमिर को ठौर ॥ १ ॥

१ रसनासे राम-नाम-रटन—
राम नाम को कीजिये, आठों पहर उचार ।
हरिया बंदीवान ज्यों, करिये कूक पुकार ॥ १ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

रसना सों रटिवो करै, आठों पहर अभंग।
रामदास उण संत को, राम न छांडै संग ॥ १ ॥

(श्रीराम० वाक्यम्)

कबीर राम राम कहि कूकिये, ना सोइये असरार।
रात दिवस के कूकने, कबहुक लगे पुकार ॥ १ ॥
राम नाम जपते रहो, जब लग घटमें प्रान।
कबहुक दीन दयालुके, भनक परेगी कान ॥ १ ॥
रामनामको नित भजो, रसना होठ समेत।
हरिया जोग रु जुगति बिन, सहज न को सिवरेत ॥ १ ॥
राम नाम रसना रटै, सोई जग में साध।
हरिया सुमिरन सहज का, वांका मता अगाध ॥ २ ॥

स्मरणके स्थान—१ रसना, २ कण्ठ, ३ हृदय, ४ नाभि।
स्मरणके भेद—१ अधम, २ मध्यम, ३ उत्तम, ४ अत्युत्तम।

प्रथम राम रसना सुमरि, द्वितिये कंठ लगाय।
तृतिये हिरदै ध्यान धरि, चौथे नाभि मिलाय ॥ १ ॥

प्रथम सो प्रथम अध नाम रसना लिया, दूसरे नाम मधं कंठ धारा।
तीसरे उत्तम सो नाम हिरदै कह्या चतुरथै नाभि अतिउत्तम यारा ॥

(श्रीहरि० वाक्यम्)

तुरसी अध सुमरिण धौं एह, रसना राम राम जपिलेह।
यह आलंबन तोलौं करै, मध सुमिरण की सोझी परै ॥ १ ॥
तुरसी मध सुमिरण जु यह, कंठ कमल अस्थान।
राम नाम उच्चार हुय, घायल करै सो प्रान ॥ २ ॥
उत्तम सुमिरण हिरदा में, आरंभै धरि ध्यान।
श्वासोच्छ्वास रट्यो करे, तुरसी नाम निर्बान ॥ ३ ॥
तुरसी अति उत्तम भजन, कापैं वरण्या जाय।
लख्यो ज कापे परै, भाग हुवै तो पाय ॥ ४ ॥

(जन तुरसी)

आठ पहर चौसठ घड़ी, रहै राम से रत्त।
जब जाय फाटै संतदास, चौरासी का खत्त ॥ १ ॥

(संतदासजी)

बरस्या है प्रेमा दरस्या नेमा कंठ[1] कमल फूलंदा है ॥ ५ ॥
भँवरा[2] गुंजारू खुल्ला बारू मुरली टेर सुणंदा है ॥ ६ ॥

और प्रेमकी वर्षा होने लगी, जिससे स्वयं ही (आपोआप) योगशास्त्रोक्त षट्चक्र-भेदन तथा क्रमानुसार राम नाम रटने (जपने) के नियम (विधि) जान पड़ने लग गये और राम नामकी रटना अहर्निश अखण्ड होती रहनेसे प्रथम ही प्रथम कण्ठस्थ कमलका विकास हो गया (कण्ठकमल फूल गया), जब कण्ठमें स्मरण होनेसे कण्ठ-कमल फूला तब जैसे भ्रमर (भँवरा) शब्द करता है उसके समान कण्ठमें (राम नाम-रटन) गुंजार शब्द होने लगा और कण्ठ-कमलका द्वार खुल गया जिससे उस नादकी टेर बाँसुरीकी टेरके सदृश सुनायी पड़ने लगी ॥ ५-६ ॥

श्वास रु उच्छासा हिरदैवासा[3] सुमिरण[4] ध्यान धरंदा है ॥ ७ ॥
नाभी[5] घर आया नाच नचाया सहजाँ[6] सुख सुमरंदा है ॥ ८ ॥

---

१ विशुद्धिचक्र ।

२ गदगद सुमरण कंठ में, अमृत की सी धार ।
एक अखंडी होत है, भवर पंख भणकार ॥ १ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

३ रसना, कण्ठ और हृदय—इन तीन स्थानोंमें स्मरण क्रमसे पहुँचनेमें श्रीहरिरामदासजी महाराजको ७ वर्ष और २ मासकी अवधि लगी थी ।

राम राम रसना किया, मास दोय विश्राम ।
हरिया हिरदै कंठ बिच, सागर वर्ष मुकाम ॥ १ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

४ गुण तारे माया तिमिर, शीत भरम मन चन्द ।
रजब सुमिरण सूरतें, सहज पड़े सब मन्द ॥ १ ॥

५ हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले अर्थात् हृदयमें प्राणवायु, गुदामें अपानवायु और नाभिमें समानवायु रहता है एवम् उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः इति अर्थात् कण्ठमें उदानवायु और सर्वशरीरमें व्यानवायु निवास करता है ।

६ नाभिस्थानमें जब स्मरण होने लगता है तब सहज स्मरण होता है ।

तदनन्तर हृदयस्थान (अनाहत चक्र) में श्वास और उच्छ्वासकी गतिका ठहरना हुआ और मन-ही-मनमें स्मरणका ध्यान धरने लगा, हृदयमें स्मरण होनेके पश्चात् नाभिस्थान (मणिपुरचक्र) में स्मरण करता हुआ प्राणवायु समानवायुमें आकर मिला (प्राणवायु समानवायुके घरमें अर्थात् नाभिस्थानमें जब आया) तब अनेक प्रकारके नाच नचाने लगा और सहजमें ही आपसे आप मुखसे राम नामका स्मरण होने लग गया ॥ ७-८ ॥

रग रग आरंभा भया अचंभा छुच्छम[1] वेद भणंदा है ॥ ९ ॥

और व्यानवायु जो सर्वशरीरमें व्यापक हो रहा है उससे प्राण और समानवायुका योग होनेसे रग-रगमें (नस-नसमें) आश्चर्यजनक एक क्रियाका आरम्भ हुआ जिसका भेद वर्णन करना बड़ा सूक्ष्म है ॥ ९ ॥

ओऊँ अरु सोऊँ देख्या दोऊँ पारब्रह्म परसंदा है ॥ १० ॥

ररंकार सुमरण सहज, नाभि कमल अस्थान।
हरिया पच्छिमदेशकों, पहुँचन का परमान ॥ १ ॥
ज्यूं जल सेझै सिंधुका, वाका थाह न कोय।
हरिया सुमिरन सहजका, निशिदिन घटमें होय ॥ २ ॥

सोरठा

हरिया मुख ममकार, जब सहजाँ सुमिरण नहीं।
मरै धरै आकार, मेला जीव रु शीव बिन ॥ १ ॥

अर्थात् सहज सुमिरण नाभिस्थानमें जब रकारका स्मरण होने लग जाय तो पश्चिम देशको पहुँचनेका प्रमाण समझना। सहज सुमिरणमें मकारका स्मरण बंद होकर केवल ररंकार शब्दकी रात-दिन रटना होने लग जाती है तभी जीव और शिव एक हो जाते हैं।

१ छुछम वेद—यह महात्माओंका सांकेतिक शब्द है जिसमें सूक्ष्म भेद (वार्ताओं) का वर्णन है अथवा स्वसंवेद्य गुणको भी कहते हैं अथवा भगवान्‌के श्वासोच्छ्वासरूप वेदको भी कहते हैं अथवा 'छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्' इसको भी कहते हैं।

ऐसी स्थिति होनेके पश्चात् ओऊँ=हंसः और सोऊँ=सोहं-इन दोनोंके "हंसः सोहं सोहं हंसः" इस अजपा[1] नाम गायत्रीके जपका ज्ञान प्राप्त होनेसे परब्रह्म परमात्माके दर्शनकी प्राप्ति होती है वह हुई ॥१०॥

---

१ अजपाके जपसे परब्रह्म परसता है—

ओऊं सोऊं जाप अजप्पा, घटमें कीया संप असंपा ।

(श्रीहरि० वाक्यम्)

ओऊं सोऊं अर्थात् हंसः सोहं अजपा जप है । इसने घटमें असंप (जीव ब्रह्मका भेद) का संप (अभेद) कर दिया—ठीक वाच्यार्थ सफल कर दिया ।

उलटा अजपा जाप जपाया । हद को जीत वेहदमें आया ॥

(श्रीराम० वाक्यम्)

नासापथसमाकृष्टः पवनः फुस्फुसं गतः ।
शोधयेच्छोणितं दुष्टं तेन जीवन्ति जन्तवः ॥ १ ॥
सोहंशब्देन जीवानां श्वासोच्छ्वासौ निरन्तरम् ।
स्यातां वा हंसशब्देनोच्छ्वासश्वासौ विपर्य्ययात् ॥ २ ॥
इत्ययं द्व्यक्षरो मन्त्रो जीवजप्योऽजपा मता ।
जपारम्भो हि जननं मरणं तत्समापनम् ॥ ३ ॥

इसी अजपा मन्त्रको अजपा गायत्री कहते हैं ।

एकविंशतिसाहस्रं षट्शताधिकमीश्वरि ।
जपते प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्दमयीं पराम् ॥ ४ ॥
विना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः ।
अजपेयं ततः प्रोक्ता भवपाशनिकृन्तनी ॥ ५ ॥

(दक्षिणामूर्तिसंहिता)

अजपा नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा ।
षट् शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः ॥ १ ॥
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं हंसः सोहं क्रमेण वै ।

(कुलार्णव)

जातः स इति वै शब्दमुच्चार्यारभते जपम् ।
महाप्रयाणसमये हमुच्चार्य समापयेत् ॥ १ ॥

(दक्षिणामूर्तिसंहिता)

मम्मा हुय पासे कमल विकासै अर्ध नाम आखंदा है ॥ ११ ॥
ॐ नामज केवल बडे महाबल रोम रोम उचरंदा है ॥ १२ ॥

जिससे राम राम शब्द जो मैं जपता था उसमेंसे मकार बोलना बंद हो गया अर्थात् मायासे रहित अद्वैतरूप अर्धनाम जो केवल रकार है उसी रकारका (राँ राँ राँ राँ राँ राँ) स्मरण होने लग गया, नाभिकमलका विकास हो गया, जिससे शुद्ध निर्गुण (मायारहित) पार परब्रह्मका दर्शन हुआ तब महाबलशाली अर्धनाम रकार जो अद्वैतरूप है केवल उसीका उच्चारण रोम-रोममें हो रहा है ऐसा मालूम होने लगा ॥

यह अजपा जप तो स्वाभाविक रीत्या अहर्निश होता ही रहता है, परंतु यही अजपा जप राममन्त्रके सहित जपनेसे फलदायक होता है ।

ओऊं सोऊं ऊंबरा, दोऊं खाली ओड़ ।
नाम विना ऊगै नहीं, पच पच मरो करोड़ ॥ (रज्जबजी)
ओऊं सोऊं देह लग, निशि दिन आवे जाय ।
एक अखंडी शब्द में, हरिया सुरति समाय ॥ १ ॥

अर्थात् हंसः सोहं यह श्वासोच्छ्वास शब्द, शरीर है तबतक रात-दिन आता-जाता रहता है, इसीके द्वारा एक अखण्डी शब्द जो ररंकार आत्मा स वाचक शब्द है उसमें सुरति समाय दो यानी समावेश कर दो—

ओऊं सोऊं शब्द की, सहजाँ सुणी अवाज ।
जन हरिया इन ऊपरै, ररंकार का राज ॥ १ ॥
ओऊं सोऊं शब्द की, तीन लोक लग सोय ।
जन हरिया ररंकारका, आर पार नहिं कोय ॥ २ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

अजपाजपनिष्कृष्ट-लक्षण—

मन पवना अरु सुरति से, आतम पकड़े आप ।
रब्बब लावे सुरति सो, एहै अजपाजाप ॥ १ ॥
(रज्जबजी)

अजपाजाप लगावे हेत, नीरक्षीर न्यारा करिदेत ।
विष छांडे अमृत कूं पीवे, समझ पिछाणै सुमरिण साच ।
अन्तर एक राम सुख राखे, और सकल सुख मानै काच ॥
(श्रीजैमलदासजी महाराज)

रहता से रत्ता है निज तत्ता न्यारा हुय निरखंदा है ॥ १३ ॥
ऐसा अविनासी आय न जासी भाग वडे[1] भेटंदा है ॥ १४ ॥

यह रकारका स्मरण इस शरीरमें रहनेवाले आत्मामें रत (लवलीन) होनेसे निज तत्त्वरूप हो जानेके कारण न्यारा होकर देखने लग गया अर्थात् द्रष्टा होकर अपने आपको देखने लगा, जिस परब्रह्मको अलग होकर देखने लगा वह परब्रह्म ऐसा अविनाशी है जो न तो कहींसे आता है न कहीं जाता है, अपनेमें ही सदा-सर्वदा विराजमान रहता है उस परब्रह्मकी भेट बड़े महाभाग्य होते हैं तब ही होती है ॥१३-१४॥

रेचक[1] अरु पूरक कर बिन कुंभक आप उलटि पलटंदा है ॥ १५ ॥

विना हाथकी सहायताके जब आपसे आप स्वयं बाँयेसे दहिना और दहिनेसे बाँई तरफ उलट-पुलट रेचक-पूरक होकर कुम्भक होने

---

१ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ १ ॥
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ २ ॥
(गीता)

१ प्राणायाम—
प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः ।
सहितः केवलश्चेति कुम्भको द्विविधो मतः ॥ १ ॥
यावत्केवलसिद्धिः स्यात्सहितं तावदभ्यसेत् ।
रेचकं पूरकं मुक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् ॥ २ ॥
न रेचको नैव च पूरकोऽत्र नासापुटे संस्थितमेव वायुम् ।
सुनिश्चलं धारयते क्रमेण कुम्भाख्यमेतत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३ ॥
(हठयोगप्रदीपिका)

अर्थात् जबतक "केवल कुम्भक" सिद्ध न हो तबतक रेचक-पूरकादि क्रिया करके कुम्भकका अभ्यास करता रहे, जब रेचक और पूरकके विना ही स्वयं वायु नासापुटमें ही सुनिश्चल स्थिर होकर कुम्भक हो जावे उसको केवल कुम्भक कहते हैं, यह जिसके सिद्ध हो जाता है उसको—

लगता है, अथवा रेचक और पूरकके किये विना "केवल कुम्भक" ही होने लगता है ॥ १५ ॥

त्राटक[1] हुय ध्यानू वात विज्ञानू आपा पट खूलंदा है ॥ १६ ॥

त्राटक (विना पलक झपकाये एक सरीखे नेत्र किसी सूक्ष्म लक्ष्यकी ओर जमाकर एकाग्र अनन्य भावका चित्त हो) ध्यान करनेसे

कुम्भके केवले सिद्धे रेचपूरकवर्जिते ।
न तस्य दुर्लभं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
शक्तः केवलकुम्भेन यथेष्टं [1]वायुधारणात् ॥
राजयोगपदं चापि लभते नात्र संशयः ।
कुम्भकात् कुण्डलीबोधः कुण्डलीबोधतो भवेत् ॥
अनर्गला सुषुम्णा च हठसिद्धिश्च जायते ।
हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः ॥
न सिध्यति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समभ्यसेत् ।

तीन लोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है । जो केवल कुम्भक करनेको समर्थ हो जाता है और जो यथेष्ट वायु धारण कर सकता है वह राजयोगके पदको प्राप्त होता है इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं । कुम्भकसे कुण्डलीका प्रबोध होता है और कुण्डलीके प्रबोध होनेसे सुषुम्णा सरल हो जाती है जिसमें हठयोगकी सिद्धि हो जाती है ।

१ त्राटक[2]—

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः ।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम् ॥ १ ॥
मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम् ।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम् ॥ २ ॥

(हठयोगप्रदीपिका)

---

१ स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता)

२ कितने ही ललाट-देशमें प्राण-निरोध करनेको भी त्राटक कहते हैं ।

विज्ञान (भूत-भविष्य-वर्तमानज्ञान) प्राप्त होता है तब अपने आपका पड़दा खुल जाता है और अपने आपको पहिचानने लग जाता है। अर्थात् "अहं ब्रह्मास्मि" ज्ञान हो जाता है ॥ १६ ॥

सुखमण की घाटी चढ़िया वाटी अरसघरां ठहरंदा है ॥ १७ ॥

उपरोक्त प्रकारसे प्राण-वायुका कुम्भक एकाग्रतासे रकार रटणपूर्वक होता हुआ [2]सुषुम्णाकी महाघाटीके पथमें जब प्राणवायु अपानवायुके

अर्थात् इधर-उधर नहीं देखते हुए विना पलक झपकाये निश्चल दृष्टिसे किसी लक्ष्यको एकाग्रचित्त होकर जबतक नेत्रोंमेंसे पानी टपकने न लग जाय तबतक देखते रहनेको आचार्योंने त्राटक कहा है। यह त्राटक नेत्रके सर्वरोगको और तन्द्रा आदिको मिटानेवाला यत्नपूर्वक गुप्त रखने योग्य है।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

(भगवद्गीता अध्याय ६)

२ सुषुम्णा—इडा और पिंगला नाड़ीके मध्यमें सुषुम्णा है।

दोहा

इला चंद रवि पिंगला, मध सुखमण का घाट।
हरिया गुरु परसाद ते, खूला सहज कपाट ॥ १ ॥

(श्रीहरि० वाक्यम्)

इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
तयोर्मध्ये प्रयागस्तु यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥

(बृहत्सामब्राह्मण)

सुषु इत्यव्यक्तशब्दं म्नायति म्ना—कः मेरुदण्डबाह्ये इडा-पिङ्गला-नाडी-मध्यस्थनाडीविशेषः।

मेरोर्बाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिरे सव्यदक्षे निषण्णे।
मध्ये नाडी सुषुम्णा त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा ॥ १ ॥
(शब्दकल्पद्रुम)

मेरुबाह्ये इडा नाडी पिङ्गला या समन्विता।
सुषुम्णा भानुमार्गेण ब्रह्मद्वारावधिस्थिता ॥ १ ॥
(योगस्वरोदय)

नाडीर्दश विदुस्तासु मुख्यास्तिस्रः प्रकीर्तिताः।
इडा वामे तनोर्मध्ये सुषुम्णा पिङ्गला परे ॥
मध्या तास्वपि नाडी स्यादग्निसोमस्वरूपिणी ॥ १ ॥

अत्रेडा वामवृक्काधःस्था धनुर्वक्रा वामनासापर्यन्तगता, एवं पिङ्गला दक्षिणाण्डाधःस्था धनुर्वक्रा दक्षिणनासान्तं गता, पृष्ठवंशान्तर्गता सुषुम्णा इत्यर्थः।
(शारदातिलक)

तात्पर्य यह है कि, मेरुदण्डके बाहरके बाँये भागमें इड़ा नामकी नाड़ी बाँये अण्डके मूलसे निकलकर धनुषके समान टेढ़ी होकर वामनासाके अन्तपर्यन्त गयी है, एवं दक्षिण अण्डके मूलसे निकलकर धनुषके समान टेढ़ी होकर मेरुदण्डके दक्षिणभागमें रहकर पिङ्गला नामकी नाड़ी दक्षिणनासिकाके अन्तपर्यन्त गयी है, और इन दोनों (चन्द्रसूर्यस्वरूपिणी) इड़ा-पिङ्गला नाड़ीके मध्यमें (मेरुदण्डके बीचमें अर्थात् मेरुदण्डके भीतरके मध्यभागमें अग्निरूपिणी सुषुम्णानाड़ी मूलाधारसे निकलकर ब्रह्मद्वारपर्यन्त गयी हुई है, यह नाड़ी त्रिगुणात्मिका चन्द्रसूर्याग्निरूपा है। मेरुदण्डको ही पृष्ठवंश कहते हैं। इसी पृष्ठवंशके भीतरके भागमें सुषुम्णा नाड़ी रहती है और बाहरके भागमें बाँयी ओर इडा, दहिनी ओर पिङ्गला नामकी नाड़ियाँ आजु-बाजु मिली हुई रहती हैं। इन्हीं तीनों नाड़ियोंको गङ्गा-यमुना और प्रयाग भी कहते हैं।

सुषुम्णाको पश्चिमद्वार अथवा वंकनाल अग्निरूपिणी भी कहते हैं। इसके और भी कई नाम शास्त्रोंमें इस प्रकार कहे गये हैं—

सुषुम्णा शून्यपदवी ब्रह्मरन्ध्रं महापथः।
श्मशानं शाम्भवी मध्यमार्गश्चेत्येकवाचकाः ॥ १ ॥

इस सुषुम्णा नाड़ीके विषयमें विशेष विवेचन इस प्रकार है—

मस्तिष्कका स्वरूप कद्दुएकी खोपड़ीके समान है, इसमें श्वेत रूईके समान चरबीकी गिल्टियाँ बारीक झिल्लियोंमें लिपटी हुई भरी हैं जिनको भेजा कहते हैं।

इसके चौड़ाईमें दो भाग नारंगीकी फाँकोंके समान हैं और लम्बाईमें भी दो भाग हैं। सामनेका भाग पेशानीकी तरफवाला डाक्टरीमें (Cerebrum) सेरीब्रम् कहलाता है और पिछला भाग (Cerebellum) सेरीबेल्लम् कहलाता है। यह पिछला भाग पतला होता हुआ बारीक सूतकी तरह रीढकी हड्डीमें फैला हुआ है। जिसको हराम मगज कहते हैं। इस रीढकी हड्डीमें शरीरकी सम्पूर्ण शक्तियों और प्रत्येक प्रकारके स्नायुओंके केन्द्र हैं। सम्पूर्ण केन्द्रोंमें गाँठ लगी हुई है, जिससे मनुष्य अपनी शक्तिको प्रयोगमें नहीं ला सकता। कुण्डलिनी नाम केन्द्र यदि जगाया जावे तो यह जोरमें भरकर इन गाँठोंको तोड़ सकता है, क्योंकि जीवात्मा इसीमें लिपटा हुआ अचेत रहता है, जो इच्छाओंकी व कर्मोंकी जंजीरमें बँधकर शरीरके अंदर कैद है। शरीरमें ऐसे आत्मिक केन्द्र तो चौदह हैं परंतु इनमेंसे छः अधिक विख्यात हैं जो षट्चक्र कहलाते हैं। डाक्टरोंकी सम्मतिमें ये वे स्थान हैं जहाँ किसी प्रकारके स्नायुके झुंड आकर इकट्ठे होते हैं, और जहाँ अत्यन्त अधिक बल दूसरे अङ्गोंकी अपेक्षा इकट्ठा रहता है और इनमें प्रतिसमय शक्ति भरी और बहती रहती है।

रीढकी मेरुदण्ड (Spinal Cord) स्पाइनल कोर्ड में जो हराम मगज भरा है उसके बीचों-बीच बालके बराबर बारीक नाली मस्तिष्कसे लेकर नीचे गुदातक चली गयी है जिसको अंग्रेजीमें (Canal of String) केनाल आफ स्ट्रिंग और संस्कृतमें सुषुम्णा कहते हैं, यह रंग तेजीसे भरी हुई है, और यही स्थान शक्ति व जिंदगीका घर है। और जिस प्रकार बेंतमें गाँठ होती है इसी तरह इसमें षट्चक्रोंका स्नायु-केन्द्र है और इनके स्थानकी ठीक पहिचान यह है कि, इस स्थानके सामने शरीरमें जरा-सा गड्ढा व खाली स्थान अवश्य होता है। (षट्चक्रोंका विशेष वर्णन षट्चक्रवर्णनके प्रसंगमें आगे लिखनेमें आयगा)। इड़ा नामकी नाड़ी सुषुम्णाके बाँई तरफ होती हुई आज्ञा-चक्रतक आती है, फिर वहाँसे मुड़कर सीधे नथनेमें पहुँचती है। और पिङ्गला सुषुम्णाके सीधी तरफ लिपटी हुई आती है फिर वहाँसे मुड़कर बाँये नथनेमें जाती है। सुषुम्णा रीढके भीतर होकर जाती है। इसके मध्यमें खाली स्थान है जिसको चित्रा कहते हैं इसीमें आत्मा रहता है। इस नाड़ीके छः दरजे हैं जिनमें केवल पाँच साधारणतया प्रकट किये जा सकते हैं। डाक्टरी मतसे तो नाड़ियाँ रुधिर ले जानेका काम करती हैं परंतु योगशास्त्रमें ऐसा माना है कि वे वायु और शक्ति भी ले जाती हैं। यह गिनतीमें सब चौदह हैं, परंतु इनमेंसे उपरोक्त (इडा-पिङ्गला-सुषुम्णा) तीन अधिक विख्यात और आवश्यकीय हैं। यह नाड़ियाँ बारीक सूतके समान स्नायु हैं जो कि हड्डियोंसे निकलती हैं। योगी-

साथ मिलकर सुषुम्णा नाड़ीके मार्गमें चढ़ा तब अरसघर (शून्यस्थान) में जाकर ठहरा ॥ १७ ॥

फिरिया मन पूरब चले अपूरब ठाम ठाम ठमकंदा है ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् पूर्वसे मन फिरकर कण्ठ, हृदय, नाभिमें क्रमसे ऊपरसे नीचे स्थान-स्थानपर श्वास ठहरता हुआ (स्थिर होता हुआ) पश्चिमकी तरफ यानी सुषुम्णा मार्गके द्वारकी ओर चलने लगा ॥ १८ ॥

जालंधर[1] बंधा उरधे कंधा मन अरु पवन मिलंदा है ॥ १९ ॥
उलट्या है आसण पलट्या वासण सुरत शब्द परसंदा है ॥ २० ॥

कंधेके ऊपरका जालंधर बन्ध करनेसे प्राणवायुकी ऊर्ध्वगति रुक जाती है और पश्चिमतानसे ब्रह्मनाड़ीमें जाने लगता है। तथा मूलबन्ध करनेसे अपानवायु उलटकर ऊर्ध्वगामी होता है एवं जालंधरबन्ध और मूलबन्ध करनेपर प्राण-अपान वायुके आसन उलट-पुलट होनेके कारण दोनों मिल जानेसे सुरत शब्दका स्पर्श हुआ ॥ १९-२० ॥

का अभीष्ट यह होता है कि रीढकी नाड़ी अर्थात् सुषुम्णाको स्वच्छ रक्खे जिससे तेजीकी लहर बराबर जारी रहे और सम्पूर्ण केन्द्र स्वतन्त्र और दृढ़ रहे जिससे इच्छानुसार काम दे सके।

इस प्रकार सुषुम्णाके स्वरूपका वर्णन योगशास्त्रमें किया हुआ है। इससे सुषुम्णाका मार्ग कितना अधिक कठिन है यह सहज ही ध्यानमें नहीं आ सकता है। इसी अति कठिन मार्गकी घाटीको अर्थात् गाँठें बीच-बीचमें जो आड़ मारनेवाली हैं उनको लाँघके छेदन करके प्राणकी गति जब सुषुम्णामें होती है तब शनैः-शनैः ठहरता हुआ ब्रह्मद्वारपर त्रिकुटीमें पहुँचता है।

प्रथम ध्यान पूरब दिशा, गगन गर्जिया जाय।
ठाम ठाम पाताल कूं, पछे पिछम कूं थाय ॥ १ ॥

[1] बन्ध तीन प्रकारके होते हैं जालंधर, मूल और उड्डियान।

१ जालंधर बन्ध—

कण्ठको सिकोड़कर मजबूतीसे चिबुक अर्थात् ठोडीको हृदयमें जमाके सीधा बैठनेको जालंधर बन्ध कहते हैं।

बहती वँकनाड़ी खुली किवाड़ी भँवरगुफा भणकंदा है ॥ २१ ॥
उल्लंघ्या मेरा गुरुमिलचेरा चहुँ चकडोल फिरंदा है ॥ २२ ॥

चलती हुई वंकनाड़ी (सुषुम्णा) की किवाड़ी खुल गयी (सुषुम्णा नाड़ीका द्वार खुल गया) जिससे भँवरगुफा (ब्रह्मरन्ध्रस्थान)

कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम् ।
बन्धो जालंधराख्योऽयं जरामृत्युविनाशकः ॥ १ ॥
है जालंधर बंध में, मन पवना की गांठ ।
हरिया मिल्या उतान में, सुरत शब्द की सांठ ॥ १ ॥
सुरत चली आकाश कूं, दे जालंधर बंध ।
जन हरिया जहां जाणियै, हद वेहद की संध ॥ २ ॥
हरिया शब्द पयाल को, चल्या गगनतें होय ।
जब जालंधर बंध को, विरला जाने कोय ॥ ३ ॥

(श्रीहरि० वाक्यम्)

२ मूलबन्ध—

एडीसे योनिस्थानको दबाकर गुदाको संकोच करे और नीचे जानेवाले अपान वायुको बलपूर्वक ऊपर खींचके चढ़ाते रहनेको मूलबन्ध कहते हैं ।

पार्ष्णिभागेन सम्पीड्य योनिमाकुञ्चयेद् गुदम् ।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धोऽभिधीयते ॥ १ ॥
अधोगतिमपानं वा ऊर्ध्वगं कुरुते बलात् ।
आकुञ्चनेन तं प्राहुर्मूलबन्धं हि योगिनः ॥ २ ॥

३ उड्डियानबन्ध—

नाभिके ऊपरके भागको पीठकी ओर खींचके चिपका रखनेको उड्डियान-बन्ध कहते हैं ।

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं च कारयेत् ।
उड्डियानो ह्यसौ बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ १ ॥
मूलस्थानं समाकुञ्च्य उड्डियानं तु कारयेत् ।
इडां च पिङ्गलां बध्वा वाहयेत्पश्चिमे पथि ॥ २ ॥
बन्धत्रयमिदं श्रेष्ठं महासिद्धैश्च सेवितम् ॥ ३ ॥

इन तीनों बन्धोंके करनेसे सुषुम्णामार्गमें दोनों वायुका गमन हो जाता है ।

मूलबन्धादपानस्य गतिरुर्ध्वं प्रजायते ।
जालंधरात्तथा प्राणस्त्वधोगामी भवेत्पुनः ॥ १ ॥

में पहुँचनेका ज्ञान हो गया। तत्पश्चात् जालंधरबन्ध और मूलबन्धके करनेसे प्राणवायु अपानवायुसे मिलके उड्डियान बन्धद्वारा सुषुम्णा नाडीके खुले हुए द्वारमें प्रवेश कर गया। उड्डियानबन्धके अभ्याससे प्राणको कहीं जानेका मार्ग नहीं मिला। अतः वह पीठकी तरफसे मेरुदण्ड-मध्यस्थित सुषुम्णाके मेरुको उल्लंघकर गुरु-चेला दोनों (प्राण-अपान वा प्राण-मन) मिलके चारों तरफ चकडोल (नीचेसे ऊपर, ऊपरसे नीचे) चक्रके समान फिरने लगे। अर्थात् तीनों प्रकारके बन्धोंके साधनद्वारा कुण्डलिनी जाग्रत् हो, जो अपने मुखसे सुषुम्णाके मार्गको रोक रखा है उसको खुला कर देती है और प्राण-अपान दोनों मिलके उस सुषुम्णाके विवरमें प्रवेशकर नीचेसे ऊपर और ऊपरसे नीचे फिरने लगते हैं ॥ २१-२२ ॥

षट्चकर[1] भेद्या भवदुख छेद्या साँसा शोक नसंदा है ॥ २३ ॥
गरजत है गेणूं बरजत वेणूं सरवर शून्य वसंदा है ॥ २४ ॥

प्राणापानौ मिलित्वाऽधः सुषुम्णावदनान्तरे।
उड्डियानेन बन्धेन विशते नात्र संशयः ॥ २ ॥
एवमभ्यासतो नित्यं कुम्भकस्य निरन्तरम्।
ब्रह्मरन्ध्रं प्रविश्याथ प्राणो भवति निश्चलः ॥ ३ ॥ (मोक्षगीता)

मूलबन्धसे अपान वायुकी ऊर्ध्वगति होती है और जालंधरबन्धसे प्राणकी अधोगति होती है एवं दोनों प्राण-अपान मिलके सुषुम्णाके मुखके भीतर उड्डियान बन्धके करनेसे निःसंशय प्रवेश होते हैं। इस प्रकार नित्य कुम्भक करनेका अभ्यास निरन्तर करते रहनेसे प्राण ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेशकर निश्चल हो जाता है।

१ षट्चक्र—

१ मूलाधार, २ उपस्थ, ३ नाभिमूल, ४ हृदय, ५ तालुमूल, ६ ललाट—इन छः स्थानोंमें एकत्रित हुए स्नायुसमूह मूलके केन्द्रोंको षट्चक्र कहते हैं।

आधारे लिङ्गनाभौ प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के।
वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वराणां
हंक्षंतत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि ॥ १ ॥

षट्चक्रोंका कोष्ठक

संख्या	नामचक्र	स्थान	पद्मपत्र-संख्या	वर्ण	देवता	मतान्तर
१	मूलाधार	मूलाधार	४	व से स पर्यन्त	उत्पत्तिशक्ति	अधःशक्ति
२	स्वाधिष्ठान	लिङ्ग	६	ब से ल ,,	ब्रह्मा	शिव
३	मणिपुर	नाभि	१०	ड से फ ,,	विष्णु	
४	अनहद	हृदय	१२	क से ठ ,,	महादेव	ब्रह्मा
५	विशुद्ध	तालुमूल	१६	स्वर सोलह	दुर्गा	सुषुम्णा
६	आज्ञा	ललाट	२	ह क्ष	शून्यस्थान	

सहस्रारचक्र (सहस्रदल) यह सातवाँ चक्र है, इसका ब्रह्मरन्ध्र स्थान है। इसके सहस्र (१०००) दल हैं और परमपद इसकी शक्ति है। इनके उपरांत किसी-किसीने सूर्यचक्र और मनश्चक्र नामक दो चक्र और माने हैं।

शरीरस्थ पद्माकार षट्प्रकारचक्रम्

सप्त पद्मानि तत्रैव सन्ति लोका इव प्रभोः।
१ गुदे पृथ्वीसमं चक्रं हरिद्वर्णं चतुर्दलम् ॥ १ ॥
२ लिङ्गे तु षट्दलं चक्रं स्वाधिष्ठानमिति स्मृतम्।
त्रिलोकवह्निनिलयं तप्तचामीकरप्रभम् ॥ २ ॥
३ नाभौ दशदलं चक्रं कुण्डलिन्या समन्वितम्।
नीलाञ्जननिभं ब्रह्मस्थानपूर्वकमन्दिरम् ॥ ३ ॥
मणिपूराभिधं स्वच्छं जलस्थाने प्रकीर्तितम्।
४ उद्यदादित्यसंकाशं हृदिचक्रमनाहतम् ॥ ४ ॥
कुम्भकाख्यं द्वादशारं वैष्णवं वायुमन्दिरम्।
५ कण्ठे विशुद्धिशरणं षोडशारं पुरोदयम् ॥ ५ ॥
शाम्भवी वरचक्राख्यं चन्द्रबिन्दुविभूषितम्।
६ षष्ठमाज्ञालयं चक्रं द्विदलं श्वेतमुत्तमम् ॥ ६ ॥
षट्चक्राणीह मेध्यानि नैतद्भेद्यं कथंचन।
राधाचक्रमिति ख्यातं मनःस्थानं प्रकीर्तितम् ॥ ७ ॥
७ सहस्रदलमेकार्णं परमात्मप्रकाशकम्।
नित्यज्ञानमयं सत्यं सहस्रादित्यसंनिभम् ॥ ८ ॥

पहिला मूलाधार चक्र है। यह रीढकी हड्डीके आखीर या सबसे नीचेवाला स्थान है जो गुदाका कमल भी कहलाता है, इसको अंग्रेजीमें Sacral Plexus

सेकरे प्लेक्सस कहते हैं। योगी लोग इसको सूरजका स्थान कहते हैं। इसमें सत–रज–तम तीनोंका भण्डार समझते हैं। इसीपर सम्पूर्ण जीवन निर्भर मानते हैं। इस स्थानपर कुण्डलिनी देवी साढ़े तीन आंटे देके लिपटी है जो उत्पत्तिकी शक्ति रखती है। इसका चक्र पृथ्वीके समान हरे रंगका है, इसमें चतुर्दल कमल है, उनमें व, श, ष, स–ये चार वर्ण हैं, इसको ब्रह्मचक्र भी कहते हैं।

दूसरा स्वाधिष्ठान नामका चक्र है। यह उपस्थ इन्द्रीके ऊपर दबानेसे जो खाली स्थान ज्ञात होता है इसके ठीक सामने रीढकी हड्डोमें है, यह कमल छः दलका है, इसमें ब, भ, म, य, र, ल–ये छः व्यञ्जनाक्षर हैं; इसको ब्रह्माका स्थान बतलाते हैं। कोई-कोई शिवका स्थान भी कहते हैं। यह सम्पूर्ण संसारका उत्पन्न करनेवाला है और यही त्रिलोकमें अग्निका स्थान है और तपाये हुए सुवर्णके समान रंगवाला है।

तीसरा मणिपुर नामका चक्र है। यह नाभिके मुकाबलेमें है, इसको अंग्रेजीमें Solar Plexus सोलर प्लेक्सस कहते हैं। इसमें दशदलका कमल चक्र है। जिनमें ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ—ये दश अक्षर क्रमसे विराजमान हैं। यह विष्णुका स्थान है और नील कमलके समान घनश्याम वर्णका है। इसको स्वच्छ जलका स्थान और ब्रह्मस्थान भी कहते हैं।

चौथा अनाहत नामका चक्र है। इसको अंग्रेजीमें Cardiac Plexus कारडियेक् प्लेक्सेस कहते हैं। यह छातीके मध्यमें जो गड्ढा कौडी कहलाता है उसके मुकाबिलेमें है और महादेवका स्थान है, इसमें द्वादश (१२) दलका कमल है, बारहों दलोंमें क्रमसे क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ–ये बारह वर्ण हैं, इसका रंग उदय होते हुए सूर्यके समान है और इसको कुम्भक स्थान, वायुका स्थान तथा विष्णुका स्थान भी कहते हैं। कितने ही इसको ब्रह्माका भी स्थान कहते हैं।

पाँचवाँ विशुद्धि नामका चक्र है। यह गलेमें हँसलीकी हड्डीके ऊपर जो गड्ढा-सा है इसके मुकाबिलेमें है। इसमें सोलह (१६) दलका कमल है जिनमें क्रमसे सोलह ही स्वर अनुस्वारयुक्त विराजमान हैं (अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लृं, ॡं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः) इसको दुर्गाका स्थान, कई पार्वतीपतिका स्थान तथा सुषुम्णाका स्थान भी कहते हैं। यह महत्प्रभ धूम्रवर्णका है, कितने ही शुक्ल वर्णका भी कहते हैं। यह जीवकी विशुद्धि करनेवाला है। कण्ठमें सुषुम्णा, इडा, पिङ्गला—इन तीनों नाड़ियोंका वेष्टन मनुष्योंके रहता है। यह षट्कोण आकृतिका और छः अंगुल प्रमाणका है।

छठा आज्ञा नामका चक्र है। यह दोनों भ्रुवोंके मध्यमें नाककी जड़के स्थान-पर है। यहाँ इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा-इन तीनों नाड़ियोंका प्रान्त आकर मिला है इस कारण इसको त्रिपथ स्थान कहते हैं। यह षट्कोणाकृति चार अंगुलका रक्तवर्ण है। इसमें दो दलका उत्तम श्वेतवर्णका कमल है इसमें ह और क्ष इन दो अक्षरोंका निवास है। इसको राधाचक्र तथा मनका स्थान व शून्य स्थान अथवा शून्य सरोवर भी कहते हैं। इसका ध्यान करनेसे वायु, जल, अग्निपर अधिकार होता है, भय जाता रहता है और कर्मके बन्धनसे छूट जाता है।

सातवाँ सहस्रदल कमल चक्रका स्थान वह है, जो ईश्वरी ज्ञानसे सम्बन्ध रखता है, जिसका वर्णन करना जिह्वा और लेखनीसे बाहर है, परंतु कुछ योगी-जन ऐसा कहते हैं कि तालूके ऊपर एक सहस्रदलका कमल है जिसमें चन्द्रमाका स्थान है और जो सुषुम्णाकी जड़ है, इसीके ऊपर ब्रह्मरन्ध्र है। इस चन्द्रमासे प्रतिसमय अमृत-वर्षा होती रहती है, जिसकी दो धार होकर नीचे सूरजके स्थानतक जाती है, एक रीढकी बाँईं ओरको जो इडा कहलाती है, दूसरी रीढके अंदर होकर जो सुषुम्णा कहलाती है। रीढके नीचेका केन्द्र जो सूर्यस्थान कहलाता है, इसमेंसे एक आतशी किरण निकलती है जो सीधी होकर ऊपर चढ़ती है मानो स्नायु शक्तिकी लहर बाँईं ओरसे सीधी ओरको प्रतिसमय जाती और चक्कर लगाती रहती है। मूलाधार कमलसे एक प्रकारका विष निकलता है, जो सीधे नथनेमें आता है और नाशकारी है, परंतु उसको चन्द्रका अमृत प्रभावित करता रहता है इसीसे उसका असर जाता रहता है। सहस्रदल पद्म एक महासागरके समान है। इसमें परमात्मतत्त्वका प्रकाश हो रहा है जो नित्य ज्ञानमय सत्यस्वरूप एक हजार सूर्यके प्रकाशके तुल्य प्रकाशवाला है। यही ब्रह्मस्थान है, इसीको परमपद स्थान कहते हैं, इसमें जो योगी अपनी योगसाधन-क्रियाद्वारा पहुँच जाता है वह परमपदको प्राप्त हो जाता है और जन्म-मरणसे रहित हो जाता है। "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम"।

इस प्रकारके ये षट्चक्र हैं, इनको भेदकर जो सातवें ब्रह्मरन्ध्र चक्रमें पहुँच जाता है उसको कुछ भी कष्टसाध्य नहीं रहता है।

मूलाधार चक्रकी विवेचना—पीछे कह आये हैं कि छः स्थानोंमें एकत्रित हुए स्नायुसमूह मूलके केन्द्रोंको षट्चक्र कहते हैं।

स्नायु (नाड़ी) समूह बहत्तर हजार (७२०००) हैं उनमेंसे २४ मुख्य हैं उनमेंसे भी १० मुख्य हैं।

नाडीनां संवहो देवि कञ्जयोनिः खगाण्डवत्।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ॥ १ ॥

प्रधाना दक्षवाहिन्यो भूयस्तत्र दश स्मृताः ।
इडा[१] च पिङ्गला[२] चैव सुषुम्णा[३] च तृतीयका ॥ २ ॥
गान्धारी[४] हस्तिजिह्वा[५] च पूषा[६] चैव यशस्विनी[७] ।
अलम्बुषा[८] कुहूश्चैव[९] शङ्खिनी[१०] च दश स्मृताः ॥ ३ ॥
एवं नाडीमयं चक्रं विज्ञेयं शक्तिचक्रके ।
इडायाः पिङ्गलायाश्च मध्ये या सा सुषुम्णिका ॥ ४ ॥
इयं च त्रिगुणा ज्ञेया ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ।
रजोगुणा च वज्राख्या[११] चित्रिणी[१२] सत्त्वसंयुता ॥ ५ ॥
तमोगुणा ब्रह्मनाडी[१३] कार्यभेदक्रमेण च ॥

(निरुत्तरतन्त्र)

तात्पर्य यह है कि बहत्तर हजार नाड़ियोंमें इडा १, पिङ्गला २, सुषुम्णा ३, गान्धारी ४, हस्तिजिह्वा ५, पूषा ६, यशस्विनी ७, अलम्बुषा ८, कुहू ९, शङ्खिनी १०—ये दश नाड़ी और इनके अतिरिक्त वज्रा ११, चित्रिणी १२ और ब्रह्मनाडी १३ कुण्डली मुख्य नाड़ियाँ हैं, इनमें इडा-पिङ्गलाके मध्यमें त्रिगुणात्मिका सुषुम्णा रहती है, यह ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका है। सुषुम्णाके मार्गको रोकके कुण्डलिनी नाड़ी स्थित है। वज्रा इसीके पासमें और चित्रिणी (चित्रा) सुषुम्णाके मध्यमें खाली स्थानमें रहती है। इन नाड़ीसमूहोंमें जबतक कुण्डलिनी नाड़ी जाग्रत् न हो तबतक सब योगसाधन वृथाके समान ही होता है। जब यह कुण्डलिनी नाड़ी जाग्रत् होकर सुषुम्णाके द्वारको खुला करके सरल हो सुषुम्णामें प्रवेश करती है तब योगसाधन होता है। इसलिये प्रथम, मूलाधार जो षट्चक्रका प्रथम चक्र है उसमें कुण्डलिनीका निवास रहता है उस कुण्डलीका वर्णन इस प्रकार है—

कुण्डलीको कुण्डलिनी, कुण्डली, कुटिलाङ्गी, भुजंगी, नागन, बालरंडा, शक्ति, ईश्वरी, और अरुन्धती नामसे भी पुकारते हैं।

गुह्यलिङ्गयोर्मध्ये अङ्गुलिद्वयमितस्थानम्। तत्तु शरीरस्थसकलनाडीनां मूलस्थानम्। अत्र व-श-ष-साक्षरयुक्तं स्वर्णवर्णं चतुर्दलपद्ममस्ति। तन्मध्ये इच्छा-ज्ञान-क्रिया-स्वरूपं त्रिकोणं वर्तते। तन्मध्ये कोटिसूर्यसमप्रभस्वयंभूलिङ्गमस्ति। अत्र पृथिवी वर्तते। तत्रैव मृणालसूत्रवत् सूक्ष्म-सार्धत्रिवलयाकार-स्वयंभूलिङ्ग-वेष्टितविद्युत्तुल्यप्रभ-कुल-कुण्डलिनी वर्तते। यथा—

मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मके ।
मध्ये स्वयंभूलिङ्गं तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥
तद्बाह्ये हेमवर्णाभं वसवर्णं चतुर्दलम् ॥

(इति तन्त्रसारः)

अथाधारपद्मं सुषुम्णाख्यलग्नं ध्वजाधो गुदोर्ध्वं चतुःशोणपत्रम् ।
अधोवक्त्रमुद्यत्सुवर्णाभवर्णैर्वकारादिसान्तैर्युतं वेदवर्णैः ॥ १ ॥
अमुष्मिन्धरायाश्चतुष्कोणचक्रं समुद्भासि शूलाष्टकैरावृतं तत् ।
लसत्पीतवर्णं तडित्कोमलाङ्गं तदन्तः समास्ते धरायाः स्वबीजम् ॥ २ ॥

वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिकामध्यसंस्थं
कोणं तत्त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत्कोमलं कामरूपम् ।
कन्दर्पो नाम वायुर्निवसति सततं तस्य मध्ये समन्ता–
जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यप्रकाशः ॥ ३ ॥

तन्मध्ये लिङ्गरूपिद्रुतकनककलाकोमलः पश्चिमास्यो
ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथमकिसलयाकाररूपः स्वयम्भूः ।
विद्युत्पूर्णेन्दुबिम्बप्रकरकरचयस्निग्धसंतानहासी
काशीवासी विलासी विलसति सदिवावर्तरूपः प्रकारः ॥ ४ ॥

अस्योर्ध्वे विषतन्तुसोदरलसत् सूक्ष्मा जगन्मोहिनी
ब्रह्मद्वारमुखं मुखेन मधुरं सञ्छादयन्ती स्वयम् ।
शङ्खावर्तनिभा नवीनचपला माला विलासास्पदा
सुप्ता सर्पसमा शिरोपरिलसत् सार्धत्रिवृत्ताकृतिः ॥ ५ ॥

(तत्त्वचिन्तामणिः)

इत्यादि वचनोंके भावार्थसे कुण्डली मूलाधारस्थानमें अर्थात् गुदा और लिङ्गके मध्यमें दो अंगुल प्रमाणका भगस्थान है, वह शरीरस्थ सकल नाड़ियों-का मूलस्थान एक बालिस्त लंबा और चार अंगुल चौड़ा शुभ्र और कोमल वेष्टनाम्बर (लपेटनेके वस्त्र) के समान (कंद) है । यहाँ चतुर्दलकी आकृतिका एक पद्म है उसमें चार दल हैं, उनमें व, श, ष, स—ये चार वर्ण स्वर्णके तुल्य देदीप्यमान हैं । उस चतुर्दल पद्ममें इच्छा-ज्ञान-क्रियास्वरूप एक त्रिकोण है और यह पश्चिममुखी है अर्थात् पीछेको मुख है, ऐसे बंकनालमेंहीसे ऊर्ध्वगमन होता है । इसकी कर्णिकामें वज्रा नाम नाड़ी रहती है और त्रिकोणमें कोटि-सूर्यसमप्रभ स्वयम्भू लिङ्ग है, यहाँ पृथ्वी है; इसीपर कमलके तन्तुके समान सूक्ष्म विद्युत्तुल्यप्रभावाली कुण्डलिनी स्वयम्भू लिङ्गको और सब नाड़ियोंको घेरकर साढ़े तीन आँटे देकर कुटिल आकृतिसे अपने मुखमें पूँछको दबाकर ब्रह्मद्वार (सुषुम्णाके द्वार) को आच्छादित करके बैठी हुई है । इसके जाग्रत् करनेपर जब यह सुषुम्णाके मार्गसे अपना मुँह हटाती है तब ब्रह्मद्वारका कपाट खुल जाता है इसी कारण योगियोंको इसके जानने और जगानेका प्रयत्न करते रहना चाहिये ।

उपरोक्त प्रकारसे सुषुम्णा-मार्गमें प्राण-अपान दोनों मिलके प्रवेश करनेके बाद मेरुदण्डके मध्य जो षट्चक्रके स्थानकी गाँठें सुषुम्णामें पहिले बता आये हैं उन्हीं षट्चक्रकी गाँठोंको शनैः-शनैः क्रमसे भेदते (छेदते) हुए (प्राण-अपान मिलके) जब ब्रह्मरन्ध्रमें पहुँच गये

अथवा यह कुण्डलिनी नाड़ी सब नाड़ियोंके ऊपर स्थित होकर मणिपूरक चक्र कर्णिकाको आवृत करके ब्रह्मरन्ध्रके द्वारको सर्वदा रोके रहती है और सुषुम्णाके द्वारको बंद किये रखती है। इसलिये प्राणवायु और अपानवायुको धौंकनेवाला अर्थात् उत्तेजित करनेवाला जो पुरुष है वह उस प्राण और अपानवायुकी एकतासे उत्तेजित हुई अग्निसे जाग्रत् होकर मन और प्राणवायु-सहित सुषुम्णाको सूचितन्तुन्यायसे[1] ऊपर ले जाता है; इनके ऊपर जानेसे वह अपने इच्छित परमानन्दको प्राप्त हो जाता है।

अथवा कुण्डलिनी नाड़ी सोते हुए सर्पके समान है उसको जाग्रत् करनेके लिये पहिले अपानवायु और प्राणवायुसे विधिपूर्वक बीचकी अग्नियोंके स्वरूपको तेज करे, उनकी तेजीसे उसे जगाकर वह पुरुष ज्योतिर्मयस्वरूप होकर सुषुम्णा मार्गसे आत्मामें लय हो जाता है।

अथवा वज्रासन (सिद्धासन) लगाकर हाथोंसे पाँवोंकी एडी पकड़कर कन्दस्थानको दृढ़तासे दबावे और वज्रासनसे ही धौंकनीको कुम्भक वायुसे प्रचलित करे, उसके प्रचलित होनेसे अग्नि प्रज्वलित होता है। उसकी गरमीसे वह बालरंडा मुख फैला देती है, उस समयमें सुषुम्णाद्वारा ही योगीश्वर अपने स्वरूपके आनन्दको पाते हैं।

अथवा नाभिदेशमें सूर्य रहता है। उसका आकुञ्चन करके चार घड़ीपर्यन्त नित्य निर्भय होकर शक्ति (कुण्डली) का चालन करे तो कुण्डली कुछ ऊपरको खिंचती है जिससे प्राणवायु स्वयं (आप ही) सुषुम्णामें प्रवेश कर जाता है।

सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च ॥ १ ॥

(हठयोगप्रदीपिका)

इस प्रकार क्रिया करनेसे गुरुकी कृपासे जब सोती हुई कुण्डली जाग्रत् हो जाती है तब सब पद्म (सम्पूर्ण षट्चक्र) भेदित होकर ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि, रुद्रग्रन्थि—ये तीनों ग्रन्थियाँ भी भेदित हो जाती हैं।

---

१ जैसे सूईमें डोरा पिरोया हुआ हो तो वह सूई कपड़ेके अनेक सूतोंमेंसे तन्तुसहित ऊपरको निकल आती है उसको सूचितन्तुन्याय कहते हैं।

तब सर्व भवसागरका दुःख छेदन (नाश) हो गया और संशय तथा शोक नष्ट हो गया और जिस शून्य सरोवरमें अकथनीय गगन-गर्जनाका अलौकिक गम्भीर नाद हो रहा है उसमें वास (निश्चल निवास) प्राप्त हो गया ॥ २३-२४ ॥

हंसा सुन होती मंझे मोती मुख विन चूण चुगंदा है ॥ २५ ॥
आतम ब्रह्मंडा एक अखंडा विन रसना गावंदा है ॥ २६ ॥
अंबर घर आये ब्रह्म वधाये अनहद नाद[1] घुरंदा है ॥ २७ ॥
नोबत नीसाणा दिल दीवाणा बाजा भेरि वजंदा है ॥ २८ ॥

---

१ नादकी चार अवस्था—

आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयोऽपि च ।
निष्पत्तिः सर्वयोगेषु स्यादवस्थाचतुष्टयम् ॥ १ ॥

१ आरम्भावस्था—

ब्रह्मग्रन्थेर्भवेद्भेदो ह्यानन्दः शून्यसम्भवः ।
विचित्रः क्वणको देहेऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः ॥ १ ॥

हृदय स्थानके द्वादशदल अनाहत चक्रमें ब्रह्मग्रन्थि है । जब प्राणायामके अभ्याससे सुषुम्णा मार्गद्वारा इस ग्रन्थिको प्राण भेदन करता है तब शून्य हृदयाकाशमें आनन्द हो जाता है और उस हृदाकाशोत्पन्न आनन्दमें विचित्र (नानाविध) प्रकारका आभूषणका नाद अर्थात् स्त्रियोंके पांवमें पहननेके आभूषणोंकी मधुरध्वनि श्रवण होने लगती है इसको आरम्भावस्था कहते हैं । जब आरम्भावस्था प्राप्त हो जाती है तब वह पुरुष दिव्य देहवाला, तेजस्वी (प्रतापवान्) उत्तम सुगन्धिवाला और रोगरहित देहवाला हो जाता है । और जब हृदाकाशमें नादका आरम्भ हो जाता है उस समय हृदाकाश, विशुद्धाकाश और भ्रूमध्याकाशको योगीजन शून्य, अतिशून्य और महाशून्य पदके नामसे मानते हैं और उनके नादका श्रवण क्रमसे करते जाते हैं ।

२ घटावस्था—जब प्राणवायु हृदाकाशस्थ ब्रह्मग्रन्थिको भेदन करके प्राण, अपान और नादबिन्दुसे मिलकर कण्ठस्थानके षोडशदल विशुद्धिनामक चक्रको जिसको मध्यचक्र भी कहते हैं और जो विष्णुग्रन्थिका स्थान है इसको भेदन करता है तब परमानन्द (ब्रह्मानन्द) सूचक अतिशून्य नामक आकाशमें अनेक प्रकारके नादोंकी ध्वनिको सम्मर्दन करनेवाली भेरीकी-सी ध्वनि सुनायी देने लगती है और वह योगी दृढासन और पूर्वकी अपेक्षा विशेष ज्ञानी देवके समान दिव्य देहवाला हो जाता है । यह मध्यचक्र षोडशाधारका बन्धक है—

मध्यचक्रमिदं ज्ञेयं षोडशाधारबन्धनम् ॥

जो षट्चक्र, षोडशाधार, द्विलक्ष्य और पञ्चाकाशको नहीं जानता उसको योगसिद्धि कैसे हो सकती है—

षट्चक्रं षोडशाधारं द्विलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् ।
स्वदेहे यो न जानाति कथं योगी स सिध्यति ॥

षट्चक्र—१ मूलाधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपुर, ४ अनाहत, ५ विशुद्ध, ६ आज्ञाचक्र ।

सोलह आधार—१ पग का अङ्गुष्ठ, २ मूलाधार, ३ गुह्याधार, ४ वज्रोली, ५ उड्डियानबन्ध, ६ नाभिमण्डलाधार, ७ हृदयाधार, ८ कण्ठाधार, ९ क्षुद्र-कण्ठाधार, १० जिह्वामूलाधार, ११ जिह्वाका अधोभागाधार, १२ अर्धदन्त मूलाधार, १३ नासिकाग्राधार, १४ नासिकामूलाधार, १५ भ्रूमध्याधार और १६ नेत्राधार ।

मतान्तरसे सोलह आधार—१ मूलाधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपुर, ४ अनाहत, ५ विशुद्ध, ६ आज्ञाचक्र, ७ बिन्दु, ८ अर्धेन्दु, ९ रोधिनी, १० नाद, ११ नादान्त, १२ शक्ति, १३ व्यापिका, १४ शमनी, १५ रोधिनी, १६ ध्रुवमण्डल ।

द्विलक्ष्य—१ बाह्यलक्ष्य (भ्रूमध्य तथा नासिकाग्र) २ आभ्यन्तरीयलक्ष्य (मूलाधारादि षट्चक्रोंको अन्तर्दृष्टिसे देखना)

पाँच प्रकारके आकाश—

पहिला—श्वेतवर्ण ज्योतीरूप आकाश ।

दूसरा—पहिलेके भीतर धूम्रवर्ण ज्योतीरूप महाकाश ।

तीसरा—दूसरेके भीतर नीलवर्ण ज्योतीरूप महत्तत्त्वाकाश ।

चौथा—तीसरेके भीतर पीतवर्ण ज्योतीरूप महाशून्याकाश ।

पाँचवाँ—चौथेमें बिजलीके वर्ण ज्योतीरूप सूर्याकाश ।

उपरोक्त प्रकारसे शरीरमें ६ चक्र, १६ आधार, २ लक्ष्य और ५ आकाश हैं । इनको जो योगी नहीं पहिचानता उसको योगकी सिद्धि नहीं होती है ।

३ परिचयावस्था—जब प्राण ब्रह्मग्रन्थिको भेदन करके भ्रूमध्यमें द्विदल आज्ञाचक्रको जो सर्वेश्वरका पीठस्थान है जिसमें रुद्रग्रन्थि है इस रुद्रग्रन्थिको प्राण भेदन करता है तब भ्रूमध्याकाश (महाशून्याकाश) में प्राण पहुँचता है इसको परिचयावस्था कहते हैं । इसमें एक विशेष जानने योग्य मर्दल (एक प्रकारके बाजे) की ध्वनि सुनायी पड़ती है, इस अवस्थामें सहजानन्द और सर्व सिद्धियोंकी प्राप्ति, दोष, दुःख, जरा, व्याधि, भूख, प्यास और निद्रा-

का नाश हो जाता है और अहर्निश स्वाभाविक आत्मसुखमें योगी मग्न हो जाता है।

४ निष्पत्तिअवस्था—जब प्राणवायु ब्रह्म, विष्णु और रुद्र ग्रन्थिके भेदनेपर ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करता है तब चतुर्थावस्था प्राप्त होती है। उस समय वंशीके समान मधुर शब्द मानो बड़ी सुन्दर मनमोहक वंशीका शब्द हो रहा हो (परब्रह्म श्रीकृष्ण परमात्माकी वंशीकी अनुपम ध्वनिके समान जिसको सुनकर गोपियोंने मुग्ध होकर सांसारिक सर्वसुखोंको भुला दिया) वैसी वंशीकी ध्वनि होने लगती है तब अन्तःकरण एक तल्लीन हो जाता है। चित्तकी एकाग्रताको ही राजयोग कहते हैं। इस अवस्थामें जो योगी प्राप्त हो जाता है वह सृष्टिकर्ता तथा संहारकर्ता अर्थात् "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं" ईश्वरके समान समर्थ हो जाता है तथा अखण्ड सुखको पा जाता है।

इस अवस्थामें अनेक प्रकारके बाजोंकी ध्वनि सुनायी पड़ने लगती है। सुन्दरदासजीने इसका वर्णन इस भाँति किया है—

प्रथम भँवर गुंजार शंख ध्वनि दुतिय कहीजे।
तृतिये बजई मृदंग चतुरथे ताल सुनीजे॥
पंचम घंटानाद षष्ठ वीणाधुन होई।
सप्तम बजई भेरि अष्टमे दुंदुभि दोई॥
नवमे गर्ज समुद्र की दशम मेघ घोषह गुनै।
कह सुंदर अनहदनाद को दशप्रकार योगी सुनै॥ १॥

३६ प्रकारके कुल बाजे होते हैं—

मंडल वीन रबाब अनोप तंबूर उपंगह।
बल सुसुरह पिनाक कुमायच पुंग सुरंगह॥
वंशी परगह वांश कानूटक ताल सुपिंगी।
तूर भेरि सहनाइ पाव रणसंग दर सिंगी॥
करनाट पणव आनंक मुरज डफ सुडाक डमरू छबै।
जलतरँग झाँझ मंजीर मिल षटत्रिंश बाजा बजै॥ १॥

कोई कहते हैं कि कुल बाजोंका भेद साढ़े तीन प्रकारका ही है।

ताल फूँक अरु तार के अर्ध नकीरी लीन।
सब ही या संसार में बाजे साढ़े तीन॥ १॥

चाहे जितने बाजे क्यों न हों, अनहद नादके आगे तो सर्वसंसारभरके बाजे तुच्छ हैं, उसकी उपमा तो हदके बाहर ही है इसीसे उसका नाम अनहद है। अथवा स्वयमेव बजनेसे अनाहत है इसलिये उसका वर्णन अवर्णनीय है। इस अनहद नादकी प्राप्ति होनेके पश्चात् तो परमपदको प्राप्त हो ही जाता है।

जब षट्चक्रोंको भेदन करता हुआ प्राणरूपी हंस शून्य सरोवरपर (त्रिकुटीमें) पहुँच जाता है, तब वह सुन्न (निश्चल तथा शून्य स्थिति-का) हो जाता है और उस शून्य सरोवरमें ब्रह्मानन्दरूपी मोतीका चूण मुखके विना ही हंसरूपी प्राण चुगने लगता है (आनन्दास्वादन करने लगता है) जिससे आत्मा और अखिल ब्रह्माण्ड एक ही मालूम होने लगता है, इसलिये "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इत्यादि महावाक्योंका जो अर्थ है उसका ज्ञान प्राप्त हो जाता है और विना जिह्वाके "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इस प्रकार आनन्ददायक पदके गुण गाने लग जाता है ॥ २५-२६ ॥

ऐसी स्थिति होनेके पश्चात् जब प्राणरूपी हंस अम्बर घर (ब्रह्म-रन्ध्ररूपी महा आकाश) में प्रवेश करता है और ब्रह्मसे साक्षात्कार होनेमें तत्पर होता है तब मानो उसको परब्रह्मकी ओरसे तदाकार वृत्ति करनेको बधानेके लिये अनहद्नाद बजने लगता है। जिसमें नोबत, निसाण, दिल, दिवाण, भेरी, मृदंग आदि अनेक बाजोंका नाद सुनायी पड़ने लगता है ॥ २७-२८ ॥

मन शिक्खर मिलिया त्रयगढ़ भिलिया पद चोथा पावंदा है ॥ २९ ॥
अघ मिल उर्घा पवन निरुध्धा ध्यान[1] समाधि लगंदा है ॥ ३० ॥

अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिर्य उपलभ्यते ।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्ञेयं ज्ञेयस्यान्तर्गतं मनः ॥ १ ॥
मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

(हठयोगप्रदीपिका प्र० उप० ४)

१ ध्यान और समाधिके लक्षण—

ध्यान—

१ तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।
नाभि आदि देशोंमें ध्येयका जो ज्ञान होता है वह ध्यान है ।
२ ध्यातृ-ध्येय-ध्यान-कलना वद् ध्यानम् ।

ध्यान करनेवाला और जिसका ध्यान किया जाय तथा ध्यान—इन तीनोंका प्रभेद जिसमें प्रतीत हो वह ध्यान कहलाता है।

३ धारणयोग्यदेशे अखण्डतैलधारावत् प्रवाहो ध्यानम्।

ध्येयकी ओर अखण्ड मनोवृत्ति तैलधाराके समान लगी रहे उसको ध्यान कहते हैं। तद्रहित समाधि कहलाती है।

१ ध्यानके भेद दो प्रकारके होते हैं—

१ एक पूर्व ध्यान।

२ दूसरा पश्चिम ध्यान।

पूर्वध्यान—नाभिदेशसे तथा पादाङ्गुष्ठसे हठ-क्रियाद्वारा प्राणको ऊपर चढ़ानेको कहते हैं। इसमें ॐकारका जप करना होता है और इस ध्यानमें अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं। पूर्वध्यानी पुनर्जन्म पाता है।

पश्चिमध्यान—राममन्त्रका स्मरणपूर्वक पश्चिमतानसे प्राणको ऊपर चढ़ानेको कहते हैं। इससे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

द्वावेव शोभनौ मुक्तिपन्थानौ योगसम्मतौ।
एकस्तु पश्चिमश्चैव द्वितीयः पूर्व उच्यते॥ १॥
राममन्त्रं चाधिकृत्य पन्थास्तिष्ठति पश्चिमः।
ओमित्यधिकृत्यास्ते पन्थास्तु पूर्वसंज्ञितः॥ २॥
पूर्वस्मात् पुनरावृत्तिः पश्चिमान्मोक्षमश्नुते॥

(गुह्योद्घाटनतन्त्र)

पश्चिममार्गका सविस्तर वर्णन देखना चाहें वे "योगशिखोपनिषत्" देख लेवें।

पश्चिममार्गके ध्यानकी रीति कुछ वर्णन की जाती है—

योगशास्त्रमें नाना प्रकारके आसन कहे हैं, जितने प्रकारके जीव हैं उतने ही प्रकारके आसन हैं। जीव चौरासी लाख बतलाये गये हैं अतः आसन भी उतने ही हैं, इन सबमेंसे ८४ आसन मुख्य हैं। इनमें भी सिंहासन, भद्रासन, मयूरासन, कुक्कुटासनादि १६ आसन उत्तम माने हैं। इन सोलहमें भी १ पद्मासन, २ सिद्धासन सर्वोत्तम माना है। इन दो आसनोंमें भी सिद्धासन उत्तमोत्तम माना है। इसलिये पश्चिमध्यान-साधन-समयमें सिद्धासन लगाकर बैठना चाहिये।

सिद्धासनके लक्षण हठयोगप्रदीपिकामें इस प्रकार लिखे हैं—

योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसे-
न्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्।

स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद् भ्रुवोरन्तरं
ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥ १ ॥

तात्पर्य—बाँये पाँवकी एडीको योनिस्थानके मध्यमें लगाके (गुदा और उपस्थेन्द्रियके मध्य भागका नाम भग किंवा योनि है जिसको सीवन भी कहते हैं) उस स्थानको बाँये पाँवकी एडीसे जोरसे दबावे और दहिने पाँवको उठाकर इन्द्रीकी जड़में एडीको लगाकर नीचेको दबावे (मूलबन्ध करे)। इस रीतिसे सीधा बैठकर फिर ठोडीको हृदयसे ४ अंगुल ऊपर मजबूतीसे जमावे (जालंधरबन्ध करे) और सूखे काष्ठके समान करड़ा होकर सर्व इन्द्रियोंको अपने काबू (वश) में करके नेत्रोंको अचल दृष्टिसे भृकुटीके मध्यमें लगाकर बैठनेको सिद्धासन कहते हैं। यह सिद्धासन मोक्षद्वारके कपाटको भेदन करनेवाला (मुक्तिको देनेवाला) कहा है।

योगशास्त्रमें इस आसनका नाम सिद्धासन कहा है और इसको ही वज्रासन, मुक्तासन, गुप्तासन आदि कई नामोंसे पुकारते हैं। और फलस्तुतिमें भी "मोक्षकपाटभेदजनकम्" यह वाक्य कहकर "नासनं सिद्धसदृशम्" परमावधि लिखा है। इससे प्रमाणित होता है कि इसके समान कोई अन्य आसन नहीं है, परंतु इसकी जितनी महिमा वर्णन की है उतना उसका कारण नहीं बताया गया। यदि कारण बताया जाता तो इसकी महत्ता हृदयंगम होनेसे सिद्धासनकी सिद्धियोंका पता चल जाता। इसको परमोत्तम बतानेका कारण जानने योग्य है। इसका सविस्तर वर्णन कहीं नहीं मिलता है अतएव यहाँ उसका वर्णन करना आवश्यक जानकर किया जाता है।

"योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटितम्" इस पूर्वोक्त श्लोकमें सिद्धासन-साधनकी ५ बातें मुख्य मानी गयी हैं—

१—योनिस्थानको दृढ़तासे एडीसे दबाना।

२—ठोडीको हृदयसे ४ अंगुल ऊपरवाले स्थानमें सुस्थिर (दृढ़) जमाना।

३—स्थाणु (काष्ठ) के समान सीधा करड़ा होकर बैठना।

४—संयमितेन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियोंको दमन करना।

५—नेत्रोंको अचल दृष्टिसे भ्रुकुटिके मध्यमें जमाना।

इन पाँच बातोंके करनेसे सिद्धासन होता है। इनका क्रमानुसार वर्णन इस तरह है।

पहिली—योनिस्थानको एडीसे दबानेका प्रयोजन सुषुम्णाको जाग्रत् करनेका है। योनिस्थान (सीवन) में सुषुम्णाका ठीक विवरस्थान है। सुषुम्णाको

सिद्ध करना ही योगका पर्यवसान है। इस ग्रन्थमें श्रीहरिरामदासजी महाराजने फरमाया है—"सुखमण की घाटी चढिया वाटी अरस घराँ ठहरंदा है" तथा "सुषुम्णा शून्यपदवी ब्रह्मरन्ध्रं महापथः" इत्यादि वाक्योंसे सुषुम्णा ही मोक्षपदवी है इसी सुषुम्णाके द्वारा पश्चिमयोग-ध्यानसाधक योगीका वंकनालसे ऊर्ध्वगमन होता है। सुषुम्णाके विवरमें कुण्डलिनी नाड़ी साढ़े तीन आँटे लगाकर कुटिलाकृतिसे सर्पिणीके समान अपने मुखमें पूँछको दबाकर सुषुम्णामार्गके द्वार (छिद्र) को रोके बैठी है जो योगीको सुषुम्णातक जाने देती नहीं है। इसीलिये बाँये पाँवकी एडीसे योनिस्थानको दृढ़ दबानेसे मूलबन्ध होगा और अपानवायुकी ऊर्ध्वगति होगी जिससे एक प्रकारकी प्रबल ऊष्मा उत्पन्न होती है उसीके कारण वह योनिस्थानस्थ कुण्डलिनी जाग्रत् होकर सुषुम्णामार्गको अपना मुख हटाकर रास्ता दे देती है। जिससे योगीलोग सुषुम्णामार्गमें प्राण-अपानको प्रवेशकर अपने स्वरूपके आनन्दको प्राप्त होते हैं।

दूसरी—हृदयमें चिबुकको दृढ़तासे जमानेकी है, उससे जालंधरबन्ध होता है। जालंधरबन्ध होनेसे प्राणवायुकी गति अधोगामिनी होती है और प्राण अपानवायुसे मिलकर सुषुम्णाके द्वारमें प्रवेश करने योग्य हो जाता है। इस कारण हृदयमें चिबु.. (ठोडी) को दृढ़तासे जमाके बैठनेके लिये लिखा है।

तीसरी—स्थाणुके समान सीधा बैठना उसका प्रयोजन है। सीधा अकड़कर बैठनेसे श्वासोच्छ्वासकी गति बराबर सीधी आने-जानेसे सुषुम्णामें प्रवेश होनेमें कठिनाई नहीं पड़ती, तथा अन्य किसी नाड़ीमें प्राण-अपान प्रवेश नहीं कर सकते। अगर (ऋजुकाय नहीं बैठनेसे) अन्य नाड़ीमें वायु प्रवेश हो जावे तो मृत्यु तथा महाव्याधियोंका उत्पन्न होना सम्भव है।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ १॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥ २॥

श्रीमद्भगवद्गीताके उक्त श्लोकोंमें भी ऋजुकाय (सीधा अकड़कर) बैठकर योगाभ्यास करनेके लिये लिखा है जिससे कुम्भकादि साधन अच्छी तरह हो जाय।

और प्राण-अपान वायु दूसरी नाड़ियोंमें प्रवेश न करे इसी कारण स्थाणु पद देकर भी सिद्धासनमें बैठना लिखा है। सच पूछो तो एक सिद्धासन ही सर्व योगसाधनकी कुंजी है। इसीलिये सिद्धासन मोक्षद्वारके किवाड़ तोड़नेका बड़ा वज्रासन है।

चौथी—इन्द्रियोंको काबूमें रखकर बैठनेकी है। अगर इनको स्वाधीन न किया जाय तो मन स्थिर नहीं होगा और इसके स्थिर न होनेसे योगकी सिद्धि प्राप्त करना भी असम्भव है। अतः इन्द्रियोंका दमन करना ही पहिला काम है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥ १॥
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ २॥

(श्रीमद्भगवद्गीता)

इन्द्रियोंके दमन करनेके लिये प्रयत्न करनेवाले विद्वान्के भी मनको हे कुन्तीपुत्र! ये प्रबल इन्द्रियाँ बलात्कारसे मनमानी ओर खींच ले जाती हैं। अतएव इन सब इन्द्रियोंका संयमन करके युक्त अर्थात् योगयुक्त और मत्परायण होकर रहना चाहिये। इस प्रकार जिसकी इन्द्रियाँ अपने स्वाधीन हो जायँ (कहना चाहिये) उसकी बुद्धि स्थिर हो गयी।

ऐसा स्थिरबुद्धि होकर बैठनेके लिये ही "संयमितेन्द्रिय" यह पद सिद्धासनमें दिया है।

इतना तो मालूम हो ही गया है कि इन्द्रियोंका वेग बड़ा ही बलवान् होता है परंतु इनमें भी शिश्न और रसना दो इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं; प्रायः इन्हींसे शैतानी और चपलता होती है। इन नाड़ियोंका स्थान पाँवके पीछे बाहरकी तरफ टखने और नड़ेके बीचमें हैं। जो यहाँसे ये नाड़ियाँ पिंडली और जंघामेंसे ऊपरको जाती हैं। और इन्हींसे इन्द्रियोंको प्रबलता प्राप्त होती है। (डाक्टर लोग भी शैतान आदमियोंकी इन नाड़ियोंको काट देते हैं जिससे उनकी ये इन्द्रियाँ निकम्मी हो जाती हैं) योगमें इसके लिये बहुत ही सरल उपाय बताया गया है। जिससे किसी प्रकारकी तकलीफ न हो और ये प्रबल इन्द्रियाँ स्वाधीन हो जायं। योगिराज श्रीजैमलदासजी महाराजने सिद्धासनमें भी एक नया लक्षण दिखाया है जिससे ये प्रबल इन्द्रियाँ स्वयं विना कठिनाईके स्वाधीन हो जाती हैं—

"जंघनपर कर धारि के वे सम आसण चितलाय"

अर्थात् हठयोगप्रदीपिकाके अनुसार ही सिद्धासन करके बैठो परंतु दोनों हथेलियोंके तलवोंको जाँघोंपर धारण करो। तात्पर्य यह है कि हथेली-तलके दबावसे एक प्रकारकी विद्युत् शक्ति उत्पन्न होती है वह सर्व शरीरमें अपने प्रभावका प्रसार करके उन प्रबल इन्द्रियोंके वेगको दमनकर अपने स्वाधीन कर

लेती है। अतएव सिद्धासनसे बैठकर सर्व इन्द्रियोंका दमन और मनको समाहित करनेके लिये दोनों हाथोंकी हथेलियोंको जोरसे जाँघोंपर जमाकर बैठना चाहिये।

पाँचवीं—नेत्रोंको अचल दृष्टिसे भृकुटीके मध्य जमाकर बैठनेकी है। ऐसा करनेका मुख्य प्रयोजन मनकी चञ्चल वृत्तिको स्थिर करना और ध्येयमें तल्लीनता प्राप्त कर समाधि अवस्था प्राप्त करना है।

भ्रूमध्यस्थानमें नेत्रोंको अचल दृष्टिसे जमाकर बैठनेसे खेचरी नामकी मुद्रा होती है।

सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये निरालम्बान्तरं पुनः।
संस्थिता व्योमचक्रे या सा मुद्रा नाम खेचरी ॥ १ ॥

(हठयोगप्रदीपिका)

अर्थात् इडा-पिङ्गला नाड़ीके बीचमें निरालम्ब भ्रूप्रदेश (आकाशस्थान) में मनोवृत्ति स्थित हो जानेको खेचरी मुद्रा कहते हैं।

इस खेचरी मुद्राके अभ्याससे उन्मनी अवस्था स्वयंसिद्ध हो जाती है।

"अभ्यस्ता खेचरी मुद्राप्युन्मनी सम्प्रजायते।"

इसलिये खेचरीका एक भेद उन्मनी है ऐसा कह सकते हैं।

शङ्खदुन्दुभिनादं च न शृणोति कदाचन।
काष्ठवज्जायते देह उन्मन्यावस्थया ध्रुवम् ॥ १ ॥

उन्मनी अवस्थामें असम्प्रज्ञात निर्विकल्प समाधिके लक्षण हो जाते हैं इससे चतुर्थपदकी प्राप्ति होती है।

चतुर्थ पदके लक्षण—

भ्रुवोर्मध्ये शिवस्थानं मनस्तत्र विलीयते।
ज्ञातव्यं तत्पदं तुर्यं तत्र कालो न विद्यते ॥ १ ॥

भ्रूमध्यस्थानमें शिवका स्थान है। उसमें जब मन विलीन हो जाता है तब तुर्य पद (चतुर्थपद) प्राप्त हो जाता है ऐसा जानो। इसमें कोई कालकी (समयकी) अवधि नहीं है। क्योंकि भ्रूमध्यस्थानमें अचल दृष्टि जमाके मनको उसमें विलीन करनेसे ही चतुर्थपदकी प्राप्ति होती है। इसीलिये सिद्धासनमें अचल दृष्टिसे भ्रूमध्यको देखना बतलाया है।

रामस्नेहिसम्प्रदायके आदि योगिराज श्रीजैमलदासजी महाराजने भी चाचरी अगोचरी मुद्राको इंगितकर यही बात कही है—

"निरत धरे निजनासिका वे सुनमें सुरत समाय"

अर्थात् निज नासाग्रभागपर दृष्टि जमाके स्थिर होनेको चाचरी मुद्रा कहते हैं। गीताजीमें भी इसीको जमानेका लिखा है—

"सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्"

तथा "सुनमें सुरत समाय" इस पदसे चौथी अगोचरी मुद्रा बतायी है।

मुद्रा पाँच होती हैं—

चाचरि, भूचरि, खेचरी, और अगोचरि नाम।
उन्मनि मिल यह मुद्रिका, पंच लखहु सुखधाम ॥ १ ॥
अब सुन मुद्रा पंचविध, प्रथम खेचरी होय।
मुखमें तास निवास है, बढवे जीभ विलोय ॥ २ ॥
दूसरि मुद्रा भूचरी, नासा जासु निवास।
प्राणापान जुदी जुदी, कर देवे इक पास ॥ ३ ॥
तीजी मुद्रा चाचरी, वसे दृगन विच सोपि।
नासा आगे दृष्टि धरि, देखे अचरज कोपि ॥ ४ ॥
चोथी मुद्राऽगोचरी, करत श्रवणमें वास।
ज्ञान सुरत इक होत है, अनहद शब्द प्रकाश ॥ ५ ॥

पाँचवीं उन्मनी मुद्रा है जिसका स्थान दशमद्वार है, इसकी सिद्धिके लिये ही तो सब कुछ करना पड़ता है। समाधिकी सिद्धि इसीसे ही होती है। यह स्वयं समाधिरूप है। इस प्रकार पाँचों मुद्राओंका साधन सिद्धासनसे सिद्ध होता है। ये पाँचों मुद्रा निश्चल दृष्टिसे नासान्त (भ्रूमध्यभाग) वा नासाग्रभागमें दृष्टि जमानेसे सिद्ध होती है। अतएव भ्रूमध्यमें निश्चल दृष्टि जमाके सिद्धासनमें बैठनेसे सर्व मुद्रा सिद्ध होना बतलाया है। उपरोक्त पाँचों बातोंको लक्ष्यमें रखकर देखा जाय तो सिद्धासन कोई साधारण नहीं है, क्योंकि योगशास्त्रमें सारभूत और मोक्षद्वारके कपाटका भेदनकर सिद्धिका दाता यही कहा है, इसलिये ऐसा विश्वास है कि जिसको केवल यह सिद्ध हो जाता है, वह परमपदका भागी होता है। इस प्रकार सिद्धासन लगाकर पश्चिमध्यानाभ्यासी योगी बैठे और मुखसे राममन्त्रका जप करता हुआ रसना १, कण्ठ २, हृदय ३, नाभि ४—इन चार स्थानोंमें क्रमसे प्राणोंका निरोध करे। प्रथम पूर्वध्यान जो नाभिसे सीधा हृदयादि स्थानमें होकर भ्रुकुटीदेशमें जाता है वहीं त्राटक ध्यान होता है।

पूरब ध्यान भया जब त्राटक।
खूला सहज गगन का फाटक ॥

भ्रूमध्यमें प्राणके रुकनेको त्राटक कहते हैं, यह होनेके पश्चात् क्रमसे जिन-जिन स्थानोंमें होता हुआ ऊपर गया था उन्हीं स्थानोंमेंसे होता हुआ नीचे

नाभिमें आकर पातालमें (आधार-चक्रसे नीचेके अङ्गोंकी पातालसंज्ञा मानी है, जैसे कटिप्रदेशको अतल, लिङ्गप्रदेशको वितल, गुह्यप्रदेशको सुतल, जङ्घाप्रदेशको तलातल, गुल्फप्रदेशको रसातल, पादप्रदेशको महातल, पादतलको पाताल माना है) जाकर फिर वंकनालमें पृष्ठवंशान्तर्गत सुषुम्णामें प्रवेश होकर मेरुदण्डमें जो २१ ग्रन्थियाँ हैं उनको छेदन करता हुआ पृष्ठ त्रिकुटीमें पहुँचकर सुषुम्णा नाड़ीके द्वारा दशमद्वार (ब्रह्मरन्ध्र) में प्रवेश करता है। तब योगी जीवन्मुक्त हो जाता है। त्रिकुटीतक तो माया तथा मृत्यु है।

त्रिकुटी ताँई रामदास, पड़ै काल की घात।
त्रिकुटी पहुँता सुन गया, जाकी पूरण वात ॥ १ ॥
मन मनसा का रामदास, त्रिकुटी ताँई सूत।
आगै केवल ब्रह्म है, जहाँ माया नहिं भूत ॥ २ ॥
रामदास बीसोवरष (१८२०), तामें काती मास।
ता दिन छाँडी त्रिकुटी, किया ब्रह्म में वास ॥ ३ ॥

(श्रीरामवाक्यम्)

इस प्रकार ध्यान करनेको पश्चिमध्यान कहते हैं। इस ध्यानको करनेवाले मुक्त हो जाते हैं। एवं ध्येयका ध्यान करते-करते जब ध्याताकी वृत्ति अभेदात्मक स्थिर हो जाती है तभी समाधि अवस्था प्राप्त होती है।

२ समाधि—

१ तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

२ ध्यातृ-ध्येय-ध्यान-कलनावद् ध्यानं ...रहितं समाधिः।

ध्यान अर्थमात्र रह जाय और स्वरूपशून्य-सा प्रतीत हो उसे समाधि कहते हैं। ध्येयमें एकाग्रचित्तवृत्तिकी स्थितिको समाधि कहते हैं। इस स्थितिमें ध्याता (योगी), ध्यान (चिंतवन) ध्येय (वस्तु)—इन (त्रिपुटी) की कल्पना जिसमें हो वह सविकल्प तथा सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। और जिसमें ध्यातृ आदि त्रिपुटीका स्फुरणतक नहीं हो वह निर्विकल्प समाधि तथा असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। उसके लक्षण योगशास्त्रमें ये हैं।

सलिले सैन्धवं यद्वत् सात्म्यं भजति योगतः।
तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥ १ ॥

अर्थात् जिस प्रकार जलमें सैन्धव (नमकका टुकड़ा) एकरूप हो जाता है इसी प्रकार योगी समाधि अवस्थामें आत्मा और मनकी एकताको प्राप्त हो ब्रह्ममें लीन हो जाता है। और उसको देहसम्बन्धी कुछ भी ध्यान नहीं रहता; उसीको समाधि अवस्था कहते हैं।

यह समाधि दो प्रकारकी होती है—
एक जडसमाधि, दूसरी चेतनसमाधि।

चेतनसमाधिके दो भेद हैं—
एक पिपीलिकामार्ग, दूसरा विहंगममार्ग।

विहंगममार्गके भी दो भेद हैं—
एक युञ्जानयोगी, दूसरा युक्तयोगी।

परंतु ये सब भेद सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधिके अन्तर्गत आ चुके हैं। अतएव मुख्य समाधि दो प्रकारकी ही हैं—

समाधिके पर्यायवाचक शब्द १५ हैं—१ राजयोग, २ समाधि, ३ उन्मनी, ४ मनउन्मनी, ५ अमरत्व, ६ लय, ७ शून्याशून्य, ८ परमपद, ९ अमनस्क, १० अद्वैत, ११ निरालम्ब, १२ निरञ्जन, १३ जीवन्मुक्ति, १४ सहजावस्था, १५ तुर्या।

समाधिका दूसरा क्रम स्कन्दपुराणमें इस प्रकार लिखा है।

एकश्वाससमयी मात्रा प्राणायामे निगद्यते।
प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहार उदाहृतः॥ १॥
प्रत्याहारद्विषट्केन धारणा परिकीर्तिता।
भवेदीश्वरसंगत्यै ध्यानं द्वादशधारणम्॥ २॥
ध्यानंद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते।
यत् समाधौ परं ज्योतिरनन्तं स्वप्रकाशकम्॥ ३॥

प्राणायाममें एक श्वासकी मात्रा।
बारह प्राणायामका एक प्रत्याहार।
बारह प्रत्याहार करनेसे एक धारणा।

बारह धारणाका साधन करनेसे एक ईश्वरसे संगति प्राप्त करनेवाला ध्यान प्राप्त होता है।

इस प्रकारके ध्यान वारंवार करनेसे एक समाधि होती है। इस समाधि अवस्थामें परमज्योति अनन्त स्वप्रकाशमय परब्रह्म परमात्मामें तल्लयता प्राप्त हो जाती है।

धारणा पञ्चनाडीभिर्ध्यानं षष्टिकनाडिकम्।
दिनद्वादशकेन स्यात्समाधिः प्राणसंयमात्॥ १॥
(गोरक्षपद्धति)

निर्गुणो ध्यानसम्पन्नः समाधिं च ततोऽभ्यसेत् ।
दिनद्वादशकेनैव समाधिं समवाप्नुयात् ॥ १ ॥
(मार्कण्डेयपुराण)

षट् श्वासा की एक पल, इसा सास सो खाय ।
छठे महीने खेतसी, सुरति मेरु चढ जाय ॥ १ ॥
(खेतसीयोगीराज)

ऐसी दशा प्राप्त होनेका मुख्य साधन योग है। इस विषयके सम्बन्धमें पहिले बहुत कुछ लिखा जा चुका है उससे जो कुछ अवशिष्ट रह गया है उसीका दिग्दर्शन संक्षेपसे यहाँ कराया जाता है।

योगका सब खेल यथावत् मन और वायुके ऐक्य होनेसे ही सिद्ध होता है। क्योंकि जब इनकी एकता होगी तब चित्त एकाग्र होकर जिस काममें लगेगा वह कार्य अवश्य ही सफल होगा। भगवान् पतञ्जलिने भी योगदर्शनमें लिखा है—

१ योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।
२ युज्यतेऽसौ योगः ।

चित्तकी वृत्तिके निरोधको योग कहते हैं। १।
जो युक्त किया जाय उसको योग कहते हैं। २।

श्री १०८ ईश्वर मठ पुस्तकालय मुमुक्षु भवन अस्सी काशी

योग दो प्रकारका होता है—
एक हठयोग और दूसरा राजयोग।

हठयोगमें आसनाभ्यासकी तथा आग्रहयुक्त और हठयुक्त नियमोंकी प्रधानता होती है।

राजयोगमें ध्यान-धारणाद्वारा मनःसामर्थ्य बढ़ानेका महत्त्व विशेष है तथा आत्मशक्तिका अनुभव लेना मुख्यतया होता है। इन दोनोंमेंसे राजयोगकी प्रशंसा अधिक की है। राजयोगको ही सहजयोग, सहजावस्था और समाधि कहते हैं। सर्व हठयोगके उपाय राजयोगकी सिद्धिके लिये ही किये जाते हैं। जब राजयोग सिद्ध हो जाता है तो पुरुष मृत्युको भी जीत लेनेवाला हो जाता है।

सर्वे हठलयोपाया राजयोगस्य सिद्धये।
राजयोगसमारूढः पुरुषः कालवञ्चकः ॥ १ ॥

अतएव राजयोग ही योगोंमें प्रधान माना गया है।

योगके अष्टाङ्ग

१ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारणा, ७ ध्यान, ८ समाधि।

यम—१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य, ५ अपरिग्रह ।

नियम—१ शौच, २ संतोष, ३ तप, ४ स्वाध्याय, ५ ईश्वरप्रणिधान ।

आसन—चौरासी लक्ष हैं उनमेंसे जो मुख्य हैं उनका वर्णन पश्चिमध्यान-साधनमें देखिये ।

प्राणायाम—तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः । पद्मासन-सिद्धासनमेंसे कोई भी आसन लगाके श्वास-प्रश्वासकी गतिको रोककर बैठनेको प्राणायाम कहते हैं । इसके तीन प्रकार हैं—१ पूरक, २ कुम्भक और ३ रेचक ।

लक्षण—

इडया पवनं पिब षोडशभिश्चतुरुत्तरषष्टिकमौदरकम् ।
त्यज पिङ्गलया शनकैः शनकैर्दशभिर्दशभिर्दशभिर्द्वयधिकैः ॥ १ ॥

अर्थात्–वाम नासापुटसे सोलह वार प्रणवस्मरण करता हुआ वायुको ऊपर खींचकर पान करे (इसीको पूरक कहते हैं)। तत्पश्चात् उस वायुको ६४ चौसठ वार ॐकारका स्मरण करने पर्यन्त उदरके भीतर धारण कर रखे (इसको कुम्भक कहते हैं)। तत्पश्चात् दाहिने नासापुटसे उस वायुको धीरे-धीरे बतीस वार ॐकार-स्मरणकी मात्राके प्रमाणसे बाहर निकाले । फिर कुछ देर बाहर श्वासको रखे, फिर दहिने नासापुटसे १६ सोलह वार वायु खींचे । इस भाँति ६४ वारमें कुम्भक (धारण करना), ३२ वारमें रेचक और १६ वारमें पूरक करे । ऐसा तीन वार करनेसे एक प्राणायाम होता है ।

इस प्राणायामके दो भेद हैं—सगर्भ और अगर्भ । जिसमें ॐकार तथा राममन्त्रका जप और ध्यान हो वह सगर्भ है । और जिसमें प्राणायामके सिवाय जप-ध्यान वगैरह कुछ भी नहीं किया जाता है वह अगर्भ है । अगर्भसे सगर्भ प्राणायाम १०० गुणा अधिक फलदायक है ।

जपध्यानं विनाऽगर्भः सगर्भस्तत्समन्वयात् ।
अगर्भाद् गर्भसंयुक्तः प्राणायामः शताधिकः ॥ १ ॥

(महाभारत)

जाप्येन तु जपं कुर्यादविलम्बितमद्रुतम् ।
मनसैव प्रसंख्यातं प्राणायामविधौ सदा ॥ २ ॥

(नन्दिपुराण)

अर्थात् सगर्भ प्राणायाममें जप करना, वह न तो अधिक धीरेसे न अधिक जल्दीसे करना, समानवृत्तिसे मन-ही-मनमें गिनती लगाके जप करना चाहिये ।

ऐसे अनहद नादको श्रवण करता हुआ मन जब ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करके परब्रह्मसे मिल जाता है तब त्रिगढ़ अर्थात् हृदय, कण्ठ, भ्रूमध्य स्थानस्थ तीनों प्रबल ग्रन्थिरूप गढ़ (किले) को भेदकर ब्रह्मपद, विष्णुपद और रुद्रपदरूपी तीनों पदोंसे भी पर परब्रह्मरूपी चौथे परमानन्द पदको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार जब अपानवायु प्राणवायुसे मिलकर कुम्भकद्वारा निरुद्ध होता है तब चित्तका ध्यान उस परब्रह्म परमात्माकी ओर लगने और ध्येयाकार वृत्ति प्राप्त होनेसे समाधि लगानेकी अवस्था प्राप्त हो जाती है ॥ २९-३० ॥

इस रीतिके साधनको प्राणायाम कहते हैं। इसके और भी कई भेद हैं; यथा—१ जघन्य, २ मध्यम, ३ उत्कृष्ट। और कुम्भक ८ प्रकारका है—१ सूर्यभेदन, २ उज्जई, ३ सीत्कारी, ४ शीतली, ५ भस्त्रिका, ६ भ्रामरी, ७ मूर्छा, ८ प्लावनी—इनके करनेसे कुण्डलिनी जाग्रत् होती है।

प्रत्याहार—जो पाँचों इन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंसे मनको हटानेसे होता है। इसके भी पाँच भेद हैं, कई-कई इसके अठारह भेद भी कहते हैं।

अष्टादशसु यद्वायोर्मर्मस्थानेषु धारणम्।
स्थानात् स्थानात् समाकृष्य प्रत्याहारो निगद्यते ॥ १ ॥

धारणा—एक लक्ष्यपर वा ध्येयपर चित्तवृत्ति स्थिर करनेको कहते हैं। यह धारणा ५ प्रकारकी है—१ स्तम्भनी, २ द्राविणी, ३ दाहिनी, ४ शोषणी, ५ भ्रामणी। ये पृथिव्यादि पञ्चभूतोंकी हैं। शरीरमें इनके ये स्थान हैं—

१ पादादिजानुपर्यन्तं पृथिवीस्थानमुच्यते।
२ आजानोः पायुपर्यन्तमपां स्थानं प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥
३ आपायोर्हृदयान्तं यद्वह्निस्थानं तदुच्यते।
४ हृन्मध्यात्तु भ्रुवोर्मध्ये यावद्वायुकुलं भवेत् ॥ २ ॥
५ आभ्रूमध्यात्तु मूर्धान्तमाकाशस्थानमुच्यते ॥

इन पाँचों स्थानोंमें पाँच-पाँच घटिकापर्यन्त प्राण रोककर ब्रह्मादि देवताका ध्यान करनेसे भूमि आदि पाँच तत्त्वोंका जय हो जाता है।

ध्यान—तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

समाधि—तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः। इनके सिवाय नेती, धोती, ब्रह्मदाँतुन, गजकर्म, नौली, वस्ती, गणेशक्रिया, वागीशकर्म, शङ्ख-

घरिया नहिं घारूं अघर आधारूं सहजाँ सेवकरंदा है ॥ ३१ ॥
दशमें मिल द्वारी लाई तारी अम्मर बींद वरंदा है ॥ ३२ ॥
मनवा थिर पवना पांचूं दमना प्याला अजर पिवंदा है ॥ ३३ ॥
निरमल जहां नूरा उदय अंकूरा परमानंद परसंदा है ॥ ३४ ॥
तिरवेणी छाजै ब्रह्म विराजै निरभै राज करंदा है ॥ ३५ ॥
झिलमिल्ला जोती ओत रु पोती जीव रु शीव मिलंदा[1] है ॥ ३६ ॥

पखाली, त्राटक आदि साधन तथा १ महामुद्रा, २ बन्धमुद्रा, ३ महावेधमुद्रा, ४ खेचरीमुद्रा, ५ उड्डियानमुद्रा, ६ मूलबन्धमुद्रा, ७ जालंधरमुद्रा, ८ विपरीतकरणीमुद्रा, ९ वज्रोलीमुद्रा, १० शाम्भवीमुद्रा—ये दश महामुद्रा हैं। इनका साधन करनेसे चित्तको शान्ति प्राप्त होती है और लयावस्था भी शीघ्र प्राप्त होती है। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन "गोरक्षपद्धति" "हठयोगप्रदीपिका" "शिखोपनिषद्" आदि योगके ग्रन्थोंमें देखिये। इन पूर्वोक्त साधनोंके क्रमाभ्याससे लयावस्था प्राप्त होती है।

आजकलके धूर्त योगी पाखण्डी शरीरशुद्धिपूर्वक आत्मानुभवके लिये नहीं, किंतु लोकमान्यताके लिये केवल नेती, धोती, ब्रह्मदाँतुन, उड्डियानबन्ध, त्राटक आदि क्रिया दिखाकर योगकी बड़ी-बड़ी डींगें मारते हैं। उन फर्राबाजोंको योगी मत समझो, यह तो पेटभराईका रास्ता इन्होंने निकाल लिया है। इन धूर्त चालाक योगियोंके फंदेमें आ गये तो जर और जान दोनोंसे ही हाथ धो बैठोगे, सिवाय लोकमान्यताके खाली इन दिखानेकी क्रियाओंमें क्या पड़ा है—

मनकी मिटी न वासना नवतत कियो न नास।
तुलसी केते पचिमरे देदे तनकों त्रास ॥ १ ॥
पाणीमांही[1] परगटी पावक[2] एक प्रचंड।
सात[3] द्वीप सावत रह्या दग्धभया नवखंड[4] ॥ २ ॥

यदि आपको इसकी चाट लग गयी है, अभ्यास करना चाहते हैं तो चेटक-मेटक बातें बनानेवाले चुट्टपुट्टियोंके कथनको छोड़कर अच्छे भजनानन्दी योगिराज सद्गुरुकी तलाश करें कि जिस गुरुके पास अभ्यास करनेसे अपना जन्म सफल कर आप कृतकृत्य हो जायँ। (टिप्पणीकार)

१ जाप न अजपा जहँ नहीं, तहँ नहिं सास उसास।
हरिया जीव रु शीवका, एक अखंडी वास ॥ १ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

इसी अवस्थाको निर्विकल्प समाधि कहते हैं।

---

१ अन्तःकरण। २ ब्रह्मज्ञान। ३ सात धातु। ४ नव तत्त्व।

जब समाधि अवस्था प्राप्त होती है उस समय नाम-रूप धारण करनेवाले सगुण ब्रह्मकी ध्यान-धारणा मिट जाती है। और नाम-रूपरहित निरञ्जन निराकार परब्रह्म परमात्माका आश्रय (अवलम्बन) प्राप्तकर स्वतः स्वाभाविक रीतिसे ही (आपसे आप) सेवा करने लगता है। एवं दशम द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) में मन और प्राण मिलकर अमर बींद (परम पुरुष परमात्मा) का करमेलन करता है। मानो मन-प्राण-रूपी स्त्रीने परब्रह्मरूपी वरसे करमेलन (हथलेवा जोड़) कर विवाह किया है ॥ ३१-३२ ॥

मनकी गति स्थिर हो जाती है तब पाँचों ही पवन (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान नामके वायु) दमन (वशीभूत अथवा काबूमें) हो जाते हैं। और अजर प्याला (ब्रह्मानन्दरूपी प्याला) पीने लग जाते हैं। जहाँ निर्मल निर्विकार शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूपी नूर (ज्योति) के दर्शनका अङ्कुर उदय होता है तहाँ परमानन्द परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ ३३-३४ ॥

जहाँ त्रिवेणी (त्रिकुटी स्थान) पर परब्रह्म विराजमान होकर निर्भय राज्य करता है उसीकी झिलमिल ज्योति (प्रकाशमान ज्योति) में जीव और शिव (ब्रह्म) तिलमें तैलके समान ओतप्रोत होकर मिल जाते हैं ॥ ३५-३६ ॥

हरि हीरा पाया विणज हलाया तोल न मोल लहंदा है ॥ ३७ ॥
हरि हीरा होती पारख कोती खोट न चोट चढंदा है ॥ ३८ ॥
मन पंचे रहता मुखा न कहता अंतर लिव लावंदा है ॥ ३९ ॥
सुध बुध को विसरी सुरत न निसरी पूरण ब्रह्म अनंदा है ॥ ४० ॥
जीवत जहाँ मुक्ती शिवमिल शक्ती जन्म न फेर मरंदा है ॥ ४१ ॥
अम्मी रस पीया जुगजुग जीया बालिक मिल खेलंदा है ॥ ४२ ॥

श्रीहरिरामदासजी महाराजने फरमाया कि मैंने ध्याता, ध्यान, ध्येय-इस त्रिपुटीके ऐक्यरूपी अनमोल हीरेको पाया, फिर उसका विणज (व्यापार) शुरू किया तो न तो तोल ही ज्ञात हुआ और न मोल ही ज्ञात हुआ (अचिन्त्य अतुल अमूल्य है)। इस हीरेकी परीक्षा कठिन है। यह हीरा ऐसा प्राप्त हुआ कि जो न तो कभी खोटा हो, न कभी चोट ही चढ़नेका प्रसंग आवे ॥ ३७-३८ ॥

पंच-पंचायतमें बैठकर निर्णय करनेवाला विचारकर्ता जैसे मध्यस्थ पुरुष होता है वैसे ही इस शरीरमें अन्तःकरणका अगुआ मनरूपी पंच है। उस हीरेकी परीक्षा करनेवाला रहते हुए भी वह (मन) अपने मुखसे कुछ भी वर्णन नहीं कर सका और भीतर ही भीतर लौ लगा दी और सब सुध-बुध भूल गया, परंतु जो सुरत पूरण ब्रह्म आनन्दरूप-में बस गयी थी वह नहीं निकली ॥ ३९-४० ॥

शिव और जीवका योग (मेल) सुषुम्णामें जहाँ हुआ, बस यही जीवन्मुक्ति है और इसीसे जन्म-मरणका फेरा मिट जाता है और अमृत-रसका पानकर युगोंयुग जीवित रह अखिल ब्रह्माण्डके स्वामी सच्चिदानन्द आनन्दकन्द पूरण परब्रह्म परमात्मासे मिलकर खेलता रहता है ॥ ४१-४२ ॥

हंसा परहंसा एको अंसा सुन पर सुन सोहंदा है ॥ ४३ ॥
उड़े विन पंखा मिले असंखा पार न को पावंदा है ॥ ४४ ॥
जाहर जुग जोगी है अणभोगी ओघट घाट रमंदा है ॥ ४५ ॥
नाथन के नाथू मस्तक हाथू शिव ब्रह्मा सेवंदा है ॥ ४६ ॥
हरिजन हरि जाणी वेद वखाणी शेष विष्णु ध्यावंदा है ॥ ४७ ॥
धरिया अवतारू अनँत न पारू-रहता एक रहंदा है ॥ ४८ ॥

जब आत्मा और परमात्मा दोनों एकरूप होकर परम शून्य स्थानमें विराजमान (सुशोभित) होते हैं अर्थात् आत्मा परमात्मामें तदाकार हो जाता है तब उसको विना पंखके उड़नेकी सामर्थ्य प्राप्त हो जाती

है। ऐसे अनगिनत आत्मा इस प्रकार लय हो जाते हैं जिनका कोई पार नहीं है ॥ ४३-४४ ॥

जाहिरातमें (प्रकटरूपमें) योगाभ्यासी योगी जान पड़ता है, परंतु अभोक्ता होकर वह औघट घाटमें रमता रहता है जिसके मस्तकपर ईश्वरके भी ईश्वर परमेश्वरका हाथ हो जाता है। (परब्रह्म परमात्माकी जिसपर पूर्ण कृपा हो जाती है) उसकी शिव-ब्रह्मादि सर्व देवता सेवा करने लग जाते हैं ॥ ४५-४६ ॥

वेद कहते हैं जिनका शेष और विष्णु ध्यान करते हैं उन भगवान्‌को हरिके जनोंहीने जाना है। जिसने अनेक अवतार धारण किये, जिसका न आदि है और न अन्त है और जो सर्वदा एक ही रहता है ॥ ४७-४८ ॥

अंतः नहि करणू बाल न तरणू वृद्ध न को वरषंदा है ॥ ४९ ॥
पाषाण न पाती छाप न ताती थान न आन थपंदा है ॥ ५० ॥
अणघड़ अज्ञातू मात न तातू निराकार निर्द्वंदा है ॥ ५१ ॥
हाट न कोइ शहरू विणज न बोहोरू खरच न को खूटंदा है ॥ ५२ ॥
सूरा नहि सत्ती जोग न जत्ती जरा न जम पूजंदा है ॥ ५३ ॥
तीरथ नहि वरतू आभ न धरतू अकल कला आपंदा है ॥ ५४ ॥
नारि न को पुरुषा चतुर न मुरखा वेद न चार वचंदा है ॥ ५५ ॥
अनुभव पद बोल्या अंतर खोल्या विधि विरला बूझंदा है ॥ ५६ ॥

जिसके अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) नहीं हैं। और जो न बालक न तरुण (जवान), न वृद्ध है न आयुवाला है। और जो न पाषाण न पत्ता है और तप्तमुद्रा भी जिसके नहीं है और न जिसके कोई स्थान है न आन है ॥ ४९-५० ॥

वह अनघड़ (आकाररहित) अजात (अजन्मा) माता-पिता-रहित है। जो निराकार निर्द्वन्द्वस्वरूप है। उसका न कोई शहर है न कोई दुकान है। न वाणिज्य करनेवाला है न लेन-देन करनेवाला वोहरा है। न उसके खरच है न कभी उसके खूट ही आती है ॥ ५१-५२ ॥

न वह शूर है न सती (दानादि देनेवाला) है, न वह जोगी है न जती है, और जिसके पास न कभी जरा (बुढ़ापा) और जम (मृत्यु) पहुँच सकते हैं। न वह तीर्थ है न कोई व्रत है। न आकाश है और न धरती (पृथ्वी) है अर्थात् निरञ्जन निराकार निर्विकल्प निर्गुण आदिमध्यान्तरहित वह अजन्मा और अकल है और कलाका देनेवाला है ॥ ५३-५४ ॥

न स्त्री है न पुरुष हैं, न चतुर है न मूरख है और चारों वेद भी जिसकी महिमा नहीं बाँच सकते हैं और नेति-नेति कहते हैं। यह अनुभवकी वार्ता जो गुप्त थी उसको पदोंमें और छन्दोंमें प्रकट की है जिसकी विधि कोई विरला ही समझ सकता है ॥ ५५-५६ ॥

मिलिया गुरु आदू पाय अनादू पूरबले लेखंदा है ॥ ५७ ॥
जाण्या हम जैसा कहिये कैसा कछु इक मन सरमंदा है ॥ ५८ ॥
कायम कुरबाणी कर आसाणी तुहि तुहि काम कमंदा है ॥ ५९ ॥
तूही है रामा तु ही रहीमा जन हरिराम जपंदा है ॥ ६० ॥

पूर्वजन्मके लेखसे आदिगुरु मिल गये और उनकी कृपासे अनादि रूपको पाया (जाना)। जैसा हमने जाना है उसको कैसे वर्णन किया जाय ? क्योंकि वह अवर्ण्य है, इसलिये मन बतलानेमें कुछ संकोच करता है ॥ ५७-५८ ॥

यदि उपरोक्त विधिसे स्थिर होकर अपनेको इसपर कुर्बान कर दोगे तभी आसानीसे सफलता प्राप्त करोगे। ग्रन्थकी समाप्तिमें श्रीहरिरामदासजी महाराज ईश्वरके प्रति प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन् ! आप ही राम हो, आप ही रहीम हो और जो कुछ हो सो आप ही आप हो ॥ ५९-६० ॥

॥ इति श्रीहरिरामदासजी महाराजकृत-घघर निसानी सम्पूर्ण ॥

रूपान्तर कहे जा सकते हैं। सभी के आधारभूत सिद्धान्त इसके भीतर आ जाते हैं।[१] स्वामी जी `नाम निरणा को अंग` में `नाम का भेद कहो कुण भाई ? ` यह प्रश्न प्रस्तुत करके `राम` नाम के स्मरण की स्पष्ट घोषणा करते हैं --

"और सब नाम जुग जुग उपजै खपै,
एक रसकार रहै, अखण्ड जोई।"[२]

स्वामी रामचरण का सुरति शब्दयोग

स्वामी रामचरण ने सुरति शब्द योग का वर्णन अणभै वाणी के `परचा को अंग` के विभिन्न छन्द शीर्षकों, `नाम प्रताप` एवं `शब्द प्रकाश` नामक लघु ग्रंथों तथा `अणभैविलास`, `जिज्ञास बोध` एवं `विश्वास बोध` आदि बड़े ग्रंथों में किया है। अन्य संतों की भांति ही सुरति शब्द योग स्वामी रामचरण का स्वानुभूतिपरक योग है जिसे साधयोग की सिद्धि के सहारे प्राप्त होने की बात वे कहते हैं।०"स्वामी रामचरण की दृष्टि में योग" के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि नामस्मरण ही सब योगों का योग है। यह सभी योगों का मूल है। `सुरति शब्द संयोग` इसी साधना से संभव है। इसे ही सहज योग भी कहा गया है।

भजन प्रताप की चार चौकियां

स्वामी जी ने सुरति शब्द योग की बड़ी स्पष्ट कल्पना प्रस्तुत की है। इस साधना के चार अवस्थान उन्होंने निरूपित किए हैं जिसे वे भजन प्रताप की चार चौकियां कहते हैं --

"चौकी भजन प्रताप की, संत कह गए च्यार।
रामचरण या सत्य है, दूजा भरम अपार।"[३]

१- डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय [नया संस्करण], पृ० ३५५।

२- अ० वा०, पृ० ११२।

३- वही, पृ० १३।

इन चार चौकियों के मुकाम क्रमशः कण्ठ, हृदय, नाभि और ब्रह्माण्ड है --

"रसना कण्ठ रस पीय के, हिरदै सुख बिसाम ।
नाभि कमल में उलटि के, सुरति गई आकाश ।"[१]

सुरति शब्द योग की साधना की इन चारों अवस्थाओं का वर्णन स्वामी जी ने 'नाम प्रताप' एवं 'शब्द प्रकाश' में बहुत स्पष्ट किया है । यहां कवि के अनुसार चारों चौकियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है --

प्रथम अवस्थान

सुरति शब्द योग की साधना का प्रारंभिक अवस्थान नाम जप है । यह 'रामनाम' है जिसे स्वामी जी ने तारक मंत्र कहा है । जिज्ञासु या साधक को इस रामनाम की उपलब्धि गुरु से होती है --

"प्रथम नाम सतगुरु सूं पाया ।
श्रवणां सुनि के प्रेम उपजाया ।"[२]

सतगुरु से प्राप्त रामनाम का श्रवण कर जिज्ञासु को शब्द के प्रति प्रेमानुभूति होने लगती है और तब वह रसना की श्रद्धा का जागरण करके निशिवासर 'राम-रटन' में लीन होता है ।

"पुनि रसना की श्रद्धा जागी ।
राम रटनि निशिवासर लागी ।"[३]

नाम के प्रति अनुराग भाव का जागरण ही रसना की श्रद्धा के जागरण का कारण होता है । तब अपर आशाएं समाप्त हो जाती हैं और सुरति रामनाम में

१- अ०वा०, पृ०९३।

१- राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय ।
रसना सूं सरक्या शब्द कण्ठ होय हिरदै ध्याय ।
कण्ठ होय हिरदै ध्याय तृतीये नाभि निवासा ।
नाभिकमल सूं उलटि गगन जाय किया बिलासा ।
चौथी ध्याई परसि के सहज समाधि समाय ।
राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय ।"
-- अ० वा०, पृ० १४१ ।

२- वही, पृ० २०८ ।

प्रथम नाम रसना सूं गावै ।
मन कूं पकड़ि एक घर लावै । -- वही, पृ० २०६ ।

लग जाती है। मन एकाग्र हो जाता है और सुरति शब्द छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती-

"दूजी आशा सकल बुहारी।
तब रामनाम में सुरति ठहारी।"[1]

इस समय साधक पद्मासन लगाकर मन को निश्चल कर लेता है और सांस-उसांस के साथ राम जप में तन्मय हो जाता है। जप करते-करते नाम के प्रति जगी आसक्ति सांस राम के वियोग में परिणत हो जाती है।[2] नामोच्चारण करते करते रसना की श्रद्धा उसके शिरोभाग से रसधार के रूप में मुखित होने लगती है। यह स्राव अखण्ड होता है। इस स्राव का नीर दुग्धवत् होता है--

तब रसना शिर छूटै धारा।
लगी अखण्ड नहिं खण्डै सारा।"[3]

इसकी मिठास का क्या कहना। हर्ष और विश्वास की अनुभूति होने लगती है--

"रटतां रटतां भयो मिठास।
हर्ष भयो आयो विश्वास।"[4]

इस रस रसधार की मिठास से जन पीने की श्रद्धा समाप्त हो जाती है। साधक इस अमृत पान से पल भर भी विलग नहीं होना चाहता। इस रस-पान से मुख नहीं लगाती है और सुखधारा की अनवरतता शिराओं को मुदित कर देती है--

---

१- अ० वा०, पृ० २०८।
राख सुरति शब्द की मांही।
शब्द छांड़ि कहुं अनत न जांही। -- वही, पृ० २०६।

२- श्वास उश्वांसा वर्णं लगाई।
आरति करिके हरिके विरह आई। -- वही, पृ० २०६।

३- वही, पृ० २०६।
रसना क्षू खुली इस नीरा।
प्रथम वाको पय सो नीरा। -- वही, पृ० २०८।

४- वही, पृ० २०६।

"जल पीवन की श्रद्धा नाहीं ।
मलियाँ अमृत बुरि होइ जाँहीं ।
रस पीवत द्रुधा सब भागी ।
कण्ठां शब्द टगटगी लागी ।
नाड़ि नाड़ि मैं चलै गिलगिली ।
सुख धारा अति बहै मिलमिली ।
मुख सूं अक्षु न उचरै बैना ।
लग्या कण्ठ कपाट खुलै नहीं नैना ।
श्रवणां चर्चा सुणैं न काई ।
कण्ठ ध्यान यह लक्षण सोई ।"[1]

उपर्युक्त अवस्था को कवि `कण्ठ ध्यान` की संज्ञा देता है। इस अवस्था में शिरायें भी आनन्दानुभव करती ही हैं, मुख से वाणी नहीं फूटती, नयन कपाट बन्द हो जाते हैं, कान बाह्य चर्चा नहीं सुन पाते। शब्द जिह्वा से सरक कर कण्ठ स्थान में आ जाता है। `कण्ठ ध्यान` में कम्पन की अनुभूति होती है और रोम-रोम में शीतलता आ जाती है, हृदय गद्गद् हो जाता है, श्वास अवरुद्ध हो जाता है और नयनों से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगती है --

"कण्ठ के ध्यान में कंपकंपी जागै ।
रोम रोम शीतल सी लागै ।
हियो गद्गदै श्वास न आवै ।
नैणां नीर प्रवाह चलावै ।"[2]

यह कण्ठ के ध्यान विरहानुभूति की स्थिति है। कण्ठस्थान पर साधक की सुरति नामी राम का वियोग अनुभव करने लगती है। यह बड़ी कठिन अवस्था होती है। मुख से बोला नहीं जाता, खान-पान की रुचि नहीं रह जाती, शरीर

१- अ० बा०, पृ० २०६ ।
२- कोई विरला रसना रस गटक्यो ।
पीछै शब्द कण्ठ में अटक्यो । -- वही, पृ० २०६
३- वही, पृ० २०६ ।

क्षीण हो जाता है, त्वचायें सिकुड़ जाती हैं, नसें नीली पड़कर झलकने लगती हैं, चेहरा पीला पड़ जाता है, नेत्रों में लाली छा जाती है और ललाट आईने की ज्योति सदृश दीप्त हो उठता है, कंपन और सिहरन चलने लग जाती है, छाती रूँध जाती है। विरहिणी की ऐसी दशा हो जाती है। इस अवस्थान को या तो गुरु ही जानता है [जो विरह जगाता है] या फिर विरही स्वयं जो इसे झेलता है।[१]

<u>द्वितीय अवस्थान</u>

कण्ठ स्थान की कठिनाई पारकर शब्द ने हृदय में प्रवेश किया।[२] यह साधना का द्वितीय अवस्थान है। कण्ठस्थान से चलकर हृदय देश में शब्द के प्रवेश की क्रिया का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि एक दिन एक तमाशा हुआ, कण्ठ और हृदय के बीच 'हुलास' जगा। द्रवित होकर हृदय में 'सीर सुखम रस' प्रवाहित होने लगा और 'शब्द ब्रह्म' हृदय में वास करने लगा। अंधेरी निशा में शशि के आलोक का अनुभव होने लगा --

---

१- कण्ठ स्थान बहुत कठिणाई।
मुख सूं बचन न बोल्यो जाई।
खान पान में रुचि रहै थोरी।
मारग रुक्यो जाय कछ जोरी।
क्षीण शरीर त्वचा सकुचानी।
नीली नस दीसै झलकानी।
पीरो बदन नैनरां लाली।
मुकुर ज्योति ज्यूं दिपै कपाली।
चलै कंपकंपी हूं थररावै।
छाती रूंधि श्वास न आवै।
ऐसी विधि विरहिनि की होई।
विरहि जाणै कै सतगुरु सोई। -- चर अ० धा०, पृ० २०९।

२- एक दिवस ऐसी बनि आंही।
शब्द सरक गयो हिरदै मांही।
-- वही, पृ० २०९।

"एक दिवस इक भया तमासा ।
कण्ठ सुधा बिच उठ्या हुलासा ।
ज्यूं पाला की डोरणि छूटी ।
हिरदै नीर सुखमरस ऊठी ।
शब्द कुल हिरदै किया बासा ।
ज्यूं रैण अंधेरी चंद प्रकासा ।"[1]

परमसुख से हृदय आलोकित हो उठा जैसे रवि ने अंधकार को विनष्ट कर दिया हो --

"परम सुक्ख हिर्दै परकाशा ।
ज्यूं रवि कीनो तमको नाशा ।"[2]

इस अवस्थान को कवि ' हृदय ध्यान ' की संज्ञा से अभिहित करता है। इस अवस्था में भ्रम, कर्म, संशय सभी दूर जा पड़े और हृदय में अखण्ड जाप होने लगा। जब हृदय-ध्यान की ध्वनि अनेक होने लगती है तो सभी अन्य साधन लुप्त हो जाते हैं। इस सुख की महिमा अवर्णनीय है।[3] हृदय के भीतर होने वाले इस सहज सुमिरन का रहस्य बाहर कोई नहीं जान पाता --

"सहजै सुमरण हिरदैब होई ।
बाहिर भेद न जांणै कोई ।"[4]

१- अ० वा०, पृ० २०६ ।

२- वही, पृ० २०६ ।

३- भर्म कर्म सांशो गयो भागी ।
   हिरदै ध्वनी अखण्ड लिवलागी ।
   कहा कहूं या सुख की महिमा ।
   और सुख सब दीशै पल मा ।
   हिरदै ध्यान ध्वनी जब होई ।
   दूजा साधन रहै न कोई ।" --- वही, पृ० २०६-२०७ ।

४- वही, पृ० २०६ ।

सोते जागते हर अवस्था में यह सहज सुमिरन चलता रहता है । मन-बस्ती की शंका नहीं रह जाती । यह कवि की दृष्टि में `अब `अजपा जाप` की स्थिति है । इस अवस्था में बाहरी साधन बिना जाते हैं ।

"सोवत जागत डोरी लागी ।
मन बस्ती की शंका भागी ।
रसना जप्यां अजप्पा पाया ।
बाहिर साधन सकल बिनाया ।"[1]

प्रेम का जागरण हो जाने पर सांसारिक मर्यादाओं के नियम बन्धन समाप्त हो जाते हैं । इस प्रेम साधना[2] द्वारा ही साधक को शरीर में `राम धाम` मिल जाता है --

"जाग्यो प्रेम नेम रह्यो नांही ।
पाई रामधाम घर मांही ।"[3]

<u>तृतीय अवस्थान</u> उर स्थान में विश्राम कर शब्द नाभिप्रदेश में पहुंचता है । यह तीसरा मुकाम है --

उर अस्थान पाय बिसामा ।
शब्द किया जाय नाभि मुकामा ।"[4]

`नाम प्रताप` में `शब्द` को कवि `लै` कहता है । यह `लय` नाभिकमल में पहुंचकर आकर चैतन्य हो जाती है --

"हिरदै सूं लै धरणी गई ।
~~सब्द मिलत मरम-नाभि-मुकामा~~ ।"[4]
नाभिकमल में चेतन भई ।"[5]

१- अ० वा०, पृ० २०६ ।
२- "सुमिरन एक प्रकार की प्रेम साधना है ।"
---डा० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय
[नया संस्करण], पृ० २५३ ।
३- अ० वा०, पृ० २०६ ।
४- वही ।
५- वही, पृ० २०७ ।

यहाँ पहुँचकर शब्द गुंजन करने लगता है जिससे सभी नाड़ियाँ जागृत हो जाती हैं। रोम-रोम से राग ध्वनित होने लगते हैं और नौ सौ नाड़ियाँ का मंगलगीत सुनायी पड़ता है। यहाँ मन मधुप को अतीव सुख मिलता है --

"शब्द गुंजार नाड़ि सब जागे।
रोम रोम में बाजि रही रागे।
नौ से नारी मंगल गावे।
तहाँ मन भंवरा अति सुख पावे।"[1]

काया शीतल हो जाती है क्योंकि शब्द को ब्रह्मरस का अमृत प्राप्त हो जाता है।[2] रोम रोम तांत यंत्र की तरह झंकृत होने लगता है --

"रोम रोम झणकार झुणके।
जैसे जंतर तांत ठुणके।"[3]

चतुर्थ अवस्थान की ओर

नाभि प्रदेश में ब्रह्मरस की अनुभूति करने के बाद शब्द गगन[4] की ओर अपनी यात्रा आरंभ करता है। गगन का रास्ता मेरुदण्ड की घाटी से होकर है। इस मेरु में बीस गांठे हैं। शब्द के वेग से बीसों गांठे फट जाती हैं और गगन का मार्ग खुल जाता है।[5]

१- अ० वा०, पृ० २०७।

नाभिकमल में शब्द गुंजारे
नौ से नारी मंगल उचारे। -- वही, पृ० २०८।

२- शीतल भई सबै ही काया।
शब्द ब्रह्म रस अमृत पाया। -- वही, पृ० २०७।

३- वही, पृ० २०८।

४- गगन शरीर के भीतर का वह आकाशवत् अन्तराल है जिसमें ज्योतिर्मय ब्रह्म का प्रकाश दीखता है और जहाँ से अनाहत की ध्वनि सुन पड़ती है। इसको कभी-कभी 'शून्य' भी कहा करते हैं। -- पं० परशुराम चतुर्वेदी, संत काव्य, पृ० ५७१।

५- पश्चिम दिशा मेरु की घाटी।
बीसूं गांठि घोर सैं फाटी।"-- अ०वा०, पृ० २०८।

"अब तो शब्द गगन कूं चढ़िया ।
पश्चिम घाटि होइ के अनुसरिया ।"[१]

घाटी के मार्ग से होकर शब्द त्रिकुटी[२] पर पहुंचता है । इसके ऊपर `अनहद` बजता है । यह त्रिकुटी इड़ा, पिंगला, और सुषुम्ना का त्रिवेणी संगम है । इस त्रिवेणी घाट पर स्नान कर के जीव गगन में प्रवेश करता है --

"पश्चिमी बैठा त्रिकुटी छाजे ।
जाके ऊपर अनहद बाजे ।
त्रिवेणी तट कुल न्हवाया ।
निर्मल होय आगे कूं ध्याया ।

कुण्ड लि०
इंगला पिंगला सुखमणा, मिले त्रिवेणी घाट ।
जहां मानक जन झूलिके, निर्मल होय निराट ।
अब त्रिवेणी न्हाइके, कीया गगन प्रवेश ।
तीन लोक सूं अलघ सुख, यो कोई चौथा देश ।"[३]

चतुर्थ अवस्थान

अभी तक जिन लोकों के सुख की चर्चा हुई है उससे बिल्कुल भिन्न सुखों वाला यह कोई चौथा देश है । `श्री रामस्नेही सम्प्रदाय` के लेखकों ने इस अवस्थान पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि " यह साधना की अंतिम भूमिका है जहां सुरति शब्द को पकड़कर एकमेक होकर शाश्वत सुख लूटती है । सुरति सुंदरी के साथ

१- अ० बा०, पृ० २०७ ।

२- "त्रिकुटी - भ्रूमध्य में स्थित वह बिन्दु जहां पर इड़ा पिंगला एवं सुषुम्ना योग नाड़ियों का मिलन होता है और जिसे इसी कारण `त्रिवेणी` भी कहा जाता है ।" -- पं० परशुराम चतुर्वेदी : संतकाव्य, पृ० ५७२ ।

३- अ० बा०, पृ० २०७ ।
त्रिकुटी संगम कीया स्नाना ।
जाइ चढ़्या चौथे अस्थाना । -- वही, पृ० २०६ ।

शून्य मण्डल में पूर्णानन्द पुरुष ररंकार का यह मिलन और तज्जन्य आनन्द का विस्मयकारी वर्णन -- यही संत साधना का अनघ अध्याय होता है।"[१]

इस गगन लोक (चौथा घर) में निरंजन सिंहासनासीन है जिसकी ज्योति के प्रकाश से अनन्त सूर्य शोभा पाते हैं। जहाँ अनहद नाद अगणित रागों में ध्वनित होता रहता है। जहाँ सुषुम्ना नीर की फुहार निरंतर स्रवित होती रहती है जिससे सुरति भींग कर मगन हो जाती है। जहाँ अध-ऊर्ध्व कमल विकसित हैं और सुरति भंवरा बनकर विलसती है। जहाँ अनहद की 'घररघरर' धुन पड़ती है और परम ज्योति का विद्युत प्रकाश दीख पड़ता है --

"जहाँ निरंजन तख्त विराजे।
ज्योति प्रकाश अनन्त रवि राजे।
अनहद नाद गिणत नहि आवे।
भाँति भाँति की राग उपावे।
स्रवे सुषुम्णा नीर फुहारा।
शून्य शिखर का यह विस्तारा।"[२]

'कुण्डल्या की अंग' में स्वामी जी इसे 'ब्रह्म सभा' कहते हैं। इस ब्रह्म सभा का विस्मयकारी वर्णन उन्हीं की पंक्तियों में प्रस्तुत है --

"बिन रसना गुण गाइये बिनकर बाजै तूर।
बिन श्रवणा अनहद सुणै जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर।
जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर और कोई निजर न आवे।
सुरति रही मठ छाय देह तहाँ जाणि न पावे।

१- वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ११० ।

२- अ० वा०, पृ० ३०९ ।

"घरर घरर अनहद घहरावे।
परमज्योति दामणि भलकावे।
सुषुमणा नीर लूंब भा(?)डिलाए।
भीजत सुरति मगन होई जाई।
अर्ध ऊर्ध जहाँ कमल प्रकाशा।
सुरति भंवर होइ करत विलासा। --- वही, पृ० ३०७।

रामचरण वै देश में बहु परकाशे सूर ।
बिन रसना गुण गाइये बिनकर बाजै तूर ।"[१]

अपने ग्रंथ `जिज्ञास बोध` के पंचम प्रकरण में स्वामी जी उस आम स्थान में सुरति शब्द संयोग का दृश्य-वर्णन करते हैं --

"जागी ज्योति जात गुरु परस्यों, परस्यों संत आम पमाना वै ।
रसना बिना रामधुन लागी, जानै संत सुजाना वै ।
गगन मण्डल में बाजे अनहद सुणि नै लिनही काना वै ।
चरण बिना जहां नृत्य करत हैं देखत है कुल दाना वै ।
भांति भांति सुखदाई नाटक, प्रेम मगन गलताना वै ।
रीझ रमइया मौजां कीनी, जांमण मरण मिटाना वै ।"[२]

उस आम लोक के अनाहद नाद का अलौकिक स्वर संगम का एक चित्र `रेखता प्रचा की अंग` में स्वामी जी ने प्रस्तुत किया है --

"घोर अनहद की गगन गिरणाइया होत बहु सोर नहिं कहत आवै ।
झालरी बीण मरदंग सहनाइयां बांसुरी तान झुणकार लावै ।
भेरि नरसिंग करनाल बंक्या बज कै अरु उपंग गति करत न्यारी ।
एक इक नाद में राग नाना उठै मधुर स्वर मधुरस्वर करत भारी ।
मंजीरा मान घघकार धौंसा करै गिड़गिड़ी राय मां झांझ बाजै ।
रुण झुणूं रुणझुणूं नृत्य ज्यूं घुघरू घटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै।[३]

इसी प्रसंग में स्वामी जी कहते हैं कि संसार में ३६ रागों का वर्णन किया गया है पर संतजन गगन में `बेपरमाण अनहद` सुनते हैं --

"रामचरण संसार में, राग छतीस बखांण ।
संत सुनत है गिगन में, अनहद बेपरमाण ।"[४]

१- अ० वा०, पृ० १४१ ।

२- वही, पृ० ५४० ।

३- वही, पृ० ९९२-९३ ।

४- वही, पृ० १४ ।

उस चौथे देश की बात अतुलनीय है, मुख से उसका वर्णन संभव नहीं । प्रत्यूष-वेला के अरुणालोक सदृश उस आम देश का अवर्ण्य आलोक है । जहाँ अनहद गरजता रहता है, गगन भरता है, दामिनी चमकती है, वहीं सागर के तट पर हंस निवास करता है । हंस में सागर समा गया । खेल की यही समाप्ति है ।[१]

सुरति शब्द का संयोग बूंद और समुद्र का संयोग है । जैसे बूंद समुद्र में मिल जाती है, फिर उसे पकड़ा नहीं जा सकता वैसे ही जीव और ब्रह्म का मिलन अभिन्न है । स्वामी जी कहते हैं कि जब तक यह स्थिति न आ जाय, ध्यान नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि राम के बिना सारा ज्ञान ही फोकट है --

"जैसे बूंद मिली सायर में ।
कैसे पकड़ि सके कोई कर में ।
जीव ब्रह्म मिली भया समाना ।
ब्रह्म मिल्या कभी फेर न आना ।
एक वचन वश्यां बिना, मति कोइ छाड़ो ध्यान ।
रामचरण इकराम बिन, सबही फोकट ज्ञान ।"[२]

यही स्वामी रामचरण के सुरति शब्द योग की संक्षिप्त समीक्षा है । वैसे अपने विभिन्न ग्रंथों एवं फुटकर पदों में उन्होंने सुरति शब्द योग का वर्णन भी विभिन्न प्रतीकों द्वारा भी किया है ।

१- "या तो बात अतोल है भाई ।
मुख सूं कहा तोल तुवे जाई ।
... ...
रूप वर्ण कैसो लइ ताको ।
ऐसो कहा बखानों जाको ।
अनहद गरजै नभ भरै, दामिनि ज्योति उजास ।
रामचरण सुनि सायरां, हंसा करत निवास ।
सायर तट हंस बैठा जाई ।
सायर हंस में रह्या समाई ।" --- अ० धा०, पृ० २०७ ।

२- वही, पृ० २०८ ।

पारिभाषिक तथा अन्य प्रतीक योग मार्ग में प्रचलित पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग संत साहित्य में हुआ है। संत कवियों ने इन शब्दों को नाथों से ग्रहण किया था। स्वामी रामचरण की रचनाओं में उन सभी शब्दों का प्रयोग मिलता है। कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं जिनमें ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अन्य प्रतीकों में प्राकृतिक एवं पारिवारिक प्रतीक सम्मिलित हैं।

१- अ० वा०, पृ० १००१।
२- वही।

त्रिवेणी -- इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों का मिलनस्थल दोनों भौंहों के मध्य में स्थित है।

> "इंगला पिंगला सुखमणा मिले त्रिवेणी घाट।
> जहाँ न्हावै जल झूलि कै, निर्मल होय निराट।"[1]

त्रिकुटी -- भौंहों के मध्य का स्थान। इसे त्रिवेणी भी कहते हैं।

> "त्रिकुटी संगम किया स्नाना।
> जाइ चढ्या चौथे अस्थाना।"[2]

अनहदनाद -- योगियों की समाधि अवस्था में शरीर के भीतर सुनाई पड़ने वाली मधुर ध्वनि जिसमें संत डूबा रहता है --

> "अनहदनाद निशान नहिं आवे।
> भाँति भाँति के राग उपावे।"[3]

गगन -- शरीर के भीतर का आकाश जहाँ ज्योतिर्मय ब्रह्म का प्रकाश दीखता है। इसको 'शून्य' भी कहा जाता है --

> "अब त्रिवेणी न्हाइ के कीया गगन प्रवेश।
> तीन लोक सूं अलग सुख या औह चौथा देश।"[4]

हंस -- नव द्वार के पिंजड़े (शरीर) में बंद जीव ही हंस है।

> "सायर तट हंस बैठा जाई।
> सायर हंस में रह्या समाई।"[5]

भ्रमर -- मन, जीव के लिए भ्रमर का प्रतीक स्वामी जी ने अपनाया है।

> "भी है नारी मंगल गावै।
> तहं मन भंवरा अति सुख पावै।"[6]
> ... ...
> "जहाँ उठै अनंत कमल प्रकासा।
> सुरति भंवर होइ करत विलासा।"[7]

१- अ०वा०, पृ० २०७।
२- वही, पृ० २०६।
३- वही, पृ० २०६।
४- वही, पृ० २०७।
५- वही।
६- वही।
७- वही।

19:57

नाहत बाजत आपु ही आहत दैव बजाइ
'तानसेन' संगीत मत इन्ह के कहे सुभाइ

नाद अनाहत कौ सदाँ सुर-मुनि करैं जु ध्यान
गुरु उपदेसैं मुक्ति दैं ये जानौं परमान

वायु-अगिन संयोग तैं उपजत आहत नाद
'तानसेन' संगीत मत कह्यौ सुरन ब्रह्मादि

जिव टारत है चित्त कौं चित टारत है अग्नि
टारत अगिन जु वायु कौं ब्रह्म ग्रंथि सौं अग्नि

ततछन ऊरध कौं चलै ब्रह्म ग्रंथि की वायु
सुच्छम धुनि है नाभि की अंग मध्य पुष्टायु

होय पुष्ट जो सीस में कृत्यम बहु मुख आइ
पंच स्थानन फिरत है तानसेन मुख भाइ

कही जु उतपति नाद की सास्त्र रीति परमान
'तानसेन' संगीत मत जानौं चतुर सुजान

गीत वाद्य अरु नृत्य कौ कह्यौ आतमा नाद
'तानसेन' संगीत मत जामैं उपजत स्वाद

तीनौं मत बस नाद कौं कह्यौ सु मुनिन प्रमान
ताहि हिये महँ जानि निज मीयाँ सरस सुजान

नाड़ी ज्ञान - इड़ा पिंगला सुषमना तीनौं नाड़ी नाम

तानसेन

इड़ा पिंगला सुषमना तीनौं नाड़ी नाम
तानसेन संगीत मत जानौं आवैं काम

इंगला वायव्या कही दच्छिन पिंगला जान
मध्य रहत है सुषमना ब्रह्मा रंध्र लौं मान

ता ऊपर जो प्रान लौं चढ़ी रहत है नित
अध ऊरध कौं चलत है ज्यौं नटुवा रहै मित्त

द्वै अंगुल आधार पै अंगुल द्वै ही नीच
तप्त हेम के बरन सौ अंगुल द्वै ही बीच

सूक्ष्म सिखा जो अगिन की तहाँ रहत सो जान
ता ऊपर नव अँगुली चक्र रहत सो मान

तासौं अंगुल चार रहि ऊँचे देही कंध
ब्रह्म ग्रंथि ताकौं कहैं सुरपति सब निर्द्वन्द

नाम सुमिरु मन मुरुख अनारी।
छिन छिन आयू घटत जातु है, समुझि गहहु सत डोरि सँभारी॥
यह जीवन सुपने को लेखा, का भूलसि झूठी संसारी।
अंतकाल कोई काम न अइहै, मातु पिता सुत बंधू नारी॥
दिवस चारि को जगत सगाई, आखिर नाम सनेह करारी।
रसना 'सत्त नाम' रटि लावहु, उघरि जाइ तोरि कपट किवारी॥
नामकि डोरि पोढ़ि धरनी धरु, उलटि पवन चढ़ु गगन अटारी।
तहँ सत साहिब अलख रूप वै, जन दूलन करु दरस दिदारी॥

इश्क हकीकी का वर्णन करते हुए दूलनदासजी ने हल्लाज मंसूर, शम्सतबरेज, निजामुद्दीन सुलतान, हाफिज, मजनूँ तथा अपने गुरुदेव जगजीवन साहब का नाम लिया है। मजनूँ के संबंध में उनकी पंक्तियाँ बड़ी ही मर्मभरी हैं—

सुना है इश्क मजनूँ का लगी लैला की रहती झक।
जलाकर खाक तन कीना, हुए वह भी उसी माफिक॥

इनकी साधना की साध भी कितनी सुन्दर है—

ह्वै रस मगन पियौं भर प्याला माला नाम डोलैहौं।
कह दूलन सतसाईं जगजीवन पिउ मिलि प्यारी कहैहौं॥

पगडंडी भर्म की सबै ही दूर कर शब्द की राह सतगुरु लगाया ।
तीन विसराम लंघ पश्चिम की दिशा हो पिंड का जाय ब्रह्मंड पाया ॥
सुरति जहां संचरै ध्यान अजपा धरै बजे अनहद घनघोर बाजा ।
असंख शशि शूर की कला ले विराजे जहां एक निरंजन राम राजा ॥
गंग जहां मुक्ति की चलत हैं सुषमना ब्रह्म का जहां अस्नान होई ।
कहत संतदास उस पद निरबांण कूं उलट कर पहुँचिया सन्त कोई ॥
अगम ही पन्थ है एक निज शब्द का सो ही कर महर सतगुरु बताया ।
अगम की चौकियां तीन विसराम कर अगम के उलट आकाश आया ॥
अगम अनहद बाजा जहां बजत हैं अगम ही ज्योति का दरस पाया ।
अगम ही गंग जहां चलत है सुषमना ब्रह्म जाय अगम के घाट न्हाया ॥
संत कोई ध्यान धर अगम कूं पहूंच कर देख कर अगम की खबर लावे ।
कहत संतदास कोई अगम का महरमी अगम का शब्द कूं सोहीज पावे ॥

अन्थ भर्म तोड़ का कुछ अंश

कोई कोई पढ़ि हैं वेद पुराना । कोई कोई कथि हैं सीखत ग्याना ॥
कोई कोई ताल मृदंग बजावे । कोई कोई झीणे सुरपद गावे ॥
ऐ भी भजन नहीं रे भाई । फेर समाल राम ल्यो लाई ॥१॥
कोई कोई अड़सठ तीरथ न्हावे । कोई कोई जिग असमेध करावे । 197
कोई कोई देश दिशन्तर फिरि है । कोई कोई काशी करवत धरि हैं ॥
ऐ भी भजन नहीं रे भाई । फेर समाल राम ल्यो लाई ॥२॥
कोई कोई करि हैं नोली करमां । ए साधु का नांहि धरमां ॥
कोई कोई रिध सिध सेती लागा । भरम करम वा का नहीं भागा ॥
ऐ भी भजन नहीं रे भाई । फेर समाल राम ल्यो लाई ॥३॥
कोई कोई माघ मास बिच न्हावे । शीत मरे पुनि देह सतावे ॥
कोई कोई करि हैं बेला तेला । मुक्ति नहीं ये हांसी खेला ॥
ऐ भी भजन नहीं रे भाई । फेर समाल राम ल्यो लाई ॥४॥
कोई कोई कनफड़ा जोगी । वे सुखमण का नांही भोगी ॥
कोई कोई भस्म लगावे जटधारी । एक राम नाम बिन बाजी हारी ॥
ऐ भी भजन नहीं रे भाई । फेर समाल राम ल्यो लाई ॥५॥
कोई कोई कहिये दूधाधारी । राम भजन बिन उतरे नहीं पारी ॥
कोई कोई भोजन करत अलूंणा । यूं नहीं छूटे आवागमणां ॥
ऐ भी भजन नहीं रे भाई । फेर समाल राम ल्यो लाई ॥६॥

सुरत पहूंती संतदास, चौथा घर कूं जाय ।
अब तो निरभै होइ कर, रही राम ल्यौलाय ॥
सन्त सुरत की जीभ सूं, राम ही राम कहंत ।
बंक नाळ का सन्तदास, इम्रत रस पीवंत ॥
सुरति शब्द दोउ रमत है, त्रिकुटी के छाजे ।
सन्तदास अनहद का, जहां बाजा बाजे ॥
द्वारे दसवें सन्तदास, रहे निरंजण राय ।
सतगुरु का इक शब्द सूं, कीधा दरसण जाय ॥
सुरति चली असमान कूं, मिली शब्द सूं जाय ।
खुली सुषमणां सन्तदास, ता बिच रही समाय ॥
लंघकर तीन मुकाम कूं, चौथे पहुँता जाय ।
सन्तदास वा सन्त कूं, काळ कहां होइ खाय ॥
सुरति निरंजण सूं मिली, रही निरंजण होहि ।
आवागमन का सन्तदास, मिटिया धोखा मोहि ॥
सुरति पकड़ रही शब्द कूं, शब्द सुरति हि मांहि ।
अरस परस भया संतदास, अब कुछ अन्तर नांहि ॥
राम नाम सूं संतदास, उड गया भरम अनेक ।
नवलख तारा छुप गया, ऊगा सूरज एक ॥
पवन नहीं पाणी नहीं, नहीं धरण आकाश ।
संतदास उस देस में, पूरण ब्रह्म प्रकाश ॥
सुरत छांडि तिहुं लोक कूं, ब्रह्म लोक रही जाय ।
जहां अंजण नांहीं संतदास, रहत निरंजण राय ॥

हाड चाम दीसै नहीं, सुपम जोत की देह ।
संतदास उस राम सूं, सुरति मिली कर नेह ॥
प्रम पुरी बिच संतदास, सुरति रही घर छाय ।
जहां राम का राज है, जम का जोर न थाय ॥
मिलना था सो मिल रहा, सुरति शब्द को जोग ।
संतदास इस देह का, नहीं हरप नहीं सोग ॥
सुरति उलट कर संतदास, शुन बिच गई समाय ।
जाय पहुँची उस धाम कूं, जहां जन विरला जाय ॥
सुरति राधिका संतदास, शब्द गुरु का कान ।
शून्य मंडल बिच रहत है, देख भये हैरान ॥
पहुंता पहुंता एक मत, अण पहुंता मत और ।
अरहंट की घड़ संतदास, पडसी एकै ठौर ॥
धुर पहुंच्या फकरां तणी, शब्दां पारख होय ।
अगल बगल की संतदास, परख रखो मत कोय ॥

रेखता

ब्रह्माण्ड है। उसका कोई वार पार नहीं आता है। क्षण भर में सृष्टि की रचना करता है। अनेक तरह व अनेक प्रकार के रूप बना देता है। जिस दिन मिटाना चाहेगा उस दिन कुछ नहीं रहेगा। म:फ: है कि सब संता सुणो, परमात्मा सत है और सब साहिब की माया है। के: पद की प्राप्ति का ज्ञान ही केवल तत्त की सेवा है।

卐 हरजस पद राग जोग धनाश्री (१३) 卐

या जग में तो रे बंदा वे बडभागी, सतगुरु जका ही पिछाण्या बे।
केश बराबर अन्तर नांही, ज्यां निजमन कर जाण्या बे।। टेर।।
मेहेरी सेहेत तन मन धन कूं, ले गुरु चरणा आया बे।
वचन कहे सो सब सत माने, ज्यां गुरु धर्म पिछाण्या बे।। १।।
गंगा जमुना उलटी बेहे चाले, भांण पिछम कूं ऊगो बे।
तो पण मन चिले नहीं मासो, तब घट परचो पुगे बे।। २।।
अक बक प्रेम नेम सब छूटा, जग मरजाद न कांई बे।
गुरु कहे तो बेच्यो बिकणे लागे, तब शिष सांचे भाई बे।। ३।।
सतस्वरूप आनन्द पद कहिये, सोने ही माने कोई बे।
अेसो नेह गुरां सुं घुलियो, निमख न न्यारो होई बे।। ४।।
आया ऊठ खडो हुवे आगे, ऊठया के संग ऊठे बे।
छाडर नेम प्रेम ऊर उपजे, जब सब गांठया फूटे बे।। ५।।
जब गुरु देव सूज्या है साहेब, तब ऐसो अंग आवे बे।
सुण सुण ज्ञान नेम अे पकडे, से सब डरडा कवावे बे।। ६।।
कह सुखराम नेम तो सारा, जग मरजादा होई बे।
यां सुं तो सत साहिब नहीं रीजे, बोहत जन्म लग कोई बे।। ७।।

संसार में वही भाग्यशाली है जिन्होंने सतगुरु याने केवली भगवंतो के अणभै ग्यान की शरण में जाकर सतगुरु पद का ज्ञान धारण किया है यही पिछाणना है। सतगुरु का ज्ञान निज मन से उनके बताये माफिक धारण करना ही केश बराबर अंतर नहीं रखना है। आत्मा रूपी स्त्री के साथ तन, मन, धन से ज्ञान गुरुदेव की शरण ली है और उनके बताये माफिक ज्ञान धारण करने वालो ने ही गुरु धर्म को जाना है। गंगा जमुना ऊलटकर बहने लगे, सूर्य पिछम दिशा में उगने लगे तो भी संतो के प्रेम व उनके अणभै ज्ञान से जरा सा भी विचलित नहीं होता, तब घट में ज्ञान का प्रकाश होता है। केवली संतो के अणभै ग्यान से अक बक प्रेम होकर सब नियम व संसार की मर्यादा का डर नहीं रहता है। जो गुरु याने ग्यान कहता है तो निज मन से पूर्ण रूप से धारण करते है, यही बेचया बिकना है, तब वह शिष्य सच्चा है। सत सरूप आ: पद को ही मानता है। जो अणभै ग्यान कहता है वो ही सांस ऊसांस की विधि का ज्ञान धारण करता है। एक क्षण भी उससे अलग नहीं होता है, कंठ में सत शब्द के आने पर सुरता उठकर चेतन हो जाती है। सतशब्द के आगे बढने पर सूरता भी साथ साथ रहती है। सब नियमों को छोडकर सतशब्द से प्रेम करती है तब सब भरम रूपी गांठे फूटती है। ज्ञान गुरु को देखा तब परमात्मा में मिलने की समझ आई, ज्ञान सुण सुण कर बिना प्रेम

[२]

संतों ऐसी विधि भव तरिये ।
मन पवना दोइ थिर राखो राम ही राम उचरिये ॥टेर॥
अगल बगल का छाडि पसारा। ध्यान अखंडित धरिये ॥
पाइ समझ मिल्या गुरु पूरा इन पंचन कूं जरिये ॥१॥
सुरति सबद को सागो जोड़ो आसन अचलज करिये ॥
सास उसासां अरध उरध में ऐसी जुगति पकरिये ॥२॥

चहु को चटको खटको पटको झटको इनको धरिये ॥
भगवानदास सतगुरु के सरणे काहू हेत न लरिये ॥३॥

आरती

आरती देव निरंजन थारी ।
मैं सरणागति लेवो उबारी ॥
मेरी बुद्धि अलप है देवा, कहो कैसी विधि करिये सेवा । १॥
आदि न मध्य नहीं कोई अंता, वेद पुराण कहे सब संता ॥२॥
धू आकासां सेप पतालां, मध्य लोक सिव करत विचारां ॥३॥
सतगुरुजी के तन मन भायो, राम नाम भगवान हि गायो ॥४॥

श्री देवादासजी महाराज की अरणभै वाणी

स्तुति—कवित्त

नमो अखंडित राम नमो संत गुरु सुख दाता ।
नमो अनंत हि कोटि राम रस पीय पिलाता ।
जिनकी गहीज ओट रहो सिर सदा हमारू ।
अठ पहरयो मन मेल सुरति धरि निरति न टारूं ।
देवादास वंदन करै वारम्बार ज जोय ।
राम गुरु अरु संतजन हिरदै राखूं पोय ॥

राम रटत गुप्त रस चाखै, संत शब्दां में प्रगट भाखै ॥
प्रथम राम रसना सूं गावै, मन कूं पकड़ि एक ठर लावै ।
राखे सुरति शब्द ही माहीं, शब्द छांडि कहुं अन्त न जांहीं ॥
तब रसना शिर छूटै धारा, चलै अखंड नहिं खंडै लगारा ।
जल पीवन की श्रद्धा नांही, मति थो अमृत दूरि होइ जांहीं ॥
रस पीवत चुधा सब भागी, कंठां शब्द टगटगी लागी ।
नाडि नाडि में चलै गिलगिली, सुख धारा अति बहै सिलसिली ॥
मुख सूं कछु न उचरे बैना, लग्या कपाट खुलै नहीं नैना ।
श्रवणां चर्चा सुणैं न कोई, कंठ ध्यान यह लक्षण होई ॥
कंठ के ध्यान कँमकँमी जागै, रोम रोम सीतंग सो लागै ।
हियो गद् गदे श्वास न आवै, नैणा नीर प्रवाह चलावै ॥
एक दिवस इक भया तमासा, कण्ठ हृदा बिच उठ्यो हुलासा ।
ज्यूं पाळ की डोर न छूटी, हिरदे सीर सुखम रस ऊठी ॥
शब्द ब्रह्म हिरदै किया वासा, ज्यूं रैण अंधेरी चंद प्रकाशा ।
मर्म कर्म सांशो गयो भागी, हिरदै ध्वनी अखंड लिव लागी ॥

कहा कहूं या सुख की महिमा, और सुख सब दीशे पलमा ।
हिरदै ध्यान ध्वनी जब होई, दूजो साधन रहै न कोई ॥
हिरदा सूं लै धरणी गई, नाभि कमल में चेतन भई ।
शब्द गुंजार नाड़ि सब जागे, रोम रोम में होइ रही रागे ॥
नौसे नारी मंगल गावे, तहां मन भँवरा अति सुख पावे ।
शीतल भई सबै ही काया, शब्द ब्रह्मरस अमृत पाया ॥
अब तो शब्द गगन कूं चढ़िया, पछिम घाटि होईकै अनुसरिया ।
घाटी बीस मेरु की छेकी, इक बीसै गढ़ गया विशेखी ॥
पहली वैठा त्रिकुटी छाजे, जाके ऊपर अनहद बाजे ।
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया, निर्मल होय आगे कूं ध्याया ॥

इंगला पिंगला सुखुमणा, मिले त्रिवेणी घाट ।
जहां झामे जल झूलिके, निर्मल होय निराट ॥
अब त्रिवेणी न्हाइकै, कीया गगन प्रवेश ।
तीन लोक सूं अलध सुख, यो कोई चौथा देश ॥

अब चौथे घर पहुँता जाई, जहाँ का चहन मैं कहूं सुणाई ।
घरर घरर अनहद घररावे, परम ज्योति दामणि झलकावे ॥
सुषुमणा नीर लूंब झड़िलाई, भीजत सुरति गर्क होइ जाई ।
अधे ऊर्ध जहां कमल प्रकासा, सुरति भँवर होइ करत बिलासा ॥
घुरे अखण्ड अनाहद बाजा, प्राण पुरुष जहां तख्त बिराजा ।
झिलमिलि झिलिमिलि नूर प्रकासे, अनंत कोटि रवि प्रकट्या भास ॥
या तो बात अतौल है भाई, मुख सूं कहां तोल है जाई ।
पवन कहो कैसे गह हाथा, कैसे भरै गगन की बाथा ॥
रूप वर्ण कैसो तड़काको, ऐसो कहा बखानौं जाको ।
हाक बाक रहे कहत न आवै, पहुंच्या होइ सोही भल पावै ॥
अनहद गरजै नभ झरै, दामिनी ज्योति उजास ।
रामचरण सनि सायराँ, हंसा करत निवास ॥

215

[१]

रसना लिव्वसैं शब्द तब सरकिया कंठ कै ध्यान विश्वास पाया ।
इंगला पिंगला चलत दोउ एक रस कंठ हिरदा विचै ध्वनी लाया ॥
शब्द परकाश हिरदै भया परम सुख प्रेम का चांदणा तिमिर भागा ।
विरह की तप्ति शीतल भई पिवरूपी रोम ही रोम झड़ अधिक लागा ।
नाभि ही कमल जाइ शब्द फिर उलटिया मेरु कै दंड होइ गगन आया ।
पर्शि कै त्रिकुटी न्हाय तिरवेणि तट गगन का गोख परि जाय छाया ॥
तीन ही लोक सैं अलघ सुख देखिया सुरति अरु शब्द मिल करत केळा ।
राम ही चरण अब होय न्यारा नही अष्ट ही जाम नित रहत भेळा ॥

[२]

घोर अनहद की गगन गिरणाईया होत बहु सौर नहि कहत आव ।
झालरी बीण मरदंग सहनाईयां बांसुरी ताल झुणकार लावै ॥

भेरि रणसिंग करनाल वंक्या बजे चंग अरु उपंग गति करत न्यारी ।
एक इक नाद में राग नाना उठै मधुर स्वर मधुर स्वर चलत भारी ॥
मंजरी मान धधकार धोलक करै गिड़गिड़ी राय मोहोचंग बाजै ।
रुणझुणूं रुणझुणूं नृत्य ज्यूं घूघरू घंटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै ॥
रच्यो कोतूल अति काया अस्थूल में सुखमना नीर फुंव्वार बर्शै ।
परम ही जोति का चांदणा चहुं दिशा पुरुष भरपूर नहिं आन दर्शै ॥
पुरुष रंकार जहां सुरति मिलि सुंदरी सुन्य से महल विश्राम कीया ।
पूर्णानंद कूं पर्शि निर्भय भई पीव की सेझ सुख लूटि लीया ॥
अंग सूं अंग मिल संग छांडै नही सुणत जहां राग मस्ताक होई ।
राम ही चरण वे देश की सैंन कू महरमी संत बिन लखै न कोई ॥

कुण्डल्या

आनन्द उपज्यो जीव में, जब पिव सूं भई पिछांण ।
मुक्तराम सुख उर मांहि, तजि सगाई आंण ।।
दौड़ मिटी तन मन्न की, हटी कामना पीव ।
मुक्तराम पिव जोवतां, सुख पायो मो जीव ।।
पीव पधारया हे सखी, कैसे परसों ताइ ।
मुक्ता आनन्द ऊपज्यो, घर आंगन साहिब आइ ।।
काज सुधारण आविया, बर अविनासी सोइ ।
कन्या कुंवारी सुरति है, आया बरवा मोइ ।।
तोरण जोवे बीन्द कूं, सुरति कन्या यह जान ।
मुक्तराम आनन्द अति, कब परणूं भगवान ।।

कन्या कुंवारी सुरति यह, सतगुरु जानो बाप ।
ज्ञान मोड़ सिर बांधियो, कर महंदी सुमरण जाप ।।
सुमरण महंदी कर दई, पीठी पण परतीत ।
सील साच कर चूड़लो, उर चंवरी तन मन प्रीत ।।
भगवान पीव जब बर बरया, सरया मनोरथ काज ।
जन मुक्तराम पिव ले चल्या, बहुरि बजाया बाज ।।
बाजा बजै महल बिच, जां पतनी पीव परसंत ।
जन मुक्तराम सुन महल की, आगै बात कहंत ।।

21:43

Vo)) LTE1

राम राम रसना रट्या, मन में अधिक हुलास ।
कंठ हिरदा मधि होइ के, किया नाभि में बास ॥
नाभि कंवल सूं लांघिकर पिच्छम किया प्रकास ।
दसवें द्वारे मुक्तराम, जहां निरंजण बास ॥
ब्रह्म पद मिले मुक्तराम, सो वहुरिन जनमे आय ।
जैसे धूवां गिगन में, गिगन रूप होई जाय ॥
राम पीव जहां परसिया, सरया मनोरथ काम ।
मुक्तराम पिव सेज पर, सुष लूटे अठ जाम ॥
पिव परस्या आनन्द भया, सरया मनोरथ काम ।
सून्य सिखर का महल में, सुरति सवद सुख धाम ॥
सुरति गिगन का महल में, बर परस्या केवल राम ।
काम कलपना बुझि गई, सरया मनोरथ काम ॥
सुरति सुन्दरि मुक्तराम, राम सवद भरतार ।
गिगंन महल विच जाइकै, निज सुख लूंट्या सार ॥
पास निरंजन राम कै, जहां अखंडत जोत ।
मुक्तराम वा देस में, नहीं पाप पुन्य की छोत ॥
एक निरंजन रम रह्या, ऐसा अगम अगाध ।
मुक्तराम वा देस में, नहीं कोई बाद विवाद ॥
आंथै ऊगै सो नहीं, नहीं बादल छिप जाय ।
जन मुक्तराम वा ज्योति को, नास कदे नहीं थाय ॥
अमरापुर पद पहुंचिया, सुमरण लागा सोय ।
जन मुक्तराम संसार में, जनम धरै नहीं कोय ॥

सुरति सवद दोऊं मुक्तराम, हिल मिल खेले नित्त ।
जन्म मरण का दुःख मिट्या, कट्या चौरासी चत्त ॥
सुरति भँवर उलटाय कै, चली पिछम कूं आय ।
त्रिकुटी छाजै वैठकर, दसवें द्वारे थाय ॥
सील सिंगार तन ऊपरै, सुरति कन्या यह जान ।
चित्त चंवरी तन मन दिया, पति पायो भगवान ॥
राम बीन्द संग कर जुड़यो, फेरा सास उसास ।
मुक्ता वर प्रापति भयो, वैठी पिव के पास ॥
गुरु बाप दियो दायजो, सम दम साच संतोष ।
मुक्ता वैठी पीव संग, निस दिन करिहं जोष ॥
पीहर जाती दौडि जब, पिव सुख पायो नांहि ।
पिव सुख पायो मुक्तराम, अब नहीं पीहर कूं जांहि ॥
पीहर सोही मुक्तराम, लख चौरासी जूंण ।
सुरति रही अब सासरै, मिट गई आवागूंण ॥
पीहर तणूं मिट गयो, अब आवण जांण ।
मुक्तराम वर पाइयो, बर पाया भगवान ॥

21:36

तुनछी झूठो एक होय जहां नफो कुछ नांहि ।
परथम साचा साध होय सब लच्छ ताके मांय ॥

आरती

ऐसी आरती करो कोई ग्यानी, भरम तजो गहो सारंग पानी ।टेक।
प्रथम आरती रसना लीजै, राम राम रट इम्रत पीजे ॥१॥
दूसरी आरती हिरदै करिये, ध्यान अखंडित नहचल धरिये ॥२॥
तीसरी आरती नाभि उतारो, रूंम ही रूंम होत झुणकारो ॥३॥
चौथी आरती गिगन चढ़ावो, परस त्रिकुटी निज घर जावो ॥४॥
परम ज्योति जहां अनहद तूरा, मानूं अनन्तक ऊग्या सूरा ।५॥
सतगुरु जी सूं इण बिध पाई, तुलछीदास यह आरती गाई ॥६॥

श्री नवलरामजी की अणभै वाणी

साखी—गुरुदेव को अंग

अनंत कोटि जन सिर तपै, रामचरण उर मांहि ।
आन भरोसो आन बल, नवलराम कै नांहि ॥
काम निवारण कीजीये, लीजै नाम निधान ।
नवला नवला नेह करि, परम गुरू को ध्यान ॥
परम गुरु परमातमां, प्रगटै रामचरण ।
नवल नैन मन जोरि कर, रहिये सदा सरण ॥
सतगुरु के सरणै सदा, राम नाम का ध्यान ।
नवल महर संता तणी, वेगि उदय होय ग्यान ॥
ग्यान उदय होय पलक में, खलक खपन्ता जान ।
नवला सतगुरु धार सिर, जगसूं उलटी तान ॥
सास उसासां सुमरिये, अन्तर में इकसार ।
नवल सदा सरणै रहो, गुरु उतारै पार ॥
नवल करै या जीवकूं, सतगुरु सीव समान ।
पीव मिलावै पलक में, खलक दिसा सूं तान ॥

राम हि राम निज नाम रसना रट्या कट्या सब कर्म तन मन्न केरा।
द्वितीय ध्यान निज नाम कंठ में जागिया भागिया भरम सब झूठ फेरा॥

तृतीय ध्यान निज नाम हिरदै गयो भया जहाँ चांदणा तिमर न्हास्या।
चतुर्थ ही ध्यान उर नाभि मधि जाइके अष्ट ही कंवळ मन भंवर परस्या॥
भँवर जहाँ मन्न मस्तक अति होयके पिछम के घाट होई गिगन वैठा।
गिगन के गोप अरु जोप मोजां करै सुरति मन भँवर होई सेव सैठा॥
सुरति सबद मन भँवर होई परसिया दरसिया सुक्ख मिलि सीव सागो।
मुक्त ही राम नह काम होई सुरति संग राम वर परस के दुःख भागो॥
गंग जहां जमन अरु सुरसती मेल होई खोई है कर्म तन मन्न केरा।
त्रिवेणी न्हाइ के मन निरमल भया गया अव ब्रह्म घर किया डेरा॥
गिगन का गोप पर जोप मोजां करै धरै जहां ध्यान नहीं तार टूटे।
मुक्त ही राम नर काम मिलि ब्रह्म स्यूं सुख आनन्द नित सुरति लूटे॥

सवैया

(१)

नूर लह्यो परमातम को जब आतम ब्रह्म सबै दरसाया।
सूक्ष्म स्थूल सबै सचराचर व्यापक नूर निरञ्जण राया॥
ज्यूं रवि ज्योत प्रकाशक कुंभ में है घट मांहि ज्यूं दूरि रहाया।
दास मुकन्त कहै इम टेर के ब्रह्म को रूप अरूप समाया॥

(२)

राम निरंजन आप विराजत बाजत कोट अनंत जु वाजा।
कोट अनंत जहां सूर तपै जहां क्रोड तेतीस सिरै सिरजाता॥
कोटि अनंत जहां सन्त विराजत साधव ध्यान सदा सुख साजा।
दास मुकन्त मुकन्ति कूं पावत ध्यावत राम सरै सब काजा॥

सवैया विरह

पुष्प खरीदो हीरा देवो, निष्चय हाट लगाया।

मोहन कहत सुनो भाई साधो, घट पर साधन पाया रे।।

बाल्यकाल में ही मोहनजी को योग-साधना की शिक्षा मिल गई। योग साधना में उन्होंने कठिन से कठिन मुद्रा खेचरी, भूचरी, अगोचरी, चांचरी, उन्मुनी आदि का अभ्यास किया। योग साधना के सम्बन्ध में लिखते हैं -

मन मेरो मुद्रा को साधन कीजे, साधन कर सुख लीजे।

पहेली पहली मुद्रा खेचरी कहीजे, वी रो साधन कीजे।

शषि मणुल सूं अभरित बरसे जीव उलट कर पीजे।

मोहनजी ने 15 वर्ष की अवस्था में ही लिखना प्रारम्भ कर दिया था। उनके लेखन में योग के अतिरिक्त गीता का बहुत अधिक प्रभाव था। जो उनके उदाहरणों में यत्र-तत्र दिखाई देता है। जो श्लोक उन्हें कंठस्थ थे उनका उन्होंने लोकवाणी में अनुवाद भी कर दिया। उनका मत था कि - ''जीवन ही तो है गीता' ' । गीता के प्रत्येक शंका का समाधान कर देगी।

मोहनजी ने पद्य और गद्य दोनो लिखे, पर पद्यों की संख्या अधिक है। ये पद्य़ विभिन्न रागों पर आधारित थे। राग-रागिनियों को देखकर लगता है कि मोहनजी को संगीत का भरपूर ज्ञान था। इसी आधार पर अपने पद, सवैये, दोहे, छप्पय, कवित और रासो आदि लिखे

पंच शून्य[65] पंचवायु[66] सहस्रावस्था[67] नवचक्र[68] शौड़ष धार[69] पंच व्योम[70] आदि विषयों का विस्तृत एवं सुव्यवस्थित वर्णन प्राप्त होता है। नाथ पंथियों में योग साधना का प्रमुख स्थान रहा है। गोरक्ष नाथ के 'योगबीज' नामक ग्रन्थ में चार योगों की स्पष्ट एवं संक्षिप्त रूपरेखा मिलती है।

विवेच्य कवि महात्मा अक्षर अनन्य ने व्यावहारिक साधना की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए योग और ज्ञान दोनों को परस्पर एक दूसरे का पूरक माना है–

"जोग बिना लघु ग्यान है, ग्यान बिना लघु जोग।"[71]

योग से उनका तात्पर्य अष्टांग योग साधना से नहीं, प्रत्युत· प्रीति, प्रतीति, श्रद्धा एवं दृढ़ता युक्त व्यावहारिक साधन प्रक्रिया से रहा है। हठयोग साधना का उन्होंने कभी भी समर्थन नहीं किया तथा उसे कष्ट साध्य मानते हुए केवल दीर्घायु प्राप्त करने का साधन माना है। चौरासी आसनों को शारीरिक व्यायाम मानकर[72] अष्टांग योग को स्पष्ट शब्दों में अज्ञानियों द्वारा अनुसरणीय[73] छोटा योग[74] कहा गया है। वे केवल जीवात्मा और परमात्मा के मिलन को ही योग मानते हैं।[75]

(क) **"अरू आसनै चौरासी कही है। ते सब देह की कसरत माफिक है।"**

(ख) **"अरू हठयोग अग्यानिनि कौ कह्यौ है। वार्मे ईस्वर की प्रापति बड़ी कठिन सौ होति है।"**

(ग) **"सु या अष्टांग जोग सौ छोटो जो कहत है।"**

(घ) **"दो के मिलिबे कौ नाव जोग है। सु जीवात्मा परमात्मा कौ मिलिबौ जोग है।"**

---

65. सिद्ध सिद्धान्त पद्धति– 6/94
66. योग विषय श्लोक – 14
67. अमरौघ प्रबोध श्लोक सं०– 70
68. सिद्ध सिद्धान्त संग्रह– 2/1/12
69. सिद्ध सिद्धान्त संग्रह– 2/1/12
70. सिद्ध सिद्धान्त पद्धति। 2/20
71. ज्ञान योग। अक्षर अनन्य। 1–3
72. अष्टांग योग। अक्षर अनन्य। 1–3
73. अष्टांग योग। अक्षर अनन्य। 1–3
74. अष्टांग योग। अक्षर अनन्य। 1–3
75. अष्टांग योग। अक्षर अनन्य।

विधिनि के सिरै वेद विधि सी न और है।
गुननि के सिरै धर्म साधन महागुन है,
धर्मनि के सिरै सत्य भाषै सब ठौर है।
सिद्धिनि के सिरै ग्यान सिद्धि है 'अनन्य' भनै
सिद्धिनि असिद्धिनि की जानै भ्रम भौर है।
कर्मनि के सिरै भक्ति जोग हठ जोग जानि।
जोगनि के सिरै राज जोग सिर मौर है।"[79]

ज्ञान योग की साधना का उल्लेख करते हुए महात्मा अक्षर अनन्य ने राग–वैराग्य, पाप–पुण्य सभी के प्रति समभाव रखने का निर्देश दिया है। मन पर नियन्त्रण रखना ही मूल बंध है। ईश्वर का निरन्तर ध्यान ही त्राटक है, चित्त वृत्तियों का अवरोध ही आसन है। दुविधा में न पड़े रहना ही संयम नियम है, गुरू शब्द का स्मरण ही धारणा है। मन में चेतन स्वरूप की आराधना ही ध्यान है तथा समस्त विषय वासनाओं से चित्त को हटाकर चित् स्वरूप में रमण करना ही ज्ञान योग की सहज समाधि है–

"मूल तत्व मन बांधि यहै मूलवधि करि,
सुरति के त्राटक सौ सुमिरन साथि है।
चित्त ही कौ अस्थिरता आसन असीन सदा,
संजम नियम बुद्धि दुविधा न बांधिये।
गुरू के सबद ही कौ धारना अधार धरि,
चेतन सरूप ध्यान मनसा अराधिये।
'अक्षर अनन्य आठो अंग लवलीन दसा,
यहै ग्यान जोग सिर सहज समाधि हैं। 1/21[80]

79. अक्षर अनन्य के चिट्ठा। 2/5
80. ज्ञान योग। अक्षर अनन्य। 1/21

पलटू साहब की वाणी में यौगिक शब्दावली का प्रयोग तो दिखाई देता है, किन्तु उसके निर्वाह और गाम्भीर्य की ओर कोई ध्यान नहीं लक्षित होता है। पलटू साहब ने अपने पद में केवल 'अनाहद' शब्द 'चन्द्रा' और 'भान' 'अधोमुख 'सेतध्वजा आदि पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है।[241] इसका क्रम देखने में उल्टा प्रतीत होता है। इसका कारण यह है कि इसके अन्तर्गत साधना का वर्णन न होकर अनुभव का वर्णन किया गया है।

परसाद साहब की वाणी में भी सहज समाधि की चर्चा की गई है। यथा–

इड़ा औ पिंगला कमल दल सोधिकै, बंक के नाल चढ़ाई देना।
× × × × ×
दास परसाद तब सहज समाधि ह्वै, आपु में को देखि लेना।।[242]

साँईदाता सम्प्रदाय के प्रमुख सन्त मोहनशाह का योगी, योग की तकनीकी तौर पर कोई जानकारी नहीं रखता।[243] वह ध्यान की धूनी लगाता है, भाग्य का भस्म रमाता है। उसके हाथ कर्म के कमंडल और शर्म के सँड़से से सुशोभित रहते हैं। वह, आत्मतत्त्व की चिनगारी से परम ज्योति प्रज्ज्वलित कर, अमरत्व की प्राप्ति करने में पूर्णतः सक्षम है।[244] इनकी साधना में योग का सन्निवेश उस समय होता है। जब साधक नाम–जप की क्रिया को श्वांस–प्रश्वांस से जोड़ लेता है अजपा जाप का

प्रारम्भ हो जाता है। अजपा जाप की स्थिति में शब्द, इड़ा–पिंगला नाड़ियों से चालित स्थूल प्राण वायु के माध्यम से त्रिकुटी पर पहुँचता है, जहाँ उसका सम्बन्ध सुषुम्ना नाड़ी से हो जाता है। सुषुम्ना में सूक्ष्म प्राणवायु का संचार होता है। शब्द को त्रिकुटी पर ले जाने का कार्य ध्यान द्वारा सम्पन्न होता है। अन्य योग साधकों की भाँति मोहनशाह ने भी त्रिकुटी को त्रिवेणी की संज्ञा दी है और इसे इड़ा (गंगा), पिंगला (यमुना) और सुषुम्ना (सरस्वती) का संगम स्थान बताया है।[245] पृथ्वीशाह ने भी अजपा, अनहद, इंगला–पिंगला, अष्टकमल आदि की चर्चा की है।[246] मोहनशाह ने इसे 'सुखमनि सर' की संज्ञा देते हुए उसका बड़ा ही जीवन्त वर्णन किया है–

सजनी सुखमनि सर बिन नीर।
अमृत बुन्द झरै निसिवासर, पियत हरै सब पीर।
अधरै अगम घटा दुति–चमकत, गरजत गगन गंभीर।
अगम झकोर झुकुरि झरि लागी, भीजत बिरल फकीर।।[247]

इस सम्प्रदाय के सन्तों का अभिमत है कि उक्त 'सुखमनिसर' अथवा इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के संगम में स्नान करने से साधक कल्मष मुक्त हो जाता है।[248] इसकी चित्तवृत्ति ऊर्ध्वमुख होकर सहस्रार–रूपी गगन–किले में पहुँच जाती है, जहाँ वह अनहद नाद का श्रवण और परम ज्योति का दर्शन करता है।[249] अनाहद नाद के लिए मोहनशाह ने 'वंशी ध्वनि' जैसे प्रतीक का प्रयोग भी किया है। ''बलम कर बंगला बना अजायब'[250] सहस्रार पर स्थित प्रियतम के बंगले का दर्शन करते हुए उसे ऐश्वर्य से मण्डित बनाया है। उस बंगले में प्रियतम की सेज से झलमल आभा फूटती रहती है।[251] इसी स्थान पर साधक रूपी प्रिय को परमप्रियतम का समागम–सुख लाभ होता है।[252] इस बिन्दु पर पहुँचकर सन्तों का योग परम प्रेमरूपा भक्ति में पर्यावसित हो जाता है।

16:35

"संतो गुरु - गम लहे सो ज्ञानी ।
अंतर प्रेम उजागर अनभे जाकी निश्चल बाती ॥
चंचल मारी निश्चल होई बेठा, निरमळ होई समाधि ।
शील संतोष रहे समधारण, वस्तु अगोचर लाधी ॥
नाभी बेठ गगन घर जावे, आठ पहोर आनंद ।
चले पाधरे पश्चिम मारग, मीलावे सुरज चंदा ॥
शशी, सुरमे सुर शशी में, अण सारे उलटावे ।
निरखे पल पल नुर निरन्तर, अनहद नाद बजावे ॥
रहे अडोला बोले अबोला, जाण पणा जल जाई ।
कहे रवि राम विरला संसारा, उलटा कालकुं खाई ॥"[70]

रविसाहब कृत दोहे के अंगों में गुरु महिमा विषयक अंग इस प्रकार हैं ....

(1) गुरु महात्म्य को अंग

(2) श्री गुरुदेव को अंग

(3) अथश्री गुरु विमुख को अंग

(4) अथ गुरु पारख को अंग

(5) सुगरा को अंग

(6) नुगरा को अंग

रविगीता तथा भाणगीता में भी उनकी गुरु भक्ति की निर्झरिणी प्रवाहित होकर गाती है ....

"तारा मन पवन ने वारो, बोले छे मांही अेकतारो - अेकतारा ॥"

में ....

"नूरत सुरत की सीडी रची है, मांही हेरे हेरण हारो ।
ओहं सोहं सब घट रमीआ, मांही भभकु दीअे तेने भालो ॥"[17]

यहाँ तन के भीतर ही पिंड में ब्रह्म की झाँकी करवाते हैं तथा प्राणायाम और योग के द्वारा ब्रह्मानुभूति का उल्लेख करते हैं । इसी स्वर में अन्यत्र भी कहते हैं; यथा ....

"कोई रहंदा रे उन्मुनी मुद्रा मांही
खमीया खलका संतोष टोपी, बंफीकराई ककीरा
शेली सहेज आडबंध अनभे शील लंगोट सधीरा
करण कुडी धीरज धोका, पात्र प्रेम का पासा
नेपुर करवा फुल फकीरी, करे हार फुलवासा
रहे गरकाव गुरुगम जागे, आठ पहोर अलमस्ता
ताळी लागी तार न तुटे, आनंद ही घर वसता
उलटी नाडी चढी खुमारी, उलटी चलही आशा
सुलटा दमकु जो उलटावे, देखे तंत तमासा
फना हुवा सो अदल फकीरा, कला न जाणे करता,
रविराम सत भाण प्रतापे, नहिं जीवत नहीं मरता ॥"[18]

यहाँ सुषुम्णा द्वारा कुंडलिनी के उर्ध्वीकरण से उत्पन्न ब्रह्मानंद का वर्णन है जो सामान्यतः सिद्ध साधक का अनुभूत है ।

दूसरी दशा में मन बाह्य विषयों का परित्याग कर एकाग्र हो कर अन्तर्मुखी हो जाता है। तब जाकर बाह्य विषयों का प्रभाव साधक के मन पर नहीं पड़ता जिसे वह एकाग्रचित्त होकर ईश्वरीय साधना के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसके संबंध में कबीर का मानना है कि :

एक जु दोसत हम किया, जिस गलि लाल कवाइ।
सब जग धोबी धोइ मरै, तौ भी रंग न जाइ।। [1]

कबीर के मन की तीसरी दशा विलय की है जो समाधि दशा भी कहा जाता है। इस दशा में मन आत्मा में लीन होकर आत्म–स्वरूप बन जाता है। समाधि की दशा में साधक के मन की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कबीर ने लिखा है कि –

मनवां तो अधर बस्या,बहुतक झीणां होइ।
आलोक सचु पाइया कबहूँ न न्यारा सोइया।। [2]

नामदेव ने अपने पद में योग साधना प्रक्रिया का जिक्र किया है। उन्होंने वेद पुराण और शास्त्रों के प्रति नाथ पंथियों की भाँति उपेक्षा भावना दिखाकर अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनहद नाद का व्यष्टि रूप में नाद, श्रवण, इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों नाड़ियों का प्राणायाम द्वारा नियंत्रित करना, चन्द्र–सूर्य को सम करना, ब्रह्म ज्योति से मिलना, शून्य में विलीन होना आदि का उल्लेख किया है। अपनी योग साधना का परिचय उन्होंने इस प्रकार दिया है कि :

वेद पुराण सासन्न अनंता गीत कवित्त न गांवऊँगी।
अखंड मंडल निरंकार महिं, अनहद नाड बजाऊँगी।
बैरागी रामहि गावऊँगी।
सबदि अतीत अनाहद राता आकुल कै धपखाऊँगी।
इड़ा पिंगला अठरु सुषुमनां, पऊनै बांधि रहाऊँगी।।
चंद सूरज दुइ सम करि राखऊ ब्रह्म जोति मिलि जाऊँगी।
नामा कहै चित हरिसिऊर, राता सुन्नहि सुन्नू समाऊँगी।। [3]

[1] कबीर ग्रंथावली/पृसं0 70
[2] . कबीर ग्रंथावली/पृस. 70
[3] हिन्दी की मराठी संतों की देन / आचार्य विनय मोहन शर्मा/ पृ. सं. 252

16:50

साधो भाई सतगुरु खेल दिखाया।
अखे मंडल प्रकाश अखंड़ी वाका दरशन पाया ॥ टेर ॥
खींचा पवन मूल कस करके नाभ मंडल गरनाया।
नागन जाग भई उलटे मुख सूर चक्र दरसाया ॥ 1 ॥
शब्द टकर दे पेठ सुखमण घर बंकनाल थरराया।
मेरुदल छेद गमन कर गगना त्रिवेनी तट न्हाया ॥ 2 ॥[1]

सतगुरु द्वारा बताए ज्ञान के अनुसरण से प्राणायाम द्वारा कसकर सांस खींचाने से नाभि मंडल कम्पायमान होकर मूलाधार चक्र से श्वास रीढ़ खम्भ में जाग्रत होकर ब्रह्मरंध्र में और फिर सुषुम्ना में जाने से बंकनाल (रीढ़ खंभ) कम्पायमान होता है और फिर गगन मंडल (मस्तिष्क), जहां आज्ञा चक्र है, वहां पहुंचने पर समाधि की स्थिति आती है।

कर बन्ध मूल उडियान जलंघर आसण अचल जमावे।
खेचरी भूचरी चाचरि उनमनि अगोचरि उलटावे ॥ 1 ॥[2]

साधना में साधक अचल आसन जमा कर त्रिबन्ध अर्थात उडियन, जलंधर और मूलबन्ध को साध कर गुरु उपदेश से ध्यान करें और खेचरी, जो तंत्रोक्तमुद्रा है, भूचरी जो समाधि मुद्रा है, फिर चाचरी मुद्रा, जिससे महातेज प्राप्त होता है, उनमुनी जो मौन ध्यानावस्था मुद्रा है और फिर अगोचरी मुद्रा भंवर गुफा, जो विषयों से परे है, में ससंयम ध्यान करें तो सतस्वरूप परमात्मा के दर्शन पावे। ऐसे साधक की आत्मा पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त हो, परमात्मा में ही समाहित हो जाती है। अस सम्बंध में संत ज्ञानस्वरूप और कहते हैं:

निगम निसान स्वास सरंगी तंत के तार बजावे।
पलटे पवन पछिम दिशि धूमर दस में रास रचावे।
नूर हजूर दिखावे ॥ 2 ॥[3]

साधक गुरु द्वारा बताये वेद शास्त्रों के तत्त्व का ज्ञान के अनुरूप प्राणायाम विधि से मूलाधार से कुंडली जागरण करके श्वास प्रश्वास द्वारा मेरूदण्ड छेद बंकनाल से होकर सुषुम्ना के द्वार पर आज्ञाचक्र के बाद ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करके दसवें में पहुंचे वहीं ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं। उपर्युक्त बातों को संत ज्ञानस्वरूप ने इस प्रकार भी कही है:

मूल कमल से पवना पलटो नाम निहार के चल नभ उलटा।
बंक होय मेरू ढायके खोल किंवारा ॥ 1 ॥
बेगम भोम की घाटी सकड़ी शब्द सांद चढ़ो तार ज्यूँ मकड़ी।
जोत त्रिवेणी में झिलमिले रवि शशि तारा ॥ 2 ॥[4]

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 94
2 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 7
3 — — — वही — — — पृ. 117
4 — — — वही — — — पृ. 161

वंद मुद्रा जीत पांच पचीस गह नकेल रे।
बिन जिव्ह अजपा जाप जप कर अखे घर की सैर रे ॥ 4 ॥ [4]

1 चितारा डॉ. गोपीकिशन– रामस्नेही संतकवि दयालदास और उनका काव्य, रामधाम खेडापा, पूर्वोक्त पृ. 159
2 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 137
3 – – – वही – – – पृ. 149
4 – – – वही – – – पृ. 160

साधक पांच तत्त्व, पच्चीस प्रकृतियों को नियंत्रित करके, निरन्तर बिना जिव्हा, बिना ध्वनि के अजपाजाप करेगा तो अक्षयधाम पहुंच जाएगा, सत स्वरूप में आत्मलीन हो जावेगा। वे और कहते हैं:

अजपा जपे तार नहीं टूटे, बंक नाल बिच तोबां छूटे।
पलटे पवन पिछम को मोड़े, मेरू किला कोई शूरा तोड़े ॥ 3 ॥ [1]

शरीर में अनवरत अजपाजाप होता रहने पर ऐसा लगता है जैसे रीढ़ खम्भ में तोप जैसी गर्जना हो रही हो। सांसारिक मोह माया से जकड़े मजबूत किले को कोई शूरवीर संत ही भेद सकता है।

पांच पच्चीसूं रोक भीतर सुरत शब्दों जोड़ले।
बिन जिव्हा अजपा जाप जप निगे निरंजन आयगा ॥ 3 ॥ [2]

हे मनुष्य तूं पांच तत्त्व और उनकी पच्चीस प्रकृतियों पर नियन्त्रण करके अपने भीतर शब्द सुरति को जोड़ कर सतस्वरूप परमात्मा का निरंतर अजपाजाप कर जिससे तेरे भीतर अज्ञान मिटकर ज्ञान का प्रकाश होगा, समस्त भ्रमजाल मिट जावेगा और परमात्मा के दर्शन हो जावेंगे।

अजपा जपे अंग नहिं धूजे, खुले कपाट भंवार दल गूंजे।
झिल मिल जोत अखंड जहां सूझे, त्रिगुण ताप नशावेगा ॥ 3 ॥ [3]

अजपाजाप की स्थिति में पहुंचने पर शरीर का कोई अंग हिलता नहीं निरन्तर जाप से तीनों ताप नष्ट हो जाते हैं, अखण्ड दिव्य ज्योति के दर्शन होते हैं।

कर पुरुषार्थ मेट वासना, लगा लगन उर धर ध्याना।
जप अजपा जप ताप नशाना, दरश देव दिखलावे ॥ 3 ॥ [4]

हे मनुष्य सद्कर्म कर, विषय वासनाओं से मुक्त होकर ह्रदय में ध्यान लगा कर परमात्मा का अजपाजाप निरंतर कर इससे तेरे पाप दोष मिट जावेंगे। संत जन अजपाजाप के लिए 'राम' नाम के जप का उपदेश देते रहे।

इस प्रकार संत ज्ञानस्वरूप ने मन्त्र योग, नाम स्मरण या अजपाजाप, अष्टांगिक योग का महत्त्व स्वीकारते हुए अपने अनुयायियों को विषय–वासनाएं छोड़, अपने मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर, सद्कर्म करते हुए परमात्मा के प्रति अपने ह्रदय में पूर्ण विश्वास सहित अजपाजप करने का आदेश दिया ताकि उसके सभी कष्ट दूर होकर उसका कल्याण अर्थात मोक्ष हो सके।

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 163
2 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 180
3 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 192
4 – – – वही – – – पृ. सं. 214

हे जिज्ञासुओं! अंतरात्मा में जीव जगत से रहित निर्गुणब्रह्म का नाम स्मरण करने, जप करते रहने, निराकार परमात्मा की आराधना करने से अजपाजाप अर्थात बिना विशेष यत्न के ईश्वरनाम का अनवरत जप होते रहने की स्थिति प्राप्त हो जाती है। सुरति शब्दयोग प्राप्ति की स्थिति का वर्णन करते हुए ज्ञानस्वरूप जी और कहते हैं:

शंख शब्द बजे अनहद नादा, विनय की बीन ढोलक धुन गाहेरी ॥ 2 ॥
पांच पचीस मिल मंगल गावे, सुरत सिखर गढ़ चढ़ गई मेरी ॥ 3 ॥ [1]

सुरति की स्थिति साधक की योग साधना की चरम अवस्था है। ध्यान की इस अवस्था में साधक को शंखों की ध्वनियां, ढोलक की धुन, मृदंग की तान की असीम ध्वनि सुनाई देती है। साधक में अहंकार समाप्त होकर विनम्रता आ जाती है। सुरति के शिखर अर्थात ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचने पर पांचों तत्त्व– पृथ्वी, आकाश, अग्नि, जल और वायु जिन्हें पंचभूत भी कहा जाता है, तथा उनकी 25 प्रकृतियाँ [2] सतोगुणी हो जाती हैं साधक परमानन्द को प्राप्त कर लेता है। संत ज्ञानस्वरूप ने शब्द सुरति को इस प्रकार प्रयुक्त किया है:

हेली ए पाँच पचीस तीन षट गहो दम की दौड़ निवार।
हेली ए सुरत शब्द बांधे मोरचा पावे देव दीदार ॥ 1 ॥ [3]

हेली अर्थात सुरति, वृति, साथिन, सुरता, सइयों सहेली, सखी! (आत्मा) पांच तत्त्व और उनकी पच्चीस प्रकृतियों तथा काम क्रोध, मद को वश में करके ध्यान करने से प्रभु के दर्शन (आत्मा का परमात्मा में मिलन) होगा।

सुखमन सेरी प्राण पियागे, सुरता चढ़ी शब्द के सागे।
चमके कला कमल में आगे, काल क्रोध भव बन्धन भागे ॥ 2 ॥ [4]

सुषमना की सेरी से सुरति ध्यान के द्वारा शब्द ज्ञान के साथ ऊपर चढ़ी जहाँ सहस्रार कमल में आगे झिलमिल प्रकाश है उसके प्रभाव से काम, क्रोधादि सभी भवबन्धन नष्ट हो जाते हैं। संत ज्ञानस्वरूप ने और कहा है:

चौखट अष्ट द्वादस सोले, छेद चक्र सब अघट पट खोले।
सुरत निरत मिल बांधे बेला, जीव शीव का जहां होवे मेला ॥ 7 ॥ [5]

चारों खूंट, अष्टचक्र, दस इन्द्रियां तथा मन, बुद्धि से एकाग्र होकर ध्यान करने से हृदय के बंद द्वार खुल गये जहाँ पर सुखी मन– निरति आत्मलीन होकर परमात्मा

---

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 119

2 संत ज्ञानस्वरूप ने आत्मज्ञान भास्कर में पृ. 457 पर 5 तत्वों की पच्चीस प्रकृतियॉ इस प्रकार लिखि:
IIfeh– *अस्थि, मांस, त्वचा, नाड़ी, रोम;* ***vkdK'k*** *काम, क्रोध, शोक, मोह, भय;*
vfXu– *क्षुधा, तृषा, निद्रा, क्रान्ति, आलस्य;* ***ty***– *शुक्र, रक्त, लार, मूत्र, स्वेद;*
ok;q– *चलन, वलन, धावन, प्रसारण, आकूचन*

3 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 129

4 – – – वही – – – पृ. 163

5 – – – वही – – – पृ. 163

मिलन रह पिया का संग में आवागमन मिटीजै ।

लक्ष्मी सखी के सुन्दर पियाका प्यारा आप से मिले ।।

-अमरलोदी-36/

2. राम रसायन पिये लेकर तीन लोक मौजेरिया। - वही,

संत कवि ब्रह्मचारी बुधीगीदास:-

रसना अमृत में रस पीजै ।। 1 ।।

पवन तन मह मेह नीरजाना, सीधा मधन ना हीजै ।

सुखमन मार्ग उर्ध को जाना त्रिकुटी पार के कीजै ।।

सुधामृत रस पी के मतवार, निश्चित अंग रस पीजै।

उर्द्ध भाव तन भाव उतारी, मोद मगन जो दीजै ।

सूरा सो सुरत मधुप सामोकी, सत्य पुरुष पद कीजै ।

पावे परम तत्व के गोदां, सागर में बुन्द हु मीजे ।

बुधोनी गुरु गुण कम ..., परमामृत मोद पीजै। -आत्म

संतकवि ब्रह्मचारी जी के काव्य में अमृत का तात्पर्य सहस्रदल कमल नाड़ी द्वारा निरन्तर द्रवित वह तत्व जिसको साधक खेचरी मुद्रा प मुद्रा द्वारा प्राप्त कर शारीरिक ऊर्जा उपजाते है अथवा परमात्मा द्वारा साधना के चरमोत्कर्ष की स्थिति में रसास्वादन करते है।

अतः अमृत का तात्पर्य सहस्र इड़ा नाड़ी द्वारा निरन्तर द्रवित वह तत्व है जो साधना के चरम शारीरिक ऊर्जावृद्धि हेतु रसास्वादित किया जाता है।

आत्मा:-

"आत्मा" शब्द, अत् धातु ज्ञान, मोक्ष, गमन और प्राप्ति होता है से बना है। अर्थात् अत- जो ज्ञान का साधन और माध्यम भी है जो मोक्ष को प्राप्त करने

5. सबते संत मार्ग निराला ।। 10।।

ऊ-मुन-ऊ-सारता छवे, तिन रस्य तिन काला।

तिन नारी के प्रानतिन हैं, सुरेम सुमे निहाला।।

इड़ा पिंगला सुषमा नाड़ी हैं, सुर नाते प्रतीपाला।

सुषम नारी ये भेद गुरु दै, तम से सुम सुजाना।।

– स्वात्मबोध 9वीं कॉपी, 213/111

संत कवि ब्रह्मचारी जी के पारिभाषिक शब्दों का विश्लेषण:– संत कवि ब्रह्मचारी सुयोगी दास के कि कतिपय पदों में पारिभाषिक शब्दावलियाँ दृष्टिगत होती है। यथा—

1. ।। सतगुरु की आरती ।।

आरती कीजै सतगुरु देवाइ, संत के संत जीव पाइहो ।

प्रथम आरती साधुचरनन के, मनसाय लीरमाइ हो।।

13. मूलाधार से आरम सोधीत, छ-चक्र सुरती जमाइ हो ।

गंग यमुन बिच सर्पुन संगम, अपार पार होइ जाइ हो।।

8 वें महल तत तत्व निरेखत, पीपद सुरती लगाइ हो।

उर्ध उड़ान कुट कुन्टी अगम है, दुम दुर्गिन पहुचाइ हो ।।

तापर मती गती संत के मारग, सब आरत बतलाइ हो ।

राम हुं पुष इमर पद साइत, पाइ सुयोगी ये अपाइ हो।

योगीये दास ब्रह्मचारी को बताइ, सोहम माला पहीराइ हो।

आरती कर गाइ सुदीप दीवाइ, उसी त प्रभु पद वाइ हो ।।

दोहा – सतन कौतुक पीत रंग, देखो दीनदुरन।

देता पद जो पान कर, चोंका सुरी दरसन।।

– स्वात्मबोध 6वीं कॉपी, पृ0-163

2. कैलास षट्चक्र के उपर, शुन्य तत्व पद पावे हो।

सुषमन मध्यमार्ग होइ सीधे, अगम दुर्ग दुर पावे हो ।

सबी मीले तो ज्ञान होयत, गगन उदय बतलावे त हो।।

... × × × ...

दीना गुरु से तो ज्ञान होये नहीं, चौ-न-इजारोनहीं पावे हो ।

सुयोगीये ये ज्ञान सुनहुन, पीतान समझ नगाले हो ।।

– स्वात्मबोध, 10वीं कॉपी-1/1

3. सुल्ली ज्ञानी ये बतावे ।। । ।। 8 ।।

पपातल की भेद्गीमुद्रा निधिनी होइ जावे ।।

आपे आप होवे सुमन्ता शब्द सुरत पहिचाने । –विज्ञान पर्व–

उक्त पदों में संत, मूलाधार, 6 चक्र, शब्द, सुरत, कैलाश, मध्यमार्ग, भेचरीमुद्रा आदि शब्दों के पारिभाषिक विवेचन करने पर ही कथ्य का निष्कर्ष हस्तामलकवत् हो सकता है। अतः संत कवि ब्रह्मचारी जी के कतिपय प्रमुख पारिभाषिक शब्दों के अध्ययन विश्लेषण का प्रयास वर्णक्रमानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है। ऐसे शब्दों के पीछे परम्परया विशेषक प्रकार के मन्तव्यों का जुड़ जाना ही एक ऐसा कारण नहीं है जिस

14. से ये शब्द पारिभाषिक बन गये। संतों ने स्वयं अनुभूति पर अनेक शब्दों के पारिभाषिक

5. लखौ तौ मार्ग निराला ।। टेक।।
अ-उ-म-मात्रा छाड़े, तिन रूप तिन काला।
तिन नारी के अगोचर है, पुरुष तुरे निराला।।
छहु चिन्ता चुन्या नाड़ी है, पुर ताके प्रतिपाला।
छाय नाही ये केह पुर है, तन है पुर पुराना।।

– स्वात्मबोध पूर्ण पोथी,213/111

संत कवि झूमदासी जी के पारिभाषिक शब्दों का विवेचन– संत कवि झूमदासी जी द्वारा के प्रिय कतिपय पदों में पारिभाषिक शब्दावलियाँ दृष्टिगत होती हैं। यथा—

1. ।। साईं की आरती ।।
आरती कीजै साईं दोहाइ,संत के हेत जीव पाइहो ।
प्रथम आरती ताकुलचरन के, कनकपद तीरनाइ हो।।
13. मूलाधार से मारग लोजीए, छ-पंथु पुरती बनाइ हो ।

मैन पहुन चित सर्गुन सेवा, अपार पार होइ जाइ हो।।
6 हैं महल तत तत्त्व निरेखहु, दीपक पुरती लगाइ हो।
उर्ध उहरन इड़ पुरती अमन है, पुन धुनि बहुताइ हो ।।
तापन माहीं माहिं संत के मारग, सब तारक बताइ हो ।
राम हैं पुर उमर का ताहरु, धाइ तुलोनी पे उपाइ हो।
मोखीये दास झूमदासी की बताइ, सोहन माला पहिराइ हो।
आरती सब नाथ कुलदीप दीजाइ, ओर न अंग पर जाइ हो ।।
दोहा – नाम अंकुश पीत रंग, देखी दीपपुंज।
सेवा का जो नाम कह, करिया तुली दरसन।।

– स्वात्मबोध पूर्ण पोथी, पृ0-163

2. कैलाश पर्वत के ऊपर, पुरुष तत्त्व नर पावे हो।
सुखमन मध्यमार्ग होइ गीर्हें, उपर हूँ पुर चावे हो ।
तहाँ जीवे तो प्रान होया, आगम अगम बताये न हो।।
... × × × ...
दीनार पुर ये तो प्रान होवे नाहीं, तीन-4-करोरिनहीं पावे हो ।
तुलोचीये ये प्रान पुरुष, दीपक तन्य बनावे हो ।।

– स्वात्मबोध, पूर्ण पोथी–1/1

3. पुरुषी उपजी ये बताये ।। । ।। टे. ।।
पचतत्त की बेबड़ीमुद्रा सिधि होइ जावे ।।
अवे आप होवे पुकारा अनन्द पुरत पहिचाने । –विहाग पदें–

उक्त पदों में संत, मूलाधार, छ पंथु, तत्त्व, पुरत, कैलाश, मध्यमार्ग, बेबड़ीमुद्रा आदि शब्दों के पारिभाषिक विवेचन करने पर ही कथ्य का निष्कर्ष सरलतापूर्वक हो सकता है। अतः संत कवि झूमदासी जी के कतिपय प्रमुख पारिभाषिक शब्दों के अध्ययन विवेचन का प्रयास वर्णमालानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है। ऐसे शब्दों के पीछे परम्परागत विशेषक प्रकार के मन्तव्यों का आ पुकार ही एक ऐसा कारण नहीं है जिस
14. से ये शब्द पारिभाषिक बन गये। संतों ने स्वयं अनुभूति पर अनेक शब्दों के पारिभाषिक

6. संत कवि लक्ष्मीसखीजी:-

इंगला पींगला सुखमन सखिया आसन सजन के ना।

-अमर कहानी, 24/162

7. इंगला पिंगला जोवे सुखमन तोती मैमनकरिमेह होती अमहोती हो

-अमरस ट्टी, 28/204

8. संतकवि ब्रह्मचारी सुयोगी दास:-

इड़ा वाम दहिन मैं पींगला सुखमना मध्यान।

× × ×

कहे सुयोगी जोग युक्त मैं गुरु कर हो सज्ञान।

बिना गुरु को भेदन पावे कैसौं हो विज्ञान ।

-सुयोगी प्रेमी पत्रिका, दूसरा भाग, प

इंगल पिंगल दोउ अँवर आवत सुखमन सेज सवारा।

जोधिदास बहुत बरजोरी उतारो भवनिधि पारा।।

-मुक्तिबिन्दु ज्ञान दर्पण 22/22

अतः संत कवि ब्रह्मचारी जी के काव्य में इ

का तात्पर्य नाक के बायें छिद्र से प्रवाहित श्वास की निरंतर गति जो निर्

चलती रहती है तथा जो सहस्रदल कमल के चन्द्र दल से स्रवित अमृत को लेक

में घुमाते हुए मूलाधार चक्र के बायीं तरफ से सूर्य तक पहुँचाने वाली नाड़ी

उलट-साधना:-

वाम मार्ग, नाथ सम्प्रदाय तथा संतों की स

उलट" शब्द का प्रयोग बहुत मिलता है। वाम मार्ग में"पंचमकार" साधना

की निपुणता अर्थात् जिन आचरणों से मनुष्य प्रायः भ्रष्ट होकर सांसारिक ब

आबद्ध हो जाता है, उन्हीं आचरणों, साधनों को अपनाकर ऊर्ध्वमुखी होने

क्रिया में दक्षता लाना उलट साधना के रूप में प्रायः प्रयुक्त होता

नाथ सम्प्रदाय में मूलाधार निवासिनी प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर

भेदन के बाद सहस्रदल चक्र में से आनेवाली ऊर्ध्व क्रिया को उलट साधन कहा

6. संत कवि मस्तीलालजी:-

इंगला पींगला सुखमन पहिचान ज्ञान लखन के घर।

-अमर कहानी, 24/162

7. इंगलापिंगला बीचे सुखमन तोरी भैंवरगुफामें होती अनहोती हो

-अमरलीढ़ी,28/204

8. संतकवि ब्रह्मचारी सुयोगी दास:-

इड़ा बाय दहिन में पींगला सुखमना मध्यान।

× × ×

कहे सुयोगी जोग युक्त में गुरु बड़ हो महान।

बिना गुरु को भेदन पाये कैसौं हो मिलान ।

-सुयोगी प्रेमी पत्रिका,दूसरा भाग,

इंगला पिंगल दोउ अँगर्र झुलाया सुखमन तेज न्यारा।

योगिदास कहत सयोरी उतारो भवनिधि पारा।।

-प्रतिबिम्ब ज्ञान दर्पण 22/22

अतः संत कवि ब्रह्मचारी जी के काव्य में इ
का तात्पर्य नाक के बायें छिद्र से प्रवाहित श्वास की निरंतर गति को निर्
चलती रहती है तथा जो सहस्रदल कमल के मध्य भाग से स्रवित अमृत को भेद
में घुमाते हुए मूलाधार चक्र के बायीं तरफ से सूर्य तक पहुँचाने वाली नाड़ी

उल्टा-साधना:-

वाम मार्ग, नाथ सम्प्रदाय तथा संतों की सा
उल्टा" शब्द का प्रयोग बहुत मिलता है। वाम मार्ग में "पंचमकार" साधना
की विमुखता अर्थात् जिन आचरणों से मनुष्य प्रायः भ्रष्ट होकर सांसारिक प
आबद्ध हो जाता है, उन्हीं आचरणों, साधनों को अपनाकर ऊर्ध्वमुखी होने
क्रिया में बढ़ता जाना अमरत्व उल्टा साधना के रूप में प्रायः प्रयुक्त होता
नाथ सम्प्रदाय में मूलाधार निवासिनी प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर
भेदन के बाद सहस्रदल चक्र में ले जानेवाली ऊर्ध्व क्रिया को उल्टा साधन कहा

मिला रह पिया का संग मैं आवागमन मैं सीले ।
लछिमी सखी के सुन्दर पियाका चारा भाग ते मिले ।।

-अमरसीढ़ी-36/

2. राम रसायन पिये सेवर तीन लोक नौकेरिया। - वही.

संत कवि ब्रह्मचारी तुलसीदासः-

सतना अमृत मैं रस पीजे ।। 1 ।।
पद्मासन लह बैठ नीरासा, सीधा बदन ना होजे ।
सुखमन मार्ग उर्ध हो जाना त्रिकुटी पार के बीजे ।।
सुधामृत रस पी के मनवा, त्रिपित अंग सब भीजे।
उदै भाव तम भाग अशानी, मोद मगन जो दीजे ।
ब्रह्मा सी सुरत पहुच सतलोकी, सत्य पुरुष पद कीजे ।
पावे परम तत्व के मोहाँ, सागर मैं बुन्द ह्व मीजे ।
तुलसी कृष्ण सुख सम है, परमामृत पीय पीजै। -स्वात्म

संतकवि ब्रह्मचारी जी के काव्य मैं अमृत का तात्पर्य सहस्त्रदल कमल नाड़ी द्वारा निरन्तर स्रवित वह तत्व जिसको साधक खेचरी मुद्रा द्वारा प्राप्त कर शारीरिक अमरत्व को प्राप्त करता है तथा परमात्मा द्वारा साधना के चरमोत्कर्ष की स्थिति मैं रसास्वादन करते हैं।

अतः अमृत का तात्पर्य सहस्त्र नाड़ी द्वारा निरन्तर स्रवित वह तत्व है जो साधना के चरम शारीरिक अमरता हेतु रसास्वादित किया जाता है।

आत्माः-

"आत्मा" शब्द, अत् धातु से ज्ञान, मोक्ष, गमन और प्राप्ति होता है से बना है। अर्थात् आत्मा वो ज्ञान का साधन और माध्यम भी है जो मोक्ष को प्राप्त करने

इमि ब्रह्मण्ड में जो जानि । सो सब पिण्ड में पहिचानि ।
जैसें बीज तैं तरु होत । तरु तैं फेरि बीज उदोत ।।८।।

जो वह बीज सो यह बीज । दुबिधा न संसय कीज ।
संसय मिटनि कौं कहि ग्यान । हैं जुगति जोग प्रमान ।।९।।

जोगहि ग्यान कौं करि जुक्त । है यह ग्यान जोग विमुक्त ।
तीन्यौं ध्यान सहज लहंत । साधत ग्यान जोग महंत ।।१०।।

रूप बिराट सम मति साधि । समता सिद्ध सहज समाधि ।
अनहद बानि पूरन ग्यान । धरि चेतन्न मूरति ग्यान ।।११।।

दोहा

दुर्लभ मति यह लोक में, होत न पढ़ें पुरान ।
सुरति सबद साधन भयै, हरि हर बिधि भगवान ।।१२।।

सवैया

जोति अंगुष्ट प्रमान मनोहर, भौंहनि के दरम्यान खुभी है ।
गोचर ग्यान अगोचर है वह, लोचन लोचन ध्यान थुभी है ।
जोवत आहि थकी मति की गति, प्रेम सुधा रस लाभ लुभी है ।
"अक्षर" श्री गुरु अक्षर की धुनि, चेतन मूरति चित्त चुभी है ।।१३।।

चेतन मूरति चित्त मिलै, निज बानि अनाहद ग्यान गह्यौ है ।
देख बिराट सरूप परापर, नाहिं सुरासुर भेद रह्यौ है ।
"अक्षर" श्री गुरु अक्षर की धुनि, ध्यान सदा मन नेह नह्यौ है ।
खंडित नाहिं क्रिया कबहूँ यह, ग्यान अखंडित जोग कह्यौ है ।।१४।।

बानि अनाहद ग्यान सरूप, लहै जिहि के जड़ता भ्रम भाजै ।
नारि सुषुम्मन चेतन रूप, सरीर बिषै जिहि की छबि छाजै ।
"अक्षर" देखि बिराट सरूप, सतासत सौं समता मति साजै ।
ग्यान अखंडित जोग यहै, उर तीनहुं रूप कौ ध्यान बिराजै ।।१५।।

"अक्षर अनन्य" दुहूँ पच्छ है प्रमान जाको,
अक्षर सरूप मुनि ध्यावें प्रेम पागे हैं।
बानी अनहद नाद बेदनि की आदि बीज,
जोतिनि की जोति जाहि जोवत सभागे हैं ।।५।।

सवैया

जोति न सुन्न न निर्गुन सर्गुन, देवि न देव कहौं किहि लच्छिन।
चेतन सब्द मयी धुनि मूरति, जानत जाहि न वाम न दच्छिन।
जाग्रत और सुषोपति की, निज संधि बिषै मन बंधि ततच्छन।
"अक्षर" बानी अनाहद की धुनि, जोवत सो सरवग्य विचच्छन ।।६।।

जानत जाहि रहै नहि जानिबौ, लागहि तुच्छ पुरान कहानी।
जोतिष बैदिक आगम बेद, न पूछन और परै परिवानी।
"अक्षर" है सरवग्य सरूप, सु आदि अनादि अनाहद बानी।
गूढ़ महा धुनि सूच्छम है, वह तौ बिरले मुनि जोगिनि जानी ।।७।।

जानै तें होत अजान दसा, पुनि लोक ही बेद की बुद्धि न धारे।
सूझि परै सब आपु हो में, कहि "अक्षर" अक्षर ही के उज्यारे।
अक्षर और पढ़ें बिसरै, वह अक्षर तौ बिसरै न बिसारे।
ध्यान समाधि लगै औ खुलै, यह ग्यान समाधि टरै नहिं टारे ।।८।।

ग्यान को सार अधार त्रिलोक को, बेद की आदि है लोक की आसा।
पिंड ब्रह्मण्ड रही धुनि पूरन, दूर कहूँ सु तौ सीस ही बासा।
जानत जाहि प्रवाह मिटै, सब चार पदारथ बीज निवासा।
"अक्षर" स्वच्छ करै मन कौं, तब सूच्छम तत्व को भासहि भासा ।।९।।

नारि हजार बहत्तर हैं, तन पौन प्रवेस नसें ठहरानी।
दच्छिन वाम दुवो सुर नारि, सु सूरज चंद कला सुख दानी।
चेतन ब्रह्म सरूप सुषुम्मनि, ब्रह्म हरी हर जो उर आनी।
"अक्षर" सो परमानंद मूरति, सिद्ध कला घट में पटरानी ।।१०।।

पन्नगाला, आदि अनित प्रत्यारिय प्रतीकों का ही प्रयोग प्रायः किया है और कुण्डलिनी शब्द का प्रयोग नाममात्र कहीं कहीं मिलता है।

भुयंगम पुनि लेह पियत रस नागिनी, नागिनी मारि है

-तेजानन्द साहब, कल्याण ताजकोष, पृ0-323 छंद रसनी

संत कवि लक्ष्मी सखी:-

नागिनी ताकिया ते चली तीतिनियाँ,

जै ईडई के आपत मा मोतनियाँ।।

- अमरविलास 3/41

लक्ष्मी सखी के सुन्दर पियाला अमृत भरती सुहागिनी,

अटपट योग द मैंत केसरी पियाजिस के नागिनी।- अमरसीढ़ी-96/

सनिदेव जोन्हु बैगार व मोरे मारि पिनियाँ।

-अमर कहानी 1/40

संत कवि पुरुषकारी सुरेमी दास:-

कट कमल की ध्यान है, हुंकार डंक की मार।

देखि आत कुण्डलिनि ही, सदा चढ़ावै = ज्ञान ।।

- गीता ज्ञान दर्पण, पृ0-5

निष्कर्ष निकलता है कि आलोच्य संत कवि ~~प्रयत्न~~ के काव्य में कुण्डलिनी का तात्पर्य मूलाधार चक्र में इड़ा, पिंगला नाड़ियों के बीच तथा सुषुम्ना नाड़ी के के नीचे स्थित साढ़े तीन फेरे में स्वयंभू लिंग को बीच में रख कर अपनी पूंछ को मुँह में दबाकर फिर सिद्धा में ~~स्थित~~ स्थित सर्पिणी [शक्ति] है।

खेचरी:-

इस शब्द का विग्रह करने पर अर्थ निकलता है "खे" आकाशे चरति याता खेचरी-अर्थात् जो आकाश में विचरण करे उसे "खेचरी" कहते हैं। "खेचर" शब्द का अर्थ पक्षी तथा पक्षी भी होता है किन्तु योगशास्त्र में शब्द का अर्थ विशिष्ट रूप में एक मुद्रा के रूप में माना गया है जिस में जीभ को पालन और दोहन प्रक्रिया द्वारा क्रमशः लम्बा बनाकर तालु के ऊपर छिद्र में गह्वर में उलट कर प्रवेश करा कर दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच केन्द्रित किया

जोगिनि कौं दुर्लभ न कछु, नहि इच्छा कछु और।
केवल सुमिरन ध्यान महं, मगन सिद्ध सिरमौर ॥१९९॥

कृष्ण उवाच

तनधारी कौ नास कहि, अतनं भाव ना नास।
चित्त लगावत कौन बिधि, जोग ध्यान किमि भास ॥२००॥

ईश्वर उवाच

आपुहि अजपा जाप वर, आपुहि अनहद भास।
आपुहि घट महं तत्त लहि, जोगी मन अभ्यास ॥२०१॥

कवित्त

नारी सुषमना षटचक्रनि आधार सक्ति,
कुण्डली सु नाभि छुधा तेज बल दानी है।
हिरदै में जीव तासौं मन चित्त बुद्धि लगे,
त्रिकुटी में सींव जोतिलिंग निरवानी है।
अजपा सो मूल मंत्र साँस की उसाँसनि में,
बानी अनहद सीस प्रभुता प्रमानी है।
एतै तत्त सार कृष्न हम तुम सब ही में,
जोवैं जोगध्यानी अंत ढूंढ़ै मूढ़ प्रानी है ॥२०२॥

श्लोक

सर्वसारे शरीरेऽस्मिन्भाति सूक्ष्मेऽप्यगोचरे।
बाह्ये भ्रमति मूढ़ात्मा योगिनान्विष्यते परः ॥२०३॥
तत्त्व बीजाक्षरं सिद्धि षट्चक्रेषु व्यवस्थितम्।
मूढ़जीवाः न जानन्ति यो जानाति स ईश्वरः ॥२०४॥

दोहा

इमि ईस्वर पद सिद्ध करि, जोगेस्वर पद पाइ।
ता समान नहिं आन मत जान कृष्न सत भाइ ॥२०५॥

कृष्ण उवाच

दोहा

किम अजपा स्वाँसा लखत, किम अजपा को जाप ।
को अजपा को देवता, कहौ कृपा करि आप ॥४५॥

ईश्वर उवाच

श्लोक

सकारेण बहिर्याति हकारेण विशेत्पुनः ।
हकारे शिव परमात्मा सकारे शक्तिरीश्वरी ॥४६॥

चौपाई

जब स्वाँसा बाहर कहं आवै । तब सकार सब्दहिं उपजावै ।
जब स्वाँसा भीतर संचारै । तब हकार अच्छर उच्चारै ॥४७॥

ब्रह्म हकार सकार भवानी । सोहं आपु जपत जे ग्यानी ।
आवत जात स्वास कहं जोवै । तुरिय दसा करि जगै न सोवै ॥४८॥

लोक बेद के बचन भुलावै । संग कुसंग सबै बिसरावै ।
सुमिरन सार सुधारस पीवै । सो जोगेस्वर जुग जुग जीवै ॥४९॥

इष्ट अधार सहायक जाकें । काल कर्म को भै कह ताकें ।
काल नासिनी काल नसावें । जोगी अजर अमर पद पावै ॥५०॥

चौथो जोग सुनौ जदुराई । ज्यौं जोगिनि अम्रत झिर पाई ।
नाभि कमल कुंडलिनी रानी । रूप भुजंगिनि मंगल दानी ॥५१॥

साढ़े तीन बिहाथ जु बरनी । साढ़े तीन कुंडली करनी ।
अति सूच्छम अरु अति गंभीरा । अति उज्ज्वल मूरत दुतिहीरा ॥५२॥

सोवत नाभि कमल के माहीं । तासु तेज जल अग्न पचाहीं ।
थिर आसन जोगी तिहि ध्यावै । बीज मंत्र जप ताहि जनावै ॥५३॥

तबहि जोग माया वह जागै । उठि सुषमनि के मारग लागै ।
पहुँचै गगन मंडल निज धामा । त्रिकुटी संगम करि बिसरामा ॥५४॥

तहां बसत ईस्वर भगवाना । जोतिलिंग अंगुष्ठ प्रमाना ।
सांत रूप चेतन अबिनासी । उज्ज्वल मूरति सब सुख रासी ॥५५॥

ब्रह्म सच्चिदानन्द सरूपा । तिनतें त्रिगुन देव भव भूपा ।
देखत तिन नागिन द्रग भरि कें । लिपटि रहै कुण्डलिनी करिकें ॥५६॥

यह अति तेज तपन तन होई । सुधा द्रवै सिव मूरत सोई ।
वाके तेज पुंज बिष झारा । सीतल जोतिलिंग निरधारा ॥५७॥

ता तर हरिलंबिका लगावै । जोगी अम्रत महा रस पावै ।
यह बिधि अजर अमर तन होई । ध्यान जोग यह जुगति संजोई ॥५८॥

फेरि उतरि कुण्डलिनी आवै । नाभि कमल अंतर छबि छावै ।
साधक सिद्ध होय भय दूरी । अनहद नाद रहै भरपूरी ॥५९॥

कृष्ण उवाच

दोहा

ध्यान जोग अम्रत कथा, कही कृपा करि आप ।
अब कहिये अनहद कथा, क्यों धुनि जोवत नाथ ॥६०॥

ईश्वर उवाच

आतम बानी बंद करि, परबानी स्रुति रोक ।
मन अस्थिर एकांत रहि, अनहद बानि बिलोक ॥६१॥

लौ लागै इमि भक्ति महं, आठहु अंग प्रमान।
ह्वै प्रसन्न ईस्वर प्रगटि, देहि आपु बरदान।
देहि आपु बरदान, करहि सु आपु समान।
होइ सिद्धि इहि बान, दीपक दीप समान ॥९८॥

दोहा

दीपक दीप समान गति, सिव मिलि कैं सिव लेख।
भक्ति जोग सिद्धान्त इमि, जानहु भक्ति बिसेष ॥९९॥

भक्ति जोग सिद्धान्त को, इहि बिधि कियौ बखान।
अब बरनहुँ अष्टांग तें, जिहि बिधि होत प्रमान ॥१००॥

अष्टांगयोग-वर्णन

प्रथमहि जम पुनि नैम मुनि, आसन प्रत्याहार।
प्रानायाम सु धारना, ध्यान समाधि प्रचार ॥१०१॥

यम-लक्षण

हिंसा ममता लोभ अरु, मिथ्या अरु परनारि।
पंच त्याग जम जानिबो, प्रथम जोग अंग धारि ॥१०२॥

नियम-लक्षण

अन्न नैम जल नैम करि, सयन नैम व्रत लैन।
भजन नैम जा लगि जगै, इवे नैम सुख दैन ॥१०३॥

आसन-वर्णन

चौरासी आसन कहो, नाटक भेद अनेक।
मूलबंध आनन्द कर, सिद्धासन थिर एक ॥१०४॥

प्रत्याहार-वर्णन

जित जित चित चंचल चलै, तित तित तैं इत ल्याइ।
राखहि नासा अग्र थिर, प्रत्याहार सु आइ ॥१०५॥

प्राणायाम-वर्णन

पवन खेंचि पूरक करै, कुंभक रोकि सरीर।
क्रम सौं तजि रेचक करै, प्रानायाम सुधीर ॥१०६॥

प्रानायाम त्रिभेद इमि, सु संवेद जुत जानि।
निज बीजाक्षर तीनि जुत, स्वांसा सब्द बखानि ॥१०७॥

लगी सुरति सतसबद सुं, कबहूं षंडे नांहि।
जनहरीया मन[1] मिल रह्या, आर पार पद मांहि ॥ ३३ ॥
अरध उरध कै बीच मैं, हरीया झिलमिल [1]जोत।
सुरति सबद[2] परचा भया, मिले ओत अर पोत ॥ ३४ ॥
सुरति समांणी ब्रह्म मैं, ब्रह्म निरंतर [1]वास।
जनहरीया जांह काल [2]का, जोर जरब नही [3]जास ॥ ३५ ॥
जनहरीया दिल [1]भीतरैं, दोसत अपना [2]जांनि।
करूं न दूजा[3] दोसती, या जुग मांही[4] [5]आंनि ॥ ३६ ॥
आतम[1] का सुष जांणीया, भया परम संतोष।
जनहरीया जब[2] जांणीयै, याही जीवत मोष ॥ ३७ ॥
पार ब्रह्म के देस का, दोय राहां विच राह।
जनहरीया मंन[1] संचरै, भेटै दिल[2] दरगाह ॥ ३८ ॥
पार ब्रह्म कै देसड़ै, अदल न को फदलाह।
हरीया जांमण मरण का, मेट्या दोय वदलाह ॥ ३९ ॥

---

(३३) १. (ख) जहां, (ग) हरिरांमा मन।
(३४) १. (ग) झिलमिल सहजां जोत। २. (ग) ब्रह्म, (घ) निरत।
(३५) १. (ख, ग) धांम। २. (ख) हरीया सुरित'र सबद का, (ग) हरिरांमा मन सुगति का। ३. (क) तास, (ख) एकमेक विसरांम, (ग) पाया सुष विस०।
(३६) १. (ख) हरीया दिल भीतरि कीया। २. (घ) रांम। ३. (ख) अब और करूं नही। ४. (घ) जाया जाम। ५. (ग) दिल भीतरि दोसत मिल्या, भया परम सुष एह। हरिरांमा फिर ना धरै, जामण मरण सनेह ॥
(३७) १. (ग) आतिम, (घ) आत्म। २. (क, ख) अैसैं, (ग) हरिरांमा अैसे।
(३८) १. (क, ख) जांह, (ग) वहां कोई साधु। २. (ग) हरीया हरि।

अथ परचै कौ अंग १०

प्रथम ध्यांन पूरब दिसा, गिगन गरजीया जाय।
ठांम ठांम पाताल कुं, पछै[1] पछमि कुं [2]थाय ॥ १ ॥

सुरति[1] चली आकास कुं, दे जालंधर बंध।
जनहरीया जांह[2] [3]जांणीयै, हदि वेहद की [4]संध ॥ २ ॥

वीच मेरतैं गिर पख्या, धरनी धरै न पाव।
जनहरीया जब सूर [1]कुं, धरै पेत का दाव ॥ ३ ॥

लगी चोट सत[1]सबद की, षुल्हा ब्रह्म कपाट।
मेवासा सब जीत कै, बस्या नगर वैराट ॥ ४ ॥

वाटि विगट वैराट की, पुंहचैगा कोई सूर।
हरीया कायर थकि रह्या, दरगह रहीया [1]दूर ॥ ५ ॥

(२४) १. (ख) जांह। २. (ख) वाकै। ३. (ख) हरीया।
(२५) १. (ग) भली करी तैं आवतै। २. (ग) हरिरांमा।

(१) १. (क, ख, ग) उलटि। २. (ख) आय।
(२) १. (ख) सुरित। २. (ख) जब। ३. (ख) सहजमै, (ग) हरि-
रांमा जब सहजमै। ४. (ख, ग) उरध मये सिर कंध।
(३) १. (ख) हरीया आगै०, (ग) हरिरांमा अब सूरका।
(४) १. (क, ख, ग, घ) मन मरम की।
(५) १. (ख) हरि दरगै सुं दूर, (ग) दे आबी सुय दूर।

दिष्ट[1] देष सब कोई[2] कहै, सपनैउ कहै सोय।
जनहरीया[3] गम[4] अगम [5]कुं, ताहि बतावै कोय ॥ ६ ॥

सुरति बतावै ब्रह्म कुं, कहै अगम की बात।
जनहरीया[1] जांह[2] की कहै, तांह[3] नही दिन न[4] रात ॥ ७ ॥

सुरति बसी अमरापुरी, बरति[1] ब्रह्म की आंण।
त्रिण बांणी हरीया[2] पढै, तांह[3] नही वेद [4]पुरांण ॥ ८ ॥

तीन पौलि तकीया [1]परै, मंडे वीच[2] मैंदांन।
जनहरीया[3] घर सुन्य[4] मैं, सहज घुरै नीसांन ॥ ९ ॥

जीव सीव की सिंघ मैं, लगे पात[1] उतांन।
जनहरीया[2] तांह[3] होत है, केती विध का तांन ॥ १० ॥

झालरि[1] ताल मृदंग [2]दफ, घन अनहद की घोर।
हरीया एक अषंड है, ररंकार की टोर ॥ ११ ॥

सबद एक ररंकार की, महमा कही न जाय।
जनहरीया विन [1]देषीयां, ताहि न[2] को[3] पतिआय ॥ १२ ॥

(६) १. (ग) दिसट। २. (क) सबको, (ग) सबोको। ३. (ग) हरिरांमा। ४ (ख, ग) हरि। ५. (क, ख, ग) है।
(७) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख, ग) वांहां। ३. (ग) जहां।
४. (ख, घ) प्रतिमें 'न' नहीं है।
(८) १. (घ) वरत। २. (घ) हरीयौ। ३. (क, ख, घ) जहां।
४. (ग) पुसतग वेद पूरांण।
(९) १. (क, ख, ग, घ) सिरैं। २. (क, ख, ग, घ) वीच मंडे।
३. (ग) हरिरांमा। ४. (ख, ग, घ) धुनि।
(१०) १. (ख) पात लगो, (ग) उलटि पात। २. (ग) हरिरांमा।
३. (ग, घ) जहां, (क) जांह।
(११) १. (क) जहां झालरि मरदंग। २. (ग) धुन।
(१२) १. (ख) हरीया कोयन मांनही, (ग) कहीयां को मांनै नही।
२. (घ) औरन। ३. (ख, ग) देष्यांई पति।

२४. अष्टाङ्ग योग

१. जम, २. नेम, ३. आसन ४. प्रत्याहार, ५. प्रानायाम,६. धारना, ७. ध्यान, ८. समाधि,ये आठ अंग कहे, तिनके न्यारे न्यारे भेद कहत हैं । काहू जीव कौं सतावै नहीं । काहू सौं न मोह करै । लोभ न करै । मिथ्या न बोलै । पराई अस्त्री सौं आसक्त न होय । ये पांच बातें छांड़े । तासौं जम कहत हैं । अरु तौलि कै अन्न खाइ । उजन सौं पानी पियै । थोरौ सोवै । भजन कौ, नाम-मन्त्र कौ जपु बंधेज सौं करै । इतनी बातें नेम कहावें । अरु आसनै चौरासी कही हैं । ते सब देह की कसरत माफिक हैं । एक आसन मूलबंध मुखि है । सु मूल द्वार सौं एड़ी लगाइ बैठे । तरे कौ पवन न कढ़न पावे । तब तरे कौ पवन और ऊपर कौ एक होय ऊपर ही चलै, बीच की गांठि फूटि जाय अरु पवन पेट में जैसौ फेरै तैसौ फिरै । अरु जो जम नेम अन्न पानी के साधैं बिना मूलबंध करै तौ पेट फूलि जाय, पीर होय । तातें मूलबंध नेम साधि कैं करै । तब प्रत्याहार करै । अपनी नाक पर नजर राखै । इतै उतै नजर चलै तौ फिर नाक ही पै राखै चालीस दिन लौं । आंखें बहैं, पीर बहुत होय, क्रिया न छांड़ै । तब आंखिनि के आगैं जुगुनू सी चमकत देखै । कछू दिननि में उजियारौ सौ होय । अंधियारे भौहरै गुफा में सब कछू सूझै । यह प्रत्याहार की रीति कही । अरु प्रानायाम कौ साधन ऐसौ कहत हैं । पहिलैं दाहिने नकुवा हो पवन खैंचै तासौं पूरक कहत हैं । पुनि दोउ नकुवा मूंदि पवन रोकै, जौलौं सधै । तासौं कुंभक कहत हैं । फिर डेरे नकुवा तैं बाहिर सांस चलावै । तासौं रेचक कहत हैं । ऐसेई फिर डेरे नकुवा तैं पूरक करै । ऐसेई उलट फेरि करिबौ करै । इनके तीन अच्छिर हैं । तिनकी गिनती सौं प्रानायाम साधै । पूरक में यं यं यं यह कहै । कुंभक में रं रं रं यह कहै । रेचक में बं बं बं यह कहै । ये प्रानायाम के तीन बीज अच्छिर

हैं । सो इनकौ सुमिरन बढ़ावै । जब हजार बार लौं रं रं रं यह कहै, तौलौं पवन रुकै, तब प्रानायाम सिद्ध होय । पुनि धारना कही । बीच में कैऊ बिघन होत हैं, कै कछू कुजरब तें पेट पीर होय, तौ धारना न छांड़ै । कै संसार मैं मानता होइ, नीकौ खैबे पहिरबे में मन आवै । कै बचन सिद्धि होइ, काहू सराप देय, काहू आसीरबाद देय, सो होय, कै काहू अस्त्री सौं मन लगै, मनसा सिद्धि की बांधी चली आवै, वासौं आसक्त हो रहै । ऐसे ऐसे भले बुरे कैऊ बिघन आन होत हैं । तिनमें भूलै नहीं । वाही साधन सौं रहै, तासौं धारना कहत हैं । ऐसी धारना सौं रहै । अरु अजपा कौ सुमिरन करै । जब सांस भीतरी आवै तब 'सो' यह अच्छिर कहै, अरु बाहिर सांस आवै तब 'हं' यह अच्छिर कहै । ये दोई अच्छिर सांस ही सौं सोऽहं सोऽहं कहिबौ करै,जीभ सौं न जपै तातें अजपा कहाउत है । या अजपा कौ धारना करै । अरु छहू कमलनि में छहू देवतनि कौ ध्यान करै । पहिलैं मूल कमल है ताके चारि दल हैं तामैं गनेस जू कौ ध्यान करै । दूसरौ मनिपूर कमल है ताके छह दल हैं । पेसाब की जांगा जल में है तामें ब्रह्मा जू कौ ध्यान करै । तीसरौ नाभि कमल है टुंड़ी के बीच, ताके आठ दल हैं

अथ ब्रह्म संमाधि को प्रसंग ४७

चित मन पवनां [1]थिर रहै, उलटि पंच कुं साधि।
जनहरीया जब [2]जांणीयै, या ही ब्रह्म समाधि ॥ १ ॥

मन पवनां मिल [1]एकठा, सुरति[2] सबद सुं लाय।
हरीया ब्रह्म संमाधि का, जब सहजां [3]घर पाय ॥ २ ॥

हरीया ब्रह्म संमाधि [1]को, सहजां [2]सुष अनंत।
कांम कठण सुधि[3] जांणिवो, विध विरला बूझंत ॥ ३ ॥

जनहरीय सुष द्वारती, चली [1]सबद की सीर।
जाय मिली सुष सहज मैं, गंग जमन की तीर ॥ ४ ॥

गंगा जमना सुरसती, नित को नांहन होय।
जनहरीया [1]जांह नाहीया, घाट वाट नही [2]कोय ॥ ५ ॥

---

(२) १. (क) त्युं कुछि घाटि न, (ख) इन मैं घाटि न।

---

(१) १. (क, ख, ग) कुं गहै। २. (ख) हरीया सहजां संत कै, (ग) हरीया औसैं नित है, सिवरन सहज समाधि।

(२) १. (क, ख) सुरति सबद मन पवन कुं।
२. (क) ले पछमि दिस लाय, (ख) पूरब पछिम मिलाय।
३. (ख) सुष।

(३) १. (क, ख) मैं। २. (क, ख, घ) है सुष सहज।
३. (क) काम कठण यो जाणिवो, विध विरला बूझंत।
(ख) दुनीयां सुष सहजां विनां, हठि पचि मांहि मरंत।
(घ) कांम न उठै कल्पना, तन की सुधि विसरंत।

(४) १. (ख) नांव की।

(५) १. (क, ख) हरीया हरिजन। २. (क, ख) अवघट घाटी होय।

सीरां छूटी चहुं दिसा, अंत न [1]कोई पार।
जनहरीया[2] पी मगनीया, तन की सुधि न सार ॥ ६ ॥

रसनां नष चष बीच मैं, रोम रोम रंकार।
जनहरीया[1] सुष ब्रम का, जहां[2] नही मंकार ॥ ७ ॥

इला पिंगला बीच मैं, सुषमणि[1] हंदा घाट।
हरीया ब्रह्म [2]संमाधि की, सहजां पाई [3]वाट ॥ ८ ॥

विनां चंद जांह चंदणा, विनां[1] सूर तांह तेज।
जनहरीया घर [2]ब्रम का, आप[3] कला आपेज ॥ ९ ॥

पवन न पांणी चंद रवि, जांह नही घर आकास।
जनहरीया घर[1] ब्रम का, आस न [2]पास निरास ॥ १० ॥

---

(६) १. (क, ख) वाका (को) अंत न। २. (क) हरीया पी मन विगसीया।

(७) १. (ख) हरीया सुष समाधि का, (ग) हरीये प्याला पेम का।
२. (ख) ओपि, (ग) पीया डिकार डिकार, (घ) होत नही।
(क, ख) मैं इसके पश्चात् निम्न सोरठा अधिक है—
(क) रोम रोम ररंकार, एक अषंडी होत है।
या सुष अगम अपार, हरीया हरिजन जांणसी ॥
(ख) एक अषंडी होय, रोम रोम ररंकार धुन।
विरला जांणै कोय, जनहरीया इन जुगति कुं ॥

(८) १. (क, ख) है सुषमिण का। २. (क) जनहरीया घर ब्रह्म का, (ख) हरीया जांह घर ब्रह्म का। ३. (क) सहजां षूलै दाट, (ख) षूलैं सहज कपाट।

(९) १. (घ) सूर विना अहवास। २. (ख) संत का। ३. (ख) अधर कला वर तेज, (घ) तेज पुंज परकास।

(१०) १. (ख) हरि एक है, (ग) दूजा नही। २. (क) है नही आस, (ख) का कोई हरि का दास, (ग) एकमेक हरिदास।

हरीया सुष संसार का, सो मेरै नही [1]भाय।
या[2] सुष न्यारा सुष है, मन ता मांहि समांय ॥ ३ ॥

अथ सुष सहज कौ प्रसंग २३

इला पिंगला पूरि कै, मन [1]सुषमल कै मांहि।
जनहरीया सुष सहज[2] की, इन सेती गम नांहि ॥ १ ॥

नाद बिंद कु उलटि कै, रोकै दसवै द्वार।
जनहरीया सुष सहज[1] की, इन कुं[2] सुधि न सार ॥ २ ॥

इंद्री मन अर पवन कुं, अपनै थिर करि लेस।
जनहरीया सुष सहज[1] का, उ है[2] न्यारा देस ॥ ३ ॥

जोग जिग जप तप करै, करै वेद अभ्यास।
हरीया[1] पांणी ओस का, पीयां न भाजै प्यास ॥ ४ ॥

अंन भोजन छुछम करै, गाळै अपनी देह।
हरीया छाजै मांन कै, सहजां[1] नांहि संनेह ॥ ५ ॥

जनहरीया सुष [1]सहज मैं, लोक दिषावा नांहि।
पड़पच कीयां न पाईयै, सांई सहजां मांहि ॥ ६ ॥

---

(३) १. (ख) सो नही मोय सुहाय। २. (क, ख, घ) इन।

---

(१) १. (घ) सुषमणि। २. (ख) हरीया सहजां सुष, (घ) सहज का।
(२) १. (ख) हरीया सहजां सुष। २. (घ) वाकुं।
(३) १. (क, ख) हरीया सहजां सुष, (घ) विन। २. (घ) अे कूड़ा उपदेस।
(४) १. (ख) जनहरीया सुष सहज कुं, पावै हरि का दास।
(५) १. (ख) यौ नही नांव स्नेह।
(६) १. (क) हरीया सहज सनेह मैं, (ख) हरीया नांव स्नेह कै।

अथ जालंधरबंध उतांनपात कौ प्रसंग ५

ध्यांन धसै नही धरनि कुं, द्वार गिगन तैं होय।
जब जालंधरबंध कु, हरीया लषै[1] न कोय ॥ १ ॥

---

(३) १. (ख, ग, घ) हरीया गुर का।
(४) १. (ग) हरीया तन मन वचन गुर, इनमै जो कोई हीन।
२. (क) ए तौ सति। ३. (ग) भाव भजन सुं षीन।
(५) १. (घ) अंतर। २. (ग) मै। ३. (ग) आतिम, (घ) हरीया।
(६) १. (घ) सुंज। २. (ग) मुगति फल पाय।
(७) १. (ख, ग) धरै न हरि का।
(८) १. (ग) सो निसचै पावै सही, (घ) निश्चै।

---

(१) १. (क, घ) लखै।

है जालंधरबंध मैं, मन पवनां की गांठि।
हरीया मिले उतांन मैं, सुरित सबद की सांठि ॥ २ ॥
सुरति सबद मन पवन कुं, पवां[1] पछिम मिलाय।
जनहरीया आकास का, रह्या अधर[2] घर छाय ॥ ३ ॥

अथ आकास मध्य प्याल* कौ प्रसंग ६

आकासे मध्य प्याल[1] कुं, उलट पलट[2] मन फेर।
वास[3] कीया अमरा पुरी, जनहरीया चढ़ि मेर ॥ १ ॥
आकासे छिन छिन चरु, छिन पाताले जाय।
हरीयै पाया अगम[1] घर, काळ न पुंहचै आय ॥ २ ॥
पाताले पाताल सुष, आकासे आकास।
हरीयै पाया[1] परम सुष, दंद न कोई[2] फास ॥ ३ ॥

अथ सहज सबद कौ प्रसंग ७

सहज सबद सैं ऊपजै, सबद सहज के मांहि।
हरींया सहजां सबद ले, सबद सहज मिल जांहि ॥ १ ॥

---

(३) १. (ख) पूरब। २. (क) एक अषंड।
* (ख) प्रतिमें 'पताल'।

---

(१) १. (ग) आकासे पाताल विच। २. (क, ख) उल्टा निज।
३. (ग) जनहरीया जहां घर कीया, अणमै अवचल मेर।
(२) १. (ग) हरीया बैठे सहज।
(३) १. (क) हरीया मेरै, (ख, ग) हरीया मेरै एक। २. (क) वामै
दंद न, (ख) दूजा दंद न, (ग) कीया अपंपर वास।

चौपई

रसनां नाभ सबद संचरीया । तन मन वचन सहज विसतरीया ॥
उलटि अछर अणअछर होई । सुरता बकता लहै न कोई ॥ ३ ॥

पछिम दिसा की पाई वाटी । वंकनाळि की षूल्ही घाटी ॥
मेर डंड मैं वसीया वासा । आगै अंतर उपजी आसा ॥ ४ ॥

अब घर अघर कीया मनभाई । बागा अनहद वंटी वधाई ॥
नांव अषंडत षंडै नांही । सुरति सबद कै मंडी[1] मांही ॥ ५ ॥

---

* (क, ख, ग) प्रतिमें यह ग्रन्थ नहीं है ।
(२) १. (घ) सो परवाणीयै । २. (घ) होय ।
(५) १. (घ) मंडीया ।

मनवा उलटि मिल्या निज मन कुं । संसा सोग न व्यापै तन कुं ॥
अरध उरध विच रसतह लाया । जोषा जंत न वुसत विसाया ॥ ६ ॥
जमदाणी[1] का दांण चुकाया । छाप अमर थिर पटा लिषाया ॥
लिष दफतर दिल देस दिराया । भोग भगति भंडार भराया ॥ ७ ॥
षरचत षावत षूटै नांही । नित की पूंजी वधती जांही ॥
देज न धूंवा कूंत न नाजै । राव'र रंक भया इक राजै ॥ ८ ॥
तीन लोक मंडप विसतारा । जा विच आय जाय संसारा ॥
ताकै परै अभंगीराया । आसण एक अटल मट छाया ॥ ९ ॥
आदि अंत के मिलीए[1] सैंना । परमानंद सुष पाया चैंना ॥
काळ करम का जौर न पूजै । उपजै षपै न आवै दूजै ॥१०॥
षंडन मंडन मूरत सेवा । आपो आपी अलष अभेवा ॥
मात पिता सुत भात[1] न कोई । हेका हेक निरंजन होई ॥११॥
तीरथ बरत न गिरही त्यागी । राग न रंग न को अनुरागी ॥
जोग न जिग जप तप नही सूरा । गाज[1] बीज अनहद नही तूरा ॥१२॥
चंद न सूर न धर आकासा । तेज पंज[1] तांह होत प्रकासा ॥
एको एकी अषंड उजाला । सरग नरग नही मध्य पीयाला ॥१३॥
असैं पांणी पिंड मिलांना । जीव सीव कै मांहि समांना ॥

अथ रांम नांम सिवरन विचार*

आदि एक ररंकार कुं, सिवरयां सिध न होय।
जनहरीया ममंकार मिल, यु पंछी पर दोय॥ १ ॥

उडि पंछी असमांन कुं, पुंहच न सबै कोय।
जनहरीया ममंकार षुष, रह्या अधसलै होय॥ २ ॥

ररंकार रहता पुरस, कीया कराया नांहि।
हरीया सहजां होत है, रग रग रसनां मांहि॥ ३ ॥

ररंकार पछिम दिसा, उलटि चढे असमांन।
हरीया नाभी पूरब दिस, ममा थकि रह्या प्रांन॥ ४ ॥

हरीया रसनां नाभ लग, ममंकार की दौर।
रोम रोम ररंकार हुय, ममंकार नही ठौर॥ ५ ॥

ममंकार माया मिलै, औ तौ ईथिर रूप।
जनहरीया ररंकार मिल, अणभै अटल[1] अरूप॥ ६ ॥

ररौ ममौ दोय मंत्र है, या सेती लिव लाय।
हरीया जब तब सिवरतां, लेसी पार लंघाय॥ ७ ॥

अैसैं छाया विरष सुं, हरीया रही लपटि।
जैसैं माया ब्रह्म सुं, कैसैं जाय विछटि॥ ८ ॥

रांम रांम रटता रहै, आठुं पौहर अभंग।
हरीया कबहक सहज मैं, एक न दूजै संग॥ ९ ॥†

---

* (क, ख, ग) में यह ग्रन्थ नहीं है, एवं 'घ' प्रतिमें इसका नाम "ररै ममै समरण" है।

(६) १. (घ) अकल।

† (घ) में १०–११–१२–१३ क्रमशः साषियाँ नहीं हैं।

चढ़े अगम [1]असथांन कुं, सुरित[2] मिली निरकार।
जनहरीया घर ब्रम का, ओथि[3] नही आकार ॥ ११ ॥

हरीया धूं धूं धुनि उठै, तनक थेई ततकार।
वाजै पिंड ब्रहमंड मैं, एक अषंडी तार ॥ १२ ॥

इला[1] दुहारी पिंगला, षोड़ि दुवादस गाय।
जनहरीया[2] मत मटकी, लीया तत कुं ताय ॥ १३ ॥

संतन की गति संत कुं, दुनीयन की दुनीयांह।
जनहरीया अवगति की, गति[1] न को लहीयांह ॥ १४ ॥

पाव विनां जांह चालिबौ, राह विनां जांह राह।
जनहरीया घर ब्रम का, सुर[1] नर सघैं न जाह ॥ १५ ॥

---

(११) १. (क) उलटि पलटि असमांन कुं, (घ) सुरति चढ़ी असमांन कुं। २. (घ) जाय। ३. (क, घ) ओथि,। (ख) में यह साषी इस प्रकार है—

उल्टा मन आकार कुं, जाय मिले निरकार।
हरीया नष चष वीचमैं, एकमेक सुष सार ॥

(१३) १. (ग) इला पिंगला होय दुहारी। २. (ग) हरीया मनां मथाण करि। (क, ख) में इसके अनन्तर निम्न साषी अधिक है—

मूरष की मूरष लहै, गुनीयन की गुनीयाह।
पारब्रह्म की कुंण लहै, देष्या नही सुनीयाह ॥

(१४) १. (क) और न को, (ख) आपो आप नीयांह, (घ) गति न सुनियांह।

(१५) १. (ख) आय न कोई।

हंसा सुन्य होती, मंझे मोती,
मुष विण चूणी चुगंदा है ॥ २४ ॥
आतम ब्रह्म मंडा, एक अषंडा,
विण रसणां गावंदा है ॥ २५ ॥
अंबर घरि आए, ब्रह्म वधाए,
अनहद नाद घुरंदा है ॥ २६ ॥
नौबति निसांनां, दिल दीवांनां,
वाजा भेर बजंदा है ॥ २७ ॥
मन सिषर मिलीया, त्रिगढ मिळीया,
चौथा पद पावंदा है ॥ २८ ॥
अरधे मिल उरधा, पवन निरुधा,
ध्यांन समाधि लगंदा है ॥ २९ ॥
धरीया नही धारू, अधर अधारू,
सहजां सेव करंदा है ॥ ३० ॥
दसवै मिल द्वारी, लाई तारी,
अमर विंद वरंदा है ॥ ३१ ॥
मनवा थिर पवनां, पंचे दनवां,
प्याला अजर पीयंदा है ॥ ३२ ॥
त्रिमल जांह नूरा, उदै अंकूरा,
परमानंद परसंदा है ॥ ३३ ॥
त्रिवेणी छाजै, ब्रह्म विराजै,
त्रिभै राज करंदा है ॥ ३४ ॥
झिलमला जोती, ओतर पोती,
जीव'र सीव मिलंदा है ॥ ३५ ॥
हरि हीरा पाया, विणज हलाया,
तोल न मोल लहंदा है ॥ ३६ ॥

ऊं नांवज केवल, वडे महाबल,
रोम रोम उचरंदा है ॥ ११ ॥
रहता सुं रहता, है निज तता,
न्यारा हुय निरषंदा है ॥ १२ ॥
अैसा अभिनासी, आया न जासी,
भाग वड़ै भेटंदा है ॥ १३ ॥
रेचक अर पूरक, कर विन कंभक,
आप उलटि पलटंदा है ॥ १४ ॥
ताटिक हुय ग्यांनु, वात विग्यांनु,
आपा पट षुलंदा है ॥ १५ ॥
सुषमिण की घाटीं, चड़ीया वाटी,
अरस घरां ठहरंदा है ॥ १६ ॥
फिरीया मन पूरब, चले अपूरब,
ठांम ठांम ठमकंदा है ॥ १७ ॥
जालंधर बंधा, उरधे कंधा,
तन अर पवन मिलंदा है ॥ १८ ॥
उलट्या हैं आसण, पलिट्या वासण,
सुरित सब्द परसंदा है ॥ १९ ॥
वहते वंकनाड़ी, षुली किवाड़ी,
भवर गुफा भणकंदा है ॥ २० ॥
ऊलषीया मेरा, गुर मिल चेरा,
चहूं चकडोल फिरंदा है ॥ २१ ॥
षटचकर भेद्या, भव दुष छेद्या,
संसा सोग नसंदा है ॥ २२ ॥
गरजत है गैणु, वरजैवैणु,
सरवर सुन्य वसंदा है ॥ २३ ॥

वात कहै दिस पछमि की, बैठे पूरब देस ।
जनहरीया जब जांणीयै, अै कूड़ा उपदेस ॥ ८० ॥

ररंकार सिवरण सहज, नाभ-कवल असथांन ।
हरीया पछमि देस कु, पुंहचन का परवांन ॥ ८१ ॥

रांम रांम रसनां रट्या, हरीया पूरब देस ।
कीया पीयाना पछमि कुं, मर्म का नही लेस ॥ ८२ ॥

हरीया पछमि देस की, वाट विषम घर दूरि ।
सुरित सबद जांह संचरै, ताप त्रिगढ[1] कुं चूरि ॥ ८३ ॥

हरीया पछमि देस का, कौंण नांम कुंण ठांम ।
अरध अषंडी नांम है, सुन्य सहर विसरांम ॥ ८४ ॥

धारि ससतर ग्यांन[1] का, क्या औरां सिर वाहि ।
हरीया वाहौ आप सिर, षाली कदे न जाहि ॥ ८५ ॥

षाली कदे न जांणीयै, आपा ऊपरि षेल ।
हरीया आपा [1]बाहिरौ, जोयज होसी हेल ॥ ८६ ॥

माया नांना भांति की, हरीया जुग में जांनि ।
काहू सुत वित असतरी, काहू अणभै बांनि ॥ ८७ ॥

हरीया सुत वित असतरी, अणभै वांणी बोलि ।
एता मन सुं दूरि करि, हरि निर अंतर षोलि ॥ ८८ ॥

काया माया आस तज्य, कथणी बकणी छाडि ।
हरीया होता परम सुष, जांह निज मंनवा गाडि ॥ ८९ ॥

---

(८३) १. (ख) त्रिगुण कुं, (घ) त्रिविध गढ ।
(८५) १. (घ) ग्यांन ससतर धारिकै ।
(८६) १. (ख, घ) षेल विन ।

रांम नाम परताप सदाई , तारे पतति अनेका ।
सिव सिंनकादिक रिष नारदसे , पाया[1] ग्यांन वमेका ॥ २१ ॥
अरध उरध मैं कीया पयांणा , जांणै विरला जोगुं ।
मन पवनां पछिम की घाटी , आपा नांव तरोगुं ॥ २२ ॥
सुधि वुधि [1]बिसर गया [2]सब देहा, रांम[3] नांम रस पीया ।
अैसा[4] अछक छक्या अवधूता , जुग जुग अणभै जीया ॥ २३ ॥
अैसी अकथ कथा और[1] सैं , कहीयै कौंण वमेषी ।
उलटा अजर जरै अवधूता , सो जन विरला देषी ॥ २४ ॥
अजरांमर का मारग औंला , सौंला संत पिछांणै ।
वंक नालि मेर संचरि कै , भवर गुफा सुष मांणै ॥ २५ ॥
इला पिंगला नाड़ी [1]मिलकर, सुषमनि कीया [2]विछांनी ।
अरस परस पीया [3]सुं षेली , मगनां भई दिवांनी ॥ २६ ॥
घर [1]अंबर कै बीच कलाळी , विण कर प्याला पावै ।
भाटी अघर पीयै मतवाळा , रोम रोम रुचि आवै ॥ २७ ॥

---

(२१) १. (ग) ब्रह्मा विसन ।
(२३) १. (ग, घ) पलटि । २. (ग, घ) गुण । ३. (ग) रोम रोम, (घ) ररंकार । ४. (ग) आतिम ।
(२४) १. (ग) कुंण आगै, (घ) औरन सुं ।
(२६) १. (ग) नारी संजम । २. (घ) पिछांनी । ३. (ग) मिल ।
(२७) १. (ग) असट कवल ।

तीन्हुं पैल पेल घर चौथै , दिल इंदर मिल यारा ।
पांचे[1] उलटि एक घरि आया , पाया दसुं दुवारा ॥ २८ ॥
पोड़ि[1] दवादस गऊ मिलाई , अजपा [2]दही जमाया ।
तन मटकी मन कीया झेरणा , सुगता[3] माषण आया ॥ २९ ॥
सुन सुभर मैं बालक जाया , तुचा हाड़ नही मासुं ।
जाति [1]न पांति वरण नही वाकै , नांव न धरीयै कासुं ॥ ३० ॥
अगम निगम [1]घर षेल हमारा , जांह[2] एको निरवासा ।
रूप रेष नष चष नही वाकै , देह न ग्रेह न सासा ॥ ३१ ॥
जैमलदास गरु परतापे , तोड़्या भरम किंवारुं ।
जनहरिराम कहत है संतो , पद वतीस विचारुं ॥ ३२ ॥*

अथ ग्यांन परिछ्या[1] लिष्यते

साषी

21:55

नामी परचा नांव का, अरध[1] कवल असथांन।
हरिरांमा[2] मन उलटि कै, चल्या उरध[3] कुं ध्यांन ॥ २२ ॥

छंद भुजंगी प्रयात

पलटि पूरब अपूरब पांणा।
करि वंक नाली[1] ले मेरथांणा ॥ २३ ॥
ध्यांन आकास धरि [1]अटल छाजै।
सुरति अर सबद [2]जांह एक राजै ॥ २४ ॥
मन बुधि चित अरु अहकारा।
पांच पचीस मिल एक यारा ॥ २५ ॥
नाद अनहद जांह तूर वाजै।
विण वादलां वीज विण अब गाजै ॥ २६ ॥

---

(१९) १. (ग) नांव महमान की आषि गला।
(२१) १. (ग) त्राटक।
(२२) १. (ग, घ) गुर तैं पाया ग्यांन। २. (ग) जनहरीया, (घ) हरीया पूरब एकपल। ३. (ग) धरि आकासां, (घ) चल्या गिगन मैं।
(२३) १. (घ) नाले लीया।
(२४) १. (ग) अरध आकास उनमुन। २. (ग) मिल।

विण गंग जमना वहै नीर धारा।
चलै सुषमणा [1]इंमरत धारा ॥ २७ ॥
झिलमिला होत जांह अषंड जोती।
निरमला[1] नूर तांह ओत पोती ॥ २८ ॥
अगम [1]अपार अवगति यारा।
मिल्या मुझि मैं मुझि [2]पीतंब प्यारा ॥ २९ ॥
तीन गड [1]चूरि पति अदल साई।
सुन्य का सहर निरभै वसाई ॥ ३० ॥

साषी

हंसा सुंन्य सरवर मिल्या, सरवर हंस मिलाय।
हरीया परि [1]सरि षेलतां, सहजां [2]मांहि समाय ॥ ३१ ॥

छंद प्रीयात भुजंगी

मन अर तनकरि[1] सहज पूजा।
आपही[2] देव नही और दूजा ॥ ३२ ॥
सहज का जोग साझन पवनां।
सहज थिर नाद अरु बिंद गिगनां ॥ ३३ ॥
सहज तीरथ जप तप ध्यांनु।
सहज षटकरम सेवा सिनांनु ॥ ३४ ॥
सहज कछि काछ कीरतंन काजा।
सहज का सबद सुर वाय वाजा ॥ ३५ ॥

---

(२७) १. (ग, घ) सीर।
(२८) १. (ग, घ) त्रिमला।
(२९) १. (ग) है पार। २. (घ) पीतम।
(३०) १. (ग) च्यार चक चूरि, (घ) फदल कुं चीत।
(३१) १. (घ) सिर। २. (घ) रक्षा।
(३२) १. (ग) सहज मन वचन तन प्रांण पूजा। २. (ग, घ) सहज विन (सा)।

घट मैं सिवरन एक¹ अटला । मुजरा आतम कीया अपला ॥
रोम रोम ररंकार लगाया । एक अरीझन कुं रींझाया ॥ ६ ॥
रेचक कंमक¹ पूरक ध्यांनां । उलट पलट² में सहज पिछांन्यां ॥
पूरब ध्यांन भया जब तातिक । धूल्हा सहज गिगन का पाटिक ॥७॥

---

* (क) लिष्यते, (ख)⋯हरिरामदासरो कह्यो, (घ) ग्रन्थ⋯ लिष्यति ।
(१) १. (क, ख) मंनां । २. (क, ख) तंनां ।
(२) १. (क, ख) वाहिर । २. (क, ख) अंदर, (घ) इंदर । ३. (क) एक रांम ।
(३) १. (ख) कूड़ कुविधि का कीया नासा । २. (ख) परगासा ।
(६) १. (क) होय ।
(७) १. (क, ख) पूरक कंमक । २. (क, घ) पुलट, (ख) पळटि ।

साषी

हरीया सबद पयाल कुं, चल्यौ गिगन तैं होय ।
जब जालंधर बंध कुं, विरला जांणैं कोय ॥ ८ ॥

चौपई

उलटा ध्यांन पछमि¹ दिस आया । बीच मेर थांणा थरपाया ॥
घट मैं लागी चोट करारी । मनसा अगम देस कुं धारी ॥ ९ ॥
सुरित¹ सुन्य का सहर बसाया । आकासे घर मंडप छाया ॥
घट मैं सिव सकती का वासा । सहज करत हैं भोग विलासा ॥१०॥
धूल्ही सीर सुषम की घाटी । इळा पिंगला बूंदी वाटी ॥
तल का नीर चढ्या आकासा । भरीया सरवर नदी¹नवासा ॥११॥
वांह छूटै अंमृत¹ की धारा । पी पी संत भया मतवारा ॥
औरन को संगति नहीं²सोबति । लागी एक अलष सुं मौहबति ॥१२॥
घट मैं रांम निरंजन राया । जुग मांही विरलै जन पाया ॥
घट मैं प्रांण पुरस की माया । घट मैं तीनु¹ लोक समाया ॥१३॥
घट मैं चंद सूर तारायन । घट मैं तत तेज नारायन ॥
घट मैं सात दीप नव षंडा । घट मैं एको जोति अषंडा ॥१४॥
घट मैं गंग जमन सुरसती । छापा तिलक सहज¹गोमती ॥
घट मैं सेव करुं असनांनां । पूजुं मूरत² न धात पषांनां ॥१५॥

---

(९) १. (घ) पिछम ।
(१०) १. (क, घ) सुरति ।
(११) १. (क, ख, घ) निवासा ।
(१२) १. (ख, घ) इंमृत । २. (घ) सोमति ।
(१३) १. (क) तीन्हु ।
(१५) १. (क) घट मैं तिलक छाप गोमती । २. (क) ध्यांत न मूरत, (ख) मूरित, (घ) सुरति ।

नांव त्रिप कोट[७] सिर चाढि नांवै कीयौ,
नष[८] अर चष विच एक राई।
दास हरिरांम सव[९] राज अवचल भया,
दसवैं[१०] द्वार नौबति वाई ॥ ९ ॥

रसनां प्रथम सत[१] सबद कुं दिढ करि,
दूसरै कंठ लिव[२] पेम आया[३]।
तीसरै सास उसास हिरदै[४] उठै,
चतुरथै नाम[५] घट पेंल लाया ॥
असट जांह[१] कवल दल नांव परकासीया,
रोम ररंकार धुनि एक लाई।
मन अर पवन की गांठि गाढी घुळी,
उलटि पूरब दिस पछमि आई ॥
उलघि मंन मेर सुनि सिषर सहजे चढ्या,
जीव अर सीव जांह नांहि जूवा।
दास हरिरांम तांह परम जोगेस्वरा,
द्वार मिल दसवैं पारि हूवा ॥१०॥

प्रथम तैं रसनां रांम सिवरन कीया,
दूसरै[१] तन मन वचन[२] ध्याया।
तीसरै एक[३] सब अछर केवल भया,
चतुरथै रोम ररंकार लाया ॥

---

७. (ग) मांहि गढ राज अपना कीया। ८. (ग) सील संतोष सब एक राई। ९. (ग) जहां। १०. (ख) तीन लोक सिर फेर द्वाई, (ग) च्यार चक लोक तिह फिरत द्वाई।

(१०) १. (ग) गुर। २. (ग) जहां। ३. (ख, घ) लाया, (ग) प्यासा। ४. (घ) सहजां रिदै। ५. (ख, ग) अजपा नाम थाया (वासा)।

(११) १. (ख, ग) दुतीय। २. (ख) सहज। ३. (ख) भजन, (घ) नांव, (ग) सास उसास अजपा जपै।

पंचमै उलटि नाभ अणअषरी,
मेर षट सात ब्रहमंड छाया।
असटवै सुनि सिर अंतरै जांणि नव,
दसवैं देव दीदार पाया ॥
पूरब अर पछमि उतराध मेलां दषणि,
ग्रामसी पंथ[४] कोई भाग पूरा।
दास हरिरांम तांह संत परमातमा,
अरस अर परस मिल[५] एक नूरा ॥११॥

तीन चक्र चूरि अर[२] चित चौथै गया,
नाभ असथांन धुनि धम कारा।
सास उसास मैं वास त्रिभै[३] कीया,
रमि रह्या एक आतम यारा॥
सहज मैं सांम सुष रास ऐसैं मिल्या,
रूम मैं रूम ररंकार जागे।
दास हरिरांम गुरदेव परताप तैं,
हदि कुं जीत वेहद लागे॥ ३॥

प्रथम सो प्रथम अध नांव रसनां लीया,
दूसरै नांव मध कंठ धारा।
तीसरै उतिम निज[१] नांव हिरदै कह्या,
चतुरथै नाभ अति उतिम यारा॥
यार तैं यार मिल यार एको भया,
नैंन सुं[२] बैंन मिल द्वार षूल्हा।
चंद सुं[३] सूर मिल सूर चंदै मिल्या,
ग्यांन सुं[४] ध्यांन मिल असथूला॥
अरध सुं[५] उरध मिल उरध अरधै मिल्या,
मन सुं[६] पौन मिल एक रागा।
पूरब दिस आय अर उलटि[७] पछ्यु मिल्या,
अटल[८] असथांन धुनि ध्यांन लागा॥

---

२. (घ) करि। ३. (ख, घ) निरभै।

(४) १. (ख, ग) सुं, (घ) सो। २. (ख, ग, घ) तैं। ३. (ख, ग, घ) तैं। ४. (ख, ग, घ,) तैं। ५. (घ) तैं। ६. (घ) तैं। ७. (ख, घ,) पूरब कुं उलटि अर पलटि पछिम०, (ग) पूरब कुं ध्याय दिस पछमी मिल्या। ८. (ख) अगम असथांन कुं आय लागा, (ग) अगम असथांन लिव जाय लागा।

कहौं कौंण घर उंनमुंन लाई।
कहौ कौंण घर सुरित समाई॥
कहौं कौंण घर पीय मिलावै।
कहौ कौंण घर आय न जावै॥ ३॥

अथ उतर

कंठ कवल घर पेम निवासा।
रिदै कवल घर ध्यांन प्रकासा॥
नाभ कवल घर मनमिल पवनां।
रोम रोम घर सहज सिवरनां॥ ४॥
वंकनाल घर अमरा भरि है।
अरध ऊरध घर निझर झरि है॥
सुन्य[1] सिषर घर अनहद तूरा।
दसुं[2] द्वार घर परसत नूरा॥ ५॥
लिलाटी घर उंनमुंन लाई।
सुरित सबद घर मांहि समाई॥
त्रिवेणी घर पीव मिलावै।
सिवसता घर आय न जावै॥ ६॥
जनहरिराम [1]जहां घर पाया।
जनम मरण संदेह मिटाया॥
विन गुर गम देषै[2] नर दूरा।
ब्रह्म वताया आप [3]हजूरा॥ ७॥

---

(५) १. (क, ख, ग, घ) सुनि। २. (घ) दसवै।
(७) १. (क) कहै, (ख, ग) अगम। २. (ख) कोई भेदै नांही। ३. (ख) ब्रह्म वताया घट्ही मांही, (ग) में यह अर्धाली नहीं है।

साषी

गुंष्ट हमारी सो करै, होई[1] हमारा यार।
जनहरीया दूजी दुनी, जा कुं उभ जुहार॥ ८॥

—o—

सिषर कुं ध्यांन चढ़ि धसे पाताल कुं,
पूरब कै घाट हुय नाभ आये।
उलटीया[1] सबद मन पवन पछमि दिसा,
ओथि जालंधरी बंध लाये ॥
साझि षट चक्र सुन्य वीच फेरा कीया,
होय आगै गरू लारि चेला।
जनम अर मरण का[2] सोच संसा मिट्या,
नांव निर्भै तणा बांधि बेला ॥
वेद कतेब गुण गाय पुहचै नही,
ब्रह्म कै धाम का अगम गैला।
सुरति अर निरत ले द्वार दसवै मिल्या,
होय जब दीन दोसत्त पैला ॥
पाप अर पिन[3] जांह हरष सोगा नही,
जीव अर सीव का होय मेला।
दास हरिरांम अब राज ऐसा जम्या,
सिंघ बकरी चरैं वंन भेला ॥३१॥

रांम महाराज की रौंस जांणै नही,
हौंस करि पथर पूजत पाजी।
अगम अग्याध कुं साध सूरा लहै,
पंथ पूरा गहै गहै मरद गाजी ॥
मूढ अग्यांन की पोट माथै लीयां,
ग्यांन गुर गम विन उ तर नाजी।
अधर का ध्यांन मन सुरति सुन मैं धरौ,
वाय नीसांण चढ़ि पेम ताजी ॥

(३१) १. (ब) सुरति अर। २. (ब) सनेह। ३. (ब) पुंण्य का।

ताहि परषत[6] जुग[7] मांहि जन जौंहरी,
सुरति अर निरत कैं वैस छाजै।
मन परचाय पिंड[8] प्रांण परचा भया,
भगति अर[9] मुगति सहजे निवाजै ॥
पाव अर[10] पंथ[11] विण इंति[12] ऊंचा चढ्या,
देषीया दीप परदीप[13] द्वारा।
दास हरिरांम कहै नांव का नांव मैं,
होय गरकाब निह आरपारा ॥२९॥

इला अर पिंगला वीच है सुषमणा,
होय तांह[1] त्रिगुटी घाट मेला।
अगम का पंथ जांह[2] और पुहचै नही,
हंस परिहंस मिल करत केला ॥
वंक नाली वहै सुरति सबदां गहै,
जोग अर जिग जप तप नांही।
नाद अनहद[3] वजे भै दुष दूजा भजे,
अरध अर उरध कै वीच मांही ॥
उरध मुष कूंप मैं अरट निसदिन वहै,
चलत है षाल चहुं[4] दिस धारा।
दास हरिरांम सो संत जन पीवसी,
प्यासा मरै और विन सुधि सारा ॥३०॥

---

६. (ग) निरष परषत। ७. (ख, ग) है जन कोई जौहरी। ८. (ख) तन, (ग) अर। ९. (ख) निज। १०. (ग) विण। ११. (ख, घ) पंथ। १२. (ख) उलटि, (घ) अति। १३. (ग) परषंड।

(३०) १. (ग) आतिम तहां सहज मेला। २. (घ) कूं। ३. (ग) अनहद वाजा। ४. (ख, ग) सुषम धारा।

अजपा जाप की गम कैसें लहै,
जुगति सुं जाप नही करत जांणी ।
आतमा[1] देव की गम कैसें लहै,
वेद कतेव[2] देषै[3] पुरांणी ॥
रोम ररंकार की गम कैसें लहै,
सबद के संग मंकार [4]होई ।
दास[5] निरआस की गम कैसें लहै,
आस[6] दुनीयांन की करत [7]सोई ॥
नाह[8] निरगुन की गम कैसें लहै,
ताप गुण तीन के पंथ[9] पुळीया ।
उंनमुंनी ध्यांन की गम कैसें लहै,
नांव कुं लेत है कांनि [10]सुणीया ॥
सुरति अर निरत की गम कैसें लहै,
मन[11] वौह कांमना[12] रहत मांही ।
अरध अर उरध की गम कैसें लहै,
कंठ रसनां रिदै ध्यांन नांही ॥
पिंड ब्रहमंड की गम कैसें लहै,
षंड फिर मंडका देष देषै ।
नांव निरवांण की गम कैसें लहै,
वाद वकवाद कैं राग धेषै ॥

---

(२४) १. (ख) आप आतम की, (ग) एक आतिम की । २. (ग) सासत । ३. (ख) ढूंढै । ४. (ख, ग) मुखा कवल के बीच मंकार वासा । ५. (ख, ग) नेह । ६. (ख, ग) दास । ७. (ख, ग) आसा । ८. (ख, ग, घ) नांव । ९. (ग) मांहि । १०. (ग) और फिर लेत है कान कुलीया । ११. (ख) मोह मन, (ग, घ) विषै मन । १२. (ग, घ) वासना ।

विन करताल डंक विन तूरा, पग विन पांतरि नाचै।
अषंड [6]मंहल मैं रास रच्यौ है, जांह मेरा मन राचै॥ ३॥
सदा सुमंगल हरण सकल भ्रम, ब्रहमानंद विराजै।
जनहरिरांम सुरति कीया वासा, अधर[7] महल कै छाजै॥ ४॥

(४४)

अवसिरि[1] आयौ यार असीनौ।
आज सु दिन भयौ भाग पूरबलै, पायौ परम रसीनौ॥ टेर॥
रहिसुं रांम सदा रंग राती, आंन भरमनां भागी।
अंतर तार कबु नही तूटै, लिव चेतन सुं लागी॥ १॥
अहि निस[2] ध्यांन घरूं आतम कौ, एकै तन मन [3]होई।
ऊ विन[4] मात पिता[5] नही जायौ, सांम हमारै सोई॥ २॥
पांच पचीस मिली निज मन सुं, भया[6] अचंभा भारी।
उलटि नाद बूंद वरषांना, गिगन भरै पिनहारी॥ ३॥
इला पिंगला पासि सहेली, सुषमिण सुं घर वासा।
रांम[7] निरंजन रमै अकेला, सुनि महल मैं वासा॥ ४॥
निरभै राज भया पतिनीका, अधर अमर वर कीन्हा।
जनहरिरांम मिले महरंम[8] सुं, अरस परस लिव लीन्हा॥ ५॥

---

६. (ख, ग, घ) मंडल। ७. (ख, ग) एक (जहां) निरंजन राजै।

(४४) १. (ख) घरि, (घ) सर। २. (ख, ग) उंनमुंन। ३. (ग) और न वंछू कोई। ४. (घ) ना कुल। ५. (ख) उदर नही आयौ, (ग) घट घट मांहि उदर नही आया। ६. (ख, ग) एक। ७. (ग) अरघ उरघ मै। ८. (ग) आतिम।

जोग न जिग जप तप नही तीरथ,
पाप न पिन लिपता नही छिपती ॥ ३ ॥
सुरति सबद का ध्यांन अहोनिस,
सास उसासा जाप अजपती ॥ ४ ॥
आतम[5] एको नांव अषंडत,
रोम रोम [6]आनंदमय मती ॥ ५ ॥
इला पिंगला पूरि पछिम दिस,
मन पवनां वासा सुन्य वसती ॥ ६ ॥
श्रवन नासिका नैनन के मिंझ,
सहज भया संजम सिव सकती ॥ ७ ॥
जनहरिरांम लगी जांह[7] यारी,
निर बंधन द्वारा निरमुगती ॥ ८ ॥

(३५)

भजन विनां दुनीयां दूभरि भरि ।
हंसा जांनि[1] दुषी सरवर विन,
जुग जीवन सुष सागर घरि घरि ॥ टेर ॥
तीन लोक मध्य[2] सरग पीयाले,
षड़पंचम सुष नांही थिर थिर ॥ १ ॥
लष चौरासी जोनि जोनि मैं,
जनम जनम मरि[3] आवै फिर फिर ॥ २ ॥

---

५. (ग) अंतर । ६. (ग) परमानंदरती । ७. (ख) तांह, (ग, घ) तहां तारी ।

(३५) १. (ख, घ) क्युं न चुगत (गै) मोताहल, (ग) क्युं न लहत मोताहल । २. (ग, घ) मधि । ३. (ख, घ) फिर आवै मरिमरि, (ग) आय जावै मरि मरि ।

(२९)

है रे कोई अैसा गुर [1]ग्यांनी ।
पार ब्रह्म का धरिहै [2]ध्यांनी ॥ टेर ॥
मेटै ताप त्रिवध[3] गुंण माया ।
मेटै रांम निरंजन [4]राया ॥ १ ॥
पूरब [5]उलटि पछमि दिस आवै ।
अरध उरध [6]मैं रांमति लावै ॥ २ ॥
सुष दुष होय न[7] कोई संसै ।
हंसा [8]आय मिल्या परिहंसै ॥ ३ ॥
काटै जनम मरन की पासी ।
पावै राज अटल अभिनासी ॥ ४ ॥
जनहरिरांम अगम गम नांही ।
गुर[9] सिष वास वसाया मांही ॥ ५ ॥

(३०)

भजीयै रांम नांम [1]आनंदा ।
तजीयै भरम[2] करम दुष दंदा ॥ टेर ॥
भीतरि कपट न बाहरि भेषा ।
लोक लाज कुल सुं नही लेषा ॥ १ ॥
वाहै ताकि सबद गुर [3]तीरा ।
झेलैगा कोई सूर [4]सधीरा ॥ २ ॥

---

(२९) १. (घ) ग्यांना । २. (घ) ध्यांना । ३. (ख, ग) त्रिगुणकी, (घ) तीन गुण । ४. (घ) जब तैं अणभै राज जमाया । ५. (ख) छोडि । ६. (ख) विच षेल मचावै, (ग) विच ताळी, (घ) विच । ७. (ख) वाकै सुष दुष नां, (ग) सोग नही०, (घ) सुष दुष सेती भया निसंसै । ८. (ख, ग) उलटि । ९. (ख, ग) गुरगम, (घ) सतगुर सब्द बताया ।

(३०) १. (ख, ग, घं) निजबंदा । २. (घ) और भरम । ३. (ख, ग) ताकि ताकि सर वाहै सूरा । ४. (ख, ग) गुर मुष पूरा ।

(९७)

संतो सतगुर करण सिहाई ।
अंतर मांहि निरंतर देष्या, जिन [1]औ भेद बताई ॥ टेर ॥
सहजां पुसतग वेद [2]पुरांनां,, सहजां [3]अछर वाचै ।
सहजां तार तबल [4]घर तूरा, सहज नचईया नाचै ॥ १ ॥
सहजां गंगा जमन [5]सुरसती, सहजां करत [6]सिनांनां ।
सहजां देव सेव घट भीतरि, सहजां [7]ब्रह्म गिनांनां ॥ २ ॥
सहजां जोग जुगती भी सहजां, सहजां रिधसिध दासी ।
सहजां गिगन ध्यांन धुनि लागी, सहज मिल्या अभिनासी ॥ ३ ॥
सहजां सहजां[8] एक भया सब, रांम नांम [9]जब जांण्यां ।
मोष मुगति का ना कोई संसा, सहजां सबद पिछांण्यां ॥ ४ ॥
सहजां सुरति निरति भी सहजां, सहज मिंदर मैं वासा ।
सहज पीया सुं सेझ रमंती, सहज कीया घर वासा ॥ ५ ॥
सहजां इला पिंगला सहजां, सहजां सुषमिण नारी ।
जनहरिरांम सहज घट[10] भीतरि, पाया[11] देव मुरारी ॥ ६ ॥

(९८)

हो मेरी आंषि [1]फरूकै लांई, पीव मिलन कै तांई ॥ टेर ॥
पीव [2]प्यारै कौ पंथ निहारत, तन मन सुं भई ठाढी ।
आवैंगे अपनै[3] घरि साजन, मिलुं बांह भरि गाढी ॥ १ ॥

---

(९७) १. (ख, घ) सहजां, (ग) ऐसा । २. (ख) विचारा, (ग) सहजां वेद छुछम की वाणी । ३. (ग) पुसतक । ४. (ख, ग, घ) घन । ५. (घ) सहजां गंग जमन का मेला । ६. (ख, ग) गंगा जमना सहज सुरसरी, सहज सिनांन संजोई । ७. (ख, ग) पाया (वै) सोई । ८. (ख, ग) जांणि । ९. (घ) कुं, (ख, ग) एक रांम कुं (जप) । १०. (ख, ग) घर पाया (आया) । ११. (ख) मिलीया ।

(९८) १. (घ) अंषीया नीझर लाई । २. (ख) नैणां सुं निब पंथ निहारूं, (ग) अपनै । ३. (ख, ग) मोहन मदसूदन ।

सब संतां मिल कह्यौ समिझ कै , कांणि न किस की[16] राषी।
जनहरिरांम [17]कह्यौ मैं सोई , रांम नांम [18]सत्य भाषी ॥ ७ ॥

(९४)

हो मोहि लागी प्रीत रसलै , नांव निमष नही भूलै ॥ टेर ॥
लागी प्रीत मोहि भई पूरांणी , भावै जांणि मजांणी।
लोक लषी सैं कौंण कांम है , सुंदरी सांम सुजांणी ॥ १ ॥
भरमां करमां भई दुहागिण , आसां तिसनां दूरा।
यारी एक लगी आतिम सुं , घना भाग सनूरा ॥ २ ॥
तम निरास बौहौतेरी आसा , दीनबंधू हम दासी।
तम हम सुं हरि एसी कीजौ , राषौ पासि षवासी ॥ ३ ॥
आपा उलटि भई मैं ठाडी , दिल दीदार दिषाया।
जनहरिरांम भया सुष सबही , पिव परमानंद पाया ॥ ४ ॥*

(९५)

संतो निरगुन गुन तैं न्यारा , कोई पावै पीतम प्यारा ॥ टेर ॥
आतम[1] रांम सकल सुं[2] न्यारा , पिंड पिंड भर पूरा।
मूरष मरम न जांनै [3]उंन कौ , फिर फिर [4]देषै दूरा ॥ १ ॥
चंद सूर सुषमिण जांह मेला , नादे बिंद समाई।
उलटी घरिण गिगन मैं[5] गरजै , विन वादर झर लाई ॥ २ ॥
विन देवल पूजा विन पाती , दोस मिस विन देवा।
देष्यां दिष्ट मुष्ट नही आवै , सहज करुं ताहि सेवा ॥ ३ ॥

---

१६. (ख, ग) काई। १७. (ख) कहत मैं, (ग) कहत है, (घ) कह्यो सति। १८. (ग) गल आषी, (घ) नित।

(९४) * यह पद केवल 'ग' प्रतिमें प्राप्त होता है।

(९५) १. (ख) है हरि नांव, (घ) है निज नांव। २. (ग) निरगुन नांव निरूपन न्यारा, (घ, ख) तैं। ३. (ख) अपनो, (घ) पावै इनको। ४. (ख) ढूंढै, (ग) भूदू मरम संग लीयां डोलै, हरि है आप हजूरा। ५. (ग) मैं बरसै, (घ) जाय।

(४५)

राग गुंड विलावल

लीजै[1] रे भईया रांम नांम।
जनम मरन याही सैं कांम ॥ टेर॥
या तैं[2] सकल सरैं तुझि काज।
भजीयै रांम नांम[3] माहराज ॥ १ ॥*
रांम नांम तुल्य और न कोय।
निगम[4] पुकारि कहत हैं सोय ॥ २ ॥
संसा भरम[5] हमारै नांहि।
रांम नांम पाया घट मांहि ॥ ३ ॥
जनहरिरांम रांम भजि लोय।
या तैं मोष मुगति फल होय ॥ ४ ॥

(४६)

साध[1] सोई जाकै सहज समाधि।
हठ पचि मरै न और न उपाधि ॥ टेर ॥
सहजां मन पवनां का मेल।
सहजां चलै सिषर[2] कुं वेल ॥ १ ॥
सहज भया जालंधर बंध।
तोड़्या[3] भरम करम का फंद ॥ २ ॥

---

(४५) १. (ख, ग, घ) लीजो। २. (ख) सुं। ३. (ख) छोडि कुल लाज, (घ) तजो कुल लाज। * 'ग' में विशेष है—सतगुर एक बताई रौंस, या विन और मशुं तो सौंस। ४. (ख, ग) वेद पुरांन। ५. (ख, ग) सोग।

(४६) १. (ख, ग) है सोई साधु इ (अ) गम इ (अ) व्याधि, सहजां सिंवरन सहज समाधि। २. (ख, ग) गिगन। ३. (ग) मेट्या।

उलटि हदि कुं [३]चड़्या वेहद, वंक नाळी पूर ।
इला पिंगला वीच सुषमिण, निरष आतम नूर ॥ २ ॥
विनां वाती जोति झिल मिल, अषंड दीया लोय ।
देह विन वदेह पुरषा, लहै महरंम सोय ॥ ३ ॥
पंष विन एक जांनि भवरा, विनां वाड़ी वीच ।
हरिरांमा रह रास न्यारा, कवल कदम न कीच ॥ ४ ॥

(१२०)

जीवरे जुगति सुं करि जीण ।
पांच पायक पेल पैदल, मांनका गढ लीण ॥ टेर ॥
सुरति घोड़ा निरत साषति, पिम्या करि पुरगीर ।
पागड़ां पग देत सासा, डाकि पैली तीर ॥ १ ॥
चौकड़ै चित धारि चौकस, लगांमी लिव लाय ।
पेम की सिर पहरि पाषर, अगम दिस कुं ध्याय ॥ २ ॥
तन तरगस बांधि गाढा, गहौ ग्यांन[१] कवांण ।
ध्यांन मूठी धारि उंन मुंन, सबद लावौ बांण ॥ ३ ॥
सुधि बुधि बंदूक साहौ, वचन गोळी वाहि ।
जांमगी सिलगाय जतनां, ढिग दूंदर ढाहि ॥ ४ ॥
सेल सिवरण साहि सहजां, तत करि तरवारि ।
हरिरांमा जन एह औसर, जीत नावै हारि ॥ ५ ॥

(१२१)

राग जैतश्री

द्वारै दास की, सेवा किस विध होय ॥ टेर ॥
आदर भाव नही हस्य बोलन, गरवा तन नही ग्यांन ।
पेम न प्रीत नही कोई नेमा, धरम न हरि कौ ध्यांन ॥ १ ॥

---

३. (ख) चले, (ग) देष ।
(१२०) १. (घ) ग्यांन गह कवांण ।

या मैं एक वदेही पुरषा, इलां पिंगला रांणी।
सुषमिण सदा सुहागिण सुंदरि, मोष मुगति जांह जांणी ॥ २ ॥
अणभै राज करत अभिनासी, जांह चित चाकर लाया।
जनहरिरांम छोडि हद वासा, वेहद वास वसाया ॥ ३ ॥

(१०१)

है कोई अैसा भेदी, भेद [1]पिछांनै ॥ टेर ॥
गंग जमन की नाहै घाटी। वूंदै नाद बिंद की वाटी ॥ १ ॥
अनहद घोर[2] गिगन मैं गाजै। विण करताल पपावज वाजै ॥ २ ॥
इंदर[3] जोति अषंडी जागी। मिटग्या तिवर भरमना [4]भागी ॥ ३ ॥
सहजां पांच प्रिसण[5] कुं पेलै। सुन्य मंडल [6]मैं रांमत षेलै ॥ ४ ॥*
जनहरिरांम[7] भई पटिरांणी। अब[8] अपनै पीया मन मांनी ॥ ५ ॥

(१०२)

रे नर तूं जिन जांनै दूरै। रांम सकल भर पूरै ॥ टेर ॥
तूं जिस काज फिरैं नर भरम्यौ, अति उदासी डोलैं।
मूरष मरम न [1]जांनै उंनकौ, उ घट[2] भीतरि बोलै ॥ १ ॥

---

(१०१) १. (ग) विचारै, (घ) सुजानै। २. (ख, घ) नाद। ३. (ख) अंतर, (ग) घटमै, (घ) अंतर जागै जोति अषंडी ४. (घ) षंडी। ५. (ख, ग) पचीसुं। ६. (ख, ग) जब निरमै हुय।

* (ख, ग) में इसके बाद यह अधिक है—(ख, ग) एकोएकी होय (आस) निरासा, (ख) सुरित कीया वेहद मैं वासा, (ग) हदि छाडि करि वेहद वासा। ७. (ख, ग) सबै (कहै) विध जांणी। ८. (ख) जब, (ग) आपा आतिम मांहि पिछांणी।

(१०२) १. (ग) पायो। २. (ख) आपा, (ग, घ) उ तन।

15:17
INTERNET ARCHIVE

सुरलोक नरलोक और पाताल लोक में तीनो लोको में सुख का अनुभव कर त्रिकुटी में आना ही गोलोक में आना है। देवताओं के लोको का अनुभव करना ही सुर घर जाणी जोय है।

बाजा खुलिया दाहिणा, नाद घुरे इण रीत। के किण सुं सुखराम के, राम न आवे चीत ॥ १६७ ॥

दाहीने कान में बाजे के शब्द का अनुभव होना ही नाद घुरना है। साधक का मन इसमें लग जाता है। तो भजन करना भूल जाता है।

जबर घुरे निसाण सो, ईन्द्र गाजन होय। नाद घुरे सुखराम के, उदबुद बाणी जोय ॥ १६८ ॥

शब्द की कई तरह की ध्वनियां हो रही है। वही ईन्द्र की गरजना है। बिना किये ही शब्द होता है। उसे ही उदबुद बाणी कहते है।

आठ पोहोर अखण्ड रहे, एक राग धुन बांण।
अनहद सुण सुखराम के, नाद छिपाया जांण ॥ १६९ ॥

आठ पोहोर अखण्ड अेक सरीसी राग की धुनि हो रही है। अनहद की रागे सुनकर शब्द में सूरत लगाकर भजन ध्यान करना भूल जाता है।

लिछमी के गोलोक में, बोहो सुख लील विलास।
हम पिया सुखराम के, इमरत सांस ऊसांस ॥ १७० ॥

त्रिकुटी में लक्ष्मी गोलोक में बहुत सुख लीला बिलास है। म:फ: है कि मैंने सांस ऊसांस भजन किया है।

ज्ञान ध्यान मुख शिवरण, राम राम करे पुरी के लोग।
कहूं कह नाचे कमकमे, मून गहे कब सोग ॥ १७१ ॥

त्रिकुटी में शब्द आने पर भजन ज्यादा होता है व देवपुरी में ज्ञान ध्यान करते हुये कई ध्वनियां होने लगती है। यही नाचे कम कमे व मून धारण कर भजन करना है।

पूर्व पिछम छाड़कर गऊ लोक में आय। अब दरसत सुखराम के, घाटा सुं पलटाय ॥ १७२ ॥

पूर्व व पिछम के सब स्थान पर पार कर त्रिकुटी में आना ही गोलोक में आना है। अब अनुभव हो रहा है कि मेरूडण्ड के स्थान से अलग हुवे है यही घाट पलटना है।

मस्तक धूणे लोक सो, मुख मोडे ये जाय। लिछमी बर सुखराम के, अेहे तमाशो मांय ॥ १७३ ॥

त्रिकुटी में शब्द का ध्यान होने पर मस्तक ऊंचा नीचा होता है यही मस्तक धुणना व मुख मोडना है। म:फ: है कि त्रिकुटी में ऐसे चेन दरसते है।

बाजा कहूं नाचे सही, आडी रोल बखाण। मुख चाडे सुखराम के, गाय जूंज सब जांण ॥ १७४ ॥

त्रिकुटी में ऐसी शब्द की ध्वनियां अनुभव होती है कि बाजे बाजना व नाचना व घूमर लगाना व मुख चढाना व गाय कर जूंजना है।

इयां ते सिलता बिछडे, सुरसत जमना गंग। वहां बाज्या सुखराम के, उदबुद बांणी जंग ॥ १७५ ॥

गंगा जमुना सरस्वती ये तीनो नदियां मेरू से चलती है। म:फ: है कि त्रिकुटी में शब्द कई प्रकार से अनुभव होता है। यही उदबुद बांणी जंग है।

ईत गंगा बिच सुरसती, ईत जमना को धाम। तीनूं सुण सुखराम के, चाली परसण राम ॥ १७६ ॥

इधर गंगा याने इडा, उधर जमना याने पिंगला, बीच में सुरसती याने सुषमणा, तीनो रामजी को परसने चली याने प्राप्त करने चली है।

गऊ कंड से निसरे, दोय दिशा दिश जाय। तिजी सुण सुखराम के, शिर पर चढगी धाय ॥ १७७ ॥

511 of 773
Favorite Share Flag
Sukhram Maharaj Ji Ki Anbhe Vani
Topics santmat

Kabir Sahitya Ki Par...
archive.org
INTERNET ARCHIVE

में नहीं जाते और न जब हम भावभगति की साधना अपनाते हैं उस समय उसका पूरा आनंद उठाने से वंचित ही रह पाते हैं।

कबीर साहब की रचनाओं में, इसी प्रसंग में, कुंडलिनी योग अथवा लय योग की भी चर्चा की गई मिलती है। ये दोनों योग भी अपने मन को वश में करने के ही साधन हैं, अंतर केवल इतना ही है कि इनकी क्रियाएँ अपेक्षाकृत अधिक बाह्य एवं प्रत्यक्ष हैं। योगमतानुसार हमारे मेरुदंड तथा रीढ़ की हड्डी की भिन्न-भिन्न ग्रंथियों के रूप में नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान,

---

१. 'कबीर ग्रंथावली', सा० ६, पृ० ४६

२. वही, सा० २३, पृ० ३० ३. वही, सा० २४, पृ० ३०

CC-O. Dr. Ramdev Tripathi Collection at Sarai(CSDS). Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध एवं अज्ञा नामक छः चक्र पाये जाते हैं जिनकी बनावट भिन्न-भिन्न संख्या के दलों वाले कमलपुष्पों जैसी होती है। इन सब के ऊपर अर्थात् हमारे शरीर के सर्वोच्च भाग में एक सहस्रार नामक चक्र भी वर्त्तमान है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि उक्त मूलाधार चक्र के भी नीचे और मेरुदंड के निम्नतम अंश में एक सिकुड़ी हुई शक्ति भी रहती है जिसकी बनावट साढ़े तीन फेरों में बैठी हुई सर्पिणी की सी लगती है और उसी को कुंडलिनी नाम दिया गया है। योगियों का कथन है कि यदि वायु को उलट कर प्राणायाम करें तो उसकी गर्मी से प्रबुद्ध होकर वह कुंडलिनी मेरुदंड के भीतर वाले छः चक्रों को क्रमशः बेधती हुई ऊपर को चढ़ती है और उक्त सहस्रार तक जाकर लीन हो जाती है और इस क्रिया का एक प्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि, कुंडलिनी के उक्त प्रकार से उन्मुख होकर बढ़ने लगते ही, हमारे मन की सारी बिखरी हुई वृत्तियाँ भी सिमिटने लग जाती हैं। इस प्रकार, अपनी इंद्रियों की शक्ति के क्रमशः संकुचित होकर अंतर्मुख होते ही अपना मन आप से आप स्थिर हो जाता है। योगियों का अनुभव बतलाता है कि इस साधना द्वारा हमारी शक्तियों का अपूर्व केंद्रीकरण भी हो जाता है और हमें किसी ज्योति

१०३
Favorite Share Flag
Kabir Sahitya Ki Parakh By

नाथ सिद्धों की बानियों में नाद और बिंदु का वर्णन ग्रंथों ने किया –

1. प्रियीनाथ की सबदी – हीन बिंदै तो पढिवा का षोय।[3]
2. गोपीचंद –

कहो तो रूपानां पत्र षडाऊ, सोना नां सींगी नांदजी।
सहज शील ना पत्र हमारे, अनहद सींगी नाद जी।[4]

---

1. गोरखवानी, पीताम्बर दत्त बड्थ्वॉल, पृ0 73
2. नाथपंथ – डॉ शान्ति प्रसाद चंदोला, पृ0 148
3. नाथ सिद्धों की बानियॉ, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 42
4. नाथ सिद्धों की बानियॉ, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 10

3. पारवती जी की सबदी –

नांद बिंद जाके घरि जरै, ताकी सेवा पारवती करै।1

नांद और बिंदु की मूल उत्पत्ति कहॉ है? कौन लेकर नाद को स्थापित करता है? नांद कहॉ विलीन हो जाता है ? नाद से नाद बिंदु से बिंदु आकाश से आशालाये, यदि नाद–बिंदु दोनों नही होते तो प्राण कहॉ रहेगा ? आदि प्रश्नों के उत्तर स्वयं ही गोरखबानी में 'मछिन्द्र गोरष बोध' से प्राप्त होते है।

गोरष – स्वायी कथं उतपन्यों नादं, कथं नाद सम्मवते।
कौंणले थापते नादं कथं नादं बिलीयते।

मछिन्द्र – अवधू ऊँकार उतपते, नादं, नाद सुन्नि समिभवते।
स्रवन ले थापते नादं, नादं निरंजन बिलीयते।

गोरष – स्वांमी नादेन नादिबा, बिंदैन, बिंदया, गगनेन लाइबा आसा
नादं बिंद दोऊन हेइगा, तब प्रांन का कहॉ हेइगा बासा।

मछिन्द्र – अवधू नादे भी नादिवाबिंदे भी बिदवा, गगने भी लाइबी आसा।
नाद बिंद दोउ न होइगा, तब प्रांण निरंतर होइगा वासा।[2]

इस प्रकार अन्यत्र स्थानों पर गोरखनाथ ने स्पष्ट किया कि नाथ और बिंदु प्रमाणिक रूप से ग्रथित करे –

नाद बिंद गांठि प्रवांनां। कवण घटि जोति कवण अस्थाना।[3]

---

1. नाथ सिद्धों की बानियॉ, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 40
2. गोरखबानी, पीताम्बर दत्त बड्थ्वॉल, पृ0 190
3. गोरखबानी, पीताम्बर दत्त बड्थ्वॉल, पृ0 166

नाद व्यंद गांठिबा पवन आकासं। पडै घट न होइबा नासं।[1]

बिंदु ही योग है, बिंदु ही भोग है, बिंदु ही चौसठो रोगों का हरण करता है। इस बिंदु का भेद कोई बिरला ही जानता है। जो जानता है वही ब्रह्म है।[2]

"ये इड़ा पिंगला फेर बदल घट मांही।
यह काया कासी खोज मिलैगा सांई।।"[31]

यहाँ इनकी साधनास्थ उस अवस्था का बोध होता है, जब साधक शब्द की साधना में पूर्णतः समर्पित हो जाता है। इनका मानना है कि इड़ा–पिंगला नाड़ियों को जाग्रतावस्था में लाकर उन्हें सुषुम्ना में मिलाया जाता है, तभी इस देह रूपी काशी में शब्द (ब्रह्म) रूपी शिव की दिव्यानुभूति की जा सकती है। इन्होंने सुरतावस्था की स्थिति में इन तीनों नाड़ियों के महत्व को प्रमुख माना है। ये कहते हैं जब ये दोनों नाड़ियाँ तीसरी अथवा सुषुम्ना में जाकर मिल जाती है, तभी अनहद की ध्वनि जीव को सुनाई पड़ती है। इनका कथन हैः–

"इड़ा पिंगला शोच समझकर सुषुमन में चल बासा कर।
अजपा जाप जपै निशि वासर, अनहद की धुन सुनकर तर।।"[32]

इन्होंने सुरत योग हेतु यह स्पष्ट किया है कि रात–दिन उस अजपा का जाप एवं योग–साधना का संयोग जब इन दोनों का मेल हो जाता है, तो अनहद की ध्वनि सुनाई देने लग जाती है। परन्तु इससे पूर्व कुण्डलिनी तक पहुँचा जाना अनिवार्य है। कुण्डलिनी तक जाने का उल्लेख भी इन्होंने किया है। ये कहते हैंः–

"औंधा पुष्प पड़ा घट भीतर, धस के इसको सीधा कर।
फेर पुष्प को कर ह्रदय पै, नारायण का दर्शन कर।।"[33]

औंधा पुष्प जोकि औंधे कुंए का प्रतीक है। इसी के साथ–साथ इन्होंने अपनी शब्द साधना में कुण्डलिनी को ऊपर चढानें की स्थिति का भी संकेत किया है। इन्होंने संकेत किया है कि कुण्डलिनी के ऊपर चढ़ने की अवस्था में साधु गुणातीत महात्मा बन जाता है और शब्द की साधना की यह अन्तिम सुरतावस्था है। ब्रह्मरन्ध्र के आगे की अवस्था को तुरीयावस्था कहा जाता है। इन्होंने अपने पदों में तुरीयावस्था का भी उल्लेख किया है। वे कहते हैंः–

"गुदा नेत्र को ढ़क लिया, ढ़के कानं के साल।
रसना ते सुर खैंच के, ब्रह्मरन्ध्र को चाल।।"[34]

इनकी सुरतावस्था शब्द की अनुभूति तक पहुँचने ही वाली है। यहाँ पर पहुँचकर इनको साधना के चरम लक्ष्य की प्रतीति होने लगती है। अब इनको शून्य शिखर की अनुभूति होने लगती है। शून्य की अवस्था में ही अनहदनाद की दिव्य एवं चमत्कारी ध्वनि सुनाई देने लग जाती है। ये कहते हैंः–

"प्राण पवन के मेल ते, भंवर गुफा के बीच।
अनहद के बाजे बजैं, ये हंसन की रीत।।"[35]

अब इन्हें अनहदनाद की ध्वनि सुनाई देने लगी है। इस स्थिति में ब्रह्म जोकि ज्योतिस्वरूप है, की ज्योति झिलमिलाती हुई प्रतीत होने लगती है। इस अनुभूति का चित्रण करते हुए ये लिखते हैंः–

"ज्योत झिलमली खुदरती देखो मस्तक मांहि।
कोई कोई साधू चढ़ गये, समता मांहि समांहि।।"[36]

"सुरति स्वास लगाय, मूल के बन्ध लगाय के।
दोनों नैंन मिलाय, सुरत शब्द भेलै करो।।
सहजे सुरत समाय, गुप्त ध्यान उर में धरो।"[27]

साधना की जिस पद्धति को बेनामी जी ने ग्रहण किया, वह हठयोग साधना का सहज रूप है। साधना मार्ग पर मनुष्य तभी चल पाता है जब उसका मन विषय–वासनाओं के मोह जाल को तोड़ सके। बेनामी जी एक पूर्ण योगी पुरुष थे। इन्होंने अपनी साधना को आगे बढ़ाने हेतु सांसारिक एंव विषयी जीवन का पूर्णतः परित्याग कर दिया। बेनामी जी भी साधना मार्ग पर तभी चल सके, जब उन्होंने विषयी

जीवन का पूर्ण परित्याग किया। इस प्रकार वैराग्य को अपनाकर बेनामी जी अपनी साधना के मार्ग पर निरंतर बढ़ते चले गए। इस मार्ग पर चलते–चलते बेनामी जी अपनी सुरतावस्था में पहुँचे। सुरत मनुष्य की चेतना का पर्याय है। कहने का तात्पर्य यह है कि श्री बेनामी जी सुरत अथवा ध्यान की अवस्था में पहुँचकर 'शब्द' अथवा ब्रह्म की साधना में लीन हो गए। सुरति की इस अवस्था में बेनामी जी सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त होकर ब्रह्ममय हो गए। इनके अनेक पदों में उनकी इस अवस्था का चित्रण हुआ है। वे लिखते हैंः–

"सुरत शब्द निश्चय करो, जब आतम सुध होय।
चार तत न्यारे करे, अनहद की धुन होय।।[28]
"कागद पै नहीं करोड़ा, अक्षर पै नहीं ज्ञान।
शब्द विचार सुरत ते, आपा ब्रह्म समान।।"[29]

अर्थात् अपनी चेतना को पूर्णतः ब्रह्म पर केन्द्रित करके ही इन्होंने अपनी साधना को आगे बढ़ाया। इस प्रकार बेनामी जी की यह साधना अपनी साधना–पद्धति के अनेक मार्गों से होकर शब्द सुरत की अवस्था तक पहुँच पाई है। ये कहते हैं कि ब्रह्म का निवास तो प्रत्येक मनुष्य के घट के भीतर ही होता है, परन्तु जीव (मनुष्य) अपनी अज्ञानता के कारण उसे पहचान नहीं पाता। जीव उसे कैसे पहचान सकता है, इसकी ओर संकेत करते हुए इन्होंने लिखा हैः–

"बेनामी घट–घट बसे, व्योम तत्त्व निर्धार।
प्राण पवन को बस करे, तब पावे कछु पार।।"[30]

यहाँ पर प्राण, पवन का उल्लेख करके इन्होने अपनी हठयोग साधना की ओर ही संकेत किया है। अतः प्राण, पवन को नियंत्रित करके ही अभिष्ट मार्ग पर आगे बढ़ा जा सकता है। इन्होंने अपनी साधना में इड़ा–पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियों का भी उल्लेख किया है। निर्गुण मार्गीय संतों ने हठयोग पर आधारित साधना–पद्धति के अनुसार ही इड़ा–पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों का प्रयोग किया है। इसी योग–साधना के परिणामस्वरूप इन्होंने भी इसी साधना–पद्धति को अपनाया है। इड़ा–पिंगला का उल्लेख करते हुए ये लिखते हैंः–

इसके बाद अलसीवृटी नामक ग्रंथ से उन्होंने पुष्प बाग फल

लीला द्वारा उपदेश किया —

मनु का चिकुटी का तीर है ।

दोनों से ऐ लखि गगन है ताणा, ~~दोनों का~~

मेरे अंकुर का कोला कारता, जागेगा सीन पर भौर है ।

कब आकर भेजा नागीनावली, मनु लखि गगन अपार है ।

जहाँ कोला मोरे सुन्दर पिया, कि लेहु चिकुटी तवरि है ।

चमक-चमक चमकीला बिजुली, सरकैला गगन आकाश है ।

सोने के मंदिर रूपलता परी, सुन्दर खेला कचिताय है ।

इत्यादि और भी बहुत उपदेश है किन्तु अन्तिम बार उन

कहा था कि " अरी - ममता ; आज, जनराज ने बीच के उसार

राज सखी मूल - कामता सखी की जीवनी" पृ०सं०-17, 18, 19

ष 1908 ई० में श्री कामता प्रसाद ने श्री सखी जी को अपना गु

में ही कर लिया था तथापि श्री सरकार द्वारा से दीक्षित होना

सन् 1913 ई० की यह बात है - जब ग्रंथ के चारो भाग समाप्त

ब कामता प्रसाद जी ने अपना प्रस्ताव रखा । श्री सखीजी गाजी

"हठयोग में 'ह'और 'ठ' के योग की बात है। 'ह' और 'ठ' के विभिन्न अर्थ किये जाने के कारण हठयोग की विभिन्न व्याख्यायें[1] की गई हैं।

ह+ठ	+	योग	=	सूर्य	+	चंद्र	+	योग
ह+ठ	+	योग	=	प्राण	+	अपान	+	योग
ह+ठ	+	योग	=	दक्षिण	+	वाम	+	योग
ह+ठ	+	योग	=	यमुना	+	गंग	+	योग
ह+ठ	+	योग	=	पिंगला	+	इडा	+	योग
ह+ठ	+	योग	=	रजस	+	रेतस	+	योग [2]

नाथ सम्प्रदाय में उक्त सभी व्याख्यायें प्रकारान्तर में एक ही अर्थ रखती है। और वह इडा और पिंगला का योग इडा और पिंगला को ही प्रतीकात्मक शैली में चंद्र और सूर्य, वाम और दक्षिण अथवा गंगा और यमुना कहा जाता है। इडा और पिंगला योग ही हठ योग है। जिन्हें साध लेने पर

1. गोरक्षनाथ, डॉ0 नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ0 125
2. गोरक्षनाथ, डॉ0 नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ0 126

योगी इडा और पिंगला का योग कर सकता है। वे हैं मन, वायु एवं शुक। इन तीन शक्तियों साधना से इडा और पिंगला का योग होताहै। तब हठयोग होता हैं इन तीनों की साधना से कुण्डलिनी शक्ति का उद्‌बोधन होता है। गोरख बानी में मन, वायु, एवं शुक के संयत करने में तथा इडा और पिंगला के समन्वय से कुण्डलिनी शक्ति के उद्‌बोधन के संबंध में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है –

अबधू हिरदै बसै मन नाभी बसै पवन।[1]

42

अबधू मन का सुंनि रूप।[2]

"हठयोग की सर्वोपरि विशिष्टता है प्राण के ब्रह्मरंध्र में लयपूर्वक कुण्डलिनी जागरण तथा षटचक्र भेद नादानुसंधान द्वारा मन का उन्मनीकरण। हठयोग में षडंग–योग की साधना के स्तर पर प्राण और मन के संयमन को महत्व दिया गया है इन दोनों के वश में हो जाने पर योग सिद्ध कर तल गत हो जाती है।"[3]

गोरक्षनाथ ने अपने योग बांगमय मे चकयोग की बात भी कही, काया सिद्धि पतंजलि के यहाँ नही है। " दोनों स्थानों में व्रजदेह था व्रजांग का लक्षण दृष्टव्य होता है, यह सत्य है परंतु नाथों की पिण्ड सिद्धि के मूल में परम पद का साक्षात्कार। यह उसके साथ एकीभाव था तादात्म्य भाव का पूर्ववर्ती है। पतन्जलि का कायसंमत देह शुद्ध होने पर भी पुरूष की स्वाभाविक शुद्धता के अनुरूप नही हो सकता। इसलिये पतंजलि का कायसंपत एक दृष्टि से देखा जाये तो प्रकृति का ही अंग है।"[4]

1. गोरखबानी, पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, पृ0 189
2. गोरखबानी, पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, पृ0 187
3. योगवाणी, हठयोग विशेषांक, (जनवरी 1981), 20
4. नाथ और संत साहित्य, डॉ0 नागेंद्र नाथ उपाध्याय, पृ0 5

घटि–घटि गोरष फिरै निरूता। को घट जागे को घट सूता।
घटि–घटि गोरष घटि घटि मींन। आपा परचैगुरू मुषि चीन्ह।[1]

तब जांनिबा अनाहद का बंध, ना पडै त्रिभुवन नही पडै कंध
रकत की रेत अंग थै न छूटै, जोगी कहतां हीरा न फूटै।[2]

नाथयोगी अपनी कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत कर उसे मूलाधार से सहस्रार तक पहुँचाकर परम शिव मे अपनी आत्मा को संयुक्त कर लेता है। ये योगी कुण्डलिनी द्वारा 'चक्र भेदन' के पूर्व अस्टपाम साधना से अपना शरीर दिव्य एवं अप्राकृतिक बनाते है

1 उलटिया पवन षट चक्र बेधिया, तातैलोहै सोषिया पांणीं।
चंद सूर दोऊ निज धरिराष्या, ऐसा अलख बिनांणी।[3]

---

1. गोरखबानी, पीताम्बर दत्त बडथ्वॉल, पृ0 15
2. गोरखबानी, पीताम्बर दत्त बडथ्वॉल, पृ0 30
3. गोरखबानी, पीताम्बर दत्त बडथ्वॉल, पृ0 36

2 अलेष लेषंत अदेश देषंत, अरस, परस ते दरस जांणी।
सुनि गरजंत बाजंत नाद अलेष लेषंत ते निज प्रवांणी।।[1]

योगी अखिल चराचर को इसी शरीर में मानते है जिसे पिण्ड संविति कहते है। माया रहित योगी का चरण प्रक्षालन स्वयं विष्णु करते है

अरधै जाता उरधै धरै, कांम दगध जे जोगी करै
तजै अल्यगन काटै माया, ताका बिसनु पषालै पाया।।[2]

वैदिक साहित्य में ईश्वर के रूप में 'पुरूष एवं इदंसर्वम' के रूप में पुरूष का विश्व रूपात्मक विकास दिखाई देता है। उपनिषदों में मानव शरीर में ही अखिल ब्रह्माण्ड के अस्तित्व की कल्पना मिलती है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों में समान रूप से केवल 'विराट रूप' का अस्तित्व है जिससे दर्शन पुरूष सूक्त में मिलते है।[3] इससे पूर्व उसका विशिष्ट रूप लक्षित होता है। वहॉं परमेश्वर सब ओर अनन्त बाहुओं और पावों से प्रेरित पृथ्वीलोक को उत्पन्न करने वाला वैदिक साहित्य से यह तथ्य आगे तक आता है कि परमात्मा की समष्टि देह में जीवात्मा के साथ अनेक अंश विद्यमान रहते है।[4]

नाथों द्वारा चंद्र से झरित अमृतपान का तत्व वैदिक सोम पद्धति से संबन्धित किया जा सकता है। सोमरस में सोमलता को निचोड़ कर निकाला जाता है। जैसे योग में अमृत चंद्रमा से निकलता है। सोमलतौं चंद्रमा के प्रकाश में खूव वृद्धि पाती है। अतः सोम व चंद्र का संबंध प्राचीनहै।[5] इसे गोरखनाथ ने भी स्वीकार किया है।

---

1. गोरखबानी, पीताम्बर दत्त बडथ्वॉल पृ0 32
2. गोरखबानी, पीताम्बर दत्त बडथ्वॉल पृ0 7
3. ऋगुवेद, पृ0 10/9
4. ऋगुवेद, पृ0 10/9
5. हिन्दी सातिय की दार्शनिक पृष्ठभूमि, विशम्भर नाथ उपाध्याय, पृ0 331

इसी प्रकार उन्होंने विंदु की साधना के संबंध में भी कहा है और इसमें भी किसी विरले का ही सफल होना माना है। वे ऐसी साधनाओं के समय किसी आध्यात्मिक अनुभूति का भी होना आवश्यक मानते हैं और कहते हैं कि उसके बिना स्थिरता नहीं आ सकती; जैसे,

व्यंद व्यंद सबकोइ कहै। महा व्यंद कोइ बिरला लहै।
इह व्यंद भरोसे लावै बंध। असथिरि होत न देखो कंध ॥२३७॥[1]

'महाविंदु, को उन्होंने यहाँ पर ब्रह्मतत्त्व ही मान लिया है (जैसे, अन्यत्र पद ५, पृ० १०० में भी ये "सक्ति रूपी रज आछै, सिव रूपी व्यंद" कहते हैं।)

कबीर साहब ने 'विंदु' को उत्पत्ति का मूल कारण माना है (दे० क० ग्रं०, पद ४१, पृ० १०१, पद ५७, पृ० १०६ तथा पद २४०, पृ० १६६) और एक अन्य पद (३३० पृ० २००) की एक पंक्ति द्वारा बतलाया है वह 'काजी' जरामरण से मुक्त हो जाता है जो 'विंदु' का क्षरण स्वप्न में भी नहीं होने देता। इसी प्रकार नाद एवं विंदु दोनों का ही एक साथ प्रयोग करते हुए उन्होंने इस प्रकार कहा है जिससे समझ पड़ता है कि वे इन्हें, कदाचित् सृष्टि का उपादान मानते थे। जैसे—

नाद नांही व्यंद नांही, काल नहीं काया।
जब तैं जल व्यंब न होते, तब तूंहीं रामं राया ॥[2]

तथा, जहां नाद न व्यंद दिवस नहीं,
रातौ नहीं नर नगर नहीं कुल जाती।
कहै कबीर सरब सुखदाता, अविगत, अलख, अभेद बिधाता ॥[3]

परंतु इसके साथ ही वे, नाथपंथी योगियों की भाँति, नाद एवं विंदु के मिलन की साधना का भी वर्णन करते थे। उनका कहना था कि जब नाद में विंदु का लय हो जाता है तभी गगन के अंतराल में अनहद की ध्वनि सुन पड़ने लगती है। इसे बिना अनुभव किये व्यर्थ भटकते रहना ठीक नहीं।

अवधू नादैं व्यंद गगन गाजै, सबद अनाहद बोलै।
अंतरि गति नहिं देखै नेड़ा, ढूंढत बनबन डोलै ॥[4]

उनकी धारणा है कि चाहे नाद में विंदु का जाना कहो चाहे विंदु का नाद में

---

१. 'गो० बा०', पृ० १७
२. 'क० ग्रं०', पद २१६ पृ० १६२
३. वही, पद २१७, पृ० १८१
४. वही, पद १६६, पृ० १२४

Dr. Ramdev Tripathi Collection at Sarai(CSDS). Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Ko

राग और रागिनी मैंने सुने अन्तर जा कर।
मेरे नज़दीक हुए हिन्दु मुसलमाँ काफ़िर।। ८ ।।

।। ग़ज़ल ३३ ।।

अर्श पर पहुँच कर मैं देखा नूर, काल को मारकर म फूँका सूर।। १ ।।
देह की सुध गई जो सुर्त चढ़ी, जाके बैठी जहाँ कि पहले थी।। २ ।।
निज गली यार के जो आशिक़ ह, भीड़ से अब एकांत लाऊँ म।। ३ ।।
जो कहूँ म सो कान देके सुनो, सुर्त खैंचो चढ़ाओ धुन को सुनो।। ४ ।।
सिर में है तेरे बाग़ ओर सतसंग, सैर कर जल्द ले गुरु का रंग।। ५ ।।
तान पुतली को आँख को मत खोल, चढ़ के आकाश का दुआरा खोल।। ६ ।।
जब चढ़े सुर्त तेरी अन्दर यार, देह की सैर कर व देख बहार।। ७ ।।
अचरजी सैर है तेरे बीचे, पिरथी ऊपर है आस्मां नीचे।। ८ ।।
बंकनाल होके आगे सुर्त चली, तिरकुटी पहुँच कर गुरू से मिली।। ९ ।।
रूप सूरज का लाल क्या बरनूँ, सहस्र सूरज ह उसके इक रोमूँ।। १० ।।
आगे चल सुर्त सुन्न में पहुँची, धुन किंगरी व सारँगी की सुनी।। ११ ।।
कुण्ड अमृत भरे नज़र आये, हंस रूप होय मोती चुन खाये।। १२ ।।
सुन्न को छोड़कर चली आगे, पहुँची महासुन जहाँ सोहँग जागे।। १३ ।।
हाल वाँ का मैं क्या कहूं क्या है, जानता है वही जो पहुँचा है।। १४ ।।
रास्ते में वहाँ अँधेरा है, सतगुरु संग ही निबेड़ा है।। १५ ।।
सतगुरु संग त किया मैदाँ, काल देख उनको हो गया हैराँ।। १६ ।।
सुर्त चढ़कर गुफा में पहुँची धाय, धुन सोहँग सुनी मुक़ाम को पाय।। १७ ।।
इस मुक़ाम अचरजी को पाय मिली, खोल खिड़की को अंदरून चली।। १८ ।।
आगे चल सत्तलोक पहुँची धाय, ओर अमी का आहार दमदम खाय।। १९ ।।
आगे इसके अलख अगम है मुक़ाम, तिस परे हैगा राधास्वामी नाम।। २० ।।
यह मुक़ाम है अकह अपार अनाम, संत बिन कोन पा सके यह धाम।। २१ ।।
भेद सब इस जगह तमाम हुआ, सब हुए चुप्प मैं भी चुप्प हुआ।। २२ ।।

।। ग़ज़ल ३४ ।।

निज रूप पूरे सतगुरु का प्रेम मन में छा रहा।
बचन अमृत धार उनके सुन अमी में न्हा रहा ।। १ ।।

उलट उलंध्या मेर, गिगन गढ नोपत बागी ।
अला पिंगला बीच, सुरत सुखमण सु ँ लागी ।।
हुंस दिसा इक रंग, अंग निरमल ज्यूं गगा ।
ग्यान ध्यान गलतान, प्राण पूरण पत संगा ।।
नानग भजन भंडार, खुल्या पूरबला भारी ।
जन दरिया परताप, अगम की कथा उचारी ।।

बदरीराम राम उचारया,
होय धनत्र जुग माहीं पधारया ।
जींवां काज लीया अवतारा,
सब दुःख काट कीया भोपारा ।।
मोतीराम सन्त जन भारी,
उनमुन होय लगाई तारी ।
निस दिन राम राम रस पीया,
हंस दीसा होय दरसण दिया ।।
सांईदास राम भज लीना,
होय लव लीन ब्रह्म कूं चीना ।
सब जीवन कूं पोखज दीया,
भडा भाग जिन कारज किया ।।
रैमतराम साद बड भागी,
जन की सुरत ब्रह्म सु लागी ।

सुन्न मण्डल सत् लोक हमारा, अकह देश कहलावै।
पूर्व पश्चिम पन्थ पुरातम[१], बंक नाल[२] होय आवै॥१॥

वह साक्षी-चेतन जिसकी सत्ता-स्फुरती से सब क्रियायें होती हैं वह सदा एक रस है। इन चर्म-चक्षुओं (बाह्यनेत्रों) से वह नजर नहीं आता। उसका वास सब प्राणियों के दशम द्वार में है। अर्थात् आकाश की नाई सर्वत्र व्यापक है परन्तु योगियों को गगन मण्डल (दशम द्वार) में ही प्राप्त होता है। जितने भी पिण्ड और ब्रह्मांड हैं सभी उस चेतन ब्रह्म की सत्ता से गूँज रहे हैं एवं क्रियमान हो रहे हैं। सर्वत्र व्यापक होने से उसे दूर नहीं कह सकते। अति निकट होते हुए भी बिना सद्गुरु के वह अलौकिक लीला दृष्टिगोचर नहीं हो सकती। बिना ही मन्दिर के और बिना किसी दीपक बाती के और बिना ही तेल के वह चेतन सर्वत्र जगमगा रहा है। तथा यह सब बातें योगी को या सुरति शब्द अभ्यासी को साधन काल में बिना ही नेत्रों के देखने में आती है। जिसको वह विकट खेल देखने की इच्छा हो वह सद्गुरु द्वारा सुरति शब्द का अभ्यास करके उस जगमगाते हुए तेज स्वरूप आत्मा को अपने अन्दर ही देख लें। इन्हीं सब साधनों द्वारा महात्मा और सद्गुरु भूले हुए जीवों को बार-बार मार्ग दिखाने के लिये इस संसार में आते हैं। यह कठिन मार्ग सद्गुरु और सन्तों के उपदेश बिना प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार हम मोह रूपी निद्रा में सूते (सोये) हुए जीवों को जगाते हैं और उनके ऊपर काल ने जो कर्म रूपी बन्धन डाला हुआ है। हम अपने ज्ञान उपदेश द्वारा काल एवं कर्मों के बन्धन को नाश कर देते हैं। जीव जहाँ से बिछड़ा है वहीं मिला देते हैं फिर उसे अपने देश में ले जाते हैं। हमारा जो देश है उसे विदेश कहिये। वह अमर लोक अनादि है। उस लोक में पृथ्वी आदि पाँच तत्त्व नहीं हैं। न वहाँ चन्द्रमा है न सूर्य है, न अग्नि है, न जल है और न ही वहाँ बन्धन और मोक्ष है। जैसे स्वामी जैतराम जी ने अपनी वाणी में कहा है :—

---

१. किसी समय यहाँ पर चन्द्रावति नदी भी बहती थी।
२. बंकनाल उसी को कहते हैं जो कि शरीर के अन्दर योग की एक टेढ़ी नाड़ी है। इस बंकनाल के मार्ग को वही जान सकता है जो योग मार्ग द्वारा ब्रह्मरिन्द्र के अन्दर प्रवेश कर लौट कर आया हो एवं उसमें आ जा सकता हो।

जहाँ केशो बनजारा उतर्‍या नौलख बालद आई॥७॥
कनक जनेऊ कंध दिखाया, भक्ति करी रैदासा।
दास गरीब कौन गति पावै, मघहर मुक्ति बिलासा॥८॥
(३) मनि तुं मान सरोवर न्हारे, इहां, न भटका खायेरे।टेक॥
सुरज मुखी फूल जहाँ फूले, शंख पद्म उजियारा।
गंगा जमुना मध्य सरस्वती, त्रिबैनी की धारा॥
जहाँ कमोदनि चन्द्र गता है, कमल कमल मध्य तूरा।
अनहद नाद अजब धुनि होंहि, जानै सतगुरु पूरा॥
औघट घाटि विषम है दरिया, न्हावैं संत सुजाना।
मोक्ष मुक्ति की परबी लै रे, साखी हैं शशि भाना॥
जहां उहां हँस कतूहल करहैं, मोती मुक्ता खाहीं।
ऐसा देश हमेश हमारै, अमृत भोजन भाहीं॥
शंखो लहर मिहर की उपजैं, कहर नहीं जहाँ कोई।
दास गरीब अचल अविनाशी, सुख का सागर सोई॥

इस प्रकार आपने मनिराम ब्राह्मण को सम्पूर्ण पदार्थों के अन्दर असारता दिखलाकर उसको उस अमर पद की ओर लगा दिया। जिसको प्राप्त करके पुनः जन्म-मरण का दुःख न उठाना पड़े और वह मनिराम ब्राह्मण भी सद्गुरु जी के उपदेश के अनुसार अपने मन से सम्पूर्ण इच्छाओं का परित्याग करके उस अमरत्व की प्राप्ति में लग गया। जिसको प्राप्त होकर फिर जन्म-मरण का दुःख न उठाना पड़े। इस प्रकार आपकी शरण में आकर अनेक जीव संसारी दुःखों से छूट कर अपने कल्याण मार्ग में प्रवृत्त हो जाते थे।

॥स्वामी बनखण्डी दास जी॥

यह खरावर (कलावड़) ग्राम देहली से रोहतक जाने वाली रेलवे लाईन और राजमार्ग पर पड़ता है। उसमें इनका क्षत्रिय कुल (जाटों) में जन्म हुआ था। एक बार यह यमुना पार से बाजरे की गाड़ी लेकर आ रहे

बराहउपनिषद् में उपवास का यह अर्थ किया है कि जीवात्मा और परमात्मा की उप-समीप में एक अद्वैत अभेद (दोनों का एक रूप होकर) स्वरूप से जो दशा है ऐसे अद्वैत (समभाव) विषय का नाम उपवास जानना। यह ब्रह्मवित्त (ब्रह्म के जानने वाले) महात्माओं का उपवास है। और अज्ञानियों का हठ करके जो क्षुधा (भूख) पिपासा को हठ से रोकने का जो उपवास है वह विचारशील महात्माओं का नहीं है क्योंकि शुद्ध बुद्ध (व्यापक) सच्चिदानन्द ब्रह्म सब का आत्मा होने से नित्य प्राप्त है।

आप ने अपने मुखार विन्द से अनुभव रूप वाणी द्वारा इस प्रकार कहा कि–

देव ही नहीं तो सेव किसकी करूँ,
किसे पूजूँ कोई नहीं दूजा।
दूजा करता ही नहीं तो कीर्ति किसकी करूँ,
पिण्ड ब्रह्मण्ड में एक सूझया॥१॥
जाग ही रहा तो जाग किसको कहूँ,
सूता ही नहीं तो किसको जगाऊँ।
खोया ही नहीं तो खोज किसकी करूँ,
बिछड़्या ही नहीं जिसे ढूंढ़ ल्याऊँ॥२॥
बोलता संग और डोलता है नहीं,
खलक के कोट में अलख छिप रह्या प्यारा।
गैव सै आया और गैव छिप जायगा रे,
गैव ही गैव रच्या पसारा॥३॥
प्राण कुं सोध कर मूल कुं दर गहो,
वेद के धुन्ध सैं अलख न्यारा।
वेद कुरान कुं छाड़दे बावरे,
नूर ही नूर कर ले जुहारा॥४॥

22:00

दुख सुख मैल जगत के भावा। तिरबेनो के घाट छुड़ावा ।२७।
तन मन सोधि भयो जब ज्ञाना। तब लखपायोपद निर्बाना ।२८।
अष्ट कँवल दल चक्कर सूझे। जोगी आप आप में बूझे ।२९।
इँगला पिंगला के घर जाई। सुखमन सेज जाय ठहराई ।३०।
ओअं सोहं तत्त बिचारा। बंकनाल का किया सम्हारा ।३१।
मन को मारि गगन चढ़ि जाई। मानसरोवर पैठि अन्हाई ।३२।
छूटे कलमल मिले अलेखा। इन नैनन साहिब को देखा ।३३।
अहंकार अभिमान बिडारा। घट का चौका करि उँजियारा ।३४।
अनहद नाद नाम को पूजा। सत्त पुरुष बिन देव न दूजा ।३५।
हित कर चंदन तुलसी फूला। चित कर चाउर संपुट मूला ।३६।
सरधा चँवर प्रीति कर धूपा। नूतन[1] नाम साहिब कर रूपा ।३७।
गुदड़ी पहिरे आप अलेखा। जिन यह प्रगट चलायो भेषा ।३८।
सत्त कबीर बकस जब दीन्हा। सुर नर मुनि सब गुदड़ी लीन्हा ।३९।
रहे निरंतर सतगुरु दाया। सतसंगति में सब कछु पाया ।४०।
ज्ञान गूदड़ी पढ़े प्रभाता। जनम जनम के पातक जाता ।४१।
जो जन जाय जपै ये ध्याना। सो लखि पावै पद निर्बाना ।४२।
संझा सुमिरन जो जन करहीं। जरा मरन भौसागर तरहीं ।४३।
कहे कबीर सुनो धर्मदासा। ज्ञान गूदड़ी करो प्रकासा ।४४।

॥ इति ॥

रेखते

(१)

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै, गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं।
गुरुदेव बिन जीव का तिमर नासै नहीं, समझि बिचारि ले मनै माहीं॥
राह बारीक गुरुदेव तें पाइये, जनम अनेक की अटक खोलै।
कहे कबीर गुरुदेव पूरन मिले, जीव और सीव तब एक तोलै॥

(१) नवीन, अचरजी।

रेखते ५

कबीर साहिब की ज्ञान गुदड़ी

धर्मदास बिनवै कर जोरी । सतगुरु सुनिये बिनती मोरी ॥१॥
ज्ञान गूदड़ी करो प्रकासा । जा से मिटै जीव जग-फाँसा ॥२॥
अलख पुरुष इककीन्ह पसारा । लख चौरासी धागा डारा ॥३॥
पाँच तत्त से गुदड़ी बीनी । तीन गुनन से ठाढ़ी कीनी ॥४॥
ता में जीव ब्रह्म अरु माया । समरथ ऐसा खेल बनाया ॥५॥
सब्द को सुई सुरत के डोरा । ज्ञान के डोभन सिरजन जोरा ॥६॥
सीवन पाँच पचीसो लागी । काम क्रोध मोह मद पागी ॥७॥
काया गुदड़ी के बिस्तारा । देखो संतो अगम सिंगारा ॥८॥
चाँद सुरज दोउ पैवँद लागे । गुरु प्रताप सोवत उठि जागे ॥९॥
अब गुदड़ी की करु हुसियारी । दाग न लागे देखु बिचारी ॥१०॥
जिन गुदड़ी को कियो बिचारा । तिन हीं भेटे सिरजनहारा ॥११॥
सुमति के साबुन सिरजन धोई । कुमति मैल सब डारो खोई ॥१२॥
धीरज धूनी ध्यान को आसन । सत कोपीन सहज सिंहासन ॥१३॥
जोग कमंडल कर गहि लीन्हा । जुगति फावरी[1] मुरसिद दीन्हा॥१४॥
सेली सील बिबेक कि माला । दया कि टोपी तन धर्मसाला ॥१५॥
मेहर मतंगा मत बैसाखी । म्रगछाला मनहीं की राखी ॥१६॥
निःचय धोती स्वास जनेऊ । अजपा जपै सो जानै भेऊ ॥१७॥
लकुटी लौ की हिरदा झोरी । छिमा खड़ाऊँ पहिरि बहोरी ॥१८॥
भगति मेखला सुरत सुमिरनी । प्रेम पियाला पीवै मौनी ॥१९॥
उदास कूबरी कलह निवारी । ममता कुतिया को ललकारी॥२०॥
जगत जँजीर बाँधि जब दीन्ही । अगम अगोचर खिड़की चीन्ही।२१।
तत्त तिलक दीन्हे निरबाना । राग त्याग बैराग निधाना ॥२२॥
गुरुगम चकमक मनसा तूला[2] । ब्रह्म अगिनि परगट करि मूला।२३।
संसय सोग सकल भ्रम जारी । पाँच पचीसो परगट मारी ॥२४॥
दिल दरपन करि दुबिधा खोई । सो बैरागी पक्का होई ॥२५॥
सुन्न महल में फेरा देई । अमृत रस की भिच्छा लेई ।।२६॥

(१) फरुही जिससे साधू लोग अपने बैठने की जगह साफ़ कर लेते हैं। (२) रुई।

दुख सुख मैल जगत के भावा । तिरबेनी के घाट छुड़ावा ।२७
तन मन सोधि भयो जब ज्ञाना । तब लख पायो पद निर्बाना ।२८

भाया वही शब्द कह दिया। बृज के लोगों की यह रीति है, कि वह प्रेम में भी गाली देकर ही बोलते हैं। ब्रह्मानन्द जी कहते हैं कि इस प्रकार ब्रजवासी होरी खेलते हैं। यह सब देख सुनकर सन्तों ने महाराज जी से पूछा कि हम भी परस्पर होरी खेल लें। तब महाराज जी ने कहा सन्तों की यह होरी नहीं है। सन्तों की होरी तो इस प्रकार है—

रागहोरी- मन राजा खेलन चल्या रंग होरी हो।

त्रिबैंनी[१] के तीर राम रंग होरी हो॥१॥
पाँच सखी[२] नित संग है रंग होरी हो।
बरषै केसर नीर राम रंग होरी हो॥२॥
इला[३] पिंगुला मध है रंग होरी हो।
बीच सुषमना[४] घाट राम रंग होरी हो॥३॥
ब्रह्मादिक[५] जहाँ खेल हीं रंग होरी हो।
सनकादिक[६] जोहैं[७] बाट[८] राम रंग होरी हो॥४॥
शेष सहंस[९] मुख गावहीं रंग होरी हो।
नारद पूरैं नाद राम रंग होरी हो॥५॥
हाथ अबीर[१०] गुलाल है रंग होरी हो।
खेलत हैं सब साध राम रंग होरी हो॥६॥
इन्द्र कुबेर वरुण[११] हैं रंग होरी हो।

---

१. त्रिकुटि।
२. पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ नेत्र, कान, नाक, रसना, त्वचा।
३. नाक का बायाँ स्वर इला और दाहिना पिंगुला है।
४. दोनों के बीच शुषमना नाड़ी है।
५. ब्रह्मा, विष्णु, शंकर।
६. सनक, सनन्दन सनातन, संतकुमार।
७. देखें।
८. मार्ग।
९. हजार।
१०. गुलाल जैसा लाल रंग जो होरी खेलते समय गेरा जाता है।
११. जलों का देवता।

22:05

(२४)

गंग उलटी धरो जमुन बासा करो[1],
पलटि पँच तीरथ पाप जावे ॥
नीर निर्मल तहाँ रैन दिन झरतु है,
न्हाय जो बहुरि भवसिंध न आवे।
फिरत बौरे तहाँ बुद्धि को नास है,
बाज के झपट में सिंघ नाहीं।
कहै कबीर उस जुक्ति को गहैगा,
जनम औ मरन तब अंत पाई ॥

(१) गंग अर्थात् दहिनी स्वासा को चढ़ाओ और जमुन अर्थात् बाईं स्वासा के साथ मिलाओ।

(२५)

देख वोजूद में अजब बिसराम है,
होय मौजूद तो सही पावे।
फेरि मन पवन को घेरि उलटा चढ़े,
पाँच पच्चीस को उलटि लावे ॥
सुरत की डोर सुख सिंध का झूलना,
घोर की सोर तहँ नाद गावे।
नीर बिन कँवल तहँ देख अति फूलिया,
कहै कबीर मन भँवर छावे ॥

(२६)

चक्र के बीच में कँवल अति फूलिया, तासु की सुक्ख कोइ संत जाने।
कुलुफ[1] नौद्वार औ पवन को रोकना, तिरकुटी मद्ध मन भँवर आने ॥
सबद की घोर चहुँ ओर ही होत है, अधर दरियाव को सुक्ख माने।
कहै कबीर यों झूल सुख सिंध में, जन्म औ मरन का भर्म भानै[2] ॥

(२७)

गंग औ जमुन के घाट को खोजि ले, भँवर गुञ्जार तहँ कर भाई।
सरसुती नीर तहँ देखु निर्मल बहै, तासु के नीर पिये प्यास जाई ॥
पाँच की प्यास तहँ देखि पूरी भई, तीन की ताप तहँ लगे नाहीं।
कहै कबीर यह अगम का खेल है, गैब का चाँदना देख माहीं ॥

(२८)

माड़ि मत्थान मन रई[3] को फेरना,
होत घमसान तहँ गगन गाजे।
उठत झनकार तहँ नाद अनहद घुरे,
तिरकुटी महल के बैठु छाजे[4] ॥
नाम की नेत[5] करि चित्त को फेरिया,
तत्त को ताय करि घिर्त लीया।

(१) ताला। (२) तोड़ै। (३) मथनी। (४) छज्जे पर। (५) रस्सी।

(१४)

चाम के महल में बोलता राम है,
चाम औ राम को चीन्हु भाई।
धन्न उस्ताद जिन्ह चाम मूरति गढ़ो,
सकल सिंगार छवि रूप छाई॥
एक ही बुंद तें साज साबित किया,
बिबिधि परकार करि जन्त्र लाई।
पाँव औ पिंडुरी जंघ कटि[2] केहुनी,
नाभि कुण्डलि रची सरस भाई॥
पवन की गाँठि दे महल ठाढ़ा किया,
हृदय बिचित्र भुजडंड लाई।
हाथ औ अंगुरी सकल पूरी बनो,
अंगुरी अग्र में नखन लाई॥
कंठ मस्तक मनो मुकुट लीलाट है,
रत्न धन नैन दुइ दृष्टि पाई।

(१) सुपने में बर्राना। (२) कमर।

स्रवन मुख नासिका दसन[1] सीखर[2] बने,
बदन उजियार सोभा निकाई॥
पीठि पाछे बनी मेरु डँड लागिया,
पाँसुरी बीच पिंजर गढ़ाई॥
चाम बीच माँस है माँस बिच हाड़ है,
हाड़ के बिच नस रोम लाई॥
गूद बिच बिंद है बिंद बिच पवन है,
पवन बिच प्रान बोलत जु होई।
कहै कबीर यह ख्याल करता किया,
ज्ञान की दृष्टि त चीन्हु सोई॥

(१५)

भेष दरियाव में हंस भी होत हैं,
भेष दरियाव में बग[3] होई।
भेष दरियाव में रत्न भी होत है,
भेष दरियाव में संख होई॥
जिवत मरे बिना भेद पावै नहीं,
जिवत हीं मरै तब भेद पावै।
कहै कबीर गुरुदेव के ज्ञान से,
तब कछु नीमन[4] दृष्टि आवै॥

22:01

(७)

कर्म और भर्म संसार सब करत है, पीव की परख कोइ संत जानै ।
सुरत और निरत मनपवन को पकरकरि, गंग और जमुन के घाट आनै ॥

(१) मंदिर ।

पाँच को नाथ करि साथ सोहँ[1] लिया, अधर दरियाव का सुक्खमानै ।
कहै कबीर सोइ संत निर्भय घरा, जनम और मरन का भर्म मानै ॥

(८)

दूर वे दूर वे दूर वे दूरमते, दूर की बात तोहिं बहुत भावै ।
है हजूर हाजिर साहिब धनी, दूसरा कौन कहु काहि गावै ॥
छोड़ि दे कल्पना दूरि का धावना, राज तजि खाक मुख काहि लावै ।
पेड़ के गहे तें डारि पल्लो मिलै, डारि के गहे नहिं पेड़ पावै ॥
डारि औ पेड़ औ फूल फल प्रगट है, मिलै जब गुरू इतनो लखावै ।
संपति सुख साहिबी छोड़ि जोगी भये, सून्य की आस बनखंड जावै ॥
कहै कबीर बनखंड में क्या मिलै, दिल को खोजु दीदार पावै ॥

(९)

राम ही राम सब जगत ही कहत है,
कहो जी राम का रूप कैसा ।
कौन सी कोठरी कौन दर्बार है,
कौन से महल में राम बैसा[2] ॥
कौन सी सुन्दरी रमै सुख सेजि में,
दिवस औ रैन मिलि स्याम संगा ।
मिलि गई पीव से और दरसै नहीं,
नारि औ पुरुष मिलि एक अंगा ॥
कहो जी राम का कौन सा रंग है,
हरित की सेत रत[3] पीत काला ।
कहो जी राम का कौन अस्थूल[4] है,
ज्वान देखा किधौं बृद्ध बाला ॥
बेद से रहित है भेद कैसे प्रगट,
बिना मुख जीभ आवाज होई ।
रमै घट घट में आपु न्यारा रहे,
पूर्न आनंद है राम सोई ॥

(१) सन्मुख, संग । (२) बैठा । (३) लाल । (४) शरीर ।

22:09

(४१)

गगन की गुफा तहँ गैब का चाँदना, उदय औ अस्त का नाँव नाहीं।
दिवस औ रैन तहँ नेक नहिं पाइये, प्रेम परकास के सिंध माहीं॥
सदा आनंद दुख दुन्द ब्यापै नहीं, पूरनानन्द भरपूर देखा।
भर्म और भ्रांति तहँ नेक आवै नहीं, कहै कबीर रस एक पेखा॥

(४२)

खेल ब्रह्मंड का पिंड में देखिया, जग्त की भर्मना दूर भागी।
बाहरा भीतरा एक आकासवत, सुषमना डोरि तहँ उलटि लागी॥
पवन को उलटि के सुन्न में घर किया, धर[1] में अधर भरपूर देखा।
कहै कबीर गुरु पूर की मेहर से, तिरकुटी मद्ध दीदार पेखा॥

(४३)

देखि दीदार मस्तान मैं होइ रह्यो, सकल भरपूर है नूर तेरा।
सुभग दरियाव तहँ हंस मोती चुगैं, काल का जाल तहँ नाहिं नेड़ा॥
ज्ञान का थाल औ सहज मति बाति है, अधर आसन किया अगम डेरा।
कहै कबीर तहँ भर्म भासै नहीं, जन्म औ मरन का मिटा फेरा॥

(४४)

सूर परकास तहँ रैन कहँ पाइये,
रैन परकास नहिं सूर भासै।
ज्ञान परकास अज्ञान कहँ पाइये,
होइ अज्ञान तहँ ज्ञान नासै॥
काम बलवान तहँ नाम कहँ पाइये,
नाम जहँ होय तहँ काम नाहीं।
कहै कबीर यह सच्च बीचार है,
समुझ बिचार करि देखु माहीं॥

(४५)

एक समसेर[2] इकसार बजती रहै,
खेल कोइ सूरमा संत झेलै।

---

(१) शरीर। (२) तलवार।

(३७)

तरक संसार सेफरक फारिग सदा, गरक[7] गुरु ज्ञान में जुगत जोगी।
अर्ध औ उर्ध के बीच आसन किया, बंक प्याला पिवे रस्स भोगी॥

(१) तिसका। (२) गुरु। (३) मतवाला। (४) आदर के योग्य। (५) घुस कर। (६) थिर। (७) डुबा हुआ।

अर्ध दरियाव तहँ जाय डोरी लगी, महल बारीक का भेद पाया।
कहै कबीर यों संत निर्भय हुआ, परम सुख धाम तहँ प्रान लाया॥

(३८)

माड़ि मतवाल जहँ ब्रह्म भाठी जरै, पिवै कोइ सूरमा सीस मेलै।
पाँच को पेलि सैतान को पकरि के, प्रेम प्याला जहाँ अधर झेलै॥
पलटि मन पवन को उलटि सुधा कँवल, अर्ध औ उर्ध बिच ध्यान लावै।
कहै कबीर मस्तान माता रहै, बिना कर ताँतिया नाद गावै 21

(३९)

आठ हूँ पहर मतवाल लागी रहै,
आठ हूँ पहर की छाक[1] पीवै।
आठ हूँ पहर मस्तान माता रहै,
ब्रह्म की छौल[1] में साध जीवै॥
साच ही कहतु औ साच ही गहतु है,
काच को त्याग करि सात्र लागा।
कहै कबीर यों साध निर्भय हुआ,
जनम औ मरन का भर्म भागा॥

(४०)

करत कलोल दरियाव के बीच में,
ब्रह्म की छौल[1] में हंस झूलै।
अर्ध औ उर्ध की पेंग बाढ़ी तहाँ,
पलटि मन पवन को कँवल फूलै॥
गगन गरजै तहाँ सदा पावस[2] झरै,
होत झनकार नित बजत तूरा।
बेद कत्तेब की गम्म नाहीं तहाँ,
कहै कबीर कोइ रमै सूरा॥

(१) आनन्द। (२) वर्षा।

(३१)

अगम अस्थान गुरु-ज्ञान बिन ना लहै, लहै गुरु-ज्ञान कोइ संत पूरा।
द्वादस पलटि के खोड़स परगटै, गगन गरजै तहाँ बजै तूरा॥
इंगला पिंगला सुषमना सम करै, अर्ध औ उर्ध बिच ध्यान लावै।
कहै कबीर सोइ संत निर्भय रहै, काल को चोट फिर नाहिं खावै॥

(३२)

अधर आसन किया अगम प्याला पिया,
जोग की मूल गहि जुगति पाई।
पंथ बिन जाइ चलि सहर बेगमपुरे,
दया गुरुदेव की सहजि आई॥
ध्यान धरि देखिया नैन बिन पेखिया,
अगम अगाध सब कहत गाई।
कहै कबीर कोइ भेद बिरला लहै,
गहै सो कहै या सैन भाई॥

(१) मक्खन।

(३३)

सहर बेगमपुरा गम्म को ना लहै, होय बेगम्म सो गम्म पावै।
गुनों की गम्म ना अजब बिसराम है, सैन को लखै सोई सैन गावै॥
मुक्ख बानी तिको[1] स्वाद कैसे कहै, स्वाद पावै सोई सुक्ख मानै।
कहै कबीर या सैन गूँगा तई, होय गूँगा सोई सैन जानै॥

(३४)

अधर ही ख्याल औ अधर ही चाल है, अधर के बीच तहँ मठ्ठ कीया।
खेल उलटा चला जाइ चौथे मिला, सिंघ के मुक्ख फिर सीस दीया॥
सबद घनघोर टंकोर तहँ अधर है, नूर को परसि के पीर[2] पाया।
कहै कबीर यह खेल अवधूत का, खेलि अवधूत घर सहजि आया॥

(३५)

छका[3] अवधूत मस्तान माता रहै। ज्ञान बैराग सुधि लिया पूरा॥
स्वास उस्वास का प्रेम प्याला पिया। गगन गरजै तहाँ बजै तूरा॥
पीठ संसार से नाम-राता रहै। जतन जरना लिया सदा खेलै॥
कहै कबीर गुरु पीर से सुरखरू,[4]। परम सुख धाम तहँ प्रान मेलै॥

(३६)

छका सो थका फिर देह धारै नहीं,
करम औ कपट सब दूर कीया।
जिन स्वास उस्वास का प्रेम प्याला पिया,
नाम दरियाव तहँ पैसि[5] जीया॥
चढ़ी मतवाल औ हुआ मन साबिता,[6]
फटिक ज्यों फेर नहिं फूटि जावै।
कहै कबीर जिन बास निर्भय किया,
बहुरि संसार में नाहिं आवै॥

(३७)

तरक संसार से फरक फारिग सदा, गरक[7] गुरु ज्ञान में जुगत जोगी।
अर्ध औ उर्ध के बीच आसन किया, बंक प्याला पिवै रस्स भोगी॥

(१) तिसका। (२) गुरु। (३) मतवाला। (४) आदर के योग्य। (५) घुस कर। (६) थिर। (७) डूबा हुआ।

॥ चौपाई २८ ॥

बानी जो गहिरानी बोलै। गहिरा होय सो उनमुनि खोलै॥
इंगला पिंगला पै अंतस रहै। सुषमना तंतु जान के गहै॥
जब लग कीट गति नहिं बिसरावै। तब लग कस भृंगी कहलावै॥
त्रिकुटी मध्य सुरति संचरै। उनमुनि मद्धे पाँवहि धरै॥
कूंची कर गहि खोल किवारा। अनहद नाद सून्य भनकारा॥
सुनै जो गुरुमुख देखै नैना। तब पतियावै गुरु के बैना॥
धुन के सुने, आतमा जागै। अनुभै तारी सहजे लागै॥

॥ दोहा ॥

अगम अगोचर पैठि के, देखै तत्व बिलोइ।
बानी जहँ निरबान है, समरथ साँचा सोइ॥

॥ सोरठा ॥

जग में बहु परपंच, तामें जिव भूला सबै।
नहिं पावै कोइ संच, एक नाम जाने बिना॥

॥ चौपाई २९ ॥

भौजल तबहीं उतरै पारा। जबहि मिलै सतगुरु कनिहारा॥
बिन कनिहार न भौजल तरही। डूबहि फिर फिर देही धरही॥
जो कोइ खोज लीन्ह कनिहारा। नाम जहाज चढ़ि उतरै पारा॥
गुरु प्रताप से भौजल छाँड़ै। धुजा सुरति की सुन में गाड़ै॥
अनहद के नीसान बजावै। हंसराज होइ संत कहावै॥
सतगुरु मिलै सतनाम समावै। भौजल तजि सतलोकहि आवै॥
भौजल का बिसरै सब साज। सुख सागर बिलसै सुख राज॥

॥ दोहा ॥

सतगुरु को बिस्वास कर, तजै लोक कुल लाज।
भौजल पार सो होइ जिव, चढ़ सत नाम जहाज॥

॥ सोरठा ॥

भौजल अगम अपार, अति अथाह अंबुज अहै।
डूब सकल संसार, बिन परचे कनिहार सब॥

|| चौपाई १४ ||

जो कोइ जग से न्यारा होई । सात दीप को जानै सोई ॥
रेचक पूरक कोइ कोइ जानै । कुंभक बिरला भेद बखानै ॥
इंगल पिंगल का करे बिबेका । सुखमन तत्त न काहू देखा ॥
३

मन पवना निसि दिन भरमावा । बाहर भीतर थिति नहिं पावा ॥
करम अनेक जोग जो करई । जुगत बिना नर नरकै परई ॥
सहज जोग जिन सब्दे पैया । सहजहि से मन गगन चढ़ैया ॥
सो जोगी जो मन को चीन्हा । मन चीन्हे बिन जोग अधीना ॥

|| दोहा ||

सब्द खोजि मन बस करे, सहज जोग है येह ॥
सत्तनाम निज सार है, नहिं तो झूठी देह ॥

|| सोरठा ||

सत माने नर सोय, सतगुरु जो दाया करैं ।
और झूठ सब होय, काहे को भरमत फिरै ॥

|| चौपाई १५ ||

झूठा होइ कस नामहि लागी । मन बच कर्म होय बैरागी ॥
कुल छूटै तब सतगुरु भेंटैं । जो उपजे सो संसा मेटैं ॥
नाव अहै पर खेवट नाहीं । भवजल जीव कहाँ होइ जाहीं ॥
भवसागर बहु संकट होई । बिना नाम डूबै सब कोई ॥
सत्त नाम भवतारन येही । जेहि जानि जिव निर्भय रहही ॥
नाम अहै साथी कढ़िहारा । सतगुरु खेय लगावैं पारा ॥
नाम गहै जग जुगति बहावै । मिथ्या जग जो नामहि पावै ॥

|| दोहा ||

एक नाम जाने बिना, नहिं मिटै करम का अंक ।
तबही से सच पाइये, जब होय जीव निसंक ॥

|| सोरठा ||

आपा डारै खोय, वह प्रानी रंगै मिलै ।
तबही तें सुख होय, जाति बरन जाके नहीं ॥

|| चौपाई १६ ||

जो दृढ़ कै सत नामहि जानै । सतगुरु बचन सत्त कर मानै ॥
सतगुरु कहैं सोई यह करई । सतगुरु आज्ञा से निस्तरई ॥
सत्त बचन सतगुरु को भाखे । सतगुरु तें राखै अभिलाखे ॥

याहि बोल का तहकीक करो, क्या हलुका भारी तोलता है।
दम दम सेती जगत खेती, दया संग कबीर जो खोलता है॥

(४)

वार पार की हद हदूद देखी, बिच आवना जावना लेखा है।
नदी नाव का यह संजोग बना, तहाँ मिलना जुलना देखा है॥
देख भालि के यों आनन्द करो, हम तुम में एक परे क्या है।
कोई वार रहे कोइ पार रहे, दया संग कबीर बिबेका[1] है॥

(५)

कोइ ज्ञान करै भावै[2] ध्यान धरै, गुन रूप उचारि के गावता है।
कोइ जोग करै भावै मौन धरै, अनहद अलेख बतावता है॥
सुरझी उरझी की भूल पड़ी, घट घट का भेद नहिं पावता है।
रहे जीव जगत के संग दया, कायम कबीर बतावता है॥

(६)

तखत बना हाड़ चाम का जी, दाना पानी का भोग लगावता है।
मल मूत्र भरे लोहू माँस बढ़ै, आप अपना अंस बढ़ावता है॥
नाद बिंद के बीच कलोल करे, सो आतमराम कहावता है।
अस्थान यही कहाँ ढूँढ़ता है, दया देस कबीर बतावता है॥

(७)

(एक) नर नारी छोड़ि उदास फिरैं,
सो तो संगहि मनसा नारि भोगी।
अलख की प्यास बिन बिरहित तन,
भो छीन सद पिंडरोग रोगी॥
सुरझी उरझी की भूल पड़ी,
दुख जेर भये संसार सोगी।

(१) परखा। (२) चाहे।

योग कामुख्य सम्बन्ध कण्ठ के ऊपर के भाग से है। योग की इस क्रिया में साधक की 'सुरति' या ध्यान–दृष्टि नेत्र के 'अष्ट–दल–कमल में अवस्थित'

सूची–द्वार' होकर ब्रहमाण्ड में प्रवेश करती है और इडा, पिंगला तथा सुषम्णा की 'त्रिवेणी' मे संचरण करती हुई 'सहस्त्रदल' में विचरण करती है। फिर 'बंकनाल' होकर ऊपर चढ़ती है और 'भँवर गुफा' में प्रवेश करती है कि साधक एक से एक अनोखी सुगन्धि और अद्‌भूत छवि का अनुभव तथा साक्षात्कार करता है। यहाँअनहद नाद गुंजायमान रहता है। जो 'शब्दब्रह्मा' है, यही वह अमरपुरी अथवा 'अकहलोक' है, जहाँ आत्मा परमात्मा में मिलकर अद्वैत हो जाता है, आत्मा का यही मोक्ष है।

किनाराम कहते है कि इडा, पिंगला और सुषुम्ना की शुद्धि करनी चाहिए। तथा उन्मुनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। 'सुरति' और 'निरति' में मग्न होकर जीव परमानन्द को प्राप्त होता है।[5] योगेश्वराचार्य कहते है कि इडा व पिंगला का शोधन करके सुषुम्णा की 'डगर' पकड़नी चाहिए तथा 'पाँच' को मारकर और 'पच्चीस' को वश में कर, 'ना' की नगरी को जीत लेना चाहिए।[6] भिनकराम कहते है कि इडा व पिंगला नाम की दो नदियाँ बहती है, जिनमें सुन्दर जल की धारा प्रवाहित है।[7] टेकनराम भी 'इडा और पिंगला' के शोधन तथा 'त्रिवेणी–संगम के स्नान का निर्देश देते हैं।[8] रामस्वरूप दास भी इन तीनों नाड़ियों की चर्चा करते हैं और कहते हैं, कि इनके अभ्यास से मन के 'बैठने' में देरी नही लगती।[9] इडादि तीनों नदियों के संगम स्थल को 'त्रिकुटी' या त्रिवेणी कहते है, जिसकी चर्चा सन्तों ने बार–बार की है। दरसन राम कहते है कि, बंकनाल की उल्टी धार बहती है, रसना 'अजपा' की माला 'जपती' है, त्रिकुटी महल में सुग्गा बोलता है और साधक का मन हर्षित होता है।[10] राम टहल राम उपदेश देते हैं कि, 'ऐसा ध्यान लगाना साधों, ऐसा ध्यान लगाना कि मूल द्वार को

साफ करके गगन महल में जा 'धमको' और त्रिकुटी–महल में बैठकर 'अपार ज्योति' देखों।[11]

श्रुतियों का मनन तृतीय विषय-वासना से दूर रहना और चतुर्थ प्राणायाम -

सतसंगति, श्रुति समुझिबो, और वासना भंग ।
प्रान तान को रोकिबो, मन जीतन के अंग ।।{102}[1]

बाबा कीनाराम जी कहते हैं कि "इड़ा", "पिंगला" और "सुषुम्ना" को शुद्ध कर उन्मुनीरहनि का अभ्यास करना चाहिए । "सुरति" तथा "निरति" में मग्न होकर जीव परमानन्द को प्राप्त करता है -

इंगल पिंगल सुखमनि सोधि के, उनमुनी रहनि गहतहीं काल बांधा ।
सुरत अरु निरत को लगन में मगन होय, रामकिना सोई रंग रांचा ।।[2]

इड़ा, चन्द्रमा में और पिंगला सूर्य के ग्रह में निवास करते हैं, सुषुम्ना दोनों के मध्य में । जब चन्द्र और सूर्य का सहज और समान रूप से उदय हो जाता है तो शून्य में 'शब्द' का प्रकाश होता है । मन में अमर झरने लगता है -

साम इंगला बसे पिंगला रवि गृह जानो ।
मध्य सुषमना रहै शब्द सतगुरु सम मानो ।।
नामी शब्द विचारि अमिय को मगन पियासा ।
सहज चन्द्र रवि उदय, शून्य को शब्द प्रकासा ।।
रामरूप गुन गन सहित, मन मनसा पहिचान ।
मन मोर अजरा झरे इड़ा सुधामृत पान ।।[3]

1- "उनमुनिराम"; प्र0 श्री सर्वेश्वरी समूह, शाखा- जय प्रकाश नगर, धनबाद {बिहार}, पृ0 22.
2- "गीतावली"; वही; "रेखता", पृ0 6.
3- "रामगीता"; वही; "दोहा छन्द", पृ0 45.

दादूराम । सत्यराम ।।

श्री दादू सम्प्रदायाचार्यों की परम्परा, दादूधाम, नरायना

श्री दादू दयालजी महाराज
सं. १६०१-१६६०

आचार्य श्री गरीब दास जी
सं. १६६०-१६९३

आचार्य श्री मस्कीन दास जी
सं. १६९३-१७०५

आचार्य श्री फकीर दास जी
सं. १७०५-१७५०

आचार्य श्री जयतराम जी
सं. १७५०-१७८९

आचार्य श्री किशन देव जी
सं. १७८९-१८१०

आचार्य श्री चैनराम जी
सं. १८१०-१८३७

आचार्य श्री निर्भयराम जी
सं. १८३७-१८७१

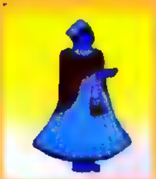

आचार्य श्री जीवणदास जी
सं. १८७१-१८७७

आचार्य श्री दलेराम जी
सं. १८७७-१८८७

आचार्य श्री प्रेमदास जी
सं. १८८७-१९०१

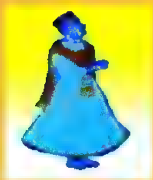

आचार्य श्री नारायणदास जी
सं. १९०१-१९१२

आचार्य श्री उदयराम जी
सं. १९१२-१९३१

आचार्य श्री गुलाबदास जी
सं. १९३१-१९४८

आचार्य श्री हरजीराम जी
सं. १९४८-१९५५

आचार्य श्री दयाराम जी
सं. १९५५-१९८८

आचार्य श्री रामलाल जी
सं. १९८८-२००१

आचार्य श्री प्रकाशदेव जी
सं. २००१-२०२३

आचार्य श्री हरीराम जी
सं. २०२३-२०५८

दादूराम । सत्यराम ।।

दुर्बल, दुर्जन, दानव, दीनहु, दीन दयाल दुःखी, दुःख टारो।

हद तक 'कबीर' के मत का भी अनुगमन करती है। भिनक राम ने तो अपने एक पद में स्पष्ट कहा है कि, "सुषुम्ना के झील में कमल पुष्पित है, जहाँ पर परमात्मा का निवास है। सद्गुरू कबीर साहब 'जिद' दया से हम भिनक राम स्वामी ने भी वहाँ पर ज्ञान का एक 'जंजीरा' प्राप्त कर लिया।"[1] इस सम्प्रदाय के संतों की कुछ पंक्तियों द्वारा हमें इनके अघोर मत से अभिन्नता भी परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिए भीखम राम के शिष्य प्राणपुरूष राम के एक भजन से जान पड़ता है कि उन्होंने इस मत की व्यापकता का वर्णन करते हुए इसे अत्यंत उत्कृष्ट पद प्रदान किया गया है और इसे वैराग्य (संभवतः साधारण वैरागियों के मत) से भिन्न कहा है–

धरती आकास, जल पवन अगिनियाँ, पाँचो अघोर बनि आई।[2]
चाँद सूरज दूनो अघोर के बालक, कह वैरा कहाँवा भाई।।टेक।।
अघोर मोती के बने पिंजरा, जामें, प्राणपुरूष के दिना बैठाई।। कह0।।
तीन लोक अघोर के बालक, वहाँ चमइनिया तेल लगाई।। कह0।।
भीखमराम प्रभु दया सतगुरू के, प्राण पुरूष काहें बिलखाई।।कह0।।
अघोर मत सती कोउ पावे, कह वौराव कहावा भाई।।28।।

इसी प्रकार उनके गुरू भाई टेकमन राम के भी भजन के दोहे में कहा गया है कि, "नाम के महिमा जानै, साधो लोग अघोर। काया अछत फल पावहीं, सत वचन सुनु मोर।"[3] अर्थात नाम की महिमा वही जानता है, जो 'अघोर–जोग' की साधना करता है और इस प्रकार जीते जी 'फल' (परमपद, अवधूत) प्राप्त कर लेता है। इन्हीं टेकमन राम ने एक अन्य स्थान पर कहा है कि किस प्रकार इन्होंने अपने पूर्ववर्ती कर्ताराम, मँगरूराम, धवल राम, सनेही राम, भुआल राम तथा मनसा राम नामक 'निर्वानी' सन्तों के मत को समझकर

---

1 परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ0–705
2 भजन रत्नमाला, रामटहल राम, पद सं0–28, पृ0–16
3 भजन रत्नमाला, राम टहल राम, पद सं0– 48, पृ0–14

अघोर मत के मुख्य प्रवर्तक किनाराम का मत है कि, इडा चन्द्रमा में और पिंगला सूर्य के ग्रह में निवास करते है तथा सुषुम्णा दोनो के मध्य में। जब चन्द्र और सूर्य का सहज और समान रूप से उदय हो जाता है तो शून्य में शब्द का प्रकाश होता है, मन में 'अजर' झरने लगता है और सुख–रूपी अमृत का आस्वादन होता है।[12] ध्यान योग के क्षेत्र में 'सुरति' और निरति' ये दो महत्वपूर्ण शब्द है। 'सुरति' योगी की उस असाधारण दृष्टि क्षमता को कहते है, जिसके द्वारा वह अन्तर्मुख होकर अपार्थिव जगत् के आश्चर्यमय दृश्यों और शब्दों की साक्षात अनुभूति प्राप्त करता है तथा 'निरति' उस निर्विकल्पक ध्यान की अवस्था है, जिसमें दृश्यावली प्रकट नही होती है। दोनों ही ध्यान की स्थिरता का सूचक है सुरति के द्वारा ही अनहद नाद का श्रवण सम्भव है[13] सुरति और पवन की स्वाभाविक गति बहिर्मुखी है, किन्तु योग में उनको उलटकर अन्तर्मुख किया जाता है, इसलिए कई स्थानों पर इस उलटी गति का वर्णन है।[14] गोविन्द राम ने कहा है कि साधक मूलद्वार से पवन को खीचकर 'उल्टा पंथ' चलाता है और मेरूदण्ड की सीढ़ी से चढ़कर शून्य शिखर पर चढ़ जाता है।[15]अनेक संतो के पदों में षट्चक्र, अष्ट दल–कमल, द्वादश दल–कमल, षोडश दल–कमल, सहस्त्र दल कमल आदि के उल्लेख मिलेंगे। इन पदों में षट्चक्र, शोधन का तात्पर्य पिंडगत मूलाधार आदि चक्रों का भेदन कर सुप्त कुण्डलिनी के जगाने से है और कमल दल प्रवेश से तात्पर्य सुरति का आँखों से होकर ब्रह्माण्डगत अन्तर्लोक में पहुँचकर दिव्य दृष्टि की प्राप्ति से है। कहीं–कहीं सभी चक्रों के आँखों में ही निवास की कल्पना

की गई है।[16] राम स्वरूप राम लिखते हैं कि, जीवात्मा का निवास वहाँ पर है जहाँ चार दलों वाला कमल प्रकाशित हो रहा है, जहाँ षडदल कमल है, वहाँ शिव–शक्ति का निवास है। योग की प्रक्रिया की अवस्था में 'सोऽहं' का जप आवश्यक होता है। वस्तुतः 'सोऽहं' की अन्तःध्वनि का एक निरन्तर तार बँध जाता है।[17] अलखानन्द कहते हैं किइस प्रकार की 'सोऽहं' ध्वनि जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में नही, अपितु उससे भी परे तुरीयावस्था में ही सुन पड़ती है। जब तक 'सोऽहं' जप का अभ्यास न होगा तब तक दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं मिटेंगे। सागर के तीर पर रहते हुए भी साधक को नीर नही मिलेगा। कल्पतरू के तले निवास करते हए भी दारिद्र्य नष्ट नहीं होगा।[18] ध्वनि अथवा शब्द कालान्तर में स्वतः और सहज हो जाता है, साधक स्वयं शब्दमय हो जाता है और शब्द ही ब्रह्म है अतः वह ब्रह्ममय हो जाता है। इसलिए शब्द का सन्तमत में बहुत बड़ा स्थान है।[19] इसी शब्द अथवा अनहद नाद की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए योग की क्रिया को अनहद योग (अनाहत योग) भी कहा गया है।[20] ब्रहमाण्ड के जिस अनुभूति लोक में योगी अपनी दिव्यदृष्टि द्वारा चित्तवृत्ति

रेचक[1] अरु पूरक कर बिन कुंभक आप उलटि पलटंदा है ॥ १५॥

बिना हाथकी सहायताके जब आपसे आप स्वयं बाँयेसे दहिना और दहिनेसे बाँई तरफ उलट-पुलट रेचक-पूरक होकर कुम्भक होने

---

१ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ १ ॥
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ २ ॥
(गीता)

१ प्राणायाम—
प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः।
सहितः केवलश्चेति कुम्भको द्विविधो मतः ॥ १ ॥
यावत्केवलसिद्धिः स्यात्सहितं तावदभ्यसेत्।
रेचकं पूरकं मुक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् ॥ २ ॥
न रेचको नैव च पूरकोऽत्र नासापुटे संस्थितमेव वायुम्।
सुनिश्चलं धारयते क्रमेण कुम्भाख्यमेतत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३ ॥
(हठयोगप्रदीपिका)

अर्थात् जबतक "केवल कुम्भक" सिद्ध न हो तबतक रेचक-पूरकादि क्रिया करके कुम्भकका अभ्यास करता रहे, जब रेचक और पूरकके बिना ही स्वयं वायु नासापुटमें ही सुनिश्चल स्थिर होकर कुम्भक हो जावे उसको केवल कुम्भक कहते हैं, यह जिसके सिद्ध हो जाता है उसको—

लगता है, अथवा रेचक और पूरकके किये बिना "केवल कुम्भक" ही होने लगता है ॥ १५ ॥

त्राटक[1] हुय ध्यानू वात विज्ञानू आपा पट खूलंदा है ॥ १६ ॥

त्राटक (बिना पलक झपकाये एक सरीखे नेत्र किसी सूक्ष्म लक्ष्यकी ओर जमाकर एकाग्र अनन्य भावका चित्त हो) ध्यान करनेसे

कुम्भके केवले सिद्धे रेचपूरकवर्जिते।
न तस्य दुर्लभं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते।
शक्तः केवलकुम्भेन यथेष्टं वायुधारणात् ॥
राजयोगपदं चापि लभते नात्र संशयः।
कुम्भकात् कुण्डलीबोधः कुण्डलीबोधतो भवेत् ॥
अनर्गला सुषुम्णा च हठसिद्धिश्च जायते।
हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः ॥
न सिध्यति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समभ्यसेत्।

तीन लोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है। जो केवल कुम्भक करनेको समर्थ हो जाता है और जो यथेष्ट वायु धारण कर सकता है वह राजयोगके पदको प्राप्त होता है इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं। कुम्भकसे कुण्डलीका प्रबोध होता है और कुण्डलीके प्रबोध होनेसे सुषुम्णा सरल हो जाती है जिसमें हठयोगकी सिद्धि हो जाती है।

१ त्राटक[2]—
निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम् ॥ १ ॥
मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम्।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम् ॥ २ ॥
(हठयोगप्रदीपिका)

---

१ स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता)

२ कितने ही ललाट-देशमें प्राण-निरोध करनेको भी त्राटक कहते हैं।

ररंकार सुमरण सहज, नाभि कमल अस्थान।
हरिया पच्छिमदेशकों, पहुँचन का परमान॥ १॥
ज्यूं जल सेझै सिंधुका, बाका थाह न कोय।
हरिया सुमिरन सहजका, निशिदिन घटमें होय॥ २॥

सोरठा

हरिया मुख ममकार, जब सहजाँ सुमिरण नहीं।
मरै धरै आकार, मेला जीव रु शीव बिन॥ १॥

अर्थात् सहज सुमिरण नाभिस्थानमें जब रकारका स्मरण होने लग जाय तो पश्चिम देशको पहुँचनेका प्रमाण समझना। सहज सुमिरणमें मकारका स्मरण बंद होकर केवल ररंकार शब्दकी रात-दिन रटना होने लग जाती है तभी जीव और शिव एक हो जाते हैं।

१ छुछम वेद—यह महात्माओंका सांकेतिक शब्द है जिसमें सूक्ष्म भेद (वार्ताओं) का वर्णन है अथवा स्वसंवेद्य गुणको भी कहते हैं अथवा भगवान्‌के श्वासोच्छ्वासरूप वेदको भी कहते हैं अथवा 'छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्' इसको भी कहते हैं।

ऐसी स्थिति होनेके पश्चात् ओऊँ=हंसः और सोऊँ=सोहं-इन दोनोंके "हंसः सोहं सोहं हंसः" इस अजपा[1] नाम गायत्रीके जपका ज्ञान प्राप्त होनेसे परब्रह्म परमात्माके दर्शनकी प्राप्ति होती है वह हुई॥१०॥

---

१ अजपाके जपसे परब्रह्म परसता है—

ओऊं सोऊं जाप अजप्पा, घटमें कीया संप असंपा।

(श्रीहरि० वाक्यम्)

ओऊं सोऊं अर्थात् हंसः सोहं अजपा जप है। इसने घटमें असंप (जीव ब्रह्मका भेद) का संप (अभेद) कर दिया—ठीक वाच्यार्थ सफल कर दिया।

उलटा अजपा जाप जपाया। हद को जीत बेहदमें आया॥

(श्रीराम० वाक्यम्)

नासापथसमाकृष्टः पवनः फुस्फुसं गतः।
शोधयेच्छोणितं दुष्टं तेन जीवन्ति जन्तवः॥ १॥
सोहंशब्देन जीवानां श्वासोच्छ्वासो निरन्तरम्।
स्यातां वा हंसशब्देनोच्छ्वासश्वासौ विपर्य्ययात्॥ २॥
इत्ययं द्व्यक्षरो मन्त्रो जीवजप्योऽजपा मता।
जपारम्भो हि जननं मरणं तत्समापनम्॥ ३॥

इसी अजपा मन्त्रको अजपा गायत्री कहते हैं।

एकविंशतिसाहस्रं षट्शताधिकमीश्वरि।
जपते प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्दमयीं पराम्॥ ४॥
विना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः।
अजपेयं ततः प्रोक्ता भवपाशनिकृन्तनी॥ ५॥

(दक्षिणामूर्तिसंहिता)

अजपा नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा।
षट् शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः॥ १॥
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं हंसः सोहं क्रमेण वै।

(कुलार्णव)

जातः स इति वै शब्दमुच्चार्यारमते जपम्।
महाप्रयाणसमये हमुच्चार्य समापयेत्॥ १॥

(दक्षिणामूर्तिसंहिता)

लोभ लालच मद मोह लागा रहै । आपदा पासि पडपंच ठाणै ।
आन उपाधि वहु ताप हिरदै उठै । राग अरु द्वेष मनमान ताणै ॥
काम अरु क्रोध भय जोध जोरावरी । जहर अरु कहर जग माहिं जाडा ।
काल कब्बाण कसी सिर ऊपरै । मारसी जोय नहिं कोय आडा ॥
मात अरु तात सुत भ्रात भृत भामिनी । कुटुंब परिवार की प्रीति झूठी ।
दास हरिराम कहै खेल बीतां पछै । मेल सौह ऊठिग्यो झाड़ि मूठी ॥

(९)

सत्तगुरु देव की गम्म कैसे लहै । कान गुरु फूंकिया मान लीया ।
भाव निज भक्तिकी गम्म कैसे लहै । सेव कृत्रिम्म कुल काज कीया ॥
साधु सतसंग की गम्म कैसे लहै । जगत जंजालमें फिरत झूला ।
ज्ञान विज्ञान की गम्म कैसे लहै । आन अज्ञानमें जात भूला ॥
अजपा जाप की गम्म कैसे लहै । जुगति से जाप नहिं करत जाणी ।
आतमा देवकी गम्म कैसे लहै । वेद कत्तेब की देखै पुराणी ॥
रोम ररंकार की गम्म कैसे लहै । शब्दके संग ममकार होई ।
दास निर आस की गम्म कैसे लहै । आस दुनियानकी करत सोई ॥
नाम निर्गुण्ण की गम्म कैसे लहै । ताप तिर्गुण्ण के पंथ पुलिया ।
उन्मनी ध्यान की गम्म कैसे लहै । नाम कूं लेत है कान सुणिया ॥
सुरति अरु निरत की गम्म कैसे लहै । विषय मन वासना रहत माहीं ।
अधः अरु ऊर्ध्व की गम्म कैसे लहै । कंठ रसना हृदै ध्यान नाहीं ॥
पिंड ब्रह्मंड की गम्म कैसे लहै । खंड फिर मंडका देख देखै ।
नाम निर्वाण की गम्म कैसे लहै । वाद बकवाद के राग घेखै ॥
बात विदेह की गम्म कैसे लहै । हद्द में रातदिन रहत राता ।
ब्रह्म आनंद की गम्म कैसे लहै । मोह माया तणे मद माता ॥
जाण विज्ञाण की गम्म कैसे लहै । शुद्ध बुधि आपणी सार चूका ।
दास हरिराम सिर भार कैसे मिटै । भर्म अरु कर्म के ढिग्ग ढूका ॥

(१०)

गुरु परचै विना ज्ञान कैसे गहै । नाम परचै विना ठाम नाहीं ।
जीव परचै विना पीव कैसे मिलै । आप परचै विना क्यूं न काहीं ॥
मन परचै विना ध्यान कैसे धरै । त्याग परचै विना शान्ति नावै ।
अधः परचै विना ऊर्ध्व कैसे चरै । नाद परचै विना बिंद जावै ॥
अखंड परचै विना अनहद कैसे घुरै । अगम परचै विना निगम बोलै ।
साँच परचै विना झूठ कैसे मिटै । दास हरिराम कहै दिल खोलै ॥

---

१ विपत्ति, आफत, गजब । २ कृत्रिम=नकली । ३ खुशी, आनंद । ४ चलताहै ।

(११)

सत्त का शब्द विन सहज दरसै नहीँ । तत्त दरस्याँ विना मत्त डोलै ।
सुरति उलटी विना ब्रह्म भेदै नहीँ । दिल दरस्याँ विना सालै फोलै ॥
पेम वरषा विना नाम निपजै नहीं । आत्मा देव विन सेव दूजै ।
भाव उपज्याँ विना भक्ति भावै नहीँ । साधु दरस्याँ विना सिद्ध पूजै ॥
जुक्ति जाणी विना जोग दरसै नहीं । एक दरस्याँ विना अनंत धारै ।
वार दरस्या विना पार कैसे लहै । दास हरिराम सब रंख सारै ॥

छप्पय ।

शुन्य सुभर में बालक जाया, त्वचा हाड नहिं माँसू।
जाति पाँति वरण नहिं वाके नाम ज धरिये काँसू ॥ ३० ॥
अगम निगम बिच खेल हमारा, जहँ एको निरवासा।
रूप रेख नख शिख नहिं वाके, देह न गेह न सासा ॥ ३१ ॥
जैमलदास गुरू परतापे, तोड़्या भर्म किवारू।
जन हरिराम कहत है सन्तो, पदवत्तीस विचारू ॥ ३२ ॥

साखी।

पदवत्तीस विचारिके, उपज्यो आतम ज्ञान।
आपा ले उन्मन रहै, लहै परम निज ध्यान ॥ १ ॥

इति।

अथ प्रश्नोत्तरी।

चौपाई।

प्रश्न।

कहो कौन घर प्रेम निवासा। कहो कौन घर ध्यान प्रकासा॥
कहो कौन घर मन मिल पवना। कहो कौन घर सहज सुमरना ॥ १ ॥
कहो कौन घर अभरा भरि है। कहो कौन घर नीझर झरि है॥
कहो कौन घर अनहद तूरा। कहो कौन घर परसत नूरा ॥ २ ॥
कहो कौन घर उन्मनि लाई। कहो कौन घर सुरति समाई॥
कहो कौन घर पीव मिलावे। कहो कौन घर आय न जावे ॥ ३ ॥

उत्तर।

कंठ कमल घर प्रेम निवासा। हृदय कमल घर ध्यान प्रकासा॥
नाभि कमल घर मन मिल पवना। रोम रोम घर सहज सुमरना ॥४॥
बंक नाल घर अभरा भरि है। अधः ऊर्ध्व घर नीझर झरि है॥
सून्य शिखर घर अनहद तूरा। दशम द्वार घर परसत नूरा ॥ ५ ॥
ललाट घर उन्मनि लाई। सुरत निरत घर माहिं समाई॥
तिरबेणी घर पीव मिलावे। शिवसत्ता घर आय न जावे ॥ ६ ॥
जन हरिराम जहाँ घर पाया। जन्म मरण सन्देह मिटाया॥
बिन गुरुगम देखे नर दूरा। ब्रह्म बताया आप हजूरा ॥ ७ ॥

साखी।

गुह्य हमारी जो करै, सोई हमारा यार।
हरिरामा दूजी दुनी, जाकों ऊभ जुहार ॥ ८ ॥

इति।

साखी ।

सुमरन मारग संतका, ताते भरम नसाय ।
हरिरामा हरि वंदगी, करिहौं चित्त लगाय ॥ १ ॥

छंद प्रयात भुजंगी ।

नाम चेतन्न कूं चेत भाई । नाम तें चित्त चौथे मिलाई ॥ १ ॥
नाम तें केवला होय भजना । नाम तें सहज सुमिरन्न रसना ॥ २ ॥
नाम तें अज्जपा जाप ओऊं । नाम तें सास उस्सास सोऊं ॥ ३ ॥
नाम तें हक्क है एक अल्ला । नाम महमान की आखि गल्ला ॥ ४ ॥
नाम तें चंद सूरा समेला । नाम तें करत मन सुक्ख केला ॥ ५ ॥
नाम तें खोलि कप्पाट गैणूं । नाम तें ध्यान ताटक्क नैणुं ॥ ६ ॥

साखी ।

नाभी परचा नामका, गुरु तें पाया ज्ञान ।
हरिया पूरब एक पल, धन्या गगनमें ध्यान ॥ १ ॥

छंद प्रयात भुजंगी ।

पलटि पूर्व अपुरव्व प्याणा । करि वंकनाली लिये मेरु थाणा ॥ ७ ॥
ध्यान आकास धरि अधर छाजै । सुरति अरु शब्दका एक राजै ॥ ८ ॥
मन वुद्धि चित अरु अहंकारा । पाँच पच्चीस मिल एक यारा ॥ ९ ॥
नाद अनहद जहाँ तूर वाजै । विन वादलाँ वीज विन अंवुं गाजै ॥ १० ॥
विन गंग जमुना वहै नीर पारा । चलै सुषमणा सीर अमृत्त धारा ॥११॥
झिलमिला होत जहाँ अखंड ज्योती । निर्मला नूर तहाँ ओत पोती ॥१२॥
अगम अप्पार अवगत्त यारा । मिला मुझ्झमें मुझ्झ पीतम्म प्यारा ॥१३॥
फदल कूँ जीत पति अदल साँई । सुन्य का सहर निरभै वसाँई ॥ १४ ॥

साखी ।

हंसा सुन सरवर मिल्या, सरवर हंस मिलाय ।
हरिया पैर सर खेलताँ, सहजाँ रहे समाय ॥ १ ॥

छंद प्रयात भुजंगी ।

सहज तन मन्न करि सहज पूजा । सहज सा देव नहिं और दूजा ॥१५॥
सहज का जोग साझन्न पवना । सहज थिर नाद अरु विंद गगना ॥१६॥
सहज तीर्थ जप तप्प ध्यानू । सहज षट्कर्म सेवा सनानू ॥ १७ ॥
सहज कछ काछ कीर्तन्न काजा । सहज का शब्द सुर वाय वाजा ॥१८॥

---

१ गहन । २ मेघ, जल । ३ परसर, सबके ऊपर का सर ।

14:22 Vo)) LTE1

बंदू राम सुमन्यो नाहिं। दुःखां पार कैसे पाहिं।
मनमें राखता अभिमान। जोधा गया मैली खान ॥ ५३ ॥
करता गर्व ही गुम्मान। गया नरक ही निदान।
ऊंचा महल ही अव्वास। करता नारि नर विल्लास ॥ ५४ ॥
खाता मेवा मीठा भात। प्याला पीवता निव्वात।
निर्गुण नाम राता नाहिं। गया गंदकी कै माहिं ॥ ५५ ॥
मांही केई जुग्गां ताहिं। पीछे चोरासी कूं जाहिं।
जूणाँ अनेक ही भुगताय। जामें ऊपजै खपजाय ॥ ५६ ॥
बहुतो दुःख पावै जीव। सुमन्यो नांहिरे तैं पीव।
तातैं कष्ट तन पायोक। जुग जुग माहिं भटकायोक ॥ ५७ ॥

साखी।

सतगुरु शरणै ऊबऱ्या, नरिये सुमऱ्या राम।
नहिं तो भरम्या जावता, दुख पड़ता वे काम ॥ ३ ॥

छंद जाति ऊधोर।

शरणै संत के आयाक। भावरु भक्ति ही भायाक।
सेवा घाल की लागाह। दुबिधा दोष ही भागाह ॥ ५८ ॥
रसना नाम ही लीयाह। अमृत कंठ ही पीयाह।
हिरदै ध्यान ही धरियाह। तन मन सहज थरहरियाह ॥ ५९ ॥
नाभी नाम ही निरधार। सुमरण सहज ही उच्चार।
संगी साँचही धाऱ्याह। झूठा पास ही डाऱ्याह ॥ ६० ॥
पति सूं प्रेम ही लायाह। हरि गुण हेत सूं गायाह ॥
सहजाँ ज्ञान ही आयाह। मनवै शान्ति ही पायाह ॥ ६१ ॥

उलटा पछिम कूं ध्यायाह। ऊंचा मेरु करि थायाह।
वाजा गगन ही वायाह। निरँजन शून्य ही पायाह ॥ ६२ ॥
सुन में शब्द ही निरकार। लागी सुरत ही इकतार।
शुन में सुक्ख ही भइयाह। दूजा दुःख ही गइयाह ॥ ६३ ॥
पूरण ब्रह्म ही कूं पाय। सहजाँ रहे सुख सम्माय।
मिटिगे जनम अरु मरणाक। अब तन फेर नहिं धरणाक ॥६४॥
मिलिया नीर में हुय नीर। हंसा चुगत है हरि हीर।
पाया राम ही महाराज। सरिया सहज जनका काज ॥ ६५ ॥

साखी।

सतगुरु के परताप तें, नरियै नाम पियाह।
प्यासा प्राण पिलाइया, पीवत ही जीयाह ॥ ४ ॥
और सकल कूं छाँडि करि, परस्या आतमराम।
नरिया साँसा को नहीं, जाय मिल्या निजधाम ॥ ५ ॥

इति चेतावनी।

सेल सुमरण सोहि सहजाँ तत्त कर तरवार।
हरिरामा जन यह औसर जीत भावे हार ॥ ५ ॥

पद ३९

मन रे गुरू का उपकार।
विना कूंची खोल ताला मुक्ति का भंडार ॥ टेक ॥
वेद विन इक भेद भेद्या कह्या सुणिया नाहिं।
सहज ब्रह्मा पढै पोथी एक अक्षर माहिं ॥ १ ॥
उलट हद कूं चढ्या वेहद वंकनाली पूर।
इला पिंगला वीच सुषुमण निरख आतम नूर ॥ २ ॥
विना वाती ज्योति झिलमिल अखंड दीया लोय।
देह विन विदेह पुरुषा लहै महरम सोय ॥ ३ ॥
पंख विन इक जान भँवरा विना वाड़ी वीच।
हरिरामा रहु ऐसे न्यारा कमल कैंदम न कीच ॥ ४ ॥

पद ४०

भरम कोई सतगुरु भांजैरे। साचो नाम सुनाय ॥ टेक ॥
सतगुरु मेरे सिरधणी मैं सतगुरु का दास।
वाकै पास विलंबियै काटै जम के पास ॥ १ ॥
योग यज्ञ जप तप करै अठ सठ तीरथ न्हाहिं।
उर आतम इक तार विन जग के गेलै जाहिं ॥ २ ॥
वेद कथा सुन सीख के वाचै देवै विचार।
नाम नियारो रहिगयो करि करि लोकाचार ॥ ३ ॥
विन गुरु गम निश्चय बिना कहै कहावे कूर।
हरिरामा उन जीव सूं देख रहीजे दूर ॥ ४ ॥

राग जैतश्री।

पद ४१

सोई अभागिया रे हरि सूं नाहिं सनेह।
माया मोह मगन भयो मनमें विषयां सेती नेह ॥ टेक ॥
रामनाम चेत्यो नहीं बालक तरुणां माहिं।
पीछै पांव थकै सिर कंपै अँखियां सूझै नाहिं ॥ १ ॥
औसर मिनखा देह को भोंदूपणे न भूल।
आयो हीरो गांठि सूं जाहि जतन विन खूल ॥ २ ॥

१ साहनी=फोज। २ चरण।

तन मन तेरा तूं धणी मेरा नहिं सारा हो।
भली बुरी सब जीव की तुही जाननहारा हो ॥ २ ॥
मैं मध्यम तन हीनता तुम उत्तम यारा हो।
प्रीति पूरबली जान के होवत नहिं न्यारा हो ॥ ३ ॥
आपा अंतर मेटिके अपनी करलीन्हीं हो।
जन हरिरामें दोस्ती आतम से कीन्हीं हो ॥ ४ ॥

राग विहागड़ो।

पद २९

देख्या राम निरंजन राया।
शोभा अनँत कही नहिं जावै वाजा अनहद वाया ॥ टेक ॥
काया कोट वन्यो विन टाँची चूनो कली न लाया।
करता पुरुष भया कारीगर छाजा खूब वनाया ॥ १ ॥
यामें एक विदेही पुरुषा इला पिंगला राणी।
सुषुमन सदा सुहागनि सुंदरि मोक्ष मुक्ति जहाँ जाणी ॥ २ ॥
अणभै राज करत अविनाशी जहाँ चित चाकर लाया।
जन हरिराम छाँड़ि हदवासा बेहद वास वसाया ॥ ३ ॥

पद ३०

संतो सतगुरु करण सिहाई।
अंतर माहिं निरंतर देख्या सहजाँ भेद बताई ॥ टेक ॥
सहजाँ पुस्तक वेद पुराना सहजाँ अंछर वाचै।
सहजाँ तार तबल घन तूरा सहज नचइया नाचै ॥ १ ॥
सहजाँ गंग जमुन का मेला सहजाँ करत स्नाना।
सहजाँ देव सेव घट भीतर सहजाँ ब्रह्म ज्ञाना ॥ २ ॥
सहजाँ जोग जुगति भी सहजाँ सहजाँ ऋधि सिधि दासी।
सहजाँ गगन ध्यान धुनि लागी सहज मिल्या अविनाशी ॥३॥
सहजाँ सहजाँ एक भया सब रामनाम कूं जाण्या।
मोक्ष मुक्तिका ना कोई संसा सहजाँ शब्द पिछाण्या ॥ ४ ॥
सहजाँ सुरति निरत भी सहजाँ सहज मंदिर में वासा।
सहज पिया सूं सेझ रमंता सहज किया घर वासा ॥ ५ ॥
सहजाँ इला पिंगला सहजाँ सहजाँ सुषुमणि नारी।
जन हरिराम सहज घटभीतर पाया देव मुरारी ॥ ६ ॥

रामदास सुमरण तणा, विवरा देउँ बताय।
घट माँहीं अजपा हुवै, सुणो सकल चित लाय ॥ १८ ॥
रामदास सुमरण कियाँ, प्रथम जगी इक नार।
सहस्र एक चौबनमही, शब्द करत गुँजार ॥ १९ ॥
कंठ में प्रेम प्रकासिया, हृदै होत धमकार।
नाड़ि नाड़ि चेतन भई, मन आयो इतबार ॥ २० ॥

नाभि कमल में संचऱ्या, सहस्र चार परकास।
नाड़ि नाड़ि न्यारी धुरै, सुणत रामिया दास ॥ २१ ॥
बहत्तर नाड़ी वंक की, मिली वंक में आय।
रामदास सब घेरकै, उलटा अभर भराय ॥ २२ ॥
नाड़ि सवासै एक ही, सहस्र पांच परवाण।
रामदास घट भीतरै, ए वडि नाड़ि बखाण ॥ २३ ॥
मही नाड़ि दूजी घणी, तीन लोक विस्तार।
रामदास तन सोझकर, सब का करो विचार ॥ २४ ॥
नाड़ी बहत्तर हजार है, सब ही तनके माहिं।
सबहि मिलाणी तीनसूं, त्रिवेणी में जाहिं ॥ २५ ॥
इड़ा पिंगला सुषमणा, त्रिवेणी के तट्ट।
रामदास ता ऊपरै, मंड्या सहज ही मट्ट ॥ २६ ॥
वाँसे चल आधा गया, परम सून्य के माँय।
गगन कूप में रामदास, अमृत भरभर पाँय ॥ २७ ॥
नाड़ि नाड़ि अमृत झरै, पीवत सबै सरीर।
रोम रोम बिच रामदास, चलत सुखम की सीर ॥ २८ ॥
साढ़ा तीन करोड़ में, एक होत ररकार।
सहजे सुमरण रामदास, ताका अंत न पार ॥ २९ ॥
उर अंतर नख सिख विचै, एक अजप्पा होय।
राम दास या संत गति, साधू जाणै कोय ॥ ३० ॥
जाप कियाँ मुख द्वार तें, रसना चाली सीर।
अजपा सुमरण घट विषै, को जाणै गुरु पीर ॥ ३१ ॥
गगनमंडलमें रामदास, अनहद घुरिया नाद।
रोम रोम साँई मिल्या, सुमरण पायो स्वाद ॥ ३२ ॥

इति।

अथ विरह को अंग।

नैण हमारा रामदास पिव विन रह्या विसूर।
अंतर दारुण विरह की तन इंद्रिय मनझूर ॥ १ ॥
अंतर दारुण अति घणी, पिंजर करै पुकार।
नैण रोय राता किया, तो कारण भरतार ॥ २ ॥

चौपाई ।

शरणै आइ दीनता दाखे । सद्गुरु मोकों चरणाँ राखे ॥
सो गुरु दीया ज्ञान विचारा । भर्म कर्म तैं कीया न्यारा ॥ १ ॥
सद्गुरु मेरे किरपा कीनी । भाव भजन की आज्ञा दीनी ॥
सद्गुरु सतका शब्द सुणाया । मुखते रामनाम सुमराया ॥ २ ॥
रामनामसा नाम न कोई । भावे माँड सकल फिर जोई ॥
राम राम कहि राम मिलावै । लख चौरासी कबहु न जावै ॥ ३ ॥
सद्गुरु ऐसा तत्त्व बताया । निश्चय एको राम कहाया ॥
सद्गुरु ऊपर प्राण अँवारी । तन मन शीश चरण में डारी ॥ ४ ॥
रसना रटत जु नेह लगाया । कंठ कमल में सुमरण आया ॥
गद्गद होइ प्रेमरस पाया । पी पी प्राणी कर्म नसाया ॥ ५ ॥
मन इकतार नाम निज भाया । हिरदै ध्यान धणी का आया ॥
दया दीनता ज्ञान विचारी । दिलकी दुर्मति दूर निवारी ॥ ६ ॥

चेतन चलकरि नाभि सिधाया । श्वास उश्वासे सुमरण लाया ॥
तन मन सब ही सहज नचाया । भाँति भाँतिका नृत्य कराया ॥ ७ ॥
रग रग भीतर सहज पसारा । रोम रोम में है ररकारा ॥
नाड़ि नाड़ि में जीव जगाया । सारशब्द के संग लगाया ॥ ८ ॥
जीव पलटिया ब्रह्म जु होई । और विकार लिपे नहिं कोई ॥
विरहनि झूरी अती अपारा । अब तो पाया पीतम प्यारा ॥ ९ ॥
दया करी मोहि दुःख मिटाया । चरणकमल के बीच रखाया ॥
ररंकार सहजाँ लिव लाया । प्राणी बहुत परम सुख पाया ॥ १० ॥
पीया ऐसी कृपा जु कीनी । शरणै सदा आपमें लीनी ॥
सहाय करी अरु सुलटा धाया । पातोत्ताने बंध लगाया ॥ ११ ॥
शिखर चढ़िया पूरब ध्याना । ठाम ठाम का पाट खुलाना ॥
खूला ध्यान धरणि कों आया । पातालों में पन्थ जु पाया ॥ १२ ॥
उलटा शब्द पछिम कों ध्याया । मन पवनाका बंध लगाया ॥
बंकनाल में सहजाँ वहिया । मेरु मंझि मेवासा दहिया ॥ १३ ॥
अधः ऊर्ध्व विच राह चलाया । आकाशाँ में अनहद वाया ॥
चंद रु सूर गगन घर लाया । नाद बिन्दु के माहिं समाया ॥ १४ ॥
गहरी ग़ाज गगन गणणाया । वर्षे अमृत प्राण पिलाया ॥
पी पी सन्त शुन्य में आया । चित शान्ती घर सहज मिलाया ॥१५॥
मन पवना स्थिर दशम द्वारा । पांच पचीसों बंध्या सारा ॥
इड़ा पिंगला सुषमण मेला । सुरति शब्द जहँ हुआ मेला ॥ १६ ॥
शब्द निरंजन काज सुधारा । भवसागर ते पार उतारा ॥
शब्द नकेवल ऊपर वारी । अपना जान रु लिया उबारी ॥ १७ ॥
उत्तर दक्षिण ध्यान मिलाना । पूर्व पश्चिम माहिं समाना ॥
परम शून्य है सरजनहारा । सहजाँ मिलिया प्राण हमारा ॥ १८ ॥
सुखसागर है निर्गुण राया । दर्शन किया परम सुख पाया ॥
त्रिवेणी में पीव निवासा । मिली पियारी लील विलासा ॥ १९ ॥
पद्मी ऐसी प्रीति लगाई । झिलमिल ज्योती से लिपटाई ॥
भव कों वीसर चरणाँ आई । सहजाँ रहे अखंड लिवलाई ॥ २० ॥
संशय शोक सकलही मेटा । निर्भय निराकार कों भेटा ॥
पूर्ण भया परम सुख पाया । तातैं अंतर ध्यान लगाया ॥ २१ ॥

सद्गुरु देवो ज्ञान विचारा। अवगुण मेटि करौ निस्तारा॥
जन हरिरामजु भर्म गमाया। संशय शोक रु कर्म नसाया॥७॥

साखी।

सद्गुरुसिरजन हार है, सब का समर्थ साम।
अवगुण मेट्या घालजी, दिया मोहि निज नाम॥२॥

चौपाई।

राम राम रसना से लीया। प्रेम प्रकाश कंठमें कीया॥
मनवा माहिं नाम से लाया। हिरदै सुमरण हेत लगाया॥१॥
नाभी भजन किया अधिकारा। पिंड सारेमें रमै पियारा॥
रोम रोम में अर्ध उचारा। अंग अंग में है विस्तारा॥२॥
सहजाँ सुरति शब्द उलटाया। छांड्या देश विदेशां ध्याया॥
वंकीनाल चलै इक धारा। मेरुदंड में हुआ करारा॥३॥
वर्षा सहज वणी, चहुँ खंडे। उलटा नीर चढ्या ब्रह्मंडे॥
सुनसागर के माहि समाया। अनहद गाज गगन गणणाया॥४॥
पहुँता सन्त अमीरस पीया। तृष्णा घटी जिके नर जीया॥
परब्रह्म से प्राण पिलाया। निशिदिन चरणे ध्यान लगाया॥५॥
जित्थे काल कर्म नहिं काया। जित्थे विषय विघ्न नहिं माया॥
राम निरंजन जग से न्यारा। दिया नरैकों सुक्ख अपारा॥६॥

साखी।

मैं हौं प्राणी आपका, कहां न कीजै दूर।
प्रेम भक्ति नरैकों दिवो, राखो नित्य हजूर॥३॥

चौपाई।

शरणै आइ दीनता दाखे। सद्गुरु मोकों चरणाँ राखे॥
सो गुरु दीया ज्ञान विचारा। भर्म कर्म तें कीया न्यारा॥१॥
सद्गुरु मेरे किरपा कीनी। भाव भजन की आज्ञा दीनी॥
सद्गुरु सतका शब्द सुणाया। मुखतै रामनाम सुमराया॥२॥
रामनामसा नाम न कोई। भावे मॉंड सकल फिर जोई॥
राम राम कहि राम मिलावै। लख चौरासी कवहु न जावै॥३॥
सद्गुरु ऐसा तत्त्व बताया। निश्चय एको राम कहाया॥
सद्गुरु ऊपर प्राण अँवारी। तन मन शीश चरण में डारी॥४॥
रसना रटत जु नेह लगाया। कंठ कमल में सुमरण आया॥
गद्गद होइ प्रेमरस पाया। पी पी प्राणी कर्म नसाया॥५॥
मन इकतार नाम निज भाया। हिरदै ध्यान धणी का आया॥
दया दीनता ज्ञान विचारी। दिलकी दुर्मति दूर निवारी॥६॥

छन्द अर्धभुजंगी।
हँसै हीर पाया नितो सहज ध्याया।
गदो कंठ लागी चली धुन आगी ॥ १ ॥
हदै जाय हिलिया मनो देव सिलिया।
लगी प्रीति प्यारी चलै गंग भारी ॥ २ ॥

नाभी द्वार आया सतोपद्द पाया।
रोमा लिव्व लागा सोहं हंस आगा ॥ ३ ॥
ररूं रंग राता मनो मन्न माता।
पूर्व फेर भाया पताले लगाया ॥ ४ ॥
उलटि मन्न आगा अगम देश लागा।
वँकी रस्स पीया जुगे जुग्ग जीया ॥ ५ ॥
तीनूं गढ्ढ जीता चोथे मन्नमीता।
चँदे सूर मेला इके गेह मेला ॥ ६ ॥
पँचूं एक वाटी मिल्या ज्ञान घाटी।
पँचूं घेर आया मुक्ति द्वार पाया ॥ ७ ॥
अक्षय तूर वाजे गगन अंबु गाजे।
वणी प्रेम वरषा मिल्या आदि पुरुषा ॥ ८ ॥
मिले अव्विनासी टली काल पासी।
अलक्षैक पाया टली काल छाया ॥ ९ ॥
रमे सन्त सारा चलै सहस धारा।
पिया नीर मीठा अगम सुक्ख दीठा ॥ १० ॥
लिया पीउ फेरा किया सहज डेरा।
लगी प्रीति प्यारी सुषुम् सहज यारी ॥ ११ ॥
ब्रह्म मेव पाया अटल मट्ठ छाया।
हुआ जीव जोगी लिया रस्स भोगी ॥ १२ ॥
पँखाँ विन्न हंसा उडे सिद्ध अंसा।
विना चँचु मोती चुगे ओत पोती ॥ १३ ॥
विना पेड तरवर विना पात छाया।
विना चंचु सूवे अगम फल्ल खाया ॥ १४ ॥
विना पाज सरवर विना नीर भरिया।
विना मेघ वर्षा अखंड इन्द झरिया ॥ १५ ॥
विना वाग वाड़ी फुल्या वन्न सारा।
विना घाट नदियाँ पिवै ढार भारा ॥ १६ ॥
विना दोष देवा करी जाय सेवा।
विना नींव देवल पुज्या एक देवा ॥ १७ ॥
विना तेल वाती जगै महल दीया।
विना हाथ वाजा अखंड लाग रहिया ॥ १८ ॥
विना नारि पुरुषा मिल्या गेहवासा।
विना भोग सेजाँ बँधी जाय आसा ॥ १९ ॥

14:28

चौपाई ।

सतगुरु मिल्या नामनिज पाया । सत्तशब्दकों निशिदिन ध्याया ॥
हृदय कमल घर लीया वासा । बीज भक्ति मोहि उपजी आसा ॥ १ ॥
नाभिकमल में राम मिलाया । रोम रोम में रंग लगाया ॥
उलटि शब्द पश्चिम दिशि फिरिया । अधःऊर्ध्वं प्रेमरस झरिया ॥ २ ॥
मनवा उलटि अगम घर आया । सब सन्तन का दर्शन पाया ॥
सब सँत मेरे शीश विराजै । सत्त शब्द सन्ताँ मुख छाजै ॥ ३ ॥
सब सन्तन कों राम पियारा । भक्तमाल का करौं उचारा ॥
रामनाम संपति सुखदाई । सब सन्ताँ मिल साख बताई ॥ ४ ॥
रामनाम ध्यावै कुल माँई । सो बांधव है मेरा भाई ॥
रामनाम कों निशिदिन ध्यावै । आवागमन बहुरि नहि आवै ॥ ५ ॥
रामनाम कों निशिदिन ध्यावै । अटल पद अमरापुर पावै ॥
रामनाम कों निशिदिन ध्यावै । दुःख दारिद्र हि दूरि गमावै ॥ ६ ॥
रामनाम से बहुता तिरिया । अनँतकोटि अनेक उधरिया ॥
रामनाम की सुनिये साखा । अजामेल पुत्र जिन राखा ॥ ७ ॥
रामनाम की कहौं बडाई । अहिल्याकों जु विमान चढ़ाई ॥
रामनाम का मता अपारा । झींवर कुटुंब सहेता तारा ॥ ८ ॥
रामनाम गजराज उधारे । सब सन्तन का काज सुधारे ॥
रामनाम से शिला तिराई । पाणी ऊपर पाज बँदाई ॥ ९ ॥
रामनाम केहा गुण गाऊं । जुग जुग भक्ति तुम्हारी पाऊं ॥
रामनाम की महिमा भारी । मो अबला कों तार मुरारी ॥ १० ॥
तीन लोक में राम धियाया । सो सन्त जु मेरे मन भाया ॥
रामदास कों राम पियारा । जो सुमरै सो प्राण हमारा ॥ ११ ॥

साखी ।

हरि की महिमा रामदास, कहिये कहा बनाय ।
अनँतकोटि नर उद्धरे, रामनाम लिव लाय ॥ १ ॥

छंद नीसानी ।

सतगुरु स्वामी धौ निजनामी निज ही नाम धियावन्दा ।
गणेश गरवा कानाँ सरवा ऋधि सिद्धि बुद्धि मिलावन्दा ॥ १ ॥
दश अवतारूं ब्रह्म विचारूं ररंकार मिल जावन्दा ।
पानी पवन रु धरनी अंबर चन्द सूर गुन गावन्दा ॥ २ ॥
नव भी नाथू बारह पंथू परमल परभू ध्यावन्दा ।
छव भी जतियाँ सातों सतियाँ चेत जानि जुग जीवन्दा ॥ ३ ॥

उदय अस्त लग अदल चलावै। विध्य लोक सुरलोकाँ जावै ॥ १० ॥ तोहि०।
सप्तद्वीप लौं आँण सवाई। एक चक्रवर्ती ठकुराई।
एको सुक्ख कहीं नहिं भाया। फिर पाछा गर्भवासा आया ॥ ११ ॥ तोहि०।
कोटिक ब्रह्मा विष्णू ध्यावै। शिव शक्ती सूं ध्यान लगावै।
और देव बहुतेरा सेवै। धूप रूप सो निशि दिन खेवै ॥ १२ ॥ तोहि०।
चवदह भवन काल घर जावै। ब्रह्मा विष्णु महेश डरावै।
काल डरै अणघड सूं भाई। तासूं संताँ सुरति लगाई ॥ १३ ॥ तोहि० ॥

साखी।

ता मूरत पर रामदास, वार वार बलिजाय।
विणज करै ता नामको, जाकूँ काल न खाय ॥ १ ॥

चौपाई।

शून्य शिखरमें हाट मंडाया। विणजण कूं व्योपारी आया।
हरि हीरों की धड़ी लगाई। निजनाम की गूण भराई ॥ १ ॥
पांच पचीस वलधिया लाया। गूण घाल अरु लाद चलाया।
सतगुरु कहै चेला तुम जावो। काया पाटण विणज हलावो ॥ २ ॥
चेला चलकर लारै आया। दिल भीतर बाजार मंडाया।
चित्त चोहटै आण उतारी। फिर फिर जावै सब व्योपारी ॥ ३ ॥
ततकी तराजू दिल की डाँडी। उर भीतर हम हाट जो माँडी।
कड़दा करम परा कर पाखै। तत्त नाम एक हीर जु राखै ॥ ४ ॥
अधः ऊर्ध्व विच रस्त चलाई। जमडाणी अब न्यारा भाई।
विणजकरै विणजारो जागै। जम डाणी का जोर न लागै ॥ ५ ॥
हाट मँडाई चोड़े चोहटै। चोर न मुसै लाट नहिं थांटै।
विणजण कूं जग चलकर आवै। हीरा पारख कोई न पावै ॥ ६ ॥
जौंहरि होय सो पारख पावै। तन मन दे हीरा ले जावै।
हरि हीरा की नाव चलाई। जगभीतरमें धुरा बंधाई ॥ ७ ॥
धुर बोहरे अब मेल घणेरा। विणज करै अरु सुनमें डेरा।
आपहि धुर आपहि है बोरा। आपहि विणजै आपहि हीरा ॥ ८ ॥
हरि हीरा का भऱ्या भँडारा। विणज करै है अगम अपारा।
विणज करै अरु सुनमें आया। सतगुरु सेती शीस निवाया ॥ ९ ॥
शून्य शिखर में गुरू विराजै। रात दिनां नित नोवत बाजै।
सिख सतगुरु एक मिल हुवा। विणज करै अब कबू न जूवा ॥ १० ॥

(२)

प्रथम मुख द्वार हम सार सुमरण किया। आठ ही प्रहर हरि नाम ध्याया।
दूसरे कंठ में प्रेम परकासिया। गला में गदगदी स्वाद आया॥
तीसरे हृदामें जाय वासा किया। मन्नहीमन्न मिल झीण गाया।
वाज मुरली सुणी जोर नीकौं गुणी। संतकूं बहुत इतबार आया॥
चतुर्थे नाभिमें शब्द परकासिया। भँवर गुँजार होय एक वाजा।
छेद पाताल अरु उलट पश्चिम दिसा। देखिया गैबका अगम छाजा॥
उलँघिया मेरु आकाशमें घर किया। सहज वरषा वणी एक धारा।
इला अरु पिंगला सुषम गंगा चलै। पीवता वन्न नखसिक्ख सारा॥
गगन अंबू गजे अनँत बाजा वजे। धिन्न अब धिन्न सँत भागतेरा।
सद्गुरु महरतें दास रामा कहै। जन्म अरु मरण भव मिट्याफेरा॥ २॥

(३)

राम ही आदि अरु अंत मध राम है। राम ही घरे अरु माहिं बारे।
रोम ही रोममें राम ही रम रह्या। राम ही राम मिल मुक्ति द्वारे॥

राम ही जगत अरु भेख षट्दर्शणी। राम ही ग्रह अरु त्याग माहीं।
राम ही जप्प अरु तप्प तीरथ सबै। राम ही राम विन और नाहीं॥
सप्त ही द्वीप नव खंड में राम है। राम ही देश परदेश रमता।
हद्द बेहद्द में एक ही राम है। राम ही रहत परगट्ट गुप्ता॥
राम ही तेज अरु पुंज सो देवता। राम आकार निरकार न्यारा।
राम ही दृष्टि अरु मुष्ट सो राम है। राम ही देख अदेख प्यारा॥
राम ही जल जीवादि अरु पवन है। राम ही चंद अरु सूर तारा।
राम ही केतु अरु राहु साढ़ासती। राम ही राम सो सप्त वारा॥
राम ही मात अरु तात बांधव सबै। राम ही नारि अरु पुरुष होई।
राम ही राम तिहुँ लोक में रम रह्या। राम विन और दूजा न कोई॥
राम ही स्वर्ग पाताल भूलोकमें। राम ही धरणि अरु राम गगना।
रामिया एक ही राम सूं मिल रह्या। राम ही राम कछु नाहिं विघना॥३

(४)

शहर बाजार का खेल आछा मँड्या। आपका आप साथी बुलाया।
हम्म भी सबै के बीचमें खेलते। गुरांपै जाय सत शब्द लाया॥
राम रसना कह्या चाल हिरदै गया। पिंड भारी भया पाँय थके।
दृष्टि कर देखियो मन्न चाले नहीं। जाय अब खेल कुण खाय धके॥
और ही खेलता राम कूँ रटत है। थके सो थके हम पार बैठे।
सुरत सो उलटि सुन सिखर में संचरी। गुरू के घाट में जाय पैठे॥
संत ही बुद्धि सूं सोझ सोझी करै। एक ही पेड सूं ध्यान लावै।
सुरत उलटाय अरु अगम ऊँचा चढ्या। रामिया राम नीसाण वावै॥४

इति।

14:31

चवदै लोक ऊपरै राजा। जिनकै वजै अनाहद वाजा॥
देव दुनी सब दरशण आये। नमन करै बहु शीस निवाये॥ २३॥
च्यार कोंट को हासल आवै। सतगुरु आगै आण चढावै॥
सँत का राज अदल गढ़ माहीं। परजा सुखी सरब सुख पाहीं॥२४॥
चेतन चोकीदार दिराया। नाहर चोर सब पकड़ मँगाया॥
तख्त वैस अरु हुकम हलावै। सिंह बकरी सब संग चरावै॥२५॥
रोमरोममें राम दुहाई। संत करै निर्भय पतसाई॥
सुरत सुंदरी सझ सिणगारा। चाली महल पीव वहु प्यारा॥२६॥
सुखमण सेझ पिया संग खेलै। पलक एक पीव नहिं मेलै॥
पूरण वर पाया अविनासी। पांच पचीसों करत खवासी॥ २७॥
सुरत शब्द शून्य में लोटै। ऋद्धि सिद्धि दोउँ पाँव पलोटै॥
राजपाट पाया पट राणी। वरमिलिया है सारंग पाणी॥ २८॥
जाकै रूप रंग नहिं रेखा। गृह नहिं त्याग नहीं कोइ भेखा॥
ना कोइ पिता मात नहिं जाया। ना ऊ किस की कूखन आया॥२९॥
देखा एक शून्यमें रूँखा। पेड न डाल न लील न सूखा॥
फल नहिं फूल पान नहिं पाती। आपो आपहि अमर अजाती॥३०॥
जीव न जिंद न करम न काया। नाँ कोइ मान मोह नहिं माया॥
धर अंबर नहिं तेज न तारा। मेघ न वरषा इंद्र न यारा॥ ३१॥
पवन न पाणी चंद न सूरा। वाज न वाजै ना कोइ तूरा॥
एको ब्रह्म और नहिं काँई। ररंकार सो सत है साँई॥ ३२॥
ररंकार देवन का देवा। जिनका लहै और नहिं भेवा॥
ररंकार है प्राण अधारा। जाकूं लखै संत जन प्यारा॥ ३३॥
ररंकार सत शब्द हमारा। अनंत कोटि भज उतरे पारा॥
ररंकार गुरुदेव वताया। रामनाम हम निशिदिन ध्याया॥ ३४॥
हरिरामदास है गुरू हमारा। ज्ञान ध्यान बहु अगम अपारा॥
ब्रह्म जिज्ञास ग्रंथ इम भाखूं। उरमें गुरू सीस संत राखूं॥ ३५॥
रामदास सतगुरु का चेरा। सतहै साहिव सिरपर मेरा॥
रामदास संतनका दासा। जुग जुग राम तुम्हारी आसा॥ ३६॥

साखी।

रामदास की वीनती, सांभलिये गुरदेव।
और कछु माँगूनहीं, जुग जुग तुम्हरी सेव॥ १॥
रामदासकी वीनती, सांभलियै गुरु द्याल।
रामनाम सुमराइयै, मेटो विषय जंजाल॥ २॥

इति।

चौपाई ।

शब्द बाण सतगुरुका भाई । मन कूं बींध लिया छिन माँई ।
मन बीधाँ पाँचूँ बीधाँणाँ । पच्चीसांमें उलट समाणाँ ॥ १ ॥
ज्ञान पाय अज्ञान मिटाये । दुर्मति दुविधा दूरि गमाए ॥
काम क्रोध मारे अहँकारा । राम राम रसना रट प्यारा ॥ २ ॥
शील संतोष सहजमें आया । मान गुमान अमान गमाया ॥
शंका मूल भरम सब भागा । कटिया काम ध्यान उर लागा ॥३॥
शब्द किया घट माहिं पसारा । रोम रोम लगिया ररँकारा ॥
तीनों कोट किया चकचूरा । चोथे जाय मंड्या सँतसूरा ॥ ४ ॥
एकल मल्ल अभंगज जूझै । चवदै कोइ जमपुरी धूजै ॥
रसना हृदय नाभि लिव लागी । रोम रोम चेतन हुइ जागी ॥५॥

सत पयाल छेद छिन माँई । पाताळाँ सुख सीर हलाई ॥
मूल उलट औंघटै आया । गुदा छेद पीठ बँध लाया ॥ ६ ॥
पूरब पलट पछिम दिशि लागा । चढिया शब्द मेरु हुय आगा ॥
मेरु दंड हुय चढ्या अकाशा । सहज किया तिरबेणीवासा ॥७॥
अधःऊर्ध्व बिच खेल मँडाया । बिना पंख इक पँखि उडाया ॥
बंकनाल वहै अमृत धारा । पी पी संत भया मतवारा ॥ ८ ॥
माया मूल उलट घर आए । ररँकारसूं ध्यान लगाए ॥
ररंकारकी अमृत सीरा । पीवैगा कोइ संत सधीरा ॥ ९ ॥
माला एक फिरै तन माँई । आकाशाँ लिव ध्यान लगाई ॥
रोम रोम बिच अणरट लागी । संधि संधि महँ जीव स जागी॥१०॥
नाभि नैण बिच झिलमिलजोती । सुखमण घाट चुगै हंस मोती ॥
सुखमण सीर चहूं दिशि छूटै । रोम रोम अमृत रस फूटै ॥ ११ ॥
धर अंबर बिच अरट चलाया । उलटा नीर अकाशाँ आया ॥
जहँ सुख सागर सहज भराया । रोम रोम सींची सब काया॥१२॥
उलटी गंग अपूठी वाली । फूल्यो बाग बनी हरियाली ॥
धरती माहीं बीज बुहाया । आकाशां फल फूल लगाया ॥ १३ ॥
तीन लोकमें नाल पसारा । बेल किया बहुता विस्तारा ॥
मनसा चाल अगम घर आई । जहँ निज मनवा रहा समाई ॥१४॥
उलटी सुरत मिली आकाशां । जहँ देख्या एको सुख रासा ॥
तेज पुंज जहँ अपरम नूरा । सहस्रकला ले ऊगा सूरा ॥ १५ ॥
चंद विहूणा देख्या चंदा । जहँ पहुंच्या निर्भय हुइ बंदा ॥
अगम महलमें दीपक बाला । तीन लोक में भया उजाला ॥ १६ ॥
दसवें जाय परसिया देवा । जहँ मन सहज करत है सेवा ॥
प्रेमहि पाती फूल चढ़ावै । भावहि भोजन भोग लगावै ॥ १७ ॥
प्रेम पलींतो प्रेम हि लावै । प्रेमहि झालर ताल बजावै ॥
प्रेम आरती प्रेमहि गावै । प्रेमहि शुनमें ध्यान लगावै ॥ १८ ॥
घंट घूघरा घमक वजावै । राग छतीसों मंगल गावै ॥
पांच पचीसों रास मंडाई । पडै नगारै नोबत घाई ॥ १९ ॥
बाजै ढोल ढमढमै ढाई । मेर भूंगला शब्द सुणाई ॥
तार तंदूर जंत्र इक डंका । बाजत बरघू हू हू बंका ॥ २० ॥
सुनकै मांही शंख वजाए । श्रवणां मुरली टेर सुणाए ॥
अंबर गाज करै घनघोरा । कोयल बोलै पपिहा मोरा ॥ २१ ॥
बारहमास बहुत झड़ लाये । नदीनाल सब खाल चलाये ॥
धुनकी ध्वजा नेज फहराया । गढजीता नीसाण घुराया ॥ २२ ॥

पद ११

गुरु मेरे ऐसी कदर बताई। तातें सुरत शब्द घर आई। टेक
रसना नाम नेम करि लीया। निशि दिन प्रीति लगाई।
हिरदै माहिं प्रेम परकास्या। आतम की गम पाई ॥ १ ॥
नामी माहिं नाद परकास्या। सबही बन गूँजाणा।
पछिम दिसा की बाटी खूली। मेरु दंड हुय जाणा ॥ २ ॥
सहजाँ उलट आदि घर आया। तिरबेणीके तीरा।
रामदास सुनसागर माहीं। चुगत हंस जहँ हीरा ॥ ३ ॥

पद १२

धिन जाके साधु समागम होई, जाकै विघ्न न व्यापै कोई। टेक
सब तीरथ सन्तनके चरणाँ, सर्वे देवता लारे।
राम निरंजन राय पधारै, साधू आवत द्वारै ॥ १ ॥
साधू राम एक ही कहिये, जा विच अंतर नाहीं।
दर्शन कियां सबै अघ जावै, भक्ति उदै घट माहीं ॥ २ ॥
साधुसंगति सत है जग माहीं, जे कोई शरणै आवै।
रामदास साधाँ के चरणा, साधू राम मिलावै ॥ ३ ॥

इत्येसकलम्।

अथ श्रीसुंदर साखी।

सुंदर सुमरो नाम कूँ, रात दिवस लिव लाय।
हरिरामदास सतगुरु मिल्या, एक अखंडी ध्याय ॥ १ ॥
रामराम रसणा किया, हिरदै किया प्रकास।
नाभि कमल अस्थानमें, सुंदर श्वास उश्वास ॥ २ ॥

समस्त वाणी श्लोकमेवा ४२८४।

रोम रोममें रम गयो, नाड़ नाड़ निज नाम।
सुंदर सुख मैं पाविया, जहँ अजपा की धाम ॥ ३ ॥
पाँचों उलटा एक घर, पश्चिम दिशि की वाट।
सुंदर सहजाँ साँपड़े, तिरबेणीके घाट ॥ ४ ॥
ॐ नहीं अजपा नहीं, नहि कहण सुनन की बात।
सुंदर मिल्या समाधिमें, कर सतगुरुको साथ ॥ ५ ॥

पद ४

मनरा तीरथ न्हायलै, क्या भटकणसूं काम ।
अठलठ तीरथ सब किया, एक कह्या मुख राम ॥ टेक ।
मन माहीं मथुरा वसै, दिलहि द्वारका जान ।
काया काशी न्हायलै, आठों पहर सिनान ॥ १ ॥
बारै सोलै सहेलड़ी, मिलकर न्हांवण जाय ।
तिरवेणीके घाटमें, नित्य स्नान कराय ॥ २ ॥
पाँचों पाखर पहरके, चढ़े पचीसूं लार ।
नोबत वाजै गैबकी, मारलियो अहँकार ॥ ३ ॥
हद छाँडी वेहद गया, अगम रह्या लिव लाय ।
जीव सीव मेला भया, सुखमें रह्या समाय ॥ ४ ॥
दसवै देवल परसिया, जागी अंदर ज्योति ।
रामदास जहाँ रमरह्या, पाप पुण्य नहिं छोति ॥ ५ ॥

पद ५

चालो मन उणदेस में । जहाँ संतां का वास ।
जहाँ पहुंच्याँ निरभय हुवै । लगै न जमकी त्रास ॥ टेक ।
पूरब दिशिसूं चालिया । कंठ किया परकास ।
उर भीतर वासा लिया । मगन भया निजदास ॥ १ ॥
अधः कमल परकासिया । खुली वंक की वाट ।
वंकनाल हुइ चालिया । वस्या पछिमके घाट ॥ २ ॥
मेरुदंड उलंघिया । ऊर्ध्व कमल परकास ।
चँदसूर मेला भया । गगन किया जाय वास ॥ ३ ॥
पाँच पचीसों एक हुय । मिल्या त्रिकुटी माँय ।
अनहद वाजा घुर रह्या । हंस मिल्या जहँ जाय ॥ ४ ॥
हंस मिल्या परहंसमें । लागी शून्य समाधि ।
रामदास निर्भय भया । मिल्या पूर्व घर आदि ॥ ५ ॥

पद ६

चलो संताँ जहां जाइयै । गुरु गोविंदके पास ।
दर्शनसूं सब दुख मिटै । हिरदै भक्ति प्रकास ॥ टेक
श्रवणाँ सुणिया सतगुरू । मनमें उठ्या हुलास ।
सुणत समय पैंडे चल्या । अति दर्शन की प्यास ॥ १ ॥
दर्शनसूं दुविधा मिटै । नैणा बँध्या सनेह ।
रोम रोम आनँद भया । वूठाँ वूठा मेह ॥ २ ॥

परदक्षिणा दंडोत कर । चरण निवाये शीस ।
किरपा कर गुरु देवजी । नाम किया बकशीस ॥ ३ ॥
मुखसेती सुमरण किया । कंठ जगाया जीव ।
हिरदै हिल मिल होत हैं । नाभि पधारे पीव ॥ ४ ॥
सत पयाल हि छेद कै । उलट पछिम के देश ।
अधःऊर्ध्व परकासिया । अगम किया परवेस ॥ ५ ॥
अगम देशमें रम रह्या । गगन रह्या गरणाय ।
त्रिवेणीके तख्त पर । हंस विराज्या जाय ॥ ६ ॥
गढ चढिया नौबत घुरी । थप्या ब्रह्म का राज ।
तिहुं लोक कायम किया । मिल्या राममहाराज ॥ ७ ॥
दसवें देवल परसिया । अरस परस दीदार ।
सुरत मिली जाय ब्रह्म सूं । ब्रह्म आप निरकार ॥ ८ ॥
तज आकार निरकार मिल । राम निरंजण राय ।
रामदास केवल मिल्या । सुखमें रह्या समाय ॥ ९ ॥

14:32

इति ।

अथ हरिजस लिख्यते ।

राग विलावल ।

पद १

जाग जाग रे जोगिया, क्यों नहिं नगर जगावै ।
आठ प्रहर जागत रहो, सुन शहर वसावै ॥ टेक ।
मुख सेती सुमरण किया, कंठ में चल आया ।
गद गद लहरां सुषम की, सूता जीव जगाया ॥ १ ॥
हिरदै में हरि आविया, चेतन तन सारा ।
बुद्धि कमल परकासिया, जग सेती न्यारा ॥ २ ॥
नाभि कमलमें संत जन, सहजाँ चल आया ।
नाद अनाहद संभल्या, सुख रास मँडाया ॥ ३ ॥

स्वर्ग मृत्यु पाताल में, एको धुन होई
तीन लोक चेतन भया, जाग्या सब कोई ॥ ४ ॥
उलट पयाल आकासमें, चढ उलंघे मेरा ।
इला पिंगला सुषमणा, तिरवेणी डेरा ॥ ५ ॥
त्रिकुटीं सूं आगै गया, सुन माहिं समाया ।
सुख समाधि सहजाँ लगी, निरभै पद पाया ॥ ६ ॥
मन पवनां पहुँचे नहीं, बुधि जाण न पावै ।
रामदास धिन संतजन, ता घर लिव लावै ॥ ७ ॥

पद २

राम सुमर रे प्राणिया । भूले मत भाई ।
सुमरण विन छूटै नहीं । जम द्वारै जाई ॥ टेक
सब दुनियाँ भरमी फिरै । तीरथ अरु वरता ।
जैसा पाणी ओसका । कोइ काज न सरता ॥ १ ॥
तपसी त्यागी मुनीश्वरा । पढिया अरु पंडिता ।
नाम विना खाली रह्या । सिध उडता अरु गडता ॥ २ ॥
क्या आचार विचार है । क्या साधन सेवा ।
सतगुरु विन पावै नहीं । आतम निज देवा ॥ ३ ॥
जगत भेख एको मता । एकै दिस जावै ।
तत्त नाम जाणै नहीं । फिर गोता खावै ॥ ४ ॥
साधु संगति निशि दिन करै । एक राम धियावै ।
रामदास धिन संतजन । निरभै पद पावै ॥ ५ ॥

मधुरे वैन श्वास शर घायल, अन्दर विरहनि तीरा ।
आदि रु अन्त तलब तत सुमिरण, मन वच कर्म सधीरा ॥ ७ ॥
अवके मिलौं परम परमानँद, जीवनप्राण अधारा ।
निर्मल करण महा सुखसागर, विरहनि का भरतारा ॥ ८ ॥
ऊणत एक पिया भव भंजन, रंजन राम सनेही ।
फीका लग्या सर्व रस रसना, प्रेमा भई विदेही ॥ ९ ॥
लघु निद्रा आलस मिट अंगा, पंथी पंथ अवादै ।
धाय वधाइ देऊँ मुझ साँई, हरिवृत साधन साधै ॥ १० ॥
इकदिन प्रगट अजब अति अचरज, कला अनेक सवाई ।
गोला दग्या शब्द गैतूला, श्वास उश्वासा माँई ॥ ११ ॥
ररर रोम थरर थरराटं, नाभिकमल सुलटाणा ।
नगर उछाह नारि तरु सरजल, जन्तर तार वजाणा ॥ १२ ॥
चार हजार नाड़ि घरनाभी, ररर शब्द रमाणा ।
नख शिख विचै एक ध्वनि रमता, मनवा पवन मिलाणा ॥ १३ ॥
लेजु सधीर भया ध्वनि डंका, गगन नाद घरराणा ।
आतम भया साध घर परचा, चरचा राम ठिकाणा ॥ १४ ॥
कै दिन रह्या नाभि घर माहीं, इकदिन करण पयाणा ।
मन अरु पवन मिले लिव प्रेमा सुरति शब्द दरसाणा ॥ १५ ॥
भिन भिन भेद लह्या घर निश्चय, आतम तत्त्व प्रकाशा ।
छेदत इला सप्त पाताळूँ उलटा पलट तमाशा ॥ १६ ॥
परा समीप शब्द गत रेला, रसिया सप्त पताळूं ।
पूरब उलटि पछिम दिशि आया, चढ उरधा वँकनाळूं ॥ १७ ॥
अमृतधार वंक झर झरणा, नाद विन्दु इक होई ।
शब्द वेग पंखाँ विन उडणा, जाणेगा जन कोई ॥ १८ ॥
लंबा माग अचंभा भारी, श्वास वेग ततकाळू ।
प्रकट इकीसूं मणिया छेद्या, सुरति शब्द उजवाळू ॥ १९ ॥
पंगा चढ्या मेरु की घाटी, सय वैराट उँचाया ।
पाँचों प्राण सुई के नाके, सूधे रस्ते लाया ॥ २० ॥
सव ले उड्या गगनके माहीं, अद्भुत प्रगट अनन्दा ।
इन्द्र आदि अष्ट सुर जातक, नमस्कार कह वन्दा ॥ २१ ॥
गूंगा वायक अविरल बोल्या, राग अनेक उचारू ।
गगन घोर वाजा तहँ अनता, कहिये कौन विचारू ॥ २२ ॥
वारै मेघ लगी झड़ वरषा, नीर विना सर भरिया ।
वरषी धरणि गगन हुय सरजल, परम पन्थ जन परिया ॥ २३ ॥

रक्षा बतीसी रामकी, जानत हरि गुरु दास।
रामस्नेही रामदास, आनंद अगम विलास ॥ ३२ ॥

अथ आरती।

१

ऐसी आरती घट ही में कीजै, राम रसायन निशिदिन पीजै। टेर।
घट ही में देवल घट ही में देवा। घट ही में सहज करै मन सेवा ॥ १।
घट ही में पांच पचीसों पंडा। घट ही में जागै जोति अखंडा ॥ २ ॥
घट ही में पाती फूल चढावै। घट ही में आतम देव मनावै ॥ ३ ॥
घट ही में शंख शब्द घन तूरा। घट ही में प्रेम परस निज नूरा ॥ ४ ॥
घट ही में गावै हरिका दासा। घट ही में पावै पद परकासा ॥ ५ ॥
जन हरिराम राम घट माहीं। विन खोज्यां कोइ पावै नाहीं ॥ ६ ॥

२

आरती करौं गुरु हरिराम देवा। ब्रह्म विलास अगम घर मेवा। टेर।
आए संत ब्रह्म व्यापारी। राम नाम विणजै बहु भारी ॥ १ ॥
ज्ञान ध्यान अनुभव अनुरागी। रोम रोम में झालर वागी ॥ २ ॥
इड़ा पिंगला सुषमण भोगी। अटल अमर अनुभव पद जोगी ॥ ३ ॥
शील संतोष साच सत धारी। सता समाधि शून्य से यारी ॥ ४ ॥
आय रामियो शरण तुम्हारी। पल पल ऊपर प्राण अँवारी ॥ ५ ॥

३

ऐसी आरती करूं गुरु देवा। तन मन वचन सहज करि सेवा। टे
प्रगटे इसा परम गुरु स्वामी। आदि अंत होते निज नामी ॥ १ ॥
ज्ञान ध्यान ऐसे गुणधीरा। सहज समाधि सदा सुष सीरा ॥ २
सेवग संत शरण जो आवै। ज्यूं मलियागर भुवंग मिलावै ॥ ३ ॥
सतगुरु करम काटि निरवाला। मलियागर मेटै पँग ज्वाला ॥ ४
वंदन करै हरिदेव सदाई। सतगुरु चरनकमल चितलाई ॥ ५ ॥

४

निज मनभाव आरती सारी। श्रीगुरुरामदास वलिहारी। टेर।
सतगुरु ज्ञान ध्यान की मूरति। सतगुरु समी और नहिं सूरति ॥
ब्रह्मा विष्णु शिव सतगुरु माँई। अनंत कोटि जन परचे साँई ॥ २
दीनदयालु जीवां के तारग । सतगुरु मोक्ष मुक्ति के मारग ॥ ३ ॥
वारंवार करौं परणामा। परम धाम आनंद विश्रामा ॥ ४ ॥
अष्ट विधान आरती षोड़स। द्यालवालके मस्तक मोड़स ॥ ५ ॥

दोहा।

प्रथम रसन में स्वाद ले, द्वितिये कंठ हुलास।
तृतिये हिरदै फुरक तनु, चतुर्थ नाभि प्रकास॥ ९॥
सरण जु चार प्रकार सिध, नाभि थके ममकार।
सुरति पवन मन मेलकर, चले रकार अगार॥ १०॥

चौपाई।

पूरबसे पाताल सिधाया। पछिम घाट हुइ मेरु चढ़ाया॥
आकाशां सुख रह्या लुभाई। सुरति शब्द मिल केलि कराई॥ १॥
मच्छी सात समँद तजि दीया। ब्रह्म वृक्ष चढ़ि सो रस पीया॥
वृक्ष अदृष्ट दृष्टि नहिं आई। मूल न डाल न पात न छाई॥ २॥
मुक्ती फल आगे अछूता। चाख्या तिके अमर अवधूता॥
माया के गुण रहे जु लारे। सुरति शब्द गत दशमें द्वारे॥ ३॥
इड़ा पिंगला सुषुमन मेला। त्रिकुटी सन्त करै नित केला।
ररंकार ध्वनि शून्य समानी। पंच तीन चत सप्त थकानी॥ ४॥
महमाया ज्योती प्रकृत्तं। सुन आतम इच्छा परसंतं॥
भाव प्रभाव निकेवल हूआ। जोगी जन्म मर्ण से जूआ॥ ५॥
मिली बूंद सायर के माहीं। लौन पूतली गत मिलताहीं।
हद बेहद है भेद न रहिया। अबर्ण ताहि वर्ण किमि कहिया॥ ६॥

दोहा।

सद्गुरु अविरल वचन सुनि, उर धरि सो विधि कीन्ह।
घट बिच औघट प्रकट हुइ, त्वं तत्तजि असि चीन्ह॥ ११॥

छन्द पद्धरी।

इक दिवस गुफा मध विराजमान। सुर पठइ अप्सरा छलन जान॥
तिन हाव भाव अति करे आय। नहिं दृष्टि खोल देखी जु ताय॥ १॥
फिर भेंट धरी बहु सिष्ट चीज। नहिं सन्त वस्तु उन हाथ लीज॥
इमि अडिग मत्ति देखे दयाल। कर नमस्कार चाली सकाल॥ २॥
जन भयो ज्ञान केवल प्रकास। पर आप और के जन्म तास॥
सूक्षत सब करकी रेख तेम। गुरु पास उचारे वचन एम॥ ३॥
वहँ वृथा पश्री धुर आय सोइ। यहँ सदावरत करि सुफल होइ॥
श्रीस्वामी उचरें सुनो दास। तुम सूक्षत कैसे सो प्रकास॥ ४॥
श्रीराम भजन अरु कृपा आप। तो काहे कीजै दुख सन्ताप॥
जिन दियो जन्म सो कर सँभाल। कण कीड़ी कुंजर मणहि आल॥ ५॥
विश्वास नाहिं तिन दुख अपार। सुनि वचन दयाल मन समझिधार॥
सो प्रसिद्ध भई केदिवस पाइ। गुर्जरधर पावन करी जाइ॥ ६॥

दोहा।

सम्वत् अठारहसे प्रसिध, वर्ष तैंयास्यो मान।
मिंगसर वदी त्रयोदशी, रामत करी निधान॥ १२॥

कहै कबीर कहुं लिप्त होवै नहीं लहै कोई सत्तगुरु ज्ञान पूरा ॥ १२ ॥
कथत है ज्ञान अरु ध्यान पुनि धरत है चलत विचार करि पंथ माहीं।
सास उसास की गूदड़ी सीवतां सुरति की सुई तहां अनँत जाहीं ॥
रहै निरधार कोइ द्वंद में ना पड़ै मन्न अरु पवन का करत मेला।
कहै कबीर फिर फूट चालै नहीं सहज दरियाव में सहज पेला ॥ १३ ॥
कर्म अरु भर्म संसार सब करत है पीव की परख कोइ संत जानै।
सुरति अरु निरत मन पवन कूं उलटिके गंग अरु यमुनके घाट आनै ॥
पांच कूं नाथि के साथ सोई लिया अधर दरियाव का सुक्ख मानै।
कहै कबीर कोइ संत निर्भय रहै जन्म अरु मरण का भर्म भानै ॥ १४ ॥
चक्र के बीच में कमल अति फूलिया तासका सुक्ख कोइ संत जानै।
कुलफ तब द्वार अरु पवन कूं रोकणा भृकुटी मध्य मन भँवर ठानै ॥
सिंधु की घोर चहुँ और तहाँ देत है अधर दरियाव का सुक्ख मानै ॥
कहै कबीर यूं सुख सिंधु झूल है जन्म अरु मरण का भर्म भानै ॥ १५ ॥
गंग अरु जमुन के घाट कूं खोजले भँवर गुंजार जहाँ जुग्ग भाई।
सरस्वती नीर तहाँ देख निर्मल वहै जासका जल पियाँ पाप जाई ॥
पांच की प्यास तहाँ देख पूरी हुई तीन की ताप तहाँ लगै नाहीं।
कहै कबीर तहाँ अगम का खेल है गैब का चानणा देख माहीं ॥ १६ ॥
बोलरे बोल अब चुप्प कूं है रह्या बोल मन सूवटा ब्रह्म वाणी।
मांच कूं पलट करि तीन कूं जीत ले महल चौथेतणी खबर जाणी ॥
गगन गरजै तहाँ नीर नीझर झरै पाक पीवै कोई संतपूरा।
कहै कबीर मसतान माता रहै विना मृदंग तहां वजत तूरा ॥ १७ ॥
अगम अस्थान गुरु ज्ञान विन ना लहै लहै कोइ संत गुरु ज्ञान पूरा।
द्वादशा पलटि करि षोड़शा प्रगटे गगन गरजै तहाँ वजत तूरा ॥

इला अरु पिंगला सुषुम्णा सोझि करि अधः अरु ऊर्ध्व विच ध्यान लावै।
कहै कबीर सोई संत निरभै रहै कालकी चोट फिर नाहिं खावै ॥ १८ ॥
छक्या अवधूत मस्तान माता रहै ज्ञान वैराग सूं छल्या पूरा।
सास उसास का पेम प्याला पिवै गगन गरजै तहां वजै तूरा ॥
पूठ संसार सूं राम राता रहै जतन जरणा लियां जुगति खेलै।
कहै कबीर यूं पीर सूं सर खरू सहज सुखधाम में प्राण मेलै ॥ १९ ॥
संत की चाल संसार सूं भिन्न है सकल संसार में चहल याजी।
हिंदू मुसलमान दोउं दीन शरहद बने वेद कत्तेब प्रपंच साजी ॥
हिंदू को नेम आचार पूजा घनी व्रत्त एकादशी रहै राजी।
बाकरा मारि मुख मांस भक्षन करै भक्ति नहिं होत या दगाबाजी ॥
सर्व वध जीव अपराध के मूल है कठिन या चूक तुम चेत याजी।
सर्व धर्म ऊपरै कृष्ण गीता कथी कृष्ण का कह्या तू मान याजी ॥
कहा गीता पढ़ी दृष्टि खूल्ही नहीं यों वकिमुवा नर मूढ़ पाजी।
मुहम्मद या करीम कृष्ण कह्याँ क्या फरक वहस कर सुनो कहा वीन बाजी
मुसलमान कलमा पढै तीस रोजा करै बांग निवाज धुन करत गाढ़ी।

14:53

नाम परताप तिहुँ लोक छाना नहीं भौसिंधु के तिरन कूं वन्या भेरा।
संत अनेक तरि पार पैले गये कहै कवीर निज नाम तेरा ॥ १ ॥
वारही वार रटि राम रस पीवणा भटकि मत भर्म में भूलि जाई।
जहाँ जावै तहाँ सूत सुलझै नहीं उलटि उलझै तहाँ जाय भाई ॥
सुलटि अवजूद में पलटि मन पवन कूं परम सुखधाम जहां प्राण लावै।
कहै कवीर वहाँ अजव विश्राम है रोमही रोम रस राम पावै ॥ २ ॥
मन वारही वार ररंकार रसना रटो सार सुखसीर निज नाम नेरा।
पाप का नास अरु ताप लागै नहीं चतुर अस्सी तणा मिटै फेरा ॥
नाम परताप तिहुँ लोक छाना नहीं शेष शिव विरंचि सव साधु गावै।
कहै कवीर गुरु दई है औषधी पीवै सो पार भवसिंधु पावै ॥ ३ ॥
देह गुण त्यागि अरु लागि हरिनामसूं जागिरे जागि अव कहा सोवै।
ज्ञानसमशेर ले मारि मन मीर कूं पांच कूं पकड़ि ज्यूं पीर होवै ॥
गगन का तख्त परि जुगति कर खेलणा रोक नवद्वार ज्यूं कमल फूलै।
कहै कवीर तहाँ काल लागै नहीं सहज दरियाव में प्राण झूलै ॥ ४ ॥
नाम ही ज्ञान अरु ध्यान पर नामही नामही भक्ति वैराग थाई।
नाम ही प्रेम निज नेम सो नाम ही नाम ही जोगकी जुगति भाई ॥
शील अरु साँच संतोष पर नाम ही नाम ही जप्प अरु तप्प कीया।
कहै कवीर यह कृत्य वाकी नहीं रोमही रोम निज नाम पीया ॥ ५ ॥
फेर रे फेर मन पवन कूं घेर रे सुरत की डोर सूं जेर भाई।
अधः अरु ऊर्ध्व के बीच में रोकणा नाम कूं छांडि नहीं अंत जाई ॥
निकट विश्राम निजधाम नेड़ा सही गुरां के ज्ञान तें होय पारा।
कहै कवीर यों नीर मुकलावणा चूहड़ी चाहका करो चारा ॥ ६ ॥
पवन के रोकणे मन्न भी बोलता मन्न के रोकणे तन्न बोलै।
तन्न के रोकणे तेज में खेलिया तेज में खेल के पाट खोलै ॥
देव कृपालु तव होय कृपालुता प्रेम प्रकासका सुक्ख आवै।
दास कवीर तहाँ अलख जपता रहो विना कर तांतियाँ नाद वावै ॥७॥
जोगकी जुक्ति विन मुक्ति होवै नहीं जुक्ति विन कर्मही नाहिं छीजै।
जोगकी जुक्ति विन साधु पद ना लहै जोगकी जुक्ति विन कौन धीजै ॥
सुरति मन पवन कूं फेर उलटा चलो शील अरु सांच संतोष धारो।
कहै कवीर यों राम रसना जपो काम अरु क्रोध मद लोभ मारो ॥ ८ ॥
राम कह राम कह राम कह लीजियो राम विन काम नहिं और कीजै।
सुरति मन पवन कूं फेर उलटा चलो रोम ही रोम रस राम पीजै ॥
आदि ही अंत मध्य एक ही आसरा एक विन दूसरा आन नाँई।
दास कवीर यूं कहत पुकारिके एक तूं एक तूं एक साँई ॥ ९ ॥

दशमें द्वार चढ़्या अवधूता, जरा न झंपे कालू ।
जोगी नमो अजोनी अणभँग, राम शब्द मतवालू ॥ २४ ॥
गंगा तीन मिली तट त्रिकुटी, तीर्थ सबै शिरताजू ।
निर्मल न्हाय मिट्या दुख जन्मा, सरिया सब सिध काजू ॥ २५ ॥
बहुर्न्यों जगत जन्म नहिं धरणा, ऐसा करणा स्नानं ।
अनुभव परा पाठ जन उचरत, आतम अद्भुत ज्ञानं ॥ २६ ॥
परगट शब्द सदा जन केरा, पहुँता साख सदाई ।
आगे अबै होयगा अबही, त्रिकुटी तख्त समाई ॥ २७ ॥
मुद्रा पंच सधे अवधूता, ज्ञान भँडार खुलाणा ।
बिछुर्न्या जहाँ उलटिके आसन, सहजाँ आन मिलाणा ॥ २८ ॥
प्रगट श्रवण रसन चख नासा, गावाँ शब्द लुभाणा ।
देखन रूप भये सब निर्मल, दश दरबान मिलाणा ॥ २९ ॥
किल्लादार चारों चित चोखै, पाँचों पंच हटाणा ।
सहजाँ मिल्या शब्दके धोरै, उन्मनि ध्यान धराणा ॥ ३० ॥
परमानन्द महा सुख पूरण, ध्यान अखंडित धारं ।
झीनमें झीन तारमें तारी, सुषमण सुक्ख अपारं ॥ ३१ ॥
निश्चल चित्त गरक गुण तीनों, त्रिगुणी मायात्यागी ।
बेहद मिल्या तजी हद रचना, परम पुरुष वैरागी ॥ ३२ ॥
वेहद वास विदेही निर्भय, अपना कारज कीया ।
बन्धन तोड़ भया निर्बन्धन, परम तत्त्व सुख लीया ॥ ३३ ॥
सहजाँ सुरति शब्द का मेला, सुन पर तख्त विराजै ।
आसण अधर अनूप अवासा, लेजु अखंडित साजै ॥ ३४ ॥
जोत उद्योत अनेक प्रकाशा, सूर अनेक छिपाणा ।
बारै कला मिली थिर सोलै, शीतल लहर समाणा ॥ ३५ ॥
सूत्र भेद रह्या नहिं कोई, सुरता परख विचारी ।
सुषमण सीप अटलपद मुक्ता, कण कारण गुण जारी ॥ ३६ ॥
सरवर शून्य हंस पर हंसा, ब्रह्म वृक्ष पर थिरता ।
निज कण नाम चुगै नित मुक्ता, कबू काल नहिं खिरता ॥ ३७ ॥
अवर्ण कहा वर्ण में आवै, वृक्ष अनादि अगाधं ।
भक्ति विचार दोय अँक चढ़णा, मुक्ति महाफल आदं ॥ ३८ ॥
मीठा कहों तो वले न कोई, हरिया उन सम वोई ।
दीठा जिके सर्व परिपूरण, सरिया कारज सोई ॥ ३९ ॥
छाया तासु रच्यो ब्रह्मंडा, सचराचर सब जीवं ।
मंडप मंड अमंडी सोई, एक अखंडी सीवं ॥ ४० ॥

पद ११

अवसर आयो यार असीनो ।
आज सुदिन भयो भाग पूरवले पायो परम रसीनो । टेर.
रह सूं राम सदा रंग राती आन भरमना भागी ।
अंतर तार कबहु नहिं तूटे लिव चेतन सूं लागी ॥ १ ॥
अहनिशि ध्यान धरूं आतमको एके तन मन होई ।
ना कुल मात पिता नहिं जायो श्याम हमारे सोई ॥ २ ॥
पांच पचीस मिल्या निज मनसूं भया अचंभा भारी ।
उलटा नाद बिन्दु वरषाना गगन भरै पनिहारी ॥ ३ ॥
इला पिंगला पास सहेली सुखमण सूं घरवासा ।
राम निरंजन रमैं अकेला शून्य महल में वासा ॥ ४ ॥
निरभै राज भयो पतनीको अजर अमर वर कीना ।
जन हरिराम मिले महरम सूं अरस परस लिव लीना ॥ ५ ॥

पद १२

मैं तो राम पिया संग खेलूंगा होरी ।
साधु संगत मिल फागण आयो ज्ञान गुलाल उडोरी । टेर.
पांच सखी मिल खेलन निकसी आज वसंत उदोरी ।
प्रेम नीर पिचकारी दिलसूं छूटत अमिट सजोरी ॥ १ ॥
सूंधो प्रीति चित्तको चंदन केसर महिमा घोरी ।
तन वृंदावन गोप ग्वाल मिल दशमों द्वार खुल्योरी ॥ २ ॥
रास विलास अखूट सदाई वाजत है घन घोरी ।
पिव पत्नी मिल तत रंग भीनी सो शिव जानत गोरी ॥ ३ ॥
इला पिंगला सुषमण ना उन पायो वर घर जोरी ।
ग्यालबाल सतगुरु कृपातें धुन विच ध्यान सझोरी ॥ ४ ॥

पद १३

ऐसे साधुसंगति मिल खेलोरी होरी ।
साधुसंगति अज शंकर चाहै सुर नर नाग सकोरी । टेर.
चोरासी फिर नर तनु पायो पूरव पुण्य मिलोरी ।
छूट गयां पीछे पछितासो क्यू न सफल करलोरी ॥ १ ॥
पर हित संत पुकार कहत हैं यो जग जाल तजोरी ।
कोटि निनाणू राजा रसिया सो सुन साख भरोरी ॥ २ ॥
गुरु गम फाग खेल हुय सनमुख ज्ञान गुलाल गहोरी ।
प्रेम सजल पिचकारी छूटत नख शिख भीज रहोरी ॥ ३ ॥

पद ६

रमै संत जहाँ वसंत फाग । मिले पीव जन वडे भाग । टेर.
प्रथम मुक्ख पीउ शोर गाय । रमत रमत हिरदा में जाय ।
जहाँ मुरली की टेर सुणाय । वंधी प्रीति अब प्रेम अघाय ॥ १ ॥
नाभि कमल में नाद घोर । यक डंके पर लागत टोर ।
रोम रोम में सुख अपार । पीव पधारे नाभि मंझार ॥ २ ॥
वंकनाल पिचकार कीन । पांच पचीसों संग लीन ।
अधः ऊर्ध्व विच मंड्यो ख्याल । पिवजु पधारे महल चाल ॥ ३ ॥
अनहद वाजा घुरै अपार । जहाँ अलख निरंजन अमर मुरार ।
मिले संत ता माहिं जाय । अनत कोट रहे फाग रमाय ॥ ४ ॥
रमत नारद सनकादि शेष । ब्रह्मा विष्णु रु आदि महेश ।
सुखदेव अरु ध्रुव प्रहलाद । सुखसागर जहाँ सुख समाद ॥ ५ ॥
जनक विदेह मिले तहाँ आय । वालमीक पांडुता माय ।
गोरख भरथरी गोपीचंद । सुखसागर मिलकर आनंद ॥ ६ ॥
नामदेव अरु रामानंद । नामा कवीर तिलोकचंद ।
पींपा धना सजन रैदास । रंका वंका सैना रव्वास ॥ ७ ॥
नानग दादू हरीदास । केवल कूवा संतदास ।
जनदरिया अरु महर रंग । किसनदास सुखराम संग ॥ ८ ॥
अनत कोटि रहे फाग रमाय । जन हरिराम मिले तहां आय ।
रामदास जहां चरण निवास । गुरुगोविंद मिल पूरी आस ॥ ९ ॥

पद ७

देखो देखो संतो नर की भूल । सींचत शाखा तजत मूल । टेर.
राम निरंजन देह समान । ताहि छोड़ पूजै पखान ।
जल पीवै पाषाण धोय । सो तो आदि अंत पाषाण होय ॥ १ ॥
आकाश शीस पाताल पाय । सो संपुट में कैसे समाय ।
राम निरंज आवै न जाय । सो दियो तुमारो कैसे खाय ॥ २ ॥
वार वार मैं कहुं पुकार । सो शब्द न माने करत रार ।
कहै कवीर कोइ लहै न खोज । भटक मरे जैसे वनके रोझ ॥ ३ ॥

पद ८

कहां जाइये घर लागो रंग । मेरो चित न चलै मन भयो पंग । टेर.
इक दिन मनमें भयो उमंग । घस चोवा चंदन चरच अंग ।
पूजन लागे ठाँय ठाँय । गुरु ब्रह्म वतायो आप माँय ॥ १ ॥

14:55

काम बलवान सब जीव अंधा किया पड्या मन स्वारथी संग झूलै।
कहै कबीर कोइ संत जन ऊबरै नाम निर्वाण नहि पलक भूलै ॥ २३ ॥
तरक संसार से फरक फारक सदा गरक गुरु ज्ञान में सदा जोगी।
अधः अरु ऊर्ध्व के बीच आसन किया वंक प्याला पिवै रस्स भोगी॥
अधर दरियाव तहाँ जाय डोरी लगी महल बारीक में मोज पाया।
कहै कबीर यूं संत निरभै भया परम सुख धाम जहां प्राण लाया॥२४॥
देव निर्वाण तहाँ बाण लागै नही सकल कालां सिरै काल देवा।
विष्णु शिव शेष अज पार पावै नही चंद अरु सूर दोउं करत सेवा॥
तेज क्षिति पवन जल रहत आज्ञा महीं निगम ह्व कहत नहिं पार आवै।
कहत अग्गाध सब साध सेवै सदा दास कबीर तहाँ शीश न्यावै॥२५॥
सच्चा साँइयाँ एक तूं अवर दूजा नही दृष्टि दीसै जिकी सबै माया।
गुणां के कृत्य परपंच सब विनसही दीसता नही कोइ रहण पाया॥
घट्ट अरु मट्ठ महदादि थिर नाँ रहै रहैगा आदि सोई अंत माँई।
कहै कबीर मैं तासकी बंदगी एक भरपूर सर्वज्ञ साँई॥ २६॥
पाव अरु पलक की आरती कौनसी रैण दिन आरती संत गावै।
घुरत नीसाण जहाँ गैब की झालराँ गैब की घंट का नाद आवै॥
तहाँ नींव विन देहरा नाम निर्वाण है गगनका तख्त पर जुक्ति सारी।
कहै कबीर तहाँ रैणदिन आरती पातियाँ पाँच पूजा उतारी॥ २७॥
साँइयां आप की सेव तो आप ही जान हो आप का भेव कहो कौन पावै।
आपनी आपनी वुद्धि अनुमान है वचन विलास करि लहर लावै॥
हसो मोहि आत है देख वा उक्ति को निगमह्व कहत नहिं पार पावै।
कहै कबीर ह्य सैन गूंगातणी गूंग होवै सोई सैन पावै॥ २८॥
रजा तुम साँइयाँ करो सो होयगी आपकी रजा कहो कौन मेटै।
बूडता जीव तारे तुझे पलक में केई असंख्य जुग नाहिं भेटै॥
उलटका पलट अरु पलटका उलट है आपका खेल कहो कौन पावै।
पलक में भांज करि फेरि रचना करै कहै कबीर मैं रह्या ह्यावै॥ २९॥
खेल अवधूत का महा अद्भुत है द्वुत परपंच का लेस नाहीं।
गुणमयी कृत्य सब कालकी दाढमें शेष शिव विरंचि अरु विष्णु ताहीं॥
रहै निर्धार आधार थिर नां रहै विसर संसार आधार माहीं।
कहै कबीर यह खेल निश्चय किया जन्म अरु मरण का भर्म जाहीं॥३०॥
देख अवधूत का ज्ञान का घेसला कालके जाल कूं दूरि तोडै।
गुणमई कृत्य कूं काटि पायमाल करि पांच पचीस कूं पलटि मोडै॥
राग अरु दोषकी भींत कूं ढाहि करि भरम के कोटकों फेर फोडै।
कहै कबीर यूं प्रेम परकास करि सुरत अरु निरत का तार जोडै॥३१॥

दरिया सुमिरै राम को, आठ पहर आराध ।
रसना में रस ऊपजे, मिसरी जैसा स्वाद ।।१।।

रसना सेती ऊतरा, हिरदे किया बास ।
दरिया बरसा प्रेम की, षट् ऋतु बारह मास ।।२।।

दरिया हिरदे राम से, जो कबहु लागे मन ।
लहरें उठें प्रेम की, ज्यों सावन बरसा घन ।।३।।

जन दरिया हिरदा बिचे, हुआ ज्ञान परकास ।
हौद भरा जहँ प्रेम का, तहँ लेत हिलोरा दास ।।४।।

हिरदे सेती ऊतरै, सुखम प्रेम की लहर ।
नाभि कँवल में संचरै, सहज भरीजै डेहर ।।५।।

नाभि कँवल के भीतरै, भँवर करत गुञ्जार ।
रूप न रेख न वरन है, ऐसा अगम अपार ।।६।।

नाभि परचा उपजै, मिट जाय सभी विवाद ।
किरनै छूटैं प्रेम की, देखै अगम अगाध ।।७।।

नाभि कँवल से ऊतरा, मेरु डण्ड तल आय ।
खिड़की खोली नाद की, मिला ब्रह्म से जाय ।।८।।

दरिया चढ़िया गगन को, मेरु उलध्या डण्ड ।
सुख उपजा साँई मिला, भेंटा ब्रह्म अखण्ड ।।९।।

बंकनाल को सुध गहै, मेरु डण्ड की बाट ।
दरिया चढ़िया गगन को, लांघ्या औघट घाट ।।१०।।

दरिया मेरु उलग कर, पहुँचा त्रिकुटी सध ।
दुख भाजा सुख ऊपजा, मिटा भर्म का धुंध ।।११।।

अनन्त हि चन्दा ऊगिया, सूर्य कोटि परकास ।
बिन बादल बरषा घनी, छह ऋतु बारह मास ।।१२।।

बकनाल की सुध गहै, कोई पहुंचे बिरला सन्त ।
अमो झरै जोति झिल मिलै, नौबत धुरै अनन्त ।।१३।।

दरिया मन परसन भया, बैठा त्रिकुटी छाजै ।
अमी झरै बिगसै कँवल, अनहद धुन गाजै ।।१४।।

दरिया त्रिकुटी सन्ध में, मन ध्यान धरै कर धीर ।
अवस चलत है सुषमना, चलत प्रेम की सीर ।।१५।।

चलै सुरसरी अगम की, हिरदे मन्झ समाय ।
जन दरिया वा सुषमना, रोम रोम हो जाय ।।१६।।

दरिया नाद प्रकासिया, सो छबि कही न जाय ।
धन्य धन्य वे साधवा, वहाँ रहे लौ लाय ।।१७।।

पद २३

होरी खेलन की ऋतु आई।
संतन की सत संगत में हरि रंगन की झरि लाई।
उमग नहिं मनमें समाई। टेर.
इला पिंगला सुषमण सी सजनी रजनी में रमाई।
आतम रूप पिया अलबेला ताहिसे खेल खिलाई।
लली लखि के ललचाई ॥ १ ॥
सुरत निरत की भर पिचकारी सुमति सखी ने चलाई।
प्रानप्रिया प्रभु के उरलागी हरष हिये लपटाई।
सुहागन साची कहाई ॥ २ ॥
अध ऊरध के अंबर में अनुभव की अबीर उडाई।
ज्ञान गुलाल चली चहुं दिशि झुकि प्रेम घटा वरषाई ॥
नेह नदियां उमगाई ॥ ३ ॥
आदि पुरुष अविनाशी के संगमें शून्य की सेज विछाई।
जन भावन तज आवन जावन पावन प्रीति वढाई।
सखी सुख माहिं समाई ॥ ४ ॥

पद २४

होरी खेलन की ऋतु भारी।
नरतनु पाय भजन कर हरि को ओ मोसर दिन चारी।
अरे अब चेत अनारी। टेर.
ज्ञान गुलाल अबीर प्रेम कर प्रीति तणी पिचकारी।
सास उसास राम रंग भरभर सुरति सरीसी नारी।
खेल इन संग रचारी ॥ १ ॥
सुलटो खेल सकल जग खेलै उलटो खेल खिलारी।
सतगुरु सीख धार शिर ऊपर सतसंगति चल जारी।
भरम सब दूर गमारी ॥ २ ॥
ध्रुव प्रह्लाद विभीषण खेलैं मीरां करमा नारी।
जन भावन जगमें इमि खेलैं सो नहि आवत हारी।
सखी सुन लीज्यो हमारी ॥ ३ ॥

पद २५

होरीया रंग खेलन आवो।
इला पिंगला सुषमण नारी ता संग खेल खिलावो।
सुरत पिचकारी चलावो। टेर.
काचो रंग जगत को छाडो साचो रंग लगावो।
बाहिर भूल कबहु मति जावो काया नगर वसावो।
तबै निरभै पद पावो ॥ १ ॥
पांचू उलट बेर घट भीतर अनहद नाद बजावो।
सब बकवाद दूर तज दीजै ज्ञान गीत नित गावो।
पिया के मन तब भावो ॥ २ ॥
तीनूं ताप तीन गुण त्यागो संशय शोक नसावो।
जन भावन हित सूं नित गावो फेर जनम नहिं पावो।
जोति में जोति समावो ॥ ३ ॥

चित चंदन गुरु गाल अरगजो चोवा गुन चुनोरी।
सूंधो सुरत लगाय रैन दिन अनहद नाद सुनोरी ॥ ४ ॥
भक्ति परा जिव पाय परम पद निश्चल होय रहोरी।
जनम मरण फेरा मिट जावै नव तत देह दहोरी ॥ ५ ॥
अनँतकोटि रम पार पहूंता गुरु गोविंदसे जोरी।
सेवगराम सतगुरु संग खेलै औ सरसाज सझोरी ॥ ६ ॥

पद १४

राम रसीले से रंग रच्यो म्हारै आज वसंत को खेल। टेर.
प्रेम नीर पिचकारी दिलसे छूटत चहुं उर झेल ॥ १ ॥
अधः ऊर्ध्वं विच खेल मँड्यो है सुरत शब्द को मेल ॥ २ ॥
धुनविच ध्यान ज्ञान जहाँ अनुभव जनम मरण दुख पेल ॥ ३ ॥
द्यालवाल रस राम रमैयो रामदास गुरु खेल ॥ ४ ॥

पद १५

नितही वसंत नित फाग मंगल होरी खेलो। टेर.
दया धर्म की केसर घोरी प्रेम प्रीति पिचकार।
भाव भक्ति से भर सतगुरु संग जनम सफल नर नार ॥ १ ॥
क्षमा अवीर चित चंदन सुमरण ध्यान धमार।
ज्ञान गुलाल अगर कस्तूरी उमग उमग रंग डार॥ २ ॥
चरणोदक अरु महाप्रसाद अपणे शीस चढाय।
लोक लाज कुल काँण छाँडिदे निरभै निसाण वजाय ॥ ३ ॥
कथा कीर्तन मंगल महोत्सव कर संतन से सीर।
कबहु न काज विगरै नर तेरो सत सत कहत कवीर ॥ ४ ॥

पद १६

खेलन बहुरि न आवूं ऐसा खेलूंगा मैं खेल। टेर.
सुलट खेल बहु जनम वदीता अवके उलटा खेल ॥ १ ॥
रसना कंठ हृदय हुय हिल मिल नाभि कमल रंग रेल॥ २ ॥
पैठ पयाल आकाश उलट चढि वंक नीझरझर झेल॥ ३ ॥
त्रकुटी घाट न्हाय हुय निर्मल जन्म मरण दुख पेल ॥ ४ ॥
फागुन साधु संगति गुरु समरथ सेवगराम मिल्यो मेल ॥ ५

पद १७

श्याम से खेल सखी री नित आनंद मंगल होरी। टेर.
सुषमण होरी खेलण निकसी ज्ञान कुमकुमा घोरी।

पद [६[

पतिव्रता पति मिली है लाग,
जहं गगन मण्डल में परम भाग ।टेक।

जहं जल बिन कंवला बहु अनन्त,
जहं बपु बिन भौंरागोह करन्त ।।१।।

अनहद बानी अगम खेल,
जहं दीपक जलै विन बाती तेल ।।२।।

जहं अनहद शब्द है करत घोर,
विन मुख बोले चात्रिक मोर ।।३।।

बिन रसना गुन उचरत नार,
पांव बिन पातर निरत कार ।।४।।

जहं जल बिन सरवर भरा पूर,
जहं अनन्त जाल बिन चन्द सूर ।।५।।

बारह मास जहं ऋतु बसन्त,
ध्यान धरैं जहँ अनन्त सन्त ।।६।।

त्रिकुटी सुखमन चुवत छीर,
बिन बादल बरषै मुक्ति नीर ।।७।।

अमृत धारा चलै सीर,
कोई पीवै बिरला सन्त धीर ।।८।।

ररंकार धुन अरूप एक,
सुरत गही उनही को टेक ।।९।।

जन दरिया वैराट चूर,
जहं बिरला पहूँचै सन्त सूर ।।१०।।

पद [७]

चल चल वे हंसा राम सिन्ध,
बागड़ में क्या रह्यो बन्ध ।।टेक।।

जहाँ निर्जल धरती बहुत धूर,
जहं साकित बस्ती दूर दूर ।।१।।

रतन अमोलक परख कर, रहा जौहरी थाक ।
दरिया तहँ कीमत नहीं, उनमुन भया अबाक ।।१३।।

इड़ा पिंगल सुषमना, त्रिकुटी सन्धि मन्झार ।
दरिया पूरन ब्रह्म के, यह भी उल्ली वार ।।१४।।

सुरत उलट आठों पहर करत ब्रह्म आराध ।
दरिया तब ही देखिये, लागी सुन्न समाध ।।१५।।

सुरत ब्रह्म का ध्यान धर, जाय ब्रह्म में पर्स ।
जन दरिया जहँ एकसा, दिवस एक सौ बर्स ।।१६।।

ररंकार धुन हौद में, गरक भया कोई दास ।
जन दरिया व्यापै नहीं, नींद भूख और प्यास ।।१७।।

जन दरिया आकास लग, ओंकर का राज ।
महासुन्न तिसके परे, ररकार महाराज ।।१८।।

दरिया सुरति सिरोमनी, मिली ब्रह्मसरोवर जाय ।
जहँ तीनों पहुंचै नहीं, मनसा वाचा काय ।।१९।।

काया अगोचर मन्न अगोचर, सब्द अगोचर सोय ।
जन दरिया लवलीन होय, पहुँचेगा जन कोय ।।२०।।

धरती गगन पवन नहीं पानी, पावक चन्द न सूर ।
रात दिवस की गम नहीं, जहँ ब्रह्म रहा भरपूर ।।२१

ररंकार सतगुरु ब्रह्म, दरिया चेला सुर्त ।
जैसा मिला तैसा भया, ज्यों संचे माँहि भर्त ।।२२।।

दरिया सूरति सर्पनी, चढ़ी ब्रह्म के मांय ।
जाय मिली परब्रह्म से, निरभय रही समांय ।।२३।।

दरिया देखत ब्रह्म को, सुरत भई भयभीत ।
तेज पुञ्ज रवि अगनी बिन, जहँ कोई उष्न न सीत ।।

पाप पुन्न सुख दुख नहीं, जहँ कोई कर्म न काल ।
जन दरिया जह पड़त है, हीरों की टकसाल ।।२५।।

सुरत निरत परचा भया, अरस परस मिल एक ।
जन दरिया बानक बना, मिट गया जन्म अनेक ।२६।

तज विकार आकार तज, निराकार को ध्याय ।
निराकार में पैठकर, निराधार लौ लाय ।।२७।।

सुरत मिली जाय ब्रह्म से, अपनो इष्ट संभाल ।
जन दरिया अनुभव सब्द, जहँ दीखै काल विसाल ।२८।

सुरत मिली जाय ब्रह्म से, मन बुध को दे पूठ ।
जन दरिया जहँ देखिये, कथनी बकनी झूठ ।।२९।।

दरिया जहँ लग गगन है, जहँ लग सुरत निवास ।
इनके आगे सुन्न है, जहँ प्रेम भाव परकास ।।३०।।

दरिया अनहद अगनी का, अनुभव धूवाँ जान ।
दूरा सेती देखिये, परसे होय पिछान ।।३१।।

मान बड़ा अनुभव सब्द, दूर देशान्तर जाय ।
अनहद मेरा साइयाँ, घट में रहा समाय ।।३२।।

दरिया नाद प्रकासिया, पूरी मन की आस ।
घन बरसै गाजै गगन, तेज पुञ्ज परकास ॥१८॥
दरिया नाद प्रकासिया, किया निरन्तर बास ।
पारब्रह्म परसा सही, जहँ दरसन पावै दास ॥१९॥
जन दरिया जाय गगन में, परसा देव अनाद ।
असुध बीसरी सुध भई, मिटिया वाद विवाद ॥२०॥
घुरे नगारा गगन में, बाजे अनहद तूर ।
जन दरिया जहँ थिति रचो, निस दिन बरसै नूर ॥२१॥
जन दरिया जाय गगन में, किया सुधा रस पान ।
गंग बहै जहँ अगम की, जाय किया अस्नान ॥२२॥
अमी झरत विगसत कँवल, उपजत अनुभव ज्ञान ।
जन दरिया उस देस का, भिन भिन करन बखान ॥२३॥
सुरत गगन में बैठकर, पति का ध्यान सँजोय ।
नाड़ि नाड़ि रुँ रुँ बिचे, ररंकार धुन होय ॥२४॥
विन पावक पावक जलै, बिन सूरज परकास ।
चाँद विना जहँ चाँदना, जन दरिया का वास ॥२५॥
नौवत बाजै गगन में, विन बादल घन गाज ।
महल बिरजै परम गुरु, दरिया के महाराज ॥२६॥
कञ्चन का गिरी देखकर, लोभी भया उदास ।
जन दरिया थाके बनिज, पूरी मन की आस ॥२७॥

अकाश दिशा इक हस्ती उलटा, राई मान दरवाजा ।
ता में होय गगन में आया, सुनै निरंतर बाजा ॥३॥
सर्प एक बासक उनि हारे, विष तज अमृत पीवै ।
कृष्ण चरण में लौटे दीन होय,
अमर जुगन जुग जीवै ॥४॥
जह इड़ा पिंगला राग उचारै, चंदन सूर थकाना ।
बहती नदियां थिर होय बैठी,
कलजुग किया पयाना ॥५॥
राधा हरि सतभाभा सुन्दर, मिली कृष्ण गल लागी ।
अरस परस होय खेलन लागी,
जब जाय दुबिधा भागी ॥६॥
आइ प्रतीत और भया भरोसा, भीतर आतम जागी ।
दरिया इकरंग राम नाम भज,
सहज भया बैरागी ॥७॥

पद [१८]

साधो एक अचंभा दीठा ।
कडुवा नीम कहै सब कोई, पीवै जाको मीठा ॥टेक॥
बूंद के माँहि समुंद समाना, राई में परबत डोलै ।
चींटी के माँहि हस्ती बैटा, घट में अघटा बोलै ॥१॥
कूंडा माँहि सूर समाना, चंद्र उलट गया राहू ।
राहू उलट कर केतु समाना, भोम में गगन समाहू ॥२॥

त्रिन के भीतर अगिन समानी, राव रंक बस बोलै ।
उलट कयाल तुला माँहि समाना,
नाज तराजु तोलै ॥३॥
सतगुरु मिलै तो अर्थ बतावै, जीव ब्रह्म का मेला ।
जन 'दरियाव' पद को परसै,

साधो ऐसी खेती करई,
जासे काल अकाल न मरई ।।टेक।।
रसना का हल बैल मन पवना,
बिरह भोम तहं बाई ।
राम नाम का बीज बोया,
मेरे सतगुरु कला सिखाई ।।१।।
ऊगा बीज भया कुछ मोटा, हिरदा में डहडाया ।
किया निनाए भरम भरम सब खोया,
जह प्रेम नीर बरखाया ।। २ ।।
नाभी माहिं भया कुछ दीरघ, पोटा सा दरसाना ।
अर्ध कंवल में सिरा निकासा,
गगन नाद गरजाना ।। ३ ।।
मेरु डंड होय डांडी निकसी, ता ऊपर प्रकाशा ।
बिज बुवाया बिरह भोम में, फल लागा आकाशा ।।४।।
परथम जहां शंख धुन उपजी,
मन की आरत जागी ।

गाजै गगन सुधा रस बरसै,
नौबत बाजन लागी ।।५।।
त्रिकुटी चढ़ा अनत सुख पाया,
मन की ऊनत भागी ।
ऊंचै ज्ञान ध्यान सत बरतै,
जहां सुषमन चूने लागी ।।६।।
चढ़ आकाश सकल जग देखा,
जुगती थो सो जानी ।
सम्पत मिली बिपत सब भागी,
ब्रह्म जोत दरसानी ।।७।।
जम गया दूध ब्रह्म कन निपजा,
सुरत अबेरन हारी ।
हुई रास तब बरतन लागा,
आनंद उपजा भारी ।।८।।
निपजा नाज भवन भर राखा,
ता मध सुरत समाई ।
जन 'दहिया' निर्भय पद परशा,
तहं काल न पहुँचै आई ।।९।।

15:20

पद [१४]

साधो राम अनूपम बानी ।
पूरा मिला तो वह पद पाया,
मिट गई खेंचातानी ।।टेक।।
मूल चांप दृढ आसन बैठा, ध्यान धनी से लाया ।
उलटा नाद कंवल के मारग,
गगना माहिं समाया ।।१।।
गुरु के शब्द की कूंची सेती,
अनंत कोठरी खोली ।
ध्रू लोक पर कलश विराजै,
ररंकार धुन बोली ।।२।।
जहं बसंत अगाध अगम सुख सागर,
देख सुरत बौराई ।
वस्तु धनी पर बरतन ओछा,
उलट अपूठी आई ।।३।।
सुरत शब्द मिल परचा हुआ,
मेरु मध्य का पाया ।
ता में पैस गगन में आया,
वह जाय अलख लखाया ।।४।।
जहं पग बिन पातर, कर बिन बाजा,
बिन मुख गावै नारी ।
विन बादल जहं मेंह बरसै है,
ढुमक ढुमक सुख क्यारी ।।५।।

जन 'दरियाव' प्रेम गुण गाया,
वहं मेरा अरट चलाया ।
मेरु डंड होय नाल चली है,
गगन बाग जहं पाया ।।६।।

पद [१५]

कोई गृह मांड गृह में बैठा,
वैरागी बन बासा।
जन दरिया इक राम भजन बिन,
घट घट में घर बासा ॥६॥

* रेखता *

पद (२६)

सतगुरु से शब्द ले रसना से रटना कर,
हिरदै में आन कर ध्यान लावै।
षट कंवल बेध कर नाभि कंवल छेद कर,
काम को लोप पाताल जावै ॥१॥
जह साई को सीस ले जम के सिर पाव दे,
मेरु मध होय आकाश आवै।
अगम है बाग जहं निगम गुल खिल रहा,
दास 'दरियाव' दीदार पावै ॥२॥

15:23

पद [२६]

साधो अरट बहै घट मांहि ।
जो देखा ताहि को दरसै,
आदि अंत कछु नांहि ।।टेक।।

अरध उरध विच अमृत कूवा,
जल पीवै कोई दासा ।
उलटी माल गगन को चाली,
सहज भरै अकाशा ।।१।।
चेतन बैल चलै नहीं डोलै,
अलख निरंजन माली ।
इच्छा विना दशों दिश पीवै,
सहज होत हरियाली ।।२।।
नेपै हुई तभी मन परचा,
कन की रास वढ़ांई ।
सुरत सुन्दरी संग नहीं छोड़ै,
टारी टरै न जाई ।।३।।
अगम अर्थ कोई विरला जानै,
जिन खोजा तिन पाया ।
जन दरिया कोइ पूरा जोगी,
कांसे नाद समाया ।।४।।

पद [२७]

साधो अलख निरंजन सोई ।
गुरु परताप राम रस निर्मल,
और न दूजा कोई ।।टेक।।

राजा रंक महल में पौढ़ा, रानी तहां सिधारी ।
जन 'दरिया' वा पद को परसे,
ता जन की बलिहारी ॥४॥

पद [२०]

मुरली कौन बजावें हो, गगन मंडल के बीच ॥टेक॥
त्रिकुटी संगम होय कर, गंग जमुन के घाट ।
या मुरली के शब्द से, सहज रचा बेराट ॥१॥
गंग जमुन बिच मुरली बाजै उत्तर दिशा धुन होय ।
उन मुरली की टेर सुनि सुनि,
रहीं गोपिका मोही ॥२॥
जहां अधर डाली हंसा बैठा, चुगत मुक्ता हीर ।
आंनद चकवा केल करत है, मानसरोवर तीर ॥३॥
शब्द धुन मृदंग बाजै, बारह मास बसंत ।
अनहद ध्यान अखंड आतुर, धरत सबही संत ॥४॥
कान्ह गोपी नृत्य करते, चरण बपु हि बिना ।
नैन बिन दरियाव देखै आनंद रूप घना ॥५॥

राग भैरो

पद [२१]

कहा कहूं मेरे पिउ की बात,
जोरे कहूं सोई अंग सुहात ॥टेक॥

आनन्द आरती आतम देवा।
जन दरियाव करे जहाँ सेवा ॥६॥

※——※

तन मन आरती करूँ नित सेवा।
जन दरियाव मिल्या गुरुदेवा ॥टेर॥

सद्गुरु शब्द दिया सुख धारा।
निस दिन रसना राम उच्चारा।
कण्ठ हिरदा बिच भया परकासा।
ब्रह्म मिलन की भई मन आशा।
नाम कंवल बिच शब्द गुंजारा।
रग रग रोम रोम रंरंकारा।
पेस पयांल आकास सिधाया।
चढ्या त्रिकुटी परम सुख पाया।
ईडा पिंगला सुखमण मेला।
चान्द सूरज एकण घर मेला।
शुन्न सिखर जहँ अनहद बाजे।
अनन्त कोटि जहँ सन्त विराजे।
अनघड़ रूप अखण्ड अविनासी।
जन पूरणदास जहाँ के वासी।

※——※

15:28

(७)

करैं यज्ञ अश्वमेघ, नरपति सुर सर्वे जिमावैं ।
तुला दान गज ग्रहण, द्वार कन्या परणावे ॥
कंचन मेरू सुमेरू, दान कर मुक्ति विचारे ।
भोम दान मिष्ठान्न, विधिवत् विघ्न निवारैं ॥
कामधेनु मणि-दान, पुण्य पुनि करैं सदाई ।
चिन्ता मणि कल वृक्ष, दान दीन्हों इधकाई ॥
और धर्म विधियुत करैं, नित उठ यही काम ।
पण सोच विचार कहै, यूं हरको राम बिना बेकाम ॥

(८)

जोगी जुगत विचार, पहर वाघम्बर डोले ।
घर आसन अवधूत, बोल धीमै श्वर बोले ॥
वस्ती वसे न वास, जगत की धरैं न आशा ।
आबू गढ़ गिगनार, करैं जगल में वासा ॥
मूल द्वार दृढ़ चाप, प्राण मस्तक में लावैं ।
ध्रुव मण्डल लग देह, योग अष्टांग कमावैं ॥
धोला केश न संचरैं, सदा केश सिर स्याम ।
पिण सोच विचार कहै, यूं हरखो राम बिना बेकाम ।

(६)

भारी ज्यूं गिर मेर, धरण ज्यूं धीरज ठाणै ।
सागर जिसा समाय, बात वुद्ध, वुद्ध की जाणै ॥

* अथ गोरख छन्द *

गोरखग्यानी ब्रह्म का ध्यानी, अजराप्याला पीवन्ता ।
जुरा न झंपे काल न कंपे, जोगी जुग जुग जीवन्ता ।।
त्रसना खडी मोबत मडी, दरसन परसन देखन्ता ।
मन परचाया त्यागी माया, सत गुरु सबदां दाखन्ता ।।
उलटा आया मेरम पाया, मीर जागया मेमन्ता ।
हसे न बोले डिगे न डोले, पड़ें ना झोले जुगजन्ता ।।
सुखं निवासी सिध सुरासी, अकल उदासी खेलन्ता ।
अजपा जपता सुन्न में तपता, अधर पियाला झेलन्ता ।।
षटचक्कर मांही यही मिलाही निसदिन जांहि जोगन्ता ।
इगलासुँ यारी पिंगला प्यारी, सुखमण नारी भोगन्ता ।।
अनहद गाजै नाथ विराजै, दसवैं छाजे दीपन्ता ।
वार न पारा मांहि न बारा, सब सूंन्यारा सीपन्ता ।।
राजा राणी सेज समाणी, पीया पाणी पर घर का ।
नाथ निसाणी अणभे वाणी, बोल्या बाजी सुन्न सरका ।
ऐसा जोगी रसीया भोगी, ऐगी सबही दीपन्ता ।
पंथ चलाया निरमल काया, छोत न छाया छीपंता ।।
अम्बर बर अगा जाय रूलगा, सब्बद सुजगा जाणन्ता ।
तिहुँलोक नियारा परम पियारा परब्रह्म लग प्राणन्ता ।।
अष्टग कमाया सिध कुहाया, जोग समाया जग ।
निरलेप निराळू लगे न काळू, जोत उजाळू ठेछन्ता ।।

ऐसा बरसे पूरा बरसै, मांई धीम मस लाइन्दा।
उपज सर सुध पिछमदी घाटी,
पंक नाम होय आइन्दा ॥११॥

घूं घूं कर घुम्हारा गम्भर, झूम झुम घोर लगाइन्दा।
पग बिन निरत करे एक पातर,
बिन रसना गुन गायन्दा ॥१२॥

त्रिकुटी छाजे अनहद बाजे, कर बिन ताल बजायन्दा।
पांच पचीसों मिले अखाड़े,
भर भर प्याला पायन्दा ॥१३॥

मन मतवाला भया मिलाला, निज पद मांय समायन्दा।
भंवर गुंमालु बूढ़ा बालू,
इस बिध अलख जलायन्दा ॥१४॥

सुर और चन्दा मिले एक ठांई,
मिलकर अमी पचाइन्दा।
मन गुमालु सुलपा डालु,
आप अनपा प्यायन्दा ॥१५॥

सुन्न शिखर गढ़ काया नगरी,
हुकमा हुकम चलायन्दा।

उलटी नाल ऊंमगे सेजा,
जहां आकाश भरायन्दा ॥१६॥

सुख मण–गंगा खलके सेजा गगन महल गरणाइन्दा।
परा परी अनहद के आगे, रंरकार ठहरायन्दा ॥१७॥

तूं ही राम निरंजन तूं ही, अण अक्षर दिखलायन्दा।
तूं ही मका मदीना तूं ही, मुल्ला बाग सुनायन्दा ॥१८॥

एको एक सकल घट भीतर, एको एक कुर्वाहिन्दा।
दोय कहे सो दो जग जासी,
होय कर भूत विलायन्दा ॥१९॥

करमन आरती राम निवाजे ।
गगन मण्डल में अनहद गाजे ।।टेर।।
प्रथम पूज गुरां का पाया ।
दीन दयाल दया कर आया ।।१।।
रसना भजन हृदय हरि बासा ।
नांभ कंवल निज नाद प्रकासा ।।२।।
मन का पुहुप भाव की पूजा ।
अलख निरंजन और न दूजा ।।३।।

इड़ा पिंगला सुखमरण मेला ।
पांचू पुरुष त्रिकुटी भेला ।।४।।
सुरत निरत में जाय समावे ।
जन 'नानगदास" आरती गावे ।।५।।

✲——✲

ऐसी आरती राम तुम्हारी ।
चरण शरण में सुरति हमारी ।।१।।
ज्ञान ध्यान का बाजा बाजे ।
सुरत अनाहद अम्बर गाजे ।।२।।
धुन बिच शहर सुन्न बाजारा ।
गृह में लाग रह्या झणकारा ।।३।।
चान्द सूरज एकरण घर छाजै ।
त्रिकुटी मांहि ब्रह्म बिराजै ।।४।।
ईडा पिंगला राग उचारै ।
सुखमरण सेजा पीव पधारै ।।५।।
झिलमिल ज्योति ब्रह्म की जागी ।
जुरा-मरण जम का भय भागी ।।६।।
जन हरका गुरु देव बताया ।
देव दिरंजन देह में पाया ।।७।।

✲——✲

'दरिया' मेरु उलंघ कर, पहुंचा त्रिकुटी सन्धि।
दुख भागा सुख ऊपजा,
मिटा भर्म का द्वन्द्व ॥१२॥

अनन्तहि चंदा ऊगीया,
सूरज कोटि प्रकाश।
बिन बादल वर्षा घणी,
छः ऋतु बारह मास ॥१३॥

वङ्क नाल की सुधि गहै,
कोई पहुंचै विरला संत।
अमी झरै नौबत घुरै,
झिल मिल ज्योति अनन्त ॥१४॥

'दरिया' मन प्रसन्न भया,
बैठा त्रिकुटी छाजे।
अमी झरै विगसै कंवल,
अनहद ध्वनि गाजै ॥१५॥

साधन काल

बैठ एकान्त-स्थान, कर आसन दृढ़माढ़ा।
आशा मुरति निहार पलक पट डारे आढ़ा ॥

उनमुति मद्राधार, गुरु मुख सुमिरन साधे।
निशि दिन प्रीति बढ़ाय, गुरु मुख राम अराधे ॥

स्थान परिचय

रसना चौकी चूर पूर कण्ठा प्रकाशा।
हृदय हर्ष अपार नाभि मध्य ज्योति उजासा ॥
कमल पूत के स्थान चूर चाले अब आगे।
शिव सुत धर विश्राम, सिखर के मार्ग लागे ॥
दीन कूट दे पूठ, वाट आगे की हेरा।
भंवर गुफा को भेदि, द्वार दसवे दे डेरा ॥
बरस एक ऋषि मास, दास काया गढ़ जीता।
मिल्या ब्रह्म में जाय, आप मे भया नचीता ॥

महा लक्ष्मी जी अमृत लेकर दरियाव महाराज को दर्शन देने पधारीं और बोलीं-

कहै लक्ष्मी जी आप पिओ अमृत तुम दासा।
अमृत रस अधिकार, ज्ञान केअल पर काशा ॥

राम नाम प्रह्लाद पुकारे, कम्भन ताप तपारन्दा ॥२॥

राम ही बेस वसरा राम ही राम ही कथा सुनाइन्दा ।
राम ही बाहर राम ही भीतर, राम ही मन परचाइन्दा॥ ३॥
राम ही राम रटो मेरे प्राणी, राम रतन धन पाइन्दा ।
राम नाम से मन सुखपाली, रामो राम सिखाइन्दा ॥४॥
परखा गगन बिच भया उजाला, ब्रह्म अगम पर आनन्दा ।
काम क्रोध रिपु भाग सकल भए, भाग सब हि सालन्दा॥५॥

सुख सागर हंसादा आगर, मोती चून चुगाइन्दा ।
काग कुचाली भया मराली,
क्या क्या काम कमायन्दा ॥६॥

कहता सूरा बूझे पूरा, उलटा पवन चड़ायन्दा ।
अष्ठ कमल दल चकर फिरंदा,
लिव लग जोग कमाइन्दा ॥७॥

सुर को फेर पवन को बन्दे, उन मुन ताली लाइन्दा ।
जोगी जाग भाग जत पूरा,
सुखदेव वचन सुनाइन्दा ॥८॥

आसत है नासत भी नाही, सिद्ध आपा विसरायन्दा ।
जोगी जाण जुगत उत करणा,
तन गढ पटा लिखायन्दा ॥९॥

सोहं सासा अजब तमाशा, अमर ज्योत दिखलाइन्दा ।
काला पीला शाह सफेदी,
भूंग भरण दिखलाइन्दा ॥१०॥

18:56

अथ श्री किशनदासजी महाराज कृत गुरु महिमा

विनयः—

नमो राम निर्वाण ब्रह्म, सत गुरु सबही सन्त ।
जन किशनदास कर जोड़ के, वन्दन बहुत करन्त ॥
सतगुरु जन दरियाव सहि मन मान्या मेरे,
शूर-वीर सत वैण कहो कुण पूठा फेरे ।
मिटा भर्म अन्धेर, किया गुरु ज्ञान उजाला,
अरणा अमल भरपूर, सदा सङ्ग शिष्य मतवाला ।
राम नाम नित प्रीति शिष्यगण सुमिरै सारा ।
नैन-वैण हरि हेत, सदा साहब का प्यारा ।
खबरदार हुँशियार पार पुरुषोत्तम पागी,
'दरिया' मेरू उलङ्घ सुरति ब्रह्म चरणा लागी ।

॥ दोहा ॥

निराकार आकार बिच, जहां दरिया का वाश ।
अगम अगोचर गम किया, देख्या किसने दास ॥

चौपाई

शिष्य ! मनको मारेस मेल्हि गुरु चरणा आगे ।
प्रेम प्रीति विश्वास पाइ गुरु चरणा लागे
दयासन्ध गुरुदेव, अनन्य फल दर्शन पाया ।
भरम-कर्म सब पाप, मिटे गुरु दर्शन पाया

18:50

घुरे नगारा गगन में, बाजै अनहद तूर।
जन 'दरिया' जहं थिति रची,
निश-दिन बर्षे नूर ॥२२॥

जन 'दरिया' जाय गगन में,
किया सुधा रस पान।
गंग बहे जहं अगम की,
जाय किया अस्नान[1] ॥२३॥

अमी[2] झरै बिगसत कंवल,
उपजत अनुभव ज्ञान।
जन 'दरिया' उस देश का,
भिन-भिन करत बखान[3] ॥२४॥

सुरत गगन में बैठ कर,
पति का ध्यान संजोय।
नाड़ि-नाड़ि रूं रूं विषै,
'र' रं कार ध्वनि होय ॥२५॥

(१) स्नान (२) अमृत (३) व्याख्या।

'दरिया' त्रिकुटी सन्धि में
(मन) ध्यान धरै कर धीर।
अवश चलत है सुषमना,
चलत प्रेम की सीर ॥२६॥

चलै सुरसरी अगमकी, हृदय माँहि समाय।
जन 'दरिया' या सुषमना,
रोम रोम हो जाय ॥२७॥

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

हृदय सेती ऊजरे, सूक्ष्म प्रेम की लहर।
नाभि कंवल में संचरे, सहज भरीमें डहर ॥६॥
नाभि कंवल के भींवरे, भंवर करत गुंजार।
रूप न रेख न वर्ण है,
ऐसा अगम विचार ॥७॥
नाभी परिचय ऊपजे, मिट जाय सभी विकार।
किरणें छूटैं प्रम की, देखे अगम अगाध ॥८॥
नाभि कंवल से ऊपरा, मेरु दण्ड वल आय।
खिड़की खोली नाद की,
मिला ब्रह्म से जाय ॥९॥
'दरिया' चढ़िया गगन को, मेरु उलंघ्या दण्ड।
सुख उपमा स्वामी मिला,
भेंटा ब्रह्म अखण्ड ॥१०॥
मकड़नाल की सुधि गई, मेरु दण्ड की बाट।
'दरिया' चढ़िया गगन को,
खोल्यो अपपट पाट ॥११॥

श्री नानगदासजी कृत—

॥ श्री राम सद्‌गुरूदेवजी की आरती ॥

चौपाई

करमन आरती राम निवाजे,
गगन मण्डल में धुन अनहद वाजे ॥१॥

प्रथम पूज गुरां का पाया,
दीन दयाल दया कर आया ॥२॥

रसना भजन हृदयहरि वासा,
नाभि कँवल निज नाद प्रकाशा ॥३॥

मनका पुहुप भाव की पूजा,
अलख निरंजन और न दूजा ॥४॥

ईड़ा, पिंगला, सुषमन मेला,
पांचू पुरुष त्रिकुटी भेला ॥५॥

सुरत निरत में आय समावे,
जन 'नानगदास' आरती गावे ॥६॥

॥ इति ॥

॥ आरती ॥

चौपाई

ऐसी आरती राम तुम्हारी,
परख शरख में सुरत हमारी ॥१॥
ज्ञान ध्यान का बाजा बाजे,
सुरत अनाहद अम्बर गाजे ॥२॥
धुन बिच शहर सुख बामारा,
गृह में नाम रहा झनकारा ॥३॥
चन्द सूरज एकण पर छाजे,
त्रिकुटी मांही ब्रह्म बिराजे ॥४॥
ईड़ा पिंगला राम उचारे,
सुसमण सेजा पीव पधारे ॥५॥
झिल मिल ज्योति ब्रह्म की जागी,
तुरा अरख अमरा में भागी ॥६॥

जन 'हरका', गुरुदेव बताया,
देव निरञ्जन देह में बताया ॥७॥

॥ इति ॥

वैसे दूसरा हारा है ॥५॥

पहुँचा सन्त कोई गुरु पूरा,
तीन, लोक से न्यारा है ।
शशी अरु सूर अर्भ बिन ऊगा,
ज्यों कोई तिमर न वारा है ।
गंगा जमुना मिली सरस्वती,
तीनूं बह इकधारा है ।
जहाँ स्नान किया मन मेरा,
मिटगया भेद हमारा है ॥६॥
अमृत गढ़ गगन में धूमि,
वारे लग्या जवारा है ।
दूने दूध महारस माखण,
पीव पीवन हारा है ।
पेड़ बिन पेड़ नींव बिन देवल,
बिन बिन प्राण हमारा है ।

ज्याँ 'सुखराम' कहत है सेवा,
सनमुख सिरजन हारा है ॥ ७॥

॥ इति ॥

ऐसो सतशब्द ओ कहिये, अंग को कारण नांही।
अे तो हंस लेर वहां जासी, पूरण पद के मांही।। ६५।।

सतशब्द का ऐसा पराक्रम है यह आत्मचेतन को पूरण पद में लेकर जावेगा। इसमें कोई संशय नही है। चाहे स्त्री पुरूष या कोई वर्ण आश्रम हो, सबको उस पद की प्राप्ति होती है।

अटके नही बिचे किसी हूं से, ना कोई आडो आवे।
माया ब्रह्म शकल ही धूजे, सब कोई दरशण चावे।। ६६ ।।

सतशब्द आने पर यह बीच में किसी से अटकता नहीं है, नांही कोई इसके आडे आता है। ब्रह्म आत्मा जो इस माया के शरीर में बैठी है अब सतशब्द आने से मन, इन्द्रिया, पाप व कर्म सब ही धुजने लग जाते हैं और यह सभी उस सतशब्द के दर्शन करना चाहते है।

मिणियां छेक मेर कूं बिंदे, अला पिंगला जागे।
दोनु दिशा गिगन कूं घेरियो, ध्यान त्रिगुटी लागे।। ६७।।

शब्द बंकनाल में आकर इक्कीस सुरगो को छेककर मेरूडण्ड लांघता है, यहां से इडा पिंगला की जागृति होकर मेरूडण्ड से सिर पर होकर त्रिकुटी में आना ही गिगन को घेरना है। त्रिकुटी में शब्द का अनुभव होना ही ध्यान लगना है।

सुखमण पोल गिगन की खोलर, सिर ऊपर होय आवे।
त्रिगुटी महल खोल धस मांही, नैन उलट पलटावे।। ६८ ।।

सुखमणा मेरूडण्ड से अला पिंगला के बीच में से सिर उपर होकर आती है, यही गिगन की पोल खोलना है। त्रिकुटी में सुरत के आधार से शब्द का अनुभव होना ही नैन उलट पलटाना है।

सुखसो रीत कहण की सरधा, मुख की हाजत नांही।
जो हंस सुणो जाणसी आ बिद, उलट आद घर जांही ॥ ६९ ॥

त्रिकुटी में ऐसा सुख अनुभव होता है जिसका वर्णन मुंह से नही हो सकता है। जो साधक उलट कर बंकनाल से त्रिकुटी में पहुचेंगे वे ही आद घर के:पद आ:पद की प्राप्ति करेंगे।

कहां लग कहुं जगत यूं दिशे, ज्यूं बालक जुग होई।
मैं जो चढया शिखर पर ऊंचा, ज्युं जुग बास न कोई ॥ ७० ॥

म:फ: है कि संसार में करणियो के साधन है उनसे फलो की प्राप्ति होती है। परमपद की प्राप्ति नही होती, ये सब साधन बच्चो के खेल की तरह है। खण्ड पिण्ड ब्रह्मण्ड को पारकर के:पद आ:पद की प्राप्ति होना ही जगत में बास नही व शिखर पर चढना है।

नैण मांय नीर बह चाल्यो, तरगड मारिया फाटे।
डरपयो मन चख नही बंछे, सुख अनन्त इण घाटे ॥ ७१ ॥

तृगुटी में शब्द आने पर आंखो से पानी बह चलता है, कनफटियां व सिर फटने लगता है, इस तरह अनेक सुख का अनुभव होता है मन भी उसमें लग जाता है नेत्र भी नही खुलते।

और तमाशा माया रूपी, जोत उजाला होई।
जिण कुं करे कहो कुण आरे, नाना विध का सोई ॥ ७२ ॥

म:फ: है कि माया के कई प्रकार के चेन ज्योति व उजाला नजर आते है। किन्तु साधक उस तरफ ध्यान नही देते। सिर्फ शब्द में सुरता रखकर भजन करते है।

19:21

केवल बीज सत ओ मारग, सहज सता घट जागे।
उलटर हंस चढे गढ उपर, ध्यान समादी लागे ।। ९ ।।

सहज में ही सतशब्द ने: अंच्छर की घट में जागृति होना यही केवल का बीज है। यही के:पद आ:पद की प्राप्ति का सच्चा रास्ता है। इस साधन से हंस बंकनाल में होकर गढ याने ब्रह्मण्ड से उपर चढ जाता है व ध्यान समादि लग जाती है।

आ गत सुणे न जाणे जोगी, ज्यां गढ पवन चढाया।
सुरगुण निरगुण कहो क्या जाणे, राज जोग की भाया ।। १० ।।

सतशब्द के साधन को जो श्वांसा को ब्रह्मण्ड में चढा लेते है वे योगी नही जानते। म:फ: है कि इस सतशब्द की साधना को सुरगुण व निरगुण की भक्ति व उपासना करने वाले नही जानते।

ज्ञानी अरथ मांय सो जोवे, ओ अरथा सूं न्यारा।
क्यूं कर मिले पंडित को सायब, सतस्वरूप विचारा ।। ११ ।।

म:फ: है कि ज्ञानी बावन अक्षरो के ज्ञान में खोजते है, यह सतशब्द का ज्ञान बावन अक्षरो के ज्ञान से परे है। पंडितो को सतस्वरूप का ज्ञान कैसे मिल सकता है।

अे तो शकल भरम कर जाणे, निज रूप के तांई।
मुख सुं कहे परमपद सत है, पण पायां समझे नांही ।। १२ ।।

आत्मा के निरंजण निराकार सचिदानन्द पद को सच्चा कहते है। परन्तु सत शब्द का ज्ञान इन्हें मिल भी जाय तो भी उसको न समझकर भरम जानते है।

इण की मति भाग ही अैसो, काहा अे करे विचारा।
दरशण भेष मान नही सके, ओ केवल भेद हमारा ।। १३ ।।

म:फ: है कि इनका भाग्य व बुद्धि ही ऐसी है इसका ये क्या कर सकते है। छ: दरशणी व भेषधारी सतशब्द के ज्ञान को नही मानते।

अे तो शकल फांस में बंधिया, ज्ञानी पिंडत सारा।
एक ब्रह्म जहां तत पिछाणयो, तां कोई वार न पारा ।। १४ ।।

अे तो ज्ञानी व पिंडत करणियो के ज्ञान में लगे हुये है, जिस ब्रह्म के तत को इन्होने पहचाना है वो ब्रह्म एक में अनेक, अनेक में एक है उसका कोई वार पार नही है।

अे तो शकल शिष्ट का ज्ञानी, होणकाल लग जाणे।
होणी सोई होवसी आगे, ओ ब्रह्म ज्ञान बखाणे ।। १५ ।।

ये तो संसार के ज्ञानी होणकाल याने करता पद तक जानते है, सृष्टि कर्ता पद से हुई है। आगे भी उसी से होगी, इसे ब्रह्म ज्ञान बखाण करते है।

जैसो सुनो सानिया जुग में, अैसा सब तत ज्ञानी।
करणी करे रात दिन काठी, से करसा सम जानी ।। १६ ।।

म:फ: है कि सुनो जैसे संसार में बेसमझ लोग है वे माया को ही ब्रह्म बताते है। वैसे ही यह विचारो द्वारा ब्रह्म ज्ञान कराने वाले है। रात दिन करणियां करके फलो की इच्छा करते है वो किसान के समान है।

कथा व्यास ज्ञानी जे जुग में, अे बाणी वेद सुणावे।
अे चारण सब भाट कहिजे, आनन्द पद नही पावे ।। १७ ।।

पुराणो की कथा करने वाले अवतारो की महिमा करते है। बाणी द्वारा वेदो का ज्ञान करने वाले ज्ञानी ब्रह्म का बखाण करते है। चारण भाट की तरह महिमा करते है। ये के:पद आ:पद को नही पाते।

करसो सुनो सानिया चारण, ऊधम करे सब लोई।

अब भरे नीर जाई, सातुं सुर मांही। ऐसी अेक देखी,
कहूं नैण पेखी।। जमी भीज बरसे, गिगन जाय दरसे।। ४६।।

शरीर में सब जगह शब्द का अनुभव होना ही सातू सुर में नीर भरना है। ऐसी एक बात मैं अनुभव कर कह रहा हूं कि बाणी से भजन होना जमी भीज बरसना व गिगन में अनुभव होना ही गिगन जाय दरसे है।

ऐसा नीर चले, नदी पूर छले। मुदे तीन जांणी,
चढ़े पहाड़ पानी, तिहूं लोक मांही। बरसे बरस जांही।। ४७।।

सारे शरीर में शब्द का अनुभव होना ही नीर का चलना है, अला पिंगला सुखमणा में भजन होना ही तीन नदियो का पूर चलना है। मेरूडंड पर शब्द का अनुभव होना ही पहाड पर पानी चढना है। खंड पिंड ब्रह्मण्ड में अनुभव होना ही तिहू लोक बरसना है।

थके विणज बोहारा, तिहूं लोक सारा। हली हल छूटे,
गिगन मेघ बूटे। पडयो काल भारी, मुवा पांचो हारी ।। ४८।।

आत्मा का खण्ड पिण्ड ब्रह्मण्ड से सतशब्द के साथ अलग होना ही तिहूं लोक का बिणज बोहार थकना है। बरसात अधिक होने पर हाली का हल छूट जाता है, ऐसे ही शरीर से अलग ब्रह्मण्ड से ऊपर बाणी के भजन से अलग बिना बाणी का भजन का होना ही हली हल छूटना व गिगन मेघ बूंटना है। पांच प्राणों से अलग होकर पूर्ण परमानन्द की प्राप्ति होकर जन्म मरण से रहित होना ही काल का पडना व पंच का हारना है।

भातो लेर आई जीमें कौन भाई, चली मतवारी।
ऊलट सुरत नारी, अबे पीर जाई, पिता घर आई।। ४९।।

आत्मा शरीर के साथ ईन्द्रियो के भोगो का अनुभव करती थी वो अब उनसे अलग हो गई यही भातो लेर आई जीमें कौन भाई है। सूरत का शब्द के साथ बंकनाल में उलटकर ऊपर चढ़ना ही चली मतवारी ऊलट सूरत नारी है। आत्मा को परबह्म के पद की प्राप्ति होना ही पीर जाना व पिता का घर आना है।

जुगे आश थाकी, किया मन साखी। कह सुखरामा।।
मिले हरि श्यामा, आदू घर आया। परमपद पाया ।। ५०।।

मन लगाकर भजन करने से जन्म मरण से रहित होना याने पारब्रह्म पिता का देश छोडकर के: पद आ: पद पति के देश में जाना ही जुगे आश थाकी है। म:फ: है कि इस तरह भजन करने से पूर्ण परमानन्द की प्राप्ति होना ही आदू घर आना व परमपद पाना व श्याम का मिलना है याने परमात्मा की प्राप्ति का होना है।

।। इति श्री साध भेद का अंग सम्पूर्ण।।

हम सारा सब सोजिया, तीरथ धाम मुकाम।
माया अंग सुखराम के, आतम परसण राम ।।६९॥

हमने तीर्थो धामो व स्थानो को देखा, सब माया के है। फलो की प्राप्ति व आत्मा को प्रसन्न करने के साधन है।

मेरा मन माने नही, चंचल हुवा उदास। अे सब उला धाम है, नेहेचल ले सत बास ॥७०॥

म:फ: है कि उन स्थानो पर मेरा मन नही मानता, इसलिये यह चंचल होकर उदास हो रहा है। क्योंकि यह सब उली तरफ के है, आगे जो निश्चल व सतधाम है उसे परसना है।

पूरब का सब छांण के, खोली पिछम पोल। आंतर सुं सुखराम के, घाली सुरपुर रोल ॥७१॥

पूरब के सब स्थानो को पारकर बंकनाल की पोल खोली, आगे देवताओं के लोक में आना ही घाली सुरपुर रोल है।

मन निज मन बैराग रे, सूरत निरत ले नार। चौथी सुण सुखराम के, ब्रहन करे पुकार ॥७२॥

मन निज मन याने आत्मचेतन और बैराग सूरत निरत लिव लगाकर चौथी बिरह के साथ भजन करना ही ब्रहन करे पुकार है।

अे सातुं ले उलटिया, तोडिया अवघट घाट। तब सुजी सुखराम के, पिछम सुर की बाट ॥७३॥

मन निजमन बैराग सुरत निरत लिव विरह इन सातो के साथ भजन किया, तब अवघट घाटो को पार किया, तब जाकर पिछम का रास्ता खुला।

या चोकी गणदेवकी, सुध बुध सुमती बात। सातां संग सुखराम के, अे पण किया साथ ॥७४॥

नीचे गणेश का स्थान है वहां पर निज मन, मन, सूरत लगाकर निरत व लिव विरह और बैराग इन सातो के साथ सुध बुध समता को लिया, ये दस साथ हो गये।

सब का चित मन अेक हुवा, जाग्या भाग भल सूर।
पिछम दिश सुखराम केह, बागा अनहद तूर ॥७५॥

सबको साथ लेकर भजन करना ही भाग्य जागना रूपी सूर्य का उदय होना है। पिछम दिशा याने बंकनाल में शब्द का अनुभव होना ही बागा अनहद तूर है।

थररयो सब सुरलोक बहो, जेजे परबत मांय। कर जोड़े सुखराम के, सनमुख सारा आय ॥७६॥

मेरूडण्ड पहुंचना व शरीर का थरथर्राना ही देवताओं के लोक का धूजना व कर जोड कर केवल ग्यान व सतशब्द के सन्मुख रहना है।

जे परबत धर मांय थो, यामें पुरिया होय। सो सारा सुखराम के, परसण पूजे लोय ॥७७॥

पृथ्वी पर जो सुमेरू पर्वत है वैसे ही शरीर रूपी धरती पर मेरू का स्थान ही पर्वत है। इसमें ही देवताओ की पुरीयां है। सारे संसारी देवताओ को प्रसन्नता से पूजते है।

इत कूं गंगा खल हले, इत जमना बहे पूर। तां बिचे सुखराम के, चाले हरिजन सूर ॥७८॥

मेरूडण्ड से बांयी तरफ इडा याने जमना दांयी तरफ पिंगला याने गंगा है बीच में याने इडा पिंगला सुखमणा के साथ भजन करने वाले आगे बढते है।

बिचे बोहो पुरियां घणी, सुर देवां को लोक। डेहकावे सुखराम के, जांणन देवे मोख ॥७९॥

सुमेरू के बीच देवताओं के लोक व पुरीया है, ये सभी देवता साधक को यहां रोकते है क्योंकि अंग लक्षण सही नही है तो आगे जाने से अटकाते है यहां अनेक प्रकार की ध्वनियां में फंसाकर

निरभै मोख हंस सो पावे, से गुरु कहूं अब तोई ॥ २५५ ॥

म:फ: है कि सिरजण हार परमात्मा अणभै ग्यान की सतगुरु पदवी देकर भेजते है, वो सता स्वरूपी है, ऐसे सतगुरु से ही व उनके ग्यान से निश्चय ही मोक्ष होती है।

और गुरु सब कहे ऊपाया, कर करणी जग मांही।
सतगुरु मेहर सता घट जागे, करणी कुछ भर नांही ॥ २५६ ॥

दूसरे गुरु जगत में करणी व करम का ज्ञान बतलाते हैं और सतगुरु की मेहर याने कृपा से घर में सतशब्द ने:अक्षर की जागृति होती है और उसके लिये कुछ विशेष करना भी नही पडता है, सिर्फ सतगुरु विधि से भजन करना होता है।

राव रंक करमी धरमी, शरणे आया सारा।
सता शकल घट जागे तन में, ऊलटर चढे विचारा ॥ २५७ ॥

चाहे राजा हो, रंक हो, धरमी हो या करमी हो, सतगुरु याने सत ग्यान की शरण में आने पर सबके घट में सतशब्द की जागृति होती है। शब्द के साथ बंकनाल में उलट कर ऊपर चढते है।

सतगुरु दया सोई सब करणी, भजन भाव सब सारा।
साजन जोग तप सो किरया, दरशण हेत बिचारा ॥ २५८ ॥

सत ग्यान गुरुदेव की विधि धारण करना ही सतगुरु की दया है फिर सतशब्द की जागृति होने पर सब साधन करणी भजन भाव जोग तप क्रिया दरशण सब साधन सतगुरु विधि से भजन करने में सब आ जाते है।

हंसे वश नही कछु कांई, जोग रीत बिध होवे।
उलटर पीठ फाड़ चढे जो, दशवों द्वार जाय खोवे ॥ २५९ ॥

म:फ: है कि राज योग के साधन में हंस के वश में कुछ नही है। स्थान स्थानपर सूरत लगाकर भजन करने से ही शब्द आगे बढता है। यही जोग रीत बिध है। शब्द बंकनाल में उलटकर पीठ फाड ऊपर चढकर दशवां द्वार जाकर खोलता है।

करम न धरम न लागे कोई, सब हाजर हुवे आई।
महानीच सुंई नीच करम है, सेई सब ऊधरे भाई ॥ २६० ॥

म:फ: है कि चाहे करमी हो या धरमी, चाहे महानीच से नीच करम करने वाला हो, सत ग्यान को धारण कर सतगुरु विधि से भजन करने से शब्द की जागृति होकर शरीर की सब करणिये होते हुये भी शब्द का अनुभव होता रहता है। यही सब हाजर होना है। सतगुरु विधि से भजन करने वाले सब बुरे कर्म त्याग कर भजन करने से ही उस पद की प्राप्ति होती है।

सतलोक आणंद पद पावे, निरभै वे हंस होई।
महाप्रलय ऊतपत हुवो केती, ऊठे से डिगे न कोई ॥ २६१ ॥

म:फ: है कि सतगुरु विधि से भजन करने से सूरत शब्द में लय होकर सतलोक आ:पद की प्राप्ति होती है व हंस निरभै हो जाता है। कितने ही महाप्रलय हो कितनी ही बार सृष्टि का ऊदभव हो लेकिन सतलोक से हंस नही डिगता है।

सतगुरु सकल शिष्ट का गुरु है, भेद बिना नही जांणे।
ईमरत जडी संजीवण जग में, खिण नर कोई न आंणे ॥ २६२ ॥

शब्द सुख भारी गढ ऊपर, अेक नकल कहूं तोही।
इन्द्री तेज भग संग किया, ओ सुख निश दिन होई ॥ ७३ ॥

शब्द का पारब्रह्म के उपर के:पद में अखण्ड सुख अनुभव होता है। यह सुख रात दिन बराबर रहता है। म:फ: है कि स्पर्श ईन्द्री को भग का साथ होता है। जब तक ही सुख का अनुभव करता है, परन्तु यह सुख अखण्ड रहता है।

रात दिन सूता चल बैठा, नेक जोल नही खावे।
इकरस तेज सदा सुख भारी, मेहमा कहत न आवे ॥ ७४ ॥

रात दिन सोते बैठते चलते बराबर अखण्ड सुख का अनुभव होता है यही नेक जोल नही खाना है। अेक सरीसा तेज सदा भारी सुख आता रहता है, जिसकी महिमा कहने में नही आती है।

त्रृगुटी छाड चले जब आगो, सोई जन के वश नांही।
आपी मते उडे हंस निश दिन, परवश बंधियो जावे ॥ ७५ ॥

त्रृगुटी से आगे जब शब्द चलता है तो साध के वश में नही रहता। कारण त्रृगुटी के नीचे मेरूडण्ड से सुरत लगाकर भजन करना पडता है। जहां तक पिण्ड में स्वांसा चलती है आगे सुरत याने आत्मचेतन शब्द के साथ हो जाती है, यही पराये वश होकर बंधना है, याने रात दिन हंस का आपे मते उडना है।

महामाया और जोत प्रगती, तहां लग चेन अपारा।
कहां लग कहूं गिणत नही आवे, यां सुं शब्द नियारा ॥ ७६ ॥

महामाया जोती व प्रगति के लोक तक कई तरह के चेन मालुम पडते है। उसके लिये कहां तक कहूं। उन चेनो की गिनती नही है। परन्तु शब्द का अनुभव अलग होता रहता है। साधक को उन होने वाले चेनों में ध्यान न देकर निरन्तर भजन करने में ध्यान लगाना चाहिये।

दिन दिन चढे अगम दिश जावे, पाछो नेक न जोवे।
हंस कूं पकड कियो मुख आगे, आत्म पांचु रोवे ॥ ७७ ॥

शब्द निरन्तर आगे से आगे अगम में जाने को बढता रहता है, पीछे जरा सा भी नही देखता। हंस कूं याने आत्मचेतन का शब्द के साथ जाना ही मुख के आगे करना है। आत्मा पांच प्राणो को छोडकर आगे शब्द के साथ जा रही है यही पांच प्राणो का रोना है।

सतशब्द की कथा सुणो या, सुणज्यो ज्ञानी ध्यानी सारा।
दशवो द्वार फोडकर निकसे, नही कोई अटकण हारा ॥ ७८ ॥

म:फ: है कि सब ज्ञानी ध्यानी सतशब्द का प्राक्रम सुणो। शब्द दशवे द्वार को फोडकर बाहर हो जाता है। तो उसे कोई रोकने वाला नही है।

और जोग सब फिर फिर आवे, दशवे द्वार लग जाई।
से हंस शकल आप बल चढ है, ताते अटके भाई ॥ ७९ ॥

म:फ: है कि दूसरे योगो की साधना करने वाले दशवे द्वार तक जाकर फिर फिर कर वापिस आ जाते है। वे साधना करने वाले हंस अपने बल याने स्वांसा को खेच कर ऊपर चढते है इसलिए दशवे द्वार पर जाकर अटक जाते है।

आगे कहो कोण बल जावे, वो तो देश नियारो।

उठत बैठत सांस ऊसांसा, रसना राम रटो निश वासा।
मनवा करे पवन सूं मेला, सुरत शब्द दोनो भये भेला ।। ३।।

म:फ: है कि हे हंस वृति आत्माओ सुनो, राम के नाम को सांस ऊसांस में जिभ्या से रात दिन, उठते-बैठते रटते रहोगे तो मन स्वांसा में लगेगा और सुरत सतशब्द ने: अक्षर का अनुभव करने लगेगी।

चाले बेल पिवे कण्ठ क्यारी, फूल्या कंवल पांखडी चारी।
रसना उलट कंवल में देखी, दीसे दोय मुख तो ऐकी।।४।।

१. कण्ठ कंवल :- शरीर रूपी बेल में रटना चलेगी तो कण्ठ क्यारी रूपी कंवल में चार पखुंडी का कंवल खिलेगा अर्थात चार सूर्य जैसा सतशब्द का आनन्द आयेगा। मुंह तो एक है पर दो दिखाई देते है। यानि मुंह से रटना भी चलेगी और कण्ठ में निजनांव कुदरत कला का अनुभव भी होगा।

हिरदे सुन्न हरिजन वासा, कलियां सूर आठ प्रकाशा।
प्रेम हिलोला आत्मा जागी, नव तत्त देह रटे लिव लागी।।५।।

२. हृदय कंवल :- म:फ: है कि भक्तो के सतशब्द कण्ठ कंवल से हृदय सुन्न में आया तो कलियां यानि आठ सूर्य का प्रकाश हुआ तब आत्मा चेतन होकर प्रेम में मग्न हुई तो नव तत्त लिंग शरीर ही लिव बंध रटना करने लगा।

मध्य सुन्न बिच भलक्या नूरा, सोलह कली दीशे शशि सूरा।
नाभ सुन्न पर संत पधारे, कली बत्तीस तपे रवी सारे ।। ६।।

३. मध्य कंवल :- म:फ: है कि तीसरा कंवल मध्य सुन्न पर ने: अक्षर आया तो सोलह कली यानि सूर्य चन्द्रमा के प्रकाश जैसा आनन्द आया।

४. नाभ कंवल :- चौथा कंवल नाभी सुन्न पर भक्ति करने वाले संत आत्मा शब्द के साथ आई तब बत्तीस कली याने बत्तीस सूर्य तप जैसा ने: अक्षर का आनन्द आया।

कंवल खट पांखडी ब्रह्म स्थान, ज्या में ब्रह्मा माण्ड घडत है।
उभय नाड संग आणी, गुदा सुन्न पर संत जन पूगा।। चौसठ कली सूर शशि ऊगा।।७।।

५. ब्रह्म कंवल : म:फ: है कि पांचवा कंवल ब्रह्म स्थान में ब्रह्माजी मांड घडते है। मूत्र व वीर्य निकलने का ब्रह्म स्थान तो एक है, पर नाडिया दो है।

६. गुदा कंवल : छटा कंवल गणेश स्थान पर संत आत्मा ने: अक्षर के साथ चौसठ कलियां यानि सूर्य चन्द्रमा के जैसा आनन्द लेती है।

पिछम सुन्न घर संतजन झूंझे, फूल्या कंवल इसी विध सूजे।
मुंह सेहशर जिभ्या घणी, सब फण नीचे होय।।८।।

७. शेष कंवल : म:फ: है कि संत आत्मा संखनाल के छ: कंवलों का अनुभव करके बंकनाल में सातवां कंवल पिछम सुन्न घर में खुलता है तो शूरवीर संत ही शेष नाग के कंवल पर पहुंच सकते है। क्योंकि शेषजी हजार मुंह दो हजार जिभ्या के साथ नीची फण किये बैठे है। सांस-सांस में भजन करने वाले गुदा घाट आते है और कुण्डली जाग्रत करते है, पर होती नहीं है। फिर गुदाघाट संखनाल से ही चढते है। बंकनाल में नहीं उलट सकते।

शेष लोक सब देखियो, ररंकार सुखराम कह रटे निशो दिन जोय।
ररंकार की घोर सूं, छिक गया सूरग इक्कीस।।९।।

८. बंकनाल कंवल : म:फ: है कि शेषलोक में शेषजी दो हजार जिभ्या से ब्रह्म के नाम की रात दिन रटणा कर रहे है, इसलिये संत आत्मा ब्रह्म के नाम को सांस ऊसांस में रट कर ररंकार यानि कर्द शब्द ने: अक्षर की ताकत के कारण ही शेषजी ने रास्ता दिया तब इक्कीस स्वर्ग यानि आठवां कंवल बंकनाल का छेदन कर सका।

ताला तोडू भेद सूं, खोलू पोल विचार। इडा पिंगला सुखमण धारा,
तीनू बहे संत की लारा। धूजाया सब शहर कूं, कीयो जेर निराट।
सुखराम ब्रह्म मुजरे चल्या, जहां खुली मेर की बाट।। १०।।

९. मेरूडण्ड कंवल : म:फ: है कि ब्रह्म के नाम का भेद यानि सांस ऊसांस में रटा तब नवां कंवल यानि मेरू पोल को केवल ज्ञान का विचार करके ताले तोडे जब इडा, पिंगला, सुखमणा तीनो धाराये यहां निकल कर संत यानि सतशब्द के साथ बहने लगी तो शरीर रूपी शहर में रोम रोम कांपने लगे, सारी वृतियां शीतल हो गई, फिर मेरूडण्ड की पोल खोल कर सिर ऊपर होकर त्रिगुटी ब्रह्म के देश में आया।

जब त्रिबेणी सुन्न संत बिराजे, इकलख सूर तपे उण छाजे।
तीन लोक का ये सुख त्यागे, तेरह लोक त्रिगुटी आगे।। ११।।

१०. त्रिगुटी कंवल : म:फ: है कि दसवां कंवल पर इडा, पिंगला, सुखमणा एक होकर त्रिवेणी सुन्न में संत आत्मा ने:अक्षर का अनुभव करके एक लाख सूर्य तपे जैसा आनन्द लिया। इतना सुख आने पर भी यहां जन्म मरण साथ है और तेरह लोक त्रिगुटी से आगे पारब्रह्म तक है। इनके सुख को भी मैंने त्याग दिया।

तेरह लोक : ब्रह्मा, विष्णु, महेश, माया, ब्रह्म, प्रगत, ज्योत, अजर, आनन्द, बजर, ईखर, निरंजन ब्रह्म, शिवलोक।

पांख हजार कंवल जहां फूल्या, कली कली रस छूटा।
हंस बैठा सुखराम कह, सुन्न सागर की तीर।। १२।।

११. दसवां द्वार कंवल : म:फ: है कि एक हजार पांख का कंवल खिला हुआ है उसकी कली कली से अमृत रस छूट रहा है। भक्ति करने वाली संत आत्मा ब्रहाण्ड सुन्न की तीर पर बैठी हुई सतशब्द के रस का रसपान कर रही है।

सुन्न सागर आगे बसे, पारब्रह्म को लोक, जहां अनन्त पांख को फूल है।
यूं भंवर गुफा लग हंस के, माया पवन को भेल।
सुखिया छाडे त्रिगुटी, तां दिन रती न भेल।। १३।।

१२. पारब्रह्म कंवल : म:फ: है कि बारवां कंवल ब्रह्माण्ड सुन्न दसवे द्वार के आगे पारब्रह्म का लोक जहां अनन्त पंखुडियो का फूल है इसे भंवर गुफा भी कहते है, वो बारवां कंवल है। यहां तक भी हंस के साथ माया ब्रह्म का भेल है अर्थात् जनम मरण है। इस देश को छोडेगा तब भेल रती भर भी नहीं रहेगा, यहां तक त्रिगुटी का एरिया है।

त्रिवेणी छल ऊबकी, हंसे कियो ऊठाव। धार चली सुखराम के, घी छीणा केह साव ॥ १६ ॥

त्रिगुटी में जोर से भजन करने पर खूब आनन्द आने लगा सो हंसा भी आगे बढने लगा, इस तरह आनन्द की धारा चली, जैसे घी के प्रसाद का स्वाद का वर्णन नही होता, ऐसे ही भजन के आनन्द का वर्णन नही होता।

बरसे तेज अनोप सो, मोपे कहयो न जाय। पूरियां चारूं बीच में, रहयो अटल मट छाय ॥ १७ ॥

शब्द का तेज अनोप है, वाणी से जिसका वर्णन नही होता है। याने त्रिकुटी ज्योति लोक ब्रह्मण्ड पार ब्रह्म इन देवो की पुरिया अटल है और सकल ही प्राणी मात्र के छाई हुई है।

त्रिवेणी चढ सूर बीच, लागो थंब विचार। सुर डांडी सुखराम के, इमरत चुवे सार ॥ १८ ॥

म:फ: है कि गौलोक धाम में सूरवीर ही पहुंचते है। वहां के सुखों को देखकर रूकने का विचार करते है। गौलोक धाम में अमृत का स्वाद लेते है।

माया सुख अपार है, बाहिर या बिद होय। चिगे सुण सुखराम के, न्यारी करके जोय ॥ १९ ॥

माया के सुख आपार है, बाहर इसी का अनुभव होता है। अन्दर में सतशब्द के आनन्द का अनुभव हो रहा है। वह माया के सुखो से अलग है।

डांडी सुण सब घ्रांण की, घी से चुपडी आंण।
सब मुख बरसे तेज सो, सुखिया निस दिन जांण ॥ २० ॥

सभी इन्द्रियों का अपना अपना आहार मिलना ही गृहण करना है, जैसे चेहरे पर घी लगाने से चमक आती है, वैसे ही चमक भक्ति करने वाले जन के मुखार पर निशदिन होती है।

स्वाद आद मीठे घणो, चिकणाई बोहो होय। सुखमणा सुख सुखराम के, ठंडी बरसे लोय ॥ २१ ॥

सुखमणा में भजन का आनन्द आना ही ठंडी लहर आना है याने सातो मुख शीतल रहते है। जीभ पर अमी रहना व कंठो में आनन्द आना ही मीठा साव है व मार्ग बडा चिकना है।

त्रिवेणी तीनूं मिले, ज्यांहा हंसा की बाट। पूरियां दोय सुखराम के, उथले तेज निराट ॥ २२ ॥

त्रिवेणी में ईडा पिंगला सुखमणा मिलती है। वो हंसो का रास्ता है। वहां पर दो पुरिया ब्रह्मण्ड पार ब्रह्म का तेज अनोप है। इस कारण साधक तेज का प्रभाव सहन नही कर सकता।

गंगा जमुना सुरसरी, मिले त्रिवेणी मांय। सुखिया अन्तर फेर है, धारा तीन लखाय ॥ २३ ॥

तीनो नाडियां याने गंगा जमना सरस्वती त्रिवेणी में, मिलती है। म:फ: है कि अन्तर मे फरक है। तीनो धारा अलग अलग मालूम पडती है।

सुखमण आई घोर के, शशी सूरज बीच होय।
हीरा कण सुखराम के, निश दिन बरसे जोय ॥ २४ ॥

सुखमणा नाडी चन्द्रमा और सूर्य के बीच होकर आती है। सुखमणा में शब्द के अनुभव का आनन्द आना ही निश दिन हीरा कण बरसना है।

ऊत सूरज इत चन्द्र है, बीचे आ बिद होय। नाम लिया सुखराम कह, जीव पलटकर जोय ॥ २५ ॥

एक तरफ सूरज एक तरफ चन्द्रमा है बीच में सुखमणा है। भजन करने से जीव भाव से उलटकर आत्मचेतन होकर शब्द ब्रह्म का अनुभव करता है।

हंसो वां थिर हो रहयो, निश दिन निरखे अेह। जल बूंदा सुखराम कह, ईमरत बरसे मेह ॥ २६ ॥

त्रिवेणी में हंस का ध्यान करना ही थिर होना है खूब भजन करने से जिस तरह आनन्द आ रहा

है यही ईमरत बरसा व जल बूंदा गिरना है।

वां तिनो अेको मिले, अन्तर नही लिगार। ओथ पोथ सुखराम के, शशी सूरज के वार ॥ २७ ॥

आगे जाकर तीनो नाडिया एक हो गई उसमें कोई अन्तर नही रहा। म:फ: है कि चन्द्र और सूर्य का सुखमण में मिलना ही ओथ पोथ होना है।

गंगा जमुना सुरसरी, मिले सुलट कर जाय।
पूरियां सुण सुखराम के, अब तिरबेणी मांय ॥ २८ ॥

गंगा जमुना सुरसरी उलटकर एक हो जाती है। फिर सुलट कर याने त्रिकुटी से ब्रह्मण्ड पारब्रह्म की पुरियों का हंस अनुभव करके सुखमणा का आनन्द लेता है।

बतीसुं हलचल भई, पलटाणी अब डोर। सातूं सूर सुखराम के, अे निश दिन बोले मोर ॥ २९ ॥

बतीस याने पांच विषय पच्चीस प्रकृति माया व ब्रह्म इन सब में हलचल मच गई यानि शरीर में इन्होंने रास्ता बदला है। म:फ: है कि सातु सुर भक्ति में सहयोगी हो गये।

एक तमाशो देखियो, हंसा के उणयार। मुख अेता उण पंछी के, ज्यूं तिथि लारे वार ॥ ३० ॥

भक्ति करने वाले साधक के चेहरे पर एक अलग तमाशा देखा कि उसके सातो सुरो से भक्ति हो रही है। जैसे तिथि के सात वार है।

उत्तर दिशा कूं एक है, दूजी दिखन होय। पूरब कूं सुखराम के, पांचू दरशे मोय ॥ ३१ ॥

उत्तर दिशा में एक कान, दक्षिण दिशा में दूसरा कान है। पूरब दिशा में पांच दरसते है। याने दो नाक दो आंख एक मुंह है।

ऐसो उदबुद हंस है, ता गत कही न जाय। दोय मुखा से बास ले, सुखराम तीजो खाय ॥ ३२ ॥

हंसा ऐसा ऊदबुद है जिसकी गति कहने में नही आती है। दो मुख से बास लेता याने नाक से सुगंध लेता व तीसरे मुंह से खाता है।

लिछमी के गोलोक में, बोहो सुख लील विलास।
हम पिया सुखराम के, इमरत सांस ऊसांस ॥ १७० ॥

त्रिकुटी में लक्ष्मी गोलोक में बहुत सुख लीला बिलास है। म:फ: है कि मैंने सांस ऊसांस भजन किया है।

ज्ञान ध्यान मुख शिवरण, राम राम करे पुरी के लोग।
कहूं कह नाचे कमकमे, मून गहे कब सोग ॥ १७१ ॥

त्रिकुटी में शब्द आने पर भजन ज्यादा होता है व देवपुरी में ज्ञान ध्यान करते हुये कई ध्वनियां होने लगती है। यही नाचे कम कमे व मून धारण कर भजन करना है।

पूर्व पिछम छाड़कर गऊ लोक में आय। अब दरसत सुखराम के, घाटा सुं पलटाय ॥ १७२ ॥

पूर्व व पिछम के सब स्थान पर पार कर त्रिकुटी में आना ही गोलोक में आना है। अब अनुभव हो रहा है कि मेरूदण्ड के स्थान से अलग हुवे है यही घाट पलटना है।

मस्तक धूणे लोक सो, मुख मोडे ये जाय। लिछमी बर सुखराम के, अेहे तमाशो मांय ॥ १७३ ॥

त्रिकुटी में शब्द का ध्यान होने पर मस्तक ऊंचा नीचा होता है यही मस्तक धुणना व मुख मोडना है। म:फ: है कि त्रिकुटी में ऐसे चेन दरसते है।

बाजा कहूं नाचे सही, आडी रेल बखाण। मुख चाडे सुखराम के, गाय जूंज सब जांण ॥ १७४ ॥

त्रिकुटी में ऐसी शब्द की ध्वनियां अनुभव होती है कि बाजे बाजना व नाचना व घूमर लगाना व मुख चढाना व गाय कर जूंजना है।

इयां ते सिलता बिछडे, सुरसत जमना गंग। बहां बाज्या सुखराम के, उदबुद बांणी जंग ॥ १७५ ॥

गंगा जमुना सरस्वती ये तीनो नदियां मेरू से चलती है। म:फ: है कि त्रिकुटी में शब्द कई प्रकार से अनुभव होता है। यही उदबुद बांणी जंग है।

ईत गंगा बिच सुरसती, ईत जमना को धाम। तीनूं सुण सुखराम के, चाली परसण राम ॥ १७६ ॥

इधर गंगा याने इडा, उधर जमना याने पिंगला, बीच में सुरसती याने सुषमणा, तीनो रामजी को परसने चली याने प्राप्त करने चली है।

गऊ कुंड से निसरे, दोय दिशा दिश जाय। तिजी सुण सुखराम के, शिर पर चढगी धाय ॥ १७७ ॥

मेरूकुण्ड से दोनो कानो की तरफ निकल कर ईडा पिंगला जाती है। तीसरी सिर ऊपर होकर सुखमणा जाती है।

गुण जेती पुरियां सिरे, गंगा बेहे छे छेक। तिनां शिरे सुखराम के, जमना उदबुद पेक ॥ १७८ ॥

तीन गुण है ऐसे ही तीन पद है चिदानन्द ब्रह्म का त्रिकुटी में, शिव ब्रह्म का जहां हजार पांख का कमल है, पारब्रह्म का पद जहां अनन्त पांख का कमल है। वहां सुखमणा में ध्यान होना ही गंगा का छेक बहना है। इन तीनो पदो के उपर के:पद आ:पद में अखण्ड निराधार ध्यान होना ही जमना ऊदबुद पेक है याने सुखमणा बडी मजबूत है।

ईत ऊत सुं दोनो मिली, जहां ब्रह्म का पांव। पग धोवे नित प्रीत सुं, साजे सुध बुध भाव ॥ १७९ ॥

इधर से उधर से इडा पिंगला मिलती है। जहां ब्रह्म का पांव है सुध बुधका भाव साधना करना व सतशब्द का ध्यान होना ही ब्रह्म का पांव धोना है।

बीचे सुखमण गंग में, उलजी दोय महलाण।

पीछे सुण सुखराम के, ढुली बीच मझ आण ॥ १८० ॥

त्रिकुटी में ईडा पिंगला सुखमणा में मिल जाती है यही उलजी दोय महलाण है। म:फ: है कि सुखमणा में भजन ध्यान होना ही ढुली बीच मझ आंण है।

ज्यां हा बैठा तिनूं शिरे, ब्रह्मा विष्णु महेश। तां ऊपर सुखराम के, झिलमिल जोती बहेस ॥ १८१ ॥

त्रिकुटी में याने तीनो लोको में ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का पद है, इनके ऊपर सतशब्द ज्योति के लोक में जाता है।

जहां तिनुं सिलता मिली, त्रिबेणी के घाट।
जन सुखिया पुरियां बिचे, लछमी बर को पाट ॥ १८२ ॥

त्रिवेणी के घाट में तीनो नदियां गंगा जमना सुरसती मिली है। म:फ: है कि त्रिकुटी में ही बैकुण्ठ का स्थान है, यही लिछमी वर का पाट है।

गंगा जमुना सुरसरी, ढुली कुण्ड में आण। ईण घर ते सुखराम के, बिछडी आदू खांण ॥ १८३ ॥

गंगा, जमुना, सरस्वती मेरूडण्ड से आकर त्रिकुटी में मिली है यही कुण्ड में आकर ढुलना है। बिंद का स्थान भृकुटी में है। चारो खाणो की उत्पति यही से होती है यही बिछडी आदू खांण है।

जिनकी जामें मिल गई, पाछे सत न होय। त्रिवेणी के घाट में, बोहो जल भिरियो जोय ॥ १८४ ॥

इडा पिंगला का सुखमणा में मिलना ही जिनकी जामें मिलना है। अला पिंगला का पीछे अलग नही रहना ही सत न होना है। म:फ: है कि त्रिवेणी में जल भिरियो जोय है।

आठूं पुरियां मगन है, तामें दोय बखाण। ता बिचे सुखराम के, ईमरत बरसे आंण ॥ १८५ ॥

त्रिकुटी में ब्रह्मण्ड तक सुखमणा में ध्यान होना ही आठू देवताओ की पुरिया मगन है व बीच में ईमरत बरसना है।

तेजी निपट निराट है, विशन लोक के मांय। सुख अेतो सुखराम के, मोपे कही न जाय ॥ १८६ ॥

त्रृकुटी में ध्यान होना व आनन्द होना ही तेजी निपट निराट है। म:फ: है कि ऐसा सुख आता है जिसका वर्णन नही होता है।

समाद

ईमरत बरसे कण जडे, बागे राग अनेक। मुख आगे सुखराम के, क्युं नही चाले पेक ॥ १ ॥

हजार पांख का कमल याने ब्रह्माण्ड में शब्द का जरना ही कण जडना है, आनन्द आना ही ईमरत बरसना है, फिर भी शब्द आगे नही बढ रहा है।

त्रिवेणी के घाट में, एक तमाशो और। देवल में सुखराम कह, निश दिन बोले मोर ॥ २ ॥

त्रिकुटी के स्थान में एक तमाशा है कि देवल याने शरीर में रात दिन मोर याने शब्द की ध्वनि हो रही है। त्रिकुटी में शब्द का अनुभव होना ही मोर बोलना है।

देख्या निरत निहार के, अेतो मोर न होय। निज हंसा सुखराम के, आंण बिराज्या जोय ॥ ३ ॥

निरत याने ध्यान लगाकर देखा यह शब्द की ध्वनि हो रही है। मोर नही है। आत्मचेतन को शब्द का अनुभव हो रहा है। यही निज हंसा का आण बिराजना है।

त्रिवेणी के घाट में, हीरा चुणे अमोल। हंसा कूं सुखराम के, जुग जुग बांध्यो तोल ॥ ४ ॥

त्रिगुटी के स्थान पर शब्द का अनुभव होना ही हीरा चुणना है। म:फ: है कि जुगानजुग में हंसो

१. संतमत में ईश्वर की स्थिति

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

प्यारे लोगो!

संतमत में ईश्वर की स्थिति का बहुत दृढ़ता के साथ विश्वास है; परन्तु उस ईश्वर को इन्द्रियों से जानने योग्य नहीं बताया गया है। वह स्वरूपत: अनादि और अनंत है, जैसा कि संत सुन्दरदासजी ने कहा है—

व्योम को व्योम अनंत अखण्डित,
आदि न अन्त सुमध्य कहाँ है।

किसी अनादि और अनंत पदार्थ का होना बुद्धि-संगत प्रतीत होता है। मूल आदि तत्त्व कुछ अवश्य है। वह मूल और आदि तत्त्व परिमित हो, ससीम हो, तो सहज ही यह प्रश्न होगा कि उसके पार में क्या है? ससीम को आदि तत्त्व मानना और असीम को आदि तत्त्व न मानना हास्यास्पद होगा।

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनंता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता।
सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा।
नित्य निरंजन सुख संदोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी।
ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी।।

उपर्युक्त चौपाइयों में मूल आदि तत्त्व का वर्णन गोस्वामी तुलसीदासजी ने किया है। संतों ने उसे ही परमात्मा माना है। गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।
जाति अजाति अजोनी सम्भउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर विटहु कुरबाणु, ना तिसु रूप बरनु नहि रेखिआ।
साचे सबदि नीसाणु।। इत्यादि।

संतों का यह विचार है कि जो सबसे महान है, जो सीमाबद्ध नहीं है, उससे कोई विशेष व्यापक हो, सम्भव नहीं है। जो व्यापक-व्याप्य को भर कर उससे बाहर इतना विशेष है कि जिसका पारावार नहीं है, वही सबसे विशेष व्यापक तथा सबसे सूक्ष्म होगा। यहाँ सूक्ष्म का अर्थ 'छोटा टुकड़ा' नहीं है, बल्कि 'आकाशवत् सूक्ष्म' है। जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, उसको स्थूल या सूक्ष्म इन्द्रियों से जानना असम्भव है।

वह ईश्वर आत्मगम्य है। केवल चेतन-आत्मा से जाना जाता है। शरीर के भीतर आप चेतन-आत्मा हैं और उस आत्मा से जो प्राप्त होता है, उसी को परमात्मा कहते हैं। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; इन पाँचों में से प्रत्येक को ग्रहण करने के लिए जो-जो इन्द्रिय हैं अर्थात् आँख से रूप, जिभ्या से रस, नासिका से गन्ध, त्वचा से स्पर्श और कान से शब्द; इन इन्द्रियों के अतिरिक्त और किसी से ये पाँचो विषय ग्रहण नहीं किए जाते हैं। इसी प्रकार जो चेतन-आत्मा के अतिरिक्त और किसी से नहीं पकड़ा जाय, वही परमात्मा है। जो जितना विशेष व्यापक होता है, वह उतना ही सूक्ष्म होता है। परमात्मा अपनी सर्वव्यापकता के कारण सबसे विशेष सूक्ष्म है। स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का

ग्रहण नहीं हो सकता है। एक बहुत छोटी घड़ी के महीन कील-काँटों को बढ़ई और लोहार की सँड़सी,

से ही प्राप्त हो सकता है, यह (साधक) जिस (आत्मा) का वरण करता है, उस आत्मा से ही

(1 of 1033)
Favorite Share Flag
Maharshi Mehi Satsang Sudha Sagar
Topics #satsangSudhaSagarMaharshiMehi
Collection opensource

देश देश का हंसा आवे, न्यारी बोली बैण सुणावे।
अजरलोक का बायक न्यारा, बिरला लखे शब्द संसारा।। ३३।।

अलग अलग साधना करने वाले हंस आते है। वे अपने साधन की अलग अलग बात कहते है। अजरलोक की प्राप्ति का साधन इन सबसे अलग है। इसे बिरले ही करते है।

दुभास्यो नर जब चल आवे, आप समझ औरां समझावे।
अमरलोक की बैठक ऐसी, हले न चले न डोले नहीं तैसी।। ३४।।

दो भाषा जाणने वाले आप समझते व ओरो को भी समझाते है अेसे तीन लोक का ग्यान भी जाणे और चौथे लोक में मिलने का ग्यान भेद जाने तो माया से हिलते नहीं, इच्छा से चलायमान नहीं होते, मन से डोलते नहीं, ये ही अमरलोक में जाने वाले हंसो की पहचान है।

देही बधे चढे आकाशा, ऊथले नेण सुन्न घर बासा।
त्राटक बंध लगे जब सोई, नाभी पवन झीण सो होई।। ३५।।

ध्यान करते हुये ध्यान ऊपर जाता है उसको देही बढना व आकाश में चढना कहा है। यहां से ध्यान आगे सुन्न में अनुभव होता है उसको ऊथले नेण सुन्न घर बासा कहा है। त्रिकुटी में शब्द आता है वहां त्राटक बंध लगता है, तब स्वांसा से अलग हो जाता है, यही नाभी पवन झीण सो होई है।

रेचक पूरक कुंभक ध्यानी, अजरलोक की या सेनाणी।
बैठा हले चले नहीं कोई, मुख दे चुपक बात नहीं होई ।। ३६।।

जिस साध के रेचक, पूरक, कुंभक ध्यान लगता है तब समझो उसके अजरलोक जाने का मार्ग प्रशस्त हो रहा है, अखण्ड ध्यान होना ही बैठा हले चले नहीं कोई है, और मुंह से आवाज बंद हो जाती है।

रेचकी ध्यान पर मन नासा, पुरकी ध्यान मन चख बीच बासा।
कुंभक भंवर गुफा लग जावे, जहां कोई जुरा काल नहीं आवे।।
अला चन्द्र पिंगला घर सूरा, सुखमण बरसे झिलमिल नूरा।
खट कंवला खट चक्र सोधे, गुरु के ज्ञान मन प्रमोदे।।
द्वादस कमल परे इक बारी, सो लांघे सो सन्त इधकारी।
रसणा जप्यां अजपो आवे, रग रग रोम रोम लिव लावे।।
नौ दरवाजा काल का बासा, दशवे द्वार अमर अेवासा।
महासुन्न में जाय समावे, अदबुद बात केण नहीं आवे।
बस्तु बानगी ले कोई आया, यूं हरजन ने बैण सुणाया।। ३७ ।।

रेचकी ध्यान नाक की अणी पर मन लगाकर किया जाता है, पूरक ध्यान दोनों नेत्रो के बीच लगाना पड़ता है, कुंभक ध्यान भंवर गुफा तक जाता है। अला पिंगला चन्द्र सुर्य जब त्रिकुटी पर शब्द आता है और सुखमण में भजन होता है तो साध का नूर उस सत शब्द से झिलमिल करने लगता है। छह कंवल पूर्व के, छह कंवल पश्चिम के सोधी करता है। और ऐसे ओधाधारी गुरु का अणभै ज्ञान सुनकर मन प्रफुल्लित होता है। बारवें कंवल पर केवल की बारी है जो उसको पार कर लेता है वो संत वृति आत्मा अजरलोक की अधिकारी होती है। मुखार बिन्द से राम का नाम संतों की विधि से जपने पर यह नेः अक्षर ब्रह्म वेराट से आता है तब रोम-रोम से राम नाम होता है। नौ दरवाजे तक तो काल का वासा है और जो आत्मा दसवें दरवाजे से निकलती है उसका अमर अेवास केवल पद में होता है। महासुन्न याने आः पद में लय होता है तो वहां की बात कहने में नहीं आती, क्योंकि वो ऊदबुद बात है। अणभै ज्ञान की बानगी जिससे नेः अक्षर आता है वो लेकर ओधाधारी सतगुरू आते है और आत्मा परमात्मा में कैसे मिले, वो वचन सुनाते है।

ध्यान बंधको चेन दिखावे, बूठा मेहे सुभावल आवे।
बिरखा सुख कहो क्या होई, सीखत ज्ञान सब सुख होई।। ३८।।

ध्यान करने वाले ध्यान का अनुभव बताते है तो सुनने वाले को ऐसा सुख मालुम देता है जैसे बरसात तो हुई नहीं, उसकी ठंडी हवा से सुख होता है। सीख कर ज्ञान करने वालों को उस पद की प्राप्ति होती है। बरसात जहां बरसती है अन्न वहां ही पैदा होता है, सुभावल याने ठंडी हवा से अन्न नहीं पैदा होता है।

अमरलोक सूं मैं चल आवुं, झूंठ सांच को न्याव चुकावुं।
परमभक्त बिन मुक्त न होई, धाम भजन बिन जाय न कोई।। ३९।।

22:04

शरीर में आसक्त रहता, विरक्त हो पाता कोई।
सुख-दुःख का भोग करता, आवागमन चक्र मिटा पाता कोई॥५॥
ईड़ा-पिंगला को सुषुम्ना में लाता, शून्य ध्वजा फहराता कोई।
कमलानन्द बरदीद में जाता, अजर अमर चिन्ह पाता कोई॥६॥

(११७)

जैसे तवा पर बूँद, छन-सा रह जाता।
तैसे मानव शरीर धरती पै, धूल में मिल जाता॥१॥
यह तन तँवूरे-जैसी, जिसकी खूँटी बाहर रहती।
तैसे ही मानव की इन्द्री, विषय रस में बहिर्मुख रहती॥२॥
चेतन धार जब अन्तर्मुख होती, प्रभु का आदि नाद मिलता।
कमलानन्द गुरु से विनती करता, नाद सिवा कुछ नहीं चाहता॥३॥

(११८)

द्वार से हटोगे, धक्का खाओगे, यही गुरु का बाना है।
जाप करो, मानस ध्यान करो, सुषुम्ना में लगे रहना है॥१॥
जो रहता खड़ा द्वारे, एक-न-एक दिन देखा जाता है।
प्रभु की महिमा हो जाती, तो यम का भय मिट जाता है॥२॥
गुरु का संगी नहीं बौरंगी, ऐसा कहते सत्संगी।
गुरु कृपा जब निहार कहते, क्या करेगा यम भंगी॥३॥
हरि रस पीते, मस्त हो जाते, यही बताते संतजन भी।
निराशा छूटती, आशा होती, कथन करते सद्गुरु भी॥४॥
अविनाशी प्रभु सर्वत्र विराजते, सबकी दृष्टि में आते हैं।
कमलानन्द सद्गुरु से जान, परख मगन हो जाते हैं॥५॥

(११९)

दृष्टि सिमटती, बिन्दु मिलता, तारा में चढ़ता कोई।
अंधकार मंडल जब टप जाता, तारकलोक में पहुँचता कोई॥१॥
जब सेवक गुरु-सेवा करता, सेवा-भाव पूर्ण करता कोई।
सेवक जब कर्म में पूर्ण होता, सद्गुरु शब्द पहचानता कोई॥२॥
चंचल इन्द्री थक जाती, तो सत्यासत्य का निर्णय होता।
काम-क्रोध-विष मर जाता, तो निज घर का पहचान आता॥३॥
अंतर में जब जोति जलती, तो गुरु की गवाही होती।
राम का जब दयादान मिलता, तो गुरु भेद पहचान आती॥४॥
गुरुमुख जगते रहते, तो अभिमानी सोते रहते हैं।
गुरुमुख को सत्य पसन्द आता, तो निगुरा असत्य में रहते हैं॥५॥

उन्मुनी होता, सुन्न में सुरत समाता, सार शब्द का होता ध्यान।
कमलानन्द गुरु चरण पकड़ता, हो जाता जीवन-कल्यान॥६॥

(१०९)

कोई आता, कोई जाता, कोई न ठहरता इस जग में॥
कोई जाता प्रयाग बनारस, कोई जाता बद्रिकाश्रम में।
कोई जाता गंगाजल पीने, कोई जाता काशी बसने में॥१॥
मूढ़ जन ही जटा बढ़ाते, समय बिताते गुदरी सीने में।
कोई गले में कंठी बाँधते, कोई लगाते तिलक सिर में॥२॥
राम नाम की बात न बूझे, नाम न लेते हिय में।
नाम चीन्हते गुरु मिल जाते, सोई नाम है कथन में॥३॥
जैसे लोहा पारस में सटते, पारस कर लेते अपने में।
तैसे मन विषयी सटता नाम में, नाम कर लेता अपने में॥४॥
सतगुरु जब सहायक होते, कर लेते अपने शरण में।
सार शब्द जब प्रगट कराते, कर लेते सहज धुन में॥५॥
अमर नाम जीव पकड़ते, गुरु दृढ़ाते सुमिरन में।
कमलानन्द सुरत उलटते, पहुँच जाते आत्म दर्शन में॥६॥

(११०)

गुरु सेवा, गुरु भक्ति करता, सुनता है नाद कोई।
घट बीच जाता, प्रवेश करता, सुषुम्ना में जाता कोई॥१॥
सिंगी बजता, शंख बजता, अबोध मन खेलता कोई।
सुरत चलती, गगन पै चढ़ती, अमृत रस पाता कोई॥२॥
वियोगी होता, दुःखी होता, प्रकाश सुख पाता कोई।
इच्छा करता, द्वादशांगुल में जाता, अमृत बूंद पाता कोई॥३॥
गली में जाता, समझ पाता, देह से निवृत्त होता कोई।
प्रवेश करता, कर्म नष्ट करता, कर्म मंडल पार करता कोई॥४॥
जन्म लेता, बूढ़ा होता, संशय दूर करता कोई।
प्रभु निर्गुण होता, अक्षय होता, प्रभु की जोति पाता कोई॥५॥
सत्संग करता, ध्यान करता, ध्यान जनित सुख पाता कोई।
कमलानन्द गुरु सेवा में रहता, भक्ति करता, ऐसा धन्य होता कोई॥६॥

(१११)

जो अबोध होते, काशी-प्रयाग दौड़ते।
जो बोध होते, काशी-प्रयाग से मुख मोड़ते॥१॥
बाहर भरमन, अबोध का खेल है।
अंतर गमन, बोध का मेल है॥२॥

धन-यौवन की आश न करते, कामिनी से सदा दूर रहते।
जाके हृदय में नाद विराजते, कमलानन्द सतत उनकी सेवा करते॥५॥

(९५)

घट तीन मानो, जो तम प्रकाश वो शब्द होते।
तीनों से जीव आवर्णित रहते, क्लेश-दुःख सहते रहते॥१॥
जीव निःशब्द के वासी, हो जाते शब्द के वासी।
शब्द के ऊपर प्रकाश तम पड़ता, हो जाते तम के वासी॥२॥
तम वासी होते, संसार के आसी।
क्लेश सहते, जो हैं कैलाश के वासी॥३॥
गुरु सेव कर हो जाते, गुरुचरण वासी।
उसको यम न कर सकता, कभी निरासी॥४॥
जो न करता, जगत की आश।
उसको न कोई, कर सकता निराश॥५॥
कमलानन्द को, केवल गुरु की आशा।
सबों से कहते, धर गुरुचरणन विश्वासा॥६॥

(९६)

उद्भव-पोषण वो संहार, सत्त का न कोई तात्त्विक सार।
सृजन-पालन वो विकार, सब होता माया का पसार॥१॥
देव-दनुज वो ब्रह्मा शंकर, फैली सृष्टि का विस्तार।
वेद-विद्या पाठ-पुराण, अनेक प्रकार की रचना असार॥२॥
दान-पुण्य वो तीर्थ-ब्रत सब, नहीं कोई है इसमें सार।
गुरु कथन से अचेत जो रहते, नहीं होता कभी निस्तार॥३॥
पूजा-पूजन, पूज्य-पूजक को, जो कहते हैं हमार।
विविध योनि में घूमते रहता, आवागमन में चक्राकार॥४॥
माया छाड़ि मायापति को भजते, जग में न आता बारम्बार।
कमलानन्द जग जीव से कहते, तब होगा कुशल तोहार॥५॥

(९७)

गगन में जो गमन करता, निशाना वह पाता है।
दाएँ-बायें मध्य में, छिपा प्रकट हो जाता है॥१॥
ईड़ा-पिगला के बीच, सुषुम्ना सेज बिछाता है।
सुरत जब सज-धज जाती, तो सेज उसे मिल जाता है॥२॥
सुरत की डोरी धनुष पर चढ़ती, शरीर कसा जाता है।
शब्द-वाण शरीर में लगता, घाव नहीं बन पाता है॥३॥

अनहद ध्वनि का शंख बजाओ, सार शब्द का मंगल गाओ।
गुरु मेँहीँ कमलानन्द से कहते, परमातम में अर्पित कर जाओ।।६।।

(१५४)

भक्ति का भेद है न्यारा, संत करता इसका प्रचारा।
अपरा भक्ति असार भक्ति है, परा भक्ति है एकहारा।।१।।
प्रकृति तो नारी रूप है, इससे परे है तत्त्व न्यारा।
नारी से ब्रह्म जीव जो होते, पंडित करो विचारा।।२।।
पत्थर फोड़ गंगधार निकलती, सुरत को उसी का सहारा।
सुरत जब सिन्धु में मिलती, जीव ब्रह्म हो जाता पर्वताकारा।।३।।
सुरत जब मुक्तावास करती, मन हो जाता बेसहारा।
अनुभव ज्ञान का गर्भ रह जाता, कथित ज्ञान का नहीं कोई पहारा।।४।।
द्वैत से अद्वैत हो जाता, सुरत को न होता कोई विकारा।
कमलानन्द को गुरु मेँहीँ मिलते, रह न जाता कोई अंधकारा।।५।।

(१५५)

बाहर का घर ऐसा वैसा, भीतर का घर कैसा।
बाहर छोड़ जो अंदर धँसता, वही बताता कैसा।।१।।
घर ही घर में वही चलता, बना लेता ऐसा बाना।
गुरु कृपा से गुरु गुर जानता, गुरु मुख ही ऐसा जाना।।२।।
पाँच मंडल की पाँच ध्वनि, मधुर ध्वनि में गुँजती है।
पाँचों ध्वनि पर एक रहती, जो महाध्वनि टंकोरती है।।३।।
अंतर घर है ऐसा अद्भूत, सब खण्ड ब्रह्मण्ड विराजता है।
सत्य पथ को संत जानता, ध्वनि गर्जन का तार बजता है।।४।।
शून्य महल में लौ लगाओ, सुषुम्ना की खोज करो।
बहिर्मुख से अन्तर्मुख होवो, अमृत रस का पान करो।।५।।
अजपा जपते, अंतर समाते, प्रभु पद पाता कोई।
अंतर चलता, हरि रस पाता, कमलानन्द को जानता सोई।।६।।

(१५६)

भजन करना चाहता, दृष्टि योग करता कोई।
लौ लगाता, आत्मा परमात्मा को एक करता कोई।।१।।
आत्म परमात्म को एक करता, दुविधा न रहता कोई।
जो गुरु-प्रसाद प्राप्त करता, परमात्म मिलाप कर लेता सोई।।२।।
जब विषयों से उदास रहता, चित्त लग जाता उसका।
सत्यता में भजन करता, काल न बिगार सकता उसका।।३।।

कैवल्य अति सूक्ष्म मंडल, जिसमें माया का खेल होता।
संतजन सचेत रहते, माया पाश नहीं कुछ कर पाता॥४॥
जो आता है जाता है, माया का प्रपंच है सही।
जो फँसकर रह जाता, सुख-शान्ति नहीं मिलता कभी॥५॥
माया का खेल अद्‌भूत भारी, धरती आकाश में पसरा रहता।
साहब नहीं वह कर्त्ता होता, धरनी का भार माया धरता॥६॥
उदर विदार नख से करता, हरिनाकश्यप को बध करता।
खंभ फारि प्रकट हो जाता, ऐसा खेल तो माया करता॥७॥
बावन होय बलि को जँचता, परशुराम होय छत्रि मारता।
भक्ति भेद से मिलकर रहता, तब जग यह मिथ्या करता॥८॥
साहब नहीं तो सीता व्याहता, पाषान पूल न बंध कारा।
वह नहीं तो गोकुल में आया, नहीं कंस को मारा॥९॥
साहब न तो सुर का होता, असुर को नहीं है मारा।
ज्ञानहीन जग में भरमता, माया ही जग संसारा॥१०॥
अवतारी पुरुष है ईश्वरी माया, साहब न करता होई।
कमलानन्द गुरु कृपा से बूझत, रहत गुरु शरणाई॥११॥

(१३८)

तन चादर में जीव वेचारा, विलख विलख रोता रहता।
ताना भरनी तार तार में, यह जीव आवद्ध रहता॥१॥
ईड़ा-पिगला सुखमन धार में, जीव सतत् चलते रहता।
ईगला-पिंगला मिल जब जाते, तब यह जीव सुख पाता॥२॥
पाँच तत्त्व वो तीन गुण का, अष्ट कमल डोलत रहता।
बना चादर यह बड़ा अनोखा, प्रभु को दस महीने लगता॥३॥
जगवासी वो सुर मुनि सब, ओढ़ के चादर किया मैला।
कमलानन्द कहते, यतन से ओढ़ो, तब न होत कोई जग में झमेला॥४॥

७. ईश्वर-भक्ति

(१३९)

दया करो हे स्वामी मेरे, तुमको लाखों प्रणाम।
भव पार उतारने वाले, तुमको लाखों प्रणाम॥१॥
भवसागर में डूब रहा हूँ, लहर थपेरे खा रहा हूँ।
पतवार चलाने वाले, तुमको लाखों प्रणाम॥२॥

22:06

दृष्टि में दृष्टि को समाई करु हो भैया, समाई करु।
सुरत को मन से रहित करु।।८।।
योग करु योग करु, योग करु हो भैया, योग करु।
सुरत से समाधि सुख प्राप्त करु।।९।।
ईड़ा-पिंगला एक करु, एक करु हो भैया, एक करु।
शून्य में मन को थिर करु।।१०।।
लय समाधि सुख करु, सुख करु हो भैया, सुख करु।
जहवाँ काल के डर नाहीं करु।।११।।
चेतन धार पकरु, पकरु हो भैया, चेतन धार पकरु।
कमलानन्द भक्ति रस पावै कि अन्तर्मुख करु।।१२।।

(१३६)

जो जानता यह तन, वह करता कीर्त्तन।
जो करता कीर्त्तन, वह करता राम भजन।।१।।
जो करता राम भजन, वह हो जाता मगन।
जो होता मगन, उसको न होता कोई गम।।२।।
जिसको न कोई गम, वह न करता बहिर्गमन।
ऐसा हे सन्तजन, जो करता राम कथन।।३।।
जो करता राम कथन, तो होता कथोपकथन।
जब होता कथोपकथन, तब अज्ञानी न करता हनन।।४।।
जब न होता हनन, तब उपदेश फैल जाता सघन।
जब हो जाता सघन, तब रहता क्या कुछ कहन।।५।।
जब कुछ न कहन, तब अपने में रहन।
जब अपने में रहन, तब कमलानन्द को सब कुछ सहन।।६।।

६.माया

(१३७)

साधो भाई! माया से बचि रहिहौ।।
इन्द्रिन है माया की रचना, नाहीं किसी की होई।
कर्म इन्द्री अरु ज्ञान इन्द्री, ये तो व्यवहार की जोई।।१।।
मन बुद्धि हंकार चित, माया की है बनी होई।
मन व्यापार अरु बुद्धि विलास, माया ऊपज सब कहाई।।२।।
स्थूल-सूक्ष्म, कारण-महाकारण, जड़ मंडल कहलाई।
अपरा परा तक प्रकृति मंडल, चेतन मंडल बतलाई।।३।।

जो धँसते अंतर भाग में, परा अपरा दो केन्द्र मिलते।
अपरा जड़ात्मक प्रकृति होते, तो परा चेतन निर्मल मिलते॥२॥
जड़चेतन की गाँठ कठिन है, खुलता नहीं झटपट से।
गुरु मेँहीँ कमलानन्द से कहते, काम करो चटपट से॥३॥

(१८१)

देखना ही है, तो ईश्वर की लीला देखना।
सुरत थिर करके, अद्भूत प्रकाश देखना॥१॥
कहन-सुनन से मिलता नहीं, गुरु गम से देखना।
गुरु गम से देख-सुन, निज काम बना लेना॥२॥
सतपद में जाना है, तो निर्गुण-सगुण के पार चला जाना।
नहीं विश्वास हो तो, सद्गुरु के दास बन जाना॥३॥
मेँहीँ गुरु कहते, गुरु ज्ञान ले लेना।
कमलानन्द गुरु से कहते, गुरु साथ लगा लेना॥४॥

(१८२)

अंधकार प्रकाश वो शब्दरूप, आवरण होते हैं।
त्रयावरण के पार में, स्वयं साईं विराजते हैं॥१॥
हंकार और मान को छोड़, संतों के पास जाते हैं।
जो अंतर निरेखते, सद्गुरु का मत मानते हैं॥२॥
उभय पलकों को बंद करते हैं, तो सुषुम्ना में बिन्दु देखते हैं।
बिन्दु में स्थिर होते हैं, तो सत राह देख लेते हैं॥३॥
त्रयावरण को पार करते, तो सतपथ पर चलते हैं।
सतपथ पर चलते हैं, तो माया के बंधन छूटते हैं॥४॥
शब्दावरण को जीव पार करते, तो स्वामी से मिलते हैं।
कमलानन्द गुरु आज्ञा मानते, तो शान्ति-लाभ करते हैं॥५॥

(१८३)

देखना ही है तो, निज घट में देखना।
अंधकार के बीच, बिजली की चमक देखना॥१॥
स्थूल के अंदर सूक्ष्म है, सूक्ष्म के अंदर कारण शरीर देखना।
कारण के अंदर महाकारण है, महाकारण के अंदर चेतन शरीर देखना॥२॥
चेतन में चलकर तुरत, अनाहत नाद पकड़ लेना।
अनाहत नाद को पकड़, कमलानन्द संसृति भुला देना॥३॥

(१८४)

जब दशो दिशा छुटती है, तो एक दिशा मिलती है।
जब दृष्टि लगती है, तो एक निशान मिलती है॥१॥

22:09

जो करते साधु की सेवा, गुरु भक्ति मिल जाती है।
बिना नहीं इसके कुछ मिलते, गुरु चरण लौ लग जाती है॥६॥
बिन्दु मिलता चन्द्र मिलता, सूर्य प्रकाशित होता है।
सुखमन में जो सिमट के रहता, शब्द लहर सुन पाता है॥७॥
सद्गुरु मेँहीँ ही बलिहारी, जो यह युक्ति बताते हैं।
कमलानन्द जो गुरुचरण में रहते, मुक्ति फल पा लेते हैं॥८॥

(१७८)

बाजे बजते अनेक, लेकिन ध्वनि होती पाँच ही।
ध्वनि होती है पाँच, लेकिन सार शब्द होता एक ही॥१॥
मंडल न होते अनेक, लेकिन वे भी होते पाँच ही।
पाँच मंडल के पाँच शब्द, वे भी होते पाँच ही॥२॥
पाँच शब्द केन्द्रिय शब्द होते, और न कोई केन्द्रन होता।
सुरत शब्द को जाननेवाले, सुरत को इसमें लीन करता॥३॥
स्थूल-सूक्ष्म पर प्रथम नौवत, सुन के मन प्रसन्न होता।
सूक्ष्म-कारण पर दूसरी नौवत, इससे मन अति प्रसन्न होता॥४॥
कारण-महाकारण पर तीसरी नौवत, इससे चित्त अति प्रसन्न होता।
महाकारण कैवल्य पर चौथी नौवत, इसमें चित्त लीन हो जाता॥५॥
कैवल्य-निर्मल चेतन केन्द्र पर पंचम नौवत, उसमें सुरत विलीन हो जाता।
कमलानन्द अचरज शब्द जो सुनता, संसार को विसर जाता॥६॥

(१७९)

बाहर न जाना-आना, निज तन में चला जाना।
पर घट नहीं, निज घट में, हरि को खोज लेना॥१॥
नजर नोक बनाकर, दोनों नजर जोड़ लेना।
अंतराकाश में देख-सुन, हरि को खोज लेना॥२॥
सुरत को खींचना, तो बिन्दु में खीच लेना।
अनहद अनाहत सुनके, हरि को खोज लेना॥३॥
पाँच मंडल की ध्वनि, सुरत से सुन लेना।
सब पर चढ़ते चलकर, प्रभु को पा लेना॥४॥
ईश विराजते अंतर में, धुर धुन को सुन लेना।
गुरु कृपा कमलानन्द, अंतर में ही रह जाना॥५॥

(१८०)

संतजन कहते भक्तजन से, होते पाँचो नाद।
पाँचों से पाँच नौवत गाजे, करिये नहीं प्रतिवाद॥१॥

22:08

पाँच मंडल की पाँच ध्वनि, मधुर ध्वनि में गुँजती है।
पाँच ध्वनि पर एक ही रहती, जो महाध्वनि टंकोरती है।।३।।
अन्तर घर है ऐसा अद्भूत, सब खण्ड ब्रह्मण्ड विराजता है।
सत्य पथ को सन्त जानता, ध्वनि गर्जन का तार बजता है।।४।।
शून्य मंडल में लौ लगाओ, सुषुम्ना की खोज करो।
बहिर्मुख से अन्तर्मुख होओ, अमृत रस का पान करो।।५।।
अजपा जपते अन्तर समाते, प्रभु पद पाता कोई।
अन्तर चलता, हरि रस पाता, कमलानन्द को जानता सोई।।६।।

(१७०)

कुल्ल मालिक का भेद जानो, सर्वेश्वर कहलाता है।
अध्यात्म स्वरूपी परम प्रभु, सर्वव्यापक कहलाता है।।१।।
आदि अंत से रहित होकर, परम तत्त्व कहलाता है।
असीम अजन्मा अगोचर होकर, व्यापकता परे हो जाता है।।२।।
सगुण के परे निर्गुण होकर, शक्तिवान कहलाता है।
शब्दातीत रूपातीत होकर, अपरम्पार कहलाता है।।३।।
मन-बुद्धि इन्द्रियों के परे, अद्वितीय कहलाता है।
प्रकृति मंडल को यंत्र की नाईं, परिचालित करते जाता है।।४।।
व्यक्ति नहीं है, व्यक्त नहीं है, विस्तृत्त्वहीन कहलाता है।
बाहर भीतर कुछ नहीं, अवकाश विहीन कहलाता है।।५।।
परम सनातन परम पुरातन, सर्वप्रथम हो जाता है।
कमलानन्द को गुरु मेंहीँ कहते, ब्रह्म तो न्यारा होता है।।६।।

(१७१)

अंश अंशी को एक मानो, भिन्न अभिन्न का भेद न मानो।
ईश्वर सर्वेश्वर एक के जानो, जीवात्मा में परमात्मा सर्वव्यापक जानो।।१.
सृजन आदि है, प्रलय अंत है, उभय उक्त प्रकृति कहलाता है।
आदि जाता, अंत समाता, प्रकृति मंडल कहलाता है।।२।।
आवागमन का चक्र भयंकर भारी, जीव बद्ध हो जाता है।
दुःख का कारण सर्वत्र प्रसिद्ध, जीव भ्रमित रह जाता है।।३।।
छुटकारा है संत के पास, उपाय एक बतलाता है।
भक्ति मात्र सर्वेश्वर की है, जिससे छुटकारा मिल जाता है।।४।।

(१७२)

मानस जप अरु मानस ध्यान, करने संत बतलाते हैं।
दृष्टियोग अरु शब्द-योग, भक्ति के मारग होते हैं।।१।।

22:11

(१९०)

दृष्टिधार का मिलना, आज्ञाचक्र निहारना, सुषुम्ना में बिन्दु मिल जाना।
एक बिन्दुता होना, दुर्बीन का मिलना, फिर बाहर में नहीं फिरना॥१॥
पिण्ड से निकलना, ब्रह्माण्ड में जाना, अंतरनाद को सुनते रहना।
अंतरनाद को सुनना, मगन हो जाना, तब फिर बाहर नहीं सुनना॥२॥
हठयोग का काम नहीं, राजयोग का बन जाना, यह सहज योग का हो जाना।
सुरत शब्द राज योग, योगी का करते रहना, कटुसाज का नहीं होना॥३॥
गुरु कृपा प्राप्त होना, भवत्रास मिटना, और किसी की आशा नहीं करना।
कमलानन्द गुरु मेँहीँ से कहते, दुःख क्लेश हरना और निज शरण में लगा लेना॥४॥

(१९१)

थिर करु, थिर करु, थिर करु हो भाई, थिर करु हो।
सुषुम्ना में दृष्टिधार थिर करु हो॥१॥
मोती हीरा झलकत देखी लेहू हो, सुषुम्ना में बिन्धु ध्यान करि लेहू हो॥२॥
जोति बिन्दु झलकत देखी लेहू हो, मँजीरा के बाजा सुनी लेहू हो॥३॥
बिन्दु ध्यान करि करि देखी लेहू हो, नाद ध्यान करि करि सुनि लेहू हो॥४॥
धुनि को सुनिकर मस्त होहू हो, सार शब्द पकरिके संताप मिटाहू हो॥५॥
गुरु के सिखावन कमलानन्द साईं मिलि जैतै हो,
गुरु के मंगलगान सखी गाई लेहू हो॥६॥

(१९२)

दृष्टि की दो धारें, ईड़ा-पिंगला कहलाती है।
मिलती धारें सुषुम्ना में, तो दृष्टि थिर हो जाती है॥१॥
हिलना-डुलना बंद हो जाता, बिन्दु पकड़ा जाता है।
दृष्टि थिर हो जाती अंतर में, तो अंधकार फट जाता है॥२॥
दिव्य जोति प्रकट हो जाती, पूर्ण सूर्य निकल आता है।
शब्द का जो खेल निकलता, सुरत तुरत फँस जाता है॥३॥
सन्तमते का भेद अगम है, गुरु शरण हो मिल पाता है।
कमलानन्द के गुरु सहायक, दिन-रात ध्यान करते रहता है॥ 48

(१९३)

साधो भाई! अधर डगर धाओ, ब्रह्माण्ड चढ़ि जाओ।
दृष्टि मिलाओ, अधर चढ़ाओ, जगमग जोत जगाओ॥१॥
प्रकाश मंडल आता, मनको रमाता, दीप को जलाते रहो।
पँच विषय त्यागो, मद को त्यागो, आतम अनुभव पाते रहो॥२॥

22:10

संतजन कहते गुरु सेवा बिन, कुछ नहीं जग में मिलते।
गुरु मेँहीँ कहते कमलानन्द को, गुरु सेवा में सबकुछ मिलते॥७॥

(१८७)

जो अंतदृष्टि पाता है, वह अंतर जोति पाता है।
जो सद्गुरु का चरण सेवता है, वह भक्ति का भेद पा लेता है॥१॥
जो दिवा-रात्रि सुषुम्ना में थिर होता है, उसके लिए अंधकार फट जाता है।
जो नयनाकाश से निकल पाता है, वह प्रकाश में गमन कर जाता है॥२॥
जो पाँच तत्त्व पंच रंग पाता है, वह सन्मुख बहुतेरे प्रकाश पाता है।
जो दामिनी दमकते देखता है, तो उसे प्रातः तारा भी दीखने में आता है॥३॥
जो पूर्णिमा का चन्द्रोदय देखता है, वह सुबह का सूर्योदय भी देखता है।
जो सार शब्द को पाता है, वह परम पिता परमात्मा को पाता है॥४॥
जो कर्मफल में नहीं फँसता है, वही भव बंधन से छूट पाता है।
जो गुरु सिखाते कमलानन्द को, तो वह निश्चय मुक्ति पाता है॥५॥

(१८८)

बिन्दु को देखना चाहते हो, तो आँखों को बंदकर कोड़ो।
जोतिमय बिन्दु को देखना चाहते हो, तो द्वय नजरों को जोड़ो॥१॥
ब्रह्माण्ड में जाना चाहते हो, तो नजरों को स्थिर करो।
अनहद को प्राप्त करना चाहते हो, तो कर को कड़ा करो॥२॥
दीपक जलता है, तो चाँदनी-सा अतुलनीय प्रकाश फैलता है।
सूर्य उगता है अंतराकाश में, तो अलौकिक जोति बिखेरता है॥३॥
कारण महाकारण को जो पार करता, उसे सार शब्द मिलता है।
शब्द अनाहत को प्राप्तकर , सुरत को सत्तधाम मिलता है॥४॥
गुरु मेँहीँ कहते सबों से, जीवन का आधार मिलता है।
सद्गुरु को सेव कमलानन्द, सुरत को निराधार में मिलता है॥५॥

(१८९)

साधो भाई! आज्ञाचक्र करो डेरा॥
आज्ञाचक्र के केन्द्र में, बिन्दु रूप झलक रहा।
बिन्दु में प्रकाश मिलता, बिन्दु रूप चमक रहा॥१॥
नजर जोड़ि धँस जाओ बिन्दु में, सुरत शब्द की कमाई करो।
शब्द में सार शब्द पकड़ो, निज घर पहुँचा करो॥२॥
गृह में गृहवासी पकड़ो, तब कभी छोड़ो नहीं।
कमलानन्द के गुरु मेँहीँ कहते, हरि भक्ति करन भूलो नहीं॥३॥

22:10

जब बिन्दु मिल जाय, तो विहंगम चाल से चलो।
जब अनहद नाद मिल जाय, तो मीनी ढंग से चलो।।२।।
जब विहंगम मार्ग मिलता है, तो मीनी मार्ग भी मिलता है।
जब संकल्प-विकल्प मिटता है, तो सुरत को सार शब्द मिलता है।।३।।
जब प्रणव ध्वनि मिलती है, तो अखण्ड ध्वनि ही मिलती है।
जब सत ध्वनि मिलती है,तो ध्वनि गुंजायमान होती है।।४।।
जब निचले मंडल का केन्द्रिय नाद मिलता है, तो ऊपर मंडल का भी नाद मिलता है।
जब कमलानन्द एक सतनाम मिलता है, तो भवसागर से पार हो जाता है।।५।।

(१८५)

ध्यान करना है, तो मानस ध्यान कर लो।
सुरत शुद्ध करना है, तो बिन्दु ज्ञान कर लो।।१।।
नयन बीच निरखो, तो द्वय नजर को जोड़ लो।
दशमी द्वार में चलकर, तिल पार निरख लो।।२।।
बिन्दु में तारा देखना है, दशम द्वार की ओर चलो।
बिन्दु बाद शब्द पाना है, तो जोति में निरन्तर चलते चलो।।३।।
शब्द मंडल पाना है, तो प्रकाश मंडल पार कर लो।
अनाहत ध्वनि को पाना है, तो अनहद में चल के देख लो।।४।।
सच्ची युक्ति में जाना है, तो गुरुमुख होके देख लो।
साधु-सेवा, सत्संग करके, कमलानन्द सद्‌गुरु पहचान लो।।५।।

(१८६)

जीवो! अमर होना चाहते, तो अमृत धारा का पान करो।
झीना नाल से बह रहा, सुखमन में कसकर लिपट जाओ।।१।।
सन्मुख में उल्टी धारा, जो उद्‌गम में चढ़ती जाती है।
मीन रूप धरकर सुरत, उसी धारा में बढ़ती जाती है।।२।।
जो करते गुरु सेवा, उसे गुरु मंत्र मिल जाता है।
जो करते गुरु जाप-ध्यान, ध्यान उसे बन जाता है।।३।।
गुरु जाप करो, गुरु ध्यान करो, गुरु की आज्ञा का मान करो।
सुषुम्ना का द्वार बतला देते, तो उनका अति सम्मान करो।।४।।
सूई नोक कितना पतला, जो सूक्ष्म राह बतलाता है।
दोनों आँखों के सन्मुख चलकर, नयनाकाश का अंधकार फट जाता है।।५।।
जोति मंडल को टपकर, आकाश मंडल में भ्रमण करो।
सारशब्द मे लीन होकर, शब्दातीत पद ग्रहण करो।।६।।

240%

22:12

(२००)

गगन की आवाज सुनता कोई॥
गगन गुफा जब झनक जाई, तो झनकार भरपुर होई।
ध्यान में जब पग जाई, तो शब्द की टनकार होई॥१॥
गुरु युक्ति से ध्यान करई, तो दृष्टि दोनों मिल जाई।
सुरत की धारें मिल जाई, तो एक विन्दु नजर आई॥२॥
बिन्दु में जोति झलमल करई, तो भक्तिमान देख पाई।
सहस्त्रार में चाँदनी चमके, त्रिकुटी में सूर्य उगि आई॥३॥
बिना चाँद के चाँदनी जड़ई, बिना सूर्य उजियारा होई।
कारण मंडल में शब्द सुनी, तो चन्द्र-सूर्य छूटी जाई॥४॥
बिना सरवर के पुष्प खिलई, हंसा चढ़ि कर केल करई।
दशवें द्वार में प्रवेश करी, तो अलख पुरुष का ध्यान धरई॥५॥
जब कारण से महाकारण जाई, तो घट रस का स्वाद करई।
कैवल्य मंडल में सार शब्द पकरी , तो नि:शब्द पकरी में आई॥६॥
काम-क्रोध मद लोभ जरि जाई, काल कबहूँ नहीं निकट आई।
जन्म जन्मान्तर की तृष्णा बुझाई, भव अघ व्याधि टरि जाई॥७॥
आवागमन बड़ दु:ख भारी, इससे न होती कबहूँ लड़ाई।
कमलानन्द गुरुचरण पकड़ कर, भव जाल से जाई पराई॥८॥

(२०१)

नौ द्वारों में रहने वाला, जीव भाव में रहता है।
नींद-स्वप्न में रहनेवाला, स्वरूप को न कभी पाता है॥१॥
चेतन धार जब अंतर्मुख होती, माया समुद्र सुख जाता है।
ईड़ा-पिंगला की धारा बहती, सुषुम्ना में लय हो जाता है॥२॥
अंतर जोत सुरत को मिलती, प्रतिमूर्त्ति-सी हो जाती है।
बिन पावन के गति चहूँ होती, दशो दिशा में जाती है॥३॥
सुरत जब मन को गरसती, मन काबू हो जाता है।
बिना आँख के विश्व दरसता, कुछ न छिपा रह जाता है॥४॥
अज्ञान अरु माया के कारण, एकात्म भाव नहीं आता है।
गुरु कृपा जब हो जाती, माया अज्ञान हट जाता है॥५॥
गगन गुफा में बैठ जब जाता, शब्द वाण मिल जाता है।
मुँह से गायन करनेवाला, उस शब्द का न गायक होता है॥६॥
स्थूल से सूक्ष्म में जाता, पिण्ड से बह्माण में हो जाता है।
अमृतजल को छक छक पीता, कमलानन्द जो गुरु शरण रह जाता है॥७॥

(१९७)

यदि शौक है प्रभु से मिलना, तो डगरिया को ही धरना है।
यदि शौक है प्रभु दर्शन का, तो सतत चलते ही रहना है।।१।।
यह राह है शून्य का, संत राह दिखलाते हैं।
यह राह है ऐसी, जहाँ अझर ही झरते हैं।।२।।
जो होते हैं बड़भागी, वे सुनते रहते हैं।
प्रकाश शब्द को प्राप्तकर, अमृत पान करते हैं।।३।।
प्रभु की राह है ऐसी, जिसमें देखते सुनते है।
कमलानन्द तो देख-सुन, शून्य में रमते रहते हैं।।४।।

(१९८)

गुरु मंत्र जपो, गुरु जाप जपो, वो सुरत को सिमटाय रहो।
चलते चलो, बढ़ते चलो, तिल पर दृष्टि को ठहराय रहो।।१।।
बिन्दु द्वार लखो, तिल द्वार लखो, बिजली प्रकाश दिखलाय रहो।
अनहद सुनो, गगन गर्जना सुनो, रस पान कराय रहो।।२।।
न आँख डुलाओ, न पलक हिलाओ, अमी रस सुरत को पिलाय रहो।
जोति धरो, शब्दरूप धरो, चेतन धार चुलवाय रहो।।३।।
सत शब्द सतगुरु से मिलावे, जीव को निज घर डेरा कराय रहो।
कमलानन्द पुकार कहे, गुरु से मिल अमरपुर बास कराय रहो।।४।।

(१९९)

पिण्ड ब्रह्माण्ड का मर्म अगम है, जीव जान पाता नहीं।
पिण्ड भेद ब्रह्माण्ड में जाता, छिपा कुछ रहता नहीं।।१।।
जो सूक्ष्म में प्रवेश नहीं करता, उसका मन वश में होता नहीं।
जो मुरली-बंशी धुन सुनता नहीं, वह सृष्टि विस्तर को जानता नहीं।।२।।
जो ईड़ा-पिंगला मिलाप करता नहीं, वह चन्द्र-सूर्य के निवास को जानता नहीं।
सुरत अंधकार से प्रकाश में जाता नहीं, तो अर्द्ध ऊर्द्ध्व का भेद जानता नहीं।।३।।
जो शब्द में दौड़ लगाता नहीं, वह निःशब्द की ओर जाता नहीं।
जो निःशब्द में निमग्न होता नहीं, वह परमात्म सुख पाता नहीं।।४।।
नौ द्वार में सुरत फँसी है, उसे छूड़ा पाता कोई।
तल के ऊपर तल पर जाता, केन्द्रित हो पाता कोई।।५।।
गगन गुफा में प्रकाश भरा है, अजपा जप जपता कोई।
शंख शहनाई जो बजती रहती, सिंहनाद सुनता कोई।।६।।
संतोष धर्म धारण करते, इस पद को पाता कोई।
गुरु कमलानन्द से कहते, प्यारा है इस पद पर चढ़ता कोई।।७।।

22:11

संतन गाते, मन को बुझाते, शान्ति लाभ पाते रहो।
गुरु मेँहीँ गाते, सबको सुनाते, भक्ति मारग जाते रहो॥३॥

(१९४)

अधः कहलाता पिण्ड, ब्रह्माण्ड ऊद्र्ध्व कहलाता है।
संत कहते दोनों में, कुछ न अंतर देखा जाता है॥१॥
पिण्ड को जो पार करते, ब्रह्माण्ड पार कर जाते हैं।
सत्गुरु संत कबीर, नानकादि गुप्त भेद बतलाते है॥२॥
गंग-यमुन ईड़ा-पिंगला कहलाते, मध्य सरस्वती धारा बहती है।
सरस्वती सुषमन बीच में, चेतन जल धारा बहती है॥३॥
गुरु जाप जपो, गुरु ध्यान करो, सुरत को परम पवित्र करो।
बिन्दु दृष्टिधार थिर करो, सुखमन में पूर्ण स्नान करो॥४॥
सहस्त्रदल कमल को पार करो, जगमग जोति होती है।
त्रिकुटी महल को पार करो, शून्य में गुंज होती है॥५॥
महाशून्य भँवर गुफा को पार करो, परमात्म धाम मिल जाता है।
कमलानन्द को गुरु सीख देते, माया मंडल छूट जाता है॥६॥

(१९५)

प्रभु पथ है अंदर, संतन कहलाते घट भीतर॥
प्रेमी भक्त जो अंदर चलते, त्रयपट के पार हो जाते।
पथ में क्या मिलते, अंधकार प्रकाश अरु शब्द मिलते॥१॥
दशम द्वार जो दिल में लाते, दिल से यत्न करते जाते।
तिल द्वार जब मिल जाता, तो जोति नाद प्रकट हो जाते॥२॥
अंतर का मार्ग बड़ा मेँहीँ, जो बाल नोक से समझे जाते।
गुरु मेँहीँ कमलानन्द से कहते, संतजन धँसि प्रभु को पाते॥३॥

(१९६)

दृष्टिधार के मिलते ही, धार संगम की हो जाती है।
गंग यमुन की धारा मिलती, सुखमन की धार वह जाती है॥१॥
बाहरअंगुल प्रमाण कर, दृष्टिधारा को ठहराओ।
प्राण स्पन्दन बंद करो, मन की चंचलताई को तज डारो॥२॥
अणु रूप ब्रह्मरूप है, सुरत को उससे मिलवाओ।
गायत्री ध्यान ही सार शब्द है, धुनि सुनि के समा जाओ॥३॥
गुरु मेँहीँ कमलानन्द से कहते, ऐसा हमेशा ध्यान करो।
ताप नसाओ, दुःख को मिटाओ, मुक्ति दिशा को चले जाओ॥४॥

सुरत शब्द-अभ्यास करता, गुरु मन नाम भजन करता।
एकांत होकर बास करता, वही परमातम चिंतन करता॥२॥
योग साधन वही करता, जो नित गुरु-सेवा में रहता।
गुरु सतगुरु की सेवा बिना, मोक्ष से विरत रहता॥३॥
सद्‌गुरु की जब कृपा होती, सार शब्द मिल जाता।
सद्‌गुरु जब मिल जाते, तो जीव भवदुःख नहीं पाता॥४॥
सद्‌गुरु जब कृपा करते, तो अहंकार-अंधकार मिट जाता।
कमलानन्द गुरु कृपा पाता, तो मोक्ष से नहीं वंचित रहता॥५॥

१४. अंतर-भक्ति

(२२७)

गुरु के चरण गहू, भजन में मगन रहू, निशि दिन करू पुकारा।
हो साधो भैया॥
जब-जब याद होई, गुरु गुरु जप करी, तब होय तैय निबारा।
हो सधो भैया॥
ईड़ा-पिंगला मिलि जाई, त्रिवेणी संगम होई, बहुत होय छैय उजारा।
हो साधो भैया॥
गंगा-यमुना मिलि सुखमन दीख पड़ी, होय छैय चमकारा।
हो साधो भैया॥
गंग धार बही जाई, सुरत पीवे करी, सुख होय छैय घनेरा।
हो साधो भैया॥
अनहद बाजा बाजै, सुरत लीन होई, बजत विविध प्रकारा।
हो साधो भैया॥
अनाहत जाप करि, अति ही निराला होई, सतपथ को विचारा।
हो साधो भैया॥
गुरु मुख होई करी, ध्यान-अभ्यास करी, पहुँच जाई प्रभु के द्वारा।
हो साधो भैया॥
कमलानन्द विचार करी, सुरत थिर करि, गुरु धाम ले जैतैय नगारा।
हो साधो भैया॥

१५. लोक-गीत

(२२८)

सुखमन घाटी के बटिया, चलवैय निहारि के हो।
गुरु के संदेशवा लेवैय लगाय, अखिया बन्द के चलवैय हो॥१॥

22:12

प्रभु का नाम सार शब्द है, जो प्रभु से मिलाता है।
प्रभु का नाम अनाहत है, जो मीठी मुरली भी सुनाता है।।४।।
सुषुम्ना में नाम को पाओ, शब्द मंडल में चढ़ जाओ।
सच्चे शब्द को पकड़ो, सच्चा भक्त बन जाओ।।५।।
अनेकों शब्द होते हैं, लेकिन अनाहत नाद को जानो।
जो प्रतिक्षण एक रस बजता, उसको परख हिय सत्य कर मानो।।६।।
प्रभु का नाम एक मात्र है, जो अनाहत नाद कहलाता।
गुरु कमलानन्द से कहते, वह ओम् स्फोट भी कहलाता।।७।।

(२०८)

स्फोट-ओम्-उद्गीथ को, राम नाम कहिये।
प्रणव ध्वनि शब्द को, सत्य नाम गहि लीजिये।।१।।
सार शब्द से सृष्टि होती, सृष्टिकर्त्ता कहलाता है।
सार शब्द से पोषण होता, पालनकर्त्ता कहलाता है।।२।।
सार शब्द ही कठिन कराल है, प्रचंड शक्ति बन जाता है।
प्रलय मचाता, संहार करता, शब्द रूप हरि कहलाता है।।३।।
गुरु शब्द का उपदेश देते, समझ-बूझ शिष्य बनते हैं।
वेद शब्द का कथन करते, पुराण विस्तार करते हैं।।४।।
देव-मुनि सब शब्द कहते, उसका भेद न पाते हैं।
रागी-वैरागी-अनुरागी, शब्द का जाल बिछाते हैं।।५।।
कमलानन्द एक राम नाम को, अपने में लगाये रखते हैं।
रामनाम ही असल नाम है, संतजन गुणगान करते हैं।।६।।

(२०९)

शब्द अनेक होते, सत्तनाम एक होता।
सत्तनाम एक होता, उसे कोई पहचान नहीं पाता।।१।।
सब शब्द मिट जाते, जब एक सत्तनाम मिल जाता।
जो सत्तनाम को जानता, वह शब्दातीत पद जानता।।२।।
शब्दातीत पद ही एक है, केवल संतजन ही पाते।
शब्दातीत पद संत पाते, वे ही परमतत्त्व कहलाते।।३।।
निर्गुण-सर्गुण का भेद कठिन है, सद्गुरु ही पहचान करते।
नाम का, जो न साधन करते, आवागमन चक्र में पड़ते रहते।।४।।
जो प्रणव ध्वनि का साधन करते, उसे सत्तनाम मिल जाता है।
कमलानन्द शब्द साधन को जान, सद्गुरु के शरण में ही रह जाता है।।५।।

22:12

(२०२)

ईश है सर्वत्र व्यापक, परख आते नहीं।
गुरुमुख न होते जीव, तो परख पाते नहीं।।१।।
ईश से मिलन जो चाहते, तो कभी विलम्ब न लावते।
घट ही में पंथ निहार, घट के ही अंतर ही पावते।।२।।
तम से चलकर जीव चलते शब्द में, तो धुनि सुनि पंथ निहारते।
पाँचों नौवत बजते घट में, तो उस पर चढ़ि निःशब्द को जावते।।३।।
भिन्न उपाय दिल बीच लखते, तो अंतरपथ नहीं चालते।
कमलानन्द मेँहीँ धुनि सुनि, निज घर निश्चय पधारते।।४।।

(२०३)

पिण्ड ब्रह्माण्ड की अकथ कहानी, जग जानता कोई।
जो बुझता, विधि जानता, ऐसा है जग में कोई।।१।।
समुन्द में विन्दु का वासा, जानता सब कोई।
बिन्दु में समुन्द समाता, जानता न कोई।।२।।
जो गुरु की राजदाँ में रहता, भक्त होता है सोई।
युक्ति जानकर अभ्यास करता, समझता है वोई।।३।।
अभ्यास कर विचरण करता, आत्म तत्त्व पहचानता कोई।
ज्ञानवान विचारता मुक्ति को, परमगति पाता कोई।।४।।
ईड़ा-पिंगला का मिलाप करता, दृष्टियोग करता कोई।
सतपुरुष प्रकृति में व्यापक है, गुरु बिन समझता न कोई।।५।।
ध्वनि में ध्यान हो, ध्वनि में गुरुमुख होता कोई।
मन में जोति है, जोति में पंच शब्द जानता कोई।।६।।
ध्वनि में सार शब्द गुंजता, एक रस रहता सोई।
कमलानन्द शब्द भेद जानता, संतजन बतलाते जोई।।७।।

१०. नाम की महिमा

(२०४)

परमातम गुरु मूल है, अज अनादि प्रसंग है।
स्फोट है उसकी परा धारा, प्रस्फुटित पावन गंग है।।१।।
ओम् वही शब्द ब्रह्म वही, नाद ब्रह्म सच्चिदानन्द वही।
प्रणव ध्वनि उद्‌गीथ वही, सार शब्द मधुर गीत वही।।२।।
ध्वन्यात्मक है नाम वही, व्यापक नाम अव्यक्त वही।
सत चेतन है धार वही, प्रभु मिलावत बारम्बार वही।।३।।

22:18

पुस्तक प्रणेता का परिचय

नाम : स्वामी कमलानंद
पिता : स्व० तेतर साहु
जन्म : २ जनवरी १९४२ ई०
जन्म स्थान : ग्राम-भटपुरा, पत्रा०-पहाड़पुर, जिला-सहरसा (बिहार)
पितृगृह : ग्रा०-दह, पत्रा०-आगर, जि०-सहरसा (बिहार)
शिक्षा : एम० ए० द्वय (अंग्रेजी एवं दर्शनशास्त्र), बी०एल०, बी०एड०, सी०इन०टी०ई०
सेवा : बिहार सरकार के अधीन शिक्षण-सेवा से सम्बद्ध रहे।
संतमत की दीक्षा : १९६९ ई०
प्रखण्ड मंत्री : सिमरी बख्तियारपुर (सहरसा)- १९७१ से १९८१ ई०।
जिला मंत्री : सहरसा, सुपौल, मधेपुरा (संयुक्त)-१९८२ से १९८४ ई०।
जिला अध्यक्ष : सहरसा एवं सुपौल (संयुक्त)-१९८५ से १९९० ई०।
जिला अध्यक्ष : सहरसा जिला-१९९० से १९९५ ई०।
महासभा का सदस्य : १९८५ से १९९३ ई०।
नादानुसंधान की दीक्षा : परम पूज्य गुरुदेव महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज के आदेशानुसार वर्त्तमान आचार्य पूज्यपाद महर्षि संतसेवी जी महाराज द्वारा प्रदत्त-१९८१ ई०।
आश्रम निवास : २००२ ई० से
संन्यास ग्रहण : २००४ ई०
आश्रम समिति का सदस्य : २००३ से २००५ ई०
आश्रम सत्संग मंच का संचालन : २००३ से अद्यतन
महासभा द्वारा अधिकृत : विभिन्न जिलों में ध्यानाभ्यास कार्यक्रमों के संचालन हेतु : २००५ ई०।
भजन भेद प्रदान करने हेतु अधिकृत : २००६ ई०
रचना : (१) गुरु ज्ञान पदावली, (२) अखिया बन्द के चलवैय हो : संतमत लोकगीत, (३) संतमत भजनावली-भाग १, (४) संतमत भजनावली-भाग २, (५) संतमत भजनावली सार।
वर्त्तमान पता : महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर-३

(२३१)

अन्तर डगरिया पर चलवैय, प्रभु से जे मिल के रहवैय।
सतगुरु राह देतैय लखाय, अखिया बन्द के चलवैय हो॥१॥
भीतर के पन्थ में, सुख जे मिलै छलैय।
बर्षा जे होय छैय प्रकाश, अखिया बन्द के चलवैय हो॥२॥
अमृत की ध्वनि बजै छैय, नौवत जे झहरैय छैय।
गुरुजी देते भाग जगाय, अखिया बन्द के चलवैय हो॥३॥
भीतर जे देखबे करवैय, सुख जे मिलवे करतैय।
कमलानन्द के गुरु, प्रभु से देतैय मिलाय, अखिया बन्द के चलवैय हो॥४॥

(२३२)

अधर गुरु के सुमरवैय, सन्ध्या जे करि लेवैय।
सुरति ठहरैवैय सुषमन द्वार, अखिया बन्द के चलवैय हो॥१॥
मुख ते कछु ने बोलवैय, बाहर पट बन्द करिवैय।
अन्तर पट खोलवैय गुरु द्वार, अखिया बन्द के चलवैय हो॥२॥
सूर चन्द धर में लैवैय, दृष्टि जमाई देवैय।
ब्रह्मजोति देवैय झलकाय, अखिया बन्द के चलवैय हो॥३॥
सुरत सुषमन में होई के, शब्द पकड़ि लेवैय।
सार शब्द धरवैय ठहराय, अखिया बन्द के चलवैय॥४॥
सार शब्द परखि लेवैय, भव-बन्धन जारि देवैय।
अगम अनाम लेवैय पकराय, अखिया बन्द के चलवैय हो॥५॥
गुरु के जे सेवा करिवैय, परम पद पाई लेवैय।
कमलानन्द पहुँचतै गुरुधाम, अखिया बन्द के चलवैय हो॥६॥

(२३३)

आज्ञा चक्र में जैवेय करवैय, बिन्दु दरस करवैय।
यही छैय विलक्षण गुरु द्वार, अखिया बन्द के चलवैय हो॥१॥
पिण्ड के चेतन धार, कितना हूँ सूक्ष्म होतैय।
नहीं गमन करतैय वैय द्वार, अखिया बन्द चलवैय हो॥२॥
मन के सिमटवे करवैय, चेतन धार पकरी लेवैय।
पिण्ड छोरि ब्रह्माण्ड में पैसार, अखिया बन्द के चलवैय हो॥३॥
जड़ चेतन गाँठी खोलिवे करवैय, अलग अलग करिवे करवैय।
सगुण-निर्गुण के जैवैय पार, अखिया बन्द के चलवैय हो॥४॥
आज्ञाचक्र प्रवेशे करिवैय, स्वामी के पहचान करिवैय।
जनम-मरण मेटी देवैय, अखिया बन्द के चलवैय हो॥५॥

22:14

सुरति जे थिर करवैय, अन्धकार फाड़ि देवैय।
बीच ही में मिलतैय अकाशी द्वार, अखिया बंद के चलवैय हो॥२॥
जोती मंडल धँसिवैय करबैय, ब्रह्माण्ड लीला देखवैय।
मिलतैय गुरु के शब्द रूप, अखिया बन्द के चलवैय हो॥३॥
परम पद पाई लेवैय, बन्धन काटि लेवैय।
इहो छैय सन्तन-राज, अखिया बन्द के चलवैय हो॥४॥
कमलानन्द गुरु से कहै, इहो भेद बताई दिहल।
गुरु के चरण पकड़ी रहब, अखिया बन्द के चलवैय हो॥५॥

(२२९)

सूक्ष्म नाद सुनिवे करिवैय, अज्ञाचक्र डेरा करिवैय।
तिल खिड़की करबैय पार, अखिया बन्द के चलवैय हो॥१॥
सुखमन द्वार के हटिया, लागल छै कठिन केवरिया।
गुरुबल खुलतैय बिन्दु दुयरिया, अखिया बन्द के चलवैय हो॥२॥
आँख-कान बन्दे करिवैय, गुणावन छोड़िवे करवैय।
अधर के डगर-डगरिया, अखिया बन्द के चलवैय हो॥३॥
जोती जे जगमग होय छैय, ध्वनि जे अनहद होय छैय।
सार शब्द के पकरिया, अखिया बन्द के चलवैय हो॥४॥
केन्द्री शब्द पकरि लेवैय, गुरू भक्ति करि लेवैय।
कमलानन्द के गुरु पकरवैया, अखिया बन्द के चलवैय हो॥५॥

(२३०)

गुरु के चरण पकड़वैय, गुरु के अराधना करवैय।
भक्तन के दुःख करतैय निस्तार, अखिया बन्द के चलवैय हो॥१॥
काल भयंकर छलैय, गुरु से जे काँपत रहैय।
गुरु के विलक्षण प्रभाव, अखिया बन्द के चलवैय हो॥२॥
गुरु मन्त्र जाप करवैय, दुःख के दूर करवैय।
सतगुरु छतहिन गुण-भण्डार, अखिया बन्द के चलवैय हो॥३॥
गुरु मन्त्र जाप इहो, जापों के राजा छलै।
जाप जपत मिलतैय फल चार, अखिया बन्द के चलवैय हो॥४॥
गुरु गुरु कहते रहवैय, गुरु दयालु छलै।
कमलानन्द जपतैय गुरु मन्त्र, अखिया बन्द के चलवैय हो॥५॥

नौसे नारी मंगल गावे, तहां मन भंवरा अति सुख पावे।
शीतल भई सबै ही काया, शब्द ब्रह्म रस अमृत पाया।।53।।

सरलार्थ : नौ सो नाड़ियां जब मंगल गान गाने लगती है तब मन रूपी भंवरा ब्रह्मानन्द रूपी सुख सागर में निमज्जित हो जाता है। सुरति शब्द के संयोगजन्य ब्रह्म रस रूपी अमृत प्राप्त कर लेता है तब सम्पूर्ण काया शीतल हो जाती है।

अब तो शब्द गिगन कूं चढ़िया, पछिम घाटि होइ के अनुसरिया।
घाटी बीस मेरू की छेकी, इक बीसै गढ़ गया विशेखी।।54।।

anned by CamScanner

सरलार्थ : इसके पश्चात् शब्द पश्चिम घाटी होकर ब्रह्माण्ड में चढ़ जाता है, अर्थात् बीसों कशेरूकाओं के मध्य में सुषुम्ना नाड़ी रहती है और उसके आजु–बाजू में इंगला–पिंगला नाम की नाड़ियां रहती है। मेरूदण्ड की बीसों मणिकाओं को छेककर त्रिकुटी संगम में शब्द पहुंच जाता है।

पहली बैठा त्रिकुटी छाजे, जाके ऊपर अनहद बाजे।
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया, निर्मल होय आगे कूं ध्याया।।55।।

सरलार्थ : भौंहों के बीच में त्रिकुटी स्थान है, उसके ऊपर सहस्त्रार दल चक्र में अनहद बाजे बजते है, उसी त्रिवेणी में शब्द सुरति के साथ निमज्जित होकर अत्यन्त निर्मल बन आगे को प्रस्थान करता है।

दोहा

इंगला पिंगला सुखमणा, मिले त्रिवेणी घाट।
जहां झांझै जल झूलि के, निर्मल होय निराट।।3।।
अब त्रिवेणी न्हाइके, किया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अलध सुख, यह कोई चौथा देश।।4।।

सरलार्थ : इंगला (इड़ा) पिंगला, सुषुम्ना रूपी त्रिवेणी संगम घाट पर ब्रह्माल्हाद में झूलकर निर्मल बना हुआ शब्द सुरति के साथ गगन में प्रवेश करता है। स्वर्ग मृत्यु एवं पाताल तीनों लोकों से भिन्न यह कोई अवर्णनीय सुख है। और यह चतुर्थ देश कहलाता है।

चौपाई

अब चौथे घर पहुंता जाई, जहाँ का चहन मैं कहूं सुणाई।
घरर-घरर अनहद घररावे, परम ज्योति दामणि झलकावे।।56।।

सरलार्थ : अब चौथे घर में प्रवेश हुए महात्मा का–तुरीयपद का निर्विकल्प समाधि का, अनिर्वचनीय कथन करता हूं –

जिस प्रकार मेघ (बादल) ध्वनि करते है ठीक इसी प्रकार घर्र घर्र का अनहद अव्यक्त नाद होता है और उसमें परम आनन्द की ज्योति चमकती है।

सुषमण नीर लूंब झड़िलाई, भीजत सुरति गर्क होई जाई।
अर्ध ऊर्ध जहां कमल प्रकासा, सुरति भंवर होई करत बिलासा।।57।।

सरलार्थ : उस तुरीय पद में सुषुम्ना नाड़ी से निकले अमृतमयी नीर के बूंदों की झड़ी लग जाती है–उसमें शब्द के साथ सुरति भींजकर ब्रह्मानन्द में मग्न हो जाती है। अर्ध्व–ऊर्ध्व भाग में सहस्त्रार दल कमल विकसित हो जाता है और शब्द के साथ सुरति वहां पर भ्रमर बन विलास करने लगती है।

छन्द पद्धरी :

फेरि ब्रिन्दा ज देख लेख। पतिब्रत को निति गाढ पेख ॥
जासूँ जालंद्र गंजे न कोइ। पिता धेख मांड्यौ जसोइ ॥५१॥
बिन्द्रा ब्रत्त झगियौ ज जोइ। जिदी धूल मिलियौ जयोइ ॥
पतिब्रत के तुलि नाहिं कोइ। बेद कहै अर संतसोइ ॥
उलटि ऊगवै भाण आणि। रामब्रत्त कीजे न हाणि ॥
गंग जमुन गिर मेर दस्स। तोही रहिए एक रस्स ॥
आन धरम की छोड़ हिरस। जिदी मिलै वो रामसरस ।
पतिब्रत राखै रंक नारि। अपणौं ज खाँवद जाणिसार ॥
वाही सोभ पावै ज सोइ। भूप नारि ब्रत गाढ होइ ॥
वाकी महिमा कहिए जे काँइ। रंक आन त्रप रामराइ ॥

रामब्रत तो साराँ सार। बेद साध कहै बार बार ॥
ऐसो पतिब्रत धारौ ज माहिं। मीन नीर आधार रहाहिं ॥
कँवल के पतिब्रत एक अरक। चंद तार सूँ रहै फरक ॥
सीप स्वाति की बूँद लेह। समंद नीर उदास एह ॥
असो पतिब्रत जत्त जीव। पपीयौ बोलै पीव पीव ॥
अधर बूंध झेलै ज सोइ। धरा धर्‌यौ पीवै नकोइ ॥
राम पण ब्रत धारै ज दास। तो राम पूरवै अधक आस ॥
बार बार या अरज राम। पतिब्रत दीज्यौ तोर नाम ॥
रामलगन के आस एक। राम दीजियो भजनटेक ॥५५॥

दुहा :

पतिब्रत के कोइ ना तुलै, जोग जिग्ग अर नेम।
ताते दास बिचार के, करी पतिब्रत प्रेम ॥५६॥

छन्द रहा हो। वाणी के 'झूमकरे' पढ़ने पर ऐसा लगता है कि जैसे गरीबदास जी किसी 'झूमकरा' नामक व्यक्ति को सम्बोधित कर रहे हों—'नाभि कमल में पैंठिए राय झूमकरा, चल बंकनाल के घाट सुनो राम झूमकरा।' इला पिंगला पेरिओ राय झूमकरा, उत्तरो औघट घाट सुनो राम झूमकरा। सुषुम्ना सुरति लगाइये राय झूमकरा, खोलो ब्रज कपाट सुनो राय झूमकरा।'[1]

'झूमकरा' के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए स्वामी चेतनदास भूमिका में लिखते हैं—'झूमकरा भी एक लोकगीत है, कई व्यक्तियों की यह जो धारणा है किसी 'झूमकरा' नामक सेवक को सम्बोधन करके यह वाणी कथन की गई है, यह नितान्त मिथ्या है क्योंकि सन्त शिरोमणि कबीर साहिबजी ने भी इसको अपनी भणन्त में स्थान दिया है।[2] अष्टांग योग' में अष्टांग योग जैसी कोई बात न होकर वाणी की दुरूहता एवं दुर्बोधता ही इसके 'अष्टांग' शीर्षक होने का कारण लगता है। हरियाणा में 'अष्टा' शब्द मुश्किल या कठिन का पर्यायवाची है। शायद इसमें 'अष्ठी' वाणी होने से ही अष्टांग बना है।[3] एक उदाहरण देखें—

कंदर्प गुदागात, भगनी स भोगं। कथो ज्ञान ध्यानं, कहाँ योग योगं।
लोहा कु लोहा, कटल रूप द्रोहं। प्रसतं पारस; अग्रमूल सोऽहम्।
अंगुष्ठान गलतं, चलतं अचानं। ग्रहचार तन तत्व, सोहम् सुभानम्।
मूरत अमूरत अन्यनाम नाशा। बाहर न भीतर, न पहुमी अकाशा।
अलबूद सूदं, मकरंद मोहं। कहते गरीबं, असथान कोऽहम्।।[4]

'रमैणी' छन्द भी सन्त साहित्य में चौपाई छन्द से बने पद के लिए रूढ़ हो गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि सम्भवतः रमैनी शब्द का प्रयोग गोस्वामी तुलसीदास की रामायण में प्रयुक्त चौपाई छन्द के लिए किया गया है।[5] गोस्वामी तुलसीदास के प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचरितमानस' का लोक प्रचलित नाम 'रामायण' है। संभव है चौपाई का लोकप्रचलित नाम रमैनी रहा हो। संत गरीबदास की बाणी में 45 पृष्ठों में रमैणी-पद आए हैं। कई का विषय सहज ही बोधगम्य होने वाला है—कई रमैणी दुर्बोध हैं। एक रमैणी में शायद कुछ भविष्य-वाणी जैसी की गई है। उदाहरण प्रस्तुत है—'कलियुग को आदि, बारह सदी का अंत है। दूलह दयालु देव, जानत कोई संत मेव। ओही बाला कंत है।। दिल्ली के तख्त छत्र, फिर भी फिरायसी। खेलत गुप्तार सैन, भंजन सब फोकफन, महियल

1. ग्रन्थ साहिब, गरीबदास जी की बाणी, पृ० 653
2. वही, पृ० 66 (भूमिका)
3. वही, पृ० 66 (भूमिका)
4. वही, पृ० वही
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, प्रस्तावना.

सुरत सुहागन मिली पिया से पर घर काहे कूं जारे।
'घीसा' सन्त कहें सुन साधो आवागमन मिटा रे।

अब चली पिया के देश, मगन भई मद माती।
पिया तुम बिन बहुत ख्वार, भर्म मे बह जाती।
मेरे नैनों से ढल आया नीर, उमग आई मेरी छाती।
भागी बहुतक रूप बनाय, अकल मोरी सब थाकी।
अब तुही-तुही घट माँहि, नहीं कोई सग साथी।
जब लई पिया की राह छूट गए सब नाती।
पिया तुम लग मेरी अरदास अर्ज सुनो मेरी पाती।
मागो पिया की निर्गुण सेज, रैन दिन सुख पाती।
कहते 'घीसा' सन्त, रूप मे मिल जाती।

होरी खेल पिया सँग प्यारी।
तू तो सब रग ले रही न्यारी।
पाँच पचीसों होली खेलत हैं नगर धूम भई भारी।
प्रेम रग का पडत फुवारा रोम रोम रँग डारी।
इडा, पिंगला देख तमाशा अर्घ उर्घ भई न्यारी।
सुन्न महल मे बाजे बाजें अवगत की गति न्यारी।
त्रिकुटी महल मे ध्यान धरत हैं दरशा पुरुष अपारी।
सुरत सिन्धु पर होरी हो रही खिल रहा फूल हजारी।
सभी सुहागन मिल होरी खेलें जोबन की मतवारी।
'घीसा' सन्त खेल रहे होरी कुज गली निज न्यारी।

होरी खेलेंगे सन्त खिलारी, समझ धर चचल नारी।
अब कुनबे में सोच पड़ी है, फौज घिरी है सारी।
मनहि फिरंगी लूटन लागा सोर हुआ है जारी।
मै मरी का लगा मोर्चा दारू भर्म उडा री।
पाप - पुण्य दो गोले चाले शोर हुआ है भारी।
ज्ञान सिंह ने चेतन कीना मदत दीनी है सारी।
अब तो धीरज आई है मन कू तोप धरी है भारी।
कायानगर मे अदल बैठ गया दुरमत हो गई न्यारी।
'घीसा' सन्त खेल रहे होरी दिल्ली लूट गई सारी।

15:31

वैद्य भी थे। आपने सत्संग बढ़ाया, श्रेष्ठ प्रबन्ध किया, छत्री साहब की मरम्मत करवाई, पत्थर का चबूतरा, कुँआ तथा कई पक्के भवन बनवाए। श्री रामकिशन दास जी ने कई व्यक्तियों को भेष देकर सत्य नाम की नौका पर बैठाया। प्रसिद्ध सन्त नकली देव जी महाराज भी इन्हीं के शिष्य थे। सम्वत् 1999 वि०, पौष कृष्णा पंचमी रविवार के दिन आपने अमरलोक प्रस्थान किया।[1] सचित्र ग्रंथ साहब में इनका यही जीवन-परिचय प्राप्त होता है। इनके नाम से केवल चौदह पद ही उपलब्ध हैं। श्री ग्रंथसाहिब तथा सचित्र ग्रंथ साहब—दोनों में इनके पदों की संख्या 14 ही है। अवगत अथवा अवगतदास के नाम से ही आपके पद प्रसिद्ध हैं। बानगी के लिए इनका एक पद प्रस्तुत है—

कोई दम जीवै तो हरदम नाद बजा लेना ।।टेक।।
धरती फलक एक कर लेवों रे, अरे हाँ सोहं सुरत समा लेना।।
ईड़ा पिंगल साथ पियारे, अरे हाँ सुषमन ध्यान लगा लेना।।
निर्गुण राह पड़ा सीधारे, अरे हाँ हंसा बाट चला लेना।।
घीसा सन्त प्रेम शरण मेरे, अरे हाँ मन के खोट मिटा लेना।।
अवगत जीवन लाभ यही है, अरे हाँ जिवड़ा मोक्ष करा लेना।।[2]

महन्त श्री अचलदास जी साहेब

आप दरबार साहब के तीसरे महन्त हुए हैं। आप दयालु, विनम्र होने के साथ साथ शील और सन्तोष के साक्षात् स्वरूप थे। अभिमान तो आपको छू भी नहीं सका था। आपने अल्पायु में अनेक बिछुड़े हुए सत्संगियों को पुनः थोड़ा और सत्संग का खूब प्रचार किया। आपने असाधारण परिश्रम करके छत्री साहब के गुम्बज पर संगमरमर लगाकर दरबार-साहब की अत्यधिक शोभा बढ़ाई। सम्वत् 2012 वि० में आपने इस पाँच भौतिक देह का परित्याग कर सत्लोक को प्रस्थान किया।[3] अचलदास जी के नाम से 16 पद उपलब्ध हैं। भाव और भाषा दोनों सामान्य ही हैं। एक पद नीचे दिया जाता है—

'सत्य कबीर श्री घीसा राम, बन्दी छोड़ जय घीसा राम।। टेक।।
अनेक बार प्रभु जग में आए, सत्य कबीर कहीं जिन्दा कहाए।।
भर्मे जीव आप सुलझाए, दया करो सुखधाम।। 1।।
तात भ्रात और महतारी, मतलब की है दुनिया सारी।।
तुम हो सतगुरु दीन हितकारी, सुधलो मेरी आठो याम।। 2।।

---

1. सचित्र ग्रंथ साहब, पृ० ऐ०
2. वही, पृ० 118; पद 9
3. वही, पृ० ऐ०

बरती है। इनकी बाणी का तीसरा भाग-शब्द भाग है, जिसमें 94 पद संग्रहीत हैं। ईशरदास जी की बाणी में संकलित घीसा साहब के पदों की संख्या 101 है, जिसमें पदसंख्या 98 तो कबीर का पद 'जलबिच मीन प्यासी' अविकल रूप में ही घीसा जी के नाम से दे रखा है। इसी प्रकार कुछ पद जीतादास जी के हैं, इनके नाम से संकलित तथा प्रचलित हैं। 'श्री ग्रन्थ साहब' में इनके नाम से 93 पद 'पढ़ने की बाणी' के अन्तर्गत दे रखे हैं। इस प्रकार घीसा जी के नाम से प्राप्त साहित्य के अन्तर्गत 34 से 47 तक दोहे, 350 के लगभग साखियाँ तथा 93 या 94 पद (शब्द) हैं।

कछेक साखी तथा पदों को छोड़कर शेष में भाव पक्ष बड़ा सबल है। अनुभूति की प्रामाणिकता है, भाषा सरल तथा प्रवाहयुक्त है। उदाहरण स्वरूप उनका एक पद यहाँ प्रस्तुत है—जिसमें इस नर-नारायणी काया को एक बंगले का रूपक बाँध कर प्रस्तुत किया गया है। पद इस प्रकार है—

"बंगला खूब बना दरवेश, या जल में अलख पुरुष को देख ।। टेका ।।
पाँच तत्व का बंगला कीन्हा, त्रिगुण रंग लगाया ।

1. सचिव ग्रंथ साहब, पृ० 33

इस बंगले का रहने हारा, फेरि बहुरि नहीं आया ।।1।।
इस बंगले के दस दरवाजे, बीच पवन दरवेश ।
बिना फिराया बंगला फिरता, बिन धूनी बिन टेक ।।2।।
जैसी लकड़ी ढाक की, ऐसा यह तन देख ।
वा में केशूरकम रहया, या में पुरुष अलेख ।।3।।
बंकनाल घर कमंद लगाकर, जा पहुँचे वा देश ।
घीसा सन्त देख लिया बंगला, सब घट साहेब एक ।।4।।"[1]

महन्त श्री प्रेमदास जी

प्रेमदास जी घीसा जी के पुत्र थे। सम्वत् 1925 वि० में घीसा जी के पर-लोकगमन पर आप घीसा-सन्त-दरबार, खेकड़ा के प्रथम महन्त बनाए गए। जीता-दास के जीवनकाल में आप पर दरबार का उत्तरदायित्व कम ही था। अध्ययन के प्रति इनकी रुचि थी। कहते हैं कि देहली में किसी पण्डित से इन्होंने 'न्याय-शास्त्रादि' का अध्ययन भी किया था। सम्वत् 1945 वि० में जीतादास की मृत्यु के बाद स्थायी रूप से दरबार-साहब में रहकर प्रेमदास जी अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह सुचारू रूप से करते रहे और अपने पन्थ को सुचारू तथा संगठित करने के लिए निरन्तर प्रयास किया। आप एक विचारशील विद्वान सन्त तो थे ही साथ ही अच्छे वैद्य भी थे। इनकी सहृदयता तथा दयालुता की आज भी सर्वत्र ख्याति है। आपने फाल्गुन शुक्ला अष्टमी सम्वत् 1970 वि० को परलोक प्रस्थान किया।[2] इनके नाम से केवल एक ही पद पाया जाता है जो इस प्रकार है—

'भजन बिना नर ये जान पशु ।।टेक।।
पशु पखेरू विषय वासना में ऐसे नर ये रहत रजू ।।
आशा तृष्णा में फिरत हैं, जैसे रज्जू से बँधे पशु ।।

15:56

'समर्थ जुलाहे के ताणे' के अन्तर्गत—सुरत शब्द पद्धति का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

'शील सुरत की पाण लगाते, क्षमा की गाढ़ चढ़ाते हैं।
प्रेम मगन होय 'रेजा बुनते, शब्द सूत सुलझाते हैं।
सुषमन घर में बुणने लागे, लाभ चौगुणा पाते हैं।।'[3]

---

1. सचित्र, ग्रन्थ साहब, पृ० 8
2. वही, पृ० 44
3. वही पृ० 9

गुरु महिमा का स्पष्टीकरण इन शब्दों से हो जाता है—

'गुरु ईश्वर, गुरु पर ब्रह्म, सतगुरु सबका देव।
गुरु बिन पार न पावई, तातें शरणा लेव।।
गुरु की सेवा जो करै, हृदय ध्यान लगाय।
काल जाल से छूट ही, सत्य धाम को जाय।।[1]

ब्रह्म के स्वरूप की झलक इन शब्दों में मिल जाती है—

'काला धोला है नहीं, सब घट रह्या समाई।
सबरंग बन रहे आपके, बेरंग साहब दूर।
उस सतगुरु की क्या कहूँ, जो आपै नूर जहूर।'[2]

× × ×

'ना छोटा ना बड़ा है, ना है जात अजात।
ना ब्राह्मण ना बाणिया, ना क्षत्री राजात।।
ना काहू का बाप है, ना काहू का पूत।
आप रूप जगत में रमा, बाँधा एके सूत।।'[3]

घीसा जी की माया सम्बन्धी धारणा इस प्रकार है—

'ठगनी ने सब जग लूटा, कोई सन्त विवेकी छूटा।
राजा प्रजा सब ही लूटे, योगी तपस्वी कूटा।
काजी पंडित सब ही लूटे, कहता वेद अछूता।
मृत लोक पाताल लोक में, स्वर्गलोक लौं दौड़ी।
तीन लोक भक्षे ठगनी ने, रच दिया खेल अनूठा।'[4]

घीसा पंथियों के कुछ नियम

घीसा सन्त दरबार खेकड़ा के प्रथम महन्त श्री प्रेमदास जी ने पन्थ को व्यवस्थित करने एवं इसके स्वरूप को वैशिष्ट्य प्रदान करने के लिए कुछ नियमों का पालन आवश्यक ठहराया था। उन नियमों को दूसरे महन्त श्री रामकिशन दास

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

अन्दर की गृहस्थी छूटे बिन सुख नहीं पावे कोई।
'स्वामी आतम' पार होवे जब सतगुरु कृपा होई।

८

सुरत प्रभु नाम में अटकी।
स्वाँस बाँस घर भीतर रोप्या, प्रेम डोर लटकी।
सुरत कलाली चढ़ी बाँस पर, कला करे नट की।
मैं मेरी का बोझ जबर था, तृष्णा की मटकी।
शब्द भकोला दिया घट भीतर, सब-की-सब झटकी।
सतगुरु दे उपदेश उभारी, जनम जनम भटकी।
शब्द सुरत का मेल कराया ममता घर पटकी।
घर ही घर मे जूझन लागी मन से जा खटकी।
उन्मुन तारी लागी गगन में, खबर हुई घर की।
आनन्द ही यहाँ बरस रह्यो है प्रेम बूंद गटकी।
'स्वामी आतम' अपना घर पायो सुरत जाय लटकी।

९

घट ही मे उजियारा, रे साधो!
चेतन ज्योति जगे निरन्तर, नहीं वार नहीं पारा।
बिन नैनों ही दर्शन कीजे, आनन्द रूप अति प्यारा।
अन्तर्मुख मस्त हो रहिए, चले न यम का चारा।
अन्दर-बाहर सर्व निवासी, अखण्ड रूप निरधारा।
'स्वामी बलजीत' भ्रम भय भागे होवे ब्रह्म दीदारा।

१०

ब्रह्म रूप अति झीना, रे मनवा।
स्वाँस स्वाँसा सुरत समोवो बजे सोहं की बीणा।
त्रिकुटी कमल का आसन लगाये, सो योगी परवीणा।
उन्मुन तारी लगे शिखर मे आतम रस तिन पीना।
चिन्मय ज्योति रूप-रंग बिन निज ही मे लख लीना।
'स्वामी बलजीत' मे पद पाया सफल तिनों का जीना।

११

देखो ज्ञान उजियारा, रे साधो।
बिन ही तैल चसे दिन राती अखंड रूप निराधारा।

सुख सागर न्हाओ रे क्यों क्रोध की अग्नि जरो।
'ईश्वरदास' कहता है जमा की क्यों ऐन भरो।

वो देश दिवाना जी पहुँचे कोई सन्त जना।
वहाँ अनहद बाजे जी चल रही सुखमना।
बरखै अमिरत बरखा जी पाया आनन्द घना।
होवे शब्द अखण्डित जी बज रह्या रैन बिना।
झिलमिल ज्योति चमकती जी दरसा तारागणा।
'ईश्वरदास' सुख माने जी गुरु के मैं धन्यधना।

तुम जानत नाहीं रे कहाँ फिर जाओगे।
नाभि कमल से उठके तुम गगन घर पाओगे।
वहाँ अनहद बाजे जी अमर फल खाओगे।
चालें सुखमन नदिया जी जहाँ मल मल न्हाओगे।
बाजे शब्द सोहंगम जी सुन सुन विगसाओगे।
झिलमिल ज्योति चमकती जी सुन्न महल बसाओगे।
'ईश्वरदास' घर जाकर के तुम बहुड नहीं आओगे।

मेरा डेरा कोई नहीं मेरा डेरा एक।
उस डेरे में रम रहे हरदम उसकी टेक।
करना सो तो कर लिया अब करने का नाहिं।
'ईश्वरदास' आनन्द पद पाया इस घर ही माँहि।

थोडा मिलना सुख घना मन मे रहे हुलास।
बहुत मेल मिलाप से होय प्रीत का नास।
होय प्रीत का नास बैर फिर होवे पैदा।
मुख देखन से जाइ पडे आपस मे वैदा।
कहैं 'ईश्वरदास' किसी से करे न जोडा।
असत फकीर की रीति मिलें इस जग से थोडा।

"इला पिंगला सोध विचारो, त्रिकुटी माँही सुरति धारो।
त्रिकुटी छज्जे ध्यान धरी जै, सतगुरु कूँ तो संगी लीजै।
चींटी के पग हस्ती बाँधो, तिल दरवाज़े माँह को साँधो।
तिल दरवाजे जब बड़े, बहु हल्का हो जाय।
चाल विहँगम चालकर, जब पहुँचे निज ठाम ।।[1]

साधक को प्रारम्भिक स्थिति में प्राणायाम का सहारा भी अपेक्षित है। इसके लिए दोनों भौहों (त्रिकुटी) के बीच ध्यान लगाना पड़ता है और भीतर-भीतर सतगुरु का स्मरण भी चलता रहता है। मन रूपी हाथी को सुरति रूपी चींटी से बाँधकर तिलके दरवाज़े में से मार्ग का अनुसंधान (साँधो) करना पड़ता है। इस प्रकिया से अभ्यास करते करते दृष्टि अति सूक्ष्म हो जाती है तब तिलक के ओल्हे (पीछे) ही वह पीव मिल जाता है। यह सारी यात्रा विहँगम यात्रा है, अधर यात्रा है। सुरति को पक्षी की तरह शून्य में ही यात्रा करनी पड़ती है। इस प्रकार साधक साध्य तक पहुँच जाता है। इसी प्रकार के अनेक संकेत इन्हीं बातों की पुष्टि करते हुए अनेक स्थानों पर "हृदय प्रकाश" में मिल जाते हैं। श्री दूलनदास भी इसी प्रकार की साक्षी देते हुए प्रतीत होते हैं—वरन अधिक खुलासा रूप में—

"नाभि नासिका बीच में उल्टी चक्षु फेर।
सतगुरु साहिब सहजैं मिलैं कछू ना लागे देर ।।"[2]

साधक को त्रिकुटी में आँखें पलटकर ध्यान लगाना पड़ता है और इस विधि से तिलधार में दिलदार के दर्शन हो जाते हैं।[3] यही है हरियाणा के कबीर पन्थ में साधना का स्वरूप। इनकी साधना पद्धति में भी सतगुरु, स्मरण, सत्संग तथा विरह इत्यादि का सहयोग तो और निर्गण पन्थों की ही तरह निर्विवाद रूप से अनिवार्य है ही।

ह्रास प्रवृत्ति

हरियाणा के कबीर पन्थ में ह्रास के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ रहे हैं। अनेक कबीर पन्थी ठिकानों पर इसके साधुओं से मिलने पर मुझे इनकी रूढ़िवादिता, संकीर्णता, मौलिकता का अभाव स्पष्ट ही दिखाई पड़ा। ऊपर जैसा संकेत किया जा चुका है देवी-देवताओं के प्रति आस्था से तो ऐसा लगता है कि ये लोग कबीर के नाम पर केवल माल काट रहे हैं। दूसरी बात जो इस पन्थ को नाम शेष करने वाली है वह है राधास्वामी सत्संग का सर्वग्रासी प्रभाव एवं प्रचार। इस सत्संग ने

1. हृदय प्रकाश, भेद बानी सतगुरु, पृ० 35, 43-47
2. ग्रन्थ साहब, (जैतराम जी की बाणी) दूलम दास की बाणी, पृ० 499
3. वही, पृ० 500

दुर्गादास

हरदेदास के शिष्यों में दुर्गादास भी उल्लेखनीय है। इनका जन्म श्री चुन्नी-लाल स्वर्णकार के घर ग्राम भटेड़ा, तहसील झज्जर में मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन संवत् 1973 में हुआ। इनकी माता का नाम दाखाँ देवी था। दुर्गादास जी का कहना है कि ठाकुर कल्लू (भटेड़ा ग्राम के प्रतिष्ठित सत्संगी) की प्रेरणा से 20 वर्ष की आयु में ही मैंने संत हरदेदास से 'उपदेश' ले लिया था। ये तब से अब तक निरंतर भजन-सत्संग में लगे हुए हैं और एक सदगृहस्त का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

---

1. क्यों भूली घर आपना, यह नहीं देश तुम्हार।
फिर पाछे पछताएगी, करले सोच विचार ।।
बिन सतगुर नहीं पाइए, घर अपने की राह।
सन्तों शरणें लागकर, सुरति शब्द समाया ।।
संख असंखों कोस है, तरै पिया का देश।
एक पलक में जाइए, ले सतगुरु उपदेश ।।
सुन्न सल्हैली सैल है, गगन मंडल के माँहि ।।
प्रेम बिना पावै नहीं, कोटि समाधि लगाय ।।
प्रेम बिना पावै नहीं, कोटि समाधि लगाय ।।
रामरतन लौ लागकें, चढ़ो महल मंझार।
फेर न भवजल आइये, यह सुपना संसार ।।—मारग सार, सन्देश

इनकी पत्नी श्रीमती विद्यावती भी सत्संग में पूरी रुचि रखती हैं। दुर्गादास का कहना है कि 'मालिक का मिलना बड़ा सहज है—कोई आओ और हमसे अगम का सौदा करो।'

बाणी

दुर्गादास द्वारा रचित साखियों एवं पदों की एक हस्तलिखित प्रति देखने को मिली जो इनके कथानुसार इनके जीवित रहते प्रकट नहीं होनी चाहिए। इनकी कुछ साखी एवं एक पद यहाँ बानगी के लिए दिए जा रहे हैं जिससे इनकी भाषा, भाव एवं अनुभूति का सहज ही परिचय हो जाएगा—

साखी—दुर्गा सूक्ष्म से सूक्ष्म अति देखा, वार पार नहीं जाकै।
हद बेहद से न्यारा खेले, बिन ही चश्मों ताकै ।।
दुर्गा उड़े गगन में धरणी आवै, खिंड मिंड ना होई।
ऐसा जलवा हमने देखा, समझै बिरला कोई ।।
नैना के तो आगे रहता, हटता नहीं हटाया।
कहै दुर्गा अचरज की बाताँ, वाके धूप न छाया ।।
दुर्गा उलट पलट का खेल है, कोई बिरला जानै।
सिर धड़ की बाजी लगै, तब ही पहचानै ।।
दुर्गा अपना सतगुरु देख ले, अपनी आँख्या माँह।
तिलकै पीछै रम रहया, क्यों तूं भटका खात ।।

पद—तुम बिन मुझ को कुछ ना सुहावै, और चीज ना भावै ।।
अन्दर सिलगै धुंआ ना लिकड़ै, आग नहीं दिखलावै ।।
पल पल तरसूँ, छिन छिन तरसूँ, मेरी मौत नहीं आवै ।।
दर्शन देवो मेरा प्राण पियारा, सभी दुख मिट जावे ।।
गुरु हिरदेदास सतलोक के वासी, अलख अगम दरसावे ।।
दुर्गादास हम अचरज देख्या, देख अंचंभा आवै ।।[1]

मुझे इनके लगभग 50 पद देखने को मिले हैं। हाँ, बातों से ऐसा आभास अवश्य हुआ कि जिस 'भरपूर अगम के सौदे' की ये गारंटी देते लग रहे थे, उतना माल इनकी दुकान में नहीं है। इनके भी कई शिष्य एवं शिष्याएँ हैं, इनमें से एक सूरजदास उल्लेखनीय हैं।

प्रमुख आश्रम

खेखड़ा, नाहरी, पिंडारा, निर्जन, रामपुरा (पंजाब) तथा जगतपुरा (पंजाब) आदि घीसा पन्थियों की प्रमुख गद्दियाँ हैं। और बहुत से नगरों तथा गांवों में घीसा पन्थी आश्रम हैं।

घीसा पन्थ : उपलब्ध साहित्य

(1) सचित्र ग्रन्थ साहिब (घीसा सन्त की वाणी), प्रकाशक : प्राप्ति स्थान —अवधूत चन्दन देव जी, दरबार घीसा सन्त खेकड़ा, सम्वत 2016, पृ० 164

(2) श्री ग्रन्थ साहेब, श्री 108 घीसा सन्त जी महाराज तथा उनके शिष्य जीतादास जी कृत, प्रकाशक—प्राप्ति स्थान : श्री महंत अचलदास जी, दरबार घीसा सन्त, खेकड़ा मुद्रक : बापू प्रिंटिंग प्रेस, बल्लीमारान, देहली, संख्या 2016, पृ० 300 (व्यक्तिगत संग्रह)

(3) 'वाणी' (पंजाबी) सतगुरु ईशरदास जी महाराज, प्रकाशक : महन्त नरंजनदास साधू, पंजाबी (घीसा पन्थी निवासी), डेरा रामपुरा, पिंड मेघवाल, पंजाब ; नवीन प्रेस, टांडा रोड, जालन्धर, अगस्त, 1958, पृ० 323 (व्यक्तिगत संग्रह)

(4) श्री 108 स्वामी द्योतरामजी, शुभकर्म—ज्ञान प्रकाश, प्रकाशक भक्त सन्तलाल, जुगलाल, निरंजनवासी ; सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय, देहली, सं० 1981 वि० पृष्ठ 248 (व्यक्तिगत संग्रह)

(5) श्री 108 स्वामी द्योतराम जी, पंचयज्ञ विधान,—प्रकाश, प्रकाशक : सन्तू तथा मामला, निरंजन निवासी ; अम्बिका प्रेस, भिवानी, सम्वत् 1985 ; पृष्ठ 226 (व्यक्तिगत संग्रह)

(6) 'सतगुरु के अज्ञात प्रेमी के पक्ष,' सम्पादिका : सौभाग्यवती गुप्ता, प्रकाशक : श्री चौ० भगवान सिंह जी तथा विद्याधर जी गुप्ता, हरिहर प्रेस, चावड़ी बाजार, दिल्ली, पृष्ठ 72 ; प्राप्ति स्थान : श्री सन्त आश्रम वासी, (व्यक्तिगत संग्रह)

(7) 'सन्त बीणा', सम्पादिका—सौभाग्यवती गुप्ता, प्रकाशक—महन्त समन्दरदास, श्री सन्ताश्रम नाहरी, हरिप्रेस, चा० बा० दिल्ली, सन् 1968, पृष्ठ 308 (व्यक्तिगत संग्रह)

(8) 'सन्त शब्द 'हंस', सम्पादिका—सौभाग्यवती गुप्ता, प्रकाशक : महन्त समन्दरदास, श्री सन्ताश्रम, नाहरी हरिहर प्रेस, चावड़ी बाजार देहली सन् 1968, पृष्ठ 210 (व्यक्तिगत संग्रह)

(9) श्री घीसा सन्त जी का जीवन चरित्र एवं बाणियाँ, प्रकाशक : आचार्य जितेन्द्रदास महन्त, बन्धु प्रिंटिंग प्रेस, खेकड़ा (मेरठ), जून, 1900, पृ० 120 प्राप्ति स्थान : घीसा सन्त दरबार, खेकड़ा (व्यक्तिगत संग्रह)

(10) जीवनगाथा, धर्मवीर कौशिक, प्रकाशक : समन्दरदास जी महाराज, प्रिंट आर्ट नवीन शाहदरा, सन् 1974, प्राप्ति स्थान—उपरोक्त, पृष्ठ 232 (व्यक्तिग संग्रह)

16:19

यहाँ दृग महल में 'दो दल वाले त्रिकुटी कमल की ओर स्पष्ट संकेत है। गोपालदास जी का एक पद भी उपर्युक्त बात की पुष्टि करता है।

पद—

सुमरण बाण बान चले, सुमरण में लौ लाय ।।
सील सुरत के नेम करके, नासा अग्र जमाय ।।
नाभि कंवल ने सोध बावरे, मेर डंड ठहराय ।।
त्रिकुटी ऊपर चढ़कर देखो, जोत झिलमिली वाय ।।
दास नारायण कहैं दास गोपाला, चित अपना ठहराय ।।[1]

बेनामी पन्थ में बेनामी तत्व

बेनामी-पन्थ में 'बेनामी' उस परम तत्व का ही समशील है जिसे सन्त लोग— ब्रह्म, सतपुरुष इत्यादि के नाम से जानते हैं—

"बेनामी सत्य स्वरूप, सच्चिदानन्द आनन्दमय।"[2]

बेनामी सत्य स्वरूप है, सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है।

बेनामी कोली कुर्बान, जिनके बना विहंगम ताना।
बेनामी कोली अविनाशी, नाम धरे की जग में हाँसी ।।[3]

उस आलौकि ताना बुनने वाले कोली (कोरी-जुलाहे) बेनामी पर कुर्बान हो जाऊं। यह बेनामी कोली सृष्टि का कर्त्ता, अविनाशी है। इसका भिन्न-भिन्न नाम-करण संसार में उपहासास्पद है, वह तो अनाम है, बेनाम है। बेनामी जी को इस कलियुग में निष्कलंक अवतार तो उनके गुरु कक्कड़ जी ने ही फर्माया था—

माया मद अहंकार मन, छोड़े सकल विकार।
बेनामी कलि बीच में, निष्कलंक अवतार।"[4]

बेनामी जी स्वयं अपना परिचय देते हुए कहते हैं—

राम जात को क्षत्री है, कृष्ण है जात अहीर।
बेनामी बेटो जाट को, भेटे दास कबीर ।।[5]

यहाँ बेनामी जी अपनी तुलना, जाति परिचय देकर, राम और कृष्ण से करते हुए प्रतीत होते हैं, कबीर तो इन अवतारादि से ऊपर हैं ही। राम और कृष्ण से तो

1. गोपालदास, पद 83
2. बेनामी बोध, पृ० 6
3. वही, पृ० 7
4. वही, पृष्ठ 12
5. वही, पृ० 74

सुरत शब्द निश्चय करो, जब आत्म सुध होय।
चार तत्त न्यारे करे, अनहद की धुन होय।।[1]

संकेत को स्पष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं—

प्राणायाम का फल यही जो कोई साधै याहि।
प्राण पत्र मेरे करै, करे नाशका माँहि।।
ज्योति झिलमिली खुदरती (कुदरती) देखो मस्तक माँहि।
कोई कोई साधू चढ़ गए। समता माँहि समाँहि।।[2]

उपर्युक्त संकेत से सुरत-शब्द-साधना का स्वरूप स्पष्ट ही है। एक बात और अधिक यहाँ जो दिखाई देती है वह है प्राणायाम पर आग्रह। स्वाँसों को प्राणायाम द्वारा संयमित करते हुए सुरत-शब्द-साधना सम्पन्न करना ही यहां प्रकट होता है। इसी पद्धति से मस्तक में कुदरती ज्योति की झलक मिलती है। इसकी साधना करने वाला साधु समता (पद) में समा जाता है। कुछ और साक्ष्य होते हैं। प्राणायाम को एक ही मात्र महत्व देते हुए बेनामी जी कहते हैं—

बेनामी के मिलन की, अक्कल दई बताय।
प्राणायाम को साध ले, तब बेनामी पाय।।[3]

यहां केवल प्राणायाम-साधना से ही बेनामी-मिलन सम्भव बताया गया है। एक स्थान पर बेनामी जी लिखते हैं—

गुदा नेत्र को ढक लिया, ढके कान के साल।
रसना ते सुर खेंच के, ब्रह्म रंध्र को चाल।।
प्रान पवन के मेल ते, भंवर गुफा के बीच।
अनहद के बाजे बजैं, ये हंसन की रीत।।[4]

उपर्युक्त युक्ति को वे अन्यत्र शब्दभेद से इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं—

---

1. बेनामी बोध, पृ० 68
2. वही, पृ० 68
3. वही, पृ० 69
4. वही, पृ० 70

सुन नूरी मन बात पियारे, बेनामी का शब्द परख।
प्राणायाम का साधन करके, धंस काया में रत्न परख।।
पद्मासन का साधन करके, मेरुदण्ड को सीधा कर।
दोनों नेत्र करो इकठ्ठे, धरो नासिका के ऊपर।।
सुरत खेंच कर घट भीतर ले, ऊंकार का सुमिरन कर।
ज्ञान दृष्टि ते अग्नि प्रगट कर, करम धरो इसके भीतर।।[1]

इसी बात की पुष्टि एक अन्य स्थान पर भी की गई है—

जो तोय आशा राम मिलन की, पद्मासन का निश्चय कर।
मेरदण्ड का साधन करके, गरदन के ताँई सीधा कर।।
दोनों नेत्र करो इकट्ठे, धरो नाशका के ऊपर।।[2]

गुदा नेत्र को ढकने, मेरुदण्ड (रीढ़) को सीधा कर ऐसे तनके बैठ ताकि जिसमें गरदन भी सीधी हो, आदि का बार-बार उल्लेख करने का तात्पर्य पद्मासन पर आरूढ़ होकर दृष्टि को नासिकाग्र भाग पर स्थिर कर, प्राणायाम का साधन और ओंकार का आभ्यन्तरिक जाप ही इनकी साधना की युक्ति प्रतीत होती है।

यहाँ थोड़ी शंका सी पैदा होती है जिसका समाधान जरूरी है। यह जो बार-बार पद्मासन लगाने तथा नेत्रों को नासिका पर धरने की बात कही जा सकती है, इससे तो सन्तों की सहज साधना वाली नहीं वरन् पक्की योगा-साधन वाली बात ही प्रकट होती है। सन्तों की सुरत-शब्द अभ्यास में नेत्रों को नासिका पर नहीं धरा जाता वरन् उलटा हो जाता है। क्योंकि सन्तों का उपदेश (युक्ति-संकेत) होता ही त्रिलोकी से ऊपर का है। उसमें दृष्टि को ऊर्ध्वमुख कर उलटना होता है। प्राणायाम का महत्व तो प्रायः सन्तों में प्रारम्भिक स्थिति में अवश्य कही है। उनका स्वांस-साधान एक सोपान है, किन्तु सभी कुछ प्राणायाम और पद्मासन नहीं है। यह नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि करने या स्थिर करने वाली बात सन्तों की नहीं योगियों की है। सन्तों की यात्रा का आरम्भ ही 'दो दल घाटी' से होता है। यह दो दल घाटी 'त्रिकुटी स्थान है, जहाँ दृष्टि स्थिर की जाती है। बीच में हो सकता है कि कहीं पंथिक विद्वानों ने फेर-बदल कर दी हो, क्योंकि बेनामी जी की साधना सन्तों की साधना ही है। एक स्थान पर बेनामी जी का संकेत हमारी धारणा की पुष्टि करता प्रतीत होता है—

अमर लोक दृग महल है, दो पांषडि के बीच।
नाम लेत हँसा तिरे, काल नवावे सीस।।[3]

---

1. बेनामी बोध, पृ० 141
2. वही, पृ० 141
3. वही, पृष्ठ 72

निहाली बाई

ये श्री रामसिंह 'अरमान' की शिष्या और संत ताराचन्द जी की बुआ थीं। इन्होंने ताराचन्द जी के पालन पोषण में बड़ी सहायता की थी। ये बड़ी सात्विक वृत्ति की महिला थीं। साधु एवं सत्संग में इनकी विशेष रुचि थी। इनके नाम से उपर्युक्त अनुभव प्रकाश में 7 पद आए हैं। एक पद यहाँ दिया जा रहा है जिससे इनकी आध्यात्मिक गतिमति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

शब्द धुन को सुनो रे मेर भाई ॥ टेक ॥
सन्त गुरु से तुम लेके नाम तुम शब्द की करो कमाई।
अनहद बाजे घट में बाजैं सुन ले ध्यान लगाई ॥ 1 ॥
सहस कंवल दल घंटा बाजै, पहली मंजिल लाई।
बंकनाल के रास्ते चालो, पकड़ शब्द की राही ॥ 2 ॥
त्रिकुटी मंडल ओहुंग सोहुंग देते शब्द सुनाई।
त्रिवेणी की संगम में मेरी सुरता मल मल न्हाई ॥ 3 ॥
सुन्न माहा सुन्न बंसी की धुन सुन ले घर के माँही॥
भंवर गुफा पी अमीरस प्याला, सार शब्द मिल जाई ॥ 4 ॥
सतलोक है मुक्तिधामा जिसने सुरत चढ़ाई।
इसी रास्ते साधन करके पहुंची निहाली बाई ॥ 5 ॥[1]

रूपचन्द चौहान

ताराचन्द जी के शिष्य रूपचन्द सरल नामक ग्राम के निवासी हैं और मणियाँरी का व्यवसाय करते हैं। इनकी एक रचना दो भागों में प्रकाशित हो चुकी है—'सतगुरु की दात' पहला भाग तथा दूसरा भाग। इस रचना में लगभग 200 पद हैं। कुछ साखियां अंग रूप में भी हैं। पहला भाग मुझे नहीं मिला। उसमें केवल शब्द ही बतलाए गए हैं, 90 के लगभग। दूसरा भाग जो मुझे प्राप्त हो सका है उसके आरम्भ में लगभग 60 साखियां 'सतगुरु महिमा का अंग' के शीर्षक से हैं। जिनमें सन्त ताराचन्द जी के प्रति इनकी श्रद्धा की अभिव्यक्ति है तथा सामान्य परम्परागत गुरु महिमा सम्बन्धी साखियां हैं। शेष 102 पद हैं। अन्त में विनती तथा आरती है। एक पद इनके कथ्य की बानगी के लिए प्रस्तुत हैं :—

तीसरे तिल पै लगाले सुरती ॥ टेक ॥
पहने बावैं को एड़ा पींगला, सुखमन सुख की पुरती ॥ 1 ॥
झीनी सी धुन में ध्यान लगा ले, निकले आवाज कुदरती ॥ 2 ॥

1. ताराचन्द, अनुभव प्रकाश, पृ० 194

देख सुहानी रचना अपने घट की, करोरे मन फुरती ॥ 3 ॥
सुरत शब्द का ये खेल निराला, नीचे आकाश ऊपर धरती ॥4॥
जैसे मकड़ी चढ़ै तालपे, घट से ही प्रगट करती ॥ 5 ॥
गुरु ताराचन्द कहै गुप्त भेद है, घर में ही पूरन भगती ॥ 9 ॥[1]

महर्षि शिवव्रत लाल के एक अन्य शिष्य पंडित द्वारकादास की दो रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक सतगुरु कथा में महर्षि शिवव्रतलाल को अपना गुरु कहा है[2] किन्तु बादली वालों का कहना है कि ये बादली के कबीरपन्थी सन्त हरदेदास के शिष्य थे।[3] बाद में राधा स्वामी मत में दीक्षित हो गए हैं। कहना कठिन है कि किस फांसवश ये इधर आ गए। ये राधास्वामी पन्थी पण्डित जी को अवमानित भी करते रहते हैं। जो हो, हमें इन्हें इन्हीं की साक्षी पर राधास्वामी पन्थी ही मान लेते हैं।

1. गगन मण्डल में अलख जगावरे।
जब जोगी जानूँ मैं तोकूँ, सुन सिखर पर जा मंठ छाव रे।।
पहले संजम साध जुगत तूँ, प्रान अपसन की सन्ध मिलावरे।।
भूचरी, मुद्रा जासूँ कहिए, कमल कमध पर पव चढाव रे।।
चाचरी मुद्रा नैन मंझारी, दिष्ट नासिका पै ठहराव रे।।
अचरज कौतुक बहु दरसावै, रिद्धि सिद्धि लखि कर ले चावरे।।
खेचरी मुद्रा रसन बढ़ावै, भंवर गुफा में जाप फिरावरे।।
अमृत उतरे पीव मगन हो, जोति खुले जहाँ दर्शन पावरे।।
अगोचरी मुद्रा श्रवण बासा, शब्द-सुरति की गाँठ लगाव रे।।
परम हंस अनहद कूं जानो, अनहद मिल अनहद हो जावरे।।
उन्मनी मुद्रा दशमें द्वारे, लगे समाधि सकल बिसराव रे।।
सिद्ध साधक दोऊ करनी त्यागें, रहे न कोई दूंजा भाव रे।।
पाँचों मुद्रा ये तुम पहिरो, झूठी मुद्रा खोल बगावरे।।
ज्ञान जटा शिर ऊपर राखो, मुक्ति पंथ को मन से धावरे।।
या साधन कूं कर हित सेती, जीव ब्रह्म की दुई मिटावरे।।
रामरूप चरणदास कहते हैं, तब जोगेश्वर साँच कहाव रे।।
—स्वामी रामरूप कृत मुक्तिमार्ग, पृ० 256 ; 57 ; पद 79

2. स्वाँस संभालो रैन दिन, जो तुझ मिलना पीव।
स्वाँस संभाले ब्रह्म है; बिना संभाले जीव।।
—ग्रंथ साहिब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ० 36 ; दोहा-1

3. वही, पृ० 320

तथा कलश कुंभा (कुंभक प्राणायाम) भरने की बात करते हैं।[1] इनकी बाणी में अनेक स्थनों पर इस प्रकार के योग-परक विवरण मिलते हैं। संतों की भक्ति में सबसे महत्वपूर्ण स्थान गुरु को दिया जाता है। गुरु तो गोबिन्द से भी बड़े हैं। क्योंकि गोबिंद ने तो आत्मा को भव-बन्धन में डाल दिया, जबकि गुरु इस जीव को मुक्त करने वाले हैं।[2] सतगुरु-शब्द का सन्देश सुनकर सभी भ्रम तथा दुःख द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं और सहज ही साँई के देश में प्रवेश हो जाता है।[3] इस संसार-सागर में सतगुरु जहाज के समान तारक हैं। इनकी संगति बिना मान-मर्यादा वश व्यर्थ ही यहाँ डूब जाते।[4] गुरु पहचान कर ही धारण करना चाहिए। संसार में कामी, क्रोधी तथा लोभी गुरु तो अनेक मिल जाएंगे। वास्तव में गुरु तो वही है जो अमरपुरी पहुंचा दें।[5] सतगुरु के सत्संग से तन-मन पूर्णतया बदल जाते हैं। उनके दर्शन से कीट भृंग बन जाता है।[6] भक्ति भाव के सातत्य के लिए सत्संग अनिवार्य है। तथ्य तो यह है कि सत्संग ही भवसागर पार करने की एक-मात्र नाव है। मुक्ति का अन्य मार्ग नहीं है और आप कितने ही उपाय करें।[7] इसी से सुख मिलता है। भक्ति एवं ज्ञान का प्रकाश भी सत्संगति द्वारा ही पाया जा सकता है।

---

1. सुरत निरत का पन्थ, अधर में पग धरना।
तन मन सीस चढ़ाय, सही जीवित मरना।।
उलट खेचरी लाय, कलश कुंभा करना।
चित्त चाँचरि दिल मांहि, दरस दूलह करना।।
कहने की नहीं बात, जहूर अजर जरना।
अकल अपिंडी प्राण, पिंड किसका भरना।।
मंगल बिद्या सुन्न सैल, उलट पहुमी परना।
सुरत निरत मन पौन, भजन कीजै करना।।
गरीबदास गलतान, पुरुषसाहिब बरना।।
—ग्रं० सा०, श्री गरीबदास जी की बाणी पृ० 806

2. नितानन्द गोबिन्द से सत्गुरु हैं अधिकार।
गोबिंद बाँध्या जीवड़ा, गुरु छुड़ावनहार।।
—स्वामी नितानन्द कृत सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 7 ; 73

3. वही, पृ० 10 ; 100
4. वही, पृ० 10 ; 103
5. वही, पृ० 11 ; 113
6. वही, पृ० 11 ; 119
7. वही, पृ० 209 ; 33

२ दरिया बिरही साधु का तन पीला मन सूख ।
रैन न आवे नींदडी दिवस न लागे भूख ॥

—रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ४९

३ शब्द प्रकाश (रामचरण) छ० ४–७

अज्ञानान्धकार को दूर कर देता है। भ्रम कर्म और संशय का नाश हो जाता है[१]। भवताप से उद्विग्न साधक मानसी गंगा की हिलोरों में तृप्त हो जाता है[२]।

सुरति-शब्द योग का तीसरा सोपान नाभि प्रदेश में है। नाभि कमल के भीतर भ्रमर गुंजार किया करते हैं जिनका न कोई रूप है न वर्ण। वह अगम और अपार है[३]। यहां 'भवरों की गुंजार से दरिया साहब का तात्पर्य सम्भवतः शब्द' की गुंजार से है। रामचरण के अनुसार शब्द की गुंजार से साधक की रग रग में जागृति आ जाती है। उसके रोम रोम से अनेक प्रकार की राग रागिनियां निकलने लगती हैं। नौ सौ नाड़ियां एक साथ ही मंगल गाने लगती हैं। इसी स्थान पर मन भ्रमर को परमानंद की प्राप्ति होती है[४]।

नाभि के पश्चात् शब्द इडा पिंगला या सुषुम्ना के त्रिवेणी संगम पर स्नान करके निर्मल हो तीनों लोकों से पृथक् चौथे देश में प्रवेश करता है[५]। वह मेरुदण्ड के नीचे उतरकर नाद की खिड़की खोलता है, और वहां में लीन हो जाता है[६]। सन्तों

---

१ शब्द ब्रह्म हिरदै किया वासा।
ज्यूं रैण अंधेरी चंद प्रकाशा॥
भ्रम कर्म सांसो गयो भागी।
हिरदै ध्वनी अखंड लिव लागी॥

—नाम प्रताप (रामचरण), छ० ५०

२ जन दरिया हिरदा बिचे, हुआ ज्ञान परकाश।
हौद भरा जहं प्रेम का, तहं लेत हिलोरा दास॥

—रामस्नेही सन्तवाणी पृ० ५४

३ नाभि कंवल के भीतरे, भवर करत गुंजार।
रूप न रेख न बरन है, ऐसा अगम विचार॥

—रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ५४

४ शब्द गुंजार नाड़ि सब जागे, रोम रोम में होई रही रागे।
नौसै नारीमंगल गावैं तहां मन भंवरा अति सुखपावैं।

—नाम प्रताप छ० ५२–५३

५ इडा पिंगला सुषुम्ना, मिले त्रिवेणी घाट।
जहां न्हावे जल झूलिके, निर्मल होय निराट॥
अब त्रिवेणी छाड़ के, किया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अलग सुख यो कोइ चौथा देश॥

—अणभै वाणी (नामप्रताप) पृ० २०७

६. नाभि कंवलसे उतरा, मेरुदण्ड तल आय।
खिड़की खोली नाद की, मिला ब्रह्म से आय॥

—रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ५४

संत लाधूनाथ

मेरा घर क्या बूझो भाई।
काल जम्माँ के हाथ नहीं जाऊँ जोती में जोत सँमाई॥
आत्म तंत खोजकर देख सत गुराँ सेन बताई।
पाप कल्पना सारी धुपगी इमरत प्याला पाई॥
बंकनाल में रमणी रमिया ध्रु लग ख़बर मंह गाई।
अखी नाम का धोरा लागा कमी रही नहीं काई॥
अजब नगर की ऐसी महिमा मुख से कही नहीं जाई।
अधर छत्र वहाँ जोगी सूता काल मौत नहीं खाई॥
लाधूनाथ आप से मिलिया देव अखंडी ध्याई।
रँग नहीं रूप नहीं छाँया आवागिवण नहीं आई॥

20:53
exoticindiaart.com/book

दाया स्वर है पिंगला सूर्य नाम कर चीन ।
दोनों बिच है सुषुणा योगी लखे प्रवीन ॥

षटचक्र में कहत हूँ

षटचक्र में कहत हूं सुनिये देकर ध्यान ।
प्रथम मूला धार है स्वाधिष्ठान बखान ॥
स्वाधिष्ठान बखान तृतीय मणिपूरक भाई ।
अनहद विशुद्ध आज्ञा गोपीनाथ कहाई ॥
देव शक्ति अरू बीज जप नक्शे से लो जान।
षटचक्र मैं कहत हूं सुनिये देकर ध्यान ॥

मोडी नाथ जी की वाणी

श्री मोडी नाथ जी के गुरु श्री उदयनाथ जी । मोडीनाथ जी के शिष्यों में श्री विद्यानाथ जी अजमेर क्षेत्र में प्रसिद्ध नाथ संत हुये है । अस्तु, मोडी नाथ जी की एक वाणी प्रस्तुत कर रह हैं -

// सब घट माय समाया //

साधो भाई सत चित आनन्द पाया ।
वाके भ्रम कर्म नहीं काया । टेर ।
अखे पुरुष निज आनन्द चेतन, शुद्ध स्वरूप अथाया।
आर पार अखण्ड अविनासी, निरालम्ब निरदाया । 1 ।

विष्णु रुप तुम स्वामी, कलियुग अवतारी ।
सुर नर मुनिजन ध्यावे, जावे बलिहारे ॥ ओम
दुख दलजी का तुमने, पल भर में टारा ।
सरजीवन भाणू को, तुमने कर डारा ॥ ओम
नाव सेठ की तारी, दानव को मारा ।
पल में कीना तुमने, सरवर को खारा ॥ ओम
हाकिम का किया मान भंग, ओ पीरो को परचा।
भक्ति दी हरजी को, जन-जन में चर्चा ॥ ओम
काम क्रोध मद लोभ हटाकर, भक्ति भाव भर दो।
नित्य बसों हिय मेरे, ऐसा वर दे दो ॥ ओम
श्री प्रभु रामदे की आरती, जो कोई नर गावे।
नंद कहे सुख सम्पत्ति, वाके घर आवे ॥ ओम

श्री रामदेव जी की आरती

पिछम धरा सूं मारा पीर जी पधारिया, घर अजमल अवतार लियो।
लांछा सुगना बाई करे हर री आरती, हरजी भाटी चंवर ढ़ोले ॥टेर ॥
वीणा रे तंदूरो धणी रे नोपत बाजे, झालर री झणकार पड़े ।
लांछा सुगना ॥ १॥
घिरत मिठाई हरि के चढ़े रे चूरमा, धूपो री महकार पड़े ।
लांछा सुगना ॥ २॥
गंगा जुमना बहे रे सरस्वती, रामदेव बाबो स्नान करे ।
लांछा सुगना ॥ ३॥
दूरां रे देशा रा बाबा आवे थारे जात्री, दरगा आगे बापजी ने नमन करे।
लांछा सुगना ॥ ४॥
हरी शरणों में भाटी हरजी बोले, नवों रे खंड़ो में निशान घुरे।
लांछा सुगना ॥ ५॥

Products related to this iter

20:54

सैन गुरुजी समझ आपकी, खुले भ्रम का ताला ।
भूल रात ने काढ़ो परे री, होवे चित्त में उजियाला ।3।
शब्दा लाग्या सब दुःख भागा, मिल्या समद में नाला।
देव प्रकाश पुकारे हेला, समझे कोई गुरु का बाला ।4।

जोत में जोत समानी

ऐसे मेरे सतगुरु भ्रम मिटाया ।
अगम निगम दो शाखा अनादि, गुरु वचना थिर थाया ।टेर।
मूल कंवल में खीची पाखंडी, उल्टी अपान चलाया।
षट चक्र का छेदन कीना, विषय भाव हटाया ।1 ।
निर्गुण नाम नाभि में निरख्या, हृदय प्रेम से ध्याया ।
कंठ कंवल में मैथुन कीना, अनुभव बाहर आया ।2 ।
ईड़ा पिंगला उल्टी त्रीवेणी, सुखमण देश दिखाया ।
बंकी छेक चढयो गगन में, नौबत धूरे सवाया ।3 ।
गगन मंडल में करी चढ़ाई, बिन पर पंछी उड़ाया ।
मान सरोवर मोती मुक्तां, वहां हंसा सुख पाया ।4 ।
गुरु गम निज ऐसी जानी, निर्गुण निरुप लखाया ।
कहे देवनाथ सुनो भाई साधो, जोत में जोत समाया ।5।

अनुभव युक्ति पाई

गुरा सा महिमा आपकी गाई ।
आर पार थाग नहीं थारो, मुख से वरणी न जाई ।टेर ।

कटी चौरासी मेरी

(राग पद आसावरी)

साधो भाई, बेगम की गम हेरी ।
वाणी वेद गीता सब शाखा, सतगुरु सुमति फोरी । टेर ।
मूल कमल घर बन्ध लगायो, उठी नाभि में लहरी ।
उस लहरी में तरंगा चाले, गगना में जाय ठहरी । 1 ।
सूरज पलट कर आयो चन्द्रमा, सुखमण कुंची फोरी।
थट त्रिवेणी ध्यान जमायो, होई रोशनी गहरी । 2 ।
दस दरवाजा की कर तलासी, दीनी नगर में फेरी ।
रोम-रोम रग-रग में व्यापक, नित चेतन निसकारी । 3 ।
सतगुरु सार समझ कर लीनी, ऐसी जरना जारी ।
कहे देवनाथ सुनो भाई साधो, कटी चौरासी मेरी । 4 ।

योग को गेलो

साधो भाई, हेरो योग का गेला ।
भूल भरमना री छोड़ो भावना, मिलो संता के भेला । टेर।
इन काया में लाल नीपजे, आद अनादि सन्त कहेला।
बड़े पुण्य से मिल्यो मानखो, ना करो पारस का धेला । 1 ।
नाभ कंवल की करो सफाई, धोवो हृदय का मैला ।
पांच प्राण एक घर लावो, राह त्रिवेणी का जोला । 2 ।

21:24
खोजिए

कर पलव साषा बीचारे, अपना जनमु न जूऐ हारे।
असुर नदी का बंधै मूलु, पछिम फेरि चडावे सूरु।
अजरु जरे सु निझरु झरै, जगंनाथ सिउ गोसटि करै॥
चउ मुष दीवा जोति दुआर, पलू अनंत मूलु विचकार।
सरब कला ले आये रहै, मनु माणकु रतना महि गुहै॥
मसतकि पदमु दुआलै मणी, माहि निरंजनु त्रिभवण धणी।
पंच सबद निरमाइल बाजै, ढुलके चंवर संष घन गाजे।
दलि मलि दैतहु गुरमुषि गिआनु, बेणी जाचै तेरा नामु॥

स्रोत :

पुस्तक : संत काव्य-धारा (पृष्ठ 80) **संपादक** : परशुराम चतुर्वेदी

इड़ा पिंगुला अउर सुषुमना, बसहिं इक ठाईं।
वेणी संगमु तंह पिरागु, मनु भजनु करे तिथाईं॥
संतहु तहाँ निरंजनु रामु है, गुरगमि चीन्है बिरला कोइ।
तहा निरंजनु रमईआ होइ॥
देवसथानै किआ नीसाणी, तहँ बाजे सबद अनाहद वाणी।
तहँ चंदु न सूरज पउण न पाणी, साषी जागी गुरमुषि जाणी॥
उपजै गिआनु दुरमति छीजै, अंम्रित रस गगनंतरि भीजै।
एसु कला जो जाणै भेउ, भेंटै तासु परम गुरदेउ॥
दसम दुआरा अगम अपारा, परम पुरष की घाटी।
ऊपरि हाट-हाट परि आला, आले भीतरि थाती॥

इड़ा-गंग, पिंगला-जमुन

दुलारेलाल भार्गव

इड़ा-गंग, पिंगला-जमुन, सुखमन-सरसुति-संग।
मिलत उठति बहु अरथमय, अनुपम सबद-तरंग॥

स्रोत :

पुस्तक : दुलारे-दोहावली (पृष्ठ 11) **रचनाकार** : दुलारेलाल भार्गव
प्रकाशन : गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ **संस्करण** : 1935

संबंधित विषय

भक्ति योग अनहद

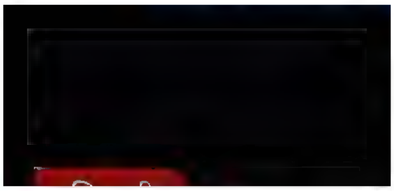

हिंदी क्षेत्र की भाषाओं-बोलियों का व्यापक शब्दकोश : हिन्दवी डिक्शनरी

‘हिन्दवी डिक्शनरी’ हिंदी और हिंदी क्षेत्र की

12:38

प्रसन्ती बाणी 13

हंसला कायर मत पड़ भाई
कायर मर्द काम नहीं आवै सभी काम के माही ।।टेर ।।
दया ढाल सिवरणका सेला ज्ञान घोड़े चढ भाई।
चार चोर का तोड़ मोरचा दुविधा दूर भगाई 1
गुरगम दारु नाम पलीता सुखमण तोप झुकाई।
शब्दका गोला चढया शिखर में निशाने चोट लगाई 2
भर्म भुर्ज नै तोड़ परे कर जम को मार हटाई।
सत का राज संतोष की नगरी फिर रही राम दवाई 3
लाधुनाथ मिल्या गुरु पूरा साची सैन बताई।
कृपानाथ जाग जा सूतो काल फौज चढ़ आई 4

प्रसन्ती बाणी 14

गुरां म्हाने दीनी सैन साची,
सुरत हमारी चढ़ी शिखर घर, नहीं पड़े पाछी ।।टेर ।।
नाभ कमल से शब्द उठाया, उल्ट तीर खांची
सांसो सांस गगन में धरिया नहीं दीनी लांची।
गैबी घटा बिजलिया चमके घमट घोर माची
बिना बादल मेहवा बरसे बरसे बूंद आच्छी 2
रुम-रुम भया तरनाटा राम रंग रांची
कली-2 में इमीजल छायो अधर आमली पाची 3
सोहनी शिखर में सतगुरु भेटया ढली सेज माची
कृपानाथ गुरुचरण में लगन डोर खाँची 4

प्रसन्ती वाणी 11

ाधो भाई गुरा सा सैन बताई
ानी सैन, समझ कर लीनी, रात दिन लिवलाई ।।टेर।।
सिद्ध आसण पर माला फेरी नागन जाय उठाई।
ांच प्राण बस कर, राख्या उल्टि पवन चलाइ।।1।।
ाभी नाम, द्वादस छेक्या, बंकनाल घर्रराइ।
ो घट घाट सांकड़ी सेरी, सुखमण धवण धुकाई।।2।।
रु डंड समझ कर चढिया, भंवर गुफा ठहराई।
ुरत शब्द का मेल हुआ, जब सून में सेज बिछाई।।3।।
ाधूनाथ मिल्या गुरु पूरा, अमर जोत दरसाई।
ृपानाथ समझ कर देखी, सब घट में इकराई।।4।।

गणेश आरती 12

जानन्द देव बढ़ा निराकारी
ाभी संत मिल तुझे मनावें उतरे भवजल पारी ।।टेर।।
ाँझ सुबह होवे आरती, दर्शन दीजें मुरारी।
िद्ध सिद्ध नारी हाजर ऊबी करै आरती थारी 1
ाम्बी सूड ललकत चालै, मूस्से की असवारी।
ार भुजा सिर चन्द बिराजे, नींवण करे संसारी 2
ाथ जोड़ कर आज्ञा मांगू मेहर करो मोहे भारी।
जमड़ा काल नेड़े नहीं आवे खोलों मुक्त की बारी 3
लाधुनाथ गुरांसां कृपा कीजै, सुणो नी अरज हमारी।
कृपानाथ गजानन्द ध्यावै कीजै पार कनारी 4

जरण को थाल गुरां, सुखमन झारी।

लिये खड़ी है गुरु, सूरत पियारी ॥2

पांचू मिली पचीसूं नारी।

रलमिल कर रही मंगला चारी ॥3

लाधुनाथ गुरु आप निराकारी।

कृपानाथ जी शरण तुम्हारी ॥4

गुरु महिमा

आज म्हारे घर सतगुरु आया।

सन्त दवारे आविया म्हारे, माच्या शब्द घमासान रे।
चरण धोय चरणमत पिऊं मिटी कुबध का खाण रे ॥2॥
घणो हरख में जाजम ढालूं, सतगुरु बैठया आण रे।
पांच सखी मिल करें आरती, सत की चादर ताण रे ॥3॥
भाव का भोजन करुं न, प्रेम घृत बरताण रे।
शीश नरेला दिक्षण दीनी तन मन दीना जाण रे ॥4॥
लाधुनाथ गुरु भेटिया, चूकिया जम का डाण रे।
कृपानाथ संता के शरणै, बैठयो मोजा माण रे ॥5॥

प्रसन्ती बाणी 22

अवधु कैसे मुक्ति जाणी

तुम को सतगुरु पूरा मिल्या तो गुप्त भेद परखाणी ॥

किस बीज से मंडिया बजार, कौन बीज से प्राणी।

धो भाई

ऊ अखन्

। की सु

किस देव की साखा लागै, किसी बिधी बोलो बाणी ॥1॥

कैस नगर में घलया अचम्भा, कौन नगर में समाणी

किस नगर में सूरत शब्द है, किस बिद्ध जोत जगाणी ॥2॥

कितनी दूर से काल पसारा, कितनी दूर में हाणी

कहां लग पांचु तंत कहीये, कहां लग पवना पाणी ॥3॥

ण सी नगरी संत चढिया, कुण घर जाय समाणी

कह कृपानाथ सुणो भाई साधो, देखी सो दरसाणी ॥4॥

उत्तर 23

वधु इस विद्ध मुक्ति पाई,

पांचु तन्त, पवन नहीं पाणी, आगे सूरत लगाई ॥टेक॥

त बीज में मडया बजारा, जल बीज प्राणी रचाई

राम नाम की साखा लागै अनुभव बाणी गाई ॥1॥

भी नगर से चलै अचम्भा, गगन नगर में जाई

सुखमन सेरी डगरी चढ़िया, दशवें जाय समाई ॥2॥

न लोक में काल पसारा, बिरला बाहिर आई

हद बेहद को लारे छोड़या आगे नगर बसाई ॥3॥

धुनाथ मिलया गुरु पूरा गुप्त भेद लखाई

कृपानाथ खोज कर देखी आप में आप समाई ॥4॥

प्रसन्ती बाणी 24

धो भाई निर्भय न चिन्ता गाणा,

क अखन्डी सब घट बोलै उनको खूब रिझाणा ॥टेक॥

। की सुणे अर्थ कर मानै ना कोई विरथा बकणा

भुल्या जीव भर्म मांही भटकै सभी काल का दाणा ॥1॥

घर में रहा बाहिर मत जाओ ना कोई भेद छिपाणा

कटु वचन कहवे कोई साधु निर्मल हो बेहजाणा ॥2॥

निराकार की माला फेरो नुगरे को नहीं कहणा

सुखमण कुंची साहारी ऊंची आप में समाणा ॥3॥

लाधुनाथ मिल्या गुरु पूरा दीनी सुरत समझाणा

कृपानाथ अखन्डी ध्यावै पाया पद निरबाणा ॥4॥

प्रसन्ती बाणी 25

प्रसन्ती वाणी 20

ऐसा संत होवै जग माही, जुद्ध मांहयांई हाजर होवै
आठूं पहर भजन मतवाला ज्यांरो दुशमन कांई करै ।।टेर ।।
शब्द सेलो हाथ दीन्यो काया किलै में खबर करे
कुबद्ध फौज ने दूर हटावै पांच पच्चीसा री कतल करे ।।1 ।।
इला पिंगला आई सुखमना सासों सांस घमसान धुरै
गुरुगम गोला छुटन लाग्या भर्म किले ने तोड़ परै ।।2 ।।
राम नाम का मड़िया मोरच्या ज्ञान घोड़े नर सूरा चढे
चार चोर का तोड़ मोरच्या काल खप्पर ने फोड़ परे ।।3 ।।
शीश काट लड़ै संत कोई, बै जमड़ा सूं ना डरै
कायरिया नर पाछा भागै, सूरा नर पग आगा धरै ।।4 ।।
मर-मर जीवै, इरी रस पीवै, सेहजां ही हंसा गाया धरै
कह कृपानाथ सुनो भाई साधो, ज्यांरा पूर्ण काज सरै ।।5 ।।

प्रसन्ती बाणी 21

साधो भाई इण बिद मन समझाया।
सांच कहुं तो सही कर मानो, रीस मति करो भाया।।टे
नाभ कमल से शब्द उठाया, ईला पिगला ध्याया।
वंकनाल में उल्टन लाग्यो, सुखमण धोरा लगाया॥
झालर, बंसरी, बीना, बाजै, सुन मैं नाद धर्रराया।
गगना माजै, ढोलक बाजै, कर विना डंका लाया॥
हद, बेहद कू खोज कर देखी, रणुकार धुन ध्याया।
सोहनी शिवर पर नटवो नाचै, रंग रुप्प बिन काया॥
देखत मस्त भयो मन मेरो, बिना नैन दरसाया।
मुख बिना राग छत्तीसू गावै, बिन सरवण सुण आया।
लाधुनाथ मिलया गुरु पूरा ऐसा राह बताया
कृपानाथ संता के सरणे, करी कार फल पाया॥

प्रसन्ती बाणी 22

अवधु कैसे मुक्ति जाणी
तुम को सतगुरु पूरा मिल्या तो गुप्त भेद परखाणी ।।टे
किस बीज से मंडिया बजार, कौन बीज से प्राणी।

12:39

प्रसन्ती बाणी 15

गुरां सा दीनी माला हर की।
माला फेर मन मग्न भयो मनै खबर पड़ी घरकी ॥टेक॥
हर की माला सब कोई फेरो नहीं किसी घर की
राजा रंक पुरुष और नारी, फेरे सोई थिर को ॥1॥
होट जीभ कुछ नहीं हाले बिना हाथ फिरती
सुखमण कुंची साहरे ऊंची चले भजन तरकी ॥2॥
सत् की डोर नाव का मिनिया बंकनाल थरकी
उल्ट पुल्ट कर चढी शिखर में खोल गगन खिड़की ॥3॥
लाधुनाथ मिलया गुरु पूरा प्रीत प्रापर की
कृपानाथ माला फेरी ना मीठी चरकी ॥4॥

प्रसन्ती बाणी 16

मुझे तू दे दर्शन प्यारा मैं तेरे दर्शन का प्यासा ॥टेक॥
खम्भ फोड़ हिरनाकुश मारया प्रहलाद भक्त को छिन में तारया
हरी मेटया दिल का सांसा ॥1॥
मीरा बाई बैरागण भारी राणा जी ने लागी खारी
गुरु मिलया रैदासा ॥2॥
शिवरी जात भीलनी भोली बोरां से भर लीनी झोली
प्रभु प्रेम दिवाना होके खा गया खासा ॥3॥
कृपानाथ जात का नायक सत मान्या सतगुरु का
वायक अब तो पूर दे मेरे मन की आशा ॥4॥

प्रशान्ती बाणी 17

साधो भाई अब तो जाण पड़ी
सत संग रो सरणों लियो लागी सिवरण झड़ी ॥टेक॥
जन्म-जन्म में फिरयो भटकतो कदी ना सुफल पड़ी
सत गुरु आया शब्द सुनाया सुरता सायल सुणी ॥
जम मत पकड़ भयो नशे में युद्ध में आण खड़ी
गुरु गम सेलो लीन्यो हाथ में जम से आण अड़ी ॥
राम नाम का गोला चालै बचन जाम की जड़ी
सुमरण तोप झुकी गगन में सत की फौज चढ़ी ॥
लाधुनाथ मिलया गुरु पूरा दुविधा दूर पड़ी
कृपानाथ गुरु चरणा में पाई सफल घड़ी ॥

12:44

गुरु महिमा 39

हंसला सतगुरु उबार लिया
भवसागर के काढ़ किनारे केवल राह दिया ॥टेक॥
भूल्यो जीव दुख में जांतो चेतन हंस किया
रोग पीड़ा मिटी कल्पना भजन अमीरस पीया ॥1॥
घट में गंगा घर में जमना घट में तीर्थ दिया
तरबीणी के अजब झरोखे नित उठ नहाय लिया ॥2॥
गुरगम घटा औलरी, घट में गैबी गरज रिया
हरी नाम का मोती बरसै, हंसा चुगरिया ॥3॥
लाधुनाथ मिल्या गुरु पूरा जीव से हंस किया
कृपानाथ हंस बढ भागी, बेगम देश गिया ॥4॥

प्रसन्ती वाणी 40

सुरत मेरी नाच रही दिन राती।
पतिव्रता कूं पीव मिल्या, ज्यूं हरख-हरख गुण गाती ॥टेर॥
राम, नाम की घटा ऊमटी, रुम-रुम रंग राती।
सुखमण गंगा भरी चलत है पीवे संत साथी ॥1॥
त्रबीणी के रंग झरोखै, बरसै लाल मोती
संत होवै सो पारख कर राखै, सुरता हार पोती ॥2॥
सुरतां रंग महलां पूगी, छोड़ी त्रिषणा रोती।
आप पिये की बनी पटरानी सुन में सेज बिछाती ॥3॥
रंग महल में अखन्ड उजियाला नहीं दिया नहीं बाती।

सुरत सुन्दरी पोव से मिलगी, सुन मुख दर्शन पाती ॥4॥
मिलग्या पीव मग्न भई, सुरता, सदा आनन्द में न्हाती।
कृपानाथ की सुरत सुहागण आवागवण नहीं आती ॥5॥

दोहा

पतिव्रता पीहवर बसै, अन्त पीये को ध्यान।
कंहती बा लाजां मरै, एसो आत्म ज्ञान॥

होरी प्रसन्ती बाणी 41

बेखरी बाणी 35

हंसला गुरु सेवा में लागो,
अन्तकाल में जावे एकलो नहीं संगी नहीं सागो ।।टेरा ।।

जबर जवानी मन मस्तायो नेह तिरिया से लाग्यो
बेटा पोता बहुत परवारी बंधियों मोह को तागे ।।1 ।।
सतगुरु आया शब्द सुनाया मेटयो लछण कागो
हंसा होय चुगे निज मोती भर्म नींद से जागो ।।2 ।।
सुखमन गंगा घट भीतर चाले धोवो पाप को दागो
गुरगम खोज काया घट भीतर ज्ञान घोड़े चढ़ भागो ।।3
लाधूनाथ मिलया गुरु पूरा जुगां 2 को सांगो
कृपानाथ गुरु चरण में रात दिना लिव लागो ।।4 ।।

बेखरी बाणी 36

हंसला गुरु की महमा भारी,
शरण गया कई जीव उबरिया पूग्या परलै पारी ।।टेक ।।
भर जीवन में फिरे भटकतो पाप की बातां धारी
माता-पिता को कहयो नहीं माने तिरिया लागे प्यारी ।।1
कूड़ कपट कर माया जोड़ी धन की भरी भखारी
अन्त समय काम नहीं आवे हाथ पसारे जारी ।।2 ।।
तन मन्दिर में चोपड़ बिछाई खेलो सुरत बिचारा
चांद सूरज का पासा राखो राम नाम की सारी ।।3 ।।
लाधुनाथ मिलया गुरु पूरा आप दया धारी
कृपानाथ गुरु चरण में हर भक्ति धारी ।।4 ।।

बेखरी बाणी 37

साधो भाई है कोई प्रेम प्यारा,
प्रेम पिये ज्याँने प्रेम प्याऊ सदा आनन्द उपकारा ।।टेक ।।

12:43

अबधु देखया खेल जबर रे,
गैबी ढोल नगाड़ा बाजे नाचे नारी अजर रे ।।टेक ।।

बिना भोम नगर वबत है ना कोई दिन फजर रे
चन्दा नहीं सूरज गैबी उजियाला ना कोई मूर्ति मिन्दर रे
बिना परां इक पंछी देख्या बैठया जा सदर रे
नहीं वो जन्में नहीं वो मरता नहीं डिगे नहीं डर रे ।।2 ।। 31
बेद कतेव पूरो नहीं गीता थकिया बावन अखर रे
कहणी कथनी दोनू थकगी बोतो देश पर रे ।।3 ।।
तीन लोक में रम रहया जोगी सब सैं पर रे
कृपानाथ उन्हीं से मिलया साधु बड़ा फकर रे ।।4 ।।

प्रसन्ती बाणी 32

हंसला अखे नाम नित रट रे
काम क्रोध कल्पना नारी इन से दूर हट रे ।।टेक ।।
गुरु सेवा में सांच कमावो लख ले सैन सट रे
समदर्शी में दर्पण देखो खोजो आत्मा घट रे ।।1 ।।
नाभ कमल से बादल उल्टया आपे माहीं दट रे
गुरुगम घोटो लेवे हाथ में गिन गिन मारो लठ रे ।।2 ।।
हला पिंगला चाली तुरंगा चढ़गी गगना थट रे
तल का तीर शिखर जा लाग्या खुली किवाड़ी खट रे ।।3
लाधुनाथ गुरु कृपा कीनी नींद उड़ा दी झट रे
कृपानाथ गुरु चरण में गई चौरासी कट रे ।।4 ।।

बेखरी बाणी 33

साधो भाई झूठा पच मरोला
भेष बनाया फिरे जगत में ना कोई मुक्ति पावोला ।।टेक

प्रसन्ती बाणी 56

साधो भाई ऐसा सन्त नसेई,
जब जागू जब बोतल हाथ में पलक रहयो ना जाई ।।टेक ।।
सांसा संतरो नाम की दाखां, प्रेम को नीर भराई
तीन लोक रो ईंधन फूंकयो ब्रह्म भट्टी चेताई ।।1 ।।
इंला पिंगला धवन धुकाई सुखमण नाल लगाई
बंकनाल में चालन लाग्यो गंगना में ढोल भराई ।।2 ।।
सूरत कलाली प्यालो पावे मुंह चाड़ पिऊ नाहीं
मेरी गम तो मैं ही पिछाणी पिऊं चुस्की लगाई ।।3 ।।
ज्यूं साहरु ज्यूं बोले सपीड़ा रुम रुम गरणाई
पग नहीं लागे थाग नहीं पावे काया शुद्ध घिसराई ।।4 ।।
हो नशे में भयो मतवालो ज्ञान खड़ग समाई
पांच पच्चीसूं तीन तेतीसूं सब की कतल उड़ाई ।।5 ।।
लाधुनाथ मिलया गुरु पूरा ऐसी जुगत बताई
कृपानाथ ने नशो सिखायो अब तो छोडू नाहीं ।।6 ।।

प्रसन्तीबाणी 57

साधो भाई ऐसा संत लड़ाका
हो मतवालो चढयो भारत में ली सतगुरुकी साखा ।।टेरा ।
मन बछेरा ज्ञान लगाम आप बनया चढ़ाका
प्रेम पलानी सूरत तंग ने खैंच कबज में राखा।।1 ।।

कमर कस के हिम्मत कर चढगया नहीं मानत है शंका
शब्द कामड़ी चालन लागी चालै खूब सड़ाका ।।2 ।।
इंला पिंगला तोप झुकाई सुखमन चालै दड़ाका
बंक नाल में चालन लाग्यो घोड़ा खूब दड़ाका ।।3 ।।
दया ढ़ाल सिवरण का सेला चित्त तलवार पलाका
काम क्रोध की कतल उड़ाई दिया कुबुध नै धक्का ।।4 ।।
काल फौज अब भागन लगी फिर पिछा नहीं झाका
तीन चार की जटा पकड़ ली काढया खूब कड़ाका ।।5 ।।
सुगरा सन्त करे लड़ाई नुगरा चालै बाँका
कर किलकारी बड़यो किले में दिया नौबत के डन्का ।।6 ।।
लाधूनाथ मिला गुरु पूरा पूरण ब्रह्म पराका ।
कहे कृपानाथ सुनो भाई साधो निरखा नूर खुदा का ।।7 ।।

12:46

बेखेरी बाणी 53

साधो भाई ऐसो मैं किरसाणी
गुरुदेव को सरणोलीयो जद हम निसते जष्णी ।।टेक ।।
शील संतोष दो हाली राख्या काया खेत सुलझाणी
कूड़ कपट को सूड़ काढियो रात दिवस लिव लाणी ।।1 ।
लग्नी हाल नेम को हलियो गम गांगड़ो लाणी
हिम्मत हतोली कुश करणी की ज्ञान हाथ प्राणी ।।2 ।।
इलां पिंगला धोरी जोड़या सुखमण रास लगाणी
ओहं सोहं का बीज बीजिया बीजै संत सुजाणी ।।3 ।।
शब्द बादली चढ़ीं शिखर में रुम रुम झड़ लाणी
नौ सौ नदी भरी चलत है नौ खण्ड में बरसाणी ।।4 ।।
अब मेरी खेती होई हरियाली रुखा लै समझा राणी
गुरगम टाट बाजण लागी भर्म चिड़ी चमकाणी ।।5 ।।
गम की झोली अकल दाजियो सुरता काम कराणी
साऊ सिटा धरै झोली में थोथा दूर बधाणी ।।6 ।।
गुरगम मड़ रोप जुगत कर पांच बलदिया गाणी
अगम पिछम का चेल बायारा कुंमक बोहल बनणी ।।7।।
मानसरोवर मैं कोठा भरिया सांसो सोग मिटाणी
आठूं पहर आनन्द में न्हावे बैठयो मौजा माणी ।।8 ।।
लाधूनाथ मिल्या गुरु पूरा सूत्या हंस जगाणा
कह कृपानाथ सुनो भाई साधो कबहुं नहीं आवे हाणी ।।9 ।।

होरी इण बिध पीव मिल्योरी
मिलग्या पोव पलक नहीं बिसरुं लागी प्रेम रस डोरी ।।टेर ।।
गम घाघरो, तन की अंगिया, गुरगम सुरमो सारी
अकल चूंदड़ी ओढ़ सुहागण, एशी मतियाँ धारी ।।1 ।।
इला पिंगला लेकर दासी सुखमण शेज सुंवारी
पांच सखी मिल मंगल गावै आही सुमता विचारी।।2 ।।
कर सिंगार चली घर अपने, खोल महल की मोरी
ज्ञान, ध्यान का दीपक जोया हो रही चित्त उजियारी ।।3 ।।
सुन मंडल में सेज पिया की, पौढे सुरता गौरी।
आठों पहर आनन्द में खेलै, दिल का भर्म गम्योरी ।।4 ।।
लाधुनाथ मिल्या गुरु पूरा, सेहजां काम सरयोरी।
कृपानाथ सदा संगत में, निर्भय घर बस्योरी ।।5 ।।

प्रसन्ती बाणी 42

साधो भाई सतगुरु मोहे परणाया
भाई, बन्धु, कुटुम्ब, कबीला, भीड़ देख भगजाया ।।टेक ।।

पिछम देश में करी सगाई, नौ दिन बान बिठाया।
प्रेम पीठी हरदम मसली, सत संग गंगा न्हाया ।।1 ।।
गम का कपड़ा, ज्ञान गेड़ियो, नाम नारेल झलाया।
सब संता की जान बनाई, बकनाल चढ़ ध्याया ।।2 ।।
दशवें दरवाजे तोरण बंधीयों, गिगना में डेरा लगाया।
हद, बेहद पर चवरी मांडी, ब्रह्म वेद सुनाया ।।3 ।।
हेत हतलेवो जोड़यो जुगत कर, समझ फेरा खाया।
शीलनाथ जी भया नचीता, नार हुरदंगी ल्याया ।।4 ।।
लादुनाथ मिल्या गुरु पूरा सिवरण रीत चुकाया।
कृपानाथ फकड़ मतवाला, हंस परणाय घर आया ।।5 ।।

प्रसन्ती बाणी 43

भजन में बड़ी मौज भारी
भजन करे सो भवसागर तिरिया ऊंच नीच नर नारी ।।टेर ।।
सब घट में पूर्ण आत्मा, अखी देव निराकारी।
तीन लोक में अणघड़ बोलै, बिरला लख तारी ।।1 ।।
इला, पिंगला सुखमन गंगा, उल्ट गगन में जारी।
त्रिबींणी के बैठ घाट में, न्हावे संत सुचियारी ।।2 ।।
गगन मंडल में बाजा बाजै, बंसरी बीणा रणुकारी।
सुन में जोत अखन्डी जागी, झिगर मिगर दीदारी ।।3 ।।
लादुनाथ मिल्या गुरु पूरा दीनी जुगती सारी।
कृपानाथ गुरु शरण में पूग्या, परलै पारी ।।4 ।।

भीणी धार जुगत कर चढ़या इंला पिगला ध्याया ।।2 ।।
रंग महल की खोल कियाड़ी गगन मन्डल गरणाया
झीणी टेर बंसरिया बाजे अधर नाद धुर्राया ।।3 ।।
अखी तख्त पर हंसा बैठा रंग रुप नहीं काया
अखे जोत का अखन्ड उजियाला ज्योति में जोत समाया।।
लाधूनाथ मिलया गुरु पूरा अखी देश दिखाया
कृपानाथ पूग्या उन देश में निर्भय नगर बसाया ।।5 ।।

प्रन्नोतरी बाणी 69

साधो भाई साची कह दरसाओ
तुम को सत गुरु मिलया तो भेदु भेद बताओ ।।टेक ।।
किस कारण गुरु सेवा करते कैसे संगत लगाओ
किस कारण तुम बाणी बोलो किस बिध नींद गमावो ।।1 ।।
किस कारण तुम बेद बांचते कैसी साख लगाओ
जप तप नेम किस का करते कुण सा देव मनावो ।।2 ।।
आवागमन तुम किसको कहते किसको मुक्ति बतायो
कौण धरा पर मार्ग गैला कौण नगर में जावो ।।3 ।।
सीखो साखा कूड़ी भाखा बृथा साँस गमावो
कृपानाथ बोलिया जोगी अंग से का कमाओ ।।4 ।।

प्रसन्ती बाणी 70

राम गुण ऐसे गाणा रे
कंठ होठ जिबिया बिन निर्भय नाम उठाणा रे ।।टेक ।।
लगनी डोर नाम का मिनिया सत में पोणा रे

कृपानाथ वहां जा पूग्या क्या करै दुशमन मेरो ।।4।।

प्रश्नोतरी बाणी 61

जोगी इस का अर्थ करता,
अर्थ करे सो संगी हमारा वो जोगी अब धूता ।।टेक।।
कौण कमल में सतगुरु भेटया कौण सगी कौण भीता
कौण कवल में अमृत भरिया कौण भरे कौण पीता ।।1 ।।
कौण ठौड़ में नगर बंसाया किस विधी आसण कीता
कौण नर आवे कौण नर जावे कौण मरे कोण जीता ।।2 ।
आठ पहर चौसठ घड़ी में कितना तीर चलता
कौण मोरचै मन्डया निसाना कौण मोरचै दीता ।।3 ।।
लाधूनाथ मिलया गुरु पूरा शब्द सहेला दीता
कह कृपानाथ सुनो भाई साधो जुग 2 जोगी जीता ।।4 ।।

उत्तर बाणी 62

अवधु वो जोगी जग जीता,
सकल जगत की छोड़ भावना नहीं संगी नहीं मीता ।।टेक
आठ पहर चौसठ घड़ी दिन रात में बीता
इक्कीस हजार छः सौ साँसाँ एक मौरचे दीता ।।1 ।।
सुखमण तार लग्यो तरबीणयां बेहद पर पग दीता
दसवों छेद भेद लख आगे मर मर अमृत पीता ।।2 ।।
भंवर गुफा में धुणा धुका के, निर्भय आसन कीता
रोग पीड़ा सब मिटि तन की दुख बिघन सब बीता ।।3 ।।
अखी कवल पर सतगुरु भेटया दर्शन सन्मुख कीता

साधो भाई ऐसो सूरमा नर रे,
हो मतवालो चढ़यो भारत में छोड़ी जगत वाली हर रे ॥टेक॥
नाभ नगर में फौज चढ़ाई अगम मोरच्या कर रे
इंला पिंगला तोप झुकाई नाम पलीता घर रे ॥1॥
तीन पांच की तोड़ी कमेटी चारयां ने कर लिया सर रे
गुरगम गोला छूटन लाग्या काल फौज गई डर रे ॥2॥
झगड़ा जीत चढ़यो तर बीणया निर्भय नगारा घुर रे
नार सुखमना करे आरती कारज सफल गयो सर रे ॥3॥
लाधूनाथ मिलया गुरु पूरा सिर पर पंजो घर रे

कृपानाथ फकड़ मतवाला नहीं किसी का डर रे ॥4॥

प्रसन्ती बाणी 59

साधो भाई ऐसा योग कमाया,
लोक लाज कुल रीत गमाई आदु राह बताया ॥टेक॥
समझ आढ़ बन्द मत की लंगोट सत का सेल समाया
सुरत शब्द का बन्धया बेला जुगती योग जमाया ॥1॥
नाभ कमल से बादल उल्टया गगन मन्डल गरणाया
इंला पिंगला तुरंग चली सुन में नाद धुर्राया ॥2॥
काया चादर संतोषी झोली गुरगम गेरु लगाया
अमर नाम की भिक्षा मांगी बिन घर अलख जगाया ॥3॥
लाधुनाथ मिलया गुरु पूरा अमृत नीर चखाया
कह कृपानाथ सुनो भाईसाधो फेर धरुं नहीं काया

प्रसन्ती वाणी 60

हो घायल मैं घूमने लाग्यो गुरगम तीर लाग्यो गहरो
आठ पहर में मर मर जिऊं क्या समझे मूर्ख मेरे ॥टेक॥
सांसो सांस उल्टावन लाग्यो मनवै ने पकड़ पिछम फेरयो
चार चोर काया का पकड़या दुशमन सैण भयो मेरो ॥1॥
बकनाल में नदियां उल्टि सुखमन शब्द गाज्यो गहरो
गगन मन्डल की खोल किवाड़ी सहजां हन्स चढ़यो मेरो ॥2॥
अखो तख्त पर सतगुरु बैठया चरण में चित लाग्यो मेरे
उग्या भान भया उजियाला निर्मल नूर लख्यो चेहरो ॥3॥
रविदास कबीरा कई संत पूग्या गोरख नाथ को निर्भय डेरो

कृपानाथ वहां जा पूग्या क्या करै दुशमन मेरो ॥4॥

प्रश्नोतरी बाणी 61

लाधूनाथ जी गुरु मिलया भिन्न-भिन्न कर समझाई
कृपानाथ जी पति हमारा सेवा करुं इकराई ।।2।।

: कुण्डली :

सत संग में सागे रहस्यूं सेवा करस्यूं आठों याम,
होय दयाल कृपा कीजो अड़यो सुधारो काम।
अड़यो सुधारो काम छोड़ मत न जावो,
कहस्यो ज्यूं करस्यूं भक्ति पद कमाओ।

दोहा

देवो गणेशो बीर हमारै सेवा में आधीन।
पति धर्म में सांच कमाऊ रात दिनाँ लवलीन।।

बाणी महिमा 85

गुरु मिलयां गम होय लागी ज्याने खबर पड़ी रे
वै ही सदा सुख पाय जिन्हों ने पाई अमर जड़ी रे ।।टेक।।
गुप्त गंगा घट मांय घायल हुवै जकां निगाह करी रे
सुगरा नित उठ न्हाय नुगरां आडी टाटी जड़ी रे ।।1।।
नाभी से पवना खैंच संग में सुरता आप चड़ी रे
रुम रुम रणुंकार इमृत की बूंदां लागरी झड़ी रे ।।2।।
गगन मन्डल के मांह पिय जी रो पलंग ढली रे
नित उठ परशै दिदार सुरता नारी हजार खड़ी रे ।।3।।
कृपानाथ गुरु देव उन्हीं से म्हारा कारज सारी रे
लुम्भानाथ जस गाय दुबिध्या दूर पड़ी रे ।।4।।

सुखमन नारी सेज बिछावै खोल गुप्त द्वार ॥4॥
भंवर गुफा में तपसी तापै बैठया धुणा धुकार
सुरता नारी सेवा में प्यारी परस रही दीदार ॥5॥
लाधूनाथ मिल्या गुरु पूरा आर पार निराकार
कृपानाथ गुरु चरण में काल थक्यो झक मार ॥6॥

फकीरी 80

फकीरी बांसतां की जाण
नहीं बारै बैर हेत नहीं किन से नहीं मानत है काण ॥टेक॥
आशन लगाय धुन माहीं बैठया आपो करै पिछाण
हाथां ही अग्नि लगावै कुटी रै बैठया धुकावै मुसान ॥1॥
तीन लोक में लाय लगा दी, माचे धुबैरां घमसाण
जगत विचारी बाँरो के करै थकग्या शत्रुरा बाण ॥2॥
बाल जाल कर भस्म उड़ादी कर पूरो परमाण
चाँद सूरज बारै हाजर ऊबा नितगंगारो न्हाण ॥3॥
आसन इडक निडर होय बैठया पद चौथे री कर जाण
सांसो शोग कछु नहीं बारै, नहीं उपजे नहीं हाण ॥4॥
निर्भय देश सदा थिर भूमि, उग्यो अखण्डी भाण
कृपानाथ वहां जा पूग्या सुत्या खुन्टी ताण ॥5॥

बेखरी बाणी 82

मनवा सतगुरु सैन बताई
हो होशियार लागज्या धन्धे पलक बिसर न जाई ॥टेक॥
जद माता के उदर लोठता उल्टा झोंटा खाई

प्रसन्ती बाणी 70

राम गुण ऐसे गाणा रे
कंठ होठ जिबिया बिन निर्भय नाम उठाणा रे ॥टेक॥
लगनी डोर नाम का मिनिया सत में पोणा रे

कर बिना माला घट में फेरो निर्भय रेणा रे ॥1॥
आसन एकत लगाकर सुन में ध्यान जमाणा रे
नाभी शब्द उठाकर संग में सूरत चढ़ाणा रे ॥2॥
इंला पिंगली साज सुखमना तार मिलाणा रे
रंग महल के बैठ झरोखे ढोल घुराणा रे ॥3॥
लाधूनाथ मिला गुरु पूरा सुत्या हन्स जगाणा रे
जाग्या कृपानाथ ढया किया ठिकाणा रे ॥4॥

प्रसन्ती बाणी 71

गुरां म्हाने पाई भांग भारी,
पीवत प्याला होया मतवाला, भजन लगन धारी ॥टेक॥
तन की कुन्डी, मन का घोटा गुरगम बूंटी डारी
निज नाव का प्याला फिर रहा, पिये सन्त सुचियारी ॥1॥
सुगरा साधु पी पी छिकिया, नुगरां ने लागे खारी
पीया सो नर जुगो जुग जिया, काल कबहुं न मारी ॥2॥
पीवत प्याला घुमन लाग्यो करी सैल सारी
गुरुदेव का दर्शन पाया नाचे सुरता प्यारी ॥3॥
लाधुनाथ मिला गुरु पूरा करी दया भारी
कृपानाथ फकड़ मतवाला जोग फकीरी धारी ॥4॥

मंगल 72

जाग्या-जाग्या भाग पूर्बली संजत भई
शब्द पढ़यो रणुकार सूरता जाग रही ॥1॥
खण्ड ब्रह्मॉंड छेद गगन में गाज रही

नाड़ियाँ मानी गई हैं। राम सनेही बीरमदास ने नाभि के भीतर नौ सौ नाडियाँ मानी हैं।[1] इन दस नाड़ियों में इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्णा मुख्य मानी गई हैं। चरनदास ने इड़ा में ब्रह्मा, पिंगला में शिव एवं सुषुम्णा में विष्णु का निवास माना है।[2] सुन्दरदास ने सुषुम्णा नाड़ी को अग्निस्मा कहा है।[3] प्रायः सभी संतों ने इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्णा का विवरण दिया है। शास्त्रों में इड़ा को चंद्र नाड़ी, पिंगला को सूर्य नाड़ी एवं सुषुम्णा को अग्निनाड़ी कहा गया है। संतों ने इड़ा को गंगा और चंद्र, पिंगला को यमुना एवं सूर्य तथा सुषुम्णा को सरस्वती कहा गया है। इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्णा के मिलन स्थान को इसीलिए त्रिवेणी कहा गया है। शिव संहिता में भी इनके संगम को त्रिवेणी की संज्ञा दी गई है।[4]

प्राणायाम के द्वारा प्राण का संचार सुषुम्णा-पथ में करने का प्रयास किया जाता है।

हठयोग में ह और ठ दो वर्ण हैं इनमें ह का अर्थ सूर्य और ठ का अर्थ चन्द्र है। इस प्रकार हठयोग का अर्थ सूर्य-चन्द्र का योग है। शब्दान्तर से यही इड़ा-पिंगला अथवा प्राण-अपान का योग भी है। इसीलिए,हठयोग एक प्रकार से प्राणायाम की साधना है।

मुद्रा वेध और बंध--

आसन और प्राणायाम की मिली-जुली क्रिया मुद्रा है। मुद्राओं

श्रीराम स्नेह, अनुभव आलोक, आतमसार ग्रन्थ , चौपाई 15

भक्तिसागर. पृ. 68

ज्ञान समुद्र, तृतीयोल्लास, पृ. 45

शिवसंहिता, 5-163

सली मोर्चे पर हो। हे शिष्य यह जोग अभ्यास बहुत कठिन है। योंकि इस को विराट बोलते है। और यह सच्चे गुरु के पाने से ही मल सकता है। जैसे सूर्य ने अपने पुत्र को, सनातन धर्म बताया था, गैर जैसे कृष्ण ने अर्जुन को बिराट रुप दिखाया था। वही विराट है। रन्तु यह बिन सतगुरु के समझना मुश्किल कहते है।

प्रश्न

हे गुरुजी, कृपा करके, आप मुझे अपने चरणों का दास समझ कर, राट योग अभ्यास की मुक्ति प्रदान करे जिससे मेरे इस पापी जीव का निस्तार हो सके। मैं आपका बहुत अनुग्रहीत होऊंगा और मैं आपको, तन, मन, धन सब कुछ अर्पण कर चुका हूं।

उत्तर

हे शिष्य, नाभी में एक कुण्डली नाम की नाड़ी है। इस नाड़ी समझने से, आइडम्बर के आरम्भ की सौजी होती है। यह सोजी से ही प्राप्त होती है।

प्रश्न

हे गुरु, देव आप पार ब्रह्म हैं, और आप ही मुझे इस भव साग पार निकालने वाले है। सो है गुरु देव जी, कृपा करके, मुझे कुडली नाड़ी को साझने की युक्ति प्रदान करें।

उत्तर

हे शिष्य, अब मैं तेरे पर बहुत दयाल हूं। और तेरी सेवा पर मैं ब खुश हूँ। इसलिए हे शिष्य अब मैं तेरे को इसका भेद पृथक-पृ खोल कर बताता हूं तू ध्यान से सुन समझ। हे शिष्य, इस शरीर इला, पिगंला नामकी दो नाड़ियां है। जो चांद, सूरज के नाम से प्रसिद्ध है। इन दोनों नाड़ियों के बीच में सुखमन नाड़ी है। अं योगाभ्यास साजने की यही एक सुखमन नाड़ी है जिस समय सुखम आती है। उस समय भजन करने की टेम बनती है। उस समय निरन्त स्थान में कोमल आशन लगाकर जहाँ किसी का भी खड़का धड़क न हो, वहां एकत जगह बैठ कर अपनी सारी बारी बन्द कर, फि धीरे-धीरे नाभी में जो कुंडली नाम की नाड़ी है वहां से शब्द खीं कर भ्रकुटी में चढ़ाया जाता है। फिर रोम-रोम में और नाड़ी-नाड़ में रोशनी पैदा हो जाती है। और फिर दशवें द्वार हंस पहुंच कर जह अखी देश (सन्तों का दोश

वहां हंस पहुंच जाता है। जहां पर काल नहीं पहुंच सकता और जीव कल्पना से छुटकारा पा जाता है। और परम गति को प्राप्त होता है।

प्रश्न

सोलह कला

ोम गुरु जी अमावस अमेदी लाग रही दूर पिय का बास
कट कारारी भोम है किस विध पूरे आस
कम पड़वा बीतगी काया नगर के माय
रत वैरागण चेत रही दूजा दरसे नाय
ज द्वारे आपके धनगुरु भेटया आय
ाभ कमल की लहर में एक अखण्डी ध्याय
ीज तमंचा छुटिया तीनू त्रिगुण जोय
ीणा मोती बरसिया सुखमन डोरी पोय
ौथ बीती चौक में सब संतां का ठाठ
ुरता सोदा कर रही बैठी ह्रदय कमल के घाट
ांचम पंच जाणाली पाँच पच्चीसां जोय
ाधूनाथ गुरु भेटिया दिनी दुविधा खोय
छट बीती, छटी आत्मा छऊ कमल गई छेक
ाम नाम के बैठ मोरचे मारी कुब्ध पर मेख
ातम संता जाण ली सभी संता को साथ
ाधुनाथ गुरु भेटिया कहीं छानै से बात
ाठम बीती आठ गया आठ गांठ गई फूट
रुम-रुम शब्द गरणावे कुब्ध गई सब छूट
ोमी बीती नौवू निद्धि भई नौ नाथ को साथ
ौ दरवाजा फेरी फिरया शब्द सेलो हाथ
दसूं द्वार खोलिया खुली गगन की सीर

गुरगम गोला छुटियो लाग्यो निशाने तीर
गंगा ग्यारस बीतगी गई पिये के पास
भवर गुफा के बीच में अनघड़ पूरा आस
बारहस बीती बारहा गया अन्दर बाहर जोय
सूरत पिये की सेज में सुखमन सेजां सोय
तेरस तन्दुरा बाजिया तन मन्दिर के मांय
जीव पीव मिल केल करत है अब कुछ टोटा नाय
चौदहस बीती चौदह गया चवों दिश रहया फूल
लाधूनाथ गुरु भेटिया उड़ी भरम की धूल
पुन्यु पूरो उगियो सोलह कला भरपूर
सुरत सुहागन करे आरती निरख पिय को नूर
लाधूनाथ गुरु भेटिया दीनी शब्द की सार
सत संगत में बैठ के नर नारी उतरो पार
सोलह कला सम्पूर्ण सही सब संतां ने बीनती
श्री कृपानाथ की कही।

15:12

संतों ने चक्रों का जो विवरण दिया है वह परम्परा से बहुत विच्छिन्न नहीं है। संतों ने त्रिवेणी एवं गगन मण्डल का बहुत उल्लेख किया है। इनसे उनका तात्पर्य आज्ञाचक्र एवं सहस्त्रार चक्र है। षड्दलकमल कहकर उन्होंने स्वाधिष्ठान चक्र की ओर द्वादश से अनाहत चक्र, सोलहदल से विशुध्दि चक्र एवं दशदल कमल से मणिपूरक चक्र की ओर संकेत किया है।

संतों ने अष्टदल कमल की चर्चा बहुत अधिक की है। इन चक्रों को वेधकर सहस्त्रार स्थित शिव से मिलने का काम कुडलिनीशक्ति करती है। चरनदास का विचार है कि पद्मराग के प्रकाशवाली इस कुंडलिनी का निवास नाभिस्थान में है। वहाँ वह सात लपेटे देकर ठहरी है। उससे एक हजार नाड़िया जुड़ी हुई है। वह बाल के भी हजारवें हिस्से से सूक्ष्म है। उसका शरीर सवा बालिस्त का है। इसका भेद कोई योग्य गुरु ही बता सकता है। पानपदास जी ने मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी की स्थिति मानी है।[1] गरीबदास जी का विचार है कि नाभि के पास तीन पेंच वाली कुण्डलिनी निवास करती है। इसके मुख से जल, अग्नि और आकाश की उत्पत्ति होती है।[2] महात्मा कबीर ने कुण्डलिनी के लिए नागिन एवं जोगणी शब्द का प्रयोग किया है। उनका कहना है कि अनेकबार प्रेम का प्याला पीने से सोई हुई नागिन।कुडलिनी जाग उठती है। उन्होंने पाताल मूलाधार के निम्न भाग में पनिहारिन कुडलिनी का निवास माना है। कुण्डलिनी रूपी पनिहारिन षट्चक्र रूपी कुंभों को आध्यात्मिक अनुभूति के जल से भरती है।[3] इस कुण्डलिनी को जगाने एवं अग्रसर करने का तरीका भी संतों ने निर्दिष्ट किया है। कबीरदास ने कहा है कि

1- पानपबोध. पृ. 30

2- गरीबदास जी की बानी, बिनती को अंग, 69

3- कबीर-ग्रन्थावली: श्यामसुन्दरदास, पृ. 111-74, 16-45, 189-298 तथा 110

बैरागी को चाहिए कि वह पवन को उलट कर षट्चक्रों को बेधे और सुरति को शून्य में लगा दे। इससे आवागमन नष्ट होता है।[1]

बुल्ला साहब ने पवन को पिलाकर नागिन को मारने, अर्थात् प्राणायाम के द्वारा कुडलिनी जगाने का उपदेश दिया है।[2] सांईदास जी मूलद्वार का मार्ग रोककर नाभि में कुडलिनी के प्रकाशित होने एवं हृदय कमल के विकसित होने का वर्णन करते है।[3] दरियासाहब पवन के द्वारा षट्चक्र भेद स्वीकार करते हैं।[4] चरनदास बताते हैं कि लाठी की चोट लगने से जिस प्रकार नागिन शीश उठाती है उसी प्रकार कुंभक के आघात से कुडलिनी जग जाती है। जगने पर यह ऊपर की ओर चलती है। ब्रह्मरन्ध्र में आकर दो घड़ी ठहरती है। इससे उड़ने की सिध्दि मिलती है। यदि अधिक देर ठहरती है, तो समाधि की सिध्दि होती है।

यह नादश्रवण बहुत ही महत्वपूर्ण है। चरनदास का कहना है कि इसके प्रभाव से मन वशीभूत होता है। उनका विचार है कि नाड़ियों में सुषुम्णा अनहद की माता है। कुंभकों में सर्वश्रेष्ठ केवल कुंभक अनाहद का भ्राता है और सर्वश्रेष्ठ मुद्रा खेचरी उसकी बहन है। इस श्रेष्ठकुल में उत्पन्न अनहद के श्रवण से सेवक स्वामी बन जाता है।[1]

संत कवियों ने जप, अजपाजप एवं बाह्य जप की व्यर्थता आदि पर विस्तार पूर्वक विचार दिया है। जप का सम्बन्ध नामस्मरण एवं भक्ति से है, प्राणायाम से नहीं। प्राणायाम का सम्बन्ध केवल अजपाजप का है और यह श्वास-प्रश्वास के रूप में प्रतिदिन इक्कीस हजार छःसौ बार होता है। इस अजपागायत्री का विवेचन संतों ने अनेक स्थलों पर किया है। उनके इस हंस रूप अजपा गायत्री की जप प्रणाली पर नाथपंथियों का प्रभाव माना जा सकता है।

तुलसीदास निरंजनी का विचार है कि सो हंहंसा-जप को जपने वाला व्यक्ति ही ज्योति का स्पर्श कर पाता है।[2] धरमदासजी सोहं का जप साँस से जपने का और मूलकदासजी मन से जपने का उपदेश करते हैं।[3] कबीरदास जी को तो अजपा में जप का एवं सुरति का निरति में लय ही इष्ट था।[4] अजपा का जपरूपी सुमिरन करने से गगन-गुफा में रस की वर्षा सम्भव हो जाती है।[5]

1- भक्तिसागर, पृ. 66

2- निरंजनी-सम्प्रदाय और संत तुलसीदास निरंजनी, पृ. 179

3- मूलकदास की वाणी, भेदवाणी, शब्द 2, धनीधरमदास की वाणी. बारहमासा, 1-12।

4- कबीर ग्रन्थावली: पारसनाथ तिवारी, 161, 12, पृ. 8

5- वहीं. पृ. 85

ऊपर के विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संतों ने यद्यपि सोहं हंसः रूप अजपा गायत्री के जप का विवरण दिया है, तथापि इस जप से उनका तात्पर्य मुख्यतः हरि के नाम स्मरण से रहा है। प्राणायाम की जपक्रिया के प्रति उनका विशिष्ट झुकाव नहीं दिखाई पड़ता। दूसरे शब्दों में संतों का प्राणायाम एक स्वतन्त्र साधना न होकर नाम स्मरण का सहायक ज्ञान होता हैं।

का वर्णन हठयोग के शास्त्रीय ग्रन्थों में मिलता है। नाथपंथियों की हिन्दी रचनाओं में भी मुद्राओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

संतों ने मुद्राओं का जो वर्णन दिया है, वह बहुत शास्त्रीय नहीं है। गुसाईं मत के प्रर्वतक श्री सांईदास ने पाँच मुद्राओं का वर्णन देते हुए कहा है कि भूचरी मुद्रा से मन प्रत्याहृत होता है, अगोचरी से आत्मा से लौ लगती है, उन्मनी मुद्रा से चित्त सावधान बनता है।[1] बिहार के दरियासाहब ने लिखा है कि खेचरी, भूचरी और चाचरी आदि मुद्राएं कर्म में भटकाने वाली हैं। ये सब पिपीलिका योग की मुद्राएं हैं। इनके आगे विहंगम योग है, उन्मनी जिसकी मुद्रा है। राम सनेही सम्प्रदाय के श्रीराम जी ने भी खेचरी, भूचरी, चाचरी, गोचरी और उन्मनी मुद्रा कव वर्णन किया है।[2] तुलसी साहब ने भी इन्हीं मुद्राओं का विवेचन किया है।[3] सुन्दरदास ने हठयोग प्रदीपिका के अनुसार, दस मुद्राओं का विवरण दिया है। उनके द्वारा वर्णित मुद्राएं है: महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी मूलबंधु, उड्डियान बंध, जालंधरबंध, विपरीत करणी, ब्रजोली एवं शक्ति चालिनी।[4] इन मुद्राओं का उल्लेख उन्होनें अपने ज्ञानसमुद्र नामक ग्रन्थ में किया है। उल्लेखनीय है कि अपने सर्वांगयोग प्रदीपिका नामक ग्रन्थ में उन्होंने पाँच मुद्राओं एवं तीन बंधों का ही उल्लेख किया है।[5] चरनदास ने पांच मुद्रा का विवरण दिया है, किन्तु विस्तारपूर्वक इनमें खेचरी का ही

1- गुसाईं गुरु बानी, रतनज्ञान, पद 39, पृ. 22
2- श्रीरामदास महाराज की वाणी, अथ ग्रंथरणजीत, साखी. 11, 12
3- घटरामायण, 2 भाग, पृ. 136, 7
4- सुन्दरदर्शन पृ. 45
5- सर्वांगयोग प्रदीपिका, तृतीयोपदेश, 4।

उल्लेख किया है। उन्होनें खेचरी को श्रेष्ठतम मुद्रा माना है।

निष्कर्षतः संतों को खेचरी एवं उन्मनी मुद्रा बहुत प्रिय थी। योगेश्वराचार्य का विचार था कि—

"ज्योति दीपक टेम सम, भृकुटि मध्य दरसाय।
दरस निरंजन हेतु तब खेचरी बंध लगाय।।[1]

उन्मनी मुद्रा के लिए उन्मनी ध्यान एवं उन्मनी दशा का प्रयोग भी संतों ने किया है। कबीरदास तो उन्मनी पर चढ़कर गगनरस पीने के बहुत ही इच्छुक थे।

फेरा फिरैं ॥ ४ ॥ ८ ॥ ३८ ॥

प्यारी सजि सोलै सिणगार, शील सुध सुंदरी। चली चेतनकी चाल, वाणी मुखसुंदरी ॥ १ ॥ अजब झरोखै आय, अधर आसण किया। धरणि गगन विन धांम, परख परसी पिया ॥ २ सदा रहै पिव संग, रहता रंग रचरई। गरज रहीं गुरुज्ञान, मान मिलरही

T

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मई ॥ ३ ॥ अमर पिया उण देश, अर्थ करलीजिये। वनानाथ इण वांण,ब्रह्म रस पीजिये ॥ ४ ॥ ९ ॥ ४२ ॥

सुरत चली कर सार, सिमरण साचा किया। हिरदै भया हुलास, भरम पाछा दिया ॥ १ ॥ लिव लागी दिनरात, नाम नाभीसुं लिया। अरध उरधरै वीच, प्रेम प्याला पिया ॥ २ ॥ मेर इकीसूं छेद, निरत आगे चली। इला पिंगला सोध, सुखमणसूं मिली ॥ ३ ॥ तख्त त्रिवेणी महल, चेतन चहुँदिश भया। जप्या अजपा जाप, अखण्ड गुरुकी मया ॥ ४ ॥ निरगुण निरख्यो नाथ,नाम निश्चै किया। निरत रही लिवलाय, गगन डंका दिया ॥ ५ ॥ वाजा वज्या छतीस, गगन गरजत रह्या। झिलमिल जोत अपार, पवन परचै थया ॥ ६ ॥ सुन विच सहज समाय, ब्रह्म वेगम गाइया। जीव पीव मिल एक,अमर अनुभव भइया ॥ ॥ ७ ॥ वनानाथ धन्य भाग, ऐसी हर गुरु मया। अधर सिंघासण बैठ, मेहेरमैं मंगल कया॥८॥१०॥५०॥

जड सोई असत कलेश,जाकूं त्यागै परै। सत चेतन आनंद, ताकूं संग्रह करै ॥ १ ॥ तूं तत असी असार, मायामैं लेखिये। आतम अचल अथाय, माया नहीं पेखिये ॥ २ ॥ ये नित अनित विवेक, किया निज छांणही। गीता वेद पुराण, कहे परवांणही ॥ ३ ॥

T

वाणी

॥ टेर ॥ नाथ जी मिल्या म्हाने तट त्रिवेणी,

रमता पिछ्म रे अगम उनकी रेहणी ॥ टेर ॥

(1) जोगी नै जोवो तो भाई आवो जोग मैं,

दर्शन धारी जोगी तीन लोक मैं

....

(2) शिवजी नैं देख्या जगंम भारी,

सोहनी शिखर जोगी तारी लाई

....

(3) सेवोलो पारस न मछंदर कैसे पावोला,

नेम धर्म ले चौरासी मैं जावोला

....

(4) दत डिगम्बर रहत उदासी, ज्योती मैं जाय मिल्या सन्यासी

....

(5) ज्योती के ऊपर शब्द दुवेशी, रच दी वाणी एक वारता जेसी

....

(6) घट–घट ब्रह्या व्यापक सागी, श्री रामचन्द्र से अवतार बैरागी

जती रामनाथ बोल्या निर्गुण वाणी,

आद पुरुष म्हारी गोरख निशानी

आसन के बाद प्राणायाम के द्वारा षट्चक्रों को भेदकर शून्य में ध्यान इस प्रकार लगाए कि ध्यान में आत्मीयता, सुरति और नाद का विस्मरण हो जाए । इस प्रकार, चरनदास क्रिया रहित लय को योग-समाधि कहते हैं।[1]

सहज समाधि की चर्चा करते हुए पलटूसाहब ने लिखा है कि इसके लिए योग-मुक्ति, विवेक और आसन आदि की आवश्यकता नहीं है। जहाँ यह समाधि लगी कि ब्रह्मांड से शब्द फूटा।

सहजोबाई ने यौगिग प्रक्रिया के द्वारा सहज-समाधि को साध्य माना है। उनका विधान है कि पहले आसन साधे, फिर प्राण अपान को मिलावे और उसके उपरान्त मुद्रा की साधना करे। मुद्रा की साधना में योग्यता प्राप्त करके तीनों बंध लगावे एवं अनहद ध्वनि सुनकर सहज समाधि में निमग्न हो जाए, जहाँ न भोर होती है और न संध्या।[2] इसी प्रकार भीखासाहब का विचार है कि पाँचों मुद्रा साधे, सूर्य-चन्द्रमा को आकाश में बाँधे और छठे चक्र के उपरान्त पवन को ऊपर चढ़ाकर अनहद ध्वनि सुने। उसके उपरान्त साधक को अष्टदल कमल का परिचय होगा, जिसके साथ ही ज्योति के दर्शन में चित्त निमग्न हो जाएगा। उसको मिलेगी निरंजन की ज्योति और सहज समाधि।[3] हरिदास निरंजनी ने सहजा-वस्था की प्राप्ति के लिए मन और सुरति को पकड़कर उसे सहज के घर में डाल देना आवश्यक है।[4]

भक्तिसागर, पृ. 89

सहजोबाई की बानी. पृ. 3

भीखासाहब की बानी. पहाड़ा 5-9

श्रीमहाराज हरिदास जी की बानी, पृ. 98, 99, 204

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इण पंथ संत अनेक उधरिया, सतगुरु साख कहेलो। सिंवरथा सो संत पार पहुँचा, विन सिंवरथा डूबेलो ॥ टेर ॥ हरदम तार लगी घटभीतर, नाभिसुं निगै करेलो। उलटा भांनु पिछम जाय ऊगा, झिलमिल जोत जगेलो ॥ १ ॥ त्रिवेणी जाय हंस बिराजे, हीरा चूंण चुगेलो। मिटगई त्रास परम सुख पायो, जुग जुग राज्य करेलो ॥ २ ॥ उपज्या आनंद गगन जाय गरज्या, अनहदनाद घुरेलो। पीवत प्रेम विसरगई काया, जीव पीव मिल रेलो ॥ ३ ॥जीयाराम मिल्या गुरु पूरा, सुन बिच वास वसूंलो। कहैं वनानाथ सुणो भाई साधो, जगसुं रैत हुं अकेलो ॥ ४ ॥ १९ ॥९०॥

सुन सायरमैं सनमुख रैणा, सतगुरु पार करेलो। जड़ चेतनसूं परै परम गुरु, पद पूरण परसैलो ॥ टेर ॥ नहीं कोई अजपा जाप सिमरणा, किरिया करम थकेलो। दिष्ट न मुष्ट द्रिश मैं नांही, केवल गुरुगम गेलो ॥१॥ निरगुण नाम निगे विन नेड़ो, विन नैणां निरखैलो। दीसतरूप अरूप अपरबल, अकिरिय होय रहैलो ॥ २ ॥ सरबग श्याम सकल ब्रह्म व्यापक, नहीं कोइ संग अकेलो। निरभै पदरो कियो निवेड़ो, अमरालोक वरैलो ॥ ३ ॥ जीयाराम गुरु अगम अगोचर, क्या करणी कर केलो। कहै वनानाथ सुणों भाई साधो, अगम निगम दे हेलो ॥ ४ ॥ २० ॥ ९४ ॥

T

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आज मोहन आवियो, कर दया दासी जाण। पिलंग ढालूं प्रेमरा, पल पल वारूं प्राण ॥ टेर ॥ अरज

T

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करताँ आवियो, जिन विरद अपणो जांण। इला आवत ओलख्यौ, लियो पिंगला पिछाण ॥ १ ॥ द्वादस दरसण दिया, जिन सुखमणा घर आण। आसगत कीनी आरती, ब्रह्म वधायो बखाण ॥ २ ॥ वेहद वाजा वाजियां, चित रच्यो मंगला चाव। सुरत गावै सौलवां, वर वास करकर भाव ॥ ३ ॥ अनंत लोचन आगली, जिन निरत निरमल जांण। सदा सेवै सतगुरु, परतीत ले परवांण ॥ ४ ॥ दया कर गुरु दान दिया, परमपद रीजांण ॥ वनानाथ सो सवागण, वर पायो निरवाण ॥ ५ ॥ १५ ॥ ७४ ॥

परभातै उठ जाग, प्राणी नाम ले निरवाण। रहो हाजर हरषसूं; गुरु ज्ञान देशी जांण ॥ टेर ॥ मैं सवालि नामका, निज प्रेम पीया जांण। सदा सेवत सतगुरु, मैं सीस सूंप्या आंण ॥१॥ पीवतां निज पड़ी पारख, मिटी आवागौंण। आतम ओलख्यो आपमैं, दसुं दिस ऊगा भांण ॥२॥ प्रकाशरूपी पीव परस्या, ज्ञान कर घमसांण। सत चेतन आतमा, जां लगै नहीं जमडांण ॥३॥ सैंन दी मेरे सतगुरु चित, मिटी च्यारूं खांण। वनानाथ भया निरभय, छोडि खैंचा ताण ॥ ४ ॥ १६ ॥ ७८ ॥

T

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकृति परिवार सहित,खंडण करी। वनानाथ सुध बोध, निरमला निसपरी ॥ ४ ॥ ११ ॥ ६४ ॥

आज दिहाडो गरवा, देवरो गावां मँगलाचार॥टेर ॥ संतद्वारै चाले सखी, सज सोलै सिणगार । लघुतारा लंगर पहिरलो; धिन आजूडो दिन वार ॥ १ ॥ पांच सखी भेली हुई; मिली पचीसूं आंण । अरध उरध आसण किया, कररही पवनपिछांण ॥ २ ॥ तनकैरो दीपक करूं, वाती करूं मनसार । तेल सिंचाहूं प्रेमरो, जगियो ब्रह्मविचार ॥ ३ ॥ इडा पिंगला सोझके; सुषमण कियो निहार। रमझम करती कांमणी,आई त्रिवेणी दवार ॥ ४ ॥ दशवेंमें दरसण भया, अनहद घुरिया निसांण । जोत झिलामिल होय रही, ये साचा सैंनांण ॥५॥ जुड़ी हथाई हर नामरी, कररह्या संत विलास । वीच विराजे गुरु आपणा, क्रोड भानु परकास ॥ ६ ॥ जीयाराम गुरु भेटिया, भागा भरम अंधार । वनानाथ चरणो रहो, नितप्रति करो दिदार ॥ ७ ॥ १२ ॥ ६१ ॥

राग सोरठ ।

जागो जुगत विचारि, रहो कमलापति। औसर आयो हाथ, हमैं करलो गति ॥ टेर ॥ गरजत गगन मँझार, बिजलियां चमकती । अमृत झरत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपार, पिये कोई नर जती ॥ १ ॥ षट चक्रकूं छेद, चेतन चाल्या संत सती । उलट पुलट भर पीव, निकट गंगावती ॥ २ ॥ अखण्ड जोत दिनराति, लगतहै विन वती । देख्या देहीमें दीदार, जदि हुवा तिरपती ॥ ३ ॥ रहूं चरण लिपटाय, उतारूं गुरुरी आरती। वनानाथ कहे दास, सायब मोपर छत्रपती ॥ ४ ॥ १३ ॥ ६५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सायर सूभर भरया, सो हंसांकी धाम । गुरुमुख मोती चीणिया, वां पाया विसराम ॥ ८ ॥ जीयाराम गुरु भेटिया,परस्या पद निरवाण। वनानाथ निरभै भया, चित मिटगई चारूं खाण ॥ ९ ॥ २९ ॥ १४८ ॥

राग ।

हरदम हर बोलंदा, निगे करे मैं निरख्यो जोगिया । सोहूं साच कहंदा,सुंनने सायर रे मांय हो निरगुण रहंदा ॥ टेर ॥ प्रथम नाम निगे कर नाभी, रवि शशियर धवणाया । सुरत शब्द एकण घरलाया, जूना पीव जगाया ॥ १ ॥ सैंस कला सारी सारंग यूं, जोगी जोग जगाया, तीन देव वाकी करत खवासी, अजपा रहत अचाया ॥ २ ॥ गिगन गुफामें गैबी गरज्या, गुरुवचनां वहै आया। मिलग्यो मैरम मया कर मालक, महरम मुड़दा लाया ॥ ३ ॥ जीयाराम मिल्या गुरु पूरा, मोय पूरण प्याला पाया। वनानाथ योगेश्वर बोलै, मेरा सोवन सिखर मठ छाया ॥ ४ ॥ ३० ॥ १५२ ॥

राग आसावरी ।

साधो भाई जोगी जगसैं न्यारा, ज्यांका निगे कियां निसतारा। साधो भाई जोगी जगसैं न्यारा, ॥ टेर॥ पांच पचीस तीन वस करके, किया कालका चारा। आसण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राग।

इणविध हालो गुरुमुखी, सुण सुण करो विचार। गुरुविन गैलो ना मिलै ॥ टेर ॥ पाल पुरांणी पगनवा, चल्यो वटाऊ वे वाट। कोऊ वटाऊनै घेरके, लावे समझरी वाट ॥ १ ॥ जावतो मारगियो जांणदो, वलतांरो करो निहाल। वलतां साधूड़ांरी हाटड़ी, गुरुगम विणज सँभाल ॥ २ ॥ वे हर हीरारा पारखु, जासूं समजेन करो वोपार, विन समज्यां नहीं आपड़ो, थांरी पूंजी जावोला हार ॥ ३ ॥ पोटां बांधी प्रेमरी, मायै बुसतां भरी अपार। सुगरा सौदो कर चल्या, निगुरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फिरै असार ॥ ४ ॥ इला पिंगला सुषमना, त्रिवेणीरे निज पार। वरसे फुंवारा प्रेमरा, झिलमिल जोत दीदार ॥ ५ ॥ पारब्रह्म पद परसिया, दसमैं किया मुकाम। अनंत कोटि संत ताँ वसैं, सो निज निश्चल धाम॥६॥ षट्मत वेद पुरांणमैं, ये परगट निरधार। जीयारा म गुरुकी दया, वनानाथ कही सार ॥ ७॥ २८॥१२९॥

सतमारग सतगुरुतणा, चालै संत सुजांण, निगुरा नर पाछा चलै ॥ टेर ॥ चालो रे गुरु हाटड़ी, लेसां वस्तु विचार। जग व्योपारी मैं जांणिया, ज्यांरे बुसतां अनंत अपार ॥ १ ॥ वेपारी निज प्रेमरा, ज्यांरे गिरथां भरया भंडार। सतसंगत सुगरा ग्रहैं निगुरा गया विडार ॥ २ ॥ गुरुमुख गरवा चालणा, समझ सुघड़रो काम विन समझ्यां फल ना मिलै, पचपच मरे रे अजाण ॥ ३ ॥ गूणां भरी गियाँन री, अधिक प्रेमरी खाण। मतवालो मन लादियो, नर चाल्यो बहु जाण ॥ ४ ॥ विषम घाट वंक नालरा, आगे मांगे दांणीड़ो दाम। पट्टा लिखाया गुरुज्ञानरा, दांणी ऊभो करै रे सिलाम ॥ ५ ॥ गंगा जमुना सरस्वती, ताँ मिल मिट्या संताप। हंस अमरफल चाखिया, जप्या अजपा जाप ॥ ६ ॥ गगनमंडल जाय गरजिया, अनहद सुणी अवाज। सुरत विलुंबी स्वामसूं। सरया सबी विध काज॥ ७ ॥ सुन्न

२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सायर सूभर भरया, सो हंसांकी धाम। गुरुमुख मोती चीणिया, वां पाया विसराम ॥ ८ ॥ जीयाराम गुरु भेटिया, परस्या पद निरवाण। वनानाथ निरभै भया, चित मिटगई चारू खाण ॥ ९ ॥ २९ ॥ १४८ ॥

राग ।

ऐसा मेरे सतगुरु खेल रचाया, खबर करो खिलका मांहि ख्याली आप अलोगत थाया ॥ टेर ॥ कर चौकस चेतनकी चौकी, अरध ऊरध सुलझाया । उलटा पवन कँवल मांहिं पलथ्या, बंकनाल रस लाया ॥ १ ॥ इला पिंगला होय कर भेली, सुखमण सहज मिलाया । लगरही तार त्रिवेणीरे छाजें, अजब झरोखै आया ॥२॥ वोरंग राग हुई रंग महलां,गगनमंडल गिरणाया । सुरत निरत दोऊं अरधंग्या, मिलकर मंगल गाया ॥ ३ ॥ मिलरह्या जीव शीवके मांही,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकरूप निज थाया । कहै वनानाथ सुणो भाई साधो, लगै न जमका दाया ॥ ४ ॥ २२ ॥ १०२ ॥

धिन गुरु अविगत भेद बताया, तार न तूटै कबहुं न छूटै मेहर करी जब पाया॥टेर॥तन मन तार लगी त्रिवेणी, इला पिंगला धाया । पांचूं उलट मिली आतमसूं प्रेम पियाला पाया ॥ १ ॥ सुरता नारी सनमुख प्यारी, ज्ञान घटा झुक आया । परस्या पीव प्रेम सुन वासी, अनहद राग सुणाया ॥ २ ॥ अणभै वांणी राग अगमकी,जांणी आदि अनादी पाया। पूरणभाग मिल्यो अविनाशी, भरम करम नहीं काया ॥ ३ ॥ जीयाराम मिल्या गुरु पूरा,जम जालम समझाया ।कहै वनानाथ सुंणो भाइ साधो,अमरपट्टा ले आया॥४॥२३॥१०६॥

ऐसा मेरे सतगुरु देश दिखाया, करी कृपा सतगुरु निज स्वामी,सिमरथ साच लखाया ॥टेर॥ हरकुं हटक अटक जम जालम, गुण इंद्रिनकूं ढाया । नवं तत परे निरखिया निरगुण, आप स्वरूपी थाया ॥ १ ॥ दरस्या देव प्रेमसूं प्रीतम,अवरण अजर अजाया । समता सहज रमजमांहिं रहता, नहीं कोई गया न आया ॥२॥ कैसे कथूं अकथ भइ मालम, वचन परे थिरथाया। दिष्ट न मुष्ट लघु दीरघ नाहीं, जहां कोई धूप न छाया ॥ ३ ॥ जीयाराम मिल्या गुरु पूरा, अधर दलीचे

16:40

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समदां मांयँ ॥३॥ हंस बुगला इक सारसा, गुण कर दीसै दोय । वनानाथ मन ऊजला, हंस कहावै सोय ॥ ४ ॥ ६८ ॥ ३१२ ॥

हेली मन ममताकूं मारियै, कर कर ब्रह्म विचार॥टेर॥ ब्रह्मभेद विरला लहैं, तज भवसागर भाव । चितकर चाहत चांनणो, तिरै नाम चढ़ नाव ॥ १ ॥ केइक चाहत धरमकूं, केइ किरिया खटकरम । साधू चाहत शबदकूं, जांसुं मिटै भरम ॥ २ ॥ शबद ग्रह्या सोई पार है,भ्रम रह्या सो आर। आतम तत ओलख्यां विना, गया जमारो हार ॥३॥ सतगुरुसूं सनमुख सदा, मेट रहे कुलकाण। वनानाथ उण संतकूं, कबहुं न आवै हाण ॥ ४ ॥ ६९ ॥ ३१६ ॥

सनमुख सदा सहेलड़ी, पीया प्रेमपरवाण॥ टेर ॥ पांच सखी धुर पंथमें, मिली पचीसूं आण । अरध ऊरध आसण किया, कर रही पवन पिछाण ॥ १ ॥ इला गिवण आगे करै, करत पिंगला वैण। सनमुख सुखमण सांमकूं, निरख रही निज नैण ॥२॥ द्वादश दरस्या देवता, वेहद ऊगा भाण । उनमुन मुदरा आगली, परसी पद निरवाण ॥ ३ ॥ अनहद वाजा वाजिया, सुंन विच घुरया निसाण । वनानाथ उण ब्रह्मका, कैसा करूं बखाण ॥ ४ ॥ ७० ॥ ३२० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

T

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या जगमें, गुपता प्रगट अक्षर रे। वनानाथ है ब्रह्म वैरागी, बोल्या बोल निडर रे ॥ ५ ॥ ५४ ॥ २५६ ॥

राग वसंत।

होरी खेलूंगी घर आयकै, साधोजी ओ ज्यांमैं, हरष हरष गुण गायके। होरी खेलूंगी घर आयकै ॥ टेर ॥ पांच सखी मिल कियो महोलो, सज्यो शील सिणगार। महरम कर मैलातकी, हुई है चलणकूं त्यार ॥ १ ॥ इला पिंगला मिलकर दोनूं, सुखमण कियो निहार। हरष हरष गुणगायके वे, आई त्रिवेणी द्वार ॥ २ ॥ बाजा बज्या ब्रहमंडमें, सुण सुनको झणकार। रंग राच्या रामत भई, निरख रह्या संत सार ॥ ३ ॥ निरगुण नाथ रिझांयो सुरता, निरत कियो निरधार। रीझ करी राजी भया, दियो मुकतिको द्वार ॥४॥ परम वास वासो भयो, रही सांमकी लार। वनानाथ खेलै संत सूरा, मेरे ऐसो उपज्यो विचार॥५॥५५॥२६०॥

होरी खेलूंगी पिया पायकै, साधोजी ओ ज्यामें सदा सवागण थायकै। होरी खेलूंगी पिया पायकै ॥ टेर ॥ पीतम फाग रमैं चेतन सूं, मेरी भई जड़ चाल। होय सनमुख समजी संपिया कै, नितनित भई मैं निहाल ॥ १ ॥ खेलत फाग पियाकै परसंग, दरसण दिया है दयाल। मेट दुहाग कीवी मानेतण, अमर पायो वर

T

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

16:35

या विध खोजिया निरवाणी । जासूं जनम मरण मिटाणी ॥ टेर ॥ आपा मेट आपमें दरसें, कर प्रेम प्रीत परखाणी । घट घट रोम रोम में व्यापक, सतगुरु सैन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लखाणी ॥ १ ॥ सुरत शबद सुखमण घर लाया, तारो तार मिलाणी । नाभी जाय नामकूं निरख्या, अरध उरध सुलजाणी ॥ २ ॥ उलटा प्राण पिछम दिश फिरिया, वंकनाल वरसाणी । मेर इकीसूं छेदगई सुरता, गगनमंडल गरजाणी ॥ ३ ॥ राग छतीसूं बाजा बाजें, वां निरगुणकी रहाणी । गुरुपरताप चढ़्या गढ बंके, अनहद नाद घुराणी ॥ ४ ॥ जीयाराम मिल्या गुरु पूरा, निगम भौम दरसाणी । कहै वनानाथ सुणो भाई साधो, अनभौ जोत जगाणी ॥ ५ ॥ ४६ ॥ १२१ ॥

राग ।

देखोनी देख देखनमैं इण रणूकारकी धुनमें ॥ टेर ॥ नाभकँवलसूं नाम चलत है, वंकनाल बहन में । सुरत शबदके ताली लागी, अकल कला आपन में ॥ १ ॥ सुरत निरत मिल चढ़ी सिखरगढ़, निगम भोम निरखनमें । अनहद नाद बंसुरी बाजें, झीणी टेर सुननमें ॥ २ ॥ सोवन सिखरमें आप विराजें नहीं वो जनम मरणमें । झिलमिल झिलमिल जोत जगत है, सोहं वचन सबनमें ॥ ३ ॥ तिरगुण ताप तिमिर नहीं भासें, रहता लगन मगनमैं । वनानाथ सोई पद परस्या, गुरुमुख ज्ञान लखनमैं ॥ ५ ॥ ४७ ॥ २२९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वसमवेद कोई विरला पावै, उलटा विरछा मूल समावै ॥ टेर ॥ आप अकलतै सकल पसारा, धर अंबर रचिया आकारा । पसरा विरछ फूलिया वागा । आपहि जल आप सींचण लागा ॥ १ ॥ आपहिं बीज विरछ अविनासी, आपहि जीव भये जाति चौरासी । अंछर एक अनादी देवा, तिणकर बावन अंछर भेवा ॥ २ ॥ प्रथम सहजे सोहं उचारा, सहस्र दल कीया कमल पसारा । मानसरोवर हंस कहाया, मेरु डंड घर राह चलाया ॥ ३ ॥ तुरिये अतीत रूप सोउ भूला, अंछर चार मिल मूल घर फूला । सहस्र विसरिया च्यार द्रिढाया, जन्म मरणके मारग धाया ॥ ४ ॥ मूल कमल तुरिये जीव सो थाया, संख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बंधाणा फेर वंक न पाया । सुधी राह तज वंकी लीनी, जिण कारण चौरासी चीनी ॥ ५ ॥ संख भमर एक ग्रंथी लागी, बीज जागरत अवस्था जागी । वेद अथर्व परा भई वाणी, द्रिस जाल सत्ता लपटाणी ॥६॥ जाग्रत होय लिंग घर आया, खटदल अंछर कमल उपाया । काम कलीपर करत गुंजारा, विरमादेव रजोगुण धारा ॥ ७ ॥ उलटा उरध नाभ घर आया, दस अंछर एक कमल रचाया । सगत भुंज पश्यंती जागी, सामवेद स्वासा धुन लागी ॥ ८ ॥ पीठ कुंडली सोवत ध्याना, नील वरण सँग विष्णु बखाना । माया सगति परबल धारी । सहस्र बहोत्तर नाड़ी पसारी ॥ ९ ॥ पवनरूप सूर अभंगा, प्रलय अवसथा सुखोपति, संगा । जाग पवनसें मन सँग धाया, ह्रिदै द्वादश अंछर पाया ॥ १० ॥ मनमैं देखि मध्यमा वाणी, यजुरवेदकी कला पिछाणी । मन कला चंद महेसुरराया, संकलप डोरि सुपन दरसाया ॥ ११ ॥ द्वादश कला सूरकी छाया, मनरूप होय चंदा थाया । कंठ कमल मन मधुकर आया, षोडश दल एक कमल उपाया ॥ १२ ॥ रिगवेद वैखरी वाणी, इंद्र्यां स्थूल सत्ता उलझाणी । अंछर सोलै उचरत संगा, देवी सरस्वती जाण अरधंगा ॥ १२ ॥ बैठ त्रगटी द्रिदल-सथाना, महा जागरत अवसथा जाना । अंछर दोय

16:52

फकीरी या करे कोई सेर, मन कर मेर
श्वास कर मणियाँ, सुरत समझकर फेर ॥ टेर ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इड़ा पिंगला सम कर दोनूं, ज्ञान ध्यान धर हेर। श्वासा सुखमण कुंभक सगति, कर सुंन सिखरकी सेर ॥ १ ॥ मन मिल पवन शबद मिल सुरति, उलटत मूल सुमेर। सुखमण मारग मीन पपीलगत, खग ज्यूं सुरती पेर ॥ २ ॥ सुरति न नूरति रूप न मूरति, लीन भये सुनकी ढेर। सुनकेई पारा वो आतम न्यारा, अलख अजूणी अजेर ॥ ३ ॥ वनानाथ गुरु किरपा कर दी, ध्यान कला समसेर। नवलनाथ परमपद परस्या, काट बंधन मन केर ॥ ४ ॥ ४ ॥

फकीरी त्याग वैराग दोय धार। सरधा कर विच धार दुधारो, दुतीयाके सिर मार ॥ टेर ॥ त्याग खड़्ग अरिदल परसत, जब दरसत दीदार। भागत भरम ज्यूं त्यागत संसै, यहै भसमीभूत संसार ॥ १ ॥ अगनीसैं धातु पाणीसैं कपड़ा, सब मल तजत विकार। संकलप विकलप तजत वासना, त्यूं निकसत आतम सार ॥ २ ॥ हंसा जिम खीर नीरविन गिरसत, दधि मथ विरत निकार। जीव विवेकी पीवके प्यासैं, कर ध्यान धमण एकतार ॥ ३ ॥ चक्रवरती पूरा रण जीतत कोइ सूरा, अभय त्रिभुवन करार ॥ नवलनाथ निरंजण मिलिया, वनानाथ गुरु धार ॥ ४॥ ५ ॥

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

जोग जगाया ॥ १२ ॥ कठण जोग है पंथ करारा, वहणा महा खड्गकी धारा। सब दल छेद हटै कबु नांहीं, सूर वीर छाजे दलमांहीं ॥ १३ ॥ प्रथम जाय नाभ कू हेरी, सतगुरु सबद लगाई फेरी। जासूं फुरे कामना सारी, अती अपरबल नागन नारी॥ १४ ॥ नाभी नगर नागणी जागी, जाकूं देख सकल जग भागी। उस नागनने सब जग खाया, जां सतगुरु पूरा नहीं पाया॥ १५॥उस नागणकूं मारे कोई, जाके धड़पर शीस न होई।नागण मार नगर सब हेरा,उलटा प्राण पश्चिमकूं

T

CC-0 Mumukshu Bhawan Varanasi Collection Digitized by eGangotri

फेरा ॥१६॥ नाभी कमल चेतनकी चोकी,उठती लहर उपजती रोकी।ऐसे चल्या पश्चिमकी घाटी, गांठ एकीसुं मेर की फाटी ॥१७॥ वंकनाल भंवरा वहे आया, उलटा कमल अमी वरसाया। झिलमिल जोत जुगतसैं जागी,चेतन चल्या शिखर घर पागी॥१८॥इला पिंगला सुखमण भेला,उलटा किया त्रिकुटी मेला।त्रिकुटी महल झिलकतझांई,द्वादस नेजा फुरकत वांई॥१९॥मन पवन मिल धीरज पाई,सहजै चल्या गिगन पर जाई। सुरत सबदके मिटगया शंका, ऐसे लिया गिगन घर वंका ॥२०॥अनहद नाद वहां नित वाजे, झूठ कहूं तो सतगुरु लाजे। विनो वादली वरखा होती, स्वति बूंद नित वरसे मोती ॥ २१ ॥ ऐसा खेल गिगन घर खेली,अधर बुंद अमृतकी झेली। अमृत पीवैं सो बड़भागी, जाकी सुरत गिगनमें लागी ॥ २२ ॥ खरतर खेल रचा बहु भारी, विना पाव जां नाचत नारी। टूंटा ताल वजावण लागा, गूंगा करै मुदरीमें रागा ॥ २३ ॥ बहेरां सुन्या पांगला भागा, अंधा निरत निरखणे लागा। उलटा पंथ खोज नहीं दरसै,सो साधू घर ऐसा परसै ॥ २४ ॥ नटणी पांव वरतपर मेलैं,लोक हसे मुख आप न बोलै। सबकी सुनी मैं कान न दिया, निश्चै हेर अमर घर लिया ॥ २५ ॥ ऐसी गती पिछाणे जोगी, सदा समान ब्रह्मरस भोगी।

T

CC-0 Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वनानाथ निश्चै कही वाणी, सो गुरुमुख जन लेहिं पिछाणी ॥२६॥ जोग तणा महरम लख गाया, आगम निगम यूं कह दरसाया। या विध जोग जुगत कर जोवें, सो जोगेश्वर निर्भय होवें ॥ २७ ॥ अब सुण कहूं सुन्नकि साखा, सदा सामान परमाण न जाका। अपरमाण अलोगत सोई, आद अंत जां मध्य नहिं कोई ॥२८॥ हंस जाय सुंन घर जोया, जैसे हीर हीरकूं पोया। रवि अरु बिंब सदा हैं मेला, ऐसे हुवा ब्रह्मसूं मेला ॥ २९ ॥ जीव ब्रह्म जां दूजा नाहीं,सहजे मिला सिमरथके सांई। सिमरथ सांई हैं सब मांहीं, रहता पुरुष दीसता नाहीं ॥ ३० ॥ जड चेतनमें है एक सारा, भरया ब्रह्म नहीं कछु न्यारा। पुष्प वासना दीसत नाहीं, ऐसै ब्रह्म भरया सब मांहीं ॥ ३१ ॥ मैं नहीं जां मैं चल आया, ऐसा खेल अधरमें पाया। नहीं जहां पिंड पवन भी नाहीं, सकल खेल दीसत मो माहीं ॥३२॥ सो दीसै सो कहिये माया, आप अरूप अथाग रहवाया। काया करम नहीं जां कर्ता, भोक्ता भोग्य नहीं जां भर्ता ॥ ३३ ॥ भेदी जके भरमगढ़ जीता, अनु-

17:15
अनुभव प्रकाश: Anubh...
exoticindiaart.com

सतगुरू दाता दयाल हैं, देते शिष्य को ज्ञान॥14॥
शब्द भेद निर्णय किया, कर दिया साफ ब्यान।
अब आगे की सुनो, जिससे हो कल्याण॥15॥
ऊंचा मार्ग सन्त का, सतलोक का खण्ड।
इससे नीचे रह गए, पिण्ड अण्ड ब्रह्मण्ड॥16॥
आंख कान मुंह बन्द कर, सुनना अनहद नाद।
दोनों तिल इक तार कर, दिल में करना याद॥17॥
नेत्र खोलो तीसरा, जहां पर जगमग ज्योत।
अन्तर्मुखी जब सुरत हो, खुले गगन का स्त्रोत॥18॥
जब अन्तर सुरती चढ़े, खिल जाता प्रकाश।
तिल की ओट वह खुद है, करते जिसे तलाश॥19॥
बाहरी आंखें, जड़ हैं, इनको करना बन्द।
भीतर ही सब खिल रहे, सूरज तारे चन्द॥20॥
अन्तर में जब नैन हैं, करो शब्द अभ्यास।
खुद में खुद ही छुप रहा, करते जिसे तलाश॥21॥
दसवां हिस्सा राई का, युक्ति द्वारा जान।
जैसे नाका सूई का, इससे कम प्रमाण॥22॥
एड़ा पिंगला सुखमना, नाड़ी तीन पिछान।
सुखमन सब में श्रेष्ठ है, यह सब की प्रधान॥23॥
जब सुरती ऊपर चढ़े, खुल जाता है द्वार।
सहस कंवल दल खिल रहा, बत्ती जलें हजार॥24॥
घंटा शंख यहां बज रहे, अजब हो रही धुन।
अनहद वाणी हो रही, सुरत कान से सुन॥25॥

17:04
स्वामी जीवारामजी का अ...
exoticindiaart.com

शब्द राग आसावरी

हल तो ऐसो मिलो मेरा भाई, सतगुरु दिया समझाई॥टेक
ओंम्कार हल गाड़ गांगड़ा, आनन्द हाल लगाई।
ज्ञान ध्यान दो बैल जोत कर, काया खेत बुवाई॥1
सत की सिमल जैन को जूड़ा, जुगत जोतड़ों भाई।
नाड़ी निरभय की ऐसी बांधी, गहरी गांठ लगाई॥2
चेतन चाऊं कर्म कुश समझो, करनी कांटी जड़ाई।
भाव बीज ले बोया खेत में, मेहरम मोती पाई॥3
लगन लावणी करे भ्रम की, कुबध काट भगाई।
कह जीवादास सुनो भाई साधो, ये बिधि गुरु से पाई॥4

शब्द राग गजल

अब तुम दया करो गुरुदेव जी, निज वचन लिखाने वाले॥टेक
प्रथम मूल को बन्द लगवाया, फिर उलटी पवन चढ़वाया जी।
शुद्ध ध्यान बताने वाले॥1
सब द्वार बन्द करवाय, नाभी में सुरत लगवाया जी।
प्राणायाम करवाने वाले॥2
दिया दरश हृदय के मांही, वहां गुरु गम ज्ञान जगाई जी।
अनुभव अर्थ लिखाने वाले॥3
बेसुधि चक्कर सुलटाया, तालु विच रसना लगवाया जी।
अमीरस को पिलाने वाले॥4
सब रकार मकार हटवाया, फिर त्रिकुटी भवन खुलवाया जी।
नूर में नूर मिलाने वाले॥5
भदुराम जी सतगुरु पाया, यह जीवादास गुण गाया जी।
भव दुःख मिटाने वाले॥6

शब्द राग आसावरी

सतगुरु मोहे तार दिया मेरे दाता।
जन्मा जन्म कबहुं नहीं भूलूं, बार ही बार गुण गाता॥टेक
सोता जीव जगत के मांही, सतगुरु आण जगाता।
पार ब्रह्म की झांकी देकर, शुद्ध सुख रूप दिखाता॥1
भव जल मांही अटकी नय्या, फिर फिर गोता खाता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूल तिरये धारी,जद जीव मान भरमाया॥ ३ ॥ सुपन मांय सुपनी सम स्वामी, कर दूजा दुख पाया। स्व स्वामीभाव सगत संबंधा,विधि अनेक वणाया॥ ४ ॥ सहज समाधि भूल जग रचिया, लगी समाधि समाया। नवलनाथ आपका आपा, गुरू वनानाथ देखाया ॥ ५ ॥ १९ ॥

सुसमवेद सचियार सोजो,आतमा दिनरैण खोजो। विषयारस सिरसें त्याग बोजो, आपसे धुन लाय। अवधू आपो केवल थाय भाई ॥ टेर ॥ नाभमें निरवाण जोवो, सुरत सुखमण वीच पोवो। योगनिद्रा अभै सोवो,अरध ऊरध मिलाय। अवधू सहज अरस समाय भाई ॥ १ ॥ विषम नाली वंक हेरो, उलट पवना पिच्छम फेरो। चूर अरिदल गिगन घेरो,सूर शशि घर लाय। अवधू दमोदम हर पाय भाई ॥ २ ॥ कर चकर सुलटा प्राण पेरो,सोहं हंस एकसार टेरो। शिखर सीधा ठाय मेरो, सगत सिव घर जाय। अवधू बहुर जन्म न आय भाई ॥ ३ ॥ प्राण तन मन सीस तेरो, चरण रहै नवलनाथ चेरो। नही बंधण करम केरो, वनानाथ गुरु ध्याय। अवधू दियो पूरण ब्रह्म दरसाय भाई॥४॥२०॥

इति श्रीनवलनाथजी महाराजरी वाणी समाप्त।

अनुभवप्रकाश समाप्त।

T

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

19:47
66715 (665×1116)
content://media/external/downloads/6671

करना चाहिये तथा मूल मन्त्र से देह का मार्जन करके हृदय पर हाथ रखकर 'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा, ॐ आं हुं फट् स्वाहा' से आत्मरक्षा करके प्राणायामोपरान्त भूतशुद्धि करनी चाहिये। वह इस प्रकार से है—अपनी गोद में उत्तान अर्थात् हथेली को ऊपर की ओर करके रखे और सोऽहं रूप जीवात्मा को हृदयस्थ दीपकलिकाकार मूलाधारस्थ कुलकुण्डलिनी के साथ सुषुम्ना वर्त्म में मूलाधार स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत विशुद्ध आज्ञारूप षट्चक्र का भेदन करके शिर में स्थित अधोमुखी सहस्रदल कर्णिका के अन्तर्गत परमात्मा के साथ संयुक्त करे। वहाँ पर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, गन्ध, रूप, रस, स्पर्श, शब्द, नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, प्रकृति, मन, बुद्धि, अहङ्कार रूप चौबीस तत्त्व विलीन हो रहे हैं—यह भावना करनी चाहिये। तब 'यं' वायुबीज को, जो धूम्रवर्ण है, वाम नासापुट में उसकी भावना करके वहाँ १६ बार उसका जप करके वायु से देह को आपूरित करके (पूरक करके) नासापुट को दबाये। बीज का (इस दबायी स्थिति में) ६४ बार कुम्भक स्थिति में जप करे और बाँयीं कोख में स्थित काले रंग के पापपुरुष से देह को शुद्ध करके ३२ बार जप करते हुये दाहिने नासापुट से वायु को बाहर (रेचक) करे। अब दाहिने नासापुट से 'रं' बीज, जो रक्तवर्ण है, का ध्यान करते हुये इसी बीज का १६ बार जप करते हुये वायु को भीतर (पूरक) खींचे और देह को वायु से आपूरित करे। अब नासापुटों को दबाकर ६४ बार जप करते हुये कुम्भक करे। तदनन्तर पापपुरुष के साथ देह को मूलाधारस्थ अग्नि में दग्ध करके ३२ बार जप करते हुये वाम नासा से देह तथा पापपुरुष की भस्म के साथ वायु को बाहर छोड़े (रेचक करे)। 'ठं' चन्द्रबीज, जो शुक्लवर्ण है, उसका ध्यान वाम नासा में करके १६ बार जप करते हुये उसे ललाट में चन्द्र तक (पूरक) ले जाय। अब नासापुटों को दबाकर 'वं' वरुणबीज का ६४ बार (कुम्भक) जप करते हुये कुम्भक करके ललाटस्थ चन्द्रमा से गलित हो रही सुधा को, जो मातृकावर्णात्मिका है, समस्त देह में लगाकर (भावना करके) 'लं' पृथ्वी-बीज का ३२ बार जप करते हुये देह की सुदृढ़ता की भावना करे और दाहिनी नासिका से वायु को बाहर छोड़े (रेचन)।

विशेष—श्यामार्चनचन्द्रिका, वीरतन्त्र, तन्त्रसार-प्रभृति अनेक तन्त्रों का कथन है कि पहले भूतशुद्धि करके तब प्राणायाम करना चाहिये। कालीतन्त्र तथा श्यामारहस्य में कहते हैं कि पहले प्राणायाम करके तब भूतशुद्धि करनी चाहिये। लेकिन अन्नदाकल्प, लिङ्गार्चन-तन्त्र तथा गौतमीय तन्त्र में कहते हैं कि भूतशुद्धि तथा मातृकान्यासोपरान्त प्राणायाम करना चाहिये। स्वतन्त्रतन्त्र में कहते हैं कि पूजा अनेक प्रकार की होती है। उसमें से जिस प्रकार की पूजा करने की इच्छा हो जाय, उसी के अनुसार करनी चाहिये—'पूजा तु विविधा प्रोक्ता तास्वेकतममाश्रयेत्'।

ततः 'ॐ आं हुं फट् स्वाहा' इति व्यापकतया कायवाक्चित्तशोधनं

19:48
66725 (397×619)
content://media/external/downloads/6672

गई है। और लाल भूरे द्रव्य से बनी हुई सुषुम्णा और वज्रा नाड़ियों के रंग लाल तथा दाड़िम के रंग जैसा कहा है, उसका कारण उन द्रव्यों में रक्त वाहिनियां फैली हैं। अतः उनके रंगों की छाया से ही वह लाल रंग वाली दीखती है।

सुषुम्णा का अगला (पूर्व) और पिछला (पश्चिम) भाग थोड़ा चीरा हुआ होता है और उन दोनों बाजुओं की फाड़ें मध्य बिन्दु के आगे थोड़ी दूर रुकती है। इस पर से स्पष्ट समझ में आता है कि रज्जु के मध्य बिन्दु के आगे का भाग अति सूक्ष्म नलिका जैसा होता है। उस सूक्ष्म नलिका रूप पोल को ही आर्यग्रंथों में ब्रह्मनाड़ी कहा है। मूलाधार चक्र में रही हुई कुंडलिनी उस पोल जैसे ब्रह्मरंध्र में चली जाती है। उस संबंध में कहा है कि यह पोलापन जो चित्रिणी नाड़ी के अंदर है और जो छः चक्रों के बीच में से ब्रह्मरंध्र तक जाता है, उस ब्रह्मरंध्र तक जाने के मार्गरूप पोलेपन को ब्रह्मनाड़ी कहते हैं। जिस तरह माला के मनके एक डोरी में पिरोए होते हैं, उसी तरह उस नाड़ी में सब चक्र पिरोये हुए हैं, इतना ही नहीं, लेकिन छः चक्रों में पोल में उसका तेज व्याप रहा है। ब्रह्मनाड़ी यानी ब्रह्मरंध्र तक अथवा ब्रह्मस्वरूप जहां स्थित है ऐसे सहस्रार चक्र तक पहुंचाने वाली नाड़ी के बारे में षट्चक्र निरूपण में कहा है कि, तन्मध्ये ब्रह्मनाडी हरमुख कुहरादादिदेवान्त संस्था उसी (चित्रिणी नाड़ी) के मध्य में मूलाधार चक्र में रहे हुए स्वयं भुलिंग से सहस्रदल कमल में रहते हुए परबिन्दु (परब्रह्म) तक का छिद्र ब्रह्मनाड़ी है। इस तरह त्रितयगुणरूपी सुषुम्णा के मध्य का पोला छिद्र ही ब्रह्मनाड़ी कही जाती है। यह टीकाकार अधिक स्पष्ट करता है। *(नड्गताविति धातोर्नडयते गम्यतेऽनयापदव्या इति नाडी पदवी, ब्रह्मणो नाडीति व्युत्पत्या ब्रह्मनाडी ब्रह्मपदवी शुद्धब्रह्मरूपायाः कुण्डलिन्याः परमशिवसन्निधिगमनपथरूप चित्रिणीनाड्यन्तर्गता शून्यभागः 2, (षट्चक्र. श्लोक. 2 टीका)* इस तरह मेरुदंड में रही हुई तिकोणाकार शून्यनाड़ी को स्थूलदृष्टि से सुषुम्णा ऐसा सामान्य नाम दिया गया है। उसके ही गुण-भेद के कारण चित्रिणी वज्रा और सुषम्णा ऐसे तीन नाम पड़े हैं और उसके अंदर जो सूक्ष्म खालीपन है उसे ब्रह्मनाड़ी कहते हैं।

सुषुम्णा के कुल मिलाकर अवयव इस प्रकार होते हैं :— (1) सूक्ष्म नलिका अथवा ब्रह्मनाड़ी, जिसे कि सामान्यतः सुषुम्णा का मार्ग कह सकते हैं वह, (2) अगली और पिछली फाड से होने वाले उत्तर और दक्षिण गोलार्ध, (3) मेरु के मनकों में से निकलने वाले तंतुओं के अगले और पिछले मूल, (4) तंतुओं के मूल और हर एक गोलार्ध के अर्धचन्द्र जैसे भाग की सींगों जैसी नोकों का प्रदेश जो कि वज्रा और सुषुम्णा हैं, सो दो नाड़ियां, (5) दो गोलार्धों को जोड़ने वाले बारीक तंतुएँ और (6) हर एक तंतु के दो मूल मेरु के मनकों के बीच की जगहों में से निकल कर ग्रंथ रूप से बन कर अपनी शाखाओं को फैलाते हैं वह प्रदेश।

19:48
66725 (397×619)
content://media/external/downloads/6672

गई है। और लाल भूरे द्रव्य से बनी हुई सुषुम्णा और वज्रा नाड़ियों के रंग लाल तथा दाड़िम् के रंग जैसा कहा है, उसका कारण उन द्रव्यों में रक्त वाहिनियां फैली हैं। अतः उनके रंगों की छाया से ही वह लाल रंग वाली दीखती है।

सुषुम्णा का अगला (पूर्व) और पिछला (पश्चिम) भाग थोड़ा चीरा हुआ होता है और उन दोनों बाजुओं की फाड़ें मध्य बिन्दु के आगे थोड़ी दूर रुकती है। इस पर से स्पष्ट समझ में आता है कि रज्जु के मध्य बिन्दु के आगे का भाग अति सूक्ष्म नलिका जैसा होता है। उस सूक्ष्म नलिका रूप पोल को ही आर्यग्रंथों में ब्रह्मनाड़ी कहा है। मूलाधार चक्र में रही हुई कुंडलिनी उस पोल जैसे ब्रह्मरंध्र में चली जाती है। उस संबंध में कहा है कि यह पोलापन जो चित्रिणी नाड़ी के अंदर है और जो छः चक्रों के बीच में से ब्रह्मरंध्र तक जाता है, उस ब्रह्मरंध्र तक जाने के मार्गरूप पोलेपन को ब्रह्मनाड़ी कहते हैं। जिस तरह माला के मनके एक डोरी में पिरोए होते हैं, उसी तरह उस नाड़ी में सब चक्र पिरोये हुए हैं, इतना ही नहीं, लेकिन छः चक्रों में पोल में उसका तेज व्याप रहा है। ब्रह्मनाड़ी यानी ब्रह्मरंध्र तक अथवा ब्रह्मस्वरूप जहां स्थित है ऐसे सहस्रार चक्र तक पहुंचाने वाली नाड़ी के बारे में षट्चक्र निरूपण में कहा है कि, **तन्मध्ये ब्रह्मनाडी हरमुख कुहरादादिदेवान्त संस्था** उसी (चित्रिणी नाड़ी) के मध्य में मूलाधार चक्र में रहे हुए स्वयं भुलिंग से सहस्रदल कमल में रहते हुए परबिन्दु (परब्रह्म) तक का छिद्र ब्रह्मनाड़ी है। इस तरह त्रितयगुणरूपी सुषुम्णा के मध्य का पोला छिद्र ही ब्रह्मनाड़ी कही जाती है। वह टीकाकार अधिक स्पष्ट करता है। *(नड्गताविति धातेर्नड्यते गम्यतेऽनयापदव्या इति नाडी पदवी, ब्रह्मणो नाडीति व्युत्पत्या ब्रह्मनाडी ब्रह्मपदवी शुद्धब्रह्मरूपायाः कुण्डलिन्याः परमशिवसन्निधिगमनपथरूप चित्रिणीनाड्यन्तर्गत शून्यभागः 2, (षड्चक्र. श्लोक. 2 टीका)* इस तरह मेरुदंड में रही हुई तिकोणाकार दृश्यनाड़ी को स्थूलदृष्टि से सुषुम्णा ऐसा सामान्य नाम दिया गया है। उसके ही गुण-भेद के कारण चित्रिणी वज्रा और सुषम्णा ऐसे तीन नाम पड़े हैं और उसके अंदर जो सूक्ष्म खालीपन है उसे ब्रह्मनाड़ी कहते हैं।

सुषुम्णा के कुल मिलाकर अवयव इस प्रकार होते हैं :– (1) सूक्ष्म नलिका अथवा ब्रह्मनाड़ी, जिसे कि सामान्यतः सुषुम्णा का मार्ग कह सकते हैं वह, (2) अगली और पिछली फाड से होने वाले उत्तर और दक्षिण गोलार्ध, (3) मेरु के मनकों में से निकलने वाले तंतुओं के अगले और पिछले मूल, (4) तंतुओं के मूल और हर एक गोलार्ध के अर्धचन्द्र जैसे भाग की सींगों जैसी नोकों का प्रदेश जो कि वज्रा और सुषुम्णा हैं, सो दो नाड़ियां, (5) दो गोलार्धों को जोड़ने वाले बारीक तंतुएँ और (6) हर एक तंतु के दो मूल मेरु के मनकों के बीच की जगहों में से निकल कर ग्रंथ रूप से बन कर अपनी शाखाओं को फैलाते हैं वह प्रदेश।

20:00

राग मंगल।

प्यारी ये अधर सधरकी सैन ॥ समझ घटमें धरी ॥
सुरत समाया भेव ॥ देव गुरू गमगरी ॥ १ ॥
नाभी किया निहार ॥ निगे सबकी करी ॥
पांचूं शस्त्र बांध ॥ पश्चिमदिशकूं फुरी ॥ २ ॥
इडा पिंगला सोझ ॥ सुषमणा निरखरी ॥
अखंड जोत प्रकाश ॥ त्रिवेणी तट भरी ॥ ३ ॥
गगन मंडल गुंझार ॥ राग अनहद घूरी ॥

मन पायो विश्राम ॥ खुली मुक्त गली ॥ ४ ॥
सुंन सायर भरपूर ॥ वास वेगम पुरी ॥
रहत अटल अविनाश ॥ राय ओ परापरी ॥ ५ ॥
वनानाथ गुरू देव ॥ दया मुझपर करी ॥
उमाराम पिछाण ॥ मिल्यो मोहन हरी ॥ ६ ॥ ९ ॥

रागमंगल।

प्यारी ये सोझी सुरत विचार ॥ चली कर सार है ॥
लिया अगम अस्थान ॥ मिल्यो करतार है ॥ १ ॥
दर्शन दिया दयाल ॥ भया दुख दूर है ॥
सतसायरमें सहज ॥ सदा भरपूर है ॥ २ ॥
अविगत अखे अजीत ॥ जीत नांहि हार है ॥
रहता ब्रह्म नचिन्त ॥ पुरुष नहीं नार है ॥ ३ ॥
लखे सन्त यह सैन ॥ ज्याकूं इतबार है ॥
उमाराम विचार ॥ कही निज सार है ॥४॥ १० ॥

राग मंगल।

प्यारी ये ले सतगुरूकी सार ॥ धार कर निहार है ॥
देखत पेखत सैन ॥ समझ भव पार है ॥ १ ॥
तूटत छूटत फन्द ॥ निरत निरबंध है ॥
खंडत नहीं अखंड ॥ लगे नहि दण्ड है ॥ २ ॥
जात न पांत न भांत ॥ रूप नांहि रंगहै ॥
गम नहीं अगम अखेद ॥ अटल अणभंग है ॥ ३ ॥

तथा चारचक्र (निर्माण चक्र, धर्म चक्र, सम्भोग चक्र एवं महासुख चक्र) माने गए। चारों चक्रों को मेरूदण्ड में स्थित माना। सिद्ध इस मेरूदण्ड को सुमेरू पर्वत अथवा मेरूगिरि द्वारा सम्बोधित करते हैं।

सिद्ध कृष्णपाद (कराहपा) मेरूदण्ड को मेरूगिरि के रूप में परिकल्पित करते हुए कहते हैं कि कंकाल रूपी श्रेष्ठ सुमेरू पर्वत है, जिसके शिखर पर शबरी नैरात्मा का वास है। उसके मूल में कन्दरा (मूलाधार चक्र) है, जिसमें विमल सलिल रूपी शुक्र विरोचन बोधिचित्त स्थित है। अन्दर ही अन्दर कालाग्नि है, जो साधना के बिना अधोमुखी हो शुक्र को सुखा डालती है और पवन निरोध के बाद ऊर्ध्वमुखी होकर प्रकाश करती है और शुक्र रूपी उपाय भी प्रज्ञा के समागम के लिए गतिमान होता है।[102]

मेरूदण्ड के उच्चतम शिखर पर महासुख चक्र है, जिसमें नैरात्मा सुन्दरी (शक्ति) का वास है। इसके मूल में नाभिचक्र है, जिसमें बोधि चित्त शुक्र रूप में निवास करता है। इसके बीच में दो चक्र और हैं हृदय और कंठ के समीप। सिद्ध साहित्य में इन चार चक्रों को चार कमल माना है। इन्हें आरोही क्रम में नाभिकमल, हृत्कमल, सम्भोग कमल एवं उष्णीय कमल बताया है। इन चारों कमलों में क्रमशः निर्माण काया, धर्म काया, सम्भोग काया एवं महासुख काया का निवास होता है। इस प्रकार चारों चक्रों में बुद्ध की चार कायाओं का निवास होता है। और उन्हीं के आधार पर चार चक्रों को नाम दिया है।[103]

101. सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती पृ. 211
102. सिद्ध साहित्य – पृ. 211
103. वही पृ. 212

उष्णीय कमल में महासुख काया है अतः उसे महासुख चक्र; कंठ के समीपवर्ती चक्र में सम्भोगकाया है अतः उसे सम्भोग चक्र, हृदय प्रवेश में स्थित चक्र में धर्म काया है अतः धर्म चक्र तथा नाभि में निर्माण काया अतः उसे निर्माण चक्र नाम दिया गया है। इन चक्रों को कमल के रूप में परिकल्पित किया गया है। निर्माणचक्र में 64, धर्म चक्र में 32, सम्भोग चक्र में 16 तथा महासुख चक्र मे 6 पँखुरी मानी गई है। इन कमलों की पँखुरियों पर बीजाक्षर अंकित है।[104]

इन चक्रों के बंधन का मार्ग नाड़ियों से हो कर है। इनकी संख्या 32 मानी है (हेवज में)। चर्यापदों में ललना, रसना और अवधूती को विशेष मान विभिन्न प्रतीकों द्वारा लक्षित किया गया है। ललना नाम नासापुट के समीप है चन्द्र स्वभाव की है और प्रज्ञा रूप है। रसना दक्षिण नासापुट के समीप है, सूर्य स्वभाव की है और उपाय रूप है। अवधूती इन दोनों के मध्य ग्राह्य–ग्राहक वर्जित रूप में स्थित है।[105]

सिद्धों में दाँई–बाँई ओर स्थित नाड़ियों पर नियंत्रण करते हुए मध्य नाडी के सहारे बोधि चित्त का उन्नयन किया जाता है। शरीर में पंच वायु है। उनमें से अपान वायु की निम्नगामिनी गति है और प्राणवायु ऊर्ध्वगामिनी है। ऐसी स्थिति में सिद्ध–साधक प्राण और अपान दोनों पर नियंत्रण करना अपेक्षित है और साथ ही इनको सुषुम्ना के मार्ग से प्रवाहित करना चाहिए। इस प्रकार मुख्यवायु के सुषुम्ना के भीतर प्रवाहित होने से बोधिचित्त भी ऊर्ध्वगामी हो उष्णीय कमल तक पहुँचता है और महासुख की स्थिति उत्पन्न होती है।[106] सिद्ध–साधना में श्रेष्ठ गुरू को आवश्यक माना गया है, क्योंकि वह गुप्त प्रयोगात्मक साधना धर्म एवं उसके अलौकिक गूढ़ प्रवृत्तियों का समय–समय पर निर्देश देता है। जिससे साधक के साधना पथ में आने वाली विघ्न बाधाएँ समाप्त होती हैं।

हठयोग का सिद्धांत यह है कि स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर एक ही भाव में गुम्फित है और एक का प्रभाव दूसरे पर पूरा बना रहता है। स्थूल शरीर को अपने अधीन कर सूक्ष्म शरीर को अधीन करते हुए योग की प्राप्ति करने को हठयोग कहते हैं।[125]

किन्तु हठयोग का सम्प्रदायगत विशिष्ट अर्थ प्रचलित है।

सिद्ध सिद्धांत पद्धति में हठयोग को परिभाषित किया गया है –

हकारः कथितः सूर्यः ठकारश्चन्द्र उच्यते।

सूर्याचन्द्रमासेर्योगात् हठयोगो निगद्यते।।

यहाँ 'ह' का अर्थ सूर्य बताया गया है और 'ठ' का अर्थ चन्द्र। सूर्य एवं चन्द्र का योग ही हठ योग है।[126] गोरक्षनाथ ने हठयोग के स्वास्थ्य का सम्पादन करते हुए सूर्य और चन्द्रमा के सहज सायुज्य पर बल दिया है –

चंद सूर दोऊ समि करि राष्या आपैं आप जु मिलिया।[127]

सिद्ध सिद्धांत पद्धति में वर्णित श्लोक की व्याख्या विभिन्न प्रकार से की गई है। एक व्याख्या के अनुसार सूर्य से तात्पर्य प्राणवायु से तथा चन्द्र का आपान वायु से है। अतः प्राणायाम द्वारा उक्त दोनों प्रकार की वायु का निरोध हठयोग है। दूसरे मत के अनुसार सूर्य इडा तथा चन्द्र पिंगला नाड़ियों का प्रतीक है। इस पर नियंत्रण करके सुषुम्ना – मार्ग से प्राणवायु को संचरित करना हठयोग कहलाता है। सूर्य और चन्द्रमा को नामान्तर से गंगायमुना भी कहा गया है, जो क्रमशः इडा और पिंगला के प्रतीक हैं।[128]

नाथ सम्प्रदाय के अन्तर्गत शक्ति से शिव के योग को हठयोग कहा है। इसके लिए शरीर में स्थित शक्तिरूपी कुण्डलिनी को; उद्बुद्ध कर क्रमशः षट्चक्रों का भेदन करते हुए शीर्षस्थ सहस्रार चक्र में जहाँ शिव का निवास है, ले जाया जाता है।[129] यही आनन्दानुभूति, परम तत्व के बोध की स्थिति है, हठयोग का अन्तिम साध्य है।

योगस्वरोदय में हठयोग के दो भेद बताए हैं – प्रथम में आसन, प्राणायाम तथा धौति आदि षट्कर्म है, इससे नाड़ियाँ शुद्ध होती है। शुद्ध नाड़ियों में पूरित वायु मन को निश्चल करती है और फिर परम आनंद की प्राप्ति होती है। दूसरे भेद में बताया गया है कि नासिका के अग्र भाग मे दृष्टि निर्बद्ध करके आकाश में कोटि सूर्य के प्रकाश का स्मरण करना चाहिए और श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण रंगों का ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से साधक चिरायु होता है और हठात् ज्योतिर्मय होकर शिवरूप हो जाता है।[130]

125. कल्याण योगतत्त्वांक, पृ 131
126. नाथ सम्प्रदाय– आचार्य द्विवेदी, पृ. 137
127. गोरखबाणी–पद–6
128. कल्याण–योग तत्वांक, पृ. 287
129. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– डॉ. वेद प्रकाश, पृ. 115
130. नाथ सम्प्रदाय–आचार्य द्विवेदी, पृ0 138

राग कानडा ।

आदू राय जोगका योई॥अगम अरु निगम साख कह दोई ॥ टेर॥
सतगुरू मोपर कृपा कीजे ॥ पारब्रह्मकी सोजी दीजे ॥
भूला बहुत जुगनका प्यासा ॥ दया करे पूरो गुरू आशा॥१ ॥
सतगुरू दया करी अब ऐसी ॥ शब्द साधना कहिहै जैसी ॥
सोहं शब्द दिया तत सारा ॥ सो निश्चै हम उरमें धारा ॥२॥
ज्यामे सुरत धरी एक सारा ॥ हरदम सास उस्वास संभारा ॥
मन पवनाका बेला बाधा ॥अरध उरध जुगती कर साधा॥३॥
द्वादश खोज सरोधे लाया ॥ इडा पिंगला दोनूं धाया ॥
चन्द सूर एकण घर लाया ॥ सुपमणके घर हंस मिलाया ॥४॥

ऐसे चढया त्रिकूटी घाटी ॥ अखंड जोत जले विन वाटी ॥
निरभै जाय गगन घर लिया ॥ बैठ गगन पर डंका दिया ॥५॥
सुंन मांय सहज मिल्या सुख धारा॥ज्यांतो जीव पीव नहि न्यारा॥
सधर सरोवर है इक सारा ॥ परसे गुरूमुख संत पियारा॥६॥
वनानाथ गुरू सार बताई ॥ निश्चै जाण परमपद पाई ॥
उमाराम भरम नहिं काई॥ कर महरम आसोजी गाई॥७॥१५॥

पद राग ॥

सॉभलो सन्त समझरी वार्ता ॥ हरी आप अदेख रहवाया ॥
सतगुरू जाण दीवी महा झीणी॥ कर निरणे दरसाया ॥ टेर ॥
अणघड अलख निरञ्जन देवा ॥ नहीं जहां जगत पसारा ॥
आपोई आप अलोगत स्वामी ॥ नहिं कोइ खिलका धारा॥ १ ॥
आदू खेल अमावस थरप्या ॥ सुरत सरोधे लाया ॥
सास उस्वास लग्या मन मेरा॥ समझ करे ठहराया ॥ २ ॥
पडवा पहल पिछाणी काया ॥ ॐकार जगाया ॥
देखत आप आपके भीतर ॥ दुरमत दूर हटाया ॥ ३ ॥
बीजम बीज हुवा प्रकाशा ॥ चेतन तार लगाया ॥
रोजो रोज सवाया दरसे ॥ आप अकाश बहवाया ॥ ४ ॥
तीजम तंत मिल्या त्रिवेणा ॥ झलकत जोत अखंडा ॥
हद बेहद लग हुवा उजाला ॥ सब संशयकूं खंडा ॥ ५ ॥
चौथम सुरत निरत मिल चाली॥ गगना रास रचाया ॥
आदू पीव रीझायो सुन्दर ॥ अनहद नाद घुराया ॥ ६ ॥
पंचम आतमदेव परसिया ॥ सुन घर शहर बसाया ॥

(५) भस्त्रिका कुम्भक

भस्त्रिका कुम्भक पद्म आसन लगाय करे,
राखे मुख वन्द श्वास घ्राण से चढ़ाइये।
पिंगल से पूरक कर त्याग देय इड़ा द्वार,
वार २ ऐसे अभ्यास को वढ़ाइये।

पित्त और कफ के सब रोग दूर होय यासे,
कुण्डलनी शक्ति माहिं चेतनता पाइये।
वीर्य को वढ़ावे वृत्ति सुन्दर वनाय देत,
'अमृत' चैतन्य होय 'शंकर' सत् मानिये॥

अर्थः—इस कुम्भक को पद्मासन लगा कर करना चाहिए। मुख वन्द कर के दाहिने स्वर से श्वास को खींचे और अल्प काल तक रोक रखे फिर वाम स्वर से त्याग दे। इस प्रकार वारम्वार करने से पित्त, कफ और वायु के रोग दूर होते हैं। कुण्डलनी शक्ति चैतन्य होने लगती है, वीर्य की वृद्धि होती है वृत्ति में शान्ति आती है। यह कुम्भक सम शीतोष्ण है चाहे जिस ऋतु में किया जा सकता है।

(६) भ्रामरी कुम्भक

भ्रामरी कुम्भक सिद्ध आसन से सिद्ध होय,
करते जो योगी जन निश्चलता लायके।
उभय घ्राण द्वारन से वेग सहित खींच श्वास,
भृङ्ग के समान भों भों शब्द को उठाय के।
रोके कुछ काल त्रिकुटि माहिं शनैः २ त्यागे,
होवे मन शान्त स्वाद अमृत का पाय के।

४ प्राणायाम

चोथा प्राणायाम है समझ देख मन माहिं।
प्राण अपान मिलाप से तन्मयता चित लाहिं॥

विधि से श्वास चढ़ाने को योगी जन पूरक कहते हैं।
नियम पूर्वक ठहराने को ज्ञानी कुम्भक कहते हैं॥
रेचक है नाम त्यागने का यह स्वास २ में होते हैं।
पर सत्गुरु भेद बतावे तब ही ज्ञात यथा विधि होते हैं॥
पूरक कुम्भक अरु रेचक इनके आठ भेद योगी कहते॥
इनके साधक हैं सदा सुखी वह नहीं रोग का दुःख सहते॥
सम गति से स्वास चले तब ही साधक को दुःख दर्शाता है।
कोमल भक्ती एकान्त निवासी ही इसका फल पाता है॥
नाभि कमल सोशि खर लोक तक जो अन निश दिन रमता है।
'अमृत' फल वोही पाता है, "शंकर" जिस घट में समता है॥

यम, नियम और आसन की भाँति प्राणायाम भी योग का बाह्य अंग ही है। प्राचीन पुस्तकों में चाहे जैसा इसका

रूप और क्रिया लिखी हो, परन्तु मैंने जैसा अपने अनुभव से जाना समझा और माना है वह इस प्रकार है।

प्राण और अपान को सम गति करके इनको मिश्रित करके इनके द्वारा बनी हुई वायु अर्थात् श्वास को मेरु दण्ड स्थित सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा शिखर में पहुंचाना, वहाँ कुछ विश्राम करना और त्रिकुटी मार्ग से तीन चक्र (आज्ञा विशुद्ध और अनाहत) का भेदन करके नाभि स्थित मणि पूरक चक्र में पहुंचा कर थोड़ा विश्राम लेना। इस प्रकार ब्रह्मनाड़ी (सुषुम्ना) रूपी माला के आधार पर श्वास की गति को आश्रित रखना, इसमें वृत्ति लवलीन करना अर्थात् बहिर्मुख वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाना और अपने स्वरूप (आत्म स्वरूप) को खोजना। बस यही है प्राणायाम का मुख्य रूप, सिद्धान्त और लाभ।

(३) जलन्धर बन्ध

कण्ठ के चक्र में जलन्धर बन्ध हो,
अधो अरु ऊर्द्ध की वायु लावे।
उदर के माहिं मथ वेग से त्याग दे,
चिबुक पर लाय रसना लगावे।

* जहां भी कुछ काल शब्द आवे समझो कि उतनी देर जितनी में श्वास घुटे नहीं।

उदर से हृदय में हृदय से कण्ठ में,
इसी विधि ब्रह्म के पन्थ धावे।
"नाथ अमृत" नहीं जन्म अरु मरण हो,
गुरु की शरण में भेद पावे।

अर्थः—प्राण और अपान वायु को खींच कर कण्ठ में मिलावे फिर पेट में लेजाकर मन्थन करे, बिलोवे, नासिका द्वारा त्याग दे। इस क्रिया में जिह्वा को ठोडी पर लगावे और पद्मासन से बैठे। इस प्रकार उदर से हृदय में और हृदय से कण्ठ में मन्थन करे और त्यागता रहे इससे षट चक्र बेधने की युक्ति प्राप्त होती है।

(४) उड्यान बन्ध

बन्ध उड्यान लग जाय जब साधु के,
मुक्ति हो प्राप्त अरु भेद नाशे।
* दमन कर इन्द्रियां वासना त्याग कर
शिखर अरु नाभि रम श्वास श्वासे।
नयन को नासिका लाय लवलीन हो,
पिण्ड ब्रह्माण्ड सब एक भासे।
"नाथ अमृत" कहे आप ही आप है,
भेद कुछ ना रहे द्वन्द नाशे ॥

* योग के प्राचीन ग्रन्थ और वर्तमान के कुछ योगियों का मत है कि इन्द्रिय द्वारों को बन्द करना चाहिये, परन्तु मैं इस मत के विरुद्ध हूँ।

अर्थः—उड्यान बन्ध सुख आसन से करे। इन्द्रियों को भली भाँति दमन करे, वासना का त्याग करे, दोनों नेत्रों को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर रखे हुए नाभि से शिखर तक श्वास की गति में मेरु दण्ड मार्ग से तन्मयता प्राप्त करे, इससे पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड (विश्व) का रूप एक दिखाई देने लगता है। अपने स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है और द्वन्द का नाश होकर अखण्ड शान्ति प्राप्त होती है।

09:54

(१) महाबन्ध

प्राण वायु हृदय में धार गौमुख लगा,
महा बन्ध करने को उर्द्ध धावे।
त्रिकुटी में ध्यान धर चिबुक को हृदय पर,
सूर्य अरु चन्द्र सम आय जावें।
क्षुधा हो तीव्र अरु वृत्ति में शान्ति हो,
भृकुटी के माहिं आनन्द पावे।
काम के वेग को रोकवे सन्त जन,
'नाथ अमृत' यही भेद गावे।

अर्थः—गौमुख आसन लगा कर प्राण वायु को हृदय में स्थिर करे। फिर शिखर की ओर खींच कर विश्राम लेवे। नेत्र त्रिकुटी स्थान पर स्थिर करे, ठोडी को कण्ठ के खड्डे में जमावे। रेचक के समय दोनों नासा रन्ध्र से वायु का त्याग करे। इस बन्ध के करने से क्षुधा तीव्र होती है, काम का वेग रुकता है और वृत्ति में शान्ति आती है।

(२) मूलबन्ध

मूल के बन्ध में सिद्धि आसन लगा,
गुदा की वायु को नाभि लाओ।

मिला कर प्राण को रोक कुछ काल तक,
नाद अरु विन्दु को एक पाओ।
त्याग सङ्कोच जब बारही बार हो,
युवा हो वृद्ध हो भ्रम कोट ढहाओ।
आयु की वृद्धि हो जठर की शुद्धि हो,
'नाथ अमृत' कहे भेद पावो।

अर्थः—मूल बन्ध सिद्धासन से होता है। अपान और प्राण वायु को खींच कर नाभि स्थान में एकत्र करो कुछ काल तक रोके रहो फिर त्याग दो। इस प्रकार चिरकाल तक करने से वृद्धावस्था मिटती है. सोहं शब्द भली भांति सुनाई देता है, जठराग्नि शुद्ध होती है, शिखर में से झरने वाला अमृत प्राप्त होता है वीर्य की वृद्धि होती है और शान्ति प्राप्त होती है तथा नाद और विन्दु का तत्व समझ में आता है।

09:53

(८) मूर्च्छा कुम्भक

मूर्च्छा कुम्भक को निर्जन में शान्त होय,
सुख से आसन लगाय योग रङ्ग राते हैं।
वेग सहित खींच श्वास कण्ठ तले कर निवास
बार २ खींचे अरु त्यागे सुख पाते हैं।
होता अधिकार दशों पवनों पर इसके बल,
काया निरोग काम क्रोध थक जाते हैं।
बङ्क नाल पावे शिखर लोक के कपाट खुलें,
अमृत निज रूप मिले लौट नहीं आते हैं।

अर्थः—मूर्च्छा कुम्भक एकान्त स्थान में सुख आसन से बैठ कर करना चाहिये। वेग पूर्वक दोनों नासिका से श्वास को खींच कर कण्ठ के नीचे रोके और कुछ काल में नासिका द्वारा ही वेग से त्याग दे। ऐसा बार बार करता रहे। इससे दशों पवनों पर अधिकार होता है बङ्क नाल का मार्ग सुगम हो जाता है और भ्रमर गुफा का द्वार

खुल जाता है। इससे अपने रूप को पहिचानने की शक्ति प्राप्त होती है।

(८) केवल कुम्भक

केवल सब कुम्भन में उत्तम सुखदायक है,
पूर्ण ब्रह्मचर्य धार इस को जो करता है।
नाभि शिखर बीच प्राण वायु माहिं तन्मय हो,
ध्यान धर स्वयंभू का नयन घ्राण धरता है।
तज कर सब आशा 'सोहं सोहं' का जाप करे,
सतगुरु के शरण मेरु दण्ड पथ विचरता है।
खान-पान वाणी अरु आसन दृढ़ धार लेय,
अमर लोक पावे 'अमृत' जीवन सुधरता है।

अर्थः—केवल कुम्भक समस्त कुम्भकों में श्रेष्ठ है और सुखदायक है। जो मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करके, नेत्रों को नासिका के अग्रभाग पर स्थिर किये हुए, मेरु दण्ड के द्वारा सम गति से श्वास लेते हुए 'सोहं सोहं' ऐसा जप करता हुआ आत्म रूप का ध्यान करने में तन्मय हो जाता है, वह जीवन मुक्ति का आनन्द प्राप्त कर लेता है। परन्तु खान पान और वाणी जब तक पवित्र नहीं होते और आसन दृढ़ नहीं होता तब तक आत्मानन्द नहीं मिल सकता। यह सर्वदा स्मरण रखने की बात है। इस क्रिया के लिये कोई समय या अवधि नियत नहीं है। इस के लिये सतत् प्रयत्न करते रहो तभी तो दीर्घ काल से बहिर्मुख हुई वृत्ति अन्तर मुखी बन सकेगी।

Contents [hide]

Beginning
श्री अमृतनाथ जी का जीवन परिचय
श्री अमृतनाथ आश्रम
Gallery
बाहरी कड़ियाँ
References

Rajasthan.

श्री अमृतनाथ जी का जीवन परिचय

स्वामी अमृतनाथ जी का जन्म बऊ निवासी चेतन जाट (नैन) के यहाँ पिलानी गाँव में चैत्र सुदी एकम संवत 1909 को बालक यशराम के रूप में हुआ। उन्होने किशोरावस्था में ही ब्रह्मचारी का व्रत ले लिया। संवत 1945 में अपनी माँ के देहावसान के बाद 36 वर्ष 9 माह 14 दिन की आयु में बालक यशराम भ्रमण को निकल पड़े। इस दौरान रिणी (बीकानेर) में महात्मा चंपानाथ से शिष्यवत दीक्षा ग्रहण कर अमृतनाथ रूप सन्यास साधना की ओर बढ़ गए। 24 वर्ष तक भ्रमण करते हुये कठोर योग साधना कर इस शहर आए। माघ शुक्ल 5 संवत 1969 सोमवार को यहाँ आश्रमवास किया। धीरे-धीरे इनके भक्तों की संख्या बढ्ने लगी। तत्कालीन रावराजा सीकर माधोसिंह भी इनकी कीर्ति सुन इनके भक्त बन गए। 4 वर्ष बाद अश्विन शुक्ल 15 संवत 1973 के दिन यहीं उन्होने शरीर छोड़ा। वहीं उनकी समाधि बना दी गई। कालांतर में विशाल खूबसूरत आश्रम बना दिया गया। [1]

श्री गोपाल दिनमणि [2] ने लिखा है कि स्वामीजी का जन्म बऊ से 20 कोस दूर पिलानी गाँव में हुआ जहां इनके पिताजी इनके जन्म के वक्त रह रहे थे, संवत 1909 की चैत्र सुदी 1 को। इनके जन्म के साढ़े 3 वर्ष बाद इनके पिताजी पुन: अपने गाँव बऊ आ गए और सपरिवार रहने लगे। स्वामीजी अपने पिताकी पाँचवीं संतान थे। इनसे छोटी 3 संतान ओर थी।

श्री अमृतनाथ आश्रम

Amritnath Ashram

एक संक्षिप्त परिचय: राजस्थान के फतेहपुर शेखावाटी अंचल में स्थित "श्री अमृतनाथ आश्रम" एक पवित्र समाधि स्थल और तपस्वी साधुओं का भव्य आश्रम है जहाँ आने वाले भक्तों और साधुओं को मानसिक एंव आत्मिक शांति का आभास होता है। आश्रम का शांत वातावरण और परिवेश लोगों को स्वर्ग के समान प्रतित होता है। गुरु गोरक्षनाथ सम्प्रदाय में

कुण्डलनी अङ्ग

मूल कमल के मध्य हैं, कुण्डलनीं का स्थान।
तीन अर्द्ध-चक्राकृती जानो सूक्ष्म अपान ॥१॥
शक्ति सर्प आकार की किया अधोमुख रूप।
सूक्ष्म ज्ञान मय सुरति को ग्रसा अन्ध मुख कूप ॥२॥
तहां वृत्ति लय लीन कर, ध्यान करे नर कोय।
कुण्डल खुले अपान का मिले प्राण में सोय ॥३॥
जागृत होय सुवृत्तियां, सोहं को ले साथ।
मेरु दण्ड पथ सुषुम्ना संग चले दिन रात ॥४॥
है कुण्डलनी जागरण, मेरे अनुभव माहिं।
सोहं सुरति मिलाय के, गगन लोक चढ जाहिं ॥५॥
करत २ अभ्यास के, सुरति शिखर टिक जाय।
ब्रह्म द्वार तब ही खुले, आत्म भवन दरशाय ॥६॥
धार वीरता लग्न से, अन्तः करे प्रवेश।
दर्शन हो निज रूप का, दूर होय भव क्लेश ॥७॥
द्वन्द्व भाव का नाश हो, गति होवे निर्द्वन्द्व।
काल, कर्म गुण आदि से, 'अमृत' हो स्वच्छन्द ॥८॥
सदा सर्वदा एक रस, ब्रह्म नाद में लीन।
'अमृत' मद माते रहे, सुन लो सन्त प्रवीन ॥९॥
इस कुण्डलनी भेद को, जाने गुरु-मुखी सन्त।
मेरे अनुभव से कहा, सरल योग का पन्थ ॥१०॥

'अमृतनाथ' बखानते कुण्डलनी का योग।
'शंकर' सत, पथ में रमो, दूर होय भव रोग ॥११॥

अर्थ—योग शास्त्र के परम गौरव रूप कुण्डलनी का स्थान मूलाधार चक्र है। यह अपान वायु के साढे तीन चक्र सर्पाकार शक्ति है। इसका मुख नीचे की ओर है। इसने सुरति अर्थात् सूक्ष्म ज्ञान तन्तुओं को अपने मुख में ग्रस रखा है। सुरति के टिकाने से अपान का यह कुण्डल खुलता है और नाभि स्थान में प्राण वायु से मिल जाता है। सुवृत्तियाँ जागृत हो जाती है और सोहं अर्थात् श्वास के मार्ग मेरु दण्ड स्थित सुषुम्ना मार्ग से शिखर की ओर चलती है। इस प्रकार अभ्यास करते २ आत्मस्थान के दर्शन होते हैं अर्थात् ब्रह्म द्वार खुल जाता है सुरति शिखर में टिक जाती है। सदा सर्वदा शिखर से झरने वाले अमृत को सन्त जन इस क्रिया से प्राप्त कर लेते हैं। ऐसा होने से अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं परन्तु बुद्धिमान को चाहिए कि इन सिद्धियों के प्रलोभन में उलझे नहीं।

वीरता धारण करके प्रेम पूर्वक साधन करता रहे और ब्रह्म स्थान के भीतर प्रवेश करे। ऐसा करने से सत्य रूप अर्थात् अपने रूप का दर्शन हो जाता है और संसार में व्याप्त जन्म मरण रूपी क्लेश मिट जाता है। मैं और तू का भाव नष्ट हो जाता है। आत्मैकता उत्पन्न होती है। काल, कर्म और गुण आदि के प्रभाव से रहित हो कर सर्वदा ब्रह्म रूप में

तन्मय हो जाता है। श्री अमृत नाथ कहते हैं कि हे चतुर साधु गण, सोहं शब्द में सुरति को स्थिर करके गगन लोक में समा जाओ। बस मेरे अनुभव से यही "कुण्डलनी जागरण" किया है।

कुण्डलनी अङ्ग

मूल कमल के मध्य हैं, कुण्डलनीं का स्थान।
तीन अर्द्ध-चक्राकृती जानो सूक्ष्म अपान ॥१॥
शक्ति सर्प आकार को किया अघोमुख रूप।
सूक्ष्म ज्ञान मय सुरति को ग्रसा अन्ध सुख कूप ॥२॥
तहां वृत्ति लव लीन कर, ध्यान करे नर कोय।
कुण्डल खुले अपान का मिले प्राण में सोय ॥३॥
जागृत होय सुवृत्तियां, सोहं को ले साथ।
मेरु दण्ड पथ सुषुम्ना संग चले दिन रात ॥४॥
है कुण्डलनी जागरण, मेरे अनुभव माहिं।
सोहं सुरति मिलाय के, गगन लोक चढ जाहिं ॥५॥
करत २ अभ्यास के, सुरति शिखर टिक जाय।
ब्रह्म द्वार तब ही खुले, आत्म भवन दरशाय ॥६॥
धार वीरता लग्न से, अन्तः करे प्रवेश।
दर्शन हो निज रूप का, दूर होय भव क्लेश ॥७॥
द्वन्द भाव का नाश हो, गति होवे निर्द्वन्द।
काल, कर्म गुण आदि से, 'अमृत' हो स्वच्छन्द ॥८॥
सदा सर्वदा एक रस, ब्रह्म नाद में लीन।
'अमृत' मद माते रहे, सुन लो सन्त प्रवीन ॥९॥
इस कुण्डलनी भेद को, जाने गुरु-मुखी सन्त।
मेरे अनुभव से कहा, सरल योग का पन्थ ॥१०॥

11:09
Amritvani Hindi PD...
scribd.com

अमृतवाणी

रचयिता - श्री स्वामी सत्यानंद जी महाराज

बीज अक्षर महा-शिक्त-कोष,
राम - राम जप शुभ-संतोष।
राम - राम श्री राम - राम मंत्र,
तंत्र बीज परात्पर यंत्र॥३७॥

बीजाक्षर पद पद्म प्रकाशे,
राम - राम जप दोष विनाशे।
कुण्डलिनी बोधे सुषुम्ना खोले,
राम - मंत्र अमृत-रस घोले॥३८॥

उपजे नाद सहज बहु-भांत,
अजपा जाप भीतर हो शांत।
राम - राम पद शिक्त जगावे,
राम - राम धुन जभी रमावे॥३९॥

राम - नाम जब जगे अभंग,
चेतन-भाव जगे सुख-संग।
ग्रंथी अविद्या टूटे भारी,
राम-लीला की खिले फुलवारी॥४०॥

पतित-पावन परम-पाठ,
राम - राम जप याग।
सफल सिद्धि कर साधना,
राम - नाम अनुराग॥४१॥

कमल आसन् बाँधी सुरथ रह्याको । मनासिप्ले होइन गुरुले कह्याको ॥
श्री गुरु भनयाका गुनका भारी । काम क्रोध लोभ सबै दिया जारी ॥१७॥

दस ओटा लकडी धुनि जगाया । अनहद्को षलाती सुस्म डोरि पाया ॥
मनप्राण षैची धुनि जगाया । मुक्ति पदारथ ताँहि नेर पाया ॥१८॥

ईडा र पिंगला सुस्म बहन्छन् । सुस्मनाको भेद –विरलै कहन्छन् ॥
सुमेरुका उपर सतलोक धाम । सुन्दर महलमा यकलै राम ॥१९॥

सिरमा मुकुट हृदया कि माला । हातमा सुमेर्नी जपे कृष्ण बाला ॥
सेतो रक्त पिताम्वर अनन्त भयाको । भक्ति जन्का साथमा षडा रह्याको ॥२०॥

उंघो गयो मती उँभो कसैले देखतैन । गर्नै भन्नै पुरुषलाई कसैले छेक्तैन ॥
काम क्रोध लोभमा सबै चित्त लाउंने । परम्पद को ग़म कोहि नपाउने ॥२१॥

परम्पद भनेको अगम अपार । कथन भनीला सुस्मनाको सार ॥
छोटा बडा जतिछन् तिर्थमात्र धाउँछन् । घरै बसी जोगिजन तिनै लोक पाउँछन् ॥२२॥

तिन लोक उपर सिद्ध तलाउ जाँहाँ । मनमैलो धोइ सुद्ध गर्नु ताँहाँ ॥
कलचुडो मन सेतो कैले नाँही । पलकमा षेल्छ स्वर्ग मर्त्ये माँही ॥२३॥

थिरछैन जनमा पलकमा घुम्छ । काम क्रोध लोभमा फर्काइकन हुम्छ ॥
काम क्रोध लोभ भक्तिजन्का वैरी । मनरुपी मृगवा भक्ति फिर्‍यो ऐरी ॥२४॥

शब्दको गोली रंजक चढाऊ । सिलका बानले तम गुन लडाऊ ॥
काम क्रोध लोभमा तिनै बिर जान । धुकचुक नगरी सिधा गरि दाँन ॥२५॥

हृदयाका बिचमा परम्पद षेल्छ । तोडि नसक्नु मायाको झेल्छ ॥
परम्पद भनेको पाउनु छ काँहाँ । खोलनु नहुने बुझ जाँहा ताँहाँ ॥२६॥

नरमा सत्ते थियो परम्पदको वीज । विषले पेट भरे मान्दैनन् चीज ॥
परम्पदको वीज भक्तिजन्ले लीया । काम क्रोध लोभ हरन् गरि दीया ॥२७॥

जल थल अनल प्रभुजीको षेवा । अष्टप्रहर भक्तिजन्को दण्डवत सेवा ॥
भक्तिजन भन्याका बडा मुनिजन । सेवा गर्न दिंदैन चंचल मन ॥२८॥

तिनैलोक पुज्जेमान भक्तिजन थीया । नरको धर्मलुटी झोलि थापि लीया ॥
नरलाई भक्तिजन बडो बेपा भयो । हरि हरि भन्दै परम्धामा गयो ॥२९॥

परम पदारथ उपदेश पाया । नित्ते दिन आत्मामा सुरथ लगाया ॥
आत्मा अगोचर अगमले षेल्छ । गम गरुं भने तम गुन्ले ठेल्छ ॥३०॥

सत रज तमको महाँ जुद्धे भयो । सतको अर्जिली तम गुन गयो ॥
निसापी बिचारी निसाप् हेरिदेऊ । सतगुनी निर्धाको सरन् अब लेऊ ॥३१॥

अइन बज्यो धनिको फिव्यो जगमाँहाँ । धुस्याहा बिचारी निसाप् हेर्छ काँहाँ ॥
रजोगुनी दोधारे दुई तिर लाग्छ । सिधा निसाप् गरी भने पछि सरिभाग्छ ॥३२॥

घुस्याहा बिचारी जगतमा फिर्छन् । धनभन्नया साधु जानि जानि गिर्छन् ॥
धन जन भन्याको धन्दा बडो भारी । जाहाज नचल्न्या भवजल पारी ॥३३॥

मूर्ध्नीन्दोः सित-पंकजा-सनगतां, प्रालेय-पाण्डु-त्विषं
वर्षन्तीम्-अमृतं सरोरुहभुवो, वक्त्रेपि रन्ध्रेपि च।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता, चाति-प्रसन्नापि च
त्वाम्-एव स्मरतां स्मरारि-दयिते! वाक् सर्वतो वल्गति (12)

अन्वय-शब्दार्थ

स्मरारि=शंकर की, **दयिते**=हे प्रियशक्ती!, **मूर्ध्नि=शून्यचक्र** (ब्रह्मरन्ध्र) में, **इन्दोः**=चन्द्रमा के जैसे, **सित**=सफेद, **पंकजासन**=कमल के आसन पर, **गतां**=बैठी हुई, **प्रालेय**, बर्फ की भांति, **पाण्डुत्विषं**=निर्मल दीप्ति वाली, **वक्त्रेपि**=मूलाधार पर, **रन्ध्र** आज्ञा चक्र के, **सरोरुहभुवः**=दोनों कमल पतों पर, **अमृतं वर्षन्तीम्**=अमृत बरसाती हुई, **त्वाम्-एव**=तुम्हारे ऐसे ही रूप का, **स्मरतां**=स्मरण करने वालों को, **अच्छिन्न**=निरर्गल, **मनोहरा**=मन को

हरने वाली, **ललिता**=सुन्दर, **अतिप्रसन्न**=निर्मल, **वाक्**=वाणी, सर्वतः=सब ओर से, **वल्गति**=प्रकट होती है।

अर्थः—हे शंकर की प्रियशक्ती! शून्य चक्र में (ब्रह्मरन्ध्र में) चन्द्रमा के जैसे सफेद निर्मल कमल के आसन पर बैठी हुई, बर्फ की भांति निर्मलदीप्ति वाली, मूलाधार और आज्ञा चक्र के दो दलों पर अमृत की वर्षा करती हुई, तुम्हारे ऐसे ही रूप का स्मरण करने वालों को निरर्गल मनोहर सुन्दर तथा निर्मलवाणियाँ सब ओर से प्रकट होती हैं।

टिप्पणी—पञ्चस्तवीकार ने पहले ही स्तव में कहा है, जिन पर माता का अनुग्रह होता है उन्हें क्या कुछ प्राप्त होता है—

"जाते तवानुग्रहे-वाचः सूक्ति-सुधारस-द्रुवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात्" जिस भक्त पर आप अनुग्रह करती है, उसके मुख से बिना किसी प्रयत्न के अमृतरस को टपकाती हुई उत्तम वाणियाँ निकलती हैं।

ददातीष्टान्-भोगान्-क्षपयति रिपून्-हन्ति-विपदो
दहत्याधीन्-व्याधीन्-शमयति सुखानि प्रतनुते।
हठात्-अन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्ट-विरहं
सकृत्-ध्याता देवी किम्-इव निर्-अवद्यं न कुरुते (13)

अन्वय-शब्दार्थ

सकृत्=एक ही बार, **ध्याता**=ध्यान की हुई, **किम्-इव**=क्या कुछ, **निर्-अवद्यं**=दोष रहित, **न कुरुते**=नहीं करती है, **इष्टान् भोगान्**=इष्ट भोगों को, **ददाति**=देती है, **क्षपयति रिपून्**=शत्रुओं का नाश करती है, **विपदो हन्ति**=विपदाओं का नाश करती है, **आधीन्**=मन के दुःखों को, **दहति**=जलाती है, **व्याधीन्-शमयति**=शरीर के रोगों का नाश करती है। **सुखानि**=सुखों का **प्रतनुते**=विस्तार करती है, **हठात्**=हठ से, **अन्तर्दुःख**=मन

21:31

तडत्-कोटि-ज्योतिः, द्युति-दलित षड्ग्रन्थि-गहनं
प्रविष्टं स्वाधारं पुनर्-अपि सुधावृष्टि-वपुषा।
किम्-अप्यष्टा-त्रिंशत्-किरण-सकली भूतं-अनिशं
भजे धाम श्यामं, कुचभरनतं बर्बर-कचम् (8)

अन्वय-शब्दार्थ

तडित्-कोटि-ज्योतिः=करोड़ों बिजलियों की, **द्युति**=दीप्तियों से, दलित-विकसित हुये, **षड्ग्रन्थि-गहनं**=षड् चक्रों (षड्कमलों) का जंगल, पुनः **अपि**=फिर से, **सुधावृष्टि-वपुषा**=अमृतवर्षा करते हुये, **स्वाधारं**=मूलाधार में, **प्रविष्टं**=प्रविष्ट हुये, **किमपि**=किसी अद्भुत, **अष्टात्रिंशत्**=आठतीस, **किरण सकली भूतं**=किरणों से पूर्ण, **श्यामं**=श्याम वर्ण वाले, **कुचभर नतं**=ज्ञान किया रूप स्तनों से झुके हुये, **बर्बरकचं**=भूरे चमकीले केशवाले, **धाम**=तेज को, **अनिशं**=निरन्तर **भजे**=नमस्कार करता हूँ।

अर्थः—मूलाधार से निकल कर सहस्रार की ओर चढ़ते समय करोड़ों बिजलियों की दीप्तियों से विकसित किये हुये छः कमलों वाले, फिर से नीचे उतरते हुये मूलाधार में प्रविष्ट होते समय अमृतवर्षा करते हुये अठतीस किरण पुंज से युक्त, श्यामवर्ण वाले ज्ञान क्रिया रूपी स्तनों से झुके हुये भूरे रंग वाले चमकीले केशों से युक्त अद्भुत उस तेज को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।

टिप्पणी—उस अद्भुत तेज के बारे में श्वेताश्वतरोपनिषद् में ऋषि कहता है—"वेदाहं-एतं-पुरुषं महान्तं-आदित्यवर्णं-तमसः परस्तात्"

अर्थ—उस परमधाम को मैंने जाना, जो सूर्य की भांति स्वयं प्रकाश स्वरूप है, "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" उस परमतेज का साक्षात्कार किये बिना परमपद प्राप्ति के लिये कोई दूसरा मार्ग नहीं है। कलायें=36 (सूर्य की 12, चन्द्रमा की 16 अग्नि की 10=38)

मूल क्या है, किस के प्रभाव से हम जी रहे हैं, हमारे जीवन का आधार क्या है? इसी उपनिषद् में इन सभी प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट रूप में दिया गया है-परन्तु तो भी हे माता! जब तक आप की दया होगी नहीं सभी संशय सम्पूर्णतया नष्ट नहीं होते हैं।

यत्-देवयान-पितृयान-विहारम्-एके
कृत्वा मनः करणमण्डल-सार्वभौमम्।
याने निवेश्य तव कारण-पञ्चकस्य
पर्वाणि पार्वति नयन्ति निजासनत्वम् (28)

अन्वय-शब्दार्थ

पार्वति!=हे पार्वती, **यत्**=जो, **देवयान**=उत्तरायण, **पितृयान**=दक्षिणायन, **विहारम्**=स्थान, **एके**=कई भाग्यशाली साधक, **मनः**=मन को, **करणमण्डल**=सभी इन्द्रियों का, **सार्वभौमम्**=चक्रवर्ती राजा **कृत्वा**=बनाकर, **तव**=आप के, **याने**=मार्ग में, **निवेश्य**=प्रवेश करके, **कारणपंचकस्य**=पाँचों कारणों, ब्रह्मा विष्णु, रुद्र, सदाशिव, ईश्वर, **पर्वाणि**=सिर, **निज**=अपना, **आसनत्वम्**=आसन, **नयन्ति**=बनाते हैं।

अर्थः—हे पार्वती, देवयान पितृयान साधक के लिये लक्ष्य तक पहुँचने के दो मार्ग है—जो साधक (देवयान पितृयान) प्रणापान के अभ्यास से सभी इन्द्रियों का राजा बनकर इन्द्रियों को नियन्त्रण में करके सुष्मणा मार्ग में प्रवेश करते हैं—अथवा आप के शरण में आते हैं उस भक्त के सामने पाँच कारण ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सदाशिव नतमस्तक हो जाते हैं।

टिप्पणी—देवयानः=प्राण, मुख अथवा नासिका द्वारा जो वायु बाहर जाता है प्राण कहलाता है। **पितृयानः**—अपान=मुख अथवा नासिका द्वारा जो वायु नीचे की ओर जाता है अपान कहलाता है।

प्राणाभ्यास की कई प्रक्रियायें हैं, जैसे वायु को बाहर निकाल कर बाहर रोकना, अन्दर भर कर अन्दर रोकना, बाहर जाने तथा अन्दर आने की इन दोनों गतियों को रोक कर प्राणापान

को स्थिर करना अथवा समगति से चलाना ऐसे ही प्राणाभ्यास की कई प्रक्रियायें है-सुयोग्य गुरु के पास रहकर इस का अभ्यास किया जाना चाहिये-यह अभ्यास पुस्तकों से पढ़कर नहीं होता है।

स्थूलासु मूर्तिषु महीप्रमुखासु मूर्तेः
कस्याश्चनापि तव वैभवम्-अम्ब यस्याः।
पत्या गिराम्-अपि न शक्यत एव वक्तुं
सा-सि स्तुता किल मयेति तितिक्षितव्यम् (29)

अन्वय-शब्दार्थ

मूलाल-वाल-कुहरात्-उदिता भवानि
निर्भिद्य-षट्-सरसिजानि तडित्-लतेव।
भूयोपि तत्र विशसि ध्रुव-मण्डलेन्दु
निष्यन्दमान-परमामृत-तोय रूपा (6)

अन्वय-शब्दार्थ

भवानि=हे माता, आप, **मूलालवाल**=मूलाधार रूपी **आलवालात्**=(छोटी सी क्यारी जो पानी से भरी होगी) काश्मीरी में सगडूर, **कुहरात्**=गुफा से, **उदिता**=उदय में आई हुई, **तड़ित् लतेव**=बिजली की कड़क जैसी, **षड्सरिसिजानि**=छः कमलों को, **निर्भिद्य**=भेदन करती हुई अथवा विकसित करती हुई, **ध्रुवमण्डलेन्दु**=सहस्रार में जो अमृत से भरपूर, **इन्दु**=क्षमा कला (चन्द्रमा की सौलहवीं कला) है, **निष्यन्दमान**=उसको प्रवाहित करती हुई, **परामृत तोयरूपा**=चित्त=अमृत से भरपूर, **तत्रापि** उसी मूलाधार में, विशिसि=प्रवेश करती हो।

अर्थ—हे माता! आप मूलाधाररूपी गुफा से बिजली की कड़क की भांति उदय में आई हुई, छः कमलों को भेदन करती हुई, सहस्त्रार में पहुँच कर वहाँ स्थित (अमा कला) जो अमृत से भरपूर होती है उसको द्रवित करती हुई यानी प्रवाहित-करती हुई, उसी अपने स्थान भूत मूलाधार में फिर से प्रवेश करती हो।

टिप्पणी—षट्चक्र-स्यान् शिवान् भित्वा देवी गच्छति निष्कलम् (स्वतन्त्र तन्त्र)
अर्थ—षट्चक्रों में स्थित छः शिवों का भेदन (विकसित) कर देवी निष्कल निर्गुण ब्रह्म पर पहुँचती है।
षड् चक्रः—(1) मूलाधार चक्र (जननेन्द्रिय में दो अंगुल नीचे गुदा से दो अंगुल ऊपर चार दल वाला

(2) **स्वाधिष्ठान चक्र**, जो-लिंग के सामने है (6 दल)
(3) **मणिपूर चक्र**, नाभि के सामने (10 दल)
(4) **अनाहत चक्र**, हृदय के सामने (12 दल)
(5) **विशुद्धि चक्र**, हृदय के सामने (16 दल)
(6) **आज्ञा चक्र**, भ्रुवों के मध्य में (दो दल)

दग्धं यदा मदनम्-एकम्-अनेकधा-ते
मुग्धः कटाक्षविधिर-अंकुरयां-चकार।
धत्ते तदा-प्रभृति देवि! ललाट नेत्रं
सत्यं ह्रियेव मुकलीं कृतम्-इन्दुमौलिः (7)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि!=हे देवी, **यदा**=जब, **ते**=आपकी, **मुग्धः**=मोहित करने वाली, **कटाक्ष विधिः**=तिरच्छी नेत्र दृष्टि, **अनेकधा**=नाना प्रकार से, **एकं**=अकेले, **दग्धं**=जले हुये, मदनम्=कामदेव को, **अंकुरयाञ्चकार**=अंकुर निकालने लगी, **तदाप्रभृति**=तब से, **इन्दु** मौलिः=शंकर भगवान् ने, **सत्यं**=सचमुच, **ललाट नेत्रं**=ललाट का नेत्र, **ह्रिया** इव=शर्म के मारे ही,

प्रलीने शब्दौघे तत्-अनु-विरते-बिन्दुविभवे
ततस्तत्त्वे चाष्टाध्वनिभिः-अनुपाधिनि-उपरते
श्रिते शक्ते पर्वण्यनु-कलित-चिन्मात्र-गहनां
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिवाख्यां परतनुम् (18)

अन्वय-शबदार्थ

शब्दौघे=नाद की ध्वनियाँ, **प्रलीने**=लय होने पर, **तत्-अनु**=उसके पश्चात्, **बिन्दु विभवे**=शिव प्रकाश पुँज दिखाई देने लगता है उसके, **विरते**=शान्त होने पर, **ततः**=उसके पश्चात्, **अष्टध्वनिभि** अनाहत चक्र में आठ ध्वनियाँ प्रकट होती हैं, **अनुपाधिनि**=उपाधिरहित विशुद्धिचक्र में, **उपरते**=ठहरने पर, **शाक्ते पर्वणि-श्रिते**=आज्ञा चक्र का सहारा लेकर, **अनुकलित**=विमर्श से जानी हुई, **चिन्मात्रगहनां**=ब्रह्मरन्ध्र सहस्रार में ठहरी हुई, **परतन्तुं**=उत्कृष्ट स्वरूप वाली **स्वसंवित्ति**=अपनी "संवित्" का **रसयति योगी**=योगी रसास्वादन अमृतपान करता है।

अर्थः—मूलाधार चक्र में ध्यान स्थिर होने पर ध्वनियाँ सुनने में आती है, मूलाधार में नाद की ध्वनियाँ लय होने पर उस के पश्चात् योगी को शिव प्रकाश पुंज दिखाई देता है। उसके शान्त होने पर उसके पश्चात् अनाहत चक्र में योगाभ्यासी को आठ प्रकार की ध्वनियाँ सुनने में आती हैं, विशुद्धि चक्र में ध्यान के ठहरने पर आज्ञा चक्र का सहारा लेकर विमर्श से जानी हुई ब्रह्मरन्ध्र में ठहरी हुई उत्कृष्ट स्वरूप वाली अपनी संवित् का योगी रसास्वादन अमृतपान करता है।

टिप्पणी—योग शास्त्रों के अनुसार जब साधक (योगी) सुष्मणा नाडी के माध्यम से सहस्रार अथवा ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचने का अभ्यास करता है उस समय मूलधार में ही ध्यान स्थिर होने पर, नाद की ध्वनि तीव्र रूप से सुनाई देती है। योगियों का कहना है, इस मार्ग पर अग्रसर होने पर घंटा आदि वाद्य की ध्वनियाँ होती हैं।
नाद या शब्द ब्रह्म=दस प्रकार का होता है। परन्तु उपरिलिखित श्लोक में आठ ध्वनियो ही वर्णन है। जब कि स्वच्छन्द तन्त्र में आठ ही ध्वनियों का वर्णन है, परन्तु तन्त्रालोक में दस ध्वनियों का वर्णन है।

प्रकाशानन्दभ्याम्-अविदितचर्रीं मध्यपदर्वीं
प्रविश्यैतत्-द्वन्द्वं, रविशाशि समाख्यं कवलयन्।
प्रविश्योर्ध्वं नादं, लय-दहन-भस्मी-कृतकुलः
प्रसादात्-ते-जन्तुः, शिवम्-अकुलम-अम्ब! प्रविशति(12)

अन्वय-शब्दार्थ

अम्ब!=हे माता, **अविदितचर्रीं**=पहले न जानी हुई, **मध्यपदर्वीं**=सुष्मणा मार्ग में, **प्रकाशानन्दाभ्यां**=साधना (क्रिया) तथा ज्ञान से, **प्रविश्य**=प्रवेश कर, **रविशशि समाख्यं**=प्राण और अपानरूपी, **द्वन्द्वं**=जोड़े को, **कवलयन्**=ग्रास करता हुआ, **लय**=समाधि के, **दहन**=अग्नि से, **भस्मीकृतकुलः**=बाह्य जगत् को जलाकर, **ऊर्ध्वनादं**=सहस्त्रार में, **जन्तुः**=साधक **ते प्रसादात्**=तुम्हारे अनुग्रह से, **अकुलम्-शिवं**=विश्वतीर्ण शिवधाम में, प्रविशिति=प्रवेश करता है।

अर्थः—हे माता पहले (किसी भी जन्म में) न जाने हुये सुष्मणा मार्ग में साधना तथा ज्ञान से प्रवेश कर, प्राण अपानरूपी जोड़े को ग्रास करता हुआ समाधि के अग्नि से बाह्य जगत् को जला कर

अन्तर्मुख होकर साधक सहस्त्रार में आपके अनुग्रह से विश्वोतीर्ण परम शिवात्मक धाम में प्रवेश करता है।

टिप्पणी—तम्-अक्रतुः पश्यति वीतशोकः
धातुप्रसादात् महिमानम्-आत्मनः (कठोपनिषद्)
कामना-रहित बाह्यजगत् को भूला हुआ चिन्ता रहित कोई विरला साधक ही उस ब्रह्म अथवा माँ के अनुग्रह से परमशिवात्मक धाम को देखता है।

प्रियंगु-श्यामांगीम्-अरुणतरवासः किसलयां
समुन्मीलन्-मुक्ताफल-बहुल-नेपथ्य-कुसमाम्।
स्तन-द्वन्द्व-स्फार-स्तवक-नमितां कल्पलतिकां
सकृत्-ध्यायन्त-स्त्वां दधति शिवचिन्ता-मणिपदम् (13)

अन्वय-शब्दार्थ

चतुष्पत्रान्तः षड्-दल-भग-पुटान्त-स्त्रिवलय
स्फुरत्-विद्युत्-वह्नि, द्युमणि-नियुताभ-द्युतियुते!
षट्-अश्रं भित्त्वादौ, दशदलम्-अथ द्वादश दलं
कलाश्रं च द्व्यश्रं गतवति! नमस्ते गिरिसुते! (9)

अन्वय-शब्दार्थ

चतुष्पत्रान्तः=चार पतों वाले कमल (मूलाधार चक्र) में से निकल कर **षड्दल**=छः पतों वाले (स्वाधिष्ठान चक्र) **भगपुटान्तः**=दो त्रिकोणों में ठहरी हुई, **त्रिवलय**=तीनघेरों वाली, **स्फुरत्**=चमकते हुये, **विद्युत्**=बिजली, **वह्नि**=अग्नि, **द्युमणि**=सूर्य जैसे, **नियुत**=अनन्त, **आभ**=प्रकाश, **द्युतियुते!**=तेजवाली कुण्डलिनी स्वरूप वाली हे माता!, **आदौ**=पहले, षट् **अश्रं**=छः दलात्मक कमल को (स्वाधिष्ठान चक्र) **भित्त्वा**=विकसित करके, **दशदलं**=मणिपूरक, **द्वादशदलं** (अनाहत चक्र) **कलाश्रं**=16 पते वाले (विशुद्धाख्यचक्र), **द्वयं**=दो पते वाले (आज्ञाचक्र) **गतिवति**=विकसित करने वाली (अथवा प्रवेश करने वाली, कुण्डलिनी स्वरूपवाली) **गिरिसुते**=हे माता, नमस्ते=आप को बार-बार नमस्कार हो।

अर्थः—चार पत्तो वाले (मूलाधार चक्र) से निकल कर छः दलों वाले (स्वाधिष्ठान चक्र) के दो तिकोणों में ठहरी हुई, तीन घेरों वाली, चमकते हुये बिजली अग्नि सूर्य जैसे अनन्त तेजवाली, है कुण्डलिनी स्वरूप वाली माता! आप पहले छः दलात्मक कमल को (स्वाधिष्ठान चक्र) (भित्त्वा) विकसित करके, दशदल (मणिपूरक) द्वादश दल (अनाहत चक्र) 16 पत्ते वाले कमल (विशुद्धाख्यचक्र) दो पत्ते वाले (आज्ञाचक्र) कमल को विकसित करने वाली अथवा प्रवेश करने वाली कुण्डलिनी स्वरूप वाली, हे माता आपको बार-बार नमस्कार है।

टिप्पणी—ब्रह्माण्ड में जो विश्वव्यापिनी विद्युत्-शक्ति (ऊर्जाशक्ति) है वही मानव पिण्ड में कुण्डलिनी के रूप में ठहरी है, जो कुण्डलिनी प्रकाश से भी तेज गतिवाली है। प्रकाश प्रति सैकंड 25 हज़ार मील की गति से चलता है, कुण्डलिनी शक्ति उससे भी अधिक तेज गतिवाली है, यह कुण्डलिनी मनुष्य के शरीर में एक गुप्त तिजोरी है।

बनता है, अथवा अनर्गल कवितायें करने में समर्थ होता है।

टिप्पणी–"कवित्वं पञ्चमं ज्ञेयं" तन्त्रालोक में कहा है, माँ के अनुग्रह का पाँचवाँ लक्षण है "कवित्वं" बिना किसी प्रयास के कविता का प्रसार माँ के अनुग्रह से ही संभव है।

आधार-मारुत-निरोध-वशेन येषां
सिन्दूर-रंजित-सरोज-गुणानु-कारि।
तीव्रं हृदि स्फुरति देवि! वपु-स्त्वदीयं
ध्यायन्ति तान्-इह समीहित-सिद्ध-साध्याः(20)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि!=हे माताः **आधार-मारुत**=मूलाधार वायु के, **निरोध-वशेन**=रोकने से, **येषां**=जिन को, **सिन्दूर रंजित**=सिन्दूर में रंगे हुये, **सरोज**=कमल डंडे के, **गुणानु**=तार के, **अनुकारि**=जैसे, **तीव्रं**=दीप्तिमान्, **त्वदीयं वपुः**=आपका स्वरूप जिन को, **हृदि**=हृदय में, **स्फुरति**=प्रकट होता है अथवा आपके ऐसे स्वरूप का, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं, **तान्**=उन भक्तों का, **इह**=यहाँ भूलोक में, **समीहित**=अभिलषित चाहने वाले सिद्ध और साध्य देवता, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं।

अर्थः–हे माँ! जिन भक्तों को मूलाधार वायु के रोकने से, सिन्दूर में रंगे हुये कमल के सूक्ष्मतार का जैसा दीप्तिमान आपका स्वरूप हृदय में प्रकट होता है, उन एसे भक्तों का ध्यान अपना अभिलषित सिद्ध करने के लिये सिद्ध और साध्य करते हैं।

टिप्पणी–पञ्चस्तवीकार ने ध्यान योग से ही उस अनिर्वचनीय शक्ति का साक्षात् कार किया है। उसके ध्यान का केन्द्र था "हृदय" उस शक्ति का स्वरूप कैसा है उसके बारे में कहता है 'तीव्रं त्वदीयं वपुः' न तद्भासयते सूर्यो शशांको न पावकः-यत् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। भगवद्गीता। जिस प्रकाश के सामने अग्नि चन्द्र तथा सूर्य का प्रकाश फीका पड़ता है।

ते ध्यान-योगानुगता-अपश्यन्-देवात्मशक्तिं स्वगुणै र्निगूढाम्। उपनिषद्
उन जिज्ञासुः ऋषियों ने ध्यानयोग में स्थित होकर उस परमात्म देव की स्वरूप भूत अचिन्त्य शक्ति (संवित्) का साक्षात्कार किया।

ये त्वां पाण्डुर-पुण्डरीक-पटल, स्पष्टाभि-राम प्रभां
सिञ्चन्तीम्-अमृत-द्रवैर्-इव शिरो, ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम्।
अश्रान्तं विकट स्फुटा-क्षर-पदा, निर्याति वक्त्राम्बुजात्
षां भारति! भारती सुर-सरित्, कल्लोल-लोलार्मि-वत्(8)

अन्वय-शब्दार्थ

भारति!=हे सरस्वती माता, **ये**=जो भक्त, **त्वां**=तुम्हारे, **पाण्डुर**=सफेद, **पुण्डरीक**=कमल के, **पटल**=समूह की भांति, **स्पष्ट**=निर्मल, **अभिराम**=सुन्दर **प्रभां**=दीप्तिवाले, **शिर:**=सहस्त्र दल को, **अमृत=द्रवै:-इव**=अमृत के प्रवाहों से जैसे, **सिञ्चन्तीम्**=सीञ्चती हुई, **मूर्ध्नि**=ब्रह्मरन्ध्र में, **स्थितां**=ठहरी हुई का, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं, **तेषां**=उनके, **वक्त्राम्बुजात्**=मुख कमल से, **अश्रान्तं**=निरर्गल, **विकट**=गम्भीर, **स्फुटाक्षरा पदा**=स्पष्ट अक्षरों वाली, **भारती**=वाणी, **सुरसरित्**=आकाशगंगा की, **क्ल्लोल**=कलकल करती हुई, **लोल**=चंचल, **ऊर्मिवत्**=तरंगों की भांति, निर्याति=निकलती हैं।

अर्थ:—हे सरस्वती माता तुम्हारे सफेद कमलों के समूह की भांति निर्मल दीप्तिवाले, सहस्त्रार में अमृत प्रवाह को सींचती हुई ऐसे ही आप के स्वरूप का ब्रह्मरन्ध्र में जो भक्त ध्यान करते हैं, उनके मुख कमल से गम्भीर स्पष्ट अक्षरों वाली वाणी आकाशगंगा की कलकल करती हुई चञ्चल तरंगों की भांति निरर्गल रूप में निकलती हैं। अर्थात् उन भक्तों को मधुर सार्थक प्रभावशाली निरर्गल बोलने की शक्ति आती है।

टिप्पणी:—मूर्ध्नि=ब्रह्मरन्ध्रे-"सहस्त्रदलम्-आख्यातं=ब्रह्मरन्ध्र" ब्रह्मरन्ध्र में सहस्त्रदल कमल होता है (इसी सहस्त्रार) में साधक को शिवशक्ति के मिलन का साक्षात् कार होता है "सहस्त्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते"

ये सिन्दूर-पराग-पुञ्ज-पिहितां, त्वत्-तेजसा द्याम्-इमाम्
उर्वीं चापि विलीन-यावक-रस, प्रस्तार-मग्नाम्-इव।
पश्यान्ति क्षणम्-ऽप्य-नन्य मनस-स्तेषाम्-अनङ्ग-ज्वर
क्लान्ता-स्त्रस्त-कुरङ्ग-शावक-दृशो, वश्या भवन्ति स्फुटम्(9)

है, जैसे चरखे को एक धक्का ज़ोर का लगने पर भी चरखा बिना धक्के के भी कुछ देर चला ही रहता है, ऐसे ही प्रारब्ध कर्म समाप्त होने पर भी साधक का कुछ समय तक शरीर बिना प्रारब्ध के भी बना ही रहता है-जिस शरीर को इस श्लोक में "क्रमतनुः" से कहा है। शाम्भवी अवस्था श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकृपा से अभ्यास के बिना अकस्मात् भी प्राप्त होती है।

न ध्यायतो न जपतः, स्यात्-यस्यऽ-विधिपूर्व-कंम् एवं-एव शिवाभास-स्तं नुमो भक्ति-शालिनम्।

अर्थ—जिस को बिना ध्यान के, बिना जप के, विधि रहित रूप से ऐसे ही बिना अभ्यास के श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की दया से (अथवा) माँ! केवल आप की भक्ति से आप का साक्षात्कार हो, उसी भक्त को मैं प्रणाम करता हूँ।

यत्-षट्-पत्रं कमलं-उदितं, तस्य या कर्णिकाख्या
योनिस्तस्याः प्रथितं-उदरे यत् तत्-ॐकारपीठम्।
तस्मिन्-अन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृतां
श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि (37)

अन्वय-शब्दार्थ

यत्=जो, **षट् पत्रं कमलं**=छः पत्ते वाला कमल, **उदितं**=खिला हुआ, **तस्य**=उस कमल की, **या**=जो, **कर्णिकाख्या**=कर्णिका नाम वाली, **योनिः**=मध्य भाग है, **तस्याः**=उसके **उदरे**=मध्य में, **यत्**=जो, **तत्**=वह, **ॐकारपीठं**=ॐकार रूप पीठ, **प्रथितं**=स्थित है, **तस्मिन्**-अन्तः=उसके बीच में, **कुचभरनतां**=ज्ञान क्रिया रूप स्तनों से झुकी हुई, **कुण्डलीतः प्रवृत्तां**=सार्धत्रिवलय रूप में ठहरी हुई श्यामाकारां=श्यामवर्णवाली, **सकल जननी**=जगत् माता को, **सन्तत**=बार बार भावयामि प्रणाम करता हूँ।

अर्थः—स्वाधिष्ठान चक्र में ठहरे हुये खिले हुये, षट्=कमल का कर्णिका नाम वाला जो मध्य भाग हैं, उसके मध्य में विकसित जो ॐकार पीठ है उसके बीच में ज्ञान क्रिया रूप स्तनों से झुकी हुई कण्डलिनी रूप में ठहरी हुई श्यामकार वाली जगत् माता को बार बार प्रणाम करता हूँ।

टिप्पणी—कमल और चक्र में भेद-जब तक कुण्डलिनी सुप्त रहती है, तब तक षड्कमलों को षड् चक्र कहते हैं, कुण्डलिनी के जागने पर उनको षड कमल कहते हैं।

मूलाधार से लेकर आज्ञा चक्र तक मनुष्य शरीर में छः चक्र है-जिनकी जानकारी पाठकों षड्चक्र चित्र से होगी। (जो मुख प्रष्ट पर है)

05:22
Bhajan Sagar. : Free...
archive.org
INTERNET ARCHIVE

છુટાયા કહી શુરરે. પંથીડા.
સંતો ભાઇરે ગણુપત તમે ગોવીંદ ભજીલોને,
હરહરિ રાખે તુરરે. પંથીડા.

ભજન. ૫૯.

સમરી લે સરજનહારરે, પંથીડા પ્રાણી,
સમરી લે સરજનહારરેજી; પંથીડા.
સંતો ભાઇરે નાભી કમળથી સુરતાને સાથા તો;
ગગન મંડળ મોઝારરે પંથીડા.
સંતો ભાઇરે સુન્ન શિખરમાં ભમર ગફા છે તો,
ત્યાં રહેવાનું ઘરબારરે. પંથીડા.
સંતો ભાઇરે ત્રિકુટિ કમળમાં જોતિરે જળકે તો;
તે શું મેળવ્યા એક તારરે. પંથીડા.
સંતો ભાઇરે શ્વાસ શ્વાસે સમરણ કરી લે તો,

(૬૪)

મળશે તે જમનો મારરે;
સંતો ભાઇરે જનમ પેહુ જેને પય જમાવ્યું તો,
માતાના તનમોઝારરે. પંથીડા.
સંતો ભાઇરે કરતાયે કાયા કેવી બનાવી તો;
એનો જુવો ઉપગારરે. પંથીડા.
સંતો ભાઇરે ગણુપત કે ગુરૂ દેવ મળે તો
સેજ તરો સંસારરે. પંથીડા.

ભજન. ૬૦.

અખંડ અનાદીરે અનુભવી જે હશેરેજી
કરશે તે તો ભક્તિ કેરૂ કાજ સતગુરૂ સેવો સંત નેરેજી,
મહેલી જેને લોકડીયાની લાજ અખંડ.
સદગુરૂ શબ્દરે કામજ સોધીયુંજી;

Favorite Share Flag
Bhajan Sagar.

इन्दो-र्मध्यगतां मृगांक-सदृशच्छायां मनो-हारिर्णी
पाण्डूत्फुल-सरोरुहासन-गतां, स्निग्ध-प्रदीपच्छविम्।
वर्षन्तीम्-अमृतं भवानि! भवतीं ध्यायन्ति ये देहिनः
ते निर्मुक्त-रुजो भवन्ति विपदः प्रोज्झन्ति तान्-दूरतः(7)

शब्दार्थ-अन्वय

भवानि! हे माता, **इन्दोः**=चन्द्रमा के, **मध्यगतां**=बीच में स्थित, **मनोहारिर्णी**=मनोहर, **मृगांकसदृशच्छायां**=हिरण के समान शोभावाली, **पाण्डु**=सफेद **उत्फुल**=खिले हुये, **सरोरुह**=कमल के, **आसनगतां**=आसन पर ठहरी हुई **स्निग्ध**=तेल से भरे हुये, **प्रदीपछवि**=दीपक की जैसी दीप्तिवाली, **अमृतं-वर्षन्तीं**=अमृत-बरसाती हुई, **भवतीं**=आपका, **ये देहिनः**=जो मनुष्य, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं, **ते**=वे, **निर्मुक्तरुजः**=छूटे हुये रोगवाले, **भवन्ति**=होते हैं, **विपदः**=विपदायें, **तान्**=उनको, **दूरतः प्राज्झन्ति**=दूर छोड़ती हैं।

अर्थः—हे जगत् माता। चन्द्रमा के बीच में स्थित, मनोहर हिरण के समान शोभावाली, सफेद कमल के आसन पर ठहरी हुई, तेल से भरे हुये, दीपक की जैसी दीप्तिवाली अमृत बरसाती हुई, ऐसे ही रूप वाली का जो प्राणी ध्यान करते हैं, वे रोगों से मुक्त हो जाते हैं, विपदायें उनके पास टिकती नहीं हैं।

टिप्पणी—रोगान्-अशेषान्-अपहंसि तुष्टा..........
त्वाम्-आश्रितानां न विपत्-नराणाम्।। दुर्गासप्त॰

आपके सन्तुष्ट होने पर आध्यात्मिक, आधि दैविक आधि भौतिक, ताप दुःख नष्ट हो जाते हैं, जो माँ की शरण में आता है उस पर विपत्ति आती ही नहीं है।

पूर्णेन्दोः शकलैर्-इवा-तिबहलैः, पीयूष पूरैर्-इव
क्षीराब्धे-र्लहरी-भरैर् इव, सुधा-पंकस्य पिण्डैर्-इव।
प्रालेयैर्-इव निर्मितं तव वपुर्ध्यायन्ति ये श्रद्धया
चित्तान्तर्-निहतार्ति-ताप-विपदस्ते सम्पदं बिभ्रति(8)

अन्वय-शब्दार्थ

पूर्णेन्दोः=पूर्ण चन्द्रमा के, **शकलैर्-इव**=टुकड़ों से जैसे, **अतिबहलैः**=पर्याप्त, **पीयूष पूरैर्-इव**=अमृत के प्रवाहों से जैसे, **क्षीराब्धेः**=क्षीर सागर के, लहरी **भरैर्-इव**=तरंगों के समूह से जैसे, **सुधापं-कस्य पिण्डैर्'इव**=अमृत के गारे के पिण्डों से जैसे, **प्रालेयैर्-इव**=बर्फ, जैसे **निर्मितं**=बने हुये, **तव**

जोगारंभ भजन

दश अवतार ज्यांरे एक मेरे दाता, मारम विरला जाणी है ।
सब सृष्टि में एक मेरे मालिक, मारम विरला जाणी है ।। टेर ।।

हिन्दू कहते राम-राम, मुसलमान कहे मेरी है । (२)
नही है मेरी नही है तेरी,(२) जाणे जिनकी शेरी है ।। दश अवतार ज्यांरे...

नाभि कमल में रहत हमारी, वंक-नाल उलटाणी है ।(२)
स्वासे स्वास भजन की माला, (२) आ हर की ओलखाणी है ।। दश अवतार ज्यांरे...

जद सतगुरु मौपर कृपा कीनी, जदुणी वात विचारी है ।(२)
मोर मुगट पर हुआ प्रकाशा,(२) आ हर की ओलखाणी है ।। दश अवतार ज्यांरे...

भवानीनाथ गुरु पूरण मलिया, दी हर की ओलखाणी है ।(२)
दोय कर जोड़ अनुपदास बोले,(२) अगम निगम ओलखाणी है ।। दश अवतार ज्यांरे...

10:53 Vo)) LTE1

sant gyanswaroop ji...

प्राण– प्राण, उदयान, व्यान, समान और अपान तथा 2 मन और बुद्धि ये कुल 17 हैं। पाप–पुण्य का कर्ता–भर्ता, उनके फल सुख–दुःख का भोक्ता; इस लोक–परलोक में गमनागमन ये सूक्ष्म शरीर के धर्म हैं।

dkj.k 'kjhj– अज्ञान तत्त्व ही कारण शरीर है। अज्ञान मय अन्तःकरण की वृत्तियों का आवरण ही इनका धर्म है। स्थूल, शूक्ष्म शरीर का मूल हेतु कारण शरीर है।[1]

शरीर के प्रति संत ज्ञानस्वरूप कहते हैं किः

पांच तत्त्व पच्चीस प्रकृति गुण तीन पसारा हो।
कोस अवस्था प्राण मात्रा, सबका आधार हो ॥ 1 ॥[2]

मानव शरीर की रचना का ज्ञान कराते हुए ज्ञानस्वरूप कहते हैं कि यह शरीर पांच भौतिक तत्त्वों, पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश व इनकी पच्चीस प्रकृतियों से बना है। इस शरीर में तीन गुण– सत, रज, तम का पसारा है और पांच कोष हैं– अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्द; इसके पांच प्राण है प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान नाम से हैं जो सब का आधार है।

तन की तोप शब्द का गोला दम दारू भरवाना।
कोट अकीसुँ ढाय अखंडी तेज त्रिवेनी दरसाना ॥ 2 ॥[3]

साधना के लिए शरीर रूपी किले के 21 इक्कीस तत्त्वों अर्थात पांच तत्त्व– पृथ्वी, आकाश, अग्नि, जल और वायु,+पांच कर्मेन्द्रियाँ+ पांच ज्ञानेन्द्रियाँ+ चार अंतःकरण+ प्राण और बुद्धि को नियन्त्रित कर एकाग्रचित्त से ध्यान करना चाहिए। ज्ञानस्वरूप जी और कहते हैंः

पांच पचीस करे बस दो, दस मुद्रा बन्द कसे तन को।
मनपवना उलटाय अफूटा, सुरत शब्द त्रिवेनी चढ़े ॥ 2 ॥[1]

---

1 स्वामी रामप्रकाशाचार्य कृत उत्तम वाणी प्रकाश आध्यात्मिक सन्त वाणी शब्द कोष, उत्तम आश्रम, जोधपुर पृ 5–7
2 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 113
3 – – – वही – – – पृ. 144

पांच तत्त्व अर्थात पृथ्वी, अग्नी, जल, पवन, आकाश व इनकी पच्चीस प्रकृतियाँ; मन और बुद्धि दस इन्द्रियाँ, दस मुद्राओं को साध कर शरीरिक क्रियाओं को नियन्त्रित कर सुरति को त्रिवेणी में चढ़ाकर साधना करना चाहिए। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियां जहां मिलती हैं उस स्थान को त्रिवेणी या त्रिकुटि कहते हैं। मानव शरीर की दुर्लभता के प्रति संत ज्ञानस्वरूप कहते हैंः

नर तन दुर्लभ पाया जगत में।
विरथा नहीं खोय तू भजन बिन गिंवारा ॥ 2 ॥[2]

यह मानव शरीर (योनि) बड़ी मुश्किल से मिला है इसे ईश्वर की आराधना किये बिना व्यर्थ में नहीं खोना चाहिए। शरीर की क्षणभंगुरता के प्रति संत कहते हैंः

तन जीवन धन माल खजाना अंत कोई संग न जाना।
जोग जतन सुकृत का नफा कमायले रे ॥ 2 ॥[3]

वह दुनिया सुपना जिम निश का, धन जीवन नश्वर दिन दस का।
नरतन जनम अमोलख विरथ न हारना रे ॥ 1 ॥[4]

अर्थात हमारा धन, माल, खजाना कुछ भी मृत्यु के बाद साथ नहीं जाएगा अतः योग (आत्मा, परमात्मा का जुड़ाव) और यत्न करके, सुकृत करते हुए इस सीमित मानव जीवन को व्यर्थ गंवाने के बजाय परमात्मा की आराधना करनी चाहिए। संत ज्ञानस्वरूप आगे और कहते हैः

10:49
sant gyanswaroop ji...

समाहित है इसी प्रकार प्राणियों में एक ही ब्रह्म का अंश व्याप्त है। लहरों, बुदबुदों, पेड़, पौधों, प्राणियों के भौतिक रूप भिन्न होते हुए भी उनमें एक ही परम तत्त्व विद्यमान है। शब्दों की प्रस्तुति के भेद से ज्ञानस्वरूप जी ने परमब्रह्म की सर्वोच्चता, सर्वव्यापकता, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियन्ता होने और जीव और ब्रह्म की एकता का वर्णन अपने लगभग हर भजन और पद में किया है।

3-2-5 ije/ke%

परमात्मा हर प्राणी में वास करता है ऐसा विश्वास सभी संतों का है किन्तु उसका परम या मौलिक स्थान कहां है यह कोई नहीं जानता। अलबत्ता उसके परमधाम के प्रति ज्ञानीजन कहते हैं कि वह अलौकिक है। इस निमित्त संत ज्ञानस्वरूप कहते हैं:

ऐसा निज देश हमारा हो।
सदा सत चेतन आनन्द अखे निश्चल निरघारा हो॥ टेर॥
अती इन्द्रिय गोप सदा, मन चित्त के पारा हो।
धूप न छांहि रूप नहीं रंग बिन तन आकारा हो॥ 1॥
– –
दिवस न रैन सूर नहीं चन्दा, बिन जोत उजारा हो।
कोई गुरुमुखी संत सुजाण लखे, मिटे भव संसारा हो॥ 3॥
जन्म मरण नहीं काल लगे, जहां अमर अखाड़ा हो।
ज्ञानस्वरूप सोई पद निरभय जाका आर न पारा हो॥ 4॥ [1]

हे संतों परमधाम सर्वोच्च है वहां सदा आनन्द रहता है। वह बिना आधार के स्थिर है वहाँ न धूप है और न छांव, उसका न कोई रूप है न रंग। वह ऐसा अलौकिक है कि बिना सूर्य और चांद के स्वयं प्रकाशी है। वहाँ केवल शान्ति है, न प्रमाद है न क्रिया–प्रतिक्रया। ऐसा आत्मदेश जहाँ जन्म–मरण, काल, मृत्यु का भय नहीं है। संत ज्ञानस्वरूप के अनुसार परमधाम असीम है। साधक के वहां पहुचने हेतु:

प्रथम पांच पचीसुं बस कर सुरत शब्द घर लाना रे।
नाम द्वादस पलट पवन को सुखमण सैज मिलाना रे॥ 1॥
खोल कपाट झाट दे सूरा उलटे राह धूमाणा रे।
उर थिर कला कमल में चमके बिन चश्मा दरसाना रे॥ 2॥
सोंह तार सार ततसत की अधर अमी बरसाना रे।
– – – – – – — – – – – – – – – – – –
बिन रवि चंद प्रकाशो भवंर दल स्वासा शवद थकाना रे।
ज्ञानस्वरूप पहुँचे जन विरला गुरु मुख संत सयाना रे॥ 5॥ [2]

पहले पांचों विषयों व उनकी 25 प्रकृतियों का त्याग कर सुरति मन बुद्धि से सार शब्दों का ज्ञान प्राप्त करके दस इन्द्रियां मन बुद्धि द्वारा सांस प्रश्वास को उलटाकर

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 114
2 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 148

10:45

← sant gyanswaroop ji...

संत साहित्य में सुरति–निरति विलोम शब्द युग्म का विशिष्ट पारिभाषिक महत्त्व है। पूर्ववर्ती निर्गुण संतों की भांति संत ज्ञानस्वरूप ने अपने भजनों में भी 'सुरती' एवं 'निरति' शब्दों के विभिन्न देशज रूप भेदों का उल्लेख किया है यथा 'सुरती उर बसी तुमारी रे' (भजन प्रभाकर पृ. 51 52) 'सूरत शब्द का बेला बांधे, इड़ पिंगला सुखमण साधे' (भजन प्रभाकर पृ 74) 'सूरत निरत जहां समझ न पहुंचे हेरत रहा हेरानी' (भजन प्रभाकरपृ 96)। उनके अनुसार सांसारिक विषयों से विराग भाव ही 'निरति' है और परमप्रेय परमात्मा में पूर्ण समर्पित भाव से आसक्ति होना ही 'सुरती' है।

उनके भजनों–पदों में विरहाग्नि दग्ध (जीवात्मा) प्रेयसी का अपने पिया (परमेश्वर पति) के प्रति समर्पण की उदात्त झलक मिलती है। संत ज्ञानस्वरूप रचित बारहमासा गीत लौकिक दैहिक श्रृंगारिक भावों वाली बारहमासा गीत परंपरा से हटकर नूतन, नवाचारी प्रयोगधर्मी सृजन दृष्टि का श्रेष्ठ उदाहरण है। उनके द्वारा 'साधु असाधु सूरातन' के पदों में भक्ति–योद्धा का जिस प्रकार वीररसपूर्ण चित्रण हुआ है, वह अपने आप में आलंकारिकता और श्रृंगार रस पुष्ट वीररसपूर्ण भक्ति धारा की त्रिवेणी है।

संत ज्ञानस्वरूप ने विद्या प्रसार, आडम्बरों, पाखंडों से दुराव एवं समाज सुधार के क्षेत्र में रुचि पूर्वक सक्रिय भूमिका निभाते हुए भी सांसारिक जीवन से निरासक्त रहकर प्रभु नामस्मरण में आसक्ति बनाए रखी। उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं था।

NVoav/;k; में **l a KkuLo:i dsdk0; eaoKkfud ,oalekftd n'kZu** विषयक अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने बीसवीं सदी के सामयिक सामाजिक मुद्दों का समुचित ध्यान रखते हुए सामाजिक विडम्बनाओं का कभी समर्थन नहीं किया। समाज सुधार, राष्ट्रोत्थान एवं प्रकृति–संरक्षण की दृष्टि से उनके भजनों व काव्यकृतियों में समुचित दिशाबोध मिलता है। राष्ट्रीय कर्त्तव्यों से ओतप्रोत उनके कुछ भजनों में तो अनेक समाज शास्त्रीय सिद्धान्तों की वैज्ञानिक आधारभूमि परिलक्षित होती है। राष्ट्रीयता, मानव समाज का यथार्थ, नैतिक मूल्यों में गिरावट से बचने का संदेश, जाति–पांति, छुआछूत, मूर्तिपूजा, आडंबरों, मांस, मद्य, व्यसनादि से परहेज, विधवा सुरक्षा, अंधविश्वास निवारण, नारी–कल्याण, बाल विवाह विरोध, गौरक्षण सहित प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण इत्यादि अनेक सामाजिक और वैज्ञानिक मामलों पर संत ज्ञानस्वरूप के विचारशील भजनों में व्यापक चिंतन–मनन समाहित है।

एक संत होते हुए भी उन्होंने उत्तरदायी नागरिक के रूप में राष्ट्रीय आंदोलन एवं तदन्तर स्वतंत्र भारत की विभिन्न चुनौतियों का सूक्ष्म अवलोकन किया जो उनके राष्ट्रीयता परक भजनों में सुस्पष्ट झलकता है। उन्होंने विश्वरचयिता ठाकुर जी (भगवान) से प्रार्थना की कि निरंतर अकाल ग्रस्त भारत की भूखी जनता को बदहाली

10:59

sant gyanswaroop ji...

साधो भाई सतगुरु खेल दिखाया।
अखे मंडल प्रकाश अखंडी वाका दरशन पाया ॥ टेर ॥
खींचा पवन मूल कस करके नाभ मंडल गरनाया।
नागन जाग भई उलटे मुख सूर चक्र दरसाया ॥ 1 ॥
शब्द टकर दे पेठ सुखमण घर बंकनाल थरराया।
मेरुदल छेद गमन कर गगना त्रिवेनी तट न्हाया ॥ 2 ॥[1]

सतगुरु द्वारा बताए ज्ञान के अनुसरण से प्राणायाम द्वारा कसकर सांस खींचाने से नाभि मंडल कम्पायमान होकर मूलाधार चक्र से श्वास रीढ़ खम्भ में जाग्रत होकर ब्रह्मरंध्र में और फिर सुषुम्ना में जाने से बंकनाल (रीढ़ खंभ) कम्पायमान होता है और फिर गगन मंडल (मस्तिष्क), जहां आज्ञा चक्र है, वहां पहुंचने पर समाधि की स्थिति आती है।

कर बन्ध मूल उडियान जलंघर आसण अचल जमावे।
खेचरी भूचरी चाचरि उनमनि अगोचरि उलटावे ॥ 1 ॥[2]

साधना में साधक अचल आसन जमा कर त्रिबन्ध अर्थात उडियन, जलंधर और मूलबन्ध को साध कर गुरु उपदेश से ध्यान करें और खेचरी, जो तंत्रोक्तमुद्रा है, भूचरी जो समाधि मुद्रा है, फिर चाचरी मुद्रा, जिससे महातेज प्राप्त होता है, उनमुनी जो मौन ध्यानावस्था मुद्रा है और फिर अगोचरी मुद्रा भंवर गुफा, जो विषयों से परे है, में ससंयम ध्यान करें तो सतस्वरूप परमात्मा के दर्शन पावे। ऐसे साधक की आत्मा पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त हो, परमात्मा में ही समाहित हो जाती है। अस सम्बंध में संत ज्ञानस्वरूप और कहते हैं:

निगम निसान स्वास सरंगी तंत के तार बजावे।
पलटे पवन पछिम दिशि धूमर दस में रास रचावे।
नूर हजूर दिखावे ॥ 2 ॥[3]

साधक गुरु द्वारा बताये वेद शास्त्रों के तत्त्व का ज्ञान के अनुरूप प्राणायाम विधि से मूलाधार से कुंडली जागरण करके श्वास प्रश्वास द्वारा मेरूदण्ड छेद बंकनाल से होकर सुषुम्ना के द्वार पर आज्ञाचक्र के बाद ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करके दसवें में पहुंचे वहीं ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं। उपर्युक्त बातों को संत ज्ञानस्वरूप ने इस प्रकार भी कही है:

मूल कमल से पवना पलटो नाम निहार के चल नभ उलटा।
बंक होय मेरू ढायके खोल किंवारा ॥ 1 ॥
बेगम भोम की घाटी सकड़ी शब्द सांद चढ़ो तार ज्यूँ मकड़ी।
जोत त्रिवेणी में झिलमिले रवि शशि तारा ॥ 2 ॥[4]

---

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 94
2 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 7
3 — — — वही — — — पृ. 117
4 — — — वही — — — पृ. 161

इस प्रकार संतों की साधना नाथों की हठयोग साधना जैसी कठिन नहीं होते हुए भी ऐसी साधना सर्वसुलभ नहीं होकर इसमें किसी बिरले को ही सद्गुरु के मार्ग दर्शन और कृपा से सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

10:58
sant gyanswaroop ji...

लागी तारी चढ़ी खुमारी फिर रही निर्गुन माला रे।
उलटी कला कमल में खेले दर्स्या देव निराला रे ॥ 2 ॥[2]

परमात्मा की लगन लगने से आत्मा में ऐसा नशा चढाता है कि हृदय में निर्गुण माला अर्थात श्वास प्रश्वास में अजपाजाप निरन्तर हो रहा है।

नर सीख समझ अब चेत हरि भज निज पद पावेगा रे ॥ टेर ॥
तन मन जीत इंद्रिय बस करले बिन मुख अजाजाप उचरले।
ध्यान तूँ एक अखंड उर धरले नाथ के जब मन भावेगा ॥ 1 ॥[3]

मनुष्य को अपने मन, और इन्द्रियों को वश में रख परमात्मा का स्मरण कर, बिना मुख के नाभि द्वारा अजपाजाप कर अखण्ड का ध्यान अपने हृदय में धारण करना चाहिए। संत ज्ञानस्वरूप अजपाजाप का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहते हैं:

वंद मुद्रा जीत पांच पचीस गह नकेल रे।
बिन जिव्ह अजपा जाप जप कर अखे घर की सैर रे ॥ 4 ॥[4]

1 चितारा डॉ. गोपीकिशन– रामस्नेही संतकवि दयालदास और उनका काव्य, रामधाम खेड़ापा, पूर्वोक्त पृ. 159
2 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 137
3 – – – वही – – – पृ. 149
4 – – – वही – – – पृ. 160

साधक पांच तत्त्व, पच्चीस प्रकृतियों को नियंत्रित करके, निरन्तर बिना जिव्हा, बिना ध्वनि के अजपाजाप करेगा तो अक्षयधाम पहुंच जाएगा, सत स्वरूप में आत्मलीन हो जावेगा। वे और कहते हैं:

अजपा जपे तार नहीं टूटे, बंक नाल बिच तोबां छूटे।
पलटे पवन पिछम को मोड़े, मेरू किला कोई शूरा तोड़े ॥ 3 ॥[1]

शरीर में अनवरत अजपाजाप होता रहने पर ऐसा लगता है जैसे रीढ़ खम्भ में तोप जैसी गर्जना हो रही हो। सांसारिक मोह माया से जकड़े मजबूत किले को कोई शूरवीर संत ही भेद सकता है।

पांच पच्चीसूं रोक भीतर सुरत शब्दों जोड़ले।
बिन जिव्हा अजपा जाप जप निगे निरंजन आयगा ॥ 3 ॥[2]

हे मनुष्य तूं पांच तत्त्व और उनकी पच्चीस प्रकृतियों पर नियन्त्रण करके अपने भीतर शब्द सुरति को जोड़ कर सतस्वरूप परमात्मा का निरंतर अजपाजाप कर जिससे तेरे भीतर अज्ञान मिटकर ज्ञान का प्रकाश होगा, समस्त भ्रमजाल मिट जावेगा और परमात्मा के दर्शन हो जावेंगे।

अजपा जपे अंग नहिं धूजे, खुले कपाट भंवार दल गूंजे।
झिल मिल जोत अखंड जहां सूझे, त्रिगुण ताप नशावेगा ॥ 3 ॥[3]

अजपाजाप की स्थिति में पहुंचने पर शरीर का कोई अंग हिलता नहीं निरन्तर जाप से तीनों ताप नष्ट हो जाते हैं, अखण्ड दिव्य ज्योति के दर्शन होते हैं।

कर पुरुषार्थ मेट वासना, लगा लगन उर धर ध्याना।
जप अजपा जप ताप नशाना, दरश देव दिखलावे ॥ 3 ॥[4]

हे मनुष्य सद्कर्म कर, विषय वासनाओं से मुक्त होकर हृदय में ध्यान लगा कर परमात्मा का अजपाजाप निरंतर कर इससे तेरे पाप दोष मिट जावेंगे। संत जन अजपाजाप के लिए 'राम' नाम के जप का उपदेश देते रहे।

इस प्रकार संत ज्ञानस्वरूप ने मन्त्र योग, नाम स्मरण या अजपाजाप, अष्टांगिक योग का महत्त्व स्वीकारते हुए अपने अनुयायियों को विषय–वासनाएं छोड़, अपने मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर, सद्कर्म करते हुए परमात्मा के प्रति अपने हृदय में पूर्ण विश्वास सहित अजपाजप करने का आदेश दिया ताकि उसके सभी कष्ट दूर होकर उसका कल्याण अर्थात मोक्ष हो सके।

10:57
sant gyanswaroop ji...

शंख शब्द बजे अनहद नादा, विनय की बीन ढोलक धुन गाहेरी ॥ 2 ॥
पांच पचीस मिल मंगल गावे, सुरत सिखर गढ़ चढ़ गई मेरी ॥ 3 ॥ [1]

सुरति की स्थिति साधक की योग साधना की चरम अवस्था है। ध्यान की इस अवस्था में साधक को शंखों की ध्वनियां, ढोलक की धुन, मृदंग की तान की असीम ध्वनि सुनाई देती है। साधक में अहंकार समाप्त होकर विनम्रता आ जाती है। सुरति के शिखर अर्थात ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचने पर पांचों तत्त्व– पृथ्वी, आकाश, अग्नि, जल और वायु जिन्हें पंचभूत भी कहा जाता है, तथा उनकी 25 प्रकृतियाँ [2] सतोगुणी हो जाती हैं साधक परमानन्द को प्राप्त कर लेता है। संत ज्ञानस्वरूप ने शब्द सुरति को इस प्रकार प्रयुक्त किया है:

हेली ए पाँच पचीस तीन षट गहो दम की दौड़ निवार।
हेली ए सुरत शब्द बांधे मोरचा पावे देव दीदार ॥ 1 ॥ [3]

हेली अर्थात सुरति, वृति, साथिन, सुरता, सइयों सहेली, सखी! (आत्मा) पांच तत्त्व और उनकी पच्चीस प्रकृतियों तथा काम क्रोध, मद को वश में करके ध्यान करने से प्रभु के दर्शन (आत्मा का परमात्मा में मिलन) होगा।

सुखमन सेरी प्राण पियागे, सुरता चढ़ी शब्द के सागे।
चमके कला कमल में आगे, काल क्रोध भव बन्धन भागे ॥ 2 ॥ [4]

सुषमना की सेरी से सुरति ध्यान के द्वारा शब्द ज्ञान के साथ ऊपर चढ़ी जहाँ सहस्रार कमल में आगे झिलमिल प्रकाश है उसके प्रभाव से काम, क्रोधादि सभी भवबन्धन नष्ट हो जाते हैं। संत ज्ञानस्वरूप ने और कहा है:

चौखट अष्ट द्वादस सोले, छेद चक्र सब अघट पट खोले।
सुरत निरत मिल बांधे बेला, जीव शीव का जहां होवे मेला ॥ 7 ॥ [5]

चारों खूंट, अष्टचक्र, दस इन्द्रियां तथा मन, बुद्धि से एकाग्र होकर ध्यान करने से हृदय के बंद द्वार खुल गये जहाँ पर सुखी मन– निरति आत्मलीन होकर परमात्मा

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 119
2 संत ज्ञानस्वरूप ने आत्मज्ञान भास्कर में पृ. 457 पर 5 तत्वों की पच्चीस प्रकृतियॉं इस प्रकार लिखि:
Hkwfe– अस्थि, मांस, त्वचा, नाड़ी, रोम; vkdk'k– काम, क्रोध, शोक, मोह, भय;
vfXu– क्षुधा, तृषा, निद्रा, क्रान्ति, आलस्य; ty– शुक्र, रक्त, लार, मूत्र, स्वेद;
ok;q– चलन, वलन, धावन, प्रसारण, आकूचन
3 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 129
4 – – – वही – – – पृ. 163
5 – – – वही – – – पृ. 163

से मिलेगी अर्थात जीवात्मा का परमात्मा से मिलन सम्भव होगा। पांच तत्त्वों और उनकी 25 प्रकृतियों पर नियन्त्रण और अजपाजप के लिए ज्ञानस्वरूप जी कहते हैं:

पांच पच्चीसु रोक भीतर सुरत शब्दों जोड़ले।
बिन जिव्हा अजपा जाप जप निगे निरंजन आयगा ॥ 3 ॥ [1]

पांच तत्त्वों और उनकी पच्चीस प्रकृतियों को रोक कर (संयम पूर्वक) भीतर से सार सत शब्दों से जोड़ ले और परमात्मा का ध्यान करे तब अजपाजाप से और अज्ञान मिटकर ज्ञान का प्रकाश होकर कर्मों के बन्धन कट जावेंगे, सारे भ्रमजाल छूट जावेंगे और आत्मा का परमात्मा में मिलन हो पावेगा।

अविनाशी ग्रह अचल आसरा विषय ताते को तोड़।
सुरत शब्द मिल एक अखण्डी ध्यान धणी में जोड़।
मगन मन थावेगा ॥ 2 ॥ [2]

वह परमात्मा अटल अविनाशी है। उन्हीं का आसरा लेकर विषय वासनाओं को

11:01
sant gyanswaroop ji...

के प्रति तन्मयासक्ति 'लौ' अथवा 'ल्यौ' का उल्लेख 'लिव', 'लव' अथवा 'लवलीन' इत्यादि शब्दों के रुप में है –

साधो भाई ऐसे भजन लिव लावे।
ममता मान बड़ाई मेटे एक अखण्ड हरि ध्यावे ॥ टेर ॥
– – – – – – – – – – – – – – – – – – – –
जन्म मरण का बन्धन छूटे जीव परम पद पावे।
ज्ञानस्वरूप गुरुगम ऐसी सत में जाय समावे ॥ 4 ॥[1]

संत ज्ञानस्वरूप ने अपने अनुयायियों को सहज भक्ति भाव का निर्देश देते हुए कहा कि समस्त ममता मान बड़ाई से मुक्त होकर एक अखण्ड परमेश्वर में ध्यान लगाना चाहिए जिससे आत्मिक शांति मिलती है, साधक के जन्म–मरण के बन्धन छूट जाते हैं वह सर्वोच्च स्थिति (मोक्ष) को प्राप्त कर अन्ततः ईश्वर में ही समा जाता है।

जो कोई हरि सुमरन लिव लावे तासे परम पदार्थ पावे ॥ टेर ॥
चेतन होय त्याग मोह आलस आसण दृढ़ जमावे।
मुद्रा बंध त्रिसाध सुखमणा सोहं सुरत लगावे ॥ 1 ॥
– – – – – – – – – – – – – – – – – – – –
अनहद नाद गगन में गरजे अखंड अभे धुन लावे।
सुरत श्वास थक आनन्द उमड़े फेर काल नहीं खावे ॥ 4 ॥[2]

संत ज्ञानस्वरूप कहते हैं कि परमात्मा का लगन पूर्वक स्मरण करने वाले साधक को आत्मज्ञान हो जाता है। उनके अनेक भजनों में 'सहज' शब्द का प्रयोग किया है जो लोक भाषा के उच्चारण प्रभाव से लिपिबद्ध होने पर 'सेज' लिखा गया है। यथा –

संत समागम जाय करो नर पाप अज्ञान क्लेश मिटाने।
दे निज रंग अज्ञान हरे हरि में कर प्रेम सुधारस पावे।
काम क्रोध मिटाय मदादिक योग वैराग अरु भक्ति सजावे।
ज्ञानस्वरूप करो सतसंग सेजहि साहिब संत मिलावे ॥ 4 ॥[3]

हे महानुभावों पाप, अज्ञान, क्लेश आदि मिटने के लिए सत्संग किया करो। संतजन संत स्वभाव में ढालकर अज्ञान को मिटा, ईश्वर के प्रति लगाव बढ़ाकर अमृतरस पान कराते हैं। संत काम, क्रोध, मोह, मदादि दोष मिटाकर योग, वैराग्य और भक्ति की ओर अग्रसर कराते हैं ताकि परमात्मा से मिलने का मार्ग प्रशस्त हो।

कल्याण चाह नर अगर तूँ तज हिंसा परनार।
सत वचन कहे दया रख वेद धर्म उर धार।
वेद धरम उर धार हरि गुरु भक्ति कीजे।
परधन तृष्णा त्याग दान सुपात्र दीजे।

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वाक्त पृ. 07
2 – – – वही – – – पृ. 111
3 – – – वही – – – पृ. 298

11:01
sant gyanswaroop ji...

संत ज्ञानस्वरूप ने पतित पावनी गंगा को माता सम्बोधित कर निमंत्रण देते हुए प्रार्थना की है कि राजा भगीरथ के पूर्वजों का उद्धार करने वाली, शिव की जटा में वास करने वाली पापमोचनी गंगा मैया सबके कलि–मल, पापादि दोषों का नाश करे। अर्थात संत ज्ञानस्वरूप पवित्र गंगाजल की पवित्रता को बनाये रखने के लिए भी चिंतनरत रहे। उन्होंने ईश्वर से गंगा के समान निर्मल वाणी की प्रार्थना की है–

गंगा सम नित वेन निरमल भंजन से मोह–अघ हरे
बना अपने स्वरुप आत्मज्ञान दे रक्षा करे ॥ [4]

सुरत शब्द का बेला बांधे, इड़ा पिंगला सुखमण साधे।
सत सोहं का ध्यान सदा उर धारना रे ॥ 3 ॥ [5]

---

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 75
2 – – – वही – – – पृ. 231
3 – – – वही – – – पृ. 242
4 – – – वही – – – पृ. 175
5 – – – वही – – – पृ. 74

इस प्रकार संत ज्ञानस्वरूप के हृदय में गंगा' के प्रति अगाध भक्तिभाव रहा। हठयोग व तंत्रमार्ग की पारिभाषिक शब्दावली में 'त्रिवेणी' की तीन सरिताओं (शरीर की इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना) में गंगा को प्रथम स्थान प्राप्त है। संत ज्ञानस्वरूप ने इस रुप को भी' गंगा–स्तुति' में ध्यान में रखा है।

गंगा को पापमोचनी भी कहा गया है। आध्यात्मिक सन्त वाणी शब्द कोष के अनुसार **'iki*** का अर्थ है– "दुश्चरित्र, राजस–तामस कर्म, दुष्कर्म, सप्त व्यसन, दस दोष के आचरण, अहितकर कर्म'' तथा **'ikrd del** का अर्थ है– "अनिष्ठ कर्म, वेद विरुद्ध कर्म या मानवता विरुद्ध पाप कर्म या पतित कर्म।"[1] मोचनी का अर्थ है– छुटकारा दिलाने वाली, निवारण करने वाली अथवा मुक्ति दायिनी। इस अर्थ में गंगा पापमोचिनी हर भांति कल्याणकारी, पातक कर्मों से छुटकारा दिलाने वाली है। लेकिन गंगा स्नानकर्ता स्नान के साथ ही इन पाप कर्मों को स्वयं प्रत्यक्ष/परोक्ष हर प्रकार से त्यागे और केवल सत्कर्म करे तो ही उसके पूर्व के पाप कर्मों के संचित असर धीरे धीरे क्षीण हो सकते हैं। अन्यथा, व्यक्ति गंगा स्नान भी करता रहे, सत्संग भी करता रहे और निरंतर अनैतिक कर्म भी जारी रखे तो गंगा स्नान, सत्संग दिखावा है, ढ़ोंग है इस स्थिति में पापमोचन संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में गंगा स्नान या सत्संग का दोष नहीं अपितु दोष ढ़ोंग या दिखावा करने वाले का ही है।

5-7 Igt Hkä%

'सहज' शब्द की व्युत्पत्ति है 'सह जायते सहजः' इस आधार पर 'सहज' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ 'जन्म के साथ–साथ उत्पन्न होने वाला' हुआ परन्तु भक्ति–क्षेत्र में पारिभाषिक दृष्टि से 'सहज' शब्द का प्रयोग उस अनिर्वचनीय (अकथनीय) स्थिति के लिए किया गया है जिसे प्रायः 'निर्वाण' की संज्ञा दी जाती है और इस प्रकार यह शब्द परम तत्व के स्वरुप का बोधक बन गया है।[2]

निर्गुण–भक्ति काव्यधारा में सहज भक्ति या सहज–साधना का विशिष्ट महत्त्व है। निर्गुणी सन्तों ने निष्काम–भक्ति को सहज भक्ति के रुप में ग्रहण किया। श्रीमद्भागवत (अ–29/स्कंध3/श्लोक15–19) एवं गीता (अ.19/46) में निष्काम–भाव से साधना का उल्लेख है। निर्गुणियों की सहज–साधना इसी कोटि की है। वे विहित कर्म करते हुए अपने ब्रह्म में लीन रहते हैं, उनकी अपने 'राम' के प्रति

10:59
sant gyanswaroop ji...

गुरु के उपदेश से मेरे अन्तर्चक्षु खुलने से आत्मज्ञान हो सका और मैं समस्त सांसारिक बंधनों से मुक्त हो सका, मुझे आत्मा और परमात्मा का ऐक्य समझ में आया और मैं हंसज्ञानी की स्थिति को प्राप्त हो सका, मेरे लिए परमात्मा में विलीन होने अर्थात मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हुआ। संत कवि ज्ञानस्वरूप जी के इस संबंध में विचार हैं कि:

बेगमपुर चलिये परम पदार्थ पाय ‖ टेर ‖
बंक टकोर लगे सत सोहं रोम रोम गरणाय।
सुरता उलट चढ़ी असमाना पिया मिलन को धाय ‖ 1 ‖
———————————————————
थके वेद बुद्धि सुन स्वासा काल लगे नहीं ताय।
ज्ञानस्वरूप यह खेल निरखले फेर जन्म नहीं आय ‖ 4 ‖ [1]

ज्ञानस्वरूप जी अपनी मनोवृत्ति (आत्मा) को समस्त बन्धनों से मुक्त होकर बेगमपुर (परमधाम) चलने को कहते हैं जहां आत्मज्ञान और परम पदार्थ (परमानन्द) की प्राप्ति होती है, जहां भगवन्नाम की (टंकोर) चोट लगने और सोऽहम् की ध्वनि से पूरी काया कम्पायमान हो जाती है। जहां सुरति (ध्यान) मेरूदण्ड मार्ग से उलट ब्रह्मरंध्र (आसमान) में चढ़ परमात्मा से मिलने दौड़ती सी लगती है। संत रैदास ने भी बेगमपुर का विस्तार से चित्रण किया है, जो परमधाम या सहजावस्था का ही परिचायक है।

भारतीय जीवन शैली में वैदिक काल से ही धर्म और आध्यात्म का प्रमुख स्थान रहा है। संत ज्ञानस्वरूप ने कहा कि वेदादि ग्रंथों के अनुसार उस स्थिति में पहुंचने पर साधक को (काल) मृत्यु का कोई भय नहीं रहता हैं। ज्ञानस्वरूप जी कहते हैं कि ऐ साधक अपने गुरु प्रदत्त ज्ञान और आषिर्वाद से ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर आत्मलीन हो जाओ, ताकि तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं हो, तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति हो जावे।

कोई मेरे पिया को मिला दो, बन कर बीच दलाल ‖ टेर ‖
विरह अग्नि ने जिगर जलाया, विकल भई बेहाल ‖ 1 ‖
– –
नेह लग्यो सबुर किम आवे, दासी ने आय संभाल ‖ 4 ‖
ज्ञानस्वरूप पल युग सम बीते, बिन देखे प्रतिपाल ‖ 5 ‖ [2]

ज्ञानस्वरूप जी की मनोवृति भावविह्वल पुकार है कि कोई बिचौलिया (गुरु) बन कर मुझे परमेश्वर से मिला दें। यहां साधक का कलेजा विरहाग्नि से जल रहा है, वह बेहाल है, उसके नयन रातदिन परमात्मा के दर्शन को तरसते हैं। उसका निवेदन है कि प्रभु से मेरा प्रेम सम्बन्ध हो गया अब कैसे धीरज रखूं। मनोवृत्ति की पुकार है कि हे परमात्मा! मैं आपका दास हूँ, मुझे शरण में ले लो। मेरी व्याकुल आत्मा के

---

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 139
2 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 65

11:05
sant gyanswaroop ji...

श्रावण साधे सुखमणा, पीव बसे परदेश।
सूनी सेज लगे सूली सम, कर जाऊं जोगन का भेष ॥
सुरती उर बसी तुमारी रे ॥ [2]

यहाँ सुषुम्ना नाड़ी की साधना का उल्लेख है। सावण मास में सुहागन श्रृंगार करती है परन्तु उसका प्रिय (परमात्मा) परदेश (धरती से अन्य लोक) बसे हुए हैं। उनकी सूनी सेज सूली के समान लगती है, उसका मन करता है कि उनके वियोग में जोगन का वेश धारण कर लूं किन्तु करे कैसे, उनकी सूरत तो उसके हृदय में बसी हुई है। संत ज्ञानस्वरूप ने निर्गुण–उपासना के 'नाम–रस' की घोषणा पहले ही पद में इस प्रकार कर दी है–

श्याम मैं शरण तुमारी रे।
दीजो दरश दयाल, भक्त भय भंजन हारी रे।। टेर।।
चैत महीने चौकस पड़ी, पिया मिलन की आश।
जणजण सेती फिरें पूछती, कब भेटूं अविनाश।।
रसना राम पुकारी रे।। 1।। [3]

विहरिणी (आत्मा) परमात्मा के दशनों के लिए व्याकुल है, वह परमात्मा के शरणागत होकर राम–राम पुकार रही है कि हे भगवान आपसे मिलन कब होगा।
ज्येष्ठ माह में मन को जबरन वश में किया और अपार जप–तप किया। ज्येष्ठ माह प्राकृतिक रुप से बहुत 'ताप' युक्त होता है। अषाढ़ में निरन्तर वर्षा होती रहती है इसीलिए विरहिणी (आत्मा) के शब्दों में 'नीर नयनों में जारी रे।' कहा गया है [4]
संत ज्ञानस्वरूप ने लौकिक 'बारहमासा' की तर्ज पर भक्तिरस से सराबोर किया है जिसके कुछ भाग इस प्रकार हैं: है–

---

1 शुक्ल, आचार्य रामचंद्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 2013 पृ. 167
2 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त, पृ. 51–52
3 – – – वही – – – पृ. 51
4 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 51

आसौज आसण बांधके, नाभी नागन जीत।
बंक नाल होय चढ़ गया, छेद मेरू की भींत ॥
लगी त्रिवेनी तारी रे ॥ 7 ॥
– –
पौष प्रेम कर रिल मिले, श्रवण मनन कर अभ्यास।
ब्रह्म आत्म लख एक सम, मिट गया सकल अध्यास ॥
बूंद रली समंद मंझारी रे ॥ 10 ॥
– –
माह महेर किरतार की, सेज समाधि लाय।
अनहद आनंद कहा न जावे, ज्यूं गूंगो गुड़ खाय ॥
अखंड धुन चढ़ी खुमारी रे ॥ 11 ॥ [1]

उपर्युक्त कड़ियों की श्री सुआलाल जाटोलिया ने सारगर्भित टीका में लिखा है कि आसोज माह में योगासन के जरिये शरीर को स्ववश कर लेने के भाव से नाभि के मध्य बंकनाल में स्थित प्रधान नाड़ी, जिसमें चलने वाली सहज नाड़ी से मेरुदंड को छेद कर त्रिवेणी सुणुम्ना में मिलकर ब्रह्मरंध्र में शान्ति प्राप्त कर ली है।

पोष माह में परमात्मा का श्रवण, मनन करके प्रेम मगन होकर झिलमिल ज्योति में

11:04
sant gyanswaroop ji...

संत ज्ञानस्वरूप इस पद्यांश में कहते हैं कि समाधि स्थिति से ज्ञान ध्यान सहित ब्रह्मरंध्र में मृदंग मजीरा सितार सारंगी का मनमोहक अनाहदनाद होता है। वहाँ गगन मडंल में बिना मुख के गाना गाया जाता है व बिना कानों के सुनाई देता है और बिना आंखों के नृत्य दिखाई देता है। वहीं पर परमात्मा का निवास शांत अवस्था है जहां झिलमिल दिव्य ज्योति की झलक का निशान है।

> सुरत शब्द मिल खेलता सत गुरु दिया परवाना।
> आत्म ब्रह्मके संग रमें अगम म्हेल अस्थाना ॥ 1 ॥ [1]

> चेतन होय त्याग मोह आलस आसण दृढ़ जमावे।
> मुद्रा बंध त्रिसाध सुखमणा सोहं सुरत लगावे ॥ 1 ॥
> प्राण पवन को घेर शब्द से मेरु कोट ढहावे।
> तज सब फिकर सिखर गढ़ चढ़के शुन में सहर बसावे ॥ 2 ॥[2]

उपर्युक्त पद्यांश में 'सोहं सुरत लगावे' से तात्पर्य ध्यान लगाने से है तथा में 'सुरत श्वास थक' से तात्पर्य प्रेयसी (आत्मा) व प्रिय (परमात्मा) की सुरत (केलिक्रीड़ा) में थक कर असीम आनंदावस्था प्राप्ति से है। एक ही भजन में 'सुरत' शब्द का दो अर्थों में प्रयोग हुआ है। स्वानुभूति से कैवल्य प्राप्त संत द्वारा 'सुरति' व 'निरति' शब्दों का विविध अर्थों में प्रयोग हरिभक्ति का ही पुण्यफल है।

इस प्रकार संक्षेप में 'सुरता–निरता' अथवा 'सुरति–निरति' से आशय है 'सांसारिक विषयों से विराग–भाव (निरति या निवृति) होकर परमप्रेय (परमात्मा) में पूर्ण समर्पण भाव से आसक्ति (सुरति) पनपना।'

5-8-6 fojgkfXu I eiZk%

भक्ति के विविध भेद–प्रभेदों में प्रभु–मिलन की तीव्र उत्कण्ठा को 'विरह' के रुप में माना गया है। सभी संत कवियों ने प्रियतम परमात्मा को विभिन्न नामों से संबोधित करते हुए हृदय में विद्यमान 'विरहाग्नि' और 'आत्मसमर्पण' की अनूठी अभिव्यिक्ति की है। कहीं–कहीं तो भावातिरेक में भक्त कवियों ने विरह–भाव का अत्यंत आलंकारिक व चमत्कारी चित्रण किया है जैसे सूरदास जी का यह पद–

> मेरे नैना बिरह की बेल भई।
> सींचत नैननीर के, सजनी! मूल पतार गई।
> बिगसति लता सुभाय आपने छाया सघन भई।
> अब कैसे निरुवारौं, सजनी सब तन पसरि छई ॥ [3]

इसी प्रकार विभिन्न सगुण–निर्गुण कवियों ने ईश्वर से दीर्घावधि विरह के कारण जीव (आत्मा) रुपी विरहिणी की मनोदशा का हृदयस्पर्शी रुपांकन किया है।

---

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 133
2 – – – वही – – –, पृ. 111
3 शुक्ल, आचार्य रामचंद्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 2013 पृ. 167

11:03
sant gyanswaroop ji...

साधो भाई ऐसे भजन लिव लावे।
ममता मान बडाई मेटे एक अखण्ड हरि ध्यावे ॥ टेर ॥
कर बन्ध मूल उडियान जलंधर आसण अचल जमावे।
खेचरी भूचरी चाचरि उनमनि अगोचरि उलटावे ॥ 1 ॥
पांच पचीस पकड़ बस करते सुरत शब्द घर लावे।
त्रिवेनी के अगम महल चढ़ दरश देव का पावे ॥ 2 ॥[5]

1 वर्मा, डॉ. धीरेंद्र (संपा.) हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, ज्ञानमण्डल लिमि., बनारस, सं. 2015, पृ. 777
2 – – – वही – – – , पृ.स. 777
3 श्यामसुन्दरदास, संपा. कबीर ग्रन्थावली, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009 पृ. 170
4 वर्मा, डॉ. धीरेंद्र (संपा) हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, ज्ञानमण्डल लिमि., बनारस, सं. 2015, पृ. 778
5 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ.स. 07

इस भजनांश में विभिन्न तंत्र मार्गीय पारिभाषिक शब्दावली के साथ ही 'सुरत शब्द' का प्रयोग है। ईश्वर से अनुरक्ति, प्रियतम की तीव्र स्मृति इत्यादि सभी अर्थों में यहां 'सुरति' शब्द की व्यंजना दृष्टव्य है।

श्रावन साधे सुखमणा, पीव वसे परदेश।
सूनी सेज लगे सूली सम, कर आंक जोगन का भेष ॥
सुरती उर बसी तुमारी रे ॥ 5 ॥ टेर ॥[1]

यहाँ 'सुरती' शब्द का प्रयोग प्रियतम (परमात्मा) से अनुराग जन्य स्मृति के अर्थ में हुआ है। प्रिय हरि की स्मृति हृदय में बसी है।

जपो–जपो हरि को भव तारणा रे।
सुरत शब्द का बेला बांधे, इड़ा पिंगला सुखमण साधे।
सत सोहं का ध्यान सदा उर धारना रे ॥ 3 ॥[2]

इस भजन में 'सुरत शब्द' अर्थात् वेदादि श्रुति के वचन का आशय है। ईश्वर ने समय (बेला बांधकर) यह सूरत (शरीर) बनाया है, उसे कभी मत भूलना।

साधो भाई फिरे घट निर्गुन माला।
पांच पचीस तीन षट बसकर ग्रह मूल तज डाला।
सुमरन तार सुरत सत सांदे शब्द गूँजे बंकला ॥ 1 ॥[3]

यहां पांच तत्त्व, पचीस प्रकृति, तीन गुण, षट्चक्रादि का उल्लेख है। सुरत सत्य साधकर मेरुखंभ स्थित त्रिवेणी (तीन नाड़ियों का संगम) के आज्ञाचक्र में ईश्वरानुभूति की ओर संकेत है। संत ज्ञानस्वरूप और कहते हैं:

साधो भाई सो पद है निरवाणी।
सुरत निरत जहां समझ न पहुंचे हेरत रहा हेरानी
काया न माया कर्म नहिं करता नहिं भोक्ता नहीं दानी ॥ 1 ॥[4]

इस पद में निरवाणी (निर्वाणी– परमात्मा) के देश की ओर संकेत है जहाँ विषय–वासना नहीं होने से त्याग (विरक्ति–निरति) की जरुरत ही नहीं पड़ती है। कदाचित् इसीलिए उस परमपद के देश में सुरत–निरत आदि की समझ नहीं पहुंच पाई है।

बजे गगन में मृदंग मंजीरा सितार सारंगी सुहाना है।
बिन मुख गाय सुने बिन श्रुति बिन आखि निरत दिखाना है।[5]

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त स. 51–52
2 – – – वही – – –, पृ.स. 74
3 – – – वही – – –, पृ. 94
4 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 96
5 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 131

11:10
sant gyanswaroop ji...

धरमी जनम मरण भव भटके पापी उतरे पार ॥ टेर ॥
नदियां उलट सुकाया सागर पहाड़ डूबे जलधार।
x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x
लकड़ी पकड़ खाती को छोले मटिया घड़े कुम्हार।
बकरा कसाई को मार पकावे, जीमें संत सचियार ॥ 4 ॥
बिन मुख गाये पंगू चढ़े महलों अंधा करे दीदार।
ज्ञानस्वरूप सोधे संत काया पावे गुरु गम सार।[1]

इस भजन में बताई गई स्थितियां अस्वाभाविक है, अप्राकृतिक हैं जो वास्तविक जीवन में होती नहीं हैं जैसे धर्मात्मा तो जन्म–मरण के चक्कर में पड़े रहें और दुष्कर्मी का कल्याण हो जावे, नदियाँ उलटी धारा में बह कर समुद्र को सुखा दें, पर्वत जल में डूब जांय, लकड़ी बढ़ई को छीले, मिट्टी कुम्हार को घड़े, बकरा कसाई को पकावे और संतजन उसको खावे आदि। संतों का कहना है कि ऐसी विपरीत बातें व्यक्ति ज्ञान के अभाव में करते हैं। जब मन पर अज्ञान हावी होता है तो ऐसी बातें की जाती हैं। इनके अन्य भजनों में भी उलटबांसी शैली के फुटकल (प्रकीर्ण) अनुप्रयोग हैं कतिपय उदाहरण ये हैं:

सुरता उलट चढ़ी असमाना पिया मिलन को धाय
बंक टकोर लगे सत सोहं रोम रोम गरणाय।[2]

लगी तारी चढ़ी खुमारी फिर रही निगुर्णन माल रे
उलटी कला कमल में खेले दर्स्या देव निराला रे ॥[3]

निर्गुण संत–साहित्य परंपरा में 'उलटबानी' का अपना ही मौलिक महत्त्व है। पं. चन्द्रबली पाण्डेय ने 'संतों की उलटबानी' के प्रति लिखा है– "सिद्धांतरूप से 'उलटी' का अर्थ है हठयोग अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति का संचालन।"[4] संत कवि ज्ञानस्वरूप के काव्य में 'हठ योग' एवं 'तंत्र–मार्ग' की पारिभाषिक–कूट शब्दावली को विविध सहज उदाहरणों के माध्यम से समझाने का प्रयत्न किया गया है जिसे योग्य गुरु के मार्गदर्शन में सहज ही समझा जा सकता है।

7-8 irhd fo/kku%

संत साहित्य में प्रतीकों के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति की सुदीर्घ परम्परा रही है। सन्तों, ऋषि–मुनियों ने जिस अगम, अगोचर, निर्गुण ब्रह्म को अपनी वाणी का विषय बनाया व्यावहारिक रूप से उनके अनिर्वचनीय एवं अकथनीय स्वरूप को

---

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 140
2 – – – वही – – – पृ. 139
3 – – – वही – – – पृ. 137
4 कल्याण, संत–अंक, दसवां संस्करण, गीता प्रेस गोरखपुर, वि.सं. 2073 पृ.स. 160

11:09

sant gyanswaroop ji...

साथ काव्य–रचना करते तो और भी अधिक अलंकृत काव्य सृजन हो पाता परन्तु आपका अभीष्ट 'हरिरस' है अतः उन्होंने अलंकारादि के बजाय सादगीभरा साहित्य–सृजन ही किया।

7-6 dkO;nkk%

काव्य–सर्जक जिस रस को श्रावक, पाठक या दर्शक तक संप्रेषित करना चाहता है, उसमें किसी भी प्रकार की बाधा कमी/दोष के कारण वांछित संप्रेषण नहीं हो पाता है, इसे काव्य–दोष माना जाता है। संत कवि ज्ञानस्वरूप के काव्य–सर्जन का उद्देश्य 'सुकवि–कीर्ति दुराशा' नहीं, अपितु 'हरि–मिलन–आशा' ही था इसलिए उन्होंने संत कबीर की भाँति काव्य–रचना में छंदशास्त्र की गंभीर अनुपालना नहीं करके लोकप्रिय गेय भजनों–पदों की ओर ध्यान दिया। उनके काव्य में कतिपय काव्य–दोष पाया जाना स्वाभाविक है।

संत कवि ज्ञानस्वरूप के आध्यात्मिक चेतना–परक काव्य में शोध विषय की सीमा में रहते हुए कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

7-6-1 iq:fänkk%

कहीं–कहीं भावावेग के कारण संतकवि ने शब्दों का दोहराव करके भावुकता का परिचय दिया है जिससे पुनरुक्तिप्रकाश, वीप्सा, पुनरुक्तवदाभास आदि अलंकारों की सृष्टि हो पाई है यथा–

> गुरु बाण मार्या ज्ञान का, मेरे लागा उर बिच तीर।[1]
> भूल को सोध हेर षट दल को नाभि नाग जगाना है।[2]

उपर्युक्त प्रथम पंक्ति में 'बाण' और 'तीर' दोनों का प्रयोग होने से यहाँ पुनरुक्तिदोष है। इसी प्रकार 'शोध' व हेर का एक ही अर्थ है। 'गुरुदेव ने ज्ञान बताया मुझे कर कृपा महर अपनाया मुझे।'[3] में भी शब्द कृपा और महर समानार्थी हैं।

7-6-2 J¶rdVq nkk%

कविता में कठोर वर्ण यथा ट, ड आदि का बारंबार प्रयोग श्रुति–सुख में बाधक माना जाता है। भक्तिरस की रचनाओं में प्रायः तुकबंदी में 'ट, ड आदि व्यंजनों से परहेज रखा जाता है। संत कवि ज्ञानस्वरूप के एक भजन (क्रमांक 131) में गुटकी, खटकी,

---

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 10
2 – – – वही – – – पृ. 131
3 – – – वही – – – पृ. 174

इस पद में ज्ञान रुपी तोप, क्षमारुपी सांग (शस्त्र–विशेष) वैराग्य रुपी खंजर, सन्तोष रुपी शस्त्र आदि के द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोहादि शत्रुओं को मार डालने, भ्रम रुपी बाधा (पहाड़) को ध्वस्त करने एवं तृष्णा को पछाड़ हरि भजन द्वारा जन्म सुधारने का संकेत है। इस प्रकार भक्ति क्षेत्र भी किसी रण–क्षेत्र जैसा ही चुनौती पूर्ण है। ज्ञानस्वरूप जी अन्य भजनों में भी 'संत–सूरा' का उल्लेख किया यथाः

सन्त शूरा कोई ज्ञान ध्यान से जुड़ राखे घोड़े।
ज्ञानस्वरूप मन पकड़ जकड़ कर हरि भजन में जोड़े ॥ 4 ॥ [2]

गगन गुफा जहाँ अजब अटारी पहुँचे संत सूर सचियारी।
ज्ञानस्वरूप सत गुरु बलिहारी हंस परम पद पावेगा ॥ 4 ॥ [3]

संत ज्ञानस्वरूप ने हठयोग एवं तंत्र साधना संबंधित पारिभाषिक शब्दावली युक्त विभिन्न भजनों में साधक संत की साधना और रणक्षेत्र में एक शूरवीर की स्थितियों की अनूठी साम्यता का भी वर्णन किया है। कुछ उदाहरण अग्रांकित हैं:

प्यारी ये मन पवना को घेर पिछम घाटी चढ़ो।
प्यारी ये मेरुकोट को छेद ध्यान त्रिवेणी धरो।
– – – – – – – – – – – – – – – – – – –
प्यारी ये अखंड अमर घर पाय मुक्त मौजां करो।
प्यारी ये कह यूं ज्ञानस्वरूप योग मत सज खरो ॥ 4 ॥ [4]

यहाँ 'मेरुकोट' (मेरु खंभ स्थित तंत्रिका तंत्र) को छेदने (नियंत्रित करने) के लिए 'पिछम घाटी (पीठ) चढ़कर पवन (श्वसन प्रणाली) को नियन्त्रित कर इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना के संगम स्थल पर ध्यान केन्द्रित करने को कहा गया है जिससे परमात्मा के अखंड अमर तथा स्थाई निवास में जगह पाने से परम आनन्द की प्राप्ति होगी।

1 श्री ज्ञानभजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 301
2 – – – वही – – – , पृ. 108
3 – – – वही – – – , पृ. 192
4 श्री ज्ञानभजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 68

तन की तोप शब्द का गोला दम दारु भरवाना।
कोट अक्कीसुं ढ़ाय अखंडी तेज त्रिवेनी दरसाना ॥ [1]

शरीर को तोप में शब्दों का गोला जिसमें दम दारु इन्द्रियां मन को वश में करके शरीर रुपी किले के 21 इक्कीस तत्वों को ढहाकर, पाबन्द करके आज्ञाचक्र के वास तेज त्रिवेणी स्थान पर ध्यान करने से आत्मज्ञान हो सकता है।

संत ज्ञानस्वरूप ने अपने भजनों में 'संत' की 'सूरमा' से सार्थक समानता दर्शाई है। उन्होंने कहा है कि सांसारिक माया जाल में नाना प्रकार के दुश्मन हैं जो हरि–मिलन में बाधक हैं। भक्ति, सत्संग आदि उपयुक्त उपायों द्वारा जीव (आत्मा) इस सांसारिक माया–रिपुदल से संग्राम करते हुए रणक्षेत्र में इन्द्रियों को जीत कर हरि चरणों की प्राप्ति कर सकता है। इस प्रकार 'संत' सांसारिक योद्धओं से कम शूरवीर नहीं होते हैं।

5-8-9 Hkä dsdÙkZ;%

संत ज्ञानस्वरूप ने अपने काव्य में भक्त और परमात्मा के मध्य अत्यंत मधुर संबंधों को दृष्टिगत रखते हुए भक्त के कर्त्तव्यों का विवेचन किया है। इन्होंने एक आदर्श भक्त के

11:12
sant gyanswaroop ji...

मैं बालक तुम पिता हमारा, हर लो कर्म भर्म दुख सारी।
ज्ञानस्वरूप का कर निस्तारा, जनम मरन मय टारी।[1]

7-8-4 nkL;&irhd%

संत कवि ज्ञानस्वरूप ने अनेक भजनों में स्वयं को 'चाकर', 'दास', 'सेवक', 'चेरा', और 'बंदा' कहकर तो कहीं 'दासी', 'चरणों की दासी', और 'चेरी' कहते हुए भी दास्य–भाव का ही निरूपण किया है यथा–

नेह लाग्यो सबुर किम आवे, दासी ने आय संभाल॥4॥
ज्ञानस्वरूप पल युग सम बीते, बिन देखे प्रतिपाल॥5॥[2]

चातक के मन जल की आसा, अधर बूंद कर मेटो प्यासा
चरण कमल का कर मोय दासा सब व्यापक भया शरीर।
तुझ बिन और नजर न आवे॥5॥[3]

7-8-5 l[;&irhd%

सखा भाव के प्रतीकों की संख्या निर्गुण संतों ने अत्यल्प पंक्तियों में ही की है। संत ज्ञानस्वरूप ने 'मीत', 'पियारा' 'यारी', मैत्री, 'मीतपन' आदि शब्दों का उल्लेख किया है। श्री कृष्ण के मित्र उद्धव और गोपियों के संवाद पर केंद्रित अनेक भजनों में सखी भाव इंगित है।[4] उन्होंने आत्मा को 'हेली ए' (हे सखी) संबोधित कर सखी–भाव से आत्मा और परमात्मा मिलन की हार्दिक कामनाएं की हैं।[5]

7-8-6 fofo/k irhd%

संत कवि ज्ञानस्वरूप के काव्य में प्रेमी–प्रेमिका, दम्पति, विरहिणी, सखा एवं दास–दासी, बालक आदि के अतिरिक्त भी प्रकृति से अनेक प्रतीक गृहीत है यथा 'हंस' को जीवात्मा का प्रतीक माना गया है जैसे:

गंगा जमना वहे त्रिवीनी, न्हाया हंस सहल वहा कीनी
अधर डोर ऊपर एक छिटकी, बिन पग नचे पात्र जहां नटकी॥5॥[6]

7-8-7 myVcklh eaiz;q irhd%

उलटबांसी शैली के एक–एक भजन में अनेक प्रतीकों का अंतर्गुंफन है– एक नार (जीवात्मा) दो मुख (सुरति–निरता) पांच पति (पांच ज्ञानेंद्रियाँ) चार पग (चार अंतः करण) सुपुत्र (मन) कुटुम्ब (समस्त विषय–वासनाएं आदि)। पुनः लकड़ी (ज्ञानी,

---

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ 70
2 – – – वही – – – पृ. 65
3 – – – वही – – – पृ. 77
4 – – – वही – – – पृ. 16, 66, 146, 214 आदि
5 – – – वही – – – पृ. 127 से 129 तक
6 – – – वही – – – पृ. पृ. 163

11:11

sant gyanswaroop ji...

f=esIh%

पलटे पवन बंक गरणावे त्रिवणी चढ़ जाना है [9]

मन पवना उलटाय अफूटा, सुरत शब्द त्रिवेणी चढ़े [1]

---

1 हरीशकुमार डॉ.,– रामस्नेही संतकाव्यः परम्परा और मूल्यांकन, सींथल–खेड़ापा के संदर्भ में, साहित्यागार, जयपुर, 2007 पृ. 278

2 सतीश कुमार डॉ., रामस्नेही संतकाव्यः परम्परा और मूल्यांकन, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, जोधपुर, 2005 पृ 235

3 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 129

4 – – – वही – – – पृ. 37

5 – – – वही – – – पृ. 113

6 – – – वही – – – पृ. 131

7 – – – वही – – – पृ. 160

8 – – – वही – – – पृ 37

9 – – – वही – – – 131

"Wny%

भूल को सोध हेर षट दल को नाभि नाग जगाना है।[2]

I lrHqu%

हेलीए सप्त भौम सुध कीजिये चौदह लोक बिसार।[3]

v"Vdey%

हेलीए अष्टकमल दल ऊपरे सेज बिछी सुन मांय।[4]

uofuf/k%नहीं ऋद्धि सिद्धि नवनिधि चाहूं नहीं स्वर्गसुख निर्वान [5]

plj [kkuh%

चार खाण वाण सह यम का लंबा फेर फिराया [6]

किसके ऊपर स्वर्ग भूमिधर चतुर खांणि विस्तारा [7]

'kU; %

जीत तन तोड़ मोड़ फन्दा ध्यान महा सुन्न में धरना [8]

jkx NrhI %

बिन रवि रोशन होय गगन जहां, राग छतीसु सुने बहरा [9]

plkSjklh yk[k ;ksfu%

चक्र चलाय फन्द सब काटा मिटाय चौरासी फेरो [10]

7-8-2 nkEiR; &izse%

साधना–प्रेरित आध्यात्मिक प्रेम वर्णन में संत कवि ज्ञानस्वरूप के काव्य में आत्मा–परमात्मा के मिलन का भावमय एवं काल्पनिक विवरण संयोग श्रृंगार के रूप में और ईश–मिलन की तीव्र विरह–भावना का वर्णन वियोग श्रृंगार के रूप में चित्रित है। शाश्वत प्रेम की डोर से बंधी 'आत्मा' को विभिन्न संबोधनात्मक प्रतीक प्रदान किये गये हैं यथा हेली, प्यारी, सुहागण आदि। भारतीय संस्कृति में नारी के लिए 'सुहाग' ही सर्वोत्तम है।

इस प्रकार संत कवि ज्ञानस्वरूप ने लोक जीवन में नारी की कामना का सजीव चित्रांकन किया है।

---

1 श्री ज्ञान भजन प्रभाकर सटीक पूर्वोक्त पृ. 37

2 – – – वही – – – पृ. 131

3 – – – वही – – – पृ. 129

4 – – – वही – – – पृ. 129

5 – – – वही – – – पृ. 08

6 – – – वही – – – पृ. 05

7 – – – वही – – – पृ. 04

8 – – – वही – – – पृ. 14

9 – – – वही – – – पृ. 37

10 – – – वही – – – पृ. 06

हेजी जिके "ब्रह्मास्मि" धुन गाई हे माय। इण विधि० ॥५॥

"तत्त्वमसि" मद पायो अम्ब ने।

हेजी याको पीताँ ही मस्त बनाई हे माय। इण विधि० ॥६॥

छाय नशो बिच खुश भई अम्बे।

हेजी म्हाँने ब्रह्म तत्त्व दरसाई हे माय। इण विधि० ॥७॥

इच्छा रूप वृत्ति प्रकटी ब्रह्म में।

हेजी ईण ने जिण सूँ मैं मात बताई हे माय। इण विधि० ॥८॥

देवनाथ गुरु सुघड़ पुजारी।

हेजी जिण मान ने जुगति सुणाई हे माय। इण विधि० ॥९॥

॥ गान ॥

॥ राग सारङ्ग, तर्ज फागण के 'लूर' की। ताल कैरवा ॥

हाँरे आनन्द आयो रे, सतगुरु जी म्हारे रङ्ग(१) बरसायो रे; आनन्द आयो०॥टे॥

पाँच(२) पचीस(३) मिली सब नारी झौड़ा झौड़ लगायो रे।

ज्ञान को चङ्ग ध्यान सूँ खड़क्यो मङ्गल गायो रे। आनन्द आयो रे० ॥१॥

सूती नींद(४) जाग गई कईयक बंसी(५) शोर मचायो रे।

ऊर्द्ध बङ्क(६) की कुञ्ज गलिन में खेल रचायो रे। आनन्द आयो रे० ॥२॥

काम क्रोध मद लोभ मोह एनो सुणताँ ही उठ धायो रे० ॥ २ ॥

क्या जाणूँ उण कौन गलिन में मुखड़ो छिपायो रे। आनन्द आयो रे० ॥३॥

देवनाथ गुरु कृपा करी जद ऐसो फाग खेलायो रे।

मान ब्रह्माण्ड चौक में बैठो गयो न आयो रे। आनन्द आयो रे० ॥ ४ ॥

॥ गान ॥

॥ राग सारङ्ग, तर्ज फागण के 'लूर' की। ताल कैरवा ॥

अरे हाँरे दूजो नाँई रे, आतम है जग में एक गुसाँई रे; दूजो नाँई ॥ टेर॥

पढ़ पढ़ भया हैरान बात सब एकहि एक बताई रे।

१—ज्ञानोपदेश, २—इन्द्रियाँ, ३—प्रकृतियाँ, ४—मोह-निद्रा, ५—शब्द, ६—ब्रह्माकार वृत्ति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानसिंह जी का प्रश्न

म्हारा नाथजी आवो, शंका मिटावो, अरज सुणो दीनानाथ ॥ टेर ॥

राजयोग तो सगलो कह्यो, हठयोग ना गाय।

राजयोग ही जो जग में होतो, तो क्यों हठयोग बताय जी। म्हारा नाथ० ॥१॥

गुरु वचन

नृप ठीक सुनाई, राजी मन माँई, दुःख मोहे कछु नाँय ॥ टेर ॥

है हठयोग करणी जबराई, भूठ नहीं इण माँय।

इण हठयोग ने उलटो ले लिये, जिण सूँ सब दुःख पाय रे। नृप ठीक० ॥२॥

जबरा घणा ए विषय जगत रा, सहजे रुकसी नाँय।

पान अपान एक कर सन्धि, खैंच ठिकाणे लाय रे। नृप ठीक० ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ मान वचन ॥

क्या मैं इड़ा पिंगला साधूँ, क्या लेऊँ श्वास रुकाय।

रेचक पूरक कर लूँ कुम्भक, लेऊँ श्वास चढाय जी। म्हारा नाथ जी० ॥ ४ ॥

॥ गुरु वचन ॥

इड़ा पिंगला श्वासा ने रोक्याँ, मन तो स्थिर हो जाय।

रेचक पूरक कुम्भक कीयाँ, मन स्थिर होसी नाँय रे। नृप ठीक० ॥ ५ ॥

पान अपान की जानो सन्धि, कर ब्रह्म जीव ने एक।

सहजे सूर अभय घर ऊगे, टल जावे लिखिया लेख रे। नृप ठीक० ॥ ६ ॥

॥ मान वचन ॥

क्या मैं मूल अडाण को बान्धूँ, नाभि कमल उलटाय।

कर कुम्भक बैराट चढाऊँ, दशवें द्वार पै जाय जी। म्हारा नाथजी० ॥ ७ ॥

॥ गुरु वचन ॥

मूल अडाण सूँ कुछ नहीं होसी, कारज सरसी नाँय।

द्वादश सूँ दशवें पर जावो, पण मनतो नाँय रुकाय रे। नृप ठीक० ॥ ८ ॥

मूल अडाण बान्धो निश्चय रो, आतम है सब माँय।

नाभी विवेक री जोयलो रे, तो सायब मिल जाय रे। नृप ठीक० ॥ ९ ॥

जग सूँ उलट उलटावो दसाँ ने, मुख्य तूँ ही है द्वार।

सूँ दश में स्थिर होय ने रहवो, तो सहजे उतरसो पार रे। नृप ठीक० ॥ १० ॥

मान वचन

कुण्डली छेदन काहे को करणो, क्यों मुद्रा को कीन।

सो यह सत्य बताओ स्वामी, तुम सर्वज्ञ प्रवीन जी। म्हारा नाथ जी ॥ १० ॥

। गुरु वचन

गाँठ अविद्या री तुम छेदो, नागिनी बुद्धि जगाय।

ब्रह्म श्वासा ने ब्रह्म स्थित कर ले, फिर तूँ आवे नाँय रे। नृप ठीक० ॥ ११ ॥

खेचरी मुद्रा ज्ञान सूँ साधो, ब्रह्मानन्द मद पाय।

ओ मद तो तन छूटयों सूँ मिटसी, ओ मद मिटसी नाँय रे। नृप ठीक० ॥ १२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मान वचन

नेती धोती सब कोई साधे, अन्तःकरण शुद्ध होय।

सो हम स्वामी कैसे साधें, सही बताओ मोय जी। म्हारा नाथ जी० ॥ १३ ॥

गुरु वचन

प्राण जाय तो जाइये सरे सिंह घास नहीं खाय; हां हां प्राण जाय तो० ।
मैं सुधरयो इण भेष सूँ सरे सो अब खण्डू नांय; हां हां मैं सुधरयो० ।
मान कहे हो नाथ जी सरे, रहूँ नाथ शरणाय हो । गुरुदेव गसांई० ॥४॥

॥ गान ॥

॥ तर्ज "रंजे" के गीतों की । ताल केरवा ॥

हे म्हारी सुघड़ कलारी(१) प्याला(२) मस्तांने(३) भर पाय दे ।
प्याला मस्तांने भर पाय दे; प हां हां हां हां । हे म्हारी० ॥ टेर ॥
इण मन रा महुआ करो सरे ज्ञान लेवो गुड़ गाल; हां हां इण मन रा० ।
तनड़े रो मटको करो सरे ब्रह्म अगन को जाल; हां हां तनड़े रो० ।
बंकनाल(४) से उलट के सरे या विधि मद को निकाल; हां हां बंकनाल० ।
प्रेम पियूष हम मद पिये सरे, हैं मस्तों के लाल । हे म्हारी सुघड़० ॥१॥
इण प्याले में छक रया सरे कोईयक महान सुजान; हाँ हाँ इण प्याले ०में ।
यह प्याला जिन जिन पिया सरे पाया पद निर्वान; हाँ हाँ यह प्याला० ।
ध्रु प्रह्लाद शुकदेव जी सरे गोरख कबीर गुणवान; हाँ हाँ ध्रु प्रह्लाद० ।
पी प्याला खुद मस्ती का सरे, लिया ब्रह्म रस ज्ञान । हे म्हारी सुघड़ ॥२॥
आवागमन में भटकतां सरे प्याला पिया अनेक; हाँ हाँ आवागमन में० ।
अब हम सबको त्याग के सरे पिया जो प्याला एक; हाँ हाँ अब हम सबको० ।
निज स्वरूप का मद पिये सरे, गह सतगुरु की टेक; हाँ हाँ निज स्वरूप का० ।
कर विचार उर में लख्यो स मैं, आप स्वरूप अलेख । हे म्हारी सुघड़० ॥३॥
अगम निगम की बाट से स हम जाने चाहत हैं दूर; हाँ हाँ अगम निगम० ।
निज स्वरूप को देख के सरे करें सबन को चूर; हाँ हाँ निज स्वरूप को० ।
ब्रह्म रतन को छोड़ के स हम क्यों गहें कंकर धूर; हाँ हाँ ब्रह्म रतन को० ।
निज मद में अलमस्त हैं स हम, करें काल का चूर । हे म्हारी सुघड़० ॥४॥
देवनाथ को कर गह्यो स हम सदा रहें भरपूर; हाँ हाँ देवनाथ को०

१—वृत्ति, २—आत्म-ज्ञान, ३—जिज्ञासु जीवात्मा, ४—अविद्या ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिमिर मिट्यो अब सुख भयो स उर ऊगो ज्ञान को सूर; हाँ हाँ तिमिर० ।
जीवन्मुक्ति पायली स अब मुक्ति रहत मजूर; हाँ हाँ जीवन मुक्ति० ।
मान महान को रूप है स यह, सब जग मेरो नूर । हे म्हारी सुघड़० ॥५॥

॥ गान ॥

॥ राग सारंग-मलार, तर्ज वाणी की । ताल दीपचन्दी ॥

मान वचन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवनाथ गुरु गोद उठायो । इण नेणाँ दीदार दिखायो ।
मान भयो आनन्द आप में आप समायो रे । अब मेरी मानी० ॥ ५ ॥

॥ गान ॥

॥ तर्ज "ब्रज के रसिया" की । ताल कैरवा ॥

ब्रज में खेल रह्यो गोपाल, ग्वाल संग मंगल गावे रे। टेर ॥
पांच पचीस ग्वाल संग मांई रे । गो अतीत गोपाल गोसांई रे ।
पाँच पचीस ग्वाल संग माँई । गो अतीत गोपाल गोसाँई ।
विश्व रूपी यह ब्रज इसी में बैन बजावे रे । ब्रज में खेल० ॥ १ ॥
नाड़ी नव ने बहत्तर कोठा रे । बंक नाल यह सुन्दर ओटा रे ।
नाड़ी नव ने बहत्तर कोठा । बंक नाल यह सुन्दर ओटा ।
गुप्त नाड़ी की कुंज गलिन में खेल खेलावे रे । ब्रज में खेल० ॥ २ ॥
वृत्ति राधे बसत उर माँई रे । बार बार कर नाच नचाई रे ।
वृत्ति राधे बसत उर माँई । बार बार कर नाच नचाई ।
नाच रह्यो गोपाल प्रेम सूँ तारी बजावे रे । ब्रज में खेल० ॥ ३ ॥
देवनाथ ऐसो कृष्ण बतायो रे । नित्य है अमर गयो नहीं आयो रे ।
देवनाथ ऐसो कृष्ण बतायो । नित अमर गयो नहीं आयो ।
मान कृष्ण कहाँ ढूँढण जावें घरहि मिलावे रे । ब्रज में खेल० ॥ ४ ॥

॥ गान ॥

॥ तर्ज "ब्रज के रसिये" की । ताल कैरवा ॥

नरेशू सब में सुन्दर श्याम, बात यह मानी किम जावे ॥ टेर ॥
मित्र क्यों भूल पड़्यो अज्ञान, अज्ञानी जान छताँ होवे ॥ टेर ॥
तुम कहते हो सब में व्यापक कैसे चित आवे ।
पृथक पृथक यह दीखत है जग न्यारो दरसावे । नरेशू सब में० ॥ १ ॥
कर विचार तू अपने मन में कौन हँसे रोवे ।
पृथक पृथक यह जिनको दीखे मोह निशा सोवे । मित्र क्यो० ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विरह व्यथा तें जोग परे कहाँ सो तू उद्धव समझाव मोई रे।
विरह की लाग परी तन में अब और की लाग लगे न कोई रे।
तन में मन में घर में वन में मोय श्याम बिना न मिले जो दुई रे।
देशन में परदेशन में एक श्याम की मूरत को मैं जोई रे।
हुतो अनाथ सनाथ कियो गुरु देवहिनाथ दुविधा जो खोई रे।
मान कहे गुरु चरण में गोपी हो सहज समाधि में जाय सोई रे॥

॥ सवैया ॥

कौन जो योग समाधि करे यहाँ कौन जो स्वास रूँधे दुःख पावे।
कौन जो छेदे त्रिकुटी को उद्धव कौन उलट मेरे बंक को जावे।
हाथ ते मक्खन दी मिश्री सो वह ब्रह्म तेरो कद मक्खन खावे।
घर घर नाच नचायो हमें संग ब्रह्म कहो किम नाच नचावे।
बंशी बजाई और गाई सबी संग कहो तेरो ब्रह्म कवे संग गावे।
जो उद्धव तू ब्रह्म कहे फिर क्या उनमें नहिं ब्रह्म रहावे।
जो तुम में हम में सब ब्रह्म है सो तू हमें अब क्या समझावे।
ब्रह्म ही ब्रह्म को खेल करे सब ब्रह्म हरि हम ही ब्रह्म कहावे।
ब्रह्म से ब्रह्म की प्रीत किसी ऊधो यही मेरे मन हाँसी जो आवे।
जो हम में तुम में सब ब्रह्म है तो किम कृष्ण को विरह सतावे।
ब्रह्म ते ब्रह्म को यारी करी फिर एक हि एक जो ब्रह्म समावे।
भान कहे यही बात हँसी मोये है तो दोय किम एक बतावे॥

॥ गान ॥

॥ राग जोगिया । ताल दीपचन्दी ॥

ऊधो मैं जोगन वा दिन की।
जब ते श्याम त्याग चले मोहि, व्याकुल हूँ ता दिन की। ऊधो० ॥ टेर ॥
श्याम वियोग सह्यो नहीं जावे, कल न पड़त एक छिन की।
का से कहूँ अब कौन लखे यह, मैं जानू मेरे मन की। ऊधो० ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस मंत्रयोग का सम्पूर्ण क्रम बड़े सुन्दर उक्ति में कहा गया है :

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोहं सोहं अजपा गाई।
आसण दिढ़ करि धरो धियानं, अहनिसि सुमरौ ब्रह्मगियानं।
जाग्रत न्यंद्रा सुलप अहरा, कामक्रोध अहंकार निवारं।
नासा अग्र निजु ज्यौ बाई, इड़ा प्युंगुला मधि समाई।

[1] योग का विषय परिचय, म०म०प०गोपीनाथ कविराज, कल्याण, योगांक, पृ० 51।

छसै सहंस इकीसों जाप, अनहद उपजे आपहिं आपि।
बंक नालि मैं ऊगै सूर, रोम रोम धुनि बाजै तूर।
उलटं कमल सहंसदल बास, भ्रमर गुफा महि जोति प्रकास।
सुणि मथुरा सिव गोरष कहै, परम तत ते साधू लहै।

हठयोग की प्रधानता नाथपंथ में समानरूप से है। यही नहीं, नाथाचार्यो ने सर्वप्रथम हठयोग मे निष्णत् होकर संसार में उसका व्यापक प्रचार किया, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि हठयोग का प्रचलन उनसे पूर्व भी था।

पश्चिम पथ (सुषुम्ना द्वार) में गमन करने पर वायु योग की प्रतीति होती है, यह सूर्य चन्द्र एकीकरण पर सम्भव होता है। हकार से सूर्य तथा ठकार से चन्द्र कहा जाता है, यही हठयोग सर्वदोषसमुद्‌भूत जाड्य को ग्रसित करता है।[1]

हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है :

"केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते"[2]

अतएव हठयोग की चरम परिणति राजयोग है। इसकी नियमित साधना से राजयोग का सिद्धलाभ, साधक को होता है। राजयोग में योगारूढ़ होना ही काल के राज्य से मुक्त होना है। स्वात्माराम योगी ने हठयोग प्रदीपिका में समाधि, उन्मनी, लय, परमपद, अद्‌वैत, निरालम्ब, सहज, तुरीय को राज–योग का ह ीपर्याय कहा है। कुम्भक द्वार प्राण रूद्ध होता है और चित्त निरलम्ब अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार हठविद्या का मुख्य फल राजयोग है।

[1] प्रतीतिर्वायुयोगाच्च जायते पश्चिमे पथि।
[2] ह०यो०प्र०1/2

19:45

[redacted]

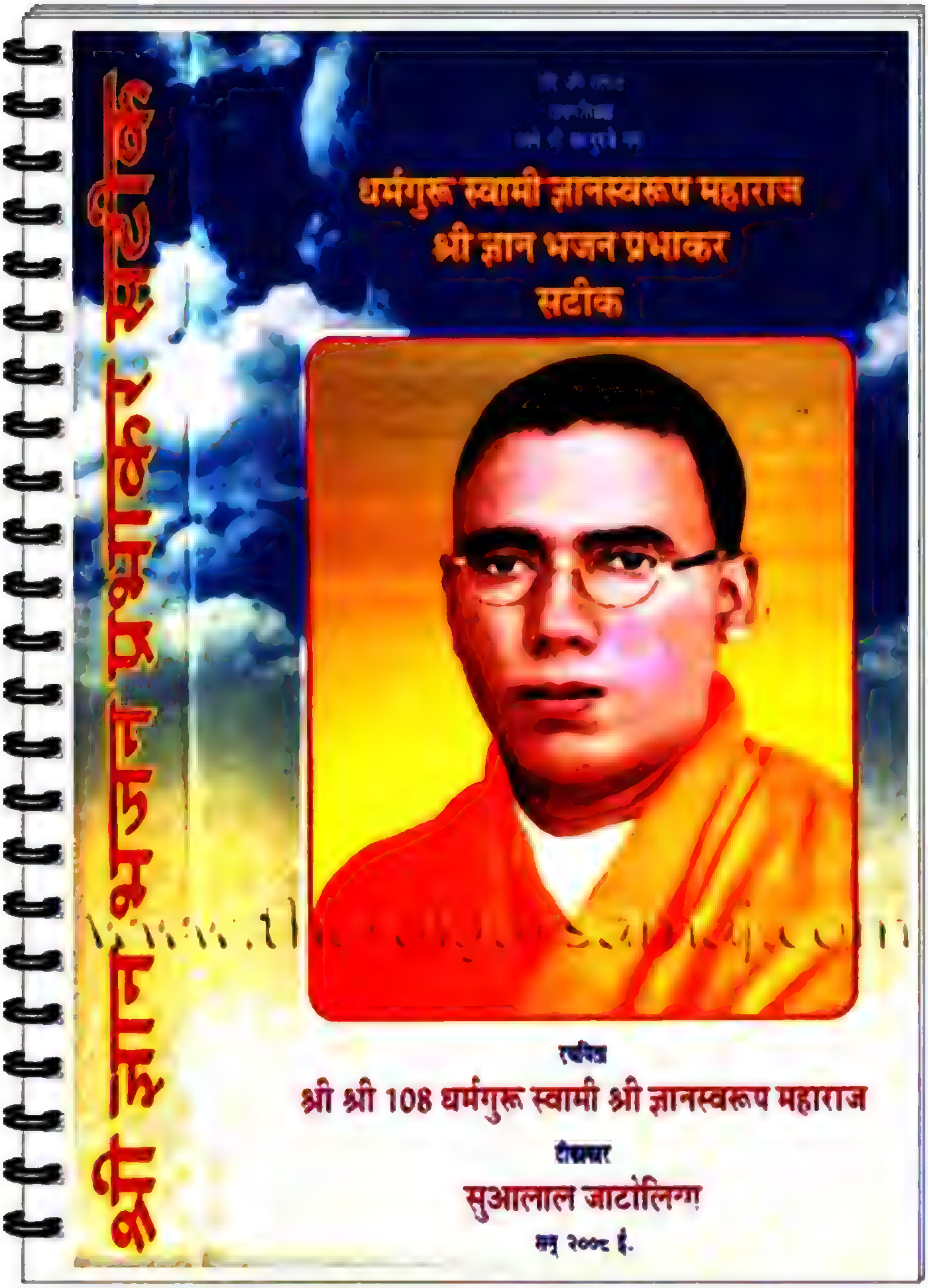

भूमिका

11:18
ARCHIVE

श्री विलक्षण अवधूत

(शंकरानन्द)

परम हंस श्री स्वामी अमृतनाथजी

फतहपुर (जयपुर)

जीवन चरित्र और उपदेश

Acc. No. 25118

युक्ताहार विहार को [illegible] पर अधिकार

श्वास माहि तन्मय रहे "सहज योग" का [illegible]

प्रकाशक

श्री पीर [महन्त] ज्योतिनाथजी

फतहपुर (जयपुर)

प्रथमबार १०००	राम नवमी सं० २००६	मूल्य ३॥)

अजमेरा प्रिंटिंग वर्क्स जयपुर।

(2 of 530)

Favorite Share Flag

Shri Vilakshna Avadhoot

by Swami, Amratnath

Publication date 1949

गई है। और लाल भूरे द्रव्य से बनी हुई सुषुम्णा और वज्रा नाड़ियों के रंग लाल तथा दाड़िम् के रंग जैसा कहा है, उसका कारण उन द्रव्यों में रक्त वाहिनियां फैली हैं। अतः उनके रंगों की छाया से ही वह लाल रंग वाली दीखती है।

सुषुम्णा का अगला (पूर्व) और पिछला (पश्चिम) भाग थोड़ा चीरा हुआ होता है और उन दोनों बाजुओं की फाड़ें मध्य बिन्दु के आगे थोड़ी दूर रुकती है। इस पर से स्पष्ट समझ में आता है कि रज्जु के मध्य बिन्दु के आगे का भाग अति सूक्ष्म नलिका जैसा होता है। उस सूक्ष्म नलिका रूप पोल को ही आर्यग्रंथों में ब्रह्मनाड़ी कहा है। मूलाधार चक्र में रही हुई कुंडलिनी उस पोल जैसे ब्रह्मरंध्र में चली जाती है। उस संबंध में कहा है कि यह पोलापन जो चित्रिणी नाड़ी के अंदर है और जो छः चक्रों के बीच में से ब्रह्मरंध्र तक जाता है, उस ब्रह्मरंध्र तक जाने के मार्गरूप पोलेपन को ब्रह्मनाड़ी कहते हैं। जिस तरह माला के मनके एक डोरी में पिरोए होते हैं, उसी तरह उस नाड़ी में सब चक्र पिरोये हुए हैं, इतना ही नहीं, लेकिन छः चक्रों में पोल में उसका तेज व्याप रहा है। ब्रह्मनाड़ी यानी ब्रह्मरंध्र तक अथवा ब्रह्मस्वरूप जहां स्थित है ऐसे सहस्रार चक्र तक पहुंचाने वाली नाड़ी के बारे में षट्चक्र निरूपण में कहा है कि, **तन्मध्ये ब्रह्मनाडी हरमुख कुहरादादिदेवान्त संस्था** उसी (चित्रिणी नाड़ी) के मध्य में मूलाधार चक्र में रहे हुए स्वयं भुलिंग से सहस्रदल कमल में रहते हुए परबिन्दु (परब्रह्म) तक का छिद्र ब्रह्मनाड़ी है। इस तरह त्रितयगुणरूपी सुषुम्णा के मध्य का पोला छिद्र ही ब्रह्मनाड़ी कही जाती है। यह टीकाकार अधिक स्पष्ट करता है। *(नड्गताविति धातोर्नड्यते गम्यतेऽनयापदव्या इति नाडी पदवी, ब्रह्मणो नाडीति व्युत्पत्या ब्रह्मनाडी ब्रह्मपदवी शुद्धब्रह्मरूपायाः कुण्डलिन्याः परमशिवसन्निधिगमनपथरूप चित्रिणीनाड्यन्तर्गत शून्यभागः 2, (षट्चक्र. श्लोक. 2 टीका)* इस तरह मेरुदंड में रही हुई तिकोणाकार दृश्यनाड़ी को स्थूलदृष्टि से सुषुम्णा ऐसा सामान्य नाम दिया गया है। उसके ही गुण-भेद के कारण चित्रिणी वज्रा और सुषम्णा ऐसे तीन नाम पड़े हैं और उसके अंदर जो सूक्ष्म खालीपन है उसे ब्रह्मनाड़ी कहते हैं।

सुषुम्णा के कुल मिलाकर अवयव इस प्रकार होते हैं :– (1) सूक्ष्म नलिका अथवा ब्रह्मनाड़ी, जिसे कि सामान्यतः सुषुम्णा का मार्ग कह सकते हैं यह, (2) अगली और पिछली फाड से होने वाले उत्तर और दक्षिण गोलार्ध, (3) मेरु के मनकों में से निकलने वाले तंतुओं के अगले और पिछले मूल, (4) तंतुओं के मूल और हर एक गोलार्ध के अर्धचन्द्र जैसे भाग की सींगों जैसी नोकों का प्रदेश जो कि वज्रा और सुषुम्णा हैं, सो दो नाड़ियां, (5) दो गोलार्धों को जोड़ने वाले बारीक तंतुएँ और (6) हर एक तंतु के दो मूल मेरु के मनकों के बीच की जगहों में से निकल कर ग्रंथ रूप से बन कर अपनी शाखाओं को फैलाते हैं वह प्रदेश।

॥ गान ॥

राग बरवा । ताल कैरवा ॥

मन या विधि पूजा कीजे । ऐसो देव अखंडन कहिये,
ताही न दूर भजीजे ॥ टेर ॥

ओंकार को रूप गजानन ऋद्धसिद्ध वहां रही जे । अनघड़ देव आतम एक कहिये ता दरशन सुख लीजे ॥ १ ॥ यह जग सबही की भरम को मारग अन्धे अन्धन पतीजे । भरम कूप विच गिरत सकल यह आतम नहीं ओल खीजे ॥ २ ॥ श्रुति स्मृति सब ही कह नित याको झूठ न कहीजे । छान्द योग उपनिषद् देखो कर विश्वास पढ़ लीजे ॥ ३ ॥ देवनाथ गुरु समरथ कहियें समरथ होय समझी जे । मानसिंह अब पाय अभय पद भरम अलग कर दीजे ॥ ४ ॥

॥ सवैया ॥

ध्यावत ध्यावत पावत पावत, पाय लियो जब पन्थ मिटयो है ।
आवत आवत आय गयो जब, दूजो कय्हो जाको तत्त्व घट्यो है ।
देव अखण्ड मिले हमको, जो न्यारो कय्हो जाते जीव फट्यो है ।
जीव गयो पुनि ब्रह्म भयो, नृप मान जो आपनो रङ्ग चढ्यो है ॥

॥ सवैया ॥

कहते सबी गिरजा सुत है, याको कोई अर्थ करो अब भाई ।
ब्रह्म ते जीव कह्यो इण बुद्धि, जीव भयो तब सुत है सदाई ।
जीवते ब्रह्म भयो जद पाछो, सुत पितु भयो ऐसो आनन्द आई ।
मात हती जाको आन भयो पति, मान कहे कछु धोखा नाई ।

॥ गान ॥

राग आसावरी । ताल दीपचंदी ॥

साधो भाई मैं ऐसा देव विचारा । गणपति नाथ गुणों का आगर,
सोही निज प्राण हमारा ॥ टेर ॥

आदि अन्त मध्य तीन काल में, रेवे एक रस धारा । जन्म ने मरण होय नहीं जिनको सोई निज नैन निहारा ॥ १ ॥ मूल चक्र नहीं मैं तो छेद्या, ना कोई श्वासा ने मारया। रेचक पूरक कुम्भक नहीं कीना, मिल गया प्राण आधारा ॥ २ ॥ शब्द न रट्या विवेक किया जब, सोहं शब्द उचारा । खोजत खोजत खुदही मिलगया-गम गया खोजन हारा ॥ ३ ॥ मैं हूं गणपति गणारो राजा, मैं ही पुजावण हारा । मानसिंह नहीं देव पुजारी, कहत पाखण्डी न्यारा न्यारा ॥ ४ ॥

॥ सवैया ॥

जोगी बने जो विजोगी हुए हो हम तो विजोगी भये नही सपने ।
रोगी होय वो पिये दवाई गुरु देव हू नाथ ने काटी कल्पने ।
मान तो जोगी स्वतः ही हने जोग आध्यात्मिक पी लिये दोने ।
मान को मान तो दूर गयो अब जागे तो कौन और को फिर सोने ॥

॥ गान ॥

राग आसा । ताल दीपचन्दी ॥

साधो मैं तो ऐसा जोग कमाया । जोग न करूँ जुगत सूं जीऊँ, नाहि गया नहीं आया ॥ टेर ॥

रेचक पूरक कुम्भक नही कीना, ना कोई श्वास हिलाया । नही मैं प्राण पश्चिम दिश घेरया, बक नाल नही धाया ॥ १ ॥ ओहं सोऽहं शब्द नही सिमरया, ना कोई श्वास उठाया । मेरी तार लगी अब मुझ मे, यो निश्चय कर पाया ॥ २ ॥ जोग में भोग और भोग माहि जोगी, ऐसा आनन्द मोय आया । गेरा स्वरूप मोहि बिच जाण्या, नही कोई स्वांग सजाया ॥ ३ ॥ देवनाथ गुरु मिल्या दया कर, जद सहज योग सिखाया । सहज समाधि मान यो लागी, नहीं कोई गगन चढाया ॥ ४ ॥

॥ गान ॥

राग आसा । ताल दीपचन्दी ॥

साधो मैं तो ऐसी लगाई समाधि । चेतन हूँ और रहत समाधि मे, नहीं कोई वाद बिवादी ॥ टेर ॥

मुझ में जगत, जगत में मैं हूं रहता आदि अनादि । त्यागे समझ श्वास कौन रोके, कौन यह करे उपाधि ॥ १ ॥ प्रीतम प्यारी त्याग ल्याते, एक करी वांरी सादी । प्यारी प्रीतम एक मिल्या अब, नहीं होवे नाशादी ॥ २ ॥ भला जीव बैठा प्राण हिलावे, ज्यांरे मन मे आग नही दाजी । मैं तो मेरा मुझ मे ही समझया, अब नही राजी नाराजी ॥ ३ ॥ देवनाथ गुरु हाथ पकड के, देव मिलायो अनादि । मानसिंह मेरा मैं ही हूँ, स्थिर भया एकण थानी ॥ ४ ॥

॥ कवित्त ॥

घर हु न त्यागे हम गये नही बन में कहीं, लीनो न सन्य ... स्व ही रगायो है । त्याग हू को त्याग जान बैठ गयो घर में मान, मान को मारयो तो महान्

वन आयो है। मान को खोय मान पावे तू जब ही मान, मान को छोड़ निर्मान ही कहायो है । कहे यूं मान जब मान को मेट दियो, मान को मार्यो तो महान् आप ही जो पायो है ॥

॥ गान ॥

तर्ज वाणी । ताल कैरवा ॥

साधो मैं तो इण विध सिमरण कीना ॥ टेर ॥

होठ न हिले कंठ नहीं थाके सो जुगती कर लीना । स्वासा नाँय जरा दुःख पावे विन मुख अमृत पीना ॥ १ ॥ माला न फेरी घस्या नहीं मण का कष्ट हाथ नहीं दीना । पकड़ सुरत निज माँहे रोक ली सब ही भये मत हीना ॥ २ ॥ मौन न लियो गुफा में न बैठ्यो नहीं उपवास जो कीना । मूल कमल से दशवें तक यूं बाजी है बेहद बीणा ॥ ३ ॥ भगवाँ भेष किया नहीं तन पर स्वांग सजाई न कीना । नारी न तजी भग्या न जंगल में घर में ही घर हेर लीना ॥ ४ ॥ परा पश्यन्ति मध्यमा वैखरी च्यार एक सी कीना । इन च्यारों का द्रष्टा हूं यें दुविधा नेक रहीना ॥ ५ ॥ देवनाथ गुरु मिले ब्रह्मनिष्ठा देव स्वरूप कर दीना । यह सहज मानसिंह समाधि कीनी सो आतम चीना ॥ ६ ॥

॥ गाना ॥

राग काफी । ताल दीपचंदी ॥

हुवे कैसे वीर मरदाने; भारत बिच सन्त सयाने ॥ टेर ॥

कीनो राज विचार कियो जिन, पढ़ पढ़ वेद पुराणे । ज्ञान विचार धार उर माँहि, दुःख संकट नहीं आने ॥ १ ॥ गरते राज भोग सब करते, छोड़त नहीं ब्रह्मज्ञाने । मरणों याद रहतो अन्तस में, धर्म में पीठ ना दिखाने ॥ २ ॥ रामचंद्र से नीतिवान कुण,जिन ही वसिष्ठ गुरु माने । षट् प्रकरण में ज्ञान जो भाख्यो, कहां वन गमन कराने ॥ ३ ॥ त्याग ही त्याग कहे कह सब भागत, यह मति मंद अज्ञाने । राम वसिष्ट सम और कुण ज्ञानी, उण क्यों नहीं त्याग बखाने ॥ ४ ॥ गीता कही कृष्ण सबी पण, त्याग कहीं नहीं आने । जोगी कर अर्जुन ने काढ़े तो को महाभारत रचाने ॥ ५ ॥ तज हथियार अर्जुन करे भगवाँ, तो सभी काम बिगड़ाने । कहो यह त्याग काम कहा आवे, ऐसो कुण जुल्म कमाने ॥ ६ ॥ जो संन्यास देत अर्जुन को, क्यों न दियो भगवाने जो आनन्द होय संन्यस्त में, तो क्यों नहीं कृष्ण उठाने ॥ ७ ॥ यज्ञ करम जो किये होय कृष्ण, अर्जुन क्यों न कराने । यज्ञ-हवन जो करत वो वा पड़ी, तो शत्रु विजय पद पाने ॥ ८ ॥ जो कुछ करे सो ही करम कहीजे, सहज होत

नही रे जोगिया, क्या है कछु न बताय। नामी अनामी क्या कहे रे जोगिया, बचन विलास थक जाय ॥५ ॥ देवनाथ गरु सहज मिल्या रे जोगिया, सहज में सहज समाय। मान जोग और अजोग नही रे जोगिया, वो घर पीव मिलाय ॥६ ॥

॥ गान ॥

राग सोरठ – गिरनारी। ताल कैरवा ॥

आनन्द निज रूप रे जोगिया, भरम जोग ने खोय ॥ टेर ॥
रेचक पूरक कुभक करे रे जोगिया, इणमे दुविधा जोय। शुद्ध समाधि होय रही रे जोगिया, दुविधा मे मुक्ति न होय ॥ १ ॥ मूल मह्ल कुण बन्ध करे रे जोगिया, नाभ कमल कुण सोय। उल्टी बक कौण चडे रे जोगिया, कौण मेरु ने पोय ॥२ ॥ सबही तो खुलिया पड्या रे जोगिया, श्वास हिले नही कोय। परख लियो निज पीवने रे जोगिया, यूँसन्मुख दरसण होय ॥३ ॥देवनाथ गुरु देखिया रे जोगिया, और नही दीसे मोय। मानसिह अब एक मिल्या रे जोगिया, दूजो किण बिधि होय ॥४ ॥

॥ गान ॥

राग सारग। ताल कैरवा ॥

मैं तो सेवक अपने को रे सन्तो, मैं सेवक अपने को ॥ टेर ॥
गरु न चेला ए सोचे झमेला, मेरे काम नही है तपने को ॥ १ ॥ किन को राज प्रजा फिर किन की, यह तो रूप बन्यो है कल्पने को ॥२ ॥अचल राज तज आवे कुण इनमें यह तो ठाट सभी स्वपने को ॥३ ॥मान को जाप आप कर लीनो, अब काम नही जपने को ॥४ ॥

॥ गान ॥

राग सारग। ताल कैरवा ॥

साधो अब न्यारो ही नगर बसायो। जो कोई मिले जाने अपनु नगर के, जिणसूं प्रेम लगायो ॥ तेर ॥
न्यारो नगर जाकी न्यारी परजा, न्यारी ही भूप सजायो। अपना राव आप ही है अब, और को डर नही लायो ॥१ ॥ ऐसो नगर कदेई नही विनसे, सहजे स्वराज्य कमायो नही ठाकुर नही चाकर किणरो अपनो ही रूप दरसायो ॥ २ ॥ देवनाथ गुरु नगर के नेता कबहू दुख नहि पायो। मान कहे रह्ं अखण्ड नगरी में खण्ड देश नही धायो ॥ ३ ॥

हां भाई जोयो जोयो अचल अखंड असंगी, बहुरंगी एक सारा ए हां।
अन अंगी सेमल सर्वंगी, मिल संगी नित न्यारा ए हां ॥टेर॥
हां भाई मौज करी मेहराण महाजल, अनन्त देश विस्तारा ए हां।
एक देश में अज्ञान अव्याकृत, उपजी ताहि मंझारा ए हां ॥१॥

इम नाग गत म चिग्रार न्यारा, बाजते निसाण हो ॥३॥
नहीं शिखर सागर गगन धरणी, गांध बिन गम जाय वरणी।
जोत जागी तिमिर हरणी, इम पद्यम ऊगो भाण हो ॥४॥
अनन्त रवि शशि जोत जागी, सुरत मिलकर शबद पागी।
अगम मुरना गई है आगी, करी जिन ओलखाण हो ॥५॥
मेरु शिखर अभग गङ्गा, अलंग धारा अमी तरङ्गा।
अधर धारा झेल अङ्गा, गुटक गुरु गम जाण हो ॥६॥
उठे नाम धुन सुन परम भेला, जाय कीना ब्रह्म मेला।
ऊरस परस करे केला, अनन्त मौजां माण हो ॥७॥
अखे मन्डल निरख नूरा, मिमरण लागा सन्त सूरा।
बाजिया अनहद तूरा, परम पुरुष पिछाण हो ॥८॥
सूर शशि भिन्न सुखम लागा, बङ्क भेदी भरम भागा।
आसाभारथी भाग जागा, भेटिया महराण हो ॥९॥

१४

साधो भाई हम करमन से न्यारे। सचित और क्रियमाण अज्ञाना,
ज्ञान अग्नि कर जारे ॥ टेर ॥
अहं ब्रह्म ज्ञान जब आयो, सब जर बर भये छारे।
रहे करम प्रारब्ध भोग हित, भूने अन्न आहारे ॥१॥
बादल में शशि धावत दीखे, शीत ते तोय धुवांरे।
अभ्र के संग अरुण भयो अम्बर, यों प्रारब्ध हमारे ॥२॥
चालत नाव चपल द्रुम दीखे, कम्पत तोय बयारे।
शूर शक्ति करि बाण वेग लहे, यों नहीं करम आधारे ॥३॥

सिद्ध कृष्णपाद (कराहपा) मेरुदण्ड को मेरुगिरि के रूप में परिकल्पित करते हुए कहते हैं कि कंकाल रूपी श्रेष्ट सुमेरु पर्वत है, जिसके शिखर पर शबरी नैरात्मा का वास है। उसके मूल में कन्दरा (मूलाधार चक्र) है, जिसमें विमल सलिल रूपी शुक्र विरोचन बोधिचित्त स्थित है। अन्दर ही अन्दर कालाग्नि है, जो साधना के बिना अधोमुखी हो शुक्र को सुखा डालती है और पवन निरोध के बाद ऊर्ध्वमुखी होकर प्रकाश करती है और शुक्र रूपी उपाय भी प्रज्ञा के समागम के लिए गतिमान होता है।[102]

मेरुदण्ड के उच्चतम शिखर पर महासुख चक्र है, जिसमें नैरात्मा सुन्दरी (शक्ति) का वास है। इसके मूल में नाभिचक्र है, जिसमें बोधि चित्त शुक्र रूप में निवास करता है। इसके बीच में दो चक्र और हैं हृदय और कंठ के समीप। सिद्ध साहित्य में इन चार चक्रों को चार कमल माना है। इन्हें आरोही क्रम में नाभिकमल, हृत्कमल, सम्भोग कमल एवं उष्णीय कमल बताया है। इन चारों कमलों में क्रमशः निर्माण काया, धर्म काया, सम्भोग काया एवं महासुख काया का निवास होता है। इस प्रकार चारों चक्रों में बुद्ध की चार कायाओं का निवास होता है। और उन्हीं के आधार पर चार चक्रों को नाम दिया है।[103]

---

101. सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती पृ. 211
102. सिद्ध साहित्य – पृ. 211
103. वही पृ. 212

उष्णीय कमल में महासुख काया है अतः उसे महासुख चक्र; कंठ के समीपवर्ती चक्र में सम्भोगकाया है अतः उसे सम्भोग चक्र, हृदय प्रवेश में स्थित चक्र में धर्म काया है अतः धर्म चक्र तथा नाभि में निर्माण काया अतः उसे निर्माण चक्र नाम दिया गया है। इन चक्रों को कमल के रूप में परिकल्पित किया गया है। निर्माणचक्र में 64, धर्म चक्र में 32, सम्भोग चक्र में 16 तथा महासुख चक्र मे 6 पँखुरी मानी गई है। इन कमलों की पँखुरियों पर बीजाक्षर अंकित है।[104]

इन चक्रों के बंधन का मार्ग नाड़ियों से हो कर है। इनकी संख्या 32 मानी है (हेवज्र में)। चर्यापदों में ललना, रसना और अवधूती को विशेष मान विभिन्न प्रतीकों द्वारा लक्षित किया गया है। ललना नाम नासापुट के समीप है चन्द्र स्वभाव की है और प्रज्ञा रूप है। रसना दक्षिण नासापुट के समीप है, सूर्य स्वभाव की है और उपाय रूप है। अवधूती इन दोनों के मध्य ग्राह्य–ग्राहक वर्जित रूप में स्थित है।[105]

सिद्धों में दाँई–बाँई ओर स्थित नाडियों पर नियंत्रण करते हुए मध्य नाडी के सहारे बोधि चित्त का उन्नयन किया जाता है। शरीर में पंच वायु है। उनमें से अपान वायु की निम्नगामिनी गति है और प्राणवायु ऊर्ध्वगामिनी है। ऐसी स्थिति में सिद्ध–साधक प्राण और अपान दोनों पर नियंत्रण करना अपेक्षित है और साथ ही इनको सुषुम्ना के मार्ग से प्रवाहित करना चाहिए। इस प्रकार मुख्यवायु के सुषुम्ना के भीतर प्रवाहित होने से बोधिचित्त भी ऊर्ध्वगामी हो उष्णीय कमल तक पहुँचता है और महासुख की स्थिति उत्पन्न होती है।[106] सिद्ध–साधना में श्रेष्ठ गुरू को आवश्यक माना गया है, क्योंकि वह गुप्त प्रयोगात्मक साधना धर्म एवं उसके अलौकिक गूढ़ प्रवृत्तियों का समय–समय पर निर्देश देता है। जिससे साधक के साधना पथ में आने वाली विघ्न बाधाएँ समाप्त होती हैं।

3.5.4.2 नाथ : हठयोग-साधना – नाथ योगियों की साधना प्रणाली प्राचीन योगदर्शन पर आधारित हठयोग प्रणाली है। हठयोग की प्राचीन परम्परा में अष्टांग योग के साथ मार्कण्डेय का नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय रहा है, परन्तु मध्यकाल तक यह प्राचीन विद्यामृत प्राण अवस्था में थी। नाथ साधकों विशेषरूप से मत्स्येन्द्रनाथ एवं गुरुगोरखनाथ ने इसे पुनः जीवित किया तथा प्रचारित किया।

हठयोग में सांसारिक इच्छाओं को हठपूर्वक रोककर अन्तर्मुखी किया जाता है। नाथ–सम्प्रदाय में शिव से शक्ति का योग ही 'हठयोग' कहलाया। हठयोग–साधना में शरीर में स्थित शक्तिरूप कुण्डलिनी को उद्‌बुद्ध कर क्रमशः षट्‌चक्रों का भेदन करते हुए शीर्षस्थ सहस्रार चक्र में जहाँ शिव का स्थान है ले जाया जाता है। हठयोग में 'ह' का अर्थ सूर्य शरीर में इडा तथा 'ठ' का अर्थ चन्द्र शरीर में पिंगला नाड़ी माना। इनकी एकता अथवा समन्वय ही हठयोग की चरम उपलब्धि मानी जाती है।

---

104 सिद्ध साहित्य – पृ 112–113
105 सिद्ध साहित्य-पृ 112–113
106 भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य मे योगसाधना – डॉ. शिव शंकर शर्मा पृ. 78.

3.5.5 हिन्दी-संत एवं हठयोग-साधना – हिन्दी–संत अपने पूर्ववर्ती योग साधना से अछूते नहीं रहे। इसका प्रमाण उनकी वाणी में जगह–जगह योग परक शब्दावली द्वारा सहज ही मिल जाता है। संत हठयोग साधना से प्रभावित थे, किन्तु उनकी विशेषता यह थी कि उन्होंने समस्त प्रभावों को आत्मसात करते हुए अपनी मौलिक चिन्तनधारा को कहीं भी अवरूद्ध न होने दिया।

संत जंगल के योगी न थे, वरन् उनके ह्रदय में तो जन–कल्याण की पावनसरिता हिलोरें ले रही थी। तभी उन्होंने हठयोग–साधना को सर्वोच्च न माना, किन्तु इससे ऐसा अनुमान लगाना भी नितांत असत्य होगा कि वे हठयोग से पूरी तरह अछूते थे। इनकी रचनाओं में आसन, मुद्रा, सहज समाधि, इडा, पिंगला, सुरति–निरति, अनहद नाद, षट्चक्र इत्यादि शब्दों का विवरण इनके योग–साधना के प्रति झुकाव को प्रदर्शित करता है। अतः स्पष्ट है कि हिन्दी–संतों पर हठयोग का प्रभाव रहा, किन्तु इसके साथ ही लोक–कल्याण की भावना भी इनसे संयुक्त रही।

हिन्दी–संतों ने हठयोग की रूढियों एवं उसमें निहित आडम्बरों को सर्वथा अस्वीकार करते हैं। संत कबीर ने अष्टांग योग के यम–नियमों का पृथक रूप से विवेचन नहीं किया है वे विभिन्न प्रकार के आसनों के भंवर में न फँस कर आसन की दृढ़ता की ओर संकेत करते हुए कहते है –

सहज लछिन ले तजो उपाधि
आसन दिढ़ निद्रा पुनि साधि। [117]

हठयोग के अनुसार शरीर की तीनों नाडियों इडा, पिंगला, सुषुम्ना का विशेष महत्त्व रहा है संतों ने इडा–पिंगला के लिए सूर्य–चन्द्रमा का प्रयोग किया है –

चन्द सूर दोउ सन मुख होई
पीवै प्याला मरै न कोई। [118]

इन्हें पूर्ववर्ती प्रभावों के कारण संतों ने गंगा, यमुना, सरस्वती नाम से भी अभिव्यक्त किया है। यथा –

गंग जमुल उर अंतरै, सहज सुनि ल्यौ घाट। [119]

संत रैदास ने 'उल्टी गंगा यमुन' में लावै बिन ही जल मज्जन है पावै।'[120] कहकर इडा, पिंगला, सुषुम्ना को गंगा, यमुना, सरस्वती का नाम दिया है।

117. क.ग्र. – 198/325
118. रैदास की बानी पद – 40
119. क. ग्र. – पृ. 18
120. रैदास की बानी – पद – 56

संत कबीर ने 'त्रिवेणी मनाह न्हवाइए'[121] द्वारा त्रिवेणी, त्रिकुटी संगम स्वामी[122] द्वारा त्रिकुटी संगम एवं त्रिकोट में आसण मांडै द्वारा[123] योग शब्दावली का प्रयोग किया है।

संतों के साहित्य में वायु–साधना के विविध स्वरूप मिलते हैं। यथा–

उलट पवन षटचक्रा भेदा। [124]

संतों ने सूर्य–चन्द्र साधना का अर्द्ध–उर्द्ध के माध्यम से किया है। संतों ने ऊर्ध्व–अर्ध का अरध–उरध कर दिया है। यह दोनों प्राणायाम योग के वाचक है। इनका प्रयोग करते हुए कबीर ने कहा है –

अरध–उरध की गंगा–जमुना मूल कंवल को घाट। [125]

संत रैदास भी अपनी वाणी में पाँच तत्त्व को यह रथ साज्यों अरधै उरध निवासा'[126] द्वारा ऊर्ध्व अर्ध साधना की पुष्टि करते हैं।

कबीर ने हठयोग प्रभाव स्वरूप कुण्डलिनी जागरण पर भी प्रकाश डाला है। कबीर ने शिव–शक्ति, ईश्वर–गौरी, नागिनी, मछली, पनिहारी, धरती–आकाश आदि नामों के संदर्भ में कुण्डलिनी योग की ओर संकेत किया है।[127]

ध्यान में कबीर सुरति एवं अजपा जाप का महत्त्व निर्देशित करते हैं। संत है कोई राम नाम बतावै, वस्तु अगोचर मोहि लखावै[128] कहकर निर्गुण राम के स्मरण का निर्देश करते हैं।

हठयोग–साधना में नाड़ी–साधना का बड़ा महत्त्व है। कबीर इन्हें बहत्तर अधारी[129], बहितर घर एक पुरूष समाया[130] कहते हैं। नाड़ियों के नामों का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

संतों ने हठयोग की मुद्राओं का सिद्धांत रूप में प्रयोग न करके ध्यान और धारणा से सम्बंधित मुद्राओं की चर्चा अवश्य की है।

संतों ने षट्चक्रों का प्रयोग सिद्धांत रूप में नहीं किया, किन्तु इनकी चर्चा संत साहित्य में की गई है।

121. क. ग्र. – पृ 88/4
122. उपरिवत् – पृ. 90/7
123. उपरिवत् – पृ 158/204
124. कबीर ग्रथावली – पृ 90
125. उपरिवत् – पृ 94
126. सत रैदास – व्यक्तित्व एव कृतित्व पृ 149
127. कबीर – व्यक्तित्व, कृतित्व एव सिद्धान्त – सरनाम सिह शर्मा, पृ. 412
128. क ग्र. – पृ. 162
129. उपरिवत् – पृ 308
130. उपरिवत् – पृ 273

शब्द गुरु का निकलंक लागा, काट किया कर्म दूर ॥१॥
सांचा नाम हरि का कहिये, कर्म जाल जग डूर ॥२॥
तीरथ व्रत षट् सगुण सेवा, सिमरण पेण्डा करूर ॥३॥
ब्रह्म प्रकाशी सन्त सदा निवासी, ज्यारे घट बिच ऊगा सूर ॥४॥
धन "सुखराम" मिल्या गुरु पूरा, "ईसर" भजो भरपूर ॥५॥

भजन (१३) राग हेली व सोरठ पद

नौबत बाजे छै जी दसवें द्वार, हरि भज उतरिया सो पार ।टेर॥
चतुर षट् दश द्वादश ऊपर, शोडष उभय हजार ॥१॥
नाभि कमल से शब्द उलट्या, हृदय से कण्ठ मंझार ॥२॥
त्रिकुटी छेद में ब्रह्म सु भेट्या, जग मग ज्योति अपार ॥३॥
झांझ मृदंग मुरली नाद बजत है, झालर शंख सितार ॥४॥
धन "सुखराम" मिला गुरु पूरा, दीवी शब्द की सार ॥५॥
"ईसरराम" अलमस्त फकीरा, लिया अगम घर धार ॥६॥

भजन (१४) राग हेली पद

निरख्यारी मारी हेली, आप में आप अरूप ।टेर॥
जगत-रीति स्वप्न ज्यूँ जाणी, निकस्या भ्रम का कूप ॥१॥
नैना नींद अन्न नहीं जरता, तन मन गया सब सूख ॥२॥
अरध उरध बिच पुरुष अपम्बर, नहीं छाया नहीं धूप ॥३॥
गैबी बोल परा निरदावे, अक्षय आप अनूप ॥४॥
धन "सुखराम" मिल्या गुरु पूरा, "ईसर" सत स्वरूप ॥५॥

Scanned with Cam

भ्रम किल्ला को दौड़्या आगा,
मार काल की फौज, दिया सत डंका ॥३॥
ऐसा ख्याल खेल जन ''ईसर'',
हरदम राम पलक मत बीसर
यूँ भवसागर बाहिर नीसर,
गुरू मिल्या ''सुखराम'', मिट्या भव शंका ॥४॥

— *भजन (३४) राग लड़्डी, लावणी पद*

मदवा घूमत ज्यों हाथी।
अमर पट्टा सतगुरु लिख दीना, जागीरी साची ।टेर॥
गुरु गम आँच लगी मेरे मन में, जगी है विरह भाटी।
सुरत कलाली प्याला फेरे, पीवो सैण साथी ॥१॥
पीवत प्याला जेज लगी, उर भभक तार जागी।
सोहं तार लगी घट भीतर, सूरत मस्त माती ॥२॥
नशा किया तब बकने लागा, अनुभव की बाती।
कर मतवाल पड़्या भारत में, नहीं छोड़ी बाकी ॥३॥
उलटा राह बहै जन शूरा, चढ्या बंक घाटी।
निशि दिन गोला लगे नाम का, काल फौज नाटी ॥४॥
धन ''सुखराम'' मिल्या गुरु पूरा, मतवाला भागी।
''ईसर'' नशा कबहूँ नहीं उतरे, दिवस और राती ॥५॥

Scanned with Cam

भजन (३५) राग मंगल पद अरिल्ल

प्यारी ए! संगत सार विचार, सन्तन की कीजिये।
सांचा हरिजन जोय, राम रस पीजिये ॥१॥
शुन में धुन लगाय, हरिगुण गाईये।
निशिदिन पीव लड़ाय, अखे घर पाईये ॥२॥
नाभि कमल के माहि, भँवर गुँजास है।
सोहं शिखर के बीच, पीया का वास है ॥३॥
उस पीये की मौज, अनौखी देखिये।
कीजे मंगलाचार, अगोचर पेखिये ॥४॥
अचल अखण्डी धार, रमझ में जोविये।
कर सतगुरु को संग, हीर निज पोविये॥५॥
गुरु मिल्या "सुखराम" सहि शिर हाथ है ।
कहता 'ईसरराम' लखत की बात है॥६॥

भजन (३६) राग मंगल, प्यारी पद

प्यारी ए ! जाग्रत विश्वे जीव, बसत है नैन में।
स्वप्ने तेजस जा, कण्ठ की सैन में ॥१॥
प्राज्ञ हृदय स्थान, सुषोपति धुंध है।
चौथा तुरिये नाभि, करत तिहुं गुझ है ॥२॥
मेरा गाँव घर दूर, अठा का नाय है।
तहाँ नहीं सकल संसार, धूम नहीं छाय है ॥३॥

बेगम बेगम सभी कहत है, बेगम कह्यो नहीं जाय ॥१॥
बेगम की गम कैसे लीनी, बेगम अगम अथाय ॥२॥
परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी, बेगम शब्दां में नाय ॥३॥
जो कोई नभ की रेश लखी है, अविचल बेगम अचाय ॥४॥
बेगम पद कथणी में नाही, सारा ही शब्द थकाय ॥५॥
कहता है सो है भी नाही, ज्यूँ गूँगा गुड़ खाय ॥६॥
नाम रूप "ईसर" भी नाही, सत बेगम अचलाय ॥७॥

भजन (४४) राग बरवा, आसा पद

साधोभाई ! सत शब्दां रा जादू मारा।
सोहँ मन्त्र चलाया मेरे सतगुरु, भव सिंधु से तारा ।टेर॥
सत संगत शुभ इच्छा कर बैठा, जादू लग्या अखारा।
नि:कलंक शब्द कलेजे खटक्या, किया कर्म से न्यारा ॥१॥
नौ सौ नाड़ी चढी खुमारी, बदन बदन रंग न्यारा।
अर्ध उर्ध बिच मनवा छकिया, पीया हरिरस भारा ॥२॥
जाग्रत स्वप्न सुषोप्ति छेद्या, चौथा देश हमारा।
कुदरत खेल कह्यो नहीं जावे, देश विदेश अपारा ॥३॥
जादू लग्यो ओ अनन्त सन्तों के, समर्थ जादूगारा।
जादू लग्या सो परम पद पाया, जन्म मरण मिट्या कारा ॥४॥
धन "सुखराम" मिल्या गुरु पूरा, मो में जादू डारा।
"ईसरराम" भया सुन व्याकुल, ओत प्रोत पिव प्यारा ॥५॥

Scanned with Cam

भजन (४५) राग बसन्त पद

ऐसे मन खेले होरी, जाकी आवागमन मिटोरी ।।टेर।।
जग महीनो काया रोपणी, दिन तीस फाग रम्योरी।
खड़ी रहे जीत हुक्म मालिक का, मुहुर्त फूँक दियोरी ।।१।।
सभा चोक कहि झाड़्यो झपट्यो, प्रेमको नींद छण्ट्योरी।
भ्रम कम्पी सो गई विलाई, गुरु गम ढ़ोल बज्योरी ।।२।।
भाव पहन बागो जतनकी कच्छनी, रमझ को पेच झुक्योरी।
सुरत मदिला निरत की सैली, चेतन तुर्रो टंक्योरी ।।३।।
लगन घूघरा रिमझिम बाजे, धीरप पाँव धर्‌योरी।
सासउसास दोऊ डंडिया जोड़ो, नाम की चोट सहयोरी ।।४।।
अर्ध उर्ध बिच धूम मचत है, सब नर नार देख्योरी।
हरिजन मिल सम नाच नचतहै, बिन पग फेरि फिर्‌योरी ।।५।।
धन ''सुखराम'' मिल्या गुरु पूरा, निशदिन ख्याल खेलोरी।
''ईसरराम'' शोक नहीं संशय, ऐसी निरोगी आ होरी ।।६।।

भजन (४६) राग रेखता पद

सत संगियो सोरा रहिज्यो, थे भजन राम का कीज्यो।
सत भाव राखज्यो भक्ती, हो जावे जीव की मुक्ती ।।टेर।।
गुरु चरणों में आया, मैं नाम पदार्थ पाया ।।१।।
सोहं शब्द समाया, मैं हरदम ध्यान लगाया ।।२।।
सत दीया नाम का डंका, तब मिट्या यमों का शंका ।।३।।

त्रिवेणी में हंस, चुगे मोताल है।
हरहां ''ईसर'' यह हंसों की रीत, हरि का लाल है ॥२५॥
नाभि उलट्या शब्द, हृदय में गूँजता।
पर बिन हंस लपटाय, कण्ठ में झुञ्जता॥
त्रिकुटी छेद्या घाट, दशवें जावणा।
हरहां ''ईसर'' अधर तख्तपर आप, अमरवर पावणा ॥२६॥
यह षट्चक्र का ध्यान, धरे जन सूर रे।
त्रिकुटी ध्यान अनूप, झलकता नूर रे॥
वहाँ अनुभव प्रकाश होय, शब्द धुन साजता।
हरहां ''ईसर'' अनहद घुरे निशान, गगन घर गाजता ॥२७॥
नाभि कमल के माहि, भँवर गुंजास है।
सोहं शिषर के बीच, पीया का बास है ॥
उस पीया की मौज, अनोखी देखिये।
हरहां ''ईसर'' कीजे मंगलाचार, अगोचर पेखिये ॥२८॥
जाग्रत विश्वे जीव, बसत है नैन में।
स्वप्ने तेजस जान, कण्ठ की सैन में॥
प्राज्ञ हृदय स्थान, सुषोप्ति धुन्ध है।
हरहां ''ईसर'' चौथा तुरिये नाभि, करत तिहुँ गुञ्झहै ॥२९॥
मेरा गांव घर दूर, अठे का नाय है।
तहाँ नहीं सकल संसार, धूप नहीं छाय है ॥

Scanned with Cam

बेगम जीव जगाया है, सुरत को मन समझाया है ॥२॥
पांच तीन को धाया है, पचीसों पकड़ मंगाया है ॥३॥
जन्तरी ज्यूँ तार कढ़ाया है, कर्म का कीट झड़ाया है ॥४॥
अगम देश से आया है, नाम पदार्थ लाया है ॥५॥
त्रिवेणी चश्मा लगाया है, बंका राह उलटाया है ॥६॥
पग बिन बाट बहाया है, बिन रसना गोविन्द गाया है ॥७॥
मुख बिन तुरी ब जाया है, श्रवण बिन राग सुणाया है ॥८॥
शुन में तार लगाया है, पारब्रह्म लपटाया है ॥९॥
गुरु वचनों से न्हाया है, प्रेम पियाला पाया है ॥१०॥
दीवाना देश दिखाया है, वहां सुखमें सैज बिछाया है ॥११॥
धर नहिं अधर ठहराया है, वहांअलखअखण्डीधाया है॥१२॥
सजनीकापीव मिलाया है, हिल मिल लाड लडाया है ॥१३॥
वहां रूप वरण नहीं काया है, अजाति अकल अजाया है ॥१४॥
आप को आप बताया है, अपना आप जस गाया है ॥१५॥
वहां नहीं धूप नहीं छाया है, सुमर्‌थ सो पद पाया है ॥१६॥
अक्षय गांव बसाया है, गैब का ऐब मिटाया है ॥१७॥
आप हि आप रहवाया है, "सुखराम" गुरु पाया है ॥१८॥
सब में सत समाया है, न कोई गया न आया है ॥१९॥
वां घर की सेन लखाया है, "ईसरराम" लख गाया है ॥२०॥

Scanned with Cam

नौबत के एक डंके, अनन्त घर बाज जोय,
कहत "ईसरराम", यूं व्यापक अपार है ॥१४॥
केता ही तीरथ न्हाय, केता ही जो आन ध्याय,
मन्दिर मस्जिद नित, धूप घी गरत है।
केता ही जो गाय देखो, केता ही बजाय देखो,
आतमा की ठाम वाको, नाहि जो परत है ॥
केता ही स्थान खोजे, शंखनाल बंक जोड़ो।
त्रिकुटी सोहम् घर, ध्यान जो धरत है ॥
कहत "ईसरराम", आतमा की जाण बिना।
काम न सरेगो कछु, भूला जो फिरत है ॥१५॥
कई जप तप करे, करणी करतूत करे,
अजपा का श्वासा कोई, ध्यान को धरत है।
भावे वेद खोजो देखो, भावे अर्थ खोल देखो,
कई अनुभव वाणी, ग्रन्थ को करत है॥
केतो ही तो ज्ञान करे, केतो ही जो ध्यान धरे,
आत्मा परतीत बिना, काज ना सरत है।
कहत "ईसरराम", अक्षय पद बिना सब,
थिर नहीं रञ्च धार, झूंठा ही परत है ॥१६॥

छप्पय छन्द

गुरु दीया की लोय, गुरु दर्पण को भलको।
गुरु समुन्द शिष्य तरंग, एक रंग चाले झलको ॥

सुखसागर के माहि, समझ कर न्हावे,
अर्ध उर्ध के बीच, चाल में आवे ॥३॥
इडा पिङ्गला फेर, सुषमणा लावे,
ऐसा दीन दयाल, पवन उलटावे ॥४॥
आई गुरु की सैन, सांच कर ध्यावे,
सत चेतन के माहि, सुरत रम जावे ॥५॥
अखै अखण्डी राम, चराचर थावे,
ब्रह्म सकल के माहि, वेद यों गावे ॥६॥
''ईसरराम'' गुरुदेव, भ्रम ने ढावे,
सत ''पूसाराम'' वो जीव, आवे नहीं जावे ॥७॥

भजन (४) राग लाणी पद

सिरजणहार भज्यां बिन, मूर्ख चौरासी पाता ॥टेर॥
बहुत दुर्लभ से पायो मनुषो, धन है विधाता।
नौ मास तो रह्यो गर्भ में, संकट सह्यो माता ॥१॥
धन जोभन की करे बड़ाई, झूँठी बात चलाता।
मुख से राम कह्यो नहीं पापी, आनदेव ध्याता ॥२॥
विषय रस में बहुत राचियो, काम क्रोध स्याता।
गुरु को ज्ञान गह्यो नहीं हृदय, जावे धूड़ खाता ॥३॥
जम की मार पड़े शिर ऊपर, हाय हाय करता।
अन्तर्यामी लेखो मांगसी, उत्तर नहीं आता ॥४॥

Scanned with Cam

भजन (८) राग ठूमरी पद

ऐसा निज ध्यानी साधो, अन्दर में लिव लावो।
अन्दर में लिव लावो, शुन में तार लगावो ।।टेर।।
काम क्रोध उर ममता मारो, पीछे हर घर आवो।
विषय वासना चित मत धारो, सूता पीव जगावो ।।१।।
सोहं शब्द ले सुमिरण साधो, पांच पचीसो गावो।
अर्ध उर्ध बिच डोर लगाओ, हंसां को हीर चुगावो ।।२।।
इडा पिंगला को गम कर खोजो, सुषुमन के घर लावो।
तट त्रिवेणी ज्योति जगत है, जिस का दर्शन पावो ।।३।।
शुन शिषर में रास रच्यो है, कर बिन बीण बजावो।
अंधा बहरा बहुत सराया, निज मन जाय रिझावो ।।४।।
"ईसरराम" मिले गुरु पूरा, कृपा से पीव पावो।
"पूसाराम" दमोदम सिमरो, अविचल में थिर थावो ।।५।।

भजन (९) राग सोरठ पद फकीरी

फकीरी ! विरला उत्तरे पार।
त्रिगुण माया शूरा संत जीते, लगे न जम की मार ।।टेर।।
हर्ष शोक दुःख सुख सब त्याग्या, त्यागी कल्पना नार।
जत मत दोनूं गाढा कर पकड्या, हरदम लागी तार ।।१।।
ज्ञान भानु घट भीतर ऊगा, भागा भ्रम अन्धार।
उड़गण चांद सभी विलाया, रजनी नहीं लिगार ।।२।।

श्रवण शब्द सु नाद, शीत उष्णा त्वचा पोके।
शब्द स्पर्श रस रूप गन्ध, सन्त शूरा जन रोके।
विरला हरिजन पावसी, सत चित आनन्द खास।
ब्रह्मस्वरूप "पूसा" लखो, तज अभिमानी बास ॥२३॥
सुषुमन सुमिरण सत है, जो कर जाणे कोय।
नहीं चन्द नहीं सूर है, जाँ बिच मनवा गोय॥
जाँ बिच मनवा गोय, सुरत शब्द में राची।
चेतन चौकी बैठ के, रणुकार धुन माची॥
"पूसाराम" झगड़ा मिटे, रति न रह दुःख मन।
इडा पिंगला पलट के, मध्य चले सुषुमन ॥२४॥
गगन मण्डल के सहर की, जाणे सन्त सुजान।
कर बिन बाजा घुरत है, राग सुने बिन कान॥
राग सुने बिन कान, अंग बिन नाचे नारी।
आंधा देखे खेल, प्रीति कर निरखे प्यारी॥
ख्याल देख "पूसा" कहै, सत शब्दां की लगन।
सन्त समझ्या सो जाणसी, जोया ब्रह्म गगन ॥२५॥
लखिया चाहै ब्रह्म को, सतगुरु करजे खोज।
बिन सतगुरु पावे नहीं, अटल पुरुष की मौज॥
अटल पुरुष की मौज, भाण बिन मिटे ना राती।
भया ज्ञान प्रकाश, अन्धेरा रहे न जाती।
"पुसाराम" थिरता भया, जत मत पूरा रखिया।
शुद्ध स्वरूप लय होय, वचन गुरु का लखिया ॥२६॥

शौच तोष स्वाध्याय तप, ईश्वर प्रणिधान ॥
ईश्वर प्रणिधान शौच तन मन शुद्ध करना ।
तोष कामना रहित या तृष्णा मन से तजना ॥
तप तन त्याना अरु भजन स्वाध्याय लो जान ।
मन संजोना ईश में ईश्वर प्राणीधान ।

कुण्डलिया (६०)

जिस मुद्रा से बैठ के करे योग अभ्यास ।
ताको आसन * कहत हैं सो चौरासी खाश ॥
सो चौरासी खाश, मुख्य तामें दो जानो ।
सिद्ध और पद्मासन ताके नाम बखानो ॥
गोपीनाथ आगे करूं विधि विधान प्रकाश ।
जिस मुद्रा में बैठ के करे योग अभ्यास ॥

कुण्डलिया (६१)

बायें पांव को एड़ी से मूलके बन्ध लगाय ।
दायें पांव की एड़ी से उपस्थ इन्द्रि दबाय ॥
उपस्थ इन्द्रि दबाय तले ऊपर हो एडी ।
हृदय से अंगुल चार राखना ऊंची ठोडी ॥
विषयों से इन्द्रिय हटा भृकुटि दृष्टि ठहराय ।
मोक्ष मार्ग का पथ सही गोपीनाथ बताय ॥

* टिप्पणी - सौच संन्तोष तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान साधकर तथा नियमोंपर स्थिर होकर बैठना ही सुखासन है ।

अथ

जिज्ञासु प्रबोध का अङ्ग

* प्रारम्भ *

कुण्डलिया (८२)

सहस बहत्तर नाड़ियां उनमें दश परधान ।
इड़ा पिंगला सुषमणा मुख्य तीन लो जान ॥
मुख्य तीन लो जान सुनो तेहि ठौर ठिकाना ।
बायाँ स्वर है इड़ा चन्द्रस्वर ताहि बखाना ।
दायाँ स्वर है पिंगला सूर्य नाम कर चीन ।
दोनों बिच है सुषमणा योगी लखे प्रवीन ॥

कुण्डलिया (८३)

प्राण निवासा हृदय में अपान गुदा पहिचान ।
समान नाभी में रहे उदान कण्ठ बखान ॥
उदान कण्ठ बखान व्यान व्यापक घट सारे ।
नाग डकार रु कूर्म नेत्र के पलक उघारे ॥
कृकल छींक अरु देवदत्त बसत जम्हाई मान ।
बसत मृतक तन धनंजय गोपीनाथ लो जान ॥

कुण्डलिया (८४)

षट चक्कर मैं कहत हूं सुनिये देकर ध्यान ।

योग के प्रकार व् क्रियाएं-

योग विधिगत भेद अनेक ही, हठ मन्त्र लय राज कहावे।
कर्म योग रु भक्ति योग जु, ज्ञान योग कहि भेद बतावे॥
शास्त्र अनेक बखानत है विधि, सतगुरू बिना नही गम लखावे।
रामप्रकाश गुरू युक्ति बिना नही, मुक्ति की भुक्ति है दुर्लभ भावे॥१॥

यम है पाँच रु नियम पाँच ही, शौच सँतोष तप जान हूँ सारो।
स्वाध्याय अपरिग्रह अहिंसा शम रु, दम दया को हृदय बिच धारो॥
आसन प्राणायाम प्रत्याहार है, धारणा ध्यान समाधि विचारों।
रामप्रकाश है साधन दुर्लभ, योग गति अति सूक्ष्म प्यारो॥२॥

नेति रु धौति बस्ती है त्राटक, नौली गजकरणी क्रिया बखानो।
जलनेति रु सूत्रनेति लख, तेल घृतादि के भेद को छानो॥
बारह प्रकार के भेद धोति जब, षट् क्रिया यह योग की जानो।
रामप्रकाश अष्टाँग के साथ ही, देह शुद्धता योग से आनो॥३॥

अश्वनी क्रिया करे जन कोईयक, गृहस्थ साधत है जन योगिक जाने।
क्रिया वज्रोली है साधन कठिन, जल पय धृत लिंग ते पाने॥
श्वास प्रश्वास को कण्ठ ते खेंचत, मूर्द्धन्य स्थान ते पावत छाने।
रामप्रकाश है दुर्लभ क्रिया यह, जानत मानत योगी पिछाने॥४॥

युक्त त्रिवेणी को भेद लख्यो नही, मुक्त त्रिवेणी की साधन नाही।
इडा पिंगला सुषुम्ना साधन, अर्ध रु उर्ध की गम विलाही॥
युक्तबँक की गम करी नही, मुक्तबँक की बात सुनाही।
रामप्रकाश यह योग गति अति, सूक्ष्म को माग लखे विरलाही॥५॥

स्वरोदय विचार-

इडा पिंगला सुषुमन साधन, षट्कर्म शुद्धिकरण तन धारो।
प्राणायाम त्रिकूटी महल में, ज्योतिर्मय दर्शन मन प्यारो॥
झिलमिल झिलमिल दीपन दरसे, चित वृति सँयम कर सारो।
रामप्रकाश एकान्त साधन से, हरदम में ध्यान सुधारो॥६॥

इडा वाम चन्द्र स्वर वर, अचर कार्य कर साधन लावे।
पिँगला दाहिनी सूर्य साधन कर, चर कार्य की सिद्धि करावे॥
गँग यमुन के बीच सुषुम्ना, हरि भजन को सिद्ध बनावे।
रामप्रकाश करे कोई साधन, स्वरोदय कारज सिद्धि दिलावे॥७॥

इडा गँगा रु पिँगला यमुन, सुषुम्ना सरस्वती बीच कहावे।
घर मे साधन नित्य स्नान में, सबही कारज सिद्धि दिलावे॥
स्वर का साधन सरस सर्वोत्तम, सरल सन्तन के मन को भावे।
रामप्रकाश करे कोई साधन, अष्ट सिद्धि घर बैठे ही पावे॥८॥

सतगुरू मुख से दीक्षित सानिध्य, वास करे स्वर साधन लावे।
नित्य नियम से विधि कर साधन, अध्यात्म ज्ञान रू ध्यान लगावे॥
जीवित ओढत मूँआँ बिछावत, सो योगी जन आयु बढावे।
रामप्रकाश करे कोई साधक, भौतिक अध्यात्म सुख को पावे॥९॥

भोजन भोज्य पदार्थ पावत, सूर्य नाड़ी का ध्यान रखावे।
पैय पदार्थ पीवन हो जब, चन्द्र स्वर का पालन लावे॥
पूर्व उतर गमन रवि बल, दक्षिण पश्चिम चन्द्र दृढावे।
रामप्रकाश योगी सिद्ध साधत, साधन निशिदिन मन में भावे॥१०॥

13:09
archive.org/details/202005
INTERNET ARCHIVE

पांच पचीस को प्रत्यक्ष विडारया, सर्व उपाधि विलाई।
त्रिगुण नाना खेल पसारा, न्यारा निर्गुण गोसांई ।। २ ।।
सतसंगत में नहिं त्रिगुण अंका, सत निर्णय कर पाई।
सत को धार असत को त्याग्या, सतगुरु की गम लाई।३।
'गणेशराम' सतगुरु सतज्ञानी, युक्ति सत परसाई।
'लाधूराम' शरण सतगुरु की, दुतिया भ्रम मिटाई ।।४।।

भजन संख्या (६) राग आशा–टोडी आशावरी पद।

साधो भाई ! सतगुरु से पत आई।
कृपा दृष्टि कर मो पर पूर्ण, ध्यान युक्ति दरसाई ।। टेर ।।
समरथ सतगुरु शंस्य काट्यो, सत की समझ लखाई।
सोहं भेद दियो गुरु स्वामी, हृदय ठीक ठहराई ।। १ ।।
नाभी बैठ साधना सारी, झीणी तार संभाई।
उलटा पवन पश्चिम को फेरया, प्राण अपान मिलाई ।।२।।
पांचो शमकर सहजे सहजे, बंक नाल उलटाई।
प्राणायाम पवन गति जाणी, युगति कर उर लाई ।।३।।

(10 of 30)
Favorite Share Flag
श्री भक्ति पथ प्रकाश

मैं मतिहीन अज्ञान अनाड़ी, बहुत घणो बेईमान।
झूँठों कलंकी नीच नालायक, दुःखदायक नादान॥४॥
''रामप्रकाश'' गुरु परम दयालु, अरज सुणो श्रीमान।
ओ अहसान उमर नहीं भूलूं, ''शान्ति'' पिंजर प्रान॥५॥

भजन (८४) राग सोरठ, सारंग पद गाने का

रटूँ निज श्याम धणी को नाम।
पल पल श्वास श्वास में सुमिरण, निशदिन आठों याम।टेर॥
रटूं मैं नाम नाभि से निरन्तर, मनवो भयो गुलाम।
इडा पिंगला सोज सुषुमणा, तृष्णा मिटी तमाम॥१॥
लिव लागी निजनाम की, जग से भई निष्काम।
हो अचाय चाह है केवल, अविनासी की धाम॥२॥
पाई धाम काम सब पूर्ण, लख्यो लोभ ललाम।
काम क्रोध मद मार गिराया, खूब किया इन्तजाम॥३॥
आदू धाम जहां श्याम विराजे, निरखत हुआ आराम।
अरस परस हो गई श्याम से, सुरती भरे सलाम॥४॥
''रामप्रकाश'' गुरु कृपा पाया, अति अक्षय उपराम।
''शान्तिशरण'' चरण की दासी, कोटि कोटि प्रणाम॥५॥

भजन (८५) राग विरहणी सोरठ, सारंग पद

परदेशी राजा क्यों मेरे ना आय।
तेरी दिवानी रो रही रानी, आय के गले लगाय।टेर॥
चैन ना रैन दिवस ना क्षणभर, नैणा नीन्द न आय।
प्रेम विभोर और नहीं दीखे, जग में तेरे सिवाय॥१॥
व्याकुल विवस भई बावरी, जग पागल बतलाय।
मच रही हूक कूक कलेजे, टूटी आस उपाय॥२॥

Scanned by CamScanner

नौ सौ नदी अठहतर नाला, हाड चाम का नरतन आला।
साढे तीन करोड़ का लेखा, देह रोमावलि की यह रेखा ॥ ४५ ॥
वायु उन्नचास देह में आया, प्रमुख पांचों प्राण समाया।
प्राण उदयान रु व्यान समाना, वायु अपान कर्म कर नाना ॥ ४६ ॥
एक भृकुटा, तीन त्रिकूटी, तीन त्रिवेणी, एक त्रिकूटी।
युक्त बंक रु मुक्ता बंका, बंकनाल का मार्ग निशंका ॥ ४७ ॥
सात शुन्य में भँवरा सारी, देखे अचरज योगी भारी।
इडा पिंगला सुषुमण रेखा, चन्द्र सूर्य का मार्ग लेखा ॥ ४८ ॥
बावन अक्षर का विस्तारा, घट मांहि चेतन उजियारा।
सात शुन्य चेतन रखवाला, यौगिक तन का रहस्य उजाला ॥ ४९ ॥
योग शुन्य पर ओम उचारा, सांख्य शुन्य पे चेतन धारा।
सृष्टि शुन्य पर परमा ज्योति, परम शुन्य पर अक्षय मोती ॥ ५० ॥
ईश्वर सता कुटस्थ समाया, जीव ब्रह्म चारों इकजाया।
खेल अध्यात्म तन में रमता, ज्ञानी गुरु गम पावे समता ॥ ५१ ॥
सात द्वीप सप्त सागर यामे, पर्वत सातों नौ ग्रह तामे।
खण्ड छैयालिख यामे कहिये, ब्रह्मण्ड सो पिंड माहि लहिये ॥ ५२ ॥
चौदह लोक दशों दिशि देखो, तीन शरीर भाग को पेखो।
तीन अवस्था वृति नाना, गुण अनुरूप स्वभाव बखाना ॥ ५३ ॥
परम विचित्र स्वरूप बनाया, माया खेल अनोखा ठाया।
मन्दिर माहि मन्दिर शक्ति, अनन्त ज्योति की पूरण भक्ति ॥ ५४ ॥

Scanned by CamScanner

13:26
archive.org/details/202005
INTERNET ARCHIVE

भजन (११०) राग कान्हड़ा चौपाई पद

या विधि योगी योग सुधारे, आप लखे काल को मारे ।टेर।
कर हठ मंत्र राज लय चारा, योग रीति गुरु मुख धारा ।
यम नियम आसन दृढ साधे, प्राणायाम युगति जब लाधे ।१।
पूरक पूर कुंभक दृढ प्यारा, रेचक साध क्रिया षट् गारा ।
मूल जालन्धर बन्ध उडियाना, मुद्रा पांच साध कर ध्याना ।२।
प्रत्याहार धारणा धारे, ध्यान समाधि रमभ विचारे ।
पाय अटल त्रिकुटि मंझारा, पश्चिम मार्ग सुमेरू पारा ।३।

Scanned by CamScanner

दशवें जाय के देवे डंका, पहुंचे परम पुरुष कोई बंका ।
पग बिन मार्ग वाणी बिन बोले, पंगु नाचत अचरज ओले ।४।
जीव मिला सत शीव उजागर, द्वैत मिटा जल मिलिया सागर।
'रामप्रकाश' रही नहीं शंका, अपना आप एक निशंका ।५।

भजन (१११) राग कान्हड़ा चौपाई पद

सो ज्ञानो सुख रूप समावे, जन्म मरण में फेर न आवे ।टेर।
साधन होय विवेक विरागा, शम दम श्रद्धा संपति सागा ।
समाधान उपराम विचारा, ज्ञान तितिक्षा षट् इक धारा ।१।
मुमुक्षु होय मुमुक्षुता सोई, गुरू शरणे श्रवण कर जोई ।
मनण मान निदिध्यासन धारे, अपना आतम आप विचारे ।२।
ततपद ईश्वर निर्णय सारा, त्वं पद जीव किया निरधारा ।
वाच्यार्थ त्याग लक्ष्यार्थ जाने, निज अधिष्ठाना निश्चय आने।३।
प्रमेय प्रमाण दो शंशय खोई, असंभावना विपरीत न होई ।
असत्वा अभानापादक दोई, सत संग गुरु मुख खोवे सोई ।४।

(59 of 69)
Favorite Share Flag
रामप्रकाश भजनमाला

हमारे पुस्तक भण्डार में उपलब्ध पुस्तकें VPP द्वारा मंगवाईये

कबीर सा. अनुराग सागर	20)
कबीर शब्दावली नई बड़ी	150)
कबीर ज्ञान गुदड़ी	10)
धरमदास शब्दावली	20)
जनहित वाणी प्रकाश	20)
दादू दयाल शब्दावली	30)
सुन्दरदास वाणी संग्रह	20)
सुखराम वाणी सग्रह	20)
भीकम सिंह भजन	35)
हरीराम वाणी जोधपुर	35)
संत वाणी विलास	30)
पलटू साहेब वाणी भजन	60)
चरणदास की वाणी	60)
गरीबदास वाणी	20)
रेदास जी वाणी	25)
रेदास जीवन चरित्र	40)
दरियावसाहेबवाणीमारवाड़ी	25
बाबा मलूक सा वाणी	25)
मीरा बाई वाणी	25)
मीरा बाई शब्दावली	15)
कबीर साखी संग्रह	40)
देव प्रकाश वाणी संग्रह	15)
अचलराम भजन प्रकाश	35)
राजा मानपद संग्रह 3 भाग	120)
गोरख मन्त्र तंत्र साधना	30)
गोरख मच्छेद वाणी	10)
परमानन्द भारती शास्त्र	35)
चेतन भारती शास्त्र	25)
कल्याण भारती शास्त्र	60)
कबीर वाणी संग्रह नई	20)
कबीर भजनामृत	20)
कबीर सन्तोष बोध	80)
कबीर मन्सूर बड़ा	300)
कबीर सागर बड़ा	400)
मारवाड़ी वाणी प्रकाश	15)
आत्म ज्ञान दर्पण	20)
आत्म विवेक	20)
जीवादास वाणी संग्रह	20)
ब्रह्मज्ञान वाणी प्रकाश	25)
नवलराम वाणी भजन	35)
गोगा चरित्र हिन्दी	50)
पाबूजी का जीवन चरित्र	25)
सिद्ध मानस तन्त्रम्	20)
गोरख महापुराण बड़ा	75)
शंकरदास भजन वाणी	25)
रणजीत वाणी प्रकाश	15)

पता - श्री सरस्वती प्रकाशन, सैन्ट्रल बैंक के पीछे,

चूड़ी बाजार, अजमेर

Scanned with CamScanner

आचार्य पीठ सायं समय की नित्य आरती

निशिदिन संत परम पद जोई, आरती करे सो केवल होई।टेर॥
पहली आरती सतगुरु सेवा, तन मन भेंट धरूं सिर देवा।
दूजी आरती रसना गाया, जल पलटाय अमी रस पाया॥१॥ निशिदिन...
तीजी आरती कण्ठ में वासा, भ्रम कर्म व्यापे नहीं आसा।
चौथी आरती ह्रदय हुलासा, रेण मिटी हुआ प्रकाशा॥२॥ निशिदिन...
पांचवी आरती नाभि गुंजासा, अष्ट कली पर भंवर विलासा।
छट्ठी आरती पश्चिम दिशा मूं, दे परिक्रमा शीश नमासूं॥३॥ निशिदिन...
सातवीं आरती त्रिकुटी में वासा, झिलमिल ज्योति हुआ प्रकाशा।
आठवीं आरती गगन घुराणा, अमी वर्षाय स्नान कराणा॥४॥ निशिदिन...
नवमीं आरती नौ दरवाजा, खिड़की बन्द करे सांई राजा।
दशमी आरती दशवें द्वारे, अरस परस मिले राम पियारे॥५॥ निशिदिन...
ग्यारहवीं आरती परम प्रकाशा, रूप वर्ण बिन नाम निराशा।
बारहवीं आरती ब्रह्म विलासा, संत (कह) हरिराम निर्भय घर वासा॥६॥ निशिदिन...

मन पवना पहुंचे नहीं, सुरता करत हुलास।
हरिराम कर वन्दना, ब्रह्म ज्योति प्रकाश॥१॥

अनन्त श्री रामजी महाराज की जय। चार सम्प्रदाय बावन द्वारा की जय। चार धाम सप्तपुरी की जय।
अनन्त श्री स्वामी रामानन्दाचार्य भगवान् की जय। सर्वश्री स्वामी अग्रदासजी महाराज की जय।
अनन्त श्री स्वामी नाभादासजी महाराज की जय। श्री स्वामी सन्तदासजी महाराज की जय।
श्री स्वामी हरिरामजी महाराज की जय। श्री स्वामी जीयारामजी महाराज की जय।
श्री स्वामी सुखरामजी महाराज की जय। श्री स्वामी अचलरामजी महाराज की जय।
श्री स्वामी उत्तमरामजी महाराज की जय। जागती ज्योति स्वामी रामप्रकाशाचार्य जी महाराज की जय।
अनन्त सन्त महात्माओं की जय। सद्गुरु महाराज की जय।

श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारूणम्। नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारूणम्। कन्दर्प अगणित अमित छवि नव नील नीरज सुन्दरम्। पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुता वरम्। भजु दीनबन्धु दिनेश दानव दैत्यवंश निकन्दनम्। रघुनन्द आनन्द कन्द कौशल चन्द दशरथ नन्दनम्। सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अंग विभूषणम्। आजानुभुज शर चाप धर संग्रामजित खर दूषणम्। इति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि मन रंजनम्। मम हृदयकंज निवास कुरु कामादि खल दल गंजनम्।

"जब प्राणायाम के समय योगी प्रथम इड़ा द्वार से प्राणवायु का पूरक करता है पश्चात् यथाशक्ति कुम्भक करके पिंगला द्वार से रेचक करता है फिर पिंगला से पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक करता है तदनन्तर इड़ा द्वार से रेचक करता है इस प्रकार प्राणायाम करने से चन्द्रमा रूप इड़ा और सूर्य रूप पिंगला की ऐक्यता होने से सुषुम्ना की धारा बहती है। तिस सुषुम्ना के द्वारा योगी भ्रू (भ्रकुटी) के मध्य †ज्योतिर्लिङ्ग का सदा ध्यान तथा दर्शन करता है। ये ही हठ योग का सिद्धान्त है। और नाड़ी शुद्धि मुद्राभ्यास कुण्डलिनी बोध षट् चक्र भेदन इत्यादि हठ योग के अवान्तर भेद योगशास्त्र में कहे हैं।

---

* देहे मध्ये ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना सूर्य रूपिणी पूर्ण चन्द्राभा वर्तते।
सा तु मूला धारा दारभ्यब्रह्मरंध्र गामिनी भवति। इति श्रुतिः॥
(आद्वयतार उ०)

† ज्योतिर्लिङ्ग भ्रुवोर्मध्य नित्यंध्यायेत्सदायंतिः। इति श्रुतिः।

प्रश्न—हठ योग करने से क्या फल होता है।

उ०—जब सूर्य चन्द्रमा की एकतारूप हठयोग की सिद्धि होती है, तब सर्व दोषाकार हृदय की समस्त जड़ता नष्ट होजाती है। ऐसा योग बीजक्‌ में लिखा है। अर्थात् मल विक्षेप दूर हो जाता है।

इति हठयोग।

ॐ प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म
एतरेयोपनिषद् ५/३
ऋग्वेद
श्री वैष्णव गूदड़ परम्परा दर्शन
ॐ अहंब्रह्मास्मि ब्रह्म
वृहद.उ./१/४/१०
यजुर्वेद
समर्थ श्री स्वामी सुखरामजी
समर्थ श्री स्वामी अचलरामजी
समर्थ श्री स्वामी उत्तमरामजी
समर्थ श्री स्वामी रामप्रकाशजी
ॐ तत्वमशि ब्रह्म
छान्दोग्य उ./६/८/७
सामवेद
श्री उत्तम आश्रम (आचार्यपीठ) दर्शन
ॐ अयमात्मानन्द ब्रह्म
मांडूक्योपनिषद् /२

'उत्तमराम' अवधूत फकर सो,
अपणे आप को जोवणा है जी ॥२७॥

जर रु जोरू से चित्त न जोड़ते,
तोड़ दीवी मोह सङ्गल है जी।
मौज पड़े तहां मौजी ही विचरत,
नगर शिला गृह जङ्गल है जी ॥
दुतिया दोष मिट्यो मन मांहिलो,
भागी भ्रम की अङ्गल है जी।
'उत्तमराम' अवधूत फकर सो,
जहं तहं आनन्द मङ्गल है जी ॥२८॥

अर्ध रु उर्ध के बीच में खेलते,
मन पवन का घोड़िया है जी।
ज्ञान रु ध्यान को चौकड़ो चाढ़िके,
शील सजाई सब्ज जोड़िया है जी ॥

शशि रु सूर दो पागड़ा प्रेम का,
त्रिवेणी ऊपर दौड़िया है जी।
'उत्तमराम' अवधूत फकर सों,
मन को मार मरोड़िया है जी ॥२९॥

भेद वाणी सब त्याग कीयो वर,
गुरू वाक्य सत मानिया है जी।

Scanned with Cam

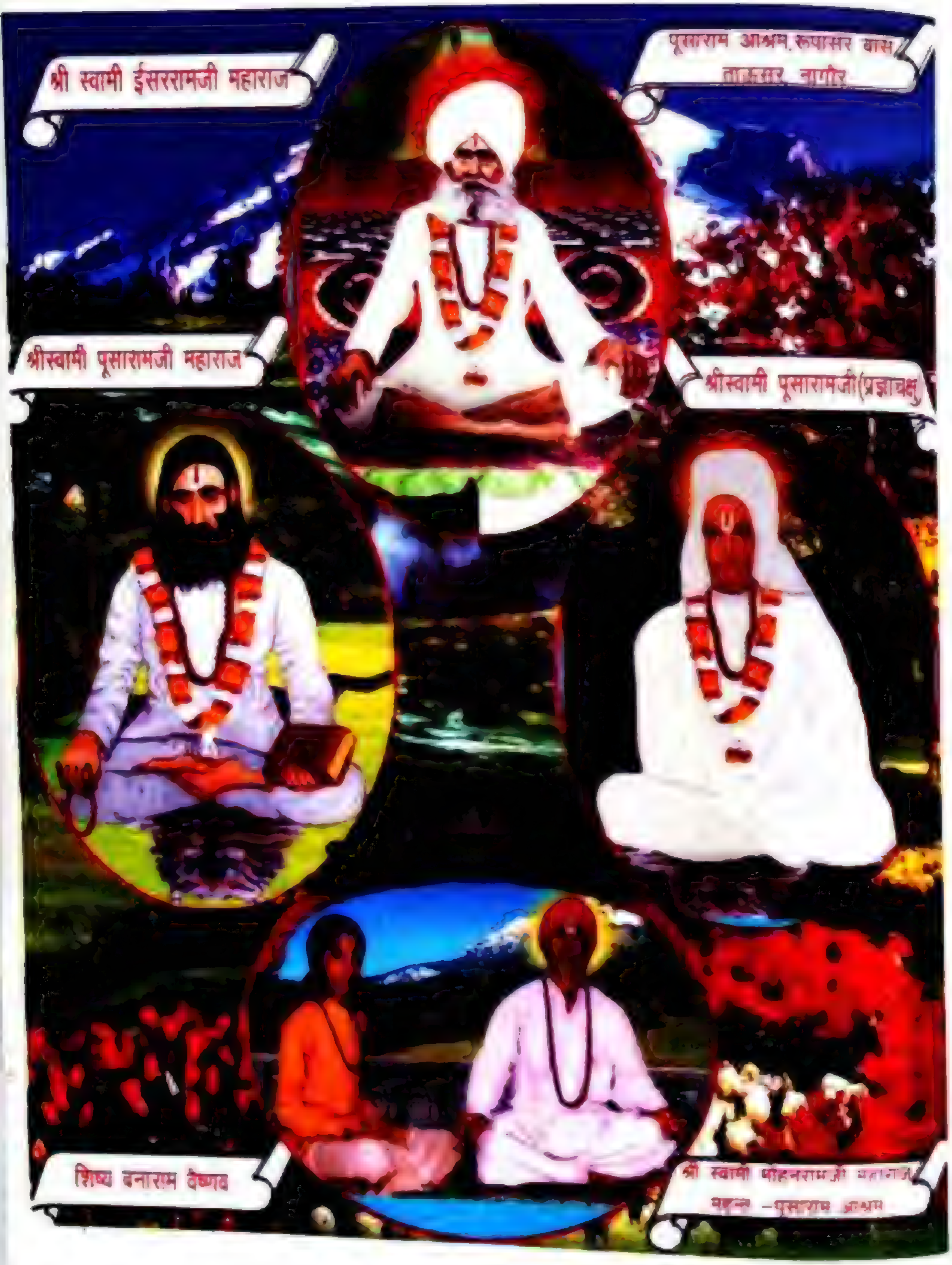
श्री स्वामी ईसररामजी महाराज
पूसाराम आश्रम रूपासर बास
नागौर
श्रीस्वामी पूसारामजी महाराज
श्रीस्वामी पूसारामजी (प्रज्ञाचक्षु
शिष्य बनाराम वैष्णव
श्री स्वामी

ओ३म् सोहम् राम जप तीनों,
गुरू गम मुक्ति पद को चीनो ॥१५॥
नाना संशय काम भ्रम मूरा,
डार टार कर चित ते दूरा।
रञ्चक भेद न विस्मत होऊ,
राम ओ३म् सों एक, न दोऊ ॥१६॥
'अमर पट्टा' निर्भय निर्वाणी,
मिटे चोरासी चारो खाणी।
'अमर पट्टा' से राखे हेता,
ताको यम दगा नहिं देता ॥१७॥
हंसा पकड़े सत का डोरा,
तब यम करे नहिं कुछ तोरा।
सोहं सुरती तार मिलावो,
त्रिवेणी तख्त में ध्यान लगावो ॥१८॥
इडा पिङ्गला सुषमरण सोजो,
ओम सोहं संग स्वासा खोजो।
स्वासा सुमिरण ध्यान लगावो,
सहजे दर्शन ब्रह्म मिल जावो ॥१९॥
अब हंसा आवे ना जावे,
अगम देश में उलट समावे।
यथा साधना प्रकट सुनाई,
भव का भय व्यापे ना कोई ॥२०॥

Scanned with Cam

17:15
archive.org/details/202004
INTERNET ARCHIVE

इड़ा पिङ्गला सुषमरण सोधी,
सुरत शब्द तीनो में बाँधी ।
पांचो मिल एकता पाई,
सत नाम की फिरी दुहाई ॥२५॥

Scanned with Cam

नाभि कँवल में लागो डोरी,
स्वासा सुरत चढी तब मोरी ।
गुरू प्रसाद खुली उर ताड़ी,
सुरती पकड़ त्रिकूटी चाड़ी ॥२६॥
पूरक कुम्भक रेचक भीना,
प्राणायाम युक्ति सब चीना ।
त्रिवेणी कँवल में ज्योति जागी,
दर्शण होते दुर्मति भागी ॥२७॥
सत देश का दर्शण पाया,
उज्वल हंसा निर्मल थाया ।
सत नाम की डोरी झेली,
हंसा खेलत निर्भय हेली ॥२८॥
'अमर पट्टा' कस कमर बाधा,
अगम देश का मार्ग लाधा ।
यासे हंस चल्यो जब आगो,
अगम देश के रस्ते लागो ॥२९॥
अगम देश का रस्ता आदू,
निगम देश में पहूंचे सादू ।
गगन मण्डल का मार्ग बंका,
वहां भी जाय लगाया डंका ॥३०॥
गगन मण्डल में निर्भय यूगा,
सुन में भानू असंख्य ऊगा ।

(४१)
Favorite Share Flag
अवधत ज्ञान चिंतामणि

तामे लख चौरासी प्रधाना,
सिद्ध, पदमासन मुख्य बखाना ।।४।।

ता पीछे षट् क्रिया ठाना,
धोति, बस्ती, नेति गाना ।
त्राटक, नौलि, कपाल सु-भाति,
षट् कर्म साधन कर दिन राती ।।५।।

फिर कर साधन चतुर्थ पूरा,
प्राणायाम गुरू मुख शूरा ।
इडा पिङ्गला सुषुमण नाड़ी,
श्वास प्रश्वास की देखो बाड़ी ।।६।।

मन्त्र योग पूरक मन ठाना,
तामे मूल सु बन्ध लगाना ।
खेचरि मुख में करत बखाना,
ब्रह्म रंध्र धोय जिभ्या उलटाना ।।७।।

भूचरि नासा प्राण-अपाना,
चंचल मन ठहराय जपाना ।
करि उड्डियान बन्ध परवाना,
कुम्भक अष्ठ शीतली जाना ।।८।।

सूर्य भेदन, उजाई, सितकारी,
भस्त्रिका, भ्रामरि, मुर्छाधारी ।

Scanned with Cam

अष्ठ प्लाविनि कुम्भक जाना,
चोंचरी मुद्रा नैंन ठिकाना ॥६॥
मुद्रा अगोचरी श्रवण द्वारा,
ज्ञान सुरत मिले सुख धारा।
आगे बन्ध जालन्धर ठाना,
पंचम मुद्रा उन्मुनि ध्याना ॥१०॥

रेचक करके साधन श्वासा,
निश्चय होय काट मन आशा।
प्राणायाम चक्र षट् साधे,
माग मुक्ति का तब ही लाधे ॥११॥

मूलाधार मूल रंग लाला,
चव दल अक्षर, गणपति, भाला।
स्वाधिष्ठान, उपस्थ, अज, पीला,
दश (षट्) दल वर्ण बहु विधि लीला ॥१२॥
मणिपूर, विष्णु, नाभि वासा,
दश (षट्) दल वर्ण हरीया जासा।
अनाहत, हृदय, शिव, रंग स्वेसा,
द्वादश दल में वर्ण महा भेसा ॥१३॥

विशुद्ध, कण्ठ सु चन्द्र देवा,
शोसन रंग शोड़ष दल भेवा।

Scanned with Cam

आज्ञा चक्र त्रिकूटी जाना,
सूरज तेज बोय बल माना ॥१४॥

सहस्र दल भँवर गुफा पहिचाना,
सत्य वेधाऽक्षर आवन भाना।
मूल में षट् शत श्वासा माना,
इतर सहस्र षट्, इक जप ठाना ॥१५॥

कर आसन पश्चिमोत्थाना,
नाभी नागिन का मुख पलटाना।
उलटा पवन त्रिकूटी सीधो,
दशवां चढो सुमेरू बींधो ॥१६॥

कर 'प्रत्याहार' साधन लख पूरा,
पंचम आचार शुद्धि संत शूरा।
वर लययोग 'धारणा' धारो,
षष्टम साधन कर सुविचारो ॥१७॥

सच्चिदानन्द 'ध्यान' सत माना,
सप्तम साधन है निरवाना।
ऋद्धि सिद्धि काटे सब फन्दा,
परम वैरागी पहूँचे बन्दा ॥१८॥

अष्टम 'समाधि' दोय प्रकारा,
निरविकल्प रू संकल्प धारा।

Scanned with Cam

भजन (४२) राग छन्द भैरवी पद ।

मन मगन भया गुणगाय के, वे मस्त फकर की फेरी ।टेर।
इड़ा पिंगला सुषुमण धारा,स्वासा संग में सुरति विचारा ।
गुरू का शब्द हृदय ला प्यारा,सब दुर्मति विकार नशायके ।
निज निर्गुण माला हेरी ।१।त्रिकूटी महल में ज्योतिजागी ।
दर्शन करके दुविधा भागी, रणंकार की चोकी लागी ।
सब घट में रही गरणाय के, दश बाजा अनुभव भेरी ।२।
सुरत शब्द पवना संग पूगा, सुन महल में सूरज ऊगा ।
कोटि भानु सम उज्वल मूंगा, सब देव बिराजे आय के ।
नहीं पाव पलक की देरी।३। 'रामप्रकाश' लखया तत सोई ।
अजर अमर गुणराशी वोई, अपना आप और नहीं कोई ।
निज 'रामप्रकाश' लखाय के, सब मिट गई मेरी तेरी ।४।

भजन (४३) राग पद संगीत गाने का हरजस

नर भजले सिरजणहार, थोड़ी ऊमर में ।टेर।
बीतो स्वासा की नहि कछु आशा, भूलो मत करतार ।१।
यम दम जावे फेर न आवे, नहीं जीना एक सुमार ।२।
मात पिता धन कुल बन्धु न्याती, सब ही रहसी लार ।३।
राम नाम धन साथी तेरा, तूं लोक परलोक सुधार ।४।
काया माया का नहीं भरोसा, क्षण में होवे छार ।५।
'रामप्रकाश' मुक्ति मन पावे, गुरू शरणे निस्तार ।६।

Scanned with Cam

श्वासा सांग अनूप सुहाया, संतदास गूदड़ की माया।
कण्ठी सुमिरण रहनी चादर, श्रध्दा पाटी प्रतीति आदर ।७।
ब्रह्म अंचला धारे अवधूता, शिवविभूति ब्रह्म अनुभूता ।८।
कफनी मर्यादा पालन करनी, सुत संतोष भेष श्रम जरनी ।
जाप जांघियाँ लज्जा कर्ण कुण्डल, प्रेम पूजा यश तर्पण मुदग्ल
निर्भय नगरहै मठ निराशा,भोजन भाव जीव अविनाशा।९।
शर्त निर्लेप मोरछल लाया, द्वेष हीन जंग डोरा भाया ।
गुण उडयनि स्वाँग सुहाया,अनाहत नादशृंगी नाद बजाया१०
हरि भक्ति मृगछाला प्यारी, गुरू पुत्र पहने सो ब्रह्मचारी ।
त्रिगुण चकमक भाव भोजना,परम अमृतपेय परम योजना११
पात्र अपात्र विचार फरूहा,बहुगुणी तूम्बा कमण्डल किस्तूहा
गुरूज्ञान का दीपक पाया,ऋद्धि भण्डार स्थिरता माया ।१२
अमरत्व दण्ड रू धैर्य कुदाली, तप खड्ग तत्व कर झाली ।
वशीकार वैरागण टेका, समद्रष्टी चौगान विवेका ।१३।
मन का घोड़ा विरक्ति का जीना, प्राणायाम पोलो में दीना
इडा पिंगला पागड़े फेरा, ईश्वर नाम कँवल से घेरा ।१४।
सुषुमन से आ डेरा दीया, सीतल साधन भीतर लीया ।
अभरा सभरा सतसंत गाया,जीवत ओढ्या मूं आ बिछाया १५
तत्व जोड़ा वेश बनाया, निर्गुण ढाल बल बाण सजाया ।
शम दम फर बाणों के लागा,बोद्ध ऋषि संयम शस्त्र जागा १६

Scanned with Cam

४ प्राणायाम

चौथा प्राणायाम है समझ देख मन माहिं।
प्राण अपान मिलाप से तन्मयता चित लाहिं ॥

विधि से श्वास चढ़ाने को योगी जन पूरक कहते हैं।
नियम पूर्वक ठहराने को ज्ञानी कुम्भक कहते हैं ॥
रेचक है नाम त्यागने का यह श्वास २ में होते हैं।
पर सत्गुरु भेद बतावे तब ही ज्ञात यथा विधि होते हैं ॥
पूरक कुम्भक अरु रेचक इनके आठ भेद योगी कहते ॥
इनके साधक हैं सदा सुखी वह नहीं रोग का दुःख सहते ॥
सम गति से श्वास चले तब ही साधक को दुःख दर्शाता है।
कोमल भक्षी एकान्त निवासी ही इसका फल पाता है ॥
नाभि कमल सोशि खर लोक तक जो अन निश दिन रमता है।
'अमृत' फल वोही पाता है. "शंकर" जिस घट में समता है ॥

यम, नियम और आसन की भाँति प्राणायाम भी योग का बाह्य अंग ही है। प्राचीन पुस्तकों में चाहे जैसा इसका

रूप और क्रिया लिखी हो, परन्तु मैंने जैसा अपने अनुभव से जाना समझा और माना है वह इस प्रकार है।

प्राण और अपान को सम गति करके इनको मिश्रित करके इनके द्वारा बनी हुई वायु अर्थात् श्वास को मेरु दण्ड स्थित सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा शिखर में पहुंचाना, वहाँ कुछ विश्राम करना और त्रिकुटी मार्ग से तीन चक्र (आज्ञा विशुद्ध और अनाहत) का भेदन करके नाभि स्थित मणि पूरक चक्र में पहुंचा कर थोड़ा विश्राम लेना। इस प्रकार ब्रह्मनाड़ी (सुषुम्ना) रूपी माला के आधार पर श्वास की गति को आश्रित रखना, इसमें वृत्ति लवलीन करना अर्थात् बहिर्मुख वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाना और अपने स्वरूप (आत्म स्वरूप) को खोजना। बस यही है प्राणायाम का मुख्य रूप, सिद्धान्त और लाभ।

शारीरिक अवस्था को साम्य रूप में रखने के अर्थ यदि श्वास की गति को सम, विषम बनाने की आवश्यकता जान पड़े तो उस काल के अर्थ योगी मनुष्यों ने अपने अनुभव से विशेष प्रकार के प्राणायाम का आश्रय लेने का आदेश किया है। अब भी यह क्रिया काम में लाई जाती है। इन्हें कुम्भक कहते हैं। कुम्भक आठ प्रकार के होते हैं।

कुम्भक अष्ट प्रकार के, प्राण वायु का ध्यान।
तिनमें 'केवल' श्रेष्ठ है, "अमृत" की पहिचान॥

कुम्भक आठ प्रकार के होते हैं:—

सूर्य बेधन, ऊजाई, शीतकार, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवल। इनमें 'केवल' कुम्भक सर्व श्रेष्ठ है।

प्रथम सूर्य बेधन

सूर्य बेधन प्रथम कुम्भक है भेद कहूँ।
सुख आसन लाय इसे करते जो सन्त हैं॥
सूर्य मार्ग द्वारा जो शनैः २ खींच श्वास।
चन्द्र पथ होकर जो त्यागे गुण वन्त हैं॥
उदर के रोग सभी दूर होय निश्चय ही।
वायु होय शुद्ध इससे पाते सत्यपन्थ हैं॥
सतगुरु से प्रेम होय निश दिन निरोग रहे।
'अमृत' की शिक्षा सुन शङ्कर अनन्त हैं॥

सूर्य बेधन कुम्भक सुख आसन से करना चाहिए। सुख पूर्वक बैठ कर दाहिनी नासिका से धीरे २ स्वास खींचे और वाम नासिका से त्याग करदे। इस क्रिया के करने से वायु शुद्ध होता है और उदर (पेट) के रोग दूर हो जाते हैं। गर्मी बढ़ती है, दुग्ध का सेवन करना चाहिए।

(२)
ऊजाई
कुम्भक

ऊजाई कुम्भक के रूप लाभ सुनो सन्त,
तज कर अभिमान भेद सतगुरु से पाइये।
दोनों स्वर द्वारा भर प्राण को पेट माहि,
कण्ठन में रोक कुछ काल त्याग दीजिए।

इस प्रकार करने से वृत्ति शुद्ध होती है,
श्वास रोग नाशें इससे स्वास्थ्य लाभ लीजिए।
निद्रा को जीते तब "अमृत" आनन्द मिले,
'शंकर' सत शिक्षा को निश्चय कर मानिये ॥

अर्थः—साधारण रूप से बैठ कर दोनों नासिका से श्वास को पेट में भर कर कुछ काल कण्ठ में रोके रहे, फिर धीरे २ त्यागदे। ऐसा करने से श्वास रोग दमा, गुल्म, क्षय आदि मिटते हैं। वृत्ति में शान्ति आती है। योगी को यथा सम्भव निद्रा जीत होना चाहिए।

(३)
शीतकार
कुम्भक

शीतकार कुम्भक सुखदायक शरीर को है,
सतगुरु से शिक्षा ले भली भाँति कीजिए।
दोनों स्वर रोक ओष्ट जिह्वा से खींच वायु
रोके कुछ काल शनैः २ त्याग दीजिये।
होता अधिकार क्षुधा तृषा आदि व्याधिन पर
नाशें ज्वर रोग सुख सुन्दरता लीजिए।
सुख आसन लाय मन गुरु के चरणों लगाय,
व्यापे विष नाहिं सदा 'अमृत' रस पीजिए॥

अर्थः—दोनों नासिका बन्द करके ओठ और जीभ के द्वारा धीरे २ वायु का पान करे और फिर नासिका से त्याग दे। इस प्रकार करने से ज्वर रोग चाहे जैसा हो वह दूर हो जाता है वृद्धावस्था की निर्बलता मिटती है, मुख पर कान्ति आती है।

20:32 Vo)) LTE1

(४) शीतली कुम्भक

शीतली कुम्भक लाय जीभ तालु में लगाय,
शनैः २ प्राणवायु पीवे सुख होवेगा।
घ्राण द्वारा होय त्यागे तिल्ली, ताप दूर भागे,
गोला आदि रोगन को मूल सहित खोवेगा।
वृद्धता न आवे श्वेत बाल कभी होय नहीं,
क्षुधा तृषा आदिन से सुखी होय सोवेगा।
गुरुवर की शिक्षा से युक्ति को जान लेय,
'अमृत' बखाने 'शंकर' दुखी नहीं होवेगा॥

अर्थः—दोनों नासिका बन्द करके जीभ को तालु में लगा कर धीरे २ वायु का पान करे फिर दोनों नासों से त्याग दो इस प्रकार करने से तिल्ली ताप, गोला आदि उदर रोग नष्ट होते हैं। क्षुधा, तृषा पर वस होता है, काले बाल श्वेत नहीं होते, वृद्धता नही आती। यह कुम्भक भी शीतल है। ग्रीष्म काल में करो।

(५) भस्त्रिका कुम्भक

भस्त्रिका कुम्भक पद्म आसन लगाय करे,
राखे मुख बन्द श्वास घ्राण से चढ़ाइये।
पिंगल से पूरक कर त्याग देय इड़ा द्वार,
वार २ ऐसे अभ्यास को बढाइये।

पित्त और कफ के सब रोग दूर होय यासे,
कुण्डलनी शक्ति माहिं चेतनता पाइये।
वीर्य को बढ़ावे वृत्ति सुन्दर बनाय देत,
'अमृत' चैतन्य होय 'शंकर' सत् मानिये॥

अर्थः—इस कुम्भक को पद्मासन लगा कर करना चाहिए। मुख बन्द कर के दाहिने स्वर से श्वास को खींचे और अल्प काल तक रोक रखे फिर वाम स्वर से त्याग दे। इस प्रकार बारम्बार करने से पित्त, कफ और वायु के रोग दूर होते हैं। कुण्डलनी शक्ति चैतन्य होने लगती है, वीर्य की वृद्धि होती है वृत्ति में शान्ति आती है। यह कुम्भक सम शीतोष्ण है चाहे जिस ऋतु में किया जा सकता है।

20:33

(६) भ्रामरी कुम्भक

भ्रामरी कुम्भक सिद्ध आसन से सिद्ध होय,
करते जो योगी जन निश्चलता लायके।
उभय प्राण द्वारन से वेग सहित खींच श्वास,
भृङ्ग के समान भौं भौं शब्द को उठाय के।
रोके कुछ काल त्रिकुटि माहिं शनैः २ त्यागे,
होवे मन शान्त स्वाद अमृत का पाय के।
योगिन को प्यारा है सुख देन हारा है,
'शंकर' भृकुटी में देख नयन को जमाय के।

अर्थः—यह कुम्भक सिद्धासन से होता है। दोनों नासिका से श्वास खींचे, भौंरे के समान भों भों शब्द करता रहे और त्रिकुटि में अल्प काल तक रोक कर नासिका से त्याग दे। इस से मन में शान्ति आती है; अमृतास्वादन प्राप्त होता है। इस क्रिया के समय नेत्रों को भृकुटी में स्थिर करना चाहिये। यह क्रिया योगियों को प्रिय और सुख देने वाली है।

(८) मूर्च्छा कुम्भक

मूर्च्छा कुम्भक को निर्जन में शान्त होय,
सुख से आसन लगाय योग रङ्ग राते हैं।
वेग सहित खींच श्वास कण्ठ तले कर निवास
बार २ खींचे अरु त्यागे सुख पाते हैं।
होता अधिकार दशों पवनों पर इसके बल,
काया निरोग काम क्रोध थक जाते हैं।
बङ्क नाल पावे शिखर लोक के कपाट खुलें,
अमृत निज रूप मिले लौट नहीं आते हैं।

अर्थः—मूर्च्छा कुम्भक एकान्त स्थान में सुख आसन से बैठ कर करना चाहिये। वेग पूर्वक दोनों नासिका से श्वास को खींच कर कण्ठ के नीचे रोके और कुछ काल में नासिका द्वारा ही वेग से त्याग दे। ऐसा बार बार करता रहे। इससे दशों पवनों पर अधिकार होता है, बङ्क नाल का मार्ग सुगम हो जाता है और अमर गुफा का द्वार

घुल जाता है। इससे अपने रूप को पहिचानने की शक्ति प्राप्त होती है।

(८) केवल कुम्भक

केवल सब कुम्भन में उत्तम सुखदायक है,
पूर्ण ब्रह्मचर्य धार इस को जो करता है।
नाभि शिखर बीच प्राण वायु माहिं तन्मय हो,
ध्यान धर स्वयंभू का नयन प्राण धरता है।
तज कर सब आशा 'सोहं सोहं' का जाप करे,
सतगुरु के शरण मेरु दण्ड पथ विचरता है।
खान-पान वाणी अरु आसन दृढ़ धार लेय,
अमर लोक पावे 'अमृत' जीवन सुधरता है।

अर्थ:—केवल कुम्भक समस्त कुम्भकों में श्रेष्ठ है और सुखदायक है। जो मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करके, नेत्रों को नासिका के अग्रभाग पर स्थिर किये हुए, मेरु दण्ड के द्वारा सम गति से श्वास लेते हुए 'सोहं सोहं' ऐसा जप करता हुआ आत्म रूप का ध्यान करने में तन्मय हो जाता है वह जीवन मुक्ति का आनन्द प्राप्त कर लेता है। परन्तु खान पान और वाणी जब तक पवित्र नहीं होते और आसन दृढ़ नहीं होता तब तक आत्मानन्द नहीं मिल सकता। यह सर्वदा स्मरण रखने की बात है। इस क्रिया के लिये कोई समय या अवधि नियत नहीं है। इस के लिये संतत् प्रयत्न करते रहो तभी तो दीर्घ काल से बहिर्मुख हुई वृत्ति अन्तर मुखी बन सकेगी।

इन आठ कुम्भकों के अतिरिक्त एक और भी कुम्भक है, इसका नाम 'प्लावनी' है।

(१) महाबन्ध

प्राण वायु हृदय में धार गौमुख लगा,
महा बन्ध करने को उर्द्ध धावे।
त्रिकुटी में ध्यान धर चिवुक को हृदय पर,
सूर्य अरु चन्द्र सम आय जावें।
क्षुधा हो तीव्र अरु वृत्ति में शान्ति हो,
भृकुटी के माहिं आनन्द पावे।
काम के वेग को रोकवे सन्त जन,
'नाथ अमृत' यही भेद गावे।

अर्थः—गौमुख आसन लगा कर प्राण वायु को हृदय में स्थिर करे। फिर शिखर की ओर खींच कर विश्राम लेवे। नेत्र त्रिकुटी स्थान पर स्थिर करे, ठोडी को कण्ठ के खड्डे में जमाले। रेचक के समय दोनों नासा रंध्र से वायु का त्याग करे। इस बन्ध के करने से क्षुधा तीव्र होती है, काम का वेग रुकता है और वृत्ति में शान्ति आती है।

(२) मूलबन्ध

मूल के बन्ध में सिद्धि आसन लगा,
गुदा की वायु को नाभि लाओ।

मिला कर प्राण को रोक कुछ काल तक,
नाद अरु विन्दु को एक पाओ।
त्याग सङ्कोच जब बारही बार हो,
युवा हो वृद्ध हो भ्रम कोट ढहाओ।
आयु की वृद्धि हो जठर की शुद्धि हो,
'नाथ अमृत' कहे भेद पावो।

अर्थः—मूल बन्ध सिद्धासन से होता है। अपान और प्राण वायु को खींच कर नाभि स्थान में एकत्र करो कुछ * काल तक रोके रहो फिर त्याग दो। इस प्रकार चिरकाल तक करने से वृद्धावस्था मिटती है. सोहं शब्द भली भांति सुनाई देता है, जठराग्नि शुद्ध होती है, शिखर में से श्रवने वाला अमृत प्राप्त होता है वीर्य की वृद्धि होती है और शान्ति प्राप्त होती है तथा नाद और विन्दु का तत्व समझ में आता है।

(३) जलन्धर बन्ध

कण्ठ के चक्र में जलन्धर बन्ध हो,
अधो अरु ऊर्ध्व की वायु लावे।
उदर के माहिं मथ वेग से त्याग दे,
चिवुक पर लाय रसना लगावे।

---

* यहां भी कुछ काल शब्द आवे समझो कि उतनी देर जितनी में श्वास छुटे नहीं।

उदर से हृदय में हृदय से कण्ठ में,
इसी विधि ब्रह्म के पन्थ धावे।
"नाथ अमृत" नहीं जन्म अरु मरण हो,
गुरु की शरण में भेद पावे।

अर्थ:—प्राण और अपान वायु को खींच कर कण्ठ में मिलावे फिर पेट में लेजाकर मन्थन करे, विलोवे, नासिका द्वारा त्याग दे। इस क्रिया में जिह्वा को ठोडी पर लगावे और पद्मासन से बैठे। इस प्रकार उदर से हृदय में और हृदय से कण्ठ में मन्थन करे और त्यागता रहे इससे षट चक्र वेधने की युक्ति प्राप्त होती है।

(४) उड्यान बन्ध

बन्ध उड्यान लग जाय जब साधु के,
मुक्ति हो प्राप्त अरु भेद नाशे।
* दमन कर इन्द्रियां वासना त्याग कर
शिखर अरु नाभि रम श्वास श्वासे।
नयन को नासिका लाय लवलीन हो,
पिण्ड ब्रह्माण्ड सब एक भासे।
"नाथ अमृत" कहे आप ही आप है,
भेद कुछ ना रहे द्वन्द नाशे।

---

* योग के प्राचीन ग्रन्थ और वर्तमान के कुछ योगियों का मत है कि इन्द्रिय द्वारों को बन्द करना चाहिये, परन्तु मैं इस मत के विरुद्ध हूँ।

अर्थ:—उड्यान बन्ध सुख आसन से करे। इन्द्रियों को भली भाँति दमन करे, वासना का त्याग करे, दोनों नेत्रों को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर रखे हुए नाभि से शिखर तक श्वास की गति में मेरु दण्ड मार्ग से तन्मयता प्राप्त करे इससे पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड (विश्व) का रूप एक दिखाई देने लगता है। अपने स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है और द्वन्द का नाश होकर अखण्ड शान्ति प्राप्त होती है।

कुण्डलनी अङ्ग

मूल कमल के मध्य हैं, कुण्डलनीं का स्थान।
तीन अर्द्ध-चक्राकृती जानो सूक्ष्म अपान ॥१॥
शक्ति सर्प आकार की किया अधोमुख रूप।
सूक्ष्म ज्ञान मय सुरति को भसा अन्ध मुख कूप ॥२॥
तहां वृत्ति लव लीन कर, ध्यान करे नर कोय।
कुण्डल खुले अपान का मिले प्राण में सोय ॥३॥
जागृत होय सुवृत्तियां, सोहं को ले साथ।
मेरु दण्ड पथ सुषुम्ना संग चले दिन रात ॥४॥
है कुण्डलनी जागरण, मेरे अनुभव माहिं।
सोहं सुरति मिलाय के, गगन लोक चढ जाहिं ॥५॥
करत २ अभ्यास के, सुरति शिखर टिक जाय।
ब्रह्म द्वार तब ही खुले, आत्म भवन दरशाय ॥६॥
धार वीरता लग्न से, अन्तः करे प्रवेश।
दर्शन हो निज रूप का, दूर होय भव क्लेश ॥७॥
द्वन्द भाव का नाश हो, गति होवे निर्द्वन्द।
काल, कर्म गुण आदि से, 'अमृत' हो स्वच्छन्द ॥८॥
सदा सर्वदा एक रस, ब्रह्म नाद में लीन।
'अमृत' मद माते रहे, सुन लो सन्त प्रवीन ॥९॥
इस कुण्डलनी भेद को, जाने गुरु-मुखी सन्त।
मेरे अनुभव से कहा, सरल योग का पन्थ ॥१०॥

'अमृतनाथ' वखानते कुण्डलनी का योग।
'शंकर' सत, पथ में रमो, दूर होय भव रोग ॥११॥

सुषुम्ना अंग

(प्रश्न)

नाम सुषुम्ना मैं सुना श्री मुख से बहुबार।
इसका भेद बताइये, गुरु वर शिष्याधार ॥१॥

(उत्तर)

शिष्य शान्त होकर सुनो, कहूँ सुषुम्ना भेद।
जो खोजे उसको मिले, दूर होय भव खेद ॥२॥

नाभि कमल के बीच अनोखा ठाठ है।
सब नाडिन का मूल यही एक घाट है ॥१॥

ऊर्ध्व अधो की ओर चले बहु नाडियाँ।
नाना रूप अनूप बनी हैं झाडियाँ ॥२॥
इन में दश हैं मुख्य दशों ही द्वार की।
लिंग, गुदा, मुख, नेत्र, श्रवण अरु नास की ॥३॥
शिखर मांहि है ब्रह्म द्वार दशवाँ सुनो।
इसका भेद अनूप मेरी शिक्षा गुनो ॥४॥
इन दश में भी तीन मुख्य कर मानिये।
इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना जानिये ॥५॥
वङ्क नाल से वाम इड़ा विधि रूप है।
पिंगल दक्षिण अंग विष्णु अनुरूप है ॥६॥
मध्य सुषुम्ना महा शर्म शिव जानिये।
है तीनों का मेल त्रिवेणी मानिये ॥७॥
मार्ग श्वास का सन्त सुषुम्ना मानिये।
माला के आकार इसे पहिचानिये ॥८॥
सर्व घटों का श्वास इसी में वहत है।
इसको योगी ब्रह्म नाड़ी भी कहत है ॥९॥
इस में सुरति लगाय श्वास रत होइये।
मन निश्चल हो जाय सकल भ्रम खोइये ॥१०॥
शुद्ध होय षट्-चक्र इसी संघर्ष से।
मिलते प्राण अपान इसी के स्पर्श से ॥११॥
सुषुम्ना का है रूप सूक्ष्म अति ही घना।

शुद्ध होय षट्-चक्र इसी संघर्ष से।
मिलते प्राण अपान इसी के स्पर्श से ॥११॥
सुषुम्ना का है रूप सूक्ष्म अति ही घना।
सतगुरु देय दिखाय लखे है संत जना ॥१२॥

यही अधोमुख कूप श्वास की नेज है।
सुरति सुघर पनिहार अनोखा तेज है ॥१३॥
बङ्क नाल से चढ़े गगन की ओर है।
उतरे त्रिकुटी, कण्ठ हृदय की ओर है ॥१४॥
माला के आकार सुषुम्ना रूप है।
नाभि गगन सुमेरु भेद अति गूप है ॥१५॥
रमते हैं जो सन्त इसी घट माल में।
सोऽहं सोऽहं जपते हैं सब काल में ॥१६॥
कोटि भानु सम तेज शिखर में पावते।
अमृतताल अथाह तहां सरसावते ॥१७॥
वहां सदा ऋतु एक खेल निर्द्वन्द है।
रमते सुषुम्ना माहिं मिटे जग फन्द है ॥१८॥
तन का कुछ अभ्यास तनिक रहता नहीं।
सुख दुख व्यापे नहीं रहे समता वहीं ॥१९
केवल अपना रूप अन्य कुछ है नहीं।
तुरिया जागृत माहिं नहीं मैं, तू कहीं ॥२०॥
सुधरे अहार विहार वेग मन का थमे।
जन्म मरण की व्याधि मिटे सुषुमन रमे ॥२१॥
यह सुषुमन का भेद सन्त पूरा लहे।
मूल मिटे सुधि होय, 'नाथ अमृत' कहे ॥२२॥

होता। जो मनुष्य अपने स्वाद के लिये अनेक तरह के शरीरों को मारते काटते हैं वह मूर्ख कभी सुख नहीं पा सकते और उनका पवित्र ज्ञान नष्ट हो जाता है।

अन्न

खावे जो अरु बाजरा, चावल, चना, जुवार।
मूँग, मोठ चोलासु पचे, अमृत का निर्धार ॥१॥
गेहूँ पचता देर में, करता अपच विकार।
उड़द इसी सम जानिये, मकई धान सुधार ॥२॥
साधारण आटा रखे, लेवे करड़ा गूँध।
सम रोटी सेके भली, खाये चित नहीं रूँध ॥३॥

अन्न के विषय में मेरा अनुभव है कि जो, बाजरा, मूँग, मोठ, चोंला मकई, चावल, जुवार सरलता से पचने वाले हैं। गेहूँ और उड़द गरिष्ठ हैं, कठिनाई से पचते हैं, अपच करते हैं। आटा साधारण अर्थात् न ज्यादा महीन हो और न मोटा हो, इसे करड़ा गूँध कर साधारण रोटी बनाकर अच्छी तरह सेंक कर और घृत युक्त करके खाना चाहिये। ऐसा करने से चित प्रसन्न और शरीर निरोग रहता है। देश काल के अनुसार अन्न खाना चाहिये। जिस प्रान्त में जो अन्न अधिकता से उत्पन्न होता है उसे ही खाना अच्छा होता है।

बाजरा गर्म अन्न है चना दस्त साफ लाने वाला तथा मोठ और चोंला वायु को साफ रखने वाले हैं।

20:52

❀ कुण्डलिया ❀

मूल चक्र को शोध कर. नाभि कमल में आय।
कुण्डलनी चैतन्य हो. मेरु दण्ड पथ पाय॥
मेरु दण्ड पथ पाय, शून्य में जाय समाना।
अगम अगोचर खेल, ब्रह्म गढ़ आसन लाना॥
हो सचेत कर लेय, सरल कुण्डली वक्र को।
अमृत नाथ विशुद्ध करो, तुम मूल चक्र को॥१॥

(२)

जन्म मरण दुःख रूप को, मेटन की चित माहिं।
सन्तो है जो भावना, दृढ कर आसन लाहिं॥
दृढ कर आसन लाय, चक्र नाभी में रमना।
अह् निश रत हो श्वाश, जाय अजपा ही जपना॥
नाभि शिखर तक रमे, उसी को मिलता सत्य सुख।
अमृत पद हो प्राप्त, दूर हो जन्म मरण दुख॥२॥

(३

इड़ा पिंगला त्याग दे, सुषुमन नेह लगाय।
श्वाश श्वाश अमृत जपे, त्रिकुटी में मन लाय॥
त्रिकुटी में मन लाय, ज्योति अद्भुत दरशावे।
कोटि भानु सम तेज, ब्रह्म का रूप लखावे॥

दश प्रकार के नाद की, शीघ्र मिलत है शृंखला।
'अमृत' सुषुमन रमे, त्याग कर इड़ा पिंगला॥३॥

(४)

(४)

योग युक्ति बिन ना मिटे, भव सागर का खेद।
कबहूं नहीं पावे कोई, जीव ब्रह्म का भेद॥
जीव ब्रह्म का भेद, योग बिन मिलता नाहीं।
कुण्डलनी मुख बन्द, मूल में खुलता नाहीं॥
बङ्क नाल का पथ सुगम, अमृत होता उसी दिन।
भाव सागर का दुःख, मिटे नहीं योग युक्ति बिन॥४॥

(५)

ज्यों जल और तरंग में, तनिकहु अन्तर नाहिं।
जीव ब्रह्म त्यों एक है, शंकर त्रिकुटि माहिं॥
शंकर त्रिकुटि माहिं, ध्यान धर देखो साधो।
श्वाश माहिं तन्लीन होय आप ही * अवराधो॥
सुधरे आहार विहार, मिले तब योग युक्ति थल।
अमृत होता एक न न्यारी तरंग ज्यों जल॥५॥

(६)

सोवन जागन तत्व की, महा गूढ़ है बात।
जगे साधु शंकर वहाँ, जहँ असाधु की रात॥

---

* आरधना करो।

जहं असाधु की रात वहाँ जागत है साधू।
आप आप में लीन, रहे नहीं तनिक प्रमादू॥
अमृत निश्चय धार शीघ्र विषयन से भागन।
जान लेय जो भेद कहा है सोवन जागन॥६॥

(७)

20:52

(७)

शंकर पाँचों तत्व के, मुख्य २ हैं स्थान।
तिनका मैं वर्णन करूँ, सुनो सन्त धर ध्यान॥
सुनो सन्त धर ध्यान, पाद जंघा लों धरती।
जङ्घ नाभि पर्यन्त स्थान जलका यों कह श्रुति।
नाभि कण्ठ विच अग्नि है, कण्ठ भृकुटि वायुत्व॥
भृकुटि शिखर तक नभ स्थल शंकर पाँचों तत्व॥७॥

(८)

मालु वायु को खींच कर, नाभि कमल में लाय।
इड़ा पिंगला त्याग दे, सुषुमन ध्यान लगाय॥
सुषुमन ध्यान लगाय, नासिका नयन मिलाओ।
आवत आवत श्वाश माहिं, निश दिन मन लाओ॥
कहते 'अमृतनाथ' प्राप्त हो पूर्ण आयु को।
साधन करते सन्त शुद्ध कर मूल वायु को॥८॥

(९)

वीर्य पतन मत होने दे, दृढ कर आसन लाय।
जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तज, तुरिया नेह लगाय॥

तुरिया नेह लगाय, जाप अजपा को जपना।
सदा उदासी रहो, जगत को जानो सपना॥
कच्छप की ज्यों, आत्म भाव में शीघ्र होय रत।
कहते 'अमृत नाथ' करो तुम वीर्य पतन मत॥९॥

20:53

पिण्ड ब्रह्माण्ड में तनिक अन्तर नहीं,
गुरु विना भेद ना मिले भाई।
अगम की ओर चलना दुस्तर महा,
चढी ही भयानक अगत खाई॥
कमल मुख ना खिले, मेरु पथ ना मिले,
ब्रह्म के धाम को नाहिं पाई।
नाथ अमृत कहे, चरण गुरु के गहे,
शीघ्र गुरु चरण में आवे भाई॥

[२]

नाभि में वृत्ति लव लीन कर श्वास में,
डालदो शिखर में सन्त झूला॥
गुरु की दया से लग्न से आपके,
झूल दिन रैन आनन्द फूला।
श्वास के ध्यान में होय लवलीन जब,
जन्म अरु मरण के मिटे शूला॥

"नाथ अमृत" कहे सन्त सत् मानियो,
भेद यह जानियो मुक्ति मूला॥

[३]

20:53

"नाथ अमृत" कहे सन्त सत् मानियो,
भेद यह जानियो मुक्ति मूला ॥

[३]

मूल की वायु को लाय कर नाभि में,
शक्ति मुख उर्द्ध पथ मेरु धाओ ।
शिखर में सहस्र दल कमल मुख जब खिले,
सुधा के ताल विश्राम पाओ ॥
सत गुरु स्थान में ब्रह्म से भेंट कर,
त्रिकुटि बिच होय पुनि नाभि आओ ।
"नाथ अमृत" कहे वृत्ति लवलीन कर,
रैन दिन इसी विधि मुक्ति पावो

[४]

शिखर में सर्वदा चन्द्र षोडस दिये,
उनमनी रूप में गुरु राजे ।
सुधा के ताल में अनामी हंस है,
मुक्ति की अङ्क के माहिं छाजे ॥
काल ज्वालान हीं तिलक माला नहीं,
ज्याव माला नहीं तूर बाजे ।
"नाथ अमृत" सदा एक रस ही रहे,
द्वन्द्व मिट जात है सिंह गाजे ॥

[५]

ब्रह्म के सिन्धु का वार पारा नहीं,

अगम है नीर नहीं भेद पाया।

विष्णु विधि रुद्र से मीन लाखों जहाँ,

बार ही बार गोता लगाया॥

ताहि में करोड़ों बुद बुदे उठंत हैं,

बने अरु मिटे नहीं अन्त आया।

"नाथ अमृत" कहे बुद्धि मन थक रहे,

सत गुरु शब्द बल थाह लाया॥

[६]

तीन अरु पाँच से देह निर्मित भई,

ताहि में फैलिया तिमिर भारा।

आत्मा सत्य, निर्लिप्त, निर्वाण है,

रूप अरु रेख नहीं निर्विकारा॥

अगम का घाट विज्ञान का बाट है,

ब्रह्म का ठाठ नहीं वार पारा।

"नाथ अमृत" सदा सुधा झर लावते,

गुरु मुखी पावते ध्यान धारा॥

❀ चौपाई ❀

जयति गुरो निज तत्व विहारी।
कृपा सिन्धु भव के दुख हारी॥
गुणातीत गुणमय गुण धारी।
विश्व-विमोहक विभु अधिकारी॥
तत्वाधार जनक सब जग के।
हे प्रभु, पावन-पथिक सुमग के॥
द्वन्द्व-रहित निर्मल-सुख दायक।
परम-कारुणिक नियम विधायक॥
निर्गुण सगुण जगत के नायक।
हे ईश्वर, हो मेरे सहायक॥
हे गुरु, तुरिय-तत्व-विहारी।
पूर्ण सुषुम्ना के अधिकारी॥
योगेश्वर निर्गम गम भारी।
मेरु दण्ड पथ शून्य विहारी॥
शक्ति कुण्डली के तुम दोहक।
अटल खेचरी मुद्रा मोहक॥

भाव उन्मनी आतम जोहक।
नित्य शुद्ध बुध विश्व विमोहक॥
प्राण आरती में ❀ दश बतियाँ।
नाद अनाहत × चारों गतियाँ॥
अष्ट कमल दल भूला सोहे।
शून्य शिखर गढ़ मन्दिर मोहे॥
पञ्च तत्व है परम पुजारी।
तीनों गुण सेवक अति भारी॥
षट् चक्रन में सोहं देवा।
शुद्ध ब्रह्म अति सुन्दर सेवा॥
तीन लोक में रूप विराटा।
अति विचित्र गति है विभ्राटा॥
व्यापक अणु २ में तुम देवा।
स्थूल सूक्ष्म कारण के सेवा॥
'अमृत नाथ' मनुज तन धारा।
सुरति निरति ले गगन सिधारा॥
मङ्गल गाते हैं नर नारी।
'शंकर' शुभ गति करो हमारी॥

वायु अपान तहां पर सोहे,
ऊर्द्ध अधोगति प्राण विमोहे।
मणि पूरक को निश दिन दोहे,
दृढ़ आसन शुभ सिद्ध जमाऊँ ॥३॥

अजपा की गणना के स्वामी,
ताते गणपति चरण नमामि।
योगाधार पूर्ण निष्कामी,
ज्योति विवेक अखण्ड जगाऊँ ॥४॥

'अमृत नाथ' मूल चेतावे,
प्राण अपान नाभि में लावे।
बङ्क नाल पथ शून्य समावे,
शंकर सत्य-नित्य पद पाऊँ ॥५॥

(राग कालिंगड़ा)

साधो काया नगर गढ़ भारी।

पांच तीन का कोट बना है, बीस * पांच रखवारी।
गगन भूमि बिच, झण्डा भारी, डोर लगी इक सारी।
अट पट रंग जाने कोई विरला, सुरति शिखर में धारी ॥१॥
मुक्ति द्वार पर मन है सिपाही, ले पांचों हथियारी।
रैन दिवस अति चञ्चल गति से, समर करे है भारी ॥२॥

शूर वीर आगे पग धरता, कायर परे पिछारी।
चतुर होय सो जीते रण में, हारे मूढ अनारी ॥३॥
बङ्क नाल पथ + लोहा बाजे, अष्ट प्रहर इक सारी।
लागे गोला जबहि ज्ञान का, भ्रम का कोट संहारी ॥४॥
तन की चिन्ता तनिक न राखे, जीत चले रण भारी।
'अमृत नाथ' अमर गढ़ पावे, तुरिया तत्व विहारी ॥५॥

20:58

साधो अलख लखे सोही शूरा।
जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तज कर हो तुरिया में पूरा।

* शुध्द हो। † नाभि से शिखर तक।

(छंद)

षट कमलों को छेद युक्ति से, सुनता अनहद तूरा।
इड़ा, पिङ्गला सम कर राखे, हो सुषुमन के घूरा ॥१॥
हो लय लीन अमीरस पीवे, कर द्विविधा को दूरा।
घाट त्रिवेणी वाट ब्रह्म की, लाभ करे पद * रूरा ॥२॥
निर्मल करणी भव दुख हरणी, समदर्शी सांई पूरा।
आवा गमन मिटावे अपना, होय प्रेम चक चूरा ॥३॥
त्यागे भेद, खेद को डाले, दूर करे मति क्रूरा।
जीवन मुक्ति लहे सोही 'अमृत' पावत है निज नूरा ॥४॥

[४]

साधो घट में गङ्गा न्हाओ।
यामें न्हाये पाप दूर हो, जन्म मरण विनशाओ।
दया तीर सन्तोष नीर है तामें गोता लाओ।
काम, क्रोध, मद, मोह मैल को, धोकर दूर हटाओ ॥१॥
अड़सट तीरथ चार धाम सब, घट गङ्गा में पाओ।
हो तन्मय चढ़ नाव भक्ति की, अमर लोक को धाओ ॥२॥
शिखर लोक से अमृत टपके, गुरु सेवा से पाओ।
रैन दिवस अविराम वेग से, पीवत नाहिं छकाओ ॥३॥
नाभि शिखर विच लहर उठत है, तामें मन को लाओ।
'अमृत' गङ्ग अथाह नीर है, घाट त्रिवेणी पाओ ॥४॥

* सुन्दर।

[११]

सतगुरु तुम समर्थ जग माहीं,

नाड़िन में तव रूप सुषुम्ना, कुम्भक केवल पाहीं।
मुद्रन में उनमनी रूप तुम, तुरिय अवस्था माहिं ॥१॥
रूपातीत ध्यान तुम देवा, वाणी आप परा ही।
ज्ञान समाधि प्राण वायु तुम, अजपा जाप जपाही ॥२॥
बन्धन में उड्यान रूप तुम, अर्चन आतम पाही।
शील,दया,सन्तोष रूप तुम, अचल अपार अथाहीं ॥३॥
देश काल का भाव न व्यापे एक रस रूप सदा ही।
'अमृत' चरण कमल पर, 'शंकर' वार २ बलि जाही।४॥

[१२]

मन मानत नाहीं गन्दा,

ममता के मदमाता होकर, नारी प्रीति करन्दा।
काम क्रोध, मद लोभ रसा है, इन्द्रिय स्वाद लहन्दा ॥१॥
सच को झूठ, झूठ सच माने, ऐसा है मतिमन्दा।
रैन नींद भर सुख चाहत है, दिन चाहत है धन्दा ॥२॥
सत संगति में लगे नहीं यह, जाय परत है खन्दा।
हानि लाभ कुछ सोचत नाहीं, होता ना शर्मिन्दा ॥३॥
सतगुरु 'अमृत नाथ' दया कर, इसको अचल करन्दा।
'शंकर' विनय करत निशवासर, तव चरणन का बन्दा॥४॥

20:59

क्षण २ उदय होय विषयन का, अरु इन्द्रिय गण मचलन्दा ।
धर्म अधर्म विचारत नाहीं, केवल स्वारथ का धन्धा ॥३॥
वशीभूत है निज कर्मो के, सुरनर मुनि, सूरज चन्दा ।
'अमृत' कर्म काट दे सत गुरु, तब हो 'शंकर' आनन्दा ॥४॥

[७]

जिन खोजा तिन पाया साधो जिन खोजा तिन पाया ।
कथनी कथ कथ लाखों मरिया, भेद न अपना पाया ।
त्याग विषय सुख करणी करता, वह गुरु के मन भाया ॥१॥
नाभि कमल से चेतन होकर, मेरु दण्ड पथ धाया ।
शून्य शिखर में जाय समाया, गुणातीत घर पाया ॥२॥
एक होय पिण्डा ब्रह्मण्डा, ध्यान उनमनी लाया ।
कोटि भानु सम भया उजाला, सूरज चन्द लजाया ॥३॥
अटल समाधि लगे योगी की, भ्रम का भार हटाया ।
तीन छोड़ चौथा पद पाया, आवागमन मिटाया ॥४॥
अमृत नाथ अखण्ड रूप में, जाय मिले सुख पाया ।
वार न पार हद नहीं बे हद, पद निर्वाण सुहाया ॥५॥

[८]

साधो गुरु की प्रभुता भारी ।

महा स्वतन्त्र परम उपकारी; तम अज्ञान विडारी ।
भव भय नाशक सत्य प्रकाशक, काम क्रोध भय टारी ॥१॥
मुनि मन रञ्जन, खल दल गञ्जन, भक्तन के हितकारी ।
मोह हरण, प्रण तारन भञ्जन, सत् स्वरूप सुखकारी ॥२॥

तीन काल की गति को जानत, नाशत अघ अति भारी।
अन्तर्यामी, पूर्णअकामी, शरणागत दुख हारी ॥३॥
सत चित सुख के रूप गुरु हैं, गुणातीत गुण धारी।
'अमृत नाथ' भक्त सत गुरु के पावे ब्रह्म अटारी ॥४॥

[९]

सन्तो पिव से डोर लगाओ।

जन्म मरण दुख मेटा चाहो, तो समता चित लाओ।
काम, क्रोध, मद, मोह हटाकर, सत् सन्तोष जगाओ ॥१॥
प्रेम माँहिं तन्मय हो ऐसे, तन की सुरति भुलाओ।
गद्‌गद् रहो मौन व्रत धारो दृढ़ कर आसन लाओ ॥२॥
अजंपा जाप जपो निशवासर, सुषुमन तकिया लाओ।
घाट त्रिवेणी पीव मिलेंगे, रूप में रूप समाओ ॥३॥
आवागमन दूर हो तब ही, भ्रम का भार हटाओ।
'अमृत' निर्भय शून्य शिखर में, परम हंस पद पाओ ॥४॥

[१०]

साधो सत्संगति बल भारी।

लख पावे निज रूप तुरत ही,
त्रैगुण फाँस निवारी।
कीट बने संगति से भँवरा,
अपना रूप निवारी ॥१॥

सन्तो ऐसा योग बताया

भ्रम का भेद हटाय हृदय से. निर्मल ज्ञान सिखाया ।
त्रिगुण रहित निर्वाणी पद का, निश्चल ध्यान बताया ॥१॥
पांच पचीसों भार हटाया, आवागमन नशाया ।
जप, तप, योग, यज्ञ कुछ नाहीं, ना तीरथ मन धाया ।
सहज भाव से समता पाई, अमर नगर दरशाया ॥२॥
सोहं शब्द जगा घट भीतर. नाभि कमल सरसाया ।
बङ्क नाल की राह पकड़ कर, शून्य शिखर को धाया ॥३॥
'अमृत' अपना रूप पालिया, भ्रम का भार हटायो ।
सिंह गर्जना होय शिखर में, गुञ्जत सारी कावा ॥४॥

[राग आशावरी]

अवधू ऐसा योग कमाओ ।

तज जग जाल, सम्हाल सुरति को, शून्य शिखर में लाओ ।
हो चैतन्य मान गुरु शिक्षा, मूल, हृदय चेताओ ।
प्राण अपान मिलाय नाभि में, दश दिशि चक्र घुमाओ ॥१॥

सोहं शब्द उठाय युक्ति से. पश्चिम दिशि को धाओ ।
शून्य शिखर में भ्रमर गुफा के, वज्र कपाट हटाओ ॥२॥
अमर ताल अमृत से भरिया, हंस किलोल मचाओ ।
सदा वसन्त, रैन दिन नाहीं, एक रस रूप बनाओ ॥३॥
काल ज्वाल का भय तहाँ नाहीं परम स्वतन्त्र कहाओ ।
'अमृत नाथ' अगम धुनि लागे, ब्रह्म रूप हो जाओ ॥४॥

रैन दिवस जब लोहा बजे, कांपे मन मतवारो ॥२॥
पीछे पैर धरो मत वीरो, आगे को चित धारो ।
शीश दिये से बनि है सौदा, गुरु चरणन पर वारो ॥३॥
अमर नगर में राज्य मिले तब, होवे सफल जमारो ।
'अमृत नाथ' अमर पद पाकर, आवा गमन निवारो ॥४॥

[३]

साधो घट का भेद बताओ ।
पिण्ड और ब्रह्माण्ड खोज कर, एक रस रूप दिखाओ ॥
सात समुद्र कहां काया में, इनका भेद बताओ ।
गङ्गा, यमुना और सरस्वती, कहां, कौन विधि पावो ॥१॥

अमर गुफा का द्वार कौन दिशि, आधो रूप कहां पावो ।
कैसे खुले कपाट शिखर के, ज्योति अखण्ड लखाओ ॥२॥
पांच तत्व पच्चीस प्रकृति के, कारण कार्य बताओ ।
दश विधि नाद बजे कहाँ घट में, सिंह गर्जना पाओ ॥३॥
षट चक्रन का स्थान रूप रङ्ग, ठीक भाँति समझावो ।
कहां नागनी कैसे जागे, किस दिशि शून्य समाओ ॥४॥
किस विधि सहज समाधि लगत है, अजपा जाप बताओ ।
'अमृत नाथ' अखण्ड रूप को, निज घट माहिं पाओ ॥५॥

21:04

साधो मन का मान हटाओ।

त्याग विषय सुख, समता धारो, दृढ़ कर आसन लाओ ॥
वश कर पाँच पचीस हटा कर, सत्संगति मन लाओ।
गुरु के वचन यतन कर अपना, अमर नगर को धाओ ॥१॥
अल्पाहार विहार सुधारो, नयन नासिका लाओ।
हो लवलीन प्रेम रस चाखो, आतम ज्ञान जगाओ ॥२॥
घाट त्रिवेणी अमर * निसैनी, ता में गोता लाओ।
सुषुमन सेज बिछाय शिखर में, सुरति सहेली पाओ ॥३॥
जग से भाग जाग घर भीतर, अजपा को अपनाओ।
'अमृत नाथ' अमर गढ़ पाओ, एक छत्र भूप कहाओ ॥४॥

---

* सीढ़ी।

[५]

अवधू ज्ञान बिना सुख नाहीं।

बिन-गुरु ज्ञान मिले नहीं कबहूं, कहते हरिजन गाई।
दीपक बिन ज्यों घर अँधियारा, जिमि दर्पण मल पाही।
ऐसे ज्ञान बिना घट मैला, रूप दरशता नाहीं ॥१॥
चन्द्र बिना ज्यों रैन अँधेरी, ज्यों रवि बिन दिन नाहीं।
जग अंधियारा मिटता नाहीं, ना दीखे परछाहीं ॥२॥
सूक्ष्म शरीर ज्ञान बिन कबहूँ, दरसे ना घट माहीं।
नाभि शिखर बिच अटल हिंडोला, झूल सके कोई नाहीं ॥३॥
राग, द्वेष छूटे नहीं कबहूं, भव सागर भर माहीं।
'अमृत' ज्ञान मिले जब गुरु से तब घट समता आहीं ॥४॥

21:04

हो चैतन्य भजन कर जिससे ले निज रूप निहारी।
'अमृत नाथ' अविद्या नाशो, दूर होय भ्रम भारी ॥४॥

[७]

सन्तों गुरु के वचन सम्हारो,
जिससे कर्म क्षीण हो जावे, आवा गमन निवारो।
काया नगर में पञ्च प्रेत हैं. भिन्न २ रङ्ग धारो॥
एक एक अति प्रवल शक्ति से, फैलावे अँधियारो ॥१॥
पांचों नारि बहुत मतवारी, भोगत भोग सुधारो।
इनको रोक परम पद पावो होवे सफल ×जमारो ॥२॥
नाभि मूल से वङ्क नाल दिशि, सोहं की गति धारो।
नयन नासिका स्थिर कर राखो, भव के बन्धन टारो ॥३॥
भ्रमर गुफा में सत गुरु राजें, कोटि भानु उजियारो।
'अमृत नाथ' अमर पुर पावो, त्रैगुण फाँस निवारो ॥४॥

[८]

साधो वोही परम पद पावे,
गुरु चरणन में भेंट करे शिर दुविधा दूर हटावे॥
शिक्षा श्रवण करे मन देकर, इन्द्रिन पर वश पावे।
भली प्रकार दमन कर मनका, समता चित में लावे ॥१॥
मैं, तू द्वन्द हटाय हृदय से, भ्रम का कोट ढहावे।
स्वप्न समान जगत को जाने, ब्रह्म अग्नि चेतावे ॥२॥

× जन्म

21:06

जाको निरख २ मन अपने आपहि हर्ष मनाओ।
ले सन्तोष कमण्डलु कर में, घाट त्रिवेणी न्हाओ।
ब्रह्मचर्य का धार लिंगोटा, भस्म भाव की पाओ ॥१॥

+ सुन्दर ॥ ‡ आधार ॥

(२८८)

दया तिलक सत् रूप सुमरणी, प्रेम पलक विच लाओ।
जप को जटा ध्यान की सेली घट में अलख जगाओ ॥२॥
ब्रह्म अटारी शून्य किंवारी श्रुति की सेज बिछाओ।
सुमति सहेली सेवा माहीं, सुषुमन तकिया लाओ ॥३॥
नाभि शिखर विच डाल हिंडोला आपहि आप झुलाओ।
'अमृत नाथ' अखण्ड रूप में, सहज समाधि लगाओ ॥४॥

[१५]

सन्तो सतगुरु रङ्ग चढ़ाया.

जो नहीं उतरे तीन काल में, दिन दिन होत सवाया।
श्याम, श्वेत, पीला नहीं नीला, अद्भुत वर्ण बनाया।
नेत्र नहीं पहिचान सकत है, गुरु गम भेद लखाया ॥१॥
हृदय वस्त्र पर रङ्ग भक्ति का, लागत परम सुहाया।
ज्ञान विज्ञान लहरिया कीन्हा, ओढ़ परम सुख पाया ॥२॥
छींपी छाप सके नहीं वैसा, ना रंगरेज रंगाया।
कहन, सुनन में आवे नाहीं, सतगुरु सैन बताया ॥३॥
'चम्पानाथ' प्रेम के रंग में, रंग कन्था पहिनाया।
'अमृत' जीर्ण होय नहीं कबहू, सदा रहे सरसाया ॥४॥

सत गुरु 'चम्पानाथ' मिले तब, प्रेम रङ्ग बरषाया।
अमृत घट में फाग खेल कर अभय होय सुख पाया।।
अचल पद में सरसाया।।५।।

[४]

इस विधि फाग रचाया, योग के पन्थ सिखाया।
मूल शोध कर खींच शंखिनी, उलट अपान चलाया।
तीनों बन्ध लगे जब घट में, पवन थकी सुख पाया।।
शब्द आकाश जगाया।।१।।

द्वादश पलट सुरति दो दल घर, अनहद में मन लाया।
नवों द्वार अति दृढ़ कर रोके, शून्य शिखर घर पाया।।
भेद लख खेद मिटाया।।२।।

दल सहस्र का कमल अनूठा, मेघ अभी झर लाया।
तेज पुञ्ज का रूप बना है, कोटि भानु छवि छाया।
कल्प तरु कर में आया।।३।।

उन्मनि चित्त लगा कर रखिया, मन निज रूप मिलाया।
काल ज्वाल की गम जहां नाहीं, गुणा तीत घर पाया।।
जीव से ब्रह्म कहाया।।४।।

नहीं द्वन्द निर्द्वन्द रहा कुछ, सतगुरु भेद बताया।
'अमृत' घट में खोज करी तब, अपना रूप लखाया।।
परस पारस सुख पाया।।५।।

अति आरत बहु दीन होय कर, शरण लई प्रभु तारो।
अमृत देर करो मत अब तो, 'शंकर' पार उतारो।
नाथ मैं बालक थारो ॥५॥

---

(६) राग हेली

हेली मेरी गुरु चरणन पर वारी।

होय प्रसन्न सुनाओ निश दिन महिमा अमित अवारी।
हेली—फूल कमल की राह बताई, झटपट सुरति सँवारी।
नाभी मण्डल प्राण मिलाया, बङ्क नाल पथ धारी ॥१॥
हेली—शिखर लोक में अनहद बाजा, सिंह करत हुंकारी।
कोटि भानु सम रहे उजाला, है नहीं साँझ संवारी ॥२॥
हेली—काम धेनु ठाढ़ी रहे निश दिन, पवन करत रखवारी।
अटल सिंहासन एक छत्र शासन, रूप उनमनी धारी ॥३॥
हेली—अपना जाप आपही करता, तुरिया तत्व विहारी।
'अमृत नाथ' अभेद भेद है, अद्भुत ब्रह्म अटारी ॥४॥

[२]

हेली मेरी अचरज है एक भारी।
एक कहूं तो दो होय दरशे, दो बिच एक विहारी ॥
हेली—जल के माहिं लहर उठत है, है जल से नही न्यारी।
नाम, रूप से भेद लखावे कहते सन्त विचारी ॥१॥

हेली मेरी सतगुरु राह बताई।

आतम में परमात्म दिखाया, दुर्मति दूर हटाई।

हेली—काम, क्रोध, मद, मोह हटाया, सुमति हृदय विच आई।
राम रूप चारों दिशि दरशा, आतम तत्व दिखाई ॥१॥
हेली—राग द्वेष का भाव न व्यापे, समता चित्त में आई।
वृत्ति भई अनुरक्त तत्व में, ज्ञान सुधा झर लाई ॥२॥
हेली—देश काल का भेद रहा नहीं, ना शुभ, अशुभ लखाई।
आश्रम, वर्ण, जाति कुल का भय, हट गए मान बड़ाई ॥३॥
हेली—चार धाम अरु अड़सठ तीरथ, निज घट भीतर पाई।
परमानन्द प्रकट भया तन में, दिया द्वन्द हटाई ॥४॥
हेली—आतम एक सकल घट व्यापक, पाया अति सुखदाई।
उत्पति, पालन, नाश रहित पद, गुरु निज भाव बताई ॥५॥
हेली—नाभि मूल है मेरु दण्ड पथ, शून्य शिखर घर पाई।
तीन काल में रहत एक रस, ना कुछ आवन जाई ॥६॥

हेली—घाट त्रिवेणी, मुक्ति निसैनी, श्वासा थम्भ रुपाई।
'अमृत नाथ' रमे तुरिया में, पद निर्वाण सुहाई ॥७॥

[४]

हेली पद निर्वाण विचारो,

छेद छहों दल जाय शिखर में, अपना रूप निहारो ॥
हेली—तीनों गुण की तीन नाड़ियाँ, नाभी माहिं सम्हारो।
इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना, गुणातीत घर न्यारो ॥१॥
हेली—चारों अन्तःकरण जानियो, मन, बुद्धि चित अहंकारो।
जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति, तुरिया, तज उन्मनि धुनि धारो ॥२॥
हेली—निर्गुण, सगुण विलास वचन का, स्थूल रु सूक्ष्म विकारो।
पिण्ड और ब्रह्माण्ड भेद नहीं, केवल ब्रह्म पसारो ॥३॥

21:11

(१०) राग सोरठ विहाग ।

साधो सन्त वही है शूरा ।

अपनी लग्न अनुग्रह गुरु की, प्राप्त करें पद पूरा ॥
क्षमा ढाल धारे रहे निश दिन, निकट न आवे कूरा ।
ध्यान खड्ग से पूर्व कर्म का, करदे चकना चूरा ॥१॥
श्रुति तरकस पर शब्द वाण धर मेरु दण्ड का धूरा ।
त्रिकुटि लक्ष्य बनावे अपना, तब पावे निज नूरा ॥२॥
आगे बढे, हटे नहीं पीछे, कर विषयन को दूरा ।
सहे आघात होय कर निर्भय, शूर वीर सोही पूरा ॥३॥
एक छत्र हो राज्य तभी तब मान 'चढ़ाई दूरा ।
'अमृत' सतगुरु पूर्ण मिले से, प्राप्त होय पद पूरा ॥४॥

[२]

सन्तो घट का भेद निहारो ।

नाभि चक्र को शोध युक्ति से, सुरति श्वास में धारो ।
बङ्क नाल की राह पकड़ कर, शून्य शिखर गढ़ मारो ॥१॥
इड़ा पिंगला और सुषुम्ना, त्रिकुटी माहिं सम्हारो ।
भँवर गुफा अद्भुत उजियाला, काँपे मन मत वारो ॥२॥
उलटा कूप अगाध नीर है, ता में गोता मारो ।
सूर्य चन्द्र अरु तारा मण्डल, है नहीं, साँझ सवारो ॥३॥
पाप,पुण्य,सुख दुख कुछ नाहीं, है नहीं नियम अचारो ।
'अमृत नाथ' रूप नहीं रेखा, पञ्च कोष ते न्यारो ॥४॥

[३]

अवधू देश दिवाना रे ।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तज, तुरिया गलतानारे ।
रणङ्कार के ध्यान होय, सतगुरु का पानारे ।
सुरति सहेली संग होय तब, हो पहिचाना रे ॥१॥
इड़ा पिङ्गला त्याग ध्यान, सुषुमन में लाना रे ।
पाँच, पचीसों थके, अमर गढ़ होवे जाना रे ॥२॥
कथा पुरान, कुरान, नहीं इनमें अटकाना रे ।
सतगुरु शब्दी बाण लगे, मन मार भगाना रे ॥३॥
'अमृत नाथ' अखण्ड ध्यान घर नहीं डरपाना रे ।
'शंकर' मिले अमर पद, छुट जाय आना जाना रे ॥४॥

[४]

हरि को जिन खोजा तिन पाया ।

जो प्रमाद वश रमा विषय में, उसने गोता खाया ।
क्या हो सागर तट जा बैठे, जब गोता नहीं लाया ।
समय गया मोती नहीं पाया, हाथ मले पछताया ॥१॥
पढ़-२ विद्या पण्डित बन गये, अरु उपदेश सुनाया ।
निज भ्रम नहीं मिटाया जिसने, तो क्या लाभ उठाया ॥२॥
बैठ कन्दरा-धूणी लगाई, कष्ट किया ताना ताया ।
फिर यदि मन का बेग न रोका, कैसे सन्त कहाया ॥३॥

तज अभिमान भजन कर हरिका, मिट जाय भव का खटका।
जब तक श्वास रहे काया में, देख राम का लटका ॥२॥
तन मद त्याग सुधार वचन को, इन्द्रिन का तज चटका।
मान बड़ाई छोड़ करो नित, वास त्रिवेणी तटका ॥३॥
निश्चय होय वासना छूटे, भेद मिटे घट पटका।
'अमृत' अपना रूप लखे तब, अमृत जैसा गटका ॥४॥

[७]

अवधू सत सुख पावेंगे।
जो घट भीतर निशदिन अपनी खोज लगावेंगे॥
मणि ∴ पूरक से चेतन होकर, बङ्क सिधावेंगे॥
शून्य लोक में अनहद ध्वनि वह नर सुन पावेंगे ॥१॥
अवघट घाट बाट अति ×विखमी, सन्त पु गावेंगे।
=सैन शब्द का साथ हुए भ्रम दूर हटावेंगे ॥२॥
ऊपर जड़ नीचे शाखा का, तरु एक पावेंगे।
तहां अमर फल खाय, अमर वह नर हो जावेंगे ॥३॥
कूप अधो मुख माहिं जब, गोता कोई लावेंगे।
'अमृत' आभा आपकी, 'शंकर' चमकावेंगे ॥४॥

[८]

अवधू ऐसा ध्यान लगाओ।
तन्मय रहो थको मत कबहूं, आवागमन मिटाओ।

∴ नाभि कमल ×दुर्गम =संकेत

गुरु बिन मिलता नाहीं रे अवधू आत्म तत्व का ज्ञान।
खुले गाँठ नहीं कर्म को, दूर न हो अभिमान।
जन्म मरण ना मिट सके, सुनियो सन्त सुजान ॥१॥
मूल कमल खिलता नहीं, हो न नाभि में वास।
बङ्क नाल पथ ना मिले, दृढ न होय विश्वास ॥२॥
शिखर लोक गम ना पड़े, पश्चिम उगे न भान।
काम धेनु दरशे नहीं मिले न अमृत पान ॥३॥
तीन अवस्था ना मिटे, हो न तुरिया का ज्ञान।
अनहद सुन नहीं पावते, उलटा कूपन जान ॥४॥

वास त्रिकुटि में हुवे नहीं, पड़े न सुषुमन जान।
भ्रमर गुफा पट ना खुले, होय न अजपा ज्ञान ॥५॥
दया होय गुरु देव की, तब हो सत पहिचान।
"अमृत" उनमनि धुनि लगे, पावे पद निर्वाण ॥६॥

---

[१२] बारह मासिया सोरठ विहाग

अवधू काल जाल की त्रास, गुरु विन कौन मिटावेरे।
चैत्र चतुर चैतन्य हो, चलो गुरु के पास।
तन मन धन अर्पण करो, होय चरण के दास ॥
मान मन का मिट जावेरे ॥१॥

[२]

दुःखी नहीं होना रे लड़के, दुखी नहीं होवना।
एक रस रहना रे अवधू, समता धारना ॥१॥
काया नगर में लड़के, सकल संसार है।
माहिं विचरना रे अवधू, खेल अपार है ॥२॥
उनमनि धुनि में रे लड़के, सदा तन्लीन हो।
भेद नहीं देना रे अवधू, लवलीन हो ॥३॥
शून्य शिखर में रे लड़के, सुधा का ताल है।
बूँद २ टपके रे अवधू, पाते सुजान है ॥४॥
घाट त्रिवेणी रे लड़के। अगम सा वाट है।
सन्त शूर चढतेरे अवधू, अनोखा ठाठ है ॥५॥
सहस दल कमल में लड़के सुषुम्ना सेज है।
वचन में न आवे रे अवधू अनोखा तेज है ॥६॥
क्रिया कर्म नहीं रे लड़के, वर्ण नहीं जात है।
रूप नही रेखा रे अवधू, पिता नहीं मात है ॥७॥
सत गुरु लखावे रे लड़के, लखे शत शिष्य है
'अमृत' मिले है रे 'शंकर' बदले मे शीप के ॥८॥

[३]

नयन नासिका रे लड़के, गगन में ध्यान है।
श्वास माहिं वृत्ति रे अवधू आतम ज्ञान है ॥१॥
मूल कमल का रे लड़के, नाभि मे मेल कर।
कुण्डली उठा लेरे अवधू, मेरु के पन्थ से ॥२॥

21:18 Vo)) LTE1

नयन नासिका रे लड़के, गगन में ध्यान है।
श्वास माहिं वृत्ति रे अवधू आतम ज्ञान है ॥१॥
मूल कमल का रे लड़के, नाभि में मेल कर।
कुण्डली उठा लेरे अवधू, मेरू के पन्थ से ॥२॥

श्वास २ जपना रे लड़के, अजपा जाप है।
आवागमन का रे अवधू, रहे सन्देह ना ॥३॥
पाप. पुण्य नाहीं रे लड़के, नहीं सुख दुःख है।
व्याधि ना उपाधि रे अवधू अचल आनन्द है ॥४॥
तन, मन, वचन से लड़के, सदा सत् बोलना।
गुरु की आज्ञा में रे अवधू रैन दिन चालना ॥५॥
सहज समाधि रे लड़के, नहीं मन डोलता।
वासना मिटा दे रे अवधू, यही सन्यास है ॥६॥
सुरति सहेली रे, लड़के आतम भूप है।
पाँच पचीसों रे अवधू, सदा सेवा करे ॥७॥
जाय नहीं आवे रे, लड़के, सदा एक रस रहे।
अमृत' रमे है रे 'शंकर', पद निर्वाण में ॥८॥

...गया॥

नाभि से उठाले रे लड़के लेजा शून्य में।
भ्रमर गुफा में रे अवधू, अचल आनन्द है ॥१॥
ताल है सुषा का रे लड़के, अनामी हँस है।
मुक्ति की गोद में रे अवधू, करत किलोल है ॥२॥
ऋतु है बसन्त रे लड़के, नहीं दिन रैन है।
तेज पुञ्ज की रे अवधू, अनोखी सेज है ॥३॥
एक अवस्था रे लड़के सदा एक रूप है।
जन्म मरण का रे ... संशय नहीं...

(४१६)

इड़ा नहीं पिंगला रे लड़के, सुषुम्ना अन्त है।
दश विधि बजता रे अवधू, सदा ही नाद है ॥५॥
सिंह की गरजना रे लड़के, गगन में गूँजती।
पञ्चानन बाजे रे अवधू, सदा ही शंख है ॥६॥
योगी नहीं योगी रे लड़के, सिद्ध साधक नहीं।
वेद नहीं वक्ता रे अवधू, वरण नहीं जात है ॥७
अचल अखण्डो रे लडके, अमृत नाथ है।
श्वास का स्मरण कर रे शंकर भजन तेरे हाथ है ॥८॥

(१४) राग मङ्गल

सखियो मङ्गल गाओ हे.

सतगुरु आज पधारिया, चरणन पड जाओ हे ॥
÷ पग पाँवडा करो तन मन से, हृदय बिछाओ हे ।
चरण धोय नयनों के जल, चरणामृत पाओ हे ॥१॥
नम्र भाव का जल ले करके, स्नान कराओ हे ।
पांच तीन का वस्त्र, टेक टोपा पहनाओ हे ॥२॥
चित का चन्दन घोट कर, मस्तक चर्चाओ हे ।
धर्म, अर्थ अरु काम, मोक्ष के, पुष्प चढाओ हे ॥३॥
इड़ा पिंगला साज कर, दो दीपक लाओ हे ।
अग्नि ज्ञान की लाय, ध्यान की धूप जलाओ हे ॥४॥

÷स्वागत

नवधा भक्ति की बाती कर, आरती सजाओ हे ।
अनहद घण्ट बजाय कर, उनमनि धुनि लाओ हे ॥५॥
अमी झरे दिन रैन, ताहिका भोग लगाओ हे ।
धार दीनता प्राण वायु का, चँवर ढुलाओ हे ॥६॥
शिखर महल के माहिं, सुषुम्ना सेज बिछाओ हे ।
सोहं सोहं गाय कर, गुरु देव रिझाओ हे ॥७॥
'अमृत' भेद अपार है, सहज ही लख पाओ हे ।
सुरति ठिकाने लाय कर, 'शंकर' गुण गाओ हे ॥८॥

सतगुरु शब्द सम्हाल, दूर भव व्याधि हो।
चञ्चल मन थक जाय, सहज समाधि हो ॥१॥
जन्म मरण दुख मिटे, योग सहज ही स ; ।
निर्मल होवे बुद्धि, ज्ञान का बल बधे ॥२॥
मूलाधार सुधार, नाभि की सुधि करे।
मेरु दण्ड के मार्ग, शिखर में श्रुति धरे ॥३॥
अमर गुफा के माहिं, अनोखा ख्याल है।
अद्भुत होता नाद, सुधा का ताल है ॥४॥
कोटि सूर्य सम तेज, सहस दल रूप है।
रहे सदा ऋतु एक, गुरु तहँ भूप है ॥५।
तुरिया तत्व विलास, सुषुम्ना सेज है।
अमृत रूप अखण्ड, ब्रह्म का तेज है ॥६॥

सतगुरु 'चम्पानाथ' अमर गढ़ राजते।
'अमृत नाथ' सदैव, अनाहत बाजते ॥७॥

[३]

इड़ा पिंगला त्याग, सुषुम्ना साधिये।
श्वास लगा कर थम्भ, तहाँ मन बाँधिये ॥१॥
जाय त्रिवेणी घाट, अमीरस पीजिये।
आतम रूप निहार, सदा ही रीझिये ॥२॥
तहाँ भँवर अविराम, गति से बोलता।
पिण्ड और ब्रह्माण्ड, भेद सब खोलता ॥३॥
जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति, अवस्था तीन है।
सागर ब्रह्म अथाह तहाँ के मीन है ॥४॥
अमर गुफा के बीच, अधोमुख कूप है।
गोता लावे सन्त शूरमा भूप है ॥५॥
तुरिया तत्व अनूप, ब्रह्म का रूप है।
जाने सन्त सुजान, भेद अति गूप है ॥६॥
"चम्पानाथ" विचार, सकल भ्रम नाशिया।
सन्तों "अमृत नाथ" सुधारस चाखिया ॥७॥

21:22

रटो सोहं सदा सोहं, सदा सोहं सदा सोहं सोहं।
भृकुटि में ध्यान धर करके, रटो सोहं सदा सोहं ॥१॥
करो चैतन्य नाभी से, चढो पथ मेरु हो करके।
जपो ब्रह्माण्ड में सोहं सदा सोहं सदा सोहं ॥२॥
दमन कर पांच रिपुओं का, पचीसों को विजय करके
शिखर की ओर को धाओ. रटो सोहं सदा सोहं ॥३॥
कोटि दिनकर के सदृश तव विलक्षण ज्योति दरशावे।
अलौकिक नाद है. सोहं सदा सोहं सदा सोहं ॥४॥
इड़ा अरु पिंगला तज कर, रहो तन्मय सुषुम्ना में।
नयन को नासिका लाओ रटो सोहं सदा सोहं ॥५॥
मिला जिह्वा को दसनों से, सुधा का स्वाद लो निश दिन,।
निराली शान्ति है इस में,, रटो सोहं सदा सोहं ॥६॥
मिटे आशा, छूटे तृष्णा, उनमनी ध्यान जब लाओ।
लखो निज रूप को तब ही, रटो सोहं सदा सोहं ॥७॥

भरा सागर है 'अमृत' का. अनामी हंस रमता है।
यह उसका ध्यान है 'शंकर' रटो सोहं सदा सोहं ॥८॥

[२]

तेरी सत्ता प्रकट होती सदा सर्वत्र हे भगवन्।
मनुज में देव. दैत्यों में, अधम उत्तम में हे भगवन् ॥१॥
चन्द्र में, सूर्य में, तारों में, नभ में, वज्र बादल में।
तेरी ही ज्योति दर्शाती, हमें सर्वत्र हे भगवन् ॥२॥

लावनी रंगत लंगड़ी-१.

सत गुरु शरणे जाय ज्ञान को पाय, चेत कर अज्ञानी।
मत कर नादानी, कहानी सुन ईश्वर निर्वाणी॥
विविध कर्म का मर्म जान कर, भेद भरम को दूर करो।
यो ही वचन खरो है, डरोमत शुभ करणी से भवन भरो॥
नाभि कमल से चेत, हेत कर मेरु दण्ड की, राह परो।
मत टरो बीच में, व्याधि को व्याधि की हरो,
अखण्डी ध्यान धरो॥
अमर गुफा के माहिं नाथ याहि कहें मुनिवर ज्ञानी॥१॥

इड़ा पिंगला छोड़ दौड़ कर मोड़ सुषुम्ना हो पारी।
मिलते फल चारी, तिहारी नाथ करेंगे रखवारी॥

बजते अनहद् नाद, स्वाद आल्हाद जाय माया हारी।
तृष्णा को मारी, ध्यान धारी पावे जग हितकारी॥
दृढ़ आसन अरु सत् का भाषण यही योग तप है दानी॥२॥
जाग्रत स्वप्न छोड़ कर प्यारे सुषुप्ति से हो न्यारे।
तुरिया आधारे, वास कर श्वास श्वास हरि गुण गारे।
सत्य ध्यान सन्मान, छोड़ अभिमान ज्ञान के घर आरे।
क्रोधादिक मारे, पधारे ममता मद समता लारे॥
शम, दम, नियमाचार, विश्वकर्तार सार में गलतानी॥३॥
व्यापक ब्रह्म विशुद्ध बुद्ध की चरण शरण मत विसरावे।
वेदादिक गावे, बतावे सार, प्रेम को दर्शावे॥
निर्विकार सतसार दीन आधार पार कोई नहीं पावे।
योगी जन गावे, सिधावे अमर लोक, फिर नहीं आवे॥
जगन्नाथ, जगदीश, जगत पितु, जग तारण सुखरो प्राणी॥४॥
सत्य, सच्चिदानन्द, स्वयंभू, सत्य रूप भव भयहारी।
यम का भय टारी, उतारी पार नाव अवगुण गारी॥
सतगुरु अमृत नाथ, पकड़ कर हाथ, साथ लिया हितकारी।
अगम अपारो, शील सन्तोष धार किया उपकारी॥
'शंकर' चरण शरण के बल से पार भये बहु नर ज्ञानी॥५॥

कहीं प्रेम और कहीं प्रेमी है,
कहीं खोटा है अरु कहीं खरा।
कहीं गगन, वायु, वन्ही, जल है,
अरु कहीं बनाया रूप धारा॥
कहीं योग और कहीं योगी है,
कहीं पञ्च तत्व से न्यारा है ॥४॥
कहीं नाभि कमल से चेतन हो,
जा शून्य शिखर में वास किया।
कहीं छहों कमल छेदन करके,
अरु भ्रमर गुफा को पास किया।
कहीं हठ से कर हठयोग सिद्धवन,
अष्ट सिद्धि विश्वास किया।
कहीं उदासीनता धार लिई,
माया प्रपञ्च का नाश किया।
सतगुरु 'अमृत नाथ' कहीं बन,
'शंकर' काज सुधारा है।

रङ्गत चौबोला।

❀ दोहा ❀

करुणा सागर कृपानिधि, कारुणीक करतार।
क्रिया कर्म से रहित है, केवल पद भरतार॥

परमात्माको ध्यान गरिने पद्धतिलाई मन्त्रयोग भनिन्छ। शरीर र मनलाई एकाकार गरी कुण्डलिनी जागृत गराउनुलाई हठयोग भनिएको छ। आसन, प्राणायामका माध्यमले ब्रह्म चिन्तन गर्नुलाई लययोग भनिन्छ। पतञ्जलिले चलाएको यौगिक परम्परालाई अष्टाङ्गयोग भनिन्छ। ती हुन् - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान र समाधि। यी अष्टाङ्गयोगलाई बाह्य र आन्तरिक गरी दुई भागमा विभाजित गरिएको पाइन्छ। पहिलो पाँचवटा कर्मेन्द्रियसँग सम्बद्ध र अन्य तीनवटा आन्तरिक अर्थात् ज्ञानेन्द्रियसँग सम्बद्ध रहेको बोध हुँदछ।

निर्गुणमार्गी सन्तहरूले यौगिक मार्गमा हठयोगलाई विशेष महत्त्व दिएको प्रतीत हुँदछ। हठयोग दुई पदको संयोगबाट निष्पन्न भएको देखिन्छ। हठ् विशेषणमा योग विशेष्य रहेको बोध हुँदछ। प्राचीन शास्त्रमा साधारणतया प्राणनिरोधलाई प्रमुख साधनाको रूपमा हठयोगमा राखिएको छ। हठयोगमा भएका ह-लाई सूर्य र ठ-लाई चन्द्रमा भनिएको थाहा लाग्दछ। यस प्रकार सूर्य र चन्द्रको योगलाई नै हठयोग भनिएको पाइन्छ। *हकारः कथितः सूर्य ठकारश्चन्द्र उच्यते। सूर्याचन्द्रमसौयोगात् हठयोगो निगद्यते*॥[77] उक्त श्लोकलाई विविध प्रकारले अर्थाउन सकिन्छ। यस श्लोकमा एउटा अर्थले सूर्य अर्थात् प्राणवायु र चन्द्र अर्थात् अपानवायु भन्ने बुझ्न सकिन्छ। यी दुवैको योग अर्थात् प्राणयामद्वारा वायुनिरोध गर्नुलाई हठयोग भनिएको थाहा लाग्दछ। सूर्यले इडा र चन्द्रले पिङ्गला भन्ने अर्थ लिएको पाइन्छ अर्थात् इडा र पिङ्गला नाडीको सहयोगले सुषुम्णा मार्गद्वारा प्राणवायुको सञ्चार गराउने कार्यलाई हठयोग भनिएको थाहा लाग्दछ।

जसरी कुञ्जिकाले ताला खोली सरल रूपमा गृह प्रवेश गर्न सकिन्छ त्यसरी नै कुण्डलिनी जगाएर मोक्षको द्वार खोल्न सकिन्छ भन्ने शास्त्रोक्त कथन रहेको बुझिन्छ। सर्पजस्तै फन्को बेरेर कुण्डलिनी बसेको हुँदछ भन्ने थाहा लाग्दछ। सर्परूपी कुण्डलिनीलाई जगाएर उभौँ लैजाने पद्धति हठयोगमा रहेको छ। यस योगमा षट्चक्र भेदनलाई मुख्य वा आवश्यक मानिएको बुझिन्छ। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध र आज्ञा गरी षट्चक्र निर्मित छन्। यी षट्चक्रदेखि माथि अर्को एउटा चक्र पनि हुँदछ जसलाई सहस्रदलकमल भनिएको पाइन्छ। कुण्डलिनीलाई जगाएर सहस्रदलसम्म पुगी साधक विश्राम गर्दछन्। त्यही विश्राम स्थललाई ब्रह्मानन्द वा कैवल्य भनिएको थाहा पाइन्छ। मूलाधारचक्रदेखि आज्ञाचक्रसम्म विभिन्न नाडीहरूको भेदन गरी साधकले ब्रह्मारन्ध्रलाई प्राप्ति गर्दछन्। ती नाडीहरूमध्ये इडा, पिङ्गला र सुषुम्णा मुख्य हुन्। यी तिनै नाडीको उद्गमस्थल मूलाधार चक्र भए पनि गति भिन्न भिन्न हुँदछ। विभिन्न योगाभ्यासबाट ब्रह्म साक्षात्कार गरी साधकले ब्रह्मानन्दलाई प्राप्त गर्दछन्। यस सम्बन्धमा

[77] https://uou.ac.in/sites/default/files/slm/BY-104. सिद्ध सिद्धान्त पद्धति।

घेरण्य संहिता-मा यसो भनिएको पाइन्छ - *अभ्यासात्कादिषर्णामां यथाशास्त्राणि बोधयेत्। तथा योगं समासाद्य ततत्वज्ञानं च लभ्यते*॥[78] जसरी क, ख अक्षराभ्यासले सम्पूर्ण शास्त्रको अध्ययन गर्न सकिन्छ त्यसरी नै योगको अभ्यासका कारण साधकले ब्रह्मत्व वा ब्रह्मज्ञानलाई प्राप्त गर्न सक्दछन्।

कुण्डली योगको अर्को नाम पिपीलक योग रहेको थाहा लाग्दछ। यसलाई विहङ्गम योग भनिएको पाइन्छ। कमिलाको जस्तो प्रक्रिया भएको हुनाले यस कुण्डलिनी योगलाई पिपीलक योगको संज्ञा दिएको देखिन्छ। जसरी कमिलो भुइँबाट बिस्तार-बिस्तार रूखमा चढी फलसम्म पुग्दछ र फलको मधुर रसलाई ग्रहण गर्दछ त्यसरी नै साधकले कुण्डलिनीदेखि सहस्र कमलसम्म षट्चक्रको भेदन गरी ब्रह्मानन्दलाई प्राप्त गर्दछन् भन्ने हठयोगीहरूको अवधारणा रहेको थाहा हुँदछ। पक्षीको जस्तो गति भएको हुनाले यसलाई विहङ्गम योग भनिएको पाइन्छ।

चैतन्यं सर्वभूतानां विवृतं जगदात्मना ।
नादोब्रह्म तदानंदमतीद्रियमुपास्महे ॥
नादोपासनयादेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेते तदात्मकाः ॥[441]

मनको चञ्चलता निवारणको लागि योगाभ्यास र वैराग्य भाव आवश्यकता पर्दछ भन्ने अभिप्राय यी निर्गुण ब्रह्मोपासकहरूको रहेको पाइन्छ । पतञ्जलि लेख्छन् - *अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोध* ॥[442] निर्गुणमार्गी साधकहरूले गरिने प्रमुख यौगिक क्रियाहरूमध्ये एउटा हठयोग हो । निर्गुणमार्गी सन्तहरूले आफ्नो साधना पद्धतिमा हठयोगलाई विशेष मान्यता दिएका छन् । योगाभ्यासद्वारा कुण्डलिनीमा विद्यमान सुसुप्त अवस्थामा रहेको शक्तिलाई जागृत गराई त्यसबाट प्राप्त ऊर्जाका कारण साधकले मूलाधारचक्रदेखि स्वाधिष्टान, मणिपुर, अनाहत र आज्ञाचक्र हुँदै सहस्रकमलसम्म पुग्दछ भन्ने यिनीहरूको धारणा रहेको बोध हुँदछ । ज्ञानदिल दास लेख्छन् -

ईडा र पिंगला सुस्मा बहन्छन्
सुस्मानाको भेद विरलै कहन्छन्
सुमेरुका उपर सतलोक धाम
सुन्दर महलमा यकलै राम ॥[443]

साधारणतः मनुष्यमा कुण्डलिनी अधोमुख भएर बसेको हुँदछ । त्यस कारण काम, क्रोधादिले ग्रसित भएको हुँदछ भन्ने निर्गुणमार्गी सन्तहरूको अवधारणा रहेको देखिन्छ । ज्ञानदिल दास लेख्छन् -

थिरछैन जनमा पलकमा घुम्छ
काम क्रोध लोभमा फर्काइकन हुम्छ
काम क्रोध लोभ भक्तिजनूका वैरी
मनरुपी मृगवा भक्ति फिर्‌यो ऐरी ॥[444]

---

[441] श्रीराम शर्मा, इ. २००९, **शब्द-ब्रह्म - नाद-ब्रह्म**, मथुरा : युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, पृ. ५८ ।
[442] **योगसूत्र**, १/१२ ।
[443] जनकलाल शर्मा, पूर्ववत्, पृ. २३९ ।
[444] जनकलाल शर्मा, पूर्ववत्, पृ. २४० ।

कुण्डलिनी उद्‌बुद्ध भएर माथि उठेको अवस्थालाई स्फोट भनिएको पाइन्छ । त्यसैलाई योगीहरूले नाद ध्वनि भनी सम्बोधन गरिएको पाइन्छ । नादबाट प्राप्त ज्योतिलाई नै परमज्योति भनिएको थाहा लाग्दछ । श्रीराम शर्मा लेख्छन् - *नाद योगमा अनाहत स्वर-सूर्य ॐकारको आश्रय लिइन्छ र त्यसको अन्य स्वरमा घण्टा, शंख, मृदङ्ग आदिका ध्वनिको रूपमा कर्णेन्द्रियका माध्यमबाट श्रावणीय हुँदछ । यस आधारमा अवलम्बनको सहयोगमा योगीहरू भगवद्-वाणीलाई अवगाहन गर्दछन् ।*[445] माथि श्लोकमा प्रतिध्वनित भएका त्यही प्रकाशपुञ्ज ज्योतिलाई महाबिन्दु भनिएको ज्ञात हुँदछ । इच्छा, ज्ञान र क्रिया गरी बिन्दुलाई तीन भेदमा विभाजन गरिएको पाइन्छ । परिभाषिक रूपमा योगीहरू यसलाई सूर्य, चन्द्र र अग्नि भन्दछन् र कहीँ कतै ब्रह्म, विष्णु र शिव पनि भनिएका पाइन्छन् ।

निर्गुणमार्गी सन्तहरू आसन, मुद्रा, प्राणायाम, ध्यान, समाधिजस्ता योगका विविध अभ्यास गरी ब्रह्मत्व प्राप्तिका मार्गमा अनुगमनलाई विशेष बल दिएको पाइन्छ ।

सम्पूर्ण प्राणी मात्रको अन्तस्करणमा परमतत्त्वको उपस्थिति ज्योति रूपमा विद्यमान रहेका हुन्छन् भन्ने मान्यता रहेका छन् । ज्योति रूपमा अवस्थित ती परमतत्त्वलाई यौगिक क्रियाबाट प्राप्त गर्न सकिन्छ । शशिधर लेख्छन् - *विन्दु वीजखाग काटी गलधारेमाला अनहत शशिपूर्ण जगाऊ* ।[495] साधकले योगबलद्वारा मूलाधारचक्रदेखि आज्ञाचक्रसम्मका विभिन्न नाडीहरूलाई छेदन गरी सहस्रकमललाई प्राप्त गर्न सकिन्छ भन्ने धारणामा चित्त लगाएका थिए । यहाँ विभिन्न चक्र भेदन गर्दै जाँदा अन्तस्करणको ध्वनिलाई श्रवण गर्न सकिन्छ भन्ने यिनीहरूको धारणा रहेको बोध हुँदछ । समाधिस्थ अवस्थामा पुगी आन्तरिक नादलाई श्रवण गरी त्यसैमा आह्लादित हुनुलाई जोसमनी सन्तहरूले परमानन्दको अनुभूति मानेका छन् । मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध र आज्ञा गरी यी षट्चक्र हुन् । ती विभिन्न प्रकारका चक्रहरूका भेदन गरी सहस्रकमललाई प्राप्त गर्नुलाई समाधिस्थ योगीहरूले प्रमुख उद्देश्य बनाएका छन् । मानव शरीरमा देखिएका प्रकारगत नाडीहरूमध्ये इडा, पिङ्गला र सुषुम्नालाई प्रमुख

[491] **हठयोग प्रदीपिका**, ५ ।
[492] जनकलाल शर्मा, पूर्ववत्, पृ. १०४ ।
[493] जनकलाल शर्मा, पूर्ववत्, पृ. १०४ ।
[494] जनकलाल शर्मा, पूर्ववत् पृ. १०४ ।
[495] जनकलाल शर्मा, पूर्ववत्, पृ. १५९ ।

नाडीको रूपमा ग्रहण गरिएको पाइन्छ । यी नाडीहरू नाडीकन्ददेखि शरीरका विभिन्न भागमा गएका छन् । मलद्वार र मेरुदण्डमाझ स्थित अण्डाकारमा नाडीकन्दको उद्गम स्थान मानिएको छ । नाडीकन्ददेखि ब्रह्मरन्ध्रसम्म त्रिनाडी फैलिएका हुन्छन् । यही त्रिनाडीलाई इडा, पिङ्गला र सुषुम्ना भनिएको पाइन्छ । इडा, पिङ्गला र सुषुम्ना नाडीलाई शरीरमा त्रिवेणीको रूपमा दिइएको थाहा लाग्दछ । शास्त्रमा भनिएको छ -

इडायां यमुना देवी पिङ्गलायं सरस्वती ।
सुषुम्णायां वसेद् गङ्गातासां योगस्त्रिधा भवेत् ॥
सङ्गता ध्वजमूले च विमुक्ता भ्रुवियोगतः ।
त्रिवेणीयोगः स प्रोक्तस्तत्र स्नानं महाफलम् ॥[496]

गङ्गा, यमुना र सरस्वतीको सङ्गमलाई त्रिवेणी भनिए-जस्तै इडा, पिङ्गला र सुषुम्नाको सङ्गमलाई योगीहरू मुक्त त्रिवेणी मान्दछन् । ज्ञानदिल दास लेख्छन् -

गंगा र जमुना त्रिवेणी न्यारै
गुरु सेवा छोडी धन षोज्छ धेरै ॥[497]

यस प्रसङ्गलाई उल्लेख गर्दै शशिधर लेख्छन् -

वारी जो गंगा पारी जमुना बीच रहे ज्यों हटिया ।
लागी गैदे पिरती ताही देसवामे चली जाई ॥[498]

अन्तस्करणमा सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपमा ब्रह्म विद्यमान रहन्छन् अर्थात् परमब्रह्म परमबिन्दु रूपमा रहेका हुन्छन् भन्ने धारणा रहेका छन् । त्यही सूक्ष्मतत्त्वलाई नै जोसमनी सन्तहरूले मानेका छन् । *शुष्म सुमिरन देव निरंडन निर्मल बाल* भन्दै शशिधर सूक्ष्म ब्रह्मको सङ्केत गर्दछन् । समाधिस्थ अवस्थामा पुगी साधकले ब्रह्म चिन्तन गरी अनाहत ध्वनि श्रवण गर्दै परिष्कृत र परिमार्जित वा सिद्ध साधकको अवस्थामा प्रतिष्ठित हुँदछ भन्ने यिनीहरूको धारणा रहेको पाइन्छ । ज्ञान, भक्ति, वैराग्य र योगको पराकाष्ठाबाट साधकले ब्रह्मानन्दलाई प्राप्त गर्नु नै कैवल्यता प्राप्ति मानिन्छन् । शशिधर लेख्छन् - *कहे शशिधर सुनभाइ साधुः योगपदहै निर्वाण* ॥[499] सत् असत्‌लाई छुट्याउन सक्ने क्षमता साधकमा गुरोपदेशलाई मन्थन गरी प्राप्त ज्ञानबाट हुँदछ भन्ने निर्गुणमार्गी साधकहरूका मान्यता पाइन्छन् । ज्ञानको ज्योति देदीप्यमान

[496] गोस्वामी प्रह्लाद गिरि वेदान्तकेशरी, (सम्पा), इ. १९८८, **षट्चक्रनिरूपणम्**, वाराणसी : कृष्णदास अकादमी, पृ. ५ ।
[497] जनकलाल शर्मा, पूर्ववत्, पृ. २४३ ।
[498] जनकलाल शर्मा, पूर्ववत्, पृ. १५६ ।
[499] जनकलाल शर्मा, पूर्ववत्, पृ. १६१ ।

योग :

कौलमती तथा अन्य सन्तों की योग विषयक धारणा भी समान ही है। ईश्वर प्राप्ति के लिये दोनों ने साधन रूप में इसे स्वीकारा है। सन्त

१- कौलमती सन्त परंपरा र साहित्य, पृष्ठ-२४८

२- वही— पृष्ठ-२४४

३- वही—— पृष्ठ-१४१

४- कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ-२

५- गो॰ हि॰ पु॰ र॰ सं॰, पृ॰ २३०

कबीर त्रिवेणी में स्नान करने को कहते हैं।[1] धरनीदास सुषुम्ना के द्वारा नव नाड़ियों के निरीक्षण का उल्लेख करते हैं।[2] दरिया साहब के अनुसार सुषुम्ना का मार्ग होकर ही योगी को सिद्ध पता है।[3] पलटूदास ने साधक को त्रिकुटी में इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना इन तीनों नाड़ियों की साधना का उपदेश दिया है।[4] कबीर के अनुसार भंवर गुफा में ही परमतत्व की निर्झरिणी प्रवाहित होती है।[5] धरनीदास के मत से यह वह स्थल है जहां पुरुष के अभाव में भी अनन्त ज्योति आलोक-प्रसार करती है।[6] भारतीय सन्तों के समान इन कौलमती सन्तों ने भी इस योग मार्ग का अनुसरण किया है। आत्मा की शुद्धि के लिये ये सन्त योगाभ्यास की आवश्यकता मानते हैं। इनका विचार है कि प्राणायाम क्रिया से देहाती पाप कट जाता है, त्रिताप आलस्य नष्ट हो जाता है, काठ सभी दुःखों से भी मुक्ति मिल जाती है और आत्मा मजबूत और शान्त हो

१- त्रिवेणी मनाय न्हवाइए, सुरति मिलै जो हाथ रे।
— कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ-८८

२- नव नाड़िन को धारा निरखी, पवन सुषुम्ना नारी।
—धरनीदास, पृष्ठ-४

३- अगम पन्थ है सुषमना, प्रेम की पीर —दरिया, पृष्ठ-१४

४- इड़ा पिंगला बीच है त्रिकुटी मन लावी। —पलटूदास, पृष्ठ-३१

५- नीझर झरै रस पीजिये, जहाँ भंवर गुफा के घाट रे॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ-८८

६- भंवर गुफा में भंवर बनायो, बिन पुत्र जोति बारी है।
—धरनीदास, भाग-१। पृष्ठ-३४

की जाती है ।[1] इन सन्तों का तो विचार है कि जिस दिन जीव इस संसार में जन्म लेता है, उसी दिन से वह जीव का नाश प्राप्त कर लेता है ।[2] जसनाथ के विचारानुसार ही योग युक्ति से ही ईश्वर प्राप्ति की जाती है——

ब्रह्मानन्द गीर्वाण गीरापानी योग काया ही जानैगा ।।[3]
जब जाना तब पूरण होगा फिर जनम नहि पावैगा ।।

इसी अनुसार ब्रह्मानन्द[4] से मिलने वाले अमृत का जो पान करता है, वह संसार से मुक्त हो जाता है । प्रेमाख्यदास ने भी नाद के अभ्यास में कहा है क्योंकि योगाभ्यास से ही ईश्वर प्राप्ति सम्भव है । इसी प्रकार——

उजीपुरी सुगने अमी डीगणाल हांकारले कृष्ण मेरा माई ।।[5]

जिसे सिद्ध दास की एक मात्र रचना "निर्गुण भजन" नाद के अभ्यास के विषय में है । नाद के अभ्यास और पवन की साधना द्वारा मनुष्य अमरत्व की प्राप्ति कर लेता है——ऐसा आशय इस भजन में प्रकट होता है । भारतीय सन्तों ने प्रतीक रूप में इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्णा को गंगा, यमुना तथा सरस्वती कहा है ।——

१- राजस्थानी सन्त परम्परा र साहित्य, पृष्ठ-२०६

२- मुक्त भयो पांचको अनभया बाणी ।
जोगको रसाई इसे दिन पायो ।। ——वही——पृष्ठ-२१०

३- राजस्थानी सन्त परम्परा र साहित्य, पृष्ठ-२१८

४- अमृत पीवै संसार पवेर न आवै फेरि संसार जीवन मुक्त होवै ।।
——राजस्थानी सन्त परम्परा र साहित्य, पृष्ठ-२१२

५- वही—— पृष्ठ-२१६

६- वही—— पृष्ठ-२१६

गंग जमुन उरअंतरि मिलावै ।
गंगा जमुना सुरसती मिलै जब सागर माँहि ।।[1]

गंग तीर मोरी खेती जमुन खरिहानां ।।[2]

भोजपुरी सन्तों ने भी इड़ा, पिंगला के लिये गंगा, जमुना शब्दों का प्रयोग किया है—

गंगा जमुना नदी नहाना डुबकी सागर बाबा की ।।[3]

गंगा से जमुना जल न्यार ।।[4]

चलत अनाहद पुरी नाहीं ताहु तन नदी गंगा जमुन लाग्यौ ।।[5]

जिस प्रकार इड़ा, पिंगला के लिये गंगा-जमुना प्रतीकों का प्रयोग होता है उसी प्रकार चन्द्र और सूर्य का भी । इसी आधार पर इड़ा चन्द्र तथा पिंगला सूर्य नाड़ी कहलाती है । 'चंद सूर्य दुइ खम्भा, बंकनाल की डोर'[6] कबीर इन्हीं नाड़ियों का संकेत करते हैं । गंगा-जमुना के संगम की भाँति चन्द्र तथा सूर्य के मिलने पर ही अनाहत नाद सुनाई पड़ता है—

ससिहर सूर मिलावा ।
तब अनहद बेनु बजावा ।।[7]

१- दादू दयाल की बानी, भाग १, पृष्ठ-२६

२- कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ-९३

३- भोजपुरी सन्त परम्परा और साहित्य, पृष्ठ-२०७

४- वही— पृष्ठ-११६

५- वही— पृष्ठ-१११

६- कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ-८८

७- वही— पृष्ठ-१४६

इसी प्रकार नेपाली सन्त ज्ञानदिलदास ने भी चन्द्र और सूर्य का उल्लेख किया है—

चन्द्र र सूर्य [illegible] तारा ।[1]

गंगा ले पार जमुना उतारै सिताराम ओंकारा ।।[2]

हठयोग, राजयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग तथा लययोग का विवेचन दोनों ने ही किया है। कबीरदास सन्तों ने जिस सहज साधना के प्रति विशेष महात्म्य दिखाया है[3] नेपाली सन्त भी उसके उतने समर्थक हैं। अवश्य ही भारतीय सन्त साहित्य में सहज शब्द का जितना प्रयोग हुआ है उतना नेपाली साहित्य में नहीं। डा० मथुरा दत्त पाण्डेय इसका कारण बताते हुये लिखते हैं कि नेपाल में इस शब्द के नाम पर सिद्धों के गुह्य प्रयोगों ने भी अनाचार हुये, कहीं उसके साथ इन्हें सम्बद्ध न मान लिया जाये इस आशंका से अथवा इस शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थों को दृष्टि में रखकर स्वयं गुणानुवाद से नेपालियों ने इस का प्रयोग अपनी रचनाओं में नहीं के बराबर किया है[4]। इस प्रकार हम देखते हैं कि थोड़े बहुत अन्तर के साथ इन दोनों के साहित्य में योग के परंपरागत रूप इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, षट्चक्र, सहस्र दल कमल, कुण्डलिनी और ब्रह्मरन्ध्र

१- नेपाली सन्त परम्परा र साहित्य, पृष्ठ-२५४

२- वही— पृष्ठ-२८६

३- जा पाहुँचे का [illegible] ना [illegible] हाजी ।
पहुँ गुरे [illegible] ।। —क० ग्र०, पृष्ठ-१०७

४- सहज आनन्दमा [illegible] ।। —ने० सं० प० र सा० पृष्ठ-२२८

५- नेपाली और हिन्दी : भक्ति काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ-१११

06:38

नेपाल के निर्गुण संप्रदाय

हिं En | सुनें

नेपाल में निर्गुण संप्रदाय, जिसे **जोसमणी संप्रदाय** भी कहा जाता है, की स्थापना पश्चिमी नेपाल में शशिधर स्वामी द्वारा की गई थी। Shodh Sanchayan के अनुसार, उन्हें इस संप्रदाय की प्रेरणा बिहार के दरिया साहब से मिली थी। यह संप्रदाय निर्गुण भक्ति पर जोर देता है, जिसका अर्थ है ईश्वर की पूजा निराकार और गुणरहित रूप में करना।

निर्गुण संप्रदाय के बारे में कुछ मुख्य बातें:

- **स्थापना:** पश्चिमी नेपाल में शशिधर स्वामी द्वारा.
- **प्रेरणा:** बिहार के दरिया साहब से.
- **मुख्य सिद्धांत:** निर्गुण भक्ति, यानी निराकार और गुणरहित ईश्वर की पूजा.
- **अनुयायी कवि:** दास सतदित, अगमदिल, प्रेयदिल, ज्ञानदिलदास, घिजेदिलदास, रामबहादुर आदि.
- **अन्य नाम:** जोसमणी संप्रदाय.
- **प्रभाव:** इस संप्रदाय का प्रभाव नेपाल के विभिन्न हिस्सों में देखा जा सकता है.

निर्गुण संप्रदाय, नाथ संप्रदाय से भी जुड़ा हुआ है, जिसमें गोरखनाथ जैसे महत्वपूर्ण संत हुए हैं। निर्गुण संप्रदाय के अनुयायी, ईश्वर को सभी रूपों और गुणों से परे मानते हैं, और उनका मानना है कि ईश्वर अनंत, असीम और अकल्पनीय है.

आप इस वीडियो में कबीर के निर्गुण भजनों को सुन सकते हैं:

बाणी 2

गुरूदेव दाता मैं तो दास तुमारो।
काल मौत की फाँसी तोड़ो मेटो घोर अँधेरो।।टेर।।
सूते हँस की नींद उड़ावो खोलो मुकत दवारो।
पाप मैल काया का धोवो तन निर्मल कर डारो।।1।।
रणुकार में डोरी साँधी खुलियो भजन भँडारो।
बंकनाल की पोल ऊगाड़ी सुखमण कुँची सारो।।2।।
अखे नाम का धोरा लागा सुन्न में घुरे नगारो।
बिन दर्पण दीदार दिखाओ अमर जोत उजियारो।।3।।

नानक नाथ मिले गुरू पूरा शीश चरणें में डारो।
लाधूनाथ गुरा के शरणों जुग से लियो किनारो।।4।

बाणी 3

गुरूदेव बताओ घट में आत्म राम।
मिन्दर देवरा कुछ नहीं पूजूँ नहीं जाऊ तीर्थधाम।।टे
केवल देव मिले घट माँही धुपी कल्पना काम।
आठूँ पहर अखंड धुन लागी जपूँ अमोलख नाम।।1
उनकी काया उनकी माया उनका सब ही तमाम।
चाँद सूरज सब उनकी रचना उनका धरा असमान।।2
तीन लोक में आप ही बोले रूप वर्ण बिना श्याम।
सब के ऊपर उनकी नगरी बेगम भोमि गाँम।।3।।
लाधूनाथ अखी घर पूरा नहीं शीतल नहीं धाम।
अमर जोत में जोती मिलगी नहीं मरणों नहीं जाम।

बाणी 4

भजन से काया निर्मल होवे।
सतसंग गंगा ज्ञान को साबून जे कोई मल 2 धोवे।।टे
जोग अगन घट भीतर जाली बीज वासना खोवे।
रोग पीड़ा सब तन की भागी नहीं हते नहीं रोवे।
अला पींगला तंत सुखमण खूब जुगत से जोवे।
थट तरबीणी डोरी साँधी मोती नाम का पोवे।।2
सोहनी शिख की झिरी डगरी सुरत शब्द से टोवे
अमर जोत में हँसा मिलिया जोगी निरमें सोवे।।3

10:53

अखी नाम का धोरा लागा भरी नाम की खेणा।
रणुकार में जोत प्रगटी दर्शन पायो नेणा।।3।।
लाधूनाथ आप से मिलिया नहीं भाई नहीं भेणा।
निराकार में रमणी रमिया झिणी डोरी तेणा।।4।।

8

अबधू अमर पियाला झेलो।
धुप गये पाप कल्पना सारी निर में जुग में खेलो।।टेर।।
होय हुश्यिार ताक मत काची पकड़ शब्द को सेलो।
पाँचू भूत तीन गुण काटो खुले अगम को गेलो।।1।।
काल मौत नेड़ा नहीं आवे बेहद पर पग मेलो।
ओघट घाट डगरियाँ झिणी चढ़े गुरू को चेलो।।2।।
अमर जोत जगे बिन बाती हँस जोल के भेलो।
वहाँ पूगा आवे नहीं जावे विरला दर्शन लेलो।।3।।
लाधूनाथ आत्मा खोजी दियो धर्म को हेलो।
ओर आसरा सब कुछ झूठा बाँध गुरू संग बेलो।।4।।

9

अबधू सतगुरू सेन लखाई।
जरा मरणा दुख तोड़ी कल्पना इमरत बूँदद चखाई।।टेर।।
काया कोट में अजब नगरियाँ जिसकी गली बताई।
नाम कँवल से सुखमण उल्टी बंकनाल घर आई।।1।।
गिगन मंडल में धोरा लागा सुन्न में ढ़ोल धुराई।
बिन सियाँ निज मोती निपजे बे हँसा चुग पाई।।2।।

करोडु जोत जगे बिन बाती जोती में जोत समाई।
अधर छतर वहाँ जोगी सूता नहीं धूप नही छाँई।।
लाधूनाथ आप से मिलिया आवागमन मिटाई।
आयो खोज आत्मा खोजी निर्गुण वाणी गाई।।4।।

राजा रंक पंडित सब उलजे तृष्णा जाल जबर रे।
गीता वेद भागवन्त बाँचो हर की नहीं खबर रे।।1।।
ऊँडो अथाग भरो भवसागर कवँल तिरे जूँ तिर रे।
जीवत मरो राम रस पीवो अजर जरणा जर रे।।2।।
सुखमण कुँची खोल घट तालो ध्यान आत्मा धर रे।
अखी मंडल में डोरी साँधी जुग जुग जोगी अजर रे।।3।।
नानक नाथ मिले गुरू पूरा काज सुफल गया सर रे।
लाधूनाथ जागा सतसंग में अमर लोक में धर रे।।4।।

23

अबधू किसका करूँ बखाण।
अधर भोम पर अखी जोगी नहीं चन्द्रमा भाँण।।टेर।।
कई किरोड़ कृष्ण जी हो गये कई किरोड़ भये रामा।
कई किरोड़ ब्रह्मा भये विष्णु कई किरोड़ शिव कामा।।1।
नहीं था ओम् नहीं था सोम् नहीं था मेर मंडाणा।
नहीं था जीव नहीं थी माया नहीं था पवन पियाणा।।2।
पुरूष नहीं था नारी नहीं थी नहीं था राजा राणा।
बाणी नहीं थी खाणी नहीं थी नहीं थी जाण पिछाणा।।3।
कई वार महा परले हो गई कई बार उपजाणा।
उपत खपत करता सो नियारो कोई भेद नहीं पाणा।।4।
लाधूनाथ आप से मिलिया पाया अमर ठीकाण।
निराकार में जोती मिलगी सत में बूँद समाणा।।5।।

26

हँसला नित्य गुरू चरणा जाई।
निराकार में माला फेरी हर गुण वाणी गाई।।टेर।।
सच्चे गुरू सत के साथी जुग जुग शरणा होई।
ज्ञान ध्यान जोग में पूरा काल मौत न खाई।।1।।
दारू पिये जोगी मत हीणा सुलफे अकल गमाई।
गाँजों अम्ल तम्बाकू पीवे भगती भेख ल जाई।।2।।
कुल ऊँचा घर मन्दिर ऊँचा धन की कमी नहीं काई।
दया धर्म निज मार्ग खुला जमड़ा नरग गिराई।।3।।
सत्संग करी आत्मा खोजी घट में साच कमाई।
रूम रूम रणुँकार अखण्डी एक देव को ध्याई।।4।।
लाधूनाथ आप से मिलिया अमर जोत समाई।
अखी नाम का धोरा लागा अलख अलख लिवलाई।।5।

27

सतगुरू मेहर करी मुझ ऊपर अखे नाम रटूँ निराकारी
रणुँकार में धोरा लागा भरी भजन की भखारी।।टेर।।
तीन लोक अरू चवदा भवन में काल बली फाँसी डारी
भवसागर में जीव अलूझे दुःख पावे सब नर–नारी।।1।
तीर्थ व्रत कर पत्थर पूजे परपच बहुत करे भारी।
गीता वेद भागवन्त बाँचे निज भक्ति की गमन्यारी।।2।
चाँद सूरज एके घर लाये शब्द डोरी सारी भाई।
सुन्न मंडल में ढ़ोल घुरत है अखंड धार अमिया झारी।।3।

31

भजन में लागी लग्न खरी।

निराकार में डोरी साँधी मिल गये आप हरी।।टेर।।

नींदरा नहीं आवे अन्न नहीं भावे दुविधा हटगी परी।

काम कल्पना आसा तृष्णा भगति पद में डरी।।1।।

नाभ कवँल से बादल उल्टा अमृत अखंड झरी।

सुखमण गंगा गेरी गाजे बंकीनाल भरी।।2।।

मौत नहीं आवे काल नहीं खावे निरभे ध्यान धरी।

अमर जोत में हँसा मिलिया पूर्ण काज सरी।।3।।

लाधूनाथ आत्मा खोजी कबहूँ नहीं जन्म भरी।

धूप नहीं छाया डिगे नहीं डोले अखंड राज करी।।4

32

भजन को बड़ो आसरो भारी।

ओर आसरा झूठा कूड़ा पल में जमड़ा भारी।।टेर।।

भूल भूलणी सब जुग बाँधो मोह की फाँसी डारी।

मोह ममता से विरला छूटा देवी देवता हारी।।1।।

सत की वाणी सत से भाखी दुनिया माने खारी।

हर को छोड़ पत्थर को पूजे हाडाँ का बोपारी।।2।।

बाहिर भीतर बोले अखंडी घट-घट में निराकारी।

शब्द कुँची से ताला खोली खुली जोत उजियारी।।3

सुन्न मंडल में ढोल धुरत है अमर जोत उजियारी।

जोती उल्ट जोत में मिलगी निज हँसों कुँ तारी।।4

लाधूनाथ जागता जोगी सब जागो नर-नारी।

एक देव कुँ निरभे शिवणों रात दिना धुँन धारी।।5

10:58

भुर्ज उडगा भ्रम का शब्द लागी भालरी।
सखमणा भरपूर उल्टी खुली बंका नालरी।।1।।
गिगन गाजे बाजा बाजे गेबी घन्टा टाल री।
सुन्न में टंकसाल टाँकी हीरा सच्चे ढ़ालरी।।2।।
बेगम नगरी हँस पूगा हो रही मतवाला री।
किरोड़ सूरज किरोड जोती अखी घर उजियाल री।
अमर जोगी आप मिलिया शीश चरणा डाल री।
लाधूनाथ जी नाथ मिलिया साची प्रीति पाल री।।4

39

गुरु नानक नाथ भेटे चरणा में आधार री।
झिणी डगरी आप चढ़िया मैं तो चढ़िया लार री।।टे
जाप अजपा निरभे में जपिया नाम लिखो निराकार
शब्द रूपी डोर पकडी हँस पेले पाल री।।1।।
बंकनाला खुला ताला सुन्न में रणुकार री।
गेबी जोती झिगर मिगर निरखियो दीदार री।।2।।
अधर छत्तर सेज ढ़ाली जोगी का घर बार री।
धूप नहीं है छाँय नहीं है ऊपर अपरम्पार री।।3।।
लाधूनाथ जी आया जोगी जुग में अवतार।
काया खोजी अलख सोजी कहता हेला मार री।।4

40

जोगी राजा निगुर्ण में चित लाई।
उल्टी नदी समुद्राँ मिलगी सत मे बूँद सँमाई।।टेर

अखे नाम का धोरा लागा रात दिना धुन्न लाई।
शब्द सत की पेड़ी चढ़िया झिणी डगरिया जाई।।1।।
धरा नहीं गिगन पवन नहीं पानी नहीं धूप नहीं छाँई।
नहीं वहाँ ऊपजे ही वहाँ बिनसे नहीं गया नहीं आई।।2।।
नहीं वहाँ गुरु नहीं वहाँ चेला वाणी वेद नहीं गाई।
नहीं वहाँ रंग रूप नहीं रेखा नहीं वहां डिगे डिगाई।।3।।
लाधूनाथ आप से मिलिया एक देव को ध्याई।
आरपार में रमो अखंडी नहीं पिता नहीं माई।।4।।

11:00

भवसागर से कई नर तिर गये ऊँच नीच नरनार।
सतसंग करी आत्मा खोजी सतगुरू पूरा धार।।1।।
अखे अजर अमर अविनाशी नहीं हलका नहीं भार।
बाहिर भीतर पूर्ण बोले त्रिवेणी दीदार।।2।।
अला–पिंगला एक मोरचे सुखमण डोरी सार।
बंकनाल में धोरा बाँधी चढ़िया दसवें द्वार।।3।।
गिगन मंडल में बाजा बाजे सोहनी शिखर रणुकार।
सैंस नाद माँहि घन्टा बाजे जोगी के घरबार।।4।।
लाधूनाथ आप से मिलिया नहीं आवे संसार।
किरोड़ सूरज वहाँ झँडा फरू के जोती सैंस हजार।।5

45

अबधू खोजी शब्द हमारा।
अखी देश की बेगम शोभा वाणी वेद थकहारा।।टेर।
नहीं वहां कुटुम्ब नहीं कुल नाती नहीं जमाँ का चारा
अमर नगर की डगरी चढ़िया मिलिये सरजण हारा।।1
रँग नहीं रूप धूप नहीं छांया नहीं हल्का नहीं भारा।
धरा नहीं गिगन चाँद नहीं सूरज पवन नहीं नहीं तारा।।2
नहीं कोई डिगे नहीं कोई डोले अधर धार निर्धारा।
नहीं कोई मुख नहीं कोई बोले नहीं मीठा नहीं खारा।।3
लाधूनाथ जागता जोगी मिले देव निराकारा।
नहीं कोई सोवे नहीं कोई जागे नहीं भेला नहीं न्यारा।।4

11:01

48

भजन में बड़ी मौज भरी।
भजन बिना भवसागर डूबे प्राणी दुखियारी।।टेर।।
सब घट पूर्ण एक आत्मा अलख निराकारी।
तीन लोक में अनघड़ बोले खोजो नरनारी।।1।।
अला पिंगला सुखमण गंगा विरला लखतारी।
त्रिवेणी में धोरा लागा खुली बंक बारी।।2।।
गिगन मंडल में ढोल घुरत है रूम–रूम रणुँकारी।
निज नाम की झड़िया बरसे भर ली गुप्त भखारी।।3।।

लाधूनाथ आप से मिलिया अखंड अमर धुन धारी।
सतधर्म की जहाज बनाई पूगा पेले पारी।।4।।

49

भजन बिन अन्त संगी नहीं कोय।
पूरे गुरू के शरणो रहना हरी भजिये गत होई।।टेर
काया कोटड़ी हाड माँस की मैल मूत भरी लोई।
काम क्रोध की फाँसी लागी दुखड़े में जीव रोई।।1
सब घट बोले पूर्ण आत्मा जोग जुगत से जोई।
किरोड़ जुँगा का पाप मैल सब सुखमण गंगा धोई।।
अखे नाम का धोरा लागा सत की डोरी पोई।
अमर जोत में हँसा मिलिया पूगा सो निर्भोई।।3।।
लाधूनाथ आप से मिलिया नहीं जागे नहीं सोई।
सब के भेला सकल का त्यागी धिन जोगी निर्भोइ।।

50

भजन बिन सभी खेल काचा।
धर्म करो एक हर की भक्ति दो मार्ग साचा।।टेर।
निगुर्ण माला फेर जुगत से नाम रँग राचा।
कागद स्याही से काम नहीं चाले बह्म वेद बांचा।।

ाधूनाथ आत्मा खोजो काल नहीं पोंचा।
नेज नाम का भरे भंडारा जोगश्वर साचा।।4।।

51

झ हर बिन पलक न आवड़े मेरे गुरू जी तुम कैसे। फिरते हो
फूठा। गुरू राजी मेरा मालिक राजी गुरू रूठाँ हर रूठा।।टेर।।
ातपिता कुल कुटुम्ब कबीला मोह का तागा टूटा।
ात्म डोर अखंडी लागी निरभे लावा लूटा।।1।।
ुखमणा कुँची फोर गिगन में सुन्न का ताला टूटा।
मट घोर जहाँ उमटी अमृत को मेह बूढा।।2।।
री रस पिया जुग–जुग जिया लगे न मन्त्र मूठा।
मर जोत में हँसा मिलिया आवागमन से छूटा।।3।।
ाधूनाथ अखीं घर पूगा नहीं आवेगा पूठा।
ेराकारी में रमणी रमिया बे जोगेश्वर लूँठा।।4।।

52

र लिजे हँसा राम भजन से प्रीत।
र्म किये बिन झूठो जीवणों वृथा जन्म गयो बीत।।टेर।
ाची काया घड़ी तुम्हारी मति कोई करो अनीत।
ल छन में काया खिंड जावे ज्यों बालू की भींत।।1।।
ात पिता घर सुन्दर नारी यह सब छल का मीत।
ोह माया तागे से बाँधे विरला निकले जीत।।2।।
ःख में साथी कोई नहीं अपना अन्त में हुवे फजीत।
वसागर से बे हँस तिरिया हरी रस प्याला पीत।।3।।

साच कमाया हर को धाया पाप नहा एक रत्ता।
अमर जोत अधर में देखी करो कोई तेल बत्ती।।3
लाधूनाथ जागता जोगी करो भजन भरती।
निराकार में सुरता मिलगी अजर नाम जरती।।4।

।। श्लोक ।।

भजन भूल पर नींदरा कर जावे नरक द्वार।
लाधूनाथ संसार में छोटी मोटी नार।।1।।
झूठी को सत मान ली, छूटी सत की बात।
लाधूनाथ संसार में, भ्रम अँधारी रात।।2।।

55

हँसला निर्गुण ध्यान धरी।
दूरा भाग किधर मत जावो घट में अलख हरी।।टे
सतसंगत में सांच कमायो पूर्ण काज सरी।
गुरू कृपा से सूता जागा हेला बहुत करी।।1।।
अला पिंगला साजी सुखमण जरण अजर जरी।
गिंगन मंडल में जोगी नहावे इमरत गंग भरी।।2
अखी नाम को भरो भंडारा शिंवरो पलक धरी।
निराकार में जोती मिलगी जम से नही डरी।।3।
लाधूनाथ सेज में पूगा अमर धाम परी।
रँग नहीं रूप धूप नहीं छाँया ऊपजे नही मरी।।4

56

मनवा घट में आत्म राम।
लाधूनाथ आप से मिलिया हँसे पायो विश्राम।।टेर

68

गुरूदेव दाता मोह की नींद गमाई।
निज नाम का भरूँ भन्डारा अमर जोत सँमाई।।टेर
जुग स्वपने की कूड़ी बाजी देख तराँ मिट जाई।
पल में ऊपजे क्षण में बिनसे सिर पर काल कसाई।
तीन लोक अरू चवदे भवन में सभी ठौर दुःखदाई
ब्रह्मा विष्णु देवी देवता सब मरणों में आई।।2।।
आपो खोजो आत्मा खोजी अमर आप कुँ ध्याई।
आर पार के ऊपर डेरा आवागमत नहीं आई।।3।
लाधूनाथ गुँरा के शरणों सेजा राम रमाई।
निराकार में माला फेरी साची करी कमाई।।4।।

69

हँसला प्रगट सेन हमारी।
काया माँज आत्मा खोजी लाधूनाथ पुकारी।।टेर
इस काया में नव दरवाजा दसँवी गुप्ति बारी।
सत का ताला जत की कुँची जोग जुगत से सारी
बकनाल में धोरा लागा अमर नाम रणुँकारी।
अधर धार में जोगी खेलो काल जमाँ झकमारी
अखी कोट में भरूँ भँडारा गेबी भरी भरवारी।
किरोड जोत में ज्योति मिगली झिगार मिगर दीदारी
नेम धर्म की जहाज बनाई भवसागर से तारी।
लाधूनाथ आप से मिलिया सत मानो नरनारी।।4

[૩]

જાગો રે જાગો મોટાં મુનિવરા, સે'જે સદ્‌ગુરુ પાયા,
રણુંકારની ધૂનમાં મનવા તાર મિલાયા....જાગો રે૦

નાભિ કમલ નેજાં ફરફરે, ઉઠે ત્યાં શબ્દ સવાયા,
ત્યાં અવિનાશીકા ધામ હે, હંસે વાસ વસાયા....જાગો રે૦

ઈંગલા પીંગલા સુષુમ્ણાં, ત્રિવેણી રસ લાયા,
બંકનાળ ઉલટી વહે, દશમેં દ્વાર સમાયા....જાગો રે૦

શૂન પૃથ્વી શૂન આકાશ હે, શૂન સંતનકી છાયા,
તન તૂટે મન કહાં ગયે, નિજ કહાં રે સમાયા....જાગો રે૦

ગગનમંડળકું ક્યા કરૂં ? ક્યા કરૂં શૂન સવાયા,
ક્યા કરૂં ઈ હંસકુ, એક દિન સબ પરલાયા....જાગો રે૦

અવિનાશી તો વણસે નહિ, વણસે સોઈ હે માયા,
કહે અખો આ અગાધ હે, આતમ કોઈ વિરલે પાયા...જાગો રે૦

[૪]

નૂરત સૂરત ચાલી શૂનમાં, મહાશૂનમાં મોહી જી,
બ્રહ્મચક્ષુ ભઈ દો જણી, કળા કારમી જોઈ જી...ટેક૦

નૂરીજન આગે નટડી, ખેલ નિરાધારે ખેલે જી,
સૂરત ન ચૂકે સુંદરી, ધરણી પાવ ન મેલે જી...નૂરત૦

તખ્ત ત્રિવેણી ત્યાગી કરી, ગુરૂગમ પર આયા જી,
નાથજી આગે નૃત્ય કરી, પટા અમર લખાયા જી...નૂરત૦

દ્રષ્ટિ ઉપદેશ આપે તે મોટી કળા ,
જે થકી જંતના કંજ સીજે,
સેવતાં સુખ હોયે અતિ ઘણું,
જો સદ્‌ગુરૂ કેરૂં મન રીઝે....હરિ૦
પ્રત્યક્ષ રામ તે તત્ત્વવેતા વિશે ,
જેમ કુંડળ વિશે કનક દીસે,
મન વચન કર્મે સંતને ભજશે
અખા ! તેનું દ્વૈત દેખી મન નહિ જ હીસે....હરિ૦

અરજણ ભગત

[૧૧]

બંકનાળ રસ પિયા, યોગેશ્વર ઊલટી નાળ રસ પિયા હો જી,
પીયા અમીરસ ભયા તો અમર,ત્રિકુટી મહેલ પર તકિયા....યોગેશ્વર

નાભિકમળસે પવન ઊલટયા, દિયા દિલ્લીસે ડેરા હો જી,
ખટ ચક્ર વીંધીને ચઢિયા, ગગનમંડળ ઘર કિયા....યોગેશ્વર

તૃષા હે તનકી આશ પીવનકી, લહર લગન ઘર લહિયા હો જી
મગન ભયા મન ચઢી ખુમારી, રોમ–રોમ રમી રહિયા ...યોગેશ્વર

એક વચન જેણે સહી કરી માન્યા, એક વચન ઘર રહિયા હો જી
નૂર નિરંજન નજરસે નીરખ્યા, સોહમ વચને ઘર આયા ...યોગેશ્વર

સાચી રે બંદગી કર લો બંદા, ભજન કરો તો ભય ગઈયા હો જી,
દાસ અરજણ જીવણ કે ચરણે, જાગી તો અમર રહિયા...યોગેશ્વર

[૧૨]

મેરી નજર મોતી આયા, મૈ ભેદ અગમરા પાયા રે...ટેક
ઓહંગ સોહમના જાપ જપીને, ત્રિકુટી તકિયા ઠેરાયા,
ચલી સૂરતા કિયા સમાગમ, સુખમણ સેજ સમોયા રે....મેરી૦

आदावन्ते च मध्ये च जनो यस्मिन्न विद्यते।
येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः॥ ११०॥

जिसमें आदि, अन्त और मध्यमें कोई भी जन नहीं है तथा जिससे यह जगत् निरन्तर व्याप्त है वही देश जनशून्य कहा गया है।

कलनात्सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः।
कालशब्देन निर्दिष्टो ह्यखण्डानन्द अद्वयः॥ १११॥

ब्रह्मा आदि समस्त भूतोंकी एक पलमें ही कलना करनेके कारण अद्वितीय अखण्डानन्दरूप ब्रह्म ही कालशब्दसे कहा जाता है।

सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम्।
आसनं तद्विजानीयान्नेतरत्सुखनाशनम्॥ ११२॥

जिस अवस्थामें सुखपूर्वक निरन्तर ब्रह्मचिन्तन हो सके उसे ही आसन जानना चाहिये; दूसरा सुखनाशक आसन आसन नहीं है।

सिद्धं यत्सर्वभूतादि विश्वाधिष्ठानमव्ययम्।
यस्मिन् सिद्धाः समाविष्टास्तद्वै सिद्धासनं विदुः॥ ११३॥

जो समस्त भूतोंका आदिकारण है, विश्वका अविनाशी अधिष्ठान है और जिसमें सिद्धजन स्थित रहते हैं उसे ही सिद्धासन समझना चाहिये।

यन्मूलं सर्वभूतानां यन्मूलं चित्तबन्धनम्।
मूलबन्धः सदा सेव्यो योगोऽसौ राजयोगिनाम्॥ ११४॥

जो समस्त भूतोंका मूल है और जिसके आश्रयसे चित्त स्थिर किया जाता है उस मूलबन्धका सदा सेवन करना चाहिये। यही राजयोगियोंका योग है।

अङ्गानां समतां विद्यात्समे ब्रह्मणि लीयते।
नो चेन्नैव समानत्वमृजुत्वं शुष्कवृक्षवत्॥ ११५॥

जिस समय चित्त सम ब्रह्ममें लीन हो जाय उसी समय अंगोंकी समता

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(१८३)

अवधू, जागत नींद न कीजै।

काल न खाइ कल्प नहिं व्यापै, देही जुरा न छीजै।
उलटी गंग समुद्रहि सोखै, ससिहर सूर गरासै।
नवग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल में व्यंब प्रकासै।
डाल गहमांधे मूल न सूझै, भूल महयां फल पावा।
बाँबई उलटि शरप कौं लागी, धरणी महारस खावा।
बैठि गुफा में सब जग देखा, बाहरि कछु न सूझै।
उलटै धनिक पारधी मारयौ यहु अचरज कोइ बूझै।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

अ म रौ घ शा स न में (पृ० ७) लिखा है कि मेरुदण्ड के मूल में सूर्य और चंद्र के बीच योनि में स्वयंभू लिंग है जिसे पश्चिम लिंग कहते हैं। यही पुरुषों के शुक्र और स्त्रियों के रजः स्खलन का मार्ग है। यही काम, विषहर और निरंजन का स्थान है। वीर्य स्खलन की दो अवस्थाएं होती हैं। इन दोनों के पारिभाषिक नाम प्रलयकाल और विषकाल हैं। इन दो अवस्थाओं में जो आनंद होता है वह घातक है। एक का अधिष्ठाता काम है और दूसरी का विषहर। तीसरी अवस्था नानाभाव-विनिर्मुक्त सहजानंद की अवस्था है, इसमें बिंदु ऊर्ध्वमुख होकर ऊपर चढ़ता है तब यह सहज समाधि प्राप्त होती है जिसमें मन और प्राण अचंचल हो जाते हैं।[1] ब्रह्मचर्य और प्राणायाम के द्वारा इस बिंदु को स्थिर और ऊर्ध्वमुख किया जा सकता है। परन्तु इसके लिये आवश्यक है कि नाड़ियों को शुद्ध किया जाय। हठयोगी षट् कर्म के द्वारा यही कार्य करता है। इन शुद्धि की क्रियाओं का साधनग्रंथों में विस्तृत रूप से उल्लेख है। इनमें धौति है, वस्ति है, नेति है, त्राटक है, नौलि है, कपालभाति है—इन्हीं को षट्कर्म कहते हैं। नाड़ी के शुद्ध होने से बिंदु स्थिर होता है, सुषुम्ना का मार्ग साफ हो जाता है, प्राण और मन क्रमशः अचंचल होते हैं और प्रबुद्ध कुण्डलिनी परमेश्वरी सहस्रार चक्र में स्थित शिव के साथ समरस हो जाती है, और योगी परम प्राप्तव्य पा जाता है। इस क्रिया के लिये ही योगी-लोग उस वज्रोली मुद्रा का अभ्यास करते हैं जिसमें नाना विधियों से पुरुष स्त्री के रज को और स्त्री पुरुष के शुक्र को आकर्षण करके ऊर्ध्वमुख करती है।[2] यद्यपि यह साधना शाक्तमार्ग में प्रचलित जान पड़ती है पर अपने पारमार्थिक अर्थ में यह इस मार्ग में स्वीकृत थी। सि द्ध सि द्धा न्त सं ग्र ह में एक संदिग्ध श्लोक है जो इस साधना के प्रकाश में कुछ स्पष्ट हो जाता है।[3] इसमें

१. इस प्रसंग में अ म रौ घ शा स न में निम्नलिखित श्लोक हैं जिनमें वज्रयानी साधकों के पारिभाषिक शब्दों का व्यवहार जान पड़ता है। इन शब्दों के सांवृतिक और पारमार्थिक अर्थ की बात हम कृष्णपाद (कानिपा) के प्रसंग में जान चुके हैं—

शक्तित्रयविनिर्भिन्ने चित्ते बीजनिरंजनात्।
वज्रपूजापदानंदं यः करोति स मन्मथः॥
चित्ते तृप्ते मनोवृत्ति ऊर्ध्वमार्गाश्रितेऽनघे।
तदाऽनचलितं रेतो मृत्युरेवाविषं बिंदुः॥
चित्तमध्ये भवेद्यस्तु बालाग्रशतधाश्रये।
नानाभावविनिर्मुक्तः स च प्रोक्तो निरंजनः॥

—अ० शा० पृ० ८

२. गो० प० (पृ० २३-५५)

३. संकोचनेन मणिकस्य परत्र तुर्ये हृदध्वनैव परमेश निवेश्य चित्तम्।
वज्रोदरे सगतिबंधनभेदिदर्पा ख ंयस्य चेद्विदुदिरे (?) लघु बिंदुबंधः॥
एषा वज्रोलिका प्रोक्ता सिद्धसिद्धान्तवेदिभिः॥
ज्ञानादेव भवेदस्याः सिद्धमार्गः प्रकाशितः॥ सि० सि० सं० २।१७ १८

स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इसके ज्ञानमात्र से सिद्ध मार्ग प्रकाशित हो जाता है। इस कथन का स्पष्ट अर्थ है कि केवल पारमार्थिक अर्थ में ही यह सिद्धमार्ग में गृहीत है।

नाड़ीशुद्धि होने के बाद प्राणादि वायुओं का शमन सहज हो जाता है। नाना प्रकार के आसनों और प्राणायामों से सुषुम्ना मार्ग खुल जाता है। नाड़ियों को प्रधानतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। दक्षिणाङ्ग में व्याप्त नाड़ियाँ सूर्य का अंग हैं और वाम भाग वाली चंद्रमा के अंग। इन दोनों के बीच सुषुम्ना है। जब नाना भाँति के अभ्यास से योगी चंद्र और सूर्य मार्गों को बंद कर देता है और उनमें बहने वाली वायु शक्तिसंयमित होकर योनिकंद के मूल में स्थित सुषुम्ना की मध्यवर्तिनी ब्रह्मनाड़ी के मुख को खुला पाकर उस मार्ग से ऊपर उठती है तो वस्तुतः कुण्डलिनी ही ऊर्ध्वमुख होती है। प्राणायाम से कुण्डलिनी का उद्बोध सुकर हो जाता है।[1]

यह कुण्डलिनी जब उद्बुद्ध होती है तो प्राण स्थिर हो जाता है और साधक शून्य पथ से निरंतर उस अनाहत ध्वनि या अनहद नाद को सुनने लगता है, जो अखण्ड रूप से निखिल ब्रह्माण्ड में निरन्तर ध्वनित हो रहा है। अनुभवी लोगों ने बताया है (हठ० ४।८३-८५) कि पहले तो शरीर के भीतर समुद्रगर्जन, मेघगर्जन और भेरी झर्झर आदि का-सा शब्द सुनाई देता है, फिर मर्दल, शंख, घंटा और काहल की सी आवाज सुनाई देती है, और अन्त में किंकिणी, वंशी और वीणा की झंकार सुनाई देने लगती है। परन्तु ज्यों ज्यों साधक का चित्त स्थिर होता जाता है त्यों त्यों इन शब्दों का सुनाई देना बंद होता जाता है, क्योंकि उस समय आत्मा अपने स्वरूप में क्रमशः स्थिर होता जाता है और फिर तो बाह्य विषयों से उसका सरोकार नहीं रह जाता।

इस प्रकार हठयोगी प्राण वायु का निरोध करके कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करता है। उद्बुद्ध कुण्डली क्रमशः षट्चक्रों को भेद करती हुई सातवें अन्तिम चक्र सहस्रार में शिव से मिलती है। प्राण वायु ही इस उद्बोध और शक्ति संगमन का हेतु है इसलिये हठयोग में प्राण-निरोध का बड़ा महत्त्व है। षट् चक्रों के विषय में हम पहले संक्षेप में कह आए हैं। यहाँ भी उसका थोड़ा उल्लेख कर देना उचित है।

85

निरभे नाथ अलख धुन लागा सोच फिकर दुख धोय जी।
लाधूनाथ आत्मा खोजी सत की माला पोई जी।।टेर।।
सुखमण गंगा नित उठ नहावों हँसा निकंलक होई जी।
थट त्रिवेणी घाटी झिणी जोग जुगत से जोई जी।।1।।
अगम अगोचर नाम अखंडी नाम सुमरे नहीं कोई जी।
बड़भागी कोई विरला जप सी अमर जोत सँजोई जी।।
रँग नहीं रूप धूप नहीं छाँया नहीं हंसे नहीं रोई जी।।3।।
ऊपजे नहीं बिनसे आवे नहीं जावे दुख उपाधि खोईजी।
लाधूनाथ आप से मिलिया नहीं एक नहीं दोय।।4।।

86

होय हुशियार जाग गुरू पद में शिश काट धर देई जी।
स्वपने को संसार झमेलो राय अगम को लेई जी।।टेर।।
झूठा जगत में मित्र प्यारा किसका सगा सोई जी।
जम की चोट पड़े शिर माथे नेड़ा न आवे कोई जी।।1।।
मिनखा जन्म अमोलख मोती वृथा मत ना खोई जी।
हरी भजन बिन दिन गमायो दुख में जीवड़ो रोई जी।।2।।
काया काचो पाणी बुलबुलो हाड माँस अरू लोई जी।
इस काया में अमर देवता जोग जुगत से जोई जी।।3।।
लाधूनाथ जागता जोगी जाग जाग निरभोई जी।
आर पार में रमणी रमिया आप अखंडी होई जी।।4।।

87

हँसला अखी देव हमारा।
उपज बिनस में कबहूँ नहीं आवे काल मौत
तीन लोक में एक अखंडी नहीं हल्का नहीं
कीड़ी हस्ती राव रंक में नरनारी इकसारा
रँग रूप तो कुछ नहीं उनके नहीं मीठा न
जात वर्ण कुल न्याती नाँही नहीं भीतर नही
अधर महल में आप विराजे बरसे अमी फँवा
अमर जोत अखंडी प्रगट निरख लिया दीदार
लाधूनाथ आप से मिलिया आरपार निराकारा।
उल्टी बूँद सँमुन्द्रा मिलगी नहीं आवे संसारा।।
सत की डोर नाम का मोती जोग जुगत में पोई
लाधूनाथ आत्मा खोजी और देव नहीं कोई जी।
कौन किसी का संगी साथी कौन किसी का होई
पाप पुण्य करसी बे भरसी अन्त एक लो होई जी
धँधूकार जगत की रचना हो जाण निरमोही जी।
मिनखा जन्म अमोलख हीरो वृथा मत ना खोई जी
सुखमन गंगा चले अमीरस पाप मैल सब धोई जी
निराकार में माला फेरी जाग जाग नहीं सोई जी
काल मौत नेड़ा नहीं आवे अटल अमर निरमोई
लाधूनाथ आप से मिलिया हाड माँस नहीं लोई जी

भजन से पाप कल्पना धोई।
काया माँज निर्मली कर ली हँसा केवल होई ।।

ब्रह्मा विष्णु देवी देवता सबको जमड़ा खाई।।2।
और देवा की पूजा झूठी अमरदेव को ध्याई।
ओर देव मरने में आया अमर आप सदाई।।3।।
लाधूनाथ आप से मिलिया सत में बूँद सँमाई।
जहाँ देखी जहाँ एक आत्मा आरपार में छाई।।4

सुरत निज नाम को ध्यावे।
निराकार में माला फेरी निगुर्ण वाणी गावे।।टेर।।
काया खोजी आत्मा खोजी विरला जोग कमावे।
ज्ञानी गुणी अरू काजी पण्डित सब कोई रीता गावे
केवल देव बसे घट भीतर भेद कोई नहीं पावे।
अला पिंगला तंत सुखमणाा सेजाराम रमावे।।2।
सुन्न मंडल पर ढ़ोल घूरत है जोगी नाद बजावे
अमरनाम का धोरा लागा सत में बूँद सँमावे।।3।
लाधूनाथ आप से मिलिया आवागमन नहीं आवे।
निर में नाथ रमो दुनिया में काल मौत नहीं खावे

सुरत मेरी पिया के पास खड़ी।
रँग महल में सेज बिछाई सत की डोर चड़ी।।टे
गुरू चरणा में शीश दिया तब दुविधा दूर हड़ी।
केवल भयो कल्पना मिटगी टूटी करम कड़ी।।1
निज नाम को जपो जुगत से जपियो घड़ी घड़ी

काल मौत नड़ी नहीं आप नाम अमरफल खाइये।।2।।
सत्-धर्म का धोरा लागा अखी जोत जगाइये।
बैन दर्पण दीदार देखियो बोड जन्म नहीं आइये।।3।
भक्ति करो सभी नर–नारी जत्त–मत्त जोग कमाइये।
साधूनाथ जागता जोगी सत् में बूँद सँमाइये।।4।।

सला सतगुरू मार्ग बतायो।
आठूँ पहर एक धुन्न धारी देव अखण्डी धायो।।टेर।।
सत्-शब्द की चोट्टाँ मारी साचो तीर लगायो।
काल ज़ाल माया नहीं लूँटे सब दुःख दूर भगायो।।1।
काया माँज निर्मली कर ली भजन पियालो पायो।
निज नाम की डोरी साँधी थट त्रिवेणी आयो।।2।।
बंकनाल में धोरा लागा रणुँकार लिव लायो।
रूम रूम में बाजा बाजे सुन्न में ढोल बजायो।।3।।
जानकनाथ मिले गुरू पूरा मुख से हरि गुण गायो।
साधूनाथ आत्मा खोजी सन्ता के मन भायो।।4।।

सला निज नाम कुँ धाया।
त्रिवेणी डगरी खोजकर चढ़िया सत में जाय सँमाया।।टेर।
सुखमण गंगा भरी त्रिवेणी पियाला भर भर पाया।
साँसो साँस अखंड रस पियो बंकनाल उलटाया।।1।।
होठ कंठ के कुछ नहीं लागे भूख बिना फल भाया।

काल मौत नेड़ा नहीं आवे नाम अमरफल खाइये।।2।।
सत्-धर्म का धोरा लागा अखी जोत जगाइये।
बिन दर्पण दीदार देखियो बोड जन्म नहीं आइये।।3।।
भक्ति करो सभी नर-नारी जत्त-मत्त जोग कमाइये।
लाधूनाथ जागता जोगी सत् में बूँद सँमाइये।।4।।

हँसला सतगुरू मार्ग बतायो।
आठूँ पहर एक धुन्न धारी देव अखण्डी धायो।।टेर।।
सत्-शब्द की चोट्टाँ मारी साचो तीर लगायो।
काल जाल माया नहीं लूँटे सब दुःख दूर भगायो।।1।।
काया माँज निर्मली कर ली भजन पियालो पायो।
निज नाम की डोरी साँधी थट त्रिवेणी आयो।।2।।
बंकनाल में धोरा लागा रणुँकार लिव लायो।
रूम रूम में बाजा बाजे सुन्न में ढोल बजायो।।3।।
नानकनाथ मिले गुरू पूरा मुख से हरि गुण गायो।
लाधूनाथ आत्मा खोजी सन्ता के मन भायो।।4।।

हँसला निज नाम कुँ धाया।
झिणी डगरी खोजकर चढ़िया सत में जाय सँमाया।।टेर।।
सुखमण गंगा भरी त्रिवेणी पियाला भर भर पाया।
साँसो साँस अखंड रस पियो बंकनाल उलटाया।।1।।
होठ कंठ के कुछ नहीं लागे भूख बिना फल भाया।

केवल देव आत्मा खोजी जमड़ा दूर भगाया।।2
अखी नगर में झंडा फरू के निरभे तार लगाया।
अधर छत्तर वहाँ जोगी सूता ऊपर छत्तर छाया।।3
लाधूनाथ आप से मिलिया नहीं काल नहीं काया।
रँग नहीं रूम सूवे नहीं जागे नहीं बाँने जननी जाया।।

हँसला भजन कियो बड़भागी।
निज नाम का भरूँ भण्डारा नींद जुँगा की जाणी।।टे
सुखमण डोर शब्द का मिणिया सुन्न में ताली लागी।
ओघट घाट साँकड़ी सेरी धीराँ धीराँ थागी।।1।।
बेगम भोम अधर में चलना सतगुरू मिलिया पागी।
जरा मरण से हँसा छूटा अनघड़ पायो सागी।।2।।
अमर जोत जगे बिन बात्ती जोती में जोत सँमागी।
आरपार में एक अखंडी नहीं सूता नहीं जागी।।3।।
लाधूनाथ आप से मिलिया नहीं मेला नहीं त्यागी।
नरनारी में केवल आत्मा नहीं मुनि नहीं रागी।।4।।

हँसला रात दिना क्या भागे।
लोभी हरी भजन नहीं लागे।।टेर।।
हँसला पाप मार्ग मत जाइये।
नर अन्तकाल पछताइये।।1।।
सत्संगत शरणें जाइये।

हँसला शिंवरों अनघड़ देवा।
सुख सम्पत्ति का खुली भंडारा पावो मुगत फल मेवा।।टेर।
नरनारी में पूर्ण बोले केवल आत्मा देवा।
ऋषि मुनि मिल महिमा गावे संध्या आरती सेवा।।1।।
अड़सठ तीर्थ गंगा जमना घट भीतर में बेहवा।
सुखमण हौद भरो गिगना में उलट–पुलट जल लेवा।।2।
काल जमाँ की फाँसी टूटी निर में जुग में रेवा।
मात–लोक में जोगी खेले हँस अमरघर गेवा।।3।।
लाधूनाथ जागता जोगी सतू की वाणी केवा।
पाप पुनः को लेखो होसी आगे धर्म की जैवा।।4।।

।। श्लोक ।।

तीन लोक अरू चवदा भवन में, सब कुँ जमड़ा खाय।
लाधूनाथ निज नाम से, जमड़ा शीश निवाय।।1।।
जाग जाग नर बावला, निज नाम कुँ ध्याय।
लाधूनाथ निज नाम से, धर अमरापुर जाय।।2।।

हँसला आत्मदेव मनाऊँ।
लख चौरासी जिया जूँण में फेर कबहूँ नहीं जाऊँ।।टेर।।
काग वर्ण सब मेट जीव का उजवल हँस बनाऊँ।
पाप मैल काया का धोया मोती चूँण चूगाऊँ।।1।।
घट तरबीणी खुली किवाड़ी सुखमण गंगा नहाऊँ।
निज नाम का भरूँ भंडारा इमृत प्याला पाऊँ।।2।।

21:26

हँसला पियो भजन का प्याला।
थट त्रिवेणी धोरा लागा भरी चले बंकनाला।।टेर।।
सुखमण कूँची फोरी ऊँची खुला नगर का ताला।
सत् की डोर शब्द का मिणिया गुप्ति निर्गुण माला।।
आरपार में खुला खेलो जोगेश्वर मतवाला।
अखे नाम निज मोती निपजे सुन्न मंडल टकसाला।।
अमर जोत जगे बिन बात्ती नहीं पेड़ नहीं डाला।

हँसा मिले जोत में जोती जन्म उपाधि टाला।।3।।
लाधूनाथ जागता जोगी केवल अबधू बाला।
अनधड़ देव अखंडी मिलिया नहीं धोला नहीं काला।।4।।

हँसला रटो अलख निराकारी।
रँग नहीं रूप मरे नहीं जन्मे नहीं पुरूष नहीं नारी।।टेर।।
दया–धर्म हृदय में राखी सत्–भक्ति निज धारी।
काया नगर में साच कमावो सतगुरू पार उतारी।।1।।
अला पिंगला साज मोरचा सुखमण कुँची सारी।
गिगन मंडल में धोरा लागा खुली सुन्न की बारी।।2।।
निज नाम का भरूँ भंडारा गेबी भरी भखारी।
अमर जोत में जोती मिलगी चढ़िया अधर अटारी।।3।।
लाधूनाथ जागता जोगी काल कबहूँ नहीं मारी।
भगवानू भक्ति से मिलिये अजर जरणा जारी।।4।।

हँसला प्रगट दीना हेला।
नरनारी सब लागो भजन में पकड़ो आदू गेला।।टेर।।
तीर्थ व्रत में जीव उलझियो भूला मूर्ख गेला।
निज नाम बिना दुख में जासी जम का जूता झेला।।1।।
भक्ति पद ऊजलो उत्तम छोड़ो मार्ग मैला।
सत्–धर्म हृदय में धारो तन का पाप धुपेला।।2।।
सत्संग करो साच में चालो जुग में झूठा खेला।

झिणी डगर जुगत से चढ़िया गुप्ति माली जासी।
अखी जोत को दर्शन पायो घर अमरापुर आसी।।2
वहाँ पूगा ऊपजे नहीं बिनसे आवागिवण गमासी।
काल मौत दोनूँ नहीं पूगे सत् में बूँद सँमासी।।3।
लाधूनाथ जागता जोगी इमृत बाणी गासी।
पूरो तोली साचो बोली सन्ता के मन भासी।।4।।
भजन से काम कलपना भागी।
लाधूनाथ आत्मा खोजी अमर जोती जागी।।टेर।।
पाँच पच्चीसूँ ऐको डोरी सुरत भजन में लागी।
अला पिंगला साज सुखमणा थट तरबीणी आगी।।1
तीन लोक में छोटा मोटा सब को माया खागी।
भवसागर जल ऊँडी नदियाँ जोग जुगत से थागी।।2
सुन्न मंडल पर झिणी सेरी वहाँ चढ़िया कोई पागी।
उनसे आगे अखी नगर है वहाँ पूगा बड़भागी।।3।।
लाधूनाथ जागता जोगी सत में बूँद सँमागी।
आरपार में खोज अखंडी नहीं भेला नहीं त्यागी।।4।

।। श्लोक ।।

निज नाम को आसरो, आठ पहर दिनरात।
भजन डोर भरपूर में, जागा लाधूनाथ।।1।।
माया को छल सभी थको, टूटो काल को जाल।
लाधूनाथ निज नाम की, सत् में बांधी पाल।।2।।

हँसला सतगुरू देव हमारा।
रणुँकार में माला फेरूँ नाम रटूँ निराकारा।।टेर।।
घट में मालक आप बसत है भ्रम का घोर अँधारा।
गुरगम कुँची फोरी ऊँची मुगत का खुला दवारा।।1।।
सुखमण गंगा भरी चलत है त्रिवेणी की धारा।
काया धोय पवित्र कर ली धोया पाप दुख सारा।।2।।
गिगन मंडल में बाजा बाजे नौबत ढ़ोल नगारा।
अमरनाथ का धोरा लागा खुलिया अखंड भंडारा।।3।।
नानक नाथ मिले गुरू पुरा भवसागर से तारा।
लाधूनाथ गुराँ के शरणें पूगा पेली पारा।।4।।

हँसला दिया गुराँ सा हेला।
केवल देव आत्मा खोजो पूरे गुरू का चेला।।टेर।।
नहीं संग आया नहीं संग जासी कुटुम्बी झूठा झमेला।
मोहा जाल में बँधियो प्राणी अन्त में जीव अकेला।।
काया नगर में अमर जोती बिना बात्ती बिन तेला।
ऊँण जोति का दर्शन पाया फेरूँ नहीं जलम मरेला।।
सदा अखंडी कबहूँ न मरसी सब के भीतर रमेला।
आगे पीछे आरपार में आप ही आप समेला।।3।।
लाधूनाथ जागता जोगी सत् की बाणी कहला।
काल मौत माया नहीं पूगे अधर धार में गेला।।4।।

लाधूनाथ भजन भरपूरा [illegible] उड़ाया गय का।।4।।

भजन बिना कोई मुक्त नहीं पासीं
लाख उपाय करो कोई पूजा हाथ कछु नहीं आसी।।टेर।।
अड़सठ तीर्थ फिरे भटकता जावो मथरा काशी।
मन्दिर देवरा पत्थर पूजे नहीं मिले अविनाशी।।1।।
भेख बनावे संत कहावे मुफ्त माल ढ़ग खासी।
हरी भजन हृदय से भूला अन्त नरग में जासी।।2।।
पाखंड फेल कछु नहीं करसी मुख से हर गुण गासी।
काया खोज आत्मा खोजी सत् में बूँद सँमासी।।3।।
लाधूनाथ जागता जोगी अमर नाम लिव लासी।
अखी जोत में धोरा लागा टूटी कल्पना फाँसी।।4।।

भजन में लागी अखंडी डोरी।
झिणी धार जुगत से चालो ओघट घाटी दोरी।।टेर।।
अला पिंगला सार सुख मणा खोली त्रिगटी मोरी।
पंच भूताँ का भस्म उड़ावो मारो मिमता तोरी।।1।।
रणुँकार में धोरा लागा शब्द घोड़े कुँ टोरी।
सात सुन्न के ऊपर जोगी सत् में चश्मा फोरी।।2।।
अखी नगर में घन्टा बाजे धूरे ढ़ोल घमघोरी।
अधर छत्र वहाँ निरभे सूता काल करे नहीं चोरी।।3।।

Scanned with OKEN Scanner

भजन की गुरू मिले गम पाती।
नुगरे पापी जीवे नरगपुर कोई संगी नहीं साथी।।टेर।
सत्संगत अरू गुरू की सेवा नुगरे कुँ नहीं भाती।
मिनखा देह अमोलख पाई पापी वृथा गुमाती।।1।।
जुगति मुक्ति हाजर ऊभी निज नाम लिव लाती।
सुगड़ नार सुरत मतवाली हर कुँ गोद खिलाती।।2।
आद अनादि एक आत्मा नहीं कुटुम्ब कुल न्याती।
अमर जोत जगे दिन राती अखण्ड दिया नहीं बात्ती।।3
लाधूनाथ आप से मिलिया सत् की बाणी गाती।
निराकार में मालो फेरी एक देव कुँ ध्याती।।4।।

अबधू ऐसा जोगी समर्थी।
ऋषि मुनि खोजाँ से पाया आत्म अखी अकरती।।टेर।
कितना रत्ती भर जीव कही जे कितना रत्ती भर मुरती
कितना रत्ती भर शब्द कहिजे कितना रत्ती भर सुरती।।1।
कितना रत्ती भर पाँच तन्त हे कितना रत्ती उतरती।
कितना रत्ती भर चन्दा सूरज पवना कहाँ उतरती।।2
अला पिंगला कोण घाट पर किण घर सुखमण झरती
बंकनाल की कैसी पोल हे किस विध कीजे भरती।।3
लाधूनाथ ज्योत में मिलिया नहीं जिया न मरती।
तोल अतोल उन्हीं का नहीं हे खाली नहीं रूम रत्ती।।4

Scanned with OKEN Scanner

झिणी जोग की डगर सन्त कोई आण अड़ा।
गेबी अचम्भा खेल काल कुँ खावे मड़ा।।3।।
लाधूनाथ जुग जीत दुविधा दुख दूर हड़ा।
सत् धर्म लिना तोल तोली भर के घड़ा।।4।।

विरला जोगी निर्गुण भजन विकराला।
निराकार में रमणी रमिया खोली अगम का ताला।।टेर।।
जीभ होठ बिना नाम जपन्दा शब्द डोर निज माला।
सुखमण के घर धोरा लागा खुला घाट बंकनाला।।1।।
गेबी ढ़ोल नगर में बाजे सैंसनाद घड़ियाला।
अधर छत्र वहाँ धजा फरू के सुन्न मंडल की पालाँ।।2।।
अमर ज्योत में आप अखण्डी नहीं धोला नहीं काला।
अखण्ड धार वहाँ इमृत बरसे किरोड़ भाण उजियाला।।3।।
लाधूनाथ आत्मा खोजी मिले नदी में नाला।
काल फौज का तोड़ी मोरचा निज नाम का भाला।।4।।

।। श्लोक ।।

आयो जन्म सुधारण कुँ, गयो जन्म बिगाड़।
लाधूनाथ निज नाम बिना, जमड़ा पीसे जाड़।।1।।
घर धन्धे में उल्झ मरे, आँधा मूर्ख लोग।
लाधूनाथ निज नाम बिना, नगरपुरी दुःख भोग।।2।।

विरला जोगी इण विध हर कुँ हेरी।
साँसो साँस निर्गुणी माला हृदय कँवल में फेरी।।टेर।।

अला पिंगला साज मोरचे चढ तरबीणी आघो।
निराकार में डोरी साँधी पकड़ नाँव को पागो।।1।।
भवसागर से बाहिर निकले जोग जुगत से थागो।
इमृत पियो निर्मल भई काया धोय दियो तन दागो।।2।
सुन्न मंडल की पोल ऊघाड़ी उनके ऊपर भागो।
सुन्न नहीं धुन्न धूप नहीं छाँया आगे सत् को धागो।।3।
लाधूनाथ आत्मा खोजी नहीं हँसो नहीं कागो।
नहीं वहाँ पुरष नहीं वहाँ नारी नहीं एक नहीं सागो।।4।

जोगी राजा आवो लार हमारी।
लाधूनाथ आप से मिलिया अखे नाम धुन्न धारी।।टेर।
सत्संगत गुरू सेवा कीजे सब चेतो नर नारी।
काया खोज आत्मा खोजी ज्ञान घोड़ा ललकारी।।1।।
बंकनाल की पोल ऊघारी सुखमण कूँची सारी।
त्रिवीणी में धोरा लागा रूम रूम रणुँकारी।।2।।
गिगन मंडल में ढ़ोल घुरत हे सुन्न में अधर अटारी।
सुन्न के ऊपर लाख सुन्न हे भोम कठिन हे भारी।।3
उनके ऊपर अधर छत्र है जोती किरोड़ हजारी।
लाधूनाथ जोत में मिलिया एक देव निराकारी।।4।।

।। श्लोक ।।

ऊँची हर की भक्ति हे, सब जीव नीचा जाय।
लाधूनाथ निज नाम बिना, गर्भवास दुःख पाय।।टेर।।

किरोड़ा सूरज तपे असमाना खंड अरू पिंड जलाया।
पाँच तन्त की बाजी नाशी धँधुकार मिलाया।।3।।
देव अखण्डी सदा अमर हे मात पिता नहीं जाया।
लाधूनाथ आप से मिलिया सत् में बूँद सँमाया।।4।।

।। श्लोक ।।

मोटा–2 मानवी, मोटा–2 जोय।
लाधूनाथ निज नाम बिना, पल में छोटा होय।।1।।
मोटा छोटा एक हे, अनघड़ के घरबार।
लाधूनाथ हर नाम बिना, जम कूटे इकसार।।2।।

जोगी सूतो झाँजर के थोड़े।
लाधूनाथ अखण्ड धुन्न लागी जम का बन्धन तोड़े।।टेर।।
उड़ादे नींद जागजा सूतो चढ़ी ज्ञान के घोड़े।
पाँच पच्चीस मारकर कब्जे भ्रम का पड़दा फोड़े।।1।।
बंकनाल की पोल उघाड़ी सत् के मार्ग मोड़े।
निराकारा में डोरी साँधी गिगन मंडल पर दोड़े।।2।।
किरोड़ मझाँ कोई विरला पूगा सूरत शब्द के जोड़े।
अखी भाण अमर में ऊगे गुप्त गाँव नहीं चोड़े।।3।।
लाधूनाथ डिगे नहीं डोले अधर ठीकाणा ठोड़े।
वहाँ पूगा ऊपजे नहीं बिनसे पूगा गढ़ बंकोड़े।।4।।

अबधू अखी मंडल घर पाया।
किरोड़ ज्योत में सूरज ऊगा लाधूनाथ सँमाया।।टेर।।

Scanned with OKEN Scanner

सुखमण डोर सुन्न में चढ़गी रूम रूम धर्राया।
अखी नाम का धोरा लागा गेबी भण्डार भराया।।
खड नहीं पिंड काल नहीं पूगे नहीं धूप नहीं छाँ
अधर छत्र वहाँ चँवर ढुलत हे ऊपर आप रहवाया।
रँग नहीं रूप डिगे नहीं डोले नहीं मुख नहीं धाय
ऊपजे नहीं बिनसे मरे नहीं जन्में नहीं गया नहीं आया।
नहीं कोई सूता नहीं कोई जागे नहीं कोई देव म
लाधूनाथ नैना बिना देखी मुख बिना बाणी गाया।

21:48

भजन मे सुरत खेले मतवाली।
लाधूनाथ जागता जोगी दुःख विघ्न सब टाली।।टे
पाँचू भूत पच्चीस भूतणी ज्ञान अग्न में जाली।
काम क्रोध की फौजाँ मारी काट कत्ल कर डाली।
काया माँज निर्मली करली खुला घाट बंकनाली।
रणुँकार में धोरा लागा लगी अखण्डी ताली।।2।।
अखी लोक में जोगी पूगा किरोड़ जोत जगाली।
आवागमन फेर नहीं आवे ज्योति में ज्योत सँमाली।।
नानक नाथ मिले गुरू पूरा शीश चरणा में डाली।
लाधूनाथ अलख लिव लागी नहीं भरिया नहीं खाली।।

सूरत मेरी अखे नाम से लागी।
हरी भजन का भरे भण्डारा अणाघड़ पायो सागी।।टे

Scanned with OKEN Sc

तीर्थ व्रत अरू मन्दिर देवरा पाखण्ड फकीरी त्यागी।
सत् धर्म को मार्ग लिनो काया खोज वैरागी।।1।।
सार शब्द का गोला लागा भींत भ्रम की भागी।
अला पिंगला तन्त सुखमण तार त्रिबीणी आ गी।।2।।
सुन्न मंण्डल पर अधर भोम हे अमर ज्योती जागी।
काल जमाँ का बन्धन टूटा जोती में जोत सँमागी।।3।।
लाधूनाथ आप से मिलिया भवसागर कुँ थागी।
निकलँक भयो कल्पना मिटगी पाप दोष सब दागी।।4।।

भजन में गाडी सूरत लगाई।
निराकार में माला फेरी एक देव कुँ ध्याई।।टेर।।
अखे नाम का गोला लागा भींत भ्रम की ढाई।
काम कल्पना सारी मारी जम कुँ मार भगाई।।1।।
बंकनाल में धोरा लागा सुन्न में ढ़ोल बजाई।
रणुँकार में रमणी रमिया अमर जोत जगाई।।2।।
गेबी जोत जगे बिन बात्ती विरला दर्शन पाई।
हँसा मिले जोत में जोती आवागवण नहीं आई।।3।।
लाधूनाथ आत्मा खोजी सत् में बूँद सँमाई।
जागा नाथ जुगो जुग जागा सन्ता के मन भाई।।4।।

सुरत मेरी रटे नाम निराकारी।
हर भजन में भई दिवानी भूली सुध बुद्ध सारी।।टेर।।
काया माँझ निर्मली कर ली शील गरीबी धारी।
निज नाम का प्याला पिया अजर जरणा जारी।।1।।

अला पिंगला साज सुखमण तन्त शब्द कुँ तारी।
तरबीणी की घाटी चढ़िया बंकनाल की बारी।।2।।
गिगन मण्डल में ढ़ोल धुरत हे गेबी नाद रणुँकारी।
सुन्न मे जोत जगे बिन्न बात्ती अखी अमर अटारी।
लाधूनाथ आत्मा खोजी नहीं हल्का नहीं भारी।
रँग नहीं रूप सूवे नहीं जागे नहीं पुरूष नहीं नारी।।

भजन में लागी सुरत खरी।
अखे नाम का भरे भण्डारा शिवरे राम हरी।।टेर।।
ज्ञान को गेरू रँगु तन चादर जरणा अजर जरी।
शब्दाँ का धूणा तपो जोगेश्वर सुन्न में ध्यान धरी।
अला पिंगला थट गरीबी सुखमण एक करी।
गिगन मण्डल में धोरा लागा बंकीनाल भरी।।2।।
अखण्ड अमर एक जोत जगत हे ओघट भोम परी।
हँसा मिले जोत में जोती जम सूँ नाँय डरी।।3।।
लाधूनाथ आत्मा खोजी पूर्ण काज सरी।
सत् धर्म की जहाज बनाई भवजल पार तरी।।4।।

बिना भोम बिना नगरी बसत हे बिना भाण उजियाश
अधर छत्र वहाँ चँवर ढुलत हे सैंस जोत प्रकाशा।।3
बेगम भेद कोई विरला पावे सब जुग जाय निराशा।
दिन नहीं रात धूप नहीं छाँया नहीं ऊपजे नहीं नाशा।।
नानकनाथ मिले जोगेश्वर तोड़ी काल की फाँशा।
लाधूनाथ पूगा उण घर में निरभे लिय निवाशा।।4।

अबधू खोली सुन्न का ताला।
दिये तेल बिना जोत जलत हे अखण्ड अमर उजियाला।।टे
पाँचू भूत पच्चीस भूतणी शब्द धूने में जाला।
चवदा चौकी जम की जीता काल फौज कुँ टाला।।
काम कल्पना आशा तृष्णा मार बोझ सब डाला।
काया नगर में साच कमावो फेरी निर्गुण भाला।।2।

Scanned with OKEN Scanner

त्रिवीणी में धोरा लागा खुला घाट बंकनाला।
सुन्न मण्डल में ध्वजा फरूके सुख सागर की पाला।।3।।
लाधूनाथ आत्मा खोजी मिले नदी में नाला।
आद अखण्डी अणघड़ देवा नहीं धोला नहीं काला।।4।।

सुरत मेरी रटे नाम निराकारी।
हरी रस प्याला भर भर पीवे आप मग्न मतवारी।।टेर।।
अलख नाम बिना झूठी बाजी झूठी खटपट सारी।
झूठा कुटुम्ब कबीला मित्र झूठा पुत्र नारी।।1।।
राजा राणा भूप भोपिया भजन बिना दुःख भारी।
काजी पण्डित परले जावे दूर मुक्त की बारी।।2।।
आपो खोज आत्मा खोजी सिंवरी सर्जणहारी।
निराकार में माला फेरी तन्त नाम कुँ तारी।।3।।
लाधूनाथ आप से मिलिया नहीं हल्का नहीं भारी।
निराकार में जोती मिलगी काल मौत नहीं मारी।।4।।

21:54
Vo LTE1 Scanned with OKEN Scanner

साधू होय शब्द नहीं साजे कपट फकीरी धारी।
नरगपुरी में जम ले जावे बहुत कष्ट दुःख भारी।।3।।
सत् का वचन साच कर मानों कोई मत मानो खारी।
दया धर्म अरू सीधा चालो सत् में हँसा तारी।।4।।
लाधूनाथ आत्मा खोजी अजर प्याला जारी।
अमर जोत में हँसा मिलिया काल क़बहूँ ना मारी।।5।

सुरत मेरी अलख रिझायों भारी।
अमरदेवच के आगे नाचे सैंस नाद रणुँकारी।।टेर।।
अड़ा उड़द पर सत् की माला नाम लियो निराकारी।
तरबीणी में धोरा लागा खुली गिगन की बारी।।1।।
सोहनी शिखर में इमृत बरसे मूसल धारी।
उल्ट पुल्ट होय घटा ऊमटी नदियाँ अथग अपारी।।2
अधर धार पर धजा फरू के सैंसनाद रणुँकारी।
अखी मण्डल में सूरज ऊगा किरोड़ जोत भभकारी।।3
लाधूनाथ जोत में मिलिया तोड़ कल्पना सारी।
आवागिवण फेर नहीं आवे भजन करो नर–नारी।।4

हँसला हर गुण काहे नहीं गाता।
नर नारी की रचना रच दी अलख अखण्डी दाता।।टे
भवसागर में जीव अलूझा मोह माया का ताँता।
बेटो बाप नहीं कोई संगी आप किये फल पाता।।1

Scanned with OKEN Scanner

हँसला हरी शिंवरो मेरा भाई।
अखे नाम का भरी भण्डारा नाम नाम लिव लाई।
नाम अनेक एक मेरो दाता घट घट बोले साँई।
ऊँच नीच में जोत उन्हीं की आरपार इकराई।।1
कीड़ी हस्ती गऊ सिंग में आत्म एक सँमाई।
नर नारी में पूर्ण भरियो गुरू बिन भेद न पाई।।2
सबको पाले सब को पोखे सबके भेलो सदाई।
साँसो साँस भूल मत्ती बन्दा अमरदेव कुँ ध्याई।।3
लाधूनाथ आप से मिलिया सत् की बाणी गाई।
निराकार में धोरा लागा आवागिवण नहीं आई।।4

हँसला हरी रस प्याला पाई।
अला पिंगला धोरा लागा बंकनाल उल्टाई।।टेर।
शीश उतार मोरचा माँडो जूझो घट के माहीं।
पाँचू मार पच्चीसूँ मारो सत् की तोप लगाई।।1।
खेच कबाण सेल कर साचो दूर भाग मत जाई।
काल फौज का किला उड़ाया नायक पदवी पाई
रूम रूम में रमे अखण्डी सेजाँ राम रमाई।
गिगन मंण्डल में धजा फरू के निरमें ढोल धूराई
लाधूनाथ जीत घर पूगा आवागिवण नहीं आई।
अमर जोत में जोती मिलगी सत् में बूँद सँमाई।।

जब अमरापुर पावेगा।
आप में आप सँमावेगा।।टेर।।
मोह माया की भस्म उड़ावो पूरा जोग कमावेगा।
जोग जुगत में जतमत साजे मन कुँ मार जमावेगा।
हरी नाम का हीरा मोती हँसा चूण चूगावेगा।
अला पिंगला सुखमण गंगा थट त्रिवीणी नाहेगा।।2

Scanned with OKEN Scanner

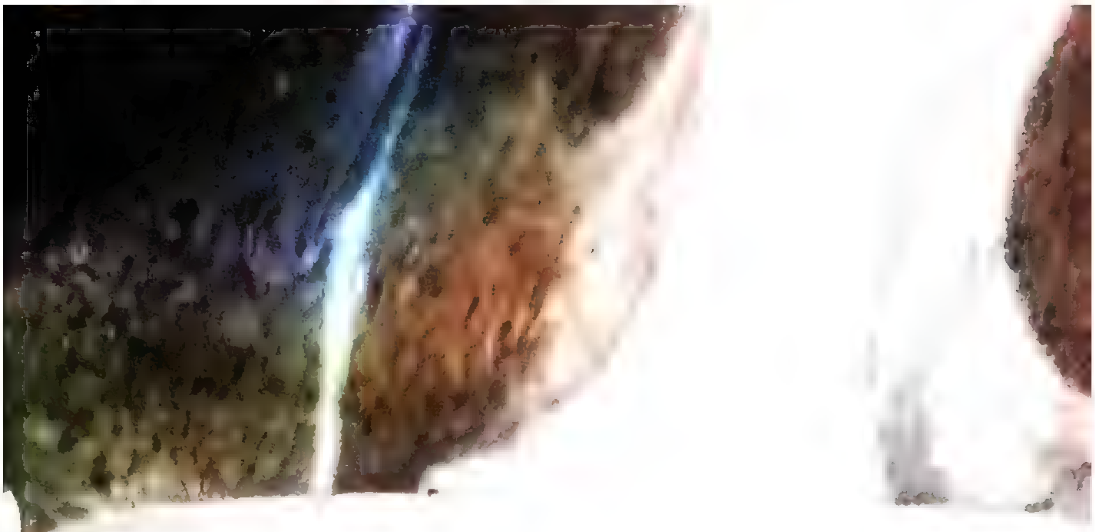

प्रेम अमी रस नदियाँ उल्टी भर भर प्याला पावेगा।
निराकारी में डोरी साँधी जोती में जोत समाँवेगा।।3।।
लाधूनाथ जागता जोगी सत् की वाणी गावेगा।
सत् धर्म को मार्ग बतायो सन्ता के मन भावेगा।।4।।

मेरे सत् गुरू रँग लगा दिनो।
अखे नाम को डंको बजायो सूतो नाथ जगा दीनों।।टेर।।
भवसागर से तार लियो गुरू बेड़ो पार लगा दीनो।
जरा मरणा की फाँसी तोड़ी जम को दूर भगा दीनो।।1।।
शब्द पालखी सत् की डोरी सेजाँ हँस पूगा दीनो।
भ्रम भूल की रात मिटाई अमर भण ऊगा दीनो।।2।।

21:58

आरपार में आप अखण्डी एक देव कुँ ध्यावे।।3।।
लाधूनाथ आप से मिलिया सन्ता के मन भावे।
नही वहाँ मुख नहीं वहाँ प्यासा अटल अमरफल खावे।।4।

हँसला इमृत मेवा चर रे।
हरी नाम का हीरा मोती हृदय कँवल में धर रे।।टेर।
अला पिंगला दोनूँ भेली सुखमण सेजाँ घर रे।
बंकनाल में धोरा लागा अलख भण्डारा भर रे।।1।।
मन कूँ मार कल्पना धोई आप आप में मर रे।
काल मौत नेड़ा नहीं आवे नहीं किसी का डर रे।।2।
तीन लोक में कूड़ी बाजी पूगा देश अमर रे।
रँग नहीं रूप डिगे नहीं डोले अखी धाम अधर रे।।3
लाधूनाथ आत्मा खोजी उनकी महिमा जबर रे।
नरनारी में एक अखण्डी विरला करी खबर रे।।4।।

हँसला अलख नाम नित रट रे।
जन्म मरण मिटे दुःख पीड़ा जावे रे चौरासी कट रे।।टे
मात पिता कुटुम्बी सुत नाती यह तो त्यागे झट रे।
कायो भाँडो पलक में बिण से काल भानसी फट रे।।1
कई नर दौड़ तीर्थां नावे कई बधावे जट रे।
आत्मदेव हृदय नहीं खोजे बुद्धि बिना का घट रे।।2
रणुँकार में माला फेरी खुला अन्दर का पट रे।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

खुल गई खेण निपजे मोती निरभे रात दिन लूँटी।।1।।
काल जमाँ की फौजाँ जीता सत् की तोपाँ छूटी।
अखे नाम का धोरा लागा सुन्न में झड़िया बूठी।।2।।
गेबी नगर में धजा फरू के अखण्ड जोती ऊठी।
अमर जोत में हँसा मिलिया फेर कबहू नहीं रूठी।।3।।
लाधूनाथ भजन भरपूरा अब खर्ची नहीं खूटी।
निराकार में माला फेरी और माया सब झूठी।।4।।

॥ दोहा ॥

भवसागर में डूबते, सतगुरू पकड़ी बाँय।
नानकनाथ गुरूदेव जी, अलख अखण्डी माँय।।1।।
भव फाँसी में फँस रहे, उल्झे जीव अपार।
लाधूनाथ गुरू नाम से, सेजाँ पूगे पार।।2।।

हरी को भूल मति भाई।
पाप दोष काया का धुपसी निराकार को ध्याई।।टेर।।
साँसों साँस राम रस पियो सुखमण प्याला पाई।
बंकनाल में धोरा लागा गिगन मण्डल धर्राई।।1।।
सुन्न महल में धजा फरू के ऊपर भोम बसाई।
अमर अखण्डी डोरी साँधी थकियों काल कसाई।।2।
अमर जोत जगे बिन बात्ती जोती में जोत सँमाई।
अधर छत्र वहाँ जोगी सूता धिन्न धिन्न सफल कमाई।।3
लाधूनाथ आप से मिलिया सत् की बाणी गाई।
केवलदेव आत्मा खोजी आवागिवण नहीं आई।।4।।

22:08

अबधू हेला बहुत दिया।
हेला सुणें हँस बड़भागी सतगुरू संग किया।।टेर।।
मिमता मार कल्पना मारी मन को मार लिया।
अजरी बजरी सब कुछ साजी अजर जार लिया।।1।।
अला पिंगला थट त्रिवीणी इमृत नीर पिया।
निराकार में रमणी रमिया जुग जुग जोगी जिया।।2।।
गोरख मछन्दर दत्त डगम्बर बेगम बाट बहया।
ध्रु प्रह्लाद कबीरो नानक सच्चे राम गया।।3।।
लाधूनाथ आत्मा खोजी जोगी जाग रहया।
नहीं कोई डिगे नहीं कोई डोले थिर घर बास थया।।4।।

अबधू देखो जबर तमाशा।
अविनाशी का तोल नहीं आवें नहीं रत्ती नहीं मासा।।टेर।
रूप रँग तो कुछ नहीं उनके नहीं दूर नहीं पासा।
जाति वर्ण उन्हीं के नाहीं ऊँच नीच इकरासा।।1।।
नहीं वह गुप्ति नहीं वह प्रगट नहीं वह रेण उजासा।
पाँच तन्त गुण तीनों नाहीं नहीं ऊपजे नहीं नाशा।।2
अखी भोम पर अटल छत्र हे वाँ जोगी का बासा।
गेबी जोत किरोड़ू जागे किरोड़ भाण प्रकाशा।।3।।
लाधूनाथ आप से मिलिया टूटी काल की फाँसा।
सूवे नहीं जागे पीछे नहीं आगे नहीं तिरासा नहीं आसा।।4

Scanned with OKEN Scanner

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

22:10

अबधू ऐसा जोग कमाई।
निराकार अविनाशी देवा घट भीतर में पाई।।टेर।।

Scanned with OKEN Scanner

सत् शब्द का धोरा लागा सुन्न मे ढ़ोल धूराई।
सैंस नाद माहीं घन्टा बाजे बंकनाल भराई।।1।।
झिरमिर बूँद अमी जल बरसे अमर बादली आई।
निरभे हँस नाहवे बड़भागी झिणें मार्ग आई।।2।।
अखी देश की बेगम शोभा मुख से कहीं नहीं जाई।
वहाँ पूगा आवे नहीं जावे बाणी वेद सब गाई।।3।।
लाधूनाथ आत्मा खोजी सन्ता के मन भाई।
गेबी जोत जगे बिन बात्ती हँसा जाय सँमाई।।4।।

हँसला गुरू मिले बड़भागी।
जुगाँ जुगाँ की नींद उड़ाई अलख लखायो सागी।।टेर
पाँचू भूत तीन गुण जलिया ज्ञान की अग्नि लागी।
काम कल्पना आशा तृष्णा सब की भस्म बणाँगी।।1।
तप्त मीटी तन भया निर्मला नहीं राग वैरागी।
सत् शब्दाँ की जहाज बनाई भवसागर को थागी।।2
अखी महल में धजा फरू के निरभे ताली लागी।
अधर छत्र वहाँ जोगी पौढे जोत किरोड़ूँ जागी।।3।
लाधूनाथ आप से मिलिया नहीं भेला नहीं त्यागी।
निराकार का दर्शन पाया काल मौत नहीं खागी।।4

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

गुरू बिना जीव गति नहीं पावें भूत जूण में जाई।
काजी पण्डित राजा बादशाह गुरू बिना दुख पाई।।1।
टूटे बन्धन भये निर्बन्धण सत्‌गुरू सेन बताई।
सब में रमो सकल के भेला निज नाम लिव लाई।।2।
पाप धुपे तन भया निर्मला साची करी कमाई।
निराकार में डोरी साँधी सत् में बूँद सँमाई।।3।।
आवागिवण फेर नहीं आऊँ निरभे भोम बसाई।
मौत डाकणी वहाँ नहीं पूगे नहीं पूगे काल कसाई।।4
नानकनाथ मिले गुरू के पूरा जोग जुगत समझाई।
लाधूनाथ गुराँ के शरणों देव अखण्डी ध्याई।।5।।

भजन बिना जीवणों धिरक्क जमारो।
सत् धर्म की पूँजी खोई बाँधे पाप को भारो।।टेर।।
तीनूँ लोक में राजा प्रजा सब जम्माँ को चारो।
मोह माया के भारी जाल में उल्झो जुग संसारों।।1।
गुरू सन्तन की सेवा करी नहीं जाँ घट घोर अन्धारो
बेनर जीवत भूत समाना अन्त पावे नरक दवारी।।2।
नर तन काया हीरो अमोलख देंवा से इदकारो।
नुगरा खोवत कोड़ी बराबर भूले सर्जणहारो।।3।।
अला पिंगला तन्त सुखमणा डोर शब्द की सारो।
बंकनाल की पोल उघाड़ी गिगन मण्डल रणुँकारो।।4
लाधूनाथ आत्मा खोजी भरियो अलख भण्डारो।
अमर जोत में मिलिया जोगी काल मौत नहीं मारो।।5

Scanned with OKEN Scanner

जोग पद कठण खान्डे की धारा।
शीश बिना कई शूरा चाले पावे पार किनारा।।टेर।।
पाँचा ने मार पच्चीसाँ ने मारो सत् शब्द तलवारा।
काम को मार क्रोध को मारो मारो मन बेकारा।।1।।
अला पिंगला एक डोर में सुखमण कूँची सारा।
बंकनाल की खुली किवाड़ी गिगन मण्डल रणुँकारा।।2
गेबी ढ़ोल सुन्न में बाजे बंसी नाद हजारा।
अमर बादली बरखा बरसे बरसे बूँद फँवारा।।3।।
अखी सुन्न पर आप विराजे किरोड़ जोत दीदारा।
लाधूनाथ आप से मिलिया नहीं हल्का नहीं भारा।।4।

भजन से हँसा अमर घर आया।
जरा मरणा में फेर नहीं आवे सत् में बूँद सँमाया।।टेर
तृष्णा ताप कल्पना मिटगी निर्मल इमृत नाहया।
अखे नाम का धोरा लागा गेबी भण्डार भराया।।1।।
चँद नहीं सूरज दिया नहीं बात्ती नहीं धूप नहीं छाँया
किरोड़ जोत में जोती मिलगी रँग रूप नहीं काया।।2
अधर छत्र पर चँवर ढुलत हे वहाँ जोगी थिर थाया।
वहाँ पूगा ऊपजे नहीं बिणसे काल मौत नहीं खाया।।3
लाधूनाथ आत्मा खोजी एक देव को ध्याया।
खोजी खोज खोजकर थकिया आरपार नहीं पाया।।4

हरी रस प्याला भर के पाऊँ।
गिगन मण्डल में हौद अमी का जिनमें नित उठ नाऊँ।।टेर
रिद्ध सिद्ध के भरतार गजानन्द गणपत देव मनाऊँ।
ज्ञान प्रकाश कियो गुरु दाता उनको शीश निवाऊँ।।1
अला पिंगला तन्त सुखमणा एको धार मिलाऊँ।
शिखर महल में जोत जगत हे अमर ढ़ोल घूराऊँ।।2
सात सुन्न पर डोरी साँधी जम को दूर भगाऊँ।
अखी सुन्न पर जोगी सूता उनको जाय जगाऊँ।।3
लाधूनाथ आप से मिलिया एक देव को ध्याऊँ।
निज नाम का भरे भण्डारा खुले द्वारा जाऊँ।।4।।

गुरूदेव दाता इमृत भाँग पिलाई।
पीवत पियाला मग्न भये जोगी जामण मरणा मिटाई।।टेर
सत् की कुण्डी जत का घोटा भाँग अगम से आई।
तरबीणी पर घोटण बैठा आपे उल्ट मिलाई।।1।।
होय अबधूत नशे में जोगी शब्द कबाण चलाई।
काल जमाँ का जीत मोरचा निरभे ढ़ोल घूराई।।2।।
अखे कोट में जोगी पूगा नहीं धूप नहीं छाँई।
किरोड़ जोत में हँसा मिलिया आवागिवण नहीं आई।।3
आरपार में एक अखण्डी अमर आप कुँ ध्याई।
लाधूनाथ आप से मिलिया संमदा बूँद सँमाई।।4।।

अबधू केवल जोग कमाई।
निराकार में डोरी साँधी कौन लखे चतुराई।।टेर।।
शील का चोला ज्ञान की धोती सत् का टोप लगाई।
धर्म की ढाल शब्द का सेला कलजुग मार भगाई।।1।।
बाणी कथे कविता जोड़े कर रहयो पेट भराई।
कोई कहवे ओ ठग पाखण्डी मेरा भेद नहीं पाई।।2।।
अला पिंगला एक डोर में थट तरबीणी आई।
बंकनाल की पीछम पोल में सुखमण धोरा सँमाई।।3
निज नाम का भरूँ भण्डारा सुन्न में भोम बसाई।
अखी मण्डल में झिंडा फरू के नहीं पूगे काल कसाई।।4
लाघूनाथ जागता जोगी सन्ता के मन भाई।
आपो खोज आत्मा खोजी एक देव को ध्याई।।5।।

अबधू तेरा भेद कुण पाई।
अमर जोत में जोती मिलगी सत् में बूँद सँमाई।।टेर।
जुग माया से न्यारो खेलूँ निज नाम को ध्याई।
शील सन्तोष आत्मा खोजी घट में राम रमाई।।1।।
पाप नदी नर नारी नावे बाँकी धिरक कमाई।
सत् का शब्द झूठ कर जाणे किसविध मुक्ति पाई।।2।।
सत्संगत कर गुरू की सेवा जुगति जोग जमाई।
सासों साँस अलख लिव लागी आपे माँय सँमाई।।3।।
गोरख नाथ मछन्दर पूगा आवागिवण नहीं आई।

22:16

सब में मैं हूँ मुझ में सब कुछ रचना लाख किरोर।।
मैं भी मनुष्य मैं भी देवा मैं भी पशु ढोर।
मेरी माया मेरी शक्ति मेरो सब में जोर।।2।।
दश अवतार मुझ में बोले मैं ही ईश्वर गोर।
मैं तो एक सक से न्यारा मेरी सुन्न पर डोर।।3।।
लाधूनाथ मुझ में मिलिया पाप मैल सब घोर।
आरपार में रमो अखण्डी निज नाम को पोर।।4।।

।। श्लोक ।।

किरोड़ू हँसा तिर गये, तिर गये गोरख कबीर।
लाधूनाथ निज नाम की, खुली अखण्डी सीर।।1।।
दुःख में बँधिया जीवड़ा, कल्पना में रोत।
लाधूनाथ निज नाम बिना, गड़बड़ फैली बहुत।।2।।

हँसला क्या बुझे गम् मेरी।
मेरा डेरा अखी लोक में जहाँ नहीं रात अन्धेरी।।टेर
काजी पण्डित भेद नहीं पावे गेबी गुप्ति सेरी।
उण सेरी कोई विरला चढ़सी सुरत मोरचे ठहरी।।1
धरा पेड़ असमान खोजकर खूब जुगत से हेरी।
अला पिंगला सुखमण डोरी बंकनाल में फेरी।।2।।
अखी जोत में जोगी पूगा झक मारो जम बैरी।
आवागिवण फेर नहीं आवे मिली समन्दरा लहरी।।3
नानकनाथ मिले गुरू पूरे गुप्ति बताई सेरी।
लाधूनाथ गुरू के शरणों मान बड़ाई गेरी।।4।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

22:17

Scanned with OKEN Scanner

...ाग कमाया।
...खी जोत जगे बिन बात्ती लाधूनाथ सँमाया।।टेर।।
...मर अखण्डी एक आत्मा मात पिता नहीं जाया।
...रपार घट घट में बोले बाणी वेद सब गाया।।1।।
...ला पिंगला झुकी तरबीणी सुखमण धोरा लाया।
...कनाल की खोल किंवाड़ी निज मोती झड़ लाया।।2।।
...रा अमर पर सत् की डोरी अखण्ड तार मिलाया।
...धर तख्त पर झिंडा फरू के निरभे ढोल घूराया।।3।।
...ग नहीं रूप डिगे नहीं डोले नहीं धूप नहीं छाँया।
...लाधूनाथ आप से मिलिया आवगिवण नहीं आया।।4।।

...हंसला गुरू चरणा की आशा।
...निराकार में डोरी साँधी जुग से भया उदासा।।टेर।।
...शीश गुरू के चरणाँ धरियों चित्त मन कर इकराया।
...लागी लग्न फेर नहीं छोडूँ हृदय में हरी बिलासा।।1।।
...काया माँज निर्मली कर ली शीतल हो गई सासा।
...तृष्णा ताप कल्पना मिटगी अलख रटूँ बारह मासा।।2।।
...केवल हँस अखी पद पायो टूटी जम की फाँसा।
...तीन लोक से ऊपर चढ़िया अमर जोत प्रकाशा।।3।।
...लाधूनाथ जोत में मिलिया नहीं ऊपजे नहीं नाशा।
...आरपार में एक अखण्डी नहीं दूर नहीं पासा।।4।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

22:18

लाधूनाथ जागा अणघड़ ध्याऊँ।
अमी प्याला भर भर पाऊँ।।5।।

हँसला शिवरों सर्जण हारा।
हरी नाम की डोरी पकड़ो पूगो पेली पारा।।टेर।।
गणपत देव विनायक ध्यावो रिद्ध सिद्ध भरी भण्डारा।
मूल महल के रँग झिरोखे गणपत का दीदारा।।1।।
नाम कँवल से सुखमण उल्टी थट तरबीणी धारा।
बंकनाल में धोरा लागा गिगन मण्डल रणुँकार।।2।।
सुन्न मण्डल में धजा फरू के बरसे अमी फुँवारा।
अमर जोत में जोगी मिलिया आगे पाँव पसारा।।3।।
अधर छत्र वहाँ चँवर ढुलत हे अखी कोट घरबारा।
वहाँ पूगा आवे नहीं जावे जोती किरोड़ हजारा।।4।।
लाधूनाथ आप से मिलिया आरपार इकसारा।
रँग नहीं रूप सूवे नहीं जागे नहीं मरता नहीं मारा।।5।।

हँसला जुग जीता बड़भागी।
जरा मरणा का बन्धन टूटा सत् में बूँद सँमागी।।टेर।।
दुःख मिटे सुख सम्पत्ति पाई काम कल्पना भागी।
तृष्णा ताप तप्त सब बुझगी अलख नाम लिव लागी।।1।।

Scanned with OKEN Scanner
Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

जोगी फेरी हरी की माला।
काया खोज आत्मा खोजी कटे जीवन का जाला।।टेर।।
शूरबाँ होय लड़ो शिंवरण में सत् का शब्द सँभाला।
पाँचा कुँ मार पच्चीसाँ कुँ मारो टुक–2 कर डाला।।1।।
निज नाम का धोरा लागा खुला गिगन का ताला।
उल्ट बादली इमृत बरसे भरी चले बंकनाला।।2।।
सुन्न मण्डल में धजा फरू के अमर जोत उजियाला।
हंसा मिले जोत में जोती काल जम दे टाला।।3।।
लाधूनाथ आप से मिलिया जोगेश्वर मतवाला।
आवागिवण फेर नहीं आवे केवल अबधू बाला।।4।।

रमतो जोगी अखे मण्डल में डोलूँ।
सत् धर्म की तकड़ी लिनी निज नाम कुँ तोलूँ।।टेर।।
मैं राव लियो सब से न्यारो सब घट पूर्ण बोलूँ।
काल मौत मुझको नहीं खावे कूड़ नहीं ओलूँ।।1।।

Scanned with OKEN Scanner

बंकनाल के भँवर घाट में इमृत नदियाँ ढोलूँ।
अमर पियाला भर–2 पीऊँ पाप मैल सब धोलूँ।।2।।
सोहनी शिखर की अधर धार में हीरा मोती पोलूँ।
आत्म जोत अमर अविनाशी शब्दाँ सार टंटोलूँ।।3।।
लाधूनाथ आप से मिलिया जुग–2 निरभे होलूँ।
अधर छत्र वहाँ सेज हमारी पाँव पसारे सोलूँ।।4।।

जोगी राजा आप आपे में साँई।
तीनूँ लोक रचाई रचना वो अणघड़ घट माहीं।।टेर।।
चवदे तवक इक्किसो ब्रह्मंड जम की फिरे दुवाई।
ब्रह्मा विष्णु देवी देवता आवागिवण के माहीं।।1।।
पापी नुगरा भेद नहीं पावे उनको केणा काँई।
हद के माहीं जम को डेरो ऊपजे जीवाँ कुँ खाई।।2।।

नहीं कोई खुला नहीं कोई बन्धा।
नहीं कोई नेण नहीं कोई अँधा।।3।।
बाणी वेद नहीं कोई गीता।
रँग नहीं रूप भरे नहीं रीता।।4।।
दिन नहीं रात धूप नहीं छाँया।
लाधूनाथ पार नहीं पाया।।5।।

अबधू इण विध जोग कमाई।
धरा गिगन पर सत् की डोरी अखे नाम लिव लाई।।टेर।।
अला पिंगला मिली सुखमण थट तरबीणी आई।
बंकनाल की पश्चिम पोल में धोरा उल्ट सँमाई।।1।।
सोहनी शिखर में ढोल घूरत हे सुन्न में नाद बजाई।
रणुँकार में मोती निपजे गेबी भण्डार भराई।।2।।
सात सुन्न पर लाख सुन्न हे ऊपर भोम बसाई।
किरोड़ जोत में सूरज ऊगा उनका दर्शन पाई।।3।।
लाधूनाथ आत्मा खोजी नहीं धूप नहीं छाँई।
आरपार निराकार अखण्डी निर्गुण बाणी गाई।।4।।

।। श्लोक ।।

घड़ी पलक दो जीवणों, इस दुनिया के बीच।
लाधूनाथ निज नाम बिना, सब ही प्राणी नीच।।1।।
कुबद्ध पाप में दिन गयो, भजो नहीं भगवान।
लाधूनाथ निज नाम बिना, मिनख गधो अरू श्वान।।2।

शब्द का गोला शिखर में चढ़िया काल का बंधन कटवादे।।2।।
सत् की कूँची सुन्न में लागी गुप्ति ताला टुटवादे।
अमरनाम का धोरा लागा निरभे लावा लुटवादे।।3।।
सुघरे नर कुँ सेन बताऊँ मूर्ख नटे बाने नटवादे।
लाधूनाथ जागता जोगी नींद घटे तो घटवादे।।4।।

सतगुरू देव दया करी मोपे दुख दुविधा हरली मेरी।
ज्ञान का नेण खुला घट भीतर सुन्न में सगम खुली सेरी।।टेर।।
अखी नाम का धोरा लागा उल्टया सुरता पकड़ पिछम फेरी।
धरा नहीं गिगन चाँद नहीं सूरज अधर इणी पर जा ठहरी।।1।।
अधर छतर वहाँ निर्भय सूता धन्य जोगी कमजा तेरी।
जमड़ा काल नेड़ा नहीं आवे झख मारो दुश्मन बैरी।।2।।
अमर नाम को इमृत बरसे किरोड़ूँ जोत जगे गहरी।
हँसा मिला जोत में जोती समन्दर माहीं मिली लहरी।।3।।
नानगनाथ मिले गुरू पूरा माया का बन्धन टूटी घेरी।
लाधूनाथ अखण्डी मिलिया आवागमन में नहीं फेरी।।4।।

।। श्लोक ।।

अखी भाण को चानणों, किरोड़ जोत भरपूर।
लाधूनाथ के देश में, नहीं चँदा नहीं सूर।।1।।
नहीं बिणसे नहीं ऊपजे, नहीं आवे नहीं जाय।
लाधूनाथ के देश में, नहीं धूप नहीं छाँय।।2।।

अबधू इण विध ब्रह्म जगाया।
सत् का सेल शब्द का गोला जमड़ा दूर भगाया।।टेर।।
नाभ कँवल से बादल उल्टया अला पिंगला ध्याया।
तरबीणी में मोती नीपजे सुखमण धोरा लगाया।।1।।
गिगन मण्डल में ढ़ोल घूतर हे सुन्न में नाद बजाया।
रँग महल में धजा फरू के जोगी दर्शन पाया।।2।।
सात सुन्न पर लाख सुन्न हे ऊपर नगर बसाया।
उनके ऊपर अधर छतर हे वहाँ जोगी थिरथाया।।3।।
लाधूनाथ जागता जोगी अमर देव को ध्याया।
अखी ज्योति में हँसा मिलिया सत् में बूँद समाया।।4।

।। श्लोक ।।

अलख आसरे तेरा बैठा, निरभे लाधूनाथ।
अनघड़ आय सँभालिया, दिन ऊगे प्रभात।।1।।
संगी साथी जीव का, पाप पुनः हे दोय।
लाधूनाथ सँसार में, आप करे फल होय।।2।।

अबधू सतगुरू भेद लखाया।
अखे नाम का भरूँ भंडारा इमृत नीर चखाया।।टेर।।
रोग पीड़ा दुख दूर भागा शीतल निर्मल काया।
सुखमण गंगा भरी तरबीणी नित उठ निरभे न्हाया।।1।
रूम-2 में राम रमायों अलख-2 लिव लाया।
बंकनाल में धोरा लागा रणुँकार धुन्न ध्याया।।2।।

22:33

पूगा हँसा अमर अखण्डी देश।
ब्रह्मा विष्णु वहाँ नहीं पूगे नहीं देव गणेश।।टेर।।
बाणी वेद वहाँ नहीं पूगे नहीं शब्द प्रवेश।।1।।
चाँद सूरज दोनूँ नहीं पूगे नहीं पूगे शेष महेश।।2।।
अखी जोती को अटल चाँनणों नहीं जमाँ को लेश।।3
लाधूनाथ अखण्डी मिलिया निरभे करो आदेश।।4।।

कुण जाणों प्रभू कैसे रटूँ हर डोर।
कोई कहवे साधू कोई चोर।।टेर।।
अखे नाम का भरूँ भण्डारा सत् की डोरी पोर।।1।।
जन्म मरणा की टूटी कल्पना नहीं लागे जम की जोर।।2
अमर जोत में हँसा मिलिया मिलिया पाप सब धोर।।3
लाधूनाथ आत्मा केवल कुछ नहीं माँगू और।।4।।

भजन में लगी सूरत इकसार।
निराकार में डोरी साँधी चढगी आरो पार।।टेर।।
बाहिर भीतर रमे अखण्डी अणघड़ को दीदार।
केवल आप सकल में बोले नहीं पुरूष नहीं नार।।1।
रँग नहीं रूप नहीं कोई जाति नहीं लेता अवतार।
मरे नहीं जन्में नहीं काल नहीं खावे ऊँडा अथग अपार।।2
सुखमण पूगी सुन्न महल में खुलिया गुप्त द्वार।
अमर जोत जगे बिन बाती काल रहो झखमार।।3।।

Scanned with OKEN Sca

हरी ने भूल मती भाई, हरी ने भूल मती भाई।
भजन करे बड़भागी हँसा अमरापुर पाई।।टेर।।
तीर्थ व्रत पोल की भक्ति दुनिया उलझाई।
जगत जाल झूठो कर जाणी भरम भींत ढाई।।1।।
निराकार में डोरी साँधी धीराँ–2 लिव लाई।
काया खोज आत्मा खोजी एक देव को ध्याई।।2।।
अला पिंगला थट तरबीणी सुखमण गंगा न्हाई।
बंकनाल में मोती निपजे हँसा चूण चुगाई।।3।।
गिगन मण्डल में भरूँ भण्डारा सुन्न में जोत जगाई।
अमर जोत में ज्योती मिलगी सत् में बूँद सँमाई।।4।।
धरा नहीं गिगन चाँद नहीं सूरज नहीं धूप नहीं छाँई।
लाधूनाथ अखी घर पूगा बहुरि जन्म नहीं आई।।5।।

भजन मत भूलो रे बाला।
हर भूला बाँरी खोटी कमाई पग लीला मुख काला।।टेर।।
नुगरा पापी पाप कमावे जड़िया कर्म का ताला।
भजन बिना जीव जमड़ा खासी कुँभ नरग में डाला।।1।।
मिनखा जन्म सफल हो जावे जप ले निर्गुण माला।
गुरगुम शब्द खोज काया में खुले भरम का ताला।।2।।
अखे नाम का धोरा लागा सुन्न मण्डल टकसाला।
अमर जोत में हँसा मिलिया मिल्या नदी में नाला।।3।।
लाधूनाथ जागिया जोगी काल दे गयो टाला।
सत्–धर्म का धोरा लागा सुख सागर की पालाँ।।4।।

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

ई कहूँ अब प्रभू कुण जाणें पीड़ पराई।
लख भजन की लागी चोटाँ दर्द हुवा घट माँही।।टेर।।
गत जाल से सुरता तोड़ी गुरू चरणाँ में लाई।
तगुराँ नशो हरी रस पीयो मोह की नींद उड़ाई।।1।।
ल जाल नेड़ा नहीं आवे फिर रही राम दोहाई।
खे डोर में माला फेरूँ रात दिना धुन्न ध्याई।।2।।
ला पिंगला चढ़ी सुखमणा सुन्न में नाद बजाई।
मर नाम का भरूँ भण्डारा कमी रही नहीं काई।।3।।
हीं कोई धूप नहीं कोई छाया नहीं कोई आवे नहीं जाई।
धर छतर वहाँ जोगी सूता उनका दर्शन पाई।।4।।
नगनाथ मिले गुरू पूरा दुविधा दूर भगाई।
धूनाथ गुराँ के शरणें सत् में बूँद सँमाई।।5।।

क्ति साधी जकाँ री जाणो।
पाखण्ड में भक्ति नहीं होसी सत् को शब्द पिछाणों।।टेर।।
भस्म रमाय भूल गया भक्ति लाँबी जटा बधाणो।
अड़सठ तीर्थ फिरो भटकता वृथा जन्म गमाणो।।1।।
गीता पोथी पढ़ो बहुत सी भागवत भरम भूलाणों।
मन्दिर देवता पत्थर पूजों पिंडत मूल ठगाणों।।2।।
ऊंच नीच भक्ति में नाहीं अमरदेव को ध्याणो।
नर नारी आगे कई तिरिया पायो अखी ठिकाणो।।3।।
गृहस्थी रहो बनो मत त्यागी काया में शील कमाणो।

Scanned with OKEN Scanner

496 नम्बर

अखी भोम अटल उजियाला विरला पूगा कोई।
अधर छतर वहाँ जोगी पौढ़े किरोड़ों जोत सँजोई।।4।।
लाधूनाथ जागता जोगी जाग–2 ना सोई।
नहीं कोई धूप नहीं कोई छाया नहीं एक नहीं दोई।।5।।

हँसला रटो अलख अविनाशी।
निज नाम को मोती चुगणा टूटे कल्पना फाँसी।।टेर।।
तीर्थ व्रत में कुछ नहीं लाधो नहीं द्वारका काशी।
आपे में निराकार अखण्डी गुरू मिलिया गम पासी।।1।।
काम क्रोध कुँ मार उड़ादे पाँच भूत कर नाशी।
केवलदेव आत्मा खोजी घट में हर गुण गासी।।2।।
अला पिंगला तन्त सुखमना थट तरबीणी लासी।
बँकनाल में धोरा नाम का रणुँकार धुन्न ध्यासी।।3।।
सुन्न मण्डल में धजा फरू के अमर जोत प्रकाशी।
लाधूनाथ जागतो जोगी जोत में जोत समासी।।4।।

सुरत लगाय काया में हेरो आप अलख घट में बोले।
भरम जाल में सब जीव उलझे सतगुरू जी परदो खोले।।टेर।
गिगन मण्डल में इमृत कूवो पाप मैल सब ही धोले।
निराकार अविनाशी अणघड़ थट तरबीणी माँ जोले।।1।
रँग नहीं रूप धोलो नहीं कालो नहीं प्रगट वो नहीं ओले
नहीं बो हल्को नहीं बो भारूँ नहीं बो डिगे नहीं बो डोले।।2

22:45

|| प्रशन ||

अमर जोगी जोग जुगत से खोजी।
धर असमान पून नहीं पाणी आगे मार्ग सोजी।।टेर।।
कौन कँवल में गुरू विराजे कौन कँवल में चेला।
कौन कँवल में काल का झण्डा कौन ठौड़ हँस रहला।।1।।
कौन कँवल में बाणी ऊपजे कौन कँवल में बोले।
कौन कँवल में ताला जड़िया कौन कूँची से खोले।।2।।
कौन कँवल घर सुरत शब्द हे कौन कँवल घर माया।
कौन कँवल में जीव ब्रह्मा हे किस विध ऊपजी काया।।3।।
हद बेहद का भेद बतावो कौन दोय कौन एकी।।4।।
कौन भोम पर मार्ग लागा कौन नगर में जासी।
कह लाधूनाथ खोज कर किशना कौन अखी कौन नाशी।।5।।

|| उत्तर ||

अमर जोगी सत् में खोज लगाया।
पाँच तत्व गुण तीनाँ के ऊपर देव आत्मा पाया।।टेर।।
अगमपुरी में गुरू विराजे निगम पुरी में चेला।

Scanned with OKEN

के माहीं काल का झण्डा बेहद में हँस रहला।।1।।
मे कँवल में बाणी ऊपजे मुख कँवल में बोले।
न के आगे ताला जड़िया सुखमन कूँची खोले।।2।।
म भोम में सुरत शब्द हे तीन लोक में माया।
जीव ब्रह्मा दो आवागमन में जल से ऊपजी काया।।3।।
खी कमल पर अमर जोत हे जोग जुगत से देखी।
द बेहद कूँ लारे छोड़ी आगे अखण्डी एकी।।4।।
अधर धार पर मार्ग गेला बेगम नगर पर जासी।
कह लाधूनाथ खोज कर किशना नहीं ऊपजे नहीं नाशी।।5।।

22:45

Scanned with OKEN Scanner

निज नाम का मोती पोया सत की डोर चढ़ावे।।1।।
आठूँ पहर अलख लिव लग्नि देव आत्मा ध्यावे।
घट में मन्दिर घट में पूजा घट में गंगा न्हावे।।2।।
अला पिंगला तन्त सुखमना एको धार मिलावे।
बंकनाल में धोरा लागा गेबी भण्डार भरावे।।3।।
सुन्न मण्डल में धजा फरू के आगे नगर बसावे।
अखी मण्डल में जोत अखण्डी वहाँ जोगी थिरथावे।।4।।
सुगरा हँसा हरी रस पीवे नुगराँ कुँ नहीं पावे।
लाधूनाथ रात दिन पीवे सत में बूँद समावे।।5।।

हँसला तूँ काहे को सोच करे रे।
अलख अखण्डी बड़ो हे दाता सब को उदर भरे रे।।टेर।।
पापी धर्मी जीव जगत में सब की करतो खबर रे।
हरी रस पीवे बे जुग–2 जीवे कबहूँ न भूख मरे रे।।1।।
वन में नहीं जाणा तीर्थ नहीं नाहणाँ रहजो अटल घरे रे।
शील संतोष कमावो घट में घट में अणघड़ हर रे।।2।।
आठूँ पहर भूल मत हर को पूर्ण काज सरे रे।
राम भजन की जहाज बणा ले भव–जल ऊपरी तरे रे।।3।।
साँसों सोच फिकर नहीं जिनके लागा मार्ग खरे रे।
मान सरोवर हँसा चढ़िया बे मोती चून चरे रे।।4।।
लाधूनाथ अखण्डी ध्यावे जमसूँ नहीं डरे रे।
अखी मण्डल में जोगी पूगा बो तो देश परे रे।।5।।

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

धोवेला कोई विरला जोगी बे जुग में निर्मोई रे।।3।।
अखे नाम का धोरा लागा सत की डोरी पोई रे।
लाधूनाथ जागता जोगी अमर जोती जोई रे।।4।।

काया नगर के माँय सन्तों मेरे इमृत नदियाँ बह रही जी।
पल्क–2 में नावण संजोयो सतगुराँ कृपा केरी जी।।टेर।।
नाभी कमल से शब्द उठाया खोली पश्चिम की सेरी जी।
उन सेरी जोगेश्वर चढ़िया बोई पगडण्डी मेरी जी।।1।।
रणुँकार में बाजा बाजे बेगम नगरी हेरी जी।
गेबी ढोल नगारा बाजे अखण्ड नाद घर गहरी जी।।2।।
सुरत सुन्दरी सुन्न में चाली सत् में चश्मा फेरी जी।
अमर जोत नेणाँ बिन देखी कटी चौरासी मेरी जी।।3।।
केवलदेव आत्मा मिलिया टूटी जम की घेरी जी।
लाधूनाथ भजन में लागो मती लगावो देरी जी।।4।।

फकीरी अमर नाम को तीर।
साझेला कोई जोगेश्वर वजीर।।टेर।।
काम क्रोध का भस्म उड़ाया मारा पाँचू वीर।
आपे माँय आप से मिलिया मिलिया समंदा नीर।।1।।
गेबी नगर में अलख जगावे अणघड़ नाथ फकीर।
सत् धर्म का धोरा लागा तब खुलिया तकदीर।।2।।
अधर छत्र वहाँ चँवर ढुलत हे बरसे मोती हीर।

Scanned with OKEN Scanner

गिगन मंडल में इमृत बरसे नदियां चाले गहरी।।1।।
सोहनी सिकर में बाजा बाजे पिछणी डगरी हेरी।
अनहद नाद बसरिया बाजे नोबत बाजे गहरी।।2।।
इला पिंगला होकर भेली सुख सागर की लहरी।
सुरता दर्सन करा जीव का लगे ना जम की घेरी।।3।।
लाधूनाथ सत्गुरू अवनाशी में चरण की चेरी।
गणेशनाथ चरणा का चाकर मिटी चौरासी फेरी।।4।।

आज मेरे गुरूदेव घर आया।
तन मन गुरूजी अर्पण चरणा में शीश नवाया।।टेर।।
हिंगलु पागा रो ढाल्यों ढोलियों पंखे बाल ढोलाया।
भावरो भोजन प्रीत को पानी गुरूजी के भोग लगाया।।1।।
लगन को नारेल मंगाकर चार पदार्थ लाया।
सुख नुरत पुरषार्थ लेकर गुरूजी के भेंट चढ़ाया।।2।।
ज्ञान ध्यान का दीप संजोया प्रेम पुष्प जल पाया।
कृपा कर गुरूदेव दया करी सोहंग शब्द सुनाया।।3।।
लाधूनाथ गुरू अल मस्ताना मोक्ष पद बगसाया।
गणेशनाथ गुरू शरणें सुखमण गंगा न्हाया।।4।।

सादो भाई सतगुरू मोहे समझाया।
उर में उजाला किया शब्द से ऐसा तीर लगाया।।टेर।।
पांचु नागन पकड़ पछाड़ी पांचू देत भगाया।
एक नाम निरभे हो सुमरूं सुखमण मांय समाया।।1।।

16:57
संत भजन संग्रह | PDF
scribd.com

पर्वत ऊगो बांसड़ों हैली, थरथराई वन राय।
आप जले औरां ने जालसी सी हैली, गाँठ कपट घट मांय।। 2।।
आग लागी डावां डूंगरा हैली, मिल गई झालो - झाल।
और पंखेरू सब उड़ गया हैली, हँस रह्या बैठा डाल।। 3।।
चन्दन मुख से बोलिया हैली, थें क्यूँ जलो हँस राय।
मैं तो जलों पांखा बाहिरा हैली, जड़ है पयांलो माय।। 4।।
फल खाया पान फिरोलिया हैली, रमिंया डालों डाल।
थे तो जलों में ऊबरां हैली, जीवां कितना काल।। 5।।
हँस चन्दन रा प्रेम से हैली, दुधा वर्षो मेह।
कहे कबीर धर्मीदास ने हैली, नित्त - नित्त नवला नेह।। 6।।

हैली भजन ।। 149।।

चालो सत्तगुरूजी रा देश में हैली, चरण कमल चित्त धार।। टेर।।
अरूझ रही फंदरास में हैली, लग्या कर्मा रा जाल।
नाम बिना बचे नहीं हैली, राखो भजन रीसाल।। 1।।
काया कागज री पुतली हैली, छांट लग्या गल जाय।
पवन डोरा में पोयदी हैली, घड़ी दोय नाच नचाय।। 2।।
अधर महल में खेलणों हैली, अरा (अर्ध) उर्ध के बीच।
प्याला पिया निजनाम (सत्तनाम) का हैली, कटिया कर्मा रा कीच।। 3।।
अमर बींद रो चुड़लो ऐ हैली, पहरिया सुहागण नार।
सत्तगुरूजी री दासी भई ऐ हैली, हो गई भवजल पार।। 4।।
धिन सुखराम गुरू भेटिया हैली, दिवी तोय समझाय।
ईशरराम घट खोजिया हैली, लीवी आप में थाय।। 5।।

पांच पचीस को प्रत्यक्ष विडारया, सर्व उपाधि विलाई ।
त्रिगुण नाना खेल पसारा, न्यारा निर्गुण गोसांई ॥ २ ॥
सतसंगत में नहिं त्रिगुण अंका, सत निर्णय कर पाई ।
सत को धार असत को त्याग्या, सतगुरू की गम लाई ।३।
'गणेशराम' सतगुरू सतज्ञानी, युक्ति सत परसाई ।
'लाधूराम' शरण सतगुरू की, दुतिया भ्रम मिटाई ॥४॥

भजन संख्या (६) राग आशा–टोडी आशावरी पद ।

साधो भाई ! सतगुरू से पत आई ।
कृपा दृष्टि कर मो पर पूर्ण, ध्यान युक्ति दरसाई ॥ टेर ॥
समरथ सतगुरू शंस्य काढ्यो, सत की रमझ लखाई ।
सोहं भेद दियो गुरू स्वामी, हृदय ठीक ठहराई ॥ १ ॥
नाभी बैठ साधना सारी, झीणी तार संभाई ।
उलटा पवन पश्चिम को फेरया, प्राण अपान मिलाई ॥२॥
पांचो शमकर सहजे सहजे, बंक नाल उलटाई ।
प्राणायाम पवन गति जाणी, युगति कर उर लाई ॥३॥

19:42
Scanned by Ca

भजन संख्या (१२) राग राजेश्वरी हेली पद।

संत समागम कीजिये, और उपाधि विसार ॥ टेर ॥

स्वास उश्वासे स्मरण कर, इला पिंगला सार।
पूरक कुम्भक चेत के, रेचक पवन उतार ॥ १ ॥

शोड्ष पूरक पूरके, चौंसठ कुम्भक धार।
ॐ शब्द उर लायके, चौंसठ रेचक उचार ॥ २ ॥

वाहन बिन अरहट्ट चले, शहस्र घड़नालों पार।
मणि माल दर्शित रहे, चन्द सूर इकसार ॥ ३ ॥

जोग जुगत सूँ जोयके, सतसंग करो उदार।
सोहं स्मरण हर दम सही, अपना आप दीदार ॥ ४ ॥

सुख सागर की सीर में, द्वैत भ्रम सब टार।
"लाधूराम" निर्भय भया, आवागमन विडार ॥ ५ ॥

भजन संख्या (१३) राग हेली-राजेश्वरी पद।

जगत जाल को छोड़ के, होवो भव से पार ॥ टेर ॥

गर्भ वचन सब भूल के, फंस्यो माया की धार।
धन्धा फन्दा जगत का, कर्म भ्रम शिर भार ॥ १ ॥

Scanned by Ca

भजन संख्या (१६) राग काफी, डेढवा पद ।

पूर्व प्रीत दया कर पाली । निर्मल नाम सुणाया,
नूर सवाया ॥ टेर ॥

घट मे काम क्रोधादिक खोटा,
गुरू ने दीया ज्ञान का दोटा ।
शील शंतोष सजाया, नूर सवाया ॥ १ ॥

गुरूज्ञान का डंका दीना, नाभ कँवल सूं स्मरण कीना ।
बंकनाल उलटाया, नूर सवाया ॥ २ ॥

इडा पिंगला सुखमण नारी, पूरक कुम्भक लागी तारी ।
त्रिवेणी जोत जगाया, नूर सवाया ॥ ३ ॥

ज्ञान ध्यान गम बाण सु लागा,
वैरी संग सकल कुल भागा ।
पांच पचीस मिटाया, नूर सवाया ॥ ४ ॥

चेतन पुरुष की फिरी दुहाई, रोम राम जागीरी थाई ।
असल मुदे पर आया, नूर सवाया ॥ ५ ॥

सब घट एक अखंड उजाला, निर्भय हंसा आप अकाला ।
जनम मरण नहिं आया, नूर सवाया ॥ ६ ॥

पांच पचीस को प्रत्यच विडारया, सर्व उपाधि विलाई।
त्रिगुण नाना खेल पसारा, न्यारा निर्गुण गोसांई ॥ २ ॥
सतसंगत में नहिं त्रिगुण अंका, सत निर्णय कर पाई।
सत को धार असत को त्याग्या, सतगुरू की गम लाई।३।
'गणेशराम' सतगुरू सतज्ञानी, युक्ति सत परसाई।
'लाधूराम' शरण सतगुरू की, दुतिया भ्रम मिटाई ॥४॥

भजन संख्या (६) राग आशा–टोडी आशावरी पद।

साधो भाई ! सतगुरू से पत आई।
कृपा दृष्टि कर मो पर पूर्ण, ध्यान युक्ति दरसाई ॥ टेर ॥
समरथ सतगुरू शंस्य काढ्यो, सत की रमझ लखाई।
सोहं भेद दियो गुरू स्वामी, हृदय ठीक ठहराई ॥ १ ॥
नाभी बैठ साधना सारी, झीणी तार संभाई।
उलटा पवन पश्चिम को फेरया, प्राण अपान मिलाई ॥२॥
पांचो शमकर सहजे सहजे, बंक नाल उलटाई।
प्राणायाम पवन गति जाणी, युगति कर उर लाई ॥३॥

"लाधूराम" निर्भय पद योई, विरला हरिजन जाखे कोई।
सतगुरू माहिं समाया, नूर सवाया ॥ ७ ॥

भजन संख्या (१७) राग काफी छन्द डेढुवा पद।

सतगुरू मेरा अन्तर्यामी।
राम नाम धन दीना, स्मरण कीना ॥ टेर ॥
सनकादिक सतगुरू को ध्यावे,
महिमा महा वरणी नहिं जावे।
दृष्टि न आय वो झीना, स्मरण कीना ॥ १ ॥
षट् चक्कर का भेद बताया, स्वासोऽस्वास सोहं धुनि लाया।
निर्भय सुधारस पीना, स्मरण कीना ॥ २ ॥
सुन शिखर में सहज समाई, सुरता-श्याम अद्वैत अथाई।
युगति मुक्ति पद चीना, स्मरण कीना ॥ ३ ॥
सतगुरू ज्ञानी सनातन सागी,
ऊगा भाण अखंड लिव लागी।
दशवें दर्शन दीना, स्मरण कीना ॥ ४ ॥
"लाधूराम" निर्भय पद पाया, सतगुरू पूरा भेद बताया।
मार्ग मुक्ति का लीना, स्मरण कीना ॥ ५ ॥

Scanned b

19:51

* चौपाई छन्द *

सत गुरू सीधा शब्द सुणाया, शब्द विचार परम पद पाया।
सोहं नाम सुणाया पूरा, धारे जिज्ञासु कोईक शूरा ॥ ७ ॥

श्रवण सुणत राम धुन लागी, ममता मोह मन की सब भागी।
गुरू का बाला हरदम सोई, रमझ लखे गुरु मुख से कोई ॥ ८ ॥

ममता दूर भया मन सीधा, सोहं शब्द हृदय में बींधा।
मनवा मृग जगत में फिरता, गुरू गम पाय गही निज थिरता ॥९॥

थिरता गहन सुरत ठहराणी, गुरू मूर्ति उर अन्दर जाणी।
मूल कँवल दृढ आसन कीना, गणपति देव दर्श निज दीना ॥१०॥

उपस्थ कँवल ब्रह्माजी खेले, सृष्टी भार रंग बहु फेले।
रजो विस्तार करे विधनाना, सावित्री संग रास रचाना ॥११॥

नाभ कँवल नारायण बैठा, भरण पोषण कर जग में पैठा।
चिंटी कुँजर सर्व की सेवा, लक्ष्मीनारायण यही कंत देवा ॥१२॥

शंकर ध्यान हृदय के माई, पार्वती संग रहत सदाई।
तमोगुण जाप अजाप सुहावो, सोहं सोहं हरदम गावा ॥ १३ ॥

कंठ कंवल सरस्वती धुन जागी, अग्रवाणी पर सहजे लागी।
बंक नाल का रस्ता कीना, सहजे गुरु सम स्मरण कीना ॥ १४ ॥

त्रिवेणी महल में तार लगाई, सुरती आतम माही मिलाई।
प्रेम तैल से ज्योतिजागी, सत गुरू शब्द अखण्ड लिव लागी ॥१५॥

Scanned

सच्चिदानन्द अमर अविनाशी, ज्ञान स्वरूप स्वयं प्रकाशी,
सदा एक रस है सुखराशी, क्या वर्णन करूँ अनूपको—
है कहन सुनन में नांई ।।३।।
गोपीनाथ गुरु समरथ पाया, भेदाभेद सबही बिसराया,
खाता. रूड़मल खत्म कराया, लखके एक अरूपको—
दिया जन्म मरण छिटकाई ।।४।।

भजन नं ५ (राग–पारवा)

करदेखी खूब तलाशी, बिन ज्ञान मुक्ति है नांय ।:टेर।।
देवल देव धोक सबलीना, व्रत करके तन सुखाय दीना,
झालर शंख बजा नित लीना, फिरभी चिन्ता नहिं जाय—
नहिं मनकी मिटी उदासी ।।१।।
योग धारना करली क्रिया, नैनमूंदकर ध्यानज धरिया,
रोका द्वार श्वास उर भरिया, लखि ज्योति त्रिकुटी मांय—
है तत्व-प्रकाश विनाशी ।।२।।
अजपाजाप जपा बहु काला, सोहं सोहं शब्द निकाला,
लोभी उर नहिं हुआ उजाला, रहा भर्म घट छाय—
नहिलखा ब्रह्म अविनाशी ।।३।।
गोपीनाथ गुरू समरथ पाया, भेदाभेद सभी बिसराया,
रूड़मल खाता खतम कराया, लखके एक अरूप को—
कटगया क्लेश चौरासी ।।४।।

रामप्रकाश अष्टांग के साथ ही, देह शुद्धता योग से आनो ।।३।।
अग्नी क्रिया करे जन कोईयक, गृहस्थ साधत है जन योगिक जाने।
क्रिया वज्रोली है साधन कठिन, जल पय घृत लिंग ते पाने।।
श्वास प्रश्वास को कण्ठ ते खेंचत, मूर्द्धन्य स्थान ते पावत छाने।
रामप्रकाश है दुर्लभ क्रिया यह, जानत मानत योगी पिछाने ।।४।।
युक्त त्रिवेणी को भेद लख्यो नही, मुक्त त्रिवेणी की साधन नाही।
इडा पिंगला सुषुम्ना साधन, अर्ध रु उर्ध की गम विताही।।
युक्तबंक की गम करी नही, मुक्तबंक की बात सुनाही।
रामप्रकाश यह योग गति अति, सूक्ष्म को माग लखे विरलाही ।।५।।

स्वरोदय विचार-

इडा पिंगला सुषुमन साधन, षट्कर्म शुद्धिकरण तन धारो।
प्राणायाम त्रिकूटी महल में, ज्योतिर्मय दर्शन मन प्यारो।।
झिलमिल झिलमिल दीपन दरसे, चित वृति सँयम कर सारो।
रामप्रकाश एकान्त साधन से, हरदम में ध्यान सुधारो ।।६।।

२५५

इडा वाम चन्द्र स्वर थर, अचर कार्य कर साधन लावे।
पिंगला दाहिनी सूर्य साधन कर, चर कार्य की सिद्धि करावे।।
गँग यमुन के बीच सुषुम्ना, हरि भजन को सिद्ध बनावे।
रामप्रकाश करे कोई साधन, स्वरोदय कारज सिद्धि दिलावे ।।७।।
इडा गँगा रु पिंगला यमुन, सुषुम्ना सरस्वती बीच कहावे।
घर मे साधन नित्य ध्यान में, सबही कारज सिद्धि दिलावे।।
स्वर का साधन सरस सर्वोत्तम, सरस सन्तन के मन को भावे।
रामप्रकाश करे कोई साधन, अष्ट सिद्धि घर बैठे ही पावे ।।८।।
सतगुरू मुख से दीक्षित सानिध्य, वास करे स्वर साधन लावे।
नित्य नियम से विधि कर साधन, अध्यात्म ज्ञान रु ध्यान लगावे।।
जीवित ओढत मूँआँ बिछावत, सो योगी जन आयु बढावे।
रामप्रकाश करे कोई साधक, भौतिक अध्यात्म सुख को पावे ।।९।।
भोजन भोज्य पदार्थ पावत, सूर्य नाड़ी का ध्यान रखावे।
पेय पदार्थ पीवन हो जब, चन्द्र स्वर का पालन लावे।।
पूर्व उतर गमन रवि बल, दक्षिण पश्चिम चन्द्र दढावे।
रामप्रकाश योगी सिद्ध साधत, साधन निशिदिन मन में भावे ।।१०।।

।। योग के आठ अंग ।।

यम नियम रु आसन प्राण में, योग विधि कर ध्यान विचारो।
पूरक इडा कर मूल बंध में, उड़ियान जालंधर कुंभक सारो।।
रेचक करो युक्ति कर साधन, तीन हुं बंध को धीर निवारो।
रामप्रकाश हो धारणा ध्यान में, जाय समाधि में ईश सम्भारो ।।११।।
यम नियम आसन के आगे, प्राणायाम प्रत्याहार करावो।
पूरक कुम्भक रेचक विधि से, धारणा ध्यान का साधन लावो।।
षट् क्रिया शुद्ध समाधि साधन, निर्विकल्प करके पावो।
रामप्रकाश यह कर्म योग विधि है, ईश्वर सानिध्य पावो ।।१२।।
यम नियम रु आसन जानहु, प्राणायाम कर युक्ति पावे।
पूरक कुम्भक रेचक से कर, प्रत्याहार धारणा ध्यान कहावे।।
सविकल्प रु निर्विकल्प ये, दोय विधि समाधि की गावे।
रामप्रकाश यह अष्टांग योग के, साधन पातञ्जलि सन्त बतावे ।।१३।।
इडा पिंगला हठयोग जो, गुरू शब्द से मन्त्र योग दढावे।
प्रतिक्षण जपत राजयोग में, श्वासोच्छवास मे धुनि लगावे।।
सुरत शब्द का मेल करे मन, श्वासा सहित लय योग मे जावे।
रामप्रकाश भक्ति रु कर्म में, ज्ञान योग का मर्म कहावे ।।१४।।

।। यम का वर्णन ।।

तन मन वाणी से अहिंसा पालन, सत्य का धारण नित्य ही धारो।
अष्ट मैथुन से दूर रहो नित, ईश उपसना अध्ययन न्यारो।।
सँग्रह त्याग वृति का पालन, तन मन वाणी से चोरी नकारो।
प्रथम अँग यम पाँच प्रकार सो, रामप्रकाश कर्मयोग सुधारो ।।१५।।

२५६

।। नियम का वर्णन ।।

तन मन वाणी को पावन रखिये, व्यसन सात दश दोष निवारो।
तृष्णा त्याग सँतोष का धारण, तीतिक्षा से तप तेज विचारो।।
वेद शास्त्र स्वाध्याय करो नित, ईश्वरीय उपासना ज्ञान सँभारो।
रामप्रकाश यह द्वितीय नियम सो, पाँच प्रकार को योग मे प्यारो ।।१६।।

।। आसन का वर्णन ।।

सिद्धासन पद्मासन जान हुँ, वज्रासन कर योग सुधारो।
यही आसन सिद्धि के दायक, जप तप करके ज्ञान विचारो।।
और आसन सब रोग निवारक, मुख्य चौरासी गणित अचारो।
तृतीय अँग योग के साधन, रामप्रकाश सन्त शास्त्र सारो ।।१७।।

।। प्राणायाम का वर्णन ।।

पूरक श्वास को ऊपर खेंचन, उतम मध्म कनिष्ठ कहावे।
कुम्भक श्वास ठहराय करे वह, अष्ट भेद गुरू भेद सिखावे।।
बाह्य आभ्यान्तर भेद है कुम्भक, प्राण रेचक मे बाहर आवे।
रामप्रकाश यह अँग चतुर्थ, कर्मयोग की विधि बतावे ।।१८।।

।। प्रत्याहार व् धारणा का वर्णन ।।

सर्व वासना त्यागत है नर, आशा रु वासना सकल बिसारे।
वृति खेंच सँसृति सँसार से, बाहर से मन अन्तर धारे।।
सो प्रत्याहार कहे सन्त सामर्थ, दृढ विश्वास धारणा धारे।
पँचम षष्ठम अँग बखानत, रामप्रकाश कर्मयोग उचारे ।।१९।।

।। ध्यान का वर्णन ।।

मनोयोग से चितवृति मय, शब्द सुरति को एक मिलावे।
अर्ध उर्ध के बीच मे आसन, प्राणायाम को खूब सधावे।।
वृत दोष प्रतिहार करे सब, ध्यान बीच परमेश्वर ध्यावे।
रामप्रकाश यह सप्तम साधन, कर्मयोग के शास्त्र गावे ।।२०।।

।। समाधि का वर्णन ।।

सविकल्प और निर्विकल्प समाधि -

राजयोग मय स्थिर आसन, चेतन वृति से ध्यान समावे।
सविकल्प समाधि ताहि कहे वर, शास्त्र विधि से भेद लखावे।।
सँकल्प विकल्प मन के मेटत, चित वृत्ति शून ध्यान लगावे।
रामप्रकाश यही है निर्विकल्प, अष्टम समाधि अँग लखावे ।।२१।।
सविकल्प समाधि चेतनता थिर, हरदम श्वासा सुमिरण सारे।
राजयोग मे स्थिर आसन, कर्मयोग यह सन्त पुकारे।।
निर्विकल्प समाधि जड़ता पूरक, शून्य शिखर गढ ध्यान को धारे।
रामप्रकाश तन इन्द्रिय सँयम, मन बुद्धि सब लय विचारे ।।२२।।
श्वासा का साधन इडा रु पिंगला, अर्ध रु उर्ध का योग कहावे।
सुरत रु शब्द की एकता पूरण, वृति निरोध समूह करावे।।
जीव रु ईश का सानिध्य वास हो, कर्मयोग का लक्ष लखावे।
रामप्रकाश यह योगीजन जानत, भोग को त्याग के योग कमावे ।।२३।।

२५७

।। पाँच प्रकार की कर्मयोग मुद्रा ।।

शरीर स्वास्थ के साधन कर्म में, अष्टोत्तर मुद्राएं कही है आगे।
कर्म उपासना पूजा साधन, मुद्रा इक्कीस कही जन जागे।।
कर्मयोग उपासना साधन, योगी जन मुद्रा पाँच के लागे।
रामप्रकाश लखे ब्रह्मज्ञानी जन, द्वैत अद्वैत की मुद्रा एक ना लागे ।।२४।।
कर्मयोग भूमिका जान हुँ, वाणीलय मनोलय मानो।
बुद्धिलय रु अहँकार लय, कर्म क्षय कर उपयुक्त जानो।।
रसास्वाद काषाय विक्षेप लय, चार विघ्न समाधि मे हानो।
रामप्रकाश साधन है दुर्लभ, दुर्गम जानत गुरू गम म्यानो ।।२५।।
कर्मयोग मुद्रा पाँच प्रकार की, अष्टादश पूजा की धारा।
अर्चन मुद्रा चौवीस जो कहिए, अष्टोतर मुद्रा स्वास्थ्य सारा।।
योग रु भोग अष्टोतर मुद्रा, शारीरिक स्थिति अर्थ सुधारा।
रामप्रकाश पण्डित क्या बूझे, मुद्रा और अनेक प्रकारा ।।२६।।
हेम मुद्रा पल राज मुद्रा तप, कूट मुद्रा देव की जानो।
अभयमुद्रा सतगुरू की होवत, मुद्रांक सदा सतावल आनो।।
मुद्रणालय प्रकाशन पावत, मुद्रा नाम स्थिति को मानो।
रामप्रकाश पण्डित क्या बूझे, मुद्रा और अनेक हि छानो ।।२७।।
तर्क अभय मुद्रा कहि धातु ही, तप्त भाव सु मुद्राक्षर हेमा।
राज मुद्रा रु साज मुद्रा लख, मुद्रांकित पत्र रु शास्त्र नेमा।।
मुद्रणालय मुद्रक जानहु, मुद्रांकित पत्र मुद्राध्यक्ष खेमा।
रामप्रकाश मुद्रणालय सेवक रु, मुद्रा विविध स्थिति लेमा ।।२८।।
खेचरी जिह्वा रु भूचरी नासिका में, चाचरी चक्षु में मुद्रा साजे।
अगोचरी श्रवण उन्मुनी मूर्द्धनी, पांच मुद्रा यह योग की राजे।।
विधि विधान योग कला विद, योग गुरू बिन नाहि अंदाजे।
रामप्रकाश कहे सन्त रु शास्त्र, मुद्रा देह सुधा रस काजे ।।२९।।

।। दृष्टान्त सिद्धांत वाटिका ।।

सोहं शब्द दिया गुरु भारी, भेष लिया हम ब्रह्म विचारी।
चित चाकरी चेतन वैणा, काया नगरी में फेरी देणा ॥11॥

शब्दार्थ–**सोहं**=शिवोऽहं, सोहम्, हंसो का पलटवार सोहं, योगी का ज्ञान प्रणव साधन। **भारी**=वजनदार, विधि सहित गौरव शील, प्रमुख। **भेष**=ज्ञान फकीरी की पहिचान। **ब्रह्म विचारी**=अन्तर्विचार के अन्तर्भेद से। **चाकरी**=नौकरी, सेवा, टहल, दासता, श्रद्धा कार्य। **चेतन**=सावधान, सक्रिय, दत्तचित, साधन रत। **वैणा**=चलना, बहना, पालन करना, धारण करना, रहना। **काया नगरी**=शरीर, सेवा, टहल, दासता, श्रद्धा कार्य।

भावार्थ–सतगुरु स्वामी ने शिवोऽहं (सोऽहम्) सोहं (वह परमात्मा मैं हूँ) का योगिक प्रणव शब्द दिया। वह अन्तर्मन में विचार पूर्वक चिन्तन करके हमने धारण किया। यही अन्तर्भेष (उपराम सहित तितिक्षा एवं वैराग्य) को विवेक द्वारा लिया अर्थात् धारण किया।

अन्तर्मना चित्त चेतन की सेवा (चिन्तन) में सावधान

Scanned with CamScanner

होकर चलना। इस प्रकार काया के नगर में परिक्रमा (अर्ध-उर्द्ध) देकर प्राण शोद्धन द्वारा मन सहित सुरत एवं शब्द को प्राण गत मिलाया।

योगी के ओम ज्ञानी के सोहम्, भक्त ही राम बतायगा रे।
समझया जके एक कर जाने, तोको निज समझायगा रे॥

(वाणी प्रकाश, हरिराम वैरागी 6/4)

शब्द गुरु का सैल सम्भाया, होय सूरा रण भीतर आया।
मन को पकड़ घेर घर लाया, बनानाथ यह योग कमाया ॥12॥

शब्दार्थ–**सैल**=शैल, कठोर पत्थरीला चट्टान, एक प्रकार का शस्त्र। **सम्भाया**=धारण किया, सावधानी पूर्वक उद्दत भाव से लिया। **घेर**=चारों ओर की सीमा या परिधि का घेरा लगा कर, किसी को घेर कर मार्ग बन्द करना।

त्रिबन्ध–(1) उड्डियान बन्ध– इसके साधन से मनुष्य मृत्युंजय होता है। पेट को अन्दर खैंच कर नाभि को आकर्षित करना। (2) मूल बन्ध– गुदा और योनि (लिंग) सम्बन्धी सब रोग नाश होते है। अश्वक्रिया से गुदा को अन्दर खींचना। (3) जालन्धर बन्ध– साधना से शरीर के सभी रोग नष्ट होते हैं। कंठ को आकुंचन करके हृदय के समीप लाना। समस्त

Scanned with CamScanner

योग साधना जानने के लिये स्वामी अचलरामजी द्वारा लिखित 'सन्ध्या विज्ञान' अवश्य पढ़े।

Scanned with CamScanner

प्रथम जाय नाभि को हेरी, सतगुरु शब्द लगाई फेरी।
जासे फुरे कामना सारी, अति अपरबल नागिन नारी ॥14॥

शब्दार्थ– हेरी=देखी, पुकार, टेर, लगाई, खोज की। फेरी=चारों ओर घूमने की क्रिया, चक्कर, परिक्रमण, आवर्त करना। फुरे=स्फुटित या प्रकाशित होना, संकल्पित, संस्मरण, उच्चरित होना। कामना=काम की इच्छित वासना। काम का सीधा अर्थ वासनाओं की गतिविधियों से लगाया जाता है। 'काम' शब्द न केवल वासना का प्रतीक है और न इन्द्रिय भोग का, वास्तव में काम साक्षात ब्रह्म का अंग है। काम की सत्ता को ईश्वर की विभूति माना गया है। अव्यक्त परमब्रह्म ने जब अपने को व्यक्त करने का निर्णय किया तो सबसे पहले उसने 'काम' का सृजन किया। काम की अपनी कोई आकृति नहीं है। कभी यह धर्म है, कभी अर्थ, कभी मोक्ष। लौकिक जीवन में जिस प्रकार धर्म और अर्थ पुरुषार्थ के साधन हैं, उसी प्रकार काम भी लोक यात्रा में सहायक है। विकास, समृद्धि, ऐश्वर्य का मुख्य साधन काम है। यदि कामना ही नहीं होगी तो सृष्टि निर्माण भी नहीं होगा। यदि सृष्टि ही नहीं होगी तो धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का कोई औचित्य ही नहीं रह

Scanned with CamScanner

20:23

Scanned with CamScanner

जिस नाभि गत चक्र द्वारा मनोवृत्ति की समस्त कामनाऐं संस्फुरित-होकर संकल्पित सक्रिय होती है। जहाँ पर अति अपरबल (उद्धत बलशाली) नागिन (नाड़ी के रूप में चक्रावर्त) है।

नाभि नगर नागनी जागी, जाको देख सकल जग भागी।
उस नागन ने सब जग खाया, जां सतगुरु पूरा नहीं पाया ॥15॥

शब्दार्थ– **नागनी**=मोहशक्ति, अविद्या, ममत्ववृति, नाभि प्रदेश में एक नाड़ी है, जिस का नाम योगिक भाषा में नागिन या नागनी कहते है। जो साढ़े तीन आंटें लपेट कर बनी है, जिन का मुख सदैव हृदयोन्मुख ऊपर रहता है। मूर्द्धनी द्वार से चवते स्रवते झरते अमृत बूँद को पीकर जीवित सजीव रह कर कामोद्दीपन करती है। योगी पुरुष षट्क्रियाओं सहित पूरक, अष्टकुम्भक, रेचक करते हुए प्राणायाम एवं पंच मुद्राओं के साथ वज्रोली इत्यादि अष्ठ योग साधना द्वारा नागिन का मुख पलट कर अर्धोन्मुख करते है। इस से काम शक्ति निष्क्रिय-अशक्त होती है और वह ऊर्द्धद्वार मूर्द्धनी से स्रवते सुधारस को खेचरी मुद्रा द्वारा पीकर अमरत्व प्राप्त करते हैं। यह नाड़ी नागनिनुमा की होने से इसे नागिन के नाम से योगिजन कथन

Scanned with CamScanner

नाभिगत नागिन नाड़ी को उन्मनि का स्त्रवित सुधारस मिलता है, जो वीर्यवहन नाड़ी द्वारा गृहस्थ भोग में वहन (व्यर्थ व्यय) होता है और वही नागिन नाड़ी के उलटने से उन्मनि (मुर्द्धनी) से स्रवित सुधा योगीजन-ज्ञान साधक खेचरी मुद्रा द्वारा सुधा पान करके अमरत्व प्राप्त करता है।

उस नागिन को मारे कोई, जाके धड़ पर शीश न होई।
नागिन मार नगर सब हेरा, उलटा प्राण पश्चिम को फेरा ॥16॥

Scanned with CamScanner

शब्दार्थ– **नागिन**=नागिन नाड़ी को साधना द्वारा उर्ध्व से अधोमुख पलटना ही मारना कहा गया है, जिसे वही सतगुरु शरणागत साधक गर्व रहित, तन-मन-धन के मिथ्यात्व ज्ञान को प्राप्त करता है, वही मारने वाला कोई होता है। जो कोई साधक ही मार सकता है।

भावार्थ– कोई योगनिष्ठ गुरु ज्ञान ज्ञाता जन उस नाड़ी नागनि पर अपना शक्तिपात करके उसे निर्बल निस्तेज कर दे। ऐसा कोई सतगुरु का वही बालक मार-टार सकता है कि जिस साधक के तन-मन वाणी सतगुरु पर न्योछावर हो और अष्ठ मदान्कृत (विद्या, जोभन, जाति, धन, प्रभुता, रूप, कुल गर्व) सहित समस्त दोष-दुर्गुण अर्थात् व्यशन नशादि शरीर पर नही हो।

साधक योग निष्ठ स्वामी बनानाथ जी कथन करते है कि हमने साधन सबलता से उस नागिन को मार (बदल) कर इस शरीर के सारे नगर को अन्दर (सूक्ष्म) एवं बाहिर (स्थूल) से निरीक्षण किया और अपने प्राणों की गति को पश्चिम की दिशा (पीठ की सुमेरु जिसमें इक्कीस दाने (पर्वत) गांठें हैं) में चक्रावृत करके परिक्रमा में फिराया।

Scanned with CamScanner

नाभि कमल चेतन की चोकी, उठती लहर उपजती रोकी।
ऐसे चला पश्चिम की घाटी, गाँठ इक्कीसों मेरू की फाटी ॥17 ॥

शब्दार्थ– **उठती**=चढती-बढती, उबलती-उछलती सक्रिय होती कामना। **लहर**=तरंग, हिलोर, मौज, प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न उफान। **उपजती**=उत्पन्न होती, संकल्पित या संस्फुरित होते ही।

भावार्थ– तत्समय तात्कालिक नाभि कमल (मणिपूरक चक्र) में चेतना धारक चेतन की चौकी (पहरेदारी) है। जो अन्तर्मन में संकल्पित संस्फुरणा का संस्मरण करता है। उस उबलकर उत्पन्न होती मनोवेदना की धारा को वहीं उठते संस्फुरण में ही रोक दी।

इस प्रकार निश्चल एवं निर्भयता से साधन रत पश्चिम की घाटी में प्राण वहन करके चला। सुरत ने शब्द सैल से शब्द वेध द्वारा मेरु मण्डल (समेरु) की इक्कीसों गाठों का भेदन किया और प्राणों का उत्सर्ग-निर्गमन हुआ।

बंकनाल भँवरा बह आया, उलटा कमल अमी वर्षाया।
झिलमिल ज्योति युक्ति से जागी, चेतन चला शिखर घर पागी ॥18 ॥

शब्दार्थ– **बंकनाल**=बंकनाल भेद से दो तरह की मानी

Scanned with CamScanner

गई है, युक्त बंक–जो रीढ की हड्डी (मेरुदण्ड) ऊपर मस्तिष्क से जुड़ती है और मुक्तबंक–जहाँ सिर से रीढ़ की हड्डी (मेरुदण्ड) बहती हुई नीचे कमर के जोड़ से जुड़ती है, वहाँ इति है।इस तरह मुक्तबंक मस्तिष्क सिरा को लांघते हुए नासा की सिरा से जुड़ती है, यह मुक्तबंक (त्रिवेणी) है और जहाँ नाभि के पृष्ट भाग से बहंकर इति हो वह मुक्तबंक (त्रिवेणी) है। योगी जन मेरू दण्ड भेदन करके युक्त और मुक्त से साधन-सिद्धि प्राप्त करते है। **शिखर घर**=सब से ऊँचा चोटी मस्तिष्क का ऊपरी सिरा जिसे योग क्रिया की भाषा में गगन मण्डल (जिसके अन्तर्गत त्रिकुटी, युक्त त्रिवेणी-मुक्त त्रिवेणी, भ्रकूटी, भ्रमर गुफा, सोवन शिषर) दशवां द्वार कहा गया है।

भावार्थ– स्वामी बनानथ जी कथन करते है कि इस प्रकार मन-पवन (प्राण) चल कर (साधनरत) मेरुस्थान (इक्कीस मेरु) की बंकनाल में आया। तत्समय उन्मुनि स्थान मुर्द्धनी के उल्टे कमल (ताल) से सुधामृत की वर्षा बूँदे बहती पाई।

आगे त्रिकूटी-भ्रकूटी स्थान में अखण्ड ज्योति (बगैर दीपक-तेल, बाती) के दर्शन हुए, जो झिल मिल-टिमटिमाती युक्ति पूर्वक जगी-लगी। चेतन जीवात्मा (मन, प्राण, सुरत,

(इन्दव छन्द)

प्राण-अपान को नाभि में वास जु, अन्तर्भेद में रहत है न्यारा।
प्राण-अपान में जाय मिले तब, योग सिद्धि पद पावत प्यारा॥
प्राण-अपान जो भिन्न होवे जब, च्युत स्थान ते मृत्यु पुकारा।
'रामप्रकाश' ये प्राण ही आत्म, सूक्ष्म देह ले जावत सारा॥

भावार्थ– प्राण ओर अपान का अलगाव लिये नाभि में निवास है, प्राणायाम द्वारा प्राण ऊर्द्ध से अर्ध होते अपान से मिलने पर देह शुद्धि के साथ योग सिद्धि की प्राप्ति होती है। प्राण-अपान के नाभि स्थान को त्याग कर बहिर्गमन होते ही स्थुल देह पात हो जाता है, तब प्राण सूक्ष्म शरीर के सत्रह तत्व सामग्री को लेकर परलोक सिधार जाते है अर्थात् प्राण ही अपने सोलह साथियों को साथ ले उड़ता है। वेदान्त में यही चिदाभास-कूटस्थ चेतन आत्म 'ब्रह्म' है।

(इन्दव छन्द)

प्राण को पीवत युग युग जीवित, जिवित ओढ के मूँआ बिछावे।
प्राण को ऊर्ध रु ऊर्ध को साधत, पूरक कुम्भक रेचक ध्यावे।

Scanned with CamScanner

इडा रु पिंगला सुषुमन शोधत, योग सिद्धि पद सहज ही पावे।
'उत्तमरामप्रकाश' पुकारत, प्राण को साधत ब्रह्म समावे॥

इडा पिंगला सुषुमन भेला, उलटा किया त्रिकूटी मेला।
त्रिकूटी महल झिलकत झांई, द्वादश नेजा फुरकत वांई॥19॥

शब्दार्थ– **इडा**=गंगा, चन्द्र, वामनाड़ी, बाँया, *दृष्टव्य- 'आध्यत्मिक सन्त वाणी शब्द कोष'*, 'सोहं च हकारं च जीवो जपति सर्वदा' इति श्रुति। **पिंगला**=यमुना, सूर्य, दक्षिण नाड़ी, दॉया, द्रष्टव्य-सन्त वाणी शब्द कोष 'सोहं सोऽहमिति प्रोक्तो मन्त्र योगःस उच्यते'। **सुषुम्ना**= सरस्वती, दोनों स्वर का बराबर चलना, देखे- *'उत्तम बाल योग रत्नावली'–उत्तम प्रकाशन जोधपुर।* **त्रिकूटी**=दोनों भँव के बीच, ललाट में तिलक स्थान, भृकुटी, गंगा-यमुना-सरस्वती (इडा, पिंगला, सुषुम्ना) का मिलना। **द्वादश**=पूरक में अकार का स्मरण पूर्वक 12 प्रणव जप करते कुम्भक में उकार ध्यान पूर्वक 16 प्रणव का जप, मकार के चिन्तन में 10 प्रणव का रेचक करना एक प्राणायाम है, यह प्रणवोपासना का एक्य चिन्तन गूढ रहस्य है अथवा नाभि से बाहिर होता नाक के बाहर तक द्वादश अंगुल प्राण निकलता है, उसे प्राणायाम कुम्भक क्रिया से घटाया गया।

सतगुरु शब्द बखाना आदू, रीत कही पुनि जाने सादू।
'अचलराम' गुरु सत पाया, अमर पट्टा निज ज्ञान बताया ॥11॥
ब्रह्मवेता सतगुरु फरमाया, सोहं सुमिरण करो सवाया।
सत शब्द सतगुरु उचारा, सुन लो सत संग सार पुकारा ॥12॥

श्री सतगुरु वाक्य ! शिष्य प्रति विश्वास

अमर पट्टा साधन व महिमा निरूपण

प्रकट वचन साचो लख गाई, भजन कीयों से काल न खाई।
नाम जपे सोई मुकित पावे, अमर पट्टा बिन मुक्ति न थावे ॥13॥
यामे फेर सार नहिं कोई, नाम बिना निज मोक्ष न होई।
'अमर पट्टा' अचल निज ज्ञाना, संत स्मृति दे परवाना ॥14॥

Scanned with CamScanner

ज्ञानी ओम रु सोहम् ध्यानी, भक्त जपे सत राम निशानी।
ओ3म् सोहम् राम जप तीनो, गुरु गम मुक्ति पद को चीनो ॥15॥
नाना संशय काम भ्रम मूरा, डार टार कर चित ते दूरा।
रंचक भेद न विस्मत होऊ, राम ओद्दम सों एक, न दोऊ ॥16॥
'अमर पट्टा' निर्भय निर्वाणी, मिटे चौरासी चारो खाणी।
'अमर पट्टा' से राखे हेता, ताको यम दगा नहिं देता ॥17॥
हंसा पकड़े सत का डोरा, तब यम करे नहिं कुछ तोरा।
सोहं सुरती तार मिलावो, त्रिवेणी तख्त में ध्यान लगावो ॥18॥
इड़ा पिङ्गला सुषमण सोजो, ओम सोहं संग स्वासा खोजो।
स्वासा सुमिरण ध्यान लगावो, सहजे दर्शन ब्रह्म मिल जावो ॥19॥
अब हंसा आवे ना जावे, अगम देश में उलट समावे।
यथा साधना प्रकट सुनाई, भव का भय व्यापे ना काई ॥20॥

अथ हृदयोल्लास वाणी सुधा निरूपण

सतगुरु 'अचलराम' अनकरता, जम जोरावर जासें डरता।

अथ हृदयोल्लास वाणी सुधा निरूपण

सतगुरु 'अचलराम' अनकरता, जम जोरावर जासें डरता।
सतगुरु वचन निर्भय का भाखा, 'उत्तमराम' कहूँ सत साखा ॥21॥
सतगुरु स्वामी युक्ति बताई, सत प्रतीत पलक में पाई।
सतगुरु दीवी युक्ति ऐसी, करी साधना गाऊँ तेसी ॥22॥
सतगुरु देव दीया फरमाई, करुं साधना मन चितलाई।
यह दृढ़ धार करी दृढ़ फेरी, सोहं शब्द स्वास में टेरी ॥23॥

Scanned with CamScanner

'सतगुरु' सोहं नाम सुणायो, सो निज सहजे हरदम ध्यायो।
युक्ति युत सोहं निज ध्याया, जासे हंसा पार पठाया ॥24॥
इड़ा पिंगला सुषमण सीधी, सुरत शब्द तीनो में बींधी।
पांचो मिल एकता पाई, सत नाम की फिरी दुहाई ॥25॥
नाभि कँवल में लागी डोरी, स्वासा सुरत चढी तब मोरी।
गुरु प्रसाद खुली उर ताड़ी, सुरती पकड़ त्रिकूटी चाड़ी ॥26॥
पूरक कुम्भक रेचक भीना, प्राणायाम युक्ति सब चीना।
त्रिवेणी कँवल में ज्योति जागी, दर्शण होते दुर्मति भागी ॥27॥
सत देश का दर्शण पाया, उज्वल हंसा निर्मल थाया।
सत नाम की डोरी झेली, हंसा खेलत निर्भय हेली ॥28॥
'अमर पट्टा' कस कमर बाधा, अगम देश का मार्ग लाधा।
यासे हंस चल्यो जब आगो, अगम देश के रस्ते लागो ॥29॥
अगम देश का रस्ता आदू, निगम देश में पहूँचे सादू।
गगन मण्डल का मार्ग बंका, वहाँ भी जाय लगाया डंका ॥30॥
गगन मण्डल में निर्भय पूगा, सुन में भानू असंख्य ऊगा।
सत रूप का सोहं उज्वाला, ऊँच नीच कूँची ना ताला ॥31॥
पानी बिना ताल परि पूर्ण, हँस अनन्त मिले परि तूर्ण।
ता पर बाग बगीचा देखा, वर्षाधार नितो नित पेखा ॥32॥
मोर चकोर गर्जे घनघोरा, सारंग राग पपैया सोरा।
बाजा अनहद घुरि अलगूँजा, राम रहीम एक कर सूजा ॥33॥

बशीकार वैरागण टेका, समद्रष्टी चौगान विवेका ॥13॥
मन का छोड़ा विरक्ति का जीना, प्राणायाम पोलो में दीना।
इडा पिंगला पागड़े फेरा, ईश्वर नाम कँवल से घेरा ॥14॥
सुषुमन से आ डेरा दीया, सीतल साधन भीतर लीया।
अभरा सभरा सतसंत गाया, जीवत ओढ्या मूंआ बिछाया ॥15॥
तत्व जोड़ा वेश बनाया, निर्गुण छाल बल बाण सजाया।
शम दम फर बाणों के लागा, बोद्ध कर्षि संयम शस्त्र जागा ॥16॥

Scanned with CamScanner

करणी कटार धार कर शूरा, फकर फिरिया विषय गढ पूरा।
माया गढ़ जीतेगा बाला, ब्रह्म पद निज पावे लाला।
स्वागत गुरु मय चेला पावे, निर्मलता धोती को लावे ॥18॥
यज्ञोपवीत अखण्ड आनन्दा, सोहं माला सच्ची सन्दा।
गुरु मंत्र की शिखा हमारे, हरि नाम गायत्री धारे ॥19॥
स्थिर आसन कबहुँन डोले, सोहं सोहं हरदम बोले।
तिलक पूर्ण ब्रह्म का ध्याना, नहीं जहाँ ज्ञ ज्ञाता ज्ञाना ॥20॥
सन्ध्या निर्वेरता धारी, ब्रह्मानन्द का भोग लगारी।
ब्रह्म प्रीति पीताम्बर धारा, छाप साक्षात्कार सुधारा ॥21॥
ममता की मृगछाल बिछाई, तापर बैठे सब गुरु भाई।
पंचकेशी जब पास हमारे, पाँचों बैरी कस कस मारे ॥22॥
चिंतन चेतन साक्षी पूरा, 'उत्तमराम' निरखे गुरु नूरा।
घटे बढे नहीं नित सवाया, नौ का अंक स्थिर रहवाया ॥23॥
कोई अकेला अंकगण लीजें, छः से गुण कर, नौ संग दीजे।
भाग तीन के भजन फल आवे, तामे पन्द्रह अंक मिलावे ॥24॥
जोड़ ताहि भाग दो दीजे, भजन फल सुविधा लख लीजे।
ताते लिया अंक कम कीजे, शेष अटल अंक नौ लखीजे ॥25॥

Scanned

ज. गु. श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी

पूर्वाद्य ज.गु. श्रीरामजी

ज. गु. श्री स्वामी अग्रदासजी महाराज

श्री स्वामी संतदासजी महाराज 'वैरागी'

श्री स्वामी हरिरामजी महाराज 'वैरागी'

श्री स्वामी जीयारामजी महाराज 'वैरागी'

श्री स्वामी सुखरामजी महाराज 'वैरागी'

श्री स्वामी अचलरामजी महाराज 'वैरागी'

श्री रामप्रकाशाचार्यजी 'अच्युत'

श्री स्वामी उत्तमरामजी महाराज 'वैरागी'

श्री वैष्णव आचार्य पीठ के परमाचार्य दर्शन

Scanned

सोहं शब्द सतगुरुजी दीना,
बिन पग अन्तर मारग लीना।

Scanned

यह योगी का मारग झीना,
उमड़ा प्रेम रामरस पीना ॥३९॥

सद्‌गुरु महाराज ने हमे 'सोहम्' शब्द दिया था, जिससे बिना कर्म-पाँव का अन्तर्गत अन्तस्थ साधन पथ का प्रयाण लिया। यह कर्मयोगी का सूक्ष्म मार्ग है। जब साधक के हृदय में प्रेम रस का भाव उमड़ा तब राम रस रमणीय रमता पुरुष (व्यापक) सुमिरण द्वारा प्राप्त अमृत (सुधा रस) को पीया।

शीश उतार कोई जन पीवे,
गुरु गम चले जुगो जुग जीवे।
गुंझ गली में चलना भाई,
शब्द कुंची सतगुरु बतलाई ॥४०॥

सर्वस्व अहंकार का शीश उतार कर कोई भक्त साधक ही मूर्द्धनी से चवता (झरता) अमृत-सुधारस पीता है और इस तरह गुरु की कृपा रहस्य के मार्ग पर जो चलेगा, युगों युगों तक वह जीवित रह कर अमर हो जायेगा।

मन्त्रयोग

सुमिरण युक्ति फेरी माला,
फेरत खुलिया भ्रम का ताला।

Scanned

भ्रमर गुफा में सुमिरण कीना,
सूक्ष्म मार्ग योग का चीना॥४१॥

साधारण, उपांसु एवं मानस की युक्ति रहस्य से मणिमाला, करमाला होते हुए मनमाला द्वारा सुमिरण कीया। क्रमशः माला फेरते-फेरते मिथ्या ज्ञान, संशय युक्त सन्देह का भ्रम जड़ा हुआ युगान्तरों का मजबूत ताला था, वह खुल गया अर्थात् भ्रम टूट गया। आगे त्रिवेणी के मूल में त्रिकूटी के आगे भृकूटी और उनसे आगे भ्रमर (भँवर) गुफा में प्रवेश करके सिद्धयोग अर्थात् हठयोग, मन्त्रयोग, राजयोग और लययोग का समूह एक योग में मिलकर स्वयं साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करता हैं। अतः आगे हठयोग सहित मन्त्रयोग का सूक्ष्म रहस्ययुक्त अति झीना सूक्ष्म मार्ग जानने में आया। इस अवस्था में शब्द मूर्ति गुरु ध्यान गम्य गुप्त-गुणातीत एवं रूपातीत सद्गुरु ही शब्द रूप से मार्गदर्शन स्वतः रूप से करने लगते है।

चीना मार्ग भ्रमर गरणाया,
नाभि कली के ऊपर आया।
भौंरा मस्त कलि पर आई,
सत सुमिरण की धुनि लगाई॥४२॥

Scanned w

मार्ग जाना और भ्रमर गूंज का गुंजार होने से भंवर गुफा से उठा और वह गुंज नाभि कमल की कली के ऊपर पहुंचा। जीव भ्रमर (भंवरा) नाभि कमल (मणिपूरक चक्र) की कली पर आकर सत स्मरण की ध्वनि (गुंजार) लगा दी।

नाभी कमल पर किया डेरा,
निशि दिन गूंजे भौंरा मेरा।
ऐसे प्रकट भया ओमकारा,
रोम रोम में शब्द गुंझारा॥४३॥

मणिपुर-चक्र (नाभि) कमल पर स्थित होकर निशदिन हमारा प्राण रूपी भ्रमर (भंवरा) भ्रमर गूंज से गुंजार गूँजने लगा। इस भ्रमर (गुंजार सोहम् से ओमकार (ॐ) का प्राकट्य हुआ। जो रोम रोम में शब्द ओम के साथ सोहम् शब्द एकीकरण होकर रंकार गुंजारमय गुंजायमान हुआ।

राजयोग-मन्त्रयोग

सोहं नाद बजा झनकारा,
हरदम श्वास उश्वास उचारा।
नाभि कमल से उठे पवना,
ताके संग करूं नित गमना॥४४॥

Scanned w

जब सोहम् नाद (गूंज) का झणकार गणणण-रणणण बजने लगा। यह शब्द झणकार हरदम श्वास-प्रश्वास के बीच उच्चारण हुआ। जब प्राण नाभिकमल से ऊपर उठा, तब सुरत-शब्द भी उनके साथ ही गमनित हुए।

जब सोहम् नाद (गूंज) का झणकार गणणण-रणणण बजने लगा। यह शब्द झणकार हरदम श्वास-प्रश्वास के बीच उच्चारण हुआ। जब प्राण नाभिकमल से ऊपर उठा, तब सुरत-शब्द भी उनके साथ ही गमनित हुए।

द्वादश जाय पिछा लोटाऊं,
इडा पिंगला एक मिलाऊं।
दोनों नाड़ी सम कर राखूं,
सुषुमण के घर अमरत चाखूं॥४५॥

नाभि से नासा तक श्वास छियानवें अंगुल, उस नासिका के बाहर बारह अंगुल, जो नासिका के बाहर तक चलते है। वहां तक सुरत-प्राण शब्द के साथ जाकर पुनः वापिस लौटा कर नाभि-मण्डल (मणिपूरक चक्र) पर आकर ठहराता। इस श्वासा के लोम-विलोम (आते-जाते) लेते-छोड़ते हुए इडा (गंगा) बायां स्वर और पिंगला (यमुना) दायां स्वर दोनों की साधना करते हुए दोनों को एक मिलाने को हुआ। इडा-पिंगला दोनों नाड़ी को सम-साम्य करते हुए सुषुम्ना (सरस्वती) के घर आकर अमीमय अर्थात् मूर्द्धनी स्थान से झरते हुए अमृत को चख लिया।

Scanned w

सहजे हंस मिलिया त्रिवेणी,
आगे कहूं बात अब झीणी।
ऐसे पुरुष गगन घर पावे,
सुरती शब्द एक लिव लावे॥४६॥

स्वाभाविक रूप बगैर प्रयास से सहजतया प्राण पुरुष त्रिवेणी (सुषुम्न) स्थान पर शब्द से मिला। अब आगे की बात (साधना) और भी सूक्ष्म है, जो कथन कर रहा हूँ।

इस प्रकार प्राण पुरुष शब्द के साथ गगन-मण्डल (दशवाँ) स्थान (घर) प्राप्त करता है। जहाँ सुरत (वृत्ति) गुरु प्रणव (शब्द) के साथ एकाकार हो लग्नमय लिव लाती है।

राजयोग

सुरती रहे शब्द में लागी,
एक पलक होवे नहीं आगी।
जिमि पनिहारी शिर पर मटकी,
हाथ खुला चले सुरति अटकी॥४७॥

सुरती (कर्णवृत्ति) शब्द में ऐसे लगी कि एक क्षण भर भी दूर नहीं होती। जैसे पानी भर कर लाने वाली पनिहारिन अपने सिर पर जल से भरी मटकी रख कर खुले हाथों चलती, सामने

Scanned w

से आती या संग चलती हुई अपनी सखियों से वार्तालाप करती हुई जाती है। किन्तु उनकी वृत्ति उस मटकी में अटकी होने से सावधान है, मटकी गिरती नहीं है।

21:03

भजन (२५) राग आसावरी पद

मन मेरा ! दम की गम सुधारा ।
स्वासो स्वास सोहं गति सुमिरण, ओम राम उर धारा ॥ टेर ॥
नाडि झटक के चार सैकण्ड में, स्वासा एक विचारा ।
एक मिनिट में साठ सैकण्ड हो, पन्द्रह स्वास उचारा ॥ १ ॥

Scanned by CamScanner

साठ मिनिट में एक घण्टा हो, नौ सौ स्वास हमारा ।
तीन घण्टे के एक पहर में, सताईस सौ का चारा ॥ २ ॥
चार पहर की दम समावो, अठ शत दश हजारा ।
इक्कीस हजार छः सौ की स्वासा, निशि दिन बीच तुम्हारा ॥ ३ ॥
हरदम सार हार मत मनवा, शम दम युक्ति संवारा ।
"उत्तमराम" प्रकाश परम पद, पावो मोक्ष दुवारा ॥ ४ ॥

भजन (२६) राग आसावरी पद

साधो भाई ! परम फकीरी पाना ।
सतगुरु उत्तम युक्ति कर साधन, फकर गति निरवाना ॥ टेर ॥
कोई कहै मैं जट्टा बढ़ावों, रीछ सिंह दिखलाना ।
कोई कहै मैं मुण्ढित चुण्डित, भेड ऊँठ कहा जाना ॥ १ ॥
कोई कहै मैं पंच स्नानी, मच्छी नाका माना ।
कोई कहै मैं भस्म रमाऊँ, गधा मुक्ति समाना ॥ २ ॥
कोई कहै मैं मोनी बाबा, गूँगा सहजे स्याना ।
कोई कहै मैं वक्ता पण्डित, मेंढक वकील विज्ञाना ॥ ३ ॥
कोई कहै मैं शाक अहारी, वन पशु सदा सुजाना ।
कोई कहै मैं गुफा निवासी, मूषक अहि प्रमाना ॥ ४ ॥
कोई कहै मैं दूध अहारी, बाल बच्छ पद छाना ।
कोई कहै मैं आसन द्ढ हूं, अजगर नित स्थाना ॥ ५ ॥
"उत्तमराम" सतगुरु ब्रह्मवेता, ब्रह्मज्ञान समझाना ।
"रामप्रकाश" युक्ति कर निर्भय, सहजे सदा कल्याना ॥ ६ ॥

Scanned by CamScanner

21:06 Vo)) LTE1

Scanned by CamScanner

नौ सौ नदी अठहतर नाला, हाड चाम का नरतन आला ।
साढे तीन करोड़ का लेखा, देह रोमावलि की यह रेखा ॥ ४५ ॥
वायु उन्नचास देह में आया, प्रमुख पांचों प्राण समाया ।
प्राण उदयान रु व्यान समाना, वायु अपान कर्म कर नाना ॥ ४६ ॥
एक भृकुटा, तीन त्रिकूटी, तीन त्रिवेणी, एक त्रिकूटी ।
युक्त बंक रु मुक्ता बंका, बंकनाल का मार्ग निशंका ॥ ४७ ॥
सात शुन्य में भँवरा सारी, देखे अचरज योगी भारी ।
इडा पिंगला सुषुमण रेखा, चन्द्र सूर्य का मार्ग लेखा ॥ ४८ ॥
बावन अक्षर का विस्तारा, घट मांहि चेतन उजियारा ।
सात शुन्य चेतन रखवाला, यौगिक तन का रहस्य उजाला ॥ ४९ ॥
योग शुन्य पर ओम उचारा, सांख्य शुन्य पे चेतन धारा ।
सृष्टि शुन्य पर परमा ज्योति, परम शुन्य पर अक्षय मोती ॥ ५० ॥
ईश्वर सता कुटस्थ समाया, जीव ब्रह्म चारों इकजाया ।
खेल अध्यात्म तन में रमता, ज्ञानी गुरु गम पावे समता ॥ ५१ ॥
सात द्वीप सप्त सागर यामे, पर्वत सातों नौ ग्रह तामे ।
खण्ड छैयालिख यामे कहिये, ब्रह्मण्ड सो पिंड माहि लहिये ॥ ५२ ॥
चौदह लोक दशों दिशि देखो, तीन शरीर भाग को पेखो ।
तीन अवस्था वृति नाना, गुण अनुरूप स्वभाव बखाना ॥ ५३ ॥
परम विचित्र स्वरूप बनाया, माया खेल अनोखा ठाया ।
मन्दिर माहि मन्दिर शक्ति, अनन्त ज्योति की पूरण भक्ति ॥ ५४ ॥

Scanned by CamScanner

21:07

"उपदेश का अंग"

दोहा छन्द

नजरी नजर निहाल है, सतगुरू उत्तमराम।
"रामप्रकाश" वन्दन करे, परम सुखद विश्राम ॥ १ ॥
हरि हर शक्ति गणपति, सतगुरू परम दिनेश।
"रामप्रकाश" वन्दन करे, नजरी नजर विशेष ॥ २ ॥
सतगुरू निज परब्रह्म है, हरि हर शक्ति गणेश।
"रामप्रकाश" वन्दन करे, अघ तम काट दिनेश ॥ ३ ॥
हाथ हुमाउ पसाव है, नजरी नजरी निहाल।
"रामप्रकाश" वन्दन करे, सतगुरू उत्तम दयाल ॥ ४ ॥
विविध नाम संसार में, मत मतान्तर माहि।
राम नाम ततसार है, बिना जपे फल नाहि ॥ ५ ॥
विविध नाम बहु रूप है, जपत संशय ना जाय।
राम नाम केवल जपो, निश्चय मुक्त समाय ॥ ६ ॥
सर्वनिधि में सार है, सकल सिद्धि का मूल।
सर्व ऋद्धि की साख में, एक नाम तत तूल ॥ ७ ॥
राम ओम सोहम् रटया, पाया पद विश्राम।
तन मन वाणी संयम से, लखिया चारों धाम ॥ ८ ॥
ओ३म् सोहम् सत राम को, रटिये प्रीत लगाय।
हरदम श्वास उश्वास रट, किया कर्म कट जाय ॥ ९ ॥

Scanned by CamScanner

ओ३म् सोहम् श्री राम को, हरदम जप मन लाय।
इक्कीस हजार छः सौ जपो, सहज मुक्ति हो जाय ॥ १० ॥
ओ३म् ररंकार ध्वनि, सोहम्कार तत पाय।
"रामप्रकाश" रटिये सदा, सहजे मुक्त समाय ॥ ११ ॥
ओ३म् सोहम् स्वासा जपो, श्री राम मन लाय।
हरदम जपिये हेत से, सहज परम पद पाय ॥ १२ ॥
ओ३म् श्वासा मन सोहम् सो, वाणी राम गुण गाय।
तन मन वाणी निर्दोष हो, "रामप्रकाश" पद पाय ॥ १३ ॥
जप मन रॉ रामाय नमः, बीज मंत्र चित लाय।
चारों ठाम युक्ति लखो, चार पदार्थ पाय ॥ १४ ॥
अनप्रस्थ सोरठा

सुरत शब्द यह योग है, सब योगों का मूल।।
सब योगों का मूल, सहज ही सुरत चढ़ावे।
इड़ा पिंगला मन करे, ध्यान सुखमना लावै।।
सूक्ष्म नाका सुई का, चींटी बनकर पावै।।
अनहद बाजैं गगन में, गड़ गड़ ढोल बजावै।।
बिन साधन के रामसिंह, बहुत करी है भूल।
सुरत शब्द यह योग है, सब योगों का मूल।।5।।
पांच शब्द जाने नहीं, नहीं सुन्न महासुन्न।।
सोहंग भेद जाना नहीं, कैसे हों दर्शन।
बात बनावे जग ठगै, बहुत करे प्रश्न।।
आप न जानै राम को, बहुत करे बकवास।
यमपुर यम ले जायेगा, देगा बहुत त्रास।।
नहीं जाने वह रामसिंह, कहां पर सोहंग धुन।
पांच शब्द जानै नहीं, नहीं सुन्न महासुन्न।।6।।
सच्चा सांई भूलकर, मन से कर लिया मेल।।
मन से कर लिया मेल, पड़े माया के फन्दे।
कौन बतावे राह मिले, अन्धे ही अन्धे।।
कर सतगुरु से प्रीत, छोड़ दे झूठे धन्धे।
बिन साधन अभ्यास रहे, बन्धे के बन्धे।।
पर्दा पड़ गया रामसिंह, यह माया का खेल।
सच्चा सांई भूलकर, मन से कर लिया मेल।।7।।
कोटिन पूजें देवता, पत्थर पानी धूल।।
पत्थर पानी धूल, राम का भेद न पाते।

शब्द - 20

गगन मंडल में उर्ध्वमुख कूआ, निर्मल जिसका नीर।।टेक।।
इड़ा पिंगला सुखमन साधो, लगै निशाने तीर।
सुरत खिलारी है पनिहारी, प्रेम का ओढ़ा चीर।।
गुरु नाम की झारी भरकर, धरले नै दिल में धीर।
बिन नेजू के जल वहां भरती, निर्मल हुआ शरीर।।
उलूट चाल और उलूट ख्याल है, उलूटा बहता नीर।
उलूट चले जब घर को जावे, जन्म मरण की मिटजा पीर।।
रामसिंह गुरु राधास्वामी, कह दी बात अखिर।
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी, सब पीरों के पीर।।

शब्द - 21

सोई योग है पूरा, अपना देखे आप जहूरा।।टेक।।
इड़ा पिंगला सुखमन साधो, घट में बाजे तूरा।
उलूटी कला गगन चढ़ देखो, मिले नूर में नूरा।।
काम क्रोध मद लोभ बिसारो, मार उड़ा दो धूरा।
कायर का यहां काम नहीं है, पहुंचेगा कोई शूरा।।
शील सन्तोष दया दिल आई, राग ईर्ष्या दूरा।
हरि का जन हरि में मिल जाता, बने अभ्यासी पूरा।।
रामसिंह गुरु राधास्वामी, गुरु चरण की धूरा।
अपने जन को पार उतारो, घट घट तेरा जहूरा।।

22:05
चाचा साहब की डायरी: Dia...
exoticindiaart.com

निर्गुण झड़ सुन्न मंडल डेरा,जहां वहां होता शब्द टंकोरा।
दम कूं साधे सब कुछ त्यागे। एक सांस के मार्ग लागे।।
पवन पलट कर खण्ड कराही, जब मार्ग मेरूदण्ड का पाही।
सुन रे हंसा सुजान तू पवन पलट सम कीन्ह।
बिना स्वांस बांधे कौन लखे दूर्बीन।।
पूर्व से उत्तर दिशा पंथ अनादि बीर।
जब यह गैला पाईये सतगुरु मिले कबीर।।
दमें सरूप बीर कहावे काया कांशी मांह रहावे।
नूरी नाम कबीर तुम्हारा, पिंडे प्राणका सिरजनहारा।
स्वांसा माहिं बास तुम्हारा, त्रिकुटि में तुमरा चमकारा।
भ कुटी में तुम सदा अमाना, चिक अंदर मंदिर गलताना।
नैन रमैया रम रहा, धोये से ना धोया जावे।
जो देखे सो जान ले गरीब दास गुरु भेद दें।
बाहर-भीतर, भीतर-बाहर, सबके मांह समाया।
सब के आगे नाच करत है वाका भेद न पाया।
गरीब दास सतगुरु बलिहारी, सो मेरे मन भाया।।

सतगुरु देह में ऐसे प्रकट होते हैं जैसे–
मां के शरीर में दूध गुप्त है, किन्तु प्रेम से प्रगट हो जाता है।
गरीब दास जी की प्रसिद्ध बाणी।

गरीब

नाभी कमल से उचरे नासा अग्रे नाद।
द्वादस उलट समोय ले पूर्ण सकल मुराद।।
दम से दमको सोध ले, ओहंग सोहंग सार।
उलटा गोता मारले, दिल अन्दर दीदार।।

●बीच का मार्ग●

नाभि के बाद शब्द उलट कर मेरुदण्ड होकर गगन [सहस्रार-कमल] की ओर यात्रा प्रारंभ करता है। मेरु की बीस घाटियों को लांघना पड़ता है। वही मार्ग त्रिकुटी का स्थान है, यहाँ इडा, पिंगला व सुषुम्ना का संगम त्रिवेणी है; यहाँ पर स्नान कर निर्मल होकर शब्द सुरति के साथ सुषुम्ना के झीणें पथ (पिपीलिका-मार्ग) से गगन के गवाक्ष की ओर जाता है।

अब तो शब्द गगनकूं चढ़िया।
पछिम घाटि होइ कै अनुसरिया ॥
घाटी बीस मेरू की छेकी।
इकबीसै गढ़ गया बिशेखी ॥
पहिलो बैठी त्रिकुटी छाजे।
जाके ऊपर अनहद बाजे ॥
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया।
निर्मल होय आगे कूं ध्याया ॥[२]

इंगला पिंगला सुखुमणा, मिले त्रिवेणी घाट।
जहां झाझे जल झूलि के, निर्मल होय निराट ॥

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २०७
(२) " " " "

अब त्रिवेणी न्हाइ कै, कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अलघ सुख, यों कोइ चौथा देश ॥[१]

●चौथी चौकी●

यह साधना की अन्तिम भूमिका है, जहाँ सुरति शब्द को पकड़ कर एकमेक होकर शाश्वत सुख लूटती है। सुरति—सुन्दरी के साथ शून्य-महल में पूर्णानन्द-पुरुष ररंकार का यह महा-मिलन और तज्जन्य आनन्द का विस्मयकारी वर्णन—यही सन्त-साधना का अनर्घ अक्षय कोष है। उस लोक के वर्णन में सन्तों की लौकिक भाषा भी एक नई झंकृति व वर्णच्छटा के साथ जैसे किसी अप्सरी के रूप में कंकणों के क्वणन, नूपुरों के रणन से झण झणायमान होकर नर्तन कर उठी है।

06:04
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय | हिन्...
hindwi.org
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय

सकते हैं। यह समाधि क्षणिक नहीं, जो व्युत्थान काल में जाती रहे। यह सन्तों की स्थायी समाधि है, यह उनकी सुरतां की शब्द ब्रह्म में मिलकर एकाकार हो जाने की अद्वय स्थिति है।) सभी सन्तों में 'परचा या प्रचा' अंग में अपनी इस अपरोक्षानुभूति का बड़ा ही उदात्त व अवदात्त वर्णन किया है। यह वर्णन सन्त-वाणी का उत्तुंग गिरि शिखर है,जहां से उनकी रसानुभूति रजतोज्ज्वला निर्झरिणी की तरह शतधा फूट पड़ी है। यह विषय अनुभव गम्य है। वाणी व मन का विषय नहीं। फिर भी अनन्त कृपालु सन्तों ने अपनी विमल वाणी द्वारा उस पीयूषधारा के कतिपय कणों को इतस्तत: विकीर्ण करने की असीम अनुकम्पा की है।

सुरति शब्द योग की चार चौकियाँ

राम ही चरण वै देश की सैन कूं
मरहमी संत बिन लखै न कोई।

सचमुच मर्मी व रहस्यदर्शी सन्तों का यह अगम्य प्रदेश है, उसे कैसे जाना जा सकता है, कैसे कहा जा सकता है! वह अनुभवैकगम्य है।

● पहली चौकी ●

प्रथम नाम सत गुरु से पाया।
श्रवणां सुन के प्रेम उपजाया।

संसार की नश्वरता से अभिभूत साधक किसी अमर आनन्द की खोज के लिये निकलता है। जिज्ञासा लेकर वह गुरु की खोज करता है। सद् गुरु जब साधक को पात्र जानता है तो उसे 'राम नाम' मंत्र देता है। गुरु से नाम श्रवण करके उसके साथ साधक प्रेम का नाता जोड़ लेता है। यह प्रेम निष्काम व वासना गन्ध हीन होता है। प्रेम के द्वारा साधक में नाम-जप के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। अब साधक रात दिन उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, जीवन की प्रत्येक क्रिया में नाम-जप को चालू रखता है। साधक को अनुभव है कि इस प्रकार रात दिन नाम-जप में लगे रहने से जिह्वा के अग्रभाग से अमृत रस की धारा प्रवाहित होने लगती है। साधक

122
304

06:04

श्री रामस्नेही सम्प्रदाय | हिन्...
hindwi.org

श्री रामस्नेही सम्प्रदाय

अब एकान्त चाहने लगता है और सांसारिक भीड़-भाड़ तथा वार्तालाप से दूर हट जाता है।

नाम-जप करते करते उसके हृदय में नामी से मिलने की उत्कट लालसा जाग्रत हो जाती है। उसके न मिलने के कारण साधक के हृदय में वियोग जाग पड़ता है। यह वियोग-साधना सन्त साहित्य की अमर देन है।

साधक के हृदय में विरह की आग रात दिन जलती है, उस जलन में आनन्द का अनुभव होता है। सन्तों की विरहिणी आत्मा पिय मिलन के लिए तड़पती रहती है। विरह के भुजंग ने डस लिया है, अब राम गारड़ू मिले तो विष उतरे।

रामचरण बिरहा भवंग, डस्यौ कलेजो आय।
राम गारडू विष हरै, जे कोय देत मिलाय ॥[1]

विरह की आग में लहू जल गया है, शरीर सूख कर कांटा हो गया। दूसरा दुःख तो सहलूँ, मुझ से विरह का दुःख सहा नहीं जाता।

बिरह अग्नि सब तन दह्यौ, लोही रह्यो न मांस।
राम पियारे दरस विन, नाभि न वैठे सांस ॥
दूजा दुख सबही सहूं, पिव दुख सह्यो न जाय।
रामचरण बिरहनि कहै, बेग मिलो हरि आय ॥[2]

सभी सन्तों ने विरह का मर्मभेदी वर्णन किया है। कबीर, दादू आदि सन्तों की विरहानुभूति बड़ी तीव्र थी। सूफी साधकों ने तो सारी सृष्टि को ही विरह की आग में जलता देखा है। महाराज रामदास जी ने भी विरह की व्यथा का हृदय द्रावक वर्णन किया है—

अन्तर दारुण अति घणी, पिंजर करै पुकार।
नैण रोय राता किया, तो कारण भरतार ॥

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ १०
(२) ,, ,, ,, ११

123
304

06:05 Vo)) LTE1

श्री रामस्नेही सम्प्रदाय | हिन्...
hindwi.org

श्री रामस्नेही सम्प्रदाय

कुंजर झूरै बन्न कूं, सूवा अंबा काज।
विरहिन झूरै पीव कूं, कबै मिलो महाराज॥
रैण विहाणी जोवताँ, दिन भी वीतो जाय।
रामदास विरहिन झुरै, पीव न पाया माँय॥[1]

विरह को छुरी बताया है, जिसने हृदय को काट दिया है। विरह की घटाएँ उमड़ रही हैं, नेत्रों से अश्रु वह रहे हैं और चित विजली की तरह चौंक पड़ता है।

बिरह घटा घररात नैंण नीझर झरै।
चित चमंकै बीज कि हिरदो ओल्हरै।
बिरहनि है वेह्नाल दयाकर न्हालियो।
परिहां रामचरण कूं राम देग संम्हालियो॥

बिरहा कर ले करद कलेजा काटि है।
पीव न सुणै पुकारिकि हिरदा फाटि है।
सबै बटाऊ लोग न पूछै पीड रे।
परिहां रामचरण बिन राम करै कुंण भीडरे॥[2]

यह विरह की तीव्र व्यथा साधक के हृदय में राम मिलन की उत्कट प्यास जाग्रत कर देती है। वह रात दिन सुमरण करने लग जाता है। उसको न अन्न अच्छा लगता है, न पानी भाता है और न ही नींद सुहाती है। वह केवल अपने प्रिय से मिलने को छटपटाता है, रोता है, तड़पता है। उसकी व्यथा को कौन जानता है; या तो वह या रमैया। यही तीव्र विरह व्यथा उसकी साधना को अग्रसर करती है और यही 'सुरति' को जाग्रत करके उसे 'शब्द' की ओर उन्मुख करती है।

(१) श्री रामस्नेही धर्म प्रकाश; पृष्ठ १६१, १६६
(२) अणभै वाणी; पृष्ठ ७७

06:06
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय | हिन्...
hindwi.org
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय

सन्त चरणदासजी ने विरहिणी का सच्चा चित्र अंकित किया है—

गद गद बाणी कंठ में, आँसू टपकै नैन।
वह तो विरहिन राम की, तल्फति है दिन रैन ॥

दादूजी ने विरह के महत्व को दिखाते हुए बताया है कि मूल में विरह ही सुरता को जगाता है—

विरह जगावै दरद को, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरत को, पंच पुकारै जीव ॥

रामचरणजी महाराज ने इस अनुभूति का मार्मिक वर्णन करते हुए लिखा है कि—

रसना व कंठ से जब साधक राम नाम का सुमरण करता है तो साधक को अमृत-पान जैसी अनुभूति होने लगती है, वह अनुपम मिठास का अनुभव करता है। साधक को पानी पीने तक की इच्छा नहीं होती, इस भय से से कि कहीं यह अमृत दूर न हो जाय। नस नस आनन्द के मारे नाचने लगती हैं, उनमें एक सिहरन का अनुभव होने लगता है। मुख से वाणी का निकलना वन्द हो जाता है। आंखें मुंद जाती हैं, पलक-कपाट खुलते नहीं! कण्ठ ध्यान की यही पहचान है कि फिर साधक संसार की कोई चर्चा नहीं सुनता। रोम रोम शीतल हो जाते हैं, हृदय गद् गद् हो जाता है, श्वास प्रवाह रुकने सा लगता है और आंखों से आंसू झरने लगते हैं। साधक ऐसी विचित्र स्थिति में अपने को पाता है—

तब रसना शिर छूटै धारा, चलै अखंड नहिं खंडे लगारा।
जल पीवन की श्रद्धा नांही, मति यो अमृत दूरि होइ जांहीं।
रस पीवत क्षुधा सब भागी, कंठाँ शब्द टग टगी लागी।
नाड़िनाड़िमें चलै गिलगिली, सुखधारा अतिबहै सिल सिलो।
मुख सूं कछू न उचरे बैना, लग्या कपाट खुलै नहीं नैना।
श्रवणां चर्चा सुणैं न कोई, कंठ ध्यान यह लक्षण होई।

125
304

06:06
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय | हिन्...
hindwi.org
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय

कंठ के ध्यान कंम कंमी जागै, रोम रोम सीतंग सो लागै।
हियों गद् गदे श्वास न आवै, नैंणा नीर प्रवाह चलावै।[1]

●दूसरी चौकी●

इस प्रथम सोपान को तय करने के बाद साधक के हृदय प्रदेश में शब्द ब्रह्म का प्रकाश जाग पड़ता है। प्रेम का प्रकाश हो जाता है, अन्धकार गल जाता है, विरह की जलन शान्त हो जाती है। भ्रम, कर्म व संशय सब विदूरित हो जाते हैं। हृदय में अखण्ड ध्वनि जाग उठती है—

शब्द ब्रह्म हिरदै किया वासा,
ज्यूं रैण अंधेरा चंद प्रकाशा।
भर्म कर्म सांशो भयो भागी,
हिरदै ध्वनी अखंड लिवलागी।[2]

शब्द परकाश हिरदै भया परम सुख,
प्रेम का चांदणा तिमिर भागा।
बिरह की तृप्ति शीतल भई पिवख पी,
रोम रोम हो रोम झड़ अधिक लागा।[3]

●तीसरी चौकी●

अब वह ध्यान ध्वनि हृदय से धरणी की ओर–नाभि-प्रदेश की ओर—जाती है। शब्द गुंजार से नस नस जाग उठती है, रोम रोम गाने लगते हैं, नौसौ नाडियां मंगल गीत गाने लगती हैं। वहां मन-भ्रमर बहुत आनन्द पाता है—

---

(१) अणभै वाणी पृष्ठ २०६
(२) ,, ,, ,, २०६
(३) ,, ,, ,, १९२

06:06
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय | हिन्...
hindwi.org
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय

हिरदा सूं लै धरणी गई, नाभि कमल में चेतन भई।
शब्द गुंजार नाड़ि सब जागे, रोम रोम में होई रही रागे।
नौसे नारी मंगल गावे, तहां मन भंवरा अति सुख पावे।[१]

●बीच का मार्ग●

नाभि के बाद शब्द उलट कर मेरुदण्ड होकर गगन [सहस्रार-कमल] की ओर यात्रा प्रारंभ करता है। मेरु की बीस घाटियों को लांघना पड़ता है। वही मार्ग त्रिकुटी का स्थान है, यहाँ इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना का संगम त्रिवेणी है; यहाँ पर स्नान कर निर्मल होकर शब्द सुरति के साथ सुषुम्ना के झीणें पथ (पिपीलिका-मार्ग) से गगन के गवाक्ष की ओर जाता है।

अब तो शब्द गगनकूं चढ़िया।
पछिम घाटि होइ कै अनुसरिया॥
घाटी बीस मेरू की छेकी।
इकवीसै गढ़ गया बिशेखी॥
पहिलो वैठी त्रिकुटी छाजे।
जाके ऊपर अनहद बाजे॥
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया।
निर्मल होय आगे कूं ध्याया॥[२]

इंगला पिंगला सुखुमणा, मिले त्रिवेणी घाट।
जहां झाझे जल झूलि के, निर्मल होय निराट॥

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २०७
(२) „ „ „ „

06:07
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय | हिन्...
hindwi.org
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय

अब त्रिवेणी न्हाइ कै, कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अलध सुख, यों कोइ चौथा देश ॥[1]

●चौथी चौकी●

यह साधना की अन्तिम भूमिका है, जहाँ सुरति शब्द को पकड़ कर एकमेक होकर शाश्वत सुख लूटती है। सुरति–सुन्दरी के साथ शून्य-महल में पूर्णानन्द-पुरुष ररंकार का यह महा-मिलन और तज्जन्य आनन्द का विस्मयकारी वर्णन—यही सन्त-साधना का अनर्घ अक्षय कोष है। उस लोक के वर्णन में सन्तों की लौकिक भाषा भी एक नई झंकृति व वर्णच्छटा के साथ जैसे किसी अप्सरी के रूप में कंकणों के क्वणन, नूपुरों के रणन से झण झणायमान होकर नर्तन कर उठी है।

गगन मण्डल 'घोर अणहद नाद' से गूंज उठा है। झालरी, वीणा, मृदंग, सहनाई, बांसुरी का मधुर निःस्वन; चंग, उपंग, भेरी, नरसिंहे की मेघ-गर्जन; मंजीर, ढोलक, गिड़गिड़ी की गड़गड़ाहट घुंघरू का रुणझुणु रुणझुणु शब्द तथा अनेक प्रकार के वाद्यों की समवेत ध्वनि ने महामिलन के उपयुक्त वातावरण सृजन कर दिया है। चारों ओर प्रकाश है, जहाँ न सूरज है न चाँद और न तारे; यह ध्वनि न श्रवण ग्राह्य है और न प्रकाश चक्षु ग्राह्य।

'गगन गोख' में एक अचरज हुआ। यहाँ एक ही पुरुष है, वह वपुहीन है, पंचतत्व रहित है, वहाँ पाला पानी में मिल गया है, नदी सागर में मिल गई है, झिलमिल नूर प्रकाशित है। अनन्त कोटि सूर्यों का प्रकाश है।

पर, यह बात अतोल है। मुख से कहने पर उसका तोल हो जायगा! बस, रहने दो उस बात को। वह जैसी है वैसी है। पवन को हाथ में कौन पकड़ सकता है, आकाश को अपने बाहु-पाश में कौन आबद्ध कर सकता है।

अनहद की गर्जना हो रही है। आकाश से रस झर रहा है।

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २०७

128
304

06:07
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय | हिन्...
hindwi.org
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय

बिजली चमक रही है। परिपूर्ण सागर है, तट पर हंस बैठा है। हंस समुद्र में मिल रहा है, हंस में सागर समा रहा है। दोनों ओत प्रोत हैं, वहां द्वैत का नाम तक नहीं।

सभी परिपूर्ण हैं। सागर भरा है, सागरी भरी है, नागरी भरी है और उसकी गागरी भरी है! कहीं रिक्तता नहीं। परिपूर्णानन्द का एकच्छत्र अखण्ड शासन है!

इसी प्रसंग में सन्तों ने सुरति व शब्द के मिलन के प्रसंग में होली का भी खूब वर्णन किया है। मंहदी रचाकर नव-वधू सुरति का शब्द के साथ पाणिग्रहण और 'गगन के गोख' में मिलन का महानन्द— इसके वर्णन में सन्तों की वाणी कहीं कुण्ठित नहीं हुई। पर, अन्त में उन्हें लगा, यह सारा प्रयास व्यर्थ है! उस अतोल अमाप को तोलने व मापने का बाल-प्रयास मात्र हैं। उसके बाद उनकी वाणी एकदम खामोश हो जाती है! आनन्द, आनन्द, आनन्द! पूर्ण आनन्द!!

कबीरजी ने 'अणहद' तूर का बेहद वर्णन किया है—

अणहद बाजे नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
आवगति अंत्तरि प्रगटै, लागे प्रेम धियान॥

कबीर कवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर।
निस अंधियारी मिटी गई, बाजे अनहद नूर॥[1]

दादूजी की वाणी भी उस महानन्द में ओत प्रोत है—

ऐसा अचिरज देखिया, बिन बादल बरसै मेह।
तहं चित चातृग ह्वै रह्या, दादू अधिक सनेह॥

दादू सहज सरोवर आतमा, हंसा करै कलोल।
सुख सागर सूभर भरचा, मुक्ता हल अनमोल॥[2]

---

(१) —कबीर ग्रन्थावली; पृष्ठ १६
(२) —स्वामी दादू दयालजी की वाणी; पृष्ठ ६५

06:08
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय | हिन्...
hindwi.org
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय

स्वामी रामचरणजी ने इस अपरोक्षानुभूति का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है, उल्लास साकार हो उठा है।

[रेखता][1]

घोर अनहद् की गिगन गिरणाइया, होत बहुसौर नहीं कहत आवै।
झालरी वीण मरदंग सहनाईयां, वांसुरी ताल झुंणकार लावै ॥
भेरि रणसिंग करनाल वंकया वजै चंग अरु उपंग गति करत न्यारी।
एक इक नाद मैं राग नाना उठै मधुर स्वर मधुर स्वर चलत भारी ॥
मंजोरा मान धधकार धोलक करै गिड़गिड़ी राय मोहो चंग वाजै।
रुणझुंणूं रुणझुंणूं नृत्य जूं घूघरू घंटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै ॥
रच्यो कोतूल अति काया अस्थूल में सुखमना नीर फुम्वार वर्शे।
परम ही जोति का चांदणा चहुं दिशा पुरुष भरपूर नहि आन दर्शे ॥
पुरुष रक्कार जहां सुरति मिली सुन्दरी सुन्य से महल विश्राम किया।
पूर्णानन्द कूं पर्शि निर्भय भई पीव की सेझ सुख लूटि लीया ॥
अंग सूं अंग मिल संग छांडै नहीं सुणत जहां राग मस्ताक होई।
राम ही चरण वै देश की सैन कूं महरमी संत विन लखै न कोई ॥
गगन का गोरव परि जोख ऐसी वणी संतकोइ ध्यान धरि सुक्ख लूटै।
अगमही शब्दकी ध्वनी जहां होइरही अखंडझुंणकार नहितारटूटै ॥
बात कासूं कहूं कोण मांनै यहै, भर्म की भूलसें तर्क ऊठै।
रामहीचरण यह घोर सुण खुसि भया मिल रही सुरति अब नांहि छूटै॥
गगन ही मण्डल में एक अचरज भया वपु विना पुरुप इक रमत देखा।
पांच ही तत्व सूं रहित वो पुरुप हैं नांहि कोइ तासकै रूप रेखा ॥
अगम अगाध अतोल अम्माप है, वार नहि पार नहि गम्म लेखा।
रामहीचरण वा देश में राम रहे, उलटि नहीं बहुर कोइ धरत भेखा ॥

(१) अणभै वाणी; पुष्ठ १६२-१६३।

06:08
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय | हिन्...
hindwi.org
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय

यही योगियों की निर्विकल्प समाधि है, यही असम्प्रज्ञात स्थिति है। चारों ओर परिपूर्णता ही दीख पड़ती है—

पाला गल पांणी हुवा झिलमिल एक प्रकाश।

× × ×

सागर भर भरि सागरी नागरि भरी समांहि।
नागरि भरि गागरि भरी चंचल झलकै नांहि।
चंचल झलकै नांहि रहै सागर कै ढेवै।
धरी भरी भरपूर सोर शीतल सुख लेवै।
रामचरण खाली रह्यां छीलर जाचण जांहि।
सागर भर भरि सागरी नागरि भरी समांहि॥[1]

'अणहद' की गर्जन व रस झरने का कितना सुस्पष्ट वर्णन है—

अनहद गरजै नभ झरै, दामिनि ज्योति उजास।
रामचरण सुनि सायराँ, हंसा करत निवास॥[2]

सागर व हंस का यह ओतप्रोत भाव सुरति व शब्द का योग ही है—

सायर तट हंस बैठा जाई। सायर हंस में रह्या समाई॥
ओत प्रोत भया द्वैत न दर्शे। सन्त गरक ब्रह्म सुख कूं पर्शे॥[3]

अब तो नित्य ही होली खेलने का आनन्द रहता है—

[राग जैतश्री धमाल]

पिया संग प्यारी, ऐसें नित खेलत फाग।
रसना राम उचार सुहागिनि पिय सूं प्रीति बधावै।
काम कपट पड़दा करि न्यारा, अरस परस गुण गावै।

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ १४२
(२) ,, ,, ,, २०७
(३) ,, ,, ,, २०७

131
304

06:09
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय | हिन्...
hindwi.org
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय

सन्त पलटू साहिब ने भी इसी प्रकार फाग खेलने का मादक वर्णन एक पद में किया है—

जानी जानी पिया हो, तुमको पहिचानी ॥टेक॥
जब हम रहती बारी भोली, तुम्हरो मरम न जानी।
अब तो भागिजाहु पिया हम से, तब हम मरद बखानी ॥
बहुत दिनन पर भेंट भई है, फाग खेलन हम ठानी।
धन सम्पत लै खाक मिली तन, तजि कै मान गुमानी ॥[1]

पर, यह विषय बुद्धि विलास का नहीं, केवल साधना का है। गुरु की कृपा से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसके पा लेने के बाद कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। सुरत शब्द में समा गई है और शब्द सुरत में। जो कुछ होना था, वह हो चुका है। सन्त साहित्य इसी अलौकिक आनन्द की अनुभूतियों से ओतप्रोत है। सन्तदासजी ने इस अनुभूति का मार्मिक वर्णन करते हुए कहा है—

बात अगम की सन्त दास,
समुझत कोइ नांहि।
हलाबोल मन होइ रह्या,
हलाबोल पद मांहि ॥
सुरत समांणी शब्द में,
शब्द सुरत ही मांहि।
होणा था सो होइ रह्या,
अब कुछ होणा नांहि ॥[2]

---

(१) पलटू साहब की बानी (भाग तीसरा); पृष्ठ २२
(२) अरणभै वाणी; पृष्ठ १६

132
304

शिला में अपनी परछाई देखकर उसमें अपने दन्त अड़ा देता है, और घायल हो जाता है।[1] या उस मृग के समान जो मरीचिका के पीछे दौड़-दौड़ कर प्राण गवाँ देता है, माया के इस अज्ञान आवरण से सतगुरु ही बचा सकता है, वही उसमें ज्ञान की ज्योति जगाकर इस भ्रम का नाश कर जीव को ब्रह्म से मिलाता है।

इस प्रकार दरिया साहब ने दार्शनिक प्रतीकों द्वारा ब्रह्म, जीवात्मा, माया का यथार्थ और सूक्ष्म चित्रण किया है।

साधनात्मक रहस्यपरक पारिभाषिक प्रतीक (यौगिक)

दरिया साहब ने हठयोगपरक साधना का जमकर उल्लेख किया है। हठयोग की पारिभाषिक शब्दावली—कुण्डलिनी, त्रिनाडी-इडा, पिंगला, सुषुम्ना, विभिन्न आसन, प्राणायाम, मुद्रा, षट्चक्र सहस्रदल कमल आदि का प्रतीकात्मक वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

> इगला पिंगला सुखमनि नारी। सार पवन तहँ करै पुकारी।
> ओही पवन पट चर्नहि सेवा। होय गुरुज्ञान बुझे यह भेवा॥
> अपजा अर्ध सूर चाँद आनी। दरिया गगन बरीसै पानी॥
> अमृत बुंद तहाँ झरि आवै। पीवत हंस अमर पद पावै॥[2]
> इगला पिंगला सुखमनि धारा। तहँ बकनाल रस पीवै धारा॥
> षोडस दल कँवल बिगसाना। लपटि लगे मधुकर ललचाना॥
> ललिता तीनि सगम तहँ लपक। धारि बयारि अमृत रस पपक॥
> चंद सूर दुइ करहि बिलासा। उदय अस्त फिरि होय प्रगासा॥[3]
> गंगा जमुना सोसती, तीनिउ परिमी रेत।
> मुख से स्वाँसा चलत है, काया बिनासन हेत॥[4]

दरिया साहब ने 'पिपीलिका' तथा 'विहंगम' योग की चर्चा करते हुए विहंगम योग की श्रेष्ठता स्वीकार की है। हठयोग में कुण्डलिनी का आसन, प्राणायाम और मुद्राओं के माध्यम से षटचक्र का भेदन कर ऊपर सहस्रदल कमल तक पहुँचने की क्रिया की तुलना चींटी के वृक्ष पर चढने की क्रिया से की है, इस योग—पिपीलक (चींटी) का अर्थ है कुण्डलिनी के पिण्ड से ब्रह्माड तक की यात्रा। पिपीलक योग को दरिया साहब ने उत्तम नहीं माना, क्योंकि फलादि खाने के लिए चींटी वृक्ष के ऊपर धीमी-धीमी गति से चढ जाती है, पर फलादि खाकर पुन पृथ्वी पर लौट आती है और रस से वंचित हो जाती है, इसी प्रकार केवल शारीरिक हठयोग के अभ्यासी साधक के बार-बार योग विरहित अवस्था में लौट आने की आशंका रहती है। इसके विपरीत विहंगम योग में योगी के पूर्वावस्था में लौट आने की सम्भावना नहीं रहती।

---

१ द० प्र० शब्द, १८/५५ पृ० १४२
२ दरिया सागर, पृ० ३
३ वही, पृ० ५५-५६
४ दरिया ग्रन्थावली, ज्ञानस्वरोदय २६०, पृ० २६

हारा,सार समालत माता बारा ।। निधि निधान सिद्धिन का दाता,सभ महि अन नाही विखिआता ।।२।। रेतहि रसमि दमक दरसाई,रुणझुणकारा सबद सुहाई ।। अनहद बाणी गुरुमुख जाणी,सुणि सुणि मोहे सारिंगपाणी ।।३।। पंच सबद धुनि तूर बजाइ,दहदिसि ते कहि रिचा अलाइ ।। रमणि रमंता राम रमईया,रास मचाई गैया जैया ।।४।। रिधि अखंडित चौदह लोक,को जनमत को मरतो ओक ।। को खावत को खावत खावै,को भोगत को भोग भुगावै ।।५।। को तोता बेरन टुक गेरे,को राजन हित मुकति परेरे ।। को पिंजरे मुख राम रटै है,को मुकता संगति मुकतै है ।।६।। को देह महि देही दरसावै,को उदरै हित दर दर जावै ।। को मुकतन को चुगता चोग,को विखिअन रत कामनी जोग ।।७।। को सज्जन सभि सज्जन लहहिं,को दुरजन निज जन गुन गहहिं ।। साधु असाधु दोऊ प्रगटाइ,श्रीचंद्र संतन परि पाइ ।।८।।५।। **सलोक-** रखीक गही जिनि आपनी,हरि रस रमत पुनीत ।। रितु खोई रत ह्वै रहिओ,श्रीचंद्र प्रभु मीत ।।१।। **अस्टपदी-** दस रिखीक मन माहि समाई,जोग जुगति सिउं ताड़ी लाई ।। नौ दर बांध दसम महि जाइ,बेणु बजाई बिरहै नाइ ।।१।। बंध नारि सुर बंध फिराइ, तारतम्य मंद सबद सुहाइ ।। इड़ा पिंगला सुखमनि बंधि,खस्ट सथानी मेली संधि ।।२।। चक्र गए

चक्रन कै मेल,अरबिंदन की उपजी खेल ।। कुंडलिनी कुंडल परिहरै,मूल बंध मारग विसतरै ।।३।।
मणिबंध पायो भुजबंद रूप,प्रगटी जोती ज्वाल अनूप ।। छूटी खिड़की चानण आइ,कपट कपाट छोरि
दरसाइ ।।४।। भूचर हूँ ते खेचर भए,चाचर ते चाचर प्रगटए ।। बींगा पाव न होवै ठौर,सरब समाना
गुरवी गौर ।।५।। चूवति ससि घर अम्रित धार,मन मतवाला पीवनहार ।। आदि जुगादि अनादि
अनूप,प्रगट भया जग भूपन भूप ।।६।। रस रसिआ हरिआ सद भाइ,पारिजात की सिर पर छाइ ।।
मंगल देवी मंगल गीत,सुरति सिद्ध जोगीस्वर चीत ।।७।। फाड़ गगन धुनि बारिद कीन,पारब्रहम
सिउं अनुभउ लीन ।। दसमे स्वासा वाजे पंच,श्रीचंद्र सु रिखीकन संच ।।८।।६।। **सलोक**-त्रिक पाई
मन तन हरे,भ्रम भय मेट समाइ ।। लिव माया अविनास हरि,श्रीचंद्र गुण गाइ ।।१।। **अस्टपदी**-
त्रिक हिरानी प्रभु की माया,लिव उपजाई अबिचल राया ।। गगनहुँ ते गगनंतर जाइ,पंख पसार
रहिओ मंडराइ ।।१।। अनल उडिओ करि चक्र चुफेर,अस्टपाद को लीनसि घेर ।। सूरज चंद न तारा
झुंड,सप्त रिखीसवर संगि भुसुंड ।।२।। गुण गाए इभ मुख ले सास,प्रगटिओ राज सुरेसर दास ।।
त्रिगुण बिनासे आपा पाय,आवण जाण हिरानी काय ।।३।। धायो धिआन मूल अभिआस,पवन

हठयोग का पथ आसान नहीं है, सन्त सुन्दरदास 'अवधू' को सम्बोधित करते हुए समस्त हठयोग साधना का रूप प्रस्तुत करते हैं :—

है कोई जोगी साधै पवना ।
मन थिर होइ बिन्द नहिं डोलै, जितेन्द्री सुमरै नहिं कौना ।
यम अरु नेम धरै दृढ़ आसन, प्राणायाम करै मन मौना ।।
प्रत्याहार धारणा ध्यानं लै समाधि लावै ठिक ठौना ।
इडा पिंगला सम करि राखै, सुषमन करै गगन दिशि गौना ।।
अहर्निशि ब्रह्म अग्नि परजारै सापनि द्वार छांडि दे जौना ।।
वहुदल षट्दल दशदल पोजें, द्वादशदल तहां अनहद नौना ।
षोडशदल अमृत रस पीवै, ऊपरि द्वै दल करै चितौना ।
चढ़ि आकास अमरपद पावै, ताकौ काल कदे नहिं पौना ।।
सुन्दरदास कहैं सुन अवधू, महा कठिन यह पंथ अलौना ।।[1]

जिस अमी रस को कबीर ने छक कर पिया है, सन्त पलटू साहिब भी उसका रसास्वादन कर चुके हैं, पर इस अमीरस का रसास्वादन वही कर सकता है जो सांपिनी (कुण्डलिनी) को मार (जागृत कर सहस्रार तक पहुँचा) सके :—

गगन के बीच में अमी की बुंद है,
    पियत इक सांपिनी धार धारा ।
सांपिनी मारि के पिये कोउ संत जन,
    मुए संसार को फटकि सारा ।।
सहस दल कंवल में भँवर गुंजार है,
    कँवल के बीच में सेत कल्ली ।।
इडा औ पिंगला सुखमना घाट है,
    सुखमना घाट में लगी नल्ली ।।
अमी रस चुवै सोइ पियत इक नागिनी,
    नागिनी मारि कै बुंद रल्ली ।।[2]

बुल्ला साहिब का मन त्रिकुटी संगम और वहाँ की जगमग ज्योति में उलझ गया है :—

तिरकुटी जहँ बसत संगम, गंग जमुन बहाय ।
बरत झिलमिलि होत जगमग, तहाँ रहु अरुझाय ।।[3]

प्राणायाम की साधना करते हुए, संगम में स्नान कर, गगन में पहुँचकर, अहनद सुनकर और दिव्य ज्योति का दर्शन कर बुल्ला साहिब निहाल हो गए हैं :—

---

१. डा० प्रेमनारायण शुक्ल, संत साहित्य, पृ० १७५
२. पलटू बानी, भाग २, रेखता ७०-७१, पृ० २६
३. बुल्ला शब्द सागर, शब्द ५

गंग जमुना मिलि सरस्वति, उमगि सिखर बहाव।
ले कुंभक पूरक घर रखना, रेचक सजम देई।
भाटक ताडी लगति केवारी राम-नाम जपि लेई।
तीरथ तिरबैनी नहइबो, गगन मे जइबों हो।
अनहद धुनि सुनि दीपक बरइबों हो।[1]

दरिया साहेब (बिहार वाले) ने हठयोग परक साधना से जो अमृतरस पिया है उससे आत्मा (हंस) ने अमर पद प्राप्त कर लिया है—

इंगला पिंगला सुखमनि नारी। ओही पवन षट चक्रहिं छेदा।

× × ×

अमृत बुंद तहां झरि आवै। पीयत हंस अमर पद पावै॥[2]

दादू कहते हैं—

पंच बाइ जो सहजि समावैं, ससिहर के घरि आणैं सूर।
बंक नालि सदा रस पीवैं तब यहु मनवां कहीं न जाइ।
बिगसैं कँवल प्रेम जब उपजै, ब्रह्म जीव की करैं सहाइ॥[3]

यारी साहब ने प्राण-अपान का साधन करके, त्रिवेणी मे स्नान करके, सूर-चन्द की भाठी बनाकर जो अमृत पान किया है उसके प्रभाव से आत्मा ब्रह्म से मिलकर खेल रचाती है—

घट मे प्रान अपान दुवाई। अरध उरध आवं अरु जाई।
लेके प्रान अपान मिलावै। वहीं पवन तें गगन गरजावै।
तिरबेनी मन मै असनान।
जरूरत सुखमन जोई। चांद सूर बिच भाठी होई।
पीवै अमृत मन परचंड। खेलै एक एक ब्रह्मंड॥[4]

संतो ने इडा पिंगला और सुषुम्ना को गंगा, यमुना, सरस्वती[5] त्रिवेणी आदि[6] प्रतीका-

---

१ बुल्ला शब्द सागर, शब्द १, ८, ६
२ दरिया सागर, चौपाई, पृ० ३
३ दादूबानी, २, शब्द ४०५ पृ० १५६
४. यारी रत्नावली, पृ० ५, ८
५. वही, पृ० ८ धनी धरमदास पृ० ५५, दादूबानी भाग २, शब्द ७१ क० ग्र० पृ० ६३ गुलाल बानी, पृ० ११६
६ क० ग्र० पृ० ८८, ६४, धनी धरमदास, पृ० ७१, दादू भाग २, पद ७३, धरनीदास १५, पृ० ४७

त्मक शब्दों से अभिव्यक्त किया है। त्रिकुटी के लिए भंवर गुफा,[1] ज्ञान गुफा,[2] गगन गुफा[3] आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। सुषुम्ना नाडी के महत्व को सभी संतों ने एक स्वर में स्वीकार किया है। इसी नाडी के सहारे तो कुण्डलिनी ऊर्ध्वमुखी होकर सहस्रार तक पहुँचती है। कबीर कहते हैं—

चंद सूर दुइ भाठी कीन्हीं, सुसमनि चिगवा लागी रे।[4]

धरनीदास,[5] दरिया साहब,[6] यारी-साहब,[7] धरमदास,[8] गुलाल साहब[9] आदि संतों ने सुषुम्ना की जागृति पर बल दिया है। कुण्डलिनी को सन्तों ने सांपिनी,[10] नागिन,[11] गोरी,[12] बालरण्डा आदि विविध नामों से सम्बोधित किया है।

सन्तों ने प्राय: हठयोग साधना का खुलकर समर्थन किया है, उसकी विभिन्न साधनाओं एवं अंगों का विस्तृत वर्णन यत्रतत्र बिखरा पड़ा है, पर उन्होंने क्रमबद्ध विवेचन कहीं भी नहीं किया। इसका प्रमुख कारण उनकी सारग्राही प्रवृत्ति है, जहाँ से जो अच्छा मिल गया, ग्रहण कर वाणी द्वारा अभिव्यक्त कर दिया और हाथ झाड़कर आगे चल दिए, किसी विशेष वस्तु या साधना से चिपट कर नहीं रह गये हैं। यही कारण है कि निर्गुणवादी होते हुए भी सन्तों पर भक्ति का रंग गहरा चढ़ा

---

१. चरनदास १, पृ० ३४-४८ क० ग्र० ८८, यारी रत्नावली, पृ० ३.

२. काया बनखण्ड पायौ चेला। ज्ञान गुफा में रहै अकेला।
दादू २, शब्द २३१, पृ० ९२

३. गगन गुफा में बैठ के...। मलूक, शब्द १३, पृ० २१
तहं है गगन गुफा गाढ़ो—। धरनी०, शब्द ५ पृ० १५
गगन गुफा के मारग को, तुम धीरज से चढ़ना।
धनी धरमदास, बारह मासा, पृ० ५३.

४. कबीर ग्रन्थावली, पृ० ११०.

५. धरनी दास बानी, पृ० ५, शब्द ९

६. दरिया (मारवाड़) बानी, नाद को अंग १५, १६, पृ० १४

७. यारी रत्नावली, ११, अलिफनामा १३, १६ पृ० ८

८. धनी धरमदास बानी, विरह और प्रेम का अंग, शब्द ४, पृ० ११
बारहमासा २, पृ० ५३

९. गुलाल बानी, प्रेम, शब्द ४/७ पृ० ३१, ५/२ पृ० ३१,
मंगल २, ३, ४, पृ० ११९-२०-२१

१०. पलटू बानी २, रेखता ७० पृ० २६

११. 'सोवत नागिन जागी।' वही, रेखता ७१
'पवन पियाय नागिन मारो।', बुल्ला पृ० १६

१२. 'गोरी मुख मन्दिर बाजै।' बीजक, शब्द ८२

श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी उपासना-पद्धति

(लेखक—दैवज्ञप्रवर स्वामी श्रीमनोरथरामजी रामस्नेही शास्त्री, साहित्यभूषण)

भक्तिके पथको सुगम और प्रशस्त करनेके लिये महाप्रभु स्वामी श्रीरामचरणजी महाराजने शाहपुरामें श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी स्थापना की, साथ-ही-साथ भक्तियोगके प्रतिपादनार्थ स्वकीय अनुभवयुक्त वाणीद्वारा दोहा-चौपाइयोंमें 'शब्दप्रकाश' नामक ग्रन्थका निर्माण किया तथा उसपर ब्रह्म रामकी उपासना-विधि बतलायी, जिनके ध्यानमें शङ्कर तथा शेषजी सदा लीन रहते हैं तथा जिनके नामकी महिमा महर्षि अगस्त्यजीने अगस्त्यसंहितामें सुतीक्ष्णजीके प्रति इस प्रकार वर्णन की है—

सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षरद्वयम्॥

अर्थात् महामन्त्र तो सात करोड़ हैं, परन्तु वे चित्तमें [यह मन्त्र श्रेष्ठ है या वह—इस प्रकारका] विभ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं। 'राम' यह दो अक्षरोंका महामन्त्र ही सबसे श्रेष्ठ है। इसी प्रकार अथर्ववेदके रामरहस्योपनिषद्में भी कहा है—

एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्मतारकम्।
राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्॥

अर्थात् समस्त धर्मग्रन्थोंका तत्त्व तारक ब्रह्म ही है। और वह तारक ब्रह्म राम है। राम ही परब्रह्म है, राम ही परम तप है और राम ही परम तत्त्व है।

इस प्रकार परब्रह्म रामकी महिमासे धर्मग्रन्थ भरे पड़े हैं। यहाँ अधिक वचनोंका उल्लेख करना सम्भव नहीं है। इसलिये अब हम परब्रह्म रामकी उपासना-पद्धतिरूप 'शब्दप्रकाश' नामक ग्रन्थके मूल वचनोंको ही उद्धृत कर लेख समाप्त करेंगे। उस ग्रन्थमें महाप्रभु स्वामी श्रीरामचरणजी महाराजने परब्रह्म रामकी उपासना-पद्धति इस प्रकार बतायी है—

रामनाम तारक मंत्र, सुमरै संकर सेस।
रामचरण साँचा गुरु देवै यह उपदेस॥ १॥
सतगुरु बकसै रामनाम, सिष धारैं बिस्वास।
रामचरण निसिदिन रटै तो निस्चय होय प्रकास॥ २॥

अब सुनियो सब साधु सुजाना। रामभजनका करूँ बखाना॥
प्रथम नाम सतगुरु से पाया। श्रवणा सुनके नेह उपजाया॥ १॥
पुनि रसना की श्रद्धाजागी। राम रटन निसिबासर लागी॥
दूजी आसा सकल बुहारी। (तब) राम नाम मैं सुरत ठहारी॥ २॥
पद्मासन निस्चल मनकीया। नासा निरत धार घर लीया॥
स्वास उस्वासा ध्वनीलगाई। आरत करके बिरह जगाई॥ ३॥
रसना अग्र खुली इक सीरा। परथम वाको पय सो नीरा॥
रटताँ रटताँ भयो मिठास। हर्ष भयो आयो बिस्वास॥ ४॥
कई दिवस रसना रसगटक्यो। पीछे सब्द कंठमें अटक्यो॥
कंठ स्थान बहुत कठिनाई। मुख सूँ बचन न बोल्यो जाई॥ ५॥
खान पान पै रुचि रहै थोरी। मारग रुक्यो जाय कह बौरी॥
छीन सरीर त्वचा सकुचानी। नीली नस दीसै झलकानी॥ ६॥
पीरो बदन नेतराँ लाली। मुकुर ज्योति ज्यां दियै कपाली॥
चले कमकमी रूँ थरांवै। छाती रुँधै स्वास नहिं आवै॥ ७॥
ऐसी बिधि बिरही की होई। बिरह जान कै सतगुरु सोई॥
एक दिवस ऐसी बन आई। सब्द सरक गयो हिरदय माईं॥ ८॥
परम सुक्ख हिरदै परकासा। ज्यूँ रबि कीन्हों तम को नासा॥
सहजै सुमिरन हिरदै होई। बाहिर भेद न जानै कोई॥ ९॥
सोवत जागत डोरी लागी। बन बस्ती की संका भागी॥
रसना जपा अजप्पा पाया। बाहिर साधन सकल बिलाया॥ १०॥
जाग्यो प्रेम नेम रह्यो नाहीं। पाई राम धाम घट माहीं॥
उर अस्थान पाय बिश्रामा। सब्द किया जाय नाभि मुकामा॥ ११॥
नाभि कमल में सब्द गुँजारै। नो सै नारी मंगल उचारै॥
रोम रोम झुणकार झुणक्कै। जैसे जंतर ताँत ठुणक्कै॥ १२॥
माया अच्छर इहाँ बिलाया। ररंकार इक गगन सिधाया॥
पस्चिम दिसा मेरु की घाटी। बीसों गाँठ घोर सें फाटी॥ १३॥
त्रिकुटी संगम किया सनाना। जाय चढ्या चौथे अस्थाना॥
जहाँ निरंजन तख्त बिराजै। ज्योति प्रकास अनंत रबि राजै॥ १४॥
अनहद नाद गिणत नहिंआवै। भाँति भाँति की राग उपावै॥
स्त्रवै सुषुम्ना नीर फुँहारा। सून्य सिखर का यह बिवहारा॥ १५॥
झरै पणंग मोती-सा छलकै। जाकी ज्योति अरुन-सी झलकै॥
सागर जहाँ बिना घर भरिया। हंसा बास तास मध करिया॥ १६॥
सुखमण मोती करे अहारा। निज हंसा का यह ही चारा॥
सुन सायर हंसा का बासा। भवसागर सुख भया उदासा॥ १७॥
दरिया सुखको अंत न आवै। छीलर काल बाज झपटावै॥
सुखसागर मिल सुख पद पाया। सो सब्दाँ में कह समझाया॥ १८॥
बिन देख्याँ परतीत न आवै। तासूँ कैसे भेद बतावै॥

अर्ध उर्ध कमला जहाँ फूल्या। भँवर रूप होय हंसा झूल्या॥ १९॥
भँवर गुँजार गगन गिरणाया। होय मस्त अलि तहाँ लुभाया॥
ऐसो पद बिरला जन पावै। सो भवसागर नाहीं आवै॥ २०॥
राम रट्याँका यह परकासा। मिल्या ब्रह्मपद भव भया नासा॥
रामचरण कोइ राम रटेगा। सो जन एही धाम लहेगा॥ २१॥
रामनाम निसिबासर गासी। सो नर भवसागर तिर जासी॥
रामनाम बिन आन उपाई। ज्यूँ दूल्याँ का खेल कराई॥ २२॥
बालक बेळू मँदिर बणाया। तामें बस कूने सुख पाया॥
रामभजन बिन खाली करणी। ज्यूँ बिन बीज सुधारी धरणी॥ २३॥
राम बीज साधन हल हाँकै। तो रामचरण खेती फल पाकै॥ २४॥

बरणि कह्यो संछेप से दरिया के सो पार।
निज परसी या धामकूँ (सो) लीज्यो संत बिचार॥ १॥
रामचरण रट रामनाम पाया ब्रह्म बिलास।
ईं साधन कोइ लागसी (जाके) होसी सब्द प्रकास॥ २॥

—इत्यादि। इन वचनोंका अर्थ भलीभाँति समझकर जो बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त उपासना-पद्धतिके अनुसार परम पुनीत भक्तियोगकी साधना करेंगे, वे निश्चय ही मायाके समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर संसारसागरको गोपदकी तरह अनायास पार कर जायँगे और परब्रह्म श्रीरामरूप होकर उनकी सायुज्य-मुक्तिको प्राप्त करेंगे। फिर उनको श्रुतिके **'न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते'** इस वचनके अनुसार कभी भी संसार-चक्रमें फँसकर जन्म-मरणादिके कष्टोंका अनुभव नहीं करना पड़ेगा। यद्यपि 'शब्दप्रकाश' में ईश्वरोपासनाका विस्तार बहुत है और ग्रन्थका अर्थ समझाना भी आवश्यक था, परन्तु विस्तारभयसे इस लेखको यहीं समाप्त किया जाता है। श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायकी उपासना-पद्धतिका संक्षिप्त स्वरूप यही है।

जैसे डोरी उड़ै अकासा, सब्द डोरि नहिं टूटै हो ॥४॥
डोरी टूटे खसै भूमि पर, तब पिय बाद गँवावा हो ॥५॥
सिर पर गागर बात सखिन सोँ, चित से गगर न छूटै हो॥६॥
दास कबीर के निर्गुन कहरा, महरम होय सो बूझै हो ॥७॥

(२)

विमल बिमल अनहद धुनि बाजै,
समुझि परै जब ध्यान धरै ॥ टेक ॥
कासी जाइ कर्म सब त्यागै,
जरा मरन से निडर रहै ।
विरले समुझि परै वह गलिया,
बहुरि न प्रानी देँह धरै ॥ १ ॥
किँगरी संख झाँझ डफ बाजै,
अरुझा मन तहँ ख्याल करै ।
निरंकार निरगुन अबिनासी,
तीन लोक उँजियार करै ॥ २ ॥
इँगला पिँगला सुखमन सोधो,
गगन मँदिल मैं जोति बरै ।
अष्ट कँवल द्वादस के भीतर,
वहँ मिलने की जुगत करै ॥ ३ ॥
जीवन मुक्ति मिले जेहि सतगुरु,
जन्म जन्म के पाप हरै ।
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो,
धिरज विना नर भटकि मरै ॥ ४ ॥

सँगहिँ अछत पिय भरम भुलइली—अहे सजनी ।
मोरे लेखे पिया परदेसहिँ रे की ॥ ४ ॥
नव दस नदिया अगम बहे सोतिया हो—अहे सजनी ।
बिचहिँ पुरइनि* दह† लागल रे की ॥ ५ ॥
फुल इक फुलले अनुप फुल सजनी—अहे सजनी ।
तेहि फुल भँवरा लुभाइल रे की ॥ ६ ॥
सब सखि हिलि मिलि निज घर जाइब—अहे सजनी ।
समुँद लहरिया समाइब रे की ॥ ७ ॥
दास कबीर यह गवलैँ लगनियाँ हो—अहे सजनी ।
अब तो पिया घर जाइब रे की ॥ ८ ॥

(२)

अपने पिया की मैँ होइवौँ सोहागिनी—अहे सजनी ।
भइया तजि सइयाँ सँग लागब रे की ॥ १ ॥
सइयाँ के दुअरिया अनहद बाजा बाजै—अहे सजनी ।
नाचहिँ सुरति सोहागिनि रे की ॥ २ ॥
गंग जमुन के औघट घटिया हो—अहे सजनी ।
तेहि पर जोगिया मठ छावल रे की ॥ ३ ॥
देहौँ सतगुर सुर्ती के बिरवा हो—अहे सजनी ।
जोगिया दरस देखे जाइब रे की ॥ ४ ॥
दास कबीर यह गवलैँ लगनियाँ हो—अहे सजनी ।
सतगुर अलख लखावल रे की ॥ ५ ॥

राग रामकली

इडा पिंगुला अउर सुखमना तीनि बसहि इक ठाई ।
बेणी संगमु तह पिरागु मनु मजनु करे तिथाई ।१।
संतहु तहा निरंजन रामु है।
गुर गमि चीनै विरला कोइ । तहां निरंजनु रमइआ होइ ।१। रहाउ ।
तह चंदु न सूरज पउणु न पाणी । साखी जागी गुरमुखि जाणी ।२।
उपजै गिआनु दुरमति छीजै । अंमृत रसि गगनंतरि भीजै ।
एसु कला जो जाणै भेउ । भेटै तासु परम गुरदेउ ।३।
दसम दुआरा अगम अपारा परम पुरख की घाटी ।
ऊपरि हाटु हाट परि आला आले भीतरि थाती ।४।
जागत रहै सु कबहु न सोवै । तीन तिलोक समाधि पलोवै ।
बीज मंत्र लै हिरदै रहै । मनूआ उलट सुंन महि गहै ।५।
जागत रहै न अलीआ भाखै । पाचउ इंद्री बसि करि राखै ।
गुर की साखी राखै चीति । मनु तनु अरपै क्रिसन परीति ।६।
कर पल्लव साखा बीचारे । अपना जनमु न जूए हारे ।
असुर नदी का बंधै मूलु । पछिम फेरि चड़ावै सूरु ।
अजरु जरै सु निझरु झरै । जगंनाथ सिउ गोसटि करै ।७।
चउमुख दीवा जोति दुआर । पलू अनत मूलु बिचकारि ।
सरब कला ले आपे रहै । मनु माणकु रतना महि गुहै ।८।
मसतकि पदमु दुआलै मणी । माहि निरंजनु त्रिभवण धणी ।
पंच सबद निरमाइल बाजे । ढुलके चवर संख घन गाजे ।
दलिमलि दैतहु गुरमुखि गिआनु । बेणी जाचै तेरा नामु ।९।१।।

भक्त बेणी

जूवा खेल न खेलो भाई। जन्म जुवा ज्यूँ जात बिलाई॥
दूत कर्म से दूरे रहिये। कुगती कपटी संग न बहिये॥
अनछान्यो जल पीजे नाहीं। सूक्षम जीव नीर के माँही॥
गाढा पट्ट दुपट्ट करीजे। निर्मल नीर छानकर पीजै॥
चार वर्ण का उत्तम धर्मा। राम नाम निश्चे निहकर्मा॥
लालच लोभ वेश तज देवै। अनन्त भाँति संतन कूँ सेवै॥
चार वरण में भक्ति कराओ। सो सतगुरु के शरणै आओ॥
सतगुरु बिना भक्ति नहीं सूझै। भरम कर्म में जीव अलूझै॥
यह सब कुपच किरीकर टाले। पलपल अमृत जड़ी सँभाले॥
सतगुरु वैद्य कहे ज्यूँ कीजे। अग्या मेटि पाँव नहीं दीजे॥

पच सच राखे परसराम, चाखे प्रेम प्रकाश।
यूँ अठ पहरी साधतों, सकल कर्मका नाश॥

भरम करम कछु रहन न पावे। नाम जड़ी का निश्चा आवे॥
राम नाम औषध तत सारा। पीवत पीवत मिटे विकारा॥
कंठ कमल तें हृदै प्रवेशा। तीन ताप मिट काम कलेशा॥
उर आनँद हुय गुण दरसावै। नाभि कमल मन पवन मिलावै॥
नाभी रग रग रोम रकारा। नख सिख बिच औषध विस्तारा॥
बंक पछिम हुय मेरु लखावे। दसवें द्वार परम सुख पावे॥
तिरबेनी तट अखँड आनंदा। सून्य घर सहज मिटै दुख द्वंदा॥
सून्य समाधि आदि सुख पावै। सद औषध गुरु भेद बतावै॥

सब घट में सुख ऊपजे, दुःख न दरसे कोय।
परसराम आरोग्यता, जीव ब्रह्म सम होय॥
महा रोग जामण मरण, फिर नहिं भुगते आय।
अमर जड़ी का परसराम, निरणा दिया बताय॥

उपदेश

(छप्पय)

सूरा तन को काम, राम भज लाहा लीजे।

संत लाल साहब

(प्रेषक—साधु दयालदास मंगलदास)

हरिजन हरि दरबार के, प्रगट करे पोकार।
शब्द पारखू लालदास, समुझे समझनहार॥
चेत बे चेत अचेत क्यूँ आँधरा! आज अरु काल में उड्ड जाई।
मोह का सोह में सार नहीं सुद्ध की अंध के धंध में जन्म जाई॥
काल कूँ मारकर कुबुधि कूँ रोधकर भरम का कोट कूँ भाँग भाई।
खबर कर खबर कर खोज ले नाम कूँ याद कर शब्द संभाल भाई॥

संत शाह फकीर

ध्यान लगावहु त्रिपुटी द्वार, गहि सुषमना बिहँगम सार।
पैठि पताल में पश्चिम द्वार, चढ़ि सुमेरु भव उतरहु पार॥
हफ्त[1] कमल नीके हम बूझा, अठयें बिना एको नहिं सूझा।
'शाह फकीरा' यह सब धंद, सुरति लगाउ जहाँ वह चंद॥
अनहद तानहिं मनहिं लगावै, सो भूला प्रभु-लोक सिधावै।

१. सात।

सुनतहिं अनहद लागै रंग, बरि उठै दीपक बरै पतंग॥
'शाह फकीरा' तहाँ समावै, चिरुवा[1] पानी नदी मिलावै।
मन-कच्छी[2] अति जोर है, मानत नाहीं थीर।
कड़ा लगाम दै के पकरु, सच्चे 'शाह फकीर'॥

गोस्वामी श्रीहरिरायजी महाराज

भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र शरण हैं

सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वतः।
पापपीनस्य दीनस्य श्रीकृष्णः शरणं मम॥ १॥

यज्ञ तथा ज्ञान इत्यादि परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले साधनोंसे रहित, सभी प्रकारसे परतन्त्र, विविध प्रकारके पापोंसे पुष्ट मुझ दीनके लिये साधनहीन जीवोंके उद्धारक श्रीकृष्ण ही शरण हैं॥ १॥

संसारसुखसम्प्राप्तिसम्मुखस्य विशेषतः।
बहिर्मुखस्य सततं श्रीकृष्णः शरणं मम॥ २॥

अधिकतर सांसारिक अनित्य सुखोंकी प्राप्तिके लिये ही उद्योगमें तत्पर, मिथ्या सांसारिक प्रपञ्चोंमें ओतप्रोत हो जानेसे सदा बहिर्मुखी प्रवृत्तिवाले मुझ दीनके लिये निःसाधन जीवोंके समुद्धर्ता भगवान् श्रीकृष्ण ही शरण हैं॥ २॥

सदा विषयकामस्य देहारामस्य सर्वथा।
दुष्टस्वभाववामस्य श्रीकृष्णः शरणं मम॥ ३॥

सर्वदा विषयोंकी इच्छा रखनेवाले, नितरां दैहिक सुखमें ही आनन्द माननेवाले और कामुकता तथा लुब्धता इत्यादि दुष्ट स्वभावोंसे अत्यन्त कुटिल मुझ साधनहीनके लिये निःसाधन जीवोंके उद्धार करनेवाले श्रीकृष्ण ही शरण हैं॥ ३॥

संसारसर्पदष्टस्य धर्मभ्रष्टस्य दुर्मतेः।
लौकिकप्राप्तिकष्टस्य श्रीकृष्णः शरणं मम॥ ४॥

संसाररूपी साँपसे डसे हुए, स्वधर्मको नहीं माननेवाले, दुष्टबुद्धि और अनेकों प्रकारके लौकिक पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये कष्ट उठानेवाले सर्वसाधनहीन मुझ दीनके समुद्धारक श्रीकृष्ण ही हैं॥ ४॥

विस्मृतस्वीयधर्मस्य कर्ममोहितचेतसः।
स्वरूपज्ञानशून्यस्य श्रीकृष्णः शरणं मम॥ ५॥

अपने धर्मको भूल जानेवाले, कर्म-जालसे किंकर्तव्यविमूढ़ चित्तवाले, स्वरूपज्ञानसे रहित मुझ साधनहीन दीनके शरण निःसाधन जीवोंके उद्धारक श्रीकृष्ण ही हैं, अन्य नहीं॥ ५॥

संसारसिन्धुमग्नस्य भग्नभावस्य दुष्कृतेः।
दुर्भावलग्नमनसः श्रीकृष्णः शरणं मम॥ ६॥

संसाररूपी अगाध समुद्रमें डूबे हुए, नष्ट सद्भावनावाले (प्रभुप्रेम-विहीन), दुष्कर्मकारी, बुरी भावनाओंमें संसक्त अन्तःकरणवाले सर्वसाधनहीन मुझ दीनके निःसाधन जीवोंके समुद्धर्ता श्रीकृष्ण ही शरण हैं॥ ६॥

विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य निरन्तरम्।
विरुद्धकरणासक्तेः श्रीकृष्णः शरणं मम॥ ७॥

विवेक, धैर्य और भक्ति इत्यादि परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले कार्योंसे सर्वथा रहित तथा निरन्तर परमात्माकी प्राप्तिके बाधक अनुचित कार्योंमें तत्पर सर्वसाधनहीन मुझ दीनके शरण श्रीकृष्ण ही हैं, जो साधनहीन अनेकों जीवोंका उद्धार किया करते हैं॥ ७॥

विषयाक्रान्तदेहस्य वैमुख्यहतसन्मतेः।
इन्द्रियाश्वगृहीतस्य श्रीकृष्णः शरणं मम॥ ८॥

कामादि विषयोंसे अभिभूत शरीरवाले, परमात्माकी ओरसे विमुख होनेके कारण शुभ बुद्धिको गँवा देनेवाले, इन्द्रियरूपी दुष्ट घोड़ोंके अधीन हो जानेवाले, सर्वसाधनहीन मुझ दीनके शरण निःसाधन जीवोंके समुद्धारक भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं॥ ८॥

एतदष्टकपाठेन ह्येतदुक्तार्थभावनात्।
निजाचार्यपदाम्भोजसेवको दैन्यमाप्नुयात्॥ ९॥

इस श्रीकृष्ण-शरणाष्टकके पाठ करनेसे तथा इस अष्टकमें कहे हुए अर्थोंका ध्यानपूर्वक मनन करनेसे अपने आचार्य श्रीमहाप्रभुजीके चरणकमलोंका उपासक दीनताको प्राप्त करता है, जिस दीनताके प्राप्त हो जानेपर वह भगवान्की शरणमें जाता है और वे प्रसन्न होकर उस भक्तको अपना लेते हैं। इसलिये दीनतापूर्वक प्रभुकी शरणमें जाना ही इस अष्टकका प्रधान उद्देश्य है॥ ९॥

भगवान् श्रीनवनीतप्रियजीका स्तवन

अलकावृतलसदलिके विरचितकस्तूरिकातिलके।
चपलयशोदाबाले शोभितभाले मतिर्मेऽस्तु॥ १॥

१. चिल्लूभर। २. कच्छ देशका घोड़ा।

अजपा जप

प्राण की उच्छ्वास दशा में स्वाभाविक रूप से 'हं' का तथा निश्वास दशा में 'सः' का उच्चारण होता है। इस प्रकार प्राण की श्वास–प्रश्वास प्रक्रिया में 'हंसः सो हं' इस अजपा गायत्री का स्वाभाविक रूप से दिन–रात अनवरत जप चलता रहता है। इसी को अजपा जप कहा जाता है। इसको अजपा इसलिये कहा जाता है कि यद्यपि अपरा अवस्था में इसके वाच्य वर्ण हकार और सकार का उच्चारण स्पष्ट होता है, किन्तु जब परा देवी इसको अपने में समेटे हुए अपने बाह्य स्वरूप का संवरण करती है, उस समय हकार के मस्तक पर स्थित बिन्दु रूप अनुस्वार का केवल बिन्दु के रूप में जप नहीं किया जा सकता। इस तरह से यह प्राण वृत्ति जब बाहर निकलती है, तब सकार के आगे विसर्ग के रूप में स्थित दो बिंदुओं का

बिना अकार के उच्चारण नहीं हो सकता। इसीलिये 'हंसः' इस मंत्र की अजपा गायत्री के रूप में ख्याति है।

तन्त्रालोक (3/170) के व्याख्याकार जयरथ ने सकार और हकार के उच्चारण से उत्पन्न जप को सहज, अर्थात् अकृत्रिम (स्वाभाविक) बताया है। यहां क्षपा (रात्रि) और दिन से क्रमशः अपान और प्राण का निर्देश किया गया है। वीरावली तंत्र में भी क्षपा और दिन शब्द से इन्हीं का ग्रहण किया गया है। श्रुति और स्मृति ग्रंथों में दिन और रात्रि का, प्राण और अपान का यमराज के कुत्तों के रूप में वर्णन है। यमराज के ये दूत पकड़ने न पायें, इसीलिये साधक योगी अजपा के अभ्यास के द्वारा प्राण और अपान की गति पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेता है और मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है।

दिन–रात, प्राण और अपान की इस निरंतर गतिशीलता के कारण हंस मंत्र का एक अहोरात्र में 21600 बार जप पूरा हो जाता है। शरीर से प्राण की बहिर्मुखी गति के पूरा होने के बाद और अपान के पुनः शरीर में प्रवेश न करने तक इस जप की विधि पूरी हो जाती है। प्राण जब निकलते हैं, उस समय भी इस अजपा जप के साथ अपनी तन्मयता को बनाये रखना अनेक जन्मों में अर्जित अतिशय तत्त्वशुद्धि के कारण ही संभव हो सकता है।

अणु सदाशिव

अवधूत वर्ण और आश्रम की व्यवस्था से परे रहते हैं। अष्टविध पाशों से ये मुक्त रहते हैं। अघोरी भी एक प्रकार का अवधूत ही है। नाथ सम्प्रदाय के ग्रन्थों में भी इनका विवरण मिलता है। गोरक्षसिद्धांत संग्रह (पृ. 15–16) में अवधूत मत को सर्वश्रेष्ठ माना है।

अवधूती मार्ग

बौद्ध वज्रयान और सहजयान में इडा, पिंगला और सुषुम्णा को क्रमशः ललना, रसना और अवधूती कहा जाता है। यहां ललना को चन्द्र या प्रज्ञा का तथा रसना को सूर्य या उपाय का प्रतीक माना गया है। इन दोनों के बीच में जिस शक्ति की क्रिया होती है, एवं जो साधारण अवस्था में अवरुद्ध (सुप्त) रहती है, उसका पारिभाषिक नाम 'अवधूती' है। चन्द्र और सूर्य के मिलन अथवा प्रज्ञा और उपाय के आलिंगन से मध्य मार्ग का उन्मीलन होता है। क्लेश प्रभृति का यह अनायास नाश कर देती है, इसलिये इसे 'अवधूती' कहते हैं। अवधूती मार्ग ही अद्वय मार्ग, शून्य पथ और आनन्द स्थान है। यहां ग्राह्य और ग्राहक का भेद नहीं रहता, दोनों ही समरस होकर शून्याकार में विराजमान रहते हैं। यहीं उपशम रूप शान्तावस्था का उदय होता है, जो कि निर्वाण पदवी के नाम से प्रसिद्ध है (भारतीय संस्कृति और साधना, भा. 2, पृ. 258–259)।

अवस्थापंचक

योगिनीहृदय (3/176–177) में बताया गया है कि मन्त्र के जप के समय शून्यषट्क, अवस्थापंचक और विषुवसप्तक की भावना करनी चाहिये। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या (तुरीया) और तुर्यातीत (तुरीयातीत) ये पांच अवस्थाएं हैं। मालिनी विजय (2/36–38) तथा तन्त्रालोक (10/227–287) में इन अवस्थाओं का निरूपण पिण्ड, पद, रूप, रूपातीत तथा महाप्रचय अथवा सततोदित अवस्था के रूप में किया गया है। जिस अवस्था में दस इन्द्रियों (पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय) के द्वारा जागतिक व्यवहार सम्पन्न होते हैं, उसे जाग्रत् अवस्था कहते हैं। जिसमें आन्तर चतुर्विध करण द्वारा व्यवहार की निष्पत्ति होती है, उसे स्वप्नावस्था कहते हैं। स्वप्न में विद्यमान अन्तःकरण वृत्ति का लय होने पर सब इन्द्रियों

कुण्डलिनी योग

यह सत्य है कि पातंजल योगसूत्र में कुण्डलिनी अथवा षट्चक्र आदि में से किसी एक का भी उल्लेख नहीं है, किन्तु यह निश्चित है कि कुण्डलिनी योग एक प्राचीन भारतीय योग की विशेष पद्धति है। आगम और तन्त्रशास्त्र की विभिन्न शाखाओं में इसका वर्णन मिलता है। कहा जा सकता है कि यह एक तान्त्रिक योगपद्धति है। कुछ आचार्य "अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या" (10/2/31) इस अथर्ववेद के मन्त्र में कुण्डलिनी का उल्लेख मानते हैं। प्रायः सभी आगमिक और तान्त्रिक आचार्य प्रसुप्तभुजागाकारा, सार्धत्रिवलयाकृति, मूलाधार स्थित शक्ति को कुण्डलिनी के नाम से जानते

हैं। जिस योगपद्धति की सहायता से इस कुण्डलिनी शक्ति को जगा कर सुषुम्ना मार्ग द्वारा षट्चक्र का भेदन कर सहस्रार चक्र तक पहुंचाया जाता है और वहां उसका अकुल शिव से सामरस्य सम्पादन कराया जाता है, उसी का नाम कुण्डलिनी योग है। आधारों अथवा चक्रों आदि के विषय में मतभेद होते हुए भी मूलाधार स्थिति कुण्डलिनी शक्ति का सहस्रार स्थित शिव से सामरस्य सम्पादन सभी मतों में निर्विवाद रूप से मान्य है। सम्प्रति षट्चक्र भेदन का पूर्णानन्द यति विरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के षष्ठ प्रकाश में वर्णित क्रम ही प्रायः सर्वमान्य है। अतः तदनुसार ही यहां इस विषय का निरूपण किया गया है। यम और नियम के नित्य नियमित आदरपूर्वक निरन्तर अभ्यास में लगा हुआ योगी गुरुमुख के मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त कुण्डलिनी के उत्थापन के क्रम को ठीक से जान लेने के उपरान्त पवन और दहन के आक्रमण से प्रतप्त कुण्डलिनी शक्ति को, जो कि स्वयंभू लिंग को वेष्टित कर सार्धत्रिवलयाकार में अवस्थित है, हूंकार बीज का उच्चारण करते हुए जगाता है और स्वयंभू लिंग के छिद्र से निकाल कर उसको ब्रह्म द्वार तक पहुंचा देता है। कुण्डलिनी पहले मूलाधार चक्र स्थित स्वयंभू लिंग का, तब अनाहत चक्र स्थित बाण लिंग का और अन्त में आज्ञाचक्र स्थित इतर लिंग का भेदन करती हुई ब्रह्मनाडी की सहायता से सहस्र दल में प्रविष्ट होकर परमानन्दमय शिवपद में प्रतिष्ठित हो जाती है। योगी अपने जीवभाव के साथ इस कुलकुण्डलिनी को मूलाधार से उठाकर सहस्रार चक्र तक ले आता है और वहां उसको पर बिन्दु स्थान में स्थित शिव (पर लिंग) के साथ समरस कर देता है। समरसभावापन्न यह कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार चक्र में लाक्षा के वर्ण के समान परमामृत का पान कर तृप्त हो जाती है और इस परमानन्द की अनुभूति को मन में सजोये वह पुनः मूलाधार चक्र में लौट आती है। यही है कुण्डलिनी योग की इतिकर्तव्यता। इसके सिद्ध हो जाने पर योगी जीवन्मुक्त हो जाता है, शिवभावापन्न बन जाता है।

कुल कुण्डलिनी

अकुल कुण्डलिनी शब्द का विवरण देते हुए बताया गया है कि नीचे अकुल स्थान स्थित अरुण वर्ण के ऊर्ध्वमुख सहस्रार पद्म को कुल कुण्डलिनी कहा जाता है। यह विमर्शात्मक हकार स्वरूपा है।

ભજન ૬ ઠું.

ખુબ ખબર કર ખોજી
કાય ગુરૂ ગમસેં ટેક
ઓ ઘટ ઘાટી ફેરકે આયા
સોહુંગ સીંગી નાદ બજાયા
ત્રિવેણીપર ધ્યાન લગાયા
ચડીયા અગમસેં અગમસેં ખુબ ૧
ખેચરી ભુચરી ચાચરી માંહી
વાસના પુતળી રહી છુપાઇ
જાગ્રત જ્યોતે જ્યોત જગાઈ

ગુરૂકા ઈલમસેં ઈલમસેં ખુબ ૨
અગોચરી અનહદ ધુન ગાજે
ઉનમુની પુરૂષ અખંડ બિરાજે
અનંત કોટી આદિત લાજે
ઉગ્યા હરદમસેં હરદમસેં. ખુબ ૩
ભમર ગુફામે બ્રહ્મ નીશાની
બંકનાળ સેજે વશ આણી
ચંદ સૂર હોઈ ઊલટ સમાની
સુખમના સંગમસેં સંગમસેં. ખુબ ૪
નાદ બુંદ એક ઘર આણી
મનવશ કરી પુરણ બ્રહ્મ માણી
કહે રવીરામ મટી ચોખાણી
ભાણુકે કદમસેં કદમસેં ખુબ ૫

ભજન ૭ મું.

14:48 Vo) LTE1

ભજન ૪ થું.

અક્ષરાતિત અલખ અવિનાશી,
ગુરૂગમસેં ઓળખાયારે. અક્ષરા. ટેક.
મુળ દાબકે મરમ પહીચાના,
વંક નાળમેં મ્રત સમાયા;
ચંદ સુર દોઈ એક ઘર આયા,
એસા અલખ લખાયારે. અક્ષરા. ૧
ઓળખાયા સતગુરૂકે શબ્દું,
શબ્દ વિનાં શુશ હું ન વંદું.
તન મન ખોજ બોજ નહિ અબદુ,
સો મેરે મન ભાયારે. અક્ષરા. ૨
જાકી સેજે અખંડ ઉજાયા,

(૫)

પુરણ બ્રહ્મ પ્રકાશા.
સબસે ન્યારા સબકે પાસા,
રરંકાર હે રાયારે. અક્ષરા. ૩
યું પેખે યોગી અબધુતા,
પ્રેમ રૂપ સીદ્ધાંતકા ભકતા.
જીવન મુકતા લહે કોઇ જુકતા,
સોહંગ રવીરામે પાયારે. અક્ષરા. ૪

ભજન ૫ સું.

સુન અનહદ ગડહડે,
સંતે પાયા ભેદ અપાર. ટેક.
સાન બતાઈ સતગુરૂ સ્હેજમાં
મુજપર કીનો મેહેર
ચડી ખુમારી ન ઉતરે
આઈ પ્રેમ કેરી લેહેર સુન ૧
નાભીસેં સુરતા ચલી
સુનમેં કીયો મુકામ
પછમ ઘાટથી પરવરી
નીરખ્યા નીરગુણ રામ સુન ૨
આસન હે અનંત ક્રોડકો
તખ્ત ત્રિવેણી તીર

ી નામ શાખ અનુભવી વીચારો,
ભાણુ ચરણુ કહે રવીદાસા. આતમ. ૪

ભજન ૧૧ સું.

નીરાધાર નીરગુણુ નીરવાણી,
નીરાલંબ સતગુરૂ મેરા. ટેક.
ઉષ્ણુ શીત વ્યાપે નહિ કબહું,
કરતા હેં સબહીં મેરા.
સમદ્રષ્ટિ શીતળતા સબમેં,
પ્રીત ન કરહીં નહી વેરા. નીરાધાર. ૧
ઇંગલા પીંગલા સુખમન ઘરમે,

ઘટ દેખત હુવા નેરા.
અણુલીંગી અખંડ અવીનાશી,
નીરખત તે ન રહે ફેરા. નીરાધાર. ૨
ગગના ગાજે અનહદ બાજે,
સુનતા હે સુરતી ચેરા.
બીના આકાશ બાદલ બીન વરસે,
હીરા માણેક મોતી ડેરા. નીરાધાર. ૩
સપત પુરીકે પાર પરમતત,
હરિજન વીરલે જઇ હેરા.
કહે રવીરામ વસ્તુ સબ માંહી,
સમજે સંત સળંગ સેરા. નીરાધાર. ૪

ભજન ૧૨ સું.

ભજન ૧૭ મું.

ગમ કરી લેને ગોતીરે,
ગગનમાં ગમ કરી લેને ગોતી. ટેક.
છત્રીશ વાજાં સ્વર કીયા,
માંહી તાર વાગે ત્રીકુટી.
ધનન ધનન ધન ગગનના ગરજે,
જનન જનન જન હોતીરે. ગગનમાં ૧
સત્ત શબ્દનો ચુડલો પહેર્યો,
પ્રેમ લગાડી પોથી.
અખંડ અનભે રંગ નીત નવા,
સુખમના સેહેજે સમોતીરે, ગગનમાં ૨
લેહુ લગનની લેહેર ઊલટી,
મુઠી ભરાણી મોતી.
હંસા હરિજન હીરા ચુગત હે,
ગુરૂ ગમસેં ગમ હોતીરે. ગગનમાં ૩
નાભી કમલસેં સુરતા ચલી,
પરા પાર જઈ પોતી.
અરજણ કહે ત્યાં અક્ષરાતીત હે,
જલમલ જલકે જ્યોતીરે. ગગનમાં. ૪

ભજન ૨૩ મું.

અલખ નામ ધુન લગી ગગનમેં,
મગન ભયા મન મેરાજી. ટેક.
આસન મારી સુરતા દ્રઢ ધારી,
દીયા અગમ ઘર ડેરાજી. અલખ. ૧
ઈંગલા પીંગલા દોનું છાંડકે,
સુખમણા મધ્યે ધારાજી.
ત્રીવેણીમેં તાર મીલાઈ,
અજંપા નામ ઉચારાજી. અલખ. ૨
જંત્ર અનહદ બાજે અહોનીશ,

હોત નાદ જણકારાજી.
ઘન બીન અદભુત હોત ગર્જના,
બરસે અમૃત ધારાજી. અલખ. ૩
કોટી કોટી રવી શશીકી શોભા,
જલ મલ જ્યોત ઊજારાજી.
જન છોટમ સતગુરૂ પ્રતાપે,
દરસ્યા અલખ દેદારાજી. અલખ. ૪

[રાગ હોરી]

સોહં સંગે ધુમ મચાઈ,
ગુરૂ ગ્યાનેમે સોહં સંગ ધુમ મચાઇ.

[૩૧]

ઇંગલા પીંગલા દોનું સાંધકે,
સુખમણા સંગ મેલાઈ.
અંજપા જાપ જપો નીસવાસ,
ત્રિકુટી ધ્યાન લગાઇ.
સુરત ધરી દેખો ભાઈ,
સોહંગ સંગ ધુમ મચાઈ. ૧
મુળ ઉપસ્ય મણી પુરે અનહદ,
વીશુધ આજ્ઞા ચક્ર જાઈ.
સકળ દેવકું જાપ સમરપો,
શહસ્ર દલે ચીત લાઇ.
દેખ લો જ્યોતી જગાઈ,
સોહં સંગ ધુમ મચાઈ. ૨
અનહદ ઘોર ગરજના અદભુત,
અનંત રંગ રહ્યો છાઇ.
ઝાંઝ જાલરી વીના વાંસળી,
ભેરી શંખ શરણાઇ.
સુરત તીહાં જાઈ લો ભાઇ,
સોહંગ સંગ ધુમ મચાઈ. ૩
સરવા તીત સદોહિત પુરણ,
સુદ્ધ ચિત જન સુખદાઈ.
જન છોટમ સતગુરૂ પ્રતાપસેં,
સો પદ કી ગમ પાઇ.

[૩૨]

જોગકી જુગત બતાઇ,
સોહંગ સંગ ધુમ મચાઈ. ૪

ભજન ૩૯ સું.

વર્ણન [માછીડા હોડીડા હંકાર એ રાગ]

તેરા ઘટમેં બજે ઘડીયાલા,
ગગન ધુન બાંસુરીયા. ટેક.
ઓહંગ સોહંગ કા લંગર ડોલે.
પલ પલ ઘાટ ઘડે.
અષ્ટ કમલ દશ શરખા ચાલે,
હરનીશ ખબર પડે. ગગન. ૧

નાભી કમલસેં ઉઠે ગર્જના,
અનહદ ગગન ચડે.
બંક નાળસેં સુન શીખરમે,
જો કોઈ ખોજ કરે. ગગન. ૨
ઈડા પીંગલા સમ કરી રાખો,
સુખ મન સુરતા સમાવે.
મુલા ધાર કો બંધ લગાકે,
ઉલટા પવન ચલાવે. ગગન. ૩
મેરૂ દંડસેં ઘાટ ત્રીકોટી,
આસન અદલ જમાવે.
બીન બાદલ જ્યાં અમર બરસે,
જહાં મન સહેજ સમાવે. ગગન. ૪
દ્વાદશ નાદ અનહદ બાજે,
નવસો મંગળ ગાવે.
નુરત સુરતસેં શત્રુ દલમે,
કરક અભય પદ પાવે. ગગન. ૫

અનભે વાતો અટપટી,
જેની જોગ કળા ગત છે જીણી;
દેવ ગુરૂના વેચ્યા વેચાણી,
સહુ સંતો એ લેશે વીણી. અ. ૧
નાભી કમળથી સુરતા ચાલી,
નીરાધાર જઇ ઠેરાણી,
માન સરોવર મોતી વીણે છે,
જ્ઞાન સભામાં ઘેરાણી. અ. ૨ 58
ચઢી ફોજ ને હુવા નગારા,
નીર્ભય નોબત ઘેરાણી;
સુરત નુરત દો ચઢી શીખરપર,
બ્રહ્મ અગ્નીમાં હોમાણી. અ. ૩

(૪૩)

શુન્ય શિખર પર સેસીયો વાગે,
નોબત વાગે માંહી નીશાની;
ગુપ્ત ગોળી જ્ઞાનની લાગી,
પડ પુટા ને ઉઘડયા પાણી. અ. ૪
ઘેરી લીધા કોટક મુદ્રા,
ભુલ ભ્રાંત ભ્રમણા ભાગી;
ચાર વેદાંત પર ચોપટ ખેલે,
અલખ પુરૂષ શું લેહ લાગી. અ. ૫
અકળ સ્વરૂપી કળ્યા ન જાઈ,
આસન બેઠા અવિનાશી;
તોડી માંહેલા ત્રણ ગુણોને,
મારેલ માંહેલો મેવાશી. અ. ૬
ગોતી લો ગગન મંડળમાં,
આભા મંડળમાં ઉન્મુની;
દેવ ડુંગરપરી અર્ણુની સેવા,
જાહેર વાતો એ થઈ જુની. અ. ૭

15:06

ભજન ૬૫ મું.

એસા કોઈ અવધુતા,
મનકું પકડ બાંધે.
સુરતા નાર ઘર લાવેરે. ટેક.
અગમ ખિડકી ખોલે,

પછમ દિશાકું ચલે.
બંક નાળ ઘર પાવેરે. એસા. ૧
બંકનાહ ઘર પાવા,
સૂનકે શીખર આવા.
શબ્દમાં સુરતી સમાવે. એસા. ૨
અન ભયકી ઘટા ચઢી,
પ્રેમકી લાગી જડી.
નીર્ભય નીસાના ઊડાવેરે. એસા. ૩
સત્યલોક બાસ કીના,
ગુરૂકે ચરણુ ચીના.
નીર્મળદાસ જસ ગાવેરે. એસા. ૪

ભજન ૭૦ મું.

વર્ણન.

[મંગલ ત્રીતાલ]

(બ્રહ્માનંદના ભજન.)

જોગ જુગત હમ પાઈ,
સાધો જોગ જુગત હમ પાઈ. જો. ૧
મુલ દ્વારમે બંધ લગાયો,
ઉલટી પવન ચલાઈરે.
પેટ ચક્રકા મારગ શોધા,
નાગન જાય ઊઠાઈરે. જો. ૨
નાભીસે પશ્ચિમકે મારગ,
મેરૂ દંડ ચઢાઈરે.
ગ્રંથી ખોલ ગગનપર ચઢીયા,
દશમે દ્વાર સમાઈરે. જો. ૩

ભ્રમર ગુફામે આસન માર્યો,
કાયા શુદ્ધી બિસરાઈરે.
બિન ચંદ બિન સુરજ નીશદિન,
જગ મગ જ્યોત જગાઈરે. જો. ૪
શિવ શક્તિકો મેલ ભયો જબ,
શૂન્યમે સેજ બીછાઈરે.
બ્રહ્માનંદ સદગુરૂ કૃપાસે,
આવા ગમન મિટાઈરે. જા. ૫

ભજન ૭૧ મુ.

(મંગલ ત્રિતાલ)

સોહં શબ્દ બિચારો,
સાધો સોહં શબ્દ બિચારોરે. સો.
માલા કરસે ફિરત નહી હે,
જીભ ન વર્ણું ઉચારોરે.
અજપા જાપ હોત ઘટ માંહી,
તાકી ઓર નીહારોરે. સો.
હંસ અક્ષર સેં શ્વાસ ઉઠંવા,
સોસે જાય બિઠારોરે.
હંસો ઉલટ હોત હે સોહં,
જોગી જન નિર્ધારોરે. સો.

સબ એકીસ હજાર મીલાકે,
છેસો હોત શુમરોરે.
અષ્ટ પ્રહરમે જાગત સોવત,
મનમેં જપા સુખારોરે સો. ૪
જો જન ચિંતન કરત નીરંતર,
છોડ જગત વ્યવહારોરે.
બ્રહ્માનંદ પરમ પદ પાવે,
મિટે જન્મ સંસારોરે. સો. ૫

ભજન ૭૨ મું.

[મંગલ ત્રિતાલ.]

અનહદકી ધુન પ્યારી,
સોધો અનહદકી ધુન પ્યારીરે. અ. ૧
આસન પદ્મ લગાકર સેં,
રૂંધ કાનકી બારીરે.
ઝીની ધુનમેં સુરત લગાવો,
હોત નાદ ઝનકાંરીરે. અ. ૨
પહુલે પહુલે રલમિલ બાજે,
પીછે ન્યારી ન્યારીરે.
ઘંટ શંખ બંસરી બીણા,
તાલ મૃદંગ નગારીરે. અ. ૩

દિન દિન સુનત નાદ જબ બિકસે,
કાયા કંપત સારીરે.
અમૃત બુંદ ઝરે મુખ માંહી,
જોગી જન સુખકારીરે અ. ૪
તનકી શુદ્ધ સબ ભુલ જાત હૈ,
ઘટમેં હોય ઉજારીરે.
બ્રહ્માનંદ લીન મન હોવે,
દેખી બાત હમારીરે. અ. ૫

ભજન ૭૫ મું.

સુષ મન સહુજ સમાની,
સંતો જાનતહે કોઈ જ્ઞાનીરેએએએએ સંતો.
ઇંડા પિંગલા ઓર સુષમણા,
તીનો ઠર ઠેરાની.
બંક નાલ રસ પીઓ નીરંતર,
ઉન્મુની સુરત સમાની. સંતો.
મુલ બંધ ઊડીયાન જલંદર,
તીનો બધ લગાની.
પુરક કુંભક રેચક કંકે,
તુરત સુરત મિલાની. સંતો.
ખેચરી ભુચરી, અગોચરી ચાચરી,
ઉન્મુની મુદ્રા સાની.
ઉન્મુની મધ્યે અચરત જયોતી,
જલ મલ કાર કરાની. સંતો.
તામેં મનવા થિર કરી રાખો,
પાવો પરમ નિશાની.
બ્રહ્માનંદ કહે મનવા,
સોહે પદ નિર્વાણી. સંતો.

ભજન ૯૮ મું.

નબીના ભજન.

તેરી સુરત ગગનમેં ઘેરી,
તુંઝે જોયો મેં હેરી હેરી. તેરી.
પ્રથમ મુળ કનેથી ચાલે,
બંકનાલ ગઢ ઘેરી.
ઓત ગર્જનામેં ગુરૂરૂ ગર્જે,
ખુલી સુંદર તન શેરી. તું. ૧.
ઇડા પીંગલા સુક્ષમણા,
નાડી શુકલ બહોતેરી.
મહા સુન્યમે બાજા બજત હે,
પાઇ નીરંજન દેરી. તું. ૨.
વો દેરીમેં આતમા ખેલત,
જલકે નુર ચોફેરી.
નીરાકારકી નીરખી મુર્તી,
ખબર માંહી સમેરી. તું. ૩.
અલખ અંગમે જઇ સમાઇ,
મીટ ગઇ નૈના દેરી.
દાસ નબીકું ડરપ નહીં ભાયા,
નીરખત સાંજ સવેરી. તું. ૪.

રાજા પ્રજા જુગત જોગી,
ખલક ખડીઓ જાય.
નીરગુણ ધાયવાળા ધાયજી. ટેક.
પહેલા સતગુરૂ સમરીયે,
ગુણ પતી લાગું પાયજી.
મુળ ઊપર પદ્મ આસન,
ઉલટ પવન ચડાયજી. નીરગુણ. ૧
ડાબી ઈંગલા જમણી પીંગલા,
બીચ સુખમન લાયજી.

રસનાંથે પ્રેમ પીવણા,
બંક નાળ જગાયજી. નીરગુણ. ૨
નાભી કમળ બીચ અસ્ટ પાંખડી,
ચેતન હોય જગાયજી.
ઊંધા હે વાકું સીધા કરલે,
જગ મગ જ્યોતી જલાયજી. નીરગુણ. ૩
ગગન મંડલ વાજાં વાગે,
સીંગી નાદ ઘુરાયજી.
અખે મંડલ અમર પુરૂષ,
પુરા જોગી જાયજી. નીરગુણ. ૪
નેને સાસા પીયુ શોધ્યા,
પીયુ મીલી આયાજી.
હીરા હુંદી જ્યોતિ જલકે,
એરણ ચડીયો જાયજી. નીરગુણ. ૫
અધર દુલેચે સતગુરૂ બેઠા,
હીર સેં લે લાયજી.
દાસ કબીરા હુવા નીરભે,
જંગી ઢોલ બજાઇ. નીરગુણ. ૬

ગગન મંડલ ઘર કીજે જોગેશ્વર,
બંક નાલ રસ પીવણાજી. ટેક.
ગુડ કરલે જ્ઞાન ધ્યાન કરલે મહુવા,
તન ભાઠી મન બારા હે.
સુખ મન નારી જગાવન હારી,
પીવો પીયો પીવન હારા હેજી. ગગન. ૧
હોઈ સ્વર જોડ રચાઈ લે ભાઠી,
અમીરસ હોગીઆ ભારી હે જી.
આવન જાવનકા મટ ગયા ફેરા,
ચોટ નહિ જમ ડારી હેજી. ગગન. ૨

[૧૨૪]

મેં મારા માયલા ને સુરંગ ચલાયો,
પરચ્યો ગઢ કેરો રાજા હેજી.
જબ મેરો મનવો શીખર ગઢ ચડીયો,
મગન ભયા રંગ લાગા હેજી. ગગન. ૩
આરે શહેરમાં રૈયત હમારી,
અજર અમર ઘર મેરા હેજી.
કહત કબીરા અંતર ધુન લાગી,
બાહીર નહિ દઉં ફેરા હેજી. ગગન. ૪

ભજન ૧૦૮ મું.

ઐસા હે વૈરાગી સો રહત,
મદન વીખ ત્યાગી. સંતો ઐસા. ટેક.
સો વૈરાગી બ્રહ્મ સું જગડા,
સુન મંડલ ધર્મશાળા.
સોહં તંત પવનકર ધાગા,
જપે અજપા માળા. સંતો. ૧
ગંગા યમુના મધ્ય સરસ્વતિ,
અરધ સુધારસ ધારા,
કુર સ્નાન મગન હોઇ બેઠે,

બાજત અનહદ તારા. સંતો. ૨
ત્રિકુટી મધ્યે તીલક સંજોવે,
બંક નાલ ગૃહ મુંલા.
પશ્ચિત દીશકી ખડકી ખોલે,
અસ્ટ કમલ દલ પુલા. સંતો. ૩
પંચન કે પરપંચ મીટાવે,
છઠા ધ્યાન લગાવે.
કહે કબીરા જોગુ જુગત સું,
બહુ રીન ભવ જલ ન આવે. સંતો. ૪

ભજન ૧૧૦ મું.

તુમ સુનતા હો ગુરૂ જ્ઞાની,
ગગનમેં અવાજ હોતી જીણું. ટેક.
પહીલી ઉત્પતી નાદ બીંદુકી,
પીછે જમાયા પાની.
પુરણ બ્રહ્મ તો પુર રહ્યા છે.
અલખ પુરૂષ નીરબાની. ગગન. ૧

સતગુરૂ પાયા પટા લીખાયા,
તૃષ્ણા ગઇ બુઝાની.
વીખ રસ છાંડ અમીરસ પીયા,
ઉલટી રાહ પીછાની. ગગન. ૨
ઓહં સોહં બાજાં બાજે,
ત્રિકુટી ધ્યાન સમાની.
ઇંગલા પીંગલા સુખ મન નારી,
શ્વેત ધ્વજા ફહરાની. ગગન. ૩
કહે કબીર સુનો ભાઇ સાધુ,
યાહી અગમકી બાની.
દીલભર હમહી નજરે દેખ્યા,
અજર અમર નીશાની. ગગન. ૪

ભજન ૧૫૪ મું.

જુવો ને ગગનાં હેરી,
ત્યાં બંસરી બાજે ઘેરી. કોઈ જુવો.
ત્રિવેણી ટંકશાળ પડતહે.
તાપર જીણી શેરી.
અમર અજીતા આશન બેઠા,
નગર બસાયા ફેરી. કોઈ જુવો. ૧
ઘડી ઘડી ઘડીયાલાં વાગે,
વાગેશ્વર ઘંટેરી.
ઢોલ નગારા સરનાઈ વાગે,
ધુમ મચી ચોફેરી. કોઈ જુવો. ૨
ગગન મંડલમેં કરલે બાસા,

વાંહે જોગી લેહેરી.
સતગુરૂએ મુંને સાન બતાઇ,
જાપ અજંપા કેરીં, કોઈ જુવો. ૩
સાસ ઉસાસ દોઇ નહીં પોંચે,
વા'લે લાગી મેરી.
નુરતેં સુરતેં નામ નીરખલે,
સુખમન માળા ફેરી. કોઈ જુવો. ૪
સાચા સતગુરૂ નેણે નીરખ્યા,
મીટ ગઈ રેન અંધેરી.
બીમદાસ ગુરૂ ભાણુ પ્રતાપે,
ચોટ નહિ જમ કેરી. કોઇ જુવો. ૫

15:29

ભજન ૧૬૦ મું.

(ત્રીકમ સાહેબના ભજન.)

મેરે સતગુરૂ લખી દીયા એવા પરવાના,
તેરા અગમ પંથ નીરવાણા. મેરે. ટેક.
નાભી કમલથી ઉલટયો આવે,

ગગન ધુન ગરજાનાં. મેરે સતગુરૂ. ૧
ઈંગલા પીંગલા સુખમન સાધી;
ત્રિવેણી તાર મીલાનાં. મેરે સતગુરૂ. ૨
નામ નીરંજન તેજ અપારા,
તકીયા તીયાં ટકાનાં. મેરે સતગુરૂ. ૩
ખીમ ભાણ રવી રમતા રામા,
અરસ પરસ દરસાના. મેરે સતગુરૂ. ૪
રમતા રામા સન્મુખ સામા,
સહેજ સુનમેં સમાના. મેરે સતગુરૂ. ૫
ત્રીકમદાસ સતખીમ ચરણાં,
ઠીક કરી ઠેરાના. મેરે સતગુરૂ. ૬

ભજન ૧૯૫ મું.

ભેદ ભરમના મારી ભાગીરે,
મનવો મારો વૈરાગીરે વૈરાગી. ટેક.
કુટુંબ કબીલાની કુડી છે માયા,
તુરત જોયું મેં ત્યાગીરે. મનવો. ૧

ત્રીવેણી ઉપર તાર મીલાયા,
જીલમીલ જ્યોંતિ માંઇ જાગીરે. મનવો. ૨
ઈંગલા ને પીંગલા સુખમણા ઉપરે,
અનહદ નોબત વાગીરે. મનવો. ૩
ખીમને ભાણુ રવી રમતા રામા,
અરસપરસ અનુરાગીરે. મનવો. ૪
ત્રીકમદાસ સત ખીમનાં ચરણાં,
ચરણ કમલમાં લે લાગીરે. મનવો. ૫

ભજન ૧૯૬ મુ

[મોરાર સાહેબના ભજન.]

સોહંગ સત લોક કે વાસી,
અબ મોહી ગુરૂ મલ્યા સુખરાશી. સંતોસોહંગ
સત શબ્દો સત ગુરૂ સમજાયા,
પરમ જયોતી પ્રકાશી. અબ મોહી ૧
નીરમલ જ્ઞાન નીજ નામ બતાયા,
આત્મ તંત અભ્યાસી. અબ મોહી. ૨
ત્રીવેણી સંગમ તાર મીલાયા,
સુરતી શબ્દ સમાસી. અબ મોહી. ૩
સુન શીખર પર ડેરા દીના,
બેહદ નાદ બજાસી. અબ મોહી. ૪

ભજન ૧૭૪ મું.

ભીમ સાહેબનો ઉત્તર.

જીવણ જીવ જીયા રખીયે,
વાગે અનહદ તુરરે.
જીલમીલ જયોતું જળ હળે,
વરસે નીરમળ નુરરે. જીવણ. ટેક
પાંચ તત્વને તિન ગુણ,
પચવીસાં વિચારીરે.
મથન ગોતોને મુળમાં,
તત્વ લેજો તારીરે. જીવણ. ૧
ગંગા જમુના સરસ્વતીરે,
ત્રિવેણી ને ઘાટેરે.
સુખમન સુરતા રાખીયે,
વળગી રહીયે વાટેરે. જીવણ. ૨
આણી અમર પર એક છે,
હેરા રમતા રામારે.
વીસરીન જીરઓ નેનમાં,
સતપુરૂષ સામારે. જીવણ. ૩
અધર જણુકારા હોઇ રીયા,
કરણીન વાજાં વાગેરે.
સુરતા ધરીને સાંભળો,

ધુન ગનમાં ગાજેરે. જીવણ. ૪
નુરત સુરતની સાધના,
પ્રેમી જન કોઇ પાવેરે.
અંધારૂં ટળે એની આંખનું.
નુર નજરે આવેરે. જીવણ. ૫
સંદેસો સત લોકનો,
ભીમ સાહેબે ભેજયોરે.
પત્ર લખ્યો ગુરૂવે પ્રેમનો,
જીવણ લગનેથી લેજોરે. જીવણ. ૬

ભજન ૧૭૫ મું.

(જીવણદાસના ભજન.)

સો જોગી જાવે ગગન મંડળ ઘરમાંય.
ઈંગલા પીંગલા સુખમેન સાધી,
ઉલટા પવન ચડાયા. સો જોગી. ટેક
આશનવાળી બેઠા અબધુ,
તકીયાં તીયાં ટકાય. સો જોગી. ૧
સબ ઘટમેં એક સાહેબ દેખ્યા,
નજર ભરમેના નાંઈ.
હરખ શોક વ્યાપે નહી તનમાં.
એસી અકલ ચલાઈ. સો જોગી. ૧

અખંડ લીલા ખંડીત નાહી ખંડમાં,
પ્રેમેં પ્રીત લગાય.
આઠ પહોરકા હુવા આનંદા,
કાળ કણું નહિ ખાય. સો જોગી. ૩
સોહંગ ઘર જાવે સંત સુહાગી,
બીક કછુવે નાહી.
દાસ જીવણ સત ભીમકાં ચરણાં,
અટળ અભે પદ પાઇ. સો જોગી. ૪

ભજન ૧૭૬ મું.

હે જોગેશ્વર લેરે.
ગગનાંમાં ધ્યાન ધરી તું લે. ટેક.
અબધુ જાડ અનોપમ દેખ્યા,
અષ્ટ કમળ દો ડાળી.
ઉન ઘર તો એક જોગી બેઠા,
ઉનમુંન આસન વાળીરે. ગગનાં. ૧
ગમકર ગમકર દેખ ગગનમાં,
અનહદ વાજાં વાજે,
ઉંન ઘર જનનન જાલર બાજે,
ધનનન નોબત બાજેરે. ગગનાં. ૨
ઉલટા સુલટા આસન કરલે,

ગં નાળનાં જાગ્રી.
સુખમણાં રા રાહ ચલાયા,
ભરમર પ્રેમની પ્યાસીરે. ગગનાં. ૩
રહત પુરૂષ જોગી બહુ રંગી,
નજરે લેતું ન્યાળી.
દાસ જીવણ સત ભીમકા ચરણાં,
તનડામાં લાગી છે તાળીરે. ગગનાં. ૪

15:36

ભજન ૧૮૦ મું.

આજોને ગગન માંરે,
ગોટકા ખેલે છે જ્ઞાની. આજોને ગગનમાં. ટેક
અટગ અજંગી એવા,
પુરૂષ અલંગીવાલા,
દસમેં દ્વારે મેંતો,
દેખ્યારે દીવાના જ્ઞાની. આજોને. ૧
ઈંગલા ને પીંગલારે,
સુખમના સાંધી લે.
જાલમ જોગેશ્વર નેતું,
જોવાને જાને રેજાની. આજોને. ૨
અગમ ખડકી ખોલી,
જોને અસમાને.

ઉલટા આકાસેં ચડી,
લેને તું પીછાની જ્ઞાની. આજોને. ૩
દાસ જીવણ સંતો,
ભીમ કેરા ચરણાં.
માલમ જોગેશ્વર મળ્યા,
મજરાતો લીધા છે માની. આજોને. ૪

દાણુ ન માગે દાણી,
સતગુરૂ સાહેબે લખી પરવાની રેજી. ટેક.
અહોનીશ આજો મારે નેડલે આવે,
બરકી બોલાવું બાંનીરેજી.
રામ નામની રઢ જેને લાગી,
નશાં પોંચ્યા નીરવાણી. સતગુરૂ. ૧
ઈંગલા પીંગલા ઊનકી અધવીચ,
ધ્યાન ધરી લે ધ્યાની રેજી.
લઇ પવના ગગનામેં જાવે,
ઉલટ ચડે અસમાની. સતગુરૂ. ૨
નજરેં આયા મેરી નજરેં આયા,
હરદમ હીરલા ખાણી રેજી.

સત શબ્દનાં સુખ જેને લાધ્યાં,
તેણે વાત મેરી માની. સતગુરૂ. ૩
ઘોર ઘણુંકા વીજ ચમુંકા,
સુરતી શબ્દમેં સમાણી રેજી.
પ્રેમને ગુરૂ જીવણ ભેટયા,
ગાયા ગગન નીશાની. સતગુરૂ. ૪

ભજન ૧૮૫ મું.

સત સતગુરૂજી પાયા,
સંતો મેરા ભુલ્યા દીલ સમજાયા રેજી. ટેક.
ગુરૂવેં કીયાને મેં સાંભળીયા,
તુરતેજ નીરખીયારે.
સુરતા જઈ ઊન શહેરમાં પોંચી,
ગગન મંડલ ગરજાયા રેજી. સત. ૧
સતકું સંધ્યા હોઊકું બંધ્યા,
નવરી વ્રત પર આયારેજી.
ઉલટ સુલટ કરી ચડયા અસમાને,
ત્યારે આપમેં આપ સમાયાજી. સત. ૨
સુન શીખર પર સતગુરૂ મળીયા,
હેત તીયાં [illegible]

ભજન ૧૮૬ મું.

વીસરામના પદ.

આજ આનંદ મોહી આયા,
સતગુરૂ ભીતર ભેદ બતાયા રેજી. ટેક.
સોહં અજપા જાપ લગાયા,
સુરતિ સુન ઘર લાયા રેજી.
ઈંગલા પીંગલા આશન ઉપર,
સુખ મન ધ્યાન લગાયા. સતગુરૂ. ૧
રંણુકાર મેં રંગ મીલાયા,
ત્રિકુટી તાર સંધાયા રેજી.
ભમર ગુફામેં ભમર ગુંજત હે,
અનહદ નાદ બજાયા. સતગુરૂ. ૨
શ્યામ સફેત લાલ રંગ લીલા,
પીળાં રંગ પરખાયા રેજી.

એ સબ પાંચ તત્વ કે ગુણ હે,
ઉસ પર આતમ પાયા. સતગુરૂ. ૩
બાહીર ભીંતર સબ ઘટ દેખ્યા,
દુતીયા ભેદ મીટાયા રેજી.
કહે વીસરામ ભયા મમ મગના,
પ્રેમ ચરણ ગુણ ગાયા. સતગુરૂ. ૪

ભજન ૧૯૫ મું.

જાગો જાગોરે મોટા મુનીવરા.
સેજે સતગુરૂ પાયાજી,
રણુંકારની ધુંનમાં,
મનવા તામેં મીલાયાજી. જાગો. ટેક
નાભી કમલ પર નેજા ફર હરે,
ઉઠે શબ્દ સવાયાજી.
ત્યાં અવિનાશીકા ધામ હે,
હંસે વાસ વસાયાજી. જાગો. ૨
ઈંગલા પીંગલા સુખમનાં,
ત્રિવેણી રસ લાયાજી,
વંક નાળ ઉલટી વહે,
દસમે દ્વાર સમાયાજી. જાગો. ૨
સુન પંથી સુન આકાશહે,
સુન સંતકી છાંયાજી.
તન તુટે મન ક્યાં ગયા,
નીંજ કહાંરે સમાયાજી. જાગો. ૩
ગગન મંડલકું મેં ક્યા કરૂં,
ક્યા કરૂં સુંન સવાયાજી.
ક્યા કરૂં એ હંસકું,
એક દીન સબ પર આયાજી. જાગો. ૪

અવિનાશી વણસે નહિ,
વણસે સોહી માયાજી.
કહેરે અખો અગાજ હે,
આતમ વિરલે પાયાજી. જાગો. ૫

જોગ જુગત હમ પાઈ,
સાધો જોગ જુગત હમ પાઈ. જો. ૧
મુલ દ્વારમે બંધ લગાયો,
ઉલટી પવન ચલાઈરે.
પેટ ચક્રકા મારગ શોધા,
ના ગન જાય ઊઠાઈરે. જો. ૨
નાભીસે પશ્ચિમકે મારગ,
મેરૂ દંડ ચઢાઈરે.
ગ્રંથી ખોલ ગગનપર ચઢીયા,
દશમે દ્વાર સમાઈરે. જો. ૩

(૮૨)

ભ્રમર ગુફામે આસન માર્યો,
કાયા શુદ્ધી બિસરાઈરે.
બિન ચંદ બિન સુરજ નીશદિન,
જગ મગ જયોત જગાઈરે. જો.
શિવ શક્તિકો મેલ ભયો જબ,
શૂન્યમે સેજ બીછાઈ રે.
બ્રહ્માનંદ સદગુરૂ કૃપાસે,
આવા ગમન મિટાઈરે. જા.

ભજન ૭૫ મું.

સુષ મન સહજ સમાની,
સંતો જાનતહે કોઈ જ્ઞાનીરેએએએએ સંતો.
ઇંડા પિંગલા ઓર સુષમણા,
તીનો ઠર ઠેરાની.
બંક નાલ રસ પીઓ નીરંતર,
ઉન્મુની સુરત સમાની. સંતો.
મુલ બંધ ઊડીયાન જલંદર,
તીનો બધ લગાની.
પુરક કુંભક રેચક કંકે,
તુરંત સુરત મિલાની. સંતો.
ખેચરી ભુચરી, અગોચરી ચાચરી,
ઉન્મુની મુદ્રા સાની.
ઉન્મુની મધ્યે અચરત જ્યોતી,
જલ મલ કાર કરાની. સંતો.
તામેં મનવા થિર કરી રાખો,
પાવો પરમ નિશાની.
બ્રહ્માનંદ કહે મનવા,
સોહે પદ નિર્વાણી. સંતો.

नेत्रतन्त्र के सप्तम अधिकार में सूक्ष्म ध्यान का वर्णन मिलता है। व्याख्याकार क्षेमराज ने इसको कुलप्रक्रिया, अर्थात् कौलिक योग कहा है। कुलागम, कुलतन्त्र, अर्थात् शिवोक्त शास्त्रविशेष में वर्णित योग का नाम है कौलिक योग। तदनुसार छः चक्र, षोडश आधार, तीन लक्ष्य, पांच व्योम, बारह ग्रंथि, तीन शक्ति, तीन धाम, तीन और दस नाडी तथा दस प्राणों से समन्वित व्याधिग्रस्त इस पिण्ड (शरीर) को सूक्ष्म ध्यान के माध्यम से आप्यायित करने पर योगी को दिव्य देह की प्राप्ति होती है। जन्म, नाभि, हृदय, तालु, बिन्दु और नाद स्थान में नाडी, माया, योग, भेदन, दीप्ति और शान्त नामक छः चक्र स्थित हैं। अंगुष्ठ, गुल्फ, जानु, मेढ्, पायु, कन्द, नाभि, जठर, हृदय, कूर्मनाडी, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरन्ध्र और द्वादशान्त ये सोलह आधार हैं। अथवा कुल, विष, शाक्त, वह्नि, घट, सर्वकाम, संजीवन, कूर्म, लोल, सुधाधार, सौम्य, विद्याकमल, रौद्र, चिन्तामणि, तुर्याधार, नाड्याधार नामक कुलप्रक्रियासंमत सोलह आधारों को यहां ग्रहण किया जा सकता है। अन्तर्लक्ष्य, बहिर्लक्ष्य और उभयविध लक्ष्य ये तीन लक्ष्य हैं। माया, पाशव, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, इन्धिका, दीपिका, बैन्दव, नाद और शक्ति ये बारह ग्रन्थियां अर्थात् पाश हैं। इच्छा, ज्ञान और क्रिया ये तीन शक्तियां हैं। सोम, सूर्य और वह्नि ये तीन धाम हैं। सव्य, अपसव्य

और मध्य पवन स्थित इडा, पिंगला और सुषुम्णा नामक तीन नाडियों तथा इनके साथ गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशा, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी नाडी को जोड़ देने पर दस नाडियों और इनके माध्यम से बहने वाले प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय नामक दस प्राणों से यह शरीर आवृत है। वस्तुतः यह शरीर 72 हजार अथवा साढ़े तीन करोड़ नाडियों से जकड़ा हुआ है और आणव, मायीय और कार्म मलों के कारण मलिन भी हो गया है। अतः दिव्य देह की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि साधक योगी कन्द स्थान में चित्त को एकाग्र कर संकोच और विकास का अभ्यास करें। मध्यविकास की प्रतीक्षा करता हुआ वह मतगन्ध स्थान को दबावे, जिससे कि मध्यधाम सुषुम्णा की ऊर्ध्व गति उन्मुक्त हो जाए। कन्द भूमि में जब यह शक्ति जग जाती है, तो साधक को खेचरी मुद्रा प्राप्त हो जाती है। इसके प्राप्त होने से प्राण उसके अधीन हो जाता है और मन्त्र के प्रभाव से उसकी गति द्वादशान्त की तरफ मुड़ जाती है। पहले उसका प्राण समना धाम में प्रविष्ट होता है। वहां उसे अपान के उल्लास के लिये चन्द्रोदय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। चन्द्रोदय हो जाने पर योगी उससे प्राप्त अमृत से शरीरवर्ती चक्र, आधार प्रभृति को सिंचित करता है और इस प्रकार अपने पूरे शरीर को दिव्य बना लेता है, अर्थात् उसका स्वात्मस्वरूप प्रस्फुटित हो उठता है। नित्याषोडशिकार्णव (4/12–14) में भी इस स्थिति का वर्णन मिलता है।

मिलता है। कुलार्णव वर्णित मूर्छा की यहां गणना नहीं है। वेध दीक्षा का अभिप्राय यह है कि सद्गुरु द्वारा दृष्टि, स्पर्श अथवा शब्द आदि से विद्ध शिष्य के सभी पाश क्षीण हो जाते हैं और वह आनन्द से लेकर घूर्णि पर्यन्त दशाओं से आविष्ट हो जाता है, निर्मल स्वच्छ स्वात्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।

द्वादशान्त

प्राण और अपान की गति की जिस स्थान पर उत्पत्ति होती है, अथवा जाकर जहां रुक जाती है, उसको हृदय और द्वादशान्त कहते हैं। बाह्य और आन्तर शिव द्वादशान्त और शक्ति द्वादशान्त के भेद से द्वादशान्त की द्विविध स्थिति मानी गई है। कभी–कभी शून्यातिशून्य मध्यधाम, अर्थात् सुषुम्ना नाडी को भी द्वादशान्त कहा जाता है। तंत्रालोक की टीका (5/71) में सभी नाड़ियों के अग्रभाग में द्वादशान्त की स्थिति मानी गई है। द्वादशान्त

पद की व्याख्या करते हुए शिवोपाध्याय (वि.भै.पृ. 43) कहते हैं कि शरीर के प्रत्येक रोमकूप में द्वादशान्त की स्थिति है। यहां द्वादशान्त पद का प्रयोग लाक्षणिक है। जैसे मुख्य द्वादशान्त की स्थिति द्वादश आधारों के अन्त में है, उसी तरह से सभी नाडियों के अन्त (रोमकूप) में भी प्राण शक्ति की स्थिति है। अतः यहां विद्यमान प्राणशक्ति को भी द्वादशान्त कह दिया जाए तो कोई अनौचित्य नहीं है। हकार की उत्पति हृदय में और सकार की उत्पत्ति द्वादशान्त में मानी जाती है।

हृदय स्थित कमलकोश में प्राण का उदय होता है। नासिका मार्ग से बाहर निकल कर यह बारह अंगुल चलकर अन्त में आकाश में विलीन हो जाता है। इसीलिये बाह्य आकाश योगशास्त्र में द्वादशान्त के नाम से प्रसिद्ध है। द्विषटकान्त, मुष्टित्रयान्त या शिरवान्त शब्द द्वादशान्त के पर्यायवाची हैं। नेत्रतन्त्र (8/41) की टीका में क्षेमराज ने तथा तन्त्रालोक (5/89–91) की टीका में जयरथ ने द्वादशान्त पद का अर्थ ऊर्ध्व द्वादशान्त किया है, जिसकी कि स्थिति शिखा के अन्त में है। इसमें उन्मना शक्ति का निवास है। इस प्रकार द्वादशान्त की स्थिति ब्रह्मरन्ध्र से पृथक मानी गई है। इसको द्वादशान्त इसलिये कहते हैं कि द्वादश आधारों के अन्त में इसकी स्थिति है।

निर्विकल्प महायोगी द्वादशान्त के भी ऊपर स्थित परमाकाश में जब पहुंच जाता है, तो उस स्थिति में सर्वात्मता का विकास होने से वह अनुत्तर शून्य में लीन हो जाता है। योगिनीहृदय (1/27, 34) में इसको महाबिन्दु कहा गया है। वहां आज्ञाचक्र तक की स्थिति को सकल, उन्मना पर्यन्त स्थिति को सकल–निष्कल और महाबिन्दु को निष्कल माना गया है। इस निष्कल स्वरूप में भगवती त्रिपुरसुन्दरी निवास करती है।

ऊपर हृदय से बाह्य द्वादशानत तक जाने वाला प्राण और नीचे बाह्य द्वादशान्त से हृदय तक जाने वाला जीव नामक अपान, यह प्राण शक्ति का उच्चारण है। प्राण शक्ति इनका निरन्तर उच्चारण करती रहती है, अर्थात् प्राण और अपान के रूप में स्पन्दित होती रहती है। स्वच्छन्दतन्त्र (7/25–26) में प्राण और अपान को प्राण शक्ति का विसर्ग और आपूरण व्यापार बताया गया है। तदनुसार प्राण का अर्थ है श्वास छोड़ना और अपान का अर्थ है श्वास लेना। पालि बौद्ध वाङ्मय में इसके लिये आनापान आश्वास–प्रश्वास) शब्द प्रयुक्त है। किन्तु वहां इनके अर्थ के विषय में विवाद है। आचार्य नरेन्द्र देव अपने ग्रन्थ बौद्ध–धर्मदर्शन में आश्वास–प्रश्वास शब्द पर टिपण्णी करते हैं—विनय की अर्थकथा के अनुसार 'आश्वास' सांस छोड़ने को और 'प्रश्वास' सांस लेने को कहते हैं। लेकिन सूत्र की अर्थ कथा में दिया हुआ अर्थ इसका ठीक उल्टा है। आचार्य बुद्धघोष विनय की अर्थ कथा का अनुसरण करते हैं। उनका कहना है कि बालक माता की कोख से बाहर आता है तो पहले भीतर की हवा बाहर निकलती है और पीछे बाहर की हवा भीतर प्रवेश करती है। तदनुसार आश्वास वह वायु है, जिसका निःसारण होता है और प्रश्वास वह वायु है, जिसका कि ग्रहण होता है। सूत्र की अर्थकथा में किया हुआ अर्थ पातंजल योगसूत्र के व्यासभाष्य के अनुसार है (पृ. 81)। योगभाष्य (पृ. 81) में वायु के आचमन (ग्रहण) को श्वास और निःसारण को प्रश्वास बताया गया है।

विज्ञानभैरव के 'ऊर्ध्वे प्राणः' प्रभृति श्लोक में प्राण और अपान शब्द का बुद्धघोष प्रदर्शित अर्थ ही स्वीकृत है। ऊर्ध्व और अधः शब्द का अर्थ पहले और बाद में किया जाना चाहिये। पहले प्राण बाहर निकलता है और

279

बाद में अपान का प्रवेश होता है। अपान को जीव इसलिये कहा जाता है कि प्राण के बाहर निकलने के बाद अपान जब शरीर में पुनः प्रविष्ट होता है, तभी यह बोध हो सकता है कि शरीर में जीवात्मा विद्यमान है। अपान के प्रवेश न करने पर शरीर शव कहा जायेगा। अपान के कारण ही शरीर में जीवात्मा की स्थिति बनी रहती है, अतः स्वाभाविक है कि अपान को जीव के नाम से जाना जाय।

स्वच्छन्दतन्त्र (7/25–26) भी इसी स्थिति को मान्यता देता है। भगवद्गीता (5/27) की श्रीधरी टीका में प्राण और अपान के लिये उच्छवास और निश्वास शब्द प्रयुक्त हैं। लोक व्यवहार में संकेत (शक्ति=समय) के अनुसार शब्दों के अर्थ बदलते रहते हैं। कभी–कभी वे परस्पर विरोधी अर्थों में भी प्रयुक्त होने लगते हैं। जैसा कि प्राण और अपान तथा उनके पर्यायवाची श्वास–प्रश्वास शब्दों के विषय में देखने को मिलता है। इन शब्दों का हृदय स्थित प्राण वायु और पायु स्थित अपान वायु से कोई संबंध नहीं है, किन्तु प्राण शक्ति की श्वास–प्रश्वास प्रक्रिया से ही इनका संबंध है। प्राण शक्ति की प्राण, अपान प्रभृति पांच या दस वृत्तियां भी इनसे भिन्न हैं।

में अर्धचन्द्र और बिन्दु से भूषित ड से लेकर फ पर्यन्त दस वर्ण सुशोभित हैं। इसके बीच में प्रातःकाल के अरुण वर्ण से सूर्य के समान कान्ति वाले त्रिकोणात्मक वैश्वानर मण्डल में रँ बीज का ध्यान किया जाता है। यह मण्डल तीन स्वस्तिक द्वारों से अलंकृत हैं। रँ बीज का वाहन मेष है, वर्ण रक्त है और इसका शरीर चतुर्भुज है। इस वह्नि बीज के देवता रुद्र है। इनका वर्ण सिन्दूर के समान है और इसकी अधिष्ठात्री योगिनी का नाम लकिनी है। (श्रीतत्वचिन्तामणि, षट्चक्रनिरूपण 6 प्र.)।

मध्यधाम

मध्यनाडी सुषुम्ना को शाक्त दर्शन में मध्यधाम कहा गया है। इसी को शून्यातिशून्य पदवी भी कहा जाता है। वस्तुतः मध्यधाम सुषुम्ना को शून्य और शिवतत्त्व को शून्यातिशून्य कहते हैं। मध्यधाम या मध्यदशा को शून्यस्वभाव इसलिये कहा जाता है कि यहां ज्ञाता–ज्ञान–ज्ञेय, प्रमाज्ञा–प्रमाण–प्रमेय आदि त्रिपुटियों की कोई सत्ता नहीं बची रहती। मध्यधाम के लिये शून्यातिशून्यं शब्द का प्रयोग लाक्षणिक है। इसका मुख्य प्रयोग शिवतत्व और उसकी अभिव्यक्ति के स्थान द्वादशान्त के लिये ही किया जाता है। सुषुम्ना नामक मध्यनाडी शून्यातिशून्य धाम द्वादशान्त में जाकर लीन हो जाती है, अतः इसको भी शून्यातिशून्य धाम कह दिया जाता है। इस शून्यातिशून्य स्वभाव मध्यधाम में विश्रान्ति ही योगी के लिये उपेय (प्राप्तव्य) है।

हृदय के मध्य में इसका निवास है। यह कमलनाल में विद्यमान अत्यन्त सूक्ष्म तन्तुओं के समान कृश आकार वाली है। इस मध्यनाडी के भीतर चिदाकाशरूप शून्य का निवास है। इससे प्राण शक्ति चारो ओर प्रसार करती है। साधक जब मध्यनाडी की सहायता से चिदाकाश में प्रविष्ट होता है, तब सोम और सूर्य, अर्थात् अपान और प्राण अथवा मन और प्राण सुषुम्ना में अपने आप विलीन हो जाते हैं। प्राण और अपान के मध्यवर्ती धाम सुषुम्ना (मध्यनाडी) में जिसका आन्तर और बाह्य इन्द्रिय चक्र (मन और उससे नियन्त्रित चक्षुरादि इन्द्रियां) लीन हो जाता है और जो ऊर्ध्व स्थान और अधःस्थान में विद्यमान अकुल और कुल पद्मों के संपुट के मध्य में भावना के बल से प्रविष्ट हो गया है, अर्थात् ऊर्ध्वगत प्रमाण रूपी पदम और

अधःस्थित प्रमेय रूपी पदम् के मध्य में चिन्मात्र प्रमाता के अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है और इसीलिये चिन्मात्रता के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु में जिसका चित्त संलग्न ही है, वह योगी स्वात्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यहां प्रमेय रूप संसार का निमेष और उन्मेष व्यापार पद्मदल के संकोच और विकास के तुल्य है। इसीलिये इसकी पद्मसंपुट से तुलना की गई है।

मध्यमा कहा जाता है। नवनादात्मक इस मध्यमा वाणी से ही वर्णात्मिका वैखरी वाणी अभिव्यक्त होती है। योगिनीहृदय में इसको ज्येष्ठा शक्ति कहा है।

मध्यविकास

प्राण और अपान के आधारभूत स्थान आन्तर आकाश हृदय और बाह्य आकाश द्वादशान्त में प्रत्यावृत्ति के अभाव में एक क्षण के लिये प्राण या अपान की वृत्ति अन्तर्मुख हो जाती है। तब ऐसी प्रतीति होती है कि मानो प्राण और अपान कहीं विलीन हो गये हैं। इस स्थिति को मध्यदशा के नाम से जाना जाता है। इस मध्यदशा का जब विकास किया जाता है, तब धीरे–धीरे साधक की भेद–दृष्टि (दूसरे से अपने को अलग समझने

का स्वभाव) घटती जाती है और उसकी बाह्य और आन्तर इन्द्रियां अन्तर्मुख होने लगती है। क्रमशः उसका प्राणचार (प्राण और अपान की गति) मध्यनाडी सुषुम्ना में लीन हो जाता है और तब परा शक्ति भैरवी से अभिन्न रूप में विद्यमान भगवान् भैरव का स्वरूप प्रकाशित हो उठता है।

हृदय, कण्ठ, तालु, ललाट, ब्रह्मरन्ध्र और द्वादशान्त में प्राण की गति रहती है और हृदय–कमल, मुख का संकोच–विकास तथा द्वादशान्त–ये अपान की गति के स्थान है। इनमें एक क्षण के लिये प्राण के अस्त हो जाने पर और अपान का उदय न होने पर बिना प्रयत्न के बाह्य कुम्भक की प्राप्ति होती है। इसी तरह से एक क्षण के लिये अपान के अस्त हो जाने पर और प्राण का उदय होने पर बिना प्रयत्न के अन्तःकुम्भक की प्राप्ति होती है। यह मध्यदशा ही परम पद कहलाती है। प्राण–अपान की इस मध्यदशा को योगी ही जान सकते हैं। एक तुटि, लव अथवा क्षण के लिये भी अन्तर्मुख हो जाने पर योगी में इस मध्यदशा का विकास हो जाता है और तब प्राण और अपान की पुनः प्रत्यावृत्ति नहीं होती, अर्थात् वह मुक्त हो जाता है।

यह प्राणात्मक और अपानात्मक शक्ति हृदय से द्वादशान्त तक न तो जायेगी और न द्वादशान्त से हृदय की ओर वापस ही लौटेगी, जबकि मध्यनाडी का धाम (स्थान) विकल्पहानिरूप उपाय से विकसित कर दिया जाए। प्राण और अपान की गति के शान्त हो जाने से, हृदय और द्वादशान्त में प्राण और अपान की अस्पन्द अवस्था में स्थिति हो जाने से मध्यदशा का विकास होने पर साधक अपने स्वरूप को पहचान लेता है, वह साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है। प्रत्यभिज्ञाहृदय के 18वें सूत्र में विकल्पक्षय प्रभृति मध्यदशा के विकास के उपाय बताये गये हैं। स्पन्दकारिका में उन्मेष दशा के नाम से इसका वर्णन किया गया है।

मित्रीशनाथ के नाम आते हैं। सिद्धौघ क्रम में लोपामुद्रा, अगस्त्य, कंकालतापस, धर्माचार्य, मुक्तकेशिनी और दीपकाचार्य हैं। इनमें धर्माचार्य लघुस्तव के तथा दीपकनाथ त्रिपुरसुन्दरी–दण्डक के रचयिता है।। मानवौघ परम्परा में जिष्णुदेव, मातृगुप्तदेव, तेजोदेव, मनोजदेव, कल्याणदेव, रत्नदेव और वासुदेव के नाम उल्लिखित हैं। ऋजुविमर्शिनीकार शिवानन्द वासुदेव के शिष्य थे। कामकलाविलासकार पुण्यानन्द और उनके शिष्य योगिनीहृदयदीपिकाकार योगी अमृतानन्द भी इसी विद्या परम्परा के प्रमुख आचार्य थे। इस विषय की अधिक जानकारी के लिये "सारस्वती सुषमा" (व. 20, अ.2, पृ. 13–26) में प्रकाशित 'त्रिपुरादर्शनस्यापरिचिता आचार्याः कृतयश्च' शीर्षक निबन्ध देखना चाहिये।

वह्नि

विज्ञानभैरव के 67वें श्लोक में वह्नि और विष शब्दों की चर्चा आई है। यहां वह्नि का अधःकुण्डलिनी से संबन्ध है और विष का ऊर्ध्व कुण्डलिनी से। अधःकुण्डलिनी में प्रवेश (आवेश) संकोच अथवा वह्नि कहलाता है और ऊर्ध्व कुण्डलिनी में प्रवेश विकास अथवा विष कहलाता है। वह्नि का प्राण से संबंध है और विष का अपान से। जब प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करता है और अधःकुण्डलिनी अथवा मूलाधार तक जाता है, तब इस दशा को वह्नि कहते हैं। अधःकुण्डलिनी के मूल और आधे मध्य तक में प्रवेश वह्नि अथवा संकोच कहलाता है। वह्नि शब्द वह् धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है — उठाकर ले जाना। अग्नि को वह्नि इसलिये कहा जाता है कि यह जो कुछ उसमें हवन किया जाता है, उसे देवों तक उठाकर ले जाता है। प्रस्तुत प्रसंग में वह प्राण को मूलाधार तक उठाकर ले जाता है। इससे जीव का स्वरूप संकुचित हो जाता है। वह्नि शब्द इसी दशा का बोधक है।

योगशास्त्र में मानव शरीर स्थित आधारों की चर्चा आई है। इनमें से लिंग के ऊपर नाभि से चार अंगुल नीचे वह्नि नामक आधार की स्थिति मानी गई है। नित्याषोडशिकार्णव (5/1) और तन्त्रालोक (3/165–170) में काम तत्त्व के रूप में इसका वर्णन किया गया है। गोरक्षनाथ कृत अमरौघशासन (पृ. 8–9) में भी यह विषय चर्चित है।

09:55

INTERNET ARCHIVE

गसमाधि है तिसका लक्षण निरूपण करते हैं तहां यह रीति है कि यमनियमोंकरके युक्त भया पुरुष आसनको जीत करके योगक्रियाके जाननेहारे गुरुसे युक्ति सीख-करके प्रथम प्राणायामका अभ्यास करे और जब कुंभ-कका अभ्यास ठीक बढजावे तो पीछे मूलबंधद्वारा

अपान वायुके ऊपर लानेका अभ्यास करे तिससे कित-नेक दिनोंमें अपानवायु उलटा हुआ नाभिमें कुंडलीको बोधन करता हुआ षट्चक्रोंको भेदन करके प्राणसे मिल करके ऊपरको आरोहण करता है फिर नाभि हृदय कंठ भ्रूमध्य इन स्थानोंको क्रमसे उंघन करके मस्तकमें ब्रह्म-रंध्रमें सुषुम्नानाडीद्वारा प्रवेश करता है फिर दीर्घकालके अभ्यास करनेसे तहां चिरकालपर्यंत स्थिरताको प्राप्त होता है तो तिस कालमें सर्व बाह्य प्रपंचको भूलकरके प्राणके स्थिर होनेसे योगी समाधिमें स्थित होवे है इसको हठयोगसमाधि कहते हैं सो यह समाधि प्रथम शिवजीने उपदेश किया और उनके शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ गोरक्ष-नाथ आदिकोंने सेवन किया तथा शिष्यपरंपरासे जग-त्में इसका प्रचार किया है यद्यपि इस कालमें तिसका संप्रदाय लुप्त जैसा हो गया है तोभी 'बहुरत्ना वसुंधरा' इस न्यायसे अबभी कहीं कहीं कोई कोई तिसके जान-नेवाले महात्मा लोक विद्यमान हैं यातें हठयोगसमा-धिकी इच्छावाले जिज्ञासु लोकोंको तिनका खोज करके तिनसे युक्ति सीख करके हठयोगसमाधिका साधन करना योग्य है इसी समाधिसे प्राणोंको वश करके योगीलोक अपने शरीरसे बाहिर निकलजाते हैं और दूसरे शरी-

(123 of 328)

Favorite Share Flag

Shri Dharmanushashnam

by Swami, Brahmanand

प्रश्न० हे भगवन् प्राण चढाने की क्या रीति है॥

उत्तर० हे शिष्य पहले तीन चार महीने पर्यंत पथ्य भोजन करके प्राणायाम का अभ्यास करना चहिये जब पांच सात मिंट तक प्राण का कुंभक होने लग जावे तो फिर मूलबंधकी युक्ति से अपानको ऊपर खेंचने का अभ्यास करना चहिये उस के कुछ कालतक अभ्यास करने से नाभि के नीचे जो कुंडलिनी शक्ति है सो सरल हो जाती है तो प्राण सुपुम्नानाडीमें प्रवेश करके ऊपर को

चडने लग जाता है फिर कुछ काल मूलबंध सहित प्राण के कुंभक का अभ्यास करने से षट् चक्रों को भेदन करके प्राण मस्तक पर ब्रह्म रंध्र मे प्रवेश कर जाता है फिर कुछ काल पर्यंत प्राण चडाने का अभ्यास करते रहने से संपूर्ण प्राण के ब्रह्म रंध्र मे जाने से समाधि हो जाती है तथा इसी प्रकार उड्डियान बंध से अपान वायु को पीठ की तरफ लेजाने का अभ्यास करने से कुछ काल में मेरुदंडमे प्राण का प्रवेश हो कर संपूर्ण प्राण के ब्रह्म रंध्र में चडने से समाधि हो जाती है सो हमारे रचित योगरसायन ग्रंथ में योग के अष्ट अंगों की पूर्ण विधि लिखी हुई है विशेष जानना हो तो उस में देख लेना चहिये॥

प्रश्न० हे भगवन् समाधि से क्या लाभ होता है॥

उत्तर० हे शिष्य समाधि से चित्त की अत्यंत शांति परमानंद की प्राप्ति ईश्वर के स्वरूप का साक्षात्कार अणिमादिक सिद्धियां और अंत में मोक्ष पद की प्राप्ति होवे है॥

नही विषयानंद सुहावे । ब्रह्मानंद मेरे मनभावेरी । अपने घर जावो प्यारी ।।४।।सुन०

(बनजारा ताल ३)

महादेव कहे निर्वानी
सुन गिरजा अमर कहानी ।। टेक ।।

जबप्राण अपानमिलावे।तबकुंडलनीउठजावेजी चडे सुंन शिखरमें प्राणी ।। १ ।। सुन गिरजा०

जहां अमर गुफा सुखदाई । योगीजन ध्यान लगाईजी। सब काया सुध बिसरानी । २ सु०

नही जीव कलेवर मांहीं। तब काल आय फिर जाईजी । कैरे सके नही कछु हानी । ३ सुन०

तबयोगीप्राण उतारे।ब्रह्मानंद अमरतनधारेजी मम बचन सत्यकर मानी ।। ४ ।। सुन गिरजा०

(बनजारा ताल ३)

सिरीराम कहे समझाई
सुन लछमन प्यारे भाई ।। टेक ।।

CC-0 In Public Domain. Digitzed by eGangotri

CC-0 In Public Domain. Digitzed by eGangotri

(राग धुन ताल ३)

जो जन ध्यान धरे निर्गुण को
सो ईश्वर का दर्शन पावे ॥ टेक ॥

जाय इकांत भुवन में बैठे कोमल आसन
भूमि बिछावे। चिंता फिकर छोड सब मन के
त्रिकुटी महल में सुरति जमावे ॥ १ ॥

पहले पहले रवि शशि तारे पल पल में बिजली
चमकावे । दूर दूर के दिव्य देवगण पुन पुन
तेज बीच दरसावे ॥ २ ॥

दिन दिन ध्यान धरे योगी जन ब्रह्मजोत घट में
प्रगटावे। कोटि भानु सम झिल मिल झिल मिल
रोम रोम में सुख उपजावे ॥ ३ ॥

कर्मन के बंधन सब टूटें माया मोह जाल
कट जावे । ब्रह्मानंद मोक्ष पद पावे
गर्भवास फिर के नहि आवे ॥ ४ ॥

CC-0 In Public Domain. Digitzed by eGangotri

दुनियां की सबी बस्तु नाशवान थिर नही
स्वपने समान देखले भरम भरम भरम ॥ ३ ॥
व्यापक है सबी विश्वमें पर ब्रह्म जान ले
ब्रह्मानंद मिले मोक्षपद परम परम परम ॥ ४

(भजन राग पहाडी)

निरंजन[1] पद को साधु कोई पाता है। टेक
मूलद्वारसेखेंचपवनको उलटापंथचलाता है
नाभीपंकजदलमेंसूती नागनजायउठाताहै । १ ।
मेरुदंडकीसीडीबनाकर सुंनशिखरचडजाताहै
भ्रमरगुफामेंजायविराजे जगमगजोतजगाताहै
शशीमंडलसेंअमृतटपके पीकरप्यासमिटाता है
गगनमहलमेंजाकरसोवे सुरतासेजबिछाताहै ३
सबकर्मनकीधूनीजलाकर तनमेंभस्मरमाताहै
ब्रह्मानंदस्वरूपमगनहो आपहीआपसमाताहै ४

---

१ निरंजन बनमें योगी एक रमताहै ६ भजन

CC-0 In Public Domain. Digitzed by eGangotri

18:15

नेत्रबंदकरदृष्टिजमावे निशदिनध्यानधरंत
आसनथिरकरसाधनकीजे बैठेभवनइकंत ॥३॥
पहलेपहलेरविशशितारे बिजलीकीचमकंत
ब्रह्मानंदस्वयंभूजोती फिरपीछेद्रसंत ॥ ४ ॥

(भजन राग पहाडी)

निरंजन माला घट में फिरे दिनरात । टेक ।
ऊपर आवे नीचे जावे श्वास श्वास चल जात
संसारीनरसमझेनाही बिरथाउमरविहात ॥ १ ॥
सोहंमंत्रजपेनितप्राणी विनजिव्हाविनदांत
अष्टपहरमेंसोवतजागत कबहुंनपलकरुकात २
हंसा सोहं सोहं हंसा वार वार उलटात
सतगुरुपूराभेदबतावे निश्चलमनठहरात ॥३॥
जोयोगीजनध्यानलगावे बैठसदापरभात
ब्रह्मानंदमोक्षपदपावे फेरजन्मनहीआत ॥ ४ ॥

(भजन राग पहाडी)

निरंजन गुरु का ज्ञान सुनो नर नार । टेक ।

CC-0 In Public Domain. Digitzed by eGangotri

CC-0 In Public Domain. Digitzed by eGangotri

(राग मंगल ताल ३)

घटही में उजियारासाधो घटहीमेंउजियारारे
पासबसेअरुनजरनआवे बाहिरफिरतगंवारारे
बिनसतगुरुकेभेदनजानेकोटिजतनकरहारारे १
आसनपद्मबांधकरबैठो उलट नैनका तारारे
त्रिकुटीमहलमेंध्यानलगावो देखोखेलअपारारे
नहि सूरज नहि चांद चांदनी
नहि बिजली चमकारारे
जगमगजोतजगेनिसबासर पारब्रह्मविस्तारारे ३
जोयोगी जन दर्शनपावे उघडे मोक्षदुवारारे
ब्रह्मानंदसुनोरे अवधु वो है देसहमारारे ॥४॥

(मंगल ताल ३)

घटहीमेंअविनाशीसाधोघटहीमें अविनाशीरे
काहे रे नर मथुरा जावे काहे जावे काशीरे
तेरेतनमेंबसेनिरंजन जो वैकुंठबिलासीरे ॥ १॥

१ मानो बचन हमारा दुर्योधन मानो बचन हमारारे. १६

CC-0 In Public Domain. Digitzed by eGangotri

(मंगल ताल ३)

जोगजुगतहमपाईसाधोजोगजुगतहमपाईरे । टे.
मूलद्वारमेंबंधलगायो उलटी पवन चलाईरे
षटचक्करकामारगशोधा नागनजायउठाईरे
नाभीसें पश्चिमके मारग मेरुदंड चडाईरे
ग्रंथीखोलगगनपरचडिया दशमेंद्वारसमाईरे !
भंवरगुफामेंआसनमाऱ्यो कायासुधबिसराईरे
बिन चंदा बिन सूरज निश दिन

CC-0 In Public Domain. Digitzed by eGangotri

जगमग जोत जगाईरे ॥ ३ ॥
शिवशक्तिकामेलभयोजब सुंनमे सेजबिछाईरे
ब्रह्मानंदसतगुरुकिरपासे आवागमनमिटाईरे ४

(मंगल ताल ३)

जोग जुगत हम जानी साधो
जोग जुगत हम जानी रे ॥ टेक ॥
खेंच अपानप्राणघर लाये नागन नींद जगानीरे
मेरु दंड खोल कर ऊपर भ्रमर गुफाठहरानीरे
जिव्हा उलट खेचरी मुद्रा तालु बीच लगानीरे
त्रिकुटीमहलमेंध्यानजमायो ब्रह्मजोतदरसानीरे
अनहद नाद बजे घटभीतर गर्जन मेघ सुहानीरे
सुनसुनमस्तभयोमनमेराकाया सुध बिसरानीरे
सुंनशिखरसें अमृत टपके पीकर सुरत अघानीरे
ब्रह्मानंद स्वरूप समायो पायो पद निर्बानीरे ४

(मंगल ताल ३)

अनहद की धुन प्यारी साधो

CC-0 In Public Domain. Digitzed by eGangotri

(राग मंगल ताल ३)

सुनोखेचरीबात साधो सुनोखेचरीबातरे ॥टेक
सबसे बडी खेचरीमुद्रा योगीजन की मातरे
जोजनसाधनकरतनिरंतर भवसागरतरजातरे १
जीभ तलेकी नाड कटे जब तब पीछे उलटातरे
धीरे धीरे गलके ऊपर छेदमांहि ठहरातरे ॥२॥
पीछे ध्यान धरे भृकुटीमे कांपे सबही गातरे

CC-0 In Public Domain. Digitzed by eGangotri

ब्रह्मजोतिकादर्शनहोवे झरे सुधादिनरातरे ॥३
दिनदिनध्यानकरेजबयोगीकायासुधविसरातरे
ब्रह्मानंदस्वरूपसमावे फेरजन्मनहिपातरे ॥४॥

(मंगलताल ३)

सोहंशब्दविचारोसाधोसोहंशब्दविचारोरे ।टे०
मालाकरसेफिरतनहीहै जीभ न वर्ण उचारोरे
अजपाजापहोतघटमांही ताकीओरनिहारोरे १
हं अक्षरसेस्वासउठावो सो से जाय बिठारोरे
हंसोउलटहोतहैसोहं योगीजननिरधारोरे ॥२॥
सबइक्कीसहजारमिलाकर छेसो होतशुमारो रे
अष्टपहरमेंजागतसोवत मनमें जपोसुखारोरे॥३
जोजनचिंतनकरतनिरंतरछोडजगतव्यवहारोरे
ब्रह्मानंदपरमपदपावे मिटेजनमसंसारोरे ॥४॥

(मंगल ताल ३)

अचरज देखा भारी साधो
अचरज देखा भारीरे ॥ टेक ॥

CC-0 In Public Domain. Digitzed by eGangotri

हंस मन्त्र

हकार, बिन्दु, सकार और विसर्ग के योग से हंस मन्त्र की निष्पत्ति होती है। अनुत्तर, अकुल स्वरूप चिद्धाम में स्वयं उन्मिषित होने वाले हकार की स्थिति ऊपर और नीचे विसर्जनीय अनुप्राणित विसर्ग स्वरूप जीव की सकार की स्थिति रहती है। हान और समादान, त्याग और ग्रहण की प्रक्रिया के आधार पर इस हंस मन्त्र का उच्चारण पराशक्ति स्वयं ही करती है। इसीलिए "मैं वह शिव हूं" इस तरह से अपने स्वरूप का परिचय वहां प्राप्त होता है। प्राण सकार के साथ बाहर निकलता है और अपान जब शरीर में पुनः प्रविष्ट होता है, तो वह हकार का उच्चारण करता है। इस तरह से प्राण और अपान की गति जब तक चलती रहती है, तब तक जीव प्रतिदिन निरन्तर 'हंस–हंस' इस मन्त्र का उच्चारण करता रहता है।

शक्तिसंगम तन्त्र (1/3/77–87) में प्रणव के प्रसंग में हंस स्वरूपिणी कामकला का विवरण बताते हुए कहा गया है कि 'सोऽहम्' इस हंस मन्त्र

में प्रणव और कामकला दोनों की स्थिति है। उक्त ग्रन्थ के चतुर्थ खण्ड के उपोद्घात में इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। विज्ञानभैरव के 42वें श्लोक में भी अजपा गर्भित प्रणव की उपासना वर्णित है।

हंस मन्त्र में विद्यमान सकार प्राण और प्रकाश (सूर्य अथवा दिन) का प्रतिनिधित्व करता है तथा हकार जीव (अपान) तथा क्षपा (रात्रि) का। सभी प्राणियों के अनुभव के आधार पर यह बात सिद्ध है कि प्राण (सकार) की गति स्वाभाविक रूप से बाहर की ओर तथा अपान (हकार) की गति निरन्तर भीतर की ओर चलती रहती है। प्राण जब हृदय से ऊपर की तरफ चढ़ता है, तब 'हं' वर्ण की उत्पत्ति होती है और जब वह द्वादशान्त से उतरता है, तो उसकी अपान दशा में 'सः' वर्ण उत्पन्न होता है। इन दो वर्णों का स्पष्ट उच्चारण करते रहने से ही जीव 'जीव' कहलाता है। यह त्याज्य है, यह उपादेय है, यह मेरा है, यह मेरा नहीं है — इस तरह से छोड़ने और लेने के प्राण और अपान के धर्मों से समानता के कारण ही जीव हंस कहलाता है। हान (त्याग) और उपादान (परिग्रह), छोड़ना और लेना — इन दो व्यापारों में हंस और जीव की समानता है। हंस पक्षी जैसे दूध पी जाता है और पानी छोड़ देता है, उसी तरह से जीव भी प्राण और अपान के हान और उपादान का व्यापार निरन्तर करता रहता है। इसी समानता के आधार पर जीव को और जीव के इस निरंतर चल रहे श्वास–प्रश्वास प्रवाह को क्रमशः हंस और हंसमन्त्र के नाम से अभिहित किया गया है।

दिन–रात प्राण और अपान की इस निरंतर गतिशीलता के कारण इस हंस मन्त्र का हंस जीव एक अहोरात्र में 21600 बार उच्चारण करता है। इनमें से मूलाधार चक्र में गणपति को 6 सहस्र, स्वाधिष्ठान चक्र में ब्रह्मा को 6 सहस्र, मणिपुर चक्र में विष्णु को 6 सहस्र, अनाहत चक्र में शिव को 6 सहस्र, विशुद्धि चक्र में जीवात्मा को एक सहस्र, आज्ञाचक्र में गुरु को एक सहस्र जप निवेदित किये जाते हैं। इस तरह से स्वाभाविक रूप से निरन्तर चल रहे जप को निवेदित करने के उपरान्त साधक इस हंस मन्त्र का 108 बार जप करता है। निरुत्तर तन्त्र में अजपा गायत्री के दो भेद बताये हैं — व्यक्त और गुप्त। हंस तन्त्र का जप व्यक्त और प्राण और अपान के व्यापार के रूप में निरन्तर चल रहा जप गुप्त कहा जाता है।

माणिक्य के मैल को साफ कर देने पर जैसे उसमें चमक पैदा हो जाती है, उसी तरह से मध्य क्षण का उद्धार करने पर 'हंसः' इस मन्त्र का विमर्श भी जाग उठता है।

निर्मल हो जाता है । मन की निर्मलता ही प्रसन्नता का कारण बनती है । इसलिये यह साधक अवधान-भक्ति से युक्त होकर अपनी उपभोग्य वस्तुओं को शिव को समर्पित करके उस शिव-निर्माल्य का सेवन करता है । इसी प्रकार यह गुरु तथा जंगम को उपभोग्य वस्तुओं को समर्पित करता है और उन दोनों का भी अनुग्रह प्राप्त करता है । इस साधक में क्रिया के साथ भावना का भी प्राचुर्य रहता है । वह अपनी क्रियाओं को पवित्र भाव से युक्त होकर सदा करता रहता हे । शिवार्पण बुद्धि से कर्म करने के कारण यह प्रपंच में रहता हुआ भी उससे उसी प्रकार निर्लिप्त रहता है, जैसे पानी में रहने वाला पद्मपत्र उससे निर्लिप्त रहता है । इस साधक को 'प्रसादि-स्थल' भी कहते हैं (सि.शि. 11/2-18 पृष्ठ 193-198; अ.वी.सा.सं.भाग 2 पृष्ठ 179-181; अनु.यू. 4/31) ।

घ. प्राणलिंगी -

'प्राण-लिंग' के उपासक को 'प्राणलिंगी' कहा जाता है, इसी को 'प्राण-लिंगी-स्थल' भी कहते हैं । यह साधक की चतुर्थ भूमिका है । पूर्वोक्त 'भक्त', 'महेश्वर' और 'प्रसादी' साधकों में क्रिया का प्राधान्य था । इस साधक में ज्ञान-योग का प्राधान्य है (सि.शि. 12/2 पृष्ठ 1) । योग-मार्ग की सूक्ष्म अनुभूति इस स्थल के साधक में होती है ।

प्राण तथा अपान वायु के संघर्ष से मूलाधार से जिस ज्योति स्वरूप का उदय होता है, उसी को शिवयोगियों ने 'प्राण-लिंग' कहा है । जिस प्रकार सूर्योदय के होने पर तुहिन कण उस सूर्य के प्रकाश में लीन हो जाते हैं,उसी प्रकार इस चिद्रूप ज्योति में प्राणवायु का भी विलय हो जाता है । अतः प्राणशक्ति विशिष्ट इस ज्योति को 'प्राण-लिंग' कहा गया है (सि. शि. 12/6,7 पृष्ठ 2,3) । यह हृदय-कमल में दीपक के समान स्फुरित होता है । यही अपने चिद्रूप का भान है । इस चिद्रूप के बोध से इस साधक का जीवत्व-भ्रम छूट जाता हे । वस्तुतः इसी स्थल में साधक को स्वस्वरूप का साक्षात्कार होता है । इस साधक में 'अनुभव-भक्ति' रहती है, अर्थात् शिव का अनुभव इसी स्थल में होता है । यह बाह्य पूजा आदि क्रियाओं से परांगमुख होकर 'भ्रमर-कीट-न्याय' से निरंतर अंतर्लिंगानुसंधान

3226 HRD/98—7

करता रहता हे । इसी को 'संविल्लिंग-परामर्शी' कहते हैं । इस ज्ञान-ज्योति से इसकी सभी वासनायें उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं, जैसे अग्नि काष्ठ को भस्म कर देती है । (सि.शि. 12/8-12 पृष्ठ 3-5; अनु.सू. 4/30; अ.वी.सा.सं. भाग 2 पृष्ठ 192-193) ।

ख. प्राणलिंग –

मूलाधार में स्थित अपान–वायु के साथ जब प्राण–वायुं का संघर्ष हो जाता है, तब एक दिव्य ज्योति का उदय होता है । मूलाधार से उत्पन्न वह ज्योति सुषुम्ना के मार्ग से चलकर 'कुंडलिनी' को ऊर्ध्वमुख करती हुयी हृदय के 'अनाहत–चक्र' की, जिसे 'द्वादश–दल–कमल' कहा गया है, मध्य- स्थित कर्णिका में रुक जाती है । यह ज्योति अंगुष्ठ परिमाण और विद्रुमवर्ण (अरुणवर्ण) की होती है । इसी ज्योति को वीरशैव शिवयोगियों ने प्राण–लिंग कहा है । इसको 'प्राण–लिंग' इसलिए कहा गया है कि जैसे सूर्य के उदित होने पर तुहिन–कण उसके प्रकाश में विलीन हो जाते हैं, वैसे ही हृदय-स्थित इस दिव्य ज्योति में प्राणवायु का भी विलय हो जाता है । अतः प्राणशक्ति विशिष्ट इस ज्योति को 'प्राण–लिंग' कहते हैं । देशकाल के संबंध के बिना ही 'चिदहंता', अर्थात् स्वकीय चिद्रूप का ज्ञान ही 'प्राण–लिंग' है । इसी को 'संवित्लिंग' भी कहा गया है । वस्तुतः यह 'प्राण–लिंग' योगगम्य है । सूक्ष्म आंतरिक उपासना से इसकी अवगति हो सकती है । (सि.शि. 12/6–8 पृ. 2–3; वी.आ.चं. पृष्ठ 456) ।

ग. भावलिंग –

'शिवोऽहं' (मैं शिवस्वरूप हूं) इस प्रकार की भावना से, अर्थात् तैलधारावत् निरंतर उसी के चिंतन रूप निदिध्यासन के बल पर साधक को अपने मस्तिष्क स्थित सहस्रार कमल में जिस दिव्य ज्योतिस्वरूप परशिव का स्वात्म रूप से साक्षात्कार होता है, उसी को 'भावलिंग' कहते हैं । यह निराकार है, अर्थात् इसका त्रिकोण, षट्कोण आदि कोई आकार नहीं है, किंतु इसे परिपूर्ण रूप कहा जाता है । बाह्य प्रमाणों से अगोचर होने पर भी निर्मल और शांत बुद्धि के द्वारा इसका साक्षात्कार होता है ।

इसे भावलिंग इसलिये कहा जाता है कि 'शिवोऽहं' इस प्रकार की शुद्ध बुद्धि वृत्ति से इसका साक्षात्कार होता है और इसकी अर्चना भी इसी वृत्ति से होती है, अर्थात् भाव–लिंग की अर्चना के लिये 'शिवोऽहं' भावना के व्यतिरिक्त किसी सामग्री की आवश्यकता नहीं होती तथा अंत में वह भावना भी उसी ज्योति में लीन हो जाती है । इस प्रकार भावनामय व्यापार का ही विषय होने से इसे 'भावलिंग' कहा जाता है । इसी को 'तृप्तिलिंग' भी कहते हैं (सि.शि. 15/1–3, पृ. 59; वी.आ.चं.पृ. 457; वी.आ.चं.पृ. 457; श.वि.द.पृ. 162–163) ।

19:53
niranjani sampraday hi...

करणीसार जोग ग्रंथ :

तुरसीदास का द्वितीय ग्रंथ करणीसार जोग ग्रंथ है। इसमें तुरसीदास ने रोलाछंद का प्रयोग किया। यद्यपि छंद में दो ही चरण हैं और कहीं-कहीं मात्राओं का न्यूनाधिक्य भी है तथापि उनकी रचना का यह ढंग रोला छंद के ही अधिक अनुकूल पड़ता है। इस ग्रंथ में अवधूत का लक्षण और उसकी क्रियाओं का वर्णन है। वास्तव में इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य लगभग वैसा ही है जैसा तुरसी ने साखियों के प्रतिपादन में असाधु-साधु प्रकरण शीर्षक से प्रतिपादित किया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस ग्रंथ में भी निर्गुण-

---

१- हस्तलिखित- सेवादासजी की बानी, ना०प्र० सभा का क्रमांक ८७३, पृ०-

साधना-पद्धति पर ही प्रकाश डाला गया है। क्योंकि तुरसी कहते हैं--

'तालव लोम निवारि आत्मा अस्थति आवै।
तहां बाजै अनहद तूर, नूर का दरसन पावै।।[१]'

इसी प्रकार -

'इड़ा पिंगला फेरि पश्चिम की उलटा ध्यावै।
भंवर गुफा के घाट पीवै अमृत सब पावै।।[२]'

साधना की यह पद्धति निर्गुणी साधना की चरम सीमा को ही व्यक्त करती है।

साधु सुलछिन जोग ग्रंथ :

तीसरा ग्रंथ 'साधु सुलछिन जोग ग्रंथ' है जिसमें साधुओं के लक्षणों का और साधनों का वर्णन है। यद्यपि इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य भी साखियों में वर्णित हो चुका था तथापि उसे अलग रूप देने के लिए ही संभवतः इस ग्रंथ की रचना की गई। इस ग्रंथ की रचना कुल १८ दोहों में ही की गई है। दोहे बड़े सुंदर हैं और उनमें वर्णित विषय भी अच्छे ढंग से स्पष्ट हो जाता है--

'साधु जन संसार में रमै सुभाइ सुभाइ।
काहू के रंगि ना मिलै अपने रंगि रहाइ।।
मुष बानी सुखद कहै कुसबद कहै न काहि।
सील सबूरी साह करि भले एक ही माहि।।
निरपष निरदावै रहै धरै सदा विचार।
काम क्रोध अहंकार का संग न करै लगार।।[३]'

१- हस्तलिखित - सेवादासजी की बानी, ना०प्र० का क्रमांक ८७३, पृ०-
२- ,, ,, ,, पृ०-

19:59
niranjani sampraday hi...

"आदित्वार अगम घर सोधी । गुर गहि ग्यांन मन की परमोधी ।
अरध उरध मधि चौक पुरानी । सास उसास अजपा गावै ।
मन गहि पवन ज्यूं सहज धरि आनीं । अरध उरध मधि पीव पिछानी ।।
सोमवार सुधि भया सरीरा । कांम क्रोध सब फड़े जंजीरा ।
दुवादस काढ़ि दई मुकलाई । ससि कला संपूरण पाई ।
अनमन इत उत जांण न पावै । नौ दरवाजा कुल फल गावै ।।
मंगलवार सदा आनंदा । सब घटि पूरण परमानंदा ।।"[1]

इसी क्रम से सप्ताह के शेष दिनों में विहित साधना का भी वर्णन किया गया है । साहित्यिक सौंदर्य के अन्वेषणी की तृप्ति के लिए यहां अवकाश नहीं है ।

<u>चिंतावणी जोग ग्रंथ</u> : प्रस्तुत ग्रंथ की रचना दोहा छंद के अनुकरण करने वाले छंदों में हुई है । इस प्रकार के ६६ दोहे इस ग्रंथ में हैं । सेवादास का यह दसवां ग्रंथ है और ग्रंथ वर्णन-क्रम की दृष्टि से अंतिम । इस ग्रंथ के द्वारा अज्ञानी जीव को बहुत प्रकार से चेतावनी दी गई है- इसीलिए इस ग्रंथ का नाम चिंतावणी जोग ग्रंथ है । इस प्रकार यह ग्रंथ आध्यात्म ज्ञान का प्रतिपादक और पूर्णरूप से उपदेशात्मक है । ग्रंथ के आरम्भ से ही कवि इस प्रकार के उद्बोधन में प्रवृत्त हो जाता है--

"रचना अलख नाथ की । भई चौरासी लष ज्यूंनि ।
तामैं उत्म मनिषा देह है । सो लहीयै काहू पुंनि ।।
या पुनि पाइ नर देह कौ । हो तौ ठाहिण लगाइ ।
कै तौ सेवा संत की । कै गोविंद के गुण गाइ ।।

1- सेवादास जी की बानी (हस्तलेख) सपतवार जोग ग्रंथ - पृ०-

तूं आयौ थौ रांम कांम कूं । रे करि साहिब सूं कौल ।
तू माली सेवा बंदगी । भयौ हरामी टौल ।।"[1]

18:44

दोहरा

हियरे भीतर है हिया तहं मंह कंत बसाय।
तहाँ बसेरा जो करें सोभें पियहि मिलाय ॥[१]

श्लोक

बन बिच परत बन बिच धुंधकारंच मध्यमा।
तस मध्यें भयो जोति सो जोति परमश्दा ॥[२]

सबद

तस मझें ॐ कारस। ॐ कारस निरंजना ॥[३]

ऐ भाई यह तीनों अवस्थाएँ तुझ में हैं। क़ुरआन में लिखा है—"और क्या तुम अपनी आत्माओं (अनफ़ास) में नहीं देखते।"[४]

सबद

तिहरी तिकुटीबिषमी सन्धि। मूल द्वारे पवना बंधि॥
तहाँ निरंजन रहा समाय। बिचारि बिमर कर बूझहु जाय॥[५]

---

१. (अ) की टिप्पणी—
अर्थात् काष्ठफल (सनोबर) रूपी हृदय में जो कि मांस का एक पिंड है वास्तविक हृदय है जो कि दैवी सक्षमताओं की अभिव्यक्ति का स्थान है। जो कोई उस वास्तविक हृदय का ज्ञान रखता है वहाँ तक पहुंच जाता है। सच तो यह है कि ईश्वर तक पहुंच जाता है और उसे ईश्वर के रहस्यों का ज्ञान हो जाता है।
(ब) में हियरें के स्थान पर 'हियरें' तथा 'सोभें' के स्थान पर सो निज पाठ है।

२. **बन**=भंड=भाण्ड=बरतन। **बिच**=बिच=बीच। **परत**=परतः=दूसरा। **धुंधकारंच**=अन्धकार है। **मझमा**=बीच में। **तस मझे**=उसके मध्य में। **भयो जोति**=ज्योति कट हुई। **परमपदा**=उच्च पद वाली अथवा श्रेष्ठ।
(अ) की टिप्पणी—
अर्थात् शरीर में काष्ठफल रूपी हृदय है उसका द्वार खोलने पर वास्तविक हृदय की प्राप्ति होती है। साधक जिस समय यहाँ पहुंच जाता है उसका विलयन हो जाता है और उसे दिव्य प्रकाश की प्रतीति होती है। वही वास्तविक ज्योति है और जीवात्मा का स्थान है। **बन बिच**=बरतन के मध्य (दरमियाने आवंद) (अ)।

३. उसके मध्य में सृष्टि जगत् का मूल है और सृष्टि जगत् का मूल परमेश्वर की सत्ता है (अ)।

४. सूरः ५१, आयत २१।

५. **तिहरी तिकुटी**=प्रथम इड़ा द्वितीय पिंगला तथा तृतीय सुषुम्ना। **बिषमी-संधि**=वंक नालि, जहाँ इड़ा-पिंगला दोनों प्रवाहों की संधि है। **मूल द्वारे**=ब्रह्म रंध्र। **बिमर**=बिमल। हठयोग की प्रमुख क्रिया श्वांस निरोध के द्वारा सर्पिणी के समान स्वयंभू लिंग के त्रिकोणाकार अग्नि चक्र में तेहरी कुण्डली मारकर सोने वाली मूल शक्ति को मूल बंध की सहायता से जगाकर ऊपर की ओर प्रेरित करने का संकेत है। तुलनार्थ—

18:45

Alakhbani | PDF
scribd.com

'मानव शरीर में मांस का एक टुकड़ा है और उस मांस के टुकड़े में रहस्य और उस रहस्य में मैं हूं।'[1]

इस विषय में एक ईश्वरज्ञ का कथन है—

बैत

सम्पूर्ण सृष्टि-पदार्थ उसके एकतत्व (तौहीद) के प्रतीक है,
उनकी मृत्यु उनकी निवृत्ति (तफ़रीद) की प्रतीक है।

इकटी बिकुटी त्रिकुटी संधि पछिम द्वारे पवना बंधि।
षूटे तेल न बूझै दिया बोलै नाथ निरन्तर हुवा॥

(गोरखबानी, सबदी / १८७)

(अ) तथा (ब) में इसकी विषद व्याख्या की गयी है। यथा—

'यह साधक की साधनावस्था का वर्णन है। जिस समय साधक ध्यान में डूबता है कमाल को पहुँच जाता है। यह श्वांस की साधना है योगी सामान्यतः इसे भुवंगम कहते हैं और भुवंगम सांप को कहते हैं। फलस्वरूप सांप जिस प्रकार श्वांस छोड़ता है साधक भी उसी प्रकार श्वांस निकालता है। यह मार्ग गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।

यहाँ संकेत तीन श्वांसों की ओर है, एक अध, दूसरी उर्ध्व और तीसरी जो सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है और इन श्वांसों को एक में मिलाना श्रेष्ठ कार्य है। तीनों श्वांसों को मूल द्वार के स्थान पर बंद किया जाता है। मुरशिद का कथन है कि जितना भी अपने श्वांसों को रोक सकता है रोके और अपने चित्त में अपने अव्यक्त अथवा गूढ़ रूप की कल्पना करे इस विषय में योगियों की धारणा भिन्न है। कुछ लोगों का मत है कि मूल द्वार गुदा है किन्तु **हरदनामा** के लेखक की खोज के अनुसार मूल द्वार सिर की चंदिया है क्योंकि वह मस्तिष्क (मगज़) का स्थान है और वीर्य वहाँ एकत्र होता है। नवजात् शिशु के तालू की खाल के नीचे उसे देखा जा सकता है। वही मूल द्वार है जब श्वांस भीतर को खींचा जाता है तो उसकी गरमी से वीर्य जल की भाँति स्वच्छ होकर पूरी काया में प्रविष्ट हो जाता है। साधक उसका अनुभव करता है। उसे ऐसा आभास होता है कि श्वांस बादल के समान वर्षा कर रही। यह उस समय होता है जब उसकी श्वांस पुनः उसकी सत्ता में प्रवेश करती है जिस प्रकार श्वांस वाहर जाती है उसी प्रकार भीतर आती है।

एक सिद्ध (आमिल) हिंदवी में कहता है—**उलटी सकति चढ़ै पर बंध** अर्थात् लौट कर श्वांस वापस जाता है और शरीर में प्रविष्ट होता है उस समय साधक की काया ललित हो जाती है। उसे पुण्य पद की प्राप्ति हो जाती है और दैवी रहस्य तथा अव्यक्त जगत् के रहस्य उस पर प्रकट हो जाते है। उस समय स्वयं को मिटा कर दूसरे में खो जाने की अवस्था पैदा हो जाती है। इस साधन के लिए दो बातें अपेक्षित हैं एक पेट को भोजन एवं जल से रिक्त रखना और दूसरे स्थायी एकान्तवास।

तुलनार्थ—'**उलटी सकति चढ़ै ब्रह्मण्ड नष सिष पवनां खेलै सरबंग।**'

(गोरखबानी, सबदी / २१७)

1. यह हदीसे-क़ुदसी है जो सूफ़ी जगत् में विशेष प्रचलित है।

Shorts
Subscriptions Live Trends

गुपत [illegible], नहीं न्यारो नहीं भेलो ॥ २ ॥ [illegible]
[illegible] । धर-
[illegible]
मिटनमें आया, बोध स्वरूप रहलो । बनानाथ साई है ऐसा
नहीं ऊलो नहीं पैलो ॥ ४ ॥ २१ ॥ १०१ ॥

राग

ऐसा मेरे सतगुरु खेल रचाया, खबर करो खिलका मांहि ख्याली आप अलोगत थाया ॥ टेर ॥ कर चौकस चेतनकी, चौकी अरध उरध सुलझाया । उलटा पवन कँवलमांहि पलट्या, बंकनाल रस लागा ॥ १ ॥ इडा पिंगला होय कर भेली, सुखमण सहज मिलाया । लग रही तार त्रिवेणीरे छाजे अजब झरोखे आया ॥ २ ॥ चोरंग राग राग हुई रंग महलां, गगनमंडल गिरणाया । सुरत निरत दोऊं अरधंग्या, मिलकर मंगल गाया ॥ ३ ॥ मिलरह्या जीव शीवके मांही, एकरूप निजधाया । कहे बनानाथ सुणो भाई साधो, लगे न जमका दाया ॥ ४ ॥ २२ ॥ १०२ ॥

खिन गुरु अविगत भेद बताया, तार न तूटे कबहुं न छूटे मेहर करी जब पाया ॥ टेर ॥ तन मन तार लगी त्रिवेणी इडा पिंगला धाया । पांच उलट मिली आतमसं, प्रेम

19
Dislike
0
Share
Remix
@ashoknath8344 Subscribe
ऐसा मेरे सतगुरु खेल रचाया
isa Khel Rachaya 【बन्ना नाथ के भजन】 · @VinProMusic

Shorts
Subscriptions Live Trends

नरम मयाकर मालक महरम मुखरा आया ॥१॥ जीवाराम सिन्धा गुरु पूर, मोय पुरुष प्याका पाया । मस्तनाथ योगेश्वर बोले मेरा शोधन हिरदय मठ आया ॥ ४ ॥ ३० ॥१५२॥

राग आसावरी

साधोभाई जोगी जगसे न्यारा, ज्यांका निगे क्रिया निरधारा। साधो भाई जोगी जगसे न्यारा ॥टेर॥ पांच पचीस तीन वश करके, क्रिया क्रिया काळका चारा । आसन मार अडग होय बैठा, मिट गया भरम अंधारा ॥ १ ॥ वरस्या देव भेव नहीं पावे, सर्वस सकल पसारा । जाका तेज सरा सुरजमें, रैता सबसे न्यारा ॥ २ ॥ जाकी महिमा कही न जावे, नित निरगुण निरधारा । ... पदवीको अरथ कर खोजे, अविनाशी निर्गुणी निरा... ॥ ३ ॥ मस्तनाथ कह मैं वांइ पकड हूं जो नहीं काळका चारा ॥ ४ ॥ ३१ ॥ १५६ ॥

राग

समझो साधो सुरत करें, सहजो सहज समावे, ... अकरणा यां नहीं आप आपेई पावे ॥ टेर ॥ चढ पंछी पेन पर उडयां, सीधो सुंन जावे । बेगमपुर अस्थान है, ... न आवे ॥ १ ॥ अविनाशी ठांवर रहै, ... नहीं आवे । ... यांको किस कर ...वे ॥ २ ॥ दिह परै देवळ नहीं, कैवळ होय ...

31 Dislike 2 Share Remix
@ashoknath83
... नाथ जी की वाणी साधु भाई जोगी जग से न्यारा

तो शब्द विदेह॥' भाव शरीर से बाहर **मूकात्मिक शब्द** है अर्थात् बिना अवाज़ का शब्द, **आवाज़ रहित धुन (Sound less sound)** है वो, क्योंकि – '**दो बिन होय न अधर अवाज़ा॥**' आवाज़ दो तत्व के टकराने के बिना नहीं होती और जहाँ आवाज़ है, वहाँ माया है।

हद टप्पे सो औलिया, बे-हद टप्पे सो पीर।
हद-बेहद दोनों टप्पे, तिसका नाम कबीर॥

कालान्तर में जितने रुहानियत की बात करने वाले सन्त महात्मा हुए सबने निर्विवाद रूप से उनकी बात एवं सिद्धान्त को स्वीकार किया। हर पहलू को अत्यन्त सावधानी के साथ छुआ। सहज साधन के सिद्धान्त को समाज तक पहुंचाया कि हम किस तरह गृहस्थ आश्रम में रहते हुए परमतत्व की साधना को कर सकते हैं। सुष्मना नाड़ी को किस तरह खोलकर ब्रह्मण्ड की यात्रा की जा सकती है। इन रहस्यों को आम आदमी की भाषा में बोला :

"खेल ब्रहमाण्ड का पिण्ड में देखिया, जगत की भर्मना दूर भागी।
बाहरा भीतरा एक आकाशवत्, सुषमना डोर तह पलट लागी॥
पवन को पलट कर शुन्य में घर किया, घर औ अघर में भरपूर देखा।
कहै कबीर गुरु पूरे की मेहर से, त्रिकुटी मध्य दीदार देखा॥
देख दीदार मस्त होय रहूं, सकल भरपूर है नूर तेरा।
सुभग दरियाव जहाँ हंस मोती चुगे, काल का जाल तहां नाहीं तेरा॥
ज्ञान का थाल औ सहज मति पथ है, धर अधर में अगम किया डेरा।
कहै कबीर तहाँ भ्रम भासै नहीं, आवागमन का मिटा फेरा॥

यह शब्द शुद्ध अध्यात्म जगत् के अन्दर ले जाते हैं यदि आप देखें तो पाऐंगे ग्रन्थ साहिब में कबीर साहिब की वाणी को बहुत ही ऊंचा स्थान दिया गया है। दादू दयाल जी ने कबीर साहिब के लिए लिखा है।

केते सन्ता कूप है, केते सरिता नीर।
दादू अगम अथाह है, दरिया सत्य कबीर॥

पूरी तरह इसमें अपना को फँसा दिया है। अपनी ही ऊर्जा से सब संचालित होने दे रही है। इसलिए आत्मा बँधन में है। तभी समझाया –

मन जाता है तो जान दे, गहके राख शरीर।
उतरा पड़ा कमान से, क्या कर सकता तीर।।

साहिब कबीर ने पूरी दुनिया को चेतावनी वाले शब्द कहे। उनकी वाणी चेताने वाली है खबरदार करती है। आत्मा की सहभागिता है मन के साथ। आत्मा की ऊर्जा नहीं मिलती तो मन कुछ नहीं कर सकता था। शरीर में दिमाग खुद कुछ नहीं कर सकता था, वो सर्वेसर्वा नहीं है। कल्पनायें मन की हैं वो ही आत्मा की शक्ति से दिमाग को संचालित कर रहा है। हमारी आत्मा ही हमारा ध्यान है, यही घूम रहा है। ध्यान में बैठो तो मन संसार की चीजों में घुमाता है। ध्यान में बैठोगे तो सोचते हो फलाने ने गाली दी, वहीं रम जाते हैं, गाली पर। बाद में होश आता है। फिर एकाग्र करने की कोशिश करते हैं, तो फिर कहीं दूसरी जगह उलझ जाते हैं। कभी लड़की की पढ़ाई की चिंता, कभी विवाह की चिंता। कभी पत्नि की चिंता, कभी मकान की चिंता। तो आत्मा बँधी है, इन्हीं में उलझा दिया है मन ने; सब प्रिय लग रहे हैं। बंदा मुक्ति तो चाहता है, पर इन सबसे निकलना नहीं चाह रहा है। इस तरह ब्रेन भी स्वयंभु नहीं है, यह वजीर है, आर्डर तो मन का है।

सुषुम्ना मध्ये बसे निरञ्जन, मूँधा दसवाँ द्वारा।
ताके ऊपर मकरतार है, चढ़ो सम्हार सम्हारा।।

मन ही आकाश तत्व है, वहाँ अँधकार है, वो अँधकार में रहता है। मन वहाँ से तरंगों के रूप में सन्देश देता है।

राजा जनक उनमुनि मुद्रा ध्यान में **'सत्'** जाप से मन के इसी विदेह रूप में गये। आज्ञाचक्र में आत्मा का वास है। स्वाँस द्वारा मिलकर पूरी ऊर्जा नाड़ियों में आ रही है; अंतःकरण में मिली हुई है। इसने अपने को ब्रेन भी माना, पूरा शरीर माना; क्योंकि पवन के साथ मिलकर पूरी देह में मिल गई है।

राजा जनक सहस्त्रसार में उनमुनि मुद्रा ध्यान लगाते थे, इसके तो ओर आगे भी सूक्ष्म-गम्भीर कोशिकायें हैं। इसमें कालपुरुष के दायरे से बाहर

15:17

मिलेगा जो सत्य '**शब्द-प्रकाश**' है। गुरु-गुरु में भेद का अन्तर है और भाव का भी अन्तर है। सभी गुरु सत्य के भेदी नहीं है। ऐसे गुरु की शरण लो जो सत्य-शब्द से सुरति को प्रकाशमय कर दे। सद्गुरु का सुरति-शब्द शरीर की इन्द्रियों के स्नायुमण्डल को जाग्रत नहीं करके सीधे '**आत्मा**' को जाग्रत करता है। अन्य कहीं निवारण नहीं है। अनेक नकली गुरुओं में एक को ढूँढना बहुत कठिन है, अधिक संख्या ठगो और भ्रम वालों की है। ऐसे धर्म बताने वाले वैद्य-गुरुओं की औषधियों (क्रियायों) से मनुष्य यम के फन्दों में ही उलझता है।

संसार में सब अपने-अपने धर्मशास्त्र में उल्लेखित बातों पर जोर दे रहे हैं। साहिब कबीर ने यही तो समझाया -

तेरा मेरा मनवा कैसे इक होई रे।
तू कहता कागद की लेखी। मैं कहता आँखिन देखी।।

निराकार तो पहले से सभी कह रहे थे। संतत्व तो साहिब कबीर से प्रारम्भ होता है। क्या साहिब के संतों ने पाँच-नामों की बात की? पहले सभी संतों ने कबीर साहिब जी के मिलने से पहले देवी-देवताओं के अथवा पाँच तत्वों के पाँच नामों की भक्ति की परन्तु साहिब जी से मिलने के बाद नहीं की क्योंकि पाँच नाम तो वेद-काल से हैं; सत्, सोहं, ज्योति निरञ्जन, ओंकार का पहले से उल्लेख मिल रहा है। पंच मुद्राओं पर तो निर्गुण वाले बोल रहे हैं। साहिब जी ने तो कहा -

ओंकार में सब जग भूला। सार नाम है गुप्त अमूला।।

फिर चौंकाने वाली रहस्य की बात कही -

ररंकार खेचरी मुद्रा, दसवाँ द्वार ठिकाना।
ताके आगे पुरुष पुरातन तिसकी खबर न जाना।।
इसके आगे भेद हमारा। जानेगा कोई जानन हारा।।
कहे कबीर जानेगा सोई। जापर कृपा सत्गुरु की होई।।

त्रिकाल में जितने भी हुए, सब निराकार तक गये, सबने निराकार तक की बात कही। साहिब कबीर का प्रकाश उतसव 14वीं सदी में हुआ और 15वीं सदी में मानव मात्र का आत्मजागरण किया। उस समय हिन्दुत्व और

15:20

सुषुम्ना को खोलना होता है। इस अवस्था से निकलना होता है। इस अवस्था से निकलना नहीं जानते हैं वैज्ञानिक। इसका शोध नहीं है। इसलिए नहीं बोल रहे हैं। वो प्रज्ञावस्था में घूमना नहीं जानते हैं। भोले लोग भक्ति जल्दी करते हैं। इसलिए महापुरुष लोग ज़्यादा नहीं पढ़े थे। सीधी बात पकड़ लेते थे।

तो सुषुम्ना धीरे-धीरे खुलती है।

इड़ा के घर पिंगला जाई। सुखमन नीर रहे ठहराई।।

हम जो स्वाँसा ले रहे हैं, सीधा सुषुम्ना से नाभि में आ रही है। गाड़ी की उर्जा फ्यूल है। शरीर की उर्जा स्वाँसा है। यह कर्मज्ञानेन्द्रिय को चेतन कर रही है। नाभि में आकर 10 **वायुओं** में बदल रही है। फिर पूरे शरीर को चेतन कर रही है। जितने काम दुनिया के अनुकरण कर रहे हैं, इनका संचालन स्वाँसा कर रही है। योगी लोग आन्तरिक-जगत में जाने के लिए इड़ा को पिंगला में लय करके सुषुम्ना को खोलते थे। सुरति की ताक़त से स्वाँसा नाभि से ऊपर की ओर चलती है।

स्वांस सुरति के मध्य में, कबहूँ न न्यारा होय।
ऐसा साक्षी रूप है, सुरति निरति से जोय।।

ध्यान हरदम हो। चेतना से निकलना बड़ा मुश्किल है। मन चेतन है। वो ध्यान हटा देता है। फिर कहते हैं कि कुछ न मिला।

स्वांस सुरति इक डोरी लाय। अजर अमर होय लोक सिधाए।।

पहली स्टेज में लगेगा कि गर्दन के नीचे का शरीर नहीं है। क्योंकि स्वाँसा रुक गयी। कुछ देर में लगेगा कि गर्दन भी नहीं है। वहाँ घबराहट होती है। इच्छाओं की पूरी गठरी बाँधी है कि फलाना काम करना है, फलाना काम करना है। वो सब अधूरी लगती हैं, क्योंकि यह मरने वाली स्थिति होती है। इसलिए कह रहे हैं—

चाह मिटी चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह।
वो ही शाहनशाह है, जिसको नाहीं चाह।।

15:21

तरीका यह है कि गुरु ने कहा है कि नहीं बताना है। यह तो वैसा ही हुआ कि कोई कहे कि चाँदनी चौंक का रास्ता बताओ तो कहे कि बाप ने मना किया है, कहा है कि नहीं बताना है। तो यह अशिष्टता लगेगी। यह कैसी बात है! फिर बोध कैसे होगा? अच्छा जी, तो मैं पूछता हूँ कि आप सुषुम्ना में गये कैसे? क्योंकि मैं ठीक-ठीक जानता हूँ कि पूरे शरीर को सीज करना पड़ता है। उनकी बातें अलग होती हैं; लगता है कि अहंकार का कवच पहने हैं; अटक जाते हैं। भटकने से निकलने को कहते हैं कि गुरु जी ने कहा है कि नहीं बताना है। वो किताब पढ़ना जानते हैं, प्रेक्टिकॅल ज्ञान नहीं है। मैं कहता हूँ कि 40 साल से ये दोहे बोल रहा हूँ; ये मत बता। अन्दर में किस सिद्धांत से जाता है, थोड़ा बता। महापुरुषों ने बातें बोली हैं।

खोजत फिरूँ भेद वा घर का, कोई देत न हामी।।

आगे कह रही हैं—

रविदास संत मिले मोहि सतगुरु, दीन्ही सुरति सहिदानी।।

कह रही हैं कि उन्होंने भेद दे दिया। देखते हैं कि सुषुम्ना सभी बोल रहे हैं, तो क्या चीज़ है।

इड़ा पिंगला सुषुम्न बूझे, आपे अलख लखावे।
उसके ऊपर सांचा सतगुरु, अनहद सुरति शब्द समावे।।

कैसे खोलना है, कह रहे हैं—

स्वांस सुरति के मध्य में कबहूँ न न्यारा होय।।

स्वाँसा में हर समय सुमिरन चलता रहे।

जप तप संयम साधना, सब सुमिरन के माहिं।
कबीर जानत संत जन, सुमिरन सम कछु नाहिं।।

साहिब कह रहे हैं—

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कहैं कबीर सुमिरन किये, साईं माहिं समाय।।

बनत बनत बन जाई।।

पहले मुझे चिन्नौर का रास्ता मालूम न था, पर फिर बार-बार आने से पता चल गया। नित्य ध्यान में बैठेंगे तो अनूठी चीज़ें अनुभव होंगी। आप सुरति संभालना सीख जाते हैं तो एक आनन्द की अनुभूति खुद-ब-खुद होने लगती है।

जप तप संयम साधना, सब सुमिरन के माहिं।।

तो इड़ा-पिंगला भी नाड़ी है, सुषुम्ना भी नाड़ी है। यह सुषुम्ना रानी नाड़ी है। यह बड़ी महत्वपूर्ण है। यह कैसे होश में आयेगी? जैसे ही शरीर सीज होगा। सुषुम्ना खोलने का मतलब ही पूरे शरीर को सीज करना है। यह बच्चों का खेल नहीं है।

इड़ा पिंगला सुषुम्न सम करे, अद्‌र्ध औ उद्‌र्ध विच ध्यान लावै।
कहैं कबीर सो संत निर्भय हुआ, जन्म औ मरण का भ्रम भानै।।

गुरु नानक देव भी कह रहे हैं—

इड़ा पिंगला सुखमन बूझे, आपे अलख लखावे।
उसके ऊपर सांचा सतगुरु, अनहद शब्द सुरति समावे।।

अनहद के अन्दर से गुज़र कर जाना है।

महापुरुषों की वाणी दर्पन की तरह है—

क्यों भटकता फिर रहा है, तू तलाशे यार में।
रास्ता शाहरग में है, दिलबर पे जाने के लिए।।

क्या है शाहरग ? यही है सुषम्ना नाड़ी जो सुआंस, नाम ध्यान द्वारा खुलती है, जिससे अन्दर की अनुभूती होती है।

जब तक जाग्रत में हैं, यह दुनिया ही दिखेगी। इसी में उलझा रखा है। यहाँ बेटा सच लगेगा, माँ सच लगेगी, स्त्री सच लगेगी। यह है माया का खेला। किस सिद्धान्त से माया ने पकड़ा?

काया माया एकै जानो। झूठा सकल पसारा मानो।।

तो सुषुम्ना रहस्य है। इसे खोलने के लिए पूरी कोशिकाएँ सीज करनी होती हैं। नींद में चले गये तो सपने की दुनिया मिली। नींद में जाने

दोहा–षटदल चक्रको भेदके, योगी पौन चढ़ाय ।
दल सहस्रके कमलमें, निर्विकल्प हो जाय ॥
हो विदेह पद अमर लह, विद्यामें ठहराय ।
भे निरद्वन्द न कल्पना, आपमें आप समाय ॥

चौपाई

जिमि योगी तिमि भोगी देखे । कमल भेद दोनों यक लेखे ॥
द्वन्ददींब दोनोंको खेला । इत नरनारी उत गुर चेला ॥
योगी उरध पौन चढ़ावे । भोगी अधपानी ले आवे ॥
नादके बल योगी अविनाशी । बिंदके चल भोगी सुखराशी ॥
नारिपुरुष जब भा संयोगा । दोनों मिले भोग सुख भोगा ॥
माथेसे जब माथ जुरेऊ । सिखर कमलते बिंद उतरेऊ ॥

नेत्रसे नेत्र जुटे जिहि बारा । द्वैदल कमल भेदि चलु पारा ॥
मुखसे मुख जेहि औसर चूमा । तबही बिंद अधो दिस घूमा ॥
तब षोडश दल कमल बधाना । द्वादशदलपर पुनि ठहराना ॥
अनहद चक्रते बिंद उतारा । मणिपूरकपर आसन धारा ॥
मणिपूरकते हेटको हेरा । स्वाधिष्ठान चक्र कर डेरा ॥
नारिपुरुष मिलि द्वन्द मचाया । स्वाधिष्ठान उतरि जल आया ॥
टिका अधारचक्र जब पानी । सह विकल्प भोगी तब जाना ॥
ज्ञान पुत्र योगा जब पायौ । अमर भयौ फिर गर्भ न आयौ ॥
योगी हृदये जबलों ज्ञाना । तबलों ताको अमर बखाना ॥
ज्ञान लोप होवे जेहि काला । तब योगीको हो जंजाला ॥
ज्ञानदृष्टि करि योगी जाना । मेंहंमि जगमें पसराना ॥
अज्ञ पुत्र तिमि योगी जाया । वंशवृद्धि जगमें फैलाया ॥
भोगी अमर भयौ तेहि बारा । तासु वंश जगमाह पसारा ॥
जबलों वंश जक्तमें ताका । भोगा अमर भयौ परिपाका ॥
तासु वंश जब हो संसारा । भोगी मृतक होय तेहि बारा ॥
आपे आप सकल जगमाही । अज्ञदृष्टि करि जा तन नाहीं ॥
योगी विद्या द्वारे जाना । भोगी अविद्याते अज्ञाना ॥
योग भोग दोनों हैं झूठे । संत सुजान दोहूते रूठे ॥
योगअरु भोग ब्रह्म जिव माया । नादबिंद जो कछु उपजाया ॥
सो सब भर्म एक नहिं सांचा । सांचे सतगुरुको यह वाचा ॥
भर्मं नाद अरु भर्मं बिंदू । भर्महि तुर्क अरु भर्मं हिंदू ॥
भर्म निमाज भर्मही रोजा । भर्महि ते सब ईश्वर खोजा ॥
भर्महि देऊल भर्महि देवा । भर्महि पूजा भर्महि सेवा ॥
भर्महि धरती भर्म अकाशा । भर्महिको यह सकल प्रकाशा ॥
भर्मको रचित सकल संसारा । टूटै भर्म होय भव पारा ॥

इति योग और भोग मिथ्या

05:28
exoticindiaart.com/book/details/kriya-yoga

(ङ) क्रियायोग की आवश्यकता 287

अष्टम अध्याय- क्रियायोग का अभ्यास 294

(क) नाभि क्रिया 295

(ख) खेचरी मुद्रा 296

(ग) गुरु प्रणाम 298

(घ) हंस साधना 301

(ङ) ओम् प्रविधि 306

(च) महामुद्रा 312

(छ) मुख्य क्रिया प्रविधि (प्रथम) 317

(ज) ज्योति मुद्रा 329

(झ) शाम्भवी मुद्रा 331

(ञ) द्वितीय क्रिया प्रविधि 333

(ट) तृतीय क्रिया प्रविधि 346

(ठ) चतुर्थ क्रिया प्रविधि 347

(ड) क्रियायोग के लिये आवश्यक बन्ध और मुद्रा 350

परिशिष्ट 357

2

'सखी हो भाग हमारे पूरा ।

१- निरंजनी संप्रदाय और संत तुरसीदास निरंजनी : डा०भगीरथ मिश्र, पृ०१७६ ।
२- वही, पृ०१६४-६५ ।

भेलूं सरस बसंत पीव संगि, बाजै अनहद तूरा ।।टेक।।
इला पिंगुला सम करि राखूं, मधि सुषमनां आंनी ।
पांच सखी मिलि भेलन लागी, नां घर भरै न पांनी ।।
घर घर आनंद होत परमसुख, सुनि मंडल के छाड़ा ।
परमात्म सूं आत्ममेला, बेणि मधुर धुंनि बाजै ।।
मन निहचल निरभै सुख लागा, परमसुख मन पाया ।
जन सेवादास आनंद सुख बिलसैं, सतगुर अलख लखाया ।।'[१]

इस प्रकार अलख को देखकर सेवादास आनंद और परमसुख के लोक में विलास करते हैं । तात्पर्य यह कि आध्यात्मिक प्रेम की आनंदात्मक अनुभूति ही इन दांपत्य प्रेम के प्रतीकों में अधिक व्यंजित हुई है, इसीलिए यह निरूपण अपेक्षाकृत अधिक सरस भी है । प्राय: सभी कवियों ने साधना की आनंदात्मक अनुभूति को इस मधुररस की व्यंजना के द्वारा ही अभिव्यक्त किया है ।

विरह निवेदन

जिस प्रकार दांपत्य प्रेम के प्रतीकों द्वारा साधनात्मक आनंद की अभिव्यक्ति निरंजनी-साहित्य में उपलब्ध है उसी प्रकार जीव का ब्रह्म के प्रति विरह निवेदन भी इन्हीं प्रतीकों के द्वारा अभिव्यक्त हुआ है । साधक या संतकवि अपने को विरहिणी के रूप में उपन्यस्त कर जिस भावविह्वलता से प्रिय का आह्वान करता है, वह अत्यंत करुण किंतु नितांत रमणीय रूप में उपस्थित है । वास्तव में परब्रह्म के प्रति विरह की यह अनुभूति साधना की एक पहुंची हुई अवस्था है जिसकी तीव्रता का संबंध हृदय की पवित्रता से है । हृदय की पवित्रता के बाद जब परमात्मा के सान्निध्य का अनुभव होता है तभी आत्मा और परमात्मा के बीच का व्यवधान साधक को खलने लगता है और उसे यह विरह सताने लगता है । इसीलिए यह विरह संतों के सौभाग्य की वस्तु है, कष्ट की नहीं । इसी भाव को तुरसी ने इस प्रकार व्यंजित किया है ।

१- निरंजनी संप्रदाय और संत तुरसीदास निरंजनी : डा०भगीरथ मिश्र, पृ०२०० ।

त्रिकुटी छई नाम निज गाया। तुलसी भिन भिन भेद लखाया॥
जोगी जीत रीत कोई जानै। त्रिकुटी चढ़ै भेद पहिचाने॥
आगे सतमत द्वार लखाऊँ। सुकिरत सेत द्वार दरसाऊँ॥
जौन दिसा सुकिरत है भाई। तौन दिसा सत द्वार लखाई॥
अष्ट कँवल दल दरपन माईं। नाभि सेत नल मध के ठाईं॥
नल नागिनि करि बैठी भेषा। जीव भखन वो करै अनेका॥
पुनि सरवर तेहि पास बिराजैं। ता पर बैठि सभा बहु गाजै॥
तेहि सरवर जल नीर अपारा। जीव उतरि कोइ जाइ न पारा॥
कौन दिसा नागिनि रस रूखा। कौन दिशा सरवर रहै सूखा॥
अभि अंतर सुकिरत सत बासा। करिया कँवल में काल निवास॥
अष्ट कँवल नागिनि रस रूखा। सरवर बिरह कँवल में सूखा॥
यह सत रीति द्वार दरसाई। अब मैं कहौं सुनो तुम भाई॥
आगे तरवर भेद अपारा। चारि बिरछ पर सुरति सम्हारा॥
जीव पैठि सोइ मारग पावै। गगन कँवल भीतर चलि आवै॥
उलटै चक्र सुन्न में धावै। सिध साधक जहँ ध्यान लगावै॥
बिरछ चारि सोइ कहौ बुझाई। जाकर नाम ठाम गति गाई॥
जहँवाँ कागभसुण्ड कहु काला। बट पीपर पाकरी रसाला॥
कागभसुण्ड काया के माईं। तन मन बिरछ संत समझाई॥
बिरछा ऊपर तालबिराजै। निरखत काल कला सब भाजै॥

अर्थ—मैंने अपनी छः त्रिकुटियों के नामों का वर्णन किया है और उनके भिन्न-भिन्न भेदों को दिखाया। कोई योगी ही इस संसार की जीत की रीति को जानता है, तो वही त्रिकुटी पर चढ़कर उनके भेदों को समझेगा॥

आगे सतमत का द्वार दिखाऊँगा—ये सुकीर्ति के द्वार हैं। हे भाई जिस दिशा में जिस दिशा में वह सुकीर्ति है—उसी दिशा में 'सत' द्वार हैं॥

. जहाँ अष्ट दल कमल दर्पण की भाँति हैं—वह स्थान नाभि के श्वेत नाल से मध्य में है। उसी नाल में नागिन वेषबदल कर बैठी है—जो अनेक जीवों का भक्षण कर लेती है॥

पुनः उसके पास एक सरोवर है—वहाँ बैठकर आत्मनिष्ठ अनेक सभाएं करता है। उस सरोवर का जल अगाध है—उसको पार करके कोई जीव जा नहीं सकता॥

किस दिशा में नागिन रस से रुष्ट रहती है, किस दिशा में सरोवर सूखा रहता है। उस सरोवर के मध्य में सुकीर्ति धर्मी सत् निवास करते हैं। काले कमल में यहाँ काल निवास करता है॥

अष्ट कमल में नागिन रसरुष्ट रहती है—सरोवर कमल के वियोग में सूखा रहता है। मैंने इस 'सत' रीति का द्वार दरसाया है—अब आगे जो मैं कहता हूँ, हे भाई! तुम सुनो॥

उस सरोवर के आगे वृक्षों के अनेकभेद हैं—इनमें से चार वृक्षों पर सुरति संभली हुई है। जीव वहाँ प्रवेश करके आगे का मार्ग प्राप्त करता है और वह (आगे) गगन कमल के भीतर प्रवेश कर जाता है॥

यह चक्र उलटकर शून्य में चक्कर लगाता है (दौड़ता है) और वहाँ सिद्ध एवं साधक ध्यान लगाते हैं। वहाँ स्थित उन चार वृक्षों के विषय में मैं समझा कर कहता हूँ—मैंने स्वयं वहाँ जाकर उनके नाम, स्थान तथा स्वरूप ज्ञान का गान किया है॥

जहाँ कुछ समय तक कागभुशुण्डि रहे हैं—वे वट, पीपल, पाकर एवं आम्रवृक्ष हैं। कागभुशुंडि की काया के मध्य में तन, मन एवं वृक्ष तीनों को सन्तों ने समझाया है॥

इस वृक्ष के ऊपर एक एक सरोवर शोभित है—और उसे देखते ही काल की सम्पूर्ण कलाएँ भागकर (तिरोहित हो) जाती है।

19:01

तुम चाल्या साऊ कौन मेरा, घर अंगनामें पड़ा अन्धेरा।
अटकी मेरी नाव समुद्र बीच बेड़ा।
मेरा रंग बिखर गया जी रम गया रावल खोड़ पड़ी ॥ ४ ॥
नाथ गुलाब मिला गुरु पूरा, बिना ताल नहीं बजे तंबूरा।
समझेगा कोई साधू सूरा ॥
भानीनाथ जन तेरा जी, तुम हर भजो मेरी काया जिंदड़ी ॥ ५ ॥

११०८—भजन

सखि आयो है फागन मास, जीवेंगेसे नर खेलेंगे होरी।
होरी खेल गये प्रह्लाद मरणहु से नांय डरयोरी ॥ टेक ॥
नन्द बबाके द्वारे आज मंडी है होरी।
नौ मन उड़त गुलाल सवा मन केसर रंगोरी ॥ १ ॥
तुम जो सखी सुर ज्ञान नार म्हारे आंगन चलोरी।
राधामें गेरत श्याम श्याममें फेंकत राधे गोरी ॥ २ ॥
सखी मत कर गुमान पलकमें बिछर जागी जोरी।
तेरा बोलतड़ा उड़ जाय, निकस जागा कौनसी मोरी ॥ ३ ॥
प्रेम मगन चित लाय, रटो क्यूंना नन्द किशोरी।
जन गावेहै मानीनाथ सत्संगतकी नाव तैरोरी ॥ ४ ॥

भानीनाथ

११०९—भजन

ईशकी महिमा अपरम्पार।
ब्राह्मण तो मुख सेती प्रगट्या, पढ़ण पढ़ाणे कार ॥ १ ॥
क्षत्रिय भये भुजासे उत्पन्न, रक्षण करण संसार ॥ २ ॥

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

05:55

Kabir Jeevan Aur Dar...
archive.org

INTERNET ARCHIVE

मार्ग रहता है।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना—चक्रभेदन के लिए ऊपर उठने वाली कुण्डलिनी सुषुम्ना से प्रवाहित होती है। इस क्रिया में इड़ा-पिंगला सहायक होती हैं। प्राण-वायु का वहन करने वाली बायीं ओर की नाड़ियाँ 'इड़ा' और दाहिनी ओर की नाड़ियाँ 'पिंगला' कही जाती हैं। इड़ा के लिए 'चन्द्रनाड़ी', 'ललना' और 'गंगा' तथा पिंगला के लिए 'सूर्यनाड़ी', 'रसना' और 'यमुना' प्रतीकों का व्यवहार होता है। इन दोनों के बीच में रीढ़ के एक छोर से दूसरे छोर तक—ब्रह्मरंध्रपर्यंत 'सुषुम्ना' है। 'सुषुम्ना' के लिए 'अवधूती' और 'सरस्वती' प्रतीकों का प्रयोग होता है। यह शून्य की ओर ले जाने वाली होने से उसे शून्यनाड़ी भी कहते हैं। सुषुम्ना के अन्दर क्रमशः वज्रा, चित्रिणी और ब्रह्मनाड़ी का समावेश होता है। सूर्य और चंद्र प्राण और अपान के प्रतीक हैं।

नाड़ी चक्र को तिर्यक् मार्ग और तिर्यक् गति बताया गया है। सुषुम्ना का मार्ग सरल मार्ग, मध्यम मार्ग या केन्द्रीय मार्ग भी कहा जाता है।

सरल मार्ग—आत्मस्वरूप में सूर्य-चंद्र के मंडलों में अर्थात् नाद और बिंदु का अस्तित्व नहीं है। आत्मा सहज स्वभाव से मुक्त है। इसलिए नाड़ियों के तिर्यक् मार्ग को छोड़ संपूर्ण गंभीर बाधाओं से मुक्त सुषुम्ना के स्थूल मार्ग का अनुसरण करना ही श्रेयस्कर है। इस साधना मार्ग की प्रक्रिया में चित्त शुद्धि, समरसता, और बोधिचित् तथा नैरात्मा पारस्परिक मिलन-तीनों का समान महत्त्व है, क्योंकि उसका परिणाम है 'सहजानुभूति' या 'स्वयं-वेदन'। इसीलिए यह अनिर्वचनीय है।

सुषुम्ना के भीतर स्थित ब्रह्मनाड़ियों में से कुण्डलिनी प्रवाहित होती है। कुछ योगियों के द्वारा तीन और कुछ के द्वारा पाँच स्रोतों या नाड़ियों का उल्लेख किया गया है। सुषुम्ना के तीन स्तरों के विश्लेषण से ये पाँच बतायी जाती हैं।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों का ब्रह्मरंध्र में संगम होता है। इनके लिए क्रमशः 'त्रिवेणी' और 'प्रयाग' शब्द-प्रतीकों का वर्णन संतों द्वारा किया गया है। संगम होने पर वायु का गमनागमन निरुद्ध होकर 'महासुख' माने सहज-सुख का आविर्भाव होता है और योगी कमल-किंजल्क का पान करता है।

'कैलास' माने जगद्गुरु शंकर का स्थान। प्रत्येक व्यक्ति के गुरु का स्थान अपने भीतरवाले इस कैलास में है। 'कैलास' और 'महासुख-कमल' का रूपक समझाते हुए वर्णन किया गया है—"यह पावप नभ रूप जल में परमानन्द मय

CC-0 Kashmir Research Institute. Digitized by eGangotri

प्रकाशपंथ में उत्पन्न होता है। 'मूल-शक्ति' उसकी नाल है और 'अनाहत नाद' उसका रूप है। जहाँ वायु और मन एक साथ निश्चल हो जाता है वह 'ऊर्ध्व मेरु' सुषुम्ना का सिरा, आध्यात्मिक यात्रा का अंतिम गंतव्य 'कैलास' है। उसकी कल्पना पर्वत-शिखर के समान की गई है। वही 'महामुद्रा' और 'मूल-शक्ति' का निवास-स्थान है। अपने निवास-स्थान में लौट आना माने कुलीन होना, परम कर्तव्य अदा करना।"

यह शक्तिकेंद्र ब्रह्मरंध्र के सहस्रार के मूल में त्रिकोणाकार है और उसे 'योनि' कहते हैं। वह चन्द्रमा का स्थान है। इसमें से सदा अमृत झरता रहता है। इसके साथ योगी की कुलीनता और परम कर्तव्य का संबंध जोड़कर वर्णन किया जाता है—"सिद्धासन से योगी सोमरस माने अमर वारुणी का पान करता है और गो-मांस-भक्षण माने खेचरी मुद्रा धारण करता है।" कबीर ने इसी स्थिति को 'महा रस' का रूपक देकर उसमें 'भव की भट्ठी', 'ध्यान का महुआ' और 'ज्ञान का गुड़'

१३१

Lists Favorite Share Flag

Kabir Jeevan Aur Darshan

'ऊर्ध्वरेतस्' कहा जाता है ।[1]

नाट्यशास्त्र की शब्दावली में प्रयुक्त 'बिंदु' अर्थप्रकृति की पाँच स्थितियों में से दूसरी स्थिति है । "अवान्तरार्थ विच्छेदे बिन्दुरच्छेद कारणम्", अर्थात् किसी दूसरे अर्थ या कथा से विच्छिन्न हो जाने पर इतिवृत्त के जोड़ने या आगे बढ़ाने के कारण को 'बिन्दु' कहा जाता है । जैसे तेल की बूंद पानी में फैल जाती है, वैसे ही बिन्दु भी नाटकीय कथावस्तु में फैल जाता है ।

इस परिभाषा में बिंदु के तीन लक्षण बताये गये हैं, जो योगपरक शब्दावली के 'बिंदु' से सम्बन्ध रखते हैं—

(१) 'संयोग' माने आत्मा-परमात्मा की एकता में कारण रूप ।

(२) 'आगे बढ़ाना' माने वंश-परम्परा में कारण रूप ।

(३) 'व्याप्त होना' माने ब्रह्माण्ड में प्रकाश रूप से व्याप्त ।

विश्लेषण की दृष्टि से नाद और बिंदु की अलग-अलग चर्चा की गई । सामान्य रूप से ये दोनों इतने एकरूप हैं कि परस्पर को प्रभावित किये बिना नहीं रहते । "कुण्डलिनी को जाग्रत कर योगी लोग जब उसे (बिंदु को) उद्बुद्ध कर लेते हैं तब वह ऊपर की ओर उठती है । उसकी इस ऊर्ध्वगति से जो स्फोट होता है, उसे नाद कहते हैं । यह नाद अनाहत रूप से सारे ब्रह्मांड में व्याप्त है । यही पिण्ड में भी है, पर इसे अज्ञानी नहीं सुन सकते, क्योंकि उनका सुषुम्नापथ बंद है । जब हठयोग से उनका वह पथ खुल जाता है, वे उस अनाहत ध्वनि को सुनने लगते हैं । अनुभवी साधकों ने पहले समुद्र-गर्जन' मेघों की गड़गड़ाहट, शंख, घण्टे आदि की ध्वनि और अन्त में किंकिणी, वंशी, भ्रमर आदि की ध्वनि के समान बताया है । यही नाद वास्तव में उपाधियुक्त होकर सात स्वरों में विभाजित हो जाता है, पर निरुपाधि होकर प्रणव या ओंकार कहलाता है । इसी को 'शब्द-ब्रह्म' कहते हैं । वैष्णव पद्धतियों में इष्टदेव के नाम को 'शब्दब्रह्म' कहते हैं । इसी 'शब्द ब्रह्म' को वैयाकरणों ने 'स्फोट' कहा है । संतों ने अनाहत-नाद को 'सोहं' ध्वनि भी कहा है ।"[2]

नाद और बिंदु का वैसा ही अविकल सम्बन्ध है जैसा मेघ और विद्युत् में । बिजली का चमकना, मेघ की गर्जना और अंत में वृष्टि । संतों और भक्तों के पदों में इन तीनों प्राकृतिक घटनाओं का वर्णन-उल्लेख स्वानुभूतिपरक अर्थ में बार-बार किया गया है । बिंदु का प्रकाश रूप होना, नाद ध्वनि का श्रवण, अमृत वर्षण आदि कल्पना या अलंकार मात्र नहीं, अध्यात्म जगत् का तथ्य माने यथार्थ है ।

---

१. हिन्दी साहित्य कोश—भा० १ पृ० ५१३-४ ।

२. हिन्दी साहित्य कोश—भा० १ पृ० ३९२ ।

CC-0 Kashmir Research Institute. Digitized by eGangotri

इनका मिलन शिव-शक्ति का मिलन है, इसलिए अनिवार्य है। इससे चित्त में समरसता का प्रादुर्भाव होता है जो अद्भुत आनंददायी होता है। यही महासुख है। एक ही व्यक्ति में दो के मिलन की यह आध्यात्मिक घटना गूढ़ और रहस्यपूर्ण मालूम होती है। इसलिए इसे साधना-प्रक्रिया के रूप में समझना आवश्यक है।

इड़ा-पिंगला-इन दो नाड़ियों की विषमता मिट जाय और समता आ जाय तो सुषुम्णा में ये लीन होकर समाधि की स्थिति को सुलभ करा देती है। यही त्रिवेणी का संगम और उसमें निमज्जन, तथा उससे प्राप्त आनंद 'महासुख है। इस समरसता की प्राप्ति का अर्थ भावाभावविनिर्मुक्त सहज प्रेमाश्रय भगवान् से मिलना। यह संभावना निश्चित होने से सहज है। इसलिए इस मिलन से प्राप्त नित्य आनंद को 'सहजावस्था' या 'सिद्धावस्था' भी कहा गया है।

सहजावस्था—कबीर ने 'सहज समाधि' में 'सहजावस्था' का समावेश कर दिया है। यह है आध्यात्मिक स्वरैक्य का जागरण। इसके लिए संतुलित दृष्टि-कोण सच्चा साधन है। साधना को उपवासों या क्लेशों से कष्टकर बनाना भी आवश्यक नहीं है और कुत्सित इन्द्रिय-जन्य विषय-भोग को साधना मान लेना भी उचित नहीं है। सहजावस्था की मूल शक्ति है सहजानुभूति। सहजानुभूति अर्थात् तत्त्वान्वेषण की सहज प्रवृत्ति के फलस्वरूप प्राप्त तत्त्वानुभूति। कबीर ने इसी अर्थ में सहजावस्था का वर्णन किया है। पाँचों इन्द्रियों का स्पर्श करती हुई यह सहज वृत्ति विषय-संस्पर्श से उनकी रक्षा करती है जिससे मनुष्य परब्रह्म की प्राप्ति की साधना निर्विघ्न रूप से कर पाता है और अंत में वह परमतत्त्व में स्थिर हो जाता है।

इस साधना को सरल बनाये रखने के लिए ही संतों के बाह्य अनुष्ठानों में अपना अविश्वास पूर्ण विरोध प्रदर्शित किया और इसकी व्यर्थता के प्रतिपादन में ब्राह्मण, याज्ञिक, त्रिदण्डी जटाधारी और क्षपणक का मखौल उड़ाया। किसी प्रकार की पूजा-अर्चा में उनकी श्रद्धा न थी। वे उपदेश करते कि ध्यान-धारणा, पूजा-पाठ से मुक्ति नहीं मिलेगी। कबीर की विचारधारा इससे प्रभावित थी, परंतु वह अंधानुकरण नहीं, मौलिक चिंतन से युक्त थी।

सहज-मार्ग की व्यवस्था का श्रेय गोरखनाथ को है। उन्होंने मौलिक रूप से गृहस्थ जीवन के प्रति अपनी अरुचि व्यक्त की सहजावस्था प्राप्त करने के लिए उन्होंने संन्यास और ओम् का जप आवश्यक बताया। 'ओम्' में तारक 'ब्रह्मा', पिण्ड 'विष्णु', कुण्डली 'रुद्र' अर्धचन्द्र 'ईश्वर' और बिन्दु' सदा शिव है—इस प्रकार की भावना युक्त व्याख्या करके इनसे भी ऊपर परमतत्त्व स्वरूप निरंजन का संकेत किया जो सृष्टि-स्थिति-प्रलय के मूल कारण हैं। इस निरंजन को प्राप्त करना ही सहजावस्था है। इसके लिए साधना में विषय-त्याग, गुरु कृपा और तत्त्वदर्शन तीनों एक साथ अनिवार्य हैं।

CC-0 Kashmir Research Institute. Digitized by eGangotri

सिद्ध काणहपा ने सहज या महासुख के उत्पत्ति की कल्पना शरीर के अन्दर इड़ा एवं पिंगला नाम की दो नाड़ियों के संयोग में ही किया है, उसे वायु के नियमन द्वारा भी प्राप्त करना आवश्यक कहा है।[4] उन्होंने बायीं नासिका की 'ललना' नामक प्रज्ञा स्वरूप को चन्द्रनाड़ी एवं दाहिनी नासिका की 'रसना' नामक उपाय स्वरूप को सूर्य नाड़ी कहा है, और उन्हें उस महासुख कमल के दो खण्ड बतलाया है। उसका पौधा गगन के जल में परम आनन्दमय प्रकाश पंक-रूप में उत्पन्न होता है। उसका मुख्य नाल मूलशक्ति होती है, और उसका अनाहत ज्ञान का होता है। साधक अथवा योगी जन शरीर के अन्दर ही इस महासुख कमल के मकरन्द

---

[1] 'सहजछड्डिजे णिव्वाण भाविउ णउ परमत्थ एक्क तेसाहिउ। - सरहपाद का 'दोहा कोष', पृ0 17, दोहा-13।
[2] सरहपाद का 'दोहा-कोष', पृ0 24, दोहा 50।
[3] सरहपाद का 'दोहा कोष', पृ0 32, दोहा 77।
[4] काण्हपा का 'दोहा-कोष', 4,5,6, पृ0 41।

का पान कर लेते हैं। साधक अथवा योगियों का यह आनन्द 'सुरतवीर' के आनन्द के समान होता है। सिद्धों ने उस स्थान की कल्पना 'उद्धमेरू' या 'मेरूदण्ड' अथवा 'सुषुम्ना' के सिरे के रूप में की है, जहाँ पवन एवं मन को एक साथ निश्चल अथवा निस्तब्ध किया जाता है। काणहपा ने उसे पर्वत के समान सम-विषम कहा है, और यह भी कहा है कि उसकी कन्दरा में सम्पूर्ण जगत विनष्ट होकर शून्य में लीन हो जाता है।[5] सिद्धों ने पर्वत के उसी शिखर को महामुद्रा या मूल शक्ति नैरात्मा का निवास-स्थान कहा है।[6] सिद्ध शबरपा का कहना है कि उक्त "ऊचे शिखर पर अनेक बड़े-बड़े वृक्ष पुष्पित हैं और उनकी शाखायें गगन का चुम्बन करती हुई प्रतीत होती हैं। वहाँ पर अकेली शबरी (नैरात्मा) बन का एकान्त बिहार करती है, वहीं त्रिधातु की बनी हुई सुन्दर सेज भी बिछी है, और साधक योगी वहाँ पहुँचकर उक्त दारिका के साथ प्रेमपूर्वक विलास किया करता है।"[7]

3. जैन मुनियों का सुधारक सम्प्रदाय

साधना पद्धति एवं मोक्ष की अवधारणा :

जैन मुनियों के सम्प्रदाय में अहिंसा और संयमशील जीवन व्यतीत करना, मनसा वाचा कर्मणा किसी प्राणी को दुःख न देना, सदाचार का पालन करना, किसी प्रकार का दान न लेना जीव का प्रधान लक्ष्य माना गया है। ये जीव का मूल स्वभाव शुद्ध, बुद्ध एवं सच्चिदानन्दमय मानते हैं, और उसे कर्म के आवरण से आच्छादित होना मानते हैं। अतएव

---

[5] काण्हपा का 'दोहा-कोष', (दोहा-22, पृ0 44)
[6] काण्हपा का 'दोहा-कोष', दोहा-14 व 15, पृ0 42।
[7] चर्यापद (भाग-1, डॉ0 बागची संपादित) चर्या 28, पृ0 133

षडङ्गयोग या हठयोग :

हठ योग प्राण-निरोध प्रधान साधना है। 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' में ह का अर्थ 'सूर्य' और ठ का अर्थ 'चन्द्र' बतलाया गया है। सूर्य और चन्द्र के योग को ही हठयोग कहते हैं। ब्रह्मानन्द के मत से सूर्य से तात्पर्य प्राणवायु का है और चन्द्र से अपानवायु का। प्राणायाम से वायु का निरोध करके इन दोनों का योग करना ही हठयोग है। दूसरे रूप में सूर्य इड़ा नाड़ी है और चन्द्र पिंगला नाड़ी है। इसलिए इड़ा और पिंगला नाड़ियों को रोककर सुषुम्ना मार्ग से प्राणवायु के संचरित करने को हठयोग कहते है।। इस सम्प्रदाय में मन की चंचलता पर नियंत्रण करने के लिए और उसे नियन्त्रित करके ध्यान में लगाने के लिए गुरु की अनिवार्यता कही गई है। क्योंकि बिना योग्य गुरु के ज्ञान नहीं हो सकता और बिना ज्ञान के वैराग्य नहीं हो सकता-

''बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होई विराग बिनु।''

नाथ पन्थ में साधना के क्रियात्मक प्रयत्न के लिए गुरु की आवश्यकता और अधिक होती है-

गुरु राख्या गहिला, निगुरा न रहिला।। (गोरख बानी)

कबीर कहते हैं-

सगुरा होइ तो झर-झर पीये, निगुरा जाइ पियासा।

मनोमारण :

मृगया के रूपक द्वारा गुरु गोरखनाथ ने अपने एक पद में मनोमारण क्रिया को बड़े ही सुन्दर ढंग से समझाया है।[13] इसी प्रकार गुरु गोरखनाथ ने अजपा जाप द्वारा मन की चंचलता को रोककर ब्रह्मरंध्र महारस अथवा योगामृत प्राप्त करने की विधि के लिए एक सुनारी का रूपक दिया है और बतलाया है कि इस प्रकार साधक अपनी श्वास क्रिया की धौंकनी के सहारे से ही रस जमाकर उक्त कार्य सम्पन्न कर सकता है।[14]

Tecno Mobile
TECNO
Still Settling for Basic?
Open

उदा: "सो जोगी जाकै सहज भाइ ।
अकल प्रीति की भीख खाइ ।।
सबद अनाहद सींगी नाद, काम क्रोध विषया न बाद ।
मन मुद्रा जाकै गुरु कौ ग्याँन, त्रिकुट कोट मैं धरत ध्यान
काया कासी खोजै बास, तहाँ जोति सरूप भयौ परकास
ग्याँन मेषली भाइ, बंकनालि कौ रस खाइ ।
जोग मूल कौ देइ बंद, कहि कबीर थिर होइ कंद ।।" [1]

उलटबाँसी :-

उलटबाँसी साहित्य ऋग्वेद से प्रारंभ होकर लौकिक, संस्कृत साहित्य, पाली , प्राकृत , अपभ्रंश आदि से होती हुई भाषा साहित्य की ओर बढ़ रही है। कबीर की अधिकांश उक्तियाँ उलटबाँसियों के रूप में है। "आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने "उलटबाँसी शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार यह शब्द "उलटा" तथा अंश के योग से बना है। उन्होंने यह भी लिखा है- उलटा एवं "बाँस" शब्दों द्वारा मानकर भी किया जा सकता है, जिस दशा में उसका ठीक-ठीक शब्दार्थ वैसी रचना के अनुसार होगा जिसका बाँस {पार्श्व भाग या अंग} उलटा या विपरीत ढंग का पाया जाय।" [2] उलटबाँसियाँ बहुधा अटपटी बानियों के रूप में रची गई हैं, जिस कारण इनके गूढ

---

1. डा. जयदेव सिंह , डा. वासुदेव सिंह - कबीर वाङ्मय खण्ड- 2, पद-321, पृ. 407
2. पं. परशुराम चतुर्वेदी - कबीर साहित्य की परख- पृ. 151-152

(५५)

राग शब्द झड़ लागो रे बरसण लागो रंग

बोले रे काया मन्दिर माय, सोऽहं शब्द विचार ॥ टेर ॥
दांत जीभ बिना होठ हिलाई
बिना कर माला फिरत सदाई ।
अजप्पा जाप जपाय, लगी रहे धुन इकतार ॥ सोऽहं ॥ १
बैठ एकान्त लगाकर आसन,
बस में कर इन्द्रियाँ अरु तन मन ।
ध्यान श्वांस में लाय, अर्ध अरु ऊर्ध संभार ॥ २ ॥
हं से श्वासा बाहिर आवे
सो मे श्वासा अन्दर जावे।
हं से सो उलटाय, लखो तब सोहं सार ॥ ३ ॥
सो का अर्थ वही परमात्मा
हं का अर्थ सोई मैं आत्मा।
निशिदिन यहि लिवलाय, द्वैत भ्रम भेद निवार ॥ ४ ॥
अजर अमर अक्षय सतरुपा,
निर्मल नित्यानन्द अनूपा।
सो नहीं आवे नहीं जाय, सेन सतगुरु की धार ॥ ५ ॥

(५६)

राग पूर्व पदानुसार

सुनो रे काया मन्दिर माय, अनहद का झनकार ॥ टेर
पद्मासन एकान्त लगावो,
बहिरंग वृति अन्दर लावो ।

" सहज सहज कोऊ कहै सहज न चीन्हें कोय ।
जा सहजै साहेब मिलै सहज कहावै सोय ।। "

हठयोग की साधना -

उपासना पद्धति में तांत्रिकता संतों को कभी ग्राह्य नहीं हुई । नामदेवादि संतों में योगवर्णन केवल परंपरा निर्वाह के लिए ही दिखाई देता है । नामदेव के गुरु विसोबा खेचर योगी थे । उनसे दीक्षा लेने के बाद नामदेव कुंडलिनी साधना में प्रवृत्त हुए । वे कहते हैं--

" जह अनहत सूर उजारा। तह दीपक जलै छंछारा ।।
गुरु परसादी जानिआ । जनु नामा सहज समानिआ।। "

योग की पारिभाषिक शब्दावली भी नामदेव ने अपनाई है ।

" इडा पिंगला सुषमनि नारी । पवनां मंझि रहाऊंगा।
चंद सूर दोऊ समि करि राखूं ।ब्रह्म ज्योति मिलिजाऊंगा।।"

यौगिक क्रियाओं के बाद प्राप्त साक्षात्कार नामदेव ने इस प्रकार वर्णन किया है --

" झिलमिलि झिलिमिली नूरा रे । जहँ बाजे अनहद तूरा रे।।
ढोल दमामां बाजै रे । तहाँ शब्द अनाहद गाजै रे ।।
फिर रायां ज्योति प्रकासी रे। जहाँ आपै आप अविनासी रे।
जहाँ सूरज कोटि प्रकासा रे। तहँ निहचल नामदेव दासा रे।। "

नामदेव की हठयोग साधना का प्रभाव कबीर पर पूर्णांश से पड़ा है । हठयोग

कबीर पर योग का प्रभाव - वर्णन नाथपंथियों के प्रभाव ... नाथयोगी ...

साधना में गगन मंडल, चंद्रमा, षट्चक्र, अमृत, कुंडलिनी, नाद आदि की चर्चा अक्सर आती है । इनका भी प्रयोग कबीर ने किया है । कबीर जी कहते हैं--

" उनमुनि सौं मन लागिया गगनहिं पहुँचा जाय ।
चाँद बिहूना चाँदना अलख निरंजन राय ।। "

राम नाम की महत्ता बताते हुए कबीर ने हठयोगी शब्दावली का प्रयोग इस प्रकार किया है --

" शून्य मरे अपजा मरे अनहदहू मरि जाय ।
राम सनेही ना मरे कह कबीर समुझाय । "

हाती घ्यावी. अभ्यासरुपी चिलखत अंगावर चढवून सारासार विवेकाचा चष्मा डोळ्यांवर लावून गुरु-ज्ञानाची ध्वजा करावी. त्रिकुट घाटावर चढून नाद बिंदुरुपी गड जिंकावा असा उपदेश तु.

महाराजांनी हठयोगाच्या साधकाला दिला. हठयोगाच्या विविध अंगाची साधना केल्याने साधकामध्ये काय परिवर्तन घडून येते याचेही वर्णन तु. महाराजांनी पुढील छंदात केले आहे.

यम नेम से तनु मन शुची, स्थिर होत आसन -बंधसे ।

उठवाय कुण्डलनी भली, सम प्राण के सम्बन्ध से ॥

षडचक्र का भेदन करे, बिजली गिरे,गरजे गगन ।

गटकाय अमृत बूँद को, कर लीन निज पदमें सधन ॥[८४]

अर्थात यम आणि नियमाच्या पालनाने साधकाचे शरीर आणि मनाचे शुद्धिकरण होईल तर आसनाच्या आणि बंधाच्या अभ्यासाने स्थिरता प्राप्त होईल. प्राणाची गती समान झाली की, प्राण सुषुन्मेमध्ये प्रवाहित होवून कुण्डलिनी शक्तिचे उत्थान होईल. षटचक्राचे भेदन होईल. तेव्हा विजा चमकण्याचा आणि आभाळाची गर्जना होत असल्याचा भास होईल. तेव्हा ब्रह्मरंध्रातून होत असलेल्या अमृताच्या थेंबाचे रसपान करुन त्यातच लीन होण्याचा सल्ला तु. महाराजांनी हठयोगाच्या साधकाला दिला आहे.

योगाच्या उच्चतम अवस्थेतील स्वानुभवयुक्त वर्णनही महाराजांनी केले आहे. तु. महाराज म्हणतात की, एखाद्या सुन्या महालात एखादा दिपक नजरेस पडावा कधी सूर्य , कधी तारे तर कधी विजा चमकण्याचाही अनुभव येतो. रणांगणावर नगारे वाजतात. ते वाद्य आणि ऑर्गन मधून येत असलेल्या मधुर आवाजाचीही अनुभूती या अवस्थेत येते आणि मी निज ज्ञानाची बरखा आहे अशी अनुभूती मला आली आहे. कधी मधुर ऑर्गन, कधी तबला, कधी खंजरी, तर कधी बासुरी, सारंगी, मृदंग आणि झांज असे विविध प्रकारचे वाद्य वाजत असल्याची अनुभूती येते परंतु या सर्वांत तंबुरा सर्वात सरस असल्याचे वाटते. आनंदाचा झरा वाहत असल्याचा आणि अनहद चक्रामध्ये नगाऱ्यांचाच नाद होत असल्याचा नादानुसंधानाचा दिव्य अनुभव तु. महाराजांनी प्रगट केला आहे. परंतु या सर्वांपेक्षा आत्मानंदाची अनुभूती हेच

अशाप्रकारे महत्वपूर्ण पाच मुद्रांचे वर्णन करुन तुकडोजी महाराजांनी तुर्या आणि उन्मनी या योग साधनेतील उच्चतम अवस्थांचे वर्णन केले आहे. ते पुढीलप्रमाणे -

जंव दृष्टि फिरविशी आप। तव चक्राकार दिले कंप।

पुढे नीलवर्ण दिसे चाप। तीच खूण तुर्येची ॥१२॥

श्रवण मनन निजध्यास। एकाग्र करिशी सावकाश।

तंव तूर्येचा अभ्यास। दिसो लागे ॥१३॥

रंग तुर्येचा श्यामता। वारंवार पाहो जाता।

पीत रंग दिसे त्राता। अद्वैतपणे ॥१४॥

पाहणे दिसणे एक होता। लागे उन्मनी अवस्था।

नाभि कुंडलिनी निगुतां। चढे ब्रह्मरंध्री ॥१५॥७

अर्थात जेव्हा दृष्टि आपल्या स्वरुपाकडे फिरविल्या जाते म्हणजे दृष्टि अंतर्मुख होते. तेव्हा स्वरुप चक्राकार दिसून कंपायमान होते. श्रवण, मनन, निदिध्यास या अभ्यासाने मन जेव्हा हळूहळू एकाग्र होते तेव्हा तुर्येची शोभा दिसू लागते. वारंवार साक्षित्वाचा अभ्यास करीत असता तुर्यावस्थेचा रंग काळसर, निळसर, दिसायला लागतो. आपले आपण संरक्षण करीत आहोत याची निशाणी म्हणून पिवळा रंग अद्वैतपणे दिसू लागतो. पाहणारा आणि जी वस्तू पाहायची आहे. ती अर्थात जी दिसते ती दोन्ही एकच झाल्याबरोबर उन्मनी अवस्था सुरु होते. उन्मनीमुळे नाभिस्थानी असलेली कुंडलीनी ही ब्रह्मरंध्रात लवकरच वर चढू लागते. तु. महाराज म्हणतात मात्र हे मुद्रा साधन अखंडपणे केले जावे तेव्हाच साधक या मार्गाने कमी वेळात इच्छित साध्य करुन घेवू शकतो. परंतु मुद्रेच्या अभ्यासात खंड पडला तर समाधीचे उत्थान करुन हळूहळू पुढची वाट चालण्याचा निर्देश तु. महाराज देतात. ही समाधीची वाट कशी चालावी याचे वर्णन महाराजांनी पुढील ओव्यांमधून केले आहे. -

प्रथम करोनि पद्मासन। नासिकाग्री नेत्र फिरवून।

दोन्ही अंगुष्टे श्रवण। बंद करी तत्काळ ॥ १७॥

नेत्री ठेवोनि तर्जनी। मध्यमा ती नासीकास्थानी।

मुख अनामिके रोधोनि। श्वास बंद करी तो ॥१८॥

ऐसे कीजे दोन्ही करे। देईजे सामोरे।

गुरु होऊनि हात रे। तदनंतरे पाहावे ॥ १९॥

शंख मृदंग आवाज। स्पष्ट ओळखो ये सहज।

प्रथम पाहोनि एकांत स्थान । जेथे कोणी नसावे वास्तव्य करुन ।

आधी करोनि एकाग्र मन । तेथे जावोन राही तू ।।१०।।

ठेवोनिया दक्षिण चरणासी । जाई मणिपूर स्वाधिष्टानासी ।

ओढोनिया मूलाधारेसी । स्वस्त उगा राही की ।।११।।

मग सोडी वर प्राण । दोन्ही मिळवी प्राण अपान ।

अनाहती विश्वघ्न । दैवत वसे असे जाण बा ।।१२।।

गुरु असावा सामोरी । मेरुची गाठ उठते वरी ।

श्वास रोधी रे निर्धारी । हठयोग असा स्वानुभूत ।।१३।। [१०]

हठयोगाच्या साधकाने जेथे कोणी वास्तव्यास नाही असे एकांतस्थान शोधून मनाला एकाग्र करुन त्याठिकाणी वास्तव्य करावे. त्याठिकाणी साधनेसाठी आसनस्थिती कशी घ्यावी हे सांगतांना तु. महाराज म्हणतात की, उजवा पाय शिवणी नाडीजवळ ठेवून डावा पाय उजव्या पायावर सहज ठेवावा. उजव्या पायाच्या टाचेच्या आधारावर जाणिव होणार नाही अशा पद्धतीने शरीर वर उचलावे, मुलाधाराचे ठिकाणही वरच्या दिशेला खेचावे. त्यामुळे पुढे स्वाधिष्ठान व मणिपूरचक्रात जाता येते. हा अभ्यास करतांना गुरु प्रत्यक्षात समोर असावा. निर्धाराने प्राणाचा रोध करावा, असे केल्याने मेरुची गाठ वरच्या दिशेला उठते. असा माझा स्वानुभव आहे. असेही तु. महाराज याठिकाणी आवर्जून नमूद करतात. यावरुन हे दिसून येते कि हठयोगाची कठीण साधनाही महाराजांनी एकांत स्थानी जावून केली आणि त्याचा अनुभवसुद्धा त्यांनी घेतला. या मार्गात त्यांना आणखी काय काय अनुभव आला हे सुद्धा त्यांनी पुढील ओव्यांमध्ये नमुद केले आहे.

क्षणोक्षणी चक्रें दिसती । नित्यनियमे जप चालती ।

षडचक्रांचे भवती । अनुभव ऐसा ।।१४।।

त्रिकुटी मिळती मुद्रा तीन । भ्रमर गुंफेसी जाती दोन ।

पश्चिमेसी जाण । एक मार्ग जात असे ।।१५।।

पुढे दिसे वैंकुठ नगर । अनंत रंगाचे माहेर ।

उभी असे द्वारी नार । माया राणी ।।१६।।

पुढे तया नगरा आत । कोटि सूर्यप्रकाश दिसत ।

यम नेम से तनु मन शुची, स्थिर होत आसन -बंधसे।

उठवाय कुण्डलनी भली, सम प्राण के सम्बन्ध से।।

षडचक्र का भेदन करे, बिजली गिरे,गरजे गगन।

गटकाय अमृत बूँद को, कर लीन निज पदमें सधन।।[८४]

अर्थात यम आणि नियमाच्या पालनाने साधकाचे शरीर आणि मनाचे शुद्धिकरण होईल तर आसनाच्या आणि बंधाच्या अभ्यासाने स्थिरता प्राप्त होईल. प्राणाची गती समान झाली की, प्राण सुषुन्मेमध्ये प्रवाहित होवून कुण्डलिनी शक्तिचे उत्थान होईल. षटचक्राचे भेदन होईल. तेव्हा विजा चमकण्याचा आणि आभाळाची गर्जना होत असल्याचा भास होईल. तेव्हा ब्रह्मरंध्रातून होत असलेल्या अमृताच्या थेंबाचे रसपान करुन त्यातच लीन होण्याचा सल्ला तु. महाराजांनी हठयोगाच्या साधकाला दिला आहे.

योगाच्या उच्चतम अवस्थेतील स्वानुभवयुक्त वर्णनही महाराजांनी केले आहे. तु. महाराज म्हणतात की, एखाद्या सुन्या महालात एखादा दिपक नजरेस पडावा कधी सूर्य , कधी तारे तर कधी विजा चमकण्याचाही अनुभव येतो. रणांगणावर नगारे वाजतात. ते वाद्य आणि ऑर्गन मधून येत असलेल्या मधुर आवाजाचीही अनुभूती या अवस्थेत येते आणि मी निज ज्ञानाची बरखा आहे अशी अनुभूती मला आली आहे. कधी मधुर ऑर्गन, कधी तबला, कधी खंजरी, तर कधी बासुरी, सारंगी, मृदंग आणि झांज असे विविध प्रकारचे वाद्य वाजत असल्याची अनुभूती येते परंतु या सर्वांत तंबुरा सर्वात सरस असल्याचे वाटते. आनंदाचा झरा वाहत असल्याचा आणि अनहद चक्रामध्ये नगाऱ्यांचाच नाद होत असल्याचा नादानुसंधानाचा दिव्य अनुभव तु. महाराजांनी प्रगट केला आहे. परंतु या सर्वांपेक्षा आत्मानंदाची अनुभूती हेच

साधकाचे ध्येय असावे. त्याशिवाय उपरोक्त सर्व वर्णनाला काहीही अर्थ नाही असा निर्देश तुकडोजी महाराजांनी पुढील छंदात दिला आहे.

बिन ज्ञानके गर योग का सम्पूर्ण मारग कर चुके।

सिद्धी हजारों भर चुके , कई वर्ष जीवन धर चुके।।

पर फोल ही वह जानिए, जबतक न आत्मानन्द है।

लोखों ऋषिमुनी गीर चुके, बिन ज्ञान के सब मन्द है।।[८५]

क्षणोक्षणी चक्रें दिसती । नित्यनियमे जप चालती ।

षडचक्रांचे भवती । अनुभव ऐसा ॥१४॥

त्रिकुटी मिळती मुद्रा तीन । भ्रमर गुंफेसी जाती दोन ।

पश्चिमेसी जाण । एक मार्ग जात असे ॥१५॥

पुढे दिसे वैंकुठ नगर । अनंत रंगाचे माहेर ।

उभी असे द्वारी नार । माया राणी ॥१६॥

पुढे तया नगरा आत । कोटि सूर्यप्रकाश दिसत ।

गुरुदर्शनाचा एकांत । लाभे तया स्थळी ॥१७॥

पाहणे अधिक दिसणे । होती एक अद्वैतपणे ।

समाधी राही तया गुणे । अखंडीत ॥१८॥

मार्गक्रमण कीजे हळू हळू । जैसा तीन महिन्याचे बाळू ।

जेवि पिपिलिकेचा खेळू । चालतसे ॥१९॥

जरी हठयोग केला । हट्टानेचि पुढे गेला ।

तरी तो हट्ट पाहिजे मुरविला । प्रेमामध्ये ॥२०॥

ब्रह्मानंदी उठती लहरी । न चाले द्वैताची फेरी ।

रोहोनि निवांत जैसे तैशापरी । आनंद करी परीपूर्ण ॥२१॥ ११

अर्थात शरीरात मेरुमध्ये असलेले चक्र क्षणोक्षणी दिसायला लागतात. त्या चक्रांच्या भोवताली नित्यनियमाने जप सुरु आहे, असा माझा अनुभव आहे. पुढील ओवीत तु. महाराज म्हणतात की, त्रिकुट शिखराचे ठिकाणी ३ मुद्रांचा मेळ होतो. या तीन मुद्रा म्हणजे आधी वर्णन केलेल्या चाचरी (नेत्रस्थानी) अगोचरी (श्रवणी) अलक्ष (उफराटे पाहणे) या होत. भ्रमरगुंफेच्या ठिकाणी दोन नद्यांचा मेळ होतो आणि त्याठिकाणाहून पश्चिमेला एक मार्ग जातो. त्या मार्गाने पुढे वैकुंठ नगर हे अनंत रंगाचे माहेर असून त्याठिकाणी द्वारावर मायाराणी ही स्त्री उभी आहे. याठिकाणाहून मायेचा प्रांत संपून वैकुंठाचा प्रांत सुरु होतो. कुंडलिनी ब्रह्मरंध्रात गेल्याने, मनाची उन्मनावस्था झाल्याने जाणीव संपून जाते आणि त्या नगरात पुढे कोटि सूर्याचा लख्ख प्रकाश दिसतो. त्याच ठिकाणी गुरुदर्शनाचा एकांत प्राप्त होतो. याठिकाणी पाहणे आणि दिसणे हे अद्वैत एक होतात व त्यामुळे अखंड समाधी राहते. जसे तीन महिन्याचे लहान बाळ हळूहळू सरकायला लागते किंवा मुंग्यांचा खेळ जसा हळूहळू चालतो त्याप्रमाणे हा मार्ग हळूहळू रोजच्या अभ्यासाने साध्य करायचा असतो.

हठयोगाने जरी आपण हा अभ्यास करीत असलो तरी हटट्‌ हा सर्वव्यापी अशा प्रेमात लीन केला पाहिजे तेव्हाच ब्रह्मानंद प्राप्त होऊन भिन्नत्वाची वृत्तीच नाहिशी होते म्हणजेच द्वैताची

अनंत जन्माचा शेवट। नरदेह हा अवचट।।

निघे अमृताचा झरा। 'सोहं' नाम येरझारा।।

इडा-पिंगला ती नदी। संगम होतो त्रिकुटामधी।।

राही अजपामध्ये लीन। तुकड्या म्हणे होशिल धन्य।।[१५२]

नरदेह हा मनुष्याला अतिशय दुर्लभतेने प्राप्त झालेला आहे आणि याच नरदेहाच्या माध्यमातून अनेक जन्माचा अंत म्हणजेच जन्म-मृत्युचा फेराही चुकविता येतो. त्यासाठी सोहं जप करुन अमृताच्या झऱ्याची अनुभूती साधकाने घेतली पाहिजे. इडा आणि पिंगला या दोन मुख्य प्रवाहाचाही उल्लेख तु. महाराजांनी या अभंगात केला आहे. इडा -पिंगला आणि मध्यनाडी सुषुम्ना यांचा संगम होतो त्याठिकाणाला तु. महाराजांनी 'त्रिकुटी' म्हणून संबोधले आहे. अजपा म्हणजे प्रत्येक श्वासागणिक सोहं या नादाशी एकरुप केल्याने साधक धन्य होवू शकतो. असे तु. महाराज म्हणतात.

जीव आणि शिव यांचे मिलन घडवून आणण्यासाठी ध्यानसाधना कशी करावी, याचेही वर्णन तु. महाराजांनी पुढील अभंगामध्ये केले आहे. –

करुनी आधी पद्मासन। पाहिजे एकांतसे स्थान।।

नेत्र नासाग्री ठेवावे। 'सोहं' स्वरुपी मिळावे।।

प्राण -अपान कालवी। गाठ मेरुची सोडावी।।

मग जीव शिवा भेटी। तुकड्या म्हणे नाही तुटी।।[१५३]

उपरोक्त अभंगामध्ये तु. महाराज म्हणतात की, एकांत असे स्थान पाहून आधी पद्मासन घालावे, त्यानंतर आपली दृष्टी नासाग्रावर स्थिर करावी आणि सोहं अजपावर लक्ष केंद्रित करावे. शरीरामध्ये विद्यमान असलेल्या प्राण, अपान, समान, उदान आणि व्यान यापैकी प्राण आणि अपानांचे मिलन करावे. प्राण सुषुम्नेमध्ये प्रवाहीत करुन मेरु म्हणजे पाठीच्या कण्यात सुषुम्ना नाडीमध्ये असलेल्या षटचक्राचे भेदन करुन जीव आणि शिव तत्वाचे मिलन करावे. अल्प शब्दामध्ये तु. महाराजांनी या अभंगामध्ये जीवात्मा आणि परमात्मा मिलनाचा मार्ग सांगितला आहे. सोहं या अजपासाठी साधकाला वाणीच्या प्रकारचे ज्ञान असावे म्हणून तु. महाराजांनी पुढील अभंगामध्ये वाणीच्या चार प्रकारांचे त्यांच्या स्थानासहित वर्णन केले आहे.

परा वसे नाभीस्थानी। श्वास उलटे हो गगनी।।

पश्यंति हृदयी वास करी। योगी तेथुनी जाती वरी।।

मध्यमा ती कंठी वसे। 'सोहं' नामी निघती ठसे।।

वैखरी पूर्ण वाचा झाली। गुरुने तुकड्यास दावीली।।[१५४]

अर्थात परा वाणी ही नाभी च्या ठिकाणी असते. तेथूनच आपला श्वास उलट फिरुन वरच्या दिशेला येतो. पश्यंती वाणी ही हृदयाच्या ठिकाणी वास करणारी आहे. योगी तेथून उत्थान पावण्याचा प्रयत्न करतो. ज्या ठिकाणाहून सोहं या अजपाची अनुभूती घेतली जाते. ती मध्यमा वाणी ही कंठाच्या ठिकाणी वास करते. जी वाणी आपण सर्वसामान्यपणे बोलण्यासाठी वापरतो ती वैखरी ही पूर्ण वाणी होय. गुरुकृपेने या वाणींचे ज्ञान मला प्राप्त झाले असे तु. महाराजांनी म्हटले आहे.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसी प्रकार यह गुरु तथा जंगम को उपभोग्य वस्तुओं को समर्पित करता है और उन दोनों का भी अनुग्रह प्राप्त करता है। इस साधक में क्रिया के साथ भावना का भी प्राचुर्य रहता है। वह अपनी क्रियाओं को पवित्र भाव से युक्त होकर सदा करता रहता है। शिवार्पण बुद्धि से कर्म करने के कारण यह प्रपञ्च में रहता हुआ भी उससे उसी प्रकार निर्लिप्त रहता है, जैसे पानी में रहने वाला पद्मपत्र उससे निर्लिप्त रहता है। इस साधक को "प्रसादि-स्थल" भी कहते हैं (सि०शि० ११.२-१८; अ०वी०सा०सं०, भा. २, पृ. १७९-१८१; अनु०सू० ४.३१)।

घ. प्राणलिंगी

"प्राण-लिंग" के उपासक को "प्राणलिंगी" कहा जाता है। इसी को "प्राण-लिंगि-स्थल" भी कहते हैं। यह साधक की चतुर्थ भूमिका है। पूर्वोक्त "भक्त", "महेश्वर" और "प्रसादी" साधकों में क्रिया का प्राधान्य था। इस साधक में ज्ञानयोग का प्राधान्य है (सि०शि० १२.२)। योगमार्ग की सूक्ष्म अनुभूति इस स्थल के साधक में होती है।

प्राण तथा अपान वायु के संघर्ष से मूलाधार से जिस ज्योति स्वरूप का उदय होता है, उसी को शिवयोगियों ने "प्राण-लिंग" कहा है। जिस प्रकार सूर्योदय के होने पर तुहिन कण उस सूर्य के प्रकाश में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार इस चिद्रूप ज्योति में प्राणवायु का भी विलय हो जाता है। अतः प्राणशक्तिविशिष्ट इस ज्योति को "प्राण-लिंग" कहा गया है (सि०शि० १२.६,७)। यह हृदय-कमल में दीपक के समान स्फुरित होता है। यही अपने चिद्रूप का भान है। इस चिद्रूप के बोध से इस साधक का जीवत्व-भ्रम छूट जाता है। वस्तुतः इसी स्थल में साधक को स्व-स्वरूप का साक्षात्कार होता है। इस साधक में "अनुभव-भक्ति" रहती है, अर्थात् शिव का अनुभव इसी स्थल में होता है। यह बाह्य पूजा आदि क्रियाओं से पराङ्मुख होकर "भ्रमर-कीट-न्याय" से निरन्तर अन्तर्लिङ्गानुसन्धान करता रहता है। इसी को "संविल्लिंग परामर्शी" कहते हैं। इस ज्ञानज्योति से इसकी सभी वासनायें उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं, जैसे कि अग्नि काष्ठ को भस्म कर देती है। यही "प्राणलिंगी" का स्वरूप है (सि०शि० १२.८-१२; अनु०सू० ४.३०; अ०वी०सा०सं०, भा. २, पृ. १९२-१९३)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ख. प्राणलिंग —

मूलाधार में स्थित अपान वायु के साथ जब प्राण-वायु का संघट्टन हो जाता है, तब एक दिव्य ज्योति का उदय होता है। मूलाधार से उत्पन्न वह ज्योति सुषुम्ना के मार्ग से चलकर "कुण्डलिनी" को ऊर्ध्वमुख करती हुयी हृदय के "अनाहत-चक्र" की, जिसे "द्वादश-दल-कमल" कहा गया है, मध्यस्थित कर्णिका में रुक जाती है। यह ज्योति अंगुष्ठपरिमाण और विद्रुमवर्ण (अरुणवर्ण) की होती है। इसी ज्योति को वीरशैव शिवयोगियों ने प्राणलिंग कहा है। इसको "प्राण-लिंग" इसलिए कहा गया है कि जैसे सूर्य के उदित होने पर तुहिनकण उसके प्रकाश में विलीन हो जाते हैं, वैसे ही हृदय स्थित इस दिव्य ज्योति में प्राणवायु का भी विलय हो जाता है। अत: प्राण-शक्तिविशिष्ट इस ज्योति को "प्राणलिंग" कहते हैं। देश काल के सम्बन्ध के बिना ही "चिदहन्ता" अर्थात् स्वकीय चिद्रूप का ज्ञान ही "प्राणलिंग" है। इसी को

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संविल्लिग भी कहा गया है। वस्तुत: यह "प्राणलिंग" योगगम्य है। सूक्ष्म आन्तरिक उपासना से इसकी अवगति हो सकती है (सि०शि० १२.६-८; वी०आ०चं०, पृ. ४५६)।

ग. भावलिंग —

"शिवोऽहं" (मैं शिवस्वरूप हूँ) इस प्रकार की भावना से, अर्थात् तैलधारावत् निरन्तर उसी के चिन्तनरूप निदिध्यासन के बल पर साधक को अपने मस्तिष्क स्थित सहस्रार कमल में जिस दिव्य ज्योतिस्वरूप परशिव का स्वात्मरूप से साक्षात्कार होता है, उसी को "भावलिंग" कहते हैं। यह निराकार है, अर्थात् इसका त्रिकोण, षट्कोण आदि कोई आकार नहीं है, किन्तु इसे परिपूर्णरूप कहा जाता है। बाह्य प्रमांणों से अगोचर होने पर भी निर्मल और शान्त बुद्धि के द्वारा इसका साक्षात्कार होता है।

इसे भावलिंग इसलिए कहा जाता है कि "शिवोऽहं" इस प्रकार की शुद्ध बुद्धि- वृत्ति से इसका साक्षात्कार होता है और इसकी अर्चना भी इसी वृत्ति से होती है, अर्थात् भावलिंग की अर्चना के लिए "शिवोऽहं" भावना के अतिरिक्त किसी सामग्री की आवश्यकता नहीं होती तथा अन्त में वह भावना भी उसी ज्योति में लीन हो जाती है। इस प्रकार भावनामय व्यापार का ही विषय होने से इसे "भावलिंग" कहा जाता है। इसी को "तृप्तिलिंग" भी कहते हैं (सि०शि० १५.३७-३९; वी०आ०चं०,पृ. ४५७; श०वि०द०, पृ. १६२-१६३)।

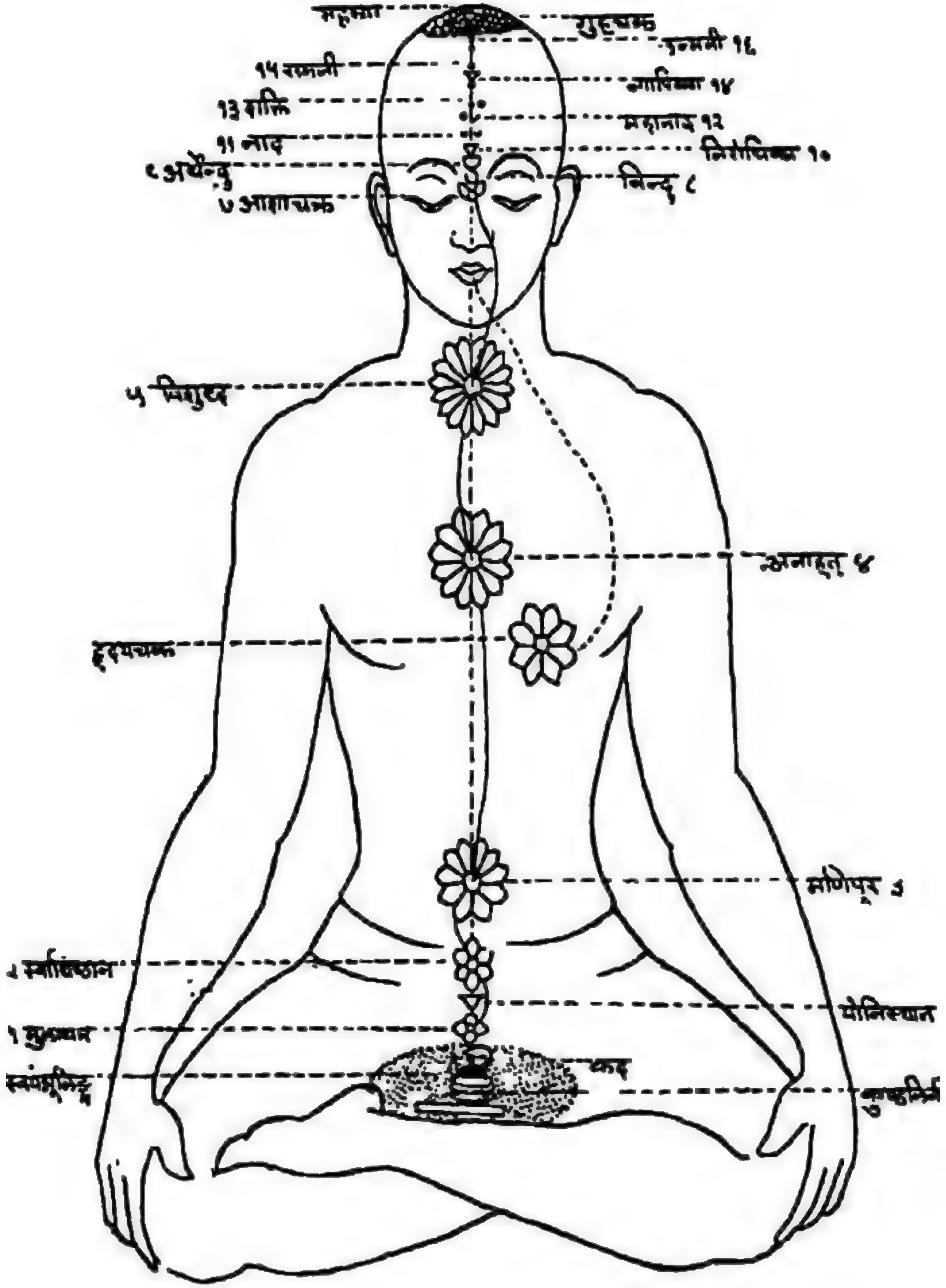

गुरुचक्र
१५ समनी
व्यापिका १४
१३ शक्ति
महानाद १२
११ नाद
निरोधिका १०
९ अर्धेन्दु
बिन्दु ८
७ आज्ञाचक्र
५ विशुद्ध
अनाहत ४
हृदयचक्र
मणिपूर ३
२ स्वाधिष्ठान
योनिस्थान
१ मूलाधार
कन्द
स्वयंभूलिङ्ग

[redacted]

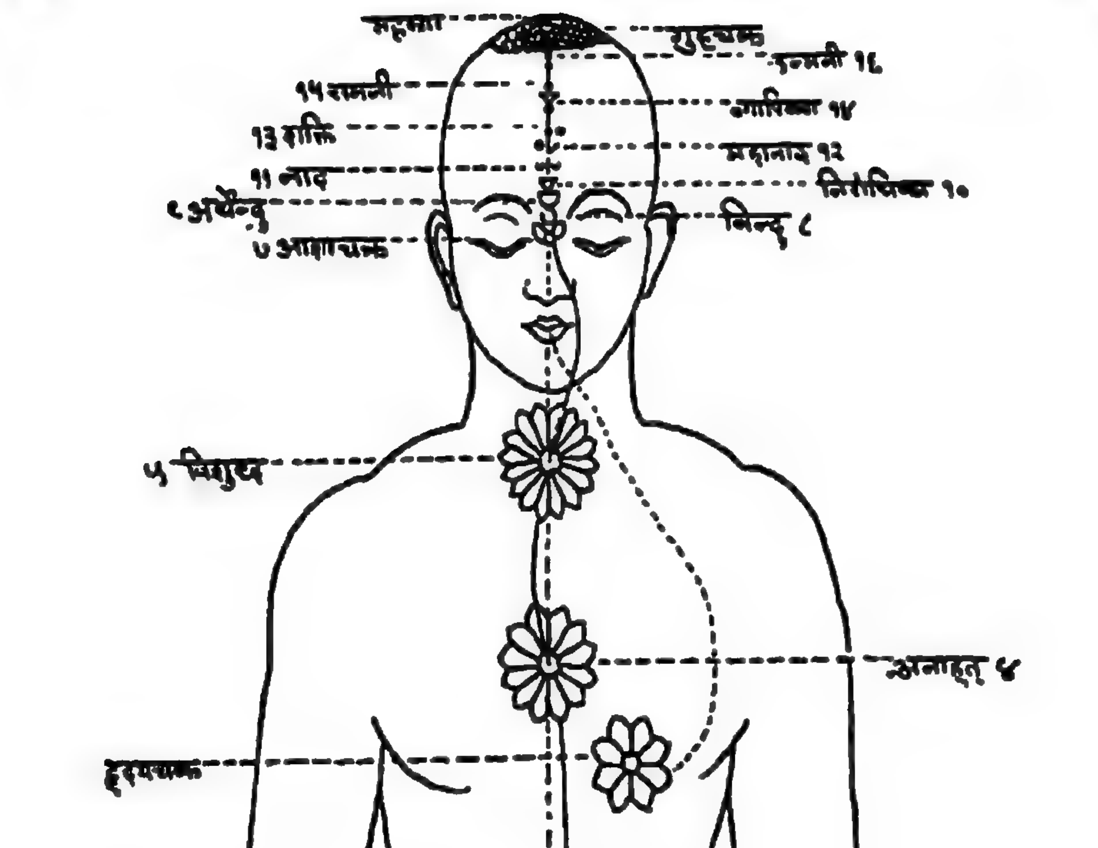

[redacted]

योगका कुछ काम नहीं। सो कहो दोनोंमें किसकी प्राप्तिवास्ते यत्न करना?इस प्रकार योग निष्प्रयोजन है, तुम पद्मादि आसनों । योग लिये शिष्योंको उपदेशकरते हो और प्राणोंका रो ना कहते हो। मैं कहता हूँ, अपनी रुचिके अनुसार आसन रे वा न करे, लंबा होयकर सोयरहे वा बैठा रहे वा चले वा खडा रहे;प्राणोंको भी सुख नहीं आने जाने देवे रोके नहीं, मनको भी पीडन क्यों करे? पर मन वाणी सहित मन वाणीके गोचर अगोचरको शिवरूप आत्मा जाने, यह जाननाही योग है, करना नहीं। जो कुछ है आगे सिद्ध है।

खेचरी मुद्राद्वारा योगी कैसा अमृत पीना?

जो कहते हैं लंबिकाको छेदनकर बढाके योगी जब खेचरीमुद्रा करता है तब अमीरस पीता है; हे साधो! सो अमीरस यह है कि, जब योगी प्राणोंको खैंचकर दशवें द्वारमें रोकताहै,तब शरीर अग्निकी समान उष्णरूप होजाता है,तिस उष्णतासे शीशमें जो मेद मज्जा रुधिर है,जो बर्फकी समान जमा रहता है, सो प्राणोंके रोकनेकी उष्णतासे पूर्वोक्त रुधिर मज्जा आदि नीचे गिरता है, तिसको योगी अमृत जानकर पीता है। इससे अ ानी है क्योंकि अंतर बाहरएक ब्रह्मही है, सोई हुआ अथाहस द्र, तिसको त्यागकर एक बूँदपर निश्चय करता है, इसीसे अ ानी । वसिष्ठने कहा तूने संसार को भ्रष्ट किया है। दत्तने कहा मैं चैतन्य ना रूप संसारसे भ्र हूँ,नाम अतीत हूँ। योगी को योग्य है कि, सोवे नहीं तथा वचन न करे,आसन करे, प्राणोंके मार्गको देखता रहे इत्यादि अनेक साधन रता र पर यह नहीं जानता कि,निर्वि ारशिवात्मामें विकार मिलावना आत्मघात है। पंचतत्वही रज्जु सर्पवत् मिथ्या है,एक ाणरूप पवनका क्या चलता है? कपिलने । जो ईश्वरको आत्मासे भिन्न जाने सो योग करे, जिसने सर्व ईश्वर आत्मा जाना है सो प रहे।

रत्नत्रय (श्लो. २२,३९,५३) आदि ग्रन्थों में बताया गया है कि जिस प्रकार बिन्दु क्षुब्ध होकर एक ओर शुद्ध देह, इन्द्रिय, भोग और भुवन के रूप में परिणत होता है, उसी प्रकार दूसरी ओर यही शब्द की भी उत्पत्ति करता है। शब्द सूक्ष्म नाद, अक्षर बिन्दु और वर्ण के भेद से तीन प्रकार का है। इनमें अक्षर बिन्दु सूक्ष्म नाद का कार्य है। शास्त्रों में मयूराण्डरस न्याय से इसको समझाया गया है। जिस प्रकार मयूर के अण्डे के रस में उसके शरीर और पंख के तरह-तरह के रङ्ग अभिन्न भाव से अव्यक्त रूप में रहते हैं, उसी तरह से अक्षर बिन्दु में स्थूल वाणी का सम्पूर्ण वैचित्र्य अव्यक्त रूप में अभिन्न भाव से रहता है। इसीको पश्यन्ती वाणी भी कहते हैं।

अजपा जप

प्राण की उच्छ्वास दशा में स्वाभाविक रूप से 'हं' का तथा नि:श्वास दशा में 'स:' का उच्चारण होता है। इस प्रकार प्राण की श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया में 'हंस:, सोऽहं' इस अजपा गायत्री का स्वाभाविक रूप से दिन-रात अनवरत जप चलता रहता है। इसी को अजपा जप कहा जाता है। इसको अजपा इसलिये कहा जाता है कि यद्यपि अपरा अवस्था में इसके वाच्य वर्ण हकार और सकार का उच्चारण स्पष्ट होता है, किन्तु जब परा देवी इसको अपने में समेटे हुए अपने बाह्य स्वरूप का संवरण करती है, उस समय हकार के मस्तक पर स्थित बिन्दुरूप अनुस्वार का केवल बिन्दु के रूप में जप नहीं किया जा सकता। इसी तरह से यह प्राण-वृत्ति जब बाहर निकलती है, तब सकार के आगे विसर्ग के रूप में स्थित दो बिन्दुओं का बिना अकार के उच्चारण नहीं हो सकता। इसी लिये 'हंस:' इस मन्त्र की ख्याति अजपा गायत्री के रूप में है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तन्त्रालोक (३.१७०) के व्याख्याकार जयरथ ने सकार और हकार के उच्चारण से उत्पन्न जप को सहज, अर्थात् अकृत्रिम (स्वाभाविक) बताया है। यहाँ क्षपा (रात्रि) और दिन से क्रमश: अपान और प्राण का निर्देश किया गया है। वीरावली तन्त्र में भी क्षपा और दिन शब्द से इन्हीं का ग्रहण किया गया है। श्रुति और स्मृति ग्रन्थों में दिन और रात्रि का, प्राण और अपान का यमराज के कुत्तों के रूप में वर्णन है। यमराज के ये दूत पकड़ने न पावें, इसीलिए साधक योगी अजपा के अभ्यास के द्वारा प्राण और अपान की गति पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लेता है और मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है।

दिन-रात प्राण और अपान की इस निरन्तर गतिशीलता के कारण हंस मन्त्र का एक अहोरात्र में २१६०० बार जप पूरा हो जाता है। शरीर से प्राण की बहिर्मुखी गति के पूरा होने के बाद और अपान के पुन: शरीर में प्रवेश न करने तक इस जप की विधि पूरी हो जाती है। प्राण जब निकलता है, उस समय भी इस अजपा जप के साथ अपनी तन्मयता को बनाये रखना अनेक जन्मों में अर्जित अतिशय भावशुद्धि के कारण ही संभव हो सकता है।

अणु सदाशिव

अनच्क कला

सार्धत्रिवलया भुजगाकारा कुलात्मिका कुण्डलिनी मूलाधार में सोई रहती है। जागृत होने पर यह सुषुम्णा मार्ग से षट्चक्रों का भेदन कर सहस्रार स्थित

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अकुलचक्र में विराजमान शिव के साथ सामरस्य लाभ करती है। षट्चक्रों और उनमें विद्यमान वर्णों का विशद विवेचन पूर्णानन्द के षट्चक्रनिरूपण के षष्ठ प्रकाश में और सौन्दर्यलहरी की लक्ष्मीधरा टीका में (श्लो. ३६-४१) तथा अन्यत्र भी मिलता है। नाडी चक्र आदि षट्चक्रों का निरूपण नेत्रतन्त्र (७.२८-२९) में भी है। विज्ञानभैरव में बारह चक्रों या क्रमों की चर्चा आयी है। मूलाधार में जैसे कुण्डलिनी का निवास है, उसी तरह से हृदय में भी सार्धत्रिवलया प्राणकुण्डलिनी रहती है। मध्यनाडी सुषुम्णा के भीतर चिदाकाश (बोधगगन) रूप शून्य का निवास है। उससे प्राणशक्ति निकलती है। इसी को अनच्क कला भी कहते है। इसमें अनच्क (अच् = स्वर से रहित) हकार का निरन्तर नदन होता रहता है। यह नादभट्टारक की उन्मेष दशा है, जिससे कि प्राणकुण्डलिनी की गति ऊर्ध्वोन्मुख होती है, जो श्वास-प्रश्वास, प्राण-अपान को गति प्रदान करती है और जहाँ इनकी एकता का अनुसन्धान किया जा सकता है। मध्यनाडी स्थित बिना क्रम के स्वाभाविक रूप से उच्चरित होने वाली यह प्राणशक्ति ही अनच्क कला कहलाती है। अजपा जप में इसी का स्फुरण होता है। प्राण और अपान व्यापार से भिन्न, श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया से अलग, स्वाभाविक रूप से निरन्तर चल रहे प्राण (हृदय) के स्पन्दन व्यापार (धड़कन) को ही यहाँ अनच्क कला कहा गया है। स्पन्दकारिका में प्रतिपादित स्पन्द- तत्त्व यही है। वामननाथ ने अद्वयसम्पत्तिवार्तिक में इसका वर्णन किया है। नेत्रतन्त्र (सप्तम अधिकार) में सूक्ष्म उपाय के प्रसंग में प्राण-चार के नाम से इसकी व्याख्या की गयी है।

अनाख्या चक्र

अनाख्या नामक चतुर्थ चक्र में तेरह शक्तियों के कार्य दिखाई पड़ते हैं। क्रम-दर्शन में आख्या शब्द से पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नामक वाणी के स्वभाव का बोध होता है। अत: आख्याहीन अनाख्याचक्र में ये वाक्प्रवृत्तियाँ नहीं रह सकतीं। संहार चक्र में नादरूपा पश्यन्ती वाक्, स्थिति चक्र में बिन्दुरूपा मध्यमा वाक् तथा सृष्टि चक्र में लिपिरूपा स्थूल या वैखरी वाक् कार्य करती है। ये तीनों प्रकार की वाणियाँ ही ऊर्ध्व स्थित विमर्श अथवा परा वाक् के द्वारा अनुप्राणित तुरीयावस्था में प्रमाण, प्रमाता और प्रमेय की त्रिपुटी को

अमा कला

स्कन्दपुराण के प्रभास खण्ड के एक वचन में, जो कि शब्दकल्पद्रुम (भा. १, पृ. ८३) में उद्धृत है, बताया गया है कि चन्द्रमा की सोलहवीं कला को अमा कला कहा जाता है। आचार्य रघुनन्दन ने (शब्दकल्पद्रुम, भा. १, पृ. ८३ पर उद्धृत) अमा कला की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह कला नित्य है, क्षय और उदय से रहित है। चन्द्रमा की अन्य कलाओं में यह उसी तरह से अनुस्यूत है, जैसे कि पुष्पमाला के प्रत्येक पुष्प में सूत्र अनुस्यूत रहता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। यह आधार शक्ति का ही परमं स्वरूप है। तन्त्रशास्त्र (तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि, पृ. ३०९) में बिन्दु को पूर्णिमा कहा जाता है, किन्तु वह ठीक पूर्णिमा नहीं है। यथार्थ पूर्णिमा षोडशी है। बिन्दु में १५ कलाएँ हैं, एक कला नहीं है, अर्थात् अमृतकला अथवा षोडशी का वहाँ अभाव है। षोडशकल पुरुष में अमृत कला एक है। यही वास्तविक अमा कला है। योग की प्रक्रिया (भारतीय संस्कृति और साधना, भा. १, पृ. ३१९) में उन्मना के उन्मीलन को ही अमा कला कहा गया है। मातृका के क्रम में अमा कला की एक दूसरी ही व्याख्या मिलती है। इस मत में अनुत्तर तत्त्व अकार को सप्तदशी या अमा कला के नाम से जाना जाता है। यह नित्योदित है, अर्थात् इसका कभी तिरोधान नहीं होता। यही अमृत कला है। अन्तःकरण आदि षोडश कलाओं का उद्भव इसी से होता है। यह अन्तरुन्मुख है। श्रीतत्त्वचिन्तामणि (६.४७) में बताया गया है कि सहस्रार चक्र के मध्य विराजमान त्रिकोण स्थान में अमा कला का निवास है, जो कि चन्द्रमा की सोलहवीं नित्या कला मानी जाती है। यह बाल-सूर्य के समान प्रकाशमान है। यह कला नित्योदित है, अर्थात् क्षय और उदय से रहित है। सहस्रार के ही समान यह भी अधोमुख है और इससे निरन्तर अमृत की वर्षा होती रहती है। इस अमृत कला के भीतर निर्वाण कला का भी निवास है।

अम्बिका

त्रिपुरा दर्शन में शान्ता नामक शक्ति को विश्व का कारण माना गया है। जब इस शक्ति में विश्व की सिसृक्षा उत्पन्न होती है, तो उसमें स्फुरत्ता या स्पन्दन होता है और यह शान्ता शक्ति अम्बिका के रूप में परिणत हो जाती है। इसी को परा वाक् भी कहा जाता है। बीज में छिपे हुए वृक्ष के समान इस अम्बिका शक्ति में ही सारा विश्व सन्निहित रहता है। शृङ्गाट के मध्य में स्थित बिन्दु में इसकी स्थिति मानी जाती है (योगिनीहृदय, १.३६)।

अर्धमात्रा

"अर्धमात्रास्थिता नित्या याऽनुच्चार्या विशेषतः" (१.७४) दुर्गासप्तशती के इस श्लोक में अर्धमात्रा को अनुच्चार्य (जिसका उच्चारण नहीं किया जा सकता) माना है। ह्रस्व स्वर का उच्चारण-काल **मात्रा** कहलाता है। योगिनीहृदय के टीकाकार अमृतानन्द योगी (दीपिका, पृ. ५३) के अनुसार बिन्दु से लेकर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं। इनके अंगों में भस्म या रक्तचन्दन लिप्त रहता है। कोई-कोई गेरुवा वस्त्र भी पहनते हैं। कुलाचार के अनुसार अभिषिक्त होकर जो साधक गृहस्थाश्रम में रहता है, उसे कुलावधूत कहते हैं।

तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती, भारती एवं पुरी नामक दशनामी सम्प्रदाय के संन्यासियों का उल्लेख शक्तिसंगमतन्त्र (४.८.१०४-१०८) आदि ग्रन्थों में भी मिलता है। इन शब्दों का अर्थ भी वहाँ प्रदर्शित है। रामानन्द के शिष्यों में भी कुछ अवधूत हुए हैं। बंग देश में तथा अन्यत्र भी इनका निवास है। ये जातिभेद को नहीं मानते और पान, भोजन आदि का भी इनका कोई नियम नहीं है। शिर पर बड़े-बड़े बाल, गले में स्फटिक आदि की माला, कमर में कौपीन लपेटे ये लोग अत्यन्त अपरिष्कृत भाव से रहते हैं। लोग इन्हें बावला भी कहते हैं। इनका आचरण अत्यन्त उद्धत होता है। बंगाल में स्थान-स्थान पर इनके अखाड़े हैं।

अवधूत वर्ण और आश्रम की व्यवस्था से परे रहते हैं। अष्टविध पाशों से ये मुक्त रहते हैं। अघोरी भी एक प्रकार का अवधूत ही है। नाथ सम्प्रदाय के ग्रन्थों में भी इनका विवरण मिलता है। गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह (पृ. १५-१६) में अवधूत मत को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

अवधूती मार्ग

बौद्ध वज्रयान और सहजयान में इडा, पिंगला और सुषुम्णा को क्रमशः ललना, रसना और अवधूती कहा जाता है। यहाँ ललना को चन्द्र या प्रज्ञा का तथा रसना को सूर्य या उपाय का प्रतीक माना गया है। इन दोनों के बीच में जिस शक्ति की क्रिया होती है, एवं जो साधारण अवस्था में अवरुद्ध (सुप्त) रहती है, उसका पारिभाषिक नाम **अवधूती** है। चन्द्र और सूर्य के मिलन अथवा प्रज्ञा और उपाय के आलिंगन से मध्य मार्ग का उन्मीलन होता है। क्लेश प्रभृति का यह अनायास नाश कर देती है, इसलिये इसे 'अवधूती' कहते हैं। अवधूती मार्ग ही अद्वय मार्ग, शून्य पथ और आनन्द स्थान है। यहाँ ग्राह्य और ग्राहक का भेद नहीं रहता, दोनों ही समरस होकर शून्याकार में विराजमान रहते हैं। यहीं उपशम रूप शान्तावस्था का उदय होता है, जो कि निर्वाण पदवी के नाम से प्रसिद्ध है (भारतीय संस्कृति और साधना, भा. २, पृ. २५८-२५९)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुण्डलिनी

कुण्डलिनी को कुलकुण्डलिनी अथवा शक्तिकुण्डलिनी भी कहते हैं। कुलचक्र में कुण्डलाकार अवस्थित होने से इसको कुलकुण्डलिनी कहते हैं। अथवा कु अर्थात् पृथिवी तत्त्व के आधार मूलाधार में लीन रहने से इसको कुलकुण्डलिनी कहते हैं। तन्त्रशास्त्र में मूलाधार में सर्पतुल्य कुण्डलाकार स्थित शक्ति का नाम कुण्डलिनी है, अत: इसको शक्तिकुण्डलिनी भी कहते हैं। इसको कुण्डलिनी इस लिये कहते हैं कि यह कुण्डलाकार स्थित है। कुण्डलिनी शक्ति निद्रित नागिन के समान आकृति वाली है। वह स्वयम्भू लिंग को वेष्टित किये रहती है। कोटि विद्युत् के समान दीप्तिमती, नाना प्रकार के वस्त्र और अलंकार से विभूषित है। यह शृङ्गार रस से ओतप्रोत है और इसको कारण-द्रव्य प्रिय है। कारण द्रव्य को कुल द्रव्य कहा जाता है। इसलिये भी इसको कुलकुण्डलिनी कहते हैं। यह सर्वमन्त्रमयी और सर्वतत्त्वस्वरूपिणी है। रुद्रयामल आदि तन्त्रों में इसकी उपासना विस्तार से वर्णित है। सम्मोहनतन्त्र में इसको कुण्डली कहा गया है। वहाँ बताया गया है कि यह मनोहर शक्तिपीठ त्रिकोणाकार है। उसके

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गह्वर में जीवरूपी अतिचंचल कामवायु स्थित है। उसमें अधोमुख लिंग रूपी स्वयम्भू भगवान् निवास करते हैं। इसमें नीवार धान्य के अग्रभाग तुल्य सूक्ष्म शंख वर्ण और साढ़े तीन वलय युक्त श्रेष्ठ देवता कुण्डली का निवास है। वह अपने मुख से ब्रह्ममुख को आच्छादित किये रहती है। जो साधक इस कुण्डलिनी शक्ति को अपने वश में कर लेता है, वह मानव नहीं, देवता बन जाता है। तन्त्रसार (शब्दकल्पद्रुम, भा. २, पृ. १४० पर उद्धृत) में बताया गया है कि मूलाधारनिवासिनी, इष्टदेवतास्वरूपिणी, सार्धत्रिवलयवेष्टिता, विद्युत् के समान कान्तिवाली, स्वयम्भू लिंग को वेष्टित कर स्थित, उदयोन्मुख दिनकर के समान कान्ति वाली कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान कर उसको प्राण मन्त्र द्वारा उत्थापित करना चाहिये। समस्त अशुभ कर्मों की शान्ति के लिये साधक को एकाग्रचित्त होकर दृढ सङ्कल्प के साथ इस बात की भावना करनी चाहिये कि मेरा समस्त शरीर उस शक्ति के प्रभा-पटल से व्याप्त है। जाग्रत् होने पर यह कुण्डलिनी शक्ति षट्चक्र का भेदन कर सहस्रार चक्र में शिव के साथ समरस हो जाती है।

कुण्डलिनी योग

यह सत्य है कि पातञ्जल योगसूत्र में कुण्डलिनी अथवा षट्चक्र आदि में से किसी एक का भी उल्लेख नहीं है, किन्तु यह निश्चित है कि कुण्डलिनी योग एक प्राचीन भारतीय योग की विशेष पद्धति है। आगम और तन्त्रशास्त्र

कुण्डलिनी योग

यह सत्य है कि पातञ्जल योगसूत्र में कुण्डलिनी अथवा षट्चक्र आदि में से किसी एक का भी उल्लेख नहीं है, किन्तु यह निश्चित है कि कुण्डलिनी योग एक प्राचीन भारतीय योग की विशेष पद्धति है। आगम और तन्त्रशास्त्र की विभिन्न शाखाओं में इसका वर्णन मिलता है। कहा जा सकता है कि यह एक तान्त्रिक योगपद्धति है। कुछ आचार्य ("अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या" (१०.२.३१) इस अथर्ववेद के मन्त्र में कुण्डलिनी का उल्लेख मानते हैं। प्राय: सभी आगमिक और तान्त्रिक आचार्य प्रसुप्तभुजगाकारा, सार्धत्रिवलयाकृति, मूलाधारस्थित शक्ति को कुण्डलिनी के नाम से जानते हैं। जिस योगपद्धति की सहायता से इस कुण्डलिनी शक्ति को जगा कर सुषुम्णा मार्ग द्वारा षट्चक्र का भेदन कर सहस्रार चक्र तक पहुँचाया जाता है और वहाँ उसका अकुल शिव से सामरस्य सम्पादन कराया जाता है, उसी का नाम कुण्डलिनी योग है। आधारों अथवा चक्रों आदि के विषय में मतभेद होते हुए भी मूलाधारस्थित कुण्डलिनी शक्ति का सहस्रारस्थित शिव से सामरस्य सम्पादन सभी मतों में निर्विवाद रूप से मान्य है। सम्प्रति षट्चक्र-भेदन का पूर्णानन्द

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यति विरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के षष्ठ प्रकाश में वर्णित क्रम ही प्राय: सर्वमान्य है। अत: तदनुसार ही यहाँ इस विषय का निरूपण किया गया है। यम और नियम के नित्य नियमित आदरपूर्वक निरन्तर अभ्यास में लगा हुआ योगी गुरुमुख से मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त कुण्डलिनी के उत्थापन के क्रम को ठीक से जान लेने के उपरान्त पवन और दहन के आक्रमण से प्रतप्त कुण्डलिनी शक्ति को, जो कि स्वयम्भू लिंग को वेष्टित कर सार्धत्रिवलयाकार में अवस्थित है, हूंकार बीज का उच्चारण करते हुए जगाता है और स्वयम्भू लिंग के छिद्र से निकाल कर उसको ब्रह्मद्वार तक पहुँचा देता है। कुण्डलिनी पहले मूलाधार चक्र स्थित स्वयम्भू लिंग का, तब अनाहत चक्र स्थित बाण लिंग का और अन्त में आज्ञाचक्र स्थित इतर लिंग का भेदन करती हुई ब्रह्मनाडी की सहायता से सहस्रदल चक्र में प्रविष्ट होकर परमानन्दमय शिवपद में प्रतिष्ठित हो जाती है। योगी अपने जीवभाव के साथ इस कुलकुण्डलिनी को मूलाधार से उठाकर सहस्रार चक्र तक ले आता है और वहाँ उसको पर बिन्दु स्थान में स्थित शिव (पर लिंग) के साथ समरस कर देता है। समरसभावापन्न यह कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार चक्र में लाक्षा के वर्ण के समान परमामृत का पान कर तृप्त हो जाती है और इस परमानन्द की अनुभूति को मन में सजोये हुए वह पुन: मूलाधार चक्र में लौट आती है। यही है कुण्डलिनी योग की इतिकर्तव्यता। इसके सिद्ध हो जाने पर योगी जीवन्मुक्त हो जाता है, शिवभावापन्न बन जाता है।

कुल कुण्डलिनी

कुल कुण्डलिनी

अकुल कुण्डलिनी शब्द का विवरण देते हुए बताया गया है कि नीचे अकुल स्थान स्थित अरुण वर्ण के ऊर्ध्वमुख सहस्रार पद्म को कुल कुण्डलिनी कहा जाता है। यह विमर्शात्मक हकारस्वरूपा है। नित्याषोडशिकार्णव (४.१४) में इसको कुलयोषित् तथा त्रिपुरसुन्दरीदण्डक (२६ अनु.) में कुलवधू कहा गया है। उक्त दोनों ग्रन्थों में बताया गया है कि यह कुलवधू (कुलेश्वरी = कुलाभिमानिनी संवित्) मूलाधारगत चतुर्दल कमल के मध्य में स्थित त्रिकोणात्मक कुल स्थान, अर्थात् शृङ्गाट पीठ से उठ कर कुटिल मार्ग पर, अर्थात् स्वाभाविक सृष्टि मार्ग को छोडकर गुरु-प्रदर्शित युक्ति के सहारे संहार मार्ग पर चल कर सूक्ष्म रूप से सुषुम्णा मार्ग के भीतर प्रविष्ट हो आगे बढ़ती है। वह अनाहत स्थान स्थित सूर्यमण्डल को भेदती हुई और सहस्रार स्थित

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चन्द्रमण्डल को द्रवित करती हुई अकुल कुण्डलिनी से जा मिलती है। वहाँ यह शिव और शक्ति के सामरस्य से समुद्भूत अमृतमय परमानन्द में डूब जाती है; निर्लक्षण, निर्गुण, कुल और रूप से रहित पर पुरुष को प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार सृष्टिप्रक्रिया में यह कुण्डलिनी अकुल स्थान से कुल स्थान की ओर गतिशील होती है और संहारप्रक्रिया में कुल स्थान से अकुल स्थान तक आती है। इसकी अकुल स्थान से कुल स्थान की ओर गति ही सृष्टि, अर्थात् बन्ध का तथा कुल स्थान से अकुल स्थान तक की गति संहार, अर्थात् मोक्ष का कारण बनती है। शैव सिद्धान्त (अघोरशिवाचार्य कृत मृगेन्द्रवृत्तिदीपिका, पृ. ३४९) में कुण्डलिनी को महामाया कहा गया है।

पूर्णानन्द की श्रीतत्त्वचिन्तामणि (६.११-१४) में कुल कुण्डलिनी का वर्णन इस प्रकार किया गया है—चतुष्कोणात्मक मूलाधार चक्र के मध्य में स्थित त्रिकोणाकार कामरूप पीठ के बीच स्वयम्भू लिंग का निवास माना जाता है। इस स्वयम्भू लिंग के ऊपर विसतन्तु के समान अत्यन्त सूक्ष्म, ब्रह्मरन्ध्र के द्वार को अपने मुँह में पकड़े हुए, शंख के आवर्त के समान आकार वाली, सोये हुए सर्प के समान सार्धत्रिवलयाकृति कुण्डलिनी शक्ति शयन करती रहती है। यह कुण्डलिनी शक्ति वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक शब्दों की जननी है और यहीं से प्राण और अपान, श्वास और प्रश्वास की भी उत्पत्ति होती है। इसीके मध्य में वह परा शक्ति अवस्थित है, जिससे कि इस पूरे विश्व की उत्पत्ति होती है। योगी के हृदय में इसीकी कृपा से ब्रह्मज्ञान का उदय होता है। इसका अभिप्राय यह है कि स्वयम्भू लिंग के ऊपर प्रसुप्त सार्धत्रिवलया कुण्डलिनी शक्ति के ऊर्ध्व भाग में नादात्मक परा शक्ति का निवास है। यही कुल कुण्डलिनी के नाम से प्रसिद्ध है। मूलाधार चक्र में इसका ध्यान किया जाता है।

कुल शक्ति

कुलार्णवतन्त्र (१७.२७) में कुल शब्द का अर्थ शक्ति तथा अकुल शब्द का अर्थ शिव किया गया है। इस सम्बन्ध में अकुल शब्द की व्याख्या करते समय कुछ लिखा जा चुका है। शाक्त दर्शन में शक्ति को विमर्श के नाम से अभिहित किया गया है। **ह** लिपि (हकार) इसकी वाचिका है। प्रकाशात्मक अकुल शिव के बोधक अकार के साथ विमर्शात्मक कुल शक्ति के बोधक हकार को मिलाने से 'अहम्' पद बनता है। प्रकाशविमर्शात्मक इस अहंतत्त्व से ही शब्दार्थात्मक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

षडध्वमय जगत् की सृष्टि होती है। तन्त्रालोक (३.६७) में कुल शक्ति को कौलिकी कहा गया है। इस कौलिकी शक्ति से अकुल शिव कभी जुदा नहीं रहता। नित्याषोडशिकार्णव (४.६-७) और सौन्दर्यलहरी के प्रथम श्लोक में बताया गया है कि बिना शक्ति के शिव कुछ भी नहीं कर सकता, वह शव के तुल्य है। शक्तिसंवलित शिव ही जगत् की रचना करने में समर्थ हो सकता है। इसीलिये विज्ञानभैरव (श्लो. २०) में शक्ति को शिव का मुख कहा गया है, क्योंकि इस शक्ति की सहायता से ही शिव के स्वरूप की अभिव्यक्ति हो सकती है।

शक्ति के अतिरिक्त कुल शब्द के अन्य भी अनेक अर्थ शास्त्रों में मिलते हैं। अकारादि हकारान्त वर्णमातृका को आठ वर्गों में बाँटा गया है। इन आठ वर्गों की ब्रह्माणी आदि महालक्ष्मी पर्यन्त आठ अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। इस समूह को कुल कहा गया है (नि० अ०, पृ. २६)। षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मक जगत् को तथा शरीर को भी कुल कहा जाता है (नि०ऋ०, पृ. २७,२१३)। शैव और शाक्त दर्शन में कुल नाम का एक स्वतन्त्र शास्त्र है (नि० अ०, पृ. ७४)। भैरव को भी कुल कहते हैं (नि० अ०, पृ. १३९)। मेय, माता और मिति लक्षण जगत् को भी कुल कहा गया है (चि० च०, श्लो. ७२)। देह से सम्बद्ध दस इन्द्रियाँ भी कुल कही गयी हैं (यो०दी०, पृ. २९५)। अर्घ्यभट्टारक को भी कुल बताया गया है (म०प०, पृ. ११५)। महानिर्वाणतन्त्र में जीव, प्रकृति, दिक्, काल, आकाश, क्षिति, जल, तेज और वायु इन नौ पदार्थों को कुल शब्द से अभिहित किया गया है। कुलरत्न में आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, तीर्थदर्शन, निष्ठा (श्रद्धा), वृत्ति, तप और दान—इन नौ पदार्थों को कुल की संज्ञा दी गई है।

केरल सम्प्रदाय

कौलिक योग

नेत्रतन्त्र के सप्तम अधिकार में सूक्ष्म ध्यान का वर्णन मिलता है। व्याख्याकार क्षेमराज ने इसको कुलप्रक्रिया, अर्थात् कौलिक योग कहा है। कुलागम, कुलतन्त्र, अर्थात् शिवोक्त शास्त्रविशेष में वर्णित योग का नाम है कौलिक योग। तदनुसार छः चक्र, षोडश आधार, तीन लक्ष्य, पाँच व्योम, बारह ग्रन्थि, तीन शक्ति, तीन धाम, तीन और दस नाडी तथा दस प्राणों से समन्वित व्याधिग्रस्त इस पिण्ड (शरीर) को सूक्ष्म ध्यान के माध्यम से आप्यायित करने पर योगी को दिव्य देह की प्राप्ति होती है। जन्म, नाभि, हृदय, तालु, बिन्दु और नाद स्थान में नाडी, माया, योग, भेदन, दीप्ति और शान्त नामक छः चक्र स्थित हैं। अङ्गुष्ठ, गुल्फ, जानु, मेढ्र, पायु, कन्द, नाभि, जठर, हृदय, कूर्मनाडी, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरन्ध्र और द्वादशान्त ये सोलह आधार हैं। अथवा कुल, विष, शाक्त, वह्नि, घट, सर्वकाम, संजीवन, कूर्म, लोल, सुधाधार, सौम्य, विद्याकमल, रौद्र, चिन्तामणि, तुर्याधार, नाड्याधार नामक कुलप्रक्रियासम्मत सोलह आधारों का यहाँ ग्रहण किया जा सकता है। अन्तर्लक्ष्य, बहिर्लक्ष्य और उभयविध लक्ष्य ये तीन लक्ष्य हैं। माया, पाशव, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, इन्धिका, दीपिका, बैन्दव, नाद और शक्ति ये बारह ग्रन्थियाँ, अर्थात् पाश हैं। इच्छा, ज्ञान और क्रिया ये तीन शक्तियाँ हैं। सोम, सूर्य और वह्नि ये तीन धाम हैं। सव्य, अपसव्य और मध्य पवन स्थित इडा, पिंगला और सुषुम्णा नामक तीन नाडियों से तथा इनके साथ गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशा, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी नाडी को जोड़ देने पर दस नाडियों से और इनके माध्यम से बहने वाले प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय नामक दस प्राणों से यह शरीर आवृत है। वस्तुतः यह शरीर ७२ हजार अथवा साढे तीन करोड़ नाडियों से जकड़ा हुआ है और आणव, मायीय तथा कार्म मलों के कारण मलिन भी हो गया है। अतः दिव्य देह की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि साधक योगी कन्द स्थान में चित्त को एकाग्र कर संकोच और विकास का अभ्यास करे। मध्यविकास की प्रतीक्षा करता हुआ वह मतगन्ध स्थान को दबाये, जिससे कि मध्यधाम सुषुम्णा की ऊर्ध्व गति उन्मुक्त हो जाय। कन्द भूमि में जब यह शक्ति जग जाती है, तो साधक को खेचरी मुद्रा प्राप्त होती है। इसके प्राप्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होने से प्राण उसके अधीन हो जाता है और मन्त्र के प्रभाव से उसकी गति द्वादशान्त की तरफ मुड़ जाती है। पहले उसका प्राण समना धाम में प्रविष्ट होता है। वहाँ उसे अपान के उल्लास के लिये चन्द्रोदय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। चन्द्रोदय हो जाने पर योगी उससे प्राप्त अमृत से शरीरवर्ती चक्र, आधार आदि को सिंचित करता है और इस प्रकार अपने पूरे शरीर को दिव्य बना लेता है, अर्थात् उसका स्वात्मस्वरूप प्रस्फुटित हो उठता है। नित्याषोडशिकार्णव (४.१२-१४) में भी इस स्थिति का वर्णन मिलता है।

खेचरी मुद्रा

ऋजुविमर्शिनीकार शिवानन्द ने (पृ. १८४-१८५) खेचरी मुद्रा के तीन भेद बताये हैं—अंगुलिविरचनात्मा, बोधगगनरूपा और संस्थानविशेषरूपा। प्रथम प्रकार की खेचरी मुद्रा में अंगुलियों का उपयोग किया जाता है। तन्त्रसार (वाचस्पत्य, पृ. २४७८) में इसकी विधि इस प्रकार बताई गयी है—बायें हाथ को दाहिनी ओर तथा दाहिने हाथ को बाईं ओर कर ले। फिर अनामिका को मिलाकर तर्जनी से लगावे और बीच की अंगुली को सटाकर अँगूठे पर जमावे। इसीसे मिलती जुलती विधि नित्याषोडशिकार्णव (३।१५-१७) में भी वर्णित

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। इसको संहार मुद्रा या समय मुद्रा भी कहा जाता है। विसर्जन के समय इसका प्रदर्शन किया जाता है।

बोधगगन में विचरण करने वाली खेचरी को शिवानन्द ने अव्याख्येय माना है, किन्तु क्षेमराज ने शिवसूत्रविमर्शिनी (२.५) में इसकी व्याख्या की है कि यह स्वात्मस्वरूप में उछलती हुई आनन्द की लहरी है। तन्त्रसद्भाव (शि०वि०२.५) में इसका परसंवित्ति के रूप में वर्णन किया गया है।

तृतीय प्रकार की खेचरी का वर्णन यहाँ भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के वचनों के आधार पर किया गया है। यह वर्णन विज्ञानभैरव, विवेकमार्तण्ड, स्कन्दपुराण काशीखण्ड तथा हठयोगप्रदीपिका जैसे ग्रन्थों में वर्णित क्रम से मिलता जुलता है। तदनुसार जीभ को उलट कर कपाल के कुहर में तथा दृष्टि को ऊपर उठाकर भौंहों के बीच में लगाने का नाम खेचरी मुद्रा है। इसके अभ्यास से सभी रोग और कर्मफल नष्ट हो जाते हैं। चित्त और जिह्वा दोनों के आकाश में अवस्थान करने से ही इसको खेचरी मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा के अभ्यास से बिन्दु स्थिर हो जाता है। अत: इसका अभ्यास करने वाले योगी को मृत्यु का भय नहीं रहता। वह सदा अमरवारुणी का पान करता रहता है। यह साधक को उन्मना अवस्था में प्रतिष्ठित कर देती है। आकाश में गमन का सामर्थ्य भी उसको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार इसकी यह अन्वर्थक (सार्थक) संज्ञा है।

ख्याति

दर्शन शास्त्र में ख्याति शब्द प्रतीति या ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अभेद ख्याति का अर्थ है अद्वय बोध। सब कुछ शिवमय है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है, इस तरह की एकाकार नि:शङ्क प्रतीति ही यहाँ अभेद ख्याति कही गयी है। भ्रान्त ज्ञान के अर्थ में भी ख्याति शब्द प्रयुक्त होता है। अपूर्णता ख्याति का अर्थ है—भ्रमवश अपने पूर्ण स्वरूप का ज्ञान न होना। भारतीय

द्वादशान्त

प्राण और अपान की गति की जिस स्थान पर उत्पत्ति होती है, अथवा जाकर जहाँ रुक जाती है, उसको हृदय और द्वादशान्त कहते हैं। बाह्य और आन्तर शिव द्वादशान्त और शक्ति द्वादशान्त के भेद से द्वादशान्त की द्विविध स्थिति मानी गयी है। कभी कभी शून्यातिशून्य मध्यधाम, अर्थात् सुषुम्णा नाडी को भी द्वादशान्त कहा जाता है। तन्त्रालोक की टीका (५.७१) में सभी नाडियों के अग्र भाग में द्वादशान्त की स्थिति मानी गयी है। द्वादशान्त पद की व्याख्या करते हुए शिवोपाध्याय (वि०भै०, पृ. ४३) कहते हैं कि शरीर के प्रत्येक रोमकूप में द्वादशान्त की स्थिति है। यहाँ द्वादशान्त पद का प्रयोग लाक्षणिक है। जैसे मुख्य द्वादशान्त की स्थिति द्वादश आधारों के अन्त में है, उसी तरह से सभी नाड़ियों के अन्त (रोमकूप) में भी प्राणशक्ति की स्थिति है। अत: यहाँ विद्यमान प्राणशक्ति को भी द्वादशान्त कह दिया जाय, तो कोई अनौचित्य नहीं है। हकार की उत्पत्ति हृदय में और सकार की उत्पत्ति द्वादशान्त में मानी जाती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हृदयस्थित कमलकोश में प्राण का उदय होता है। नासिका मार्ग से बाहर निकल कर यह बारह अंगुल चलकर अन्त में आकाश में विलीन हो जाता है। इसीलिये बाह्य आकाश योगशास्त्र में द्वादशान्त के नाम से प्रसिद्ध है। द्विषट्कान्त, मुष्टित्रयान्त या शिखान्त शब्द द्वादशान्त के पर्यायवाची हैं। नेत्रतन्त्र (८.४१) की टीका में क्षेमराज ने तथा तन्त्रालोक (५.८९-९१) की टीका में जयरथ ने द्वादशान्त पद का अर्थ ऊर्ध्व द्वादशान्त किया है, जिसकी स्थिति शिखा के अन्त में है। इसमें उन्मना शक्ति का निवास है। इस प्रकार द्वादशान्त की स्थिति ब्रह्मरन्ध्र से पृथक् मानी गयी है। इसको द्वादशान्त इसलिये कहते हैं कि द्वादश आधारों के अन्त में इसकी स्थिति है।

निर्विकल्प महायोगी द्वादशान्त के भी ऊपर स्थित परमाकाश में जब पहुँच जाता है, तो उस स्थिति में सर्वात्मता का विकास होने से वह अनुत्तर शून्य में लीन हो जाता है। योगिनीहृदय (१.२७,३४) में इसको महाबिन्दु कहा गया है। वहाँ आज्ञाचक्र तक की स्थिति को सकल, उन्मना पर्यन्त स्थिति को सकल-निष्कल और महाबिन्दु में स्थिति को निष्कल माना गया है। इस निष्कल स्वरूप में भगवती त्रिपुरसुन्दरी निवास करती हैं।

नवमुण्डी आसन

श्रीतत्त्वचिन्तामणि (६.१-४) में षट्चक्र का निरूपण करते समय नाडियों के सम्बन्ध में बताया है कि मेरुदण्ड के बाहर वाम भाग में चन्द्रात्मक इडा और दक्षिण भाग में सूर्यात्मक पिंगला नाडी अवस्थित है तथा मेरुदण्ड के मध्य भाग में वज्रा और चित्रिणी नाडी से मिली हुई त्रिगुणात्मिका सुषुम्णा नाडी का निवास है। इनमें सत्त्वगुणात्मिका चित्रिणी चन्द्ररूपा, रजोगुणात्मिका वज्रा सूर्यरूपा और तमोगुणात्मिका सुषुम्णा नाडी अग्निरूपा मानी गयी है। यह त्रिगुणात्मिका नाडी कन्द के मध्य भाग से सहस्रार पर्यन्त विस्तृत है। इसका आकार खिले हुए धतूरे के पुष्प के सदृश है। इस सुषुम्णा नाडी के मध्य भाग में लिंग से सिर तक दीपशिखा के समान प्रकाशमान वज्रा नाडी स्थित है। उस वज्रा नाडी के मध्य में चित्रिणी नाडी का निवास है। यह प्रणव से विभूषित है और मकड़ी के जाले के समान अत्यन्त सूक्ष्म आकार की है। योगी गण ही इसको अपने योगज ज्ञान से देख सकते हैं। मेरुदण्ड के मध्य में स्थित सुषुम्णा और ब्रह्मनाडी के बीच में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विशुद्धि और आज्ञा चक्रों को भेदकर यह नाडी सहस्रार चक्र में प्रकाशमान होती है। इस चित्रिणी नाडी के बीच में शुद्ध ज्ञान को प्रकाशित करने वाली ब्रह्मनाडी स्थित है। यह नाडी मूलाधार स्थित स्वयंभू लिंग के छिद्र से सहस्रार में विलास करने वाले परम शिव पर्यन्त व्याप्त है। यह नाडी विद्युत् के समान प्रकाशमान है। मुनिगण ही इसके कमलनाल स्थित तन्तुओं के समान अत्यन्त सूक्ष्म आकार का मानस प्रत्यक्ष कर सकते हैं। इस नाडी के मुख में ही ब्रह्मद्वार स्थित है और इसीको योगी गण सुषुम्णा नाडी का भी प्रवेश द्वार मानते हैं।

इनके अतिरिक्त शास्त्रों में प्राणवहा, मनोवहा, अश्विनी, गुह्यिनी, चित्रा, वारुणी, शूरा, नैरात्म्ययोगिनी आदि नाडियों का भी वर्णन मिलता है। इनका विवरण "तान्त्रिक साधना और संस्कृति" नामक ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में १७, १३९, २६३, २९१-२९२ पृष्ठों पर देखना चाहिये। वहाँ (पृ. २६३) बताया गया है कि सहजियों की साङ्केतिक भाषा में सभी नाड़ियों को 'योगिनी' कहा जाता है।

नाद

प्रपञ्चसार, शारदातिलक, रत्नत्रय आदि ग्रन्थों में नाद और बिन्दु को शिव और शक्ति से उसी तरह से अभिन्न माना गया है, जैसे कि प्रकाश और विमर्शात्मक शिव तथा शक्ति से शब्द और अर्थ को अभिन्न माना गया है। प्रणव की १२ कलाओं में भी बिन्दु और नाद की स्थिति है। आगम और तन्त्रशास्त्र की विभिन्न शाखाओं में नाद और बिन्दु की अपनी-अपनी व्याख्याएँ हैं। विज्ञानभैरवोद्योत (पृ. ३) और स्वच्छन्दोद्योत (१.३; पृ. ६) में "अदृष्टविग्रहात्

प्राण कुण्डलिनी

अनच्क कला और आणव उपाय की व्याख्या के प्रसंग में प्राण शक्ति के सम्बन्ध में कहा जा चुका है। इसको कुण्डलिनी इसलिये कहते है कि मूलाधार स्थित कुण्डलिनी की तरह इसकी भी आकृति कुटिल होती है। जिस प्राणवायु का अपान अनुवर्तन करता है, उसकी गति हकार की लिखावट की तरह टेढी-मेढी होती है। अत: प्राणशक्ति अपनी इच्छा से ही प्राण के अनुरूप कुटिल (घुमावदार) आकृति धारण कर लेती है। प्राणशक्ति की यह वक्रता (कुटिलता = घुमावदार आकृति) परमेश्वर की स्वतन्त्र इच्छाशक्ति का ही खेल है। प्राणशक्ति का एक लपेटा वाम नाडी इडा में और दूसरा लपेटा दक्षिण नाडी पिंगला में रहता है। इस तरह से उसके दो वलय (घेरे) बनते हैं। सुषुम्णा नाम की मध्यनाडी सार्ध कहलाती है। इस प्रकार यह प्राणशक्ति भी सार्धत्रिवलया

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। वस्तुत: मूलाधार स्थित कुण्डलिनी में ही प्राणशक्ति का भी निवास है, किन्तु हृदय में उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति होने से ब्राह्मणवसिष्ठ न्याय से उसका यहाँ पृथक् उल्लेख कर दिया गया है। इसका प्रयोजन अजपा(हंसगायत्री)-जप को सम्पन्न करना है। इस विषय पर विज्ञानभैरव के १५१ वें श्लोक की व्याख्या में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

भर-पेट भोजन-पानी प्राप्त करने से मोटी अक्ल के आरामतलबी आदमी का शरीर ही नहीं, प्राणशक्ति भी मोटी हो जाती है। बाद में सद्गुरु का उपदेश पाकर जब वह योगाभ्यास में लग जाता है, कुम्भक आदि प्राणायामों का अभ्यास करता है, तो धीरे-धीरे उसके शरीर के मोटापे के साथ ही प्राणशक्ति भी कृश होती जाती है, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती जाती है। श्रोत्र, चक्षु, नासिका, मुख, उपस्थ जैसे प्राण और अपान आदि वायुओं के निकलने के मार्गों को रोक देने पर वायु की गति ऊपर की ओर उठने लगती है। मूलाधार अथवा हृदय में विद्यमान प्राणशक्ति यौगिक पद्धति के अनुसार सुषुम्णा मार्ग से अथवा मध्यदशा के विकास के कारण द्वादशान्त तक जाते-जाते अत्यन्त सूक्ष्म होकर अन्त में प्रकाश में विलीन हो जाती है। आधार से लेकर द्वादशान्त पर्यन्त क्रमश: धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठ रही इस प्राणशक्ति के द्वादशान्त में प्रविष्ट हो जाने पर स्वात्मस्वरूप का अनुभव होने लगता है। योगशास्त्र की परिभाषा में इसको पिपीलिकास्पर्श वेला कहा जाता है, जिसमें कि प्राण के ऊपर उठते समय जन्माग्र से लेकर मूल, कन्द आदि स्थानों का स्पर्श होने पर उसी तरह की अनुभूति होती है, जैसी कि देह पर चींटी के चलने से होती है। इसी अवस्था में योगी इसकी परीक्षा कर पाते हैं कि प्राण आज अमुक स्थान से चल कर अमुक स्थान तक उठा। इस स्थिति तक पहुँच जाने पर योगी का चित्त परम आनन्द से भर जाता है और वह इसी अन्तर्मुख वृत्ति में रम जाता है।

प्राणापान

ऊपर हृदय से बाह्य द्वादशान्त तक जाने वाला प्राण और नीचे बाह्य द्वादशान्त से हृदय तक आने वाला जीव नामक अपान, यह प्राणशक्ति का उच्चारण है। प्राणशक्ति इनका निरन्तर उच्चारण करती रहती है, अर्थात् प्राण और अपान के रूप में स्पन्दित होती रहती है। स्वच्छन्दतन्त्र (७.२५-२६)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में प्राण और अपान को प्राणशक्ति का विसर्ग और आपूरण व्यापार बताया गया है। तदनुसार प्राण का अर्थ है श्वास छोड़ना और अपान का अर्थ है श्वास लेना। पालि बौद्ध वाङ्मय में इसके लिये आनापान (आश्वास-प्रश्वास) शब्द प्रयुक्त है। किन्तु वहाँ इनके अर्थ के विषय में विवाद है। आचार्य नरेन्द्रदेव अपने ग्रन्थ "बौद्ध-धर्मदर्शन" में आश्वास-प्रश्वास शब्द पर टिप्पणी करते हैं—विनय की अर्थकथा के अनुसार 'आश्वास' श्वास छोड़ने को और 'प्रश्वास' श्वास लेने को कहते हैं। लेकिन सूत्र की अर्थकथा में दिया हुआ अर्थ इसका ठीक उलटा है। आचार्य बुद्धघोष विनय की अर्थकथा का अनुसरण करते हैं। उनका कहना है कि बालक माता की कोख से बाहर आता है, तो पहले भीतर की हवा बाहर निकलती है और पीछे बाहर की हवा भीतर प्रवेश करती है। तदनुसार 'प्रश्वास' वह वायु है, जिसका निःसारण होता है और 'आश्वास' वह वायु है, जिसका कि ग्रहण होता है। सूत्र की अर्थकथा में किया गया अर्थ पातञ्जल योगसूत्र के व्यासभाष्य के अनुसार हैं। योगभाष्य (पृ. ८१) में वायु के आचमन (ग्रहण) को श्वास और निःसारण को प्रश्वास बताया गया है।

विज्ञानभैरव के "ऊर्ध्वे प्राणः" आदि श्लोक में प्राण और अपान शब्द का बुद्धघोष प्रदर्शित अर्थ ही स्वीकृत है। ऊर्ध्व और अधः शब्द का अर्थ पहले और बाद में किया जाना चाहिये। पहले प्राण बाहर निकलता है और बाद में अपान का प्रवेश होता है। अपान को जीव इसलिये कहा जाता है कि प्राण के बाहर निकलने के बाद अपान जब शरीर में पुनः प्रविष्ट होता है, तभी यह बोध हो सकता है कि शरीर में जीवात्मा विद्यमान है। अपान के प्रवेश न करने पर शरीर शव कहा जायगा। अपान के कारण ही शरीर में जीवात्मा की स्थिति बनी रहती है, अतः स्वाभाविक है कि अपान को जीव के नाम से जाना जाय।

स्वच्छन्दतन्त्र (७.२५-२६) भी इसी स्थिति को मान्यता देता है। भगवद्गीता (५.२७) की श्रीधरी टीका में प्राण और अपान के लिये उच्छ्वास और निश्वास शब्द प्रयुक्त है। लोकव्यवहार में सङ्केत (शक्ति = समय) के अनुसार शब्दों के अर्थ बदलते रहते हैं। कभी कभी वे परस्पर विरोधी अर्थों में भी प्रयुक्त होने लगते हैं। जैसा कि प्राण और अपान तथा उनके पर्यायवाची श्वास-प्रश्वास शब्दों के विषय में देखने को मिलता है। इन शब्दों का हृदयस्थित प्राण वायु

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और वायुस्थित अपान वायु से कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु प्राणशक्ति की श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया से ही इनका सम्बन्ध है। प्राणशक्ति की प्राण, अपान आदि पाँच या दस वृत्तियाँ भी इनसे भिन्न हैं।

बिन्दु

प्रपञ्चसार, शारदातिलक, रत्नत्रय जैसे ग्रन्थों में नाद और बिन्दु को शिव और शक्ति से उसी तरह से अभिन्न माना गया है, जैसे कि प्रकाश और विमर्शात्मक शिव तथा शक्ति से शब्द और अर्थ को अभिन्न माना गया है। प्रणव की १२ कलाओं में भी बिन्दु और नाद की स्थिति है। आगम और तन्त्र की विभिन्न शाखाओं में नाद और बिन्दु की अपनी-अपनी व्याख्याएँ हैं।

त्रिपुरा दर्शन (योगिनीहृदय १.२७-२८) में भगवती त्रिपुरसुन्दरी के निष्कल स्वरूप की स्थिति महाबिन्दु में मानी गयी है। कामकलाविलास में बताया गया है कि विमर्श (शक्ति) रूपी दर्पण में परमशिव रूपी प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है, तो वह चित्तमय कुड्य (भित्ति) में महाबिन्दु के रूप में प्रतिफलित होता है। इसको कामबिन्दु भी कहा जाता है। आगे चलकर शिव और शक्ति के प्रतीक शुक्ल और रक्त बिन्दु का उन्मेष होता है, जो कि शब्दमयी और अर्थमयी सृष्टि के जनक हैं। दो होने से इन बिन्दुओं को विसर्ग कहा जाता है। कालक्रम से उक्त दोनों बिन्दु मिलकर समरस हो जाते हैं और उससे मिश्र बिन्दु का आविर्भाव होता है। यह हार्धकला के नाम से प्रसिद्ध है। काम बिन्दु, विसर्ग और हार्धकला मिल कर कामकला नामक पदार्थ की रचना करते हैं। इसी से सारे जंगत् की सृष्टि होती है।

बिन्दु शब्द की व्याख्या अक्षरबिन्दु, कारणबिन्दु, कार्यबिन्दु शब्दों की परिभाषा के अन्तर्गत भी देखी जा सकती है।

बीजत्रय

गायन्त्री मन्त्र में जैसे तीन पाद है, उसी तरह से श्रीविद्या में तीन कूट अथवा बीज हैं। इनके नाम हैं—वाग्भव, कामराज और शक्ति। प्रत्येक कूट या बीज के अन्त में स्थित हृल्लेखा में कामकला की स्थिति मानी जाती है। योगिनीहृदय (३.१७२-१७६) में इसकी १२ कलाओं का वर्णन किया गया

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। उक्त तीन कूटों या बीजों में क्रमशः आधार, हृदय और भ्रूमध्य स्थित वह्नि, सूर्य और सोम नामक कुण्डलिनियों में से प्रत्येक में श्रीचक्र के तीन तीन चक्रों की भावना की जाती है। प्रथम बीज की हृल्लेखा में विद्यमान कामकला की अंगभूत सपरार्ध (हार्ध) कला वह्निकुण्डलिनी, द्वितीय बीज की हार्धकला सूर्यकुण्डलिनी और तृतीय बीज की सपरार्ध कला सोमकुण्डलिनी कहलाती है। वाग्भव बीज का हृदय तक और कामराज बीज का भ्रूमध्य तक उच्चारण होता है। शक्ति बीज में सभी १२ कलाओं का उच्चारण हो सकता है। वाग्भव सृष्टिबीज और कामराज स्थितिबीज है। अतः इनका उच्चारण विश्वातीत उन्मनी पर्यन्त नहीं हो सकता। नित्याषोडशिकार्णव, योगिनीहृदय आदि ग्रन्थों में और उनकी टीकाओं में यह विषय विस्तार से वर्णित है।

मणिपूर चक्र

स्वाधिष्ठान चक्र के ऊपर नाभि के मूल भाग में मेघ के समान श्याम वर्ण के दस दलों से शोभित मणिपूर चक्र की स्थिति मानी जाती है। इन दलों में अर्धचन्द्र और बिन्दु से भूषित ड से फ पर्यन्त दस वर्ण सुशोभित हैं। इसके बीच में प्रात:कालीन अरुण वर्ण के सूर्य के समान कान्ति वाले त्रिकोणात्मक वैश्वानर मण्डल में रँ बीज का ध्यान किया जाता है। यह मण्डल तीन स्वस्तिक द्वारों से अलंकृत है। रँ बीज का वाहन मेष है, वर्ण रक्त है और इसका शरीर चतुर्भुज है। इस वह्नि बीज के देवता रुद्र हैं। इनका वर्ण सिन्दूर के समान है और इसकी अधिष्ठात्री योगिनी का नाम लाकिनी है। (श्रीतत्त्वचिन्तामणि, षट्चक्रनिरूपण, प्रक० ६)।

मध्यधाम

मध्यनाडी सुषुम्णा को शाक्त-दर्शन में मध्यधाम कहा गया है। इसीको शून्यातिशून्य पदवी भी कहा जाता है। वस्तुत: मध्यधाम सुषुम्णा को शून्य और शिवतत्त्व को शून्यातिशून्य कहते हैं। मध्यधाम या मध्यदशा को शून्यस्वभाव इसलिये कहा जाता है कि यहाँ ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय आदि त्रिपुटियों की कोई सत्ता नहीं बची रहती। मध्यधाम के लिये शून्यातिशून्य शब्द का प्रयोग लाक्षणिक है। इसका मुख्य प्रयोग शिवतत्त्व और उसकी अभिव्यक्ति के स्थान द्वादशान्त के लिये ही किया जाता है। सुषुम्णा नामक मध्यनाडी शून्यातिशून्यधाम द्वादशान्त में जाकर लीन हो जाती है, अत: इसको भी शून्यातिशून्यधाम कह दिया जाता है। इस शून्यातिशून्य-स्वभाव मध्यधाम में विश्रान्ति ही योगी के लिये उपेय (प्राप्तव्य) है।

हृदय के मध्य में इसका निवास है। यह कमलनाल में विद्यमान अत्यन्त सूक्ष्म तन्तुओं के समान कृश आकार वाली है। इस मध्यनाडी के भीतर चिदाकाशरूप शून्य का निवास है। इससे प्राणशक्ति चारों ओर प्रसार करती है। साधक जब मध्यनाडी की सहायता से चिदाकाश में प्रविष्ट होता है, तब सोम और सूर्य, अर्थात् अपान और प्राण अथवा मन और प्राण सुषुम्णा में अपने आप विलीन हो जाते हैं। प्राण और अपान के मध्यवर्ती धाम सुषुम्णा (मध्यनाडी) में जिसका आन्तर और बाह्य इन्द्रियचक्र (मन और उससे नियन्त्रित

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चक्षुरादि इन्द्रियाँ) लीन हो जाता है और जो ऊर्ध्वस्थान और अध:स्थान में विद्यमान अकुल और कुल पद्मों के सम्पुट के मध्य में भावना के बल से प्रविष्ट हो गया है, अर्थात् ऊर्ध्वगत प्रमाणरूपी पद्म और अध:स्थित प्रमेयरूपी पद्म के मध्य में चिन्मात्र प्रमाता अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है और इसीलिये चिन्मात्रता के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु में जिसका चित्त संलग्न नहीं है, वह योगी स्वात्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यहाँ प्रमेयरूप संसार का निमेष और उन्मेष व्यापार पद्मदल के संकोच और विकास के तुल्य है। इसीलिये इसकी पद्मसम्पुट से तुलना की गयी है।

मध्यमा

शब्दब्रह्म संस्कृत पवन से प्रेरित होकर जब हृदय-स्थान में अभिव्यक्त होता है, तो वह निश्चयात्मिका बुद्धि से संयुक्त होकर विशेष रूप से स्पन्दित होने वाले नाद का रूप धारण कर मध्यमा वाक् के रूप में प्रसिद्ध होता है। पश्यन्ती से नवनादात्मक मध्यमा वाणी का उन्मेष होता है। यह नाद की अनाहत अवस्था है। सङ्केतपद्धति, अर्थरत्नावली, वरिवस्यारहस्य, नेत्रतन्त्रोद्योत, स्वच्छन्दतन्त्रोद्योत आदि ग्रन्थों में धर्मशिव आदि आचार्यों के वचनों के प्रमाण पर अष्टविध तथा नवविध नाद का प्रतिपादन किया गया है। इनकी अभिव्यक्ति वाणी की मध्यमा दशा में होती है। यही नादानुसन्धान की स्थिति है। इसको मध्यमा इसलिये कहा जाता है कि यह न तो पश्यन्ती के समान उत्तीर्ण है और न वैखरी की तरह स्पष्ट अवयवों वाली है। उक्त दोनों स्थितियों के मध्य में इसकी स्थिति होने से ही इसको मध्यमा कहा जाता है। नवनादात्मक इस मध्यमा वाणी से ही नववर्गात्मिका वैखरी वाणी अभिव्यक्त होती है। योगिनीहृदय में इसको ज्येष्ठा शक्ति कहा गया है।

मध्यविकास

प्राण और अपान के आधारभूत स्थान आन्तर आकाश हृदय और बाह्य आकाश द्वादशान्त में प्रत्यावृत्ति के अभाव में एक क्षण के लिये प्राण या अपान की वृत्ति अन्तर्मुख हो जाती है। तब ऐसी प्रतीति होती है कि मानों प्राण और अपान कहीं विलीन होगये हैं। इस स्थिति को मध्यदशा के नाम से जाना जाता है। इस मध्यदशा का जब विकास किया जाता है, तब धीरे-धीरे साधक की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भेद-दृष्टि (दूसरे से अपने को अलग समझने का स्वभाव) घटती जाती है और उसकी बाह्य और आन्तर इन्द्रियाँ अन्तर्मुख होने लगती हैं। क्रमश: उसका प्राणचार (प्राण और अपान की गति) मध्यनाड़ी सुषुम्णा में लीन हो जाता है और तब परा शक्ति भैरवी से अभिन्न रूप में विद्यमान भगवान् भैरव का स्वरूप प्रकाशित हो उठता है।

हृदय, कण्ठ, तालु, ललाट, ब्रह्मरन्ध्र और द्वादशान्त में प्राण की गति रहती है और हृदय-कमल, मुख का सङ्कोच-विकास तथा द्वादशान्त—ये अपान की गति के स्थान हैं। इनमें एक क्षण के लिये प्राण के अस्त हो जाने पर और अपान का उदय न होने पर बिना प्रयत्न के बाह्य कुम्भक की प्राप्ति होती है। इसी तरह से एक क्षण के लिये अपान के अस्त हो जाने पर और प्राण का उदय न होने पर बिना प्रयत्न के अन्त:कुम्भक की प्राप्ति होती है। यह मध्यदशा ही परम पद कहलाती है। प्राण-अपान की इस मध्यदशा को योगी ही जान सकते हैं। एक त्रुटि, लव अथवा क्षण के लिये भी अन्तर्मुख हो जाने पर योगी में इस मध्यदशा का विकास हो जाता है और तब प्राण और अपान की पुन: प्रत्यावृत्ति नहीं होती, अर्थात् वह मुक्त हो जाता है।

यह प्राणात्मक और अपानात्मक शक्ति हृदय से द्वादशान्त तक न तो जायगी और न द्वादशान्त से हृदय की ओर वापस ही लौटेगी, जब कि मध्यनाडी का धाम (स्थान) विकल्पहानिरूप उपाय से विकसित कर दिया जाय। प्राण और अपान की गति के शान्त हो जाने से, हृदय और द्वादशान्त में प्राण और अपान की अस्पन्द अवस्था में स्थिति हो जाने से मध्यदशा का विकास होने पर साधक अपने स्वरूप को पहचान लेता है, वह साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है। प्रत्यभिज्ञाहृदय के १८ वें सूत्र में विकल्पक्षय आदि मध्यदशा के विकास के उपाय बताये गये हैं। स्पन्दकारिका में उन्मेष दशा के नाम से इसका वर्णन किया गया है।

योनिमुद्रा

नित्याषोडशिकार्णव जैसे त्रिपुरा सम्प्रदाय के ग्रन्थों में दस प्रकार की मुद्राओं का विवरण मिलता है। उनमें से पहली त्रिखण्डा मुद्रा आवाहन में विनियुक्त होती है और बची हुई नौ मुद्राओं का विनियोग नौ चक्रों की पूजा में बीज-मन्त्रों के उच्चारण के साथ किया जाता है। इन मुद्राओं के बीज-मन्त्र अर्थरत्नावली में उद्धृत किये गये हैं। यद्यपि योनिमुद्रा का निरूपण यहाँ सबके अन्त में हुआ है, तो भी इसको प्रथम, अर्थात् सर्वोत्कृष्ट माना गया है, क्योंकि सभी मुद्राओं की उत्पत्ति इसीसे होती है। बाह्य पूजा में मुद्राओं का क्रम वही है, जो कि उक्त ग्रन्थों में बताया गया है, किन्तु अन्तर्याग में योनिमुद्रा को ही प्रथम स्थान प्राप्त है।

नित्याषोडशिकार्णव (३.२६-२७) प्रदर्शित योनिमुद्रा का स्वरूप यह है—दोनों मध्यमाओं को वक्र कर उसके ऊपर तर्जनियों को रखना चाहिये। पीछे अनामिका और कनिष्ठिका को मध्यगत करके अङ्गुष्ठ द्वारा परिपीडित करने से यह मुद्रा बनती है। तन्त्रसार में इसका स्वरूप इस प्रकार लिखा है—दोनों हाथों की मध्यमाओं को मध्य स्थल में रखकर दोनों हाथों की कनिष्ठाद्वय को मध्यमाद्वय द्वारा आबद्ध करना चाहिये। तब दोनों तर्जनियों को दण्डाकार करके मध्यमाद्वय के ऊपरी भाग पर रखने से यह मुद्रा बनती है। यह परमा मुद्रा सर्वसंक्षोभकारिणी है। इस मुद्रा से त्रिपुरा देवी का ध्यान किया जाता है।

अङ्गुलिविरचनात्मा मुद्रा के अतिरिक्त संस्थानविशेष रूप योनिमुद्रा का भी शास्त्रों में वर्णन है। उत्तरषट्क में बताया गया है कि गुदा और मेढ्र (लिङ्ग) के मध्य में योनि स्थान, अर्थात् कन्द स्थान है। उसको आकुञ्चित कर बाँध लेना चाहिये। इसके अभ्यास से मन्त्रों के सभी दोषों का निवारण हो जाता है। हठयोग के ग्रन्थों में महामुद्रा के नाम से इसका वर्णन किया गया है। वहाँ बताया गया है कि इस मुद्रा के अभ्यास से साधक कुण्डलिनी शक्ति को जगा सकता है। प्राणतोषिणीतन्त्र (पृ. १२८-१३२) में भी इसका विस्तृत विवरण मिलता है। वहाँ बताया गया है कि योनिमुद्रा में स्थित होकर योगी पवन की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गति को ऊर्ध्वोन्मुख बनाकर उससे मन्त्राक्षरों का शोधन कर ले। महामुद्रा और मूलबन्ध भी योनिमुद्रा के ही प्रकार हैं। प्राणतोषिणी-धृत कुब्जिकातन्त्र में भी इस विषय का विवरण है। इसीलिये शास्त्रों में मन्त्रार्थ, मन्त्रचैतन्य और योनिमुद्रा के ज्ञान को मन्त्रसाधना में अनिवार्य माना जाता है। उच्च कोटि का साधक इस योनिमुद्रा के अभ्यास से ही मन्त्रगत दोषों का निवारण कर सकता है। शारदातिलक में बताया गया है कि जो साधक योनिमुद्रा के अभ्यास में असमर्थ है, उसको चाहिये कि वह मन्त्रगत दोषों के निवारण के लिये उनको दस प्रकार के संस्कारों से संस्कृत करे।

इसके अभ्यास से योनि-स्थान, अर्थात् कन्द-स्थान मुद्रित हो जाता है। इसीलिये इसको योनिमुद्रा कहते हैं।

शिष्य योगिनीहृदयदीपिकाकार योगी अमृतानन्द भी इसी हादिविद्या-परम्परा के प्रमुख आचार्य थे। इस विषय की अधिक जानकारी के लिये तन्त्रयात्रा (पृ. ६४-७८) में प्रकाशित "त्रिपुरादर्शनस्यापरिचिता आचार्याः कृतयश्च" शीर्षक निबन्ध देखना चाहिये।

वह्नि

विज्ञानभैरव के ६७ वें श्लोक में वह्नि और विष शब्दों की चर्चा आयी है। यहाँ वह्नि का अधः कुण्डलिनी से सम्बन्ध है और विष का ऊर्ध्व कुण्डलिनी से। अधः कुण्डलिनी में प्रवेश (आवेश) सङ्कोच अथवा वह्नि कहलाता है और ऊर्ध्व कुण्डलिनी में प्रवेश विकास अथवा विष कहलाता है। वह्नि का प्राण से सम्बन्ध है और विष का अपान से। जब प्राण सुषुम्णा में प्रवेश करता है और अधः कुण्डलिनी अथवा मूलाधार तक जाता है, तब इस दशा को वह्नि कहते हैं। वह्नि शब्द वह् धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है—उठाकर ले जाना। अग्नि को वह्नि इसलिये कहा जाता है कि यह जो कुछ उसमें हवन किया जाता है, उसे देवों तक उठाकर ले जाता है। प्रस्तुत प्रसङ्ग में वह प्राण को मूलाधार तक उठाकर ले जाता है। इससे जीव का स्वरूप सङ्कुचित हो जाता है। वह्नि शब्द इसी दशा का बोधक है।

योगशास्त्र में मानव के शरीर में स्थित आधारों की चर्चा आयी है। इनमें से लिङ्ग के ऊपर नाभि से चार अङ्गुल नीचे वह्नि नामक आधार की स्थिति मानी गयी है। नित्याषोडशिकार्णव (५.१) और तन्त्रालोक (३.१६५-१७०)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में कामतत्त्व के रूप में इसका वर्णन किया गया है। गोरक्षनाथ कृत अमरौघशासन (पृ. ८-९) में भी यह विषय चर्चित है।

वामा

शान्ता शक्ति जब अम्बिका शक्ति में बीजभाव से स्थित जगत् को स्पष्ट भासित करने को उद्यत होती है, तो वह वामा कहलाती है। विश्व का वमन करने और इसकी गति कुटिल होने से भी इसको वामा कहा जाता है। इसकी कुटिल गति के कारण ही शृङ्गाट (त्रिकोण) की वाम रेखा बनती है। यही वामा शक्ति इच्छा शक्ति से संवलित होकर पश्यन्ती के रूप में अभिव्यक्त होती है (योगिनीहृदय, १.३७-३८)।

विकल्प

तान्त्रिक दर्शन में बाह्य नील-पीत (घट-पट) आदि से लेकर शून्य पर्यन्त सभी पदार्थ विकल्प-स्वरूप माने गये हैं। अहंपरामर्श दो प्रकार का होता है—शुद्ध और मायीय। इनमें से शुद्ध परामर्श विश्व से अभिन्न रूप में विद्यमान संविन्मात्र में अथवा विश्व की छाया से असंस्पृष्ट स्वच्छ आत्मा में होता है। मायीय अथवा अशुद्ध परामर्श वेद्यस्वरूप देह, बुद्धि, प्राण, शून्य आदि को अपना आलम्बन बनाता है, अर्थात् इन्हीं को अपना स्वरूप मान लेता है। इनमें से शुद्ध परामर्श में किसी प्रतियोगी (विरोधी) पदार्थ की सत्ता न रहने

विष

विज्ञानभैरव के ६७ वें श्लोक में वह्नि और विष शब्दों की चर्चा आयी है। यहाँ वह्नि का अध: कुण्डलिनी से और विष का ऊर्ध्व कुण्डलिनी से सम्बन्ध है। अध: कुण्डलिनी में प्रवेश (आवेश) संकोच अथवा वह्नि कहलाता है और ऊर्ध्व कुण्डलिनी में प्रवेश विकास अथवा विष कहलाता है। वह्नि का प्राण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से सम्बन्ध है और विष का अपान से। अध: कुण्डलिनी के मध्य के शेष भाग और उसके पूर्ण अग्र भाग से लेकर ऊर्ध्व कुण्डलिनी तक में आवेश अथवा प्रवेश विष कहलाता है। इस प्रसङ्ग में विष शब्द का अर्थ जहर नहीं है। विष शब्द विष्लृ धातु से बना है, जिसका अर्थ है—व्याप्त होना, फैल जाना। तदनुसार विष का अर्थ है प्रसरण अथवा विकास। जहर को विष इसीलिये कहते हैं कि वह सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है। प्रस्तुत प्रसङ्ग में वह अपान को द्वादशान्त तक ले जाता है, अर्थात् उसको सारे शरीर में फैला देता है। इससे जीवभाव का विकास होता है। विष शब्द इसी दशा का बोधक है।

योगशास्त्र में मानव शरीर स्थित आधारों की चर्चा आयी है। इनमें से विष नामक आधार की स्थिति लिङ्ग के मध्य में मानी जाती है। योगिनीहृदय (१.२५) में इसके लिये विषु शब्द प्रयुक्त हुआ है। नित्याषोडशिकार्णव (५.१) और तन्त्रालोक (३.१६५-१७०) में विष तत्त्व के रूप में इसका वर्णन मिलता है। गोरक्षनाथ कृत अपरौघशासन (पृ. ८-९) में भी यह विषय चर्चित है।

विषुवसप्तक

योगिनीहृदय (३.१७६-१७७) में बताया गया है कि मन्त्र के जप के समय शून्यषट्क, अवस्थापञ्चक और विषुवसप्तक की भावना करनी चाहिये। प्राण-विषुव, मन्त्र-विषुव, नाडी-विषुव, प्रशान्त-विषुव, शक्ति-विषुव, काल-विषुव और तत्त्व-विषुव—ये सात प्रकार के विषुव हैं। योगिनीहृदय (३.१८२-१८९) में ही वर्णित है कि प्राण, आत्मा तथा मन के परस्पर योग को प्राण-विषुव कहते हैं। अभिव्यज्यमान नाद को निज आत्मा समझकर उसकी भावना करना मन्त्र-विषुव है। मूल मन्त्र के द्वारा छ: चक्र तथा द्वादश ग्रन्थियों का क्रमश: भेदन होने पर मध्य नाडी में नाद का स्पर्श होता है। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त बीजशिखरवर्ती नाद के उच्चरित होने पर नाडी-विषुव की निष्पत्ति होती है। शक्ति में नादान्त पर्यन्त मन्त्र के अवयवों की लय-भावना प्रशान्त-विषुव कहलाती है। शक्तिमध्यगत नाद के समना पर्यन्त चिन्तन को शक्ति-विषुव कहा जाता है। उन्मना पर्यन्त नाद के चिन्तन को काल-विषुव कहते हैं। काल-विषुव के बाद तत्त्व-विषुव की स्थिति है। उन्मना के ऊपर उन्मना के भेद के साथ साथ नाद का भी लय हो जाता है। तभी तत्त्वबोध, अर्थात् स्वात्मस्वरूप का साक्षात्कार हो पाता है। इसलिये तत्त्व-विषुव को ही चैतन्य की अभिव्यक्ति

बौद्ध तन्त्र-ग्रन्थों में सुरतयोग की व्याख्या इस प्रकार मिलती है—वज्रजाप के द्वारा ललना और रसना का शोधन वस्तुतः नाडीशुद्धि का ही नामान्तर है। सिद्धाचार्य लुइपाद कहते हैं कि चन्द्र शुद्ध होकर 'आलि' कहा जाता है। इस शोधन का फल धवन (या धमन) है। सूर्य शुद्ध होकर 'कालि' कहा जाता है। इसका फल चवन (या चमन) है। आलि और कालि का संयोग ही वज्रसत्त्व की अधिष्ठान-भूमि है, विशुद्ध चन्द्र और सूर्य मिलकर जब ऐक्यलाभ करते हैं, तब उस अद्वैत भूमि पर वज्रसत्त्व का आविर्भाव होता है। यह संयोग आरब्ध होकर क्रमशः चलता रहता है एवं उसी अनुपात में शून्यता, अद्वयभाव, आनन्द या रति और नैरात्म्यबोध या बोधि गम्भीरभाव से उपलब्ध होने लगते हैं। इस संयोग अथवा मिलन का पारिभाषिक नाम 'सुरत' अथवा शृङ्गार है एवं इसका फल रस की अभिव्यक्ति है (तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि, पृ. २७९; तन्त्र और सन्त, पृ. २६४; भारतीय संस्कृति और साधना, भा. २, पृ. ४३,२५९)।

सुषुम्णा नाड़ी

नाडी शब्द के विवरण में बताया गया है कि शरीर स्थित अनन्त नाड़ियों में से तीन नाडियाँ मुख्य हैं—इडा, पिंगला और सुषुम्णा। सुषुम्णा इनमें प्रधानतम है। शरीर के मध्य भाग में इसकी स्थिति है। चूंकि यह इडा और पिंगला दोनों नाडियों से सम्बद्ध है, अतः इसको अग्नीषोमात्मक माना गया है। प्राचीन ग्रन्थों में उक्त तीनों नाडियों को सोम, सूर्य और वह्नि का धाम तथा वाम, दक्षिण और मध्य पवन का आधार माना गया है। सुषुम्णा शरीर के मध्य भाग में पृष्ठवंश में स्थित है। ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त इसकी गति है। सुषुम्णा नाडी प्रधानतम इसलिए मानी जाती है कि इडा और पिङ्गला नाडी का इसी में लय हो जाता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। शारदातिलक और उसकी टीका में स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञाचक्र—ये सुषुम्णा नाडी के पाँच पर्व माने गये हैं। इडा और पिङ्गला नाडी के मार्ग से जब पवन ऊपर उठता है, तब उक्त स्थानों पर उनका सुषुम्णा नाडी से सम्पर्क होता है। इस प्रकार उक्त तीनों नाडियाँ ऊर्ध्वगामिनी मानी गयी हैं।

सुषुम्णा नामक यह मध्य नाडी कन्द भाग से ब्रह्मरन्ध्र तक ऊपर की ओर गतिशील रहती है। ज्ञानसङ्कलिनी तन्त्र (श्लो. ११-१२) में इडा को गङ्गा, पिङ्गला को यमुना और सुषुम्णा को सरस्वती बताया गया है। यह तीर्थराज प्रयाग है, जिसमें गङ्गा, यमुना और सरस्वती का सङ्गम होता है। इसमें स्नान करने वाला व्यक्ति सब पापों से मुक्त हो जाता है। सुषुम्ना नाडी ही ब्रह्मनाडी कहलाती है। इसी में सारा विश्व प्रतिष्ठित है। गुदा के पृष्ठभाग से शिरोभाग तक जो अस्थिदण्ड स्थित है, उसी को वीणा दण्ड अथवा ब्रह्मदण्ड कहते हैं। उसके अन्तिम भाग में एक सूक्ष्म सुषिर (छिद्र) है। इसी को ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। योगाभ्यास के प्रभाव से मध्यनाडी सुषुम्णा यहाँ शिव और शक्ति के सामरस्य के रूप में जब विश्राम करती है, तब साधक समाधिस्थ हो जाता है, जीवन्मुक्त हो जाता है।

पूर्णानन्द प्रदर्शित सुषुम्णा तथा उसकी सहयोगिनी नाडियों का वर्णन नाडी शब्द की परिभाषा में भी किया गया है।

ज्वलज्ज्वलनसङ्काशां प्रसुप्तभुजगाकृतिम् ॥

सार्धत्रिवलयोपेतां वायुनोत्थाप्य सत्वरम् ॥ 8॥

जलते हुए अग्नि जैसी सोये हुए सर्प जैसी साढ़े तीन घेरे में स्थित ऐसी कुण्डलिनी शक्ति को प्राणवायु से शीघ्रता से उठाकर -- ॥८॥

चक्रभेदनमार्गेण नीत्वोद्र्ध्वे गुरुमण्डले ॥

चन्द्रबिम्बे विलाप्याथतन्निर्गतसुधारसैः ॥9॥

उस सर्पिणी जैसी कुण्डलिनीशक्ति को प्राणापान संयोग से कन्द में साढ़े तीन घेरे में लिपटी हुई, को शीघ्रता से "हुं" मन्त्र

से हठात् उठाकर चक्रभेदन मार्ग (सुषुम्णा) से अर्थात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, तथा (लम्बिका के ऊपर)- आज्ञा चक्र का भेदन कर ऊर्द्ध्वभाग में सहस्रार में स्थित गुरुमण्डल में जो चन्द्रबिम्ब है, उसमें कुण्डलिनी को विलीन करे। वह वहाँ दंश करती है तो जो अमृतरस है, वह नीचे आता हुआ सभी चक्रस्थलों को तृप्त करता है ॥९ ॥

इसी विषय में भगवान् श्री मदाद्यशङ्कराचार्य जी ने सौ. ल. के १०वें श्लोक में कहा है,

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः,
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः ॥
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयम्,
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि ॥१०॥(सौ.ल.)

संक्षाल्य स्वतनुं चाथ गुरुविद्यां प्रजप्य च ॥

सम्पूज्य स्तुतिभिः स्तुत्वा हृदि कुण्डलिनीं पुनः॥10॥

उष:काल में उठकर कुण्डलिनीशक्ति का स्मरण करते हुए अपने शरीर को प्रक्षालित करे, फिर गुरुविद्या (मन्त्र) का जप करे, अन्त में स्थित अपनी कुण्डलिनीशक्ति का मानसोपचारों से पूजन एवं पद्धति में कहे गए कुण्डलिनी का ध्यान एवं स्तुति करे॥१०॥

आनीय देवतारूपां ध्यात्वा सम्पूज्य मानसैः ॥

प्रजप्य स्तुतिभिः स्तुत्वानद्यादौ स्नानमाचरेत् ॥ 11॥

कुण्डलिनीशक्ति को देवतारूप में हृदय में लाकर उसका मानस उपचारों (लमित्यादि पञ्चपूजा) से पूजन करे स्तुति करने के बाद नदी आदि जलाशयों में स्नान विधि सम्पन्न करें॥११॥

त्रिकोणमण्डले तोये ध्यात्वा देवीं यथाविधि ॥

तत्र तीर्थं समावाह्य सूर्यमण्डलमध्यतः ॥ 12॥